॥ भविष्य महापुराणम् ॥

(प्रथम खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

भविष्य महापुराणम्

(प्रथम खण्ड)

ब्राह्मपर्व

(हिन्दी-अनुवाद सहित)

✪

अनुवादक
पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९३४ : सन् २०१२
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण प्रकाशन योजना के अन्तर्गत पुराण साहित्य के संवर्द्धन हेतु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के आकाक्षानुरूप अब तक ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण तथा स्कन्द पुराणान्तर्गत केदार खण्ड का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। जिसका समादर सुधीजनों द्वारा व्यापक स्तर पर हुआ है। फलस्वरूप सम्मेलन को अनेक पुराणों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा।

सुधी पाठकों की पिपासा को शान्त करने तथा अपनी गौरवशाली पुराण प्रकाशन योजना को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु सम्मेलन ने २६,३०७ श्लोक वाले भविष्यमहापुराण के प्रकाशन का गुरुतर कार्य अपने हाथ में लिया, जिसका प्रथम खण्ड ''**ब्राह्मपर्व**'' आपके सम्मुख प्रस्तुत है। सम्पूर्ण भविष्य महापुराण का अनुवाद राजर्षि टण्डन जी ने श्री बाबूराम उपाध्याय से स्वयं कराया था। परन्तु दुःख है कि उन दोनों के जीवनकाल में इसका प्रकाशन न हो सका। आज इसे प्रकाशित हो जाने से उन दोनों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास है।

'**भविष्यमहापुराण**' को प्रकाशन की दृष्टि से कुल तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जबकि यह पुराण चार पर्वों में निबद्ध है। (१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्गपर्व, (४) उत्तरपर्व।

भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में ८९१७ श्लोक हैं, जिनमें सर्वांशतः भगवान् सूर्य की ही महिमा-गरिमा वर्णित है।

इस पुराण की पाण्डुलिपि एवं विस्तृत भूमिका उपलब्ध कराने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के सुष्ठु सम्पादन हेतु पण्डित रुद्रप्रसाद मिश्र, डॉ० जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि' तथा श्री शेषमणि पाण्डेय के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमहापुराण 'ब्राह्मपर्व' का द्वितीय संस्करण सुधीजनों द्वारा समादृत होगा तथा जनकल्याणकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

विभूति मिश्र
प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

कृष्ण जन्माष्टमी
संवत् २०६९

आमुख

प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास के मर्मज्ञ भलीभाँति जानते हैं कि अष्टादश पुराणों में 'भविष्यमहापुराण' का कितना उच्च स्थान है और उसमें कितनी महत्त्वपूर्ण सामग्रियों का समावेश हुआ है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद जिस वर्तमान वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर और जिस रीति से उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, वह सभी जिज्ञासुओं एवं पुराणज्ञों के लिए बहुत ही उपयोगी है। 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति' ।। अर्थात् वेदों के उपबृंहण रूप होने के कारण पुराणों का महत्त्व स्वतः प्रमाणित है। यह नितान्त सत्य है कि पुराण संस्कारकों ने वेदों के रहस्यात्मक मंत्रों को सरल प्रयोग द्वारा जन-सामान्य के लिए उपयोगी एवं सम्प्रेषणीय बना दिया है।

भविष्यमहापुराण भारतीय धर्म, कर्मकाण्ड, इतिहास और राजनीति का एक विशाल कोश है। इसमें अनेक प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का सार संगृहीत है। कुछ प्राचीन विशिष्ट ग्रन्थ भी इसमें समाहित हो गये हैं। इसकी रमणीयता भी अवर्णनीय है। सूर्याराधन की विशेषताओं, व्रतों एवं नियमों की प्रामाणिकता के लिए हेमाद्रि, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिकाकार देवण्णभट्ट (११२५-१२२५) आदि निबन्धकारों ने भी इसी का आश्रय लिया है। वास्तव में क्रान्तद्रष्टा ऋषियों की मौलिक सूझ-बूझ भविष्यमहापुराण में ही मिलती है। वैदिक सामग्रियों का सरलतम भाषा में सम्यक् विश्लेषण भविष्यपुराण का वर्ण्य-विषय है। आदि से लेकर अन्त तक भविष्य-महापुराण ने एकतारूपता बनाये रखने का सफल प्रयत्न किया है।

भविष्यमहापुराण का नाम भारतीय साहित्य—विशेषकर पुराणों में अत्यन्त प्रसिद्ध है और यह अनेक कारणों से लोगों में लोकप्रिय है। इतिहास के जिज्ञासुओं के ऐतिहासिक दृष्टिकोण के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक ग्रन्थ है। इसलिए अनेक लोगों ने उर्दू, अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में लिखे गये इतिहासों के साथ इसकी तुलना की है। पार्जीटर, स्मिथ और पं० भगवद्दत्त ने भी बड़ी छानबीन के बाद भविष्यमहापुराण को ही इतिहास के लिए सर्वाधिक प्राचीन आधार माना है। भविष्यमहापुराण को देखकर एक स्वाभाविक उत्कण्ठा होती है कि आखिर यह कौन-सी विचित्र रचना है, जो प्राचीन काल में लिखी गयी है और भविष्य की बातों को भी अपने में सँजोये हुए है। 'पुराणमाख्यानम्' के द्वारा तो प्राचीन आख्यानों को ही पुराण की संज्ञा दी गयी। चूँकि सभी भारतीय आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते हैं, इसलिए भविष्य की ओर अधिक दृष्टि लगाये रहते हैं। अपने भविष्य को जानने और दूसरे के भविष्य की इच्छा प्रबलवती होती है।

पुराणों की अनेकधा व्युत्पत्ति सर्वत्र मिलती है, इसलिए यहाँ पृथक् से उस पर कोई व्याख्या देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ऐतरेयब्राह्मणोपक्रम में सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा कि "वेद के अन्तर्गत देवासुर युद्ध इत्यादि का वर्णन इतिहास कहलाता है और आगे यह असत् था, अन्यथा कुछ नहीं था इत्यादि जगत् की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सृष्टि-प्रकिया का

वर्णन पुराण कहलाता है।" बृहदारण्यकभाष्य में शंकराचार्य का स्पष्ट मत है कि 'उर्वशी पुरुरवा आदि संवाद स्वरूप ब्राह्मणभाग को इतिहास कहते हैं और पहले असत् ही था इत्यादि सृष्टि प्रकरण को पुराण कहते हैं'। इन व्याख्याओं से यह प्रकट है कि सर्गादि का वर्णन पुराण और ऐतिहासिक कथाएँ इतिहास हैं।

वर्तमान में प्राप्त भविष्यमहापुराण के संस्करणों के आधार पर उसकी समीक्षा समीचीन है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के हस्तलिपि संग्रहालय में क्रम सं० १६५१६ पर एक भविष्यपुराण की प्रति उपलब्ध है, जिसमें पांच पर्वों-ब्राह्म, शैव, त्वाष्ट्र, वैष्णव और प्रतिसर्गपर्व का उल्लेख है, किंतु उक्त हस्तलिपि में सभी पर्वों की विषय-सामग्री नहीं मिलती। 'बँगला विश्वकोश' के पृ० सं० ३०५ पर मुद्रित है कि 'क्लीबलिंग' (भविष्यपुराण) स्वतंत्र पुराण नहीं है, बल्कि यह पुराण का एक भेद है। शशिभूषण विद्यालंकार द्वारा रचित 'भारतीय पौराणिक जीवनी कोश' जो रंगून (वर्मा) से प्रकाशित है, के पृष्ठ सं० १२२० पर भविष्यपुराण का उल्लेख है। तदनुसार भविष्यमन्वन्तर के प्रारम्भ में प्रसूत, भव्य, पृथुग, लेख और आद्य—ये पाँच देवता थे। इन्हीं में से भव्य के नाम पर भविष्यपुराण की रचना हुई। आफेक्ट के 'कैटलागस कैटलागारम' के अनुसार लन्दन के इण्डिया आफिस की क्रमसंख्या ३४४७ पर भविष्यपुराण की एक लिखित प्रति की चर्चा है, किंतु यह प्रति सप्तमी कल्प तक होने के कारण अपूर्ण है। विल्सन ने भी भविष्यपुराण की एक प्रति का उल्लेख किया है, जिसमें १४,००० श्लोक और १२६ अध्याय हैं। डॉ० हरप्रसाद शास्त्री ने बिहार के गोपालगंज जिलान्तर्गत हथुआराज के पुस्तकालय में स्थित एक प्रति का हवाला दिया है, जो उनके १९२८ ई० में प्रकाशित 'डिस्क्रिप्टिव कैटलाग' के पृष्ठ संख्या ४२८ पर अंकित है।

वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित भविष्यमहापुराण ही समग्र रूप में हमारे समक्ष वर्तमान में उपलब्ध है, उसके अनुसार उसमें कुल चार पर्व हैं-ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तरपर्व। उक्त प्रकाशित प्रति में जिस क्रम से और जितने अध्यायों में उनका वर्णन है, उसका सम्पूर्ण विवरण अधोलिखित है :—

पर्व	खण्ड	कुल अध्याय	श्लोक संख्या
१. ब्राह्मपर्व		२१६	८९११
२. मध्यमपर्व	प्रथम भाग	२१	८९८
	द्वितीय भाग	२१	१४७२
	तृतीय भाग	२०	५७१
३. प्रतिसर्गपर्व	प्रथम खण्ड	७	४०६
	द्वितीय खण्ड	३५	१११८
	तृतीय खण्ड	३२	२३९०
	चतुर्थ खण्ड	२६	२१०२
४. उत्तरपर्व		२०८	८४३९

भविष्यमहापुराण के इस संस्करण में प्रतिसर्ग पर्व के सम्बन्ध में कहा गया है कि इसमें यह प्रकाशन के समय जोड़ा गया। मूल रूप में प्राप्त भविष्यमहापुराण में यह पर्व प्रकाशक को नहीं प्राप्त हुआ था। आगे कहा गया है कि अमृतसर के ठाकुर महान् चन्दर के यहाँ इस पर्व की प्रति मिली, जिसका परिष्कार करके प्रकाशक ने प्रकाशित किया। इस पर्व के भविष्यपुराण में जुड़ जाने पर भी इसकी अति प्राचीनता अन्य पर्वों से ही सिद्ध हो जाती।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[1]

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद की सृष्टि), वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र, कश्यप, दक्ष आदि के वंशों का सम्यक् निरूपण) पञ्चलक्षण कहलाता है।

किसी भी पुराण को महापुराण की श्रेणी में तभी रखा जा सकता है, जब वह इन उपर्युक्त पञ्चलक्षणों से सम्पन्न हों। किंतु श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में पुराणों के दशलक्षणों का विवेचन है। पञ्चलक्षणात्मक श्लोक भविष्यपुराण में दो बार मिलता है। इससे स्पष्ट है कि भविष्यपुराणकार पञ्चलक्षणों को आश्रित कर इस पुराण को रचने के प्रति सचेष्ट थे। सर्वत्र उनका यही प्रयास देखने को मिलता है कि अष्टादश पुराणों की श्रृंखला में भविष्यमहापुराण अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने में समर्थ हो। इसी कारण पुराणों की सूची जहाँ भी प्राप्त होती है, उसमें भविष्यमहापुराण ९ वें स्थान पर है। उसका तात्पर्य है कि भविष्यपुराण की रचना के समय तक ८ पुराण रचे जा चुके थे। भविष्यमहापुराण में आद्योपान्त नैरन्तर्य मिलता है। इसकी जो अनुक्रमणिका अन्य पुराणों[2] में उपलब्ध है, उसके अनुसार वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित भविष्यमहापुराण नहीं मिलता। इस संस्करण के ब्राह्मपर्व में भविष्यमहापुराण के श्लोकों की संख्या ५०,००० (पचास हजार) बतायी गयी है[3], किंतु गिनने पर श्लोकों की कुल संख्या २६३०७ ही है। यह विचारणीय है कि पचास हजार श्लोकों वाला भविष्यमहापुराण कहाँ गया।

भविष्यमहापुराण की विषय-सामग्री इतनी मनोहर एवं आकर्षक है कि विद्वत्समाज सहज ही इसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में इसका उल्लेख मिलने के कारण इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की आशंका निर्मूल है। यह बात अलग है कि नानक, कबीर, सूर, तुलसी, जयचन्द्र, पृथ्वीराज इत्यादि से सम्बन्धित विवरण प्राप्त होने के कारण कुछ विद्वानों ने इसे अर्वाचीन पुराणों की श्रेणी में रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु

---

१. भविष्यमहापुराण—१/२/४-५, ४/२/११; विष्णुपु० ३/६/२४; मत्स्यपु० ५३/६४; मार्क० १३४/१३; देवीभा० १/२/१८; शिवपु० वा० सं० १/४१; अग्निपु० १/१४; ब्रह्मवैवर्तपु० १३३/६; स्कन्दपु० प्र० ख० २/८४; कूर्मपु० पू० १/१२; ब्रह्माण्डपु० प्रक्रियावाद १/३८; वराहपु० २/४।

२. नारदपु० (१/१००), मत्स्यपु० (५३/३१), अग्निपु० (२७२/१२)।

३. भविष्यमेतदृषिणा लक्षार्द्धं संख्यया कृतम्॥ भविष्यमहापु० १/१/१०५।

यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि यदि प्रतिसर्गपर्व को इस पुराण से अलग कर दिया जाय, तो इसकी अति प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध हो जायेगी। कुछ इतिहासकारों ने तो मध्यकालीन इतिहास का प्रमुख आधार इसी पुराण को माना है तथा इसमें उल्लिखित विषयों की भूरि-भूरि सराहना की है। भविष्यमहापुराण में निर्दिष्ट कर्मकाण्ड-सम्बन्धी प्रकरण इतना ओज और प्रवाह लिये हुए है कि लगता है कि यह समग्र रूप में कर्मकाण्ड शास्त्र ही है।

इसके ब्राह्मपर्व में पुराणों को पापहरण का प्रधान साधन बताते हुए भविष्यमहापुराण की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है और उसके बाद सृष्टि को निरूपित किया गया है। इसी प्रकार क्रमशः सम्पूर्ण जागतिक प्रक्रिया का सुन्दर नमूना इस पुराण मे देखने को मिलता है। गर्भाधान-संस्कार से लेकर अन्य संस्कारों का क्रमशः वर्णन करते हुए स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों पर अत्यन्त गवेषणा पूर्वक विचार वर्णित है। प्रारम्भ में ही यह विवेचित है कि जनमेजय के पुत्र शतानीक के यहाँ समस्त ऋषिगण जाकर प्रार्थना करने लगे तथा उनसे निवेदन किया कि हे ब्रह्मन्! त्रिभुवन में जो ज्ञान है, वह तो 'श्रुत' है, परन्तु शूद्रों की स्थिति अलग है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए तीन वेद तथा मनुस्मृति इत्यादि अनेक शास्त्र भी उन्हीं के कल्याणार्थ बनाये गये है। इनमें शूद्रों की अत्यन्त हीन स्थिति है। अतः हे ब्रह्मन्! आप यह बतायें कि शूद्रगण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने मे कैसे समर्थ हों?[१] इससे स्पष्ट है कि भविष्यपुराण की रचना के समय शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इसलिए जगत् के कल्याण के प्रति सचेष्ट ऋषियों के हृदय में उनके प्रसंस्कार की बात आयी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही वेद-शास्त्रों पर अपना अधिकार समझते थे तथा शूद्रों को सदैव उनका स्पर्श भी नहीं करने देते थे। एक ऐसा भी समय था, जब पढ़ने-लिखने का कोई साधन नहीं था, केवल भोजपत्र ही लिखने के साधन थे। उन लिखित भोजपत्रों को अमूल्य निधि की भाँति सुरक्षित करके रखा जाता था। शूद्र कृषि इत्यादि कार्यों में इतने संसक्त रहते थे कि ज्ञान-विज्ञान में उनकी कोई रुचि ही नहीं रहती थी। कालान्तर में समय परिवर्तित हुआ तथा वेदों के उपबृंहण रूप में बोधगम्य भाषा में पुराणों की रचना का प्रारम्भ हुआ। उसी कड़ी में भविष्यमहापुराण की भी रचना हुई।

भविष्यमहापुराण के रचना-काल के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। किंतु जो साक्ष्य मिले हैं, उनके अनुसार इसकी रचना ईसा पूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी में हुई लगती है।

भविष्यमहापुराण की विषय-सामग्री को देखने से यह स्पष्ट झलक मिलती है कि 'कर्म ही प्रधान है'। चाहे व्यक्ति किसी भी वर्ण का हो, यदि वह उत्तम कार्य में प्रवृत्त होता है, तो जाति

---

४. भवन्ति द्विजशार्दूल श्रुतानि भुवनत्रये।
विशेषतश्चतर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम॥
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदा प्रकल्पिताः।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथांगानि समन्ततः॥
शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभान्ति द्विजप्रभो।
धर्मार्थकाममोक्षस्य शक्ताः स्युरवने कथम्॥ —भविष्यपु० १/१/४८-५१

उसमें बाधक नहीं हो सकती। पुराणकार ने नारद, मन्दपाल इत्यादि ऋषियों का उदाहरण देते हुए कहा कि ये सभी जाति से हीन होते हुए भी अपने उत्तम कार्यों से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इससे प्रकट है कि यह पुराण कर्म को प्राथमिकता देनेवाला महापुराण है तथा इसमें विवेचित विषय भी तदनुरूप ही है। इस पुराण में सृष्टि-रचना, दैव-शक्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान अत्यन्त व्यवस्थित रूप में निर्दिष्ट है।

भविष्यमहापुराण के आदि में ही समाज के दीन-हीन लोगों के प्रति जो सहानुभूति प्रदर्शित की गयी है, उससे लगता है कि या तो भविष्यमहापुराणकार उससे किसी रूप में प्रभावित था या तत्कालीन दीन-हीन लोगों के प्रति उसमें आस्तिकी बुद्धि आयी, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने उनके सम्मान में इस पुराण की रचना की। वर्ण्य विषय को देखकर सहज ही उस समय के ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य की झलक मिल जाती है। 'षष्ठीकल्प' के विवेचनप्रसंग में इस पुराणकार ने घोषणा की है कि वर्ण और जाति का अन्तर जन्म से न करके कर्म से करना चाहिए। शूद्र कुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त शुद्ध आचार-विचार वाला है तथा त्याग एवं दया-भावना से पूर्णतः आवेष्टित है, तो निःसन्देह वह ब्राह्मण कहलाने योग्य है तथा वह वेद का अधिकारी है। ब्राह्मण शब्द से तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी से है। चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी हो, ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्त हो सकता है और वेदों का सम्यक् अध्ययन कर क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र व्यक्ति भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सकता है। उदाहरण के रूप में रावण, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर को देते हुए पुराणकार का कहना है कि वे लोग भी उत्तम कार्यों में लगकर वेदों के अध्ययन पूर्वक अपना विकास कर सकते हैं। साथ ही वृषल जाति के लोग भी उन्हीं की भाँति वेदों का अध्ययन कर सकते हैं।[1] वेदों का अध्ययन कर शूद्र भी दूसरे देश में जाकर अपने को ब्राह्मण घोषित कर सकता है। क्योंकि कोई भी मनसा, वाचा, कर्मणा उसको शूद्र नहीं कह सकता। इसका मूल अर्थ यही निकला कि केवल वेदाध्ययन से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत उसके लिए तदनुसार कर्म की आवश्यकता होती है। किसी भी जाति का प्रतिभावान् व्यक्ति समस्त वेदों, दो वेद या एक ही वेद का यथाक्रम अध्ययन करके शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होनेवाली कन्या से विवाह कर सकता है। इसी प्रकार दाक्षिणात्य और गौड़पूर्वा जातियाँ बन गयीं। इस कारण वेदों के अध्ययन के आधार पर जाति का निर्धारण भविष्यपुराण को मान्य नहीं है।[2]।

---

१. **वेदाध्ययनमप्येतद् ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते। विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः॥**
श्वादचाण्डालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः। येऽन्येऽपि वृषलाः केचित्तेऽपि वेदानधीयते॥
शूद्रा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः। व्यापाराकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः॥
भवि०पु० १/४१/१-३

२. **वेदानधीत्य वैदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्। प्रोद्वहंति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः॥**
अथवाधीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्येस्तु वा नराः। गौड़पूर्वा कृतामेयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम्॥
वही—१/४१/४-५

अब भविष्यपुराण के पर्वों के अनुसार पृथक्-पृथक् विषयवस्तु जान लेना उचित होगा।

ब्राह्मपर्व के अन्तर्गत जीवनोपयोगी उन सभी विषयों का समावेश है, जिनका सम्यक् अनुसरण करते हुए विवेकी मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सके। गृहस्थी को चलाने के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन साधनों का सांगोपांग विवेचन इसमें है। स्त्रियों के कर्तव्याकर्तव्यों की भी चर्चा करने में पुराणकार ने अपनी विशेष रुचि दिखायी है। प्रतिपदा से लेकर सभी कल्पों, सूर्य देवता के विविध रूपों, अनेक प्रकार के व्रतों का तिरूपण करते समय भविष्यपुराण ने कर्मकाण्ड की पद्धतियों का समुचित विश्लेषण किया है। इसी में सम्पूर्ण साम्बपुराण किंचिदन्तर से संकलित है। यदि केवल ब्राह्मपर्व पर ही स्वतंत्र रूप से अनुसन्धान किया जाय, तो संस्कृत साहित्य का बड़ा उपकार होगा। सम्मेलन ने इस ग्रन्थ के उद्धार का जो संकल्प लिया है, वह केवल स्तुत्य ही नहीं, सराहनीय एवं सामयिक भी है। क्योंकि आज के समाज को ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता है, जो समाज एवं व्यक्ति को प्रगति के मार्ग पर ले जाने में समर्थ हों।

भविष्यमहापुराण का द्वितीय पर्व मध्यमपर्व के नाम से ख्यात है, जिसमें तीन खण्ड हैं। सम्पूर्ण मध्यमपर्व मे इष्टापूर्त से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। इष्टापूर्त वेद, श्रौतसूत्रों तथा ब्राह्मणग्रन्थों में विस्तार के साथ प्रतिपादित है अथवा यों कहा जाय कि वेदों से लेकर उनके कर्मकाण्ड प्रतिपादक अङ्ग, उपाङ्ग एवं पद्धति निरूपक ग्रन्थों में भी इसी का वर्णन है, तो अत्युक्ति न होगी। इष्टापूर्त एक पारिभाषिक शब्द है। इसमें दो पद है-इष्ट और पूर्त। दोनों का समास होने पर मित्रावरुण, अष्टावक्र, तथा विश्वामित्र इत्यादि शब्दों की भाँति 'अन्येषामपि दृष्यते' (पाणिनि ६/३/१३७) सूत्र से बीच में 'अकार' का दीर्घ होता है। पाणिनि ने (५/२/८८) के गणपाठ में यद्यपि 'इष्ट-पूर्त' शब्दों का पाठ किया है, पर समास में अकार वृद्धि की चर्चा नहीं की है। दीर्घत्व का प्रसंग ६/३/१२८-१३९ सूत्रों के प्रकरण में मिलता है। काशिका के अनुसार इष्ट का अर्थ यज्ञ और पूर्त का अर्थ श्राद्ध आदि है। वेदों से लेकर पुराण एवं स्मृतियों तक के प्रयोगों में इष्टापूर्तम्, इष्टापूर्तौ और इष्टापूर्ते—ये तीनों ही समस्त या असमस्त प्रयोग मिलते हैं। रघुनन्दनभट्ट ने अपने 'मलमासतत्त्व' में जातुकर्ण्य के वचन से अग्निहोत्र , वैश्वदेव, सत्य, तप, वेदाध्ययन एवं उनके अनुकरण को इष्ट तथा वापी, कूप, तडाग, देवमन्दिर, पौंसला, बगीचा तथा सदाव्रत आदि चलाने को पूर्त कहा है[७]। चारों

---

७. अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्। आस्तिक्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते॥
—मलमासतत्त्व- उद्धृत जातुकर्ण्यवचन।

उपर्युक्त वचन किंचिदन्तर से मनुस्मृति (४/२२७) की मेधातिथि, कुल्लूक आदि की व्याख्याओं तथा अत्रिस्मृति (४३-४४), लघुशंखस्मृति (४-५), लिखितस्मृति (५-६), मार्क० पु० (१८/६-७), अग्निपु० (१०९/२-३) आदि में भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद (१०/१४/८,१०/११/१२), छान्दोग्योप० (५/१०/३), वसिष्ठध० (३०), विष्णुध० (९१-९२) तथा याज्ञवल्क्यस्मृति आदि में भी इष्टापूर्ति की व्याख्या इन्हीं श्लोकों में की गयी है।

वेदों में यह पद बार-बार आया है।

संहिताभाग में इष्टापूर्त का व्यापक वर्णन है[1]। सर्वत्र 'उद्बुधस्वाग्ने' इत्यादि मंत्र में ही यह पद प्रयुक्त है। अधिकांश स्थलों पर इतरेतर द्वन्द्व के रूप में भी पुलिंग एवं नपुंसकलिंग में यह पद मिलता। बह्वृचपरिशिष्ट में इष्टापूर्त के सभी अंगो प्रतिमा, कूप, आराम, तड़ाग, वापी आदि की प्रतिष्ठा, यज्ञ, हवन एवं शान्तियों का उल्लेख है।[2] यह जितना शुद्ध, आनुक्रमिक एवं प्रासंगिक है, उतना किसी भी कर्मकाण्ड ग्रन्थ में नहीं मिला। षड्विंशब्राह्मण में भी ठीक यही बातें मिलती हैं।[3] अथर्वपरिशिष्ट में प्रायः इन्हीं शब्दों में देव प्रतिमाद्भुत् का निर्देश है।[4] भविष्यपुराण का यह पर्व सर्वथा बह्वृचपरिशिष्ट से मिलता है।

मुइर्स (MUIR'S LECTURS) लेक्चर्स खण्ड ५, धारा २९३ पर इन चारों वचनों और उनकी व्याख्याओं का संग्रह है। बनर्जी तथा थीबूट के ब्रह्मसूत्र के हिन्दी अनुवाद में पृष्ठ १९ तथा ३० पर इष्ट का अर्थ स्वार्थ के लिए तप और पूर्त का अर्थ परोपकार के लिए किया गया धर्म निर्दिष्ट है। शंख तथा लिखित आदि स्मृतियों के अनुसार ये धर्म द्विजातियों के होते हैं। शूद्रों को केवल पूर्त का अधिकारी कहा गया है। किंतु इस तथ्य की व्याख्या में भविष्यपुराण का प्रतिपादन अत्यन्त प्रौढ़ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण के निर्माता को सभी प्राचीन, श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों का भाष्य देखने को मिला था, क्योंकि श्रौतसूत्रों की ही भाँति भविष्यपुराण में भी ज्ञानसाध्य कर्म को अन्तर्वेदी तथा प्रतिमा आदि को बहिर्वेदी कहा गया है।[5]

मध्यमपर्व के प्रथम खण्ड में पुराणकार ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से इस पर्व की निर्विघ्न समाप्ति हेतु मंगलाचरण करते हुए भविष्यपुराण के प्रशंसा की परम्परा में धर्म के स्वरूप को व्यक्त किया है। इसी पर्व में विराट् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को स्थापित करते हुए, स्वर्ग, पाताल आदि लोकों के वर्णन के साथ तीनों वर्णों की प्रशंसापूर्वक ब्राह्मण का लक्षण विवेचित है। इस पर्व का वृक्षारोपण, कूप, वापी इत्यादि की प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा लक्षण, अष्टादश कुण्ड संस्कार वर्णन, नित्य-नैमित्तिक होम के अवसान पर षोडश उपचार वर्णन, होम हेतु द्रव्यों का प्रमाण, स्रुवा, दर्वी, पात्र निर्माण वर्णन, पूर्णाहुति होम वर्णन और विविध मण्डल निर्माण वर्णन हृदयग्राही है, जो वर्तमान में पर्यावरण को दूषित होने से बचाने की पूरी क्षमता रखता

---

१. वाजसनेयिसं० (१५/१४), तै० सं० (४/७/३), का० सं० (१८/१८), कपि० सं० (२९/६), काण्वसं (१६/७७, २०/३१), मै० सं० (७/१२,४/२२), अथर्व० (२/१२/४), ३/१२८, ६/१२३/२, १८/१२/५७), ऋ० (१०/१४/८), पै० सं० (२/५/४) में भी इष्टापूर्त का उल्लेख है।

२. बह्वृचपरिशिष्ट, अध्याय ४, खण्ड १ से २१ तक।

३. षड्विंशब्राह्मण ६/१०/१-३।

४. अथर्वपरिशिष्ट ७२/४-६।

५. ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अन्तर्वेदीति कथ्यते।
देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिरुदाहृता॥ भविष्यपु० २/१/९/१-२।

है । वैज्ञानिक भी अनेक प्रकार का अनुसन्धान करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर को दूषित होने से बचाना है, तो पुराणों का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ।

द्वितीय खण्ड में याज्ञिक कृत्यों की अत्यन्त विशद विवेचना है । इस खण्ड की रचना का मुख्य उद्देश्य यह जान पड़ता है कि यज्ञ के मंत्रों एवं छन्दों को उनकी विधि के साथ यजमान आचरण कर मोक्ष प्राप्त करे । किसी भी शास्त्र या साहित्य का प्रयोजन यही है कि उसका अध्येता निजी जीवन के लिए उसको उपयोगी समझकर भली प्रकार अपनाये तथा अपने आचरण एवं व्यवहार से ऐसी परम्परा को उद्भूत करे, जिसका आश्रय कर जन-सामान्य ऊपर उठ सके । जहाँ तक मेरी धारणा है; भविष्यमहापुराणकार अपने इस उद्देश्य में सफल हैं, क्योंकि इतनी प्राचीन रचना होते हुए भी आज हमारे बीच यह पुराण लोकप्रिय है ।

जाति-विहीन समाज के निर्माण की मान्यता में भविष्यपुराण आगे है । मुझे तो ऐसा लगता है कि वर्तमान युग में सामाजिक बराबरी की बात की जा रही है, वह निश्चयेन इस पुराण से प्रभावित है । इस बात से कथमपि इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पुराणों में भी विशेषकर भविष्यपुराण के प्रति लोगों की अधिक आस्था है तथा इसमें पाये जानेवाले विषयों के अनुरूप आचरण को जन-सामान्य ने अपनाया है ।

वेदों में यज्ञों के अनेक भेद निर्दिष्ट हैं, जिनमें सोमयाग, पुण्डरीक, अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि प्रमुख हैं, इष्टापूर्त के अन्तर्गत ही यज्ञ भी आ जाता है तथा संस्कार-कर्मों में भी यज्ञ की आवश्यकता होती है। इन सभी यज्ञों में ऋत्विक ब्राह्मणादि का वरण तथा अग्निकुण्ड-संस्कार यजमान के गृह्यसूत्र के अनुसार करता है। गृह्यसूत्रों में पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल द्राह्यायण, जैमिनि, भारद्वाज, मानव, लौगाक्षि, बौधायन और सांख्यायन आदि मुख्य हैं । इनके अनुसार प्रणीता के बाद कुशकण्डिका, आधारहोम, महाव्याहृतिहोम और प्रायश्चित्तहोम करना चाहिए । इन्द्र और प्रजापति के नाम की आहुतियाँ आधारहोम कहलाती हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ-पद्धति इस खण्ड में वर्णित है ।

इस खण्ड में पुराणकार ने क्रौञ्च, घ्राण आदि विविध मण्डलों के निर्माणपूर्वक उनके प्रकारों, दक्षिणा का प्रमाण, कलशस्थापन के भेदों, मास को आश्रित कर कर्म की उपयोगिता से चतुर्विध मास का लक्षण, दैव-पैतृक कर्मों के लिए उपयुक्त तिथियों का निर्णय, गोत्रप्रवर-सन्तान निरूपण, बलिमण्डलपूर्वक वास्तुयाग विधियों, वास्तुदेवता पूजा, अर्घ्यदान, यज्ञ कर्म में कुशकण्डिका और स्थालीपाक विधान, अग्निजिह्वा ध्यान, यज्ञ-कर्मों के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन, गृह-निर्माण के समय देवताओं की पूजा के प्रकार तथा उनकी प्रतिष्ठा-विधियों का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से उल्लेख किया है । इसी के साथ इस खण्ड के समाप्ति की घोषणा की गयी है ।

हम सभी को ज्ञात है कि कण-कण में ईश्वर-जीव का अधिवास होता है। सम्पूर्ण चराचर जगत् ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होता है और अन्ततः प्रलय काल में उसी में विलीन हो जाता है । यह सब जानते हुए भी मनुष्य की उत्तम कार्यों में प्रवृत्ति नहीं हो पाती तथा वह बार-बार

जन्म-मृत्यु के पाश में बँधकर तड़फड़ाता रहता है और चाहकर भी मुक्ति को नहीं प्राप्त कर पाता है। मुक्ति के जिन साधनों की चर्चा शास्त्रों में निर्दिष्ट है, उनमें पूर्त कर्म भी अपनी प्रधानता रखते हैं। मनुष्य कूप, वृक्ष, तालाब का निर्माण कराकर तथा अनेक प्रकार के उपकारी कार्यों को करके जीवन से मुक्ति पाने हेतु लालायित रहता है। इस दृष्टिकोण के प्रतिपादन में यह खण्ड श्लाघनीय है। पूर्त कर्म पद्धति का जितना सुन्दर विवेचन इस खण्ड में है, उतना अन्यत्र देखने को भी नहीं मिलता। पुराणकार ने वृक्षारोपण—जैसे पुनीत कार्यों को अत्यन्त गम्भीरता से लेते हुए इस खण्ड को मनोहर बनाने का प्रयत्न किया है। इस खण्ड में क्रमशः वृक्षारोपण, गोचर भूमि की प्रतिष्ठा-विधि, सरोवर का निर्माण, पुष्करिणी-निर्माण तथा वापी-निर्माण से मिलनेवाले फलों पर विस्तार से विचार किया गया है। पुनः अश्वत्थ, आम्र, वट, पूग और तुलसी इत्यादि वृक्षों को लगाने से होनेवाले फलों पर अनेक अध्याय लिख डाले गये हैं। इन वृक्षों के रख-रखाव तथा संवर्धन में कोई बाधा न पड़े, इसके लिए महापुराणकार ने शान्ति का विधान निरूपित किया है।

पुराणों में कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक सामग्री तो सर्वत्र ही मिलती है, किंतु भविष्यमहापुराण में जिस प्रकार की और जिन ऐतिहासिक सामग्रियों का संचयन हुआ है, वैसी अन्य पुराणों में नहीं मिलती। वैसे तो इस महापुराण का हिन्दी-अनुवाद बहुत पहले हो जाना चाहिए था, किंतु ऐसा लगता है कि इस महान् कार्य का गौरव 'सम्मेलन' को ही मिलना था, इसीलिए किसी ने इधर ध्यान नहीं दिया। इस पुराण में 'प्रतिसर्गपर्व' के जुड़ जाने के कारण कतिपय पुराण मर्मज्ञों ने इसकी प्रामाणिकता पर अपनी आशंका जतायी है, किंतु निःसन्देह इस पर्व को छोड़कर शेष पर्व अति प्राचीन हैं तथा उनमें अवश्यमेव भविष्यत्कालीन घटनाओं का संग्रह है। इसके 'भविष्यपुराण' नाम से ही द्योतित होता है कि इस पुराण के निर्माता ने भविष्यत्कालीन घटनाओं का भूतकाल में निरूपित करने का सफल प्रयत्न किया। वर्तमान में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनको पुराणकार ने पहले ही कह दिया है। दृढ़-निश्चयपूर्वक चिन्तन किया जाय, तो इसका यही भाव निकलेगा कि उस समय की जिन घटनाओं का वर्णन इस पुराण में किया गया है, किसी भी अंश में आज दृष्टिगोचर हो रही हैं।

यदि इस प्रकार कहा जाय कि भविष्यमहापुराण का प्रतिसर्गपर्व मध्यकालीन इतिहास का कोश स्रोत है, तो अधिक उचित होगा। इस पर्व को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। अब आगे प्रतिसर्गपर्व के पृथक्-पृथक् खण्डों में वर्णित विषयों पर प्रकाश डालना समीचीन है।

इसके प्रथम खण्ड में वैवस्वत मनु से आरम्भ कर अनेक भूपतियों के राज्य-काल का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। सात अध्यायों में इस खण्ड की विषय-सामग्री प्रतिपादित है। म्लेच्छ यज्ञ का विवेचन करते हुए पुराणकार ने विभिन्न म्लेच्छ राजाओं (आदम, श्वेत, न्यूह,) के वृत्तान्त, म्लेच्छ भाषा का विधान, आर्यावर्त में म्लेच्छों के आने के कारण-प्रसंग में काश्यप ब्राह्मण वृत्तान्तवर्णन, बौद्ध धर्म संस्कार वर्णन, चार प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन तथा विक्रमादित्यावतार सहित वेताल-विक्रम संवाद का सविस्तार विवेचन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में पद्मावती, मधुमती, वीरवर, चन्द्रवती, हरिदास, कामांगी, त्रिलोकसुन्दरी, कुसुमदा, कामालसा, सुखभाविनी, जीमूतवाहन, मोहिनी इत्यादि कन्याओं का वर्णन करते हुए पुराणकार ने सत्यनारायण व्रतकथा विस्तृत रूप से निरूपित किया है। इसका पाणिनि, बोपदेव तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि का व्याख्यान भी कम आकर्षक नहीं है।

इसके तृतीय खण्ड में ऐतिहासिक वृत्तान्त वर्णन-प्रसंग में महाभारत युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए कौरवों, यादवों, पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण इत्यादि के पुनः अवतार का विवेचन है। भरतखण्ड के १८ राज्यों, शालिवाहन, शक, कालिदास, भोजराज, मुहम्मद साहब, ईसामसीह, भोजराज के वंश में उत्पन्न अनेक राजाओं जयचन्द्र, पृथ्वीराज, भीष्मराज, परिमलराज, लक्ष्मणराज, जम्बूकराज, देशराज, वत्सराज, चण्डिकादेवी, इन्दुल, पद्मिनी, चित्रलेखा के वर्णन के साथ पुराणकार ने इस खण्ड को ऐतिहासिक सामग्रियों के कोश के रूप में सजाने का भरपूर प्रयत्न किया है, जो सहज ही इतिहासकारों का मन मोह लेता है।

इसके चतुर्थ खण्ड का वर्णन न केवल इतिहासकारों, बल्कि सामान्य लोगों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर निर्मित किया गया है। इस खण्ड में अग्निवंशीय राजाओं के चरित्र का वर्णन करते हुए पुराणकार का स्पष्ट अभिमत है कि भावी पीढ़ी तभी आगे बढ़ सकती है, जब उसको अपने पूर्वजों के किये हुए कार्यों का सम्यक् ज्ञान हो। इसी को आश्रित कर उन्होंने विक्रमवंशीय भूपाल, अजमेरपुर, द्वारकाराज्य, सिन्धुदेश, कच्छभुज, उदयपुर, कान्यकुब्ज, देहली में स्थित म्लेच्छराजाओं का वृत्तान्त, सूर्यमाहात्म्य, मध्वाचार्य, धन्वन्तरि, कृष्ण चैतन्य, सुश्रुत, शंकराचार्य, गोरक्षनाथ, ढुण्ढिराज, रामानुज, वामदेव, कबीर, नरश्री, पीपा, नानक, नित्यानन्द इत्यादि की उत्पत्ति को वर्णित किया है। इसी क्रम में कण्व ब्राह्मण की पत्नी आर्यावती से उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डे तथा चतुर्वेदी—इन दश पुत्रों के उत्पत्ति की कथा मिलती है। इसके आगे पुराणकार ने अकबर, शिवाजी, मोंगल, कलकत्तानगरी, गुर्जरदेश, विश्वकर्मा इत्यादि का वर्णन करते हुए प्रतिसर्गपर्व का उपसंहार किया है।

प्रतिसर्गपर्व के इन चार खण्डों की विषय-सामग्री आइने अकबरी, तारीख फिरोजशाही, तवकित अकबरी इत्यादि अनेक उर्दू ग्रन्थों में तो प्रकाशित है ही, पार्जीटर, स्मिथ तथा पं० भगवद्दत्त ने भी इतिहास का प्रमुख श्रोत भविष्यमहापुराण को मानते हुए अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की है। इन विद्वानों के ग्रन्थों के आधार पर भी स्वतंत्र रूप से अनेक ग्रन्थ लिख डाले गयें हैं।

वस्तुतः ! भविष्योत्तरपर्व नामार्थतः भविष्यपुराण से उत्तरकालीन जान पड़ता है। वेङ्कटेश्वर प्रेस, निर्णयसागर तथा काशी के कई प्रेसों से आदित्य-स्तोत्र भविष्योत्तरपुराण के नाम से प्रकाशित हो चुका है। गम्भीर विचार करने पर यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि यदि भविष्यपुराण इतना प्राचीन है और जिसका उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र में आदर के साथ किया गया है, तो अन्य ब्राह्म आदि पुराण और भी प्राचीन होंगे। इसलिए इनका काल ईसा की सदियों में खोजना पुराणों की आत्मा के विरुद्ध है।

भविष्यमहापुराण का चतुर्थ उत्तरपर्व भारतीयों की आस्था के अनुरूप है, क्योंकि धर्म के स्वरूप से लेकर उसके विभिन्न पक्षों पर इसमें गवेषाणात्मक ढंग से विचार किया गया है। यह खण्ड विशेषकर सभी प्रकार के व्रतों, उत्सवों, कर्मकाण्डों एवं दानों आदि का विश्वकोश है। भारतवर्ष में इसकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी कि ५ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक इसी के आधार पर अनेक निबन्ध ग्रन्थ लिखे गये। बंगाल के निबन्धकार रघुनन्दन भट्ट के स्मृतितत्त्व, मदनसिंह के मदनपारिजात, हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि, जीमूतवाहन के कालविवेक, व्यवहारमातृका और दायभाग, बल्लालसेन के दानसागर, प्रतिष्ठासागर, अद्भुतसागर और आचारसागर, देवण्णभट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, लक्ष्मीधर के कृत्यकल्पतरु के दान एवं व्रतखण्ड, माधवाचार्य के पराशरमाधव, गोविन्दानन्द की व्रतक्रियाकौमुदी, दानक्रिया-कौमुदी, वर्षक्रियाकौमुदी, शुद्धक्रियाकौमुदी, नारायणभट्ट के प्रयोगरत्नाकर, त्रिःस्थलसेतु और शुद्धिचन्द्रिका, चण्डेश्वर के स्मृतिरत्नाकर, गृहस्थरत्नाकर, राजनीतिरत्नाकर, व्यवहार-रत्नाकर, रणवीरसिंह के व्रतरत्नाकर, जयसिंह के व्रतकल्पद्रुम, कमलाकरभट्ट के दानकमलाकर, व्रतकमलाकर, धर्मकमलाकर, निर्णयसिन्धु तथा विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा, अपरार्क के अधिकांश भागों का मूल आधार यही है।

इस खण्ड में कुल २०८ अध्याय हैं। नारदपुराण में भविष्यमहापुराण की जिस सूची का उल्लेख है, उसके अनुसार यह पर्व खरा उतरता है तथा धर्म में आस्था रखनेवाले लोगों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह पर्व धर्माधिकारियों के लिए चुनौतीपूर्ण है। इसका सम्यक् अध्ययन करनेवाला व्यक्ति न केवल सुखमय जीवन व्यतीत करता है, बल्कि अपनी भावी पीढ़ी को भी सन्मार्ग की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस खण्ड में व्रत-निरूपण के प्रसंग में क्रमशः तिलक, अशोक, कोकिला, वृहत्तपा, जातिस्मर, यमद्वितीया, तृतीया, गणेशचतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सारस्वत, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अनंगत्रयोदशी, चतुर्दशी, पाली, रम्भा, आग्नेयी, श्रवणिका, फलत्याग, पूर्णिमा, वटसावित्री, पूर्णमनोरथ, अनन्त, नक्षत्रपुरुष, सम्पूर्ण, वेश्या, शनैश्चर, आरोग्यकरसौर, भद्रा, देवपूजा, सत्येश, काञ्चनपुरी और कौमुदी इत्यादि व्रतों एवं उत्सवों का उल्लेख है।

पुण्यार्जन की दृष्टि से अनेक प्रकार के दानों का विवरण भविष्यपुराण में है। इस क्रम में पुराणकार ने क्रमशः अगस्त्यार्घ्य, चन्द्रार्घ्य, वृषोत्सर्ग, कलात्मक, जलधेनु, सहस्रगोदान, कपिला, महिषी, अवि, भूमि, हलपंक्ति, आपाक, गृह, अन्न, स्थाली, दासी, प्रपा, अग्निष्टिका, विद्या, तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, अश्व, कालपुरुष, सप्तसागर, महाभूत, शय्या, आत्मप्रतिकृति, विश्वचक्र, वराह तथा पर्वत इत्यादि अनेक दानों का उनकी विधियों के साथ निरूपण किया है।

भविष्यमहापुराण एक विशाल ग्रन्थ है और इसमें असंख्य विषयों का समावेश हुआ है। पुराण तो भारतीय ज्ञान-विज्ञान के कोश हैं। वेदों के व्याख्याभूत हैं और विद्या के मानो मूर्त-रूप हैं। भविष्यपुराण भूत, भविष्य की ऐतिहासिक घटनाओं, भाषा, संस्कृति, कला, राजनीति, खगोल, भूगोल तथा अनन्त शास्त्रों का भाण्डार है।

मुझे यह जानकर अतिशय प्रसन्नता है कि 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' इस विशाल

ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद लोकहिताय प्रकाशित कर रहा है। इस पुनीत कार्य में संस्कृत एवं हिन्दी के मर्मज्ञ डॉ० प्रभात शास्त्री जी, जो सम्प्रति सम्मेलन के प्रधानमंत्री हैं, का योगदान अविस्मरणीय है। इससे सभी लोगों को दिशाएँ मिलेंगी और जो विशेषज्ञ हैं, उन्हें सन्तोष। आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है कि सम्मेलन के इस साहसपूर्ण प्रयास की सराहना होगी और यह ग्रन्थ विद्वज्जनों का ध्यान आकृष्ट करेगा। अब तो इतने उच्चकोटि के ग्रन्थों का दर्शन दुर्लभ होता जा रहा है, इसलिए जितना कुछ भी लिखा जाय अल्प होगा।

(डॉ० रामजी तिवारी)
प्राध्यापक
संस्कृत विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर

अनुक्रमणिका

●

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

भविष्यमहापुराणम्

ब्राह्मपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥२
मूकङ्करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥३
पाराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं, नानाख्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम् ।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा, भूयाद्भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥४

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति, विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्यां भविष्यसुकथां शृणुयात्समग्रां, पुण्यं समं भवति तस्य च तस्य चैव ॥५

अध्याय १

ब्राह्मपर्व का वर्णन

नारायण, नरोत्तम (मनुष्यों में श्रेष्ठ) तथा वाग्देवी सरस्वती को नमस्कार करके, जय (महाभारत, पुराणादि पवित्र ग्रन्थों के) आख्यानों का उच्चारण करना चाहिए।१। सत्यवती के हृदय को हर्षित करने वाले, पराशर के पुत्र व्यासदेव की जय हो, जिनके मुखारविन्द से निकले हुए अमृत (रस) रूपी वाक्यों का समस्त संसार पान करता है।२। जिसकी कृपा (दृष्टि) मात्र से ही मूक (गूँगा) पण्डित (शास्त्र-निष्णात होकर प्रवक्ता-वाचाल) हो जाता है और पंगु (लँगड़ा-विकृताङ्ग) पर्वत को लाँघने योग्य (सामर्थ्य से युक्त) हो जाता है, उस परमानन्द स्वरूप माधव (श्रीकृष्ण) की मैं वन्दना करता हूँ।३। इस लोक (संसार) में कलियुग के पापों को विनष्ट करने वाला वह महाभारत रूप कमल हम लोगों (वक्ता-श्रोता) का कल्याण करे जो पराशर-नन्दन व्यास के वचनरूपी सरोवर से उत्पन्न हुआ है। यह जय काव्य अति निर्मल है! गीता के गंभीर भावों की उत्कृष्ट सुगन्धि से सुवासित और विविध प्रकार के सुन्दर आख्यान-परागों से व्याप्त, भगवान् श्रीकृष्ण की (पावन) कथाओं से विकसित है। उस पर भ्रमर बने सत्पुरुष गूँज-गूँजकर उस (काव्य-पराग) का रसास्वादन करते हैं।४। जो व्यक्ति स्वर्ण- मण्डित सींगों से सुसज्जित सौ गौओं को (किसी कर्मकाण्डी वेदज्ञ—बहुश्रुत) ब्राह्मण को दान करता है और जो (कोई दूसरा व्यक्ति इस दान के स्थान पर) भविष्यमहापुराण की कथा का आद्योपान्त श्रवण करता है, उन दोनों

कृत्वा पुराणानि पराशरात्मजः सर्वाण्यनेकानि सुखावहानि ।
तत्रात्मसौख्याय भविष्यधर्मान् कलौ युगे भावि लिलेख सर्वम् ॥६
तत्रापि सर्वर्षिवरप्रमुख्यैः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रणीतान् ।
स्मृत्युक्तधर्मागमसंहितार्थान् व्यासः समासादवदद्भविष्यम् ॥७
अल्पायुषो लोकजनान्समीक्ष्य विद्याविहीनान्पशुवत्सुचेष्टान् ।
तेषां सुखार्थं प्रतिबोधनाय व्यासः पुराणं प्रथितं चकार ॥८

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्त्ता, जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ।
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो, जयति च स तु देवो भानुमांश्चित्रभानुः ॥१
श्रियावृतं तु राजानं शतानीकं महाबलम् । अभिजग्मुर्महात्मानः सर्वे द्रष्टुं महर्षयः ॥२
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । पराशरस्तथा व्यासः सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ॥३
मुनिः पैलो याज्ञवल्क्यो गौतमस्तु महातपाः । भारद्वाजो मुनिर्धीमांस्तथा नारदपर्वतौ ॥४
वैशम्पायनो महात्मा शौनकश्च महातपाः । दक्षोऽङ्गिरास्तथा गर्गो गालवश्च महातपाः ॥५
तानागतानृषीन्दृष्ट्वा शतानीको महीपतिः । विधिवत्पूजयामास अभिगम्य महामतिः ॥६
पुरोहितं पुरस्कृत्य अर्घ्यं गां स्वागतेन च । पूजयित्वा ततः सर्वान्प्रणम्य शिरसा भृशम् ॥७

को समान पुण्य (फल) प्राप्त होता है ।५। पराशर के पुत्र व्यास ने आनन्ददायिनी (चतुर्वर्गफलदायिनी) कथाओं से युक्त अनेक पुराणों की रचना करने के बाद, स्वान्तःसुखाय कलियुग में घटित होने वाले सभी धर्मों को (इस) भविष्य पुराण में लिखा ।६। और उन सभी ऋषियों में प्रमुख पराशर आदि के द्वारा प्रणीत स्मृतियों में कहे गये धर्म (के स्वरूप), वेद एवं संहिताओं के अर्थ (को ग्रहण करके) व्यास ने भविष्य पुराण की संक्षेप में रचना की ।७। अल्पायु, विद्याहीन, पशु के समान कर्म करने वाले (कर्म में निरत रहने वाले) सांसारिक प्राणियों को (दुःखित) देखकर व्यास जी ने उनको जागरित करने के लिए इस विख्यात भविष्य पुराण की रचना की ।८

समस्त भुवनमण्डल को प्रकाशित करने वाले सम्पूर्ण संसार के कर्त्ता सूर्य देव जयशील हों (सूर्यदेव की जय हो)। श्यामवर्ण, मनोहर शरीरवाले, सींग का धनुष धारण करने वाले, मुरारि (मुर नामक दैत्य का नाश करने वाले भगवान् श्री विष्णु) जयशील हों (विष्णु की जय हो)। रुद्र नामवाले मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले, भगवान् शिव जयशील हो (शिव की जय हो)। और देव (अग्नि देव) कांति युक्त एवं विचित्र किरणों वाले अग्नि जयशील हों। (अग्नि की जय हो) ।१। महाबलशाली, श्रीसम्पन्न राजा शतानीक को देखने के लिए सभी महर्षिगण उनके समीप गये। उनमें भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, पराशर, व्यास, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, मुनि याज्ञवल्क्य, महातपस्वी गौतम, परम बुद्धिमान् मुनि भारद्वाज, नारद, पर्वत, महात्मा वैशम्पायन, परम तपस्वी शौनक, दक्ष, अङ्गिरा, गर्ग और महान् तपस्वी गालव थे ।२-५। अपने यहाँ आये हुए इन महर्षियों को देखकर महामति राजा शतानीक ने अगवानी करके (उन सबकी) विधिवत् पूजा की ।६। अपने पुरोहित को आगे करके अर्घ्य और गौ से स्वागतपूर्वक पूजन करने के उपरान्त राजा ने (उन) सबको नतमस्तक होकर बार-बार प्रणाम किया ।७। जब महर्षिगण

सुखासीनांस्ततो राजा निरातङ्कान् गतक्लमान् । उवाच प्रणतो भूत्वा बाहुमुद्धृत्य दक्षिणम् ।।८
इदानीं सफलं जन्म मन्येऽहं भुवि सत्तमाः । आत्मनो द्विजशार्दूला ! तथा कीर्तिर्यशो बलम् ।।९
धन्योऽहं पुण्यकर्मा च यतो मां द्रष्टुमागताः । येषां स्मरणमात्रेण युष्माकं पूयते नरः ।।१०
श्रोतुमिच्छाम्यहं किञ्चिद्धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । आनृशंस्यं समाश्रित्य कथयध्वम् महाबलाः ! ।।११
येनाहं धर्मशास्त्रं तु श्रुत्वा गच्छे परां गतिम् । यथागतो मम पिता श्रुत्वा वै भारतं पुरा ।।१२
तथोक्तास्तेन राज्ञा वै ब्राह्मणास्ते समन्ततः । समागम्य मिथस्ते तु विमृश्य च [1]भृशम् तदा ।।१३
पूजयित्वा ततो व्यासमिदं वचनमब्रुवन् । व्यासं प्रसादय विभो ! एष ते कथयिष्यति ।।१४
तिष्ठत्यस्मिन्महाबाहो ! वयं वक्तुं न शक्नुमः । तिष्ठमाने गुरौ शिष्यः कथं वक्ति महामते ! ।।१५
[2]अयं गुरुः सदास्माकं साक्षान्नारायणस्तथा । कृपालुश्च तथा चायं तथा दिव्यविधानवित् ।।१६
चतुर्णामपि वर्णानां पावनाय महात्मनाम् । धर्मशास्त्रमनेनोक्तं धर्माद्यैः सुसमन्वितम् ।।१७
बिभेति गहनाच्छास्त्राल्लोको व्याधिरिवौषधात् । भारतस्य[3] च विस्तारो मुनिना व्याहृतः स्वयम् ।।१८
यथा स्वादु च पथ्यं च दद्यात्स्वं भिषगौषधम् । तथा रम्यं च शास्त्रं च भारतं कृतवान्मुनिः ।।१९
आस्तिक्यारोहसोपानमेतद्भारतमुच्यते । तच्छ्रुत्वा स्वर्गनरकौ लोकः साक्षादवेक्षते ।।२०

निरातंक एवं मार्ग की थकावट से निवृत्त हो, सुखपूर्वक (अपने अपने) आसनों पर बैठ गये, तब राजा शतानीक ने विनम्र भाव से अपना दाहिना हाथ उठाकर कहा—।८। सज्जनों में श्रेष्ठ, महर्षिगण ! अब इस पृथ्वी पर मैं अपने को सफलजन्मा मानता हूँ । हे ब्राह्मणवृन्दश्रेष्ठ ! हमारे यश एवं बल दोनों सफल हो गये ।९। मैं वस्तुतः धन्य एवं पुण्यकर्मा हूँ, क्योंकि मुझे देखने के लिए आप सब का यहाँ (मेरे स्थान पर) शुभागमन हुआ है, जिन आप लोगों के स्मरण मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है ।१०। महान् पराक्रमशालियों ! मैं कुछ परमोत्तम धर्मशास्त्र की चर्चा सुनना चाहता हूँ । आप कृपापूर्वक मुझसे कहें ।११। जिससे उस पवित्र धर्मशास्त्र की कथाओं को सुनकर मैं भी वैसी ही परम गति प्राप्त करूँ, जैसी पहले महाभारत की (पवित्र) कथा को सुन कर मेरे पूज्य पिता जी ने प्राप्त की ।१२। राजा शतानीक के इस प्रकार निवेदन करने पर उन ब्राह्मणों ने आपस में भलीभाँति विचार कर व्यास को सम्मानपूर्वक (आगे कर) राजा से यह वचन कहा ।१३। हे सर्वशक्तिमान् ! आप इन्हीं व्यास जी को प्रसन्न करें । यही आपसे धर्मशास्त्र की कथा कहेंगे ।१४। हे महाबाहु ! इनके विद्यमान रहते हम लोग नहीं कह सकते । हे महामते ! भला गुरु के रहते शिष्य कैसे बोल सकता है ? ।१५। ये हम सबके सर्वदा से गुरु रहे हैं । साक्षात् नारायण स्वरूप हैं और परम कृपालु हैं तथा दिव्य विधानों का इन्हें अच्छी तरह ज्ञान है ।१६। परम प्रभावशाली चारों वर्णों को पवित्र बनाने के उद्देश्य से धर्मादि (व्रत-नियमादि) से समन्वित धर्मशास्त्र की कथा इन्होंने ही कही है ।१७। कटु ओषधि की तरह लोग कठिन शास्त्रों से डरते रहते हैं, (इसीलिए) मुनिवर व्यास ने स्वयमेव विस्तृत महाभारत की रचना की ।१८। जिस प्रकार वैद्य रोगी को लाभकारी किन्तु सुस्वादु ओषधि स्वयं देता है, उसी प्रकार मुनि ने परम रमणीय एवं शास्त्रीय विषयों से समन्वित महाभारत की रचना की ।१९। यह महाभारत आस्तिक-भावना पर आरोहण करने की सीढ़ी कही जाती

---

१. भृगुम् । २. स्वयंगुरुः सदाध्यक्षो यथा नारायणस्तथा । ३. भारतशास्त्रसारोऽयमतः काव्यात्मना कृत ।

देवतातीर्थतपसां भारतादेव निश्चयः । न जन्यते नास्तिकता तस्य मीमांसकैरपि ॥२१
विष्णौ[1] देवेषु वेदेषु गुरुषु ब्राह्मणेषु च । भक्तिर्भवति कल्याणी भारतादेव धीमताम् ॥२२
धर्मार्थकाममोक्षाणां भरतात्सिद्धिरेव[2] हि । अजिह्मो भारतः पन्था निर्वाणपदगामिनाम् ॥२३
मोक्षधर्मार्थकामानां प्रपञ्चो भारते कृतः । अनित्यतापसन्तप्ता भवन्ति तस्य मुक्तये ॥२४
विपत्तिं भारतान्छ्रुत्वा वृष्णिपाण्डवसम्पदाम् । दुःखावसानाद्राजेन्द्र ! पुण्यं च संश्रयेद्बुधः ॥२५
एवंविधं[3] भारतं वै प्रोक्तं येन महात्मना । सोऽयं नारायणः साक्षात् व्यासरूपी महामुनिः[4] ॥२६
स तेषां वचनं श्रुत्वा प्रतापी यो महीपतिः । प्रसादयामास मुनिं व्यासं शास्त्रविशारदम् ॥२७

शतानीक उवाच

अञ्जलिः शिरसा ब्रह्मन् ! कृतोऽयं पादयोस्तव । ब्रूहि मे धर्मशास्त्रं[5] तु येनां पूततां व्रजे ॥२८
समुद्धर भवादस्मात्कीर्तयित्वा कथां शुभाम् । यथा मम पिता पूर्वं कीर्तयित्वा तु भारतम् ॥२९

व्यास उवाच

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् । एष शिष्यः सुमन्तुर्मे कथयिष्यति ते प्रभो ! ॥३०

है । इसका श्रवण करके लोग स्वर्ग एवं नरक का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ।२०। देवताओं, तीर्थों एवं तपों का महाभारत से ही निश्चय होता है । उसके श्रवण करने वालों के मन में मीमांसक भी नास्तिकता उत्पन्न नहीं कर सकते ।२१। भगवान् विष्णु अन्यान्य देवगण, गुरुजन वेद एवं ब्राह्मणों में बुद्धिमानों की कल्याणदायिनी भक्ति इसी महाभारत के श्रवण करने से होती है ।२२। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति भी महाभारत से ही होती है । निर्वाण पद को प्राप्त करने के लिए यह महाभारत ही सरल एवं सीधा उपाय है क्योंकि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों दुर्लभ पदार्थों का विवेचन इसी महाभारत में किया गया है । अनित्य संतापों से संतप्त जनों को महाभारत से मुक्ति प्राप्त होती है । महाभारत से यदुवंशियों एवं पाण्डवों की अतुलनीय समृद्धि एवं विपत्ति का वर्णन सुनकर मनुष्य अपनी घोर विपत्तियों से छुटकारा पा जाता है । अतः विद्वान् इसका पुण्य ग्रहण करें । ऐसे महाभारत को जिस महात्मा ने कहा, वह महामुनि जो नारायण स्वरूप एवं व्यास रूप हैं, यहाँ साक्षात् विराजमान हैं ।२३-२६। मुनियों के वचन सुन उस प्रतापी महाराज (शतानीक) ने सर्वशास्त्रविशारद, मुनि व्यास जी को प्रसन्न किया ।२७

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं अपनी अंजलि को शिर से लगाकर आपके दोनों चरणों में लगा रहा हूँ, कृपापूर्वक मुझसे धर्मशास्त्र (की कथा) कहें, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ ।२८। परम कल्याणमयी धार्मिक कथाओं का उपदेश कर आप मुझे भी इस संसार (सागर) से पार करें जैसे पहले महाभारत का वर्णन कर मेरे पूज्य पिता जी को तारा है ।२९

व्यास जी बोले—राजा की ऐसी वाणी सुनकर व्यास ने कहा, राजन् ! यह हमारे शिष्य सुमन्तु तुम्हें (उन धार्मिक कथाओं को) सुनायेंगे ।३०। हे महाबाहु ! भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! यदि तुम समस्त

---

१. विद्वत्सु । २. सिद्ध्यसंशयः । ३. भारतं वै पञ्चविधम् । ४. महामतिः । ५. सर्वशास्त्रं च।

यदिच्छसि महाबाहो ! प्रीतिदं चाद्भुतं शुभम् । श्रव्यं भरतशार्दूल ! सर्वपापभयापहम् ॥३१
यथा वैशम्पायनेन पुरा प्रोक्तं पितुस्तव । महाभारतव्याख्यानं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥३२
अथ तमृषयः सर्वे राजानमिदमब्रुवन् । साधु प्रोक्तं महाबाहो ! व्यासेनामितबुद्धिना ॥३३
सुमन्तुं पृच्छ राजर्षे ! सर्वशास्त्रविशारदम् । अस्माकमपि राजेन्द्र ! श्रवणे जायते मतिः ।
अथ व्यासो महातेजाः सुमन्तुमृषिमब्रवीत् ॥३४
कथयास्मै कथास्तात ! याः श्रुत्वा मोदते नृपः । भारतादिकथानां तु यत्रास्य रमते मनः ॥३५
असावपि महातेजाः श्रुत्वा भावं महामतेः । व्यासस्य द्विजशार्दूल ! ऋषीणां चापि सर्वशः ॥३६
चकार वक्तुं स मनस्तस्मै राज्ञे महामतिः । व्यासस्य शासनाद्विप्र ! ऋषीणां चैव सर्वशः ॥३७
अथ राजा महातेजा आजमीढो द्विजोत्तमम् । प्रणम्य शिरसात्यर्थं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३८

शतानीक उवाच

पुण्याख्यानं मम ब्रह्मन् ! पावनाय प्रकीर्तय । श्रुत्वा यद्ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मुच्येऽहं सर्वपातकात् ॥३९

सुमन्तुरुवाच

नानाविधानि शास्त्राणि सन्ति पुण्यानि भारत । यानि श्रुत्वा नरो राजन् ! मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥४०
किमिच्छसि महाबाहो ! श्रोतुं यत्त्वां ब्रवीमि वै । भारतादिकथानां तु यासु धर्मादयः स्थिताः ॥४१

पापों एवं भय को दूर करने वाले, प्रीतिदायी, अद्भुतकल्याणप्रद, महाभारत के आख्यानों को सुनना चाहते हो तो, जिस प्रकार पहले वैशम्पायन ने ब्रह्महत्या प्रभृति पापों को दूर करने के लिए तुम्हारे पिता जी को सुनाया था, उसी प्रकार सुमन्तु तुम्हें सुनायेंगे।३१-३२। व्यास जी के इस कथन के अनन्तर अन्य समस्त ऋषियों ने भी राजा से यह कहा कि—हे महाबाहु ! परम बुद्धिमान् व्यास जी ने बहुत ठीक कहा है। हे राजर्षि ! सभी शास्त्रों में निपुण सुमन्तु जी से आप (इन आख्यानों को) पूछें। हे राजन् ! हम लोगों की भी बुद्धि उसे सुनने को हो रही है।३३-३४। तदनन्तर महान् तेजस्वी व्यास जी ने सुमन्तु ऋषि से कहा—तात ! तुम इन्हें (राजा को) कथा सुनाओ जिन्हें सुनकर इन्हें प्रसन्नता हो और महाभारतादि कथाओं में तो इनका मन विशेष रूप से लगता है।३५। द्विजशार्दूल ! परम तेजस्वी सुमन्तु ने परम विद्वान् व्यास जी के भावों एवं ऋषियों की इच्छा को जानकर राजा शतानीक से उन पवित्र कथाओं को कहने का विचार किया। विप्र ! क्योंकि इसके लिए व्यास जी की एवम् अनेक ऋषियों की भी आज्ञा थी। तदनन्तर अजमीढ़ के पुत्र परम तेजस्वी राजा (शतानीक) ने सर्वप्रथम द्विजवर (सुमन्तु) को विशेष रूप से सिर नवाकर कहना प्रारंभ किया।३६-३८

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! मुझे पवित्र करने के उद्देश्य से आप पुण्य कथाएँ कहें जिनको सुनकर मैं समस्त पातकों से दूर हो जाऊँ।३९

सुमन्तु ने कहा—भरतकुलोद्भव ! हे राजन्। वैसे तो अनेक प्रकार के पवित्र शास्त्र हैं, जिनके सुनने से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है।४०। हे महाबाहु ! महाभारत आदि की कथाओं में धर्म आदि कहे गये हैं। आप उनमें से कौन-सा सुनना चाहते हैं, जिसे मैं कहूँ।४१

शतानीक उवाच

मतानि कानि विप्रेन्द्र[१] ! धर्मशास्त्राणि सुव्रत ! । यानि श्रुत्वा नरो विप्र ! मुच्यते सर्वकिल्विषैः ।।४२

सुमन्तुरुवाच

श्रूयन्तां धर्मशास्त्राणि मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः । वसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ।।४३
[२]आपस्तम्बोऽथ उशना कात्यायनबृहस्पती । गौतमःशङ्खलिखितौ हारीतोऽत्रिस्तथापि वा ।।४४
एतानि धर्मशास्त्राणि श्रुत्वा ज्ञात्वा च भारत ! । वृन्दारकपुरं गत्वा मोदते नात्र संशयः ।।४५

शतानीक उवाच

यान्येतानि त्वयोक्तानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत ! । नेच्छामि श्रोतुं विप्रेन्द्र ! [३]श्रुतान्येतानि हि द्विज ! ।।४६
त्रयाणामपि वर्णानां प्रोक्तानामपि पण्डितैः । श्रेयसे न तु शूद्राणां तत्र मे वचनं शृणु ।।४७
चतुर्णामिह वर्णानां श्रेयसे यानि सुव्रत[४] ! । भवन्ति द्विजशार्दूल ! श्रुतानि भुवनत्रये ।।४८
विशेषतश्चतुर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम ! ।।४९
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदाः प्रकल्पिताः । मन्वादीनि च शास्त्राणि तथाङ्गानि समन्ततः ।।५०

शतानीक बोले—विप्रवर ! उत्तमव्रती ! वे धर्मशास्त्र कौन से हैं, विप्र, उन्हें सुनकर मनुष्य (अपने) समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ।४२

सुमन्तु बोले—राजन् ! उन धर्मशास्त्रों को सुनिये । मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंखलिखित, हारीत, अत्रि आदि के रचे हुए धर्मशास्त्र हैं, हे भरतवंशोद्भव ! इन सब धर्मशास्त्रों को सुनकर और जानकर मनुष्य देवताओं के लोक में जाकर आनन्द का अनुभव करता है, इसमें सन्देह नहीं ।४३-४५

शतानीक ने कहा—सुव्रती ! विप्रेन्द्र ! आपने जिन धर्मशास्त्रों की नामावलि अभी कही है इन सब को तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ, इन्हें पुनः नहीं सुनना चाहता हूँ ।४६

पण्डितों ने इन सब को तीन ही जातियों के कल्याण के लिए कहा है, शूद्रों के कल्याण की बातें इनमें नहीं हैं, इस विषय में मेरा निवेदन सुनिये ।४७

हे द्विजश्रेष्ठ ! सुव्रती ! त्रिभुवन में जो शास्त्र इस लोक (संसार) में चारो वर्णों के लिए कल्याणदायक कहे गये हैं, विशेषतः चौथे वर्ण (शूद्र) के लिए (मैं) उन्हें सुनना चाहता हूँ । ब्राह्मणादि त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए वेद, वेदाङ्ग, मनु द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र हैं हे द्विजवर ! शूद्र (वेदादि के अनधिकारी होने के कारण) अत्यन्त दीन प्रतीत होते हैं ।४८-५०

---

१. ते विप्र । २. आपस्तंबोशना व्यासः । ३. गुह्यानि । ४. सर्वदा ।

शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभान्ति द्विजप्रभो । धर्मार्थकाममोक्षस्य शक्ताः स्युरवने कथम् ।।५१
आगमेन विहीना हि अहो कष्टं मतं मम । कश्चैषामागमः प्रोक्तः पुरा द्विजमनीषिभिः ।।
त्रिवर्गप्राप्तये ब्रह्मञ्छ्रेयसे च तथोभयोः ।।५२

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो ! शृणु मे परमं वचः । चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे ।।५३
धर्मशास्त्राणि[1] राजेन्द्र ! शृणु तानि नृपोत्तम । विशेषतश्च शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः[2] ।।५४
अष्टादशपुराणानि चरितं राघवस्य च । रामस्य कुरुशार्दूल ! धर्मकामार्थसिद्धये ।।५५
तथोक्तं भारतं वीर ! पाराशर्येण धीमता । वेदार्थसकलं योज्य[3] धर्मशास्त्राणि च प्रभो ! ।।५६
कृपालुना कृतं शास्त्रं चतुर्णामिह श्रेयसे । वर्णानां भवमग्नानां कृतं पोतो ह्यनुत्तमम् ।।५७
अष्टादशपुराणानि अष्टौ व्याकरणानि च । ज्ञात्वा सत्यवतीसूनुश्चक्रे भारतसंहिताम् ।।५८
यां श्रुत्वा पुरुषो राजन् ! मुच्यते ब्रह्महत्यया । प्रथमं प्रोच्यते ब्राह्मं द्वितीयं चैन्द्रमुच्यते ।।५९
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं वारुणं तथा । सावित्रं च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा ।।६०
एतानि व्याकरणानि पुराणानि निबोध मे । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।।६१
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् । आग्नेयमष्टमं वीर भविष्यं नवमं स्मृतम् ।।६२

वे अपने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की रक्षा कैसे करेंगे वे (शूद्रादि) आगम से हीन हैं, यह मेरी समझ से कष्टदायक बात है । इन लोगों के लिए ब्राह्मण विद्वानों ने कौन सा आगम (शास्त्र) प्राचीन काल में बनाया था ? जो इनके (शूद्रों के) त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) के पाने में सहायक एवं दोनों लोकों (इहलोक—परलोक) में कल्याणकारक हो ।५१-५२

सुमन्तु बोले—हे महाबाहु ! बहुत ठीक (आपने पूछा है) । आप मेरी बातों को सुनिये जो चारों वर्णों के कल्याण के लिए कही गयी हैं ।५३। हे राजेन्द्र ! नृपोत्तम ! जो धर्मशास्त्रादि विद्वानों द्वारा (चारों वर्णों के लिए) विशेषतः शूद्रों के लिए पावन बताये गये हैं, उन्हें सुनिये ।५४। हे कुरुश्रेष्ठ ! अठारहों पुराणों में श्रेष्ठ, रघुकुल में उत्पन्न भगवान् श्री रामचन्द्र का चरित्र-वर्णन धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि के लिए किया गया है ।५५। हे वीर ! इसी प्रकार परम बुद्धिमान् पराशर के पुत्र व्यास जी द्वारा सकल वेदार्थ एवं धर्मशास्त्र के तत्वभूत महाभारत की रचना की गयी है ।५६। कृपालु व्यास जी द्वारा इस लोक में चारों वर्णों के कल्याण के लिए एवं (चारों वर्णों को) संसार रूपी सागर में निमग्न होने से बचाने के लिए अत्युत्तम नौका रूप महाभारतसंहिता की अठारहों पुराणों और आठों व्याकरणों को हृदयंगम करके रचना की है ।५७-५८

हे राजन् ! जिसे सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या जैसे गम्भीर पाप से छुटकारा पा जाता है । पहला ब्रह्मपुराण एवं दूसरा ऐन्द्र कहा जाता है ।५९। तत्पश्चात् याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र एवं आठवाँ वैष्णव पुराण है ।६०। ये ही आठ व्याकरण कहे गये हैं । (पुराणों) का भी विवरण बतला रहा हूँ, सुनिये । ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लैङ्ग,

---

१. कर्मशास्त्राणि । २. कथितानीति शेषः । ३. ल्यवार्षः ।

दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् । वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चैव त्रयोदशम् ॥६३
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम् । मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः[1] परम् ॥६४
एतानि कुरुशार्दूल धर्मशास्त्राणि पण्डितैः । साधारणानि प्रोक्तानि वर्णानां श्रेयसे सदा[2] ॥६५
चतुर्णामिह राजेन्द्र श्रोतुमर्हाणि सुव्रत । किमिच्छसि महाबाहो श्रोतुमेषां नृपोत्तम ॥६६

शतानीक उवाच

भारतं तु श्रुतं विप्र तातस्याङ्कगतेन[3] तु । रामस्य चरितं चापि श्रुतं ब्रह्मन्समन्ततः ॥६७
पुराणानि च विप्रेन्द्र भविष्यं न तु सुव्रत । पुराणं वद विप्रेन्द्र ! भविष्यं कौतुकं हि मे ॥६८

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि[4] मानद । शृणु मे वदतो राजन् पुराणं नवमं महत् ॥६९
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो नृप ! अश्वमेधफलं प्राप्य गच्छेद् भानौ न संशयः ॥७०
इदं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः[5] ॥७१
शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्यं चातुर्वर्ण्येभ्य एव हि ।अध्येतव्यं न चान्येन ब्राह्मणं क्षत्रियं बिना ॥
श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन[6] ॥७२

वाराह, स्कान्द, कौर्म, मात्स्य, गारुड़ और ब्रह्माण्ड हैं। हे कुरुशार्दूल ! पण्डितों ने सभी वर्ण वालों के शाश्वत कल्याण के लिए साधारणतया ये विविध धर्मशास्त्र कहे हैं। हे राजेन्द्र ! ये सभी चारों (वर्णों) के सुनने योग्य हैं। नृपोत्तम ! महाबाहु ! आप इनमें से कौन-सा सुनना चाहते हैं ? ।६१-६६

शतानीक ने कहा—विप्र ! पिता जी की गोद में बैठकर मैं महाभारत की पवित्र कथा का श्रवण कर चुका हूँ, तथा रामचन्द्र जी के चरित को भी आद्योपान्त सुन चुका हूँ।६७। हे विप्रेन्द्र ! सुव्रत ! (इसी प्रकार) अन्यान्य पुराणों का भी (श्रवण कर चुका हूँ) किन्तु (अभी तक) भविष्य पुराण का श्रवण नहीं कर सका हूँ। हे विप्रेन्द्र ! (इसलिए) आप भविष्यपुराण की कथा कहें, उसके विषय में मुझे बड़ा कौतूहल है।६८

सुमन्तु बोले—हे मानव ! हे महाबाहु ! आप ने बहुत ही सुन्दर पूछा। हे राजन्। उस महान् भविष्य पुराण को, जो क्रम से नवम संख्या में है, मैं कह रहा हूँ, सुनिये।६९। हे राजन्। जिसको सुनकर मनुष्य समस्त पापकर्मों से मुक्ति पा जाता है। इस भविष्य पुराण का श्रवण करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर सूर्यलोक में चला जाता है, इसमें सन्देह नहीं।७०। इस परम श्रेष्ठ धर्मशास्त्र को स्वयं ब्रह्मा ने कहा था, विद्वान् ब्राह्मण को इसका प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।७१। और उसे इसका अपने चारों वर्णों के शिष्यों को उपदेश करना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय को छोड़कर इसका अध्ययन अन्य वर्ण वालों को नहीं करना चाहिये। शूद्रों को केवल इसका श्रवण करना चाहिये, अध्ययन तो कभी

---

१. वायुरैव च। २. तदा। ३. आज्ञागतेन मे। ४. पूज्योऽसि सुव्रत। ५. विशेषतः। ६. कथंचन।

देवार्चां पुरतः[1] कृत्वा ब्राह्मणैश्च नृपोत्तम । श्रोतव्यमेव शूद्रैश्च तथान्यैश्च द्विजातिभिः ।।७३
श्रौतं स्मार्तं हि द्वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम । तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रान्न श्रोतव्यं कथञ्चन ।७४
इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः संशितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिम्पते ।।७५
शृण्वन्ति चापि ये राजन् भक्त्या वै ब्राह्मणादयः । मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्गच्छन्ति च दिवं प्रभो ।।७६
श्रावयेच्चापि यो विप्रः सर्वान्वर्णान्नृपोत्तम । स गुरुः प्रोच्यते तात वर्णानामिह सर्वशः ।।७७
स पूज्यः सर्वकालेषु सर्वैर्वर्णैर्नराधिप । पृथिवीं च तथैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ।।७८
इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् । इदं यशस्यं सततमिदं निःश्रेयसं परम् ।।७९
अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् । चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चापि शाश्वतः ।।८०
आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तश्च नरोत्तम । तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ।।८१
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते । आचारेण च संयुक्तः सम्पूर्णफलभाक्स्मृतः ।।८२
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् । सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ।।८३
अन्ये च मानवा राजन्नाचारं संश्रिता[2] सदा । एवमस्मिन्पुराणे तु आचारस्य तु कीर्तनम् ।।८४

नहीं करना चाहिये ।७२। नृपोत्तम ! सर्वप्रथम देवता की पूजा कर ब्राह्मणों से उसका श्रवण करना चाहिये । इसी प्रकार अन्य द्विजातियों से भी शूद्र इसका श्रवण ही कर सकता है ।७३। हे नृपोत्तम ! इस भविष्य पुराण में समस्त श्रौत-स्मार्त धर्मों का उपदेश किया गया है । इसलिए शूद्रों को विप्रों के बिना अन्य किसी प्रकार इसका श्रवण नहीं करना चाहिये ।७४। नियम-व्रत-परायण ब्राह्मण इस शास्त्र (भविष्य पुराण) का अध्ययन कर मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक—इन तीनों पाप-कर्मों से उत्पन्न होने वाले दोषों से सर्वदा मुक्ति प्राप्त करता है ।७५। हे राजन् ! जो ब्राह्मणादि योनियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, प्रभो ! वे भी अपने समस्त पापों से छूटकर स्वर्गलोक को जाते हैं ।७६। नृपोत्तम ! जो ब्राह्मण समस्त वर्णों को इसका श्रवण कराता है, हे तात ! वह सभी वर्णों का गुरु कहा जाता है ।७७। नराधिप ! वह ब्राह्मण सर्वदा सभी वर्णों का पूज्य माना जाता है । इस परम विस्तृत समस्त पृथ्वी के लिए वह अकेला ही योग्य अधिकारी है ।७८। यह परम कल्याणप्रद, श्रेष्ठ तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला है । यह परम यशोदायी एवं शाश्वतिक निःश्रेयस का प्रदाता है ।७९। इसमें सभी धर्मों का उपदेश किया गया है, कर्मों के गुणों एवं दोषों को कहा गया है । चारों वर्णों के सदा से चले आने वाले आचारों का भी विवेचन किया गया है ।८०। हे नरोत्तम ! आचार सभी धर्मों में प्रथम माना जाता है, श्रुतियों में इसका उपदेश किया गया है, यही कारण है कि इसमें सर्वदा निष्ठा रखने वाला ब्राह्मण आत्मवान् (मन को वश में करने वाला) होता है ।८१। आचारों से गिरा हुआ विप्र वेदोक्त फलों का उपभोग नहीं करता और आचार से संयुक्त रहने वाला सम्पूर्ण फलों का अधिकारी कहा जाता है ।८२। मुनियों ने आचार द्वारा धर्म की गति को देखकर सभी तपस्याओं का परम मूल आचार ही को ठहराया ।८३। हे राजन् । इसी कारण से अन्यान्य मानवगण भी सर्वदा आचार का ही अवलम्ब लेते हैं । इस

---

१. अग्रतः । २. आचारं फलमाश्रिताः ।

वृत्तान्तानि च राजेन्द्र तथा चोक्तानि पण्डितैः । त्रिलोक्यास्तु समुत्पत्तिः संस्कारविधिरुत्तमः ॥
श्रवणं चेतिहासस्य विधानं कथ्यते नृप ॥८५
तथास्मिन्कथ्यते राजन्माहात्म्यं वाचकस्य तु । व्रतचर्याश्रमाचाराः स्नातकस्य परो विधिः ॥८६
दारादिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् । पुंसां च लक्षणं राजन्योषितां चात्र कथ्यते ॥८७
महायज्ञविधानं च शास्त्रकल्पं च शाश्वतम् । पृथिव्या लक्षणं तात देवार्चायाः सुलक्षणम् ॥८८
वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च । भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिरेव च ॥८९
स्त्रीधर्मयोगस्तापस्यं मोक्षः संन्यास एव च । राज्ञश्च धर्मो ह्यखिलः कार्याणां च विनिर्णयः ॥९०
माहात्म्यं सवितुश्चात्र तीर्थानां च विशाम्पते । नारायणस्य माहात्म्यं तथा रुद्रस्य कथ्यते ॥९१
महाभाग्यं च विप्राणां माहात्म्यं पुस्तकस्य च । दुर्गादेव्यास्तथा चोक्तं सत्यस्य च महामते ॥९२
संक्षिप्तं [1]संविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि । विभागं धर्मद्यूतं च कथकानां च शोधनम् ॥९३
वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् । आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥९४
संध्याविधिं प्रेतशुद्धिं स्नानतर्पणयोर्विधिम् । वैश्वदेवविधिं चापि तथा भोज्यविधिं नृप ॥९५
लक्षणं दन्तकाष्ठस्य चरणव्यूहमुत्तमम् । संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसम्भवम् ॥९६
नैःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् । दाराणां लक्षणं प्रोक्तं तथा पात्रपरीक्षणम् ॥९७

पुराण में उसी आचार का कीर्तन किया गया है ।८४। हे राजेन्द्र ! इसके अतिरिक्त पण्डितों ने उसमें अनेक वृत्तान्तों का वर्णन किया है । तीनों लोकों की उत्पत्ति का वर्णन है, उत्तम संस्कार विधि विस्तार पूर्वक कही गई है । इतिहास के श्रवण का विधान कहा गया है ।८५। हे राजन् ! इसके अतिरिक्त वाचकों का माहात्म्य बतलाया गया है, विविध प्रकार से व्रतों की विधि, आश्रमों के आचार, स्नातक की क्रियाएँ, स्त्रीगमन, विवाह के लक्षण, पुरुषों के लक्षण तथा स्त्रियों के लक्षण कहे गये हैं ।८६-८७। हे तात ! महान् यज्ञों का विधान, शाश्वतिक शास्त्र-कल्प, पृथ्वी के लक्षण, देवपूजा के लक्षण, जीविकाओं के लक्षण, स्नातकों के नियमादि, भक्ष्य, अभक्ष्य, शौचाचार, द्रव्यों की शुद्धि, स्त्री-धर्म, योग तपस्या, मोक्ष व संन्यास, राजाओं के समस्त धर्म तथा उनके कार्यों के निर्णय इसमें वर्णित हैं ।८८-९०। विशाम्पते ! (हे राजन् ! इसके अतिरिक्त) सविता का माहात्म्य, तीर्थों का माहात्म्य, नारायण का माहात्म्य, विप्रों का महाभाग्य, पुस्तक का माहात्म्य तथा हे महामते ! दुर्गा देवी का माहात्म्य और सत्य का माहात्म्य बतलाया गया है ।९१-९२

स्त्री पुरुषों के धर्म, संक्षिप्त उपाय, धर्मद्यूत, उसका विभाग, कथकों का शोधन, वैश्य और शूद्र वर्णों के उपचार, संकीर्ण (संकर) वर्णों की उत्पत्ति, सभी वर्णों के आपत्तिकालिक धर्म, पाप-कर्मों के प्रायश्चित्तों की विधि, सन्ध्या-विधि, प्रेत-शुद्धि, स्नान और तर्पण की विधि, वैश्वदेव की विधि, भोज्य-विधि, दन्तकाष्ठ का लक्षण, उत्तम चरणव्यूह (व्यास का बनाया हुआ एक विशेष ग्रन्थ जिसमें वैदिक शाखाओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है) विविध कर्मों के कारण संसार में जन्म लेने के वृत्तान्त, कर्मों के अनुसार निःश्रेयस् की प्राप्ति, कर्मों के गुणों और दोषों की परीक्षा, स्त्रियों के लक्षण, पात्रों की परीक्षा गर्भ एवं प्रसूतिका के विषय

---

१. इत आरभ्य यानि कर्माण्युक्तानि तानि 'तथासौ प्रोक्तवान्विभुः' इत्युत्तरेणानुयन्ति ।

प्रसूतिं चापि गर्भस्य तथा कर्मफलं नृप । जातिधर्मान्कुलधर्मान्वेदधर्मांश्च[1] पार्थिव ।।९८
वैतानव्रतिकानां च तथासौ प्रोक्तवान्विभुः । ब्रह्मा कुरुकुलश्रेष्ठ शंकराय महात्मने ।।९९
शंकरेण तथा विष्णोः कथितं कुरुनन्दन । विष्णुनापि पुनः प्रोक्तं नारदाय महीपते ।।१००
नारदात्प्राप्तवाञ्छक्रः शक्रादपि पराशरः । पराशरात्ततो व्यासो व्यासादपि मया विभो ।।१०१
एवं परम्पराप्राप्तं पुराणमिदमुत्तमम् । शृणु त्वमपि राजेन्द्र मत्सकाशात्परं हितम् ।।१०२
सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ । द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः ।।१०३
पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप । यथा स्कान्दं तथा चेदं भविष्यं कुरुनन्दन ।।१०४
स्कान्दं शतसहस्रं तु लोकानां ज्ञातमेव हि । भविष्यमेतदृषिणा लक्षार्द्धं संख्यया कृतम्[2] ।।१०५
तच्छ्रुत्वा पुरुषो भक्त्या इदं फलमवाप्नुयात् । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा श्रीश्च भवन्ति[3] तस्य निश्चितम् ।।१०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां[4] संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
कथाप्रस्तावने प्रथमोऽध्यायः ।१।

एवं कर्मफल का वर्णन किया गया है तथा जाति-धर्म, कुल-धर्म एवं वैदिक धर्मों की चर्चा की गई है ।९३-९८

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तथा वैतानिकों के व्रतों को भगवान् ब्रह्मा ने महात्मा शंकर को बताया था ।९९। कुरुनन्दन ! इसके अनन्तर शंकर ने भगवान् विष्णु को इसका उपदेश किया । महीपते ! पुनः भगवान् विष्णु ने नारद के लिए इसका उपदेश किया । नारद से इन्द्र ने प्राप्त किया, इन्द्र से पराशर ने प्राप्त किया । पराशर से व्यास ने और व्यास से मैंने प्राप्त किया । इस परम्परा से मुझे इस उत्तम पुराण की प्राप्ति हुई है । हे राजेन्द्र ! तुम भी मुझसे इस हितकारक उत्तम पुराण को सुनो ।१००-१०२

हे नरश्रेष्ठ ! समस्त पुराण को पण्डित लोग बारह सहस्र ही बतलाते हैं, किन्तु पीछे के विविध आख्यानों के मिल जाने से उक्त संख्या में बहुत वृद्धि हो गई है । कुरुनन्दन ! स्कन्दपुराण में जिस प्रकार वृद्धि हुई है उसी प्रकार इस भविष्य (पुराण) में भी वृद्धि हुई है ।१०३-१०४

स्कन्दपुराण की श्लोक संख्या एक लाख है । यह बात तो सबको ज्ञात ही है । इस भविष्य पुराण की संख्या ऋषि ने पचास सहस्र निश्चित किया है ।१०५

इस भविष्य पुराण को भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य सब प्रकार की ऋद्धि, बृद्धि एवं लक्ष्मी को निश्चित रूप से प्राप्त करता है ।१०६

श्री भविष्यमहापुराण के ब्राह्म-पर्व में कथा की
प्रस्तावना में प्रथम अध्याय समाप्त ।१।

---

१. देशधर्मान्कुलधर्मांश्च वै नृप । २. गतम् । ३. तस्य देहं स्तुवन्ति वै । ४. शतसाहस्रार्ध-संहितायाम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनं पुराणानां ब्रह्मपञ्चमास्यादुत्पत्तिवर्णनञ्च

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वेदं महाबाहो पुराणं पञ्चलक्षणम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते राजन्पुरुषो ब्रह्महत्यया ॥१
पर्वाणि चात्र वै पञ्च कीर्तितानि स्वयम्भुवा । प्रथमं कथ्यते ब्राह्मं द्वितीयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२
तृतीयं शैवमाख्यातं चतुर्थं त्वाष्ट्रमुच्यते । पञ्चमं प्रतिसर्गाख्यं सर्वलोकैः सुपूजितम् ॥३
एतानि तात पर्वाणि लक्षणानि निबोध मे । सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ॥४
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् । चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन ॥५
अङ्गानि [1]चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥६
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः । अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥७
प्रथमं कथ्यते सर्गो भूतानामिह सर्वशः । यच्छ्रुत्वा पापनिर्मुक्तो याति शान्तिमनुत्तमाम् ॥८
जगदासीत्पुरा तात तमोभूतमलक्षणम् । अविज्ञेयमतर्क्यं च प्रसुप्तमिव सर्वशः[2] ॥९

अध्याय २

सृष्टि का वर्णन तथा ब्रह्मा के पञ्चम मुख से पुराणों की उत्पत्ति का वर्णन

सुमन्त बोले—राजन् ! महाबाहु ! पाँचों लक्षणों से समन्वित इस (भविष्य) पुराण को सुनिये, जिसे सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है।१। स्वयम्भू ने इसमें पाँच पर्वों की चर्चा की है। इसका पहला पर्व ब्राह्म है, दूसरा वैष्णव है।२। तीसरा शैव है, चौथा त्वाष्ट्र कहा जाता है, पाँचवाँ सभी लोगों द्वारा सुपूजित प्रतिसर्ग नामक पर्व है।३। हे तात (भविष्य महापुराण के) ये पाँच पर्व हैं। उनके लक्षणों को सुनिये। सर्ग (सृष्टिप्रक्रिया) प्रतिसर्ग, (स्वयम्भू की सृष्टि के अनन्तर दक्ष आदि प्रजापतियों द्वारा की गई सृष्टि) वंश, मन्वन्तर एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है एवं वंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं आदि के चरित—ये पाँच पुराणों के लक्षण कहे गये हैं। हे कुरुनन्दन ! यह पुराण चौदहों विद्याओं से विभूजित है।४-५। चारों वेद, वेदों के छहों अंग, मीमांसा, विस्तृत न्याय शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं।६। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र—इन चारों को मिलाकर दे विद्याएँ कुल अठारह होती हैं।७। इस भविष्यपुराण में सर्वप्रथम समस्त जीवों की सृष्टि का वर्णन किया गया है, जिसे सुनकर मनुष्य पापरहित होकर परम शान्ति प्राप्त करता है।८। हे तात ! यह जगत् पहले अन्धकाराच्छन्न था, इसका कोई लक्षण नहीं था, किसी प्रकार भी इसका ज्ञान नहीं हो सकता था, अतर्क्य एवं चारों ओर से

---

१. चतुरनडुहोः इत्यम्भाव आर्षः। २. सर्वतः।

ततः स भगवानीशो ह्यव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् । महाभूतानि वृत्तौजाः प्रोत्थितस्तमनाशनः[1] ॥१०
योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः । सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुत्थितः ॥११
योऽसौ षड्विंशको लोके तथा यः पुरुषोत्तमः । भास्करश्च महाबाहो परं ब्रह्म च कथ्यते ॥१२
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । अत एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३
यस्मादुत्पद्यते सर्वं सदेवासुरमानुषम् । बीजं शुक्रं तथा रेत उग्रं वीर्यं च कथ्यते ॥१४
वीर्यस्यैतानि नामानि कथितानि स्वयम्भुवा । तदण्डमभवद्धैमं ज्वालामालाकुल विभो ॥१५
यस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । सुरज्येष्ठश्चतुर्वक्त्रः परमेष्ठी पितामहः ॥१६
क्षेत्रज्ञः पुरुषो वेधाः शम्भुर्नारायणस्तथा । पर्यायवाचकैः शब्दैरेवं ब्रह्मा प्रकीर्त्यते ॥१७
सदा मनीषिभिस्तात विरञ्चिः कञ्जजस्तथा[2] । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥१८
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । अरमित्येव शीघ्राय नियताः कविभिः कृताः ॥१९
आप[3] एवार्णवीभूत्वा सुशीघ्रास्तेन ता नराः । यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥२०
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते । एवं स भगवानण्डे तत्त्वमेव निरूप्य वै ॥२१

सोये हुए की तरह था ।९। तदनन्तर सर्वैश्वर्यशाली, वे भगवान् अव्यक्त रूप से जगत् को व्यक्त करते हुए, महान् भूतों को प्रकट करते हुए तथा अन्धकार-राशि को नष्ट करते हुए उठते हैं । जो इन्द्रिय-समूहों से परे, अग्राह्य, सूक्ष्म अव्यक्त, सनातन (सर्वदा एक रूप में स्थिर रहने वाले) सर्वजीवमय एवं अचिन्त्य कहे जाते हैं, वे उस अवसर पर स्वयं उठ पड़ते हैं ।१०-११। वे लोक में छब्बीसवें पदार्थ के नाम से विख्यात हैं, उन्हीं की पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्धि है । हे महाबाहु ! वे ही भास्कर एवं परम ब्रह्म भी कहे जाते हैं ।१२। वे भगवान् उस समय अपने शरीर से विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से चिन्तन करके सर्वप्रथम जल की सृष्टि करते हैं, और उसमें वीर्य छोड़ते हैं ।१३। उसी से समस्त देवताओं, असुरों और मनुष्यों समेत इस जगत् की उत्पत्ति होती है । बीज, शुक्र, रेत, उग्र और वीर्य भी उसी को कहते हैं ।१४। स्वयंभू ने वीर्य के इन उपर्युक्त नामों का वर्णन किया है । विभु ! वह वीर्य ज्वाला-समूह से व्याप्त सुवर्ण के अण्डे के रूप में परिणत हो गया ।१५। जिसमें समस्त लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मा स्वयमेव उत्पन्न हुए । वे पितामह ब्रह्मा समस्त देवगणों में श्रेष्ठ, चार मुख वाले, परमेष्ठी, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु एवं नारायण—इन पर्यायवाची शब्दों द्वारा पुकारे जाते हैं ।१६-१७। हे तात ! मनीषी लोग उन्हें विरञ्चि, कमलोद्भव आदि नामों से सर्वदा पुकारते हैं । उनके नारायण नाम पड़ने का कारण यह है कि जल शब्द 'नार' और 'नर-पुत्र' दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है ।१८। वह जल (नार) ही सबसे पहले इनका अयन (निवास) रहा है, इसीलिए वे नारायण के नाम से स्मरण किये जाते हैं । कविगण (अरम्) शब्द का शीघ्र अर्थ में प्रयोग करते हैं ।१९। जल ही समुद्र होकर (प्रवाह के रूप में) शीघ्रता से युक्त होता है । अतः उसका नाम 'नार' कहा जाता है । जो सबके कारणभूत, अव्यक्त, नित्य, सत् एवं असत् हैं । उनसे उत्पन्न होकर वह पुरुष लोक में 'ब्रह्मा'—नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस प्रकार सृष्टि करने का विचार-निश्चित कर भगवान् ने उस सुवर्ण-अंड में समस्त तत्त्वों

---

१. तमोनाशनः । २. कर्दमस्तथा । ३. आप एकार्णवीभूता अधिप्राप्ते न ता नराः ।

ध्यानमास्थाय राजेन्द्र तदण्डमकरोद्द्विधा । शकलाभ्यां च राजेन्द्र दिवं भूमिं च निर्ममे ॥२२
अन्तर्व्योम दिशश्चाष्टौ वारुणं स्थानमेद हि । ऊर्ध्वं महान्गतो राजन् समन्ताल्लोकभूतये ॥२३
महतश्चाप्यहंकारस्तस्माच्च त्रिगुणा अपि । त्रिगुणा अतिसूक्ष्मास्तु बुद्धिगम्या हि भारत ॥२४
उत्पत्तिहेतुभूता वै भूतानां महतां नृप। तेषामेव गृहीतानि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि तु ॥२५
तथैवावयवाः सूक्ष्माः षण्णामप्यमितौजसाम् ॥२६
संनिवेश्यात्ममात्रासु स राजन्भगवान्विभुः । भूतानि निर्ममे तात सर्वाणि विधिपूर्वकम् ॥२७
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयाणि षट् । तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥२८
महान्ति तानि भूतानि आविशन्ति ततो विभुम् । कर्मणा सह राजेन्द्र सगुणाश्चापि वै गुणाः ॥२९
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् । सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्व्ययम्[1] ॥३०
भूतादिमहतस्तात येन व्याप्तमिदं जगत् । तस्मादपि महाबाहो पुरुषाः पञ्च एव हि ॥३१
केचिदेवं परां तात सृष्टिमिच्छन्ति पण्डिताः । अन्येऽप्येवं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३२
योऽसावात्मा परस्तात कल्पादौ सृजते तनुम् । प्रजनश्च महाबाहो सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥३३

का विनिश्चय करके और पूर्व रचित सृष्टि के क्रम का ध्यान कर उसको दो भागों में विभक्त कर दिया । हे राजेन्द्र ! अण्ड के उन दोनों भागों से आकाश और पृथ्वी का निर्माण किया ।२०-२२। फिर अन्तर्वर्ती आकाश, आठों दिशाएँ और समस्त समुद्रों का निर्माण किया । हे राजन् ! इस प्रकार लोककल्याणार्थ उस महान् ने ऊर्ध्वगत होकर इन सब का निर्माण किया ।२३। महत्तत्त्व से अहंकार, उससे तीनों गुण (सत्त्व, रजस् और तमस् की भी उत्पत्ति हुई) । हे भारत ! वे तीनों गुण परम सूक्ष्म हैं, केवल बुद्धि द्वारा वे जाने जा सकते हैं ।२४। हे नृप ! वे त्रिगुण समस्त महान् भूतों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं । उन्हीं के द्वारा पाँचों इन्द्रियाँ शनैः शनैः उत्पन्न हुई हैं ।२५।उन परम तेजोमय छहों के अवयव भी उसी प्रकार परम सूक्ष्म हैं । हे राजन् ! परमैश्वर्यशाली भगवान् ने आत्ममात्राओं में सन्निविष्ट होकर समस्त भूतों की विधिपूर्वक सृष्टि की ।२६-२७। जो मूर्ति के परम सूक्ष्म अवयव हैं, वे ही छह उसके आश्रय कहे जाते हैं। उसी को मूर्ति को मनीषीगण शरीर नाम से बतलाते हैं।२८। हे राजेन्द्र ! वे पूर्व जन्म के कर्मों एवं गुणों के साथ महान् भूतगण उस विभु में आविष्ट हो जाते हैं वे तीनों गुण भी उसी में आविष्ट हो जाते हैं। अविनाशी से महान् तेजस्वी उन सातों पुरुषों की सूक्ष्म मूर्ति मात्राओं द्वारा इस विनाशी जगत् की उत्पत्ति होती है। हे तात ! भूतादि महान् से यह जगत् व्याप्त है। हे महाबाहु ! उससे भी ये पाँच पुरुष ही उत्पन्न होते हैं। हे तात ! कुछ पण्डित जन इस प्रकार परम सृष्टि की इच्छा करते हैं। हे महाबाहु ! अन्य पण्डितजन भी ऐसा ही कहते हैं।२९-३२। हे तात ! जो यह परम आत्मा के नाम से विख्यात है वे ही कल्प के प्रारम्भ में स्वयं शरीर धारण करते हैं, हे महाबाहु ! वे ही इस समस्त सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। स्वयं शरीर धारण कर विविध प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा से वे ही समस्त जगत् की सृष्टि करते हैं।३३। हे राजन् ! उन्हीं के द्वारा सिरजे गये पुद्गल

---

१. द्वयम् ।

तेन सृष्टः पुद्गलस्तु प्रधानं विशते नृप । प्रधानं क्षोभितं तेन विकारान्सृजते बहून् ॥३४
उत्पद्यते महांस्तस्मात्ततो भूतादिरेव हि । उत्पद्यते विशालं च भूतादेः कुरुनन्दन ॥३५
विशालाच्च हरिस्तात हरेश्चापि वृकास्तथा । वृकैर्मूष्णन्ति च बुधास्तस्मात्सर्वं भवेन्नृप ॥३६
तथैषामेव राजेन्द्र प्रादुर्भवति वेगतः । मात्राणां कुरुशार्दूल विबोधस्तदनन्तरम्[1] ॥३७
तस्मादपि हृषीकाणि विविधानि नृपोत्तम । तथेयं सृष्टिराख्याताऽऽराध्यतः कुरुनन्दन ॥३८
भूयो निबोध राजेन्द्र भूतानामिह विस्तरम् । गुणाधिकानि सर्वाणि भूतानि पृथिवीपते ॥३९
आकाशमादितः कृत्वा उत्तरोत्तरमेव हि । एकं द्वौ च तथा त्रीणि चत्वारश्चापि पञ्च च ॥४०
ततः स भगवान्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः । सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥४१
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे । कर्मोद्भवानां देवानां सोऽसृजद्देहिनां प्रभुः ॥४२
तुषितानां गणं राजन्यज्ञं चैव सनातनम् । दत्त्वा[2] वीर समानेभ्यो गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ॥४३
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् । कालं कालविभक्तीश्च[3] ग्रहानृतूंस्तथा नृप ॥४४
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च । कामं क्रोधं तथा वाचं रतिं चापि कुरूद्वह ॥४५
सृष्टिं ससर्ज राजेन्द्र सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । धर्माधर्मौ विवेकाय कर्मणां च तथासृजत् ॥४६

(परमाणु) प्रधान (प्रकृति) प्रवेश करते हैं, उनके द्वारा क्षुब्ध होकर प्रधान अनेक विकारों की सृष्टि करता है।३४। जिससे महत् की उत्पत्ति होती है और उसी से (महत् से) आदि भूत की उत्पत्ति होती है। हे कुरुनन्दन! उन भूतवर्गों से विशाल की उत्पत्ति होती है।३५। हे तात! विशाल से हरि और हरि से वृकों की उत्पत्ति होती है। उन वृकों द्वारा बुद्धिमान् जन छिपाये जाते हैं! हे राजन्! उसी से समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है।३६। हे राजेन्द्र! कुरुशार्दूल! इन्हीं के वेग से मात्राओं के विबोध की उत्पत्ति होती है। उसके अनन्तर मात्राओं का विबोध होता है।३७। नृपोत्तम! तदनन्तर उसी से विविध इन्द्रिय समूहों की उत्पत्ति होती है। हे कुरुनन्दन! इस प्रकार इस सृष्टि की आराधना द्वारा उत्पत्ति कही जाती है।३८। हे राजेन्द्र! अब भूतों का विस्तार किस प्रकार हुआ—इसे फिर से सुनिये। हे पृथ्वीपति! उन सब भूत-समूहों में किसी न किसी गुण का प्राधान्य रहता है।३९। सर्वप्रथम आकाश की सृष्टि करके उसके उत्तरोत्तर एक, दो, तीन, चार और पाँच भूतों का इस प्रकार निर्माण करते हैं।४०। तदनन्तर सर्वैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा पद्मासन पर विराजमान होकर सबके नाम एवं काम का पृथक्-पृथक् निर्णय करते हैं।४१। वेद शब्द से ही सर्वप्रथम सब की अवस्थिति का निर्माण किया। प्रभु ने इस प्रकार पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार शरीर धारण करने वाले देवताओं की सृष्टि की।४२। हे राजन्! तुषितों के गण की उत्पत्ति इस प्रकार हुई। फिर सर्वदा प्रचलित रहने वाले यज्ञों की उत्पत्ति हुई। हे वीर! तदनन्तर समान शक्ति सम्पन्न सबको परम गोपनीय ब्रह्मज्ञान का दान देकर उन्होंने यज्ञों की सिद्धि के लिए ऋक्, यजु, साम नामक वेदों का दोहन किया, फिर काल, काल के विविध भेदों एवं अवयवों, ग्रहों एवं ऋतुओं, नदियों, सागरों, पर्वतों, समान एवं ऊँच-नीच भूमियों, काम, क्रोध, वचन, रति (प्रेम) आदि का निर्माण किया।४३-४५। हे राजेन्द्र! इसी प्रकार विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से, धर्म, अधर्म के विवेक के लिए कर्मों की सृष्टि की।४६।

---

१. हृच्छयस्तदनन्तरम्। २. दत्तवान्सर्वमानेभ्यः। ३. कालविभूतिं च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।

सुखदुःखादिभिर्द्वन्द्वैः प्रजाश्चेमा न्ययोजयत् । अण्व्यो मात्राविनाशिन्यो दशार्धानां तु याः स्मृताः ।।४७
ताभिः सर्वमिदं वीर सम्भवत्यनुपूर्वशः । यत्कृतं तु पुरा कर्म सन्नियुक्तेन वै नृप ।।४८
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानं पुनः पुनः । हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।।४९
यद्यथास्याभवत्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् । यथा च लिङ्गान्यृतवः स्वयमेवानुपर्यये ।।५०
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः । लोकस्येह विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।।५१
ब्रह्म क्षत्रं तथा चोभौ वैश्यशूद्रौ नृपोत्तम । मुखानि यानि चत्वारि तेभ्यो वेदा विनिःसृताः ।।५२
ऋग्वेदसंहिता तात वसिष्ठेन महात्मना । पूर्वान्मुखान्महाबाहो दक्षिणाच्चापि वै शृणु ।।५३
यजुर्वेदो महाराज याज्ञवल्क्येन वै सह । सामानि पश्चिमात्तात गौतमश्च महानृषिः ।।५४
अथर्ववेदो राजेन्द्र मुखाच्चाप्युत्तरान्नृप । ऋषिश्चापि तथा राजञ्छौनको लोकपूजितः ।।५५
यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकविश्रुतम् । अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि भारत ।।५६
निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात्कुरुकुलोद्वह । तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः ।।५७
ततः स भगवान्देवो द्विधा देहमकारयत् । द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।।५८
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः । तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।।५९
स चकार तपो राजन्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । पतीन्प्रजानामसृजन्महर्षीनादितो दश ।।६०

और उसके अनन्तर सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में इन प्रजाओं को उलझा दिया, जो अणु परिमाण तथा अविनाशिनी पञ्च मात्राएँ कही गयी हैं । हे वीर ! उन सबों से इस समस्त जगत् का क्रमिक उद्‌भव होता है । हे राजन् ! पहले (ईश्वरेच्छा द्वारा) नियुक्त होकर जीव जो कुछ कार्य करता है, उसे ही पुनः-पुनः सिरजे जाते हुए वह स्वयं प्राप्त करता है । हिंस्र-अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य—इनमें से जैसा जिसका प्राक्तन संचित कर्म रहा, वही इस सृष्टि में भी स्वयं आकर आविष्ट हुआ । हे राजन् ! जिस प्रकार ऋतुएँ अपने-अपने चिह्नों को स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार शरीरधारी जीव भी अपने-अपने प्राक्तन कर्मों को स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं । हे नृपोत्तम ! लोक की वृद्धि करने के लिए मुख, बाहु, उरु और पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उत्पत्ति हुई । उनके जो चार मुख थे, उनसे वेदों का प्रादुर्भाव हुआ ।४७-५२। हे तात ! महात्मा वशिष्ठ ने पूर्व दिशा वाले मुख से ऋग्वेद संहिता को प्राप्त किया तथा दाहिने मुख से जो वेद उत्पन्न हुए, उन्हें भी सुनिये ।५३। उस दाहिने मुख से याज्ञवल्क्य ऋषि ने यजुर्वेद को प्राप्त किया । हे तात ! इसी प्रकार पश्चिम वाले मुख से सामवेद को महर्षि गौतम ने प्राप्त किया । हे नृप ! राजेन्द्र ! उनके उत्तर वाले मुख से लोक-पूजित शौनक ऋषि ने अथर्ववेद को प्राप्त किया ।५४-५५। हे महाबाहु ! भारत ! उनका लोक-विख्यात जो पाँचवाँ मुख था, उससे इतिहास के साथ-साथ अठारहों पुराणों का आविर्भाव हुआ । हे कुरुकुलोद्‌भव ! इसी प्रकार ब्रह्मा के उस पाँचवें मुख से यम आदि की लोक सम्मानित स्मृतियाँ तथा धर्मशास्त्र प्रकट हुए । तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त किया और स्वयं आधे रूप में पुरुषाकार होकर आधे में एक नारी की आकृति उत्पन्न की । हे राजेन्द्र ! उस नारी से प्रभु ने विराट् सृष्टि की । तपस्या करके जिसकी सृष्टि की, वह स्वयं विराट् पुरुष ही था ।५६-५९। हे राजन् ! अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से उसने तपस्या की और सर्वप्रथम दस प्रजापति ऋषियों की सृष्टि की ।६०। उनके नाम ये हैं—नारद, भृगु, वसिष्ठ, प्रचेता, पुलह, क्रतु,

नारदं च भृगुं तात कं प्रचेतसमेव हि । पुलहं क्रतुं पुलस्त्यं च अत्रिमङ्गिरसं तथा ॥६१
मरीचिं चापि राजेन्द्र योऽसावाद्यः प्रजापतिः । एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र असृजद् भूरितेजसः ॥६२
अथ देवानृषीन्दैत्यान्सोऽसृजत्कुरुनन्दन । यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥६३
मनुष्याणां पितॄणां च सर्पाणां चैव भारत । नागानां च महाबाहो ससर्ज विविधान्गणान् ॥६४
क्षणरुचोऽशनिगणान्रोहितेन्द्रधनूंषि च । धूमकेतूंस्तथाचोल्कानिर्वाताञ्ज्योतिषां गणान् ॥६५
मनुष्यान्किन्नरान्मत्स्यान्वराहांश्च विहङ्गमान् । गजानश्वानथ पशून्मृगान्व्यालांश्च भारत ॥६६
कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकालिक्षकमत्कुणान् । सर्वं च दंशमशकं स्थावरं[1] च पृथग्विधम् ॥६७
एवं स भास्करो देवः ससर्ज भुवनत्रयम् । येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥६८
कथयिष्यामि तत्सर्वं क्रमयोगं च जन्मनि[2] । गजा व्याला मृगास्तात पशवश्च पृथग्विधाः ॥६९
पिशाचा मानुषास्तात रक्षांसि च जरायुजाः । द्विजास्तु अण्डजाःसर्पा नक्रा मत्स्याः सकच्छपाः ॥७०
एवंविधानि यानीह स्थलजान्यौदकानि[3] च । स्वेदजं दंशमशकं यूकालिक्षकमत्कुणाः ॥७१
ऊष्मणा चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् । उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ॥७२
ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः । अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥७३

पुलस्त्य, अत्रि, अंगिरा, और मरीचि। हे राजेन्द्र ! ये मरीचि इन सबों में प्रथम प्रजापति थे। हे राजेन्द्र ! इन उपर्युक्त प्रजापति ऋषियों को तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे ऋषियों को, जो इन्हीं के समान परम तेजस्वी थे, ब्रह्मा ने उत्पन्न किया।६१-६२। हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार देवताओं, ऋषियों तथा दैत्यों की सृष्टि की ! हे भारत ! हे महाबाहो ! फिर यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर तथा मनुष्य, पितर, सर्प एवं नागों के विविध गणों की सृष्टि की।६३-६४। इसी प्रकार क्षण भर चमककर छिप जाने वाली बिजलियों इन्द्रधनुष, धूमकेतु-उल्का एवं वातरहित ज्योतिष् चक्रों की सृष्टि की।६५। हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार भगवान् ने मनुष्य, किन्नर, मत्स्य, वराह, विहंगम, गज, अश्व, पशु, मृग, व्याल, कृमि, कीट, पतंग, यूका (जूँ), लिक्षा (लीख), खटमल, मच्छर, दंस एवं विविध स्थावरों की सृष्टि की।६६-६७। उस भास्कर देव ने इस प्रकार तीनों भुवनों की सृष्टि की। इस लोक में जिन-जिन भूतों का जो और जैसा कर्म कहा जाता है, उन सबको उनकी उत्पत्ति के साथ-साथ क्रमानुसार मैं बतला रहा हूँ। हे तात ! हाथी, व्याल, मृग एवं विविध पशु जाति के जीव-समूह (इन सबकी उत्पत्ति एवं कर्म) को बतला रहा हूँ। हे तात ! पिशाच एवं जरायुज, मनुष्य और राक्षस, सर्प, नक्र, मत्स्य और कच्छप सभी प्रकार के पक्षी इन अण्डजों का भी कर्म कह रहे हैं।६८-७०। इसी प्रकार भूमि और जल में उत्पन्न होने वाले एवं दंस, मच्छर, जूँ, लीख और खटमल की कोटि के स्वेदज (पसीने) से उत्पन्न होने वाले जीव-समूह हैं। ये सब गरमी से उत्पन्न होते हैं। फिर बीज और काण्ड से उत्पन्न होने वाले जीव उद्भिज्ज कहे जाते हैं।७१-७२। अनेक प्रकार के फलों से युक्त ओषधियाँ फलों के पक जाने तक स्थित रहने वाली होती हैं, अर्थात् फल के पक जाने पर ओषधियाँ सूख जाती हैं। जो पुष्परहित हैं, किन्तु फल लगता है, वे वनस्पति के नाम से प्रसिद्ध हैं।७३। फलने और फूलने वाले को

---

१. स्थविष्ठं च नराधिप। २. कर्मणि। ३ औषधीनि च।

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः । गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ।।७४
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना[1] वल्ल्य एव च । तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ।।७५
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः । एतावत्यस्तु गतयः प्रोद्भूताः कुरुनन्दन ।।७६
तस्माद्देवाद्दीप्तिमन्तो भास्कराच्च महात्मनः । घोरेऽस्मिस्तात संसारे नित्यं सततयायिनि ।।७७
एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं राजेंल्लोकगुरुं परम् । तिरोभूतः स भूतात्मा[2] कालं कालेन पीडयन् ।।७८
यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् । यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ।।७९
तस्मिन्स्वपिति राजेन्द्र जन्तवः कर्मबन्धनाः । स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ।।८०
युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि । तदायं[3] सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति भारत ।।८१
तमो यदा समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः । न नवं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ।।८२
यदा हंमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च । समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ।।८३
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं जगत्प्रभुः । संजीवयति चाजस्रं प्रनाशयति चाव्ययः ।।८४
कल्पादौ सृजते तात अन्ते कल्पस्य संहरेत् । दिनं तस्येह यत्तात कल्पान्तमिति कथ्यते ।।८५

वृक्ष कहते हैं । गुच्छों और गुल्मों की अनेक कोटियाँ होती हैं । उसी प्रकार तृणों की भी बहुत-सी जातियाँ होती हैं ।७४। बीजों और काण्डों से उत्पन्न होकर वृक्षों पर फैलने वाली लताएँ तथा वल्लियाँ कही जाती हैं। अपने पूर्व जन्म के कर्म-बन्धन से ये सभी प्रकार के अज्ञानान्धकार (तमोगुण) से परिवेष्टित रहते हैं ।७५। इनके अन्तःकरण में चेतना होती है एवं सुख और दुःख का इन्हें भी अनुभव होता है । हे कुरुनन्दन ! जीवों की इतनी गतियाँ प्रकट हैं ।७६। हे तात उस (परम प्रकाशमान) एवं महातमा भास्कर देव (के प्रकाश) से ये सब इस घोर संसार में प्रतिक्षण तथा निरन्तर चलने वाले हैं ।७७। हे राजन् ! काल द्वारा काल को पीड़ित करते हुए, वह भूतों का आत्मा (परमेश्वर) लोक के गुरु एवं अन्य सभी की सृष्टि करने के उपरान्त तिरोहित हो जाता है ।७८। जब वह देव जागता रहता है, तब यह जगत् चेष्टावान् रहता है, जब वह शान्तात्मा शयन करने लगता है, तब यह सारा जगत् भी विलीन हो जाता है ।७९। हे राजेन्द्र ! अपने कर्मों के बन्धन में बँधे हुए जीव-समूह भी उसके सो जाने पर अपने कर्मों से निवृत्त हो जाते हैं और मन ग्लानि को प्राप्त होता है ।८०। हे भारत ! उस महात्मा (परमेश्वर) में सब एक साथ ही जब प्रलीन हो जाते हैं, उस समय सर्वभूतात्मा (भगवान्) सुखपूर्वक शयन करता है ।८१। समस्त इन्द्रियों समेत जब वह तमोगुण का आश्रय लेकर चिरकाल तक स्थित रहता है और कोई नवीन कर्म नहीं करता है उस समय वह मूर्ति से बाहर आता है ।८२। जब वह समस्त स्थावर जङ्गमात्मक बीज में प्रवेश करता है। बीज से जब वह अहंमात्रिक होता है, तब वह उसमें संसृष्ट होकर अपनी मूर्ति को छोड़ देता है ।८३। प्रभावशाली एवं अविनाशी वह भगवान् इस प्रकार जाग्रत् और स्वप्न अवस्था द्वारा निरन्तर इस समस्त जगत्मण्डल को जीवन प्रदान और सीमित करता है ।८४

हे तात ! कल्प के आदि में वह इस जगत् की सृष्टि करता है और कल्प के अन्त में संहार करता है । हे तात ! उसका जो दिन अर्थात् जागरण का समय है, वही कल्पान्त कहा जाता है ।८५। हे भारत ! उस कल्प

---

१. व्रतत्यः । २. पूतात्मा । ३. सः ।

कालसंख्यां ततस्तस्य[1] कल्पस्य शृणु भारत । निमेषा दश चाष्टौ च अक्ष्णः काष्ठा निगद्यते ॥८६
त्रिंशत्काष्ठाः कलामाहुः क्षणस्त्रिंशत्कलाः स्मृताः । मुहूर्तमथ मौहूर्ता वदन्ति द्वादश क्षणम् ॥८७
[2]त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रं मनीषिभिः । मासस्त्रिंशदहोरात्रं द्वौ द्वौ मासावृतुः स्मृतः ॥८८
ऋतुत्रयमप्ययनमयने द्वे तु वत्सरः । अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥८९
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः । पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥९०
कर्म चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी । दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥९१
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् । ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं महीपते ॥९२
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोध मे । चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥९३
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः । त्रेता त्रीणि सहस्राणि[3] वर्षाणि च विदुर्बुधाः ॥९४
शतानि षट् च राजेन्द्र सन्ध्यासन्ध्यांशयोः पृथक् । वर्षाणां द्वे सहस्रे तु द्वापरे परिकीर्तिते ॥९५
चत्वारि च शतान्याहुःसन्ध्यासन्ध्यांशयोर्बुधाः । सहस्रं कथितं तिष्ये शतद्वयसमन्वितम् ॥९६
एषा चतुर्युगस्यादि संख्या प्रोक्ता नृपोत्तम । यदेतत्परिसंख्या तमादावेव चतुर्युगम् ॥९७

की अवधि का प्रमाण सुनिये, बतला रहा हूँ । आँख के मूँदने और खोलने में जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं, ऐसे अठारह निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है ।८६। तीस काष्ठा की एक कला बतलाते हैं, तीस कला का एक क्षण कहा जाता है । मुहूर्तों को जानने वाले पण्डित लोग बारह क्षणों का एक मुहूर्त बतलाते हैं ।८७। मनीषियों ने एक दिन-रात के बीच में तीस मुहूर्त निश्चित किये हैं । तीस दिन-रात का एक महीना होता है, दो-दो महीनों की एक ऋतु होती है ।८८। तीन-तीन ऋतुओं का एक अयन होता है । दो अयनों का एक वर्ष माना जाता है । मनुष्य और देव इन दोनों के रात-दिन का विभाग सूर्य करता है ।८९। भूतों के शयनादि के लिए रात्रि और कर्म-व्यापार चालू रखने के लिए दिन हैं । पितरों के एक रात दिन मनुष्यों के एक मास में पूरे होते हैं ।९०। मनुष्यों का एक पक्ष उनकी रात्रि और एक पक्ष दिन है । कर्म-चेष्टा के लिए मानव का शुक्ल पक्ष उनका दिन और शयन के लिए मानव का कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि है । देवताओं का एक दिन रात मानव का एक वर्ष होता है ।९१। उनमें रात्रि ओर दिन का विभाग होता है । उत्तरायण (देवताओं का) दिन और दक्षिणायन (उनकी) रात्रि है । ब्रह्मा के दिन और रात्रि का जो प्रमाण है, हे महीपते ! उसे भी प्रत्येक युगों के क्रम से बतला रहा हूँ, सुनिये । चार सहस्र वर्षों का सतयुग माना जाता है ।९२-९३। और उसकी संध्या (संधिकाल) तथा संध्यांश भी उतने ही सौ अर्थात् चार सौ वर्षों का होता है । संध्या के अन्त का प्रमाण भी इतना ही कहा जाता है । पण्डित लोग त्रेता को तीन सहस्र वर्षों का बतलाते हैं ।९४। हे राजेन्द्र ! त्रेता की संध्या और संध्यांश दोनों का प्रमाण छः सौ वर्षों का है । द्वापर का प्रमाण दो सहस्र वर्ष कहा जाता है ।९५। पण्डित लोग उसकी संध्या और संध्यांश दोनों का प्रमाण चार सौ वर्ष बतलाते हैं । हे नृपोत्तम ! कलियुग का प्रमाण एक सहस्र वर्ष का तथा उसकी संध्या और संध्यांश का प्रमाण दो सौ वर्षों का कहा जाता है ।९६। हे नृपोत्तम ! चारों युगों की संख्या ऊपर बतलाई गई है । यह जो चारों युगों का प्रमाण मैंने

---

१. तात । २. त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहोरात्रं मनीषिभिः । ३. महाबाहो ।

एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते । दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया ॥९८
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरुच्यते । एतद्युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ॥९९
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः । ततोऽसौ युगपर्यन्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥१००
प्रतिबुद्धस्तु सृजति मनः सदसदात्मकम् । मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं[1] सिसृक्षया ॥१०१
विपुलं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः । विपुलात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ॥१०२
बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः । वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥१०३
उत्पद्यते विचित्रांशुस्तस्य रूपं गुणं विदुः । तस्मादपि विकुर्वाणादापो जाताः स्मृता बुधैः ॥१०४
तासां गुणो रसो ज्ञेयः सर्वलोकस्य भावनः[2] । अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥१०५
यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुक्तं सौमनसं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥१०६
मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च । तथाप्यहे सदा ब्राह्मे मनवस्तु चतुर्दश ॥१०७
कथ्यन्ते कुरुशार्दूल[3] संख्यया पण्डितैः सदा । मनोः स्वायम्भुवस्येह षड्वंश्या[4] मनवोऽपरे ॥१०८

अभी आपको बतलाया है, वही बारह सहस्र वर्ष देवताओं का युग बतलाया जाता है । देवताओं के एक सहस्र युगों का ब्रह्मा का एक दिन जानना चाहिए और उतने ही की एक रात्रि भी कही जाती है । इस प्रकार (पण्डित लोग) देवताओं के सहस्र युग की समाप्ति पर ब्रह्मा का एक पुण्य दिन समाप्त होना बतलाते हैं ।९७-९९। और उतने ही प्रमाण की रात्रि भी बतलाते हैं। इस रात्रि के व्यतीत होने पर जब कि देवताओं का एक सहस्र युग व्यतीत होता है, भगवान् अपने शयन से निवृत्त होकर जाग उठते हैं।१००। प्रतिबुद्ध होकर अपने सत्-असदात्मक मन की सृष्टि करते हैं, सृष्टि विस्तार करने की भावना से प्रेरित होकर वह मन ही सृष्टि करता है।१०१

उससे विपुल आकाश की उत्पत्ति होती है । उस आकाश का गुण शब्द कहा जाता है । आकाश में विकार होने से सब की सुगन्धि को वहन करने वाले, पवित्र, बलवान् और स्पर्शगुणात्मक वायु की उत्पत्ति होती है । तदनन्तर विकारयुक्त वायु से अंधकार को नष्ट करने वाले, विचित्र किरणों से समन्वित तेज की उत्पत्ति होती है, उसका गुण रूप कहा जाता है । उससे भी विकार युक्त होने पर जल की उत्पत्ति हुई—ऐसा बुद्धिमान् लोग स्मरण करते हैं।१०२-१०४। उस जल का गुण रस है, जो समस्त लोकों को (भावन) जीवन दान करने वाला है । जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, जो गन्ध गुण विशिष्ट है, यही सृष्टि का आदि क्रम है ।१०५। अभी जिन देवताओं के बारह सहस्र वर्षों के एक युग की चर्चा की गयी है, उसके एकहत्तर गुने का एक 'मन्वन्तर' कहा जाता है।१०६। यद्यपि ऐसे मन्वन्तरों की संख्या परिगणित नहीं की जा सकती एवं सृष्टि तथा प्रलय की भी कोई इयत्ता नहीं है, तथापि ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु का कार्य-काल समाप्त होना कहा जाता है।१०७। हे कुरुशार्दूल ! सर्वदा पण्डितगण संख्या द्वारा ऐसा ही निश्चय करते हैं । स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न होने वाले अन्य छह मनु गण, जो महान् ऐश्वर्यशाली एवं परम तेजस्वी थे, प्राचीन काल

---

१. बोध्यमानम् । २. पावनः । ३. मुनिशार्दूल इत्यपि पाठः । ४. एवं स्युर्मनवः परे ।

सृष्टवन्तः प्रजाःस्वाःस्वाः महात्मानो महौजसः। सावर्णेयस्तथा पञ्चभौत्यो रौच्यस्तथापरः।।१०९
एते भविष्या मनवः सप्त प्रोक्ता नृपोत्तम। स्वस्वेऽन्तरे सर्वमिदं पालयन्ति चराचरम् ।।११०
एवंविधं दिनं तस्य विरिञ्चेस्तु महात्मनः। तस्यान्ते कुरुते सर्गं यथेदं कथितं तव ।।१११
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी नराधिप। चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।।११२
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्याणां प्रवर्तते। इतरेष्वागमास्तात धर्मेऽत्र कुरुनन्दन ।।११३
यादृशाः परिहीयन्ते यथाह भगवान्मनुः[1]। चौर्याच्चाप्यनृताद्राजन्मायाभिरमितद्युते ।।११४
पादेन हीयते धर्मस्त्रेतादिषु युगेषु वै। अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।।११५
कृतत्रेतादिषु त्वेषां वयो ह्रसति पादशः। वेदोक्तमायुराशीश्च मर्त्यानां कुरुनन्दन ।।११६
कर्मणां तु फलं तात फलत्यनुयुगं सदा। प्रभावश्च तथा लोके फलत्येव शरीरिणाम् ।।११७
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे। अन्ये कलियुगे नृणां युगधर्मानुरूपतः ।।११८
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं[2] कलौ युगे ।।११९
सर्वस्य राजन्सर्गस्य गुप्त्यर्थं च महाद्युते। मुखबाहूरुपादानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ।।१२०

में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि कर चुके हैं। नृपोत्तम ! सावर्णेय, पञ्चभौत्य तथा रौच्य प्रभृति सात मनु गण, जो भविष्य में उत्पन्न होंगे, अपने-अपने समय में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि करके इस चराचर जगत् का पालन करेंगे।१०८-११०। महात्मा ब्रह्मा का दिन इस प्रकार का होता है। उसके अन्तिम समय में वह सृष्टि-कार्य इसी तरह सम्पन्न करता है, जैसा अभी आपसे बतला चुका हूँ।१११

नराधिप ! वह परमेष्ठी इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि खेलते हुए की तरह कर डालता है। सतयुग में सभी प्रकार के धर्म अपने चारों चरणों से सम्पन्न रहते हैं।११२। उस युग में मनुष्यों की प्रवृत्ति अधर्म में तनिक भी नहीं होती। हे कुरुनन्दन ! अन्यान्य युगों में, मनुष्यों की प्रवृत्ति एवं धर्म जिस प्रकार हीन कोटि के हो जाते हैं, उसे भगवान् मनु ने इस प्रकार बतलाया है। हे राजन् ! चोरी करने से तथा असत्य भाषण करने से एवं मायावीपन से त्रेता आदि युगों में सभी धर्म एक-चरण से हीन हो जाते हैं। सतयुग में मनुष्य रोगरहित एवं सम्पूर्ण सिद्धियों तथा इच्छाओं को प्राप्त करने के कारण सुखपूर्वक चार सौ वर्ष की आयु वाले होते थे।११३-११५। त्रेता आदि में एक-एक चरण आयु का भी ह्रास होता जाता है। हे कुरुनन्दन ! मनुष्यों को वेदों में कही गयी आयु, आशीर्वचन एवं कर्मों के शुभाशुभ फल युगों के अनुरूप ही सर्वदा फलित होते हैं। शरीरधारियों का प्रभाव भी युगों के अनुसार ही फलित होता है।११६-११७। सतयुग में दूसरा धर्म था, त्रेता में दूसरा, द्वापर में दूसरा और कलियुग में दूसरा। तात्पर्य यह कि मनुष्यों के ये धर्म युग-धर्मों के अनुसार बदलते रहते हैं।११८। कृतयुग में तपस्या ही परम (धर्म) था, त्रेता में ज्ञान को ही (परम धर्म) कहा जाता है। द्वापर में यज्ञ को और कलियुग में एकमात्र दान को (परमश्रेष्ठ) धर्म बतलाया जाता है।११९। हे परमकान्तिमान् ! राजन् ! सभी सृष्टि की रक्षा के लिए भगवान् ने अपने मुख, बाहु, उरु एवं चरणों से उत्पन्न होने वालों के कर्मों का भी विभाजन किया है।१२०

---

१. मुनिः। २. एव।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।१२१
प्रजानां पालनं राजन्दानमध्ययनं तथा । विषयेषु प्रसक्तिं च तथेज्यां क्षत्रियस्य तु ।।१२२
पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं[1] कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ।।१२३
एकमेव तु शूद्रस्य कर्म लोके प्रकीर्तितम्[2] । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनुपूर्वशः ।।१२४
पुरुषस्य सदा श्रेष्ठं नाभेरूर्ध्वं नृपोत्तम । तस्मादपि शुचितरं मुखं तात स्वयम्भुवः ।।१२५
तस्मान्मुखाद्द्विजो जात इतीयं वैदिकी श्रुतिः । सर्वस्यैवास्य धर्मस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ।।१२६
स[3] सृष्टो ब्रह्मणा पूर्वं तपस्तप्त्वा कुरूद्वह । हव्यानामिह कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये ।।१२७
अश्नन्ति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः ।।१२८
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।।१२९
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ।।१३०
जन्म विप्रस्य राजेन्द्र धर्मार्थमिह कथ्यते । उत्पन्नः सर्वसिद्ध्यर्थं[4] याति ब्रह्मसदो नृप ।।१३१

अध्यापन, अध्ययन, यज्ञाराधन, यज्ञ का अनुष्ठान कराना, दान देना और दान लेना—ये सब कर्म ब्राह्मणों के लिए निश्चित किये गये ।१२१। हे राजन् इसी प्रकार प्रजाओं का भलीभाँति पालन, दान, अध्ययन, विषय-सेवन एवं यज्ञाराधन—ये सब क्षत्रियों के कर्म हैं ।१२२। पशुओं की रक्षा, दान, यज्ञाराधन, अध्ययन, वाणिज्य, ब्याज लेकर कर्ज देना और कृषि—ये वैश्यों के कर्म हैं ।१२३। इस लोक में शूद्रों का केवल एक ही कर्म कहा जाता है—इन उपर्युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की क्रमानुसार शुश्रूषा करना ।१२४। नृपोत्तम ! मनुष्य के शरीर में नाभि के ऊपर का भाग सर्वदा श्रेष्ठ माना जाता है, हे तात ! उस ऊपरी भाग में भी मुख पवित्रतर है । स्वयम्भू भगवान् के उसी पुनीत मुख से द्विजों की उत्पत्ति हुई है—ऐसा वेदों में भी सुना जाता है। ब्राह्मण सभी धार्मिक कार्यों में अपने धर्म से ही अधिकारी माना गया है।१२५-१२६। हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्रह्मा ने प्रचुर तपस्या करके सर्वप्रथम इन्हीं ब्राह्मणों की उत्पत्ति हव्यों (देवता के उद्देश्य से यज्ञादि में जो कुछ दिया जाता है उसे हव्य कहते हैं) और कव्यों (पितरों के निमित्त श्राद्ध आदि में जो कुछ दिया जाता है उसे कव्य कहते हैं।) की तरह सब की रक्षा के लिए की थी ।१२७। देवगण इन्हीं के मुख से हव्यों का भक्षण करते हैं, इसी प्रकार पितरगण भी उनके मुख से कव्य पदार्थों का भक्षण करते हैं—इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ।१२८। सभी भूतों में प्राणधारी श्रेष्ठ माने जाते हैं, प्राणियों में वे श्रेष्ठ हैं, जो बुद्धिजीवी हैं, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ।१२९। ब्राह्मणों में बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमान् ब्राह्मणों में वे श्रेष्ठ हैं, जो दृढ़ बुद्धि हैं, उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं, जो वैसा आचरण करते हैं किन्तु वैसे आचरण करने वालों में भी वे अधिक श्रेष्ठ हैं, जो ब्रह्मवेत्ता हैं ।१३०। हे राजन् ! ब्राह्मणों का जन्म धर्म के लिए हुआ है—ऐसा कहा जाता है। नृप ! (इस भूतल पर) वह सभी सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए उत्पन्न हुआ है। अन्त में भी वह ब्रह्म-लोक को प्राप्त करता है।१३१। वह इस पृथ्वी पर जन्म धारण कर समस्त

---

१. वाणिज्यं तु । २. प्रतिष्ठितम् । ३. ससृजे । ४. सर्वधर्मार्थम् ।

स चापि जायमानस्तु पृथिव्यामिह जायते । भूतानां प्रभवायैव धर्मकोशस्य गुप्तये ।।१३२
सर्वं हि ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चित्पृथिवीगतम् । जन्मना चोत्तमेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ।।१३३
स्वकीयं ब्राह्मणो भुङ्क्ते विदधाति च सुव्रत । करुणां कुर्वतस्तस्य भुञ्जन्तीहेतरे जनाः ।।१३४
त्रयाणामिह वर्णानां भावाभावाय वै द्विजः । भवेद्राजन्न सन्देहस्तुष्टो भावाय वै द्विजः ।।१३५
अभावाय भवेत्क्रुद्धस्तस्मात्पूज्यतमो हि सः । ब्राह्मणे सति नान्यस्य प्रभुत्वं विद्यते नृप ।।१३६
कामात्करोत्यसौ कर्म कामगश्च नृपोत्तम । तस्माद्वृन्दारकपुरी तस्मादपि महः पुनः ।।१३७
महर्लोकाज्जनोलोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति । ब्रह्मत्वं च महाबाहो याति विप्रो न संशयः ।।१३८

शतानीक उवाच

ब्रह्मत्वं नाम दुष्प्रापं ब्रह्मलोकेषु सुव्रत ।।१३९
ब्रह्मत्वं कीदृशं विप्रो ब्रह्मलोकं च गच्छति । नाममात्रोऽथ किं विप्रो ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः सदा ।।
याति ब्रह्मन्गुणाः के स्युर्ब्रह्मप्राप्तौ ममोच्यताम् ।।१४०

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।।१४१
ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु । गर्भाधानादयो ये च[1] संस्कारा यस्य पार्थिव ।।१४२

प्राणियों के ऊपर आधिपत्य करने के लिए तथा धर्मकोश की रक्षा के लिए उत्पन्न होता है।१३२। इस पृथ्वी पर जो कुछ है, वह सब ब्राह्मण का ही है, क्योंकि उत्तम जन्म लेने के कारण वही सब कुछ पाने योग्य है।१३३। हे सुव्रत ! ब्राह्मण अपना ही भोजन करता है । फिर भी लोककल्याण के लिए प्रयत्न करता है जिसका अन्य लोग उपभोग करते हैं।१३४। हे राजन् ! ब्राह्मण इस पृथ्वी पर तीनों वर्णों के भाव (कल्याण) तथा अभाव (अकल्याण) को करने में समर्थ हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर कल्याण करता है।१३५। और (उसी प्रकार) क्रुद्ध होकर अकल्याण कर सकता है। अतः वह सबसे बढ़कर पूजनीय है। हे नृप ! ब्राह्मण के विद्यमान रहते हुए, दूसरे वर्ण का प्रभुत्व नहीं रह सकता।१३६। हे नृपोत्तम ! ब्राह्मण केवल अपनी इच्छा से कर्म करता है । वह इच्छानुसार गमन करने में समर्थ है। इस लोक से वह देवलोक को प्राप्त करता है, वहाँ से भी महर्लोक की उसे प्राप्ति होती है।१३७। महर्लोक से जनलोक और (जनलोक से) ब्रह्मलोक जाता है। हे महाबाहु ! इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।१३८

शतानीक बोले—हे सुव्रत ! ब्रह्मलोक में ब्रह्मत्व की प्राप्ति करना परम दुर्लभ है।१३९। ब्राह्मण किस प्रकार ब्रह्मलोक एवं ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है ? नाममात्र के लिए ही क्या ब्राह्मण सदा ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है ? हे ब्रह्मन् ! उस ब्रह्मपद के प्राप्ति के साधन भूत गुण कौन से हैं ? यह सब मुझे बतलाइए।१४०।

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! आपको अनेकशः साधुवाद है। मेरी उत्तम बात सुनिये।१४१। ब्राह्मण के लिए वेदों एवं शास्त्रों में जो संस्कार बतलाये गये हैं, हे पार्थिव ! गर्भाधान आदि जो अड़तालीस

---

१. चेह।

चत्वारिंशतथाष्टौ च निर्वृत्ताः शास्त्रतो नृप । स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वं च मानद[1] ॥
संस्काराः सर्वथा हेतुर्ब्रह्मत्वे नात्र संशयः ॥१४३

शतानीक उवाच

संस्काराः के मता ब्रह्मन्ब्रह्मत्वे ब्राह्मणस्य तु । शंस मे द्विजशार्दूलं कौतुकं हि महन्मम ॥१४४

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः । ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु ॥
मनीषिभिर्महाबाहो शृणु सर्वानशेषतः ॥१४५
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्मान्नप्राशनं च चूडोपनयनं[2] नृप ॥१४६
ब्रह्मव्रतानि चत्वारि स्नानं च तदनन्तरम् । सधर्मचारिणीयोगो यज्ञानां[3] कर्म मानद ॥१४७
पञ्चानां कार्यमित्याहुरात्मनः श्रेयसे नृप । देवपितृमनुष्याणां भूतानां ब्राह्मणस्तथा ॥१४८
एतेषां चाष्टकाकर्म पार्वणश्राद्धमेव हि । श्रावणी चाग्रहायणी चैत्री चाश्वयुजी तथा ॥१४९
पाकयज्ञास्तथा सप्त अग्न्याधानं[4] च सत्क्रिया । अग्निहोत्रं तथा राजन्दर्शं च विधुसङ्क्षये ॥१५०
पौर्णमासं च राजेन्द्र चातुर्मास्यानि चापि हि । निरूपणं[5] पशुवधं तथा सौत्रामणीति च ॥१५१
हविर्यज्ञास्तथा सप्त तेषां चापि हि सत्क्रिया । अग्निष्टोमोऽप्यग्निष्टोमस्तथोक्थ्यः[6] षोडशी विदुः ॥१५२

संस्कार शास्त्रों में बतलाये गये हैं, वे जिस ब्राह्मण के शास्त्रीय विधि के अनुसार हुए रहते हैं, हे मानद ! वही ब्राह्मण ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त करता है और वही सच्चे ब्रह्मत्व की भी प्राप्ति करता है। ब्रह्मत्व की प्राप्ति में सर्वथा ये संस्कार ही कारण हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है ।१४२-१४३

शतानीक बोले—हे द्विजशार्दूल ! ब्रह्मन् ! ब्राह्मण की ब्रह्मत्व-प्राप्ति में साधनभूत वे संस्कार कौन-कौन माने गये हैं ? मुझे उनके सुनने का बड़ा कुतूहल है, मुझे सुनाइये ।१४४

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! आपको अनेकशः साधुवाद है, मेरी उत्तम बातें सुनिये । हे महाबाहो ! मनीषियों द्वारा वेदों एवं शास्त्रों में ब्राह्मणों के लिए जो संस्कार बतलाये गये हैं, उन सब संस्कारों को सुनिये।१४५। हे राजन् ।गर्भाधान,पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, चार प्रकार के ब्रह्मचर्यावस्था के व्रत (अभिषव) स्नान, सहधर्मिणी के साथ संयोग अर्थात् विवाह (पाँचों) यज्ञों का सदनुष्ठान इनको आत्मकल्याण के लिए परम उपयोगी बतलाया जाता है ।१४६-१४७। देव, पितर, मनुष्य, भूत एवं ब्रह्म—इन सबके अष्टकाकर्म (अष्टमी के दिन किया जाने वाला धार्मिक कृत्य), श्रावण, अगहन, चैत्र एवं आश्विन की पूर्णिमा को पार्वण श्राद्ध, सात पाकयज्ञ, अग्नि-स्थापना, सत्क्रिया, अग्निहोत्र, अमावस्या को दर्शश्राद्ध, पौर्णमास श्राद्ध, चातुर्मास्य-निरूपण, पशुवध, सौत्रामणियाग, हविर्यज्ञ, जो सात प्रकार के होते हैं, उनकी सत्क्रिया, अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरा,

---

१. मानव । २. चूडाकरणमेखलाः । ३. जन्तूनां कर्म मानद । ४. अग्न्याधेयम् । ५. निरूढपशुबन्धं च । ६. ज्योतिष्टोमो ह्यग्निष्टोमः ।

वाजपेयोऽतिरात्रश्च आप्तोर्यामिति वै स्मृतः[1]। संस्कारेषु स्थिताः सप्त सोमाः कुरुकुलोद्वह[2] ॥१५३
इत्येते द्विजसंस्काराश्चत्वारिंशन्नृपोत्तम । अष्टौ चात्मगुणास्तात शृणु तानपि भारत ॥१५४
अनसूया दया क्षान्तिरनायासं च मङ्गलम् । अकार्पण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह ॥१५५
य एतेऽष्टगुणास्तात कीर्त्यन्ते वै मनीषिभिः । एतेषां लक्षणं वीर शृणु सर्वमशेषतः ॥१५६
न गुणान्गुणिनो हन्ति न स्तौत्यात्मगुणानपि । प्रहृष्यन्ते नान्यदोषैरनसूया प्रकीर्तिता ॥१५७
अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा । आत्मवद्वर्तनं यत्स्यात्सा दया परिकीर्तिता ॥१५८
वाचा मनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च । न कुप्यति न चाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता ॥१५९
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः । आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१६०
शरीरं पीड्यते येन शुभेनापि च कर्मणा । अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥१६१
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥१६२
स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना । अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं तदुच्यते ॥१६३
यथोत्पन्नेन सन्तुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना । अहिंसया परस्वेषु[3] साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥१६४
वपुर्यस्य तु इत्येतैः संस्कारैः संस्कृतं द्विजः । ब्रह्मत्वमिह सम्प्राप्य ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥१६५

आप्तोर्याम—ये सब संस्कार कहे जाते हैं। हे कुलश्रेष्ठ ! इन संस्कारों में सात सोमयज्ञ भी स्थित हैं ।१४८-१५३। हे नृपोत्तम ! ये चालीस ब्राह्मणों के संस्कार कहे जाते हैं। हे भारत । आठ उनके स्वाभाविक गुण हैं, उन्हें भी सुनिये ।१५४। अनसूया, दया, क्षान्ति, अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य, शौच तथा अस्पृहा ।१५५। हे तात ! मनीषियों के द्वारा जो ये आठ ब्राह्मणों के स्वाभाविक गुण कहे जाते हैं, हे वीर ! इन सद्‌गुणों के सम्पूर्ण लक्षणों को भी बतला रहा हूँ, सुनिये ।१५६। जिसमें गुणवान् गुणों का हनन नहीं करता है तथा अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता है तथा दूसरे के दोषों से प्रसन्न नहीं होता, उसे 'अनसूया' कहते हैं ।१५७। अन्य जनों तथा बन्धु-वर्ग (आत्मीय जनों) में, मित्र अथवा शत्रु में सर्वदा जो आत्मवत् व्यवहार हुआ करता है, उसे 'दया' कहते हैं ।१५८। मन और शरीर में कष्ट उत्पन्न करने वाली वाणी से न क्रोध किया जाता है और न दुःखानुभव होता है, उसे 'क्षमा' कहते हैं ।१५९। अभक्ष्य का त्याग, प्रशंसनीय का सम्पर्क और सदाचार में रहने को 'शौच' कहते हैं ।१६०। जिस शुभ कार्य के द्वारा शरीर को क्लेश होता है, उस कर्म का सर्वथा त्याग करना चाहिए। इस त्याग को 'अनायास' कहते हैं ।१६१। प्रशंसनीय कर्म के आचरण तथा निन्दित कर्म के सर्वथा त्याग को ब्रह्मवादी मुनियों ने 'मङ्गल' कहा है ।१६२। प्रतिदिन प्रसन्नचित्त होकर, थोड़े में से भी जो दान दिया जाता है, उसे अकार्पण्य कहते हैं ।१६३। स्वल्प मात्रा में भी प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट होने तथा अन्य जन (के धन) में अहिंसा भाव रखने को 'स्पृहा' कहते हैं ।१६४। हे द्विज ! इन संस्कारों से जिसका शरीर संस्कृत है, वह इस लोक में ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त कर, अन्त में ब्रह्मलोक को जाता है ।१६५। इस लोक और परलोक को सफल बनाने

---

१. नृप । २. मासाः । ३. परार्थेपु ।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यैर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।।१६६
गर्भशुद्धिं ततः प्राप्य धर्मं चाश्रमलक्षणम् । याति मुक्तिं न सन्देहः पुराणेऽस्मिन्नृपोत्तम ।।१६७
उशन्ति कुरुशार्दूल ब्राह्मणा नात्र संशयः । [1]आश्रितानां विशेषेण ये नित्यं स्वस्तिवादिनः ।।१६८
निकटस्थान्द्विजान्हित्वा योऽन्यान्पूजयति द्विजान् । सिद्धं पापं तदपमानात्तद्वक्तुं नैव शक्यते ।।१६९
तस्मात्सदा समीपस्थः सम्पूज्यो विधिवन्नृप । पूजयेदतिथींस्तद्वदन्नपानादिदानतः ।।१७०
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां ज्येष्ठः श्रेष्ठस्तथोत्तमः । एवमस्मिन्पुराणे तु संस्कारान्ब्राह्मणस्य तु ।।१७१
शृणोति यश्च जानाति यश्चापि पठते सदा । ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं प्राप्येह श्रियमुत्तमाम् ।।१७२
धनं धान्यं यशश्चापि पुत्रान्बन्धून्सुरूपताम् । सावित्रं लोकमासाद्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।१७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां
ब्राह्मे पर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ।२।

के निमित्त द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) को प्रशस्त वैदिक कर्म द्वारा शरीर का पवित्र संस्कार करना चाहिए ।१६६। इस तरह शरीर संस्कृत होने पर गर्भ-शुद्धि और आश्रमानुसार धर्म को प्राप्त कर, पुराणवचनानुसार हे राजन्, वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है ।१६७। हे कुरुवंश में श्रेष्ठ राजन् ! आश्रित जनों के प्रति स्वस्तिवाचन करने वाले ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है ।१६८। समीपस्थ ब्राह्मणों को त्यागकर जो अन्य ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे निकटस्थ ब्राह्मण के अपमान से निश्चित ही पाप के भागी होते हैं, उस पाप का वर्णन नहीं किया जाता ।१६९। हे राजन् ! इसलिए निकटस्थ ब्राह्मण की सदा पूजा करनी चाहिए । इसी प्रकार भोजन और पेय पदार्थों से अतिथियों का सम्मान करना चाहिए ।१७०। ब्राह्मण सभी वर्णों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम है । इस प्रकार इस पुराण में (प्रतिपादित) ब्राह्मण के संस्कारों को जो व्यक्ति सदा श्रवण करता है या जानता है पाठ करता है, वह इस संसार में ऋद्धि, वृद्धि, कीर्ति, उत्तम श्री, धन, धान्य, यश, पुत्र, बन्धु तथा सुन्दर स्वरूप को प्राप्त करके सविता के लोक में जाता है और अनन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।१७१-१७३

श्रीभविष्यमहापुराण में शतार्धसाहस्री नामक संहिता के
ब्रह्मपर्व में दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

---

१. एत ( ) च्चिह्नान्तर्गतोऽयं पाठः कस्मिंश्चिदेकस्मिन्पुस्तके दृश्यते । स च किंचित्प्रकरणादूरवर्तीति हेतोश्चिह्नं प्रवेशितम् । इति बोध्यम् ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

गर्भाधानादारभ्य समासात्सर्वसंस्कारवर्णनमाचमनादिविधिवर्णनञ्च

शतानीक उवाच

जातकर्मादिसंस्कारान्वर्णानामनुपूर्वशः । आश्रमाणां च मे धर्मं कथयस्व द्विजोत्तम ॥१

सुमन्तुरुवाच

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्मान्नप्राशश्च चूडामौञ्जीनिबन्धनम् ॥२
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते । स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया श्रुतैः ॥३
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं यज्ञैश्च क्रियते तनुः । शृणुष्वैकमना राजन्यथा सा क्रियते तनुः ॥४
प्राङ्नाभिकर्तनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥५
नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति पार्थिव । द्वादश्यामपरे राजन्मासि पूर्णे तथा परे ॥६
अष्टादशेऽहनि तथाऽन्ये वदन्ति मनीषिणः । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते च नक्षत्रे च गुणान्विते ॥७
मङ्गल्यं तात विप्रस्य शिवशर्मेति पार्थिव । राजन्यस्य विशिष्टं[1] तु इन्दुवर्मेति कथ्यते[2] ॥८

अध्याय ३

गर्भाधान से लेकर संक्षेप में समस्त संस्कारों एवं आचमन आदि की विधियों का वर्णन

शतानीक बोले—हे द्विजोत्तम ! सभी वर्णों के जातकर्म आदि जितने संस्कार एवं आश्रमों के धर्म हैं, उन्हें हमें क्रमशः बतलाने की कृपा कीजिये ।१

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकरण और उपनयन इन संस्कारों के करने से द्विजों के बीज एवं गर्भ सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं । स्वाध्याय, व्रत; हवन, तीनों वेदों के अध्ययन, महान् यज्ञों एवं सामान्य यज्ञों के अनुष्ठान से यह शरीर ब्रह्मवर्चस् से संयुक्त किया जाता है । हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनिये कि इन संस्कारों से वह शरीर किस प्रकार ब्रह्मतेजोमय होता है ।२-४। पुरुष संतान के नाल काटने से पहिले ही जातकर्म संस्कार किया जाता है और वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुवर्ण, मधु और घृत प्राशन कराया जाता है ।५। हे पार्थिव, हे राजन्! कोई कोई आचार्य दसवीं तिथि को नामकरण संस्कार करने की इच्छा करते हैं, कुछ लोग बारहवीं तिथि को तथा कुछ लोग एक मास पूरे होने पर ।६। कुछ अन्य पण्डित लोग अठारहवें दिन के लिए बतलाते हैं । पुण्य तिथि, अच्छे नक्षत्र, शुभमुहूर्त में, जबकि सब प्रकार के गुण संयुक्त हों, हे तात ! ब्राह्मण का शिव-शर्मा इस प्रकार मांगलिक नामकरण संस्कार करना चाहिए, क्षत्रियों का इन्द्रवर्मा ऐसा

---

१. बलिष्ठं तु । २. कीर्त्यते ।

वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य च जुगुप्सितम् । धनवर्धनेति वैश्यस्य सर्वदासेति हीनजे ।।९
मनुना च तथा प्रोक्तं नाम्नो लक्षणमुत्तमम् । शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।।१०
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् । स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थमनोरमम् ।।११
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् । द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।।१२
चतुर्थे मासि कर्तव्यं तथान्येषां मतं विभो । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यथेष्टं मङ्गलं कुले ।।१३
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामनुपूर्वशः । प्रथमेऽब्दे तृतीये[1] वा कर्तव्यं कुरुनन्दन ।।१४
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राजन्क्षत्रियस्य विनिर्दिशेत् ।।१५
द्वादशेऽब्देऽपि गर्भात्तु वैश्यस्य व्रतमादिशेत् । ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।।१६
बलार्थिना तथा राज्ञः षष्ठेऽब्दे कार्यमेव हि । अर्थकामेन वैश्यस्य अष्टमे कुरुनन्दन ।।१७
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । द्वाविंशतेः क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ।।१८
अत ऊर्ध्वं तु ये [2]राजन्यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते[3] क्रतोः ।।१९

विशिष्ट नामकरण करना चाहिए ।७-८। वैश्य का धन संयुक्त नाम रखना चाहिये । शूद्र का कुछ जुगुप्सित नामकरण करना चाहिये जैसे वैश्य का नाम धनवर्धन और शूद्र का नाम सर्वदास ।९। मनु ने नाम के ये उत्तम लक्षण बतलाये हैं कि ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के साथ रक्षार्थक (वर्मा), वैश्य के साथ पुष्टिप्रदायक नाम (कोई संज्ञा) तथा शूद्र के साथ (दास्यभाव) युक्त कोई नाम हो । स्त्रियों के नाम सुख देने वाले, मृदु भावना के प्रतीक, सरल, स्पष्ट, मनोहारी, मांगलिक, अन्त में दीर्घवर्ण युक्त तथा आशीर्वाद व्यंजित करने वाले हों । हे राजेन्द्र ! बारहवें दिन शिशु का घर से बाहर के लिए निष्क्रमण होता है ।१०-१२। हे विभो ! कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि शिशु को चौथे मास घर से बाहर निकालना चाहिये । छठे मास में अन्नप्राशन करने से परिवार में यथेष्ट मङ्गल की प्राप्ति होती है ।१३। हे कुरुनन्दन ! सभी द्विज कही जाने वाली जातियों में क्रमशः शिशुओं का चूडाकर्म संस्कार प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिए ।१४। ब्राह्मण शिशु का उपनयन संस्कार गर्भ से आठवें वर्ष में करना चाहिये । हे राजन् ! क्षत्रिय का उपनयन संस्कार गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में करना चाहिये ।१५। वैश्यों के लिए यह व्रत बारहवें वर्ष में भी वैध माना गया है । किन्तु इसके अतिरिक्त अधिक ब्रह्मवर्चस की कामना हो तो ब्रह्मण शिशु का यज्ञोपवीत संस्कार पांचवें वर्ष में करना चाहिये ।१६। राजाओं के शिशुओं को अधिक बली होने की कामना से छठे वर्ष में यज्ञोपवीत करा देना चाहिये । हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार विशेष धन उपार्जित करने की कामना से वैश्य का आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार सम्पन्न करना चाहिये ।१७। सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्राह्मण कुमार की सावित्री अतिक्रमण नहीं करती (अर्थात् १५वें वर्ष तक भी ब्राह्मण कुमारों का यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता है ।) उसी प्रकार क्षत्रियों का बाईस वर्ष से पूर्व तथा वैश्यों का चौबीस वर्ष की अवस्था तक भी उपनयन संस्कार हो सकता है ।१८। हे राजन् ! किन्तु इससे ऊपर हो जाने पर भी जिनका उपनयन संस्कार नहीं होता वे असंस्कृत हैं । सावित्री के पतित होने पर वे व्रात्य हो जाते हैं, और व्रात्यस्तोम यज्ञ के बिना कुछ नहीं हो सकता ।१९। ऐसे अपवित्र के साथ

---

१. द्वितीये वा । २. त्रयोऽप्येते । ३. न ते संस्कारभागिनः ।

न चाप्येभिरपूतैस्तु आपद्यपि हि कर्हिचित् । ब्राह्मं यौनं च सम्बन्धमाचरेद्ब्राह्मणैः सह ॥२०
भवन्ति राजंश्चर्माणि व्रतिनां त्रिविधानि च । कार्ष्णरौरवबास्तानि ब्रह्मक्षत्रविशां नृप ॥२१
वशीरंश्चानुपूर्व्येण वस्त्राणि विविधानि तु । ब्रह्मक्षत्रविशो राजञ्छाणक्षौमादिकानि च ॥२२
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥२३
मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः । त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥२४
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥२५
पुष्कराणि तथा चैषां भवन्ति त्रिविधानि तु । ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ तृतीयं प्लक्षजं नृप ॥२६
वाटखादिरौ क्षत्रियस्तु तथान्यं वेतसोद्भवम् । पैलवोदुम्बरौ वैश्यस्तथाश्वत्थजमेव हि ॥२७
दण्डानेतान्महाबाहो धर्मतोऽर्हन्ति धारितुम् । केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ॥२८
ललाटसम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः । ऋजवस्ते तु सर्वे स्युर्ब्राह्मणाः सौम्यदर्शनाः ॥२९
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः । प्रगृह्य चेप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ॥३०
सम्यग्गुरुं तथा पूज्य चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि । भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥३१

कभी आपत्ति में भी अध्ययन, अध्यापन, अथवा यौन सम्बन्ध ब्राह्मण को नहीं रखना चाहिये ।२०। हे राजन् ! उपनयन व्रत पालन करने वाले व्रतियों के लिए तीन प्रकार के चर्म भी होते हैं, ब्राह्मण के लिए कृष्ण मृग चर्म, क्षत्रिय के लिए रुरु मृग चर्म और वैश्य के लिए बकरे का चर्म ।२१। हे राजन् ! इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को सन, रेशमी आदि विविध प्रकार के वस्त्र क्रमानुसार धारण करने चाहिये ।२२। (इन उपनयन संस्कार में) ब्राह्म की मेखला मूँज की बनी हुई त्रिसूती तीन लड़ियों वाली, समान तथा चिकनी करनी चाहिए । क्षत्रिय के लिए मूर्वा की बनी होनी चाहिये । तथा वैश्य के लिए सन् के रेशों की होनी चाहिये ।२३। मूँज न मिलने पर ब्राह्मणों के लिए कुश, अश्मन्तक अथवा बल्वज (बगही) की मेखला बनानी चाहिये । उसे एक गाँठ बाँधकर तीन लड़ की बना लेनी चाहिये अथवा तीन गाँठ या पाँच गाँठ बाँधनी चाहिये ।२४। ब्राह्मण का उपवीत कपास का (अर्थात् सूती) होना चाहिये, जो तीन लड़ियों में हो और ऊर्ध्ववृत हो राजाओं अर्थात् क्षत्रियों का यज्ञोपवीत सन के सूतों से बना हुआ तथा वैश्यों का भेंड़ के रोम के सूतों का बना हुआ होना चाहिये ।२५। इन तीनों वर्णों में ब्रह्मचारियों के दण्ड भी तीन प्रकार के होने चाहिये । नृप ! ब्राह्मण बेल, पलाश अथवा पाकर का दण्ड ग्रहण करे ।२६। क्षत्रिय बरगद, खदिर (खैर) अथवा बेंत का तथा वैश्य, पीलु वृक्ष का, गूलर अथवा पीपल का दण्ड ग्रहण करें ।२७। हे महाबाहु ! इन दण्डों को (उपनयन संस्कार के समय) धर्मतः धारण करना चाहिये । ब्राह्मणों का दण्डमाप उनके केशांत (भाग) तक होना चाहिये ।२८। राजाओं का दण्ड ललाट पर्यन्त का तथा वैश्यों का नासिका के अन्त तक का होना चाहिये । वे सब दण्ड देखने में सीधे तथा सुन्दर हों जिनके देखने से मनुष्यों के मन में किसी प्रकार की उद्वेग-भावना न फैले । उन पर उत्तम बकला लगा हो, कहीं अग्नि से जले हुए न हों । इस प्रकार अपनी इच्छानुसार दण्ड ग्रहण कर भास्कर की उपासना कर भली-भाँति गुरु की पूजा कर ब्रह्मचारी यथाविधि भिक्षाटन करे । उपनीत ब्राह्मण पहले भवत् शब्द का प्रयोग कर भिक्षाटन करे, क्षत्रिय वाक्य के मध्य में भवत् शब्द का प्रयोग करे और वैश्य वाक्य के अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करे ।

भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्य भवदुत्तरम् । मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥३२
भिक्षेत भैक्ष्यं प्रथमं या चैनं नावमानयेत् । सुवर्णं रजतं चान्नं सा पात्रेऽस्य विनिर्दिशेत् ॥३३
समाहृत्य ततो भैक्ष्यं यावदर्थममायया । निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥३४
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं[1] भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥३५
उपस्पृश्य द्विजो राजन्नन्नमद्यात्समाहितः । भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥३६
तथान्नं पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् । दर्शनात्तस्य हृष्येद्वै प्रसीदेच्चापि भारत॥३७
अभिनन्द्य ततोऽश्नीयादित्येवं मनुरब्रवीत् । पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति॥३८
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्[2] । नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैतत्तथान्तरा ॥३९
यस्त्वन्नमन्तरा कृत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम । विनाशं याति स नर इह लोके परत्र च ॥
यथाभवत्पुरा वैश्यो धनवर्द्धनसंज्ञितः ॥४०

शतानीक उवाच

स कथमन्तरं पूर्वमन्नस्य द्विजसत्तम । किमन्तरं तथान्नस्य कथं वा तत्कृतं भवेत् ॥४१

माता, बहिन, अथवा अपनी मौसी से सर्वप्रथम भिक्षा की याचना करनी चाहिये। जो ब्रह्मचारी की अवमानना न करे। उसे अर्थात् देने वाली को सुवर्ण या चाँदी के पात्र में अन्न रखकर दान करने का निर्देश है।२९-३३। इस प्रकार भिक्षाटन कर ब्रह्मचारी मायारहित हो सब धन गुरु को समर्पित कर पवित्र भाव से आचमन कर पूर्वाभिमुख हो भोजन करे।३४। पूर्वाभिमुख भोजन करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है, दक्षिण मुख से यश की प्राप्ति होती है, पश्चिम मुख करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तथा उत्तर मुख करने से ऋत की प्राप्ति होती है।३५। हे राजन्! द्विज समाहित चित्त होकर विधिपूर्वक आचमन कर अन्न का भक्षण करे। भोजन करने के उपरान्त भी जल से अच्छी तरह आचमन कर सब इन्द्रियों का स्पर्श करे।३६। अन्न की सर्वदा पूजा करे, कुत्सित भावना का सर्वथा परित्याग कर उसका भक्षण करे। हे भरत! उसको देखकर प्रसन्नता और सन्तोष प्रकट करे।३७। अन्न का अभिनन्दन (प्रशंसा) करने के बाद भोजन करे—ऐसा मनु ने कहा है। पूजित अन्न सर्वदा बल एवं ओज प्रदान करता है।३८। और अपूजित अन्य के भोजन से वह उन दोनों का विनाश होता है। अपना जूठ किसी को न दें और न स्वयं किसी का जूठा खाय।३९। इसी प्रकार बचे हुए अपने ही जूठे अन्न को कुछ देर बाद फिर से न खाय। हे नृपोत्तम! लोभवश जो अपने ही जूठे अन्न को दूसरे समय में खाता है, वह दोनों लोकों में नष्ट होता है, जैसे प्राचीन काल में धनवर्धन नामक वैश्य का नाश हुआ था।४०

शतानीक बोले—हे द्विजसत्तम! अन्न शब्द होने के पहले वह कैसा था वह और अन्न शब्द के पीछे वह कैसा हुआ तथा उससे क्या हुआ।४१

---

१. सत्यं। २. नृप। ३. अभूत्पुण्यकर्मकृत्।

सुमन्तुरुवाच

पुरा कृतयुगे राजन्वैश्यो वसति पुष्करे । धनवर्धननामावै समृद्धौ धनधान्यतः ॥४२
निदाघकाले राजेन्द्र स कृत्वा वैश्वदेविकम् । सपुत्रभ्रातृभिः सार्धं तथा वै मित्रबन्धुभिः ॥
आहारं कुरुते राजन्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्[1] ॥४३
अथ तद्भुञ्जतस्तस्य[2] अन्नं शब्दो महानभूत् । करुणः कुरुशार्दूल अथ तं स प्रधावितः ॥४४
त्यक्त्वा स भोजनं यावन्निष्क्रान्तो गृहबाह्यतः । अथ शब्दस्तिरोभूतः स भूयो गृहमागतः ॥४५
तमेव भाजनं गृह्य[3] आहारं कृतवान्नृप । भुक्तशेषं महाबाहो आहारं स तु भुक्तवान् ॥४६
भुक्त्वा स शतधा जातस्तस्मिन्नेव क्षणे नृप । तस्मादन्नं न राजेन्द्र अश्नीयादन्तरा क्वचित् ॥४७
च चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् । रसो भवत्यत्यशनाद्रसाद्रोगः प्रवर्तते ॥४८
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । न भवन्ति रसे जाते नराणां भरतर्षभ ॥४९
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् । अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५०
यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम । [4]गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः ॥५१
शुचित्वमाश्रयेत्तस्माच्छुचित्वान्मोदते दिति । सुखेन चेह रमते इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥५२

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! बहुत दिन पहले की बात है, सतयुग में पुष्कर नामक नगर में धनवर्धन नामक एक वैश्य निवास करता था, जो धन धान्यादि से परिपूर्ण था ।४२। हे राजेन्द्र ! (एक बार) ग्रीष्म ऋतु में वह अपने मित्र, बन्धु-बान्धव, पुत्र, भाई आदि के साथ वैश्वदेवादि का विधान सम्पन्न कर विविध प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थों का आहार कर रहा था कि बीच में ही अन्न शब्द हुआ जो उसे सुनाई पड़ा । हे कुरुवंश सिंह ! (धन वर्धन उस शब्द को सुनकर) उसी ओर दौड़ पड़ा ।४३-४४। अपने भोजन को छोड़कर जब तक वह घर से बाहर निकला तब तक वह शब्द तिरोहित हो गया, जिससे वह फिर अपने घर लौट आया ।४५। हे राजेन्द्र ! घर आकर उसने वही पात्र लेकर फिर आहार किया । हे महाबाहु उस शेष भोजन का ही भक्षण उसने किया ।४६। किन्तु भोजन करने के क्षण में ही वह सौ टुकड़ों में परिणत हो गया । हे राजेन्द्र ! इसलिए भोजन कभी भी बीच में व्यवधान करके नहीं करना चाहिये ।४७। इसीलिए कभी भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न जूठ मुँह रखकर कहीं जाना ही चाहिये । अत्यन्त ठूस ठूस कर भोजन करने से शरीर में रस की वृद्धि होती है, और रस से रोगों की उत्पत्ति होती है ।४८। हे भरतवर्य ! शरीर में रस की वृद्धि होने पर स्नान, दान, जप, हवन और देव-पितृ-पूजा मनुष्यों द्वारा नहीं हो पाती ।४९। अत्यन्त भोजन करना आरोग्य, आयुष्य और स्वर्ग इन सबको न देने वाला है । उससे पुण्य की भी हानि होती है एवं लोक में भी द्वेष बढ़ता है । इसलिए (मनुष्य को) अत्यन्त भोजन करने की प्रवृत्ति को छोड़ देनी चाहिये ।५०। इसी प्रकार हे राजन् ! उच्छिष्ट ब्राह्मण यक्ष, भूत, पिशाच राक्षसों का गम्य बन जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।५१।

---

१. भक्ष्यपेयसमन्वितम् । २. भुञ्जानस्य । ३. गृहीत्वा । ४. भक्ष्यः ।

शतानीक उवाच

शुचितामियात्कथं विप्रः कथं चाशुचितामियात् । एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र कौतुकं परमं मम ।।५३

सुमन्तुरुवाच

उपस्पृश्य शुचिर्विप्रो भवते भरतर्षभ । विधिवत्कुरुशार्दूल भवेद्विधिपरो ह्यतः ।।५४

शतानीक उवाच

उपस्पर्शविधिं विप्र कथय त्वं ममाखिलम् । शुचित्वमाप्नुयाद्येन आचान्तो ब्राह्मणो द्विजः ।।५५

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणु विप्रो यथा भवेत् । शुचिर्भरतशार्दूल विधिना येन वा विभो ।।५६
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । उपविश्य शुचौ देशे बाहुं कृत्वा च दक्षिणम् ।।५७
जान्वन्तरे महाबाहो ब्रह्मसूत्रसमन्वितः[1] । सुसमौ चरणौ कृत्वा तथा बद्धशिखो नृप ।।५८
न तिष्ठन्न च संजल्पंस्तथा चानवलोकयन् । न त्वरन्कुपितो वापि त्यक्त्वा राजन्सुदूरतः ।।५९
प्रसन्नाभिस्तथाद्भिस्तु आचान्तः शुचितामियात् । नोष्णाभिर्न सफेनाभिर्युक्ताभिः कलुषेण च ।।६०
वर्णेन रसगन्धाभ्यां हीनाभिर्न च भारत । सबुद्बुदाभिश्च तथा नाचामेत्पण्डितो नृप ।।६१

अतएव शुद्धता को अपनाना चाहिए । शुद्धता से ही दिति प्रसन्न होती हैं । मनुष्य यहाँ पर भी सुखपूर्वक आनन्दित होता है । ऐसा वेदवाङ्मय में कहा गया है ।५२

शतनीक ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! ब्राह्मण कैसे पवित्रता को प्राप्त होता है कैसे अपवित्रता को प्राप्त होता है, यह मुझे बताइये, मेरे मन में महान् कौतूहल हो रहा है ।५३

सुमन्तु ने कहा—हे भरतवंश में उत्पन्न होने वाले कुरुशार्दूल ! ब्राह्मण उपस्पर्श करके पवित्र होता है तथा इसी से ही विधिपूर्वक विधिज्ञाता होता है ।५४

शतनीक ने कहा—हे ब्राह्मण ! तुम मुझे सारी उपस्पर्शविधि को बताओ । जिससे आचार्य ब्राह्मण एवं द्विज पवित्रता को प्राप्त करते हैं ।५५

सुमन्तु ने कहा—हे भरतशार्दूल श्रेष्ठ राजेन्द्र ! तुमने सही पूछा है । सुनो, जैसे अथवा जिस विधि से ब्राह्मण पवित्र हो जाता है ।५६। अपने हाथ पैर को धोकर पूरब की ओर या उत्तर की ओर मुँह करके पवित्र स्थान पर बैठकर दाहिनी भुजा को दक्षिण की ओर करके, कन्धे पर यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र) को धारण करके अपने चरणों को समान करके शिखा को बाँध करके न तो बैठते हुए न तो बात करते हुए, न तो देखते हुए, न तो क्रुद्ध होकर, न तो दूर से किसी वस्तु का परित्याग कर अत्यन्त निर्मल एवं समुज्ज्वल जल से आचमन करके, हे महाबाहु राजन् ! ब्राह्मण पवित्र हो जाता है । हे भरतवंशी राजन् ! न तो गर्म, न तो फेनयुक्त, न तो कलुषित, न तो वर्ण एवं रसगन्ध से हीन तथा न तो बुद्बुद् करती हुई जलबिन्दुओं से पण्डित को आचमन करना चाहिए ।५७-६१। हे सम्माननीय राजन् ! ब्राह्मण के दाहिने

---

१. यज्ञसूत्रसमन्वितः ।

पञ्चतीर्थानि विप्रस्य श्रूयन्ते दक्षिणे करे । देवतीर्थं पितृतीर्थं ब्रह्मतीर्थं च मानद ।।६२
प्राजापत्यं तथा चान्यत्तथान्यत्सौम्यमुच्यते । अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा महीपते ।।६३
ब्राह्मं तीर्थं वदन्त्येतद्वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः । कायं कनिष्ठिकामूले अङ्गुल्यग्रे तु दैवतम् ।।६४
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । करमध्ये स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि ।।६५
देवार्चाबलिहरणं प्रविक्षपणमेव च । एतानि देवतीर्थेन कुर्यात्कुरुकुलोद्वह ।।६६
अन्ननिर्वपणं राजंस्तथा स्पदनं[1] नृप । लाजाहोमं तथा सौम्यं प्राजापत्येन कारयेत् ।।६७
कमण्डलूपस्पर्शनं दधिप्राशनमेव च । सौम्यतीर्थेन राजेन्द्र सदा कुर्याद्विचक्षणः ।।६८
पितॄणां तर्पणं कार्यं पितृतीर्थेन धीमता । ब्राह्मेण चापि तीर्थेन सदोपस्पर्शनं परम् ।।६९
[2]घनाङ्गुलिकरं कृत्वा एकाग्रः सुमना द्विजः । त्रिः कृत्वा यः पिबेदापो[3] मुखशब्दविवर्जितः ।।७०
[4]शृणु यत्फलमाप्नोति प्रीणाति च यथा सुरान् । प्रथमं यत्पिबेदाप ऋग्वेदस्तेन तृप्यति ।।७१
यद्द्वितीयं यजुर्वेदस्तेन प्रीणाति भारत । यत्तृतीयं सामवेदस्तेन प्रीणाति भारत ।।७२
प्रथमं यन्मृजेदास्यं दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः । अथर्ववेदः प्रीणाति तेन राजन्नसंशयः ।।७३
इतिहासपुराणानि यद्द्वितीयं प्रमार्जति । यन्मूर्धानं हि राजेन्द्र अभिषिञ्चति वै द्विजः ।।७४

हाथ में पाँच तीर्थ सुने जाते हैं जिन्हें देवतीर्थ, पितृतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, प्रजापत्यतीर्थ तथा सौम्यतीर्थ कहा जाता है। अंगूठे के मूल भाग से जो रेखा प्रारम्भ होती है उसे वशिष्ठ आदि द्विजोत्तम ब्राह्मतीर्थ कहा करते हैं। कनिष्ठिका के मूल में (कायतीर्थ) प्राजापत्यतीर्थ एवं अंगुलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ विद्यमान है ।६२-६४। तर्जनी एवं अगूठे के मध्य का भाग पितृतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। देवकार्य में प्रशस्त सौम्यतीर्थ हाथ के मध्य में स्थित है।६५। हे कुरुकुल में उत्पन्न ! देवता की अर्चना करना, बलि का हरण तथा उसका प्रक्षेपण करना इत्यादि कार्यों को देवतीर्थ से करना चाहिए।६६। अन्न का दान (भेंट करना) सञ्चय तथा लाजाहोम (लावे की आहुति) इत्यादि सौम्य कार्य प्राजापत्य तीर्थ से करना चाहिए।६७। हे राजेन्द्र ! कमण्डलु का उपस्पर्श एवं दधि का सेवन विचक्षण व्यक्ति को सदैव सौम्यतीर्थ से करना चाहिए।६८। बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा पितरों का तर्पण (पिण्डदान आदि) पितृतीर्थ से करना चाहिए। श्रेष्ठ उपस्पर्श को सदैव ब्रह्मतीर्थ से करना चाहिए।६९। अंगुलियों को घना करने एकाग्र होकर सुन्दर मन से जो ब्राह्मण बिना मुख से शब्द किये हुए तीन बार जल को पीता है, वह जो फल प्राप्त करता है तथा जिस प्रकार देवताओं को प्रसन्न करता है, उसे सुनो। पहले जो जल पीता है उससे ऋग्वेद तृप्त होता है। हे भारत ! दूसरी बार जो जल पीता है उससे यजुर्वेद तृप्त होता है, तीसरी बार जो जल पीता है उससे सामवेद प्रसन्न होता है।७०-७२। पहले पहल जो दाहिने हाथ के अंगूठे के मूलभाग से मुख को साफ करता है, हे राजन् ! उससे निश्चित रूप से अथर्ववेद प्रसन्न हो जाता है।७३। जो दो बार मार्जन करता है। (कुशादि से जल छिड़कता है) उससे इतिहासपुराण प्रसन्न होते हैं। हे राजेन्द्र! जो ब्राह्मण अपने मस्तक का अभिषेक करता है, तथा अपनी

---

१. संचयनम् । युताङ्गुलिकरम् । ३. अपः ४. स सम्यक्फलमाप्नोति ।

तेन प्रीणाति वै रुद्रं शिखामालम्य वै ऋषीन् । यदक्षिणी चालभते रविः प्रीणाति तेन वै ॥७५
नासिकालम्भनाद्वायुं प्रीणात्येव न संशयः । यच्छ्रोत्रमालभेद्विप्रो दिशः प्रीणाति तेन वै ॥७६
यमं कुबेरं वरुणं वासवं चाग्निमेव च । यद्बाहुमन्वालभते एतान्प्रीणाति तेन[1] वै ॥७७
यन्नाभिमन्वालभते प्राणानां ग्रन्थिमेव च । तेन प्रीणाति राजेन्द्र इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥७८
अभिषिञ्चति यत्पादौ विष्णुं प्रीणाति तेन वै । यद्भूम्याच्छादकं वारि विसर्जयति मानद ॥७९
वासुकिप्रमुखान्नागांस्तेन प्रीणाति भारत । यद्बिन्दवोऽन्तरे भूमौ पतन्तीह नराधिप ॥८०
भूतग्रामं ततस्तस्तु प्रीणन्तीह चतुर्विधम् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या लभेत चाक्षिणी नृप ॥८१
अनामिकाङ्गुष्ठिकाभ्यां नासिकामालभेन्नृप । मध्यमाङ्गुष्ठाभ्यां मुखं संस्पृशेद्भरतर्षभ ॥८२
कनिष्ठिकाङ्गुष्ठकाभ्यां कर्णमालभते नृप[2] । अङ्गुलीभिस्तथा बाहुमङ्गुष्ठेन तु मण्डलम् ॥८३
नाभिं कुरुकुलश्रेष्ठ शिरः सर्वाभिरेव[3] च । अङ्गुष्ठोऽग्निर्महाबाहो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनी ॥८४
अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा माघवा विभो । प्रजापतिर्मध्यमा ज्ञेया तस्माद्भरतसत्तम ॥८५
एवमाचम्य विप्रस्तु प्रीणाति सततं जगत् । सर्वाश्च देवतास्तात लोकांश्चापि न संशयः ॥८६
तस्मात्पूज्यः सदा विप्रः सर्वदेवमयो हि सः । ब्राह्मेण विप्रतीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥८७

शिखा का स्पर्श करता है उससे रुद्र एवं ऋषिगण प्रसन्न हो जाते हैं। जो अपनी आँखों का स्पर्श करता है, उससे सूर्य देवता प्रसन्न हो जाते हैं।७४-७५। नासिका का स्पर्श करके वह निःसन्दिग्ध रूप से वायु को प्रसन्न कर देता है। जो ब्राह्मण अपने कान का स्पर्श करता है, उससे दिशायें प्रसन्न हो जाती हैं।७६। जो अपनी भुजाओं का स्पर्श करता है उससे यम, कुबेर, वसु, वरुण तथा अग्नि प्रसन्न हो जाते हैं।७७। जो प्राणों की ग्रन्थि एवं नाभि का स्पर्श करता है, उससे राजेन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं, ऐसा वैदिक साहित्य से बोध होता है।७८। जो अपने पैरों का अभिषेक करता है उससे विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। हे सम्मान्य ! जो पृथ्वी पर, चारों तरफ से ढक लेने वाले जल का विसर्जन करता है, उससे वासुकि प्रमुख सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। हे नरेश भारत ! जिसके जल की बूँदें पृथ्वी के अन्तरतम में गिरती हैं, उससे चारों प्रकार के भूतग्राम प्रसन्न हो जाते हैं। हे राजन् ! अँगूठे एवं अंगुली से आँख का स्पर्श करना चाहिए।७९-८१। हे राजन् ! अनामिका एवं अँगूठे से नाक का स्पर्श करना चाहिए। हे भरतवंश में उत्पन्न ! मध्यमा एवं अँगूठे से मुख का स्पर्श करना चाहिए।८२। हे राजन् कनिष्ठिका एवं अँगूठे से कान का स्पर्श करना चाहिए। अंगुली से हाथ का तथा अँगूठे से समूचे मण्डल का स्पर्श करना चाहिए।८३। नाभि एवं सिर का स्पर्श सभी अँगुलियों से करना चाहिए। हे कुरुकुल में श्रेष्ठ महाबाहु ! अँगूठा अग्नि कहा गया है तथा तर्जनी वायु कही गयी है। हे श्रेष्ठ ! अनामिका सूर्य कही गयी है तथा कनिष्ठा इन्द्र कही गयी है। हे भरतवंश में श्रेष्ठ ! मध्यमा को प्रजापति कहा गया है।८४-८५। हे बन्धु ! इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण समग्रलोक को, संसार को, देवताओं को निःसन्दिग्ध रूप से निरन्तर प्रसन्न करता है।८६। इसलिए सर्वदेवमय ब्राह्मण सदैव पूज्य हैं। ब्राह्म विप्ररूपी तीर्थ के द्वारा प्रतिदिन काल का उपस्पर्श करना चाहिए इस पैत्रिक शरीर एवं त्रैदेशिक

---

१. भारत । २. नरः । ३. सर्ववेदमयः ।

कायत्रैदेशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन । हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।।८८
वैश्योद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः । उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते बुधः ।।८९
सव्येन प्राचीनावीती निवीती कण्ठसंज्ञिते । मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।।९०
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवित् । उपवीत्याचमेन्नित्यमन्तर्जानु महीपते ।।९१
एवं तु विप्रो ह्याचान्तः शुचितां याति भारत । यास्त्वेताः करमध्ये तु रेखा विप्रस्य भारत ।।९२
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा ज्ञेया भारतसत्तम । यान्यङ्गुलिषु पर्वाणि गिरयस्तानि विद्धि वै ।।९३
सर्वदेवमयो राजन्करो विप्रस्य दक्षिणः । हस्तोपस्पर्शनविधिस्तवाख्यातो महीपते ।।९४
एषु सर्वेषु लोकेषु येनाचान्तो दिवं व्रजेत् ।।९५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां
ब्राह्मे पर्वण्युपस्पर्शनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३।

(मन) द्वारा कभी भी नहीं । हृदय के गीतों (स्तोत्रों) द्वारा ब्राह्मण पवित्र (सन्तुष्ट) होते हैं । कण्ठ में विद्यमान गीतों (स्तोत्रों) द्वारा राजा पवित्र (सन्तुष्ट) होता है ।८७-८८। वैश्य जल से पवित्र होता है तथा अन्त में स्पष्ट मुक्त जल से शूद्र पवित्र होता है । दक्षिण (दाहिने) हाथ के उद्धृत होने पर (उठने पर) विद्वान् लोग उपवीती की स्थिति बताते हैं ।८९। सव्य होने पर प्राचीनावीती और कण्ठ में लटकते रहने पर निवीती कहते हैं । मेखला, चर्म, दण्ड, उपवीत और कमण्डलु—इनमें से किसी के नष्ट होने पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल प्राशन करने से पवित्रता प्राप्त होती है। हे राजन् ! यज्ञोपवीत को बाएँ कन्धे पर रखकर दाहिने हाथ को दोनों जानुओं के मध्य भाग में रखकर आचमन करने वाला ब्राह्मण पवित्रता को प्राप्त होता है । हे भरतवंश सिंह ! ये ब्राह्मण के हाथ में जो रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं, उन्हें गङ्गा आदि पुण्य सलिला नदियाँ जानना चाहिये । उनकी अँगुलियों में पोर दिखाई पड़ते हैं उन्हें पुण्य पर्वत जानना चाहिये ।९०-९३। हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण का दाहिना हाथ सर्वदेवमय कहा है । हे महीपति ! हाथ से आचमन करने की विधि तुम्हें बतला चुका ।९४। इस प्रकार विधिपूर्वक आचमन करके इस सभी लोकों में निवास करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है ।९५

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में आचमनविधि
नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रणवार्थसावित्रीमाहात्म्योपनयनविधिवर्णनञ्च

सुमन्तुरुवाच

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य त्र्यधिके ततः ।।१
अमन्त्रिका सदा कार्या स्त्रीणां चूडा महीपते । संस्कारहेतोः कायस्य यथाकालं विभागशः ।।२
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो नैगमः स्मृतः । निवसेद्वा गुरोर्वापि गृहे वाग्निपरिक्रिया ।।३
एष ते कथितो राजन्नौपनायनिको विधिः । द्विजातीनां महाबाहो उत्पत्तिव्यञ्जकः परः ।।४
कर्मयोगमिदानीं ते कथयामि महाबल । उपनीय गुरुः शिष्यं प्रथमं शौचमादिशेत् ।।५
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च । अध्यापयेत्तु सच्छिष्यान्सदाचान्त उदङ्मुखः ।।६
ब्रह्माञ्जलिकरो नित्यमध्याप्यो विजितेन्द्रियः । लघुवासास्तथैकाग्रः सुमना सुप्रतिष्ठितः ।।७
ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ पूज्यौ गुरोः सदा । संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ।।८
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसङ्ग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ।।९

अध्याय ४

प्रणव के अर्थ, सावित्री के माहात्म्य तथा उपनयन की विधि का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! । ब्राह्मण का केशान्त संस्कार सोलहवें वर्ष में किया जाता है । क्षत्रियों का बाईसवें और वैश्य का तेईसवें वर्ष में करने का विधान है ।१। हे महीपति ! स्त्रियों का चूड़ा संस्कार सर्वदा मंत्र रहित करना चाहिये । शरीर की रक्षा के लिए उसके संस्कारों का कालक्रमानुसार विभाग किया गया है ।२। स्त्रियों का केवल वैवाहिक संस्कार वेदानुमित कहा जाता है । उक्त उपनयन संस्कार के पूर्व (ब्रह्मचारी) गुरु के घर पर निवास करे अथवा अपने ही घर पर अग्न्याधान करता रहे ।३। हे राजन्! ब्राह्मणादि के उपनयन संस्कार को मैं बतला चुका । हे महाबाहु ! यह (उपनयन संस्कार) द्विजातियों के लिए भावी उत्पत्ति का व्यंजक है ।४। हे महाबल ! अब मैं कर्मयोग के बारे में तुमसे बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करके शौच का आदेश करे ।५। फिर आचमन अग्नि कार्य और सन्ध्योपासन का उपदेश करे । आचार्य सर्वदा उत्तराभिमुख हो आचमन करके योग्य शिष्यों को पढ़ाये ।६। शिष्य सर्वथा अपनी इन्द्रियों को वश में रख ब्रह्माञ्जलि बाँधकर अध्ययन करे । लघु वस्त्र धारण करे । एकाग्रचित्त रहे । मन प्रसन्न रखे ।७। दृढ़ रखे । वेदाध्ययन के प्रारम्भ और समाप्ति पर सर्वदा गुरु के दोनों चरणों की पूजा करनी चाहिये । दोनों हाथों को जोड़कर रखना चाहिये । यही ब्रह्माञ्जलि कही जाती है ।८

शिष्य अपने हाथों को गुरु के चरणों (व्यत्यस्त) का पाणि से स्पर्श करना चाहिये अर्थात् उस समय अपने दाहिने हाथ से गुरु के दाहिने चरण का तथा बाएँ हाथ से बाएँ चरण का स्पर्श करना

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः । अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति वारयेत् ।।१०
ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ।।११
श्रूयतां चापि राजेन्द्र यथोङ्कारं द्विजोऽर्हति । प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ।।१२
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततस्त्वोङ्कारमर्हति । ॐकारलक्षणं चापि शृणुष्व कुरुनन्दन ।।१३
अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयात्तु निर्गृह्य भूर्भुवः स्वरितीति च ।।१४
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदूदुहत् । तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ।।१५
एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोरुभयोर्विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ।।१६
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ।।१७
एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया । विप्रक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ।।१८
शृणुष्वैकमना राजन्परमं ब्रह्मणो मुखम् । ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।।१९
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम् । योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।।२०

चाहिये ।९। सर्वदा पढ़ाते समय गुरु निरालस भाव से शिष्य को यह आज्ञा करे कि अब पाठ प्रारम्भ करो। और इसी प्रकार पाठ समाप्ति पर 'अब बन्द करो' ऐसी आज्ञा दे ।१०।

ओंकार का स्वरूप—वेदाध्ययन करते समय आरम्भ और समाप्ति पर सदा प्रणव का उच्चारण करे। क्योंकि वेदाध्ययन के पूर्व ओंकार का उच्चारण न करने से पाठ व्यर्थ हो जाता है। और समाप्ति पर न करने से सारा पाठ विशीर्ण हो जाता है।११। हे राजेन्द्र ! सुनो, मैं बतला रहा हूँ कि ब्राह्मण को इस प्रणवोच्चारण करने की क्यों आवश्यकता होती है ? सुन्दर सरोवर अथवा नदी आदि के तट पर आसीन होकर भाव पूर्वक केवल तीन प्राणायाम करने से वह पवित्र हो जाता है, यही कारण है कि ब्राह्मण के लिए इसकी विशेष महत्ता है। हे कुरुनन्दन ! इस ओंकार के लक्षण को भी बतला रहा हूँ, सुनिये ।१२-१३। (इस ओंकार के) अकार, उकार तथा मकार प्रजापति ने तीनों वेदों से तथा भूः, भुवः और स्वः को ग्रहण कर इन तीनों वेदों से ही इनके एक एक पादों का दोहन किया है। इस सावत्री की ये तीनों ऋचाएँ हैं। इन उपर्युक्त तीनों अक्षरों को व्याहृतिपूर्वक दोनों सन्ध्याओं के अवसर पर जप करने वाला ब्राह्मण वेदाध्ययन का पुण्य प्राप्त करता है।१४-१६। एकान्त में बाहर जाकर इस त्रिक् अर्थात् व्याहृति पूर्वक प्रणव का एक सहस्र बार जप करने वाला ब्राह्मण एक मास में घोर से घोर पाप से भी उसी प्रकार छूट जाता है जैसे सर्प अपने पुराने चर्म से ।१७। इस ऋचा से तथा अपनी क्रिया से विहीन होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सत्पुरुषों में निन्दा के पात्र बनते हैं।१८। हे राजन् ! आप एकाग्र मन से इसे फिर से सुन लीजिये कि ओंकारपूर्वक ये तीनों अक्षय महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा का परमोत्तममुख हैं। [1]तीनों चरणों वाली सावित्री को ब्रह्मा का मुख समझना चाहिये। जो ब्राह्मण निरालस भाव से तीन वर्षों तक प्रतिदिन इसका अध्ययन करता है वह आकाश की भाँति व्यापक मूर्तिमान् वायु का स्वरूप धारण कर परम ब्रह्म में

---

१. ओऽम् भूर्भुवः स्वः प्रथम पाद, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि द्वितीय पाद तथा धियो योनः प्रचोदयात् तृतीय पाद है।

स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् । एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तप ।।२१
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते । तपः क्रिया होमक्रिया तथा दानक्रिया नृप ।।२२
अक्षयान्ताः सदा राजन्यथाह भगवान्मनुः । अवरं स्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ।।२३
विधियज्ञात्सदा राजञ्जपयज्ञो विशिष्यते । नानाविधैर्गुणोद्देशैः सूक्ष्माख्यातैर्नृपोत्तम ।।२४
उपांशुः स्याल्लक्षगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः । ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञेन चान्विताः ।।२५
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । जपादेव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ।।२६
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।।२७
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् । दिनस्यादौ भवेत्पूर्वा शर्वर्यादौ तथा परा ।।२८
सनक्षत्रा परा ज्ञेया अपरा सदिवाकरा । जपंस्तिष्ठन्परां सन्ध्यां नैशमेनो व्यपोहति ।।२९
अपरां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् । नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते पश्चिमां नृप ।।३०
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः । अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।।३१

विलीन हो जाता है। एकाक्षर (ओंकार साक्षात्) पर ब्रह्म स्वरूप है। प्राणायाम सभी तपों में बढ़कर है।१९-२१। सावित्री से बढ़कर माहात्म्य किसी का नहीं है, मौन की अपेक्षा सत्यभाषण की विशेषता है। हे राजन्! जैसा कि भगवान् मनु ने कहा, तपस्या, हवन एवं दान—ये सारी प्रणय क्रियाएँ सर्वदा अक्षय फलदायिनी होती हैं। इनके अतिरिक्त एकाक्षर प्रणव भी अक्षय फलदायी है, इसे साक्षात् प्रजापति ब्रह्मा का स्वरूप जानना चाहिये।२२-२३। हे राजन्! हे नृपोत्तम विधानपूर्वक किये जाने वाले यज्ञ की अपेक्षा जप यज्ञ की विशेषता मानी जाती है। विविध प्रकार के गुणों एवं नामोच्चारण और सूक्ष्म से जप का कार्य उच्चारण के कारण उपांसु[1] जप का लाख गुना फल होता है, मानसिक जप का सहस्र गुणित फल स्मरण किया जाता है। जो विधि यज्ञों से समन्वित चारों पाक[2] यज्ञ हैं, वे सभी जपयज्ञ की सोलहवीं कला की भी योग्यता नहीं रखते। ब्राह्मण को जप से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है—इसमें सन्देह नहीं।२४-२६। कुछ दूसरा कार्य करे अथवा न करे पर वह ब्राह्मण कहलाता है क्योंकि वह जप यज्ञ करता है। प्रातःकाल सूर्य के दर्शन होने तक खड़े-खड़े गायत्री का जप करना चाहिये और उसे इसी प्रकार सायंकाल की सन्ध्या को भी भली-भाँति नक्षत्रों के आकाश में समुदित हो जाने तक बैठकर करना चाहिए। दिन के प्रारम्भ में पूर्व सन्ध्या और रात्रि के प्रारम्भ में पर सन्ध्या होती है। पर अर्थात् सायंकाल की सन्ध्या सनक्षत्रा और पूर्व अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या सदिवाकरा जाननी चाहिए। परासन्ध्या का जप करने से रात्रि का तथा अपरा का जप करने से दिन का पापकर्म नष्ट होता है। हे नृप! जो ब्राह्मण इन पूर्वा और परा सन्ध्याओं की उपासना नहीं करता वह द्विजाति के सभी अधिकारों से शूद्र के समान बाहर कर देने योग्य है। इसकी उपासना जलाशय के समीप संयमपूर्वक नित्यविधि के साथ करनी

---

१. बहुत धीरे-धीरे इस प्रकार जप करना, जिसमें कोई दूसरा न सुन सके और प्रत्येक अक्षर का स्पष्ट उच्चारण भी हो। अर्थात् अपने ही सुनने योग्य।

२. दर्शपूर्णमासचारदि।

सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः । वेदोपकरणे राजन्स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥३२
नात्र दोषोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु वा विभो । नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ॥३३
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् । ऋगेकां यस्त्वधीयीत विधिना नियतो द्विजः ॥३४
तस्य नित्यं क्षरत्येषा पयो मेध्यं घृतं मधु । अग्निशुश्रूषणं भैक्षमधः शय्यां गुरोर्हितम् ॥३५
आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः । आचार्यपुत्रशुश्रूषां ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ॥३६
आप्तः शक्तोऽन्नदः साधुः स्वाध्याप्या दश धर्मतः । नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ॥३७
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् । अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥३८
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वा निगच्छति । धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा चापि तद्विधा ॥
न तत्र विद्या वप्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥३९
विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना । आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामीरिणे वपेत् ॥४०
विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् । असूयकाय मा प्रादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥४१
शेवं सुखमुशन्तीह केचिज्ज्ञानं प्रचक्षते । तौ धारयति वै यस्माच्छेवधिस्तेन सोच्यते ॥४२

चाहिए ।२७-३१। अथवा अरण्य में जाकर समाहित चित्त हो इसका अध्ययन (जप) करना चाहिए। हे राजन् ! वेदोक्त नैत्यिक स्वाध्याय एवं हवन के मन्त्रों में अनध्याय का दोष नहीं लगता, क्योंकि ये सब ब्रह्मसूत्र कहे जाते हैं ।३२-३३। ब्रह्म अर्थात् वेदमन्त्रों का उच्चारण करना, मन्त्रोच्चारण पूर्वक आहुति देना, अनध्याय का विचार कर अध्ययन करना तथा वषट्कार करना पुण्य है। जो ब्राह्मण नियमपूर्वक सविधि एवं ऋचा का भी अध्ययन करता है, उसे वह (ऋचा) पवित्र दूध, घृत, मधु देती है। अग्नि की शुश्रूषा, भिक्षाटन, भूमिशयन, गुरु का हित (इन सब कर्तव्यों का पालन) उपनयन संस्कार से संस्कृत द्विज समावर्तन संस्कार पर्यन्त करे। आचार्य पुत्र, सेवक, ज्ञानदाता, धार्मिक, पवित्र यथार्थवक्ता, समर्थ, अन्नदाता, साधु प्रकृति वाले इन दशों को धर्मपूर्वक पढ़ाना चाहिए। बिना पूछे किसी से कुछ न बोले और न अन्यायपूर्वक पूछे जाने पर ही बोले ।३४-३७

(अन्याय का जहाँ सम्बन्ध हो) उसे जानता हुआ भी मेधावी जड़ बनकर चुप रह जाय क्योंकि जो अधर्म से बोलता है अथवा जो अधर्मपूर्वक किसी से (कुछ कहलाने के लिए) पूछता है, उन दोनों में से एक मर जाता है अथवा (लोगों के साथ) शत्रुता को प्राप्त करता है। जिस शिष्य को पढ़ाने से धर्म अथवा अर्थ की प्राप्ति न हो और यथोचित शुश्रूषा भी न मिले, वहाँ पर ऊसर भूमि में अच्छे बीज की तरह विद्या को नहीं बोना चाहिये ।३८-३९। ब्रह्मवेत्ता को विद्या ही के साथ भले मर जाना पड़े, किन्तु कठिन से भी कठिन आपत्ति आने पर भी वह अपात्र में विद्या को न बोये ।४०। विद्या ने ब्राह्मण के समीप आकर कहा कि तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी निधि हूँ मुझे एसे व्यक्ति को न देना, जो गुणों में भी दोष दिखलाता है। यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुम्हारे लिए परम बलवती सिद्ध होऊँगी ।४१। कुछ लोग शेष शब्द का अर्थ सुख बतलाते हैं और कुछ ज्ञान बतलाते हैं, इन दोनों को यतः वह धारण करती है, अतः शेवधि नाम से उसकी प्रसिद्धि है ।४२। (विद्या ने आगे चलकर ब्राह्मण से कहा कि) तुम जिस ब्रह्मचारी को नियमनिष्ठ एवं पवित्र भावों तथा आचरण वाला समझना उसी परम सावधान चेता एवं निधि की यथार्थ रक्षा करने

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् । तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ।।४३
ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ।।४४
लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च । स याति नरकं घोरं रौरवं भीमदर्शनम् ।।४५
अणुमात्रात्मकं देहं षोडशार्धमितं स्मृतम् । आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ।।४६
सावित्रीसारमात्रोऽपि वरो विप्रः सुयन्त्रितः । नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ।।४७
शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् । शय्यासनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ।।४८
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आगते । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।।४९
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ।।५०
अभिवादपरो विप्रो ज्यायांसमभिवादयेत् । असौ नामाहमस्मीति स्वनाम परिकीर्तयेत् ।।५१
नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ।।५२
भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः ।।५३
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ।।५४

वाले ब्राह्मण को ही मुझे सौंपना ।४३। जो वेद का अध्ययन करते हुए, बिना उसकी आज्ञा से वेद-ज्ञान अथवा लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है, वह भयंकर रौरव नरक को जाता है ।४४-४५। अणुमात्रात्मक देह (सूक्ष्म शरीर) को आठ तत्वों से निर्मित कहा गया है। जिससे ज्ञान प्राप्त करे उसका पहले (उठकर) अभिवादन करना चाहिए ।४६। केवल सावित्री का ज्ञान रखने वाला भी संयमी ब्राह्मण जो अनियन्त्रितचित्त, सर्वभक्षी तथा सर्वविक्रमी है उस त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है ।४७

शय्या एवं आसन पर गुरु के सामने बैठकर अध्ययनादि कार्य करने वाला कल्याणभाजन नहीं होता। यदि शय्या पर स्थित भी हो तो गुरु के आने पर उठकर अभिवादन करे ।४८। वृद्धों अर्थात् गुरुजनों के सामने आने पर युवकों के प्राण ऊपर की ओर खिंच उठते हैं अर्थात् बाहर निकल जाना चाहता है और अभिवादन करने से वह उनको पुनः प्राप्त करता है ।४९। सर्वदा वृद्धों अर्थात् गुरुजनों की सेवा में निरत रहने वाला तथा उन्हें अभिवादन करने वाले की आयु, बुद्धि, यश और बल इन चार वस्तुओं की अभिवृद्धि होती है ।५०। अपने से बड़े लोगों को प्रणाम करने से पूर्व 'असौ नाम अहमस्मि' मैं अमुक नामक व्यक्ति हूँ—इस प्रकार अपना परिचय देते हुए अभिवादन करे ।५१। जो लोग अज्ञानता के कारण उपर्युक्त नामोच्चारणपूर्वक अभिवादन करने के अर्थ को न समझते हो उन्हें 'मैं हूँ' ऐसा स्पष्ट कहते हुए अभिवादन करें। सभी स्त्रियों में भी ऐसा ही व्यवहार करें ।५२। अपने नाम का उच्चारण कर प्रणाम करते समय अन्त में 'भोः' अर्थात् अभिवादन में "असौ नाम अहमस्मि भोः' शब्द का उच्चारण करना चाहिए। नाम का स्वरूप ही भोः शब्द का स्वरूप है—ऐसा ऋषियों ने बतलाया है ।५३। अभिवादन करने पर ब्राह्मण को हे सौम्य ! दीघार्यु हो, ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए। उसके नाम के अन्त में अकार का उच्चारण करना चाहिए। नाम का पूर्वाक्षर प्लुत अर्थात् त्रिमात्रिक उच्चारित होना चाहिए ।५४।

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ।।५५
अभिवादे कृते यस्तु न करोत्यभिवादनम् । आशीर्वा कुरुशार्दूल स याति नरकं ध्रुवम् ।।५६
अभीति भगवान्विष्णुर्वादयामीति शङ्करः । द्वावेव पूजितौ तेन यः करोत्यभिवादनम् ।।५७
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु ।।५८
न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् । भो भवत्पूर्वकत्वेन इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।५९
परपत्नी तु या राजन्नसम्बद्धा तु योनितः । वक्तव्या भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ।।६०
पितृव्यान्मातुलान्राजञ्छ्वशुरानृत्विजो गुरून् । असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय जघन्यजः ।।६१
मातृष्वसा[१] मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा । सम्पूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरुभार्यया ।।६२
ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सवर्णाहन्यहन्यपि । [२]पूजयन्प्रयतो विप्रो याति विष्णुसदो नृप ।।६३
प्रवासादेत्य सम्पूज्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः । पितुर्या भगिनी राजन्मातुश्चापि विशाम्पते ।।६४

जो ब्राह्मण अभिवादन करने पर प्रत्यभिवादन (अभिवादन का उत्तर) करना नहीं जानता, उसका अभिवादन विद्वान् पुरुष न करें, क्योंकि जैसे एक शूद्र है, वैसा ही वह भी है ।५५

जो ब्राह्मण किसी के अभिवादन करने पर प्रत्यभिवादन नहीं करता, अथवा आशीर्वाद नहीं देता, हे कुरुवंश शार्दूल ! वह निश्चय ही नरकगामी होता है ।५६। अभिवादयामि (आपको प्रणाम कर रहा हूँ) इस वाक्य में 'अभि' इस शब्द से भगवान् विष्णु और 'वादयामि' इस शब्द से शंकर—ये दोनों देवता उसमें पूजित हो जाते हैं, जो अभिवादन करता है ।५७

ब्राह्मण को अभिवादन करने पर 'कुशल' शब्द कहकर वार्ता पूछनी चाहिये । क्षत्रियों 'अनामय' (स्वस्थ) कहकर वार्ता पूछनी चाहिए । वैश्य का क्षेम (धन का संरक्षण, और परायेधन का अपहरण न करना) कुशल और शूद्र का आरोग्य पूछना चाहिये ।५८। अपने से छोटा भी हो यदि वह दीक्षित हो चुका है तो उसे नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये, प्रत्युत उसे पुकारते समय आदर व्यक्त करने के लिए भो अथवा भवत् (आप) शब्द का प्रयोग करना चाहिये । ऐसा स्वायम्भुव मनु ने बतलाया है ।५९। हे राजन् ! परकीय स्त्री के साथ जिसका अपने साथ यौन सम्बन्ध नहीं है, बातचीत करते समय 'भवती' (श्रीमती) सुभगे अथवा भगिनि (ऐसे) शब्दों का उच्चारण करना चाहिये ।६०। हे राजन् ! अपने चाचा, मामा, श्वसुर, पुरोहित एवं गुरुजनों को उठकर 'असौ अहम्' (मैं यह हूँ) ऐसा सादर निवेदन करते हुए प्रणाम करे, क्योंकि उनके सामने वह स्वयं छोटा है ।६१। मौसी, मामी, सास, फूआ और गुरु पत्नी ये सभी गुरु पत्नी के ही समान पूज्य हैं ।६२। हे राजन् ! सवर्ण ज्येष्ठ भाई की जो स्त्री हो उसकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये । नियतेन्द्रिय होकर इस प्रकार का आचरण करने वाला ब्राह्मण विष्णुलोक को प्राप्त करता है ।६३। परदेश से लौटकर अपनी जाति बिरादरी की स्त्रियों की भी सादर पूजा करनी चाहिये । हे राजन् ! हे भरत कुल श्रेष्ठ ! कुरुकुलनन्दन !

---

१. माता मातृष्वसा चैव । २. पुरुषोत्तम ।

आत्मनो भगिनी या च ज्येष्ठा कुरुकुलोद्वह । सदा स्वमातृवद्वृत्तिमातिष्ठेद्भरतोत्तम ।।६५
गरीयसी ततस्ताभ्यो माता ज्ञेया नराधिप । पुत्रमित्रभागिनेया द्रष्टव्या ह्यात्मना समाः ।।६६
दशाब्दाख्यं पौरसंख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् । अब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ।।६७
ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् । पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ।।६८
इत्येवं क्षत्रियपिता वैश्यस्यापि पितामहः । प्रपितामहश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विप्रो मनीषिभिः ।।६९
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ।।७०
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च । यस्य स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ।।७१
चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः[1] स्त्रियाः । स्नातकस्य तु राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ।।७२
एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ । आभ्यां समागमे राजन्स्नातको नृपमानभाक् ।।७३
अध्यापयेद्यस्तु शिष्यं कृत्वोपनयनं द्विजः । सरहस्यं सकल्पं च वेदं भरतसत्तम ।।

अपने पिता की बहिन, माता की बहिम, अपनी बड़ी बहिन, इन सबके साथ सर्वदा माता के समान व्यवहार करना चाहिये ।६४-६५। इन सबों से माता अधिक श्रेष्ठ है—ऐसा विचार भी रखना चाहिये । हे नराधिप, अपने पुत्र, मित्र तथा भांजे को सर्वदा अपने ही समान देखना चाहिये ।६६। एक ग्राम में निवास करने वाले के साथ दस वर्ष में मित्रता कही जाती है । कलाकारों अर्थात् कला से जीविका उपार्जित करने वालों के साथ पाँच वर्ष में मित्रता कही जाती है, श्रोत्रियों के साथ तीन वर्ष में मित्रता होती है, किन्तु अपने कुल अथवा परिवारादि के सम्बन्ध में बहुत स्वल्प काल (दो वर्ष) में ही मित्रता सम्पन्न होती है ।६७। दस वर्ष की अवस्था का ब्राह्मण सौ वर्ष की अवस्था का क्षत्रिय इन दोनों को परस्पर पिता पुत्र की भाँति जानना चाहिये । इन दोनों में ब्राह्मण पिता है । और इस प्रकार वह दस वर्षीय ब्राह्मण क्षत्रिय का तो पिता है, वैश्य का पितामह और शूद्र का प्रपितामह है, मनीषियों ने इस विषय में ऐसा ही निर्णय दिया है ।६८-६९। धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँच माननीय होने के कारण होते हैं, (अर्थात् सम्मान के यही कारण हैं) इनमें एक की अपेक्षा दूसरा, दूसरे की अपेक्षा तीसरा, अर्थात् उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक श्रेष्ठ हैं ।७०। तीनों उच्च जातियों में ये पाँचों गुण जिनमें अधिक मात्रा में हों, वही सम्मान का पात्र होता है, शूद्र भी यदि अपनी दसवीं अवस्था पर है, अर्थात् बहुत वृद्ध हो चुका है, तो वह भी सम्माननीय है ।७१। रथ चलाने वाले अतिवृद्ध रोगी, भारवाहक, स्त्री, स्नातक और राजा एवं (विवाह करने के लिए जाते हुए) वर इनके जाने के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिये ।७२। हे राजन् ! उन सबों के एकत्र समागम होने पर स्नातक और राजा—ये दो पूजा के योग्य हैं । इन दोनों के साथ समागम में स्नातक राजा से भी सम्मान का अधिकारी है (अर्थात् वही सर्वप्रथम पूज्य है) ।७३

जो ब्राह्मण उपनयन संस्कार सम्पन्न कर शिष्य को सरहस्य तथा कल्प समेत वेद का अध्यापन

---

१. भाविनः ।

तमाचार्यं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७४

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥७५

निषेकादीनि कार्याणि यः करोति नृपोत्तम । अध्यापयति चान्येन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥७६

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् । यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥७७

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ । स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कथञ्चन[1] ॥७८

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता । सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥७९

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता । ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८०

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः । सम्भूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥८१

आचार्यस्तस्य तां जातिं विधिद्वेदपारगः । उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा ॥८२

उपाध्यायसादितः कृत्वा ये पूज्याः कथितास्तव । महागुरुर्महाबाहो सर्वेषामधिकः स्मृतः ॥८३

कराता है, हे महाबाहु ! मनीषी पण्डित लोग उसे 'आचार्य' कहते हैं ।७४

वेद की कोई शाखा, अथवा वेदाङ्गों को जो अपनी जीविका निर्वाह के लिए अध्यापन करता है, वह 'उपाध्याय' कहा जाता है ।७५

हे नृपोत्तम ! जो गर्भाधानादि संस्कार कर्म करता है, और अन्नादि से पालन करते हुए विद्याध्ययन कराता है, वह ब्राह्मण 'गुरु' कहा जाता है ।७६। अग्न्याधान पाकयज्ञादि तथा अग्निष्टोम प्रभृति यज्ञों को वरण लेकर जो सम्पन्न करता है, वह इस लोक में 'ऋत्विक्' कहा जाता है ।७७। जो शुद्धस्वरादि को उच्चारणपूर्वक दोनों कानों को भरता है (अर्थात् सिखाता है) उसी को माता और पिता अर्थात् अध्यापक जानना चाहिये, उनके साथ कभी द्रोह भावना नहीं रखनी चाहिये ।७८। उपाध्याय से दस गुना अधिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा आचार्य की है, आचार्य से सौ गुना अधिक सम्मान पिता है । पिता की अपेक्षा सहस्र गुणित अधिक सम्मान माता का है ।७९। उत्पन्न करने वाले और वेद ज्ञान प्रदान करने वाले इन दोनों में ब्रह्मज्ञान प्रदान करने वाला ही पिता और श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मण के लिए ब्रह्म अर्थात् वेद जानने के लिए जन्म अर्थात् उपनयन संस्कार ही इह लोक परलोक—दोनों में शाश्वत कल्याण देने वाला है ।८०। माता और पिता तो परस्पर कामना से उसकी उत्पत्ति करते हैं । जिसके द्वारा वह माता के गर्भ में आकर स्वरूप धारण करता है ।८१। विधिवत् वेदों का पारगामी आचार्य उसको ही सावित्री का दान करके जो जाति जन्म देता है वह सत्य अजर एवं अमर है ।८२। महाबाहो ! ऊपर मैंने जिन उपाध्याय आदि पूज्य वर्गों की चर्चा की है, उन सबों में महागुरु श्रेष्ठ कहा जाता है ।८३। एक लाख अधिक गुण वाले

---

१. कदाचन ।

सहस्रशतसंख्योऽसावाचार्याणामिदं मतम् । चतुर्णामपि वर्णानां स महागुरुरुच्यते ॥८४

शतानीक उवाच

य एते भवता प्रोक्ता उपाध्यायमुखा द्विजाः । विदिता एव मे सर्वे न महागुरुवेद हि ॥८५

सुमन्तुरुवाच

जयोपजीवी यो विप्रः स महागुरुरुच्यते । अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥८६
विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत । कार्ष्णं वेदं पञ्चमं तु यन्महाभारतं स्मृतम् ॥८७
श्रौता[1] धर्माश्च राजेन्द्र नारदोक्ता महीपते । जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥८८
एवं विप्रकदम्बस्य धारकः[2] प्रवरः स्मृतः । यस्त्वेतानि समस्तानि पुराणानीह विन्दति ॥८९
भारतं च महाबाहो स सर्वज्ञो मतो नृणाम् । तस्मात्स पूज्यो राजेन्द्र वर्णैर्विप्रादिभिः सदा ॥९०
किं त्वया न श्रुतं वाक्यं यदाह भगवान्विभुः । अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ॥
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया[3] ॥९१
ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता । बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः[4] ॥९२
अध्यापयामास पितृञ्छिशुराङ्गिरसः कविः । पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥९३
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः । देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वै शिशुरुक्तवान् ॥९४

हैं—ऐसा आचार्यों का मत है । वह महागुरु चारों वर्णों में कहा जाता है ।८४

शतानीक बोले—आपने उपाध्याय प्रभृति जिन ब्राह्मणों की अभी चर्चा की है, उन सबको तो मैं जानता हूँ किन्तु महागुरु को नहीं जानता ।८५

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! जो ब्राह्मण 'जय' से जीविका उपार्जित करने वाला है । वही महागुरु कहा जाता है । (अब सुनिये कि जय का क्या तात्पर्य है) अठारहों पुराण, भगवान् रामचन्द्र के पुण्य चरित, विष्णु तथा शिव सम्प्रदाय के धर्म, कृष्ण द्वैपायन का पाँचवा वेद, जिसे लोग महाभारत भी कहते हैं, हे राजेन्द्र ! नारद के कहे गये श्रौत धर्म—इन सबों को पण्डित लोग जय नाम बतलाते हैं ।८६-८८। जो इन समस्त पुराणादि एवं महाभारत को भलीभाँति अधिगत कर लेता है, वह ब्राह्मण समुदाय का धारक (अध्यक्ष) नेता एवं श्रेष्ठ जन कहा जाता है । हे महाबाहु ! मनुष्यों में वह सर्वज्ञ समझा जाता है । हे राजेन्द्र ! यही कारण है कि वह विप्रादि वर्णों द्वारा सर्वदा पूजनीय है ।८९-९०

क्या तुमने वह बात नहीं सुनी है, जिसे परमैश्वर्यशाली भगवान् ने स्वयं कही है । थोड़ा या बहुत, वेद ज्ञान के बारे में जो कोई उपकार करता है, उसे भी इस वेद ज्ञान के सहायक होने के नाते इस लोक में गुरु जानना चाहिये ।९१। ब्रह्मज्ञान के विषय में जन्म देने वाला अर्थात् वेदज्ञान कर्ता और अपने धर्म का पालक विप्र बालक होकर भी वृद्ध धर्मतः पिता होता है ।९२। आंगिरस (अंगिरा के पुत्र) कवि ने शैशवावस्था में अपने पितरों को ज्ञान का उपदेश किया और यह बात जानते हुए भी कि

---

१. सौराः । २. वाचकः । ३. मिथः । ४. धार्मिकः ।

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ।।९५
पितामहेति जयदमित्यूचुस्ते दिवौकसः । जयो मन्त्रास्तथा वेदा देहमेकं त्रिधा कृतम् ।।९६
नहायनैर्न पलितैर्न मित्रेण न बन्धुभिः । ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ।।९७
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च विशांपते । ज्येष्ठं वदन्ति राजेन्द्र सन्देहं भृणु वै यथा ।।९८
ज्ञानतो वीर्यतो राजन्धनतो जन्मतस्तथा । शीलतस्तु प्रधाना ये ते प्रधाना मता मम ।।९९
न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः । यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ।।१००
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम[1] बिभ्रति ।।१०१
यथा षोषाऽफला स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । यथा चाज्ञेऽफलं दानं यथा विप्रोऽनृचोऽफलः ।।१०२
वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः । सर्वे तु वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ।।१०३
नानृग्ब्राह्मणो भवति न वणिङ्न कुशीलवः । न शूद्रः प्रेषणं कुर्वन्नस्तेनो न चिकित्सकः ।।१०४

ये हमारे पितर हैं, उनको पुत्र कहकर बुलाया ।९३। उनके इस व्यवहार से क्रुद्ध पितरगण ने देवगणों से इसका कारण पूछा । देवताओं ने उन्हें एकत्रित कर उनसे कहा कि शिशु (कवि) ने आप लोगों को उचित ही कहा है ।९४। क्योंकि जो अज्ञ होता है वही बालक है और जो मंत्र का उपदेश करता है, वही पिता होता है । लोग अज्ञ को बालक, मन्त्रदाता को पिता तथा जयदाता (उक्त महाभारत पुराण, रामायणादि के उपदेशक) को पितामह कहते हैं—ऐसा देवताओं ने उन पितरों से कहा । जय, मंत्र तथा वेद—ये तीनों एक ही शरीर के तीन भाग किये गये हैं ।९५-९६। ऋषियों ने धर्म की व्यवस्था अवस्था में बहुत वर्षों के होने से, बाल पक जाने से, मित्र अथवा बंधु होने से नहीं की, जो षडङ्गवेद का अधिकारी प्रवक्ता है, वही हम सबों में महान माना गया है ।९७। हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों जातियों में जिसे ज्येष्ठ कहते हैं, उसे बतला रहा हूँ, सुनो ।९८। हे राजन् ! (ब्राह्मणों में) ज्ञान से ज्येष्ठ होते हैं, (क्षत्रियों में) पराक्रम से, (वैश्यों में) धन से, एवं (शूद्रों में) जन्म से और शील से ज्येष्ठ माने जाते हैं—ऐसा हमारा मत है ।९९। यदि किसी के शिर के बाल पक गये हैं तो वह उससे वृद्ध नहीं हो जाता जो जवान है और षडङ्ग वेदों का परिशीलन करने वाला है वही वृद्ध है क्योंकि देवता लोग उसी को वृद्ध जानते हैं ।१००। निंद्य ब्राह्मण जैसे काष्ठ का बना हुआ हाथी और चमड़े का मृग केवल नामधारी रहता है, उसी प्रकार बिना अध्ययन का ब्राह्मण भी नामधारी रहता है—ये तीनों केवल नाम धारण करते हैं ।१०१। जैसे नपुंसक स्त्रियों के साथ स्त्री (संतान उत्पन्न करने में) विफल है, गौओं के साथ वंध्या गौ विफल है और मूर्ख को दान देना विफल है, उसी तरह वेद विहीन ब्राह्मण भी विफल है ।१०२। किन्तु वेद प्राप्त करने वाले भी वे द्विज शूद्र हैं, जो बलिवैश्वदेव, और आतिथ्य सत्कार से विमुख रहते हैं ।१०३

जिस प्रकार वेदज्ञान विहीन ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है, उसी प्रकार वणिक् वृत्ति करने वाला, नट व कथक की वृत्ति से जीविका प्राप्त करने वाला, दूसरे की सेवा करने वाला या अन्य प्रकार का शूद्र व्यापार करने वाला, चोरी करने वाला तथा चिकित्सा करने वाला भी ब्राह्मण नहीं है ।१०४।

---

१. नामधारकाः ।

अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥१०५
सन्तुष्टो यत्र वै विप्रः साग्निकः कुरुनन्दन ! याति साफल्यतां वेदैर्देवैरेवं हि भाषितम् ॥१०६
वेदैरुक्तं यथा वीर सुरज्येष्ठमुपेत्य वै । वेपन्ते ब्राह्मणा भूमावभ्यस्यन्ति ह्यनग्निकाः ॥
क्लिश्यन्ते ते किमर्थं हि मूढा वै फलकाङ्क्षया ॥१०७
अनुष्ठानविहीनानामस्मानभ्यसतां भुवि । क्लेशो हि केवलं देव नास्मदभ्यसने फलम् ॥१०८
अनुष्ठानं परं देवमस्मत्स्वभ्यसनात्सदा । इत्येवं राजशार्दूल वेदा ऊचुर्हि वेधसम् ॥
तस्माच्च वेदाभ्यसनादनुष्ठानं परं मतम् ॥१०९
चत्वारो वा त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥११०
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममजानतः[1] । तत्पापं शतधा भूत्वा वक्तॄनेवानुगच्छति ॥१११
शौचहीने व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते । दीयमानं रुदत्यन्नं किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥११२
जपोपजीविने दत्तं यदात्मानं प्रपश्यति । नृत्यति स्म तदा राजन्करावुद्धृत्य भारत ॥११३

जहाँ पर व्रतविहीन, बिना पढ़े लिखे, भिक्षा पर जीविका निर्वाहित करने वाले ब्राह्मण निवास करते हों, उस ग्राम के ऊपर राजा को दण्ड लगाना चाहिये, क्योंकि वह चोरी वृत्ति को प्रोत्साहन देने वाला (ग्राम) है ।१०५। हे कुरुनन्दन ! जिस ग्राम में ब्राह्मण सन्तुष्ट हों वह ग्राम साग्निक (यज्ञ भूमि) है क्योंकि उसकी सफलता वेद से होती है—ऐसा देवताओं ने बतलाया है ।१०६। हे वीर ! वेदों ने देवताओं में सर्वश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा के पास जाकर इस प्रकार निवेदन किया था । हे देव ! पृथ्वी पर ब्राह्मण इसलिए दुःखी होते हैं कि आग्निक लोग वेदों का अभ्यास करते हैं । वे मूर्ख (वेदाभ्यास द्वारा) फल की आकांक्षा करके क्यों बेकार में कष्ट भोगते हैं? ।१०७। अनुष्ठान से हीन होकर केवल हमारा (वेद) अभ्यास करने से तो केवल कष्ट मिलेगा क्योंकि (कोरे) वेदाभ्यास से कोई फल नहीं मिलता ।१०८। हे देव ! सर्वदा वेदाभ्यास करने से क्रियाओं का अनुष्ठान श्रेष्ठ होता है । हे राजसिंह ! वेदों ने इस प्रकार की बातें ब्रह्मा जी से कही । अतः वेदाभ्यास से (उनमें कहे गये अग्निहोत्रादि का) सदनुष्ठान श्रेष्ठ है—ऐसा हमारा भी मत है ।१०९। वेदों के पारङ्गत विद्वान् चार अथवा तीन ही जो भी कुछ करें वही धर्म है, उनके अतिरिक्त ऐसे सहस्रों लोग जो वेदों के अधिकारी नहीं हैं, व्यवस्था करें तो वह धर्म नहीं कहा जा सकता ।११०। धर्म के माहात्म्य को न जानने वाले अज्ञानावृत्त मूर्ख लोग (धर्म के विषय में) जो कुछ उलटी-पलटी बातें कहते हैं वह सैकड़ों पापों के रूप में (उनके) बोलने वाले के ही पीछे-पीछे चलता है ।१११। वेदविवर्जित, शौचाचार विहीन, व्रत नियमादि से भ्रष्ट ब्राह्मण को दिया जाने वाला अन्न रोता है कि 'हाय मैंने ऐसा कौन दुष्कर्म किया (जो इस पापात्मा के) हाथों पड़ा ।११२। हे भरतकुल श्रेष्ठ ! जप द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले को अपने को दिये जाते अन्न जब देखता है तो दोनों हाथों को ऊपर (उठाकर) अपने सौभाग्य पर नाच उठता है ।११३

---

१. अजानानाः ।

विद्यातपोभ्यां सम्पन्ने ब्राह्मणे गृहमागते । क्रीडन्त्यौषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ।।११४
[1]अव्रतानाममन्त्राणामजपानां च भारत । प्रतिग्रहो न दातव्यो न शिलातारयेच्छिलाम् ।।११५
श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः । अश्रोत्रियाय दत्तानि न पितृन्नापि[2] देवताः ।।११६
यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः । बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खव्यतिक्रमः ।।११७
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे जपविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ।।११८
न चैतदेव मन्यन्ते पितरो देवतास्तथा । सगुणं निर्गुणं वापि ब्राह्मणं दैवतं परम् ।।११९
नातिक्रमेद्गृहासीनं ब्राह्मणं विप्रकर्मणि[3] । अतिक्रम्य महाबाहो रौरवं याति भारत ।।१२०
गायत्रीमात्रसारोऽपि ब्राह्मणः पूज्यतां गतः । गृहागतो विशेषेण न भवेत्पतितस्तु सः ।।१२१
धान्यशून्यो यथा ग्रामो यथा कूपश्च निर्जलः । ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ।।१२२
यस्त्वेकपङ्क्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ।
वेदेषु दृष्टमृषिभिश्च गीतं तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ।।१२३
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् । वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममीप्सता ।।१२४

हे राजन् ! वह अन्न विद्या एवं तपस्या से सुसम्पन्न ब्राह्मण के अपने घर आने पर समस्त औषधियाँ (अन्नादि) क्रीड़ा करने लगती हैं कि हम सब परम गति प्राप्त करेंगी ।११४। हे भारत ! जो व्रत नियमादि के पालन करने वाले नहीं हैं, मंत्र नहीं जानते, जप नहीं करते, उन्हें कभी दान नहीं करना चाहिये, क्योंकि एक शिला कभी भी दूसरी शिला को नहीं तार सकती ।११५। सर्वदा हव्य, कव्यादि श्रोत्रिय ब्राह्मणों को देना चाहिये, अश्रोत्रियों को दिया गया हव्य, कव्यादि न देवताओं को प्राप्त होता है न पितरों को ।११६। जिसके घर में मूर्ख हैं और बहुश्रुत विद्वान् दूरी पर हैं, उसे भी बहुश्रुत को ही बुलाकर दान देना चाहिये, इससे मूर्ख का व्यतिक्रम नहीं होता । (अर्थात् मूर्ख के अपमान की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।११७। जप रहित मूर्ख ब्राह्मण को किसी कार्य में अतिक्रमण (दोष) नहीं होता, जैसे जलती हुई अग्नि को छोड़कर राख में आहुति नहीं दी जाती ।११८। पितर और देवगत इस प्रकार का दान प्रशस्त नहीं मानते । ब्राह्मण सगुण हो अथवा निर्गुण वह परमदेवता है ।११९। ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञादि शुभ कार्यों में अपने घर पर बैठे ब्राह्मण का अतिक्रम नहीं करना चाहिये । हे महाबाहु भारत ! जो ऐसे ब्राह्मण का अतिक्रमण करता है वह रौरव नरक प्राप्त करता है ।१२०। केवल गायत्री जानने वाला भी ब्राह्मण पूज्य है, विशेषतया यदि वह घर में हो तो उसकी पूजा करनी चाहिए ।१२१। अन्न रहित ग्राम, जल रहित कूप तथा वेद न पढ़ता हुआ ब्राह्मण—ये तीनों केवल नामधारी हैं ।१२२। जो किसी स्वार्थवश, भयवश अथवा स्नेहवश होकर एक पंक्ति में बैठे हुए को भेद करके दान करता है वह ब्रह्महत्या का भागी होता है—ऐसा नियम वेदों में देखा गया है, ऋषियों और मुनियों ने ऐसी व्यवस्था बतलाई है ।१२३

धर्म की इच्छा करने वाले को सभी जीवों के ऊपर कल्याण का अनुशासन अहिंसक भावना से करना

---

१. अधमानाम् । २. तर्पयन्तीति शेषः । ३. हि विकर्मणि ।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सत्यगुप्ते च भारत । स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ।।१२५
नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः । ययास्यो द्विजते लोको न तां वाचमुदीरयेत् ।।१२६
यत्करोति शुभं वाचा[1] प्रोच्यमाना मनीषिभिः । श्रूयतां कुरुशार्दूल सदा चापि तथोच्यताम् ।।१२७
न तथा शशी न सलिलं न चन्दनरसो न शीतलच्छाया ।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।।१२८
अर्हणाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेदपमानस्य[2] सर्वदा ।।१२९
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ।।१३०
अनेन विधिना राजन्संस्कृतात्मा द्विजः शनैः । गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः ।।१३१
तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विविधोदितैः । वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ।।१३२
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं तपस्तप्यंद्विजोत्तमः । वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ।।१३३
आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः । यः सुप्तोऽपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ।।१३४
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।।१३५

चाहिए, मधुर और कोमल वाणी का प्रयोग करना चाहिये ।१२४। हे भारत ! जिस व्यक्ति के मन और वचन शुद्ध सत्य सुरक्षित हैं, वह वेदान्त प्रतिपादित समस्त फलों को प्राप्त करता है ।१२५। आर्त होकर भी कभी किसी की भावना को चोट न पहुँचाये, दूसरे का द्रोह करने का विचार न करे। जिस वाणी को सुनकर लोगों का मन उद्विग्न हो जाय, उस वाणी का उच्चारण कभी न करे ।१२६। हे कुरुशार्दूल ! मनीषी पण्डितों द्वारा मधुर वचन का प्रयोग कर जो शुभ कार्यों को सम्पन्न करते हैं उन्हें सुनिये और वैसा ही प्रयोग कीजिये ।१२७। चन्द्रमा, जल, चन्दन का रस और शीतल सुखदायिनी छाया पुरुष को उतनी आह्लादित नहीं करती जितनी उसकी मधुर वाणी ।१२८। ब्राह्मण को सर्वदा सम्मान एवं प्रतिष्ठा से विष की भाँति उद्विग्न होना चाहिये (अर्थात् सम्मान और प्रतिष्ठा से बहुत दूर रहना चाहिए) सर्वदा अमृत की तरह उसे अपमान की आकांक्षा करनी चाहिये ।१२९। क्योंकि जिसका अपमान हुआ रहता है वह तो सुखपूर्वक शयन करता है सुखपूर्वक जागता है और सुखपूर्वक अपना कार्य करता है परन्तु अपमान करने वाला इस लोक में विनष्ट हो जाता है ।१३०

हे राजन् ! इस प्रकार से शनैः-शनैः परिशुद्ध आत्मा होकर गुरु के आश्रम में निवास करते हुए ब्रह्मा को प्राप्त करने वाले तप का संचयन करना चाहिये ।१३१। विविध प्रकार के व्रतों एवं तपस्याओं द्वारा गूढ़ स्थलों समेत समस्त वेदों का अध्ययन द्विजाति को करना चाहिये ।१३२। उत्तम द्विज को सर्वदा तपों का विधिपूर्वक पालन करते हुए वेदाभ्यास में ही निरत रहना चाहिये। इस लोक में ब्राह्मण के लिए वेदाभ्यास ही परम श्रेष्ठ तप कहा गया ।१३३। जो ब्राह्मण सोते हुए भी अपनी शक्ति के अनुकूल प्रतिदिन स्वाध्याय करता है वह नख पर्यन्त समस्त शरीर से परम तपस्या करता है ।१३४। जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन कर करके अन्य कार्यों में श्रम करता है वह जीता हुआ ही

---

१. भागुरिमते टाप्, अजादित्वाद्वा । २. कर्मणः सम्बन्धविवक्षया षष्ठी ।

न यस्य वेदो न जपो न विद्याश्च विशाम्पते । स शूद्र एव मन्तव्य इत्याह भगवान्विभुः ।।१३६
मातुरग्रे च जननं द्वितीयो मौञ्जिबन्धनम् । तृतीयो यज्ञदीक्षायां द्विजस्य विधिरीरितः ।।१३७
तत्र यद्ब्रह्म जन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।।१३८
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते । वेदप्रदानादाचार्यं पितरं मनुरब्रवीत् ।।१३९
न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते[1] ।।१४०
शूद्रेण तु समं तावद्यावद्वेदे न जायते । कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ।।१४१
यत्सूत्र चापि यच्चर्म या या चास्य च मेखला । वसनं चापि यो दण्डस्तद्वै तस्य व्रतेष्वपि ।।१४२
सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी[2] गुरौ वसन् । सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ।।१४३
वृन्दारकर्षिपितृणां कुर्यात्तर्पणमेव हि । नराणां च महाबाहो नित्यं स्नात्वा प्रयत्नतः ।।१४४
पुष्पं तोयं फलं चापि समिदाधानमेव[3] च । नानाविधानि काष्ठानि मृत्तिकां च तथा कुशान् ।।१४५

परिवार समेत बहुत शीघ्र शूद्रता को प्राप्त करता है।१३५। हे राजन् ! जिस ब्राह्मण के पास न वेद है, न जप है, न विद्या है, उसे शूद्र ही मानना चाहिये—ऐसा भगवान् ने स्वयं कहा है।१३६। ब्राह्मण का जन्म सर्वप्रथम माता के उदर से होता है, दूसरा जन्म मौञ्जीबन्धन (अर्थात् यज्ञोपवीत) संस्कार से होता है, तीसरा जन्म यज्ञ की दीक्षा लेने से होता है।१३७। उपनयन संस्कार का महत्त्व इन तीनों जन्मों से उसका दूसरा जन्म जो मौञ्जीबन्धन के समय होता है, उसमें उसकी माता सावित्री और पिता आचार्य होता है। वेदों के दान करने के कारण मनु ने आचार्य को पिता बतलाया है।१३८-१३९। मौञ्जीबन्धन संस्कार के पूर्व ब्राह्मण का कोई (वैदिक और स्मार्त) कर्म नहीं होता (अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार होने के पहले ब्राह्मण कोई (वैदिक और स्मार्त) कर्म नहीं कर सकता। 'स्वधा' कहने के अधिकारी हुए बिना (अर्थात् श्राद्धमंत्रों के अतिरिक्त) वेद का उच्चारण नहीं करना चाहिये।१४०। जब तक वेद में अधिकार नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह भी शूद्र के समान है। उपनयन संस्कार के बाद उसे सभी कर्मों के करने का आदेश दिया जाता है। उसके बाद ही वेदाध्ययन क्रमशः विधिपूर्वक करना चाहिये।१४१। यज्ञोपवीत संस्कार में उसके पास जो सूत्र, धर्म, मेखला, वस्त्र और दण्ड रहता है, वह सब वेदाध्ययन के व्रत में भी रखना चाहिये।१४२

ब्रह्मचारी गुरु के समीप निवास करता हुआ इन समस्त नियमों का सेवन करे, अपनी तपः शक्ति बढ़ाने के लिए उसे अपने इन्द्रिय समूहों को वश में करना चाहिये।१४३। हे महाबाहु ! सर्वदा देवताओं, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों का विधिपूर्वक स्नानकर तर्पण करना चाहिये।१४४। पुष्प, जल, फल, समिधा, विविध प्रकार के काष्ठ, मृत्तिका और कुश का उसे संचयन

---

१. विलयनादृते। २. गुरावधिवसन्सदा। ३. संचिनुयादितिशेषः।

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धमाल्यरथान्स्त्रियः । शुक्लानि चैव सर्वाणि प्राणिनां[1] चैव हिंसनम् ।।१४६
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् । संकल्पं कामजं क्रोधं लोभं गीतं च वादनम् ।।१४७
नर्तनं च तथा द्यूतं जनवादं तथानृतम् । परिवादं चापि विभो दूरतः परिवर्जयेत् ।।१४८
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भो रपवीतं[2] परस्य च । पुंश्चलीभिस्तथा सङ्गं न कुर्यात्कुरुनन्दन ।।१४९
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् । कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमेव तु ।।१५०
सुप्तः क्षरन्ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः । स्नात्वार्कमर्चयित्वा तु पुनर्मामित्यृचं जपेत् ।।१५१
मनोरपि तथा चात्र श्रूयते परमं वचः । उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् ।।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चापि हि नित्यशः　　।।१५२
गृहेषु येषां कर्तव्यं ताञ्छृणुष्व नृपोत्तम । स्वकर्मसु रता ये वै तथा वेदेषु ये रताः ।।
यज्ञेषु चापि राजेन्द्र ये च श्रद्धासमाश्रिताः　　।।१५३
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् । गुरोः कुले न भिक्षेत् स्वज्ञातिकुलबन्धुषु ।।१५४
अलाभे त्वन्यगोत्राणां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् । सर्वं चापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे ।।

करना चाहिये ।१४५। नियमकाल में उसे मधु, मांस, चन्दन, माला, वाहनादि स्त्रियाँ सभी प्रकार की श्वेत वस्तुयें तथा प्राणियों की हिंसा—इस सबों से वर्जित रहना चाहिये ।१४६। हे विभो ! आँख में अंजन लगाना, शरीर में उबटन लगाना, जूता, छाता, कामजनित संकल्प, क्रोध, लोभ, गीत वादन, नाचना, द्यूत क्रीडा, असत्य प्रचार, असत्य भाषण, परकीय निन्दा—इन सबको ब्रह्मचारी को दूर से ही छोड़ देना चाहिये ।१४७-१४८। हे कुरुनन्दन ! ब्रह्मचारी को स्त्रियों की ओर देखना, स्त्रियों का आलिंगन, दूसरे के अपकार, पुंश्चली स्त्री का साथ कभी नहीं करना चाहिये ।१४९। उसे सब जगह अकेले ही शयन करना चाहिये, कहीं वीर्यपात नहीं करना चाहिये । कामवश यदि वह कहीं अपने वीर्य का क्षरण करता है तो अपने व्रत को ही नष्ट करता है ।१५०। ब्रह्मचारी शयन करते समय यदि बिना कामोपासना के वीर्य क्षरण करे तो स्नान कर सूर्य की पूजा करते हुए 'पुर्नमाम...' इस ऋचा का (तीन बार) जप करे ।१५१। ब्रह्मचारियों के व्रत एवं नियमादि के बारे में मनु का भी बहुमूल्य वचन सुना जाता है । जल कलश, पुष्प, गोबर, मृत्तिका, कुश आदि प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुकूल एकत्र करे और भिक्षाटन कर जीविका निर्वाहित करे ।१५२। हे नृपोत्तम ! ब्रह्मचारी किन-किन घरों में भिक्षा की याचना करे—इसका भी निश्चय किया गया है, सुनो । हे राजेन्द्र ! जो अपने कर्म में निरत हों, वेदों में आस्था रखते हों, यज्ञादि करने वाले और श्रद्धालु प्रकृति के हों, उनके घर से ब्रह्मचारी अपनी भिक्षा का संग्रह करे ।१५३। प्रतिदिन चित्त एवं इन्द्रियों को निरुद्ध कर उसे गृहस्थों के घरों से भिक्षा की याचना करनी चाहिये । अपने गुरु के एवं परिवार वर्ग के घर भिक्षाटन नहीं करना चाहिये ।१५४। यदि अन्यत्र न मिले तो पूर्व-पूर्व को अर्थात् ऊपर कहे हुए घरों में पहले वालों को छोड़ देना चाहिये । और क्रमशः अन्त से लेना चाहिये । हे महाबाहु ! यदि अन्यत्र मिलना एकदम असम्भव

---

१. वंचनाम् । २. उपरोधम् ।

अन्त्यवर्जं महाबाहो इत्याह भगवान्विभुः ॥१५५
वाचं नियम्य प्रयतस्त्वग्निं शस्त्रं च वर्जयेत् । चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षमलाभे कुरुनन्दन ॥१५६
आरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद् गृहोपरि । सायंप्रातस्तु जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥१५७
भैक्षाचरणमकृत्वा न तमग्निं समिध्य वै । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥१५८
वर्तनं चास्य भैक्षेण प्रवदन्ति मनीषिणः । तस्माद्भैक्षेण वै नित्यं नैकान्नाशी भवेद्व्रती ॥१५९
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता । दैवत्ये व्रतवद्राजन्पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ॥
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥१६०
ब्राह्मणस्य महाबाहो कर्म यत्समुदाहृतम् । राजन्यवैश्ययोर्नैतत्पण्डितैः कुरुनन्दन ॥१६१
चोदितोऽचोदितो[1] वापि गुरुणा नित्यमेव हि । कुर्यादध्ययने योगमाचार्यस्य हितेषु च ॥१६२
बुद्धीन्द्रियाणि मनसा शरीरं वाचमेव हि । नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१६३
नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारस्तु संयतः । आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥१६४

हो तो शूद्र को छोड़कर ग्राम भर में भिक्षाटन करना चाहिये—ऐसा स्वयं भगवान् ने कहा है ।१५५। ब्रह्मचारी को मन एवं इन्द्रियों को वश में कर वचन को भी नियन्त्रित करना चाहिये, (अपने कार्य के लिए) अग्नि एवं शस्त्र का भी प्रयोग उसे नहीं करना चाहिये । हे कुरुनन्दन ! यदि सर्वथा असम्भव हो तो चारो वर्णों में भिक्षाटन करना चाहिये ।१५६। दूर के वन प्रान्त से समिधाएँ लाकर उसे अपनी कुटी के ऊपर रख देना चाहिये उन्हीं समिधाओं से सावधानीपूर्वक आलस्यादि छोड़कर सायंकाल एवं प्रातःकाल हवन करना चाहिये ।१५७। ब्रह्मचारी भिक्षाटन एवं अग्नि में हवन कार्य—इन दोनों नैत्यिक कर्मों को यदि नहीं करता है तो उसे सात रात तक सुस्थिर एवं व्यवस्थित चित्त से अवकीर्ण प्रायश्चित्त का पालन करना चाहिये ।१५८। जब ब्रह्मचारी को जीविका के लिए भिक्षाटन का ही विधान बतलाते हैं इसलिए उसे सर्वदा भिक्षा द्वारा ही जीविका निर्वाहित करनी चाहिये । एक व्यक्ति का अन्न खाने वाला व्रती नहीं कहा जा सकता ।१५९। भिक्षाटन द्वारा जीविका चलाने वाले ब्रह्मचारियों का भोजन भी उपवास के समान स्मरण किया जाता है । हे राजन् ! देव कर्म में व्रती के समान पितृकर्म में ऋषियों के समान व्यवहार करना चाहिये—इनमें यदि कोई भोजन ग्रहण करने के लिए बहुत अनुरोध करे तो भोजन कर लेना चाहिये । इस प्रकार उसका व्रत नष्ट नहीं होता ।१६०। हे कुरुनन्दन ! महाबाहु ! ये ब्राह्मण ब्रह्मचारी के कर्म बतलाये गये हैं, पण्डितों ने क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए इनके अतिरिक्त अन्यान्य नियम बनाये हैं ।१६१। गुरु प्रेरणा करे या न करे, सर्वदा अध्ययन में चित्त लगाना चाहिये । उसी प्रकार गुरु के कल्याण की भी उसे सर्वदा चिन्ता करनी चाहिये ।१६२। बुद्धि, इन्द्रिय समूह, मन, शरीर और वाणी इन सबको नियन्त्रित कर गुरु के मुख की ओर देखते हुए उसे अंजलि बाँधकर स्थित रहना चाहिये।१६३। अपने दाहिने हाथ को सदैव उत्तरीय से बाहर रखना चाहिए और सर्वदा साधु आचरण करना चाहिये। तथा

---

१. चोदितो वापि गुरुणा नित्यमेव हि पाथव ।

वस्त्रवेषैस्तथान्नैस्तु हीनः स्याद्गुरुसन्निधौ । उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत् ॥१६५
प्रतिश्रवणसम्भाषे तल्पस्थो न समाचरेत् । न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥१६६
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंश्च तिष्ठतः । प्रत्युद्गन्ता तु व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥१६७
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् । नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥१६८
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१६९
नामोच्चारणमेवास्य परोक्षमपि सुव्रत ! न चैनमनुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितैः ॥१७०
परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते । कर्णौ तत्र पिधातव्यो गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥१७१
परीवादाद्रासभः स्यात्सारमेयस्तु निन्दकः । परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥१७२
दूरस्थो नार्चयेदेनं नक्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः । यानासनगतो राजन्नवरुह्याभिवादयेत् ॥१७३
प्रतिकूले समाने तु नासीत गुरुणा सह । अशृण्वति गुरौ राजन्न किञ्चिदपि कीर्तयेत् ॥१७४

शरीर को वस्त्र से आच्छादित रखें । गुरु यदि कहे कि बैठ जाओ, तब उसे गुरु के अभिमुख होकर बैठना चाहिये ।१६४। गुरु के समीप में उसे हीन (अल्प) वस्त्र हीनवेश (अल्प) तथा हीन भोजन अन्न (अल्प अन्न) से करना चाहिये । गुरु के उठने के पहले ही उठ जाना चाहिये और बैठने के बाद बैठना चाहिये ।१६५। गुरु के उपदेश सुनते समय, सम्भाषण करते समय, उसे विस्तर पर नहीं बैठना चाहिये । इसी प्रकार बैठकर भोजन करते हुए खड़े-खड़े एवं पराङ्मुख होकर भी गुरु से सम्भाषणादि नहीं करना चाहिये ।१६६। गुरु बैठे हों तो (उनकी आज्ञा से) उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य तथा बात-चीत करे । यदि वे खड़े हों तो उनकी ओर दो चार पग चलकर आज्ञा को सुने और बात-चीत करें । वे जब आयें तो उनके सम्मुख जाकर आज्ञा स्वीकार एवं बात-चीत कर और यदि वे दौड़ रहे हों तो उनके पीछे दौड़कर सुने ।१६७। यदि गुरु अपनी ओर से पराङ्मुख हों तो उनके सम्मुख स्वयं हो जाना चाहिये , वे दूर हों तो स्वयं उनके समीप जाकर बातचीत प्रारम्भ करनी चाहिये । उनके शयन करते समय नमस्कार करके आदेश का सर्वदा पालन करना चाहिये ।१६८। सर्वदा गुरु के समीप में अपनी शय्या निम्न स्थान में रखे । गुरु की जहाँ तक दृष्टि पड़े वहाँ तक स्वतंत्रता से (अर्थात् पैर फैलाकर आदि) न बैठें ।१६९। हे सुव्रत ! गुरु के नाम का कभी परोक्ष में भी उच्चारण नहीं करना चाहिये, गमन, भाषण एवं चेष्टाओं से भी कभी उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये ।१७०। जहाँ पर गुरु की निन्दा अथवा अप्रतिष्ठा की चर्चा हो रही हो, वहाँ अपने कानों को मूँद लेना चाहिये अथवा वहाँ से अन्यत्र हट जाना चाहिये ।१७१। गुरु की अपमानसूचक बातें करने से गर्दभ योनि में जन्म होता है, निन्दा करने वाला कुत्ता होता है । इसी प्रकार गुरु का अन्नादि भक्षण करने वाला कृमि होता है, गुरु के सम्मुख मत्सर प्रकट करने वाला कीट योनि में उत्तम होता है।१७२

दूर से ही गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिये, क्रोधावेश में एवं स्त्रियों के समीप में भी नहीं करनी चाहिये । हे राजन् ! इसी प्रकार वाहन एवं आसन से उतर कर गुरु का अभिवादन करना चाहिये ।१७३। गुरु के साथ प्रतिकूल एवं समान स्थिति में नहीं बैठना चाहिये । हे राजन् ! उस समय जब कि गुरु का ध्यान किसी अन्य विषय में हो, अर्थात् अपनी बात वह न सुन रहा हो, शिष्य को कोई बातचीत नहीं करनी चाहिये ।१७४। किन्तु बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी, अट्टालिका प्रस्तर खण्ड, चटाई, शिलाखण्ड

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च । आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥१७५
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् । गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥१७६
बालः समानजन्मा वा विशिष्टो यज्ञकर्मणि । अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥१७७
उत्सादनमथाङ्गानां स्नापनोच्छिष्टभोजने । पादयोर्नेजनं राजन्गुरुपुत्रेषु वर्जयेत् ॥१७८
गुरुवत्प्रतिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः । असवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥१७९
अभ्यञ्जनं स स्नपनं गात्रोत्सादनमेव च । गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥१८०
गुरुपत्नीं तु युवतीं नाभिवादेत पादयोः । पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥१८१
स्वभाव एव नारीणां नराणामिह दूषणम् । [2]अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रतिपाद्य विपश्चितः ॥१८२
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः । प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥१८३
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१८४
राजेन्द्र गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि । विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥१८५

नौका में गुरु के साथ भी बैठना चाहिये ।१७५। गुरु के गुरु यदि वर्तमान हों तो उनके साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये, इसी प्रकार श्रेष्ठ गुरु पुत्रों एवं गुरु के परिवार वर्ग वालों के साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये ।१७६। गुरु का पुत्र यदि बालक है, अथवा समान अवस्था का है, तब भी यज्ञ कर्म में उसकी विशेषता है । गुरु का पुत्र यदि पढ़ाता है तो वह गुरु के समान ही सम्माननीय है ।१७७। हे राजन् ! (गुरुपुत्र के साथ गुरुवत् व्यवहार करते हुए भी इन कार्यों को वर्जित रखे) अंगों में उबटन लगाना, स्नान करवाना, जूठा भोजन करना, पैरों का धोना ।१७८। गुरु की पत्नी यदि सवर्णा हैं, (अर्थात् उन्हीं की वर्ण वाली हैं) तो वह भी गुरु के समान ही पूजनीय हैं । और यदि असवर्णा हैं तो वह भी उठकर सम्मान व्यक्त करके तथा अभिवादन करके सम्माननीय है ।१७९। गुरु की पत्नियों के अंगों में तेल लगाना, दबाना, स्नान करवाना, शरीर में उबटन लगाना एवं केशों की रचना करना आदि कार्य नहीं करना चाहिये ।१८०। गुरु की पत्नी यदि युवती है तो संसार के गुण दोष जाननें वाले, उसके बीस वर्ष के शिष्य को उसके चरणों का स्पर्श करके अभिवादन नहीं करना चाहिये । क्योंकि इस संसार में स्त्री एवं पुरुष दोनों की स्वाभाविक प्रवृत्ति[1] दोषों की ओर होती है । जो परम विवेकशील एवं बुद्धिमान हैं, वे इसीलिए स्त्रियों के प्रति असावधानी नहीं करते ।१८१-१८२। स्त्रियाँ काम एवं क्रोध के वशीभूत अविद्वान् तथा विद्वान् को भी अनुचित मार्ग में ले जाने को समर्थ होती हैं ।१८३। अपनी ही माता, बहिन एवं कन्या हों, तब भी उनके साथ एकान्त में नहीं बैठना चाहिये, ये इन्द्रिया बड़ी बलवान् हैं, बड़े-बड़े पण्डित को भी ये खींच लेती हैं ।१८४। हे राजेन्द्र ! इसलिए युवा शिष्य को इस पृथ्वी पर युवती गुरुपत्नियों के साथ दूर से ही 'अमुक' मैं प्रणाम कर रहा हूँ, कहकर प्रणाम करना चाहिये ।१८५। प्रवास

---

१. भार्यासु । २.अतोऽर्थान्न प्रमाद्यंति प्रमदासु विपश्चितः । ३. अमृतम् ।

१. तरुणावस्था प्रायः अनुभवहीनता के कारण मूर्खता ही के समान मानी जाती है ।

विप्रोऽस्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् । गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ।।१८६
यथा खनन्खनित्रेण जलमाप्नोति[1] मानवः । तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ।।१८७
मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथ वा स्याच्छिखी जटी ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेदर्को नाभ्युदियात्क्वचित् ।।१८८
तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामकारतः । निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ।।१८९
सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः । प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ।।१९०
उपस्पृश्य महाराज उभे सन्ध्ये समाहितः । शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ।।१९१
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् । तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वा रमते मनः ।।१९२
धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्ममेव च । अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति संस्थितिः ।।१९३
पिता माता तथा भ्राता आचार्याः कुरुनन्दन । नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ।।१९४
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माताप्यथादितेर्मूर्तिर्भ्राता स्यान्मूर्तिरात्मनः ।।१९५

से आने पर शिष्य को सत्पुरुषों के चलाये हुए धर्म का स्मरण कर प्रतिदिन गुरु पत्नी का पाद स्पर्श एवं अभिवादन करना चाहिये।१८६। जिस प्रकार कुदाल आदि खनने वाले हथियारों से लगातार खनते रहने पर मनुष्य अन्त में जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरु सेवा में निरत रहने वाला शिष्य गुरु की समस्त विद्याओं को प्राप्त कर लेता है।१८७

ब्रह्मचारी चाहे मुंडित शिर हो, चाहे जटाधारी हो चाहे जटा की भाँति शिखाधारी हो, उसको ग्राम में शयन करते हुए सूर्य का अस्त एवं उदय नहीं देखना चाहिये।१८८। यदि इस नियम को जान बूझकर इच्छानुकूल शयन करते-करते उसके सूर्य अस्त हो जायँ वा उदित हो जायँ तो दिन भर उपवास रखकर जप करना चाहिये।१८९। सूर्योदय अथवा सूर्यास्त तक सोकर जो उक्त प्रायश्चित्त नहीं करता है वह महान् पापकर्म से युक्त होता है।१९०। हे महाराज ! समाहित चित्त हो दोनों सन्ध्याओं को विधिपूर्वक पवित्र देश में बैठकर आचमन कर जप एवं उपासना करनी चाहिये।१९१। यदि स्त्री (अथवा शूद्र) कुछ श्रेयस्कर कार्य करे तो स्वयमेव उन सब कर्मों को करना चाहिये अथवा अपना मन जिस कार्य में लगे वह काम करना चाहिये।१९२। कुछ लोग धर्म और अर्थ को श्रेय कहते हैं, कुछ काम और अर्थ को श्रेय कहते हैं। इस लोक में कुछ लोग अर्थ को ही श्रेय मानते हैं—इन्हीं तीनों को त्रिवर्ग कहते हैं।१९३

हे कुरुनन्दन ! पिता, माता, भ्राता एवं आचार्य इन सबका अपमान विशेष आर्त्त अवस्था में होने पर भी कभी नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण को तो इस नियम का विशेषतया पालन करना चाहिये।१९४। आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता अदिति की मूर्ति है, भाई अपनी ही मूर्ति है।१९५। मनुष्य को उत्पन्न करने में माता और पिता जो कष्ट सहते हैं, उसका बदला सैकड़ों

---

१. अमृतम्।

यन्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।।१९६
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च भारत । तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।।१९७
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।।१९८
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः[1] । त एव च त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ।।१९९
माता वै गार्हपत्याग्निः पिता वै दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ।।२००
त्रिषु तुष्टेषु चैतेषु त्रींल्लोकाञ्जयते गृही । दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ।।२०१
इमं लोकं पितृभक्त्या मातृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया चैव गच्छेच्छक्रसलोकताम् ।।२०२
सर्वे तेनादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु येनैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ।।२०३
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यत्समाचरेत्। तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ।।२०४
तेषामनुपरोधेन पार्थक्यं[2] यद्यदाचरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।।२०५
त्रिष्वेतेष्विति कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ।।२०६
श्रद्धधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।२०७

वर्ष में भी नहीं किया जा सकता ।१९६। हे भारत ! इसलिए मनुष्य को सर्वदा उन दोनों अर्थात् माता-पिता का तथा आचार्य का कल्याण साधन करना चाहिये । इन तीनों के सन्तुष्ट रहने पर सभी तपस्याएँ समाप्त हो जाती हैं ।१९७। इन तीनों की शुश्रूषा करना ही परम तपस्या कही गयी है । इनकी आज्ञा को बिना प्राप्त किये हुए किसी अन्य धर्म का पालन नहीं करना चाहिये ।१९८। वे ही तीनों-तीनों लोक हैं तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं, और तीनों अग्नियाँ[1] हैं ।१९९। माता गार्हपत्याग्नि है, पिता दक्षिण अग्नि कहा जाता है, गुरु आहवनीय अग्नि है ये तीनों अग्नियाँ परम गौरदास्पद हैं ।२००। गृहस्थ पुरुष यदि इन तीनों को सन्तुष्ट कर लेता है तो वह तीनों लोकों को जीत लेता है । (इसके माहात्म्य से) वह अपनी दिव्य शरीर कान्ति से संयुक्त होकर देवताओं के समान स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है ।२०१। पितृभक्ति से इस लोक को मातृभक्ति से मध्यलोक को एवं गुरु भक्ति से इन्द्रलोक को प्राप्त करता है ।२०२। जिसने इन तीनों का आदर किया उसने सब धर्मों का आदर कर लिया और जिसने इन तीनों का अनादर किया उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हैं ।२०३। जब तक ये तीन जीवित हैं तब तक किसी अन्य धर्म का पालन नहीं करना चाहिये सर्वदा उनके प्रिय एवं कल्याणदायी कार्यों में लगे रहकर उनकी शुश्रूषा करते रहना चाहिये ।२०४। उनकी अनुमति से यदि उनसे अलग रहकर कुछ कार्य करे भी तो उन सबको मनसा वाचा कर्मणा उनसे निवेदित कर देना चाहिए ।२०५। गृहस्थ पुरुष के सारे कर्त्तव्य सारे धर्म इन्हीं तीनों की सेवा में समाप्त हो जाते हैं । यही परम धर्म है, इसके अतिरिक्त सब उपधर्म कहे जाते हैं ।२०६। अपने से निम्न कोटि के व्यक्ति से भी कल्याणदायिनी, विद्या श्रद्धापूर्वक लेनी चाहिये । शूद्र भी हो यदि उसके पास कोई श्रेष्ठ धर्म है तो उसे ले लेना चाहिये । इसी

---

१. आगमाः । २. पवित्रम् ।

१. गार्हपत्य, दाक्षिणाग्नि और आहवनीय ।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ।।२०८
स्त्रियो रत्नं नयो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वशः ।।२०९
अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते । अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ।।२१०
नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् । ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गातिमनुत्तमाम् ।।२११
यदि त्वात्यन्तिको वासो रोचते च गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ।।२१२
आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् । स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्राह्मणः सद्म शाश्वतम् ।।२१३
न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् । स्नानाय गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ।।२१४
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमेव च । धान्यं वासांसि शाकं वा गुरवे प्रीतमाहरेत् ।।२१५
स्वर्गते गां परित्यज्य गुरौ भरतसत्तम । गुणान्विते गुरुसुते गुरुदारेऽथ वा नृप ।।
सपिण्डे वा गुरोश्चापि गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।।२१६
एतेष्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् । प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ।।
वीरस्य कुर्वञ्छुश्रूषां याति वीरसलोकताम् ।।२१७
चरत्येवं हि यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः । स गत्वा ब्रह्मसदनं ब्रह्मणा सह मोदते ।।२१८

प्रकार दुष्ट कुल से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिये ।२०७। विष से भी अमृत ले लेना चाहिये, बच्चा भी है यदि कोई सच्ची और सुन्दर बात कह रहा है तो उसे ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार शत्रु से भी सदाचरण की शिक्षा लेनी चाहिये, और अपवित्र स्थल से भी सुवर्ण ले लेना चाहिए ।२०८। स्त्री, रत्न, नीति, विद्या, पवित्रता, धर्म सुभाषित एवं विविध प्रकार के शिल्प कर्म—इन्हें सम स्थानों से ले लेना चाहिये ।२०९

आपत्ति काल में अब्राह्मण से भी अध्ययन करने का विधान है । जब तक अब्राह्मण गुरु के समीप अध्ययन चले तब तक उसकी भी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये ।२१०। कोई ब्राह्मण यदि वेदों का अधिकारी विद्वान् नहीं हैं, किन्तु शिष्य वेदाध्ययन कर परमोत्तम गति प्राप्त करने की इच्छा से अब्राह्मण गुरु से अध्ययन करता है तो उसे उस अब्राह्मण गुरु के समीप सर्वदा निवास नहीं करना चाहिये ।२११। यदि गुरु के कुल में सर्वदा निवास करने की रुचि शिष्य को है तो उसे अपने शरीर छोड़ने तक निष्ठा एवं भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए निवास करना चाहिये ।२१२। इस प्रकार जो ब्राह्मण शिष्य अपने शरीर के त्याग पर्यन्त गुरु की शुश्रूषा करता है वह शीघ्र ही ब्रह्म के शाश्वत पद को प्राप्त करता है । धर्म की मर्यादा जानने वाले शिष्य को अध्ययन समाप्ति के पूर्व उपकार नहीं करना चाहिये, उसे दीक्षा स्नान के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये ।२१३-२१४। श्वेत, सुवर्ण, गौ, अश्व, छत्र, जूता, धान्य, वस्त्र, शाकादि गुरु के प्रसन्नार्थ लाना चाहिये ।२१५। हे भरतकुल सत्तम ! गुरु के इस पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले जाने पर गुणयुक्त गुरुपुत्र गुरु पत्नी वा गुरु के सपिण्डज के साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये ।२१६। इन सबों के न रहने पर उचित स्थान, आसन एवं बिहार से युक्त अग्नि की शुश्रूषा करते हुए अपने शरीर को उचित ढंग से साधन में लगावे । वीर की शुश्रूषा करने से वीरता की प्राप्ति होती है ।२१७। इन उपर्युक्त नियमों के अनुसार जो विप्र अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त कर ब्रह्मा

इत्येष कथितो धर्मः प्रथमं ब्रह्मचारिणः । गृहस्थस्यापि राजेन्द्र शृणु धर्ममशेषतः ॥२१९
काले प्राप्य व्रतं विप्र ऋतुयोगेन भारत । प्रपालयन्व्रतं याति ब्रह्मसालोक्यतां विभो ॥२२०
सदोपनयनं शस्तं वसन्ते ब्राह्मणस्य तु । क्षत्रियस्य ततो ग्रीष्मे प्रशस्तं मनुरब्रवीत् ॥२२१
प्राप्ते शरदि वैश्यस्य सदोपनयनं परम् । इत्येष त्रिविधः कालः कथितो व्रतयोजने ॥२२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
उपनयनविधिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

स्त्रीणां शुभाशुभलक्षणवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् । तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव च ॥१
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि नृपोत्तम । अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥२
तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः । स्रग्विणं तल्प[1] आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥३

के साथ आनन्द का अनुभव करता है ।२१८। प्रथम ब्रह्मचारी के धर्म का यह वर्णन मैं कर चुका, हे राजेन्द्र ! अब गृहास्थाश्रम में निवास करने वालों के समस्त धर्मों को भी बतला रहा हूँ, सुनो ।२१९। हे भारत ! हे विभो ! इस प्रकार उचित समय एवं ऋतु काल के अवसर पर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।२२०

ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार सर्वदा वसन्त ऋतु में प्रशस्त माना गया है, मनु ने क्षत्रियों का यज्ञोपवीत संस्कार ग्रीष्म ऋतु में श्रेयस्कर बतलाया है ।२२१। वैश्यवर्ण का उपनयन संस्कार सर्वदा शरद् ऋतु के आने पर श्रेष्ठ है। यज्ञोपवीत संस्कार के लिये तीनों वर्णवालों के ये तीन समय बतलाये गये हैं।२२२
श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में यज्ञोपवीत संस्कार विधि वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षणों का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—गुरु के समीप रहकर छत्तीस वर्ष तक त्रैवेदिक व्रत अर्थात् तीनों वेदों के अनुसार, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये अथवा उसके आधे वा चौथाई या वेद के अध्ययन समाप्त करने पर्यन्त समय तक करना चाहिये ।१। हे नृपोत्तम ! तीनों वेदों का या दो वेदों का अथवा एक वेद का विधिवत् अध्ययन कर अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे ।२। पिता के द्वारा वेद का अध्ययन समाप्त करने वाले उस प्रख्यात ब्रह्मवर्चस् एवं धन सम्पत्ति के उत्तराधिकार को प्राप्त करने (अथवा गृहस्थाश्रम में आने के लिए उद्यत) ब्रह्मचारी का अपने नैष्ठिक धर्म से समन्वित उस गुरु को सुन्दर आसन पर बिठा कर माला से विभूषित कर सर्व प्रथम गौ (मधुपर्क) द्वारा

---

१. तत्र ।

गुरुणा समनुज्ञातः समावृत्तौ यथाविधि । उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥४

शतानीक उवाच

लक्षणं द्विजशार्दूल स्त्रीणां वद महामुने । कीदृग्लक्षणसंयुक्ता [1]कन्या स्यात्सुखदा नृप ॥५

सुमन्तुरुवाच

यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । श्रेयसे[2] सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् ॥६
तत्ते वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमना नृप । श्रुतेन येन जानीषे कन्यां शोभनलक्षणाम् ॥७
सुखासीनं सुरश्रेष्ठमभिगम्य महर्षयः । पप्रच्छुर्लक्षणं स्त्रीणां यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥८
प्रणम्य शिरसा देवमिदं वचनमब्रुवन् । भगवन्ब्रूहि नः सर्वं स्त्रीणां लक्षणमुत्तमम् ॥९
श्रेयसे सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् । पशस्तामप्रशास्तां च जानीमो येन कन्यकाम् ॥१०
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विरिञ्चो वाक्यमब्रवीत् । शृणुध्वं द्विजशार्दूला वच्मि युष्मास्वशेषतः ॥११
प्रतिष्ठिततलौ सम्यग्रताम्भोजसमप्रभौ । ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषितां भोगवर्धनौ ॥१२
करालैरतिनिर्मांसै रूक्षैरर्धशिरान्वितैः । दारिद्र्यं दुर्भगत्वं च प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१३

पिता या आचार्य की पूजा करे ।३। इस प्रकार गुरु की आज्ञा से यथाविधि समावर्तन संस्कार सम्पन्न होकर ब्राह्मण अपने वर्ण में उत्पन्न शुभलक्षण समन्वित स्त्री के साथ विवाह संस्कार करे ।४

शतानीक बोले—हे महामुनि ! द्विज शार्दूल ! मुझे स्त्रियों के लक्षण बतलाइये । हे नृप, किस प्रकार के लक्षणों वाली कन्या पति को सुख देने वाली होती है ? ।५

सुमन्तु ने कहा—समस्त लोक के कल्याणार्थ स्त्रियों के शुभाशुभ फल देने वाल जिन लक्षणों को पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने बतलाया है, उन्हें तुम्हें बतला रहा हूँ, हे महाबाहो, हे नृप ! एकाग्र होकर सुनिये ! उन सबके सुन लेने पर तुम भी शुभलक्षणान्वित कन्या के पारखी बन जाओगे ।६-७। तुमने स्त्रियों के जिन लक्षणों को मुझसे अभी पूछा है, उन्हीं को एक बार ऋषियों ने सुखपूर्वक विराजमान सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा जी के पास जाकर पूछा था ।८। देव ब्रह्मा जी को शिर नम्र कर विधिवत् प्रणाम करने के बाद ऋषियों ने यह वचन कहा—'हे भगवन् ! समस्त लोक के कल्याणार्थ स्त्रियों के शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले लक्षणों को हमें बतलाइये । जिससे हम लोग उत्तम एवं निकृष्ट कोटि की कन्याओं की परख कर सकें ।९-१०। (ऋषियों) उनके वचन सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—स्त्रियों के समस्त लक्षणों को बतला रहा हूँ, सुनिये ।११। सुन्दर लाल कमल दल के समान कान्तिमान् एवं प्रतिष्ठित (भूमि में समान रूप से बैठने वाले) तलुओं वाले पैर, धन्य हैं, वे स्त्रियों के भाग्य की वृद्धि करनेवाले हैं ।१२। जो कराल मांस रहित, रूखा और नसों के उभाड़ से युक्त हो, वे स्त्रियों का चरण निस्सन्देह दारिद्र्य, दौर्भाग्य का देने वाला होता है ।१३। सघन, गोली,

---

१. धन्या । २. ऋषीणां कुरुशार्दूल ।

अङ्गुल्यः संहता वृत्ताः स्निग्धाः सूक्ष्मनखास्तथा । कुर्वन्त्यत्यन्तमैश्वर्यं राजभावं च योषितः ।।१४
ह्रस्वाः सुजीवितं ह्रस्वा विरला वित्तहानये । दारिद्र्यं मूलमग्नासु प्रेष्यं च पृथुलासु च ।।१५
परस्परसमारूढैस्तनुभिर्वृत्तपर्वभिः । बहूनपि पतीन्हत्वा दासी भवति वै द्विजाः ।।१६
अङ्गुष्ठोन्नतपर्वाणस्तुङ्गाग्राः कोमलान्विताः । रत्नकाञ्चनलाभाय विपरीता विपत्तये ।।१७
सुभगत्वं नखैः स्निग्धैराताम्रैश्च धनाढ्यता । पुत्राः स्युरुन्नतैरेभिः सुसूक्ष्मैश्चापि राजता ।।१८
पाण्डुरैः स्फुटितै रूक्षैर्नीलैधूमैस्तथा खरैः[1] । निःस्वता भवति स्त्रीणां पीतैश्चाभक्ष्यभक्षणम् ।।१९
गुल्फाः स्निग्धाश्च वृत्ताश्च समारूढशिरास्तथा । यदि स्युर्नूपुरान्दध्युर्बान्धवदाह्यैः समाप्नुयुः ।।२०
अशिरा शरकाण्डाभाः सुवृत्ताल्पतनूरुहाः । जङ्घाः कुर्वन्ति सौभाग्यं यानं च गजवाजिभिः ।।२१
क्लिश्यते रोमजङ्घा स्त्री भ्रमत्युद्धतपिण्डिका । काकजङ्घा पतिं हन्ति वाचाटा कपिला च याः ।।२२
जानुभिश्चैव मार्जारसिंहजान्वनुकारिभिः । श्रियमाप्य सुभाग्यत्वं प्राप्नुवन्ति सुतांस्तथा ।।२३
घटाभैरध्वगा नार्यो निर्मांसैः कुलटाः स्त्रियः । शिरालैरपि हिंस्राः स्युर्विश्लिष्टैर्धनवर्जिताः ।।२४

चिकनी एवम् छोटे सुन्दर नखों वाली पैर की अँगुलियाँ स्त्रियों को परम ऐश्वर्य एवं राज्यपद को देने वाली होती है ।१४। छोटी अँगुलियों वाली स्त्रियाँ दीर्घजीवी होती हैं । किन्तु छोटी और बिरली जो एक में मिली न हों, अँगुलियाँ धन हानि करने वाली होती हैं । मूल स्थान पर टेढ़ी रहनेवाली अँगुलियाँ दारिद्र्य की सूचक हैं, मोटी अँगुलियों से दासता की प्राप्ति होती है ।१५। हे द्विज वृन्द ! अत्यन्त सूक्ष्म, परस्पर एक दूसरे पर चढ़ी हुई एवं गोले पर्व (पोरों) वाली अँगुलियों से युक्त स्त्री अनेक पतियों को मारकर दासी होती है ।१६। उच्च पर्व (पोरों) से युक्त अँगूठे, उन्नत अग्रभागवाली कोमल अंगुलियाँ रत्न एवं सुवर्ण लाभ की सूचना देती हैं, इससे विपरीत जो होती हैं वे विपत्ति में डालने वाली होती हैं ।१७। चिकने नखों से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, लाल नखों से प्रचुर धन मिलता है । उन्नत नखों से अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है एवं सूक्ष्म नखों से राजत्व की प्राप्ति होती है ।१८। स्त्रियों के पाण्डुर टूटे, फटे, रूखे, नीले एवं धूमिल तथा खर नखों से निर्धनता बढ़ती है, उनके पीले नख अभक्ष्य-भक्षण की सूचना देते हैं ।१९। इसी प्रकार यदि स्त्रियों के चिकने, गोले, शिराओं (नसों) को ढंके हुए गुल्फ (ऐंड़ी के ऊपर की गाँठ) हों तो वे नूपुर से सर्वदा शब्दायमान रहने वाले तथा बांधवों से युक्त करने वाले होंगे ।२०। शिराओं से रहित, शरकाण्ड (सरकण्डा) के समान गौरवर्ण से युक्त, सुन्दर गोले एवं छोटी-छोटी रोमावलियों से सुशोभित स्त्रियों की जंघाएँ परम सौभाग्य एवं हाथी घोड़े की संवारी देने वाली होती हैं ।२१। रोमावलि से युक्त जंघावाली स्त्री कष्ट का अनुभव करती है, इसी प्रकार जिसकी पिण्डली ऊपर की ओर खिंची हुई-सी हो वह बहुत भ्रमण करने वाली होती है । कौओं के समान जंघेवाली और भूरी स्त्री अत्यन्त बकवादिनी और पति का नाश करने वाली होती है ।२२। बिल्ली और सिंह के घुटनों के अनुकरणशील घुटनों वाली स्त्रियाँ लक्ष्मी की प्राप्ति कर सौभाग्य एवं अनेक पुत्रों को भी प्राप्त करने वाली होती हैं ।२३। इसी प्रकार कलश के समान घुटनों वाली स्त्रियाँ अधिक मार्ग चलने वाली होती हैं, मांसरहित घुटनोवाली स्त्रियाँ कुलटा होती हैं । शिराओं से व्याप्त घुटनों वाली स्त्रियाँ हिंसक स्वभाव वाली होती

---

१ आयतैः ।

अत्यन्तकुटिलै रूक्षैः स्फुटिताग्रैर्गुडप्रभैः । अनेकजैस्तथा रोमैः केशैश्चापि तथाविधैः ।।२५
अत्यन्तपिङ्गला नारी विषतुल्येति निश्चितम् । सप्ताहाभ्यन्तरे पापा पतिं हन्यान्न संशयः ।।२६
हस्तिहस्तनिभैर्वृत्तै रम्भाभैः करभोपमैः । प्राप्नुवन्त्यूरुभिः शश्वत्स्त्रियः सुखमनङ्गजम् ।।२७
दौर्भाग्यं बद्धमांसैश्च बन्धनं रोमशोरुभिः । तनुभिर्वधमित्याहुर्मध्यच्छिद्रेष्वनीशता ।।२८
सन्ध्यावर्णं समं चारु सूक्ष्मरोमान्वितं पृथु । जघनं शस्यते स्त्रीणां रतिसौख्यकरं द्विज ।।२९
अरोमको भगो यस्याः समः सुश्लिष्टसंस्थितः । अपि नीचकुलोत्पन्ना राजपत्नी भवत्यसौ ।।३०
अश्वत्थपत्रसदृशः कूर्मपृष्ठोन्नतस्तथा । शशिबिम्बनिभश्चापि तथैव कलशाकृतिः ।।
भगः शस्ततमः स्त्रीणां रतिसौभाग्यवर्धनः ।।३१
तिलपुष्पनिभो यश्च यश्चाग्रे खुरसन्निभः । द्वावप्येतौ परप्रेष्यं कुर्वाते च दरिद्रताम् ।।३२
उलूखलनिभैः शोकं मरणं विवृताननैः । विरूपैःपूतिनिर्मांसैर्गजसन्निभरोमभिः ।।
दौःशील्यं दुर्भगत्वं च दारिद्र्यमधिगच्छति ।।३३

हैं, दुर्बल एवं असुन्दर घुटनों से धनहीन होती हैं ।२४। अत्यन्त कुटिल, रूखे, टूटे फूटे अग्रभाग वाले, गुड़ के समान लाल वर्णवाले, एक-एक रोम कूप से अनेक संख्या में उत्पन्न होने वाले रोम एवं केशों से युक्त अत्यन्त पिंगल वर्ण की नारी विषतुल्य समझनी चाहिये—यह निश्चित मानिये । वह पापिनी एक सप्ताह के भीतर ही अपने पति का नाश करती हैं—इसमें सन्देह मत मानिये ।२५-२६। हाथी के शुण्डादण्ड के समान चढ़ाव उतार वाले, कदली के रंग के समान गोरे, चिकने एवं शीतल करभ[1] के समान मनोहर एवं स्निग्ध उरु प्रदेशों से स्त्रियाँ सर्वदा कामदेव का सुखभोगने वाली होती हैं ।२७। बँध गये हैं मांस पिण्ड जिनमें—ऐसे उरुओं से युक्त स्त्रियाँ परम दुर्भाग्य शील होती हैं । बहुत रोमावलि से युक्त उरुओं से उसे बन्धन की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सूक्ष्म उरुओं वाली स्त्रियों का वध होता है—ऐसा लोग कहते हैं । मध्य में छिद्र भाग वाले उरुओं से प्रभुत्वहीनता की प्राप्ति होती है ।२८। हे द्विज ! संध्या के समान मनोहर वर्णवाले (लालिमा युक्त) सूक्ष्म रोमावलि से सुशोभित, स्थूल जंघे स्त्रियों के परम प्रशंसनीय माने जाते हैं, वे विशेष रति सुख प्रदान करने वाले होते हैं ।२९। जिस स्त्री का योनि प्रदेश रोम रहित, समान एवं संधियों से सुश्लिष्ट हो, वह चाहे नीच कुल में ही उत्पन्न क्यों न हुई हों—राजा की पत्नी होती हैं ।३०। पीपल के पत्ते के समान कछुए की पीठ के समान ऊपर की ओर उन्नत चन्द्रबिम्ब की भाँति कलश के समान आकारवाला योनि प्रदेश स्त्रियों के लिए परम प्रशस्त बतलाया गया है, वह उनके रति एवं सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है ।३१। जो तिल के पुष्प की भाँति हो, आगे की ओर पशु की खुरों की भाँति दिखाई पड़ता हो—ऐसे दो प्रकार के योनि प्रदेश दरिद्रता एवं दूसरे की दासता करने वाले होते हैं ।३२। उलूखल के समान योनियों से शोक प्राप्ति होती है, जिसका मुख प्रदेश सर्वदा फैला हुआ हो—ऐसा योनि प्रदेश मरण की सूचना देता है । असुन्दर, दुर्गन्धियुक्त, मांसरहित, हाथी के समान रोमावलि युक्त प्रदेश स्त्रियों की दुःशीलता, दौर्भाग्य एवं दारिद्र्य के सूचक होते हैं ।३३। हे द्विजगण ! कैथे के फल के समान

---

१. हथेली में मणिबन्ध से लेकर कनिष्ठिका तक का वह भाग जो बाहर की ओर रहता है ।

कपित्थफलसंकाशः पीनो वलिविवर्जितः । स्फीताः प्रशस्यते स्त्रीणां निन्दितश्चान्यथा द्विजाः ॥३४
पयोधरभरानम्रप्रचलत्त्रिवलीगुरुः । मध्यः शुभावहः स्त्रीणां रोमराजीविभूषितः ॥३५
पणवाभैर्मृदङ्गाभैस्तथा मध्ये यवोपमैः । प्राप्नुवन्ति भयावासक्लेशदौःशील्यमीदृशैः ॥३६
अवक्रानुल्बणं पृष्ठमरोमशमगर्हितम् । नानास्तरणपर्यङ्करतिसौख्यकरं परम् ॥३७
कुब्जमद्रोणिकं पृष्ठं रोमशं यदि योषितः । स्वप्नान्तरे सुखं तस्या नास्ति हन्यात्पतिं च सा ॥३८
विपुलैः [१]सुकुमारैश्च कुक्षिभिः सुबहुप्रजाः । मण्डूककुक्षिर्या नारी राजानं सा प्रसूयते ॥३९
उन्नतैर्बलिभिर्वन्ध्याः सुवृत्तैः कुलटाः स्त्रियः । [२]जारकर्मरतास्ताः स्युः प्रव्रज्यां च समाप्नुयुः ॥४०
उन्नता च नतैः क्षुद्रा विषमैर्विषमाशया । आयुरैश्वर्यसम्पन्ना वनिता हृदयैः समैः ॥४१
सुवृत्तमुन्नतं पीनमदूरोन्नतमायतम् । स्तनयुग्ममिदं शस्तमतोऽन्यदसुखावहम् ॥४२
उन्नतिः प्रथमे गर्भे द्वयोरेकस्य भूयसी । वामे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुतः ॥४३
दीर्घे तु [३]चूचुके यस्याः सा स्त्री धूर्ता रतिप्रिया । सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वेष्टि सा पुरुषं सदा ॥४४

गोले, पुष्ट, सिकुड़न रहित एवं चिकने योनि प्रदेश स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं, इनके अतिरिक्त सभी निन्दित हैं ।३४। उन्नत स्तनों के भार से झुका हुआ एवं चञ्चल तीन सिकुड़न की रेखाओं से युक्त, रोमावलि से विभूषित मध्यभाग स्त्रियों का परमकल्याणदायी एवं प्रशंसनीय बतलाया गया है ।३५। पणव, मृदङ्ग, एवं जौ की तरह मध्यभाग वाली स्त्रियाँ भय, निवास का कष्ट एवं दुःशीलता को प्राप्त करती हैं ।३६। अवक्र, सीधे एवं समान, अव्यक्त अर्थात् ऊपर की ओर न उठा हुआ, रोमावलिरहित पृष्ठ प्रदेश प्रशंसनीय माना गया है । वह विविध प्रकार के बिछावन, पर्यंक एवं रति का सुख प्रदान करने वाला होता है ।३७। स्त्री का पृष्ठ प्रदेश (पीठ) यदि कुबड़ा, असुन्दर एवं रोमावलि से व्याप्त हो तो उसे कभी स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती, वह अपने पति को मारने वाली होती है ।३८। विस्तृत एवं सुकुमार कुक्षि प्रदेश (उदर) से स्त्रियाँ अनेक सन्तानों वाली होती हैं । जो स्त्री मेढक के समान उदर वाली होती है वह राजा को उत्पन्न करती है ।३९। उदर प्रदेश में स्थित बलियों (सिकुड़न की रेखाओं) के उन्नत होने से स्त्रियाँ बन्ध्या होती हैं, गोलाकार होने से कुलटा होती हैं । ऐसी स्त्रियाँ सर्वदा जार (छिनाले) कर्म में निरत रहकर भगेली बनी रहती हैं ।४०। नीचे की ओर झुके हुए हृदय प्रदेश से स्त्रियाँ उन्नत स्वभाव वाली होती हैं । ऊँचे-नीचे हृदय प्रदेश से क्षुद्र स्वभाववाली एवं कठोर होती हैं । समान हृदय प्रदेश से युक्त स्त्रियाँ दीर्घायु एवं परम ऐश्वर्य सम्पन्न होती हैं ।४१। सुडौल, गोल, उन्नत, पुष्ट, सघन एवं आयताकार दोनों स्तनों के मण्डल स्त्रियों के लिए परम प्रशंसनीय माने गये हैं, इनके विपरीत जो हों वे दुःख देने वाले कहे जाते हैं ।४२। प्रथम गर्भावस्था में यदि स्त्रियों के दोनों स्तनों में सेकिसी की पहले विशेष वृद्धि हो तो उसका फल इस प्रकार होता है । वाम स्तन की वृद्धि से कन्या एवं दक्षिण स्तन की वृद्धि से पुत्र की उत्पत्ति होती है ।४३। जिस स्त्री के चूचक लम्बे होते हैं वह परमधूर्त एवं रति को विशेष पसन्द करने वाली होती है । इसके विपरीत जिसके चूचक बहुत गोले होते हैं वह सर्वदा अपने पति से द्वेषभाव

---

१. कुसुमाकारैः । २. परकर्म । ३. चुबुके ।

स्तनैः सर्पफणाकारैः श्वजिह्वाकृतिभिस्तथा । दारिद्र्यमधिगच्छन्ति स्त्रियः पुरुषचेष्टिताः ॥
अवष्टब्धघटीतुल्या भवन्ति हि तथा द्विजाः ॥४५
सुसमं मांसलं चारु शिरो रोमविवर्जितम् । वक्षो यस्या भवेन्नार्या भोगान्भुक्ते यथेप्सितान् ॥४६
हिंस्रा भवति वक्रेण दौःशील्यं रोमशेन तु । निर्मांसेन तु वैधव्यं विस्तीर्णे कलहप्रिया ॥४७
चतस्रो रक्तगम्भीरा रेखाः स्निग्धाः करे स्त्रियाः । यदि स्युः सुखमाप्नोति विच्छिन्नाभिरनीशता ॥४८
रेखाः कनिष्ठिकामूलाद्यस्याः प्राप्ताः प्रदेशिनीम् । शतमायुर्भवेत्तस्यास्त्रयाणामुन्नतौ क्रमात् ॥४९
संवृत्ताः समपर्वाणस्तीक्ष्णाग्राः कोमलत्वचः । समा ह्यंगुलयो यस्याः सा नारी भोगवर्धिनी ॥५०
बन्धुजीवारुणैस्तुंगैर्नखैरैश्वर्यमाप्नुयात् । खरैर्वक्रैर्विवर्णाभैः श्वेतपीतैरनीशता ॥५१
रक्तैर्मृदुभिरैश्वर्यं निश्छिद्राङ्गुलिभिर्द्विजाः । स्फुटितैर्विषमै रूक्षैः क्लेशं पाणिभिराप्नुयुः ॥५२
समरेखा यवा यासाङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वसु । तासां हि विपुलं सौख्यं धनं धान्यं तथाऽक्षयम् ॥५३
मणिबन्धोऽव्यवच्छिन्नो रेखात्रयविभूषितः । ददाति न चिरादेव भोगमायुस्तथाक्षयम् ॥५४
श्रीवत्सध्वजपद्माक्षगजवाजिनिवेशनैः । चक्रस्वस्तिकवज्रासिपूर्णकुम्भनिभाङ्कुशैः ॥५५

रखने वाली होती हैं।४४। सर्प के फण एवं कुत्ते की जीभ के समान आकार वाले स्तनों से स्त्रियाँ पुरुष के समान चेष्टा करने वाली तथा दरिद्रता को प्राप्त करने वाली होती हैं। हे द्विजवृन्द ! इसी प्रकार छोटे कलश के समान स्तनों वाली स्त्रियाँ भी पुरुषवत् चेष्टाशील तथा दरिद्र होती हैं।४५। जिस स्त्री का वक्षस्थल समान, मांसल, शिरा (नस) एवं रोमावलि से रहित होते हैं वह मन चाहे भोग विलास का आनन्द उठाती है।४६। वक्र वक्षस्थल से हिंसक स्वभाव वाली तथा रोमावलि युक्त वक्षस्थल से स्त्रियाँ दुःशील होती हैं। मांसरहित वक्षस्थल वैधव्य का सूचक तथा विस्तृत वक्षस्थल कलह प्रिय का सूचक होता है।४७। स्त्री के हाथ में चिकनी गम्भीर लालिमायुक्त चार रेखाएँ यदि हों तो वह प्रचुर सुख प्राप्ति करती है, यदि ये ही रेखाएँ टूटी-फूटी और अपूर्ण हों तो वह प्रभुत्वहीन होती हैं।४८। जिस स्त्री के हाथ में कनिष्ठिका अँगुली के मूल से निकलने वाली रेखा प्रदेशिनी (तर्जनी) अँगुली तक पहुँचने वाली हो और क्रमशः तीनों अँगुलियों तक उत्तरोत्तर उन्नत हो उसकी आयु सौ वर्ष की होती है।४९। जिस स्त्री के हाथ की अंगुलियाँ सुन्दर, गोली, समान पर्वोंवाली, आगे की ओर पतली, कोमल चमड़ी से युक्त एवं समान हों, वह स्त्री भोग की वृद्धि करने वाली होती है।५०। दोपहरी के पुष्प के समान अत्यन्त रक्तवर्ण एवं ऊपर की ओर उठे हुए नखों से स्त्रियाँ ऐश्वर्य की प्राप्त करने वाली होती हैं। प्रखर, टेढ़े-मेढ़े, विवर्ण, श्वेत एवं पीले नखों से अप्रभुत्व को प्राप्त करने वाली होती हैं।५१। हे द्विजवृन्द ! रक्तिम, मृदुल एवं छिद्ररहित अँगुलियों वाले मनोहर पाणि से स्त्रियाँ ऐश्वर्यशालिनी होती हैं। इसके विपरीत टूटे-फूटे, ऊँचे नीचे एवं रूखे हाथों से वह क्लेशयुक्त रहती हैं।५२। जिन स्त्रियों के हाथ में समान रेखाएँ तथा अँगूठे में जौ के आकार की रेखा हो, उनको विपुल सुख-साधन तथा अक्षय धन-धान्य की प्राप्ति होती है।५३। तीन लम्बी रेखाओं से विभूषित अव्यवच्छिन्न मणिबन्ध जिस स्त्री का हो उसे बहुत शीघ्र ही अक्षय भोग ऐश्वर्य एवं दीर्घायु प्राप्त होता है।५४। श्रीवत्स, ध्वज (पताका) कमल, अक्ष, हाथी, घोड़ा, भवन, चक्र, स्वस्तिक, वज्र, तलवार, पूर्णकलश, अंकुश, राजभवन, छत्र, मुकुट, हार, केयूर, कुण्डल, शंख, तोरण एवं व्यूह के चिह्न

प्रासादच्छत्रमुकुटैर्हारकेयूरकुण्डलैः । शङ्खतोरणनिर्व्यूहैर्हस्तन्यस्तैर्नृपस्त्रियः ॥५६
यस्याः पाणितले रक्ता यूपकुम्भाश्च कुण्डिकाः । दृश्यन्ते चरणे यस्या यज्ञपत्नी भवत्यसौ ॥५७
वीथ्यापणतुलामानैस्तथा मुद्रादिभिः स्त्रियः । भवन्ति वणिजां पत्न्यो रत्नकाञ्चनशालिनाम् ॥५८
दात्रयोक्त्रयुगाबन्धफलोलूखललाङ्गलैः । भवन्ति धनधान्याढ्याः कृषीवलजनाङ्गनाः ॥५९
अनुन्नतशिरासन्धि पीनं रोमविवर्जितम् । गोपुच्छाकृति नारीणां भुजयोर्युगलं शुभम् ॥६०
निगूढग्रन्थयो यस्याः कूर्परौ रोमवर्जितौ । बाहू वै ललितौ यस्याः प्रशस्तौ वृत्तकोमलौ ॥६१
उन्नतावनतौ चैव नातिस्थूलौ न रोमशौ । सुखदौ तु सदा स्त्रीणां सौभाग्यारोग्यवर्धनौ ॥६२
स्थूले स्कन्धे वहेद्भारं रोमशे व्याधिता भवेत् । वक्रस्कन्धे भवेद्वन्ध्या कुलटा चोन्नतानने ॥६३
स्पष्टं रेखात्रयं यस्या ग्रीवायां चतुरङ्गुलम् । मणिकाञ्चनमुक्ताढ्यं सा दधाति विभूषणम् ॥६४
अधना स्त्री कृशग्रीवा दीर्घग्रीवा च बन्धकी । ह्रस्वग्रीवा मृतापत्या स्थूलग्रीवा च दुःखिता ॥६५
अनुन्नता समांसा च समा यस्याः कृकाटिका । सुदीर्घमायुस्त्वस्यास्तु चिरं भर्ता च जीवति ॥६६
निर्मांसा बहुमांसा च शिराला रोमशा तथा । कुटिला विकटा चैव विस्तीर्णा न च शस्यते ॥६७

जिनके हाथ में हों वे राजा की स्त्रियाँ होती हैं ।५५-५६। जिस स्त्री के हाथ में रक्तवर्ण के स्तम्भ तथा कलश एवं चौकोर कुण्डिका पैर में हों वह स्त्री किसी यज्ञकर्त्ता की पत्नी होती है ।५७। गली, बाजार, तराजू एवं मुद्राओं के चिह्न जिन स्त्रियों के हाथ में हों वे सुवर्ण रत्न के महान् व्यापारी की पत्नी होती हैं ।५८। दात्र (काटने वाले हथियार) योक्त्र (नाधा) जूआ, फाल, उलूखल (ओखली) एवं हल के चिह्नों वाली स्त्रियाँ धन-धान्य सम्पन्न एवं किसान की गृहिणी होती हैं ।५९। जिनकी नसें एवं संधियाँ बहुत उन्नत न हों, पुष्ट, मांसल एवं रोमावलि रहित हों, गौ की पूँछ के समान आकार वाली हों ऐसी स्त्रियों की दोनों भुजाएँ कल्याणकारक होती हैं ।६०। जिसकी ग्रन्थि (गाठ) ढँकी हुई हो, ऐसी कुहने वाली रोमरहित, गोल, कोमल, ललित भुजाएँ स्त्रियों की प्रशंसनीय मानी गई हैं ।६१। उचित स्थान पर उन्नत एवं उचित स्थान पर अवनत बहुत भद्दे, मोटापे से रहित, रोम विहीन बाहुएँ स्त्रियों की सौभाग्य एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाली तथा सर्वदा सुखदायिनी होती हैं ।६२। जिस स्त्री के दोनों कन्धे बहुत मोटे होते हैं, वह भार ढोनेवाली होती हैं, रोमावलि युक्त कन्धेवाली स्त्री व्याधियुक्त होती है । टेढ़े कंधेवाली बन्ध्या तथा ऊँचे नीचे कन्धे वाली व्यभिचारिणी होती है ।६३। जिस स्त्री के कण्ठ में चार अंगुल तक स्पष्ट तीन रेखाएँ हों, वह मणिजटित सुवर्ण के अलंकारों को धारण करने वाली होती है ।६४। जिस स्त्री का कण्ठ प्रदेश बहुत दुर्बल रहता है वह निर्धन होती है । लम्बी ग्रीवा वाली स्त्री बंधकी अर्थात् छिनाल होती है । जिस स्त्री का कण्ठ प्रदेश बहुत अल्प होता है उसकी सन्ततियाँ नहीं जीतीं, इसी प्रकार स्थूल ग्रीवा वाली स्त्री सर्वदा दुःख भोगने वाली होती है ।६५। जिस स्त्री की कृकाटिका (ग्रीवा की ऊँची ग्रन्थि, जो रीढ़ को जोड़ती है) अनुन्नत अर्थात् ऊँची उठी हुई न हों, मांसल एवं समान होती हैं उसकी आयु बहुत लम्बी होती है, उसका पति भी दीर्घजीवी होता है ।६६। वह ग्रन्थि यदि मांस रहित अथवा अत्यन्त मांसल, नसों से व्याप्त, रोमावलियुक्त, वक्र, विकट एवं विस्तीर्ण हो तो वह प्रशंसनीय नहीं है ।६७। न अत्यन्त स्थूल, न कृश, न

न स्थूलो न कृशोऽत्यर्थं न वक्रो न च रोमशः। हनुरेवंविधः श्रेयांस्ततोऽन्यो न प्रशस्यते ॥६८
चतुरस्रमुखी धूर्ता मण्डलास्या शिवा[1] भवेत्। अप्रजा वाजिवक्त्रा स्त्री महावक्त्रा च दुर्भगा ॥६९
श्ववराहवृकोलूकमर्कटास्याश्च याः स्त्रियः। क्रूरास्ताः पापकर्मिण्यः प्रजाबान्धववर्जिताः ॥७०
मालतीबकुलाम्भोजनीलोत्पलसुगन्धि यत्। वदनं मुच्यते नैतत्पानताम्बूलभोजनैः ॥७१
ताम्राभः किञ्चिदालम्भः स्थौल्यकार्श्यविवर्जितः। अधरो यदि तुङ्गश्च नारीणां भोगदः सदा ॥७२
स्थूले कलहशीला स्याद्विवर्णे चातिदुःखिता। उत्तरोष्ठेन तीक्ष्णेन वनिता चातिकोपना ॥७३
जिह्वा तनुतरा वक्रा ताम्रा दीर्घा च शस्यते। स्थूला ह्रस्वा विवर्णा या वक्रा भिन्ना च निन्दिता ॥७४
शङ्खकुन्देन्दुधवलैः स्निग्धैस्तुङ्गैरसन्धिभिः। मिष्टान्नपानमाप्नोति दन्तैरेभिरनुन्नतैः ॥७५
सूक्ष्मैरतिकृशैर्ह्रस्वैः स्फुटितैर्विरलैस्तथा। रूक्षैश्च दुःखिता नित्यं विकटैर्भामिनी भवेत् ॥७६
सुमृष्टदर्पणाम्भोजपूर्णबिम्बेन्दुसन्निभम्। वदनं वरनारीणामभीष्टफलदं स्मृतम् ॥७७
न स्थूला न कृशा वक्रा नातिदीर्घा समुन्नता। ईदृशी नासिका यस्याः सा धन्या तु शुभङ्करी ॥७८
उन्नता मृदुला या च रेखा शुद्धा न सङ्गता। भ्रूर्वक्त्रतुल्या सूक्ष्मा च योषितां सा सुखावहा ॥७९

वक्र, न रोमावलियुक्त—ऐसा चिबुक स्त्रियों का परम कल्याणदायी होता है। इसके विपरीत जो हों, वे **प्रशंसनीय** नहीं माने गये हैं।६८। चौकोर मुखवाली स्त्री धूर्त स्वभाव की होती है। मण्डलाकार अर्थात् **गोल मुखवाली** कल्याणदायिनी होती है। घोड़े के समान मुँह वाली स्त्री सन्तानविहीन एवं लम्बे **मुखवाली स्त्री** दुर्भगा होती है।६९। इसी प्रकार कुत्ते, शूकर, भेड़िया, उल्लू, बन्दर के समान मुखवाली **स्त्रियाँ क्रूर स्वभाव** वाली पापिनी, सन्तान एवं बन्धु-बान्धवादि से विहीन होती हैं।७०। मालती, मौलसिरी, लाल कमल एवं नीलकमल के समान सुगन्धि जिससे निकलती हो, स्त्रियों का ऐसा मुख सुस्वादु पेय, ताम्बूल एवं सुभोजन से कभी वञ्चित नहीं होता।७१। लालिमायुक्त स्निग्ध, स्थूलता एवं कृशता से रहित, ऊपर की ओर उठे हुए स्त्रियों के अधर सर्वदा भोग देने वाले होते हैं।७२। स्थूल अधरोंवाली स्त्री कलहप्रिय होती है, विवर्ण अधरों वाली अत्यन्त दुःखभागिनी होती है। ऊपर का ओठ यदि बहुत पतला हो तो वह स्त्री अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाली होती है।७३। जो अत्यन्त पतली, टेढ़ी, लम्बी एवं लालिमायुक्त हो—ऐसी जिह्वा स्त्रियों के लिए प्रशंसनीय मानी गई है। इसके विपरीत मोटी, छोटी, विवर्ण, टेढ़ी एवं भिन्न दिखाई पड़ने वाली जिह्वा निन्दनीय मानी गई है।७४। शंख, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत, चिकने, ऊँचे, संधि रहित (एक दूसरे में एकदम सटे हुए) एवं अनुन्नत दाँतों से स्त्रियाँ मिष्ठान एवं सुन्दर सुस्वादु पेय प्राप्त करती हैं।७५। इसके विपरीत बहुत छोटे-छोटे अत्यन्त कमजोर, फूटे हुए, विरल रूखे एवं विकट दाँतों से स्त्रियाँ सर्वदा दुःख भोगने वाली होती हैं।७६। परम स्वच्छ, सुन्दर, दर्पण, कमल एवं पूर्णिमा के चन्द्रबिम्ब की भाँति आकर्षक एवं मनोहर मुख परमश्रेष्ठ स्त्रियों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले कहे जाते हैं।७७। न अत्यन्त मोटी न अत्यन्त कृश, न अत्यन्त लम्बी, समुन्नत नासिका जिसकी हो वह कल्याणी स्त्री धन्य है।७८। उन्नत, मृदुल (कोमल) शुद्ध रेखाङ्कित, मुख के समान आकार वाली सूक्ष्म भौंहें

---

१. अदृशा, अदशा।

[1]धनुस्तुल्याभिः सौभाग्यं वन्ध्या स्याद्दीर्घरोमभिः। पिङ्गलासङ्गता ह्रस्वा दारिद्र्याय न संशयः ॥८०
नीलोत्पलदलप्रख्यैराताम्रैश्चारुपक्ष्मभिः । वनिता नयनैरेभिर्भोगसौभाग्यभागिनी ॥८१
खञ्जनाक्षी मृगाक्षी च वराहाक्षी वराङ्गना । यत्रयत्र समुत्पन्ना महान्तं भोगमश्नुते ॥८२
अगम्भीरैरसंश्लिष्टैर्बहुरेखाविभूषितैः । राजपत्न्यो भवन्तीह नयनैर्मधुपिङ्गलैः ॥८३
वायसाकृतिनेत्राणि दीर्घापाङ्गानि योषिताम् । अनाविलानि चारूणि भवन्ति हि विभूतये ॥८४
गम्भीरैः पिङ्गलैश्चैव दुःखिताः स्युश्चिरायुषः। वयोमध्ये त्यजेत्प्राणान्नुन्नताक्षी तु[2] याङ्गना ॥८५
रक्ताक्षी विषमाक्षी च [3]धूम्राक्षी प्रेतलोचना । वर्जनीया सदा नारी श्वनेत्रा चैव दूरतः ॥८६
उद्भ्रान्तकैः करैश्चित्रैर्नयनैस्त्वङ्गनास्त्विह । मद्यमांसप्रिया नित्यं चपलाश्चैव सर्वतः ॥८७
करालाकृतयः कर्णा नभःशब्दास्तु संस्थिताः । वहन्ति विकसत्कान्तिं हेमरत्नविभूषणम् ॥८८
खरोष्ट्रनकुलोलूककपिलश्रवणाः स्त्रियः । प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं प्रायशः प्रव्रजन्ति च ॥८९
ईषदापाण्डुगण्डा या सुवृत्ता पर्वणि त्विह । प्रशस्ता निन्दिता त्वन्या रोमकूपकदूषिता ॥९०
अर्धेन्दुप्रतिमाभोगमरोम तु समाहितम् । भोगारोग्यकरं श्रेष्ठं ललाटं वरयोषिताम् ॥९१

स्त्रियों को सुख देने वाली होती हैं ।७९। धनुष के समान टेढ़ी भौहें सौभाग्य देने वाली होती हैं, दीर्घ रोमावलि युक्त स्त्रियों की भौंहें उनके वन्ध्यापन की सूचना देती हैं । इसी प्रकार पिङ्गल वर्णवाली, असंगत एव छोटी भौहें निस्सन्देह दरिद्रता देनेवाली होती हैं ।८०। नीले कमल दल के समान मनोहर, कुछ लालिमा लिये हुए, सुन्दर, भौहों से विभूषित नेत्रों वाली स्त्री सौभाग्य एवं भोग विलास को प्राप्त करने वाली होती हैं ।८१। खञ्जन, मृग एवं शूकर के समान नेत्रोंवाली सुन्दरी स्त्री जहाँ तहाँ उत्पन्न होकर महान् भोग एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली होती हैं ।८२। गंभीरता रहित असंश्लिष्ट, बहुत रेखाओं से विभूषित मधु के समान लाल वर्ण के नेत्रों वाली स्त्रियाँ इस लोक में राजपत्नी के रूप में उत्पन्न होती हैं ।८३। कौए के आकार के समान, लम्बे कोण वाले स्वच्छ सुन्दर स्त्रियों के नेत्र उनके धन सम्पत्ति की सूचना देने वाले होते हैं ।८४। अत्यन्त गम्भीर (गहरे) पीले वर्ण के नेत्रों वाली स्त्रियाँ लम्बी आयु प्राप्त कर दुःख भोगने वाली होती हैं । जो स्त्री उन्नत नेत्रों वाली होती है वह अपनी जवानी में ही मृत्यु को प्राप्त करने वाली होती है ।८५। लाल, विषम, धूमिल एवं प्रेतों के समान नेत्रों वाली स्त्री सर्वदा वर्जनीय है, इसी प्रकार कुत्ते के समान नेत्रवाली स्त्री को भी दूर से ही छोड़ देना चाहिये ।८६। उद्भ्रान्त (टपरे) केकर (ऐंचाताना) एवं विचित्र वर्ण वाले नेत्रों से स्त्रियाँ मद्य मांस को पसन्द करने वाली तथा सर्वत्र चञ्चल रहती हैं ।८७। कराल आकृति वाले लम्बे कान स्त्रियों के सुवर्ण एवं कणों के आभूषण से युक्त मनोहर कान्ति प्राप्त करनेवाले होते हैं ।८८। गधा, ऊँट, नेवला एवं उलूक के समान कानों वाली एवं कपिल वर्ण के कानों वाली स्त्रियाँ महान् दुःख भोगती हैं और प्रायः इधर-उधर भ्रमण करने वाली होती हैं ।८९। कुछ पाण्डु वर्ण वाले गोल कपोल स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं । इसके विपरीत रोम कूपों से दूषित कपोल वाली स्त्रियाँ दूषित बतलायी गई हैं ।९०। अर्धचन्द्रमा के समान आकार वाले, रोमावलि रहित, समान, सुन्दर ललाट सुन्दरी स्त्रियों के भोग एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाले होते हैं ।९१। जैसा

---

१. नेत्रतुल्याभिः । २. रुजं गता । ३. वृत्ताक्षी ।

द्विगुणं परिणाहेन ललाटं विहितं च यत्। शिरः प्रशस्तं नारीणामधन्या हस्तिमस्तका ॥९२
सूक्ष्माः कृष्णा मृदुस्निग्धाः कुञ्जिताग्राः शिरोरुहाः। भवन्ति श्रेयसे स्त्रीणामन्ये स्युः क्लेशशोकदाः ॥९३
हंसकोकिलवीणालिशिखिवेणुस्वराः स्त्रियः। प्राप्नुवन्ति बहून्भोगान्भृत्यानाज्ञापयन्ति च ॥९४
भिन्नकांस्यस्वरा नारी खरकाकस्वरा च या। रोगं व्याधिं भयं शोकं दारिद्र्यं चाधिगच्छति ॥९५
हंसगोवृषचक्राह्वमत्तमातङ्गगामिनी। स्वकुलं द्योतयेन्नारी महिषी पार्थिवस्य च ॥९६
श्वशृगालगतिर्निन्द्या या च वायसवद्व्रजेत्। दासी मृगगतिर्नारी द्रुतगामी च बन्धकी ॥९७
फलिनी रोचना हेमकुङ्कुमप्रभ एव च। वर्णः शुभकरः स्त्रीणां यश्च दूर्वाङ्कुरोपमः ॥९८
मृदूनि मृदुरोमाणि नात्यन्तस्वेदकानि च। सुरभीणि च गात्राणि यासां ताः पूजिताः स्त्रियः ॥९९
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्। नालोमिकां नातिह्रस्वां न वाचाटां न पिङ्गलाम्॥१००
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्। न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥१०१
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्। तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥१०२
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः। स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥१०३

कि ललाट बतलाया गया है, विस्तार में उससे द्विगुणित शिर स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं। हाथी के समान विशाल शिर वाली स्त्री प्रशंसनीय नहीं समझी जाती है।९२। सूक्ष्म (महीन) काले, मृदुल चिकने, आगे की ओर कुञ्चित (घुंघराले) शिर के केश स्त्रियों के कल्याण के लिए होते हैं, इसके विपरीत जो हैं वे क्लेश और शोक देने वाले कहे जाते हैं।९३। हंस, कोकिल, वीणा, भ्रमर, मयूर और वेणु के समान स्वर वाली स्त्रियाँ बहुत भोग एवं ऐश्वर्य की अधिकारिणी होती हैं, वे नौकरों पर शासन चलाने वाली होती हैं।९४। जो स्त्री फूटे हुए कांसे के वर्तन के समान स्वर वाली एवं गधे और कौअे के समान स्वरवाली होती है वह रोग, शोक, व्यादि, भय एवं दरिद्रता को प्राप्त करने वाली होती है।९५। हंस, गौ, वृषभ, चक्रवाक एवं मतवाले हाथी के समान गमन करने वाली स्त्री अपने कुल को प्रकाशित करने वाली अथवा राजा की स्त्री होती है।९६। कुत्ते और सियार के समान गमन करने वाली स्त्री निन्दित मानी गई है, इसी प्रकार जो कौअे के समान चलती है वह भी निन्दनीय है। मृग के समान गमन करने वाली स्त्री दूसरे की दासी एवं शीघ्र गमन करने वाली व्यभिचारिणी होती है।९७। मेंहदी, हरिद्रा, गोरोचन, सुवर्ण, केसर और चम्पे के पुष्प के समान शरीर का वर्ण स्त्रियों के लिए कल्याणकारी होता है।९८। इसी प्रकार दूब के अंकुर के समान (गोरे) वर्ण भी स्त्रियों का प्रशस्त बतलाया गया है। मृदुल, मनोहररोमावलि से विभूषित अत्यन्त पसीना न होने वाले सुगन्धित शरीर जिन स्त्रियों के हों वे पूजनीय हैं।९९। कपिल (भूरे) वर्ण की कन्या का विवाह न करें। इसी प्रकार रुग्ण, अधिक अंगों वाली, लोम विहीन, वामनाकृति, वकवादिनी एवं पिंगल वर्णवाली कन्याओं के साथ विवाह नहीं करना चाहिये।१००। नदी, वृक्ष, नक्षत्र, पर्वत, पक्षी, सर्प, दासादि भाव व्यञ्जक तथा भयानक नाम जिन कन्याओं के हों उनके साथ भी विवाह नहीं करना चाहिये।१०१। मनोहर अंगोंवाली सुन्दर नाम से विभूषित, हंस एवं हाथी के समान गमन करने वाली, सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश एवं सूक्ष्म दांतों वाली कोमलाङ्गी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।१०२। प्रचुर धन-धान्य सम्पत्ति के समूह हों, गौ, अज, (बकरी) अवि (भेंड़) आदि दूध देने वाले पशुओं की भी अधिकता हो, किन्तु फिर भी इन दस कुलों को स्त्री सम्बन्ध करते हुए छोड़ देना चाहिये।१०३।

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् । क्षयामयाव्यपस्मारिश्वित्रकुष्ठिकुलानि च ।।१०४

पादौ सुगुल्फौ प्रथमं प्रतिष्ठौ जङ्घे द्वितीयं च सुजानुचक्रे ।
मेढ्रोरुगुह्यं च ततस्तृतीयं नाभिः कटिश्चेति चतुर्थमाहुः ।।१०५
उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्ठमथ स्तनान्वितम् ।
अथ सप्तममंसजत्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे ।।१०६
नवमं नयने च सभ्रुणी सललाटं दशमं शिरस्तथा ।
अशुभेष्वशुभं दशाफलं चरणं चरणाद्यशुभेषु शोभनम् ।।१०७
इदं महात्मा स महानुभावः शचीनिमित्तं गुरुरब्रवीद्द्विजाः ।
शक्रेण पृष्टः सविशेषमुत्तमं संलक्ष्यमुक्तं वरयोषलक्षणम्[1] ।।१०८

मत्सकाशात्पुनः श्रुत्वा लक्षणं पुरुषस्य च । यथाधुना भवद्भिस्तु श्रुतं मत्तो द्विजोत्तमाः ।।१०९
लक्षणेभ्यः प्रशस्तं तु स्त्रीणां सद्वृत्तमुच्यते । सद्वृतमुक्त्वा या स्त्री सा प्रशस्ता न च लक्षणैः ।।११०
ईदृग्लक्षणसम्पन्नां सुकन्यामुद्वहेत्तु यः । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा कीर्तिस्तत्र तिष्ठति नित्यशः ।।१११

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५।

क्रियाहीन, पौरुषरहित, वेदविहीन, अधिकरोमवाले, अर्श रोग वाले, क्षय रोगवाले, मृगी रोग वाले, सर्वदा किसी न किसी रोग में ग्रस्त रहने वाले, श्वेत कुष्ठ एवं गलित कुष्ठ वाले कुलों के साथ विवाह संस्कार न करे ।१०४। स्त्रियों के दोनों पैर और गुल्फ प्रथम प्रशंसनीय माने गये हैं । फिर सुन्दर जानु (घुटने) भाग से सुशोभित जंघाओं की प्रशंसा में द्वितीय स्थान हैं । फिर मेढ्र (लिङ्ग) उरु एवं गुह्याङ्ग का तृतीय स्थान है, कटि एवं नाभि का चतुर्थ स्थान बतलाया गया है ।१०५। पाँचवाँ स्थान सुन्दरता में उदर का है, स्तनमण्डल समेत हृदय का छठाँ स्थान है । कंधा और उसकी सन्धि का सातवाँ तथा दोनों ओठों का आठवाँ स्थान है ।१०६। नवाँ स्थान सुन्दर भौंहों से युक्त नेत्रों का तथा दसवाँ स्थान सुन्दर ललाट से सुशोभित शिर का है । इन चरणादि अङ्गों के उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार शुभ होने पर शुभ दशा एवं फल भोगना पड़ता है, अशुभ होने पर अशुभ भोगना पड़ता है ।१०७। द्विजवृन्द ! महानुभाव एवं परममहात्मा बृहस्पति ने इन्द्र द्वारा शची के लिए पूछे जाने पर स्त्रियों के इन समस्त लक्षणों को विशेषता पूर्वक बतलाया था ।१०८। हे द्विजवृन्द ! जिस प्रकार आप लोगों ने स्त्रियों के समस्त शुभाशुभ लक्षणों को सुना है उसी प्रकार पुरुषों के समस्त लक्षणों को मुझसे सुनकर अवगत कर लीजिये ।१०९। मैंने जिन शुभाशुभ फलदायक लक्षणों की ऊपर चर्चा की है, उनसे बढ़कर स्त्रियों के सदाचरण की प्रशंसा की गई है। अच्छे लक्षणों वाली भी स्त्री यदि सदाचरण विहीन है तो वह प्रशंसनीय नहीं है ।११०। इन उपर्युक्त शुभ लक्षणों से सुशोभित सुकन्या के साथ जो विवाह करता है, उसके गृह में सर्वदा ऋद्धि, वृद्धि एवं कीर्ति का निवास रहता है ।१११

श्री भविष्यमहापुराण के ब्रह्मचर्य पर्व में स्त्रीलक्षण वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

---

१. वरयोषाचिह्नमित्यर्थः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणसद्‌वृत्तवर्णनम्

शतानीकउवाच

सद्वृत्तं श्रोतुमिच्छामि देवस्त्रीणां सुविस्तरात् । उत्तमाधममध्यं च सम्बन्धे स्त्रीकृते यथा ॥१

सुमन्तुरुवाच

शतानीक महाबाहो ब्रह्मलोके पितामहः । उक्त्वा सलक्षणं स्त्रीणां सद्वृत्तं चोक्तवान्पुनः[१] ॥२
यथोक्तं ब्रह्मणां[२] तेषामृषीणां कुरुनन्दन । स प्रेयो वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥३
शृणुध्वं द्विजशार्दूलाः स्त्रीणां सद्वृत्तमादितः । वक्ष्ये युष्मानशेषं वै लोकानुग्रहकाम्यया ॥४
त्रिवर्गप्राप्तये वक्ष्ये स्त्रीवृत्तं गृहमेधिनाम् । प्राग्विद्यादीनुपादाय तैरर्थांश्च यथाक्रमम् ॥
विन्देत सदृशीं भार्यां शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥५
गृहाश्रमो हि निःस्वानां महत्येषा विडम्बना । तस्मात्पूर्वमुपादेयं वित्तमेव गृहैषिणा ॥६
वरं सोढा मनुष्येण तीव्रा नरकवेदना । न त्वेव च गृहे दृष्ट पुत्रदारक्षुधार्दितम् ॥७

अध्याय ६

स्त्रीलक्षण-सद्‌वृत्त वर्णन

शतानीक बोले—हे मुनि जी ! अब मैं उन देवस्त्रियों के सदाचार को सविस्तार सुनना चाहता हूँ स्त्रियों के सम्बन्ध में जिनका उत्तम, मध्यम एवं अधम कोटि का स्थान माना गया है ।१

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु शतानीक ! ब्रह्मलोक में स्त्रियों के लक्षण सुना चुकने के उपरान्त पितामह ब्रह्मा ने स्त्रियों के सदाचार के सम्बन्ध में पुनः बोले ।२। हे कुरुनन्दन ! जिस प्रकार उन ऋषियों एवं ब्राह्मणों से स्त्रियों के सदाचार के सम्बन्ध में कहा था, उस कल्याणदायक वचन को सुन कर ब्रह्मा ने कहा ।३। द्विजशार्दूलगण ! प्रारम्भ से स्त्रियों के सदाचार का श्रवण कीजिये । लोक पर अनुग्रह करने की इच्छा से मैं स्त्रियों के समस्त सदाचारों को बतला रहा हूँ ।४। गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों को विवर्ग धमार्थकाम की प्राप्ति हो जाय इस पवित्र उद्देश्य से ही मैं स्त्रियों के इन सदाचारों को बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम विद्या अदि का उपार्जन कर एवं उनसे धन प्राप्ति कर शास्त्रीय विधिपूर्वक अपने अनुरूप स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये ।५। निर्धन व्यक्तियों के लिए गृहस्थी एक बड़ी बाधा एवं बिडम्बना के रूप में दुःखदायिनी हो जाती है अतः गृहस्थी की इच्छा रखने वाले को प्रथमतः धन का ही उपार्जन करना चहिये ।६। मनुष्य को तीव्र नाटकीय वेदना सह लेना श्रेष्ठ है, पर घर में भूख से व्याकुल

---

१. स नः । २. विप्राणाम् ।

असम्भवे शिशुं दृष्ट्वा रुदन्तं प्रार्थनापरम् । वज्रसारमयं मन्ये हृदयं यन्न दीर्यते ॥८
साध्वीं भार्यां प्रियां दृष्ट्वा कुचैलां क्षुत्कृशीकृताम् । अस्य दुःखस्य तन्नास्ति सुखं यत्समतां व्रजेत् ॥९
रूक्षान्विवर्णान्क्षुधितान्भूमिप्रस्तरशायिनः । पुत्रदारान्निजान्दृष्ट्वा किमकार्यं भवेन्नृणाम् ॥१०
बाहूत्तरीयं क्षुत्क्षामं दृष्ट्वा दीनमुखं सुतम् । मृत्युरेवोत्सवः पुंसां व्यसनं जीवितं द्विजाः ॥११
परिसीदत्स्वपत्येषु दृष्ट्वा दीनमुखीं प्रियाम् । वज्रकार्यशरीरास्ते ये न यान्ति सहस्रधा ॥१२
तस्मादर्थविहीनस्य पुंसो दारपरिग्रहात् । कुतस्त्रिवर्गसंसिद्धिर्यातनैव हि तस्य सा ॥१३
अभार्यस्याधिकारोऽस्ति न द्वितीयाश्रमे यथा । तद्वदर्थविहीनानां सर्वत्र नाधिकारिता ॥१४
केचित्त्वपत्यमेवाहुस्त्रिवर्गावाप्तिसाधनम् । पुंसामर्थः कलत्रं च येऽन्ये नीतिविदो विदुः ॥१५
धर्मोऽपि द्विविधो यस्मादिष्टापूर्तक्रियात्मकः । स च दारात्मकः सर्वं ज्ञेयमर्थैकसाधनम् ॥१६
निजेनापि[1] दरिद्रेण लोको लज्जति बन्धुना । परोऽपि हि मनुष्याणामैश्वर्यात्स्वजनायते ॥१७
न दरिद्रं समीपेऽपि स्थितवन्तं प्रपश्यति । दूरस्थमपि वित्ताढ्यमादराद्भजते जनः ॥१८

पुत्र स्त्री का देखना उचित नहीं है ।७। असमर्थता में प्रार्थनापूर्वक किसी वस्तु के लिए लालायित होकर रोने वाले बालक को देखकर जो हृदय फट नहीं जाता वह मानो वज्र के सारभाग से रचा गया है ।८। अपनी साध्वी प्रियतमा को मलिन वस्त्र धारण किये हुए क्षुधा से दुर्बलाङ्गी देखने के समान संसार में कोई दुःख नहीं है जो इसकी समानता कर सके ।९। क्षुधा से पीड़ित रुखे मकान सुख पत्थर की शिला एवं भूमि पर शयन करने वाले अपने स्त्री पुत्रों को देखकर मनुष्य के लिए संसार में कुछ भी अकरणीय नहीं है ।१०। द्विजगण ! क्षुधा से अतिशय पीड़ित वस्त्रहीन दीनमुख पुत्र को देखकर पुरुष को मर जाना ही श्रेष्ठ है, ऐसा जीवन तो विडम्बना मात्र है ।११। बच्चों को क्षुधा से व्याकुल देख अपनी प्रियतमा जब अतिशय दीनमुखी हो जाती तो उसे देखकर जो सहस्रों टुकड़ों में चूर्ण नहीं हो जाता वह वज्र का शरीर है ।१२। इसलिए धनहीन पुरुष को विवाह करने से धर्मार्थकाम की सिद्धि भला किस प्रकार हो सकती है उसके लिए तो स्त्री केवल दुःख देने वाली ही होगी ।१३। जिस प्रकार स्त्री विहीन पुरुष को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का कोई अधिकार नहीं है उसी प्रकार धन विहीन पुरुषों का किसी भी कार्य में अधिकार नहीं है ।१४। कुछ लोग सन्तानों को ही त्रिवर्ग-धर्मार्थ काम की प्राप्ति में साधनभूत बतलाते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नीतिज्ञ जन हैं वे स्त्री और धन को ही त्रिवर्ग का साधक बतलाते हैं ।१५। धर्म भी इष्ट् अर्थात् अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि कार्य दूसरा पूर्व अर्थात् बावली, कुआ, तालाब, देवमंदिर धर्मशाला, बगीचा आदि का निर्माण करवाना ये दोनों धर्मकार्य स्त्री के बिना नहीं सम्पन्न हो सकते धन तो इन सबका मुख्य सहायक ही है, अतः दोनों को धर्मों का एक मात्र साधन धन को ही जानना चाहिये ।१६। लोग अपने ही दरिद्र भाई से लज्जा करते हैं, और दूसरी ओर ऐश्वर्य के कारण दूसरे के साथ भी जिसका अपने साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, स्वजन की भाँति व्यवहार करते हैं ।१७। अपने पड़ोस में भी रहने वाले दरिद्र को लोग नहीं पहचानते, दूसरी ओर

---

१. लोको निजोऽप्यपार्थस्य शत्रुर्भवति भूमिप—इति पाठान्तरम् ।

तस्मात्प्रयत्नतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत । स हि मूलं त्रिवर्गस्य गुणानां गौरवस्य[1] च ।।१९
सर्वेऽपि हि गुणा विद्याकुलशीलादयो नृणाम् । सन्ति तस्मिन्नसन्तोऽपि सन्ति सन्तोऽपि नासति ।।२०
शास्त्रं शिल्पं कलाः कर्म यच्चान्यदपि चेष्टितम् । साधनं[2] सर्वमर्थानामर्था धर्मादिसाधनाः ।।२१
साधनानां त्रिवर्गोऽस्ति तं विना केवलं नृणाम् । अजागलस्तनस्येव निधनायैव संभवः ।।२२
प्राक्पुण्यैर्विपुला सम्पद्धर्मकामादिहेतुका । भूयो धर्मेण सामुत्र तयां[3] तानिति[4] च क्रमः ।।२३
एकचक्रकमेतद्धि प्रोक्तमन्योन्यहेतुकम् । पूर्वपश्चिमबाहुभ्यामुत्तराधरमध्यमाः ।।२४
विज्ञाय मतिमानेवं यस्त्रिवर्गं निषेवते । संख्याशतसमायुक्तैरवाप्नोत्युत्तरोत्तरम् ।।२५
नाभार्यस्याधिकारोऽस्ति त्रिवर्गे निर्धनस्य वा । ना भार्यायामतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत् ।।२६
तस्मात्क्रमागतैरर्थैः स्वयं वाधिगतैर्युतः । क्रियायोग्यैः समर्थश्च कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।।२७
अनुरूपे कुले जातां श्रुतवित्तक्रियादिभिः । लभेतानिन्दितां कन्यां मनोज्ञां धर्मसाधनाम् ।।२८
पुमानर्धपुमांस्तावद्यावद्भार्यां न विदन्ति । तस्माद्यथाक्रमं काले कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।।२९

दूर निवास करने वाले धनिक की भी आदरपूर्वक सेवा करते हैं ।१८। इन सब बातों को जान कर मनुष्य को सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक धन सञ्चय करना चाहिये वही त्रिवर्ग का एकमात्र साधक है यही नहीं वह गौरव एवं समस्त गुणों का मूल स्थान है ।१९। विद्या कुलीनता, शील आदि मनुष्यों के सभी गुण धनवान् व्यक्तियों में न रहने पर भी रहते हैं, और दूसरी ओर निर्धन व्यक्तियों में ये रहने पर भी नहीं रहते ।२०। शास्त्र, शिल्प, कलाएँ, कर्म एवं संसार के जितने भी व्यापार हैं, वे सब धन प्राप्त करने के साधन हैं, और धन धर्मादि (पुण्य कार्यों) का साधन हैं ।२१। इसलिए यह धन ही त्रिवर्ग का साधनभूत है उसके बिना मनुष्य की उत्पत्ति बकरी के गले में लटकते हुए निरर्थक स्तनों की भाँति केवल मृत्यु के लिए है ।२२। पूर्व जन्म के महान पुण्यकर्मों से धर्मार्थकाम की साधनभूत विपुल धन सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और उस सम्पत्ति से धर्मादि पुण्य कार्य होते हैं । इस प्रकार ये दोनों धन और धर्मादि परस्पर आश्रित रहते हैं ।२३। ये दोनों एक ही चक्र के अवयव कहे जाते हैं इनका अन्योन्यहेतुक सम्बन्ध है । पूर्व और पश्चिम के बाहुओं से उत्तर अधर एवं मध्यम का ज्ञान होता है अर्थात् रथ के दोनों चक्र से उसके आगे पीछे और मध्य भाग का ज्ञान होता है । इस प्रकार जानबूझकर जो बुद्धिमान् त्रिवर्ग का अर्जन करता है वह पूर्ण सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर उत्तरोत्तर कल्याण एवं सुख का अनुभव करता है ।२४-२५। किन्तु इस त्रिवर्ग में स्त्री विहीन एवं धनविहीन का अधिकार नहीं है । धनविहीन का तो जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका स्त्री पर भी अधिकार नहीं है, अतः सर्वप्रथम धन का अर्जन करना चाहिए ।२६। अतः क्रमानुसार शनैः शनैः अर्जित किये गये अथवा बिना परिश्रम किये हुए प्राप्त पर्याप्त धन का संग्रह कर क्रियाओं को सम्पन्न करने में समर्थ बनकर स्त्री ग्रहण करना चाहिये ।२७। अपने समान विद्या, धन एवं क्रियाओं से सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने वाली मनोहर धर्म की साधन भूत प्रशंसनीय कन्या का ग्रहण करना चाहिये ।२८। पुरुष तब तक आधा पुरुष है जब तक वह पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता इसलिए उसे उपर्युक्त क्रम से उचित समय आने पर स्त्री को ग्रहण करना चाहिए ।२९।

---

१. रक्षणाय च । २. सम्पदा । ३. धर्मार्थौ ।

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः । अभार्योऽपि [1]नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु ।।३०
पत्नीपरिग्रहाद्धर्मस्तथार्थो बहुलाभतः । सत्प्रीतियोगात्कामोऽपि त्रयमस्यां विदुर्बुधाः ।।३१
त्रिधा विवाहसम्बन्धो हीनतुल्याधिकैः सह । तुल्यैः सह समस्तेषामितरौ नीचमध्यमौ ।।३२
असमैर्निन्द्यते सद्भिरुत्तमैः परिभूयते । तुल्यैः प्रशस्यते यस्मात्तस्मात्साधुतमो मतः ।।३३
कृत्वैवाधिकसम्बन्धमपमानं समश्नुते । न चैवमानतिं गच्छेन्नैव नीचैः सहेष्यते[2] ।।३४
उत्तमोऽपि च सम्बन्धो नीचैस्तत्समतां व्रजेत् । अतस्तं वर्जयेद्धीमान्निन्दितं सदृशोत्तमैः ।।३५
विजातीयैश्च सम्बन्धं सहेच्छन्ति न सूरयः । उभयोर्भ्रश्यते तेन यथा कोकिलया शुकः ।।३६
तद्भाति कुलबाह्यत्वाददश्यं चावमानतः । प्रतिपत्तेरशक्यत्वाच्चोत्तमोऽपि न शस्यते ।।३७
एकेऽपि परिहर्तव्या अन्ये परिहरन्त्युत । तस्माद्द्वावपि नैवेष्टौ सम्बन्धावधमोत्तमौ ।।३८
एकपात्रादिभिर्येषामुपचारैः परस्परम् । प्रत्यहं वर्धते स्नेहः सम्बन्धः सोऽभिधीयते ।।३९
यत्रावाहविवाहादावन्योऽन्याः प्रतिपत्तयः । स्पर्धयैव प्रवर्धन्ते तं सम्बन्धं विदुर्बुधाः ।।४०

जिस प्रकार एक चक्के का रथ और एक पंख का पक्षी अपना कार्य नहीं कर सकता, बेकार है, स्त्रीविहीन पुरुष भी सभी कार्यों में अयोग्य है ।३०। पत्नी के ग्रहण करने पर धर्म अनेक प्रकार के लाभ से धन एवं परस्पर सच्ची प्रीति से काम की प्राप्ति होती है इस प्रकार पण्डित लोग तीन प्रकार के विवाह सम्बन्ध स्त्री के ग्रहण में तीनों वर्गों की प्राप्ति बतलाते हैं ।३१। विवाह कर्म तीन प्रकार के बतलाये गये हैं, हीन, समान एवं उच्च के साथ । इनमें अपने बराबर वाले के यहाँ विवाह करने को समान और दोनों को नीच और मध्यम कहा है ।३२। असमान के यहाँ विवाह करने को साधुलोग निन्दित बतलाते हैं । उत्तम के यहाँ करने से अनादर होता है अतः तुला स्थिति वालों के साथ विवाह करने को सभी लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं ।३३। अपने से अधिकवाले के यहाँ सम्बन्ध करने से सर्वथा अपमान भोगना पड़ता है, अतः मनुष्य को ऐसे लोगों के साथ अपमान नहीं सहना चाहिये इसी प्रकार नीच स्थिति वाले के साथ भी उसे विवाह करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए ।३४। जिस प्रकार उत्तम के साथ सम्बन्ध वर्जनीय है उसी प्रकार (उत्तम को) नीचों के साथ सम्बन्ध करने से नीच बनना पड़ता है । यह सब जान बूझ कर बुद्धिमान् को उत्तम के समान ही नीच को भी वर्जित रखना चाहिये ।३५। पण्डितजन विजाति वालों के साथ सम्बन्ध करने की इच्छा नहीं करते क्योंकि विजातिवालों के साथ सम्बन्ध करने से दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं जैसे कोकिला के साथ शुक ।३६। अपने कुल से उच्चकुल के साथ सम्बन्ध होने के कारण यद्यपि नीच कुल वाला शोभा पाता है पर अपमान और सामर्थ्य के अभाव के कारण दुःख सहना पड़ता है इसलिए विवाह में उत्तम कुल वाला भी प्रशंसनीय नहीं है ।३७। एक होने पर भी नीच के या ऊँच के साथ विवाह संस्कार परिवर्जनीय है, अन्य सभी लोग ऐसे बेमेल विवाहों को वर्जित करते हैं, इसीलिए विवाह सम्बन्ध में उत्तम और अधम ये दोनों विवाह वर्जनीय हैं ।३८। जिन सत्पात्र के व्यवहारादि से परस्पर प्रेम प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है वही सम्बन्ध कहा गया है ।३९। जिनके विवाहादि के अवसरों पर एक दूसरे के गौरव एवं सम्मानादि की रक्षा के लिए स्पर्द्धा बढ़ती रहती है पण्डित लोग उसी को सम्बन्ध कहते

---

१. त्याज्यः सर्वेषु कर्मसु २. सम्बन्ध इति शेषः ।

व्यसनेऽभ्युदये वापि येषां प्राणैर्धनैरपि । सहैकप्रतिपत्तित्वं सम्बन्धानां स उत्तमः ।।४१
स्नेहव्यक्तौ मनुष्याणां द्वावेव निकषोपलौ । तथा कृतज्ञतायां च व्यसनाभ्युदयागमौ ।।४२
स च स्नेहो नृणां प्रायः समेष्वेव[1] हि दृश्यते । साम्यं चाप्युपगन्तव्यं वित्तशीलकुलादिभिः ।।४३
तस्माद्विवाहसम्बन्धं सख्यमेकान्तकारिणाम् । सदृशैरेव कुर्वीत नोत्तमैनाप्यनुत्तमैः[2] ।।४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
स्त्रीलक्षणसद्वृत्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

विवाह-धर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच[3]

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।।१
सहजो न भवेद्यस्या न च विज्ञायते पिता । नोपयच्छेत[4] तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ।।२
ब्राह्मणानां प्रशस्ता स्यात्सवर्णा दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः ।।३

हैं ।४०। अभ्युदय तथा संकट के अवसर पर जो परस्पर प्राणों एवं धनों से एक दूसरे की सहायता के लिए साथ साथ सन्नद्ध रहते हैं, वही सम्बन्धों में उत्तम माना जाता है ।४१। मनुष्यों की कृतज्ञता एवं स्नेह को प्रकट करने के लिए उस की दो कसौटी मानी गयी हैं, अभ्युदय और और संकटावस्था ।४२। मनुष्यों में वह स्नेह सम्बन्ध प्रायः समान स्थिति वाले के साथ ही होता है अतः धन, शील सदाचार एवं कुल में समान के साथ ही स्नेह सम्बन्ध भी करना चाहिए ।४३। इन सब बातों को जानकर विद्वान् पुरुष को मित्रता एवं विवाह सम्बन्ध सर्वदा समान स्थिति वाले के साथ ही करना चाहिये । उत्तम अथवा नीच स्थिति वाले के साथ नहीं ।४४

श्री भविष्यमहापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्रीलक्षण एवं सदाचार वर्णन नामक छठॉ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

विवाह धर्म वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—राजन् ! अपनी माता की सपिण्ड (सात पीढ़ी) तथा अपने पिता की सगोत्र कन्या को छोड़कर अन्य कन्याओं के साथ द्विजाति का मैथुन एवं विवाहादि संस्कार करना प्रशंसनीय माना गया है ।१। जिसका कोई सगा भाई न हो जिसके पिता का कोई पता न हो, बुद्धिमान् पुरुष को उस कन्या के साथ पुत्रिका की आशंका से विवाह नहीं करना चाहिये ।२। ब्राह्मण का विवाह संस्कार सवर्ण (ब्राह्मण) के यहाँ ही प्रशस्त माना गया है कामवश उसे अन्य तीनों वर्णों की कन्याओं के साथ भी क्रमशः विवाह करना बताया गया है किन्तु वे तीनों स्त्रियाँ नीच कही गयी हैं ।३।

---

१. तस्मिन्काले हि दृश्यते । २. नापि चाधमैः । ३. इतः प्रागेकस्मिन्पुस्तकेऽध्यायार्थकथानुसंधानार्थम्—"अथोत्रिविधसंबंधनिर्णयः" । ४. उद्वहेदित्यर्थः—'उपायम' इत्यात्मनेपदम् ।

क्षत्रस्यापि सवर्णा स्यात्प्रथमा द्विजसत्तमाः । द्वे चावरे तथा प्रोक्ते कामतस्तु न धर्मतः ॥४
वैश्यस्यैका वरा प्रोक्ता सवर्णा चैव धर्मतः । तथाऽवरा कामतस्तु द्वितीया न तु धर्मतः ॥५
शूद्रैव[1] भार्या शूद्रस्य धर्मतो मनुरब्रवीत् । चतुर्णामपि वर्णानां परिणेता द्विजोत्तमः ॥६
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः । कस्मिंश्चिदपि वृतान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥७
हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः । कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥८
शूद्रामारोप्य वेद्यां[2] तु पतितोऽत्रिर्बभूव ह । उतथ्यः पुत्रजननात्पतितत्वमवाप्तवान ॥९
शूद्रस्य पुत्रमासाद्य शौनकः शूद्रतां गतः । भृग्वादयोप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयुः ॥१०
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥११
देवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु । नादन्ति पितरो देवाः स च स्वर्गं न गच्छति ॥१२
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१३
चतुर्णामपि विप्रेन्द्राः प्रेत्येह च हिताहितम् । समासतो ब्रवीम्येष विवाहाष्टकमुत्तमम् ॥१४
ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१५

द्विजवर्य वृन्द ! इसी प्रकार क्षत्रिय के लिए भी धर्मानुसार क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह संस्कार करना प्रशस्त बतलाया गया है कामवश दो अन्य वर्ण वालों वैश्यों तथा शूद्रों के साथ भी उसे विवाह करने का विधान बतलाया गया है पर धर्मानुसार नहीं ।४। वैश्य के लिए सवर्ण कन्या के साथ विवाह करने का विधान है, उसे केवल एक वर्ण शूद्र की कन्या के साथ कामवश विवाह करने का विधान है धर्मानुमोदित नहीं ।५। शूद्र की स्त्री को शूद्रकुलोत्पन्ना ही होना चाहिये—ऐसा मनु ने बतलाया है । उत्तम द्विज ब्राह्मण, चारों वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकारी है ।६। किन्तु महान् आपत्ति काल में भी किसी परिस्थिति में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को शूद्र कुलोत्पन्न कन्या को स्त्री नहीं बनाना चाहिये ।७। द्विजाति वर्ग अज्ञानवश नीच कुलोत्पन्न स्त्रियों के साथ विवाह करके सन्ततियों समेत अपने कुल को भी शीघ्र ही शूद्र बना देते हैं ।८। ऐसी प्रसिद्धि है कि महर्षि अत्रि अपनी वेदी पर शूद्र को आरोपित करके पतित बन गये । उतथ्य पुत्र उत्पन्न करने के कारण पतित बन गये ।९। शौनक शूद्र के पुत्र को प्राप्त कर स्वयं शूद्र बन गये इसी प्रकार भृगु आदि भी पतित बन गये ।१०। शय्या पर शूद्रा स्त्री को आरोपित कर अर्थात् स्त्रीरूप में अंगीकार कर ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त हो जाता है उसमें पुत्र उत्पन्न करके वह ब्रह्मतेज से च्युत हो जाता है ।११। जो दैव, पितर और आतिथ्यादि कर्म को ऐसे शूद्र की प्रधानता में करते हैं उसके यहाँ पितर एवं देवगण भोजन नहीं करते हैं, और वह स्वयं स्वर्ग नहीं जाता ।१२। वृषली अर्थात् शूद्रा के फेन को पीने वाले निःश्वास से स्पष्ट तथा उससे उत्पन्न होने वाले का निस्तार नहीं होता ।१३

हे विप्रवर्यवृन्द ! चारों वर्णों को उभय लोक में सुख और दुःख देने वाले आठ विवाहों का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ सुनिये ।१४। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व राक्षस और सब से अधम पैशाच ये आठ प्रकार विवाह होते हैं ।१५

---

१. जातित्वाट्टाप् । २. शय्यां तु ।

ये यस्य धर्मा वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ । शृणुध्वं तद्विजश्रेष्ठाः प्रसवे च गुणागुणम् ॥१६
विप्रस्य[1] चतुरः पूर्वान्क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् । विट्शूद्रयोस्तु त्रीनेव विद्याद्धर्मानराक्षसान् ॥१७
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥१८
क्षत्रियाणां त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ[2] स्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथञ्चन ॥१९
पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ । गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥२०
आच्छाद्य चार्चयित्वा तु श्रुतशीलवते स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥२१
वितते चापि यज्ञे तु कर्म कुर्वति चार्त्विजि । अलङ्कृत्य सुतादानं दैवो धर्म उदाहृतः ॥२२
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदान विधिवदार्षो धर्म उच्यते ॥२३
सहोभौ चरतं धर्ममिति वाचानुभाष्य तु । कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥२४
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायाश्चैव शक्तितः । कन्याप्रदानं स्वच्छन्दादासुरो धर्म उच्यते ॥२५
इच्छयान्योऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥२६

जिस वर्ण का जो विवाह कहा गया है उनकी संतानों में दोष हैं, उन्हें आप सुने ! ।१६। ब्राह्मणों के लिए पहले वाले चार (ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य) विवाह संस्कार प्रशस्त बतलाये गये हैं और क्षत्रिय के लिए पिछले चार असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच विवाह करणीय है वैश्यों और शूद्रों को राक्षस विवाह छोड़कर पिछले चार विवाहों में से शेष तीन ही विहित माने गये हैं ।१७। पण्डितों ने पूर्व चार विवाहों को ही ब्राह्मणों के लिए प्रशस्त बतलाया है, राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त माना है असुर विवाह वैश्य और शूद्रों के लिए विहित है ।१८। इस लोक में क्षत्रियों के लिए तीन विवाह धर्मानुमोदित है किन्तु पैशाच और आसुर ये दो विवाह उसके लिए अधर्ममय हैं, अतः किसी भी अवस्था में इन दो विवाहों को उसे नहीं करना चाहिये ।१९। पूर्वकथित दो दो विवाहों को परस्पर सम्मिलित कर के अथवा पृथक् पृथक् करके भी करने का विधान है । गान्धर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रियों के लिए धार्मिक बतलाये जाते हैं ।२०। आठों विवाहों के लक्षण श्रुति ज्ञान सम्पन्न एवं सुशील वर को स्वयं अपने घर बुलाकर सम्मानपूर्वक पूजित एवं वस्त्र से आच्छादित कर कन्या दान करने की विधि को ब्राह्म धर्म (विवाह) कहा गया है ।२१। विवाह यज्ञ के व्याप्त होने पुरोहित के विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋतुक कन्या को अलंकार वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत कर कन्या देना देव धर्म (विवाह) कहा गया है ।२२। धर्म पूर्वक वर से एक अथवा दो गौ के जोड़े को लेकर विधिपूर्वक दिये गये कन्या दान को आर्य धर्म (विवाह) कहा जाता है ।२३। तुम दोनों एक साथ धर्माचरण करो—ऐसा कहकर वर और कन्या को एक साथ रहने के नियमादि की शिक्षा देकर विधिपूर्वक दिये गये कन्यादान को प्राजापत्य विवाह माना गया है ।२४। अपनी सामर्थ्य के अनुकूल कन्या के बन्धुओं तथा कन्या को धन देकर स्वच्छन्दता पूर्वक कन्या दान करने की विधि को असुर विवाह कहा गया है ।२५। कन्या और वर की इच्छा से कामवासना जनित जो परस्पर अन्योन्य संयोग होता है इसे गान्धर्व विवाह जानना चाहिये ।

---

१. षडानुपूर्व्या विप्रस्य । २. द्वौ धर्म्यौ वैश्यशूद्रयोः ।

हृत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥२७
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां च रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः ॥२८
जलपूर्वं द्विजाग्र्याणां कन्यादानं प्रशस्यते । इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥२९
यो यस्यैषां विवाहानां विभूनां कीर्तितो गुणः । तं निबोधत वै विप्राः सम्यक्कीर्तयतो मम ॥३०
कुलानि दश पूर्वाणि तथान्यानि दशैव तु । स हि तान्यात्मना चैव मोचयत्येनसो ध्रुवम् ॥३१
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृद्दैवोढाजं सुतं शृणु । दैवोढाजः सुतो विप्राः सप्त सप्त परावरान् ॥
आर्षोढाजः सुतः स्त्रीणां पुरुषांस्तारयेद्द्विजः ॥३२
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥३३
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः । पुत्रवन्तोऽथ धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥३४
इतरेषु निबोधध्वं नृशंसानृतवादिनः । जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः[1] सुताः ॥३५
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा । निन्दितैर्निंदिता नृणां तस्मान्निद्यान्विवर्जयेत् ॥३६
करग्रहणसंस्काराः सवर्णासु भवन्ति वै । असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ॥३७

।२६। बन्धनों को तोड़कर भवनादि को फोड़ फाड़कर पिता के घर से चिल्लाती रोती हुई कन्या को जबरदस्ती अपने गृह उठा ले जाने को राक्षस विवाह कहते हैं ।२७। एकान्त में सोई हुई मद से उन्मत अथवा प्रमाद से दूषित स्त्री के साथ जो छिपकर समागम किया जाता है वह पापमय आठवाँ पैशाच नामक विवाह कहा गया है ।२८। ब्राह्मण का कन्यादान जल संयुक्त प्रशस्त कहा जाता है अन्य वर्ण वालों में एक दूसरे की इच्छा से चाहे जिस किसी पदार्थ को लेकर किया जा सकता है ।२९। हे विप्रगण ! इन सामर्थ्यशील विवाहों में जिसका जैसा गुण बतलाया गया है उसे मैं अच्छी तरह बतला रहा हूँ सुनिये ।३०। ब्राह्म विवाह से उत्पन्न सत्कर्मपरायण पुत्र दस पूर्वज एवं दस पीछे उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ स्वयं अपने को भी महान पापकर्मों से उबारता है । ऐसा निश्चय मानिये ।३१। अब देव विवाह से उत्पन्न होने वाले पुत्र को सुनिये । विप्रवृन्द ! वह देवविवाह से उत्पन्न होने वाला धर्मपरायण पुत्र सात पूर्वज एवं सात बाद में उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ अपने को उबारता है । हे द्विजवृन्द ! इसी प्रकार आर्ष विवाह से विवाहित स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र भी सात पूर्वज एवं सात पश्चात् की पीढ़ियों का उद्धार से उत्पन्न पुत्रों के गुण ब्राह्म आदि विवाह करता है ।३२। ब्राह्म आदि चार विवाहों में क्रमशः उत्पन्न होने वाले पुत्र गण ब्रह्मतेजोमय, शिष्टानुमोदित, रूपवान्, पराक्रमी, गुणवान्, धनवान, यशस्वी, पुत्रवान् एवं धार्मिक होते हैं वे एक सौ वर्ष की दीर्घायु तक जीवित रहने वाले होते हैं ।३३-३४। अब अन्य चार विवाहों से उत्पन्न होने वाले पुत्रों को सुनिये । वे दूषित विवाहों से उत्पन्न होने वाले पुत्र गण मिथ्यावादी ब्राह्मण एवं धर्म से द्वेष रखने वाले होते हैं ।३५। अनिन्दित विवाहों से विवाहित स्त्रियों से सन्ततियाँ भी अनिन्दित होती हैं । इसी प्रकार निन्दित विवाहों से निन्दित संततियाँ पैदा होती हैं । अतः मनुष्यों को इन निन्दित विवाहों से वर्जित रहना चाहिये ।३६। यह निश्चय है कि सवर्ण कन्याओं के साथ पाणिग्रहण संस्कार होता है असवर्ण कन्या के साथ विवाह करते समय इन वस्तुओं को ग्रहण करना

---

१. परं ब्रह्मद्विषः ।

बाणः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ।।३८
न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि । गृह्णन्हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ।।३९
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः । नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ।।४०
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव[1] तत् । अल्पो वापि महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ।।४१
यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः । अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ।।४२
इत्थं दारान्समासाद्य देशमग्र्यं समावसेत् । ब्राह्मणो द्विजशार्दूल य इच्छेद्विपुलं यशः ।।४३

ऋषय ऊचुः

को देशः परमो ब्रह्मन्कश्च पुण्यो मतस्तव । प्रवसन्यत्र विप्रेन्द्र यशः प्राप्नोति कञ्जज ।।४४

ब्रह्मोवाच

न[2] हीयते यत्र धर्मश्चतुष्पात्स कलो द्विजाः । स देशः परमो विप्राः स च पुण्यो मतो मम ।।४५
विद्वद्भिः सेवितो धर्मो यस्मिन्देशे प्रवर्तते । शास्त्रोक्तश्चापि विप्रेन्द्राः स देशः परमो मतः ।।४६

चाहिये—यही विधि जाननी चाहिये ।३७। असवर्ण विवाह के अवसर पर क्षत्रिय कन्या को बाण धारण करना चाहिये वैश्य कन्या को एक चाबुक ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार उत्कृष्ट जातिवालों के साथ विवाह होते समय शूद्र कन्या को वस्त्र का छोर (अंचल) ग्रहण करना चाहिये ।३८। विद्वान् कन्या पिता को चाहिये कि वह रत्ती भर का किसी प्रकार का शुल्क जामाता से न ग्रहण करे लोभवश शुल्क ग्रहण करने पर वह अपनी सन्तान का विक्रय करता है ।३९। अज्ञान वश जो पिता बन्धु आदि परिवार के लोग कन्या के कारण मिले हुए धन का उपभोग करते हैं अथवा उसके कारण मिले हुए वस्त्र को ब्राह्मणादि धारण करते हैं वे पापी अधोगति को प्राप्त होते हैं ।४०। कुछ लोगों ने आर्य विवाह में शुल्क रूप में जो गौ के जोड़े देने की प्रथा बतलाई है वह झूठी है चाहे अल्प मात्रा में हो या अधिक मात्रा में हो वह भी एक विक्रय ही होता है ।४१। वर द्वारा दिये गये कन्याओं के धन को दान में उनके बंधु आदि कुछ शुल्क नहीं लेते वह विक्रय नहीं कहलाता क्योंकि वह उस कन्या के सत्कार में दिया गया है और वही उसके साथ परम दया और कृपा है ।४२। हे विप्रशार्दूल ! इस प्रकार जो ब्राह्मण विपुल यश का अभिलाषी हो उसे उपर्युक्त विधियों से स्त्री को अंगीकार कर किसी श्रेष्ठ देश में आवास करना चाहिये ।४३

ऋषियों ने कहा—पंकजोद्भव ! ब्रह्मन् ! कौन से देश परम पुण्यप्रद तथा उत्कृष्ट माने गये हैं जहाँ पर निवास करने वाला परम यश का भाजन होता है ।४४

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द ! जहाँ पर धर्म अपनी सम्पूर्ण भाषाओं तथा चारों चरणों से हीनता को नहीं प्राप्त होता है वही देश परम श्रेष्ठ तथा पुण्य प्रद माना गया है ।४५। हे विप्रेन्द्रवृन्द ! जिस पुनीत देश में विद्वान् पुरुषों द्वारा आचरित तथा शास्त्र सम्मत धर्म का प्रचलन रहता है वह देश परम श्रेष्ठ माना गया है ।४६

---

१. महर्षयः । २. महीयते ।

ऋषय ऊचुः

विद्वद्भिः सेवितं धर्मं शास्त्रोक्तं च सुरोत्तम । वदास्मासु सुरश्रेष्ठ कौतुकं परमं हि नः ॥४७

ब्रह्मोवाच

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥४८
कामात्मता न प्रशस्ता न वेहास्त्यप्यकामता । काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥४९
सङ्कल्पाज्जायते कामो यज्ञाद्यानि च सर्वशः । व्रताः नियमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥५०
कामादृते क्रियाकारी दृश्यते नेह कर्हिचित् । यद्यद्धि कुरुते कश्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥५१
निगमो[1] धर्ममूलं स्यात्स्मृतिशीले तथैव च । तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥५२
सर्वं तु समवेक्षेत निश्चयं ज्ञानचक्षुषा । श्रुतिप्राधान्यतो विद्वान्स्वधर्मे निवसेत वै ॥५३
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्सदा[2] नरः । प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम्[3] ॥५४
श्रुतिस्तु वेदो[4] विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वार्थेषु मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥५५
योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥५६
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥५७

ऋषियों ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! देवेश ! विद्वान पुरुषों द्वारा आचरित तथा शास्त्र सम्मत धर्मों को सुनने के लिए हमारे मन में बड़ा कुतूहल हो रहा है कृपया कहिये ।४७।

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! राग द्वेष विहीन सद् विद्वान् पुरुषों द्वारा आचरित एवं अपने हृदयानुमत धर्म को मैं बतला रहा हूँ सुनिये ।४८। इस लोक में फल की इच्छा कर के कर्मो को प्रारम्भ करने की विधि प्रशस्त नहीं मानी गई है और न इच्छा रहित कर्मों की ही प्रशंसा की गई है क्योंकि काम्य कर्मों का विधान भी वेदानुमत है और निष्काम कर्मयोग भी वैदिक है ।४९। संकल्प से कामना की उत्पत्ति होती है यज्ञादि कार्यों में सर्वत्र इस संकल्प का अस्तित्व रहता है यही नहीं व्रत, नियम एवं अन्य धर्म कार्य भी संकल्प से उत्पन्न होने वाले कहे जाते हैं ।५०। इस लोक में कहीं पर इच्छा अथवा कामना के बिना किसी कर्म में प्रवृत्त होने वाला कोई नहीं दिखाई पड़ता । मनुष्य जो कुछ भी कार्य करता है वह सब कामना की ही चेष्टा से करता है ।५१। सभी धर्मो के मूल वेद हैं स्मृतियाँ हैं सत्पुरुषों द्वारा आचरित शील सदाचार एवं जिन कर्मों से अपनी आत्मा को वास्तविक सन्तोष हो ऐसे कर्म इन सबको ज्ञान नेत्र से भली भाँति देखकर धर्म का निश्चय किया जाता है । इन सब पर ध्यान रखकर भी विद्वान् पुरुष को श्रुतियों (वेदों) को विशेषता देते हुए अपने धर्म में विश्वास रखना चाहिए ।५२-५३। श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित धर्म का सर्वदा पालन करते हुए मनुष्य इस लोक में परम कीर्ति उपार्जित कर इन्द्र लोक (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ।५४। श्रुति को वेद एवं स्मृति को धर्मशास्त्र जानना चाहिए । सभी प्रकार के कार्यों में इन दोनों से मीमांसा कर लेनी चाहिए । क्योंकि सभी धर्म-कार्य इन्हीं दोनों से सुशोभित होते हैं ।५५। जो द्विज हेतुवाद का आश्रय लेकर इन दोनों वेदों तथा स्मृतियों की अवहेलना करता है, सज्जनों को चाहिए कि उसे समाज से बहिष्कृत कर दे, क्योंकि वह वेद निन्दक नास्तिक हैं ।५६। विप्रवृन्द ! वेद स्मृति सदाचार एवं अपनी आत्मा के अनुकूल प्रिय कार्य ये चारों धर्म के साक्षात् लक्षण कहे गये हैं ।५७।

---

१. नियमा धर्ममूलं स्युः । २. हि मानवः । ३. ब्रह्मसलोकताम् । ४. धर्मः ।

धर्मज्ञानं भवेद्विप्रा अर्थकामेष्वसज्जताम् । धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणान्निगमं परम् ।।५८
निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः । अधिकारो भवेत्तस्य वेदेषु च जपेषु च ।।५९
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्[1] । तदेव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।।६०
यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ।।६१
कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनयः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरम् ।।६२
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षन्ति पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।६३
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।।६४
आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ।।६५
अटते यत्र कृष्णा गौर्मृगो नित्यं स्वभावतः । स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ।।६६
एतान्नित्यं शुभान्देशान्संश्रयेत द्विजोत्तमः । यस्मिन्कस्मिश्च निवसेत्पादजो[2] वृत्तिकर्शितः ।।६७
प्रकीर्तितेयं धर्मस्य बुधैर्योनिर्द्विजोत्तमाः । सम्भवश्चास्य सर्वस्य समासान्न तु विस्तरात् ।।६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि विवाहधर्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७।

एवं काम में अतिशय अनुरक्त न रहने वाले और वास्तविक धर्म को जानने के लिए इच्छुक लोगों को ही धर्म का वास्तविक ज्ञान होता है । ऐसे लोगों के लिए सभी प्रमाणों में निगमों अर्थात् वेदों का प्रमाण सर्वश्रेष्ठ माना गया है ।५८। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक के सारे संस्कार जिसके लिए मंत्रोच्चारण पूर्वक विहित माने गये हैं । उसी का अधिकार वेदों में और जपों में भी माना गया है ।५९। सरस्वती और दृषद्वती नामक देव नदियों के बीच की जो भूमि है, वह पवित्र देश ब्रह्मावर्त के नाम से कहा जाता है ।६०। जिस देश में जो आचार व्यवहार पुरातन काल से परम्परा में बद्ध होकर चले आते हों, वे ही उस देश के रहने वाले चारों वर्णों के तथा वर्ण संकरों के सदाचार कहे जाते है ।६१। कुरुक्षेत्र मत्स्य पंचाल और सूरसेन ये ब्रह्मावर्त के बाद ब्रह्मर्षियों के प्रदेश कहे गये हैं ।६२। इन देशों में उत्पन्न होने वाले अग्रजन्मा ब्राह्मणों से संसार के सभी मनुष्यगण आकर अपने-अपने चरित्रों की शिक्षा प्राप्त करें ।६३। हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में विनशन अर्थात कुरुक्षेत्र के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम का सारा प्रदेश 'मध्य देश' के नाम से विख्यात है ।६४। पूर्व में समुद्र पर्यन्त तथा पश्चिम में समुद्र पर्यन्त विस्तृत हिमालय तथा विन्ध्याचल इन दोनों पर्वतों के मध्यभागस्थ प्रदेश को पण्डित जन 'आर्यावर्त' नाम से जानते हैं ।६५। जिस देश में कृष्णा गौ एवं कृष्ण मृग सम्भवतः नित्य विचरण करते हों वह याज्ञिक यज्ञ करने योग्य देश है इसके अनन्तर म्लेच्छ देश हैं ।६६। उत्तम ब्राह्मण को उपर्युक्त कल्याण मय देशों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये । चरणों से उत्पन्न होने वाले शूद्र अपनी जीविका की सुविधा से चाहे जिस देश में निवास करे उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।६७। द्विजवर्यवृन्द ! पण्डित जनों ने धर्म ज्ञान प्राप्त करने की यही शिक्षा बतलाई है उसे बतला चुका हूँ और सभी के उत्पन्न होने की कथा भी अति विस्तार में नही प्रत्युत संक्षेप में कह चुका हूँ ।६८

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में विवाह धर्मवर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

---

१. गिरिनद्योः । २. ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितः ।

अथाष्टमोऽध्यायः

विवाहधर्मेषु स्त्रीविषये नरवृत्तवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोधत । गदतो द्विजशार्दूल विस्तराच्छास्त्रतस्तथा ॥१
वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । शुभदेशाश्रयश्चैव पत्नी वैवाहिकी गृहे ॥२
स्वाश्रयेण विना शक्यं न यस्माद्रक्षणादिकम् । वित्तानामिव दाराणामतस्तद्विधिरुच्यते ॥३
हेतवो हि त्रिवर्गस्य विपरीतास्तु[१] मानद । अरक्षणाद्भवन्त्यस्मादमीषां रक्षणं मतम् ॥४
निसर्गात्पुंस्यसन्तोषाद्गुणदोषविमर्षतः । दुष्टानां चापि संसर्गाद्रक्ष्या एव च योषितः ॥५
पुरुषस्थानवेश्मानि त्रिविधं प्राहुराश्रयम् । वित्तानां रक्षणाद्यर्थमपूर्वाधिगमाय च ॥६
कुलीनो नीतिमान्प्राज्ञः सत्यसन्धो दृढव्रतः । विनीतो धार्मिकस्त्यागी[२] विज्ञेयः पुरुषाश्रयः ॥७
नगरे खर्वटे खेटे ग्रामे चापि क्रमागते । यात्रावशाद्वा निवसेद्धार्मिकाद्यजनान्विते ॥८

अध्याय ८

स्त्रियों के दुष्ट और अदुष्ट स्वभाव की परीक्षा के साथ समुचित व्यवहार कथन तथा मानव चरित्र वर्णन

ब्रह्मा बोले—द्विजशार्दूल ! अब इसके उपरान्त गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों को जो जो कुछ करना चाहिये शास्त्र सम्मत उन समस्त गृहस्थ कर्तव्यों को मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ सुनिये ।१। (गृहस्थ को) वैवाहिक अग्नि में विधिपूर्वक समस्त गृह्य कर्म करने चाहिये। घर में विवाहिता पत्नी उस स्थान में रहे ।२। अपने आश्रय के बिना स्त्रियों की रक्षा उसी प्रकार नहीं की जा सकती जिस प्रकार (आश्रम के बिना) धन सम्मान आदि की अतः स्त्रियों की रक्षा आदि के नियम बतला रहा हूँ ।३। हे मानियों को मान देने वाले ! ये स्त्रियाँ जिस प्रकार त्रिवर्ग धर्मार्थ काम देने वाली है उसी प्रकार अच्छी तरह रक्षा न किये जाने पर उक्त त्रिवर्ग को नष्ट कर देने वाली भी होती हैं अतः इनकी रक्षा करनी चाहिए ।४। निवास, स्वभाव, दोष विमर्ष में स्वाभाविक असन्तोष, भावना, गुणदोष के व्यत्यय एवं दुष्टों के संसर्ग से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये ।५। पुरुष स्थान और घर ये तीन स्त्रियों के आश्रय स्थल कहे गये हैं । धन सम्पत्ति आदि की रक्षा एवं अपूर्व की प्राप्ति उपर्युक्त तीन प्रकार के आश्रम कहे गये हैं ।६। कुलीन, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, सत्य प्रतिष्ठा, दृढ़व्रत, विनीत, धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न एवं त्यागी पुरुष को आश्रम के योग्य समझना चाहिये ।७। यात्रा के प्रसंग में धार्मिक जनों से मुक्त खर्वट (कस्बा) खेट (कस्बे से छोटा सा ग्राम) एवं ग्राम क्रमशः इन्हीं में से किसी को निवास-स्थान के योग्य

---

१. विपरीतार्थसाधकाः । ७. स्वामी ।

गुरुणानुमतस्तत्र ग्रामण्यादिजनेन वा । प्रतिवेश्याद्यबाधेन शुद्धं कुर्यान्निवेशनम् ॥९
द्वारचत्वरशालानां[1] सर्वकारुकवेश्मनाम् । द्यूतसूनासुरावेशनटराजानुजीविनाम् ॥१०
पाखण्डदेववीथीनां राजमार्गकुलस्य च । दूरात्सुगुप्तं कर्तव्या जीविका विभवोचिता ॥११
सापिधानैकनिष्काशं शुद्धपृष्ट समन्ततः । सद्वृत्ताप्तजनाकीर्णमदुष्टप्रातिवेशिकम् ॥१२
प्रागुदक्प्रवणे देशे वास्तुविद्याविधानतः । प्रविभक्तक्रियाकाङ्क्षं सर्वर्तुकमनोहरम् ॥१३
अर्चास्नानोदकागारगोष्ठागारमहानसैः । युक्तं गोवाजिशालाभिः सदासीभृत्यकाश्रयैः ॥१४
बहिरन्तः पुरस्त्रीकं सर्वोपकरणैर्युतम् । विभक्तशयनोद्देशमाप्तवृद्धैरधिष्ठितम् ॥१५
अरक्षणाद्धि दाराणां वर्णसङ्करजादयः । दृष्टा हि बहवो दोषास्तस्माद्रक्ष्याः सदा स्त्रियः ॥१६
न ह्यासां प्रमदं दद्यान्न स्वातन्त्र्यं न विश्वसेत् । विश्वस्तवच्च चेष्टेत न्याय्यं भर्त्सनमाचरेत् ॥१७
नाधिकारं क्वचिद्दद्यादृते पाकादिकर्मणः । स्त्रीणां ग्रामीणवत्ता हि भोगायालं सुशासिता ॥१८
नित्यं तत्कर्मयोगेन ताः कर्तव्या निरन्तराः । इत्येवं सर्वदाः व्याप्तेः स्यादविद्यनिराश्रया ॥१९

समझना चाहिये ।८। इन उपर्युक्त स्थानों में से किसी एक में गुरुजनों की अनुमति तथा प्रमुख लोगों की सहायता प्राप्त कर पड़ोसियों को किसी प्रकार की असुविधा न देते हुए निर्दोष निवास का निर्माण करना चाहिए ।९। प्रवेश द्वार, चौराहा, राजभवन सभी प्रकार के कारीगरों के मकान द्यूतकर्म में निरत रहने वालों के निवास हिंसक प्रवृत्ति वालों के निवास वेश्या नट एवं राजकर्मचारियों के निवास पाखण्डी लोगों के आवास देवमन्दिर की गली राजमार्ग एवं राजाकुल के लोगों के निवास स्थल से बहुत दूर, अपनी शक्ति के अनुसार सुरक्षित जीविका बनानी चाहिए ।१०-११। छाजयुक्त एक द्वार वाले भवन का जो चारों ओर से स्वच्छ दिखाई पड़े, निर्माण करना चाहिये वह ऐसे स्थान पर हो जिसके चारों ओर सज्चरित्र तथा आप्त लोगों की बस्ती हो, विशेषतया पड़ोसी दुष्ट स्वभाव वाले न हो ।१२। भवन का निर्माण ऐसी जमीन में करना चाहिए जो पूर्व अथवा उत्तर की ओर ढालू हो, वास्तु विद्या के अनुसार उसका इस प्रकार से निर्माण होना चाहिए जिसमें प्रत्येक कार्यों के लिए अलग-अलग सभी ऋतुओं में मनोहर कमरे बन सकें। जैसे पूजा गृह (देवगृह) स्नानगृह, जलागार, गोशाला, रसोई घर, अश्वशाला, दासी एवं नौकरों के गृह स्त्रियों के अन्तःपुर, बाहरी गृह आदि सभी अलग-अलग से सभी सामग्रियों समेत बनाये जा सकें। स्त्रियों का शयनागार सबसे अलग सुरक्षित स्थान में होना चाहिए जहाँ पर श्रेष्ठ वृद्ध जनों का निवास हो ।१३-१५। क्योंकि स्त्रियों की सुरक्षा के बिना वर्णसंकर सन्तान आदि अनेक दोष देखे जाते हैं, अतः सर्वदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए ।१६। इनको कभी उन्मादक वस्तुएँ नहीं देनी चाहिए इसी प्रकार न तो कभी स्वतन्त्रता देनी चहिए और न पूर्णरूपेण विश्वास ही करना चहिए। सर्वदा विश्वस्त की भाँति व्यवहार तो करना चाहिए किन्तु अवसर-अवसर पर समुचित भर्त्सना करते रहना चाहिए ।१७। भोजनादि बनाने के कार्यों को छोड़कर कभी इन्हें कोई अधिकार नहीं देना चाहिए। अनुशासन के भीतर रहने वाली स्त्रियों की गृहस्थी के कार्यों की निपुणता ही भोग के लिए पर्याप्त है ।१८। उन्हें सर्वदा किसी न किसी काम में लगे रहना चाहिए किसी समय भी बैठकर व्यर्थ समय नहीं बिताना चाहिये। इस प्रकार से गृहस्थ का गृह अविद्या एवं अलक्ष्मी से रहित हो

---

१. द्वारचत्वरनागाना शस्त्रकारकवेश्मनाम् । अतिन्यूनावरावेशनटरंगानुजीविनाम् । पाखंडदेव-तीर्थानाम् ।

दौर्गत्यमतिरूपं[1] चाप्यसत्सङ्गः स्वतन्त्रता । पानाशनकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता[2] ॥२०
कुहकेक्षणिकामुण्डाभिक्षुकीसूतिकादिभिः । गोप्रसङ्गैस्तथा [3]सद्भिर्लिङ्गियाचकशिल्पिभिः ॥२१
संवाहोद्यानयात्रासूद्यानेष्वामन्त्रणादिषु । प्रसङ्गस्तीर्थयात्रार्थं धर्मेषु प्रकटेषु च ॥२२
विप्रयोगः सदा भर्त्रा तज्ज्ञातिकुलनिःस्वता । अमाधुर्यकदर्यत्वे भृशं पुंसां च वाच्यता ॥२३
अतिक्रौर्यमतिशान्तिरत्यन्ताभीतिपातनम् । स्त्रीभिर्जितत्वमत्यर्थं सत्यं तास्ताः सदोषताः ॥२४
स्त्रीणां[4] पत्युरधीनत्वात्पुमानेव हि निन्द्यते । भर्तुरेव हि तज्जाड्यं यद्भृत्यानामयोग्यता ॥२५
तस्माद्यथोदितास्त्वेता रक्ष्याः शासनताडनैः । ताडनैश्च यथाकालं यथावत्समुपाचरेत् ॥२६
परिगृह्य बहून्दारानुपचारैः समो भवेत् । यथाक्रमोचितैः कर्म दानसत्कारवासनैः ॥२७
प्रथमोऽभिजनो धर्मो योग्यत्वं च सुपुत्रता । पक्षे वित्तं विशेषस्त्रीणां मानस्तत्कारणं तथा ॥२८
तस्मान्मानो न कर्तव्यो हेयश्चापि न तत्कृतः । गुरुत्वे लाघवे वापि सतां कार्यं निबन्धनम् ॥२९
आकस्मिके प्रयुञ्जानः प्रेक्षावान्मानलाघवे । स यत्किञ्चनकारित्वाच्छ्लाघ्यमेवैति लाघवम् ॥३०

जाता है।१९। घर में दुर्गति (दरिद्रता) अत्यन्त सुन्दर रूप असज्जनों की संगति, स्वतंत्रता, मधुपान, सुन्दर भोजन, कथा एवं गोष्ठी को अधिक पसन्द करने की आदत बिना, किसी काम के बैठे रहना, मेला आदि में जाने की विशेष रुचि, भिक्षुकी, कुटनी, नटी, दाई आदि दुष्ट स्त्रियों की संगति, संन्यासी, भिक्षुक, शिल्पकार एवं असत्पुरुषों की संगति अथवा अधिक समागम, वाहन पर आरोहण, उद्यान, क्रीड़ा यात्रा तथा निमंत्रणादि में शरीक होना तीर्थयात्रा एवं धर्म कार्य के प्रसंग से बहुत बाहर घूमना सर्वदा पति का वियोग जाति अथवा कुल की निर्धनता रूखा व्यवहार, कायरता तथा पति की सर्वदा निन्दा सुनते रहना, अतिशय क्रूरता अतिशय शान्ति अतिशय भय एवं अतिशय पतन तथा तुरन्त पराजित होने की अशक्ति ये सब स्त्रियों के लिए परम दोषकारी कारण है।२०-२४। स्त्रियों के अधीन रहने वाला पति निन्दा का पात्र होता है यह भी स्वामी की अयोग्यता अथवा मूर्खता का परिचय है जो उसके नौकर चाकर अयोग्य बने रहते हैं।२५। इसलिए जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अनुशासन एवं ताडनादि से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए उसी प्रकार समय पड़ने पर उनका सम्मान भी करना चाहिए।२६। अनेक स्त्रियों का पाणिग्रहण कर के सब के साथ समानता का व्यवहार रखना चाहिये। उनके क्रम अर्थात् बड़ी छोटी के विचार से उचित दान, सत्कार एवं वस्त्रादि से व्यवहार करना चाहिए।२७। स्त्रियों की प्रथम योग्यता उनकी कुलीनता है इसके पश्चात् उनके धार्मिक आचरण तथा पुत्रवती होना उनकी योग्यता है। समय का विचार कर उन्हें धनादि भी देना चाहिये। यथोचित सम्मान का ध्यान रखना चाहिये उसके कारण पर ध्यान रखना चाहिए।२८। इसलिए न तो कभी सामान्य कारणवश विशेष सम्मान करना चाहिए और न किसी कारण वश अपमान ही करना चाहिए। सत्पुरुषों को किसी के गौरव एवं लाघव करने में कुछ नियम बनाना चाहिए।२९। मनमानी मान एवं लाघव (अपमान) का प्रयोग बिना किसी नियम के आकस्मिक उन्नति एवं स्वयं लघुता प्राप्त करते

---

१. सौगन्ध्यमतिरूपत्वमुत्सृजेच्च पतिव्रता । २. पानगेयकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता । ३. प्रसंगाद्यैस्तथासत्स्त्रीलिंगधारकशिल्पिभिः । ४. स्त्रीणां पत्युरधीनत्वं प्रमाणैरधिगम्यते ।

यथा मानापमानौ हि प्रयुज्येतानिमित्ततः । तन्निमित्ता जनत्यागे प्रयतन्ते तदाश्रिताः ॥३१
एतदेव ह्यपत्यानां[1] ज्ञेयं माननकारणम् । यत्स्वापत्यनिमित्तेषु[2] प्रधाने कुलयोग्यते ॥३२
तत्संयोगात्सुखं पुंसां महद्दुःखं वियोगतः । तत्प्राप्तिः प्रति हातव्या स्वार्थायैव प्रियाण्यपि ॥३३
अतः स्वार्थैकनिष्ठोऽयं लोकः सर्वोऽवसीयते । तत्प्रसिद्धिर्भवेदस्तमानाद् भ्रान्तिविधायकः ॥३४
ततो दारादिका भृत्या नियन्तव्यास्तथा द्विजा । यथेहामुत्र वा श्रेयः प्राप्नुयादुत्तरोत्तरम् ॥३५
स्त्रीणां धर्मार्थकामेषु नातिसन्धानमाचरेत् । तासां तेष्वभिसन्धानात्स्वदात्माभिसंहितः ॥३६
जायात्वर्धं शरीरस्य नृणां धर्मादिसाधने । नातस्तासु व्यथां काञ्चित्प्रतिकूलं समाचरेत् ॥३७
यज्ञोत्सवादौ नाकस्मात्काञ्चिदासां विशेषयेत् । वस्त्रताम्बूलदानादौ प्रतिपत्तौ समो भवेत् ॥३८
प्रियाप्रियत्वं भेदो हि कामतस्तु रहोगतः । उपचारैः पुनर्वाक्यैस्तुल्यवृत्तिः प्रशस्यते ॥३९
आर्तवे तु पुनः सर्वा उपगम्याः प्रिया इव । पूर्वाभिजातधर्मार्था पुत्रिणी चोत्तरोत्तरम् ॥४०
उदगच्छेदनेनैव विधिना नित्यमार्तवे । तुल्यवृत्तिर्यथाकालं स्वं स्वं वासमखण्डयन् ॥४१

हैं ।३०। जिस प्रकार बिना किन्हीं कारणों से मान एवं अपमान का प्रयोग होता है और उसके आश्रय में रहने वाले लोग उन्हीं कारणों से उसके त्याग करने का प्रयत्न करते हैं ।३१। सन्तानों के मान होने में उनकी (माता की) कुल एवं योग्यता की प्रधानता है ।३२। उनके संयोग से पुरुष को सुख होता है और उनके वियोग से महान् दुःख होता है । इसलिए स्वार्थ के लिए उसकी प्राप्ति का ही परित्याग करना चाहिए । उसी भाँति तत्सम्बन्धी प्रिय वस्तुओं का भी परित्याग करना चाहिए ।३३। इन्हीं कारणों से स्वार्थपरायण स्त्रीदायक यह सारा संसार विनाश को प्राप्त हो जाता है । विनाश होने से ही उसकी यह प्रसिद्धि होती है ।३४। द्विजवृन्द ! इन्हीं सब कारणों से मनुष्यों को अपने नौकर-चाकर तथा स्त्रियों आदि का अनुशासन पूर्वक नियमन करना चाहिए । जिससे इस लोक तथा परलोक में उत्तरोत्तर कल्याण की प्राप्ति हो ।३५। धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी कार्यों में स्त्रियों के साथ प्रवञ्चना नहीं करनी चाहिए । इन कार्यों में यदि कोई स्त्रियों के साथ छलपूर्ण व्यवहार करता है तो वह अपनी आत्मा के साथ वञ्चना करता है ।३६। धार्मिक कार्यों में स्त्री पुरुष का आधा शरीर मानी गई है । इसलिए उनके साथ ऐसा प्रतिकूल व्यवहार न रखे कि उन्हें व्यथा हो ।३७। यदि कई स्त्रियाँ हों तो पुरुष को यज्ञोत्सव आदि में बिना किसी कारण के किसी एक को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहिये । वस्त्र, ताम्बूल आदि के देने में तथा अन्य सामान्य व्यवहारों में सर्वदा समानता रखनी चाहिये ।३८। कामवश यदि कोई विशेष प्रिय है और कोई अप्रिय है तो एकान्त में उनके साथ ही वैसा व्यवहार करना चाहिये । सामान्य व्यवहार एवं बातचीत में तो समानता ही की प्रशंसा की जाती है ।३९। ऋतुकाल में तो सभी के साथ प्रियतमा मानकर समागम करना चाहिये । ज्येष्ठ कुलीन सदाचार परायण धर्मशील एवं पुत्रवती इनमें से क्रमशः एक के बाद दूसरी हो सम्मानीय समझना चाहिये ।४०। इसी नियम से ऋतुकाल में सर्वदा स्त्री के साथ समागम करना चाहिये । समय आने पर अपने निवास को बिना खण्डित किये सब के साथ समान व्यवहार रखना चाहिये । अर्थात क्रम से किसी के घर में अनुपस्थित नहीं होना चाहिये ।४१। सर्वदा

---

१. हि पत्नीनाम् । २. समुत्पद्य निमित्तेषु प्रधाने गुणयोग्यता । यत्सयामाश्रययं पुंसां महदुःखं वियोगवत् ।

नित्यपर्यायवासानामपादानमसून्विदुः । ऋतुदुःखं प्रमोदश्च तथा पूर्वं समागतः ॥४२
अन्यया सह यद्दुःखं सदसद्वा रहोगतम् । उत्कण्ठितं वा यत्किञ्चित्सपत्नीषु न तद्वसेत् ॥४३
यत्किञ्चिदन्यसम्बद्धमन्यथा कथितं मिथः । तस्य कुर्यादनिर्वेदमात्मनैव विचिन्तयेत् ॥४४
अन्योऽन्यमत्सराख्यानैर्न ता वाचापि भर्त्सयेत् । गुणदोषौ च विज्ञाय स्वयं कुर्यान्न निष्फलौ ॥४५
वस्त्रालङ्कारभोज्यादौ तदपत्येष्वनुक्रमात् । मातृदोषाननादृत्य तुल्यदृष्टिः पिता भवेत् ॥४६
अन्यस्यान्यगतैर्दोषैर्दूषणं न हि नीतिमत् । यत्तु तेषामपत्यं तु तत्तुल्यमुभयोरपि ॥४७
प्रीतिं द्वेषमभिप्रायं शौचाशौचगतागमान् । बहिरन्तश्च जानीयाद्दास गूढचरैः सदा ॥४८
आत्मानमपि विज्ञाय चित्तवृत्तेरनीश्वरम् । विश्वसेत कथं स्त्रीषु सर्वाविनयधामसु ॥४९
वृद्धदास्यः क्रमायाता धात्र्यश्च परिचारिकाः । तन्मातृपितृकाद्याश्च षण्डवृद्धाश्चरा मताः ॥५०
विविधैस्तत्कथाख्यानैस्तुल्यशीलदयान्वितैः[1] । प्रविश्यान्तरभिप्रायं विद्यात्काले प्रयोजितैः ॥५१
तेषु तेषु कथार्थेषु कथ्यमानेषु लक्षयेत् । मुखाकारादिभिर्लिङ्गैरभिप्रायं मनोगतम् ॥५२

पर्याय क्रम से निवास करने को प्राण कहते हैं। ऋतुकालीन दुःख, प्रमोद एवं पूर्व समागम एवं सर्वदा पर्याय क्रम से अविच्छिन्न निवास को प्राण कहते हैं।४२। एकान्त में एक पत्नी के साथ जो कुछ दुःख सुख अथवा सत् असत् व्यवहार का अनुभव पति को हो अथवा पत्नी के मन में पति के लिए जो उत्सुकता एवं उत्कण्ठा हो, उसका वर्णन सपत्नियों के सामने नहीं करना चाहिये।४३। एक पत्नी पति से दूसरी सपत्नी के सम्बन्ध में यदि कोई शिकायत की बात एकान्त में कहे तो उसको वहीं पर स्वयं उचित समाधान करके दुःख रहित कर देना चाहिये।४४। एक दूसरे के प्रति मत्सर भावनाओं का प्रचार नहीं करना चाहिये। कभी वचन द्वारा भी स्त्रियों की भर्त्सना नहीं करनी चाहिये। उनके गुण एव दोष को भली भाँति जानकर उनके दूर करने एवं बढ़ाने का उपक्रम करना चाहिये।४५। सभी स्त्रियों की सन्ततियों के साथ वस्त्र अलंकार एवं भोजनादि में माताओं के क्रम से ध्यान रखना चाहिये,माता के दोष को न देखकर पिता को सब की सन्ततियों के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये।४६। एक के दोष को दूसरे पर थोपना नीति के अनुकूल नहीं है। सब की सन्ततियों के साथ माता पिता दोनों को समानता का व्यवहार रखना चाहिये।४७। स्त्रियों के प्रीति, द्वेष, अभिप्राय, पवित्रता, अपवित्रता बाहर भीतर का गमन एवं आगमन सब का दास एवं भेदियों से सर्वदा पता लगाते रहना चाहिये।४८। अपने चित्त की वृत्तियों के ऊपर अपना ही अधिकार सर्वदा नहीं रहता (अर्थात् जब अपना ही चित्त अपने अधीन नहीं रहता) तो सभी प्रकार के अविनय की मूर्त रूप स्त्रियों का विश्वास किस प्रकार किया जा सकता है।४९। चरों के द्वारा स्त्रियों के अभिप्राय को समझना वंश परम्परागत वृद्ध, दासी, धाय, परिचारिका, उनकी माताएँ एवं पिता आदि तथा नपुंसक वृद्ध ये ही (अन्तःपुर में प्रवेश करने के योग्य) चर माने गये हैं।५०। विविध प्रकार की कथाओं उपाख्यानों एवं प्रवृत्तियों द्वारा समय-समय पर अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर उनके अभिप्रायों का पता लगाना चाहिये।५१। उन कथाओं के कहे जाने के समय उनकी मुख्य मुख्य घटनाओं पर स्त्रियों के मुख आदि के आकार एवं शरीर के अन्यान्य चिन्हो के द्वारा मनोगत भावों का

---

१. भावं विद्यात्प्रवृत्तिभिः।

सीतारुन्धतिसम्बन्धैस्तथा शाकुन्तलादिभिः । सदसच्चरिताख्यानैर्भावं विद्यात्प्रवृत्तितः ॥५३
तद्दुष्टानामदुष्टेषु साधूनामितरेषु च । प्रीतिः कथाप्रबन्धेषु स्यात्सख्यं पुरुषेष्वितः ॥५४
एवमागमदृष्टाभ्यामनुमित्या च तत्त्वतः । स्त्रीणां विदित्वाभिप्रायं वर्तेताशु यथोचितम् ॥५५
स्त्रीभ्यो विप्रतिपन्नाभ्यः प्राणैरपि वियोजनम् । दृष्टं हि च यथा[1] राज्ञामतो रक्षेत्प्रयत्नतः ॥५६
वेण्या गूढेन शस्त्रेण हतो राजा शुभध्वजः । मेखलामणिना देव्या सौवीरश्च नराधिपः ॥५७
भ्रात्रा देवीप्रयुक्तेन भद्रसेनो निपातितः । तथा पुत्रेण कारूषो घातितो दर्पणासिना ॥५८
द्वौ काशिराजौ वै वन्द्यौ चानन्दापुरयोषिता । विषं प्रयुज्य पञ्चत्वमानीतौ पूजितात्मकौ ॥५९
एवमादि महाभागा राजानो ब्राह्मणाश्च ह । स्त्रीभिर्यत्र निपात्यन्ते तत्रान्येष्विह का कथा ॥६०
तस्मान्नित्याप्रमत्तेन जाया रक्ष्याश्च नित्यशः । यथावदुपचर्याश्च गुणदोषानुरूपतः ॥६१
वैषम्यादुपचाराणां विकारैश्चानिमित्तजैः । विशेषेण सपत्नीकैरकस्माच्चापि वेदनैः ॥६२
असम्भागे च वाग्दण्डपारुष्यादप्रसङ्गतः । प्रद्वेषो भर्तरि स्त्रीणां प्रकोपश्चापि जायते ॥६३
ततश्चायाति वार्धक्यमुद्वोढुश्चापि शत्रुताम् । तस्मान्न तान्प्रयुञ्जीत दोषान्दारविनाशकान् ॥६४
न चैताः स्वकुलाचारमधर्मं वापि चाञ्जसा । न गुणांश्चाप्युपेक्षन्ते प्रकृत्या किमु पीडिताः ॥६५

यथार्थतः पता लगा लेना चाहिये ।५२। सीता अरुन्धती शकुन्तला आदि के सत् एव असत् चरित्र सम्बन्धी कथाओं की ओर प्रवृत्ति से स्त्रियों के मनोगत भावों का पता लगाना चाहिये ।५३। इन कथा प्रबन्धों में आने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के दुष्ट एवं सच्चे स्वभाव वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के साथ दुष्ट एवं सच्चे स्वभाव वाली स्त्रियों की विशेष रुचि होती है ।५४। इस प्रकार शास्त्र (शब्द प्रमाण), प्रत्यक्ष और अनुमान एवं युक्ति से स्त्रियों के वास्तविकता का पता लगाकर उनके साथ शीघ्र ही वैसा व्यवहार भी करना चाहिये ।५५। विरोध भावना रखने वाली स्त्रियों के कारण कितने राजाओं का भूतकाल में प्राणत्याग तक होता देखा गया है अतः उनसे सर्वदा सतर्कता पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये ।५६। केशपाश में छिपे हुए शस्त्र से राजा शुभध्वज मारे गये । अपनी स्त्री की मेखला मणि से सौवीर नरेश का प्राणान्त हुआ ।५७। अपनी ही स्त्री की प्रेरणा से राजा भद्रसेन भाई द्वारा मारे गये इसी प्रकार कारुष देशाधिपति अपनी स्त्री की प्रेरणा से दर्द नाश करने वाले पुत्र द्वारा मारे गये ।५८। काशी के दो राजा, जो अपनी प्रजा के परम प्रिय एवं वन्दनीय थे विष देकर अन्तःपुर की स्त्री द्वारा मारे गये ।५९। ऐसे परम विद्वान् ब्राह्मण एवं महाभाग्यशाली राजाओं को जब उनकी स्त्रियाँ मार डालती हैं तो अन्य साधारण लोगों के लिए क्या कहा जाय ।६०। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर मनुष्य को सर्वदा सतर्कता से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये तथा उन्हें गुण एवं दोष के अनुरूप नियमन एवं सत्कार करता रहे ।६१। व्यवहार की विषमता, निष्कारण मनोमालिन्य विशेषतया सपत्नि की प्रेरणा से होने वाले दुर्व्यवहार बिना अपराध के दण्ड यथेप्सित सम्भोग का अभाव दण्ड की कठोरता बिना प्रसंग के सर्वदा कठोर वचन बोलते रहना—इन सब कारणों से पति में स्त्रियों की विद्वेष भावना बहुत बढ़ जाती है ।६२-६३। इससे वृद्धता एवं शत्रुता आ जाती है, अतः मनुष्य को ऊपर कहे गये दुर्व्यवहारों का प्रयोग स्त्रियों के प्रति कभी नहीं करना चाहिये—ये स्त्रियों के नष्ट करने वाले होते हैं ।६४। जब ये स्त्रियाँ भलीभाँति प्रसन्न रहने पर भी अपने कुलचार, अधर्म एवं सद्गुणों की ओर सहसा कोई ध्यान नहीं रखतीं, पीड़ित होने पर तो क्या

---

१. तथा ।

सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदृष्टं कारणत्रयम् । परपुंसामसम्प्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे ।।६६
तस्मात्सुरक्षिता नित्यमुपचारैर्यथोचितैः । सुभृता[1] नित्यकर्माणः कर्तव्याः योषितः सदा ।।६७
उत्तमां सामदानाभ्यां मध्यमाभ्यां तु मध्यमाम् । पश्चिमाभ्यामुभाभ्यां च अधमां सम्प्रसाधयेत् ।।६८
भेददण्डौ प्रयुज्यापि प्रागपत्याद्यपेक्षया । तच्छिष्टानां तदा पश्चात्सामदानप्रसाधने ।।६९
यास्तु विध्वस्तचारित्रा भर्तुश्चाहितकारिकाः । त्याज्या एवं स्त्रियः सद्भिः[2] कालकूटविषोपमाः ।।७०
हृष्टाः[3] कुलोद्गताः साध्व्यो विनीताभर्तृवत्सलाः । सर्वदा साधनीयास्ताः सम्प्रदायोत्तरोत्तरैः[4] ।।७१
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं योऽनुतिष्ठति । प्राप्नोत्येव स सम्पूर्णं त्रिवर्गं[5] लोकसम्भवम् ।।७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि विवाहधर्मेषु
स्त्रीविषये नरवृत्तवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

आगमप्रशंसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं स्त्रीषु मनुष्याणां वृत्तिरुक्ता समासतः । साम्प्रतं च मनुष्येषु स्त्रीणां समुपदिश्यते ।।१

रखेंगी।६५। स्त्रियों के सती होने में प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं, पारकीय पुरुष के साथ समागम होने का अभाव अपने पति में विशेष्य प्रीति और अपनी रक्षा।६६। इसलिए यथोचित सत्कारादि द्वारा सर्वदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। उन्हें सर्वदा अन्तःपुर में सुरक्षित एवं निरन्तर क्रियाशील बनाना चाहिए।६७। उत्तम स्वभाव वाली स्त्री को साम एवं दान से सन्तुष्ट रखना चाहिये। इसी प्रकार मध्यम स्वभाव वाली स्त्री को दान एवं यथावसर दण्ड के द्वारा वश में रखना चाहिये। अधम स्वभाव वाली स्त्री के लिए दण्ड एवं भेद से काम लेना चाहिये।६८। ऐसी अधम स्वभाव वाली स्त्री को पहले दण्ड एवं भेद द्वारा दण्डित करके बच्चों की रक्षा आदि के लिए कुछ दिनों के बाद पुनः साम दान का प्रयोग करना चाहिये।६९। उनमें जो अत्यन्त दुष्ट चरित्र एवं पति का अकल्याण सोचने वाली हों उन स्त्रियों को सत्पुरुष कालकूट विष के समान (प्राण घातक) समझ कर तुरन्त छोड दे।७०। अपने मन के अनुकूल चलने वाली, उच्च- कुल में उत्पन्न साध्वी, विनीत, सर्वदा पति प्रिया स्त्रियों को उत्तरोत्तर अधिकाधिक सम्मानादि द्वारा सन्तुष्ट करते रहना चाहिये।७१। ऊपर कहे गये नियमों के अनुसार जो मनुष्य अपनी स्त्रियों के साथ व्यवहार रखता है वह इस संसार में प्राप्त धमार्थकाम रूप त्रिवर्ग का यथेष्ट सर्वांशतः उपभोग करता है।७२

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में विवाह धर्म के प्रसंग में स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों का कर्त्तव्य वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अध्याय ९

स्त्रीकर्तव्य-निर्देशपूर्वक आगम (शास्त्र) की प्रशंसा

ब्रह्मा बोले—स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले पुरुषों के व्यवहारों का मैं संक्षेप में वर्णन कर चुका हूँ।

---

१. स्वादृताः । २. सर्वाः । ३. हृष्टाः कुलोद्भवाः । ४. अप्रमादोत्तरैः । ५. स्त्रीवर्गलोकसंमतम् ।

सम्यगाराधनात्पुंसां रतिर्वृत्तिश्च योषितः । पुत्राः स्वर्गाद्यष्टं च तस्मादिष्टो हि तद्विधिः ॥२
कर्तव्यं नाम यत्किञ्चित्सर्वं [१]विधिमपेक्षते । व्यक्तिमायाति वैफल्यं तदेवारब्धमन्यथा ॥३
विध्यपेक्षीणि सर्वाणि कार्याण्यविफलान्यपि[२] । हेतुभूतास्त्रिवर्गस्य महारम्भा विशेषतः ॥४
सर्वसाध्याविधिज्ञानमागमैकनिबन्धनम् । साध्यं दृष्टमदृष्टं च द्वयं विधिनिषेधयोः ॥५
शास्त्राधिकारो न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे । तस्मादिहान्ये मन्यन्ते तच्छासनमनर्थकम् ॥६
आगमैकक्रियायोगे स्त्रीणामप्यधिकारिता । मृते भर्तरि साध्वी स्यादित्यादौ स्मृतिभाषितम् ॥७
तस्मात्कार्यमकार्यं वा विज्ञाय प्रभुरागमात् । गुणदोषेषु ताः सम्यक्छास्ति राजा प्रजा इव ॥८
सत्येन प्रमदाः काश्चिद्विशेषाधिगतागमाः । यत्तु शास्त्राधिकारित्वं वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥९
केचिद्वेदविदो विप्राः कुर्वैर्वेषक्रियापराः । तथापि[४] जातिमात्रेण त एवात्राधिकारिणः ॥१०
क्रियन्ते वेदशास्त्रज्ञैः प्रयोगाः शास्त्रलौकिकाः । स्थितमेषामदूरेऽपि शास्त्रमेव निबन्धनम् ॥११
व्याधधीवरगोपालप्रभृतीनां च दृश्यते । विष्टचं गारकसौर्यादिदिनानां परिवर्जनम् ॥१२
गम्यागम्यादिकार्येषु नियताचारसंस्थितिः । लोकानां शास्त्रवाक्यानां प्राणाः स्वेष्टनिबन्धनाः ॥१३

अब पुरुषों के प्रति किये जाने वाले स्त्रियों के व्यवहारों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये।१। पति की भली भाँति आराधना करने ही से स्त्रियों को रति, जीविका पुत्र, स्वर्ग, एवं अन्यान्य दुर्लभ पदार्थों की प्राप्ति होती है, अतः विधिपूर्वक पति की आराधना करना ही उनके लिए कल्याणकर है।२। संसार में जो कुछ कर्त्तव्य है वे सब विधान की अपेक्षा रखते हैं, विधान के विपरीत आरम्भ करने से उस कार्य की विफलता स्पष्ट दिखाई देती है।३। विधिविहित होने के नाते सारे कार्य-कलाप सफल होते हैं यदि वे विशेष सतर्कता पूर्वक प्रारम्भ किये जायँ तो इस लोक में त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) के कारण होते हैं।४। सब प्रकार के कार्यों एवं उनके विधि निषेधों का ज्ञान एकमात्र शास्त्र से ही होता है। विधि एवं निषेध के दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही साध्य हैं।५। किन्तु स्त्रियों को शास्त्र (वेद) में अधिकार नहीं है और न उनके ग्रन्थों के पढ़ने का ही अधिकार है। इसीलिए उनके संबंध में शासन (उपदेश) देना व्यर्थ मानते हैं।६। एकमात्र शास्त्रीय कार्य (यज्ञादि) में स्त्रियों का पति के साथ रहने का अधिकार है। पति के मर जाने पर स्त्रियों को सदाचार परायण होना चाहिए-इत्यादि विषयों में स्मृतियों का समर्थन है।७। पति को चाहिए कि वेद से कार्य तथा अकार्य का ज्ञान प्राप्त कर स्त्रियों के गुण-दोषों के सम्बन्ध में भली भाँति वैसा ही व्यवहार करे जैसा प्रजाओं के साथ राजा व्यवहार करता है।८। विशेष रूप से वेद के ज्ञान को प्राप्त किये हुए कुछ स्त्रियाँ हैं ही। (ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में) शास्त्रीय अधिकारों का कथन निरर्थक होता है।९। कुछ ऐसे ब्राह्मण होते हैं जो वैदिक क्रियाओं के अनुसार अपना वेश भी रखते हैं और तदनुकूल आचरण भी करते हैं किन्तु वेद में उनका अधिकार जाति मात्र से ही है।१०। वेदों एवं शास्त्रों को जानने वाले शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों प्रकार के आचारों को करते हैं, इनके अतिसन्निकट रहने पर भी (शास्त्रीय कार्यों के लिये) शास्त्र ही प्रमाण माने जाते हैं।११। व्याध, धीवर, गोपाल प्रभृति जातियों में भी भद्रा एवं मंगल रविवार आदि दिनों का परित्याग देखा जाता है।१२। गम्य (उचित) एवं अगम्य (अनुचित) कार्यादि के लिए आचार व्यवहार की स्थिति उनमें भी नियत रहती है, जिसके लिए किसी से पूंछने की आवश्यकता नहीं होती। शास्त्रीय वाक्यों एवं लौकिक व्यवहारों के प्राण अपनी-अपनी इच्छा

---

१. रतिर्भवति योषिताम्। २. स्थिर। ३. अल्पफलानि च। ४. तत्रापि।

तस्माच्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च सर्वशः । मुख्यगौणादिभेदानां ज्ञेया शास्त्राधिकारिता ॥१४
पौर्वापर्यं तु विज्ञातुमशक्यं लोकशास्त्रयोः । तच्छास्त्रमेव मन्तव्यं यथा कर्मशरीरवत् ॥१५
आगमे च पुराणे च द्विधैव नास्तिकग्रहम् । मार्गं महद्भिराचीर्णं प्रपद्येताविकल्पधीः ॥१६
मूलं गृहस्थधर्माणां यस्मान्नार्यः पतिव्रताः । तस्मादासां प्रवक्ष्यामि भर्तुराराधने विधिम् ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
आगमनप्रशंसानाम नवमोऽध्यायः ।९।

अथ दशमोऽध्यायः

स्त्रीदुराचारवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः । चित्त[1] ज्ञानानुवृत्तिश्च हितैषित्वं च सर्वदा ॥१
कन्या पुनर्भूर्वेश्या च त्रिविधा एव योषितः । प्रिया मध्याप्रिया चैव योग्या मध्येतरा तथा ॥२

पर निर्भर रहते हैं ।१३। इसलिए चारों वर्णों एवं आश्रमों में रहने वाले का शास्त्रों पर मुख्य एवं अमुख्य रूप से अधिकार जानना चाहिए ।१४। कर्म और शरीर की भाँति लोक-व्यवहार एवं शास्त्र इन दोनों में कौन पहले का है, कौन बाद का है यह जानना अति कठिन है इसलिए शास्त्र को ही (सबका आधार) मानना चाहिए ।१५। वेदों एवं पुराणों में नास्तिकता का ज्ञान दो ही प्रकार से होता है । अतएव सत्पुरुषों द्वारा अंगीकृत मार्ग को बिना किसी विकल्प (संदेह) के ग्रहण करना चाहिये ।१६। गृहस्थाश्रम के समस्त धर्मकार्यों की मूलस्वरूप पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं अतः इनको अपने पति की आराधना किस प्रकार करनी चाहिए इसकी विधि बतला रहा हूँ ।१७

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में आगम प्रशंसा नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

स्त्रियों के दुराचार का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सभी आराध्यों की आराधना के लिए यही विधि है जिसे मैं बतला रहा हूँ आराधक को सर्व प्रथम अपने आराध्य की चित्तवृत्ति का परिज्ञान करना चाहिये तदनन्तर उसी के अनुरूप अपना व्यवहार रखते हुए सर्वदा उसके कल्याण के कार्यों को करना चाहिये ।१। स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं कन्या, पुनर्भू और वेश्या रूप से ये तीनों क्रमशः प्रिया, मध्य प्रिया एवं योग्य मध्येतर (अधमप्रिया) के नाम से पुकारी जाती है । समान श्रेष्ठ एवं नीच इन तीन भेदों से स्त्रियों के पुनः तीन प्रकार बतलाये जाते हैं । प्रिय एवं अप्रिय को छोड़कर इन दोनों बाद वाली स्त्रियों के समस्त कार्यों को पहली ही के कार्यों के समान जानना चाहिये अर्थात् पहली स्त्री की तरह ये बादवाली स्त्रियाँ प्रेम नहीं करती और अपराध भी

---

१. वृत्तज्ञानानुवृत्तिश्च ।

समा श्रेष्ठा च नीचा च भूयोपि त्रिविधाः पुनः । पूर्ववत्परयोर्वृत्तिरिष्टानुक्त्या[1] प्रियाप्रिये ।।३
अधमाप्रिययोरत्र पतिपत्न्यादिका मता । निषिद्धानां तु भक्ष्यादि तद्धि यत्नाद्विधीयते ।।४
एकद्वित्वबहुत्वाद्या[2] ये भेदाः समुदाहृताः । ज्येष्ठादिवृत्ते वक्ष्यामस्तानशेषान्द्विजोत्तमाः ।।५
वृत्तं च द्विविधं स्त्रीणां बाह्यमाभ्यन्तरं तथा । भर्तुरन्यजने बाह्यं तस्याः शारीरमान्तरम् ।।६
ज्ञातीनरविभागेन तद्बाह्यं द्विविधं पुनः । पूज्यं तुल्यं कनिष्ठं च तत्प्रत्येकं पुनस्त्रिधा ।।७
रहोरतं प्रकाशं च शारीरमपि तत्त्रिधा । भर्तुश्चित्तानुकूल्येन प्रयोक्तव्यं यथोचितम् ।।८
माता पिता स्वसा भ्राता पितृव्याचार्यमातुलाः । सभार्या[3] भगिनी भर्ता भर्तृमातृपितृष्वसा ।।९
धात्री वृद्धाङ्गनादिश्च यस्तत्राप्तः समो जनः । प्रथमोढा सपत्नी च स्त्रीणां मान्यतमो गणः[4] ।।१०
एषामेव त्वपत्यादिभगिनीभ्रातरस्तथा । कनिष्ठा भर्तुरित्यादिभार्याश्चाप्तसमो मतः ।।११
हीनोऽन्यः शासनीयस्तु तत्र तावन्न विद्यते । योग्यता सुतसौभाग्यैर्न यावत्स्यात्प्रतिष्ठिता ।।१२
यत्रापि गुरु भर्तॄणामानुकूल्येन सर्वदा । वृत्तिः प्रशस्यते स्त्रीणां पूजाचाराविरोधिनी[5] ।।१३

उससे अधिक करती हैं पर शेष कार्यों में पुत्रादि उत्पन्न करने में अथवा गृहस्थी के अन्य कार्यों में ये दोनों भी उसी के समान होती हैं ।२-३। इस लोक में उन अधम एवं अप्रिय दम्पति में भी पति-पत्नी का व्यवहार माना जाता है निषिद्धों में जो भक्ष्य आदि हैं । द्विजवृन्द ! इनका फलपूर्वक विधान करते हैं ।४। ज्येष्ठ आदि के कार्यों प्रसंग में उन सबको मैं बतलाऊँगा । जो एक दो एवं अनेक भेद (स्त्रियों के) कहे गये हैं स्त्रियों के मुख्यतः व्यवहार होते हैं ।५। एक अभ्यन्तर दूसरा बाह्य पति को छोड़कर दूसरे जितने भी मनुष्य हैं उन सबके साथ किये जाने वाले व्यवहार को बाह्य कहते हैं । अपने शरीर सम्बन्धी जितने कार्य होते हैं उन सब को आभ्यन्तर कहते हैं ।६। जाति बिरादरी वालों के साथ एवं अन्य सर्वसामान्य लोगों के साथ दो प्रकार के व्यवहारों के कारण बाह्य व्यवहार के भी दो भेद हो गये । उनमें भी पूज्य, तुल्य, एवं कनिष्ठ लोगों के साथ (होने वाले व्यवहारों के कारण) उक्त दोनों भेदों में से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हुए ।७। इसी प्रकार शरीर व्यवहार के भी रहस्य एवं प्रकाश्य इन तीन प्रकारों से तीन भेद हुए पत्नी अपने पूज्य पतिदेव के चित्र के अनुकूल इनको करे ।८। माता, पिता, बहिन (बड़ी) भाई, चाचा, मामा आचार्य, सपत्नी बहिन (चाचा फूफी आदि की लड़कियाँ) स्वामी और पति की माता पिता की बहिनें, धाय, परिवार की वृद्ध स्त्रियाँ ये सभी स्त्रियों पूज्य के समान समादरणीय हैं । अपने से पहिले चाही गई सपत्नी भी इसकी परम सम्माननीय है ।९-१०। इन सब के लड़के लड़कियाँ पद में लगने वाले छाटे भाई बहने पति की छोटी सपत्नी आदि भी उसके सम्मान के योग्य मानी जाती हैं ।११। वधू के लिये तो पति गृह में तब तक कोई भी छोटा व्यक्ति शासनीय नहीं रहता जब तक पुत्र प्राप्ति एवं अन्यान्य सौभाग्यादि से वह पूर्ण संयुक्त नहीं हो जाती ।१२। अपने गुरुजनों एवं पति की इच्छा के अनुकूल उसे सर्वदा अपना व्यवहार रखना चाहिये । पति एवं गुरुजनों की सेवा के अतिरिक्त किसी भी पूजा एवं व्रतोपवासादि को करने का आचरण स्त्रियों का प्रशंसनीय माना गया है ।१३। अपने देवरों एवं पति के

---

१. पूर्ववत्परयोर्वृत्तिं विद्यान्मुक्त्वा प्रियागसम् । २. एका द्विर्बहुनारीणाम् । ३. सभक्ता । ४. गुणः । ५. पूज्यदाराविरोधिनी ।

देवरैः पतिमित्रैश्च परिहासक्रियोचितैः । विविक्तदेशावस्थानं वर्जयेदिति नर्म च ।।१४
प्रायशो हि कुलस्त्रीणां शीलविध्वंसहेतवः । दुष्टयोगो रहो नित्यं स्वातन्त्र्यमतिनर्मता ।।१५
दुष्टसङ्गे त्वरा स्त्रीणां युवभिर्नर्म नोचितम् । निर्भेषता स्वतन्त्राणां साफल्यं रहसि व्रजेत् ।।१६
पुंसो दुष्टेङ्गिताकारान्दुष्टभावप्रयोजितान् । भ्रातृवत्पितृवच्चैतान्पश्यती परिवर्जयेत् ।।१७
पुंसोऽन्याग्रहमालापस्मितदिप्रेक्षितानि च । करान्तरेण[1] द्रव्याणां निबन्धं[2] ग्रहणार्पणम् ।।१८
द्वारप्रदेशावस्थानं राजमार्गावलोकनम् । प्रेक्षोद्यानादिशीलत्वं निरुध्याद्देशमालयम् ।।१९
बहूनां दर्शने स्थानं दृष्टिवाक्कायचापलम् । ष्ठीवनत्वं ससीत्कारमुच्चैर्हसितजल्पितम् ।।२०
साङ्गत्यं लिङ्गिदुष्टस्त्रीभिक्षुणीक्षणिकादिभिः । मन्त्रमण्डलदीक्षायां सक्तिः संवसनेषु च ।।२१
इत्येवमादिदुर्वृत्तं प्रायोदुष्टजनोचितम् । वर्जयेत्परिरक्षन्ती कुलत्रितयवाच्यताम् ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
स्त्रीदुर्वृत्तवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ।१०।

मित्रों के साथ उचित परिहासादि एकान्त स्थान में निवास एवं हास्य आदि भी उसे नहीं करना चाहिये ।१४। ये सब प्रायः कुलाङ्गनाओं के शील को भ्रष्ट कर देने के कारण बन जाते हैं दुष्टों की संगति नित्य एकान्त निवास स्वतंत्रता एवं अतिशय हास्य ।१५। दुष्टों की संगति में शीघ्रता एवं युवकों के साथ परिहास ये दो बातें तो स्त्रियों के लिए सर्वथा अनुचित हैं । स्वच्छन्द प्रवृति वाली स्त्रियों की कुचेष्टाएँ एकान्त में बहुत शीघ्र सफल हो जाती हैं ।१६। परकीय पुरुषों के गन्दे इशारों से जो दुष्ट भावना से सम्बन्ध रखने वाले होते हैं उन्हें अपने भाई और पिता की दृष्टि से देखकर उनका परित्याग करे ।१७। परकीय पुरुष के साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान वार्तालाप हास्य-परिहास विप्रेक्षण किसी भी दूसरे व्यक्ति के हाथ से रुपये पैसे का लेन-देन, दरवाजे पर खड़ा होना, सड़क की ओर ताकना, खिड़की और झरोखे में बैठकर देखना बाग एवं उपवन की सैर करना, ऐसे स्थान पर खड़ा होना जहाँ बहुतों की दृष्टि पड़े । नेत्र, वचन एवं शरीर की चंचलता, थूकना, उच्च स्वर से हँसना, बेकार की गपें हाँकना, संन्यासी, दुष्ट स्त्री, भिक्षुकी, कुटनी आदि की संगति करना मंत्र मण्डला दीक्षा एवं ग्रामीणों के विशेष उत्सवों में आसक्ति रखना प्रायः ये सभी कार्य दुष्ट प्रकृति वालों के लिए उचित कहे गये हैं । पतिव्रता वधू तीनों कुलों के इन निन्दात्मक कार्यों को अपने शील सदाचार की रक्षा करती हुई छोड़ दे ।१८-२२

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री दुराचारवर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

---

१. कालान्तरेण । २. विरुद्धम् ।

अथैकादशोऽध्यायः
स्त्रीणां गृहस्थधर्मवर्णनम्
ब्रह्मोवाच

या पतिं दैवतं पश्येन्मनोवाक्कायकर्मभिः । तच्छरीरार्धजातेव सर्वदा हितमाचरेत् ॥१
तत्प्रियां प्रियवत्पश्येत्तद्द्वेष्यां द्वेष्यवत्सदा । अधर्मानर्थयुक्तेभ्योऽयुक्ता चास्य निवर्तते ॥२
प्रियं किमस्य किं पथ्यं साम्यं चास्य कथं भवेत् । ज्ञात्वैवं सर्वभृत्येषु न प्रमाद्येत वै द्विजाः ॥३
देवतापितृकार्येषु भर्तुः स्नानाशनादिषु । सत्कारेऽभ्यागतानां च यथौचित्यं न हापयेत् ॥४
वेश्मात्मा च शरीरं हि गृहिणीनां द्विधा कृतम् । संस्कर्तव्यं प्रयत्नेन प्रथमं पश्चिमादपि ॥५
कृत्वा वेश्म सुसंमृष्टं त्रिकालविहितार्चनम् । वृत्तकर्मोपभोगानां संस्कर्तव्यं यथोचितम् ॥६
प्रातर्मध्यापराह्णेषु बहिर्मध्यान्तरेषु च । गृहसम्मार्जनं कृत्वा निष्कारान्न निशि क्षिपेत् ॥७
गोमहिष्यादिशालानां तत्पुरीषादिमात्रकम् । व्यपनेयं तु यत्नेन सम्मार्जन्या प्रसाधनम् ॥८
दासकर्मकरादीनां बाह्याभ्यन्तरचारिणाम् । पोषणादिविधिं विद्यादनुष्ठानं च कर्मसु ॥९

अध्याय ११
स्त्रियों के गृहस्थ धर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—पतिव्रता पत्नी अपने आराध्य पति को सर्वदा मनसा वाचा कर्मणा देवता की भाँति देखे और सर्वदा उसके कल्याण साधन में आधे शरीर से उत्पन्न की भाँति निरत रहे ।१। उसकी प्रिय वस्तुओं एवं व्यक्तियों को प्रिय की तरह और उसकी अप्रिय को अप्रिय की तरह देखे सर्वदा अनर्थ एवं अधर्म कार्यों से पति को बचा कर रखे ।२। द्विजवृन्द ! (पतिव्रता को चाहिये) हमारे पति का प्रिय क्या है (उसी के अनुरूप) दोनों का साम्य कैसा होगा यह मानकर सभी दास दासियों के साथ कभी असावधानी से उनके साथ व्यवहार न करे ।३। देवता एवं पितरों के कार्यों में पति के स्नान भोजनादि कार्यों में अतिथियों के स्वागत सत्कारादि में उसे औचित्य की रक्षा करनी चाहिये ।४। गृहस्थों की पत्नियों के शरीर घर और आत्मा को इन दो भागों में विभक्त किया गया है। इन दोनों में घर को आत्मा से भी बढ़कर प्रयत्न पूर्वक स्वच्छ रखना चाहिये ।५। प्रातः मध्याह्न एवं सायं इन तीनों कालों में खूब झाड़ बुहार कर घर को स्वच्छ रखे और उसकी पूजा करे । इनके अतिरिक्त अपने सभी कार्यों में एवं समस्त घरेलू वस्तुओं में भी यत्नपूर्वक पर्याप्त स्वच्छता रखे ।६। घर के भीतर बाहर एवं मध्य भाग में सर्वत्र प्रातःकाल मध्याह्न एवं अपराह्न में झाड़ू से साफ करके कूड़ा बाहर फेंकना चाहिये । पर रात्रि काल में कूड़े को बाहर नहीं डालना चाहिये ।७। गोशाला एवं भैंसों की शाला आदि से उनके मूत्र एवं गोबर आदि को सप्रयत्न झाड़ू से खूब स्वच्छ करना चाहिये ।८। घर के भीतर एवं बाहर काम करने वाले दास-दासी एवं मजदूरों के खान पानादि की व्यवस्था गृहिणी को करना चाहिये, घरेलू सारे कार्यों की निगरानी भी उसे रखनी चाहिये ।९। शाक, मूल, फल, लता, औषधि एवं सभी प्रकार के बीजों का

शाकमूलफलादीनां वल्लीनामौषधस्य च । सङ्ग्रहः सर्वबीजानां यथाकालं यथाबलम् ।।१०
ताम्रकांस्यायसादीनां काष्ठवेणुमयस्य[१] च । मृन्मयानां च भाण्डानां विविधानां च सङ्ग्रहम् ।।११
कुण्डकादिजलद्रोण्या कलशोदञ्चतालुकाः । शाकपात्राण्यनेकानि स्नेहानां गोरसस्य च ।।१२
मुसलं कुण्डनीयं तु यन्त्रकं[२] चूर्णचालनी । दोहन्यो नेत्रकं मन्था मण्डन्य : भृङ्गलानि च ।।१३
सन्दन्शः कुण्डिका शूलाः पट्टपिप्पलको दृषत् । डिविका हस्तको दर्वी भ्राष्टस्फुटलकानि च ।।१४
तुलाप्रस्थादिमानानि मार्जन्यः पिटकानि च । सर्वमेतत्प्रकुर्वीत प्रयत्नेन च सर्वदा ।।१५
हिङ्ग्वादिकमथो जाजी पिप्पल्यो मारिचानि च । राजिका धान्यकं शुण्ठी त्रिचतुर्जातकानि च ।।१६
लवणं क्षारवर्गाश्च सौवीरकपरूषकौ । द्विदलामलकं चिंचा सर्वाश्च स्नेहजातयः ।।१७
शुष्ककाष्ठानि वल्लूरमरिष्टा पिष्टमाषयोः । विकाराः पयसश्चापि विविधाः कन्दजातयः ।।१८
नित्यनैमित्तिकानां हि कार्याणामुपयोगतः । सर्वमित्यादि संग्राह्यं यथावद्विभवोचितम् ।।१९
यत्कार्याणां समुत्पत्तावुपाहर्तुं न शक्यते । तत्प्रागेव यथायोगं सङ्गृह्णीयात्प्रयत्नतः ।।२०
धान्यानां घृष्टपिष्टानां क्षुण्णोपहतयोरपि । भृशं शुष्कार्द्रसिद्धानां क्षयवृद्धी निरूपयेत् ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
गृहधर्मवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११।

समय-समय पर अपनी शक्ति के अनुरूप उसे संग्रह करना चाहिये ।१०। ताँबें, काँसे, लोहे काष्ठ बाँस एवं मिट्टी के गृहस्थी के उपयोगी विविध पात्रों का भी उसे विधिवत् संग्रह करना चाहिये ।११। जल रखने के लिए बनी हुई बड़ी बड़ी द्रोणियाँ (छोडें) कलश, झारी तथा उदंचन (बड़े पात्र से जल निकालने के लिए छोटे जल पात्र) एवं शाक आदि रखने के पात्रों का भी उसे संग्रह करना चाहिये । तेल की एवं गोरस रखने के पात्रों को भी सावधानी से संगृहीत करना चाहिये ।१२। मूसल, ओखली, सूप, चालनी, दोहनी, सिल, चक्की, मथानी, जंजीर, सनसी, कुण्डिका, शूल, परी, चिमटा, करछुल, कड़ाही, बड़े करघे, तराजू, सेर, अधसेरा, आदि के मान, झाडू पिटारी इन सब गृहस्थी की परम उपयोगी वस्तुओं का प्रयत्न पूर्वक सर्वदा संग्रह करना चाहिये ।१३-१५। हींग जीरा, पिपली, धनियाँ, राई तीन प्रकार की सोंठ, नमक अन्य सभी प्रकार के क्षार,कांजी, सिरका, दाल, आँवला, इमली, सभी प्रकार के तेल, सूखी लकड़ी, पिसा हुआ उड़द, सूखे हुए मांसादि रीठा इन सबको तथा दूध से बनने वाली सभी वस्तुओं सब प्रकार के कन्दों एवं अन्यान्य प्रकार की गृहस्थी की नित्य उपयोगी वस्तुओं को पहले से ही संगृहीत करना चाहिए । अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप ऐसी सभी वस्तुओं को सोच विचार कर पहले ही से अपने पास रख लेना चाहिये ।१६-१९। इनके अतिरिक्त जो वस्तुएँ कार्यारम्भ हो जाने पर तुरन्त न मँगाई जा सकती हों, उन्हें भी पहले ही से प्रयत्न पूर्वक संग्रह करे । अब इसके बाद घिसे हुए पिसे हुए पकाये गये और कच्चे तथा खूब सूखे हुए एवं गीले अन्नों में कितनी वृद्धि होती है, कितनी न्यूनता होती है इन सबका निरूपण कर रहा हूँ ।२०-२१

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में गृहधर्म वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११।

---

१. अश्ममयस्य । २. शूर्पवर्धिनी ।

अथ द्वादशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ब्रीहीणां कोदवाणां च सारधर्ममुदारकः[1] । कङ्गुकोद्रवयोर्ज्ञेयो परटः पञ्चभागकः ॥१
पञ्चभागान्प्रियङ्गूनां शालीनां च त्र्यंशोऽष्ट च । चणकानां तृतीयांशः समक्षुण्णं त्रयं विदुः ॥२
पानीययवगोधूमं[2] पिष्टधान्यचतुष्टयम् । तुल्यमेवावगन्तव्यं मुद्गा माषास्तिला यवाः ॥३
पञ्चभागादिका घृष्टा गोधूमाः सक्तवस्तथा । कुल्माषाः पिष्टमांसं च सम्यगर्धादिकं भवेत् ॥४
सिद्धं तदेव द्विगुणं पुन्नाको यावकस्तथा । कङ्गुकोद्रवयोरन्नं चणकोदारकस्य च[3] ॥५
द्विगुणं[4] चीनकानां च ब्रीहीणां च चतुर्गुणम् । शालेः पञ्चगुणं विद्यात्पुराणे त्वतिरिच्यते ॥६
क्रियापाकविशेषास्तु वृद्धिरेवोपदिश्यते । निमित्तस्य वरान्नस्य तद्वृद्धिर्द्विगुणा भवेत् ॥७
तस्माद्भूयो विरूढस्य चतुर्भागो विवर्धते । लाजा धानाः कलायाश्च भृष्टाद्द्विगुणवृद्धयः ॥८
भ्रष्टव्यानामतोऽन्येषां पञ्चभागोऽधिको मतः । चापकानां च पिष्टानां पादहीनाः कलायजाः ॥९

अध्याय १२

स्त्रीधर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—व्रीहिधान्य (गेहूँ आदि) और कोदो के चावल कूटने में आधा भाग तात्त्विक होता है और आधी भूसी निकल जाती है। काकुन और कोदो का पाँचवा भाग परट होता है।१। इसी प्रकार प्रियंगु धान्य का पाँचवा भाग भी न्यून होता है शाली का एक तृतीयांश तथा अष्टमांश न्यून होता है। चने का एक तृतीयांश निकल जाता है—ऐसा लोग कहते हैं और ये तीनों समान कूटने योग्य हैं।२। पानीय (सिंघाड़ा) ज्वार गेहूँ एवं पीसे हुए चार प्रकार के अन्नों का जलन एक समान ही जानना चाहिये। मूंग, उडद, तिल, तथा जवा इन चारों में समान जलन एवं छीजन जाता है।३। गेहूँ और सत्तू इनमें पीसने पर पाँचवाँ भाग निकल जाता है। कुल्माथ (कुलथी) और पिष्टमांस में भी अच्छी तरह पीसने पर आधे से अधिक जाता है।४। किन्तु पकाने पर वह दुगुना हो जाता है। पुन्नाक और यावक में भी ऐसा ही होता है। काकुन और कोदों के अन्न में चना और उदारक के अन्न को पकाने पर द्विगुणित वृद्धि होती है। चीनी व्रीहि (चावल) पकाने पर चौगुना होता है साठी का पांच गुना होता है पुराने होने पर और अधिक होता है।५-६। पाक क्रिया में विशेषता (निपुणता) रखने वाले तो इससे भी बढ़कर वृद्धि होने का उपदेश देते हैं। शुद्ध श्रेष्ठ अन्न को वे द्विगुणित बड़ा देते हैं।७। उससे भी बढ़कर वे अन्न बढ़ते हैं जो अंकुरित हो जाते है, उनका चतुर्थांश बढ़जाता है। लावा, धान और कलाय ये भूने जाने पर द्विगुणित बढ़ जाते हैं।८। इनके अतिरिक्त जो भूने जाने वाले अन्न हैं उनका भूनने पर पाँचवाँ भाग अधिक माना जाता है। चापक एवं पीसे गये अन्नों के कलायज चौथाई न्यून हो जाते हैं।९

---

१. सारमर्धमुदारकः २. यमनीयवगोधूमम्। ३. यवकोदारवस्य। ४. त्रिगुणम्।

मुद्गमाषमसूराणामर्धपादावरोभवेत् । क्लिन्नशुष्कवरान्नानां हानिर्वृद्धिर्विशिष्यते ।।१०
तथार्धेन तु शोध्यानामाढक्या मुद्गमाषयोः । मसूराणां च जानीयात्क्षयं पञ्चमभागकम् ।।११
षड्भागेनातसीतैलं सिद्धार्थककपित्थयोः । तथा निम्बकदम्बादौ[1] विद्यात्पञ्चमभागकम् ।।१२
तिलेङ्गुदीमधूकानां[2] नक्तमालकुसुम्भयोः । जानीयात्पादकं तैलं खलमन्यत्प्रचक्षते ।।१३
क्षेत्रकालक्रियादिभ्यः क्षयादेर्व्यभिचारतः । प्रत्यक्षीकृत्य तान्सम्यगनुमित्यावधारयेत् ।।१४
क्षीरदोषे गवां[3] प्रस्थं महिषीणां च सर्पिषः । पादाधिकमजावीनामुत्पादं तद्विदो विदुः ।।१५
सुभूमितृणकालेभ्यो वृद्धिर्वा क्षीरसर्पिषाम् । अतस्तेषां विधातव्यो ह्यर्थादेव[4] विनिश्चयः ।।१६
प्रत्यक्षीकृत्य यत्नेन पक्षमासान्तरे तथा । पयोर्वृत्तैर्गवादीनां कुर्यात्सम्भवनिर्णयम् ।।१७
कार्पासकृमिकोशौमौर्णकक्षौमादिकर्तनम् । कुणिपङ्ग्वन्धयोषाभिर्विधवाभिश्च कारयेत् ।।१८
बालवृद्धान्धकार्पण्ये यत्कर्तव्यमवश्यतः । विनियोगं नयेत्सर्वं प्रियोपग्रहपूर्वकम् ।।१९
कर्मणामन्तरालेषु प्रोषिते चापि भर्तरि । स्वयं वै तदनुष्ठेयं नित्यानां चाविरोधतः ।।२०

मूंग, उड़द और मसूर का आठवाँ भाग न्यून हो जाता है । विशेष गीले सूखे एवं श्रेष्ठ पुष्ट अन्नों की हानि (न्यूनता) और वृद्धि इस सामान्य नियम से कुछ बढ़ घट जाती है ।१०। ऐसे मूंग उड़द और मसूर में जो शोधनीय रहते हैं अर्थात् खूब साफ नहीं रहते उनके पाँचवे भाग की कमी जाननी चाहिये ।११। अलसी का तेल छठवाँ भाग निकलता है, सरसों कपित्थ (कैंथा) नीम और कदम्ब आदि में पाँचवा भाग जानना चाहिये ।१२। तिल, ईंगुदी, महुआ, नक्तमाल (करञ्ज) और उसगपा में एक चौथाई तेल जानना चाहिये । खल (खरल खली) का लक्षणादि अन्यत्र कहा गया है ।१३। खेत, समय, निकालने की प्रक्रिया आदि के कारण इस उपर्युक्त नियम में कुछ व्यभिचार दिखाई पड़ेगा, अर्थात् जितना कहा गया है, उससे अधिकता या न्यूनता हो सकती है अतः उन्हें (खेत, समय एवं प्रक्रिया) को अपनी आँखों से देखकर अनुमान द्वारा घटा बढ़ाकर जान लेना चाहिये ।१४। गौओं के दूध में एक सेर घी होता है परन्तु दूध के दोष आदि के कारण सेर आदि में कुछ निश्चित परिमाण भी नहीं बतलाया जा सकता । भैंस बकरी और भेडों में उनकी अपेक्षा चौथाई से कुछ अधिक घी पैदा होता है अर्थात् १६ सेर दूध में सवा सेर से अधिक घी होता है । ऐसा उसके विषय में अधिक जानकारी रखने वाले लोग कहते हैं ।१५। अच्छी भूमि घास और समय के अनुसार दूध और घी में इससे अधिक भी वृद्धि होती है । अतः उनके लिए निश्चित परिमाण का निश्चय उन्हीं सब पर विचार करके स्वयं ले करना चाहिये ।१६। एक पक्ष अथवा एक महीने तक प्रत्येक खिलाने पिलाने के उपाय से गौओं आदि के दूध एवं घी में उत्पत्ति का निश्चय करना चाहिये ।१७। कपास रेशम एवं सन आदि के कीड़ों एवं उनके चुनने एवं काटने आदि का काम गूंगी, लंगड़ी, बहरी एवं विधवा स्त्रियों से कराना चाहिये ।१८। बालक, वृद्ध, अन्ध एवं दीन व्यक्तियों को उनकी अभीष्ट वस्तुएँ एवं भोजनादि देकर योग्य कामों में लगाकर सब काम करा लेना चाहिये ।१९। नित्य होने वाले कार्यों में पति के विश्राम के अवसर पर तथा उसके परदेश चले जाने पर पत्नी को बिना किसी विरोध के स्वयमेव

---

१. कुसुम्भादेः । २. माषकाणाम् । ३ बह्वान । ४ तत्तद्भागविनिश्चयः ।

शूद्राणां स्थूलसूक्ष्मत्वं बहुत्वं च व्ययाव्ययौ । मत्वा विशेषं कुर्वीत चेतनप्रतिपत्तिषु ॥२१
कारयेद्वस्त्रधान्यादि स्वाप्तवृद्धैरधिष्ठितम्[1] । शूद्राणां क्षयवृद्ध्यादि मन्तव्यं वेतनानि च ॥२२
क्षौमकार्पासयोर्विद्यात्सूत्रं पञ्चमभागकम् । देशकालादिभागात्तु प्रत्यक्षादेव निर्णयः ॥२३
अवघातेन तूलस्य क्षयो विंशतिभागकः । छन्नां व्याप्तां तु वातेन तद्वदूर्णां प्रचक्षते ॥२४
पञ्चाशद्भागिकीं हानिं सूत्रे कुर्वीत लक्षणात्[2] । वृद्धिस्तु मण्डसम्पर्काद्दशैकादशिका भवेत् ॥२५
सूक्ष्मामध्यमसूत्राणामर्धाधिकसमं भवेत् । स्थूलानां तु पुनर्भूल्यात्पादोनं वालचेतनम् ॥२६
कर्मणो भूरिभेदत्वाद्देशकालप्रभेदतः[3] । तद्विद्भ्य एव बोद्धव्यो वालचेतननिश्चयः ॥२७
स्थूलं दिनत्रयं देयं मध्यमं च त्रिरात्रिकम् । सूक्ष्ममापक्षतो मृष्टं[4] मासात्तत्परिकर्मकम् ॥
यदत्र क्षयवृद्ध्यादि तदुत्सर्गात्प्रदर्शितम् ॥२८
कालकर्त्रादिभेदेन व्यभिचारोऽपि दृश्यते । शय्यासनान्यनेकानि कम्बलाश्चतुराश्रिकाः ॥२९
कञ्चुकाश्चावकोषाश्च मध्या रक्ताश्च भूरिशः । गुरुबालादिवृद्धानामभ्यागतजनस्य च ॥३०

सहयोग करना चाहिये ।२०। शूद्रों (नौकरों) की मोटाई दुर्बलता एवं संख्या की अधिकता को देखकर एवं भलीभाँति विचारकर व्यय सब संचय में विशेषता तथा चतुरता प्राप्त करनी चाहिये ।२१। अपने घर के बड़े और अनुभवी बहुजनों द्वारा बतलाये गये नियमों का वस्त्र एवं अन्न सम्बन्धी कार्यों में पालन करना चाहिये । इसी प्रकार सेवकों की संख्या बढ़ाने घटाने एवं उनके वेतनादि में भी अनुभवी वृद्धों द्वारा जानकारी प्राप्त कर के निश्चय करना चाहिये ।२२। अलसी और कपास में पाँचवाँ हिस्सा सूत जानना चाहिये । किन्तु इस नियम में देश और काल के कारण प्रत्यक्ष देखकर ही निर्णय करना चाहिये ।२३। धुनने पर रूई का बीसवाँ भाग क्षय हो जाता है । भेंड़ आदि के अच्छे ऊन यदि वायु से सुरक्षित स्थल में रखकर धुने जायँ तो वे भी उतने ही न्यून हो जाते हैं ।२४। कपड़ा बिनाने पर इन सूतों का पचासवाँ भाग न्यून हो जाता है । बुनते समय माँड़ के मिला देने से दसवें एवं ग्यारहवें भाग जितनी वृद्धि हो जाती है ।२५। बहुत महीन चिकने और मध्यम कोटि के सूतों में ऊपर के आधे अथवा उससे कुछ अधिक की न्यूनता होती है । मोटे सूतों में वह न्यूनता चौथाई हो जाती है ।२६। किन्तु यह सब बातें बनने वालों की अज्ञता एवं निपुणता पर निर्भर करती है । कार्यों के अनेक भेद होने के कारण तथा देश और काल के भेद से अज्ञों और निपुणों की जानकारी ऐसे अनुभवी लोगों से ही प्राप्त करनी चाहिये जो उक्त विषय के विशेषज्ञ हों ।२७। मोटे सूत का कपड़ा तीन दिन में देना चाहिये, मध्यम कोटि के सूत का तीन रात में तथा बहुत सूक्ष्म और चिकने सूत का कपड़ा एक पक्ष भर में प्रस्तुत कर के दे देना चाहिये । इसमें जो कुछ न्यूनता वा वृद्धि होती है, उसे पहले ही कह चुके हैं ।२८। काल एवं कर्त्ता आदि के भेद से इस नियम में व्यभिचार भी देखा जाता है । अर्थात् कहीं पर उक्त परिमाण से कम और कहीं पर उक्त परिमाण से अधिक क्षय वृद्धि होती है शय्या अनेक प्रकार के आसन, कम्बल, जिस पर कम से कम चार व्यक्ति बैठ सकें कम्बल और चावकोष ये मध्यम कोटि के तथा विशेषतया अधिक रक्त वर्ण के होते हैं । गुरुजन, बालक

---

१. आयुर्वृद्धैः । २. लेखनादिति पाठः । ३. देशकालप्रसिद्धितः । ४. गृष्टम् ।

भोगायानुगतो भर्ता कुर्याद्विविधमाङ्कम् । यदस्य श्वशुरादीनां कल्पितं शयनादिकम् ॥३१
भर्तुश्चैव विशेषण तदन्येन न कारयेत् । वस्त्रं माल्यमलङ्कारं विधृतं देवरादिभिः ॥३२
न धारयेन्न चैतेषामाक्रमेच्छयनानि वा । पिण्याकनककुट्टाश्च[1] कालरूक्षाणि यानि च ॥३३
हेयं पर्युषिताद्यन्नं गोभक्तेनोपयोजयेत् । कुलानां बहुधेनूनां गोध्यक्षव्रजजीविनाम् ॥३४
किलाटगर्विकादीनां भक्तार्थमुपयोजनम् । दध्नः समाहरेत्सर्पिर्दुहेद्वत्सान्न पीडयेत् ॥३५
वर्षाशरद्वसन्तेषु द्वौ कालावन्यदा सकृत् । तक्रं वाप्युपयुञ्जीत श्ववराहादिपोषणे ॥३६
पिण्याकक्लेदनार्थं वा विक्रेयं वा तदर्हयेत् । वृत्तिं धान्यहिरण्येन गोपादीनां प्रकल्पयेत् ॥३७
ते हि क्षीरवता लोभादुपहन्युस्तदन्वयान् । दोहकालं गवां दोग्धानीतिवर्तेत वै द्विजाः ॥३८
प्रसरोदकयोर्गोपा मन्थकस्य च मन्थकाः । मासमेकं यथा स्तन्यं मासमेकं स्तनद्वयम् ॥३९
सततं पाययेदूर्ध्वं स्तनमेकं स्तनद्वयम् । तिलपिष्टाभिः पिण्डाभिस्तृणेन लवणेन च ॥
वारिणा च यथाकालं पुष्णीयादिति वत्सकान् ॥४०

वृद्ध और अतिथि इन सब की सुविधा एवं भोग के लिए पति के साथ (बहू) विविध प्रकार के कार्यों को करे। श्वसुर आदि बृद्धजनों के लिए जो शैय्या निश्चित है, उसे तथा विशेषतया पति की शैय्या को दूसरे नौकर चाकरादि से नहीं बिछवानी चाहिये। देवर आदि के द्वारा धारण किये गये वस्त्र, माला, पुष्प एवं आभूषणादि को स्वयं कभी नहीं धारण करना चाहिए। इसी प्रकार उनकी शय्या पर भी कभी पैर नहीं रखना चाहिये। खली अन्न के टुकड़े (दलिया और भूसी) सूखे हुए अन्न तथा बासी बचे हुए अन्न को गौ आदि के खाने के लिए रखना चाहिये। बड़े बड़े साँड़ों के साथ चलने वाली अनेक प्रकार की गौओं के समूहों के लिए उन सब का उपयोग करना चाहिये। मथे हुए मट्ठे का उपयोग भी उन्हीं गौओं के लिए करना चाहिये। दही से घी निकाल लेना चाहिये गौओं को यथासमय दुहना चाहिये किन्तु दुहते समय बछड़ों को पीड़ित नहीं करना चाहिये।२९-३५। वर्षा, शरत् और वसन्त ऋतु में दो बार दुहना चाहिये, अन्य ऋतुओं में केवल एक बार दूध से निकले हुए मट्ठे का उपयोग कुत्ते एवं शूकर आदि के पालने के कार्यों में करना चाहिये।३६। अथवा खली के भिगोने के काम में लाना चाहिये अथवा बिक्री कर देना चाहिये। गौओं के चराने एवं पालन करने वाले गोपादिकों का अन्न अथवा सुवर्ण का पारिश्रमिक देना चाहिये।३७। वे दूध बेचने वाले होते हैं उपयुक्त पारिश्रमिक न देने पर वे लोभ से गौओं के बच्चों को पीड़ित करते हैं अतः इनकी देखरेख रखनी चाहिये ठीक समय पर गौओं को अवश्य दुह लेना चाहिये। द्विजवृन्द! उनको दुहने में तनिक देर नहीं करनी चाहिये।३८। वे गौओं की रक्षा करने वाले लोग ही अधिक जल डालकर दुग्ध एवं दही के मथने वाले भी होते हैं। जब गौ व्यावे तो एक मास तक उसे सभी स्तनों का दूध पीने देना चाहिये तदुपरान्त एकमास तक दो स्तनों का।३९। इसके उपरान्त उसे सर्वदा एक स्तन का दूध पीने देना चाहिये। तिल के चूर्ण पिण्ड (पिसान के गोले) तृण (घास) नमक एवं जल

---

१. कोद्राश्च।

जरद्गुर्गर्भिणी धेनुर्दत्सा वत्सतरी तथा । पञ्चानां समभागेन घासं यूथे प्रकल्पयेत् ॥४१
एको गोपालकस्तस्य त्रयाणामथ वा द्वयम् । पञ्चानां वत्सकश्चैकः प्रवरास्तु पृथक्पृथक् ॥४२
गोचरस्यानयनार्थं व्यालानां त्रासनाय[1] च । घण्टा[2] कर्णेषु बध्नीयुः शोभारक्षार्थमेव च ॥४३
पशव्ये व्यालनिर्मुक्ते देशे भूरितृणोदके । अभूतदुष्टे वारण्ये सदा कुर्वीत गोकुलम् ॥४४
सगुप्तमटवीवासं नित्यं कुर्यादजाविकम् । ऊर्णां वर्षे द्विरादद्याच्चैत्राश्वयुजमासयोः ॥४५
यूथे वृषा दशैतासां चत्वारः पञ्चवा गवाम् । अश्वोष्ट्रमहिषाणां च यथा स्युः सुखसेविताः ॥४६
विद्यात्कृषीवलादीनां योगं कृषिककर्मसु । भक्तवेतनलाभं च कर्मकालानुरूपतः ॥४७
क्षेत्रकेदारवाटेषु भृत्यानां कर्म कुर्वताम् । खलेषु[3] च विजानीयात्क्रियायोगं प्रतिक्षणम् ॥४८
योग्यतातिशयं मत्वा कर्मयोगेषु कस्यचित् । ग्रासाच्छदशिरोभ्यङ्गैर्विशेषं तस्य कारयेत् ॥४९
पद्मशाकादिवापानां कन्दबीजादिजन्मनाम् । सङ्ग्रहः सर्वबीजानां काले वापः सुभूमिषु ॥५०
जातानां रक्षणं सम्यग्रक्षितानां च संग्रहः । तेषां च संगृहीतानां यथावन्निवपक्रिया ॥५१

से समय समय पर बछड़ों को पालते रहना चाहिये ।४०। बुड्ढी गौ, गर्भिणी गौ, लगने वाली गौ, बछवा बछिया तथा सद्योजात गौ शिशु इन ५ाँचों को ही समान भाग से घास देना चाहिये ।४१। गौओं के पीछे एक या दो गोचालक नियुक्त करना चाहिये, उसमें पाँच बछवा बछिया भी रह सकते है उनमें जो बड़े बड़े हों वे परस्पर अलग-अलग हों ।४२। गोचर भूमि से घर तक आने में सर्पादि जीवों को डराने के लिए शोभा वृद्धि एवं रक्षा के लिए गौओं के गले में घण्टी बाँधनी चाहिये ।४३। सर्वदा सर्पादि दुष्ट जीव जन्तुओं से विहीन पशुओं के लिए लाभदायी अधिक घास वाले, चोरों से रहित ग्राम्य स्थान में अथवा जंगल में गौओं के दिन में बैठने व चरने का स्थल निश्चित करना चाहिये ।४४। भेड़ों व बकरियों का चरागाह सर्वदा सुरक्षित जंगली स्थान में करना चाहिये । वर्ष में दो बार चैत्र व आश्विन मास में भेड़ों के ऊनों को काट लेना चाहिये ।४५। बकरियों के समूह में दस के पीछे एक (भेंड़ बकरा) रहना चाहिये इसी प्रकार गाौओं के समूह में चार वा पाँच के पीछे एक सांड़ रहना चाहिये । घोड़े, ऊँट एवं भैसों के समूह में जितने ही अधिक हों उतनी ही अधिक सुविधा रहती है उन साडों का विधिवत् पालन करना चाहिये ।४६। कृषि के कामों में कर्मकरों एवं मजदूरों के कार्यों की बराबर देख-रेख रखनी चाहिये । कामों के अनुसार यथासमय उन्हें भोजन एवं वेतनादि का लाभ देना चाहिये ।४७। तैयार फसल वाले खेत में, वाटिका में, हल के पास एवं खलिहान में काम करने वाले मजदूरों के कामों की प्रतिक्षण देख भाल करती रहनी चाहिये । कामों में किसी मजदूर की लगन यदि अतिशय देखी जाय तो उसका ध्यान रख कर भोजन वस्त्र शिर पर लगाने के तेल आदि देकर अन्य मजदूरों की अपेक्षा उसके प्रति विशेषता दिखानी चाहिये ।४८-४९। पद्म, शाक, कन्द मूलादि के बीजों का एवं अन्य गृहस्थी के आवश्यक बीजों का समय-समय पर अच्छा संग्रह रखना चाहिये और उनके ठीक समय आने पर अच्छी भूमि में बो देना चाहिये ।५०। जो फसल पैदा हो गई हो उसकी अच्छी तरह से रक्षा करनी चाहिये और उन सुरक्षित अन्नादि का अच्छी तरह से संग्रह करना चाहिये । और उन संगृहीत अन्नादिकों का बोने आदि की क्रिया

---

१. शासनाय च । २. घण्टाशब्दश्रवणेन गावो मेऽत्र सन्तीति ज्ञानं जायत इत्येततात्पर्यम् । ३. स्थलेषु ।

गृहमूलं स्त्रियश्चैव धान्यमूलो गृहाश्रमः । तस्माद्धान्येषु भक्तेषु न कुर्यान्मुक्तहस्तताम् ।।५२
धान्यं तु सञ्चितं नित्यं मितो भक्तपरिव्ययः । न चान्ने मुक्तहस्तत्वं गृहिणीनां प्रशस्यते ।।५३
अल्पमित्येव नावज्ञां चरेदन्नेषु वै द्विजाः । मधुवल्मीकयोर्वृद्धिं क्षयं दृष्ट्वांजनस्य च ।।५४
ये केचिदिह निर्दिष्टा व्यापाराः पुरुषोचिताः । दाम्पत्योरैक्यमास्थाय तद्विदानप्रसङ्गतः ।।५५
सन्त्येव पुरुषा लोके स्त्रीप्रधानाः सहस्रशः । तेषु तासां प्रयोक्तृत्वाददोष इति गृह्यताम् ।।५६
एवं योग्यतया युक्ता सौभाग्येनोद्यमेन च । सम्यगाराध्य भर्तारं तत्रैनं वशमानयेत् ।।५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं नाम द्वादशोऽध्याय ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रथमं प्रतिबुध्येत प्रवर्तेत स्वकर्मसु । पश्चाद्भृत्यजनस्यापि भुञ्जीत च शयीत च ।।१

भी अच्छी तरह सम्पन्न करनी चाहिये ।५१। गृह की सर्वस्व मूलभूत स्त्रियाँ कही जाती हैं, गृहस्थाश्रम अन्न का मूल स्वरूप कहा जाता है, इसलिये अन्न को विशेषतया भोजन को मुक्त हस्त होकर दान नहीं देना चाहिये ।५२। अन्न को सर्वदा संचित करते रहना चाहिये, पकाने में मितव्ययिता करनी चाहिये, निपुण गृहिणी की अन्न के विषय में मुक्त हस्तता प्रशंसित नहीं मानी गई है । (अर्थात् उसे अन्न को इधर-उधर बहुत दान नहीं देना चाहिये) ।५३। द्विजवृन्द ! बहुत थोड़ा है यह जानकर अल्प अन्न की भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये इसकी वृद्धि के लिए मधु और चीटी के बिल के ऊपर संचित मिट्टी का उदाहरण लेना चाहिये । और उसकी कमी के लिए अंजन का उदाहरण अपनाना चाहिये । (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार मधु की मक्खियाँ तनिक तनिक सा मधु एकत्र कर राशि बटोर लेती है चीटियाँ तनिक तनिक सी मिट्टी खोद कर उन्नत ढेर बना देती हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी थोड़ा थोड़ा अन्न इकट्ठा कर एक राशि एकत्र कर सकती है और जिस प्रकार अंजन तनिक सा आँख में लगाने पर भी धीरे धीरे बहुत परिमाण में रहने पर भी समाप्त हो जाता है उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा अन्न लापरवाही से छोड़ देने पर वा ऐरे गैरे को झूठी प्रशंसा के लिए दे देने पर एक राशि भी नष्ट हो जाती है ।५४। इस प्रसंग में कुछ काम ऐसे हैं जो पुरुषों के योग्य हैं उनका निर्देश दम्पत्ति की अभेद्य एकता को लेकर किया गया है । स्त्रियों के दान के प्रसंग से इन सबका वर्णन मैंने कर दिया है ।५५। लोक में ऐसे सहस्रों पुरुष भी मिलेंगे जिनमें स्त्री की प्रधानता पाई जाती है, उन पुरुषों को प्रेरणा देने वाली उनकी स्त्रियाँ ही होती हैं । अतः उनके ऐसे व्यवहार में कोई दोष नही है ऐसा जान लीजिए ।५६। इस प्रकार योग्यता सौभाग्य और उद्यम से स्वामी की भलीभाँति आराधना करके उन्हें अपने वश में करें ।५७।

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री-धर्म वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अध्याय १३

स्त्रीधर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा पहले जग जाना चाहिये और अपने कर्म में लग जाना

भर्त्रा विरहिता स्त्री च श्वशुराभ्यां विशेषतः । देहलीं नातिवर्तेत प्रतीकारे[1] महत्यपि ॥२
उत्थाय प्रथमं भर्तुरविज्ञाता न निष्क्रमेत् । क्षपायां सावशेषायां रात्रौ वा वासरादिषु ॥३
तद्वासभवनस्यैव शनैराहूय कार्मिकान् । स्वव्यापारेषु तान्सर्वांस्तत्रतत्र नियोजयेत् ॥४
विबुद्धस्य ततो भर्तुर्निर्वर्त्यावश्यकं विधिम् । गृहकार्याणि सर्वाणि विदधीताप्रमादतः ॥५
मुक्त्वावासकनेपथ्यं कर्मयोग्यं विधाय च । तत्कालोचितकर्तव्यमनुतिष्ठेद्यथाक्रमम् ॥६
महानसं सुसम्मृष्टं चुल्ल्यादिविहितार्चनम् । सर्वोपकरणोपेतमसम्बाधमनाविलम् ॥७
न चातिगुह्यं प्रकटं प्रविभक्तक्रियाश्रयम् । भर्तुराप्तजनाकीर्णं गूढं कक्षादिवर्जितम् ॥८
तत्र पाकादिभाण्डानि बहिरन्तश्च कारयेत् । निर्णिक्तमलपङ्कानि शुक्तिवल्कादिचूर्णकैः ॥९
निशि कुर्वीत धूमार्चिः शोधितानि दिवातपैः । दधिपात्राणि कुर्वीत सदैवान्तरितानि च ॥१०
साधुकारितदुग्धेषु शोधितेषु दिवातपे । ईषद्गृह्योक्तपात्रेषु स्वच्छं येन भवेद्दधि ॥११
स्नेहगोरसपाकादि कृत्वा सुप्रत्ययेक्षितम् । कुर्यात्स्वयमधिष्ठाय भर्तुः पाकविधिक्रियाम् ॥१२
किं प्रियं च किमाग्नेयं षड्रसाभ्यन्तरेषु च । किं पथ्यं किमपथ्यं च स्वास्थ्यं[2] वास्य कथं भवेत् ॥

चाहिये । नौकर चाकरों के भी बाद में उन्हें भोजन और शयन करना चाहिये ।१। बहुत बड़ी कठिनाई आ पड़ने पर भी स्वामी से और विशेषतया सास-ससुर से विरहित स्त्री अपने घर की देहली भी न डाँके ।२। पति के पहले शैय्या से उठकर उसके बिना जाने हुए कहीं भी बाहर नहीं निकलना चाहिये ।३। (चाहे रात बहुत थोड़ी ही बीत गयी हो, आधी रात हो या दिन का समय हो) अपने निवास के कमरे से ही काम करने वालों को धीरे से बुलाकर उन्हें अपने-अपने व्यापार में नियुक्त कर देना चाहिये ।४। तदनन्दर पति के जान जाने पर आवश्यक कर्मों से निवृत्त होकर धर के समस्त कार्यों को सावधानी पूर्वक सम्पन्न करे ।५। घर का काम काज करते समय स्त्री अपने रात वाले वस्त्राभूषण को उतार कर अलग रख दे और काम के अनुसार वस्त्रादि धारण कर कालक्रमानुसार सब कार्य सम्पन्न करे ।६। रसोईघर को भलीभाँति पोतकर चूल्हे आदि का सविधि अर्चन करके रसोईघर को सभी सामग्रियों एवं सामानों से संयुक्त रखे, तथा सविधि रखते हुए उसे भलीभाँति स्वच्छ किये रहे ।७। वह न तो अत्यन्त छिपी जगह में हो न खुली जगह में सभी प्रकार के भोजनों को बनाने के लिए अलग-अलग स्थान निर्धारित हों । जहाँ पर पति के आप्त जन रहते हों गूढ़ हो और कोठरियों से रहित हो ऐसे गुप्त स्थान पर ही रसोई का स्थान रखना चाहिये ।८। रसोईघर के पात्रों को भीतर-बाहर से खूब स्वच्छ करना चाहिए, उनमें न तो कीचड़ लगा हो न जूठा ।९। दिन में धूप के द्वारा शोधित दही के पात्र को रात में धुआँ देना चाहिए और उन्हें अलग रखना चाहिए ।१०। दिन की धूप में सुखाये गये पात्रों में दुग्ध को सफाई से रखना चाहिये और दधि-पात्र से थोड़ा दही लेकर उसमें रखे जिससे दही भी स्वच्छ बना रहे ।११। तेल गोरस एवं पाक क्रिया आदि की अच्छी तरह देखभाल रखकर पति का भोजन स्वयं तैयार करना चाहिये ।१२। उस समय यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजन के छहों रसों में कौन रस पति की

---

१. प्रतीहासे । २. सात्म्यं चास्य यथा भवेत् ।

इति यत्नाद्विजानीयादनुष्ठेयं च तत्तथा । ॥१३
नित्यानुरागं सत्कारमाहारं सुपरीक्षितम् । महानसादौ कुर्वीत जनमाप्तं क्रमागतम् ॥१४
शत्रुं दायादसम्बन्धं क्रुद्धभीतावमानितम् । अवाच्योपगृहीतं वा नैवमादीनि योजयेत् ॥१५
पुनः पुनः प्रतिष्ठाप्य गुप्तं स्वयमधिष्ठितम् । भर्तुराहारपानादि विदध्यादप्रमादतः ॥१६
पाकं निर्वर्त्य मात्राणां कृत्वा स्वेदप्रमार्जनम् । गन्धताम्बूलमाल्यादि किञ्चिदादाय मात्रया ॥१७
यथौचित्यादितत्काले भर्तुर्विनयसम्भ्रमैः । तत्कालानुगतात्यर्थमाहारमुपपादयेत् ॥१८
स्वभावामयकालानां वैपरीत्येन सर्वदा । सर्वमाहारपानादि प्रयोज्यं तद्विदो जगुः ॥१९
हीनतुल्याधिकत्वेन भर्ता पश्यति यं यथा । तं तथैवाधिकं पश्येन्न्यायतः प्रतिपत्तिषु ॥२०
सापत्नकान्यपत्यानि पश्येत्स्वेभ्यो विशेषतः । भगिनीवत्सपत्नीश्च तद्वद्धूर्निजबन्धुवत् ॥२१
ग्रासाच्छादशिरोभ्यङ्गस्नानमण्डनकादिकम् । सपत्नीनामकृत्वा तु आत्मनोऽपि न कारयेत् ॥२२
व्याधितानां चिकित्सार्थमौषधादिकमादरात् । विदध्यादात्मनस्तासां सर्वाश्रितजनस्य च ॥२३
तच्छोके शुचमादद्यात्तत्तुष्टौ मुदमावहेत् । भृत्यबन्धुसपत्नीनां तुल्यदुःखसुखा भवेत् ॥२४

जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाला है कौन सा पदार्थ प्रिय है क्या पथ्य है और क्या अपथ्य है एवं किस पदार्थ के खाने से पति का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा इन सब बातों को प्रयत्नपूर्वक जान लेना चाहिये और उसी के अनुसार कार्य भी करना चाहिये ।१३। रसोईघर में सर्वदा प्रेम पूर्वक अच्छी तरह पहले से परीक्षित आहार को सत्कार भावना से करना चाहिये भोजन क्रमशः आये हुए श्रेष्ठ जनों को (पहले) परोसना चाहिये ।१४। शत्रु दायाद (हिस्सेदार) जो क्रुद्ध हों भयभीत हों जिनका कभी अपमान हुआ हो, जिन्हें कभी गाली कुवाच्य कहा गया हो ऐसे लोगों को रसोई में नहीं नियुक्त करना चाहिये ।१५। स्वयं अपने हाथों से बनाये गये सुन्दर सुस्वाद सुरक्षित अच्छी तरह परोसे गये पति के भोजन पानादि को समुचित ढंग से सावधानता पूर्वक प्रस्तुत करना चाहिये ।१६। भोजन से निवृत्त होकर सारे शरीर से पसीने को पोंछ डाले और सुगन्धित इत्र एवं ताम्बूल माला आदि को थोड़ा सा लेकर जिस प्रकार उचित हो, पति के हाथों में विनय एवं सत्कारपूर्वक निवेदित करे । समय अथवा ऋतु के अनुसार आहार की व्यवस्था करनी चाहिये ।१७-१८। स्वभाव राग और काल की विपरीतता देखते हुए सभी भोजन पानादि की व्यवस्था करनी चाहिये ऐसा उसके जानकार लोगों ने कहा है ।१९। पति घर में जिस व्यक्ति जिस वस्तु को हीनदृष्टि तुल्य दृष्टि एवं अधिक दृष्टि से देखना है पत्नी को उन व्यक्तियों एवं वस्तुओं के साथ उससे और अधिक रूप में वैसा न्यायतः व्यवहार करना चाहिये ।२०। अपनी सपत्नी के बच्चों को अपने बच्चों से अधिक स्नेह के साथ देखना चाहिये सपत्नियों को अपनी सगी बहन के समान एवं उनके भाइयों को अपने भाइयों के समान देखना चाहिये ।२१। भोजन, वस्त्र शिर के ऊपर तेल रखना स्नान अलंकारों से शरीर की सजावट आदि कामों को सपत्नी के लिए न करके अपने लिए भी नहीं करना चाहिये ।२२। अपने उनके और सभी आश्रित लोगों के बीमार होने पर अत्यन्त आदरपूर्वक चिकित्सा के लिए औषधियों का प्रबन्ध करना चाहिये ।२३। उनके शोकाकुलित होने पर स्वयं शोकमग्न होना चाहिये और उनके सन्तुष्ट होने पर स्वयं सन्तुष्ट होना चाहिये । अपने बन्धु, नौकर सपत्नी इन तीनों के दुःख एवं सुख को

लब्धावकाशा स्वप्याच्च निशि सुप्तोत्थिता क्रमात् । अन्यत्र व्ययकर्तारं पतिं रहसि बोधयेत् ॥२५
यदवद्यं सपत्नीनां स्वयमस्मै न तद्वदेत् । दौःशील्यादि तु सापायं गूढमस्मै निवेदयेत् ॥२६
दुर्भगामनपत्यां वा भर्त्रा चातितिरस्कृताम् । [1]अदुष्टां सम्यमाश्वास्य तेनैतामनुकूलयेत् ॥२७
तथा वाग्दण्डपारुष्यैर्जनं भर्त्रा विपीडितम् । कुर्याद्विधेयमाश्वास्य न चेद्दोषाय तद्भवेत् ॥२८
मत्वात्मनोनपत्यत्वं कालं चापि गतं बहुम् । सन्तानादिकमुद्दिश्य कार्यमात्मनिवेदनम् ॥२९
यच्चान्यदपि जानीयात्किञ्चिदस्य चिकीर्षितम् । तत्किलाजानतीवास्य सिद्धमेव प्रदर्शयेत् ॥३०
वैवाहिकं विधिं भर्तुः सर्वं कृत्वा ससम्भ्रमम् । परिणीतां च तां पश्येन्नित्यं भगिनिकामिव ॥३१
पूजां सम्बन्धिवर्गस्य मङ्गलं मङ्गलानि च । कुर्यादभिनवोढायाः सुप्रहृष्टेन चेतसा ॥३२
मातृवच्छिक्षयेदेनां गृहकृत्येष्वमत्सरा । प्रदेशिकविधिं वास्या विदध्याद्यत्नतः स्वयम् ॥३३
एवं भर्तुरभिप्राय सर्वमित्यादिकारयेत् । सुखार्थं वापि सन्त्यज्य स्त्रीणां भर्ताधिदेवता ॥३४
भर्ताधिदेवता नार्या वर्णा ब्राह्मदेवताः । ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु प्रजा राजन्यदेवताः ॥३५

अपने ही समान अनुभव करना चाहिये ।२४। इस प्रकार नित्य कर्मों से अवकाश प्राप्त कर गृहिणी रात में क्रमशः शयन करे और सोकर पहले उठे । निपुण गृहिणी व्यर्थ के कामों में अपव्यय करने वाले पति को नम्रतापूर्वक एकान्त में समझावे ।२५। सपत्नियों के ऐसे अनुचित आचरणों की चर्चा जो कहने योग्य न हो, स्वयं न कहे हाँ यदि उसके आचरण सम्बन्धी दोष बहुत विकृत हो गये हों तो एकान्त में उनके दूर करने के उपायों के साथ पति से भी उनकी चर्चा करे ।२६। अभागिनी, सन्तति विहीन पति से अत्यन्त तिरस्कृत किन्तु दोषरहित सपत्नी को अच्छी तरह आश्वासन देना चाहिये और ऐसे उद्योग करने चाहिये जिनसे पति उससे अनुकूल हो जाये ।२७। इसी प्रकार पति के कठोर वचन दण्ड वा कठोर व्यवहारों से पीड़ित भृत्य वर्गों को भी आश्वासन देते रहना चाहिये किन्तु इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा करने से पति के चित्त को क्लेश तो नहीं होता, अन्यथा इससे बहुत अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है ।२८। बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर यदि अपने कोई सन्तति न उत्पन्न हो तो स्वयमेव पति से सन्तति आदि के सम्बन्ध में अपनी बातें करनी चाहिये ।२९। इसके अतिरिक्त यदि पति के किसी गुप्त मनोरथ की सूचना उसे हो तो उसे इस प्रकार पूर्ण करके दिखा दे कि पति को यह न विदित हो कि उसे वह गुप्त अभिप्रायज्ञान हो गया था ।३०। शीघ्रतापूर्वक पति के विवाह के कार्य को भलीभाँति सम्पन्न करके उससे विवाहित पत्नी को अपनी बहिन के समान देखे ।३१। खूब प्रसन्न मन से समस्त सम्बन्धियों की एवं परिवार वर्ग की पूजा तथा अन्य मण्डपादि मांगलिक विधानों को उस नव वधू के विवाह में स्वयं सम्पन्न करे ।३२। घरेलू कार्यों में माता की तरह सर्वदा उस सपत्नी को द्वेषहीन होकर शिक्षा देती रहे पति के साथ प्रथम समागम आदि कार्यों को भी प्रपत्र पूर्वक स्वयं सम्पन्न करे ।३३। इस प्रकार पति के समस्त अभिप्रायों को जानकर पूर्ण करती रहे । पति के सुख के लिए स्त्री इस प्रकार सर्वदा प्रयत्न करती रहे क्योंकि स्त्रियों के लिए पति ही देवता बतलाये गये हैं।३४। ऐसा कहा भी गया है कि स्त्रियों के देवता उनके पति हैं तीनों क्षत्रियादि वर्णों के देवता ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण के देवता अग्नि हैं प्रजाओं के देवता

---

१. अदुष्टा ।

तासां त्रिवर्गसंसिद्धौ प्रदिष्टं कारणद्वयम् । भर्तुर्यदनुकूलत्वं यच्च शीलमविप्लुतम् ।।३६
न तथा यौवनं लोके नापि रूपं न भूषणम् । यथा प्रियानुकूलत्वं सिद्धं शश्वदनौषधम् ।।३७
वयोरूपादिहारिण्यो दृश्यन्ते दुर्भगाः स्त्रियः । वल्लभा मन्दरूपाश्च बह्व्यो गलितयौवनाः ।।३८
तस्मात्प्रियत्वं लोकानां निदानं [1]योग्यतापरम् । तां विनान्ये गुणा वन्ध्याः सर्वेऽनर्थकृतोऽपि वा ।।३९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विदध्यादात्मयोग्यताम् । परचित्तज्ञता चास्या मूलं सर्वक्रियास्विह ।।४०
बहिरागच्छतो ज्ञात्वा कालं संमृज्य भूमिकाम् । सज्जीकृतासना तिष्ठेत्तस्याज्ञां प्रतितत्परा ।।४१
स्वयं प्रक्षालयेत्पादावुत्थाप्य परिचारिकाम् । तालवृन्तादिकैः कुर्याच्छ्रमस्वेदापनोदनम् ।।४२
आहारस्नानपानादौ तत्स्पृहं यत्र लक्षयेत् । तदिङ्गितज्ञा तत्त्वेन सिद्धमस्मै निवेदयेत् ।।४३
सपत्नीपतिबन्धूनां भर्तृचित्तानुकूल्यतः । प्रतिपत्तिं प्रयुञ्जीत स्वबन्धूनां न वै तथा ।।४४
तेषु चात्मनि च ज्ञात्वा भर्तृचित्तं प्रसादयेत् । प्रतिपत्तिं तथान्येषां नाद्रियेत स्वबन्धुषु ।।४५

राजा लोग हैं ।३५। स्त्रियों के लिए धर्मार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि के दो कारण बतलाये जाते हैं। प्रथमतः उनका पति के अनुकूल व्यवहार द्वितीय उनके पवित्र शील सदाचार ।३६। स्त्रियों के लिए न तो उनका यौवन उतना सुख देने वाला होता है न रूप होता है न भूषण होता है, जितना पति की अनुकूलता होती है, पति की अनुकूलता ही उनके शाश्वत कल्याण की एकमात्र औषधि है ।३७। सुन्दर जवानी एवं मनोहारी रूपवाली स्त्रियाँ भी अभागिनी एवं दुर्भगा देखी जाती हैं, इसके विपरीत उनसे रूप में हीन कटिवाली ऐसी स्त्रियाँ जिनका यौवन कभी समाप्त हुआ रहता है, पति की परम वल्लभा एवं (सुखी) होती हैं ।३८। इसलिए प्रिय होने का कारण लोक में योग्यता ही है उस योग्यता अर्थात् पति को अपने अनुकूल करने की क्षमता के विना अन्य सारे गुण निष्फल हैं यही नहीं इसके अभाव में सारे गुण भी अनर्थकारी बन जाते हैं ।३९। इसलिए स्त्रियों को सभी उपायों द्वारा अपने में वह योग्यता लानी चाहिये, स्त्रियों की दूसरों के मन की बात जान लेने की विशेषता सारे कार्यों में सफलता मूल होती है ।४०। पति को बाहर से आता हुआ जान कर भी भूमि और आँगन आदि को खूब स्वच्छ करके शय्या को सजाकर प्रतीक्षा करनी चाहिये और आने पर उसकी आज्ञा का तत्परतापूर्वक पालन करना चाहिये ।४१। दासी को हटाकर स्वयं अपने हाथों से पति के चरणों को प्रक्षालित करना चाहिये और ताड़ की पंखी आदि लेकर थकाई के कारण उत्पन्न उसके पसीने को दूर करना चाहिये ।४२। आहार स्नान एवं पान आदि में पति को जिस वस्तु की ओर विशेष रूप से इच्छुक देखे उस वस्तु को प्रस्तुत करके पति की मनोगत इच्छाओं एवं संकेतों को जानने वाली पत्नी पति को निवेदित करे ।४३।पति की चित्तवृत्ति के अनुसार सपत्नी तथा पति के बन्धु आदि के साथ सहानुभूति एवं प्रेम का व्यवहार करना चाहिये अपने बन्धु आदि के साथ उतना नहीं ।४४। इन सबों में तथा स्वयं अपने में पति की चित्त वृत्ति को खूब जान-बूझकर ही व्यवहार करना चाहिये अर्थात् पति जिसे अधिक प्यार करता हो उसे प्यार करना और जिससे द्वेष करता हो उससे द्वेष करना चाहिये। किन्तु इसके पूर्व स्वयं अपने प्रति पति का कैसा भाव है, इसका जान लेना आवश्यक है। सपत्नी एवं पति के बन्धु वर्गादि द्वारा अपने प्रति किये गये आदर सत्कार एवं प्रतिष्ठा आदि सम्मानजनक व्यवहारों की प्रशंसा अपने बन्धु वर्गों के सामने नहीं करनी चाहिये।४५। पति के कुल में

---

१. क्षमता परा।

अपि भर्तुरभिप्रेतं नारी तत्कुलवासिनी । सत्कारैर्निजबन्धूनां तेन नोपैति वाच्यताम् ॥४६
पूज्य एव हि सम्बन्धः सर्वावस्थासु योषिताम् । कस्ततोऽप्युपकारांशं लिप्सेत कुलजः पुमान् ॥४७
सम्पूज्य स्वसुता तस्मै विधिवत्प्रतिपाद्यते । ततोऽस्या लिप्सते नाम किमकार्यमतः परम् ॥४८
कन्यां प्रदाय यैर्वृत्तिरात्मनः परिकल्प्यते । दासभण्डनटादीनां मार्गोऽयं न महात्मनाम् ॥४९
तस्मात्स्त्रीबांधवा नित्यं प्रीतिमात्रैकसाधिनीम् । प्रतिपत्तिं समादद्युः सम्बन्धिभ्यः प्रसंगिनीम् । ५०
तस्या भर्तरि रक्षेत प्रीतिं लोके च वाच्यताम् । आत्मनोऽसत्प्रवादं च चेष्टेरन्साधुवृत्तयः ॥५१
एवं विज्ञाय सद्वृत्तं स्त्री वर्तेत तथा सदा । येन तत्परिवर्गस्य भवेद्भर्तुश्च सम्मता ॥५२
प्रियापि साधुवृत्तापि विख्याताभिजनापि च । जनापवादात्सम्प्राप सीतानर्थं सुदारुणम् ॥५३
सर्वस्यामिषभूतत्वाद्गुणदोषानभिज्ञतः । प्रायेणाविनयौचित्यात्स्त्रीणां वृत्तं हि दुष्करम् ॥५४
अगृह्यत्वान्मनोवृत्तेः प्रायः कपटदर्शनात् । निरङ्कुशत्वाल्लोकस्य निर्वाच्या विरलाः स्त्रियः ॥५५
दैवयोगादयोगत्वाद्व्यवहारानभिज्ञतः । वाच्यतापत्तयो दृष्टाः स्त्रीणां शुद्धेऽपि चेतसि ॥५६
तासां दैवप्रतीकारो नोपभोगादृते भवेत् । चारित्रं लोकवृत्तं च एतयोर्विदुरौषधम् ॥५७

निवास करने वाली पति के समस्त अभिप्रायों को समझने वाली स्त्री अपने बन्धु वर्गादि के सत्कारों से सम्मानित होकर कभी निन्दा की पात्र नहीं बनती ।४६। सभी अवस्थाओं में स्त्रियों का सम्बन्ध पूजनीय माना गया है उसके कुल (पिता के कुल) में उत्पन्न होने वाला ऐसा कौन-सा पुरुष होगा जो उससे भी उपकार एवं लाभ की इच्छा करेगा ।४७। लोग अपनी कन्या को विधिपूर्वक पूजित कर जामाता को दान देते हैं तो फिर उसी कन्या से यदि लाभ की वे इच्छा करें तो इससे बढ़कर निन्द्य कर्म क्या होगा ?।४८। जिसे अपनी कन्या दे दिया गया है उसी से अपनी जीविका की भी इच्छा करना यह पद्धति तो दास, भाँड़, नट आदि तुच्छ जाति वालों की है, उच्च विचार वालों की नहीं ।४९। इसलिए वधू के बन्धु बान्धवादि को चाहिये कि वे अपने सम्बन्धी एवं जामाता आदि से केवल प्रेम एवं सहानुभूति को बढ़ाने वाला सद्-व्यवहार रखें जिसकी समय-समय पर वृद्धि होती रहे ।५०। ऐसे सत्कर्म परायण स्त्रियों के बन्धु वर्ग अपने ऐसे व्यवहारों द्वारा पति में वधू की प्रीति की रक्षा लोक में वधू की निन्दा और स्वयं अपने ऊपर उठने वाले अपवादों से अपनी रक्षा कर सकेंगे ।५१। इस प्रकार कुल वधू को चाहिये कि वह अपने सत् कर्त्तव्यों को भली भाँति जान बूझकर सर्वदा उनका पालन करे जिससे अपने बन्धु बान्धवादि एवं पति के सम्मान की पात्र बन सके ।५२। क्योंकि पति की परम प्रिया सत्कर्म परायण उच्चकुलोत्पन्न यशस्विनी सीता को भी लोकापवाद से परम दारुण कष्ट सहना पड़ा ।५३। सब से अधिक आमिष (सुन्दरी एवं आकर्षक) होने के कारण गुण तथा दोषों की अनभिज्ञता के कारण विशेषतया अनुदारता एवं अविनय के कारण स्त्रियों के कर्त्तव्य बड़े कठोर एवं दुष्करणीय होते हैं ।५४। मनोवृत्ति न पकड़ सकने के कारण प्रायः सभी व्यवहारों में कपट करने के कारण तथा लोगों के निरंकुश होने के कारण ऐसी बिरली स्त्रियाँ ही मिल सकेंगी जो निन्दा की पात्र न बन सकें ।५५। दैव योग से अपनी अयोग्यता एवं व्यवहार कुशलता के अभाव के कारण स्त्रियाँ शुद्धचित्त होने पर भी निन्दा की पात्र एवं आपत्ति ग्रस्त होती देखी जाती हैं।५६। उनके इस दुर्भाग्य का प्रतिकार उपभोग के बिना नहीं होता। चरित्र एवं लोक-व्यवहार-पटुता ये

हिंदोलकादिक्रीडायां प्रसक्तां तरुणीं निशि । रममाणां विटैः सार्धं विधवां स्वैरचारिणीम् ।।५८
वृद्धादिभार्यां [1]सज्जायां यानगेयादिसंगिनीम् । कः श्रद्दध्यात्सतीत्येवं साध्वीमपि हि योषितम् ।।५९
यौ चासामिङ्गिताकारौ सन्दिग्धार्थप्रसाधकौ । तयोस्तत्त्वपरिज्ञानं विषयो योगिनां[2] यदि ।।६०
तस्माद्यथोक्तमाचारमनुतिष्ठेत्सुसंयता । मिथ्यालग्नोऽप्यसद्वादः कम्पयत्येव तत्कुलम् ।।६१
त्रिकुल्या वाच्यता रक्ष्या प्रतिष्ठाप्यथ सन्ततिः । भर्तुस्त्रिवर्गसिद्धिश्चसाध्यं तत्कुलयोषिताम् ।।६२
पातयन्त्येव दौःशील्यादात्मानं सकुलोत्रयम । उद्धरन्ति तदैवैताः स्त्रियश्चारित्रभूषणाः ।।६३
भर्तृचित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्युतम्[3] । तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न मण्डनम् ।।६४
लोकज्ञाने परा कोटिः पत्यौ भक्तिश्च शाश्वती । शुद्धान्वयानां नारीणां विद्यादेतत्कुलव्रतम् ।।६५
तस्माल्लोकश्च भर्ता च सम्यगाराधितो यया । धर्ममर्थं च कामं च सैवाप्नोति निरत्यया ।।६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३।

ही तो ऐसे उपाय हैं जिन्हें उनके अपवाद को दूर करने की औषधि कहा जाता है ।५७। हिंडोला आदि क्रीड़ाओं में रात के समय यदि कोई तरुणी स्त्री बहुत आसक्ति दिखलाती है, अथवा भाँड आदि हीन कोटि के लोगों के साथ सहवास करती है अथवा कोई विधवा होकर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करती है, अथवा कोई वृद्ध मनुष्य की गृहणी तरुणी स्त्री है, अथवा सच्चरित्र होकर भी कोई सवारी वा गाने बजाने में विशेष सहयोग करती है तो कौन ऐसा पुरुष है जो ऐसी सती स्त्रियों पर श्रद्धा की दृष्टि रखेगा भले ही वे चरित्र से साध्वी हो ।५८-५९। इन स्त्रियों की इंगिति एवं आकार ही संदिग्ध अर्थ की पुष्टि करने वाले होते हैं उनके इंगित एवं आकार का तात्त्विक ज्ञान योगियों को ही ज्ञात हो सकता है । यदि वे योगी जन जानने की विशेष इच्छा करें तो ।६०। इसलिए जैसा ऊपर कहा जा चुका है कुलवधू को संयम एवं शान्तिपूर्वक सदाचारों का पालन करना चाहिये । झूठ-मूठ में भी लगा हुआ अपवाद स्त्रियों के समस्त परिवार तक को कम्पित कर देता है ।६१। कुलवधू को अपने तीन कुल की निन्दा की रक्षा करनी चाहिये अपनी प्रतिष्ठा एवं सन्तति की रक्षा करनी चाहिये । यही नहीं उसे अपने पति के धमार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि में सहायक होना चाहिये । ये ही उसके जीवन के मुख्य ध्येय हैं ।६२। स्त्रियाँ अपने असद् व्यवहारों से अपने समेत तीनों कुलों को गिरा देती हैं । और इसी प्रकार अपने उत्तम चरित्र रूप भूषण से वे ही अपने समेत तीनों कुलों को भव सागर से उबार लेती है ।६३। जो स्त्रियाँ अपने पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल चलने वाली है तथा जिनका शील सदाचार कभी च्युत नहीं हुआ है उनके लिए रत्न एवं सुवर्ण आदि के आभूषण केवल भार हैं आभूषण नहीं अर्थात् वे अपने इन्ही सद्गुणों से ही सर्वदा आभूषित रहती हैं ।६४। उच्च शुद्ध वंश की स्त्रियों का यह कुलव्रत जानना चाहिये कि वे लौकिक व्यवहारों में परम प्रवीण तथा पति की अनन्य भक्ति में सर्वदा निरत रहने वाली होती हैं ।६५। इन सब बातों को ध्यान में रखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस कुलवधू ने लौकिक व्यवहारों एवं अपने पूज्य पति की पर्याप्त आराधना कर ली अपने जीवन में उसकी कुछ भी हानि नहीं हो सकती और वही धर्म अर्थ काम की सिद्धि भी प्राप्त करती है ।६६

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री धर्म कथन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

---

१. सती चासौ जाया चेत कर्मधारयः । २. यदि योगिनां स्यात्तर्हि स्वान्नस्माकमित्यवान्तरवाक्यम् ।
३. न विप्लुतम् ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पतिपरदेशवासे स्त्रीणां भृङ्गारनिषेधः

ब्रह्मोवाच

प्रोषिते मण्डनं स्त्रीणां पत्यौ मङ्गलमात्रकम् । निष्पादनं च यत्नेन तदारब्धस्य कर्मणः ॥१
शय्यामुत्सर्जनमर्थानां व्ययानां परिहापणम् ॥२
व्रतोपवासतात्पर्यं तद्वार्तापरिमार्गणम् । दैवज्ञेक्षणिकप्रश्नो देवानामुपयाचनम् ॥३
नित्यं तस्यागमाशंसा क्षेमार्थं देवपूजनम् । न चात्युज्ज्वलवेषत्वं न सदा तैलधारणम् ॥४
ज्ञातिवेश्म न गन्तव्यं सकामगमनेन[1] च । गुरुणामाज्ञया यावद्भर्तुराप्तजनैः सह ॥५
तत्रापि न चिरं तिष्ठेत्स्नानादीन्वापि नाचरेत् । यावदर्थं क्षणं स्थित्वा ततः शीघ्रं समाचरेत् ॥६
आगते प्रकृतिस्थैव कृत्वा तात्कालिकं विधिम् । मुक्तप्रवासने पथ्ये स्नाते भुक्तवति प्रिये ॥७
आत्मानं समलङ्कृत्य सविशेषं मुदान्विता । देवपूजोपहारादीन्दद्यात्प्रागुपपादितान् ॥८

अध्याय १४

पति के परदेश में रहने पर स्त्रियों का भृङ्गार निषेध

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! पति के परदेश जाने पर कुलवधू केवल सौभाग्य सूचक अलंकारों को धारण करे । और प्रयत्न पूर्वक पहले से आरम्भ किये गये कर्मों को ही निष्पन्न करे ।१। उसे उस समय गुरुजनों के समीप में अपनी शैय्या स्थापित करना चाहिये शरीर में विशेष भृङ्गार एवं आभूषणादि की सजावट नहीं करनी चाहिये । यथासम्भव प्रत्येक कार्य में धन अर्जित करने की चेष्टा करनी चाहिये और व्यय को कम करना चाहिये ।२। व्रत एवं उपवास में विशेष निष्ठा रखनी चाहिये, पति के कुशल समाचार की सर्वदा खोज करते रहना चाहिये । पति की कुशल वार्ता के लिए ज्योतिषी एवं दैवज्ञ से प्रश्न करके देवप्रार्थना करनी चाहिये ।३। नित्य उसके आगमन की आकांक्षा एवं कुशल क्षेम के लिए देवपूजा करनी चाहिये । प्रोषितपत्तिका को अत्यन्त उज्ज्वल वेष नहीं धारण करना चाहिये और न सर्वदा तैल लगाना चाहिये ।४। उस अवधि में जब तक कि पति परदेश से नहीं आ जाता उसे अपने पड़ोसी एवं जातिवालों के घर पर नहीं जाना चाहिये यदि किसी आवश्यक कार्य से जाना अनिवार्य हो तो पति के गुरुजनों से आज्ञा प्राप्त कर अपने से श्रेष्ठ जनों के साथ जाना चाहिये ।५। और वहाँ जाकर बड़ी देर तक न रुके, न स्नान भोजनादि ही करे । जब तक प्रयोजन रहे उसी समय तक वहाँ रहकर शीघ्र वापस आ जाना चाहिये ।६। पति के प्रवास से वापस आ जाने पर स्वाभाविक प्रेम के साथ उस समय समुचित समादरादि से सत्कृत कर प्रवासकालीन वेश-भूषा को उतरवाये फिर पति के विधिपूर्वक स्नान और भोजन कर लेने के उपरान्त परम प्रसन्नता पूर्वक विशेष रूप से अपने को अलंकारादि से सजावे। फिर पहले ही से माने गये देवताओं के उपहारादि को सम्पन्न करे।७-८। कनिष्ठ कुलवधू को ज्येष्ठ सपत्नी के साथ

---

१. अवश्यं गमनेन च ।

कनिष्ठामातृवज्ज्येष्ठां तदपत्यानि चात्मवत् । पश्येत्तत्परिवर्गं तु नित्यं स्वपरिवर्गवत् ॥९
तत्पुरोनासने तिष्ठेत्पतिं नामंत्रयेत च । तदभिप्रायतः कुर्यात्प्रवृत्तिं सर्वकर्मसु ॥१०
न संसृजेत तद्विद्विष्टैः सख्यं कुर्वीत तत्प्रियैः । जनमाप्ततमं तस्य सदाभर्तुश्च मानयेत् ॥११
पैतृकात्समुपानीतं वसुसौगंधिकादिकम् । तस्मै निवेद्यात्मतया तदा तदुपयोजयेत् ॥१२
सोऽपि तत्प्रीतये किंचिदादद्यादल्पमूल्यकम् । संगोप्य मातृवत्स्थेयं तत्तथैवोपयोजयेत् ॥१३
तत्प्रीत्यर्थं गृहीतं यद्वैलक्ष्यादिनिवृत्तये । सविशेषं प्रसंगेन तस्यैतत्प्रतिपादयेत्[1] ॥१४
स्त्रीणां यदेतत्सापत्न्यं परं मात्सर्यकारणम् । तस्मात्तत्परिहर्तव्यं परमोदारचर्यया[2] ॥१५
तथा कल्पितनेपथ्या भर्तुः पर्यायवासरे । ह्रियमादयमानेव[3] पतिं गच्छेद्विसर्जिता ॥१६
गत्वा रहसि भर्तारं तत्कालोचितसंभ्रमैः । तद्भावानुगतैस्तैस्तैः सविशेषमुपाचरेत् ॥१७
प्रतिबुध्य ततः काले सविशेषं त्रपान्विता । ज्येष्ठाय वसतिं गच्छेद्विशेषेण तथा पुनः ॥१८
अप्रातिकूल्यं ज्येष्ठाया हितमन्यत्र योषितः । ततः शनैस्त्ववर्णाच्छिद्य पतिं स्ववशमानयेत् ॥१९

माता के समान व्यवहार करना चाहिये और उसके बच्चों को अपने समान समझना चाहिये उसके परिवार एवं नौकर चाकर आदि को भी अपने ही परिवार एवं नौकरों के समान समझना चाहिये।९। उसके सामने न तो आसन पर बैठे और न पति को बुलावे। प्रत्युत उसके अभिप्राय को भलीभाँति सोच-विचार कर सभी कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये।१०। उसका जिन लोगों के साथ द्वेष हो, उनके साथ कभी संसर्ग न स्थापित करे उसके प्रियजनों के साथ अपनी भी मित्रता करे।११। पति के गुरुजनों का सर्वदा समादर करे। अपने पिता के घर से आई हुई खाने-पीने अथवा शृङ्गार की सुगन्धित आदि सारी सामग्रियों को सर्वप्रथम आत्म भावना से उसको निवेदित करे और उसके बाद निजी उपयोग के लिए रखे।१२। उसे (ज्येष्ठ) भी चाहिये कि उसकी (छोटी वधू की) प्रीति की रक्षा के लिए उसमें से कुछ थोड़ा सा भाग जो अल्पमूल्य का हो, लेकर शेष वापस कर दे। और इस प्रकार प्राप्त उन वस्तुओं को माता की भाँति सुरक्षित रखे और उसी के अनुरूप उसका उपयोग करे।१३। छोटी सपत्नी की शर्म आदि को मिटाने के लिए जो कुछ वस्तु ज्येष्ठ सपत्नी ने ग्रहण किया हो किसी अनुकूल प्रसंग के आने पर उसमें अपनी ओर से कुछ और मिलाकर उसे भेंट करे।१४। स्त्रियों में सपत्नियों के जो व्यवहार परस्पर अतिशय दुःख एवं मत्सर के कारण बन जाते हैं उन्हें इन्हीं प्रकार के परम उदारतापूर्ण कार्यों द्वारा दूर करना चाहिये।१५। अपनी बारी आने पर अनेक प्रकार के साज शृङ्गार से अपने को विधिवत् विभूषित कर ज्येष्ठ सपत्नी से विसर्जित होकर लज्जा व्यक्त करती हुई सी पति के पास जाय।१६। और इस प्रकार एकान्त में पति के पास जाकर उस समय के योग्य हास विलास एवं हावभाव आदि से पति की इच्छा के अनुरूप उसे विशेष सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करे।१७। फिर प्रातःकाल के समय शय्या से उठकर विशेष लज्जापूर्वक ज्येष्ठ सपत्नी के पास जाय और फिर वहाँ से अपने भवन में जाय।१८। इस प्रकार बाहरी कामों में ज्येष्ठ सपत्नी के विरोध न करने से वधू की सर्वत्र हित-सिद्धि होती है अन्यत्र अर्थात् एकान्त में उसे चाहिये कि धीरे-धीरे पति की इच्छाओं के अनुरूप अपने आचरणों द्वारा वह पति को वश में

---

१. तस्मै। २. परमोदारकर्मणा। ३. दयतेः शानचि रूपम्।

बहिष्पाकादियोगेन चतुःषष्ट्या रहोगतम् । ज्येष्ठामतिशयानेव भर्तारमुपरञ्जयेत् ॥२०
प्रागल्भ्यं रहसि स्त्रीणां लज्जाधिक्यं ततोऽन्यदा । चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च पत्यौ संसेवनं परम् ॥२१
एवमाराध्य भर्तारं गृहमाक्रम्य च क्रमात् । गौरवं प्रतिपत्तिं वा ज्येष्ठादिषु न हापयेत् ॥२२
गृहव्यापारदानेषु पतिं गूढं तथा वदेत् । अधिकुर्यादनिच्छन्ती ज्येष्ठेवेनां यथा बलात् ॥२३
सापि विज्ञाय भर्तारं कनिष्ठाकृष्टमानसम् । विश्रामं प्रार्थयेदेनामधिकुर्यात्सुतामिव ॥२४
मत्वा भर्तुरभिप्रेतं रक्षन्ती निजगौरवम् । कृतं भर्त्रनुकूलं स्यात्तदिच्छयानुमोदयेत् ॥२५
स्वामिनो यदभिप्रेतं भृत्यैः किं क्रियतेऽन्यथा । क्लिश्यते तत्र मूढात्मा परतन्त्रो वृथा जनः ॥२६
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः । हितं स्वाम्यनुकूलत्वं नारीणां तु विशेषतः ॥२७
सापि ज्येष्ठापतिं चैव गृहतन्त्रं च सर्वदा । समावर्ज्य[1] गुणैर्धीरा प्रागवस्थां न विस्मरेत् ॥२८
न सौभाग्यमदं कुर्यान्न चौद्धत्यादिविक्रियाम् । नितरामानतिं गच्छेत्सदानार्यभयादिव[2] ॥२९

कर ले ।१९। बाहर खूब अच्छे भोजनादि की व्यवस्था द्वारा एवं अन्तःपुर में चौंसठ कलाओं की निपुणता द्वारा छोटी वधू ज्येष्ठ सपत्नी को अतिक्रान्त कर पति को परम सन्तुष्ट कर अपने अधीन कर लेती है ।२०। एकान्त स्थल में पति के साथ प्रगल्भता (ढिठाई) का व्यवहार करना चाहिये अन्यत्र तो लज्जा की अधिकता ही (उसका भूषण है) पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल उसकी सेवा में सर्वदा लगा रहना ही कुल वधू का एकमात्र धर्म है ।२१। इस प्रकार पति की आराधना में तत्पर रहकर और उसमें सफलता प्राप्त कर जिस क्रम से पतिगृह में आगमन हुआ हो, उस क्रम के अनुसार अपने से ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ जनों के गौरव का सम्मान आदि की हानि नहीं करनी चाहिये ।२२। घरेलू कार्यों तथा दानादि सत्कर्मों में पति से गुप्त रूप में बात करनी चाहिये । इस प्रकार बाहर से इच्छा प्रकट किये बिना ही ज्येष्ठ सपत्नी की भाँति पति को अपने अनुकूल कर लेना चाहिये ।२३। ज्येष्ठ कुलवधू को चाहिये कि जब वह देखे कि पति का मन कनिष्ठ सपत्नी में आकृष्ट हो गया है तो वह उस छोटी सपत्नी के साथ अपनी पुत्री के समान व्यवहार करे और उसके विश्राम आदि की प्रार्थना करती रहे ।२४। पति के मनोगत भावों को समझ अपने गौरव एवं मर्यादा की रक्षा करते हुए सब कार्य सम्पन्न करे । पति के अनुकूल समस्त कार्यों को समाप्त कर उसकी इच्छाओं का अनुमोदन करती रहे ।२५। स्वामी को जो कार्य विशेष इष्ट हो उसे स्वयं अपने हाथों से करना चाहिये नौकरों द्वारा वह काम उतना सन्तोषदायी नहीं हो सकता । जो लोग (वधू) ऐसा नहीं करते वे मूढ़ात्मा सर्वदा परतन्त्र रहकर वृथा क्लेश सहन करते हैं ।२६। इसलिए सर्वदा सभी अवस्थाओं में मनसा, वाचा, कर्मणा अपने स्वामी (पति) के अनुकूल एवं हितप्रद कार्यों को करते रहना चाहिये । स्त्रियों को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये ।२७। उस विशेष परिस्थिति में जब कि पति कनिष्ठ सपत्नी के प्रेमपाश में निबद्ध हो जाता है, ज्येष्ठ वधू अपने सद्गुणों द्वारा सर्वदा पति की चित्तवृत्ति एवं घर के समस्त कार्यों को समझती हुई और यथाशक्य अनुकूलता उत्पन्न करने की चेष्टा करती हुई अपनी पूर्वावस्था का विस्मरण न करे ।२८। उस समय वह अपने सौभाग्य का अभिमान भूल कर भी न करे और न उद्धता एवं चञ्चलता ही दिखलावे । प्रत्युत सर्वदा कार्यभार से खिन्न हुई की तरह विनम्रता

---

१. विज्ञायाथ । २. खिन्ना कार्यभरादिषु ।

यथा योग्यतया पत्यौ सौभाग्यमभिवर्धते । स्पर्धयेच्च कुलस्त्रीणां प्रश्रयोपाधिकं तथा ।।३०
एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी । पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च ।।३१
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे । प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मेषु सपत्नीकर्तव्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दुर्भगा च पुनर्नित्यमुपवासादितत्परा । बाह्येषु पतिकृत्येषु स्याद्विशेषाभियोगिनी ।।१
न प्रशंसां सपत्नीषु निंदां चापि तथात्मनि । असूयां भर्तुरीर्ष्यां वा प्रणयं वापि दर्शयेत् ।।२
मद्विधा या हि बह्वेतत्तच्चात्यंतिकमश्नुते । यदस्या युष्मतो यास्मद्भार्याशब्दाभिधेयताम् ।।३
न च निर्भूषणा तिष्ठेन्न चाप्युद्धतभूषणा । नान्यदा गंधमाल्यादि ग्राह्यं पत्युपचारतः ।।४
तन्न्यूनं सर्वशो ग्राह्यं वल्लभाया विशेषतः । भूषणं गन्धमाल्यं तु तावत्कालमलक्षितम् ।।५

दिखाते हुए सब कार्य करती रहे ।२९। जिस प्रकार से एवं जिस योग्यता से पति को अनुकूल कर सौभाग्य की वृद्धि होती है उसके लिए कुलवधुओं को परस्पर स्पर्द्धा करनी चाहिये और वैसे सद्‌गुणों को विशेष रूप में प्रश्रय देना चाहिये ।३०। इस प्रकार पति के कार्यों एवं सेवाओं में सावधान रहकर पूजनीयों की पूजा एवं भृत्यवर्गों की पालना में तत्पर रहकर सर्वदा सद्‌गुणों के अर्चन एवं रक्षण में तत्पर रहकर कुलवधू सर्वदा इस लोक में तथा परलोक में परम आनन्द का अनुभव करती है ।३१-३२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में सपत्नीकर्त्तव्यवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अध्याय १५

स्त्री-धर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—दुर्भगा स्त्रियों को चाहिए कि सर्वदा उपवास आदि में तत्पर रहकर पति के बाहरी कार्यों में विशेष रूपेण सहयोग प्रदान करती रहें ।१। सपत्नियों के बीच में कभी अपनी प्रशंसा न करे प्रत्युत अपनी निन्दा का ही वर्णन करे, और प्रसंग आने पर पति की ईर्ष्या असूया तथा स्नेह का भी प्रदर्शन करती रहे ।२। ऐसा कहे कि मेरी जैसी हतभाग्या के लिए जो कुछ मिल रहा है वही बहुत है मैं इसी में बहुत (अधिक सुख तथा भोगादि का) अनुभव कर रही हूँ जो इस दीर्घजीवी की भार्या बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकी ।३। उसे न तो कभी बिना आभूषण के रहना चाहिये और न बहुत अधिक आभूषण ही पहनना चाहिये । सुगन्धित पदार्थ इत्र आदि तथा पुष्प माला आदि बेमौके पर उपयोग में नहीं लाना चाहिये केवल पति की प्रसन्नता एवं उनके सेवा के लिए ग्रहण करना चाहिये ।४। उस समय भी अति न्यून रूप में ग्रहण करना चाहिये तथा जो विशेष पति की परम प्यारी हो उससे आभूषण तथा इत्र

सम्बाधानां प्रदेशानां नित्यं स्वेदादिमार्जनम् । दन्तनासादिपङ्कानां विगन्धस्य च शोधनम् ॥६
निमित्तं भर्तुरेतासां यत्किंचिदभिलक्षयेत् । नानेन वा तयोर्यत्नं विदध्यादङ्गमार्जने ॥७
सर्वासां च सपत्नीनां सर्वत्रानुगता भवेत् । वैतसीं वृत्तिमास्थाय वल्लभाया विशेषतः ॥८
अन्यस्या यदनुष्ठेयं यन्न सीदेत्समर्पितम् । भर्तुश्चाविदितं यत्नात्तत्कुर्यादविरोधि चेत् ॥९
कोशवस्त्रान्नताम्बूलगन्धापानौषधादिकम् । तत्सर्वमनियुक्तानां दोषवत्वाद्विरुध्यते ॥१०
यत्तु भुक्तमनुष्ठेयं गृहसम्मार्जनादिकम् । स्त्रीणामनधिकारेऽपि प्रायस्तद्विधिरुच्यते ॥११
अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्नानं भोजनं मण्डनानि च । कुर्याद्भर्तुरपत्यानां धात्रीकर्माणि सादरम् ॥१२
आत्मवत्तान्यपत्यानि साधयत्यनुयोगतः । स्वेनाप्यमीषां वित्तेन विदध्यान्मण्डनादिकम् ॥१३
भोगः स्वयमपत्यैर्वा स्त्रीवित्तस्य पतिर्विधा । पूर्वे वयस्यभिनन्द्य पश्चिमे चोपयोजनम् ॥१४
उभयोगस्तु वा मा वा कर्मजः पृथगेव सः । सद्वृत्ते त्वधिकां ख्यातिं कुर्वीत क्रियया पुनः ॥१५
न कापि दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातितः । व्यवहाराद्भवत्येष निर्देशो रिपुमित्रवत् ॥१६

पुष्पादि का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये कि उस समय भी वे आभूषणादि दिखाई न पड़े ।५। उन्हें अपने उदर कुक्षि आदि गोपनीय शरीराङ्गों की विशेष सफाई करनी चाहिये सर्वदा स्वेदादि रहित कर स्वच्छ रखना चाहिये । इसी प्रकार दाँत, नाक एवं पैरों में लगी हुई कीचड़ आदि तथा दुर्गन्धि की भी सफाई करनी चाहिए ।६। पति की प्रसन्नता के लिए इन्हें चाहिये कि जो कुछ भी उचित समझें करें । यदि सामान्य यत्न से सफलता न मिले तो अङ्ग की स्वच्छता पर और अधिक यत्न करें ।७। सभी कार्यों में सर्वदा सपत्नियों की अनुगामिनी बनी रहे विशेषतया जो सपत्नी पति को बहुत प्यारी है उसकी तो सर्वदा टहल बजाती रहें । ऐसे अवसर पर उसे वैतसी (वेंत की) वृत्ति अपनानी चाहिए ।८। सपत्नी के करने का जो कार्य हो उसे वह स्वयं कर ले और जो कुछ मिले उस पर रोष न प्रकट करे । पति के प्रतिकूल जो कार्य न पड़े उसे गुप्त रूप से करते रहने का प्रयत्न करती रहे ।९। कोश, वस्त्र, अन्न, ताम्बूल, सुगन्धित पदार्थ, पेय पदार्थ तथा औषधियाँ इन सब को बिना दिये हुए लेने पर विरोध बढ़ता है अतः इन सब को पति वा सपत्नी की आज्ञा के बिना न ग्रहण करे ।१०। घर की सफाई झाड़ना बहारना आदि कार्य जिन्हें सेवकादि किया करते हैं कुल वधुओं को उसके करने का अधिकार न रहने पर भी प्रायः ऐसे कार्यों को वह दुर्भगा वधू अपने कल्याण के लिए करे।११। उसे अपने पति के तथा सपत्नियों के सन्तानों के अंगों में उपटन लगाना, अंगो में तेल लगाना, स्नान करना, भोजन निर्माण करना, अलंकृत करना आदि दाइयों के करने योग्य कार्यों को भी आदरपूर्वक करना चाहिये।१२। अपनी सपत्नियों के बच्चों को भी अपने ही बच्चों की तरह प्रत्येक बातों में देखते रहना चाहिये और अपने पास से रुपये व्यय करके उनके आभूषणादि का प्रबन्ध करना चाहिये ।१३। प्रायः स्त्रियों के पास रहने वाली सम्पत्ति का उपभोग उनकी सन्ततियाँ, पति तथा वे स्वयं करती हैं । उन्हें चाहिये कि पूर्वावस्था में धन संग्रह की भावना का अभिनन्दन कर वृद्धावस्था में उसका उपयोग करे।१४। उपयोग हो या न हो वह तो कर्म के अधीन रहता है और उसका संग्रह करने से कोई सम्बन्ध भी नहीं है । अतः पूर्वावस्था में उन्हें धन संग्रह तो करना ही चाहिये । इस प्रकार दुर्भगा कुलवधू को सत्कर्मों के द्वारा अधिक ख्याति प्राप्त करनी चाहिये ।१५। कोई स्त्री जन्म से ही सुभगा वा दुर्भगा नहीं होती वह शत्रु और मित्र की तरह अपने व्यवहार से ही सुभगा व दुर्भगा हो जाती

भर्तृचित्तापरिज्ञानादननुष्ठानतोऽपि वा। वृत्तैर्लोकविरुद्धैश्च यान्ति दुर्भगतां स्त्रियः ॥१७
आनुकूल्यान्मनोवृत्तेः परोऽपि प्रियतां व्रजेत् । प्रातिकूल्यान्निजोऽप्याशु प्रियः प्रद्वेषतामियात् ॥१८
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः । प्रियं समाचरेन्नित्यं तच्चित्तानुविधायिनी ॥१९
यामन्यां कामयेत्तासां तं तया संप्रयोजयेत् । कुपितां च प्रियां काञ्चिद्यत्नादस्मै प्रसादयेत् ॥२०
तत्पादपरिचर्यायां गात्रसंवाहने[1] तथा । पीडने शिरसश्चैव परं कौशलमभ्यसेत् ॥२१
पीडनं मृदु मध्यं च गात्रावस्थाविशेषतः । मुखगात्रादिभिर्लिङ्गैः प्रयोज्यं तत्सुखावहम् ॥२२
बाहूरुकटिपृष्ठेषु स्कंधे शिरसि पादयोः । गाढमर्दनमिच्छन्ति प्रायोन्यत्राणि मध्यमम् ॥२३
निर्मांसेषु प्रदेशेषु नाभिमूलेषु मर्मसु । हृद्गण्डककपोलादाविच्छन्ति मृदुमर्दनम् ॥२४
गाढं जाग्रदवस्थायामर्धसुप्तस्य मध्यमम् । किञ्चित्तसपरिघातं च मृदुसुप्तस्य नेति वा ॥२५
विरुद्धं सर्वगात्रेषु[2] लोमवत्सु विशेषतः । उत्कण्डूयत्सु सोद्धर्षं स्नेहात्तेषु च मर्दनम् ॥२६
स्पर्शाद्रोमाञ्चजननं सनखच्छुरितं शनैः । पुलकोल्लेखनोपेतं शिरःकंडूश्च पार्श्वयोः ॥२७

है।१६। प्रायः स्त्रियाँ पति की चित्त वृत्ति के न जानने के कारण उसके मनोनुकूल न चलने के कारण एव समाज विरुद्ध कार्यों के करने के कारण दुर्भगा होती हैं।१७। मनोवृत्ति के अनुकूल चलकर पराया भी प्रिय हो जाता है और मन के विरुद्ध चलकर आत्मीय भी शीघ्र विरोधी बन जाता है।१८। इसलिए प्रत्येक कार्यों एवं अवस्थाओं में स्त्रियों को मन, वचन, शरीर एवं कर्म से पति के प्रिय कार्यों को करना चाहिये और सर्वदा उसकी चित्तवृत्ति के अनुकूल अपने को रखना चाहिये।१९। सपत्नियों में वह जिससे अधिक प्रेम करता हो उससे उसको मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये विघटन का नहीं और यदि कोई उसकी प्यारी सपत्नी कुपित हो गई हो तो प्रयत्न करके उसके लिए उसे प्रसन्न करना चाहिये।२०। उसके पैरों को दबाने में शरीर के समस्त अंगों को मीजने में शिर को सहलाने एवं तैल मालिश करने में परम कुशलता प्राप्त करनी चाहिये।२१। शरीर की स्थिति के अनुसार अंग मीजने के तीन प्रकार होते हैं मृदु, मध्यम और गाढ़। जिस प्रकार से अधिक सुख मिले ऐसा विचार कर शरीर के अंगों की स्थिति के अनुसार मुखादि का सवाहन (मर्दन) उसे करना चाहिये।२२। बाहु, वक्षस्थल, कमर, पीठ, कंधे, शिर और दोनों पैरों में गाढ़ मर्दन की इच्छा लोग करते हैं और अन्य स्थलों में मध्यम (न अधिक गाढ़ न अधिक मृदु) मर्दन की।२३। मांसरहित अंगों में नाभि के मूल भाग मर्मस्थल हृदयगण्ड और कपोल आदि में मृदु मर्दन की इच्छा लोग करते हैं।२४। जागते समय गाढ़ा मर्दन करना चाहिये अर्ध सुप्त अवस्था में मध्यम मर्दन करना चाहिये। इसी प्रकार सो जाने पर मृदुमर्दन करते रहना चाहिये वा थोड़ी देर बाद मर्दन बन्द कर देना चाहिये।२५। समस्त अंगों में विशेषतया जिन स्थानों पर रोमावलि अधिक हो मर्दन न करना चाहिये क्योंकि वहाँ मर्दन करना विरुद्ध है तेल से खूब चिकना कर उन स्थानों पर खूब मर्दन करना चाहिये जहाँ खुजली उठती हो।२६। जिस अंग के स्पर्श करने से रोमांच उत्पन्न हो जाय वहाँ नख से कोमलतापूर्वक स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिये जिससे पुलकावली उठ पड़े। शिर के दोनों पार्श्वों में शनैः-शनैः खुजलाना चाहिये।२७।

---

१. पादसंवाहने तथा। २. कटिगुह्येषु।

तेषु तेषु च गात्रेषु तत्प्रयोज्यं तथातथा । निद्रागमाय तत्काले रागसंधुक्षणाय च ।।२८
तिष्ठतश्चोपविष्टस्य[1] जाग्रतः स्वपतोऽपि वा । संवाहनं प्रशंसंति यदत्यर्थं सुखावहम् ।।२९
नैष्पन्द्यं पुलकोद्भेदो गात्राणामक्षिमीलनम् । तत्प्रदेशार्पणं किञ्चिद्बोधेद्विकृतिदर्शनम् ।।३०
ऊरु मूलादिदेशे च तत्पाणिप्रतिपीडनम् । लक्षयेन्निपुणा[2] यत्र तत्रैवाधिकमाचरेत् ।।३१
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं यानुतिष्ठति । पतिमाराध्य सम्पूर्णं त्रिवर्गं साधिगच्छति[3] ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ।१५।

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्त्रीलक्षणमशेषतः । सद्वृत्तं च तथा स्त्रीणां जगाम स निजालयम् ।।१
ऋषयश्च तथा जग्मुः स्वानि धिष्ण्यान्यशेषतः । स्त्रीलक्षणं तथा वृत्तं श्रुत्वा कृत्स्नं महीपते ।।२
इत्थं लक्षणसम्पन्नां भार्यां प्राप्य महीपते । कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोध मे ।।३

उस समय चाहिये कि उन शरीरांगों में कामराग उद्बोधित करने के लिए तथा निद्रा आ जाने के लिए उसी के अनुसार उन-उन अङ्गों में मर्दन करे ।२८। बैठे-खड़े सोते जागते अंगों में मर्दन की लोगों ने बहुत प्रशंसा की है क्योंकि वह अतिशय सुख पहुँचाने वाला होता है ।२९। जिस अंग के मर्दन करने से पति-परम सुख का अनुभव करे पुलकावलि उठ जाय, नेत्र मूंद ले, उसी प्रदेश को बारम्बार अर्पित करे उसमें चतुर स्त्री को विशेष रूप से मर्दन करना चाहिये ।३०। उरु के मूल आदि भाग में पति अपने हाथों से यदि पीट कर मर्दन करने का संकेत करता है तो निपुण वधू को चाहिये कि उस स्थल पर सब से अधिक मर्दन करे ।३१। जैसा ऊपर कह चुके हैं इन नियमों का जो स्त्री सावधानी पूर्वक पालन करती है वह सम्पूर्ण रीति से पति की आराधना कर धर्मार्थ काम रूप त्रिवर्ग को प्राप्ति करती है ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व में स्त्रीधर्म वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

प्रतिपदा कल्प का वर्णन

सुमन्त बोले—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार स्त्रियों के समस्त लक्षणों एवं उनके सत्कर्तव्यों को सम्पूर्णतया कह लेने के उपरान्त भगवान् ब्रह्मा अपने स्थल की ओर चले गये ।१। और हे राजन् ! उनसे स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों एवं सत्कर्तव्यों को सुनकर सब ऋषिगण भी अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थित हो गये ।२। हे राजन् ! अब इसके उपरान्त उपर्युक्त शुभलक्षणान्वित गृहिणी को प्राप्त कर

---

१. संविष्टस्योपविष्टस्य । २. न क्षयंति व्रणा यत्र । ३. अधितिष्ठति ।

वैवाहिकाग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं तु पक्तिं कुर्यात्सदा गृही ॥४
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति । कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भीः प्रमार्जनी ॥५
आसां क्रमेण सर्वासां विशुद्ध्यर्थं[1] मनीषिभिः । पञ्चोद्दिष्टा महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥६
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौमस्तथान्योऽतिथिपूजनम् ॥७
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः । स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनोदोषैर्न लिप्यते ॥८
देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः । न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न च जीवति ॥९

शतानीक उवाच

यस्य नास्ति गृहे त्वग्निः स मृतो नात्र संशयः । न स पूजयितुं शक्तो देवादीन्ब्राह्मणोत्तमः ॥१०
निरग्निकस्य विप्रस्य कथं देवादयो द्विज । प्रीताः स्युः शान्तये तस्य परं कौतूहलं मम ॥११

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र श्रूयतां परमं वचः । अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ॥१२

गृहस्थाश्रमी को जो कुछ करना चाहिये उसे मुझसे सुनिये ।३। वैवाहिक अग्नि में यथा विधि गृह्य सूत्रोक्त विधानों को सम्पन्न करना चाहिये । गृहस्थाश्रमी सर्वदा पंच महायज्ञों तथा पाक का विधान सम्पन्न करे ।४। गृहस्थ को सर्वदा पाँच हिंसाएँ लगती हैं जिनके कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता । वे पाँचो हिंसाएँ हैं । कण्डवी (मूसल से चावल आदि को कूटते समय उनमें रहने वाले जीव मर जाते हैं ।) पेषणी (पीसते समय चक्की में कितने जीव मर जाते हैं ।) चुल्ली (चुल्हा साफ करते समय कितने जीव मर जाते हैं ।) उदकुम्भी (कलश में जल भरते निकालते समय भी कितने जीव मर जाते हैं और प्रमार्जनी भी (झाड़ू देते समय भी अनेक जीव मर जाते हैं ।) ।५। इन सब हिंसाओं से शुद्धि प्राप्त करने के लिए बुद्धिमानों को क्रमशः पाँच महायज्ञ (पाक यज्ञ) करने का विधान बतलाया गया है गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन उनका अनुष्ठान करना चाहिए ।६। (शिष्यों को) विद्यादान करना ब्रह्म रूप कहा गया है (पितरों का) तर्पण करना पितृयज्ञ है । हवन करना दैवयज्ञ है । बलि देना भौम (भूत) यज्ञ है तथा अतिथियों की पूजा करना अतिथि यज्ञ कहा गया है ।७। इन पाँचों पाकयज्ञों को जो गृहस्थाश्रमी अपनी शक्ति के अनुकूल कभी नहीं छोड़ता नित्य प्रति करता है वह गृहस्थ होने पर भी इन पाँचों हिंसाओं के दोषों से लिप्त नहीं होता ।८। और इसके विपरीत जो देवता अतिथि भृत्य पितर एवं अपने कल्याण के लिए इन पाँचों यज्ञों का विधान नहीं सम्पन्न करता वह जीवन धारण करके भी मृतक है ।९

शतानीक बोले—द्विजवर्य ! जिस गृहस्थ के घर में अग्नि वैवाहिक विद्यमान नहीं रहती वह मृतक है इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं क्योंकि वह उत्तम ब्राह्मण होकर भी देवादि की आराधना करने में असमर्थ रहता है ।१०। हे द्विज ! किन्तु मेरे मन में इस बात का बड़ा कौतुहल हो रहा है कि उस निराग्नि विप्र के ऊपर उसके कल्याण के लिए देवादिगण किस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं ।११

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न छेड़ा ! इस परम बात को सुनो । जो निरग्नि

---

१. निष्कृत्यर्थम् ।

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा[1] नृप । देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः ॥१३
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते । प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन ॥१४

शतानीक उवाच

भगवंस्त्वं तिथीन्ब्रूहि तिथीनां च विधिं हि मे । प्राशनं गृह्यधर्मांश्च उपवासविधीनपि ॥१५
मुच्येम येन पापौघात्त्वत्प्रसादिद्द्विजोत्तम । संसाराच्चापि विप्रेन्द्र श्रेयसे जगतस्तथा ॥१६

सुमन्तुरुवाच

शृणु कौरव कर्माणि तिथिगुह्याश्रितानि तु । श्रुतानि घ्नन्ति पापानि उपोषितफलानि च ॥१७
प्रतिपदि क्षीरप्राशनं द्वितीयायां लवणवर्जनम् ।
तृतीयायां तिलान्नं प्राश्नीयाच्चतुर्थ्यां क्षीराशनश्च पञ्चम्याम् ॥
फलाशनः सदा षष्ठ्यां शाकाशनः सप्तम्यां बिल्वाहारोऽष्टम्यां तु ॥१८
पिष्टाशनो नवम्यामनग्निपाकाहारो दशम्यामेकादश्यां घृताहारो द्वादश्यां पायसाहारः ।
त्रयोदश्यां गोमूत्राहारश्चतुर्दश्यां यवान्नाहारः ॥१९
कुशोदकप्राशनः पौर्णमास्यां हविष्याहारोऽमावास्यायाम् ।
एष प्राशनविधिस्तिथीनामेव चानेन विधिना पक्षमेकं यो वर्तयति ॥२०

विप्र हैं उनको कल्याण प्राप्ति जिस उपाय से होती है, बतला रहा हूँ ।१२। हे राजन् ! ऐसे ब्राह्मणों के ऊपर देवादि व्रत उपवास नियम एवं अन्याय वस्तुओं के दान करने से प्रसन्न होते ही हैं इससे तनिक भी सन्देह नहीं है ।१३। हे महीपते ! कुरुनन्दन ! विशेषतया कुछ विशेष तिथियों में उपवास रखने से उन पर देवादि प्रसन्न होते हैं ।१४

शतानीक ने कहा—भगवन् ! उन विशेष तिथियों को मुझे बतलाइये और उनमें उपवास रखने की विधियाँ बतलाइये । उपवास एवं उसके बाद प्राशन (भक्षण) करने के गृह्य शास्त्रोक्त जो विधान बनाये गये हैं उन्हें भी सुनना चाहता हूँ ।१५। हे द्विजोत्तम ! जिससे तुम्हारी कृपा से मैं अपने पाप समूह से मुक्त हो जाऊँ हे विप्रेन्द्र ! (इस प्रकार घोर संकटपूर्ण) संसार से भी मेरी मुक्ति हो जायगी और संसार का महान कल्याण भी इससे होगा ।१६।

सुमन्तु बोले—कुरुनन्दन ! उन विशेष पुण्यदायिनी तथा उनमें होने वाले व्रत उपवासादि तिथियों को बतला रहा हूँ सुनो । (उनके उपवास करने से जो पुण्यप्राप्ति होती है) उनके सुनने मात्र से पाप समूह नष्ट हो जाते हैं । उपवास के फल भी सुनो ।१७। प्रतिपदा तिथि को दुग्धाहार, द्वितीया को नमक के बिना भोजन, तृतीया को तिलान्न, चर्तुथी को दुग्धाहार, पञ्चमी को फलाहार षष्ठी को शाकाहार, सप्तमी को बेल का आहार, अष्टमी को (उरदी) का पीसा हुआ आहार, नवमी को बिना अग्नि का पका हुआ भोजन अर्थात् फलाहार, दशमी तथा एकादशी को घृत का आहार, द्वादशी को दुग्धाहार, त्रयोदशी को गोमूत्र का आहार चतुर्दशी को जव का आहार, पौणमासी को कुशमिश्रित जल का आहार अमावास्या को हविष्यान्न का आहार। विभिन्न तिथियों में इन उपर्युक्त आहारों का विधान है। इस विधि से जो एक

---

१. स्तुतिदानैः ।

सोऽश्वमेधफलं दशगुणफलमवाप्नोति । स्वर्गे मन्वन्तराणि यावत्प्रतिवसति ॥२१
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्मासत्रयचतुष्टयम् । सोश्वमेधराजसूयानां शतगुणमवाप्नोति ॥२२
स्वर्गे उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैश्चतुर्युगानां दशशतीर्यावत्प्रतिवसति ।
तथाष्टमासपारणे राजसूयाश्वमेधाभ्यां सहस्रगुणफलमवाप्नोति ॥२३
स्वर्गे चतुर्दश मन्वतराणि यावत्प्रतिवसति ।
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्य एवं नियममास्थाय वर्षमेकं वर्तयति ॥२४
स सवितुर्लोके कालं मन्वन्तरं प्रतिवसति ॥२५
य एवं नियमान्राजन्नाश्वयुजनवम्यां माघमासस्य सप्तम्यां वैशाखतृतीयायां कार्तिकपौर्णमास्यां तिथिव्रतानि गृह्णाति ब्रह्मचारी गृहस्थो वनस्थो नारी नरो वा शूद्रः प्रयतमानसः दीर्घायुष्यं सवितुः सालोक्यं व्रजति ॥२६
यैश्चापि पुरा राजन्ननेन विधिना एतासुतिथिष्वन्यजन्मान्तरे उपवासविधिः कृतः दानानि दत्तानि विविधप्रकाराणि ब्राह्मणानां तपस्विजनेषु वा ॥२७
त्रिरात्रोपवासिनां तीर्थयात्रातपोगुरुमातापितृशुश्रूषानिरतानां तेषां स्वर्गादिभोगवासनादिहागतानां फलनिष्पत्तिचिह्नानि मनुष्यलोके प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते ॥२८
हस्त्यश्वयानयुग्यधनरत्नकनकहिरण्यकटककेयूरग्रैवेयककटिसूत्रकर्णालङ्कारमुकुटवरवस्त्रवरनारी-

---

पक्ष तक नियम रखता है वह अश्वमेध यज्ञ के दस गुणित पुण्य फल की प्राप्ति करता है । और स्वर्ग में अनेक मन्वन्तरों तक निवास करता है ।१८-२१। तीन चार मास तक इस नियम का पालन करने वाला अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों के द्वारा उपगीत होकर अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञों के सौगुने अधिक फल को प्राप्त करता है ।२२। इसी प्रकार आठ मास तक नियम रखने वाला अप्सराओं एवं गन्धर्वों से उपगीत होकर एक सहस्र चतुर्युगों तक स्वर्ग में निवास करता है और राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के सहस्रगुणित फल प्राप्त होता है ।२३। इसी प्रकार एक वर्ष तक जो उपर्युक्त नियम का पालन करता है वह अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों द्वारा उपस्तुत होकर चौदह मन्वतरों तक निवास करता है ।२४। और एक मन्वन्तर तक सविता के लोक में निवास करता है ।२५। हे राजन् ! जो व्यक्ति इन नियमों का आश्विन की नवमी, माघमास की सप्तमी, वैशाख की तृतीया तथा कार्तिक की पूर्णिमा को इन तिथियों के व्रतों को प्रारम्भ करता है वह चाहे ब्रह्मचारी हो चाहे गृहस्थ वानप्रस्थ नर नारी अथवा शूद्र हो मन एवं इन्द्रियों को संयत रख कर करता है तो वह दीर्घायु होकर सविता का लोक प्राप्त करता है ।२६। हे राजन् ! यही नहीं जो मनुष्य पूर्वजन्म में इन उपर्युक्त तिथियों में अन्य जन्मों में उपवास की उक्त विधि का पालन कर चुके हैं विविध प्रकार के दानों को ब्राह्मणों वा तपस्वियों को दे चुके हैं तीर्थयात्रा में तीन रात तक उपवास करने वाले गुरु माता पिता की सेवा शुश्रुषा में निरत रहने वाले तथा स्वर्गादि के भोग करने की वासना से इस मर्त्यलोक में जन्म धारण करने वाले उन मनुष्यों के लिए इसी लोक में उक्त पुण्य फलों की निष्पत्ति प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होती देखी जाती है ।२७-२८। हाथी, घोड़ा, सवारी, रथ, धन, रत्न, सुवर्ण, सुवर्णनिर्मित वलय, कण्ठहार, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कुण्डल, मुकुट, सुन्दर बस्त्र, सुन्दरी स्त्री,

वरविलेपनसुरूपगुणदीर्घायुषो विगताधिव्याधयो दानोपवासरतानां फलान्येतानि नृत्यगीत-
वादित्रमङ्गलपाठकशब्दैरिहाद्यापि पुण्यकृतो बोध्यमाना दृश्यन्त इति ॥२९
तथाकृतोपवासा अपि हि दृश्यन्ते ॥३०
तथा अदत्तदाना अकृतपुण्याश्च प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते ॥३१
तद्यथा काणकुष्ठिबधिरजडमूकव्यङ्गा रोगदारिद्र्योपसर्गव्याधिहतायुषश्च दृश्यंतेऽद्यापि मानवाः ॥३२

शतानीक उवाच

द्विजेन्द्र तिथयः प्रोक्ताः समासेन त्वया बुध ! विस्तरेणैव मे भूयः प्रब्रूहि द्विजसत्तम ॥३३
रहस्यं यत्तिथीनां तु देवानां च विचेष्टितम् । यानीष्टानि च देवानां भोज्यानि नियमास्तथा ॥३४
तानि मे वद धर्मज्ञ येन पूतो भवेन्वहम् । निर्द्वन्द्वो हि यथा विप्र लभे यागफलानि तु ॥३५

सुमन्तुरुवाच

रहस्यं यत्तिथीनां च भोजनं फलमेव तु । यावच्च येन नियमो विशेषात्स्त्रीजनस्य च ॥३६
एतत्ते सर्वमाख्यामो रहस्यं तन्निबोध मे । यन्मया नोक्तपूर्वं हि कस्यचित्सुप्रियस्य हि ॥३७
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यस्य देवस्य या तिथिः । देवतानां रहस्यानि व्रतानि नियमास्तथा ॥३८
ताञ्छृणुष्व महाबाहो गदतो मम नारद । सृष्टिं पूर्वं वदिष्यामि संक्षेपेण तिथिं प्रति ॥३९

सुन्दर चन्दनादि सुन्दर रूप, गुण, दीर्घायु, आधिव्याधि से रहित आदि फल इन उपर्युक्त दानों एवं उपवासों में निरत रहने वाले को प्राप्त होता है नाच, गाना, वाद्य एवं मङ्गल पाठकों द्वारा पुण्यात्मा व्यक्ति शयन के बाद जगाये जाते देखे जाते हैं ।२९। इसके विपरीत जो इन पुण्यप्रद उपवासों का पालन नहीं करते उक्त दानों को नहीं देते वे अपुण्यशील भी इस संसार में प्रत्यक्ष रूप से देखे जाते हैं ।३०-३१। वे जैसे काना, कुष्ठी, बधिर, जड़, मूक, विकलाङ्ग रुग्ण, दरिद्र, व्याधिग्रस्त, क्षीण आयु मनुष्य के रूप में पृथ्वीतल पर आज भी देखे जाते हैं ।३२

शतानीक ने कहा—हे द्विजवृन्द ! हे द्विजसत्तम ! आपने संक्षेप में इन तिथियों के माहात्म्य को मुझसे बतलाया है । द्विजवर्य ! कृपया उनके बारे में मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये ।३३। उक्त तिथियों का जो रहस्य हो देवताओं की जो विशेष चेष्टाएँ हों उनके जो विशेष प्रिय भोज्य पदार्थ हों जो कुछ नियम हों हे धर्मज्ञ ! उन सबका विस्तृत परिचय मुझे दीजिये जिससे मैं पवित्र हो सकूँ । हे विप्र ! जिससे मैं निर्द्वन्द्व होकर यज्ञ फल की प्राप्ति कर सकूँ ।३४-३५

सुमन्तु ने कहा—उक्त तिथियों की जो विशेष रहस्यपूर्ण बातें हैं उनके उन भोज्य सामग्रियों के जो विशेष फल बतलाये गये हैं उनसे जो फल प्राप्ति होती है जिस प्रकार से उनके उपोषित करने के नियम कहे गये हैं उन सब रहस्यपूर्ण बातों को विशेषतया स्त्रियों के लिए मैं तुमसे बतला रहा हूँ । सुनो । वे ऐसी गोपनीय हैं कि मैंने आज से पहिले अपने किसी भी प्रियजन को उनका रहस्य नहीं बतलाया है ।३६-३७। जिस देवता की जो विशेष तिथि कही जाती है जिन देवताओं का जो रहस्य व्रत तथा नियम है, हे महाबाहु नारद जी ! उन सब बातों को मैं बतला रहा हूँ सुनिये । संक्षेप में इन तिथियों के वर्णन प्रसंग में सृष्टिपूर्व

तमोभूतमिदं त्वासीदलक्ष्यमवितर्कितम् । जगद्ब्रह्मा समागत्यासृजदात्मानमात्मना ॥४०
संभूतात्मैव आत्मासादण्डमध्याद्विनिःसृतः । आत्मनैवात्मनो ह्यण्डं सृष्ट्वा स विभुरादितः ॥४१
ब्रह्म नारायणाख्योऽसौ सृष्टिं कर्तुं समुद्यतः । ताभ्यां सोण्डकपालाभ्यां दिवं भूमिं च निर्ममे ॥४२
दिशश्चोपदिशश्चैव देवादीन्दानवांस्तथा । तिथिं पूर्वामिमां राजंश्चकाराथ विभुः स्वयम् ॥४३
तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता । प्रतिपादितापरे पूर्वे प्रतिपत्तेन तूच्यते ॥४४
अस्मात्पदात्तु तिथयो यस्मात्त्वन्याः प्रकीर्तिताः । अस्यान्ते कथयिष्यामि उपवासविधिं परम् ॥४५
कार्तिक्यां माघसप्तम्यां वैशाखस्य युगादिषु । नियमोपवासं प्रथमं ग्राहयेत विधानवित्[1] ॥४६
यां तिथिं नियमं कर्तुं भक्त्या समनुगच्छति । तस्यां तिथौ विधानं यत्तन्निबोध जनाधिप ॥४७
यदा तु प्रतिपद्यां वै गृह्णीयान्नियमं नृप । चतुर्दश्यां कृताहारः संकल्पं परिकल्पयेत् ॥४८
अमावास्यां न भुञ्जीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् । पवित्रो हि जपेन्नित्यं गायत्रीं शिरसा सह ॥४९
अर्चयित्वा प्रभाते तु गन्धमाल्यैर्द्विजोत्तमान् । शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतां प्रभुः ॥५०

के वृतान्त को बतला रहा हूँ ।३८-३९। (सृष्टि के पूर्व) यह समस्त जगन्मण्डल अंधकारमय था जिसका न तो कोई चिह्न शेष था न कोई अनुमान करने का साधन शेष था । भगवान् ब्रह्मा ने ऐसे जगत् में आकर अपने ही द्वारा इसका सर्वप्रथम आविर्भाव किया ।४०। उस विशाल अण्डरूप जगत् के मध्य से संभूतात्मा भगवान ब्रह्मा स्वयं निकल पड़े । सर्वप्रथम सर्वैश्र्यशाली नारायण उपाधिधारी भगवान् विभु ने सृष्टि करने की कामना से उद्यत होकर उस विशाल अण्ड की सृष्टि भी स्वयं अपने ही से की थी ।४१। उन्होंने उसके दो कपालों (टुकड़ों) से पृथ्वी और भूलोक का निर्माण किया ।४२। हे राजन् ! उन्ही में से तदुपरान्त भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं दसों दिशाओं उपदिशाओं देवताओं एवं दानवों की रचना की । इन सब की रचना भगवान् ने सर्वप्रथम इसी पूर्व तिथि प्रतिपदा को ही की थी ।४३। यतः ब्रह्मा द्वारा यह सभी तिथियों में श्रेष्ठ कही गयी और पश्चात् लोगों ने उसका प्रतिपादन किया इसलिए वह तिथि प्रतिपदा कही जाती है ।४४। इसी पद के बाद दूसरी तिथियाँ कही गई है इसके अन्त में उपवास करने का जो परम विधि है उसे कह रहा हूँ सुनिये ।४५। विधानवेत्ता कार्तिक की माघ की सप्तमी तथा वैशाख की युगादि तिथियों में नियमपूर्वक उपवास को सर्वप्रथम अंगीकार करे ।४६। हे जनाधिप ! इन पन्द्रह तिथियों में जिस तिथि को विधान कर्त्ता भक्तिपूर्वक नियम का पालन करता है उसके विधि के विधानादि को बतला रहा हूँ, सुनिये ।४७। हे नृप ! जब प्रतिपदा तिथि को नियम का प्रारम्भ करना चाहे तो चतुर्दशी तिथि को ही आहार ग्रहण करने के बाद इसका संकल्प करना चाहिये ।४८। उसके अनन्तर अमावास्या तिथि को व्रती को बिना आहार ग्रहण किये त्रिकाल स्नान करना चाहिये । और सारे दिन पवित्र भाव से शिर के साथ गायत्री का जप करते रहना चाहिये ।४९। फिर दूसरे दिन प्रतिपदा के प्रातःकाल सुगन्धित द्रव्य, पुष्प एवं माला आदि से उत्तम ब्राह्मणों की पूजा कर "भगवान् परमैश्वर्यशाली ब्रह्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों" इस भावना से दुग्ध का दान करना चाहिये ।५०। हे राजन् ! इस विधि के साथ नियम समाप्ति के अनन्तर व्रती गोदुग्ध के साथ आहार ग्रहण करे । हे नृप ! सभी तिथियों में यही नियम देखा गया

१. विधानतः ।

ततो भुञ्जीत गोक्षीरमनेन विधिना नृप । एष एव विधिर्दृष्टः सर्वासु तिथिषु नृप ।।५१
संवत्सरगते काले व्रतमेतत्समाप्यते । व्रतांते यत्फलं तस्य तन्निबोध नराधिप ।।५२
विमुक्तपापः शुद्धात्मा दिव्यदेहस्य देहिनः । ब्रह्मा ददाति संतुष्टो विमानमतितेजसम् ।।
अव्याहतगतिं दिव्यं किन्नराप्सरसैर्युतम् ।।५३
रमित्वा सुचिरं तत्र दैवतैः सह देववत् । इह चागत्य विप्रत्वं दश जन्मान्यसौ लभेत् ।।५४
वेदवेदांगविद्यश्च दीर्घायुश्चैव सुप्रभः । भोगी धनपतिर्दाता जायतेऽसौ कृते युगे ।।५५
विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्वजिगीषया । तपश्चचार विपुलं सन्तापाय दिवौकसाम् ।।
ब्राह्मणत्वं न लेभेऽसौ लेभे विघ्नाननेकशः ।।५६
ततस्तु नियमात्तेषां तिथीनां प्रवरा तिथिः । उपोषिता बहुविधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम् ।।५७
ततो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते । इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम् ।।५८
तिथीनां प्रवरा ह्येषा तिथीनामुत्तमा तिथिः । क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयुः ।।५९
एवं तिथिरियं राजन्कामदा कञ्जजप्रिया । सरहस्या मया प्रोक्ता या नोक्ता यस्य कस्यचित् ।।६०
हैहयैस्तालजङ्घैश्च तुरुष्कैर्यवनैः शकैः । उपोषिता इहात्रैव ब्राह्मणत्वमभीप्सुभिः[१] ।।६१

है ।५१। इस प्रकार एक वर्ष समय व्यतीत होने पर यह नियम समाप्त होता है, नराधिप ! व्रत समाप्ति पर व्रती को जो पुण्य मिलता है उसे सुनिये ।५२। उस व्रती पुरुष के समस्त पाप इस नियम के पालन से छूट जाते है और उसकी आत्मा निर्मल हो जाती है उसे जन्मान्तर में दिव्यगुण सम्पन्न शरीर की प्राप्ति होती है । भगवान् ब्रह्मा परम सन्तुष्ट होकर उसे परम तेजोमय एक ऐसा दिव्य विमान समर्पित करते हैं जिसकी गति कहीं रुद्ध नहीं होती और चारों ओर से जिसे किन्नरों एवं अप्सराओं के समूह घेरे रहते हैं ।५३। उस पुनीत लोक में वह प्राणी देवताओं की तरह सभी सुखों एवं समृद्धियों का चिर काल तक सदुपयोग कर इस लोक में पुनः जन्म धारण कर दस जन्म तक ब्राह्मण कुल प्राप्त करता है ।५४। इसी पुण्य के प्रभाव से वह वेदों तथा वेदाङ्गों समेत समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर परम तेजस्वी, भोगी धनपति तथा दानी रूप में सतयुग में उत्पन्न होता है ।५५। हे राजेन्द्र ! विश्वामित्र ने ब्राह्मण की पदवी जीतने के लिए और स्वर्गस्थ देवताओं को संताप देने केलिए विपुल तपस्या की किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व की पदवी नहीं मिली प्रत्युत अनेक विघ्न एवं कष्ट झेलने पड़े ।५६। तब उन्होंने समस्त तिथियों में श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मप्रिया समझकर नियमपूर्वक अनेक प्रकार के दानादि कर्म करते हुए उपवास किया ।५७। जिससे भगवान् ब्रह्मा ने परम बुद्धिमान् विश्वामित्र के लिए प्रसन्न होकर इसी शरीर द्वारा परम दुर्लभ ब्राह्मणत्व का वरदान दिया ।५८। यह प्रतिपदा तिथि सभी तिथियों में श्रेष्ठ एवं उत्तम पुण्य प्रदान करने वाली है । इसके नियमपूर्वक पालन करने से क्षत्रिय अथवा वैश्य, शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त होते हैं ।५९। हे राजन् ! इस प्रकार यह प्रतिपदा तिथि भगवान् पद्मयोनिब्रह्मा को परम प्रिय एवं व्रती की समस्त कामनाओं को सफल बनाने वाली है । मैने इसे किसी को भी आज तक नहीं बतलाया था आपसे इसके नियम एवं रहस्य को बतला चुका ।६०। इसी मर्त्यलोक में यह परम पुण्यप्रदायिनी प्रतिपदा हैहय, तालजङ्घ, तुरुष्क (तुरुक) यवन, एवं शक प्रभृति

१. च लंभितम् ।

इत्येषा परमा पुण्या शिवा पापहरा तथा । पठितोपासिता राजञ्छ्रद्धया च श्रुता[1] तथा ॥६२
माहात्म्यं चापि योऽप्यस्याः शृणुयान्मानवो नृप । ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं शिवं चाप्य दिवं व्रजेत् ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पविषये ब्रह्मणः पूजा

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे विस्तराद्ब्रह्मन्प्रतिपत्कृत्यमादरात्[2] । ब्रह्मपूजाविधानं च पूजने यच्च वै फलम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वैकमना राजन्कथयाम्येष शान्तिदम् । पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥२
स्वयम्भूरभवद्देवः सुरज्येष्ठश्चतुर्मुखः । ससर्ज लोकान्देवांश्च भूतानि विविधानि च ॥३
कायेन मनसा वाचा जङ्गमस्थावराणि च । पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः ॥४
तस्मादेष सदा पूज्योः यतो लोकगुरुः परः । सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा ॥५

ब्राह्मणत्व की पदवी प्राप्ति के अभिलाषियों द्वारा उपोषित की गई है ।६१। यह परम पुण्य प्रदायिनी कल्याण प्रदा एवं पापहारिणी है । हे राजन् ! श्रद्धापूर्वक इस व्रत के नियमादि के सुनने पढ़ने एवं पालन करने से मनुष्य को उक्त फल की प्राप्ति होती है ।६२। हे नृप ! जो मनुष्य केवल इसके माहात्म्य को सुनता है उसे परम ऋद्धि-वृद्धि, कीर्ति कल्याण एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा माहात्म्य वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६

अध्याय १७

प्रतिपदाकल्प के विषय में ब्रह्मा की पूजा

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! अब मुझे विस्तार पूर्वक प्रतिपदा में किये जाने वाले कार्य और उक्त ब्रह्मा की पूजा का विधान सादर बतलाइये और यह भी बतलाइये कि उस पूजन से क्या फल प्राप्त होता है।१

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस शान्तिप्रद कथा को मैं कह रहा हूँ। प्राचीनकाल में जब स्वयम्बर एवं जंगम रूप समस्त जगत् एवं घोर महासमुद्र में नष्ट हो गया था उस समय स्वयं उत्पन्न सुरश्रेष्ठ चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने ही समस्त देवाताओं लोकों और अनेक प्रकार के भूतों की सृष्टि की। मनसा वाचा कर्मणा उन्होंने स्थावर जंगम जीव समूहों की पुनः सृष्टि की इसीलिए वे देवताओं के पिता तथा समस्त भूतों के पितामह कहे जाते हैं।२-४। और इसीलिए सदा परम पूज्य भी माने गये हैं क्योंकि लोक में सबसे बढ़कर महान् हैं। वे ही समस्त संसार की सृष्टि करते हैं पालन करते हैं और अन्त में सब का संहार करते हैं।५।

---

१. अत्र विशेषतः । २. प्रतिपत्कल्पम् ।

रुद्रोऽस्य मनसो जातो विष्णुर्जातोऽस्य[1] वक्षसः । मुखेभ्यश्चतुरो[2] वेदा वेदाङ्गानि च कृत्स्नशः ।।६
देवाप्सरसगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । पूजयन्ति सदा वीर विरिंचि सुरनायकम् ।।७
सर्वो ब्रह्ममयो लोकः सर्वं ब्रह्मणि संस्थितम् । तस्मात्समर्चयेद्ब्रह्मन्य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।।८
यो न पूजयते भक्त्या सुरज्येष्ठं[3] सुरेश्वरम् । न स नाकस्य राज्यस्य न च मोक्षस्य भाजनम् ।।९
यस्तु पूजयते भक्त्या विरिंचि भुवनेश्वरम् । स नाकराज्यमोक्षेषु क्षिप्रं भवति भाजनम् ।।१०
तस्मात्सौम्यमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया । अर्चयित्वा सदा देवमापन्नोऽपि नरो नृपः ।।११
वरं देहपरित्यागो वरं नरकसम्भवः । न त्वेवापूज्य भुञ्जन्ति[4] देवं वै पद्मसंभवम् ।।१२
सदा पूजयते यस्तु वीर भक्त्या पितामहम् । मनुष्यचर्मणा नद्धः स वेधा नात्र संशयः ।।१३
न हि वेधोऽर्चनात्किंचित्पुण्यमभ्यधिकं भवेत् । इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदा विधिः ।।१४
यो ब्रह्माणं द्वेष्टि मोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् । नरो नरकगामी स्यात्तस्य संभाषणादपि ।।१५
ब्रह्मणोर्चां प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः । यत्पुण्यं फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ।।१६
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं लभेद्वेधः प्रतिष्ठया ।।१७
कञ्जजं स्थापयेद्यस्तु कृत्वा शालां मनोरमाम् । सर्वागमोदितं पुण्यं कोटिकोटिगुणं लभेत् ।।१८

रुद्र उनके मनसे तथा विष्णु उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुए हैं । उन्ही के मुखों से चारों वेद एवं समस्त वेदाङ्ग प्रादुर्भूत हुए हैं।६। हे वीर! सुरश्रेष्ठ उन भगवान् विरिंचि की देव अप्सरा, गन्धर्व, यक्ष, उरग एवं राक्षसगण सर्वदा पूजा करते हैं।७। सभी लोक ब्रह्ममय हैं सभी ब्रह्मा में स्थित हैं इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है उसे ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये।८। सुरेश्वर सुरज्येष्ठ उन भगवानब्रह्मा की जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पूजा नहीं करते वह स्वर्ग राज्य और मोक्ष का भाजन नहीं होता।९। जो मनुष्य भुवनेश्वर विरिंचि की भक्तिपूर्वक पूजा करता है वह शीघ्र ही स्वर्ग राज्य एवं मोक्ष का भाजन बनता है।१०। इसलिए हे राजन्! मनुष्य को चाहिये कि वह चाहे कैसी भी विपत्ति में क्यों न पड़ा हो जब तक जीवित रहे प्रतिज्ञापूर्वक प्रसन्न मन से सर्वदा देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा की पूजा में निरत रहे।११। पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की पूजा न करके जो लोग भोजन कर लेते है उनके लिए इस जीवन से शरीर का परित्याग करना तथा नरक में गिरना ही श्रेष्ठ है।१२। हे वीर! जो मनुष्य सर्वदा भक्तिपूर्वक पितामह भगवान् ब्रह्मा की पूजा करते हैं वह निस्सन्देह मनुष्य के चमड़े में नधा हुआ साक्षात् ब्रह्मा ही है।१३। भगवान् ब्रह्मा की पूजा से अधिक कोई पुण्य इस संसार में नहीं है ऐसा समझ कर मनुष्य को यत्नपूर्वक ब्रह्मा की सर्वदा पूजा करनी चाहिये।१४। जो मनुष्य सभी देवताओं द्वारा नमस्कृत भगवान् ब्रह्मा के साथ मोहवश द्वेष करता है वह नरकगामी होता है यही नहीं उस पापात्मा के साथ सम्भाषण करने से भी नरकगामी होना पड़ता है।१५। भगवान् ब्रह्मा की प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कर सभी यन्त्रों से विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य जो पुण्यफल प्राप्त करता है उसे एकाग्र नन से सुनिये।१६। सब प्रकार के यज्ञ, तप, दान, तीर्थस्नान एवं वेदाध्ययन से जो पुण्य की प्राप्ति होती है उससे कोटि गुणित फल ब्रह्मा की मूर्ति प्रतिष्ठा करने वाले प्राप्त करते हैं।१७। जो मनुष्य उत्तम मन्दिर का निर्माण कर उसमें ब्रह्मा की प्रतिष्ठा करता

---

१ च इ० पा०। २. चत्वारः। ३. विरिंचिं सर्वकामदम्। ४. भुञ्जते।

मातृजान्पितृजांश्चैव यां चैवोद्वहते स्त्रियम् । कुलैकविंशमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते ॥१९
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समासाद्य स तत्रैव विमुच्यते ॥२०
अथ वा राज्यमाकाङ्क्षेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥२१
त्रिसंध्यं यो जपेद्ब्रह्म कृत्वाष्टदलपंकजम् । पौर्णमास्यां प्रतिपदि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२२
अनेनैव स देहेन ब्रह्मा संतिष्ठते क्षितौ ।पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥२३
उद्धृत्य दिवि संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम् । तैः कुलैः सहितो नित्यं मोदते गोगतो[1] नृप ॥२४
अप्येकवारं यो भक्त्या पूजयेत्पद्म[2]संभवम् । पद्मस्थं मूर्तिमन्तं वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२५
पुण्यक्षयात्क्षितिं प्राप्य भवेत्क्षितिपतिर्महान् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ब्राह्मणश्चापि जायते ॥२६
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः । गच्छेद्ब्रह्मपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिपरात्मकान् ॥२७
मृद्दार्वेष्टकशैलैर्वा यः कुर्याद्ब्रह्मणो गृहम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२८
मृन्मयात्कोटिगुणितं फलं दार्विष्टाकामये । इष्टकादिद्वगुणं पुण्यं कृते शैलमये गृहे ॥२९
क्रीडमानोऽपि[3] यः कुर्याच्छालां वै ब्रह्मणो नृप । ब्रह्मलोके स लभते विमानं सर्वकामिकम् ॥३०

है वह सभी शास्त्रों में कहे गये पुण्यों से कोटिगुणित अधिकपुण्य फल की प्राप्ति करता है ।१८। वह महान् पुण्यशाली मनुष्य अपने मातृकुल, पितृकुल तथा जिस स्त्री के साथ विवाह करता है उस कुल की इक्कीस पीढ़ियों को तारता है और स्वयं ब्रह्म लोक में पूजित होता है ।१९। वहाँ पर विपुल भोगों का अनुभव कर प्रलय के अवसर पर ज्ञानयोग की सिद्धि प्राप्त कर वहीं पर मुक्त भी हो जाता है ।२०। अथवा यदि वह ब्रह्मलोक में राज्य प्राप्ति की कामना करता है जो जन्मान्तर में सातों द्वीपों तथा समुद्रों समेत सम्पूर्ण पृथिवी का एकछत्र स्वामी होता है ।२१। जो मनुष्य पूर्णिमा तथा प्रतिपदा तिथियों में अष्टदल कमल का निर्माण कर भगवान् ब्रह्मा के नाम का तीनों संध्याओं में जप करता है उसके पुण्य-फल की कथा सुनो ।२२। उसके लिए अधिक क्या कहा जाय, यही समझना चाहिए कि उसके इस शरीर से भगवान् ब्रह्मा ही पृथ्वी पर निवास कर रहे हैं । उसका दर्शन एवं स्पर्श ही सभी मनुष्यों के पापों को नाश करता है ।२३। वह पुण्यशील मनुष्य अपनी इक्कीस पीढियों को उद्धार कर स्वर्ग में प्रतिष्ठित करता है । हे राजन् ! अपने कुलपुरुषों के साथ वह पुण्यात्मा भूमिलोक में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है ।२४। जो मनुष्य एक बार भी पद्म पर समासीन वा मूर्तिमान् पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की भक्ति पूर्वक पूजा करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।२५। और पुण्य क्षय के बाद वहाँ से पृथ्वी लोक में महान् राजा के रूप में जन्म धारण करता है । समस्त वेद एवं वेदांगों का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठकुलीन ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है ।२६। भक्ति पूर्वक भगवान् ब्रह्मा की पूजा को छोड़कर न तो कठोर तपस्याओं से दिव्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो सकती है और न समस्त महान् यज्ञों के अनुष्ठानों से ।२७। जो मनुष्य मिट्टी, काष्ठ ईंट अथवा पत्थरों से ब्रह्मा का मन्दिर बनवाता है वह अपने इक्कीस कुल पुरुषों के साथ ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।२८। मिट्टी के मन्दिर से ईंट और काष्ठ का मन्दिर कोटि गुणित अधिक फलदायी होता है और ईंट के मन्दिर से द्विगुणित अधिक पुण्य पत्थर द्वारा बनवाने में होता है ।२९। हे नृप ! जो मनुष्य खिलवाड़ में ही ब्रह्मा का आयतन बनवा देता है वह भी

---

१. गां भूमिं गतः—भूमिष्ठ एवेत्यर्थः । २. सर्वकामदम् । ३. क्रीडन् ।

पुष्पमालापरिक्षिप्तं किङ्किणीजालभूषितम् । दोलाविक्षेपसम्पन्नं घण्टाचामरभूषितम् ।।३१
मुक्तादामवितानेन शोभितं सूर्यसुप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ।।३२
तत्रोषित्वा महाभोगी क्रीडमानः सदा सुरैः । पुनरागत्य लोकेस्मिन्राजा भवति धार्मिकः ।।३३
पश्यन्परिहरञ्जन्तून्मृदुपूर्दं महीपते । शनैः सम्मार्जनं कुर्वंश्चान्द्रायणफलं व्रजेत् ।।३४
वस्त्रपूतेन तोयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्यन्परिहरञ्जन्तूंश्चान्द्रायणफलं लभेत् ।।३५
नैरन्तर्येण यः कुर्यात्पक्षं सम्मार्जनार्चनम् । युगकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ।।३६
तस्यान्ते स चतुर्वेदः सुरूपः प्रियदर्शनः । आढ्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ।।३७
कपटेनापि यः कुर्याद्ब्रह्मशालां सुमानद । सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि प्राप्नोति तत्फलम् ।।३८
तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकभयप्लुताः । न भवन्ति सुरश्रेष्ठे यावद्भक्ता महीपते ।।३९
समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात् ।।४०
खण्डस्फुटितसंस्कारं शालायां यः करोति वै । अरामावसथाद्येषु लभते मौक्तिकं फलम् ।।४१

ब्रह्मलोक में सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले विमान की प्राप्ति करता है ।३०। उसका वह सुन्दर विमान सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से चारों ओर घिरा हुआ छोटी-छोटी किंकिणियों से विभूषित झूलों एवं हिंडोले से संयुक्त घंटा तथा चामर से समन्वित रहता है ।३१। उसमें चारों ओर ऊपर मोतियों की लड़ियाँ झूलती रहती हैं उसकी शोभा सूर्य के समान तेजोमयी रहती है । अप्सराओं के समूह चारों ओर से उसमें आकीर्ण रहते हैं । और सब प्रकार की कामनाएँ एवं समस्त सुख प्रदान करती हैं ।३२। पश्चात् उस ब्रह्म लोक में रहकर देवताओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ वह महान् भोगी फिर इस लोक में आकर परम धार्मिक राजा होता है ।३३। हे महीपति ! ब्रह्मा के उस आयतन में जन्तुओं को देखकर उन्हें छोड़ते हुए मृदुता के साथ-साथ धीरे-धीरे मार्जन करने से मनुष्य चान्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है ।३४। वस्त्र से पवित्र किये गये (छाने गये) जल द्वारा जो मनुष्य जन्तुओं को देख कर छोड़ते हुए जो उपलेपन करता है वह चान्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है ।३५। जो मनुष्य एक पक्ष तक निरन्तर आयतन में मार्जन एवं अर्चन करता है वह शत कोटि युगपर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।३६। उस अवधि के व्यतीत हो जाने के उपरान्त वह चारों वेदों का पारगामी विद्वान्, सुन्दर स्वरूपवान प्रियदर्शी, धन-धान्य सम्पन्न, सर्वगुणान्वित एवं परम धार्मिक राजा होता है ।३७। हे सुमानद ! कपट पूर्वक भी जो व्यक्ति ब्रह्मा के आयतन का निर्माण करता है तथा उसमें सम्मार्जन एवं अर्चन आदि कर्म करता है वह भी उक्त फल की प्राप्ति करता है ।३८। हे महीपति ! लोग इस संसार में विविध प्रकार के दुःख शोक एवं भय में तभी तक फँसे रहते हैं जब तक सुरश्रेष्ठ में उनकी भक्ति नहीं हो जाती ।३९। प्राणियों का चित्त जिस प्रकार वाह्य सांसारिक भोग विलासादि विषयों में समासक्त रहता है यदि उसी प्रकार ब्रह्मा में अनुरक्त हो जाय तो ऐसा कौन है जो बन्धनों से मुक्त न हो जाय ।४०। ब्रह्मा के टूटे-फूटे वा अपूर्ण आयतन का जो मनुष्य जीर्णोद्धार करा देता है अथवा पूर्ण करा देता है तथा उसमें वाटिका एवं विश्रामस्थल आदि का निर्माण करा देता है वह भी मोक्ष का फल प्राप्त करता है ।४१। ब्रह्मा के समान न

नास्ति ब्रह्मसमो देवो[1] नास्ति ब्रह्मसमो गुरुः। नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञानं नास्ति वेधः समं तपः ॥४२
प्रतिपद्यादिसर्वेषु दिवसेषूत्सवेषु च। पर्वकालेषु[2] पुण्येषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥४३
शंखभेर्यादिनिर्घोषैर्महद्भिर्गेयसंयुतैः। कुर्यान्नीराजनं देवे सुरज्येष्ठे[3] चतुर्मुखे ॥४४
यावत्पर्वाणि विधिना कुर्यान्नीराजनं नृप। तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४५
स्नानकाले त्रिसंध्यं तु यः कुर्यान्नृत्यवादनम्। गीतं वा मुखवाद्यं वा तस्य पुण्य फलं शृणु ॥४६
यावन्त्यहानि कुरुते गेयनृत्यादिवादनम्। तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४७
कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च। स्नापयेन्मंत्रपूतेन ब्राह्मं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥४८
कपिलापञ्चगव्येन दधिक्षीरघृतेन च। स्नानं[4] शतगुणं ज्ञेयमितरेषां नराधिप ॥४९
देवाग्निकार्यमुद्दिश्य कपिलामाहरेत्सदा। ब्रह्मक्षत्रविशश्चैव न शूद्रस्तु कदाचन ॥५०
कापिलं यः पिबेच्छूद्रो देवकार्यार्थनिर्मितम्। स पच्येत महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥५१
वर्षकोटिसहस्रैस्तु[5] यत्पापं समुपार्जितम्। सुरज्येष्ठघृताभ्यंगाद्दहेत्सर्वं न संशयः ॥५२
कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम्। पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥५३
घृतस्नानं प्रतिपदि सकृत्कृत्वा तु काञ्जजम्। कुलैकविंशमुत्तार्य विष्णुलोके महीयते ॥५४

तो कोई देव है न कोई गुरु है न कोई ज्ञान है न कोई तप है।४२। प्रतिपदा आदि सभी तिथियों में सभी दिनों में उत्सव के दिन में पर्व के दिन में अथवा किसी भी पुण्य अवसर पर विशेष तथा पूर्णिमा तिथि को शंख भेरी आदि के मांगलिक शब्दों के बीच में सुमधुर संगीत एवं महान् समारोह कराते हुए सुरज्येष्ठ चतुर्मुख देव का नीराजन करना चाहिये।४३-४४। हे राजन्! मनुष्य इस प्रकार जितने पर्वों में विधिपूर्वक नीराजन करता है उतने सहस्र युगों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है।४५। स्नान के समय तीनों सन्ध्याओं में जो मनुष्य ब्रह्मा के मन्दिर में नृत्य एवं वाद्य का समारोह रचता है गीत गाता है अथवा केवल मुख का वाद्य बजाता है उसका पुण्य फल सुनो।४६। जितने दिनों तक वह गायन नृत्य तथा वाद्य का समारोह करता है उतने ही सहस्र युगों तक ब्रह्म लोक में पूजित होता है।४७। कपिला गौ के पञ्च गव्य तथा कुशमिश्रित जल से जो मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर स्नान किया जाता है उसे ब्रह्म स्नान कहा जाता है।४८। हे नराधिप! इससे शतगुना अधिक पुण्य कपिला के पञ्चगव्य तथा दही, क्षीर और घृत से स्नान कराने की पुण्यपथ की अपेक्षा शत गुना अधिक है।४९। देवता तथा अग्नि कार्य के उद्देश्य से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य को सर्वदा कपिला गौ का ही आहरण (प्रयोग) करना चाहिये। शूद्र को कपिला का आहरण कभी नहीं करना चाहिये।५०। देव कार्यों के लिए विहित कपिला गौ के दूध को जो शूद्र पीता है वह महाघोर नरक समुद्र में चिरकाल तक सन्तप्त होता है।५१। सहस्रकोटि वर्षों में मनुष्यों द्वारा जो पाप कर्म किये हुए रहते हैं वे सब सुरज्येष्ठ ब्रह्मा को घृत स्नान कराने से निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं।५२। यहीं नहीं सहस्रों कोटि कल्पों में जो पाप किये गये रहते हैं उन्हें भी पितामह का घृत स्नान इस प्रकार जला देता है जिस प्रकार अग्नि इन्धन को।५३। प्रतिपदा तिथि को पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार घृत द्वारा स्नान कराने से मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर विष्णुलोक में

---

१. लोके। २. सर्वकालेषु। ३. भक्तिपूर्वम्। ४. दशगुणम्। ५. सहस्रे तु।

अयुतं यो गवां दद्याद्भक्त्या[1] वै वेदपारगे । वस्त्रहेमादियुक्तानां क्षीरस्नानेन यत्फलम् ।।५५
सकृदाज्येन पयसा विरिञ्चिं स्नपयेत्तु यः । गाङ्गेयेन स यानेन याति ब्रह्मसलोकताम् ।।५६
स्नाप्य दध्ना सकृद्वीर कञ्जजं विष्णुमाप्नुयात् । मधुना स्नापयित्वा तु वीरलोके महीयते ।।५७
स्नानमिक्षुरसेनेह यो विरिञ्चेः समाचरेत् । स याति लोकं सवितुस्तेजसा भासयन्नभः ।।५८
शुद्धोदकेन[2] यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसंभवम् । उत्सृज्य पापकलिलं स यात्येव सलोकताम् ।।५९
वस्त्रपूतेन तोयेन स्नपयेद्यः सकृद्विभुम् । स सर्वकालं तृप्तात्मा लोकवश्यत्वमाप्नुयात् ।।६०
सर्वौषधीभिर्यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसंभवम् । काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ।।६१
गन्धचन्दनतोयेन स्नपयेद्योम्बुजोद्भवम् । रुद्रलोकमवाप्नोति तेजसा हेमसन्निभः ।।६२
पाटलोत्पलपद्मानि करवीराणि सर्वदा । स्नानकाले प्रयोज्यानि स्थिराणि सुरभीणि च ।।६३
एषामेकतमं स्नानं भक्त्या कृत्वा तु वेधसि । विधूय पापकलिलं विधिलोके[3] महीयते ।।६४
कर्पूरागरुतोयेन स्नपयेद्यस्तु[4] कञ्जजम् । सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ।।६५
गायत्रीशतजप्तेन विमलेनाम्भसा विभुम् । स्नपयित्वा सकृद्भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।६६

पूजनीय होता है ।५४। दस सहस्र वस्त्र सुवर्णादि से अलंकृत गौएँ भक्तिपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणों को प्रदान करने से मनुष्य जो पुण्य प्राप्त करता है और (ब्रह्म को) क्षीर स्नान कराने से प्राप्त होता है ।५५। जो मनुष्य घृत एवं क्षीर द्वारा ब्रह्मा को केवल एकबार स्नान कराता है वह गांगेय यान द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है ।५६। हे वीर ! पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार दही द्वारा स्नान कराने से विष्णु को प्राप्त करता है और मधु द्वारा स्नान कराकर वीरलोक में भूषित होता है ।५७। जो ईख के रस द्वारा ब्रह्मा को स्नान कराता है वह अपने देदीप्यमान तेज से आकाशमण्डल को भासित करते हुए सूर्य के लोक को प्राप्त करता है ।५८। इसी प्रकार केवल शुद्ध जल से जो मनुष्य पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह पापपंक से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को अवश्य प्राप्त करता है ।५९। जो वस्त्र द्वारा शुद्ध किये गये जल से परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सर्वदा सन्तुष्टि लाभ करते हुए लोक को वश में करने की क्षमता प्राप्त करता है ।६०। सम्पूर्ण औषधियों द्वारा जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पद्मयोनि ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सुवर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।६१। सुगन्धित द्रव्य एवं चन्दन के तैल द्वारा जो पद्मज ब्रह्मा को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह अपनी सुवर्ण के समान निर्मल कान्ति से शोभा सम्पन्न होकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है ।६२। ब्रह्मा के स्नान के अवसर पर कमल, पद्म, करवीर आदि स्थिर सुगन्धि वाले पुष्पों का सर्वदा प्रयोग करना चाहिये । ब्रह्मदेव के समक्ष उपर्युक्त सामग्रियों को रखकर जो मनुष्य इनमें से किसी एक स्नान को कराता है तो वह अपने सम्पूर्ण पाप पंकों से छुटकारा प्राप्त कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।६३-६४। जो मनुष्य कपूर अथवा अगर मिश्रित जल द्वारा पंकजोद्भव को स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त एवं विशुद्धात्मा होकर ब्रह्म लोक में पूजित होता है।६५। सौ बार गायत्री मंत्र से विमल जल द्वारा सर्वैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को भक्ति पूर्वक एक बार स्नान कराने से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।६६। विभु ब्रह्मा को सर्वप्रथम शीतल जल से

---

१. विप्रे । २. फलोदकेन । ३. विधुलोकमवाप्नुयात् । ४. पूजयेत् ।

विभु शीताम्बुना स्नाप्य धारोष्णपयसा ततः । ततः पश्चाद् घृतस्नानं कृत्वा पापैर्विमुच्यते ॥६७
एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भक्तितः । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥६८
मृत्कुम्भैस्ताम्रजैः कुम्भैः स्नानं शतगुणं[१] भवेत् । रौप्ये लक्षोत्तरं प्रोक्तं हैमैः कोटिगुणं भवेत् ॥६९
ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं परम् । स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नातमतः परम् ॥७०
वाचिकं मानसं पापं घृतस्नानेन देहिनाम् । क्षिणुते पद्मजो यस्मात्तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥७१
स्नपयित्वार्चयेद्भक्त्या यथा तच्छृणु भारत । शुचिवस्त्रधरः स्नातः कृतन्यासश्च भारत ॥७२
चतुर्हस्तं लिखेत्पद्मं चतुर्भागविभागितम् । मध्ये तस्य लिखेच्चक्रं दलैर्द्वादशभिश्चितम् ॥७३
सरोजानि ततोऽन्यस्य अक्षराणि समन्ततः । अक्षरं विहितं चान्यत्पद्मभागे प्रकीर्तितम् ॥७४
नानावर्णकसंयोगाल्लिखेच्चैवानुपूर्वशः । कृष्णोत्कटं तु मध्यं स्यात्पीतरक्तं तथा परम् ॥७५
सितं शुद्धं तु कर्तव्यं मध्यभागे तु वर्तुलम् । प्रभाकुण्डलकैबाह्यैर्वेष्टयेच्चक्रनायकम् ॥७६
एवमालिख्य यत्नेन मूलमन्त्रं ततो न्यसेत् । मूर्ध्नः पादतलं यावत्प्रणवं विन्यसेद्बुधः ॥७७
नादरूपं न्यसेत्तावद्यावच्छब्दस्य शून्यता । तत्कारं[२] विन्यसेन्मूर्ध्नि सकारं मुखमण्डले ॥७८

फिर धारोष्ण दुग्ध से तदनन्तर घृत से स्नान कराने वाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ।६७। उन उर्पयुक्त तीनों स्नानों को कराकर फिर भक्तिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।६८। मिट्टी के कुंभों से अथवा ताम्र के कुम्भों से स्नान कराने पर शतगुना अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है । चाँदी के कुम्भ से लक्षगुणित तथा सुवर्ण के कुम्भ से कोटिगुणित फल प्राप्त होता है ।६९। भगवान् ब्रह्मा का यों तो दर्शन ही परमपुण्यप्रद है किन्तु दर्शन से अधिक पुण्य स्पर्श करने का है । उस स्पर्श से भी अधिक पुण्य पूजन करने का है और उससे भी अधिक पुण्यप्रद घृत-स्नान कहा गया है ।७०। शरीरधारियों के वाचिक एवं मानसिक पापों को भगवान् पद्मसम्भव धृत स्नान से नष्ट कर देते हैं इसीलिए लोग उनके स्नान की महत्ता बतलाते हैं ।७१। हे भरतवंशी ! विधिपूर्वक स्नान करने के बाद जिस प्रकार ब्रह्मा की भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है उसे बतला रहा हूँ, सुनिये । भरतकुलोत्पन्न सर्वप्रथम स्नानकर पवित्र वस्त्र धारण कर न्यास कर चार हाथ प्रमाण में कमल का निर्माण करे, जो चार भागों में विभक्त हो। उसे कमल के मध्य भाग नें बारह दलों से संयुक्त एक चक्र का विन्यास करे ।७२-७३। और उसके चारों ओर निम्नलिखित सरोज नामक अक्षरों की रचना करे । पत्र भाग में जिन अक्षरों का विन्यास करना चाहिये वे ये कहे गये हैं ।७४। उन्हें क्रमपूर्वक विविध प्रकार के रंगों द्वारा लिखना चाहिए उनमें से जो बहुत काले रंग हों उनका प्रयोग मध्य भाग में होना चाहिये । पीले तथा लाल रंग का प्रयोग उस मध्य भाग के पश्चात् करना चाहिये ।७५। मध्य भाग में वर्तुलाकार श्वेत शुभ्र रंग का प्रयोग करना चाहिए । बाहर से प्रभावान कुण्डलों से उस चक्र को अच्छी तरह आवेष्टित कर देना चाहिए ।७६। इस प्रकार यत्नपूर्वक उक्त चक्र का चित्र अंकित कर मूल मंत्र का न्यास करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुषमस्तक से लेकर पादतल तक प्रणवाक्षरों का विन्यास करे।७७। तब तक नाद रूप वर्णों का न्यास करे जब तक शब्दों की शून्यता हो, मस्तक भाग में 'तत' का न्यास करे। सकार का न्यास मुखमण्डल पर

---

१. दशगुणम् । २. इत आरम्य गायत्रीप्रत्येकार्णन्यासः प्रोच्यते ।

विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं सर्वसंधिषु[1] । वकारं हृदि मध्ये तु रेकारं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७९
णकारं दक्षिणे कुक्षौ यकारं वामसंज्ञके । भकारं कटिनाभिस्थं र्गोकारं जानुपर्वसु ॥८०
देकारं जंघयोर्न्यस्य वकारं पादपद्मयोः । स्यकारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्य धीकारं चोरसि न्यसेत् ॥८१
मकारं जानुदेशे तु हिकारं गुह्यमाश्रितम् । धिकारं हृदये न्यस्य योकारं चौष्ठयोर्न्यसेत् ॥८२
नकारं नासिकाग्रे तु प्रकारं नेत्रमाश्रितम् । चोकारं तु भ्रुवोर्मध्ये दकारं प्राणमाश्रितम् ॥८३
याकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि तकारं केशमाश्रितम् । न्यासं कृत्वात्मनो देहे देवे कुर्यात्तथा नृप ॥
सर्वोपचारसम्पन्नं कृत्वा सम्यङ् निरीक्षयेत् ॥८४
कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम् । गन्धतोयमुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन च ॥
प्रोक्षयेत्सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमाचरेत् ॥८५
चक्रग्रन्थिषु सर्वासु प्रणवं विनिवेशयेत्[2] । भूयः प्लुतं समुच्चार्य प्रणवं सर्वतोमुखम् ॥८६
विन्यसेत्पद्ममध्ये तु पीठनिष्पत्तिहेतवे । आसने पृथिवी ज्ञेया सर्वसत्त्वधरा मता ॥८७
ह्रस्वोङ्कारे मता सा तु दीर्घोङ्कारे तु देवराट् । प्लुतस्तु व्यापयेद्भावं मोक्षदं चामृतात्मकम् ॥८८

करे ।७८। कण्ठ प्रदेश में 'वि' का न्यास किया जाता है । सर्वसन्धि प्रदेशों अथवा अंग सन्धि प्रदेशों में 'तु' कार का न्यास करना चाहिये । हृदय के मध्य में 'व' कार का न्यास किया जाता है । दोनों पाश्र्वप्रदेशों में 'रे' कार का न्यास करना चाहिये ।७९। दाहिनी कुक्षि में 'ण' कार का न्यास होता है । इसी प्रकार वाम कुक्षि में 'य' कार का न्यास करके कटि एवं नाभि प्रदेश में 'भ' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों घुटनों के पोरों पर 'र्गो' कार का न्यास करना चाहिये ।८०। इसी प्रकार दोनों जंघाओ में 'दकार' का न्यास कर दोनों चरण कमलों में 'व' कार का न्यास किया जाना चाहिए । दोनों अँगूठों में 'स्या' कार का न्यास कर वक्षस्थल में 'धी' आदि का न्यास करना चाहिए ।८१। जानु प्रदेश में 'म' कार का न्यास कर गुह्य प्रदेश में 'हि' कार का न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार हृदय में 'धि' कार का न्यास कर दोनों ओठों पर 'यो' कार का न्यास करना चाहिए ।८२। नासिका के अग्रभाग में 'न' कार का न्यास कर नेत्रों में 'प्र' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों भौहों के मध्य भाग में 'च' कार का न्यास कर प्राण स्थान पर दकार का न्यास करना चाहिए ।८३। पुनः मूर्धाभाग में 'या' कार का न्यास कर केशों में 'त' कार का न्यास करना चाहिए । हे राजन् ! इस प्रकार अपने शरीर में न्यास कर देव के शरीर में भी उक्त न्यास करना चाहिए और तदुपरान्त समस्त प्रसाधनों से भलीभाँति सुशोभित कर निरीक्षण करना चाहिए ।८४। कुंकुम, अगर, कपूर तथा चंदन से विमिश्रित सुगन्धित जल से प्रणव सहित गायत्री मंत्र का उच्चारण कर समस्त द्रव्यों का प्रोक्षण (अभिषेचन) करना चाहिए । तदनन्तर पूजा करनी चाहिए ।८५। लिखित चक्र की सब ग्रन्थियों में प्रणव का न्यास करना चाहिये । फिर प्लुत (त्रिमात्रिक आयास एवं समय में) स्वर में उच्चारण कर सर्वतोमुखी प्रणव का पद्म के मध्य भाग में पीठ सिद्धि के लिए न्यास करना चाहिये आसन के रूप में पृथ्वी को भी जानना चाहिए । जो समस्त जीवों को धारण करने वाली मानी गयी है ।८६-८७। पृथ्वी को ह्रस्व ओंकार में माना गया है, दीर्घ ओंकार में देवराज इन्द्र की सत्ता मानी गयी है । प्लुत ओंकार तो मोक्षप्रद अमृतात्मक भावों में

---

१. चांगसंधिषु । २. विनिवेदयेत् ।

यत्नस्थो न निवर्तेत योगी प्राणपरायणः । आवाहनं ततः कुर्यादक्षरेण परेण[1] तु ।।८९
आवाह्य तेजोरूपं तु न्यसेन्मन्त्रवरांस्ततः । ततो विभावयेद्देवं पद्मस्थं चतुराननम् ।।९०
स्रष्टारं सर्वजगतां विष्णुरुद्रविधानगम् । संभाव्य विधिवद्भक्त्या पश्चाच्चार्चनमाचरेत् ।।९१
गन्धपुष्पादिसंभारान्क्रमात्सर्वान्प्रकल्पयेत् । गायत्रीमुच्चरन्मन्त्रं सर्वकर्माणि कारयेत् ।।९२
पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम् । खंडलड्डुकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिकाः ।।९३
स्वस्तिकोल्लोपिकादुग्धतिलावेष्टतिलाढिकाः । फलानि चैव पक्वानि लग्नखण्डगुडानि च ।।९४
अन्यांश्च विविधान्दद्यात्पूपानि विविधानि च । एवमादीनि सर्वाणि दापयेच्छक्तितो नृप ।।९५
मूलमन्त्रेण देवस्य ततो देहं विभावयेत् । पूजयेच्चापि विधिना येन तं ते ब्रवीम्यहम् ।।९६
प्राणायामत्रयं कृत्वा देहसंशोधनाय वै । आवाहयेत्ततोऽनन्तं धारयन्तं वचः सदा ।।९७
ध्यात्वानन्तं ततो रुद्रं पद्मकिंजल्कमध्यगम् । ध्यायेद्विष्णुं ततो देवं न्यसेत्पद्मोदरोद्भवम् ।।९८
एवं त्रिदेवतारूढं पद्ममध्येऽम्बुजोद्भवम् । पूजयेन्मूलमन्त्रेण पद्मोदरभवं नृप ।।९९
ऋग्वेदं तु यजुर्वेदं सामवेदं च पूजयेत् । ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मं संपूजयेद्बुधः ।।१००

व्याप्त माना गया है ।८८। प्राणवायु को वश में करने वाले योगी को यत्न पूर्वक साधनों में निरत रहकर निवृत्त न होना चाहिए । तदनन्तर परम अक्षर का उच्चारण करते हुए देव का आवाहन करना चाहिए ।८९। इस प्रकार तेजोरूप देव का आवाहन करने के उपरान्त श्रेष्ठ मंत्रों का न्यास करना चाहिए । तदनन्तर पद्मदल पर अवस्थित उन भगवान् चतुरानन का ध्यान करे ।९०। जो सम्पूर्ण चराचर जगत् के स्रष्टा एवं विष्णु तथा रुद्र के विधान को अतिक्रान्त करने वाले हैं । इस प्रकार भक्ति के साथ विधिपूर्वक भगवान् को संभावित करने के बाद उनकी पूजा करनी चाहिए ।९१। सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला आदि समस्त पूजा की सामग्रियों को क्रमशः एकत्रित करके ब्रह्मदेव की पूजा करनी चाहिए । उस समय सभी कार्य का आरम्भ मंत्र का उच्चारण करते हुए करना चाहिए ।९२। पूजा के द्रव्य मुख्यतया ये हैं। पुष्प, धूप, दीप, मनोहारि नैवेद्य श्रीखण्ड, लड्डू, श्री वेष्टकासार, अशोकवर्तिका, स्वस्तिकोल्लोपिका (?) दुग्ध, तिल मिश्रित मिष्ठान्न, पके हुए विविध फल, खाँड और गुड से बने हुए विविध पदार्थ । इनके अतिरिक्त अन्यान्य विविध प्रकार के फलों का दान करना चाहिए । विविध प्रकार के बने हुए पूए भी हों । हे राजन् ! अपनी शक्ति भर सभी पदार्थों का दान करना चाहिए ।९३-९५। तदनन्तर मूल मंत्र से देव के शरीर का विधिवत् ध्यान करना चाहिए । उस समय जिस विधि से पूजा की जानी चाहिए उसे मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ।९६। शरीर शुद्धि के लिए तीन बार प्राणायाम करके सर्वदा वेदों को धारण करने वाले अनन्त देव का ध्यान करना चाहिए ।९७। अनन्त का ध्यान करने के अनन्तर पद्म के केशर में प्रतिष्ठित रुद्र का ध्यान करना चाहिए तत्पश्चात् भगवान विष्णु का ध्यान कर ब्रह्म देव का न्यास करना चाहिए ।९८। इस प्रकार तीनों देवों से आरूढ़ पंकज के मध्य भाग में प्रतिष्ठित ब्रह्मा की मूलमंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।९९। हे राजन् ! तदनन्तर ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म का पूजन करके ऋग्वेद यजुर्वेद एवं सामवेद की पूजा बुद्धिमान पुरुष को करनी चाहिए ।१००।

---

१. परन्तप—

ईशानादिक्रमाद्राजन्विदिशासु समन्ततः[1] । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ।।१०१
ज्योतिषं च महाबाहो उपवेदाश्च कृत्स्नशः । इतिहासपुराणानि यथायोग्यं यथाक्रमम् ।।१०२
शिक्षा कल्पो व्याकरणं देवस्य पुरतः सदा । कल्पादयस्ततश्चान्ये दिशासु विदिशासु च ।।१०३
महाव्याहृतयः सर्वाः प्रणवेन समन्विताः । पूर्वादिक्रमयोगेन पूजयेद्विधिना नृप ।।१०४
शक्तयो ब्रह्मणस्त्वेता लोकरूपा व्यवस्थिताः । पूजनीयाः प्रयत्नेन मन्त्ररूपाः स्थिताः स्वयम् ।।१०५
अरकान्तरसंस्थांश्च[2] षट् समुद्रान्समर्चयेत् । नक्षत्राणि ग्रहांश्चैव राशयश्च[3] विशेषतः ।।
पूज्याः सर्वे यथान्यायं सुराग्रेषु व्यवस्थिताः ।।१०६
नागाश्च गरुडश्चैव पूजनीयस्तथाग्रतः । देवता ऋषयश्चैव सहिताः कुलपर्वताः ।।
तत्तेजोनिलयाः सर्वे पूजनीयाः प्रयत्नतः ।।१०७
आचम्य विधिवत्पूर्वं मन्त्रपूतेन वारिणा । हृदयादीन्न्यसेदङ्गान्हृदयादिषु कृत्स्नशः ।।१०८
शिखा नेत्रं तथा चर्म अस्त्रं[4] च भरतर्षभ । महेन्द्रादिदिशश्चैताः पूजयेद्विधिवन्नृप ।।१०९
हृदयं पुरतः पूज्यं शिरो देवस्य पृष्ठतः । पूर्वं संपूजयेद्देवं मूलमंत्रेण कृत्स्नशः ।।११०
विसर्जयेद्दर्शयित्वा मुद्रां तु भरतर्षभ । अङ्कुशं[5] नरशार्दूल ह्याह्वाने कंजमादिशेत् ।।१११

ईशान कोण से प्रारम्भ कर सभी दिशाओं एवं कोणों में सभी ओर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष एवं अन्यान्य उपवेदों की एवं इतिहास पुराणादि की यथायोग्य क्रमशः पूजा करनी चाहिए।१०१-१०२। इन सबों में शिक्षा, कल्प एवं व्याकरण इन तीनों को देव के सम्मुख रखना चाहिए, अन्य कल्पादिकों को अन्यान्य दिशाओं एवं विदिशाओं में निर्दिष्ट करना चाहिए।१०३। हे राजन् ! प्रणव के साथ सम्पूर्ण महाव्याहृतियों की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूजा करनी चाहिए।१०४। ये महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा द्वारा व्यवस्थित लोक स्वरूपिणी शक्तियाँ हैं। उनको प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिए, वे मंत्र रूप में स्थित ब्रह्मा की मूर्तिमान शक्तियाँ हैं।१०५। उस चक्र के मध्य में न्यस्त अरों के अन्तर्भाग में प्रतिष्ठित छहों समुद्रों की भी विधिवत् पूजा करनी चाहिए। देवों के अग्र भाग में व्यवस्थित, नक्षत्रों, ग्रहों एवं विशेषतया राशियों की भी यथाविधि पूजा करनी चाहिए।१०६। उनके अग्रभाग में व्यवस्थित नागों की तथा गरुड़ की भी पूजा करनी चाहिए। जितने भी देवता एवं ऋषियों के समेत कुल पर्वत गण हैं वे सब भी उस (अनन्त) तेजोनिलय (निवास) स्वरूप हैं, अतः उनकी भी प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिए।१०७। मंत्र से पवित्र जल द्वारा विधि पूर्वक आचमन करके हृदय आदि समस्त अंगों का न्यास करना चाहिए।१०८। हे राजन् ! तदनन्तर सिर, नेत्र, चर्म तथा अस्त्र का न्यास कर पूर्व आदि दिशाओं की पूजा करनी चाहिए।१०९। देव के हृदय भाग की आगे से पूजा करनी चाहिए और शिरोभाग की पीछे से। मूल मंत्र द्वारा सम्पूर्ण अंगों में देव की पूजा करनी चाहिए।११०। भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! तदनन्तर मुद्रा दिखला कर विसर्जन करना चाहिए। नरशार्दूल ! ब्रह्मा के आवाहन में अंकुश तथा कमल का आदेश किया गया है।१११। जो मनुष्य पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर सर्वदा

---

१. समाहितः। २. यन्त्रदलान्तवर्तिन इत्यर्थः। ३. ऋषयश्च। ४. अल्पभारं च भारत। ५. मुकुलम्।

यस्त्वेवं पूजयेद्देवं प्रतिपन्नित्यमेव च । उपोष्य पञ्चदश्यां तु स याति परमं[1] पदम् ।।११२

सुमन्तुरुवाच

आपो हिष्ठेति मंत्रोऽयं हृदयं परिकीर्तितम् । ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्ता उदुत्यं नेत्रमादिशेत् ।।११३
चित्रं देवानां मस्तमिति सर्वलोकेषु विश्रुतम् । वर्मणा ते च्छादयामि कवचं समुदाहृतम् ।।११४
भूर्भुवः स्वरिति तथा शिरसे परिकीर्तितम् । गायत्रीमूलतन्त्रस्तु साधकः सर्वकर्मणाम् ।।११५
गायत्र्या पूजयेद्देवमोंकारेणाभिमंत्रितम् । प्रणवेनापरान्सर्वानृग्वेदादीन्प्रपूजयेत् ।।११६
आह्वाने पूजने वीर विसर्गे ब्रह्मणस्तथा । गायत्री परमो मंत्रो वेदमाता विभाविनी ।।११७
गायत्र्यक्षरतत्त्वैस्तु पूजयेद्यस्तु देवताम् । स गच्छेद्ब्रह्मणः स्थानं दुर्लभं यद्दुरासदम् ।।११८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पे ब्रह्मणोऽर्चनविधिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप । अनेन विधिना यस्तु विरिञ्चिं पूजयेन्नरः ।।१

प्रतिपदा तिथि को उक्त प्रकार से देव की पूजा करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ।११२

सुमन्तु बोले— 'आपोहिष्ठा' यह मंत्र हृदय न्यास के लिए कहा गया है०, 'ऋतं च सत्यं च.......इत्यादि' मन्त्र शिखा के लिए प्रयुक्त है । 'उदुत्यं......इत्यादि' मंत्र नेत्र के लिए बतलाया गया है ।११३। 'चित्रं देवानाम्.....इत्यादि' मंत्र मस्तक के लिए सब लोकों में प्रसिद्ध माना गया है । 'वर्मणा तेच्छादयामि......इत्यादि मंत्र कवच के लिए बतलाया गया है ।११४। 'भूर्भुवः स्वः यह मंत्र सिर के लिए कहा गया है । गायत्री मंत्र सभी कर्मों में सिद्धि का प्रदाता कहा गया है ।११५। ॐकार से संयुक्त गायत्री मंत्र द्वारा ही देव की पूजा करनी चाहिए । अन्य ऋग्वेदादि को केवल प्रणव द्वारा पूजित करना चाहिए ।११६। हे वीर ! देव के आवाहन, पूजन एवं विसर्जन में सर्वत्र वेदमाता परम पुण्य प्रदायिनी गायत्री ही प्रमुख मानी गयी हैं ।११७। गायत्री के अक्षर तत्त्वों से जो मनुष्य देव की पूजा करता है, वह ब्रह्मा के उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है जो परम दुर्लभ एवं दुष्प्राप्य कहा जाता है ।११८

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा तिथि में ब्रह्मा की पूजन विधि का वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

प्रतिपदा कल्प की समाप्ति का वर्णन

सुमन्तु बोले—नराधिप ! जो मनुष्य उक्त विधि से भक्तिपूर्वक पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर

---

१. परमां गतिम् ।

प्रतिपद्यां महाबाहो स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । ऋग्भिर्विशेषतो[१] देवी विरिञ्चेर्वास्तुदेवताः ॥२
कार्त्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता । यां कृत्वा मानवो भक्त्या याति ब्रह्मसलोकताम् ॥३
कार्तिके मासि राजेन्द्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण चर्मणा सार्धं सावित्र्या च परन्तप ॥४
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यैः समन्वितम् । स्थापयेद्भ्रामयित्वा तु सलोकं नगरं नृप ॥५
ब्राह्मणं भोजयित्वाग्रे शांडिलेयं प्रपूज्य च । आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिस्वनैः ॥६
रथाग्रे शांडिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः । ब्राह्मणान्वाचयित्वा च कृत्वा पुण्याहमंगलम् ॥७
देवमारोपयित्वा तु रथे कुर्यात्प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः ॥८
कृत्वा प्रजागरं ह्येवं प्रभाते ब्राह्मणं नृप । भोजयित्वा यथाशक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥९
पूजयित्वा जनं[२] वीर वस्त्रेण विधिवन्नृप । बीजेन च महाबाहो पयसा पायसेन च ॥१०
ब्राह्मणान्वाचयित्वा च च्छांदेन विधिना नृप । कृत्वा पुण्याहशब्दं च रथं च भ्रामयेत्पुरे ॥११
चतुर्वेदविदैर्विप्रैर्भ्रामयेद्ब्रह्मणो रथम् । बह्वृचाथर्वगोच्चारैश्छन्दो गाध्वर्युभिस्तथा ॥१२
भ्रामयेद्देवदेवस्य सुरज्येष्ठस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥१३
न वोढव्यो रथो वीर शूद्रेण शुभमिच्छता । नारुहेत रथं प्राज्ञो मुक्त्वैकं भोजकं नृप ॥१४

प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की पूजा करता है, हे महाबाहु ! वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ।१। ऋचाओं द्वारा विरञ्चि की देवी की पूजाकरनी चाहिए जो उनकी वास्तु देवता मानी गई हैं ।२। कार्तिक मास में देव की रथयात्रा की प्रशंसा की गई है । जिसको सविधि सम्पन्न करने वाला भक्तिमान् पुरुष ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करता है ।३। हे राजेन्द्र ! कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को सावित्री के साथ मृगचर्म पर भगवान् ब्रह्मा को स्थापित कर अनेक प्रकार के वाद्यों के साथ-साथ रथ को नगर में सर्वत्र घुमावें । हे राजन् ! इस तरह नगर में सर्वत्र घुमा लेने के बाद रथ को एक स्थल पर स्थापित कर दे ।४-५। आगे शाण्डिलेय ब्राह्मण को विधिवत् पूजित कर भोजन करवाये । तदनन्तर उस शाण्डिली पुत्र ब्राह्मण को विधिपूर्वक पूजित कर रथ के अग्रभाग में बैठावे । उसके पूर्व ही पुण्यप्रद वाद्य एवं गीतादि के साथ देव को रथ पर स्थापित करे ।६। रथ के अग्रभाग में विधानपूर्वक उस शाण्डिलीपुत्र की पूजा कर फिर ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन के उपरान्त देव को रथ पर आरोपित (प्रतिष्ठित) करते हुए रात भर जागरण करे । उस रात्रि को अनेक प्रकार के ब्रह्म घोष (वेदध्वनि) एवं मांगलिक समारोहों के बीच में जागरण करते हुए वह रात व्यतीत करे । राजन् ! फिर प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण को पूजित कर अपनी शक्तिभर भोजनादि करा कर सन्तुष्ट करे ।७-९। हे नृप ! हे वीर ! तदनन्तर उस ब्राह्मण को वस्त्र द्वारा पूजित कर बीज दुग्ध एवं दुग्ध से बने हुए अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट करे ।१०। हे नृप ! फिर ब्राह्मणों द्वारा वेदविहित विधि से मन्त्रोच्चारण तथा पुण्याहवाचन कराकर रथ को पुर भर में घुमावें ।११। चारों वेदों के पारगामी पण्डित ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्मा के रथ को घुमवाना चाहिये । उनमें बह्वृच, आथर्वण, छन्दोग एवं अध्वर्यु सभी होने चाहिये ।१२। ऐसे उच्चकोटि के पण्डित व वेद ब्राह्मणों द्वारा सुरश्रेष्ठ के उक्त रथ से सुन्दर समतल मार्ग द्वारा समस्त नगर की प्रदक्षिणा करानी चाहिये ।१३। हे वीर ! कल्याण कामी जन को शूद्र द्वारा देवश्रेष्ठ का उक्त रथ नहीं वहन करवाना चाहिये । हे नृप ! इसी प्रकार उक्त भोजक ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी दूसरे को रथ पर

---

१. अग्निः । २. तु तं वीरं वस्त्रेण विधिवन्नृप ।

ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे सावित्रीं स्थापयेन्नृप । भोजको वामपार्श्वेतु पुरतः कञ्जजं न्यसेत् ॥१५
एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्दैश्च पुष्कलैः । भ्रामयित्वा रथं राजन्पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥
स्वस्थाने स्थापयेद् भूयः कृत्वा नीराजनं बुधः ॥१६
य एवं कुरुते यात्रां भक्त्या यश्चापि पश्यति । रथं चाकर्षते यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१७
कार्तिके मास्यमावास्यां यस्तु दीपप्रदीपनम् । शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१८
प्रतिपदि ब्राह्मणांश्चापि गुडमिश्रैः प्रदीपकैः । वासोभिरहतैश्चापि स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१९
गंधपुष्पैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं[1] पूजयेच्च यः । तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥२०
महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्तिनी । ब्रह्मणः सुप्रिया नित्यं बालेया परिकीर्तितता ॥२१
ब्राह्मणान्पूजयित्वास्यामात्मानं च विशेषतः । स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः ॥२२
चैत्रे मासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदा परा । तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तम ।२३
न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप । भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात्स्नानं प्रवर्तयेत् ॥२४
दिव्यं नीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम् । गोमहिष्यादि यत्किंचित्तत्सर्वं भूषयेन्नृप ॥२५

बैठाना भी नहीं चाहिये ।१४। हे राजन् ! भगवान् ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में सावित्री को स्थापित करना चाहिये । भोजक ब्राह्मण को वाम पार्श्व में रखना चाहिये । सम्मुख भाग में पद्मोद्भव को स्थापित करना चाहिये ।१५। तुरुही आदि सुन्दर वाद्यों की एवं शंखों की तुमुल कराते हुए रथ को पुट की प्रदक्षिणा क्रम से घुमाते हुए अपने स्थान पर लाकर पुनः स्थापित कर देना चाहिये ।१६। जो मनुष्य इस प्रकार की रथयात्रा सम्पन्न कराता है तथा ऐसा रथयात्रा के उत्सव समारोह को भक्तिपूर्वक देखता है जो उक्त रथ को खींचता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।१७। कार्तिक मास की अमावास्या तिथि को जो मनुष्य ब्रह्मा के आयतन में दीपदान करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।१८। इसी प्रकार कार्तिक मास से प्रतिपदा तिथि को दीपकों के साथ-साथ गुड़ मिश्रित अन्न एवं नूतन वस्त्रों द्वारा जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है ।१९। उसी प्रतिपदा तिथि को गन्ध पुष्प एवं नवीन वस्त्रों द्वारा अपने को जो मनुष्य पूजित करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।२०। यह प्रतिपदा तिथि महान् पुण्यप्रदा तथा बलि को राज्य प्रदान करने वाली है यह ब्रह्मा की परम प्रिय है इसकी बालेया (बलिराज्यदायिनी) प्रतिपदा के नाम से ख्यात है ।२१। जो मनुष्य इस परम पुण्यप्रदायिनी तिथि को ब्राह्मणों को विशेष रूप से पूजित कर अपना पूजन भी करता है वह परम तेजस्वी भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है ।२२। हे महाबाहु राजन् ! चैत्र मास की परम श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि भी परम पुण्यप्रदायिनी मानी गई है, उस पुण्य तिथि को जो चाण्डाल का स्पर्श कर स्नान मात्र कर लेता है उसे कोई पाप नहीं लगता न कोई आधि-व्याधि ही होती है । हे कुरुशार्दूल ! अतः उक्त तिथि को स्नान अवश्य करना चाहिये ।२३-२४। वह परम दिव्य भाजन है, जो समस्त रोगों का विनाश करने वाला है । हे राजन् ! उक्त पुण्य तिथि को यजमान को चाहिये कि जो भी गौ-भैंस आदि पशु उसके पास हों तेल तथा

---

१. अ नैवेद्यैः ।

तैलशस्त्रादिभिर्वस्त्रैस्तोरणाधस्ततो नयेत् । ब्राह्मणानां तथा भोज्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्वह ॥२६
तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन । कार्त्तिकेऽश्वयुजे मासि चैत्रे मासे च भारत ॥२७
स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिके या तिथिर्नृप ! बलिराज्याप्तिसुखदापांशुलाशुभनाशिनो ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शर्यात्याख्याने पुष्पद्वितीया वर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

द्वितीयायां तु राजेन्द्र अश्विनौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन कृतौ यज्ञे मिषतो मघवस्य[१] च ॥१

शतानीक उवाच

कथमिन्द्रस्य मिषतः कृतौ तौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन हि देवानां पश्यतां तद्वदस्व मे ॥२
अहो महत्तपस्तस्य च्यवनस्य महात्मनः । यदिन्द्रस्य बलादेव देवत्वं प्रापितावुभौ ॥३

शस्त्र तथा वस्त्रादि से भली भाँति विभूषित करे फिर उन्हें तोरण के नीचे से निकाले । हे कुरुकुलोत्पन्न ! उस अवसर पर ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराना चाहिए ।२५-२६। हे कुरुनन्दन ! ये उपर्युक्त तीन आश्विन कार्तिक एवं चैत्र की प्रतिपदा तिथियाँ सब में परम श्रेष्ठ मानी गई हैं किन्तु हे भारत ! इनमें से कार्तिक की जो तिथि है वह स्नान तथा दान में सौ गुनी अधिक फल देने वाली है । वह परम पुण्यदायिनी कार्तिक की प्रतिपदा बलि को राज्य प्राप्त कराने वाली सुखदायिनी पशु कल्याणकारिणी तथा अशुभ विनाशिनी है ।२७-२८।

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्म पर्व में प्रतिपदा कल्प समाप्ति वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

शर्याति के आख्यान में पुष्पद्वितीया का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजेन्द्र ! द्वितीया तिथि को देवराज इन्द्र को ही धोखा देकर च्यवन के यज्ञ में दोनों अश्विनी कुमारों ने सोमपान किया ।१

शतानीक बोले—ब्रह्मन् ! देवराज इन्द्र को धोखा देकर च्यवन के यज्ञ में देवों के देखते-देखते दोनों अश्विनी कुमारों ने किस प्रकार सोमरस का पान किया ? उस महात्मा च्यवन का महान् तपोबल प्रतीत होता है, जो इन्द्र के बल से ही दोनों अश्विनी कुमारों को (सोम रस का पान कराकर) देवत्व का अधिकारी बनाया ।२-३

---

१. केवलमार्षोऽयं पाठः सर्वेषु पुस्तकेषु ।

सुमन्तुरुवाच

पुरातनयुगे सन्धौ पश्चिमेऽथ नराधिप । च्यवनो योगमास्थाय गंगाकूलेऽवसच्चिरम् ॥४
तत्र शर्यातिरायातः स्नातुमन्तः[1] पुरैः सह । स्नात्वाभ्यर्च्य [2]पितृन्देवान्गमनायोपचक्रमे ॥५
तत्र मूढं जनपदमपश्यत्पथि चेष्टनम् । विण्मूत्रोत्सर्गसंरुद्धं ज्योतिराक्षिप्तनिष्क्रियम् ॥
भ्रमन्तं तत्रतत्रैव समीक्ष्य स बलं नृपः ॥६
उवाच [3]दुर्मना राजा अमात्यान्स्वान्पुरोगमान् । च्यवनस्याश्रमोऽयं हि नापराद्धं तु केनचित् ॥७
न चोवाच यदा कश्चित्तस्य राज्ञस्तु पृच्छतः । तदा सुता सुकन्यास्य प्रोवाच पितरं वचः ॥८
मया दृष्टं तु यत्तात सखिभिः सह कौतुकम् । तत्ते वच्मि निबोध त्वं शृणु तात महाद्भुतम् ॥९
शिञ्जितारावबहुलाः काञ्चीनूपुरमेखलाः । गायन्त्यो विलपन्त्यश्च क्रीडन्त्यश्चात्र कानने ॥१०
कोकिलध्वनिमश्रौषं व्यक्ताव्यक्ताक्षरं कृशम् । सुकन्ये ह्येहिह्येहीति वल्मीकाद्वचमुद्गिरन् ॥११
तत्र गत्वाद्भुतं तात पश्यामः किल पावकौ । दीपाविवाचलशिखौ भूयः कन्या उवाच ह ॥१२
मया च कौतुकात्तात किमेतदित्यबुद्धितः । सूदितौ दर्भसूच्यग्रैस्तत्तेजः समुपारमत् ॥१३
तच्छ्रुत्वा नृपतिस्त्रस्तस्तूर्णं तद्वनमागमत् । यत्रास्ते भार्गवः कष्टं वल्मीकान्तर्गतो मुनिः ॥१४

सुमन्तु ने कहा—नराधिप ! प्राचीन युग की अन्तिम सन्धि बेला में च्यवन योगाभ्यासी होकर चिरकाल तक गङ्गा-तट पर निवास करते थे ।४। वहीं पर राजा शर्याति भी अपनी स्त्रियों के साथ स्नान करने के लिए आये थे । स्नान करने के उपरान्त उन्होंने पितरों एवं देवताओं की अर्चना की और फिर राजधानी को लौटने का उपक्रम किया ।५। इसी अवसर पर राजा ने मार्ग में एक जनपद (स्थान) देखा और यह भी देखा कि सारी सेना चेतनाहीन हो गयी है, थोड़ी सचेष्टता उनमें शेष है । सब निरिन्द्रिय-से हैं । एक महान् ज्योति से सबके सब हतप्रभ और निष्क्रिय बन गये हैं । इधर-उधर व्याकुल दशा में घूमती हुई सेना को देखकर राजा ने अपने प्रधान मंत्रियों से व्यथित चित्त होकर कहा—'यह महात्मा च्यवन का पवित्र आश्रम है, यहाँ आकर किसी ने कोई अपराध तो नहीं किया ।६-७। उन लोगों में से जब किसी ने राजा के पूँछने पर कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसकी पुत्री सुकन्या ने अपने पिता से यह बात कही ।८। हे तात ! सखियों के समेत मैंने जो कुछ कौतुक देखा है, उसे आपसे निवेदित कर रही हूँ सुनिये । सचमुच वह महान् अद्भुत दृश्य है ।९। इसी कानन प्रदेश की अनेक आभूषणों के ध्वनियों से तथा करधनी, नूपुर और मेखला की मधुर ध्वनियों से गुञ्जार करने वाली अनेक स्त्रियों को मैंने देखा, जो बहुत-सी बातें कर रही थीं और विविध क्रीड़ाओं में निरत थीं ।१०। मैंने कोकिलाओं की मनोहर ध्वनि भी सुनी । उसी अवसर पर बल्मीक प्रदेश से 'सुकन्ये ! यहाँ आओ, यहाँ आओ ।' इस प्रकार की कुछ स्पष्ट तथा कुछ अस्पष्ट एक ध्वनि भी मुझे सुनाई पड़ी ।११। हे तात ! उस बल्मीक प्रदेश के पास जाकर हमने एक अद्भुत प्रकार की अग्नि के समान जाज्वल्यमान एवं वायुरहित अविचल शिखावाले दीपक के समान प्रकाशमान दो ज्योतियाँ देखीं ।१२। देखकर इस कुतूहल से कि 'ये क्या है ?' अपनी निर्बुद्धिता से कुश (सूची) के अग्रभाग से कुरेद दिया और इससे वे ज्योतियाँ शान्त पड़ गईं ।१३। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर राजा त्रस्त हो गया । और शीघ्र ही उस वन्य प्रदेश में गया जहाँ पर बल्मीक के अन्दर भार्गव च्यवन ऋषि

---

१. मंत्रिपुरःसरः । २. अतिथीन् । ३. धर्मेणामात्यांन्पुरोहितपुरोगमान् ।

गत्वा स तत्र प्रोवाच प्रणिपत्य द्विजोत्तमम् । अपराद्धं मया[1] देव तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ।।१५
स तं प्रोवाच नृपतिं मया ज्ञातं नराधिप । सुकन्यां मे प्रयच्छस्व निवेशार्थी[2] ह्यहं नृप ।।
अनुक्रमन्सुकन्यां तु दत्त्वा राजन्सुखी भव ।।१६
इत्युक्तः प्रददौ राजा सुकन्यामविचारयन् । ततः स्वपुरमागम्य अवसत्सुचिरं सुखी ।।१७
सुकन्यापि पतिं लब्ध्वा सुप्रीताराधयत्तदा । राज्यश्रियं परित्यज्य वल्कलाजिनधारिणी ।।१८
गते बहुतिथे काले वसन्ते समुपस्थिते । तपोद्योतितसर्वाङ्गीं रूपोदार्यगुणान्विताम् ।।
स्नातां स्वभार्यां च्यवन उवाच मधुराक्षरम् ।।१९
एह्येहि भद्रे भद्रं ते शयनीयं समाश्रय । अपत्यं जनयस्वाद्य कुलद्वयविवर्धनम् ।।२०
एवमुक्ता तु सा कन्या प्राञ्जलिः पतिमब्रवीत् । [3]नार्हस्यद्य सुकल्याण सङ्गमं स्थण्डिलेऽसमे ।।२१
मम प्रियं कुरुष्वाद्य ततो मामाह्वयस्व च । पितृगेहे यथातिष्ठं शयनीये सुसंस्कृते ।।२२
बहुगैरिकवर्णाद्यैः श्वेतपीतारुणाकुले । वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैस्तथा त्वमपि तत्कुरु ।।२३

कष्ट के साथ समासीन थे ।१४। वहाँ जाकर राजा ने द्विजवर्य च्यवन को प्रणाम कर निवेदन किया । देव ! मैंने महान् अपराध किया, उसे कृपया क्षमा कीजिये, आपको मेरा नमस्कार है ।१५। च्यवन ने राजा शर्याति से कहा—'राजन् ! मैं आपका अपराध जानता हूँ । तुम सुकन्या को मुझे दे दो, क्योंकि मैं अब गृह पर रहना चाहता हूँ । हे राजन् ! इस अपराध की शान्ति के लिए तुम सुकन्या को देकर सुख प्राप्त करो ।१६। च्यवन के इस प्रकार कहने पर राजा शर्याति ने बिना विचार किये ही सुकन्या को उन्हें समर्पित कर दिया और उसके बाद अपने पुर को वापस लौटकर चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास किया ।१७। उधर सुकन्या ने भी पति रूप में च्यवन को प्राप्त कर परम प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना की । उसने राजोचित वेशभूषा एवं अलङ्करादि को त्याग दिया और केवल वल्कल तथा मृगचर्म धारण किया ।१८। इस प्रकार उसके बहुत समय बीत गये और वसन्त का सुहावना समय उपस्थित हुआ । उस अनुकूल अवसर पर तपस्या से समस्त अङ्गों की शोभा जिसकी बहुत बढ़ गई थी, अपने अनुपम रूप, उदारता एवं सद्गुणों से जो परम शोभायमान हो रही थी, उस ऋतुस्नान से निवृत्त अपनी पत्नी सुकन्या से ऋषिवर्य च्यवन ने मधुर स्वर से ये बातें कहीं ।१९। 'भद्रे ! यहाँ आओ ! शैय्या पर मेरे साथ शयन करो । तुम्हारा परम कल्याण होगा। आज दोनों कुलों की वृद्धि करने वाली शुभ सन्तति को मुझसे उत्पन्न करो ।२०। पति च्यवन के इस अनुरोध पर सुकन्या ने अञ्जलि बाँधकर निवेदन किया—कल्याणचरण! इस ऊँचे-नीचे स्थण्डिल (चबूतरे) पर हम दोनों का समागम आज उचित नहीं है ।२१। प्रथमतः आज मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये तब मुझे बुलाइये । अपने पिता के घर में मैं जिस प्रकार की सजाई गई सुन्दर शैय्या पर सोती थी, उसी प्रकार की शय्या तुम भी बनवाओ ।२२। वह सुन्दर शय्या अनेक गैरिक लाल, पीले, हरे तथा श्वेत वस्त्रों से सुशोभित रहती थी, यही नहीं उसमें अनेकानेक वस्त्र तथा अलङ्कारादि जहाँ शोभावृद्धि के लिए लगते थे । उसी प्रकार आप भी बनवायें तथा उस सुन्दर और

---

१. मयेति कन्यायां स्वत्वाभिमानात् । परिवारकृतस्यापि कर्मणः स्वामिन्यारापेऽस्य सार्वत्रिकत्वात् । २. निवेशं गच्छ वै नृप । ३. नार्हति ह्यद्य कल्याण आह्वानं स्थंडिले मम ।

आत्मानं वयसोपेतं रूपवन्तं सुवर्चसम् । वस्त्रालङ्कारगन्धाढ्यं पश्येयं येन सादरम् ॥२४
सुकन्याया वचः श्रुत्वा च्यवनः प्राह दुर्मनाः । न मेऽस्ति वित्तं कल्याणि पितुस्तेऽस्ति यथा वने ॥२५
स कथं सृजयाम्यद्य सुरूपश्च कथं वद । प्रोवाच सा पतिं भूयः प्रहसन्ती कृताञ्जलिः ॥
वित्तं ददावैलविलो रूपं वैरोचनोऽददत् ॥२६
च्यवनः प्राह भार्यां तां न[1] करिष्ये तपोव्ययम् । एवमुक्त्वा तपश्चोग्रं ततापं सुचिरं तदा ॥२७
अथ तत्रागतौ वीरावश्विनौ कालपर्ययात् । दृष्टवन्तौ सुकन्यां तौ दीप्त्या वै देवतामिव ॥२८
उपगम्योचतुस्तां तौ का त्वं सुन्दरि रूपिणी । किमर्थमिह एका त्वं तिष्ठसे कस्तवाश्रयः ॥२९
सा तावुवाच तन्वङ्गी[2] शर्यातिदुहिता ह्यहम् । भर्ता च च्यवनो मह्यं कौ च वां मे तथोच्यताम् ॥३०
ऊचतुश्चाश्विनौ देवावावां विद्धि नृपात्मजे । किं करिष्यसि तेन त्वं जीर्णेन च कृशेन च ॥
आवयोर्वृणु भर्तारमेकमेव यमिच्छसि ॥३१

रमणीक शय्या पर अपने ही समान अवस्था वाले, सुरूपवान्, परमतेजस्वी, विविध प्रकार के वस्त्रों तथा अलङ्कारों तथा सुगन्धित पदार्थों से सुशोभित आपको मैं आदरपूर्वक देखूँ ।२३-२४। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने व्यथित मन से कहा—'हे कल्याणि ! यहाँ वन में मेरे पास तो ऐसा धन है ही नहीं जैसा तुम्हारे पिता के पास धन है ।२५। पर उस धन से आज वन्य प्रदेश में वे सामग्रियाँ किस प्रकार प्रस्तुत हो सकती हैं । तो फिर उन सब सामग्रियों से मैं शय्या को तथा अपने को कैसे सजा सकता हूँ । यही नहीं मैं सुरूप भी कैसे हो सकता हूँ, कोई उपाय भी तो बतलाओ ।' पति के इस प्रकार उत्तर देने पर सुकन्या ने हँसते हुए अञ्जलि बाँधकर पति से पुनः निवेदन किया।—'आराध्यचरण ! पूर्वकाल में ऐलविल ने अपने तपोबल के माहात्म्य से धन का दान किया था और विरोचन के पुत्र बलि ने रूप का दान किया था ।२६। च्यवन ने अपनी स्त्री सुकन्या से कहा 'कल्याणि !' (बात तुम्हारी सच तो है) पर मैं ऐसे कार्य के लिए अपनी तपस्या का व्यय नहीं कर सकूँगा ।' पति से इस प्रकार के उत्तर प्राप्त होने पर सुकन्या ने चिरकाल तक भीषण तपस्या की ।२७। बहुत समय बीत जाने पर (उसकी उस कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर) परमवीर दोनों अश्विनी कुमार वहाँ आये । उन्होंने वहाँ आकर देवता की भाँति अपनी अनुपम कान्ति से परम शोभायमान सुकन्या को देखा ।२८। उसके समीप जाकर उन्होंने पूछा—हे सुन्दरि ! परम रूप सौन्दर्यशालिनी तुम कौन हो ? किस कार्य के लिए यहाँ अकेली स्थित हो ? तुम्हारा आश्रय कौन है ।२९। अश्विनी कुमारो के इन प्रश्नों के उत्तर में सुन्दरी सुकन्या ने कहा—मैं राजर्षि शर्याति की कन्या हूँ । मेरे पति महर्षि च्यवन मेरे आश्रय हैं । आप दोनों कौन हैं—मुझे कृपया यह बताइये ।३०। सुकन्या के इस प्रकार पूछने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—राजपुत्रि ! हम दोनों को तुम अश्विनी कुमार देवता समझो । उस परम दुर्बल एवं वृद्ध पति को लेकर तुम क्या करोगी ? हम दोनों में से किसी एक को जिसे पसन्द करो, पति रूप में वरण करो ।३१। अश्विनी कुमारों की ऐसी बात सुनकर

---

१. तत्करिष्ये तपोव्ययात् । २. तत्त्वज्ञा ।

सा त्वब्रवीच्च मा नैवं वक्तुमर्हौ दिवौकसौ। भर्तारमनुरक्ताङ्गी यथा स्वाहा विभावसोः ॥३२

अश्विनावूचतुः

आयातु च विशत्वद्य च्यवनो वैष्णवीजलम्। ततो नौ मध्यगं ह्येकं वृणीष्वान्यं यमिच्छसि ॥३३
तावब्रूतां सुकन्यां तु गत्वा पृच्छ स्वकं पतिम्। तं च पृष्ट्वा पुनश्चात्रागच्छ नौ सन्निधौ पुनः ॥३४
आयानत्रैव तिष्ठावो यावदागमनं तव। सा गत्वा प्राह भर्तारमश्विनादेसूचतु[1] ॥३५
रूपवन्तं च भर्तारं करिष्यावो यमिच्छसि। अथ मध्यगतं ह्येकं भर्तृत्वेन वरिष्यसि ॥३६
एवमस्त्विति तां प्राह भार्यां च्यवनस्त्वरन्। सा तं गृह्य जगामाशु यत्र तौ भिषजावुभौ ॥३७
स तावुवाच च्यवनो यथोक्तं भवतोर्वचः। कुरुतं ह्यश्विनौ क्षिप्रं सुकन्या चेप्सितं[2]वृणोत् ॥३८
तौ तं सङ्गृह्य गङ्गायां प्रविष्टौ मुनिना सह। मुहूर्तात्तु समुत्तिष्ठन्रूपतश्च श्रिया वृताः ॥३९
शोभन्ते स्म महाबाहो वसुद्भिद्य तपोयुताः। कल्पादौ कलशे यद्वत्कञ्जाजा व्योम वेधसः ॥

सुकन्या ने कहा, 'महाराज !' आप लोगों को देवता होकर ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये। मैं अपने पतिदेव के चरणों में उसी प्रकार अनुरक्त हूँ जैसे स्वाहा विभावसु (अग्नि) में।३२

दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—सुकन्ये ! प्रथमतः यह होना चाहिये कि च्यवन यहाँ आवें और इस वैष्णवी (गङ्गा) के जल में प्रवेश करें। फिर हम लोगों में से तुम किसी एक को जिसे चाहो पसन्द कर लो।३३। पुनः उन दोनों ने सुकन्या से कहा—'तुम जाकर ऐसी बात अपने पति से पूछो, और उनसे पूछकर फिर यहाँ आकर हम लोगों को बतला जाओ।३४। जब तक तुम्हारा आगमन होगा, तब तक हम लोग यहीं पर रुके हुए हैं।' अश्विनी कुमारों के इस प्रस्ताव को सुनकर सुकन्या ने अपने पति च्यवन के पास जाकर कहा कि अश्विनी कुमार लोग ऐसी बातें कर रहे हैं।३५। कि 'हम तुम्हारे पति को अति रूपवान् बना देंगे और उस समय हम तीनों में से किसी एक को, जिसे पसन्द करना, पति रूप में वरण कर लेना।३६। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने शीघ्रतावूर्पक उससे कहा—'ठीक है ऐसा ही करो।' च्यवन के सहमत हो जाने पर सुकन्या शीघ्रतापूर्वक उन्हें साथ लेकर वहाँ पहुँची, जहाँ वे दोनों सुर वैद्य विराजमान थे।३७। वहाँ पहुँचकर च्यवन ने अश्विनी कुमारों से कहा—'सुरवैद्य, जैसा कि आप लोगों ने सुकन्या से कहा है, शीघ्र अपने वचन का पालन कीजिए, और सुकन्या हम तीनों में से जिसे चाहेगी अपनी इच्छा के अनुसार वरण कर लेगी।३८। च्यवन के इस प्रकार कहने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने उन्हें साथ लेकर गङ्गा में प्रवेश किया और थोड़ी देर उसमें रहकर रूप सौन्दर्य सम्पन्न होकर जल से बाहर निकले।३९। हे महाबाहु राजन् ! परम तपस्वी वे तीनों जल का भेदन कर जब बाहर आये तो इस प्रकार शोभित हुए, जिस प्रकार कल्प के प्रारम्भ काल में ब्रह्मा के कलश में आकाश सुशोभित होता है। वे तीनों

---

१. इदम्। २. अडभाव आर्षः।

उदकादुत्थितास्तस्मात्सर्वे ते समरूपकाः ॥४०
सुकन्या तु ततो दृष्ट्वा भर्तारं देवरूपिणम् । हर्षेण महताविष्टा न च तं वेद भारत ॥४१
समकायाः समवयः समरूपाः समश्रियः । वस्त्रालङ्कारसदृशान्दृष्ट्वा चिन्तां गता चिरम् ॥४२
सा चिन्तयित्वा सुचिरं वैद्यदेवादुवाच ह । बीभत्सोऽपि मया भर्ता परित्यक्तो न कर्हिचित् ॥४३
भर्तारं दूरात्मसंदृशं कथं[1] त्यक्त्वा वृणे परम् । तस्मात्तमेव भर्तारं प्रयच्छध्वं दिवौकसः ॥४४
तया सबहुमानं तौ प्राञ्जल्या प्रार्थितौ तदा । देवचिह्नानि स्वान्येव धारयन्तौ सुपूजितौ ॥४५
सुकन्या निपुणं तौ तु सुनिरीक्ष्य च विह्वला । न रजो न निमेषो वै न स्पृशेते धरां पदे ॥४६
अयं च सरजा म्लानो भूमिमाश्रित्य तिष्ठति । निमेषं चैव तस्यैवं ज्ञात्वा वै च्यवनो वृतः ॥४७
च्यवने वृते सुकन्यया पुष्पवृष्टिः पपात ह । देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त अनेकशः ॥४८
ततस्तु च्यवनस्तुष्टो दिव्यरूपधरस्तदा । उवाच तौ तु सुप्रीत अश्विनौ किं करोमि वाम् ॥४९
भार्या दत्ता कृतं रूपं देवानामपि दुर्लभम् । उपकारं वरिष्ठं यो न करोत्युपकारिणः ॥५०

एक ही समान रूप वाले होकर जल से बाहर निकले ।४०। भरत कुलोत्पन्न राजन् ! सुकन्या देव रूप में उपस्थित अपने पति को देखकर परम प्रसन्न तो हुई किन्तु पहचान नहीं सकी ।४१। क्योंकि वे सब समान शरीर वाले, समान अवस्था वाले तथा रूपवाले और समान कान्तिवाले थे। यही नहीं, वे वस्त्र अलंकार आदि भी एक ही समान धारण किये हुये थे। इस प्रकार उन तीनों को एक स्थिति में देखकर सुकन्या बहुत देर तक परम चिन्तित रही ।४२। और बहुत देर तक सोचने विचारने के बाद (जब उसे कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ा) तब अश्विनी कुमारों से बोली—'सुरवैद्यों ! आप लोग यह भली भाँति जानते हैं कि मैंने अपने वीभत्स एवं रुग्ण पति का भी कभी परित्याग नहीं किया ।४३। तो फिर आपके समान सुन्दर आकृति एवं वय वाले उसी पति को छोड़ दूसरे को कैसे वरण कर सकती हूँ ? इसलिए आप लोग कृपापूर्वक हमारे उसी पति को प्रदान करें ।४४। सुकन्या द्वारा हाथ जोड़कर अत्यन्त प्रार्थना एवं पूजा करने के बाद उन दोनों अश्विनीकुमारों ने अपने देव-चिह्नों को धारण किया ।४५। पति के संशय में पड़ी हुई, विकल सुकन्या ने उन दोनों को भली भाँति पहचाना, उसने देखा कि उन दोनों के शरीर में न तो धूलि लगी हुई है न आँखों की पलकें गिरती हैं, पृथ्वी पर उनके दोनों पैर भी स्पर्श नहीं कर रहे हैं ।४६। और यह (च्यवन) धूल से धूसरित होकर पृथ्वी पर ही बैठा है, यही नहीं इसकी पलकें भी नीचे ऊपर आ जा रही हैं। इस प्रकार खूब पहचान लेने के बाद सुकन्या ने च्यवन का वरण किया ।४७, सुकन्या द्वारा च्यवन के वरण करने के अवसर पर आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई। देवगण अनेक प्रकार के बाजन तथा दुन्दुभि बजाने लगे ।४८। तदनन्तर दिव्य स्वरूपधारी च्यवन परम सन्तुष्ट होकर उन दोनों देववैद्यों से बोले— अश्विनी कुमारों ! मैं तुम लोगों पर परम प्रसन्न हूँ, बोलो, तुम्हारे लिए मैं इस समय क्या करूँ ।४९। क्योंकि तुम लोगों ने मुझे ऐसी गुणवती स्त्री प्रदान किया है और देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है, जो व्यक्ति अपने उपकार करने वाले का कोई महान् प्रत्युपकार नहीं करता वह क्रम से

---

१. कृतम् ।

एकविंशत्तमगच्छेच्च नरकाणि क्रमेण वै । तस्मादहं वरिष्ठं वै करिष्येऽहममानुषम् ॥५१
उपकारं भवद्भ्यां तु प्रीतः कुर्यां सुनिश्चितम् । यज्ञभागफलं दद्यां यद्देवेष्वपि दुर्लभम् ॥५२
एवमुक्त्वा तु देवेशौ विससर्ज महामुनिः । आजगामाश्रमं पुण्यं सहभार्यो मुदान्वितः ॥५३
अथ शुश्राव शर्यातिश्च्यवनं देवरूपिणम् । जगाम च महातेजा द्रष्टुं मुनिवरं वशी ॥५४
तं दृष्ट्वा प्राणिपत्यादौ प्रतिपूज्य यथार्हतः । सुकन्यां तु ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिनन्द्य च ॥५५
सस्वजे मूर्ध्नि आघ्राय ततोत्सङ्गं[1] समानयत् । सा[2] तस्याः[3] सस्वजे प्रेम्णा आनन्दाश्रुपरिप्लुता ॥
संस्थाप्य तां मुदा युक्तो नृपतिः सह भार्यया ॥५६
भूयोऽब्रवीत्सुसंतुष्टं च्यवनस्तं नराधिपम् । संभारं कुरु यज्ञार्थं याजयिष्ये नराधिप ॥५७
एवमुक्तः स नृपतिः प्रणिपत्य महामुनिम् । जगाम स्वपुरं हृष्टो यज्ञार्थं यत्नमाचरत् ॥५८
सप्रेष्यान्प्रेषयन्क्षिप्रं यज्ञार्थे द्रव्यमाहरत् । मंत्रिपुरोहिताचार्यानानयामास सत्वरम् ॥५९

इक्कीस पीढ़ी तक नरक को प्राप्त करता है । इसलिए तुम लोगों के उपकार से प्रसन्न होकर मैं भी तुम्हारा कोई महान् प्रत्युपकार अवश्य करूँगा, जिसे सर्वसामान्य मनुष्य नहीं कर सकते, यह हमारा सुनिश्चित मत है । मैं इस प्रकार के बदले में तुम लोगों को यज्ञ में भाग प्राप्त करने का अधिकारी बनाता हूँ, जिसे देवगण भी कठिनाई से प्राप्त करते हैं ।५०-५२। इस प्रकार वरदान देने के उपरान्त महामुनि च्यवन ने उन दोनों देव वैद्यों को विदा किया और स्वयं स्त्री समेत परम प्रसन्न होकर अपने पुण्य आश्रम को आये ।५३। कुछ समय बीतने के बाद जितेन्द्रिय एवं महान् तेजस्वी राजा शर्याति को भी च्यवन के दिव्य स्वरूप धारण करने की बात ज्ञात हुई तब वे देखने के लिए च्यवन के आश्रम को आये ।५४। सर्वप्रथम च्यवन को तथोक्त स्वरूप सम्पन्न देखकर राजा ने प्रणाम किया और उचित पूजनादि द्वारा सत्कृत किया तदनन्तर अपनी पुत्री सुकन्या का चरण-स्पर्श तथा अभिनन्दन किया ।५५। उस अवसर पर राजा शर्याति ने सुकन्या को अपने अङ्गों में लेकर वात्सल्य भावना से अभिभूत होकर आलिङ्गन किया, उसके शिर का आघ्राण किया और पुनः गोद में उठा लिया । इसी प्रकार सुकन्या की माता ने भी आँखों में आनन्द के आँसू भरकर उसे गोद में उठाकर अपना वात्सल्य प्रेम प्रकट किया । कुछ देर बाद पत्नी समेत परम हर्षातिरेक से अभिभूत राजा ने सुकन्या को सादर बैठा दिया ।५६। तदनन्तर परम सन्तुष्ट राजा से च्यवन ने कहा—नराधिप ! यज्ञ के लिए समारम्भ करो । मैं तुमसे यज्ञ कराऊँगा ।५७। महामुनि च्यवन की ऐसी आदेशपूर्ण बात सुनकर राजा शर्याति ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सुप्रसन्नचित्त होकर अपने पुर को प्रस्थान किया ।अपनी राजधानी में पहुँचकर राजा ने यज्ञ के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया ।५८। यज्ञीय सामग्रियों को एकत्र करने के लिए शीघ्र ही भृत्यों को चारों ओर भेज दिया, यज्ञ में व्यय करने के लिए द्रव्य को भी कोश से अलग करवाया । शीघ्रही मंत्री, पुरोहित, आचार्य आदि को भी

---

१. सन्धिरार्षः । २. सुकन्या । ३. मातुरित्यर्थः । तस्य इत्यस्य प्रेम्णेत्यनेन सम्बन्धः स्वस्वजे इत्यनेन तामिति विभक्तिपरिणामः ।

समानीतेषु सर्वेषु तेषु द्रव्येषु भारत । आजगाम विशुद्धात्मा च्यवनः सह भार्यया ।।६०
सम्पूजितश्च शुश्राव महान्तं त्यागभौजसम् । अन्यैश्च बहुभिः सार्द्धमत्र्यङ्गिरसभार्गवैः ।।६१
प्रवर्तिते महायज्ञे यजमाने नृपोत्तमे । ऋत्विक्स्वकर्मनिरते हूयमाने हुताशने ।।
आहूताः स्वागताः सर्वे भागार्थं त्रिदिवालयाः ।।६२
यज्ञभागे प्रवृत्ते तु शास्त्रोक्तेन विधानतः । आगतावश्विनौ तत्र आहूतौ च्यवनेन तु ।।६३
आह्वाने क्रियमाणे तु अश्विभ्यां तु तदा नृप । प्रोवाचेन्द्रोऽथ च्यवनं नैतौ भागान्वितौ कुरु ।।
देवानां भिषजावेतौ न भागार्हौ न दैवतौ ।।६४
च्यवनस्त्विन्द्रमाहेदं देवौ ह्येतावुभावपि । ममोपकारिणावेतौ दद्यां भागं न संशयः ।।६५
ततो ह्युवाच सक्रोधः स शक्रश्च्यवनं रुषा । विप्रर्षे प्रहरिष्यामि यदि भागं प्रयच्छसि ।।६६
एवमुक्तस्तु विप्रर्षिर्न चोवाचापि किञ्चन । भागौ ददौ च सोऽश्विभ्यां स्रुवमुद्यम्य मन्त्रतः ।।६७
अथ उद्यम्य भिदुरं मोक्तुकामो दिवस्पतिः । स्तम्भितश्च्यवनेनाथ सवज्रः स नराधिप ।।६८
स स्तम्भयित्वात्विन्द्रं तु भागं दत्त्वाश्विनोर्वशी । समापयामास तदा यज्ञकर्म यथार्थवत् ।।६९

राजदरबार में बुलवाया ।५९। भरतकुलोत्पन्न ! यज्ञ की समस्त सामग्रियों के जुट जाने पर विशुद्धात्मा महामुनि च्यवन भी पत्नी समेत राजा के पुर में उपस्थित हुए ।६०। उस समय उनके साथ मुनिवर अत्रि, अंगिरा तथा भार्गव भी थे। राजा शर्याति ने उन सबका विधिवत् सत्कार किया । महामुनि च्यवन ने पुर में राजा के त्याग, निष्ठा एवं महत्ता की चर्चा सुनी। तदनन्तर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ।६१। राजश्रेष्ठ शर्याति ने यजमान का आसन ग्रहण किया । ऋत्विग् गण अपने अपने कर्मों में निरत हो गये, हुताशन (अग्निदेव) में आहुति छोड़ी जाने लगी। महायज्ञ में भाग प्राप्त करने के लिए समस्त स्वर्गलोक निवासी देवगण स्वागत सत्कारपूर्वक अपने भाग ग्रहण के लिए समीप स्थित हो गये ।६२। शास्त्रोक्त विधि से उन सब को यज्ञ में भाग प्रदान करते समय उस महायज्ञ में च्यवन द्वारा आवाहित दोनों अश्विनीकुमार भी समुपस्थित हुए।६३। इन्द्र ने च्यवन द्वारा दोनों अश्विनीकुमारों को आवाहित करते हुए जब देखा तब च्यवन से कहा—'इन दोनों को यज्ञ में भाग मत लेने दो। ये तो देवताओं के वैद्य हैं, देवता नहीं हैं, अतः यज्ञ में भाग प्राप्त करने के अधिकारी भी नहीं हैं।६४। इन्द्र की बातें सुनकर च्यवन ने इस प्रकार कहा— 'देवराज ! ये दोनों भी सुर हैं। इन दोनों ने हमारा महान् उपकार किया है, मैं इन्हें निश्चय ही यज्ञ में भाग दूँगा ।६५। च्यवन की दृढ़तापूर्ण बातें सुनकर इन्द्र ने रोषपूर्वक कहा— 'विप्रर्षिच्यवन ! यदि तुम उन्हें भाग प्रदान करोगे तो यह जान लो कि मैं तुम पर (अनन्योपाय होकर) अवश्य प्रहार करूँगा ।६६।' इन्द्र की इन बातों को सुनकर भी महामुनि च्यवन कुछ नहीं बोले, एकदम चुप रहे। और यथाविधि उन्होंने मंत्रों का उच्चारण करते हुए अपने स्रुवे को उठाकर दोनों अश्विनी कुमारों के लिए भाग प्रदान किया।६७। च्यवन को यज्ञभाग प्रदान करते देख दिवस्पति इन्द्र ने अपने वज्र को उठाकर उन पर प्रहार करने की चेष्टा की। किन्तु हे राजन् ! ऐसा करने का विचार करते ही वे वज्र समेत च्यवन द्वारा स्तम्भित (जडीभूत) कर दिये गये ।६८। इस प्रकार जितेन्द्रिय एवं महामुनि च्यवन ने इन्द्र को स्तम्भित करने के उपरान्त अश्विनी कुमारों के लिए विधिवत् यज्ञ भाग प्रदान किया। और इस प्रकार समस्त तत्त्वों के जानने वाले उस महामुनि ने उक्त महायज्ञ की समस्त क्रियाएँ विधिवत् सम्पन्न कीं।६९। उसी

कञ्जजोऽथाजगामाशु आह च च्यवनं तदा । उत्तंभ्यता मयं लेखो भागश्चास्त्वश्विनोरिह ।।७०
तथेन्द्रस्तमुवाचेदं च्यवनं प्रीतमानसः । जानामि शक्तिं तपसश्च्यवनेह तवोत्तमाम् ।।७१
ख्यापनार्थं हि तपसस्तव एतत्कृतं मया । अद्यप्रभृति भागोऽस्तु देवत्वं चाश्विनोस्तथा ।।७२
यस्त्विमां तपसः ख्यातिं त्वदीयां वै पठिष्यति । शृणुयाद्वापि शुद्धात्मा तस्य पुण्यफलं शृणु ।।७३
विरोचनसदो गत्वा गत्वा पुष्पसदस्तथा । कालेऽथ वामदेवस्य मुञ्जकेशसदस्तथा ।।
यौवनयुक्तः स क्रीडास्तिष्ठतीति न संशयः ।।७४
एवमुक्त्वा जगामाशु देवः स्वभवनं वशी । च्यवनोऽपि सभार्यो वै शर्यातिश्चाश्रमं गतः ।।७५
अथापश्यद्विमानाभं भवनं देवनिर्मितम् । शय्यासनवरैर्जुष्टं सर्वकामसमृद्धिमत् ।।७६
[1]उद्यानवापिभिर्जुष्टं देवेन्द्रेण समाहृतम् । [2]गोखण्डसन्निभं रेजे गृहं तद्भुवि दुर्लभम् ।।७७
सुभूषणानि दिव्यानि रत्नवन्ति महान्ति च । अरजांसि च वस्त्राणि दिव्यप्रावरणानि च ।।७८
दृष्ट्वा तत्सर्वमखिलं सह पत्न्या महामुनिः । मुदं परमिकां लेभे शक्रं च प्रशशंस ह ।।७९
एवमिष्टा तिथिरियं द्वितीया अश्विनोर्नृप । देवत्वं यज्ञभागं च सम्प्राप्ताविह भारत ।।८०

अवसर पर शीघ्रतापूर्वक कहीं से भगवान् ब्रह्मा आ गये और उन्होंने च्यवन से कहा—मुनिवर ! इस देवपति का स्तम्भन अब मुक्त कर दो । आज से दोनों अश्विनी कुमारों का भी यज्ञों में भाग रहेगा ।७०। तदनन्तर देवराज इन्द्र भी परम प्रसन्न होकर च्यवन से बोले—'महामुनि च्यवन मैं तुम्हारी तपस्या की परमशक्ति को जानता हूँ ।७१। तुम्हारे तप की ख्याति को अधिक बढ़ाने के लिए मैंने ऐसा किया है । आज से मैं इनके देवत्व प्राप्त करने को भी स्वीकारता हूँ ।७२। तुम्हारी यशः ख्याति की इस पुनीत कथा को जो पढ़ेगा अथवा विशुद्ध चित्त होकर सुनेगा, उसका फल सुनो ।७३। वह प्राणी विरोचन (सूर्य-चन्द्रमा) की सभा में जाकर पुष्प (?) की सभा में जाकर पुनः समय पर वामदेव तथा मुञ्जकेश की सभा में जाकर, युवा होकर क्रीड़ा करता हुआ निवास करता है-- इसमें तनिक सन्देह नहीं ।७४। देवराज इन्द्र च्यवन से इस प्रकार की बातें कर अपने लोक को चले गये, जितेन्द्रिय महामुनि च्यवन भी पत्नी समेत अपने आश्रम को गये, राजा शर्याति भी अपने नगर को गये ।७५। च्यवन ने आकर अपने देव-निर्मित आश्रम को देखा, जो सुन्दर देव विमान की भाँति शोभत हो रहा था, उसमें परम सुन्दर शय्या तथा आसन यथास्थान लगे हुए थे, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली वस्तुओं की अधिकता थी ।७६। आश्रम के समीप उद्यान तथा बावली भी देवेन्द्र की प्रेरणा से विराज रही थी। इस प्रकार उनका वह पवित्र आश्रम समस्त भूलोक में दुर्लभ सूर्यमण्डल के स्वर्ग की भाँति परम शोभित हो रहा था ।७७। परम सुन्दर दिव्य रत्नजटित आभूषणों से भवन की शोभा-वृद्धि हो रही थी। निर्मल वस्त्र तथा सुन्दर दिव्य फर्श एवं चँदोवों की निराली शोभा थी ।७८। पत्नी समेत महामुनि च्यवन अपने आश्रम की इन सारी विभूतियों को देखकर परम आनन्द के समुद्र में गोता लगाने लगे और देवराज इन्द्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ।७९

हे राजन् ! इस प्रकार यह द्वितीया तिथि अश्विनी कुमारों की परम इष्ट तिथि कही जाती है । भारत ! इसी पुण्यतिथि को उन्होंने देवत्व एवं यज्ञों में भाग प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया ।८०।

---

१. वापीभिरित्यर्थः । २. आदित्यकलापसमं वा स्वर्गसदृशम् ।

उपोष्या विधिना येन तं शृणुष्व नराधिप । रूपं सुरूपं यो वाञ्छेद्द्वितीयायां नराधिप ॥८१
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां नराधिप । पुष्पाहारो वर्षमेकं भवेत्स नियतात्मवान् ॥८२
कालप्राप्तानि यानि स्युर्हविष्यं कुसुमानि तु । भुञ्जीयात्तानि दत्त्वा तु ब्राह्मणेभ्यो नराधिप ॥८३
सौवर्णरौप्यपुष्पाणि अथ वा जलजानि[1] च । व्रतान्ते तस्य सन्तुष्टौ देवौ त्रिभुवनेऽश्विनौ ॥८४
ददतुः कामग दिव्यं विमानममिततेजसम् । सुचिरं दिवि नारीभिर्लोकेऽसौ रमतेऽश्विनोः ॥८५
इह चागत्य कल्पान्ते जातो विप्रः पुरस्कृतः । वेदवेदांगविदुषः सप्तजन्मान्तराण्यसौ ॥८६
जातो जातो भवेद्विद्वान्ब्राह्मणोऽसौ कृते युगे । दाता यज्ञपतिर्वाग्मी आधिव्याधिविवर्जितः ॥८७
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सह पत्न्याऽवसच्चिरम् । मध्यदेशे सुनगरे[2] धर्मिष्ठो राज्यभाग्भवेत् ॥८८
इत्येषा कथिता तुभ्यं द्वितीया पुष्पसंज्ञिता । फलसंज्ञा तथान्या स्यात्सुते वै मुञ्जकेशिनि ॥८९
सुष्ठु पुण्या पापहरा विष्टरश्रवसः प्रिया । अशून्यशयना लोके प्रख्याता कुरुनन्दन ॥९०

हे राजन् ! इस पुण्यतिथि में उपवास करने का विधान बता रहा हूँ, सुनिये ! हे राजन् ! जो लोग सुन्दर स्वरूप प्राप्त करने की कामना करते हैं, वे कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को प्रारम्भ कर एक वर्ष तक प्रत्येक द्वितीया को आत्मनिष्ठ एवं संयत होकर केवल पुष्पाहारी बनें ।८१-८२। हे राजन् ! उक्त नियम के अङ्गीकार कर लेने पर यथा समय जो-जो पुष्प मिलें, उन्हीं की हवि बनावें और उन्हीं को ब्राह्मणों को दान देकर स्वयं भक्षण करें ।८३। हे नराधिप ! इसी प्रकार सुवर्ण का चाँदी का तथा जल में उत्पन्न होने वाले (कमल, कुमुदिनी) पुष्पों का भी इस व्रत में उपयोग किया जा सकता है । इस व्रत के समाप्त होने पर त्रिभुवन में रहने वाले यजमान के ऊपर दोनों अश्विनीकुमार परम सन्तुष्ट होते हैं ।८४। और उसे अमित तेजस्वी दिव्य विमान प्रदान करते हैं, जो इच्छानुसार चलने वाला होता है । स्वर्गलोग में वह प्राणी अश्विनी कुमारों की कृपा से दिव्य रमणियों के साथ निवास करता है ।८५। एक कल्प व्यतीत हो जाने के बाद पुनः मर्त्यलोक में आकर वह वेद वेदाङ्ग पारङ्गत ब्राह्मण के रूप में जन्म धारण करता है और प्रत्येक कार्यों में पुरस्कृत रहता है । इसी प्रकार सात जन्मों तक ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होता है ।८६। इस प्रकार कृत युग में परम विद्वान् ब्राह्मण का जन्म धारण कर वहाँ पर दानी, यज्ञकर्त्ता, प्रवक्ता, आदिव्याधि रहित होकर पुत्र, पौत्रादि से समन्वित होकर चिरकाल तक जीवन धारण करता है ।८७। वह मध्य प्रदेश में किसी सुन्दर नगर में परम् धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न तथा राज्य पद का अधिकारी होता है ।८८। मैंने तुमसे इस प्रकार पुष्प द्वितीया की सारी कथा बतला दी अब इसके उपरान्त दूसरी फल द्वितीया नामक द्वितीया की कथा बतला रहा हूँ । जो पुत्र प्राप्ति के लिए मुञ्जकेश में परमप्रीति रखकर सम्पन्न की जाती है ।८९। हे कुरुनन्दन ! वह फल द्वितीया भगवान् की परम प्रिया, पुण्य प्रदायिनी तथा मंगलदायिनी है, लोक में उसकी अशून्य शयना द्वितीया के नाम से भी प्रसिद्धि है ।९०। हे राजन् ! उस

---

१. काञ्चनानि तु । २. तु नगरे ।

तामुपोष्य नरो राजञ्छ्रद्धाभक्तिपुरस्कृतः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं वाप्य भार्यया सह मोदते ॥९१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मो पर्वणि द्वितीयाकल्पे शर्यात्याख्याने पुण्यद्वितीयावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

अशून्यशयना नाम्न्याः द्वितीयातिथेर्महत्त्वम्

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे द्विजशार्दूल द्वितीयां फलसंज्ञिताम् । यामुपोष्य नरो योषिद्वियोगं नेह गच्छति ॥१

पत्न्या नरो मुनिश्रेष्ठ भार्या च पतिना[1] सह । तामहं श्रोतुमिच्छामि विधवा स्त्री न जायते ॥

उपोषितेन येनार्द पत्न्या च सहितो नरः ॥२

तन्मे ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ श्रेयोऽर्थं नरयोषिताम् । येन मे कौतुकं ब्रह्मञ्छ्रुत्वापूर्वं प्रसर्पति ॥३

सुमन्तुरुवाच

अशून्यशयनां नाम द्वितीयां शृणु भारत । यामुपोष्य न वैधव्यं स्त्री प्रयाति नराधिप ॥

पत्नीवियुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते ॥४

परम पुण्यप्रदायिनी द्वितीया को श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त होकर उपोषित करने वाला ऋषि-वृद्धि, लक्ष्मी तथा प्रियतमा पत्नी के समेत आनन्द का अनुभव करता है ।९१

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीयाकल्प में राजा शर्याति के यज्ञाराधन प्रसङ्ग में पुष्प द्वितीयावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि का महत्त्व

शतानीक बोले—द्विजशार्दूल ! अब आप मुझसे उस फल द्वितीया का माहात्म्य बतलाइये जिसे उपोषित करने वाला इस लोक में कभी वियोग नहीं प्राप्त करता ।१। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस परम पुण्यदायिनी द्वितीया के समग्र माहात्म्य को बतलाइये, जिसे उपोषित करने वाली पत्नी कभी अपने पति के साथ तथा पति अपनी स्त्री के साथ वियुक्त नहीं होता । पुण्यशाली व्रत की उपोषिका (व्रत करने वाली) स्त्री कभी विधवा नहीं होती । इसी प्रकार विधिपूर्वक उपोषक (व्रत करने वाला) पुरुष भी सर्वदा पत्नी सहित रहता है ।२। हे द्विजश्रेष्ठ ! मानव स्त्रियों के कल्याण के लिए उस परम प्रभावशाली द्वितीया को (द्वितीया का व्रत विधान) मुझे बताइये । हे ब्रह्मन् । उसको सुनने के लिए मेरे मन में अपूर्व कौतूहल हो रहा है ।३

सुमन्तु ने कहा—भारत ! उस अशून्यशयना नामक द्वितीया को सुनो । हे नराधिप ! जिसे उपोषित करने वाली स्त्री कभी वैधव्य नहीं प्राप्त करती और पुरुष कभी विधुर जीवन नहीं बिताता

---

१. पत्या ।

शेते जगत्पतिः कृष्णः श्रिया सार्धं यदा नृप । अशून्यशयना नाम तदा ग्राह्या हि सा तिथिः ।।५
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे मासि भारत । इदमुच्चारयेत्स्नातः प्रणम्य जगतः पतिम् ।।
श्रीवत्सधारिणं देवं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह ।।६
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽव्यय । गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ।।७
गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः ।।८
जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान् ।।९
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा ।।१०
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन । एवं प्रसाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्यास्तथा हरेः ।।११
फलानि दद्याच्छायायामभीष्टानि जगत्पतिम् । नक्तं[1] प्रणम्यायतने हविर्भुञ्जीत वाग्यतः ।।१२
ब्राह्मणाय द्वितीयेऽह्नि शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।।१३

शतानीक उवाच

कानि तानि अभीष्टानि केशवस्य फलानि तु । योज्यानि शयने विप्र देवदेवस्य कथ्यताम् ।।१४
किं च दानं द्वितीयेऽह्नि दातव्यं ब्राह्मणस्य तु । भक्तैर्नरैर्द्विजश्रेष्ठ देवदेवस्य शक्तितः ।।१५

।४। हे राजन् ! जिस समय भगवान् कृष्ण (विष्णु) लक्ष्मी के साथ शयन करते हैं, उसी समय वह अशून्यशयना नामक द्वितीया उपोषित करनी चाहिए।५। भारत ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को यजमान स्नान कर जगत्पति, श्रीवत्सचिह्नधारी विष्णुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और लक्ष्मी समेत उनकी विधिवत् पूजा करे।६। उस समय यह प्रार्थना करे—'श्रीवत्सधारिन् ! श्रीकान्त ! श्रीवत्स ! श्रीपति ! अव्यय भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम स्वरूप त्रिवर्ग को देने वाली मेरी गृहस्थी कभी विनाश को न प्राप्त हो।७। मेरी गौएँ नष्ट न हों, मेरे परिवार के लोगों का नाश न हो।८। हमारी बहनें तथा कुल-वधुएँ नष्ट न हों, उनके दाम्पत्य-प्रेम में किसी प्रकार की मेरी ओर से बाधा न पड़े। हे देव ! जिस प्रकार आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मैं भी इस लोक में कभी लक्ष्मी से वियुक्त न होऊँ—यह मेरी कामना है।९। हे देव ! उसी प्रकार मेरा स्त्री सम्बन्ध भी कभी खण्डित न हो। हे वरद ! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मी से सूनी नहीं रहती, उसी प्रकार मेरी भी शय्या कभी सूनी न हो।१०। हे मधुसूदन ! ऐसी कृपा मेरे ऊपर कीजिए। यजमान उपर्युक्त रीति से लक्ष्मी तथा हरि की पूजा कर छाया में जगत्पति के उद्देश्य से फल प्रदान करे। रात के समय मन्दिर में (भगवान को) प्रणाम कर संयत भाव से हवि का भक्षण करे।११-१२। फिर दूसरे दिन अपनी शक्ति के अनुकूल ब्राह्मणों को दक्षिणा दें।१३

शतानीक बोले—हे विप्र ! भगवान् केशव के अभीष्ट वे कौन से फल हैं, जिन्हें उनकी शय्या पर दान करना चाहिये।१४। और दूसरे दिन भगवान् के निमित्त यथाशक्ति ब्राह्मण को कौन-सा दान करना चाहिये ? हे द्विजश्रेष्ठ ! इन दोनों बातो का ठीक उत्तर हमें दीजिए।१५

---

१. नक्षत्रं च प्रणम्याशु ।

सुमन्तुरुवाच

यानि तत्र महाबाहो काले सन्ति फलानि तु। मधुराणि सुतीव्राणि न नापि कटुकानि तु ॥१६
दातव्यानि नृपश्रेष्ठ स्वशक्त्या शयने नृप । मधुराणि प्रदत्तानि नरो वल्लभतां व्रजेत् ॥१७
योषिच्च कुरुशार्दूल भर्तुर्वल्लभतामियात् । तस्मात्कटुकतीव्राणि स्त्रीलिङ्गानि विवर्जयेत् ॥१८
खर्जूरमातुलिङ्गानि श्वेतेन शिरसा सह । फलानि शयने राजन्यज्ञभागहरस्य तु ॥१९
देयानि कुरुशार्दूल स्वशक्त्या मुञ्जकेशिने । एतान्येव तु विप्रस्य गाङ्गेयसहितानि तु ॥२०
द्वितीयेऽह्नि प्रदेयानि भक्त्या शक्त्या च भारत । वासोदानं तथा धान्यफलदानसमन्वितम् ॥
गाङ्गेयस्य विशेषेण धान्यदानं प्रचक्षते ॥२१
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् । ततो जन्मत्रयं वीर गृहभङ्गो न जायते ॥२२
अशून्यशयनश्चासौ धर्मकामार्थसाधनः । भवत्यव्याहतैश्वर्यः पुरुषो नात्र संशयः ॥२३
[1]नारी च राजन्धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि । या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२४
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम । नाप्नोति जन्म त्रियतमेतच्चीर्त्वा[2] महाव्रतम् ॥२५
अदत्त्वा कटुकानीह फलानि कुरुनन्दन । खर्जूरमातुलिङ्गानि वृहत्फलशिरांसि च ॥२६

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! अपने समय में जो न अत्यन्त मधुर न अत्यन्त तीव्र, न अत्यन्त कड़वे (फल) हों, हे नृपश्रेष्ठ ! उन्हें अपनी शक्ति के अनुकूल भगवान् की शय्या पर प्रदान करना चाहिए। मधुर फलों के दान करने से यजमान प्रिय होता है।१६-१७। हे कुरुश्रेष्ठ ! इसी प्रकार मधुर फल प्रदान करने वाली स्त्री भी पति की प्रियतमा होती है। इसलिए कड़वे, तीव्र और स्त्री भावना की अभिव्यक्ति करने वाले फलों को नहीं देना चाहिये।१८। हे कुरुशार्दूल ! विशेषतया खजूर, मातुलिङ्ग (मातुलिङ्ग अर्थात् बिजौरा) श्वेत शिर अर्थात् नारियल का फल यज्ञ भाग प्राप्त करने वाले भगवान् की शय्या पर निवेदित करना चाहिये।१९। हे राजन् ! इन उपर्युक्त फलों का दान अपनी शक्ति के अनुसार मुञ्जकेशी को देना चाहिये। और यही वस्तुएँ गङ्गा जल समेत दूसरे दिन ब्राह्मण को यथाशक्ति भक्तिपूर्वक दान भी देना चाहिये।२०। उस समय वस्त्र दान, अन्नदान, अन्य फलदानादि के साथ ही उक्त दान देना चाहिये। सुवर्ण दान की विशेषता मानी गई है, यों धान्य दान की भी प्रशंसा की जाती है।२१। जो मनुष्य इस प्रकार चार मास तक उपर्युक्त नियमों का भली भाँति पालन करता है, हे वीर ! उसके तीन जन्म तक कभी गृहभङ्ग नहीं होता (अर्थात् तीन जन्म तक उसकी गृहस्थी नहीं बिगड़ती)।२२। धर्मार्थ काम का मुख्य साधन रूप यह अशून्य शयन नामक व्रत कहा जाता है, इसका पालन करने वाले पुरुष का ऐश्वर्य कभी न्यून नहीं होता—इसे निश्चय समझिये।२३। उक्त व्रत को यथाविधि पालन करने वाली धर्मज्ञ स्त्री भी अपने परिवार वर्ग के लिए शोचनीय नहीं होती (अर्थात् उस स्त्री के विषय में परिवार के लोगों को कोई चिन्ता नहीं होती)।२४। हे सत्तम ! वह पुण्यशीला नारी कभी वैधव्य, दुर्भगत्व एवं पति के द्वारा त्याग देने जैसी दुःस्थिति को इस महा व्रत को सम्पन्न करने के कारण तीन जन्म तक नहीं प्राप्त होती।२५। हे कुरुनन्दन ! कड़वे फलों को न देकर जो व्यक्ति इस महाव्रत में खजूर, बिजौरा व नारियल के फलों का ब्राह्मणों के लिए दान करता है, अथवा अन्यान्य मधुर फलों का दान

---

१. भवति। २. चरित्वा।

दत्त्वा द्विजेभ्यो राजेन्द्र मधुराणि पराणि च । तस्मात्स्वशक्त्या यत्नेन देयानि मधुराणि च ।।२७
इत्येषा कथिता कृष्णद्वितीया तिथिरुत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्नृद्धिं वृद्धिं तथा व्रजेत् ।।२८

शतानीक उवाच

भवता कथितेयं वै द्वितीया तिथिरुत्तमा । अश्विभ्यां द्विजशार्दूल कथमस्यां जनार्दनः ।।२९
सम्पूज्यः फलसंज्ञायां कथितः पद्मया सह । तदत्र कौतुकं मह्यं सुमहज्जायते द्विज ।।३०

सुमन्तुरुवाच

एवमेतन्न सन्देहो तथा वदसि भारत । अश्विनोर्वै तिथिरियं किं तु वाक्यं निबोध मे ।।३१
अशून्यशयना दत्ता [१]विष्णोरमिततेजसः । अश्विभ्यां कुरु शार्दूल प्रीतये मुञ्जकेशिनः ।।३२
तावेव कुरुशार्दूल पूज्येतेऽत्र महीपते । नासत्यौ भगवान्विष्णुर्दस्रश्च श्रीर्विभाव्यते ।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
द्वितीयाकल्पसमाप्तौ विंशोऽध्यायः ।२०।

करता है—वह उपर्युक्त फल अवश्यमेव प्राप्त करता है। इसलिए यजमान को प्रयत्नपूर्वक मधुर फलों का दान करना चाहिये ।२६-२७। हे राजन् ! उस परम उत्तम फल प्रदान करने वाली कृष्ण द्वितीया तिथि को इस प्रकार मैं बतला चुका, जिसको उपोषित करने वाला ऋद्धि एवं वृद्धि को प्राप्त होता है ।२८

शतानीक ने कहा—द्विज शार्दूल ! आपने उत्तम (अशून्य शयना) द्वितीया तिथि की पुण्यदायिनी कथा अश्विनी कुमारों के साथ जो सुनाई है, और जो यह बतलाया है कि इसमें तथा पुष्प फल द्वितीया में लक्ष्मी के साथ भगवान् जनार्दन की पूजा किस प्रकार होती है ? हे द्विज ! उन सब को सुनकर हमारे मन में महान् कौतूहल हो रहा है ।२९-३०

सुमन्तु बोले—हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! जैसा तुम कह रहे हो, वह सब सत्य है। ये दोनों तिथियाँ उन दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा के लिए हैं, किन्तु मेरी बात फिर से स्पष्ट सुनिये ।३१। इन तीनों में से अशून्य शयना जो है, वह अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु के लिए है, जिसे मुञ्जकेशी भगवान् की प्रीति के लिए अश्विनी कुमारों ने दिया था ।३२। उन दोनों अश्विनी कुमारों की इन्हीं दिनों पूजा होती है और उनमें नासत्य साक्षात् भगवान् विष्णु हैं और दस्र लक्ष्मी रूप जाने गये हैं ।३३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीया कल्प समाप्ति नामक
बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

---

१. अतुलतेजसः ।

अथैकविंशोऽध्यायः

तृतीयातिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

पतिव्रता पतिप्राणा पतिशुश्रूषणे रता । एवंविधापि या प्रोक्ता शुचिः संशोभना सती ॥१
सोपवासा तृतीयां तु [1]लवणं परिवर्जयेत् । सा गृह्णाति च वै भक्त्या व्रतमामरणान्तिकम् ॥२
गौरी ददाति सन्तुष्टा रूपं सौभाग्यमेव च । लावण्यं ललितं हृद्यं श्लाघ्यं पुंसां मनोरमम् ॥३
पुंसो मनोरमा नारी भर्ता नार्या मनोरमः । गौरीव्रतेन भवति राजँल्लवणवर्जनात् ॥४
इदं व्रतं प्रति विभो धर्मराजस्य शृण्वतः । उमया च पुरा प्रोक्तं यद्वाक्यं तन्निबोध मे ॥५
मया व्रतमिदं सृष्टं सौभाग्यकरणं नृणाम् । मर्त्ये तु नियता नारी व्रतमेतच्चरिष्यति ॥
सह भर्त्रा स मोदेत यथा भर्ता हरो मम ॥६
याच कन्या न भर्तारं विन्दते शोभना सती । सा त्विदं व्रतमुद्दिश्य भवेदक्षारभोजना ॥
मच्चित्ता मन्मनाः कुर्यान्मद्भक्ता मत्परिग्रहा ॥७

अध्याय २१

तृतीया तिथि व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! परम पतिव्रता, पतिप्राण, पति की शुश्रूषा में रात दिन निरत रहने वाली एवं इसी प्रकार के अन्यान्य सद्गुणों से समन्वित परम सुन्दरी पवित्र भावनाओं से पूत जो सती कही गई हैं, उसको तृतीया व्रत को उपवास रखकर लवण का त्याग करना चाहिये । इस पुनीत व्रत को जो स्त्री भक्तिपूर्वक मरण पर्यन्त रखती है उसे सन्तुष्ट होकर गौरी देवी रूप एवं सौभाग्य प्रदान करती हैं । पुरुषों की दृष्टि में परम मनोहर रूप लावण्य एवं हृदय को वश में करने वाली सरलता भी उसे गौरी के प्रसाद से प्राप्त होती है ।१-३। हे राजन् ! पुरुष की दृष्टि में मनोरमा नारी एवं स्त्री की दृष्टि में मनोरम पति गौरी के व्रत से एवं नमक वर्जित करने से होते हैं ।४। विभो ! इस पुनीत व्रत के विषय में पार्वती ने धर्मराज से पुराकाल में जो कुछ कहा है उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये ।५। पार्वती ने कहा था—'मैंने इस परम पुनीत व्रत का निर्माण मृत्युलोक में मनुष्यों के सौभाग्य की वृद्धि के लिए किया है । नियमों का पालन करती हुई स्त्रियाँ मर्त्यलोक में इसका पालन करेंगी । इस व्रतपालन के माहात्म्य से वे स्त्रियाँ अपने मनोनुकूल पति के द्वारा ठीक उसी प्रकार का आनन्दानुभव करेंगी जैसे मैं अपने पति शिव के साथ ।६। जो कुमारी सुन्दरी कन्या उत्तम पति को शीघ्र नहीं प्राप्त करती वह हमारे इस व्रत का पालन करते हुए नमक वर्जित भोजन करे । उस समय उसका चित्त मुझमें हो, उसका मन मुझमें हो, उसकी भक्ति मुझमें हो, उसकी समस्त आकांक्षाएँ मुझमें ही निहित हों ।७। उसे उस समय सुवर्णमयी गौरी की स्थापना करनी चाहिये,

---

१. अशनम् ।

गौरीं संस्थाप्य सौवर्णीं गन्धालङ्कारभूषिताम् । वस्त्रालङ्कारसंवीतां पुष्पमण्डलमण्डिताम् ॥८
लवणं गुडं घृतं तैलं देव्यै शक्त्या निवेदयेत् । [१]कटुखण्डं जीरकं च पत्रशाकं च भारत ॥९
गुडघृष्टांस्तथापूपान्खण्डवेष्टांस्तथा नृप । ब्राह्मणे व्रतसम्पन्ने प्रदद्यात्सुबहुश्रुते ॥१०
शुक्लपक्षे सदा देया यथा शक्त्या हिरण्मयी । धनहीने तु भक्त्या[२] च मधुवृक्षमयी नृप ॥११
अर्च्या नित्यं संनिधानात्तत्र गौरी न संशयः । अक्षारलवणं रात्रौ भुंक्ते चैव सुवाग्यता ॥१२
गौरी सन्निहिता नित्य भूमौ प्रस्तरशायिनी[३] । एवं नियमयुक्तस्य[४] देव्या यत्समुदाहृतम् ॥१३
तच्छृणुष्व महाबाहो कथ्यमानं महाफलम् । भर्तारं तु लभेत्कन्या यं वाञ्छति मनोऽनुगम् ॥१४
सुचिरं सह वै भर्त्रा क्रीडयित्वा[५] इहैव सा । सन्ततिं च प्रतिष्ठाप्य सह तेनैव गच्छति ॥१५
हेलिलोकं चन्द्रलोकं लोकं चित्रशिखण्डिनः । गत्वा याति सदो राजन्वामदेवस्य भारत ॥१६
विधवा तु यदा राजन्देव्या व्रतपरायणा[६] । भर्तारं नियता नित्यं सदार्चनपरायणा ॥१७

और उस मूर्ति को सुगन्धित द्रव्य एवं अलंकारों से विधिवत् विभूषित करना चाहिये। सुन्दर वस्त्र, अलंकार एवं पुष्प, माला से विभूषित करना चाहिये। इसके उपरान्त नमक, गुड़, घी और तैल यथाशक्ति देवी के लिए समर्पित करें। फिर कटुखण्ड (गोलमिर्च), जीरा, पत्रशाक, गुड़ मिश्रित अथवा खाँड से लपेटे गये पूप किसी ऐसे बहुश्रुत ब्राह्मण को दान करे, जो ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त कर गृहास्थाश्रम में हो।८-१०। शुक्लपक्ष की तृतीया को सर्वदा यथाशक्ति सुवर्णमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये। हे राजन्! निर्धनता की अवस्था में मधु (महुआ) वृक्षमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये।११। देवी की पूजा सर्वदा उसी मूर्ति के समीप से करनी चाहिये, उसमें गौरी का निवास रहता है—इसमें कोई सन्देह नहीं। उस समय व्रत पालन करने वालीस्त्री को वाणी पर संयम रखकर रात्रिकाल में नमक के बिना भोजन करना चाहिये।१२। उस समय सर्वदा भूमि पर अथवा पत्थर की शिला पर शयन करना चाहिये, वहाँ गौरी का सान्निध्य रहता है। इस प्रकार के नियमों से उक्त व्रत को पालन करने वाली स्त्री को जिस महा फल के मिलने की बात देवी ने बतलायी है, हे महाबाहु! उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये। जो कुमारी इस व्रत का पालन करती है वह अपनी इच्छा के अनुकूल जिस पति की कामना करती है उसे प्राप्त करती है।१३-१४। उसका वह पति उसके मन के अनुकूल चलने वाला होता है। अपने उस पति के साथ बहुत दिनों तक इस लोक के समस्त आनन्दों का अनुभव कर अपनी सन्ततियों को पूर्ण प्रतिष्ठित कर पति के साथ ही परलोक की यात्रा करती है।१५। भरत कुलोत्पन्न! राजन्! वह व्रत के अनुष्ठान को करने वाली स्त्री इस लोक के उपरान्त सूर्यलोक, चन्द्रलोक, सप्तर्षियों के लोक में तथा भगवान् वामदेव की सभा में पति के साथ स्थान प्राप्त करती है।१६। हे राजन्! जो व्रत परायणा विधवा सर्वदा अपने स्वर्गीय पति के चरणों में मन लगाकर देवी के उक्त व्रत को पूजनादि में तत्पर रहकर सम्पन्न करती है वह भी इस लोक में अपने शरीर को छोड़कर हरि

---

१. तथा खण्डम् । २. शक्त्या । ३. स्वास्तरशायिनी । ४. एवं नियमयुगिति विशेषणसामर्थ्याद्व्रतमित्यध्याहार्य्यम्, व्रतस्य देव्या यन्महाफलं समुदाहृतं तच्छृण्वित्यर्थः । एवं नियमयुक्तस्येत्येकं वा पदम्, अत्रापि पक्षे व्रतस्येवेदं विशेषणम् । ५. क्रीडित्वा । ६. नीतिपरायणा ।

इह चोत्सृज्य देहं स्वं दृष्ट्वा हरिपुरे प्रियम् । आक्षिप्य यमदूतेभ्यः सह भर्त्रा रमेद्दिवि ॥१८
वर्षकोटिं दशगुणां रमित्वा सा इहागता । भर्त्रा सहैव पूर्वोक्तं लभते फलमीप्सितम् ॥१९
इन्द्राण्यापि व्रतमिदं पुत्रार्थिन्या नराधिप । लब्धः पुत्रो व्रतस्यान्ते जयन्तो नाम नामतः ॥२०
अरुन्धत्या तथा चीर्णं वशिष्टं प्रति कामतः । दृश्यते दिवि चाद्यापि वशिष्ठस्य समीपतः ॥२१
रोहिण्या लवणत्यागात्सपत्नीगणमर्दनम् । लब्धं देव्याः प्रसादेन सौभाग्यमचलं दिवि ॥२२
इत्येषा तिथिरित्येव तृतीया लोकपूजिता । सदा विशेषतः पुण्या वैशाखे मासि या भवेत् ॥२३
पुण्या भाद्रपदे मासि माघेप्येव न संशयः । माघे भाद्रपदे चापि स्त्रीणां धन्या[1] प्रचक्षते ॥२४
साधारणी तु वैशाखे सर्वलोकस्य भारत । माघमासे तृतीयायां गुडस्य लवणस्य च ॥
दानं श्रेयस्करं राजन्स्त्रीणां[2] च पुरुषस्य च ॥२५
गुडेन तुष्यते दत्तो लवणेन तु विश्वभूः । गुडपूपास्तु दातव्या मासि भाद्रपदे तथा ॥२६
तृतीयायां तु माघस्य [3]वामदेवस्य प्रीतये । वारिदानं प्रशस्तं स्यान्मोदकानां च भारत ॥२७
वैशाखे मासि राजेन्द्र तृतीया चन्दनस्य च । वारिणा तुष्यते वेधा मोदकैर्भीम एव हि ॥

के पुर में अपने पति का दर्शन करती है और यमदूतों का आक्षेप करती हुई पति के साथ स्वर्गलोक में सुख का अनुभव करती है ।१७-१८। वहाँ पर दश कोटि वर्ष तक पति के साथ रमण कर वह पुनः इह लोक में जन्म धारण करती है और यहाँ आकर पति के साथ इच्छित फलों का भोग करती है ।१९। हे नराधिप ! पुत्र प्राप्ति की इच्छुक इन्द्राणी ने भी इस व्रत का विधिवत् अनुष्ठान किया था और उसी के माहात्म्य से व्रत के अवसान में जयन्त नामक पुत्र की प्राप्ति की थी ।२०। इसी प्रकार अरुन्धती ने पति रूप में वशिष्ठ की कामना करके इस व्रत का पालन किया था, जिसके फलस्वरूप स्वर्ग में आज भी वह वसिष्ठ के समीप निवास करती है ।२१। रोहिणी ने नमक का त्यागकर उक्त व्रत का पालन किया था, और देवी के प्रसाद से सपत्नियों के मान मर्दन करने का अवसर प्राप्त किया था, स्वर्गलोक में उसका सौभाग्य आज भी निश्चल है ।२२। इस प्रकार यह पुण्य तृतीया तिथि यूं तो साधारणतया लोक में परम ख्यात है पर इन सबमें वैशाख मास की जो होती वह परम पुण्यदायिनी है ।२३। इसी प्रकार भाद्रपद मास में भी वह परम पुण्यदायिनी है। माघ मास की तृतीया के पुण्यप्रद होने में भी कोई सन्देह नहीं है । माघ तथा भाद्रपद की तृतीया विशेषतया स्त्रियों के लिए धन्य कही जाती है ।२४। हे भरतकुलोत्पन्न ! वैशाख मास की तृतीया सर्व सामान्य लोगों की है । हे राजन् ! माघ मास की तृतीया को गुड़ और नमक का दान स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अधिक श्रेयस्कर माना गया है ।२५। उक्त तिथि को गुड़ तथा नमक के दान करने से विश्वात्मा भगवान् परम सन्तुष्ट होते हैं । भाद्रपद मास में गुड़मिश्रित पूआ का दान करना चाहिये ।२६। हे भारत ! माघ मास की तृतीया को भगवान् वामदेव की सन्तुष्टि तथा अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए मोदक दान तथा वारि (जल) दान की प्रशंसा की गई है ।२७। हे राजन् ! वैशाख मास की तृतीया को चन्दन, जल तथा बड़े-बड़े मोदकों से ब्रह्मा सन्तुष्ट होते हैं।

---

१. धर्मम् । २. सर्वकामफलप्रदम् । ३. सर्वकामार्थसिद्धये ।

दानात्तु चन्दनस्येह कञ्जजो नात्र संशयः ॥२८
यात्वेषा कुरुशार्दूल वैशाखे मासि वै तिथिः । तृतीया साऽक्षया लोके गीर्वाणैरभिनन्दिता ॥२९
आगतेयं महाबाहो भूरि चन्द्रं वसुव्रता । कलधौतं तथान्नं च घृतं चापि विशेषतः ॥
यद्यद्दत्तं त्वक्षयं स्यात्तेनेयमक्षया स्मृता ॥३०
यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तत्सर्वमक्षयं स्याद्वै तेनेयमक्षया स्मृता ॥३१
योऽस्यां ददाति करकन्वारिबीजसमन्वितान् । स याति पुरुषो वीर लोकं वै हेममालिनः ॥३२
इत्येषा कथिता वीर तृतीया तिथिरुत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्नृद्धिं वृद्धिं श्रियं भजेत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां ब्राह्मे पर्वणि तृतीयाकल्पविधिवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।२१।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

चतुर्थीतिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

चतुर्थ्यां तु सदा राजन्निराहारव्रतान्वितः । दत्त्वा तिलान्नं विप्रस्य स्वयं भुंक्ते तिलौदनम् ॥१

इस वैशाख तृतीया को चन्दन दान से पद्मोद्भव सन्तुष्ट होते हैं इसमें सन्देह नहीं।२८। कुरुशार्दूल ! वैशाख मास की जो यह पुण्यदायिनी तृतीया तिथि है वह इस लोक में अक्षय तृतीया के नाम से देवगणों द्वारा अभिनन्दित है।२९। हे महाबाहु ! यह पुनीत अक्षय तृतीया प्रचुर धन-धान्य देने के लिए इस पृथ्वीतल पर आई हुई है। इसमें सुवर्ण, अन्न, विशेषतया घृत आदि जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे सब अक्षय रूप में प्राप्त होते हैं, इसी से यह अक्षय तृतीया नाम से स्मरण की जाती है।३०। इसमें जो कुछ भी दान किया जाता है वह परिमाण में चाहे स्वल्प हो या बहुत अधिक हो, अक्षय रूप में प्राप्त होता है। इसी से यह अक्षय तृतीया नाम से प्रसिद्ध है।३१। जो वारि बीज (कमल) युक्त कमण्डलु का दान करता है वह सूर्यलोक प्राप्त करता है।३२। हे राजन् ! इस पुण्यप्रद अक्षय तृतीया को उपवास करने वाला ऋद्धि, वृद्धि एवं लक्ष्मी को प्राप्त करता है।३३

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में तृतीया कल्पविधि वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।२१।

अध्याय २२

चतुर्थी तिथि के व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! चतुर्थी तिथि को जो मनुष्य निराहार व्रत का पालन करके ब्राह्मण को तिल का दान करता है तथा अन्त में स्वयं तिल मिश्रित ओदन (भात) का भोजन करता है, और इस प्रकार

---

१. अस्यां दत्तम्।

वर्षद्वये समाप्तिर्हि व्रतस्य तु यदा भवेत् । विनायकस्तस्य तुष्टो ददाति फलमीहितम्[1] ।।२
याति भाग्यनिवासं हि क्रीडते विभवैः सह । इह चागत्य पुण्यान्ते दिव्यो दिव्यवपुर्यशाः ।।३
मतिमान्धृतिमान्वाग्मी भाग्यवान्कामकारवान्[2] । असाध्यान्यपि साध्येह क्षणादेव महान्त्यपि ।।४
[3]हस्त्यश्वरथसम्पन्नं पत्नीपुत्रसहायवान् । राजा भवति दीर्घायुः सप्तजन्मान्यसौ नृप ।।
एतद्ददाति सन्तुष्टो विघ्नहन्ता[4] विनायकः ।।५

शतानीक उवाच

विघ्नः कस्य कृतस्तेन येन विघ्नविनायकः । एतद्वदस्व विघ्नेश विघ्नकारणमद्य मे ।।६

सुमन्तुरुवाच

कौमारे लक्षणे पुंसां स्त्रीणां च सुकृते कृते । विघ्नं चकार विघ्नेशो गाङ्गेयस्य विनायकः ।।७
तं तु विघ्नं विदित्वासौ कार्तिकेयो रुषान्वितः । उत्कृष्य दन्तं तस्यास्याद्धन्तु तं च समुद्यतः ।।८
निवार्यापृच्छद्देवेशो रोषः कार्यः कुतस्त्वया । तं चाचख्यौ स पित्रे वै कृतं पूरुषलक्षणम् ।।
तत्र विघ्नकृते मह्यं योषिता न च लक्षणम् ।।९

दो वर्ष तक अपने इस व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न कर लेता है उसके ऊपर विनायक प्रसन्न होते हैं तथा उसके समस्त मनोवाञ्छित कार्यों की सिद्धि करते हैं ।१-२। इस व्रत के माहात्म्य से वह भाग्य के निवास को प्राप्त करता है तथा वहाँ समस्त वैभवों एवं ऐश्वर्यों के साथ आनन्द का अनुभव करता है। फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर दिव्य शरीर धारण कर वह पुण्यात्मा प्राणी यशस्वी, मतिमान, धैर्यशील, प्रवक्ता, भाग्यशाली तथा स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य करने वाला होकर पुनर्जन्म धारण करता है तथा अपने जीवन में असाध्य एवं महान् कार्यों को भी क्षण भर में साध्य बनाने वाला होता है ।३-४। हाथी, अश्व, रथ आदि सुख साधनों से सम्पन्न पत्नी पुत्रादि के साथ वह दीर्घायु पर्यन्त राजा होता है और सात जन्मों तक इसी प्रकार राजा होता है। विघ्नों के विनाश करने वाले भगवान् विनायक उक्त चतुर्थी व्रत के पालन से सन्तुष्ट होकर उक्त फल प्रदान करते हैं ।५

शतानीक बोले—मुनिवर ! विनायक ने किस कार्य में किसको विघ्न पहुँचाया था ? जिसके कारण उनका विघ्न विनायक नाम पड़ा। कृपया आज मुझसे उनके विघ्नेश एवं विघ्न विनायक होने का कारण बतलाइये ।६

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! पूर्वकाल में गाङ्गेय स्वामिकार्तिकेय पुरुषों एवं स्त्रियों के लक्षणों को निर्दिष्ट कर रहे थे। उनके इस कार्य में विघ्नेश विनायक ने विघ्न पहुँचाया ।७। कार्तिकेय विनायक को अपने कार्य में विघ्न डालने वाला जानकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके मुख से एक दाँत को निकाल पूर्णतः मार डालने को समुद्यत हो गये। उस समय देवेश शङ्कर ने कार्तिकेय को रोककर पूछा—'तुमने ऐसा भीषण क्रोध क्यों किया है ? कार्तिकेय ने उत्तर दिया 'तात ! मैंने पुरुषों एवं स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों को लिपिबद्ध करने का विचार किया था, उसमें पुरुषों का तो समाप्त कर चुका था, स्त्रियों का अभी समाप्त नहीं हुआ था, सो उसमें इसने विघ्न पहुँचा दिया है

---

१. ईप्सितम् । २. लभते यशः । ३. हस्त्यन्नस्वार्थसम्पन्नः । ४. विघ्नहर्ता ।

अथोवाच महादेवः प्रहसन्स्वसुतं किल । मम किं लक्षणं पुत्र वक्ष्यसे त्वं वदस्व मे ॥१०
स चोवाच करे तुभ्यं कपालं द्विजलक्षितम् । अविचारेण संस्थाप्यं कपाली तेन चोच्यसे ॥
स तल्लक्षणमादाय समुद्रे प्राक्षिपद्रुषा ॥११
अथ देवसमाजे वै प्रवृत्ते ब्रह्मरुद्रयोः । अहं ज्यायानहं ज्यायान्विवादोऽभूत्तयोर्द्वयोः ॥
तव संभूत्यभिज्ञोऽस्ति मां तु वेद न कश्चन ॥१२
एवं शिवेऽति ब्रुवति ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । मुक्ताट्टहासं प्रोवाच त्वामहं वेदिता भव ॥१३
एवं ब्रुवत्तु रुद्रेण ब्राह्मं हयशिरो महत् । नखाग्रेण निकृत्तं च तस्यैव च करे स्थितम् ॥१४
करस्थेनैव तेनासावागच्छद्यत्र वै हरिः । तपस्तेपे नदा मेरौ तत्रासौ भगवान्वशी ॥१५
कृत्ते हयशिरे तस्मिन्स्थानात्तस्मात्तु ब्रह्मणः । रोषाद्विनिःसृतस्त्वन्यः पुरुषः श्वेतकुण्डली ॥१६
कवची सशिरस्कश्च सशरः सशरासनः । अनिर्देश्यवपुः स्रग्वी किं करोमि स चाब्रवीत् ॥१७
अथोवाच रुषा ब्रह्मा हन्यतां स सुदुर्मतिः । स तु मार्गेण रुद्रस्य आगच्छद्रोषतो द्रुतम् ॥१८
रुद्रोऽपि विष्णुतेजोभिः प्रदिष्टः स त्वधिष्ठितः । स प्रविश्य तदापश्यत्तपन्तं चोत्तमं तपः ॥

।८-९। अपने पुत्र कार्त्तिकेय की इस बात को सुनकर महादेव हँसते हुए बोले—'पुत्र ! तो देखो मेरे शरीर में कौन लक्षण है ? और उसका क्या फल होगा ?' यह मुझसे बताओ ।१०। कार्त्तिकेय ने कहा—'तात ! आपके हाथ में अविवेक के कारण किसी ब्राह्मण के कपाल (शिर) का स्थापन होगा, और उससे आपकी कपाली नाम से ख्याति होगी' कार्त्तिकेय से ऐसी बातें सुनकर शिव जी ने अति क्रुद्ध होकर उस लक्षण ग्रन्थ को समुद्र में फेंक दिया ।११। इस घटना के बहुत दिनों बाद एक बार शिव और ब्रह्मा में भरी देवसभा के बीच इस विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ कि दोनों में कौन बड़ा है ? उस अवसर पर इन दोनों देवों में मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ' यह कह-कहकर विवाद होने लगा । इसी बीच शिव ने ब्रह्मा से कहा—'मैं तुम्हारी उत्पत्ति जानता हूँ किन्तु मेरी उत्पत्ति कोई नहीं जानता है ।१२। शिव की उक्त आक्षेप पूर्ण बात को सुनकर ब्रह्मा के पाँचवें शिर ने अट्टहास करते हुए कहा—भव ! मैं भी तुमको भली-भाँति जानता हूँ ।१३। ब्रह्मा के ऐसा कहते ही रुद्रने अपने नख के अग्रभाग से ब्रह्मा के उस महान हय (घोड़े वाले) शिर को धड़ से अलग कर दिया । शरीर से अलग होकर भी वह महान् शिर रुद्र के हाथों में स्थिर हो गया ।१४। अपने हाथों में चिपके हुए उस शिर के साथ रुद्र वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् हरि विराजमान थे । जितेन्द्रिय भगवान् उस समय सुमेरु पर्वत पर तपस्या में लीन थे ।१५। इधर पाँचवें हय शिर के कट जाने पर ब्रह्मा के शरीर के उसी स्थान से उनके क्रोध से एक पुरुष आर्विभूत हुआ, जो श्वेत कुण्डल विभूषित, कवच एवं शिरस्त्राण से सुरक्षित तथा धनुष एवं बाण से विमण्डित था । उसका विशाल शरीर अनुपमेय एवं अनिर्देश्य था । उसके विशाल वक्षःस्थल पर एक माला शोभायमान हो रही थी । आविर्भूत होते ही उस क्रोधी पुरुष ने ब्रह्मा से कहा—'भगवन् ! मेरे लिए क्या आज्ञा है ।१६-१७। क्रुद्ध होकर ब्रह्मा ने कहा—'उस पाप बुद्धि शंकर को मार डालो । (ब्रह्मा के आदेश से वह श्वेत कुण्डली) पुरुष क्रोध से अभिभूत होकर उसी मार्ग से दौड़, जिससे रुद्र गये थे ।१८। उधर भगवान् विष्णु के आश्रम में पहुँच कर रुद्र भी भगवान् विष्णु की तेजोविभूति से प्रभावित हो गये वहाँ पहुँचकर उन्होंने कठोर तपः साधना में लीन अपराजित भगवान्

हरो नारायणं देवं वैकुण्ठमपराजितम् ॥१९
हरं दृष्ट्वाथ सम्प्राप्तं कार्यं चास्य विचिन्त्य च । उवाच शूलिनं देवो भिन्धि शूलेन मे भुजम् ॥२०
स बिभेद महातेजा भुजं शूलेन तं हरः ॥२१
शूलभेदादसृक्चोर्ध्वं जगामावृत्य रोदसी । विनिवृत्य ततः पश्चात्कपाले निपपात ह ॥२२
असृक्कपाले पतितं प्रदेशिन्या व्यवर्द्धयत् । यदा हि विनिवृत्तिः स्याद्देवस्य रुधिरं प्रति ॥२३
तदा तु व्यसृजत्तोयं स कृत्वा वारुणीं तनुम् । तोये प्रवृत्तेऽसृग्भूते कपाले यत्र तच्छिरः ॥२४
कपाले तु प्रदेशिन्या रुद्रोऽसौ रुधिरेऽसृजत् । आमुक्तकवचं रक्तं रक्तकुण्डलिनं नरम् ॥२५
अथोवाच भवं देवं किं करोमीति मानद । असावपि ससर्जाथ श्वेतकुण्डलिनं नरम् ॥२६
तावुभौ समयुध्येतां धनुष्प्रवरधारिणौ । यथा राजन्बलीयांसौ कुजकेतू युगात्यये ॥२७
तयोस्तु युध्यतोरेवं संवर्तश्चाधिको गतः । न चादृश्यत विजय एकस्यापि तदा तयोः ॥२८
अथान्तरिक्षे तौ दृष्ट्वा वागुवाचाशरीरिणी । अवतारोऽथ भविता युवयोर्हि मया सह ॥२९
भारापनोदः कर्तव्यः पृथिव्यर्थे सुरैः सह । तदाश्चर्यो हि भविता देवकार्यार्थसिद्धये ॥३०
भूलोकभावं निर्धूय भूयो गन्ता सुरालयम् । एवमुक्त्वा तु वैकुण्ठो ददावेकं रवेस्तदा ॥३१

वैकुण्ठ (विष्णु) को देखा ।१९। भगवान् ने अपने आश्रम में समुपस्थित हर को देखकर तथा उनके आगमन के प्रयोजन को जानकर त्रिशूलधारी से कहा—'रुद्र ! अपने शूल से तुम मेरी बाहु को आहत करो ।२०। महान् तेजस्वी हर ने अपने त्रिशूल से विष्णु की बाहु को आहत कर दिया ।२१। शूल से बाहु को आहत होने पर रक्त की एक परम तीव्रगामिनी धारा उठी और सारे भूमण्डल में व्याप्त होकर पुनः लौटकर उसी कपाल में आकर गिरी ।२२। इस प्रकार सारी रक्तराशि उस कपाल में भर गयी और रुद्र ने अपनी प्रदेशिनी अङ्गुली से उस कपाल स्थल रक्तराशि का विलोडन किया । प्रदेशिनी से रक्त आलोडन जब बन्द हुआ तब देव ने अपनी देह को वरुण की भाँति जलमयीं बनाया और जल उत्पन्न किया । पुनः उस कपाल में जिसमें ब्रह्मा का शिर था, रुद्र ने जल के रक्तमय हो जाने पर प्रदेशिनी द्वारा उस रक्तराशि में एक कवचावृत्त रक्तकुण्डलधारी रक्त शरीर पुरुष की सृष्टि की ।२३-२५। उस रक्तकुण्डलधारी पुरुषाकृति ने भव से पूछा—'मानद ! मैं आपका कौन सा कार्य करूँ ? जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ब्रह्मा से भी श्वेत कुण्डल धारी एक पुरुष की उत्पत्ति हुई थी ।२६। हे राजन् । महान् धनुषधारी वे दोनों क्रोध-जात पुरुष एक दूसरे से इस प्रकार भिड़ गये । जिस प्रकार महाप्रलय के अवसर पर मंगल और केतु भिड़ गये हों ।२७। घोर युद्ध में लीन उन दोनों पुरुषों के एक कल्प से अधिक समय व्यतीत हो गये, किन्तु उन दोनों में से किसी एक के विजयी होने के लक्षण नहीं दिखाई पड़े ।२८। तदनन्तर उन दोनों को देखकर आकाशवाणी हुई कि तुम दोनों का अवतार हमारे साथ होगी ।२९। समस्त देवताओं के साथ हमें पृथ्वी लोक के कल्याण के लिए उसका भार उतारना पड़ेगा और उस समय देवकार्यों की सिद्धि के लिए आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित होंगी ।३०। तब फिर भूलोक की अवस्थिति को समाप्तकर पुनः स्वर्गलोक चले जायेंगे । इस प्रकार आकाशवाणी द्वारा अपने विचारों को व्यक्त कर भगवान् वैकुण्ठ ने उन दोनों में से एक पुरुष को

श्वेतकुण्डलिनं दृप्तं[1] तं जग्राह रविर्मुदा । इन्द्रस्यापि ततः पश्चाद्रक्तकुण्डलिनं ददौ ।।३२
जग्राह च मुदा युक्त इन्द्रः स्वं च पुरं ययौ । गतौ रवीन्द्रौ प्रगृह्य पुरुषौ क्रोधसम्भवौ ।।३३
अथोवाच तदा रुद्रं देवः कमलसंस्थितः । गच्छ त्वमपि कापाले कपालव्रतचर्यया ।।
अवतारो व्रतस्यास्य मर्त्यलोके भविष्यति ।।३४
ये च व्रतं त्वदीयं वै धारयिष्यन्ति मानवाः । न तेषां दुर्लभं किञ्चिद्भवितेह परत्र च ।।३५
एवं संलप्य बहुशः सुमुखं प्रतिनन्द्य च । आहूय च समुद्रं स प्रत्युवाचाविचारयन् ।।३६
कुरुष्वाभरणं[2] स्त्रीणां लक्षणं यद्विलक्षणम् । कार्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ।।३७
स चाह मम नाम्नेदं भवेत्पुरुषलक्षणम् । देवेन तत्प्रतिज्ञातमेवमेतद्भविष्यति ।।३८
कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ।।३९
प्रयच्छास्य विषाणं वै निष्कृष्टं यत्त्वयाऽधुना । अवश्यमेव तद्भूतं भवितव्यं तु कस्यचित् ।।४०
ऋते विनायकं तद्वै दैवयोगान्न कामतः । गृहाण एतत्सामुद्रं यत्त्वया परिकीर्तितम् ।।४१
स्त्रीपुंसोर्लक्षणं श्रेष्ठं सामुद्रमिति विश्रुतम् । इमं च सविषाणं वै कुरु देवविनायकम् ।।४२

रवि को दे दिया ।३१। उस श्वेत कुण्डलधारी परम गर्वोन्नत पुरुष को रवि ने परमानन्दित होकर अंगीकार किया । इसके उपरान्त रक्तकुण्डलधारी पुरुष को भगवान् ने इन्द्र के लिए प्रदान किया ।३२। उसे अंगीकार कर इन्द्र सहर्ष अपने पुर को चले गये । इस प्रकार ब्रह्मा एवं शंकर के क्रोध से उत्पन्न दोनों पुरुषों को लेकर सूर्य और इन्द्र अपने-अपने पुर को प्रस्थित हो गये ।३३। इस घटना के उपरान्त कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा ने रुद्र से कहा—रुद्र ! तुम भी इस कपाल की व्रतचर्या को सम्पन्न करने के लिए कपाल तीर्थ की यात्रा करो । इस व्रत का अवतार मर्त्यलोक में होगा ।३४। जो मनुष्य तुम्हारे उस व्रत को सम्पन्न करेंगे, उन्हें न तो इस लोक में कुछ दुर्लभ होगा, न परलोक में ।३५। इस प्रकार की बहुत सी बातें करके तथा उस सुन्दर मुख की प्रशंसा कर समुद्र का आवाहन किया । समुद्र के आने पर बिना विचार किये ही उन्होंने कहा ।३६। समुद्र ! तुम स्त्रियों के विलक्षण लक्षणों का निर्माण करो, जो उनकी शोभा के कारण हैं । कार्तिकेय ने पुरुषों एवं स्त्रियों के लक्षण को लेकर जो कुछ निश्चित किये हैं, उन्हें विना विचार किये ही यथार्थ रूप में मुझसे प्रकट कर दो ।३७। समुद्र ने कहा—'भगवन् ! मेरे द्वारा प्रकट होने वाले वे लक्षण समूह मेरे ही नाम से ख्याति प्राप्त करें ।' समुद्र के इस अनुरोध को देव ने स्वीकार करते हुए वचन दिया कि 'ऐसा ही होगा' ।३८। तुमसे कार्तिकेय ने जो कुछ कहा है, उसे बिना कुछ विचार किये मुझे बतला दो ।३९। समुद्र के ऐसा कहने के उपरान्त देव ने कार्तिकेय से कहा—'तुम इसके विषाण को दे दो, जो अभी उखाड़ लिया है । किसी के भाग्य में जो कुछ रहता है, वह तो घटित होकर ही रहता है ।४०। दैवयोग से इस विषय को विनायक के अतिरिक्त कोई इच्छा करने पर भी नहीं जान सकता । इस सामुद्रिक विद्या को ग्रहण करो, जिसका तुमने वर्णन किया है ।४१। यह स्त्रियों और पुरुषों का श्रेष्ठ लक्षण समूह सामुद्रिक विद्या के नाम से विख्यात है । देव विनायक को इसके साथ-साथ तुम विषाण से भी संयुक्त करो ।४२। ये

---

१. दृष्ट्वा । २. स्त्रीणां च पुरुषाणां च ।

अथोवाच च देवेशं बाहुलेयः समत्सरम् । विषाणं दद्मि चास्याहं तव वाक्यान्न संशयः ।।४३
यदा त्वयं विषाणं च मुक्त्वा तु विचरिष्यति । तदा विषाणमुक्तः सन्भस्म ऐतं करिष्यति ।।४४
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा विषाणं तत्करे ददौ । विनायकस्य देवेशः कार्तिकेयमते स्थितः ।।४५
सविषाणकरोऽद्यापि दृश्यते प्रतिमा नृप ! भीमसूनोर्महाबाहोर्विघ्नं कर्तुं महात्मनः ।।४६
एतद्रहस्यं देवानां मया ते समुदाहृतम् । यत्र देवो न वै वेद देवानां भुवि दुर्लभम् ।।४७
मया प्रसन्नेन तव गुह्यमेतदुदाहृतम् । कथितं तिथिसंयोगे विनायककथामृतम् ।।४८
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । क्षत्रियांश्च स्ववृत्तिस्थान्विट्शूद्रांश्च गुणान्वितान् ।।४९
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह चामुत्र विद्यते । न च दुर्गतिमाप्नोति न च याति पराभवम् ।।५०
निर्विघ्नं सर्वकार्याणि साधयेन्नात्र संशयः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं चापि विन्देत भरतोत्तम ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं
नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२।

बातें सुनकर बाहुलेय कार्तिकेय मत्सरपूर्वक देवेश से बोले—आपकी आज्ञा से ही मैं इसके विषाण को दे रहा हूँ, इसमें सन्देह नहीं ।४३। किन्तु जिस समय यह इस विषाण को छोड़कर इधर-उधर विचरण करेगा, उसी समय यह विषाण इससे मुक्त होकर इसे ही भस्म कर देगा ।४४। ऐसा ही हो—कहकर बाहुलेय ने विषाण को विनायक के हाथ में दे दिया । कार्तिकेय के इस कार्य से देवेश शङ्कर जी सहमत हो गये ।४५। (सुमन्तु कहते हैं) हे राजन् ! आज भी कार्यों में विघ्न पहुँचाने के लिए परम बलशाली महाबाहु भीम (भयंकर) पुत्र विनायक की प्रतिमा विषाण युक्त हाथ से समन्वित दिखाई पड़ती है ।४६। देवताओं की इस रहस्यपूर्ण वार्ता की चर्चा मैंने तुमसे की है, इसे देवताओं में भी कुछ लोग नहीं जानते, पृथ्वी तल पर तो यह दुर्लभ ही है ।४७। अतिशय प्रसन्न होकर ही मैंने इस परम गोपनीय विनायक के कथामृत को तिथिमाहात्म्य के प्रसङ्ग में तुमसे बतलाया है ।४८। जो विद्वान् इस पुण्यकथा को वेद पारगामी ब्राह्मणों, अपनी वर्णाश्रम मर्यादा में स्थित क्षत्रियों, गुणवान् वैश्यों तथा शूद्रों को सुनाता है, उसके लिए इस लोक तथा परलोक में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती । वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता और न कभी उसे पराभव मिलता है ।४९-५०। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने समस्त कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न करता है । हे भरतकुलश्रेष्ठ ! वह विद्वान् ऋद्धि-सिद्धि तथा लक्ष्मी की भी प्राप्ति करता है ।५१

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में चतुर्थी कल्प वर्णन
नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२२।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विघ्न-विनायककथावर्णनम्

शतानीक उवाच

केनायं भीमजो विप्र प्रमथाधिपतिः कृतः । भर्तृत्वे चापि विघ्नानामधिकारी कथं बभौ ॥१

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र यदर्थं विघ्नकारकः । यैर्वापि विघ्नकरणैर्नियुक्तोऽपि विनायकः ॥
तत्ते वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमनाधुना ॥२
आद्ये कृतयुगे वीर प्रजासर्गमवाप ह । दृष्ट्वा कर्माणि सिद्धानि विना विघ्नेन भारत ॥३
अगतक्लेशां प्रजां दृष्ट्वा गर्वितां कृत्स्नशो नृप । बहुशश्चिन्तयित्वा तु इदं कर्म महीपते ॥४
विनायकः समृद्ध्यर्थं प्रजानां विनियोजितः । गणानां चाधिपत्ये च भीमः कञ्जजसात्त्वतैः ॥
ततोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ॥५
स्वप्नेवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति । काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ॥६
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्टैः सहैकत्रावतिष्ठते । व्रजमानस्तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ॥७

अध्याय २३

विघ्न-विनायक की कथा का वर्णन

शतानीक बोले—विप्रवर्य ! भीमपुत्र विनायक किसके द्वारा प्रमथगणों के अधिपति बनाये गये ? और वे किस प्रकार विघ्नों के अधिकारी पद पर प्रतिष्ठित हुए ? ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! आपने बड़ा अच्छा विषय पूछा, जिस कारणवश विनायक विघ्नकारक रूप में प्रसिद्ध हुए और जिन-जिन विघ्नों के करने से उन्हें विनायक पद पर नियुक्त किया गया, हे महाबाहु ! उन सब कारणों को मैं तुमसे अब बतला रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ।२। हे वीर ! हे भारत ! आदिम सतयुग में, जब प्रजाओं की सृष्टि प्रारम्भ हो चुकी थी, तब उनके कर्म बिना विघ्न बाधा के ही सम्पन्न होते थे ।३। हे भारत ! (इस प्रकार निर्विघ्न कार्यों की समाप्ति के कारण) प्रजा को क्लेश से रहित तथा सभी प्रकार से गर्वित स्वभाव वाली देखकर हे महीपते ! भगवान् ब्रह्मा ने इस कर्म के विषय में बहुत सोच-विचार कर विनायक को उन्हीं प्रजाओं की समृद्धि के लिए विनियुक्त किया । भयानक कर्मनिरत विनायक को प्रमथों के आधिपत्य पद पर इस प्रकार कमलयोनि ब्रह्मा ने नियुक्त किया । इसके बाद उनके द्वारा विघ्न पहुचाये गये लोगों के लक्षणों को मुझसे सुनिये ।४-५। स्वप्न में वह व्यक्ति बहुत अधिक जल (तैल) में स्नान करता है, मुण्डित शिर वाले को देखता है । काषाय (गेरूआ) वस्त्र पहनने वाले का दर्शन करता है, तथा कच्ची मांस खाने वाले हिंस्र जानवरों पर आरुढ़ होता है ।६। अन्त्यज गदहे, ऊँट आदि के साथ स्वप्न में एक स्थान पर निवास करता है । पीछे चलने वाले अनेक व्यक्तियों के साथ अपने को गमन करता हुआ देखता है ।७। यही नहीं, वह सर्वदा उन्मन, निष्फल कार्य आरम्भ करने वाला

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । करटारूढमात्मानमम्भसोन्तरगं तथा ।।८
पत्तिभिश्चावृतं यान्तं सङ्गमनान्तिकं नृप । पश्यते कुरुशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः ।।९
चित्तं च विकृताकारं करवीरविभूषितम् । तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं पौर्वसंभवम् ।।१०
कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भिणी तथा । आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च शिष्याश्चाध्ययनं तथा ।।
वणिग्लाभं च नाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ।।११
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽहनि[1] महीपते । गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितेन तु ।।१२
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वासरे धिषणस्य च । तिष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ।।१३
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुभान् ।।१४
व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भीमजं तथा । कृष्णं सपितरं तात [2]पवमानं सितं तथा ।।१५
धिषणं चेन्दुपुत्रं च [3]कोणं केतुं च भारत । विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ।।१६
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ह्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ।।१७
यदाहृतं ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ।।१८

तथा अकारण कष्ट भोगने वाला होता है। हे कुरुशार्दूल ! हे नृप ! विनायक द्वारा विघ्नित व्यक्ति अपने को हाथी के गण्डस्थल पर आरुढ़ तथा जल के भीतर नग्न होता हुआ देखता है।८। इसी प्रकार राजा शत्रु की पैदल सेना से चारों ओर घिरा हुआ अथवा कहीं दूर देश की यात्रा करता हुआ, स्वप्न के अन्त में अपने को देखता है इसमें कोई सन्देह नहीं।९। उसका चित्त विकृत रहता है तथा अपने को स्वप्न में कर-वीर (कनेर के पुष्प) से विभूषित देखता है। इस प्रकार विनायक द्वारा विघ्नित राजा अपने पूर्वजों का अर्जित राज्य नहीं प्राप्त करता।१०। कुमारी पति नहीं प्राप्त करती तथा गर्भिणी स्त्री सन्तान नहीं प्राप्त करती, श्रोत्रिय आचार्यत्व नहीं प्राप्त करता तथा विद्यार्थी ठीक तरह से अपना पाठ नहीं चला पाते। इसी प्रकार वैश्य व्यापार में लाभ नही प्राप्त करता तथा कृषक लोग कृषि में सफलता नहीं प्राप्त करते।११। हे राजन् ! ऐसे व्यक्ति को पुण्य दिन में यथाविधि सफेद सरसों के कल्क से, जिसमें घृत एवं सुगन्धित द्रव्य मिले हुए हों, स्नान करना चाहिये।१२। हे राजन् ! शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि को बृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र में अथवा वीर नक्षत्र में उसी के सम्मुख यह क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।१३। सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से विमिश्रित, सब औषधियों से शिर को भलीभाँति लिप्त करके एक शुभ आसन पर बैठकर कुलीन एवं सद्विचार रखने वाले ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराये।१४। हे तात ! पहले शिव-पार्वती तथा गणेश जी की पूजा करके उसी प्रकार पितरों समेत कृष्ण, वायु, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल कार्तिकेय केतु और तलवार लिए हुए राहु की पूजा करे।१५-१६। एक रङ्ग के सुन्दर एवं जल भरे हुए चार कलशों में घोड़े और हाथी के रहने के स्थान की मिट्टी तथा वल्मीक (चींटी) एवं नदियों के सङ्गम की भूमि सरोवर की मिट्टी, गोरोचन, चन्दन और गुग्गुल आदि सुगन्धित वस्तुओं को डालकर, उसके जल से गणेश जी को, जो लाल रङ्ग के बैल के चमड़े के सुन्दर आसन पर बैठाये गये हों, स्नान कराये।१७-१८। पवित्र,

---

१. अह्नि विधिपूर्वकम्। अब्जमानम्। ३. कोणलक्ष्यं च।

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः[1] पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।१९
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।२०
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा ।।२१
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य तु ।।२२
मितश्च सम्मितश्चैव तथा च शालकंटकः । कूष्माण्डो राजश्रेष्ठास्तेऽग्नयः स्वाहासमन्विताः ।।२३
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ।।२४
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ।।२५
पुष्पं चित्रं सगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिकाः पूपांस्तथैवेण्डेरिकास्रजम् ।।
दधिपायसमन्नं च गुडवेष्टान्समोदकान् ।।२६
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।।२७
रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ।।
अचलां बुद्धिं मे देहि धरायां ख्यातिमेव च ।।२८
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ।।२९

निर्मल एवं ऋषियों द्वारा अभिमंत्रित किये हुए तथा सहस्राक्ष की भाँति सहस्र धारवाले इस जल से तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, यह जल तुम्हें पवित्र करे ।१९। राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सातों ऋषि—मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ तुम्हें ऐश्वर्य प्रदान करें ।२०। उसी भाँति तुम्हारे शिर के बालों, मस्तक, कान तथा आँखों में स्थित दुर्भाग्य (अशुभसूचक कुलक्षण) को यह जल सदा नष्ट कर दे ।२१। इस प्रकार स्नान कराये जाने के बाद सरसों का तेल उनके मस्तक पर गूलर के स्रुवा द्वारा, बायें हाथ में कुश लिये हुए दिया जाय ।२२। मित, संमित, शालकंटक तथा कूष्माण्ड आदि दुष्ट ग्रह और राजश्रेष्ठ एवं स्वाहा से युक्त अग्नि तुम्हारा कल्याण करें ।२३। इसके अनन्तर चौराहे पर कुश बिछाकर उसके ऊपर सूप रखकर जिसमें कच्चा-पक्का चावल, मांस-भात, मछली, अनेकों प्रकार के पुष्प, इत्र, तीन प्रकार की मद्य, मूली, पूरी, मालपूआ, गुड़हर के फूल की माला, दहीं और खीर, अन्न और गुड़ के बने लड्डू रखा हो, सावधान होकर पृथक्-पृथक् देवताओं का नाम और बलि मंत्रों का उच्चारण करते हुए नमस्कार पूर्वक बलि के रूप में अर्पित करे ।२४-२६। इसके पश्चात् अपनी अंजलि में दूर्वा, पुष्प और और सरसों (राई) लेकर गणेश जी को भगवती अम्बिका को (मंत्रो द्वारा) तीन बार पुष्पांजलि देकर यह मंत्र पढ़े ।२७। हे भगवति ! मुझे सुन्दर रूप, कीर्ति, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, पूर्ण मनोरथ एवं निश्चल बुद्धि प्रदान करती हुई आप पृथ्वी के चारों ओर मेरी प्रख्याति करायें ।२८। तदुपरान्त श्वेत वस्त्र, माला और चन्दन से सुसज्जित होकर ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा प्रत्येक ब्राह्मणों को चद्दर समेत दो वस्त्र (धोती) देवें। उसी भाँति गुरु को भोजन कराकर उन्हें दो वस्त्र समर्पित करे ।२९। इस

---

१. सूरिभिः पावनं स्मृतम् ।

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥३०
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । विनायकपतेश्चैव सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३१

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

नराणां योषितां चैव लक्षणानि महामते । प्रोक्तानि यानि विप्रेन्द्र व्योमकेशस्य सूनुना ॥१
क्रुद्धेन यानि क्षिप्तानि ईश्वरेण महोदधौ । कृष्णस्य वचनाद्भूयः समुद्रेणार्पितानि वै ॥२
अर्पितानि ततस्तस्य तेन प्राप्तानि वै कथम् । बाहुलेयेन विप्रेन्द्र तानि मे वद सुव्रत ॥३

सुमन्तुरुवाच

यथा गुहेन राजेन्द्र स्त्रीपुंसां लक्षणानि वै । प्रोक्तानि कुरुशार्दूल तथा ते कथयामि वै ॥४
शक्तिपाताद्धते क्रौञ्चे व्योमकेशस्य सूनुना । ब्रह्मा तुष्टोऽब्रवीदेनं वरं वरय मेऽनघ ॥५

प्रकार विधि-विधान सहित गणेश तथा ग्रहों की पूजा करने से निर्विघ्न कार्य की समाप्ति तथा उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।३०। इसलिए अपनी सभी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए सूर्य कार्तिकेय और गणेश की तिलक समेत सविधि पूजा अवश्य करनी चाहिये ।३१

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में चतुर्थी कल्पवर्णननामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।२३।

अध्याय २४

पुरुष-लक्षण वर्णन

शतानीक बोले—हे महामते ! व्योमकेश (शिव) के पुत्र (स्वामिकार्त्तिकेय) ने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को बनाया था, उन्हें क्रुद्ध होकर शिव जी ने समुद्र में डाल दिया था। विप्रेन्द्र ! किन्तु भगवान् कृष्ण के कहने से समुद्र ने फिर उन लक्षणों को स्वामिकार्त्तिकेय जी को लौटा दिया था। और कार्त्तिकेय ने उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया । सुव्रत ! अतः आप उसी कथा को सुनाने की कृपा करें ।१-३

सुमन्तु ने कहा—हे राजेन्द्र ! मैं उसी कथा को, जिसमें स्वामिकार्तिकेय ने स्त्री-पुरुषों के समस्त लक्षणों को बताया है, तुम्हें कह रहा हूँ ।४। जिस समय व्योमकेश के पुत्र स्वामिकार्तिकेय ने अपनी शक्ति के आघात से क्रौंच पर्वत का विदारण किया था उनसे उसी समय अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा—हे पुण्यात्मन् !तुम्हारे इस कार्य से मैं बहुत प्रसन्न हूँ । अतः मुझसे यथेच्छ वरदान माँगो ।५। इसे सुनकर महा

असावपि महातेजाः प्रणम्य शिरसा विभुम् । पितामहं बभाषेदं लक्षणं ब्रूहि मे विभो ॥६
नराणां युवतीनां च कौतुकं परमं मम । यन्मयोक्तं पुरा देव प्रक्षिप्तं लवणार्णवे ॥७
मत्पित्रा देवदेवेश सक्रोधेन पुरा तथा । प्राप्तं च विस्मृतं भूयस्तन्मे ब्रूहि ह्यशेषतः ॥८

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि देवेश भीमस्यानन्दवर्धन । लक्षणानि निबोध त्वं पुरुषाणामशेषतः ॥
अधमोत्तममध्यानि यानि प्राप पयोनिधिः ॥९
शिवेऽहनि सुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ । पूर्वाह्ले मङ्गलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः ॥१०
प्रमाणं संहतिं छायां गतिं सर्वाङ्गलक्षणम् । दन्तकेशनखश्मश्रु एतत्सर्वं विचक्षणः ॥११
पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत् । क्षीरे ह्यायुषि मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥१२
जघन्यो नवतिः प्रोक्तो मध्यमस्तु शताङ्गुलः । अष्टोत्तरशतं यस्य उत्तमं तस्य लक्षणम् ॥१३
प्रमाणलक्षणं प्रोक्तं समुद्रेण शुभाशुभम् । यन्मे पुरा देववर मया वै कथितं तव ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि देहावयवलक्षणम् ॥१४
पादैः समांसकैः[1] स्निग्धै रक्तैः सौम्यैः सुशोभनैः । उन्नतैः स्वेदरहितैः शिराहीनैश्च पार्थिवः ॥१५

तेजस्वी स्वामिकार्त्तिकेय भी नतमस्तक होकर प्रणाम करते हुए ब्रह्मा से बोले—हे विभो ! मुझे उन लक्षणों को बताइये ।६। मैंने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को कहा था, उसे क्रुद्ध होकर मेरे पिता ने समुद्र में डाल दिया था । वह मुझे प्राप्त हो गया था किन्तु मुझे अब उसका स्मरण भी नहीं हैं । अतः देवाधि देव ! विस्तारपूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें क्योंकि पुरुषों-स्त्रियों तथा मुझे भी उसे सुनने का महान् कौतुक है । देवाधिदेव ! विस्तार पूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें ।७-८

ब्रह्मा ने कहा—हे देवेश भीम के आनन्दवर्द्धक ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा उत्तम है । मैं पुरुषों के उन उत्तम, मध्यम एवं अधम लक्षणों को, जिन्हें समुद्र ने प्राप्त किया है, तुम्हें सुना रहा हूँ ।९। शुभ नक्षत्र, सौम्य ग्रह और सूर्य के शुभ स्थान में रहते समय किसी शुभदिन के मांगलिक कर्मयुक्त पूर्वभाग में पुरुष के प्रमाण (लम्बाई), छाया-गति (चाल) दाँत, केश, नख, दाढ़ी एवं सर्वाङ्ग आदि लक्षणों की परीक्षा विद्वान् को करनी चाहिए ।१०-११। 'परीक्षा करते समय सर्व प्रथम आयु की परीक्षा होनी चाहिए पश्चात् और लक्षणों को कहे इसलिए कि यदि उस पुरुष की अल्पायु मालूम हुई तो लक्षण-परीक्षा व्यर्थ हो जायेगी ।१२। जो पुरुष अपने अंगुल-प्रमाण से एक सौ आठ, सौ एवं नब्बे अंगुल का ऊँचा हो, उसे क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम लक्षण वाला जानें ।' हे देव श्रेष्ठ ! समुद्र ने स्वयं मुझसे इस शुभाशुभ प्रमाण लक्षण को, जो मैंने आपको बताया है, कहा था । इसके पश्चात् मैं शरीर के सभी अंगों का लक्षण बता रहा हूँ ।१३-१४

जिस पुरुष के चरण, मांसल रक्तवर्ण, मनमोहक चिकने हों, सौम्य, सुशोभन, ऊँचे, स्वेद रहित तथा नसें जिसमें दिखाई न पड़ें, तो वह राजा होता है ।१५। जिसके चरण के तलुवे में अंकुश के समान रेखा हो,

---

१. समांसलैः ।

यस्य पादतले रेखा सांकुशेव प्रकाशते । सततं हि सुखं तस्य पुरुषस्य न संशयः ॥१६
अस्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ । श्लिष्टाङ्गुली[1] ताम्रनखौ सुपार्ष्णी[2] व्योमकेशज ॥१७
उष्णौ शिराविरहितौ गूढगुल्फौ च भीमज । कूर्मोन्नतौ च चरणौ प्रख्यातौ पार्थिवस्य तु ।१८
शूर्पाकृती महाबाहो रूक्षौ श्वेतनखौ तथा । वक्रौ शिरासन्ततौ च संशुष्कौ विरलाङ्गुली ॥१९
दारिद्र्यदुःखदौ ज्ञेयौ चरणौ भीमनन्दन । ब्रह्मघ्नौ देवशार्दूल[3] पक्वमृत्सदृशौ पदौ ॥२०
पीतावगम्यानिरतौ कृष्णौ पानरतौ सदा । अभक्ष्यभक्षणे श्वेतौ ज्ञेयौ सेनाधिपोत्तम ॥२१
अङ्गुष्ठौ पृथुलौ येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः । क्लिश्यन्ते विकृताङ्गुष्ठास्ते नराः पादगामिनः ॥२२
चिपिटैर्विकृतैर्भग्नैरङ्गुष्ठैरतिनिन्दिताः । वक्रैर्भग्नैस्तथा ह्रस्वैरङ्गुष्ठैः क्लेशभागिनः ॥२३
शूर्पाकारैश्च विकृतैर्भग्नैर्वक्रैः शिराततैः । सस्वेदैः पाण्डुरूक्षैश्च चरणैरतिनिन्दिताः ॥२४
यस्य प्रदेशिनी दीर्घा अङ्गुष्ठं या अतिक्रमेत् । स्त्रीभोगं लभते नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥
कनिष्ठायां तु दीर्घायां सुवर्णस्य तु भागिनः ॥२५
चिपिटा विरलाः शुष्का यस्याङ्गुल्यो भवन्ति वै । सभवेद्दुःखितो नित्यं धनहीनश्च वै[4] गुह ॥२६
श्वेतैर्नखैर्विरूक्षैश्च पुरुषा दुःखजीविनः । कुशीलाः कुनखैर्ज्ञेयाः कामभोगविवर्जिताः ॥
विकृतैः स्फुटितैरूक्षैर्नखैर्दारिद्र्यभागिनः ॥२७

वह निःसंदेह सर्वदा सुखी रहता है।१६। हे कार्तिकेय ! स्वेदरहित, कोमल चरण-तल, कमल की भाँति सुन्दर, मिली हुई अँगुलियाँ, लाल रंग के नख, सुन्दर ऐड़ी, नसों से हीन, गरम घना गुल्फ और कछुवे के समान ऊँचे ऐसे चरण, राजा के ही होते हैं।१७-१८। हे भीम नंदन, हे महाबाहो ! सूप के समान आकार, रेखा, श्वेतरंग के नख, टेढ़े, नसों मे घिरे हुए तथा सूखे अलग-अलग अंगुली वाले चरण दुःखी और दरिद्र पुरुष के होते हैं। देव शार्दूल ! पक्की मिट्टी के समान चरण वाला पुरुष ब्रह्महत्या करने वाला होता है।१९-२०। हे सेनानायक ! इसी प्रकार जिसके चरण पीले वर्ण के हों वह अगम्या स्त्री के साथ गमन करने वाला, काले रंग के हों, तो वह शराबी एवं श्वेतरंग के हों तो वह अभक्ष्य का भक्षण करने वाला होता।२१। जिसके चरण का अँगूठा मोटा हो तो वह भाग्यहीन एवं जिसके अँगूठे में किसी प्रकार का विकार हो, वे खुले पैरों पैदल चलने वाले होते हैं और दुःखी रहते हैं।२२। चिपटे, विकार सहित और टूटे अंगूठे वाला मनुष्य अतिनिन्दनीय, छोटे, टेढ़े और टूटे अंगूठें वाला दुःखी होता है।२३। इसलिए सूप के समान आकार, विकारी, टूटे, टेढ़े, नसों से भरे पसीने वाले, पीले वर्ण और रूखे चरण को अति निन्दित जानना चाहिए।२४। जिसके चरण की तर्जनी अँगुली अँगूठे से बड़ी हो उसे निःसन्देह सदा स्त्री-सुख मिलता है। यदि कनिष्ठा बड़ी हुई तो सुवर्ण की प्राप्ति होती है।२५। हे गुह ! जिसके चरण की अँगुलियाँ चिपटी, विरल एवं सूखी हुई हों वह सदा दुःखी तथा निर्धन रहता है।२६। जिसके चरण-नख श्वेत, अति रुखे एवं किसी प्रकार के विकारी हों वह शील रहित दुःखी तथा संसार के सभी सुखों से वंचित रहता है। स्फुटित और रूखे हों वे दरिद्र होते हैं।२७। हरे रंग के नख वाला पुरुष ब्रह्महत्या करने वाला तथा भाइयों से अलग

---

१. स्निग्धांगुली। २. पादौ वै। ३. नृपशार्दूल। ४. नित्यशः।

ब्रह्महत्यां च कुर्वन्ति पुरुषा हरितैर्नखैः । बन्धुभिश्चवियुज्यन्ते कुलक्षयकराश्च ते ॥२८
इन्द्रगोपकसंकाशैर्नखैर्नृपतयः स्मृताः । शङ्खावर्तप्रतीकाशैर्नखैर्भवति पार्थिवः ॥२९
ताम्रैर्नखैस्तथैश्वर्यं धन्याः पद्मनखा नराः । रक्तैर्नखैस्तथैश्वर्यं पुष्पितैः सुभगो भवेत् ॥
सूक्ष्मैरुपचितैस्ताम्रैर्नखैर्नृपतयः स्मृताः ॥३०
रोमशाभ्यां च जङ्घाभ्यां दुःखदारिद्र्यभागिनः । बन्धनं ह्रस्वजङ्घानामैश्वर्यं चैव निर्दिशेत् ॥३१
[1]मृगजङ्घाश्च राजानो जायन्ते नात्र संशयः । दीर्घजङ्घाः स्थूलजङ्घा नित्यं भाग्यविवर्जिताः ॥३२
शृगालजङ्घाः पुरुषा नित्यं भाग्यविवर्जिताः । काकजंघा नरा ये तु भवेयुर्दुःखभागिनः ॥३३
[2]पीनजङ्घास्तथैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः । सिंहव्याघ्रसमा जङ्घा धनिनः परिकीर्तिताः ॥३४
पार्थिवानां भवेद्रोम चैकैकं रोमकूपके । पंडितश्रोत्रियाणां च द्वेद्वे ज्ञेये महामते ॥३५
त्रिभिस्त्रिभिस्तथा निःस्वा मानवा दुःखभागिनः । केशाश्चैव महाबाहो निन्दिता पूजितास्तथा ॥३६
निर्मांसजानुर्म्रियते प्रवासे शिवनन्दन[3] ॥३७
सौभाग्यमल्पैः कथितं दारिद्र्यं विकटैस्तथा । निम्नैः स्वस्त्रीजिता ज्ञेयाः समांसै राज्यभागिनः ॥३८
[4]हंसभासशुकानां च तुल्यां यस्य गतिर्भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पूज्यः[5] समुद्रवचनं यथा ॥३९
अन्येषामपि शस्तानां पक्षिणां च शुभा गतिः । वृषसिंहगजेन्द्राणां [6]गतिर्भोगविवर्धिनी ॥४०

और कुल का नाश करने वाला होता है।२८। इन्द्रगोपक कीट के समान लाल रंग, शंख घुमाव के समान आकार वाले नख, राजाओं के होते हैं।२९। ताम्रवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली और कमल वर्ण के समान नख वाले धन्य होते हैं तथा रक्तवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली होते हैं। पुष्पित (विकसित) नख वाले सुन्दर होते हैं। सूक्ष्म उपचित (पुष्ट) तथा ताम्रवर्ण के नख वाले राजा होते हैं।३०। जिसकी जाँघ में लोम हों वह दुःखी एवं दरिद्र होता है। छोटी जाँघ वालों को बन्धन तथा ऐश्वर्य मिलता है।३१। मृग के समान जाँघ वाले निःसन्देह राजा होते हैं। लम्बी, मोटी, सियार तथा कौवे की भाँति जाँघ वाले निरन्तर दुःखी एवं भाग्य-हीन होते हैं।३२-३३। मोटी जाँघ वाले निरन्तर दुःखी एवं भाग्यहीन होते हैं। सिंह तथा बाघ के सामन जाँघ वाले धनी होते हैं।३४। प्रत्येक रोम कूप में एक-एक रोम हों तो राजा, दो-दो हों तो वैदिक विद्वान् और तीन-तीन हों तो निर्धन एवं दुःखी होता है। हे महाबाहो ! इसी प्रकार लोम तथा केश का शुभ और अशुभ लक्षण जानना चाहिये।३५-३६

हे शिव नन्दन ! जिसकी जानु (घुटने) मांसरहित हों उसकी मृत्यु विदेश में होती है।३७। इसी प्रकार छोटी होने से सौभाग्य, विकट से द्ररिद्रता, नीची होने से स्त्री से पराजय तथा मोटी जानु राज्य प्रदान करने वाली होती है।३८

जिसकी गति (चाल) हंस, मोर एवं शुक पक्षी के समान हो वह पूज्य राजा होता है। जैसा कि समुद्र ने बताया है।३९। अन्य उत्तम पक्षियों के समान वाली गति भी शुभ सूचक होती है। बैल, सिंह और

---

१. भवन्ति नृपसत्तम। २. मीनजङ्घा। ३. दाण्डनन्दन, कुरुनन्दन। ४. हन्सभासशिखण्डीनाम्। ५. पृथ्व्याम्। ६. भाग्यविवर्द्धिनी।

जलोर्मिसदृशी या च काकोलूकसमा च या । गतिर्द्रव्यविहीनानां दुःखशोकभयङ्करा ।।४१
श्वानोष्ट्रमहिषाणां [1]खरसूकरयोस्तथा । गतिर्मेषसमा येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः ।।४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
पुरुषलक्षणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दक्षिणावर्तलिङ्गश्च नरो वै पुत्रमान्भवेत् । वामावर्ते तथा लिङ्गे नरः कन्यां प्रसूयते ।।१
स्थूलैः शिरालैर्विषमैर्लिङ्गैर्दारिद्र्यमादिशेत् । ऋजुभिर्वर्तुलाकारैः पुरुषा पुत्रभागिनः ।।२
निम्नपादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनः । दुःखितं तं विजानीयात्पुरुषं नात्र संशयः ।।३
भूमौ पादोपविष्टस्य गुल्फौ स्पृशति मेहनः । ईश्वरं तं विजानीयात्प्रमदानां च वल्लभम्[2] ।।४
सिंहव्याघ्रसमो यस्य ह्रस्वो भवति मेहनः । भोगवान्स तु विज्ञेयोऽशेषभोगसमन्वितः ।।५
रेखाकृतिर्मणिर्यस्य मेहने हि विराजते । पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा ।।६

हाथी वाली गति भोग को बढ़ाती है ।४०। जल की तरंगों, कौवे और उल्लू पक्षी के समान वाली गति, भयंकर एवं दुःख शोक उत्पन्न करने वाली होती है ।४१। इसी प्रकार कुत्ता, ऊँट, भैंसा, गधा, सूकर और भेड़ों के समान वाली गति दुर्भाग्य सूचक होती है ।४२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक
चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जिस पुरुष का लिङ्ग दाहिनी ओर झुका हो तो उसके पुत्र तथा बायें ओर झुकने से कन्यायें उत्पन्न होती हैं ।१।, मोटी-मोटी नसों वाला एवं विषम लिंग दरिद्र सूचक होता है । सीधा तथा वर्तुलाकार लिंग पुत्रवान होने का सूचक होता है ।२। नीचे पैर बैठने से जिसका लिंग पृथ्वी में छू जाय उसे निःसन्देह दुःखी जानना चाहिए ।३। इसी प्रकार भूमि में पैर पर बैठने पर यदि गुल्फ (एंड़ी), में लिंग छू जाय तो वह स्त्रियों का प्राणप्रिय और राजा होता है ।४। सिंह तथा बाघ के समान छोटे लिंग वाला पुरुष समस्त भोगों को भोगने वाला होता है ।५। समुद्र के कथनानुसार जिसके लिंग का अग्रभाग रेखा के समान हो वह राजा होता है ।६। इसी प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, मोती और पुवाल के समान वर्ण एवं स्निग्ध अग्र

---

१. खड्गशूकरयोस्तथा । २. दुर्लभम् ।

सुवर्णरजतप्रख्यैर्मणिमुक्तासमप्रभैः । प्रवालसदृशैः स्निग्धैर्मणिभिः पार्थिवो भवेत् ॥७
पाण्डुरैर्मलिनै रूक्षैर्दीर्घव्यासैर्दिशो व्रजेत् । समैस्तथोन्नतैश्चापि सुस्निग्धैर्मणिभिर्गृही ॥८
धनरक्षास्तथा स्त्रीणां भोक्तारस्ते भवन्ति हि । मणिभिर्मध्यनिम्नैस्तु पितरस्ते भवन्ति हि ॥९
युवतीनां महाबाहो निःस्वाश्चापि भवन्ति ते । नोल्बणैश्चापि धनिनो नरा वीरा भवन्ति हि ॥१०
मूत्रधारा पतेदेका वलिता दक्षिणा यदि । स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्याः समुद्रवचनं यथा ॥११
द्वे धारे च तथा स्निग्धे धनवान्भोगवान्स्मृतः । बहुधारास्तथा रूक्षाः सशब्दाः पुरुषाधमाः ॥१२
मीनगन्धि भवेद्रेतो धनवान्पुत्रवान्भवेत् । हविर्गन्धि भवेद्यस्य धनाढ्यः श्रोत्रियः स्मृतः ॥१३
[1]मूषगन्धिर्भवेत्पुत्री पद्मगन्धिर्नृपः स्मृतः । लाक्षागन्धिर्भवेद्यश्च बहुकन्यः प्रजायते ॥
मद्यगन्धिर्भवेद्योद्धा क्षारगन्धिर्दरिद्रकः ॥१४
शीघ्रमैथुनगामी यः स दीर्घायुरतोऽन्यथा । अल्पायुर्देवशार्दूल विज्ञेयो नात्र संशयः ॥१५
तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांसगन्धी च भोगवान् । पद्मवर्णं भवेद्रक्तं स नरो धनवान्भवेत् ॥१६
किञ्चिद्रक्तं तथा कृष्णं भवेद्यस्य तु शोणितम् । अधमः स तु विज्ञेयः सदा दुःखैकभाजनम् ॥१७
प्रवालसदृशं स्निग्धं भवेद्यस्य च शोणितम् । राजानं तं विजानीयात्सप्तद्वीपाधिपं गुह ॥१८

भाग वाला लिंग राजा होने का सूचक होता है ।७। जिसका लिंग पांडु (पीला-सफेद) मलिन, रूखा और लम्बे अग्रभाग वाला हो, तो वह चारों ओर घूमने वाला होता है । सम, ऊँचा और स्निग्ध (चिकना) अग्रभाग जिसके लिंग का हो, वह स्त्रियों का प्रिय एवं धन की रक्षा करने वाला होता है । यदि अग्रभाग के मध्य का भाग नीचा हो, तो वह केवल कन्याओं का पिता और निर्धन होता है । हे वीर ! उसके अस्पष्ट साफ न रहने पर भी वह पुरुष धनी होता है ।८-१०। जिसका मूत्र दाहिनी ओर एक धार होकर गिरे समुद्र के कथनानुसार वह राजा होता है ।११। चिकनाहट लिए हुए दो धार होकर गिरे तो वह धनवान तथा भोगी होता है । अधम पुरुषों का मूत्र, रूखा एवं कुछ ध्वनि करते हुए बहुधार होकर गिरता है ।१२। जिसके वीर्य में मछली की भाँति गंध हो, वह धनवान् एवं पुत्रवान् होता है । अग्नि में हवन करने पर उठे हुए गंध के समान गंध हो तो धनी और वैदिक विद्वान् हो ।१३। भेड़ के समान गन्धवाला पुत्रवान्, कमल की भाँति गंधवाला राजा होता है । लाह की भाँति गंध हो तो उसके अधिक कन्याएँ होती हैं । शराब की भाँति गंध होने से योद्धा तथा क्षार वस्तु के समान गन्ध होने से दरिद्र होता है ।१४। जो मैथुन शीघ्र करता है वह दीर्घायु होता है । हे देव शार्दूल ! इसके विपरीत हो तो उसे निश्चय अल्पायु जानना चाहिए ।१५। जिसके अल्प वीर्य हों उसके कन्यायें होती हैं । यदि मांस के समान गंध हो तो वह भोगी होता है । जिसका रक्त, लाल कमल की भाँति हो वह पुरुष धनवान होता है ।१६। जिसका रक्त, अल्प एवं काले रंग का हो, उसे अधम तथा सदा दुःखी जानना चाहिए ।१७। हे गुह ! जिसका रक्त, मूंगे के समान और चिकनाहट लिए हो, उसे सातों द्वीपों का राजा जानना चाहिए ।१८। पुरुषों की नाभि के नीचे का

---

१. मेषगन्धिर्भवेत्पुत्री ।

विस्तीर्णा मांसला स्निग्धा बस्तिः पुंसां प्रशस्यते। निर्मांसा विकटा रूक्षा बस्तिर्येषां न ते शुभाः ॥१९
गोमायुसदृशी यस्य श्वानोष्ट्रमहिषस्य च । स भवेद्दुःखितो नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥२०
यश्चैकवृषणस्तात जले प्राणान्विमुञ्चति । स्त्रीचञ्चलस्तु विषमैः समै राज्यं प्रचक्षते ॥२१
ऊर्ध्वगैश्चापि ह्रस्वायुः शतञ्जीवी प्रलम्बधृक् । मानवाश्चापि रक्तैस्तु धनवन्तो भवन्ति वै ॥२२
स्थूलस्फिग्भवति क्षेमी द्रव्ययुक्तः समांसधृक् । व्याघ्रस्फिङ्मण्डलो राजा मण्डूकस्फिङ्नराधिपः ॥
द्विमण्डलो महाबाहो सिंहस्फिक्सार्वभौमता ॥२३
उष्ट्रवानरयोर्यस्तु धारयेत्स्फिङ्महामते । धनधान्यविहीनोऽसौ विज्ञेयो भीमनन्दन ॥२४
पुमान्मृगोदरो धन्यो मयूरोदर एव च । व्याघ्रोदरो नरपती राजा सिंहोदरो भवेत् ॥२५
मण्डूकसदृशं यस्य पुरुषस्योदरं भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्यां समुद्रवचनं यथा ॥२६
मांसलैर्ऋजुभिर्वृत्तैः पार्श्वैर्नृपतयः स्मृताः । ईश्वरो व्याघ्रपृष्ठस्तु सेनायाश्चैव नायकः ॥२७
सिंहपृष्ठो नरो यस्तु बन्धनं तस्य निर्दिशेत् । कूर्मपृष्ठास्तु राजानो धनसौभाग्यभागिनः ॥२८
विस्तीर्णं हृदयं येषां मांसलोमचितं समम् । शतायुषो विजानीयाद्भोगभाजो महाधनान् ॥२९
विरलाः शुष्कास्तथा रूक्षा दृश्यन्तेऽङ्गुलयः करे । स भवेद्दुःखितो नित्यं नरो दारिद्र्यभाजनम् ॥३०

भाग, चौड़ा मांस भरा हुआ एवं चिकना हो, तो शुभदायक तथा मांसहीन, विकट और रूखा हो तो अशुभ करने वाला होता है।१९। जिसका (मूत्राशय) सियार, कुत्ता, ऊँट और भैंसे के समान हो तो वह निःसंदेह पुरुष दुःखी रहता है।२०। हे तात ! जिसके एक अण्डकोष हों, वह जल में प्राण-त्याग करता है। छोटे-बड़े होने; स्त्री-व्यभिचारी एवं सम होने से राज्य-लाभ होता है।२१। ऊपर उठा हो तो अल्पायु, अधिक लम्बा हो तो सौ वर्ष का जीवन तथा लाल रंग का हो तो वह मनुष्य धनवान् होता है।२२। कमर के नीचे का भाग स्थूल हो तो कल्याणकारी, मांस से भरा हो तो धनवान्, बाघ के समान हो तो राजाधिपति, मेढक के समान हो तो राजा और सिंह के समान हो तो दो देशों का सार्वभौम महाराजा होता है।२३। हे महामते ! ऊँट और वानर के समान हो तो वह मनुष्य दरिद्र होता है।२४। जिसका उदर, मृग या मोर के समान हो वह उत्तम पुरुष, बाघ के समान हो तो नराधिप, सिंह के समान हो तो राजा होता है।२५। मेढक की भाँति जिसका उदर हो, वह समुद्र के कथनानुसार पृथ्वीपति होता है।२६

जिसका पार्श्व और पीठ मांस से भरा, सीधा एवं गोलाकार हो वह नराधिप होता है। जिसकी पीठ बाघ के समान हो वह सेनाधिपति, सिंह की भाँति हो तो कैदी और कछुवे के भाँति हो तो अनेक प्रकार का सुख भोगने वाला राजा होता है।२७-२८। जिसका हृदय चौड़ा, मांस एवं रोम से भरा हो तथा बराबर हो वह सौ वर्ष जीवित रहने वाला तथा अतुल धन का उपभोग करने वाला होता है।२९

हाथ की अंगुलियाँ, विरल, सूखी और रूखी हों तो वह मनुष्य सदा दुःखी एवं दरिद्र रहे।३०।

यस्य मीनसमा रेखा कर्मसिद्धिश्च तस्य तु । धनवान्स तु विज्ञेयो बहुपुत्रश्च मानवः ।।३१
तुला यस्य तु वेदी वा करमध्ये तु दृश्यते । तस्य सिध्यति वाणिज्यं पुरुषस्य न संशयः ।।३२
सौम्ये पाणितले यस्य द्विजस्य तु विशेषतः । यज्ञयाजी भवेन्नित्यं बहुवित्तश्च मानवः ।।३३
शैलं वाप्यथ वा वृक्षः करमध्ये तु दृश्यते । अचलां श्रियमाप्नोति बहुभृत्यसमन्वितः ।।३४
शक्तितोमरबाणासिरेखा[1] चापोपमा तथा । यस्य हस्ते महाबाहो स जयेद्विग्रहे रिपून् ।।३५
ध्वजश्चाप्यथ वा शंखः करमध्ये तु दृश्यते । समुद्रयायी स भवेद्धनी च सततं गुह ।।३६
श्रीवत्समथ वा पद्मं वज्रं वा चक्रमेव च । रथो वाप्यथ वा कुम्भो यस्य हस्ते प्रकाशते ।।
राजानं तं विजानीयात्परसैन्यविदारणम् ।।३७
दक्षिणे तु कराङ्गुष्ठे यवो यस्य तु दृश्यते । सर्वविद्याप्रवक्ता च भवेद्वै नात्र संशयः ।।३८
यस्य पाणितले रेखा कनिष्ठामूलमुत्थिता[2] । गता मध्यं प्रदेशिन्याः स जीवेच्छरदः शतम् ।।३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
पुरुषलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५।

जिसके हाथ की रेखा मछली की भाँति हो उसे प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है तथा वह धनवान् और बहु पुत्रवान् होता है।३१। जिसके हाथ के मध्य में तुला (तराजू) या वेदी की भाँति रेखा हो, उस पुरुष के व्यापार की सफलता में कोई संदेह नहीं रहता।३२। जिस किसी का विशेषतया द्विज का करतल सुन्दर हो, वह नित्य यज्ञ करने वाला तथा महा धनवान् होता है।३३। हाथ के भीतर पर्वत या वृक्ष के सामने रेखा दिखाई दे तो वह अचल लक्ष्मी (सम्पत्ति) एवं बहुत से सेवकों से युक्त होता है।३४। हे महाबाहो! जिसके हाथ की रेखा शक्ति, गुर्ज, बाण, तलवार और धनुष के समान हो, वह युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है।३५। हे गुह! हाथ के मध्यम में ध्वज या शंख के समान रेखा हो तो वह सदा धनी एवं समुद्र की यात्रा करता है।३६। जिसके हाथ में श्रीवत्स, कमल, वज्र, चक्र, रथ अथवा कलश के समान रेखा हो वह शत्रु की सेनाओं का नाश करने वाला राजा होता है।३७। जिसके दाहिने हाथ के अंगूठे में जव का चिह्न हो तो वह सम्पूर्ण विद्याओं का निःसन्देह प्रवक्ता विद्वान् होता है।३८। जिसके करतल की रेखा कनिष्ठा के मूल से निकल कर तर्जनी के मध्य में पहुँचती है, वह सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है।३९

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक
पचीसवाँ अध्याय समाप्त।२५।

---

१. पद्मनालोपमा भवेत्। २. उच्छ्रिता।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

समकुक्षिर्भवेद्भोगी निम्नकुक्षिर्धनापहः । मायावी विषमा[1] कुक्षिस्तथा कुहकस्तदा ॥१
राजा स्यान्निम्नकुक्षिस्तु सार्वभौमो महाबलः । सर्पोदरा दरिद्राः स्युर्बहुभक्षाश्च सुव्रत ॥२
विस्तीर्णाभिर्मण्डलाभिरुन्नताभिश्च नाभिभिः । भवन्ति सुखिनो वीरा धनधान्यसमन्विताः ॥३
निम्नाभिरथ स्वल्पाभिः क्लेशभाजो भवन्ति हि । वलिर्मध्यङ्गता वीरा विषमा च विशेषतः ।
धनहानिं तथा शूलं नित्यं जनयते विभो ॥४
वामावर्ता सदा शान्तिं करोतीति विदुर्बुधाः । करोति मेधां दक्षिणेन संप्रवृत्ता दिवस्पते ॥५
पार्श्वायता दीर्घमायुरैश्वर्यमूर्ध्वतः स्मृतम् । गवाढ्यतामधस्तात्तु करोतीति विदुर्बुधाः ॥६
शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्यस्य महामते । भूपत्वं कुरुते सा तु पुरुषस्य न संशयः ॥७
समोदरो भवेद्भोगी निस्वः स्याद्विषमोदरः । सूक्ष्मोदरो भवेद्वाग्मी बहुसम्पत्समन्वितः ॥८

अध्याय २६

पुरुषलक्षणवर्णन

ब्रह्मा बोले— सम कोख (पेट की दाहिनी और बाईं बगल) वाला मनुष्य भोगी, नीची-ऊँची कोख वाला चोर, एवं विष (ऊँची-नीची) कोखवाली पुरुष जाल साजी करके सदैव ठगने वाला होता है।१। सुव्रती ! इसी भाँति नीची कोख वाला महाबली एवं सार्वभौमराजा और सर्प की भाँति कोख वाला दरिद्र तथा अधिक भोजन करने वाला है।२। चौड़ी, गोल और ऊँची नाभि वाला मनुष्य सुखी, वीर तथा धन-धान्य से सदैव युक्त रहता है।३। नीची और छोटी नाभिवाला मनुष्य दुःखी रहता है। बलि (त्रिवली) के मध्य भाग में होकर विषम नाभि हो तो धन की हानि एवं सर्वदा शूल की पीड़ा देने वाली होती है।४। उसी प्रकार बाईं ओर से घूमी हुई नाभि सदा शान्तिदायक होती है इसे विद्वान् लोग भली-भाँति जानते हैं। हे दिवस्पते ! दाहिनी ओर से घूमी हुई नाभि मेधा (धारणा शक्ति) दायक होती है।५। जिसकी नाभि पार्श्वभाग (बगल) में लम्बी-चौड़ी हो, तो वह मनुष्य दीर्घायु, ऊपर की ओर लम्बी-चौड़ी हो तो ऐश्वर्यसम्पन्न एवं नीचे की ओर लम्बी-चौड़ी हो तो उसके अधिक गायें होती हैं जिसे पण्डित गण भली-भाँति जानते हैं।६। इसी प्रकार जिसकी नाभि कमल की भाँति हो वह निःसंदेह राजा होता है।७। सम उदर वाला मनुष्य भोगी, विषम (ऊँच-नीच) उदर वाला निर्धन और सूक्ष्म उदर वाला मनुष्य वीर उसी प्रकार वक्ता तथा महान् धनी होता है।८। पेट में एक बलि हो तो उस मनुष्य की शस्त्र से मृत्यु होती

---

१. यस्येति शेषः।

शस्त्रेणान्तं व्रजेद्वीर स्त्रीभोगं चाप्नुयात्तथा । आचार्यो बहुपुत्रश्च यथासङ्ख्यं विनिर्दिशेत् ॥९
वलिभिर्देवशार्दूल इत्याह स पयोनिधिः । अगम्यागामिनो ज्ञेया विषमाभिर्न संशयः ॥१०
ऋजुभिर्वसुभोगी स्यात्परदारविनिन्दकः । मांसलैर्मृदुभिः पार्श्वे राजा स्यान्नात्र संशयः ॥११
अनूर्ध्वचिबुका ये तु सुभगास्ते भवन्ति वै । निर्धना विषमैर्दीर्घैर्भवन्तीह सुवीरज ॥१२
पीनैश्चोपचितैर्निम्नैः [1]स्कन्धैर्भौमाङ्गसम्भव । राजानः सुखिनश्चापि भवन्तीह न संशयः ॥१३
समोन्नतं तु हृदयं समं च पृथु चैव हि । अवेपनं मांसलं च पार्थिवानां न संशयः ॥१४
खररोमचितं वीरशिरालं च विशेषतः । अधनानां भवेदेव हृदयं ऋभवोत्तम ॥
समवक्षसोऽर्थयुताः पीनैः शूराः स्मृता बुधैः ॥१५
तनुभिर्द्रव्यहीनाः स्युरसमैश्चाप्यकिञ्चनाः । वध्यन्ते चापि शस्त्रेण नात्र कार्या विचारणा ॥१६
हनुभिर्विषमैर्वीर जन्महीनो भवेन्नरः । यस्योन्नतो भवेद्धनुः स भोगी स्यान्न संशयः ॥१७
निर्मांसैर्विषमैर्वीर निःस्वो निम्नैः प्रचक्ष्यते । धनवांश्च भवेत्पीनैः सुखभोगसमन्वितः ॥
विषमैरर्थहीनः स्याद्दुःखभागी सदा नरः ॥१८
चिपिटग्रीवको दुष्टो मतो लोके स वै गुह । शूरः स्यान्महिषग्रीवो मृगग्रीवो भयातुरः ॥१९
कम्बुग्रीवो भवेद्राजा लम्बकण्ठोऽग्रलक्षणः । ह्रस्वग्रीवस्तु धनवान्सुसुखी भोगदांस्तथा ॥२०

है दो बलि हो तो स्त्री भोगी, तीन बलि हो तो आचार्य और उसके अधिक पुत्र होते हैं ।९। हे देवशार्दूल ! इसी प्रकार समुद्र ने बताया था कि विषम बलि हो तो उसे निःसंदेह अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन करने वाला जानना चाहिये ।१०। सीधी बलि हो तो धन का उपभोग करने वाला एवं पर-स्त्री की निंदा करने वाला होता है । यदि दोनों ओर कोमल मांसों से भरी बलि हो तो वह निःसंदेह राजा होता है ।११। ऊपर की ओर न बढ़ने वाली ठोड़ी निश्चित शुभदायक होती है । हे सुवीर पुत्र ! उसी प्रकार विषम और लम्बी ठोड़ी निर्धन करने वाली होती है । १२। इसी प्रकार मोटा उन्नत एवं नीचा कंधा राजा एवं सुखी बनाती है, इसमें कोई कोई संशय नहीं है ।१३। सम, ऊँचा तथा सम मोटा, निष्कम्प और मांस से भरा हुआ हृदय राजाओं का ही होता है ।१४। हे देवश्रेष्ठ ! कठोर रोम तथा नसों से भरा हुआ हृदय निर्धनों का होता है । जिसकी छाती सम हो तो धन देने वाली और मोटी हो तो शूर बनाने वाली होती है, ऐसा पंडितों का कहना है ।१५। छोटी हो तो निर्धन और विषम हो तो भी निर्धन तथा अस्त्र से उसकी मृत्यु होती है । यह निर्विवाद सिद्ध है ।१६। विषम ठोड़ी वाला मनुष्य जीवन-हीन होता है । जिसकी ठोड़ी ऊँची हो वह निःसंदेह भोगी होता है ।१७। मांस-हीन, विषम और नीची ठोड़ी वाला निर्धन होता है । मोटी ठोड़ी हो तो वह धनवान्, सुखी एवं भोगी होता है । उसी भाँति विषम ठोड़ी वाला मनुष्य धनहीन तथा सदा दुःखी रहता है ।१८। हे गुह ! जिसकी गर्दन चपटी हो संसार में उसका दुष्ट होना निश्चित बताया गया है । उसी प्रकार भैंसे की भाँति गर्दन वाला मनुष्य शूर, मृग के समान गर्दनवाला भयभीत, शंख के समान गर्दन वाला राजा, लम्बी गर्दन वाला अच्छे लक्षणों से भूषित

---

१. चिबुकैर्ऋभवोत्तम ।

निर्मांसौ रोमशौ भग्नावल्पौ वापि विशेषतः । निर्धनस्येदृशावंसौ प्रख्यातौ व्योमकेशज ॥२१
भवेदरोमशं पृष्ठं धनिनां भीमसम्भव । सलोमशं तथा वक्रं निर्धनानां बलाधिप ॥२२
अस्वेदनावुन्नतौ च तथा पीनौ षडानन । समरोमसुगन्धौ च कक्षौ ज्ञेयौ धनान्वितौ ॥२३
अव्युच्छिन्नौ तथा श्लिष्टौ विपुलौ च सुराधिप । शूराणामीदृशावंसौ नगजानन्दवर्धन ॥२४
उद्बद्धबाहुको यस्तु वधबन्धनमाप्नुयात् । दीर्घबाहुर्भवेद्राजा समुद्रवचनं यथा ॥२५
प्रलम्बबाहुर्विज्ञेयो नरः सर्वगुणान्वितः । ह्रस्वबाहुर्भवेद्दासः परप्रेष्यकरोऽपि वा ॥२६
वामावर्तभुजा ये तु दीर्घायतभुजाश्च ये । सम्पूर्णबाहू राजा स्यादित्याह स पयोनिधिः ॥२७
ग्रीवा च [1]वर्तुलाकारा कम्बुरेखासमावृता । स भवेत्पार्थिवो भूमौ सर्वदुष्टनिबर्हणः ॥२८
दीर्घग्रीवा बकग्रीवा शुकग्रीवाश्च ये नराः । उष्ट्रग्रीवाः करिग्रीवाः सर्वे ते निर्धनाः स्मृताः ॥२९
इभाङ्गसदृशौ[2] वृतौ समौ पीनौ च सुव्रत । आजानुलम्बिनौ बाहू पार्थिवानां न संशयः ॥३०
दरिद्राणां लोमशौ ह्रस्वौ बाहू ज्ञेयौ सुरोत्तम । तस्कराणां च विषमौ स्थूलौ सूक्ष्मौ च सुव्रत ॥३१
निम्नं करतलं यस्य पितृवित्तं न तस्य वै । भवेदार्भवशार्दूल तथा भीरुश्च मानवः ॥३२
सुवृत्ततनुनिम्नेन धनवान्करतलेन तु । उत्तानकरतलो दाता भवतीति न संशयः ॥३३

और छोटे गर्दन वाला मनुष्य धनी, सुखी एवं भोगी होता है ।१९-२०। शिव पुत्र ! मांसरहित, रोम से भरा हुआ, टेढ़ा और छोटा कन्धा विशेषकर निर्धनों के लिए ही प्रसिद्ध है ।२१। हे सेनानायक ! उसी भाँति-रोमहीन पीठ धनिकों की और रोमवाली एवं टेढ़ा निर्धनों की होती है ।२२। पीन से रहित, ऊँची मोटी, समान रोम और सुगंध वाली काँख धनवानों की होती है ।२३। सुराधिप ! पार्वती आनन्दवर्धन ! सम, चौड़ा एवं घना, कन्धा शूरों का ही होता है ।२४। जिसकी भुजा, ऊपर की ओर खिंची हुई होती है, वह मनुष्य बंधन में जकड़ा हुआ रहकर मरण को प्राप्त होता है । समुद्र के कथनानुसार दीर्घ भुजाओं वाला राजा होता है ।२५। अधिक लम्बी भुजाओं वाले पुरुष सब गुणों से युक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। छोटी भुजाओं वाला मनुष्य दास या संदेशवाहक होता है ।२६। बाँईं ओर से घूमी हुई लम्बी-चौड़ी भुजाओं वाला एवं पूरी भुजाओं वाला पुरुष राजा होता है, इसे समुद्र ने बताया है ।२७। जिसकी गर्दन गोल तथा शंख की भाँति रेखाओं से युक्त हो वह पृथ्वी के समस्त दुष्टों का नाश करने वाला राजा होता है ।२८। लम्बी-चौड़ी, बकुला, तोता, ऊँट और हाथी के समान गर्दन वाले मनुष्य निर्धन होते हैं ।२९। हे सुव्रत ! हाथी की सूँड के समान सम, गोल मोटी और घुटने तक वाली लम्बी, निःसंदेह ऐसी भुजाएँ राजाओं की होती है ।३०। हे देवश्रेष्ठ ! रोमवाली और छोटी भुजाएँ दरिद्रों की तथा ऊँची-नीची, पतली और मोटी भुजाएँ चोरी करने वालों की होती हैं ।३१। जिसकी हथेली नीची होती है, उसे पिता का धन नहीं मिलता है और वह अनुत्साही (कायर) भी होता है ।३२। सुन्दर, गोल, पतली एवं नीची हथेली वाला मनुष्य धनवान् तथा ऊँची हथेली वाला निःसंदेह दानी होता है ।३३। ऊँची-नीची

---

१. बहुला यस्य । २. करिकरोपमावित्यर्थः ।

विषमा भवन्ति विषमैर्निम्नाश्चापि विशेषतः । करतलैर्देवशार्दूललाक्षाभैरीश्वराः स्मृताः ॥३४
अगम्यागमनं पीतै रूक्षैर्निर्धनता स्मृता । अपेयपानं कुर्वन्ति नीलकृष्णैः सदैव हि ॥३५
निम्नाः स्निग्धा भवेन्नृणां रेखा करतले गुह । धनिनां न दरिद्राणामित्याह स पयोनिधिः ॥३६
विरलाङ्गुलयो ये तु ते दरिद्राः प्रचक्षते । धनिनस्तु महाबाहो ये घनाङ्गुलयो नराः ॥३७
वदनं मण्डलं यस्य धर्मशीलं तमादिशेत् । शुण्डवक्त्रा नरा ये तु दुर्भगास्ते न संशयः ॥३८
हरिवक्त्रा जिह्मवक्त्रा विकृतास्यास्तथा नराः । भग्नवक्त्राः करालास्याः सर्वे ते तस्कराः स्मृताः ॥३९
सम्पूर्णवक्त्रा राजानो गजसिंहाननास्तथा । छागवानरवक्त्राश्च धनिनः परिकीर्तिताः ॥४०
यस्य गण्डौ सुसम्पूर्णौ पद्मपत्रसमप्रभौ । कृषिभागी भवेन्नित्यं बहुवित्तश्च मानवः ॥४१
सिंहव्याघ्रगजेन्द्राणां कपोलः सदृशो यदि । महाभोगी स विज्ञेयः सेनायाश्चैव नायकः ॥४२
वदनं तु समं श्लक्ष्णं सौम्यं संवृतमेव हि । पार्थिवानां महाबाहो विपरीतन्तु दुःखदम् ॥४३
महामुखं तु देवेश दुर्भगत्वं प्रयच्छति । स्त्रीमुखं पुत्रनाशाय मण्डलं सुखितां व्रजेत् ॥४४
द्रव्यनाशाय वै दीर्घं पापदं भयदं तथा । धूर्तानां चतुरस्रं स्यात्पुत्रहानिकरं शृणु ॥४५
निम्नवक्त्रं च देवेन्द्र पुत्रहानिकरं भवेत् । ह्रस्वं भवति कीनाशे पूर्णकान्तं च भोगिनाम् ॥४६
रक्ताधरो नरपतिर्धनवान्कमलाधरः । स्थूलोष्ठा हनुमूलाश्च शुष्कैस्तीक्ष्णैश्च दुःखिताः ॥४७

और अधिकतर नीची हथेली अच्छी नहीं होती है । हे देव वीर ! लाह के समान हथेली वाला ऐश्वर्यवान् होता है ।३४। पीली हथेली से मनुष्य अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने के योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन, रूखी हथेली से निर्धन, नीली एवं काली हथेली से अपेय (जो किसी प्रकार पीने के योग्य न हो) वस्तु का सदैव पान करने वाला होता है ।३५। हे गुह ! नीची और चिकनी रेखा धनवानों की हथेली में होती है न कि दरिद्रों की, समुद्र ने बताया है ।३६। जिसकी अंगुलियाँ विरल होती है वे दरिद्र होते हैं । हे महाबाहो ! घनअंगुलियों वाले मनुष्य धनवान् होते हैं ।३७। जिसका मुख गोल होता है वह धार्मिक होता है । हाथी के सूँड़ के समान मुख वाले मनुष्य निःसंदेह भाग्यहीन होते हैं ।३८। सिंह की भाँति, टेढ़े, विकारी टूटे-फूटे और भयंकर मुखवाले सभी मनुष्य चोर होते हैं ।३९। सौन्दर्य-पूर्ण मुख राजाओं का होता है । हाथी, सिंह, बकरा एवं वानर की भाँति मुख वाले धनी होते हैं ।४०। जिसका कपोल पूर्ण-सुन्दर तथा कमल के पत्ते के समान हो, वह खेती का सदैव उपभोग करने वाला एवं महाधनी होता है ।४१। सिंह, बाघ और हाथी के समान कपोल वाला मनुष्य महान् भोगी तथा सेना-नायक होता है ।४२। सम, चिकना, गोल और सुन्दर मुख राजाओं का होता है । हे महाबाहो ! इसके विपरीत मुख, दुःखदायक होते हैं ।४३। हे देवेश ! बड़ा मुख भाग्य-हीन बनाता है । स्त्री के समान मुख पुत्र का नाश एवं गोल मुख सुखी करता है ।४४। लम्बा-चौड़ा मुख धन का नाश, पापी और भयप्रद होता है । उसी भाँति धूर्तों का मुख चौकोर होता है । हे देवेन्द्र ! अब पुत्र की हानि करने वाले (मुख) को बता रहा हूँ सुनो ! ।४५। नीचा मुख पुत्र की हानि करता है । छोटा मुख वाला मनुष्य नीच होता है एवं भोगी पुरुषों का मुख सौन्दर्य-पूर्ण होता है ।४६। लाल रंग के ओंठ वाला मनुष्य नराधिप होता है और कमल की भाँति ओंठ वाला धनवान् एवं मोटे-बड़े, सूखे और उग्र ओंठ वाले मनुष्य दुःखी होते हैं ।४७। हे गुह ! जिसका अग्रभाग फटा न हो,

अस्फोटिताग्रं स्निग्धं च नतं मृदु तथा गुह । सम्पूर्णं च सदा शस्तं श्मश्रु भूमिपतेर्गुह ।।४८
रक्तैश्चाल्पैस्तथा रूक्षैः श्मश्रुभिर्भीमनन्दन । नराश्चौरा भवन्त्येव परदाररतास्तथा ।।४९
निर्मांसौ यस्य वै कर्णौ संग्रामान्नाशमृच्छति[1] । चिपिटाभ्यां भवेद्भोगी ह्रस्वौ च कृपणस्य च ।।५०
शङ्कुकर्णश्च भूनाथः सर्वशत्रुभयङ्करः । दीर्घायू रोमशाभ्यां तु विपुलाभ्यां नराधिपः ।।
भोगी च स भवेन्नित्यं देवब्राह्मणपूजकः ।।५१
शिरावबद्धौ क्रूरस्य व्यालम्बौ च विशेषतः । मांसलौ सुखदौ ज्ञेयौ श्रवणौ व्योमकेशज ।।५२
भोगी स्यान्निगण्डो वै मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः । शुभभाक्छुकनासस्तु चिरजीवी शुष्कनासिकः ।।५३
कुन्दकुण्डलसङ्काशैः प्रकाशैर्दशनैर्नृपः । ऋक्षवानरदन्ताश्च नित्यं क्षुत्परिपीडिताः ।।५४
हस्तिदन्ताः खरदन्ताः स्निग्धदन्ता गुणान्विताः । करालैर्विरलै रूक्षैर्दशनैर्दुःखजीविनः ।।५५
द्वात्रिंशदन्ता राजान एकत्रिंशच्च भोगवान् । त्रिंशदन्ता नरा नित्यं सुखदुःखित्वभागिनः ।।
ऊनत्रिंशच्च दशनैः पुरुषाः दुःखभागिनः ।।५६
कृष्णजिह्वो भवेत्प्रेष्यः सबलया तु जिह्वया । भवेत्कोपस्य कर्ता वै स्थूलरूक्षश्च जिह्वया ।।५७
श्वेतजिह्वा नरा ज्ञेयाः शौचाचारसमन्विताः । पद्मपत्रसमा जिह्वा सूक्ष्मा दीर्घा सुशोभना ।।
स्थूला च न च विस्तीर्णा येषां ते मनुजाधिपाः ।।५८

चिकनी, नीचे की ओर झुकी हुई, कोमल और बालों से भरी हुई (अच्छी दाढ़ी राजा की होती है।४८। हे भीमनन्दन ! उसी प्रकार लाल, थोड़ी और रूखी दाढ़ी वाले मनुष्य चोर तथा व्यभिचारी होते हैं।४९। जिसके कान मांस-हीन हों, लड़ाई द्वारा उसका नाश होता है। चिपटे कान वाला मनुष्य भोगी, छोटे कान वाला कृपण (कंजूस) नुकीले कान वाला समस्त शत्रुओं के लिए भयंकर पृथ्वीपति, रोम से भरे हुए कान वाला दीर्घजीवी एवं बड़े कान वाला मनुष्य भोगी तथा देवता और ब्राह्मण की पूजा करने वाला राजा होता है।५०-५१। नसों से घिरे हुए कान निर्दयी मनुष्य के होते हैं। हे शिवपुत्र ! भली-भाँति लम्बे एवं मांस से भरे हुए कान सुखदायक होते हैं।५२। नीचे की ओर झुके कपोल वाला मनुष्य भोगी और सब भाँति सुन्दर कपोल वाला मन्त्री होता है। तोते के समान नाक वाला उत्तम पुरुष, सूखी नाक वाला दीर्घजीवी होता है।५३। उसी प्रकार कुन्द पुष्प की कली की भाँति चमकीले दाँत राजा के होते हैं। रीछ और बानर के समान दाँत वाले मनुष्य सदैव भूख से अत्यन्त दुःखी रहते हैं।५४। हाथी और गधे के समान तथा चिकने दाँत गुणवानों के होते हैं एवं कराल विरले और रूखे दाँत वालों का दुःखी जीवन होता है।५५। बत्तीस दाँत वाले मनुष्य राजा, एकतीस दाँत वाले भोगी, तीस दाँत वाले मनुष्य सदा समान सुख-दुःख भोगते हैं और उन्तीस दाँत वाले पुरुष सदैव दुःखी रहते हैं। काली और चित्र-विचित्र वर्ण की जीभ वाला मनुष्य सेवक, मोटी एवं रूखी जीभ वाला क्रोधी तथा सफेद जीभ वाला सदाचारी होता है। कमल के पत्ते की भाँति पतली और लम्बी जीभ बहुत अच्छी होती है। जिसकी जीभ अधिक मोटी तथा चौड़ी न हो तो वे राजा होते हैं।५६-५८। यदि नीची-चिकनी, छोटी और लाल रंग की जीभ हो तो वे निःसंदेह विद्याओं

---

१. न स गच्छति ।

निम्ना स्निग्धा च ह्रस्वा च रक्ताग्रा रसना यदि । सर्वविद्याप्रवक्तारस्ते भवन्ति न संशयः ॥५९
कृष्णतालुर्नरो यस्तु स भवेत्कुलनाशनः । सुखभागी दुःखभागी पीततालुर्नराधिपः ॥६०
विकृतं स्फुटितं रूक्षं तालुकं न प्रशस्यते । सिंहतालुर्नरपतिर्गजतालुस्तथैव च ॥
पद्मतालुर्भवेद्राजा श्वेततालुर्धनेश्वरः ॥६१
हंसस्वरा नरा धन्या मेघगम्भीरनिःस्वनाः । क्रौंचस्वनाश्च राजानो भोगवन्तो महाधनाः ॥६२
चक्रवाकस्वना धन्या राजानो धर्मवत्सलाः । कुम्भस्वनो नरपतिर्दुन्दुभिस्वन एव च ॥
रूक्षदीर्घस्वराः क्रूराः पशूनां सदृशा न तु ॥६३
[2]गुर्गुरस्वरसंयुक्ताः पुरुषाः क्लेशभागिनः । चाषस्वना भाग्ययुता भिन्नकांस्यस्वराश्च ये ॥
क्षीणभिन्नस्वरा ये स्युरधमास्ते प्रकीर्तिताः ॥६४
पार्थिवास्तनुनासाश्च दीर्घनासाश्च भोगिनः । ह्रस्वनासा नरा ये तु धर्मशीलास्तु ते मताः ॥६५
हस्त्यश्वसिंहनासाश्च सूचीनासाश्च ये नराः । तेषां सिध्यति वाणिज्यं हयानां चैव विक्रयः ॥६६
विकृता नासिका यस्य [3]स्थूलाग्रा रूपवर्जिता । पापकर्मा स विज्ञेयः सामुद्रवचनं यथा ॥६७
दाडिमीपुष्पसंकाशे भवेतां यस्य लोचने । [4]भूपतिः स तु विज्ञेयः सप्तद्वीपाधिपो गुह ॥६८
व्याघ्राक्षाः कोपना ज्ञेयाः [5]कर्कटाक्षाः कलिप्रियाः । बिडालहंसनेत्राश्च भवन्ति पुरुषाधमाः ॥६९

के विद्वान् होते हैं ।५९। काले रंग का तालू वाला पुरुष, कुल का नाश करने वाला होता है । पीले तालू वाला मनुष्य समान सुख-दुःख भोगने वाला राजा होता है ।६०। विकार समेत, फटी और रूखी तालू अच्छी नहीं होती है । सिंह, हाथी एवं कमल की भाँति तालू वाले मनुष्य राजा और सफेद तालू वाले धनवान् होते है ।६१। हंस की भाँति स्वर वाले मनुष्य प्रशंसा के पात्र होते हैं । मेघ के समान गम्भीर तथा करांकुल पक्षी के समान स्वर वाले मनुष्य भोगी एवं महाधनवान् राजा होते हैं ।६२। चक्रवाक (चकवा) के समान वाणी वाले मनुष्य ख्याति प्राप्त एवं धार्मिक राजा होते हैं तथा घड़े और नगाड़े के समान स्वर वाले राजा होते हैं । रूखी और जोर की वाणी जो पशुओं के समान न हो, बोलने वाले निर्दयी होते हैं ।६३। घर्घर वाणी वाले मनुष्य दुःखी रहते हैं । नीलकंठ के समान स्वर वाले भाग्यशाली और फूटे काँसे (धातु की भाँति) क्षीण एवं टूटी-फूटी वाणी वाले मनुष्य अधम होते हैं ।६४। पतली नाक वाले मनुष्य राजा, लम्बी-चौड़ी नाक वाले भोगी और छोटी नाक वाले मनुष्य धार्मिक होते हैं ।६५। हाथी, घोड़े, सिंह एवं सूई की भाँति नाक वाले मनुष्य सफल व्यापारी तथा घोड़े का रोजगार भी करते हैं ।६६। जिसकी नाक में विकार अग्रभाग में मोटी एवं भद्दी हो समुद्र के कथनानुसार उन्हें पापी जानना चाहिए ।६७। हे गुह ! जिसकी आँखे अनार के फूल के समान हो वह सातों द्वीप का महाराजा होता है ।६८। बाघ के समान आँखों वाला मनुष्य क्रोधी, केकड़ा की भांति आँख वाला कलह-प्रिय (झगड़ालू) और बिल्ली एवं हंस की भाँति आँखों वाला मनुष्य नीच होता है ।६९। मोर तथा नेवला के समान आँख

---

१. दुःखी । २. दुर्वाच । ३. मांसला । ४. पुरुषः । ५. कुक्कुटाक्षाः । ६. न स्त्री त्यजति ।

मयूरनकुलाक्षाश्च नरास्ते मध्यमाः स्मृताः । न [1]श्रीस्त्यजति सर्वज्ञ पुरुषं मधुपिङ्गलम् ।।७०
आपिङ्गलाक्षा राजानः सर्वभोगसमन्विताः । रोचना हरितालाक्षा गुञ्जापिङ्गा धनेश्वराः ।।
बलसत्त्वगुणोपेताः पृथिवीचक्रवर्तिनः ।।७१
द्विमात्रावीक्षणा नित्यं जीवन्ति परमाश्रिताः । त्रिमात्रास्यन्दिनो ज्ञेयाः पुरुषाः सुखभागिनः ।।७२
चतुर्मात्रानिमेषैश्च नयनैरीश्वराः स्मृताः । दीर्घायुषो धर्मरताः पञ्चमात्रानिमेषिणः ।।७३
ह्रस्वकर्णा महाभागा महाकर्णाश्च ये नराः । आवर्तकर्णा धनिनः स्निग्धकर्णास्तथैव च ।।७४
दीर्घायुषः शुक्तिकर्णाः शङ्खकर्णा महाधनाः । दीर्घायुषो दीर्घकर्णा लम्बकर्णास्तपस्विनः ।।७५
ललाटेनार्धचन्द्रेण भवन्ति पृथिवीश्वराः । विपुलेन ललाटेन महाधनपतिः स्मृतः ।।
स्वल्पेन तु ललाटेन नरो धर्मरतः स्मृतः ।।७६
रेखा पञ्च ललाटे तु स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । शतं जीवति वर्षाणामैश्वर्यं चाधिगच्छति ।।७७
चतूरेखामशीतिं तु त्रिभिः सप्ततिमेव च । द्वाभ्यां षष्टिं तु रेखाभ्यां चत्वारिंशत्तथैकया ।।
अरेखेन ललाटेन विज्ञेया पञ्चविंशतिः ।।७८
रेखाच्छेदैस्तु विज्ञेया हीनमध्योत्तमा नराः । अल्पायुषस्तथाल्पाभिर्व्याधिभिः परिपीडिताः ।।७९
त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते । ईश्वरं तं विजानीयाद्भोगिनं कीर्तिमाश्रितम् ।।८०

वाले मनुष्य अधम श्रेणी के होते हैं। शहद के समान भूरा लिए हुए लाल या पीतवर्ण की आँख वाले का त्याग, लक्ष्मी कभी नहीं करती हैं।७०। एकमात्र लाल या थोड़ी पीली (कंजा) आँख वाले मनुष्य संपूर्ण उपभोग करने वाले राजा होते हैं। गोरोचन, हरताल और घुँघुची के समान आँख वाले सात्विक एवं चक्रवर्ती राजा होते हैं।७१। दो क्षण तक अपलक देखने वाला मनुष्य किसी बड़े के आश्रित रहकर जीवन व्यतीत करता है। तीन क्षण तक अपलक देखने वाला सुखी रहता है।७२। चार क्षण तक अपलक देखने वाला स्वामी होता है और पाँच क्षण तक अपलक देखने वाला मनुष्य दीर्घजीवी और धार्मिक होता है।७३। छोटे कान एवं विशाल कान वाले मनुष्य पुण्यात्मा होते हैं। भँवर की भाँति कान वाले और चिकने कान वाले धनवान् होते हैं।७४। सीप के समान कान वाले दीर्घजीवी, शंख की भाँति कान वाले महाधनवान्, लम्बे कान वाले दीर्घजीवी एवं तपस्वी होते हैं।७५। अर्द्धचन्द्र की भाँति ललाट वाले महीपति, बड़े-चौड़े ललाट वाले महाधनी और छोटे ललाट वाले मनुष्य धर्मप्रिय होते हैं।७६। पुरुष या स्त्री के भाल में पाँच रेखा हो तो वह सौ वर्ष का जीवन एवं ऐश्वर्य प्राप्त करता है।७७। चार रेखा वाले अस्सी वर्ष, तीन रेखा वाले सत्तर वर्ष, दो रेखा वाले साठ वर्ष, एक रेखा वाले चालीस वर्ष और बिना रेखा वाले मनुष्य पच्चीस वर्ष की आयु प्राप्त करते हैं।७८। इस रेखा विभाग द्वारा मनुष्य की आयु उत्तम, मध्यम और अल्पायु जाननी चाहिए। अल्पायु वाले मनुष्य कुछ रोग से सदैव दुःखी भी रहते हैं।७९। जिसके भाल में त्रिशूल या वज्र दिखाई दे वह ख्याति प्राप्त अधिनायक एवं भोगी होता है।८०।

---

१. न स्त्री त्यजति।

उत्क्रान्तनिम्नं तु शिरः स्वल्पोपहतनेव च। चन्द्राकारं[1] नरेन्द्राणां गवाढ्यं मङ्गलं स्मृतम् ॥८१
विषमं तु दरिद्राणां शिरो दीर्घं तु दुःखिनाम्। नागकुम्भनिभं राज्ञः समं सर्वत्र भोगिनः ॥८२
कपिलैः स्फुटितै रूक्षैः स्थूलैश्च शिखरेशयैः। दुःखिता पुरुषा ज्ञेया रोमश्मश्रुभिरेव च ॥८३
रूक्षा विवर्णा निस्तेजाः खराः स्थूलाश्च मूर्धजाः। नातिस्तोका न बहुशो मूर्धजा दुःखभागिनः ॥८४
विरलाश्च मृदुस्निग्धा भ्रमराञ्जनसप्रभाः। कचा यस्य तु दृश्यन्ते स भवेत्पृथिवीपतिः ॥८५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।२६।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षण-वर्णनम्

कार्तिकेय उवाच

संक्षेपतो मम विभो लक्षणानि नृपस्य तु। शुभानि चाङ्गजातानि ब्रूहि मे वदतां वर ॥१

ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्येङ्गजातानि पार्थिवस्य शुभानि च। पार्थिवो ज्ञायते यैस्तु नराणां मध्यभागतः ॥२

ऊँचाई-नीचाई लिए (चढ़ाव-उतार) कुछ दबे हुए एवं चन्द्राकार शिर राजाओं के लिए माङ्गलिक, अधिक गौओं को देने वाला कहा गया है।८१। दरिद्रों का ऊँचा या नीचा, दुःखी लोगों का लम्बा, राजा का गजकुंभ के समान और सर्वत्र उपभोग करने वाले मनुष्य का सम, सिर होता है।८२। कपिल (भूरा) फटे, रूखे एवं मोटे बाल, शिर देह या दाढ़ी के हों तो उस पुरुष को दुःखी जानना चाहिए।८३। रूखे कांतिहीन, निस्तेज, नुकीले, मोटे, न अति अल्प एवं न अत्यधिक शिर के बाल दुःखी मनुष्य के होते हैं।८४। विरल, कोमल, चिकने तथा भौंरे की भाँति काले बाल जिसके शिर में हों वह मनुष्य भूपति होता है।८५

श्रीभविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व के चतुर्थीकल्प में पुरुष लक्षण वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।२६।

अध्याय २७

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

कार्तिकेय ने कहा—हे कहने वालों में श्रेष्ठ प्रभो! मुझसे संक्षेप में राजा का लक्षण और उनकी शरीर के शुभसूचक अंगों को भी बताइये।१

ब्रह्मा बोले—राजा के उन शुभ अंगों को, जिनके द्वारा मनुष्यों के बीच में राजा को जाना जा सके, मैं कहता हूँ, सुनो!।२। हे महाबाहो! हे प्रभो! जिस मनुष्य के तीन बड़े, छः ऊँचे, तीन गंभीर, चार छोटे, सात

---

१. छत्राकारम्।

त्रीणि यस्य महाबाहो विपुलानि नरस्य तु । उन्नतानि तथा षड् वै गम्भीराणि च त्रीणि वै ॥३
चत्वारि चापि ह्रस्वानि सप्त रक्तानि वा विभो । दीर्घाणि चापि सूक्ष्माणि भवन्ति यस्य पञ्च वा ॥४
नाभिः संधिः स्वनश्चेति गम्भीराणि च त्रीणि वै । वदनं च ललाटं च दन्तोत्तम उरस्तथा ॥५
विस्तीर्णमेतत्त्रितयं वीर यस्य नरस्य तु । स राजा नात्र सन्देहः शृणुष्वेवोन्नतानि च ॥६
कृकाटिका तथा चास्यं नखा वक्षोऽथ नासिका । कक्षे चापि महाबाहो षडेतानि विदुर्बुधाः ॥७
लिङ्गं पृष्ठं तथा ग्रीवा जङ्घा ह्रस्वानि सुव्रत । नेत्रान्ते हस्तपादौ तु ताल्वोष्ठौ च सुरोत्तम ॥
जिह्वा रक्ता नखाश्चैव सप्तैतानि महामते ॥८
त्वचः कररुहाः केशा दशना श्च भवोत्तम । सूक्ष्माण्येतानि च गुह पञ्च चापि विदुर्बुधाः ॥९
नासिकालोचने बाहू स्तनयोरन्तरं हनुः । इति दीर्घमिदं प्रोक्तं पञ्चकं भूभुजां नृप ॥१०
क्षुतं राज्ञां सकृद्द्विस्त्रिर्नादितं ह्लादितं तथा । दीर्घायुषां प्रयुक्तं ते हसितं च विदुर्बुधाः ॥११
पद्मपत्रनिभे नेत्रे धनिनां शिवनन्दन । भार्गवीमाप्नुयात्सोऽपि रक्तान्ते यस्य लोचने ॥१२
मधुपिङ्गैर्महात्मानो नरा ज्ञेयाः सुराधिप । भीरवो हि कृशाक्षास्तु चौरा मण्डलचक्रकैः ॥१३
क्रूराः केकरनेत्रास्तु[1] गम्भीरैरर्थसम्पदः । नीलोत्पलाभैर्वेदविदो भृशं कृष्णैस्तथार्थिता ॥
मन्त्रित्वं स्थूलसुदृशो वदन्ति भुवि तद्विदः ॥१४

लाल, पाँच लम्बे एवं पाँच पतले हों। जैसे—जिस पुरुष की नाभि, संधि (गांठ या स्वभाव) और वाणी ये तीनों गंभीर हों तथा हे दन्तोत्तम ! मुख, ललाट एवं छाती ये तीनों चौड़ी हों, वह निःसंदेह राजा होता है। उसी प्रकार ऊँचे स्थानों को भी कह रहा हूँ, सुनो।३-६। गले की घाँटी, मुख, नख, उरुस्थल, नाक और काँख इन छहों को विद्वानों ने ऊँचे बताये हैं।७। हे सुव्रत ! लिंग, पीठ, गला एव जाघ ये छोटे, नेत्र का बाहरी कोना, हाथ, पाँव, तालू ओंठ और जीभ एवं नख ये सातों लालरंग के होने चाहिये।८। हे देवश्रेष्ठ ! उसी भाँति अंगुलियों का पोर देह का ऊपरी चमड़ा, नख, केश एवं दाँत को पतला होना, विद्वानों ने बताया है।८-९। नाक, आँख, भुजा, स्तनों के बीच का भाग (छाती) एवं ठुड्डी ये पाच राजा के लिए बड़े बताये गये हैं।१०। उसी भाँति राजा की छींक कुछ ध्वनि के कारण और एक होती है। दो या तीन बार मधुर शब्द सहित छींक दीर्घजीवी लोगों की होती है, ऐसा विद्वानों ने बताया है।११। हे शिवनन्दन ! कमल के पत्ते की भाँति नेत्र, धनवानों के होते हैं। जिसके नेत्र के बाहरी कोने का भाग लाल रंग हो उसे भी पृथ्वी-लाभ होता है।१२। शहद की भाँति पिंगलवर्ण (भूरा लिये हुए लाल) वाले मनुष्य महात्मा होते हैं। हे सुराधिप ! पतली या छोटी आँख वाले भीरु और गोल पहिए की भाँति आख वाले चोर होते हैं।१३। कंजी आँख वाले निर्दयी एवं गहरी आँख वाले धनवान, नीलकमल की भाँति आँख वाले वैदिक-विद्वान् और अत्यन्त काली आँख वाले भी धनवान् होते हैं। संसार में नेत्र के विद्वानों ने बड़ी एवं सौन्दर्यपूर्ण आँख वालों को मंत्री होना बताया है।१४। श्याम वर्ण की आँख वाले सौभाग्यवान् एवं

---

१. क्रोधनाः कोकनेत्रास्तु।

श्यामाक्षाः सुभगा ज्ञेया दीनाक्षैश्च दरिद्रता । विस्तीर्णैर्भोगिनो ज्ञेया विपुलैश्च तथा गुह ॥१५
अभ्युन्नताभिर्ह्रस्वायुर्विशालाभिः सुखी भवेत् । दरिद्रो विषमाभिस्तु ततो ज्ञेयः सुरोत्तम ॥१६
भ्रुवो बालेन्दुसदृशा धनिनामार्भवोत्तम । दीर्घाभिर्निर्धनो ज्ञेयः संसक्ताभिस्तु सुव्रत ॥१७
क्षीणाभिरर्थहीनाः स्युर्नरा ज्ञेयाःसुरोत्तम । मध्ये नतभ्रुवो ये च परदाररतास्तु ते ॥१८
विरलैरुन्नतैः शङ्खैर्धन्याः[1] स्युर्नात्र संशयः । निम्नैः स्तुत्यर्थसंसक्ता[2] उन्नतैश्च जनाधिपाः ॥१९
विषमललाटा विधनाः सदा स्युर्देवसत्तम । आचार्याः शुक्तिसदृशैर्नराः स्युर्नात्र संशयः ॥२०
उन्नतशिरोभिराढ्या नरा ज्ञेयाः सदा गुह । वधबन्धभागिनो वीरा नरा निम्नललाटिनः ॥
कृशमुन्नतैश्च मूर्खाश्च कृपणाश्च तथा नतैः ॥२१
शुभावहं मनुष्याणां वदनं स्याद्यथा शृणु । अदीनमाननं स्निग्धं सस्मितं च विशेषतः ॥२२
साश्रुदीनं तथा रूक्षमस्निग्धं निन्दितं[4] गुह । असम्भाव्यं मुखं ज्ञेयं नराणां नगदारण ॥२३
अकम्पं शुभदं ज्ञेयं नराणां हसितं गुह । निमीलिताक्षं पापस्य हसितं चार्भवोत्तम ॥२४
समण्डलं शिरो यस्य स गवाढ्यो नरो भवेत् । छत्राकृति शिरो यस्य स भवेद्भूपतिर्नरः ॥२५
चिपिटाकारितशिरा हन्याद्वै पितरौ नरः । घण्टाकृति शिरोऽध्वानमसकृत्सेवते नरः ॥

दीनहीन आँखों वाला दरिद्र होता है। हे गुह ! उसी प्रकार चौड़ी और बड़ी आँखों वाले को भोगी जानना चाहिए।१५। हे सुरोत्तम ! चारों ओर से ऊँची आँख वाला अल्पायु, विशाल नेत्र वाला सुखी और विषम आँख वालों को दरिद्र जानना चाहिए।१६। धनवानों की भौहें नवीन चन्द्रमा (द्वितीया के चन्द्रमा) की भाँति होती है। हे सुव्रत ! सुरोत्तम ! भली-भाँति आपस में मिली हुई और लम्बी चौड़ी भौंह वाले निर्धन तथा दुबली-पतली भौंह वाले को भी निर्धन जानना चाहिए। जिसकी भौंह का मध्य भाग नीचा हो, वह व्यभिचारी होता है।१७-१८। विरल, ऊँची एवं शंख के समान, भौंह वाले मनुष्य निःसंदेह प्रतिष्ठित होते हैं। नीची भौंह वाले मनुष्य सदैव प्रशंसा करने में लगे रहते हैं और ऊँची भौंह वाले नराधिप होते हैं।१९। हे देवश्रेष्ठ ! विषम ललाट वाले सदैव धन-हीन रहते हैं। सीप की भाँति ललाट वाले निःसंदेह आचार्य होते हैं।२०। हे गुह ! ऊँचे शिर वाले सदा धनवान् होते हैं। नीचे ललाट वाले बंधनों से बँधे हुए होते हैं। और मारे जाते हैं। अत्यन्त ऊँचे मस्तक वाले मूर्ख एवं झुके हुए मस्तक वाले कृपण (कंजूस) होते हैं।२१। पुत्र ! मैं मनुष्यों के शुभसूचक मुख को बता रहा हूँ, सुनो ! उदार, कान्तिमान एवं विशेषकर मन्द मुस्कान वाला मुख उत्तम होता है।२२। हे गुह ! हे पर्वत विदारक ! आसुओं समेत, दीन-हीन, रूखा तथा कान्तिहीन मुख अशुभ कारक होता है। मनुष्यों के ऐसे मुख को सदैव अश्रेयस्कर जानना चाहिए।२३। हे गुह ! मनुष्यों की निष्कंप हँसी शुभदायक होती है। हे देवश्रेष्ठ ! पापी लोग आँख मूँदकर हँसते हैं।२४। चारों ओर से गोल शिर जिसका हो उसे अधिक गायें रहती हैं। जिसका शिर छत्ते के समान हो वह मनुष्य राजा होता है।२५। चिपटे शिर वाले मनुष्य माँ-बाप के घातक होते हैं। घंटे के समान शिर वाला पुरुष सदा पथिक बना रहता है। हे देवश्रेष्ठ ! मनुष्यों का नीचा शिर हानिकारक होता है।२६। गोल,

---

१. धनाढ्याः। २. सुतान्नसंसक्ताः। ३. अदीनानश्रुस्निग्धं च। ४. च तथा गुह।

निम्नं शिरोनर्थदं स्यान्नराणामर्भवोत्तम ॥२६
गुडैः स्निग्धैस्तथा कृष्णैरभिन्नाग्रैस्तथैव हि । केशैर्न चातिबहुलैर्मृदुभिः पार्थिवो भवेत् ॥२७
बहुलाः कपिलाः स्थूला विषमाः स्फुटितास्तथा । परुषा ह्रस्वातिकुटिला दरिद्राणां कचाः घनाः ॥२८
इत्युक्तं लक्षणं नृणां शुभं वाशुभमेव च । योषितां तदिदानीं ते लक्षणं वच्मि भीमज ॥२९
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृण्विदानीं महाबाहो स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । यन्मयोक्तं पुरा वीर नारदस्य महात्मनः ॥१
तत्त्वं विज्ञायते येन शुभाशुभमवस्थितम् । निन्दितं च प्रशस्तं च स्त्रीणां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२
मातरं पितरं चैव भ्रातरं मातुलं तथा । द्वौ तु बिम्बौ परीक्षेत समुद्रस्य वचो यथा ॥३
मुहूर्ते तिथिसम्पन्ने नक्षत्रे चाभिपूजिते । द्विजैस्तु सह वागम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित् ॥४
हस्तौ पादौ परीक्षेत अङ्गुलीर्नखमेव च । [1]पाणिमेव च जङ्घे च कटिनासोरु एव च ॥५

चिकने, काले, जिसका अग्रभाग फटा न हो, कोमल एवं अधिकता न हो, तो ऐसे केश वाला मनुष्य राजा होता है ।२७। अधिक कपिल, (भूरा) मोटे, विषम, अग्रभाग फूटे, कड़े, छोटे, अत्यन्त टेढ़े और घने केश दरिद्रों के होते हैं ।२८। हे भीमपुत्र ! मैंने इस प्रकार पुरुषों का शुभ एवं अशुभ-सूचक लक्षण बता दिया । अब स्त्रियों का शुभ-अशुभ लक्षण तुम्हें बता रहा हूँ ।२९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे महाबाहो ! इस समय स्त्री के उन लक्षणों को, जिन्हें पहले मैंने महात्मा नारद जी को बताया था, कह रहा हूँ, सुनो ! ।१। जिनके द्वारा स्त्रियों का शुभ-अशुभ मालूम होता है, उन अच्छे और बुरे लक्षणों को मैं बता रहा हूँ ।२। माँ-बाप, भाई और मामा (अर्थात् दोनों भातृकुल और पितृकुल) की परीक्षा समुद्र के वचनानुसार होनी चाहिए ।३। किसी शुभ-मुहूर्त, तिथि एवं अच्छे नक्षत्र में लक्षणों का विद्वान्, ब्राह्मणों के साथ जाकर कन्या को देखे ।४। पश्चात् हाथ, चरण, अंगुली, नख, करतल, जाँघ,

---

१. पाणिरेखा च ।

जघनोदरपृष्ठं च स्तनौ कर्णौ भुजौ तथा । जिह्वां चोष्ठौ च दन्ताश्च कपोलं गलकं तथा ॥६
चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्तथैव च । रोमराजिं[1] स्वरं वर्णमावर्तानि तु वा पुनः ॥७
यस्यास्तु रेखाग्रीवायां या[2] च रक्तान्तलोचना । यस्य सा गृहमागच्छेत्तद्गृहं सुखमेधते ॥८
ललाटे दृश्यते यस्यास्त्रिशूलं देवनिर्मितम् । बहूनां स्त्रीसहस्राणां स्वामिनीं तां विनिर्दिशेत् ॥९
राजहंसगतिर्यस्या मृगाक्षी मृगवर्णिका । समशुक्लाग्रदन्ता च कन्यां तामुत्तमां विदुः ॥१०
मण्डूककुक्षी या कन्या न्यग्रोधपरिमण्डला । एकं जनयते पुत्र सोऽपि राजा भविष्यति ॥११
हंसस्वरा मृदुवचा या कन्या मधुपिङ्गला । अष्टौ जनयते पुत्रान्धनधान्यविवर्धिनी ॥१२
आयतौ श्रवणौ यस्याः सुरूपा चापि नासिका । भ्रुवौ चेन्द्रायुधाकारौ सात्यन्तं सुखभागिनी ॥१३
तन्वी श्यामा तथा कृष्णा स्निग्धाङ्गी मृदुभाषिणी । शङ्खकुन्देन्दुदशना भवेदैश्वर्यभागिनी ॥१४
विस्तीर्णं जघनं यस्या वेदिमध्या तु या भवेत् । आयते विपुले नेत्रे राजपत्नी तु सा भवेत् ॥१५
यस्याः पयोधरे वामे हस्तेकर्णे गलेऽपि वा । मशकं तिलकं वापिसा पूर्वं जनयेत्सुतम् ॥१६
गूढगुल्फाङ्गुलिशिरा अल्पपार्ष्णिः सुमध्यमा । रक्ताक्षी रक्तचरणा सात्यन्तं सुखभागिनी ॥१७
कूर्मपृष्ठायतनखौ स्निग्धभावविवर्जितौ । वक्राङ्गुलितलौ पादौ कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥१८
येन केनचिदंशेन मांसं यस्या विवर्धते । रासभीं तादृशीं विद्यान्न सा कल्याणमर्हति ॥१९

कमर, नाक, घुटना, उदर, पीठ, स्तन, कान, भुजा, जीभ, ओठ, दाँत, कपोल, कण्ठ, आँख, मस्तक, शिर, केश, रोमावली, स्वर, वर्ण और नाभि की परीक्षा करे।५-७। जिसके गले में रेखा तथा आँख के समीप का भाग लाल रंग हो, वैसी स्त्री जिस घर में आती है उस घर में उत्तरोत्तर सुख की वृद्धि होती है।८। जिसके भाल में त्रिशूल का चिह्न हो, वह अनेक सहस्र स्त्रियों की अधिकारिणी होती है।९। जिसकी राजहंस की भाँति गति (चाल), मृग के समान आँखें तथा वर्ण एवं सम और कांतिमान् सामने वाले दाँत हों वह उत्तम कन्या बताई गई है।१०। जिसकी मेढक की भाँति कोख हो और वट वृक्ष के समान मण्डलाकार हो वह स्त्री एक पुत्र उत्पन्न करती है, जो राजा होता है।११। जिस कन्या का हंस के समान स्वर, कोमल वाणी एवं शहद के समान (भूरा लिए हुए लाल) वर्ण हो, वह धन-धान्य की वृद्धि करती हुई आठ पुत्रों को उत्पन्न करती है।१२। जिसके लम्बे कान, सुन्दर नाक और इन्द्रधनुप की भाँति भौंहें हों, वह अत्यन्त सुख का उपभोग करती है।१३। जिसकी पतली देह, साँवला रंग, चिकने एवं कान्तिमान् अंग, कोमल वाणी और शंख, कुंद एवं चन्द्र की भाँति दाँत हों, वह स्त्री ऐश्वर्य का उपभोग करती है।१४। जिसकी चौड़ी जाँघ, वेदी की भाँति (पतली) मध्यम भाग तथा लम्बी चौड़ी आँख हों, वह राजा की स्त्री होती है।१५। जिसके बायें स्तन, हाथ, कान एवं गले में मसा या तिल हो वह पहले पुत्र पैदा करती है।१६। जिसकी एँड़ी के ऊपर की गाँठ और नसें मांसल (मास से छिपी) अंगुलियाँअतिसमीप, छोटी एँड़ी, सुन्दर कमर, आँख और चरण लाल हों वह अत्यन्त सुख का उपभोग करती है।१७। जिसके कछुवे की पीठ की भाँति चौड़े नख, टेढ़ी अंगुली, कान्तिहीन चरणताल हो उस कन्या के साथ विवाह न करें।१८। जिसके किसी अंग का मांस बढ़ता हो, ऐसी स्त्रियों को (गधी के समान) जो कल्याण के सर्वथा

---

१. रोमराजिस्तथामध्यमावर्तांगानि। २. यायद्वक्रानुलोमगा।

पादे प्रदेशिनी यस्या अङ्गुष्ठं समतिक्रमेत् । दुःशीला दुर्भगा ज्ञेया कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२०
पादे मध्यमिका यस्याः क्षितिं न स्पृशते यदि । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा[1] कामचारिणी ॥२१
पादे अनामिका यस्याः क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा तृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२२
पादे कनिष्ठा यस्यास्तु क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा तृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२३
न देविका न धनिका न धान्यप्रतिनामिका । गुल्मवृक्षसनाम्नी च कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२४
इन्द्रचन्द्रादिपुरुषसनाम्नी च यदा भवेत् । नैताःपतिषु रज्यन्ते याश्च नक्षत्रनामिकाः ॥२५
आवर्तः पृष्ठतो यस्या नाभिं समनुविन्दति । तदपत्यं भवेद्ध्रस्वं ह्रस्वायुश्च विनिर्दिशेत् ॥२६
पृष्ठावर्ता पतिं हन्ति नाभ्यावर्ता पतिव्रता । कट्यावर्ता तु स्वच्छन्दा न कदाचिद्विरज्यते ॥२७
यस्यास्तु हसमानाया गण्डे जायेत् कूपकम् । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा कार्यकारिणी ॥२८
यस्यास्तु गच्छमानायाष्टिट्टीकायति जङ्घिका । पुत्रं व्यवस्येत्सा कर्तुं पतित्वे नात्र संशयः ॥२९
स्थूलपादा च या कन्या सर्वांगेषु च लोमशा । स्थूलहस्ता च या स्याद्वै दासीं तां निर्दिशेद्बुधः ॥३०
यस्याश्चोत्कटकौ[2] पादौ मुखं च विकृतं भवेत् । उत्तरोष्ठे च रोमाणि सा क्षिप्रं भक्षयेत्पतिम् ॥३१
त्रीणि यस्याः प्रलम्बन्ते ललाटमुदरं स्फिचौ । त्रीणि भक्षयते सा तु देवरं श्वशुरं पतिम् ॥३२

अयोग्य है, जानना चाहिए।१९। जिसके चरण की तर्जनी अंगुली अंगूठे के ऊपर चढ़ी रहती है, उसे दुःशीला और भाग्यहीन जानकर छोड़ देना चाहिए।२०। जिसके चरण की मध्यमा पृथ्वी में न छू जाय, वह कुमारावस्था में रमण तो नहीं करती, पर आगे चलकर स्वतंत्र व्याभिचारिणी होती है।२१। जिसकी अनामिका यदि पृथ्वी में न छू जाय तो वह दूसरे पति को भी मार कर तीसरे के साथ रहे।२२। जिसकी कनिष्ठा भी पृथ्वी में न छू जाय वह भी दूसरे पति को मार कर तीसरे पति के साथ रहती है।२३। किसी देवी के नाम तथा धन, धान्य गुल्म (हाथी, घोड़े, तृण एवं लता) और वृक्ष नाम वाली कन्याओं के साथ विवाह नहीं करना चाहिए।२४। इन्द्र, चन्द्रादि, पुरुष एवं नक्षत्र नाम वाली कन्यायें भी अपने पति से प्रेम नहीं करती हैं।२५। जिसकी पीठ और नाभि में भौंरी हो, तो उसकी सन्तान छोटी एवं अल्पायु होती है।२६। पीठ से भौंरी हो तो पति का नाश करने वाली, नाभि में भौंरी हो, तो उसकी संतान छोटी एवं अल्पायु होती है तो वह ऐसी स्वतन्त्र होती है कि कभी विरागन नहीं होती है।२७। जिसके कपोल में हँसते समय गड्ढे हो जाते हैं वह कुमार अवस्था में रमण तो नहीं करती पर आगे चलकर स्वतन्त्र काम करने वाली होती है।२८। जिसके चलते समय गुल्फ,और जाँघ के मध्य किसी स्थान में टिक-टिक की आवाज होती है, वह ऐसी व्यभिचारिणी होती है कि पुत्र को भी पति बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है इसमें सन्देह नहीं।२९। जिस कन्या के मोटे पैर, समस्त शरीर में रोम तथा मोटे हाथ हों, उसे दासी होना विद्वानों ने बताया है।३०। जिसके पैर का ऊपरी भाग गोला, मुख में विकार और ऊपर वाले ओठ में रोम हों, वह शीघ्र पति का नाश करती है।३१। जिसके मस्तक, उदर और कमर का पिछला भाग तीनों अधिक लम्बे हों, वह देवर, ससुर और पति का शीघ्र नाश करती है।३२। सुन्दर चरित्र, गुरु-भक्त, पतिपरायण और

---

१. दुःखदा कार्यनाशिनी । २. चोत्कम्पकौ ।

समुद्‌भूषितचारित्रा गुरुभक्ता पतिव्रता । देवब्राह्मणभक्ता च मानुषीं तां विनिर्दिशेत् ।।३३
नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रियवादिनी । अल्पाशिन्यल्परोषा च देवतां तां विनिर्दिशेत् ।।३४
प्रच्छन्नं कुरुते पापमपवादं च रक्षति । हृदयं स्याच्च दुर्ग्राह्यं मार्जारीं तां विनिर्दिशेत् ।।३५
हसते क्रीडते चैव क्रुद्धा चैव प्रसीदति । नीचेषु रमते नित्यं रासभीं तां विनिर्दिशेत् ।।३६
प्रतिकूलकरी नित्यं बन्धूनां भर्तुरेव च । स्वच्छन्दे ललितां चैव आसुरीं तां विनिर्दिशेत् ।।३७
[1]बह्वाशी बहुवाक्या च नित्यं चाप्रियवादिनी । हिनस्ति स्वपतिं या तु राक्षसीं तां विनिर्दिशेत् ।।३८
शौचाचारपरिभ्रष्टा रूपभ्रष्टा भयङ्करा । प्रस्वेदमलपङ्का च पिशाचीं तां विनिर्दिशेत् ।।३९
नित्यं स्नातां सुगन्धां च मांसमद्यप्रियादिनीम् । वृक्षोद्यानप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ।।४०
चपला चञ्चला चैव नित्यं पश्येद्दिशस्तथा । चलस्वभावा लुब्धा[2] च वानरीं तां विनिर्दिशेत् ।।४१
चन्द्राननां शुभाङ्गीं तु मत्तवारणगामिनीम् । आरक्तनखहस्तां तु विद्याद्विद्याधरीं बुधः ।।४२
वीणावादित्रशब्देन वंशगीतरवेण च । पुष्पधूपप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ।।४३

देवता एवं ब्राह्मणों की भक्ति करने वाली स्त्री को मानुषी स्त्री बताया गया है ।३३। उसी प्रकार नित्य स्नान एवं सुगंध सेवन करने बाली मधुर बोलने वाली, अल्प भोजन और अल्प क्रोध करने वाली स्त्री को देवता बताया गया है ।३४। गुप्त पाप करने वाली, निन्दित कर्म करके उससे बचाव करने वाली तथा जिसके हृदय का भाव जल्दी न जाना जा सके, उसे मार्जारी (बिल्ली) जानना चाहिए ।३५। हँसते और खेलते समय भी जो क्रोधी एवं प्रसन्न होती है, तथा नीचों से सदा प्रेम करती है, उसे रासभी (गधी) कहते हैं ।३६। सदा अपने पति एवं भाइयों के प्रतिकूल कार्य करने वाली और स्वतंत्र विहार करने वाली स्त्री को आसुरी कहते हैं ।३७। अधिक भोजन तथा अधिक एवं सदा अप्रिय बोलने वाली और अपने पति को मारने वाली स्त्री को राक्षसी कहते हैं ।३८। शौच (बाहरी शुद्धि) और आचार से भ्रष्ट, कुरूप, भयंकर स्वभाव, पसीना, मल और कीचड़ लगाने वाली स्त्री को पिशाची कहते हैं ।३९। नित्य स्नान और सुगंध लगाने वाली, मांस मद्य और प्रिय वस्तु सेवन करने वाली एवं बगीचे में विहार करने वाली को गान्धर्वी कहते हैं ।४०। जो स्त्री स्वयं चपल, चञ्चल नेत्र, सदा इधर-उधर देखने वाली एवं स्वभाव की अस्थिर हो, और लोभी हो उसे वानरी कहते हैं ।४१। चन्द्रमा की भाँति मुख, अच्छे लक्षणों से भूषित देह, मतवाले हाथी के समान चाल तथा नख और हाथ भली भाँति लाल रंग के हों उसे पंडित लोग विद्याधरी कहते हैं ।४२। वीणा, मृदग और वंशी की तान में सदैव लीन रहकर पुष्पों और धूप में निमग्न रहने वाली को गान्धर्वी कहते हैं ।४३

---

१. कर्मण्यण्, ततो ङीप् । २. क्रुद्धा च ।

सुमन्तुरुवाच

इत्येवमुक्त्वा स महानुभावो जगाम वेधा निजमन्दिरं वै।
स्त्रीणां तथा पुंस्त्ववतां च वीर यल्लक्षणं पार्थिव लोकपूज्यम् ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थी कल्पे स्त्रीलक्षणवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।२८।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

गणपतिकल्पवर्णनम्

शतानीक उवाच

गकाराक्षरदेवस्य गणेशस्य महात्मनः। आराधनविधिं ब्रूहि साङ्गं मन्त्रसमन्वितम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते। यथेष्टं[1] चेष्टतः सिद्धिः सदा भवति कामिका ॥२
श्वेतार्कमूलं सङ्गृह्य कुर्याद्गणपतिं बुधः। अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु पद्मासनगतं तथा ॥३
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च सर्वाभरणभूषितम्। नागयज्ञोपवीताङ्गं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥४
दन्तं सव्ये करे दद्याद्द्वितीये चाक्षसूत्रकम्। तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं न्यसेत् ॥५

सुमन्तु ने कहा—हे वीर! इस प्रकार ब्रह्मा स्त्रियों और पुरुषों के उन लक्षणों को, जो लोगों को प्रिय हैं, कह कर अपने भवन चले गये।४४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के चतुर्थी कल्प में स्त्री लक्षण नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।२८।

अध्याय २९

गणपति कल्प वर्णन

शतानीक ने कहा—'ग' अक्षर वाले उन पूज्य गणेशदेव की आराधना करने की वह विधि, जिसमें अंगन्यास और मंत्र हो, आप हमें कृपा करके बताइये।१

सुमन्तु बोले—वह सदैव मनोरथ सफल करने वाली सिद्धि है, जिसमें तिथि, नक्षत्र और उपवास की आवश्यकता नहीं रहती है।२। सफेद अर्क (मदार) के जड़ के भाग की, गणेश की एक प्रतिमा, जो अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर एवं कमल के आसन पर स्थित हो, विद्वानों को चाहिए सप्रयत्न बनावें।३। जिसमें चार भुजाएँ, तीन नेत्र, सम्पूर्ण आभूषणों से सुसज्जित देह में सर्प की भाँति यज्ञोपवीत और भाल में चन्द्रमा हों।४। उनके बायें हाथ में दाँत, दूसरे में रुद्राक्ष की माला, तीसरे में फरसा एवं चौथे में

---

१. दद्यात्पाद्यानि तस्य वै।

कुङ्कुमं चन्दनं चापि स्नानालम्भनमुच्यते । वासोभिर्भूषणै रक्तैर्माल्यैश्चाराधयेद्गणम् ॥६
धूपेन च सुगन्धेन मोदकैश्चापि पूजयेत् । एवं पूज्याग्रतस्तस्य भोजयेद्ब्राह्मणं बुधः ॥७
वामनं कुब्जकं चापि भोजयेत्पुरतो द्विजम् । आशीर्वादं ततस्तस्मात्प्राप्य सिद्धिमवाप्नुयात् ॥८
भक्त्या कुरुकुलश्रेष्ठ [१]शृणुमन्त्रपदानि वै । गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः ॥९
गां नमो हृदयं ज्ञेयं गीं शिरः परिकीर्तितम् । शिखा च गूं नमो ज्ञेयो गैं नमः कवचं स्मृतम् ॥१०
गौं नमो नेत्रमुद्दिष्टं गः फट् कामास्त्रमुच्यते । आगच्छोल्कामुखायेति मन्त्र आवाहने ह्ययम् ॥११
गं गणेशाय नमो गन्धमन्त्रः प्रकीर्तितः । पुष्पोल्काय नमः पुष्पमन्त्र एष प्रकीर्तितः ॥१२
धूपोल्काय नमो धूपमन्त्र एष प्रकीर्तितः । दीपोल्काय नमो दीपमन्त्र एष प्रकीर्तितः ॥१३
ॐ गं महोल्काय नमो बलिमन्त्रः प्रकीर्तितः । ओं संसिद्धोल्काय नमोमन्त्रश्चायं विसर्जने ॥१४
ओं महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् गायत्री जपः पूर्वतः ॥१५
महागणपतये वीर[१] स्वाहा दक्षिणतः सदा । महोल्काय पश्चिमतः कूश्माण्डायोत्तरेण तु ॥
एकदन्तत्रिपुरान्तकाय आग्नेय्यां वीर निर्दिशेत् ॥१६
ओं शिवदत्त विकटहरहास प्राणाय स्वा नैऋत्याम् । [२]तुलम्बनात्यचलदन्तकाय स्वाहा वायव्याम् ॥१७
पद्मदन्ष्ट्राय नरायेति ऐशान्यां होमयेद्बुधः । हुं फट् हुं फट् हस्ततालध्वनिर्हसनकूर्दनः ॥१८

मोदक (लड्डू) रखे।५। पश्चात् कुंकुम, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और लाल फूलों की माला से गणपति की सावधान होकर आराधना करनी चाहिए। धूप, सुगंधित वस्तु (इत्र) एवं लड्डू से पूजा करके उन्हीं के सामने ब्राह्मणों को भोजन कराये।६-७। उस समय वामन (नाटे) और कूबड़े ब्राह्मण को भी उनके सामने भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद लेने पर सिद्धि प्राप्ति होती है।८। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! भक्तिपूर्वक अब मंत्र का विधान सुनो ! मैं कह रहा हूँ, प्रणव (ओंकार) के सहित 'गं स्वाहा' यही मूल मंत्र है।९। 'गां नमः' कहकर हृदय, 'गीं नमः से शिर, 'गूं नमः' से शिखा चोटी, गैं नमः से कवच एवं 'गौं नमः' से आँखों को छूकर 'गः फट्' नामक कामास्त्र का उच्चारण करे। 'उल्कामुखाय नमः' कहकर आवाहन करना चाहिए।१०-११। 'गं गणेशाय नमः' से गंध, 'पुष्पोल्काय नमः' से फूल, 'धूपोल्काय नमः' से धूप एवं 'दीपोल्काय नमः' से दीप दर्शन करना चाहिए।१२-१३। पश्चात् 'ओं गं महोल्काय नमः' से बलि प्रदान और ओं संसिद्धोल्काय नमः' से विसर्जन करे।१४। 'ओं महाकर्णाय' आदि इस गायत्री मंत्र से पूरब 'महागणपतये स्वाहा' से दक्षिण, 'महोल्काय' से पश्चिम, 'कूष्माण्डाय' से उत्तर, 'एकदंत त्रिपुरांतकाय' से आग्नेय, 'ओं शिवदत्त आदि स्वाहा' से नैऋत्य, 'तुलम्ब आदि स्वाहा से' वायव्य तथा 'पद्मदंष्ट्राय आदि' से ईशान, कोण में पूजन हवन करके 'हुंफट् हुं फट्' के उच्चारणपूर्वक हाथ की ताली बजाते हुए हँसे और कूदे।१५-१८। देव की मुद्रा बनाकर पश्चात् हवन आरम्भ करना चाहिए। यदि वह वशीभूत न हो, तो काले

---

१. अयं वीरशब्दोऽन्यत्र नास्ति। २. ओं उनचावनस्नकाय स्वाहा।

मृदनर्तनगणपतिर्देवस्य मुद्रां ततो होमं समाचरेत् । न यदा वश्या भवति ॥
कृष्णतिलाहुतिमष्टसहस्रं जुहुयात्त्रिरात्रेण राजा वश्यो भवति ॥१९
तिलयवहोमेन सर्वे जनपदा वश्या भवन्ति । अति रूपवती कन्या गच्छन्तमनुच्छति ॥२०
चणतन्दुलहोमेनाजितो भवेत् । निम्बपत्रसमैस्तैलैर्विद्वेषणं करोति ॥
सोमग्रहणे उदकमध्ये अवतीर्य अष्टसहस्रं जपेत् । सङ्ग्रामे अपराजितो भवति ॥२१
(ॐ लम्बराज्ञे नमः ।)
आदित्याभिमुखो भूत्वा अष्टसहस्रं जपेत् । आदित्यो वरदो भवति ॥२२
शुक्लचतुर्थ्यामुपोष्य गन्धपुष्पादिभिरर्चनं कृत्वा तिलतन्दुलाञ्जुहुयात् । शिरसा धारयंस्तैर-
पराजितो भवति ॥२३
अपामार्गसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य एकविंशत्याहुतीर्यो जुहुयात् । त्रिरात्राच्छत्रुं व्यापादयति ॥२४
अथोत्तरेण मन्त्रं व्याख्यास्ये । वृक्षमूले कज्जलं सङ्गृह्य सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा नेत्राण्यञ्जयेद्यं
पश्यति स वशी भवति ॥२५
पुष्पं फलं मूलं चाष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यस्मै ददाति स वश्यो भवति ॥२६
यत्किञ्चिन्मूलमन्त्रेण करोति तत्सिध्यति । सर्वे ग्रहाः सुप्रीता भवन्ति ॥
नगरद्वारं गत्वा अष्टसहस्रं द्वारं निरूपयेत् ॥२७
पुरं द्वारेण गृह्यते प्राङ्मुखो यजति स उच्चाटयति । सम्मुखो जपति चोरान्विद्रावयति ॥२८

तिल से तीन रात तक आठ हजार आहुति डाले, इससे राजा वश में होता है।१९। तिल और जवा से होम करने पर सभी मनुष्य वश में होते हैं। परमसुन्दरी कन्या तो उसके पीछे-पीछे चलती है।२०। चना एवं चावल के हवन से पुरुष अजेय होता है। नीम की पत्ती और तेल होम से शत्रु विद्वेषण होता है। चन्द्रग्रहण में जल के भीतर आठ हजार मन्त्र का जप करे तो युद्ध में कभी पराजय न हो।२१। 'ओं लम्बराज्ञे नमः' इस मंत्र का आठ हजार जप सूर्य की ओर मुख करके करे तो प्रसन्न होकर आदित्य वर प्रदान करते हैं।२२। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को उपवास कर गंध-पुष्पों से पूजा करके तिल और चावल का होम करे और शिर से धारण करे तो वह अजेय होता है।२३। जो अपामार्ग (चिचिरा) की लकड़ी जलाकर अग्नि में इक्कीस आहुति तीन दिन तक अर्पित करता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं।२४। मैं अब मन्त्र की व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो! जो मनुष्य पेड़ की जड़ का काजल बनाकर सात बार उसे अभिमंत्रित कर आँख में लगाकर जिसे देखता है वह वश में हो जाता है।२५। फल, फूल एवं मूल को आठ हजार बार अभिमंत्रित करके जिसे दिया जाता है वह वश में होता है।२६। उसी मूल मंत्र द्वारा जो कुछ किया जाता है वह सिद्ध होता है। सभी ग्रह, प्रसन्न होते हैं। जो नगर के दरवाजे पर जाकर आठ हजार बार जप एवं पूरब की ओर मुख करके पूजन करता है, वह शत्रु का उच्चाटन, संमुख जप करने से चोरों का नाश, तृणों का काटना, काठ में छेद

तृणानि लूनयति । काष्ठानि च्छेदयति ।।२९

[1]गजराजेन युद्धयति । जलमध्ये सप्तरात्रं जपेत् । अकाले वर्षयति । कूपतडागाञ्छोषयति ।।

प्रतिमां नर्तयति । आकर्षयति । स्तम्भयति । योजनशतात्स्त्रीपुरुषानाकर्षयति ।।३०

गोरोचनां च सहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा हस्ते बद्धा योजनशतसहस्रं गत्वा पुनरागच्छति ।।३१

अथ मारयितुकामः खदिरकीलकं कृत्वा स्त्रीपुरुषं विचिन्त्य हृदये निखनयेत् । क्षणादेव म्रियते ।।३२

सर्वपातकविमुक्तो भवति । अग्नितेजाः सर्वेभ्योऽपराजितो भवति ।।३३

ॐ वक्रतुण्डाय स्वाहा । ॐ एकदंष्ट्राय स्वाहा । ॐ कृतकृष्णाय स्वाहा । ॐ गजकर्णाय स्वाहा ।।

ॐ लम्बोदराय स्वाहा । ॐ विकटाय स्वाहा । ॐ धूम्रवर्णाय स्वाहा । ॐ गगनकूजाय स्वाहा ।।

ॐ विनायकाय स्वाहा । ॐ गणपतये स्वाहा । ॐ हस्तिमुखाय स्वाहा ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे गणपतिकल्पवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

विनायकपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

निम्बमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा नित्यधूपगन्धादिभिरर्चयित्वा प्रच्छन्नं शिरसि बद्धा गच्छेत् ।।

और हाथी की लड़ाई करा देता है। जल के बीच में सात रात जप करने से अकाल वर्षा, कूएँ-तालाब का सूखना, मूर्ति को नचाना, आकर्षण एवं स्तम्भन और सैकड़ों योजन से स्त्री-पुरुष को आकर्षित करता है।२७-३०। गोरोचन को हजार बार अभिमंत्रित करके हाथ में बाँधने से हजारों योजन जाकर भी फिर वापस आता है।३१। और मारने की इच्छा हो तो चाहे स्त्री हो या पुरुष उसके (शत्रु की प्रतिमा के) हृदय में खैर की (लकड़ी की) कील गाड़ देने से उसी समय वह मृतक हो जाता है।३२। इस प्रकार गणपति की पूजा से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है और अग्नि के समान तेजस्वी होकर सदैव अजेय रहता है।३३। हवन के समय 'वक्रतुंडाय' आदि मंत्रों का उच्चारण कर हवन करना चाहिए।३४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में गणपति कल्पवर्णन नामक उन्नतीसवाँ अध्याय समाप्त।२९।

अध्याय ३०

विनायक पूजा विधि का वर्णन

सुमन्तु बोले—नीम की लकड़ी की गणेश जी की एक प्रतिमा, जो अँगूठे के पोर के बराबर हो,

---

१. गजं गजेन।

सर्वजनप्रियो भवति ! श्वेतार्कमूलाङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा धूपादिभिरर्चयित्वा सर्वान्वर्णान्वशमानयति ॥
श्वेतचन्दनमङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा पुष्पगन्धादिभिरर्चयित्वा शुक्लचतुर्थ्यामष्टम्यां वा बलिं कुर्यादष्टसहस्रं जुहुयाद्दध्ना पायसेन राजानं वशमानयति ।
रक्तचन्दनमयं गणपतिमङ्गुष्ठमात्रं कृत्वा भौतिकं बलिं दद्याद्दधिमधुघृताहुतीनां गणपतिमष्टसहस्रं जुहुयादात्मप्राणिकां प्रजां वशमानयति । रक्तकरवीरमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् ॥
रक्तपुष्पगन्धोपहारैर्बलिं दद्यात् । तिललवणघृतेनाष्टसहस्रं जुहुयात् । दशग्रामान्वशमानयति ॥
श्वेतकरवीराङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा तिलपिष्टदधिघृतक्षीरहरिद्रामिश्रेणाष्टसहस्रं जुहुयाद्वेश्यां वशमानयति ॥
अश्वत्थमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वागन्धपुष्पधूपबलिं दत्त्वा शतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति ॥
अर्कमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपबलीन् दद्यात् । तिन्दुकाष्टशतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति ॥
बिल्वमूलमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा त्रिमध्वक्तानामष्टसहस्रं जुहुयाद्राजामात्यान्वशमानयति ॥

शिरसि धूपान्धृत्वा गच्छेद्राजद्वारं विग्रहे जयो भवति ।
हस्तिदन्तमृत्तिकामयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् ॥

बनाकर नित्य धूप एवं गंधादि से पूजन करते हुए उसे शिर में गुप्त रूप से बाँध कर (कहीं भी) जाये तो वह मनुष्य सभी लोगों का प्रिय होता है । सफेद अर्क (मदार) के जड़ की उतनी ही बड़ी मूर्ति गणेश जी की बनाकर धूप आदि से पूजन करे तो सभी जाति के लोग वश में होते हैं । शुक्लपक्ष की चतुर्थी अथवा अष्टमी के दिन सफेद चन्दन की गणपति की वैसी ही मूर्ति बनाकर फूलों से पूजन करके (प्रज्वलित अग्नि में) दही और खीर की आठ हजार आहुति डालने के पश्चात् उन्हें बलि प्रदान करने से राजा वश में होता है । उसी भाँति लाल चन्दन द्वारा गणपति की मूर्ति बनाकर पूजनोपरांत प्रज्वलित अग्नि में दही, शहद और घी की आठ हजार आहुति डालने एवं भूतों की बलि प्रदान करने से प्रजा उसके वश में हो जाती है । लाल करवीर (कनेर) की अँगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनावे, लालफूल एवं गंधादि से पूजन कर बलि प्रदान करे तथा अग्नि में तिल, नमक और घी की आठ हजार आहुति डाले, तो दश गाँव की समस्त जनता वश में होती है । सफेद करील की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर पूजनोपरान्त तिल, दही, घी, दूध और हल्दी मिलाकर आठ हजार की आहुति डालने से वेश्या वश में होती है । पुनः पीपल की उसी भाँति गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, पुष्प, धूप और बलि प्रदान कर सौ आहुति डाले तो शत्रुवश में होता है । अर्क (मदार) की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, फूल, धूप और बलि देवे तथा तेंदू की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में सौ आहुति डाले तो शत्रुवश में होता है। बेल की जड़ की गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प और धूप से पूजन कर तीन बार शहद में डुबोकर आठ हजार आहुति डाले तो राजा का मंत्री वश में होता है । पुनः शिर को धूप से धूपित कर राजा के यहाँ जाये

गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा कृष्णचतुर्थ्यां नग्नो भूत्वाभ्यर्चयेत्।
सप्त वाराञ्जपेन्नित्यं[1] नारीणां सुभगो भवति ॥
वृषभशृङ्गमृत्तिकाङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कारयेत्।
गन्धपुष्पार्चितं कृत्वा गुग्गुलुधूपं दद्याद्घोषपतिं वशमानयति ॥

अथ वा वल्मीकमृत्तिकांगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् । कटुकतैलेन प्रतिमां लेपयेत् ॥ उन्मत्तककाष्ठेनाग्निं प्रज्वाल्याहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात्तिलसर्षपमिश्रेण सर्वधूपं दद्यात्त्रिकटुकेन लेपयेत् ॥ अगरुधूपं दद्याद्राजानं वशमानयति । परेषां च वल्लभो भवति । रक्तचन्दनेनात्मानं धूपयेत्सुभगो भवति ॥ ॐ गणपतये वक्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेतिनिनादाय[2] चतुर्भुजाय त्रिनेत्राय मुशलपाशवज्रहस्ताय सर्वभूतदमनाय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराज्यसमीहनाय राजानमिह वशमानय हन हन पच पच वज्राङ्कुशेन गणेश फट् स्वाहा ।
ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः स्वाहा नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य ।
ॐ कः शिरः, ॐ खः शिखा, ॐ गः हृदयम्, ॐ गुः वक्त्रं, ॐ गैं नेत्रम् । ॐ घः कवचम्, ॐ ङ आवाहनं हृदयस्य आवाहनाङ्गानिभवन्ति ॐ नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य, ॐ गाः शिरः, ॐ गैः नमः शिखा ॐ गौः नमः कवचम्, ॐ गं नमः नेत्रे, ॐ गः फट् अस्त्रम् ॥

तो लड़ाई (वाद-विवाद) में विजय होती है। कृष्णपक्ष की चतुर्थी के दिन नग्न होकर हाथी के दाँत द्वारा खोदी हुई मिट्टी की गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, पुष्प और धूप से सात रात पूजन करे तो वह स्त्रियों का प्रिय होता है। बैल के सींग द्वारा खोदी हुई मिट्टी की उसी प्रकार गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध-पुष्प से पूजन कर गूगुल की धूप दे तो गायें और अहीर जहाँ रहते हों उनके स्वामी वश में होते हैं। वल्मीक की मिट्टी की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर कड़वा तेल से प्रतिमा का लेपन करे। धतूर की लकड़ी जलाकर तिल और सरसों की आठ हजार आहुति डाले तथा सर्वोषधि का धूप दे और सोंठ मरिच तथा पीपरि का लेपन करके अगुरु की धूप दे तो राजा वश में होता है तथा वह और लोगों का भी प्रिय भाजन होता है किन्तु लाल चन्दन से अपने को धूपित करे तो स्वयं सुभग होता है। उसका मंत्र यह है—

मंत्र—ओं गणपतये वक्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेति निनादाय चतुर्भुजाय त्रिनेत्राय मुशलपाशवज्रहस्ताय सर्वभूतदमनाय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराज्यसमीहनाय राजानमिह वशमानय हन हन पच पच वज्रांकुशेन गणेश फट् स्वाहा। 'ओं' गां गीं गूं गैं गौं गः स्वाहा नमः' यह मूल मंत्र का हृदय है। ओं 'कः' से शिर, ओं खः से शिखा, ओं गः से हृदय, ओं गुः से मुख, ओं गैं से नेत्र, ओं गः से कवच, ओं ङ से हृदय का आवाहन करे। 'ओं नमः यह मूलमंत्र का हृदय है, ओं गाः शिर, ओं गैः नमः से शिखा, ओगौः नमः से कवच, ओं गं नमः से नेत्र, ओं गः फट् अस्त्रम्। ओं

---

१. सप्तरात्रम्। २. गुग्गुलचतुर्भुजाय।

ॐ अङ्गुष्ठोल्काय स्वाहा आवाहनं हृदयस्य स्वाहा विसर्जनं हृदयस्य ॐ गन्धोल्काय स्वाहा ॥
गन्धमन्त्रः ॥ ॐ धर्मभूतोल्काय स्वाहा ॥ पुष्पमन्त्रः ॥ दुर्जयाय[1] पूर्वेण । ॐ धूर्जटये दक्षिणेन ।
ॐ लम्बोदराय पश्चिमतः । ॐ गणपतये उत्तरतः । ॐ गणाधिपतये ऐशान्याम् । ॐ महागणपतये
आग्नेय्याम् । ॐ कूष्माण्डाय नैर्ऋत्याम् ।
ॐ एकदन्तत्रिपुरघातिने[2] त्रिनेत्राय वायव्याम् । ॐ महागणपतये विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नोदन्तिः प्रचोदयात् ॥ गायत्री ॥
पद्मदंष्ट्रामालाप्रकर्षणीपरश्वंकुशपाशपटहमुद्रा अष्टौ मुद्रा दर्शयित्वा ततः कर्माणि कारयेत् ॥
कृष्णतिलाहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । राजानं वशमानयेत् ॥
आवाहनाद्येकादशमुद्रा नैवेद्यान्तं क्रमाद्दर्शयेत् ॥
आराधयेद्येन विधिना त्रिनेत्रं शूलिनं हरम् । तेनैवाराधयेद्देवं विघ्नेशं गणपं नृप ॥१
तदेव मण्डलं चास्य अङ्गन्यासस्तथैव च । ऋते मन्त्रपदानीह समानं सर्वमेव हि ॥२
पूजयेद्यस्तु विघ्नेशमेकदन्तमुमासुतम् । नश्यन्ति तस्य विघ्नानि न चारिष्टं कदाचन ॥३
यश्चोपवासं कृत्वा तु चतुर्थ्यां पूजयेन्नरः । सर्वे तस्य समारम्भाः सिध्येयुर्नात्र संशयः ॥४
यस्यानुकूलो विघ्नेशः शिवयोः कुलनन्दन । तस्यानुकूलं सर्वं स्याज्जगद्वै सर्वकर्मसु ॥५
तस्मादाराधयेदेनं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । कुङ्कुमागुरुधूपेन तथैवोण्डीरकस्रजा ॥
[3]पललोल्लापिकाभिश्च जातिकोन्मत्तकैस्तथा ॥६

अंगुष्ठोल्काय स्वाहा से हृदय का आवाहन और विसर्जन करे । ओं धर्मभूतोल्काय स्वाहा से गंध प्रदान करे। ओं दुर्जयाय से पूर्व, ओं धूर्जटये से दक्षिण, ओं लम्बोदराय से पश्चिम ओं गणपतये से उत्तर, ओं गणाधिपतये से ईशान, ओं महागणपतये से आग्नेय, ओं कूष्माण्डाय से नैर्ऋत्य, ओं एकदंतत्रिपुरघातिने त्रिनेत्राय से वायव्य में पुष्प अर्पित करे पश्चात् 'महागणपतये आदि गायत्रीमंत्र के जप करें । 'पद्म, दंत, माला, प्रकर्षणी, परशु, अंकुश, पाश और पटह नामक इन आठों मुद्राओं को दिखाकर कार्य आरम्भ करे । काले तिल की आठ हजार आहुति डालने से राजा वश में होता है । इसी भाँति क्रमशः आवाहनादि से नैवेद्य तक ग्यारहों मुद्राओं को दिखाना चाहिए । तीन आँख वाले तथा शूल लिए शंकर जी की जिस विधि से आराधना की जाती है उसी भाँति विघ्नेश गणपति देव की भी पूजा करनी चाहिए ।१। केवल मन्त्र को छोड़कर वही मंडल, वही अंगन्यास एवं सभी कुछ समान ही कहा गया है । २। इस प्रकार एक दाँत वाले, उमा के पुत्र गणेश की ज, पूजा करता है, उसके सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और कभी अरिष्ट नहीं होता ।३। जो मनुष्य चतुर्थी में उपवास कर उनकी पूजा करता है, उसके आरंभ किये हुए सभी कार्य निःसन्देह सफल होते हैं।४। हे कुलनन्दन ! उमा और महेश के पुत्र गणेश जिसके अनुकूल हों, उसके सभी कार्यों में सारा संसार सहायक रहता है । इसलिए श्रद्धा और भक्तिपूर्वक शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में तोरण वंदनवार बांधकर कुंकुम, गूगुल की धूप, कमल के फूल की माला, कूटा हुआ तिल, जूही एवं धतूर का फूल इन सामग्रियों से

---

१. दुर्गायै पूर्वे । परं चासाधीयानप्रकृतत्वात् । २. एकदंतत्रिपुरान्तकाय । ३. पललान्नविकारैश्च जातीकुरवकैस्तथा ।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु विधिनानेन पूजयेत् । तस्य सिध्यति निर्विघ्नं सर्वकर्म न संशयः ॥७
एकदन्ते जगन्नाथे गणेशे तुष्टिमागते । पितृदेवमनुष्याद्याः सर्वे तुष्यन्ति भारत ॥८
तस्मादाराधयेदेनं सदा भक्तिपुरःसरम् । कर्णलेपैस्तुण्डिकाभिर्मोदकैश्च[1] महीपते ॥
पूजयेत्सततं देवं विघ्नविनाशाय दन्तिनम् ॥९

श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे विनायकपूजाविधिनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवाचतुर्थी पूजनम्

सुमन्तुरुवाच

शिवा शान्ता सुखा राजंश्चतुर्थी त्रिविधा स्मृता । मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवा लोकेषु पूजिता ॥१
तस्यां स्नानं तथा दानमुपवासो जपस्तथा । क्रियमाणं शतगुणं प्रसादाद्दन्तिनो नृप ॥२
गुडलवणघृतानां तु दानं शुभकरं स्मृतम्[2] । गुडापूपैस्तथा वीर पुण्यं ब्राह्मणभोजनम् ॥३
यास्तस्यां नरशार्दूल पूजयन्ति सदा स्त्रियः । गुडलवणपूपैश्च श्वश्रूं श्वशुरमेव च ॥४

उपरोक्त विधान से पूजा की जाये, तो उसके सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं ।५-७। हे भारत ! हे महीपते ! एक दाँत वाले एवं जगत् के स्वामी गणेश के प्रसन्न होने पर पितर, देवता और मनुष्य सभी संतुष्ट रहते हैं ।८। अतः विघ्नों के विनाश होने के लिए भक्तिपूर्वक एक दाँत वाले (गणेश) देव की पूजा, चन्दन, कमल और लड्डू आदि सामग्रियों द्वारा सविधि सुसम्पन्न करनी चाहिए ।९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में विनायकपूजा विधि वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अध्याय ३१

शिवा चतुर्थी का पूजन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! शिवा, शान्ता और सुखा नाम के भेद से चतुर्थी तीन प्रकार की होती है । भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का नाम शिवा है, वह लोगों में अत्यन्त सम्मानित है ।१। हे नृप ! उसमें किया गया स्नान, दान, उपवास और जप गणेश की कृपा से सौ गुना अधिक होता है ।२। उसमें लवण (नमक) तथा घी का दान अत्यन्त शुभ बताया गया है । हे वीर ! उसी प्रकार उस पूजन में गुड़ का बना मालपूआ ब्राह्मणों को खिलाना विशेष पुण्यप्रद होता है ।३। हे नरशार्दूल ! उसमें जो स्त्रियाँ गुड़ लवण और मालपुआ से सास-ससुर की पूजा अर्थात् मीठी और नमकीन वस्तुएँ खिलाती हैं गणेश की प्रसन्नता से

---

१. पुण्डरीकैः । २. महत् ।

ताः सर्वाःसुभगाः स्युर्वै[१] विघ्नेशस्यानुमोदनात् । कन्यका तु विशेषेण विधिनानेन पूजयेत् ।।५
(इति शिवाकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

माघे मासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते । सा शान्ता शान्तिदा नित्यं शान्तिं कुर्यात्सदैव हि ।।६
स्नानदानादिकं कर्म सर्वमस्यां कृतं विभो । भवेत्सहस्रगुणितं प्रसादात्तस्य[२] दन्तिनः ।।७
कृतोपवासो यस्तस्यां पूजयेद्विघ्ननायकम् । तस्य होमादिकं कर्म भवेत्साहस्रिकं नृप ।।८
लवणं च गुडं शाकं गुडपूपांश्च भारत । दत्त्वा भक्त्या तु विप्रेभ्यः फलं साहस्रिकं भजेत्[३] ।।९
विशेषतः स्त्रियो राजन्पूजयन्तो गुरुं नृप । गुडलवणघृतैर्वीर सदा स्युर्भाग्यसंयुताः[४] ।।१०
(इति शान्ताकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

सुखावहा च सुसुखा सौभाग्यकरणी परम् ।।११
चतुर्थी कुरुशार्दूल रूपसौभाग्यदा शुभा । सुखाव्रतं महापुण्यं रूपदं भाग्यदं तथा ।।१२
सुसूक्ष्मं सुकरं धन्यमिह पुण्यसुखावहम् । परत्र फलदं वीर दिव्यरूपप्रदायकम् ।।१३
हसितं ललितं चोक्तं[५] चेष्टितं च सुखावहम् । सविलासभुजक्षेपभ्रंक्रमश्चेष्टितं शुभम् ।।१४
सुखाव्रतेन सर्वेषां सुखं कुरुकुलोद्वह । कृत्येन पूजिते चेशे विघ्नेशे शिवयोः सुते ।।१५

वे सभी निश्चित सौभाग्यशालिनी होती हैं। विशेषकर कन्याओं को इस विधि से अवश्य पूजन करना चाहिये।४-५। (इति शिवाकल्प)

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! माघ के महीने की शुक्ल पक्ष की चौथ का नाम शांतिदायिनी होने के नाते शांता है, वह सदा शान्ति प्रदान करती रहती है।६। हे विभो ! उसमें स्नान-दान जो कुछ कर्म किये जाते हैं, वे सभी गणेश की कृपा से हजार गुने अधिक फलदायक होते हैं।७। जो उसमें उपवास करके विघ्नविनायक (गणेश) की पूजा करता है, उसके होमादिक कर्म हजार गुने अधिक फल देते हैं।८। अतः लवण, गुड़, साग एवं मालपूआ का दान ब्राह्मणों को अर्पित कर हजार गुना अधिक फल अवश्य प्राप्त करना चाहिये।९। हे राजन् ! विशेषकर स्त्रियाँ गुड़, लवण और घी द्वारा गुरुजनों की पूजा करें, नमकीन मीठी चीज खिलावें तो सौभाग्यवती हों।१० (इति शांताकल्प)

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! सदा सुखस्वरूप महान् सुखों को देने वाली अत्यन्त सौभाग्य करने वाली, मांगलिक एवं रूप-सौन्दर्य देने वाली यह चौथ होती है। हे वीर ! सुखा नामक चौथ का व्रत अधिक पुण्य, रूप देने वाला, अत्यन्त सूक्ष्म, सरल, संसार की प्रतिष्ठा एवं स्वर्गसुख, परलोक का फल तथा दिव्यरूप देने वाला बताया गया है।११-१३। इसमें हँसना, लीलाकरना, चेष्टा करना, हाथों द्वारा हाव-भाव प्रकट करना और घूमना चक्कर लगाना सुखदायक एवं शुभ होता है।१४। हे कुरुकुल नायक ! सुखा का व्रत तथा उमा-महेश के पुत्र गणेश की सविधि पूजा करने से भी प्राणियों को सुख मिलता है।१५।

---

१. नित्यम्। २. दन्तिनो नृप। ३. भवेत्। ४. कुरुनंदन। ५. मैत्रम्।

यथा शुक्लचतुर्थ्यां तु वारो भौमस्य वै भवेत् । तदा मा सुखदा ज्ञेया चतुर्थी वै सुखेति च ॥१६
पुरा मैथुनमाश्रित्य स्थिताभ्यां तु हिमाचले । भीमोमाभ्यां महाबाहो रक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ ॥१७
मेदिन्यां स प्रयत्नेन मुखे विधृतोऽनया । जातोस्याः स कुजो वीर रक्तो रक्तसमुद्भवः ॥१८
ममाङ्गतो यतोत्पन्नस्तस्मादङ्गारको ह्ययम् । अङ्गदोङ्गोपकारश्च अङ्गानां तु प्रदो नृणाम् ॥१९
सौभाग्यादिकरो यस्मात्तस्मादङ्गारको मतः । भक्त्या चतुर्थ्यां नक्तेन यो वै श्रद्धासमन्वितः ॥२०
उपवत्स्यति ना राजन्नारी वा नान्यमानसा । पूजयेच्च कुजं भक्त्या रक्तपुष्पविलेपनैः ॥२१
गणेशं प्रथमं भक्त्या योजयेच्छ्रद्धयान्वितः । यस्य तुष्टः प्रयच्छेत्स सौभाग्यं रूपसम्पदम् ॥२२
पूर्वं च कृतसङ्कल्पः स्नानं कृत्वा यथाविधि । गृहीत्वा मृत्तिकां वन्देन्मन्त्रेणानेन भारत ॥२३
इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल । तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥२४
इमं मन्त्रं पठन्वीर आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरश्मिसम्पूतां गङ्गाजलकणोक्षिताम् ॥२५
दत्त्वा मृदं शिरसि तां सर्वाङ्गेषु च योजयेत् । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रयेत जलं पुनः ॥२६
त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवद्यौकसाम् । स्वेदाण्डजोद्भिदां चैव रसानां पतये नमः ॥२७
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च । तडागेषु च सर्वेषु मानसादिसरःसु च ॥२८
नदीषु देवखातेषु सुतीर्थेषु ह्रदेषु वै । ध्यायन्पठन्निमं मन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् ॥२९
ततः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा गृहमागत्य वै स्पृशेत् । दूर्वाश्वत्थौ शमीं स्पृष्ट्वा गां च मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३०
दूर्वां नमस्य मन्त्रेण शुचौ भूमौ समुत्थिताम् । त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता ॥३१

शुक्ल पक्ष में मंगल के दिन वाली चौथ को सुखा कहते हैं जो सुख प्रदान करती है ।१६। हे महाबाहो ! पहले समय में हिमालय पर्वत पर उमा-शिव के सम्भोग करते समय रक्त का बूँद पृथ्वी पर गिरा था ।१७। हे वीर ! उसे पृथ्वी ने मुख एवं यत्नपूर्वक धारण किया उसी रक्त के द्वारा लाल रंग वाले भौम को पृथ्वी ने उत्पन्न किया है ।१८। तथा मेरे अंग से पैदा होने के नाते इन्हें "अंगारक" भी कहते हैं । अंगों के देने वाले, अंगों का उपकार (हृष्ट-पुष्ट) करने वाले तथा मनुष्यों को सदैव अंग प्रदान करने वाले बताये गये हैं ।१९। सौभाग्य आदि प्रदान करने के नाते भी 'अंगारक' कहलाते हैं । अतः हे राजन् ! भक्ति-श्रद्धा पूर्वक जो कोई स्त्री-पुरुष इस चतुर्थी में उपावस करके रात में लाल फल और लेप चन्दन द्वारा एकाग्रचित्त से मंगल की पूजा में सर्वप्रथम गणेश की पूजा करता है, उसे प्रसन्न होकर वे रूप, सौन्दर्य, सौभाग्य प्रदान करते हैं ।२०-२२। हे माता ! पहले संकल्प करके विधिवत् स्नान करते समय मिट्टी लेकर 'इहत्वंवंदिता' आदि मंत्रों द्वारा उसकी वन्दना करते हुए उसे सूर्य को दिखाने और सूर्य की किरणों द्वारा पवित्र गंगा जल के बूँदों से उस मिट्टी को भिगोकर पहले सिर में लगाये फिर समस्त शरीर में लगाने के पश्चात् स्नान करने के लिए 'त्वमायो योनिः सर्वेषाम्' आदि मंत्रों से जल को अभिमंत्रित कर के स्नान करे।२३-२९। तदुपरान्त मंत्र वेत्ता स्नान करके पवित्र हो घर में आकर दूर्वा, पीपल, शमी और गाय का स्पर्श करे।३०। हे महीपते ! पवित्र स्नान में रहने वाली दूर्वा की 'त्वं दूर्वेऽमृते

वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया[१] कृतम् ॥३२
शमीमन्त्रं प्रवक्ष्यामि तन्निबोध महीपते । पवित्राणां पवित्रां त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ ॥
शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान् ॥३३
अश्वत्थालम्भने वीर मन्त्रमेतं निबोध मे । नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम् ॥
शत्रूणां च समुद्योगमश्वत्थ त्वं क्षमस्व मे ॥३४
इमं मन्त्रं पठन्वीर कुर्याद्वै स्पर्शनं बुधः । ततो देव्यै तु गां दद्याद्वीरं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥
समालभ्य तु हस्तेन ततो मन्त्रमुदीरयेत् ॥३५
सर्वदेवमयी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भव ॥३६
इमं मन्त्रं पठन्वीर[२] भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यादर्जुनं कुरुनन्दन ॥
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्यान्न संशयः ॥३७
एवं मौनेन चागत्य ततो वह्निगृहं व्रजेत् । प्रक्षाल्य च मृदा पादावाचान्तोऽग्निगृहं विशेत् ॥
होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मन्त्रपदैर्वरैः[३] ॥३८
शर्वाय शर्वपुत्राय क्षोण्युत्सङ्गभवाय च । कुजाय ललिताङ्गाय लोहिताङ्गाय वै तथा ॥३९
ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैः स्वाहाकारसमन्वितैः । अष्टोत्तरशतं वीर अर्धार्धमर्धमेव च ॥४०
एतैर्मन्त्रपदैर्भक्त्या शक्त्या वा कामतो नृप । खादिरैः सुसमिद्भिस्तु चाज्यदुग्धैर्यवैस्तिलैः ॥४१
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चान्यैः शक्त्या भक्त्या समन्वितः । हुत्वाहुतीस्ततो[४] वीर देवं संस्थापयेत्क्षितौ ॥४२
सौवर्णं राजतं वापि शक्त्या दारुमयं नृप । देवदारुमयं वापि श्रीखण्डचन्दनैरपि ॥४३

नामासि' इस मंत्र से वन्दना करके शमी की वन्दना करे, उनके मंत्रों को भी कहता हूँ सूनो ! हे वीर ! 'पवित्राणां पवित्रात्वं' आदि । अश्वत्थ (पीपल) के स्पर्श करने का यह 'नेत्र स्पंदादिज' मंत्र को पढ़ कर प्रदक्षिणा करते हुए हाथ से गाय के स्पर्श करते हुए इस 'सर्वदेवमयी देवी' मंत्र का उच्चारण करे और उन्हें गौ दान करे । हे कुरुनन्दन ! जो इस मंत्र को पढ़ते हुए भक्तिश्रद्धापूर्वक अर्जुन की प्रदक्षिणा करता है उसने निःसंदेह समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली है ।३१-३७। फिर मौन होकर अग्निशिला (हवन-स्थल) में आये । वहाँ पहले मिट्टी से पैर को शुद्ध कर आचमन करे पश्चात् हवन गृह में प्रवेश कर वहाँ इन 'ओंकार पूर्वक 'स्वाहांत्र शर्वाय शर्वपुत्राय' आदि मंत्रों का उच्चारण करते हुए प्रज्वलित अग्नि में अनेक भाँति के एवं अन्य खाद्य पदार्थ खैर की लकड़ी की घी, दूध, जवा और तिल की एक सौ आठ या उसके आधे भाग या उसके आधे भाग की आहुति डाले। हे नृप ! इसे भक्ति पूर्वक कामना वश अपनी शक्ति के अनुसार ही सुसम्पन्न करना चाहिये। हे वीर ! हवन के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार सोने, चाँदी, देवदारु या अन्य लकड़ी या चन्दन की बनी हुई देव मूर्ति को ताँबे या चाँदी के पात्र में पृथ्वी पर स्थापित करे। अनन्तर घी, कुंकुम,

---

१. मध्यममणिन्यायेन मयेत्यस्योभयत्र सम्बन्धः, तथा चायमर्थः। हे दूर्वे त्वं देवैर्वन्दिता तु पुनः मया वन्दिता सती यन्मया दुरितं कृतम्, तत्सर्वं दह । इह वन्दितेतिद्विरुक्त्या शब्दावृत्तिदीपकोलङ्कारः ।
२. नित्यम् । ३. हरिब्रह्मशिवादिभिः । ४. कृत्वा कृत्यम् ।

ताम्रे पात्रे रौप्यमये चाज्यकुङ्कुमकेसरैः । अन्यैर्वा लोहितैर्वापि पुष्पैः पत्रैः फलैरपि ।।
रक्तैश्च विविधैर्वीर अथ वा शक्तितोऽर्चयेत्[1] ।।४४
यावद्विसृजते वित्तं वित्तवान्वीर भक्तितः । तावद्विवर्धते पुण्यं दातुं शतसहस्रिकम् ।।४५
अन्ये ताम्रमये पात्रे वंशजे मृन्मयेऽपि वा । पूजयन्ति नराः शक्त्या कृत्वा कुङ्कुमकेशरैः ।।
पुरुषाकृतिकृतं पात्र इमं मन्त्रैः समर्चयेत् ।।४६
अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिस्तथा । धूपैरभ्यर्च्य विधिवद्ब्राह्मणाय प्रदीयते ।।४७
गुडौदनं घृतं क्षीरं गोधूमाञ्छालितण्डुलान् । अवेक्ष्य शक्तिं दद्याद्वै दरिद्रो वित्तवांस्तथा ।।४८
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विद्यमाने धने नृप । वित्तशाठ्यं हि कुर्वाणो नामुत्र बलभाग्भवेत् ।।४९

शतानीक उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता चतुर्थी नक्तभोजनैः । उपोष्या कतिमात्रा तु उताहो सकृदेव तु[2] ।।५०

सुमन्तुरुवाच

चतुर्थी सा चतुर्थी सा यदाङ्गारकसंयुता । उपोष्या तत्र तत्रैव प्रदेयो विधिवद्गुडः ।।५१
उपोष्य नक्तेन विभो चतस्रः कुजसंयुता । चतुर्थ्यां च चतुर्थ्यां च विधानं शृणु यादृशम् ।।५२
सौवर्णं तु कुजं कृत्वा सविनायकमादरात् । दशसौवर्णिकं मुख्यं दशार्धमर्धमेव च ।।५३
सौवर्णपात्रे रौप्ये वा भक्त्या ताम्रमयेऽपि वा । विंशत्पलानि पात्राणि विंशत्यर्धपलानि वा ।।५४

केसर, लाल फूल एवं फल तथा पत्ते अथवा शक्ति के अनुसार (जो कुछ मिले) पूजन करे।३८-४४। हे वीर! धनवान् पुरुष (इसमें) जितना ही व्यय करता है उसका उससे हजारों गुना पुण्य बढ़ता है ।४५। तांबे, बाँस के बने एवं मिट्टी के पात्र में भी कुंकुम और केशर द्वारा मनुष्य लोग उनकी पूजा करते हैं। इसलिए पुरुष की भाँति आकार बनाकर पात्र में रख इस 'अग्नि मूर्धा' आदि मंत्र का उच्चारण करते हुए गंध, फूल और धूप आदि से विधिपूर्वक पूजन करके उसे ब्राह्मण को समर्पित करे ।४६-४७। अनन्तर दरिद्र हो या धनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठाभात घी, दूध, गेहूँ, और शाही चावल (ब्राह्मण) को समर्पित करे ।४८। हे नृप ! धन के रहते हुए कृपणता न करनी चाहिये, क्योंकि कृपणता करने वाले मनुष्य को स्वर्गीय फल नहीं मिलता है ।४९

शतानीक ने कहा—मंगल की चौथ का व्रत जिसमें रात में भोजन किया जाता है कितने बार सुसम्पन्न करना चाहिए या एक ही बार ।५०

सुमन्तु बोले—अंगारक (मंगल) की चौथ ही चौथ कहलाती है, वह समयानुसार जबभी आये उसमें उपवास करते हुए विधिपूर्वक गुड़ का दान देना चाहिये ।५१। हे विभो ! उसी प्रकार मंगलवाली चौथ के चार बार (व्रत) रहने का आदेश है अतः उसमें जैसा विधान है, कहता हूँ सूनो ! ।५२। प्रेम पूर्वक दशफल[1] उसके आधे या उसके भी आधे भाग सुवर्ण की गणेश और मंगल की प्रतिमा बनाकर सोने,

---

१. भक्तितः । २. हि ।

१. सोलह माशे का एक वर्ष और चार वर्ष का एक पल होता है ।

विंशत्कर्षाणि वा वीर विंशदर्धार्धमेव वा । रौप्यसङ्ख्यं पलं कार्यं पलार्धमर्धमेव च ॥५५
शक्त्या दित्तैश्च भक्त्या च पात्रे ताम्रमयेऽपि तु । प्रतिष्ठाप्य ग्रहेशं वै वस्त्रैः सम्परिवेष्टितम् ॥
विविधैः साधकै रक्तैः पुष्पै रक्तैः समन्वितम् ॥५६
ब्राह्मणाय सदा दद्याद्दक्षिणासहितं नृप । वाचकाय महाबाहो गुणिने श्रेयसे नृप ॥५७
इति ते कथिता पुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः । यामुपोष्य नरो रूपं दिव्यमाप्नोति भारत ॥५८
कान्त्यात्रेयसमं वीरं तेजसा रविसन्निभम् । प्रभया रविकल्पं च समीरबलसंश्रितम् ॥५९
ईदृग्रूपं समाप्येह याति भौमसदो नृप । प्रसादाद्विघ्ननाथस्य तथा गणपतेर्नृप ॥६०
पठतां शृण्वतां राजन्कुर्वतां च विशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानि क्षीयन्ते नात्र संशयः ॥
ऋद्धिं वृद्धिं तथा लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः । ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे सुखावहाङ्गारकचतुर्थीव्रतनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।३१।

(समाप्तश्चायं चतुर्थीकल्पः)

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीपूजनम्

सुमन्तुरुवाच

पञ्चमी दयिता राजन्नागानां नन्दिवर्धिनी । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ॥१

चाँदी एवं ताँबे के पात्र में वस्त्र लपेट कर रखे । हे वीर ! वह पात्र भी बीस या दश पल अथवा बीस, दश या पाँच कर्ष सुवर्ण का होना चाहिये । चाँदी का पात्र बीस, दश या पाँच पल का ही होता है इस भाँति ताँबे का पात्र भी भक्ति पूर्वक अपनी धन-शक्ति के अनुसार ही बनाये । हे महाबाहो ! उपरान्त लाल फूल एवं वस्त्र आदि विविध प्रकार की साधनसामग्रियों द्वारा पूजन कर उसे (प्रतिमा) दक्षिणा समेत अपने कल्याण के निहित कथा बाचने वाले किसी विद्वान् ब्राह्मण को समर्पित करे।५३-५७। हे भारत ! इस प्रकार मैंने इस पुण्य-स्वरूपा तिथि (तथा विधानआदि) को जो सभी तिथियों में श्रेष्ठ एवं जिसका व्रत रह कर मनुष्य दिव्य (देवताओं) का रूप प्राप्त करता है बता दिया। जिसके फलस्वरुप चन्द्रमा की भाँति कान्ति, सूर्य के समान प्रखर तेज एवं वायु के समान बल शाली रूप प्राप्त कर विघ्नेश्वर गणपति की कृपा द्वारा वह मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है।५८-६०। हे नृप ! इस आख्यान के पढ़ने, सुनने एवं विशेषकर इसे सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य के ब्रह्म हत्या आदि दोष निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं और उसे ऋद्धि-वृद्धि समेत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।६१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के चतुर्थी कल्प में सुखावहांगारक चतुर्थी व्रत निरूपण नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३१।

(इति चतुर्थीकल्पः)

अध्याय ३२

नागपञ्चमी पूजन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! नागों (सर्पों) का आनन्द बढ़ाने वाली यह पञ्चमी उन्हें अति प्रिय है

वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो मणिभद्रकः । ऐरावतो धृतराष्ट्रः[1] कर्कोटकधनञ्जयौ ॥
एते प्रयच्छन्त्यभयं प्राणिनां प्राणजीविताम् ॥२
पञ्चम्यां स्नपयन्तीह[2] नागान्क्षीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति तेऽभयप्राणदक्षिणाम् ॥३
शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् । निर्वापयन्ति स्नपनैर्गवां[3] क्षीरेण मिश्रितैः ॥४
ये स्नपयन्ति वै नागान्भक्त्या श्रद्धासमन्विताः । तेषां कुले सर्पभयं न भवेदिति निश्चयः ॥५

शतानीक उवाच

मात्रा शप्ताः कथं नागाः किं समुद्दिश्य कारणम् । कथं चानन्दकरणं कस्य वा सम्प्रसादजम् ॥६

सुमन्तुरुवाच

उच्चैःश्रवा अश्वरत्नं श्वेतो जातोऽमृतोद्भवः । तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूर्नागानां जननी स्वसाम्[4] ॥७
अश्वरत्नमिदं श्वेतं सम्प्रेक्षेऽमृतसम्भवम् । कृष्णांश्च वीक्षसे बालान्सर्वश्वेतनुताम्बरे ॥८

विनतोवाच

सर्वश्वेतो ह्ययवरो नास्य कृष्णो न लोहितः । कथं पश्यसि कृष्णं त्वं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥९

कद्रूरुवाच

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबालसमन्वितम् । द्विनेत्रा त्वं तु विनते न पश्यसि पणं कुरु ॥१०

इसीलिए पञ्चमी के दिन नागों का निश्चित महान् उत्सव सुसम्पन्न होता है ।१। वासुकि, तक्षक, कालियानाग, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय ये सभी नागदेव सभी प्राणियों को अभय प्रदान करते हैं ।२। अतः जो लोग पञ्चमी में नागों को दूध से स्नान-पूजन कराते हैं उनके कुल को वे सदैव अभयपूर्वक प्राण दान देते रहते हैं ।३। इसलिए उसीदिन माता के शाप द्वारा रात-दिन पीड़ित रहने वाले नागों को जो श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक गाय के दूध या जल से स्नान कराता है निश्चित ही उसके कुल में साँपों का भय कभी नहीं होता है ।४-५

शतानीक ने कहा— माता ने नागों को शाप क्यों दिया, उनका क्या उद्देश्य था ? तथा किसकी कृपा से उन्हें यह (पंचमी का दिन) आनन्द दायी हुआ ।६

सुमन्तु बोले— समुद्र मथते समय अमृत से उच्चैःश्रवा नामक अश्व की उत्पत्ति हुई जो श्वेत रंग एवं सभी अश्वों में रत्न रूप था । उसे देख कर नागों की माता कद्रू ने अपनी बहन विनता से कहा—अमृत से उत्पन्न हुए इस घोड़े को जो श्वेत एवं घोड़ों में रत्न रूप है, मैं देख रही हूँ पर, वह काला भी है तुम भी आकाश में उसके काले बाल को देखती हो या श्वेत वर्ण ही देखती हो ।७-८

विनता ने कहा— यह उत्तम घोड़ा सर्वाङ्ग श्वेत है, इसके बाल न काले हैं और न लाल तुम इसे काला कैसे देख रही हो ।९

कद्रू ने कहा— विनते ! मेरी तो एक ही आँख है, पर, उस काले बाल वाले को मैं देख रही हूँ और तुम्हारे दो आँखे हैं फिर भी नहीं देख रही हो । तो फिर बाजी लगाओ ।१०

---

१. सार्धं कुर्याद्वै सर्वमेव वा । २. धृतशिरास्तथान्ये ये महोरगाः । ३. पूजयन्ति । ४. च जलैर्गवां क्षीरैरमिश्रितैः ।

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णे केशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ॥११
एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । विनता शयने सुप्ता कद्रूर्जिह्ममचिन्तयत् ॥१२
आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे । तिष्ठध्वं विपणे जेष्ये विनतां जयगर्द्धिनीम् ॥१३
पोचुस्ते जिह्मबुद्धिं तां नागा मातरं[1] विगृह्य तु । अधर्म्मेमेतन्मातस्ते न करिष्याम ते वचः ॥१४
ताञ्छशाप रुषा कद्रूः पावको वः प्रधक्ष्यति । गते बहुतिथे काले पाण्डवो जनमेजयः ॥१५
सर्पसत्रं स कर्ता वै भुवि ह्यन्यैः सुदुष्करम् । तस्मिन्सत्रे स तिग्मांशुः पावको वः प्रधक्ष्यति ॥१६
एवं शप्त्वा रुषा कद्रूः किञ्चिन्नोक्तवती तु सा । मात्रा शप्तास्तथा नागाः कर्तव्यं नान्वपत्सत ॥१७
वासुकिं दुःखितं ज्ञात्वा ब्रह्मा प्रोवाच सान्त्वयन् । मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१८
यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१९
भगिनीं च जरत्कारु तस्मै त्वं प्रतिदास्यसि । भविता तस्य पुत्रोऽसावास्तीक इति विश्रुतः ॥२०
स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भयदं महत् । निषेधेत्सुमतिर्वाग्भिरग्याभिस्तं भविष्यति ॥२१
तदिमां भगिनीं राजंस्तस्मै त्वं प्रतिदास्यसि । जरत्कारुं जरत्कारोः प्रदद्या अविचारयन् ॥२२

विनता ने कहा—यदि उसके काले बाल को तू दिखायेगी तो मैं आजीवन तेरी दासी रहूँगी नहीं तो तू मेरी दासी होगी ।११। इस प्रकार उन दोनों ने क्रुद्ध होकर बाजी लगाया और जब विनता शयनागार में सो गयी तब कद्रू ने छल करने की सोची ।१२। अपने लड़कों को बुलाकर कहने लगी कि बाल की भाँति पहले हो कर उस सुन्दर घोड़े के अंग में चिपट जाओ, जिससे इस बाजी में जय का लोभ करने वाली उस विनता को जीत लूँ ।१३। इसे सुनकर नागों ने छल करने वाली अपनी उस माँ से कहा—माता ! ऐसा करना अधर्म है अतः हम लोग तुम्हारी इस बात को नहीं मानेंगे ।१४। अनन्तर क्रुद्ध होकर कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि तुम्हें अग्नि जला डाले बहुत दिन बीतने पर पाण्डव जनमेजय इस प्रकार की सर्पयज्ञ जो पृथ्वी में दूसरे के लिए महा कठिन हैं आरम्भ करेंगे उसी यज्ञ में प्रचण्ड ज्वाला वाले अग्नि तुम्हें जलायेंगे ।१५-१६। क्रुद्ध होकर कद्रू ने इस प्रकार शाप देकर फिर कुछ नहीं कहा और माँ द्वारा शाप होने पर नाग लोगों को भी उस समय कर्तव्य का ज्ञान न रहा ।१७। उस समय बासुकि को दुःखी देख शांति प्रदान करते हुए ब्रह्मा ने कहा, वासुके ! अधिक चिंता न करो मेरी उत्तम बातें सुनो ।१८। उसी समय में यायावर कुल में महातेजस्वी एवं तपोमूर्ति जरत्कारु नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न होगा ।१९। उसे तुम जरत्कारु नामक अपनी बहन (पत्नी रूप में) अर्पित करोगे । उससे आस्तिक नामक पुत्र उत्पन्न होगा, ऐसा (मैंने) सुना है ।२०। तदुपरांत वह बुद्धिमान् ब्राह्मण उत्तमवाणी द्वारा प्रार्थना करके नागों के लिए आरम्भ किये गये उस महान एवं भयंकर यज्ञ को स्थगित करा (रोकवा) देगा ।२१। हे राजन् ! इसलिए तू अपनी इस भगिनी (बहिन) को उस ब्राह्मण को अवश्य अर्पित करना क्योंकि जरत्कारु के लिए जरत्कारु को बिना कुछ सोचे-समझे ही प्रदान करना चाहिये ।२२। यदि अपना कल्याण चाहते हो

---

१. स्वस्वामित्यार्षम्, विनताम् ।

यदासौ प्रार्थतेऽरण्ये यत्किञ्चिद्धि वदिष्यति । तत्कर्तव्यमशङ्केन यदीच्छेः श्रेय आत्मनः ।।२३
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं च परमास्थितः ।।२४
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः । पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ।।२५
तत्र सत्रं महाबाहो[1] तव पित्रा प्रवर्तितम् । ऋत्विग्भिः स हि तेनेह सर्वलोकेषु[2] दुष्करम् ।।२६
प्रोक्तं च विष्णुना पूर्वं धर्मपुत्रस्य धीमतः । अवश्यं तस्य भविता नागानां भयकारकम्[3] ।।२७
तस्मात्कालान्तराद्राजन्सम्ये वर्षशते गते । तत्सत्र भविता घोरं नागानां क्षयकारकम् ।।२८
यास्यन्त्यधर्मभरिता दन्दशूका विषोल्बणाः । कोटिसङ्ख्या महाराज निपतिष्यन्त्यहर्निशम् ।।२९
अपूर्वे तु निमग्नानां घोरे रौद्राग्निसागरे । आस्तीकस्तत्र भविता तेषां नौर्दह्निसागरे ।।३०
श्रुत्वा स चाग्निं राजानमृत्विजस्तदनन्तरम् । निवर्तयिष्यते यागं नागानां मोहनं परम् ।।३१
पञ्चम्यां तत्र भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं महाबाहो पञ्चमी दयिता सदा ।।
नागानामानन्दकरी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ।।३२
कृत्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः । विसृज्य नागाः प्रीयन्तां ये केचित्पृथिवीतले ।।३३
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः । ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ।।
ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ।।३४

तो (वहाँ) जंगल में वह ब्राह्मण जो कुछ याचना करे (मांगे) या कहे उसे निःशंक हो कर करना ।२३। इस भाँति पितामह ब्रह्मा की बातें सुनकर नागवासुकि ने उन्हें प्रणाम करते हुए यत्नपूर्वक उसे सुसम्पन्न करने की स्वीकृति प्रदान की ।२४। इसे सुनकर सभी नागों की आँखें हर्षातिरेक से खिल उठीं और वे अपने को फिर से उत्पन्न हुए की भाँति समझने लगे ।२५। हे महाबाहो ! ऋत्विक् (यज्ञ करने वाले) ब्राह्मणों के साथ तुम्हारे पिता ने उस यज्ञ को जो सभी लोकों में महान् कठिन समझा जाता था आरम्भ किया था ।२६। भगवान् कृष्ण ने परम बुद्धिमान् युधिष्ठिर से पहले ही कहा था कि नागों का नाश करने वाला यह यज्ञ अवश्य आरम्भ होगा ।२७। इसलिए हे राजन् ! सौ वर्ष (का समय) बीत जाने पर नागों का नाश करने वाला वह घोर यज्ञ अवश्य आरम्भ होगा ।२८। हे महाराज ! वे विषधर नागगण भी अधर्मी होंगे अतः करोड़ों की संख्या में वे रातदिन (उसमें) गिरेंगे ।२९। किन्तु अपूर्व, घोर एवं प्रचण्ड ज्वाला वाले उस अग्नि के सागर से उन्हें बचाने के लिए समुद्र में नौके की भाँति आस्तीक पहुँचेगा ।३०। और उस यज्ञ को आरम्भ सुनकर क्रमशः अग्नि, राजा एवं ऋत्विकों समेत नागों को मुग्ध करने वाले उस यज्ञ को भी रोक देगा ।३१। ब्रह्मा ने उन सर्पों से कहा था कि इनकी रक्षा का कार्य पञ्चमी में ही होगा । महाबाहो ! इसीलिए यह पञ्चमी नागों को अति प्रिय हुई है प्राचीन काल में ब्रह्मा ने भी इसी पञ्चमी में नागों को वर प्रदान कर आनन्द प्रदान करने वाली यह पञ्चमी उन्हें सौंप दिया था ।३२। अतः उस दिन पहले ब्राह्मणों को भली भाँति भोजन कराकर (भोजन पश्चात्) नागों का विसर्जन करते हुए प्रार्थना करे कि भूतल, हेलि, मदार के वृक्ष, मरीचि (सप्तर्षि) आकाश, सरस्वती, नदी, बावली और तालाब आदि में रहने वाले नाग देव को नमस्कार है । इस प्रकार नागों और ब्राह्मणों

---

१. मातामित्यार्षम् । २. महाराज । ३. सर्वलोकसुदुर्धरम् ।

नागान्विप्रांश्च सम्पूज्य विसृज्य च यथार्थतः । ततः पश्चात्तु भुञ्जीत सह भृत्यैर्नराधिप ।।३५
पूर्वं मधुरमश्नीयात्ततो भुञ्जीत कामतः । एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे ।।३६
मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ।।३७
इह चागत्य राजासावयुतानां[1] वरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धः स्याद्वाहनाढ्यश्च जायते ।।३८
पञ्च जन्मान्यसौ राजा द्वापरे द्वापरे भवेत् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ।।
तस्मात्पूज्याश्च मान्याश्च[2] घृतपायसगुग्गुलैः ।।३९

शतानीक उवाच

दशन्ति ये नरं विप्र नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद् ब्रूहि मे द्विज ।।४०

सुमन्तुरुवाच

नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः । अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ।।४१

शतानीक उवाच

नागदष्टः पिता यस्य भ्राता वा दुहितापि वा । माता पुत्रोऽथ वा भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ।।४२
मोक्षाय तस्य विप्रेन्द्र दानं व्रतमुपोषणम् । ब्रूहि तद्द्विजशार्दूल येन तद्वै करोम्यहम् ।।४३

का पूजन एवं विसर्जन करके हे राजन् ! पश्चात् सेवकों को साथ ले भोजन करे ।३३-३५। उस समय सर्वप्रथम मधुर भोजन करना चाहिये पश्चात् जैसी रुचि हो । इस प्रकार नियम पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाले को जो फल प्राप्त होता है, मैं उसे कह रहा हूँ सुनो ।३६। शरीर त्याग करने पर वह प्राणी पहले नाग लोक में जाता है। वहाँ अप्सराएँ उसकी सेवा करती हैं वहाँ उत्तम विमान पर बैठ कर वह अपने मन इच्छित समय तक उनके साथ क्रीडा करता है।३७। और फिर (कभी) इस लोक में आकर इस प्रकार का राजा होता है, जो भूमण्डल का पति होकर समस्त रत्नों एवं सवारियों की अधिकता से सदैव परिपूर्ण रहता है।३८। इसी भाँति वह द्वापर के प्रत्येक युग में पाँच जन्मों तक राजा होता है जो शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से सदैव मुक्त रहता है तथा स्त्री और पुत्र उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं इसलिए इस दिन घी, खीर और गूगुल द्वारा नागों का पूजन और सम्मान अवश्य करना चाहिये।३९

शतानीक ने कहा—हे विप्र ! क्रुद्ध होकर नाग जिसे काट लेते हैं उस (प्राणी) की कौन गति होती है, इसे विस्तार पूर्वक हमें सुनाइये ।४०

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! नाग जिसे काट खाते हैं वह मनुष्य मृत्यु प्राप्त कर नीचे पाताल लोक में जाता है और वहाँ जाकर निश्चित विषहीन सर्प होता है ।४१

शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! जिसके पिता, भाई, लड़की, माँ, पुत्र या स्त्री को साँप काट लेता है उसका (उसके प्रति) क्या कर्तव्य होता है, मुझे बताने की कृपा करे।४२। और उसके मुक्ति के लिए दान, व्रत एवं उपवास आदि क्या किया जाता है ? अथवा जो होता हो मुझे बतायें मैं उसे अवश्य करूँगा।४३

---

१. अयकारम् २. । वसुधायाः ।

सुमन्तुरुवाच

उपोष्या पञ्चमी राजन्नागनां पुष्टिवर्धिनी । त्वमेवमेकं राजेन्द्र विधानं शृणु भारत ।।४४
मासि भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे[1] महीपते । महापुण्या तु सा प्रोक्ता ग्राह्यापि च महीपते ।।४५
ज्ञेया द्वादश पञ्चम्यो हायने भरतर्षभ । चर्तुर्थ्यां त्वेकभक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।।४६
भुवि[2] चित्रमयान्नागानथ वा कलधौतकान् । कृत्वा दारुमयान्वापि अथ वा मृन्मयान्नृप ।।४७
पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागानां पञ्चकं नृप । करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत ।।४८
तथा गन्धैश्च धूपैश्च पूज्य पञ्चकमुत्तमम्[3] । ब्राह्मणं भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ।।४९
अनन्तो वासुकिः शङ्खः पद्मः कम्बल एव च । तथा कर्कोटको नागो नागो ह्यश्वतरो नृप ।।५०
धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तक्षकस्तथा । पिङ्गलश्च तथा नागो मासि मासि प्रकीर्तितः ।।५१
वत्सरान्ते[4] पारणं स्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्बहून् । इतिहासविदे नागं गैरिकेण कृतं नृप ।।
तथार्चना प्रदातव्या वाचकाय महीपते ।।५२
एष वै नागपञ्चम्या[5] विधिः प्रोक्तो बुधैर्नृप । तव पित्रा कृतश्चैव पितुर्मोक्षाय भारत ।।५३
त्वमेकमेकं वै वीर पञ्चम्यां भरतर्षभ । सुवर्णभारनिष्पन्नं नागं दत्त्वा तथा च गाय ।।५४

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! उस प्राणी के निमित्त पञ्चमी का व्रत करना चाहिये जो लोगों को सुदृढ़ बनाती हैं अतः हे राजेन्द्र ! तुम उसका एक विधान सुनो ! हे भारत ! अब मैं उसका विधान बता रहा हूँ सुनो ! हे महीपते ! भादों महीने की [1]कृष्ण पक्ष वाली पञ्चमी अधिक पुण्य प्रदान करती है अतः व्रत पूजा हेतु उसी को ग्रहण करना चाहिये ।४४-४५। हे भरतर्षभ ! वर्ष भर में बारह पञ्चमी होती है । इसलिए (उसके विधान में) पञ्चमी के पूर्व चौथ की रात में एक बार भोजन का विधान कहा गया है । हे नृप ! फिर (दूसरे दिन) पञ्चमी में पाँच नागों की प्रतिमा का जो सोने की चित्रविचित्र, काष्ठ, वा मिट्टी का बना हो, भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए ।४६-४७। हे सुव्रत ! करील, कमल एवं मालती के पुष्पों, गंध और धूपों द्वारा पंचमी में पाँचों (नागों) की पूजा करने के पश्चात् ब्राह्मणोंको मिश्रित घी खीर और लड्डू का भोजन कराना चाहिये।४८-४९। हे नृप ! इसीलिए बारहों महीने के क्रमशः ये अनंत, बासुकी, शङ्ख, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शङ्खपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल नामक नाग (पूजन के लिए) बताये गये हैं।५०-५१। वर्ष के पूरे होने के पश्चात् पारण करे और उसमें अधिक ब्राह्मणों का भोजन कराकर सोने की वह (नाग की) प्रतिमा उन कथा वाचक ब्राह्मणों को जो इतिहास आदि के भी पूर्ण विद्वान हों सम्मान पूर्वक अर्पित कर देना चाहिए।५२। हे नृप ! नाग पंचमी के विधान को जो विद्वानों ने बताया है, तुम्हारे पिता ने अपने पिता की मुक्ति के लिए सुसम्पन्न किया था।५३। अतः हे भारत ! तुम भी पंचमी के प्रत्येक व्रत में एक-एक नाग की प्रतिमा जो अधिक सोने की बनी हो

---

१. मान्याश्च । २. शुक्लपक्षे । ३. भूरि चन्द्रमयं नागम् । ४. पुस्कांतरे च "भूरि चन्द्रमयं नागमथ वा कलधौतकम् । कृत्वा दारुमयं वापि अथ वा मृन्मयं नृप । पंचम्यामर्चयेद्भक्त्या नागं पंचफणं नृप । करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत । तथा गंधैश्च धूपैश्च पूज्य पन्नगमुत्तमम् । ५. पन्नमम् ।

व्यासाय कुरुशार्दूल पितुरानृण्यमाप्नुयाः । तत्र पित्रा कृता ह्येवं पञ्चम्युपासना नृप ॥५५
उत्सृज्य नागतां वीर तत्र पूर्वपितामहः । पुष्पोत्तरं सदो गत्वा तथा पुष्पसदो नृप ॥५६
सुनासीरसदो गत्वा तदा भर्गसदो गतः । स्वभूसदस्ततो गत्वा कञ्जजस्य सदो गतः ॥५७
अन्येऽपि ये करिष्यन्ति इदं व्रतमनुत्तमम् । दष्टको मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ॥५८
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरः[1] श्रद्धासमन्वितः । कुले तस्य न नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
नागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

सर्पभेदम्

शतानीक उवाच

सर्पाणां कति रूपाणि के वर्णाः किं च लक्षणम् । का जातिस्तु भवेत्तेषां केषु योनिकुलेषु वा ॥१

सुमन्तुरुवाच

पुरा मेरौ नगवरे कश्यपं तपसां निधिम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥२

गौ समेत व्यास (कथावाचक) को देकर अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाओ। क्योंकि तुम्हारे पिता ने इसी प्रकार की पञ्चमी की पूजा की थी ।५४-५६। हे नृप ! तुम्हारे पूर्व पितामह ने अपनी नाग की शरीर त्याग कर क्रमशः कुवेर, इन्द्र, शिव, ब्रह्म एवं विष्णु के लोक की प्राप्ति की है ।५७। इसी प्रकार अन्य जो लोग भी इस व्रत को सुसम्पन्न करेंगे तो प्राणियों को जिन्हें साँप ने काट खाया है नित्य उत्तम स्थान की प्राप्ति होगी ।५८। अतः जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस कथा को नित्य सुनता है, उसके कुल में साँप का भय कभी भी उपस्थित नहीं होता ।५९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के पञ्चमी कल्प में नागपञ्चमी व्रत वर्णन नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

अध्याय ३३

साँपों के भेद

शतानीक ने कहा—साँप के कितने रूप, रंग और जाति होती है ? उनका लक्षण क्या है और किस योनि में उनकी गणना होती है ? बताने की कृपा करें ।१

सुमन्तु बोले—पहले समय में गौतम जी ने सौन्दर्य पूर्ण मेरु पर्वत पर (रहने वाले) उन तपोमूर्ति कश्यप जी को भक्तिपूर्वक सादर सिर से प्रणाम किया और (उनसे) कहा— हे प्रजापति ! हे प्रभो !

---

१. संवर्तति पारणं स्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ।

सर्पाणां कति रूपाणि किं चिह्नं किं च लक्षणम् । जातिं कुलं तथा वर्णान्ब्रूहि सर्वं प्रजायते ॥३
कथं वा जायते सर्पः कथं मुञ्चेद्विषं प्रभो ! विषवेगाः कति प्रोक्ताः कत्येव विषनाडिकाः ॥४
दंष्ट्राः कतिविधाः प्रोक्ताः किं प्रमाणं विषागमे । गृह्णीते तु कदा गर्भं कथं चेह प्रसूयते ॥५
कीदृशी स्त्री पुमांश्चैव कीदृशश्च नपुंसकः । किं नाम दशनं चैव एतत्कथय सुव्रत ॥६
तस्य[1] तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपः प्रत्यभाषत । शृणु गौतम तत्त्वेन सर्पाणामिह लक्षणम् ॥७
मास्याषाढे तथा ज्येष्ठे प्रमाद्यन्ति भुजङ्गमाः । ततो नागोऽथ नागी च मैथुने सम्प्रपद्यते ॥८
चतुरो वार्षिकान्मासान्नागी गर्भमधारयत् । ततः कार्त्तिकमासे तु अण्डकानि प्रसूयते ॥९
अण्डकानां तु विज्ञेये द्वेशते द्वे च विंशती । तान्येव भक्षयेत्सा तु भोगैकं घृणया त्यजेत् ॥१०
स्वर्णार्कवर्णाद्वै तस्मात्पुमान्सञ्जायतेऽण्डकात् । तान्येव खादते सर्प अहोरात्राणि विंशतिम् ॥११
स्वर्णकेतकवर्णाभाद्दीर्घराजीवसन्निभात् । तस्मादुत्पद्यते स्त्री वै अण्डाद्ब्राह्मणसत्तम ॥१२
शिरीषपुष्पवर्णाभादण्डकात्स्यान्नपुंसकः । ततो भिनत्ति चाण्डानि षण्मासेन तु गौतम ॥१३
ततस्ते प्रीतिसम्बन्धात्स्नेहं बध्नन्ति बालकाः । ततोऽसौ सप्तरात्रेण कृष्णो भवति पन्नगः ॥१४
आयुःप्रमाणं सर्पाणां शतं विंशोत्तरं स्मृतम् । मृत्युश्चाष्टविधो ज्ञेयः शृणुष्वात्र यथाक्रमम् ॥१५
मयूरान्मानुषाद्वापि चकोराद्गोखुरात्तथा[2] । बिडालान्नकुलाच्चैव वराहाद्वृश्चिकात्तथा ॥

साँपों के कितने रूप, चिह्न, लक्षण जाति, कुल एवं रंग हैं ये सभी बाते हमें बताने की कृपा करे ।२-३। साँप कैसे उत्पन्न होते हैं, वे कैसे काटते हैं और विष को कैसे छोड़ते हैं, कितने विष के आवेग एवं कितनी विष की नाड़ियाँ हैं, दाँत के भेद तथा उनके विषधर होने में क्या प्रमाण है ? कब गर्भ धारण करते हैं और कैसे बच्चा उत्पन्न करते हैं ? तथा उनमें किस भाँति की स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक होते हैं एवं काटना किसे कहते है । हे सुव्रत ! ये सभी बाते मुझसे कहें ।४-६। उनकी बातें सुनकर कश्यप ने कहा—गौतम ! सावधान होकर साँपों के लक्षणों को मैं बता रहा हूँ सूनो । आषाढ और जेठ के मास में साँप मतवाले होते हैं तभी नाग और नागिन से भोग करते हैं ।७-८। वर्षा काल में चार मास गर्भिणी रह कर पश्चात् कार्तिक मास में नागिन अंडे उत्पन्न करती है ।९। वे अंडे दो सौ चालीस की संख्या में होते हैं जिन्हें नागिन भक्षण करना आरम्भ करती है पर घृणा वश एक भाग छोड़ भी देती है ।१०। सुवर्ण और सूर्य की भाँति चमकीले उस अंडे से पुरुष (नर) नाग उत्पन्न होते हैं साँप जिन्हें बीस दिन तक सतत खाता रहता है ।११। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इसी भाँति सुवर्ण केतकी एवं लम्बे कमल के समान वाले अंडे से स्त्री (मादा) तथा शिरीष पुष्प की भाँति वाले अंडे से नंपुसक नाग उत्पन्न होता है । हे गौतम ! छठे मास में अंडे फूट जाते हैं पुनः उन बच्चों में माँ का स्नेह उत्पन्न हो जाता है और सात दिन में वे काले हो जाते हैं ।१२-१४। साँपों की आयु एक सौ बीस वर्ष की होती है और उनकी आठ प्रकार की मृत्यु होती है उनके क्रम को सुनो, मैं बता रहा हूँ ।१५। मोर, मनुष्य, चकोर, गौओं का खुर, बिल्ली, नेवला, सुअर और बिच्छू से यदि वे सुरक्षित रह सकें तो वे एक सौ बीस वर्ष का जीवन प्राप्त करते हैं । सात दिन पूरा होने पर दाँत निकल आते हैं और

---

१. श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । २. कस्मिंश्चित्पुस्तके पूर्वं प्रोक्तः "सुमन्तुरुवाच" इत्यादिपाठो नास्ति परं त्वत्र-तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुमन्तुः प्राह तत्तदा ॥ इममर्थं पुरा पृष्टो गौतमेन च कश्यपः । प्रहृष्टवदनः सौम्यः कश्यपः प्रत्यभाषत ॥" इति पाठोऽस्ति ।

एतेषां यदि मुच्येत जीवेद्विंशोत्तरं शतम् ॥१६
सप्ताहे तु ततः पूर्णे दंष्ट्राणां चाधिरोहणम् । विषस्यागमनं तत्र निक्षिपेच्च पुनः पुनः ॥१७
एवं ज्ञात्वा तु तत्त्वेन विषकर्म्मारभेत वै । एकविंशतिरात्रेण विषदंष्ट्रा सुजायते ॥
नागीपार्श्वसमावर्ती बालसर्पः स उच्यते ॥१८
पञ्चविंशतिरात्रस्तु सद्यः प्राणहरो भवेत् । षण्मासाज्जातमात्रस्तु कञ्चकुं वै प्रमुञ्चति ॥१९
पादानां चापि विज्ञेये द्वे शते द्वे च विंशती । गोलोमसदृशाः पादाः प्रविशन्ति क्रमन्ति च ॥२०
सन्धीनां चास्य विज्ञेये द्वेशते विंशती तथा । अंगुल्यश्चापि विज्ञेया द्वे शते विंशती तथा ॥२१
अकालजाता ये सर्पा निर्विषास्ते प्रकीर्तिताः । पञ्चसप्ततिवर्षाणि आयुस्तेषां प्रकीर्तितम् ॥२२
रक्तपीतशुक्लदन्ताः अनीला मन्दवेगिनः । एते अल्पायुषो ज्ञेयो अन्ये च भीरवः स्मृता ॥२३
एकं चास्य भवेद्वक्रंद्वे जिह्वे च प्रकीर्तिते । द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः पन्नागानां न संशयः ॥२४
तेषां मध्ये चतस्रस्तु दंष्ट्रा याः सुविषावहाः । मकरी कराली कालरात्री यमदूती तथैव च ॥२५
सर्वासां चैव दंष्ट्राणां देवताः परिकीर्तिताः । प्रथमा ब्रह्मदेवत्या द्वितीया विष्णुदेवता ॥
तृतीया रुद्रदेवत्या चतुर्थी यमदेवता ॥२६
हीना प्रमाणतः सा तु वामनेत्रं समाश्रिता । नास्यां मन्त्राः प्रयोक्तव्या नौषधं नैव भेषजम् ॥२७
वैद्यः पराङ्मुखो याति मृत्युस्तस्या विलेखनात् । चिकित्सा न बुधैः कार्या तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८
मकरीं मासिकां विद्यात्कराली च द्विमासिका । कालरात्री भवेत्त्रीणि चतुरो यमदूतिका ॥२९

उनमें विष-संचय भी होने लगता है ।१६-१७। इसे जानते हुए भी वे काटना आरम्भ कर देते हैं पर विष वाले दाँत इक्कीस दिन में भली भाँति दृढ होते है । नागिन के साथ रहने वाले साँप को बाल साँप कहते हैं ।१८। इस प्रकार पूरे पच्चीस दिन वाला साँप (काटने पर) तुरन्त प्राण लेता है । (साँप) छठें मास केंचुल का त्याग करते हैं ।१९। गाय के रोम के समान इनके दो सौ चालीस पैर होते हैं जो चलने पर ही निकलते हैं एवं सदा भीतर ही घुसे रहते हैं ।२०। इनकी देह में दो सौ बीस संधियाँ तथा इतनी ही अंगुलियाँ होती हैं ।२१। जो साँप अपने समय पर नहीं उत्पन्न होते हैं वे विष-हीन एवं पचहत्तर वर्ष की आयु वाले होते हैं ।२२। लाल पीले तथा सफेद दाँत वाले नीले रंग से भिन्न रंग वाले मंद वेग वाले (साँप) अल्पायु होते हैं और अन्य भीरु होते हैं ।२३। साँपों के एक मुख दो जिह्वा एवं बत्तीस दाँत होते हैं ।२४। उनमें चार दाँत घोर विष वाले होते हैं जिनके (दाढ़ के) क्रमशः मकरी, कराली, कालरात्री, यमदूती ये चार नाम और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा यम ये क्रमशः उनके देवता कहे गये हैं । (यमदूती नामक दाढ़) अत्यन्त छोटी तथा बायें नेत्र पर रहती है इसके काटने पर मंत्र का प्रयोग, औषधि, या कोई भी उपचार नहीं करना चाहिये ।२५-२७। क्योंकि मृत्यु निश्चित होने से वैद्य हार जाता है इसलिए उसका जीवन वहीं तक था ऐसा समझ कर उसकी चिकित्सा पंडितों को नहीं करनी चाहिए ।२८। एक मास में मकरी, दो मास में कराली, तीन मास में कालरात्री एवं चार मास में यमदूती उत्पन्न होती है ।२९।

मकरीं गुडौदनं[1] दद्यात्कषायान्नं करालिकाम् । कालरात्रीं कटुयुतं दूतीं वै सान्निपातिकम् ।।३०
मकरी शस्त्रकं विद्यात्कराली काकपादिका । कराकृतिः कालरात्रिर्याम्या कूर्माकृतिः स्मृता ।।३१
मकरी वातुला ज्ञेया कराली पैत्तिकी स्मृता । कफात्मिका कालरात्री यमदूती सान्निपातकी ।।३२
शुक्ला तु मकरी ज्ञेया कराली रक्तसन्निभा । कालरात्री भवेत्पीता कृष्णा च यमदूतिका ।।३३
वामा शुक्ला च कृष्णा च रक्ता पीता च दक्षिणा । समासेन तु वक्ष्यामि यथैता वर्णतः स्मृताः ।।३४
शुक्ला तु ब्राह्मणी ज्ञेया रक्ता तु क्षत्रिया स्मृता । वैश्या तु पीतिका ज्ञेया कृष्णा शूद्रा तु कथ्यते ।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि दंष्ट्राणां विषलक्षणम्[2] ।।३५
दंष्ट्राणां तु विषं नास्ति नित्यमेव भुजङ्गमे । दक्षिणं नेत्रमासाद्य विषं सर्पस्य तिष्ठति ।।३६
सङ्क्रुद्धस्येह सर्पस्य विषं गच्छति मस्तके । मस्तकाद्धमनीं याति ततो नाडीषु गच्छति ।।३७
नाडीभ्यः पद्यते दंष्ट्रां विषं तत्र प्रवर्तते । तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।।३८
अष्टभिः कारणैः सर्पो दशते नात्र संशयः । आक्रान्तो दशते पूर्वं द्वितीयं पूर्ववैरिणम् ।।३९
तृतीयं दशते भीतश्चतुर्थं मददर्पितः । पञ्चमं तु क्षुधाविष्टः षष्ठं चेह विषोल्बणः ।।
सप्तमं पुररक्षार्थमष्टमं कालचोदितः ।।४०
यस्तु सर्पो दशित्वा[3] तु उदरं परिवर्तयेत् । बलभुग्नाकृतिं दंष्ट्रामाक्रान्तं तं विनिर्दिशेत् ।।४१

मकरी के लिए गुड़, चावल, कराली के लिए कपास स्वाद के अन्न, कालरात्री के लिए कड़वी वस्तु एवं यमदूती के लिए ये सभी वस्तुएँ एक में मिलाकर देना चाहिये ।३०। शस्त्र की भाँति मकरी, कौवे के पैर की भाँति कराली, हाथ की भाँति कालरात्रि और कछुवे के समान यमदूती का आकार होता है । मकरी में वात की प्रधानता, कराली में पित्त की, कालरात्रि में कफ की एवं यमदूती में तीनों की प्रधानता होती है ।३१-३२। मकरी का सफेद, कराली का लाल, कालरात्री का पीला और यमदूती का काला रंग होता है ।३३। बाँईं ओर दाढ़ श्वेत एवं काली तथा दाहिनी ओर की लाल और पीली होती है । अब इनके वर्ण का भी संक्षेप में विवेचन कर रहा हूँ ।३४। श्वेत (दाढ़) ब्राह्मणी, लालवाली क्षत्रिय, पीलीवाली वैश्य और काली वाली दाढ़ शूद्र कही जाती है । इसके पश्चात् 'दातों' में विष कैसे बढ़ जाता है यह बता रहा हूँ ।३५। सापों के दांतों में सदैव विष नहीं रहता है अपितु दाहिनी आँख के समीप विष का स्थान होता है ।३६। साँप के क्रुद्ध होने पर विष (उनके) मस्तक में पहुँच जाता है वहाँ से धमनी नाडी द्वारा अन्य नाड़ियों में पहुँचता है और नाड़ी द्वारा दाँतों में पहुँच जाता है । निश्चित आठ कारणों से साँप (किसी को) काटते हैं । सर्व प्रथम दब जाने से, दूसरे अपने पहले के शत्रु को, तीसरे भयभीत होकर, चौथे मतवाला होकर, पाँचवे भूख से व्याकुल होकर छठें विष की ज्वाला वश, सातवें पुत्र की रक्षा के लिए और आठवें काल की प्रेरणा से (काटते हैं) ।३७-४०। काटने के पश्चात् जो सर्प पेट के बल उलट जाय एवं दाढ़ टेढ़ी कर ले उसे दब जाने से (काटना) जानना चाहिये ।४१। साँप के काटने पर जिसके गहरा व्रण

---

१. गोरखात् । २. शुभौदनम् । ३. विषवर्धने ।

यस्य सर्पेण दष्टस्य गभीरं दृश्यते व्रणम् । वैरदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।४२
एकं दंष्ट्रापदं यस्य अव्यक्तं न च कल्पितम् । भीतदष्टं विजानीयाद्यथोवाच प्रजापतिः ।।४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य रेखा दन्तस्य जायते । मददष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।४४
द्वे च दंष्ट्रापदे यस्य दृश्यन्ते च महाक्षतम् । क्षुधाविष्टं विजानीयाद्यथोवाच प्रजापतिः ।।४५
द्वे दंष्ट्रे यस्य दृश्येते क्वचिद्रुधिरसङ्कुले । विषोल्बणं विजानीयाद्दंशं तं नात्र संशयः ।।४६
अपत्यरक्षणार्थाय जानीयात्तं न संशयः । यत्तु काकपदाकारं त्रिभिर्दन्तैस्तु लक्षितम् ।।४७
महानाग इति प्रोक्तं कालदष्टं विनिर्दिशेत् । त्रिविधं दष्टजातैस्तु लक्षणं समुदाहृतम् ।।४८
दष्टानुपीतं विज्ञेयं कश्यपस्य वचो यथा । विषभागात्तु सर्पस्य त्रिभागस्तत्र संक्रमेत् ।।४९
उदरं दर्शयेद्यस्तु उद्धतं तं विनिर्दिशेत् । छर्दितं विषवेगेन निर्विषः पन्नगो भवेत् ।।५०
असाध्यश्चापि विज्ञेयश्चतुर्दंष्ट्राभिपीडितः । ग्रीवाभङ्गो भवेत्किञ्चित्सन्दष्टो विषयोगतः ।।
इतो दंशस्ततः शुद्धो व्यन्तरः परिकीर्तितः ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
सर्पदंष्ट्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।३३।

(छिद्र) हो जाय, कश्यप के कथनानुसार उसे शत्रुता वश (उसका) काटना जानना चाहिये ।४२। (जिसके) एक दाँत का चिह्न हो जो स्पष्ट हो किन्तु कल्पित (बनावटी) न जान पड़े प्रजापति ने कहा है, उसे भयभीत होकर साँप का काटा हुआ जानें ।४३। साँप के काटने पर जिसके दाँत की रेखा (समान) हो जाये, कश्यप के वचनानुसार उसे मतवाले साँप द्वारा काटा गया समझना चाहिये ।४४। जिसके दो दाँतों के चिह्न एवं महाम् घाव दिखाई दे उसे प्रजापति के कथनानुसार भूख से पीड़ित साँप का काटा हुआ समझे । जिसके दो दाँतों का चिह्न दिखायी दे जो रक्त से भरे हों निश्चित उसे (काटने को) विष की ज्वाला वश काटा हुआ समझें ।४५-४६। और इसी को सन्तान की रक्षा के निमित्त भी जानना चाहिए । जिसके तीन दाँतों का चिन्ह दिखायी दे जो कौवे के पैर के समान हों उसके काटने का कारण काल की प्रेरणा वश जाने और उस काटने वाले भाग को महानाग जानना चाहिये । इस प्रकार काटने के तीन प्रकार के लक्षण होते हैं उन्हें बता दिया ।४७-४८। कश्यप के कथनानुसार दष्टानुपीत (काटने के द्वारा अनुपान कराना) लक्षण कहा गया है । विष का तीन भाग काटे गये उस प्राणी के अन्दर पहुँच जाता है । जो (साँप) काटने के पश्चात् उलट जाता है, उसे मतवाला जानना चाहिये । जिसकेकाटने से खरोंच जाय उस साँप को विष हीन समझना चाहिए । चारों दाँतों द्वारा काटा गया असाध्य होता है अर्थात् उसमें किसी प्रकार सफलता नहीं मिलती है । जो साँप काटने के पश्चात् अपने गले को मोड़ ले उसके काटने को विष वश जाने । इस भाँति साँप के काटने का विचार कर शुद्ध (उससे मुक्त होने का विचार करेंगें) व्यन्तर का विचार करेंगे ।४९-५१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में सर्पदंष्ट्रा वर्णन नामक
तैतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

काललक्षणम्

कश्यप उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कालदष्टस्य लक्षणम् । शृणु गौतम तत्त्वेन यादृशो भवते नरः ॥१
जिह्वाभङ्गोऽथ हृच्छूलं चक्षुर्भ्यां च न पश्यति । दंश च दग्धसंकाशं पक्वजम्बूफलोपमम् ॥२
वैवर्ण्यं चैव दन्तानां श्यावो भवति वर्णतः। सर्वेष्वङ्गेषु शैथिल्यं पुरीषस्य च भेदनम् ॥३
भग्नस्कन्धकटिग्रीव ऊर्ध्वदृष्टिरधोमुखः । दह्यते वेपते चैव स्वपते च मुहुर्मुहुः ॥४
शस्त्रेण च्छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते । दण्डेन ताड्यमानस्य दण्डराजी न जायते ॥५
दंशे काकपदं सुनीलमसकृज्जम्बूफलाभं घनमुच्छूनं रुधिरार्द्रसेकबहुलं कृच्छ्रान्निरोधो भवेत् ।
हिक्काश्वासगलग्रहश्च सुमहान्पाण्डुस्त्वचा दृश्यते शुष्काङ्गं प्रवदन्ति शास्त्रनिपुणास्तत्कालदष्टं विदुः॥६
दंशे यस्याथ शोथः प्रचलितवलितं मण्डलं वा सुनीलं प्रस्वेदो गात्र भेदः स्रवति च रुधिरं सानुनासं च जल्पेत्।
दन्तोष्ठाभ्यां वियोग भ्रमति च हृदयं सन्निरोधश्च तीव्रो दिव्यानामेष दंशः स्थलविपुलमयो विद्धि तं कालदष्टम्॥७
दन्तैर्दन्तान्स्पृशति बहुशो दृष्टिरायासखिन्ना स्थूलो दंशः स्रवति रुधिरं केकरं चक्षुरेकम् ॥

अध्याय ३४

काल के काटने का लक्षण

कश्यप ने कहा—हे गौतम ! अब इसके पश्चात् काल के काटने पर मनुष्य की यथार्थ में जो दशा होती है मैं कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।१। काल के काटने पर जीभ भंग हो जाती है, कलेजे में शूल की पीड़ा एवं आँख से दिखाई नहीं देता है । काटा गया स्थान अग्नि द्वारा जले हुए की भाँति हो जाता है जो पके जामुन के फल के समान (काला) होता है ।२। म्लान मुख काले-पीले मिश्रित रंग की भाँति दाँत, शरीर के सभी अंगों में शिथिलता और गुदा फट जाता है ।३। कंधे, गला एवं कमर टेढ़ी हो जाती है, आँखें ऊपर आ जाती हैं तथा मुख नीचे हो जाता है, जलन, कम्प एवं बार-बार मूर्च्छा आती है ।४। हथियार से काटने पर (शरीर से) रुधिर नहीं निकलता है और दंडे से मारने पर दंडे का चिह्न (शरीर में) नहीं होता है ।५। काटने (के स्थान) पर कौवे के पैर की भाँति चिह्नों जो अत्यन्त नील एवं जामुन के समान होता है, मोटा, सूजन, बार-बार रक्त का निकलना, जो कठिनाई से बन्द किया जा सके, लगातार हिचकी का आना तथा सांस का फूलना, शरीर का पीला रंग, सभी अंगों का सूखना, दिखाई दे, उसे शास्त्र के मर्मज्ञ पंडित काल का काटा हुआ बतलाये हैं।६। काटने पर (उसी स्थान में) शोथ टेढ़ा या गोल, काला धब्बा, पसीना, (किसी अंग का) विदीर्ण होना, रक्त का लगातार निकलना, नाक से बोलना, दाँत-ओंठ का अलग-अलग हो जाना, कलेजे में धड़कन तथा सहसा उसकी गति बन्द हो जाये और बहुत दूर तक काटने का चिह्न हो तो उसे काल का काटा हुआ जानना चाहिए।७। जिसमें बार-बार दाँत से दाँत का रगड़ना, भार से दबी हुई की भाँति आँखे, (काटने के स्थान में) स्थूल चिह्न, रक्त का निकलना, ऊपर नीची आँखों

प्रत्यादिष्टः श्वसिति सततं सानुनासं च भाषेत्पापं ब्रूते सकलगदितं कालदष्टं तमाहुः ॥८
वेपते वेदना तीव्रा रक्तनेत्रश्च जायते । ग्रीवाभङ्गश्चला नाभिः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥९
दर्पणे सलिले वापि आत्मच्छायां न पश्यति । मन्दरश्मि तथा तीव्रं तेजोहीनं दिवाकरम्[१] ॥१०
वेपते वेदनात्रस्तो रक्तनेत्रश्च जायते । स याति निधनं जन्तुः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥११
अष्टम्यां च नवम्यां च कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् । नागपञ्चमीदष्टानां जीवितस्य च संशयः ॥१२
आर्द्राश्लेषामघाभरणीकृत्तिकासु विशेषतः । विशाखां त्रिषु पूर्वासु मूलस्वातीशतात्मके ॥
सर्पदष्टा न जीवन्ति विषं पीतं च यैस्तथा ॥१३
शून्यागारे श्मशाने च शुष्कवृक्षे तथैव च । न जीवन्ति नरा दष्टा नक्षत्रे तिथिसंयुते ॥१४
अष्टोत्तरं नर्म शतं प्राणिनां समुदाहृतम् । तेषां मध्ये तु मर्माणि दश द्वे चापि कीर्तिते ॥१५
शङ्खे नेत्रे भ्रुवोर्मध्ये बस्तिभ्यां वृषणोत्तरे । कक्षे स्कन्धे हृदि मध्ये तालुके चिबुके गुदे ॥१६
एषु द्वादशमर्मेषु[२] दंशैः शस्त्रेण वा हतः । न जीवति नरो लोके कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥१७
अकचटतपयशां वदन्ति प्रोक्ता जीवन्ति न तत्र हि । गतं क्रमाद्यदि स्खलति शिरस्तस्य सम्प्राप्तकालः ॥१८
भवति च यदि दूतो ह्युत्तमस्याधमो वा यदि भवति च दूत उत्तमो वाधमस्य ।

का होना, कुछ कहने पर बार-बार साँस का लेना, नाक से बोलना (पूंछने पर) दुःखी करने वाली बातें कहना आदि लक्षण दिखे तो उसे काल का काटा हुआ बताया गया है ।८। (जिसके शरीर में) कम्प, भारी पीड़ा, गले का लटकना, नाभि का फड़कना मालूम हो उसे काल का काटा जानना चाहिए ।९। जिसे शीशे एवं जल में अपनी छाया न दिखायी दे कांतिहीन चन्द्रमा एवं तेजहीन सूर्य दिखाई दें ।१०। और पीड़ा से दुःखी होकर शरीर काँपता हो तथा आँखें लाल हों तो उसकी मृत्यु हो जाती है और उसे काल का काटा हुआ बताया गया है ।११। अष्टमी, नवमी, कृष्णपक्ष की चर्तुदशी एवं नाग पञ्चमी में काटने पर (प्राणी के) जीवन में संदेह हो जाता है ।१२। आर्द्रा, श्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिषा नक्षत्रों में साँप का काटा हुआ तथा जिसने विष-पान किया हो जीवित नहीं रहता है ।१३। सूने घर, श्मशान एवं सूखे पेड़ या नीचे के तिथि समेत (उपरोक्त) नक्षत्रों में साँप के काटने पर वह (प्राणी) जीवित नहीं रहता है ।१४। प्राणियों के एक सौ आठ मर्मस्थान बताये गये हैं, पर, उनमें मस्तक की हड्डी, भौंह का मध्यभाग नाभि के नीचे दोनों ओर, अंडकोष, काँख, कन्धा, हृदय, कटि, तालू, ठोंड़ी और गुदा इन बारहों स्थानों में साँप काटे या हथियार का आघात हो, तो वह मनुष्य जीवित न रहे तथा उसे काल का काटा हुआ जानना चाहिये ।१५-१७। यदि कहलाने पर क्रमशः अ, क, च, ट, त, प, इन वर्णों एवं य श तक का उच्चारण करे तो जीवित रहता है किन्तु पिछला (अक्षर) कहे या कुछ का कुछ कहे तो उसके शिर पर काल पहुँच गया है ऐसा समझ लेना चाहिये ।१८। ऊँची जाति का प्रथम दूत या नीच जाति का उत्तम दूत हो जो सर्वप्रथम वहाँ पहुँचकर काटे गये (प्राणी) का नाम ही बताये या अन्य किसी से (उसके विषय में) बातें किया हो तथा दोनों में जाति भेद भी रहा तो

---

१. दष्ट्वा । २. निशाकरम् ।

आदौ दष्टस्य नाम यदि वदति क्वचिद्वक्ति तस्याथ पश्चात्तं वर्णभेदो यदि भवति समः प्राप्त कालस्य दूतः ॥१९
दूतो वा दण्डहस्तो भवति च युगलं पाशहस्तस्तथा वा रक्तं वस्त्रं च कृष्णं मुखशिरसि गतमेकवस्त्रश्च दूतः ॥
तैलाभ्यक्तश्च तद्वद्यदि त्वरितगतिर्मुक्तकेशश्च याति यः कुर्याद्घोरशब्दं करचरणयुगैः प्राप्तकालस्य दूतः ॥२०
नागोदयं प्रवक्ष्यामि ईशानेन तु भाषितम् । ब्रह्मणा तु पुरा सृष्टा ग्रहा नागास्त्वनेकशः ॥२१
अनन्तं भास्करं विद्यात्सोमं विद्यात्तु वासुकिम् । तक्षकं भूमिपुत्रं तु कर्कोटं च बुधं विदुः ॥२२
पद्मं बृहस्पतिं विद्यान्महापद्मं च भार्गवम् । कुलिकः शंखपालश्च द्वावेतौ तु शनैश्चरः ॥२३
पूर्वपादः शंखपालो द्वितीयः कुलिकस्तथा । नित्यं भागे यथोद्दिष्टे दिनरात्री तथैव च ॥२४
शुक्रसोमौ च मध्याह्ने उदये तु क्षमासुतः । शनिः प्रागष्टमे भागे दिवारात्रे त्विहोच्यते ॥२५
ग्रहाश्च भुञ्जते चैव शेषं भागस्य लक्षणम् । रविवारे सदा ज्ञेयौ पादौ दश चतुर्दश ॥२६
अष्ट द्वादश द्वै चन्द्रे दश षष्ठे कुजे तथा । बुधस्य नवमे पादे राहौ च दिवसस्य च ॥२७
गुरोर्द्वितीयः षष्ठश्च षोडशस्य तु वर्जयेत् । भास्करस्य दिने प्रोक्ते चतुर्थे दशमेऽष्टमे ॥२८
शनैश्चरदिने पादं त्यजेच्चैव सुदारुणम् । द्वितीयं द्वादशं चैव षोडशस्य तु वर्जयेत् ॥२९
मुहूर्तघटिकादूर्द्ध्वं घटिका चतुर्थं भागं विंशतिश्च । कुहूसुतं बुद्बुदं निमेषमेत्कालस्य लक्षणम् ॥३०

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
दंशदष्टकदूतलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४।

उसे चिकित्सक का दूत नहीं बल्कि काल का दूत जानना चाहिए ।१९। इसी प्रकार हाथ में दंडा या फाँस लिये हुए दो व्यक्ति हों, मुख या शिर पर लाल या काले कपड़े हों, एक ही वस्त्र पहने हों तेल लगाये, जल्दी-जल्दी आते हों, बाल खुले हों एवं हाथ पैर से भयानक शब्द करते हों, उन्हें आये हुए काल का दूत जानें ।२०। नागों के उदय को जिसे शंकर जी ने पहले कहा था, कह रहा हूँ । ब्रह्मा ने सबसे पहले ग्रह और अनेक नागों की सृष्टि की है । अनन्त नाग सूर्य, वासुकी चन्द्रमा, तक्षक मंगल, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुलिक और शंख पाल शनेश्चर (के रूप) हैं ।२१-२३। दिन और रात की भाँति पूर्व पाद का स्वामी शंख पाल तथा दूसरे पाद का कुलिक है बताया गया है । दिन उदय में मंगल, मध्याह्न में शुक्र और चन्द्रमा तथा दिन-रात में पहले आठ भाग तक शनि का भोग रहता है, शेष भाग में रविवार का दशवाँ, चौदहवाँ, सोमवार का आठवाँ, बारहवाँ, मंगल का छठाँ, दशवाँ, बुध का नवाँ, वृहस्पति का दूसरा, छठाँ, शुक्र का चौथा, आठवाँ एवं दशवाँ, शनि का पहला, दूसरा और बारहवाँ भाग अत्यन्त भयावह होने के नाते त्याज्य हैं, अर्थात् इसमें साँप के काटने पर प्राणी जीवित नहीं रहता ।२४-२९। मुहूर्त की घड़ी से ऊपर की घड़ी चौथा और बीसवाँ भाग भी त्याज्य हैं जो क्रमशः कुहू-सुत-बुद्बुद एवं निमेष के नाम से ज्ञात है । इस प्रकार काल के (त्याज्य) लक्षण को बता दिया गया ।३०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में दंशदष्टक दूत लक्षण
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

यमदूतीलक्षणम्

कश्यप उवाच

सविषा दंष्ट्रयोर्मध्ये यमदूती तु वै भवेत् । न चिकित्सा बुधैः कार्या तं गतायुं विनिर्दिशेत् ॥१
प्रहरार्धं दिवारात्रावेकैकं भुञ्जते बहिः । एकस्य च समानं च द्वितीयं षोडशं तथा ॥२
नागोदयो यमुद्दिश्य हतो विद्धो विदारितः । कालदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥३
यन्मात्रं पतते बिन्दुर्वालाग्रं सलिलोद्धृतम् । तन्मात्रं स्रवते दंष्ट्रा विषं सर्पस्य दारुणम् ॥४
नाडीशते तु सम्पूर्णे देहे सङ्क्रमते विषम् । यावत्सङ्क्रामयेद्बाहुं कुञ्चितं वा प्रसारयेत् ॥५
अनेन क्षणमात्रेण विषं गच्छति मस्तके । वेपते विषवेगे तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥६
वर्धते रक्तमासाद्य ततो वातैः शिखी यथा । तैलबिन्दुर्जलं प्राप्य यथा वेगेन वर्धते ॥७
शिखण्डी आश्रयं प्राप्य मारुतेन समीरितः । ततः स्थानशतं प्राप्य त्वचास्थानं विचेष्टितम् ॥८
त्वचासु द्विगुणं विद्याच्छोणितेषु चतुर्गुणम् । पित्ते तु त्रिगुणं याति श्लेष्मे वै षोडशं भवेत् ॥९
वायौ त्रिंशद्गुणं चैव मज्जाषष्टिगुणं तथा । प्राणे चैकार्णवीभूते सर्वगात्राणि सन्धयेत्[1] ॥१०

अध्याय ३५

यमदूतीलक्षण

कश्यप बोले—दाढ़ों के बीच मे विष से भरी हुई यमदूती नामक दाढ़ होती है । उसके द्वारा साँप के काटने पर विद्वानों को किसी प्रकार की चिकित्सा न करनी चाहिए और प्राणी की भी आयु समाप्त समझनी चाहिये जिसे साँप ने काट खाया है ।१। इसी भाँति दिन और रात में एक-एक पहर के आधे आधे भाग और उसी के समान दूसरे और सोलहवें भाग को साँप भोगते हैं । इसलिए उस नागोदय काल में साँप ने जिस पर आघात किया अथवा फाड़ दिया तो कश्यप के कथनानुसार उसे काल द्वारा ही किया गया जानना चाहिए ।२-३। पानी से भीगे हुए बाल के अग्रभाग पर जितनी बड़ी बूंद रह कर गिरजाती हैं साँप के दाढ़ द्वारा उतनी ही मात्रा में घोर विष निकलता है तथा जितनी देर में भुजा समेटी या फैलाई जाती है उतने समय में वह विष उसके सैकड़ों नाड़ियों से पूर्ण देह में पहुँच जाता है । फिर उसी क्षण शिर में भी विष पहुँच जाता है जिससे विष की तीक्ष्णता वश वह प्राणी सैकडों एवं सहस्रों बार काँपता रहता है ।४-६। पश्चात् वह विष रक्त में पहुँच कर वायु द्वारा अग्नि की भाँति विस्तृत होता है । जिस प्रकार तेल की बूँद पानी में तेजी से फैलती है, उसी प्रकार अपने स्थान में पहुँच कर वह विष भी वायु द्वारा प्रफुल्लित होकर बढ़ता है अग्नि की भाँति उसी तेजी से शरीर में फैल जाता है ।७-८। इस प्रकार सैकड़ों स्थानों में पहुँच कर वह विष त्वचा (शरीर के ऊपरी चमड़े) में दुगुना रक्त में चौगुना, पित्त में तिगुना, श्लेष्मा (बलगम) में सोलहगुना, वात में तीस गुना, मज्जा (नली की हड्डी के भीतर के गुदे) में साठ गुना

---

१. मर्मसु ।

श्रोत्रे निरुध्यमाने च याति दष्टस्त्वसाध्यताम् । ततोऽसौ म्रियते जन्तुर्निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः ।।११
निष्क्रान्ते तु ततो जीवे भूते पञ्चत्वमागते । तानि भूतानि गच्छन्ति यस्य यस्य यथातथम् ।।१२
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । इत्येषामेव सङ्घातः शरीरमभिधीयते ।।१३
पृथिवी पृथिवीं याति तोयं तोयेषु लीयते । तेजो गच्छति चादित्यं मारुतो मारुतं व्रजेत् ।।१४
आकाशं चैवमाकाशे सह तेनैव गच्छति । स्वस्थानं ते प्रपद्यन्ते परस्परनियोजिताः ।।१५
न जीवेदागतः कश्चिदिह जन्मनि सुव्रत । विषार्तं न उपेक्षेत त्वरितं तु चिकित्सयेत् ।।१६
एकमस्ति विषं लोके द्वितीयं चोपपद्यते । यथा नानाविधं चैव स्थावरं तु तथैव च ।।१७
प्रथमे विषवेगे तु रोमहर्षोऽभिजायते । द्वितीये विषवेगे तु स्वेदो गात्रेषु जायते ।।१८
तृतीये विषवेगे तु कम्पो गात्रेषु जायते । चतुर्थे विषवेगे तु श्रोत्रान्तरनिरोधकृत् ।।१९
पञ्चमे विषवेगे तु हिक्का गात्रेषु जायते । षष्ठे च विषवेगे तु प्राणेभ्योऽपि प्रमुच्यते ।।
सप्तधातुवहा ह्येते वैनतेयेन भाषिताः ।।२०
त्वचः स्थाने विषे प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । अङ्गानि तिमिरायन्ते तपन्ते च मुहुर्मुहुः ।।२१
एतानि यस्य चिह्नानि तस्य त्वचि गतं विषम् । तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।।२२
अर्कमूलमपामार्गं प्रियङ्गुं तगरं[2] तथा । एतदालोड्य दातव्यं ततःसम्पद्यते सुखम् ।।२३

बढ़कर फिर प्राण और समस्त देहमें व्याप्त हो जाता है ।९-१०। इसलिए कान से न सुनाई देने पर यह असाध्य रोगी हो जाता है और श्वाँस का आना-जाना बन्द होने के नाते उसकी मृत्यु हो जाती है ।११। प्राण के निकल जाने पर शरीर, पृथ्वी, जल आदि पाँचों भूत जहाँ-जहाँ से आते है उसी में पुनः मिल जाते हैं ।१२। क्योंकि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के इकट्ठे होने को ही शरीर कहते हैं ।१३। अतः मरने पर पृथिवी पृथिवी में पानी पानी में तेज आदित्य में वायु वायु में एवं आकाश आकाश में (प्राण निकलने के) साथ-साथ विलीन हो जाते हैं और अपने-अपने स्थान में पहुँच जाते है । हे सुव्रत ! यहाँ इस लोक में जन्म लेने पर कोई (सदैव) जीवित नहीं रहता है अतः विष-पीड़ित की उपेक्षा न करके अति शीघ्र उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ।१४-१६। जिस प्रकार विष एक ही है और इसी प्रकार का हो जाता है और संसार में वह कई प्रकार का दिखाई देता है, फल भी उसके भिन्न-भिन्न होते हैं उसी भाँति (संखिया आदि) स्थावर विष को भी उनके रूप का जानना चाहिये ।१७। विष के प्रवेश करने पर पहले क्षण में वेग द्वारा (शरीर में) रोमाञ्च, दूसरे में समस्त शरीर में पसीना, तीसरे में कम्प चौथे में कान के भीतरी पर्दे का बन्द होना, पाँचवें में हिचकी और छठें में प्राण वियोग हो जाता है । गरुड़ के कथनानुसार इसी भाँति सातों धातुओं में विष पहुँचता है ।१८-२०। अब त्वचा में विष के पहुँचने पर जो उसकी दशा होती है, मैं कह रहा हूँ सुनो ! विष के भीतर पहुँचने पर शरीर के सभी अंगों में अन्धकार सा दिखाई देता है और ऐंठन व जलन होती है ।२१। इस लक्षण से त्वचा में विष का पहुँचना जानना चाहिए । अब उसके औषध को मैं कह रहा हूँ जिसके सेवन मात्र से उसके रोगी को सुख मिलता है मदार की जड़, चिचिरा, प्रियङ्गु (राई, पीपर, कांगनी और कटुकी) एवं तगर इन्हें एक में घोंट कर (रोगी को) देने से शीघ्र

---

१. वर्धयेत् । २. तैलकम् ।

ततस्तस्मिन्कृते विप्र न निवर्तेत चेद्विषम् । त्वचः स्थानं ततो भित्त्वा रक्तस्थानं प्रधावति ।।२४
विषे च रक्तं संप्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । दह्यते मुह्यते[1] चैव शीतलं बहु मन्यते ।।२५
एतानि यस्य रूपाणि तस्य रक्तगतं विषम् । तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।।२६
उशीरं चन्दनं कुष्ठमुत्पलं तगरं तथा । महाकालस्य मूलानि सिन्दुवारनगस्य च ।।
हिङ्गुलं मरिचं चैव पूर्ववेगे तु दापयेत् ।।२७
बृहती वृश्चिका काली इन्द्र वारुणिमूलकम्[2] । सप्तगन्धघृतं चैव द्वितीये परिकीर्तितम् ।।२८
सिन्दुवारं तथा हिङ्गुं तृतीये कारयेद्बुधः । तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा ।।२९
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् । रक्तस्थानं ततो गत्वा पित्तस्थानं प्रधावति ।।३०
पित्तस्थानगते विप्र विषरूपाणि मे शृणु । उत्तिष्ठते निपतते दह्यते मुह्यते तथा ।।३१
गात्रतः पीतकः स्याद्वै दिशः पश्यति पीतिकाः । प्रबला च भवन्मूर्च्छा न चात्मानं विजानते ।।
विषक्रियां तस्य कुर्याद्यया सम्पद्यते सुखम् ।।३२
पित्तस्थानमतिक्रम्य श्लेष्मस्थानं च गच्छति ।।३३
पिप्पल्यो मधुकं चैव मधु खण्डं घृतं तथा । मधुसारमलाबूं च जातिं शङ्करवालुकाम् ।।
इन्द्रवारुणिकामूलं गवां मूत्रेण पेषयेत् ।।३४

शांति मिलती है ।२२-२३। हे विप्र ! इस प्रयोग के द्वारा यदि विष नाश न हुआ तो उसे त्वचा से आगे रक्त में पहुँचा हुआ जानना चाहिए ।२४। रक्त में विष के मिलने पर जो दशा होती है उसे भी कह रहा हूँ सुनो ! देह में दाह और मूर्छा एवं अधिक ठंडी भी लगती है ।२५। जिसकी ऐसी दशा हो उसके रक्त में विष पहुँच गया है, ऐसा जानना चाहिए । उसकी औषधि भी बताता हूँ जिसके द्वारा उस प्राणी को सुख प्राप्त होता है ।२६। उशीर (गड़रा की जड़), चन्दन, कुष्ठ (एक प्रकार का विष), नील कमल, तगर, महाकाल (एक प्रकार की लता) एवं सिन्दुवार (म्यौड़ी) की जड़ हिंगुल (ईंगुर) और काली मरिच इन्हें एक में मिलाकर विष के पहले ही वेग में रोगी को दे देना चाहिए ।२७। दूसरे वेग में भटकटैय्या, वृश्चिका, काली, इन्द्रवारुणी (पीलेफूल और श्वेत जड़वाली एक प्रकार की लता की जड़) सातों गंध और घी देने को कहा गया है ।२८। तीसरे वेग में सिंदुरवार (म्यौड़ी) तथा हींग का पान (नेत्र में) अंजन और (देहों) में लेप करें ।२९। इन्ही के इस प्रकार के उपचार करने से (रोगी को) सुख प्राप्त होता है । रक्त के पश्चात् वह (विष) पित्त में पहुँचता है ।३०। हे विप्र ! पित्त में पहुँच कर जो उसका रूप होता है, मैं कहता हूँ, सुनो ! (बार-बार) उठना, गिरना, जलन, मूर्च्छा, देह का पीला होना और (रोगी को) दिशायें पीली दिखायी देती हैं तथा उसे मूर्च्छा इतनी बड़ी प्राप्त हो जाती है कि वह अपने आप को एकदम भूल जाता है इसलिए उस विष की ऐसी प्रतिक्रिया करनी चाहिए जिससे शीघ्र सुख प्राप्त हो जाय ।३१-३२। पित्त स्थान के पश्चात् वह श्लेष्मा में पहुँचता है ।३३। पीपर, महुआ, शहद, खांड, घी, मधुसार (महुआ की शराब), अलाबू, (जण्ड लौकी) जाती, (चमेली) शंकर बालुका, इन्द्रवारुणी की जड़ इन्हें गो मूत्र में

---

१. तैलकम् । २. चैव तद्देहम् ।

नस्यं तस्य प्रयुञ्जीत पानमालेपनाञ्जनम् । एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३५
श्लेष्मस्थानं ततः प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । गात्राणि[1] तस्य रुध्यन्ते निःश्वासश्च न जायते ॥
लाला च स्रवते तस्य कण्ठो घुरुघुरायते ॥३६
एतानि यस्य रूपाणि तस्य श्लेष्मगतं विषम् । तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥३७
त्रिकुटको श्लेष्मातको लोध्रश्च मधुसारकम् । एतानि समभागानि गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥३८
तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा । एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३९
श्लेष्मस्थानमतिक्रम्य वायुस्थानं च गच्छति । तत्र रूपाणि वक्ष्यामि वायुस्थानगते विषे ॥४०
आध्मायते च जठरं बान्धवांश्च न पश्यति । ईदृशं कुरुते रूपं दृष्टिभङ्गश्च जायते ॥४१
एतानि यस्य रूपाणि तस्य वायुगतं विषम् । तस्यागदं प्रक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥४२
शोणामूलं प्रियालं च रक्तं च गजपिप्पलीम् । भार्ङ्गीं वचां पिप्पलीं च देवदारुं मधूककम् ॥४३
मधूकसारं सहसिन्दुवारं हिङ्गुं च पिष्टा गुटिकां च कुर्यात् ।
दद्याच्च तस्याञ्जनलेपनादि एषोऽगदः सर्पविषाणि हन्यात् ॥४४
अञ्जनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विषान्विते । वायुस्थानं ततो मुक्त्वा मज्जास्थानं प्रधावति ॥४५
विषे मज्जागते विप्र तस्य रूपाणि मे शृणु । दृष्टिश्च हीयते तस्य भृशमङ्गानि मुञ्चति ॥४६

पीस कर नास दे, पान, करायें लेपन और अञ्जन दे, इसी उपचार मात्र से उसे सुख प्राप्त होता है ।३४-३५। विष के श्लेषा में पहुँचने पर प्राणी की जो दशा होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! कान से सुनाई नहीं देता, साँस रूक जाती है, मुँह से लार गिरता है एवं गले में घुरघुराहट होती है ।३६। ऐसी दशा होने पर उसके श्लेष्मा में विष पहुँच गया, जान लेना चाहिए अब उसकी औषधि कह रहा हूँ जिसके सेवन से (रोगी) सुखी होता है । त्रिकटुका (सोंठ मिर्च पीपर) श्लेष्मातक (लसोड़ा) लोध, मधुसार (महुवा का शराब) इनके बराबर भाग को गोमूत्र में पीसकर । उसका पान, अंजन और लेप करे, इसी उपचार से उसे सुख मिलता है ।३७-३९। श्लेष्मा में पहुँच कर वह विष वायु में पहुँचता है । वात में मिलने पर उसकी जो अवस्था होती है, कह रहा हूँ । पेट फूल जाता है भाई-बन्धु को नहीं देख पाता है, और दृष्टि भी नष्ट हो जाती है ।४०-४१। ऐसी दशा होने पर उसके वायु में विष पहुँच गया है जानना चाहिए ऐसे (रोगी) को आरोग्य करने वाली औषधि बता रहा हूँ सुनो ! ।४२। शोणामूल (वनहर की) प्रियाल (द्राक्षा) रक्त गजपीपल, भृङ्गराज, बच पीपरि, देवदारु, महुआ, मधूक सार, (महुआ का शराब) सिंदुरवार (म्यौड़ी) और हिंगु (हींग) इन्हें पीसकर गोली बनाये इस प्रकार उसी का अंजन-लेपन आदि करने से साँप का विष नष्ट हो जाता है ।४३-४४। आँखों में अञ्जन और नाक में नास तुरंत देना चाहिए । उसके पश्चात् वह (विष) मज्जा में पहुँचता है ।४५। विप्र ! मज्जा में पहुँचने पर उसकी जो दशा होती है बता रहा हूँ सुनो ! दृष्टि कम हो जाती है और (सभी) अंग जैसे शरीर से अलग हो गये हों ऐसा मालूम होने लगता है ।४६। ऐसी दशा होने पर मगज में विष

---

१. इंद्रवारुकमूलकम् ।

एतानि यस्य रूपाणि तस्य मज्जागतं विषम्। तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।।४७
घृतमधुशर्करान्वितमुशीरं चन्दनं तथा । एतदालोड्य दातव्यं पानं नस्यं च सुव्रत ।।४८
ततः प्रणश्यते दुःखं ततः सम्पद्यते सुखम् । अथ तस्मिन्कृते योगे विषं तस्य निवर्तते ।।४९
मज्जास्थानं ततो गत्वा मर्मस्थानं प्रधावति । विषे तु मर्मसंप्राप्ते शृणु रूपं यथा भवेत् ।।५०
निश्चेष्टः पतते भूमौ कर्णाभ्यां बधिरो भवेत् । वारिणा सिच्यमानस्य रोमहर्षो न जायते ।।५१
दण्डेन हन्यमानस्य दण्डराजी न जायते । शस्त्रेण च्छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते ।।५२
केशेषु लुच्यमानेषु नैव केशान्प्रवेदते । यस्य कर्णौ च पार्श्वे च हस्तपादं च सन्धयः ।।
शिथिलानि भवन्तीह स गतासुरिति श्रुतिः ।।५३
एतानि यस्य रूपाणि विपरीतानि गौतम । मृतं तु न विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।५४
वैद्यास्तस्य न पश्यन्ति ये भवन्ति कुशिक्षिताः । विचक्षणास्तु पश्यन्ति मन्त्रौषधिसमन्विताः ।।५५
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि स्वयं रुद्रेण भाषितम् । मयूरपित्तं मार्जारपित्तं गन्धनाडीमूलमेव[1] च ।।५६
कुङ्कुमं तगरं कुष्ठं कासमर्दत्वचं तथा । उत्पलस्य च किञ्जल्कं पद्मस्य कुमुदस्य च ।।५७
एतानि समभागानि गोमूत्रेण तु पेषयेत् । एषोऽगदो यस्य हस्ते दष्टो न म्रियते स वै ।।
कालाहिनापि दष्टेन क्षिप्रं भवति निर्विषः ।।५८

पहुँच गया है, जानना चाहिए। उसे आरोग्य करने वाली औषधि बता रहा हूँ। जिससे उसे सुख हो सुनो ! ।४७। घी, शहद एवं शक्कर मिलाकर (गडरे की जड़) और चन्दन को अत्यन्त पिस कर पिलावें और नास दें। हे सुव्रत ! ऐसा करने से रोगी का दुःख दूर हो जाता है और उसे सुख प्राप्त होता है।४८-४९। मज्जा के पश्चात् वह मर्मस्थल में पहुँचता है। विष के मर्मस्थल में पहुँचने पर जो अवस्था प्राप्त होती है, बता रहा हूँ सुनो ! ।५०। निश्चेष्ट (बेहोश) होकर भूमि पर गिर जाता है, कान का बधिर हो जाता है, पानी से नहलाने पर रोमांच (ठंढी) नहीं होता।५१। दंडे से मारने पर दंडे का चिह्न नहीं दिखाई देता है हथियार से काटने पर रक्त नहीं निकलता है।५२। और बालों के नोंचने पर उसे उसका ज्ञान ही नहीं रहता है। इस प्रकार जिसके कान, (दोनों) बगल, हाथ, पैर और (अंगों के) जोड़ शिथिल हो जायें, उसे निश्चित मृतक जानना चाहिये ।५३। हे गौतम ! इसके प्रतिकूल जिसकी अवस्था हो, उसे कश्यप के कथनानुसार मृतक न समझे और उसका उपचार करे पर कुशिक्षित वैद्य को उसकी जानकारी नहीं होगी। जो अत्यन्त चतुर वैद्य है मंत्र एवं औषध द्वारा उन्हें ही (इसका) ज्ञान होता है।५४-५५। उसकी चिकित्सा, जिसे स्वयं रुद्र भगवान् ने कहा है, बता रहा हूँ। मोर एवं बिल्ली का पित्त, चन्दन, नाड़ीमूल (गण्डदूर्वा), कुंकुम, तगर, कुष्ठ, कोसमर्द (वृक्ष) की छाल, नीलकमल, कमल और कुमुद का पराग इनके समान भाग को गोमूत्र में पीस कर आंजन लगाये ओर नासदे, यह औषध जिसके पास हो वह साँप के काटने पर कभी प्राण त्याग नहीं कर सकता है। इसलिए यह मृतसंजीवनी औषधि कही गयी है क्योंकि काल

---

१. श्रोत्राणि तस्य रुध्यन्ते ।

क्षिप्रमेव प्रदातव्यं मृतसञ्जीवनौषधम् । अञ्जनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विचक्षणः ।।५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे धातुगतं विषक्रियावर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।३५।

अथ षट्त्रिंशोऽध्याय

नागपञ्चमीव्रतवर्णनम्

गौतम उवाच

कीदृशं सर्पदष्टस्य सर्पिण्याः कीदृशं भवेत् । कुमारदष्टः कीदृक्स्यात्सूतिकादंशितस्य च ।।१
रूपं नपुंसकेनेह व्यन्तरेण च कीदृशम् । एतदाख्याहि मे सर्वमेभिर्दष्टस्य लक्षणम् ।।२

कश्यप उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि नागानां रूपलक्षणम् । सर्पदष्टस्य च तथा समसाद्द्विजपुङ्गव ।।३
अथ सर्पेण दष्टस्य ऊर्ध्वदृष्टिः प्रजायते । सर्पादष्टस्य च तथा अधोदृष्टिः प्रजायते ।।४
कन्यादष्टस्य वामा स्याद्दृष्टिर्द्विजवरोत्तम । कुमारेणापि दष्टस्य दक्षिणा एव जायते ।।५
गर्भिण्या वाथ दष्टस्य तथा स्वेदश्च जायते । रोमाञ्चः सूतिकायास्तु वेपथुश्चापि जायते ।।
नपुंसकेन दष्टस्य अङ्गमर्दः[२] प्रजायते ।।६

के काटने पर भी इस उपचार द्वारा उसका विष शान्त हो जाता है।५६-५९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पंचमी कल्प में धातुगत विष क्रिया वर्णन नामक पैतीसवाँ अध्याय समाप्त।३५।

अध्याय ३६

नागपञ्चमी व्रत वर्णन

गौतम ने कहा—साँप, साँपिनि, कुमार (बच्चे), प्रसूता, नपुंसक (साँप) तथा व्यंतर के काटने पर (प्राणी की) किन-किन प्रकार की दशाएँ होती हैं इसे तथा इनके काटने के लक्षणों को विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें।१-२

कश्यप बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् अब मैं बड़े नागों और साँप के काटने पर प्राणी के (विकृत) रूप और लक्षण संक्षेप में कहा रहा हूँ।३

साँप के काटने पर (प्राणी की) आँखे ऊपर हो आती हैं उसी प्रकार साँपिनी के काटने पर नीची, कुमारी के काटने पर बाँई ओर कुमार के काटने पर दाहिनी ओर हो जाती हैं।४-५। गर्भिणी साँपिनी के काटने पर पसीना हो आता है प्रसूता के काटने पर रोमाञ्च और कम्पन होता है एवं नपुंसक (सर्प) के

---

१. गंधनानालीमूल मेव च।

पन्नग्यः प्रभवो रात्रौ दिवा सर्पो विषाधिकः । नपुंसकस्तु सन्ध्यायां कश्यपेन तु भाषितम् ॥७
अन्धकारे तु दष्टो य उदके गहने वने । सुप्तो वा चेत्प्रमत्तो वा यदि सर्पं न पश्यति ॥
दष्टरूपाण्यजानन्वै कथं वैद्यचिकित्सितम् ॥८
चतुर्विधा इह प्रोक्ताः पन्नगास्तु महात्मना । दर्वीकरा मण्डलिनो राजिला व्यन्तरास्तथा ॥९
दर्वीकरा वातविषा मण्डला पैत्तिकाः स्मृताः । श्लेष्मला राजिला ज्ञेया व्यंतराः सान्निपातिकाः ॥१०
रक्तं परीक्षद्भेदात् सर्पाणां तु पृथक्पृथक् । कृष्णं दर्वीकराणां तु जायते नाल्पमुल्बणम् ॥११
रक्तं घनं च बहुधा शोणितं मण्डलीकृतम् । पिच्छिलं राजिले स्वल्पं तद्वद्व्यन्तरके तथा ॥१२
सर्पा ज्ञेयास्तु चत्वारः पञ्चमो नोपलभ्यते । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव चतुर्थकः ॥१३
ब्राह्मणे मधुरं दद्यात्तिक्तं दद्यात्तथोत्तरे । वैश्ये कर्षफलं दद्याच्छूद्रे त्रिस्थूणमेव[1] च ॥१४
ब्राह्मणेन तु दष्टस्य दाहो गात्रेषु जायते । मूर्च्छा च प्रबला स्याद्वै नात्मानमभिजानते ॥१५
श्यामवर्णं मुखं च स्यान्मज्जास्तम्भश्च जायते । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥१६
अश्वगन्धाप्यपामार्गः सिन्दुवारं सुरामयम् । एतत्सर्पिः समायुक्तं पाने नस्ये च दापयेत् ॥
एतेनैवोपचारेण सुखी भवति मानवः ॥१७
क्षत्रियेण तु दष्टस्य कम्पो गात्रेषु जायते । मूर्छा मोहस्तथा स्याद्वै नात्मानमभिवेत्ति सः ॥१८

काटने पर (देह के) अंग टूटते हैं।६। कश्यप ने बताया है कि साँपिनी का प्रभाव रात में और साँप का प्रभाव दिन में एवं नपुंसक का प्रभाव संध्या समय अधिक रहता है।७। इसलिए अंधेरे में पानी में या घोर जंगल में यदि साँप ने काट लिया और वह प्राणी सोया रहा हो या विशेष मस्ती में हो साँप को नहीं देखा तो उसके काटने के चिह्न को न जानते हुए वैद्य उसकी चिकित्सा कैसे कर सकता है।८। दर्वीकर (करछी की भाँति फण वाले), मंडली, राजिल (डोंडा साँप) और व्यंतर, ये चार प्रकार के भेद साँप के बताये गये हैं।९। दर्वीकर का विष, वातप्रधान, मंडली का पित्त प्रधान, राजिल का श्लेष्म प्रधान और व्यंतर का सन्निपात (सब मिला हुआ) प्रधान होता है।१०। इन साँपों के रक्त की अलग-अलग परीक्षा करनी चाहिए दर्वीकर का रक्त काला और अधिक गरम होता है, गाढ़ा और लाल रक्त मंडली का होता है जो कीचड़ की भाँति और स्वल्प दिखायी देता है राजिल तथा उसी भाँति व्यंतर का भी रक्त होता है।११-१२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये ही चार वर्ण के होते हैं पाँचवा कहीं नहीं मिलता।१३। ब्राह्मण को मधुर, क्षत्रिय को तीखा, वैश्य को कर्षफल (बहेड़ा) और शूद्र को कुट (कड़ुवा) देना चाहिए।१४। ब्राह्मण (साँप) के काटने पर शरीर में दाह होता है और मूर्च्छा इतनी बड़ी आती है कि वह अपने आप को कुछ भी नहीं जान पाता।१५। मुख काला हो जाता है एवं मज्जा में स्तम्भन होने लगता है अतः उसकी प्रतिक्रिया (औषध मंत्रद्वारा) करनी चाहिए जिससे रोगी को सुख प्राप्त हो।१६। अश्वगंधा, चिचिरा और शराब समेत सिंदुवार (म्यौड़ी) इन्हें घीर में मिलाकर पिलावें और नास दे बस इतने ही उपचार करने से प्राणी सुखी हो जाता है। क्षत्री के काटने पर देह में कम्प तथा मूर्च्छा एवं मोह

---

१. मुखशोषः।

जायते वेदना तस्य ऊर्ध्वं चैव निरीक्षते । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥१९
अर्कमूलमपामार्गं प्रियङ्गुमिन्द्रवारुणीम्[1] । एतत्सर्पिः समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत् ॥
एतेनैवोपचारेण सुखी भवति मानवः ॥२०
वैश्येनापि हि दष्टस्य शृणु रूपाणि यानि तु । श्लेष्मप्रकोपो लाला च न चोद्वहति चेतनाम् ॥२१
मूर्छा च प्रबला यस्य आत्मानं नाभिनन्दति । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥२२
अश्वगन्धा सगोमूत्रा गृह धूमं सगुग्गुलम् । शिरीषार्कपलाशेन श्वेता च गिरिकर्णिका ॥२३
गोमूत्रेण समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत् । एष वैश्येन दष्टानामगदः परिकीर्त्तितः ॥२४
शूद्रेणापि हि दष्टस्य शृणु तत्त्वेन गौतम । कुप्यते[2] वेपते चैव ज्वरः शीतं च जायते ॥२५
अङ्गानि चुलुचुलायन्ते[3] शूद्रदष्टस्य लक्षणम् । तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६
पद्मं च लोध्रकं चैव क्षौद्रं पद्मस्य केसरम् । मधूकसारं मधु च श्वेतां च गिरिकर्णिकाम् ॥२७
एतानि समभागानि पेषयेच्छीतवारिणा । पानलेपाञ्जनैर्नस्यैः सुखी भवति मानवः ॥२८
पूर्वाह्ले चरते विप्रो मध्याह्ने क्षत्रियश्चरेत् । अपराह्ले चरेद्वैश्यः शूद्रः सन्ध्याचरो भवेत् ॥२९
आहारो वायुपुष्पाणि[4] ब्राह्मणानां विदुर्बुधाः । मूषिका क्षत्रियाणां च आहारो द्विजसत्तम ॥
वैश्या मण्डूकभक्षाश्च शूद्राः सर्वाशिनस्तथा ॥३०

उसे इस प्रकार का होता है कि उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती है ।१७-१८। उसे पीड़ा होती है और वह आँख से ऊपर देखने लगता है। अतः शीघ्र उसकी सुख प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया करनी चाहिए।१९। मदार की जड़ चिचिरा प्रियंगु (माल कंगुनी) इन्द्रवारुणी (लता) इन्हें घी में मिलाकर पान करावे तथा नास दे । इसी उपचार से मनुष्य नीरोग हो जाता है ।२०। वैश्य जाति के साँप द्वारा काटे गये प्राणी की दशा मैं कह रहा हूँ सुनो ! श्लेष्मा दूषित हो जाती है जिससे मुख से लार गिरता है तथा चेतना विहीन हो जाता है । उसे भी इतनी बड़ी मूर्छा होती है जिसमें अपने आप का ज्ञान नहीं रहता है उसकी भी वैसी ही सुखदायिनी प्रतिक्रिया करनी चाहिए ।२१-२२। गोमूत्र में मिली अश्वगंधा, गुगुल के साथ शिरीष, (सिरसा) मदार, पलाश और श्वेत अपराजिता (विष्णुक्रान्ता) इन्हें गोमूत्र में मिलाकर पान करावें ।२३। यह प्रतिक्रिया वैश्य के काटने पर बतायी गयी है ।२४। हे गौतम ! अब शूद्र जाति के साँप काटने पर प्राणी की दशा सुनो ! वह प्राणी कुद्ध होता है, काँपता है शीतज्वर से पीड़ित होता है । अंगों में चुनचुनाहट होती है, यही शूद्र के काटे गये प्राणी का लक्षण है । अतः उसकी औषधि बता रहा हूँ जो सेवन मात्र से सुख प्रदान करती है ।२५-२६। कमल, लोध कमल मधु छोटे कमल का केसर मधूकसार, (महुआ की शराब) शहद और श्वेत अपराजिता नामक (लता) इनके समान भाग को ठंडे पानी में पीसकर पीने आँजन लगाने और नास देने से मनुष्य नीरोग हो जाता है ।२७-२८। पूर्वाह्न समय में ब्राह्मण, दोपहर में क्षत्रिय उसके अपराह्न में वैश्य और संध्या समय में शूद्र वर्ण का साँप घूमता है ।२९। द्विजसत्तम ! पंडितों का कहना है कि ब्राह्मण वायु और फूल का भोजन करता है, क्षत्रिय चूहे, वैश्य मेढक एवं शूद्र सभी कुछ

---

१. कटुकमेव च । २. प्रियंगुमत्तवारुणीम् । ३. क्रुध्यते । ४. चिमिचिमायन्ते ।

अग्रतो दशते विप्रः क्षत्रियो दक्षिणेन तु । वामपार्श्वे सदा वैश्यः पश्चाद्वै शूद्र आदशेत् ॥३१
मदकाले तु सम्प्राप्ते पीडयमाना महाविषाः । अवेलायां दशन्ते वै मैथुनार्ता भुजङ्गमाः ॥३२
पुष्पगन्धाःस्मृता विप्राः क्षत्रियाश्चन्दनावहाः । वैश्याश्च घृतगन्धा वै शूद्राः स्युर्मत्स्यगन्धिनी ॥३३
वासं तेषां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः । वापीकूपतडागेषु[1] गिरिप्रस्रवणेषु च ॥
वसन्ति[2] ब्राह्मणाः सर्पा ग्रामद्वारे चतुष्पथे ॥३४
आरामेषु पवित्रेषु शुचिष्वायतनेषु[3] च । वसन्ति क्षत्रिया नित्यं तोरणेषु सरःसु च ॥३५
श्मशाने भस्मशालासु पलालेषु तटेषु च । गोष्ठेषु पथि वृक्षेषु विप्र वैश्या वसन्ति च ॥३६
अविविक्तेषु स्थानेषु निर्जनेषु वनेषु च । शून्यागारे श्मशाने च शूद्रा विप्र वसन्ति च ॥३७
श्वेताश्च कपिलाश्चैव ये सर्पास्त्वनलप्रभाः । मनस्विनः सात्त्विकाश्च ब्राह्मणास्ते बुधैः स्मृताः ॥३८
रक्तवर्णाः सुवर्णाभाः प्रवालमणिसन्निभाः । सूर्यप्रभास्तथा विप्रस्ते क्षत्रिया भुजङ्गमाः॥३९
नानाविचित्रराजीभिरतसीवर्णसन्निभाः । बाण पुष्पसवर्णाभा वैश्यास्ते वै भुजङ्गमाः ॥४०
काकोदरनिभाः केचिद्ये च अञ्जनसन्निभाः । काकवर्णा धूम्रवर्णास्ते शूद्राः परिकीर्तिताः ॥४१
यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशमङ्गुष्ठमन्तरम् । बालदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४२
यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशं द्व्यङ्गुलमन्तरम् । यौवनस्थेन दष्टस्य एतद्भवति लक्षणम् ॥४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य सार्धं द्व्यङ्गुलमन्तरम् । वृद्धदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४४

खाता है ।३०। सम्मुख होकर ब्राह्मण, दाहिनी ओर से क्षत्रिय, बाईं ओर से वैश्य तथा पीछे की ओर से शूद्र काटता है ।३१। मस्ती के समय काम-पीड़ित होने के नाते साँप असमय में भी काट खाता है ।३२। फूल की भाँति गंध ब्राह्मण की, चन्दन की भाँति गंध क्षत्रिय की, घी के समान गंध वैश्य की और मछली की भाँति गंध शूद्र की होती है ।३३। अब इन लोगों का क्रमशः वास-स्थान बता रहा हूँ ! बावली, नदी, कूप, तालाब, पहाड़ों झरनों गाँवों में आने-जाने के मार्ग तथा चौराहे पर ब्राह्मण (साँप) रहता है ।३४। पवित्र बगीचे, साफ-सुथरे घरों तोरण (घर या नगर का बाहरी फाटक) और तालाबों में क्षत्रिय, साँप रहता है । श्मशान, राख के स्थानों में पलाल (पैरा) एवं किनारों पर गोशाला मार्ग और पेड़ों पर वैश्य साँप तथा गंदे स्थानों निर्जन वनों सूने घर एवं श्मशानों में शूद्र साँप रहता है ।३५-३७। श्वेत, कपिल (पीले सफेद नीले), अग्नि के समान कान्ति वाले, मनस्वी और सात्विक साँपों को पंडितों ने ब्राह्मण साँप बताया है ।३८। हे विप्र ! उसी प्रकार लालरंग, सोने के रंग प्रवालरंग एवं मणि की भाँति तथा सूर्य के समान कान्ति वाले सर्प क्षत्रिय कहे जाते हैं ।३९। रंगबिरंगे धारी के समान रेखा और अलसी या बाण पुष्प की भाँति चितकबरे वर्ण वाले साँप को वैश्य कहते हैं ।४०। कौवे के पेट या अंजन की भाँति कान्ति तथा कौवे या धूएँ के समान वर्ण वाले को शूद्र कहते है ।४१। अंगूठे मात्र फासले से जो साँप काटता है, उसे कश्यप के कथनानुसार बालक साँप समझना चाहिये ।४२। जो दो अंगुल की दूरीसे काटता है उसे युवा साँप जानना चाहिए।४३। तथा ढाई अंगुल की दूरी से काटने वाले को कश्यप जी ने वृद्ध बताया है।४४।

---

१. चांतरे । २. आहारं चात्र पुष्पाणि । ३. नदीह्लदतडागेपु ।

अनन्तः प्रेक्षते पूर्वं वामपार्श्वे तु वासुकिः । तक्षको दक्षिणेनेह कर्कोटः पृष्ठतस्तथा ॥४५
चलते भ्रमते पद्मो महापद्मो निमज्जति । विसंज्ञस्तिष्ठते[1] चैव शङ्खपालो मुहुर्मुहः ॥४६
सर्वेषां कुरुते रूपं कुलिकः पन्नगोत्तम । अनन्तस्य दिशा पूर्वा वासुकेस्तु हुताशनी ॥४७
दक्षिणा तक्षकस्योक्ता कर्कोटस्य तु नैर्ऋती । पश्चिमा पद्मनाभस्य महापद्मस्य वायुजा ॥
उत्तरा शङ्खपालस्य ऐशानी कम्बलस्य तु ॥४८
अनन्तस्य भवेत्पद्मं वासुकेः स्यात्तथोत्पलम् । स्वास्तिकं तक्षकस्योक्तं कर्कोटस्य तु[2] पङ्कजम् ॥४९
पद्मस्य तु भवेत्पद्मं शूलं पद्मेतरस्य तु । शङ्खपाले भवेच्छत्रं कुलिकस्यार्धचन्द्रकम् ॥५०
अनन्तकपिलौ विप्रौ क्षत्रियौ शङ्खवासुकी । महापद्मस्तक्षकश्च वैश्यो विप्र प्रकीर्तितौ ॥
पद्मकर्कोटकौ शूद्रौ सदा ज्ञेयौ मनीषिभिः ॥५१
अनन्तकुलिकौ शुक्लौ वर्णतो ब्रह्मसम्भवौ । वासुकिः शङ्खपालश्च रक्तौ ह्यग्निसमुद्भवौ ॥५२
तक्षकश्च महापद्म ईषत्पीतौ[3] बभूवतुः । पद्मकर्कोटकौ विप्र सर्पौ कृष्णौ बभूवतुः ॥५३
हयं यानं[4] वृषं छत्रं राजानमथ पावकम् । धरणीमुत्पाद्य धृतानेतान्सिद्धिकरान्विदुः ॥५४
पूर्णकुम्भः पताका च काञ्चनं मणयस्तथा । शिरीषं[5] माणिकं कण्ठे जीवजीवेति सुव्रत ॥
एतेषां दर्शनं श्रेष्ठं कन्या चैकप्रसूयिका ॥५५
चतुःषष्टिः समाख्याता भोगिनो ये तु[6] पन्नगाः । अदृश्यास्तेषु षट्त्रिंशद्दृश्यास्त्रिंशन्महीचराः[7] ॥५६

अनन्त नामक नाग सामने से तथा बायें बगल से वासुकी, दाहिनी ओर से तक्षक, और पीछे की ओर से कर्कोटक देखता है ।४५। पद्मनामक साँप इधर-उधर घूमते हुए चलता है । उसी प्रकार पानी में डूबे हुए की भाँति महा पद्म चलता है तथा बार-बार चेतना हीन की भाँति शंखपाल दिखाई देता है ।।४६। कुलिक नाम साँप जो साँपों में उत्तम माना गया है अत्यन्त सुन्दर होता है । पूरब दिशा का अनन्त, अग्निकोण का वासुकी, दक्षिण दिशा का तक्षक, नैर्ऋत्यकोण का कर्कोटक, पश्चिम दिशा का पद्मनाभ, वायुकोण का महापद्म उत्तर दिशा का शंखपाल और ईशान कोण का कंबल स्वामी बताया गया है।४७-४८। अनंत का पद्म, वासुकी का उत्पल, तक्षक का स्वास्तिक, कर्कोटक का पंकज, पद्म (नामक साँप) का पद्म, महापद्म का शूल, शंखपाल का छत्र और कुलिक का अर्धचन्द्र, असु (हथियार) है।४९-५०। हे विप्र ! अनंत और कपिल ब्राह्मण, शंख एवं वासुकी क्षत्रिय, महापद्म तथा तक्षक वैश्य और उसी प्रकार पद्म कर्कोटक शूद्र बताये गये हैं।५१। अनंत और कुलिक शुक्र वर्ण एवं ब्रह्मा से उत्पन्न हैं, वासुकी शंखपाल रक्त वर्ण तथा अग्नि से उत्पन्न हैं, तक्षक-महापद्म कुछ पीले वर्ण और (इन्द्र से) उत्पन्न हैं तथा पद्म एवं ककोर्टक काले वर्ण और (यम से) उत्पन्न हुए हैं।५२-५३। घोड़ा, यान, सवारी बैल, छत्र, राजा, अग्नि और पृथिवी इन्हें उत्पन्नकर धारण करने से सिद्धि प्राप्त होती है।५४। पूर्ण कलश, पताका, सुर्वण, मणि, गले में धारण की जाने वाली शिरीष पुष्प की माला जीवञ्जीद, तथा एकबार प्रसव वाली कन्या इनके दर्शन अत्यन्त उत्तम कहे गये हैं अतः कल्याणार्थ नित्य दर्शन करे।५५। अब पुनः प्रसङ्ग की बात कहता हूँ ! चौंसठ प्रकार के साँप होते हैं, जिनमें छत्तीस अदृश्य और

---

१. विप्रो वै वसते नित्यं सदा ब्राह्मणसत्तम । २. विशुद्धायतनेपु च । ३. विमज्जंस्तिष्ठते । ४. त्रिरेखकम् । ५. नृपोत्तम । ६. प्रायः पीतौ । ७. हयपालम् ।

विंशच्च स्रग्विणः प्रोक्ताः सप्त मण्डलिनस्था। राजीवन्तो दश प्रोक्ता दर्व्यः षोडश पञ्च च ॥५७
दुन्दुभो डुण्डुभश्चैव चेटभश्चेन्द्रवाहनः[1]। नागपुष्पसवर्णाख्या निर्विषा ये च पन्नगाः॥
एवमेव तु सर्पाणां शतद्विनवतिः स्मृतम् ॥५८

वराहकर्णीं गजपिप्पलीं च गान्धारिकां पिप्पलदेवदारु।
मधूकसारं सहसिन्दुवारं हिङ्गुं च पिष्ट्वा गुटिका च कार्या॥५९

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्तवान्पुरा वीर गौतमस्य प्रजापतिः। लक्षणं सर्वनागानां रूपवर्णौ विषं तथा॥६०
तस्मात्सम्पूजयेन्नागान्सदा भक्त्या समन्वितः। विशेषतस्तु पञ्चम्यां पयसा पायसेन च॥६१
श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे[2] नराधिप। द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः॥६२
पूजयेद्विधिवद्द्वारं दधिदूर्वाक्षतैः कुशैः। गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः॥६३
ये त्वस्यां पूजयन्तीह नागान्भक्तिपुरःसराः। न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कर्हिचित्॥६४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे श्रावणिकनागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।३६।

अट्ठाइस दिखाई पड़ते हैं।५६। उनमें बीस प्रकार के मालाधारी सात प्रकार के मंडली दश प्रकार के राजिल और इक्कीस प्रकार के दर्वी साँप होते हैं।५७। नागपुष्प की भाँति वर्ण वाले साँप विष-हीन होते हैं और दुंदुभ, डुंडुभ (डेड़हा) चेटभ और इन्द्रवाहन नामक साँप को भी वैसा ही जानना चाहिये इस प्रकार साँपों का दो सौ नब्बे भेद बताया गया है।५८। अतः वराहकर्णी, गजपीपल, गन्धक, पिप्पल, देवदारु, मधूकसार (महुआ का शराब), सिंदुवार (म्यौड़ी) और हींग इन्हें पीसकर गोली बना लेनी चाहिए, यह विष दूर करने की उत्तम औषधि है।५९

सुमन्तु बोले—हे वीर! इस प्रकार कश्यप ने गौतम जी को साँपों का लक्षण, रूप-रंग, जाति और विष बताया था। इसलिए साँपों की पूजा भक्ति पूर्वक सदा करनी चाहिए। विशेषकर पंचमी में दूध और खीर से पूजा करनी चाहिए।६०-६१। मनुष्यों को चाहिए कि सावन के महीने में शुक्लपक्ष की पंचमी के दिन दरवाजे के दोनों पार्श्व भाग में गोबर से साँप की मूर्ति बनाकर दही, दूर्बा, अक्षत, कुश, गंध एवं फूल से विधिवत् उनका पूजन करें और पश्चात् ब्राह्मण भोजन करायें।६२-६३। हे वीर! इस पञ्चमी के दिन जो भक्ति पूर्वक साँपों की पूजा करता है उन्हें साँपों का भय कभी नहीं होता।६४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में श्रावणिक नागपंचमी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।३६।

---

१. शयनं मणिकं कण्ठे। २. शरसौमाणिकं कण्ठे।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भाद्रपदिकनागपञ्चमीवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

तथा भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । अथालेख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकैः ।।१
पूजयेद्गन्धपुष्पैश्च सर्पिः पायसगुग्गुलैः । तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः ।।२
आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सम्पूजयेद्बुधः ।।३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे भाद्रपदिकनागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।३७।

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीकल्पसमाप्तिकथनम्

सुमन्तुरुवाच

तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्यां कुरुनंदन । कृत्वा कुशमयान्नागानांधाद्यैः[1] सम्प्रपूजयेत् ।।१
घृतोदकाभ्यां पयसा स्नपयित्वा विशांपते । गोधूमैः पयसा स्विन्नैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा ।।२

अध्याय ३७

भाद्रपदिक नाग पञ्चमी व्रत वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसी प्रकार जो मनुष्य भादों की पंचमी में श्रद्धा भक्ति पूर्वक काले रंग की साँपों की मूर्ति बनाकर उसे गंध, फूल, घी, खीर, गूगुल से उसकी पूजा करता है, तो तक्षकादिक साँप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और इसके कुल में सात पीढ़ी तक साँपों का भय कभी नहीं होता है । अतः सभी बुद्धिमानों को साँपों की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।१-३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के पञ्चमी कल्प में भाद्रपदिक नाग पञ्चमी व्रत वर्णन नामक सैंतसीवाँ अध्याय समाप्त ।३७।

अध्याय ३८

पञ्चमीकल्प समाप्ति कथन

सुमन्त ने कहा—हे कुरुनंदन ! उसी प्रकार कुवार के मास में पंचमी के दिन कुश की साँप की मूर्ति बनाकर गंध आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए ।१। हे राजन् ! सर्वप्रथम घी, जल एवं दूध से क्रमशः स्नान कराकर और दूध मिश्रित गेहूँ की भाँति-भाँति की उत्तम भक्ष्य वस्तुओं से उनकी पूजा करनी

---

१. इंद्राण्या सह पूजयेत् ।

यस्त्वस्यां विधिवन्नागाञ्छुचिर्भक्त्या समन्वितः । पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप ।।३
नागाः प्रीता भवन्तीह शान्तिमाप्नोति वा विभो । स शान्तिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ।।४
इत्येष कथितो वीर पञ्चमीकल्प उत्तमः । यत्रायमुच्यते मन्त्रः सर्वसर्पनिषेधकः ।।५

(ॐ कुरुकुल्ले फट् स्वाहा)

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे समाप्तिकथनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।३८।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

षष्ठीतिथिमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

षष्ठ्यां फलाशनो राजन्विशेषात्कार्तिके नृप । राज्यच्युतो विशेषेण स्वं राज्यं लभतेऽचिरात् ।।१
षष्ठी तिथिर्महाराज सर्वदा सर्वकामदा । उपोष्या तु प्रयत्नेन सर्वकालं जयार्थिना ।।२
कार्त्तिकेयस्य दयिता एषा षष्ठी महातिथिः । देवसेनाधिपत्यं हि प्राप्तं तस्यां महात्मना ।।३
अस्यां हि श्रेयसा युक्तो यस्मात्स्कन्दो भवाग्रणीः । तस्मात्षष्ठ्यां नक्तभोजी प्राप्नुयादीप्सितं सदा ।।४
दत्त्वार्घ्यं कार्तिकेयाय स्थित्वा वै दक्षिणामुखः । दध्ना घृतोदकैः पुष्पैर्मन्त्रेणानेन सुव्रत ।।५

चाहिए ।२। क्योंकि और पवित्रता पूर्वक जो इस पंचमी में साँपों की पूजा करते हैं, उन्हें शेष आदि नाग अत्यन्त प्रसन्न होकर शांति प्रदान करते हैं और वह पुरुष शांति स्नेह में बहुत दिवस तक निवास करता है । हे वीर ! इस प्रकार यह उत्तम पञ्चमी कल्प सम्पन्न हुआ जिसमें साँपों के विष निवारणार्थ मंत्र कहा गया है 'ॐ कुरु कुल्ले फट् स्वाहा' यह साँप के निवारण का मंत्र है ।३-५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व में पंचमी कल्प वर्णन समाप्ति कथन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३८।

अध्याय ३९

षष्ठी तिथि का माहात्म्य

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! सभी षष्ठी तिथि में केवल फलाहार करके रहना चाहिए, पर, कार्तिक मास की षष्ठी का विशेष महत्त्व है। हे नृप ! जिस राजा का राज्य किसी प्रकार से छूट गया हो, (इसके पूजन से) वह राजा अतिशीघ्र अपने राज्य को प्राप्त करता है।१। हे महाराज ! षष्ठी तिथि सदैव सभी कामनाओं की पूर्ति करती है । अतएव विजय की अभिलाषा वाले सदैव इसका व्रत करते हैं।२। इसी प्रकार कार्तिकेय को भी यह महातिथि षष्ठी अत्यन्त प्रिय है क्योंकि इसी में वे देवसेना के अधिनायक हुए हैं।।३। और स्कंद को शिवजी का ज्येष्ठ पुत्र बनाने का श्रेय इसी षष्ठी को प्राप्त हुआ है। इसलिए इसमें नक्त (दिन में व्रत रहकर रात्रि में) भोजन करने वाले प्राणी अपने मनोरथ सफल करते हैं।४। पूजनोपरांत दक्षिण की ओर मुख करके स्कन्द को

सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव । रुद्रार्यमाग्निज विभो गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥
प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयतु हृद्गतम् ॥६
दत्त्वा विप्राय चात्मान्नं यच्चान्यदपि विद्यते। पश्चाद् भुङ्क्ते त्वसौ रात्रौ भूमिं कृत्वा तु भाजनम् ॥७
एवं षष्ठ्यां व्रतं स्नेहात्प्रोक्तं स्कन्देन यत्नतः। तन्निबोध महाराज प्रोच्यमानं मयाखिलम् ॥८
षष्ठ्यां यस्तु फलाहारो नक्ताहारो भविष्यति। शुक्लाकृष्णासु नियतो ब्रह्मचारी समाहितः ॥९
तस्य सिद्धिं धृतिं तुष्टिं राज्यमायुर्निरामयम्। पारत्रिकं चैहिकं च दद्यात्स्कन्दो न संशयः ॥१०
यो हि नक्तोपवासः स्यात्स नक्तेन व्रती भवेत्। इह वामुत्र सोऽत्यन्तं लभते ख्यातिमुत्तमाम् ॥
स्वर्गे च नियतं वासं लभते नात्र संशयः ॥११
इह चागत्य कालान्ते यथोक्तफलभाग्भवेत्। देवानामपि वन्द्योऽसौ राज्ञां राजा भविष्यति ॥१२
यश्चापि शृणुयात्कल्पं षष्ठ्याः कुरुकुलोद्वह। तस्य सिद्धिस्तथा तुष्टिर्धृतिः स्यात्ख्यातिसम्भवा ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
षष्ठीकल्पवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।३९।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयवर्णनम्

शतानीक उवाच

अहो व्रतं महत्कष्टं संशयो हृदि वर्तते। कार्तिकेयस्य माहात्म्यं श्रुत्वा जन्म तथा द्विज ॥१

अर्घ्य, दही, घी, जल और फूलों का 'सप्तर्षिदारजस्कन्द' आदि मन्त्रों से अर्घ्य प्रदान कर ब्राह्मण को उत्तम पदार्थ का भोजन करावे जो विविध भाँति से बनाया गया हो पश्चात् शेष अन्न को रात में भूमि पर रख कर स्वयं भी भोजन करे तथा और भी जो कुछ हो वह ब्राह्मण को देवे।५-७। हे महाराज! इस प्रकार षष्ठी के जिस व्रत-विधान को स्नेह वश स्कन्द ने यत्नपूर्वक बताया था उस समस्त विधि-विधान को मैं कह रहा हूँ सुनो!।८। शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष की षष्ठी में जो ब्रह्मचर्य पूर्वक व्रत रह कर फलाहार करता है, उसे स्कन्द सिद्धि, धैर्य प्रसन्नता, राज्य, आयु एवं लोक-परलोक का सुख प्रदान करते है।९-१०। इसी प्रकार जो नक्तव्रत (दिन में व्रत रहकर रात में भोजन) करता है, उसकी ख्याति लोक-परलोक दोनों में होती है तथा उसका स्वर्ग में वास नियत रूप से ज्ञात होता है और यदि कभी यहाँ भूतल पर जन्म लिया तो उपरोक्त सभी फल उसे प्राप्त होते हैं। वह देवताओं का वन्दनीय एवं राजाओं का राज होता है। हे कुरुकुल नायक! जो इस षष्ठी कल्प की कथा ही सुनते हैं, उन्हें भी सिद्धि, धैर्य, प्रसन्नता एवं यश प्राप्त होता है।११-१३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व में षष्ठीकल्प वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।३९।

अध्याय ४०

कार्तिकेय का वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विज! कार्तिकेय का माहात्म्य और जन्म सुनकर अत्यन्त कष्ट के साथ मन में

अनेकजनितस्येह कार्तिकेयस्य सुव्रत । माहात्म्यं सुमहद्विप्र कथमेतद्विभाव्यते ॥२
जातिः श्रेष्ठा भवेद्वीर उत कर्म भवेद्वरम् । संशयस्तु महानत्र दृष्ट्वा मे कृत्तिकासुतम् ॥३
एतद्वद विनिश्चित्य न यथा संशयो भवेत् । जन्मतः कर्मणश्चैव यज्ज्यायस्तद् ब्रवीहि मे ॥४

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो ब्रह्मा शिष्यैर्मनीषिभिः । यदुक्तं तेन तेषां च तत्ते वच्मि निबोध मे ॥५
सुरज्येष्ठं सुखासीनमभिगम्य महर्षयः । प्रणम्य च महाबाहो विश्वामित्रस्य विप्रताम् ॥६
दृष्ट्वा विस्मयमागत्य कौतूहलसमन्विताः । भक्तिं श्रद्धां पुरोधाय प्रणम्यानतकन्धराः ॥७

ऋषय ऊचुः

भो ब्रह्मन्नादकल्पे हि ब्राह्मण्यं ब्रूहि किं भवेत् । जात्यध्ययनदेहात्मसंस्काराचारकर्मणाम्[1] ॥८
बाह्याभ्यन्तरसामान्यविशेषा यदि कृत्रिमाः । मनोवाक्कर्मशरीरजातिद्रव्यगुणात्मकाः ॥९
सन्त्यक्तव्याः प्रसिद्धा ये जातिभेदविधायिनः । वस्तुभूताः परोक्षैर्वा प्रमाणैर्न विनिश्चिताः ॥१०
अव्यक्तागमसिद्धश्चेज्जातिभेदविधिर्नृणाम् । विकल्पोऽयं न पुष्णाति भवतः शेमुषीबलम् ॥११

यह संदेह हो रहा है कि जब कार्तिकेय जी का जन्म कई व्यक्तियों द्वारा संपन्न हुआ है तब इनका इतना बड़ा माहात्म्य कैसे संभव हो सकता है ।१-२। हे वीर ! कृत्तिका के पुत्र को देख कर मुझे यह भी संदेह उत्पन्न हुआ है कि जाति सर्वश्रेष्ठ है या कर्म ? इसे भली-भाँति निश्चित कर मुझे इस प्रकार बताने की कृपा करें जिससे मेरा संदेह दूर हो जाये अर्थात् जन्म द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त होती है या कर्म द्वारा इसे स्पष्ट मुझसे कहें।३-४

सुमन्तु बोले—(ब्रह्मा के) बुद्धिमान शिष्यों ने भी एकबार इसी विषय को ब्रह्मा से पूछा था। उन्होंने उन लोगों से जो कुछ कहा है वही मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ।५। हे महाबाहो ! विश्वामित्र का ब्राह्मण होना देख कर ऋषियों को महान् आश्चर्य हुआ एवं उसकी (जानकारी के लिए) उन्हें कौतूहल भी हुआ। इसीलिए उन लोगों ने सुख पूर्वक बैठे हुए ब्रह्मा के पास जाकर श्रद्धा और भक्ति पूर्वक शिर झुकाकर प्रथम उन्हें प्रणाम किया, और पश्चात् पूछना आरम्भ किया ।६-७

ऋषियों ने कहा—हे ब्राह्मण ! आदि कल्प में जाति, वेदाध्ययन, देह, आत्म-संस्कार, आचार और (वैदिक) कर्म, इनमें किसके द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है अर्थात् ब्राह्मण होने का कौन-सा मुख्य कारण है ? यदि कहा जाय कि कृत्रिम (काल्पनिक) वस्तु प्रभाग है जो मन, वाणी, कर्म, शरीर, जाति (ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि), द्रव्य (पृथ्वी जल, तेज, आदि) गुण (रूप, रसादि द्वारा उत्पन्न होता है तथा बाहरी और भीतरी दोनों दृष्टि से सामान्य या विशेष स्थिति में वर्तमान हो तो प्रसिद्ध होते हुए भी वह जाति भेद विधायक प्रमाण जिसे वस्तु सिद्धि करने में परोक्ष आगम अनुमानादि प्रमाणों द्वारा निश्चित समर्थन नहीं प्राप्त है सर्वथा त्याज्य है, अतः वह जाति का कारण नहीं हो सकता है यदि मनुष्यों का जाति भेद, वेद द्वारा ही सिद्ध है, तो यह कल्पना भी आपके बुद्धि बल को सुदृढ़ बनाने में सर्वथा असमर्थ है।८-११

---

१. संस्काराधानकर्मणाम् ।

ब्रह्मोवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा यूयं वदन्ति[1] ह । शृणुध्वं योगिनो वाक्यं सतर्कं शिष्यश्रेयसे ॥१२

योगेश्वर उवाच

प्रमाणे हि प्रसिद्धे तु भिन्नार्थविषये यतः । स्पष्टयोग्यार्थविषयं प्रत्यक्षं तावदीक्षते ॥१३
समान्यातीन्द्रियग्राही सिद्धान्तोऽभ्युपगम्यते । स एव भगवानेकं प्रमाणमिति चेन्न तत् ॥१४
यस्माद्विविधमे तत्ते सङ्कटं भद्र वर्तते । वेदस्य पौरुषेयत्वं नित्यजातिसमर्थकम् ॥१५
कार्या विशेषा वेदोक्ता न युक्तमकृतं वचः । तात्वादिकरणानां च व्यापारानन्तरं श्रुतेः ॥१६
व्यापारात्परतस्तस्य प्रागभावविशेषतः । तद्भावानुविधायित्वमन्वयव्यतिरकेतः ॥१७
तस्माद्धूमाग्निवद्वार्थफलभावोऽवतिष्ठते । न च व्यापारवचसोरन्यथानुपपत्तितः ॥१८
पुरुषानुगता जातिर्ब्राह्मणत्वादिकास्ति चेत् । द्विवर्णजातिभेदेन प्रत्याक्षार्थोपलक्षणात् ॥१९
गोवर्गमध्यं च गतो यथाश्वो निर्धार्यते ज्ञैः सुविचक्षणत्वात् ।
मनुष्यभावादविशिष्यमाणस्तद्वद्द्विजः शूद्रगणान्न भिन्नः ॥२०

ब्रह्मा बोले—जिस प्रकार तुम लोग कह रहे हो, वह ऐसी ही बात है इसमें संदेह नही किन्तु इसके विषय में योगेश्वर की तर्कपूर्ण बातें सुनो। उससे शिष्यों का कल्याण होगा एवं तुम्हारा संदेह भी दूर हो जायगा।१२

योगेश्वर ने कहा—यद्यपि भिन्न अर्थों और सभी विषयों में प्रमाण प्रसिद्ध हैं तथापि सबसे अधिक योग्य एवं स्पष्ट प्रमाण प्रत्यक्ष ही माना जाता है।१३। यद्यपि सामान्य और अतीन्द्रिय (विशेष) विषयक सिद्धांत आप स्वीकार करें तो उसमें केवल एक भगवान् ही प्रमाण हैं ऐसी बात नहीं।१४। हे भद्र! जिस कारण तुम्हें अनेक प्रकार के संकट उपस्थित हुए हैं उसके निवारण के लिए एक बात को कहना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि वेद का पौरुषेय होना ही जाति के होने में नित्य प्रमाण है।१५। अतः वेदोक्त को ही विशिष्ट प्रमाण मानना चाहिए, न कि अव्यवहारिक वाक्य को प्रमाण मानना युक्ति युक्त है जिस प्रकार ताल्वादि करण-व्यापार होने के अनन्तर ही वर्ण (अक्षर) सुनाई देते हैं।१६। और ताल्वादि व्यापार होने के पूर्व वर्णों का प्रागृभाव रहताहै व्यापार होने पर वर्ण सुनाई देते हैं (इससे यह निश्चय हुआ कि ताल्वादि) व्यापार होने पर (वर्ण) सुनाई देते हैं और (व्यापार) न होने पर नहीं सुनाई देते हैं इसी को शास्त्रों में अन्वय व्यतिरेक (अर्थात् करण के रहने पर कार्य का होना और न रहने पर कार्य का न होना) कहा गया है।१७। इसलिए धूयें को देख कर अग्नि के निश्चित करने की भाँति (अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा) फल की सत्ता का अनुमान करना चाहिए न कि केवल व्यापार द्वारा अन्यथा उसके उत्पन्न होने में ही संदेह होगा।१८। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति भेद प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं इसलिए पुरुष होना ही ब्राह्मणादि जाति का समर्थक है यह कहना भी उचित नहीं है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य जिस भाँति गौवों के बीच में घोड़े को पहचान लेते हैं उसी प्रकार मनुष्य होने के नाते तथा कोई विशेषता न रहने के कारण

---

१. वदथ।

मनुष्यजातेर्न परो विशेषो यः कल्प्यते सर्वनरानुयायी।
संस्कारयुक्ता हि क्रियाविशिष्टा द्विजन्मनां शूद्रविवेकहेतुः ॥२१

जीवोऽपि ब्राह्मणः प्रोक्तो यैरतत्त्वज्ञमानवैः। प्रभ्रष्टब्राह्मणत्वास्ते जायन्ते विप्रसङ्गतः ॥२२
जराजन्मान्तरक्लेशदुष्टग्राहकुलाकुलम् । नरतिर्यगसच्छूद्रयोनिदुःखोर्मिसंकटम् ॥२३
दौःस्थित्यरोगशोकार्तिजन्मावर्तसमन्वितम् । श्वानशूकरचाण्डालकृमिकूर्मादिकायकम् ॥२४
संसारसागरं घोरं मग्नः खलु परिप्लवन्। भूरिपापभराक्रान्तः स जीवो ब्राह्मणः कथम् ॥२५

ब्रह्मोवाच

सप्तव्याधकथा विप्रा मनुना परिकीर्तिताः। तं निशम्य यदुश्रेष्ठ नित्यं जातिपदं त्यजेत् ॥२६
सप्तव्याधा दशार्णेषु[1] मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः सरिद्द्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥२७
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥२८
तस्मान्न जीवे ब्राह्मण्यं पश्यामो हि कथञ्चन ॥२९

शस्त्रादिमद्भार्गवजातियुक्तो गजाश्वगोजोष्ट्रखरादिकानाम्।
शक्त्या कृतो ह्यङ्गजवर्णधर्मैर्भेदः स्फुटं लक्षणतोऽत्र यद्वत् ॥३०

शूद्रों के बीच में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि मनुष्य को नहीं पहचान सकते हैं।१९-२०। सभी मनुष्य को एक मानने वाले जो लोग कहते हैं कि मनुष्य जाति से उत्तम कोई दूसरी (जाति) नहीं है, उनके मन में, (यज्ञोपवीत आदि) संस्कार पूर्वक क्रिया का करना ही शूद्रों से उनके पृथक् होने में प्रमाण है।२१। कुछ अज्ञानियों का कहना है कि जीव ही ब्राह्मण है, किन्तु (पतित) ब्राह्मणों के सम्पर्क होने से उनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है इस कारण यह भी नहीं माना जा सकता है।२२। यह जीव बुढापा जन्मान्तर के ग्रहण करने का दुःख रूपी मगरों से भरा हुआ तथा मनुष्य, पक्षी, अस्पृश्य शूद्र आदि दुःखरूपी लहरों से संकटग्रस्त एवं दुःस्थिति, रोग, शोक आर्तिरूपी मनुष्यों के भँवरों से युक्त और कुत्ते, सुअर, , चांडाल, कीड़े एवं कछुवे आदि की शरीरों में युक्त, घोर संसार सागर में डूबते उतराते हुए अत्यंत पाप के भार से दबे हुए वे जीव भला ब्राह्मण कैसे हो सकते हैं।२३-२५

ब्रह्मा ने कहा—हे विप्र ! मनु जी की कही हुई सातों व्याधों की कथा को सुन कर जाति की चर्चा ही छोड़ देनी चाहिए।२६। क्योंकि वे सातों व्याध (बहेलिया) सर्वप्रथम दशार्ण देश में उत्पन्न हुए थे। पुनः वे ही कालंजर पर्वत पर मृग, शरद्वीप में चकोर, मानसरोवर में हंस और कुरुक्षेत्र में वेद के पारगामी ब्राह्मण हुए। अतः इतनी लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थित होकर तुम लोग भी अब दुःखी क्यों हो रहे हो। इस प्रकार जीव किसी भी भाँति ब्राह्मण नहीं हो सकता।२७-२९। शस्त्रादिधारी भार्गव जाति तथा हाथी, घोड़े, गाय, बकरी, ऊँट और गधा के अंगों से उत्पन्न वर्ण चर्म द्वारा जिस प्रकार भेद स्पष्ट रूप से प्रकट है। जो शक्ति सम्पन्न लक्षणों से भली भाँति प्रतीत होता है वैसे ही जीव में भेद स्पष्ट है।३०।

---

१. दशारण्ये।

तदुत्तरान्नैव विकर्तनीया ब्राह्मण्यजातिर्नृषु नास्ति काचित् ।
नित्याकृतिर्नानुपभेदरूपा यथा हि भेदः परमोऽत्र सिध्येत् ॥
सिताद्यसाधारणतुल्यरूपाः सनातनोऽङ्गेषु न वर्णभेदः ॥३१
ब्राह्मण्यमध्रुवमिदं किल कृत्रिमत्वादकृत्रिमं भवति सामयिकत्वयोगात् ।
साङ्केतिकं सुकृतलेशविशेषलब्धं वाणिज्यभेषजकृतामिव जातिभेदाः ॥३२
किं ब्राह्मणा ये सुकृतं त्यजन्ति किं क्षत्रिया लोकमपालयन्तः ।
स्वधर्महीना हि तथैव वैश्याः शूद्राः स्वमुख्यक्रियया विहीनाः ॥३३
तस्मान्न गोश्ववत्कश्चिज्जातिभेदोऽस्ति देहिनाम् । कार्यशक्तिनिमित्तस्तु सङ्केतः कृत्रिमो भवेत् ॥३४
एवं प्रमाणैः प्रतिषिध्यमानां साङ्केतिकीं याति नरो व्यवस्थाम् ।
स्वकीयसिद्धां स्वमतैर्निषिद्धां न बुध्यते मूढमना वराकः ॥३५
गोमहिष्यजवाज्युष्ट्वानेयाविगजाधिपाः । प्रेष्यावर्धुषिकाकार्यकरणोद्यतमानसाः ॥३६
वणिक्कारुक्रियाविष्टा[१] दिव्यास्तेऽपि च ये द्विजाः ।
विनष्टास्ते तु विज्ञेयाः क्रव्यादाश्च कुशीलवाः ॥३७
पलाण्डुलशुनादाश्च मृग्युष्ट्रीक्षीरपायिनः[२] । मांससर्वरसक्षीरक्रयविक्रयकारिणः ॥३८

और भी इस उत्तर से ब्राह्मण-जाति विषयक प्रश्न कभी सुलझ नहीं सकता है क्योंकि मनुष्यों में ब्राह्मण आदि कोई जाति है ही नहीं । इसलिए यह जाति नित्य नहीं है और इसका कोई उपभेद भी नहीं है जिसके द्वारा वह महान् भेद सिद्ध किया जा सके और मनुष्य के तो शरीरों में कोई भेद दिखाई भी नहीं देता है । गोरे और काले होने का भेद भी समान होने के नाते जाति भेद का सूचक नहीं है तथा अंगों के रूप रंग का भेद भी सनातन (नित्य) नहीं है ।३१। इसलिए कृत्रिम (बनावटी) होने के नाते ब्राह्मण आदि जाति भी अनित्य (काल्पनिक) है, वह सामयिक प्रभाव वश नित्य हो जाया करती है । वैश्य और वैद्य में काल्पनिक जाति-भेद की भाँति जो अल्प या विशेष सुकृत से उत्पन्न होती है वह सांकेतिक वस्तु है ।३२। अच्छे कर्तव्य का परित्याग करने वाले ब्राह्मण, जनता का पालन न करने वाले क्षत्रिय, अपने धर्म से च्युत होने वाले वैश्य और अपने कर्तव्य से हीन शूद्र क्या अपने जाति के कहे जा सकते हैं ।३३। इसलिए गाय घोड़े के जाति भेद की भाँति जीवों में जाति-भेद नहीं होता है क्योंकि कार्य-शक्ति में निमित्त मात्र होने के नाते संकेत कृत्रिम (काल्पनिक) होना बताया गया है ।३४। इस प्रकार मनुष्यों में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जाति व्यवस्था को, जो प्रमाणों द्वारा निषिद्ध है, केवल संकेतमात्र स्वीकार करना चाहिए । उसी को बेचारे मूर्ख लोग नहीं समझ पाते हैं कि यह (व्यवस्था) अपनी ही बनाई है एवं अपने ही मत से निषिद्ध भी है ।३५। इसलिए गाय, भैंस, बकरी, घोड़े, ऊँट, भेंड और हाथी की नौकरी करने वाले, संदेश वाहक, ब्याज खोरी करने वाले, बनिए का काम करने वाले, दीवाल पर चित्र बनाने वाले, राक्षसी का काम करने वाले एवं कत्थक (नाच-गान करने वाले) ब्राह्मण यदि तेजस्वी हो तो भी उन्हें भ्रष्ट समझना चाहिए ।३६-३७। उसी प्रकार प्याज और लहसुन खाने वाले मृगी एवं ऊंटिनी का दूध पीने वाले, मांस,

---

१. वाणिज्याविष्टहृदयाः । २. मत्स्यादाः स्त्रीषु यायिनः ।

पुनर्भूवृषलीवेश्याचाण्डालस्त्रीनिषेविणः । शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गाः प्रेतवस्त्रान्नभोजनाः ।।३९
मृतसूतकलब्धान्नपानाद्यभ्यवहारिणः । ब्रह्मदेवपितृभूतमनुष्येषु बहिष्कृताः ।।४०
मात्सर्यमदविद्वेषतृष्णाकामतमोमयाः । हीनाचारा[1] हि ये केचिदपरे पिशुना द्विजाः ।।
प्रकारैर्बहुभिः सर्वे ते प्रणश्यन्ति नान्यथा ।।४१
एवं शास्त्रोदितन्यायमार्गभ्रष्टास्तु ये नराः । विशिष्टगोत्रसंस्कारकलापसकलात्मकाः ।।४२
वेदानध्यापयन्तोऽपि तेऽधीयानाः श्रुतिक्रमात् । ब्राह्मणत्वाद्विहीयन्ते दुराचारविधायिनः ।।४३
तस्मान्न जातिरेकत्र भूतात्मास्त्यनपायिनी । नाशित्वादत्र च श्लोकान्मानवाः सम्प्रधीयते ।।४४
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ।।४५
गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान्मनुरब्रवीत् ।।४६
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् । क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च ।।४७

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे कार्तिकेयवर्णने जातिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।४०।

समस्त रस तथा दूध के क्रय विक्रय करने वाले द्विज और दोबार विवाही हुई स्त्री, शूद्र की स्त्री तथा चांडालिनी के साथ समागम करने वाले, शूद्र के अन्न से जीवन निर्वाह करने वाले एवं प्रेत का वस्त्र पहनने वाले तथा प्रेत कर्म में उनके अन्न खाने वाले मरण या जननाशौच में सर्वत्र भोजन करने वाले, ब्राह्मण देवता, पितर, भूत और इतर मनुष्यों से भी बहिष्कृत हैं, तथा मत्सर, मद, द्वेष एवं तृष्णा करने वाले, कामान्ध, चुगुली करने वाले तथा आचार-हीन ब्राह्मणों को सभी प्रकार से (नष्ट) ब्राह्मणच्युत समझना चाहिए ।३८-४१। क्योंकि शास्त्र में बताये गये न्याय मार्ग से च्युत होने वाला ब्राह्मण विशिष्ट गोत्र एवं शुद्ध संस्कार युक्त होकर तथा वेद पढ़कर उसका अध्यापन करते हुए भी दुराचारी होने के नाते पतित माना गया है ।४२-४३। अतः जीव की जाति अनश्वर वस्तु नहीं है और नश्वर होने के नाते ही मनुष्य इस बात को मानते हैं कि मांस, लाख और नमक बेंचने वाला ब्राह्मण उसी समय पतित हो जाता है तथा दूध बेंचने वाला ब्राह्मण तीन दिन तक शूद्र रहता है ।४४-४५। उसी प्रकार कृषि, गोरक्षा, वैश्य का काम, दीवाल पर चित्र बनाने नाच-गाना करने सेवक और ब्याज का काम करने वाले ब्राह्मण को मनु जी ने शूद्र होना बताया है ।४६। इस प्रकार शूद्र ब्राह्मण हो जाता है ब्राह्मण शूद्र हो जाता है क्षत्रिय ब्राह्मण हो जाता है था ऐसे ऐसे ही वैश्य भी हो जाता है ।४७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय के वर्णन में जाति वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४०।

---

१. हीनवाचः ।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मणविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वेदाध्ययनमप्येतद्ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते । विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः ।।१

श्वादचाण्डालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः । येन्येऽपि वृषलाः केचित्तेऽपि वेदानधीयते ।।२

शूद्रा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः । व्यापाराकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ।।३

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । प्रोद्वहन्ति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः ।।४

अथवाधीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्यैस्तु[1] वा नराः । गौडपूर्वां कृतामेयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम् ।।५

अपरिज्ञातशूद्रत्वाद्ब्राह्मण्यं यान्ति कामतः । तस्मान्न ज्ञायते भेदो वेदाध्यायक्रियाकृतः ।।६

शास्त्रकारैस्तथा चोक्तं न्यायमार्गानुसारिभिः । ते साधु मतमाकर्ण्य सन्तः सन्ति विमत्सराः ।।७

आचारहीनान्न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः[2] ।
शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु ।।८

अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्ते न तिष्ठति । न तेन क्रियते कार्यं स्त्रीरत्नेनेव षण्डकः ।।९

अध्याय ४१

ब्राह्मणविवेक का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यदि वेदाध्ययन से ही ब्राह्मण होना है, तो ब्राह्मण की भाँति वैश्य और क्षत्रिय भी ब्राह्मण कहे जायें जैसे रावणादि राक्षस हो गये हैं ।१। इसी प्रकार कुत्ता खाने वाले चांडाल दास, शिकारी, अहीर, मल्लाह शूद्र आदि भी वेद पढ़ते है ।२। जिस भाँति शूद्र कहीं विदेश में जाकर किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय के अधीन रहते हुए उनके व्यापार के अनुसार कार्य भेद एवं भाषा का अनुसरण करके चारों या किसी एक ही वेद को पढ़कर किसी शुद्ध ब्राह्मण की कन्या के साथ विवाह कर लेता है तथा कोई क्षत्रिय या वैश्य वेद पढ़ कर दक्षिण की गौड़ या द्रविड़ जाति में मिल जाता है उसी प्रकार शूद्र भी (लोगों के) अनजान में ब्राह्मण हो जाता है । अतः वेदाध्ययन ही जाति भेद का समर्थक नहीं है ।३-६। इसलिए सज्जन पुरुष न्याय पक्ष के पथिक शास्त्रकारों के कहे हुए वाक्यों को सुनकर किसी से वैर नहीं करते है ।७। छहों अंगों के समेत वेद पढ़ने वाले द्विज को आचार-हीन होने पर वेद पवित्र नहीं कर सकता है । द्विज के लिए वेदाध्ययन ही शिल्प वृति (कारीगरी है) बताया गया है और यही ब्राह्मण का लक्षण भी है ।८। जिसने चारों वेदों को पढ़कर अपने वृत्त धर्म को न अपनाया तो स्त्री रत्न प्राप्त होने पर हींजड़े के समान उसने कुछ भी नहीं किया ।९। शिखा (चोटी) इसका ओंकार पूर्वक संस्कार, संध्योपासन, मेखला

---

१. उद्वहन्ति द्विजस्त्रियः । २. न तैः क्रिया सतां कार्या वैश्यास्ते ब्राह्मणा मताः ।

शिखाप्रणवसंस्कारसन्ध्योपासनमेखलाः । दण्डाजिनपवित्राद्याः शूद्रेष्वपि निरङ्कुशाः ॥१०
प्रसङ्गोऽपि हि शूद्राणां न शक्यो विनिवारितुम् । देवोत्तमत्रयेणापि निवर्तन्ते नराः स्वयम् ॥११
तस्मान्नैतेऽपि लक्ष्यन्ते विलक्षणतया[1] नृणाम् । यज्ञोपवीतसंस्कारमेखलाचूलिकादयः ॥१२
आभिचारिकमन्त्राद्यैर्दुर्लभत्वादिभाषणैः । ब्राह्मणस्यैव शक्तिश्चेत्केनास्य विनिहन्यते ॥१३
तपः सत्यादिमाहात्म्याद्देवतालमयस्मृतिः । मन्त्रशक्तिर्नृणामेषां सर्वेषामपि विद्यते ॥१४
वञ्चनं दुर्वचस्यापि क्रियते सर्वमानवैः । शूद्रब्राह्मणयोस्तस्मान्नास्ति भेदः कथञ्चन ॥१५
शापानुग्रहकारित्वं शक्तिभेदो न विद्यते । चौरचाटादिराजन्यदुर्जनाभिहते नृणाम् ॥१६
आत्मादुःखोदयापायं स्वेषु जन्तुषु रक्षणम् । कर्तुं न प्रभवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तद्वदेव हि ॥१७
मा भूद्युगे कलावेतद्देशे चाकार्यकृद्द्विजे । स्यादन्यदेशकालादौ द्विजानामतिशायिनाम् ॥१८
शापानुग्रहसामर्थ्यमन्यद्वाध्यात्मगोचरम् । ब्रह्मसाधनमेतद्धि लिङ्गं केचित्प्रचक्षते ॥१९
संसारारक्तचेतस्का मोहान्धतमसावृताः । पतन्त्युन्मार्गगर्तेषु प्रत्यग्नि शलभा यथा ॥२०
जातिधर्मः स्वयं किञ्चिद्विशेषः श्रुतिसङ्गमात् । असिद्धः शूद्रजातीनां प्रसिद्धो विप्रजातिषु ॥२१
संस्कारो योनिसाध्यो वा सामग्री प्रभवोऽस्य वा । शूद्रेभ्योऽतिशयं धत्ते यः साधारणतागुणः ॥२२

(मूंज की करधनी), दंड और मृग चर्म इन्हें (ब्राह्मण की भाँति) शूद्र भी अपना सकते हैं।१०। शूद्र होने के प्रसंग को ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी रोक नहीं सकते तो मनुष्यों की बात ही क्या है। इसलिए मनुष्यों का यज्ञोपवीत संस्कार, मेखला और चोटी का रखना आदि भी (जाति) सूचक नहीं है। ब्राह्मण की शक्ति यदि तंत्र मंत्रों में और आकस्मिक भाषणों में विशेष है तो उसमें प्रवृत्त शूद्र की शक्ति को कौन नष्ट कर सकता है।११-१३। क्योंकि तप एवं सत्य बोलने आदि के महत्त्व द्वारा देवता की बातों की जानकारी और मंत्र की शक्ति सभी (शूद्रादि) मनुष्यों में भी देखी जाती है।१४। एवं सभी शूद्रादि मनुष्य कठोर बोलने वाले की प्रवंचना करते ही है अतः शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद किसी प्रकार सम्भव नहीं है।१५। शाप और अनुग्रह (क्षमा) करने की शक्ति भी (शूद्रादि में) भिन्न नहीं देखी गई है एवं उसी भाँति चोर, विश्वास घातक, राजपुत्र अथवा किसी दुर्जन द्वारा उपहत होने पर मनुष्यों में कोई भेद दिखायी नहीं देता है। शूद्र जिस प्रकार अपने दुःखों का नाश एवं अपने आत्मीय जीवों की रक्षा नहीं कर सकता है, ब्राह्मण भी उसे करने में वैसे हो असमर्थ है।१६-१७ कलियुग के रहते इस देश में ब्राह्मणों में यह बात (कुकर्म करने वाला कोई) न हो तभी अच्छा है चाहे दूसरे समय में तथा दूसरे देश में श्रेष्ठ ब्राह्मणों में भले ही कोई हो।१८। शाप और अनुग्रह का सामर्थ्य और अध्यात्म विचार करना ही कुछ लोग (ब्राह्मण होने का) लक्षण मानते हैं।१९। किन्तु सांसारिक विषयों में अनुरक्त एवं मोह रूपी अंधकार में पड़े रहने के नाते (सभी) लोग नरक के कुंडो में विवश होकर अग्नि में पतिंगे की भाँति गिरते ही रहते हैं।२०। यद्यपि वेद के प्रभाव वश जाति धर्म की विशेषता कुछ अवश्य है जो वह ब्राह्मणों में (वेदाध्ययन करने के नाते) तो प्रसिद्ध है और शूद्रों में कुछ भी नहीं।२१। संस्कार या उसकी सामग्री अथवा कारण जो दूसरे लोगों में साधारण-सा होता है वही शूद्रों में विशेषता उत्पन्न करता है।२२।

---

१. विचक्षणतया। २. केनान्यस्य विहन्यते।

विप्राणां पञ्चधा भेदः कल्पनीयस्तु पण्डितैः। न जातिजस्त्रयीजो वा विशेषो युक्तिबाधकात्॥
क्रमाक्रमक्रियाः सन्ति न सनातनवस्तुनः ॥२३

नित्यो न हेतुर्विगतक्रियत्वाद्धेतुर्भवेद्वेदविशेषतः सः।
स तत्समस्तत्प्रतिसन्निधानात्कालात्ययेऽक्षित्वमयुक्तमेव ॥२४

स्वान्तः शरीरवृत्तिस्थः श्रुतियोगादुदेति यः। सोऽनन्यवेदविज्ञातस्वभावोऽन्यैर्न गम्यते ।२५
विशिष्टाधीतिधर्मत्वे कृत्रिमा ब्रह्मतङ्गतिः। यस्यास्यतिशयस्तस्य नान्यैः नाश्रयते यदि ॥२६

दृश्यस्वभावं किमभीष्टमेतद्ब्राह्मण्यमाहोस्विददृष्टरूपम्।
सर्वैः प्रतीयेत हि दृश्यरूपं ततोऽन्यथावद्गतिरेव न स्यात् ॥२७
सामग्र्यभावात्परमं विशेषं भूदेवगात्रस्यमभूमिदेवाः।
स्मरन्ति तेनात्मनि पुण्यपापं यथा तथेत्येतदयुक्तमुक्तम्॥२८
सामग्र्यनुष्ठानगुणैः समग्राः शूद्रा यतः सन्ति समा द्विजानाम्।
तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रनाम्नोर्नाध्यात्मिको बाह्यनिमित्तको वा ॥२९
संस्कारतः सोऽतिशयो यदि स्यात्सर्वस्य पुंसोऽस्त्यतिसंस्कृतस्य।
यः संस्कृतो विप्रगणप्रधानो व्यासादिकैस्तेन न तस्य साम्यम्[1] ॥३०

पंडितों ने पाँच प्रकार के ब्राह्मणों के भेद की कल्पना की है पर वह भेद युक्तियुक्त न होने के कारण न जाति द्वारा और न वेद द्वारा ही संभव हो सकता है। क्योंकि सनातन नित्य या अविनाशी वस्तु में क्रमशः यों ही कोई भी क्रिया उत्पन्न ही नहीं होती है।२३। इसीलिए अनश्वर (वस्तु) में कोई क्रिया संभव न होने के नाते वह किसी कारण नहीं हो सकता है, यदि कहीं (कारण) होता भी है तो वेदों की विशेषता वश। वह उसके सन्निहित होने (वेदाध्ययन) से उसके समान हो सकता है किन्तु अवसर चूक जाने पर केवल नाश मात्र (शरीर त्याग और जल ग्रहण) करना ही हाथ आता है जो सर्वथा अनुचित बताया गया है।२४। अपने अंतःकरण में रहने वाले उस संस्कार को जिसका उदय वेदाध्ययन से कहा गया है वेदाध्ययन न करने वाले कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।२५। क्योंकि वेदाध्ययन के करने की विशेषता प्राप्त करना ही ब्राह्मण के लक्षण हैं इसलिए वेदाध्ययन न करने वाले ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते हैं।२६। इसी प्रकार दृश्यरूप (प्राकृतिक रूप) अदृष्टरूप इन दोनों में ब्राह्मण होने में कौन कारण है। समस्त व्यक्तियों को दृश्य-रूप (दिखायी देने वाले) की ही प्रयाति होती है और उससे अन्यथा (अदृष्टरूप) की गति ही न होगी। सामग्री के अभाव से पृथ्वी पर न रहने वाले देवता अपनी आत्मा में ही पृथ्वी, देवता एवं शरीर में स्थित अत्यन्त विशिष्ट पुण्य एवं पाप का स्मरण करते हैं। यह निःसन्दिग्ध उक्ति है। सामग्रीपूर्वक अनुष्ठान आदि गुणों से शूद्र भी ब्राह्मणों के समान ही है अतः शूद्र और ब्राह्मणों में आध्यात्मिक भेद नहीं है। किन्तु संस्कारी एवं तेजस्वी शूद्र को देखकर स्मरण की चर्चा नहीं होती है उसी भाँति यह भी कारण सर्वथा अनुपयुक्त ही कहा जायेगा। या बाहरी भेद कारण नहीं हो सकता है।२७-२९। यदि संस्कार ही ब्राह्मण होने में मुख्य है, तो जिसके सभी संस्कार हुए हैं वे ब्राह्मण हैं पर संस्कार हीन व्यासादिक से उनकी तुलना कैसे हो सकती है। इसलिए जाति के

---

१. भाव्यम्। २. विद्यते।

हेतुत्वं घटते[1] नैषां जात्यादीनामसम्भवात् । जातेरकृतकत्वाच्च अधीते न विशेषतः ।।३१
संस्कारातिशयाभावादन्तरस्यागते परैः । भौतिकत्वाच्छरीरस्य समस्तानामसंहतैः ।।३२
किं चान्यनास्तिकम्लेच्छ यवनादिजनेष्वलम्[2] ।।३३
वेदोदितबहिर्दुष्टचरितेषु दुरात्मसु । धर्मादतिशयो[3] दृष्टः क्रूरसाहसिकादिषु ।।
तस्माद्विप्रेषु जात्यादिसामग्रीप्रभवो न सः ।।३४
तस्मान्न च विभेदोऽस्ति न बहिर्नान्तरात्मनि । सुखादौ न चैश्वर्ये नाज्ञायां नाभयेष्वपि ।।३५
न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि । नाङ्गे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले ।।३६
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे । न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे ।।३७
न स्त्रीगर्भे न गमने न देहमलसम्प्लवे । नास्थिरन्ध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणेषु लोमसु ।।३८
शूद्रब्राह्मण्योर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः । नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि ।।३९
उक्तमात्रा विसम्भूतिर्विचारक्रमकारिभिः । वृद्धवृन्दारकाधीशैरप्रघृष्यमिदं वचः ।।४०

न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पवर्णाः ।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः शूद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः ।।४१

समर्थन में कोई भी कारण संभव नहीं है । यद्यपि जाति नित्य मानी गई है पर उसके अध्ययन में कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता नहीं देखी जाती है और वह जो विशेषता होती है वह वेदारम्भादि संस्कार से भी संभव नहीं है । शरीर भी संस्कार की महत्ता के प्रभाव एवं भौतिक (पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश से बनी) होने के नाते ब्राह्मण होने में कारण नहीं है क्योंकि उसके सभी तत्त्व पृथक्-पृथक् रहने वाले है (कुछ समय के लिए एकत्र रहते हैं) और भी विशेषता यह है कि नास्तिक, म्लेच्छ एवं यवन आदि की भी शरीर सभी के समान ही होती है ।३०-३३। इसी प्रकार दुश्चरित्र, दुष्ट, क्रूर, एवं घातक मनुष्यों में भी वेद में कही गयी धार्मिक-विशेषता समान ही देखी जाती है, अतः ब्राह्मण आदि जाति होने में संस्कार आदि कारण नहीं हो सकते ।३४। इसलिए (ब्राह्मण शूद्र के) बाहरी और भीतरी तथा सुख-दुःख ऐश्वर्य आज्ञा देने, निर्भय, वीर्य, शरीर, जुआ खेलने, व्यापार आय, शरीर की पुष्टता, दुर्बलता, स्थिर, चंचलता, बुद्धि, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम), चतुरता, रूप-रंग, औषधि, स्त्रियों के गर्भ, मैथुन, शरीर के मल, शरीर की हड्डी, शरीर में छिद्र, प्रेम, लम्बाई, चौड़ाई और रोम में कोई भेद नहीं है अतः सभी देवता मिलकर अतिपरिश्रम के साथ शूद्र और ब्राह्मण में उपरोक्त अंगो द्वारा कोई भी भेद निकालना चाहें तो किसी भी तरह संभव नहीं हो सकता है ।३५-३९। इस प्रकार इस विचार क्रम में जो बातें निश्चित कह दी गई हैं उन्हें वृद्ध अनुभवी या इन्द्रादि देव भी अनिश्चित नहीं कर सकते हैं ।४०। क्योंकि ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणों की भाँति धवल, क्षत्रिय किंशुक पुष्प के समान रुद्रवर्ण वैश्य हरिताल के समान पीत वर्ण और शूद्र आधी जली हुई लकड़ी (कोयले) के समान काले ही नहीं होते हैं ।४१। अतः पैर से

---

१. विद्यते । २. अपि । ३. योऽस्मात् ।

पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन।
त्वङ्मांसमेदोस्थिरसैः[1] समानाश्चतुष्प्रभेदा हि कथं भवन्ति॥४२
वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु।
बलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः॥४३
स एक एवात्र पतिः प्रजानां कथं पुनर्जातिकृतः प्रभेदः।
प्रमाणदृष्टान्तनयप्रवादैः परीक्ष्यमाणो विघटत्वमेति॥४४
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एवं पित्रैकभावान्न च जातिभेदः॥४५
फलान्यथोदुम्बरवृक्षजातेर्यथाग्रमध्यान्तभवानि यानि।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या॥४६
ये कौशिकाः काश्यपगौतमाश्च कौण्डिन्यमाण्डव्यवशिष्ठगोत्राः।
आत्रेयकौत्साङ्गिरसः सगर्गा मौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्च॥४७
गोत्राणि नानाविधजातयश्च भ्रातृस्नुषामैथुनपुत्रभावाः।
वैवाहिकं कर्म न वर्णभेदः सर्वाणि शिल्पानि भवन्ति तेषाम्॥४८
ये चान्ये[2] पण्डिताः प्राहुर्देवब्राह्मणतां नराः। तेषां दुर्दृष्टितिमिरमपनीयानुकम्प्य च॥४९
न्यायाञ्जनौषधैर्दिव्यैः परिणामसुखावहैः। उपनीतैः प्रयत्नेन सुदृष्टिं संविदध्महे॥५०

चलने, शरीर के रंग, केश, दुःख-सुख, रक्त, चमड़े, मांस, मेदा हड्डी और रस में समानता होने के कारण (मनुष्यों में) चार प्रकार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का भेद कैसे हो सकता है।४२। जब कि रंग, लम्बाई-चौड़ाई, शरीर-रचना, गर्भ में निवास, वाणी, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय (वाक् हाथ, पैर, गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय), जीवन, बल, त्रिवर्ग, रोग, और औषध में जाति द्वारा कोई विशेषता नहीं दिखाई देती है।४३। इसलिए वही एक ही (आत्मा) तो प्रजाओं का पति भी है भला उसमें जाति द्वारा भेद कैसे संभव हो सकता है। प्रमाण, दृष्टांत या नीति के द्वारा किसी भी प्रकार से उसे कसौटी पर लाने से सफलता नहीं मिल सकती है।४४। जिस प्रकार किसी पिता के चार लड़के रहते हैं किन्तु उनकी सुनिश्चित एक ही जाति रहती है, इसी प्रकार सभी को उत्पन्न करने वाला पिता एकही है, उसके एक होने से जाति भेद कहाँ हो सकता है।४५। गूलर के फल में जिस प्रकार अग्र भाग, मध्य और अंत में रूप-रंग, रचना, स्पर्श एवं रस समान होता है, उसी प्रकार एक से उत्पन्न इन मनुष्यों में जाति कल्पना करना अनुचित है।४६। इस प्रकार कौशिक, काश्यप, गौतम, कौंडिल्य, मांडव्य, वशिष्ठ, क्षत्रिय, कौत्स, आंगिरस, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन, और भार्गव गोत्र वालों के भाई पुत्र-वधू (पतोहू) मैथुन पुत्र, जन्म, विवाह, रूप-रंग तथा सभी शिल्प कलाएँ भी समान ही हैं।४७-४८ यद्यपि कुछ पंडित गण देह को ब्राह्मण मानते हैं तथा उनके तिमिराच्छन्न नेत्र के लिए न्याय रूपी अंजन से जो उत्तम औषध के संमिश्रण से बनाया गया है और परिणाम में (लगाने पर) सुख प्रदान करता है उसी को देने की कृपा करके उनकी आँख अच्छी कर रहा हूँ ऐसा बोलते हैं यह गलत है।४९-५०। देह क्योंकि

---

१. त्वङ्मांसकेशास्थिरसैः। २. ये चार्यम्।

मूर्तिमत्त्वाच्च नाशित्वं नाशित्वाच्छेषभूतवत्[१] । देहाधारनिविष्टानां ब्राह्मण्यं न प्रकल्प्यते ॥५१
एकैकोवयवस्तेषां न ब्राह्मण्यं समश्नुते । न चानेकसमूहेऽपि[२] सर्वयातिप्रसङ्गतः ॥५२
पृथिव्युदकवाय्वग्निपरिणामविशेषतः । देहतः सर्वभूतानां ब्राह्मणत्वप्रसङ्गतः ॥५३
देहस्य ब्राह्मणत्वं यैरतत्त्वज्ञैः प्रकल्प्यते । संस्कर्तॄणां शरीरस्य तेषां न ब्रह्मता भवेत् ॥५४
मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नोपलभ्यते । तस्मान्न देहे ब्राह्मण्यं नापि देहात्मकं भवेत् ॥५५
वर्णापसदचांडालश्वादादीनां[३] प्रसज्यते । यदि देहस्य विप्रत्वं भवद्भिरुपगम्यते ॥५६
देहशक्तिगुणैः क्षीणैः कायभस्मादिरूपवत् । तस्माद्देहात्मकेनैतद्ब्राह्मण्यं नापि कर्मजम् ॥५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
ब्राह्मण्यविवेकवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।४१।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मणसंस्कारविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अपरैश्च सदाचारयोगयुक्तैर्मनीषिभिः । यदकारि महासत्त्वैः सुभाषितमिदं शृणु ॥१

मूर्तिमान होने के नाते नश्वर होती है और नश्वर होने के कारण यह देह भूत (पृथिव्यादि) की भाँति नष्ट हो जाती है इसलिए देह को ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता है ।५१। इसी प्रकार देह के एक-एक अंग या समस्त अंग (देह) को ब्राह्मण कहना उचित नहीं है ।५२। क्योंकि सर्वथा अति प्रसंग हो जायगा और पृथिवी आदि पाँच भूतों के परिणाम रूप देह होने के कारण सभी भूत ब्राह्मण कहे जायेंगे ।५३। अज्ञानियों ने देह को ब्राह्मण होना स्वीकार किया है संस्कार करने वाले की देह में ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता है ।५४। क्योंकि प्रयत्न पूर्वक खोजने पर भी देह में ब्राह्मणत्व नहीं मिलता है इसलिए देह ब्राह्मण नहीं हो सकती और ब्राह्मणत्व देह का स्वरूप भी नहीं है ।५५। उस अवस्था में तो अधम, नीच, चांडाल एवं कुत्ता खाने वाले आदि की शरीर भी ब्राह्मण हो जायगी । यदि देह ही को आप लोग ब्राह्मण मानते रहेंगे ।५६। क्योंकि देह की शक्ति और गुण नष्ट हो जाता है और देह (किसी समय) राख हो जाती है अतः ब्राह्मणत्व न देह की वस्तु है और न देह से उत्पन्न ही होती है।५७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में ब्राह्मण विवेक वर्णन नामक
एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४१।

अध्याय ४२

ब्राह्मण संस्कार विवेक का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ऐसे महात्मा लोग जो सदाचारी, योगी एवं धुरन्धर विद्वान हैं, जो कुछ किये और

---

१. वेदाहारविनष्टान्मम् । ६. समस्तोऽपि हि देहोऽयं सर्वख्यातिप्रसङ्गतः । ३. वर्णापसद-चाण्डालनिषादानां प्रसज्यते ।

बहुवनस्पतिशङ्खपिपीलिकाभ्रमरवारणजातिमुदाहरन् ।
गतिषु कर्ममितो नटवत्सदा भ्रमति जन्तुरलब्धसुदर्शनः ॥२
रूपैश्वर्यज्ञानकुलैर्विभवैर्वामितो भूत्वा धर्मपथं चेद्विजहासि ।
न वक्ष्ये व्रजन्भुवनानि त्वमटिष्यंस्तस्मादभिभस्त्मीभूते मद आत्मनः ॥३
जातिकुलरूपवयोवर्णानेकश्रुतमदान्धाः क्लीबाः । परत्र चेह च हितमप्यर्थं न पश्यन्ति ॥४
ज्ञात्वा भवपरिवर्ते जातीनां कोटिशतसहस्रेषु । हीनोत्तममध्यत्वं को जातिमदं बुधः कुर्यात् ॥५
नैकान्ज्ञातिविशेषानिन्द्रियनिवृत्तिपूर्वकान्सर्वान् । कर्मवशाद्गच्छत्यत्र कस्यैका शाश्वती जातिः ॥६
विद्वत्सदसि योऽप्याह संस्काराद्ब्राह्मणो भवन् । न्यायज्ञैः[1] स निराकार्यो वाक्यैर्न्यायानुसारिभिः ॥७
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्म नामकर्म तथान्नप्राशनं च वै ॥८
चूडोपनयनं चास्य व्रतादेशस्तथैव च । समावर्तनमप्यन्यत्पाणिग्रहणमेव च ॥९
इत्येवनादिसंस्कारविधानैर्येऽतिसंस्कृताः । त एव ब्राह्मणा येषां नैरन्तर्येण[2] कामनाः ॥१०
यस्माद्वै ब्राह्मणा जाता ब्राह्मणैः कृतसंस्कृतैः । नायुः शक्तिर्हि कान्त्यादिविशेषो विद्यते स्फुटः ॥११
तौ वा ब्राह्मणगात्रोत्थौ संस्कृतासंस्कृतौ नरौ । इष्टानिष्टाप्त्यनाप्तिभ्यां न भिद्येते परस्परम् ॥१२

कहते हैं उनकी सुन्दर वाणियों को मैं बता रहा हूँ । सुनो ! उनका कहना है कि वह जीव, जिसे कभी किसी अच्छे (देवता तीर्थ आदि) का दर्शन नहीं प्राप्त है, भाँति-भाँति के वनस्पति, शंख, चींटी, भौंरे, हाथी आदि योनियों में कर्म वश नर की भाँति भ्रमण किया करता है ।१-२। इसलिए रूप-रंग-ऐश्वर्य, ज्ञान और कुल एवं विभव से सुरक्षित होकर धार्मिक पथ का अनुसरण यदि तुम नहीं करते हो तो मैं नहीं कह सकता कि तुम्हें इस मद के नष्ट हो जाने पर चलते-फिरते किन-किन (नीच) लोकों में नहीं घूमना पड़ेगा ।३। क्योंकि जाति, कुल, रूप-रंग अवस्था एवं भाँति-भाँति की विधाओं के मद से अन्धे होकर हिंजड़े की भाँति लोग इस लोक और परलोक की अपने हित की बातों को ध्यान में नहीं लाते हैं ।४। इस प्रकार संसार एक महान गड्ढा है, जिसके भँवर में सैकड़ों, हजारों एवं करोड़ों जातियाँ पड़ी डूब रही हैं । ऐसा जानते हुए कौन बुद्धिमान् जाति का अभिमान कर सकता है ।५। ऐसे एक नहीं प्रत्युत अनेकों मनुष्य हैं जो अच्छे कुल में उत्पन्न संतुष्ट इन्द्रिय कहे जाते हैं वे कर्म वश यहाँ संसार में आया-जाया करते हैं, इसलिए किसकी एक ही जाति सर्वदा स्थिर रह सकती है ।६। विद्वन्मंडली में जिसमें भी (केवल) संस्कार से ब्राह्मण होना बताया है न्याय का अनुसरण करने वाली अपनी नैतिक बातों से उसकी बातों का खण्डन कर दें ।७। क्योंकि यदि गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन (अन्न खिलाना), चूडा करण (मुंडन), यज्ञोपवीत (जनेऊ), वेदारंभ, समावर्तन और विवाह आदि संस्कार विधि पूर्वक जिसके हो चुके हैं वे ही ब्राह्मण हैं तो संस्कार हीन एवं नीच कर्म करने वाले ब्राह्मण कैसे कहे जा सकते हैं ।८-१०। इसी प्रकार संस्कार किये गये ब्राह्मणों की संतान तथा संस्काररहीन (ब्राह्मणों) संतान की आयु, शक्ति और कांति आदि में कोई विशेषता सामने नहीं दिखाई देती है ।११। जिस प्रकार ब्राह्मण के शरीर से उत्पन्न उन दोनों पुत्रों के जिसमें एक का संस्कार हुआ है और दूसरा संस्कार हीन है, सुख-दुःख तथा (किसी अच्छी

---

१. न्यायज्ञैः सत्क्रियाः कार्याः । २. नेह ते हतकाधमाः ।

ज्ञानाध्ययनमीमांसानियमेन्द्रियनिग्रहैः । विना संस्कारयोगेऽपि पुंसः शूद्रान्न भिन्नता ॥१३
संस्कारः क्रियमाणश्च न शूद्रे च प्रवर्तते । संस्कृताङ्गश्च[1] पापेभ्यो न पश्यति निवर्तते[2] ॥१४
विलासिनीभुजंगादिजनवन्मदविह्वलाः । व्यामुह्यन्ति सदाचाराद्ब्राह्मणत्वात्पतन्ति[3] च ॥१५
संस्कृतोऽपि दुराचारो नरकं याति मानवः । निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा ॥१६
मन्त्रपूतात्मसंस्कारयुक्तोऽपि प्लवते न तु । ब्राह्मण्यादविकल्पं स पश्चाद्दुश्चरितो नरः ॥१७
सामर्थ्यात्पतनं तस्माद्ब्राह्मण्यान्मुच्यते ध्रुवम् । दुरनुष्ठानसक्तानां पुंसां पुरुषपुङ्गवैः ॥१८
किं क्वचिद्दृष्टमेवैतात्कि वा स्पर्धाविदत्ययम् । तुल्यमुत्सहसे कर्तुमप्यदृष्टं तदा वद ॥१९
आचारमनुष्ठिन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः । गर्भाधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥२०
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः । बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तान्निबोधत ॥२१
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः । शुक्याः शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥२२
मृगीजोथर्षभृङ्गोपि वशिष्ठो गणिकात्मजः । नन्दपालो[4] मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते[5] ॥२३
माण्डव्यो मुनिराजस्तु मण्डूकीगर्भसम्भवः । बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववद्द्विजाः ॥२४

वस्तु के) मिलने न मिलने में कोई भेद नहीं होता है ।१२। इसी प्रकार संस्कार हीन पुरुष के ज्ञान अध्ययन, मीमांसा (विचार), नियम और इंद्रिय संयम में शूद्र की उन बातों से कोई विशेषता नहीं होती ।१३। यद्यपि शूद्रों का संस्कार नहीं होता है तथापि संस्कार किये हुए (किसी ऊँची जाति) के शरीर के कोई भी अंग पाप-युक्त नहीं दिखाई देते हैं ।१४। क्योंकि बिलासी और दुष्ट आदि लोगों की भाँति मदान्ध होकर (संस्कारी) पुरुष मोह में पड़कर सदाचार एवं ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाते हैं और संस्कार किये जाने पर भी दुराचारी होने के नाते नरक में जाते हैं । किन्तु संस्कार हीन पुरुष, सदाचारी एवं उत्तम (श्रेष्ठ) ब्राह्मण हो जाते हैं ।१५-१६। इसलिए मंत्रों द्वारा पवित्र एवं संस्कार युक्त पुरुष भी (माया मोह में) डूबता ही है और ब्राह्मणत्व हीन होकर सर्वदा के लिए दुराचारी भी हो जाता है ।१७। क्योंकि अनुचित कामों में लीन रहने वाले पुरुष अपने ही सामर्थ्य से अन्धे होकर पतित होते हैं और ब्राह्मणत्व से सदैव के लिए निश्चित पृथक् भी हो जाते हैं ।१८। क्या इस प्रकार मनुष्य में जाति भेद न होते हुए भी वहीं आप को भेद दृष्टि गोचर हुआ या केवल द्वेष के कारण ही ऐसी बातें कह रहें हैं यदि दृष्टादृष्ट में कोई विशेषता नहीं है तो आपको यही कहना उचित होगा कि मैंने भेद कहीं नहीं देखा क्योंकि आचार करने वाले व्यास आदि महर्षियों में श्रेष्ठ हो गये हैं, उनके गर्भाधान आदि कोई संस्कार नहीं हुए थे यह बिल्कुल स्पष्ट है ।१९-२०। महर्षियों में अधिकांश ऐसे लोग भी हैं जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भी संपन्न और सभी लोकों में वन्दनीय हो गये हैं उनमें से कुछ को कह रहा हूँ, सुनो ।२१। व्यास कैवती (केवट की स्त्री) से, पराशर चांडालिनी से, शुक तोते (पक्षी-स्त्री) से, कणाद उल्लू (पक्षी-स्त्री) से, शृंगी ऋषि मृगी से, वशिष्ठ वेश्या से, मंद (मेद) पाल लावा पक्षी से एवं मांडव्य मेढकी से उत्पन्न हुए हैं और ऐसे बहुतों ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया जो पूर्व के समान (उच्च कोटि के) ब्राह्मण हुए हैं ।२२-२४।

---

१. संस्कृताङ्गस्य पापेभ्यो लावण्यं विनिवर्तते । २. संस्कारेभ्यः । ३. ब्राह्मण्यं हापयन्ति च । ४. मेदपालः । ५. लाविकागर्भसंभवः ।

यच्चैतच्चारुचरितैरर्घ्यमुच्चरितं वचः । तद्विचार्याचरन्मुच्चैराचारोपचितद्युतिः ॥२५
हरिणीगर्भसम्भूत ऋष्यशृङ्गो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥२६
श्वपाकीगर्भसम्भूतः पिता व्यासस्य पार्थिव । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥२७
उलूकीगर्भसम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥२८
गणिकागर्भसम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥२९
नाविकागर्भसम्भूतो मन्दपालो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥३०
वेदतन्त्रजसंस्कारकलापनिपुणैरपि । विद्यातपोधनबलादुत्कृष्टं लभ्यते फलम् ।३१
लब्धसंस्कारदेहाश्च महापातकिनो नराः । यस्मान्निवर्तते ब्रह्म तस्मात्साङ्केतिकं विदुः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
षष्ठीकल्पे ब्राह्मणसंस्कारविवेकवर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ।४२।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

वर्णव्यवस्थावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किं चान्यदपरं यूयं वेदमन्त्रविदो जनाः । प्रष्टव्याः कस्य संस्कारे विशेषमुपगच्छत ॥१

इसलिए सुन्दर चरित्रों के नायक इन लोगों ने जो कुछ आदरणीय वचन कहा है उसके विचार पूर्वक तदनुकूल कार्य करने वाले तेजस्वी होते हैं ।२५। क्योंकि हरिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर महामुनि शृङ्गी ऋषि ने तपोबल द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त किया अतः ब्राह्मण होने में संस्कार ही मुख्य हैं। राजन् ! इसी प्रकार व्यास के पिता (पराशर) चांडाली के गर्भ से कणाद उलूकी के गर्भ से, महामुनि वशिष्ठ वेश्या के गर्भ से, और महर्षि मंदपाल लावा के गर्भ से जन्म ग्रहण कर तपोबल द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हैं इसलिए संस्कार मुख्य कारण हैं ।२६-३०। वैदिक एवं तांत्रिक संस्कार से निपुण भी लोग विद्या तथा तप के द्वारा श्रेष्ठ हो सकते हैं । किन्तु (केवल) संस्कार मात्र से नहीं क्योंकि कुकर्मवश मनुष्य महापापी भी हो जाता है और उस महापातक द्वारा ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है इसलिए ऐसी ब्राह्मणत्व जाति को केवल सांकेतिक (काल्पनिक) ही मानना चाहिए ।३१-३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में ब्राह्मण संस्कार और विवेक वर्णन
नामक बयालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

अध्याय ४३

वर्णव्यवस्था वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—संस्कार द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्ति का विचार भी उन लोगों से भी जो वैदिक मंत्रों के निपुण विद्वान् हैं, पूछना चाहिए कि किसके संस्कार करने पर विशेषता (ब्राह्मणत्व) प्राप्त होती है ।१।

किं देहस्योत येनासौ निसर्गमलिनः स्थितः । शुक्रशोणितसम्भूतः शमलोद्भवकीटवत् ॥२
निषेकादिश्मशानान्तैर्विविधैर्विधिविस्तरैः । देहिनोऽतिशयं केचिदुपगच्छन्ति मानवाः ॥३
तेषां गूढमनः कायवाग्विदुष्टैः सुचेष्टितैः । असंयतमनुष्याणां पक्षोऽयं दूष्यते मया ॥४
वैदिकाखिलसंस्कारसारभूता द्विजातयः । सर्वकार्यकरान्सर्वान्वृजलानतिशेरते ॥५
चण्डकर्मा विकर्मस्थो ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्तेनो गोघ्नः सुरापाणः परस्त्रीरमणप्रियः ॥६
मिथ्यावादी मदोन्मत्तो नास्तिको वेदनिन्दकः । ग्रामयाजकनिर्ग्रन्थौ बहुदोषो दुरासदः ॥७
नि[1]षिद्धाचारसंसेवी चोरश्चाटो मदोद्धतः । धूर्तो नटः शठः पापी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥८
वाङ्मनः कायजैर्दुष्टैर्हता ये ब्राह्मणाधमाः । ते न शुद्धिं व्रजन्तीह अपि यज्ञशतैरपि[2] ॥९
शूद्राणां यान्यनिष्टानि सम्पद्यन्ते स्वभावतः । विप्राणामपि तान्येव निर्विघ्नानि भवन्ति न ॥१०
तस्मान्मन्त्रोऽग्निहोत्रं वा वेद्यां पशुवधोऽपि वा । हेतवो न हि विप्रत्वे शूद्रैः शक्या क्रिया यथा ॥११
ये चापि कर्मबन्धेन बद्धाः सीदन्ति जन्तवः । संसारानलसन्तापविक्लवीकृतमानसाः ॥१२
ते जन्ममरणाटव्यां सुखामृतपिपासवः । कृपणस्याश्रयेऽटन्तो लभन्ते नैव निर्वृतिम् ॥१३

क्या शरीर के जो स्वभावतः मल पूर्ण एवं विष्ठा से उत्पन्न कीड़े की भाँति शुक्र शोणित से बनी है ।२। या गर्भाधान आदि से लेकर श्मशान तक भाँति-भाँति के संस्कार से पूर्ण होने के नाते जीव के । अर्थात् कुछ लोगों का मत है कि संस्कार करने पर जीव द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ।३। उन संयम न करने वाले मनुष्यों के मन, शरीर, और वाणियों में दुष्टता भरी रहती है, उनकी चेष्टाएँ भी दोष पूर्ण ही हुआ करती हैं । इसलिए इस कथन के द्वारा ही मैं उनके जीव वाले पक्ष का खण्डन करता हूँ ।४। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) लोग समस्त वैदिक संस्कार के सार रूप हैं और इसीलिए वे (छोटे-बड़े) सभी कार्य करने वाले शूद्रों से श्रेष्ठ भी माने जाते हैं ।५। (किन्तु संस्कार सम्पन्न होने पर भी) उन उग्र कर्म तथा बुरा कर्म करने वाले ब्राह्मण हत्या एवं गुरुपत्नी के साथ मैथुन करने वाले, चोरी करने वाले, गोहत्या करने वाले, शराबी, व्यभिचारी, मिथ्या बोलने वाले, मदान्ध, वेद नास्तिक, वेद की निन्दा करने वाले, गाँव गाँव में घूम कर यज्ञ कराने वाले निर्ग्रन्थ (बौद्ध), अनके भाँति के दोषी, बड़ी कठिनाई से पकड़े जाने वाले निषिद्ध आचरण करने वाले, चोर विश्वासघात द्वारा धन चुराने वाले, मतवाले, धूर्त, नट, शठ, पापी, सभी कुछ खाने वाले सभी कुछ बेंचने वाले, मन, वाणी और शरीर से दुष्टता करने वाले उन ब्राह्मणों की शुद्धि सैकड़ों यज्ञ करने पर भी नहीं हो सकती है ।६-९। शूद्रों के स्वभावतः जो कार्य महान् विघ्नों द्वारा नष्ट होते हैं ब्राह्मणों के भी वे ही (कार्य) निर्विघ्न समाप्त नहीं हो जाते हैं ।१०। इसलिए मंत्र, अग्नि, होम और वेदी (यज्ञ) पर पशुबलि भी ब्राह्मण होने में उसी भाँति कारण नहीं हो सकती है जिस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार सभी कार्य करने पर भी शूद्र शूद्र ही रहता है ।११। जो संसार रूपी अग्नि की ज्वाला से व्याकुल चित्त वाले जीव कर्मरूपी बंधन में पड़कर (भाँति-भाँति से) दुःख का अनुभव करते हैं ।१२। वे सुख रूपी अमृत का पान करने के लिए जल भरण रूपी संसार जंगल में सदैव घूमते हुए भी कृपण के दरवाजे से निराश होने की भाँति कभी भी निर्वृत्ति (सुख) प्राप्त नहीं करते है ।१३। इसलिए

---

१. निषिद्धाचारसंवीतो यो रथ्यादौ मदोद्धतः । २. वर्षज्ञतैः ।

चतुर्वर्णा नरा ये तु तत्तद्वीर्ये नराधमाः । तेषां सर्वात्मना सर्वैर्धर्मैः साङ्कर्यमीक्ष्यते ॥१४
शूद्रविप्रादयो योनौ न भिद्यन्ते परस्परम् । सर्वधर्मसमानत्वात्संस्कारादि निरर्थकम् ॥१५
तदनुष्ठानवैधर्म्यवियोगमरणादिभिः । असेव्यसेवनैरन्यैः शूद्रविप्रादयः समाः ॥१६
बुद्ध्या शक्त्या स्वभावेन धर्मैर्जात्या[1] दिभिः श्रिया । कर्तव्यैः पुण्यपापाभ्यां शनैः[2] सर्वशरीरगैः ॥१७
बन्धनै रोधनैर्नानायातनोपायपीडनैः । दण्डैरदण्डकरणैर्विषादपरिवेदनैः ॥१८
सात्त्विकैः प्रतिधर्माद्यै राजसैश्चित्रचेष्टितैः । तामसैस्तापमोहाद्यैर्दूयमानाः पुनः पुनः ॥१९
श्लेष्ममारुतपित्ताद्यैर्महाबीभत्सदर्शनैः । क्वचिद्वृत्तिनिवृत्तिभ्याममृतानृतहिताहितैः ॥२०
अलङ्कारोपयोगेन मन्मथाद्यैर्विचेष्टितैः । धनलाभाशयानैकजन्तुसङ्घातपातनैः ॥२१
अधिसिद्धिर्गतिं याति नानाविधमनोरथैः । आत्मस्नेहपरद्वेषस्वीकृतद्रवरक्षणैः ॥२२
अतिक्षीबत्वसंक्षोभक्षुतक्षामक्षमाभयैः । यातनोपायपैशुन्यशून्यत्वोपशमैस्तथा ॥२३
अप्रशस्तैरनुष्ठानैः समीपस्थापदः समाः । हिंसकाः प्राणिनः पापवितथालापभाषिणः ॥२४
साधूनांभाषकाः स्तेना निर्दयाः पारदारिकाः । नीचकर्मसमाचाराः सर्वभक्षाः पिशाचवत् ॥२५
दुष्कुलीना दुराचारा नृपाणामुपजीविनः । विप्रकार्या विकर्मस्थाधनिनो दुष्टचेतसः ॥२६
लुब्धका हरिणान्हत्वा वासं कृत्वा यथा वने । तथा खादन्ति पिशुना बहवश्च[3] क्रियावशात् ॥२७

चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों) में जितने मनुष्य हैं, वे एक दूसरे के वीर्य से उत्पन्न होने के नाते अधम हो गये हैं और उनमें सभी धार्मिक कार्यों द्वारा वर्ण सांकर्य दिखाई भी देता है ।१४। शूद्र और ब्राह्मण आदि की रचना में कोई भेद नहीं है अतः सभी धर्म समान होने के नाते संस्कार आदि व्यर्थ हैं ।१५। उसी प्रकार अन्यान्य धर्म द्वारा कार्य करना वियोग, जन्म मरण और असेवनीय पदार्थ का सेवन करना तथा अन्य बातों में शूद्रों और ब्राह्मणों में समानता है ।१६। तथा बुद्धि, शक्ति, स्वभाव, धर्म जाति आदि, संपत्ति, समस्त शरीर से किये गये पुण्य पाप, वाले कर्तव्यों के करने, बंधन अवरोधन, भाँति-भाँति के दुःख देने के उपायों से पीड़ित करने दण्ड देने, निषाद, दुःख, सात्विक प्रेम एवं धर्म आदि रजोगुण द्वारा उत्पन्न अनके भाँति की चेष्टाओं के करने आदि तपोगुण द्वारा उत्पन्न संताप तथा मोह में पड़कर बार-बार दुःखी होने के वात, पित्त और कफ द्वारा भयानक दर्शन, कहीं प्रवृत्ति कहीं निवृत्ति कहीं सत्य कहीं असत्य कहीं हित और कहीं अहित, अच्छे-अच्छे अनेक आभूषणों से सज्जित होकर कामवश भाँति-भाँति की चेष्टा करने, धन लोभ के नाते अनेक जीवों के वध करने भाँति-भाँति के मनोरथ सफल करने आत्मीय (अपने) से स्नेह दूसरे से वैर एवं अपने धन की रक्षा करने अत्यन्त मद, मानसिक दुःख, क्षुधा तृषा वाले रोग, दुःखदायी उपाय करने, चुगुली (किसी के घर को सूना करने के लिए उपाय) करने आदि इन अनुचित कार्यों द्वारा जो आपदायें आती हैं वे शूद्रों और ब्राह्मणों के लिए समान ही होती हैं । इसी भाँति हिंसक जीव, पापी एवं झूठ बोलने वाले, कभी अच्छी बात भी बोलने वाले चोर, निर्दयी, व्यभिचारी, नीच कर्म करने वाले , पिशाच की भाँति सभी कुछ खाने वाले, नीच कुल में उत्पन्न,

---

१. धर्मेणेज्यादिभिः । २. मंत्रः । ३. हरयश्च ।

वेदवादमधीयाना[1] प्राणिघाताभिशंसिनः । पुष्णन्ति कपटैरर्थान्वेदविक्रयिणोऽधनाः ॥२८
मायिनो मत्सरग्रस्ता लुब्धा मुग्धा मदोद्धताः । चाटाः कार्पटिकाः क्रूराः कदर्याः कलहप्रियाः ॥२९
वाचाटदुष्टकुलटा अटन्तो भाटकैः सह । भण्डमान्या भटाटोपैः संक्रुद्धाः सुविलुण्ठकाः ॥३०
पर्यटा भाटका जीवाः कण्ठकम्लोकभाषिणः । विक्रीणते ह्यविक्रेयमभक्ष्यद्रव्यभक्षिणः ॥३१
शूद्रकर्मानुतिष्ठन्तो निस्तपास्ते नराधमाः । सेवाध्यापनवाणिज्यकृष्याद्यारम्भलम्भिताः ॥
गृह्णन्तः सम्पदो बाह्याद्द्रव्यधान्यधनादिकाः ॥३२
क्रोधादाभ्यन्तरान्दोषांस्तथा दुष्टमनोरथान् । अत्यजन्तो विशिष्टानां श्रेष्ठास्ते कचमर्दिनः ॥३३
नोपदेयानि वस्त्राणि नित्यमाददते द्विजाः । हापयन्ति न हेयानि कथं ते गुरवः क्षितौ ॥३४
दण्डिका दिण्डिका भण्डाश्चण्डाश्चण्डालचेष्टिताः । वैतण्डकास्ते निघ्नन्ति यथा सिंहो मृगान्पशून् ॥३५
निर्ग्रन्थं मुनिमालोक्य मन्यमानाः समुन्नतम् । परिभूयादतिष्ठन्ते धिक्तान्रिक्तान्सवैरिणः ॥३६
तस्मात्संसारिकाः सत्त्वाश्चित्तक्लेशकलङ्किताः । दौःशील्यदौर्मनस्याद्यैस्तुल्यजातीयबन्धनात् ॥३७

दुराचारी, राजा के सेवक, विरुद्ध कर्म करने वाले, नीच कर्म में सदैव लीन रहने वाले, धनी, दुष्ट, जंगल में रहकर हरिणों का वध कर खाने वाले बहेलिये की भाँति अनेकों प्रकार के काम करने वाले चुगुल खोर भी अनेकों के विनाश करते हैं। वेद के अर्थवाद को पढ़ने वाले जीव वध के लिए सम्मति देने वाले ऐसे नीच पुरुष, जो वेद बेंचने वाले हैं, छल से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उसी प्रकार मायावी मत्सरता से युक्त लोभी, मुग्ध, मदांध, विश्वासघाती, कषाय वस्त्र पहिनने वाले, क्रूर कदर्य, झगड़ालू, अत्यन्त बोलने वाले, दुष्टकुल का साथ करने वाले भौरों के साथ घूमने वाले आडम्बर के नाते भाँड़ों द्वारा सम्मानित क्रोधी चोर।१७-३०। किराये की सवारी से चारो ओर घूमने वाले, कंठस्थ श्लोकों का हर (सगर्व) उच्चारण करने वाले तथा जो निषिद्ध वस्तु बेंचते हैं एवं अभक्ष्य पदार्थ खाने वाले ऐसे अधम मनुष्य अपने आचरणों द्वारा शूद्रों की भाँति तपोबल से च्युत हो जाते है। इसी भाँति नौकरी, अध्यापक, रोजगार, खेती करते हुए धन, धान्य और संपत्ति जो किसी भी प्रकार की एवं बाहर से प्राप्त होती है इन्हें वे स्वीकार कर लेते हैं। महान् क्रोध के वश में होकर मानसिक दोष एवं दुष्ट भावना को कभी नहीं छोड़ते हैं और नाई का काम करते हुए भी वे अपने को सब से श्रेष्ठ मानते हैं।३१-३३। इसीलिए जो ब्राह्मण नीच वृत्ति अपना कर नित्य वस्त्रों का आदान प्रदान करते हैं, और हेय (त्याज्य) वस्तु का त्याग नहीं करते हैं वे इस पृथ्वी पर गुरुभावों (ब्राह्मणत्व) से सम्मानित कैसे हो सकते हैं।३४। क्योंकि दंड धारण बाजे, बजाकर याचना, भांड़ों का साथ भीषण काम, चांडाल के समान व्यवहार तथा वैतण्डिक मनुष्य जंगली जानवरों के वध करने वाले सिंह की भाँति (मनुष्य रूप) पशु के वध को करते ही रहते हैं।३५। बौद्ध साधुओं को देख कर अपने को बहुत बड़ा मानने वाले पराभव को प्राप्त करते हैं अपने में ऐसे निरर्थक वैर करने वाले को बार-बार धिक्कार है।३६। इस प्रकार संसार के जीव सुशीलता, दौर्मनस्य आदि के द्वारा समान जातीय होने के नाते अशान्त चित्त रहते हैं।३७। जिस प्रकार ब्राह्मण मैथुन करने के लिए अनुराग करने वाली

---

१. दयादममधीयानाः ।

शूद्रां प्ररोचते विप्रो रागिणीं मैथुनं प्रति । सा कामदुःखविगमे गर्भं धत्ते समागमे ॥३८
कामकामातुराभ्यस्तु रोचन्ते शूद्रमानवाः । मैथुनं प्रति ब्राह्मण्ये तेऽपि तासां सुखावहाः ॥३९
ये तु जात्यादिभिर्भिन्ना गवाश्वोष्ट्रमतङ्गजाः । ते विजातिषु नो गर्भं कुर्वतेऽपि सुखार्थिनः ॥४०
अनड्वानेव गोरेव कामं पुष्णाति सङ्गमे । घोटकाश्च रतिं सम्यक्कुर्वते वडवासु च ॥४१
पतिं करभमेवाप्य करभी रमते मुदा । गजमेव पतिं लब्ध्वा सुखं तिष्ठति हस्तिनी ॥४२
तिर्यग्जातिः स्त्रिया साकं कुर्वाणाऽपि हि मैथुनम् । न तस्याः कुरुते गर्भं नरो नापि सुखादिकाम् ॥४३
तिरश्चा सह कुर्वाणा मैथुनं मनुजाङ्गना । नाधत्ते तत्कृतं गर्भं न युक्तं मैथुनं तयोः ॥४४
नैवं कश्चिद्विभागोस्ति मैथुने स्त्रीमनुष्ययोः । येन संभाव्यते भेदः प्रस्फुटं द्विजशूद्रयोः ॥४५
वेदपाठच्छलेनायं न क्रियाभिः प्रपद्यते । बहुभिर्जडसङ्घातैरविशिष्टे पदेऽहनि ॥४६
देहे देहिनि चामुष्मिन्नशुचावनवस्थिते । रागद्वेषादिभिर्दोषैरधिकं परिपीडिते ॥४७
कुलालचक्रवद्भ्रान्तमानसे विषयार्णवे । घोरदुःखभयाक्रान्ते समाजेऽनीश्वरात्मनि ॥४८
जन्ममृत्युजराशोकानिष्टयोगाग्निपीडिते । हीनसत्त्वशरीरादौ न विशेषो विभाव्यते ॥४९
तस्मान्मनुष्यभेदोऽयं सङ्केतबलनिर्मितः । ब्राह्मण्यं ब्राह्मणासङ्गादब्राह्मणी चोपसेवते ॥५०

शूद्र स्त्री को चाहता है और वह स्त्री उसके समागम कामपीड़ा समाप्त होने पर गर्भधारण करती है ।३८। उसी प्रकार काम पीडित ब्राह्मणी भी भोग करने के लिए शूद्र को अत्यन्त चाहती है ओर वे उन्हें सुख भी प्रदान करते हैं । इससे शूद्र भी ब्राह्मण के समान ही हैं ।३९। जिस प्रकार गाय, घोड़े, ऊँट, हाथी जिनकी जाति पृथक्-पृथक् है, वे अपने से भिन्न दूसरी जाति वाले को चाहते हुए भी उसके साथ भोग आदि नहीं करते हैं ।४०। क्योंकि सांड़ और गाय ही के संयोग में उनकी रति उन्हें आनन्द प्रदान करती है, घोड़े इसी प्रकार से घोड़ी ही के साथ भोग करते हैं, ऊँटिनी अपने पति ऊँट को प्राप्त करके आनन्द पूर्वक रमण करती हैं एवं हथिनी अपने पति हाथी को पाकर सुखी होती है ।४१-४२। इसलिए जिस प्रकार पशु-पक्षी आदि से भोग कराने पर मनुष्य स्त्री (उनके द्वारा) गर्भ धारण नहीं कर सकती है इसी प्रकार मनुष्य भी किसी पशु आदि से संभोग कर उनमें गर्भाधान नहीं कर सकता है ।४३। यद्यपि यह ठीक है कि मनुष्य स्त्री, पशु, पक्षी द्वारा संभोग करने पर गर्भ धारण नहीं करती है तथापि इन दोनों का आपस में भोग करना भी उचित नहीं है ।४४। इसी प्रकार सभी पुरुषों एवं स्त्रियों में कोई ऐसा भेद नहीं है जिसके द्वारा (ब्राह्मण आदि से पृथक्) शूद्र एवं (ब्राह्मणी से पृथक्) शूद्र की स्त्री पहचानी जा सके ।४५। उसी प्रकार वेदाध्ययन के व्याज से या क्रिया के द्वारा भी जाति विभाग नहीं हो सकता है । क्योंकि अनेक जड़ पदार्थ (पृथिवी जल आदि) के मेल से बनी हुई यह देह तथा अपवित्र अस्थिर और प्रेम, द्वेष आदि दोषों से सदैव दुःखी जीव में (जाति भेद) संभव नहीं हो सकता है । जिस प्रकार विषय रूप समुद्र में कुम्हार के चाक की भाँति मन सदैव झूमा करता है, उसी प्रकार घोर दुःख एवं भय से व्याकुल होने वाले नास्तिक समाज में जन्म-मरण, बुढ़ापा, शोक, दुःख और अग्निदाह से दुःखी होने वाले उन साधारण जीव की शरीर आदि में कोई विशेषता होती भी नहीं है।४६-४९। इसलिए मनुष्यों में जाति भेद की कल्पना के अनुसार ब्राह्मण के साथ समागम न करने

पतिं त्यक्त्वा मुखास्वादलालसैर्मदलालसैः । आसेव्यते विटं गत्वा बन्धकी चेटकैरपि ।।५१
ब्राह्मण्यात्प्रच्यवन्तेऽन्ये महापातकसेविताः । व्यलीककल्पनैवैषा तस्माज्जात्यादिकल्पना ।।५२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
वर्णव्यवस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

वर्णविभागविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हेयोपादेयतत्त्वज्ञास्त्यक्तान्यायपथाश्रमाः । जितेन्द्रियमनोवाचः सदाचारपरायणाः ।।१
नियमाचारवृत्तस्था हितान्वेषणतत्पराः । संसाररक्षणोपायक्रियायुक्तमनोरथाः ।।२
सम्यग्दर्शनसम्पन्नाः समाधिस्था हतक्रुधः । स्वाध्यायभक्तहृदयास्त्यक्तसङ्गा विमत्सराः ।।३
विशोका विमदा शान्ता सर्वप्राणिहितैषिणः । सुखदुःखसमालोका विविक्तस्थानवासिनः ।।४
व्रतोपयुक्तसर्वाङ्गा धार्मिकाः पापभीरवः । निर्ममा निरहङ्कारा दानशूरा दयापराः ।।५
सत्यब्रह्मविदः शान्ता सर्वशास्त्रेषु निष्ठिताः । सर्वलोकहितोपायप्रवृत्तेन स्वयंभुवा ।।६

पर भी (सदाचारिणी) ब्राह्मणी ब्राह्मण कहलाती है पर मुख के स्वाद (चटोरापन) या मस्ती में आकर पति का त्याग कर जार पुरुष से सम्भोग कराने तथा व्यभिचारिणी होने पर नौकर चाकर आदि सभी लोगों से भोग करने पर वह ब्राह्मणत्व से च्युत भी हो जाती है।५०-५१। इसी भाँति अन्य महापातक करने वाले भी ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाते हैं। इसलिए ब्राह्मण-क्षत्रिय की कल्पना निश्चित झूठी कल्पना है।५२
श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्टी कल्प में वर्णव्यवस्था वर्णन नामक
तैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त।४३।

अध्याय ४४

वर्ण विभाग विवेक वर्णन

ब्रह्मा बोले— (कौन वस्तु) त्याज्य और कौन वस्तु ग्राह्य है, इसका भली-भाँति ज्ञान रखने वाले वे ब्राह्मण जो अनीति मार्ग को त्याग इन्द्रियजित् होकर मन एवं वाणी पर अधिकार रखते हैं, सदाचारी हैं नियम और आचार को अपनाकर हितान्वेषी, संसार की रक्षा के लिए उपायों द्वारा कार्य करने में उत्साही, तत्त्वज्ञानी के लिए समाधि में स्थित, क्रोधहीन और स्वाध्याय का प्रेमी आसक्ति रहित मत्सरहीन, शोक और मद शून्य, शांत, सभी जीवों के हितेच्छु सुख-दुःख में समान देखने वाले एकान्तवासी, तन-मन से व्रती एवं धार्मिक, पाप से डरने वाले निर्मोही, निरभिमानी, दानवीर, दयालु, सत्य रूपी ब्रह्म के ज्ञानी और सभी शास्त्रों के जो नैष्ठिक विद्वान् हैं उन्ही मर्यादा रखने वाले को सभी के हित करने में सदैव लगे रहने वाले को स्वयंभू, वागीश्वर देव, नाभि से उत्पन्न, भव को नाश करने वाले ब्रह्मा ने

वागीश्वरेण देवेन नाभेयेन भवच्छिदा । ब्रह्मणा कृतमर्यादास्त एवं ब्राह्मणाः स्मृताः ॥७
महातपोधनैरार्यैः सर्वसत्त्वाभयप्रदैः । सर्वलोकहितार्थाय निपुणं सुप्रतिष्ठितम् ॥८
बृहत्वाद्भगवान्ब्रह्मा नाभेयस्तस्य ये जनाः । भक्त्यासक्ताः प्रपन्नाश्च ब्राह्मणास्ते प्रकीर्तिताः ॥९
क्षत्रियास्तु क्षतत्राणाद्वैश्या वार्ताप्रवेशनात् । ये तु श्रुतेर्द्रुतिं प्राप्ताः शूद्रास्तेनेह कीर्तिताः ॥१०
ये चाचाररताः प्राहुर्ब्राह्मण्यं ब्रह्मवादिनः । ते तु फलं प्रशंसन्ति यत्सदा मनसेप्सितम् ॥११
क्षमा दमो दया दानं सत्यं शौचं धृतिर्घृणा । मार्दवार्जवसन्तोषानहङ्कारतपःशमाः ॥१२
धर्मो ज्ञानमपैशुन्यं ब्रह्मचर्यममूढता । ध्यानमास्तिक्यमद्वेषो वैराग्यं च शमात्मता ॥१३
पापभीरुत्वमस्तेयममात्सर्यमतृष्णता । नैःसङ्ग्यं गुरुशुश्रूषा मनोवाक्काय संयमः ॥१४
य एवम्भूतमाचारमनुष्ठिन्ति मानवाः । ब्राह्मण्यं पुष्कलं तेषां नित्यमेव प्रवर्धते ॥१५
ते स्वमतास्वादलब्धवर्णाचारा महौजसः । सर्वशास्त्राविरोधेन पवित्रीकृतमानसाः ॥१६
सज्जनाभिमताः प्राज्ञाः पुराणागमपण्डिताः । गीतगीतागमाचाराः स्मृतिकाराः पठन्ति च ॥१७
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः । वर्णाश्रमाचारकृतं कर्म सिद्ध्यत्यनुत्तमम् ॥१८
संसिद्धायां तु वार्तायां ततस्तेषां स्वयं प्रभुः । मर्यादां स्थापयामास यथारब्धं परस्परम् ॥१९
ये वै परिगृहीतारस्तेषां सत्त्वबलाधिकाः । इतरेषां क्षतत्राणान्स्थापयामास क्षत्रियान् ॥२०

ब्राह्मण हैं, ऐसा कहा है ।१-७। उसी प्रकार महातपस्वी तथा सभी जीवों को अभय प्रदान करने वाले आर्यों ने भी समस्त लोकों के कल्याण के निमित्त इस मर्यादा को भली भाँति सुदृढ़ एवं निश्चित कर दिया है ।८। इस प्रकार वृहत् होने के नाते व्रह्मा और उस महान् पुरुष की नाभि से उत्पन्न होने के कारण नाभिय कहे जाते हैं उनमें जो लोग भक्त एवं प्रपन्न (शरणागत रक्षक) हैं, वे व्राह्मण कहे गये हैं ।९। इसी भाँति किसी को नष्ट होने से बचाने वाले क्षत्रिय, कृषि एवं व्यापार संबंधी आदि कार्य करने वाले वैश्य और जो वेदाध्ययन से अत्यन्त दूर भागे हैं वे शूद्र कहे गये हैं ।१०। जो सदाचारी व्रह्मज्ञानी को व्राह्मण कहते हैं वे उनके कर्म फलों की जो सदाचारियों के मनोरथ के अनुकूल होते हैं प्रशंसा करते हैं ।११। इसलिए क्षमा, इन्द्रिय दमन, दया, दान, सत्य, पवित्रता, धैर्य, धारणा, मृदुता, सरलता, संतोष, निरभिमान, तप, शम, धर्म, ज्ञान, चुगुली न करने, व्रह्मचर्य, विद्वान्, ध्यान, आस्तिकता, द्वेषहीन, स्वर्ग आदि लोक में विश्वास रखने, वैर न करने, वैराग्य, पाप से डरने, चोरी, मत्सर एवं तृष्णा न करने, संसार से पृथक् रहकर गुरुसेवा करने वाले, मन, वाणी और शरीर का संयम रखने वाले ऐसे सदाचारी मनुष्यों में व्रह्मतेज पूर्ण रूप से सदैव बढ़ता रहता है ।१२-१५। ऐसे ही लोग वर्ण और आचार की प्राप्ति कर महान् तेजस्वी भी हो गये हैं एवं सभी शास्त्रों की पवित्र भावनाओं द्वारा उनके चित्त निर्विरोध शुद्ध हो गये हैं ।१६। सज्जनों की सम्मति से वे ही प्राज्ञ, पुराण एवं वेद के पंडित, गीता के मर्मज्ञ और सम्पत्तियों के रचयिता हैं । ऐसे ही लोगों का कहना है कि चारों युगों के विभाग द्वारा सभी मन्वन्तरों में समय वर्ण और आश्रम के द्वारा किये गये आचार कर्मो की उत्तम सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती रहती है ।१७-१८। इसलिए कर्मसिद्धि के अनन्तर उनमें व्रह्मा ने परस्पर प्रारम्भ की गयी मर्यादा को स्थापित किया ।१९। जो अधिक शक्ति-शाली होने के नाते सभी (जनता) को अपनाने एवं उन्हें नष्ट होने से बचाने का कार्य करेंगे वे क्षत्रिय

उपतिष्ठन्ति ये तान्वै याचन्तो नर्मदाः सदा । सत्यब्रह्म सदाभूतं वदन्तो ब्राह्मणास्तु ते ॥२१
ये चान्येप्यबलास्तेषां वैश्यकर्मणि संस्थिताः । कीलानि नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ॥
वैश्यानेव तु तानाह कीनाशान्वृत्तिमाश्रितान् ॥२२
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये नराः । निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः ॥२३
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परस्परम् । कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥२४
शमस्तपो दमः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥२५
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥२६
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥२७
योगस्तपो दया दानं सत्यं धर्मश्रुतिर्घृणा । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२८
शिखा ज्ञानमयी यस्य पवित्रं च तपोमयम् । ब्राह्मण्यं पुष्कलं तस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥२९
यत्र वा तत्र वा वर्णे उत्तमाधममध्यमाः । निवृत्तः पापकर्मभ्यो ब्राह्मणः स विधीयते ॥३०
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत् । ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत् ॥३१
न सुरां सन्धयेद्यस्तु आपणेषु गृहेषु च । न विक्रीणाति च तथा सच्छूद्रो हि स उच्यते ॥३२
यद्येका स्फुटमेव जातिरपरा कृत्यात्परं भेदिनी । यद्वा व्याहृतिरेकतामधिगता यच्चान्यधर्मं ययौ ॥

कहलायेंगे और जो क्षत्रियों के यहाँ आकर उन्हें प्रसन्न कर याचना करते हैं और सत्य रूपी ब्रह्म की नित्यता का प्रचार करते हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं ।२०-२१। जो लोग निर्बल होते हुए भी वैश्य कर्म करने में संलग्न होकर पृथिवी की गहरी जुताई आदि कृषि एवं व्यापार करते हैं वे वैश्य और शोक ग्रस्त एवं दीन हीन दशा में वर्तमान रहते हुए भी उपरोक्त तीनों वर्णों की जो सेवा करते हैं तथा निस्तेज एवं अल्प शक्ति वाले वे शूद्र कहे जाते हैं ॥२२-२३। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के आपसी कर्म उनके स्वाभाविक गुणों द्वारा पृथक्-पृथक् हैं ।२४। इसलिए शांति, तप, दम, पवित्रता, सहनशीलता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता (स्वर्गादि में विश्वास एवं श्रद्धा) ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म कहे गये हैं ।२५। क्रूरता, तेज, धैर्य, युद्ध में चतुरता एवं युद्ध से न भागना दान और प्रभुत्व ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ।२६। खेती, गोरक्षा और वाणिज्य (व्यापारादि) वैश्य के तथा सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है ।२७। इस प्रकार योग, तप, दया, दान, सत्य, धार्मिक अध्ययन, घृणा, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये ब्राह्मण के लक्षण हैं ।२८। क्योंकि जिसमें ज्ञान रूपी शिखा (चोटी) एवं तप रूपी पवित्रता सन्निहित है उसे स्वयंभू मनु जी ने प्रधान ब्राह्मण बताया है ।२९। तदनुसार जिस किसी वर्ण में उत्तम, मध्यम या अधम कोई भी मनुष्य पाप कर्म न करे वह ब्राह्मण है।३०। क्योंकि अच्छे शीलवाला शूद्र ब्राह्मण से उत्तम बताया गया है और आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी हीन कहा गया है ।३१। इसी भाँति जो अपनी दूकान में या घर में शराब न रखे और न उसका व्यापार ही करे वह सत् (स्पृश्य) शूद्र बताया गया है ।३२। इसीलिए यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि जाति (मानव जाति) एक ही है, किन्तु दूसरी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि) जाति के निर्माण केवल भिन्न-भिन्न कर्मों द्वारा किये गये हैं। अथवा व्यवहार रूप में वह (मानव-जाति) एक ही है केवल धर्मों में भिन्नता है, इसलिए निखिल भाव एवं

एकैकाखिलभावभेदनिधनोत्पत्तिस्थितिव्यापिनी ।
किं नासौ प्रतिपत्तिगोचरपथं यायाद्विभक्त्या नृणाम् ॥३३

श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
वर्णविभागविवेकवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इदं श्रुणु मयाख्यातं तर्कपूर्वमिदं वचः । युष्माकं संशये जाते कृते वै जातिकर्मणोः ॥१
पुनर्वच्मि निबोधध्वं समासान्न तु विस्तरात् । संसिद्धिं यान्ति मनुजा जातिकर्मसमुच्चयात् ॥२
सिद्धिं गच्छेद्यथा कार्यं दैवकर्मसमुच्चयात् । एवं संसिद्धिमायाति पुरुषो जातिकर्मणोः ॥३
इत्येवमुक्तवान्पूर्वं शिष्याणां बोधने पुरा । योगीश्वरी महातेजाः समासान्न तु विस्तरात् ॥४

सुमन्तुरुवाच

इति पृष्टः पुरा ब्रह्मा ऋषीन्प्रोवाच भारत । सवितर्कमिदं वाक्यं विप्रर्षे जातिकर्मणोः ॥५

भेद मरण, उत्पत्ति तथा स्थिति में व्याप्त रहने वाली यह मानवी जाति इन्हें दिखाई नहीं दे रही है जो मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति द्वारा विभाजन करने के लिए तैयार रहते हैं ।३३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में वर्ण विभाग विवेक वर्णन नामक
चौवालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४४।

अध्याय ४५

कार्तिकेय वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मेरी उस तर्क पूर्ण बात को सुनो जो तुम लोगों के जाति कर्म विषयक संदेह को दूर करने वाली है ।१। मैं विस्तार से नहीं प्रत्युत् थोड़े ही में विवेचन पूर्वक फिर कह रहा हूँ । अतः तुम लोग सावधान होकर सुनो ! मनुष्य को जाति और कर्म इन दोनों के योग से संसिद्धि (सफलता) प्राप्त होती है ।२। जिस प्रकार दैव बल एवं कर्म योग से कार्य की सफलता मिलती है उसी प्रकार जाति और कर्म के (सहयोग) द्वारा पुरुष सफल होता है ।३। शिष्यों की जानकारी के लिए महातेजस्वी योगीश्वर ने पहले ही थोड़े में विवेचन पूर्ण यही (बातें) कहा था ।४

सुमन्तु ने कहा—हे भारत ! ऋषियों के पूछने पर ब्रह्मा ने उनसे यही कहा था कि हे विप्रर्षि ! जाति और कर्म के संबंध में यह बात तर्कपूर्ण है ।५। हे महाबाहो ! इसलिए तुम भी कार्तिकेय के विषय में

तस्मात्त्वया महाबाहो न कार्यो विस्मयो नृप । कार्तिकेयं प्रति सदा देवानां दुर्विदा गतिः ।।६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे कार्तिकेयवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।४५।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मपर्ववर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

देयं भाद्रपदे मासि षष्ठी च भरतर्षभ । सुपुण्येयं पापहरा शिवा शान्ता गुहप्रिया ।।१
स्नानदानादिकं सर्वं यस्यामक्षय्यमुच्यते । येऽस्यां पश्यन्ति गाङ्गेयं दक्षिणापथमाश्रितम् ।।२
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः । तस्मादस्यां सदा पश्येत्कार्त्तिकेयं नृपोत्तम ।।३
पूजयन्ति गुहं येऽस्यां नराभक्तिसमन्विताः । प्राप्येह ते सुखान्कामान्गच्छन्तीन्द्रसलोकताम् ।।४
यस्तु कारयते वेश्म सुदृढं सुप्रतिष्ठितम् । दार्वं शैलमयं चापि भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ।।
गाङ्गेयं यानमारुह्य गच्छेद्गाङ्गेयसद्म वै ।।५
सम्मार्जनादि यः कर्म कुर्याद्गुहगृहे नरः । ध्वजस्यारोपणं राजन्स गच्छेद्रुद्रसद्म वै ।।६
चन्दनागरुकर्पूरैर्यश्च पूजयते गुहम् । गजाश्वरथयानाढ्यं सैनापत्यमवाप्नुते ।।७

संदेह न करो क्योंकि देवताओं की गति दुर्ज्ञेय होती है ।६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय वर्णन नामक पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४५।

अध्याय ४६

ब्रह्मपर्व वर्णन

सुमंतु ने कहा—हे भरतवर्ष ! भादों मास की षष्ठी तिथि पुण्य प्रदान करने वाली पापनाशिनी कल्याण एवं शांति स्वरूप और कार्तिकेय के लिए अत्यन्त प्रिय बतायी गयी है ।१। इसलिए इसमें स्नान-दान एवं किये हुए सभी कुछ कर्म अक्षय होते हैं जो लोग इस तिथि में दक्षिण देशों में ख्याति प्राप्त कार्तिकेय जी का दर्शन करते हैं उनके ब्रह्म हत्या आदि सभी पाप निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं। हे नृपोत्तम ! इस तिथि में सदैव कार्तिकेय का दर्शन करना चाहिए ।२-३। इस प्रकार जो मनुष्य इस तिथि में श्रद्धा भक्ति पूर्वक कार्तिकेय की पूजा करते हैं वे अपने अभिलषित मनोरथ सफल करते हुए इन्द्र लोक की प्राप्ति करते हैं ।४। तथा जो लोग लकड़ी या पत्थर से कार्तिकेय जी के मन्दिर का सुन्दर एवं दृढ़ निर्माण करते हैं वे कार्तिकेय की सवारी पर बैठकर उनके लोक की यात्रा करते हैं ।५। और जो कार्तिकेय के मन्दिर की सफाई (झाड़ू वगैरह) करते हैं और उसे ध्वजा से भी सुशोभित करते है वे रुद्र लोक की प्राप्ति करते हैं ।६। इसी प्रकार जो चन्दन, गुग्गुल और कपूर से कार्तिकेय का पूजन करते है वे हाथी, घोड़े, रथ एवं

राज्ञां पूज्यः सदा प्रोक्तः कार्तिकेयो महीपते। कार्त्तिकेयमृते नान्यं राज्ञां पूज्यं प्रचक्षते ।।८
सङ्ग्रामं गच्छमानो यः पूजयेत्कृत्तिकासुतम् । स शत्रुं जयते वीर यथेन्द्रो दानवान्रणे ।।९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेच्छङ्करात्मजम् । पूजमानस्तु तं भक्त्या चम्पकैर्विविधैर्नृप ।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तदा गच्छेच्छिवालयम् ।।१०
तैलं षष्ठ्यां न भुञ्जीत न दिवा कुरुनन्दन । यस्तु षष्ठ्यां नरो नक्तं कुर्यादि भरतर्षभ ।।
सर्वपापैः स निर्मुक्तो गाङ्गेयस्य सदो व्रजेत् ।।११
त्रिकृत्वो दक्षिणामाशां गत्वा यः श्रद्धयान्वितः । पूजयेद्देवदेवेशं स गच्छेच्छान्तिमन्दिरम् ।।१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां षष्ठीकल्पे कार्त्तिकेयमाहात्मयवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।४६। ।इति षष्ठी कल्पः समाप्तः।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शाकसप्तमीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सप्तम्यां सोपवासस्तु नक्ताहारोऽपि वा भवेत् । सप्तम्यां देवदेवेन लब्धं स्वं रूपमादरात् ।।१

भाँति-भाँति की सवारी प्राप्त करते हुए सेना नायक होते हैं ।७। हे महीपते ! इसलिए कार्तिकेय का पूजन राजाओं को सदैव करना चाहिए क्योंकि कार्तिकेय से पृथक् अन्य कोई राजाओं का पूज्य है भी नहीं।८-९। इस प्रकार कार्तिकेय की पूजा करके जो मनुष्य युद्ध-स्थल में जाता है वह युद्ध में दानवों पर इन्द्र की भाँति सदैव शत्रु पर विजय प्राप्त करता है। अतः प्रयत्न पूर्वक शंकर सुत कार्तिकेय की पूजा अवश्य करनी चाहिये। हे नृप ! चम्पा आदि अनेक प्रकार के फूलों से उनका पूजन करने पर वह मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है ।१०। हे भरतर्षभ ! हे कुरुनंदन ! इसी प्रकार षष्ठी तिथि में किसी भी समय तैल का भोजन न करना चाहिए। क्योंकि जो मनुष्य षष्ठी में नक्तव्रत (रात में भोजन) रहता है वह सभी पापों से मुक्त होकर कार्तिकेय के लोक की प्राप्ति करता है ।११। और जो श्रद्धापूर्वक तीन बार दक्षिण दिशा में जाकर देवाधिदेव कार्तिकेय की पूजा करता है उसे शांति मंदिर (शिवलोक) की प्राप्ति होती है ।१२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय माहात्म्य वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४६।

अध्याय ४७

शाकसप्तमी व्रत-वर्णन

सुमन्तु ने कहा—सप्तमी (तिथि) में उपवास या नक्तव्रत अवश्य करना चाहिये क्योंकि इस तिथि में देवाधिदेव सूर्य ने अपने उत्तम रूप को प्राप्त किया है ।१। वे पहले अण्डे के साथ उत्पन्न हुए थे और

अण्डेन सह जातो वै अण्डस्थो बुद्धिमाप्तवान् । अण्डस्थस्यैव दक्षेण भार्या वत्ता स्वकां सुताम् ।।२
नाम्ना रूपेति रूपेण नान्या नारी तथा[1] भवेत् । अण्डस्थ एव सुचिरं स्थितो मार्तण्ड इत्यतः ।।३
दक्षाज्ञया विश्वकर्मा वपुरस्य प्रकाशयन् । प्रकाशतस्ततो नाम तस्य जातं नराधिप ।।
अण्डस्थस्यैव सञ्जातो यमुना यम एव च ।।४
दाक्षायणी तस्य भार्या वैराग्यात्तनुमध्यमा । चिन्तयामास सा देवी दुःखान्निर्वेदमागता ।।५
अहो तेजोमयं रूपं कान्तस्य कान्तिमत् । न चास्य किञ्चित्पश्यामि अङ्गं तेजोविमोहितम् ।।६
शुभं कनकतुल्यं मे रूपं कान्तं सुकान्तिमत् । साम्प्रतं श्यामतां यातं दग्धमेतस्य तेजसा ।।७
तस्मात्तप्स्ये तपश्चाहं गत्वा वै उत्तरान्कुरून् । स्वां छायामत्र निक्षिप्य भयाच्छापस्य रूपिणी ।।८
निक्षिप्योवाच तां बालां मा चास्मै वै वदिष्यसि । एवं सा निश्चयं कृत्वा गता वै उत्तरान्कुरून् ।।९
स्वरूपं तत्र निक्षिप्य वडवारूपधारिणी । चचार सा मृगैः सार्धं बहून्वर्षगणान्नृप ।।१०
असावपि च मार्तण्डश्छायां भार्यामिमन्यत् । शनिं च तपतीं चैव द्वे अपत्ये च जज्ञिवान् ।।११
अथ च्छायात्मापत्यानि स्नेहेन परिपालयेत् । नातिस्नेहेन चापश्यद्यमुनां यममेव च ।।१२

अण्डस्थ रह कर ही उन्होंने उत्तम ज्ञान भी प्राप्त किया था तथा इसी अवस्था में इन्हें दक्ष प्रजापति ने अपनी रूपा नाम की पुत्री जिसके समान सुन्दरी और कोई अन्य स्त्री नहीं थी, पत्नी रूप में प्रदान किया था। एवं अधिक समय तक अण्डे में रहने के नाते इनका नाम मार्तण्ड भी हुआ।२-३। हे नराधिप ! दक्ष की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने इनके शरीर को प्रकाशित किया और प्रकाशित होने के नाते ही इनका (सूर्य) ऐसा नाम पड़ा। अण्डस्थ ही रहकर इन्होंने अपनी स्त्री से यमुना और यम नाम की दो सन्तानें पैदा की हैं।४। एक बार तनुमध्यमा (कृश मध्य भाग वाली) इनकी दाक्षायणी स्त्री को दुःख के कारण विराग उत्पन्न हो गया था वह दुःख से घबड़ाकर सोचने लगी कि कितने दुःख की बात है कि मैं अपने पति देव के तेजोमय एवं मनोहर उस रूप को जो इनके अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण तेज में विलीन हो गया है कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ।५-६। मांगलिक एवं सुवर्ण की भाँति सौन्दर्य पूर्ण और मनोहर मेरा यह रूप इस समय इनके तेज से जलकर श्यामल वर्ण हो गया है।७। इसलिए शाप के भय के नाते (कहा यों ही जाना उचित नहीं है) अपनी छाया को इनकी सेवा में रखकर मैं उत्तर कुरुदेश में जाकर तप करूँगी।८। इस प्रकार निश्चय कर उसने अपनी छाया उन (अपने पति सूर्य) कीसेवा में रखकर उससे कहा—इस (रहस्य) को इनसे न कहना इसके उपरांत अपने स्वरूप को वहीं रखकर (उत्तर कुरुदेश में जाकर) घोड़ी का रूप धारण कर वहाँ के मृगों के साथ विचरण करने लगी। हे नृप ! इस प्रकार उन मृगों के साथ विचरण करते हुए बहुत वर्ष बीत गये।९-१०

इधर सूर्य ने भी (इस रहस्य को न जानते हुए उस छाया को ही अपनी स्त्री समझ कर उससे शनि और तपती नामकी दो सन्तानें उत्पन्न किया।११। इसके पश्चात् छाया स्नेह पूर्वक अपनी सन्तान का पालन करती थी किन्तु यमुना और यम को उतने स्नेह से नहीं देखती थी। (कुछ समय के) अनन्तर

---

१. तथाविधा।

अथ ताभ्यां विवादोऽभूदादित्यदुहित्रोर्द्वयोः । ते उभे विवदन्त्यौ तु परस्परमसम्मतम् ॥
यमुना तपती चोभे निम्नगे सम्बभूवतुः ॥१३
यमोऽपि यमुनाभ्राता छायया ताडितो भृशम् । पादमुद्यम्य तस्या वै तस्थौ सम्मुख एव सः ॥१४
छाया शशाप तं रोषाद्यस्मात्पादोद्यतो मम। तस्मात्ते कर्म बीभत्सं प्राणिनां प्राणहिंसनम् ॥१५
भविष्यति चिरं मूढ आचन्द्रार्कं न संशयः । पादं च यदि भूमौ त्वमिमं संस्थापयिष्यसि ॥१६
कृमयो भक्षयिष्यन्ति मच्छापकलुषीकृतम् ॥१७
तेषां विवदमानानां मार्तण्डोऽस्यागमत्ततः । यमोऽप्याह महात्मानं मार्तण्डं लोकपावनम् ॥१८
तात नित्यमियं चापि क्रूरभावेन पश्यति । न चास्याः सुसमा दृष्टिरस्मास्वस्तीति लक्ष्यते ॥१९
प्रोवाचाथ स तां छायां मार्तण्डो भृशकोपनः । [1]समे अपत्ये किं मूढे समत्वं नानुपश्यसि ॥२०
यमः प्रोवाच पितरं नेयं माता पितर्मम । मातुश्छाया त्वियं पापा शप्तोऽहमनया पितः ॥
यमुना तपती वृत्तं तत्सर्वं विन्यवेदयत् ॥२१
अथ प्रोवाच मार्तण्डो मा[2] ते पादो महीतले । मांसं रुधिरमादाय कृमयो यान्तु भूतलम् ॥२२
यमुनायाश्च यत्तोयं गङ्गातुल्यं भविष्यति । नर्मदायास्तपत्याश्च समं पुण्येन वै द्विज ॥२३

यमुना और तपती नाम की दो लड़कियों में कलह (झगड़ा) आरम्भ हुआ जिसके परिणाम स्वरूप झगड़ती हुई उन दोनों ने आपस में एक दूसरे से विरुद्ध होकर नदी का रूप धारण किया ।१२-१३। पश्चात् यमुना का भाई यम भी छाया द्वारा अत्यन्त पीटे जाने पर उसके सामने जाकर उसे अपने पैर उठाकर मारने के लिए तैयार हुआ । इस पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर छाया ने उसे शाप किया कि मुझे मारने के लिए तूने अपना पैर उठाया है इसलिए तुम्हारा कर्म वीभत्स प्राणियों की जीव हिंसा ही होगा । हे मूढ़! (अल्पकाल के लिए नहीं) प्रत्युत चन्द्र और सूर्य की जब तक स्थित हैं तब तक के लिए मेरा शाप समझना और उठे हुए इस अपने पैर को जो मेरे शाप से कलुषित हो गया है तू यदि भूमि पर रखेगा तो कीड़े इसे खा जायेंगे ।१४-१७

इस प्रकार उन दोनों के झगड़ते हुए मार्तंड भी वहाँ आ गये । यम ने महात्मा मार्तण्ड से जो लोक पवित्र करते हैं कहना आरम्भ किया ।१८। कि हे पिता ! यह मुझे प्रतिदिन क्रूर भाव से देखती है तथा हमें कभी भी अपनी सन्तान की भाँति के समान दृष्टि से नहीं देखती है यह मैं भली भाँति जानता हूँ ।१९। तदुपरांत अत्यन्त क्रुद्ध होकर मार्तंड ने भी उस छाया से कहा मूर्ख ! सभी सन्तानों पर समान होने के नाते समान दृष्टि रखनी चाहिए। तू सभी को समान दृष्टि से क्यों नहीं देखती है।२०। यम ने कहा—हे पिता ! यह मेरी माँ नहीं है प्रत्युत यह पापिनी मेरी माँ की छाया है, इसलिए इसने मुझे शाप दिया है तदुपरांत यमुना और तपती का पूर्ण समाचार भी कह कर उन्हें सुना दिया ।२१। इसके पश्चात् मार्तण्ड ने यम से कहा कि तुम्हारा पैर पृथ्वी पर न जाय प्रत्युत रक्त और मांस लेकर कीड़े ही भूतल पर चले जायें ।२२। यमुना का जल गंगा जल के समान होगा, तपती का जल नर्मदा के समान पवित्र होगा ।२३। इस प्रकार

---

१. समेत्योवाच सच्छायां समत्वं नानुपश्यसि । २. मुंच पादं महीतले ।

विन्ध्यस्य दक्षिणेनेह तपती प्रवहिष्यति । तत्सायुज्यतया सार्धं गङ्गा यास्यति शोभना ॥२४
गङ्गामासाद्य यमुना गङ्गा सैव भविष्यति । सौरसौम्ये उभे पुण्ये सर्वपापप्रणाशने ॥२५
[1]सौरी च वैष्णवी चोभे महापापभयापहे । त्वं पुत्र लोकपालत्वं ब्रह्मणोऽज्ञां सभाजयन् ॥
अद्यप्रभृति च्छायेयं स्वदेहस्था भविष्यति ॥२६
एवं संस्थाप्य स्वां भार्यामपत्यानि तथैव च । आजगाम सकाशं वै दक्षस्याह च कारणम्[2] ॥
दक्षो विज्ञाय तत्सर्वं मार्तण्डमिदमाह वै ॥२७
रूपं न पश्यती तुभ्यं सा भार्या उत्तरान्गता ॥२८
रूपं ते प्रकटिष्यामि यदि शक्ष्यसि वेदनाम् । असौ प्रोवाच शक्ष्येऽहं प्रकाशी कुरु मे वपुः ॥२९
अथ सस्मार तक्षाणं स्मृत एवाजगाम सः । प्रोवाच दक्षस्तक्षाणं मार्तण्ड वै प्रकाशय ॥३०
तक्षा प्रोवाच मार्तण्डं वेदना विसहिष्यसे । विसहिष्येथ प्रोवाच तक्षाणं दक्षचोदितः ॥३१
अथ तक्षा प्रकाशं वै तस्य रूपं विभावसौ । मुखादारभ्य पादान्तं ततक्षकरणैः स्वकैः ॥
किरणैस्तुद्यमानेषु तस्याङ्गेषु पुनः पुनः । क्षणेक्षणे मूर्छयति मार्तण्डो वेदनातुरः ॥३२
तस्य शापभयात्तक्षा पादौ गुल्फादियावतः । चकाराथो निराकारा अङ्गुल्यो न प्रकाशयत् ॥३३

विंध्य पर्वत के दक्षिण तपती का प्रवाह होगा और उससे मिली हुई गंगा प्रवाहित होगी ।२४। गंगा का संगम प्राप्त कर यमुना गंगा के रूप में हो जायगी तथा ये दोनों सौर-सौम्य पुण्य रूप एवं सभी पापों का नाश करने वाली होंगी ।२५। इस प्रकार सौरी (यमुना) और वैष्णवी (गंगा) दोनों ही महान् पापों का नाश करेंगी । हे पुत्र ! ब्रह्मा की आज्ञा से तू लोकपाल हो जाओगे और छाया की स्थिति आज से अपनी देह में ही रहेगी ।२६

इस प्रकार (सूर्य ने) अपनी (छाया नाम की) स्त्री एवं सन्तानों की व्यवस्था करके दक्ष के यहाँ जाकर उन्हें समस्त समाचार सुनाया, दक्ष ने भी सभी बातें सुनकर मार्तण्ड से कहा कि—(अत्यन्त तेज के कारण) तुम्हारे रूप का स्पष्ट दर्शन न करके ही वह तुम्हारी स्त्री उत्तर कुरुदेश में चली गयी है ।२७-२८। इसलिए यदि दुःख को सहन कर सको तो मैं तुम्हारे रूप को (इस प्रचण्ड तेज से पृथक्) प्रकाशित करता हूँ इसे सुनकर सूर्य ने वैसा ही करने के लिए अपनी सम्मति प्रकट की ।२९। तदुपरान्त विश्वकर्मा का स्मरण किया वे आये । दक्ष ने उनसे कहा । सूर्य के रूप को स्पष्ट प्रकाशित करो ! ।३०। विश्वकर्मा ने सूर्य से कहा क्या आप इस भाँति के दुःख का सहन करना स्वीकार करेंगे । दक्ष ने कहा—हाँ इसे सहन करने के लिए ये पहले से ही तैयार हैं ।३१

पश्चात् विश्वकर्मा ने अपने हथियारों से सूर्य के मुख से लेकर पैर तक के समस्त शरीर को (पीतल आदि के बर्तनों की भाँति) खराद किया । किन्तु अंगों के खरादते समय वेदना से व्याकुल होकर सूर्य क्षण-भर पर मूर्च्छित हो जाते थे ।३२। उनके शाप के भय से विश्वकर्मा ने भी उनके पैर से एड़ी तक को खराद कर उनकी अंगुलियाँ खरादना चाहा कि सूर्य ने उससे असह्य वेदना के कारण घबड़ा कर

---

१. गौरी च । २. श्रावणम्

पर्याप्तं तक्षकर्मेदं वेदना मम बाधते । तक्षा प्रोवाच मार्तण्डं वेदनां जहि गोपते ।।३४
करवीरस्य पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च । करादारभ्य गात्राणि विलिम्पे देहजानि ते ।।३५
तत्तत्कृतं तथा तेन स रुजं त्यक्तवान्रविः । अतश्चेमानि चेष्टानि मार्तण्डस्येह भूपते ।।३६
करवीरस्य पुष्पाणि तथा वै रक्तचन्दनम् । इदमाह पुरा देवो ह्यनूरोरग्रतो नृप ।।३७
करवीरस्य पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव हि । इतिहासपुराणाभ्यां सुवर्णगुग्गुलं तथा ।।३८
यः प्रयच्छति मे भक्त्या स मे प्राणान्प्रयच्छति । तस्मान्न देयमन्यन्मे भक्तियुक्तेन जानता ।।३९
मार्तण्डस्याण्डजं तेजो गृहीत्वा किल भारत । चकार वज्रमजरं[1] शत्रुलेखादिनाशनम् ।।४०
मार्तण्डः परितुष्टोऽभूल्लब्ध्वा रूपं गतव्यथः । जगाम स कुरून्वेगात्स्वभार्यादर्शनोत्सुकः ।।४१
मृगमध्यगतां दृष्ट्वा वडवारूपधारिणीम् । अश्वरूपं ततः कृत्वा स्वभार्यामभिरुह्य सः ।।
अवासृजत्स्वकं तेजो वेगेनारुह्य सोऽश्ववत् ।।४२
परपुरुषाशङ्कया सा स्थिता देवस्य संमुखी । तेजोनासापुटाभ्यां तु युगपत्साक्षिपत्पुनः ।।४३
तत्र जातौ देवभिषजौ नासत्यावश्विनाविति । रेतसोऽन्ते तुरेवन्तो विरोचनसुतो महान् ।।४४
तपती शनिश्च सावर्णिश्छायापत्यानि वै विदुः । यमुना यमश्च पूर्वोक्तौ संज्ञा[२] याश्च तथात्मजौ ।।४५

विश्वकर्मा से कहा—बस यह अब बहुत हो चुका इसे समाप्त करो क्योंकि मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है ।३३-३४। विश्वकर्मा ने कहा—घबड़ायें नहीं। रक्तचन्दन (देवी चन्दन) और कनेर के फूल इन दोनों का लेप तुम्हारे शरीर में किये देता हूँ, इससे अभी दुःख का शमन हो जायेगा। विश्वकर्मा के वैसा करने पर सूर्य का समस्त दुःख नष्ट हो गया। हे भूपते ! इसलिए ये वस्तुएँ सूर्य को अत्यन्त प्रिय हैं।३५-३६

हे नृप ! पहले समय में भी सूर्य ने अरुण के सामने इन्ही वस्तुओं के विषय में कहा था ।३७। कनेर का फूल, रक्तचन्दन, इतिहास एवं पुराण प्रसिद्ध सुपर्ण (नाग केशर आदि) और गुगुल इन्हें भक्तिपूर्वक जो मुझे अर्पित करते हैं वे मुझे प्राणदान देते हैं इसलिए ऐसा जानते हुए उन्हें अन्य कोई दूसरी वस्तु न देनी चाहिए, क्योंकि मार्तण्ड के शरीर के खरादते समय उनके निकले हुए तेज का अत्यन्त दृढ़वज्र बनाया गया था, जो शत्रु लेखा आदि का नाश करता है ।३८-४०

उपरोक्त मार्तण्ड स्वस्थ होकर अपने सुन्दर रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी समय अपनी पत्नी को देखने की इच्छा से उत्तर कुरुदेश की ओर शीघ्रता से प्रस्थान भी किया । मृगों के बीच में घोड़ी का रूप धारण कर विचरण करती हुई अपनी स्त्री को देख कर के सूर्य ने भी घोड़े का रूप धारण कर उसमें अपना तेज (वीर्य) निक्षेप किया ।४१-४२। उनके सामने स्थित उनकी पत्नी ने उन्हें पर पुरुष की आशंका करके उनके तेज (वीर्य) को अपनी नाक के दोनों छिद्रों से एक साथ ही निकाल दिया ।४३। जिससे अश्विनी कुमार नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । जो देवों के वैद्य हुए हैं तदुपरांत महातेजस्वी श्वेत नामक पुत्र का जन्म हुआ ।४४। इस भाँति तपती, शनि और सावर्णि छाया की एवं पहले कहे हुए यमुना और यम संज्ञा की सन्तानें हुईं ।४५

---

१. चक्रमजरम् । ३. सवर्णायास्तथात्मजौ ।

भार्या लब्धा वपुर्दिव्यं तथा पुत्राश्च भारत । सप्तम्यां देवदेवस्य सर्वमेवमिदं यतः ॥
अनेन कारणेनेष्टा सदा देवस्य सप्तमी ॥४६
सप्तम्यां सोपवासस्तु रात्रौ भुञ्जीत यो नरः । कृत्वोपवासं षष्ठ्यां तु पञ्चम्यामेककालभुक् ॥४७
दत्त्वा सुसंस्कृतं शाकं भक्ष्यभोज्यैः समन्वितम् । देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च रात्रौ भुञ्जीत वाग्यतः ॥४८
यावज्जीवं नरः कश्चिद्व्रतमेतच्चमेतच्चरेदिति । तस्य श्रीर्विजयश्चैव त्रिवर्गश्चापि वर्धते ॥४९
मृतश्च स्वर्गमायाति[1] विमानवरमास्थितः । सूर्यलोके स रमते मन्वन्तरगणान्बहून् ॥
इह चागत्य कालान्ते नृपः शान्ति समन्वितः ॥५०
पुत्रपौत्रैः परिवृतो दाता स्यान्नृपतिश्चिरम् । भुनक्ति हि धरां राजन्विग्रहैश्चाजितः परैः ॥५१
ये नरा राजशार्दूल शाकाहारेण सप्तमीम् । उपोष्य लब्धं तत्तीर्थं पित्र्यं वै राजसंज्ञिकम् ॥५२
कुरुणा तव पूर्वेण शाकाहारेण सप्तमीम् । धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं कृतं तस्य विवस्वता ॥५३
सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया पञ्चमी नृप । कामदास्तिथयो ह्येता इहैव नरयोषिताम् ॥५४
सप्तमी माघमासे तु नवम्याश्वयुजे मता । षष्ठी भाद्रपदे धन्या वैशाखे तु तृतीयिका ॥५५
पुण्या भाद्रपदे प्रोक्तापञ्चमी नागपञ्चमी । इत्येतास्तेषु मासेषु विशेषास्तिथयः स्मृताः ॥५६
शाकं सुसंस्कृतं कृत्वा यश्च भक्त्या समन्वितः । दत्त्वा विप्रे यथाशक्त्या पश्चाद्भुङ्क्ते निशि व्रती ॥५७

हे भारत ! सूर्य को सप्तमी तिथि में ही स्त्री पुत्र और सुन्दर शरीर की प्राप्ति हुई है, इसी लिए सूर्य को सप्तमी अत्यन्त प्रिय है ।४६। इस प्रकार जो पुरुष पंचमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में उपवास एवं सप्तमी की रात में साग एवं उत्तम भक्ष्य पदार्थ सूर्य और ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए स्वयं भी मौन होकर भोजन करता है एवं जीवन पर्यंत इस व्रत को इसी भाँति करता रहता है उसकी भी विजय होती है एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) नित्य उन्नति प्राप्त करते है ।४७-४९। और मरण के पश्चात् सुन्दर विमान पर बैठ कर स्वर्ग तथा सूर्य लोक में अनेक मन्वन्तरों की समयावधि तक रमण करता है और कालान्तर में यहाँ आने पर शांत स्वभाव वाला राजा होता है ।५०। ऐसे व्यक्ति पुत्र पौत्र से युक्त होकर विविध प्रकार का दान करते हुएं अधिक काल तक पृथिवी का उपयोग करते हैं और शत्रुओं द्वारा उनकी पराजय कभी नहीं होती ।५१। हे राजशार्दूल ! जो लोग इस प्रकार रह कर सप्तमी में केवल साग का भोजन करते हैं उन्हें अपना पैतृक राज्य एवं पुष्कर तीर्थ प्राप्त होता है ।५२। तुम्हारे पूर्वज कुरु ने भी इस सप्तमी में केवल शाकाहार किया था इसीलिए भगवान् सूर्य ने उनके कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बना दिया ।५३

हे नृप ! इसी प्रकार सप्तमी, नवमी, षष्ठी तृतीया और पंचमी तिथियाँ स्त्रियों और पुरुषों के मनोरथ को सफल करने वाली हैं ।५४। माघ मास की सप्तमी, आश्विन मास की नवमी, भादों की षष्ठी, वैशाख की तृतीया और भादों की पंचमी जिसे नागपंचमी कहते हैं, ये तिथियाँ इन मासों में पुण्य स्वरूपा एवं विशेषता प्रदान करने वाली हैं ।५५-५६

साग को सुन्दर ढंग से बनाकर व्रती, होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को भोजन करावे। रात में स्वयं भी

---

१. आप्नोति ।

कार्तिके शुक्लपक्षस्य ग्राह्येयं कुरुनन्दन । चतुर्भिर्वापि मासैस्तु पारणं प्रथमं स्मृतम् ॥५८
अगस्त्यकुसुमैश्चात्र पूजा कार्या विभावसोः । विलेपनं कुङ्कुमं तु धूपश्चैवाप राजितैः ॥५९
स्नानं च पञ्चगव्येन तमेव प्राशयेत्ततः । नैवेद्यं पायसं चात्र देवदेवस्य कीर्तितम् ॥६०
तदेव देयं विप्राणां शाकं भक्ष्यमथात्मना । शुभशाकसमायुक्तं भक्ष्यपेयसमन्वितम्[1] ॥६१
द्वितीये पारणे राजञ्शुभगन्धानि यानि वै । पुष्पाणि तानि देवस्य तथा श्वेतं च चन्दनम् ॥६२
अगुरुश्चापि धूपोऽत्र नैवेद्यं गुडपूपकाः । स्नानं कुशोदकेनात्र प्राशनं गोमयस्य तु ॥६३
तृतीये करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् । धूपानां गुग्गुलश्चात्र प्रियो देवस्य सर्वदा ॥६४
शाल्योदनं तु नैवेद्यं दधिमिश्रं महामते । तमेव ब्राह्मणानां च भक्ष्यलेह्यसमन्वितम् ॥
कालशाकेन च विभो युक्तं दद्याद्विचक्षणः ॥६५
गौरसर्षपकल्केन स्नानं चात्र विदुर्बुधाः । तस्यैव प्राशनं धन्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥६६
तृतीये पारणस्यान्ते महद्ब्राह्मणभोजनम् । श्रवणं च पुराणस्य वाचनं चापि शस्यते ॥६७
देवस्य पुरतस्तात ब्राह्मणानां तथाग्रतः । ब्राह्मणाद्वाचकाच्छ्राव्यं नान्यवर्णसमुद्भवात् ॥
अथ तान्ब्रह्मणान्सर्वान्भक्त्या शक्त्या च पूजयेत् ॥६८
वाचकस्यामले राजन्वाससी सन्निवेदयेत् । वाचके पूजिते देवः सदा तुष्यति भास्करः ॥६९

भोजन करे।५७। यह व्रत कार्तिक शुक्ल पक्ष से आरम्भ करना चाहिए। हे कुरुनंदन ! इसी प्रकार चार मास का व्रत रहकर अन्त में पारण करे तो वह प्रथम पारण कहा जाता है।५८। इसमें अगस्त्य के फूल अपराजिता के फूल से सूर्य की पूजा करते हुए कुंकुम का लेपन एवं धूप प्रदान भी करना चाहिए।५९। इसी प्रकार पंचगव्य से सूर्य को स्नान कराकर नैवेद्य एवं शरीर का भोजन अर्पित करे और यही उत्तम साग के साथ भक्ष्य-पेय ब्राह्मण को भी भोजन कराये।६०-६१। हे राजन् ! दूसरे पारण में सुगन्धित पुष्प और श्वेत चन्दन, गुग्गुल का धूप, नैवेद्य गुड़ के बने हुए मालपूआ इन वस्तुओं से पूजन एवं गोमय और कुशोदक से स्नान कराकर चरणामृत के रूप में उसको ग्रहण करना चाहिए।६२-६३। तीसरे पारण में कनेर का फूल, रक्त चन्दन और गुग्गुल का धूप अर्पित करना चाहिए क्योंकि ये वस्तुऐं (सूर्य) देव को अत्यन्त प्रिय हैं।६४। इसी प्रकार शाली, चावल का भात, दही नैवेद्य-मिश्रित देकर भक्ष्य लेह्य समेत उसे तथा सामयिक शाग भी ब्राह्मण को अर्पित करे।६५। इसमें व्रत-विधान सफेद सरसों के तेल से मिश्रित स्नान कराना विद्वानों ने बताया है और उसी का भोजन भी करे क्योंकि यह प्रशस्त एवं सभी पापों का नाशक है।६६। तीसरे पारण के अनन्तर वाले पारण में केवल अनेक ब्राह्मणों के भोजन और पुराण का सुनना या पढ़ना बताया गया है।६७। हे तात ! देव या ब्राह्मण के सामने वाचक (वक्ता) ब्राह्मण ही होना चाहिए। अन्य उससे भी नहीं। उसी से भक्ष्य करें। इसलिए भक्ति पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार उस वाचक की पूजा करनी चाहिए।६८। कथा वाचने वाले (ब्राह्मण) को स्वच्छ धवल दो वस्त्र प्रदान करना चाहिए, इसलिए कि वाचक की पूजा करने से सूर्य देव सदा प्रसन्न रहते हैं।६९। हे कुरुनन्दन ! इस व्रत में

---

१. परभक्ष्यसमन्वितम् ।

करवीरं यथेष्टं तु तथा रक्तं च चन्दनम् । यथेष्टं गुग्गुलं तस्य यथेष्टं पायसं सदा ।।७०
यथेष्टा मोदकास्तस्य यथा वै ताम्रभाजनम् । यथेष्टं च घृतं तस्य यथेष्टो वाचकः सदा ।।
पुराणं च यथेष्टं वै सवितुः कुरुनन्दन ।।७१
इत्येषा सप्तमी पुण्या शाकाह्वा गोपतेः सदा । यामुपोष्य नरो भक्त्या भाग्यवांश्च[1] प्रजायते ।।७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे शाकसप्तमीव्रतवर्णनंनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।४७।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

शतानीक उवाच

विस्तराद्वद विप्रेन्द्र सप्तमीकल्पमुत्तमम् । महाभाग्यं च देवस्य भास्करस्य महात्मनः ।।१

सुमन्तुरुवाच

अत्रैवाहुर्महात्मानः सम्वादं पुण्यमुत्तमम् । कृष्णेन सह सत्त्वेन स्वपुत्रेण महीपते ।।२
भक्त्या प्रणम्य विधिवद्वासुदेवं जगद्गुरुम् । इहामुत्र हितं शांबः[2] पप्रच्छ ज्ञानमुत्तमम् ।।३
जातो जन्तुः कथं दुःखैर्जन्मनीह न बाध्यते । प्राप्नोति विविधान्कामान्कथं च मधुसूदन ।।४

करवीर (कनेर) का फूल, रक्तचन्दन, गुग्गुल, खीर, लड्डू, ताँबे का पात्र, घी और वक्ता (कथावाचक) एवं सूर्य पुराण का पाठ यथेष्ट होना चाहिए ।७०-७१। सूर्य की शाक नाम की इस सप्तमी में भक्तिपूर्वक उपवास रहकर मनुष्य भाग्यवान् होता है, यह सदैव पुण्य स्वरूप हैं ।७२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में शाक सप्तमी व्रत वर्णन नामक सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४७।

अध्याय ४८

आदित्य माहात्म्य वर्णन

शतानीक बोले—हे विप्रेन्द्र ! सप्तमी कल्प का वर्णन जिसमें महातमा सूर्य देव के प्राप्त सौभाग्य का वर्णन किया गया है, विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ! ।१।

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! इसी विषय पर कृष्ण तथा उनके पुत्र शाम्ब का पुण्य रूप संवाद हुआ है, मैं वही बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार जगद्गुरु भगवान् कृष्ण को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर साम्ब ने अपने उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए जो लोक-परलोक दोनों के हित धारक बनाया गया है उनसे पूछा । हे मधुसूदन ! इस संसार में उत्पन्न होकर जीव किस प्रकार अनेक दुःख से मुक्त होते हुए भाँति-भाँति के

---

१. भार्गव्यां न विजायते । २. सर्वत्र शांबशब्दे सांब इति दंत्यादिरपिपाठः पुस्तकान्तरेषु ।

परत्र स्वर्गमाप्नोति सुखानि विविधानि च । अनुभूयोचितं कालं कथं मुक्तिमवाप्नुते ॥५
दृष्ट्वैवं मम निर्वेदो जातो व्याधिर्जनार्दन । दृष्ट्वेमं जीविताशापि रोचते न हि मे क्षणम् ॥६
किं त्वेवमकृतार्थोऽस्मि यन्मे प्राणा न यान्ति हि । संसारे न पतिष्यामि जराव्याधिसमन्विते ॥७
येनोपायेन तन्मेऽद्य प्रसादं कुरु सुव्रत । आधिव्याधिविनिर्मुक्तो यथाहं स्यां तथा वद ॥८

वासुदेव उवाच

देवतायाः प्रसादोऽन्यः सर्वस्य परमो मतः । उपायः शाश्वतो नित्य इति मे निश्चिता मतिः ॥९
अनुमानागमाद्यैश्च सम्यगुत्पादिता मया । कदाचिदन्यथा कर्तुं धीयते केनचित्क्वचित् ॥१०
प्रसादो जायते तस्य सम्यगाराधनक्रिया । यदा तां च समुद्दिश्य कृता तद्वेदिना तथा ॥११
विशिष्टा देवता सम्यग्विशिष्टेनैव देहिना । आराधिता विशिष्टं च ददाति फलमीहितम् ॥१२

शाम्ब उवाच

अस्तित्वे न च सन्देहः केषाञ्चिद्देवतां प्रति । नास्तीति निश्चयोऽन्येषां विशिष्टास्त्वं कथाः कुरु ॥१३

वासुदेव उवाच

सिद्धं तु देवतास्तित्वमागमेषु बहुष्वथ । प्रमाणमागमो यस्य तस्यास्तित्वं च विद्यते ॥१४
अनुमानेन वाप्यद्य तदस्तित्वं प्रसाध्यते । प्रमाणमस्ति यस्येदं सिद्धागमस्येह चास्तिता ॥१५

मनोरथ को सफल करता है ।२-४। अर्थात् स्वर्ग प्राप्त करने पर उसे अनेक भाँति के सुख तथा सांसारिक मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ।५। हे जनार्दन ! इस प्रकार (सांसारिक) जीवों को देख कर मुझे महान रोग हो गया है और विरक्ति सी हो गयी है । यहाँ तक कि मुझे अब एक क्षण का जीवन भी अच्छा नहीं लग रहा है ।६। किंतु (क्या करूँ) मेरे प्राण निकल नहीं रहे हैं (प्राण निकलने के लिए प्रयत्न करता हुआ भी) असफल हो रहा हूँ । हे सुव्रत ! जिस उपाय द्वारा बुढ़ापा एवं विविध रोग पूर्ण इस प्रकार संसार में भविष्य में मुझे न आना पड़े तथा इस समय शारीरिक मानसिक रोगों से मुक्ति प्राप्ति हो आप मुझे उसे बताने की कृपा करें ।७-८

वासुदेव ने कहा—सभी लोगों की सम्मति है कि इस विषय में देवताओं की प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई अन्य दृढ़ उपाय नहीं है और यही मुझे भी निश्चित है ।९। इसी प्रकार अनुमान एवं प्रमाण आदि द्वारा मैंने देवताओं को उत्पन्न किया है । यदि कोई (रोग आदि का प्रतीकार करके) सुखी जीवन करना चाहे तो देवताओं का ज्ञान रखने कर उसी उद्देश्य से उनकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न करे ।१०-११। क्योंकि महत्त्वपूर्ण मनुष्य, महत्वपूर्ण देवता की आराधना करता है तो उसे महत्त्वपूर्ण फल भी प्राप्त होता है ।१२

साम्ब ने कहा—सर्व प्रथम तो यद्यपि कुछ लोगों को देवताओं के होने में संदेह नहीं है पर कुछ लोगों की सम्मति है कि देवता है ही नहीं, तो आप विशिष्ट (देवता) की बातें कैसे कर रहे हैं ।१३

कृष्ण ने कहा—वेदों में देवताओं के होने में प्रमाण अधिक हैं इसलिए जिसमें आगम भी प्रमाणित करता है उसका अस्तित्व होना निश्चित भी है ।१४। अनुमान द्वारा भी उनका अस्तित्व सिद्ध है क्योंकि

प्रत्यक्षेणापि चास्तित्वं देवतायां प्रसाध्यते । तच्चावश्यं प्रमाणं च दृष्टं सर्वशरीरिणाम् ॥१६
यदि नामा विविक्तास्तु तिर्यग्योनिगता अपि । नोत्पद्यते तथा ह्यस्ति व्यवहारो यथा स्थितः ॥१७

शाम्ब उवाच

प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते सम्यग्वै यदि देवताः । अनुमानागमाभ्यां च तदर्थं न प्रयोजनम् ॥१८

वासुदेव उवाच

प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते न सर्वा देवताः क्वचित् । अनुमानागमैर्गम्याः सन्ति चान्याः सहस्रशः ॥१९

शाम्ब उवाच

या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेष्टफलप्रदा । तामेवादौ ममाचक्ष्व कथयिष्यस्यथापराम् ॥२०

वासुदेव उवाच

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः । तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥२१
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च । कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः ॥२२
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः[1] करणानि च । आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ॥२३

अनुमान प्रमाण वाले का भी अस्तित्व माना ही जाता है ।१५। इस भाँति प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा देवताओं का अस्तित्व तो सिद्ध ही है क्योंकि उस प्रमाण को सभी लोग देखते हैं और इसीलिए वह आवश्यक प्रमाण कहा गया है ।१६। पशु पक्षी आदि योनियों में प्राप्त जीव को सामान्य विशेष विवेचन की शक्ति नहीं होती है उसी भाँति अल्प शक्ति वाले को (पुरुष को) भी किसी विशिष्ट व्यक्ति के अस्तित्व व्यवहार का ज्ञान रखना महा कठिन है ।१७

साम्ब ने कहा—यदि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा देवताओं का अस्तित्व सिद्ध है तो उसके लिए अनुमान एवं आगम को प्रमाण रूप में स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।१८

वासुदेव बोले—सभी देवताओं का अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ही संपन्न होना असंभव है और अनुमान प्रमाण द्वारा हजारों देवताओं का अस्तित्व सिद्ध है अतः इसे भी प्रमाण रूप में अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।१९

साम्ब ने कहा—यदि देवता जो महत्त्वपूर्ण फल प्रदान करता है और सामने दृष्टिगोचर भी हो रहा है तो पहले उसी का महत्त्व मुझे सुनाने की कृपा करें पश्चात् औरों का भी महत्व बताइयेगा ।२०

कृष्ण ने कहा—सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं और संसार के नेत्र भी हैं, दिन को करने वाले हैं अतः इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं नित्य स्थित रहने वाला कोई अन्य देवता नहीं है ।२१। सूर्य द्वारा ही इस जगत् का जन्म हुआ है इन्ही में इसकी स्थिति एवं लय भी होता है और कृत आदि युगों की काल व्यवस्था भी इन्ही द्वारा संपन्न हुई है ।२२। इसलिए ग्रह, नक्षत्र, योग, राशि, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, वायु, अग्नि, रुद्र प्रजापति, भूलोक, भुवर्लोक एवं स्वर्ग तथा सभी लोक पर्वत, नदियाँ, समुद्र , जीव समूह

---

१. यामदण्डक्षणानि च ।

शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवःस्वस्तथैव च । लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरास्तथा ॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः ॥२४
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् । स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते ॥२५
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते । अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ॥
अस्तं यातीत्यदृश्येन किमेतत्कथ्यते मया ॥२६
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति । यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ॥२७
इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते । बाह्यान्यैति सुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः ॥२८
अस्तं यातीत्यदृष्टेन किमेतत्कथ्यते मया । तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२९
यन्न वाह इति ख्यातः प्रेरकः सर्वदेहिनाम् । नानेन रहितं किञ्चिद्भूतमस्ति चराचरम् ॥३०
यो वेदैर्वेदविद्भिश्च विस्तरेणेह शक्यते । वक्तुं वर्षशतैर्नासौ शक्यः संक्षेपतो मया ॥३१
[1]तस्माद्गुणाकरः ख्यातः सर्वत्रायं दिवाकरः । सर्वेशः सर्वकर्तायं सर्वभर्तायमव्ययः ॥३२
जाता मत्स्यादयः सम्यग्गतिमन्तो महेश्वरात् । मण्डलव्यतिरिक्तं च जानामि परमार्थतः ॥३३
तथास्य मण्डलं कृत्वा[2] यो ह्येनमुपतिष्ठते । प्रातः सायं च मध्याह्ने स याति परमां गतिम् ॥३४
किं पुनर्मण्डलस्थं यो जपते परमार्थतः । विविधाः सिद्धयस्तस्य भवन्ति न तदद्भुतम् ॥३५

आदि ये सभी सूर्य द्वारा ही निष्पन्न होते हैं ।२३-२४। इन्हीं की इच्छा द्वारा यह समस्त संसार जिसमें चर अचर की सृष्टि है उत्पन्न हो कर अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है ।२५। इस प्रकार इन्ही की प्रसन्नता वश संसार की समस्त चेष्टायें उत्पन्न होती हैं अर्थात् इनके उदय से सबका उदय एवं अस्त होने से सब का अस्त होना निश्चित है । इसमें मुझे और कहना नहीं है ।२६। चारों वेदो में इन्हें 'परमात्मा' बताया गया है, अतः इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण देवता न कोई हुआ और न किसी के होते की संभावना है ।२७। इसी प्रकार इतिहास एवं पुराणों में इन्हें 'अन्तरात्मा' भी कहा गया है तथा जागृति स्वप्न सुषुप्ति में इन्हीं को भासित भी बताया गया है ।२८। किन्तु ये भी अदृष्ट वश अस्त होते हैं । और इस प्रकार इनसे बढ़कर न कोई देवता है न हुआ है और न होगा । अतः मुझे इसमें कहना ही क्या है ।२९। यही संसार के होने के नाते ये 'वाह' कहे जाते हैं इनके बिना कोई भी चर अचर है ही नहीं ।३०। कोई भी वैदिक विद्वान् वेद के द्वारा या यों ही विस्तारपूर्वक जिसकी महिमा का ज्ञान सैकड़ों वर्षों में कर सका है उसे मैं कैसे कर सकता हूँ ।३१। क्योंकि सभी जगह सूर्य के गुणविधि होने की ख्याति है यही सब के ईश, कर्त्ता, पालन-पोषण करने वाले एवं अविनाशी हैं ।३२। मछली आदि जितने गतिमान् जीव हैं सभी इन्हीं द्वारा उत्पन्न है, केवल मंडल छोड़ कर और अन्य सभी इनकी वस्तुएँ परमार्थ के लिए ही निहित हैं ।३३

इसलिए प्रातः काल, मध्याह्न तथा सायंकाल में जो मंडल बनाकर इनकी पूजा करते है उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है ।३४। पुनः जो प्रत्यक्ष मण्डल बनाकर परमार्थतः इनकी आराधना करता है, (उसके लिए क्या कहना है) । भाँति-भाँति की सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं । इसमें आश्चर्य की बात ही क्या

---

१. तस्मात्क्षयकरोयोऽसौ । २. दृष्ट्वा ।

मण्डले च स्थितं देवं देहे चैनं व्यवस्थितम् । स्वबुद्ध्यैवमसम्मूढो यः पश्यति स पश्यति ।।३६
ध्यात्वैवं[1] पूजयेद्यस्तु जपेद्यो जुहुयाच्च यः । सर्वान्प्राप्नुयात्कामान्गच्छेद्धर्मध्वजं तथा ।।३७
तस्मात्त्वमिह दुःखानामन्तं कर्तुं यदीच्छसि । इहामुत्र च भोगानां भुक्तिं मुक्तिं च शाश्वतीम् ।।३८
आराधयार्कमर्कस्थो मन्त्रैरिह तदात्मनि । अङ्गैर्वृतं वृते चैव स्थाने शास्त्रेण शोधिते ।।३९
कवचेन च सङ्गुप्तं सर्वतोऽस्त्रेण रक्षिते । एवं प्राप्स्यसि यत्नेन सर्वदा फलमीप्सितम् ।।४०
दुःखमाध्यात्मिकं नेह तथा चैवाधिभौतिकम् । आधिदैविकमत्युग्रं न भविष्यति ते सदा ।।४१
न भयं विद्यते तेषां प्रपन्ना ये दिवाकरम् । इहामुत्र सुखं तेषामच्छिद्रं जायते सुखम्[2] ।।४२
सूर्येणेदं ममोद्दिष्टं साक्षाद्यज्ज्ञानमुत्तमम् । आराधितेन विधिवत्कालेन बहुना तथा ।।४३
प्राप्यते परमं स्थानं यत्र धर्मध्वजः स्थितः । एतत्संक्षिप्तमुद्दिष्टं क्षिप्रसिद्धिकरं परम् ।।
यथा नान्यदतोऽस्तीति स्वयं सूर्येण भाषितम् ।।४४
उपायोऽयं समाख्यातस्तव संक्षेपतस्त्विह । यस्मात्परतरो नास्ति हितोपायः शरीरिणाम् ।।४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८।

है ।३५। मंडल में इस देव को अपने देह के भीतर स्थिर अपनी बुद्धि द्वारा जो ज्ञानी जानता है, वही वास्तव में इन्हें जानता है ।३६। इस प्रकार जो इनका ध्यान कर पूजन, जप एवं हवन करताहै उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं एवं धर्म ध्वज (भगवान्) को प्राप्त होता है ।३७। इसलिए यदि तुम्हें भी दुःखों का अंत (नाश) लोक, परलोक का भाग एवं प्रबल भुक्ति-मुक्ति की इच्छा हो तो सूर्य की जिनके अंग आदि शास्त्र से संशोधित एवं कवच से आवृत्त (ढका) तथा अस्त्रों से रक्षित हैं मंत्र पूर्वक आराधन करें तो सदैव अभिलषित सिद्धि की प्राप्ति होती रहेगी ।३८-४०। उसके परिणाम स्वरूप आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक में अत्यन्त दुःख तुम्हें कभी नहीं होगा ।४१। क्योंकि जो दिवाकर के शरणागत है उन्हें अभयदान तथा लोक-परलोक का पूर्ण सुख प्राप्त होता है ।४२। इसलिए सूर्य के उद्देश्य से मैंने जो कुछ उत्तम ज्ञान तुमसे कहा है, उसे विधि-पूर्वक अधिक दिनों तक करते रहना चाहिए । उससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है जहां स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं ।४३। इस प्रकार इस संक्षिप्त कथा को जो शीघ्र मनोरथ सफल करने वाली है और सब से उत्तम है स्वयं सूर्य ने कहा है । मैंने संक्षेप में तुमसे कहा है ।४४। इसलिए संक्षेप में ही इस उपाय को बताया है क्योंकि मनुष्यों के हित के लिए इससे बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है ।४५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४८।

---

१. देवम् । २. ध्रुवम् ।

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यमाहात्म्यवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अथार्चनविधिं वक्ष्ये धर्मकेतोरनुत्तमम् । सर्वकामप्रदं पुण्यं विघ्नघ्नं दुरितापहम् ॥१
सूर्यमन्त्रैः पुरः स्नातो यजेत्तेनैव भास्करम् । यतस्ततः प्रवक्ष्यामि स्नानमादौ समासतः ॥२
आचान्तस्तमुपालभ्य मुद्रया शुचिशुद्धया । कृत्वा नीराजनं पुत्र संशोध्य च जलं ततः ॥३
स्नानादृदयपूतेन[1] मन्त्रेण मत्कुलोद्वह । उत्थायाचम्य तेनैव वाससी परिधाय च ॥४
द्विराचम्याथ सम्प्रोक्ष्य तनुं सप्ताक्षरेण च । उत्थायाचम्य तेनैव रवेः कृत्वार्घ्यमेव च ॥५
दत्वा तेन जपित्वा तं स्वकं ध्यात्वार्कवद्धृदि । गत्वा चायतनं शुभ्रमार्कमार्की तनुं यजेत् ॥६
पूरकं कुम्भकं कृत्वा रेचकं च समाहितः । कृत्वोङ्कारेण दोषांस्तु हन्यात्कायादिसम्भवान् ॥७
वायव्याग्नेयमाहेन्द्रवारुणीभिर्यथाक्रमम् । किल्बिषं वारुणाद्भिश्च हन्यात्सिद्ध्यर्थमात्मनः ॥८
शोषणं दहनं स्तम्भं प्लावनं च यथाक्रमात् । वाय्वग्नीन्द्रजलाख्याभिर्धारणाभिः कृते सति ॥९

अध्याय ४९

सूर्य माहात्म्य वर्णन

वासुदेव बोले—धर्म के केतु (ध्वजा) रूपी सूर्य के पूजन की विधि, जो उत्तम, समस्त मनोरथ सफल करने वाली, पुण्य स्वरूप, विघ्ननाशक एवं पापनाशक है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ।१। सूर्य के मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्नान और सूर्य का पूजन करना चाहिए अतः पहले संक्षेप में स्नान विधि कह रहा हूँ ।२। हे पुत्र ! सर्वप्रथम आचमन करके पवित्र और शुद्ध मुद्रा द्वारा (सूर्य को) देखकर उनका नीराजन करना चाहिए उपरांत जल को अभिमंत्रित कर स्नान करे और पश्चात्-पवित्रता पूर्ण मंत्रों के उच्चारण करते हुए उठकर आचमन करे और उन्हीं मंत्रों द्वारा धोती तथा दुपट्टा धारण करे ।३-४। पुनः दो आचमन करके सप्ताक्षर से उच्चारण पूर्वक शरीर प्रोक्षण (पोंछना) आचमन और उसी से अर्घ्य दान दे अनन्तर जप पूर्वक हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य के उत्तम मंदिर में जाय और उनकी शारीरिक अर्चना करे ।५-६। और ओंकार पूर्वक प्राणायाम करके जिसमें पूरक, कुम्भक एवं रेचक का विधान है, उसके द्वारा अपने शारीरिक दोषों का नाश करे ।७। उसी प्रकार वायव्य, आग्नेय, पूरब और पश्चिम दिशाओं में स्थित (कलशों के) जलों से अपनी सिद्धि तथा पाप नाश के लिए मार्जन करे ।८। पश्चात् वायवीय, आग्नेयी, माहेन्द्री और वारुणी धारणाओं द्वारा ध्यान का प्रकार शरीर का शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन की क्रिया क्रमशः सुसम्पन्न करे ।९। उपरांत अपने में अत्यन्त शुद्ध की भावना कर

---

१. स्नानादुदयपूतेन मधुना मत्कुलोद्वह ।

ध्यात्वा विशुद्धमात्मानं प्रणमेदर्कमास्थितम् । देहं तेनैव सञ्चिन्त्य पञ्चभूतमयं परम् ।।१०
सूक्ष्मं स्थूलं तथाक्षाणि स्वस्थानेषु प्रकल्प्य च । विन्यस्याङ्गानि खादीनि हृदाद्यानि हृद्यादिषु ।।११
खस्वाहा हृदयं भानोः खमर्काय शिरस्तथा । उल्का स्वाहा शिखार्कस्य यै च हुं कवचं परम् ।।
खां फडस्त्रं च संहाराश्चादितः प्रणवः कृतः ।।१२
स पूर्वे प्रणवस्याथो मन्त्रकर्मप्रसिद्धये । एभिर्जलं त्रिधा जप्त्वा स्नानद्रव्याणि तेन च ।।१३
सम्प्रोक्ष्य पूजयेत्सूर्यं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः । ततो मूर्तिषु सर्वासु रात्रावग्नौ प्रपूजयेत् ।।१४
प्राक्पश्चिमोदगभ्यग्रां प्रातः सायं निशासु वै । सप्ताक्षरेण सन्मन्त्रं ध्यात्वा च पद्मकर्णिकाम् ।।१५
आदित्यमण्डलान्तस्थं तत्र देहं प्रकल्पयेत् । प्रभामण्डलमध्यस्थं ध्यात्वा देहं यथा पुरा ।।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ।।१६
रक्तैर्गन्धैश्च पुष्पैश्च चरुभिर्बलिभिस्तथा । रक्तचन्दनमिश्रैर्वा वस्त्रैरावरणैः शुभैः ।।१७
आवाहनादिकर्माणि रक्षां तु हृदयेन च । तच्चित्तश्च सदा कुर्याज्ज्ञात्वा कर्मक्रमं बुधः ।।१८
कृत्वा चावाहनं मन्त्रैरेकत्र स्थापनं ततः । यावद्यागावसानं नु सान्निध्यं तत्र कल्प्य च ।।१९
दत्त्वा पाद्यादिकां पूजां शक्त्या वार्घ्यं निवेद्य च । जपित्वा विधिवद्ध्यात्वा ततो देवीं विसर्जयेत् ।।२०
एष कर्म क्रमः प्रोक्तः सर्वेषां यजनक्रमात् । प्रवक्ष्यामि जपस्थानं पद्मेशावरणे तथा ।।२१

अपने में स्थित सूर्य को प्रणाम करे और उसी भाँति उनकी पांच भौतिक शरीर का ध्यान करें ।१०। ध्यान करते समय सूक्ष्म या स्थूल (शरीर) आँख एवं अपने अपने स्थानों में प्रत्येक अंगों इन्द्रियों और हृदय आदि की कल्पना करते हुए ओंकार पूर्वक मंत्रों के उच्चारण 'ख स्वाहा' से हृदय, 'खं अर्काय स्वाहा, से शिर, 'उल्काय स्वाहा' से शिखा, 'हुं से कवच, खां फट् से अस्त्र और संहार करे दूसरे (उनके स्नान के लिए) जल को तीन बार अभिमंत्रित करे और उसी से स्नान द्रव्य का सेचन कर गंध और पुष्पों द्वारा सूर्य का पूजन करें । पश्चात् उनकी सभी मूर्तियों के पूजन रात में अग्नि में करें ।११-१४। इस भाँति प्रातः, सायंकाल और रात में पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में क्रमशः कमल के बीच में स्थित सूर्य मंडल तथा मंडल में उनकी शरीर का ध्यान और कल्पना करे । पुनः प्रभामंडल के मध्य में उनकी देह का जो समस्त लक्षणों से पूर्ण एवं सहस्रों किरणों द्वारा प्रदीप्त है, ध्यान करते हुए रक्त पुष्प, चंदन, गेरू[1], रक्तचंदनमिश्रित की बलि तथा उत्तम वस्त्रों को उन्हें धारण कराये तथा हृदय से आवाहन आदि कर्म एवं दिग्रक्षा भी उनमें लीन होकर कर्म के क्रमों को जानते हुए नित्य करनी चाहिए ।१५-१८ मंत्रों द्वारा आवाहन पूर्वक एक स्थान में उन्हें स्थापित करके जब तक यज्ञ समाप्त न हो, उनके सानिध्य की कल्पना करते हुए शक्त्यनुसार पाद्य, अर्घ्य, नैवेद्य और जप समर्पित करे और इस प्रकार विधि पूर्वक ध्यान करने के उपरांत देवीका विसर्जन करे ।१९-२०

क्योंकि पूजन करने में सभी लोगों के लिए कर्म का यही क्रम बताया गया है । अब कमलेश सूर्य के आवरण करने में जप का स्थान बता रहा हूँ सुनो ! ।२१। कमल की कर्णिका में सूर्य को स्थापित करके

---

१. जवा या चावल की खीर

आदित्यं कर्णिकासंस्थं दलेष्वङ्गानि पूर्वशः । सोमादीन्राहुपर्यंतान्ग्रहांश्चैवोदगादितः ॥२२
मूर्तिमल्लोकपालांश्च क्रमादावरणेष्वथ । तदस्त्राणि च रक्षार्थं स्वमन्त्रैः पूजयेत्क्रमात् ॥२३
प्रणवैश्चाभिधानैश्च चतुर्थ्या ह्यभियोजितैः । सर्वेषां कथिता मन्त्रा मुद्राश्च कथयाम्यतः ॥२४
व्योममुद्रा रतिः पद्मा महाश्वेतास्त्रमेव च । पञ्चमुद्राः समाख्याताः सर्वकर्मप्रसिद्धये ॥२५
उत्तानौ तु करौ कृत्वा अङ्गुल्यो ग्रथिताः क्रमात् । तर्जनीं यन्ति यावत्ताः समे वाधोमुखे स्थिते ॥२६
तर्जन्यो[1] मध्यमस्यैव ज्येष्ठाग्रे हानुगोपरि । मुद्रेयं सर्वमुद्राणां व्योम मुद्रेति कीर्तिता ॥
मर्दकर्मसु योगोऽयं तथा स्थानं प्रकल्पते ॥२७
पद्मवत्प्रसृताः सर्वा महाश्वेता रवेः स्मृता । जवसंनिहितो नित्यं रथारूढो रविः स्मृतः ॥२८
हस्तावूर्द्धमुखौ कृत्वा वामाङ्गुष्ठेन योजितौ । द्रव्याणां शोधने योज्या रक्षार्थं च विशेषतः ॥२९
अनया मुद्रया सर्वं रक्षितं शोधितं भवेत् । अर्घ्यं दत्वा प्रयोक्तव्या पूजान्ते च विशेषतः ॥३०
जपध्यानावसाने च यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । अनेन विधिना नित्यं जपेदब्दमतन्द्रितः ॥३१
स लभेतेप्सितान्कामानिहामुत्र न संशयः । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्धनहीनो धनं लभेत् ॥३२
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यमपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् । प्रज्ञामेधासमृद्धीश्च चिरं जीवति मानवः ॥
सुरूपां लभते कन्यां कुलीना पुरुषो ध्रुवम् ॥३३
सौभाग्यं स्त्री कुलीनापि कन्या च पुरुषोत्तमम् । अविद्यो लभते विद्यामित्युक्तं भानुना पुरा ॥३४
नित्ययागः स्मृतो ह्येष धनधान्यसुखावहः । प्रजापशुविवृद्धिश्च निष्कामस्यापि जायते ॥३५

दलों में उनके अंगों (सहचरों) को पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः स्थापित करे पश्चात् चन्द्र आदि से लेकर राहु तक सभी ग्रहों को भी उत्तर की ओर से स्थापित करना चाहिये।२२। इसी भाँति मूर्तिमान् लोकपालों का जो क्रमशः उनके आवरण की भाँति स्थित रहते हैं और रक्षा के लिए उनके अस्त्रों का भी क्रमशः मंत्र पूर्वक स्थापन पूजन करना चाहिए।२३। इस प्रकार ओंकार पूर्वक (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) चतुर्थ्यन्त नामों का उच्चारण करके आवाहनादि समस्त क्रियाएँ सुसम्पन्न करनी चाहिए। उपरान्त सभी के मंत्रों को बता कर अब मैं मुद्राएँ बता रहा हूँ।२४। व्योम, रति, पद्मा, महाश्वेता एवं अस्त्र, ये पांच मुद्रायें सभी कार्यों में सिद्धि दायक है।२५। द्रव्यों के संशोधन तथा उसकी रक्षा के लिए मुद्राओं की विशेषता बतायी गई है। मुद्रा के द्वारा ही सभी लोग संशोधित एवं रक्षित रहते हैं। इसलिए अर्घ्यदान देकर पूजा की समाप्ति में मुद्रा-प्रयोग अवश्य करना चाहिए।२६-३०। अपनी (कार्य) सिद्धि के लिए जप और ध्यान के अंत में भी मुद्राओं के प्रयोग करने चाहिए इसी विधि द्वारा यदि पूरे वर्ष तक जप आदि किये जाँय तो उसके लोक-परलोक के मनोरथ सफल हों। रोगी रोग से मुक्त हो, निर्धन को धन की प्राप्ति हो, तथा राज्य-च्युत को राज्य एवं अपुत्री को पुत्र की प्राप्ति समेत कुशाग्र बुद्धि, समृद्धि तथा दीर्घ जीवन प्राप्त हो। इसी भाँति पुरुष को कुलीन एवं सौन्दर्य पूर्ण कन्या की प्राप्ति स्त्री को उत्तम सौभाग्य कन्या को पुरुष और मूर्ख को विद्या की प्राप्ति हो। इस प्रकार पहले ही सूर्य ने बताया था।३१-३४। इसीलिए इस यज्ञ को नित्य करना चाहिए क्योंकि इसके अनुष्ठान से निष्काम पुरुष को भी धन-धान्य का, सुख सन्तान तथा

तदैकः स्तूयते स्वर्गे शब्दयते च नरोत्तमः । भक्त्या तं पूजयेद्यस्तु नरः पुण्यतरः सदा ॥३६
इह वै कामिकं प्राप्य ततो गच्छेन्मनोः पदम् । द्विजस्तस्य प्रसादेन तेजसा बुधसन्निभः ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।४९।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सप्तमीमाहात्म्यवर्णनम्

वासुदेव उवाच

नैमित्तिकं ततो वक्ष्ये यज्ज्ञात्वा च समासतः । सप्तम्यां ग्रहणे चैव संक्रान्तिषु विशेषतः ॥१
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां हविर्भुक्त्वैकदा दिवा । सम्यगाचम्य सन्ध्यायां वारुणं प्रणिपत्य च ॥२
इन्द्रियाणि च संयम्य कृतं ध्यात्वा स्वपेदधः । दर्भशय्यागतो रात्रौ प्रातः स्नातः सुसंयतः ॥३
ततः सन्ध्यामुपास्याथ पूर्वोक्तं च मनुं जपेत् । जुहुयाच्च तदा वह्निं सूर्याग्नी परिकल्प्य च ॥४
सूर्याग्निकरणं वक्ष्ये तर्पणं च समासतः । अर्चनागारमुल्लिख्य प्रविश्यार्च्य जनैर्जनम् ॥५
प्रक्षिप्यास्तीर्य दर्भैश्च पात्राद्यालभ्य च क्रमात् । पवित्रं द्विकुशं कृत्वा साग्रं प्रादेशसम्मितम् ॥६

पशुओं की वृद्धि प्राप्त होती है ।३५। स्वर्ग में वही एक ख्याति प्राप्त राजा कहा जाता है । इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो उनका पूजन करता है वह सदैव अधिक पुण्यात्मा होता है ।३६। तथा इस लोक में अपनी कामनाओं की सफलता प्राप्त कर (स्वर्ग में) मनु पद प्राप्त करता है । उनकी प्रसन्नतावश द्विज लोग बुध के समान तेजस्वी होते हैं ।३७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प में सूर्य माहात्म्य वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।४९।

अध्याय ५०

सप्तमी माहात्म्यवर्णन

वासुदेव बोले—(सूर्य के) नैमित्तिक पूजन को जो विशेषकर सप्तमी तिथि ग्रहण के समय एवं संक्रान्ति के दिनों में ही किया जाता है संक्षेप में बता रहा हूँ सुनो ! ।१। शुक्लपक्ष की सप्तमी के पूर्व षष्ठी में एक बार दिन में हविष्यान्न का भोजन करके संध्या समय में आचमन, सूर्य को नमस्कार एवं इन्द्रिय संयम पूर्वक कुशासन पर स्थित हो ध्यान करते हुए वहीं नीचे शयन भी करके रात व्यतीत करने के पश्चात् प्रातः काल उठकर स्नान संध्योपासन करके पूर्वोक्त मनु मंत्र के जप एवं वह्नि का सूर्य और अग्नि की कल्पनाकर उसमें हवन करे ।२-४। उपरांत सूर्याग्नि करण संक्षेप में एवं तर्पण भी बता रहा हूँ । पूजन करने के मंदिर को चित्रविचित्र मूर्तियों की कारीगरियों से सुशोभित करके (कुशकंडिका) करने के उपरान्त हवन करना चाहिए ।५। (हवन कुंड के चारों ओर) कुश बिछाकर क्रमशः पात्रादि (प्रोक्षणीपात्र एवं प्रणीतापात्र के आचमनपूर्वक कुश के दो दलों से बने हुए पवित्रक को लेकर जिसमें

तेन पात्राणि सम्प्रोक्ष्य संशोध्याथ विलोक्य च । उदगग्रे स्थिते पात्रे प्रज्वाल्याथोल्मुकेन च ॥७
पर्यग्निकरणं कृत्वा तथाज्योत्पवनं त्रिधा । परिमृज्य स्रुवादींश्च दर्भैः सम्प्रोक्षयेत्ततः ॥८
जुहुयात्प्रोक्ष्य तान्वह्नौ तत्रार्कं पूर्ववद् यजेत् । अभूमौ स्थितपात्रेण विष्टरेण तु पाणिना ॥
दानेन यदुशार्दूल नान्तरिक्षे स्थले क्वचित् ॥९
दक्षिणेन स्रुवं गृह्य जुहुयात्पावके बुधः । हृदयेन क्रियाः सर्वाः कर्तव्याः पूर्वचोदिताः ॥१०
अर्कादारभ्य संज्ञार्थं दद्यात्तूष्णीं हुतिं स्थितः । वरुणाय शतैर्माघे सप्तम्यां वरुणं यजेत् ॥११
यथाशक्त्या तु विप्रेभ्यः प्रदद्यात्खण्डवेष्टकान् । दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या प्राप्नोति वाञ्छितं फलम् ॥१२
एवं वै फाल्गुने सूर्यं चैत्रे वैशाख एव च । वैशाखे मासि धातारमिन्द्रं ज्येष्ठे यजेद्रविम् ॥१३
आषाढे श्रावणे मासि नभं भाद्रपदे यमम् । तथाश्वयुजि पर्जन्यं त्वष्टारं कार्तिके यजेत् ॥१४
मार्गशीर्षे च मित्रं च पौषे विष्णुं यजेद्यदि । संवत्सरेण यत्प्रोक्तं फलमिष्टं दिनेदिने ॥
तत्सर्वमाप्नुयात्क्षिप्रं भक्त्या श्रद्धान्विता व्रती ॥१५
एवं संवत्सरे पूर्णे कृत्वा वै काञ्चनं रथम् । सप्तभिर्वाजिभिर्युक्तं नानारत्नोपशोभितम् ॥१६
आदित्यप्रतिमां मध्ये शुद्धहेम्ना कृतां शुभाम् । रत्नैरलङ्कृतां कृत्वा हेमपद्मोपरिस्थिताम् ॥१७

अग्रभाग हो तथा वह प्रादेश मात्र का हो उसी द्वारा (यज्ञ) पात्रों का प्रोक्षण, संशोधन और (पिघलाये हुए घी का) निरीक्षण करके उत्तर की ओर किये हुए पात्र (आज्यस्थाली) में रखे। पश्चात् जलती हुई एक समिधा से उसे प्रज्वलित करे।६-८। उपरान्त अग्नि का आज्यस्थाली द्वारा एक प्रदक्षिणा कर व्यस्त हाथ के अंगूठे और कनिष्ठा के द्वारा घी का तीन बार उत्प्लावन (उपर को धीरे से उछालना) रूपक्रिया को सुसम्पन्न करके अनन्तर सूर्य के (मूल, मध्य और अंत भाग को) कुशाओं द्वारा संमार्ज़न एवं संप्रोक्षण करने के उपरांत उन कुशाओं को अग्नि में डाल देना चाहिए। हे यदुशार्दूल! फिर पूर्व की भाँति सूर्य की पूजा करनी चाहिए। जिसके विधान में भूमि और अन्तरिक्ष से पृथक् किसी अन्य आधार पर स्थित पात्र में उसके लिए आसन प्रदान पूर्वक आवाहन एवं पूजन सुसम्पन्न कर समस्त क्रियाओं को समाप्त करना विद्वानों ने बताया है। जो पहले कही गयी है।९-१०। अतः पुनः सूर्य से आरम्भ कर (देवों) एवं संज्ञा के लिए भी मौन होकर आहुति डालें। माघ मास की सप्तमी में वरुण नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए जिसमें उनके लिए सौ आहुति डालने का विधान कहा गया है। पश्चात् ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराकर यथा शक्ति दक्षिणा देने से अभिलषित फलों की प्राप्ति होती है।११-१२। इसी प्रकार फाल्गुन मास में सूर्य, चैत्र में श्वेतांशु, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ में रवि, सावन में नभ, भादों में यम, आश्विन में पर्जन्य, कार्तिक में त्वष्टा, मार्गशीर्ष (अगहन) में मित्र और पौष में विष्णु नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए इस प्रकार व्रत विधान द्वारा श्रद्धा भक्ति पूर्वक वर्ष के समस्त सूर्यों की पूजा सुसम्पन्न करने से प्रति दिन के सौभाग्य तथा बताये हुए सभी फलों की प्राप्ति होती है।१३-१५। इस भाँति वर्ष की समाप्ति में सुवर्ण का रथ, जिसमें भाँति-भाँति के रत्नों से सुशोभित सात घोड़े जुते हों, बनाके उसके मध्य भाग में शुद्ध सुवर्ण की बनायी गयी सूर्य की प्रतिमा जो सौन्दर्य पूर्ण रत्नों से अलंकृत एवं सुवर्ण के कमल पर स्थित हो

तस्मिन् रथवरे कृत्वा सारथिं चाग्रतः स्थितम् । वृतं द्वादशभिर्विप्रैः क्रमान्मासाधिपात्मभिः ॥१८
मध्ये कृत्वा स्वमाचार्यं पूजयित्वा यथाश्रुतिः । सञ्चिन्त्यादित्यवर्णं वै वस्त्ररत्नादिनार्हयेत् ॥१९
एवं मासाधिपान्विप्रान्सम्पूज्याथ निवेदयेत् । आचार्याय रथं छत्रं ग्रामं गाश्च महीं शुभाम् ॥२०
अश्वान्मासाधिपेभ्यस्तु द्वादशभ्यो निवेदयेत् । एवं भक्त्या यथाशक्त्या हेमरत्नादिभूषणम् ॥२१
दत्त्वा तस्य नमस्कृत्य व्रतं पूर्णं निवेदयेत् । अत ऊर्ध्वं न दोषोऽत्र व्रतस्याकरणेष्वपि ॥२२
एवमस्त्विति विप्रेन्द्रैः सहाचार्यः पुनः पुनः । बह्वीश्चैवाशिषो दत्त्वा प्रवदेत्प्रीयतामिति ॥२३
आदित्यो येन कामेन त्वया आराधितो व्रतैः । तुभ्यं ददातु तं कामं सम्पूर्णं भवतु व्रतम् ॥२४
आचार्यान्विप्ररूपैस्तु प्रविष्टो भास्करः स्वयम् । दास्यत्येव फलं कर्तुमित्युक्तं भानुना स्वयम् ॥२५
विप्रेभ्यो गुणवद्भ्यश्च निस्वेभ्यश्च विशेषतः । दीनान्धकृपणेभ्यश्च शक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च व्रतमेतत्समापयेत् ॥२६
कृत्वैवं सप्तमीमब्दं राजा भवति धार्मिकः । पुरुषः स्त्री भवेद्राज्ञां तादृशामथ दल्लभा ॥२७
शतयोजनविस्तीर्णं निःसपत्नमकण्टकम् । निष्पन्नमण्डलं भुङ्क्ते साग्रं वर्षशतं सुखी ॥२८
वित्तहीनोऽपि यो[1] भक्त्या कृत्वा ताम्रमयं रथम् । दद्याद्व्रतावसाने तु कृत्वा सर्वं यथोदितम् ॥
सोऽशीतियोजनं भुङ्क्ते विस्तीर्णं मण्डलं नृपः ॥२९

स्थापित करके उस रथ के अग्रभाग पर सारथी की भी स्थापना करे। इसी प्रकार बारह मास के अधिपति रूप में बारह ब्राह्मणों की जिसके मध्य में आचार्य स्थित हों वस्त्र एवं रत्नों द्वारा पूजा करके उन्हें तथा आचार्य को वे प्रतिमाएँ आदि समर्पित करे। रथ, छत्र, ग्राम, गायें और भूमि का दान आचार्य को तथा उन मासो के अधीन ब्राह्मणों को घोड़े प्रदान करे। और भक्तिपूर्वक सुवर्ण और रत्नों के आभूषण भी देकर एवं उन्हें नमस्कार करते हुए पूर्ण वर्ष के व्रत को पूर्ण होने का निवेदन भी करे। पश्चात् यदि व्रत न भी करे तो कोई दोष नहीं होता है।१६-२२। पुनः नमस्कार के उपरान्त ब्राह्मण समेत आचार्य उसको 'एवमस्तु' कहकर स्वीकार करे और भाँति-भाँति के आशीर्वाद देते हुए प्रसन्न रहे।२३। और जिस मनोरथ के लिए तुमने आदित्य की आराधना की है वे उसे सफल करते हुए व्रत को पूर्ण करे। यजमान से यह भी कहे।२४। क्योंकि आचार्य में ब्राह्मण रूप से सूर्य स्वयं प्रवेश कर तुम्हें समस्त फल देंगे ऐसा सूर्य ने स्वयं कहा है।२५। इस भाँति व्रतानुष्ठान में गुणवान् एवं निर्धन ब्राह्मणों तथा विशेषकर दीन हीन अंधे एवं निःसहाय व्यक्तियों को शक्त्यनुसार दान-दक्षिणा तथा भोजन कराकर वह व्रत समाप्त करना चाहिए।२६। इस प्रकार पूर्ण वर्ष की सप्तमी के व्रत विधान सुसम्पन्न करने से वह राजा धार्मिक होता है यदि व्रतानुष्ठान करने वाली स्त्री होतो वह राजा की परम प्रेयसी रानी होती है २७। और सौ योजन का लम्बा चौड़ा राज्य शत्रु रहित एवं निष्कण्टक राज्य मंडल प्राप्त कर सौ वर्ष तक उसका उपभोग करते हुए सुखी जीवन प्राप्त करता है।२८। यदि कोई निर्धन (व्यक्ति) भी भक्ति पूर्वक ताँबे का रथ बनवा कर विधि पूर्वक व्रत की समाप्ति में दान करता है तो उसे असी योजन के भूमण्डल का राज्य प्राप्त होता है,

---

१. यथाशक्त्या।

एवं पिष्टमयं योऽपि वित्तहीनः करोति ना । आपष्टियोजनं भुङ्क्ते दीर्घायुर्नीरुजः सुखी ॥
सूर्यलोके च कल्पान्तं यावतिस्थत्वेदमाप्नुयात् ॥३०
मनसापि च यो भक्त्या यजेदर्कमतन्द्रितः । सर्वावस्थासु सोऽप्यत्र व्याधिभिर्मुच्यते भृशम् ॥३१
आपदो न स्पृशयन्त्येनं नीहारा इव भास्करम् । किं पुनर्व्रतसम्पन्नं भक्तं[1] मन्त्रैश्च रक्षितम् ॥३२
यत एवं ततो ज्ञात्वा विधानं कल्पचोदितम् । सुखेन फलसिद्ध्यर्थं कुर्यात्सर्वमशेषतः ॥३३
इत्येतत्कथितं साम्ब पुरा सूर्येण मे शुभम् । कल्पोऽयं प्रथमे कल्पे सर्वदा गोपितो मया ॥३४
अनेन विधिना वत्स विशुद्धेनान्तरात्मना । भानुमाराधयेत्क्षिप्रं यदीच्छेत्फलमुत्तमम् ॥३५
मयास्यैव प्रसादेन प्राप्ताः पुत्राः सहस्रशः । असुरा निर्जिताश्चैव सुराः सर्वे वशीकृताः ॥३६
त्वयाप्ययं गोपितव्यः कल्पः सूर्यस्य सम्मतः । प्रसादादस्य कल्पस्य सदा सन्निहितो रविः ॥
चक्रेऽस्मिन्निर्जिता येन सुरा सुरनरोरगाः ॥३७
यदिनाधिष्ठितं चक्रमिदं सूर्यांशुभिः स्वयम् । सततं स्यात्प्रभायुक्तं कथमध्याहतं भवेत् ॥३८
अहमेतं जपन्नित्यं यजन्ध्यायंश्च शक्तितः । जातोऽस्मि सर्वकामानां पूज्यः श्रेष्ठश्च तेजसा ॥३९
त्वमभ्यस्यैव मनसा वाचा वा कर्मणापि वा । कुरु भक्तिमनेनैव विधिना फलसिद्धये ॥४०
शृणुयाद्भक्तियुक्तो यो नरः श्रद्धासमन्वितः । विधानमादितः पुत्र सप्तमीं कुरुते च यः ॥४१

दीर्घायु, आरोग्य समेत सुखी जीवन प्राप्त होता है तथा अन्त में एक कल्प तक सूर्य का निवास भी प्राप्त होता है ।२९-३०। इस प्रकार जो मनुष्य भक्ति पूर्वक दत्तचित्त होकर सूर्य की केवल मानसिक पूजा करता है तो उसे भी सभी अवस्थाओं में स्वस्थ जीवन प्राप्त हो जाता है ।३१। और सूर्य को नीहार (कुहरा) की भाँति आपत्तियाँ उसे छू तक नहीं सकती । और जो इस विधान को जानते हुए भक्ति पूर्वक फलसिद्धि के लिए सविधि व्रत करते हुए मंत्रों से रक्षित रहते हैं उन्हें क्या कहा जा सकता है (अर्थात् उन्हें असंख्य सुख साधन की प्राप्ति होती है) ।३२-३३। हे साम्ब ! पहले कल्प में कल्याणमय इस कल्प को सूर्य ने मुझसे कहा था और मैंने भी इसे सदैव गुप्त ही रखा था ।३४। हे वत्स ! इसलिए यदि उत्तम फल की कामना हो तो शुद्ध हृदय से इसी विधान द्वारा सूर्य की आराधना करे । ।३५। इन्हीं की प्रसन्नता वश मुझे हजारों पुत्रों की प्राप्ति, असुरों पर विजय एवं सभी देवगण मेरी अधीनता स्वीकार करते है ।३६। अतः तू भी सूर्य-प्रिय इस कल्प को गुप्त रखना, क्योंकि इस कल्प की प्रसन्नता वश सूर्य सदैव मेरे चक्र के समीप ही रहते हैं जिसके द्वारा सुर असुर, मनुष्य और साँपों आदि का पराजय किया है।३७। वे (सूर्य) यदि अपनी किरणों समेत इस चक्र में सन्निहित न रहते तो इसमें इतनी कान्ति एवं हनन की शक्ति कहाँ से होती ।३८। इसीलिए नित्य इनका पूजन, जप और यथाशक्ति ध्यान करता हूँ और इन्हीं की आराधना करने के नाते मनुष्यादि के सभी मनोरथ में तेज के द्वारा श्रेष्ठ और पूज्य हैं।३९। तू भी मन वाणी एवं कर्म द्वारा अपने मनोरथ की सफलता के लिए इसी विधान से इनकी भक्ति करो।४०। हे पुत्र! जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, यह विधि पूर्वक सप्तमी का व्रत करता है उसे

---

१. उक्तमंत्रैश्च रक्षितम् । २. अतंद्रितः ।

सेह[1] प्राप्याऽखिलं काममारोग्यं च जयं तथा। भार्गव्या परया युक्तो गच्छेद्वैरोचनं सदः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महासप्तमीव्रतवर्णनम्

वासुदेव उवाच

माघस्य शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यां सत्कुलोद्वह। एकभक्तं समाख्यातं षष्ठ्यां नक्तमुदाहृतम् ॥१
सप्तम्यामुपवासं तु केचिदिच्छन्ति सुव्रत। षष्ठ्यां केचिद्वदन्तीह सप्तम्यां पारणं किल ॥२
कृतोपवासः षष्ठ्यां तु पूजयेद्भास्करं बुधः। रक्तचन्दनमिश्रैस्तु करवीरैश्च सुव्रत ॥३
गुग्गुलेन महाबाहो संयावेन च सुव्रत। पूजयेद्देवदेवेशं शङ्कर[2] भास्करं रविम् ॥४
एवं हि चतुरो मासान्माघादीन्पूजयेद्रविम्। आत्मनश्चापि शुध्दर्थं प्राशनं गोमयस्य च ॥५
स्नानं च गोमयेनेह कर्तव्यं चात्मशुद्धये। ब्राह्मणान्दिव्यभौमांश्च भोजयेच्चापि शक्तितः ॥६
ज्येष्ठादिष्वथ मासेषु श्वेतचन्दनमुच्यते। श्वेतानि चापि पुष्पाणि शुभगन्धान्वितानि वै ॥७

सभी प्रकार की सफलता आरोग्य, विजय और पूर्व लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तथा कालान्तर में सूर्य के भवन को प्राप्ति होती है ।४१-४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सप्तमी माहात्म्य वर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ।५०।

अध्याय ५१

महासप्तमी व्रत वर्णन

वासुदेव बोले—हे सुव्रत ! कुछ लोगों ने माघ शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में एक बार भोजन, षष्ठी में नक्त व्रत और सप्तमी में उपवास का विधान बताया है तथा कुछ लोगों ने षष्ठी और सप्तमी में पारण का विधान कहा है ।१-२। किन्तु उपवास करके षष्ठी में सूर्य की पूजा रक्त चन्दन और कनेर के फूलों द्वारा अवश्य सुसम्पन्न करनी चाहिए ।३। हे महाबाहो ! उसी भाँति गूगुल तथा लप्सी द्वारा देवाधिदेव शंकर और सूर्य की पूजा करना बताया गया है ।४। इस प्रकार माघ आदि चारों मासों में आत्म-शुद्धि के लिए सूर्य की पूजा करके गोमय का प्राशन (खाना) करना चाहिए इसमें स्नान भी गोमय मिश्रित का ही करके शक्त्यनुसार दिव्य भौमों और ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ।५-६। ज्येष्ठ आदि मासों में श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, सुगन्ध आदि गुगूर का धूप, नैवेद्य और खीर से पूजन करके इन्ही द्वारा ब्राह्मणों को

---

१. अत्र पादपूर्त्यर्थं स इत्यस्य सोर्लोपः । २. ग्रहेशं शंकर रविम् ।

कृष्णागरुस्तथा धूपो नैवेद्यं पायसं स्मृतम् । तेनैव ब्राह्मणांस्तुष्टान्भोजयेच्च महामते ।।८
प्राशयेत्पञ्चगव्यं तु स्नानं तेनैव पुत्रक । कार्तिकादिषु मासेषु अगस्तिकुसुमैः स्मृतम् ।।९
पूजयेन्नरशार्दूल धूपैश्चैवापराजितैः । नैवेद्यं गुडपूपास्तु तथा चेक्षुरसं स्मृतम् ।।१०
तेनैव ब्राह्मणास्तात भोजयस्व स्वशक्तितः । कुशोदकं प्राशयेथाः स्नानं च कुरु शुद्धये ।।११
तृतीये पारणास्यान्ते माघे मासि महामते । भोजनं तत्र दानं च द्विगुणं समुदाहृतम् ।।१२
देवदेवस्य पूजा च कर्तव्या शक्तितो बुधैः । रथस्य चापि दानं तु रथयात्रा तु सुव्रत ।।१३
व्रतस्य प्राप्तिहेतोर्वै कर्तव्या विभवे सति । दानं स्वर्णरथस्येह यथोक्तं विभवे सति ।।
इत्येषा कथिता पुत्र रथाह्वा सप्तमी शुभा ।।१४
महासप्तमी विख्याता महापुण्या महोदया । यामुपोष्य धनं पुत्रान्कीर्तिं विद्यामवाप्नुयात् ।।१५
तथाखिलं कुवलयं चन्द्रेण च समोर्चिषा ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे महासप्तमीव्रतवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५१।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यपूजावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अन्तर्धानं गतो वीरं शाम्बस्येह प्रपश्यतः ।।१

ही संतुष्ट करना चाहिए ।७-८। इसमें पञ्चगव्य द्वारा स्नान और उसी का प्राशन करना बताया गया है। हे पुत्र ! कार्तिक आदि मासों में अपराजित और अगस्त पुष्पों द्वारा पूजन धूप, नैवेद्य, गुड का मालपूआ, और ऊख के रस समर्पित कर इन्ही पदार्थों द्वारा बने भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मणों को भी भोजन यथा शक्ति कराये और शुद्धि के लिए इसमें कुशोदक से स्नान और उसी का प्राशन करना बताया गया है ।९-११। महामते ! तीसरे पारण के अंत में जो माघ के मास में होता है भोजन और दान दुगुने तप में करना बताया गया है ।१२। इसीलिए बुद्धिमानों को अपनी शक्ति के अनुसार देवाधि देव (सूर्य) की पूजा, रथ दान और रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए ।१३। यदि संपत्ति हो तो अपने व्रत की पूर्ति के लिए सुवर्ण का रथ अवश्य बनवाना चाहिए। हे पुत्र ! इस प्रकार रथ नाम वाली सप्तमी को जो पुण्य रूप, महासप्तमी के नाम से विख्यात, महान् अभ्युदय करने वाली एवं जिसमें उपवास रहकर धन, पुत्र, विद्या की प्राप्ति तथा चन्द्र किरणों की भाँति समुज्ज्वल कीर्ति की प्राप्ति होती है मैनें बता दिया है ।१४-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में महासप्तमी वर्णन नामक एक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।५१।

अध्याय ५२

सूर्यपूजा का वर्णन

सुमन्त बोले—इस प्रकार शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् कृष्ण देव साम्ब के

शाम्बोऽपि कृत्वा विधिवत्सप्तमीं रथसप्तमीम् । आदिभिर्व्याधिभिर्मुक्तो जगामाशु स्वमन्दिरम् ।।२

शतानीक उवाच

रथयात्रा कथं कार्या रथः कार्यः रथं रवेः । केनेह मर्त्यलोकेषु रथयात्रा प्रवर्तिता ।।३

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टः पद्मयोनिः प्रजापतिः । रुद्रेण कुरुशार्दूल आसीनः काञ्चने गिरौ ।।४
पद्मासनं पद्मयोनिं सुखासीनं प्रजापतिम् । प्रणम्य शिरसा देवो रुद्रोवाक्यमुदैरयत् ।।५

श्रीरुद्र उवाच

य एष भगवान्देवो भास्करो लोकभास्करः । कथमेष भ्रमेद्देवो रथस्थो विमलः सदा ।।६

ब्रह्मोवाच

यथा दिवि भ्रमेत्तात रथारूढो रविः सदा । तथा ते वर्तयिष्येऽहं रथं चास्य त्रिलोचन ।।७
रथेन ह्येकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना । हिरण्मयेन कान्तेन अष्टबन्धैकनेमिना ।।८
चक्रेण भास्वता चैव दिवि सूर्यः प्रसर्पति । दशयोजनसाहस्रो विस्तारोऽप्यस्य कथ्यते ।।९
त्रिगुणा च रथोपस्थादीषा दण्डप्रमाणतः । युगमस्य तु विस्तीर्णमरुणो[1] यत्र सारथिः ।।१०

देखते देखते अन्तर्धान हो गये ।१। साम्ब ने भी विधि पूर्वक रथ सप्तमी वाली सप्तमी के व्रत आदि द्वारा शारीरिक रोगों से मुक्त होकर अपने मन्दिर को प्रस्थान किया ।२।

शतानीक बोले—सूर्य देव के रथ का निर्माण एवं रथयात्रा कैसे की जाती है और सर्वप्रथम इस भू-लोक में किसने यह रथ यात्रा आरम्भ की है ।३

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! किसी समय ब्रह्मा से इसी बात को जो इस समय सुमेरु पर्वत पर सुखासीन थे भगवान् रुद्र देव ने पूछा था ।४। सुख पूर्वक बैठे हुए प्रजापति (ब्रह्मा) को, जो कमल पर स्थित एवं कमल से उत्पन्न हुए हैं शिर से नमस्कार करके शिव ने पूछना आरम्भ किया ।५

श्रीरुद्र ने कहा—भगवान् सूर्य जो लोक को प्रकाशित करते हैं सदैव किस प्रकार के स्वच्छ रथ पर स्थित होकर घूमते हैं ? ।६

ब्रह्मा बोले—हे तात ! जिस भाँति के रथ पर बैठकर सूर्य आकाश में सदैव घूमते हैं मैं उनका तथा उनके रथ को बता रहा हूँ ।७। सूर्य प्रदीप्त चक्र वाले उस रथ पर जिसमें देदीप्यमान एक चक्र (चक्का) पाँच आरा, तीन नाभि सौन्दर्य पूर्ण सुवर्ण के आठ बन्धनों से युक्त एक नेमि एवं दश हजार योजन का लम्बे चौड़े (रथपर) बैठकर आकाश में सदैव घूमते हैं ।८-९। रथ के उपस्थ पीछे भाग से ईषा (हरसा) दण्ड प्रमाण के अनुसार तिगुना है और रथ का युग (जुआ), जिस पर अरुण बैठते हैं अत्यन्त चौड़ा है।१०।

---

१. भार्गव्यां न विजायते ।

प्रासङ्गः कांचनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः । छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतश्चक्रं ततः स्थितैः ॥११
येनासौ पर्यटेद्व्योम्नि भास्वता तु दिवस्पतिः । अथैतानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ॥१२
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् । [1]नाभ्यस्तिस्रस्तु चक्रस्य त्रयः कालाः प्रकीर्तिताः ॥१३
आराः पञ्चर्तवस्तस्य नेम्यः षड्ऋतवः स्मृताः । रथवेदी स्मृते तस्य अयने दक्षिणोत्तरे ॥१४
मुहूर्ता[2] इषवस्तस्य शम्याश्चास्य कलाः स्मृताः । तस्य काष्ठाः स्मृताः कोणा अक्षदण्डः क्षणाः स्मृताः ॥१५
निमेषाश्चास्य कर्षाः स्यादीषादण्डो लवाः स्मृताः । रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्ध्वं प्रतिष्ठितः ॥१६
युगाक्षिकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ । अश्वरूपाणि च्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुरम् ॥१७
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुबेव च । पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमी ॥१८
चक्रमक्षनिबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः । सहचक्रो भ्रमत्यक्षः स चाक्षो भ्रमति ध्रुवे ॥१९
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवे स्थितः । एवमक्षवशात्तस्य[3] सन्निवेशो रथस्य तु ॥२०
तथा संयोगभावेन संसिद्धो भास्करो रथः । तेन चासौ रविर्देवो नभः संसर्पते सदा ॥२१
युगाक्षकोटीसम्बद्धे द्वे रश्मी स्यन्दनस्य तु । ध्रुवे ते भ्रमतो रश्मी न चक्रयुगयोस्तु वै ॥२२
भ्रमतो मण्डलान्यस्य रवेरस्य रथस्य तु । कुलालचक्रवद्याति[4] मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥२३
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु । ऋग्यजुर्भ्यां गृहीतेन त्रिचक्राश्वेन वै ध्रुवे ॥२४
ह्रसेते तस्य रश्मी तु मण्डलेषूत्तरायणे । दक्षिणेऽथ समृद्धे तु भ्रमतो मण्डलानि तु ॥२५

उसमें पवन की भाँति अत्यन्त वेगवाले घोड़े, जो छन्दोरूप हैं जुते हुए हैं, उनके कंधे पर सुवर्णमय जूआ स्थित है। उन्हीं के द्वारा दिन नायक (सूर्य) चमकते हुए आकाश में घूमते रहते हैं। संवत्सर (वर्ष) के सभी सभी अंग (अवयव) इसके (सूर्य के रथ के) अंग हैं, तीनों काल चक्र की तीनों नाभि, पाँच ऋतु आरा (आरागज) छठीं ऋतु नेमि, दक्षिणायन एवं उत्तरायण दोनों रथ की वेदी (बैठने के स्थान) हैं, मुहूर्त, इषव, कलाएँ, शम्य (जुए की कील) बतायी गई हैं तथा दिशाएँ कोना, क्षण, अक्षदण्ड, निमेष, कर्ष, लव, ईषा, दण्ड, रात, वरूथ (रथ में बैठने का गुप्त स्थान), धर्म ध्वजा एवं अर्थ और काम धुरी के अग्रभाग हैं। छन्दोरूप घोड़े उसमें बाईं ओर जुतकर उसके धुरे को ले चलते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती एवं उष्णिक् यही सात घोड़े हैं। धुरी पर चक्का घूमता है, वह धुरी ध्रुव में लगी है और उस धुरी में चक्का लगा है, चक्के के साथ धुरी ध्रुव में लगी हुई घूमती हैं तथा उसी के द्वारा रथ चलता है।११-२०। इस प्रकार एक-दूसरे में संयुक्त होकर सूर्य का रथ, जिसमें बैठकर (सूर्य देव) आकाश में चलते हैं, तैयार हुआ है।२१। जुए और धुरी में बंधी दो रस्सियाँ (घोड़े की बाग) रथ में रहती हैं वे घूमती नहीं हैं।२२। घूमते हुए सूर्य के रथ का मंडल (गोलाई) कुम्हार के चक्के की भाँति चारों दिशाओं में पहुँचता है।२३। दाहिनी ओर रथ के जुए और धुरी को ऋग्वेद एवं यजुर्वेद धारण किये हैं।२४। सूर्य के घूमते हुए उत्तरायण में रश्मि (बाग) न्यून और दक्षिणायन में वृद्धि प्राप्त करती है।२५।

---

१. नेमयस्तस्य। २. अमर्तं बन्धनं तस्य सावाश्चास्य कलाः स्मृताः। ३. चक्रमस्याब्जवंशं तु सन्धिदेशे रथस्य तु। ४. कुलालचक्रवत्तस्य भ्रमंते मंडलानि तु।

युगाक्षकोटी ते तस्य भ्रमेते स्यन्दनस्य तु । सक्तासक्तं च भ्रमते मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥२६
आकृष्येते ध्रुवणेह समं तिष्ठति सुव्रत । तदा साम्यन्तरं देवो भ्रमते मण्डलानि तु ॥२७
ध्रुवेण मुच्यमाने तु पुना रश्मियुगेन वै । तथैव[1] वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥२८
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोरपि । सरथाधिष्ठितो देवैर्विभ्रमेदृषिभिः सह ॥२९
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सर्पग्रामणिराक्षसैः । एतैर्वसति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण तु ॥३०
धातार्यमा पुलस्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः । खण्डको वासुकिश्चैव सकर्णो रश्मिरेव च ॥३१
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ । क्रतुस्थलाप्सरश्चैव या च सा पुञ्जिकस्थला ॥३२
ग्रामणीरथकृत्स्नश्च रथौजाश्चतरावुभौ । रक्षोहेतिः प्रहेतिश्च यातुधानौ च तावुभौ ॥३३
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे । तथा ग्रीष्मौ तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ॥३४
ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च तक्षकोऽनन्त एव च । मेनका सहजन्या च गंधर्वो च हहा हूहूः ॥३५
रथस्वनश्च ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानौ महाबलौ ॥३६
शुचिशुक्रौ तु द्वौ मासौ वसन्त्येते दिवाकरे । इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥३७
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगाः । प्रम्लोचा दुन्दुकाश्चैव गन्धर्वौ भानुदर्दुरौ ॥३८
यातुधानौ तथा सर्पस्तथा ब्राह्मश्च तावुभौ । एते नभो नभस्यौ च निवसन्ति दिवाकरे ॥३९
शरद्येते पुनः शुभ्रा निवसन्ति स्म देवताः । पर्जन्यश्चैव पूषा च भारद्वाजः सगौतमः ॥४०

इस प्रकार रथ का चक्का एवं धुरी द्वारा घूमते हुए रथ का मण्डल (गोलाकार) सक्तासक्त होकर चारों दिशाओं में पहुँचता है ।२६। ध्रुव द्वारा रश्मि आकृष्ट होती रहती है (तन जाती हैं) क्योंकि वह ध्रुव के समान ही सदैव रहती है। हे सुव्रत ! उस समय सूर्य उसके भीतर बैठकर गोलाकार घूमते हैं।२७। ध्रुव से पृथक् दोनों घोड़े की बाग द्वारा रथ और उसके द्वारा सूर्य घूमते रहते हैं। इस प्रकार दक्षिणायन और उत्तरायण में घूमते हुए (सूर्य के) एक सौ अस्सी मंडल होते हैं। सूर्य के साथ देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, साँप और प्रधान राक्षस गण ये सभी दो-दो मास तक वहाँ क्रमशः स्थित रहते हैं।२८-३०। जिस प्रकार धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, खण्डक, वासुकी, कर्ण समेत रश्मि, तुम्बुरु, नारद, गान कुशल दोनों गंधर्व, क्रतुस्थला, पुंजिक स्थला, ग्रामणी, रथकृत्स्न, (रथौजा) दोनों घोड़े, रक्षोहेति एवं प्रहेति यातुधान ये सभी गण चैत्र और वैशाख मास में सूर्य के समीप स्थित रहते हैं।३१-३४। उसी प्रकार जेठ, आषाढ़ में मित्रावरुण, अत्रि, वशिष्ठऋषि, तक्षक, अनंत, साथ उत्पन्न होने वाली मेनका, हाहा-हूहू गन्धर्व, रथस्वन एवं रथचित्र ये दोनों ग्रामणी एवं पौरुषेय और वध दोनों यहाँ बलवान यातुधान भी, जेठ और आषाढ मास में उनके समीप स्थित रहते हैं। वर्षा काल में, इन्द्र, विवस्वान्, अंगिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प तथा शंखपाल नामक साँप, पुम्लोचा, दुंदुका गन्धर्व, भानु और दुर्दुर यातुधान सर्प, व्रह्मा, नभ एवं नभस्वान् सूर्य के निकट रहते हैं ।३५-३९। शरद् में धवल देवगण, पर्जन्य, पूषा, भारद्वाज, गौतम, चित्रसेन गंधर्व, वसुरुचि, विश्वाची,

---

१. रथेन वाह्यते सूर्यः ।

चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वसुरुचिश्च यः । विश्वाची च घृताची च ते उभे पुण्यलक्षणे ।।४१
नागस्त्वैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः । सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीस्तथा ।।४२
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रकीर्तितौ । वसन्त्येते तु वै सूर्ये इषोर्जौ कालपर्ययात् ।।४३
हैमंतिकौ तु द्वौ मासौ वसन्त्येते दिवाकरे । अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुस्तथा ।।४४
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा । आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रकीर्तितौ ।।४५
चित्राङ्गदश्च गन्धर्वोऽरुणायुश्चैव तावुभौ । सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ।।४६
पूषा जिष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च । काद्रवेयौ महानागौ कम्बलाश्वतरावुभौ ।।४७
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ । तिलोत्तमा च रम्भा च सर्वलोके च विश्रुते ।।४८
[1]ग्रामणीः सेनजिच्चैव सत्यजिच्च महातपाः । ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञो यज्ञस्तथैव च ।।
एते तपस्तपस्ये च निवसन्ति दिवाकरे ।।४९
अन्येऽपि ये मन्देहा राक्षसाधिपतयो देवदेवगुप्ततमस्य रक्षार्थं सकल देवैरस्मदादिभिः-
सन्नियुक्तास्तान्भवते कथयामि ।।५०

रुद्र उवाच

वद ब्रह्मन्कथां दिव्यां यामहं प्रष्टुमागतः । तामेव विस्तरेणैव कथयाशु मम प्रभो ।।५१
दिविष्ठं भास्करं दृष्ट्वा नमेत्केन विधानतः । किं फलं तस्य वा देव समाप्ते भवति कर्मणि ।।५२

ब्रह्मोवाच

शृणु रुद्र समासेन भास्करस्य नतिक्रियाम् । यां कृत्वा रोगदुःखार्ता मुच्यन्ते पापसञ्चयात् ।।५३
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः । सद्यो गोमयलिप्ते च तत्रैवावाहयेद्रविम् ।।५४

घृताची, ऐरावत हाथी; धनंजय, सेनजित्, सुषेण, सेनानी, ग्रामणी और वात नामक दोनोंयातुधान सूर्य के समीप रहते हैं ।४०-४३। हेमंत में अंग, भग, कश्यप, क्रतु, भुजंग, महापद्म, कर्कोटक, आप और वात नामक दोनों यातुधान, चित्रांगद, तथा अरुणायु गन्धर्व उनके समीप रहते हैं । शिशिर में पूषा, जिष्णु, जमदग्नि, विश्वामित्र, कद्रू के कम्बल, अश्वतर नामक पुत्र गन्धर्व, घृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, तिलोत्तमा, रम्भा, सेनजित्, सत्यजित् एवं ब्रह्मा समेत यज्ञ ये सभी तप करने की भाँति सूर्य के साथ स्थित रहते हैं ।४४-४९। इसी प्रकार देवाधिदेव (सूर्य) के रक्षा के लिए हम सभी देवों द्वारा नियुक्त मंदेह नामक राक्षसों के गण को जो राक्षसों के अधिपति हैं कह रहा हूँ ।५०

रुद्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिस दिव्य कथा को पूछने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, उसे विस्तारपूर्वक शीघ्र मुझे बताने की कृपा करें ।५१। आकाश में सूर्य को देखकर किस विधि से नमस्कार करना चाहिए और उसके करने से किस फल की प्राप्ति होती है ।५२

ब्रह्मा बोले—हे रुद्र ! सूर्य को नमस्कार करने की विधि को, जिसके द्वारा रोग, दुःख एवं पापसमूह से (लोग) मुक्त होते हैं, मैं कह रहा हूँ, सुनो ।५३। भूमि में बारह अंगुल का मंडल (गोलाकार) बनाकर

---

१. ग्रामाणीर्वातजिच्चैव सत्यजिच्च महावलौ ।

पूजयित्वा गणेशादीन्वासुदेवं च सात्यकिम् । सत्यभामां तथा लक्ष्मीमुमां देवीं च शङ्करम् ।।५५
मण्डलस्य समीपस्थान्पूर्वोक्तान्वेदमन्त्रवित् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवत्प्रणमेत्सकृत् ।।५६
शतं सहस्रमयुतं लक्षं वा निजपापतः । दृष्ट्वा शक्तिं प्रणम्याथ सदा संयतमानसः ।।५७
विप्राय दक्षिणां दद्यान्निरुन्छ्वासः समाहितः । रक्तिके च हिरण्यस्य शतमात्रे सहस्रके ।।५८
माषकाणां चतुष्कं चायुतं दशगुणं दिशेत् । दक्षे दशगुणं प्रोक्तं दद्याद्रोगविमुक्तये ।।५९
एवं कृते विरूपाक्ष सर्वरोगाद्विमुच्यते । इदं रहस्यं परमं शृणुयाद्यो हि मानवः ।।६०
तस्य रोगा विनश्यन्ति मार्तण्डस्य प्रसादतः । अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि यच्चापृष्टमुमापते ।।
तच्छृणुष्व मया प्रोक्तं रथयन्तृनियामकम् ।।६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सूर्यवर्णनं नाम द्विपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।५२।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्रारुणो मया पूर्वं सारथ्ये सन्नियोजितः । इन्द्रेण माठरो नाम वायुना कल्मषेण तु ।।१

उसे गोमय से शुद्ध करके पश्चात् उसमें सूर्य का आवाहन करें । और गणेश आदि वासुदेव, सात्यकि, सत्यभामा, लक्ष्मी, उमा देवी, एवं शंकर को मंगल के समीप आवाहित कर प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें तथा सूर्य को साष्टांग दण्डवत् की भाँति एक बार प्रणाम करे ।५४-५६। अपने पाप के अनुसार तथा संयमपूर्वक सौ, सहस्र, दशहजार एवं लक्ष प्रणाम करना चाहिए।५७। पश्चात् विप्र को दक्षिणा भी देने का विधान है। पर उसमें लम्बी साँस न निकालें अर्थात् पश्चात्ताप न करें । शत बार प्रणाम करने पर दो रती सुवर्ण, सहस्र बार प्रणाम करने पर चार माशा सुवर्ण, दश हजार बार में उसका दशगुना और लक्ष बार प्रणाम करने में उसके दशगुना सुवर्ण का दान करना चाहिए जिससे रोग एकदम शांत हो जाये ।५८-५९। हे विरूपाक्ष ! इसी भाँति सविधान इसे सुसम्पन्न करने पर सभी रोग शांत हो जाते हैं और इस परम रहस्य को जो मनुष्य सुनते हैं मार्तण्ड की प्रसन्नतावश उसके सभी रोग शांत हो जाते हैं। हे उमापते ! इस प्रकार अन्य रथ, सारथी एवं उसके नियामक को जिसका प्रश्न ही नहीं किया गया है, मैं उसे भी बता रहा हूँ, सुनो ! ।६०-६१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य पूजा वर्णन
नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त।५२।

अध्याय ५३

सूर्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उस (सूर्य के) रथ में सर्वप्रथम मैंने अरुण को सारथी बनाकर नियुक्त किया है, उसी

वैनतेयेन ताक्ष्योंपरि विमलो नखतुण्डप्रहरणः पुरोगामी नियुक्त इति ॥
कालेन दण्डो महादण्डायुधो भवता शेषा महागणाधिपः ॥२

वैशाखेन राज्ञा वसुभिदायुधाङ्गारिकौ द्वौ अग्निना पिङ्गलः ।
संयन्ता महादण्डायुधो भवता शेषो महागणाधिपः ॥३

हस्तो यमेन पाशहस्तोम्बुपतिना समिन्धनः । अलकाधिपतिना विष्णुः ॥४
अश्विभ्यां कालोपकालौ वाक्षप्रधानकौ । नरनारायणाभ्यां क्षारौ धारौ धिषणकृष्णौ ॥५
वैराजशङ्खपालपर्जन्यरजसा दिशासु विदिशासु दिशां पालनं विश्वेदेवा ददुः ॥६
सप्तैता लोकमातरः सर्वमरुतोऽवदन् । ओंकारो वषट्कारो वेदनिस्वनः पिनाकी
विनायकः शेषोऽनन्तो वासुकिश्च नागसहस्रेणात्मतुल्येनादित्यस्य रथमनुयान्ति[1] ॥७

गायत्री सावित्री रथे स्थिते उभे सन्ध्ये सदा या देवता या रविमण्डलं नापैति[2] ।
भगवन्तं सहस्रकिरणमवलम्बितुम् ॥८
एतद्वै सर्वदैवत्यं मण्डलं ब्रह्मवादिन ब्रह्मयज्ञवादिनीं यज्ञः ।
भगवद्भक्तानां परमादित्योयं विष्णुर्माहेश्वराणाम् ॥९

स्थानाभिमानिनो ह्येते सदा वै वृषभध्वज । सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसां तेज उत्तमम् ॥१०
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ते ऋषयो रविम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥११

भाँति इन्द्र ने माठर, वायु ने नाग एवं गरुड़ ने ताक्ष्र्य को, जो नख और चोंच रूपी अस्त्र धारण कर सामने उड़ते चलते हैं, नियुक्त किया है। और काल ने सूर्य को महादंड, अर्पित किया है तदनुसार वसु ने भेदन करने वाला आयुध एवं आंगारिक, अग्नि ने पिंगल, यम ने दंडायुध, वरुण ने पाश, कुबेर ने विष्णु, अश्विनी कुमारों ने काल और उपकाल, नर-नारायण ने वाक्ष एवं प्रधान, विश्वेदेवों ने अर्पित किये हैं भिषण तथा कृष्ण, वैराज, शंखपाल, और पर्जन्य को दिशाओं और उपदिशाओं (दोनों) के रक्षार्थ प्रदान किये हैं। १-६। उसी भाँति सप्त मातृकाओं ने भी सभी मरुत, वेदों ने ओंकार-वषट्कार, शिव ने विनायक तथा शेष ने अनन्त और वासुकी नामक साँपों को दिये हैं, जो हजारों नागों के समान बलवान् हैं और सभी सूर्य के रथ का सदैव अनुगमन करते रहते हैं। ७। इस प्रकार गायत्री, सावित्री एवं दोनों संध्याएँ आदि अन्य कोई ऐसे देव नहीं हैं, जो भगवान् सूर्य के मंडल का, जिसमें हजारों किरणें निकलती रहती हैं सदा अनुगमन न करते हों। ८। समस्त देवतागणों का यह सुरचित मंडल है, इसमें ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप, याज्ञिक लोग यज्ञ, विष्णुभक्त परमादित्य विष्णु की और महेश्वर भद्रेश्वर की भावना रखते हैं। ९। हे वृषभध्वज ! तेजस्वी सूर्य को प्राप्त कर ये सभी गण अपने-अपने स्थान के महत्त्व का अभिमान करते हैं। और तेजस्वी सूर्य के तेज को बढ़ाते हैं। इतना ही नहीं ऋषिगण भी अपनी स्तुतियों द्वारा, गन्धर्व और अप्सराएँ, नृत्य, गान द्वारा सूर्य की स्तुति और उपासना करती हैं। १०-११। ये लोग आकाश में चलते

---

१. उन्नयन्ति। २. चोपैति।

वियद्भ्रमणतो रक्षां कुर्वंतिस्म इषुग्रहम् । सर्पा वहन्ति वै सूर्यं यातुधानास्तु यान्ति च ॥१२
वालखिल्या [1]नमन्त्येतं परिचार्योदयाद्रविम् । दिवस्पतिः स्वभूश्चोभौ अग्रगौ योजनस्य तु ॥१३
भर्गोऽथ दक्षिणे पार्श्वे कञ्जजो वामतः स्थितः । सर्वे ते पृष्ठगा ज्ञेया ग्रहा लोकेषु पूजिताः ॥१४
उपरागशिखी चोभावग्रतो नात्र संशयः । मनुष्यधर्मा दक्षिणत उत्तरेण प्रचेतसः ॥१५
सम्भवन्ति तथा कृष्ण उभावेतौ सदाग्रगौ । वामेन वीतिहोत्रस्तु पृष्ठतस्तु हरिः सदा ॥१६
रथपीठे क्षमा ज्ञेया अन्तराले नभस्तथा । आश्रित्य रथजां कान्तिं खं दिवः समयः स्थितः ॥१७
ध्वजो दण्डश्च विज्ञेयो ध्वजाग्रे वृष एव च । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा श्रीश्च पताका पार्वतीप्रिय ॥१८
ध्वजदण्डाग्रे गरुडस्तदग्रे वरुणालयः । मैनाकश्छत्रदण्डस्तु हिमवांश्छत्रमुच्यते ॥१९
केचिदेवं वदन्तीह लोके चान्ये महामते । छत्रदण्डस्तथा क्लेशः क्लेशं छत्रं विदुर्बुधाः ॥२०
एतेषामेव देवानां यथा वीर्यं तथा तपः । यथायोगं तथा सत्त्वं यथा सत्त्वं तथा बलम् ॥२१
तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धः स्वतेजसा । एते तपन्ति वर्षन्ति यान्ति विश्वं सृजन्ति च ॥२२
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्ति च कीर्तिताः । एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ते सानुगा दिवि ॥२३
तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै द्विजाः । गोपायन्ति स्म भूतानि इह ते ह्यनुकम्पया ॥२४
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमेन सूक्तेन विवर्धयित्वा ।

हुए सूर्य की रक्षा करते हैं, साँप रश्मि बनकर रथ का वहन तथा राक्षसगण रथ के पीछे-पीछे चलते हैं और बालखिल्य गण सेवा के बहाने चारों ओर से उन्हें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार दिवस्पति एवं स्वयंभू ये दोनों रथ के आगे-आगे एक योजन की दूरी पर स्थित रहते हैं।१२-१३। तथा भर्ग दाहिनी ओर और ब्रह्मा बाँई ओर और सभी ग्रह उनकी दाँई ओर क्रमशः स्थित रहकर चलते हैं।१४। राहु, केतु, रथ के सामने चलते हैं, कुबेर दक्षिण, वरुण उत्तर चलते हैं इस प्रकार ये दोनों तथा कृष्ण आगे ही रहते हैं एवं वीतिहोत्र बाईं ओर, तथा हरि पीछे-पीछे चलते हैं।१५-१६। हे पार्वतीप्रिय ! उस रथ के पीठ स्थान में पृथिवी, मध्य में आकाश, रथ की कान्ति में स्वर्ग, ध्वजा में दण्ड, उसके (ध्वजाग्रमें) सामने धर्म, तथा ऋद्धि-सिद्धि, श्री, पताका और गरुड़ ध्वजदण्ड के सामने रहते हैं एवं उनके सामने वरुण का निवास रहता है। हे महामते ! मैनाक उनके छत्र का दण्ड और हिमवान छत्र हैं। यही अधिकांश लोगों की सम्मति है।१७-१९। किन्तु लोगों का मत है कि क्लेश ही छत्रदंड तथा छत्ररूप है।२०

इन देवताओं के शक्ति के अनुसार तप, तपके अनुसार सत्व एवं सत्व के अनुसार बल है।२१। और इन्हीं के बलानुसार सूर्य सदैव अपने तेज से तपते हैं। इसी भाँति ये समस्त देवगण तपते हैं तथा वर्षा करते हैं तथा विश्व की रचना करते हैं।२२। उसी भाँति जीवों के अशुभ कर्मों का नाश तथा आकाश में सूर्य के साथ भ्रमण किया करते हैं।२३। ब्राह्मणवर्ग भी अपने तप तथा जप द्वारा प्रसन्न करते हुए तुम्हारी अनुकम्पा से जीवों की रक्षा करते हैं।२४। यद्यपि सूर्य अपनी किरणों द्वारा अमृतमय चन्द्र की जो क्रमशः दिन व्यतीत करते हुए शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को पूर्ण होते है, वृद्धि करके उसे कृष्ण पक्ष में देवताओं को

---

१. नयंत्यस्तम् ।

शुक्लेन पूर्णा दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ॥२५
पीतं हि सोमं द्विकलावशेषं कृष्णे तु पक्षे रुचिभिर्ज्वलन्तम् ।
सुधामृतं तत्पितरः पिबन्ति ऊर्जाश्च सौम्याश्च तथैव कव्याः ॥२६
सूर्येण गोभिश्च समृद्धिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुज्झिताभिः ।
तथौषधीभिः सततं पिबन्ति अत्यन्तपानेन क्षुधा जयन्ति ॥२७
मासार्धतृप्तिस्तु मताभिरद्भिर्मासेन तृप्तिः स्वधया पितॄणाम् ।
अन्नेन शश्वद्दिदधाति मर्त्यं स्त्वयं जगच्चैव बिभर्ति गोभिः ॥२८

अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन् । सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभिश्च हयैः सह ॥२९
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः । कामरूपैः सकृद्युक्तैरन्तरस्थैर्मनोजवैः ॥३०
हरिभिरव्ययैर्वश्यैः क्षुधाश्रमविवर्जितैः । द्व्यशीतिमण्डलशतमीहन्त्यब्देन वै हयाः ॥३१
बाह्यतोऽभ्यन्तरं चैव मण्डलं दिवसक्रमात् । कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥३२
आवृता बालखिल्यैस्तैर्भ्रमति तान्यहानि तु । ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३३
सेव्यते नृत्यगीतैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः । पतङ्गः पतगैरश्वैर्वसते भ्रमयन्दिवि ॥३४
वीथ्याश्रयया विचरते नक्षत्राणि यथा शशी । मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ॥३५
वैवस्वते संयमने उत्तिष्ठन्दृश्यते तदा । सुखायामर्धरात्रं तु विभायामस्तमेति च ॥३६

पान कराते हैं और इस प्रकार अमृतपान के द्वारा वे देवों को सदैव संतुष्ट रखते हैं।२५। तथापि (देवों के) अमृत पान करने पर मनोरम कांतियों से पूर्ण दो कलायें कृष्ण पक्ष में शेष रह जाती हैं। जिसे तेजस्वी एवं सौम्य पितर लोग पान करते हैं।२६। सूर्य (अपनी किरणों द्वारा) जलपूर्ण पृथिवी के रस (जल) को लेकर फिर (वृष्टि रूप में) उसे त्याग देते हैं, जिसके द्वारा इस प्रकार की औषधि उत्पन्न होती है जो पान करने पर क्षुधा को एकदम शांत कर देती है। उसे पितरगण पान करते हैं।२७। उस वृष्टि के जल के द्वारा एक पक्ष में और स्वधा द्वारा दिये हुए जल से पूरे मास में पितर लोग तृप्त होते हैं एवं उससे समृद्ध अन्नों द्वारा नित्य मनुष्यों की तृप्ति होती है। इसी प्रकार अपनी किरणों द्वारा सूर्य समस्त जगत् का पालन-पोषण करते रहते हैं।२८। इसी भाँति एक चक्के वाले रथ पर जिसमें सात घोड़े जुते हुए हैं, बैठकर सूर्य सातों द्वीप के समुद्र-पार की यात्रा अहोरात्र में सम्पन्न करते हैं।२९। सूर्य उस (रथ में जुते हुए) घोड़े द्वारा, जो छन्दोरूप, सौन्दर्यपूर्ण, मन की भाँति शीघ्रगामी, सदैव महाशक्तिशाली, वशीभूत, भूख-प्यास से सैदव मुक्त रहते हैं, पूर्ण वर्ष में एक सौ वयासी मंडल की यात्रा करते हैं।३०-३१। इस प्रकार दिवस के क्रम से (वे घोड़े) कल्प के आरम्भ काल में यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं और महाप्रलय तक उसी भाँति बाहरी एवं भीतरी मंडल को बनाते एवं चलते रहते हैं।३२। उस समय जिस भाँति सूर्य के चारों ओर घेरे हुए बालखिल्य, स्तुति करते हुए महर्षि लोग और नृत्य-गान द्वारा सेवा करती हुई अप्सराएँ तथा गन्धर्व लोग स्थित रहते हैं ऐसे ही चन्द्र की भाँति नक्षत्रों को पार करते हुए सूर्य भी आगे बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा आकाश में सूर्य घूमते रहते हैं। सूर्य द्वारा अमरावती में जब मध्याह्न (दोपहर) होता है, तो उस समय, संयमनी (यमपुरी) में सूर्योदय, (वरुण की) सुखा नगरी में आधीरात

वैवस्वते संयमने मध्यमस्तु रविर्यदा । सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन्दृश्यते तदा ॥३७
रात्र्यर्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य वै । सोमपुर्यां विभायां तु मध्यगश्चार्यमा यदा ॥३८
माहेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति दिवाकरः । अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥३९
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु मेरोः कुर्वन्प्रदक्षिणम् । उदयास्तमने चासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ॥४०
पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ पुनः । तपत्येकं तु मध्याह्ने ताभिरेव गभस्तिभिः ॥४१
उदितो वर्धमानाभिरामध्याह्नात्तपेद्रविः । ततः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति ॥४२
यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यः स तेषामुदयः स्मृतः । प्रणाशं गच्छते यत्र स तेषामस्तमुच्यते ॥४३
एवं पुष्करमध्येन तदा सर्पति भास्करः । त्रिंशद्भागं तु मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति ॥४४
योजनाग्रेण सङ्ख्यां[1] तु मुहूर्तस्य निबोध मे । पूर्णं शतसहस्राशं सहस्रं तु त्रिलोचन ॥४५
पञ्चाशच्च तथाल्पानि सहस्राण्यधिकानि तु । मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्दस्य तु विधीयते ॥४६
योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । निमेषान्तरमात्रेण दिवि सूर्यः प्रसर्पति ॥४७
स शीघ्रमेव पर्येति भास्करोऽलातचक्रवत् । भ्रमन्वै भ्रममाणेषु ऋक्षेषु विचरत्यसौ ॥४८
इन्द्रः पूजयते सूर्यमुत्तिष्ठन्तं दिने दिने । मध्याह्ने च यमः पश्चादस्तं यान्तमपां पतिः ॥४९
सोमस्तथार्धरात्रे तु सदा पूजयते रविम् । विष्णुर्भवानहं रुद्रः पूजयाम निशाक्षये ॥५०

एवं (चन्द्र की) विभापुरी में सूर्यास्त होता है।३३-३६। उसी भाँति संयमनी में जिस समय मध्याह्न होता है, उस समय सुखानगरी में सूर्योदय, अमरावती में आधी रात तथा संयमनी में सूर्यास्त होता है। और विभा में जिस समय मध्याह्न होता है, उस समय अमरावती में सूर्योदय, संयमनी में आधी रात और (वरुण की) मुखा नगरी में सूर्यास्त होता है।३७-३९। इस प्रकार मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य का बार-बार उदय और अस्त होता है।४०। दिन का पूर्वार्द्ध (पूर्व भाग) और अपराह्ण (उत्तर भाग) रूप दो देवालय हैं, उनके मध्य में सूर्य अपनी प्रखर किरणों द्वारा तपता है।४१। (सूर्य) उदय काल से मध्याह्न तक अपनी, वृद्धि प्राप्त किरणों द्वारा तपते रहते हैं तथा दूसरे समय क्षीण किरणों द्वारा अस्त होते हैं।४२। उदय होते हुए (सूर्य) जिस दिशा में दिखाई पड़े वह उदय (पूर्व) दिशा और जहाँ अस्त होते हुए दिखाई दे वह अस्त (पश्चिम) दिशा होती है।४३। इस प्रकार सूर्य, पुष्कर के मध्य भाग होकर चलते हैं और वे एक मुहूर्त में पृथिवी के विस्तार प्रमाण के तीसवें भाग के समान दूरी की यात्रा कर पाते हैं।४४। हे त्रिलोचन ! इस भाँति योजन के प्रमाण से सूर्य डेढ़ लाख योजन की यात्रा एक मुहूर्त में करते हैं और उनकी एक क्षण की यात्रा दो हजार दो सौ योजन की होती है।४५-४७। अलात चक्र की भाँति अत्यन्त शीघ्र गति से सूर्य घूमते हुए नक्षत्रों के मध्य होकर चलते हैं।४८। उनके उदय काल में इन्द्र, मध्याह्न में यम, अस्त काल में वरुण और अर्धरात्र में चन्द्रमा सूर्य की पूजा करते हैं। हे देवशार्दूल !

---

१. संरक्षाम्। २. त्रिंशच्छतसहस्राणाम्। ३. पूजयन्ति, पूजयामः।

एवमग्निर्निर्ऋतिश्च वायुरीशान एव च । पूजयन्ति क्रमेणैव भ्रममाणं दिवाकरम् ।।
श्रेयोऽर्थं देवशार्दूल सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे सूर्यगतिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५३।

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यमहिमवर्णनम्

रुद्र उवाच

अहो हंसस्य माहात्म्यं वर्णितं भवतेदृशम् । कथ्यतां पुनरेवेदं माहात्म्यं भास्करस्य तु ।।१

ब्रह्मोवाच

आदित्यमन्त्रमखिलं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।२
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रत्रिदिवौकसाम् । महाद्युतिमतां कृत्स्नं तेजो यत्सार्वलौकिकम् ।।३
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एष त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ।।४
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।५

इसी प्रकार रात व्यतीत होने पर विष्णु, आप (जल) तथा रुद्र, अग्नि, राक्षस, वायु, ईशान एवं ब्रह्मादिक देव क्रमशः सभी सूर्य की पूजा करते हैं ।४९-५१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में सूर्य गति वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।५३।

अध्याय ५४

सूर्य की महिमा का वर्णन

रुद्र ने कहा—आपके मुख से इस प्रकार सूर्य के माहात्म्य को सुनकर मेरी अभिलाषा बढ़ रही है मैं चाहता हूँ कि इनके माहात्म्य को आप फिर मुझे सुनायें ।१

ब्रह्मा बोले—तीनों लोकों की जिसमें चर एवं अचर सभी हैं, रचना में मूल कारण आदित्य का मन्त्र ही है। इन्हीं से समस्त जगत्, जिसमें देव, असुर और मनुष्य हैं, उत्पन्न हुआ है ।२। इस प्रकार रुद्र, इन्द्र, विष्णु और चन्द्र आदि देवताओं में इन्हीं महातेजस्वी (सूर्य) का तेज निहित है, क्योंकि इनका तेज सभी लोकों में व्याप्त है ।३। सभी की आत्मा, समस्त लोकों के स्वामी, देवाधिदेव, एवं प्रजापति होने के नाते सूर्य तीनों लोकों के महान् देवता हैं ।४। क्योंकि अग्नि में दी हुई आहुति भी सूर्य को प्राप्त होती है, उनसे वर्षा होती है, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न द्वारा प्रजाओं का जीवन होता है ।५। इस भाँति सूर्य

सूर्यात्प्रसूयते [1]सर्वं तत्र चैव प्रलीयते । भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।।६
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षं चाप्येष मोक्षिणाम् । अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्पुनः प्रजाः ।।७
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च नित्यशः । मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च ।।८
सदादित्यादृते ह्येषा कालसङ्ख्या न विद्यते । कालादृते न नियमो [2]नाग्निर्न हवनक्रिया ।।९
[3]ऋतूनामविभागाच्च पुष्पमूलफलं कुतः । कुतः सस्यादिनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणाः[4] कुतः ।।१०
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च । जगत्प्रतपनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।११
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविश्यते । नावृष्ट्या विकृतिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः ।।१२
वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः । श्वेतो वर्णेन वर्षासु पाण्डुः शरदि भास्करः ।।१३
हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः । इति वर्णाः समाख्याताः शृणु वर्णफलं हर ।।१४
कृष्णोऽभयाय जगतस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति । पीतो नरेन्द्रपुत्रं[5] श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ।।१५
चित्रोऽथ वापि धूम्रो रवी रश्मिव्याकुलं करोत्युच्चैः । तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि न सलिलमाशु पातयति ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे सूर्यमहिमवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५४।

द्वारा ही सभी वस्तुओं का उत्पादन और उन्हीं में लय होता है । लोकों का उत्पन्न और विनाश होना भी सूर्य के ही अधीन है यह पहले से निश्चित है ।६। और यही ध्यान करने वालों के ध्येय, और मोक्ष प्राप्त करने वालों के मोक्ष स्थान हैं । इन्हीं द्वारा निर्वाण पद की प्राप्ति होती है ।७। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग रूप काल की भी व्यवस्था सूर्य के बिना संभव नहीं होती है ।८। तथा समय व्यवस्था के बिना नियम, अग्नि और हवन एवं ऋतुओं के विभाग न होने पर पुष्प, मूल, अन्न, तृण, औषधि, और लोक-परलोक वाली मनुष्य की क्रियाएं भी वास्तविक रूप में सूर्य के बिना सुसम्पन्न नहीं हो सकती हैं ।९-११। बिना वृष्टि के सूर्य में तपन, परिवेष (बादलों से घिरना) और अन्य विकार भी संभव नहीं होते हैं क्योंकि जल से ही सूर्य देदीप्यमान होते हैं ।१२

सूर्य बसंत ऋतु में कपिल, ग्रीष्म ऋतु में सुवर्ण कान्ति की भाँति, वर्षा में श्वेत, शरद में पांडु, हेमन्त, में ताँबे की कान्ति की भाँति और शिशिर में लोहित (रक्त वर्ण) के रहते हैं, अतः अब वर्णों का फल बता रहा हूँ सुनो ! १३-१४। हे हर ! जिस प्रकार कृष्ण वर्ण के सूर्य से समस्त जगत् को भय, उनके ताँबे वाले वर्ण से सेना नायक का विनाश, पीतवर्ण से राजा पुत्र का निधन, श्वेत वर्ण से पुरोहित का नाश होता है, उसी भाँति चित्र-विचित्र वर्ण पर धुएँ के समान वर्ण वाले सूर्य से यदि शीघ्र वर्षा न हो, तो चोरों एवं तस्करों के आघातों द्वारा (जगत् को) पीड़ा प्राप्त होती है ।१५-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में सूर्य महिमा वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।५४।

---

१. विभ्रम् । २. नाग्नेर्विहरणक्रिया । ३. ऋतुनामविभागश्च । ४. स्वापजागरणाः कुतः । ५. नराः ।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथयात्रावर्णनम्

रुद्र उवाच

रथयात्रा कथं कार्या भास्करस्येह मानवैः । फलं च किं भवेत्तेषां यात्रां कुर्वन्ति ये रवे[1]: ।।१
विधिना केन कर्तव्या कस्मिन्काले सुरोत्तम । कथं च भ्रामयेद्देवं रथारूढं[2] दिवाकरम् ।।२
देवस्य ये रथं भक्त्या भ्रामयन्ति वहन्ति च । तेषां च किं फलं प्रोक्तं ये च नृत्यकरा नराः ।।३
भ्रमन्ति ये न च देवेन नृत्यगीतपरायणाः । प्रजागरं च कुर्वन्ति भक्त्या श्रद्धासमन्विताः ।।४
तेषां च किं फलं प्रोक्तं रथं पच्छन्ति[3] ये रवेः । बलिं भक्तं च ये भक्त्या दिशन्त्याह्निकभोजनम् ।।५
एतन्मे ब्रूहि निखिलं सुरज्येष्ठ सविस्तरम् । लोकानां श्रेयसे देव परं कौतूहलं हि मे ।।६

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भूतेश गणेशोऽसि त्रिलोचन । शृणुष्वैकमना वच्मि यथाप्रश्नं सविस्तरम् ।।७
देवस्य रथयात्रेयं भास्करस्य महात्मनः । इन्द्रोत्सवस्तथा रुद्र मया ह्येतौ प्रकीर्तितौ ।।८
मर्त्यलोके शान्तिहेतोर्लोकानां लोकपूजित । प्रवर्तितावुभौ यस्मिन्देशे देवमहोत्सवौ ।।९
न तत्रोपद्रवाः सन्ति राजतस्करसम्भवाः । तस्मात्कार्याविमौ भक्त्या दुर्भिक्षस्येह शान्तये ।।१०

अध्याय ५५

सूर्य की रथ यात्रा का वर्णन

रुद्र ने कहा—मनुष्यों को सूर्य की रथ यात्रा किस भाँति करनी चाहिए और जो उनकी रथ यात्रा करते हैं, उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है ।१। हे सुरोत्तम ! वह (रथयात्रा) किस समय में किस विधि द्वारा की जाती है तथा देव (सूर्य) को रथ पर बैठाकर किस प्रकार से घुमाया जाता है ।२। भक्तिपूर्वक जो रथ को ले चलते एवं घुमाते हैं, तथा नाच-गान द्वारा जागरण, बलि एवं भोजन समर्पित करते हैं, उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है । हे सुरश्रेष्ठ ! मुझे इन बातों के जानने के लिए महान् कोतूहल है और इससे लोगों का महान् कल्याण भी होगा अतः ये सभी बातें विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें ।३-६

ब्रह्मा बोले—हे भूतेश, हे त्रिलोचन ! आप गणों के स्वामी हैं इसीलिए प्रश्न भी बहुत उत्तम किये हैं, अस्तु सावधान होकर सुनो ! मैं प्रश्न के अनुसार विस्तार पूर्वक इसका उत्तर दे रहा हूँ ।७। हे रुद्र ! महात्मा सूर्य देव की रथयात्रा और इन्द्र का महोत्सव मैंने पहले ही कह दिया है ।८। हे लोकपूजित ! इस मर्त्यलोक में लोगों की शांति प्राप्त करने के लिए जिस प्रदेश में ये दोनों महोत्सव किये जाते हैं, उसमें राजा के द्वारा (अत्याचार) और चरों के द्वारा कोई उपद्रव नहीं होता है, अतः दुर्भिक्ष (अकाल) की शांति के लिए इन महोत्सवों को अवश्य करना चाहिए ।९-१०

---

१. नराः । २. रविं च नभसि स्थितम् । ३. गच्छंति ।

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि भाद्रपदे हर । घृतेनाभ्यङ्गयेद्देवं पञ्चपूताङ्गजेन वै ।।११
अभ्यङ्गयेद्महेशं यः सर्षपैः श्रद्धयान्वितः । दिने दिने जगन्नाथं प्रविष्टं वर्णके रविम् ।।१२
स गच्छेद्यानमारूढो गैरिकं किङ्किणीकृतम् । वैश्वानरपुरं दिव्यं गन्धर्वाप्सरशोभितम् ।।१३
शाल्योदनं खण्डमिश्रं वज्रं वज्रसमन्वितम् । वर्णभक्तं प्रयच्छेद्यो भास्कराय दिने दिने ।।१४
आरूढः स विमानं तु ज्वालामालाकुलं शुभम् । गच्छेन्मम पुरं देव स्तूयमानो महर्षिभिः ।।१५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भास्कराय नरैः शिव । वर्णभक्तं प्रदातव्यं प्रविष्टस्येह वर्णकम् ।।१६
घृतपूर्णं खण्डवेष्टं कासारं मोदकं पयः । दध्योदनं पायसं च संयावं गुडपूपकान् ।।१७
ये प्रयच्छन्ति देवस्य भास्करस्येह वर्णकम् । ते गच्छन्ति न सन्देहो नरा वै मन्दिरं मम ।।१८
अहन्यहनि यो भक्त्या भास्कराय प्रयच्छति । अभ्यङ्गाय घृतं देयं स याति परमां गतिम् ।।१९
तथा यो वर्णभक्तं च अहन्यहनि भक्तितः । स प्राप्येह शुभान्कामान्गच्छेत्स भवसालयम् ।।२०
चूर्णमुद्वर्तनायेह यः प्रयच्छेच्छुभं रवेः । स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ।।२१
ततस्तं स्नापयेद्देवं पौषे मासि विधानतः । सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य शृणुस्वैकमनास्तथा ।।२२
तीर्थोदकमुपानीय अन्यद्वाथ जलं शुभम् । वेदोक्तेन विधानेन प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ।।२३
यजेद्धि तीर्थनामानि मनसा संस्मरन्बुधः । प्रयागं पुष्करं देवं कुरुक्षेत्रं च नैमिषम् ।।२४
पृथूदकं चन्द्रभागां शौरं गोकर्णमेव च । ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम् ।।२५

भादों भास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य के अंगों में पंचगव्य समेत घी लगावे और श्रद्धापूर्वक रक्तवर्ण के अंगों में सरसों के तेल द्वारा अभ्यंग करने से ऐसे विमान पर बैठकर जिसमें सुसज्जित सुवर्ण की छोटी-छोटी घंटियों की मनोहर ध्वनि होती हो, गंधर्व एवं अप्सराओं से सुशोभित वैश्वानर लोक की प्राप्ति होती है।११-१३। जो खांड़ मिश्रित शाली चावल (भात) वज्र नामक पुष्प तथा लाल रंग के चावल के भाग सूर्य के लिए प्रतिदिन समर्पित करता है, वह दीप्तिपूर्ण विमान पर बैठकर महर्षियों द्वारा सम्मानित होते हुए मेरे लोक को प्रस्थान करता है।१४-१५। इसीलिए लाल चावल के भात मंडलप्रविष्ट सूर्य को अवश्य समर्पित करना चाहिए।१६। इसी भाँति जो घी मिश्रित खांड, कासार (कमल) लड्डू, दूध, दही, भात, खीर लप्सी और गुड़ का मालपुआ मंडल प्रविष्ट सूर्य को सादर समर्पित करते हैं, वे निःसंदेह मेरे भवन में पहुँचते हैं।१७-१८। भक्तिपूर्वक जो प्रतिदिन लेप के लिए घी प्रदान करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।१९। इसी प्रकार जो भक्तिपूर्वक सूर्य को लाल चावल के भात प्रदान करते हैं, वे अपने समस्त मनोरथ को सफल करके पश्चात् सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं।२०। उबटन के लिए जो उन्हें चूर्ण समर्पित करते हैं, वे सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं।२१

इस प्रकार जो पौष की शुक्ल पक्ष की सप्तमी में भी सूर्य को स्नान कराता है (उसके फल) सावधान होकर सुनो ! तीर्थ के जल या अन्य किसी जल से स्नान कराकर उनकी प्रतिमा को वैदिक मंत्रों द्वारा स्थापित करना चाहिए।२२-२३। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैमिष एवं पृथूदक, चन्द्रभागा, शोण, गोकर्ण, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, विल्वक, नील पर्वत, गंगा द्वार, गंगासागर, कालप्रिय, मित्रवन, शृंगी स्वामी, चक्रतीर्थ, रामतीर्थ, वितस्ता, हर्षपन्यो, देविका, गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, विपाशा,

गङ्गाद्वारं तथा पुण्यं गङ्गासागरमेव च। कालप्रियं मित्रवनं शुण्डीरस्वामिनं तथा ॥२६
चक्रतीर्थं तथा पुण्यं रामतीर्थं तथा शिवम् । वितस्ता हर्षपंथा वै तथा वै देविका स्मृता ॥२७
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा सनर्मदा । विपाशा यमुना तापी शिवा वेत्रवती तथा ॥२८
गोदावरी पयोष्णी च कृष्णा वेण्या तथा नदी । शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा ॥२९
तथान्ये सागराश्चैव सान्निध्यं कल्पयन्तु वै । तथाश्रमाः पुण्यतमा दिव्यान्यायतनानि च ॥३०
एवं स्नानविधिं कृत्वा अर्चयित्वा प्रणम्य च । धूपमर्घ्यं प्रदत्त्वा तु प्रतिमामधिवासयेत् ॥३१
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा मासं मासार्द्धमेव च । स्थितं स्नानगृहे देवं पूजयेद्भक्तितो नरः ॥३२
चत्वरे लेपयेद्वेदिं चतुरस्रां शुभे कृताम् : चतुर्दिशं श्वेतकुम्भैर्वितानवरशोभिताम् ॥३३
कृष्णपक्षे तु माघस्य सप्तम्यां त्रिपुरांतक । कृत्वाग्निकार्यं विधिवत्कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥३४
शङ्खभेरीनिनादैस्तु ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । पुण्याहघोषैर्विविधैर्ब्राह्मणानस्वस्ति वाच्य च ॥३५
ततोऽस्य परया भक्त्या सूर्यस्य परमात्मनः । रथेन दर्शनीयेन किङ्किणीजालमालिना ॥
सूर्यञ्च भ्रामयेद्देवं महोत्सवपुरः सरम् ॥३६
शुक्लपक्षे तु माघस्य रथमारोपयेद्रविम् । कृत्वाग्निहोमं विधिवत्तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥३७
प्रीणयित्वा जनं सर्वं दक्षिणाभोजनादिना । प्रपूज्य ब्राह्मणान्दिव्यान्भौमांश्चापि सुवाचकान् ॥३८
इतिहासपुराणाभ्यां वाचको ब्राह्मणोत्तमः । ततो देवश्च इष्टश्च सम्पूज्यो यत्नतस्तदा ॥३९
माघस्य शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यामेकभक्तकम् । अयाचितं चतुर्थ्यां तु षष्ठयां नक्तं प्रकीर्तितम् ॥४०

यमुना, तापी, शिवा, वेत्रवती, गोदावरी, पयोष्णी, कृष्णा, वेण्या, शतरुद्रा, पुष्करिणी, कौशिकी, एवं सरयू आदि नदियाँ, सागरों के पवित्र आश्रमों में देवालयों के सान्निध्य की कल्पना पूर्वक उन्हें स्नान कराकर पूजन, प्रणाम, धूप एवं अर्घ्य प्रदान कर उनकी प्रतिमा को स्थापित करना चाहिए।२४-३१। इस प्रकार तीसरे, सातवें, पन्द्रहवें दिन अथवा मास में भक्तिपर्वूक स्नानगृह में स्थित सूर्य की पूजा करनी चाहिए।३२। किसी चबूतरे पर चौकोर सुन्दर वेदी बनाकर और गोमय से लीपकर जिसको चारों ओर से श्वेत, कलश तथा चाँदनी आदि से सुशोभित किया गया हो, उसी स्थान पर पूजा करनी चाहिए।३२-३३

हे त्रिपुरांतक ! माघ कृष्ण सप्तमी में भी विधिवत् पूजन, हवन और ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे।३४। शंख एवं दुंदुभी के वाद्यों समेत ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन आदि मांगलिक वेद पाठ करते हुए सूर्यदेव के उस दर्शनीय रथ को, जिसमें छोटी-छोटी घंटियाँ माला की भाँति लगी हों, महोत्सव बनाते हुए घुमाना चाहिए।३५-३६

उसी भाँति माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी को रथ पर सूर्य देव को बैठाकर विधिवत् हवन-पूजन और ब्राह्मण भोजनादि कराकर सभी लोगों को भोजन और दक्षिणा से प्रसन्न करने के उपरान्त दिव्य भौम तथा पाँच बार कथा वाचक की जो इतिहास तथा पुराण के मर्मज्ञ हों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण हों, पूजा करने के पश्चात् अपने इष्टदेव की पूजा करे।३७-३९

माघ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में अयाचित अन्न के भोजन पञ्चमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में

सप्तम्यामुपवासं तु आश्रमाद्रोपयेद्रथम् । अग्निकार्यं तु वै कृत्वा रथस्य पुरतः शिव ॥४१
षष्ठ्यां च रात्रौ भूतेश रथस्येहाधिवासनम् ।ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दिव्यान्भौमांश्च वाचकान् ॥४२
रथमारोपयेद्देवं सप्तम्यां भूतभावनम् । सितायां माघमासे तु तस्य देवालयाग्रतः ॥४३
तत्रस्थस्यैव देवस्य कुर्याद्रात्रौ प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणकैर्दीपवृक्षोपशोभितैः ॥४४
शंखतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । कुर्यात्प्रजागरं भक्त्या देवस्य पुरतो निशि ॥४५
ततोऽष्टम्यां च यत्नेन देवं रथगतं नयेत् । नगरस्योत्तर द्वारं शङ्खभेरी निनादितम् ॥४६
ततः पूर्वं दक्षिणं च द्वारं चापि तथा परम् । एवं हि क्रियमाणायां यात्रायां वत्सरावधौ ॥४७
मानवाः सुखमेधन्ते राजा जयति चाहितान् । नीरुजश्च जनाः सर्वे गवां शान्तिर्भवेत्तथा ॥४८
कर्तारश्चापि यात्रायाः स्वर्गभागो भवन्ति हि । वोढारश्च तथा वत्स सूर्यलोकं व्रजन्ति वै ॥४९

रुद्र उवाच

कथं सञ्चाल्यते ब्रह्मन्स्थापिता प्रतिमा सकृत् । एतन्मे वद देवेश सुमहान्संशयो हि मे ॥५०

ब्रह्मोवाच

पूर्वमेव सहस्रांशोर्यानहेतोर्महात्मनः । संवत्सरस्यावयवैः [1]कल्पितोऽस्य रथो मया ॥५१
सर्वेषां तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः । तं दृष्ट्वा तु ततस्त्वन्ये स्यन्दना विश्वकर्मणा ॥५२

नक्त व्रत करना चाहिए।४०। हे शिव ! इस प्रकार सप्तमी में उपवास करते हुए रथ के सामने हवन आदि करके उसे संचालित करे।४१। हे भूतेश ! सर्व प्रथम षष्ठी की रात दिव्य, भौम एवं कथा वाचक ब्राह्मणों को भोजन कराकर रथ का अधिवासन करे और माघ मास की शुक्ल सप्तमी में भूतभावन सूर्य को उसी रथ पर बैठाकर और उसी देवालय के सामने जो भाँति-भाँति के दर्शनीय दीप (दीपावली) और दीप वृक्षों से सुशोभित हो वेद पाठपूर्वक शंख एवं तूर्य (तुरूही) आदि वाद्यों को निनादित कराते हुए रथस्थित देवता के सम्मुख भक्तिपूर्वक समस्त रात जागरण करे।४२-४५। पश्चात् अष्टमी को प्रयत्नपूर्वक देव के उस रथ को शंख और भेरी के ध्वनि कोलाहल के बीच पहले नगर के उत्तर की ओर तथा फिर पूरब और दक्षिण की ओर पश्चात् पश्चिम की ओर ले जाये। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त यात्रा करने पर मनुष्यों को सुख, राजा को शत्रु विजय, अन्य लोगों को आरोग्य और गौओं को शांति प्राप्त होती है।४६-४८। यात्रा करने वाले प्राणी स्वर्ग में निवास करते हैं एवं रथ को ले चलने वाले प्राणी सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं।४९

रुद्र ने कहा—देवेश, ब्रह्मन् ! एक बार जिस प्रतिमा की स्थापना हो जाती है, उसका संचालन कैसे किया जाता है। इसमें मुझे महान् संदेह है, अतः उसकी निवृत्ति के लिए कृपा करें।५०

ब्रह्मा बोले—मैंने सर्वप्रथम महात्मा सूर्य देव के रथ को, जो वर्ष के अवयवों (मासादिकों) द्वारा निर्मित है, बताया है।५१। क्योंकि रथों के पूर्व उसकी रचना हुई है और उसे देखकर ही विश्वकर्मा ने सभी

---

१. कथितः।

कल्पिताः सर्वदेवानां सोमादीनामनेकशः । विश्वकर्मकृतं प्राप्य रथं देवेन पुत्रक ।।५३
पूजार्थमात्मनो दत्तं मनवे सत्कुलोद्वह । मनुनेक्ष्वाकवे दत्तं मर्त्यैः सम्पूज्यतां रविः ।।५४
अतस्तु रथयानेन [१]चालनं विहितं रवेः । तस्मान्न चालने दोषः सवितुश्चल एव सः ।।५५
यस्माद्रथेन पर्येति भास्करः पृथिवीमिमाम् । गच्छन्न दृश्यते चैतन्मण्डलं सवितुस्तथा ।।५६
अदृष्टं चलते यस्मात्तस्माद्वै पार्वतीप्रिय । तदेवं रथयात्रासु दृष्टं भानोर्मनीषिभिः ।।५७
अन्येषां चालनं नेष्टं देवानां पार्वतीप्रिय । ब्रह्माविष्णुशिवादीनां स्थापितानां विधानतः ।।५८
तस्माद्रथेन देवस्य यात्रा कार्या विधानतः । प्रजानामिह शान्त्यर्थं प्रतिसंवत्सरं सदा ।।५९
काञ्चनो वाथ रौप्यो वा दृढदारुमयोऽपि वा । दृढाक्षयुगचक्रश्च रथः कार्यः सुयन्त्रितः ।।६०
तस्मिन् रथवरे श्रेष्ठे कल्पिते सुमनोरमे । आरोप्य प्रतिमां यत्नाद्योजयेद्वाजिनः शुभान् ।।६१
हरिल्लक्षणसम्पन्नान्सुमुखान्वशवर्तिनः । कुङ्कुमेन समालब्धांश्चामरस्रग्विभूषितान् ।।६२
सदश्वान्योजयित्वा तु रथस्यार्घ्यं प्रदाय च । विबुधान्पूजयित्वा तु धूपमाल्यानुलेपनैः ।।६३
आहारैर्विविधैश्चापि भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । दीनान्धकृपणार्दीश्च सर्वान्संतर्प्य शक्तितः[२] ।।६४
न कञ्चिद्विमुखं कुर्यादुत्तमाधममध्यमम् । सूर्यक्रतौ तु वितते एवमाहुर्मनीषिणः ।।६५

देवताओं के रथ की अनेक बार रचना की है। हे पुत्र ! विश्वकर्मा के बनाये हुए उस रथ को प्राप्त कर सूर्य देव ने उसे अपनी पूजा के निमित्त मनु को प्रदान किया और मनु ने इक्ष्वाकु को। अतः सभी मनुष्य को सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।५२-५४। रथ के चलाने से ही सूर्य का संचालन बताया गया है। अतः सूर्य के संचालन में दोष नहीं है क्योंकि वे चलने वाले ही देव बताये गये हैं।५५। सूर्य जिस रथ द्वारा इस पृथिवी को पार करते हैं और चलते हुए उन्हें कोई भी देख नहीं पाते। उसी भाँति उनके मंडल को भी नहीं देख सकते हैं।५६। हे पार्वतीप्रिय ! इसीलिए कि उनका चलना दिखाई पड़े, क्योंकि उनका चलना दिखायी नहीं देता है। लोग रथयात्रा करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की प्रतिष्ठा कर देने पर उनका संचालन (गमन) करना दृष्ट नहीं कहा गया है। अतः प्रजा (जनता) के शान्ति हितार्थ प्रतिवर्ष (सूर्य की) रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए ।५७-५९

सोने, चाँदी पर भली-भाँति किसी दृढ़ काष्ठ का सौन्दर्यपूर्ण रथ बनाकर जिसमें धुरी, और जुए अत्यन्त दृढ़ बनाये गये हों। उसे सुसज्जित करे और उसमें उनकी प्रतिमा को स्थापित कर उस रथ में अच्छे-अच्छे हरे रंग एवं वशीभूत घोड़ो को जो स्वयं सुन्दर और कुंकुम से युक्त, चामर, माला से सुशोभित किये हो, जोतकर देवों के अर्घ्य आदि समेत पूजन करे अनन्तर उन्हें धूप एवं चन्दन माला पहनाकर तथा रथ के पूजनोपरांत उसका संचालन करे।६०-६३। उसमें अनेक भाँति के पदार्थ उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए तथा दीन, अंधे और निःसहाय व्यक्तियों को भी शक्ति के अनुसार संतुष्ट करना आवश्यक बताया गया है।६४। विद्वानो ने बताया है कि सूर्य के यज्ञ में उत्तम, मध्यम एवं अधम श्रेणी का कोई भी व्यक्ति विमुख होकर वहाँ से न जाने पाये।६५। क्योंकि वहाँ जाकर कोई भी निराश होकर यदि क्षुधा से

---

१. वाहनम्। २. यत्नतः।

यश्चिन्तयति भग्नाशः क्षुधावातप्रपीडितः । अदातुर्हि पितॄंस्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत् ।।६६
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः सवितुर्न प्रशस्यते[1] । तस्मान्नानाविधैः कामैर्भक्ष्यलेह्यसमन्वितैः ।।६७
पूजयित्वा जनं सर्वमिममुच्चारयेन्मनुम् । बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा ।।६८
मरुतोथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः । असुरा यातुधानाश्च[2] रथस्था यास्तु देवताः ।।६९
दिग्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः । जगतः स्वस्ति कुर्वंतु ये च दिव्या महर्षयः ।।७०
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा ।।७१
वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोकरथन्तरैः । आकृष्णेन रजसा ऋचमेकामुदाहरेत् ।।७२
ततः पुण्याहशब्देन कृतवादित्रनिःस्वनैः । रथक्रमणकं कुर्याद्वर्त्मना सुसमेन तु ।।
पुरुषैश्चापि वोढव्यः सूर्यभक्तिसमन्वितैः ।।७३
सुकृतैः [3]प्रग्रहैर्दान्तैर्बलीवर्दैरथापि वा । यथा पर्यटनं च स्याद्विषमे पथि गच्छतः ।।७४
उपवासस्थितैर्विप्रैर्दिव्यैर्भौमैश्च सुव्रतैः । त्रिंशद्भिः षोडशैर्वापि प्रतिमां भास्करस्य तु ।।७५
स्थानात्प्रचाल्यं वै रुद्र रथमारोपयेच्छनैः । राज्ञी च निक्षुभा रुद्र भार्ये तस्य महात्मनः ।।७६
शनैरारोपयेद्रुद्र उभयोः पार्श्वयो रथे । निक्षुभां दक्षिणे पार्श्वे राज्ञीं चाप्युत्तरे तथा ।७७
द्वावेव ब्राह्मणौ तस्मिन्दिव्यो भौमश्च पार्श्वयोः । ब्रह्मकल्पस्तथा भौमः कूबरस्योपरि स्थितः ।७८

और प्यास से पीड़ित होता है, तो उस यज्ञकर्त्ता के पितरगण स्वर्ग में रहते हुए भी वहाँ से च्युत होते हैं और दुःख का अनुभव करते हैं।६६। दक्षिणाहीन भी सूर्य का यज्ञ उत्तम नहीं होता है। इसलिए अनेक भाँति के बने हुए भक्ष्य लेह्य पदार्थ के भोजन (स्वादिष्ट चटनी आदि) समेत सभी को खिलाना चाहिए।६७। पुनः देवताओं का पूजन करके इस प्रकार कहना चाहिए कि आदित्य, वसु, मरुत, अश्विनी कुमार, रुद्र, गरुड़, पन्नग, ग्रह, असुर एवं यातुधान आदि रथस्थ देवता तथा दिक्पाल लोकपाल, विघ्न विनायक और दिव्य महर्षिगण बलि ग्रहण कर जगत् का कल्याण करें।६८-७०। तथा मेरा कोई विघ्न न हो, मुझे किसी प्रकार का पाप न लगे, मेरे कोई शत्रु न हों और देव, भूतगण आदि सभी लोग सौम्य तथा तृप्त हों।' ऐसा कहकर वामदेव गान और मानस्तोक, आदि रथन्तर साम से 'आकृष्णेन रजसा, आदि इस ऋचा का पाठ करे।७१-७२। मंगल पाठ करते हुए मृदङ्गादि बाजाओं समेत सुन्दर और सममार्ग से उस रथ का सूर्य भक्त मनुष्यों द्वारा वहन कराये ।७३। अथवा दृढ़ रस्सी सें बँधे तथा मजबूत बैलों को उसमें जोतना चाहिए जिससे ऊँची-नीची भूमि के मार्ग में भी रथ भली-भाँति चल सके।७४। उपवास करने वाले दिव्य और भौम ब्राह्मणों द्वारा, जिनकी संख्या तीस या सोलह की हो, उस स्थान से सूर्य की प्रतिमा को उठाकर धीरे-से रथ पर स्थापित कराये। हे रुद्र! उनके पार्श्व भाग (बगल) में रानी और निक्षुभा को भी धीरे से स्थापित करे, जिसमें दाहिनी ओर निक्षुभा एवं बाईं ओर रानी को स्थापित करना बताया गया है।७५-७७। पुनः देव के पार्श्व में दो ब्राह्मणों को बैठाये जो ब्रह्मनिष्ठ हों एवं जूए के समीप वाले स्थान के

---

१. प्रीणयित्वा। २. यातुधानाद्याः। ३. सुग्रहैः। ४. परम्।

गरुडं पृष्ठतश्चास्य वल्गमानं प्रकल्पयेत् । आतपत्रं तथा श्वेतं स्वर्णदण्डमनौपमम् ॥७९
सुवर्णबिन्दुभिश्चित्रं मणिमुक्ताफलोज्ज्वलम् । ततस्त्विन्द्रधनुःप्रख्यं स्वर्णदण्डमथाव्रणम् ॥८०
ध्वजं प्रकल्पयेत्तस्य पताकाभिरलङ्कृतम् । भूतेशनानावर्णाभिस्सप्तभिः कामनाशनः ॥८१
ध्वजोपरिचरं[1] व्योम अरुणाधिष्ठितं भवेत् । रथतुण्डगतान्विप्रान्नयेद्रथवरं रवेः ॥८२
सारथ्यं रुद्र कुर्याद्वै श्रेयोऽर्थमात्मनः सदा । नारुहेत रथेऽश्रद्धो[2] यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥८३
रथमारोहतस्तस्य क्षयं गच्छति सन्ततिः । स रथो देवदेवस्य वोढव्यो ब्राह्मणैः सदा ॥८४
क्षत्रियैश्चापि वैश्यैश्च न तु शूद्रैः कदाचन । ये त्वन्यदेवताभक्ता ये च मद्यप्रवर्तकाः ॥८५
नैतैः शूद्रैश्च वोढव्य इतरैस्तु सदोह्यते । उपवासव्रतोपेतैर्वोढव्यः पार्वतीप्रिय ॥८६
स्वस्थानाच्चलितो रुद्र पूर्वद्वारं व्रजेत[3] वै । दिनमेकं वसेत्तत्र पूज्यमानो नृपेण वै ॥८७
नानाविधैः प्रेक्षणकैः पुराणश्रवणेन च । नानाविधैर्ब्रह्मघोषैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥८८
स्थित्वा तु तत्राष्टम्यन्तं नवम्यां चलते पुनः । व्रजेत दक्षिणं द्वारं नगरस्य त्रिलोचन ॥८९
तत्रापि दिनमेकं तु तिष्ठन्तेन्धकसूदन । स्थितेऽस्य तैः पूज्यमानो यथा राज्ञा तथा नृपैः ॥९०
तस्मादपि चलेद्रुद्र द्वारं पश्चात्ततोत्तरम् । तत्रापि पूज्यः शूद्रैस्तु विधिवत्प्रियदर्शन ॥९१

ऊपर स्थित हो। पुनः (देव के) पीछे उछलते हुए गरुड़ बैठाये। पश्चात् सुवर्णदण्ड युक्त एवं अनुपम श्वेत छत्र को जिसमें सोने की बूंदें मणि एवं मोतियों से समुज्ज्वल, इन्द्र धनुष की भाँति चित्र-विचित्र, सुवर्ण-दण्ड से भूषित एवं सर्वाङ्ग नवीन हो, भिन्न-भिन्न रंग के सात पताकाओं से अलंकृत करके लगाये।७८-८१। हे भूतेश, हे कामनाशन ! (शिव) ! पश्चात् ध्वजा के ऊपरी भाग में अरुण को बैठा कर बैठे हुए ब्राह्मणों समेत उस रथ को ले चले।८२। हे रुद्र ! इस भाँति अपने कल्याण के लिए उनका सारथी भी होना स्वीकार करना चाहिए। इसी प्रकार अपना हित चाहने वाले श्रद्धाहीन व्यक्ति को उस पर कभी भी आरूढ़ न होने देना चाहिए।८३। क्योंकि पीछे कोई अश्रद्धालु रथ पर बैठना चाहेंगे तो उनके बैठते ही उनकी सन्तान नष्ट हो जायगी। देवाधिदेव सूर्य के उस रथ का वहन ब्राह्मणों द्वारा ही करना चाहिए।८४। क्षत्रिय एवं वैश्य भी उसका वहन कर सकते हैं पर शूद्र कदापि नहीं। इसी प्रकार अन्य देवताओं के भक्त शराबी और शूद्रों को छोड़कर अन्य सभी लोग जो उपवास एवं व्रत आदि करते हों (उसका) संवहन कर सकते हैं।८५-८६। हे रुद्र ! अपने स्थान से चलकर वह रथ पूरब वाले दरवाजे पर जाये वहाँ एक दिन का निवास करके राजा पूजित होने के उपरान्त जिसमें भाँति-भाँति के दर्शनीय (वस्तुएँ) अर्पित की गयी हों पुराण श्रवण तथा भाँति-भाँति के ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक वेदपाद भी किया गया हो, नवमी के दिन फिर वहाँ से चलकर दक्षिण दरवाजे पर जाये। वहाँ भी एक दिन का निवास कर राजा की भाँति उनके अधिकारियों द्वारा पूजित होकर फिर उत्तर के दरवाजे पर जाये। हे रुद्र ! वहाँ शूद्रों द्वारा पूजित होकर गाँव के मध्य भाग में उसे पहुँचाये। वहाँ श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों द्वारा शंख एवं मृदङ्गादि वाद्यों की ध्वनि और उत्तम वस्तुओं के प्रदान होने चाहिए पश्चात् उसके कोलाहल में उसे चारों

---

१. परम्। २. शूद्रः। ३. व्रजेद्रवेः।

तस्माच्च चलते रुद्र व्रजेन्मध्यं पुरस्य तु । तत्रस्थं पूजयन्ति स्म ब्राह्मणाः श्रद्धयान्विताः ॥९२
शंखवादित्रनिर्घोषैस्तथा प्रेक्षणकैर्वरैः । ब्रह्मघोषैश्च विविधैः समन्ताद्दीपकैः शुभैः ॥९३
नानाविधैर्वित्तदानैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । दीनान्धकृपणानां च तर्पणैस्त्रिपुरान्तक ॥९४
पुरमध्यात्तु चलितस्तिष्ठेत्प्राप्य स्वमंदिरम् । इत्थं प्राप्य स्थितो देवः पुरतो मंदिरस्य तु ॥९५
तत्र स्थितः पूजनीयो भवेत्पौरेण कृत्स्नशः । पूज्यमानस्त्वहोरात्रं रथारूढस्तु तिष्ठति ॥९६
अपरे दिने व्रजेत्स्थानं तच्चिरन्तनमादरात् । त्रयोदश्यां व्यतीतायां चतुर्दश्यां त्रिलोचन ॥९७
सदैवं भ्रामयेद्देवं ग्रहेशं दुरितापहम् । परिवारयुतं रुद्र सानुगं परमेश्वरम् ॥९८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे रथयात्रावर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५५।

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथयात्रावर्णनम्

श्रीरुद्र उवाच

कथं प्रचालयेद्ब्रह्मन् रथस्थं तमनाशनम् । अनुगाश्च कथं चास्य के च ते अनुगाः क्रमात् ॥१
भूयोभूयः सुरश्रेष्ठ विस्तरान्मम श्रेयसे । [1]वद सर्वं जगन्नाथ परं कौतूहलं हि मे ॥२

ओर दीप से सुसज्जित करते हुए सूर्य की पूजा करनी चाहिए जिसमें, वहाँ भाँति-भाँति के दान द्वारा ब्राह्मण गण प्रसन्न किये गये हों, और दीन, अंधे एवं निराश्रित को संतोष प्राप्त हुआ हो ।८७-९४। पुनः वह रथ वहाँ से मन्दिर को लौटाना चाहिए। वहाँ मन्दिर के सामने सभी गाँव वालों को उनकी पूजा करके पश्चात् उसी रथ पर उस दिन और रात उन्हें रख कर दूसरे दिन त्रयोदशी बीतने पर चतुर्दशी में अपने पुराने देवालय के स्थान में सादर एवं अमंत्रक स्थापित करना चाहिए। हे त्रिलोचन ! इसी प्रकार परिवार समेत देव का जो ग्रह के स्वामी एवं विघ्ननाशक हैं, सदैव रथ यात्रा द्वारा भ्रमण कराना चाहिए।९५-९८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में रथयात्रा वर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।५५।

अध्याय ५६

सूर्य रथयात्रा का वर्णन

रुद्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! रथ पर बैठाकर सूर्य को किस भाँति चलाये, उनके अनुगामी कौन हों तथा उनका अनुगमन भी किस भाँति करना चाहिए ।१। हे सुरश्रेष्ठ ! हे जगन्नाथ ! आप मेरे कल्याण के निमित्त विस्तारपूर्वक उसे बार-बार मुझे सुनाने की कृपा करें क्योंकि मुझे इसके सुनने लिए महान् कौतूहल भी हो रहा है ।२

---

१. वक्षि । २. भयम् ।

ब्रह्मोवाच

शनैर्नयेद्रथं रुद्र वर्त्मना सु समेन तु । यथा पर्यटनं तु स्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥३
प्रतीहाररथं पूर्वं नयेन्मार्गविशुद्धये । तस्मादनन्तरं रुद्र दण्डनायकमादरात् ॥४
पिङ्गलं च ततस्तस्य पृष्ठगं चादरान्नयेत् । रक्षको द्वारको यस्माद्रथारूढौ तु पृष्ठतः ॥५
रथारूढस्तथा दिण्डी देवस्य पुरतः स्थितः । तस्मादपि तथा रुद्र लेखको भास्करप्रियः ॥६
शनैःशनैर्नयेद्रुद्र रथं देवस्य यत्नतः । युगाक्षचक्रभङ्गो वा यथा न स्यात्त्रिलोचन ॥७
ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः । तुलाभङ्गे तु वैश्यानां शय्याशूद्रक्षयो भवेत् ॥८
युगभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयम् । परचक्रागमं[1] विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु ॥९
ध्वजस्य पतने चापि नृपभङ्गं विनिर्दिशेत् । [2]व्यङ्गितप्रतिमायां तु राज्ञो मरणमादिशेत् ॥१०
छत्रभङ्गाद्भयं रुद्र युवराज्ञो विनिर्दिशेत् । उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च ॥११
बलिकर्म पुनः कुर्याच्छांतिहोमं तथैव च । ब्राह्मणान्वाचयेद्भूयो दद्याद्दानानि चैव हि ॥१२
पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याग्निं प्रकल्पयेत् । समिद्भिस्तु घृताक्ताभिर्होमयेज्जातवेदसम् ॥१३
स्वाहाकारान्वदन्सम्यग्दैवतेभ्यस्त्वनुक्रमात् । ग्रहेभ्यश्च प्रजाभ्यश्च नामान्युद्दिश्य होमयेत् ॥१४
प्रथमं चाग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि । स्वाहा प्रजापतये च देया आहुतयः क्रमात् ॥१५

ब्रह्मा बोले—हे रुद्र ! उस रथ को, जिस प्रकार मार्ग में धीरे-धीरे चलाया जाता है, उसी भाँति विषम मार्ग में भी चलाये।३। उस मार्ग को सुन्दर बनाने के लिए पहले द्वारपालों को रथ ले जाना चाहिए पश्चात् दंडनायक (सेनाध्यक्ष, एवं पिङ्गल (गजादि) की पातका के अनन्तर द्वार रक्षकों के रथ ले जाना चाहिए। पुनः सूर्यदेव के रथ के सामने दिंडी का रथ तथा उससे भी सन्निकट सूर्य के प्रिय लेखक (मूर्ति रचयिता) का रथ चाहिए।४-६। हे त्रिलोचन ! फिर धीरे-धीरे सूर्य के रथ को इस प्रकार ले चले जिसमें उसके जूआ, धुरी पर चक्के को हानि न पहुँचे, क्योंकि जुए के मध्य वर्ती काष्ठ के टूटने पर द्विजों को भय, अक्ष (मूड़ी) के टूटने पर क्षत्रियों का नाश, धुरा के टूटने पर वैश्यों का एवं बैठने के स्थान के भंग होने पर शूद्रों का नाश होता।७-८। इसी भाँति जुए के भंग होने पर अनावृष्टि, पीठ (आसान) के भंग होने पर जनता को भय एवं चक्के के टूटने पर वह राज्य किसी अन्य के अधीन हो जाता है और ध्वजा के गिरने पर राजा का नाश, प्रतिमा के भंग होने पर राजा का मरण एवं छत्र भंग होने से युवराज को भय होता है। इस प्रकार के उत्पात होने पर बलि और शांतिपाठ हवन को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण द्वारा कथा को सुनकर उन्हें दान द्वारा प्रसन्न करे।९-१२

पश्चात् रथ के ईशान कोण पर अग्नि स्थापन करके घृताक्त समिधा (लकड़ी) का हवन करते हुए क्रमशः देवताओं, ग्रहों और प्रजाओं के नाम का उनके उद्देश्य से 'स्वाहान्त' उच्चारण करे।१३-१४। सर्वप्रथम अग्नि, सोम तथा प्रजापति का स्वाहान्त नामोच्चारण कर क्रमशः आहुति डाले।१५। पश्चात्

---

१. भयम्। २. प्रतिमायां व्यंगितायाम्।

स्वस्त्यस्त्विह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञे तथैव च। गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै ॥१६
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे। शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु वै ॥१७
भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च। स्वश्चैवास्त तथा शान्तिः सर्वत्रास्तु तथा रवेः ॥१८
त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि। प्रजापाल ग्रहेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते ॥१९
इदमन्यत्त्व वक्ष्यामि शान्त्याः परमकारणम्। यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य स्वजन्मनः ॥२०
दुःस्थान्ग्रहांश्च विज्ञाय ग्रहशान्तिं समाचरेत्। प्रादेशमात्राः कर्त्तव्याः समिधोऽथ प्रमाणतः ॥२१
अर्कमय्यो रवेः कार्याः पालाश्यः शशिनः स्मृताः। खादिर्यश्चैव भौमाय आपामार्ग्योऽब्जसूनवे ॥२२
आश्वत्थ्यश्चाथ जीवाय औदुम्बर्यः सिताय च। असिताय शमीमय्यो दूर्वा कार्यास्तु राहवे ॥२३
केतवे तु कुशाः कार्याः दक्षिणाश्चाप्यतः शृणु। सूर्याय शोभनां धेनुं शंखं दद्यादथेन्दवे ॥२४
रक्तमनड्वाहं भौमाय काञ्चनं सोमसूनवे। जीवाय वाससी देये शुक्रायाश्वं सितं हर ॥२५
शनैश्चराय गां नीलां राहवे भाण्डपायसम्। छागं तु केतवे दद्याच्छृण्वेषां भोजनान्यपि ॥२६
गुडौदनं तु सूर्याय सोमाय घृतपायसम्। हविष्यमन्नं भौमाय क्षीरान्नं सोमसूनवे ॥२७
दध्योदनं तु जीवाय शुक्रायाथ घृताशनम्। तिलपिष्टांश्च माषांश्च सूर्यपुत्राय दापयेत् ॥२८

विनम्र भाव से कहे—'ब्राह्मणों, राजाओं, गौओं, प्रजाओं एवं समस्त जगत् तथा मनुष्य पशु-पक्षी एवं प्रजाओं की रक्षा-शांति करने के उपरान्त भूलोक भुवर्लोक तथा स्वर्गलोक में सूर्य कल्याणपूर्वक शान्ति प्रदान करें।१६-१८। इस भाँति कहते हुए पुनः प्रार्थना करे कि हे देव ! तुम्हीं इस जगत् को उत्पन्न और पालन करने वाले हो अतः हे प्रजापाल, हे महेशान, हे दिवस्पते ! मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें।१९। ग्रहों की प्रतिकूलता में अशांति उत्पन्न होने पर जो शांति की जाती है, उसके महान कारण को मैं दूसरे स्थान पर विस्तृत रूप में बताऊँगा।२०। किन्तु संक्षिप्त विवेचनानुसार अरिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों को देखकर उनकी शांति तो करनी ही चाहिए जिसमें समिधाएँ (लकड़ियाँ) प्रदेशमात्र (फैली हुई तर्जनी और अंगूठे के मध्य भाग के समान ही लम्बी होती है। उन्हें समेत सूर्य के लिए अर्क (मदार), चन्द्रमा के लिए पलाश, मंगल के लिए खैर, बुध के लिए चिचिरा, बृहस्पति के लिए पीपल, शुक्र के लिए गूलर, शनि के लिए शमी (बबूर की भाँति पत्ती वाला एक काँटेदार वृक्ष) राहु के लिए दूर्वा एवं केतु के लिए कुशा की समिधाओं में हवन करके निम्नलिखित क्रमानुसार दक्षिणा प्रदान करना चाहिए। सूर्य के लिए सुन्दर गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए रक्तवर्ण का बैल, बुध के लिए सुवर्ण, वृहस्पति के लिए लिए दो पीत वस्त्र, शुक्र के लिए उज्ज्वल घोड़ा, शनि के लिए नीली गाय, राहु के लिए खीर, पूर्णपात्र तथा केतु के लिए छाग (छोटा बकरा) का दान करके पुनः उन्हें भोजन भी क्रमशः प्रदान करे इसे मैं कह रहा हूँ सुनो।२१-२६। गुड मिश्रित भात सूर्य के लिए घी समेत खीर चन्द्रमा के लिए हविष्यान्न पदार्थ मंगल के लिए, दूध का भक्ष्य पदार्थ बुध के लिए, दही मिश्रित भात गुरु के लिए, घी का बना हुआ उत्तम भक्ष्य शुक्र के लिए, तिल के चूर्ण और उरद का भक्ष्य पदार्थ शनि के लिए, राहु के लिए मांस तथा केतु के

---

१. दुष्टा ग्रहाश्च विज्ञेयाः पूजाशांतिं समाचरेत्।

राहवे दापयेन्मांसं केतवे चित्रमोदनम् । सौवीरमारनालं च स्विन्नबीजं च काञ्जिकम् ।।२९
यथा बाणप्रहाराणां वारणं कवचं स्मृतम् । तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ।।३०
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च । नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ।।३१
ग्रहाः पूज्याः सदा रुद्र इच्छता विपुलं यशः । श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ।।३२
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः । यानपत्या भवेन्नारी दुष्प्रजाश्चापि या भवेत् ।।३३
बाला यस्याः प्रम्रियन्ते या च कन्याप्रजा भवेत् । राज्यभ्रष्टो नृपो यस्तु दीर्घरोगी च यो भवेत् ।।३४
ग्रहयज्ञः स्मृतस्तेषां मानवानां मनीषिभिः । तस्मादसौ सदा कार्यः श्रेयोऽर्थं जानता हर ।।३५
बत्तपुत्रः क्रूरदृक्च पुत्रजो धिषणस्तथा । सितासितौ तथा रुद्र उपरागः शिखी तथा ।।३६
एते ग्रहा महाबाहो विद्वद्भिः पूजिताः सदा । ताम्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादपि ।३७
राजतादायसात्सीसाद्ग्रहाः कार्याः [२]प्रयत्नतः । स्वर्णे वाथ पटे लेख्या यथाशास्त्रं महेश्वर[२] ।।३८
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च । गंधाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलः ।।३९
कर्तव्या मन्त्र[३]वंतश्च चरवः प्रतिदैवतम् । आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् ।।४०
उद्बुध्यस्व यथासंख्यमृच एताः प्रकीर्तिताः । बृहस्पते अतिदर्यस्तथैवान्नात्परिस्रुतः ।।४१

लिए चित्र भात (अनेक प्रकार के भात) वैर का फल, धूतर का दण्ड भाग एवं परिपक्व कंजे का फल अर्पित करना चाहिए।२७-२९

जिस प्रकार बाणों के प्रहारों को कदच रोककर उसे निष्फल कर देता है, उसी भाँति दैव ग्रह द्वारा प्राप्त आघात से रक्षित रखने के लिए (ग्रहों) की शान्ति वारण (कवच) रूप होती है।३०। इस प्रकार अहिंसक, शुद्धाचार एवं धार्मिक उपायों द्वारा प्राप्त धन वाले तथा नित्य-नियमों के पालन करने वाले प्राणियों के लिए ग्रह सदैव अनुकूल रहते हैं।३१। हे रुद्र ! इसलिए अत्यन्त ख्याति प्राप्ति करने वाले पुरुष को ग्रहों की पूज़ा सदैव करनी चाहिए। इसी प्रकार भी और शांति के इच्छुक को भी ग्रह-यज्ञ अवश्य करना चाहिए।३२। उसी भाँति वर्षा, आयु तथा (शरीर के) अंगों की दृढ़ता के लिए एवं निःसन्तान, दुःखदायी संतान या जिसके लड़के जीवित न रहते हों, अथवा केवल कन्या जन्माने वाली स्त्री, राज्य-च्युत राजा और दीर्घ रोगी को अवश्य ग्रह-यज्ञ (पूजा आदि) करना विद्वानों ने बताया है। हे रुद्र ! इसलिए कल्याण के अभिलाषी मनुष्य को यह (ग्रह यज्ञ) सदैव करते रहना उचित कहा गया।३३-३५। हे महाबाहो ! इस प्रकार बुध, क्रूर ग्रह रवि, मंगल आदि,) चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु की पूजा विद्वानों को अवश्य करनी चाहिए। जिसमें ताँबे, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहे एवं शीशे की ग्रहों की प्रतिमा बनवायी जाये या सुवर्ण के पत्र या वस्त्र पर लिखकर स्थापित करे। उनका जैसा वर्ण है, उसी भाँति के वस्त्र, पुष्प, अर्पित कर, गंध, बलि तथा गुगूल की अर्पित करे।३६-३९। पीत देवता के लिए चरुमंत्रपूर्वक प्रदान करना पश्चात् हवन करते समय आकृष्णेन, इमं देवा, अग्नि मूर्धा दिवः ककुत्, उद्बुध्यस्व, 'अतियदर्य, 'अन्नात्परिस्रुत, 'शंनोदेवी' एवं 'केतुं कृष्णवम्न् इत्यादि इन

---

१. यथाक्रमम्। २. त्रिलोचन। ३. मनुमं।

शं नो देवी तथा कांडात्केतुं कृण्वन्निमाः क्रमात् । पूर्वोक्ताः समिधस्त्वत्र यथाशास्त्रं प्रहोमयेत् ॥४२
एकैकस्याष्टशतकमष्टाविंशतिरेव वा । होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥४३
पूर्वोक्तभोजनं यद्धि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । शक्तितो वा यथालाभं दक्षिणा तु[1] विधानतः ॥४४
यश्च यस्य यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत् । [2]मयैषां हि वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ ॥४५
ग्रहाधीना नरेंद्राणामुच्छ्रयाः पतनानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥४६
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च गुरवो ब्राह्मणास्तथा । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥४७
यथा समुत्थितं यन्त्रं यन्त्रेणैव प्रहन्यते । तथा समुत्थितां पीडा ग्रहशान्त्या[3] प्रशामयेत् ॥४८
यज्वनां सत्यवाक्यानां तथा नित्योपवासिनाम् । जपहोमपराणां च सर्वं दुष्टं प्रशाम्यति ॥४९
एवं कृत्वा प्रजाशान्तिं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् । पुनः सज्जं रथं कृत्वा कुर्यात्प्रक्रमणं हर ॥५०
मार्गं शेषं नयित्वा तु नयेद्देवालयं रविम् । पूजयित्वा ततः [4]पूर्वा याः प्रोक्ता रथदेवताः ॥५१
यथा पूज्या ग्रहाः सर्वे उत्पातेषु त्रिलोचन । रथदेवास्तथा[5] पूज्या याः स्थिता रथमाश्रिताः ॥५२

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
आदित्यमहिमवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५६।

ऋचाओं का क्रमशः उच्चारण करते हुए सूर्यादि ग्रहों के लिए समिधा से आहुति डालनी चाहिए ।४०-४२। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह के उद्देश्य से एक सौ आठ या अट्ठाइस आहुति दही, घी और मधु, शहद, मिलाकर देनी होती है ।४३। और उपरोक्त बताये हुए भोजन पदार्थ से ब्राह्मणों को भलीभाँति तृप्त कर शक्ति के अनुसार उन्हें विधानपूर्वक दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिए ।४४। इसलिए जिसके जो ग्रह अरिष्ट हों, उसे उसकी पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए क्योंकि मैंने इन्हें वर प्रदान किया है कि 'विश्व में तुम्हारी पूजा होगी, अतः तुम लोग इनकी अवश्य पूजा करो ।४५। राजाओं की उन्नति और पतन एवं जगत् की स्थिति तथा विनाश ग्रहों के अधीन है, इसीलिए ग्रह गण अत्यन्त पूजनीय बताये गये हैं ।४६। इसी भाँति ग्रह, गौयें, नरेन्द्र, गुरु और ब्राह्मण भी पूजित होने पर उन्हें सम्मान प्रदान करते हैं, अन्यथा अपमान करने पर उनके द्वारा कुल का नाश हो जाता है ।४७। जिस प्रकार (विनाश के लिए) प्रेरित यंत्र (अन्य) यंत्र द्वारा ही नष्ट होता है, उसी भाँति किसी प्रकार की उत्पन्न पीड़ा ग्रह की शांति करने से शान्त हो जाती है ।४८। इस भाँति पूजन यज्ञ आदि करने वाले, सत्यवादी, उपवास व्रत रहने वाले तथा जप एवं होम करने वाले मनुष्य के सभी अरिष्ट शांत हो जाते हैं ।४९। इस भाँति प्रजाओं के हितार्थ शांति सुसम्पन्न करते हुए स्वस्त्ययन आदि मांगलिक पाठपूर्वक पुनः उस सुसज्जित रथ को आगे बढ़ाना चाहिए ।५०। पुनः शेष मार्ग को समाप्त कर सूर्य को देवालय में स्थापित करने के उपरान्त पूर्वोक्त रथ के सभी देवताओं के पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। हे त्रिलोचन ! उत्पात होने पर जिस भाँति ग्रहों की पूजा होती है, उसी भाँति रथ के आश्रित सभी देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।५१-५२

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य महिमा वर्णन
नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।५६।

---

१. च विशेषतः । २. अमीषाम् । ३. शांतिः प्रशोधयेत् । ४. सेविनाम् । ५. सर्वाः । ६. देवताः ।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रथयात्रावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षीरं यवागूर्ब्रह्मणे स्यात्परमान्नं त्रिलोचन । फलानि कार्तिकेयस्य दद्याद्भूतेशप्रीतये ।।
विवस्वते मधु मांसं तथा मद्यं च सुव्रत ।।१
पुरुहूताय भक्ष्याणि सानुगाय निवेदयेत् । हविरन्नमग्नये स्यादग्रान्नं विष्णवे तथा ।।२
राक्षसेभ्यः समैरेयं दद्यान्मांसौदनं हर ! संस्कृतं पिशितान्नं च रेवताय निवेदयेत् ।।३
तिलान्नं पितृराजाय दद्यात्त्रिपुरसूदन । अश्विनाभ्यामपूपांस्तु वसुभ्यो मांसमोदनम् ।।४
पितृभ्यः पायसं दद्याद्घृताक्तं मधुना सह । कात्यायन्यै यवागूं च श्रियै दद्यात्तथा दधि ।।५
सरस्वत्यै त्रिमधुरं वरुणायेक्षुरसौदनम् । [1]खांडवान्नं धनपतावेव नित्रे त्रिलोचन ।।६
सस्नेहेन तु तक्रेण मरुद्भ्यस्तर्पणं स्मृतम् । मांसान्नभक्तयूपांश्च मातृभ्यो वै निवेदयेत् ।।७
उल्लेपिकाश्च भूतेभ्यो जलं सूर्याय वै हर । दद्याद्गणाधिपतये मोदकांस्त्रिपुरान्तक ।।८
शष्कुल्यस्तु नैर्ऋताय देयाः स्युर्गणनायक । सर्वभक्ष्याणि विश्वेभ्यो दातव्यानि समन्ततः ।।९
क्षीरौदनमृषिभ्यस्तु क्षीरं नागेभ्य एव हि । सूर्यरथाय बलिं दद्यात्कुर्याद्वै सार्वभौतिकम् ।।१०

अध्याय ५७

रथ-यात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे त्रिलोचन ! ब्रह्मा के लिए दूध की लप्सी, कार्तिकेय के लिए फल, विवस्वान (यम) के लिए मधु (शहद), मांस एवं शराब, सेवकों समेत इन्द्र के लिए अन्न के भक्ष्य पदार्थ, अग्नि के लिए हविष्यान्न, विष्णु के लिए अग्रान्न, राक्षसों के लिए शराब समेत मांस भात, रेवत के लिए विशुद्ध पिशितान्न पितृराज के लिए तिलपूर्ण अन्न, अश्विनी कुमार के लिए मालपूआ, वसुओं के लिए मांसभात, पितरों के लिए मधु समेत घी पूर्ण खीर, कात्यायनी के लिए लप्सी, श्री के लिए दही, सरस्वती के लिए घी, मधु एवं शक्कर, वरुण के लिए ईख के रस द्वारा बनाया हुआ भात, कुबेर के लिए खांड से बना अन्न, मरुतों के लिए स्नेहपूर्वक मट्ठा, मातृकाओं के लिए मांस-भात और रसादार पेयवस्त्र, भूतों के लिए उल्लेपिका, सूर्य के लिए जल, गणेश के लिए लड्डू, नैर्ऋतों के लिए पूड़ी, विश्वावसु के लिए सभी भक्ष्य पदार्थ, ऋषियों के लिए दूध-भात, साँपों के लिए दूध, सूर्यरथ के लिए सभी भूतों वाली भाँति-भाँति की बलि, एवं उसी भाँति रथ को वहन करने वालों के लिए लेप, शराब और मांस प्रदान करना चाहिए। पुनः ब्रह्मा के लिए घी, रुद्र के लिए तिल, स्वाहा के पुत्रों के लिए लावा, भास्कर के लिए कचनार, इन्द्र के लिए राजवृक्ष

---

१. खंडं वान्नम् ।

उद्वर्तनं सुरा मांसं तद्वाहेभ्यश्च भारत । आज्यं च ब्रह्मणे दद्यात्त्र्यम्बकाय तिलांस्तथा ॥११
स्वाहातनये वै लाजा दातव्यास्त्रिपुरान्तक । भास्कराय सदा दद्यात्कोविदारं त्रिलोचन ॥१२
राजवृक्षं तथेन्द्राय हविष्यं पावकाय च । चक्रिणे सप्तधान्यं च गरुडे मत्स्यमोदनम् ॥१३
यक्षेभ्यो विविधान्नानि निर्यासं रेवते त्यजेत् । वैकंकतस्रजो रुद्र यमाय परिकीर्तितः ॥१४
देयं स्यात्कर्णिकारं तु अश्विन्यां वृषभध्वज । श्रियै पद्मानि देयानि चंडिकायै सुचंदनम् ॥१५
नवनीतं सरस्वत्यै विनतायै तथामिषम् । पुष्पाण्यप्सरसां रुद्र मालत्याः परिकीर्त्तितम् ॥१६
वरुणायाग्निमन्थं तु फलं मूलं निर्ऋतये । बिल्वं दद्यात्कुबेराय कपित्थं मरुतां तथा ॥१७
गंधर्वेभ्यस्त्वारग्वधं दद्यात्त्रिपुरसूदन । वासवेभ्यस्तु कर्पूरं दद्याद्दारु गणाधिपे ॥१८
पितृभ्यः पिण्डमूलानि भूतेभ्यश्च विभीतकम् । गोभ्यो यवान्प्रदद्याद्वै मातृभ्यश्चाक्षतान्हर ॥१९
गुग्गुलं विघ्नपतये विश्वेभ्यो देयमोदनम् । ऋषिभ्यो ब्रह्मवृक्षं तु नागेभ्यो विषमुत्तमम् ॥२०
भास्करस्येह देयानि सकलानि गणाधिप[1] । मधुसर्पिस्तथोक्तानि गैरिकस्य त्रिलोचन ॥२१
न्यग्रोधं तस्य वाहेभ्यो भक्त्या रुद्र निवेदयेत् । सायं प्रातस्तु मध्याह्ने सदैकाग्रमना हर ॥२२
सर्वेषां शक्तितो भक्त्या [2]दहेद्धूपं विचक्षणः । मन्त्रतो देवशार्दूल यो यस्येह प्रकीर्तितः ॥२३
शान्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलान्दद्याद्विचक्षणः । वैश्वानरे वा जुहुयाद् घृतेन सहितान्हर ॥२४
देवानाममृतं ह्येते पितृणां हि स्वधामृतम् । शरणं ब्राह्मणानां च सदा ह्येतान्विदुर्बुधाः ॥२५

(धनबहेड़), पावक के लिए हविष्य, विष्णु के लिए सप्तधान्य, गरुड़ के लिए मछली-भात, यक्षों के लिए अनेक भाँति के पदार्थ, रेवत के लिए गोंद, यम के लिए विकङ्कत (शमी) वृक्ष के फूलों की माला, अश्विनी कुमार के लिए कर्णिकार (कनैलफूल की) माला, लक्ष्मी के लिए कमल, चंडिका के लिए उत्तम चन्दन, सरस्वती के लिए मक्खन, विनता के लिए आमिष, अप्सराओं के लिए मालती के फूल, वरुण के लिए गड़ियारी के फूल, निर्ऋति के लिए फल मूल, कुबेर के लिए बेल, मरुतों के लिए कैथा के फल, गन्धर्व के लिए छितिवन के फूल, वसु के लिए कपूर, गणाधिप के लिए देवदारु, पितरों के लिए पिण्डमूल (गाजर), भूतों के लिए विभीतक (बहेड़ा) गौओं के लिए जवा, मातृकाओं के लिए अक्षत, विघ्नेश्वर के लिए गूगुल की धूप, विश्वदेव के लिए भात, ऋषि के लिए वृक्ष (पलाश), नागों के लिए प्रखर विष (पद्म-पराग), भास्कर के लिए देने योग्य (मधु, घी, एवं सुवर्ण आदि) सभी वस्तुएँ तथा उनके वाहक के लिए भक्तिपूर्वक वरगद के फल। इस प्रकार प्रातःकाल दोपहर तथा संध्या समय एकाग्रचित्त होकर ऊपर कही हुई सभी वस्तुएँ उन-उन देवताओं को प्रेमपूर्वक प्रदान करते हुए मन्त्रसमेत धूपादिक सुगन्ध भी प्रदान करना चाहिए।१-२३। शांति के लिए ब्राह्मणों को तिल दान पर उसमें घी मिलाकर अग्नि में हवन करना बताया गया है।२४। क्योंकि देवताओं के लिए लिए यही सब वस्तुएँ अमृतमय हैं। उसी भाँति पितरों के लिए स्वधा और ब्राह्मणों के लिए शरण-दान अमृत रूप है, ऐसा विद्वानों ने बताया है।२५। कश्यप के अंग

---

१. यथाविधि। २. देयम्।

कस्यपस्याङ्गजा ह्येते पवित्राश्च तथा हर । स्नाने दाने तथा होमे तर्पणेह्यशने पराः ॥२६
इत्थं देवान्ग्रहांश्चैव पूजयित्वा प्रयत्नतः । अवतार्य रथाच्चैनं मण्डले स्थापयेत्पुनः ॥२७
कृत्वा त्वारार्तिकं यत्नाद्दीपतोययवाक्षतैः[1] । कार्पासबीजलवणतुषैर्दुर्दृष्टिशान्तये ॥२८
वेदीमारोपयेत्पश्चात्पत्नीभ्यां सह सुव्रत । तत्रस्थं पूजयेद्देवं दिनानि दश सुव्रत ॥२९
दशाहिकेति विख्याता या पूजा भूतले हर । तया सम्पूजयेद्देवं चतुर्थेऽह्नि तथा हर ॥३०
चतुर्थेऽहनि कर्तव्यं यत्नाद्धि स्नपनं रवेः । अभ्यङ्गभोजनाद्यैस्तु पूजासत्कारमण्डलैः ॥३१
अनेन विधिनापूज्य दशाहानि दिवाकरम् । ततो नयेत्परं स्थानं यत्तत्पूर्वं देवालयम् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे आदित्यमहिमवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रथ-यात्रावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वा कारयेत वा । यात्रां भगवतो भक्त्या भास्करस्यामितौजसः ॥१

से उत्पन्न होने के नाते ये देवगण परम पवित्र हैं । अतः स्नान, दान, हवन, तर्पण और भोजन आदि सभी कर्मों में इनका अत्यन्त सुसम्मान करना चाहिए ।२६। इस प्रकार ग्रह और देवादिकों का सप्रयत्न पूजन करने के अनन्तर रथ से सूर्य को उतार कर पुनः मंडल में स्थापित करे ।२७। पश्चात् दुर्भाग्य शांति के लिए कपास के बीज, लवण, तुष (भूसी) जवा अक्षत और दीपक द्वारा आरतीदान करे ।२८। पुनः वेदी पर दोनों पत्नियों समेत उन्हें प्रतिष्ठित करके दश दिन तक उनकी पूजा करे ।२९। हे हर ! पृथिवी में जो इस भाँति की दशाहिक पूजा प्रख्यात है, उसी विधि से चौथे दिन भी उनकी पूजा करे ।३०। इसलिए चौथे दिन स्नान, उबटन एवं भोजनादि द्वारा भली भाँति पूजा सत्कार करके मंडल दान समेत उन्हें प्रसन्न करना चाहिए ।३१। इस प्रकार दश दिन तक सूर्य का पूजन आदि करके पश्चात् पुनः उन्हें अपने पुराने देवालय के स्थान पर स्थापित करे ।३२

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य महिमा वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

अध्याय ५८

रथयात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इस भाँति जो अनुपम तेजस्वी भगवान् सूर्य की रथ यात्रा स्वयं करता या कराता है

---

१. तिलाक्षतैः ।

स परार्धं तु वर्षाणां सूर्यलोके महीयते । कुले जायते तस्य दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥२
अभ्यङ्गाय घृतं यस्तु भास्कराय प्रयच्छति । कृते तु वर्णतिलके स गच्छेत्सुरभी[१] पुरम् ॥३
तीर्थोदकं तु यो भक्त्या गंगायाश्च तथोदकम् । स्नानार्थमानयेद्यस्तु भास्करस्य त्रिलोचन ॥४
भक्त्या वर्णत्रयं दद्याद्भास्करस्य त्रिलोचन । समाप्येहाखिलान्कामान्प्राप्नुयाद्वरुणालयम् ॥५
रक्तवर्णं तु यो दद्याद्धविष्यान्नं गुडौदनम् । स गच्छेद्दीप्तिमान्रुद्र सूर्यलोकं पुरं वरम् ॥६
गच्छेत्सुरवरे रुद्र यत्र देवः प्रजापतिः । स्नापयेद्यस्तु वा भक्त्या भास्करं पूजयेत्तथा ॥७
स गच्छेद्दीप्तिमान्रुद्र सूर्यलोकं न संशयः । [२]रथमारोपयेद्यस्तु रथमार्गं प्रमार्जति ॥८
स याति वातसालोक्यं वाततुल्यपराक्रमः । रथस्य गच्छतो यस्तु मार्गे कुर्यात्सुमण्डलम् ॥९
स लोकं प्राप्नुयात्पुण्यं मारुतं नात्र संशयः । सूर्यस्य गच्छतो यस्तु मार्गं कुर्यात्सुमण्डलम् ॥१०
स लोकं प्राप्नुयात्पुण्यं यः कुर्यान्मार्गमादरात् । पुष्पप्रकरशोभाढ्यं [३]शुभतोरणमण्डितम् ॥११
शंखतूर्यनिनादाढ्यं तथा[४] प्रेक्षणकान्वितम् । स याति परमं स्थानं यत्र देवो विभावसुः ॥१२
देवेन सहितो यस्तु नृत्यन्गायंस्तथार्चयन् । कुर्यान्महोत्सवं भक्त्या स याति परमं पदम् ॥१३
प्रजागरं यस्तु कुर्याद्देवे रथगते रवौ । स सुखी पुण्यवान्नित्यं मोदते शाश्वतीः समाः ॥१४

वह परार्द्ध वर्षपर्यन्त (अन्तिम संख्या के वर्षों तक) सूर्य में पूजित रहता है और उसके कुल में कभी दरिद्र या कोई रोग नहीं होता है।१-२। इस भाँति जो सूर्य के देह में लगाने के लिए घी का दान तथा तिलक के लिए रंग प्रदान करता है, वह सुरभी (गायों के) लोक को प्राप्त करता है।३। हे त्रिलोचन ! जो सूर्य के स्नान के लिए गंगा जल या अन्य तीर्थों के जल, तथा भक्तिपूर्वक तिलक लगाने के लिए तीनों रंगों को प्रदान करता है, वह इस लोक में अपने सभी मनोरथ सफल करके वरुण लोक को प्राप्त करता है।४-५। जो लाल रंग समेत गुड़, मिश्रित भात हविष्यान्न प्रदान करता है, वह तेजस्वी सूर्यलोक की यात्रा (मरने के बाद) करता है।६। उसी भाँति जो भक्तिपूर्वक सूर्य को स्नान कराता है और पूजन करता है, उसे निःसंदेह प्रजापति लोक की प्राप्ति होती है।७। जो रथ में स्थापित करता है या उनके रथ के मार्ग को साफ-शुद्ध बनाता है, निःसन्देह तेजस्वी होकर सूर्यलोक को जाता है।८। वह वायु की भाँति पराक्रमी होकर वायुलोक में निवास करता है, जो चलते हुए रथ के मार्ग में सुन्दर मंडल की रचना करता है।९। वह पुण्य वायु लोक को निःसन्देह प्राप्त करता है जो सूर्य के चलते हुए उनके मार्ग को मंडल बनाता है।१०। जो उनके मार्ग को आदरपूर्वक सजाता है जो सुन्दर तोरण (बहिर्द्वारि) से मण्डित तथा अधिक पुष्पों से सुशोभित किया गया हो, वह पुण्यलोक प्राप्त करता है।११। शंख, तुरुही आदि वाद्यों के ध्वनि-कोलाहल में मार्ग को सुशोभित कर रखने योग्य बनाता है, वह सूर्य के परम स्थान की प्राप्ति करता है।१२। एवं जो सूर्य की उस यात्रामें पूजनपूर्वक नाचगान करके उसे महोत्सव को सुशोभित करता है, उस परम पद की प्राप्ति होती है।१३। तथा जो सूर्य के इस उत्सव में जागरण करता है, वह सुखी और पुण्यात्मा होकर अनेकों वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।१४। जो भक्ति और दास आदि उन्हें समर्पण करताहै वह यहाँ अपने

---

१. सवितुः । २. स्नानार्थमानयेद्यस्तु । ३. शुभास्तरणमण्डितम् । ४. दद्यात् ।

भक्तदासादिकं[1] सर्वं यो ददाति रवेर्नरः । सम्प्राप्येहाखिलान्कामान्सूर्यलोकमवाप्नुयात् ।।१५
रथारूढस्य सूर्यस्य भ्रमतो दर्शनं हर । दुर्लभं देवशार्दूल विशेषात्पुरतो व्रजन् ।।१६
उत्तराभिमुखं यान्तं तथा वै दक्षिणामुखम् । धन्यः पश्यति देवेशं भास्करं भक्तवत्सलम् ।।१७
अथ संवत्सरे प्राप्ते भानोर्यात्रादिने यदि । रथप्रक्रमणं तत्र न कथञ्चित्कृतं भवेत् ।।१८
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं भूतिमिच्छता । इन्द्रध्वजस्य चाप्येवं यदि नोत्थापनं कृतम् ।।१९
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं नान्तरा पुनः । यात्रायाश्चापि ये भङ्गं कुर्वन्ति वृषभध्वज ।।२०
मन्देहा नाम ते ज्ञेया राक्षसा नात्र संशयः । ये कुर्वन्ति तथा यात्रां नरा धर्मध्वजस्य तु ।।२१
इन्द्रादिदेवास्ते ज्ञेया गताश्च परमं पदम् । पुनर्यात्राविधिं चेमं समासात्कथयामि ते ।।२२
यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । वर्तमाने तु वै माघे रथे [2]देवगणाश्रिते ।।२३
स तस्मिन्नेव मनसा स्थापनीयो रथोपरि । द्यौर्मही च द्विमूर्तिस्थे यथापूर्वं प्रतिष्ठिते ।।२४
तथैव राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता । एताभ्यामपि देवीभ्यां यथैव सवितुस्तथा ।।२५
दिण्डिनः पिंगलादीनां पृथुः कार्यो रथक्रमः । मनसा चिन्तयेदन्यां यथास्थानेषु देवताः ।।२६
दिक्पालांल्लोकपालांश्च कल्पयेन्मनसैव तु । देवो वेदमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ।।२७
मंडलमृङ्मयं चैव छन्दांस्यास्यं प्रकीर्तितम् । गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगत्यनुष्टुबेव च ।।२८

मनोरथों को सफल करते हुए (अंत में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।१५। हे देवशार्दूल! इस प्रकार रथ पर बैठ कर घूमते हुये सूर्य का दर्शन विशेष कर अत्यन्त दुर्लभ होता है, जब वे सामने से होकर जाते हैं।१६। इसलिए उत्तर या दक्षिण की ओर मुख करके जाते हुए भक्तवत्सल सूर्य का दर्शन जिसे प्राप्त होता है, वह धन्य है।१७। यदि वर्ष के आरम्भ में किसी भाँति रथ की यात्रा न हो सके, तो कल्याण की इच्छा करते हुए मनुष्यों को बारहवें वर्ष में रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए। इसी प्रकार इन्द्र की ध्वजा की भी जिसका उत्थापन न हुआ हो, व्यवस्था करने के लिए बतायी गयी है।१८-१९। हे वृषभध्वज! बारहवें वर्ष उस यात्रा को किसी भाँति अवश्य करके पुनः प्रतिवर्ष सदैव करना चाहिए, क्योंकि यात्रा भंग करने वाले को मन्देह नामक राक्षस ही जानना चाहिए। जो धर्म ध्वज (सूर्य) की रथयात्रा करते हैं, वे इन्द्रदि देवता ही हैं क्योंकि उन्हें परमपद प्राप्त होता है। अतः इस यात्राविधि को मैं पुनः संक्षेप में कह रहा हूँ।२०-२२। जिसे सुनकर सभी लोग पापों से मुक्त हो जायेंगे।

माघ मास में रथ में देवताओं के बैठने के पश्चात् उसी रथ में आकाश और पृथिवी रूप दो मूर्तियों की भी मानसिक स्थापना करनी चाहिए।२३-२४। क्योंकि रानी को द्यौ (आकाश रूप) और निक्षुभा को पृथिवी रूप बताया गया है। इसलिए इनके समेत ही सूर्य की स्थापना होनी चाहिए।२५। पुनः दिंडी और पिंगलादिकों की भाँति अन्य देवताओं की भी यथास्थान मानसिक कल्पना (स्थापना) करना आवश्यक बताया गया।२५-२६। उसी प्रकार दिग्पाल और लोकपालों की भी मानसिक कल्पना करनी चाहिए। सूर्य वेदमय एवं सर्वदेवमय हैं।२७। उनका मंडल ऋचामय है इसलिए गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती,

---

१. भक्त्या दशाहिकासंज्ञम्। २. वा गगनाश्रिते।

पंक्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव च सप्तमी । ततो देवमयात्वाच्च च्छन्दसां चैव कल्पनात् ॥२९
ततो वेदनयात्वाच्च तरणिर्लोकपूजितः । [1]रथप्रक्रमणात्सूर्यो वोढव्यो ब्रह्मवादिभिः ॥३०
उपवासपरैर्युक्तैर्वेदवेदांगपारगैः । रथं तु नारुहेच्छूद्रो भास्करस्य त्रिलोचन ॥३१
आरुह्य तरणेर्यानं व्रजेच्छूद्रो ह्यधोगतिम् । यथोक्तकरणाद्रुद्र सदा शान्तिर्भवेन्नृणाम् ॥३२
नायकश्चापि सर्वेषां देवानां तु[2] दिवाकरः । विन्यसेत्तु रथानां तु देवतायतनेषु च ॥३३
ततः धूपोपहारैस्तु पूजयेत्प्रथमं रविम् । दिग्देवानुचरांश्चैव पूजयेत्पूज्यते श्रिया ॥३४
अपूज्य प्रथमं सूर्यमपरान्यस्तु पूजयेत् । [3]तत्तद्भूतकृतं पाद्यं न प्रगृह्णन्ति देवताः ॥३५
यात्राकाले तु सम्प्राप्ते [4]सवितुर्दीक्षितां तनुम् । ये द्रक्ष्यंति नरा भक्त्या ते भविष्यन्त्यकल्मषाः ॥३६
पौर्णमास्याममायां च दर्शनं पुण्यदं स्मृतम् । सप्तम्यां च तथा षष्ठ्यां दिने तस्य रवेस्तथा ॥३७
आषाढी कार्त्तिकी माघी तिथ्यः पुण्यतमाः स्मृताः । महाभाग्यं तिथे पुण्यं यथा शास्त्रेषु गीयते ॥३८
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण महाकार्तिक्युदाहृता ! एवं कालसमायोगाद्यात्राकालो विशिष्यते ॥३९
दर्शनं च महापुण्यं सर्वपापहरं भवेत् । उपवासपरो यस्तु तस्मिन्काले यतव्रतः ॥४०

अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती तथा उष्णिक् ये सातों छन्द उनके मुख हैं। देवमय और वेदमय होने तथा छन्द की कल्पना करने के नाते सूर्य लोकपूज्य हैं। अतः उनके रथ वहन करने के लिए ब्रह्मवादियों को जो उपवास आदि नियम पालन और वेद वेदाङ्ग के कुशल विद्वान् हों, नियुक्त करना चाहिए।२८-३०। हे त्रिलोचन! सूर्य के रथ पर शूद्र को कभी न बैठना चाहिए।३१। क्योंकि यदि उस पर वह बैठता है तो उसकी अधोगति होती है। हे रुद्र! इस प्रकार बतायी गई इस विधि का पालन मनुष्य करे, तो उसे सदैव शांति प्राप्त होती है।३२

क्योंकि सभी देवताओं के नायक दिवाकर हैं। अतः उन्हें तथा देवताओं को रथ में अपने-अपने देवस्थानों में स्थापित करने के पश्चात् धूपादि उपहार द्वारा प्रथम सूर्य की पूजा के पश्चात् अन्य देवताओं एवं अनुचरों की पूजा करने वाला मनुष्य श्री सम्पन्न होकर पूज्य होता है।३३-३४। जो प्रथम सूर्य की पूजा न करके अन्य देवों की पूजा करता है, वे (देव) उसके द्वारा दिये गये पाद्यादि को स्वीकार नहीं करते हैं।३५। इस प्रकार जो भक्तिपर्वूक यात्रा समय में सूर्य के उस दीक्षित (पूजित) शरीर का दर्शन करते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं।३६। इस भाँति पूर्णिमा, अमावस्या, सप्तमी और षष्ठी के दिन सूर्य का दर्शन अत्यन्त पुण्यदायक बताया गया है।३७। आषाढ़, माघ तथा कार्तिक मास की तिथियाँ, पुण्यस्वरूप हैं क्योंकि इन तिथियों का पुण्यस्वरूप महान् सौभाग्यकारक होना शास्त्रों में प्रतिपादित है।३८। विशेषकर कार्तिक में वह पूजा विशेष महत्त्व प्रदान करती है, इसीलिए कार्तिक की पूजा का नाम महाकार्तिकी बताया गया है। इस प्रकार काल-समय के योग द्वारा यात्राकाल की विशेषता कही गई है।३९। उस समय का दर्शन समस्त पापों के नाशपूर्वक महापुण्य प्रदान करता है। जो उस समय व्रती रहकर उपवास करके भक्तिपूर्वक

---

१. रथसंक्रमणे। २. हि। ३. ते तद्भूतकृतं पाद्यं न प्रगृह्णन्ति देवताः। ४. दक्षिणाम्।

पूजयेत्[1] रविं भक्त्या स गच्छेत्परमां गतिम् । देवोऽयं यज्ञपुरुषो लोकानुग्रहकांक्षया ।।४१
प्रतिमावस्थितो भूत्वा पूजां गृह्णात्यनुग्रहात् । स्नानाद्दानाज्जपाद्धोमात्संयोगाद्देवकर्मणः ।।४२
कूर्चानां वपनाच्चैव दीक्षितः पुरुषो भवेत् । कचानां वापनं कार्यं सूर्यभक्तैः सदा नरैः ।।४३
मूर्दक्रतौ शुचिस्त्वेवं दीक्षितः पुरुषो भवेत् । चतुर्णामपि वर्णानां भक्त्या सूर्यस्य नित्यदा ।।४४
एवं येऽत्र करिष्यन्ति ते नरा नित्यदीक्षिताः । चीर्णव्रता महात्मानस्ते यास्यन्ति परां गतिम् ।।४५
इत्येषा कथिता रुद्र रथयात्रा दिवस्पतेः । यां श्रुत्वा वाचयित्वा सर्वरोगैर्विमुच्यते ।।४६
कृत्वा च विधिवद्भक्त्या याति सूर्यसदो नरः । रथाह्वा कथिता रुद्र समासात्सप्तमी शुभा ।।४७
भूयोऽपि श्रूयतां रुद्र सप्तमीं गदतो मम ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे रथयात्रा वर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ।५८।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

रथसप्तमी-माहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माघे मासि तथा देव सिते पक्षे जितेन्द्रियः । षष्ठ्यामुपोषितो भूत्वा गन्धपुष्पोपहारतः ।।१

सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति होती है । इसीलिए लोकोंके के ऊपर विशेष कृपा करने के नाते सूर्य को यज्ञ-पुरुष बताया गया है ।४०-४१। प्रतिभा में अवस्थित होकर ये (सूर्य) कृपा करके (उसकी) पूजा ग्रहण करते हैं । सूर्य देव के स्नान, दान, जप एवं होमादि सभी कर्म करने और दाढ़ी के बाल बनवाने से पुरुष दीक्षित होता है । अतः सूर्य के भक्त को सदैव मुंडन कराना चाहिए ।४२-४३। सूर्य के यज्ञ में इसी प्रकार चारों वर्णों के पुरुष पवित्र एवं दीक्षित होते रहते हैं ।४४। इस भाँति जो सदैव उसे सुसम्पन्न करते रहेंगे वे नित्य दीक्षित होकर परमगति को प्राप्त करेंगे ।४५। हे रुद्र ! इस प्रकार यह सूर्य की यात्रा बतायी गई है । जिसे सुनकर या सुनाकर सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है ।४६। और विधिपूर्वक इसे सुसम्पन्न करने पर मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है । हे रुद्र ! रथनाम वाली इस कल्याणमय सप्तमी को संक्षेप में मैंने बता दिया किन्तु फिर भी मैं सप्तमी की ही व्याख्या कर रहा हूँ सुनो ! ४७-४८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में रथयात्रा वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।५८।

अध्याय ५९

सूर्य रथ-यात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे देव ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में इन्द्रियसंयम पूर्वक उपवास रहकर गंध

---

१. यः ।

पूजयित्वा दिनकरं रात्रौ तस्याग्रतः स्वपेत् । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां भक्त्या भानुं समर्चयेत् ॥२
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्वित्तशाठ्यं[1] विवर्जयेत् । खण्डवेष्टैर्मोदकैश्च तथेक्षुगुडपूपकैः ॥३
अथ संवत्सरे पूर्णे सप्तम्यां कारयेद्बुधः । देवदेवस्य वै यात्रां पूर्वोक्तविधिना हर ॥४
कृष्णपक्षे तु यः कृत्वा रथमारोहितं रविम् । पश्येद्भक्त्या जगन्नाथं स याति परमां गतिम् ॥५
तृतीयायामेकभक्तं चतुर्थ्यां नक्तमुच्यते । पञ्चम्यामयाचितं स्यात्षष्ठ्यां चैवमुपोषणम् ॥६
सप्तम्यां पारणं कुर्याद् दृष्ट्वा देवं रथे स्थितम् । पूजयित्वा च विधिना शक्त्या भक्त्या त्रिलोचन ॥७
सौवर्णं तु रथं कृत्वा ताम्रपात्रोपरि स्थितम् । रथमध्ये न्यसेद्व्योम पूजितं मणिभिर्हर ॥८
पद्मरागं न्यसेन्मध्ये मौक्तिकं पूर्वतो न्यसेत् । इंद्रनीलमथो याम्यां वारुण्यां मरकतं हर ॥९
प्रवालमुत्तरे रुद्र सवज्रं विन्यसेद् बुधः । श्वेतं पीतासितं चापि रक्तं चान्धकसूदन ॥१०
एतानि तात वस्त्राणि दिक्षु सर्वासु विन्यसेत् । पताकाकारसंस्थानं घण्टाभरणभूषितम् ॥११
पुष्पैर्दामैरलंकृत्य रथं रुद्र समन्ततः । यथान्यायं पूजयित्वा भास्कराय निवेदयेत् ॥१२
भोजयित्वाथ वा विप्रानाचार्याय निवेदयेत् । योऽधीते सप्तमीकल्पं सोपाख्यानं च भारत ॥१३
आचार्यः स द्विजो ज्ञेयो वर्णानामनुपूर्वशः । सौराणां वैष्णवानां तु शैवानां पार्वतीप्रिय ॥१४
अलाभे तु सुवर्णस्य रथं राजतमादिशेत् । तद्लाभे ताम्रमयं रथं व्योम च कारयेत् ॥१५

और पुष्पादि उपहार द्वारा सूर्य की पूजा करके रात में उन्हीं के समाने शयन करे। पुनः सप्तमी में प्रातः काल उठकर भक्तिपर्वूक भानु की पूजा करने के अनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार खाँड़ के लड्डू, ऊख के गुड़ के मालपुआ और लड्डू द्वारा ब्राह्मणों को भली-भाँति तृप्त करे उसमें कृपणता न होने पाये।१-३। हे हर! पश्चात् वर्ष की समाप्ति में सप्तमी तिथि के दिन देवाधिदेव सूर्य की (रथ) यात्रा उसे पूर्वोक्त विधि द्वारा सम्पन्न करना बताया गया है।४। कृष्ण पक्ष में जो रथ पर बैठे हुए जगन्नाथ सूर्य का दर्शन करता है, वह परम गतिप्राप्त करता है।५। इसी भाँति तृतीया में एक बार भोजन करके चतुर्थी में नक्त व्रत, पञ्चमी में उस अन्न का, जो किसी से याचना द्वारा न प्राप्त हो भोजन कर षष्ठी में उपवास और सप्तमी में रथ पर बैठे हुए सूर्य का दर्शन तथा भक्तिपूर्वक शक्ति के अनुसार पूजन करके पारण करना चाहिए।६-७

सुवर्ण का रथ बनाकर उसे ताँबे के पात्र के ऊपर स्थापित करे पुनः रथ का मध्य भाग मणियों से सुशोभित करे।८। उसके मध्यभाग में पद्मराग मणि, पूर्व में मोती, दक्षिण में इन्द्रनील, पश्चिम में मरकत मणि और वज्र समेत प्रवाल (मूँग) उत्तर की ओर सुसज्जित करे। अनन्तर श्वेत, पीत, काले एवं रक्तवर्ण के वस्त्रों से उसके चारों दिशाओं को भूषित करते हुए यथास्थान रखे हुए पताकाओं, घंटा और आचरण एवं पुष्पमालाओं द्वारा रथ को सजाकर उसे सूर्य को यथा विधिपूजन समेत सादर समर्पित करे।९-१२। पुनः ब्राह्मणों को भोजन करा देने के पश्चात् उसे आचार्य को समर्पित करना चाहिए। हे भारत! एवं पार्वतीप्रिय! उपाख्यान समेत जो सप्तमीकल्प का पाठ करता है, वह द्विज! चारों वर्णों, सौर, वैष्णव तथा शैवों का भी आचार्य होता है।१३-१४। यदि रथ रचना में सुवर्ण की प्राप्ति न हो सके,

---

१. शक्त्या।

अभावे चापि ताम्रस्य रथः पिष्टमयः स्मृतः । सहिरण्यो [1]महादेव ताम्रभाजनमाश्रितः ॥१६
[2]कौशेययुग्मसहितं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । पूर्वोक्ताय महादेव वाचकाय महात्मने ॥१७
पञ्चरत्नसमायुक्तं शुभगन्धाधिवासितम् । स्वशक्त्या तु विरूपाक्ष वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥१८
एषा पुण्या पापहरा रथाह्वा सप्तमी हर । कथिता ते मया रुद्र महतीयं प्रकीर्तिता ॥१९
स्नानं दानमथो होमः पूजा ग्रहपतेर्हर । शतसाहस्रं भवेदस्यां कृतं सूधरविद्यते ॥२०
एवमेषा पुण्यतमा माघे प्रोक्ता तु सप्तमी । यामुपोष्य नरो भक्त्या सूर्यस्यानुचरो भवेत् ॥२१
ब्राह्मणो याति देवत्वं क्षत्रियो विप्रतां व्रजेत् । वैश्यः क्षत्रियतां याति शूद्रो वैश्यत्वमेति च ॥२२
विद्याविनयसम्पन्नं भर्त्तारं [3]कन्यका लभेत् । अपुत्रा स्त्री सुतं विन्देत्सौभाग्यं च गणाधिप ॥२३
विधवा चाप्युपोष्येमां सप्तमीं त्रिपुरान्तक । नान्यजन्मसु वैधव्यं प्राप्नुयात्पार्वतीप्रिय ॥२४
बहुपुत्रा बहुधना पत्युर्वल्लभतां व्रजेत् । यावद्वै सप्त जन्मानि स्त्रियस्तु पुरुषास्तथा ॥२५
एवंविधा सप्तमी ते कथिता वृषभध्वज । यां श्रुत्वा मानवो भक्त्या मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे रथसप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।५९।

तो चाँदी और उसके अभाव में ताँबे का ही रथ बनाये ।१५। यदि ताँबा भी अप्राप्य हो तो चूर्ण (आटे) का रथ बनाना बताया गया है । हे महादेव ! इस प्रकार सुवर्ण के उस रथ को ताँबे के पात्र में रखकर दो रेशमी वस्त्र तथा कथावाचक ब्राह्मण को अर्पित करके अपनी शक्ति के अनुसार पंचरत्न और इत्र आदि गंधादि द्वारा उनकी पूजा आदि भी सम्पन्न करे । उसमें कृपणता न करे ।१६-१८। हे हर ! हे रुद्र ! पुण्य रूप एवं पाप हारिणी इस रथ नाम वाली सप्तमी को मैंने सुना दिया जिसे महासप्तमी भी कहते हैं ।१९। इसमें सूर्य के स्नान, दान, हवन और पूजन करने से वह सहस्रों गुना अधिक पुण्यप्रद होती है ।२०

इसीलिए इस माघ की सप्तमी को अत्यन्त पुण्यस्वरूप बताया गया है क्योंकि भक्तिपूर्वक मनुष्य इसी का व्रत करके सूर्य का सेवक हो जाता है ।२१। तथा (इसी के प्रभाव से) ब्राह्मण, देवता क्षत्रिय, ब्राह्मण, नैश्य क्षत्रिय और शूद्र वैश्य हो जाते हैं ।२२। इसी भाँति इस प्रकार कन्या विद्या विनय सम्पन्न पति और स्त्री पुत्र एवं सौभाग्य प्राप्त करती है ।२३। हे त्रिपुरांतक ! एवं पार्वतिप्रिये ! विधवा स्त्रियों को भी इस सप्तमी का व्रत करना चाहिए । क्योंकि उन्हें ऐसा करने पर अन्य जन्म में वैधव्य नहीं प्राप्त होता है ।२४। अपितु सात जन्मों तक बहुत पुत्र, असंख्य धन की प्राप्तिपूर्वक वे सदैव पति की प्रेयसी बनी रहती हैं । इसी भाँति पुरुष को भी सभी फल की प्राप्ति होती है ।२५। हे वृषभध्वज ! इस प्रकार की सप्तमी, जिसे सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या के दोष से मुक्त हो जाता है, मैंने तुम्हें बता दिया ।२६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प में रथ सप्तमी माहात्म्यवर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।५९।

---

१. सपर्याढ्यं देवताजनमाश्रितम् । २. काषाययुग्मसहितम् । ३. कामुकौ ।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

रथयात्रावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा स जगामाशु सुरज्येष्ठं त्रिलोचनम् । रथयात्रां महाबाहो सूर्यस्येत्यमितौजसः ॥१

शतानीक उवाच

यमाराध्य जगन्नाथं मम पूर्वपितामहः । तुष्टयर्थं ब्राह्मणानां तु अन्नमापुश्चतुर्विधम् ॥२
तस्य देवस्य माहात्म्यं श्रुतं च बहुशो मया । देवर्षिसिद्धमनुजैः स्तुतस्य हि दिनेदिने ॥३
कः स्तोतुमीशस्तमजं[1] यस्यैतत्सचराचरम् । अव्ययस्याप्रमेयस्य विबुध्येतोदयाज्जगत् ॥४
कराभ्यां यस्य देवेशौ कविष्णू लोकपूजितौ । उत्पन्नौ द्विजशार्दूल ललाटात्त्रिपुरान्तकः ॥५
तस्य देवस्य कः शक्या वक्तुं सर्वा विभूतयः । सोऽहमिच्छामि देवस्य तस्य सर्वात्मना द्विज ॥६
श्रोतुमाराधनं येन निस्तरेयं भवार्णवम् । केनोपायेन मन्त्रैर्वा रहस्यैः परिचर्यया ॥७
दानैर्वृतोपवासैर्वा होमैर्जाप्यैरथापि वा । आराधितः समस्तानां क्लेशानां हानिदो भवेत्[2] ॥८
सैका विद्या हि विद्यानां यया तुष्यति सर्वकृत् । श्रुतानामपि तत्पुण्यं यत्र भानोः प्रकीर्तनम् ॥९

अध्याय ६०

रथा-यात्रा का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महाबाहो ! अमेय तेजस्वी सूर्य की रथ यात्रा का वर्णन देवश्रेष्ठ त्रिलोचन (शंकर) को सुना कर ब्रह्मा ने वहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर दिया।१

शतानीक ने कहा—जिस जगन्नाथ की आराधना करके मेरे पूर्वजों ने ब्राह्मणों को संतुष्ट रखने के लिए चार प्रकार के अन्न प्राप्त किये हैं, और जिसकी प्रतिदिन देव, ऋषि, सिद्ध और मनुष्य स्तुति करते रहते हैं, उस देव का माहात्म्य मैंने बहुत बार सुना है।२-३। इसलिए उनकी स्तुति कौन कर सकता है। क्योंकि वे अजन्मा हैं, उन्हीं का यह चर-अचर रूप जगत् है, वे प्रत्यय (अविनाशी) और अप्रमेय (बुद्धि द्वारा जिसकी कल्पना न हो सके) हैं। उन्हीं के उदय होने पर समस्त जगत् जागृत होता है एवं उन्हीं के हाथों द्वारा लोक-पूजित ब्रह्मा और विष्णु, तथा ललाट द्वारा शिव उत्पन्न हुए हैं।४-५। अतः उस देव की समस्त विभूति का वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है। हे द्विज ! पुनः प्रातः उन्हीं देव की आराधना, जो संसार सागर को पार करने वाली है, मेरी सुनने की प्रबल इच्छा है। और उनके मन्त्रों, रहस्यों, सेवा, दान, व्रत, उपवास, हवन एवं जप में किस युक्ति-युक्त उपाय द्वारा उनकी आराधना करने पर समस्त दुःखों का नाश होता है।६-८

क्योंकि विद्याओं में वही एक श्रेष्ठ विद्या बतायी गयी है, जिसके द्वारा वे प्रसन्न होते हैं। और सूर्य

---

१. तपनम् । ३. यथा । ४. यद्भूतम्-इ०, यद्दत्तम् ।

रहस्यानां रहस्यं तद्येन हंसः प्रसीदति । एकः श्रेष्ठतमो मंत्रस्तदेकं परमं व्रतम् ।।१०
उपोषितं च तच्छ्रेष्ठं येन भानुः प्रसीदति । सा चैका रसना धन्या मार्तण्डं स्तौति या सदा ।।११
तदेकं निर्मलं चित्तं [1]यद्गतं सततं रवौ । श्लाघ्यानामपि तौ श्लाघ्याविह लोके परत्र च ।।१२
यो सदा द्विजशार्दूल भानोः पूजाकरौ करौ । तदेकं केवलं धन्यं शरीरं सर्वजन्तुषु ।।१३
यदेव पुलकोद्भासि भानोर्नामानुकीर्तने । सा जिह्वा कण्ठतालूकमथ वा प्रतिजिह्विका ।।१४
अथ वा सापरो रोगो या न वक्ति रवेर्गुणम् । नवद्वाराणि सन्त्यस्मिन्पुरे पुरुषसत्तम ।।१५
प्राकारैस्त्वावृते विष्वग्वृथा तानि विदुर्बुधाः । दत्त्वावधानं यच्छब्दे विनैव रविसंस्तुतिम् ।।१६
श्रेयसां न हि सम्प्राप्तौ पुरुषाणां विचेष्टितम् । जन्मन्यविफला सेवा कृता याश्रित्य भास्करम् ।।१७
दुर्गसंसारकांतारमपारमभिधावताम् । एको भानुनमस्कारः संसारार्णवतारकः ।।१८
रत्नानामाकरो मेरुः सर्वाश्चर्यमयं नभः । तीर्थानामाश्रयो गंगा देवानामाश्रयो रविः ।।१९
एवमादिगुणो भोगो भानोरमिततेजसः । श्रुतो मे बहुशः सिद्धैर्गीयमानैस्तथामरैः ।।२०
सोऽहमिच्छामि तं देवं सप्तलोकपरायणम् । दिवाकरमशेषस्य जगतो हृद्यवस्थितम् ।।२१
आराधयितुमीशेशं भास्करं चामितौजसम् । मार्तण्डं भुवनाधारं स्मृतमात्राघदारिणम् ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
सप्तमीकल्पे सूर्यपरिचर्यावर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।६०।

का गुण-गान वेदों में भी वही पुण्ययुक्त है जिसमें सूर्य हो । उसी भाँति रहस्यों में वही रहस्य उत्तम है, वही एकमन्त्र है वही उत्तमव्रत, तथा वही उपवारा श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा सूर्य प्रसन्न होते हैं । उसी मनुष्य की जिह्वा धन्य हैं, जो सदैव सूर्य की स्तुति में लगी रहती है ।९-११। वही चित्त निर्मल है, जिसमें सूर्य का सतत ध्यान होता रहे । इसी भाँति (मनुष्यों के) हाथ लोक परलोक दोनों स्थानों मे प्रशस्त बताये गये हैं, जिससे सदैव सूर्य की पूजा होती है एवं सूर्य के नाम संकीर्तन में जिसनें हर्षातिरेक से रोमांच हो, वही शरीर सभी जन्तुओं में धन्य हैं । इसलिए कण्ठ और तालु समेत जो जिह्वा सूर्य के गुण-गान में लगी रहे तो वही जिह्वा और जो सूर्य के गुण का उच्चारण न करे वह जिह्वा नहीं प्रत्युत रोग रूप हैं । हे पुरुषोत्तम ! चारों ओर से चहार दिवारी की भाँति घिरे हुए इस शरीर में नवद्वार हैं, अतः यदि उनके द्वारा एकाग्र मन से सूर्य की स्तुति के बिना ही शब्द के उच्चारण हो तो वे व्यर्थ हैं ।१२-१६। और सूर्य के लिये यदि पुरुषों की चेष्टाएँ न हुईं, तो वे चेष्टाएँ कल्याणप्रद नहीं होती हैं । इस प्रकार सूर्य की जिसने सेवा की है, जीवन में उसकी वही एक सफल सेवा है ।१७। इसलिए इस दुर्गम अपार संसार रूपी जंगल में दौड़ने वाले प्राणियों के लिए सूर्य के लिए किया गया एकमात्र नमस्कार ही संसार सागर पार करने वाला है । क्योंकि अक्षय भण्डार मेरु है, एवं सभी भाँति के आश्चर्यमय नभ है तथा तीर्थो की आश्रम गंगा हैं देवों के आश्रय सूर्य हैं ।१८-१९। अमित तेज वाले सूर्य के इन गुणों को, जिनके गुण-गान सिद्ध तथा देवगण सदैव किया करते हैं, मैंने अनेकों बार सुना है ।२०। वही सातों लोकों के आश्रय, समस्त जगत् के हृदय-निवासी, लोकों के आधार, स्मरण मात्र से पाप नाशक एवं ईशों के ईश हैं । अतः मैं उस देव की आराधना करना चाहता हूँ ।२१-२२
श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य परिचर्या वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त।६०।

---

१. यद्भूतम्-इ०, यद्वृत्तम् ।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

सूर्य-महिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

तमेकमक्षरं धाम परं सदसतोर्महत् । भेदाभेदस्वरूपस्थं प्रणिपत्य रविं नृप ।।१
प्रवक्ष्यामि यथापूर्वं विरिञ्चेन महात्मना । ऋषीणां कथितं पूर्वं तं निबोध नराधिप ।।२
आराधनाय सवितुर्महात्मा पद्मसंभवः । योगं ब्रह्मपरं प्राह महर्षीणां यथा प्रभुः ।।३
समस्तवृत्तिसंरोधात्कैवल्यप्रतिपादकम् । तदा जगत्पतिर्ब्रह्मा प्रणिपत्य महर्षिभिः ।।४
सर्वैः किलोक्तो भगवानात्मयोनिः प्रजाहितम् । योयं योगो भगवता प्रोक्तो वृत्तिनिरोधजः ।।५
प्राप्तुं शक्यः स त्वनेकैर्जन्मभिर्जगतः पते । विषया दुर्जया नृणामिन्द्रियाकर्षिणः प्रभो ।।६
वृत्तयश्चेतसश्चापि चञ्चलस्यापि दुर्धराः । रागादयः कथं जेतुं शक्या वर्षशतैरपि ।।७
न योगयोग्यं भवति मन एभिरनिर्जितैः । अल्पायुषश्च पुरुषा ब्रह्मन्कृतयुगेप्यमी ।।८
त्रेतायां द्वापरे चैव किमु प्राप्ते कलौ युगे । भगवंस्त्वामुपासीनान्प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ।।९
अनायासेन येनैव उत्तरेम भवार्णवम् । दुःखाम्बुमग्नाः पुरुषाः प्राप्य ब्रह्मन्महाप्लवम् ।।१०

अध्याय ६१

सूर्य की महिमा का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे नृप ! मैं उन सूर्य को प्रणाम करके जो अविनाशी, सभी के लिए उत्तम प्राप्ति स्थान एवं भेदाभेद स्वरूप वाले अद्वितीय और सत्, असत् से परे हैं, उनके आराधना-विषय को कह रहा हूँ, जिसे ब्रह्मा ने ऋषियों को बताया था, सुनो ! ।१-२। सूर्य की आराधना के लिए ब्रह्मा ने ऋषियों को वह ब्रह्म-प्रधान योग बताया था, जो समस्त वृत्ति के निरोध रूप होकर कैवल्य प्रदान करता है।३। उस समय ऋषियों ने जगत्पति ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे कहा—हे जगत्पते, हे प्रभो ! आपने वृत्ति के रोकने से योग बताया है, किन्तु ऐसे योग की सिद्धि अनेक जन्मों में भी नहीं हो सकती है, क्योंकि विषय-वासना मनुष्यों की इन्द्रियों को बलात् आकर्षित कर लेती है, अतः वह मनुष्यों के लिए दुर्जेय है ।४-६। हे ब्रह्मन् ! एक तो मन सर्वथा चञ्चल है, दूसरे उसकी (आसक्ति आदि) वृत्तियों को अपने वश में करना महान् कठिन है, इसलिए हम लोग सैकड़ों वर्षों में भी उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते।७। इस प्रकार इन्हें बिना जीते हुए सदैव लिप्त रहने वाला मन, योग के योग्य कैसे हो सकता है ? तथा पुरुष अल्पायु भी होते हैं। अतः जब कृत (सत्य) युग, त्रेता और द्वापर की यह बात है तो कलियुग में कुछ कहना ही नहीं है। हे भगवन् ! हम लोग आपके पास इसीलिए आये हैं अतः प्रसन्न होकर आप यह बतायें कि—इस संसार-सागर को वे मनुष्य, जो दुःखरूपी लहरों में सैदव डूबते-उतराते हैं, किस आधार द्वारा पार कर सकेंगे और हम लोग भी कैसे पार करेंगे।८-१०। उन लोकों के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा ने उनसे

उत्तरेम भवाम्भोधिं तथा त्वमनुचिंतय । एवमुक्तस्तदा ब्रह्माक्रियायोगं महात्मनाम् ।।११
तेषामृषीणामाचष्ट नराणां हितकाम्यया । आराधयत विश्वेशं दिवाकरमतन्द्रिताः ।।१२
बाह्यलम्बनसापेक्षास्तमजं जगतः पतिम् । इज्यापूजानमस्कारशुश्रूषाभिरहर्निशम् ।।१३
व्रतोपवासैर्विविधैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । तैस्तैश्चाभिमतैः कामैर्ये च चेतसि तुष्टिदाः ।।१४
अपरिच्छेद्यमाहात्म्यमाराधयत भास्करम् । तन्निष्ठास्तद्गतधियस्तत्कर्माणस्तदाश्रयाः ।।१५
तद्दृष्टयस्तन्मनसः सर्वस्मिन्स[1] इति स्थिताः । समस्तान्यथ कर्माणि तत्र सर्वात्मनात्मनि ।।१६
संन्यसध्वं स वः कर्त्ता समस्तावरणक्षयम् । एतत्तदक्षरं ब्रह्म प्रधानपुरुषावुभौ ।।१७
[2]यतो यस्मिन्यथा चोभौ सर्वव्यापिन्यवस्थितौ । परः पराणां परमः सैकः सुमनसां परः ।।१८
यस्माद्विन्नमिदं सर्वं [3]यच्चेदं यच्च नेङ्गति । मोक्षकारणमव्यक्तमचिन्त्यमपरिग्रहम् ।।
समाराध्य जगन्नाथं क्रियायोगेन मुच्यते ।।१९
इति ते ब्रह्मणः श्रुत्वा रहस्यमृषिसत्तमाः ।।२०
नराणामुपकाराय योगशास्त्राणि चक्रिरे । क्रियायोगपराणीह मुक्तिकारीण्यनेकशः ।।२१
आराध्यते जगन्नाथस्तदनुष्ठानतत्परैः । परमात्मा स मार्तण्डः सर्वेशः सर्वभावनः ।।२२

कहा—यह क्रियारूपी योग ही मनुष्य के सभी प्रकार का हित कर सकता है। अतः संसार के ईश सूर्य की आराधना, जिसमें शारीरिक योग का भी सम्बन्ध है, सावधान होकर करो।११-१२। इस प्रकार जगत् के स्वामी और अजन्मा उन सूर्य की उपासना—यज्ञ, पूजन, नमस्कार एवं शुश्रूषा (सेवा), व्रत और उपवास द्वारा रात दिन परिश्रमपूर्वक करते हुए ब्राह्मणों को भी भली-भाँति तृप्त करो तथा अन्य भी ऐसे कार्य करो, जिन्हें सुसम्पन्न करने पर मनमें अत्यन्त प्रसन्नता हो।१३-१४। क्योंकि ऐसे ही कार्यों से अतुल माहात्म्य वाले वे सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अतः उन्हीं में प्रेम-बुद्धि लगाकर एव उन्हीं के आश्रित रहते हुए, उन्हीं में सतत दृष्टि तथा मन लगाकर उन्हीं के सम्बन्ध के समस्त कर्म करे। क्योंकि वे ही सब में स्थित हैं ऐसा जानो और समस्त कर्म भी उन्हीं में सब प्रकार से अर्पित करे। और वे ही तुम्हारे कर्त्ता तथा समस्त आवरणों (दोषों) के नाश करने वाले हैं। यही अनश्वर ब्रह्म एवं प्रधान-पुरुष भी हैं जो दोनों सर्वव्यापी सूर्य में अवस्थित हैं, तथा जो परमोत्तम, देवों से भी परे, एक हैं और जिससे पृथक् होकर यह समस्त ब्रह्माण्ड, न स्थित रह सके न चेष्टा कर सके एवं मोक्ष के कारण, अव्यक्त (मन द्वारा) अचिन्त्य और सभी भाँति दुर्ग्राह्य हैं। इसलिए ऐसे जगत्पति सूर्य की आराधना क्रिया योग द्वारा सफल करके (सभी) मुक्त होते हैं।१५-१९

पश्चात् उन श्रेष्ठ ऋषियों ने इस प्रकार ब्रह्मा से इस रहस्य को सुनकर मनुष्यों के हित के लिए क्रिया रूपी योग के प्रतिपादन करने वाले अनेक योग शास्त्रों की रचना की, जो अनेक भाँति से मुक्तिदायी हैं।२०-२१। उनके भक्त उसी क्रिया द्वारा सूर्य की, जो परमात्मा, मार्तण्ड, सभी के ईश और सभी स्थानों

---

१. महति। २. धाता यस्मिन्यथा चोभौ सर्वथापि व्यवस्थिती। ३. तं जाने सर्वतोगतिम्।

यान्युक्तानि पुरा तेन ब्रह्मणा कुरुनन्दन । तानि ते कुरुशार्दूल सर्वपापहराण्यहम् ।।२३
वक्ष्यामि श्रूयतामद्य रहस्यमिदमुत्तमम् । संसारार्णवमग्नानां विषयाक्रांतचेतसाम् ।।२४
हंसपोतं विना नान्यत्किंचिदस्ति परायणम् । उत्तिष्ठंश्चिंतय रविं व्रजंश्चिंतय गोपतिम् ।।२५
भुञ्जंश्चिंतय मार्तंडं स्वपांश्चिंतय भास्करम् । एवमेकाग्रचित्तस्त्वं संश्रितः सततं रविम् ।।२६
जन्ममृत्युमहाग्राहं संसाराम्भस्तरिष्यसि ।।२७

ग्रहेशमीशं वरदं पुराणं जगद्विधातारमजं च नित्यम् ।
समाश्रिता ये रविमीशितारं तेषां भवो नास्ति विमुक्तिभाजाम् ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्ययोगमहिमवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।६१।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

सूर्यदिण्डीसंवादम्

सुमन्तुरुवाच

अथान्यं सरहस्यं तु संवादं वच्मि तेऽखिलम् । सूर्यस्य दिण्डिना सार्धं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१
ब्रह्महत्याभिभूतस्तु परा दिंडिर्महातपाः । आराधनाय देवस्य स्तोत्रं चक्रे महात्मनः ।।२

में प्राप्त हैं, आराधना करते हैं।२२। हे कुरुनन्दन ! इसलिए ब्रह्मा के पहले जो कुछ कहा है, उसी को, जो समस्त पापों के नाशक तथा विषय-वासना में ओत-प्रोत होकर संसार सागर में डूबने वाले (प्राणी) के लिए एक गुप्त विषय है, मैं भी कह रहा हूँ, सुनो ! २३-२४। विषयासक्त प्राणी के (संसार-सागर पार करने) लिए सूर्य रूपी नौका के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए उठते-बैठते, चलते, भोजन करते और शयन करते आदि सभी समय एकाग्रचित्त से सदैव सूर्य के आश्रित रहते हुए संसार सागर को, जिसमें जन्म और मरण रूप महान् ग्राह (मकर) रहते हैं, पार कर सकोगे।२५-२७। अतः ग्रहों के स्वामी, वरदानी जगत् के प्राचीन विधाता एवं अजन्मा उस सूर्य के आश्रित होकर जो रहे हैं, उनकी मुक्ति हो जाती है, उन्हें फिर उत्पन्न नहीं होना पड़ेगा।२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्ययोग-महिमा वर्णन नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त।६१।

अध्याय ६२

सूर्य दिंडी संवाद

सुमन्तु बोले—इसके पश्चात् दिंडी के साथ हुए सूर्य के उस अखिल रहस्यमय सम्वाद को, जो समस्त पापों का नाश करता हैं, मैं कहता हूँ।१। पहले (समय में) महातपस्वी दिंडी को ब्रह्महत्या लगी थी, उस दुःख को दूर करने के लिए उन्होंने भगवान् सूर्य की आराधना का स्तोत्र (पाठ करने के लिए

श्रुत्वा तस्यार्थतः स्तोत्रं तुतोष भगवान्रविः । उवाच देवदेवस्तं दिण्डिनं गणनायकम् ॥३

आदित्य उवाच

हंत दिण्डे प्रसन्नोऽस्मि भक्त्या स्तोत्रेण तेऽनघ[1] । वरं वृणीष्व [2]धर्मज्ञ यत्ते मनसि वर्तते॥४

दिण्डिरुवाच

एष एव वरः श्लाघ्यो यत्प्राप्तोऽसि ममान्तिकम् । त्वद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नेष्वपि च दुर्लभम् ॥५
यथैषा ब्रह्महत्या मे आगता लोकगर्हिता । भवाञ्जानाति सर्वेशो हृदिस्थः सर्वदेहिनाम् ॥६
त्वत्प्रसादान्ममेशान[3] नाशमाशु प्रयातु वै । तथा च दुरितं सर्वं यच्चान्यल्लोकगर्हितम् ॥७
यद्यदिच्छाम्यहं तत्तत्सर्वमस्तु दिवस्पते । एतेनैवानुमानेन प्रसन्नो भगवन्निति ॥८
ज्ञातं मया हि मार्तण्डे नाप्रसन्ने विभूतयः । एवं सर्वसुखाह्लादमध्यस्थोऽपि हि भानुमान् ॥९
त्वं मामगाधे संसारे मग्नमुद्धर्तुमर्हसि । सुखानि तानि चैवान्ते तेषां दुःखं न तत्सुखम् ॥१०
यदा तु दुःखमागामि किं[4] वा कस्यैव भक्षणात् । तत्प्रसादं कुरु विभो जगतां त्वं जगत्पते ॥११
ज्ञानदानेन येनैवमुत्तरेयं भवार्णवम् । इत्युक्तस्तेनमार्तण्डः कथयामास योगवित् ॥१२

पद्यात्मक) बनाया था।२। अर्थ समेत उसे सुनकर भगवान् सूर्य देव ने प्रसन्न होकर गणनायक दिंडी से कहा।३

आदित्य ने कहा—हे दिंडे! भक्तिपूर्वक किये हुए तुम्हारे इस स्तोत्र के पाठ से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। हे मर्मज्ञ ! तुम अपने अभिलषित वरदान माँगो।४

दिंडी ने कहा—आपने यहाँ आकर दर्शन दिया, यही वरदान अति-प्रशंसनीय है, क्योंकि पापियों के लिए आप का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ है।५। किन्तु इस मेरी लोक निंदित ब्रह्महत्या को जो मुझे कैसे प्राप्त हुई है, यह वृत्तान्त सभी के ईश होने एवं समस्त प्राणियों के हृदय में रहने के नाते आप जानते ही हैं।६। इसलिए हे ईशान ! आपकी कृपा द्वारा इसका शीघ्र नाश हो। और मेरे अन्य सभी लोकनिन्दित पाप का भी।७। हे दिवस्पते ! जिस पदार्थ की इच्छा करूँ, उन सभी की पूर्ति हो जाये, हे भगवन् ! मुझे कुछ ऐसा अनुमान भी तो हो रहा है कि आप मुझ पर प्रसन्न हैं।८। और मैं भलीभाँति जानता भी हूँ कि सूर्य के अप्रसन्न रहने पर सभी ऐश्वर्यादिक विभूतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं, क्योंकि समस्त सुखों एवं प्रसन्नताओं के मध्यस्थ भगवान् ही हैं।९। अतः इस अगाध संसार से आप मेरे उद्धार करने की कृपा करें, जिससे उस सुख की प्राप्ति कर सकूँ, अन्य की नहीं, क्योंकि जिस सुख के अंत में दुःख भी प्राप्त हो, उसे सुख नहीं कहा जा सकता।१०। हे विभो, हे जगत्पते ! संसार में किसी प्रकार या किसी वस्तु के भोजन करने से भावी दुःख जो होने वाला है प्रसन्न होकर आप उसका नाश करें।११। इसलिए ज्ञान-दान किसी उपाय द्वारा मैं तथा (सभी लोग) संसार सागर को पार कर सकें, आप उसे बताने की कृपा करें ! इस प्रकार उनके कहने पर योग के विद्वान् सूर्य ने उन्हें निर्बीज योग का, जो अत्यन्त दुःख का नाशक है, उपदेश दिया। उस निष्कल

---

१. वै तव। २. सर्वज्ञ। ३. अशेषेण। ४. पातकस्यैव लक्षणात्।

योगं निर्बीजमत्यन्तं दुःखसंयोगभेषजम् । श्रुत्वा योगं तु तं दिण्डिनिर्बीजं निष्कलं बभौ ।।१३
प्रणिपत्य महातेजा इदं वचनमब्रवीत् । देवदेव त्वया योगो यः प्रोक्तो ध्वान्तनाशन ।।
नैष प्राप्यो मया नान्यैर्मानवैरजितेन्द्रियैः ।।१४
विषया दुर्जयाः पुंभिरिन्द्रियाकर्षिणः सदा । इन्द्रियाणां जयो युक्तः कः शक्तानां करिष्यति ।।१५
अहंममेतिनिबिध्य।तिर्दुर्जयं चञ्चलं मनः । रागादयस्तथा त्यक्तुं शक्या जन्मान्तरैर्यदि[2] ।।१६
सोऽहमिच्छामि देवेश त्वत्प्रसादादानिर्जितैः । रागादिभिरमर्त्यत्वं प्रापुः प्रक्षीणकल्मषाः ।।१७

आदित्य उवाच

यद्येवं मुक्तिकामस्त्वं गणनाथ शृणुष्व तम् । क्रियायोगं समस्तानां क्लेशानां हानिकारकम्[3] ।।१८
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।।१९
मद्भावना मद्यजना मद्भक्ता मत्परायणाः । मम पूजाकराश्चैव मयि यान्ति लयं नराः ।।२०
सर्वभूतेषु मां पश्यन्समवस्थितमीश्वरम्[4] । कर्तासि केन चैव त्वमेवं दोषान्प्रहास्यसि[5] ।।२१
जङ्गमाजङ्गमे ज्ञाते मय्यासक्ते समन्ततः । रागलोभादिनाशेन भवित्री कृतकृत्यता ।।२२
भक्त्यातिप्रणयस्यापि चञ्चलत्वान्मनो यदि । मय्यावेशं दधद्भूयः कुरु मद्रूपिणीं तनुम् ।।२३

और निर्बीजयोग को सुनकर दिंडी ने प्रणाम करते हुए सूर्य से इस प्रकार कहना आरम्भ किया कि—हे देवाधिदेव ! आपने जिस योग का मुझे उपदेश दिया है, वह मुझे तथा अन्य किसी असंयमी मनुष्य को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था ।१२-१४। इन्द्रियों को आकर्षित करने के नाते विषय-वासना मनुष्यों के लिए दुर्जेय है, क्योंकि शक्तिशाली इन्द्रियों का पराजय कौन कर ही सकता है ।१५। यह मैं हूँ एवं 'यह मेरी वस्तु है' इसी में मन सदैव (लिप्त होने के नाते) चञ्चल रहता है । इसलिए उस पर विजय प्राप्त करना महान् कठिन है । हे देवेश ! इसीलिए इस मन पर विजय एवं रागादि विषय का त्याग यदि जन्मांतर में भी किसी प्रकार संभव हो सके, तो मैं वही चाहता हूँ । क्योंकि तुम्हारी ही कृपा द्वारा रागादि विषयासक्त प्राणी भी समस्त पापों के नष्ट होने पर अमरत्व प्राप्त किये हैं, अर्थात् वे लोग देवता हो गये हैं ।१६-१७

आदित्य ने कहा—हे गणनाथ ! यदि तुम्हें इस भाँति मुक्ति की इच्छा है, जो क्रिया योग को, जो समस्त दुःखों का नाशक है, सुनो ! १८। और उसे सुनकर मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्तजनों, मेरे लिए यज्ञपूजन और नमस्कार करो । इस भाँति मुझमें अपने (मन) को लगाकर सत्परायण (निरंतर मुझमें लीन) रहने पर मुझे प्राप्त कर सकोगे ।१९। क्योंकि मेरे लिए अपनी भावना याजन, भक्ति एवं सत्परायण होकर मेरी पूजा करने वाले ही मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं ।२०। इस प्रकार सभी प्राणियों में मुझे सब अवस्थित और ईश्वर भाव से देखते हुए 'किसके द्वारा कौन करता है, इसका ज्ञान होने पर तुम्हारे भी (सांसारिक) दोष नष्ट हो जायेंगे ।२१। और चर-अचर सभी मुझमें आसक्त हैं इसका ज्ञान भली भाँति हो जाने पर रागादि नाशपूर्वक सफलता भी प्राप्त हो जायेगी ।२२। अति प्रणयी होने पर भी मन के अधिक चञ्चल होने के नाते, यदि निश्चल न हो सके, तो भक्तिपूर्वक मेरे में आवेश करके अपनी शरीर में

---

१. जगन्नाथ । २. वद । ३. हानिकारणम् । ४. सर्वत्र । ५. प्रशाम्यसि ।

सुवर्णरजताद्यैस्त्वं शैलमृद्दारुलेखनम् । पूजोपहारैर्विविधैः सम्पूजय त्रिलोचनम् ॥२४
तस्याश्रितं समाविश्य सर्वभावेन सर्वदा । पूजिता सैव ते भक्त्या ध्याता चैवोपकारिणी ॥२५
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जंस्तामेवाग्रे च पृष्ठतः । उपर्यधस्तथा पार्श्वे चिन्तयंस्तन्मयश्च वै ॥२६
स्नानैस्तीर्थोदकैर्हृद्यैः [1]पुष्पैर्गन्धानुलेपनैः । वासोभिर्भूषणैर्भक्ष्यैर्गीतवाद्यैर्मनोरमैः ॥२७
यच्च यच्च तवेष्टं वै किञ्चिद्भोज्यादिकं तव । भक्तिनम्रो गणश्रेष्ठ प्रीणयस्व कृतिं[2] मम ॥२८
रागेणाकृष्यते तात गन्धर्वाभिमुखं यदि । मयि बुद्धिं समावेश्य गायेथा मे कथा मम ॥२९
कथया रमते चेतो यदि तद्भवतो मम । श्रोतव्याः प्रीतियोगेन मत्स्वरूपोदयाः कथाः ॥३०
एवं समर्पितमनाश्चेतसो येऽस्य आश्रयाः । हेयांस्तान्निखिलान्दिण्डे परित्यज्य सुखी भव ॥३१
अक्षीणरागद्वेषोऽपि मत्प्रियः परमः परम् । पदमाप्नोषि मा भैषीर्मय्यर्पितमना भव ॥३२
मयि संन्यस्य सर्वं त्वमात्मानं यत्नवान्भव । मदर्थं कुरु कर्माणि मा च धर्मव्यतिक्रमम् ॥३३
एवं व्यपोह्य हत्यास्त्वं ब्रह्मण मोक्ष्यसे भवात् । एतेनैवोपदेशेन व्याख्यातमखिलं तव ॥३४
क्रियायोगं[3] समास्थाय मदर्पितमनाभव ॥३५

मेरे रूप की कल्पना करो।२३। इस भाँति सुवर्ण, चाँदी, पत्थर या लकड़ी आदि किसी की मेरी मूर्ति बनवाकर विविध भाँति के उपहार आदि प्रदान करते हुए उस त्रिलोचन की पूजा करो।२४। उसके आश्रित रहकर सदैव अपनी भावनाएँ उसी के निमित्त करके एकाग्रचित्त द्वारा भक्तिपूर्वक उसके ध्यान और पूजन करने से इष्ट-सिद्धि प्राप्त होगी।२५। इस प्रकार बैठते, शयन करते, भोजन करते, आगे-पीछे ऊपर-नीचे एवं पार्श्व भाग में उसी की तन्मयता से चिंतन करते हुए तीर्थोदक से स्नान, मनोहर पुष्पों से तथा गंध का लेपन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, भक्ष्य भोक्ष्य एवं गाने-बजाने आदि से प्रसन्न करने के अनन्तर और भी तुम्हें जो-जो वस्तु प्रिय हों, भक्ति और नम्रता पूर्वक उसे समर्पित कर मेरी उस प्रतिमा को प्रसन्न करो।२६-२८। हे तात ! यदि उस समय कोई गन्धर्व के सम्मुख होकर राग से आकृष्ट हो जाय तो मुझमें चित्त लगाकर मेरी कथाओ का गान करो।२९। और उससे तुम्हारे मन में यदि आनन्द हो, तो प्रेमपूर्वक मेरी कथाओं को अवश्य सुनो और हे दिंडे ! इस प्रकार अपने चित्त को मुझमें लगाकर मन के समस्त दोषों को त्याग करके सुखी बनो।३०-३१। पुनः राग और द्वेष के नष्ट न होने पर भी मुझे अत्यन्त प्रिय होकर उत्तम पद प्राप्त करोगे। अतः भय न करो। चित्त को मुझमें लगाओ।३२। और मेरे लिए सभी का त्याग करके तुम सवाधान हो जाओ एवं मेरे ही लिए कर्मों को करो, जिससे किसी प्रकार धर्म का व्यतिक्रम न होने पाये।३३। क्योंकि इससे तुम ब्रह्महत्या से मुक्त होकर संसार से भी मुक्त हो जाओगे। बस, इतने ही उपदेश द्वारा मैंने तुम्हारे लिए सभी कुछ कह दिया है।३४। अतः क्रिया रूपी योगारम्भ में अब निमग्न रहकर तुम अपने मन को मुझमें अर्पित कर दो।३५

---

१. पुण्यैः । २. प्रतिकृतिमित्यर्थः ३. मय्यर्पितमना भूत्वा सर्वान्कामानवाप्स्यसि । ४. अस्ति ।

दिण्डिरुवाच

मद्धिताय जगन्नाथ क्रियायोगामृतं मम । विस्तरेण समाख्याहि प्रसन्नस्त्वं हि दुःखहा ॥३६
त्वामृते न हि तद्वक्तुं समर्थोऽन्यो[1] जगद्‌गुरो । गुह्यमेतत्पवित्रं च तदाचक्ष्व प्रसीद मे ॥३७

आदित्य उवाच

आख्यास्यते तदखिलं निर्विकल्पं गणाधिप । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः सर्वलोकप्रदीपकः ॥३८
स च दिण्डिर्महातेजा जगामाशु नभोगतिम् ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
दिण्डयादित्यसंवादवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

प्रणम्य शिरसा देवं सुरज्येष्ठं चतुर्मुखम् । उवाच स महातेजा दिण्डिर्लोकेशमादरात् ॥१
देवदेवेन भवतादिष्टोऽस्मि च महात्मना । क्रियायोगामृतं[2] सर्वमाख्यास्यति भवान्किल ॥२

दिंडि ने कहा—हे जगन्नाथ ! मेरे हित के लिए आप इस क्रियायोग रूपी अमृत का पान विस्तार पूर्वक यदि (मेरे कानों का) करायेंगे तो बड़ी कृपा होगी क्योंकि सदैव आप प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं एवं दुःख नाशक भी कहे गये हैं।३६। हे जगद्‌गुरो ! आप के अतिरिक्त अन्य कोई भी उसे बताने में समर्थ नहीं है और यह अत्यन्त गुप्त तथा पवित्र विषय है, अतः मुझ पर प्रसन्न होकर आप कृपया फिर वही कहें।३७

आदित्य बोले—हे गणाधिप ! मैं उस निर्विकल्प योग की समस्त बातें तुमसे अवश्य कहूँगा, इस भाँति कहकर सभी लोकों के प्रदीप रूपी सूर्य अन्तर्धान हो गये । और वह महातेजस्वी दिंडि भी आकाशगामी हो गया ।३८-३९

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में दिंड्यादित्य संवाद वर्णन
नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ।६२।

अध्याय ६३

सूर्य महिमा का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—देव श्रेष्ठ एवं चतुर्मुख ब्रह्मा को शिर से प्रणाम कर महातेजस्वी दिंडी ने सादर उनसे कहा—देवाधिदेव एवं महात्मा सूर्य ने आदेश दिया है कि क्रिया योग की व्याख्या आप करेंगे

---

१. अस्ति । २. क्रियायोगमश्रृणवमाख्यातं भगवन्किल ।

स त्वां पृच्छाम्यहं ब्रह्मन्क्रियायोगं निरन्तरम् । सन्तोषयितुमीशेहं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३

ब्रह्मोवाच

एह्येहि मत्सकाशं च मत्समीपे गणाधिप । ब्रह्महत्या प्रणष्टा ते दर्शनादेव तस्य तु ॥४
अनुग्राह्योऽसि भूतेश भास्करस्यामितौजसः । आराधनाय भूतेश यदीशे प्रवणं मनः ॥५
यदि देवपतिं भानुमाराधयितुमिच्छसि । भगवन्तमनाद्यन्तं भव दीक्षागुणान्वितः ॥६
न ह्यदीक्षान्वितैर्भानुर्ज्ञातुं स्तोतुं च तत्त्वतः । द्रष्टुं वा शक्यते मूढैः प्रवेष्टुं कुत एव हि ॥७
जन्मभिर्बहुभिः पूता नरास्तद्गतचेतसः । भवन्ति भगवत्सौरास्तदा दीक्षागुणान्विताः ॥८
अनेकजन्मसंसाररचिते पापसमुच्चये । नाक्षीणे जायते पुंसां मार्तण्डाभिमुखी मतिः ॥९
प्रद्वेषं याति मार्तण्डे द्विजान्वेदांश्च निन्दति । यो नरस्तं विजानीयात्पापबीजसमुद्भवम्[1] ॥१०
पाखण्डेषु रतिः पुंसां हेतुवादानुकूलता । जायते विष्णुमायाम्भःपतितानां दुरात्मनाम् ॥११
यदा पापक्षयः पुंसां तदा वेदद्विजादिषु । रवौ च देवदेवेशे श्रद्धा भवति निश्चला ॥१२
यदा स्वल्पावशेषस्तु नराणां पापसञ्चयः । तदा दीक्षागुणान्सर्वे भजन्ते नात्र संशयः ॥१३
भ्रमतामत्र संसारे नराणां पापदुर्गमे[2] । हस्तावलम्बदोप्येको भक्तिप्रीतो दिवाकरः ॥१४

।१-२। हे ब्रह्मन् ! अतः मैं चाहता हूँ कि क्रियायोग की व्याख्या आप यथोचित रीति से प्रदर्शित करें। जिससे मुझे सन्तोष हो जाये ।३

ब्रह्मा बोले—हे गणाधिप ! आओ ! मेरे समीप बैठो क्योंकि उनके दर्शन मात्र से ही तुम्हारी ब्रह्महत्या नष्ट हो गई है ।४। हे भूतेश ! यदि अमित तेजवाले उन सूर्य की आराधना में तुम्हारा मन लग गया है तो तुम अब अनुग्रह के पात्र हो गये हो ।५। अतः यदि देवाधिदेव एवं आदि अन्त हीन भगवान् सूर्य की आराधना करने की इच्छा है, तो पहले तुम्हें दीक्षा लेना आवश्यक है ।६। क्योंकि दीक्षा हीन मूर्खों के लिए वास्तव में सूर्य का ज्ञान, उनकी स्तुति एवं उनका दर्शन सर्वथा असंभव होता है। और उनमें प्रविष्ट होना तो दूर रहा ।७। और अनेक जन्मों में निरन्तर ध्यान करने से पवित्र होने पर मनुष्य, तब कहीं सूर्य की दीक्षा प्राप्त करता है ।८। क्योंकि संसार में अनेक जन्मो द्वारा संचित हुए पापों का नाश, जब तक नहीं होता है, तब तक सूर्य की भक्ति करने वाली बुद्धि मनुष्यों को नहीं प्राप्त होती है ।९। इस भाँति उन्हें पाप-बीज असुर अंश से उत्पन्न होना मानते हैं, वे सर्वथा सूर्य से द्वेष एवं वेद की निन्दा करते हैं। १०। तथा विष्णु की माया रूपी सागर में डूबने वाले दुरात्मा पुरुषों का प्रेम, पाखंडों में अधिक होता है, क्योंकि वह उनके (वाद-विवाद के) अधिक अनुकूल रहता है। ११। जिस समय पाप का नाश हो जाता है, उसी समय, वेद, ब्राह्मण आदि और देवाधिदेव सूर्य में उसकी अटल श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। १२। इसलिए पापों के नष्ट हो जाने पर ही मनुष्यों की प्रवृत्ति दीक्षा लेने में होती है। १३। क्योंकि इस संसार में जितने पापो के दुर्ग हैं, उनमें विवश होकर घूमते हुए मनुष्यों के हाथ पकड़कर आश्रय देने वाले एकमात्र सूर्य ही हैं जो

---

१. असुरांशसमुद्भवम्। २. कर्म।

सर्वभागवतो भूत्वा सर्वपापहरं रविम् । आराधयेह तं भक्त्या प्रीतिमेष्यति भास्करः ॥१५

दिण्डिरुवाच

किं लक्षणा नरा दीक्षामर्हन्ति पद्मसम्भव । यच्च दीक्षान्वितैः कार्यं तन्मे कथय पद्मज ॥१६

ब्रह्मोवाच

कर्मणा मनसा वाचा प्राणिनां यो न हिंसकः । भावभक्तश्च मार्तण्डे तस्य दीक्षा गुणान्विता ॥१७
ब्राह्मणांश्चैव देवांश्च नित्यमेव नमस्यति । न च द्रोग्धा[1] परं वादे स मार्तण्डं समर्हति ॥१८
सर्वान्देवान् रविं वेत्ति सर्वलोकांश्च भास्करम् । तेभ्यश्च नान्यनात्मानं स नरः सौरतां व्रजेत् ॥१९
देवं मनुष्यमन्यं वा पशुपक्षिपिपीलिकान् । तरुपाषाणकाष्ठानि भूम्यंभोगगनं दिशः ॥२०
आत्मानं चापि देवेशाद्व्यतिरिक्तं दिवाकरात् । यो न जानाति यतिषु स वै दीक्षागुणान्भजेत् ॥२१
भावं न कुरुते यस्तु सर्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा स तु दीक्षां समर्हति ॥२२
सुतप्तेनेह तपसा यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः । तां गतिं न नरा यान्ति यां गताः सूर्यमाश्रिताः ॥२३
येन सर्वात्मना भानौ भक्त्या भावो निवेशितः । गणेश्वर कृतार्थत्वाच्छ्लाघ्यः सौरः स मानवः ॥२४
अपि नः स कुले धन्यो जायते कुलपावनः । भगवान्भक्तिभावेन येन भानुरुपासितः ॥२५

भक्ति द्वारा प्रसन्न होते हैं।१४। अतः सभी भाँति से स्वयं भागवत होकर समस्त पापों का नाशक सूर्य की उपासना भक्तिपूर्वक सम्पन्न करो, वे अवश्य प्रसन्न होंगे।१५

दिंडि ने कहा—हे पद्मसंभव ! किस भाँति के पुरुष दीक्षा प्राप्त करके योग्य होते हैं और दीक्षित होने पर उनका क्या कर्तव्य होता है, आप मुझसे इसे कहने की कृपा करें।१६

ब्रह्मा बोले—जो मन, वाणी एवं कर्मों द्वारा हिंसा नहीं करता और सूर्य में भाव-भक्ति रखता है, उसी पुरुष की दीक्षा उत्तम बतायी गई है।१७। तथा ब्राह्मणों एवं देवताओं को नित्य प्रणाम तथा उनके वाद-विवाद में द्रोह नहीं करता है, वही सूर्य की उपासना के योग्य होता है।१८। एवं जो सूर्य को सर्व देवमय एवं समस्त लोकमय मानता है, तथा उसके लिए अन्य और कोई है भी नहीं वही सौर (सूर्य का) भक्त होता है।१९। इसी प्रकार जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटियाँ, वृक्ष, पत्थर, काष्ठ, पृथिवी, जल, आकाश, दिशाएँ और अपने को भी देवेश सूर्य से पृथक् नहीं जानता है, वही यतियों में उत्तमदीक्षित होता है।२०-२१। क्योंकि समस्त प्राणियों में जो मन, वाणी एवं बुद्धिपूर्वक पाप की भावना नहीं रखता, वही दीक्षा के योग्य होता है।२२। इसीलिए भली-भाँति तपते हुए तप और अत्यन्त दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा मनुष्यों को वह गति नहीं प्राप्त है, जो सूर्य के भक्तों को प्राप्त होती है।२३। हे गणेश्वर ! इस प्रकार जिसने सर्वात्म भाव से अपनी भावना को सूर्य में निहित कर दिया है, कृतार्थ होने के नाते वही मनुष्य सूर्य का (प्रशस्त) श्रेष्ठ भक्त बताया गया है।२४। इसलिए हमारे कुल में (उत्पन्न होकर) जिसने भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्य की उपासना की है, वही धन्य है एवं कुल को पवित्र करने वाला है।२५। इसी प्रकार जो

---

१. भोगी परस्वादेः ।

यः कारयति देवार्चां हृदयालम्बनं रवेः । स नरो भानुसालोक्यमाप्नोति धुतकल्मषः ॥२६
यस्तु देवालयं भानोर्भक्त्या कारयति ध्रुवम् । स सप्त पुरुषाँल्लोकं भानोर्नयति मानवः ॥२७
यावन्त्यब्दानि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मन्दिरे । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके [1]महीयते ॥२८
देवार्चा लक्षणोपेता तद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं च मनो यस्य स यात्यक्षरसाम्यताम् ॥२९
पुष्पाणि च सुगन्धीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति सहस्रांशोः सदा प्रयतमानसः ॥३०
धूपांश्च तांस्तान्विविधान्गन्धाढ्यं चानुलेपनम् । नरः सोऽनुदिनं यज्ञं करोत्याराधनं रवेः ॥३१
यज्ञेशो भगवान्पूषा सदा क्रतुभिरिज्यते । बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ॥३२
न ते दिण्डिन्नवाप्यन्ते मनुष्यैरल्पसञ्चयैः । भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वाङ्कुरैरपि ॥
भानोर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥३३
यानि पुष्पाणि हृद्यानि धूपगन्धानुलेपनम् । दयितं भूषणं यच्च प्रीतये चैव वाससी ॥३४
यानि चाभ्यवहार्याणि भक्ष्याणि च फलानि वै । प्रयच्छ तानि मार्तण्डे भवेथाश्चैव तन्मनाः ॥३५
आद्यं तं भुवनाधारं यथाशक्त्या प्रसादय । आराध्य याति तं देवं तस्मिन्नेव नरो लयम् ॥३६
पुष्पैस्तीर्थोदकैर्गन्धैर्मधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्भानुं ग्रहेशं गोपतिं खगम् ॥३७

देवाराधनपूर्वक सूर्य में अपना चित्त लगाता है वह पाप-मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।२६। तथा जो मनुष्य सूर्य के (सौन्दर्यपूर्ण) मन्दिर की रचना करवाता है, उसकी सात पीढ़ी के वंशज सूर्य लोक को प्राप्त करते हैं ।२७। इसी भाँति मन्दिर में सूर्य की पूजा, जितने वर्षों तक होती है, उतने सहस्र गुने वर्षों तक सूर्यलोक में वह प्राणी सम्मानपूर्वक निवास करता है ।२८। इसलिए यदि विधिपूर्वक देव की अर्चना घर में सदैव होती रहे एवं मन निष्काम हो, तो उसे अविनाशी (सूर्य) का सारूप्य मोक्ष प्राप्त होता है ।२९। जो पुरुष सुगन्धित एवं मनोहर पुष्पों को सूर्य के लिए सादर समर्पित करता है एवं धूप और भाँति-भाँति के सुगन्धित चन्दन प्रदान करता है, वह इस भाँति प्रतिदिन सूर्य की आराधना रूप यज्ञ ही करता है ।३०-३१। इस प्रकार यज्ञेश भगवान् पूषन् (सूर्य) की सदैव इस प्रकार के यज्ञों द्वारा, जिसमें नाना भाँति के साधन एवं जिसकी महान् आयोजना रहती है, लोग उपासना करते हैं। हे दिंडिन् ! यद्यपि निर्धन तथा कुरूप पुरुष उस भाँति के यज्ञ नहीं कर सकते हैं, पर दूर्वांकुर मात्र से ही जो (निर्धन) उनकी भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं उन्हें सूर्य समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले वे समस्त दुर्लभ फल प्रदान करते हैं ।३२-३३। अतः मनोहर पुष्पों, धूप, गंध, चन्दन, प्रिय आभूषण तथा युगल वस्त्र, भोजन के योग्य भाँति-भाँति के भक्ष्य अन्न एवं फल को सूर्य की प्रसन्नता के लिए तल्लीन होकर उन्हें समर्पित करे ।३४-३५। क्योंकि वे ही भुवन के आदि आधार हैं। इसलिए शक्त्यनुसार उन्हें प्रसन्न करो। क्योंकि उन्हीं (सूर्य) देव की आराधना करके (मनुष्य) उन्हीं में लय को प्राप्त होता है ।३६। हे गण श्रेष्ठ ! अतः जो पुष्पों, तीर्थजलों, गंधों, मधु, घी एवं दूध द्वारा ग्रहेश, (किरण) पति एवं आकाशगामी सूर्य का स्नान

---

१. स मोदते ।

दधिक्षीरह्रदान्पुण्यांस्ततो लोकान्मधुच्युतः । प्रयास्यति गणश्रेष्ठ निर्वृत्तिं च विलक्षणाम् ॥३८
स्तोत्रैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । मनसश्चैव योगेन आराधय दिवाकरम् ॥३९
आराध्य तं जगन्नाथं मया सर्गः प्रवर्तितः । विष्णुश्च पालयेल्लोकांस्तमाराध्य दिवाकरम् ॥४०
रुद्रश्च प्राप्तवान्देवीं भवानीं तत्प्रसादतः । दीप्यन्ते ऋषयश्चापि तमाराध्य दिवाकरम् ॥४१
स त्वमेभिः प्रकारैस्तमुपवासैश्च भास्करम् । तोषयाब्दं हि तुष्टोऽसौ भानुर्द्वंद्वप्रशान्तिदः ॥४२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मदिण्डिसंवादे आदित्यक्रियायोगवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।६३।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

फलसप्तमीवर्णनम्

दिण्डिरुवाच

उपवासैः सुरश्रेष्ठ कथं तुष्यति भास्करः । परिहारांस्तथाचक्ष्व ये त्याज्याश्चोपवासिभिः ॥१
यद्यत्कार्यं यथा चैव भास्कराराधने नरैः । तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२

ब्रह्मोवाच

स्मृतः सम्पूजितो धूपपुष्पान्नैर्भानुरादरात् । भोगिनामुपकाराय किं पुनश्चोपवासिनाम् ॥३

आदि कराता है, वह मधु से भरा और दही एवं दूध के सरोवर से युक्त पुण्यलोक और विलक्षण (संसार से) निर्वृत्ति प्राप्त करता है।३७-३८। इसलिए उनके स्तोत्र तथा गान और वाद्यों एवं ब्राह्मण को तृप्त करने तथा मनोयोग द्वारा सूर्य की आराधना अवश्य करो।३९। क्योंकि जगन्नाथ उन्हीं सूर्य की उपासना करके मैंने सृष्टि रचना की है तथा उनकी अराधना करके ही विष्णु लोकों का पालन करते हैं।४०। और उन्हीं की कृपा द्वारा रुद्र ने देवी भवानी को प्राप्त किया है तथा ऋषिगण प्रकाशित होते हैं।४१। तुम इसी प्रकार उपवासों के द्वारा पूर्ण वर्ष तक आराधना करके उन्हें प्रसन्न करो क्योंकि प्रसन्न होने पर सूर्य द्वन्द्व रूपी दुःख की शांति करते हैं।४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्पमें ब्रह्मदिंडि संवाद में आदित्य क्रियायोग वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।६३।

अध्याय ६४

फलसप्तमी का वर्णन

दिंडि ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! उपवासों के द्वारा सूर्य कैसे प्रसन्न होते हैं तथा उपवास करने वालों के लिए कौन वस्तु त्याज्य है (स्वीकृत का त्याग) और कौन परिहार्य।१। ब्रह्मन् ! इसी प्रकार मनुष्यों को सूर्य की आराधना में क्या-क्या करना चाहिए। इन सभी बातों को यथोचित ढंग से विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें।२

ब्रह्मा बोले—धूप, पुष्प एवं अन्न आदि द्वारा पूजित होने पर सूर्य भोगी पुरुषों को भी अत्यन्त सुख

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।।४
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं नक्तमेव च । उपवासी रविं यस्तुभक्त्या ध्यायति मानवः ।।५
तन्नामजापी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः । निष्कामः पुरुषो दिण्डे स ब्रह्म परमाप्नुयात् ।।६
यं च काममभिध्याय भास्करार्पितमानसः । उपोषति तमाप्नोति प्रसन्ने खगमेऽखिलम् ।।७

दिण्डिरुवाच

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिश्च कञ्जज । संसारगर्ते पङ्कस्थे सुगतिः प्राप्यते कथम् ।।८

ब्रह्मोवाच

अनाराध्य जगन्नाथं गोपतिं ध्वान्तनाशनम् । निर्व्यलीकेन चित्तेन कः प्रयास्यति सद्गतिम् ।।९
विषयग्राहि वै यस्य न चित्तं भास्करार्पितम् । स कथं पापपङ्काक्तो नरो यास्यति सद्गतिम् ।।१०
यदि संसारदुःखार्तः सुगतिं गन्तुमिच्छसि । तदाराध्य सर्वेशं भास्करं ज्योतिषां पतिम् ।।११
पुष्पैः सुगन्धैर्हृद्यैश्च धूपैः सागरुचन्दनैः । वासोभिर्भूषणैर्भक्ष्यैरुपवासपरायणः ।।१२
यदि संसारनिर्वेदादभिवाञ्छसि सद्गतिम् । तदाराध्य मार्तण्डं भक्तिप्रवणचेतसा ।।१३
पुष्पाणि यदि ते न स्युः शस्तपादपपल्लवैः । दूर्वाङ्कुरैरपि दिण्डे तदभावेऽर्चयार्यमम् ।।१४

प्रदान करते हैं इसलिए उपवास द्वारा उनकी आराधना करने वालों को कहना ही क्या है ? ।३। पापों की निवृत्तिपूर्वक समस्त उपभोग पदार्थों के त्याग करते हुए गुणों के साथ रहने को उपवास कहते हैं ।४। हे दिंडे ! इस प्रकार एक, दो या तीन रात तक अथवा नक्तव्रत में उपवास करने वाला मनुष्य भक्तिपूर्वक यदि सूर्य का ध्यान और उनके लिए कर्मों में अनुरक्त एवं समर्पित होकर निष्काम कर्म करता रहे, तो वह परमब्रह्म (मोक्ष) प्राप्त करता है ।५-६। एवं जो किसी कामनावश सूर्य में मन लगा कर उपवास करता है, तो उसे भी उनके प्रसन्न होने पर अखिल वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।७

दिंडि ने कहा—हे कंजज (कमलज) ! ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों एवं स्त्रियों को संसार रूपी गड्ढे के कीचड़ में फंसने पर उत्तम गति कैसे प्राप्त होती है ? ८

ब्रह्मा बोले—उस जगन्नाथ की, जो गो (किरणों) के पति एवं अंधकार के नाशक हैं, शुद्धचित्त से विना आराधना किये किसकी उत्तम गति हो सकती है ।९। क्योंकि जिसका मन विषयों में अनुरक्त रहने के नाते सूर्य में अर्पित नहीं है तो केवल पाप रूपी कीचड़ में सदैव फंसे हुए उस पुरुष की उत्तम गति कैसे हो सकती है ।१०। अतः संसार के दुःखों से दुःखी होकर यदि उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हो, तो भास्कर की, जो सर्वेश एवं ग्रहों के पति हैं, आराधना करो ।११। सुगंधित और मनोहर पुष्पों, धूप, गूगुल, चन्दन, वस्त्रों, भूषणों और भक्ष्य पदार्थों को उन्हें समर्पित करते हुए उपवास भी करो ।१२। इस प्रकार संसार (दुःखों) से विरक्त होकर उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हो, तो भक्ति में चित्त लीनकर उनकी आराधना अवश्य करो ।१३। यदि वैसे पुष्प नहीं प्राप्त हो रहे हैं, तो प्रशंसा वृक्षों के मनोहर पल्लवों एवं उसके भी अप्राप्त होने पर केवल दूर्वाङ्कुरों के द्वारा ही सूर्य की अर्चना करो ।१४। क्योंकि

पुष्पपत्राम्बुभिर्धूपैर्यथाविभवमात्मनः । पूजितस्तुष्टिमतुलां भक्त्या यात्येकचेतसा ॥१५
यः सदायतने भानोः कुरुते मार्जनक्रियाम् । स यात्युत्तमके स्थाने सर्वपापं व्यपोहति ॥१६
यावत्यः पांसुकणिका मार्ज्यन्ते भास्करालये । दिनानि दिवि तावन्ति तिष्ठत्यर्कसमो नरः ॥१७
अहन्यहनि यत्पापं कुरुते गणनायक । गोचर्मभात्रं सम्मार्ज्य हन्ति तद्भास्करालये ॥१८
यश्चानुलेपनं कुर्याद्भानोरायतने नरः । सोऽपि लोकं समासाद्य हंसेन सह मोदते ॥१९
मृदा धातुविकारैर्वा वर्णकैर्गोमयेन वा । उपलेपनकृद्याति मत्पुरं यानमास्थितः ॥२०
उदकाभ्युक्षणं भानोर्यः करोति सदा गृहे । सोऽपि गच्छति यत्रास्ते भगवान्यादसां पतिः ॥२१
पुष्पप्रकरमत्यर्थं सुगन्धं भास्करालये । अनुलिप्ते नरो दत्त्वा न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥२२
विमानमतिशोभाढ्यं सर्वर्तुसुखभूषितम् । समाप्नोति नरो दत्त्वा दीपकं भास्करालये ॥२३
यस्तु संवत्सरं पूर्णं तिलपात्रप्रदो नरः । ध्वजं च भास्करे दद्यात्सममत्र फलं लभेत् ॥२४
विधूतो हन्ति वातेन दातुरज्ञानतः कृतम् । पापं कर्तुर्गृहे भानोर्दिवा रात्रौ नराधिप ॥२५
गीतवाद्यादिभिर्भानुं य उपास्ते तमोपहम् । गन्धर्वैर्नृत्यगीतैः स विमानस्थो निषेव्यते ॥२६
जातिस्मरत्वं मेधां च तथैवोपरमे स्मृतिम् । प्राप्नोति गणशार्दूल कृत्वा पुस्तकवाचनम् ॥२७

पुष्प, पत्र, जल तथा धूपादिकों द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार जो प्राप्त किये गये हों, भक्तिपूर्वक एकचित्त होकर उनकी पूजा करने पर अतुल संतोष प्राप्त होता है।१५। इसी भाँति जो सूर्य के मन्दिर में सदैव झाड़ू द्वारा मार्जन (शुद्धि करता) रहता है, वह समस्त पापों का नाश कर उत्तम स्थान प्राप्त करता है।१६। और जो सूर्य के मन्दिर में (झाड़ू द्वारा) सफाई करते समय जितने धूल के कणों की सफाई करता है, उसे उतने दिन का भौतिक स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है।१७। हे गणनायक! इस प्रकार प्रतिदिन (मनुष्य) जितने पाप करते हैं, सूर्य के मन्दिर में केवल गो-चमड़े के परित्याग भाग की सफाई करने पर ही वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।१८। जो सूर्य के मन्दिर में लीपना, आदि (सफाई की क्रिया) करते हैं, वे भी सूर्य के साथ उनके लोक में आमोद-प्रमोद करते हैं।१९। एवं मिट्टी, धातुविकार या गोमय द्वारा जो मन्दिर को सौन्दर्यपूर्ण करता है, वह विमान पर बैठकर मेरे लोक की प्राप्ति करता है।२०। इसी प्रकार जो सूर्य के मन्दिर को जल से साफ-सुथरा बनाता है, वह भी भगवान् वरुण के लोक को प्राप्त करता है।२१। एवं सूर्य के लीपे हुए मन्दिर में जो पुष्पों और सुगन्धित वस्तुएँ प्रदान कर (उसे सुगन्धित) करता है, उस मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं होती है।२२। तथा सूर्य के मन्दिर में दीपक प्रदान करने पर मनुष्य को, उस भाँति का विमान प्राप्त होता है जो सौन्दर्यपूर्ण एवं सभी ऋतुओं में सुख प्रदायक वस्तुओं से भूषित रहता है।२३। जो पूर्ण वर्ष तिल समेत पात्र एवं ध्वजा प्रदान करता है, उसे भी समान फल प्राप्त होते हैं।२४। और वायु द्वारा उस ध्वजा के कम्पित होने पर उसके सभी अज्ञात पाप भी नष्ट हो जाते हैं। हे नराधिप! इस भाँति जो दिन-रात गाने-बजाने के द्वारा, अंधेरे को नष्ट करने वाले सूर्य की उपासना करता है, उसे विमान पर बैठाकर गन्धर्व लोग, नाच-गायन द्वारा सदैव उसकी सेवा करते हैं।२५-२६। हे गण शार्दूल! उनके सामने पाठ करने पर पिछले जन्म के जाति का स्मरण, मरने पर भी सभी बातों का स्मरण होता है।२७। इस

एवं खगेश्वरो भक्त्या येन भानुरुपासितः । स प्राप्नोति गतिं श्लाघ्यां यां यामिच्छति चेतसा ॥२८
देवत्वं मनुजैः कैश्चिद् गन्धर्वत्वं तथा परैः । विद्याधरत्वमपरैः संराध्येह दिवाकरम् ॥२९
शक्रः[1] क्रतुशतेनेशमाराध्य ज्योतिषां पतिम् । देवेन्द्रत्वं गतस्तस्मान्नान्यः[2] पूज्यतमः क्वचित् ॥३०
ब्रह्मचारिगृहस्थानां वनस्थानां गणाधिप । नान्यः पूज्यस्तथा स्त्रीणामृते देवं दिवाकरम् ॥३१
मध्ये परिव्राजकानां सहस्रांशुं महात्मनाम् । मोक्षद्वारं विशन्तीह तं रविं विजितात्मनाम् ॥३२
एवं सर्वाश्रमाणां हि सहस्रांशुः परायणम् । सर्वेषां चैव वर्णानां ग्रहेशो वै गतिः परा ॥३३
शृणुष्व गदतः काम्यानुपवासांस्तथापरान् । शृणु दिण्डे महापुण्यफलकां सप्तमीं पराम् ॥३४
आदित्याराधनायैनां सर्वपापहरां शिवाम् । यामुपोष्य नरो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३५
तथा लोकमवाप्नोति सूर्यस्यामिततेजसः । अथ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे समागते ॥३६
सोपोष्या प्रथमं तात विधानं शृणु तत्र वै । अयाचितं चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामेकभोजनम् ॥३७
उपवासपरः षष्ठ्यां जितक्रोधो जितेन्द्रियः । अर्चयित्वा दिनकरं [3]गन्धधूपनिवेदनैः ॥३८
पुरतः स्थण्डिले रात्रौ स्वप्याद्देवस्य पुत्रक । प्रध्यायन्मनसा देवं सर्वभूतार्तिनाशनम् ॥३९
सर्वदोषप्रशमनं सर्वपातकनाशनम् । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥४०
पूजयित्वा दिनकरं पुष्पधूपविलेपनैः । नैवेद्यं तात देवस्य फलानि कथयन्ति[4] हि ॥४१

भाँति जो आकाशचारी सूर्य की उपासना, भक्तिपूर्वक करता है, उसे मनइच्छित उत्तम गति प्राप्त होती है।२८। मनुष्यों में किसी ने देवत्व, किसी ने गन्धर्व, तथा किसी ने विद्याधरत्व इन्हीं की उपासना द्वारा प्राप्त की है।२९। इसी भाँति इन्द्र सौ यज्ञ द्वारा इन्हीं ग्रहेश (सूर्य) की उपास्ना करके देवेन्द्र हुए हैं। अतः (इनके समान) कोई अन्य देव कहीं भी अत्यन्त पूजनीय नहीं है।३०। हे गणाधिप ! इसलिए ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी, तथा स्त्रियों के पूज्य, सूर्य के अतिरिक्त कोई अन्य देव नहीं है।३१। संन्यासियों के लिए सहस्रों किरण वाले सूर्य ही मोक्ष के द्वार हैं, क्योंकि जितेन्द्रिय होने पर वे संन्यासी उन्हीं को प्राप्त करते हैं।३२। इस भाँति समस्त आश्रमों के लिए सूर्य ही प्रधान एवं सभी वर्णों के लिए उत्तम गति रूप है।३३। हे दिंडे ! अब काम्य और निष्काम कर्म में उपवास समेत महान् पुण्य प्रदान करने वाली उस उत्तम सप्तमी को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ३४। जो लोग सूर्य की आराधना के लिए इस सप्तमी में, जो समस्त पापों का नाशक, तथा प्रणयस्वरूप हैं, भक्तिपूर्वक उपावस करते हैं, उनके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं।३५। और उसे उस अमेय तेज वाले सूर्य के लोक की भी प्राप्ति होती है। हे तात ! भादों मास के शुक्ल सप्तमी में उपवास के विधान को कह रहा हूँ सुनो ! चतुर्थी में, जो याचना द्वारा न प्राप्त हो, ऐसे अन्न का भोजन करके पंचमी में एक बार भोजन एवं षष्ठी में उपवास करते हुए इन्द्रिय संयम समेत क्रोधहीन होकर गंध धूपादि द्वारा सूर्य की अर्चना करे।३६-३८। रात में सूर्य के सामने उनका मानसिक ध्यान, जो सभी प्राणियों के दुःख नाशक, समस्त दोषों को शांत करने तथा सम्पूर्ण पापों के नाशक हैं। तन्मयता से करते हुए भूमि पर शयन करे और सप्तमी को प्रातःकाल उठकर पुष्प, धूप और चन्दन, नैवेद्य द्वारा सूर्य की पूजा करे।३९-४१।

---

१. शक्रः क्रतुशतेनेह समाराध्य दिवस्पतिम्। २. यस्मिन्। ३. पुष्पधूपविलेपनैः। ४.कथयाम्यहम्।

खर्जूरनालिकेराणि तथा चाम्रफलानि तु । मातुलिङ्गफलान्येव कथितानि मनीषिभिः ।।४२
एतैश्च भोजयेद्विप्रानात्मना च प्रभक्षयेत् । तथैषां चाप्यभावेन शृणु चान्यानि सुव्रत ।।४३
शालिगोधूमपिष्टानि कारयेद्गणनायक । गुडगर्भकृतानीह घृतपाकेन पाचयेत् ।।४४
चातुर्यावकमिश्राणि आदित्याय निवेदयेत् । अग्निकार्यमथो कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।।४५
इत्थं द्वादश वै मासान्कार्यं व्रतमनुत्तमम् । मासि मासि फलाहारः फलदायी फलार्चनः ।।४६
वर्षान्ते त्वथ कुर्वीत शक्त्या ब्राह्मणभोजनम् । स्नानप्राशनयोश्चापि विधानं शृणु सुव्रत ।।४७
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । तिलसर्षपयोः कल्कं श्वेता मृच्चापि सुव्रत ।।४८
दूर्वाकल्कं घृतं चापि गोशृंगक्षालितं जलम् । जातिगुल्मविनिर्दासः प्रशस्तः स्नानकर्मणि ।।४९
प्राशने चाप्यथैतानि सर्वपापहराणि वै । आदौ कृत्वा भाद्रपदं यथा संख्यं विदुर्बुधाः ।।५०
इत्थं वर्षान्तमासाद्य भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । दिव्यान्भोगान्महादेव ततस्तेभ्यो निवेदयेत् ।।५१
फलानि तात[1] हैमानि यथा शक्त्या गणाधिप । सवत्सामथ वा धेनुं भूमिं सस्यान्वितामथ ।।५२
प्रासादमथ वा भौमं सर्वधान्यसमन्वितम् । दद्याच्छुक्लानि[2] वस्त्राणि ताम्रपात्रं [3]सविद्रुमम् ।।५३
शक्तियुक्तस्य चैतानि दरिद्रस्य तु मे शृणु । फलानि पिष्टकान्येषां तिलचूर्णान्वितानि तु ।।५४
भोजयित्वा द्विजान्दद्याद्राजतानि[4] फलानि तु । धातुरक्तं वस्त्रयुगममाचार्याय निवेदयेत् ।।५५

विद्वानों के कथनानुसार खजूर, नारियल, आम, तथा विजौरा नीबू उन्हें समर्पित करने योग्य हैं ।४२। इन्हें ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए स्वयं भी भक्षण करे । हे सुव्रत ! यदि (उस समय) ये अप्राप्य हों तो चावल या गेहूँ के चूर्ण (आटे) में गुड़ डालकर घी द्वारा पकवान बनाकर उसके साथ चार भाँति की लप्सी भी समर्पित करे, और हवन करने के पश्चात् ब्राह्मण भोजन भी कराये ।४३-४५। इसी भाँति बारह मास के व्रत को सुसम्पन्न करना बताया गया है । इस प्रकार मास-मास में फलाहार, फलदान और फलों द्वारा पूजन करते हुए वर्ष की समाप्ति में शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन, स्नान और प्राशन करने में उसके विधानों को सुनो ।४६-४७। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, पिसी हुई सरसों, सफेद मिट्टी, पिसी हुई दूर्वा, घी, गायों के सींगों द्वारा पूत किये हुए जल, एवं चमेली के पुष्प, स्नान के लिए उत्तम बताये गये हैं ।४८-४९। क्योंकि इनके द्वारा समस्त पापों का नाश भी होता है, अतः इन्हीं का प्राशन भी करना चाहिए। इसी विधि द्वारा भादों में पूजन करके अन्य मासों के पूजन में भी यही विधान जानना चाहिए ।५०। हे तात ! इस भाँति वर्ष की समाप्ति में उत्तम भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मण भोजन के लिए अर्पित करके पुनः सुन्दर फल एवं सुवर्ण के बने फल प्रदान करे और उसके उपरान्त बछड़े समेत गाय, फूली-फली भूमि, धनधान्य-पूर्ण महल या गृह, सफेद वस्त्र, तथा विद्रुम (मूंगा) समेत ताँबे के पात्र प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार धनवानों के लिए यह विधान बताया गया है । अब निर्धनों के लिए भी (विधान) बता रहा हूँ । सुनो ! फल या तिलचूर्ण पूर्ण (आटा) के बने पदार्थों का ब्राह्मण भोजन कराकर चाँदी तथा फल समेत लाल रंग के दो वस्त्र आचार्य को समर्पित करते हुए पंचरत्नपूर्वक सुवर्ण के साथ वार्षिक पूजा समाप्ति कर पारण

---

१. तानि । २. भक्त्या, रक्तानि । ३. च निर्मलम् । ४. राजा तानि ।

सहिरण्यं महादेव पञ्चरत्नसमन्वितम् । इत्थं समाप्यते तात पारणं वार्षिकान्तिकम् ॥५६
इत्येषा वै पुण्यतमा सप्तमी दुरितापहा । यामुपोष्य नराः सर्वे यान्ति सूर्यसलोकताम् ॥५७
[1]पूज्यमानः सदा देवैर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः । अनया मानवो नित्यं पूजयेद्भास्करं सदा ॥५८
दारिद्र्यदुःखदुरितैर्मुक्तो याति दिवाकरम् । ब्राह्मणो मोक्षमायाति क्षत्रियश्चेन्द्रतां व्रजेत् ॥५९
वैश्यो धनदसालोक्यं शूद्रो विप्रत्वमाप्नुयात् । अपुत्रो लभते पुत्रं दुर्भगा सुभगा भवेत् ॥६०
यामुपोष्य च नारीमां सप्तमीं लोकपूजिताम् । विधवा वा सती भक्त्या अनया पूजयेद्रविम् ॥६१
नान्यजन्मनि वैधव्यं नारी प्राप्नोति मानद । चिन्तामणिसमा ह्येषा विज्ञेया फलसप्तमी ॥६२
पठतां शृण्वतां दिण्डे सर्वकामप्रदा स्मृता ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मदिण्डिसंवादे सप्तमीकल्पे फलसप्तमीवर्णनं नामचतुःषष्टितमोऽध्याय ।६४।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रहस्यां नाम सप्तमीम् । सप्तमी कृतमात्रेयं नरांस्तारयते भवात् ॥१

करना चाहिए।५१-५६। क्योंकि इसी प्रकार इस पुण्य स्वरूप एवं पाप नाशिनी सप्तमी का उपवास करके मनुष्य सूर्य लोक प्राप्त करते हैं।५७। अतः इस विधि द्वारा भास्कर की पूजा करने पर वह प्राणी दारिद्र्य-दुःख से मुक्त होकर सूर्य लोक में पहुँचता है और वहाँ देव, गन्धर्व और अप्सराओं से सदैव पूजित होता है। इस प्रकार ब्राह्मणों को मोक्ष, क्षत्रियों को इन्द्रलोक एवं वैश्यों को कुबेर के लोक और शूद्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है। तथा अपुत्री को पुत्र एवं हतभागिनी को सौभाग्य की प्राप्ति होती है।५८-६०। और इस लोक-पूज्य सप्तमी व्रत के प्रभाववश, सती विधवा जन्मान्तर में वैधव्य दुःख से मुक्त हो जाती है। हे दिंडे, हे मानद ! इस प्रकार चिंतामणि की भाँति यह सप्तमी फल-प्रदान करने वाली बतायी गयी है। इसलिए (इसके) पढ़ने-सुनने से भी सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।६१-६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में ब्रह्मदिंडिसंवाद के सप्तमीकल्प में फलसप्तमी वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त।६४।

अध्याय ६५

आदित्य माहात्म्य व्रत वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके पश्चात् मैं रहस्या नाम की सप्तमी बता रहा हूँ जिसमें (व्रतादि) करने से

---

१. पूज्यो मान्यः सदा देवैर्गन्धर्वोरगराक्षसैः ।

सप्तापरान्सप्त पूर्वान्पितृंश्चापि न संशयः । रोगांश्छिनत्ति दुश्छेद्यान्दुर्जयाञ्जयते ह्यरीन् ॥२
अर्थान्प्राप्नोति दुष्प्रापान्यः कुर्यान्नाम सप्तमीम् । कन्यार्थी लभते कन्यां धनार्थी लभते धनम् ॥३
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् । समयान्पालयन्सर्वान्कुर्याच्चेमां विचक्षणः ॥४
समयाञ्छृणु भूतेश श्रेयसे गदतो मम । आदित्यभक्तः पुरुषः सप्तम्यां गणनायक ॥५
मैत्रीं सर्वत्र वै कुर्याद्भास्करं वापि चिंतयेत् । सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलं वस्त्रं न धारयेत् ॥
न चाप्यामलकैः स्नानं न कुर्यात्कलहं क्वचित् ॥६

दिण्डिरुवाच

किमर्थं न स्पशेत्तैलं सप्तम्यां पद्मसंभव ॥७
कश्च दोषो भवेद्देव नीलवस्त्रस्य धारणात् ।

ब्रह्मोवाच

शृणु दिण्डे महाबाहो नीलवस्त्रस्य धारणे ॥८
दूषणं गणशार्दूल गदतो मम कृत्स्नशः । पालनं विक्रयश्चैव सद्वृत्तिरुपजीवनम् ॥९
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति । नीलीरक्तेन वस्त्रण यत्कर्म कुरुते द्विजः ॥१०
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । वृथा तस्य महायज्ञा नीलसूत्रस्य धारणात् ॥११
नीलीरक्तं यदा वस्त्रं विप्रस्त्वंङ्गेषु धारयेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥१२

मनुष्य स्वयं तथा उसके सात पूर्व और सात पर पीढ़ी संसार सागर को पार कर लेते हैं ।१। जिस प्रकार इस सप्तमी के व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को उसको रोगों का नाश, महान् शत्रुओं पर विजय एवं दुष्प्राप्य (वस्तुएँ) प्राप्त होती हैं, उसी भाँति कन्या के इच्छुक को कन्या, धनार्थी को धन, पुत्रार्थी को पुत्र, तथा धार्मिक भावना वाले को धर्म की प्राप्ति होती है । इसीलिए इसमें सभी बताये गये विधानों का पालन बुद्धिमान् पुरुषों को अवश्य करना चाहिए ।२-४। हे भूतेश ! तुम्हारे कल्याणार्थ मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो । हे गणनायक ! सूर्य-भक्त पुरुष को सर्वत्र मैत्री भाव एवं (सूर्य की भावना) एवं सूर्य की उपासना करना चाहिए और उसे सप्तमी में तेल का स्पर्श, नील वस्त्र का धारण आँवले का स्नान एवं कहीं भी कलह न करना चाहिए ।५-६

दिंडि ने कहा—हे पद्मसंभव ! सप्तमी में तेल का स्पर्श क्यों नहीं करना चाहिए तथा नील वस्त्र के धारण करने से कौन दोष होता है ? ७½

ब्रह्मा बोले—हे महाबाहो ! दिंडे ! नीलवस्त्र के धारण करने पर जितने दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन सभी दोषों को बता रहा हूँ । सुनो ! जिस प्रकार पालन, विक्रय (बेंचना) असद्व्यवहार (अत्याचार) और उपजीवन (किसी भाँति किसी के आश्रित रहने) कर्मों के करने से ब्राह्मण पतित हो जाता है और उसे तीन बार कृच्छ्र नामक व्रत करने पर ही शुद्धि प्राप्त होती है । उसी भाँति नील वस्त्र धारण करके द्विज स्नान, दान, जप, हवन, अध्ययन एवं पितृ-तर्पण आदि जो कुछ करता है वे सभी निष्फल हो जाते हैं । अपने अंगों में नील रंग वाले वस्त्रों को धारण करने पर ब्राह्मण, दिन-रात

रोमकूपे यदा गच्छेद्रक्तं नीलस्य[1] कस्यचित् । पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥१३
नीलीमध्यं यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित्। अहोरात्रोषितो[2] भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥१४
नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणानां शरीरके । शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१५
कुर्यादज्ञानतो यस्तु नीलेर्वा दन्तधावनम् । कृत्वा कृच्छ्रद्वयं दिण्डे विशुद्धः स्यान्न संशयः ॥१६
वापयेद्यत्र नीलीं तु भवेत्तत्राशुचिर्मही । प्रमाणद्वादशाब्दानि तत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत्[3] ॥१७
सप्तम्यां स्पृशतस्तैलमिष्टा भार्या विनश्यति । इत्येष नीलीतैलस्य दोषस्ते कथितो मया ॥१८
न चैव खादेन्मांसानि मद्यानि न पिबेद्बुधः । न द्रोहं कस्यचित्कुर्यान्न पारुष्यं समाचरेत् ॥१९
नावभाषेत चाण्डालं स्त्रियं नैव रजस्वलाम् । न वापि संस्पृशेद्धीनं मृतकं नावलोकयेत् ॥२०
नास्फोटयेन्नातिहसेद्गायेच्चापि न गीतकम् । न नृत्येदतिरागेण न च वाद्यानि वादयेत् ॥२१
न शयीत स्त्रिया सार्धं न सेवेत दुरोदरम् । न रुद्यादश्रुपातेन न च वाच्यं च शौकिकम् ॥२२
आकृषेन्न शिरोयूका न वृथावादमाचरेत् । परस्यानिष्टकथनमतिशोकं च वर्जयेत् ॥२३
न कञ्चित्ताडयेज्जन्तु न कुर्यादतिभोजनम् । न[4] चैव हि दिवा स्वप्नं दम्भं शाठ्यं च वर्जयेत् ॥२४
रथ्यायामटनं वापि यत्नतः परिवर्जयेत् । अथापरो विधिश्चात्र श्रूयतां त्रिपुरान्तक ॥२५
चैत्रात्प्रभृति कर्तव्या सर्वदा नाम सप्तमी । धातेति चैत्रमासे तु पूजनीयो दिवाकरः ॥२६

का उपवास करके पंचगव्य का पान करने पर ही शुद्ध होता है ।८-१२। शरीर में रोम के छिद्रों में नील रंग किसी भाँति लग जाये तो ब्राह्मण पतित हो जाता है । और उसकी तीन बार कृच्छ्र करने पर ही उसकी शुद्धि होगी इसी प्रकार कभी प्रभाव वश ब्राह्मण यदि नील के (खेत आदि के) मध्य में पहुँच जाये तो वह दिन रात के उपवास पूर्वक पंचगव्य के पान करने पर शुद्ध होता है ।१३-१४। एवं नील की लकड़ी द्वारा शरीर में चोट लगने पर कदाचित् रक्त दिखाई दे तो उस ब्राह्मण को चान्द्रायण (व्रत) का विधान करना चाहिए ।१५। हे दिंडे ! अज्ञान वश जिसने नील द्वारा दाँत-शुद्धि (दातून) कर लिया तो वह दो बार कृच्छ्र करने पर निःसन्देह शुद्ध होगा ।१६। तथा जिस खेत में नील बोया गया हो वह भूमि बारह वर्ष तक अशुद्ध रहेगी और उसके अनन्तर शुद्ध रहेगी ।१७। उसी भाँति सप्तमी में नील के तेल का स्पर्श करने पर उसकी प्रिय स्त्री का नाश हो जाता है । इस प्रकार नील के तेल का दोष मैंने तुम्हें बता दिया ।१८। इसी भाँति मांस भक्षण, मद्य का पान, किसी से गोह एवं किसी प्रकार की कठोरता न करनी चाहिए ।१९। एवं चाण्डाल और रजस्वला स्त्री से किसी भाँति का भाषण, नीच का स्पर्श तथा मृतक (शव) का निरीक्षण न करना चाहिए ।२०। तथा निरर्थक शब्द, अत्यन्त हँसना, गीत का गाना, अति अनुरागपूर्ण नाच पर बाजाओं का बजाना, स्त्री के साथ शयन, जूए का खेलना, अश्रुपात पूर्वक रुदन, तोते की बोली, शिर के वालों में से जूँए का निकालना व्यर्थ दूसरे का अनिष्ट, अत्यन्त शोक, किसी जीव की ताड़ना, अत्यन्त भोजन, दिन में शयन, दम्भ, शठता एवं गलियों में घूमने आदि दोषों को भी त्यागना चाहिए । हे त्रिपुरांतक ! अब दूसरी विधि भी कहा रहा हूँ । सुनो ! ।२१-२५

इस सप्तमी का आरम्भ चैत्र मास में करना चाहिए तथा चैत्र मास के धाता नामक सूर्य, वैशाख के

---

१. वस्त्रस्य । २. त्रिरात्रोपोषितः । ३. विशुध्यति । ४. प्रयतश्च ।

अर्यमेति च वैशाखे ज्येष्ठे मित्रः प्रकीर्तितः । आषाढे वरुणो ज्ञेय इन्द्रो नभसि कथ्यते ॥२७
विवस्वांश्च नभस्येऽथ पर्जन्योऽश्वयुजि स्मृतः । पूषा कार्त्तिकमासे तु मार्गशीर्षेषुकथ्यते ॥२८
भगः पौषे भवेत्पूज्यस्त्वष्टा माघे तु शस्यते ! विष्णुश्च फाल्गुने मासि पूज्यो वन्द्यश्च भास्करः ॥२९
सप्तम्यां चैव सप्तम्यां भोजयद्भोजकान्बुधः[1] । सघृतं भोजनं देयं भोजयित्वा विधानतः ॥३०
भोजकायैव विप्राय दक्षिणां स्वर्णमाषकम् । सघृतं भोजनं देयं रक्तवस्त्राणि चैव हि ॥३१
[2]अभावे भोजकानां तु दक्षिणीया द्विजोत्तमाः । तथैव भोजनीयाश्च श्रद्धया परया विभो ॥३२
विशेषतो वाचकश्च ब्राह्मणः कल्पवित्सदा । इत्येषा कथिता तुभ्यं सप्तमी गणनायक ॥३३
श्रुता सती पापहरा सूर्यलोकप्रदायिनी ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मदिण्डिसंवादे सप्तमीकल्पे आदित्यमहात्म्यवर्णने सप्तमीवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।६५।

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्यवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा जगामादर्शनं विभोः[3] । सूर्यमाराधयद्दिण्डी[4] सूर्यस्यानुचरोऽभवत् ॥१

अर्यमा, ज्येष्ठ के मित्र, आषाढ के वरुण, सावन के इन्द्र, भादों के विवस्वान्, आश्विन के पर्जन्य, कार्तिक तथा अगहन के पूषा, पौस के भग, माघ के त्वष्टा एवं फाल्गुन के विष्णु नामक सूर्य की पूजा तथा वन्दना करनी चाहिए ।२६-२९। इस प्रकार प्रत्येक सप्तमी में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को घृत समेत एवं विधान पूर्वक भोजन कराना चाहिए ।३०। तथा उन्हें एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा एवं सघृत भोजन तथा रक्त वस्त्र प्रदान करना भी बतलाया गया है ।३१। यदि भोजन करने वाले ब्राह्मण न मिल सकें तो दक्षिण देश के (दक्षिणवेत्ता) ब्राह्मणों को उसी भाँति श्रद्धापूर्वक भोजन करायें ।३२। विशेषकर उन्हें कथावाचक एवं कल्पवेत्ता ब्राह्मण होना चाहिए । हे गणनायक ! इस प्रकार तुम्हें यह सप्तमी बता दी गई जिसके सुनने से समस्त पापों के नाश पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३३-३४।

श्रीभविष्वष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के ब्रह्मदिंडिसंवाद वाले सप्तमी कल्प के आदित्य माहात्म्य वर्णन में सप्तमी वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।६५।

अध्याय ६६

याज्ञवल्क्य वर्णन

सुमन्तु बोले—हे विभो ! इस भाँति भगवान् ब्रह्मा उनसे कहकर अन्तर्धान हो गये और दिंडी भी सूर्य की आराधना करके उनके अनुचर हुए ।१

---

१. ततः । २. अलाभे । ३. विभो । ४. सूर्यमाहात्म्यतो दिण्डिः ।

शतानीक उवाच

भूयः कथय विप्रेन्द्र माहात्म्यं भास्करस्य मे । शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिरमृतस्येव सुव्रत ॥२

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वावहितो राजन्सम्वादं द्विजशङ्खयोः । यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो[1] नृप ॥३
आसीनमाश्रमे शंखं द्विजो द्रष्टुं जगाम ह । फलभारानतच्छाये वृक्षवृन्दसमाकुले ॥४
परस्परमृगशृङ्गकण्डूयितमृगावृते । बर्हिर्वनाम्बरानीततीर्थकन्दोपभोगिनि ॥५
प्रभूतकुसुमामोदषट्पदोद्गीतशालिनी । सिद्धदेवर्षिगन्धर्वतीर्थसेवितवारिणि ॥६
मुण्डैश्च जटिलैश्चैव तापसैरुपशोभिते । आश्रमे तं मुनिश्रेष्ठं शंखाह्वं सुखमास्थितम् ॥७
स्तोत्रैः स्तोतुं सहस्रांशुं तद्भक्तं तत्परायणम् । ततः संहृत्य सहसा तं भोजककुमारकाः ॥८
विनीता उपसंगम्य यथावदभिवाद्य च । आसनेषूपविष्टास्त उपविष्टमथाब्रुवन् ॥९
भगवन्सर्ववेदेषु[2] च्छिन्धि नः संशयो महान् । विनयेनोपपन्नानां कुमाराणां ततो मुनिः ॥१०
अनादींश्चतुरो वेदानुवाच प्रीतमानसः । तेषां तु पठतामेव आश्रमं तु यदृच्छया ॥११
मुनिश्रेष्ठोऽथ तं देशमाजगाम द्विजो नृप । यथावदर्चितस्तेन शङ्खेनामिततेजसा ॥१२
वन्दितश्च कुमारैस्तैरभवत्प्रीतमानसः । अथैतान्ब्रवीच्छंखस्तान्भोजककुमारकान् ॥१३

शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! अमृत की भाँति सूर्य के इस माहात्म्य को सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः फिर उसे कहने की कृपा करें ।२

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! (इसी विषय के) द्विज एवं शंख ऋषि के संवाद को मैं बता रहा हूँ जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होते हैं, सावधान होकर सुनो ! ।३। एक बार शंख ऋषि दर्शन के लिए द्विज के उस आश्रम में गये जहां वे सुखासीन थे और जो फलों के मार से झुकी हुई छाया वाले वृक्षों के समुदायों एवं आपस में एक दूसरे को सीगों द्वारा खुजलाने वाले मृगों से चारों ओर घिरा था और कुशा वन के सुगंधित तीर्थोदक एवं कन्द से परिपूर्ण फूलों पर बैठकर उसके गंध का स्वाद लेते हुए भौरों से गुंजित, सिद्ध, देव, ऋषि तथा गन्धर्व द्वारा सुसेवित जल से परिपूर्ण हो रहा था । जटाधारी तपस्वियों से सुशोभित वहाँ सुख पूर्वक बैठे हुए मुनि श्रेष्ठ शंख को उन्होंने देखा ।४-७। जिस समय स्तोत्र द्वारा सूर्य की स्तुति करने के लिए आसन पर बैठे हुए मुनि के समीप जो सूर्य के भक्त एवं उनके लक्ष्य थे भोजक के कुमारों ने सहसा एकत्रित तथा विनीत होकर पुनः शंख मुनि से अभिवादन पूर्वक आसन पर बैठ कर कहा ।८-९। हे भगवन् ! सभी वेदों में हमें महान् संदेह उत्पन्न हुआ है । अतः आप उस संदेह को नष्ट करने की कृपा करें ।१०। अनन्तर मुनि ने सप्रेम उन अनादि चारों वेदों को भली भाँति विनीत उन कुमारों को बताया और उन लोगों ने भी (सन्देह नष्ट न होने पर) उसका अध्ययन करना प्रारम्भ किया था उसी समय मुनिश्रेष्ठ द्विज का आकस्मिक उस आश्रम में आगमन हुआ । अतुल तेजस्वी शंख एवं उन कुमारों ने उनका आतिथ्य सत्कार सुसम्पन्न किया । कुमारों को देखकर द्विजमुनि भी अत्यन्त प्रसन्न

---

१. नात्र संशय । २. तंत्रेषु ।

शिष्टागमादनध्यायः स च जातो विरम्यताम् । यथाज्ञापयसीत्याहुः कुमारास्ते ऋषिं ततः ।।१४
प्रपच्छ सिद्धिदश्चैतान्के ह्येते किं पठन्ति च । शङ्खोवाच महाराज कुमारा भोजकात्मजाः ।।१५
ससूत्रकल्पांश्चतुरो विप्र वेदानधीयते । तथैव सप्तमीकल्पे परिचर्यां च भास्वतः ।।१६
अग्निकार्यविधानं च प्रतिष्ठाकल्पमादितः । अभ्यङ्गलक्षणं[1] ब्रह्मन् रथयात्राविधिं तथा ।।१७

द्विज उवाच

कथं क्रियेत सप्तम्यां कश्चार्चनविधिक्रमः । गन्धपुष्पप्रदीपानां किं फलं रविमन्दिरे ।।१८
केन तुष्यति दानेन व्रतेन नियमेन च । धूपपुष्पोपहारादि किं च देयं विवस्वते ।।१९
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि तपोधन ! विशेषतस्तु माहात्म्यं ब्रूहि मां भास्करस्य हि ।।२०

शङ्ख उवाच

इममर्थं वशिष्ठेन पृष्टः साम्बो यथा पुरा । स[2] चोवाच वशिष्ठाय तदहं कथयामि ते ।।२१
अत्राश्रमे पुण्यतमे तीर्थानामुत्तमे प्रभुः । ववन्दे नियतात्मानं वशिष्ठं मुनिसत्तमम् ।।२२
विनयेनोपसंगम्य ववन्दे चरणौ मुनेः । कृतप्रणामं साम्बं तु भक्तिप्रह्वीकृताननम् ।।२३
विलोक्य[3] परमप्रीतो मुनिः पप्रच्छ तं तदा । सर्वतः स्फुटितं गात्रं कुष्ठेन महता तव ।।२४

हुए । पश्चात् शंख ने उन कुमारों से कहा ।११-१३। किसी शिष्ट (सभ्य) व्यक्ति के आने पर (उसके आतिथ्य सत्कार के निमित्त) कुछ समय अनध्याय हो जाता है, अतः अध्ययन करना बन्द कर दो । कुमारों ने भी 'जैसी आज्ञा' कह कर अपना अध्ययन रोक दिया । तदनन्तर द्विज ने शंख मुनि से पूछा— ये कौन हैं और क्या पढ़ रहे हैं ।

शंख ने कहा—हे महाराज ! ये भोजक के कुमार हैं ।१४-१५। सूत्र एवं कल्प के समेत चारों वेदों के अध्ययन कर रहे हैं और सप्तमी कल्प में सूर्य की पूजा भी ।१६। एवं उसी भाँति हवन, प्रतिष्ठा, सूर्य के अंगों का कल्पनापूर्वक पूजन और रथ यात्रा की विधि का भी ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं ।१७

द्विज बोले—सप्तमी में किस सामग्री और किस विधान द्वारा उनकी अर्चना की जाती है तथा गंध एवं पुष्प प्रदीप उन्हें मन्दिर में प्रदान करने से किस फल की प्राप्ति होती है ।१८। वे किस प्रकार के दान, व्रत एवं नियम से प्रसन्न होते हैं, और सूर्य को धूप, पुष्प एवं उपहारादि किस भाँति प्रदान किये जाते हैं ? हे तपोधन ! इसे सविस्तार कहते हुए आप भास्कर के माहात्म्य को बतायें क्योंकि मुझे उसके जानने की विशेष इच्छा है ।१९-२०

शंख ने कहा—पहले इसी विषय को साम्ब से वशिष्ठ जी ने पहले पूछा था । उन्होंने वशिष्ठ को जो उत्तर दिया है मैं उसी को तुम्हें सुना रहा हूँ ।२१। तीर्थ श्रेष्ठ इसी पुण्य आश्रम में वशिष्ठ जी रहते थे जो जितेन्द्रिय एवं मुनिश्रेष्ठ हैं। सादर नम्रता पूर्वक साम्ब वहाँ पहुँचकर मुनि के चरणों में प्रणाम किया। वशिष्ठ जी ने साम्ब को जो प्रणाम करके अपनी मुख चेष्टाओं द्वारा अत्यन्त भक्ति प्रदर्शित कर रहा था,

---

१. अभ्यंगलक्षणम् । २. अथाचष्टे । ३. वाक्यं च ।

घोररूपेण तीव्रेण कथं तद्विगतं तव[1] । कथं च लक्ष्मीरधिका रूपं चातिमनोहरम् ।।२५
तेजस्वितातिमहती तथैव[2] सुकुमारता ।।२६

साम्ब उवाच

स्तुतो नामसहस्रेण लोकनाथो दिवाकरः । दर्शनं च गतः साक्षाद्दत्तवांश्च वरान्मम ।।२७

वशिष्ठ उवाच

कथमाराधितः सूर्यस्त्वया यादवनंदन । कैश्च व्रततपोदानैर्दर्शनं भगवान्गतः ।।२८

साम्ब उवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन्सर्वमेव मया यथा । तोषितो भगवान्सूर्यो विधिना येन सुव्रत ।।२९
मोहान्मयोपहसितो[3] दुर्वासाः कोपनो मुनिः । ततोऽहं तस्य शापेन महाकुष्ठमवाप्तवान् ।।३०
ततोऽहं पितरं गत्वा कुष्ठयोगाभिपीडितः । लज्जमानोऽतिगर्वेण इदं वाक्यमथाब्रवम् ।।३१
तात सीदति मे गात्रं स्वरश्च परिहीयते । घोररूपो महाव्याधिर्वपुरेष जिघांसति ।।३२
अशेषव्याधिराज्ञाहं पीडितः क्रूरकर्मणा । वैद्यैरोषधिभिश्चैव न शान्तिर्मम विद्यते ।।३३
सोऽहं त्वया ह्यनुज्ञातस्त्यक्तुमिच्छामि जीवितम् । यदि वाहमनुग्राह्यस्ततोऽनुज्ञातुमर्हसि ।।३४

देखकर प्रेमपूर्वक उससे कहा—तुम्हारी शरीर के सभी अंग इस महान् कुष्ठ रोग द्वारा विदीर्ण हो गये हैं। तो इस भयानक रोग से शान्ति पूर्वक तुम्हें भी रूप सौन्दर्य, अतुलतेज और यह कोमलता कहाँ से पुनः प्राप्त हुई है ।२२-२६

साम्ब ने कहा—लोकनाथ भगवान् सूर्य की आराधना मैंने उनकी सहस्रनामावली द्वारा किया था, उससे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे दर्शन दिया एवं यही वर प्रदान किया था ।२७

वशिष्ठ बोले— हे यादव नन्दन ! तुमने सूर्य की आराधना किस भाँति की थी और किस व्रत, तप एवं दान द्वारा तुम्हें भगवान् सूर्य के दर्शन हुए थे ।२८

साम्ब ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिस विधान द्वारा मैंने सूर्य की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया था, वह सभी आप से कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।२९। एक बार मोहान्ध होकर मैंने अत्यन्त क्रोधी दुर्वासा मुनि की हँसी की थी उन्हीं के शाप वश यह कुष्ठ (कोढ़ी) का रोग मुझे हो गया था ।३०। इस कुष्ठ रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर अपने पिता के समीप जाकर इस भाँति लज्जित होते हुए मैंने उनसे बड़े गर्व से कहा ।३१। हे तात ! मेरे शरीर में इतनी पीड़ा हो रही है कि मुझसे बोला नहीं जा रहा है, इस प्रकार यह भयानक महारोग मेरे शरीर को खा रहा है ।३२। मैं क्रूरकर्मा एवं समस्त व्याधियों के राजा इस राज रोग से अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ । वैद्यों के उपचारों एवं औषधि द्वारा मुझे कुछ भी शांति प्राप्ति नहीं हो रही है ।३३। अतः आप आज्ञा प्रदान करें मैं अपना जीवन अब समाप्त करना चाहता हूँ । यदि मेरे ऊपर आप (कुछ) अनुग्रह करते हैं, तो इसके लिए शीघ्र आज्ञा प्रदान करें ।३४। इस प्रकार कहने

---

१. वद । २. तव साम्ब समागमत् । ३. महानुभावो हि हरेर्दुर्वासाः कोपितो मुनिः ।

इत्युक्तवाक्यः स पिता पुत्रशोकाभिपीडितः । पिता क्षणं ततो ध्यात्वा मामेवं वाक्यमुक्तवान् ॥३५
धैर्यमाश्रयतां[1] पुत्र मा शोके च मनः कृथाः । हन्ति शोकार्दितं व्याधिः शुष्कं तृणमिवानलः ॥३६
देवताराधनपरो भव पुत्रक मा शुचः । इत्युक्ते च मया प्रोक्तो देवमाराधयामि कम् ॥३७
कमाराध्य विमुच्येऽहं तात रोगैः समन्ततः । इत्येवमुक्तो भगवान्मामुवाच पिता मम ॥३८
इममर्थं पुरा पृष्टः पद्मयोनिः सनातनः । याज्ञवल्क्येन ऋषिणा योगीशेन महात्मना[2] ॥३९
यदुवाच महातेजास्तस्मै स यदुनन्दन । तच्छृणुष्व शुचिर्भूत्वा आत्मनः श्रेयसे सुत ॥४०
सुरज्येष्ठं सुखासीनं पद्मयोनिं प्रजापतिम् । याज्ञवल्क्यो महातेजाः पर्यपृच्छत्पितामहम् ॥४१
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि किंचिदात्ममनोगतम् । समाराध्य विभो देवं नरो मुच्येत वै भवात् ॥४२
गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत सः ॥४३
कुतो ह्यस्य ध्रुवः स्वर्गः कुतो नैः श्रेयसं सुखम् । स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते पुनः ॥४४
देवातानां तु को देवः पितृणां चैव कः पिता । तस्मात्परतरं यच्च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥४५
केन सृष्टमिदं विश्वं ब्रह्मन्स्थावरजङ्गमम् । प्रलयो च कमभ्येति तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥४६

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता तुष्टश्चास्मि महामते । प्रणम्य शिरसा देवं पुण्योत्तरमनुत्तमम् ॥४७

पर मेरे पिता पुत्र-शोक से अत्यन्त पीड़ित हुए । पश्चात् कुछ देर सोच कर उन्होंने कहा ।३५। हे पुत्र ! धैर्य का आलम्बन करो और मन में किसी प्रकार का शोक न करो । क्योंकि रोग शोक करने वाले प्राणी को सूखे तृण की अग्नि की भाँति नष्ट कर देता है ।३६। अतः पुत्र ! चिंता न कर देवाराधन करो । उनके इस प्रकार कहने पर मैंने कहा—किस देव की आराधना करूँ ।३७। हे तात ! किसी देव की आराधना द्वारा इस महान रोग से मुझे सर्वथा मुक्ति प्राप्त होगी । इसे सुनकर पिता ने कहा ।३८। इसी विषय को, महात्मा एवं योगीश याज्ञवल्क्य ऋषि ने सनातन ब्रह्मा से पूछा था ।३९। हे यदुनंदन ! उन महातेजस्वी ने जो कुछ कहा था उसे मैं कह रहा हूँ तुम अपने कल्याण के लिए पवित्र भावना करके सुनो ।४०। याज्ञवल्क्य ने उन पितामह से जो देवों में बड़े, पद्म से उत्पन्न एवं प्रजाओं के पति हैं, कहा—हे भगवन् ! कुछ मेरे मन में शंकायें उठ रही है, उसे मैं भली भाँति जानना चाहता हूँ । हे विभो ! जब मनुष्य देवता की आराधना करके संसार से मुक्त हो जाता है तो गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं सन्यासी आदि जो कोई मोक्ष चाहें तो किस देव की आराधना करे ।४१-४३। क्योंकि उसे निश्चित रूप से स्वर्ग की प्राप्ति एवं निःश्रेयस् सुख की प्राप्ति इस भाँति होनी चाहिए, जिससे फिर कभी स्वर्ग से वह नीचे न गिरे ।४४। हे पितामह ! इसलिए देवाधिदेव, पितरों के पिता तथा उससे भी श्रेष्ठ कौन देवता हैं उसे मुझे भली भाँति बताने की कृपा करें ।४५। हे ब्रह्मन् ! तथा इस विश्व की जिसमें चर-अचर सभी हैं, किसने रचना की है और इस विश्व का किसमें प्रलय होता है, यह भी बताने की कृपा करें ।४६

ब्रह्मा बोले—हे महामते ! हे द्विजश्रेष्ठ ! आप का प्रश्न बहुत उत्तम है इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

---

१. स्थैर्यमालंव्यताम् । २. ततः व्याप्त—इत्यर्थः ।

कथयिष्ये द्विजश्रेष्ठ श्रृणुष्वैकमनाधुना । आत्मनः श्रेयसे विप्र शुचिर्भूत्वा समाहितः ।।४८
उद्यन्य एष कुरुते जगद्वितिमिरं करैः । नातः परतरो देवः किमन्यत्कथयामि ते ।।४९
अनादि निधनो ह्येषः पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः । दीपयत्येव लोकांस्त्रीन्रवी रश्मिभिरुल्बणैः ।।५०
सर्वदेवात्मको ह्येष तपसा चांशुतापनः । सर्वस्य जगतो नाथः कर्मसाक्षी शुभाशुभे ।।५१
क्षपयत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः । एष भाति तपत्येष वर्धते च गभस्तिभिः ।।५२
एष धाता विधाता च पूषा[1] प्रकृतिभावन । न ह्येष क्षयमायति नित्यमक्षयमण्डलः ।।५३
पितृणां हि पिता देवतानां च देवता । ध्रुवं[2] स्थानं स्मृतं ह्येष आधारो जगतस्तथा ।।५४
सर्वकाले जगत्कृत्स्नमादित्यात्संप्रसूयते । प्रलये च तमभ्येति आदित्यं दीप्ततेजसम् ।।५५
योगिनश्चात्र संलीनास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम् । वायुभूता विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे ।।५६
तस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहंगमाः । वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ।।५७
जनकादयो गृहस्थास्तु राजानो योगधर्मिणः । वालखिल्यादयश्चैव मुनयो ब्रह्मचारिणः ।।५८
व्यासादयो वनस्थाश्च भिक्षुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे[3] ते योगमास्थाय प्रविष्टाः सूर्यमण्डलम् ।।५९
शुको व्यासात्मजः श्रीमान्योगधर्ममवाप्य तु । आदित्यकिरणान्पीत्वा न पुनर्भवमाप्तवान् ।।६०

अतः पुण्य स्वरूप उस देव को प्रणाम कर मैं उसे कह रहा हूँ । सावधान होकर सुनो ! उसमें तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा । इस समय पवित्रतापूर्वक ध्यान लगाओ ।४७-४८। ये (सूर्य) उदय होते ही अपनी किरणों द्वारा समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं, अतः इनसे श्रेष्ठ देव और कौन हो सकता है जिसे मैं कहूँ ।४९। यही सूर्य देव नित्य प्रत्यय (अनश्वर) एवं जन्म मरण से रहित हैं और अपनी प्रखर किरणों द्वारा तीनों लोकों को सदैव प्रकाशित करते हैं ।५०। यह सर्वदेवमय हैं जिसने अपने तप द्वारा इतनी उत्पन्न किरणें प्राप्त की हैं, यही समस्त संसार के स्वामी और शुभाशुभ कर्मों के साक्षी हैं एवं यही प्राणियों का सर्जन विसर्जन भी करते है तथा अपनी किरणों द्वारा सदैव प्रदीप्त रहकर तपते और बढ़ते रहते हैं ।५१-५२। यही (जगत् का) धाता, विधाता तथा पूषा हैं एवं इनका क्षय कभी नहीं होता है क्योंकि ये अक्षय मंडल वाले हैं ।५३। यही पितरों के पिता, देवाधिदेव, ध्रुव स्थान एवं जगत् के आधार हैं । सभी काल में समस्त जगत् इन्हीं दीप्त तेजवाले आदित्य से उत्पन्न तथा इन्हीं में लय को प्राप्त होता है ।५४-५५। योगीगण इन्हीं में सतत लीन रहकर अंत में अपने घर एवं शरीर का त्याग करके वायुरूप से इन्हीं तेजोराशि दिवाकर में प्रविष्ट होते हैं ।५६। उन्हीं की किरणों की सहस्रों किरणों के आश्रित होकर शाखा में पक्षी की भाँति देवताओं के समेत मुनिगण सदैव विचरते रहते हैं ।५७। गृहस्थों में योगिराज राजा जनक, बालखिल्यादिक ब्रह्मचारी, वन में रहने वाले व्यासादिक और भिक्षुपञ्चशिख आदि ये सभी योग द्वारा सूर्य के मंडल में प्रविष्ट हुए हैं ।५८-५९। व्यास के पुत्र शुकदेव जी ने योग के द्वारा ही सूर्य की किरणों का पान करके अपुनर्जन्म प्राप्त किया है ।६०। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव केवल कान से

---

१. पूषापूताविभावनः । २. एवम् । ३. सवित्रे ।

शब्दमात्राः श्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रत्यक्षोऽयं स्मृतो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥६१
तस्मादन्यव्रते भक्तिर्न कार्या शुभमिच्छता । दृष्टेन साध्यते यस्माददृष्टं नित्यमेव हि ॥
त्वयातः सततं विप्र अर्चनीयो दिवाकरः ॥६२

याज्ञवल्क्य उवाच

अहो य एष कथितो भवता भास्करो मम । देवता सर्वदेवानां नैतन्मिथ्या प्रजायते ॥६३
तस्य देवस्य माहात्म्यं श्रुतं सुबहुशो मया । देवर्षिसिद्धमनुजैः स्तुतस्येह महात्मनः ॥६४
कः स्तौति दैवतमजं यस्यैतत्सचराचरम् । अक्षयस्याप्रमेयस्य किरणोद्गमनाद्भवेत् ॥६५
दक्षिणात्किरणाद्यस्य सम्भूतो भगवान्हरिः । वामाद्भवांस्तथा जातः किरणात्किल कञ्जज ॥६६
ललाटाद्यस्य रुद्रस्तु का तुल्या तेन देवता । तस्य देवस्य कः शक्तः प्रवक्तुं गुणविस्तरम् ॥६७
सोऽहमिच्छामि देवस्य तस्य सर्वात्मनः प्रभो । श्रोतुमाराधनं येन निस्तरेयं भवार्णवम् ॥६८
केनोपायेन मन्त्रैर्वा रहस्यैः परिचर्यया । दानव्रतोपवासैर्वा होमैर्जप्यैरथापि वा ॥६९
आराधितः समस्तानां क्लेशानां हानिदो रविः । शक्यः समाराधयितुं कथं शंस प्रजापते ॥७०
धर्मार्थकामसम्प्राप्तौ पुरुषाणां विचेष्टताम्[1] । जन्मन्यवितथा सैका क्रिया यार्कं समाश्रिता ॥७१
दुर्गसंसारकांतारमपारमभिधावताम् । एकः सूर्यनमस्कारो मुक्तिमार्गस्य देशकः[2] ॥७२

ही सुनाई देते हैं, किन्तु तम के नाशक सूर्य प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले देव हैं ।६१। इसलिए शुभ की अभिलाषा वाले प्राणियों को अन्य की भक्ति कभी न करनी चाहिए, अपितु दृष्ट पदार्थ (सूर्य) द्वारा अपने अदृष्ट (सौभाग्य) को उत्पन्न करना चाहिए । अतः हे विप्र ! तुम भी सदैव सूर्य की उपासना करो।६२

याज्ञवल्क्य ने कहा—आपने मेरे लिए देवाधि देव सूर्य का जो उपदेश किया है, यह कदापि मिथ्या नहीं है प्रत्युत पूर्ण है ।६३। क्योंकि देव, ऋषि, सिद्ध एवं मनुष्यों द्वारा महात्मा सूर्य के माहात्म्य को मैंने अनेकों बार सुना है ।६४। उस अजन्मा देव की स्तुति जिसने अक्षय और अप्रमेय अपनी किरणों द्वारा इस चराचर को उत्पन्न किया है, कौन कर सकता है ।६५। इसलिए जिसके दक्षिण किरण द्वारा विष्णु बायीं किरण द्वारा (अब) (ब्रह्मा) और ललाट से शिव उत्पन्न हुए हैं, उनके समान कौन देवता है और उनके गुण समूह का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ।६६-६७। उस सर्वात्म देव की आराधना, जिसके द्वारा मैं संसार-सागर को पार करना चाहता हूँ, मुझे सुनने की विशेष इच्छा है ।६८। अतः उनके मंत्रों अथवा रहस्य या सेवा, दान, व्रत, उपवास, हवन एवं जप इनमें से किस उपाय द्वारा की गई आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य सम्पूर्ण दुःखों का नाश करते हैं। हे प्रजापते ! मैं किस भाँति उनकी आराधना करूँ ।६९-७०। यद्यपि प्रयत्नशील पुरुषों के जीवन में (उनके) धार्मिक होने के नाते उनके अर्थ एवं काम की सफलता प्राप्त होती ही रहती है, पर, उनकी यही एक क्रिया जिसके द्वारा सूर्य की आराधना की जाये, और की अपेक्षा सफल कही जा सकती है ।७१। इसलिए संसार रूपी दुर्गम जंगल में भ्रान्त होकर दौड़ने वाले के लिए सूर्य की आराधना ही उपयुक्त है क्योंकि वही एक मुक्ति-मार्ग के प्रदर्शक हैं ।७२। अतः मैं

---

१. विचेष्टितम् । २. दाता ।

सोऽहमिच्छामि तं देवं सप्तलोकपरायणम् । कालायनमशेषस्य[1] जगतो हृद्यवस्थितम् ॥७३
आराधयितुं गोपालं ग्रहेशममितौजसम्[2] । शङ्करं जगतो दीपं स्मृतमात्राघनाशनम् ॥७४
तमनाद्यं सुरश्रेष्ठं प्रसादयितुमिच्छतः । उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥७५
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा भक्तिमुद्वहतो रवौ । जगाम परितोषं स पद्मयोनिर्महातपाः ॥७६

ब्रह्मोवाच

यत्पृच्छसि द्विजश्रेष्ठ सूर्यस्याराधनं प्रति । व्रतोपवासजप्यादि तदिहैकमनाः शृणु ॥७७
अनादि यत्परं ब्रह्म सर्वहेयविवर्जितम् । व्याप्यय्तत्सर्वभूतेषु स्थितं सदसतः परम् ॥७८
प्रधानपुंसोरनयोर्यतः क्षोभः प्रवर्तते । नित्ययोर्व्यापिनोश्चैव जगदादौ महात्मनोः ॥७९
तत्क्षोभकत्वाद् ब्रह्माऽसौ सृष्टेर्हेतुर्निरञ्जनः । अहेतुरपि सदात्मा जायते परमेश्वरः ॥८०
प्रधानपुरुषत्वं च तथैवेश्वरलीलया । समुपैति ततश्चैवं ब्रह्मत्वं छन्दतः प्रभुः ॥८१
ततः स्थितौ पालयिता विष्णुत्वं जगतः क्षये । रुद्रत्वं च जगन्नाथः स्वेच्छया कुरुते रविः ॥८२
तमेकमक्षरं धाम सर्वदेवनमस्कृतम् । भेदाभेदस्वरूपं तं प्रणिपत्य दिवाकरम् ॥
[3]वर्णयिष्येऽखिलं विप्र तस्यैवाराधनं रवेः ॥८३
गुह्यं चापि तथा तस्य भास्करस्य शृणुष्व वै । तुष्टेन हि पुरा मह्यं कथितं भास्करेण तु ॥८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि याज्ञवल्क्यब्रह्मसंवादे सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।६६।

भी उस देव की, जो सातों लोकों में प्रदत्त, समस्त जगत् के हृदय में अवस्थित, समय के अयन, पृथिवी-पालक, ग्रहों के ईश, अमेय तेजस्वी, कल्याण-कर्ता, जगत्-प्रकाशक, स्मरण मात्र से पापों को नाश करने वाले, अनादि तथा सुरश्रेष्ठ हैं, आराधना करके उन्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ, आप उपदेश द्वारा उस (आराधन-विधान) को बताने की कृपा करें ।७३-७५। इस प्रकार सूर्य की भक्ति में ओत-प्रोत उसकी वाणी सुनकर महातपस्वी ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए ।७६

ब्रह्मा बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! 'व्रत, उपवास एवं जप आदि किसके द्वारा सूर्य की आराधना होती है, यह जो पूंछ रहे हो, मैं बता रहा हूँ उसे सावधान होकर सुनो ।७७। सूर्य देव अनादि, परब्रह्म, सांसारिक हेय पदार्थों से रहित समस्त प्राणियों में अवस्थित, सत् और असत् से पृथक्, नित्य और संसार में व्यापक हैं इन्हीं के द्वारा सृष्टि आदि में प्रधान पुरुष में क्षोभ उत्पन्न होता है । क्योंकि ब्रह्माण्ड में क्षोभ होने के नाते ही सृष्टि हुई है उसके कारण निराकार हेतु रहित, सर्वात्मा और परमेश्वर रूप यही हैं।७८-८०। यही प्रभु, ब्रह्म तथा ईश्वरीय लीलाओं द्वारा प्रधान पुरुष रूप भी होते रहते हैं।८१। और स्वेच्छा द्वारा विष्णु (जगत् के) पालक और उसके क्षय के लिए रुद्र रूप में दृष्टि गोचर होते हैं।८२। अतः उसी सूर्य की, जो, अनश्वर, समस्त देवों के वन्दनीय, भेदाभेद स्वरूप तथा दिवाकर कहे जाते हैं, आराधना मैं कह रहा हूँ ।८३। हे विप्र! उस की वह गुप्त वस्तु है, जिसे प्रसन्न होकर पहले ही उन्होंने स्वयं मुझसे कहा है सुनो! ।८४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के याज्ञवल्क्य ब्रह्मसंवादरूपी सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।६६।

---

१. कालालयमतिश्रेष्ठम् । २. आश्रयंतं महौजसम् । ३. वर्तयिष्ये ।

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मयाज्ञवल्क्यसम्वादवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रभाते संस्तुतो देवो मूर्तिहेतोर्मया पुरा । यजन्तं चापरं देवं भक्तिनम्रं महामतिः ।।१
प्रत्यक्षत्वमथो गत्वा रहस्यं प्रोक्तवान्मम । अहं च कृतवान्प्रश्नं दृष्ट्वा प्रत्यक्षतो रविम् ।।२
वेदेषु[1] च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमजः शाश्वतो धाता महाभूतमनुत्तमम्[2] ।।३
प्रतिष्ठितं भूतभव्यं त्वयि सर्वमिदं जगत् । चत्वारो ह्याश्रमा देव सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः ।।४
यजन्ते त्वामहरहर्नानामूर्तिसमाश्रिताः[3] । पिता माता हि सर्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ।।५
यजसे चैव कं देवमेवं चापि न विद्महे । कथ्यतां मम देवेश परं कौतूहलं हि मे ।।६
इत्थं मयोक्तो भगवानिदं वचनमब्रवीत् । अवाच्यमेतद्वक्तव्यमात्मगुह्यं सनातनम् ।।७
तव भक्तिमतो ब्रह्मन्वक्ष्यामीह यथातथम् । यतः सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।।८
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम् । स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यते ।।९
त्रिगुणव्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चेति कथ्यते । हिरण्यगर्भो भगवान्सैव[4] बुद्धिरिति स्मृतः ।।१०
महानिति च योगेषु प्रधानश्चेति कथ्यते । सांख्ये[5] च पठचते शास्त्रे नामभिर्बहुभिः सदा ।।११

अध्याय ६७

ब्रह्म-याज्ञवल्क्य के संवाद का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—पहले (एकबार) मैंने सभक्ति विनम्र होकर दूसरे देव की पूजा करते हुए भी मूर्तिमान् होने के लिए प्रातः काल मे सूर्य देव की आराधना करके उन्हें प्रत्यक्ष किया था, उसी समय में उन्होंने मुझे इस रहस्य को बताने की कृपा की थी । मैंने प्रत्यक्ष देखकर उनसे पूँछा था ।१-२। कि देव ! साङ्गोपाङ्ग वेद, वेदांग, और पुराणों में आप को अजन्मा, सनातन एवं धाता बताया गया है एवं पृथिवी आदि पञ्च महाभूत भविष्य और भूत काल तथा उसके द्वारा उत्पन्न समस्त संसार आप में प्रतिष्ठित है । उसी भाँति व्रह्मचारी आदि चारों आश्रम जो गृहस्थी के मूल कारण हैं, वे नानामूर्तिधारी प्रतिदिन विविध भाँति की आपकी (मूर्तियों का पूजन करते हैं) । क्योंकि आप सभी के माता-पिता एवं सनातन देवता भी हैं ।३-५। किन्तु हे देवेश ! आप किस देवता की उपासना करते हैं । यह मैं नहीं जानता । अतः इसे बताने की कृपा कीजिए । क्योंकि मुझे इसे जानने के लिए महान् कौतूहल हो रहा है ।६। इस भाँति मेरे कहने पर उन्होंने कहा—यद्यपि यह किसी से न कहने योग्य, अव्यक्त, अत्यन्त गुह्य तथा सनातन विषय है, पर तुम्हारी भक्ति को देखकर मैं अवश्य उसे तथ्यरूप में तुमसे बताऊँगा । यह देव सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियों, इन्द्रिय विषयों (रूप रसादिकों) तथा समस्त प्राणियों से पृथक्,

---

१. इतिहासपुराणेपु । २. महारूपम् । ३. नानावृत्तीरूपाश्रिताः । ४. स च । ५म वेदे पठचते शास्त्रे मुनिभिर्बहुभिः सदा ।

विश्वगो विश्वभूतश्च विश्वात्मा विश्वसम्भवः[1] । धृतं चैवात्मकं येन इदं त्रैलोक्यमात्मना ।।१२
अशरीरः शरीरेषु लिप्यते न च कर्मभिः । ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंज्ञकाः ।।१३
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ[2] न करोति न लिप्यते । सगुणो निर्गुणो[3] विष्णुर्ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ।।१४
सर्वतः पाणिपादोऽसौ सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः । सर्वतः श्रुतियुक्तोऽसौ सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।१५
विश्वमूर्धा[4] विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः । एकश्चरति क्षेत्रेषु स्वैरचारी यथासुखम् ।।१६
क्षेत्राण्यस्य शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभम् । तानि वेत्ति स योगात्मा अतः क्षेत्रज्ञ उच्यते ।।
अव्यक्तके पुरे शेते तेनाऽसौ पुरुषः स्मृतः ।।१७
विश्वं बहुविधं ज्ञेयं स च सर्वत्र विद्यते । तस्मात्स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ।।१८
महापुरुषशब्दं हि विभर्त्येष सनातनः[5] । स तु वै विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ।।१९
आकाशात्पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा । भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशात्तु सः ।।२०
एक एव यथा वायुर्देहे तिष्ठति पञ्चधा । एकत्वं च पृथक्त्वं च तथा तस्य न संशयः ।।२१
स्थानान्तरविशेषेण यथाग्निर्लभते पराम् । संज्ञां दावाग्निकाद्येषु तथा देवो[6] ह्यसौ स्मृतः ।।२२
यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते । तथा रूपसहस्राणि स एवैकः प्रसूयते ।।२३

प्राणियों के अन्तरात्मा, क्षेत्रज्ञ, सत्वादि तीन गुणों से पृथक् होने के नाते प्रधान पुरुष, भगवान् हिरण्य गर्भ (साकार ब्रह्म), बुद्धिरूप, योग में महान् रूप सांख्य में प्रधान रूप, विराट रूप, विश्व का आधार, विश्वात्मा, विश्व के कारण, इन तीनों लोकों को धारण करने वाले, निराकार साकार होते हुए भी कर्मों से लिप्त न होने वाले, मेरे एवं तुम्हारे हृदय-निवासी, सभी प्राणियों के कर्म-साक्षी, सगुण-निर्गुण रूप विष्णु तथा ज्ञान द्वारा जानने के योग्य हैं । इनके चारों ओर अनेकों हाथ, पैर, आंखें, शिर, मुख एवं श्रवण हैं, और आवरण की भाँति वे सभी को घेर कर अब स्थित हैं ।७-१५। यही समस्त विश्व के शिर, भुजाएँ, पैर, आँखें, नासिका रूप हैं, सभी शरीरों में इच्छा पूर्वक घूमने वाले, शरीर रूप एवं शुभाशुभ रूपी बीज भी हैं । वही योग द्वारा समस्त (शरीरों) के ज्ञान रखते हैं । अतः उसे क्षेत्रज्ञ तथा अव्यक्त पुर में शयन करने के नाते पुरुष कहा जाता है ।१६-१७। एवं विश्व के सभी स्थानों में वर्तमान एवं विविध भाँति के रूप धारण करने के नाते विश्व रूप कहे जाते हैं ।१८। इसी भाँति महापुरुष एवं सनातन शब्द भी इन्हीं के लिए प्रयुक्त होता है । यही अपनी आत्मा द्वारा विकारी (सगुण) होकर अवतार धारण करते हैं।१९ आकाश से गिरे हुए जल की भाँति जो पृथिवी के इस ओर गुण विशेष के संपर्क से भिन्न भिन्न स्वाद का हो जाता है।२०। तथा शरीर में स्थित एक ही वायु की भाँति जो पाँच प्रकार के होते हुए भी एक रूप और पृथक्-पृथक् रूप हैं।२१। तथा जिस प्रकार अग्नि जो किसी स्थानान्तर विशेष के कारण दावाग्नि आदि विशेष संज्ञा को प्राप्त करता है, इसी प्रकार ये देव भी एक होते हुए अनेक भाँति के कहे गये हैं।२२

और एक ही दीप द्वारा सहस्रों दीप के जल जाने की भाँति इन्ही एक के द्वारा सहस्रों रूप उत्पन्न

---

१. विश्वभावनः । २. शक्तिभूतः । ३. विश्वः । ४. विश्वमूर्तिः । ५. एकं सनातनम् । ६. देवेष्वसौ स्मृतः ।

स यदा बुध्यतेत्मानं तदा भवति केवलः । एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं स्यात्प्रवर्तने ।।२४
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् । ऋते[1] तमेकमीशानं पुरुषं बीजसंज्ञितम् ।।२५
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सवर्गश्च स उच्यते । तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं सर्वकारणम् ।।२६
अव्यक्ताव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते । तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।।२७
नास्ति तस्मात्परो ह्यन्यः स पिता स प्रजापतिः । आत्मा मम स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ।।२८
स्वर्गताश्चापि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः । ते तत्प्रसादाद् गच्छन्ति तेनादिष्टाः[2] परां गतिम् ।।२९
तं देवाश्चासुराश्चैव नानामतसमाश्रिताः[3] । भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिं चैषां ददाति सः ।।३०
स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चापि कथ्यते । एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयामि सनातनम् ।।
भास्करं देवदेवेशं सर्वभूतेशमच्युतम् ।।३१

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवान्पुरा पृष्टो मया देवो दिवाकरः । पूजय त्वं महात्मानं तपन्तं विपुलं तपः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मयाज्ञवल्क्यसंवादे सप्तमीकल्पे सूर्यमहिमवर्णनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।६७।

होते हैं ।२३। और जिस समय इन्हें अपने आत्मा का ज्ञान हो जाता है तब वे केवल होते हैं । इस भाँति प्रलय में अकेले और सृष्टि में भाँति-भाँति के अनेक रूप का होना इन्हें जानना चाहिए ।२४। इस स्थावर और जंगम रूप जगत् में इन्ही एक बीजरूप पुरुष के अतिरिक्त कोई नित्य नहीं है ।२५। इन्हीं को अक्षय, अप्रमेय एवं सर्व व्यापक कहा जाता है । इस प्रकार इन्हीं सर्वकारण द्वारा त्रिगुणात्मक अव्यक्त तथा मख प्रकृति उत्पन्न हुई है, जो (प्रकृति) ब्रह्म की योनि है । यही सदसदात्मक, पिता एवं प्रजापति के रूप में है जिससे पर अन्य कोई नहीं है वही मेरी आत्मा है अतः मैं भी इनकी पूजा करता हूँ ।२६-२८। और स्वर्ग जाने वाले सभी जीव इन्हें नमस्कार आदि करते हैं क्योंकि इन्हीं की प्रसन्नता वश उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।२९। देवता एवं असुर गण प्रथम इन्हीं की भक्तिपूर्वक उपासना मतमतान्तर को अपनाकर करते हैं तथा इन्हीं के द्वारा उन्हें सद्गति प्राप्त होती है।३०। इस भाँति ये सर्वगत एवं निर्गुण हैं केवल उन्हीं की अपनी आत्मा जानकर जो सनातन, भास्कर, देवाधिदेव, भूतेश एवं अच्युत हैं, मैं पूजा करता हूँ।३१

ब्रह्मा ने कहा—इसी प्रकार मेरे पूछने पर दिवाकर देव ने मुझसे कहा था । अतः तुम भी विपुल तपस्वी ओर देदीप्यमान की पूजा करो ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के ब्रह्म याज्ञवल्क्य संवाद रूप सप्तमी कल्प में सूर्य महिमा वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६७।

---

१. तं विहायैकमीशानम् । २. आदिष्टाम् । ५. नानामतमयस्थिताः ।

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

सिद्धार्थसप्तमीव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वच्मि ते परमं देवं सर्वदेवैश्च पूजितम् । आराधयन्ति यं देवं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१
पद्माकृतिं सदा ब्रह्मा नलिनैर्गुग्गुलेन तु । व्योमरूपं सदा देवं महादेवोर्चते रविम् ॥२
जातिपुष्पैर्द्विजश्रेष्ठ धूपेन विजयेन तु । वृषणं सिह्लकं विप्र श्रीखण्डमगरुस्तथा ॥३
कर्पूरं च तथा मुस्ता शर्करा सत्वचा द्विज । इत्येष विजयो धूपः स्वयं देवेन निर्मितः ॥४
केशवश्चक्ररूपं तु सदा सम्पूजयेद्रविम् । नीलोत्पलदलश्यामो नीलोत्पलकदम्बकैः ॥५
धूपेनागुरुसंज्ञेन भक्तिश्रद्धासमन्वितः । मया स पृष्टो देवेशस्तस्यैवाराधनाय वै ॥६
कानि पुष्पाणि चेष्टानि सदा भास्करपूजने । तेन चोक्तानि पुष्पाणि स्वयं तानि निबोध मे ॥७
मल्लिकायास्तु कुसुमैर्भोगवाञ्जायते नरः । सौभाग्यं पुण्डरीकैश्च भजत्येव च शाश्वतम् ॥८
[1]गन्धकुटजकैः पुष्पैः परमैश्वर्यमश्नुते । भवत्यक्षयमत्यन्तं नित्यमर्चयतो रविम् ॥९
मन्दारपुष्पैः पूजा तु सर्वकुष्ठविनाशिनी[2] । बिल्वपत्रैश्च कुसुमैर्महतीं श्रियमश्नुते ॥१०
अर्कस्रजा भवत्यर्थं सर्वकामफलप्रदः । प्रदद्याद्रूपिणीं कन्यामर्चितो बकुलस्रजा ॥११

अध्याय ६८

सिद्धार्थसप्तमी व्रत का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं तुम्हें उस महान् देवों को, जो सभी देवों के पूज्य तथा विष्णु, महेश्वर और मैं जिसकी उपासना करता हूँ बता रहा हूँ ।१। उन्हीं पद्म की भाँति, आकार वाले सूर्य की कमल एवं गुग्गुल द्वारा ब्रह्मा अर्चना करते हैं तथा उन्हीं व्योम रूपी सूर्य की चमेली पुष्प एवं विजय नामक धूप द्वारा शिव पूजा करते हैं । हे द्विज ! श्रेष्ठ ! वृषण, लोहबान, श्रीखण्ड चन्दन, गुग्गुल, कपूर मुस्ता एवं शक्कर को विजय धूप कहा जाता है, इसे देव ने स्वयं बताया भी है ।२-४। नील कमल दल के समान श्यामल विष्णु नील कमलों एवं गुग्गुल द्वारा भक्ति पूर्वक चक्र रूपी सूर्य की उपासना करते हैं । सूर्य की आराधना के लिए कौन फूल चाहिए मैंने एकबार विष्णु जी से पूछा उन्होंने जो स्वयं उत्तर दिया है उन्हें सुनो ! मल्लिका (बेला) पुष्पों द्वारा उपासना करने पर मनुष्य समृद्धिशाली होता है और कमल द्वारा उपासना करने पर सौभाग्य, कुटज (कुरैया) पुष्पों द्वारा उपासना करने पर महान् ऐश्वर्य एवं (सूर्य की) नित्य उपासना करने पर अक्षय (संपत्ति) प्राप्त होती है ।५-९। मदार के पुष्पों द्वारा की गई पूजा से सभी भाँति के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं । उन्हें विल्व पत्र और रक्तपुष्प समर्पित करने से असंख्य की (सम्पत्ति) मदार पुष्पों की माला धारण करने से समस्त मनोरथ सफल, बकुल की माला समर्पित करने

---

१. सुगन्धकुब्जकैः । २. सर्वकष्टविनाशिनी ।

किंशुकैरर्चितो देवो न पीडयति भास्करः । पूजितोऽगस्त्यकुसुमैरानुकूल्यं प्रयच्छति ।।१२
करवीरैस्तु विप्रेन्द्र सूर्यस्यानुचरो भवेत् । तथा [1]मुद्गरपुष्पैश्च समभ्यर्च्य दिवाकरम् ।।१३
हंसयुक्तेन यानेन रवेः सालोक्यतां व्रजेत् । शतपुष्पसहस्रैस्तु पूषसालोक्यतां व्रजेत् ।।
बकपुष्पैर्द्विजश्रेष्ठ याति भानुसलोकताम्[2] ।।१४
चतुःसमेन गन्धेन समभ्यर्च्य दिवाकरम् । पञ्चभूतालयस्थानमाप्नुयान्नात्र संशयः ।।१५
देवागारं तु सम्मार्ज्य भक्त्या यस्तु प्रलेपयेत् । स रोगान्मुच्यते क्षिप्रं द्रव्यलाभं च विन्दति ।।१६
तस्य चायतनं भक्त्या गैरिकेणोपलेपयेत् । प्राप्नुयान्महतीं लक्ष्मीं रोगैश्चापि प्रमुच्यते ।।१७
अष्टादशेह कुष्ठानि ये चान्ये व्याधयो नृणाम् । प्रलयं यान्ति ते सर्वे मृदा यद्युपलेपयेत् ।।१८
विलेपनानां सर्वेषां रक्तचन्दनमुत्तमम् । पुष्पाणां करवीराणि प्रशस्तानि प्रचक्षते ।।१९
नातः परतरं किंचिद्भास्वतस्तुष्टिकारकम् । किं तस्य न भवेल्लोके यस्त्वेभिः स्वर्चयेद्रविम् ।।२०
करवीरैः पूजयेद्यो भास्करं श्रद्धयान्वितः । सर्वकामसमृद्धोऽसौ सूर्यकाममवाप्नुयात् ।।२१
विलेप्यायतनं[3] यस्तु कुर्यान्मण्डलकं शुभम् । स सूर्यलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ।।२२
एकेनास्य भवेदर्थो द्वाभ्यामारोग्यमश्नुते । त्रिभिः सन्तत्यविच्छिन्ना चतुर्भिर्भार्गवीं[4] लभेत् ।।२३

से रूपवती कन्या, किंशुक के पुष्पों को समर्पित करने से भास्कर की प्रसन्नता, अगस्त्य पुष्पों को समर्पित करने से मन इच्छित वस्तु प्राप्त होती है ।१०-१२। हे विप्रेन्द्र ! करवीर के पुष्पों को समर्पित करने पर वह उनका अनुचर हो जाता है । कुँदरू के पुष्पों को समर्पित करने पर हंस वाले विमान पर बैठकर रवि के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे द्विज श्रेष्ठ ! शतपुष्पा (सौंफ) के सहस्र पुष्पों को समर्पित करने पर पूषा सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं बक पुष्पों को समर्पित करने पर स्थान का सालोक्य मोक्ष प्राप्त होता है ।१३-१४। चार भाँति के गन्धों द्वारा सूर्य की अर्चना करने पर पाँच महाभूतों का लय स्थान प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं ।१५। मन्दिर को झाड़ पोंछ कर उसे गोमय आदि से शुद्ध करने पर रोग-मुक्ति एवं शीघ्र सम्पत्ति प्राप्त होती है ।१६। मन्दिर की भक्तिपूर्वक गेरू के रंग से रंगाई करने पर भी अत्यन्त लक्ष्मी तथा रोग-मुक्ति प्राप्त होती है ।१७। मिट्टी द्वारा मन्दिर की शुद्धि करने पर मनुष्यों के अठारह प्रकारके कुष्ठ तथा अन्य रोग नष्ट हो जाते हैं ।१८। लेपनों में रक्त चन्दन का लेपन तथा पुष्पों में करवीर (कनेर) के पुष्पों को उत्तम बताया गया है ।१९। अतः सूर्य को अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करने वाली इन वस्तुओं से पृथक् कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि इन वस्तुओं द्वारा जो सूर्य की अर्चना करता है, उसे किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् वह सभी कुछ प्राप्त करता है ।२०। इसलिए श्रद्धा समेत जो करवीर पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा करता है, उसे समस्त मनोरथ की सफलता पूर्वक सूर्य की प्रियता प्राप्त होती है ।२१। मन्दिर को लेपनादि से शुद्ध कर उसमें जो सौन्दर्य पूर्ण मंडल बनाता है, वह सूर्य लोक की प्राप्ति करके अनेकों वर्ष वहाँ निवास करता है ।२२। इस प्रकार एक मण्डल की रचना करने पर धन, दो मण्डल की रचना करने पर आरोग्य, तीन मण्डल की रचना करने पर वंश

---

१. कुन्दुरपुष्पैश्च । २. भीमसलोकताम् । ३. उपलेप्यालयं यस्तु । ४. भार्गवीं जामदग्न्योपार्जितत्वात्पृथ्वीमित्यर्थः । वस्तुतस्तु—लक्ष्मीमित्यर्थ एव ज्यायान्, पुराणेषु तस्यां भृगोरुत्पत्तिवर्णनात् ।

पञ्चभिर्विपुलं धान्यं षड्भिरायुर्बलं यशः । सप्तमण्डलकारी स्यान्मंडलाधिपतिर्नरः ॥२४
आयुर्धनसुतैर्युक्तः सूर्यलोके महीयते । घृतप्रदीपदानेन [1]चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥२५
कटुतैलप्रदानेन स शत्रुञ्जयते नरः । तिलतैलप्रदानेन सूर्यलोके महीयते ॥२६
मधूकतैलदानेन[2] सौभाग्यं परमं व्रजेत् । संपूज्य विधिवद्देवं पुष्पधूपादिभिर्बुधः ॥२७
यथाशक्त्या ततः पश्चान्नैवेद्यं भक्तितो न्यसेत् । पुष्पाणां प्रवरा जाती धूपानां विजयः परः ॥२८
गन्धानां कुङ्कुमं श्रेष्ठं लेपानां रक्तचन्दनम् । दीपदाने घृतं श्रेष्ठं नैवेद्ये मोदकः परः ॥२९
एतैस्तुष्यति देवेशः सान्निध्यं चाधिगच्छति । एवं संपूज्य विधिवत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥३०
प्रणम्य शिरसा देवं देवदेवं दिवाकरम् । सुखासीनस्ततः पश्येद्रवेरभिमुखे स्थितः ॥३१
एकं सिद्धार्थकं कृत्वा हस्ते पानीयसंयुतम् । कामं यथेष्टं हृदये कृत्वा तं वाञ्छितं नरः ॥३२
पिबेत्सतोयं तं विप्र अस्पृष्टं दशनैः सकृत् । द्वितीयायां तु सप्तम्यां द्वौ गृहीत्वा तु सुव्रत ॥३३
तृतीयायां तु सप्तम्यां ग्रहीतव्यास्त्रयोऽपि च । ज्ञेयाश्चतुर्थ्यां चत्वारः पञ्चम्यां पञ्च एव हि ॥३४
षट् पिबेच्चापि षष्ठ्यां तु इतीयं वैदिकी श्रुतिः । सप्तम्यां सप्तमायां तु सप्त चैव पिबेन्नरः ॥३५
आदौ प्रभृति विज्ञेयो मन्त्रोऽयमभिमन्त्रणे । सिद्धार्थकस्त्वं हि लोके सर्वत्र श्रूयसे यथा ॥
तथा मामपि सिद्धार्थमर्थतः कुरुतां रविः ॥३६

अविच्छेद, (संतान परम्परा) चार मण्डल से पृथ्वी, पाँच से अत्यन्त धन, छह मण्डलों से आयु, बल एवं वंश और सात मण्डलों की रचना करने पर वह मण्डलेश्वर होकर आयु, धन एवं पुत्रों की प्राप्ति करके (कालान्तर में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है। उसी भाँति घी के दीप प्रदान करने से मनुष्य आयुष्मान् होता है।२३-२५। कडुवे तेल के दीप प्रदान करने से शत्रु-विजय, तिल के तेल में दीप प्रदान करने से सूर्य लोक में प्रतिष्ठा एवं मधूक (महुवे) के तेल के दीपक प्रदान करने पर महान् सौभाग्य प्राप्त होता है। इस भाँति विधि पूर्वक पुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करके पुष्पों में जाती (चमेली), धूपों में विजय, गंधों में कुंकुम, लेपों में रक्त चन्दन का लेप दीपदान में घी का दीपक और नैवेद्यों में मोदक (लड्डू) उत्तम बताये गये हैं।२६-२९। क्योंकि इन्हीं द्वारा पूजित होने पर सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं एवं उसे उनका संविधान भी प्राप्त होता है। इस प्रकार उनकी पूजा एवं प्रदक्षिणा करके शिर से प्रणाम और उनके सम्मुख भली भाँति बैठकर उन्हें अपने सामने देखे।३०-३१। पश्चात् राई का एक दाना और जल हाथ में लेकर अपने मनोरथ का स्मरण हृदय में करते हुए उसे पान करें पर, उस जल का स्पर्श दाँतों से न होने पाये इसी प्रकार दूसरी सप्तमी में दो, तीसरी में तीन, चौथी में चार, पाँचवीं में पाँच, छठवीं मैं छह और सातवीं में सात दानों समेत उस जल के पान करना चाहिए।३२-३५। प्रत्येक बार उसे इसी सिद्धार्थकस्त्वं हिलोके, आदि मंत्र से अभिमन्त्रित भी कर

---

१. चायुष्मान्। २. मधूकतैलदीपेन भोगभाग्यपरं सुखम्।

ततो हविरुपस्पृश्य जपं कुर्याद्यथेप्सितम् । हुताशनं च जुहुयाद्विधिदृष्टेन कर्मणा ।।३७
एवमेव पराः कार्या सप्तम्यः सप्त सर्वदा । एकात्प्रभृति कार्या सा सर्वदोदकसप्तमी ।।३८
एकं तोयेन सहितं द्वौ चापि घृतसंयुतौ । त्रींस्तथा मधुना सार्धं दध्ना चतुर एव च ।।३९
युक्तान्नपयसा पञ्च षट् च गोमयसंयुतान् । पञ्चगव्येन वै सप्त पिबेत्सिद्धार्थकान्द्विज ।।४०
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सर्षपसप्तमीम् । बहुपुत्रो बहुधनः सिद्धार्थश्चापि सर्वदा ।।४१
इह लोके नरो विप्र प्रेत्ययाति विभावसुम् । तस्मात्संपूजयेद्देवं विधिनानेन भास्करम् ।।४२

इति श्रीभविष्ये महपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सिद्धार्थसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।६८।

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

स्वप्नदर्शनवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सप्तम्यामुषितो विप्रः स्वप्नदर्शनमुच्यते । स्वप्ने दृष्टे च सप्तम्यां पुरुषो नियतव्रतः ।।१
समाप्य विधिवत्सर्वं जपहोमादिकं क्रमात् । पूजयित्वा दिनेशं तु यथाविभवमात्मनः ।।२

लेना चाहिए ।३६। पश्चात् घी का स्पर्श करके मन इच्छित जप करके तदुपरान्त विधि पूर्वक हवन करना चाहिए ।३७

इसी प्रकार से सातों सप्तमी में करना बताया गया है। इसका दूसरा भी विधान है। पहली सप्तमी में श्वेत राई का एक दाना जल के साथ, दूसरी में दो घी के साथ, तीसरी में तीन शहद के साथ, चौथी में चार दही के साथ, पाँचवीं में पाँच अन्न एवं दूध के साथ, छठवीं में छह गोमय के साथ और सातवीं सप्तमी में सात दाने पंच गव्य के साथ पान करना चाहिए ।३८-४०।

इस विधि द्वारा जो सर्षप (राई) सप्तमी का व्रत-विधान करता है, बहुत पुत्रों, बहुत धनों की प्राप्ति पूर्वक उसका सदैव के लिए मनोरथ सिद्ध हो जाता है ।४१। हे विप्र ! इसभाँति इस लोक में मनुष्य मनोरथ सफल करके (अंत में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है, अतः इसी विधान-द्वारा तुम भी सूर्य की उपासना करो ।४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सिद्धार्थ सप्तमी वर्णन
नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।६८।

अध्याय ६९

स्वप्न दर्शन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सप्तमी में उपवास पूर्वक व्रत-विधान करने वाले ब्राह्मण को नियत दर्शन होता है ऐसा बताया गया है। सप्तमी में स्वप्न दर्शन करने वाले उस नियत व्रती मनुष्य को चाहिए कि विधान

ततः शयीत शयने देवदेवं विचिन्तयन् । सम्प्रसुप्तो यदा पश्येदुदयन्तं दिवाकरम् ॥३
शक्रध्वजं तथा चन्द्रं तस्य सर्वाः समृद्धयः । दृश्यं जनं तथा शक्तिं[1] स्रग्विगोवेणुनिस्वनाः ॥४
श्वेताब्जचामरादर्शकनकासिसुतोद्भवम् । रुधिरस्य स्रुतिं सेकं पानं चैश्वर्यकारकम् ॥५
श्वेतायाः पञ्चपूतायाः दर्शनं वृद्धिकारकम् । प्रजापतेर्घृताक्तस्य दर्शनं पुत्रदं स्मृतम् ॥६
शस्तवृक्षाभिरोहश्च क्षिप्रमैश्वर्यकारकः । दोहनं महिषीसिंहीगोधेनूनां स्वके मुखे ॥७
धनुषां च शराणां च नाभौ च द्रुतनिर्गतिः । अभिहन्यात्स्वयं खादेत्सिंहगाः भुजगांस्तथा ॥८
स्वांगशीर्ष[2] हुतवहे तस्य श्रीरग्रतः स्थिता । राजते हैमने पात्रे यो भुंक्ते पायसं द्विजः ॥९
पद्मपत्रे यथा विप्रस्तस्य[3] जन्तोर्बलं भवेत् । द्यूते वादेऽथ वा युद्धे विजयो हि सुखावहः ॥१०
अग्नेस्तु ग्रसनं विप्र आग्नेयं वृद्धिकारकम् । गात्रस्य ज्वलनं विप्र शिरोवेधश्च भूतये ॥११
माल्याम्बराणां[4] शुक्लानां शस्तानां शुक्लपक्षिणाम् । सदा लाभं प्रशंसन्ति तथा विष्ठानुलेपनम् ॥१२
स्वाङ्गस्य कर्तने क्षेपे रथयाने प्रजागमः । नानाशिरोबाहुता च हस्तानां कुरुते श्रियम् ॥१३
अगम्यागमनं चैव शोकमध्ययनं तथा । देवद्विजजनाचार्यगुरुवृद्धतपस्विनः ॥१४
यद्यद्वदन्ति तत्सर्वं सत्यमेव हि निर्दिशेत् । प्रशस्तदर्शनं चैव अभिषेको नृपश्रियाः ॥१५

पूर्वक जप होमादि कर्म क्रमशः समाप्त करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार देवाधि देव सूर्य की पूजा करे और उपरांत शयनासन पर देव-देव की चिन्ता करते हुए शयन करें स्वप्न में यदि उदय कालीन सूर्य इन्द्र ध्वजा एवं चंद्र को देखता है तो उसे सभी समृद्धियां प्राप्त होती हैं, इसी भाँति दर्शनीय और बलवान् पुरुष, माला पहने गाय, वेणु की ध्वनि, श्वेत कमल, चामर, दर्पण, सुवर्ण, तलवार, पुत्र जन्म, रुधिर का बहना सिंचन या पान करना, देखने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।१-५। श्वेतवर्ण के पूर्व दर्शन से वृद्धि, घी में भीगे हुए प्रजापति के दर्शन से पुत्र एवं अच्छे वृक्षों पर चढ़ना, देखने से शीघ्र ऐश्वर्य प्राप्त होता है । तथा इसी प्रकार अपने मुख से भैंस, सिंहिनी और गायों के दुहे जाने को देखने से भी ।६-७। नाभि में धनुष या बाणों का शीघ्र प्रवेश होकर निकल जाना अथवा इनके द्वारा सिंह, गाय एवं सर्पों का वध करने या स्वयं इनका भक्षण करने एवं अपने शिर को अग्नि में डालने को देखने से शीघ्र लक्ष्मी प्राप्ति होती है । इसी भाँति चाँदी के पात्र या सुवर्ण के पात्र एवं कमल पत्र में खीर के भोजन करने को देखने से बल तथा जुए, वाद विवाद और युद्ध में विजय देखने से अत्यन्त सुख, अग्नि के भक्षण से जठराग्नि की वृद्धि, शरीर के जलने या शिर के बंधन से ऐश्वर्य, वस्त्र एवं माला, शुद्ध वर्ण के पक्षी तथा शरीर में विष्ठा (मल) लगने से अत्यन्त लाभ, अपने अंगो के कटने, उन्हें दूर बहा देने एवं रथ पर बैठने से संतान की उत्पत्ति, अनेक शिर, बाहु एवं हाथों के होने से अगम्या स्त्री का संभोग, शोक और अध्ययन करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।८-१४। इसी प्रकार देवता, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध और तपस्वी स्वप्न में जो कुछ कहते हैं उसे सत्य मानना चाहिए । राजा के अभिषेक से सौम्य दर्शन, शिरछेदन या उसके कई टुकड़े होने से राज्य

---

१. शक्तम् । २. आशु सीमागतश्चैव । ३. ततश्चन्द्रोपमो भवेत् । ४. सुरावारणशल्याना वस्त्राणा युक्तपक्षिणाम् ।

स्याद्राज्यं शिरश्छेदेन बहुधा स्फुटितेन तु । रुदितं हर्षसम्प्राप्त्यै राज्यं निगडबन्धने ॥१६
तुरङ्गं वृषभं पद्मं राजानां श्वेतकुञ्जरम् । महदैश्वर्यमाप्नोति योभीकश्चाधिरोहति ॥१७
प्रसनानो ग्रहांस्तारा महीं च परिवर्तयन् । उन्मूलयन्पर्वतांश्च राज्यलाभमवाप्नुयात् ॥१८
देहान्निष्क्रान्तिरन्त्राणां तैर्वा वृक्षस्य वेष्टनम् । पातः समुद्रसरितामैश्वर्याणि सुखानि च ॥१९
उदधिं सरितं वापि तीर्त्वा पारं प्रयाति च । अद्रिं लङ्घयतेश्चापि भवन्त्यर्थजयायुषः ॥२०
उज्ज्वला स्त्री विशेदङ्गमाशीर्वादपराः स्त्रियः । भवत्यर्थागमः शीघ्रं कृमिभिर्यदि भक्ष्यते ॥२१
स्वप्ने स्वप्न इति ज्ञातं दृष्टप्रकथनं तथा । मङ्गलानां च सर्वेषां शुभं दर्शनमेव च ॥२२
संयोगश्चैव मङ्गल्यैरारोग्यधनकारकः । ऐश्वर्यराज्यलाभाय यस्मिन्स्वप्न उदाहृतः ॥२३
तैर्दृष्टै रोगिणो रोगान्मुच्यन्ते नात्र संशयः । न स्वप्नं शोभनं दृष्ट्वा स्वप्यात्प्रातश्च कीर्तयेत् ॥
राजभोजकविप्रेभ्यः शुचिभ्यश्च शुचिर्नरः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे स्वप्नदर्शनवर्णनं नामैकोनसप्ततिमोऽध्यायः ।६९।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

सर्षपसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो मध्याह्नसमये स्नातः प्रयतमानसः । तथैव देवान्विधिवत्पूजयित्वा यथासुखम्[1] ॥१

हर्ष से रुदन एवं वेणी में बंधने से राज्य-लाभ, घोड़े, बैल, कमल, राजा, श्वेत वर्ण के गज, एवं अभीक (कामुक, स्वामी एवं निर्दयी) के आरोहण करने से महान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती।१५-१७। ग्रह एवं तारा निगलने पृथिवी के उलटने और पर्वतों के उखाडने से राज्य-लाभ, देह से आँत निकालने अथवा उसे वृक्षों में लपटने, समुद्र या नदी में गिरने से ऐश्वर्य एवं सुख समुद्र या नदी को पार कर पुनः वापस आने और पर्वत के लाँघने से जय तथा आयु की प्राप्ति होती है।१८-२०। उज्ज्वल वर्ण की स्त्री का अंग में प्रविष्ट होने, आशीर्वाद, देती हुई स्त्रियाँ और कीडों द्वारा भक्षित होने से शीघ्र धन की प्राप्ति होती है।२१। स्वप्न में स्वप्न देखने का ज्ञान होने अथवा जागने पर स्वप्नों के कहने, मांगलिक दर्शन, मंगल होने आदि देखने से आरोग्य एवं सम्पत्ति का लाभ होता है। एवं जिस स्वप्न का फल ऐश्वर्य पूर्ण राज्य तथा लाभ बताया गया है यदि उसे रोगी देखे तो निश्चित उसका रोग नष्ट हो जाये। इस प्रकार सुन्दर स्वप्न को देखकर फिर निद्रित न होना चाहिए और प्रातः काल स्नान आदि से शुद्ध होकर सदाचारी राजा भोजक एवं ब्राह्मणों को उसे सुनाना चाहिए।२२-२४

इति श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में स्वप्न दर्शन वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।६९।

अध्याय ७०

सर्षप सप्तमी वर्णन

ब्रह्मा बोले—पश्चात् मध्याह्न में स्नान संध्या से निवृत्त होकर विधान पूर्वक सूर्य एवं अन्य

१. दिवाकरम्।

सम्यक्कृतजपो मौनी नरो हुतहुताशनः । निष्क्रम्य देवायतनाद्भोजकान्भोजयेत्ततः[1] ॥२
तथा पुराणविदुष इतिहासविदो द्विजान् । तथा वेदविदश्चैव दिव्यान्भौमांश्च सुव्रत ॥३

रक्तानि वस्त्राणि तथा च गावः सुगन्धमाल्यादि हविष्यमन्नम् ।
पयस्विनी चाप्यथ भोजकाय देया तथान्यत्प्रियमात्मनो यत् ॥४
भवेदलाभो यदि भोजकानां विप्रास्तदार्हन्ति जयोपजीविनः ।
ये मन्त्रविद्ब्राह्मणपाठकाश्च ये येऽपि सामाध्ययनेषु युक्ताः ॥५

प्रथमं भोजका भोज्याः पुराणविदुषैः[2] सह । तेषामृते मन्त्रविदस्तथा वेदविदो द्विजाः ॥६
कृत्वैवं सप्तमीः सप्त नरो भक्त्या समन्वितः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च अनन्तं प्राप्नुयात्सुखम्[3] ॥७
दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं लभेत् । तत्फलं सप्तमीः सप्त कृत्वा प्राप्नोति मानवः ॥८
दुष्प्रापं नास्ति तल्लोके अनया यन्न लभ्यते । न च रोगस्त्यसौ लोके अनया यो न शाम्यति ॥९
कुष्ठानि चापि सर्वाणि दुरुच्छेद्यान्यपि ध्रुवम् । अपयान्ति यथा नागा गरुडस्य भयार्दिताः ॥१०

व्रतनियमतपोभिः सप्तमीः सप्तएवं विधिवदिह हि कृत्वा मानवो धर्मशीलः ।
श्रुतधनसुतभाग्यारोग्यपुण्यैरुपेतो व्रजति तदनुलोकं शाश्वतं तिग्मरश्मेः ॥११

इमं विधिं द्विजश्रेष्ठ श्रुत्वा कृत्वा च मानवः । सहस्ररश्मिं स विशेषान्नात्र कार्या विचारणा ॥१२

देवताओं की पूजा, जप एवं मौन रहकर हवन का कार्य समाप्त करके मन्दिर से बाहर भोजक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।१-२। तदुपरांत पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराना बताया गया है ।३। हे सुव्रत ! पुनः रक्त वस्त्र, गाय, सुगन्ध (इत्र) माला, हविष्यान्न पयस्विनी गाय और अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु भोजक को समर्पित करे ।४। यदि भोजकों के अभाव में जयोपजीवी ब्राह्मण हों जो मंत्रवेत्ता, वेदपाठी एवं सामवेद का पाठन करते हैं तो उनके स्थान पर नियुक्त करें ।५। सर्वप्रथम भोजकों को पौराणिकों के साथ भोजन कराने का विधान है और उनके अभाव में मंत्रवेत्ता एवं वैदिक ब्राह्मणों का विधान है ।६। इस प्रकार श्रद्धा और असूया रहित होकर सातों सप्तमी का विधान करके मनुष्य अनन्त सुख की प्राप्ति करता है ।७। दश अश्वमेध यज्ञ के करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे सातों सप्तमी के (व्रत-विधान) द्वारा मनुष्य को प्राप्त होना बताया गया है ।८। इस लिए इस विधान को सुसम्पन्न करने वाले व्यक्ति के लिए कोई वस्तु दुष्प्राप्य इस जगत् में नहीं रहती है तथा कोई ऐसा रोग नहीं है जिसकी इसके द्वारा शान्ति न हो सके ।९। सभी भाँति के कुष्ठ रोग जो दुर्निवार माने गये हैं वे गरुड़ से भयभीत नाग की भाँति (इसके द्वारा) अवश्य नष्ट हो जाते हैं ।१०। व्रत, नियम एवं तप के द्वारा इन सातों सप्तमी के विधान करने के नाते वह धार्मिक मनुष्य सुत, सौभाग्य, आरोग्य एवं पुण्य की प्राप्ति करके पश्चात् तीक्ष्ण रश्मि (सूर्य) के लोक की प्राप्ति करता है ।११

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस विधान के सुनने और सुसम्पन्न करने से मनुष्य सूर्य में प्रविष्ट होता है, इसमें विचार करने कीआवश्यकता नहीं है ।१२। इसीलिए देव, मुनि तथा पौराणिक आदि सभी लोग इसका

---

१. नरः । २. आर्षोऽयं पाठः सर्वेषु पुस्तकेषूपलभ्यते । ३. फलम् ।

सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणज्ञैरिदं श्रुतम् । सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥१३
इदमाख्यानमार्षेयं यन्मयाभिहितं तव । सूर्यभक्ताय दातव्यं नेतराय[१] कदाचन ॥१४
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैतच्छृणुयान्नरः । स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥१५
मुच्येदार्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तः[२] सूर्यगतिं लभेत् ॥१६
क्षेमेण गच्छतेऽध्वानं यस्त्विदं पठतेऽध्वनि । यो यं प्रार्थयते कामं स तं प्राप्नोति च ध्रुवम् ॥१७
एकान्तभावोपगत एकान्ते तु समाहितः । प्राप्यैतत्परमं गुह्यं भूत्वा सूर्यव्रतो नरः ॥१८
प्राप्नोति परमं स्थानं भास्करस्य महात्मनः । लग्नगर्भा प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ॥१९
वन्ध्या प्रसवमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितम् । एवमेतन्ममाख्यातं[३] भास्करेणामितौजसा ॥
मयापि तव माख्यातं भक्त्या भानोरिदं द्विज ॥२०
पूजनीयस्त्वया भानुः सर्वपापोपशान्तये । स हि धाता[४] विधाता च सर्वस्य जगतो गुरुः ॥२१
उद्यन्यः कुरुते नित्यं जगद्वितिमिरं करैः । द्वादशात्मा स देवेशः प्रीयतां तेऽदितेः सुतः ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहत्म्ये सर्षपसप्तमीवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।७०।

ज्ञान रखते हुए परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ।१३। इस प्रकार इस आर्षेय (ऋषियों) के कहे हुए उपाख्यान को जो सूर्य के भक्तों के अतिरिक्त किसी को कभी देने (बताने) योग्य नहीं है, मैनें तुम्हें बता दिया ।१४। इस लिए जो मनुष्य इसे नित्य सुनता या सुनाता है, वह सहस्र किरण वाले (सूर्य) में निःसंदेह प्रविष्ट होता है । अर्थात् सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है ।१५। एवं इस कथा को आरंभ से सुनकर आर्त रोग-मुक्त, जिज्ञासु सफल मनोरथ और भक्त सूर्य की गति प्राप्त करते हैं ।१६। इस भाँति यात्री गण भी मार्ग में इसके द्वारा अपने मार्ग को मंगलमय बनाते हुए जिस जिस वस्तुओं की अभिलाषा करते हैं, उसे वे निश्चित प्राप्त होते हैं ।१७। यदि इस उत्तम और गुह्य (व्रत) की प्राप्ति कर मनुष्य, दृढ़ भावना पूर्वक एकान्त स्थान में भली भाँति ध्यान लगाकर (सूर्य का) व्रत विधान करे तो उसे महात्मा भास्कर के परम स्थान की प्राप्ति होती है और प्रसव करने वाली (स्त्री) प्रसव-पीड़ा से शीघ्र मुक्ति एवं गर्भिणी पुत्र उत्पन्न करती है ।१८-१९। एवं सूर्य के अमेय तेज द्वारा वंध्या (स्त्री) पुत्र पौत्रादिकों की प्राप्ति करती है । हे द्विज ! इस प्रकार तुम्हारी भक्ति के वश होकर मैंने अमेय तेज वाले सूर्य के इस आख्यान को तुम्हें सुना दिया जो उन्होंने मुझसे कहा था ।२०। अतः तुम भी भानु की पूजा अवश्य करो, इससे समस्त पापों की शांति हो जायेगी । क्योंकि वहीं सम्पूर्ण जगत् के धाता, विधाता एवं गुरु हैं ।२१। तथा उदय होते ही अपनी किरणों द्वारा जो समस्त जगत् को अंधेरे से मुक्त करता है, वही द्वादशात्मा, देवाधिदेव एवं अदिति पुत्र सूर्य तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों ।२२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य में सर्षप सप्तमी वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७०।

---

१. नाभक्ताय । २. भक्त्या स्वर्गगतिं लभेत् ।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मप्रोक्तसूर्यनामवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नामभिः संस्तुतो देवो यैरर्कः परितुष्यति । तानि ते कीर्तयाम्येष यथावदनुपूर्वशः ॥१
नमः सूर्याय नित्याय रवये कार्यभानवे । भास्कराय मतङ्गाय मार्तण्डाय विवस्वते ॥२
आदित्यायादिदेवाय नमस्ते रश्मिमालिने । दिवाकराय दीप्ताय अग्नये मिहिराय च ॥३
प्रभाकराय मित्राय नमस्तेऽदितिसम्भव । नमो गोपतये नित्यं[1] दिशां च पतये नमः ॥४
नमो धात्रे विधात्रे च अर्यम्णे वरुणाय च । पूष्णे भगाय मित्राय पर्जन्यायांशवे नमः ॥५
नमो हितकृते नित्यं धर्माय तपनाय च । हरये[2] हरिताश्वाय विश्वस्य पतये नमः ॥६
विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं त्र्यम्बकाय तथात्मने । नमस्ते सप्तलोकेश नमस्ते सप्तसप्तये ॥७
एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्ररथाय च । ज्योतिषां पतये नित्यं सर्वप्राणभृते नमः ॥८
हिताय सर्वभूतानां शिवायार्तिहराय च । नमः पद्मप्रबोधाय नमो वेदादिमूर्तये[3] ॥९
काधिजाय[4] नमस्तुभ्यं नमस्तारासुताय च । भीमजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च वै नमः ॥१०
धिषणाय[5] नमोनित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा । नमोऽस्त्वदितिपुत्राय नमो लक्ष्याय नित्यशः ॥११
एतान्यादित्यनामानि मया प्रोक्तानि वै पुरा । आराधनाय देवस्य सर्वकामेन सुव्रत ॥१२

अध्याय ७१

ब्रह्मप्रोक्त सूर्य-नामों का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिन नामों के उच्चारण द्वारा स्तुति करने पर सूर्य प्रसन्न होते हैं, क्रमशः उन्हें मैं बता रहा हूँ ।१

सूर्य, रवि, कार्यभानु, भास्कर, मतंग, मार्तण्ड, विवस्वान को नित्य नमस्कार है ।२। आदित्य, आदि देव, रश्मिमाली, दिवाकर, दीप्त, अग्नि, मिहिर को नित्य नमस्कार है ।३। प्रभाकर, मित्र, अदिति-संभव, गोपति, दिशापति को नित्य नमस्कार है ।४। धाता, विधाता, अर्यमा, वरुण, पूजा, भग, मित्र, पर्जन्य, अंशु को नित्य नमस्कार है ।५। हितकृत, धर्म, तपन, हरि, हरिताश्व, विश्वपति को नित्य नमस्कार है ।६। ब्रह्मा, त्र्यम्बक, आत्मा, सप्तलोकेश, सप्तसप्ति को नित्य नमस्कार है ।७। एक एक चक्ररथ, ज्योतिष्पति, सर्वप्राणियों के पोषण करने वाले तुम्हें नित्य नमस्कार है ।८। समस्त प्राणियों के हितैषी शिव, अर्तिहर, पद्म-प्रबोधक, वेदादिमूर्ति भीम पुत्र तारासुत, कविज (ब्रह्मपुत्र), पावक, धिषण, कृष्ण, अदिति पुत्र एवं लक्ष्य को नित्य नमस्कार है ।९-११। इस प्रकार हे सुव्रत ! सूर्य के इन नामों को जो सभी भाँति के मनोरथ सफल करने के लिए सूर्य देव की आराधना के लिए बताये गये हैं, मैंने पहले ही

---

१. तुभ्यम् । २ हराय । ३. द्वादशमूर्तये । ४. भीमजाय, कविजाय । ५. विकटाय ।

सायं प्रातः शुचिर्भूत्वा यः पठेत्सुसमाहितः । स प्राप्नोत्यखिलान्कामान्यथाहं प्राप्तवान्पुरा ।।१३
प्रसादात्तस्य देवस्य भास्करस्य महात्मनः । श्रीकामः श्रियमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।।१४
आतुरो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् । राज्यार्थी राज्यमाप्नोति कामार्थी काममाप्नुयात् ।।१५
एतज्जप्यं रहस्यं च संध्योपासनमेव च । एतेन जपमात्रेण नरः पापात्प्रमुच्यते ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मप्रोक्तसूर्यनामवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।७१।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

दुर्वासाशापविसर्जनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं ब्रह्मवचो योगी श्रुत्वा राजन्दिवाकरम् । व्योमरूपं समाराध्य गतः सूर्यसलोकताम् ।।१
तथा त्वमपि राजेन्द्र पूजयित्वा विभावसुम् । गमिष्यसि परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।।२

शतानीक उवाच

आद्यं स्थानं रवेः कुत्र जम्बूद्वीपे महामुने । यत्र पूजां विधानोक्तां प्रतिगृह्णात्यसौ रविः ।।३

बता दिया था ।१२। प्रातः काल और सायंकाल पवित्र होकर ध्यानपूर्वक जो इसका पाठ करता है मेरी ही भाँति उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं ।१३। महात्मा सूर्य देव की प्रसन्नता के फलस्वरूप धर्मार्थी को धर्म तथा आतुर रोग से बधा हुआ बन्धन मुक्त, राज्यार्थी राज्य एवं धमार्थी काम की प्राप्ति करते हैं ।१४-१५। ये ही संध्योपासन है यही रहस्य है एवं यही जप करने योग्य हैं क्योंकि इनके जपमात्र से मनुष्य पाप मुक्त होते हैं ।१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्म प्रोक्त सूर्य नाम वर्णन नामक एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७१।

अध्याय ७२

शाम्ब के लिए दुर्वासा द्वारा शाप विसर्जन का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! इस भाँति ब्रह्मा की बातें सुनकर उस योगी ने आकाशरूपी सूर्य की आराधना करके उनके सालोक्य रूपी मोक्ष की प्राप्ति की ।१। हे राजेन्द्र ! तुम भी सूर्य की उपासना करके देव-दुर्लभ उस उत्तम स्थान की अवश्य प्राप्ति करोगे ।२

शतानीक ने कहा—हे महामुने ! इस जम्बू द्वीप में सूर्य का प्रथम स्थान, जहाँ रहकर वे विधान पूर्वक की गई पूजा को स्वीकार करते हैं, कहाँ है ।३

सुमन्तुरुवाच

स्थानानि त्रीणि देवस्य द्वीपेऽस्मिन्भास्करस्य[1] तु । पूर्वमिन्द्रवनं[2] नाम तथा मुण्डीरमुच्यते ।।४
कालप्रियं[3] तृतीयं तु त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तथान्यदपि ते वच्मि यत्पुरा ब्रह्मणोदितम् ।।५
चन्द्रभागातटे नाम्ना पुरं यत्साम्बसंज्ञितम्[4] । द्वीपेऽस्मिञ्छाश्वतं स्थानं यत्र सूर्यस्य नित्यता ।।६
प्रीत्या साम्बस्य तत्रार्को जनस्यानुग्रहाय च । तत्र द्वादशभागेन मित्रो मैत्रेण चक्षुषा ।।७
अवलोकञ्जगत्सर्वं श्रेयोऽर्थं तिष्ठते[5] सदा । प्रयुक्तां विधिवत्पूजां गृह्णाति भगवान्स्वयम् ।।८

शतानीक उवाच

कोऽयं[6] साम्बः सुतः कस्य कस्य प्रीतो दिवाकरः । यस्य चायं सहस्रांशुर्वरदः पुण्यकर्मणः[7] ।।९

सुमन्तुरुवाच

य एते द्वादशादित्या विराजन्ते महाबलाः । तेषां यो विष्णुसंज्ञस्तु सर्वलोकेषु विश्रुतः ।।१०
इहासौ वासुदेवत्वमवाप भगवान्विभुः । तस्मात्साम्बः सुतो जज्ञे जाम्बवत्यां महाबलः ।।११
स तु पित्रा भृशं शप्तः कुष्ठरोगमवाप्तवान् । तेनायं स्थापितः सूर्यः स्वानाम्ना च पुरं कृतम् ।।१२

शतानीक उवाच

शप्तः कस्मिन्निमित्तेऽसौ पित्रा चैवात्मसम्भवः[8] । नाल्पं हि कारणं विप्र येनासौ शप्तवान्सुतम् ।।१३

सुमन्तु बोले—इस द्वीप में मित्रवन, मुण्डीर तथा कोलप्रिय नामक ये तीन स्थान सूर्य के बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त एक और स्थान है जिसे ब्रह्मा ने पहले बताया था, उसे बता रहा हूँ।४-५। इस द्वीप में चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब नामक पुरी में सूर्य सदैव रहते हैं, एवं वही उनका नित्य का आवास स्थान भी है।६। शाम्ब के प्रेमवश तथा वहाँ के निवासियों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए सूर्य अपने बारहों भागों द्वारा समस्त जगत् को उसके कल्याणार्थ प्रसन्ननेत्र से देखते हुए सदा वहीं रहते हैं। विधानपूर्वक की हुई पूजा भी वही स्वयं स्वीकार करते हैं।७-८

शतानीक ने कहा—यह शाम्ब कौन है, किसका पुत्र है, तथा वह कौन ऐसा है, जिसके पुण्य कर्मों द्वारा उसके प्रेमपात्र बनकर सूर्य ने उसे वर प्रदान किया है।९

सुमन्तु बोले—इन महाबलशाली बारहों सूर्यों में विष्णु नामक सूर्य सभी लोकों में प्रख्यात हैं।१०। उन्हीं विभु एवं भगवान् को वासुदेव कहा जाता है, और उन्हीं से जाम्बवती में उत्पन्न एवं महाबलशाली शाम्ब नामक पुत्र था।११। पिता द्वारा शाप प्रदान करने के नाते उसे कुष्ठ रोग हो गया था इसीलिए उसने अपने नाम की पुरी जिसमें उसी द्वारा सूर्य स्थापित किये गये थे, बसायी थी।१२

शतानीक ने कहा—उसके पिता ने अपने पुत्र को, जो अपने ही द्वारा उत्पन्न था, क्यों शाप दिया ? हे विप्र ! यह कोई साधारण कारण नहीं जान पड़ता, जिससे उन्होंने अपने ही पुत्र को शाप दिया।१३

---

१. भारतस्य तु । २. मित्रबलम्, मित्रवनम् । ३. कोलप्रियम् । ४. सर्वत्रसांबशब्दे शांब इति तालव्यादिः पा० । ५. विद्यते । ६. कोऽयं सांबः कुतस्तस्य यस्य नाम्ना रवेः पुरम् । ७. पृथुकर्मणः । ८. सांबः स्वयंभुवा ।

सुमन्तुरुवाच

भृणुष्वावहितो राजंस्तस्य यच्छापकारणम् । दुर्वासा नाम भगवान्रुद्रस्यांशसमुद्भवः ।।१४
अटमानः स भगवांस्त्रींल्लोकान्प्रचचार ह । अथ प्राप्तो द्वारवतीं मधुसंज्ञोचितां पुरा ।।१५
तत्रागतमृषिं दृष्ट्वा साम्बो रूपेण गर्वितः । पिङ्गाक्षं [1]क्षुधितं रूक्षं विरूपं सुकृशं तथा ।।१६
अनुकारास्पदं चक्रे दर्शने गमने तथा । दृष्ट्वा तस्य मुखं साम्बो वक्रं चक्रे तथात्मनः ।।१७
मुखं कुरुकुलश्रेष्ट गर्वितो यौवनेन तु । अथ क्रुद्धो महातेजा दुर्वासा ऋषिसत्तमः ।।१८
साम्ब चोवाच भगवान्विधुन्वन्मुखमात्मनः । यस्माद्विरूपं मां दृष्ट्वा स्वात्मरूपेण गर्वितः ।।१९
गमने दर्शने मह्यमनुकारं समाचरः । तस्मात्तु कुष्ठरोगित्वमचिरात्त्वं गमिष्यसि ।।२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
साम्बाय दुर्वाससा शापविसर्जनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।७२।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

साम्बकृतसूर्याराधनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः । ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।१

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! ध्यानपूर्वक उसके शाप के कारण को सुनो ! (मैं कह रहा हूँ) एक दुर्वासा नामक ऋषि, जो रुद्र के अंश से समुत्पन्न हैं, तीनों लोकों में विचरते हुए द्वारवती (द्वारका) पुरी में आये जो पूर्व में मधु नाम से ख्यात थी।१४-१५। आये हुए ऋषि को देखकर साम्ब ने अपने रूप-सौन्दर्य के अभिमान वश ऋषि की कृशित शरीर के अंगों को, जो पीले भूखे, रूखे एवं विरूप थे, अनुकरण करने लगा—उनके मुख की भाँति अपना मुख बनाकर उनके देखने की भाँति देखने एवं चलने की भाँति चलने लगा।१६-१७। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! उसने अपनी युवावस्था में मदान्ध होकर ही ऐसा किया था। इसके पश्चात् महातेजस्वी एवं ऋषि श्रेष्ठ दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर अपने मुख को हिलाते हुए शाम्ब से कहा—अपने रूप-सौन्दर्य के अभिमानवश तुमने मुझे विरूप देखकर देखने एवं चलने में मेरा अनुकरण (नकल) किया है, इसीलिए तुम्हें अति शीघ्र कुष्ठ रोग हो जायेगा।१८-२०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्ब के लिए दुर्वासा द्वारा शाप विसर्जन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७२।

अध्याय ७३

शाम्ब द्वारा सूर्य की आराधना का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसी समय ब्रह्मा के मानस पुत्र भगवान् नारद का भी आगमन हुआ जो तीनों

---

१. जटिलम् ।

सर्वलोकचरः सोऽथ अटमानः समन्ततः । वासुदेवं स वै द्रष्टुं नित्यं द्वारवतीं पुरीम् ॥२
आयाति ऋषिभिः सार्धं क्रोधनो मुनिसत्तमः । अथागच्छति तस्मिंस्तु सर्वे यदुकुमारकाः ॥३
प्रद्युम्नप्रभृतयो ये प्रह्वाश्चावनताः स्थिताः । अभिवाद्यार्घ्यपाद्याभ्यां पूजां चक्रुः समन्ततः ॥४
साम्बस्त्ववश्यभावित्वात्तस्य शापस्य कारणम् । अवज्ञां कुरुते नित्यं नारदस्य महात्मनः ॥५
रतः क्रीडासु वै नित्यं रूपयौवनगर्वितः । अविनीतं तु तं दृष्ट्वा चिन्तयामास नारदः ॥६
अस्याहमविनीतस्य करिष्ये विनयं शुभम् । एवं सञ्चिन्तयित्वा तु वासुदेवमथाब्रवीत् ॥७
इमाः षोडशसाहस्र्यः स्त्रियो यादवसत्तम । सर्वासां हि सदा साम्बे भावो देव समाश्रितः ॥८
रूपेणाप्रतिमः साम्बो लोकेस्मिन्सचराचरे । सदा ह्यीच्छन्ति [1]तास्तस्य दर्शनं चापि हि स्त्रियः ॥९
श्रुत्वैवं नारदाद्वाक्यं चिन्तयामास केशवः । यदेतन्नारदेनोक्तमन्यदत्र तु किं भवेत् ॥१०
वचनं श्रूयते लोके चापल्यं स्त्रीषु विद्यते । श्लोकौ चेमौ पुरा गीतौ चित्तज्ञैर्योषितां द्विजैः ॥११
पौंश्चल्याच्चलचित्तत्वान्निःस्नेहाच्च स्वभावतः । रक्षिताः सर्वतो ह्येता विकुर्वन्ति हि भर्तृषु ॥१२
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि निश्चयः । सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥१३

लोकों में ख्याति प्राप्त एवं विचरते रहते हैं, और भगवान् वासुदेव (कृष्ण) के दर्शन करने के लिए नित्य द्वारकापुरी में ऋषियों के साथ आया करते हैं। तदुपरांत उस समय पर भी उनके आने पर प्रद्युम्न आदि कुमारों ने प्रतिदिन की भाँति अभिवादन, अर्घ्य एवं पाद्य प्रदान कर उनकी पूजा की।१-४। उनके द्वारा शाप अवश्यंभावी होने के नाते शाम्ब महात्मा नारद का सदैव अपमान ही करता रहा। अपने रूप एवं यौवन के मद से उन्मत्त हो वह सर्वदा क्रीडा (खेल) में निमग्न रहता था! ऐसे अविनयपूर्ण उसके व्यवहार को देखकर नारद ने सोचा कि—मैं ही इस अविनीत को विनीत बनाऊँ तभी इसका कल्याण हो सकेगा। ऐसा विचार करते हुए उन्होंने जानकर वासुदेवजी से कहा।५-७

हे यादव सत्तम! आपकी ये सोलह सहस्र स्त्रियाँ साम्ब से प्रेम करती हैं।८। क्योंकि इस चराचर लोक में उसके समान कोई सुन्दर नहीं है, अतः ये स्त्रियाँ भी उसके दर्शन के लिए सदैव लालायित रहा करती हैं।९। नारद की ऐसी बातें सुनकर कृष्ण ने अपने मन में सोचा कि नारद की कही हुई बात असत्य नहीं हो सकती, और लोक में सुना भी जाता है कि स्त्रियाँ चपल होती हैं तथा (स्त्रियों के) मन की गति को पहचानने वाले विद्वान् ब्राह्मणों का भी कहना है कि—[1]स्वभावतः व्यभिचारिणी, चपल एवं स्नेहहीन होने के नाते स्त्रियाँ (पुरुष द्वारा) भली-भाँति रक्षित रहने पर भी अपने पति से असन्तुष्ट हो जाती हैं।१०-१२। इस भाँति रूप-परीक्षा, अवस्था, सुरूप और विरूप की ओर इनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता है, क्योंकि ये केवल पुरुष के आकारमात्र को चाहती हैं।१३

---

१. सांबस्य।

१. उक्त के दो प्राचीन श्लोक यहाँ उद्धृत हैं।

सुमन्तुरुवाच

मनसा चिन्तयन्नेव कृष्णो नारदमब्रवीत् । न ह्यहं श्रद्दधाम्येतद्यदेतद्भाषितं त्वया ।।१४
ब्रुवाणमेवं देवं तु नारदो वाक्यमब्रवीत्[1] । तथाहं तत्करिष्यामि यथा श्रद्धास्यते भवान् ।।१५
एवमुक्त्वा ययौ[2] स्वर्गं नारदस्तु यथागतः । ततः कतिपयाहोभिर्द्वारकां पुनरभ्यगात् ।।१६
तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तःपुरिकैर्जनैः । अनुभूय जलक्रीडां पानमासेवते रहः ।।१७
[3]रम्यरैवतकोद्याने नानाद्रुमविभूषिते । सर्वर्तुकुसुमैर्नित्यं वासिते सर्वकानने ।।१८
नानाजलजफुल्लाभिर्दीर्घिकाभिरलङ्कृते । हंससारससंघुष्टे चक्रवाकोपशोभिते ।।१९
तस्मिन्स रमते देवः स्त्रीभिः परिवृतस्तदा । हारनूपुरकेयूररशनाद्यैर्विभूषणैः ।।२०
भूषितानां वरस्त्रीणां चार्वङ्गीनां विशेषतः । ताभिः सम्पीयते पानं शुभगन्धान्वितं शुभम् ।।२१
एतस्मिन्नन्तरे बुद्धा मद्यपानात्ततः स्त्रियः । उवाच नारदः साम्बं साम्बोत्तिष्ठ कुमारक ।।२२
त्वां समाह्वायते देवो न युक्तं स्थातुमत्र ते । तद्वाक्यार्थमबुद्धैव नारदेनाथ चोदितः ।।२३
गत्वा तु सत्वरं साम्बः प्रणाममकरोत्प्रभोः[4] । साष्टाङ्गं च हरेः साम्बो विधिवद्वल्लभस्य च ।।२४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र यास्तु वै स्वल्पसात्त्विकाः । तं दृष्ट्वा सुन्दरं साम्बं सर्वाश्चुक्षुभिरे स्त्रियः ।।२५

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार अपने मन में विचार कर कृष्ण ने नारद से कहा—आपने जो कुछ कहा है, उस पर मुझे सहसा विश्वास नहीं हो रहा है ।१४। नारद ने उनसे कहा—मैं उसके लिए ऐसा ही (प्रयत्न) करूँगा, जिससे आपको उस बात में विश्वास होगा ।१५। ऐसा कहकर नारद स्वर्ग को, जिस मार्ग से आये थे, चले गये । कुछ दिनों के अनन्तर द्वारकापुरी में फिर उनका आगमन हुआ ।१६। उस दिन भगवान् कृष्ण अन्तःपुर की सभी स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा समाप्त करके एकान्त में पान का सेवन कर रहे थे ।१७। रैवतक के उस रमणीक बगीचे में, जो भाँति-भाँति के वृक्षों से अलंकृत, सभी ऋतुओं के पुष्पों द्वारा नित्य सुगंधित था, एवं भाँति-भाँति के खिले हुए कमल, हंस, सारस और चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित बावलियों से परिपूर्ण था ।१८-१९। कृष्ण देव स्त्रियों को साथ लेकर सदैव क्रीड़ा करते थे और वहाँ हार, नूपुर, केयूर (बाँह में पहना जाता है), एवं रशना (करधनी) आदि आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित विशेषकर परम सुन्दरियों के साथ सुगन्धित पान भी करते थे ।२०-२१

इसके बाद जब स्त्रियाँ मद्यपान से प्रबुद्ध हो गयीं तब नारद ने (लौटकर) साम्ब से कहा—हे कुमार साम्ब ! शीघ्र चलो, तुम्हें महाराज (कृष्ण) बुला रहे हैं । अतः यहाँ तुम्हारा रहना उचित नहीं है। नारद की बातों को भली-भाँति बिना समझे-बूझे साम्ब उनसे प्रेरित होकर शीघ्र वहाँ गया और अपने प्रिय पिता को सविधि साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा ।२२-२४। उसी समय अल्प सत्त्वगुण वाली सभी स्त्रियों के मन में जिन्होंने उसे कभी नहीं देखा था, सौन्दर्यपूर्ण साम्ब को देखकर क्षोभ (विकार) उत्पन्न

---

१. प्रत्युवाचह । २. भूयः । ३. पुण्यरैवतकोद्याने नानारत्नविभूषिते । ४. पितुः ।

न स दृष्टः पुरा याभिरन्तःपुरनिवासिभिः[1] । मद्यदोषात्ततस्तासां स्मृतिलोपात्तथा नृप ॥२६
स्वभावतोल्पसत्त्वानां जघनानि विसुस्रुवुः । श्रूयते चाप्ययं श्लोकः पुराणप्रथितः क्षितौ ॥२७
ब्रह्मचर्येऽपि वर्तन्त्याः साध्व्या ह्यपि च श्रूयते । हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः संक्लिद्यते स्त्रियाः ॥२८
लोकेऽपि दृश्यते ह्येतन्मद्यस्यात्यर्थसेवनात् । लज्जां मुञ्चन्ति निःशङ्का ह्रीमत्यो ह्यपि हि स्त्रियः ॥२९
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैः पानैः सीधुसुरासवैः । गन्धैर्मनोज्ञैर्वस्त्रैश्च[2] कामः स्त्रीषु विजृम्भते ॥३०
[3]सीधुप्रयुक्तं शुक्रेण सततं साधु हीच्छता । मद्यं न पेयमत्यर्थं पुरुषेण विपश्चिता ॥३१
नारदोप्यथ तं साम्बं प्रेषयित्वा त्वरान्वितः । आजगामाथ तत्रैव साम्बस्यानुपदेन तु ॥३२
आयान्ते ताश्च तं दृष्ट्वा प्रियं सौमनसमृषिम् । सहसैवोत्थिताः सर्वाः स्त्रियस्तं मदविह्वलाः ॥३३
तासामथोत्थितानां तु वासुदेवस्य पश्यतः । भित्त्वा वासांसि शुभ्राणि पत्रेषु पतितानि तु ॥३४
ता दृष्ट्वा तु हरिः क्रुद्धः सर्वास्ता शप्तवान्स्त्रियः । यदस्माद्गतानि चेतांसि मां मुक्त्वान्यत्र च स्त्रियः ॥३५
[4]तस्मात्पतिकृतांल्लोकानायुर्षोन्ते न यास्यथ । पतिलोकपरिभ्रष्टाः स्वर्गमार्गात्तथैव च ॥३६
भूत्वा[5] चाशरणा यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥३७

सुमन्तुरुवाच

शापदोषात्ततस्तस्मात्ताः स्त्रियः स्वर्गते हरौ । हृताः पाञ्चनदैश्चौरैरर्जुनस्य तु पश्यतः ॥
अल्पसत्त्वास्तु यास्त्वासन्गतास्ता दूषणं स्त्रियः ॥३८

हो गया ।२५। हे नृप ! मद्य पान के कारण स्मृति नष्ट हो जाने से तथा अल्प सत्व के नाते स्वभावतः उनकी जाँघे भीग गईं । पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मचारिणी होती हुई सती स्त्रियों की भी योनि, अत्यन्त मनोहर पुरुष को देखकर (मैथुन के लिए) तर (रसपूर्ण) होने लगती हैं।२६-२८। लोक में देखा भी जाता है कि अत्यन्त मद्य पान करने के नाते लज्जाशील स्त्रियाँ अपनी लाज छोड़ कर निर्भय हो जाती हैं। क्योंकि मांस भोजन, उत्तम आसव का पान एवं सुगन्धपूर्ण उत्तम वस्त्रों का धारण करना ये सभी स्त्रियों के कामोत्पादक बताये गये हैं।२९-३०। लोगों के कल्याणार्थ शुक्राचार्य ने भी कहा है कि—विद्वानों को अत्यन्त मद्य पान न करना चाहिए।३१। पश्चात् साम्ब को वहाँ भेजकर नारद भी उसके पीछे ही शीघ्र वहाँ पहुँचे ।३२। उत्तम एवं प्रिय नारद ऋषि को वहाँ आये हुए देखकर वे स्त्रियाँ जो (मद्य) पान से विह्वल (नशे में चूर) हो रही थीं, (प्रणामार्थ) शीघ्र उठकर खड़ी हो गईं।३३। खड़ी होने पर उनके स्खलित वीर्य का बूँद वस्त्रों से चूकर नीचे पत्तों पर गिर पड़ा। उसे देखकर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि—मुझे त्याग कर तुम्हारे मन औरों में आसक्त हुए इसलिए तुम्हें पतिलोक एवं स्वर्गमार्ग की प्राप्ति अंत में हो सकेगी। और पतिलोक तथा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर उस समय अनाथ होने के नाते तुम्हें चोरों के अधीन रहना पड़ेगा।३४-३७

सुमन्तु बोले—कृष्ण के स्वर्ग प्रस्थान करने के पश्चात् उन स्त्रियों का शापवश अर्जुन के देखते ही पाँचनद (पंजाब) के चोरों ने अपहरण कर लिया। केवल अल्पसत्व होने के नाते उन्हें इस दोष का भागी

---

१. क्लीबभाव आर्याः। २. माल्यैश्च। ३. साधु प्रयुक्तम्। ४. तस्मात्परिहताश्चांते न पेश्यत च मां पुनः। ५. कृत्वा ह्यविनयं यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ।

रुक्मिणी सत्यभामा च तथा जाम्बवती प्रिया। नैता गता दस्युहस्तं स्वेन सत्त्वेन रक्षिताः ॥३९
शप्त्वैव ताः स्त्रियः कृष्णः साम्बमप्यशपत्ततः। यस्मादतीव ते कान्तं रूपं दृष्ट्वा इमाः स्त्रियः ॥४०
क्षुब्धाः सर्वा यतस्तस्मात्कुष्ठरोगमवाप्नुहि। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साम्बः कृष्णस्य भारत ॥४१
उवाच प्रहसन्राजन्संस्मरन्नृषिभाषितम्। अनिमित्तमहं तात भावदोषविवर्जितः॥
शप्तो न मेऽत्र वै क्रुद्धो दुर्वासा अन्यथा वदेत् ॥४२

सुमन्तुरुवाच

अस्मिञ्छप्तेऽनिमित्तेऽसौ पित्रा जाम्बवतीसुतः। प्राप्तवान्कुष्ठरोगित्वं विरूपत्वं च भारत ॥४३
साम्बेन पुनरप्येव दुर्वासाः कोपितो मुनिः। तच्छापान्मुसलं जातं कुलं येनास्य घातितम् ॥४४
श्रुत्वा ह्यविनयाद्दोषान्साम्बेनाप्तान्क्षमाधिप। नित्यं भाव्यं विनीतेन गुरुदेवद्विजातिषु ॥४५
प्रियं च वाक्यं वक्तव्यं सर्वप्रीतिकरं विभो। किं त्वया न श्रुतौ श्लोकौ यावुक्तौ वेधसा पुरा॥
[1]शृण्वतो देवदेवस्य व्योमकेशस्य भारत ॥४६

यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जितो न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित् ॥४७

होना पड़ा।३८। रुक्मिणी, सत्यभामा एवं प्रिय जाम्बवती आदि स्त्रियाँ, जो अपने अधिक सत्वगुण से सुरक्षित थीं, चोरों के अधीन नहीं हुई।३९। उन्हें शाप देकर कृष्ण ने साम्ब को भी शाप दिया कि तुम्हारे इस अधिक सौन्दर्यपूर्ण रूप को देखकर इन स्त्रियों के मन में कामवासना उत्पन्न हुई अतः यह सौन्दर्य नष्ट होकर तुम्हें कुष्ट रोग हो जाये। हे भारत ! एवं हे राजन् ! इस प्रकार कृष्ण की बात सुनकर साम्ब ने ऋषि द्वारा कही गयी उस (शापवाली) बात स्मरण करते हुए उनसे हँस कर कहा—हे तात ! उनके प्रति मेरे भाव बुरे नहीं हैं, अतः मैं उसका (स्त्रियों में उत्पन्न विकारों) कारण नहीं हूँ। अतः बिना कारण मुझे शाप मिला। किन्तु आपने अच्छा ही किया, क्योंकि क्रुद्ध होकर दुर्वासा का वह कथन व्यर्थ नहीं हो सकता है।४०-४२

सुमन्तु ने कहा—जाम्बवती पुत्र साम्ब इस भाँति पिता द्वारा अकारण शाप प्राप्त कर कुष्ठ का रोगी एवं रूपहीन हो गया। इसी प्रकार एक बार और भी दुर्वासा के साथ दुर्व्यवहार करने के नाते उसे शाप हुआ था। जिस शाप के वश उसके मुसल उत्पन्न हुआ और उसी के द्वारा उसके समस्त कुल का नाश हो गया था।४३-४४

हे क्षमाधिप। हे विभो ! इस प्रकार अविनय दोष के नाते साम्ब की प्राप्त अवस्था को देखकर गुरु, देव एवं ब्राह्मणों में विनीत भाव रखना चाहिए।४५। और सभी से प्रेम एवं प्रियवाणी बोलना चाहिए। क्या तुमने उन बातों को, जो शिव के सामने ब्रह्मा ने कहा था, नहीं सुना है।४६। धर्मशील, मान एवं क्रोधहीन, विद्या-विनम्र, दूसरे को संतप्त (दुःखी) न करने वाले और अपनी स्त्री में संतोष तथा परस्त्री में निरत रहने वाले मनुष्य को इस लोक में किसी प्रकार भय नहीं होता है।४७। क्योंकि जिस प्रकार मधुर

---

१. पुरतः।

न तथा शीतलसलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।।४८
ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम्। साम्बेनाप्तं तथारोग्यं रूपं[1] च परमं पुनः।।४९
रूपमाप्य तथाऽऽरोग्यं भास्कराद्धरिसूनुना। निवेशितो रविर्भक्त्या स्वनाम्ना क्ष्माधिपेश्वर।।५०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
साम्बकृतसूर्याराधनवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।७३।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

आदित्यद्वादशमूर्तिवर्णनम्

शतानीक उवाच

स्थापितो यदि साम्बेन सूर्यश्चन्द्रसरित्तटे। तस्मान्नाद्यमिदं स्थानं यथैतद्भाषते भवान्।।१

सुमन्तुरुवाच

आद्यं स्थानमिदं भानोः पश्चात्साम्बेन भारत। विस्तरेणास्य चाद्यस्य कथ्यमानं निबोध मे।।२
अत्राद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः। मित्रत्वे च स्थितो देवस्तपस्तेपे पुरा नृप।।३

वाणी पुरुष को प्रसन्न करती है, शीतल जल, चन्दन तथा शीतल छाया आदि कोई भी उस प्रकार प्रसन्न नहीं कर सकते हैं।४८। तदुपरांत शाप से दुःखी होकर साम्ब ने भास्कर की भली-भाँति आराधना करके आरोग्य तथा अपने पुराने रूप-सौन्दर्य को पुनः प्राप्त किया।४९। हे क्षमाधिपेश्वर। कृष्ण के पुत्र ने भास्कर द्वारा आरोग्य एवं अपने रूप को प्राप्त करके भक्ति के नाते अपने नाम से सूर्य वहाँ स्थापित किया था।५०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बकृत सूर्याराधनवर्णन नामक
तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७३।

अध्याय ७४

सूर्य की द्वादश मूर्तियों का वर्णन

शतानीक ने कहा—चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब ने सूर्य को स्थापित किया, ऐसा आप कह रहे हैं, वह सूर्य का आदि स्थान कैसे प्राप्त हुआ।१

सुमन्तु बोले—हे भारत! सूर्य का आद्य स्थान यही है, साम्ब ने केवल इसे विस्तृत किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो।२

हे नृप! पहले इसी स्थान में स्थित होकर सूर्यदेव ने, जो लोकनाथ, किरणरूपी माला पहने एवं

---

१. यथाहं मधुसूदनः।

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च। सृष्ट्वा प्रजापतीन्ब्रह्मा सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः ।।४
ससर्ज मुखतो देवं पूर्वमम्बुजसन्निभम् । कञ्जजस्तं ततो देवं वक्षस्तो निर्ममे नृप ।।५
ललाटात्कुरुशार्दूल नीरजाक्षं दिगम्बरम्[1] । ऋभवः पादतः सर्वे सृष्टास्तेन महात्मना ।।६
ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम् । कृत्वा द्वादशधात्मानमदित्यामुदपद्यत ।।७
इन्द्रो धाता च पर्जन्यः पूषा त्वष्टार्यमा भगः । विवस्वानंशुर्विष्णुश्च वरुणो मित्र एव च ।।८
एभिर्द्वादशभिस्तेन आदित्येन महात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिस्तु नराधिप ।।९
तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता । स्थिता सा देवराजत्वे दानवासुरनाशिनी ।।१०
द्वितीया चास्य या मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता। स्थिता प्रजापतित्वे सा विधात्री सृजते प्रजाः ।।११
तृतीया तस्य या मूर्तिः पर्जन्य इति विश्रुता । करेष्वेव स्थिता सा तु वर्षत्यमृतमेव हि ।।१२
चतुर्थी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता[2] । मन्त्रेष्ववस्थिता सा तु प्रजाः पुष्णाति भारत[3] ।।१३
मूर्तिर्या पञ्चमी तस्य नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता । वनस्पतिषु सा नित्यमोषधीषु च वै स्थिता ।।१४
षष्ठी मूर्तिस्तु या तस्य अर्यमेति च विश्रुता । प्रजासम्वरणार्थं सा पुरेष्वेव स्थिता सदा ।।१५
भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भग इति स्मृता । भूमौ व्यवस्थिता सा तु क्ष्माधरेषु च भारत ।।१६
अष्टमी चास्य या मूर्तिर्विवस्वानिति संज्ञिता। अग्नौ व्यवस्थिता सा तु [4]पचतेऽन्नं शरीरिणाम् ।।१७
नवमी चित्रभानोर्या मूर्तिरञ्शुरिति स्मृता। वीर चन्द्रे स्थिता सा तु आप्याययति वै जगत् । १८

जगत् के स्वामी हैं, (जगत् के) कल्याण के निमित्त तप किया था।३। जन्म-मरणहीन, नित्य, अक्षय एवं ब्रह्मा रूपी (सूर्य) ने प्रजापतियों की सृष्टि रचना करके अनेक भाँति की प्रजाओं की रचना की।४। जिसमें सर्वप्रथम मुख द्वारा कमल की भाँति देव (विष्णु), वक्षस्थल द्वारा ब्रह्मा एवं भाल द्वारा कमलनेत्र दिगम्बर शिव को उत्पन्न किया। एवं उस महात्मा ने अपने चरण द्वारा देवों को उत्पन्न किया है।५-६

पश्चात् उस अव्यक्त, पुरुष एवं सहस्रांशु ने अपने को बारह रूपों में विभक्त कर अदिति में उत्पन्न किया।७। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण एवं मित्र इन बारहों मूर्तियों द्वारा समस्त जगत् में व्याप्त होकर पुनः इस जगत् को अपने अधीन रखा। हे नराधिप! उनकी प्रथम मूर्ति को जिसका नाम इन्द्र है, दानव एवं असुरों के नाश करने के लिए देवराज (इन्द्र) की पदवी प्राप्त हुई है।८-१०। दूसरी मूर्ति, जिसे विधाता कहते हैं, वह प्रजापति होकर प्रजाओं का सृजन करती है।११। तीसरी मूर्ति, जिसे पर्जन्य कहा जाता है, वह उनके किरणों में स्थित रहकर अमृत की वर्षा करती है।१२। चौथी मूर्ति, जो पूषा नाम से विख्यात है, मंत्रों में स्थित होकर नित्य प्रजा-पालन करती है।१३। पाँचवी मूर्ति, जिसे त्वष्टा कहते हैं, वह वनस्पतियों की औषधियों में नित्य स्थित रहती है।१४। अर्यमा नाम की छठीं मूर्ति प्रजा-संवरण के लिए नगरों में रहती है।१५। सूर्य की सातवीं मूर्ति जिसे भग कहा जाता है, भूमि में स्थिति बनाकर पृथ्वी के धारण करने वालों (पर्वतों) में वह सदैव स्थित रहती है।१६। हे भारत! विवस्वान् नामकी उनकी आठवीं मूर्ति अग्नि में स्थित होकर प्राणियों के जाठराग्नि द्वारा अन्न पचाती है।१७। चित्रभानु की नवीं मूर्ति जिसे अंशु कहा जाता है, चन्द्रमा में स्थित होकर जगत् की

---

१. दिवाकरम्। २. भारत। ३. नित्यशः। ४. देवेपु च।

मूर्तिर्या दशमी तस्य विष्णुरित्यभिधीयते । प्रादुर्भवति सा नित्यं गीर्वाणारिविनाशिनी ।।१९
मूर्तिस्त्वेकादशी या तु भानोर्वरुणसंज्ञिता । जीवाययति सा कृत्स्नं जगद्धि समुपाश्रिता ।।२०
अपां स्थानं समुद्रस्तु वरुणोऽत्र प्रतिष्ठितः । तस्माद्वै प्रोच्यते वीर सागरो वरुणालयः ।।२१
मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नामतो मित्रसंज्ञिता । लोकानां सा हितार्थं तु स्थिता चन्द्रसरित्तटे ।।२२
वायुभक्षा तपस्तेपे युक्ता मैत्रेण चक्षुषा । अनुगृह्णन्सदा भक्तान्वरैर्नानाविधैः सदा ।।२३
एवमाद्यमिदं स्थानं पुण्यं मित्रपदं स्मृतम् । तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रपदं स्मृतम् ।।२४
तयाराध्य महाबाहो साम्बेनामिततेजसा । तत्प्रसादात्तदादेशात्प्रतिष्ठा तस्य वै कृता ।।२५
आभिर्द्वादशभिस्तेन भास्करेण महात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिस्तु नराधिप ।।२६
तस्माद्वन्द्यो नमस्यश्च द्वादशस्वपि मूर्तिषु । ये नमस्यन्ति चादित्यं नरा भक्तिसमन्विताः ।।२७
ते यास्यन्ति परं स्थानं[1] तिष्ठेद्यत्राम्बुजेश्वरः । इत्येवं द्वादशात्मानमादित्यं पूजयेत्तु यः ।।२८
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो याति हेलिसलोकताम् ।।२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यद्वादशमूर्तिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।७४।

वृद्धि करती है ।१८। उनकी दशवीं मूर्ति, जो विष्णुरूप है, देवों के शत्रुओं का विनाश करने के लिए वह नित्य (समयानुसार) उत्पन्न होती रहती है ।१९। एवं भानु की ग्यारहवीं मूर्ति के जो वरुण नाम से ख्यात है, प्राणियों आदि को (जल द्वारा) प्राणदान देने के नाते समस्त जगत् (उसके) आश्रित रहता है ।२०। हे वीर ! जल का स्थान समुद्र है, उसमें वरुण रहते हैं। इसीलिए सागर वरुणालय कहा जाता है। २१। और सूर्य की बारहवीं मूर्ति, जिसका मित्र नाम है, लोक-कल्याण के लिए वह चंद्रभागा नदी के तट पर स्थित है ।२२। इस प्रकार मित्र भाव से स्थित होकर भक्तों को भाँति-भाँति के वर प्रदान करते हुए उन्होंने वायु भक्षण करके वहाँ तप किया था ।२३। इसीलिए यह आद्य एवं पुण्य स्वरूप मित्र नामक स्थान कहा जाता है, और वहाँ मित्र भाव से स्थित रहने के नाते ही उसे मित्र पद कहा गया है ।२४

हे महाबाहो ! इस भाँति साम्ब ने उनकी आराधना की और प्रसन्न होकर सूर्य के आदेश देने पर उनकी वहाँ प्रतिष्ठा हुई ।२५। इस प्रकार सूर्य अपनी इन बारहों मूर्तियों द्वारा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं। हे नराधिप ! इसीलिए सूर्य बारहों मूर्तियों में स्थित रहकर वन्दनीय एवं पूजनीय होते रहते हैं। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो मनुष्य आदित्य को नमस्कार करता है, उसे कमलेश्वर (सूर्य) के स्थान की प्राप्ति होती है और जो बारह रूप वाले सूर्य की पूजा करता है, समस्त पापों से मुक्त होकर उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।२६-२९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य की द्वादश मूर्ति वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७४।

---

१. लोकम् ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

नारदोपसङ्गमनवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथं साम्बः प्रपन्नोऽर्कं केन वा प्रतिपादितः । उग्रं शापं च तं प्राप्य पितरं स किमुक्तवान् ।।१

सुमन्तुरुवाच

उक्तमेव पुरा वीर यथा शप्तः स यादवः । पित्रा साम्बो महाराज हरिणाम्बुजधारिणा ।।२
अथ शापाभिभूतस्तु साम्बः पितरमब्रवीत् । [1]विनयावनतो भूत्वा प्राञ्जलिः शिरसा नतः ।।३
किं मयापकृतं देव येन शप्तोस्म्यहं त्वया । अहं त्वदाज्ञया देव त्वरमाणोऽत्र आगतः ।।४
कस्मान्निपातितः शापो मयितेऽनपकारिणि । न वै जानाम्यहं किञ्चित्प्रसीद जगतः पते ।।५
शापं नियच्छ मे देव प्रसादं कुरु मे प्रभो । कश्मलेनाभिभूतोऽहं येन मुच्येय किल्बिषात् ।।६
तमुवाच ततः कृष्णः साम्बं बुद्ध्वा ह्यनागसम् । नाहं पुत्र पुनः शक्तो रोगस्यास्य व्यपोहने ।।७
[2]अस्यायं जगतो नाथो द्वादशात्मा दिवाकरः[3] । सहस्ररश्मिरादित्यः शक्तः पुत्र व्यपोहितुम् ।।८
ज्ञातं मयाधुना चैव यथा त्वं नारदेन तु । रोषाद्विसर्जितः पुत्र मत्सकाशं महात्मना ।।९

अध्याय ७५

नारदोपसंगमन वर्णन

शतानीक ने कहा—साम्ब ने सूर्य की प्राप्ति कैसे की, उसे किसने बताया तथा पिता द्वारा उग्र शाप पाने पर उसने उनसे क्या कहा ।१

सुमन्तु बोले—हे वीर ! कमलधारी कृष्ण द्वारा साम्ब को शाप जिस भाँति प्राप्त हुआ, मैंने पहले ही बता दिया है ।२

शाप द्वारा दुःखी होकर विनम्र एवं हाथ जोड़कर तथा नतमस्तक होकर साम्ब ने अपने पिता से कहा ।३। हे देव ! मैंने क्या अपराध किया, जिससे आपने मुझे शाप दे दिया । मैं तो आपकी ही आज्ञा से यहाँ शीघ्रतापूर्वक आया था ।और मैंने जब आपका कोई अपकार भी नहीं किया, तो मैं नहीं जानता मुझे शाप क्यों दिया गया । हे जगत्पते ! मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर शाप का निवारण करें । हे प्रभो ! मैं इस पाप से दुःखी हूँ, मुझे इस दुःख से बचाइये जिससे पापमुक्त हो जाऊँ ।४-६। इस भाँति साम्ब के कहने पर उसे निरपराधी समझकर कृष्ण ने कहा—हे पुत्र ! इस रोग की शान्ति करने की शक्ति मुझमें नहीं है ।७। जगत् के नाथ, द्वादशात्मा, दिवाकर एवं सहस्र रश्मि वाले सूर्य ही इसे नष्ट कर सकते हैं ।८। इस समय मुझे ज्ञान हो रहा है कि नारद ने क्रुद्ध होकर तुम्हें मेरे समीप भेजा

---

१. चिंतया विनतः । २. अहम् । ३. दिवस्पतिः, जगत्पतिः ।

तस्मात्तमेव पृच्छ त्वं प्रसाद्य ऋषिसत्तमम् । आख्यास्यति स ते देवं शापं यस्तेऽपनेष्यति ॥१०
अथैतत्स पितुर्वाक्यं श्रुत्वा जाम्बवतीसुतः । दीनः [1]शोकपरीतात्मा ततः सञ्चिन्त्य भारत ॥११
द्वारवत्यां स्थितं विष्णुं कदाचिद्द्रष्टुमागतम् । विनयादुपसङ्गम्य साम्बः पप्रच्छ नारदम् ॥१२
भगवन्वेधसः पुत्र सर्वलोकज्ञ सुव्रत । प्रसादं कुरु मे विप्र[2] प्रणतस्य महामते ॥१३
येन मे नीरुजं कायं कश्मलं च प्रणश्यति । तं योगं ब्रूहि मे विप्र प्रणतस्यास्य सुव्रत ॥१४

नारद उवाच

यः स्तुत्यः सर्वदेवानां नमस्यः पूज्य एव च । पूजयित्वाशु तं देवं ततो व्याधिं प्रहास्यसि ॥१५

साम्ब उवाच

कः स्तुत्यः सर्वदेवानां नमस्यः पूज्य एव च । कः सर्वगश्च सर्वत्र शरणं यं व्रजाम्यहम् ॥१६
पितृशापानलेनाहं दह्यमानो महामुने । शान्त्यर्थमस्य कं देवं [3]शरणं च व्रजाम्यहम् ॥१७
एतच्छ्रुत्वा तु साम्बस्य वचनं करुणावहम् । हित्वा तु [4]कामजं वीर नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥१८
स्तुत्यो वन्द्यश्च पूज्यश्च नमस्य ईड्य एव च । भास्करो यदुशार्दूल ब्रह्मादीनां सदानघ ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि साम्बोपाख्याने साम्बं प्रति कृष्णशापे साम्बस्य नारदोपसंगमनवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।७५।

था।९। इसलिए तुम उन्हीं ऋषि श्रेष्ठ नारद से ही पूछो ! वे उस देव को, जिसके द्वारा तुम्हारा दुःख दूर होगा, बतायेंगे।१०। इसके पश्चात् पिता की बातें सुनकर दीन एवं शोकग्रस्त होकर जाम्बवती सुत साम्ब ने द्वारकापुरी में कृष्ण के दर्शन के लिए आये हुए नारद से विनयपूर्वक पूछा—हे भगवन् ! हे ब्रह्मपुत्र, सर्वलोकज्ञ, सुव्रत एवं हे महामते ! मैं आप को प्रणाम करता हूँ, मेरे ऊपर कृपा कीजिए।११-१३। विप्र ! जिसके द्वारा मेरा शरीर आरोग्य हो जाये एवं मेरा पाप नाश हो, उस योग को बताइये। अतः मैं पुनः प्रणाम कर रहा हूँ।१४

नारद बोले—जो समस्त देवताओं के पूज्य, स्तुत्य एवं नमस्कार करने के योग्य हैं, शीघ्र उसकी पूजा करो, वही तुम्हारे रोग की शान्ति करेंगे।१५

साम्ब ने कहा—समस्त देवताओं का स्तुत्य, पूज्य, नमस्कार करने योग्य एवं सभी स्थानों में पहुँचने वाला कौन है ? मैं उसी की शरण में जाना चाहता हूँ।१६। हे महामुने ! पिता के शाप रूपी अग्नि से मैं जल रहा हूँ, इसकी शांति के लिए किस देवता की शरण जाऊँ।१७। साम्ब की इस कारुणिक बातों को सुनकर नारद का क्रोध शांत हो गया। उन्होंने उससे कहा।१८। हे यदुशार्दूल ! ब्रह्मा आदि सभी (प्राणियों) के लिए एक भास्कर ही स्तुति करने के योग्य, वन्दनीय, पूज्य, नमस्कार करने एवं ध्यान करने के योग्य हैं।१९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के शाम्बोपाख्यान में शाम्ब के प्रति कृष्णशाप में साम्ब के नारदोपसंगमन वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७५।

---

१. शापपरीतात्मा। २. देव। ३. कतमास्यम्। ४. कामजं क्रोधमित्यर्थः—"कामात्क्रोधाऽभिजायते" इति भगवद्गीतासु वचनात्।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

नारदसाम्बसंवादे सूर्यपरिवारवर्णनम्

नारद उवाच

कदाचित्पर्यटँल्लोकान्सूर्यलोकमहं गतः । तत्र दृष्टो मया सूर्यः सर्वदेवगणैर्वृतः ॥१
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नागैर्यक्षैश्च राक्षसैः । तत्र गायन्ति गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ॥२
रक्षन्त्युद्यतशस्त्रास्तं यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋचो यजूंषि सामानि मूर्तिमन्तीह सर्वशः ॥
तत्कृतैर्विविधैः स्तोत्रैः स्तुवन्ति ऋषयो रविम् ॥३
मूर्तिमत्यः स्थितास्तत्र तिस्रः संध्याः शुभाननाः । गृहीतवज्रनाराचाः परिवार्य रविं स्थिताः ॥४
अरुणा वर्णतः पूर्वा मध्यमा चेन्दुसन्निभा । तृतीयाक्ष्माजसंकाशा[1] संध्या चैव प्रकीर्तिता ॥५
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोयाश्विनौ तथा । त्रिसंध्यं पूजयन्त्यर्कं तथान्ये च दिवौकसः ॥६
ईरयञ्जयशब्दं तु इन्द्रस्तत्रैव तिष्ठति । कविस्तु त्र्यम्बको देवस्त्रिसंध्यं पूजयन्ति वै ॥७
[2]दिनादावम्बुजाकारं पूजयेदम्बुजासनम् । चक्ररूपं तु मध्याह्ने घृतार्चिः पूजयेत्सदा ॥८
पूजयेत्सगणं रात्रौ विपुलाज्यस्वरूपिणम् । रविं भक्त्या सदा देवं [3]कंजार्धकृतशेखरः ॥९

अध्याय ७६

नारदसाम्बसंवाद में सूर्यपरिवार का वर्णन

नारद बोले—एक बार मैं घूमता हुआ सूर्य के लोक में पहुँच गया था । वहाँ देखा कि सभी देवगण सूर्य को घेरे हुए बैठे हैं ।१। गन्धर्वगण, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, एवं राक्षस लोग भी वहाँ दिखाई पड़े, वहाँ गन्धर्व लोग गान कर रहे थे, उसी प्रकार अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं एवं हथियार लिए हुए यक्ष, राक्षस तथा पन्नग लोग (सूर्य की) रक्षा कर रहे थे और मूर्तिमान ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की ऋचाओं द्वारा की गई (स्तुति रूपी) रचनाओं को पढ़ते हुए ऋषिगण सूर्य की आराधना कर रहे थे ।२-३। उसी भाँति सौन्दर्यपूर्ण एवं मूर्तिमान् होकर तीनों संध्याएँ वज्र तथा बाणों को लिए सूर्य को घेरे स्थित थीं ।४। जिनमें रक्तवर्ण की पूर्व (पहली), चन्द्रमा की भाँति मध्यमा (दूसरी) एवं स्थलकमल की भाँति तीसरी (सायंकाल की) संध्या बतायी गई है ।५। इस प्रकार आदित्यगण (देवता), वसु, रुद्र, मरुत् तथा अश्विनी कुमार एवं अन्य देवगण ये सभी तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा करते हैं ।६। अनन्तर वहाँ इन्द्र जय शब्द (जय-जयकार) का उच्चारण करते थे, शुक्र एवं शिव भी तीनो संध्याओं में उनकी पूजा करते हैं ।७। इसलिए उदयकाल में कमल के आसन पर स्थित एवं कमल की भाँति आकार वाले और मध्याह्न में चक्र की भाँति एवं घृतपूर्ण अग्नि की शिखा के समान दिखायी देने वाले उन सूर्य की सदैव पूजा करनी चाहिए ।८। क्योंकि रात में भी विपुलघृत की भाँति स्वरूप वाले (सूर्य) की गणों समेत पूजा होती है ।

---

१. पद्मसंकाशः सामरा विप्रकीर्तिता । २. शब्दादावंबुजाधारम् । ३. चन्द्रशेखर इति भावः ।

सारथ्यं कुरुते तस्य पतगस्याग्रजः[1] सदा । वहमानो रथं दिव्यं कालावयवनिर्मितम् ।।१०
हरितैः सप्तभिर्युक्तं छन्दोभिर्वाजिरूपिभिः ।।११
द्वे भार्ये पार्श्वयोस्तस्य राज्ञी निक्षुभसंज्ञिता । तथान्यैर्नामभिर्देवाः परिवार्य रविं स्थिताः ।।१२
पिङ्गलो लेखकस्तत्र तथान्यो दण्डनायकः । [2]राजाश्रोषौ च द्वौ द्वारे स्थितौ कल्माषपक्षिणौ ।।१३
ततो व्योम चतुःशृङ्गं मेरोःसदृशलक्षणम् । दिण्डिस्तस्याग्रतस्तस्य दिक्षु चान्ये स्थिताः सुराः ।।१४
एवं सर्वगमं देवं प्रदीप्तं जगति द्विज । ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवं गीर्वाणैर्ऋषभोत्तमम् ।।
ग्रहेशं भुवनेशानमादित्यं शरणं व्रज ।।१५

साम्ब उवाच

तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि कथं सर्वगतो रविः ।।१६
कति वा रश्मयस्तस्य मूर्तयश्च कति स्मृताः । का राज्ञी निक्षुभाका च कश्चायं दण्डनायकः ।।१७
पिङ्गलश्चापि कस्तत्र किं चासौ लिखते सदा । राजाश्रोषौ च कौ तत्र कौ च कल्माषपक्षिणौ ।।१८
किं दैवत्यं च तद्व्योम मेरोः सदृशलक्षणम् । को दिण्डिरग्रतस्तत्र के देवा दिक्षु ये स्थिताः ।।१९
तत्त्वतो निगमैश्चैव विस्तरेण वदस्व माम् । येनाहं तत्त्वतो ज्ञात्वा व्रजामि शरणं द्विज ।।२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने नारदसाम्बसंवादे सूर्यपरिवारवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।७६।

इसलिए चन्द्रशेखर (शिव) उनकी सदैव पूजा करते हैं।९। तथा गरुड़ के बड़े भाई (अरुण) उनके उस रथ के सारथी हैं जो दिव्य एवं समय रूपी अंगों द्वारा बनाया गया है।१०। और उस रथ में हरे रंग के छन्द रूपी सात घोड़े जोते जाते हैं।११। आकाशरूपी रानी और पृथ्वी रूपी निक्षुभा नाम की दोनों स्त्रियाँ भी उनके पार्श्व (बगल) में स्थित थीं तथा अन्य नाम वाले देवगण उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठे थे।१२। उसी भाँति पिंगल नामक लेखक दण्डनायक, चित्र वर्णवाले राजा और श्रौष दो पक्षियाँ दोनों द्वारपाल एवं मेरु के चारों शिखरों की भाँति वहाँ का आकाश सुशोभित हो रहा था। उनके सामने दिंडी और चारों दिशाओं में देवता लोग स्थित थे।१३-१४। हे द्विज ! इस प्रकार जो सर्वत्र व्याप्त जगत् में अत्यन्त प्रकाशित, ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुति करने योग्य, देवश्रेष्ठ ग्रहेश एवं भुवनों के पति हैं, उन आदित्य की शरण में अवश्य जाओ।१५

साम्ब ने कहा—मैं भली भाँति जानना चाहता हूँ कि सूर्य सभी स्थानों में कैसे पहुँचते हैं।१६। उनकी कितनी किरणें, कितनी मूर्ति एवं राज्ञी (रानी) और निक्षुभा नाम वाली स्त्रियाँ कौन हैं। इसी भाँति दंडनायक तथा पिंगल कौन हैं, और वे क्या लिखा करते हैं, और राजा और श्रौष एवं चित्र वर्ण वाले दोनों पक्षी द्वारपाल, मेरु के समान वहाँ का आकाश, दिंडी तथा वहाँ दिशाओं में कौन देवगण स्थित हैं।१७-१९। इन्हें वैदिक रीति के अनुसार एवं विवेचन पूर्वक मुझे बताइये, जिससे मैं भली भाँति समझकर उस देव की शरण जाऊँ।२०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्बोपाख्यान के नारदशाम्बसंवाद में सूर्य परिवार वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७६।

---

१. वैनतेयाग्रजः सदा २. दौवारिकौ च द्वौ द्वारे ततः कल्माषपक्षिणौ।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

साम्बोपाख्याने सूर्यवर्णनम्

नारद उवाच

विस्तरेणानुपूर्व्या च सूर्यं निगदतः शृणु । ततः शेषान्प्रवक्ष्येऽहं नमस्कृत्य दिवस्वते ।।१
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ।।२
गन्धैर्वर्णै रसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् । जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।।३
निग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल । अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ।।४
अनाकारमविज्ञेयं तमाहुः पुरुषं परम् । तस्यात्मना सर्वमिदं जगद्व्याप्तं महात्मनः ।।५
तस्येश्वरस्य प्रतिमा [1]ज्ञानवैराग्यलक्षणा । धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी तस्याभिमानिनः ।।६
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदिच्छति । चतुर्मुखस्य ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकृद्भवेत् ।।७
सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः । सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ।।८
सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तं स्वयंभुवः । ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे चापि संक्षिपेत् ।।९
पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः । त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रिकालं सम्प्रवर्तते ।।१०

अध्याय ७७

साम्बोपाख्यान में सूर्य का वर्णन

नारद बोले—मैं सूर्य का विस्तारपूर्वक एवं आनुपूर्वी (क्रमशः) वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! तथा फिर सूर्य को नमस्कार करके उनकी शेष बातों को भी बताऊँगा ।१। (सूर्य) अव्यक्त कारण, जिसे तत्त्वज्ञ लोग नित्य एवं सद्सदात्मक प्रधान और प्रकृति कहते हैं ।२। गंध, वर्ण, रस, शब्द एवं स्पर्श से हीन, जगत् के उत्पत्ति स्थान, महद्भूत, परम तथा सनातन ब्रह्म, सभी प्राणियों के निग्रह करने वाले, अव्यक्त, आदि अंतहीन, अजन्मा, सूक्ष्मरूप, त्रिगुण, उत्पत्ति एवं नाश करने वाले, आकारहीन, अविज्ञेय एवं परम पुरुष हैं, और वही महात्मा समस्त संसार में व्याप्त हैं ।३-५

ज्ञान-विज्ञान रूपी उनकी प्रतिमा है तथा उस अभिमानी की धार्मिक ऐश्वर्य से उत्पन्न ब्राह्मी बुद्धि है ।६। उस अव्यक्त से मन-इच्छित वस्तुएँ सदैव उत्पन्न होती हैं । वही, चार मुख वाले, ब्रह्मा और कालरूप शिव हैं ।७। एवं सहस्रों शिर वाले वही स्वयम्भू पुरुष हैं उनकी सात्विक, राजस, तामस तीन अवस्थाएँ हैं, जिसमें सात्विक-राजस ब्रह्मा की, राजस-तामस शिव की तथा पुरुष (विष्णु) की सात्त्विक (अवस्था) बतायी गई है । यही स्वयंभू का गुण विवेचन है । वे ब्रह्मा रूप से लोकों का सृजन करते हैं । काल (शिव) रूप से संक्षेप और पुरुष रूप से उदासीन रहते हैं । इस प्रकार उस प्रजापति की तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं। जो अपने को तीन रूपों में विभक्त कर तीनों कालों के प्रवर्तित करता है ।८-१०। इस प्रकार सृजन, संक्षय

---

१. ज्ञानविज्ञानलक्षणा ।

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम् । अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूतः स्वयम्भुवः ॥११
आदित्यस्यादिदेवत्वादजातत्वादजः स्मृतः । देवेषु समहान्देवो महादेवः स्मृतस्ततः ॥१२
सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वरः । बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भवत्वाद्भव उच्यते ॥१३
पातियस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः । पुरे शेते च वै यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥१४
नोत्पाद्यत्वादपूर्वत्वात्स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥१५
हिरण्याण्डगतो यस्माद्ग्रहेशो वै दिवस्पतिः । तस्माद्धिरण्यगर्भोऽसौ देवदेवो दिवाकरः ॥१६
आपो नारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अयनं तस्य ता आपस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१७
अर इत्येष शीघ्रार्थो निपातः कविभिः स्मृतः । आप एवार्णवा भूत्वा न शीघ्रास्तेन ता नराः[१] ॥१८
एकार्णवे पुरा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । नारायणाख्यः पुरुषः सुष्वाप [२]सलिले तदा ॥
सहस्रशीर्षा [३]सुमनाः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१९
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो[४] निगद्यते[५] ।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः ॥२०
हिरण्यगर्भः पुरुषोमहात्मा सम्पद्यते वै तमसा परस्तात् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।७७।

तथा निरीक्षण (पालन) का कार्य तीनों मूर्तियों द्वारा वह स्वयं करता है, और वही सर्वप्रथम हिरण्य गर्भ नाम से प्रादुर्भूत हुआ था ।११। वह देवताओं में आदि देव और अनुत्पन्न होने के नाते अजन्मा कहा जाता है। इसी भाँति देवों में महान् होने के नाते महादेव, समस्त लोकों के ईश एवं अधीश्वर होने के नाते ईश्वर, वृहत् के कारण ब्रह्मा, प्रादुर्भूत होने के नाते भव, समस्त प्रजाओं के पालन करने के कारण प्रजापति और पुर में शयन करने के नाते पुरुष कहा गया है ।१२-१४। अनुत्पन्न एवं अपूर्व होने के नाते स्वयंभू, हिरण्य (सुवर्ण) के अण्डे में स्थित रहने के नाते ग्रहेश, दिवस्पति, देवाधिदेव, दिवाकरण एवं हिरण्यगर्भ कहा जाता है ।१५-१६। तत्त्वदर्शी ऋषियों ने नारा को जल बताया है एवं वही जल उनके अपने (गृह) होने के नाते उनका नाम 'नारायण' हुआ ।१७। इसी प्रकार कवियों ने 'अर' शब्द को शीघ्रार्थ में निपातनात् प्रयुक्त किया है, इसीलिए वह जल (अर्णव) (समुद्र) रूप है, जो कभी भी शीघ्रगामी (अपने किनारे से बाहर) नहीं होता है ।१८। इस भाँति उसी एक समुद्र में स्थावर जंगमरूपी समस्त जगत् के विलीन हो जाने पर उस जल में एकमात्र वही नारायण नामक पुरुष शयन करता है, जिसके सहस्र शिर, सुन्दर (विकारहीन) मन, सहस्र आँखे और पैर एवं बाहू हैं और वही सर्वप्रथम प्रजापति तीनों वेदों में पुरुष, आदित्य वर्ण होकर भुवनों का रक्षक, अपूर्व, एक प्राचीन, पुरुष एवं तम से परे हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है ।१९-२१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्बोपाख्यान में सूर्यवर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७७।

---

१. शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् । २. शयने । ३., ४. पुरुषः । ५. स उच्यते ।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सूर्यमहिमावर्णनम्

नारद उवाच

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥१
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा कार्यं विचिन्त्य सः । भूत्वा स तु वराहो वै अपः संविशते प्रभुः ॥२
सञ्चिन्त्यैवं स देवेशो भूमेरुद्धरणे क्षमः । महीं महार्णवे मग्नामुद्धर्तुमुपचक्रमे ॥३
उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं विधार्य ।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयो [१]जपन्ति ॥४
उद्धृत्योर्वीं स सलिलात्प्रजासर्गमकल्पयत् । मनसा जनयामास पुत्रानात्मसमाञ्छुभान् ॥५
भृग्वङ्गिरसमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । मरीचिमथ दक्षं च वशिष्ठं नवमं तथा ॥६
नव प्रजापतीन्सृष्ट्वा ततः स पुरुषोत्तमः । प्रादुर्भूतोऽदितेः पुत्रः प्रजानां हितकाम्यया ॥७
मरीचात्कश्यपं [२]पुत्रं यं वेधा जनयज्जले । प्रजापतीनां दशमं तेजसा ब्रह्मणः समम् ॥८
वृक्षकन्याऽदितिर्नाम्ना पत्नी सा कश्यपस्य तु । अण्डं सा जनयामास भूर्भुवःस्वस्त्रिसंयुतम् ॥९

अध्याय ७८

सूर्यमहिमा का वर्णन

नारद ने कहा—पुनः (वही) सहस्र युग के समान होने वाली रात के समय को व्यतीत कर अन्त में (प्रातःकाल) सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा का रूप धारण करता हूँ ।१। और जल में डूबी हुई पृथिवी को देखकर कार्यों (सृष्टि) का स्मरण करते हुए उसे (लेने के लिए) वह प्रभु वाराह का रूप धारणकर जल के मध्य में प्रवेश करता है ।२। इस प्रकार ऐसा सोचकर पृथ्वी को लाने में समर्थ वह देवाधिदेव महासागर में डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार के लिए उपक्रम करता है ।३। तथा पृथ्वी को लेकर जल के भीतर से ऊपर निकलते हुए महावाराह के उस वेदमय शरीर की, जिसे उन्हें उस समय स्वयं कम्पित किया था, तथा उनके रोम के भीतर स्थित मुनिगण पूजा करते हैं ।४। इस भाँति वह जल के मध्य से पृथ्वी को निकाल कर उस पर प्रजाओं की सृष्टि करता है । पहले उसने अपने समान पुत्रों को मानसिक सृष्टि द्वारा उत्पन्न किया ।५। पश्चात् भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष तथा वशिष्ठ इन नव प्रजापतियों की सृष्टि करके वह पुरुषोत्तम प्रजाओं के हित के लिए अदिति का पुत्र होकर प्रादुर्भूत हुआ ।६-७। मरीचि के कश्यप नामक पुत्र हुआ, जिसे ब्रह्मा ने जल में उत्पन्न किया था, और वही दसवाँ प्रजापति भी हुआ, जो तेज में ब्रह्मा के समान था ।८। अदिति नाम की वृक्ष की कन्या थी, वही कश्यप की स्त्री हुई है। एवं उसी के गर्भ से एक इस भाँति का अंडा उत्पन्न हुआ जिसके अन्तःस्थल में भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्गलोक भी निहित था ।९।

---

१. यजंति । २. आहुर्यम् ।

तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुर्द्वादशात्मा दिवाकरः । नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महात्मनः ॥
विस्तारास्त्रिगुणश्चास्य परिणाहो विभावसोः ॥१०
यथापुष्पं कदम्बस्य समन्तात्केशरैर्वृतम् । तथैव तेजसां गोलं समन्ताद्रश्मिभिर्वृतम् ॥११
सहस्रशीर्षा पुरुषो ब्राह्मं योगमुदाहरन् । तैजसस्य च गोलस्य स तु मध्ये व्यवस्थितः ॥१२
आदत्ते स तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः । अपो नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च ॥१३
सौरी प्रभा या देवस्य अस्तं याते दिवाकरे । अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते[1] ॥१४
उदिते च ततः सूर्ये तेज आग्नेयमाविशत् । पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात्स तपते रविः ॥१५
प्रकाशत्वं तथोष्णत्वं सूर्येऽग्नौ च प्रकीर्तिते । परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥१६
व्यापकत्वं च रश्मीनां नामानि च निबोध मे । हेतयः किरणा गावो रश्मयोऽथ गभस्तयः ॥१७
अभीषवो घनं चोस्रा वसवोऽथ मरीचयः । नाड्यो दीधितयः साध्या मयूखा भानवोंऽशवः ॥१८
सप्तार्चयः सुपर्णाश्च कराः पादास्तथैव च । एषां तु नाम्नां रश्मीनां पर्यायाः विंशतिः स्मृताः ॥१९
चन्दनादीनि वक्ष्यामि नामान्येषां पृथक्पृथक् । सहस्रं तात कथितं शीतवर्षोष्णनिःस्रवम् ॥२०
तेषां चतुःशतं नाड्यो वर्षते चित्रमूर्तयः । [2]चन्दनाच्चैव मन्दाश्च कोतनामानुमास्तथा ॥
अमृता नाम ते सर्वे रश्मयो वृष्टिहेतवः ॥२१
हिमोद्वहास्तु तत्रान्ये रश्मयस्त्रिशतं स्मृताः । चन्द्रास्ते नामतः सर्वे पीतास्ते तु गभस्तयः ॥२२

उसी अंडे से द्वादश रूप सूर्य का आविर्भाव हुआ, जिसका नव सहस्र योजन का विस्तार और सत्ताइस सहस्र योजन की परिणाह (मंडल) है ।१०। इस प्रकार चारों ओर केशरों से आवृत्त कदम्बपुष्प की भाँति रश्मियों से चारों ओर से घिरा हुआ वह तेज का एक गोला है ।११। इसी प्रकार सहस्र शिर वाला वह पुरुष ब्राह्मयोग को अपनाकर अपने तेज के गोले में स्थित हुआ ।१२। वह नदियों, समुद्रों, कूएँ और तालाबों के जलों को अपनी सहस्रों किरणों द्वारा ग्रहण करता रहता है ।१३। उनकी सौरी नाम की प्रभा उनके अस्त हो जाने पर रात में अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है, इसीलिए अग्नि दूर से ही प्रकाशित दिखायी देता है ।१४। फिर उदयकाल में वह 'आग्नेय' तेज सूर्य को प्राप्त होता है ।जिससे अग्नि के द्वारा सूर्य सदैव ताप प्रदान करते रहते हैं। १५। इस भाँति जो प्रकाश एवं उष्णता (गर्मी) सूर्य और अग्नि में बतायी गई है दोनों आपस में अनुप्रवेश (आदान-प्रदान)द्वारा रात तथा दिन में बढ़ते हैं ।१६। उन्हीं किरणों की व्यापकता और नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! हेति, किरण, गो, रश्मि, गर्भास्ति, अभीषु, धन, उस्र, वसु, मरीचि, नाड़ी, दीधिति, साध्य, मयूख, भानु, अंशु, सप्तर्षि सुपर्ण, कर और पाद (एवं घृणि) ये किरणों के बीस पर्यायवाची नाम हैं ।१७-१९। हे तात् ! उनके उन चन्दन आदि पृथक्-पृथक् नामों को भी बताऊँगा। जिनमें से सहस्रों अर्थात् अधिक से अधिक परिमाण में शीत, वर्षा, एवं उष्णता निकलती रहती है।२०। उन्हीं की चार सौ किरणें, जिनके चित्रमूर्ति, चन्दन, मंद, कोतनामानुमा, और अमृत नाम हैं, वर्षा करती हैं। इसीलिए उन्हें ही वर्षा का मूल कारण बताया गया है ।२१। उसी प्रकार पीले वर्ण की चन्द्रा नाम की तीन

---

१. त्वग्निः । २. चन्दनाश्चैव चन्द्राश्च केन वा गौतमास्तथा, चन्द्रश्चैव सदाचक्रोरुनानौरुननास्तथा।

सौम्येशाश्चैव[1] वामश्च ह्लादिनो हिमसर्जनाः । शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ।।२३
शुक्लास्ते नामतः सर्वे त्रिशतं धर्मसर्जनाः । समं बिभ्रति ते सर्वे मनुष्या देवतास्तथा ।।२४
मनुष्यानोषधीभिस्तु स्वधया च पितॄनपि । अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रयस्त्रिभिरतर्पयन् ।।२५
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपते त्रिभिः । वर्षाशरत्सु चैवेशस्तपते सम्प्रवर्षते ।।२६
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गं च स त्रिभिः । ओषधीषु बलं धत्ते स्वधायां च स्वधां पुनः ।।
अमरेष्वमृतं सूर्यस्त्रय त्रिषु नियच्छति ।।२७
कालोऽग्निर्वत्सरश्चैव द्वादशात्मा प्रजापतिः । तपत्येषु सुरश्रेष्ठस्त्रींल्लोकान्सचराचरान् ।।२८
एष ब्रह्मा तथा विष्णुरेष एव महेश्वरः । ऋचो यजूंषि सामानि एष एव न संशयः ।।२९
ऋचाभिः स्तूयते पूर्वं मध्याह्ने यजुर्भिः सदा । सामाभिस्त्वपराह्णेषु महेशानैः प्रपूज्यते ।।३०
पूज्यमानस्तु नित्यं वै तपत्येष दिवस्पतिः । सदैष तेजसां राशिर्दीप्तिमान्सर्वलोकगः ।।३१
पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वतः । ब्रह्मविष्णुमहेशानैः पूज्यमानस्तु नित्यशः ।।३२
यथा सर्वगतो वायुर्वहमानस्तु तिष्ठति । तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो दिवस्पतिः ।।३३
सूर्यो गोभिर्जगत्कृत्स्नमादीपयति सर्वशः । त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति वै ।।३४

सौ किरणें, जो सौम्य, वासवीय, ह्लादिनी एवं हिम सर्जना कही जाती हैं, बर्फ बरसती हैं और शुक्लवर्ण की ककुभ, गो, एवं विश्वभृत नामकी तीन सौ किरणें धर्म का सर्जन करती हैं। इस प्रकार वे किरणें देवताओं और मनुष्यों को समभाव से पालन-पोषण करती हैं।२२-२४। औषधियों द्वारा मनुष्यों का, स्वधा द्वारा पितरों का और अमृत द्वारा देवताओं का पालन करती हैं।२५। इसी भाँति वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में तीन सौ किरणों द्वारा तपना, वर्षा एवं शरत् में तीन सौ किरणों द्वारा, वर्षा तथा हेमन्त और शिशिर में तीन सौ किरणों द्वारा उनका बरसाना बताया गया है। (तीन भाँति की किरणों द्वारा) सूर्य औषधियों में बल, स्वधा में स्वधा तथा देवों में अमृत प्रदान करते हैं।२६-२७। इस प्रकार काल, अग्नि, वत्सर (वर्ष), द्वादशात्मा और प्रजापति होकर वही देवश्रेष्ठ सूर्य चराचर रूप तीनों लोकों में ताप प्रदान करते हैं।२८। एवं यही, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद और निश्चित सामवेद रूप भी हैं।२९। इसीलिए ऋचाओं द्वारा उदय काल में, यजुर्वेद द्वारा मध्याह्न में एवं समावेद द्वारा अपराह्न में महेशान (शिव) उनकी आराधना करते हैं।३०। इस भाँति पूज्यमान् सूर्य, जो तेज पुञ्ज, प्रदीप्त एवं सभी लोगों में गमन करते हैं, नित्य तपते रहते हैं।३१। तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा पूजित होकर वही सूर्य पार्श्व भाग, ऊर्ध्व (ऊपर) और नीचे (रहने वालों को) ताप प्रदान करते हैं ऐसा कहा गया है।३२। इस प्रकार सभी स्थानों में पहुँचने वाली वायु के चलने फिरने की भाँति ग्रहेश एवं दिननायक सूर्य को भी सर्वगामी जानना चाहिए।३३। सूर्य अपनी किरणों द्वारा समस्त जगत् को भली-भाँति प्रकाशित करते हैं। जिसमें तीन सौ किरणों द्वारा भूलोक, तीन-तीन सौ किरणों द्वारा अन्य दोनों (भुवर्लोक और स्वर्लोक) तथा

---

१. सौम्याश्च वासवीयाश्च ह्लादिनो हिमसर्जनाः ।

त्रीणित्रीणि तथा चान्यौ द्वौ लोकौ तापयन्त्युत । शतं चापि अधस्तात्तु पातालं तापयन्त्युत ।।३५
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं हेलिसंज्ञितम्[1] । नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।।
विधुऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ।।३६
रवेः करसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम् । तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहसंज्ञिताः ।।३७
सुषुम्णो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च । सूर्यश्चैवापरो रश्मिर्नाम्ना विष्णुरिति[2] स्मृतः ।।३८
समस्त्वः सर्वबन्धुस्तु जीवायति च वै जगत् । सप्तजः प्रथमस्तत्र कञ्जजश्च तथा परः ।।३९
तारेयश्चापरस्तत्र गुरुः सुमनसां तथा । उग्राह्वः पञ्चमस्तेषां पुत्रोऽन्यो वनमालिनः ।।
कः शेषः सप्तमस्तेषामेते वै सप्त रश्मयः ।।४०
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं स देवासुरमानुषम् ।।४१
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् । महद्युतिमतः कृत्स्नं तेजो यत्सार्वलौकिकम् ।।४२
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ।।४३
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।४४
सूर्यात्प्रसूयते सर्वं तस्मिन्नेव प्रलीयते । भावाभावौ तु लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।।४५
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येव मोक्षिणाम् । अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्पुनः प्रजाः ।।४६

सौ किरणों द्वारा अधोलोक (पाताल) को प्रकाशित करते हैं ।३४-३५। यही सूर्य का प्रदीप्त एवं शुक्ल मंडल है । इसी प्रकार नक्षत्र, ग्रह और सोम (लता) के उत्पत्ति स्थान एवं चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहों का उत्पन्न होना भी इन्हीं के द्वारा जानना चाहिए ।३६ इस भाँति सूर्य के सहस्र किरणें हैं, जिन्हें मैंने पहले ही बता दिया है, उन्हीं की ग्रह नाम की श्रेष्ठ सात किरणें और हैं जो सुपुम्ना, हरिकेश, विश्वकर्मा, सूर्य, रश्मि, विष्णु के नाम से प्रख्यात होकर बलवान् बन्धुओं की भाँति समस्त जगत् को प्राणदान देती हैं ।३७-३८। इसी प्रकार सप्तज, कञ्जज, तारेय, देव, गुरु, उग्र, जल और शेष नामक उनकी सातों किरणें हैं ।३९-४०। इस निखिल चराचर तीनों लोकों जगत् के मूल कारण सूर्य ही हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा समस्त विश्व, जिसमें देव, असुर और मनुष्यों आदि की सृष्टि की गयी है, उत्पन्न हुआ है ।४१। हे विप्रेन्द्र ! रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और चन्द्र देवताओं में इन्हीं महान् प्रकाशमान् सूर्य का तेज समस्त लोकों में गमनशील होने के नाते निहित है ।४२। इस प्रकार सर्वात्मा, समस्त लोकों के ईश, देवाधिदेव एवं प्रजापति रूप सूर्य तीनों लोकों के महान् देवता हैं ।४३। अग्नि में डाली गई आहुति सूर्य को ही प्राप्त होती है जिससे सूर्य द्वारा वर्षा होती है एवं वर्षा द्वारा अन्न और अन्न द्वारा प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं ।४४। इस भाँति सदैव सूर्य द्वारा सभी (जगत्) का सर्जन एवं उन्हीं में प्रलय होता रहता है । अतः लोकों का उत्पन्न और विनाश दोनों सूर्य द्वारा ही होना पहले से निश्चित है ।४५। और यही ध्यान करने वालों के लिए ध्येय एवं मोक्ष के इच्छुकों के लिए मोक्ष रूप हैं। इन्हीं में लोगों को निर्वाण पद की प्राप्त होती है एवं पुनः उन्हीं द्वारा समस्त प्रजाओं की उत्पत्ति भी होती है

---

१. गोलसंज्ञितम् । २. धृष्टव्रतः ।

क्षणा मुहूर्ता दिवरा निशाः पक्षास्तु नित्यशः । मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च ॥
अथादित्यमृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते ॥४७
कालादृते न नियमा नाग्नेर्विहरणक्रिया । ऋतू नामविभागाच्च पुष्पमूलफलं कुतः ॥४८
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च । जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ॥४९
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिवेष्यते । आदित्यस्य च नामानि सामान्यानीह द्वादश ॥५०
द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यनेकशः । आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रतापनः ॥५१
मार्तंडो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः । रविर्वै द्वादशश्चैव ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥५२
विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्यमा । विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादश स्मृताः ॥५३
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन प्रकीर्तिताः । उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥५४
विष्णुस्तपति चैत्रे च वैशाखे चार्यमा तथा । विवस्वाञ्ज्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमांस्तथा ॥५५
पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके । इन्द्रश्चाश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥५६
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः । माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥५७
तैश्च द्वादशभिर्विष्णू रश्मीनां दीप्यते सदा । दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्यमा ॥५८
द्विसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान्पञ्चकैस्त्रिभिः । विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्यमा इव ॥५९
इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः । मित्रवद्भगवत्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च ॥६०

।४६। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युगरूपी काल की व्यवस्था बिना सूर्य के कभी भी सम्भव नहीं हो सकती है ।४७। उसी प्रकार बिना काल व्यवस्था के नियम और अग्नि की विहरण क्रिया (हवन) कैसे हो सकती है, और अविभाजित ऋतुओं में फूल, फल एवं मूल कैसे उत्पन्न हो सकते हैं । ४८। इस भाँति सूर्य के बिना, जो जगत् को प्रताप प्रदान करते एवं जल के अपहर्ता हैं, प्राणियों के लोक-परलोक के व्यवहार (कार्य) सुसम्पन्न नहीं हो सकते हैं ।४९। और बिना वर्षा के सूर्य में ताप एवं (वर्षा के) मंडल सम्भव नहीं होते हैं । अब सूर्य के बारह नाम जो सामान्य रूप से हैं, उन्होंने पृथक्, पृथक् मैं बता रहा हूँ ।५० आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु और दिवाकर एवं रवि यही उनके सामान्य नाम हैं और विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान, त्वष्टा और पर्जन्य ये सूर्य के पृथक्-पृथक् रूप हैं, जिनका बारहों मासों में क्रमशः उदय हुआ करता है ।५१-५४

जिस प्रकार चैत में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान्, आषाढ़ में अंशुमान्, श्रावण में पर्जन्य, भादों में वरुण, आश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, मार्गशीर्ष में मित्र, पौष में पूषा, माघ में भग और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य ताप प्रदान करते हैं ।५५-५७। उसी प्रकार क्रमशः विष्णु (नामक सूर्य) बारह सौ रश्मियों द्वारा, अर्यमा तेरह सौ किरणों द्वारा, विवस्वान् चौदह सौ, अंशुमान् पन्द्रह सौ, पर्जन्य विवस्वान् के समान (चौदह सौ) वरुण अर्यमा की भाँति (तेरह सौ), इन्द्र बारह सौ, धाता ग्यारह सौ तथा त्वष्टा मित्र और भग के समान ग्यारह सौ किरणों द्वारा ताप प्रदान करते हैं ।५८-६०। जिस भाँति

उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्धन्ते रश्मयः सदा । दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्ते सूर्यरश्मयः ॥६१
एवं रश्मिसहस्रं तु सौर्यं लोकार्थसाधकम् । भिद्यते ऋतुमासैस्तु सहस्रं बहुधा [1]भृशम् ॥६२
एवं नाम्नां चतुर्विंशदेकस्यैषा प्रकीर्तिता । विस्तरेण सहस्रं तु पुनरेवं प्रकीर्तितम् ॥६३
आसां परमयत्नेन ब्रुवते भिन्नदर्शनाः । तामसा बुद्धिमोहाच्च [2] दृष्टान्तानि ब्रुवन्ति हि ॥६४
ब्रह्माणं कारणं केचित्केचिदाहुर्दिवाकरम् । केचिद्रुद्रं परत्वेन आहुर्विष्णुं तथापरे ॥६५
कारणं तु स्मृता ह्येते नानार्थेषु सुरोत्तमाः । एकः स तु पृथक्त्वेन स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥६६
वनमालिनमुग्रेशं दिवि चक्षुरिवान्तकम् । तं स्वयंभूरिति प्रोक्तं स सोपर्णिमनौपमम् ॥६७
यथानुरज्यते वर्णैर्विविधैः स्फाटिको मणिः । तथा गुणवशात्तस्य स्वयंभोरनुरञ्जनम् ॥६८
एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेन प्रतिष्ठितः । वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ॥६९
नभसः पतितं तोयं याति स्वादान्तरं यथा । भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशात्तु सः ॥७०
यथेन्धनवशादग्निरेकस्तु बहुधायते । वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ॥७१
यथा द्रव्यविशेषाच्च वायुरेकः पृथग्भवेत् । सुगन्धिः पूतिगन्धिर्वा तथा गुणवशात्तु सः ॥७२
यथा वा गार्हपत्योग्निरन्यत्संज्ञान्तरं व्रजेत् । दक्षिणाहवनीयादिब्रह्मादिषु तथा ह्यसौ ॥७३

उत्तरायण में सूर्य की किरणें सदैव बढ़ती रहती हैं, उसी भाँति दक्षिणायन में अत्यन्त घटती जाती हैं।६१। इस प्रकार सूर्य की सहस्र किरणें, जो ऋतुओं द्वारा घटती-बढ़ती हैं, प्राणियों के प्रयोजनों को सफल करती हैं।६२। जिस प्रकार इन एक सूर्य के चौबीस नाम हैं इनके सहस्र नाम भी इसी प्रकार विस्तार पूर्वक बताये गये हैं।६३। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शनवादी इनकी किरणों को कुछ और ही कहने के लिए महान् प्रयत्नशील रहते हैं, जैसे तामस प्रधान पुरुष अपनी बुद्धि के भ्रमवश इन्हें देखते हुए भी (अपने सिद्धान्तों का) त्याग नहीं करते।६४। यद्यपि किसी ने ब्रह्मा, किसी ने सूर्य, किसी ने शिव तथा कुछ लोगों ने विष्णु को (जगत् का) कारण बताया है, पर ये सभी देवता उसी एक (सूर्य) द्वारा जो सभी से पृथक् एवं स्वयंभू नाम से ख्यात है, आविर्भूत होकर भाँति-भाँति के कार्यों में नियुक्त हैं।६५-६६। इसलिए वनमाली, उग्रेश, आकाश के नेत्र और अंतक (काल) रूपी सूर्य को जो देवों में अनुपम हैं, स्वयंभू बताया गया है, इस प्रकार विविध भाँति के वर्णों (रंगों) द्वारा अनेक भाँति की दिखाई देने वाली स्फटिक मणि के समान स्वयम्भू सूर्य भी गुणों के अनुरूप ही दिखायी देते हैं।६७-६८। उस एक मेघ के समान, जो भिन्न-भिन्न रूपों एवं रंगों में परिवर्तित होता रहता है, सूर्य भी अपने गुणानुरूप होते रहते हैं।६९। आकाश से गिरे हुए जल की भाँति, जो पृथिवी के रस विशेष के सम्पर्क से भिन्न स्वाद का हो जाता है, सूर्य का भी गुणानुरूप अनुरंजन होना जानना चाहिए।७०। पुनः एक ही अग्नि के ईंधनवश अनेक भाँति के रूप-रंग होने की भाँति सूर्य में भी गुणवश (रूपरंग का) परिवर्तन होता है।७१। जिस प्रकार एक ही वायु, विशेष के सम्बन्ध से सुगन्ध या दुर्गन्ध के रूप में परिवर्तित होता है, उसी भाँति गुणवश सूर्य में भी परिवर्तन होता रहता है।७२ एवं गार्हपत्य अग्नि के समान, जो कार्यवश दक्षिणाग्नि एवं आह्वनीय आदि नामान्तरों से प्रख्यात हैं, उसी भाँति सूर्य के ब्रह्म नाम-रूपान्तर भी हैं।७३। इस प्रकार उनके एक और

---

१. पुनः। २. दृष्ट्वा नातिक्रमंति हि।

एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् । तस्माद्भक्तिः सदा कार्या देवे ह्यस्मिन्दिवाकरे ॥७४
एषोऽण्डजोऽधिगश्चैव एष एव भृगुस्तथा । एष रजस्तमश्चैव एष सत्त्वगुणस्तथा ॥७५
एष वेदाश्च यज्ञाश्च सर्वश्चैव न संशयः । सूर्यव्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥७६
[1]इज्यते पूज्यते चासावत्र यानात्मको रविः । सर्वत्र सविता देवस्तनुभिर्नामभिश्च सः ॥७७
वसत्यग्नौ तथा वाते व्योम्नि तोये तथा विभो । एवंविधो ह्ययं सूर्यः सदा पूज्यो विजानता ॥७८
आदित्यं वेत्ति यस्त्वेवं स तस्मिन्नेव लीयते । अप्येकं वेत्ति यो नाम धात्वर्थनिगमै रवेः ॥७९
स रोगैर्वर्जितः सर्वैः सद्यः [2]पापात्प्रमुच्यते । न हि पापकृतः साम्ब भक्तिर्भवति भास्करे ॥८०
तथा त्वं परया भक्त्या प्रपद्यस्व दिवाकरम् । येन व्याधिविनिर्मुक्तः सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥८१
यथा तव पिता साम्ब यथा वेधा यथा हरः । यथा गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुरञ्जनम् ॥८२
एकीभूय यथा मेघः पृथक्त्वेन प्रतिष्ठते । वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ॥८३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यमहिमवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।७८।

अनेक होने में यही दृष्टान्त बताये गये हैं। अतः इस दिवाकर देव की सदैव भक्ति करनी चाहिए।७४ यही अण्डज (मार्तण्ड) (सर्वत्र) व्यापक, भृगु, रजस्, तमस् एवं सत्वगुण, वेद, यज्ञ और सर्वरूप हैं इसमें संदेह नहीं तथा स्थावर जंगम रूप से समस्त जगत् में व्याप्त हैं।७५-७६। इसी प्रकार यानात्मक सविता सूर्यदेव का बारहों रूपों और नामों द्वारा सर्वत्र यजन और पूजन होता है।७७। इसी भाँति सूर्य को अग्नि, वायु, आकाश, एवं जल के निवासी भी जानते हुए उनकी सदैव पूजा करनी चाहिए।७८। तथा जो इस भौतिक की विशिष्ट जानकारी सूर्य के विषय में प्राप्त करता है, उसे उनका सायुज्यमोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार धात्वर्थ एवं निगमों (वेदों) द्वारा उनके एक ही नाम का ज्ञान रखने वाला (पुरुष) रोग एवं पापों से शीघ्र मुक्त हो जाता है। हे साम्ब ! किन्तु पापी मनुष्य सूर्य के भक्त नहीं होते हैं।७९-८०। इसीलिए अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना करो, जिससे व्याधिमुक्त होकर तुम्हारे सभी मनोरथ सफल हो जाँय।८१। हे साम्ब ! तुम्हारे पिता, ब्रह्मा और शिव की भाँति सूर्य का भी गुणानुरूप मनोरजंन होता है। भिन्न-भिन्न रूप रंग वाले मेघ एक में मिलकर रूपरंग से जिस भाँति भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं सूर्य भी अपने गुणों द्वारा वैसा ही हुआ करते हैं।८२-८३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य महिमावर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७८।

---

१. इत्येते द्वादशादित्या जगत्पालात्मको रविः । २. पापैः ।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कार्त्स्न्येन हृष्टो जाम्बवतीसुतः । जातकौतूहलो भूयः परिपप्रच्छ नारदम्[१] ॥१

साम्ब उवाच

अहो सूर्यस्य माहात्म्यं वर्णितं हर्षवर्धनम् । येन मे भक्तिरुत्पन्ना परा ह्यस्मिन्विभावसौ ॥२
ततो राज्ञीं महाभागां निक्षुभां च महामुने । दिण्डिनं पिङ्गलाद्यांश्च सर्वान्कथय मे मुने ॥३

नारद उवाच

प्रागुक्तेऽर्कस्य द्वे भार्ये राज्ञी निक्षुभसंज्ञिते । तयोर्हि राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता ॥४
सौम्यमासस्य[२] सप्तम्यां द्यावार्कः सह युज्यते । माघकृष्णस्य सप्तम्यां मह्या सह भवेद्रविः ॥
भूरादित्यश्च भगवान्गच्छतः सङ्गमं तथा ॥५
ऋतुस्नाता मही तत्र गर्भं गृह्णाति भास्करात् । द्यौर्जलं सूयते गर्भं वर्षास्विह च भूतले ॥६
ततस्त्रैलोक्यभूत्यर्थं[३] मही सस्यानि सूयते । सस्योपयोगसंहृष्टा जुह्वत्याहुतयो द्विजाः ॥७

अध्याय ७९

सूर्य की महिमा का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—विस्तारपूर्वक इसे सुनकर साम्ब ने हर्षित होते हुए कौतूहलवश नारद से फिर पूछा ।१

साम्ब ने कहा—आश्चर्य है ! आपने सूर्य के ऐसे हर्षवर्धक माहात्म्य को सुनाया, जिसके द्वारा मुझमें सूर्य की उत्तम भक्ति उत्पन्न हो गई । हे महामुने ! अब पुण्यवती राज्ञी, निक्षुभा, दिंडी और पिंगल आदि को मुझे बताने की कृपा करें ।२-३

नारद बोले—पहले बतायी हुई सूर्य की राज्ञी और निक्षुभा नामकी दोनों स्त्रियों में प्रथम आकाश, रूप और दूसरी पृथ्वी रूप हैं—ऐसा जानना चाहिए ।४। पौष मास की शुक्ल सप्तमी तिथि में राज्ञी (आकाश) का और माघ कृष्ण सप्तमी में निक्षुभा (पृथिवी) का सूर्य से सम्मिलन होता है । पश्चात् सूर्य और पृथ्वी के संयोग होने पर ऋतुकाल में स्नान की हुई (स्त्री की भाँति) पृथिवी सूर्य द्वारा गर्भधारण करती है । जिसे वर्षा काल में आकाश पृथ्वी को पुनः वृष्टि रूप में प्रदान करता है ।५-६। इस प्रकार तीनों लोकों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पृथ्वी धन-धान्यों को उत्पन्न करती है, जिसके प्राप्त होने पर

---

१. सादरम् । २. पौषस्य शुक्लसप्तम्यां राज्ञ्यार्कः सह युज्यते । ३. त्रैलोक्यवातीर्थम् ।

स्वाहाकारस्वधाकारैर्यजन्ति पितृदेवताः ॥८
निक्षुभा सूयते यस्मादन्नौषधिसुधामृतैः । मर्त्यान्पितृंश्च देवांश्च तेन भूर्निक्षुभा स्मृता ॥९
यथा राज्ञी द्विधा भूता यस्य चेयं सुता मता । अपत्यानि च यान्यस्यास्तानि वक्ष्याम्यशेषतः ॥१०
मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रो मरीचेः कश्यपः सुतः । तस्माद्धिरण्यकशिपुः प्रह्लादस्तस्य चात्मजः ॥११
प्रह्लादस्य सुतो नाम्ना विरोचन इति श्रुतः । विरोचनस्य भगिनी संज्ञाया जननी शुभा ॥१२
हिरण्यकशिपोः पौत्री दितेः पुत्रस्य सा स्मृता । सा विश्वकर्मणः पुत्री प्राह्लादी प्रोच्यते बुधैः ॥१३
अथ नाम्ना सुरूपेति मरीचेर्दुहिता शुभा । पुत्री ह्यङ्गिरसः सा तु जननी तु बृहस्पतेः ॥१४
बृहस्पतेस्तु भगिनी विश्रुता ब्रह्मवादिनी । प्रभासस्य तु सा पत्नी वसूनामष्टमस्य तु ॥१५
प्रसूता विश्वकर्माणं सर्वशिल्पकरं वरम् । स वै नाम्ना पुनस्त्वष्टा त्रिदशानां च वार्धकिः ॥१६
देवाचार्यश्च तस्येयं दुहिता विश्वकर्मणः । सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी ॥१७
राज्ञी संज्ञा च द्यौस्त्वाष्ट्री प्रभा लैव विभाव्यते । तस्यास्तु या तनुच्छाया निक्षुभा सा महीमयी ॥१८
सा[1] तु भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मनः । साध्वी पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी ॥१९
न तु तां नररूपेण सूर्यो भजति वै पुरा । आदित्यस्येह तद्रूपं महता स्वेन तेजसा ॥२०
गात्रेष्वप्रतिरूपेषु नातिकान्तमिवाभवत् । अनिष्पन्नेषु गात्रेषु गोलं दृष्ट्वा पितामहः ॥२१

प्रसन्नतापूर्ण होकर द्विज लोग हवन करते हैं, स्वधाकार द्वारा पितरों और स्वाहाकार द्वारा देवताओं की पूजा होती है।७-८। इस प्रकार उत्पन्न किये हुए उस अन्न, औषधि एवं सुधा द्वारा मनुष्य, पितर और देवताओं को प्राण प्रदान करने के नाते पृथ्वी को निक्षुभा कहा गया है।९।

उसी भाँति राज्ञी के दो रूप का होना तथा ये किसकी पुत्री हैं और इनके कितनी सन्तान हैं, मैं बता रहा हूँ सुनो! ।१०। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के हिरण्यकशिपु, उसके प्रह्लाद और प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हैं, ऐसा सुना गया है। विरोचन की भगिनी, जो दितिपुत्र हिरण्यकशिपु की पौत्री, प्रह्लाद की पुत्री और विश्वकर्मा की स्त्री है, संज्ञा की माँ थी।११-१३

मरीचि की पुत्री सुरूपा, जो अंगिरा की पत्नी थी, बृहस्पति की माँ थी।१४। एवं बृहस्पति की ब्रह्मवादिनी भगिनी आठवें वसुप्रभा की स्त्री हुई, जिसने सभी शिल्पों का अभिज्ञ विश्वकर्मा नामक पुत्र को उत्पन्न किया है, जिसे देवताओं की वृद्धि करने के नाते त्वष्टा भी कहते हैं।१५-१६। विश्वकर्मा की वह सुन्दरी कन्या (संज्ञा) जो तीनों लोकों में सुरेणु नाम से भी ख्यात थी राज्ञी, संज्ञा, द्यौ एवं त्वाष्ट्री और प्रभा के नाम से ख्यात हुई। उसी के शरीर की छाया को निक्षुभा (पृथ्वी) कहते हैं।१७-१८। वही, साध्वी, पतिव्रता जो रूप, सौन्दर्य तथा यौवन पूर्ण थी, भगवान् मार्तण्ड की स्त्री हुई।१९। किन्तु मनुष्य रूप में सूर्य उससे संगम नहीं करते थे। इसीलिए सूर्य का वह रूप, जो अत्यन्त तेजस्वी था, उस सौन्दर्य की प्रतिमा (संज्ञा) के लिए आकर्षक न हो सका। इसीलिए सूर्य के उस अनुत्पन्न शरीर को गोलाकार देखकर ब्रह्मा

---

१. सा च भार्या मघवतो मार्तंडस्य महात्मनः। शची पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी—इ० पुस्तकांतरस्थः पाठः अन्येपु पुस्तकेषु तु मूलस्थ एव।

मार्तस्त्वं भव चाण्डस्तु मार्तण्डस्तेन स स्मृतः। देवानां च यतस्त्वादिस्तेनादित्य इति स्मृतः ॥२२
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रजास्तस्य महात्मनः। त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः ॥२३
वर्षाणां तु सहस्रं वै वसमाना पितुर्गृहे। भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनःपुनः ॥२४
अगच्छद्वडवा भूत्वा त्यक्त्वा रूपं यशस्विनी। उत्तरांश्च कुरून्गत्वा तृणान्यनुचचार ह ॥२५
पितुः समीपं या भार्या संज्ञा या वचनेन सा। संज्ञाया धारयद्रूपं छाया सूर्यमुपस्थिता ॥२६
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन्। आदित्यो जनयामास पुत्रौ कन्यां च रूपिणीम् ॥२७
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन च तावुभौ। श्रुतश्रवाश्च धर्मज्ञः श्रुतकर्मा तथैव च ॥२८
श्रुतश्रवा मनुस्ताभ्यां सावर्णियों भविष्यति। श्रुतकर्मा तु विज्ञेयो ग्रहो यो वै शनैश्चरः ॥२९
कन्या च तपती नाम रूपेणाप्रतिरूपिणी। संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाकरोत् ॥३०
न स्नेहं पूर्वजानां तु तथा कृतवती तु सा। मनुस्तु क्षमते तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥३१
बहुशो यात्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः। स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥३२
पदा सन्तर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः। तं शशाप ततः क्रोधात्संज्ञा सा पार्थिवी भृशम् ॥३३
पदा तर्जयसे यन्मां पितुर्भार्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥३४
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह तन्मातुः पितुः सर्वं न्यवेदयत् ॥३५

के कहने पर कि तुम मृत (मिट्टी) के अंडे हो जाओ, सूर्य मार्तण्ड कहे जाते हैं और देवों में आदि होने के नाते आदित्य भी उन्हें कहा जाता है।२०-२२

अब मैं उनकी संतानों को बता रहा हूँ सुनो! सूर्य द्वारा संज्ञा के गर्भ से तीन सन्तान उत्पन्न हुए।२३। यद्यपि एक सहस्र वर्ष तक पिता के यहाँ रहने पर उसे 'अपने पति (सूर्य) के घर जाओ, इस प्रकार बार-बार उसके पिता ने कहा था।२४। किन्तु उस पुण्य स्वरूपा संज्ञा ने अपने मनुष्य रूप को त्यागकर घोड़ी का रूप धारण किया और उत्तर कुरु देश में जाकर तृणों (घासों) को खाकर वह अपने समय व्यतीत करने लगी थी।२५। (इधर) अपने पिता के यहाँ ही रहते समय उस संज्ञा के कहने से उस की छाया संज्ञा का रूप धारण कर सूर्य के पास जाकर संज्ञा की भाँति ही रहने लगी थी।२६। उसे देखकर 'यह संज्ञा ही है, ऐसा निश्चित कर सूर्य ने दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उससे भी उत्पन्न किया था।२७। किन्तु वे दोनों श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा नामक धर्मज्ञ पुत्र (रूप गुणादि में) अपने पूर्वज मनु के समान ही हुए।२८। उनमें श्रुतश्रवा भावी सावर्णि मनु और श्रुतकर्मा शनैश्चर नामक ग्रह हुआ।२९। और उस सौन्दर्यपूर्ण कन्या का नाम तपती रखा गया। इधर अपनी सन्तानों की भाँति छाया संज्ञा की संतानों पर स्नेह नहीं करती थी। यद्यपि मनु उस (दुर्व्यवहार) का सहन कर लेते थे, पर यम के लिए उनका सहन करना कठिन हो गया था।३०-३१। पिता की उस स्त्री द्वारा अत्यन्त प्रताड़ित होने से दुःखी होकर (यम ने) एक बार क्रोध में आकर बाल्य-भाव (चञ्चलता) वश और अनिवार्य भावी (घटना) के वश होकर उस (छाया) पर पाद-प्रहार किया। उसने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया—तूने अपने पिता की गौरवशालिनी भार्या (स्त्री) पर जिस पाद से प्रहार किया है, वह निश्चित गिर जायगा।३२-३४। पश्चात् उस शाप के कारण अत्यन्त पीड़ित होने के नाते यम मनु को साथ लेकर पिता के समीप गये। और उनसे उन्होंने माँ द्वारा किये गये सभी (दुर्व्यवहारों को) कह सुनाया।३५। उन्होंने

स्नेहेन तुल्यनस्मासु माता देव न वर्तते । निःस्नेहाज्ज्यायसो ह्यस्मान्कनीयां सं बुभूषति ॥३६
तस्या मयोद्यतः पादो न तु देव निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥३७
शप्तोऽहमस्मिँल्लोकेश जनन्या तपतां वर । तव प्रसादाच्चरणस्त्रायतां महतो भयात् ॥३८

रविरुवाच

असंशयं महत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं धर्मशालिनम् ॥३९
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातस्तु विद्यते । न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिन्मोक्षो भवेदिह ॥४०
न शक्यमेतन्मिथ्या मे कर्तुं मातुर्वचस्तव । किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि पितृस्नेहादनुग्रहम् ॥४१
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति तु महीतले । कृतं तस्या वचः सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि ॥४२

सुमन्तुरुवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयावुभौ । तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥४३
सा[1] तत्पुराभवं तस्मै नाचचक्षे विवस्वते । आत्मानं स समाधाय वक्तुं तस्यानपश्यत् ॥४४
तां शप्तुकामो भगवानुद्यतः कुपितस्ततः । ततश्छाया यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ॥४५
विवस्वान्स्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमागतः । सा चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ॥

कहा—हे देव ! स्नेह के समान पात्र होते हुए भी हम लोगों में माँ समान भाव नहीं रखती है, वह छोटे को अधिक चाहती है हम लोगों को नहीं ।३६। हे देव ! यद्यपि (उसे मारने के लिए) पैर मैंने अवश्य उठाया था, पर प्रहार नहीं किया था । अतः लड़कपन या मोहवश किये गये इस मेरे अपराध को आप क्षमा करें ।३७। हे लोकेश, हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! इसीलिए माँ (छाया) ने मुझे शाप दिया है, अतः आपकी कृपा ही उस महाभय से मेरे चरण को मुक्त कर सकती हैं (यह मुझे विश्वास) है ।३८

सूर्य बोले—हे पुत्र ! अवश्य इसमें कोई महान् कारण है, नहीं तो धर्मशील एवं धर्मज्ञ होते हुए तुम्हें इतना महान क्रोध ही न होता ।३९। यद्यपि सभी प्रकार के शापों का प्रतिकार हो सकता है, पर, माँ द्वारा शाप प्राप्त होने पर पुरुष (उससे) किसी भाँति मुक्त नहीं हो सकता है ।४०। इसलिए तुम्हारी माँ के इस बात (शाप) को असत्य करने में मैं समर्थ नहीं हूँ, किन्तु, पितृस्नेह वश तुम्हारे लिए कुछ कृपा अवश्य करूँगा ।४१। कीड़े ही तुम्हारे चरण के मांस लेकर पृथ्वी पर चले जायेंगे और चरण बच जायेगा, इससे उसकी बात सत्य हो जायगी और तुम्हारी रक्षा भी होगी ।४२

सुमन्तु ने कहा—सूर्य ने छाया से कहा कि स्नेह के समान पात्र इन लड़कों में से किसी एक ही को तू क्यों अधिक चाहती है ? ।४३। उसने संज्ञा की बातों का स्मरण कर सूर्य से कुछ भी न कहा, और सूर्य भी कुछ उत्तर सुनने के लिए) ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगे ।४४। पश्चात् क्रुद्ध होकर शाप देने के लिए तैयार सूर्य को देखकर छाया सभी बातें उनसे कह सुनाई ।४५। उसे सुनकर सूर्य क्रोध के आवेश में श्वसुर के पास पहुँचे, उनके श्वसुर ने सूर्य की यथोचित अर्चना की और (मीठी बातों द्वारा) धीरे-धीरे उन क्रोध

---

१. सा च संज्ञावचः स्मृत्वा ।

निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास तं शनैः ॥४६

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहन्ती तु संज्ञा च वने चरति शाद्वले ॥४७
द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम् । रूपार्थं भवतोरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ॥४८
रूपं ते ब्रह्मणो वाक्याद्यदि वै रोचते विभो ! प्रशातयामि देवेन्द्र श्रेयोऽर्थं जगतः प्रभो ॥४९
सन्तुष्टस्तस्य तद्वाक्यं बहु मेने महातपाः । ततोऽन्वजानात्त्वष्टारं रूपनिर्वर्तनाय तु ॥५०
विश्वकर्मा ह्यनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः । भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास तस्य वै ॥५१
आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्मणा । लेखनं नाभ्यनन्दत्तु ततस्तेन निवारितः ॥५२
तत्र तद्भासितं रूपं तेजसा प्रकृतेन तु । कान्तात्कान्ततरं भूत्वा अधिकं शुशुभे ततः ॥५३
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां तथा । अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा स्वेन सम्वृताम् ॥५४
अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत् । मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसो विशङ्कया ॥५५
सा तं विवस्वतः शुक्रं नासाभ्यां समधारयत् । देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ॥५६
नासत्यश्चैव दस्रश्च तौ स्मृतौ नामतोऽश्विनौ । अतः परं स्वकं रूपं दर्शयामास भास्करः ॥
तद्दृष्ट्वा चापि संज्ञा तु तुतोष च मुमोह च ॥५७

से भस्म करने की इच्छा वाले सूर्य को शांत किया ।४६

विश्वकर्मा ने कहा—अतितेजस्वी एवं सुदुःसह तुम्हारे इस तेज का सहन न कर सकने के कारण संज्ञा घास-पात के जंगलों में घूम रही है ।४७। इसलिए पुण्यकर्म करने वाली उस स्त्री को, जो आपकी भाँति रूप प्राप्त करने के लिए जंगल में तप कर रही है, आप वहाँ जाकर अवश्य दर्शन दें ।४८। हे विभो ! हे देवेन्द्र ! यदि ब्रह्मा के कहे हुए उस रूप को आप चाहते हों, तो (यन्त्रों द्वारा खरादकर) मैं बनाने को तैयार हूँ, हे प्रभो ! उससे जगत् का कल्याण होगा ।४९। महातपस्वी (सूर्य) ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी बातों को स्वीकार किया और उन्हें रूप सौन्दर्य संपादन करने वाले उन त्वष्टा से कहा ।५०। अनन्तर सूर्य की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने शाकद्वीपयंत्र (खराद वाली मशीन) लगाकर उस पर उन्हें चढ़ाकर (खरादना) तेज का काटना आरम्भ किया ।५१। विश्वकर्मा ने बड़ी चतुरता के साथ उनकी जानु (घुटने) पर्यन्त समस्त अंगों को (खरादकर) सुन्दर बनाया । पश्चात् उन्होंने (सूर्य ने) शेष अंगों को खरादने से अनिच्छा प्रकट कर उसे मना कर दिया था ।५२। किन्तु उतने ही (खरादने) पर पहले से भी अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण उनकी शरीर हो गई ।५३।

पश्चात् योग द्वारा उन्होंने घोड़ी के रूप धारण करने वाली अपनी स्त्री को देखा, जो अपने तेज से आवृत्त होने के नाते सभी प्राणियों से अदृश्य होकर विचरण कर रही थी ।५४। यद्यपि वहाँ पहुँचने पर घोड़े का रूप धारण कर सूर्य ने उसके मुख से अपने मुख को संयुक्त किया, पर, वह मैथुन के लिए प्रवृत्त देखकर उन्हें पर पुरुष की ही आशंका करती रही ।५५। इसके उपरान्त उसने सूर्य के वीर्य को अपनी नासिका के द्वारा धारण किया, और उसी से अश्विनी कुमार नामक दो देव, जो सर्वोत्तम वैद्यों में हैं, उत्पन्न हुए ।५६।

ततस्तु जनयामास संज्ञा सूर्यसुतं शुभम् । रूपेण चात्मनस्तुल्यं रेवतं नाम नामतः ।।५८
पितुर्गृह्याष्टमं सोऽश्वं जातमात्रः पलायत । स तस्मिन्सकृदारूढस्तमश्वं नैव मुञ्चति ।।५९
ततोऽर्केण समादिष्टौ दण्डनायकपिङ्गलौ । अश्वं प्रत्यानयेथां मे मा बलाच्छिद्रतोऽस्य तु ।।६०
पार्श्वस्थौ तिष्ठतस्तस्य अश्वच्छिद्राभिकाङ्क्षिणौ । न च्छिद्रं तु लभेते तौ तस्याद्यापि महात्मनः ।।६१
प्लवन्गच्छत्यसौ यस्मात्संज्ञायाः शान्तिदः सुतः । रेवृस्तु च गतौ धातू रेवन्तस्तेन स स्मृतः ।।६२
मनुर्यमो यमी चैव सावर्णिः स शनैश्चरः । तपती चाश्विनौ चैव रेवन्तश्च रवेः सुताः ।।६३
एवमेषा पुरा संज्ञा द्वितीया पार्थिवी स्मृता । या संज्ञा सा स्मृता राज्ञी छाया या सा तु निक्षुभा ।।६४
राजृदीप्तौ स्मृतो धातू राजा राजति यत्सदा । अधिकः सर्वभूतेभ्यो राजते च दिवाकरः ।।६५
अधिकं राजते यस्मात्तस्माद्राजा स उच्यते । राज्ञः पत्नी तु सा यस्मात्तस्माद्राज्ञी प्रकीर्तिता ।।६६
क्षुभ सञ्चलने धातुर्निश्चला तेन निक्षुभा । भवन्तीत्यथ वा यस्मात्स्वर्गीयाः[1] क्षुद्विवर्जिताः ।।
छायां तां विशते दिव्यां स्मृता सा तेन निक्षुभा ।।६७
दृष्ट्वा जनं सदा तात भृशं पीडितमानसम् । धर्मेण रञ्जयामास धर्मराजस्ततः स्मृतः ।।६८

नासत्य और दस्र उनका नामकरण हुआ । पश्चात् सूर्य ने अपने रूप को प्रकट किया जिसे देखकर संज्ञा संतुष्ट और अत्यन्त मुग्ध हुई ।५७। उसके अनन्तर संज्ञा ने एक और पुत्र उत्पन्न किया, जो रूप-सौन्दर्य आदि में सूर्य के ही समान था । उसका रेवतक नाम करण हुआ ।५८। उत्पन्न होते ही वह अपने पिता के आठवें घोड़े को लेकर भाग गया । यद्यपि एक ही बार उस पर सवार हुआ पर उसका त्याग कभी नहीं कर सका ।५९। पश्चात् सूर्य ने दंडनायक और पिंगल को आज्ञा प्रदान की कि मेरे घोड़े को लाओ, किन्तु (लड़के से) बलात् अपहरण कर न लाना, कोई दोष ही देखकर उसका अपहरण करना ।६०। यद्यपि उसके पार्श्व भाग में स्थित होकर वे दोनों उसका छिद्रान्वेषण करने लगे, पर, आज तक भी उस महत्त्वपूर्ण बालक में कोई दोष न देख सके ।६१। संज्ञा को शांति प्रदान करने वाले उस पुत्र का नाम कूदते हुए चलने और गमनार्थ रेवृ धातु के होने के नाते रेवत हुआ ।६२। इस प्रकार मनु, यम, यमी, सावर्णि, शनैश्चर, तपती, अश्विनी कुमार (नासत्य और दस्र) तथा रेवत इतनी सूर्य की सन्तानें हुई ।६३

प्रथम संज्ञा और दूसरी छाया नाम की दो स्त्रियाँ उनके थी । संज्ञा का राज्ञी (रानी) और छाया का निक्षुभा (पृथ्वी) भी नामकरण हुआ ।६४। यद्यपि प्रदीप्तार्थक राज् धातु के होने के नाते सदैव प्रदीप्त (सुशोभित) होने वाले को राजा कहा जाता है, किन्तु सूर्य तो सभी प्राणियों से अधिक प्रदीप्त (अत्यन्त सुशोभित) है । इसीलिए अधिक सुशोभित होने के नाते सूर्य राजा और उनकी पत्नी होने के नाते संज्ञा राज्ञी (रानी) कही जाती है ।६५-६६। इसी प्रकार क्षुभ-धातु संचलनार्थक कही गई है, किन्तु उससे हीन (निश्चल) होने के नाते (पृथ्वी) निक्षुभा कही जाती है । अथवा वह स्वर्गीय भूमि क्षुत् (भूख) हीन होने के नाते दिव्य छाया में प्रविष्ट होती है अतः उसे निक्षुभा कहा गया है ।६७

हे तात ! मनुष्यों को सदैव मानसिक पीड़ा से दुःखी देख धर्म द्वारा उन्हें प्रसन्न करने के नाते (सूर्य

---

१. याज्ञियाः ।

शुद्धेन कर्मणा तात शुभेन परमद्युतिः । पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमाप च ।।६९
साम्प्रतं वर्तते योऽयं मनुर्लोके महामते । यस्यान्ववाये जातस्तु शङ्खचक्रगदाधरः ।।७०
यमस्य भगिनी या तु यमी कन्या यशस्विनी । साभवत्सरितां श्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ।।७१
मनुः प्रजापतिस्त्वेष सावर्णिः स महायशाः । भविष्यन्स मनुस्तात अष्टमः परिकीर्तितः ।।७२
मेरुपृष्ठे तपो दिव्यमद्यापि चरते प्रभुः । भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान् ।।७३
तपती नाम या नाम्ना तयोः कन्या गरीयसी । सा बभूव शुभा पत्नी राज्ञः सम्वरणस्य तु ।।७४
तापी नाम नदी चेयं विन्ध्यमूलाद्विनिःसृता । नित्यं पुण्यजला स्नाने पश्चिमोदधिगामिनी ।।७५
सौम्यया सङ्गता सा तु सर्वपापभयापहा । वैवस्वती यथा वीर सङ्गता [1]शिवकान्तया ।।७६
अश्विनौ देववैद्यत्वं लब्धवन्तौ यदूत्तम । तयोः कर्मोपजीवन्ति लोकेस्मिन्भिषजः सदा ।।७७
रेवन्तो नाम योऽर्कस्य रूपेणार्कसमः सुतः । [2]अश्वानामाधिपत्ये तु योजितः स तु भानुना ।।७८
क्षेमेण गच्छतेऽध्वानं यस्तं पूजयते पथि । सुखप्रसाद्यो मर्त्यानां सदा यदुकुलोद्वह ।।७९
त्वष्टापि तेजसा तेन मार्तण्डस्यैव चाज्ञया । भोजानुत्पादयामास पूजायै सत्य सुव्रत ।।८०

को) धर्मराज कहा गया है।६८। हे तात ! इसी प्रकार उन्होंने शुभ और शुद्ध कर्मों एवं परमप्रकाश प्राप्त करने के कारण पितरों का आधिपत्य भी प्राप्त किया है तथा लोक पालन की प्राप्ति भी ।६९। हे महामते ! आधुनिक समय में वर्तमान इसी मनु के कुल को जन्म ग्रहण कर शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् ने विभूषित किया था ।७०। यम की पुण्य स्वरूपा वह यमी नाम की भगिनी नदियों में श्रेष्ठ एवं लोक को पवित्र करने वाली यमुना नाम की नदी हुई है ।७१। इसी भाँति मनु प्रजापति भी महायशस्वी सावर्णि होंगे, जिन्हें आठवाँ मनु बताया गया है ।७२। वही प्रभु मनु आदि भी मेरु पर्वत के ऊपर तपश्चर्या कर रहे हैं । और उनके भाई शनैश्चर ग्रह हुए ।७३। उन दोनों (सूर्य एव छाया) की तपती नाम की लघु कन्या राजा संवरण की कल्याणकारिणी स्त्री हुई थी ।७४। पश्चात् यही विन्ध्यपर्वत के मूल भाग से निकल कर तापी नाम की नदी हुई है, जिसका जल स्नान करने के लिए अति पवित्र माना गया है और यह पश्चिम समुद्र की ओर प्रवाहित होती है ।७५। हे वीर ! इस प्रकार उस सौम्य शिवकांता (गंगा) के संगम प्राप्त होने के नाते यह वैवस्वती (तापी) समस्त पापों का नाश करती है ।७६। हे यदूत्तम । अश्विनी कुमार देवताओं के श्रेष्ठ वैद्य हुए, जिनके गुणकर्मों के द्वारा इस लोक के वैद्य सदैव जीवन निर्वाह करते हैं ।७७। सूर्य ने अपने समान तेजस्वी उस रेवतक नामक पुत्र को घोड़ों का आधिपत्य प्रदान किया है ।७८। हे यदुकुलोद्वह ! जो मनुष्य कुशलपूर्वक यात्रा करने के लिए मार्ग में उनकी पूजा करते हैं, वह उन्हें सुख प्रदान करते है । इससे सुखपूर्वक यात्रा समाप्त होती है ।७९। हे सुव्रत ! सूर्य की आज्ञा प्राप्त कर त्वष्टा ने भी उन्हीं की पूजा के लिए उनके तेज द्वारा भोजों को उत्पन्न किया है ।८०। इस भाँति जो

---

१. गंगया । २. अश्वाधिपत्ये पित्रा तु ।

य इदं जन्म देवस्य भृणुयाद्वा पठेत वा । विवस्वतो हि पुत्राणां सर्वेषाममितौजसाम् ।।८१
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति सूर्यसलोकताम् । इह राजा भवत्येव पुनरेत्य न संशयः ।।८२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।७९।

अथाशीतितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं श्रुत्वा कथां दिव्यां हेलिमाहात्म्यमाश्रिताम् । साम्बः पप्रच्छ भूयोऽपि नारदं मुनिसत्तमम् ।। १

साम्ब उवाच

सूर्यपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं महत् । प्रणिपाते फलं यच्च गीतवाद्ये च यत् फलम् ।।२
भास्करस्य द्विजश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि समन्ततः । येन सम्पूजयाम्येष भानुं देवैः[1] सदार्चितम् ।।३

नारद उवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः । दिण्डिना यदुशार्दूल भृणुष्वैकाग्रमानसः ।।४

सूर्य के अनुपम तेज वाले इन पुत्रों की जन्म कथाएँ सुनता या पढ़ता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य के लोक को प्राप्त होता है और फिर यहाँ आकर निश्चित राजा होता है ।८१-८२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।७९।

अध्याय ८०

सूर्य की आराधना का फल

सुमन्तु बोले—इस प्रकार सूर्य के माहात्म्य की दिव्य कथा को सुनकर साम्ब ने फिर देवश्रेष्ठ नारद से पूँछा ।१

शाम्ब ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! सूर्य की पूजा का, महत्वपूर्ण दान का, नमस्कार का, और उनके सम्मुख गाने-बजाने के समस्त फलों को मुझे बताइये, जिससे मैं भी उस देव वन्दनीय सूर्य की पूजा करूँ ।२-३

नारद बोले—हे यदुशार्दूल ! इन्हीं बातों को पहले दिंडी ने लोक पितामह ब्रह्मा से पूछा था, और

---

१. केशैरिति पाठे ब्रह्मशंकरादिभिरित्यर्थः ।

सुखासीनं तथा देवं सुरज्येष्ठं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा दिण्डिरिदं वचनमब्रवीत् ॥५

दिण्डिरुवाच

सूर्यपूजाफलं ब्रूहि ब्रूहि दानफलं तथा । प्रणामे यत्फलं देव यच्चोक्तं तौर्यकत्रये ॥६
इतिहासपुराणाभ्यां कारिते श्रवणे तथा । पुरतो देवदेवस्य यत्फलं स्यात्तदुच्यताम् ॥७
मार्जने लेपने यच्च देवदेवस्य मन्दिरे । भास्करस्य कृते ब्रूहि मम लोकपितामह ॥८

ब्रह्मोवाच

स्तुतिजप्योपहारेण पूजया न नरो रवेः । उपवासेन षष्ठ्यां च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९
प्रणिधाय शिरो भूमौ नमस्कारपरो रवेः । तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१०
भक्तियुक्तो नरो यस्तु रवेः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा [१]भवेन्मही ॥११
सूर्यलोकं व्रजेच्चापि इह रोगैश्च मुच्यते । उपानहौ परित्यज्य अन्यथा नरकं व्रजेत् ॥१२
सोपानत्को नरो यस्तु आरोहेत्सूर्यमन्दिरम् । स याति नरकं घोरमसिपत्रवनं विभो ॥१३
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणी कृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥१४
परितुष्टाश्च ते सर्वे प्रयच्छन्ति गतिं शुभाम् । सर्वे देवा महाबाहो ह्यभीष्टं तु परन्तप ॥१५

मैं वही कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो ! एक बार देवश्रेष्ठ ब्रह्मा से, जो वहाँ सुखपूर्वक बैठे थे, शिर से नमस्कार करके दिंडी ने इस भाँति कहा ।४-५

दिंडि ने कहा—हे देव ! लोक पितामह ! सूर्य की पूजा का फल, दान फल, नमस्कार-फल एवं उनके सम्मुख नृत्य-गान करने और वाद्यों के बजाने के फल, उसी भाँति देवाधिदेव के सामने इतिहास एवं पुराणों की कथाओं के कहने तथा सुनने के फलों और सूर्य देव के मंदिर के झाड़ने-लीपने के फलों को आप मुझे बताइये ।६-८

ब्रह्मा ने कहा—षष्ठी के दिन सूर्य की स्तुति, जय एवं उपहार-प्रदान रूपी पूजा और उपवास करने के द्वारा (सभी) मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाते हैं ।९। उसी प्रकार भूमि में सूर्य के नमस्कार (साष्टांगदण्डवत्) करने पर वह प्राणी उसी समय समस्त पापों से निश्चित मुक्त हो जाता है ।१०। और भक्तिपूर्वक जो मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी की निःसन्देह प्रदक्षिणा कर ली ।११। क्योंकि उपानह (जूते आदि) का त्यागकर प्रदक्षिणा करने वाले को सूर्यलोक की प्राप्ति एवं रोगों से मुक्ति होती है और उसके त्याग न करने पर नरक की प्राप्ति होती है ।१२। हे विभो ! इसलिए पैर में उपानह पहनकर जो सूर्य के मन्दिर पर चढ़ता है, उसे असिपत्र नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है ।१३। मन में सूर्य का ध्यान करते हुए जो व्योम (आकाश) की प्रदक्षिणा करता है, उसने समस्त देवताओं की प्रदक्षिणा कर ली । इसमें सन्देह नहीं ।१४। हे महाबाहो ! इस भाँति अत्यन्त सन्तुष्ट

---

१. वसुन्धरा ।

एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्चयते रविम् । सप्तम्यां वा महाबाहो सूर्यलोकं स गच्छति ।।१६
अहोरात्रोपवासी स पूजयेद्यस्तु भास्करम् । सप्तम्यां वाथ षष्ठ्यां वा स गच्छेत्परमां गतिम् ।।१७
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः । सर्वरक्तोपहारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ।।१८
पङ्कजैः करवीरैर्वा कुङ्कुमोदकचन्दनैः । मोदकैश्च गणश्रेष्ठ सूर्यलोकं स गच्छति ।।१९
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासरतः सदा । सर्वशुक्लोपहारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ।।२०
जातीमुद्गरकैश्चैव श्वेतोत्पलकदम्बकैः । पायसेन [1]तथा देवं सवज्रेणार्च्चयेद्रविम् ।।२१
सर्वपापविशुद्धात्मा विधुः कान्त्या न संशयः । हंसयुक्तेन यानेन हंसलोकमवाप्नुते ।।२२

दिण्डिरुवाच

ब्रूहि मे विस्तराद्देव सप्तमीकल्पमुत्तमम् । उपोष्य सप्तमीं येन गमिष्ये शरणं रवेः ।।२३

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता सप्तमीकल्पमुत्तमम् । यथा सहस्रकिरणः पुरा पृष्टोऽरुणेन वै ।।२४
कथिताः सप्त सप्तम्यो भानुना श्रेयसे नृणाम् । अरुणस्य गणश्रेष्ठ पृच्छतः कारणान्तरे ।।२५
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवदेवं दिवाकरम् । ध्यानमाश्रित्य तिष्ठन्तमरुणो वाक्यमब्रवीत् ।।२६

होकर सभी देवता उसे उत्तम गति प्रदानपूर्वक सफल मनोरथ करते हैं ।१५। हे महाबाहो! जो मनुष्य एकाहारी रहकर षष्ठी या सप्तमी में सूर्य की अर्चना करता है, उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।१६। तथा केवल दिन रात का उपवास करके जो षष्ठी या सप्तमी में भास्कर की पूजा करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।१७। और जो इन्द्रिय संयम पूर्वक उपवास रहकर कृष्णपक्ष की सप्तमी में रक्तवर्णमय उपहारों—कमल, करवीर, कुंकुम और चंदनों द्वारा—सूर्य की पूजा करके (उन्हें) मोदक (लड्डू) समर्पित करते हैं तो उन्हें सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।१८-१९। उसी भाँति शुक्ल पक्ष की सप्तमी में उपवास रह कर जो शुक्ल वर्णमय समस्त उपहारों—चमेली, मल्लिका, श्वेतकमल, कदंब, पायस, और वज्र पुष्प (सामग्रियों) द्वारा सूर्य की पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विशुद्ध एवं चन्द्रमा की भाँति कान्तिमान् होकर हंस जुते हुए रथ पर बैठकर हंस लोक को निश्चित प्राप्त करता है।२०-२२

दिंडि ने कहा—हे देव ! मुझे विस्तारपूर्वक उस सप्तमी कल्प को बताइये, जिससे मैं भी सप्तमी में उपवास रहकर सूर्य की शरण प्राप्त करूँ ।२३

ब्रह्मा बोले—आपने सप्तमी कल्प की चर्चा छेड़कर बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, पहले अरुण ने भी सूर्य से यही बातें पूँछी थी ।२४। हे गणश्रेष्ठ ! मनुष्यों के हित के लिए सूर्य ने कारणांतर द्वारा अरुण के पूछने पर सातों सप्तमी के विधान आदि को बताया था ।२५। एक बार देवाधिदेव सूर्य को कुछ काल ध्यान लगाये हुए देखकर अरुण ने (उनसे) कहा ।२६। हे देवदेवेश ! आप किसलिए ध्यान लगाकर बैठे

---

१. सदा ।

किमर्थं देवदेवश ध्यानमाश्रित्य तिष्ठसि । दिनं न याति देवेश कारणं मम कथ्यताम् ॥२७
कुरु चङ्क्रमणं देव [1]वहमानो दिवस्पते । इत्येवं भगवान्पृष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥२८
शृणु त्वं द्विजशार्दूल यदर्थं ध्यानमाश्रितः । अर्वावसुर्द्विजश्रेष्ठः स चापुत्रः खगोत्तम ॥२९
आराधयति मां नित्यं गन्धपुष्पोपहारकैः । पुत्रकामः खगश्रेष्ठ न च जानात्ययं यथा ॥३०
पुत्रदोऽहं भवे येन विधिना पूजितः खग । श्रूयतां च विधिः सर्वे येन प्रीतो भवे नृणाम् ॥३१
सप्तमीकल्पसंज्ञो वै विधीनामुत्तमो विधिः । यस्तु मां पूजयेन्नित्यं तस्य पुत्रान्ददाम्यहम् ॥३२
गृह्णीष्व सप्तमीकल्पं गत्वा ब्रूहि द्विजोत्तमम् । येनाहं बहुपुत्रत्वं दद्यां तस्य तथा खग ॥३३
श्रुत्वा भानोः क्षणादेव जगाम स खगोत्तमः । कथयामास तत्सर्वं भानोर्वचनमादितः ॥३४
ब्राह्मणस्य खगश्रेष्ठ स च श्रुत्वा द्विजोत्तमः । चकार सप्तमीकल्पं यथाख्यातं खगेन तु ॥३५
ऋद्धिं वृद्धिं तथारोग्यं प्राप्य पुत्रांश्च पुष्कलान् । गतोऽसौ सूर्यलोकं च तेजसा तत्समोभवत् ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
सप्तमीकल्पमाहात्म्यवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ।८०।

हैं, और यह दिन व्यतीत क्यों नहीं हो रहा है, इसका कारण मुझे बताने की कृपा करें। २७। तथा हे देव, हे दिवस्पते ! आप अब चलने का भी उपक्रम करें। इस प्रकार उनके पूछने पर भगवान् (सूर्य) ने कहा ।२८। हे द्विजशार्दूल ! जिसके लिए ध्यान लगाकर मैं ठहरा हूँ, उसे बता रहा हूँ, सुनो ! हे खगोत्तम ! अर्वावसु नामक एक द्विजश्रेष्ठ के पुत्र नहीं है। अतः वह पुत्र की कामना से गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा नित्य मेरी आराधना करता है, किन्तु हे खगश्रेष्ठ ! वह उस विधि को, जिसके द्वारा पूजित होकर मैं पुत्र प्रदान करता हूँ, नहीं जानता है ।२९-३०। हे खग ! इसलिए जिसके द्वारा मनुष्यों पर मैं प्रसन्न होता हूँ वह विधान बता रहा हूँ, सुनो ! ।३१। सभी विधियों में सप्तमीकल्प नामक विधि सर्वोत्तम विधि बतायी गयी है, उसके द्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है, मैं उसे पुत्र प्रदान करता हूँ ।३२। हे खग ! तुम इस सप्तमी कल्प को लेकर वहाँ जाओ और उस ब्राह्मण श्रेष्ठ को इसे बताओ, जिससे मैं उसे अधिक पुत्र प्रदान कर सकूँ ।३३। यह सुनकर उसी समय उस खग श्रेष्ठ (अरुण) ने वहाँ के लिए प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर उन्होंने सूर्य की आदि से अन्त सभी बातें उस ब्राह्मण देव को सुनायीं। ब्राह्मण ने भी अरुण की बताई हुई उस यथावत् विधि द्वारा सप्तमी कल्प के विधान को सहर्ष पूरा किया ।३४-३५। अनन्तर ऋद्धि-वृद्धि, आरोग्य और अनेक पुत्रों की प्राप्ति करके वह ब्राह्मण अन्त में सूर्य लोक की यात्रा कर उनके समान तेजस्वी हुआ ।३६

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में सप्तमी कल्प माहात्म्य वर्णन नामक
अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।८०।

---

१. ह्यर्च्यमानो दिवस्पते-इ०, चोक्ष्यमाणो दिवस्पते। इ० च पा०।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

विजयसप्तमीवर्णम्

ब्रह्मोवाच

जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता । महाजया च नन्दा च भद्रा चान्या प्रकीर्तिता ॥१
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो भवेद्यदि । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥२
स्नानं दानं तथा होम उपवासस्तथैव च । सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥३
पञ्चम्यामेकभक्तं स्यात्षष्ठयां नक्तं प्रचक्षते । उपवासस्तु सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ॥४
केचिद्देवमुशन्त्येव नेति चान्ये गणाधिप । अभिप्रेतस्तु मे[1] षष्ठ्यामुपवासो गणोत्तम ॥५
चतुर्थ्यामेकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । उपवासस्तु षष्ठ्यां स्यात्सप्तम्यां पारणं भवेत् ॥६
उपवासपरः षष्ठ्यामब्देशं पूजयेद्बुधः । गन्धपुष्पोपहारैश्च भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥७
प्रक्षाल्य पूजां भूमौ तु देवस्य पुरतः स्वपेत् । जपमानस्तु[2] गायत्रीं सौरसूक्तमथापि वा ॥८
अक्षरं वा महाश्वेतं षडक्षरमथापि वा । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां कृत्वा स्नानं गणाधिप ॥९
ग्रहेशं पूजयित्वा तु होमं कृत्वा विधानतः । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शक्त्या च गणनायक ॥१०

अध्याय ८१

विजय सप्तमी वर्णन

ब्रह्मा बोले—जया, विजया, जयंती अपराजिता, महाजया, नंदा और भद्रा यही उन सातों सप्तमियों के नाम हैं ।१। शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार पड़े तो उसे विजया सप्तमी कहा जाता है । जिसमें दान रूप में दिया हुआ (सभी कुछ) अत्यन्त फलदायक होता है ।२। इस प्रकार विजया सप्तमी में किये गये स्नान, दान, हवन और उपवास ये सभी महापातक के नाश करते हैं ।३। पञ्चमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में नन्द व्रत, सप्तमी में उपवास और अष्टमी में पारण करना बताया गया है ।४। हे गणाधिप ! कुछ लोग इसी रीति से ही देव की आराधना करते हैं किन्तु कुछ लोग तो पूजन स्वीकार करते हैं यही प्रार्थना करते हैं । हे गणोत्तम ! मुझे तो षष्ठी का ही उपवास प्रिय है । इसलिए चतुर्थी में एक भक्त (एक बार भोजन), पंचमी में नक्तव्रत और षष्ठी में उपवास करके सप्तमी में पारण करना चाहिए ।५-६। इस भाँति श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपवास रहकर षष्ठी में सूर्य की पूजा गन्ध पुष्पोहार द्वारा सुसम्पन्न करते हैं ।७। हे गणाधिप ! पूजा करने के पश्चात् देवता के सम्मुख बैठकर गायत्री या सूर्य के सूक्त का पाठ अक्षर, महाश्वेता अथवा षडक्षर के जप करते हुए भूमि में शयन करे और सप्तमी में प्रातः काल उठकर स्नान करने के उपरांत विधान पूर्वक सूर्य की पूजा एवं हवन करे । और भक्ति पूर्वक शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन भी कराये ।८-१०। इस प्रकार शाली (चावल) के भात, मालपुआ, खांड़

---

१. यः । २. यजमानः ।

शाल्योदनमपूपांश्च खण्डवेष्टांश्च शक्तितः । सघृतं पायसं दद्यात्तथा विप्रेषु शक्तितः ॥११
दत्त्वा च दक्षिणां भक्त्या[1] ततो विप्रान्विसर्जयेत् । इत्येषा कथिता देव पुण्या विजयसप्तमी ॥१२
यामुपोष्य नरो गच्छेत्पदं वैरोचनं परम् । करवीराणि रक्तानि कुङ्कुमं च विलेपनम् ॥१३
विजयं धूपमस्यां तु भानोस्तुष्टिकराणि वै । एषा पुण्या पापहरा महापातकनाशिनी ॥१४
अत्र दत्तं हुतं चापि क्षीयते न गणाधिप । स्नानं दानं तथा होमः पितृदेवाभिपूजनम् ॥१५
सर्व[2] विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् । आदित्यवारेण युता स्मृता विजयसप्तमी ॥१६
इत्येषा कथिता वीर सर्वकामप्रदायिनी । धन्यं यशस्यमायुष्यं कीर्तितं श्रवणं तथा ॥१७
स्मरणं तु तथास्यां तु पुण्यदं त्रिपुरान्तक ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे विजयसप्तमीवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।८१।

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

नन्दवर्णनम्

दिण्डिरुवाच

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्पूजयन्ति दिवाकरम् । स्नानदानादिकं तेषां किं फलं स्याद्ब्रवीतु मे ॥१

मिश्रित भक्ष्य पदार्थ और शक्त्यनुसार घृत पूर्ण खीर भी ब्राह्मणों को अर्पित करे ।११। पुनः शक्त्यनुसार उन्हें दक्षिणा प्रदान करके भक्ति पूर्वक विसर्जित करे । इस प्रकार पुण्य स्वरूप विजया सप्तमी की व्याख्या मैने सुना दी, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । सूर्य के पूजन में लाल कनेर के पुष्प, कुंकुम का लेपन और विजय धूप ये उन्हें प्रसन्न करने वाली कही गयी वस्तु है । इस प्रकार यह पुण्यरूपा पापहारिणी एवं महापातक का नाश करने वाली सप्तमी कही गयी है ।१२-१४। इसमें दिया हुआ दान, तथा हवन कभी नष्ट नहीं होता है । इस भाँति स्नान, दान, हवन तथा पितर एवं देवों की पूजा ।१५। ये सभी विजयासप्तमी में महान् पातकों के नाशक बताये गये हैं और रविवार के दिन वाली ही सप्तमी विजया सप्तमी कही जाती है ।१६। हे वीर ! इस प्रकार सभी मनोरथ सफल करने वाली इस सप्तमी को मैंने (विस्तार पूर्वक) बता दिया है । हे त्रिपुरांतक ! इसलिए इसके आख्यान का श्रवण करना, कथा वाचना और स्मरण करना ये सभी प्रतिष्ठा, यश, आयु एवं पुण्य प्रदान करते हैं ।१७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में विजयासप्तमी वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।८१।

अध्याय ८२

नंद विधि वर्णन

दिंडि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो रविवार के दिन सूर्य की पूजा एवं स्नान, दान आदि करते हैं, उन्हें

---

१. शक्त्या । २. शस्तम् ।

पुण्या सा सप्तमी प्रोक्ता युक्ता तेन पितामह । विजयेति तथा नाम वर्ण्यतामस्य[1] पुण्यता ॥२

ब्रह्मोवाच

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मञ्छ्राद्धं[2] कुर्वन्ति मानवाः । सप्तजन्मसु ते जाताः सम्भवन्ति विरोगिणः ॥३
नक्तं कुर्वन्ति ये तत्र मानवाः स्थैर्यमाश्रिताः । जपमानाः परं जाप्यमादित्यहृदयं परम् ॥४
आरोग्यमिह वै प्राप्य सूर्यलोकं व्रजन्ति ते । उपवासं च ये कुर्युरादित्यस्य दिने सदा ॥५
जपन्ति च महाश्वेतां ते लभन्ते यथेप्सितम् । अहोरात्रेण नक्तेन त्रिरात्रनियमेन वा ॥६
जपमानो, महाश्वेतामीप्सितं लभते फलम् । विशेषतः सूर्यदिने जपमानो गणाधिप ॥७
षडक्षरं[3] तथा श्वेतां गच्छेद्वै रोचनं पदम् । द्वादशेह स्मृता वारा आदित्यस्य महात्मनः ॥८
नन्दो भद्रस्तथा सौम्यः कामदः पुत्रदस्तथा । जयो जयन्तो विजय आदित्याभिमुख स्थितः ॥९
हृदयो रोगहा चैव महाश्वेतप्रियोऽपरः । शुक्लपक्षस्य षष्ठ्यां तु माघे मासि गणाधिप ॥१०
यः[4] कुर्यात्स भवेद्भूपः सर्वपापभयापहः । अत्र नक्तं स्मृतं पुण्यं घृतेन स्नपनं रवेः ॥११
अगस्त्यकुसुमानीह भानोस्तुष्टिकराणि तु । विलेपनं सुगन्धस्तु श्वेतचन्दनमुत्तमम् ॥१२
धूपस्तु गुग्गुलः श्रेष्ठो नैवेद्यं पूपमेव हि । दत्त्वा पूपं तु विप्रस्य ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥१३

किस फल की प्राप्ति होती है, इसे मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१। हे पितामह यदि उस दिन की सप्तमी पुण्य रूपा एवं विजय नाम वाली कही जाती है, तो उसकी (विशेषता) का भी वर्णन कीजिये ।२

ब्रह्मा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य रविवार के दिन श्राद्ध करता है वह सात जन्म तक आरोग्य रहता है ।३। एवं स्थिरचित्त होकर जो उस दिन उत्तम आदित्य हृदय के पाठ पूर्वक नक्तव्रत करता है, उसे आरोग्य एवं सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । जो सदैव रविवार के दिन उपवास रहकर महाश्वेता का जप करते हैं उनके सभी मनोरथ सफल होते हैं । इस प्रकार अहोरात्र के नन्द व्रत रहते हुए या जो तीन रात तक नियम पूर्वक महाश्वेता का जप करता है, उसे मनोरथ की सिद्धि प्राप्त होती है । हे गणाधिप ! विशेषतः रविवार में षडक्षर या महाश्वेता के जप करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है जिस प्रकार सूर्य के बारह दिन बताये गये हैं उसी के अनुसार नंद, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयंत, विजय, आदित्यभिमुख, हृदय, रोगहा और महाश्वेता प्रिय उनके भी नाम कहे गये हैं । हे गणाधिप ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में उनका व्रत जो करता है, वह राजा होता है तथा उसके महान् पातक का नाश होता है । इसीलिए उस दिन नक्तव्रत रहकर सूर्य को घी से स्नान कराना बताया गया है ।४-११। अगस्त्य के पुष्प सूर्य को अत्यन्त प्रिय हैं अतः उसे समर्पित करने के अनन्तर सुगंधित लेपन, श्वेतचन्दन, गुगुल की धूप मालपूआ का नैवेद्य भी उन्हें समर्पित करें ।१२। तथा मालपूआ भी प्रथम सूर्य एवं ब्राह्मण को अर्पित करके पश्चात् मौन होकर स्वयं भी उसका भक्षण करें ।१३

---

१. कथ्यतां मम शृण्वतः । २. प्राप्ते । ३. शुभकर्मा । ४. यो भवेत्स भवेन्नद ।

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं केचिदिच्छन्ति मानद[1] । मुहूर्तोनं दिनं केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१४
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहम्मन्ये गणाधिप । प्रस्थमात्रं भवेत्पूपं गोधूममयमुत्तमम् ॥१५
यवोद्भवं वा कुर्वीत सगुडं सर्पिषान्वितम् । सहिरण्यं च दातव्यं ब्राह्मणे सेतिहासके[2] ॥१६
भौमे दिव्येऽथ वा देयं न्यसेद्वा पुरतो रवेः । दातव्यो मन्त्रतश्चायं मण्डको[3] ग्राह्य एव हि ॥१७
भूत्वादित्येन वै भक्त्या आदित्यं तु नमस्य च । आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्मितम् ॥
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छापूपमुत्तमम् ॥१८
कामदं सुखदं धर्म्यं धनदं पुत्रदं तथा । सदास्तु ते प्रतीच्छामि मण्डकं भास्करप्रियम् ॥१९
एतौ चैव महामन्त्रौ दानादाने रविप्रियौ । अपूपस्य गणश्रेष्ठ श्रेयसे नात्र संशयः ॥२०
एष नन्दविधिः प्रोक्तो नराणां श्रेयसे विभो । अनेन विधिना यस्तु नरः[4] पूजयते रविम् ॥
[5]सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥२१
न दरिद्रं न रोगश्च कुले तस्य महात्मनः । योऽनेन पूजयेद्भानुं न क्षयः सन्ततेस्तथा ॥२२
सूर्यलोकाच्च्युतश्चासौ राजा भवति भूतले । बहुरत्नसमायुक्त[6]स्तेजसा द्विजसन्निभः[7] ॥२३

नक्तव्रत निर्णय के विषय में कुछ लोग नक्षत्र (तारा) दर्शन के उपरान्त भोजन करने को नक्त व्रत कहते हैं और कुछ बुद्धिमान् व्यक्ति मूहूर्त मात्र दिन शेष रहने पर ही भोजन करने को नक्तव्रत स्वीकार करते हैं। हे गणाधिप ! मैं तो तारादर्शन के अनन्तर ही (भोजन) करने को नक्तव्रत मानता हूँ। इस प्रकार एक सेर गेहूँ के आटे का उत्तम मालपूआ बनाना चाहिए उसके अभाव में जौ के आटे का बनाने का विधान है उसमें गुड़ और घी मिलाये। उपरांत सुवर्ण की दक्षिणा पूर्वक उसे ब्राह्मण को, जो इतिहास का पूर्ण विद्वान हो, अर्पित करे।१४-१६। इस प्रकार मिट्टी के पात्र या अन्य किसी उत्तम पात्र में उसे रखकर सूर्य के सम्मुख (भूत्वादित्येन) वै आदि दोनों मंत्र पूर्वक उन्हें अर्पित करते हुए ब्राह्मण के हाथ में दे देवें और उस ब्राह्मण को भी चाहिए कि कामदं सुखदं आदि मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उसे हाथ में लेकर पुनः (यजमान को) उसी समय लौटा दें। मालपूए के देने लेने के लिए कल्याणार्थ ये दोनों मंत्र सूर्य को निश्चित अत्यन्त प्रिय हैं।१७-२०। हे विभो ! इस भाँति मनुष्यों के कल्याण के लिए मैने इस नंद विधि को बता दिया। इस भाँति इस विधान द्वारा जो मनुष्य सूर्य की उपासना करते हैं, वे समस्त पाप से मुक्त होकर सूर्य के लोक में सम्मानित होते हैं।२१। और उस महात्मा पुरुष के कुल में कभी दारिद्र्य एवं रोग उत्पन्न ही नहीं होता है उसी प्रकार इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा करने वाले की सन्तान का नाश (परम्परा विच्छेद) कभी नहीं होता है।२२। एवं (कभी) सूर्य लोक से च्युत होने पर इस भूतल पर वह अत्यन्त

---

१. मानवः । २. दिव्यसंज्ञिके । ३. अपूपः । ४. नन्दम् । ५. सर्वपापविमुक्तात्मा । ६. बह्वानन्दसमायुक्तः-इ०, बहुभर्तृसमायुक्तः । ७. द्विजसत्तमः

पठतां शृण्वतां चेदं विधानं त्रिपुरान्तक । कं[1] ददात्यचलं दिव्यमम्बुजामचलां तथा ॥२४

इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे नन्दविधिवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।८२।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

भद्रविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मासि भाद्रपदे वीर शुक्ले[2] पक्षे तु यो भवेत् । षष्ठ्यां गणकुलश्रेष्ठ स भद्रः परिकीर्तितः ॥१
तत्र नक्तं तु यः कुर्यादुपवासमथापि वा । हंसयानसमारूढो याति हंससलोकताम् ॥२
मालतीकुसुमानीह तथा श्वेतं च चन्दनम् । विजयं च तथा धूपं नैवेद्यं पायसं परम् ॥३
पूजायां भास्करस्येह कुर्यात्त्रिपुरसूदनम् । इत्थं सम्पूज्य देवेशं मध्याह्ने च दिनाधिपम् ॥४
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या ततो भुञ्जीत वाग्यतः । पायसं गणशार्दूल सगुडं सर्पिषा सह ॥५
य एवं पूजयेद्भक्त्या[3] मानवस्तिमिरापहम् । सर्वकामानवाप्नोति पुत्रदारधनादिकान् ॥६

रत्न पूर्ण एवं तेजस्वी राजा होता है ।२३। हे त्रिपुरांतक ! इस भाँति विधान के सुनने तथा पढ़ने वाले को भी सुख एवं अचल सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।२४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में सौम्यविधि वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।८२।

अध्याय ८३

भद्रविधि वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! हे गण कुलश्रेष्ठ ! भादों मास के शुक्लपक्ष की षष्ठी में रविवार की भद्र संज्ञा बतायी गयी है ।१। जिसमें नक्तव्रत अथवा उपवास करने वाले को हंस जुते सवारी पर बैठ कर हंस (सूर्य) लोक की प्राप्ति होती है ।२। हे त्रिपुर सूदन ! पुष्प, श्वेत चन्दन , विजय धूप; नैवेद्य और उत्तम खीर का नैवेद्य सूर्य की पूजा में इन्हें अर्पित करनी चाहिए । इस प्रकार मध्याह्न काल में देवेश सूर्य की पूजा करने के उपरांत यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान कर स्वयं मौन होकर भोजन करे । हे गणशार्दूल ! गुड़ घी समेत खीर का भोजन कर जो मनुष्य तिमिर के नाशक (सूर्य) की पूजा इस प्रकार करता है, उसके पुत्र, स्त्री एवं धन आदि के सभी मनोरथ सफल होते हैं और सभी पापों से मुक्त होकर वह सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। हे गणाधिप ! इस प्रकार इस भद्र-विधान को मैंने तुम्हें बता दिया

---

१. सुखम् । २. कृष्णपक्षे । ३. भाद्रे-इ०, भद्रम् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो व्रजद्भानुसलोकताम् । एष भद्रा विधिः प्रोक्तो मया यस्ते गणाधिप ।।७
श्रुत्वा कृत्वा च यत्पापान्मुच्यते मानवो भुवि ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे भद्रविधिवर्णनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।८३।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

सौम्यविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नक्षत्रं रोहिणी वीर यदा वारेऽस्य वै भवेत् । यात्यसौ सौम्यतां वीर[1] स सौम्यः परिकीर्तितः ।।१
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवादितर्पणम् । अक्षयं स्यान्न सन्देहस्त्वत्र वारे महात्मनः ।।२
नक्तं समाश्रितो योऽत्र पूजयेद्भास्करं नरः । याति लोकं स देवस्य भास्करस्य न संशयः ।।३
रक्तोत्पलानि वै तत्र तथा रक्तं च चन्दनम् । सुगन्धश्चापि धूपस्तु नैवेद्यं पायसं तथा ।।
ब्राह्मणाय च दातव्यं भोक्तव्यं चात्मना तथा ।।४
य एवं पूजयेत्सौम्ये चित्रभानुं गवाम्पतिम् । स विमुक्तस्तु पापेभ्यस्त्वाष्ट्रीं कान्तिमवाप्नुयात् ।।५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे सौम्यविधिवर्णनं
नामचतुरशीतितमोऽध्यायः ।८४।

है । पृथ्वी पर जिसे सुनकर या उसके सम्पन्न करने के द्वारा मनुष्य पाप मुक्त होते रहेंगे ।३-८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में भद्रविधि वर्णन नामक
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८३।

अध्याय ८४

सौम्य विधि वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे वीर ! यदि इसी दिन रोहिणी नक्षत्र भी आ जाय तो इसकी सौम्य संज्ञा होती है ।१। इसलिए स्नान, दान, जप, हवन एवं पितृ देव आदि के तर्पण, इस उत्तम दिन में सुसम्पन्न करने से उनके अक्षय फल प्राप्त होते हैं ।२। जो पुरुष इस नक्तव्रत के नियम पालन पूर्वक इनकी पूजा करता है, उसे निश्चित सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३। अतः इसके अनुष्ठान में रक्त कमल, रक्तचंदन, सुगंध, धूप, नैवेद्य और खीर सर्वप्रथम सूर्य तथा ब्राह्मण को समर्पित कर पश्चात् स्वयं भी उसका उपभोग करे ।४। इस भाँति जो सौम्य के दिन किरणमाली सूर्य की पूजा करता है, उसे पापमुक्त पूर्वक सूर्य की भाँति कान्ति की प्राप्ति होती है ।५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में सौम्यविधि वर्णन नामक
चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८४।

---

१. वारः ।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कामदविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्राप्ते मार्गशिरे मासि शुक्लषष्ठ्यां तु यो भवेत्। स ज्ञेयः कामदो वारः सदेष्टो भास्करस्य तु ॥१
तत्र यः पूजयेद्भानुं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः। विमुक्तः सर्वपापैस्तु प्राप्नुते नन्दनाधिपम्[1] ॥२
रक्तचन्दनमिश्राणि करवीराणि सुव्रत। धूपं घृताहुतिं वीर भास्करस्य प्रयोजयेत् ॥३
नैवेद्यं चापि कृशरं सुगन्धं तीक्ष्णमेव च। कृत्वोपवासमथ वा नक्तं त्रिपुरसूदन ॥४
इत्थं प्रपूजितो ह्यत्र[2] भास्करो लोकभास्करः। कामान्ददाति सर्वान्वै अतोयं कामदः स्मृतः ॥५
स पुत्रं पुत्रकामस्य धनकामस्य वा धनम्। विद्यार्थिने शुभां विद्यामारोग्यं रोगिणे विभो ॥६
अन्यांश्च विविधान्कामान्मन्त्रैः सम्पूजितो रविः। ददाति गणशार्दूल अतोयं कामदः स्मृतः ॥७
दद्याद्यो मण्डकं चात्र गोपतेर्गोत्रभूषणः। गोत्रारितेजसा[3] तुल्यो गोपतेर्गोपुरं व्रजेत् ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे कामदाविधिवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।८५।

अध्याय ८५

कामद विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में प्राप्त रविवार को 'कामद' नामक कहा गया है, जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है। भक्ति पूर्वक श्रद्धालु होकर जो उस दिन सूर्य की आराधना करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर नन्दन का आधिपत्य प्राप्त करता है।१-२। हे सुव्रत! इसके अनुष्ठान में रक्तचन्दन मिश्रित करवीर (कनेर), धूप और घृत की आहुति सूर्य को प्रदान करनी चाहिए। हे वीर! उस पूजन में नैवेद्य, कृशर (खिचडी) के लिए अन्न और तीक्ष्ण सुगन्ध भी उपर्युक्त सामग्री के साथ रहना आवश्यक कहा गया है। हे त्रिपुरसूदन! इसलिए उपवास या नक्त व्रत करते हुए सम्मान पूर्वक उपर्युक्त सामग्रियां प्रदान करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार पूजित होने पर लोक को प्रकाशित करने वाले सूर्य देव उसके सभी मनोरथ की सफलता प्रदान करते हैं, इसीलिए इसे कामद कहा गया है।३-५। इसलिए यह व्रत पुत्र की कामना वाले को पुत्र, धनार्थी को धन, विद्यार्थी को शुभदायिनी विद्या और रोगी को आरोग्यता प्रदान करता है।६। हे गण शार्दूल! उस दिन मंत्रों द्वारा पूजित हाने पर सूर्य भाँति-भाँति के अन्य मनोरथ भी सफल करते हैं इसीलिए इसे 'कामद' कहते हैं।७। जो कोई गात्र-भूषण (कुलभूषण) गोपति (सूर्य) के लिए मंडक (गुड़ घी समेत) मालपूआ प्रदान करता है तो वह इन्द्र लोक के समान तेजस्वी होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में कामद विधि वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त।८५।

---

१ चन्दनाधिपम्। २ चात्र। ३. शक्रतेजसेत्यर्थः।

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

जयवारतिथिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पञ्चतारं भवेद्यत्र नक्षत्रं ते वृषध्वज । वारे तु देवदेवस्य स वारः पुत्रदः स्मृतः ॥१
उपवासो भवेत्तत्र श्राद्धं कार्यं तथा भवेत् । प्राशनं चापि पिण्डस्य मध्यमस्य प्रकीर्तितम् ॥२
सोपवासस्तु यो भक्त्या पूजयेदत्र गोपतिम् । धूपमाल्योपहारैस्तु दिव्यगन्धसमन्वितैः ॥३
एवं पूज्य विदत्वन्त तस्यैव पुरतो निशि । भूमौ स्वपिति वै वीर जपञ्छ्वेतां महानते ॥४
प्रातरुत्थाय च स्नानं कृत्वा दत्त्वार्घ्यमुत्तमम् । रक्तचन्दनसम्मिश्रैः करवीरैर्गणाधिप ॥५
प्रपूज्य ग्रहभूतेशमंशुमन्त त्रिलोचन । वीरं[1] च पूजयित्वा तु ततः श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥६
पञ्चभिर्ब्राह्मणैर्देव दिव्यैर्भौमैश्च[2] सुव्रत । मगसंज्ञौ[3] तत्र दिव्यौ ब्राह्मणौ परिकल्पयेत् ॥७
त्रीनत्र ब्राह्मणान्भौमान्प्रकल्प्यान्धकसूदन । कुर्यादेवं ततः श्राद्धं पार्वणं भास्करप्रियम् ॥८
श्राद्धे त्वथ समाप्ते तु दद्यात्पिण्डं तु मध्यमम् । पुरतो देवदेवस्य स्थित्वा मन्त्रेण सुव्रत ॥९
स एष पिण्डो देवेश योऽभीष्टस्तव सर्वदा । अश्नामि पश्यते तुभ्यं तेन मे सन्ततिर्भवेत् ॥१०
प्रसादात्तव देवेश इति मे भावितं मनः । इत्थं सम्पूजितो ह्यत्र भास्करः पुत्रदो भवेत् ॥११

अध्याय ८६

जयवारतिथि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वृषध्वज ! तुम्हारे जिस (रवि) दिन में पाँच तार (हस्त) नामक नक्षत्र प्राप्त होताहै वह देवाधिदेव (सूर्य) का 'पुत्रद' नामक वार बताया गया है ।१। उसमें उपवास, श्राद्ध एवं मध्यम पिंड का प्राशन भी करना चाहिए ।२। हे महामते ! इस प्रकार उपवास रहकर भक्ति पूर्वक धूप, माला एवं दिव्य गंध समेत उपहारों द्वारा सूर्य की अर्चना करके रात में उन्हीं के सम्मुख भूमि पर महाश्वेता का जप करते हुए शयन करे और प्रातः काल उठकर स्नान करके रक्तचन्दन मिश्रित कनेर के पुष्पों द्वारा उत्तम अर्घ्य प्रदान करते हुए पुनः ग्रहों एवं भूतों के ईश, सूर्य तथा दीपक की पूजा करने के उपरांत श्राद्ध विधान प्रारम्भ करना चाहिए ।३-६। हे देव ! उस (श्राद्ध) में दिव्य और भौम पाँच ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए जिसमें दो ब्राह्मणों के दिव्य (सूर्य) रूप और तीन ब्राह्मणों को भौम रूप बताया गया है ।७। हे अन्धक सूदन ! इसी प्रकार का पार्वण श्राद्ध विधान सूर्य को अत्यन्त प्रिय है ।८। पुनः श्राद्ध की समाप्ति में मध्यम पिंड को मंत्र के उच्चारण पूर्वक देवेश (सूर्य) के सम्मुख रखकर (प्रार्थना रूप) इस प्रकार कहे—हे देवेश ! इस तुम्हारे सदैव प्रिय पिंड का तुम्हारे देखते मैं भक्षण कर रहा हूँ, इससे तुम्हारी कृपा द्वारा मुझे संतान की प्राप्ति अवश्य होगी क्योंकि ऐसा मेरे मन में निश्चित हो

---

१. दीपं च । २. धूपैश्च । ३. मघ ।

अतोऽयं पुत्रदो वारो देवस्य परिकीर्तितः । एदमत्र सदा यस्तु भास्करं पूजयेन्नरः ॥१२
उपवासपरः श्राद्धे स पुत्रं लभते ध्रुवम् । धनं धान्यं हिरण्यं च आरोग्यं सुखदं तथा ॥
सूर्यलोकं च सम्प्राप्य ततो राजा भवेन्नृषु ॥१३
प्रभया द्विजसंकाशः कान्त्या वाम्बुजसन्निभः । वीर्येण गोपतेस्तुल्यो गाम्भीर्ये सागरोपमः ॥१४

(इति पुत्रदविधिवर्णनम्)

ब्रह्मोवाच

दक्षिणे त्वयने यः स्यात्स जयः परिकीर्तितः ॥१५
अत्रोपवासो नक्तं च स्नानं दानं जपस्तथा । भवेच्छतगुणं देव भास्करप्रीतये कृतम् ॥१६
तस्मान्नक्तादि कर्तव्यं यत्स्याच्छतगुणं विभो ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे जयवारतिथिवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।८६।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

जयन्तविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

जयन्तो ह्युत्तरे ज्ञेयश्चायने गणनायक । वारो देवस्य यः स्याद्वै तत्र पूज्योदिवाकरः ॥१

रहा है । इस प्रकार विधान पूर्वक पूजित होने पर सूर्य अवश्य पुत्र प्रदान करते हैं, और इसीलिए इसे देव का 'पुत्रद' नामक वार कहा गया गया है । इस भाँति जो पुरुष उपवास रहकर इस दिन सूर्य की सदा आराधना करता है वह निश्चित पुत्र की प्राप्ति समेत धन, धान्य, सुवर्ण, सुख प्रद आरोग्य तथा सूर्य लोक की प्राप्ति करके पश्चात् मनुष्यों का राजा, होता है जिसकी चन्द्रमा की भाँति कान्ति, कमल की भाँति सौंदर्य, सूर्य के समान पराक्रम और सागर के समान गंभीरता रहती है ।९-१४

ब्रह्मा ने कहा—सूर्य के दक्षिणायन समय में प्राप्त रविवार को 'जप' नामक बताया गया है । हे देव ! उसमें उपवास, नक्त व्रत, स्नान, दान एवं जप आदि सभी पुण्य कर्म सूर्य की प्रसन्नता के लिए करने पर उसके सौगुने फल प्राप्त होते है । इसलिए सूर्य के लिए नक्तव्रत आदि अवश्य करने चाहिए क्योंकि वे सौगुने अधिक फल प्रदान करते रहते हैं ।१५-१७

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के आदित्यवार कल्प में जयवार तिथि वर्णन नामक छियासिवाँ अध्याय समाप्त ।८६।

अध्याय ८७

जयन्तविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले— हे गणनायक ! सूर्य के उत्तरायण रहने के समय में प्राप्त रविवार को 'जयन्त'

---

१. तत्र यां कुरुते पूजाम् ।

पूजितस्तत्र देवेशः सहस्रगुणितं फलम् ।ददाति देवशार्दूल स्नानदानादिकर्मणाम् ॥२
घृते पयसः यत्र स्नानमिक्षुरसेन तु । विलेपनं कुङ्कुमं तु प्रशस्तं भास्करे प्रियम् ॥३
धूपक्रिया गुग्गुलेन नैवेद्ये मोदकः स्मृतः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं कुर्याद्धोमं ततस्तिलैः ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्मोदकांस्तिलशष्कुलीः ॥४
इत्थं यः पूजयेद्भानुं मन्त्रेणैव गणाधिप । सहस्रगुणितं तस्य फलं देवो ददाति वै ॥५
स्नानदानजपादीनामुपवासस्य वै विभो ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे जयन्तविधिवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।८७।

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

विजयवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां प्राजापत्यर्क्षसंयुतः । स ज्ञेयो विजयो नाम सर्वपापभयापहः ॥१
तत्र कोटिगुणं सर्वफलं पुण्यस्य कर्मणः । ददाति भगवान्देवः पूजितश्चन्दनाधिपः ॥२
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवादिपूजनम् । नक्तं चाप्युपवासस्तु सर्वमत्र दिवाकरः ॥३

नामक कहा जाता है, उसमें अवश्य सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।१। हे देव शार्दूल ! उसमें पूजित होने पर सूर्य स्नान आदि कर्मों के सहस्रगुने फल प्रदान करते हैं ।२। घी, दूध, ऊख के रस द्वारा स्नान और कुंकुम का लेपन सूर्य के लिए उत्तम और अत्यन्त प्रिय बताया गया है ।३। इसी भाँति धूप के लिए गुग्गुल और नैवेद्य के स्थान पर मोदक (लड्डू) प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार देवेश (सूर्य) की पूजा करने के पश्चात् तिल के हवन, मोदक तिल की पूरी का ब्राह्मण भोजन कराना बताया गया है ।४। हे गणाधिप ! इस विधान द्वारा जो सूर्य की मंत्रपूर्वक पूजा करते हैं सूर्य उन्हें स्नान दान, जप आदि और उपवास के सहस्र गुने फल प्रदान करते हैं ।५-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्य बार कल्प में जयंत विधि वर्णन नामक सतासीवां अध्याय समाप्त ।८७।

अध्याय ८८

विजयवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यदि शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार के दिन रोहिणी नक्षत्र भी प्राप्त हो जाये तो उसे समस्त पापों का नाशक एवं 'विजय' नामक रविवार कहा जाता है ।१। क्योंकि उस दिन पूजित होने पर चंदनप्रिय भगवान् सूर्य सभी पुण्य कर्मों के कोटि (करोड़) गुने फल प्रदान करते हैं ।२। तथा स्नान, दान, जप, होम, पितरों एवं देवों की अर्चना, नक्तव्रत और उपवास इन सभी कर्मों के भी कोटिगुने फल

कुर्यात्कोटिगुणं सर्वं पूजितो ह्यत्र गोपतिः । तस्मादत्र सदा देवं पूजयेद्भक्तिमान्नरः ॥४
सर्वेशं सप्तद्वीपेशं सप्तसैन्धववाहनम् । सप्तम्यां तु समाराध्य सप्तप्रकृतिसम्भवम् ॥५
सप्तलोकाधिपत्यं तु प्राप्नुते सप्तरश्मिभिः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे विजयवारविधिवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।८८।

अथ नवाशीतितमोऽध्यायः

आदित्याभिमुखविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां माघमासे भवेत्तु यः । स्रादित्याभिमुखो[1] ज्ञेयः शृणु चास्य विधिं परम् ॥१
कृत्वैकभक्तं कृष्णस्य वारे त्रिपुरसूदन[2] । प्रातः कृत्वा ततः स्नानं पूजयित्वा दिवाकरम् ॥२
आदित्याभिमुखस्तिष्ठेद्यावदस्तमनं रवेः । जपमानो महाश्वेतां लाभमाश्रित्य सुव्रत ॥३
चतुर्हस्तमृजं श्लक्ष्णमव्रणं सुसमं दृढम् । रक्तचन्दनवृक्षस्य स्तम्भं कृत्वा गणाधिप ॥४
तमाश्रित्य महाभक्त्या देवदेवं दिवाकरम् । पश्यमानो जपञ्श्वेतां तिष्ठेदस्तमनाद्रवेः ॥५

प्रदान करते हैं। इसलिए भक्तिपूर्वक मनुष्यों को सदैव सूर्य की आराधना करनी चाहिए ।३-४। इस भाँति सर्वेश, सातों द्वीपों के स्वामी तथा सात घोड़ों के वाहन वाले (सूर्य) की सप्तमी में आराधना करने पर उसे सूर्य द्वारा सातों प्रकृतियों से उत्पन्न उन सातों लोकों के आधिपत्य की प्राप्ति होती है ।५-६।

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में विजयवार विधि वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।८८।

अध्याय ८९

आदित्य विधि वर्णन

ब्रह्मा बोले—माघ मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी में प्राप्त रविवार को 'आदित्याभिमुख' नामक वार जानना चाहिए । उसकी उत्तम विधि को बता रहा हूँ, सुनो! ।१। हे त्रिपुर सूदन ! पहले दिन एक बार भोजन करके उस रविवार में प्रातः स्नान पूर्वक सूर्य की पूजा करने के उपरान्त सूर्यास्त तक सूर्याभिमुख होकर खड़ा और उसमें महाश्वेता का जप भी करते रहना चाहिए ।२-३। हे गणाधिप ! इस प्रकार रक्त चंदन के वृक्ष का एक ऐसा स्तम्भ बनाकर जो चार हांथ का लम्बा, सीधा, चिकना, रोगहीन, सम एवं दृढ़ हो ।४। देवनायक सूर्य को उसी में स्थापित कर उन्हें देखते हुए श्वेता का जप करे । यही सूर्यास्त तक खड़ा रहने का विधान बताया गया है पश्चात् गन्ध एवं पुष्पादि द्वारा सूर्य की पूजा ब्राह्मणों को भोजन-एवं

---

१. 'सोचि लेपे चेत्' इति सुलोपः । २. च विधिना सदा ।

१. बुद्धि, अहंकार और पाँच मात्राएँ यही सातों प्रकृति हैं ।

गन्धपुष्पोपहारैस्तु पूजयित्वा दिवाकरम् । ब्राह्मणे दक्षिणां दत्त्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।।६
इत्थमेतं तु यः कुर्यादादित्यप्रीतये नरः । भानुमांस्तस्य प्रीतः स्यात्सर्वं प्रीतो ददादि हि ।।७
धनं धान्यं तथा पुत्रमारोग्यं भार्गवीं यशः । तस्मात्सम्पूजयेदत्र गीर्वाणाधिपतिं हर ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे आदित्याभिमुखविधिवर्णनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ।८९।

अथ नवतितमोऽध्यायः

हृदयवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

रविसङ्क्रमणे यः स्याद्रवेर्वारो गणाधिप । स ज्ञेयो हृदयो नाम आदित्यहृदयप्रियः ।।१
तत्र नक्तं समाश्रित्य देवं सम्पूज्य भक्तितः । गत्वा च सदने भानोरादित्याभिमुखस्थितः ।।२
जपेदादित्यहृदयं सङ्ख्ययाष्टशतं बुधः । अथ वास्तमनं यावद्भास्करं चिंतयेद्धृदि ।।३
गृहमेत्य ततो विप्रान्भोजयेच्छक्तितः शिव । भुक्त्वा तु पायसं वीर ततो भूमौ स्वपेद्बुधः ।।४
योऽत्र सम्पूजयेद्भानुं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । स कामांल्लभते सर्वान्भास्कराद्धृदयस्थितान् ।।५

दक्षिणा प्रदान करने के उपरान्त स्वयं को भी मौन होकर भोजन करना बताया गया है ।५-६। इस भाँति जो मनुष्य सूर्य की प्रसन्नता हेतु उस विधान को सुसम्पन्न करता है उसे प्रसन्न होकर सूर्य सभी (वस्तुएँ) प्रदान करते हैं ।७। हे हर! इस भाँति उसे धन, धान्य, पुत्र, आरोग्य, भूमि एवं यश समेत सभी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । इसलिए इस दिन देवनायक सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में आदित्याभिमुख विधि वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।८९।

अध्याय ९०

हृदयवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे गणाधिप ! सूर्य की संक्राति काल में प्राप्त रविवार को सूर्य के हृदय प्रिय होने के नाते 'हृदय' नामक बताया गया है ।१। अतः इस दिन नक्त व्रत रहकर भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करके उनके मंदिर में उनके सम्मुख स्थित होकरआदित्य हृदय का आठ सौ जप (पाठ) अथवा सूर्यास्त तक हृदय में उसका स्मरण (पाठ) करते रहना चाहिए ।२-३। हे शिव ! पश्चात् घर आकर शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भी खीर भोजन करके भूमि पर शयन करे ।४। इस प्रकार श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो इस दिन सूर्य की आराधना करते हैं, सूर्य उनके हृदय स्थित सभी मनोरथों की सफलता प्रदान करते

तेजसा यशसा तुल्यः प्रभयैषां महात्मनः । शक्रगोपाण्डजानां तु गोपतेर्गोवृषेक्षण ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे हृदयवारविधिवर्णनं
नाम नवतितमोऽध्यायः ।९०।

अथैकनवतितमोऽध्यायः

रोगहरविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पूष्णो भवेद्यदा ऋक्षं भवेच्च भगदैवतम् । वासरः स महाप्रोक्तः सर्वरोगभयापह ॥१
योऽत्र पूजयते भानुं शुभगन्धविलेपनैः । सर्वरोगविनिर्मुक्तो याति भानुसलोकताम् ॥२
अर्कपत्रपुटे कृत्वा पुष्पाण्यर्कस्य सुव्रत । देवस्य पुरतो रात्रौ भक्त्या यः स्थापयेद्बुधः ॥३
पूजयित्वार्कपुष्पैस्तु अर्कमर्कप्रियं सदा । प्राशयित्वार्कपुष्पं[1] तु दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥४
भक्त्या च पायसं वीर रात्रौ स्वपिति भूतले । अनेन विधिना यस्तु पूजयेदत्र वै रविम्[2] ॥५
स मुक्तः सर्वरोगैस्तु[3] गच्छेद्दिनकरालयम्[4] । तस्मादपि व्रजेल्लोकं फुंकाररवहेतिनः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यकल्पे रोगहरविधिवर्णनं
नामैकनवतितमोऽध्यायः ।९१।

हैं ।५। हे गोवृषेक्षण ! उसे इन्द्र, गोप और अण्डज तथा सूर्य के समान तेज, यश एवं कान्ति की भी प्राप्ति होती है ।६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में हृदय वार विधि वर्णन
नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।९०।

अध्याय ९१

रोगहरण विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सूर्य देव के प्रधान पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र में प्राप्त रविवार को सभी रोगों के भय नाशक होने के नाते 'रोगहा' नामक बार कहा जाता है ।१। इस दिन जो उत्तम गंध एवं लेपन द्वारा सूर्य की आराधना करते हैं, उसे समस्त रोगो की मुक्ति एवं सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।२। हे सुव्रत ! मदार के पत्ते की दोनियाँ में मंदार के पुष्पों को संचित कर भक्तिपूर्वक रात में सूर्य के सम्मुख रखे तथा मदार प्रिय सूर्य की पूजा उन्हीं पुष्पों द्वारा सुसंपन्न करके उसका प्राशन करे एवं पुनः ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत स्वयं भी खीर का भोजन करके रात में भूमि शयन करे इस भाँति इस दिन जो इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा करता है, सभी रोगों से मुक्त होकर वह सूर्य लोक की प्राप्ति पूर्वक फुंकार करने वाले (वज्र) अस्त्र के महान् नायक (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति करता है।३-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्य कल्प में रोगहरविधि वर्णन
नामक इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९१।

---

१. पत्रम् । २. द्विजम् । ३. सर्वपापैस्तु । ४. स गच्छेद्भास्करम् ।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

महाश्वेतवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यस्त्वादित्यग्रहस्यास्य वारो देवस्य सुव्रत । शस्यः प्रोक्तः प्रियो लोके ख्यातो गोभुरिभूषणः ॥१
यस्तु पूजयते तस्मिन्पतङ्गं पतगप्रियम् । गन्धपुष्पोपहारैस्तु सूर्यलोकं स गच्छति ॥२
सोपवासो गणश्रेष्ठ आदित्यग्रहणे शुचिः । जपमानो महाश्वेतां खपोषमथवा शिवम् ॥३
पूजयेज्जगतामीशं तमोनाशनमाशुगम् । पूजयित्वा खपोषं तु महाश्वेतां ततो जपेत् ॥४
पूजयित्वा महाश्वेतां रविं देवं समर्चयेत्[1] । महाश्वेतां प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पैः सुपूजिताम् ॥५
तस्या एव बहिः[2] कार्यं स्थण्डिलं सुसमाहितः । शुचौ भूमिविभागे तु वीरं संस्थाप्य यत्नतः ॥६
कुर्याद्धोमं तिलैः स्नातः सर्पिषा च विशेषतः । आदित्यग्रहवेलायां जपेच्छ्वेतां महामते ॥७
मुक्ते दिनकरे पश्चात्स्नानं कृत्वा समाहितः । पूजयित्वा महाश्वेतां खगोल्कं[3] च ग्रहाधिपम् ॥८
ब्राह्मणान् वाचयित्वा च ततो भुञ्जीत वाग्यतः । आदित्यग्रहयुक्तेऽस्मिन्वारे त्रिपुरसूदन ॥९
यत्कर्म क्रियते पुण्यं तत्सर्वं शुभदं भवेत् । स्नानदानजपादीनां कर्मणां गोवृषध्वज ॥१०

अध्याय ९२

महाश्वेतवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रत ! सूर्य-ग्रहण के दिन प्राप्त रविवार को महाश्वेत वार कहा जाता है जो, किरण रूपी आभूषणों से विभूषित श्रवण वाले सूर्य को अत्यन्त प्रिय होने के कारण अत्यन्त प्रिय प्रशस्त है ।१। इसलिए उस दिन जो पक्षी प्रिय का (अरुण के ऊपर कृपा करने वाले) गन्ध एवं पुष्पोपहार द्वारा आराधन करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।२। हे गणश्रेष्ठ ! इस प्रकार सूर्य ग्रहण में पवित्र होकर उपवास करते हुए महाश्वेता या शिव के (मंत्र) जप पूर्वक जगदीश तथा तमनाशक सूर्य की आराधना पूजन खपोष (सूर्य) या महाश्वेता का जप करना चाहिए ।३-४। क्योंकि गन्ध एवं पुष्पों द्वारा महाश्वेता की प्रतिष्ठा और पूजन समेत सूर्य की आराधना बतायी भी गयी है ।५। अतः ध्यान पूर्वक उसकी वेदी बाहर किसी पवित्र भूमि में बनाकर सप्रयत्न उस पर सूर्य की स्थापना करके उन्हें स्नान कराये पश्चात् घी और तिल का हवन करके पुनः उनके ग्रहण के समय महाश्वेता का जप करे और ग्रहण मुक्ति के पश्चात् एकाग्रचित्त होकर स्नान महाश्वेता तथा ग्रहेश्वर सूर्य की पूजा करके ब्राह्मण द्वारा वाचन कराये और उन्हें भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करें । हे त्रिपुर सूदन ! इस भाँति उस ग्रहण के दिन स्नान, दान एवं जप आदि जो कुछ पुण्य कर्म किये जाते हैं, वे शुभ फल प्रदान करते हैं ।६-१०। हे वृषध्वज !

---

१. ततोऽर्हयेत् । २. पुरःकुर्याद्रविकार्यम् । ३. रविं देवं समर्चयेत् ।

अनन्तं हि फलं तेषां भवत्यस्मिन्न संशयः । कृतानां तु गणश्रेष्ठा भास्करस्य वचो यथा ॥११
तस्माद्द्विजगणैः कार्यं पुण्यकर्मविचक्षणैः । एकभक्तं च नक्तं च उपवासं गणाधिप ॥१२
ये वादित्यदिने कुर्युस्ते यान्ति परमं पदम् । धर्म्यं पुण्यं यशस्यं च पुत्रीयं कामदं तथा ॥१३
तस्मिन्दानमपूपस्य गोदानेन समं भवेत् । द्वादशैते महाबाहो वीरभानोर्महात्मनः ॥१४
तुष्टिदाः कथितास्तुभ्यं सर्वपापभयापहाः । पठतां शृण्वतां तात कुर्वतां च विशेषतः ॥१५
कृत्वैकमेषां विधिवद्वारं वृषभवाहन । वृषादित्रितयं प्राप्य चाग्निजामचलां तथा ॥१६
ततो याति परं लोकं वृषकेतो महात्मनः । तेजसाम्बुजसंकाशः प्रभयाण्डजसन्निभः ॥१७
पविहेतिसमो वीर्ये कान्त्या चन्द्रसमप्रभः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे महाश्वेतवारविधिवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।९२।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

भानुमहिमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

येषां धर्मक्रियाः सर्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् । न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥१

निश्चित उनकर्मों को सुसम्पन्न करने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है । हे गणश्रेष्ठ ! क्योंकि यह सब सूर्य के कथनानुसार ही कहा गया है ।११। हे गणाधिप ! इस लिए पुण्य कर्मों के परिवेत्ता को एकाहार, नक्तव्रत और उपवास अवश्य करना चाहिए ।१२। तथा जो इस दिन इस विधान द्वारा इनकी पूजा करते हैं उन्हें उत्तम पद की प्राप्ति होती है । एवं यह धार्मिक अनुष्ठान पुण्य, यश, पुत्र और अनेक कामनाओं की सफलता प्रदान करता रहता है ।१३। उस दिन मालपूए का दान करना गोदान के समान पुण्य प्रदायक बताया गया है । हे महाबाहो ! इस भाँति वीर एवं महात्मा सूर्य के ये बारहों वार जिनकी गाथाओं के मनन करने एवं सुनने पर तुष्टि की प्राप्ति पूर्वक समस्त पापों का नाश होता है, मैं ने सविस्तार बता दिया है ।१४-१५। हे वृषभवाहन ! विधान पूर्वक इनमें एक ही बार के सुसम्पन्न करने से उसे धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता पूर्वक स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।१६। पश्चात् वह कमल के समान सौन्दर्य, सूर्य की भाँति प्रभा, इन्द्र के समान पराक्रम और चन्द्रमा के समान कांति प्राप्त कर शिव लोक की यात्रा करता है ।१७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में महाश्वेतवार विधि वर्णन नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९२।

अध्याय ९३

भानुमहिमा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिन लोगों की समस्त धार्मिक क्रियाएँ सदैव एकमात्र सूर्य के ही उद्देश्य से होती

देवायतनभूमेस्तु गोमयेनोपलेपनम् । यः करोति नरो भक्त्या सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥२
श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा । उपलेपनकर्ता वै चिन्तितं लभते फलम् ॥३
चित्रभानुं विरञ्च्यैव[1] कुसुमैर्यः सुगन्धिभिः । पूजयेत्सोपवासस्तु स कामानीप्सितांल्लभेत् ॥४
घृतेन दीपकं ज्वाल्य तिलतैलेन वा रवेः । प्रयाति सूर्यलोकं स दीपकोटिशतैर्वृतः ॥५
दीपतैलप्रदानेन न याति नरकं नरः । दीपतैलं तिलाश्चैव[2] महापातकनाशनाः ॥६
दीपं ददाति यो नित्यं भास्करायतनेषु[3] च । चतुष्पथेषु तीर्थेषु रूपौजस्वी ह जायते ॥७
यस्तु कारयते[4] दीपं रवेर्भक्तिसमन्वितः । स कामानीप्सितान्प्राप्य वृन्दारकपुरं व्रजेत् ॥८
यः समालभते सूर्यं चन्दनागुरुकुङ्कुमैः । कर्पूरेण विमिश्रैश्च तथा कस्तूरिकान्वितैः ॥९
शुभं कालं कोटिशतं विहृत्य[5] च भवालये । पुनः सञ्जायते भूमौ राजराजो न संशयः ॥
सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥१०
चन्दनोदकमिश्रैश्च दत्त्वार्घ्यं कुसुमै रवेः । सपुत्रपौत्रपत्नीकः स्वर्गलोके महीयते[6] ॥११
सुगन्धोदकमिश्रैस्तु दत्त्वार्घ्यं कुसुमै रवेः । देवलोके चिरं स्थित्वा राजा भवति भूतले ॥१२
स हिरण्येन चार्घेण रक्तोदकयुतेन वा । कोटीशतं तु वर्षाणां स्वर्गलोके महीयते ॥१३

उनके कुल में दारिद्र्य एवं कोई रोग नहीं होता ।१। अतः जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देव-मंदिरों की भूमि को गोमय (गोबर) से शुद्ध (लीपना) करता है, वह उसी समय पाप मुक्त हो जाता है ।२। और श्वेत या रक्त वर्ण, अथवा पीली मिट्टी द्वारा (मंदिर की दीवाल) आदि लीपने वाले को मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं ।३। इस प्रकार जो चित्र भानु (सूर्य) की मूर्ति बनाकर उपवास रहते हुए सुगन्धित पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करता है, उसके अभिलषित मनोरथ की सफलता प्राप्त होती है ।४

जो घी या तिल का दीपक जलाकर सूर्य के सम्मुख स्थापित करता है, वह करोड़ों दीपकों के प्रकाश में प्रस्थापन करते हुए सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।५। और तेल के दीपक प्रदान करने से मनुष्य को नरक की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि दीपक के तेल तथा तिल को महापातकों का नाशक बताया गया है ।६। इस भाँति सूर्य के मन्दिर में चौराहे या तीर्थ में जो नित्य दीपक जलाता है, उसे रूप सौन्दर्य एवं ओज (बल) की प्राप्ति होती है ।७। भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए दीपक प्रदान करने वाले को अभिलषित कामनाओं की सिद्धि पूर्वक देव लोक की भी प्राप्ति होती है ।८

इस प्रकार जो चन्दन, गुगुल, कुंकुम, कपूर एवं कस्तूरी मिश्रित लेप (उबटन) सूर्य के लिए प्रदान करता है, वह करोड़ों वर्ष स्वर्ग में बिहारसुख प्राप्त कर पुनः इस प्रकार का निश्चित राजाधिराज होता है । जो सभी कामनाओं की पूर्ण सफलता प्राप्त कर समस्त लोकों का वन्दनीय होता है ।९-१०

चन्दन-जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करने वाला पुरुष अपने पुत्र, पौत्र एवं स्त्री समेत स्वर्ग लोक में पूजित होता है ।११। उसी प्रकार सुगन्धित जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करने वाला पुरुष चिर काल तक देवलोक के (स्वर्ग) में प्रतिष्ठित रहकर पश्चात् इस पृथ्वी का राजा होता है ।१२। तथा सुवर्ण के अर्घ्य पात्र में स्थित रक्तचन्दन मिश्रित जल द्वारा अर्घ्य प्रदान करने वाला प्राणी सौ करोडों वर्षों तक स्वर्ग लोक में सम्मान प्राप्त करता है ।१३

---

१. विचित्रैर्य । २. दिनान्येव । ३. देवतायतनेषु । ४. धारयते । ५. उषित्वा च । ६. मम लोके ।

पद्मैरभ्यर्चनं कृत्वा रवेः स्वर्गगतो नरः । पद्मे वसति वर्षाणां स्त्रीपद्मशतसंवृतः ॥१४
गुग्गुलं सघृतं दत्त्वा रवेर्भक्तिसमन्वितः[1] । तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१५
पक्षं तु गुग्गुलं दत्त्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया । संवत्सरेण लभते अश्वमेधफलं शिव ॥१६
धूपेन लभते स्वर्गं तुरुष्केण सुगन्धिना । कर्पूरागुरुधूपेन राजसूयफलं लभेत् ॥१७
पूर्वाह्ने मानवो भक्त्या श्रद्धया योऽर्चयेद्रविम । स तत्फलमवाप्नोति यद्दत्ते कपिलाशते ॥१८
मध्याह्ने योऽर्चयेत्सूर्यं प्रयतात्मा जितेन्द्रियः । लभते भूमिदानस्य गोशतस्य च तत्फलम् ॥१९
पश्चिमायां तु सन्ध्यायां योऽर्चयेद्भास्करं नरः । शुचिः शुक्लाम्बरोष्णीषो गोसहस्रफलं लभेत् ॥२०
अर्धरात्रे तु यो हेलिं भक्त्या सम्पूजयेन्नरः । जातिस्मरत्वमाप्नोति कुले जातो वृषान्वितः ॥२१
प्रदोषरात्रिवेलायां यः पूजयति भास्करम् । स गत्वा सहसा वीर क्रीडेत्सौमनसं[2] क्षयम् ॥२२
दण्डनायकवेलायां प्रभातसमये पुनः । पूजयित्वा रविं भक्त्या व्रजेदनिमिषालयम् ॥२३
एवं वेलासु सर्वासु अवेलासु च मानवः । भक्त्या पूजयते योऽर्कमर्कपुष्पैः समाहितः ॥
तेजसादित्यसंकाशो ह्यर्कलोके महीयते ॥२४
अयने तूत्तरे सूर्यमथ वा दक्षिणायने । पूजयेद्यस्तु वै भक्त्या स गच्छेत्कञ्जजालयम् ॥२५

कमलों द्वारा सूर्य की अर्चना करने पर मनुष्य स्वर्ग में सैकड़ों पद्मिनी स्त्रियों (अप्सराओं) के साथ करोड़ों वर्ष तक विहरता रहता है ।१४

उसी प्रकार भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए घी समेत गुग्गुल की धूप प्रदान करने पर उसी समय समस्त पापों से निश्चित मुक्ति हो जाती है ।१५। एक पक्ष (१५ दिन) तक नित्य गुग्गुल की धूप प्रदान करने से ब्रह्महत्या से मुक्ति होती है और संपूर्ण वर्ष तक करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।१६। एवं लोहबान की धूप देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है एवं कपूर मिश्रित अगुरु की धूप प्रदान करने से राजसूय (यज्ञ) के फल की प्राप्ति होती है ।१७। जो पुरुष श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पूर्वार्द्ध में सूर्य की पूजा करता है, उसे सौ कपिला (गौएँ) दान करने के समान फल की प्राप्ति होती है ।१८। इस भाँति जो प्रयत्नशील पुरुष इन्द्रिय संयम पूर्वक मध्याह्न (दोपहर) में सूर्य की पूजा करता है, उसे भूमि दान एवं सौ गौएँ के दान के समान फल की प्राप्ति होती है ।१९। जो पुरुष पश्चिम संध्या (सायंकाल) में पवित्र एवं शुभ्र वस्त्र की पगिया बाँधकर सूर्य की अर्चना करता है, उसे सहस्र गोदान के समान फल की प्राप्ति होती है ।२०। भक्ति- पूर्वक जो मनुष्य आधीरात के समय सूर्य की पूजा करता है, उसकी (अपने) पिछले जन्म के स्मरण समेत धार्मिक कुल में उत्पत्ति होती है ।२१। हे वीर ! जो प्रदोष समय में सूर्य की पूजा करता है, सहसा प्राप्त स्वर्ग में कल्प पर्यंत वह अनेक भाँति की क्रीडाँए करता है ।२२। एवं प्रभा काल में अरुणोदय वेला में भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।२३। इस प्रकार सभी समय-असमय में एकाग्रचित्त एवं भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना मंदार पुष्पों द्वारा सम्पन्न करने पर सूर्य की भाँति तेज प्राप्त कर सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त होता है ।२४। इस प्रकार (सूर्य के) दक्षिणायन एवं उत्तरायण के समय में भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।२५। वहाँ सभी देवताओं में

---

१. भक्त्या समाहितः । २. सागरसंक्षयम् ।

तत्रस्थः पूज्यते केशैः[1] सर्वैः सुमनसैस्तथा । गोपतिः पूज्यते यद्वद्गोपतिप्रमुखैः सुरैः ॥२६
विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च । पूजयित्वा रविं भक्त्या नात्मानं शोचते नरः ॥२७
विबुध्य[2] वा स्वयं वापि यो नमस्कुरुते रविम् । सन्तुष्टो भास्करस्तस्मै गतिमिष्टां प्रयच्छति ॥२८
कृशरापायसापूपपललोन्मिश्रमोदकैः । बलिं कृत्वा तु सूर्याय सर्वकाममवाप्नुयात् ॥२९
मोदकानां प्रदानेन[3] पायसस्य च सुव्रत । मधुमांसरसैश्चापि[4] प्रीयतेऽतीवभास्करः ॥३०
घृतेन तर्पणं कृत्वा सदा स्निग्धो भवेन्नरः । तर्पयित्वा तु मांसेन सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥३१
घृतेन स्नपनं कृत्वा एकाहमुदये रवेः । गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमश्नुते ॥३२
गवां क्षीरेण सन्तर्प्य पुण्डरीकफलं लभेत् । रसेन स्नापयेद्देवमश्वमेधफलं[5] लभेत् ॥३३
सूर्याय तरुणीं[6] धेनुं गामेकां यः प्रयच्छति । कञ्जजामचलां प्राप्य पुनर्लेखपुरं व्रजेत् ॥३४
गोशरीरे तु रोमाणि यावन्ति त्रिपुरान्तक । स तावद्वर्षकोटीस्तु लेखलोके महीयते ॥३५
गोशतं भानवे दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् । अश्वमेधफलं तस्य यः सहस्रं प्रयच्छति ॥३६
गुग्गुलं देवदारुं च दहेन्नित्यं घृतस्रवम् । आज्यधूमो[7] हि देवानां प्रकृत्यैव प्रियः सदा ॥३७
भेर्यादीनि च वाद्यानि शङ्खवेण्वादिकानि च । ये प्रयच्छन्ति सूर्याय यान्ति ते हंसमन्दिरम् ॥३८

वह अत्यन्त प्रभापूर्ण होकर प्रमुख देवों द्वारा सूर्य की भाँति, पूजित होता है ।२६। एवं विषुव, ग्रहण एवं संक्रान्ति समय में सूर्य की पूजा करने पर मनुष्य को कभी भी (अपने मुक्त होने के लिए) चिंतित होना नहीं पड़ता है ।२७। जो किसी के कहने से या स्वयं सूर्य को नमस्कार करता है उसे प्रसन्नता पूर्वक सूर्य अभिलषित गति प्रदान करते हैं ।२८। खिचड़ी (मिले अन्नों का भक्ष्य), खीर, मालपुआ, तथा तिलचूर्ण मिश्रित मोदक को बलि रूप में सूर्य के लिये प्रदान करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं ।२९। हे सुव्रत ! मोदक, खीर और शहद एवं मासरस प्रदान करने से सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।३०। घी के तर्पण प्रदान करने से मनुष्य सदैव प्रसन्नता पूर्ण रहता है और मांस तर्पण प्रदान करने से वह उसी समय पापमुक्त हो जाता है ।३१। इस प्रकार उदय काल में किसी एक दिन भी घी द्वारा सूर्य के स्नान कराने से सहस्र गोदान के फल प्राप्त होते हैं ।३२

गाय के दूध द्वारा तर्पण करने से पुण्डरीक (यज्ञ) तथा रस के द्वारा स्नान कराने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।३३। एवं सूर्य के लिए एक धेनु समर्पित करने से निश्चित लक्ष्मी तथा देवलोक की प्राप्ति होती है ।३४। हे त्रिपुरान्तक ! इस भाँति गाय के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने करोड़ वर्ष देवलोक में सम्मानित होता है ।३५। सूर्य के लिए सौ गोदान करने से राजसूय (यज्ञ) और सहस्र गोदान करने से अश्वमेध के समान फल की प्राप्ति होती है ।३६

गुग्गुल एवं देवदारु की घी पूर्ण और घी की धूप देवताओं को स्वभावतः सदैव प्रिय होती है ।३७। जो भेरी, शंख एवं वेणु आदि वाद्यों को सूर्य के लिए समर्पित करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती

---

१. देवैः । २. बिंबमध्यगतं देवम् । ३. प्रयत्नेन । ४. मधुमांसातिवर्षेण । ५. स्नपनं कृत्वा । ६. तर्पणीम् ।

दत्त्वाग्राहरते यस्तु रवेर्भक्तिसमन्वितः । तीर्थोदकमथैवान्यः स याति विबुधालयम् ।।३९
विमानैः स्त्रीशताकीर्णैः क्रीडयित्वा चिरं नरः । मानुषत्वमनुप्राप्य राजा भवति धार्मिकः ।।४०
छत्रं ध्वजं वितानं च पताकाश्चामराणि च । हेमदण्डानि वै दद्याद्रवेर्यो भक्तिमान्नरः ।।४१
विमानेन स दिव्येन किङ्किणीजालमालिना । सूर्यलोकमतो गत्वा भवत्यप्सरसां पतिः ।।४२
तत्रोष्य सुचिरं कालं स्वर्गात्प्रत्यागतः पुनः । मानुष्ये जायते राजा सर्वराजनमस्कृतः ।।४३
दत्त्वा वासांसि सूर्याय अलङ्कारांस्तथैव च । क्रीडते जनलोकस्थो यावदाभूतसम्प्लवम् ।।४४
गीतवादित्रनृत्यैश्च कुर्याज्जागरणं रवेः । गन्धर्वाप्सरसां मध्ये क्रीडते सुचिरं नरः ।।४५
गन्धैः पुष्पैस्तथा पत्रैः स्तोत्रैर्वा विविधैस्तथा । ये स्तुवन्ति रविं भक्त्या ते यान्ति पतगालयम् ।।४६
उषः स्तुवन्ति ये सूर्यमुपगायन्ति ते सदा । पाठकाश्चारणाश्चैव सर्वे ते स्वर्गगामिनः ।।४७
अश्वयुक्तं युगैर्युक्तं यो दद्याद्रवये रथम् । काञ्चनं वापि रौप्यं वा मणिरत्नान्वितं शुभम् ।।४८
स यानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । स्वर्गलोकमितो गत्वा क्रीडतेऽप्सरसा सह ।४९
यस्तु दारुमयं कुर्याद्रवे रथमनुत्तमम् । स यात्यर्कसवर्णेन[१] विमानेनार्कमण्डलम् ।।५०
यात्रां कुर्वन्ति ये भानोर्नराः संवत्सरादपि । षण्मासाद्वा गणश्रेष्ठ तेषां पुण्यफलं शृणु ।।५१

है ।३८। उसी भाँति भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए वज्र पुष्प एवं तीर्थ जल के प्रदान करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३९। तथा सैकड़ों स्त्रियों के साथ विमान पर स्थित होकर चिर काल तक क्रीड़ा करने के पश्चात् वह मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर धार्मिक राजा होता है ।४०। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक छत्र, ध्वजा, वितान (चाँदनी) पाताका, एवं सुवर्ण के दंडों से विभूषित चामर सूर्य के लिए समर्पित करता है वह दिव्य विमान पर जिसमें किंकड़ी (छोटी-छोटी घंटिया) माला की भाँति लगी हों, बैठकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है और वहाँ अप्सराओं का हार्दिक पति होता है ।४१-४२। एवं पुनः चिरकाल तक स्वर्ग सुख के अनुभव करने के पश्चात् यहाँ मनुष्य कुल में उत्पन्न होकर वह समस्त राजाओं का वन्दनीय राजा होता है ।४३। इस भाँति सूर्य के लिए वस्त्रों एवं आभूषणों के सप्रेम प्रदान करने से (मनुष्य) इस लोक में प्रलय काल पर्यंत क्रीड़ा करते हुए जीवन व्यतीत करता है ।४४। नृत्य, गान एवं वाद्यों द्वारा सूर्य के लिए जागरण करने वाला पुरुष गन्धर्व एवं अप्सराओं के साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करता है ।४५। जो और गंधों, पुष्पों, पत्रों एवं स्तोत्र आदि विविध भाँति से सूर्य की उपासना करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।४६। उषा काल में सूर्य के लिए सदैव स्तुति पाठ एवं गान करने वाले पाठक और चारण अदि सभी लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।४७। इस प्रकार जो कोई सुवर्ण, चाँदी अथवा मणिरत्नों से निर्मित और घोड़े जुते हुए रथ सूर्य के लिए समर्पित करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण एवं किंकड़ी (घंटियों) की मालाओं से सुशोभित विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है ।४८-४९। जो काष्ठ के उत्तम रथ बनवाकर सूर्य के लिए समर्पित करते हैं उन्हें सूर्य के समान विमान पर बैठकर सूर्यमंडल की प्राप्ति होती है ।५०

हे गणश्रेष्ठ ! वर्ष में अथवा छठें मास जो सूर्य की (रथ) यात्रा करते हैं, मैं उनके पुण्यफल को बता

---

१. आज्यधूपः ।

ध्यानिनो योगिनश्चैव प्राप्नुवन्तीह यां गतिम् । तां गतिं प्रतिपद्यन्ते सूर्यवर्त्मावगाहिनः ।।५२
रथं वहन्ति ये भानोर्नरा भक्तिसमन्विताः । अरोगाश्चादरिद्राश्च जातौ जातौ भवन्ति ते ।।५३
कर्तारो रथयात्राया ये नरा भास्करस्य तु । ते भानुलोकमासाद्य विहरन्ति यथासुखम् ।।५४
यात्राभङ्गं तु यो मोहात्क्रोधाद्वा कुरुते नरः । मन्देहास्ते नरा ज्ञेया राक्षसाः पापकारिणः ।।५५
धनं धान्यं हिरण्यं वा वासांसि विविधानि च । ये प्रयच्छन्ति सूर्याय ते यान्ति परमां गतिम् ।।५६
गा वाथ महिषीर्वापि गजानश्वांश्च शोभनान् । य प्रयच्छति सूर्याय तस्य पुण्यफलं शृणु ।।५७
अक्षयं सर्वकामीयमश्वमेधफलं लभेत् । सहस्रगुणितं तच्च दानमस्योपतिष्ठति ।।५८
महीं ददाति योऽर्काय कृष्टां फलवतीं शुभाम् । स तारयति वै वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान् ।।५९
विमानेन च दिव्येन गोपुरं गोपतेर्व्रजेत् । क्रीडत्यप्सरसां मध्ये करीव करिणीगणे ।।६०
ग्रामं ददाति यो भक्त्या सूर्याय मतिमान्नरः[1] । विमानेनार्कवर्णेन स याति परमां गतिम् ।।६१
आरामान्ये प्रयच्छन्ति पत्रपुष्पफलोपगान् । भानवे भक्तियुक्तास्तु ते यान्ति परमां गतिम् ।।६२
मानसं वाचिकं वापि कर्मजं यच्च दुष्कृतम् । सर्वं सूर्यप्रसादेन अशेषं च प्रणश्यति ।।६३

रहा हूँ सुनो ! ।५१। सूर्य की रथयात्रा करने वाले को ध्यानी एवं योगी के समान जाति की प्राप्ति होती है, ऐसा बताया गया है ।५२। इस भाँति भक्तिपूर्वक जो मनुष्य उनके रथ का वहन करते हैं, वे प्रत्येक जन्म में आरोग्य रहते हैं एवं कभी दरिद्र नहीं होते हैं ।५३। सूर्य की रथयात्रा करने वाले मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करके सुख पूर्वक सदैव विहार करते हैं ।५४

उसी प्रकार से मोह अथवा क्रुद्ध होकर उनकी यात्रा भंग करने वाले पुरुष को पापकर्मा मंदेह नामक राक्षस जानना चाहिए ।५५। इसीलिए धन, धान्य, सुवर्ण और भाँति-भाँति के वस्त्रों को सूर्य के लिए समर्पित करने वाले मनुष्य उत्तम गति की प्राप्ति करते हैं ।५६। और अब मैं गाय, भैंस, हाथी एवं सुन्दर घोड़े सूर्य के लिए प्रदान करने वाले के पुण्य फलों को कह रहा हूँ सुनो ।५७। वह पुण्य वहाँ सहस्र गुने तथा अक्षय होकर समस्त कामनाओं को सफल करने वाले अश्वमेध के समान ही फल प्रदान करता है ।५८। जो सूर्य के लिए इस भाँति की भूमि का, जो जोती हुई एवं सस्य (अन्न) पूर्ण रहती है, दान करता है, वह अपने दश पीढ़ी पूर्व के और दश पीढ़ी बाद के (होने वाले) लोगों का उद्धार करता है ।५९। पश्चात् दिव्य विमान पर बैठकर सूर्य के गोपुर की प्राप्ति करके हस्तिनियों के मध्य में हस्ती (हाथी) की भाँति अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है ।६०। एवं जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए गाँव समर्पित करता है, उसे सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठकर उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६१। जो भक्ति पूर्वक बगीचे को, जो पत्र, पुष्प एवं फलों से पूर्ण हो, सूर्य के लिए समर्पित करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६२। इस प्रकार मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किए गए उसके निखिल दुष्कृत, सूर्य की प्रसन्नता से नष्ट हो जाते

---

१. शुभम् ।

आर्तो वा व्याधितो वापि दरिद्रो दुःखितोऽपि वा । आदित्यं शरणं गत्वा नात्मानं शोचते नरः ॥६४
एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् । तद्वै क्रतुशतैरिष्टैः प्राप्यते फलमुत्तमम् ॥६५
कृत्वा प्रेक्षणकं भानोर्दिव्यमायतने शुभम् । अक्षयं सर्वकामीयं राजसूयफलं लभेत् ॥६६
वेश्याकदम्बकं यस्तु दद्यात्सूर्याय भक्तितः । स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र तिष्ठति भानुमान् ॥६७
पुस्तकं भानवे दद्याद्भारतस्य गणाधिप । सर्वपापविमुक्तात्मा विष्णुलोके महीयते ॥६८
रामायणस्य दत्वा तु पुस्तकं त्रिपुरान्तक । वाजपेयफलं प्राप्य गोपतेः पुरमाव्रजेत् ॥६९
भविष्यं साम्बसंज्ञं वा दत्वा सूर्याय पुस्तकम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥७०
सर्वान्कामानवाप्नोति याति सूर्यसलोकताम् । सूर्यलोके चिरं स्थित्वा ब्रह्मलोकं व्रजेत्पुनः ॥
स्थित्वा कल्पशतं तत्र राजा भवति भूतले ॥७१
भानोरायतने यस्तु प्रपां कुर्याद्गणाधिप । स याति परमं स्थानं दिव्यं सौमनसं नरः ॥७२
शीतकाले घनं दद्यान्नराणां शीतनाशनम् । भानोरायतने देव अश्वमेधफलं लभेत् ॥७३
इतिहासपुराणाभ्यां पुण्यं पुस्तकवाचनम् । अश्वमेधसहस्रं यो नित्यं कर्तुं प्रवर्तते ॥
न तत्फलमवाप्नोति यदाप्नोत्यस्य कर्मणः ॥७४
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् । इतिहासपुराणाभ्यां भानोरायतने शुभम् ॥७५

हैं ।६३। क्योंकि आर्त, रोगी एवं दुःख से पीड़ित किसी को भी सूर्य की शरण प्राप्त होने पर अपने (मोक्ष के) लिए चिंतित नहीं होना पड़ता है ।६४। और सूर्य की एक दिन की ही पूजा का फल सौ यज्ञों के समान होता है ।६५। सूर्य के मन्दिर में सुन्दर खेल तमाशे अर्पित करने से अक्षय एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले उस राजसूय के समान फल प्राप्त होते हैं ।६६। सूर्य के लिए वैश्याओं के समूह को नृत्य-गान के हेतु करने से उसे उस परम स्थान की प्राप्ति होती है जहाँ सूर्य स्वयं रहते हैं ।६७। हे गणाधिप ! सूर्य के लिए महाभारत की पुस्तक प्रदान करने वाला पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है ।६८। हे त्रिपुरांतक ! रामायण की पुस्तक समर्पित करने से बाजपेय के समान फल की प्राप्ति पूर्वक सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।६९। सूर्य के लिए राजसूय एवं अश्वमेध के फलों की प्राप्ति होती है ।७०। तथा वह सभी मनोरथों को सफलता पूर्वक सूर्य के सालोक्य रूप (मोक्ष) प्राप्तकरता है तथा सूर्य लोक में चिरकाल तक रहकर पुनः ब्रह्म लोक की भी प्राप्ति करता है । इस प्रकार वहाँ सौ कल्प तक सुखानुभूति करने के पश्चात् इस भूतल में राजा होता है ।७१। हे गणाधिप ! सूर्य के मंदिर में जो (पौसला) स्थापित करता है, उसे देवताओं के दिव्यलोक की प्राप्ति होती है ।७२। इसी भाँति शीत के समय में शीत निवारण के लिए मनुष्यों को सूर्य के मन्दिर में वस्त्र वितरण करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।७३। जो मनुष्य नित्य इतिहास एवं पुराण की पुस्तकों का अध्ययन करता है, उसे सहस्र अश्वमेध के फल से कहीं अधिक फल की प्राप्ति होती है ।७४। इसलिए सूर्य के मन्दिर में इतिहास एवं पुराणों की पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए सदैव प्रयत्न शील रहना चाहिए ।७५। क्योंकि सूर्य के

नान्यत्पुष्टिकरं भानोस्तथा तुष्टिकरं परम् । पुण्याख्यानकथा यास्तु यथा तुष्यति भास्करः ।।७६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे भानुमहिमवर्णनं
नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ।९३।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

पुण्यश्रवणमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अत्राख्यानमृशन्तीह संवादं गणपुङ्गव । पितामहकुमाराभ्यां पुण्यं पापहरं शिवम् ।।१
स्रष्टारं सर्वलोकानां सुखासीनं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा देवं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।२
कुमारो देवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत् । गतोऽहमद्य भगवन्द्रष्टुं देवं दिवाकरम् ।।३
कृत्वा प्रदक्षिणं देवः स मया पूजितो रविः । प्रणम्य शिरसा भक्त्या परया श्रद्धया विभो ।।४
अनुज्ञातस्ततस्तेन सुखासीनो ह्यहं स्थितः । आसीनेन मया तत्र दृष्टमाश्चर्यमद्भुतम् ।।५
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना । मणिमुक्ताविचित्रेण वैदूर्यवरवेदिना ।।६
आगतं पुरुषं तत्र दृष्ट्वा देवो दिवाकरः[1] । ससम्भ्रमं समुत्थाय आसनादेव सत्तम ।।७

लिए उतनी पुष्टि एवं तुष्टि प्रदान करने वाली और कोई वस्तु नहीं है, जितनी कि उनके उपाख्यान की पुण्यकथा ।७६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपुराण के सप्तमी कल्प में भानुमहिमावर्णन नामक
तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९३।

अध्याय ९४

पुण्य श्रवण माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणश्रेष्ठ ! इस विषय में ब्रह्मा और कुमार के संवाद रूप एक आख्यान (कथा) प्रचलित है जो पुण्यरूप, पापनाशक एवं कल्याण प्रद है ।१। हे देवशार्दूल ! एकबार समस्त लोकों के रचयिता ब्रह्मा सुख पूर्वक बैठे हुए थे, उन्हें श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक नतमस्तक से प्रणाम कर कुमार ने उनसे यह कहा—हे भगवन् ! आज सूर्य के दर्शन के लिए मैं गया था ।२-३। हे विभो ! (मैने) अत्यन्त श्रद्धालु होकर भक्ति पूर्वक एवं नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा एवं पूजा भी की ।४। पश्चात् उनकी आज्ञा से सुख पूर्वक बैठ गया । तदन्तर मैंने वहाँ बैठे-बैठे एक अद्भुत आश्चर्य देखा ।५

सुवर्ण के विमान पर, जिसमें चारों ओर से छोटी-छोटी घंटियों का जाल सा लगा था, और मणियों मोतियों से चित्र विचित्र तथा वैदूर्य मणि का उत्तम आसन (बैठने का स्थान) बना हुआ था, बैठकर आये हुए पुरुष को देख कर सूर्य देव अपने आसन से सहसा उठकर सामने गये ।६-७। और उसके

---

१. विभावसुः ।

गृहीत्वा[1] दक्षिणे पाणौ पुरतः प्राप्य तं नरम् । शिरस्याघ्राय देवेश पूजयामास वै रविः ।।८
उपविष्टं तु तं भानुरिदं वचनमब्रवीत् । सुस्वागतं भद्र सुखकृता प्रीतास्त्वया वयम् ।।९
समीपे मम तिष्ठ त्वं यावदाभूतसंप्लवम् । पुनर्यास्यसि तत्स्थानं यत्र ब्रह्मा स्वयं स्थितः ।।१०
एतस्मिन्नंतरे चान्यो विमानवरमास्थितः । आगतः पुरुषो देवो यत्र तिष्ठति भास्करः ।।११
स चाप्येवं नरो देव पूजितो भानुना तदा । सामपूर्वं तथोक्तस्तु प्रश्रयावनतः स्थितः ।।१२
तत्र मे कौतुकं जातं दृष्ट्वा पूजां कृतां तयोः । भानुना देवशार्दूल पृष्टो भानुर्मया ततः ।।१३
किमनेन कृतं देव योऽयं पूर्वमिहागतः । नरस्तव सकाशं वै यस्य तुष्टो भवान्भृशम् ।।१४
यदस्य भवता पूजा कृता हि स्वयमेव तु । अत्र मे कौतुकं जातं विस्मयश्च विशेषतः ।।१५
तथैवास्य कृता पूजा द्वितीयस्य नरस्य च । सर्वथा पुण्यकर्माणाविमौ नरवरोत्तमौ ।।१६
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु पूज्यते भगवान्सदा । यत्त्वमाभ्यां परं पूजां कृतवान्देवसत्तम ।।१७
कथ्यतां मम देवेश किमेतौ कर्म चक्रतुः । यस्येदृक्परमं पुण्यं फलं दिव्यमवापतुः ।।
श्रुत्वा तद्वचनं देव इदं वचनमब्रवीत् ।।१८

सूर्य उवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता कर्मणो निर्णयं परम् ।।१९

दाहिने हाथ को पकड़ कर उसके शिर का आघ्राण किया (सूंधा) और तदुपरान्त सूर्य ने उसकी पूजा भी की ।८। पुनः बैठ जाने पर उससे सूर्य ने इस भाँति ये कहना आरम्भ किया हे भद्र ! आप का स्वागत है, आप ने हमें सुख प्रदान किया अतः हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं । अतः आप महाप्रलय काल पर्यंत यहाँ मेरे समीप हों और पश्चात् जहाँ ब्रह्मा स्वयं स्थित हैं, उस स्थान पर चले जाइयेगा ।९-१०

इसी बीच में अन्य एक सुन्दर विमान पर बैठकर दूसरा पुरुष आया जहाँ सूर्य देव रहते थे ।११। उस पुरुष की उसी प्रकार उन्होंने पूजा तथा शान्ति पूर्ण सुस्वागत किया । तत्पश्चात् पुरुष भी स्वागत के उपरान्त नम्रता पूर्वक (वहाँ) बैठ गया ।१२। हे देव शार्दूल ! सूर्य के द्वारा उन दोनों के इस प्रकार के सम्मान को देखकर मैंने उनसे कौतूहलवश पूछा ।१३। हे देव ! यह जो पहले आप के समीप आया है, इसने ऐसा कौन कर्म किया है, जिससे आप अत्यन्त प्रसन्न हैं ।१४। तथा आप ने स्वयं इसकी पूजा भी की है और यह देख कर मुझें कौतूहल एवं महान् आश्चर्य भी हुआ ।१५। हे देवसत्तम ! इस दूसरे पुरुष की भी पूजा आप ने वैसी ही की है, अतः ये दोनों नरोत्तम सर्वथा पुण्य कर्मा हैं क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आप की पूजा करते हैं और आप ने इन दोनों की पूजा की है ।१६-१७। हे देवेश ! इसलिए इन दोनों ने ऐसे कौन कर्म किये हैं, जिससे इन्हें इस प्रकार के दिव्य पुण्य काल प्राप्त हुए बताने की कृपा करें । इसे सुनकर सूर्य ने कहा ।१८

सूर्य बोले—हे मुनिसत्तम ! आप ने इनके कर्मों का निर्णय रूप बहुत उत्तम प्रश्न किया है । हे

---

१. गृहीत्वा दक्षिणे पादे पुरतः स्थाप्य तं नरम् ।

यदनेन कृतं कर्म नरेण मुनिसत्तम । योऽसौ सूर्यमिहायातस्तच्छृणुष्व महामते ॥२०
येयं मदंशसम्भूतैः पार्थिवैः पालिता सदा । अयोध्या नाम नगरी प्रख्याता पृथिवीतले ॥२१
तत्रासौ वैश्यजातीयो धनपाल इति स्मृतः । तस्याः पुर्यां द्विजश्रेष्ठ दिव्यमायतनं व्यधात्[1] ॥२२
तस्मिन्नायतने दिव्ये ह्याम्नायार्थं तथाश्रितः । ब्राह्मणानां विशिष्टानां पूजयित्वा कदम्बकम् ॥२३
इतिहासपुराणाभ्यां वाचकं च विशेषतः । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठं मुनश्रेष्ठं महामुनिम् ॥२४
पुस्तकं चापि सम्पूज्य गन्धपुष्पोपहारतः । तस्य विप्रकदम्बस्य व्यासस्य च यथाग्रतः ॥२५
प्रकल्प्योक्तो द्विजोऽनेन पाठको[2] वाचकोत्तमः । एष तिष्ठति देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥२६
चातुर्वर्ण्यमिदं वापि श्रोतुकामं कदम्बकम् । तिष्ठ चेह द्विजश्रेष्ठ कुरु पुस्तकवाचनम् ॥२७
येन मे वरदो भानुः[3] सप्त जन्मानि वै भवेत् । यावत्संवत्सरं विप्र प्रगृह्य वृत्तिमुत्तमाम् ॥२८
स्वर्णनिष्कशतं विप्र ततो दास्ये तथापरम् । पूर्णे वर्षे द्विजश्रेष्ठ श्रेयोऽर्थमहमात्मनः ॥२९
एवं प्रवर्तिते तस्मिन्पुण्ये पुस्तकवाचने । षण्मासागतमात्रे तु काले सुरवरोत्तम ॥
तथैवान्तरतश्चायं कालधर्ममुपेयिवान् ॥३०
मया चास्य विमानं तु प्रेषितं कुर्वतो व्रतम् । इत्येषा कर्मणस्तुष्टिः पुण्याख्यानकजार्चिता ॥३१
गन्धपुष्पोपहारैस्तु न तथा जायते मम । प्रीतिर्देववर श्रेष्ठ पुराणश्रवणे यथा ॥३२

महामते ! जो यहाँ (सूर्य के) मेरे समीप आ कर स्थित करते हैं उनके कर्म मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१९-२०। इस पृथिवी पर अयोध्या नाम की एक प्रख्यात नगरी है जो मेरे अंशों से उत्पन्न राजाओं द्वारा सदैव पाली पोषी जाती है ।२१। उसी पुरी में वैश्य वंश का रत्नरूप धनपाल नामक वैश्य रहता था । हे द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ उसने एक सुन्दर मेरा मन्दिर बनवाया था और उसने मन्दिर में विशिष्ट ब्राह्मणों के एक समूह को पूजा सत्कार पूर्वक वेदपाठ करने के लिए नियुक्त किया ।२२-२३। पश्चात् उसने भी ब्राह्मणों विशेष कर इतिहास एवं पुराण के मर्मज्ञ वाचक भी जो द्विजों एवं मुनियों में श्रेष्ठ एवं महामुनि थे, उनकी पुस्तक की गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा पूजा करके पुनः उन ब्राह्मणों तथा कथावाचक व्यासों से उसने कहा ।२४-२५। हे देव ! सहस्र किरणों वाले देव नायक सूर्य यहाँ विराजमान हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! चारों वर्णों के मनुष्य एवं यह ब्राह्मण समूह भी कथा सुनने के लिए यहाँ नित्य प्रति उपस्थित रहेंगें इसलिए आप इस पुस्तक का पाठ करना इस प्रकार आरम्भ करें जिसके सुनने से सात जन्म तक मेरे ऊपर सूर्य का वरद हस्त रहे । हे विप्र ! मैं आप की सेवा में पूर्ण वर्ष के लिए सुवर्ण की सौ मोहरें अर्पित कर रहा हूँ अतः इस सुवर्ण रूपी वृत्ति को स्वीकार कीजिए, और अपने कल्याण के निमित्त मैं और भी कुछ देता ही रहूंगा ।२६-२९। हे सुरवरोत्तम ! इस प्रकार उस पुण्य पुस्तक के पाठ (कथा) करने की व्यवस्था करके छह मास के व्यतीत होते ही वह अपने कलेवर के परित्यागरूप मृत्यु की गोद में सदैव के लिए सोगया ।३०। मैं ने उसी व्रती के लिए यह विमान भेजा था और यह वही व्यक्ति है तथा इसके कर्मों से प्रसन्न होने का यही कारण भी है औरं उस पुण्य कथा की चर्चा से ही मैं प्रसन्न हुआ था ।३१

---

१. मम । २. याचकः । ३. देवः ।

गोसुवर्णहिरण्यानां वस्त्राणां चापि कृत्स्नशः । ग्रामाणां नगराणां च दानं प्रीतिकरं मम ।।३३
न तथा स्यात्सुरश्रेष्ठ यथा प्रीतिकरं गुह । इतिहासपुराणाभ्यां श्रवणं सुरसैन्यप ।।३४
श्राद्धं कुर्वन्ति ये मह्यं भक्ष्यभोज्यैरनेकशः । न करोति तथा प्रीतिर्यथा पुस्तकवाचनम् ।।३५
कर्णश्राद्धे यथा प्रीतिर्मम स्यात्सुरसत्तम । न तथा जायते प्रीतिर्भोज्यश्राद्धे तथैव च ।।३६
अथ किं बहुनोक्तेन नान्यत्प्रीतिकरं मम । पुण्याख्यानादृते देव गुह्यमेतत्प्रकीर्तितम् ।।३७
यश्चायमपरो विप्र ह्यायातो नरोत्तमः । अयमासीद्द्विजश्रेष्ठस्तस्मिन्नेव पुरोत्तमे ।।३८
एकदा तु गतश्चायं धर्मश्रवणमुत्तमम् । श्रोतुं भक्त्या द्विजश्रेष्ठ श्रद्धया परया वृतः ।।३९
श्रुत्वा तत्र ततो भक्त्या पुण्याख्यानमनुत्तमम् । कृत्वा प्रदक्षिणं तस्य वाचकस्य महात्मनः ।।
एष विप्रोऽमरश्रेष्ठ दत्तवान्स्वर्णमाषकम् ।।४०
दत्त्वा तु दक्षिणां तस्मै वाचकायमितौजसे[1] । आनन्दमगमद्विप्रः प्राप्तवान्काञ्चनं यथा ।४१
एतद्धि सफलं चास्य न चान्यत्कृतवानयम् । यदनेन कृता पूजा वाचकस्य महात्मनः ।।
फलं हि कर्मणस्तस्य यन्मया पूजितः स्वयम् ।।४२
वाचकं पूजयेद्यस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । तेनाहं पूजितः स्यां वै को विष्णुः शङ्करस्तथा ।।४३

हे देवश्रेष्ठ ! इसलिए पुराण के सुनने से मैं जितना प्रसन्न होता हूँ गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा उतना प्रसन्न कभी नहीं होता ।३२। हे सुरश्रेष्ठ ! हे गुह ! हे सुरसैन्धव ! गौएँ, सुवर्ण, रत्नों, वस्त्रों, गाँवों एवं नगरों के दान देने से मुझे उतनी प्रसन्नता ही नहीं है, जितनी कि इतिहास एवं पुराण के (पारायण) सुनने, सुनाने से ।३३-३४। एवं जो कोई मेरे उद्देश्य से भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थों द्वारा श्राद्ध करते हैं, उनके (इस) कर्म से भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी कि पुस्तक के (पाठ) से होती है ।३५। हे सुरोत्तम ! इस प्रकार कर्ण श्राद्ध (कथा सुनने) की भाँति प्रसन्नता मुझे भोज्य श्राद्ध में भी कभी नही प्राप्त होती है ।३६। हे देव ! और अधिक क्या कहूँ, बस पुण्य कथा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, यह तुम्हें गुप्त (रहस्य) बता रहा हूँ ।३७

हे विप्र ! यह जो दूसरा नर रत्न यहाँ आया है, यह भी उसी नगरी में श्रेष्ठ ब्राह्मण था ।३८। एकबार यह अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक धार्मिक कथा सुनने के लिए वहाँ गया था और भक्तिपूर्वक उस पवित्र कथा को सुनकर इसने उन कथा वाचक महात्मा की प्रदक्षिणा की तत्पश्चात् उन्हें एक माशा सुवर्ण भी सर्मपित किया था ।३९-४०। उपरांत उस अतुल तेजस्वी कथा वाचक को दक्षिणा अर्पित करके सुवर्ण प्राप्त किसी दरिद्र की भाँति आनन्द विभोर होता हुआ वहाँ से अपने गृह चला गया था ।४१। बस यही एक सफलता पूर्ण कार्य इसने अपने जीवन में किया और कभी कुछ नहीं किन्तु इसने जो कथावाचक उस महात्मा की पूजा की है उसी कर्म का यह फल है कि मैं ने स्वयं इसकी पूजा की ।४२

अतः श्रद्धालु होकर एवं भक्ति पूर्वक जो मनुष्य कथा वाचक की पूजा करता है, उससे मेरी ही भाँति ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी प्रसन्न होते हैं ।४३। भक्ति पूर्वक जो उत्तम भक्ष्य पदार्थों से कथा

---

१. महात्मने ।

वाचकं भोजयेद्यस्तु भक्त्या भोज्यैरनुत्तमैः । तेनाहं पूजितः स्यां वै दश वर्षाणि पञ्च च ।।४४
न यमो न यमी चापि न मन्दो न मनुस्तथा । तपती न तथाभिष्टा यथेष्टो वाचको मम ।।४५
वाचके सत्कृते देव भोजिते सुरसैन्यप । तृप्तिर्भवति मे देव संवत्सरशतद्वयम् ।।४६
न केवलं मम प्रीतिर्वाचके भोजिते भवेत् । कृत्स्नशो देवतानां च इन्द्रादीनां तथा भवेत् ।।४७
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां स चेष्टो वाचको मम । प्रीते तस्मिन्देवताः स्युःसर्वाः प्रीताः न संशयः ।।४८
इत्येतत्कथितं सर्वाभ्यां कर्म महाबल ।।४९
न चान्यच्चक्रतुः कर्म किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि । एतद्दृष्ट्वाहमाश्चर्यं तवाभ्याशमिहागतः ।।
किमत्र तथ्यं देवेश कथ्यतां कौतुकं मम ।।५०
श्रुत्वा कुमारवचनं सर्वलोकपितामहः ।।५१

ब्रह्मोवाच

हन्त भोः साधु पुण्योऽसि नास्ति तुल्यस्त्वयापरः । यद्दृष्टौ भवता तौ हि सुपुण्यौ पुण्यकारिणौ ।।५२
यदुक्तं भानुना वत्स तत्तथा नान्यथा भवेत् । यदासीन्मे मुखं पुत्र प्रथमं लोकपूजितम् ।।५३
तस्मादेतानि सर्वाणि निर्गतानि समन्ततः । इतिहासपुराणानि लोकानां हितकाम्यया ।।५४
यथैतानि ममेष्टानि पुराणानि महामते । न तथा वै चतुर्वेदी न चाङ्गानि महामते ।।५५
शृण्वन्त्येतानि ये भक्त्या नित्यं श्रद्धासमन्विताः । दत्त्वा तु वाचके वृत्तिं ते गच्छन्ति परं पदम् ।।५६

वाचक को भोजन कराता है, उसने यानी पन्द्रह वर्ष तक निरन्तर मेरी ही आराधना की है ऐसा समझना चाहिए ।४४। क्योंकि यम, यमी, शनैश्चर, मनु, एवं तपती ये सभी मेरे सन्तान भी कथा वाचक के समान मुझे उतने प्रिय नहीं है ।४५। हे देव ! हे सुरसैन्य ! कथा वाचक के सत्कार और भोजन कराने, करने से (उस व्यक्ति के उपर) मैं दो सौ वर्ष तक पूर्ण (प्रसन्न) रहता हूँ ।४६। और कथावाचक का भोजन कराने से केवल मैं ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण इन्द्रादिक देवता भी मेरे समान ही प्रसन्न होते हैं ।४७। और मेरी ही भाँति ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को भी वाचक उतना ही प्रिय होता है, क्योंकि उसी के प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं, इसमें संदेह नहीं ।४८

हे महाबल ! इस भाँति इन दोनों अन्य व्यक्तियों के द्वारा किये गये कर्मों को मैंने तुम्हें बता दिया ।४९। इन दोनों ने इसके अतिरिक्त और कोई पुण्य कर्म नहीं किया है अब और क्या सुनना चाहते हो ! हे देवेश ! तदुपरान्त इस आश्चर्य को देखकर मैं आप के पास आया हूँ, मेरे कौतूहल को बताइये कि इसमें क्या सत्य निहित है । कुमार की बातें सुनकर ।५०

ब्रह्मा बोले—आप साधु एवं पुण्यात्मा हैं, आप के समान पुण्य कर्मा दूसरा कोई नहीं है क्योंकि आपने उन दोनों पुण्य कर्म करने वाले पुण्यात्माओं के दर्शन भी किये हैं ।५१-५२। हे वत्स ! सूर्य ने जो कुछ कहा है, उसमें कोई अंश असत्य नहीं है । हे पुत्र ! क्योंकि मेरे इस लोक पूजित प्रथम मुख द्वारा लोक की हित कामना वश ये सभी इतिहास पुराण निकले हैं ।५३-५४। हे महामते ! इसीलिए मुझे आप जैसे ये पुराण प्रिय हैं, वैसे चारों वेद या उनके अंग प्रिय नहीं हैं ।५५। जो इस भाँति श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक कथा वाचक के लिए वृत्ति प्रदान कर नित्य कथा सुनते रहते हैं उन्हें उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।५६। हे

धर्मार्थकाममोक्षाणां स्पष्टीकरणमुत्तमम् । इतिहासपुराणानि मया सृष्टानि सुव्रत ।।५७
चत्वारो य इमे वेदा गूढार्थाः सततं स्मृताः । अतस्त्वेतानि सृष्टानि बोधायैषां महामते ।।५८
यस्तु कारयते नित्यं धर्मश्रवणमुत्तमम् । आदित्याद्भास्करं प्राप्य याति तत्परमं पदम् ।।५९
दत्त्वा तु दक्षिणां तत्र आदित्यस्य पुरं व्रजेत् । किमाश्चर्यं सुरश्रेष्ठ दानपात्रं हि तत्परम् ।।६०
यथा देववरो लेखो यथा हेतिः परं पविः । ब्राह्मणानां तथा श्रेष्ठो वाचको नात्र संशयः ।।६१
हेतिर्यथा तेजसां तु सरसां सागरो यथा । तथा सर्वद्विजेभ्यस्तु वाचकः प्रवरः स्मृतः ।।६२
वाचकं पूजयेद्यस्तु नरो भक्तिपुरः सरम् । पूजितं सकलं तेन जगत्यान्नात्र संशयः ।।६३
सत्यमुक्तं न सन्देहो भानुना मत्कुलोद्वह । वाचकेन समं पात्रं न जात्वन्यद्भवेत्क्वचित् ।।६४
तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं कुमारो वाक्यमब्रवीत् ।।६५
अहो हि धन्यता तस्य पुण्यश्रवणकारिणः । दानं च ददतोऽत्यर्थं पुण्यता वाचकाय वै ।।६६

ब्रह्मोवाच

इत्थं दिण्डे सदा यस्तु देवदेवस्य मन्दिरे । कुर्यात्तु धर्मश्रवणं स याति परमां गतिम् ।।६७

श्रीभविष्यमहापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे पुण्यश्रवणमाहात्म्य वर्णनं
नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।९४।

सुव्रत ! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के रूप को स्पष्ट प्रदर्शित करने के लिए ही मैंने इतिहास एवं पुराणों की रचना की है ।५७। हे महामते ! इन चारों वेदों का अर्थ अत्यन्त गूढ़ है, इसलिए इनके अर्थ का भली भाँति बोध (ज्ञान) होने के लिए भी इनकी रचना हुई है ।५८। अतः जो नित्य इन धार्मिक कथाओं का श्रवण कराता है, वह सूर्य द्वारा तेज प्राप्त कर परम पद की प्राप्ति करता है ।५९। और (कथा वाचक की) दक्षिणा प्रदान करने से उसे सूर्य लोक की भी प्राप्ति होती है, हे सुरश्रेष्ठ ! इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं क्योंकि उससे उत्तम कोई दान का अन्य पात्र हीं नहीं बताया गया है ।६०

देवों में इन्द्र तथा अस्त्रों में वज्र की भाँति ब्राह्मणों में कथावाचक ही सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं इसमें संदेह नहीं ।६१। इस प्रकार तेजस्वी होने के नाते (अस्त्रों में) वज्र और जलाशयों में सागर की भाँति समस्त द्विजों में वाचक ही श्रेष्ठ होता है ।६२। इसलिए भक्ति पूर्वक जो मनुष्य वाचक की पूजा करता है, उसने समस्त जगत् की पूजा की इसमें संदेह नहीं ।६३। हे मेरे कुल श्रेष्ठ ! इस भाँति सूर्य ने जो कुछ कहा है वह ध्रुव सत्य है कि वाचक के समान उत्तम पात्र अन्य कोई नहीं है ।६४। अनन्तर ब्रह्मा की इस प्रकार की बातें सुनकर कुमार ने भी कहा कि—उस पुण्य कथा के सुनने वाले को शतशः धन्यवाद है जो वाचक के लिए दान अर्पित करते हुए पुण्य प्राप्त करता रहता है ।६५-६६

ब्रह्मा ने कहा—हे द्विज ! इस भाँति जो देवाधिदेव सूर्य के मन्दिर में नित्य धर्म की चर्चा सुनता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में पुण्य श्रवण माहात्म्य वर्णन
नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९४।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

आदित्यालयमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

त्रिभिः प्रदक्षिणां कृत्वा यो नमस्कुरुते रविम् । भूमौ गतेन शिरसा स याति परमां गतिम् ॥१
सोपानत्को देवगृहमारोहेद्यस्तु मानवः । स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः ॥२
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि समुत्सृजति यस्तु वै । देवस्यायतने भानोः स गच्छेन्नरकं क्रमात् ॥३
घृतं मधु पयस्तोयं तथेक्षुरसमुत्तमम् । स्नपनार्थं तु देवस्य ये ददतीह मानवाः ॥
सर्वकामानवाप्येह ते यान्ति हेलिमण्डलम् ॥४
स्नाप्यमानं रविं भक्त्या ये पश्यन्ति वृषध्वज । तेऽश्वमेधफलं प्राप्य लयं यान्ति वृषध्वजे ॥५
स्नपनं ये च कुर्वंति भानोर्भक्तिसमन्विताः । लभन्ते तत्फलं भीम राजसूयाश्वमेधयोः ॥६
यथा न लङ्घयेत्कश्चित्स्नपनं भास्करस्य तु । तथा कार्यं प्रयत्नेन लङ्घितं ह्यसुखावहम् ॥७
तामिस्रं नरकं याति लङ्घयेच्च स रौरवान् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं स्नपनमादितः ॥८
घृतेन स्नापयेद्देवं कञ्जमाप्नोति मानवः । मधुना प्रियमायाति तोयेनापि घृतौकसम् ॥९

अध्याय ९५

आदित्यालय माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जो तीन बार सूर्य की प्रदक्षिणा करके उन्हें भूमि में शिर से (साष्टांग) नमस्कार करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।१। इस भाँति जूते पहने हुए जो मनुष्य मन्दिरों में जाता है, उसे तामिस्र नामक नरक की प्राप्ति होती है ।२। तथा जो सूर्य के मन्दिर में थूकता है अथवा पाखाना, पेशाब करता है, उसे क्रमशः (सभी) नरकों की प्राप्ति होती रहती है ।३। जो मनुष्य घी, शहद, दूध, जल एवं ऊख के रस सूर्य के स्नान के लिए समर्पित करता है, उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक सूर्य के मंडल की प्राप्ति होती है ।४। हे वृषध्वज ! जो स्नान करते हुए सूर्य का दर्शन करता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक शिव में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।५। हे भीम ! भक्ति पूर्वक जो सूर्य को स्नान कराते हैं उन्हें राजसूय तथा अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।६। और सूर्य के स्नान किये हुए जल का उल्लंघन कोई न करे इसका विशेष ध्यान रखते हुए प्रयत्न पूर्वक स्वयं वैसा ही करे क्योंकि उसे लांघने पर ऐसे मनुष्य को फल की प्राप्ति होती है जिसमें रौरव तामिस्र आदि नरकों की प्राप्ति अनिवार्य रहती है । इसलिए प्रयत्न पूर्वक सूर्य के स्नान एकान्त स्थान में ही कराना चाहिए जिससे कोई उसे लाँघ न सके । स्नान कराने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उसी भाँति शहद द्वारा स्नान कराने से (सूर्य का) प्रिय पात्र जलद्वारा स्नान कराने से देवलोक ऊख, के रस द्वारा स्नान कराने से वायुलोक तथा इन

इक्षुरसेन संस्नाप्य पयसा कञ्जशब्दजम् । एवमेभिः स्नापयेद्वै रविमीहितमाप्नुयात् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मेपर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यालयमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।९५।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

जयानामसप्तमीवर्णनम्

दिण्डिरुवाच

यच्चैताः सप्त सप्तम्यो भवता कथिता मम । तासां या प्रथमा देव कथिता सा सविस्तरा ॥१
यास्त्वन्या देवशार्दूल ताः सर्वाः कथयस्व मे । येनोपोष्य ततस्तास्तु व्रजेऽहं हेलिसद्म वै ॥२

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां नक्षत्रं पञ्चतारकम् । यदा स्यात्सा तदा ज्ञेया जया नामेति सप्तमी ॥३
तस्यां दत्तं[1] हुतं जापस्तर्पणं देवपूजनम् । सर्वं शतगुणं प्रोक्तं पूजा चापि दिवाकरे ॥४
भास्करस्य प्रिया ह्येषा सप्तमी पापनाशिनी । धन्या यशस्या पुत्र्या च कामदा कञ्जजावहा ॥५
विधिनानेन कर्तव्या तिथिर्या मम विद्यते । तं शृणुष्व विधिं मत्तो येन कृत्वार्थमश्नुमते ॥६

सभी वस्तुओं के मिश्रण द्वारा स्नान कराने से मनुष्य को अभीष्ट की सिद्धि होती है ।७-१०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यालय माहात्म्य वर्णन नामक पंचानबेवां अध्याय समाप्त ।९५।

अध्याय ९६

जयानामक सप्तमी का वर्णन

दिंडि ने कहा—हे देव ! इस प्रकार उन सातों सप्तमियों में जिन्हें आपने पहले बताया था, पहली (सप्तमी) का ही विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है ।१। हे देव शार्दूल ! अतः शेष अन्य सप्तमियों के विधान को भी जिनके आचरण द्वारा सूर्य लोक की प्राप्ति कर सकूँ, मुझे बताने की कृपा कीजिए ।२

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उसे जया सप्तमी कहा जाता है ।३। उसमें किये गये दान, हवन, जप, तर्पण, देवपूजन तथा सूर्य की पूजा सौगुने फल प्रदान करती है ।४। और यह सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय होने के नाते पापनाशिनी एवं प्रशंसनीय भी है तथा यश, पुत्र, एवं कामनाओं समेत लक्ष्मी प्रदान करती है ।५। अतः जिस विधान द्वारा मेरी इस तिथि (सप्तमी) में व्रत आदि करके मनोरथ सिद्ध करते हैं उसे मैं बता रहा हूँ सुनो ।६

---

१. दानमित्यर्थः, अयं भावनिष्ठान्तः प्रयोगः । एवं हुतमित्त्रापि हवनमित्यर्थो बोध्यः ।

हंसे हंसमारूढे शुक्लेयं सप्तमी पुरा । समुपोष्य च कर्तव्या विधिनानेन शङ्कर ।।७
पारणा तृतीयाऽहे स्यात्कथितं गोवृषावहम् । प्रथमं चतुरो मासान्पारणं कथितं बुधैः ।।८
कथितान्यत्र पुष्पाणि करवीरस्य सुव्रत । चन्दनं च तथा रक्तं धूपार्थं गुग्गुलं परम् ।।९
कांसारं तु सुपक्वं च नैवेद्यं भास्कराय वै । अनेन विधिनापूज्य मार्तण्डं विबुधाधिपम् ।।१०
पूजयेद्ब्राह्मणान्भीम भक्ष्यभोज्यैर्यथाविधि । कांसारं भोजयेद्विप्रान्पारणेऽस्मिन्विचक्षणः ।।
स्वयमेव तथाऽश्नीयात्प्रयतो मौनमाश्रितः ।।११
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रवर्तते । कृत्वोपवासं सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ।।१२
षष्ठ्या समेता कर्तव्या नाष्टम्येयं कदाचन । यस्योपवासनायैव षष्ठ्यामाहुरुपोषितम् ।।१३
यथैकादश्यां कुर्वन्ति उपवासं मनीषिणः । उपवासनाय द्वादश्यां तथेयं परिकीर्तिता ।।१४
सिद्धार्थकैः स्नानमन्त्रः प्राशनं गोमयस्य तु । भानुर्मे प्रीयतामत्र दन्तकाष्ठं तथार्कजम् ।।१५
इत्येष कथितस्तात प्रथमे पारणे विधिः । द्वितीयं श्रूयतां भीम पारणं गदतो मम ।।१६
मालतीकुसुमानीह श्रीखण्डं चन्दनं तथा । नैवेद्यं पायसं भानोर्धूपं विजयमादिशेत् ।।१७
ब्राह्मणान्भोजयेद्वापि तथाऽश्नीयात्स्वयं विभो । रविर्मे प्रीयतामत्र नाम देवस्य कीर्तयेत् ।।१८

हे शंकर ! पहले समय की बात है जबकि सूर्य के एकबार अश्वारुढ़ होने (उदयकाल) के समय यह सप्तमी शुक्लवर्ण की हो गई थी, अतः उपवास पूर्वक इसी विधान द्वारा इसे उसी भाँति सुसम्पन्न करना चाहिए ।७। और इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान में तीसरे दिन पारण करना बताया गया है ऐसा शंकर जी से उन्होंने कहा । इस प्रकार चार मास के व्रत विधान सुसम्पन्न करने के उपरान्त यह पहला पारण करना विद्वानों ने बताया ।८। हे सुव्रत ! इसमें करवीर के पुष्प, रक्त चन्दन, गुग्गुल की धूप, पके कसेरू के फल तथा नैवेद्य सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए । हे भीम ! विधान द्वारा देव नामक सूर्य की पूजा सम्पन्न करने के उपरांत उत्तम भक्ष्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों की पूजा करना एवं इसका पारण बताया गया है बुद्धिमान् को चाहिए कि कसेरु के फल से ब्राह्मणों को तृप्त भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भी मौन होकर उसे भक्षण करे ।९-११। यद्यपि उसका इस प्रकार विधान बनाया गया है कि पंचमी में एक भक्त (एकाहार) षष्ठी में नक्तव्रत एवं सप्तमी में उपवास करके अष्टमी में पारण करना चाहिए ।१२। तथापि षष्ठी युक्त ही (व्रत आदि के लिए) इसका ग्रहण करना श्रेष्ठ कहा गया है, अष्टमी युक्त नहीं । क्योंकि उपवास के लिए षष्ठी तिथि ही निश्चित बतायी गयी है ।१३

जिस प्रकार एकादशी के उपवास में शुद्ध एकादशी के प्राप्त न होने पर द्वादशी (युक्ता) में भी विद्वानों ने उपवास करना बताया है, उसी भाँति सप्तमी के उपवास में उसके शुद्ध रूप के प्रभाव होने पर षष्ठी (युक्ता) सप्तमी का ग्रहण करना बताया गया है ऐसा जानना चाहिए ।१४। सरसों के उबटन लगाकर स्नान, मदार की दातून एवं गोमय के प्राशन करके इस भाँति कहे कि मेरे इन कर्मों द्वारा सूर्य प्रसन्न हों ।१५। हे तात ! इसी प्रकार पहले पारण की यह विधि बतायी गई है । हे भीम दूसरे पारण की भी विधि मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१६। इसमें मालती के पुष्प, मलयागिरिचंदन, नैवेद्य खीर तथा विजय धूप उनकी सेवा में अर्पित करना बताया गया है ।१७। हे विभो ! ब्राह्मण भोजन तथा स्वयं भोजन करने के अनन्तर मेरे ऊपर रवि प्रसन्न हो ऐसा उनके नाम का कीर्तन करे ।१८। हे वीर !

प्राशयेत्पञ्चगव्यं तु खदिरं दन्तधावने । द्वितीये पारणे वीर विधिरुक्तो मयाधुना ।।१९
तृतीयं पारणं चापि कथ्यमानं निबोध मे । अगस्तिकुसुमैरत्र भास्करं पूजयेद्बुधः ।।२०
समालम्भनमत्रोक्तं श्रीखण्डं कुसुमं तथा । सिह्लको धूप उद्दिष्टो भानोः प्रीतिकरः परः ।।२१
शाल्योदनं तु नैवेद्यं रसालोपरिसंयुतम् । ब्राह्मणानां तु दातव्यं भक्षयेत तथात्मना ।।२२
कुशोदकप्राशनं तु बदर्या दन्तधावनम् । विकर्तनः प्रीयतां मे नाम देवस्य कीर्तयेत् ।।२३
वर्षासु देवदेवस्य पूजा कार्या विधानतः । गन्धपुष्पोपहारैस्तु नानाप्रेक्षणकैस्तथा ।।२४
गोदानैर्भूमिदानैर्वा ब्राह्मणानां च तर्पणैः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं देवस्य पुरतः स्थितः ।।२५
कारयेत्परमं पुण्यं धन्यं पुस्तकवाचनम् । वस्त्रैर्गन्धैस्तथा धूपैर्वाचकं पूजयेत्ततः ।।२६
देवस्य पुरतः स्थित्वा ततो मन्त्रमुदीरयेत् । देवदेव जगन्नाथ सर्वरोगार्तिनाशन ।।
ग्रहेश लोकनयन विकर्तन तमोऽपह ।।२७
कृतेयं देवदेवेश जया नामेति सप्तमी । मया तव प्रसादेन धन्या पापहरा शिवा ।।२८
अनेन विधिना वीर यः कुर्यात्सप्तमीमिमाम् । तस्य स्नानादिकं सर्वं भवेच्छतगुणं विभो ।।२९
कृत्वेमां सप्तमीं वीर पुरुषः प्राप्नुयाद्यशः । धनं धान्यं सुवर्णं च पुत्रभार्यबलं श्रियम् ।।३०
प्राप्येह देवशार्दूल सूर्यलोकं स गच्छति । तस्मादेत्य पुनर्भूमौ राजराजो भवेद्बुधः ।।३१

इसमें पंचगव्य का प्राशन और खैर की दातून भी करनी चाहिए। इस भाँति इस दूसरे पारण के विधान को भी मैंने बता दिया है।१९। अब तीसरे पारण को मैं बता रहा हूँ, सुनो! इसके विधान में विद्वानों को अगस्त्य पुष्पों द्वारा सूर्य का पूजन करना बताया गया है। उबटन के लिए श्रीखंड चंदन और पुष्पों को पहले ही बता दिया गया है। एवं सिह्लक धूप, जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है अवश्य समर्पित करना चाहिए।२०-२१। आम के फलों समेत (साली) धान के चावल और नैवेद्य ब्राह्मणों को अर्पित करके स्वयं भी यही भोजन करें।२२। (इसमें) कुशोदक का प्राशन और बैर की लकड़ी की दातून करनी चाहिए। तथा विकर्तन (सूर्य) मेरे ऊपर प्रसन्न हों ऐसा उनके नाम का कीर्तन भी करना चाहिए।२३। इसी भाँति वर्षा काल में देवाधि देव सूर्य की पूजा, विधान द्वारा जिसमें गंध एवं पुष्पोहार तथा भाँति-भाँति की दर्शनीय वस्तुएँ हों, संपादित करके और भूमि के दान एवं ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त देव (सूर्य) के सम्मुख उपस्थित होकर पुस्तक का वाचन (पाठ कथा) भी कराये जो अत्यन्त पुण्य रूप एवं प्रशंसनीय कार्य हैं। कथा वाचक ब्राह्मण को वस्त्र गंधों एवं धूप द्वारा अवश्य पूजा करनी चाहिए।२४-२६। तदुपरान्त सूर्य के सम्मुख खड़े होकर इस भाँति निवेदन करे कि हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे समस्त रोगों के नाशक, हे ग्रहेश, हे लोक तंत्र, तथा हे विकर्तन एवं तमोनाशक! आप के अनुग्रह द्वारा मैंने इस जया नामक सप्तमी के व्रतानुष्ठान को जो प्रशंसनीय पापहारी एवं कल्याणरूप है, समाप्त किया है।२७-२८। हे वीर! इस प्रकार इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान को जो इस विधान द्वारा समाप्त करते हैं, उनके द्वारा किये गये स्नान आदि सभी कर्म सौगुने अधिक फल प्रदान करते हैं।२९। हे वीर! इस भाँति विधान पूर्वक इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान की समाप्ति करने से पुरुष को यश, धन, धान्य, सुवर्ण, पुत्र, आयु, बल और लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है औरपुनः यहाँ आने पर वह राजाओं का

इत्येषा कथिता वीर जया नामेति सप्तमी । कृता स्मृता श्रुता सा तु हेलिलोकप्रदायिनी ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे जयानामसप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।९६।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

जयन्तीकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माघस्य शुक्लपक्षे तु सप्तमी या त्रिलोचन । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता पुण्या पापहरा शिवा ।।१
सोपोष्या येन विधिना शृणु तं पार्वतीप्रिय । पारणानि तु चत्वारि कथितान्यत्र पण्डितैः ।।२
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम् । उपवासस्तु सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ।।३
माघे च फाल्गुने मासि तथा चैत्रे च सुव्रत । बकपुष्पाणि रम्याणि कुङ्कुमं च विलेपनम् ।।४
नैवेद्यं मोदकांश्चात्र धूप आज्यमुदाहृतः । प्राशनं पञ्चगव्यं तु पवित्रीकरणं परम् ।।५
मोदकैर्भोजयेद्विप्रान्यथाशक्त्या गणाधिप । शाल्योदनं च भूतेश दद्याच्छक्त्या द्विजेषु वै ।।६
इत्थं सम्पूजयेद्यस्तु भास्करं लोकपूजितम् । सर्वस्मिन्पारणे वीर सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।७

राजा (महाराज) होता है।३०-३१। हे वीर ! इस प्रकार जया नामक सप्तमी के महत्त्व को जिसके आचरण स्मरण एवं कथा पारायण करने या सुनने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, मैंने तुम्हें बता दिया।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मचर्य के सप्तमी कल्प में जया नाम सप्तमी माहात्म्य वर्णन नामक छानबेंवाँ अध्याय समाप्त।९६।

अध्याय ९७

जयंती माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे त्रिलोचन ! माघमास के शुक्लपक्ष की सप्तमी का, जो पुण्य रूप पाप का नाश करने वाली एवं कल्याण रूप है, जयंती नाम बताया गया है ।१। हे पार्वती प्रिय ! जिस विधान द्वारा जिसका उपवास किया जाता है, उसे सुनो (मैं बता रहा हूँ) ! इसमें सप्तमी के व्रतानुष्ठान के पंडितों ने चार पारण बताये हैं ।२। इसके अनुष्ठान-विधान में इस प्रकार बताया गया है कि पंचमी में एक भुक्त षष्ठी में नक्त व्रत करना चाहिए सप्तमी में उपवास तथा अष्टमी में पारण करना चाहिए ।३। हे सुव्रत ! उसी प्रकार माघ, फाल्गुन एवं चैत्र के मास में सुन्दर बक पुष्प, कुंकुम के लेपन, मोदक का नैवद्य एवं घी की धूप उन्हें अर्पित करें ।४। अत्यन्त पवित्र करके पंच गव्य का प्राशन करना चाहिए ।५। हे गणाधिप ! हे भूतेश ! अनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणों को मोदक समेत भात का भोजन भी अर्पित करें ।६। हे वीर ! इस प्रकार जो लोकपूज्य भगवान् भास्कर की उपासना करता है, उसे सभी पारणों में अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।७

द्वितीये पारणे पूज्य राजसूयफलं लभेत् । वैशाखाषाढज्येष्ठेषु श्रावणे मासि सुव्रत ।।
पूजार्थमथ भानो वै शतपत्राणि सुव्रत ।।८
श्वेतं च चन्दनं भीम धूपो गुग्गुलुरुच्यते । नैवेद्यं गुडपूपास्तु प्राशनं गोमयस्य तु ।।
भोजने वापि विप्राणां गूडपूपाः प्रकीर्तिताः ।।९
द्वितीयमिदमाख्यातं पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलद भास्करप्रियम् ।।१०
तृतीय शृणु देवस्य पूजार्थे भास्करस्य तु । मासि भाद्रपदे वीर तथा चाश्वयुजे विभो ।।११
कार्त्तिके चापि मासे तु रक्तचन्दनमादिशेत् । मालतीकुसुमानीह धूपो विजय उच्च्यते ।।१२
नैवेद्यं घृतपूपास्तु भोजनं च द्विजन्मनाम् । कुशोदकप्राशनं तु कायशुद्धिकरं परम् ।।१३
तृतीयमपि चाख्यातं पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ।।१४
चतुर्थमपि ते वच्मि पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ।।१५
तदद्य देवशार्दूल पारणं श्रेयसे शृणु । मासि मार्गशिरे वीर पौषे मासि तथा शिव ।।१६
माघे च देवशार्दूल शृणु पुण्यान्यशेषतः । करवीराणि रक्तानि तथा रक्तं च चन्दनम् ।।१७
अमृताख्यस्तथा धूपो नैवेद्यं पायसं परम् । आर्जनीयं तथा तक्रं प्राशनं परमं स्मृतम् ।।१८
अगरुं चन्दनं मुस्तं सिह्लकं त्र्यूषणं तथा । समभागैस्तु कर्तव्यमिदं चामृतमुच्यते ।।१९

और दूसरे पारण में राजसूय के फल की प्राप्ति होती है । हे पूज्य सुव्रत ! इसी भाँति वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ तथा सावन के मासों में सूर्य की पूजा के निमित्त कमल पुष्प, श्वेत चन्दन, गुग्गुल की धूप और नैवेद्य में गुड़ के मालपूए उन्हें अर्पित करते हुए गोमय प्राशन करना बताया गया है । उसी प्रकार ब्राह्मणों को तृप्त भोजन कराने के लिए प्रधान मालपूआ ही कहा गया है ।८-९। इस प्रकार इस दूसरे पारण के विधान को जो पाप नाशक सूर्य प्रिय एवं राजसूय और अश्वमेध के फल प्रदान करता है मैंने तुम्हें बता दिया ।१०। पुनः अब सूर्य की पूजा के लिए तीसरे पारण को सुनो ! बता रहा हूँ । हे विभो ! भादों, आश्विन तथा कार्तिक के मास में रक्त चंदन मालती पुष्प एवं विजय के अर्पण करने के द्वारा पूजा करनी चाहिए उपरान्त नैवेद्य और घी पूर्ण मालपूआ को अर्पित करके वही ब्राह्मणों को भी भोजन कराये । अनुष्ठान में इसके शरीर शुद्धि के लिए कुशोदक का उत्तम प्राशन करना अत्यन्त आवश्यक होता है ।११-१३। इस प्रकार यह तीसरा पारण भी जो पापनाशक एवं राजसूय तथा अश्वमेध के फल प्रदान करता है, बता दिया ।१४

उसी भाँति चौथे पारण को भी जो पापनाशक राजसूय और अश्वमेध के फल प्रदान करने वाला एवं सूर्य प्रिय हैं, मैं तुम्हें बता रहा हूँ ।१५। हे देव शार्दूल ! अतः आत्म कल्याण के लिऐ इसे विशेष ध्यान से सुनो ! हे वीर शिव मार्गशीर्ष (अगहन) पौष और माघ मास में प्राप्त होने वाले समस्त पुष्पों को भी (बता रहा हूँ) सुनो ! इस अनुष्ठान-विधि में करवीर, रक्तचंदन, अमृत धूप, नैवेद्य, खीर एवं तक्र (मट्ठे) का उत्तम प्राशन करना बताया गया है ।१६-१८। जिससे सूर्य देव परम मुदित होते हैं। अगुरु, चन्दन, (मुस्ता, सिह्लक तथा त्र्यूषण सोंठ मिर्च एवं पीपरी) इन्हीं उपरोक्त सभी वस्तुओं के समभाग को एकत्र करने

नामानि कथितान्यत्र भास्करस्य महात्मनः । चित्रभानुस्तथा भानुरादित्यो भास्करस्तथा ।।२०
प्रीयतामिति सर्वस्मिन्पारणे विधिमादिशेत् । अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्पूजां विभावसोः ।।२१
तस्यां तिथौ देवदेव स याति परमं पदम् । कृत्वैवं सप्तमीं भीम सर्वकामानवाप्नुते ।।२२
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम् । सरोगो मुच्यते रोगैः शुभमाप्नोति पुष्कलम् ।।२३
पूर्णे संवत्सरे भीम कार्या पूजा दिवाकरे । गन्धपुष्पोपहारैस्तु ब्राह्मणानां च तर्पणैः ।।
नानाविधैः प्रेक्षणकैः पूजया वाचकस्य तु ।।२४
इत्थं सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणांश्चाभिपूज्य च । वाचकं च द्विजं पूज्य इदं वाक्यमुदीरयेत् ।।२५
धर्मकार्येषु मे देव अर्थकार्येषु नित्यशः । कामकार्येषु सर्वेषु जयो भवतु सर्वदा ।।२६
ततो विसर्जयेद्विप्रान्वाचकं तु द्विजोत्तमम् । इत्थं कुर्यादिदं यस्तु स जयं प्राप्नुयात्फलम् ।।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्य्यलोकं स गच्छति ।।२७
विमानवरमारुढः कञ्जजोद्भवमुत्तमम् । तेजसा रविसंकाशः प्रभया पतगोपमः ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे जयन्तीकल्पवर्णनं
नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७।

को अमृत धूप कहा गया है ।१९। पश्चात् महात्मा सूर्य के चित्रभानु, भानु, आदित्य तथा भास्कर नामों के उच्चारण पूर्वक आप मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें ऐसी अभ्यर्थना सभी पारणों में करनी चाहिए। हे देवाधिदेव ! इस प्रकार विधान पूर्वक जो इस तिथि में सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम पद की प्राप्ति होती है। हे भीम ! इस प्रकार सप्तमी के व्रत करने से सभी कामनाएं सफल होती हैं।२०-२२। इस भाँति पुत्रार्थी पुत्र, धनेच्छुक धन एवं रोगी रोगमुक्ति समेत अति कल्याण की प्राप्ति करता है।२३

हे भीम ! इस भाँति वर्ष की समाप्ति तक गन्ध एवं पुष्पोहार द्वारा सूर्य की पूजा करते हुए भाँति भाँति के उत्तम भक्ष्य पदार्थों के सुतृप्त ब्राह्मण भोजन कराये तथा भाँति-भाँति की दर्शनीय वस्तुएँ अर्पित करते हुए वाचक की भी अवश्य पूजा करे।२४। इस प्रकार देवेश (सूर्य) ब्राह्मणों तथा वाचक ब्राह्मण की पूजा सुसम्पन्न करके विनम्र होकर ऐसी अभ्यर्थना करे।२५। हे देव ! आप के अनुग्रह से धार्मिक, आर्थिक कार्यों एवं कामनाओं की सफलता में सदैव मेरी विजय होती रहे।२६। हे द्विजश्रेष्ठ ! पश्चात् ब्राह्मणों समेत वाचक ब्राह्मण के विसर्जन करे। इस प्रकार जो सप्तमी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न (सप्तमी विधान) करता है उसे ऐसे सुन्दर विमान पर जो लक्ष्मीसंपन्न रवि के समान तेज एवं उन्हीं की भाँति प्रभा पूर्ण हो बैठकर जप फल की प्राप्ति पूर्वक समस्त पापों से मुक्ति एवं सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।२७-२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में जयन्ती कल्प वर्णन
नामक सत्तानबेंवा अध्याय समाप्त।९७।

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अपराजितावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मासि भाद्रपदे शुक्ला सप्तमी या गणाधिप । अपराजितेति विख्याता महापातकनाशिनी ।।१
चतुर्थ्यामेकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । उपवासं तथा षष्ठ्यां सप्तम्यां पारणं स्मृतम् ।।२।
पारणान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः । पुष्पाणि करवीरस्य तथा रक्तं च चन्दनम् ।।३
धूपक्रिया गुग्गुलेन नैवेद्यं गुडपूपकाः । भाद्रपदादिमासेषु विधिरेष प्रकीर्तितः ।।४
श्वेतानि भीमपुष्पाणि तथा श्वेतं च चन्दनम् । धूपमाज्यमिहाख्यातं नैवेद्यं पायसं रवेः ।।५
मार्गशीर्षादिमासेषु विधिरेष प्रकीर्तितः । ततोऽगस्त्यस्य पुष्पाणि कुङ्कुमं च विलेपनम् ।।६
धूपार्थं सिह्लकं प्रोक्तमथ वा रविवर्णकम् । शाल्योदनं च नैवेद्यं सरसं फाल्गुनादिषु ।।७
रक्तोत्पलानि भूतेश सागुरु चन्दनं तथा । अनन्तो धूप उद्दिष्टो नैवेद्यं खण्डपूपकाः ।।८
श्रीखण्डं ग्रन्थिसहितमगुरुः सिह्लकं तथा । मुस्ता तथेन्द्रं भूतेश शर्करा गृह्यते त्र्यहम् ।।९
इत्येष धूपोऽनन्तस्तु कथितो देवसत्तम । ज्येष्ठादिमासेषु तथा विधिरुक्तो मनीषिभिः ।।१०

अध्याय ९८

अपराजिता माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणाधिप ! भादों मास की शुक्ल सप्तमी जो महान् पातकों का नाश करती है, अपराजिता नाम से विराजमान है ।१। उसके व्रतानुष्ठान में चतुर्थी में एक भुक्त, पंचमी में नक्त व्रत, षष्ठी में उपवास करके सप्तमी में पारण करना इस प्रकार का विधान बताया गया है ।२। विद्वानों ने इस के अनुष्ठान करने में चार पारण बताये हैं । पुनः करवीर के पुष्प, रक्त चंदन, गुग्गुल की धूप, नैवेद्य, गुड़ का मालपूआ अर्पित करते हुए भादों आदि मासों में भी इन्हीं वस्तुओं को अर्पित करे ।३-४। हे भीम इस प्रकार श्वेत पुष्प, श्वेत चंदन, घी पूर्ण धूप, खीर का नैवेद्य सूर्य के लिए समर्पित करना मार्गशीर्ष आदि मासों में बताया गया है जिसे दूसरा पारण कहते हैं । इस भाँति अगस्त्य के पुष्प, कुंकुम का लेपन, सिह्लकी अथवा लाल वर्ण की धूप तथा चावल के भात समेत मधुर नैवेद्य इन्हें सूर्य के लिए फाल्गुन आदि मासों के व्रत-विधान में सादर समर्पित करना बताया गया है जिसे तीसरे पारण का विधान बताया गया है ।५-७। हे भूतेश ! लाल कमल, अगुरु, चन्दन, अनंत नामक धूप, खांड के मालपूए का नैवेद्य चौथे पारण में जो ज्येष्ठ आदिमासों के व्रतानुष्ठान में सुसम्पन्न किया जाता है, अर्पित करना चाहिए । श्रीखंड गांठ समेत अगुरु, सिह्लक मुस्ता (मोथा) इन्द्र और शक्कर इन्हीं पदार्थों की वनी हुई धूप को अनन्त धूप कहा जाता है जिसकी तैयारी में तीन दिन लगते हैं ।८-१०

शृणु नामानि देवस्य प्राशनानि च सुव्रत । सुधांशुरर्यमा चैव सविता त्रिपुरान्तकः ।।११
पारणेष्वेव सर्वेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत् । गोमूत्रं पञ्चगव्यं तु घृतं चोष्णं पयो दधि ।।१२
यस्त्वेतां सप्तमीं कुर्यादनेन विधिना नरः । अपराजितो भवेत्सोऽसौ सदा शत्रुभिराहवे ।।१३
जित्वा शत्रुं लभेतापि त्रिवर्गं नात्र संशयः । त्रिवर्गमथसम्प्राप्य स्वर्भानोः पुरमश्नुते ।।१४
ततः पूर्णेषु मासेषु पूजयेच्छक्तितः खगम् । गन्धपुष्पोपहारैस्तु पुराणश्रवणेन च ।।१५
अश्वदानेन च विभोर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । वाचकं पूजयित्वा च भास्करस्य प्रियं सदा ।।१६
भास्कराय ध्वजान्दद्यान्नानारत्नविभूषितान् । य इत्थं कुरुते वीर सप्तमीं यत्नतः सदा ।।१७
स पराजित्य वै शत्रुं याति हंससलोकताम् ।।१८
शुक्लाश्वोद्भवयानेन आपगेन पताकिना । आपगाधिपसंकाश आपगानुचरो भवेत् ।।१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे अपराजितावर्णनं
नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।९८।

हे सुव्रत ! अब सूर्य के नाम एवं प्राशन को बता रहा हूँ । सुनो ! सुधांशु, अर्यमा, सविता एवं त्रिपुरान्तक, सूर्य मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें इस भाँति की विनम्र प्रार्थना सभी पारणों में करनी चाहिए । गाय के मूत्र, गरम दूध (तुरन्त का दुहा), दही, घी, तथा गोमय मिलाकर पंचगव्य कहा जाता है । इस व्रतानुष्ठान में इसी का प्राशन करना बताया गया है ।११-१२। इस प्रकार जो पुरुष इस सप्तमी के व्रत-विधान को सुसम्पन्न करता है, वह युद्ध स्थल में शत्रुओं द्वारा सदैव अपराजित ही रहता है ।१३। पुनः शत्रु विजय होने के पश्चात् त्रिवर्ग (धर्म), अर्थ एवं काम की भी सफलता उसे निश्चय प्राप्त होती है और इसके अनन्तर उसे सूर्य लोक भी प्राप्त होता है ।१४

इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए पूर्ण वर्ष की समाप्तिमें शक्त्यनुसार सूर्य की पूजा गंध पुष्पोपहार तथा पुराण श्रवण द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए ।१५। हे विभो ! पुनः उसी प्रकार अश्वदान, ब्राह्मण भोजन तथा सूर्य प्रिय उस वाचक की पूजा करने के उपरांत भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित ध्वजाएँ सूर्य के लिए सादर समर्पित करनी चाहिए । हे वीर ! इस प्रकार जो सदैव सप्तमी के व्रत विधान अनुष्ठान करने में प्रयत्नशील रहता है, उसे शत्रु विजय की प्राप्ति पूर्वक सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।१६-१८। ऐसा व्यक्ति श्वेत रंग के घोड़े जुते हुए सवारी पर बैठकर जिसमें श्वेत वर्ण की पताकाएँ लगी हों, वरुण की भाँति धवल कान्ति प्राप्त कर वरुण का अनुचर होता है ।१९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में अपराजिता वर्णन
नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९८।

अथैकोनशततमोऽध्यायः

महाजयाकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः । महाजया तदा सा वै सप्तमी भास्करप्रिया ॥१
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं भास्करस्य वचो यथा ॥२
यस्तस्यां मानवो भक्त्या घृतेन स्नापयेद्रविम् । सोऽश्वमेधफलं प्राप्य स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥३
पयसा स्नापयेद्यस्तु भास्करं भक्तिमान्नरः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो याति सूर्यसलोकताम् ॥४
कार्पूरेण विमानेन किङ्किणीजालमालिनो । तेजसा हरिसंकाशः कान्त्या सूर्यसमस्तथा ॥५
स्थित्वा तत्र चिरं कालं राजा भवति चाञ्जसा । महाजयैषा कथिता सप्तमी त्रिपुरान्तक ॥६
तामुपोष्य नरो भक्त्या भवते सूर्यलोकगः । ततो याति परं ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचति ॥७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे महाजयाकल्पवर्णनं नामैकोनशततमोऽध्यायः ।९९।

अध्याय ९९

महाजया कल्प का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में (सूर्य की) संक्रान्ति प्राप्त होने पर उस सूर्यप्रिया सप्तमी को 'महजया' नाम की बताया गया है ।१। इसी लिए सूर्य के कथनानुसार उसमें किये गये स्नान, दान, जप, हवन एवं पितरों तथा देवताओं के पूजन आदि ये सभी कोटि गुने अधिक फल प्रदान करते हैं ।२। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस तिथि में घी द्वारा सूर्य को स्नान कराता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है ।३। जो कोई भक्त मनुष्य दूध द्वारा सूर्य को स्नान कराता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है ।४। वहाँ कपूर निर्मित विमान पर जिसमें छोटी छोटी घंटियों का जाल सा लगा रहता है, बैठकर सूर्य की भाँति तेजस्वी एवं कान्तिमान् होकर चिरकाल तक वहाँ निवास करता है । पश्चात् यहाँ आकर तेजस्वी राजा होता है । हे त्रिपुरांतक इस महाजया नामक सप्तमी को विधान द्वारा सुसम्पन्न करने पर मनुष्य को सूर्य लोक की प्राप्ति पूर्वक उस ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है जहाँ पहुँच कर किसी भाँति से चिंतित नहीं होना पड़ता है ।५-७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में महाजया कल्पवर्णन नामक निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९९।

अथ शततमोऽध्यायः

नन्दानामसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

या तु मार्गशिरे मासि शुक्लपक्षे तु सप्तमी । नन्दा सा कथिता वीर सर्वानन्दकरी शुभा ।।१
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठयां नक्तं प्रकीर्तितम् । सप्तम्यामुपवासं तु कीर्तयन्ति मनीषिणः ।।२
पारणान्यत्र वै त्रीणि शंसन्तीह मनीषिणः । मालतीकुसुमानीह सुगन्धं चन्दनं तथा ।।३
कर्पूरागरुसम्मिश्रं धूपं चात्र विनिर्दिशेत् । दध्योदनं सखण्डं च नैवेद्यं भास्करप्रियम् ।।४
तमेव दद्याद्विप्रेभ्योऽश्नीयाच्च तदनु स्वयम् । धूपार्थं भास्करस्यैष प्रथमे पारणे विधिः ।।५
पलाशपुष्पाणि विभो धूपो यः शक्य एव च । कर्पूरं चन्दनं कुष्ठमगुरुः सिह्लकं तथा ।।६
सग्रन्थि वृषणं भीम कुंकुमं गृञ्जनं तथा । हरीतकी तथा भीम एष यक्षक उच्यते ।।७
धूपः प्रबोध आदिष्टो नैवेद्यं खण्डमण्डकाः । कृष्णागरुः सितं कञ्जं बालकं वृषणं तथा ।।८
चंदनं तगरो मुस्ता प्रबोधशर्करान्विता । भोजयेद्ब्राह्मणांश्चापि खण्डखाद्यैर्गणाधिप ।।
निम्बपत्रं तु सम्प्राश्य ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।।९

अध्याय १००

नंदा नामक सप्तमी का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सभी भाँति के आनन्द एवं कल्याण दायिनी होने के नाते 'नंदा सप्तमी' कहा जाता है ।१। इसके व्रत विधान में पंचमी में एक भुक्त (एकाहार), षष्ठी में नक्त व्रत (रात में भोजन) और सप्तमी में उपवास करना विद्वानों ने बताया है ।२। एवं विद्वानों ने इसमें तीन पारण करने के विधान भी बताये हैं। इसके अनुष्ठान में मालती पुष्प, सुगन्ध चन्दन, कपूर, अगुरु मिश्रित धूप (सूर्य के लिए) सादर सर्मपित करनी चाहिए। पश्चात् दही भात और खांड समेत नैवेद्य जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है, उन्हें सादर सर्मपित कर वहीं ब्राह्मणों को भी तृप्त भोजन कराने के उपरांत स्वयं भी भोजन करना चाहिए। इस प्रकार सूर्य के प्रथम पारण का यह विधान बताया गया है ।३-५

हे विभो (दूसरे पारण में) पलाश के पुष्प शक्त्यनुसार प्राप्त यक्षक धूप, कपूर, चन्दन, कूट, गुग्गुल, सिह्लक, ग्रन्थिपर्णी, कस्तूरी, गृञ्जन तथा हरीतकी को जो (हर्रे) से मिलकर बनता है, सादर सर्मपित करना चाहिए ।६-७

उपरान्त खांड द्वारा बनाये गये नैवेद्य तथा प्रबोध नामक धूप, जो काले, अगुरु, सितकंज (सिद्धक) बाला कस्तूरी, चन्दन, तगर एवं मुस्ता (मोथा) से मिल कर बनता है सादर सर्मपित करना चाहिए। हे गणाधिप खांड मिश्रित मधुर भोजन ब्राह्मणों को अर्पित करने के पश्चात् स्वयं भी मौन

पारणस्य द्वितीयस्य विधिरेष प्रकीर्तितः ॥१०
नीलोत्पलानि शुभ्राणि धूपं गौग्गुलमाहरेत् । नैवेद्यं पायसं देयं[1] प्रीतये भास्करस्य तु ॥११
विलेपनं चन्दनं तु प्राशने विधिरुच्यते । तृतीयस्यापि ते वीर कथितो विधिरुत्तमः ॥१२
शृणु नामानि देवस्य पावनानि नृणां सदा । विष्णुर्भगस्तथा धाता प्रीयतामुदि्गरेच्च वै ॥१३
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्प्रयतमानसः । सकामानिह सम्प्राप्य नन्दते शाश्वती समाः ॥१४
ततः सूर्यसदो गत्वा नन्दते नन्दवर्धन । एषा तु नन्दजननी तवाख्याता मया शिव ॥१५
यामुपोष्य ततो भुक्त्वा नन्दते हंसमाप्य वै ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे नन्दानामसप्तमीवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ।१००।

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

भद्राकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां नक्षत्रं सवितुर्भवेत् । यदा प्रथमता चैव तदा वै भद्रतां व्रजेत् ॥१

होकर भोजन करें इसमें नीम के फल के पत्ते का प्राशन करना बताया गया है । इस भाँति पारण का यह विधान समाप्त किया गाया है ।८-१०

इसी भाँति स्वच्छनीलकमल, गुग्गुल की धूप, खीर का नैवेद्य लेपन के लिए चन्दन, ये सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय वस्तुएँ हैं अतः उन्हें अवश्य समर्पित करना चाहिए । हे वीर ! इस रीति से तीसरे पारण का भी विधान बता दिया गया है ।११-१२

अब सूर्य के उन नामों को, जो मनुष्यों के लिए सदैव पवित्र कारक हैं बता रहा हूँ, सुनो ! विष्णु, एवं धाता सदैव प्रसन्न रहें इस प्रकार नामोच्चारण पूर्वक अभ्यर्थन करे ।१३। हे नन्दवर्धन ! इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक जो इस विधान द्वारा सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करता है वह कामनाओं की सफलता पूर्वक अनेकों वर्ष आनन्द मग्न जीवन व्यतीत करता है ।१४। पश्चात् वह सूर्य लोक में जाकर आनन्द का अनुभव भी प्राप्त करता है । हे शिव ! इस भाँति आनन्द प्रदान करने वाली इस (सप्तमी) को जिसके अनुष्ठान द्वारा मनुष्य सूर्य की प्राप्ति करके आनंदित होता है, मैंने तुम्हें सुना दिया ।१५-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में नंदा नाम सप्तमी वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।१००।

अध्याय १०१

भद्रा कल्प का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शुक्लपक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र के समागम से उस सप्तमी का भद्रा नाम बताया

---

१. मुख्यम् ।

स्नपनं तत्र देवस्य घृतेन कथितं बुधैः । क्षीरेण च तथा वीर पुनरिक्षुरसेन च ।।२
स्नापयित्वा तु देवेशं चन्दनेन विलेपयेत् । दग्ध्वा तु गुग्गुलं तस्य दद्याद्भद्रं तथाग्रतः ।।३
गोधूमचूर्णं निवपन्विमलं शशिसन्निभम् । सवज्रं सगुडं चैव रक्तपुष्पोपशोभितम् ।।४
यदस्य भृङ्गमीशानं तत्र वै मौक्तिकं न्यसेत् । यदाग्नेयं तत्र माणिक्यं न्यसेद्वा लोहितं मणिम् ।।५
नैर्ऋत्ये मकरं दद्याद्वायव्ये पद्मरागिणम् । गाङ्गेयमन्ततस्तस्य स्वशक्त्या विन्यसेद्बुधः ।।६
चतुर्थ्यामेकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । षष्ठ्यामयाचितं प्रोक्त उपवासो ह्यतः परः ।।७
पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकान्त्यजान् । सप्तम्यां पालयेत्प्राज्ञो दिवा स्वापं विवर्जयेत् ।।८
अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वै भद्रसप्तमीम् । तस्मै भद्राणि सर्वाणि यच्छन्ति ऋभवः सदा ।।९
भद्रं ददाति यस्त्वस्यां भद्रस्तस्य सुतो भवेत् । भद्रमासाद्य भूतेश सदा भद्रेण तिष्ठति ।।१०

दिण्डिरुवाच

कोऽयं भद्र इति प्रोक्तः कथं कार्यं प्रभूषणम् । दत्त्वा च किं फलं विद्याद्विधिना केन दीयते ।।११

ब्रह्मोवाच

व्योम भद्रमिति प्रोक्तं देवचिह्नमनूपमम् । यद्धृत्वेह नरः सूर्यं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।१२

गया है (कल्याण प्रदान करने वालों में) वह प्रथम भी है ।१। हे वीर ! विद्वानों ने उसके अनुष्ठान में सूर्य के स्नान के लिए भी बताया है तथा दूध और ईख के रस से भी स्नान कराने का विधान है ।२। पुनः सूर्य का स्नान कराकर उन्हें चन्दन का लेप अर्पित करते हुए गुग्गुल की धूप भी समर्पित करना चाहिए। अनन्तर गेहूँ के चूर्ण आटे द्वारा उनकी विमल भद्र मूर्ति बनाकर जो चन्दन की भाँति धवल कान्तिपूर्ण हो, उसे वज्र पुष्प गुड एवं रक्तवर्ण के पुष्पों से सुशोभित कर पुनः उस मूर्ति में चार सींगों की रचना करके उसके ईशान कोण वाली सींग में मोती, आग्नेय वाले में हीरा अथवा लाल रंग की मणि, नैऋत्य वाले में मकर और वायव्य वाले में पद्मराग मणि सुसज्जित कर शेष अंगों को भी सुवर्ण से विभूषित करे ।३-६। तथा चतुर्थी में एक भक्त, पञ्चमी में नक्त व्रत षष्ठी में अयाचित (अन्न का) भोजन करने के पश्चात् सप्तमी में उपवास किया जाता है। विद्वानों को चाहिए कि (उस दिन) पाखण्डी, दुराचारी और विडाल वृत्तिक (बिल्लैया भक्ति करने वाले) के त्यागपूर्वक दिन में शयन न करें इस प्रकार इस विधान द्वारा जो इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान की समाप्ति करता है उसे देव (सूर्य) सदैव कल्याण प्रदान करते हैं ।७-९। तथा जो इसमें उनकी भद्र मूर्ति का निर्माण कर अर्पित करता है उसे भद्र (कल्याणप्रद) पुत्र की भी प्राप्ति होती है। हे भूतेश ! इस भाँति वह भद्र की प्राप्ति कर सदैव भद्र रूप ही रहता है ।१०

दिंडि ने कहा—जिस भद्र को आपने बताया है वह कौन भद्र है, उसे अलंकृत करने के लिए कौन आभूषण होने चाहिए एवं किस विधान द्वारा कौन फल अर्पित करना चाहिए ? बताने की कृपा करें ।११

ब्रह्मा बोले—देवताओं के अनुपम लक्षणों से विभूषित होने के नाते उसे 'व्योम भद्र' कहा गया है एवं उसी सूर्य की प्रतिभा का ध्यान कर मनुष्य सभी पातकों से मुक्त हो जाते हैं ।१२। चावल के चूर्ण

शालिपिण्डमयं कार्यं चतुष्कोणमनूपमम् । गव्येन सर्पिषा युक्तं खण्डशर्करयान्वितम् ।।१३
चातुर्जातकपूर्णं तु द्राक्षाभिश्च विशेषतः । नालिकेरफलैश्चैव सुगन्धं च गणाधिप ।।१४
मध्येन्द्रनीलं भद्रस्य न्यसेत्प्राज्ञः स्वशक्तितः । पुष्परागं मरकतं पद्मरागं तथैव च ।।१५
अनौपम्यं च माणिक्यं क्रमात्कोणेषु विन्यसेत् । वाचकायाथ वा दद्यादथ वा भोजके स्वयम् ।।१६
अनेन विधिना यस्तु कृत्वा भद्रं प्रयच्छति । स हि भद्राणि सम्प्राप्य गच्छेद् गोपतिमन्दिरम् ।।१७
ब्रह्मलोकं ततो गच्छेद्यानारूढो न संशयः । तेजसा गोजसंकाशः कांत्या गोजसमस्तथा ।।१८
प्रभया गोपतेस्तुल्य ऊर्जसा गोपरस्य च । तस्मादेत्य पुनर्भूमौ गोपतिः स्यान्न संशयः ।।
प्रसादाद् गोपतेर्वीर सर्वज्ञाधिपपूजितः ।।१९
इत्येषा कथिता भीम भद्रा नामेति सप्तमी । यामुपोष्य नरो भीम ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।२०
शृण्वन्ति ये पठन्तीह कुर्वन्ति च गणाधिप । ते सर्वे भद्रमासाद्य यान्ति तद्ब्रह्म शाश्वतम् ।।२१

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्तवान्पुरा ब्रह्मा दिण्डिने सप्तमीव्रतम् । मयाप्युक्तं तव विभो यथाज्ञातं यथाश्रुतम् ।।२२
गृहीत्वा सप्तमीकल्पं मानवो यस्तु भूतले । त्यजेत्कामाद्भयाद्वापि स ज्ञेयः पतितोऽबुधः ।।२३
तस्माद्धारय तद्वीर न त्याज्यं सप्तमीव्रतम् । त्यजमानो भवेद्वीर आरूढपतितो नरः ।।२४

(आटे) द्वारा चार कोने वाली सुन्दर भद्र मूर्ति जिसमें गाय के घी, सफेद शक्कर चातुर्जातक (दाल चीनी, इलायची, तेज एवं नागकेसर) द्राक्षा (मुनक्का) तथा नारियल के फल लगे हों, सुगंध पूर्ण बनाये उस भद्र मूर्ति के मध्य भाग में अपनी शक्ति के अनुसार इन्द्रनील मणि पुष्प राग, मरकत, पद्मराग तथा हीरे को क्रमशः कोने की सीगों में सुसज्जित करके पश्चात् उसे वाचक अथवा भोजक ब्राह्मण को सादर अर्पित कर दें ।१३-१६। इस प्रकार जो भद्र की रचना करके उसे अर्पित करता है वह कल्याणों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य के मन्दिर (लोक) की प्राप्ति करता है ।१७। तदुपरांत सूर्य की भाँति, कांति, प्रभा एवं बल प्राप्त करते हुए वह सवारी पर बैठकर ब्रह्म लोक में निश्चय सुखानुभव करता है । हे वीर ! पुनः कभी यहां आकर सूर्य के अनुग्रह वश विद्वान् राजाओं का पूज्य पृथिवी पति (राजा) होता है । हे भीम ! इस प्रकार मैंने भद्रा नामक सप्तमी की व्याख्या सुना दी जिसमें उपवास आदि रहकर मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।१८-२०

हे गणाधिप ! इस भाँति इसके सुनने, पढ़ने एवं अनुष्ठान करने वाले लोग भद्र की प्राप्ति पूर्वक शाश्वत (अविनाशी) ब्रह्म की प्राप्ति करते है ।२१

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मा ने सप्तमी व्रत के विधान को दिंडी से बताया था । हे विभो ! मैंने भी जिस भाँति सुनकर उसकी जानकारी रखता था तुम्हें बता दिया।२२। इस भाँति इस पृथ्वी में जो मनुष्य काम एवं भयवश सप्तमी कल्प का त्याग करते हैं उन्हें पतित एवं अज्ञानी बताया गया है।२३। हे वीर ! इसलिए इस सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को सदैव करना चाहिए, कभी भी उसका त्याग न होने पाये क्योंकि त्याग करने से मनुष्य महान् पतित हो जाता है।२४। इस भाँति जो कोई सप्तमी कल्प के विधानों

श्रावयेद्यस्तु भक्त्या च सप्तमीकल्पमादितः । सोऽश्वमेधफलं प्राप्य ततो याति परं पदम् ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भद्राकल्पवर्णनं
नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।१०१।

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एवं सा देवदेवस्य सप्तमी भास्करस्य तु । यथा बहूनां भार्याणां भर्तुः काचित्प्रिया भवेत् ।।१

सर्वाश्च तिथयो ह्यस्य प्रियाः सूर्यस्य भारत । तस्मादस्यां नरेणेह पूजनीयो दिवाकरः ।।२

शतानीक उवाच

तिथीनामधिपः सूर्यः सर्वासां कथितो यदि । सप्तम्यामेव यागोऽस्य किमर्थं क्रियते बुधैः ।।३

सुमन्तुरुवाच

इदमर्थं पुरा पृष्टः सुरज्येष्ठो दिवि स्थितः । विष्णुना कुरुशार्दूल तेनोक्तं हरये यथा ।।
तथा ते सर्वमाख्यास्ये शृणुष्वैकमना विभो ।।४

सुखासीनं सुरज्येष्ठं पुरा देवं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा देव कृष्णो वचनमवब्रवीत् ।।५

को आरम्भ से अन्त तक सुनायेंगे उन्हें अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक परम पद की प्राप्ति होगी ऐसा कहा गया है ।२५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भद्राकल्प वर्णन नामक
एक सौ एक अध्याय समाप्त ।१०१।

अध्याय १०२

नक्षत्र पूजा विधिवर्णन

सुमन्तु बोले—हे भारत ! सूर्य को सभी तिथियाँ प्रिय हैं पर देवाधिदेव सूर्य के लिए यह सप्तमी तिथि अनन्य प्रिय है जिस भाँति किसी पुरुष के अनेक स्त्रियों में कोई एक स्त्री अत्यन्त प्रिय होती है अतः मनुष्य को इसमें सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।१-२

शतानीक ने कहा—यदि सभी तिथियों के अधिनायक सूर्य ही हैं तो किसलिए विद्वान् लोग सप्तमी में ही सूर्य की पूजा आदि करते हैं ।३

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! इसी बात को पहले एकबार स्वर्गस्थित ब्रह्मा से विष्णु ने पूछा था । हे विभो ! उस समय विष्णु को जो कुछ बताया था मैं वही सभी बातें तुमसे बता रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ! एकबार पहले समय में सुख पूर्वक बैठे हुए पितामह ब्रह्मा को शिर से प्रणाम करने के

यद्येष भानुमान्देवस्तिथीनामधिपः स्मृतः । किमर्थं पूज्यते ब्रह्मन्सप्तम्यां ब्रूहि मे विभो ॥६
एवमुक्तः सुरज्येष्ठो विष्णुना प्रभविष्णुना । प्रहस्य भगवान्देव इदं वचनमब्रवीत् ॥७

ब्रह्मोवाच

देवेभ्यस्तिथयो दत्ता भास्करेण महात्मना । मुक्त्वैकां सप्तमीं सर्वां सम्यगाराधनेन वै ॥८
यस्यैव यद्दिनं दत्तं स तस्यैवाधिपः स्मृतः । स्वदिने पूजितस्तस्मात्स्वमन्त्रैर्वरदो भवेत् ॥९

विष्णुरुवाच

अर्केण कतरत्कस्मै दिनं दत्तं महात्मना । स्वदिने पूजितेऽस्मिन्वै स्वमन्त्रैर्जायते ध्रुवम् ॥१०

ब्रह्मोवाच

अग्नये प्रतिपद्दत्ता द्वितीया ब्रह्मणे तथा । तृतीया यक्षराजाय गणेशाय चतुर्थ्यपि ॥११
पञ्चमी नागराजाय कार्तिकेयाय षष्ठ्यपि । सप्तमी स्थापितात्मार्थं दत्ता रुद्राय चाष्टमी ॥१२
दुर्गायै नवमी दत्ता यमाय दशमी स्वयम् । विश्वेभ्यश्चाथ देवेभ्यो दत्ता चैकादशी सदा ॥१३
द्वादशी विष्णवे दत्ता मदनाय त्रयोदशी । चतुर्दशी शङ्कराय दत्ता सोमाय पूर्णिमा ॥१४
पितॄणां भानुना दत्ता पुण्या पञ्चदशी सदा । तिथ्यः पञ्चदशैतास्तु सोमस्य परिकीर्तिताः ॥१५
पीयते कृष्णपक्षे तु सुरैरेभिर्यथोदितैः । शुक्लपक्षे प्रपूर्यन्ते षोडश्या कलया सह ॥१६
अक्षया सा सदैकैका तत्र साक्षात्स्थितो रविः । क्षयवृद्धिकरो ह्येवं तेनासौ तत्पतिः स्मृतः ॥१७

उपरांत कृष्ण ने इस भाँति कहा ।४-५। हे ब्रह्मन् ! यदि तिथियों के अधिनायक सूर्य ही बताये जाते हैं, तो हे विभो ! सप्तमी में ही इनकी पूजा क्यों होती है, इसे प्रायः मुझे स्पष्ट बतायें ।६। प्रभुत्व गुण सम्पन्न विष्णु के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा ने हँसकर यह कहा ।७

ब्रह्मा बोले—देवताओं के आराधना करने पर प्रसन्न होकर सूर्य ने तुम्हें सप्तमी तिथि के अतिरिक्त सभी तिथियाँ सौंप दी है ।८। इसलिए जिसे जो तिथि दी गयी है वह उसका अधिनायक हो गया है और तभी से अपने तिथि के दिन मंत्र द्वारा पूजित होने पर उन्हें देवों ने वर प्रदान प्रारम्भ किया है ।९

विष्णु ने कहा—सूर्य ने किसे कौन तिथि प्रदान की है जिसमें वह मंत्र द्वारा पूजित होने पर वर प्रदाने करता है ।१०

ब्रह्मा बोले—(सूर्य ने) अग्नि के लिए प्रतिपदा ब्रह्मा के लिए द्वितीया, यक्षराज (कुबेर) के लिए तृतीया, गणेश के लिए चतुर्थी, नागराज के लिए पंचमी, कार्तिकेय के लिए षष्ठी, अपने लिए सप्तमी, रुद्र के लिए अष्टमी, दुर्गा के लिए नवमी, यम के लिए दशमी, विश्वेदेव के लिए एकादशी, विष्णु के लिए द्वादशी, काम के लिए त्रयोदशी, शंकर के लिए चतुर्दशी, सोम (व्रत) के लिए पूर्णिमा और पितरों के लिए पुण्य अमावस्या तिथि प्रदान किया है। ये पन्द्रह तिथियाँ चन्द्रमा की कला के रूप में हैं ।११-१५। इसलिए कृष्ण पक्ष में देवलोग इसका पान करते हैं पश्चात् वे शुक्लपक्ष में सोलहवीं कला के समेत पूरी हो जाती है ।१६। (चन्द्रमा की सोलहवीं) कला अक्षीण रहती है क्योंकि उसमें सूर्य साक्षात् स्थित रहते

ददाति गतिमक्षीणां ध्यानमात्रस्थितो[१] रविः । अन्येपीष्टान्यथाकामान्प्रयच्छन्ति सुखेन वै ।।१८
तथा सर्वं प्रवक्ष्यामि कृष्ण संक्षेपतः शृणु । अग्निमिष्ट्वा च हुत्वा च प्रतिपद्यमृतं घृतम् ।।
हविषा सर्वधान्यानि प्राप्नुयादमितं धनम् ।।१९
ब्रह्माणं च द्वितीयायां सम्पूज्य ब्रह्मचारिणम् । भोजयित्वा च विद्यानां सर्वासां पारगो भवेत् ।।२०
तृतीयायां च वित्तेशं वित्ताढ्यो जायते ध्रुवम् । क्रयादिव्यवहारेषु लाभो बहुगुणो भवेत् ।।२१
गणेशपूजनं कुर्याच्चतुर्थ्यां सर्वकर्मसु । अविघ्नं विद्विषां विघ्नं कुर्याच्चास्य न संशयः ।।२२
नागानिष्ट्वा च पञ्चम्यां न विषैरभिभूयते । स्त्रियं च लभते पुत्रान्परां च श्रियमाप्नुयात् ।।२३
सम्पूज्य कार्तिकेयं तु षष्ठ्यां श्रेष्ठः प्रजायते । मेधावी रूपसम्पन्नो दीर्घायुः कीर्तिवर्धनः ।।२४
सप्तम्यां पूज्य रक्षेशं चित्रभानुं दिवाकरम् । अष्टम्यां पूजितो देवो गोवृषाभरणो हरः ।।२५
ज्ञानं ददाति विपुलं कान्तिं च विपुलां तथा । मृत्युहा ज्ञानदश्चैव पाशहा च प्रपूजितः ।।२६
दुर्गां सम्पूज्य दुर्गाणि नवम्यां तरतीच्छया । सङ्ग्रामे व्यवहारे च सदा विजयमश्नुते ।।२७
दशम्यां यममर्चितिष्ठेत्सर्वव्याधिहरो ध्रुवम् । नरकादथ मृत्योश्च समुद्धरति मानवम् ।।२८
एकादश्यां यथोद्दिष्टा विश्वेदेवाः प्रपूजिताः । प्रजां पशुं धनं धान्यं प्रयच्छन्ति महीं तथा ।।२९

हैं । इसी प्रकार सूर्य द्वारा चन्द्रमा का क्षय एवं वृद्धि होती रहती है अतः सूर्य चन्द्र के भी पिता कहे गये हैं ।१७। हे कृष्ण ! जिस भाँति आकाश में केवल स्थित मात्र रहने से सूर्य अनश्वर गति एवं अन्य सभी कामनाएँ सुख पूर्वक प्रदान करते रहते हैं, संक्षेप में मैं वह सब बता रहा हूँ सुनो ! प्रतिपदा तिथि में घी की आहुति पूजनोपरांत अग्नि में डालने से समस्त धान्य एवं अमित धन की प्राप्ति होती है ।१८-१९। द्वितीया के दिन ब्रह्मा का पूजन करके ब्रह्मचारी के भोजन कराने से वह सभी विधाओं का पूर्ण वक्ता होता है ।२०। तृतीया के दिन कुबेर की आराधना करने से निश्चित अत्यन्त धन एवं भाँति-भाँति के अनेक लाभ होते रहते हैं ।२१। चौथ में गणेश के पूजन करने से सभी कार्यों की निर्विघ्न समाप्ति तथा शत्रुओं का निश्चित नाश होता है ।२२। पञ्चमी के दिन नागों की आराधना करने पर विष के भय से मुक्ति और स्त्री, पुत्र एवं उत्तम लक्ष्मी की भी प्राप्ति होती है ।२३। षष्ठी में कार्तिकेय की पूजा करने वाला श्रेष्ठ, मेधावी, रूपवान्, दीर्घायुष्मान् तथा विपुल ख्याति प्राप्त पुरुष होता है ।२४। सप्तमी के दिन रक्षेश, चित्रभानु नामक सूर्य की आराधना करके अष्टमी में गोवृष (बैल) वाहन वाले हर महादेव की आराधना करने पर विपुल ज्ञान, विपुल सौन्दर्य, मृत्यु एवं जन्म-मरण रूपपाश से मुक्ति प्राप्त होती है।२५-२६। नवमी के दिन भगवती दुर्गा जी की आराधना करने से वह (संसार के विभिन्न प्रकार के) दुर्गों दुःखों को इच्छा पूर्वक पार करता है और रणभूमि एवं व्यवहार में भी इसकी सदैव विजय होती है।२७। दशमी में यमराज की आराधना करने से सभी रोगों से अटल मुक्ति पूर्वक नरकों एवं मृत्यु से उसका उद्धार हो जाता है।२८। एकादशी में विधान पूर्वक विश्व देव की आराधना करने पर उसे वे सन्तान, पशु, धन, धान्य एवं भूमि प्रदान करते हैं ।२९। किरणमाली सूर्य की भाँति विष्णु भी समस्त

---

१. व्योममात्रस्थितः ।

द्वादश्यां विष्णुमिष्ट्वेह सर्वदा विजयी भवेत् । पूज्यश्च सर्वलोकानां यथा गोपतिर्गोकरः ।।३०
कामदेवं त्रयोदश्यां सुरूपो जायते ध्रुवम् । इष्टां रूपवतीं भार्यां लभेत्कामांश्च पुष्कलान् ।।३१
दृष्ट्वेश्वरं चतुर्दश्यां सर्वैश्वर्यसमन्वितः । बहुपुत्रो बहुधनस्तथा स्यान्नात्र संशयः ।।३२
पौर्णमास्यां तु यः सोमं पूजयेद्भक्तिमान्नरः । स्वाधिपत्यं भवेत्तस्य सम्पूर्णं न च हीयते ।।३३
पितरः स्वदिने दिण्डे दृष्टाः कुर्वन्ति सर्वदा । प्रजावृद्धिं धनं रक्षां चायुष्यं बलमेव च ।।३४
उपवासं विनाप्येते भवन्त्युक्तफलप्रदाः । पूजया जपहोमैश्च तोषिता भक्तितः सदा ।।३५
मूलमन्त्रैश्च संज्ञाभिरंशमन्त्रैश्च कीर्तिताः । पूर्ववत्पद्ममध्यस्थाः कर्त्तव्याश्च तिथीश्वराः ।।३६
गन्धपुष्पोपहारैश्च यथा शक्त्या विधीयते । पूजा बाह्येन विधिना कृतापि च फलप्रदा ।।३७
आज्यधारासमिद्भिश्च दधिक्षीरान्नमाक्षिकैः । यथोक्तफलदो होमो जपः शान्तेन चेतसा ।।३८
मूलमन्त्राश्च संज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्तिताः । कृत्वा यज्ञान्दश द्वौ च फलान्येतानि भक्तितः ।।३९
यथोक्तानि तथोक्तानि लभेतेहाधिकान्यपि । इह यस्माद्यथान्यस्मिन्यो वसेद्यः सुखी सदा ।।४०
तेषां लोकेषु मन्त्रज्ञो यावत्तेषां तिथिः स्थिता । दहेत्तस्मात्तथारिष्टं तद्रूपो जायते नरः ।।४१
सुरूपो धर्मसम्पन्नो क्षपितारिर्महीपतिः । स्त्री वा नपुंसको वापि जायते पुरुषोत्तमः ।।४२

लोकों के पूज्य हैं, अतः द्वादशी में इनकी पूजा करने से सदैव विजय प्राप्त होती है ।३०। त्रयोदशी में मदन (काम) की पूजा करने से निश्चित ही रूप-सौन्दर्य की प्राप्ति तथा अभिलषित स्त्री समेत सभी कामनाएं भी प्राप्त होती हैं ।३१। चतुर्दशी में शंकर की आराधना करने पर समस्त ऐश्वर्यों, अनके पुत्रों एवं अतुल धन की निश्चित प्राप्ति होती है ।३२। उसी भाँति पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की पूजा करने पर उस भक्तिमान् पुरुष को अपने सम्पूर्ण आधिपत्य की प्राप्ति होती है, जिससे वह कभी नहीं च्युत होता है ।३३

हे दिंडे ! अपने (अमावास्या के) दिन पूजित होने पर पितर लोग प्रसन्न होकर संतान वृद्धि, धन, रक्षा, आयु एवं बल सदैव प्रदान करते हैं ।३४। बिना उपवास के ही पूजा करने पर ये सभी देव गण उपर्युक्त फल प्रदान करते रहते हैं, अतः केवल भक्ति पूर्वक ही पूजा, जप एवं हवन द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करते रहना चाहिए।३५। यदि (उपवास रहकर) मूल मंत्रों, संज्ञाओं (नामों) एवं आंशिक मंत्रों के उच्चारण करते हुए इन तिथियों के अधिनायक को पहले की भाँति कमलासन पर स्थापित करके यथाशक्ति गन्ध एवं पुष्पोहार द्वारा पूजा करें तो निश्चित उपरोक्त फल प्राप्त हों और इसी प्रकार वाह्य विधान पूर्वक पूजा करने पर भी (अत्यन्त) फल की प्राप्ति होती है ।३६-३७। घी की धारा, समिधा (लकड़ी) दही, दूध से बनाया हुआ भक्ष्य कार्य तथा मधु द्वारा हवन एवं शांत चित्त होकर जप करने से उक्त सभी फल प्राप्त होते हैं ।३८। इसमें मूल मंत्रों एवं संज्ञाओं (नामों) के उच्चारण पूर्वक अंश मंत्रों का भी विधान बताया गया है । भक्ति पूर्वक बारह यज्ञ करने पर प्राप्त होने वाले जिन सभी फलों को बताया गया है उससे कहीं अधिक फलों की प्राप्ति अनुष्ठान के द्वारा होती है । जिस तिथि में उसके अधिनायक देव की उपासना की जाती है, उस देव के लोक में उसकी तिथि के स्थायी दिन (महाप्रलय) तक सुखपूर्वक निवास प्राप्त होता है एवं उसके बीच वाले समय में उसके अरिष्ट का नाश हो जाता है । अतः यहाँ (कभी आने पर) उसी देव के समान रूप प्राप्त कर सौन्दर्य पूर्ण, धर्मशील, एवं शत्रु-विजयी राजा होता है । इसके अनुष्ठान द्वारा स्त्री एवं नपुंसक कोई भी हो (इसके प्रभाव वश) उत्तम पुरुष होता है ।३९-४२

इत्येताः कथिताः कृष्ण तिथयो या मया तव । नक्षत्रदेवताः सर्वा नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः ॥४३
इष्टान्कामान्प्रयच्छन्ति यास्ता वक्ष्ये महीधर । चन्द्रमा यत्र नक्षत्रे महावृद्धया स्थितः सदा ॥४४
उक्तस्तु देवतायज्ञस्तदा सा फलदा भवेत् । देवताश्च प्रवक्ष्यामि नक्षत्राणां यथाक्रमम् ॥४५
नक्षत्राणि च सर्वाणि यज्ञाश्चैव पृथक्पृथक् । अश्विन्यामश्विनाविष्ट्वा दीर्घायुर्जायते नरः ॥४६
व्याधिभिर्मुच्यते क्षिप्रमत्यर्थं व्याधिपीडितः । भरण्यां यम उद्दिष्टः कुसुमैरसितैः शुभैः ॥४७
तथा गन्धादिभिः शुभ्रैरपमृत्योर्विमोचयेत् ॥४८
अनलः कृत्तिकायां तु इह सम्पूजितः परः । रक्तमाल्यादिभिर्दद्यात्फलं होमेन च ध्रुवम् ॥४९
पूज्यः प्रजापतिः प्रीत इष्टो दद्यात्पशूंस्तथा । रोहिण्यां देवशार्दूल पूजनादिह गोपते ॥
मृगशीर्षे सदा सोमो ज्ञानमारोग्यमेव च ॥५०
आर्द्रायां तु शिवं पूज्य पश्चाद्विज यमाप्नुयात् । पद्मादिभिः स दिव्यैश्च पूजितः शं प्रयच्छति ॥५१
तथा पुनर्वस्वदितिः सदा सम्पूज्यते दिवि । गुरूणां तर्पिता चैव मातेव परिरक्षति ॥५२
पुष्ये बृहस्पतिर्बुद्धिं ददाति विपुलां शुभाम् । गीतैर्गन्धादिभिर्नागा आश्लेषायां प्रपूजिताः ॥५३
तर्पिताश्च यथान्यायं भक्ष्याद्यैर्मधुरैः सितैः । रक्षामिषादिभिस्तैस्तैः प्रीतिं कुर्वन्ति मानद ॥५४
मघासु पितरः सर्वे हव्यैः कव्यैश्च पूजिताः । प्रयच्छन्ति धनं धान्यं भृत्यान्पुत्रान्पशूंस्तथा ॥५५

हे कृष्ण ! इस प्रकार मैने समस्त तिथियों को तुम्हें बता दिया । इसी भाँति नक्षत्रों के अधीश्वर भी अपने-अपने नक्षत्रों में सन्निहित होते हैं ।४३। हे महीधर ! जिस प्रकार वे मनुष्य को अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करते रहते हैं मैं उन्हें भी बता रहा हूँ । सुनो ! चन्द्रमा जिस नक्षत्र में समृद्ध (चारों चरण समेत) होकर स्थित रहता है, उसी नक्षत्र में उसके अधिनायक के यज्ञ (पूजा) आदि करने को बताया गया है अतः मैं क्रमशः नक्षत्रों के अधिनायक देवताओं को बता रहा हूँ ।४४-४५। एवं सभी नक्षत्रों की भाँति उसके यज्ञ भी पृथक्-पृथक् बताये गये हैं, अश्विनी नक्षत्र में अश्विनी कुमार की पूजा करने पर मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।४६। तथा अत्यन्त व्याधि-पीड़ित होने पर भी शीघ्र उस रोग से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है । भरणी में काले वर्ण के सुन्दर पुष्पों एवं उत्तम गन्धों द्वारा यम की पूजा करने पर मनुष्य अल्पमृत्यु (अकाल मृत्यु) से मुक्त हो जाता है ।४७-४८। कृत्तिका नक्षत्र में रक्त वर्ण के पुष्पों के हवन द्वारा अग्नि की पूजा करने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है ।४९। हे देव शार्दूल ! रोहिणी नक्षत्र में पूजा करने से प्रजापति ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर पशुओं की प्राप्ति होती है । हे गोपते ! मृगशीर्ष नक्षत्र में सदैव चन्द्रमा की पूजा करने से ज्ञान एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है ।५०। आर्द्रा नक्षत्र में शिव की पूजा करने पर विजय की प्राप्ति होती है तथा उत्तम कमलों द्वारा पूजित होने पर वे समस्त कल्याण प्रदान करते हैं ।५१। पुनर्वसु नक्षत्र में आकाश स्थित अदिति की पूजा करने से अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वह माता की भाँति रक्षा करती है।५२। पुष्य नक्षत्र में वृहस्पति की आराधना करने पर वे अत्यन्त कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं। आश्लेषा में गान पूर्वक गन्धादि के मधुर भक्ष्य पदार्थों द्वारा नागों की पूजा करने पर वे प्रसन्न होकर (विषादिकों) के भय से उसकी रक्षा तथा प्रीति प्रदान करते हैं।५३-५४। मघा नक्षत्र में हव्य-कव्य पितरों को तृप्त करने पर धन धान्य, सेवक, पुत्र, एवं पशुओं की प्राप्ति होती

फाल्गुन्यामथ वै पूषा इष्टः पुष्पादिभिः शुभैः । पूर्वायां विजयं दद्यादुत्तरायां भगं तथा ।।५६
भर्तारमीप्सितं दद्यात्कन्यायै पुरुषाय ताम् । इह जन्मनि युज्येत रूपद्रविणसम्पदा ।।५७
पूजितः सविता हस्ते विश्वतेजोनिधिः सदा । गन्धपुष्पादिभिः सर्वं ददाति विपुलं धनम् ।।५८
राज्यं तु त्वष्टा चित्रायां निःसपत्नं प्रयच्छति । इष्टः सन्तर्पितः प्रीतः स्वात्यां वायुर्बलं परम् ।।५९
इन्द्राग्नी च विशाखायां जातरक्तैः प्रपूज्य च । धनधान्यानि लब्ध्वेह तेजस्वी निवसेत्सदा।।६०
रक्तैर्मित्रमनूराधास्वेवं सम्पूज्य भक्तितः । श्रियो भजन्ति सर्वेषां चिरं जीवन्ति सर्वदा ।।६१
ज्येष्ठायां पूर्ववच्छक्रमिष्ट्वा पुष्टिमवाप्नुयात् । गुणैर्ज्येष्ठश्च[1] सर्वेषां कर्मणा च धनेन च ।।६२
मूले देवपितॄन्त्सर्वान्भक्त्या[2] सम्पूज्य पूर्ववत् । पूर्ववत्फलमाप्नोति स्वर्गस्थाने ध्रुवो भवेत् ।।६३
पूर्वाषाढे ह्यपः पूज्य हुत्वा तत्रैव पूर्ववत् । सन्तापान्मुच्यते क्षिप्रं शारीरान्मानसात्तथा ।।६४
आषाढासु तथा विश्वानुत्तराषाढयोगतः । विश्वेशं पूज्य पुष्पाद्यैः[3] सर्वमाप्नोति मानवः ।।६५
श्रवणे तु सितैर्विष्णुं पीतैर्नीलैश्च भक्तितः । सम्पूज्य श्रियमाप्नोति परं विजयमेव च ।।६६
धनिष्ठासु वसूनिष्ट्वा न भयं भजते क्वचित् । महतोऽपि भयात्त्वेतैर्गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।।६७
इन्द्रं शतभिषायां च व्याधिभिर्मुच्यते ध्रुवम् । आतुरः पुष्टिमाप्नोति स्वास्थ्यमैश्वर्यमेव च ।।६८

है ।५५। पूर्वा फाल्गुनी में सुन्दर पुष्पों द्वारा पूषा की पूजा करने पर विजय, तथा उत्तरा फाल्गुनी में भग देव की आराधना करने पर कन्या को मन चाहा पति एवं पुरुष को कन्या की प्राप्ति होती है और इसी जन्म में उसे अत्यन्त सौन्दर्य पूर्वक धन की भी प्राप्ति हो जाती है ।५६-५७। हस्त नक्षत्र में विश्व के परम तेजस्वी सविता (सूर्य) की पूजा गंध पूष्पों द्वारा पूजा करने से विपुल धन की प्राप्ति होती है ।५८। चित्रा नक्षत्र में पूजित होने पर त्वष्टा निःसन्देह (शत्रु रहित) राज्य प्रदान करते हैं । स्वाती में विधान पूर्वक वायु को प्रसन्न करने पर अधिक फल की प्राप्ति होती है ।५९। विशाखा में अनुराग पूर्ण होकर इन्द्र और अग्नि की पूजा करने पर वह धन धान्य पूर्ण होकर सदैव तेजस्वी बना रहता है ।६०। अनुराधा नक्षत्र में रक्त वर्ण के पुष्पों द्वारा भक्ति पूर्वक मित्र की आराधना करने पर भी सम्पन्न एवं चिरजीवी होता है ।६१। ज्येष्ठा में इन्द्र की पूर्व की भाँति आराधना करने पर वह पुष्टि प्राप्त करते हुए सभी लोगों में धन, गुण और कर्म के कारण श्रेष्ठ होता है ।६२। मूल नक्षत्र में देव एवं पितरों का पूर्वोक्त की भाँति पूजन करने पर वह पूर्वोक्त फल प्राप्ति पूर्वक ध्रुव स्वर्ग का निवासी होता है ।६३। पूर्वाषाढ़ में जल की पूजा तथा हवन करने पर शारीरिक एवं मानसिक संतापों से शीघ्र मुक्ति प्राप्ति होती है ।६४। उत्तराषाढ में पुष्पों आदि द्वारा विश्वदेव की पूजा करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है ।६५। श्रवण में श्वेत, पीत एवं नील वर्ण के पुष्पों द्वारा भक्ति पूर्वक विष्णु की आराधना करने पर लक्ष्मी एवं विजय की प्राप्ति होती है ।६६। धनिष्ठा नक्षत्र में उत्तम गन्ध पुष्पादि द्वारा वसु नामक देवों की पूजा करने पर उसे महान् जप से भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।६७। शतभिषा नक्षत्र में इन्द्र की आराधना करने पर व्याधियों से मुक्ति एवं आतुर होने पर उसे पुष्टि तथा स्वास्थ्य एवं ऐश्वर्य का लाभ होताहै ।६८। पूर्वा भाद्रपद में शुद्ध

---

१. गुडैः संपूज्य ज्येष्ठायां युज्यते मधुसूदन । २. शक्त्या । ३. विभवैः ।

अजं भाद्रपदायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम् । सम्पूज्य भक्तिमाप्नोति परं विजयमेव च ।।६९
उत्तरायामहिर्बुध्न्यं परां शान्तिमवाप्नुयात् । रेवत्यां पूजितः पूषा ददाति सततं शुभम्[1] ।।
सितैः पुष्पैः स्थितिं चैव धृतिं विजयमेव च ।।७०
एवंवैते समाख्याता यज्ञाः संक्षेपतो मया । नक्षत्रदेवतानां च साधकानां हिताय वै ।।
भक्त्या वित्तानुसारेण भवन्ति फलदाः सदा ।।७१
गन्तुमिच्छेदनन्त्यं वा क्रियां प्रारब्धमेव च । नक्षत्रदेवतायज्ञं कृत्वा तत्सर्वमाचरेत् ।।७२
एवं कृते हि तत्सर्वं यात्राफलमवाप्नुयात् । क्रियाफलं च सम्पूर्णमित्युक्तं भानुना स्वयम् ।।७३
यज्ञात्स विजयं कुर्यात्क्रियां कुर्याद्यथेप्सिताम् । कालचक्रेऽथ वा सूर्यं राशिचक्रे कलात्मना ।।७४
विश्वतेजोनिधिं ध्यात्वा सर्वं कुर्याद्यथेप्सितम् । विभूतिरेषा चोद्दिष्टा क्रियाभिः साध्यते ध्रुवम् ।।७५
उद्दिष्टाभिः प्रयत्नेन मुक्तियोगेन साध्यते । भानोराराधनाद्वापि प्राप्यते मुक्तिरेव हि ।।
तस्मादाराधय रविं भक्त्या त्वं मधुसूदन ।।७६
इज्यापूजानमस्कारशुश्रूषाभिरहर्निशम् । व्रतोपवासैर्विविधैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ।।७७

स्फटिक की भाँति अज की पूजा करने से भक्ति एवं विजय की प्राप्ति होती है ।६९। उत्तरा भाद्रपद में 'अहिर्बुध्न्य देव' की पूजा करने से उत्तम शांति प्राप्त होती है । रेवती नक्षत्र में पूषा की पूजा श्वेत पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करने पर निरन्तर कल्याण, स्थिति, धृति, एवं विजय की प्राप्ति होती है ।७०

तुम्हारे और नक्षत्र देवताओं के साधनों के हित की कामना वश होकर मैंने संक्षेप में इन यज्ञों को सुना दिया । अपने वित्त (धन) के अनुसार भक्ति पूर्वक पूजित होने पर ये देवगण सदैव फल प्रदान करते रहते हैं ।७१। इसलिए लम्बी यात्रा अथवा किसी कार्य के आरम्भ करने में प्रथम उस नक्षत्र में अधीश्वर देव के यज्ञ को सम्पन्न कर लेना चाहिए ।७२। क्योंकि उनकी आराधना करने पर धन, पात्र के समस्त फल एवं किये गये कार्य के फल प्राप्त होते हैं ऐसा स्वयं सूर्य ने कहा है ।७३। एवं यज्ञ द्वारा विजय तथा अभिलषित कार्य की सफलता प्राप्त होती है । इस प्रकार उपस्थित काल चक्र के राशिचक्र में कलारूप में स्थायी रहने वाले सूर्य की जो समस्त विश्व के तेजो निधि रूप हैं, पूजा-ध्यान करके अपने मनोरथ को सफल करना चाहिए । जिस विभूति (ऐश्वर्य) के उद्देश्य से व्रतानुष्ठान की क्रिया प्रारम्भ की जाती है उसकी निश्चित प्राप्ति होती है इसमें संदेह नहीं ।७४-७५। और प्रयत्न पूर्वक उन्हीं उद्दिष्ट क्रियाओं एवं भुक्ति निमित्तक योग द्वारा अथवा सूर्य की आराधना करने पर भी मुक्ति (जन्म-मरण रूप बन्धनों से छुटकारा) प्राप्त होती है । अतः हे मधुसूदन ! भक्तिपूर्वक तुम सूर्य की आराधना अवश्य करो ।७६। इस प्रकार यज्ञ, पूजा, नमस्कार, शुश्रूषा (सेवा) रात दिन का व्रत उपवास और अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए जो कोई सूर्य की पूजा एवं उनका हृदयालम्बन (शारीरिक सेवा) करता

---

१. नात्र कार्या विचारणा ।

यः कारयति देवार्चां हृदयालम्बनं रवेः । स नरो भानुसालोक्यमुपैति गतकल्मषः[1] ॥७८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे नक्षत्रपूजाविधिवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजामहिमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यश्च देवालयं भक्त्या भानोः कारयते स्थिरम् । स सप्त पुरुषाँल्लोकान्भानोर्नयति मानवः ॥१

यावन्त्यब्दानि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मन्दिरे । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके स मोदते[2] ॥२

देवार्चा लक्षणोपेता यद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं वा मनो यस्य स याति रविसाम्यताम् ॥३

पुष्पाण्यतिसुगन्धीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति हि देवेशं तद्भावगतमानसः ॥४

धूपांश्च विविधांस्तांस्तान्गन्धाढ्यं चानुलेपनम् । दीपबल्युपहारांश्च यच्चाभीष्टमथात्मनः ॥५

नरः सोऽनुदिनं यज्ञात्प्राप्नोत्याराधनाद्रवेः । यज्ञेशोभगवान्भानुर्मखैरपि च तोष्यते ॥६

बहूपकरणा यज्ञा नानसम्भारविस्तराः । प्राप्यन्ते[3] तैर्धनयुतैर्मनुष्यैर्लोकसञ्चयैः ॥७

है, वह निष्पाप होकर सूर्य की सालोक्य मुक्ति प्राप्ति करता है ।७७-७८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में नक्षत्र पूजाविधि वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ।१०२।

अध्याय १०३

सूर्यपूजामहिमा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भक्तिपूर्वक जो सूर्य के लिए अत्यन्त दृढ मन्दिर बनवाता है, उस पुरुष के सात पीढ़ी के लोग सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं ।१। एवं उस मन्दिर में सूर्य की पूजा जितने वर्ष तक होती है उतने सहस्र वर्ष वह (मन्दिर का निर्माता) सूर्य लोक में आनन्द का अनुभव करता है ।२। इसलिए जिस घर में विधान पूर्वक सूर्य की पूजा निरंतर निष्पाप भाव से होती है उसको (मनुष्य को) सूर्य की समानता प्राप्त हो जाती है ।३। जो पुरुष उनके प्रेम में मुग्ध होकर सुगन्धित एवं मनोहर पुष्प, भाँति-भाँति के धूप, अत्यन्त सुगन्ध पूर्ण लेपन द्वीप एवं बलि उपहार तथा और अन्य अपनी प्रियवस्तु सूर्य के लिए समर्पित करता है, उसे सूर्य के उस नित्य याग करने के द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । क्योंकि भगवान् भास्कर यज्ञेश रूप हैं इसलिए यज्ञ द्वारा उन्हें संतुष्ट किया जाता है ।४-६। यद्यपि यज्ञों के अनेक साधन होते हैं उनका संभार विस्तृत होता है तथा उसे धनवान् ही लोग धनसंचय के नाते सुसम्पन्न करते हैं और इसीलिए उन्हें महान फल की प्राप्ति भी होती है, तथापि निर्धन मनुष्य भी भक्ति पूर्वक केवल दूर्वाङ्कुरों द्वारा सूर्य की

---

१. धुतकल्मषः । २. महीयते । ३. प्रथन्ते ।

भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दुर्वांकुरैरपि । रवेर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥८
यानि पुष्पाणि भक्ष्याणि धूपगन्धानुलेपनम् । दयितं भूषणं यच्च रक्तके चैव वाससी ॥९
यानि चाभ्युपहाराणि भक्ष्याणि च फलानि च । प्रयच्छ तानि देवेश भवेथाश्चैव तन्मनाः ॥१०
आद्यं तं यज्ञपुरुषं यथाशक्त्या प्रसाद्य ।आराध्य स्थापितं देवं तस्मिन्नेव नरालये ॥११
पुष्पैस्तीर्थोदकैर्गन्धैर्मधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्देवं चित्रभानुं दिवाकरम्[1] ॥१२
दधिक्षीरह्रदान्याति स्वर्गलोकान्मधुच्युतान् । प्रयास्यति यदुश्रेष्ठ निर्वृतिं वापि शाश्वतीम् ॥१३
स्तोत्रैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । मनसश्चैकतायोगादाराधय विभावसुम् ॥१४
आराध्य तं विदेहानां पुरुषाः सप्तसप्ततिः । हैहयानां च पञ्चाशदमृतत्वं समागताः ॥१५
स त्वमेभिः प्रकारैस्तमुपवासैस्तु भास्करम् । सन्तोषय हि तुष्टोऽसौ भानुर्भवति शान्तिदः ॥१६

कृष्ण उवाच[2]

उपवासैश्चित्रभानुः कथं तुष्टः प्रजायते । परिचर्या कथं कार्या या कार्या चोपवासिना ॥१७
यद्यत्कार्यं यदा चैवभानोराराधनं नरैः । तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१८

ब्रह्मोवाच

स्मृतः सम्पूजितो धूपपुष्पाद्यैः स सदा रविः । भोगिनामुपकाराय किं पुनश्चोपवासिनाम् ॥१९

आराधना करके समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले उन अत्यन्त दुर्लभ एवं सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति कर सकता है ।७-८। अतः हे देवेश ! समस्त पुष्पों, भक्ष्य पदार्थों, धूप, सुगन्धित लेपन, सुन्दर भूषण, लाल रंग के दो वस्त्रों, समस्त उपहारों एवं भक्ष्य फलों को सूर्य के लिए समर्पित करते हुए उनके ध्यान में तन्मय होने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा करे ।९-१०। सर्वप्रथम उन यज्ञ पुरुष की अपनी शक्त्यनुसार आराधना करके उन्हें प्रसन्न करे और आराधना के पश्चात् यह बताया गया है कि उन्हें उसी मनुष्य के उसी घर में स्थापित करके पुण्य तीर्थ जल, गंध, शहद, घी, एवं दूध द्वारा उन चित्रभानु नामक सूर्य का स्नान कराना चाहिए।११-१२। इस प्रकार इस अनुष्ठान के सुसम्पन्न करने पर उसे स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है जो दही, दूध के तालाबों से पूर्ण एवं मधुमय रहता है । हे यदुश्रेष्ठ ! इस प्रकार वह सर्वदा के लिए मुक्त भी हो जाता है ।१३। अतः स्तोत्र, गायन, वाद्य एवं ब्राह्मणों की तृप्ति द्वारा तन्मय होकर सूर्य की आराधना अवश्य करे।१४। क्योंकि उनकी आराधना के द्वारा ही विदेह (जनक) की सतहत्तर पीढ़ी और हैहय राजा की पचास पीढ़ी के लोगों ने मुक्ति प्राप्त की है ।१५। तुम भी उसी प्रकार उपवास आदि द्वारा सूर्य को संतुष्ट करो। उससे प्रसन्न होने पर सूर्य शांति (मोक्ष) प्रदान करेंगे ऐसा कहा गया है।१६

कृष्ण ने कहा—उपवास के द्वारा सूर्य कैसे प्रसन्न होते हैं और उपवास रहकर किस प्रकार की सेवा करनी चाहिए । हे ब्रह्मन् ! जिस-जिस समय मनुष्य को जिस भाँति सूर्य की आराधना करनी चाहिए, उसे विस्तार पूर्वक आप मुझसे बताने की कृपा करें ।१७-१८

ब्रह्मा बोले—केवल धूप, पुष्प, आदि द्वारा ही आराधना करने पर सूर्य भोगी पुरुषों की भी

---

१. जगत्पतिम् । २. श्रीविष्णुरुवाच-इति सर्वत्र कृष्ण उवाचेत्यस्य स्थाने पाठः ।

उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासोगुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥२०
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रमथ वा हरे । उपवासी रविं यस्तु भक्त्या ध्यायति मानवः ॥२१
तन्नामयाजी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः । निष्कामः पूजयित्वा तं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२२
यश्च काममभिध्याय भास्करार्पितमानसः । उपोषति तमाप्नोति प्रसन्ने तु वृषध्वजे ॥२३

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिस्तथा विभो । संसारगर्तपङ्कस्थैः सुगतिः प्राप्यते कथम् ॥२४

ब्रह्मोवाच

अथाराध्य जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहम् । निर्व्यलीकेन चित्तेन प्रयास्यति च सद्गतिम् ॥२५
विषयाग्राहवैषम्यं न चित्तं भास्करार्पणम् । स कथं पाप कर्ता वै नरो यास्यति सद्गतिम् ॥२६
यदि संसारदुःखार्तः सुगतिं गन्तुमिच्छसि । तदाराधय सर्वेशं[1] ग्रहेशं लोकपूजितम् ॥२७
पुष्पैः सुगन्धैर्हृद्यैश्च धूपैः सागुरुचन्दनैः । वासोविभूषणैर्भक्ष्यैरुपवासपरायणः ॥२८
यदि संसारनिर्वेदादभिवाञ्छसि सद्गतिम् । तदाराधय कालेशं यच्चेष्टं तद चेतसा ॥२९
पुष्पाणि यदि तेन स्युः शस्तं पादपपल्लवैः । दूर्वांकुरैरपि कृष्ण तदभावेऽर्चयेद्रविम् ॥३०

अभिलाषाएँ पूरी करते हैं और जो उपवास रह कर उनकी आराधना करता है उसके लिए कहना ही क्या है ।१९। पाप निवृत्ति पूर्वक भागों के त्याग कर जो रागद्वेषरहित गुणों के साथ व्यतीत करता है उसे 'उपवास' कहते हैं ।२०। हे हर ! इस प्रकार एक दो या तीन रात का उपवास रहकर भक्ति पूर्वक उनके नाम के कीर्तन उन्हीं के लिए कर्मों में अनुरक्त एवं तन्मय होकर निष्काम भावना से जो सूर्य की आराधना करता है उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।२१-२२। उनमें पूर्ण मन लगा कर तथा पूर्ण ध्यान पूर्वक उनकी आराधना जो उपवास रहकर करता है उसकी सकल कामनाएँ वृषध्वज (सूर्य) के प्रसन्न होने पर सफल हो जाती हैं ।२३

श्रीकृष्ण ने कहा—हे विभो ! संसार रूपी गर्त (गढ्ढे) के कीचड़ में फंसे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियां उत्तम गति कैसे प्राप्त करती हैं ? २४

सुमन्तु बोले—शांत चित्त होकर जगत्पति एवं अन्धकार नाशक भास्कर की आरधना करने पर वे उन्हें उत्तम गति प्रदान करते हैं किन्तु विषय में अनुरक्त होने के नाते उसका चित्त सूर्य के लिए समर्पित (तन्मय) न हो सका तो उस पापी मनुष्य को उत्तम गति कैसे प्राप्त हो सकती है ।२५-२६। इसीलिए संसार के दुःखों से दुःखी होकर यदि उत्तम गति की प्राप्ति करना चाहते हो तो लोक पूजित, ग्रहों के ईश एवं स्वाधिपति सूर्य की पुष्प, सुगन्ध, उत्तम धूप, अगुरु चन्दन, वस्त्र, आभूषणों तथा भक्ष्यपदार्थों द्वारा उपवास रहते हुए अवश्य आराधना करो । यदि संसार से विरक्त होकर सद्गति चाहते हो तो काल के ईश सूर्य की आत्मप्रिय वस्तुओं द्वारा आराधना करो । हे कृष्ण ! यदि उस समयमें किसी भाँति पुष्प प्राप्त न हो सकें, तो वृक्षों के सुन्दर पल्लवों तथा उसके अभाव में केवल दुर्वा के अङ्कुरों द्वारा ही

---

१. भूतेशम् ।

पुष्पपत्राम्बुभिर्धूपैर्यथाविभवमात्मनः । पूजितस्तुष्टिमतुलां भक्त्या यात्येकचेतसाम् ॥३१
यः सदायतने भानोः कुर्यात्सम्मार्जनं नरः । स पांसुदेहसंयोगात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३२
यावत्यः पांसुकणिका मार्ज्यन्ते भास्करालये । दिनानि दिवि दिव्यानि तावन्ति मोदते नरः ॥३३
सबाह्याभ्यन्तरं वेश्म मार्जते भास्करस्य यः । स बाह्याभ्यन्तरस्तस्य कायो निष्कल्मषो भवेत् ॥३४
यश्चानुलेपनं कुर्याद्भानोरायतने नरः । स हेलिलोकमासाद्य मोदते गोगते हरौ ॥३५
मृदा वा मृद्विकारैर्वा वर्णकैर्गोमयेन वा । अनुलेपनकृद्भक्त्या नरो गोपतिमाप्नुयात् ॥३६
उदकाभ्युक्षणं भानोर्यः करोति तथाक्षये । स गच्छति नरः कृष्ण यत्रास्ते गोपतिः सदा ॥३७
पुष्पप्रकरमत्यर्थं सुगन्धं भास्करालये । अनुलिप्ते नरो दद्यात्पूषोत्तरगृहं व्रजेत् ॥३८
विमानवरमभ्येति सर्वरत्नमयं दिवि । सम्प्राप्नोति नरो दत्त्वा दीपकं भास्करालये ॥३९
यस्तु सम्वत्सरं पूर्णं तिलपात्रप्रदो नरः । ध्वजं च भास्करे दद्यात्सममत्र फलं लभेत्[1] ॥४०
विधुनोत्यतिवातेन दातुरज्ञानतः कृतम् । पापं दातुर्गृहे भानुर्दिवारात्रौ न संशयः ॥४१
गीतवाद्यादिभिर्देवं य उपास्ते विभावसुम् । गन्धर्वनृत्यैर्वाद्यैश्च विमानस्थो निषेव्यते ॥४२

सूर्य की अर्चना करो ।२७-३०। क्योंकि भक्तिपूर्वक तन्मय होकर शक्ति के अनुसार पुष्प, पत्र एवं जल द्वारा ही उनकी पूजा करने पर प्रसन्न होने से ये अतुलनीय तुष्टि प्रदान करते हैं ।३१। इस प्रकार जो मनुष्य उनके मंदिर में झाड़ू द्वारा सफाई करता है उसे अपनी देह में (झाड़ू द्वारा उड़ी हुई) धूल स्पर्श होते ही समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।३२। सूर्य के मंदिर में धूल के जितने कणों की सफाई होती है, उतने दिव्य दिन वह मनुष्य दिव्य लोक में आनन्द का अनुभव करता है ।३३। एवं जो सूर्य के मन्दिर में उसके बाहरी तथा भीतरी भाग की सफाई करता है उसी प्रकार उस मनुष्य के शरीर के बाहरी एवं भीतरी भाग भी निष्पाप हो जाते हैं ।३४। तथा जो सूर्य के मन्दिर में लेपन (रंग आदि) लगाता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३५। मिट्टी या मिट्टी द्वारा बनी हुई (गेरू) आदि वस्तु अथवा रंग एवं गोबर से उनके मंदिर को जो लीपता है उसे सूर्य की प्राप्ति होती है ।३६। हे कृष्ण ! उसी प्रकार क्षय काल में जो जल द्वारा सूर्य का अभिषेक करता है, उसे गो पति (सूर्य) के पुनीत लोक की प्राप्ति होती है ।३७। इस भाँति सूर्य के मन्दिर में लेपन (सफाई) हो जाने के उपरांत जो सुगन्धित पुष्पों को उन्हें समर्पित करता है, उसे पूषा (सूर्य) के उत्तर (आगे) वाले गृह की प्राप्ति होती है ।३८। सूर्य के मन्दिर में दीपक जलाने वाले को रत्नमय सुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३९। जो मनुष्य पूरे वर्ष सूर्य के लिए तिलपात्र तथा ध्वजा प्रदान करता है, उसे उसके समान ही फल की प्राप्ति होती है ।४०। तथा वायु के अत्यन्त झोंकों द्वारा ध्वजा के कम्पित होने पर उसके दाता (ध्वजा के समर्पित करने वाले) के अज्ञान वश किये गये प्रतिदिन के सभी पाप नष्ट हुआ करते हैं। इसमें संशय नहीं ।४१। जो गायन एवं वाद्यादि द्वारा सूर्य की उपासना करता है उसे सुसज्जित विमान पर आसीन कर गन्धर्व गण नृत्य एवं वाद्यों द्वारा उसकी सेवा करते रहते हैं ।४२। सूर्य के मन्दिर में जो पुरुष कथाओं को

---

१. भुवि-इ० पा० ।

जातिस्मरत्वं वृद्धिं च ततस्तु परमां गतिम् । प्राप्नोति हेलेरायतने पुण्याख्यानकथाकरः ।।४३
तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नेन पूजयेदापि वाचकम् । नान्यत्प्रीतिकरं भानोः पुण्याख्यानादृते क्वचित् ।।४४
एकोऽपि हेलेः सुकृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म हेलिप्रणामी न पुनर्भवाय।।४५
एवं[1] देवेश्वरो भक्त्या येन भानुरुपासितः । स प्राप्नोति गतिं श्लाघ्यां यामिच्छति च चेतसा ।।४६
तमाराध्य मया प्राप्तं ब्रह्मत्वं लोकपूजितम् । सौरेर्यथेप्सितं प्राप्तं त्वया तस्मात्पुरानघ ।।४७
ब्रह्महत्याभिभूतस्तु गोश्रुताभरणो हरः । तमाराध्य रविं भक्त्या मुक्तोऽसौ ब्रह्महत्यया ।।४८
देवत्वं मनुजैः कैश्चिद्गन्धर्वत्वं तथा परैः । विद्याधरत्वमपरैरेवाप्तं हि दिवाकरात् ।।४९
लेखः क्रतुशतेनेशमाराध्यैनं दिवाकरम् । इन्द्रत्वमगमत्तस्मान्नान्यः पूज्यो[2] दिवाकरात् ।।५०
देवेभ्योऽप्यतिपूज्यस्तुस्वगुरुर्ब्रह्मचारिणा । तस्मात्स यज्ञपुरुषो विवस्वान्पूज्य एव हि ।।५१
स्त्रियाश्च भर्तारमृते पूज्योऽत्यन्तं विभावसुः । भर्तुर्गृहस्थस्य सतः पज्यो गोपतिरन्शुमान् ।।५२
वैश्यानामपि नाराध्यस्तपोभिस्तमनाशनः । ध्येयः परिव्राजकानां सदा देवो विभावसुः ।।५३

सुनाता है उसकी जन्मान्तरीय, जातिस्मरणी एवं वृद्धि होने के पश्चात् उत्तम गति की भी प्राप्ति होती है ।४३। इसीलिए प्रयत्न पूर्वक (कथा) वाचक की पूजा करनी चाहिए क्योंकि सूर्य के प्रसन्न होने के लिए पुण्य कथाओं के सुनने-सुनाने के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं बतायी गयी है ।४४। एवं भली भाँति एक ही बार सूर्य के लिए प्रणाम करने वाले को दश अश्वमेध यज्ञ करने के समान फल प्राप्त होते हैं और दश अश्वमेध यज्ञ करने वाले को यहाँ (भूमि पर) जन्म लेना पड़ता है पर सूर्य के प्रणाम करने वाले का फिर जन्म नहीं होता है ।४५। इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक सूर्य की आराधना करता है, उसे अपने मनोनुकूल उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।४६। हे अनघ ! पहले जिस प्रकार आपने सूर्य की आराधना द्वारा अपने मनोरथ की सफलता प्राप्त की थी उसी भाँति उन्हीं की आराधना के मैंने भी लोकपूजित ब्रह्मत्व की प्राप्ति की है ।४७। ब्रह्म हत्या से अभिभूत (दुःखी) होकर शिव ने भी सूर्य की आराधना करके ब्रह्म हत्या से मुक्ति प्राप्त की है ।४८। इस प्रकार सूर्य के द्वारा ही किसी मनुष्य ने देवत्व किसी ने गन्धर्वत्व और किसी ने विद्यापारण की प्रगति की है ।४९। तथा सौ यज्ञ द्वारा सूर्य की आराधना करके देव ने इन्द्रत्व की प्राप्ति की है अतः दिवाकर से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है ।५०। जिस प्रकार ब्रह्मचारी अपने गुरु की आराधना करता है, उसी भाँति सूर्य भी देवताओं के आराध्यं देव हैं अतः यज्ञ पुरुष सूर्य ही सभी के आराध्य एवं पूज्य देव हैं ऐसा समझना चाहिए ।५१। पति के मरणान्तर पति के अतिरिक्त सूर्य उन विधवा स्त्रियों के अत्यन्त पूज्य हैं पति के वर्तमान रहते हुए भी अंशुमाली सूर्य उनके पूज्य हैं ।५२। तमनाशक सूर्य तप द्वारा वैश्यों के भी आराध्य देव हैं और संन्यासियों के लिए तो वे उनके सदैव ध्येय है ।५३। इस प्रकार सूर्य सभी आश्रम, सभी वर्णों के परायण (योग्य आदि) हैं अतः उनकी

---

१. देवदेवेश्वरः । २. पूज्यतमो रवेः ।

एवं सर्वाश्रमाणां हि चित्रभानुः परायणम् । सर्वेषां चैव वर्णानां तमाराध्याप्नुयाद्गतिम् ।।५४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सूर्यपूजामहिमवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०३।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

त्रिवर्गसप्तमीव्रतनिरूपणम्

शृणुष्व संयतः काम्यानुपवासांस्तथापरान् । तांस्तानाश्रित्य यान्कामान्कुरुतेप्सितमानसः ।।१
सप्तम्यां शुक्लपक्षे तु फाल्गुनस्येह मानवः । जपन्हेलीति देवस्य नाम भक्त्या पुनःपुनः ।।२
देवार्चने चाष्टशतं कृत्वैतच्च जपेच्छुचिः । स्नातः प्रस्थानकाले तु उत्थाने स्खलिते क्षुते ।।३
पाखण्डान्पतितांश्चैव तथैवान्यायशालिनः । नालपेत तथा भानुनर्चयेच्छ्रद्धयान्वितः ।।
इदं चोदाहरेद्भानौ मनः संधाय तत्परः ।।४
हंसहंस कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव । संसारार्णवमग्नानां त्राता भव दिवाकर ।।५
एवं प्रसाद्योपवासं कृत्वा नियतमानसः । पूर्वाह्ण एव च सकृत्प्राश्याच्चाचमनीयकम् ।।६
स्नात्वार्चयित्वा हंसेति पुनर्नाम प्रकीर्तयेत् । वज्रधारात्रयं चैव क्षिपेत्त्रिर्देवपादयोः ।।७

आराधना करके उत्तम गति की प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिए ।५४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य पूजा महिमा वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ।१०३।

अध्याय १०४

त्रिवर्गसप्तमीनिरूपण

संयम पूर्वक उन काम्य एवं अन्य उपवासों को जिसके करने से मन इच्छित फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१। फाल्गुन के शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान द्वारा पवित्र होकर मनुष्य को सूर्य देव के 'हेलि' नाम का जप बार बार करते रहना चाहिए । देवार्चन में आठ सौ बार पवित्रतापूर्ण जप करना चाहिए एवं यात्रा के समय स्नान करके शयन से उठने पर स्खलित (मूर्च्छित) अवस्थाओं में एवं छींकने के समय भी सूर्य के उपरोक्त नाम का जप करना आवश्यक होता है । श्रद्धालु होकर सूर्य की आराधना के समय पाखंडी पतित एवं अन्याय करने वाले मनुष्य के साथ बात चीत नहीं करना चाहिए अपितु सूर्य में मन लगाकर यही कहना चाहिए कि हे हंस हंस ! आप कृपालु एक अगति के गति हैं अतः हे दिवाकर ! संसार सागर में डूबे हुए जीवों की आप रक्षा करो ।२-५। इस प्रकार उन्हें प्रसन्न कर संयम पूर्वक उपवास करते हुए (दिन के) पूर्वाह्ण समय में एक आचमन जल का एकबार प्राशन करे पश्चात् स्नान करने के उपरांत उनकी अर्चना पूर्वक उस हंस नाम का बार-बार कीर्तन करते हुए उनके चरण में वज्र पुष्प की तीन अंजलि अर्पित करे ।६-७

चैत्रवैशाखयोश्चैव तद्वज्ज्येष्ठे तु पूजयन् । मर्त्यलोके गतिं श्रेष्ठां कृष्ण प्राप्नोति वै नरः ।।८
उत्क्रांतस्तु व्रजेत्कृष्ण दिव्यं हंसालयं शुभम् । वृषध्वजप्रसादाद्वै संक्रन्दनश्रिया वृतः ।।९
आषाढ़े श्रावणे चैव मासि भाद्रपदे तथा । तथैवाश्वयुजे चैव अनेन विधिना नरः ।।१०
उपोष्य सम्पूज्य तथा मार्तण्डेति च कीर्तयेत् । गोमूत्रप्राशनोत्पूतो धनी धनपुरं व्रजेत् ।।११
आराधितस्य जगतामीश्वरस्याव्ययात्मनः । उत्क्रांतिकाले स्मरणं भास्करस्य तथाप्नुयात् ।।१२
क्षीरस्य प्राशनं कृष्ण विधिं चैव यथोदितम् । कार्त्तिकादि यथान्यायं कुर्यान्मासचतुष्टयम् ।।१३
तेनैव विधिना कृष्ण भास्करेति च कीर्तयेत् । स याति भानुसालोक्यं भास्करं स्मरति क्षये ।।१४
प्रतिमासं द्विजातिभ्यो दद्याद्दानं यथेप्सितम् । चातुर्मास्ये तु सम्पूर्णे कृत्वा पुस्तकवाचनम् ।।१५
कथां तु भास्करस्येह सङ्गीतकमथापि वा । धर्मश्रवणमभीष्टं सदा धर्मध्वजस्य तु ।।१६
वाचकं पूजयित्वा तु तस्मात्कार्यं विपश्चिता । श्राद्धमन्येन पक्वेन वाचकेन द्विजेन तु ।।
दिव्येन च यथायुक्तमभीष्टं भास्करस्य हि ।।१७
एवमेव गतिं श्रेष्ठां देवानामनुकीर्तनात् । प्राप्नुयात्त्रिविधां कृष्ण त्रिलोकाख्यां नरः सदा ।।१८
कथितं पारणं यत्ते प्रथमं गोधराधनम् । आधिपत्यं तथा भोगांस्ततः प्राप्नोति मानुषः ।।१९

चैत्र वैशाख मास के इस विधान की भाँति ज्येष्ठ में भी उनकी पूजा इसी विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । हे कृष्ण ! उसी द्वारा इस मर्त्य लोक में उस मनुष्य को उत्तम गति की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ऐसा बताया गया है ।८। हे कृष्ण ! मरणानन्तर वह पुरुष वृष ध्वज (सूर्य) की अनुकम्पा वश हर्षातिरेक से मग्न होकर दिव्य हंस (सूर्य) की प्राप्ति करता है ।९। इसी प्रकार मनुष्य आषाढ, सावन, भादों तथा आश्विन मास में उपवास पूर्वक इनकी पूजा कर 'मार्तण्ड' नाम का कीर्तन और गो मूत्र का प्राशन करके पवित्र होने पर कुबेर लोक की प्राप्ति करता है ।१०-११। तदनन्तर जगत् के ईश्वर एवं अक्षय रूप सूर्य की आराधना के नाते उसे मरण समय में उसी प्रकार भास्कर का स्मरण भी प्राप्त होता है ।१२। हे कृष्ण ! उसी भाँति कार्तिक आदि चारों मासों में उसी विधान द्वारा यथोचित पूजन और दूध का प्राशन करने के पश्चात् 'भास्कर' नाम का कीर्तन करे और उनका स्मरण करने से मरण काल में (भास्कर) सूर्य के सालोक्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ।१३-१४। इस भाँति प्रतिमास में द्विजातियों को मनोनीत दान देते हुए चार्तुमास्य की सप्तमी में पुनः पुस्तक वाचन (कथा) श्रवण करना चाहिए ।१५। संगीत के साथ अथवा यों ही कथा का पारायण अवश्य होना चाहिए, क्योंकि उन धर्मध्वज (सूर्य) को धर्म श्रवण अत्यन्त प्रिय है ।१६। कथावाचक ब्राह्मण की पूजा करने के उपरान्त बुद्धिमान् को कथा सुनते हुए खीर आदि द्वारा श्राद्ध भी उसी दिव्य ब्राह्मण वाचक के द्वारा सुसम्पन्न कराना चाहिए । क्योंकि सूर्य को दिव्य ब्राह्मण द्वारा श्राद्ध अत्यन्त अभीष्ट रहता है ।१७। हे कृष्ण ! इस प्रकार देवताओं के कीर्तन करने से उसे त्रिलोक नामक तीन प्रकार की उत्तम गति सदैव प्राप्त होती रहती है ।१८

इस भाँति प्रथम पारण जिसके द्वारा मनुष्य आधिपत्य एवं भोगों की प्राप्ति करता है, तुम्हें बता

द्वितीयेन तथा भोगान्गोपतेः प्राप्नुयान्नरः । सूर्यलोकं तृतीयेन पारणे न तथाप्नुयात् ॥२०
एवमेतत्समाख्यातं गतिप्रापकमुत्तमम् । विधानं देवशार्दूल यदुक्तं सप्तमीव्रते ॥२१
यः श्वेतां सप्तमीं कुर्यात्सुगतिं श्रद्धया नरः । तथा भक्त्या च वै नारी प्राप्नोति त्रिविधां गतिम् ॥२२
एषा धन्या पापहरा तिथिर्नित्यमुपासिता । आराधनाय यस्तेषां यदा भानोर्धराधर ॥२३
पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापभयापहा । तथा धन्या च पुण्या च त्रिवर्गादीष्टदा सदा ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे त्रिवर्गसप्तमीव्रतनिरूपणं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।१०४।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कामदासप्तमीव्रतनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

फाल्गुनामलपक्षस्य सप्तम्यां क्ष्माधराव्यय । उपोषितो नरो नारी समभ्यर्च्य तमोऽपहम् ॥१
सूर्यनाम जपन्भक्त्या मितभोक्ता जितेन्द्रियः । उत्तिष्ठन्प्रस्वपंश्चैव सूर्यमेवाभिकीर्तयेत् ॥२
ततोऽन्यदिवसे प्राप्ते त्वष्टम्यां प्रयतो रविम् । स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥३

दिया ।१९। इसी प्रकार दूसरे पारण द्वारा मनुष्य सूर्य के भोगों की प्राप्ति करता है और तीसरे पारण द्वारा सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।२०। हे देवशार्दूल ! इस प्रकार मैंने उत्तम विधान को तुम्हें सुना दिया सप्तमी व्रत में अनुष्ठान द्वारा उत्तम गति प्राप्त होती है ।२१। जो पुरुष या स्त्री भक्ति पूर्वक इस श्वेता नामक सप्तमी की समाप्ति विधान पूर्वक सुसम्पन्न करते हैं उन्हें उत्तमगति एवं स्त्री को त्रिविध गति की प्राप्ति होती है ।२२। इसलिए यह तिथि प्रशंसनीय, पापहारिणी एवं नित्य उपासना करने के योग्य कही गयी है ये धराधर ! जो सूर्य की इन तिथियों में सूर्य की आराधना कथा पारायण करने या श्रवण द्वारा करता है उसके समस्त पापों को यह नष्ट करती है एवं यह सदैव प्रशस्त एवं पुण्य रूप होने के नाते धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता भी सदैव प्रदान करती रहती है ।२३-२४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में त्रिवर्ग सप्तमी व्रत निरूपण नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ।१०४।

अध्याय १०५

कामदा सप्तमीव्रत का निरूपण

ब्रह्मा बोले—हे क्ष्माधर एवं अव्यय ! फाल्गुनमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में पुरुष या स्त्री को चाहिए कि उपवास रहकर सूर्य की पूजा करके भक्ति पूर्वक सूर्यनाम के जप करें और भोजन के समय मित अन्न भोजन करे तत्पश्चात् संयम पूर्वक जागते एवं शयन आदि करते समय सूर्य के नाम का ही कीर्तन करता रहे। इस प्रकार दूसरे दिन अष्टमी में स्नान करके तन्मय होकर सूर्य की अर्चना, ब्राह्मणों को दक्षिणा

रविमुद्दिश्य वै चाग्नौ घृतहोमकृतक्रियः । प्रणिपत्य जगन्नाथमिति वाणीमुदीरयेत् ॥४
यमाराध्य पुरा देवी सावित्री कामनाय वै । स मे ददातु देवेशः सर्वान्कामान्दिभावसुः ॥५
समभ्यर्च्य इति प्राप्तान्कृत्स्नान्कामान्यथेप्सितान् । स ददात्यखिलान्कामान्प्रसन्नो मे दिवस्पतिः ॥६
भ्रष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्य दिवस्पतिः । कामान्सम्प्राप्तवान्राज्यं स मे कामं प्रयच्छतु ॥७
एवमभ्यर्च्य पूजां च निष्पाद्येह विवस्वतः । भुञ्जीत पयतः सम्यग्घविष्यं पतगध्वज ॥८
फाल्गुने चैत्रवैशाखज्येष्ठे यस्य समापनम् । चतुर्भिः पारणं मासैरेभिर्निष्पादितं भवेत् ॥९
करवीरैश्चतुरो मासान्भक्त्या सम्पूजयेद्रविम् । कृष्णागुरुं दहेद्धूपं प्राश्यं गोश्रृङ्गजं जलम् ॥१०
नैवेद्यं खण्डवेष्टांस्तु दद्याद्विप्रेभ्य एव च । ततश्च श्रूयतामन्या ह्याषाढादिषु या क्रिया ॥११
जातीपुष्पाणि शस्तानि धूपो गौग्गुल उच्यते । कूपोदकं समश्नीयान्नैवेद्यं पायसं मतम् ॥१२
स्वयं तदेव चाश्नीयाच्छेषं पूर्ववदाचरेत् । कार्त्तिकादिषु मासेषु गोमूत्रं कायशोधनम् ॥१३
महाङ्गो धूप उद्दिष्टः पूजा रक्तोत्पलैस्तथा । कांसारं चात्र नैवेद्यं निवेद्यं भास्कराय वै ॥१४
प्रतिमासं च विप्राय दातव्या दक्षिणा तथा । कर्पूरं चन्दनं मुस्तागुरुं तगरं तथा ॥१५
ऊषणं शर्करा कृष्ण सुगन्धं सिह्लकं तथा । महाङ्गोऽयं स्मृतो धूपः प्रियो देवस्य सर्वदा ॥१६

अर्पित करने के उपरांत सूर्य के उद्देश्य से अग्नि में घी की आहुति अर्पित करे । अनन्तर उन्हें प्रणाम करके (जगन्नाथ) शब्द का उच्चारण भी करे ।१-४। पश्चात् यह भी कहे कि जिसकी सर्वाङ्गीण आराधना करके सावित्री देवी निखिल कामनाएँ प्राप्त की हैं वही देवनायक सूर्य उन समस्त कामनाओं को मुझे प्रदान कर अनुगृहीत करे ।५। भली भाँति पूजा करने से प्राप्त होने वाली उन समस्त कामनाओं से प्रसन्न होकर सूर्य देव मुझे वर प्रदान करने की कृपा करें ।६। तथा जिस प्रकार राज्यच्युत होने पर स्वर्गपति देवराज इन्द्र को उनकी आराधना द्वारा राज्य समेत अपनी समस्त कामनाएँ पुनः प्राप्त होती है उसी भाँति वही कामनाएँ मुझे भी प्राप्त हों ।७। हे पतगध्वज ! इस प्रकार उस विवस्वान् की पूजा करके संयम पूर्वक हविष्यान्न का भोजन करे ।८। इस प्रकार फाल्गुन, चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ, के इन्हीं मासों में इस व्रतानुष्ठान की समाप्ति होने के नाते इसमें चार पारण बताये गये हैं ।९। इन चारों मासों में करवीर (कनेर) के पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा करके काले अगुरु की धूप प्रदान करने के पश्चात् गाय के सींगों द्वारा पूत जल का प्राशन करने के उपरांत नैवेद्य और खांड से बने हुए भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मणों को समर्पित करे अब आषाढ आदि मासों के विधान को भी दता रहा हूँ सुनो ! ।१०-११। इसमें चमेली के उत्तम पुष्पों एवं गुग्गुल की धूप समर्पित कर कूपोदक का प्राशन करना बताया गया है । इस व्रत विधान में खीर का नैवेद्य अर्पित करके स्वयं भी इसी का भक्षण करें और शेष सभी क्रियाओं को पूर्ववत् करना चाहिए । उसी भाँति कार्तिक आदि मासों में गोमूत्र का प्राशन, महांग धूप, रक्त वर्ण के कमल पुष्पों द्वारा उन भास्कर की पूजा करके उन्हें कासार (कसेरु) का नैवेद्य प्रदान करना चाहिए ।१२-१४

एवं प्रति मास की पूजा में ब्राह्मण को दक्षिणा अवश्य प्रदान करना चाहिए । हे कृष्ण ! कपूर, चन्दन, मुस्ता (मोथा) अगुरु, तगर, सोंठ, मिर्च, पिपरामूल एवं सुगन्ध सिंह्लक मिलाकर बने धूप को महांग धूप बताया गया है जो सूर्य के लिए सदैव प्रिय है ।१५-१६। इस प्रकार प्रत्येक पारण में विशेष

प्रीणनं चेष्टया भानोः पारणेदारणे गते । यथाशक्ति यथायोगं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।१७
सद्भावेनैव सप्ताश्वः पूजितः प्रीयते यतः । पारणान्ते यथाशक्त्या पूजितः स्नापितो रविः ।।१८
प्रीणितश्चेप्सितान्कामान्दद्यादव्याहतं हरे । ऐषा पुण्या पापहरा सप्तमी सर्वकामदा ।।१९
यथाभिलषितान्कामाँल्लभते गरुडध्वज । उपोष्यैतां त्रिभुवनं प्राप्तमिन्द्रेण वै पुरा ।।२०
पुत्रं प्रापच्च सावित्री पुत्रांस्तु अदितिस्तथा । यदवः कामनां प्राप्ता धौम्यो वेदमवाप्तवान् ।।२१
त्वप्राप्ता भार्गवी कृष्ण शङ्करः शुद्धिमाप्तवान् । पितामहत्वं प्राप्तोऽहं तत्प्रसादाज्जनार्दन ।।२२
अन्यैश्चाधिगताः कामास्तमाराध्य न संशयः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्योषिद्भिरेव च ।।२३
यं यं काममभिध्यायेत्तंतं प्राप्नोत्युपोषणात् । जनः प्राप्नोत्यसंदिग्धं भानोराराधनाद्यतः ।।२४
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति रोगतश्चापि मोदते । रोगाभिभूत आरोग्यं कन्या विन्दति सत्पतिम् ।।२५
समागत्य प्रवसित उपोष्यैतदवाप्नुयात् । सर्वान्कामानवाप्नोति गोगतश्चापि मोदते ।।२६
नापुत्रो नाधनो वापि न वानिष्टो न निर्घृणः । उपोष्यैतद्व्रतं मर्त्यः स्त्रीजनो वापि जायते ।।२७
गोहेलिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः । गौरिकं यानमारूढस्तेजसा रविसन्निभः ।।२८

चेष्टाओं द्वारा सूर्य को प्रसन्न करना ही मुख्य बताया गया है। इसमें यथाशक्ति धन का व्यय करना चाहिए कृपणता कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे कार्य में कृपणता निषिद्ध बतायी गयी है।१७। क्योंकि सद्भावना रख कर ही पूजा करने से सात घोड़े पर अधिष्ठित होने वाले सूर्य प्रसन्न होते हैं। इसीलिए प्रत्येक पारण की समाप्ति में यथाशक्ति (सामग्रियों) द्वारा किये गये स्नान एवं पूजा से प्रसन्न होकर सूर्य उसे निर्वाध मनोवांछित सफलता प्रदान करते हैं। अतः हे हर ! यह सप्तमी इस प्रकार पुण्य पापहारिणी, एवं समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली बतायी गयी है।१८-१९

हे गरुडध्वज ! पहले समय में इन्द्र ने इसी के उपवास आदि द्वारा तीनों लोकों (के आधिपत्य) की प्राप्ति की है।२०। एवं इसी के द्वारा जिस प्रकार सावित्री ने पुत्र, अदिति ने अनेक पुत्रों, यदुवंशियों ने अपनी कामनाएँ, धौम्य ने वेद, तुमने पृथ्वी, शंकर ने आत्मशुद्धि और उसी की कृपावश मैने भी पितामहत्व की प्राप्ति की है।२१-२२। इसी भाँति अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियाँ भी उस देव की आराधना करके कामनाएँ सफल की हैं।२३

मनुष्य जिस कामनावश (सप्तमी में) उनकी आराधना उपवास रहकर करता है उसकी वह कामना निश्चित सफल होती है। इसी प्रकार सूर्य की आराधना करके अपुत्री पुत्र, एवं सूर्य की प्राप्ति पूर्वक आनन्दानुभव, रोगी आरोग्य, कन्या उत्तम पति एवं प्रवासी निजगृह की प्राप्ति पूर्वक समस्त कामनाएँ सफल करता है तथा सूर्य लोक में आनन्दानुभव भी प्राप्त करता है।२४-२६। इसीलिए इस व्रत विधान के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने पर कोई भी मनुष्य अपुत्री, निर्धन, दुःखी एवं घृणा का पात्र नहीं रह जाता है अपितु चाँदी द्वारा रचित विमान पर बैठकर सूर्य की भाँति तेजस्वी होकर सूर्य लोक की प्राप्ति कर अनेकों वर्ष आनन्दानुभव करता है।२७-२८। हे कृष्ण उपरोक्त यह (पुरुष) इस पृथ्वी पर कभी जन्मग्रहण कर

पुनरेत्य महीं कृष्ण धनाघनसमो नृपः । क्ष्मातले स्यान्न संदेहः प्रसादाद्गोपतेर्नरः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे कामदासप्तमीव्रतनिरूपणं
नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।१०५।

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

पापनाशिनीव्रतविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुनश्चैतन्महाभाग श्रूयतां गदतो मम । प्रोक्तं खगेन देवानां तिथिमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१

विष्णुरुवाच

विजयातिजया चैव जयन्ती च महातिथिः । त्वत्तः श्रुता सुरश्रेष्ठ ब्रूहि मे पापनाशिनीम् ॥२
तथोत्तरायणं ब्रूहि शस्तं यद्भास्करार्चने । यत्र सम्पूजितो भानुर्भवेत्सर्वाघनाशनः ॥
तन्मे कथय यत्नेन भक्त्या पृष्टोऽक्षयं फलम् ॥३

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदर्क्षं तु रवेर्भवेत् । तदा स्यात्सा महापुण्या सप्तमी पापनाशिनी ॥४

सूर्य की अनुकम्पा द्वारा इन्द्र के समान निश्चित सर्वप्रिय राजा होता है ।२९।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में कामदा सप्तमी व्रत निरूपण नामक
एक सौ पाँचवा अध्याय समाप्त ।१०५।

अध्याय १०६

पापनाशिनीव्रतविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग ! देवताओं कि प्रिय इस उत्तम तिथि के माहात्म्य को मैं फिर कह रहा हूँ, सुनो ! १

विष्णु ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! विजया, अतिजया, एवं जयंती नामक महातिथियों को मैने आपसे सुन लिया है अतः अब मुझे पापनाशिनी (सप्तमी) तिथि तथा उत्तरायण के महत्त्व को बताने की कृपा करें जो सूर्य की पूजा के लिए अत्यन्त उत्तम बताया गया है तथा जिसमें पूजित होने पर सूर्य समस्त अघों के नाश करते हैं । मैं जानता हूँ कि भक्ति पूर्वक इस विषय के प्रश्न करने पर भी अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।२-३

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उस महापुण्य रूप वाली सप्तमी को पापनाशिनी बताया गया है ।४। उस तिथि में देवनायक एवं जगद्गुरु सूर्य की आराधना

तस्यां सम्पूज्य देवेशं चित्रभानुं जगद्गुरुम् । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।५
यश्चोपवासं कुरुते तस्यां नियतमानसः । सर्वपापविमुक्तात्मा सूर्यलोके महीयते ।।६
दानं यद्दीयते किञ्चित्तमुद्दिश्य दिवाकरम् । होमो वा क्रियते तत्र तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ।।७
एक ऋग्वेदः पुरतो जप्तः श्रद्धापरेण तु । ऋग्वेदस्य समस्तस्य यच्छते सत्फलं ध्रुवम् ।।८
सामवेदफलं साम यजुर्वेदफलं यजुः । अथर्वा अथर्वांगिरसो निखिलं यच्छते रविः ।।९
तारका इव राजन्ते द्योतमाना दिवानिशम् । समभ्यर्च्य च सप्तम्यां देवदेवं दिवाकरम् ।।१०
यत्र पापमशेषं वैनाशयत्यत्र भास्करः । कर्तव्या सप्तमी कृष्ण तेनोक्ता पापनाशिनी ।।११
अस्यां समभ्यर्च्य रविं याति सौरपुरं नरः । विमानवरमारुह्य कर्पूरोद्भवमुत्तमम् ।।१२
तेजसा कविसंकाशः प्रभया सूर्यसन्निभः । कान्त्यात्रेयसमः कृष्ण शौर्ये हरिसमः सदा ।।१३
मोदते तत्र सुचिरं वृन्दारकगणैः सह । पुनरेत्य भुवं कृष्ण भवेद्वै क्ष्माधिपाधिपः ।।१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे पापनाशिनीव्रतविधिवर्णनं
नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।१०६।

करने से सात जन्मों के पापों से मुक्ति प्राप्त होती है । इसमें कोई संशय नहीं ।५। जो संयम पूर्वक इसमें उपवास करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।६। उस दिन सूर्य के उद्देश्य से किये गये दान और हवन सभी अक्षय फलदायक होते हैं । जिस भाँति ऋग्वेद के एक मन्त्र के उच्चारण करने से सम्पूर्ण ऋग्वेद के समान फल की प्राप्ति होती है । उसी भाँति यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्व वेदों के एक एक मंत्रों के उच्चारण करने से सूय उन वेदों के समस्त फलों को प्रदान करते हैं ।७-९। सप्तमी में देवाधिदेव सूर्य का भली भाँति पूजन करने से ताराओं की भाँति प्रकाशपूर्ण होकर वह रात दिन सुशोभित रहता है ।१०। एवं भास्कर उसके समस्त पापों का नाश करते हैं । हे कृष्ण ! इसी प्रकार वह पापनाशिनी बतायी गयी है । अतः इसके विधान को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए ।११। क्योंकि इसमें सूर्य की आराधना करके मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति ऐसे विमान पर बैठकर करता है जो कपूर से निर्मित रहता है तथा हे कृष्ण ! वह शुक्र के समान तेज सूर्य की भाँति प्रभा, चन्द्रमा की भाँति कांति और हरि के समान शौर्य की प्राप्ति पूर्वक देवताओं के साथ चिरकाल तक आनन्दानुभव करता है और पश्चात् यहाँ आने पर वह राजाओं का राजा (महाराजा) होता है ।१२-१४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में पापनाशिनी व्रत विधान वर्णन
नामक एक सौ छठवाँ अध्याय समाप्त ।१०६।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

भानुपादद्वयव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तथान्यदपि धर्मज्ञ शृणुष्व गदतो मम । पदद्वयं जगद्धातुर्देवदेवस्य गोपतेः ॥१
यदेकपादपीठं हि तत्र न्यस्तं पदद्वयम् । स्वयमंशुमता कृष्ण लोकानां हितकाम्यया ॥२
वामनस्य पदं कृष्ण ज्ञेयं वै उत्तरायणम् । देवाद्यैः सकलैर्वन्द्यं दक्षिणं दक्षिणायनम् ॥३
अहं त्वं च सदा कृष्ण दक्षिणं पादमर्च्चतः । श्रद्धान्वितौ भास्करस्य हरीशौ वाममर्चतः ॥४
तस्मिन्यः प्रत्यहं सम्यग्देवदेवस्य मानवः । करोत्याराधनं तस्य तुष्टः स्याद्भानुमान्सदा ॥५

विष्णुरुवाच

कथमाराधनं तस्य देवदेवस्य गोपतेः । क्रियते देवशार्दूल तत्समाख्यातुमर्हसि ॥६

ब्रह्मोवाच

उत्तरे त्वयने कृष्ण स्नातो नियतमानसः । घृतक्षीरादिभिर्देवं स्नापयेत्तिमिरापहम् ॥७
चारुवस्त्रोपहारैश्च पुष्पधूपानुलेपनैः । समभ्यर्च्य ततः सम्यग्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥८
पदद्वयं व्रतं यस्य गृह्णीयाद्भानुतत्परः । वन्देत्स्नातश्चित्रभानुं ततश्च गरुडध्वज ॥९

अध्याय १०७

भानुपादद्वयव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे धर्मज्ञ ! देवाधिदेव एवं जगत् के धारण करने वाले सूर्य के (उत्तरायण और दक्षिणायन रूप) दोनों पदों (चरणों) को मैं बता रहा हूँ ।१। हे कृष्ण ! लोक के हित के लिए स्वयं अंशुमाली (सूर्य) ने उस सुमेरु पर्वत पर अपने उन दोनों चरणों को स्थापित किया है जिसमें बामन रूप सूर्य के उस देव-वन्दनीय वाम पद को उत्तरायण और दक्षिण पाद को दक्षिणायन बताया जाता है ।२-३। हे कृष्ण ! मैं और तुम उनके दक्षिणपाद की अर्चना करते हो, तथा अन्य इन्द्र आदि देव श्रद्धालु होकर भास्कर के बाम पाद की अर्चना करते हैं ।४। उसमें जो मनुष्य देवाधिदेव की प्रतिदिन पूजा करता है, उसके लिए सूर्य सदैव प्रसन्न रहते हैं ।५

विष्णु ने कहा—हे देवशार्दूल ! देवाधिदेव सूर्य की आराधना कैसे की जाती है आप उसके विधान को बताने की कृपा करें ।६

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! उनके उत्तरायण रहने के दिनों में संयम पूर्वक स्नान करके घी दूध आदि द्वारा अन्धकारनाशक (सूर्य) का स्नान कराये ।७। पश्चात् सुन्दर वस्त्रों के उपहार, पुष्प, धूप एवं लेपन अर्पित करें तथा ब्राह्मणों की तृप्ति करते हुए उनकी अर्चना एवं व्रत की समाप्ति करें ।८। हे गरुडध्वज ! सूर्य के लिए तत्पर होकर उनके पद द्वय (दक्षिणायन और उत्तरायण रूप) व्रत का आरम्भ करना

भुक्त्वान्नं चित्रभानुं तु चित्रभानुं व्रजंस्तथा । स्वपन्विबुध्यन्प्रणमन्होमं कुर्वंस्तथार्चयन् ॥१०
चित्रभानोरनुदिनं करिष्ये नामकीर्तनम् । यावदद्य दिनात्प्राप्तं क्रमशो दक्षिणायनम् ॥११
चलिते हुंकृते चैव वेदारम्भेऽपिवा सदा । तावद्वक्ष्ये चित्रभानुं यावदेवोत्तरायणम् ॥१२
यावज्जीवं च यत्किञ्चिज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । करिष्येऽहं तथा चैव कीर्तयिष्यामि तं प्रभुम् ॥१३
यदानृतं किञ्चिद्वक्ष्ये तदा वक्ष्यामि तद्वचः । अज्ञानादथ वा ज्ञानात्कीर्तयिष्यामि तं प्रभुम् ॥१४
षण्मासमेकमनसा चित्रभानुमयं परम् । त स्मरन्मरणे याति यां गतिं सास्तु मे गतिः ॥१५
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यदि तस्मिन्भवेन्मम । तन्मया भास्करस्येह स्वयमात्मा निवेदितः ॥१६
परमात्ममयं ब्रह्म चित्रभानुमयं परम् । यमं ते संस्मरिष्यामि स मे भानुः परा गतिः ॥१७
यदि प्रातस्तथा सायं मध्याह्ने वा जपाम्यहम् । षण्मासाभ्यन्तरे न्यासः कृतो व्रतमयो मया ॥१८
तथा कुरु जगन्नाथ स्वर्गलोकपरायणः । चित्रभानो यथा शक्त्या भवान्भवति मे गतिः ॥१९
एवमुच्चार्य षण्मासं चित्रभानुमयं व्रतम् । तावन्निष्पादयेद्यावत्सम्पूर्णं दक्षिणायनम् ॥२०
ततश्च प्रीणनं कुर्याद्यथाशक्त्या विभावसोः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दिव्यान्भौमांश्चापि सदक्षिणान् ॥२१

बताया गया है । जिसमें चित्रभानु नामक सूर्य की स्नान पूर्वक चन्दन आदि धारण करके ऐसी प्रतिज्ञा की जाती है कि भोजनोपरांत भी चलते, शयन करते, जागते तथा प्रणाम, हवन और अर्चना करते समय भी मैं चित्रभानु नामका कीर्तन करता रहूँगा। और उसी भाँति के नाम कीर्तन करता रहे ।९-११। तथा प्रतिज्ञा करते समय निम्नलिखित बातें भी उसमें जोड़ देनी चाहिए—चलते समय, हुंकार करते समय (गर्वोक्ति के) समय और वेदारम्भ समय में भी जब तक उत्तरायण का समय रहेगा 'चित्र भानु' नाम का नामोच्चारण (कीर्तन) करता रहूँगा. पश्चात् प्रतिदिन ऐसा कहता रहे कि जब तक मेरा जीवन है, उसमें ज्ञान-अज्ञान वश जो कुछ कर्तव्य करूँगा मैं (प्रतिक्षण) उसी नाम का कीर्तन करता रहूँगा ।१२-१३। एवं कभी कुछ असत्य भाषण के समय भी वही कहता रहूँगा और इस प्रकार मैं ज्ञान-अज्ञानवश उसी प्रभु का निरन्तर कीर्तन ही करता रहूँगा ।१४। इस भाँति छः मास तक एकचित्त होकर चित्रभानु के नामका तन्मय होकर कीर्तन करते हुए मरण हो जोने पर जो गति प्राप्त होती है वही गति मुझे भी तब प्राप्त हो और छः मास के भीतर यदि मेरा जीवन समाप्त भी हो जाये तो भी हानि नहीं होगी क्योंकि इसीलिए तन्मय होकर मैंने अपने आप को उन्हें समर्पित कर दिया है ।१५-१६। परमात्मा ब्रह्म रूप एवं चित्रभानु रूप उस सूर्य का स्मरण मैं अन्त में करता रहूँगा क्योंकि वही मेरी उत्तम गति है ।१७। और प्रातः काल मध्याह्न तथा सायंकाल में उन्हीं के नाम का जप करता रहूँगा । इस प्रकार मैंने छः मास के मध्य में अपने सभी कर्तव्य को व्रतमय कर दिया है ।१८। हे जगन्नाथ ! आप स्वर्ग लोक के निवासी हैं, हे चित्रभानु ! यथाशक्ति मैं (आराधना) करूँगा आप ही मेरी गति रूप हो ।१९। इस प्रकार कहते हुए छः मास के इस चित्रभानुमय व्रत का पालन दक्षिणायन के प्रारम्भ तक करना चाहिए ।२०। पश्चात् यथाशक्ति विभावसु (सूर्य) को प्रसन्न करके दिव्य और भौम ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा प्रेषित

पुण्याख्यानकथां कुर्यान्मार्तण्डस्य तथाग्रतः । पूजयेद्वाचकं भक्त्या यथाशक्त्या[1] च लेखकम् ॥२२
एवं व्रतमिदं कृष्ण यो धारयति मानवः । इहैव देवशार्दूल मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥२३
षण्मासाभ्यन्तरे चास्य मरणं यदि जायते । प्राप्नोत्यनशनस्योक्तं यत्फलं तदसंशयम् ॥२४
पदद्वयं च देवस्य सम्यक्स्वेन सदार्चितम् । भवत्येतज्जगौ भानुः पुरा चन्द्राय पृच्छते ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भानुपादद्वयव्रतवर्णनं
नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।१०७।

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

सर्वार्थावाप्तिसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्णपक्षे[2] तु माघस्य सर्वाप्तिं सप्तमीं शृणु । यामुपोष्य समाप्नोति सर्वान्कामांस्तथा परान् ॥१
पाखण्डादिभिरालापं न कुर्याद्भानुतत्परः । पूजयेत्प्रणतो देवमेकाग्रमनसा शुभम् ॥२
माघाद्यैः पारणं मासैः षड्भिः सांक्रान्तिकं स्मृतम् । मार्तण्डः प्रथमं नाम द्वितीयं कः प्रकीर्तितम् ॥३
तृतीयं चित्रभानुश्च विभावसुरतः परम् । भगेति पञ्चमं ज्ञेयं षष्ठं हंसः स उच्यते ॥४

करे ।२१। पुनः सूर्य के सम्मुख भक्ति पूर्वक कथावाचक तथा लेखक का यथाशक्ति पूजन करके उनके द्वारा पवित्र कथाओं को सुने ।२२। हे देवशार्दूल ! हे कृष्ण ! इस प्रकार का मनुष्य इस व्रत विधान को समाप्त करता है तो उसे यहाँ ही समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।२३। यदि छह मास के मध्य में उसका मरण हो जाये, तो अनशन के सभी फल उसे प्राप्त होंगे इसमें संशय नहीं।२४। और सूर्य के दोनों पदों की विधिपूर्वक अर्चना के फल भी उसे प्राप्त होगें। ऐसा चन्द्रमा के पूछने पर सूर्य ने स्वयं बताया था।२५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भानुपादद्वयव्रत वर्णन नामक
एक सौ सातवां अध्याय समाप्त ।१०७।

अध्याय १०८

सर्वार्थावाप्तिसप्तमी विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—माघ की शुक्ल सप्तमी जिसमें उपवास आदि करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं, सर्वाप्ति' नामक बतायी गई है, उसे बता रहा हूँ सुनो ! उस दिन व्रत कर पाखंडी आदिकों से बातचीत न कर केवल एकाग्रचित्त होकर कल्याण रूप देव (सूर्य) की नम्रतापूर्वक सविधान पूजा ही करना बताया गया है । माघ आदि छह मास के पारण विधान जो संक्रान्ति काल में सुसम्पन्न करने के लिए बताये गये हैं उसमें पृथक्-पृथक् मार्तण्ड, अर्क, चित्रभानु; विभावसु भग और हंस के क्रमशः नामोच्चारण पूर्वक कीर्तन और पूजन करना चाहिए ।१-४

---

१. धराधरसमन्वितः । २. शुक्लपक्षे ।

पूर्णेषु षट्सु मासेषु पञ्चगव्यमुदाहृतम् । स्नाने च प्राशने चैव प्रशस्तं पापनाशनम् ॥५
प्रणामं देवदेवस्य कृत्वा पूजां यथाविधि । विप्राय दक्षिणां दद्याच्छ्रद्दधानश्च शक्तितः ॥६
पारणान्ते च देवस्य प्रीणनं भक्तिपूर्वकम् । कुर्वीत भक्त्या विधिवद्धविभक्त्या तु गृह्यते ॥७
नक्तभोजी तथा विष्णो तैलक्षारविवर्जितः । कृष्ण जागरणं रात्रौ सप्तम्यामथ वा दिने ॥८
एतामुषित्वा धर्मज्ञो हंसप्रीणनतत्परः । सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९
यतः सर्वमवाप्नोति यद्यदिच्छति चेतसा । अतो लोकेषु विख्याता सर्वार्थावाप्तिसप्तमी ॥१०
कृताभिलषिता ह्येषा प्रारब्धा धर्मतत्परैः । पूरयत्यखिलान्कामान्संश्रुता च दिनेदिने ॥११
तमाराधयस्व रविं तथाथ गरुडध्वज । यथाराधितवान्भानुं भगणाधिपतिः पुरा ॥१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सर्वार्थावाप्तिसप्तमीवर्णनम्
नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।१०८।

छठें मास के व्यतीत होने पर पञ्चगव्य द्वारा स्नान एवं प्राशन करे जो इसके लिए अति उत्तम तथा पापनाशक बताया गया है ।५। इस प्रकार देवाधिदेव (सूर्य) की विधान पूर्वक प्रणाम एवं पूजा समाप्ति के उपरांत भक्ति पूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान कर पारण के समाप्ति में सूर्य देव को भक्ति पूर्वक प्रसन्न करना नितान्त आवश्यक होता है क्योंकि भक्तिपूर्वक विधान द्वारा (वस्तुएँ) अर्पित करने पर सूर्य उस (भक्त को) अपना आत्मीय बना लेते हैं ।६-७। हे विष्णो ! नक्त व्रत (इसमें भोजन) तेल एवं नमक के त्याग पूर्वक सप्तमी में दिन रात का जागरण करना चाहिए इस प्रकार धर्मज्ञ ! सूर्य की प्रसन्नता के लिए कटिबद्ध उस पुरुष की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं एवं उसे समस्त पातकों से मुक्ति भी प्राप्त होती है ।८-९। अतः जिस-जिस पदार्थ की वह प्राणी इच्छा करता है उन सभी की सफलता प्राप्त होती है, अतः लोक में यह सर्वाप्ति सभी मनोरथों को सफल करने वाली सप्तमी के नाम से विख्यात है ।१०। यदि धार्मिक पुरुषों द्वारा (विधान पूर्वक) इसकी सुसमाप्ति की गई हो या केवल उस विषय की अभिलाषा ही की गई हो अथवा प्रतिदिन इसकी चर्चा ही सुनी गई हो तो वैसा करने पर भी यह सप्तमी उसे निखिल कामनाएँ प्रदान करती है ।११। हे गरुडध्वज ! पहले जिस प्रकार चन्द्रमा ने उस विधान की समाप्ति की है, उसी भाँति तुम भी सूर्य की आराधना करो ।१२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सर्वार्थावाप्ति सप्तमी वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।१०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

मार्तण्डसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्तण्डसप्तमीं कृष्ण यथान्यां[1] वच्मि तेऽनघ । शृणुष्वैकमना वीर गदतो मे शुभप्रदाम् ॥१
यस्याः सम्यगनुष्ठानात्प्राप्नोत्यभिमतं फलम् । पौषे मासे सिते पक्षे सप्तम्यां समुपोषितः ॥२
सम्यक्सम्पूज्य मार्तण्डं मार्तण्ड इति वै जपेत् । पूजयेत्कुतपं भक्त्या श्रद्धया परयान्वितः ॥३
धूपपुष्पोपहाराद्यैरुपवासैः समाहितः । मार्तण्डेति जपन्नाम पुनस्तद्गतमानसः ॥४
विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या खगध्वज । स्वपन्विबोधन्स्खलितो मार्तण्डेति च कीर्तयेत् ॥५
पाषण्डादिविकर्मस्थैरालापं च विवर्जयेत् । गोमूत्रं गोपयो वापि दधि क्षीरमथापि वा ॥६
गोदेहतः समुद्भूतं प्राश्नीयादात्मशुद्धये । द्वितीयेऽह्नि पुनः स्नातस्तथैवाभ्यर्चनं रवेः ॥७
तेनैव नाम्ना सम्भूय दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । ततो भुञ्जीत गोदोहसम्भूतेन समन्वितम् ॥८
एवमेवाखिलान्मासाननुपोष्य प्रयतः शुचिः । दद्याद्गवादिकं विप्रान्प्रतिमासं[2] स्वशक्तितः ॥९
धारिता चेत्पुनर्वर्षे यथाशक्त्या गवादिकम् । दत्त्वा परं रवेर्भूयः शृणु यत्फलमश्नुते ॥१०

अध्याय १०९

मार्तण्डसप्तमी विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे अनघ ! हे कृष्ण ! कल्याणदायिनी उस मार्तण्ड सप्तमी को मैं बता रहा हूँ, जिस के अनुष्ठान करने से अभिलषित (वस्तु) की प्राप्ति होती है एकाग्र चित्त होकर सुनो ।१। पौष मास की शुक्ल सप्तमी में उपवास पूर्वक (सूर्य की) पूजा करके 'मार्तण्ड' नाम का जप करना बताया गया है । इसका विवरण इस प्रकार है । अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक धूप एवं पुष्पादि उपहारों द्वारा उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करने के पश्चात् ध्यानावस्थित होकर 'मार्तण्ड' नाम का जप करे ।२-४। हे खगध्वज ! पुनः यथाशक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत सोते जागते एवं मूर्च्छितावस्था में भी मार्तण्ड नाम का ही कीर्तन करता रहे ।५। (उस दिन) पाखण्डी आदि दुराचारियों के साथ बात चीत का भी सम्पर्क न रखे । गोमूत्र, दूध, दही या कोई भी (वस्तु) जो गाय के देह से उत्पन्न हुई हो, आत्म शुद्धि के लिए उसका प्राशन करे । पुनः दूसरे दिन स्नान करके उसी भाँति सूर्य का पूजन तथा उन्हीं के नाम का कीर्तन करते हुए ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे। पश्चात् दूध मिश्रित वस्तु (खीर) का भोजन कराये।६-८। इस प्रकार सभी मासों के व्रतों की अत्यन्त पवित्रता पूर्वक विधान पूर्वक समाप्ति करते हुए प्रत्येक मास में अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण के लिए गाय आदि वस्तु समर्पित करता रहे ।९। वर्ष के प्रारम्भ में यदि पुनः इस सप्तमी व्रत का अनुष्ठान करे तो अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य के लिए अधिक से अधिक गाय आदि वस्तुएँ अवश्य समर्पित करे । इस प्रकार उसके जो फल प्राप्त होते हैं उन्हें मैं बता

---

१. यथान्यायं च वच्मि ते । २. विद्वान् ।

स्वर्णशृंगीं च पञ्चम्यां षष्ठ्यां च वृषभं नरः। प्रतिमासं द्विजातिभ्यो यद्दत्त्वा फलमश्नुते ॥११
तत्प्राप्नोत्यखिलं सम्यग्व्रतमेतदुपोषितः। तं च लोकमवाप्नोति मार्तण्डो यत्र तिष्ठति ॥१२
शाण्डिलेयसमः कृष्ण तेजसा नात्र संशयः। मार्तण्डसप्तमीमेतामुपोष्यैते गणा दिवि ॥१३
विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकैरद्यापि भूधर। तस्मात्त्वमादिदेवेशं ग्रहेशं भास्करं रविम् ॥
अनयार्चय गोविन्द गोपतिं गोलसन्निभम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे मार्तण्डसप्तमीवर्णनम्
नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः।१०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीकल्पेऽनन्तरसप्तमीव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि भाद्रपदेऽच्युत। प्रणम्य शिरसादित्यं पूजयेत्सप्तवाहनम् ॥१
पुष्पधूपादिभिर्वीर कृतयानां च तर्पणैः। पाषण्डादिभिरालापमकुर्वन्नियतात्मवान् ॥२
विप्राय दक्षिणां दत्त्वा नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः। तिष्ठन्व्रजन्प्रस्थितश्च क्षुतप्रस्खलितादिषु ॥३

रहा हूँ सुनो! ।१०। उसी भाँति पञ्चमी में सुवर्ण द्वारा अलंकृत किये हुए सीगों वाली गाय, षष्ठी में बैल के दान प्रतिमास में करने से मनुष्य जिस फल की प्राप्ति करता है, उस समस्त फल की प्राप्ति इस अनुष्ठान द्वारा होती है तथा मार्तण्ड जहाँ स्वयं निवास करते हैं उस लोक की भी प्राप्ति उसको हो जाती है।११-१२। हे कृष्ण! निश्चित उसका तेज अग्नि के समान हो जाता है। हे भूधर! इस मार्तण्ड नामक सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा ही आकाश में ये (तारों के) समूह जिन्हें लोक देखते है, आज भी प्रकाशित होकर विद्यमान हैं। अतः हे गोविन्द! तुम भी इस सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा आदि देवनायक, ग्रहेश, भास्कर, किरणमाली एवं गोलाकार उस सूर्य की आराधना करे।१३-१४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में मार्तण्ड सप्तमी वर्णन
नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त।१०९।

अध्याय ११०

अनंतरसप्तमीव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे अच्युत! भादों की शुक्ल सप्तमी में नतमस्तक होकर (प्रणाम पूर्वक) सात घोड़ों की सवारी पर चलने वाले आदित्य की पूजा करनी चाहिए।१। हे वीर! पुष्प एवं धूप आदि द्वारा मन्दोष्ण सूर्य को प्रसन्न करते हुए उस संयमी को चाहिए कि (उस दिन) पाखण्डी आदि अनाचारियों के साथ किसी प्रकार की बातें न करे।२। तथा ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर रात में मौन होकर स्वयं भी भोजन करे, और कहीं भी ठहरते, चलते, यात्राओं में तथा छींकते एवं मूर्च्छावस्था में भी आदित्य नाम का

आदित्यनामस्मरणं कुर्वन्नुच्चारणं तथा । अनेनैव विधानेन मासान्द्वादश वै क्रमात् ।।४
उपोष्य पारणे पूर्णे समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् । पुण्येन श्रावणेनेह प्रीणयन्पुष्टिमश्नुते ।।५
अनन्तं श्रावणेनेह यतः फलमुदाहृतम् । तेनादित्यं समभ्यर्च्य तदेव लभते फलम् ।।६
एवं यः पुरुषः कुर्यादादित्याराधनं शुचिः । प्राप्येह विपुलं भोगं धर्ममर्थं तथाव्ययम् ।।७
अमुत्रा लोकमायाति दिव्ये वै गीतसंयुते । नारी वा स्वर्गमभ्येत्य ह्यनन्तं फलमश्नुते ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तकल्पेऽनन्तरसप्तमीव्रतवर्णनम्
नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११०।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीकल्पेऽभ्यङ्गसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रावणे मासि देवाग्र्यं सप्तम्यां सप्तवाहनम् । शुक्लपक्षे समभ्यर्च्य पुष्पधूपादिभिः शुचिः ।।१
पाखण्डादिभिरालापमकुर्वन्नियतात्मवान् । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ।।२
अभ्यङ्गं देवदेवस्य वर्षे वर्षे नियोजयेत् । सप्तम्यामन्नमेवाग्र्यं शुभं शुक्लं नवं तथा ।।३

ही उच्चारण करता रहे । इन सुन्दर बारहों मासों के व्रतों को क्रमशः विधान पूर्वक समाप्ति करने के उपरांत पारण में भी उपवास पूर्वक जगद्गुरु (सूर्य) की अर्चना करके पुण्य कथाओं के सुनाने के द्वारा उन्हें (सूर्य को) प्रसन्न करे ।३-५। अनन्त की कथा सुनने से जिस काल फल की प्राप्ति होती है, सप्तमी के द्वारा सूर्य की विधान पूर्वक पूजा करने से भी वही फल प्राप्त होता है ।६। इस प्रकार जो पुरुष पवित्रता पूर्ण सूर्य की आराधना करता है, अत्यन्त भोग, धर्म तथा अक्षीण धन की प्राप्ति पूर्वक गायन वाद्य से सत्कृत होते हुए उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । इस भाँति आराधना करने वाली, स्त्री ही क्यों न हो उसे भी स्वर्ग में अनन्त फलों की प्राप्ति होती है ।७-८।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में अनंतर सप्तमी व्रत वर्णन
नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ।११०।

अध्याय १११

अभ्यंगसप्तमीव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—श्रावण मास के शुक्ल सप्तमी में पवित्र होकर पुष्प एवं धूप आदि द्वारा देव श्रेष्ठ सूर्य की आराधना करते हुए उस दिन संयम पूर्वक रहे । क्योंकि पाखण्डी आदि दुराचारियों से किसी प्रकार की बातें न करने के लिए उसे विशेष सर्तक रहना चाहिए, तथा अनुष्ठान में ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान कर रात में मौन होकर उसे भोजन करना बताया गया है ।१-२। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में सूर्य के लिए अंग में लगाने के लिए अभ्यंग (तेल पर उपटन) प्रदान करना चाहिए। उसी प्रकार सप्तमी में सूर्य के लिए शुभ्र, शुक्ल, नवान्न (खीर) अर्पित करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार वाद्य आदि भी प्रदान करे। इस

विभवेषु तथान्येषु वादित्राण्येव वै विदुः । तथा देवस्य मासेऽस्मिन्नभ्यङ्गः परिगीदते ।।४
गन्तुचाराधये द्भक्त्या भास्करस्य नरोऽच्युत । अभ्यङ्गं विधिवच्छक्त्या कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ।।५
शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । स दिव्यं यानमारूढो लोकमायाति हेलिनः ।।६
अनेनैव विधानेन मासान्द्वादश वै क्रमात् । उपोष्य पारणे पूर्णे दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।।७
व्रतं यः पुरुषः कुर्यादादित्याराधनं शुचिः । स गच्छेत्परमं लोकं दिव्यं वै वनमालिनः ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पेऽभ्यङ्गसप्तमीवर्णनम्
नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।१११।

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयपदव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं कृष्ण सदा भानुर्नरैर्भक्त्या यथाविधि । फलं ददात्यसुलभं सलिलेनापि पूजितः ।।१
न भानुर्जीवदानेन न पुष्पैर्न फलैस्तथा । आराध्यते सुशुद्धेन हृदयेनैव केवलम् ।।२
रागादपेतं हृदयं वाग्दुष्टा नानृतादिभिः । हिंसाविरहितं कर्म भास्कराराधनत्रयम् ।।३

भाँति इस मास की सप्तमी में भी सूर्य के लिए अभ्यंग समर्पित करने का विधान कहा गया है ।३-४। हे अच्युत ! जो मनुष्य भक्ति पूर्वक ब्राह्मण भोजन अभ्यंग प्रदान कर उनकी आराधना करता है उसे शंख भेरी की ध्वनि एवं ब्रह्म घोषों (मांगलिक पाठों) के समेत दिव्य विमान पर बैठकर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।५-६। इस प्रकार क्रम से बारहों मासों के व्रत विधानों की समाप्ति करके पारण में उपवास पूर्वक (उनकी पूजा के अनन्तर ब्राह्मण को दक्षिणा समर्पित करना चाहिए ।७। जो पुरुष पवित्रतापूर्ण इस व्रत विधान द्वारा सूर्य की आराधना करता है, उसे वनमाली के दिव्य लोक की प्राप्ति होती है ।८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में अभ्यंग सप्तमी वर्णन नामक
एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।१११।

अध्याय ११२

तृतीयपद व्रत के विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! यदि इस प्रकार मनुष्य भक्ति पूर्वक विधान द्वारा केवल जल मात्र से ही सूर्य की सदा पूजा करे तो वे उसे वह समस्त दुर्लभ फल प्रदान करते हैं ।१। क्योंकि किसी प्रकार की हिंसा तथा पुष्पों एवं फलों द्वारा सूर्य की आराधना नहीं की जाती है अपितु केवल शुद्ध हृदय से पूजा की जाती है ।२। रागादि दोष रहित शुद्ध हृदय, असत्य आदि दोष रहित वाणी तथा हिंसा शून्य कर्म ये तीनों सूर्य की आराधना में प्रशस्त बताये गये हैं ।३। क्योंकि समाधि, दोष दूषित चित्त द्वारा आराधना करने पर

रागादिदूषिते चित्ते नास्पन्दी तिमिरापहः । बध्नाति तं नरं हंसः कदाचित्कर्दमाम्भसि ॥४
तमसो नाशनायालं चेन्दोर्लेखा ह्यनारतम् । हिंसादिदूषितं कर्म केशवाराधने कुतः ॥५
जनश्चित्तात्प्रसादाद्वै न चाप तिमिरापहम् । तस्मात्सत्यस्वभावेन सत्यवाक्येन चाच्युत ॥६
अहिंसकेन चादित्यो निसर्गादिद तोषितः । सर्वस्वमपि देवाय यो दद्यात्कुटिलाशयः ॥७
स नैवाराधयेदेवं देवदेवं दिवाकरम् । रागादपेतं हृदयं कुरु त्वं भास्करार्पणम् ॥
ततः प्रापयसि दुष्प्राप्यमयत्नेनैव भास्करम् ॥८

विष्णुरुवाच

देवेशः कथितः सम्यक्काम्योऽयं भास्करो मयि । आराधनविधिं सर्वं भूयः पृच्छामि तं वद ॥९
कुले जन्म तथारोग्यं धनवृद्धिश्च दुर्लभा । त्रितयं प्राप्यते येन तन्मे वद जगत्पते ॥१०

ब्रह्मोवाच

मासे तु माघे सितसप्तमेऽह्नि हस्तर्क्षयोगे जगतः प्रसूतिम् ।
सम्पूज्य भानुं विधिनोपवासी सुगन्धधूपान्नवरोपहारैः ॥११
गृही तु पुष्पैः प्रतिपाद्य पूजां दानादियुक्तं व्रतमब्दमेकम् ।
दद्याच्च दानं मुनिपुङ्गवेभ्यस्तत्कथ्यमानं विनिबोध धीर ॥१२

सूर्य कभी प्रसन्न नहीं होते हैं क्या पङ्क दूषित जल में अपने रहने का भ्रम मनुष्य के हृदय में उत्पन्न कर (हंस) वहाँ कभी उसे अपने लिए अनुरक्त कर सकता है । अर्थात् कभी नहीं, क्योंकि वह (हंस) तो ऐसे स्थान में कभी रहेगा ही नहीं ।४। जब चन्द्रमा की किरणें अविरत बादलों से अनावृत होने पर ही तम का नाश करती है, तो भला भगवान् की आराधना के लिए हिंसा आदि दोष दूषित कर्म प्रशस्त कहे जा सकते हैं ।५। उस प्रकार अप्रसन्न होकर (दोष-शक्ति-एवं हृदयहीन) होकर मनुष्य अन्धकार नाशक (सूर्य) को कैसे प्राप्त कर सकता है ? हे अच्युत ! इसलिए सत्यस्वभाव, सत्यवाक्य एवं अहिंसक कर्म द्वारा आराधना करने पर सूर्य स्वभावतः प्रसन्न हो जाते हैं । यद्यपि कुटिल मनुष्य सूर्य के लिए अपना सर्वस्व सर्मपित कर दे तो भी उससे देवाधिदेव सूर्य की आराधना समुचित रूप से सम्पन्न हुई ऐसा कभी नहीं कहा जायेगा । इसलिए रागादि दोष हीन अपने हृदय को तुम भास्कर के लिए अवश्य सर्मपित करो, क्योंकि इसी प्रकार की आराधना करने पर तुम्हें अनायास दुष्प्राप्य भास्कर की प्राप्ति अवश्य होगी ।६-८

विष्णु ने कहा—यद्यपि आप ने मेरे लिए देव नायक सूर्य की काम्य आराधना के विधान को बतादिया है किन्तु मैं फिर भी उसे सुनना चाहता हूँ ।९। हे जगत्पते ! उत्तम कुल में जन्म, आरोग्य एवं दुर्लभ धन की वृद्धि ये तीनों जिसके द्वारा प्राप्त हो सके मुझे आप वही बतायें ।१०

ब्रह्मा बोले—माघ मास की शुक्ल सप्तमी के दिन हस्त नक्षत्र के समागम होने पर उपवास रहकर सुगन्ध, धूप एवं अन्नादि के उपहारों द्वारा जगत् के कारण भूत सूर्य की आराधना करनी चाहिए ।११। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष को पुष्पों के समर्पण पूजा तथा दान आदि करने के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते हुए अपने पूर्ण वर्ष के व्रत विधानों को सुसम्पन्न करना चाहिए ऐसा कहा गया है जिसमें श्रेष्ठ मुनियों को ही दान लेने का विधान है। हे वीर ! उन सब को मैं विश्वस्त रूप से बता रहा हूँ। सुनो ! ।१२। उपरोक्त

वस्त्रं तिलान्व्रीहियवान्हिरण्यं यवान्नमम्भः करकामुपानहम् ।
छत्रोपपन्नं गुडफेणिताढ्यं दद्यात्क्रमाद्वस्तु अनुक्रमेण ॥१३
यद्वेष[1] वर्षे विधिनोदितेन यस्यां तिथौ लोकगुरुं प्रपूज्य ।
अश्नन्तनान्यात्मविशुद्धिहेतोः सम्प्राशनानीह निबोधतानि ॥१४
गोमूत्रमम्भश्च रसे नु शाकं दूर्वा दधिव्रीहितिलान्यवांश्च ।
सूर्यांशुतप्तं जलमम्बुजाक्ष क्षीरं च मासैः क्रमशः प्रयुज्यः ॥१५
कुले प्रधाने धनधान्यपूर्णे पद्मावृते ह्यस्तसमस्तदुःखे ।
प्राप्नोति जन्माऽविकलेन्द्रियश्च भवत्यरोगो मतिमान्सुखी च ॥१६
तस्मात्त्वमप्येतदमोघवीर्य दिवाकराराधनमप्रमत्तः ।
कुरु प्रभावं भगवन्तमीशमाराध्य कामानखिलानुपेहि ॥१७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे तृतीयपदव्रतवर्णनं
नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११२।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यालयवन्दनमार्जनादिवर्णनम्

विष्णुरुवाच

सुरज्येष्ठ पुनर्ब्रूहि यत्पृच्छाम्यहमादितः । यत्फलं समवाप्नोति कारयित्वा रवेर्गृहम् ॥१

व्रत विधान के अनुष्ठान में वस्त्र, पुष्प, तिल, व्रीहि (धान) यव, सुवर्ण, जलपूर्ण पात्र उपानह (जूते), छत्र (छाता) ओर बताशे, इन वस्तुओं को क्रमशः उन्हें अर्पित करना चाहिए ।१३। इस प्रकार विधान द्वारा वर्ष के जिस मास की तिथि में लोकगुरु सूर्य की पूजा की जाये, उसी के अनुसार आत्मशुद्धि के लिए प्राशन भी करना चाहिए उसे भी बता रहा हूँ सुनो ! ।१४। हे अम्बुजाक्ष ! गोमूत्र, जल, घी, शाक, दूर्वा, दही धान, तिल, जवा, सूर्य की किरणों द्वारा संतप्त जल और क्षीर इन्ही वस्तुओं का प्राशन क्रमशः मासों में करने के लिए बताये गये हैं ।१५। इसे सुसम्पन्न करने पर वह इस भाँति के उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करता है जहाँ पूर्ण धनधान्य समेत अथाह लक्ष्मी भरी पड़ी हो और वह सदैव इन्द्रियों की अविकलतृप्ति पूर्वक, बुद्धिमान्, एवं निरन्तर सुखी रहता है ।१६। इसलिए तुम भी सावधान होकर अमोघवीर्य ईश एवं भगवान् दिवाकर की आराधना करके अपनी समस्त कामानाएँ पूरी करो ।१७

श्री भविष्य महापुराण में व्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में तृतीयपद व्रत वर्णन नामक
एक सौ बारहवां अध्याय समाप्त ।११२।

अध्याय ११३

आदित्यालयवन्दनमार्जन विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे सुरज्येष्ठ ! मैं जो कुछ पूँछ रहा हूँ, आप उसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।

---

१. पठेच्च पाद्यम् ।

देवार्चां कारयित्वा तु यत्पुण्यं पुरुषोऽश्नुते । पूजयित्वा च विधिवदनुलिप्य च यत्फलम् ॥२
कानि माल्यानि शस्तानि कानि नार्हति भास्करः । के धूपा भानुदयिताः के वर्ज्याश्च जगत्पतेः ॥३
उपचारफलं किं स्यात्किं फलं गीतवादिते । घृतक्षीरादिना यत्तु स्नापिते भास्करे फलम् ॥४
यथोपलेपनादौ च फलमभ्युक्षितेन तु । दिवाकरगृहे तात तदशेषं वदस्व मे ॥५

ब्रह्मोवाच

साधु वत्स यदेतत्त्वं मार्तण्डस्येह पृच्छसि । शुश्रूषणे विधिं पुण्यं तदिहैकमनाः शृणु ॥६
यस्तु देवालयं भानोर्दार्वं शैलमथापि वा । कारयेन्मृन्मयं चापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७
अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महत्फलम् । प्राप्नोति तत्फलं भानोर्यः कारयति मन्दिरम् ॥८
कुलानां शतमागामि समतीतं कुलं शतम् । कारयेद्भगवद्धाम स नयेदर्कलोकताम् ॥९
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु । भानोरालयविन्यासप्रारम्भादेव नश्यति ॥१०
सप्तलोकमयो भानुस्तस्य यः कुरुते गृहम्[1] । प्रतिष्ठां समवाप्नोति स नरः साप्तलौकिकीम् ॥११
प्रशस्तदेशभूभागे प्रशस्तं भवनं रवेः । कारयेदक्षयाँल्लोकान्स नरः प्रतिपद्यते ॥१२
इष्टकाचयविन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ॥१३
प्रतिमां लक्षणवतीं यः कारयति मानवः । दिवाकरस्य तल्लोकमक्षयं प्रतिपद्यते ॥१४

सूर्य के लिए मन्दिर बनवाने से किस फल की प्राप्ति होती है इसी प्रकार देव की पूजा करने से पुरुष को प्राप्त होने वाले पुण्य एवं अनुलेपन करने के फल को बतलाते हुए आप सूर्य के लिए कौन प्रमुख प्रशस्त हैं कौन अप्रशस्त तथा जगत्पति सूर्य के लिए कौन धूप प्रिय है कौन अप्रिय इसके निर्णय के समेत उपचार के फल गायन वाद्यों के फल घी, दूध, द्वारा सूर्य के स्नान कराने के फल तथा सूर्य के शरीर में लेपन एवं अभिषेक करने के द्वारा प्राप्त होने वाले इन अशेष फलों को बताने की कृपा करें ! ।१-५

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! मार्तण्ड के निमित्तक यह तुम्हारा साधु प्रश्न करना उनके लिए तुम्हारे अत्यन्त अनुरागी होने का परिचायक है, उसको मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।६। जो काष्ठ तथा मिट्टी द्वारा सूर्य के मन्दिर बनवाते हैं उनके पुण्य फल को भी कह रहा हूँ सुनो ! सूर्य के लिए मन्दिर बनवाने वाले को प्रतिदिन यज्ञ करने के समान् महान् फल प्राप्त होते हैं ।७-८। भगवान् (सूर्य) के लिए मन्दिर निर्माण कराने वाले के सौ पूर्व और सौ पर (आगे आने वाली) पीढ़ियों के लोग सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं ।९। सूर्य के लिए मन्दिर के निर्माण आरम्भ करते ही उसके सात जन्मों में पाप थोड़े बहुत जो कुछ रहते हैं (भी) नष्ट हो जाते हैं ।१०। क्योंकि सूर्य सप्त लोकमय हैं, इसलिए उनके मन्दिर की जो रचना करता है उसे सातों लोकों की प्राप्त होती है ।११। इस प्रकार उत्तम देश की भूमि में जो सूर्य के लिए सुन्दर मन्दिर का निर्माण करता है उसे अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है ।१२। और उनके लिए बनाये गये ईंट के मन्दिर की स्थिति जितने वर्ष रहती है उतने सहस्र वर्ष तक उसके कर्ता की स्वर्ग में स्थिति रहती है ।१३। इसी भाँति जो (सूर्य की) लक्षणों से युक्त प्रतिमा बनवाता है, उसे अनेक अक्षय

---

१. क्षयम् ।

षष्टिर्वर्षसहस्राणां सहस्राणि स मोदते । लोके सुमनसां वीर प्रत्येकं मधुसूदन ।।१५
प्रतिष्ठाप्य रवेरर्चां सुप्रशस्ते निवेशने । पुरुषः कृतकृत्योऽस्ति न दोषफलमश्नुते ।।१६
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पं पुरुषाः कुले । तांस्तारयति संस्थाप्य देवस्य प्रतिमां रवेः ।।१७
अनुशिष्टाः किल पुरा यमेन यमकिङ्कराः । पाशदण्डकराः कृष्ण प्रजासंयमनोद्यताः ।।१८

यम उवाच

विहरन्तु यथान्यायं नियोगो मेऽनुपाल्यताम् । नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ।।१९
केवलं ये जगन्मूलं विवस्वन्तमुपाश्रिताः । भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नैवेह संस्थितिः ।।२०
ये तु दैवम्वता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः । पूजयन्ति सदा भानुं ते च त्याज्या सुदूरतः ।।२१
तिष्ठंश्च प्रस्वपन्गच्छन्नुत्तिष्ठन्स्खलिते क्षुते । सङ्कीर्तयति देवं यः स नस्त्याज्यः सुदूरतः ।।२२
नित्यनैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति तु भास्करम् । न चालोक्या भवद्भिस्ते यद्ध्यानं हंति वो गतिम् ।।२३
ये पुष्पधूपवासोऽभिर्भूषणैश्चापि वल्लभैः । अर्चयन्ति न ते ग्राह्या मत्पितुस्ते परिग्रहाः ।।२४
उपलेपनकर्तारः कर्तारो मार्जनस्य ये । अर्कालये परित्याज्यं तेषां त्रिपुरुषं कुलम् ।।२५
ये वायतनं भानोः कारितं तत्कुलोद्भवः । पुमान्स नावलोक्यो वै भवद्भिर्दुष्टचक्षुषा ।।२६

लोकों की प्राप्ति होती है ।१४। हे वीर ! हे मधुसूदन ! वहाँ वह देवताओं के प्रत्येक लोक में साठ सहस्र वर्ष के सहस्र वर्ष (अनन्त काल) तक आनन्द का अनुभव करता है ।१५। इस प्रकार उस सुन्दर मन्दिर में सूर्य की प्रतिष्ठा एवं अर्चना करके पुरुष कृतकृत्य हो जाता है और उसे दोष-फल का भागी कभी नहीं होना पड़ता ।१६। सूर्य की प्रतिमा की (मन्दिर में) प्रतिष्ठा करने वाला (व्यक्ति) अपने अतीत तथा कल्प पर्यंत तक होने वाले परिवारों को (उद्धारक) तार देते हैं ।१७। हे कृष्ण ! पहले समय में एक बार यम ने अपने दूतों को जो प्रजाओं के निग्रह करने के लिए उद्यत होकर प्रस्थान कर रहे थे इसी भाँति की शिक्षा दी थी ।१८

यम ने कहा—न्यायोचित ढंग से चारों ओर अच्छी तरह विचरण करो और मेरी आज्ञा का पालन करो ! कोई भी प्राणी आप्त लोगों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकेगा ।१९। एक बात ध्यान में अवश्य रखना । जगत् के मूल कारण भगवान् सूर्य की उपासना करने वालों के समीप कभी मत जाना क्योंकि वे यहाँ नहीं आ सकते ।२०। इसलिए जो सूर्य के भक्त उन्हीं में लीन होकर तत्परता से सूर्य की पूजा करते हों दूर से ही उनका परित्याग करना ।२१। इसी प्रकार स्थित रहते शयन करते, आते, जाते, उठते, मूर्च्छावस्था तथा छींकते आदि सभी समय जो भगवान् सूर्य के नाम का कीर्तन न करता रहे उन लोगों को सुदूर से ही उसका त्याग करना चाहिए ।२२। और नित्य या नैमित्तिक (किसी पर्व आदि काल) में जो भगवान् भास्कर की पूजा करता है उसकी ओर देखता तक नहीं क्योंकि उसकी ओर देखते ही तुम्हारी शक्ति की गति नष्ट हो जायगी ।२३। इसलिए जो लोग पुष्प, धूप, वस्त्र, एवं सुन्दर आभूषणों द्वारा (उनकी) पूजा करते हैं उन्हें छोड़ देना क्योंकि वे मेरे पिता (सूर्य) के भक्त है ।२४। उसी भाँति जो सूर्य के मन्दिर में लीपने या झाड़ू द्वारा सफाई करता है उसकी तीन पीढ़ियों का त्याग करना ।२५। जिसने सूर्य के लिए सुन्दर, मन्दिर का निर्माण कराया हो, उसके कुल में उत्पन्न पुरुष को आप लोग अपनी

येनार्चा भगवद्भक्त्या मत्पितुः कारिता शुभा । नराणां तत्कुलं वीराः सदा त्याज्यं सुदूरतः ॥२७
भवतां भ्रमतां यत्र भानुसंश्रयमुद्रया । न चाज्ञाभङ्गकृत्कश्चिद्भविष्यति नरः क्वचित् ॥२८
इत्युक्ताः किङ्करास्तेन यमेन सुमहात्मना । अनाश्रित्य वचः कृष्णः सत्राजितमथो गताः ॥२९
तस्य ते तेजसः सर्वे भानोर्भक्तस्य सुव्रत । मोहिताः पतिता भूमौ यथा च विहगा नगात् ॥३०
एतां महाफलां योर्चां भानोः कारयते नरः । तवाख्यानं महाबाहो गृहं कारयितुश्च यत् ॥३१
यज्ञा नराणां पापौघनाशकाः सर्वकामदाः । तथैवेष्टो जगद्भानुः सर्वयज्ञमयो रविः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यालयवन्दनमार्जनादिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११३।

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्नापनयोगवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

स्थापितां प्रतिमां भानोः सम्यक्सम्पूज्य मानवः । यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१
यः स्नापयति देवस्य घृतेन प्रतिमां रवेः । प्रस्थेप्रस्थे द्विजाग्र्याणां स ददाति गवां शतम् ॥२

दुष्ट आँखो (दण्ड देने के विचार) से कभी न देखना ।२६। एवं मेरे पिता भगवान् सूर्य की अर्चा (पूजा) जो स्वयं किया या कराया हो उनके कुल में उत्पन्न प्राणियों का अत्यन्त दूर से ही त्याग करना ।२७। केवल सूर्य के आश्रितों (भक्तों) के अतिरिक्त और कोई भी मनुष्य भ्रमण करते हुए आप लोगों की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं कर सकता है ।२८। इस प्रकार उन महात्मा यम के कहने पर भी वे किंकर गण उनकी (यमकी) बातों को अवहेलना कर भक्ति शिरोमणि सत्राजित के पास पहुँच ही गये ।२९। हे सुव्रत! उस सूर्य भक्त के तेज से मूर्च्छित होकर वे गण पर्वत के ऊपर से गिरती हुए पक्षियों की भाँति भूमि पर गिर गये ।३०। इसलिए हे महाबाहो! जो सूर्य की इस महान् फल दायिनी पूजा को सुसम्पन्न करता है उसे तथा उनके लिए मन्दिर बनवाने वाले को जो फल प्राप्त होते हैं वे सभी फल इस तुम्हारे आख्यान (कथा के) कहने-सुनने से प्राप्त होंगे ।३१। मनुष्यों के लिए जिस भाँति यज्ञ पाप समूह नाशन एवं समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाले बताये गये हैं उसी भाँति सूर्य भी संसार के लिए प्रिय एवं अभीष्ट प्रदायक कहे गये हैं क्योंकि सूर्य समस्त यज्ञमय रूप हैं ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यालय वन्दनमार्जनादि वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।११३।

अध्याय ११४

आदित्यस्नापनयोग विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सूर्य की प्रतिमा (मूर्ति) की प्रतिष्ठा करके जिन-जिन उद्देश्यों से उनकी पूजा मनुष्य करता है, उसकी सभी कामनाएँ निश्चित सफल होती हैं ।१। जो सूर्य की प्रतिमा का स्नान घी द्वारा

गवां शतस्य विप्रेभ्यो यद्दत्तस्य भवेत्फलम् । घृतप्रस्थेन तद्भानोर्भवेत्स्नातकयोगिनाम् ।।३
भूरिद्युम्नेन सम्प्राप्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । घटोदकेन मार्तण्डप्रतिमा स्नापिता किल ।।४
प्रतिमामसिताष्टम्यां घृतेन जगतीपतेः । स्नापयित्वा समस्तेभ्यः पापेभ्यः कृष्ण मुच्यते ।।५
सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वा गव्येन हविषा रवेः । स्नपनं तु भवेच्छ्रेष्ठं महापातकनाशनम् ।।६
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यत्पापं कुरुते नरः । तत्क्षालयति सन्ध्यायां घृतेन स्नपनं रवेः ।।७
सर्वयज्ञमयो भानुर्हव्यानां परमं घृतम् । तयोरशेषपापानां क्षालकः सङ्गमो भवेत् ।।८
येषु क्षीरवहा नद्यो ह्रदाः पायसकर्दमाः । मोदते तेषु लोकेषु क्षीरस्नानकरो रवेः ।।९
आह्लादं निर्वृतिस्थानमारोग्यं चारुरूपताम् । सप्तजन्मान्यवाप्नोति क्षीरस्नानपरो रवेः ।।१०
दध्यादीनां विकाराणां क्षीरतः सम्भवो यथा । यथा च विमलं क्षीरं यथा निर्वृतिकारकम् ।।
तथा च निर्मलं ज्ञानं भवत्यपि न संशयः ।।११
ग्रहानुकूलतां पुष्टिं प्रियत्वमखिले जने । करोति भगवान्भानुः क्षीरस्नपनतोषितः ।।१२
सर्वस्य स्निग्धतामेति दृष्टमात्रे प्रसीदति । घृतक्षीरेण देवेश स्नापिते तिमिरापहे ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यस्नापनयोगवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११४।

करता है, उसने मानो एक-एक सेर घी के दान में सौ-सौ गायों का दान किया ऐसा समझना चाहिए ।२। क्योंकि ब्राह्मण को सौ गायों के दान देने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल सूर्य के एक सेर घी द्वारा स्नान कराने वाले स्नातक योगी को भी प्राप्त होता है ।३। घड़े के जल द्वारा मार्तण्ड (सूर्य) की मूर्ति के स्नान कराने वाले को असंख्य धन एवं सातों द्वीपों समेत वसुंधरा (पृथ्वी) प्राप्त होती है ।४। हे कृष्ण ! कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जगत्-पति सूर्य की घी से स्नान कराने से उसे समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।५। सप्तमी अथवा षष्ठी में उसे घृत से स्नान कराना श्रेष्ठ एवं महान् पातक का नाशक बताया गया है ।६। क्योंकि अज्ञान वश जो कुछ पाप मनुष्य करता है वह सभी पाप संध्या समय सूर्य को घी द्वारा स्नान कराने से नष्ट हो जाता है ।७। जिस प्रकार सूर्य सर्व यज्ञमय हैं उसी प्रकार हव्यों में परम श्रेष्ठ भी है, इसलिए उन दोनों (सूर्य एवं घी) का संगम होना निखिल पापों का नाशक बताया गया है ।८। इसलिए जहां सदैव दूध की नदियाँ बहती हैं, और तालाब में खीर रूपी पंक भरे पड़े हैं सूर्य के उन्हीं लोकों में पहुँचकर उन्हें दूध द्वारा स्नान कराने वाले वह व्यक्ति आनन्द का अनुभव करते हैं ।९। एवं प्रतिदिन दूध द्वारा सूर्य के स्नान कराने वाला पुरुष सात जन्म तक, हर्षातिरेक, निर्वृत्ति, आरोग्य एवं सौन्दर्य पूर्ण रूप प्राप्त करता रहता है ।१०। यद्यपि दही आदि (नवनीत, घी) दूध का विकार है, किन्तु उसी भाँति उसकी निर्मलता है इसलिए दूध जितना निर्मल एवं आत्मतुष्टि प्रदान करने वाला होता है, उससे स्नान कराने पर वैसा ही निर्मल ज्ञान भी उसे निश्चित प्राप्त होता है ।११। क्योंकि दूध द्वारा स्नान कराने से प्रसन्न होकर सूर्य ग्रहों की अनुकूलता एवं पुष्टि प्रदान करते हुए उसे लोक प्रिय बना देते हैं ।१२। घी एवं दूध द्वारा स्नान कराने पर देवनायक तथा अन्धकारनाशक (सूर्य), इस पुरुष को सभी लोगों का ऐसा प्रिय बना देते हैं जिसे देखते ही लोग आनन्द विभोर हो जाते हैं ।१३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य-स्नापन योग वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।११४।

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजाविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रशंसन्ति महात्मानः संवादं भास्कराश्रयम् । गौतम्या सह कौशल्या सुमनायां सुरालये ।।१
स्वर्गेऽतिशोभनां दृष्ट्वा कौशल्यां पतिना सह । ब्राह्मणी गौतमी नाम पर्यपृच्छत विस्मिता ।।२

गौतम्युवाच

शतशः सन्ति कौशल्ये देवाः स्वर्गनिवासिनः । देवपत्न्यस्तथैवैताः सिद्धाः सिद्धाङ्गनास्तथा ।।३
न तेषामीदृशो गन्धो न कान्तिर्न सुरूपता । न वाससी शोभने ये यथा ते पतिना सह ।।४
नैवाभरणजातानि तेषां भ्राजन्ति वै तथा । यथा तव यथा पत्युर्न च स्वर्गनिवासिनाम् ।।५
सुस्नातचैलतश्चैव युवयोरतिरिच्यते । लेखाद्यानामपीशानां क्षयातिशयवर्जितः ।।६
तपःप्रभावो दानं वा होमो वा कर्मसंज्ञितः । युवयोर्यत्समाचक्ष्व तत्सर्वं वरवर्णिनि ।।
येन मे विक्रमे बुद्धिर्मनुजा येन सङ्गताः ।।७

कौशल्योवाच

यज्ञो यज्ञेश्वरो भानुरावाभ्यां जातु तोषितः । स्वर्गप्राप्तिरियं तस्य कर्मणः फलमुत्तमम् ।।८

अध्याय ११५

सूर्य-पूजा की विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—स्वर्ग लोक में गौतमी एवं कौशल्या के सूर्य विषयक संवाद को जिसकी महात्मा लोग अत्यन्त प्रशंसा करते हैं, मैं तुम्हें सुना रहा हूँ ।१। एक समय स्वर्ग लोक में पति के साथ स्थित सर्वाङ्ग सुन्दरी कौशल्या के सौन्दर्यादि गुणों से आश्चर्य चकित होकर ब्राह्मणी गौतमी ने उनसे पूछा— ।२

गौतमी ने कहा—हे सुन्दरि ! इस स्वर्ग लोक में यहाँ के निवासी सैकड़ों देवता एवं उनकी स्त्रियाँ सिद्ध तथा सिद्धाङ्गनाएँ वर्तमान हैं ।३। किन्तु हे सुशोभने ! पति के साथ रहने वाली तुम्हारी शरीर की जिस प्रकार कांति, गंध, सौन्दर्य एवं वस्त्र हैं, वैसी इन लोगों में किसी की नहीं है ।४। और जिस भाँति तुम्हारे तथा तुम्हारे पति देव के आभूषण सुशोभित हैं, उस भाँति किसी भी स्वर्ग निवासी के नहीं हैं ।५। एवं भलीभाँति सवस्त्र स्नान करने के उपरान्त इन वस्त्रों के धारण करने से तुम दोनों की (सभी लोगों) से अतुलनीय छवि हो गयी है यहाँ तक कि प्रधान देवताओं से भी अधिक सौन्दर्य पूर्ण हो क्योंकि उनमें कुछ दोष भी हैं पर तुम लोगों में दोष लेश मात्र का भी नहीं है ।६। हे वरवर्णिनि! मुझे ऐसी बात का आश्चर्य हो रहा है कि तुम दोनों ने यह (अनुपम सौन्दर्य) कैसे प्राप्त किया है, यह तप का प्रभाव है ! या दान, हवन अथवा किसी अन्य कर्म का । अस्तु, जो भी कुछ हो मुझसे अवश्य कहो ! मैं भी उसे सुसम्पादित करने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुकी हूँ तथा मनुष्य भी उसे करने के लिए तैयार ही होंगे ।७

कौशल्या बोली—एक समय हम दोनों ने यज्ञ एवं यज्ञेश्वर रूप सूर्य को प्रसन्न किया था, उसी कर्म

सुरूपता ततः प्रीतिः पश्यतां चारुवेषिता । यत्पृच्छसि महाभागे तदप्येषां वदामि ते ॥९
तीर्थोदकैस्तथा गन्धैः स्नापितो यद्दिवाकरः । तेन कान्तिरियं नित्यं देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥१०
मनःप्रसादः सौम्यत्वं शरीरे ये च निर्वृताः । यत्प्रियत्वं च सर्वं स्यात्तद्घृतस्नपनात्फलम् ॥११
यान्यभीष्टानि वासांसि यच्चाभीष्टविभूषणम् । रत्नानि यान्यभीष्टानि यत्प्रियं चानुलेपनम् ॥१२
ये धृता यानि माल्यानि दयितान्यभवन्सदा । मम भर्तुस्तदैवास्य तदा राज्यं प्रशासतः ॥१३
तानि सर्वाणि सर्वज्ञ सर्वपातरि भानुनि । दत्तानि तं समुत्थोऽयं गन्धधूपात्मको गुणः ॥१४
आहारा दयिता ये च पवित्राश्च निवेदिताः । त्रिलोककर्तुः सवितुस्तृप्तिस्तद्गुणसम्भवा ॥१५
स्वर्गकामेन मे भर्त्रा मया च शुभदर्शने । कृतमेतत्कृतेनाभूदावयोर्भवसंक्षयः ॥१६
ये त्वकामा नराः सम्यक्तत्कुर्वन्ति च शोभने । तेषां ददाति विश्वेशो भगवान्मुक्तिमीश्वरः ॥१७

ब्रह्मोवाच

एवमभ्यर्च्य मार्तण्डमर्कं देवेश्वरं गुरुम् । प्राप्तोऽस्म्यभिमतान्कामान्कृष्णाहं शाश्वतीः समाः ॥१८
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमोशीरपद्मकैः । अनुलिप्तो नरैर्भक्त्या ददाति[1] सागरोद्भवाम् ॥१९

का यह स्वर्ग प्राप्ति रूप उत्तम फल प्राप्त हुआ है ।८। हे महाभागे ! (हम दोनों के) सौन्दर्य प्रीति एवं उत्तम वेष-भूषा देखकर जो विस्मित भाव से पूंछ रही हो वह सभी बातें मैं आप को बता रही हूँ ।९। तीर्थों के जलों एवं गन्धों द्वारा हम लोगों ने सूर्य को स्नान कराये थे उसी द्वारा त्रिभुवन के ईश्वरों से भी बढ़कर यह कान्ति प्राप्त हुई है ।१०। मन की सफलता, शरीर की सौम्यता शांति एवं और भी जो कुछ प्रिय एवं उत्तम देख रही हो, ये सभी (उन्हीं के) घी द्वारा स्नान कराने के फल स्वरूप प्राप्त हुए हैं ।११। हम लोगों की ये सभी अभीष्ट वस्तुएँ वस्त्र, आभूषण, रत्न जो दिखाई दे रही हैं प्रिय अनुलेपन धूप और प्रिय मालाएँ उस समय राज्य में शासन करते हुए मेरे पति के पास थीं वे समस्त वस्तुएँ सर्वज्ञ एवं सभी की रक्षा करने वाले उस सूर्य के लिए सदैव समर्पित की जाती थीं उसी से (हम दोनों के) शरीर में गन्ध एवं धूप का गुण (सुगन्ध) प्राप्त है ।१२-१४। और उन दिनों आत्मप्रिय एवं पवित्र भोजन भी हम लोगों के द्वारा त्रिलोक नायक सूर्य के लिए समर्पित किये जाते थे जिससे यह परम तृप्ति प्राप्त हुई है ।१५। शुभ दर्शन ! इस प्रकार स्वर्ग की कामना वश मैंने तथा मेरे पति ने इस भाँति की अर्चना की थी उसी के परिणाम स्वरूप हम लोगों को संसार (जन्म-मरण) से छुटकारा मिल गया है ।१६। हे शोभने ! जो मनुष्य निष्काम भाव से उनकी अर्चना के निमित्त ये (सभी बातें) उनके लिए करते रहते हैं उन्हें विश्वेश्वर भगवान् (भास्कर) अवश्य मुक्ति प्रदान करते हैं ।१७

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! इसी प्रकार मैंने भी मार्तण्ड, देवनायक एवं गुरु सूर्य की पूजा करके अनेकों वर्षों के लिए अपनी समस्त कामनाएँ सफल की हैं ।१८। इस भाँति जो चंदन, अगुरु, कपूर, कुंकुम, खश गन्ध उनके अङ्गलेपन के निमित्त अर्पित करता है उसे वे अभिलषित मनोरथ तथा लक्ष्मी प्रदान करते

---

१. ददाति मनसेप्सितान् ।

कालेयकं तुरुष्कं च रक्तचन्दनमेव च । यान्यात्मनि सदेष्टानि तानि शस्यान्यपाकुरु ।।२०
गन्धाश्चापि शुभा ये च धूपा वे विजयोदयाः । दिवाकरस्य धर्मज्ञ निवेद्यास्सर्वदाच्युत ।।२१
न दद्यात्सल्लकीक्षारं नो मुखेन च संहृतम् । दद्यादर्काय धर्मज्ञ धूपमाराधनोद्यतः ।।२२
मालती मल्लिका चैव यूथिका चातिमुक्तिकः । पाटलाः करवीरश्च जपा सेवन्तिरेव च ।।२३
कुङ्कुमस्तगरश्चैव कर्णिकारः सकेशरः । चम्पकः केतकः कुन्दो बाणबर्बरमालिका ।।२४
अशोकस्तिलको लोध्रस्तथा चैवाटरूषकः । शतपत्राणि धन्यानि बकाह्वानी विशेषतः ।।२५
अगस्ति किंशुकं तद्वत्पूजार्थं भास्करस्य तु । अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता भास्करपूजने ।।२६
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं वा भृङ्गरस्य च । तमालपत्रं च हरे सदैव भगवत्प्रियम् ।।२७
तुलसी कालतुलसी तथा रक्तं च चन्दनम् । केतकी पत्रपुष्पं तु सद्यस्तुष्टिकरं रवेः ।।२८
पद्मोत्पलसमुत्थानि रक्तं नीलोत्पलं तथा । सितोत्पलं तु भानोस्तु दयितानि सदाच्युत ।।२९
कृष्णलोन्मत्तकं कान्तं तथैव गिरिमल्लिका । न कर्णिकारिकापुष्पं भास्कराय निवेदयेत् ।।३०
कुटजं शाल्मलीपुष्पं तथान्यद् गन्धवर्जितम् । निवेदितं भयं रोगं निःस्वतां च प्रयच्छति ।।३१
येषां न प्रतिषेधोऽस्ति गन्धवर्णान्वितानि च । तानि पुष्पाणि देयानि मानवे लोकभानवे ।।३२
सुगन्धैश्च मुरामांसीकर्पूरागरुचन्दनैः । तथान्यैश्च शुभैर्द्रव्यैरर्चयेद्वनमालिनम् ।।३३
दुकूलपट्टकौशेयवार्क्षकार्पासकादिभिः । वासोभिः पूजयेद्भानुं यानि चात्मप्रियाणि तु ।।३४
भक्ष्याणि यान्यभीष्टानि भोज्यान्यभिमतानि च । फलं च वल्लभं यत्स्यात्तत्ते देयं दिवाकरे ।।३५

हैं ।१९। हे धर्मज्ञ ! हे अच्युत ! इसलिए कालेयक (दारु हल्दी), लोहवान, रक्त चंदन और भी जो आत्म प्रिय हों, उन्हें तथा शुभ गन्ध एवं विजयनाँद धूप ये सभी वस्तुएँ सदैव सूर्य के लिए अर्पित करना चाहिए ।२०-२१। हे धर्मज्ञ ! इस भाँति सल्लकी क्षार (नामक) तथा मुख से स्पर्श की हुई कोई भी वस्तु (सूर्य के लिए) समर्पित न करनी चाहिए आराधना करने वाले को धूप अवश्य करना बताया गया है ।२२। मालती, मल्लिका, जूही, अति मुक्तिक (तिनिश), कुम्हड़े करवीर (कनेर), जयापुष्प, सेवंति, कुंकुम, तगर, बड़हर, चंपा, केतकी, कुंद, भंगरैया, अशोक, तिलक, लोध, अडूसा, कमल, बक, अगस्त्य, किंशुक, ये पुष्प भास्कर की पूजा के लिए उत्तम बताये गये हैं ।२३-२६। हे हर ! इसी प्रकार बिल्व पत्र, शमीपत्र, भंगरैया, तमालपत्र ये सभी भगवान् भास्कर के अत्यन्त प्रिय हैं ।२७। तुलसी, काली तुलसी, रक्तचन्दन, केतकी, इनके पत्र या पुष्प ये सभी अर्पित होने पर भगवान् सूर्य को सद्यः प्रसन्न करते हैं ।२८। हे अच्युत ! कमल, रक्तकमल, नील कमल, श्वेत कमल भानु को सदैव अत्यन्त प्रिय हैं ।२९

हे कृष्ण ! धतूर, कुटज, एवं बड़हल के पुष्प कभी भी सूर्य के लिए समर्पित न करना चाहिए ।३०। क्योंकि कुटज, सेमर तथा इसी भाँति अन्य गन्धहीन पुष्प सूर्य को समर्पित करने पर भय, रोग तथा दरिद्रता प्राप्त होती है ।३१। लोक के प्रकाशक सूर्य के लिए उन पुष्पों को जिनका निषेध न किया गया हो तथा वे गन्ध एवं सौन्दर्य पूर्ण हों सादर समर्पित करना चाहिए ।३२। सुगंध, तालीस पत्र, जटामांसी, कपूर, अगुरु, चन्दन तथा अन्य उत्तम वस्तुओं द्वारा वनमाली की अर्चा अवश्य करनी चाहिए ।३३। उसी भाँति दुपट्टा, रेशम या सूती वस्त्रों एवं अन्य जो आत्मप्रिय वस्तु हों उन वस्त्रों द्वारा सूर्य की पूजा करना बताया गया है ।३४। इसी प्रकार भक्ष्य भोज्य तथा अत्यन्त रुचिकर फल सूर्य के लिए अर्पित करे ।३५।

सुवर्णमणिमुक्तानि रजतं च तथाच्युत । दक्षिणा विविधा चेह यच्चान्यदपि वल्लभम् ॥३६
आत्मानं भास्करं मत्वा यज्ञं तस्मै निवेदयेत् । तत्तदव्यक्तरूपाय भास्कराय निवेदयेत् ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्ये सूर्यपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११५।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

रविपूजाविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्ण राजा महानासीद्ययातिकुलसम्भवः । सत्राजिदिति विख्यातश्चक्रवर्ती महाबलः ॥१
प्रभावैस्तेजसा कान्त्या क्षान्त्या बलसमन्वितः । धैर्यगम्भीर्यसम्पन्नो वदान्यो यशसान्वितः ॥२
बुद्ध्या विक्रमदक्षश्च सम्पन्नो ब्राह्मणायतः । कृती कविस्तथा शूरः षट्पदाख्यैर्न निर्जितः ॥३
सदा पञ्चसु रक्तश्च वसुमद्भिर्न निर्जितः । रुद्रता वसुभिर्जातैः सत्त्वश्रद्धासमन्वितः ॥४
अम्बुजस्याण्डजस्येव आत्रेयस्य तथाच्युत । अम्बुजायास्तथा कृष्ण वार्यपात्रं स वै विभो ॥५
गाङ्गेयेन बले तुल्यः पौलस्त्यार्द्धाश्रमो यथा । गाङ्गेयस्य तथा कृष्ण धिषणस्य हरेर्यथा ॥६

हे अच्युत ! सुवर्ण, मणि, मोती तथा चाँदी और भी जो प्रिय एवं उत्तम धातु हों उन भाँति-भाँति के धातुओं को दक्षिणा के रूप में देवाधिदेव सूर्य के लिए समर्पित करनी चाहिए ।३६। इसलिए अपने में भगवान् भास्कर की भावना रख कर उन अव्यक्त रूप भास्कर के लिए यज्ञारम्भ एवं उनकी प्रिय वस्तुएँ समर्पित करना मानव का परमधर्म है ।३७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के आदित्य माहात्म्य में सूर्य पूजा विधि वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।११५।

अध्याय ११६

रविपूजाविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! ययाति के कुल में उत्पन्न चक्रवर्ती एवं महाबली सत्राजित नामक विख्यात राजा हुआ था ।१। प्रभाव, तेज, कांति, क्षमता, बल, धैर्य एवं गांभीर्य गुणों से अलंकृत होता हुआ यह उदार तथा कीर्तिमान् था ।२। ब्राह्मणों के समान बुद्धिसम्पन्न और विक्रम में दक्ष वह कृती (कार्य-कुशल), कवि, शूर एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या तथा मात्सर्य इन छः दोषों का विजेता पाँच (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सूर्य, गणेश अथवा दुर्गा देवों का अनुरागपूर्ण उपासक तथा राजाओं के लिए अजेय था । सत्त्व- श्रद्धा संपन्न होकर उसने (शत्रुओं के लिए) वसुओं द्वारा रुद्रता प्राप्त कर ली अर्थात् रौद्र रूप थी ।३-४। हे अच्युत, ब्रह्मा एवं मार्तण्ड के समान (वह) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी का भी प्रिय पात्र था ।५। वह भीष्म की भाँति बलशाली था तथा उसकी पुरी रावण की लङ्का पुरी की भाँति ही उत्तम थी। हे कृष्ण ! वह भीष्म की भाँति पराक्रमी बृहस्पति के समान बुद्धिमान् एवं विष्णु के समान सौन्दर्य पूर्ण

काम्यश्च द्विजभक्तस्तु तथा वाल्मीकिवत्सदा । व्यासस्य देवशार्दूल जामदग्न्यस्य वा विभोः ॥७
एषां नैकैर्गुणैर्युक्तः स राजा क्ष्मातले विभो । शशास स महाबाहुः सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥८
यस्मिन्गाथां प्रगायन्ति ये पुराणविदो जनाः । सत्राजिते महाबाहौ कृष्ण धात्रीं समाश्रिते ॥९
यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति । सत्राजितं तु तत्सर्वं क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥१०
स सर्वरत्नसंयुक्तां सप्तद्वीपवतीं महीम् । शशास धर्मेण पुरा चक्रवर्ती महाबलः ॥११
नान्यायकृन्न चाशक्तो वदान्यो बलवत्तरः । तस्याभूत्पुरुषा राज्ञः सम्यग्धर्मानुशासिनः ॥१२
चत्वारः सचिवास्तस्य राज्ञः सत्राजितस्य तु । बभूवुरप्रतिहताः सदा वाति बलस्य वै ॥१३
तस्य भक्तिरतीवासीन्निसर्गादेव भूपतेः । दिवाकरे जगद्भानौ रक्तचन्दनमालिनि ॥१४
तस्योर्ध्वमहिमानं च विलोक्य पृथिवीपतेः । न केवलं जनस्यापि ह्यभवत्तस्य विस्मयः ॥१५
सञ्चिन्तयामास नृपः समृद्ध्या विस्मितस्तथा । कथं स्यात् सम्पदेषा मे पुनरप्यन्यजन्मनि ॥१६
एवं स बहुशो राजा तदा कृष्ण महायशाः । चिन्तयन्नपि तन्मूलं नासदन्निश्चयान्वितः ॥१७
यदा न निश्चयं राजा स ययौ भार्गवीप्रियः । तदा पप्रच्छ धर्मज्ञान्स विप्रान्समुपागतान् ॥१८
सर्वांश्च ससुखान्वीर विविक्तान्तः पुरस्थितः । प्रणिपत्य महाबाहुर्ग्रहीतुं शासनक्रियाः ॥१९
विश्वासानुग्रहा बुद्धिर्भवतां मयि सत्तमाः । तदहं प्रष्टुमिच्छामि किञ्चित्तद्वक्तुमर्हथ ॥२०

था ।६। हे देवशार्दूल ! उस काम्य व्रती एवं ब्राह्मण भक्त ने बालमीकि व्यास तथा परशुराम के समान अनेक गुणों से सुसंपन्न होकर इस पृथ्वी तल के राज्य को अपनाकर सातों द्वीपों समेत इस वसुन्धरा (पृथ्वी) पर शासन किया ।७-८। हे कृष्ण ! उस महाबाहु सत्राजित के इस पृथ्वी के अपनाने पर पौराणिक लोग उसके विषय में गाथा के रूप में गाते थे कि सूर्य जिस स्थान से उदय होकर जहाँ रहता (अस्त होता) है उनसब पर सत्राजित का आधिपत्य होने के नाते वे सब उसी राज्य के ही क्षेत्र हैं ।९-१०। महाबलशाली उस चक्रवर्ती ने समस्त रत्नों से संयुक्त एवं इस सातों द्वीपों वाली पृथिवी पर एक धार्मिक शासन किया ।११। भली भाँति धार्मिक शासन करते हुए उसके राज्य में कोई भी अन्यायी एवं अशक्त नहीं थे अपितु सभी लोग न्यायी एवं अतुल बलशाली और उदार थे ।१२। उस अतिबलशाली सत्राजित राजा के अप्रतिहत शक्ति वाले चार सचिव थे ।१३। जगत्प्रकाशक तथा रक्तचन्दन की माला धारण करने वाले उन दिवाकर के लिए उस राजा की स्वाभाविक अतिशय भक्ति उत्पन्न हुई थी ।१४। जिसके कारण उस राजा की उन्नत महिमा को देखकर लोगों को ही नहीं अपितु स्वयं उस राजा को भी महान् आश्चर्य हुआ था ।१५। क्योंकि अपने समृद्धि से आश्चर्य चकित हो कर एकबार वह सोंचने भी लगा था कि इस प्रकार की अतुल संपत्ति मुझे जन्मान्तर में भी किस भाँति प्राप्त हो सकती है ।१६। हे कृष्ण ! इस प्रकार बार-बार सोचने-विचारने पर भी अत्यन्त ख्याति प्राप्त वह राजा उसके मूल कारण का कुछ भी निश्चय न कर सका ।१७। जब पृथिवी प्रिय राजा स्वयं इसका निश्चय न कर सके तो अपने यहाँ आये हुए उन धर्मज्ञ ब्राह्मणों से उन्होंने पूँछा ।१८। हे वीर ! एक समय (शासन भार उठाने के समय) एकान्त अन्तःपुर में स्थित होकर उस महाबाहु ने उन सुखी ब्राह्मणों से नमस्कार करते हुए कहा—आप लोग सब भाँति परम सज्जन हैं, इसीलिए मेरे उपर आप लोगों को पूर्ण विश्वास एवं अनुग्रह (कृपा) हो, तो मैं कुछ पूँछना चाहता हूँ, आप उसे बताने की कृपा करें ।१९-२०। सद्विद्या द्वारा

सद्विद्याखिलविज्ञानसम्यग्धौतान्तरात्मभिः । भवद्भिर्यद्यनुग्राह्यः स्यामहं वेदवित्तमाः ॥२१
तद्यथावन्मया पृष्टा भवन्तो मत्प्रसादिनः । वक्तुमर्हथ विद्वांसः सर्वस्यैवोपकारिणः ॥२२

ब्रह्मोवाच

यस्ते मनसि सन्देहस्तं पृच्छाद्य महीपते । वदिष्यामो यथान्यायं यत्ते[1] मनसि वर्त्तते ॥२३
वयं हि नृपशार्दूल भवता पारितोषिताः । सम्यक्प्रजां पालयित्रा ददता भोजनं सदा ॥२४
सन्तुष्टो ब्राह्मणोऽश्नीयाच्छिद्याद्वा धर्मसंशयम् । हितं चोपदिशेद्वर्त्म अहिताद्वा निवर्तयेत् ॥२५
विवक्षुमथ भूपालं भार्या तस्यैव धीमतः । प्रणिपातेन चाहेदं विनयात्प्रणयान्वितम् ॥२६
न स्त्रीणामवनीपाल वक्तुमीदृगिहेष्यते । तथापि भूपते वक्ष्ये सम्पदीदृक्सुदुर्लभा ॥२७
भूयोऽपि संशयान्प्रष्टुमलमीशो भवानृषीन् । नन्वहं पुरुषव्याघ्र सदान्तः पुरचारिणी ॥२८
तत्प्रसादं यदि भवान्करोति मम पार्थिव । तन्मदीयमृषीन्प्रष्टुं सन्देहं पार्थिवार्हसि ॥२९

सत्राजित उवाच

ब्रूहि सुभ्रूर्मतं यत्ते प्रष्टव्या यन्मया द्विजाः । भूयोऽहमात्मसन्देहं प्रक्ष्याम्येतद्द्विजोत्तमान् ॥३०

प्राप्त निखिल ज्ञान विज्ञान में आप की अन्तरात्मा भी भली भाँति निर्मल हो गई है, एवं आप श्रेष्ठ वेदज्ञों में से हैं आप लोग मेरे ऊपर यदि कृपा रखते हैं तो मैं प्रष्टव्य विषय को समझाने की कृपा अवश्य करूँगा (ऐसा मुझे विश्वास है) क्योंकि विद्वान् लोग सभी के उपकारी होते हैं ।२१-२२

ब्रह्मा ने कहा—वे लोग बोले—हे महीमते ! आज आप के मन में जो कुछ सन्देह हो, पूँछिये ! हम लोग यथोचित पाप के मन के संदेह को करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न दूर करेंगे ।२३। हे नृप शार्दूल ! भली भाँति प्रजाओं के पालन करते हुए आपने भोजन आदि प्रदान द्वारा हमें सतत संतुष्ट करने की सर्वथा चेष्टा की है ।२४। सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण भोजन करें और (शास्त्र पढ़कर) धार्मिक संदेहों का नाश करते हुए हितैषी मार्ग उपदेश तथा अहित के त्याग करते-कराते रहें यही नियम है ।२५

तदुपरांत पूछने के लिए तैयार राजा को देख कर उस समय उसकी धर्मपत्नी ने प्रणाम करते हुए विनय पूर्वक उस (राजा) से यह कहा ।२६। हे अवनिपाल ! यद्यपि स्त्रियों के लिए इस प्रकार के कहने का (साहस) करना उचित नहीं है, तथापि हे भूपते ! मैं इस राजा की सम्पत्ति के विषय में कुछ पूँछना चाहती हूँ । मैं यह कह रही हूँ कि क्योंकि इस प्रकार की संपत्ति का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है ।२७। आप अपने संदेह को ऋषियों से फिर पूंछ सकते हैं क्योंकि ये ऋषिगण सदैव, आपके सम्पर्क में रहा करते हैं । हे पुरुष व्याघ्र ! मैं केवल आप के अन्तःपुर की ही सदैव रहने वाली हूँ इसलिए हे पार्थिव ! यदि आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करें कि (इस समय) आप मेरे ही संदेह को ऋषियों से पूछें तो मुझे महान् सुख होगा ।२८-२९

सत्राजित बोले—हे सुभ्रु ! तुम अपने उस संदेह को बताओ जो मुझे इन ब्राह्मणों से पूछने को कह रहे हो मैं अपने संदेह को इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से फिर पूँछ लूँगा ।३०

---

१. यत्ते सांशयिकं हृदि ।

विमलवत्युवाच

श्रूयन्ते पृथिवीपाल नृपा ये तु चिरन्तनाः । येषां च सम्पद्भूपाल यथा तेऽद्य किलाभवत् ॥३१
तदीदृक्सम्पदो धाम तवाशेषं क्षितीश्वर । येन कर्मविपाकेन तद्वदन्तु महर्षयः ॥३२
अहं च भवतो भार्या सर्वसीमन्तिनीवरा । अतीव कर्मणा येन तद्विज्ञाने कुतूहलम् ॥३३
तथा सम्पत्समृद्धत्वमन्येष्वपि हि विद्यते । निरस्तातिशयत्वेन नूनं नाल्पेन कर्मणा ॥३४
तदन्यजन्मचरितं नरनाथ निजं भवान् । मुनीन्पृच्छ त्वया चाहं यन्मया च पुरा कृतम् ॥३५

ब्रह्मोवाच

स तथोक्तस्तया राजा पत्न्या विस्मितमानसः । मुनीनां पुरतो भार्यां प्रशंसन्वाक्यमब्रवीत् ॥३६
साधु देवि मतं यन्मे त्वया यदिदमीरितम् । सत्यं मुनिवचः पुंसां स्वार्द्धं वै गृहिणी तथा ॥३७
सोऽहमेतन्महाभागे पृच्छाम्येतान्महामुनीन् । तेषामविदितं किञ्चित्त्रिषुलोकेषु न विद्यते ॥३८
एवमुक्त्वा प्रियां राजा प्रणिपत्य च तानृषीन् । यथावदेतदखिलं पप्रच्छ धरणीधरः ॥३९

राजोवाच

भगवन्तो ममाशेषं प्रसादादृतचेतसः । कथयन्तु यथावृत्तं यन्मया सुकृतं कृतम् ॥४०
कोऽहमासं पुरा विप्राः किंस्वित्कर्म मया कृतम् । किं वानया तु चार्वंग्या मम पत्न्या कृतं द्विजाः ॥४१

विमलवती ने कहा—हे पृथिवी पाल ! (अनेक पूर्वजों में) जो प्राचीन राजा थे उनकी भी आप के समान ही संपत्ति थी ऐसा सुना जाता है ।३१। हे क्षितीश्वर ! तो इस प्रकार की आप की संपत्ति एवं तेज (ये) दोनों जिन कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त हुए हैं, उसे ये महर्षिगण बताने की कृपाकरें तथा जिस कर्म के अनुष्ठान द्वारा मैं आपकी सभी सुन्दरी स्त्रियों में परम सुन्दरी भार्या हुई हूँ उस कर्म के जानने के लिए मुझे महान् कुतूहल है ।३२-३३। यों तो संपत्ति की अधिकता औरों के यहाँ भी देखने में आती है पर हम लोगों की यह अनश्वर एवं अथाह संपत्ति जो प्राप्त हुई है निश्चय है कि किसी अल्प कर्मानुष्ठान का परिणाम नहीं है ।३४। और हे नरनाथ ! अपने जन्मांतर के कर्म जिन्हें आप तथा मैंने सुसम्पन्न किया है आप मुनियों से पूंछें ।३५।

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उस पत्नी के पूंछने पर आश्चर्य चकित होकर राजा ने मुनियों के सामने (अपनी) स्त्री की प्रशंसा करते हुए (उससे) कहा ।३६। हे देवी ! तुमने जो कुछ कहा है उसमें मेरा भी साधु संमत है, अर्थात् (मैं भी उसी को पूंछना चाहता था) मुनियों का कहना सत्य है कि पुरुष की अपनी आधी (अर्धाङ्गी) उसकी गृहिणी (विवाहिता) स्त्री होती है ।३७। हे महाभाग ! मैं इन्हीं बातों को इन मुनियों से पूंछता हूँ इसलिए कि तीनों लोकों में इन लोगों से कुछ अविदित नहीं है ।३८। इस प्रकार अपनी स्त्री से कह कर धरणीधर उस राजा ने उन ऋषियों से नमस्कार पूर्वक ये सभी बातें पूंछी ।३९

राजा ने कहा—आप लोग सत्य वक्ता हैं अतः हे भगवन् ! मेरे निखिल सत् कर्म को जिसे मैंने (जन्मान्तर में) किया है, आप कृपा कर सुनायें ।४०। हे विप्र ! पहले मैं किस योनि में कहाँ उत्पन्न था और कौन कर्म किया था । हे द्विज ! सर्वाङ्गसुन्दरी इस मेरी पत्नी ने कौन कर्म किया है ।४१। जिससे

येनावयोरियं लक्ष्मीर्मर्त्यलोके सुदुर्लभा । चत्वारश्चाप्रतिहता अमात्या मम गच्छतः ॥४२
अशेषा भूभृतो वश्या धनस्यान्तो न विद्यते । बलं चैवाप्रतिहतं शरीरारोग्यमेव च ॥४३
प्रतिभाति च मे कान्त्या भार्यायामखिलं जगत् । ममापि वपुषस्तेजो न कश्चित्सहते द्विजाः ॥४४
सोऽहमिच्छामि तज्ज्ञातुं तथैवेयमनिन्दिता । निजानुष्ठानमखिलं यस्याशेषमिदं फलम् ॥४५

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा नरेन्द्रेण समस्तास्ते तपोधनाः । परावसुमथोचुस्ते कथ्यतामस्य भूभृतः ॥४६
चोदितः सोऽपि धर्मज्ञैर्महाशूरा महामतिः । योगमास्थाय सुचिरं यथावद्यतमानसः ॥४७
ज्ञातवान्नृपतेस्तस्य पूर्वदेहविचेष्टितम् । स तमाह मुनिर्भूपं विज्ञानेच्छं महामतिम् ॥४८
सत्राजितं महात्मानं जितशत्रुं मनस्विनम् । सपत्नीकं महाबुद्धिं ब्राह्मणान्सत्यवादिनः ॥४९

परावसुरुवाच

शृणु भूपाल सकलं यस्येदं कर्मणः फलम् । तव राज्यादिकं सुभ्रूर्येयं चासीन्महीपते ॥५०
त्वमासीः शूद्रजातीयः परहिंसापरायणः । कुष्ठार्तो दण्डपारुष्ये निःस्नेहः सर्वजन्तुषु ॥५१
इयं च भवतो भार्या पूर्वमप्यायतेक्षणा । नित्यं बभूव त्वच्चित्ता भवच्छुश्रूषणे रता ॥५२
पतिव्रता महाभागा भर्त्स्यमानापि निष्ठुरम् । त्वद्वाक्येषु च सर्वेषु वीर कर्मसु चोद्यता ॥५३

इस मर्त्य लोक में हम दोनों को यह सुदुर्लभ लक्ष्मी एवं मेरे पीछे चलने वाले अप्रतिहत (अजेय) चार सचिव प्राप्त हुए हैं ।४२। भूमण्डल के समस्त राजा मेरे अधीन हैं, मेरे धन का अंत नहीं है उसी प्रकार अपरिमित बल एवं शरीर के आरोग्य मुझे प्राप्त हैं ।४३। तथा मेरी स्त्री की सौन्दर्य कांति से सारा संसार पूर्ण प्रकाशित हो रहा है, और हे द्विज ! मेरे शरीर के तेज के सहन करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।४४। इसलिए कर्मानुष्ठान द्वारा ये समस्त फल मुझे प्राप्त हुए हैं उन्हें तथा अपनी स्त्री के जन्मान्तरीय कर्मों को यह तथा मैं जानना चाहता हूँ ।४५

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उस नरेंद्र के पूँछने पर उन तपोधनों ने परावसु से कहा कि आप राजा की उपरोक्त सभी बातें बताने की कृपा करें।४६। उन धर्मज्ञों (ऋषियों) के कहने पर उस महाशूर एवं महाबुद्धिमान् ने एकाग्रचित्त होकर योग के बल से राजा के जन्मान्तरीय शरीर द्वारा किये गये समस्त कर्मों की जानकारी प्राप्त की। पश्चात् उन्होंने विज्ञान के इच्छुक, महाबुद्धिमान् शत्रुओं के विजेता, मनस्वी एवं सपत्नीक उस महातमा सत्राजित से सत्यवादी ब्राह्मणों के समक्ष कहा ।४७-४९

परावसु ने कहा—हे भूपाल ! जिस कर्म के फल स्वरूप ये समस्त राज्यादि सुन्दर भौंह वाली (स्त्री) तुम्हें प्राप्त हुई है, मैं बता रहो हूँ सूनो ।५०। हे राजन् ! (पहले जन्म में) तुम शूद्र कुल में उत्पन्न होकर सदैव हिंसा में ही निरत रहते थे कुष्ठ रोग से दुःखी भी रहा करते थे एवं सभी जीवों को स्नेहहीन (निर्दयी) होकर कठोर दण्ड दिया करते थे ।५१। और यह विशाल नेत्रवाली (रानी) आपकी सहधर्मिणी भार्या थी उस समय भी जो नित्य दत्त चित्त होकर आपकी सेवा करती थी ।५२। हे वीर ! स्वाभाविक निष्ठुरता के कारण तुम्हारे डांटने फटकारने एवं धिक्कारने पर भी यह सौभाग्यशालिनी पतिव्रता तुम्हारी सभी बातें शिरोधार्य करती एवं सम्पूर्ण कार्यों के करने के लिए सदैव

नैश्वर्यादसहायस्य त्यज्यमानस्य बन्धुभिः । क्षयं जगाम योऽर्थोऽभूत्सञ्चितः प्रपितामहैः ॥५४
तस्मिन्क्षीणे कृषिपरस्त्वमासीः पृथिवीपते । सापि कर्मविपाकेन कृषिर्विफलतां गता ॥५५
ततो निःस्वं परिक्षीणं परेषां भृत्यतां गतम् । तत्याज साध्वी नेयं त्वां त्यज्यमानापि पार्थिव ॥५६
अनया तु समं साध्व्या भानोरावसथे त्वया । कृतं शुश्रूषणं वृत्त्या भक्त्या सम्मार्जनादिकम् ॥५७
निःस्नेहः सर्वकामेभ्यस्तन्मयस्त्वं तदर्पणः । अहन्यहनि विस्रम्भात्तस्मिन्नावसथे रवेः ॥५८
कान्यकुब्जपुरे वीर महाशुश्रूषितं त्वया । दिवाकरालये नित्यं कृतं तन्मार्जनं त्वया ॥५९
तथैवाभ्युक्षणं भूप नित्यं चैवानुलेपनम् । पत्न्यानया नृप तथा युष्मच्चित्तानुवृत्तया ॥६०
कारितं श्रवणं पुण्यमितिहासपुराणयोः । दत्त्वाङ्गुलीयकं राजन्पितृदत्तं तु वाचके ॥६१
अहन्यहनि यत्कर्मयुवयोर्नृपकुर्वतोः । तत्रैव तन्मयत्वेन पापहानिरजायत ॥६२
भानोः कार्यं मया कार्यं परं शुश्रूषणं तथा । नाप्रभातं प्रभातं वा चिन्तयेमभवन्निशि ॥६३
एवमायतनं रम्यमित्येवं च सुखावहम् । सूर्यवच्चैवमेतस्यादित्यासीत्ते मनस्तदा ॥६४
योगिनां सुखदं कर्म तथैव सुखमित्यपि । भवच्चित्तमभूत्तत्र योगकर्मण्यहर्निशम् ॥६५
एवं तन्मनसस्तत्र कृतोद्योगस्य पार्थिव । भूतानुमानिनः सम्यग्यथोक्ताधिककारिणः ॥६६

तैयार रहती थी ।५३। इसी भाँति आप जब प्रभुत्वहीन असहाय एवं बन्धुओं द्वारा परित्यक्त हो गये तो आप के पास का धन भी जिसे आपके प्रपितामह ने संचित किया था, नष्ट होगया ।५४। हे पृथिवी पते ! उस समय आप ने कृषि (खेती) करना आरम्भ किया पर बुरे कर्मों के परिणाम स्वरूप वह खेती भी निष्फल हो गई ।५५। उसके उपरान्त अत्यन्त दरिद्र एवं कृषित होते हुए भी आप को उस दयनीय दशा में नौकरी करनी पड़ी : हे पार्थिव ! उस समय विक्षुब्ध होकर आपने उस स्त्री को छोड़ दिया था किन्तु तुम्हारे त्याग करने पर भी उस महासती ने तुम्हारा त्याग कभी नहीं किया ।५६

पुनः इस पतिव्रता के साथ तुमने सेवा भाव से भक्ति पूर्वक सूर्य के मन्दिर में झाड़ू आदि द्वारा सफाई करना आरम्भ किया ।५७। सूर्य के उस मन्दिर में उनके सभी काम तन्मयता पूर्वक केवल उन्हीं के लिए निःस्वार्थ भाव से विश्वस्त होकर तुम प्रतिदिन करने लगे थे ।५८। हे वीर ! दिवाकर के मन्दिर की झाड़ू आदि द्वारा सफाई की वह महान् सेवा तुमने कान्यकुब्ज पुर में रहकर किया था । हे भूप ! उनका अभिषेक और नित्य लेप (उबटन) की सेवा करते हुए तुमने इस पत्नी के साथ जो सदैव तुम्हारे चित्त के अनुकूल रहती थी, इतिहास पुराण की पुण्य कथा भी वहाँ करायी थी । हे राजन् ! अपने पिता द्वारा प्राप्त अंगूठी इसने उस अनुष्ठान में कथावाचक के लिए अर्पित कर दी थी ।५९-६१। हे नृप इस प्रकार वहाँ प्रतिदिन तन्मय होकर जब सेवा करने लगे तो उससे तुम दोनों के पाप (उसी समय) नष्ट हो गये ।६२। सूर्य के सभी कार्य मुझे करते रहना चाहिए तथा उनकी महान् सेवा भी और उसके लिए मुझे प्रातः मध्याह्न का विचार भी नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार विचार करते हुए तुम्हारी सारी रात बीत जाती थी ।६३। यह (सूर्य) देव का मंदिर उन्हीं की भाँति सदैव रमणीक बना रहे तो यही मेरा सुख है उस समय तुम्हारे मन में यही भावना बनी रहती थी ।६४। योगियों के उन सुखदायक कर्मों की भाँति इनकी सेवा के ये सभी कर्म मेरे लिए नितान्त सुख कर हैं ऐसा सोचकर तुम्हारा मन उस योग्य कर्मों में रात दिन लगा रहता था ।६५। हे पार्थिव ! इस प्रकार मन लगाकर उनकी सेवा में तत्पर रहते हुए जितना कोई

स्मरतो गोपतिं नित्यं चित्तेनापि दृढात्मनः । निःशेषमुपशांतं ते पापं सूर्यनिषेवणात् ।।६७
ततोऽधिकं पुरस्तस्मादगारस्यानुलेपनम् । संमार्जनं च बहुशः सपत्नीकेन यत्कृतम् ।।६८
केवलं धर्ममाश्रित्य त्यक्त्वा वृत्तिमशेषतः । अनया श्रवणं पुण्यं कारितं वाचकात्सदा ।६९
नानाधातुविकारैस्तु गोमयेन मृदा तथा । उपलेपनं कृतं भक्त्या त्वया पूर्वं सुरालये ।।७०
अथाजगाम वै तत्र कुवलाश्वो महीपतिः । महासैन्यपरीवारः प्रभूतगजवाहनः ।।७१
सर्वसम्पदुपेतं तं सर्वाभरणभूषितम् । वृतं भार्यासहस्रेण दृष्ट्वा संक्रन्दनोद्बलम् ।।
स्पृहा कृता त्वया तत्र चारुमौलिनि पार्थिवे ।।७२
सर्वकामप्रदं कर्म क्रियते भास्कराश्रितम् । तेनैतदखिलं राज्यमशेषं प्राप्तवान्महीम् ।।७३
तेजश्चैवाधिकं यत्ते तथैव शृणु पार्थिव ! योगप्रभावतो लब्धं कथयाम्यखिलं तव ।।७४
तत्रैवावसथे दीपः प्रशान्तः स्नेहसंक्षयात् । निजभोजनतैलेन पुनः प्रज्वलितस्त्वया ।।७५
अन्या चोत्तरीयेण वीर वर्त्यो बृंहितः । तव पत्न्या स्वयं ज्वाल्य कान्तिरस्यास्ततोऽधिका ।।७६
तवाप्यखिलभूपालमनः क्षोभकरं पुनः । तेजो नरेन्द्र एतस्मात्किमुताराध्य भास्करम् ।।७७

प्राणी कर सकता है दृढ़ होकर उससे भी अधिक उनका स्मरण एवं सेवा तुमने की जिससे तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो गये ।६६-६७। तुम पत्नी के साथ उस मन्दिर की (चूना, झाड़ू आदि द्वारा) सफाई भलीभाँति करते थे । अपनी सभी वृत्तियों को छोड़कर केवल धर्म भावना से ही तुम वैसा कर रहे थे । यह तुम्हारी स्त्री भी सदैव कथावाचक द्वारा कथा का पारायण कर उस प्रकार की पुण्य चर्चा सूर्य भगवान् को सुनाती रही ।६८-६९। (एक समय) तुम लोगोंने भाँति-भाँति के रंगों, गोबर एवं मिट्टियों से लीप-पोत कर उस मंदिर को स्वच्छ किया । उस समय कुवलाश्व नामक राजा बहुत बड़ी सेना के साथ वहाँ आये जिसमें अनेकों हाथी आदि सवारियाँ थी ।७०-७१। सभी भाँति की संपत्तियों के समेत, तथा विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित एवं सहस्र रानियों को साथ लेकर आये हुए उस बलशाली राजा को देखकर तुम्हें भी इच्छा हुई कि काश ! मैं भी इसी सुन्दर मुकुट धारी राजा के समान राजा हो जाता ।७२। उस समय से यही इच्छा रख कर तुमने यहाँ सूर्य के निमित्त सभी कार्य किये जो समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं । इसीलिए उस सेवा के परिणास्वरूप इतना बड़ा समस्त भूमण्डल का राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है ।७३

हे पार्थिव ! यह महान् तेज भी जिस योग के प्रभाव से तुम्हें प्राप्त है, मैं बता रहा हूँ सुनो ।७४। एक बार तेल की कमी के कारण उस मन्दिर का दीपक शांत (ठंडा) हो गया था किन्तु तुमने अपने निजी भोजन के लिए रखे तेल से उसे फिर से प्रज्वलित किया था ।७५। और इस रानी ने अपने ओढ़ने वाले वस्त्र (चद्दर) से उस दीपक की बत्ती बनाकर उसे स्वयं जलाया था । हे नरेन्द्र ! इसीलिए इसे (सबसे) अधिक मनमोहक कांति तथा तुम्हें निखिल राजाओं के मन को संतृप्त करने वाला यह तेज प्राप्त हुआ है । तो विधानपूर्वक सूर्य की आराधना के द्वारा तेज आदि प्राप्त करने वाले व्यक्ति को कहना ही क्या

एवं नरेन्द्रः शूद्रत्वाद्भानुकर्मपरायणः । तन्मयत्वेन सम्प्राप्तो महिमानमनुत्तमम् ॥७८
किं पुनर्यो नरो भक्त्या नित्यं शुश्रूषणादृतः । करोति सततं पूजां निष्कामो नान्यमानसः ॥७९
सर्वांमृद्धिमिमां लब्ध्वा सर्वलोकमहेश्वरः ! पूजयित्वार्कमीशेशं तमाराध्य न सीदति ॥८०
पुष्पैर्धूपैस्तथा वान्यैर्दीपैर्वस्त्रानुलेपनैः । आराधयार्कं तद्वेश्म सदा सम्मार्जनादिना ॥८१
यद्यदिष्टतमं किञ्चिद्यद्यन्यत्तु दुर्लभम् । तद्दत्वा च जगद्धात्रे भास्कराय न सीदति ॥८२
सुगन्धागुरुकर्पूरचन्दनागुरुकुंकुमैः । वासोभिर्विविधैर्धूपैः पुष्पैः स्रक्चामरध्वजैः ॥८३
अन्योपहारैर्विविधैः कृतक्षीराभिषेचनैः । गीतवादित्रनृत्याद्यैस्तोषयस्वार्कमादरात् ॥८४
पुण्यरात्रिषु मार्तण्डं नृत्यगीतैरथोज्ज्वलम् । भूप जागरणैर्भक्त्या होमः कार्यः सदा शुचिः ॥८५
इतिहासपुराणानां श्रवणेन विशेषतः । तथा वेदस्वनैः पुण्यैर्ऋक्सामयजुभिर्नृप ॥८६
एवं सन्तोष्यते भक्त्या भगवान्भवभङ्गकृत् । भूयो वैवस्वतो भूत्वा भवदुःखहरो नरैः ॥८७
तोषितो भगवान्भानुर्ददात्यभिमतं फलम् । दैवकर्मसमर्थानां प्राणिनां स्मृतिसम्भवैः ॥८८
तोषितो भगवान्कामान्प्रयच्छति दिवाकरः । नैष वृत्तैर्न रत्नौघैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥
सद्भावेनैव मार्तण्डस्तोषमायाति संस्मृतः ॥८९
त्वयैकाग्रमनस्केन गृहसम्मार्जनादिकम् । कृत्वाल्पमीदृशं प्राप्तं राज्यमन्येन दुर्लभम् ॥९०

हे नरेन्द्र ! शूद्र होने पर भी तन्मयता से सूर्य के लिए सभी कर्म करने पर तुम्हें इस अनुपम महिमा की प्राप्ति हुई है ।७८। इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो मनुष्य अनन्य भक्त होकर निष्काम भावना से नित्य उनकी पूजा सेवा करता है, उसे क्या और कहना है ।७९। वह सर्व समृद्ध होकर समस्त लोकों का आधिपत्य प्राप्त करता है क्योंकि ईश के ईश (सूर्य) की आराधना करने पर किसी भाँति का दुःख नहीं रह जाता है ।८०। अतः पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, एवं चन्दन प्रदान करते हुए उनके मंदिर की सफाई करने के द्वारा भी उनकी आराधना करो ।८१। जो अपने को अत्यन्त प्रिय हो तथा वह वस्तु अन्य दुर्लभ प्राप्त वस्तुएँ भी उन जगन्नियन्ता सूर्य के लिए अर्पित करने पर किसी भाँति का लेश मात्र भी दुःख कभी नहीं होता है ।८२। (इसलिए) सुगन्ध, अगुरु, कपूर, चन्दन, कुंकुम, वस्त्र, भाँति-भाँति के पुष्प, चामर, ध्वजा एवं अन्य उपहार तथा दूध द्वारा अभिषेचन, गायन, वाद्य एवं नृत्य आदि द्वारा सादर उन्हें प्रसन्न करो ।८३-८४। हे भूप ! भक्तिपूर्वक पुण्य रात्रि में भास्कर मार्तण्ड देव के लिए नृत्य गान, जागरण एवं पवित्रता पूर्ण हवन विशेषकर इतिहास-पुराणों की कथाएँ सुनाने तथा ऋग्वेद, सामवेदों के पुण्य पारायण द्वारा संसार (जन्म-मरण) रूप दुःख के नाशक सूर्य को संतुष्ट करना चाहिए ।८५-८७। क्योंकि अपने आत्मीय मनुष्यों द्वारा प्रसन्न होकर संसार नाशक सूर्य भगवान् उसे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। इसी भाँति देव कार्य करने में दक्ष प्राणियों के सावधान होकर किये गये पूजा द्वारा प्रसन्न होने पर भगवान् दिवाकर समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। नियम, रत्नादि, पुष्प, धूप एवं लेपन द्वारा पूजित होने पर सूर्य उतने प्रसन्न नहीं होते हैं जितना कि सद्भावना द्वारा की गई आराधना से सन्तुष्ट होते हैं ।८८-८९। एकाग्रचित्त होकर तुमने केवल मन्दिर की सफाई आदि का कार्य किया था और उसी अनन्य आराधना द्वारा इतना महान् राज्य जो अन्य के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, तुम्हें प्राप्त हुआ है ।९०। सूर्य के

अनया श्रवणं पुण्यं कारयित्वा गृहे रवेः । ईदृक्प्राप्ता सम्पदियं पूजां कृत्वा तु वाचके ॥९१
प्राप्तोपकरणैर्यस्तमेकाग्रमतिरण्डजम् । सन्तोषयति नेन्द्रोऽपि भवता वै समः क्वचित् ॥९२
तस्मात्त्वमनया देव्या सहात्यन्तविनीतया । भास्कराराधने यत्नं कुरु धर्मभृतां वर ॥९३

ब्रह्मोवाच

एतन्मुनेर्वचो वीर निशम्य स नराधिपः । भार्यासहायः स तदा संप्रहृष्टतनूरुहः ॥९४
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानस्तदाभवत् । उवाच प्रणतो भूत्वा राजा सत्राजितोऽच्युत ॥९५

सत्राजित उवाच

यथामरत्वं सम्प्राप्य यथा वायुबलं परम् । परं निर्वाणमाप्नोति तथाहं वचसा तव ॥९६
कृतकृत्यः सुखासीनो निर्वृतिं परमां गतः । अज्ञानतमसाच्छन्ने यत्प्रदीपस्त्वया धृतः ॥९७
अहमेषा च तन्वङ्गी विभूतिभ्रंशभीरुकः । द्रव्यमापादितं ब्रह्मन्निहाद्य वचसा तव ॥९८
सम्पदः कथितं बीजमावयोर्भवता मुने । त्वद्वक्त्राद्युद्यतः वाचो विज्ञाता हि द्विजोत्तम ॥९९
न रत्नैर्न च वित्तौघैर्न च पुष्पानुलेपनैः । आराध्यश्च जगन्नाथो भावशून्यैर्दिवाकरः ॥१००

मन्दिर में तुमने कथा करायी तथा कथावाचक की यही (केवल अंगूठी द्वारा) पूजा की थी उससे तुम्हें इस प्रकार की अतुलनीय संपति प्राप्त हुई है। इसलिए साधन संपन्न होकर जो कोई तन्मयता से सूर्य को प्रसन्न करता है तो उसे सभी कुछ प्राप्त होता है। इसीलिए किसी भी अंश में इन्द्र भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकता है।९१-९२। अतः हे धार्मिक श्रेष्ठ ! तुम इस धर्म पत्नी के साथ अत्यन्त नम्रता पूर्वक भास्कर की आराधना के लिए प्रयत्न करो।९३

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! इस प्रकार मुनि की बातें सुन कर स्त्री समेत राजा (प्रसन्नता से) गद्‌गद् हो गया।९४। उस समय उसने अपने को 'कृतकार्य' होने का अनुभव किया। हे अच्युत ! अनन्तर राजा सत्राजित नम्रता पूर्वक पुनः बोला।९५

सत्राजित ने कहा—जिस प्रकार किसी को अमरत्व एवं वायु के विशाल बल की प्राप्ति के द्वारा निर्वाणपद की प्राप्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है, उसी प्रकार मैं आपकी बातें सुनकर परमानन्द में निमग्न हो गया हूँ।९६। अज्ञान रूपी अंधकार से ढके हुए मेरे लिए (ज्ञान रूपी) दीपक जो आपने दिखाया है उससे मैं कृतकृत्य हो गया एवं सुख पूर्वक बैठे हुए मुझे आज परम निर्वृति (सुख) की प्राप्ति हो रही है।९७। मैं तथा यह कृशाङ्गी (हम दोनों) इस विशाल ऐश्वर्य के भविष्य में नष्ट हो जाने की कल्पना से भयभीत हो रहे थे, पर, हे ब्रह्मन् ! आप की बातों से मुझे आज अनश्वर एवं अगाध संपत्ति प्राप्त हुई है मुझे ऐसा भान हो रहा है।९८। क्योंकि हे मुने ! आपने हम दोनों की संपत्ति के मूल कारण को बता दिया हे, और आप के मुख से निकली हुई समस्त बातों को मैं भली भाँति समझ भी गया हूँ।९९। रत्नों, धनों, पुष्पों एवं चन्दनों के द्वारा सूर्य की आराधना नहीं हो सकती है, अपितु जगन्नाथ दिवाकर की आराधना केवल भावशून्य (रागमोह हीन) भावना से ही की जा सकती है।१००। इसलिए बाहर

बाह्यार्थनिरपेक्षैश्च मनसैव मनोगतिः । निःस्वैराराध्यते देवो भानुः सर्वेश्वरेश्वरः ।।१०१
सर्वमेतन्मया ज्ञातं यत्त्वमात्थ महामुने । यच्च पृच्छामि तन्मे त्वं प्रसादसुमुखो वद ।।१०२
कथमाराधितो देवो नरैः स्त्रीभिश्च भास्करः । तोषमायाति विप्रेन्द्र तद्वदस्व महामुने ।।१०३
रहस्यानि च देवस्य प्रीतये या तिथिः सदा । चान्यशेषाणि मे ब्रूहि अर्काराधनकांक्षिणः ।।१०४

परावसुरुवाच

शृणु भूपाल यैर्भानुर्गृहेष्वाराध्यते जनैः । नारीभिश्चातिघोरेऽस्मिन्पतितानिभिर्भवार्णवे ।।१०५
समभ्यर्च्य जगन्नाथं देवमर्कं समाधिना । एकमश्नाति यो भक्तं द्वितीयं ब्राह्मणार्पणम् ।।१०६
करोति भास्करप्रीत्यै कार्तिकं मासमात्मना । पूर्वे वयसि यत्नेन जानताऽजानतापि वा ।।१०७
पापमाचरितं तस्माद्भिद्यते नात्र संशयः । अनेनैव विधानेन मासि मार्गशिरे पुनः ।।१०८
समभ्यर्च्य मरकतं विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति । भगवत्प्रीणनार्थाय फलं तस्य शृणुष्व मे ।।१०९
मध्ये वयसि यत्पापं योषिता पुरुषेण वा । कृतमस्माच्च तेनेक्तो विमोक्षः परमात्मना ।।११०
तथा चैवैकभक्तं तु यस्तु विप्राय यच्छति । दिवाकरं समभ्यर्च्य पौषे मासि महीपते ।।१११
ततच्च प्रीणयत्यर्कं वार्धिकेनैव यत्कृतम् । स तस्मान्मुच्यते राजन्पुमान्योषिदथापि वा ।।११२

आडम्बर (पुष्प चन्दन आदि) की अपेक्षा न रखकर केवल मनोयोग धन हीनों की भाँति ही उस सर्वेश्वर भानु की आराधना करनी चाहिए।१०१

हे महामुने ! इस प्रकार मैं इन सभी बातों को जो आपने कहा है समझ गया अब पुनः जो कुछ मैं पूँछ रहा हूँ उसे प्रसन्न मुख मुद्रा से बताने की कृपा करें। हे विप्रेन्द्र ! स्त्री पुरुषों द्वारा किस प्रकार की आराधना करने पर सूर्य प्रसन्न होते हैं आप उसे बतायें ? सूर्य देव के रहस्य उनकी प्रिय तिथि, एवं अन्य सभी बातें भी मुझे बताने की कृपा करें क्योंकि मैं उनकी आराधना करने का महान् अभिलाषी हूँ।१०२-१०४

परावसु बोले—हे भूपाल ! पुरुषों या स्त्रियों द्वारा जो इस अतिघोर संसार सागर में डूब रहे हैं जिस विधान पूर्वक अपने घरों में सूर्य की आराधना सुसम्पन्न की जाती है मैं कह रहा हूँ सुनो।१०५। कार्तिक मास में सूर्य की प्रसन्नता के लिए एकाग्रचित्त होकर उस जगन्नाथ भगवान् सूर्य की अर्चना करके एक बार जो भोजन करता है तथा ब्राह्मण भोजन भी कराता है उसके प्रथम (कुमार) अवस्था के पाप, जो ज्ञान या अज्ञान वश किये गये हों निर्मूल (नष्ट) हो जाते हैं। पुनः इसी भाँति इसी विधान द्वारा मार्गशीर्ष मास में जो सूर्य के प्रसन्नार्थ उनकी अर्चना करके उन ब्राह्मणों के लिए मरकत मणि अर्पित करता है उसके फल को बता रहा हूँ सुनो।१०६-१०९। उस आराधना से प्रसन्न होकर परमात्मा सूर्य मध्यमावस्था (जवानी) में उन स्त्री पुरुषों द्वारा किये समस्त पापों को नष्ट करते हैं।११०। हे महीपते! उसी प्रकार पौष मास में दिवाकर की पूजा करके (रात में) एकाहार करे और ब्राह्मण भोजन कराये तो उससे प्रसन्न होकर सूर्य उसके वृद्धावस्था के समस्त पाप को चाहे वह स्त्री द्वारा किया गया हो या पुरुष द्वारा नष्ट कर देते

त्रिमासिकं व्रतमिदं यः करोति नरेश्वर । स भानुप्रीणनात्पापैर्लघुभिः परिमुच्यते ॥११३
द्वितीये वत्सरे राजन्मुच्यते चोपपातकैः । तद्वत्तृतीयेऽपि कृतं महापातकनाशनम् ॥११४
व्रतमेतन्नरैः स्त्रीभिस्त्रिभिर्मासैरनुष्ठितम् । त्रिभिः संवत्सरैश्चैव प्रददाति फलं नृणाम् ॥११५
त्रिभिर्मासैरनुष्ठानात्त्रिविधात्पातकान्नृप । त्रीणि नामानि देवस्य मोचयन्ति च वार्षिकैः ॥११६
यतस्ततो व्रतमिदं विविधं समुदाहृतम् । सर्वपापप्रशमनं भास्कराराधने परम् ॥११७

सत्राजित उवाच

कतमाय तु विप्राय दातव्यं भक्तितो मुने । द्वितीये द्विजशार्दूल कथयस्वाखिलं मम ॥११८

परावसुरुवाच

देये पुराणविदुषे वस्त्रे विप्रोत्तमाय च । श्रूयतां चापि वचनं यदुक्तं भास्करेण च ॥
अरुणाय महाबाहो पृच्छते यत्पुरा नृप ॥११९
उदयाचलमारूढं भास्करं तिमिरापहम् । प्रणम्य शिरसा नूनमिदं वचनमब्रवीत् ॥१२०
कानि प्रियाणि ते देव पूजने सन्ति सर्वदा । पुष्पादीनां समस्तानामाराधनविधौ सदा ॥
उपरागादिवस्त्रादौ ब्राह्मणानां तथा रवे ॥१२१

भास्कर उवाच

पुष्पाणां करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् । गुग्गुलश्चापि धूपानां नैवेद्ये मोदकाः प्रियाः ॥१२२

हैं।१११-११२। हे नरेश्वर ! इस प्रकार इस त्रैमासिक व्रत-विधान को सुसम्पन्न करते हुए जो इसकी समाप्ति करते हैं उसके अनुष्ठान से प्रसन्न होकर सूर्य उसे छोटे-छोटे पापों से मुक्त कर देते हैं।११३। हे राजन् ! दूसरे वर्ष फिर इसी प्रकार से व्रत विधान को सुसम्पन्न करने से वह उपपातक से मुक्त हो जाता है तथा तीसरे वर्ष पुनः इसके विधानानुष्ठान द्वारा उसे महापातक से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।११४। इस भाँति तीन मास में इस व्रत की समाप्ति करना मनुष्यों का परम कर्तव्य है। क्योंकि इसका अनुष्ठान पूरे तीन वर्ष तक अनवरत करते रहने पर मनुष्य को अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है।११५। हे नृप! इसी प्रकार सूर्यदेव के तीनों नाम तीन मासवाले इस अनुष्ठान के द्वारा पुरुषों के पातकों को तीन वर्षों में समाप्त (नष्ट) करते रहते हैं।११६ इसीलिए सूर्य की आराधना द्वारा समस्त पातकों के विनाशार्थ यह व्रत विविधभाँति से बताया गया है।११७

सत्राजित ने कहा—हे मुने ! हे द्विजशार्दूल! भक्तिपूर्वक किस ब्राह्मण को दान समर्पित कर और भोजन कराना चाहिए मुझे बताने की कृपा करें।११८

परावसु बोले—ब्राह्मणोत्तम एवं पौराणिक विद्वान् को ही वस्त्र आदि समर्पित करना चाहिए। हे महाबाहो ! पहले समय में इसी विषय की बातें अरुण के पूँछने पर सूर्य ने कही थी, मैं वही कह रहा हूँ सुनो ! ।११९। एक बार उदयाचल (पर्वत) पर अन्धकार नाशक सूर्य के पहुँचने पर (प्रातःकाल ही) अरुण ने उन्हें नतमस्तक प्रणाम करते हुए यह कहा।१२०। हे देव ! मनुष्यों द्वारा आपके अपने पूजन सुसम्पन्न करते समय आपको कौन-सी वस्तु सदैव प्रिय लगती है, हे देव ! उसी प्रकार समस्त पुष्पों में जो पुष्प एवं ग्रहण समय में जो प्रिय वस्त्र हों जिन्हें ब्राह्मणों को सादर समर्पित किया जा सके उन्हें बताने की कृपा करें।१२१

भास्कर बोले—जिस प्रकार मुझे पुष्पों में करवीर (कनेर), चंदन, गुग्गुल की धूप एवं नैवेद्य में

पूजाकरो भोजकस्तु घृतदीपस्तथा प्रियः । दानं प्रियं खगश्रेष्ठ वाचकाय प्रदीयते ॥१२३
मामुद्दिश्य च यद्दानं दीयते नानवैर्भुवि । वाचकाय[1] तु दातव्यं तन्मम प्रीतये खग ॥१२४
इतिहासपुराणाभ्यामभिज्ञो यस्तु वाचकः । ब्राह्मणो वै खगश्रेष्ठः सम्पूज्यः प्रीतये मम ॥१२५
पूजितेऽस्मिन्सदा विप्रे पूजितोहं न संशयः । भवामि खगशार्दूल यतस्त्विवष्टः स मे सदा ॥१२६
वेदर्वीणामृदङ्गैश्च नातिगन्धविलेपनैः । तथा मे जायते प्रीतिर्यथा श्रुत्वा खगोत्तम ॥१२७
इतिहासपुराणानि वाच्यमानानि वाचकैः । अतः प्रियो वाचको मे पूजाकर्ता च भोजकः ॥१२८

इति भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सत्राजितोपाख्याने रविपूजाविधिवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

उपलेपनस्नापनमाहात्म्यवर्णनम्

अरुण उवाच

किमर्थं भोजकस्तुभ्यं प्रियो देवेश कथ्यताम् । नान्ये विप्रादयो वर्णा देवतायतनेषु वै ॥१

मोदक प्रिय हैं, उसी भाँति पूजा करने वालों में भोजक (ब्राह्मण) एवं घी का दीपक, तथा हे खगश्रेष्ठ ! वाचक के लिए समर्पित किया गया दान अत्यन्त प्रिय है ।१२२-१२३। इस पृथिवी तल में मनुष्यों को चाहिए कि मेरे उद्देश्य से जो कुछ दान दिये जाँय उसका ग्राहक वाचक को ही बनायें अन्य को नहीं क्योंकि उससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है । हे खगश्रेष्ठ ! इतिहास एवं पुराण के विशद विद्वान् को वाचक बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिए उससे मुझे अधिक प्रसन्नता होती है ।१२४-१२५। हे खगशार्दूल ! उस वाचक ब्राह्मण की पूजा करने पर मैं ही पूजित होता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय होता है ।१२६। हे खगोत्तम ! वेद, वीणा, मृदङ्ग, अति सुगंधित लेपन द्वारा मैं उतना प्रसंन्न नहीं होता हूँ जितना कि वाचक द्वारा इतिहास एवं पुराण की कथाओं के कहने सुनने से प्रसन्न होता हूँ इसलिए वाचक तथा मेरी पूजा करने वाला भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय है ।१२७-१२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सत्राजित उपाख्यान में रविपूजा विधि वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।११६।

अध्याय ११७

उपलेपन विधि वर्णन

अरुण ने कहा—हे देवेश ! देव मन्दिरों में रहकर अर्चनादि कर्मों के लिए भोजक के अतिरिक्त आप को अन्य ब्राह्मण आदि वर्ण प्रिय नहीं हैं केवल भोजक ही क्यों प्रिय हैं मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१। हे

---

१. लेखकाय ।

कश्चायं भोजको देव कस्य पुत्रः किमात्मकः । वर्णतश्चास्य मे ब्रूहि कर्म चास्य समन्ततः ।।२

आदित्य उवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भद्रं ते वैनतेय महामते । शृणुष्वैकमनाः सर्वं गदतो मम खेचर ।।३
विप्रादयस्तु ये त्वन्ये वर्णाः कश्यपनन्दन । ते पूजयन्ति मां नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्विताः ।।४
देवालयेषु ये विप्राः प्रीत्या मां पूजयन्ति हि । अन्यांश्च देवतावृत्त्या ते स्युर्देवलकाः खग ।।
एतस्मात्कारणान्मह्यं भोजको दयितः सदा ।।५
वर्णतो ब्राह्मणश्चायं स्वानुष्ठानपरो यदि । अनुष्ठानविहीनो हि नरकं यात्यसंशयम् ।।६
न त्याज्यं भोजकैस्तस्मात्स्वकं कर्म कदाचन । मयासौ निर्मितः पूर्वं तेजसा स्वेन वै खग ।।७
पूजार्थमात्मनो नूनं कर्म चास्य प्रकीर्तितम् । प्रियव्रतसुतो राजा शाकद्वीपे महामतिः ।।८
तेन मे कारितं दिव्यं विमानप्रतिमं गृहम् । तस्मिन्द्वीपे तदात्मीये दिव्यं शिलामयं महत् ।।९
स मदर्चां कारयित्वा काञ्चनीं लक्षणान्विताम् । प्रतिष्ठापनाद वै तस्याश्चिन्तयामास सुव्रतः ।।१०
कृतमायतनं श्रेष्ठं तेनेयं प्रतिमा कृता । को वै प्रतिष्ठापयिता देवमर्कं शुभालये ।।११
एवं सञ्चिन्तयित्वा तु जगाम शरणं मम । भक्तिं तस्य च सञ्चिन्त्य खगाहं पार्थिवस्य तु ।।१२

देव ! यह भोजक कौन हैं, किसका पुत्र है, इसका वर्ण (जाति) क्या है, तथा उसके कर्म कौन हैं मैं ये सभी बातें जानना चाहता हूँ ।२

आदित्य बोले—हे महामते, वैनेतेय ! तुम्हारा कल्याण हो, तुमने साधु प्रश्न किया है, हे आकाश चारिन् ! मैं इन सभी बातों को कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।३। हे कश्यपनंदन ! ब्राह्मणादि अन्य वर्ण भी भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक नित्य मेरी आराधना करते हैं ।४। हे खग ! जो ब्राह्मण देवालयों में स्थापित मेरी प्रतिमा की प्रेम पूर्वक आराधना करते हैं वे और पूजा को ही अपनी जीविका मानकर सदैव जो उसमें तन्मय रहते हैं उन्हें देवलक कहा जाता है किन्तु, जीविका मानकर तन्मय रहने वाले ये भोजक ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ।५। भोजक तो जाति का ब्राह्मण होता ही है, इसलिए उसे अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। अन्यथा अनुष्टान न करने पर उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है ।६। हे खग ! इसलिए भोजक को अपने दैनिक (कर्म) का त्याग कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि पूर्व में मैंने उसे अपने तेज से उत्पन्न किया है ।७

अपनी पूजा करने के निमित्त मैंने इनके कर्म भी बता दिये हैं। (अब इसी विषय की कथा) बता रहा हूँ सुनो ! राजा प्रियव्रत का पुत्र शाकद्वीप का महाबुद्धिमान् राजा था जिसने मेरे लिए विमान की भाँति एक उत्तम मन्दिर की रचना करायी थी। उस द्वीप में उसने एक महान् शिला खंड की (मेरी) मूर्ति का जो सुवर्ण से खचित एवं सर्व लक्षण संपन्न थी निर्माण करा कर उसकी स्थापना (प्रतिष्ठा) के लिए सोचा कि इस अनुपम मन्दिर तथा इस प्रतिमा का निर्माण कार्य तो मैंने सुसम्पन्न कर दिया परन्तु इस सुन्दर मन्दिर में इस मूर्ति की (सूर्य देव की) प्रतिष्ठा का कार्य किस विधान द्वारा कराया जाये ।८-११। इस प्रकार विचारते हुए वह मेरी शरण में आया। हे खग ! मैं उस राजा की भक्ति देखकर उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ और उससे मैंने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम चिंतित क्यों हो रहे हो और तुम्हें चिंता

गतोऽहं दर्शनं तस्य उक्तश्चापि मया खग । किं चिन्तयसि राजेन्द्र कुतश्चिता समागता ।।१३
ब्रूहि यत्ते हृदि प्रौढं चिन्ताकारणमागतम् । संपादयिष्ये तत्सर्वं विमना भव मा नृप ।।१४
अत्यर्थं दुष्करमपि करिष्ये नात्र संशयः । इत्युक्तः स मया राजा इदं वचनमब्रवीत् ।।१५
द्वीपेऽस्मिन्देवदेवस्य कृतमायतनं तव । मया भक्त्या जगन्नाथ तथेयं प्रतिमा कृता ।।१६
प्रतिष्ठां कारयेद्यस्तु तव देवालये खग । यत्र सन्ति त्रयो वर्णा द्वीपेस्मिन्क्षत्रियादयः ।।१७
ते मयोक्ता न कुर्वन्ति प्रतिष्ठां तव कृत्स्नशः । न चाप्यर्चां जगन्नाथ ब्राह्मणश्चात्र विद्यते ।।१८
तेनेयमागता चिन्ता हृदि शल्यं तयार्पितम् । ततो मयोक्तो राजाऽसौ वैनतेय वचः शुभम् ।।१९
एवमेतन्न संदेहो यथात्थ त्वं नराधिपः । क्षत्रियादित्रयो वर्णा द्वीपेऽस्मिन्नात्र संशयः ।।२०
ते च नार्हन्ति मे पूजां न प्रतिष्ठां कदाचन । तस्मात्ते श्रेयसे राजन्प्रतिष्ठामात्मनस्तथा ।।२१
सृजामि प्रथमं वर्णं भगसंज्ञमनौपमम् । इत्युक्त्वा तमहं वीर राजानं खगसत्तम ।।२२
जगाम परमां चिन्तां तस्य कार्यस्य सिद्धये । अथ मे चिन्तयानस्य[1] स्वशरीराद्विनिःसृताः ।।२३
शशिकुन्देन्दुसंकाशाः संख्ययाष्टौ महाबलाः । पठन्ति चतुरो वेदान्सांगोपनिषदः खग ।।२४
काषायवाससः सर्वे करण्डाम्बुजधारिणः । ललाटफलकाद्द्वौ तु द्वौ चान्यौ वक्षसस्तथा ।।२५

कहाँ से आ गई ।।१२-१३। अच्छा, तुम अपने हृदय में वर्तमान विशेष चिंता के कारण को शीघ्र बताओ ! हे नृप! मैं अवश्य उस कारण की पूर्ति करूँगा । अतः अपने चित्त को दुःखी न करो ।१४। यदि वह कार्य अत्यन्त कठिन भी होगा तो भी मैं उसे सिद्ध कर दूँगा इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार मेरे कहने पर उस राजा ने कहा कि हे देवाधिदेव ! इस द्वीप में आपका मन्दिर मैंने बनवाया है, हे जगन्नाथ ! भक्तिपूर्वक मैंने इस (आपकी) प्रतिमा का भी निर्माण कराया है ।१५-१६। हे आकाशगामिन् ! उस मन्दिर में आप की मूर्ति की प्रतिष्ठा कौन कराये क्योंकि उस द्वीप में क्षत्रिय आदि तीन ही वर्ण रहते हैं ।१७। तथा मेरे आदेश देने पर भी वे सब आप की मूर्ति की (विधान पूर्वक) प्रतिष्ठा का कार्य सम्पूर्णतया नहीं करा सकते हैं । हे जगन्नाथ ! इसी प्रकार प्रतिदिन की पूजा भी नहीं हो सकती है क्योंकि यहाँ कोई ब्राह्मण तो है ही नहीं ।१८। इसीलिए इन्हीं कार्यों की चिन्ता मेरे हृदय में शूल की भाँति पीड़ा कर रही है । हे वैनतेय ! इसके पश्चात् मैंने उस राजा से इस प्रकार मांगलिक शब्दों में कहा ।१९। हे नराधिप ! क्षत्रिय आदि तीन ही वर्ण इस द्वीप में है, इसमें कोई संशय नहीं और जो कुछ तुम कह रहे हो वह भी सत्य है ।२०। वे मेरी प्रतिष्ठा एवं पूजा सुसम्पन्न कराने के योग्य कभी नहीं हो सकते हैं । हे राजन् ! इसीलिए तुम्हारे कल्याण एवं अपनी (मूर्तिकी) प्रतिष्ठा के लिए मैं 'भग नामक' (श्रेष्ठ) वर्ण वाले को उत्पन्न कर रहा हूँ । हे खगसत्तम ! इस प्रकार उस राजा से कह कर मैं उस राजा की कार्य-सिद्धि के लिए अधिक नहीं क्षणमात्र चिंतित हुआ कि मेरी शरीर से चन्द्र कुन्द एवं इन्दु की भाँति स्वच्छ वर्ण वाले आठ महाबली पुरुष उत्पन्न हुए । हे खग ! वे उस समय सांगोपांग उपनिषद् एवं चारों वेदों का पाठ कर रहे थे ।२१-२४। सभी कषाय वस्त्र पहने तथा बाँस का पुण्यपात्र लिए हुए थे जिसमें कमल पुष्प

---

१. चिन्तयमानस्य ।

अरणाभ्यां तथा द्वौ तु पादाभ्यां द्वौ तथा खग । अथ ते च महात्मानः सर्वे प्रणतकन्धराः ।।२६
पितरं मन्यमाना मामिदं वचनमब्रुवन् । तातताता महादेव लोकनाथ जगत्पते ।।२७
किमर्थं भवता सृष्टा वयं देवस्य देहतः । ब्रूहि सर्वं करिष्याम आदेशं भवतोऽखिलम् ।।२८
पितास्माकं भवान्देवो वयं पुत्रा न संशयः । इत्युक्तवन्तस्ते सर्वे मयोक्ता देवसम्भवाः ।।२९
प्रियव्रतसुतो योयमस्य वाक्यं करिष्यथ । स चाप्युक्तो मया राजा शाकद्वीपाधिपः खग ।।३०
य एते मत्सुता राजन्नर्घ्या ब्राह्मणसत्तमाः । कारयन्तु प्रतिष्ठां मे सर्वैरेभिर्महीपते ।।३१
कारयित्वा प्रतिष्ठां तु ममार्चायां नराधिप । पश्चादायतनं सर्वमेषामर्पय पूजने ।।३२
एते मत्पूजने योग्याः प्रतिष्ठासु च सर्वशः । समाप्य न प्रहर्तव्यं भोजकेभ्यः कदाचन ।।३३
सर्वमायतनार्थं तु गृहक्षेत्रादिकं च यत् । धनधान्यादिकं राजन्यन्ममायतने भवेत् ।।३४
तत्सर्वं भोजकेभ्यस्तु दातव्यं नात्र संशयः । धनधान्यसुवर्णादि गृहक्षेत्रादिकं च यत् ।।
यन्मदीयं भवेत्किञ्चित्तद्ग्रामे वा नगरे क्वचित् ।।३५
तस्य सर्वस्य राजेन्द्र मदीयस्य समन्ततः । अधिपा भोजकाः सर्वे नान्ये विप्रादयो नृप ।।३६
यथाधिकारी पुत्रस्तु पितृद्रव्यस्य वै भवेत् । तथा मदीयवित्तस्य भोजकाः स्युर्न संशयः ।।३७
इत्युक्तेन मया राज्ञा तथा सर्वं प्रवर्तितम् । कारयित्वा प्रतिष्ठां तु दत्त्वा सर्वस्वमेव हि ।।
भोजकेभ्यः खगश्रेष्ठ ततो हर्षमवाप्तवान् ।।३८

संचित किया गया था। हे खग! इस प्रकार मेरे मस्तक, वक्षःस्थल, चरण एवं चरणतल द्वारा वे दो-दो व्यक्ति उत्पन्न हुए थे। पश्चात् वे महात्मा लोग मुझे पिता समझते हुए मेरी ओर नतमस्तक हो कर यह कहने लगे कि हे तात! हे महादेव! हे लोकनाथ! एवं हे जगत्पते! आप ने अपनी देह से हमें किस लिए उत्पन्न किया है आज्ञा प्रदान करें। हम लोग उसे शिरोधार्य कर उसके पालन के लिए तैयार खड़े हैं।२५-२८। आप हम लोगों के पिता हैं तथा हम लोग आपके पुत्र हैं, इसमे संशय नहीं। इस प्रकार उनके कहने पर मैंने उनसे कहा। प्रियव्रत राजा का यह पुत्र सामने उपस्थित है, इसकी मन इच्छित बातें पूरी करो! हे खग! पश्चात् मैंने उस-शाकद्वीपाधिपति राजा से भी कहा।२९-३०। हे राजन्! ये सब ब्राह्मण श्रेष्ठ एवं पूजनीय मेरे पुत्र हैं। हे महीपते! ये सभी मेरी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायेंगे! ।३१। हे राजन्! प्रतिष्ठा कराने के उपरांत मेरी पूजा करने के लिए इन्हें मन्दिर अर्पित कर देना।३२। क्योंकि ये सभी भलीभाँति मेरी प्रतिष्ठा एवं पूजा करने के योग्य हैं प्रतिष्ठा-कार्य की समाप्ति के पश्चात् भोजकों को दी हुई वस्तुएँ उनसे कभी न लेना चाहिए। हे राजन्! अतः उस मन्दिर में गृहक्षेत्र एवं धन-धान्य आदि जो कुछ भी वस्तु एकत्र किया गया हो वे सभी भोजक को निश्चित रूप से अर्पित कर देना। क्योंकि धन धान्य सुवर्ण आदि तथा गृह एवं क्षेत्र जो कुछ भी मेरे उद्देश्य से किसी ग्राम या नगर में संचित किया गया हो, सभी प्रकार से उसके अधिकारी भोजक ही हैं न कि किसी अन्य ब्राह्मण आदि के।३३-३५। जिस प्रकार पैतृक संपत्ति को अधिकारी उसका पुत्र होता है, उसी भाँति मेरे धन के अधिकारी भोजक हैं, इसमें संशय नहीं।३६-३७। हे खगश्रेष्ठ! इस प्रकार मेरे कहने पर राजा ने वैसा ही किया। प्रतिष्ठा कराने के पश्चात् उसने वहाँ का सर्वस्व भोजक को समर्पित करते हुए अत्यन्त हर्ष प्रकट किया।३८। हे गरुडाग्रज!

एवमेते मया सृष्टा भोजका गरुडाग्रज । अहमात्मा ततो ह्येषां सर्वे सुमनसस्तथा ।।३९
मत्पुत्रेण समा ज्ञेयास्तथा मम हिताः सदा । तस्मात्तेभ्यः प्रदातव्यं न हर्तव्यं कदाचन ।।४०
भोजकस्य हरेद्यस्तु लोभाद्द्वेषात्तथापि वा । स याति नरकं घोरं तामिस्रं शाश्वतीः समाः ।।४१
तस्माद्ग्रामादिकं द्रव्यं यत्किञ्चिन्मम विद्यते । तत्सर्वं भोजकस्वं हि पितृपर्यागतं मम ।।४२
भोजकश्च भवेद्यादृक्तत्ते वच्मि खगेश्वर । मदाज्ञां पालयेद्यस्तु स्वानुष्ठानपरः सदा ।।४३
वेदाधिगमनं पूर्वं दारसंग्रहणं तथा । अभ्यङ्गधारणं नित्यं तथा त्रिषवणं स्मृतम् ।।४४
पञ्चकृत्वः सदा पूज्यो ह्यहं रात्रौ दिने तथा । देवब्राह्मणवेदानां निन्दा कार्या न वै क्वचित् ।।४५
नान्यादेवप्रतिष्ठा तु कार्या वै भोजकेन तु । ममापि च न कर्तव्या तेन एकाकिना क्वचित् ।।४६
सर्वमेव निवेद्यान्नं नाश्नीयाद्भोजकः सदा । न भुञ्जीत गृहं गत्वा शूद्रस्य गरुडाग्रज ।।४७
शूद्रोच्छिष्टं प्रयत्नेन सदा त्याज्यं हि भोजकैः । येऽश्नन्ति भोजका नित्यं शूद्रान्नं शूद्रवेश्मनि ।।४८
ते वै पूजाफलं चात्र कथं प्राप्स्यन्ति खेचर । गत्वा गृहं तु शूद्रस्य न भोक्तव्यं कदाचन ।।४९
गृहागतं च शूद्रान्नं तच्च त्याज्यं तथैव च । आध्मातव्योम्बुजो नित्यं भोजकेनाग्रतो मम ।।५०
सकृत्प्रवादिते शंखे मम प्रीतिर्हि जायते । षण्मासान्मात्र सन्देहः पुराणश्रवणं तथा ।।५१
तस्माच्छंखः सदा वाद्यो भोजकेन प्रयत्नतः । तस्येयं परमा वृत्तिर्नैवेद्यं यन्मदीयकम् ।।५२

इस भाँति इन भोजकों की सृष्टि मैंने ही की है इसलिए मैं इनकी आत्मा हूँ और ये सब पुत्र की भाँति मेरे सदैव हितैषी हैं अतः उन्हें ही दान आदि देना चाहिए पुनः उनसे लेना कभी नहीं ।३९-४०। क्योंकि लोभ या द्वेष वश जो उनकी संपत्ति का अपहरण करता है उसे अनेकों वर्षों के लिए तामिस्र नामक नरक की प्राप्ति होती है ।४१। इसलिए गाँव आदि द्रव्य जो कुछ मेरे लिए अर्पित किया गया है, वह सब भोजक का है और पिता होने के नाते मेरा भी ।४२

हे खगेश्वर ! भोजक को जैसा होना चाहिए तुम्हें बता रहा हूँ भोजक को चाहिए कि अनुष्ठान को करते हुए मेरी आज्ञा का सदैव पालन करता रहे ।४३। वेदाध्ययन के उपरांत विवाह कर गृहस्थ हो जाये और नित्य अभ्यंग (लेप या उपटन) लगाकर त्रैकालिक स्नान संध्या करे ।४४। रात में पाँच बार मेरी पूजा करे तथा देव, ब्राह्मण एवं वेदों की कभी कहीं निन्दा न करे ।४५। भोजक किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा एवं एकाकी रहकर मेरी भी प्रतिष्ठा कहीं न करे ।४६। हे गरुडाग्रज ! समस्त भोज्य पदार्थ मुझे समर्पित कर पुनः स्वयं एकाकी न खाये और वह शूद्र के घर जाकर भोजन भी न करे ।४७। इस प्रकार भोजक को शूद्र के उच्छिष्ट का सर्वथा त्याग करना चाहिए क्योंकि जो भोजक शूद्र के घर जाकर उसके अन्न आदि का नित्य भोजन करता है तो उसे (मेरी) पूजा के फल कैसे प्राप्त हो सकते हैं । इसलिए उसे शूद्र के घर कभी भोजन न करना चाहिए ।४८-४९। भोजक को अपने घर पर आये हुए शूद्रान्न का भी उसी भाँति त्याग करना चाहिए । भोजक को चाहिए कि मेरे सामने नित्य शंख बजाये, क्योंकि एकबार शंख बजाने से भी मुझे उतनी अधिक प्रसन्नता होती है जितनी कि छह मास पुराण के श्रवण द्वारा होती है ।५०-५१। इसलिए भोजक को सदैव सप्रयत्न शंख बजाना चाहिए मेरे लिए समर्पित किये गये नैवेद्य आदि ही भोजक की परम वृत्ति (जीने की) बतायी गयी है ।५२

नाभोज्यं भुञ्जते यस्मात्तेनैते भोजका मताः। मगं ध्यायन्ति ते यस्मात्तेन ते मगधाः स्मृताः ॥५३
भोजयन्ति च मां नित्यं तेन ते भोजका स्मृताः। अभ्यङ्गं च प्रयत्नेन धार्यं शुद्धिकरं परम् ॥५४
अभ्यङ्गहीनो ह्यशुचिर्भोजकः स्यान्न संशयः। यस्तु मां पूजयेद्वीर अभ्यङ्गेन विना खग ॥५५
न तस्य सन्ततिः स्याद्वै न चाहं प्रीतिमान्भवे[1]। मुण्डनं शिरसा कार्यं शिखा धार्या प्रयत्नतः ॥५६
नक्तं चादित्यदिवसे तथा सन्ध्यां प्रवर्तयेत्। तप्तम्थामुपवासस्तु मम संक्रमणे तथा ॥५७
कर्तव्यो भोजकेनैव मत्प्रीत्यै गरुडाग्रज। त्रिकालं चापि गायत्रीं जपेद्वाचा पुरो मम ॥५८
मुखमावृत्य यत्नेन पूजनीयोऽहमादरात्। मौनं चास्य प्रयत्नेन त्यक्त्वा क्रोधं च दूरतः ॥५९
शूद्रेभ्यो यस्तु वैश्येभ्यो लोभात्कामात्प्रयच्छति। निर्माल्यं मम वै वत्स स याति नरकं ध्रुवम् ॥६०
लोभाद्वै भोजको यस्तु मत्पुष्पाणि खगाधिप। यच्छतेन्यस्य दुष्टात्मा मय्यनारोप्य खेचर ॥६१
स ज्ञेयो मे परः शत्रुः स मामर्हो न चार्चितुम्। निर्माल्यं मम देयं स्याद्ब्राह्मणादिषु वै नृषु ॥६२
नैवेद्यं यन्मदीयं तु तदश्नीयात्सदैव हि। तेनासौ शुद्धयते नित्यं हविष्यान्नसमं तथा ॥६३
तत्क्षणादुत्क्षिपेद्यस्तु ममांगात्पुष्पमेव हि। नान्यस्य देयं नैवेद्यं मदीयमुदके[2] क्षिपेत् ॥६४
पञ्चगव्यसमं तस्य मन्मतं नात्र संशयः। ममाङ्गलग्नं यत्किञ्चिद्गन्धं पुष्पमथापि वा ॥६५

अभक्ष्य का भोजन न करने के नाते उसे मेरी संमति से भोजक कहा जाता है तथा मग (याचना) का ध्यान रखने से मगध भी।५३। मुझे नित्य भोजन कराने के नाते भी उन्हें भोजक कहा जाता है। अतः प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त पवित्र कारक अभ्यंग पारण करना चाहिए।५४। क्योंकि अभ्यंग हीन भोजक अपवित्र होता है, इसमें संशय नहीं। हे वीर! हे खग! अभ्यंग हीन होकर जो भोजक मेरी पूजा करता है, उसकी वंशपरम्परा नहीं चलती है और मैं प्रसन्न भी नहीं होता हूँ। उसे सदैव शिर का मुण्डन कराना चाहिए तथा सिर पर शिखा रखनी चाहिए।५५-५६। सूर्य के दिन (रविवार) में और संक्रान्ति काल में उपवास करना चाहिए।५७। हे गरुडाग्रज! भोजक का मेरे प्रसन्नार्थ इन आदेशों के पालन पूर्वक मेरे सम्मुख त्रिकाल गायत्री जप तथा मुख ढाँककर सादर मेरी पूजा करनी चाहिए और उस समय मौन रहकर प्रयत्न पूर्वक क्रोधहीन होना चाहिए।५८-५९। हे वत्स! जिस भोजक ने लोभ या काम वश मेरा निर्माल्य शूद्र अथवा वैश्य को प्रदान किया तो उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है।६०। हे प्रकाशगामिन्! जो भोजक लोभवश मेरे पुष्पों का जो मुझे समर्पित करने के लिए सुरक्षित रखे गये हों बिना मुझे अर्पित किये ही किसी को दे देता है, उसे मेरा परम शत्रु समझना चाहिए और वह पुष्प मेरी पूजा के योग्य भी नहीं रह जाता। मेरा निर्माल्य ब्राह्मण आदि मनुष्यों को देना चाहिए।६१-६२। उसी को मेरे नैवेद्य का भक्षण भी सदैव करना चाहिए, क्योंकि उसके भक्षण करने से वह हविष्यान्न भक्षण करने की भाँति शुद्ध रहता है।६३। मुझे समर्पित किये गये पुष्प एवं नैवेद्य का सेवन यदि स्वयं न करे तो किसी को देना भी नहीं चाहिए। अपितु उसे पानी में डाल देना चाहिए।६४। क्योंकि वह उसके लिए पञ्चगव्य के समान शुद्धिप्रदायक होता है। मेरे अंग में लगे हुए गन्ध पुष्प आदि किसी वैश्य या शूद्र को कभी न देना चाहिए और न उसका

---

१. आर्षः उत्तमपुरुष आत्मनेपदी। २. भोजकेनतु।

दातव्यं न च वैश्याय न शूद्राय कदाचन । आत्मना तद्ग्रहीतव्यं न विक्रेयं कथञ्चन ।।६६
यस्तु नारोप्य पुष्पाणि अव्यङ्गानि ममोपरि । यः कश्चिदाहरेल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ।।६७
स्नपनं मम निर्माल्यं पावकं यस्तु लङ्घयेत् । स नरो नरकं याति सरौद्रं रौरवं खग ।।६८
भोजकेन सदा कार्यं स्नपनं मे प्रयत्नतः । यथा न लङ्घयेत्कश्चिद्यथा श्वा नापि भक्षयेत् ।।६९
यद्ययत्नपरः कुर्याद्भोजकः स्नपनं मम । यथा वै लङ्घितमतिर्भक्ष्यतां च खगाधिप ।।७०
स याति नरकं रौद्रं तामिस्रं नाम नामतः । एकभक्तं सदा कार्यं स्नानं त्रैकालमेव हि ।।७१
त्रिचैलं परिवर्तेत भवितव्यं दिनेदिने । पूजाकालेऽर्घकाले च क्रोधस्त्याज्यः प्रयत्नतः ।।७२
अमांगल्यं न वक्तव्यं वक्तव्यं च शुभं तदा । ईदृग्भूतो भोजको मे प्रेयान् पूजाकरः सदा ।।७३
सन्मान्यः पूजनीयश्च विप्रादीनां यथास्म्यहम् । यः करोत्यवमानं तु वृत्तिरूपं तु भोजके ।।७४
तस्याहं रोषमेत्याशु कुलं हन्मि समन्ततः । प्रियो मे भोजको नित्यं यथा त्वं विनतासुत ।।७५
उपलेपनकर्ता च सम्मार्जनपरश्च यः ।।

परावसुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्भानुर्बभ्राम रथमास्थितः ।।७६
अरुणोऽपि तथा श्रुत्वा मुदया परया नृपः । पूज्यस्तस्मान्महाराज भोजकस्तु महीपते ।।७७
तस्माद्देयं वाचकाय द्वितीयमशनं नरैः ।।७८

विक्रय ही करना चाहिए स्वयं ही उसका उपभोग करे ।६५-६६। जो कोई मेरे अंगों में पुष्पों को बिना सुसज्जित किये उन्हें लेता है, उसे अवश्य नरक की प्राप्ति होती है ।६७। हे खग ! मेरे स्नान के निर्माल्य एवं अग्नि को लांघने वाला रौद्र एवं रौरव नामक नरक की प्राप्ति करता है ।६८। इसलिए भोजक (ऐसे स्थान में) मेरा स्नान सप्रयत्न कराये जिससे कोई उसका उल्लंघन न कर सके तथा कुत्ता उसका भक्षण भी न कर सके ।६९। हे खगाधिप ! यदि भोजक असावधानी से मेरा स्नान कराये और कुत्ता उसे खा ले तो भयानक तामिस्र नामक नरक उसे प्राप्त होता है । भोजक को एकाहार एवं त्रैकालिक स्नान करना चाहिए ।७०-७१। प्रतिदिन उसे तीन वस्त्र बदलने चाहिए और पूजा तथा अर्घ्य प्रदान के समय क्रोध त्याग के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।७२। अमंगलकारी शब्दों के त्याग एवं सदैव शुभदायक वाणी बोलनी चाहिए । क्योंकि इसी प्रकार की पूजा करने वाला भोजक मुझे सदैव प्रिय होता है ।७३। अन्य ब्राह्मणादि के लिए भी भोजक मेरे समान ही सम्मानीय एवं पूजनीय है, वृत्ति के विषय में जो भोजक का अपमान करता है, क्रुद्ध होकर मैं शीघ्र उसके कुल का नाश कर देता हूँ । हे विनतासुत ! तुम्हारी भाँति जो भोजक भी लेप तथा सफाई करता है वह मुझे सदैव प्रिय होता है ।७४-७५

परावसु ने कहा—इस प्रकार कहकर भगवान् भास्कर रथ में बैठकर आगे चले गये ।७६। हे नृप ! अरुण भी इसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । हे महाराज ! हे महीपते ! इसीलिए भोजक पूज्य हैं और दूसरे ब्राह्मण के स्थान पर इन्हीं भोजक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।७७-७८

ब्रह्मोवाच

इत्थं श्रुत्वा स राजा तु कर्मणः फलमात्मनः । पुरातनं महाबाहुर्मुदमाप महीपतिः ।।७९
यद्यदायतनं भानोः पृथिव्यां पश्यते नृपः । तस्मिंस्तस्मिन्कारयति उपलेपनमादरात् ।।८०
भार्या तस्यापि सुश्रोणिः पुण्यश्रवणमादरात् । वाचके वेतनं दत्त्वा भानोर्देवस्य मन्दिरे ।।८१
इत्थं राजा सपत्नीकः पूज्य भक्त्या दिवाकरम् । प्राप्तावुभौ परां प्रीतिं गतिं चानुत्तमां तथा ।।८२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्प उपलेपनस्नापनमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११७।

सत्राजितोपाख्यानं समाप्तम्

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानफलवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दीपं प्रयच्छति नरो भानोरायतने तु यः । तेजसा रविसंकाशः सर्वयज्ञफलं[1] लभेत् ।।१
कार्त्तिके तु विशेषेण कौमारे मासि दीपकम् । दत्वा फलमवाप्नोति यदन्येन न लभ्यते ।।२
कृष्णकृष्णात्र ते वच्मि संवादं पापनाशनम् । भ्रातृभिः सह भद्रस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।।३

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अपने पुरातन कर्मों के फल को सुनकर वह महाबाहु राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।७९। उस समय से वह राजा इस पृथिवी में जहाँ कहीं सूर्य का मंदिर देखता था उसकी सादर सफाई कराता था और उसकी सुश्रोणी भार्या भी सूर्य के मंदिर में प्रतिदिन कथा कहने के लिए किसी वाचक को वैतनिक वृत्ति प्रदान कर नित्य पुण्य कथा का श्रवण करने लगी थी ।८०-८१। इस प्रकार सपत्नीक उस राजा ने भक्ति पूर्वक सूर्य की पूजा करके (उन दोनों ने) प्रसन्नता समेत उत्तम गति की प्राप्ति की ।८२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में उपलेपन स्नापन माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।११७।

अध्याय ११८

आदित्यायतनदीपदान वर्णन

ब्रह्मा बोले—जो मनुष्य सूर्य के मंदिर में दीप दान करता है उसे सूर्य के समान तेज की प्राप्ति पूर्वक समस्त यज्ञों के फलों की प्राप्ति होती है ।१। कार्तिक मास में विशेषकर कौमारावस्था में दीपदान करने से अन्य दुर्लभ फल की प्राप्ति होती है ।२। हे कृष्ण ! इसी विषय पर मैं भद्र नामक उस महात्मा ब्राह्मण के पापनाशक संवाद को तुम्हें सुनाता हूँ जो उनके भाइयों में आपस में कहा सुना गया था ।३

---

१. सर्वज्ञत्वफलंलभेत् ।

जगत्यस्मिन्पुरी रम्या नाम्ना माहिष्मती पुरा । तस्यामासीद्द्विजः कृष्ण नागशर्मेति विश्रुतः ॥४
तस्य पुत्रशतं जातं प्रसादाद्भास्करस्य च । तेषां कनिष्ठो भद्रस्तु तत्पुत्राणां विचक्षणः ॥५
स च नित्यं जगद्धातुर्देवदेवस्य भास्वतः । दीपवर्तिपरस्तद्वत्तैलाद्याहरणोद्यतः ॥६
भानोरायतने तस्य सहस्रं भार्गवीप्रिय । प्रदीपानां तु जज्वाल दिवारात्रमनिन्दितम् ॥७
तस्य दीप्त्या पराभूतास्तस्य लावण्यधर्षिताः । सर्वे ते भ्रातरो भद्रं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥८
भो भद्र वद वै भ्रातर्भद्र तेस्तु सदा द्विज । कौतूहलपराः सर्वे यत्पृच्छामस्तदुच्यताम् ॥९
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भद्रो वचनमब्रवीत् । विषये सति वक्तव्यं यन्मया तदिहोच्यताम् ॥१०
नाहं मत्सरयुक्तो वै न च रागादिदूषितः । भवन्तो मम सर्वे हि भ्रातरो गुरवस्तथा ॥११
कथं न कथयाम्येष भवतां पुत्रसम्मितः । तस्माद्ब्रुवन्तु मां सर्वे भ्रातरो यद्विवक्षितम् ॥१२

भ्रातर ऊचुः

न तथा पुष्पधूपेषु न तथा द्विजपूजने । सुप्रयत्नं तु पश्यामो भानोरायतने परम् ॥१३
यथाहनि तथा रात्रौ यथा रात्रौ तथाहनि । तव दीपप्रदानाय यथा भद्र सदोद्यमम् ॥१४
तत्त्वं तत्कथयास्माकं हंत कौतूहलं परम् । यन्नाम दीपदानस्य भवता विदितं फलम् ॥१५
तदेतत्कथयास्माकं सविशेषं महाबल । एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भ्रातृभिश्चोदितो मुदा ॥१६
व्याजहार स भ्रातृणां न किञ्चिदपि सुव्रत । पुनः पुनरसौ तैस्तु भ्रातृभिश्चोदितो मुदा ॥१७

पहले समय में इस पृथ्वी तल पर माहिष्मती नामक एक रम्य पुरी थी। उसमें नागशर्मा नामक कोई ब्राह्मण रहता था।४। सूर्य की कृपा वश उस ब्राह्मण के सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें अधिक बुद्धिमान् सबसे छोटा भद्रनामक पुत्र हुआ।५। वह सदैव देवाधिदेव एवं जगत् के विधाता सूर्य के लिए समर्पित दीपक में उसकी बत्ती तथा तेल आदि के लिए सदैव ध्यान रखता था।६। हे भार्गवी प्रिय ! इस प्रकार उसके प्रयत्न से दिनरात सूर्य के मन्दिर में कल्याणप्रद सहस्र दीपक जलाये जाते थे।७। जिससे उसके परिणामस्वरूप प्राप्त उसकी देह की दीप्ति एवं सौन्दर्य से विस्मित होकर उसके सभी भाइयों ने सादर उससे पूछा।८। भाई भद्र ! तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो, हे द्विज ! एक बात के लिए हम लोगों को महान् कौतूहल हो रहा है, इसलिए पूँछ रहे हैं, बताओ।९। उनकी बातें सुनकर भद्र ने कहा उस विषय को पूँछो, जो मुझे कहना है।१०। मुझमें मत्सर या रागादि दोष नहीं है जिससे मैं छिपाने की कोशिश करूँगा और आप लोग भाई हैं तथा बड़े होने के नाते गुरु भी।११। आप के पुत्र के समान हूँ अतः अवश्य बताऊँगा, इसलिए हे भाइयों ! जो पूँछने की इच्छा हो आप निःसंकोच पूँछे।१२

भाइयों ने कहा—हे भद्र ! सूर्य के मन्दिर में उन्हीं के लिए दिन रात दीपक जलाने में जितना घोर प्रयत्न देखते हैं उतना (देवता के) पूजनार्थ पुष्प एवं पुष्पादि में तथा ब्राह्मण पूजन के लिए नहीं देखे हैं। इससे हमें महान् विस्मय एवं कौतूहल हो रहा है अतः दीपदान का फल जो तुम्हें विदित हो हमें बताओ।१३-१५। हे महाबल ! विस्तार पूर्वक इसे कहो। हे सुव्रत व इस प्रकार भाइयों के कहने पर प्रसन्न चित्त होकर भी उसने पहले कुछ नहीं कहा पर भाइयों के बार-बार पूँछने पर दाक्षिण्य गुण सम्पन्न भद्र ने उनके प्रश्न का समुचित उत्तर देना प्रारम्भ किया।१६-१७। उसने कहा— हे सुव्रत ! इस छोटी

दाक्षिण्यसारो भद्रस्तु कथयामास कृत्स्नशः । भवतां कौतुकं चैतदतीवाल्पेऽपि वस्तुनि ॥१८
तदेष कथयाम्यद्य यद्‌व्रतं मम सुव्रत । इक्ष्वाकुराज्ञस्तु पुरा वशिष्ठोऽभूत्पुरोहितः ॥१९
तेन चायतनं भानोः कारितं सरयूतटे । अहन्यहनि शुश्रूषां पुष्पधूपानुलेपनैः ॥२०
दीपदानादिभिश्चैव चक्रे तत्र स वै द्विजः । कार्तिके दीपको भक्त्या प्रदत्तस्तेन वै सदा ॥२१
आसीन्निर्वाण एवासौ देवार्चापुरतो निशि । देवतायतने चाहमवसं व्यथितो भृशम् ॥२२
पूयशोणितनिष्यन्दं प्रावहन्कायतः सदा । शीर्णघ्राणो ह्यवरवो दुर्गंधपतितस्तथा ॥२३
दुष्टबुद्ध्या सदा युक्तः सप्ताश्वं प्रति सुव्रत । यदृच्छया दीपदानं वर्त्यादीनां विभावसौ ॥२४
तत्तद्‌भुक्त्वा तदा तुष्टिं व्रजामि द्विजसत्तमाः । एकदा तु ततस्तस्मिन्भानोरायतने गतः ॥२५
रात्रौ दृष्टा मया तत्र भक्ता जागरणागताः । प्रतिश्रयं प्रार्थिताश्च तैश्च दत्तो दयान्वितैः ॥२६
व्याधितोऽयं सुदीनश्च इति कृत्वा मतिं शुभाम् । ततोऽहमग्निमाश्रित्य स्थितस्तेषां समीपतः ॥२७
दुष्टां बुद्धिं समाश्रित्य हर्तुकामो विवस्वतः । दिव्यमाभरणं भानोश्छिद्रान्वेषी द्विजोत्तमाः ॥२८
स्थितोऽहं भोजका ह्यत्र यदि निद्रां व्रजन्ति ते । येनास्य वैरिवद्भानोर्हराम्याभरणं शुभम् ॥२९
अथ सुप्ता भोजकास्ते निद्रया मोहितास्तदा । निर्वाणश्चापि दीपास्तु ततोऽहमुत्थितस्त्वरन् ॥३०
मुदा परमया युक्तो गतो वैश्वानरं प्रति । प्रज्वाल्य पावकं यत्नाद्दीपवर्तिन्ततो मया ॥३१

सी बात के लिए आप लोगों को जो कौतूहल हो रहा है तो मैं अपने व्रत का विवेचन कर रहा हूँ । सुनो ! ।१८। पहले समय में राजा इक्ष्वाकु के वशिष्ठ पुरोहित थे ।१९। उन्होंने सरयू के तट पर भगवान् सूर्य का मन्दिर बनवाया था । पुष्प, धूप, चन्दन और दीपदानादि द्वारा ये प्रतिदिन सूर्य की सेवा कर रहे थे । कार्तिक मास में वे भक्तिपूर्वक सदैव दीपदान करते थे ।२०-२१। क्योंकि रात्रि में सूर्य देव के सम्मुख मन्दिर में इस प्रकार की दीप-दान रूपी अर्चा करना मुक्ति प्राप्त करना है ऐसा कहा गया है । उसी मन्दिर के सामने रात में मैं रहता था । यद्यपि मैं उस समय अत्यन्त पीड़ित था और मेरे शरीर से सदैव पीब एवं रक्त निकला करता था नाक सूख गई थी एवं स्पष्ट शब्दों में बोल नहीं सकता था, इस प्रकार शरीर की दुर्गंध के नाते मैं और भी पतित हो गया था ।२२-२३। हे सुव्रत ! तथापि सूर्य के प्रति मेरी सदैव दुर्भावना ही रहती थी । हे द्विजसत्तम ! उस मन्दिर में सूर्य के लिए समर्पित किये गये दीपकों की बत्तियाँ आदि मेरे ही काम आती थीं क्योंकि मैं उसे चुरा कर खा लेता था, इस प्रकार मैं उस अपने आचरण से सदैव प्रसन्न भी रहता था ।२४-२५। एक बार रात में उस मन्दिर में गया वहाँ देखा कि भक्तगण जाग रहे हैं मैंने उनसे अपने रहने के लिए प्रार्थना की । यह रोगी एवं दीन है ऐसा सोचकर उन लोगों ने दयावश मुझे वहाँ रहने का स्थान प्रदान किया । उनके समीप ही अग्नि का आश्रय लेकर तापने के व्याज से मैं वहां बैठ गया ।२६-२७। हे द्विजोत्तम ! उस समय सूर्य के दिव्य आभूषणों को देखकर उसके अपहरण करने के लिए मेरी बुद्धि खराब होने लगी मैं उसके अपहरण करने का उपाय सोंचने लगा ।२८। सोंचा कि मैं यहीं बैठा हूँ और ये भोजक भी यही हैं अतः जब ये लोग निद्रित अवस्था में होंगे (अर्थात्) अच्छी तरह सो जायेंगे तब शत्रु की भाँति सूर्य के उन उत्तम आभूषणों को चुरा लूँगा ।२९। इसके पश्चात् नींद में मस्त होकर वे भोजक गण सो गये एवं दीपक भी बुझ गया । तदुपरांत शीघ्रता से उठकर हर्षमग्न होता हुआ मैं अग्नि के समीप गया

योजयित्वा तु वै दीपे धृतो दीपोऽग्रतो रवेः । हर्तुकामेनाभरणं भानोर्देवस्य सुव्रत ।।३२
अथ ते भोजकाः सर्वे वृद्धा देवस्य पुत्रकाः । तैस्तु दृष्टो ह्यहं तत्र दीपहस्तो विभावसोः ।।३३
पुरः स्थितो द्विजश्रेष्ठा गृहीतश्चापि तैरिह । ततोऽहं तेजसा मूढो भास्करस्य महात्मनः ।।३४
विलपन्करुणं तेषां पादयोरवनिं गतः । तैश्चापि करुणां कृत्वा मुक्तोऽहं भोजकैस्तदा ।।३५
गृहीतो राजपुरुषैः पृष्टश्चापि समन्ततः । किमिदं भवतारब्धं देवदेवस्य मंदिरे ।।३६
दीपं प्रज्वाल्य दुष्टात्मन्कथ्यतां मा चिरं कुरु । इत्युक्त्वा तु ततस्तैस्तु शस्त्रहस्तैः समावृतः ।।३७
ततोऽहं व्याधिना क्लिष्टो भयेन च द्विजोत्तमाः । हित्वा प्राणान्गतो यत्र स्वयं देवो विभावसुः ।।३८
स्थित्वा कल्पं ततस्तत्र युष्माकं भ्रातृतां गतः । एष प्रभावो दीपस्य कार्तिके मासि सुव्रताः ।।३९
दत्तस्यार्कस्य भवने यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा । दुष्टबुद्धया कृतं यत्तु मया दीपप्रवर्तनम् ।।४०
भगायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् । क्षुधाभिभूतेन मया देवदेवस्य भूषणम् ।।४१
दीपश्च देवपुरतो ज्वालितो भास्करस्य तु । ततो जातिस्मृतिर्जन्म प्राप्तं ब्राह्मणवेश्मनि ।।४२
कुष्ठिना चापि शूद्रेण प्राप्तं ब्राह्मण्यमुत्तमम् । नानाविधानि शास्त्राणि सांगं वेदं समाप्तवान् ।।४३
दुष्टबुद्धया धृताद्दीपात्फलमेतन्महाद्भुतम् । प्राप्तं मया द्विजश्रेष्ठाः किं पुनर्दीपदायिनाम् ।।४४

वहाँ उसे प्रयत्नपूर्वक प्रज्वलित कर दीपक की बत्ती फिर से जलायी और दीप में रख, उसे सूर्य के सामने रख दिया इसलिए कि जिससे मैं सूर्य के आभूषणों का अपहरण भली भाँति कर सकूँ।३०-३२। इसके उपरान्त उन सभी वृद्ध भोजकोंने जो सूर्य के पुत्र के समान थे मुझे देख लिया मैं सूर्य के सामने दीपक हाथ में लिए खड़ा था।३३। हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् भास्कर के तेज से मैं अन्धों के समान हो गया था। अतः उन लोगों ने मुझे वहीं पकड़ लिया।३४। पश्चात् मैं कारुणिक विलाप करता हुआ उन लोगों के पैरों पर गिर पड़ा इसलिए भोजकों ने भी दयावश मुझे उसी समय मुक्त कर दिया।३५। तदुपरांत मन्दिर से बाहर आने पर राजा के सिपाहियों ने मुझे चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया और पूछने लगे कि देवाधिदेव (सूर्य) के मंदिर में दीपक जलाकर तुम क्या कर रहे थे। हे दुष्ट ! इसका कारण शीघ्र बताओ देरी मत करो ! ऐसा कह कर वे लोग हाथ में शस्त्र लेकर चारों ओर से सावधान होकर खड़े हो गये।३६-३७। हे द्विजोत्तम ! तदुपरांत मैं रोग से पीड़ित था ही उस समय मुझे इतना भय भी लगा कि उसी के कारण मेरे प्राण उसी समय निकल गये। पश्चात् मैं सूर्य लोक में गया।३८। वहाँ एक कल्प पर्यंत रह कर अब आप लोगों का भाई हुआ हूँ। हे सुव्रत ! यह सब कार्तिक मास के दीपदान का ही प्रभाव है।३९। जिसका यह उत्तम परिणाम मुझे प्राप्त है। यद्यपि मैने अपने भ्रष्ट विचार से वहाँ उस दीपक को जलाया था तथा उस समय मैं भूख से अत्यन्त व्याकुल था इसीलिए उनके आभूषणों का अपहरण करना चाहता था और उसी के निमित्त मैंने दीपक जलाकर सूर्य के सामने रखा था किन्तु उसी का यह कैसा दिव्य फल प्राप्त हुआ कि पुरातन काल के स्मरण के साथ ब्राह्मण के घर जन्म हुआ।४०-४२ उस जन्म में कुष्ठ रोगी होते हुए भी शूद्र वर्ण से मैं उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भाँति-भाँति के शास्त्र तथा सांगोपाङ्ग वेदों का भी पूर्ण अध्ययन कर लिया।४३। हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धि के कारण ही वहाँ दीपक रखा था किन्तु जब उसका भी यह महान् आश्चर्यजनक फल मुझे प्राप्त हुआ तो शुद्ध भावना से दीपक दान करने वालों का कहना क्या

एतस्मात्कारणाद्दीपानहमेवमहर्निशम् । प्रयच्छामि रवेर्धाम्नि ज्ञातमस्य हि यत्फलम् ॥४५
युष्माकमिदमुक्तं वै स्नेहात्सत्यं न संशयः । एष प्रभावो दीपस्य कार्तिके मासि सुव्रताः ॥४६
अर्कायतनदीपस्य भद्रोवोचद्यथा पुरा । दिनेदिने जपन्नाम भास्करस्य समाहितः ॥४७
ददाति कार्तिके यस्तु भगायतनदीपकम् । जातिस्मरत्वं प्रज्ञां च प्राकाश्यं सर्वजन्तुषु ॥४८
अव्याहतेन्द्रियत्वं च समाप्नोति न संशयः । सर्वकालं च चक्षुष्मान्मेधावी दीपदो नरः ॥४९
जायते नरकं चापि तमः संज्ञं न पश्यति । षष्ठीं वा सप्तमीं वापि प्रतिपक्षं च यो नरः ॥५०
दीपं ददाति यत्नाद्यत्फलं तस्य निबोध मे । काञ्चनं मणियुक्तं च मनोज्ञमतिशोभनम् ॥५१
दीपमालाकुलं दिव्यं विमानमधिरोहति । तस्मादायतने भानोर्दीपान्दद्यात्सदाच्युत ॥५२
तांश्च दत्त्वा न हिंस्याच्च न च तैलवियोजितान् । कुर्वीत दीपहर्ता तु मूषकोन्धश्च जायते ॥५३
तस्माद्दद्यान्नाहरेद्वै श्रेयोऽर्थी दीपकं नरः ॥५४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भद्रोपाख्यान आदित्यायतनदीपदानफलवर्णनं नामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११८।

है ।४४। इसीलिए मैं प्रतिदिन सूर्य के मन्दिर में रात-दिन दीपक जलाने का प्रयत्न करता रहता हूँ क्योंकि उसका फल मुझे मालूम है ।४५। हे सुव्रत ! मैंने आप लोगों से स्नेहवश ये सत्य बातें बतायी, इसमें कोई संदेह नहीं है क्योंकि कार्तिक मास में दीप दान का ऐसा प्रभाव होता ही है ।४६

पहले समय में भद्र नामक व्यक्ति ने भी सूर्य के मंदिर में दीपदान के महत्व को ऐसा ही बताया है अतः कार्तिक के मास में सूर्य का ध्यान लगा कर प्रतिदिन उनके नाम का जप पूर्वक जो उनके मंदिर में उनके लिए दीपदान करता है भद्र के कथनानुसार उसे जातिस्मरण बुद्धि सभी प्राणियों में ख्याति तथा नीरोग इन्द्रियाँ निःसंदेह प्राप्त होती हैं । इस प्रकार दीप दान करने वाला मनुष्य सभी समय चक्षुष्मान् एवं मेधावी होता है ।४७-४९। कदाचित् वह नरक भी जाये तो वहाँ भी उसे तम नामक नरक नहीं दिखाई देगा ।

अब प्रत्येक पक्ष में षष्ठी एवं सप्तमी में जो प्रयत्न पूर्वक दीप दान करते हैं उसके फलको कह रहा हूँ सुनो ! सुवर्ण एवं मणि से युक्त मनोज्ञ सौन्दर्यपूर्ण तथा दीपक की मालाओं से सुशोभित उस दिव्य विमान पर वह सुशोभित किया जाता है। अतः हे अच्युत ! सूर्य के मन्दिर में सदैव दीपदान करना चाहिए ।५०-५२। उसी भाँति सूर्य के लिए समर्पित किये गये दीपकों को फोड़ना या तैल आदि की चोरी न करनी चाहिए। क्योंकि दीपक का अपहरण करने वाला प्राणी चूहा एवं अन्धा भी होता है ।५३। इसलिए कल्याण के इच्छुक पुरुषों को चाहिए कि दीपदान कर उसका अपहरण कभी न करें ।५४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प मे भद्रक उपाख्यान में आदित्यायतन दीपदान फल वर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।११८।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतितान्किल । संक्रोशमानांस्तंक्षुब्धानुवाच यमकिङ्करः ॥१
विलापैरलमत्रेति किं वो विलपिते फलम् । यत्प्रमादादिभिः पूर्वमात्मायं समुपेक्षितः ॥२
पूर्वमालोचितं नैतत्कथमन्ते भविष्यति । इदानीं यातनां भुङ्ध्वं किं विलापं करिष्यथ ॥३
देहो दिनानि स्वल्पानि विषयाश्चातिदुर्बलाः । एतत्को न विजानाति येन यूयं प्रमादिनः ॥४
जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्य एकस्मिन्मानुषो यदि । स तत्राप्यतिमूढात्मा किं भोगानभिधावति ॥५
पुत्रदारगृहक्षेत्रहिताय सततोद्यताः । न जानन्ति ततो मूढाःस्वल्पमप्यात्मनो हितम् ॥६
वञ्चितोऽहं मया लब्धमिदमस्मादुपागतम् । न वेत्ति मोहितः कश्चित्प्रक्रान्तनरको नरः ॥७
न वेत्ति सूर्यचन्द्रादीन्कालमात्मानमेव च । साक्षिभूतानशेषस्य शुभस्येहाशुभस्य च ॥८
जन्मान्यन्यानि जायन्ते पुत्रदारादिदेहिनाम् । यदर्थं यत्कृतं कर्म तस्य जन्मशतानि तु ॥९

अध्याय ११९

दीपदान विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा--अत्यन्त घोर एवं दुष्पार होने वाले उस अन्ध-तामिस्र (घोर अन्धकारमय) नामक नरक में पड़े एवं दुःखी होकर विलाप करने वाले लोगों ने एकबार यम के दूतों से (कड़े शब्दों में) कहा था।१। यहाँ रुदन करना बन्द करो ! तुम लोगों के रुदन करने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि प्रमाद वश अपने आत्मा के उद्धार के लिए जब पहले ही नहीं सोचा और सदैव उसकी उपेक्षा ही करते रहे एवं कभी इस पर विचार ही नहीं किया तो अन्त में यहाँ आने पर क्या हो सकता है अतः इस समय यातनाओं का उपभोग करो, विलाप क्यों करते हो।२-३। क्योंकि इस देह को तथा इसके अल्प जीवन के दिन एवं अत्यन्त सारहीन इस विषय वासना को कौन नहीं जानता है जिसके कारण लोग प्रमाद करते हैं, जैसे तुम लोगों ने किया।४। और सहस्रों जन्म के पश्चात् कहीं एकबार जीव मनुष्य जन्म प्राप्त करता है किंतु अत्यंत मूढ़ होकर विषयों में अत्यन्त लिप्त और उसके उपभोगों के लिए ही दिन रात दौड़ता फिरता है, तथा पुत्र, स्त्री, गृह एवं क्षेत्र की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्न शील रहता है यही नहीं अपितु अपने जीवन के स्वास्थ्य के हित का भी ध्यान नहीं रखता है इसीलिए वह मूढ़ कहा जाता है।५-६। इस प्रकार भूतल में रहते समय कोई भी नरकगामी मनुष्य मोहित होने के नाते यह नहीं सोच पाता है कि मैं (आत्मोद्धार से) वंचित हो रहा हूँ और मुझे इसके बदले में वहाँ क्या प्राप्त होगा।७। मोहजाल में फँसे रहने के नाते ही यह शुभ एवं अशुभ कर्मों के साक्षी भूत सूर्य, चन्द्रमा, काल एवं आत्मा का ज्ञान कभी नहीं करता है।८। यद्यपि पुत्र एवं स्त्री आदि अन्य जन्म में जीवों को प्राप्त होते रहते हैं किन्तु उन्हीं के लिए मैंने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये हैं और इसी कारण मुझे सैकड़ों योनियों में जाना भी पड़ा है ऐसा जीव कभी नहीं सोचता। आश्चर्य है मोह

अहो मोहस्य माहात्म्यं ममत्वं नरकेष्वपि । क्रन्दते मातरं तातं पीड्यमानोऽपि यत्स्वयम् ।।१०
एवमाकृष्टचित्तानां विषयैः स्वादुतर्पणैः । नृणां न जायते बुद्धिः परमार्थविलोकिनी ।।११
तथा च विषयासङ्गं करोत्यविरतं मनः । को हि भारो रवेर्नाम्नि जिह्वायाः परिकीर्तने ।।१२
वर्तितैलेऽल्पमूल्ये च यद्वर्त्तिर्लभ्यते सुधा । अतो वै कतरो लाभः कातश्चिन्ता भवेत्तदा ।।१३
येनायतेषु हस्तेषु स्वातंत्र्ये सति दीपकः । महाफलो भानुगृहे न दत्तो नरकापहाः ।।१४
नरो विलपते किञ्चिद्दिदानीं दृश्यते फलम् । अस्वातंत्र्ये विलपता स्वातंत्र्ये सति मानिनाम् ।।१५
अवश्यं पातिनः प्राणा भोक्ता जीवोऽप्यहर्निशम् । दत्तं च लभते भोक्तुं कामयांन्विषयानपि ।।१६
एतत्स्थानं दुष्कृतैर्वा युक्तं चाद्य मयेक्षितम् । इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम् ।।१७
यद्येतदनभीष्टं वो यद्दुःखं समुपस्थितम् । तदद्भुतमतिः पापे न कर्तव्या कदाचन ।।१८
कृतेऽपि पापके कर्मण्यज्ञानादघनाशनम् । कर्तव्यमनवच्छिन्नं पूजनं सवितुः सदा ।।१९

ब्रह्मोवाच

नारकास्तद्वचः श्रुत्वा तमूचुरतिदुःखिताः । क्षुत्क्षामकण्ठास्तृट्तापविसंस्फुटिततालुकाः ।।२०

का इतना बड़ा प्रभाव कि नरक में रहते हुए जिसके कारण परिवार के लिए इतनी बड़ी ममता उत्पन्न हो कि यातनाएँ भोगते हुए भी तात-मात कह कर उन्हें स्वयं पुकारते रहें ।९-१०। इसीलिए स्वादिष्ट विषयों से आकृष्ट होकर सदैव उसमें लिप्त रहने के नाते मनुष्यों में परमार्थ प्राप्त करने वाली बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं होती है ।११। क्योंकि विषयों को अपनाने के लिए ही उनका मन सदैव लालायित रहता है और उससे मुक्त होने के लिए कभी नहीं। अन्यथा उसकी रसनेन्द्रिय (जिह्वा) के लिए सूर्य का नामोच्चारण करना न प्रतीत होता ।१२। यद्यपि दीपक में जलने वाली बत्ती एवं तेल का मूल्य अत्यल्प होता है अतः वह सहज ही में प्राप्त हो सकता है जिसके संयोग से दीपक प्रदान करने पर सुधा की प्राप्ति होती है इस प्रकार इससे तुम्हें कितना लाभ होता है और उस समय तुम्हें कोई चिन्ता भी न होती ।१३। इसीलिए स्वतंत्र रहने पर जिसने सूर्य के मन्दिर में इन अपने विशाल हाथों द्वारा महाबलशाली एवं नरक नाशक दीप का दान नहीं किया है वही मनुष्य यहाँ आकर रुदन करता है जिसको कुछ अंश में देख ही रहा हूँ। इससे यही निश्चित हो रहा है कि जीव परतन्त्र होने पर रुदन करता है और स्वतन्त्र रहने पर अभिमानी हो जाता है ।१४-१५। प्राण तो अवश्य पाती (एकदिन निकल जायेंगे) हैं ही और जीव, भी रात दिन सुख दुःख भोगने के लिए ही है। एवं दानस्वरूप में देने पर ही इच्छानुकूल विषयों के उपभोग प्राप्त होते हैं ।१६। यह (नरक) स्थान तो पापों के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है, यह भी मैं भली भाँति जानता हूँ अतः इस समय अब तुम्हारे रुदन करने से क्या लाभ होगा ।१७। सामने जो कुछ उपस्थित है एकमात्र उसका सहन करो। क्योंकि यदि सामने उपस्थित अनिच्छित इस दुःख को तुम नहीं चाहते तो वहाँ घर पर रहते समय तुम लोग अपनी निर्मल बुद्धि करते कभी किसी पाप कर्म में न फँसते और यदि अज्ञानवश कोई पाप कर्म हो गया हो तो उन पाप नाशक सूर्य का सदैव पूजन करते रहते ।१८-१९

ब्रह्मा बोले—भूख से सूखे हुए (जल) एवं प्यास से संतप्त होकर फँसे हुए तालु वाले उन नारकीयों ने उनकी बातें सुनकर बड़े दुःख से कहा ।२०। हे साधो ! आप हम लोगों के किये हुए उन कर्मों को बताने

भोभोः साधो कृतं कर्म यदस्माभिस्तदुच्यताम् । नरकस्थैर्विपाकोऽयं भुज्यते यत्सुदारुणः ।।२१

किङ्कर उवाच

युष्माभिर्यौवनोन्मादान्मुदितैरविवेकिभिः । घृतलोभेन मार्तण्डगृहाद्दीपः पुरा हृतः ।।२२
तेनास्मिन्नरके घोरे क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः । भवन्तः पतितास्तीव्रे शीतवातविदारिताः ।।२३

ब्रह्मोवाच

एतत्ते दीपदानस्य प्रदीपहरणस्य च । पुण्यं पापं च कथितं भास्करायतनेऽच्युत ।।२४
सर्वत्रैव हि दीपस्य प्रदानं कृष्ण शस्यते । विशेषेण जगद्धातुर्भास्करस्य निवेशने ।।२५

येऽन्धा मूका बधिरा निर्विवेका हीनास्तैस्तैर्दानसाधनैर्वृष्णिवीर ।
तैस्तैर्दीपाः साधुलोकप्रदत्ता देवागारादन्यतः कृष्ण नीताः ।।२६

इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दीपदानमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।११९।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजावर्णनम्

विष्णुरुवाच

भगवन्प्राणिनः सर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः । दुष्टग्रहोपघातैश्च सर्वकालमुपद्रुताः ।।१

की कृपा कीजिए जिसके द्वारा नरक में पड़कर हम लोग इस अत्यन्त दारुण फल को भोग रहे हैं ।२१

यम-किंकरों ने कहा—पहले समय में यौवन के उन्माद में अज्ञान से मुग्ध होकर तुम लोगों ने घी के लोभवश सूर्य के मन्दिर से दीपक का अपहरण किया था ।२२। इसीलिए भूख और प्यास से तुम्हें निरन्तर दुःखी होना पड़ रहा है तथा शीतवात द्वारा तुम्हारे अंग विदीर्ण हो गये हैं और ऐसी अवस्था में तुम्हें इस घोर दुःखदायी नरक की प्राप्ति हुई है ।२३

ब्रह्मा बोले—हे अच्युत ! इस प्रकार भास्कर के मन्दिर में दीपदान एवं दीपहरण के पुण्य पाप तुम्हें बता दिया ।२४। हे कृष्ण ! इसी प्रकार दीप दान सर्वत्र प्रशस्त बताया गया है किंतु विशेषकर जगत् के धाता भगवान् भास्कर के मन्दिर में यह दीपदान अत्यन्त (प्रशस्त) है ।२५। हे वृष्णिवीर ! इसलिए जितने अंधे, गूंगे, बहरे अविवेकी, एवं विभिन्नदान साधनों से हीन मनुष्य दिखायी देते हैं वे सभी देवमन्दिरों से साधुजनों द्वारा प्रदत्त दीपों का अपहरण अवश्य किये हैं ।२६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में दीपदान माहात्म्य वर्णन नामक
एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।११९।

अध्याय १२०

आदित्यपूजा विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे भगवन् ! समस्त जीव विष एवं रोगादि उपद्रवों से तथा ग्रहों के अरिष्ट होने के

आभिचारिककृत्याभिः स्पर्शरोगैश्च दारुणैः । सदा सम्पीडयमानास्तु तिष्ठन्त्यम्बुजसम्भव ।।२
येन कर्मविपाकेन विषरोगाद्युपद्रवाः । प्रभवन्ति नृणां तन्मे यथावद्वक्तुमर्हसि ।।३

ब्रह्मोवाच

व्रतोपवासैर्यैर्भानुर्नान्यजन्मनि तोषितः । ते नरा देवशार्दूल ग्रहरोगादिभागिनः ।।४
यैर्न तत्प्रवणं चित्तं सर्वदैव नरैः कृतम् । विषग्रहज्वराणां ते मनुष्याः कृष्ण भागिनः ।।५
आरोग्यं परमां वृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति । तत्तदाप्नोत्यसंदिग्धं परत्रादित्यतोषणात् ।।६
नाधीन्प्राप्नोति न व्याधीन्न विषग्रहबन्धनम् । कृत्यास्पर्शभयं वापि तोषिते तिमिरापहे ।।७
सर्वे दुष्टाः समास्तस्य सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः । देवानामपि पूज्योऽसौ तुष्टो यस्य दिवाकरः ।।८
यः समः सर्वभूतेषु यथात्मनि तथा हिते । उपवासादिना येन तोष्यते तिमिरापहः ।।९
तोषितेऽस्मिन्प्रजानाथे नराः पूर्णमनोरथाः । अरोगाः सुखिनो नित्यं बहुधर्मसुखान्विताः ।।१०
न तेषां शत्रवो नैव शरीराद्यभिचारकम् । ग्रहरोगादिकं वापि पापकार्युपजायते ।।११
अव्याहतानि देवस्य धनजालानि तं नरम् । रक्षन्ति सकलापत्सु येन श्वेताधिपोऽर्चितः ।।१२

कारण सदैव दुःखी रहते हैं ।१। हे कमलोत्पन्न ! इस प्रकार अभिचार (मारण आदि पुरश्चरण तथा विषय योग आदि) कर्मों एवं कठोर स्पर्श (छूत के) रोगों द्वारा यह जीव सदा पीड़ित ही रहता है ।२। अतः जिन कर्मों के परिणाम स्वरूप विष एवं रोगादि उपद्रव मनुष्यों पर अपना प्रभाव प्रकट करते हैं वह मुझे यथोचित ढंग से बताने की कृपा कीजिए ।३।

ब्रह्मा बोले—हे देवशार्दूल ! जिन्होंने पूर्व जन्म में व्रत एवं उपवास आदि द्वारा भगवान् सूर्य को सन्तुष्ट नहीं किया है, वे ही मनुष्य ग्रह एव रोग आदि से पीड़ित होते हैं ।४। हे कृष्ण! इस भाँति जिन मनुष्यों ने सदैव अपने चित्त को सूर्य में तन्मय नहीं किया है, वे ही लोग विष ग्रह एवं ज्वरों के भोग भागी होते हैं ।५। क्योंकि सूर्य की सेवा करने पर आरोग्य तथा परम वृद्धि की प्राप्ति समेत मन से वह जिस-जिस (वस्तु) की इच्छा करता है उसे आदित्य के प्रसन्न होने पर उन सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है ।६। एवं जिस तिमिरनाशक सूर्य के प्रसन्न होने पर आधि (मानसिक) व्याधि (शारीरिक) पीडाएँ विष और ग्रह तथा कृत्य (अभिचारकर्म) के स्पर्श का भय भी नहीं होता है ।७। इस प्रकार जिसके ऊपर सूर्य प्रसन्न रहते हैं उसके शत्रु सदैव शान्त रहते हैं सभी ग्रह सौम्य होते हैं तथा वह देवताओं का भी पूज्य होता है ।८। एवं जो सभी प्राणियों के लिए अपनी समान दृष्टि रखता है जैसे अपने वर्ग के लिए वैसे ही पराये (दूसरों) के लिए भी तथा जिसने उपवास आदि द्वारा सूर्य को प्रसन्न कर लिया है उन पुरुषों के प्रजानाथ सूर्य के प्रसन्न होने पर सभी मनोरथ भली भाँति सफल हो जाते हैं। वे नित्य आरोग्य, सुखी एवं अत्यन्त धार्मिक होकर सुखी जीवन व्यतीत करते हैं ।९-१०। उसके कोई शत्रु नहीं होता है, न उसके शरीर पर अभिचार (अपहरण आदि) का प्रभाव ही पड़ता है और उनके अरिष्ट ग्रह रोग आदि सभी शान्त हो जाते हैं ।११। उसी भाँति जिसने श्वेताधिप सूर्य की अर्चना की है, उसके ऊपर समस्त आपत्तियों के आने पर सूर्य देव का वह अव्याहत किरण जाल उसकी रक्षा करता है ।१२

विष्णुरुवाच

अनाराधितमार्तण्डा ये नराः दुःखभागिनः । ते कथं नीरुजः सन्तु विज्वरा गतकल्मषाः ॥१३

ब्रह्मोवाच

आराधयन्तु देवेशं पुष्पेणैवमनौपमम् । भास्करं तु जगन्नाथं सर्वदेवगुरुं परम् ॥१४

विष्णुरुवाच

दोषाभिभूतदेहैस्तु कथमाराधनं रवेः । कर्तव्यं वद देवेश भक्त्या श्रेयोऽर्थमात्मनः ॥१५
अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते ममायं भक्तिमानिति । तन्ममोपदिश त्वं च महदाराधनं रवेः ॥१६
अनन्तमजरं देवं दुष्टसन्देहनाशनम् । आराधयितुमिच्छामि भगवन्तस्त्वदनुज्ञया ॥
येनाहं त्वत्प्रसादेन भवेयमतिविक्रमः ॥१७

ब्रह्मोवाच

अनुग्राह्योऽसि देवस्य नूनमव्यक्तजन्मनः । आराधनाय ते विष्णो यदेतत्प्रवणं मनः ॥१८
यदि देवपतिं भानुमाराधयितुमिच्छसि । भगवन्तमनाद्यं च भव वैवस्वतोऽच्युत ॥१९
न ह्यवैवस्वतैर्भानुर्ज्ञातुं स्तोतुं च शक्यते । द्रष्टुं वा शक्यते मूढैः प्रवेष्टुं कुत एव तु ॥२०
तद्भक्तिप्रार्थिताः पूता नरास्तद्भक्तिचेतसः । वैवस्वता भवन्त्येव विवस्वन्तं विशन्ति च ॥२१

विष्णु ने कहा—जिन्होंने कभी सूर्य की आराधना नहीं की है वे ही भाँति-भाँति के दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं अतः वे मनुष्य किस प्रकार नीरोग, ज्वरादि रहित तथा पापों से मुक्त हो सकते हैं बताने की कृपा करें।१३

ब्रह्मा बोले—देवेश, अनुपम, जगत् के नाथ, एवं देवताओं के परम गुरु उस भास्कर की पूजा केवल पुष्पों द्वारा आप अवश्य करें।१४

विष्णु ने कहा—हे देवेश ! दोषादिकों से अभिभूत (पीड़ित) होने वाले को शरीर द्वारा सूर्य की आराधना किस प्रकार से करनी चाहिए इसे आत्मकल्याण के लिए मुझे अवश्य बताने की कृपा करें।१५। 'मेरा यह भक्त है' इस प्रकार के आपके सद्विचार द्वारा यदि मै अनुगृहीत हूँ, तो आप सूर्य के उस महान् सेवा विधान का उपदेश मुझे अवश्य प्रदान करें। हे भगवन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं उस अनंत, एवं दुष्टों तथा संदेहों के नाशक सूर्य देव की आराधना करना चाहता हूँ, जिससे आपकी प्रसन्नता वश प्राप्त सूर्य की कृपा द्वारा मैं अत्यन्त पराक्रमी हो जाऊँ।१६-१७

ब्रह्मा बोले—हे विष्णो ! अव्यक्तजन्मा उस देव की आराधना के लिए तुम्हारे मनमें जिस समय निश्चय हुआ है उसी समय तुम (उनसे) अनुगृहीत हो चुके।१८। हे अच्युत ! इसलिए यदि देवपति एवं अनादि भगवान् सूर्य की आराधना करना चाहते हो, तो सर्वप्रथम वैवस्वत (सूर्य) का आत्मीय बनने के लिए प्रयत्न करो क्योंकि बिना सूर्य का आत्मीय हुए उनका ज्ञान स्तुति एवं दर्शन मूढ़ों की भाँति उसे सम्भव ही नहीं हो सकता है तो उनमें प्रवेश कहाँ से हो सकेगा।१९-२०। क्योंकि उनकी भक्ति की भावना करने पर मनुष्य पवित्र हो जाता है और चित्त भक्ति निमग्न होने पर उसे वैवस्वत (सूर्य का

अनेकजन्मसंसारचिते पापसमुच्चये । नाक्षीणे जायते पुंसां मार्तण्डाभिमुखी मतिः ।।२२
प्रद्वेषं याति मार्तण्डे द्विजान्वेदांश्च निन्दति । यो नरस्तं विजानीयादसुरांशसमुद्भवम् ।।२३
पाषण्डेषु रतिः पुंसां हेतुवादानुकूलता । जायते दम्भमायाम्भः पतितानां दुरात्मनाम् ।।२४
यदा पापक्षयः पुंसां तदा वेदद्विजातिषु । भानौ च यज्ञपुरुषे श्रद्धा भवति नैष्ठिकी ।।२५
यदा स्वल्पावशेषस्तु नराणां पापसञ्चयः । तदा भोजकविप्रेषु भानौ पूजां प्रकुर्वते ।।२६
भ्रमतामत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे । करावलम्बनो ह्येको भक्तिप्रीतो दिवाकरः ।।२७
स त्वं वैवस्वतो भूत्वा सर्वपापहरं हरिम् । आराधय समं भक्त्या प्रीतिमभ्येति भास्करः ।।२८

विष्णुरुवाच

किं लक्षणा भवन्त्येते ना वैवस्वता गुणैः । यच्च वैवस्वतं कार्यं तन्मे कथय कञ्जज ।।२९

ब्रह्मोवाच

कर्मणा मनसा वाचा प्राणिनं यो न हिंसकः । भावभक्तश्च मार्तण्ड कृष्ण वैवस्वतो हि सः ।।३०
यो भोजकद्विजान्देवान्नित्यमेव नमस्यति । न च भोक्ता परस्वादेर्विष्णो वैवस्वतो हि सः ।।३१
सर्वान्देवान्रविं वेत्ति सर्वांल्लोकांश्च भास्करम् । तेभ्यश्चानन्यमात्मानं कृष्ण वैवस्वतो हि सः ।।३२

आत्मीय) कहा जाता है । इसी प्रकार वह सूर्य में प्रवेश कर पाता है ।२१। इसलिए अनेक जन्मों द्वारा संसार में पापसमूह के संचित हो जाने पर जब तक उसका नाश नहीं होता है तब तक मनुष्यों की बुद्धि सूर्याभिमुखी (उनकी पूजा करने वाली) नहीं होती है ।२२। उसी भाँति जो मनुष्य उन्हें असुर, अंश से उत्पन्न मानता है, वह सूर्य से महान् द्वेष रखता है एवं ब्राह्मण और वेदों की निन्दा करता है ।२३। क्योंकि दम्भ रूपी माया जाल में डूबे हुए मनुष्यों की अनुरक्ति पाखण्डों में इसलिए हो जाती है कि उससे उन्हें अनुकूल तर्क वाद-विवाद में सहायता प्राप्त होती है ।२४। इस प्रकार पापों के नाश हो जाने पर वेद, द्विज एवं यज्ञपुरुष सूर्य में उन पुरुषों की नैष्ठिकी श्रद्धा उत्पन्न होती है ।२५। मनुष्यों के संचित पापों में से कुछ ही शेष रह जाने पर तभी से वह भोजक ब्राह्मणों एवं सूर्य की आराधना आरम्भ कर देता है ।२६। क्योंकि इस कर्म रूपी दुर्गम संसार में घूमते हुए मनुष्यों के करावलम्बन (हाथ पकड़ा कर सहारा देने वाले) भक्ति द्वारा प्रसन्न किये गये एक मात्र सूर्य ही हैं ।२७। इसलिए तुम वैवस्वत बन कर समस्त पाप नाशक सूर्य की आराधना अवश्य करो क्योंक भक्ति करने के साथ ही सूर्य भी प्रसन्न हो जाते हैं ।२८

विष्णु ने कहा—हे कंजज (कमलोद्भव) ! वैवस्वत पुरुषों के क्या लक्षण हैं उनमें किस गुण की विशेषता रहती है उनके वैवस्वत कार्य भी मुझे बताने की कृपा करें ।२९

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! जो मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, और सूर्य के लिए भाव-भक्ति रखता है, उसे वैवस्वत कहा गया है ।३०। हे विष्णो ! उसी भाँति जो भोजक ब्राह्मण तथा देवताओं को नित्य नमस्कार करते हुए दूसरे की वस्तुओं का स्वाद नहीं लेता है (पराये धन या स्त्री का अपहरण नहीं करता है) वह वैवस्वत कहा जाता है ।३१। एवं जो व्यक्ति सभी देवताओं को सूर्य जानता है और सभी लोकों को भी भास्कर के रूप में देखते हुए अपने को उन लोगों को अनन्य मानता

देवं मनुष्यमन्यं वा पशुपक्षिपिपीलिकम् । तरुपाषाणकाष्ठादिभूम्यम्भोधिं दिवं तथा ॥३३
आत्मानं चापि देवशाद्व्यतिरिक्तं दिवाकरात् । यो न जानाति तं विद्यात्कृष्ण वैवस्वतं नरम् ॥३४
सर्वो वैवस्वतो भागो यद्भूतं यद्व्यवस्थितम् । इति वै यो विजानाति स तु वैवस्वतोनरः ॥३५
भवभीतिं हरत्येष भक्तिभावेन भावितः । विवस्वानिति भावो यः स तु वैवस्वतो नरः ॥३६
भावं न कुरुते यस्तु सर्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा स च वैवस्वतो नरः ॥३७
बाह्यार्थनिरपेक्षो यः क्रियां भक्त्या विवस्वतः । भावेन निष्पादयति ज्ञेयो वैवस्वतो हि सः ॥३८
नारयो यस्य न स्निग्धा न भेदाधीनवृत्तयः । वीक्षते सर्वमेवेदं भानुं वैवस्वतो हि सः ॥३९
सुतप्तेनेह तपसा यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः । तां गतिं न नरा यन्ति यां तु वैवस्वतो गतः ॥४०
येन सर्वात्मना भिनौ भक्त्या भावो निवेशितः । देवश्रेष्ठ कृतार्थत्वाच्छ्लाध्यो वैवस्वतो हि सः ॥४१
अपि नः स कुले धन्यो जायेत कुलपावनः । भास्करं भक्तिभावेन यस्तु वै पूजयिष्यति ॥४२
यः कारयति देवार्चां हृदयालम्बिनीं रवेः । स नरोऽर्कमवाप्नोति धर्मध्वजमनौपमम् ॥४३
यश्च देवालयं भक्त्या भानोः कारयते स्थिरम् । स सप्त पुरुषाँल्लोकान्भानोर्नयति मानवः ॥४४
यावन्तोब्दान्हि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मंदिरे । तावद्वर्षसहस्राणि पुष्पोत्तरगृहे वसेत् ॥४५
देवार्चालक्षणोपेतो यद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं च मनो यस्य स यात्यक्षरसाम्यताम् ॥४६

है वह वैवस्वत कहा जाता है ।३२। हे कृष्ण ! इस प्रकार जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटी, वृक्ष, पाषाण, काष्ठादि, सागर, आकाश, एवं स्वयं अपने को भी देवेश दिवाकर से अतिरिक्त नहीं जानता है उस पुरुष को वैवस्वत जानना चाहिए ।३३-३४। तथा भूत और व्यवस्थित (वर्तमान) सभी भाग वैवस्वत हैं, ऐसा जो जानता है वह वैवस्वत पुरुष कहा जाता है ।३५। भक्ति भावना से पूजित होने पर यह सूर्य संसार (जन्म-मरण) रूपी भय का अपहरण कर लेते हैं, इस प्रकार का भाव जिसमें सदैव रहता है वह मनुष्य वैवस्वत कहलाता है ।३६। जो लोग मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा समस्त प्राणियों में पाप की भावना नहीं करते हैं वैवस्वत पुरुष हैं ।३७। सूर्य के लिए बाहरी विषयों में निरपेक्ष रहकर जो भक्ति पूर्वक केवल सद्भावना द्वारा ही उनकी आराधना के लिए सतत क्रियाशील रहता है, उसे वैवस्वत जानना चाहिए ।३८। एवं जिसके कोई शत्रु या प्रिय न हों तथा उसके अन्तःकरण में भेदभाव न हो एवं समस्त (विश्व) को भानुमय देखे तो वह प्राणी वैवस्वत है ।३९। क्योंकि जिस गति को वैवस्वत प्राप्त करता है वह गति तपस्या तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञों द्वारा मनुष्यों को कभी नहीं प्राप्त होसकती है । हे देवश्रेष्ठ इसीलिए जो भक्ति पूर्वक अपने को सर्वात्मना सूर्य में निहित कर दिया है वही कृतार्थ होने के कारण प्रशस्त वैवस्वत है ।४०-४१। इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक सद्भावना द्वारा भास्कर की पूजा करेगा या करायेगा वह हमारे कुल में धन्य एवं कुल पवित्र करने वाला होगा ।४२। जो सूर्य की हृदयालम्बिनी (शारीरिक) पूजा करता है उसे धर्म ध्वज एवं अनुपम सूर्य की प्राप्ति होती है ।४३। जो भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए दृढ़ मन्दिर का निर्माण कराता है वह मनुष्य अपने सात पीढ़ियों को सूर्य के लोकों की प्राप्ति कराता है ।४४। और उस मन्दिर में जितने वर्षों तक (सूर्य देव की) पूजा होती रहेगी उतने सहस्र वर्ष पुष्पक से भी श्रेष्ठ मन्दिर में उसका निवास होगा ।४५। इसलिए जिस घर में विधान पूर्वक सूर्य की पूजा निरन्तर होती रहती है, तथा पूजा करने वाले का मन कामनाशून्य रहता है उसे अविनाशी (सूर्य) की

पुष्पाण्यतिसुगंधीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति जगन्नाथे सप्ताश्वे ज्योतिषां पतौ ।।
स याति परमं स्थानं यत्र ज्योतिः सनातनम् ।।४७
यस्य यस्य विहीनो यो देशो यद्वर्जितं च यत् । धूपांश्च विविधांस्तांस्तान्गंधाढ्यं सुविलेपनम् ।।४८
दीपवर्त्युपहारांश्च यच्चाभीष्टमथात्मनः । नरः सोनुदिनं यज्ञान्करोत्याराधनाद्रवेः ।।४९
यज्ञेशो भगवान्भानुर्मखैरपि स तोष्यते । बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः ।।
संप्राप्यन्ते धनयुतैर्मनुष्यैर्नाल्पसंचयैः ।।५०
भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वांकुरैरपि । रविर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ।।५१
यानि पुष्पाणि हृद्यानि धूपगन्धानुलेपनम् । दयितं भूषणं यच्च तथा रक्ते च वाससी ।।५२
यानि चाभ्यवहार्याणि भक्ष्याणि च फलानि च । प्रयच्छ तानि मार्तण्ड भवेयाश्चैव तन्मनाः ।।५३
आद्यं तं यज्ञपुरुषं यथा भक्त्या प्रसादय । आराध्य याति तं देव यत्तद्ब्रह्म परं स्मृतम् ।।५४
पुण्यैस्तीर्थोदकैः पुष्पैर्मधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्देवमच्युतं जगतां पतिम् ।।५५
दधिक्षीरह्रदान्पुण्यांस्ततो लोकान्मधुच्युतः । प्रयास्यसि यदुश्रेष्ठ निर्वृतिं चापि ऐश्वरीम् ।।५६
स्तोत्रैर्हृद्यैर्यथा वाद्यैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । मनसश्चैकतायोगादाराधय दिवाकरम् ।।५७
आराध्यं तं महादेवो महच्छब्दमवाप्तवान् ।।५८
अहं चापि समस्तानां लोकानां सृष्टिकारकः । तमाराध्य विवस्वन्तं तत्प्रसादाज्जनार्दन ।।५९

समानता प्राप्त होती है ।४६। जगन्नाथ एवं सात घोड़े वाले उस ज्योतिष्पति (सूर्य) के लिए जो अत्यन्त सुगन्धित तथा सुन्दर पुष्पों को समर्पित करता है, उसे सनातन (नित्य) ज्योति (ब्रह्म) के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।४७। इस प्रकार भाँति-भाँति के धूप, अत्यन्त सुगन्धित चन्दन दीपक की बत्ती और उपहार एवं अन्य आत्म प्रिय वस्तुओं द्वारा जो सूर्य की आराधना करता है, वह प्रतिदिन यज्ञ ही करता है ऐसा जानना चाहिए ।४८-४९। यद्यपि यज्ञेश एवं भगवान् सूर्य यज्ञों द्वारा भी प्रसन्न किये जाते हैं पर, यज्ञ के साधन अधिक संख्या में होते हैं और भाँति-भाँति के संभार द्वारा उसका आकार-प्रकार विस्तृत होता है, इसीलिए इसे केवल धनवान ही सुसम्पन्न कर सकते हैं न कि अल्प संचित व्यक्ति भी ।५०। भक्ति पूर्वक केवल दुर्वाङ्कुर द्वारा ही मनुष्यों से पूजित होने पर सूर्य उसे समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले अत्यन्त दुर्लभ-फल प्रदान करते हैं ।५१। अतः यथाशक्ति संचित किये गये मनोहर पुष्पों धूप सुगन्धित अनुलेपन सुन्दर आभूषण, लाल रङ्ग के दो वस्त्र, तथा उत्तम भक्ष्य फलों को सूर्य के लिए अर्पित करते हुए तुम उनमें सदैव तल्लीन रहो ।५२-५३। सर्व प्रथम अपनी भक्ति द्वारा उस यज्ञ पुरुष (सूर्य) को प्रसन्न करो क्योंकि उसी देवता की आराधना करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।५४। इसीलिए पुण्य तीर्थों के जल, पुष्प, शहद, घी एवं दूध द्वारा जगत्पति तथा अच्युत सूर्य देव को स्नान कराना चाहिए ।५५। हे यदुश्रेष्ठ ! इससे दही, दूध के सरोवर एवं मधु एवं (शहद चूने वाले) उन पुण्य लोकों की प्राप्ति के साथ साथ तुम ईश्वरीय शान्ति भी प्राप्त करोगे ।५६। इसलिए हृदयग्राही स्तोत्रों वाद्यों एवं ब्राह्मणों की प्रसन्नता द्वारा एकाग्र चित्त होकर दिवाकर की आराधना अवश्य करो ।५७। क्योंकि उन्हीं की आराधना करके शिव ने महत्ता प्राप्त की है जिससे वे महादेव कहे जाते हैं और उन्हीं विवस्वान् की आराधना करके उनकी प्रसन्नतावश मैं लोकों का सृष्टिकर्ता हुआ हूँ ।५८-५९। हे हृषीकेष ! इसी प्रकार तुम भी इनकी कृपा

त्वमप्येतं हृषीकेश तत्प्रसादान्न संशयः । समर्थो देवशत्रूणां दैत्यानां नाशने सदा ॥६०
दक्षिणः किरणस्तस्य यो देवस्य विवस्वतः । अहं तस्मात्समुत्पन्नो वेदवेदाङ्गसम्मितः ॥६१
वामो यः किरणः कृष्ण रश्मिमालाकुलः सदा । तस्मादीशः समुत्पन्नः पार्वतीदयितोऽच्युत ॥६२
वक्षसस्त्वं समुत्पन्नः शंखचक्रगदाधरः । तथाम्बुजकरा देवी अम्बुजाननवल्लभा ॥६३
तमाराध्य बलं कीर्तिं श्रियं चावाप्तवानहम् । तथा त्वमपि राजेन्द्र तमाराध्य दिवाकरम् ॥
यान्यानिच्छसि कामांस्त्वं तांस्तान्सर्वानवाप्स्यसि ॥६४
य इदं शृणुयान्नित्यं संवादं विधिकृष्णयोः । सोऽपि कामनवाप्याग्र्यांस्ततो लोकमवाप्नुयात् ॥६५
रौप्यकं यानमारूढो युक्तं कुञ्जरवाजिभिः । तेजसाम्बुजसंकाशः प्रभयाण्डज सन्निभः ॥६६
कान्त्या चंद्रसमो राजन्वृन्दारकगणैर्वृतः । गन्धर्वैर्गीयमानस्तु तथा चाप्सरसां गणैः ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यपूजावर्णनं नाम
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२०।

द्वारा उन समस्त देवशत्रु दैत्यों के नाश करने के लिए सदैव समर्थ होगे इसमें संदेह नहीं ।६०। सूर्य देव की दक्षिण वाली किरण द्वारा वेद-वेदाङ्ग समेत मैं उत्पन्न हुआ हूँ ।६१। हे कृष्ण ! उसी भाँति उनकी रश्मि रूपी माला धारण किये जो बाईं किरण है, उससे पार्वती प्रिय ईश (शिव) उत्पन्न हुए हैं ।६२। और उनके वक्षःस्थल द्वारा शंख, चक्र एवं गदा धारण किये तुम तथा कमल के समान नेत्रवाली वह तुम्हारी वल्लभा लक्ष्मी, देवी हाथों में कमल लिए उत्पन्न हुई हैं ।६३। हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार उन्हीं की आराधना करके मैंने बल कीर्ति, एवं भक्ति की प्राप्ति की है उसी प्रकार तुम भी उन दिवाकर की आराधना द्वारा अपनी भाँति भाँति की समस्त कामनाएँ प्राप्त करोगे ।६४

इस प्रकार ब्रह्मा और कृष्ण के इस संवाद का जो नित्य श्रवण करेगा, उसको भी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक उत्तम लोक की प्राप्ति होगी ।६५। और इसी से वह ऐसे रजत विमान पर बैठकर उत्तम लोक की याचना करेगा जिसमें हाथी-घोड़े जुते हों और उस समय के समान मनोरम, अण्डज (सूर्य) के समान प्रभा एवं चन्द्र के समान कांति उसे प्राप्ति होगी तथा देवताओं के साथ गन्धर्व गण एवं अप्सराएँ अपने नृत्य-गान द्वारा उसे प्रसन्न करती रहेगीं ।६६-६७।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यपूजा वर्णन नामक
एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२०।

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वकर्मकृतसूर्यतेजः शातनवर्णनम्

शतानीक उवाच

शरीरलेखनं[1] भानोरुक्तं संक्षेपतस्त्वया । विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥१

सुमन्तुरुवाच

पितुर्गृहं तु यातायां संज्ञायां कुरुनंदन । भास्करश्चिंतयामास संज्ञा मद्रूपकारिणी ॥२
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा तत्रागत्य दिवाकरम् । अब्रवीन्मधुरां वाचं रवेः प्रीतिकरां शुभाम् ॥३
आदिदेवोऽसि देवानां व्याप्तमेतत्त्वया जगत् । श्वशुरो विश्वकर्मा ते रूपं निर्वर्तयिष्यति ॥४
एवमुक्त्वा रविं ब्रह्मा विश्वकर्माणमब्रवीत् । निर्वर्तस्व मार्तण्डं स्वरूपं तत्सुशोभनम् ॥५
ततो ब्रह्मसमादेशाद्भूमिमारोप्य भास्करम् । रूपं निर्वर्तयामास विश्वकर्मा शनैःशनैः ॥६
ततस्तुष्टाव तं ब्रह्मा सर्वदेवगणैः सह । गुह्यैर्नानाविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥७
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ धर्मवर्षहिमाकर । शांतिस्ते सर्वलोकानां देवदेव दिवाकर ॥८
ततो रुद्रश्च विष्ण्वाद्याः स्तुवंतस्तं दिवाकरम् । तेजस्ते वर्धतां देव लिख्यतेऽपि दिवस्पते ॥९

अध्याय १२१

विश्वकर्माकृत तेजःशातनविधि का वर्णन

शतानीक ने कहा—हे सुव्रत ! आपने सूर्य के शरीर का लेखन (खरादना) संक्षेप में सुनाया था, मुझे उसे विस्तार पूर्वक सुनने की इच्छा है, इसलिए आप अवश्य सुनाने की कृपा करें ।१

सुमन्तु बोले— हे कुरुनन्दन ! संज्ञा के अपने पिताके घर जाने के बाद सूर्य चिन्तित हुए कि संज्ञा मेरे (मनोहर) रूप के लिए इच्छुक हैं ।२। उसी समय वहाँ आकर ब्रह्मा ने सूर्य से उस मधुरवाणी द्वारा कहा जो उन्हें शुभ एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली थी । (तुम) देवताओं के आदि देव हो, तथा तुम्हीं इस समस्त जगत् में व्याप्त हो । अतः तुम्हारे श्वसुर विश्वकर्मा तुम्हारे (मनोहर) रूप अवश्य बना देंगे ।३-४। इस प्रकार ब्रह्मा ने सूर्य से कहकर विश्वकर्मा से कहा—मार्तंड का सुलक्षण सम्पन्न एवं सौन्दर्य पूर्ण रूप बनाओ ।५। पश्चात् ब्रह्मा के आदेशानुसार विश्वकर्मा ने भास्कर को भूमि पर स्थित कर धीरे-धीरे उनका सुन्दर रूप बना दिया ।६। तदुपरांत वे वेदाङ्ग निष्णात उन समस्त देवगणों समेत ब्रह्मा ने भाँति-भाँति के गुह्य (रहस्यमय) श्रोतों द्वारा उनकी स्तुति भी की ।७। हे जगन्नाथ, धर्मवर्षी, एवं हिमाकर, तुम्हारा कल्याण हो, समस्त लोकों के देवाधिदेव ! तुम्हें शांति प्राप्त हो ।८। इसके पश्चात् रुद्र तथा विष्णु आदि देवताओं ने भी उन दिवाकर की स्तुति की कि हे देव ! हे दिवस्पते !

---

१. शरीरलेखनं सूर्ये कतं वै प्रतिपादितम् । दैवतैर्ऋषिभिर्वापि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।

इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानमथास्तुवत् । जय देव जयस्वेति तत्त्वदोऽसि जगत्पते ॥१०
ऋषयस्तु ततः सप्त विश्वामित्रपुरोगमाः । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥११
वेदोक्ताभिरथाशीर्भिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः । त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनामपि ॥१२
त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्रजाभ्यश्चैव देवेश शं नोऽस्तु जगतः पते ॥१३
त्वत्तो भवति वै नित्यं जगत्संलीयते त्वयि । त्वमेकस्त्वं द्विधा चैव त्रिधा च त्वं न संशयः ॥१४
त्वयैकेन जगत्सृष्टं त्वयैकेन प्रबोधितम् । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥१५
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् । ऊचुरेवंविधा वाचो मनः श्रोत्रसुखप्रदाः ॥१६
सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ! हाहा हूहूस्ततश्चैव तुम्बुरुर्नारदस्तथा ॥१७
उपगातुं समारब्धा गामुच्चैः कुशला रविम् । षड्जमध्यमगांधारग्रामत्रयविशारदाः ॥१८
मूर्च्छनाभिस्ततश्चैव तथा धैवतपञ्चमैः । नानानुभावमन्द्रैश्च अर्धमन्द्रैस्तथैव च ॥१९
त्रिसाधनैः प्रकारैस्तु वाद्यतालसमन्वितैः । विश्वाची च घृताची च उर्वशी च तिलोत्तमा ॥२०
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा । हावभावविलासैश्च कुर्वत्योऽभिनयान्बहून् ॥२१
ततोऽतीव कलं गेयं मधुरं च प्रवर्तते । सर्वेषां देवसंघानां मनः श्रोत्रसुखप्रदम् ॥२२

खरादने पर भी तुम्हारे तेज की वृद्धि हो ।९। इन्द्र ने भी आकर खरादे जाने वाले उस सूर्य की प्रार्थना की कि हे देव ! आपकी जय हो, जय हो, ! हे जगत्पते ! आप तत्त्व के प्रदाता हैं ।१०। पश्चात् विश्वामित्र को सामने कर सप्तऋषियों ने स्वस्ति (कल्याण) हो, स्वस्ति हो, कहते हुए भाँति-भाँति के स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति की ।११। तदुपरांत वेदोक्त आशीर्वाद प्रदान करते हुए बालखिल्य लोगों ने उनकी स्तुति की । हे नाथ ! तूं मोक्षेच्छुकों के लिए मोक्ष तथा ध्यान करने वालों के लिए ध्येय हो सभी प्राणियों का प्राप्ति स्थान तुम्हीं हो और तुम्ही में सब स्थित भी हैं अतः हे देवेश, हे जगत्पते ! हम प्रजाओं के लिए आप कल्याण प्रदान करें ।१२-१३। यह समस्त विश्व आप से ही उत्पन्न होता है तथा आप में ही इसका लय भी होता है । इस प्रकार आप एक होते हुए भी निश्चित दो और तीन प्रकार के रूप धारण करते हैं ।१४। इसलिए तुम्हीं एकाकी ने इस जगत् की सृष्टिकी है और इसे चेतनता भी प्रदान की है । इसके पश्चात् विद्याधर गण, यक्ष, राक्षस एवं पन्नग, ये सभी लोग हाथ जोड़कर शिर से सूर्य को प्रणाम करते हुए मन और श्रवण को सुख प्रदान करने वाली वाणी बोले ।१५-१६

हे भूत-भावन ! आप का तेज प्राणियों को सहन हो अर्थात् उन्हें क्षमता प्रदान करें। तदुपरान्त गायन में निपुण हाहा, हूहू, तुम्बुरु और नारद ने सूर्य के लिए ऊँचे स्वर से गायन आरम्भ किया षड्ज, मध्यम, और गांधार तथा तीनों ग्रामों के ये लोग निष्णात विद्वान् हैं ।१७-१८। इसलिए इनके द्वारा एवं मूर्च्छना, धैवत, पंचम, भाँति-भाँति के अनुभव पूर्वक मंद्र तथा अर्धमंद्र इन स्वरों और तीन प्रकार के साधनों एवं वाद्य तालों द्वारा गायन होने लगा । विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या एवं अप्सराओं में उत्तम रम्भा इन अप्सराओं ने अपने हाव, भाव तथा विलास प्रकट करते हुए भाँति-भाँति के अभिनय दिखाये ।१९-२१। पश्चात् सभी देवताओं का अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर गायन आरम्भ हुआ, जो

प्रवाद्यं तु ततस्तत्र वीणावंशादि सुव्रत । पण्वाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहास्तथा ।।२३
देवदुन्दुभयः शंखाः शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्भिश्चैव गन्धर्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ।।२४
तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततः कृतैः करपुटैः पद्मकुड्मलसन्निभैः ।।२५
ललाटोपरि विन्यस्तैः प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन्सर्वदेवसमागमे ।।२६
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ।।२७

इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोन्ते ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे विश्वकर्मकृतसूर्यतेजः शातनं नामैकविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ।१२१।

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्तववर्णनम्

शतानीक उवाच

तस्मिन्काले समारूढो लिख्यमानो दिवस्पतिः । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवैर्यथा वै तद्वदस्व मे ।।१

मन एवं श्रवण को अत्यन्त सुख प्रदान कर रहा था ।२२। हे सुव्रत ! उस नृत्य में वीणा वंशी आदि कोमल तान वाले पणव, पुष्कर, मृदङ्ग एवं पटह आदि गम्भीर स्वर वाले वाद्य बज रहे थे ।२३। कहीं देवों की दुंदुभियाँ (नगाड़े) और उसी प्रकार सैकड़ों हजारों शंख भी बज रहे थे । इस प्रकार गंधर्वों के गायन अप्सरागणों के नृत्यों एवं तूर्य (तुरुही) आदि वाद्यों द्वारा सभी स्थानों में कोलाहल (पूर्णतः) (शोर) सा प्रतीत होने लगा । इसके उपरांत मुकुलित कमल की भाँति अञ्जलि बाँधकर उसे मस्तक से लगाते हुए सभी देवताओं ने (उन्हें) प्रणाम किया। अनन्तर समस्त देवताओं के समागम रूप कोलाहल (शोर) में ही विश्वकर्मा ने उनके तेज का धीरे धीरे शातन (खरादकर ठीक) किया।२४-२७। इस प्रकार हिम जल (बर्फ), धूप एवं समय विभाग के हेतु भूत उस सूर्य के जो ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा संस्तुत होते रहते हैं लेखन (शरीर के खराद जाने) की कथा को सुनने से दिवाकर लोक की प्राप्ति होती है।२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में विश्वकर्मा कृत सूर्य तेजशातन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२१।

अध्याय १२२

आदित्यस्तव विधि का वर्णन

शतानीक ने कहा—उस समय जब कि सूर्य के शरीर का लेखन (खरादना रूप कार्य) हो रहा था, ब्रह्मा आदि देवताओं ने उनकी जिस भाँति स्तुति की है, उसे मुझे बताने की कृपा करें ।१

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वैकमना राजन्यथा देवो दिवस्पतिः । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवैर्ऋषिभिश्च पुराऽनघ ॥२

प्रयत्नतः प्रणतहितानुकम्पिने स्वरूपतो लोकविभाविने नमः ।
दिवस्पते कमलकुलावबोधिने नमस्तमः पटलपटावपायिने ॥३
पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविभवप्रदायिने ।
भासुरामलमयूखमालिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ॥४
अजाय लोकत्रयभावनाय भूतात्मने गोपतये प्रियाय ।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय लोकत्रयभावनाय ॥५
विवस्वते ज्ञानकृतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥६

निजो दयार्थं सुरगणमौलिमणे जगता त्वं महितस्त्वमुरुमयूखसहस्रतपाः ।
जगति विभो वतमसतुव वनतिमिरासवपावन मदाद्भवति विलोहितदिग्रहतातिमिरदिनाशिनमुग्रं
सुतरां त्रिभुवनभाप्रकरैः ॥७
रथामारुह्य[1] समामयं भ्रमसि सदा जगतो हितदः ॥८

सुमन्तु बोले—हे अनघ राजन् ! पहले समय में ब्रह्मादि देवों एवं ऋषियों ने सूर्य देव की जिस भाँति स्तुति की थी, मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।२। प्राणियों के प्रयत्न पूर्वक नमस्कार करने पर उनके हित के लिए अनुकम्पा करने वाले, एवं स्वरूप से लोकों को उत्पन्न करने वाले हे दिवस्पते ! आप को नमस्कार है, तथा कमल समूह को विकसित करने वाले और अन्धकार समूह रूप वस्त्र को विदीर्ण करने वाले आप को नमस्कार है ।३। अतिशय पवित्र एवं पुण्य कर्म वाले, एक कामना ही नहीं अपितु विभव (ऐश्वर्य) के भी प्रदान करने वाले तथा भास्वर और अमल (स्वच्छ) किरणों की माला धारण करने वाले एवं समस्त लोकों के हितैषी (आप) को नमस्कार है ।४। अजन्मा, तीनों लोकों के अभिभावक, भूतात्मा, गोपति, प्रिय, महान् एवं श्रेष्ठ कारुणिक सूर्य के लिए नमस्कार है ।५। विवस्वान् अंतरात्मा को ज्ञान प्रदान करने वाले, जगत् की प्रतिष्ठा एवं हित करने वाले स्वयम्भू समस्त लोकों के नेत्र, देवश्रेष्ठ, एवं अमित तेज वाले को नमस्कार है ।६। हे सुरगणमौलिमणे (देवताओं के शिर के मणिरूप) ! अपने अभ्युदय के लिए संसार ने तुम्हारी पूजा की है तुम अपने सहस्र किरणों रूपी उरु से स्थित होकर सदैव तप करते हो । हे विभो ! जगत् के अन्धकार के नाशक, वन के तिमिर आसन को पवित्र करने वाले मद के नाते ही आपकी शरीर अत्यन्त रक्तवर्ण की हो जाती है । त्रिभुवन के प्रकाश समूह रूप आप के द्वारा समस्त लोकों का अन्धकार नष्ट होता है इस प्रकार उग्र रूप तुम्हें नमस्कार है ।७। रथ पर बैठकर वर्षमय होकर सदैव भ्रमण किया करते हो और जगत् के हितैषी हो ।८। हे

---

१. अर्द्धमेवोपलभ्यते ।

इत्येवं संस्तुतो देवो भास्करो वेधसा पुरा । दैवतैश्च महाबाहो शिवविष्ण्वादिभिर्नृप ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यस्तवो नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२२।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

परिलेखवर्णनम्

शतानीक उवाच

भूयोऽपि कथयस्वेमां कथां सूर्यसमाश्रिताम् । न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वन्नेतां कथां मुने ॥१

सुमन्तुरुवाच

भास्करस्य कथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् । वक्ष्यामि कथितां पूर्वं ब्रह्मणः लोककर्तृणा[1] ॥२

ऋषयः परिपृच्छन्ति ब्रह्मलोके पितामहम् । तापिताः सूर्यकिरणैस्तेजसा सम्प्रमोहिताः ॥३

ऋषय ऊचुः

कोऽयं दीप्तो महातेजा हवीराशिसमप्रभः । एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥४

महाबाहो ! इसी भाँति पहले समय में व्रह्मा ने सूर्य देव की स्तुति की थी, हे नृप ! उसी भाँति देवताओं, शिव एवं विष्णु ने भी आराधना की थी ।९

श्री भविष्य महापुराण में व्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यस्तव नामक एक सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२२।

अध्याय १२३

परिलेखन वर्णन

शतानीक ने कहा—हे मुने ! इस सूर्य सम्बन्धी कथा को फिर से सुनाने की कृपा करें क्योंकि इस कथा को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।१

सुमन्तु बोले—भास्कर की पुण्य एवं समस्त पापों के नाश करने वाली कथा को जिसे लोक के कर्ता व्रह्मा ने पहले कहा था, मैं कह रहा हूँ सुनो ! ।२। एकबार व्रह्म लोक में जाकर ऋषियों ने जो सूर्य की किरणों से संतप्त एवं उनके तेज से मूर्च्छित से हो रहे थे, पितामह से पूँछा ।३

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो ! दीप्त, महातेजस्वी एवं (पायस) खीर की भाँति उज्ज्वल प्रभा पूर्ण यह कौन है, मैं जानना चाहता हूँ तथा यह भी कि इसे इस प्रकार का प्रभाव कहाँ से प्राप्त हुआ है ।४

---

१. आर्षो नाभावः ।

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे । प्रवृत्ते गुणहेतुत्वे पूर्वं बुद्धिरजायत ।।५
अहंकारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्तकः । वाय्वग्निरापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ।।६
तस्मिन्नण्ड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः । पृथ्वी च सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चापि सप्तभिः ।।७
तत्रैवावस्थितो ह्यासमहं विष्णुर्महेश्वरः । प्रमूढास्तमसा सर्वे प्रध्याता ईश्वरं परम् ।।८
ततो भिद्य महातेजः प्रादुर्भूतं तमोनुदम् । ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातं सवितुस्तथा ।।९
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक्पृथक् । दिव्याभिः स्तुतिभिर्देवं संस्तोतुमुपचक्रमुः ।।१०
आदिदेवोऽसि देवानामीश्वराणां त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेव सनातन ।।११
जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्वरक्षसाम् । मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ।।१२
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान्वरुणस्तथा ।।१३
त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता त्राता प्रभुस्तथा । सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रिधनूंषि च ।।
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।।१४
ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः । शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर ।।१५
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः । सहस्रांशुस्त्वं तु देव सहस्रकिरणस्तथा ।।१६
भूरादिर्भूर्भुवः स्वश्च महर्जनस्तपस्तथा । प्रदीप्तं दीप्तिमन्नित्यं सर्वलोकप्रकाशकम्।।

ब्रह्मा बोले—तमोमय (अन्धकारमय) लोकों में स्थावर एवं जंगम रूप सृष्टि के नाश (प्रलय) होने के उपरांत गुण-हेतु के प्रवृत्ति काल में सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है ।५। और उससे महाभूतों का प्रवर्तक अहंकार उत्पन्न होता है । इस प्रकार वायु, अग्नि, जल, आकाश, तथा भूमि के उत्पन्न होने के उपरांत एक अंडा पैदा हुआ ।६। उसी अण्डें में इन सातों लोकों की स्थिति थी, तथा सातों द्वीप एवं सातों समुद्र समेत पृथिवी की भी ।७। उसी भाँति उसी में मैं विष्णु तथा महेश्वर भी स्थित थे पश्चात् तमोगुण अन्धकार में विमूढ़ होकर सभी लोक उस महान् ईश्वर का ध्यान करने लगे ।८। तदुपरांत उस अण्डे का भेदन करके सूर्य का अन्धकार नाशक महातेज उत्पन्न हुआ जिसे ध्यान योग द्वारा हमीं लोगों ने जाना । पश्चात् उस परमात्मा को जान कर सभी लोग पृथक्-पृथक् दिव्य स्तुतियों द्वारा उस देव की स्तुति करना आरम्भ किये ।९-१०। हे देवाधिदेव ! हे सनातन ! तुम देवताओं के आदि देव, ईश्वरों के ईश्वर, तथा प्राणियों आदि के रचयिता हो ।११। सभी जीवों, देव, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, सिद्ध, सर्प एवं पक्षियों आदि सभी के जीवन हो ।१२। ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान्, तथा वरुण रूप तुम्हीं हो ।१३। तुम्हीं काल, सृष्टिकर्ता, हर्ता, त्राता, एवं प्रभु हो उसी प्रकार सरित (नदियाँ), सागर, पर्वत, विद्युत, इन्द्रधनुष, सभी के प्रलय एवं उत्पत्ति रूप तथा व्यक्त अव्यक्त सनातन हो ।१४। ईश्वर से श्रेष्ठ विद्या बतायी गयी हैं । उससे उत्तम शिव है तथा शिव के अत्यन्त श्रेष्ठ देव (आप) हैं, अतः तुम्हीं परमेश्वर हो ।१५। चारों ओर तुम्हारे हाथ पैर नेत्र, शिर, एवं मुख विद्यमान हैं, तुम सहस्रांशु हो एवं हे देव ! तुम्हारी सहस्र किरणें हैं ।१६। और भू-लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तथा तपलोक तुम हो । प्रदीप्त नित्य प्रभा पूर्ण समस्त लोकों के प्रकाशक एवं सुरेन्द्रों के लिए भी दुर्निरीक्ष्य तुम्हारे उस

दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१७

सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः । शुभं परममव्यग्रं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१८

पञ्चातीतस्थितं तद्वै दशैकादश एव च । अर्धमासमतिक्रम्य स्थितं तत्सूर्यमण्डले ॥

तस्मै रूपाय ते देव प्रणताः सर्वदेवताः ॥१९

विश्वकृद्विश्वभूतं च विश्वानरसुरार्चितम् । विश्वस्थितमचिंत्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०

परं यज्ञात् परं देवात्परं लोकात्परं दिवः । दुरतिक्रमेति यः ख्यातस्तस्मादपि परं परात् ॥

परमात्मेति विख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१

अविज्ञेयमचिंत्यं च अध्यात्मगतमव्ययम् । अनादिनिधनं देवं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२२

नमोनमः कारणकारणाय नमोनमः पापविनाशनाय ।

नमोनमो वंदितवंदनाय नमोनमो रोगविनाशनाय ॥२३

नमोननमः सर्ववरप्रदाय नमोनमः सर्वबलप्रदाय ।

नमोनमो ज्ञाननिधे सदैव नमोनमः पञ्चदशात्मकाय ॥२४

स्तुतः स भगवानेवं तेजसां रूपमास्थितः । उवाच वाचं कल्याणीं को वरो वः प्रदीयताम् ॥२५

तवातितेजसा रूपं न कश्चित्सहते विभो । सहनीयं भवत्वेतद्धिताय जगतः प्रभो ॥२६

रूप को नमस्कार है ।१७। देव, सिद्ध, गण, भृगु, अत्रि एवं पुलह आदि महर्षि लोग तुम्हारे जिस शुभ, परम एवं प्रिय रूप की प्रेम पूर्वक उपासना करते हैं उसे नमस्कार है ।१८। हे देव ! पंच (पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश) तन्मात्रा, दश इन्द्रियों और ग्यारहवें मन से अगोचर होने तथा अर्धमास[1] का प्रतिक्रमण करके सूर्य मण्डल में स्थित रहने वाले उस रूप को समस्त देवता प्रणाम कर रहे हैं ।१९। विश्वकर्ता, विश्वरूप, वैश्वानर देव द्वारा पूजित, विश्वस्थित, एवं अचिंत्य उस आपके रूप को नमस्कार है ।२०। श्रेष्ठ, यज्ञ, देव, लोक एवं आकाश स्वर्ग से भी जो दुर्धर्ष बताया गया है उससे भी श्रेष्ठ जो परमात्मा के नाम से विख्यात है, तुम्हारे उस रूप को नमस्कार है ।२१। अज्ञेय, अचिंत्य, अध्यात्म, अव्यय एवं आदि अंतहीन देव के उस रूप को नमस्कार है ।२२। कारणों के कारण (मूलावस्था) पापविनाशी, वंदित के वन्दनीय एवं समस्त रोग विनाशक को (आप को) बार-बार नमस्कार है ।२३। समस्त वर प्रदान करने वाले समस्त बल प्रदायक तथा हे ज्ञान निधे ! आप के पंचदशात्मक (अर्थात् पृथिवी आदि पांचों तत्त्व और दश इन्द्रियों के) उस रूप को सदैव नमस्कार है ।२४

इसके अनन्तर तेजस्वी भगवान् सूर्य देव की इस प्रकार स्तुति किये जाने पर उन्होंने कल्याण प्रदान करने वाली वाणी से कहा । आप लोगों को कौन वरदान दिया जावे ।२५

देवों ने कहा—हे विभो ! आप के इस तेजस्वी रूप के सहन करने में कोई भी समर्थ नहीं है अतः हे प्रभो ! जगत् के हित के लिए आप का यह स्वरूप जिस प्रकार सहन करने के योग्य हो इसे वैसा ही करने

---

१. उत्तरायण तथा दक्षिणायन देवों के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष हैं इस प्रकार मानव का एक वर्ष देवोंका एकमास होता है ।

एवमस्त्विति गामुक्त्वा भगवान्सर्वकृत्स्वयम् । लोकानां कार्यसिद्धयर्थं घर्मवर्षाहिमप्रदः ॥२७
अतः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकांक्षिणः । ध्यायन्ति ध्यानिनो नित्यं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥२८
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः । सर्वं तरति वै पापं देवकर्मसमाश्रितः ॥२९
अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । भानोर्भक्त्या नमस्कारकलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३०
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानां च मंङ्गलम् । पवित्रं च पवित्राणां तं प्रपद्ये दिवाकरम् ॥३१
ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवैर्ये प्रपद्यन्ति[1] भास्करम् । निर्मुक्ताः किल्बिषैः सर्वैस्ते यान्ति रविमन्दिरम् ॥३२
उपचर्यादिभिः साध्यो यथा वेदे दिवस्पतिः । लोकानामिह सर्वेषां तथा देवो दिवाकरः ॥३३

शतानीक उवाच

शरीरलेखनं सूर्ये कथं वै प्रतिपादितम् । देवैः सऋषिभिर्वापि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥३४

सुमन्तुरुवाच

ब्रह्मलोके सुखासीनं ब्रह्माणं ते सुरासुराः । ऋषयः समुपागम्य[2] इदमूचुः समाहिताः ॥३५
भगवन्देवतापुत्रो य एष दिवि राजते । तेनान्धकारो निकृत्तः सोऽयं जाज्वलितीति हि ॥३६
अस्य तेजोभिरखिलं जगत्स्थावरजंगमम् । नाशमायाति देवेश यथा क्लिष्टं नदीतटम् ॥३७

की कृपा करें। अनन्तर समस्त सृष्टि के कर्ता भगवान् सूर्य ने स्वयं अपने आपको लोकों के कार्य की सिद्धि के लिए धूप, वर्षा एवं शीत दायक के रूप में परिणत किया।२६-२७। इसीलिए सांख्य योग्य मतावलम्बी प्राणी मोक्ष के इच्छुक एवं ध्यानी लोग नित्य अपने हृदय में स्थित उस दिवाकर का ध्यान करते हैं।२८। क्योंकि समस्त लक्षणों से हीन एवं समस्त पातकों से युक्त होने पर भी सूर्य के आश्रित रहने से उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।२९। अग्निहोत्र, वेद एवं अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों से ये सभी भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए किये गये नमस्कार के सोलहवें अंश के समान भी नहीं होते हैं।३०। अतः तीर्थों के परमतीर्थ, मंगलों के मांगलिक, एवं पवित्रों के पवित्र उस सूर्य की शरण में मैं आया हूँ।३१। क्योंकि ब्रह्मादि देवों द्वारा संस्तुत भास्कर की शरण जिसे प्राप्त होती है, वे सभी पाप मुक्त होकर सूर्य के मन्दिर की प्राप्ति करते हैं।३२। जिस प्रकार उपचर्या (सेवा) आदि द्वारा सूर्य देवताओं के लिए वेद में साध्य बताये गये हैं, उसी भाँति यहाँ लोकों में उनमें रहने वाले मनुष्यों के लिए भी आराधना द्वारा दिवाकर देव साक्ष्य हैं।३३

शतानीक ने कहा—हे सुव्रत! देवता और ऋषियों ने सूर्य के शरीर का लेखन (खराद पर चढ़ाया जाना) किस भाँति बताया आप मुझे उसे बतायें।३४

सुमन्तु बोले—एक समय ब्रह्म लोक में सुख पूर्वक ब्रह्मा बैठे हुए थे वहाँ देव, असुर, एवं ऋषिगण पहुँच कर नम्रतापूर्वक उनसे यह कहे।३५। हे भगवन्! इस देव पुत्र ने जो आकाश में स्थित होकर सुशोभित हो रहा है अपने तेज द्वारा समस्त अन्धकार का नाश कर दिया है क्योंकि वह अत्यन्त प्रज्वलित रूप है।३६। हे देवेश! इतना ही नहीं अपितु उसके तेज द्वारा स्थावर जंगम रूप इस समस्त विश्व का नदी के कठोर तट की भाँति (अल्प समय) में ही नाश हो जायेगा।३७। हम लोग उसी के तेज

---

१. नमस्यंति। २. तम्।

वयं च पीड़िता सर्वे तेजसा तस्य मोहिताः। पद्मश्चायं यथा म्लानो योयं योनिस्तव प्रभो ॥३८
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च शर्म नोपलभामहे। तथा कुरु सुरज्येष्ठ यथातेजः प्रशाम्यति ॥३९
एवमुक्तः स भगवान्पद्मयोनिः प्रजापतिः। उवाच भगवान्ब्रह्मा देवान्विष्णुपुरोगमान्[1] ॥४०
महादेवेन सहिता इन्द्रेण च महात्मना। तमेव शरणं देवं गच्छामः सहिता वयम् ॥४१
ततस्ते सहिताः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः। गत्वा ते शरणं सर्वे भास्करं लोकभास्करम् ॥४२
स्तोतुं प्रचक्रमुः सर्वे भक्तिनम्राः समन्ततः। केशादिदेवताः सर्वा भक्तिभावसमन्विताः ॥४३

ब्रह्मविष्ण्वीशा ऊचुः

नमोनमः सुरवर तिग्मतेजसे नमोनमः सुरवर संस्तुताय वै।
जडान्धमूकान्बधिरान्सकुष्ठान्सश्वित्रिणोन्धान्विविधव्रणावृतान्॥
करोषि तानेव पुनर्नवान्सदा अतो महाकारुणिकाय ते नमः ॥४४
यदौदरं ज्योतिरतित्वरन्महद्यदल्पतेजो यदपीह चक्षुषाम्।
यदत्र यज्ञेष्वपनीतमाहितं तवैव तद्रूपमनेकतः स्थितम् ॥४५
सुरद्विषः सागरतोयवासिनः प्रचण्डपाशासिपरश्वधायुधाः।
समुच्छ्रितास्ते भुवि पापचेतसः प्रयांति नाशं तव देव दर्शनात् ॥४६
यतो भवांस्तीर्थफलं समस्तं यज्ञेषु नित्यं भगवानवस्थितः।

से पीड़ित होकर मूर्च्छित से हो रहे हैं और हे प्रभो! आप का उत्पत्ति स्थान वह कमल भी म्लान हो रहा रहा है।३८। हे सुरश्रेष्ठ! आकाश, पृथ्वी, एवं अन्तरिक्ष में कहीं भी हमें शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है। अतः जिस उपाय द्वारा इस तेज की शांति हो सके आप शीघ्र वही करें।३९

उन लोगों के ऐसा कहने पर कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ने विष्णु प्रमुख आदि उन देवताओं से कहा।४०। महादेव के समेत महात्मा इन्द्र और हम लोग उन्हीं (सूर्य) देव के ही शरण में चलें।४१। पश्चात् ब्रह्मा एवं विष्णु आदि उन समस्त देवगणों ने लोक प्रकाशक उन भगवान् भास्कर के शरण में प्राप्त होकर सर्वथा भक्ति से नम्र होकर प्रेम में मग्न हो उनकी स्तुति करना आरम्भ किया।४२-४३

ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश ने कहा—हे सुरवर! तीक्ष्णतेज वाले आप को नमस्कार है, श्रेष्ठदेवों ने आपकी स्तुति की है अतः हम लोग भी आपको नमस्कार कर रहे हैं और जड़, अन्धे, गूंगे बहिरे, कुष्ठ के रोगी, सफेद कुष्ठ के रोगी एवं भाँति भाँति के व्रण (घाव) वाले को आप सदैव नवीन (सौन्दर्य पूर्ण) रूप प्रदान करते रहते हैं, अतः आप महान् कारुणिक को नमस्कार है।४४। उदर में जठराग्नि, जल में महान वाडवाग्नि प्राणियों की आखों में दिखाई देने वाला अल्पतेज (कनीनिका तारा) तथा यज्ञों में स्थापित अग्नि ये सभी आप के ही भाँति-भाँति के रूपान्तर हैं।४५। हे देव! देवताओं के वे शत्रुगण, जो सागर जल के निवासी, भयंकर पाश, तलवार, एवं फरसा अस्त्रों से सुसज्जित हैं उनका तथा पृथिवी के पापियों का नाश आपके दर्शन मात्र से हो जाता है।४६। आप समस्त तीर्थों के फल स्वरूप हैं यज्ञों में आप नित्य

---

१. वैलक्षमानसान्।

नमोभवन्नत्र विचारणास्ति सदा समः शांतिकरो नराणाम् ॥
यच्चापि लोके तप उच्यते बुधैस्तत्ते महातेज उशंति पण्डिताः ॥४७
स्तुतः स भगवानेवं प्रजापतिमुखैः सुरैः । अवधानं ततश्चक्रे श्रवणाभ्यां महीपते ॥४८
स्तुवन्ति ते ततो भूयः शिवविष्णुपुरोगमाः । कृत्वा मां पुरतः सर्वे भक्तिनम्राःसमन्ततः ॥४९
नमोनमस्त्रिभुवनभूतिदायिने[1] क्रतुक्रियासत्फलसम्प्रदायिने ।
नमोनमः प्रतिदिनकर्मसाक्षिणे सहस्रसंदीधितये नमोनमः ॥५०
प्रसक्तसप्ताश्वयुजे क्षयाय ध्रुवैकरश्मिप्रथिने नमोनमः ।
सवालखिल्याप्सरकिन्नरोरगैः संसिद्धगन्धर्वपिशाचमानुषैः ॥
सयक्षरक्षोगणगुह्यकोत्तमैः स्तुतः सदा देव नमोनमस्ते ॥५१
यतो रसान्संक्षिपसे शरीरिणां गभस्तिभिर्हिमजलघर्मनिस्रवैः ।
जगच्च संशोषयसे सदैव अतोसि लोके जगतो विशोषणम् ॥५२

ब्रह्मोवाच

ज्ञात्वा तेषामभिप्रायमुवाच भगवान्वचः[2] । लब्ध्वानुज्ञां ततः सर्वे सुराः संहृष्टचेतसः ॥५३
त्वष्टारं पूजयामासुर्मनोवाक्कायकर्मभिः । विश्वकर्मा तदादेशात्करोतु तव सौम्यताम् ॥५४

अवस्थित रहते हैं, एवं मनुष्यों के लिए सदैव शांति प्रदान किया करते हैं, इसमें कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं है अतः हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । इस लोक में विद्वानों ने जिसे तप बताया है, पण्डितों का कहना है कि वह आप का ही महान् तेज रूप है ।४७

हे महीपते ! प्रमुख प्रजापति (ब्रह्मा) द्वारा देवताओं के इस प्रकार स्तुति करने पर उन्हें (देवों को) कानों से कुछ सुनाई पड़ने लगा ।४८। किन्तु फिर भी वे देवगण जिसमें शिव एवं विष्णु आगे आगे चल रहे थे, मुझे प्रमुख बना कर सर्वथा भक्ति से नम्र स्तुति करने लगे ।४९

तीनों लोकों के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले एवं यज्ञ की क्रियाओं को सफल करने वाले आप को नमस्कार है, तथा प्रतिदिन के कर्मों के साक्षी सहस्र किरण वाले आप को नमस्कार है ।५०। (अन्धकार के) नाश करने के लिए सात घोड़े वाले रथ पर निरन्तर बैठने वाले, एवं निश्चित एक रश्मि मात्र से बँधे हुए आपको नमस्कार है और बालखिल्य, अप्सरायें, किन्नर, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, मनुष्य, यक्ष, राक्षसगण एवं श्रेष्ठ गुह्यकों द्वारा आपकी सदैव स्तुति होती रहती है, अतः हे देव ! आप के लिए नमस्कार है ।५१। अतः शरीरधारियों के रसों को (शोषण करने के रूप में) अपनी उस किरण द्वारा, जो बर्फ को जल रूप बनाने के लिए धूप रूप होकर निकलती रहती है, संक्षिप्त करते हो और इसी प्रकार सदैव जगत् का शोषण किया करते हो, अतः लोक में जगत् में विशोषक भी कहे जाते हो ।५२

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उन (देवताओं) के अभिप्राय को समझकर भगवान् (सूर्य) कुछ बोले । उनकी आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित होकर सभी देवताओं ने मन, वाणी, एवं कर्मों द्वारा विश्वकर्मा की पूजा की और सूर्य से कहा कि—आपके ही आदेश प्राप्त कर विश्वकर्मा आप को सौम्य (सौन्दर्यपूर्ण)

---

१. त्रिभुवनभूरिदायिने । २. वदतां वरः ।

ततस्तु तेजसो राशिं सर्वकर्मविधानवित् । भ्रमिमारोपयामास विश्वकर्मा विभावसुम् ॥५५
अमृतेनाभिषिक्तस्य तदा सूर्यस्य वै विभोः । तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥५६
आजानुलिखितश्चासौ समुरासुरपूजितः । नाभ्यनन्दसतो देव उल्लेखनमतः परम् ॥५७
ततः प्रभृति देवस्य चरणौ नित्यसंवृतौ । तापयन्ग्लापयंश्चैव युक्ततेजोऽभवत्तदा ॥५८
यच्चास्य शातितं तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् । ये विष्णुर्जघानोग्रान्सदा वै दैत्यदानवान् ॥५९
शूलशक्तिगदावज्रशरासनपरश्वधान् । देवतानां ददौ कृत्वा विश्वकर्मा महामतिः ॥६०
त्रिदेवनिर्मितं स्तोत्रं सन्ध्ययोरुभयोर्जपन् । कुलं पुनाति पुरुषो व्याधिभिर्न च पीडयते ॥६१
प्रजादानसिद्धकर्मा च जीवेत्सायं शरच्छतम् । पुत्रबान्धनवांश्चैव सर्वत्र चापराजितः ॥
हित्वा पुरं भूतमयं गच्छेत्सूर्यमयं पुरम् ॥६२
भूयोऽपि तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् । वाग्भिरित्थमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ॥६३

देवा ऊचुः

नमस्ते[1] रविरूपाय सोमरूपाय ते नमः । नमो यजुः स्वरूपायाथर्वायाङ्गिरसे[2] नमः ॥६४
ज्ञानैकधामभूताय[3] निर्धूततमसे नमः । शुद्धज्योतिःस्वरूपाय निस्तत्त्वायामलात्मने ॥६५

बनायेंगे ।५३-५४। तदुपरांत सभी कार्य-विधानों के कुशल विश्वकर्मा ने तेज पुञ्ज सूर्य को खरादने वाले चक्के पर स्थित किया ।५५। विश्वकर्मा ने अमृत से अभिसिंचित सूर्य के उस तेज का शातन (खरादना) धीरे-धीरे आरम्भ किया ।५६। सुर और असुर से पूजित सूर्य देव ने घुटने तक (अंगों के) खराद जाने के उपरांत (पैरों के) खरदवाने की अनिच्छा प्रकट की ।५७। तभी से उनके पैर एक में सम्मिलित रहने के नाते अस्फुटित ही रह गये और उसी समय से उसका तेज संतप्त करने तथा गलाने के योग्य हुआ ।५८। खरादते समय जो तेज कट कर गिर गया था विश्वकर्मा ने उसी का चक्र (अस्त्र) बनाया जिसके द्वारा भगवान् विष्णु ने भयंकर दैत्य एवं दानवों का अनेकों बार वध किया है ।५९। तथा महाबुद्धिमान् विश्वकर्मा ने शूल, शक्ति, गदा, वज्र, धनुष एवं फरसा नामक अस्त्र उसी तेज से बनाकर देवताओं को भी वितरण कर दिया था ।६०

इस भाँति त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर) के किये हुए स्तोत्र द्वारा दोनों संध्याओं (प्रातःकाल तथा सायंकाल) में उनकी आराधना करते हुए पुरुष अपना कुल पवित्र करता है तथा कभी व्याधि-पीडित नहीं होता ।६१। एवं संतान, कार्य की सिद्धि, सौ वर्ष से अधिक की आयु, पुत्र, एवं धन की प्राप्ति पूर्वक वह सर्वत्र अजेय होता है। पश्चात् मरणानन्तर वह प्राणी सूर्य लोक में जाता है ।६२। अनन्तर तीनों लोकों के समस्त देवता एवं देवर्षि आ आकर अपनी वाणियों द्वारा सूर्य की पुनः इस प्रकार स्तुति करने लगे ।६३

देव ने कहा—तुम्हारे रवि रूप एव सोमरूप के लिए नमस्कार है, यजुःस्वरूप और अथर्व एवं आंगिरस रूप को नमस्कार है ।६४। ज्ञान का एकमात्र स्थान भूत, अन्धकार के नष्ट हो जाने से अत्यन्त

---

१. नमस्ते रुद्ररूपाय सामरूपाय वै नमः । २. अथर्वशिरसे नमः । ३. ज्ञानैकपादरूपाय ।

नमोऽखिलजगद्व्याप्तिस्वरूपायात्ममूर्तये । सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ॥६६
नमोऽस्तु ज्ञेयरूपाय[1] प्रकाशे लक्षरूपिणे । भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा शब्दकृते नमः ॥६७
संसारहेतवे[2] चैव संध्याज्योत्स्नाकृते नमः । त्वं सर्वमेतद्भगवाञ्जगदै भ्रमति त्वया ॥६८
भ्रमत्वाविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् । त्वदंशुभिरिदं सर्वं संसृष्टं जायते शुचिः ॥६९
क्रियते त्वत्करस्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता । होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते ॥७०
तावद्यावन्न संयोगी जगत्यत्र भवाञ्छुचिः । प्रातर्होमं प्रशस्तं हि उदिते त्वयि जायते ॥७१
ऋचोऽथ सकला ह्येता यजूंषि त्वं जगत्पते । सकलानि च सामानि तपत्येवं जगत्सदा ॥७२
ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः । तथा साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः ॥७३
त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च । मूर्तोऽमूर्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपतया स्थितः ॥७४
निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः । प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजोमयमादिश ॥७५
इत्थं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा[3] । मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ॥७६
यत्तस्य ऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी । यजुर्मयेनापि दिवं[4] स्वयं साममयो रविः ॥७७
शातितास्तेजसो भागा ये च स्युर्दश पञ्च च । तस्यैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना ॥७८

निर्मल शुद्ध ज्योति स्वरूप, निस्तत्त्व एवं अमलात्मा (आप) के लिए नमस्कार है ।६५। निखिल जगत् में व्यापक रूप, आत्ममूर्ति सभी के कारण एवं ज्ञानियों की निष्ठा रूप (आयु) को नमस्कार है ।६६। प्रकाश में ज्ञेयरूप (अप्रकाश में) लक्षरूप तथा शब्द (शब्द शास्त्र) के निर्माता भास्कर को नमस्कार है ।६७। संसार के हेतु एवं संध्यां तथा ज्योत्स्ना (चन्द्रकिरण) के रचयिता (आप) के लिए नमस्कार है, इस सब कुछ जगत् के भगवान् आप ही हैं और तुम्हारे ही द्वारा यह जगत् चलता फिरता रहता है ।६८। यह चर, अचर रूप निखिल ब्रह्माण्ड की रचना होने पर तुम्हारी ही किरणों द्वारा संतुष्ट होकर वह पवित्र होता है ।६९। और तुम्हारी ही किरणों के स्पर्श होने से जल आदि के पवित्र होने के नाते हवन एवं दान आदि धर्म तब तक उपकारक (फलदायक) नहीं माने जाते जब तक पवित्रात्मक तुम्हारा इस संसार से संयोग (उदय) न हो । इसीलिए आप के उदय होने पर प्रातः कालीन हवन प्रशस्त बताया गया है ।७०-७१। हे जगत्पते ! समस्त कथाएँ ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद (भी) तुम्हीं हो और उसी द्वारा जगत् में सदैव प्रकाशित होते हो ।७२। हे जगन्नाथ ! ऋग्मय, यजुर्मय, एवं साममय होते हुए आप त्रयीमय कहे जाते हो ।७३। तुम्हीं ब्रह्म के पर तथा अपर रूप हो तथा मूर्त-अमूर्त, सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से स्थित हो ।७४। इसलिए निमेष (क्षण) दशों दिशाएँ कालरूप एवं कलात्मक रूप आप प्रसन्न हों और मनइच्छित अपने इस तेजोमय, रूप के लिए आज्ञा प्रदान करें ।७५

इस प्रकार देवों एवं देवर्षियों द्वारा स्तुति करने पर तेजोराशि एवं अव्यय सूर्य ने अपने तेज का त्याग किया ।७६। जिससे ऋङ्मय तेज से मेदिनी (पृथ्वी) यजुर्मय तेज से स्वर्ग एवं साममय तेज से स्वयं सूर्य उत्पन्न हुए ।७७। खरादे गये तेज का जो पन्द्रहवाँ भाग था, उसी का विश्वकर्मा ने शिव के लिए शूल

---

१. सूर्यस्वरूपाय । २. सर्वस्य हेतवे । ३. अपि देवैर्दिवाकरः । ४. त्रिदिवम् ।

चक्रं विष्णोर्वसूनां च शंकरस्य च दारुणम् । षण्मुखस्य तथा शक्तिः शिबिका धनदस्य च ।।७९
अन्येषां चासुराणां शस्त्राण्युग्राणि यानि वै । यक्षविद्याधराणां च तानि चक्रे स विश्वकृत् ।।८०
ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान्रविः । तत्तेजसः[1] पञ्चदश शातिता विश्वकर्मणा ।।८१
ततः सुरूपदृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् । ददर्श तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् ।।८२
इत्येतन्निखिलं भानोः कथितं मुनिसत्तमाः । शृणुयाद्यो नरो भक्त्या अश्वमेधफलं लभेत् ।।८३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मर्षिसंवादे परिलेखवर्णनं नाम
त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२३।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वक्ष्याम्यहं ते पुनरेव दिण्डे सूर्यस्य सर्वप्रवरप्रधानम् ।
व्योम्नः परं तिष्ठति यस्तु मग्नः स मुच्यते रुद्र इहापि दिण्डी ।।१

बनाया है ।७८। उसी भाँति विष्णु के लिए चक्र, वसुओं एवं शंकर के लिए दारुण (अस्त्र) षडानन के लिए शक्ति तथा कुबेर के लिए शिविका (पालकी की सवारी) भी बनाई गई है ।७९। और अन्य असुर शत्रु पक्ष एवं विद्याधर के जितने तीक्ष्ण अस्त्र हैं विश्वकर्मा ने उन्हें उसी तेज से बनाया है ।८०। क्योंकि उस तेज का एक मात्र सोलहवाँ भाग भगवान् सूर्य ने अपनाया है और उसके शेष पन्द्रहवें भाग तक को विश्वकर्मा ने खराद डाला था ।८१। तदुपरांत सौन्दर्य पूर्ण रूप प्राप्त कर सूर्य ने उत्तर कुरुदेश की यात्रा की और वहाँ जाकर वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किये (अपनी स्त्री) संज्ञा को देखा ।८२

हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार मैने सूर्य के निखिल (रहस्य) को बता दिया, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनेगा उसे अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ।८३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्मर्षिसंवाद में परिलेखनवर्णन नामक
एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।१२३।

अध्याय १२४

भुवनकोश वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे दिंडे ! मैं सूर्य के सर्वश्रेष्ठ अनुयायियों (देवताओं) को पुनः बता रहा हूँ सुनो ! आकाश में (सबके) अग्रभाग में जो (आनन्द) मग्न दिखायी दे रहा है, उसे (लोग) रुद्र कहते हैं और यहाँ वह दिंडी के नाम से ख्यात है ।१

---

१. भागा इति शेषः ।

स्थित्वा पुरा ब्रह्मशिरः किलासौ प्रगृह्य तत्तस्य शिरः कपालम्।
ततो ह्यसावाश्रममुत्तमं शिवो बहूदकैः पुष्पफलैः समृद्धम् ॥२
नग्नो यदा दारुवने मुनीनां दृष्ट्वा च तं भैक्ष्यचरं सुरेशम्।
योषित्सुताः संक्षुभितास्तु सर्वे जग्मुर्हरं तं मुनयः सुतुष्टाः ॥३
स हन्यमानो मुनिमुख्यसंघैर्गृहीतलोष्टैर्ऋषिदण्डकाष्ठैः।
विहायदण्डिः स तु तान्सुरर्षीस्ततो रवेर्लोकमथाजगाम ॥४
आगच्छमानं प्रमथास्तमूचुर्देवेश नित्यं भ्रमसे किमर्थम्।
स प्राह तान्पापविमोचनार्थमटामि तीर्थानि सुरालयाश्च ॥५
ते भूय ऊचुः प्रमथास्तमेवमत्रैव तिष्ठस्व रवेः पुरस्तात्।
शुद्धिं तवैष प्रकरिष्यतीति शुद्धस्ततो यास्यसि रुद्रलोकम् ॥६
इत्येवमुक्तः प्रमथैस्तु रुद्रस्तत्रैव तस्थौ रवितोषणाय।
नग्नो जटी मुष्टिकपालपाणी रूपेण चैवाप्रतिमस्त्रिलोके ॥७
उक्तः स तुष्टेन ततः सवित्रा प्रीतोऽस्मि देवागमनात्तवाहम्।
मद्दर्शनादेव भवान्विशुद्धो दिण्डीति नाम्ना भवितासि लोके ॥८
अष्टादशैते प्रमथास्तु भानोश्चतुर्दशान्ये तु रवे रथस्थाः।
द्वे देवते द्वौ च ऋषिप्रधानौ गन्धर्वसर्पावपि तावदेव ॥९

पहले (समय में) एक बार ब्रह्मशिरा नामक (किसी) स्थान में अवस्थित होकर ब्रह्मा के शिर का कपाल (आधा) भाग लिये एकदम नग्न होकर उस शिव (रुद्र) ने अत्यन्त जल, पुष्प एवं फलों से समृद्ध किसी उत्तम आश्रम की ओर प्रस्थान किया था।२। अनन्तर उस घोर वन में भिक्षुक के रूप में उस देव श्रेष्ठ को घूमते हुए देखकर मुनिगण उनकी स्त्रियाँ और बच्चे अत्यन्त संक्षुब्ध होकर उनके पास पहुँचे।३। और मुनियों ने हाथ में लिए मिट्टी के ढेले तथा ऋषियों ने काष्ठ के दंडों से उन पर आघात किया। उनसे मार खाने के पश्चात् दिंडी ने उन सुरर्षियों को त्याग कर पुनः सूर्य लोक को प्रस्थान किया।४। उन्हें आते हुए देखकर प्रमथगणों ने (विनम्र भाव से) उनसे कहा—हे देवेश ! आप नित्य इस प्रकार क्यों घूमते फिरते हैं उन्होंने उन लोगों से कहा—मैं पाप-मुक्त होने के लिए तीर्थों एवं देवालयों में घूम रहा हूँ।५। प्रमथगणों ने (ऐसा सुनकर) पुनः उनसे कहा—आप यही सूर्य के सामने अवस्थित होवें (सूर्य) आप की भलीभाँति शुद्धि करेंगे उसके पश्चात् आप रुद्र लोक चले जाइयेगा।६। इस प्रकार प्रमथों के कहने पर नग्न, जटाधारी, कपालपाणि (हाथ में कपाल लिये) तीनों लोकों में अनुपम रूप धारण करने वाले भगवान् रुद्र सूर्य की आराधना के लिए उसी स्थान में अवस्थित हो गये।७। पश्चात् (उनकी आराधना से) प्रसन्न होकर सविता (सूर्य) ने उनसे कहा—हे देव ! मैं तुम्हारे आगमन से प्रसन्न हूँ, मेरे दर्शन मात्र से ही आप विशुद्ध हो गये और (आज से) लोक में आप 'दिंडी' नाम से विख्यात होंगे।८। इस प्रकार (दिंडी के अतिरिक्त) सूर्य के साथ उनके रथ पर उनके अठारह प्रमथ तथा अन्य और चौदह (व्यक्ति) के समेत दो प्रधान ऋषि, दो गन्धर्व, सर्प, दो यक्ष, दो सिद्ध, दो निशाचर, अप्सराओं में उत्पन्न

यक्षौ च सिद्धौ च निशाचरौ चादित्यात्मजावप्सरसां प्रधानौ ।
वसन्ति ते ह्यस्तभुषश्च सूर्ये तेषामशीतिश्चतुरोत्तरा सा ॥१०
इत्यादिदेवप्रवरास्तु सर्वे धात्वर्थशब्दैश्च भवन्ति सिद्धाः ॥११

ऋषय ऊचुः

विस्तराद्ब्रूहि मे ब्रह्मन्प्रवरान्धातुशब्दजान् । यतश्च कौतुकं ब्रह्मन्नस्माकमिह जायते ॥१२

ब्रह्मोवाच

भूयस्तव प्रवक्ष्यामि दण्डनायकपिङ्गलौ । राज्ञश्रौषादयश्चान्ये दिग्देवा गिण्डिना सह ॥१३
मया सह समागम्य पुरा देवैर्विचारितम् । एष कारुणिकः सूर्यो युध्यते दानवैः सह ॥१४
ते तु लब्धवरा भूत्वा अमात्याद्या ह्यभीक्ष्णशः । आदित्यं मन्यमानास्ते तपन्तं हन्तुमुद्यताः ॥१५
तस्मात्तेषां विघातार्थं प्रवराश्च भवामहे । अस्माभिः प्रतिरुद्धास्ते न द्रक्ष्यन्ति दिवाकरम् ॥१६
सम्मन्त्र्यैवं ततः स्कन्दो वामपार्श्वे रवेः स्थितः । दण्डनायक संज्ञस्तु सर्वलोकस्य स प्रभुः ॥१७
उक्तश्च स तदार्केण त्वं प्रजादण्डनायकः । दण्डनीतिकरो यस्मात्तस्मात्त्वं दण्डनायकः ॥१८
लिखते यः प्रजानां च सुकृतं यच्च दुष्कृतम् । अग्निर्दक्षिणपार्श्वे तु पिङ्गलत्वात्स पिङ्गलः ॥१९
आश्विनौ चापि सूर्यस्य पार्श्वयोरुभयोः स्थितौ । अश्वरूपात्समुत्पन्नौ तेन तावश्विनौ सुरौ ॥२०

दो आदित्य के प्रधान पुत्र, ये सभी उनके अस्तोदय समय में अवस्थित रहते हैं, जिनकी संख्या चौरासी है ।९-१०। इन श्रेष्ठ देवों के नाम की सिद्धि (व्याकरण द्वारा) तदर्थ वाचक धातु से निष्पन्न शब्दों से होती है ।११

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इन देव प्रवरों (श्रेष्ठों) के नाम को धात्वर्थ वाचक शब्दों से निष्पन्न बताया गया है, अतः विस्तार पूर्वक इसे बताने की कृपा करें क्योंकि इसकी जानकारी के लिए हमें महान् कुतूहल हो रहा है ।१२

ब्रह्मा ने कहा—मैं तुम्हें (इसे) फिर बता रहा हूँ । सावधान होकर सुनो पहले समय में एकबार मेरे तथा डिंडी के साथ दंडनायक, पिंगल, राज, श्रौषादि एवं दिशाओं के देवता लोग मिल कर विचारने लगे कि करुणानिधान भगवान् सूर्य तो दानवों के साथ तन्मय होकर युद्ध कर रहे हैं ।१३-१४। इधर (राक्षसों के) मंत्रीगण भी वरदान प्राप्त किये हैं अतः ये देदीप्यमान सूर्य के प्रतिघात करने के लिए अवश्य तैयार होंगे ।१५। इसलिए उनके वध के लिए हमें भी प्रबल होना चाहिए। क्योंकि हम लोगों से अवरुद्ध होने पर वे दिवाकर देव को देख न सकेंगे ।१६। इस प्रकार की मंत्रणा कर स्कन्द सूर्य के बाईं ओर अवस्थित हुए, उनका दंडनायक नामकरण हुआ और समस्त लोकों का प्रभुत्व भी उन्हें सौंपा गया ।१७। अनन्तर भगवान् सूर्य ने उनसे कहा—तुम्हें दंडनायक बनाया गया है ।१८। फिर उन्होंने अग्नि से कहा कि—(मेरे) दाहिनी ओर स्थित होकर प्रजाओं के बुरे-भले सभी कर्मों को लिखो और पिंगल होने के नाते तुम्हारा नाम पिंगल रखा गया है ।१९। पुनः अश्विनी कुमार सूर्य के दोनों पार्श्व (बगल) में स्थित हुए, अश्वरूप (सूर्य) से उत्पन्न होने के नाते जिनका नाम अश्विनी कुमार हुआ है ।२०। पश्चात् सूर्य के दो

द्वारपालौ स्मृतौ तस्य राज्ञः श्रेष्ठौ महाबलौ। कार्त्तिकेयः स्मृतो राज्ञः श्रेष्ठश्चापि हरः स्मृतः ॥२१
राजृदीप्तौ स्मृतो धातुर्नकारस्तस्य प्रत्ययः। सुरसेनापतित्वेन स यस्माद्दीप्यते सदा॥
तस्मात्स कार्तिकेयस्तु नाम्ना राज्ञ इति स्मृतः ॥२२
स्रुगतौ च स्मृतौ धातुर्यस्य स प्रत्ययः स्मृतः। गच्छतीति रहस्तस्मात्पर्यायात्स्रौष उच्यते ॥२३
प्रथमं यद्द्वेद्द्वारं धर्मार्थाभ्यां समाश्रितम्। तत्रैतौ संस्थितौ देवौ लोकपूज्यौ द्विजोत्तमाः ॥२४
द्वितीयायां तु कक्षायामप्रधृष्यौ व्यवस्थितौ। पक्षिप्रेताधिपौ नाम्ना स्मृतौ कल्माषपक्षिणौ ॥२५
वर्णस्य शबलत्वाच्च यमः कल्माष उच्यते। पक्षावस्तीति यः पक्षी गरुडः परिकीर्तितः ॥२६
स्थितो दक्षिणतस्तस्य दण्डहस्तसमन्वितः। उत्तरेण स्थितोऽर्कस्य कुबेरश्च विनायकः ॥२७
कुबेरो धनदो ज्ञेयो हस्तिरूपो विनायकः। कुत्सया कुप्यताशप्तं कुशरीरमजायत॥
कुबेरः कुशरीरत्वात्स नाम्ना धनदः स्मृतः ॥२८
नायकः सर्वसत्त्वानां तेन नायक उच्यते। विविधं नयते यस्मात्स तु तस्माद्विनायकः ॥२९
रैवतश्चैव दण्डिश्च तौ रवेः पूर्वतः स्थितौ। ततो दिण्डिः स्मृतो रुद्रो रेवतस्तनयो रवेः ॥३०
प्लुतं गच्छत्यसौ यस्मात्सर्वलोकनमस्कृतः। रेवृप्लवगतौ धातू रेवतस्तेन स स्मृतः ॥३१

द्वारपाल हुए, जिनमें प्रथम राज्ञ और दूसरे श्रेष्ठ हैं, कार्तिकेय का ही नाम राज्ञ है और श्रेष्ठ हर हुए। एवं ये दोनों महाबली हैं।२१। दीप्ति (प्रकाश) अर्थ में राजधातु (व्याकरण शास्त्र में) पठित है उसमें ऋ (अनुबन्ध) के निकल जाने पर उसके सामने (न) कार के प्रत्यक्ष के रूप में उसके सामने आने पर राज्ञ शब्द निष्पन्न होता है। इसलिए देवताओं के सेनापतित्वेन और सदैव दीप्त होने के नाते कार्तिकेय का राज्ञ नामकरण अत्यन्त युक्त भी है इसीलिए उन्हें इस नाम से स्मरण किया जाता है।२२। गति अर्थ में सु धातु पठित है उसके सामने 'स' पत्यय के रूप में उपस्थित होने से जिस 'स्रुस' शब्द की उत्पत्ति होती है, उसी का 'एकान्त में प्राप्त' होने के अर्थ में पर्यायवाचक स्रौष शब्द निष्पन्न होता है।२३। हे द्विजोत्तम! पहले दरवाजे पर जो धर्म एवं अर्थ का केन्द्र कहा जाता है ये दोनों लोक पूज्य देवता उसी स्थान पर सुशोभित हैं।२४। दूसरी कक्षा के दरवाजे पर कल्माष एवं पक्षी ये दोनों उपस्थित रहते हैं जो अत्यन्त दुर्धष हैं। और शबल (चितकबरे) वर्ण के होने के नाते यम को कल्माष और जिसके पक्ष हों उसे पक्षी कहा जाता है अतः पक्षी से गरुड का नाम बताया गया है।२५-२६। सूर्य के दक्षिण की ओर दंड हाथ में लिए कुबेर अवस्थित हैं और सूर्य के उत्तर विनायक की स्थिति है।२७। जिनमें धनद को कुबेर एवं हांथी रूप धारी को विनायक बताया गया है। एकबार निन्दावश किसी ने क्रुद्ध होकर इन्हें शाप दे दिया था उसी से उनकी शरीर खराब हो गई, उसी कुशरीर के नाते धनद का नाम कुबेर पड़ा है।२८। इसी प्रकार सभी प्राणियों के नायक होने के नाते नायक, एवं भाँति-भाँति के उपायों द्वारा प्राणियों के कल्याण का नयन (उद्वहन) करने के नाते उन्हें विनायक कहा जाता है।२९। इसी भाँति रैवत एवं दिंडी सूर्य के पूर्व की ओर स्थित हुए जिनमें दिंडी रुद्र का नाम है, तथा रैवत सूर्य के एक पुत्र का नाम है।३०। कूदते हुए चलने के नाते उन समस्त लोकों के वन्दनीय का नाम रैवत हुआ। गमन अर्थ में रेवृ और प्लव धातु है उसी से रैवत शब्द निष्पन्न होता है।३१। उसी प्रकार गमनार्थकडीङ् धातु पठित है, उसी से दिंडि शब्दकी सिद्धि

डीङ्गतावस्य[1] वै धातोर्दिण्डिशब्दो निपात्यते। डयतेऽसौ[2] तदा दिण्डी तेन दिण्डी प्रकीर्तितः ॥३२
इत्येते प्रवराः प्रोक्ता धात्वर्था नैगमैः शुभैः। एषां संक्षेपतो भूयः सङ्ख्यां वो निगदामि वै ॥३३
अश्विनौ तौ ततो ज्ञेयौ दण्डनायकपिङ्गलौ। तौ सूर्यद्वारगौ ज्ञेयौ राज्ञस्रौषौ ततः स्मृतौ ॥३४
रेवतश्चैव दिण्डिश्च इत्येते प्रवरा मया। अष्टादश समाख्याताः संक्षेपात्सङ्ख्यया मया ॥३५
इत्येभिर्नामभिस्त्वन्ये दानवानां जिघांसया। परिवार्य स्थिताः सूर्यं नानाप्रहरणायुधाः ॥३६
सरूपाश्चान्यरूपाश्च विरूपाः कामरूपिणः। परिवार्य स्थिताः सूर्यं गरुडश्च महाबलः ॥३७
धातुर्दिविति वै प्रोक्तो क्रीडायां स तु उच्यते। क्रीडन्ते दिवि वै यस्मात्तस्मात्ते देवताः स्मृताः ॥३८
ऋचो यजूंषि सामानि यान्युक्तानीह वै मया। नानारूपैः स्थितान्येव रवेस्तानि समन्ततः ॥३९

सुमन्तुरुवाच

इत्येवमुक्तवान्ब्रह्मा ऋषीणां पृच्छतां पुरा। ते श्रुत्वाराध्य देवेशं संसिद्धा दिवि संस्थिताः ॥४०

इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मर्षिसंवादे प्रवरवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२४।

निपातन से होती है। (डयतेऽसौ सदा स दिंडिः) इस प्रकार उसका विग्रह भी बनाया गया है।३२। व्याकरण के धातु अर्थ वाचक शब्दों द्वारा की गयी व्याख्या सहित इन देव प्रवरों को मैंने बता दिया, अब इनकी संख्या भी संक्षेप में तुम्हें बता रहा हूँ।३३। दो अश्विनी कुमार, दंडनायक, पिंगल, सूर्य के द्वारपाल राज्ञ एवं श्रौष, रैवत तथा दिंडि इन्हीं प्रवरों को मैंने बताया था जिनकी संख्या संक्षेप में अट्ठारह है।३४-३५। दानवों की हिंसा करने के लिए ये लोग तथा अन्य लोग भी भाँति-भाँति के अस्त्रों से सुसज्जित होकर सूर्य देव के चारों ओर अवस्थित हैं।३६। इसी भाँति समान रूप वाले, अन्य रूप वाले, विरूप, एवं कामरूप (स्वेच्छा से रूप धारण) करने वाले तथा महाबली गरुड, ये सभी लोग उन्हें घेर कर अवस्थित रहते हैं।३७। क्रीडा अर्थ में दिव् धातु पठित है, इसीलिए स्वर्ग में क्रीड़ा करने के नाते (इन्हें) देवता कहा जाता है।३८। एवं ऋग्, यजु एवं साम आदि जो कुछ मैंने पहले बतला दिया है, वे सभी भाँति-भाँति के रूप धारण कर सूर्य के चारों ओर अवस्थित रहते हैं।३९

सुमन्तु बोले—पहले समय में ऋषियों के पूँछने पर ब्रह्मा ने ऐसा ही कहा था पश्चात् वे सब ऋषिगण भी उसे सुनकर देवेश सूर्य की आराधना द्वारा सफलता की प्राप्ति करके स्वर्ग में ही सदैव के लिए स्थित हो गये।४०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्मर्षि संवाद में प्रवरवर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।१२४।

---

१. ऋगतावस्य वै धातुः। २. ऋच्छतीति।

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनवर्णनम्

शतानीक उवाच

यदेतद्दृश्यते व्योम सूर्यस्य पुरतो द्विज । तदुच्यते किमात्मा च कथं भूतश्च कथ्यताम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

हन्त व्योम प्रवक्ष्यामि सूर्यप्रहरणं शुभम् । यदात्मकं हि यत्प्रोक्तं यथा वसन्ति देवताः ॥२
पुरस्ताच्च चतुःशृङ्गं तद्व्योमायतनं रवेः । व्योमशब्दं चतुःशृङ्गं सर्वदेवमयं च यत्[1] ॥३
गैरिकार्णवसम्भूतं यदन्तर्गर्भमाश्रितम् । तत्रोत्पन्नमिदं व्योम कलेर्व्योम मही स्मृता ॥४
वरुणस्य यथा पाशो हुङ्कारो वेधसो यथा । विष्णोश्चापि यथा चक्रं त्रिशूलं त्र्यम्बकस्य च ॥५
इन्द्रस्य च यथा वज्रं तथा व्योम रवेः स्मृतम् । तस्मिन्व्योम्नि त्रयस्त्रिंशत्क्रीडन्तो यज्ञियाः सुराः ॥६
हरश्च वर्षशुद्धश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः । वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥
ईश्वरो भुवनश्चैते रुद्रा एकादश स्मृताः ॥७
आदित्यानां च नामानि विष्णोश्चक्रस्य दीयताम् । अर्यमा च तथा मित्रो भगोऽथ वरुणस्तथा ॥८
विवस्वान्सविता चैव पूषा त्वष्टा तथैव च । अंशोभगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥९

अध्याय १२५

भुवन-वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विज ! यह जो सामने सूर्य का व्योम (नामक अस्त्र) दिखाई दे रहा है, वह किस आकार-प्रकार का है एवं कैसे उत्पन्न हुआ, मुझे बताइये ।१

सुमन्तु बोले—व्योम नामक सूर्य के उस शुभ अस्त्र को मैं बता रहा हूँ कि वह कैसा है उसे क्या कहते हैं और उसमें देवता लोग किस भाँति रहते हैं ।२। सूर्य का व्योम नामक अस्त्र है जो उनका आश्रय भी है उसके सामने चार भृङ्ग हैं उन्हीं चार भृंङ्ग वाले एवं सर्वदेवमय के अर्थ में व्योम शब्द प्रयुक्त होता है ।३। इस प्रकार सुवर्ण के समुन्दर में उसके भीतरी गर्भ में जो तत्त्व स्थित था उसी से यह व्योम उत्पन्न हुआ है । कलि में व्योम के नाम से मही (पृथ्वी) का भी स्मरण किया जाता है । जिस प्रकार वरुण का पाश, ब्रह्मा का हुंकार, विष्णु का चक्र, त्र्यम्बक का त्रिशूल एवं इन्द्र का वज्र (अस्त्र) है, उसी भाँति सूर्य का व्योम नामक अस्त्र है, उसी व्योम में क्रीडा करते हुए तैंतीस याज्ञिक के देवता हैं ।४-६। हर, वर्षशुद्ध, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी, रैवत, ईश्वर, भुवन, और रुद्र ये ग्यारह रुद्र एवं द्वादश (बारह) आदित्य स्थित हैं ।७। तथा इनके के जो नाम हैं, वही विष्णु के चक्र के भी नाम हैं—अर्यमा, मित्र, भग, वरुण, विवस्वान्, सविता, पूषा, त्वष्टा, अंश भग, अतिंतेज एवं आदित्य उनके नाम हैं ।८-९। ध्रुव, धर,

---

१. कृत्—इ०पा० ।

ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवाऽनिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१०
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावुभौ । विश्वेदेवान्प्रवक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत ॥११
क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धृतिः कुरुः । शङ्कुमात्रो वामनश्च विश्वेदेवा दश स्मृताः ॥१२
वर्तमाना इमे देवा भविष्यानन्तरे शृणु । यमश्च तुषिताश्चैव[1] वसवो[2] वशवर्तिनः ॥१३
सत्याश्च भूतरजसः साध्याश्च तदनन्तराः । षट्सु मन्वन्तरेष्वेव देवा द्वादशद्वादश[3] ॥
पारावतास्तथा चान्ये ते ह्यासंस्तुषितैः सह ॥१४
साध्यान्देवान्प्रवक्ष्यामि नामतस्तन्निबोध मे । मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो नारायणस्तथा ॥१५
वृत्तिलम्बो मनुश्चैव समो[4] धर्मश्च वीर्यवान् । वित्तस्वामी प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ॥१६
एते यज्ञभुजो देवाः सर्वलोकेषु पूजिताः । आदित्यामेव ते धीर कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ॥१७
विश्वे च वसवः साध्या विज्ञेया धर्मसूनवः । एवं धर्मसुतः सोमस्तृतीयो वसुरिष्यते ॥१८
धर्मोऽपि ब्रह्मणः पुत्रः पुराणे निश्चयं गतः । अथ चेन्द्रान्वसूंश्चैव नामभिश्च निबोध मे ॥१९
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वः ततः स्वारोचिषः स्मृतः । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥२०
इत्येते षडतिक्रान्ताः सप्तमः साम्प्रतो मनुः । वैवस्वतेति विज्ञेयो भविष्याः सप्त चापरे ॥२१
एषामाद्योर्कसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिरेव च । तस्माच्च भवसावर्णिर्धर्मसावर्णिरित्युत ॥२२
पञ्चमो दक्षसावर्णिः सावर्णिः[5] पञ्च कीर्तिताः । रौच्यो भौव्यश्च द्वावन्यावित्येते मनवः स्मृताः ॥२३

सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभात ये आठ वसु यहाँ हैं ।१०। नासत्य एवं दस्र नामक दोनों अश्विनी कुमार, तथा विश्वदेव भी वहाँ स्थित रहते हैं, उनके नामों को बता रहा हूँ, सुनो ।११। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, कुरु, शंकुमात्र, एवं वामन ये दश नाम हैं ।१२। इस प्रकार उपरोक्त ये सभी देवता नित्य (व्योम में) वर्तमान रहते हैं, इसके अनन्तर भी कह रहा हूँ सुनो ! यम-तुषित एवं वशीभूत ये वसु सूर्य की अधीनता स्वीकार करके रहते हैं । सत्य, भूत रजस, साध्य, इसके पश्चात् छहों मन्वन्तरों में बारह-बारह देवता, पारावत, तथा तुषितों के समेत अन्य देवता भी वहाँ स्थित हैं ।१३-१४। अब साध्यों के नाम बता रहा हूँ सुनो ! मनु, अनुमंता, प्राण, नर, नारायण, वृत्तिलम्ब, मनु, सम, धर्म, वीर्यवान्, वित्तस्वामी, तथा प्रभु यही बारह नाम हैं ।१५-१६। ये सभी देवगण यज्ञ भोक्ता हैं और समस्त लोकों में पूजित हैं । हे धीर ! कश्यप की पत्नी अदिति से होकर ये कश्यप के पुत्र भी कहलाते हैं ।१७। उसी प्रकार विश्वदेव, वसु, और साध्यों को धर्म के पुत्र जानना चाहिए । एवं तृतीय सोम नामक वसु भी धर्म के पुत्र हैं ।१८। और धर्म ब्रह्मा के पुत्र हैं यह पुराण से निश्चित है । अब इन्द्र वसु का नाम बता रहा हूँ सुनो ! ।१९। प्रथम स्वायंभुव मनु हुए थे उनके पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष हुए ।२०। इन छह मनुओं का कार्य काल भी समाप्त हो गया है । क्योंकि आधुनिक सातवाँ वैवस्वत मनु है । इनके अनन्तर सात मनु और होगें— ।२१। इनमें प्रथम सूर्य सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, भव सावर्णि, धर्म सावर्णि, और पाँचवा दक्ष सावर्णि, इन पाँच सावर्णियों के उपरान्त रौच्य एवं भौव्य नामक दो अन्य मनु मिलकर यही सात मनु होंगे ।२२-२३। इन्द्रों में सर्वप्रथम विष्णुभुक्, विद्युति,

---

१. तुषितश्चैव । २. तथैव वशवर्तिनः । ३. वै स्मृताः । ४. हंसो धर्मश्च । ५. एकवचनमार्षम् ।

इन्द्रस्तु विष्णुभुग्ज्ञेयो विद्युतिस्तदनन्तरम् । विभुः प्रभुश्चैव शिखी तथैव च मनोजवः ।।२४
ओजस्वी साम्प्रतिस्त्विन्द्रो बलिर्भाव्यस्ततः परम् । अद्भुतस्त्रिदिवश्चैव दशमस्त्विन्द्र उच्यते ।।२५
सुसात्त्विकश्च[1] कीर्तिश्च शतधामा[2] दिवस्पतिः । इति भूता भविष्याश्च इन्द्रा ज्ञेयाश्चतुर्दश ।।२६
कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च भरद्वाजश्च गौतमः । विश्वामित्रो जमदग्निः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ।।२७
अतः परं प्रवक्ष्यामि मरुतोऽग्निपरिग्रहान् । प्रवहोथावहश्चैव उद्वहः संवहस्तथा ।।२८
विवहो निवहश्चैव परिवाहस्तथैव च । अन्तरिक्षचरा[3] ह्येते पृथङ्मार्गविचारिणः ।।२९
सूर्योऽग्निश्च शुचिर्नाम्ना वैद्युतः पावकः स्मृतः । निर्मन्थ्यः पवमानोऽग्निस्त्रयः प्रोक्ता इमेग्नयः ।।३०
अग्नीनां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशत्तथैव तु । मरुतामपि सर्वेषां विज्ञेयाः सप्तसप्तकाः ।।३१
ऋतुः संवत्सरोऽह्यग्निर्ऋतवस्तस्य जज्ञिरे । ऋतुपुत्राश्च वै पञ्च इति सर्गः सनातनः ।।३२
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थस्त्वनुवत्सरः ।।३३
पञ्चमो वत्सरस्तेषामित्येवं पञ्च ते स्मृताः । तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।।३४
सोम इद्वत्सरस्तेषां वायुश्चैवानुवत्सरः । रुद्रस्तु वत्सरो ज्ञेयः पञ्चैता[4] युगदेवताः ।।३५
आर्तवाः पितरो ज्ञेया ये जाताः ऋतुसूनवः । पितामहास्तु विज्ञेयाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।।३६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये त्रयः । एते वै पितरस्तेषां ये जीवत्पितृका नराः ।।३७
आदित्यश्चैव सोमश्च लोहिताङ्गो बुधस्तथा । बृहस्पतिश्च शुक्रश्च तथा हेलिसुतश्च यः ।।३८

विभु, प्रभु, शिखी, मनोजव, ओजस्वी, बलि, अद्भुत, दशवाँ त्रिदिव, सुसात्त्विक, कीर्ति, शतधामा तथा दिवस्पति, यही चौदह नाम वाले इन्द्र भूत एवं भविष्यकाल में होंगे इनमें ओजस्वी नामक आधुनिक इन्द्र हैं।२४-२६। उसी प्रकार कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र एवं जमदग्नि, ये सात सप्तर्षि कहे जाते हैं।२७। इसके पश्चात् मरुत् तथा अग्नि के नाम बता रहा हूँ सुनो ! प्रवह, आवह, उद्वह, संवह, निवह, एवं परिवाह, ये सात नाम वाले मरुत्, अंतरिक्ष में विचरते तथा पृथक्-पृथक् मार्ग में होकर फलते रहते हैं।२८-२९। सूर्य से उत्पन्न अग्नि का नाम शुचि, विद्युत् से उत्पन्न अग्नि का नाम पावक, और अरणि द्वारा निर्मन्थन से उत्पन्न अग्नि का नाम पवमान है। इस प्रकार तीन अग्नि हैं।३०। इन अग्नियों के पुत्र एवं पौत्रों की संख्या चालीस है और उसी प्रकार मरुतों की भी संख्या सात का सातं गुना (४९) उनचास जाननी चाहिए।३१। अग्नि नामक संवत्सर को ऋतु कहते हैं और उन्हीं से पाँच पुत्रों का जन्म भी हुआ है। इस प्रकार यह सनातन (नित्य) सर्ग (सृष्टि) कहा गया है।३२। क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर, अनुवत्सर, पाँचवा, वत्सर, इस प्रकार उनके पाँच पुत्रों के नाम हैं। उनमें संवत्सर के अग्नि, परिवत्सर के सूर्य, इद्वत्सर के सोम (चन्द्र) अनुवत्सर के वायु, और वत्सर के रुद्र युग देवता हुए हैं।३३-३५।। उपरोक्त ऋतु पुत्र एवं पितर ये ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा के पुत्र पाँच ही वर्ष के समान सदैव रहते हैं।३६। सौम्य, वर्हिषद, एवं अग्निष्टवात्ता, ये जिसके पिता जीवित हैं, उनके पितर हैं।३७। उसी भाँति सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ये नवग्रह

---

१. सुशांतेश्च सुकीर्तिश्च। २. यातुधानो। ३. अन्तरिक्षवहाः। ४. पंचाब्दा ये युगात्मकाः।

उपरागः शिखी चोभौ नवैते तु ग्रहाः स्मृताः । त्रैलोक्यस्य त्विमे नित्यं भावाभावनिवेदकाः ॥३९
आदित्यश्चैव सोमश्च द्वावेतौ मण्डलग्रहौ । राहुश्छायाग्रहस्तेषां शेषास्तारा ग्रहाः स्मृताः ॥४०
नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः । पठ्यते चाग्निरादित्य उदकश्चन्द्रमाः स्मृतः ॥४१
आदित्यः पठ्यते ब्रह्मा विष्णुस्तेषां तु चन्द्रमाः । महेश्वरस्तु विज्ञेयस्तृतीयस्तारकग्रहः ॥४२
कश्यपस्य सुतः सूर्यः सोमो धर्मसुतः स्मृतः । देवासुरगुरू द्वौ तु नामतस्तौ[१] महाग्रहौ ॥४३
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती । बुधः सोमात्मजः श्रीमाञ्छनी रविसुतः स्मृतः ॥४४
सिंहिकायाः सुतो राहुः केतुस्तु ब्रह्मणः सुतः । सर्वेषां च ग्रहाणां हि अधस्ताच्चरते रविः ॥४५
ततो दूरं स्मृतं तावद्विधोर्नक्षत्रमण्डलम् । नक्षत्रेभ्यः कुजबुधौ भैताद्बुस्तदनन्तरम् ॥४६
तस्मान्माहेश्वरश्चोर्द्ध्वं धिषणस्तदनन्तरम् । कृष्णश्चोर्ध्वं ततस्तस्मादथ चित्रशिखण्डिजः ॥४७
एषामेव क्रमः प्रोक्तश्चासक्तं त्रिदिवं ध्रुवे । आदित्यनिलयो राहुः कदाचित्सोममार्गगः ॥४८
सूर्यमण्डलसंस्थस्तु[१] शिखी सर्पति सर्वदा । नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भार्गवस्य[२] तु ॥४९
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शनिनः स्मृतः । त्रिगुणं[३] मंडलं ज्ञेयं नाक्षत्रं विस्तराद्विधोः ॥५०
नक्षत्रमण्डलात्तत्र पादहीनो बृहस्पतिः । बृहस्पतेः पादहीनः शुक्रोऽङ्गारक एव हि ॥५१

बताये गये हैं जो तीनों लोकों की स्थिति एवं नाश होने की सूचना नित्य दिया करते हैं ।३८-३९। सूर्य एवं चन्द्रमा ये दोनों मण्डल ग्रह हैं राहु छाया ग्रह और शेष तारा ग्रह बताये गये हैं ।४०। नक्षत्रों के अधीश्वर चन्द्रमा तथा ग्रहों के राजा सूर्य कहे जाते हैं, इनमें सूर्य अग्नि रूप एवं चन्द्रमा उदक (जल) रूप हैं ।४१। इसी प्रकार आदित्य ब्रह्मा के रूप, चन्द्रमा विष्णु रूप और तीसरा तारक भौम ग्रह महेश्वर का रूप कहा गया है ।४२। सूर्य कश्यप के पुत्र तथा चन्द्रमा धर्म के पुत्र हैं देवताओं तथा असुरों के गुरु, वृहस्पति एवं शुक्र ये दोनों महा ग्रह कहे जाते हैं ।४३। तथा दोनों प्रजापति के पुत्र हैं । धीमान् बुध चन्द्रमा के पुत्र एवं शनि रवि के पुत्र हैं ।४४। राहु सिंहिका का पुत्र तथा केतु ब्रह्मा का पुत्र है एव समस्त ग्रहों के नीचे स्तर में सूर्यविचरते हैं ।४५ उनसे दूर (ऊपर) चन्द्रमा, उनसे ऊपर नक्षत्र मण्डल, एवं उससे ऊपर बुध, उनके पश्चात् शुक्र, उसके अनन्तर भौम, भौम के अनन्तर बृहस्पति उनके अनन्तर शनि, और शनि के ऊपर लोग अवस्थित हैं ।४६-४७। इस भाँति इन लोगों के स्थित होने के विषय में यही क्रम बताया गया है । इसी क्रम से स्वर्ग में स्थित होकर ये सभी ध्रुव में निबद्ध हैं । यद्यपि सूर्य के घर में राहु सदैव रहता है, किन्तु कभी-कभी वह चन्द्र मार्ग का भी अनुयायी हो जाया करता है ।४८।चन्द्र मण्डल में ही अवस्थित होकर केतु सदैव (मन्द) गमन करता रहता है, तब हजार योजन सूर्य के मण्डल का व्यास कहा गया है ।४९। एवं उससे दूना[१] विस्तार शनि एवं चन्द्रमण्डल के व्यास का है और चन्द्रमण्डल के दूने विस्तार में नक्षत्र मण्डल का व्यास हैं ।५०। इस प्रकार नक्षत्र मण्डल की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बृहस्पति का व्यास हो जाता है, और बृहस्पति के व्यास की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल

---

१. सोममंडल । २. ब्राह्मणस्य तु । ३. द्विगुणम् ।

१. तिगुना भी कहा गया है

विस्तारो मण्डलानां तु पादहीनस्तयोर्बुधः । बुधतुल्यानि ऋक्षाणि सर्वऋक्षाणि यानि तु ।।५२
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते । राहुः सूर्यप्रमाणश्च कदाचित्सोमसन्निभः ।।५३
नक्षत्रग्रहमानस्तु[1] केतुस्त्वनियतः स्मृतः । अविज्ञातगतिश्चैव चञ्चलत्वान्नराधिप ।।५४
तथालक्षितरूपस्तु बहुरूपधरो हि सः । भूर्लोकः पृथिवी प्रोक्ता अन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ।।५५
स्वर्लोकास्त्रिदिवं ज्ञेयं शेषादूर्ध्वं यथाक्रमम् । भूपतिस्तु सदा त्वग्निस्तेनासौ भूपतिः स्मृतः ।।५६
वायुर्नभस्पतिस्तेन तथा सूर्यो दिवस्पतिः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गुह्यकाः सिद्धराक्षसाः ।।५७
भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्तरिक्षचराञ्छृणु । मरुतः सप्तमस्कंधे रुद्रास्तत्रैव चाश्विनौ ।।५८
आदित्या वसवः सर्वे तथैव च गवां गणाः । चतुर्थे तु महर्लोके वसन्ते कल्पवासिनः ।।५९
प्रजानां पतिभिः सर्वैः सहिताः कुरुनन्दन । जनलोके पञ्चमे च वसन्ते भूमिदाः सदा ।।६०
ऋतुः सनत्कुमाराद्या वैराजश्च तथाश्रयाः । सत्यस्तु सप्तमे लोके ह्यपुनर्मार्गगामिनाम् ।।६१
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः । इतिहासविदो यत्र क्रीडन्ते कुरुनन्दन ।।६२
शृण्वन्ति च पुराणानि ये सदा भीमनन्दन । महीतलात्सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः ।।६३

देने से वह शुक्र एवं मगल का व्यास बन जाता है ।५१। और इनके व्यास की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बुध का व्यास हो जायगा । बुध के समान ही सभी नक्षत्रों का व्यास है ।५२। जिनका प्रमाण आधेयोजन का कहा गया है इन सब से छोटा और कोई ग्रह व्यास नहीं है । राहु का प्रमाण सूर्यमण्डल के प्रमाण के समान है और कभी वह चन्द्रमण्डल के समान भी हो जाता है ।५३। हे नराधिप ! केतु का प्रमाण नियत नही बताया गया है, और चंचल होने के नाते उसकी जाति भी अविदित ही हैं ।५४। इस भाँति यद्यपि वह हमेशा अलक्षित (अदृश्य) रहता है पर कभी कभी अनेक रूप भी धारण कर लेता है । पृथ्वी को भूलोक, अन्तरिक्ष को भुवर्लोक, और स्वर्लोक को त्रिदिव (स्वर्ग) कहा गया है, एवं शेष लोक ऊर्ध्वभाग मे ही क्रमशः अवस्थित हैं । भूलोक के स्वामी होने के नाते अग्नि को भूपति कहा गया है ।५५-५६। इसी प्रकार वायु नभस्पति और सूर्य दिवस्पति हैं । गन्धर्द, अप्सराएँ, गुह्यक, सिद्ध एवं राक्षस ये सब भू लोक के निवासी हैं और अन्तरिक्ष के निवासियों को बता रहा हूँ । सुनो ! मरुत् (वायु) सातवीं कक्षा (स्वर्ग) में रहते हैं तथा उसी स्थान पर रुद्र एवं अश्विनी कुमार, आदित्य, वसु एवं समस्त देवगण रहते हैं । चौथा महर्लोक है, उसमें कल्पवासी लोग निवास करते हैं ।५७-५९। हे कुरुनन्दन ! पाँचवें जनलोक में समस्त प्रजापतियों के समेत भूमिदान करने वाले व्यक्ति सदैव अवस्थित रहते हैं।६०। ऋतु, सनत्कुमार आदि, वैरज ये सभी सातवें सत्य लोक में रहते हैं जहाँ पहुँच कर कोई भी पुर्नजन्म नहीं प्राप्त करता है।६१। इस प्रकार ब्रह्म लोक का अप्रतिघात लक्षण बताया गया है जो उपरोक्त कथन से प्रमाणित होता है। इतिहास के विशेषज्ञ (महाभारत) लोग वहाँ सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं ।६२। और हे भीमनन्दन ! पुराण की कथाओं का नित्य श्रवण करने वाला भी उसी लोक का निवासी होता है। पृथ्वी तल से सौ सहस्र (एकलाख) योजन की दूरी पर सूर्य स्थित है ।६३। भूमि से

१. तस्माद्ग्रहणमात्रह तु ।

शतयोजनकोटचस्तु[१] भूमेरूर्ध्वं ध्रुवः स्थितः । ततो विंशतिलक्षस्तु त्रैलोक्योत्सेध उच्यते ॥६४
द्विगुणैस्तु सहस्रैस्तु योजनानां शतेषु च । लोकांतरमथो चैवं ध्रुवादूर्ध्वं विधीयते ॥६५
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । भूता विद्याधराश्चैव अष्टौ ते देवयोनयः ॥६६
यस्मिन्व्योम्नि त्विमे लोकाः सप्त वै सम्प्रतिष्ठिताः । मरुतः पितरो ह्येते तस्मिन्नेवाग्रयो ग्रहाः ॥६७
यास्तदन्येताः समाख्याता मयाष्टौ देवयोनयः । मूर्ताश्चामूर्तयश्चैव सर्वास्ता व्योम्नि संस्थिताः ॥६८
एवंविधमिदं व्योम सर्वव्योममयं स्मृतम् । सर्वदेवमयं चैव सर्वग्रहमयं तथा ॥६९
तस्माद्यो ह्यर्चयेद्व्योम तेन सर्वेऽर्चिताः सुराः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभार्थी व्योम चार्चयेत् ॥७०
यस्त्वर्चते सदा व्योम भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । वृषध्वजसदो राजन्स गच्छेन्नात्र संशयः ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योम माहात्म्ये भुवनकोशवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२५।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्योममाहात्म्यवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

आकाशं खं दिशोव्योम अन्तरिक्षं नभोऽम्बरम् । पुष्करं गगनं मेरुर्विपुलं च बिलं तथा ॥१

सात करोड़ योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित है। इस प्रकार बीस लाख योजन तीनों लोकों की ऊँचाई है।६४। ध्रुव से सौ सहस्र (एकलाख) योजन की दुगुनी दूरी पर ऊपर लोकांतर (दूसरे लोक) स्थित हैं।६५। देव, दानव, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, पन्नग, भूत, एवं विद्याधर ये आठ प्रकार की देवयोनियाँ हैं।६६। जिस व्योम में ये सातों लोक, मरुत् एवं पितर लोग अवस्थित हैं उसी व्योम में अग्नि, गृह, आठों देव योनियां भी जिन्हें मैंने पहले बताया है एवं मूर्त, अमूर्त सभी कुछ अच्छे प्रकार से स्थित हैं।६७-६८ इस प्रकार इस व्योम को सर्वव्योममय, सर्व देवमय, तथा सर्व ग्रहमय जानना चाहिए।६९। इसलिए जो व्योम की पूजा करता है, यह निश्चय है कि उसने सभी देवताओं की पूजा की। अतः शुभेच्छुक प्राणी को प्रयत्न पूर्वक व्योम की पूजा करनी चाहिए।७०। हे राजन्! भक्ति एवं श्रद्धा से सम्पन्न होकर जो व्योम की पूजा सदैव करता है, उसे वृषध्वज के सदन की प्राप्ति अवश्य होती है।७१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के व्योम माहात्म्य में भुवन कोश वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।१२५।

अध्याय १२६

व्योम माहात्म्य वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते! आकाश, ख, दिशा, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेरु,

---

१. सप्तयोजन।

आपोऽछिद्रं तथा शून्यं तमो वै रोदसी तथा । नामान्येतानि ते व्योम्नः कीर्तितानि महीपते ॥२
लवणक्षीरदध्यम्लघृतमध्विक्षवस्तथा । स्वादूदकश्च सप्तैते समुद्राः परिकीर्तिताः ॥३
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो नील एव च । श्वेतश्च शृङ्गवांश्चैव षडेते वर्षपर्वताः ॥४
मध्यसंस्थस्तथैतेषां महाराजतपर्वतः । माहेन्द्री चाप्यथाग्नेयी याम्या च नैर्ऋती तथा ॥५
वारुणी चाथ वायव्या सौम्यैशानी तथैव च । एताः पुर्यस्तु देवानां तत्रोपरि समाश्रिताः ॥६
पृथिव्यां तु स्थितो वीर लोकालोकस्तु पर्वतः । ततश्चण्डकपालं तु तस्मात्तत्परतस्तु यः ॥७
ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महानहङ्कारः प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥८
पुरुषादीश्वरो श्रेय ईश्वरेणावृतं जगत् । ईश्वरो भगवन्भानुस्तेनेदं पूरितं जगत् ॥९
सहस्रांशुर्महातेजाश्चतुर्बाहुर्महाबलः । ऊर्ध्वमप्यथ लोकास्तु प्राङ्मया ये प्रकीर्तिताः ॥१०
भूयस्तान्सम्प्रवक्ष्यामि अण्डावरणकारकान् । भूर्लोकस्तुभुवर्लोकस्तृतीयः परिकीर्तितः ॥११
महर्जनस्तपः सत्यः सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः । तत[1] स्तवंडकपालं तु तस्माच्च परन्तप ॥१२
ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महान्प्रधानश्च प्रकृतिपुरुषस्ततः ॥१३
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् । भूमेरधस्तात्सप्तैव लोकानभिमताञ्छृणु ॥१४
तलं सुतलपाताले तलातलं तथातलम् । वितलं च कुरुश्रेष्ठ सप्तमं च रसातलम् ॥१५

विपुल, विल, आप, छिद्र, शून्य, तम, और रोदसी इतने नाम व्योम के बताये गये हैं ।१-२। लवण, क्षीर, खट्टे दधि, घी, मधु, ईख के रस और मीठे जल ये सात समुद्र है । हिमवान् हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, एवं भृंगवान ये छह वर्ष पर्वत हैं ।३-४। इन्हीं के मध्यभाग में अवस्थित महाराजा सुमेरु नामक पर्वत है उसके ऊपरी भाग में (दिव्यपाल) देवताओं की माहेन्द्री, अग्नेयी, याम्या, नैऋति, वारुणी, वायव्या, सौम्या, तथा ऐशानी नाम की पुरियाँ स्थित हैं ।५-६। हे वीर ! पृथिवी में लोकालोक नाम पर्वत अवस्थित है उसके अनन्तर चण्ड कपाल में अग्नि, अग्नि के अनन्तर वायु, वायु के अनन्तर आकाश और आकाश के अनन्तर भूतादि है ऐसा कहा जाता है । उसके पश्चात् महत्, अहंकार, प्रकृति, पुरुष एवं ईश्वर क्रमशः उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण अवस्थित हैं । इस प्रकार यह समस्त जगत् ईश्वर के आवृत (घिरा हुआ) है । भगवान् भास्कर ही ईश्वर शब्द से स्मरण कियेजाते हैं क्योंकि उन्हीं द्वारा इस जगत् की पूर्ति हुई है ।७-९। और उन महातेजस्वी एवं महाबली सूर्य की चार भुजाएँ हैं । इस भाँति ऊर्ध्व भाग में वे लोक अवस्थित हैं जिन्हें मैं पहले बता चुका हूँ ।१०। मैं पुनः उन लोकों का वर्णन कर रहा हूँ जो ब्रह्माण्ड रूपी आवरण से आवृत (घिरे) हैं भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन लोक, तप लोक, एवं सत्य लोक ये सात लोक (ऊर्ध्व भाग में) बताये गये हैं । उसके पश्चात् अण्ड कपाल अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि, महान, प्रधान, प्रकृति, पुरुष, और ईश्वर का वर्णन किया गया है जिनमें पुरुष से ईश्वर की भाँति सभी की महत्ता उत्तरोत्तर अधिक है । इस भाँति ईश्वर से यह सारा जगत् घिरा हुआ है । इसके पश्चात् भूमि से नीचे अवस्थित अपने लोकों को सुनो ! ११-१४। तल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और

---

१. अण्डकटाहं तु ।

ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महान्प्रधानश्च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥१६
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् । एवं मेरोः प्रमाणं तु सर्वमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१७
चतुरस्रश्चतुः शृंगः स मेरुः काञ्चनः शुभः । पृथिव्यां संस्थितो मध्ये सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥१८
चतुर्भिः काञ्चनैः शृंगैर्दिव्यैर्दिवमिवोल्लिखन् । योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिरुच्छ्रितः ॥१९
प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः । विस्तारस्त्रिगुणश्चास्य परिणाहस्ततः स्मृतः ॥२०
तस्य सौमनसं नाम शृंगमेकं तु काञ्चनम् । द्वितीयं पद्मरागाभं ज्योतिष्कं नाम नामतः ॥२१
तृतीयं नामतश्चित्रं सर्वदेवमयं शुभम् । चतुर्थं राजतं शुक्लं चन्द्रौजस्कमिति स्मृतम् ॥२२
यत्तु सौमनसं नाम शृंगं गाङ्गेयमुच्यते । तदेव चोदयो नाम्ना यत्रोदन्दृश्यते रविः ॥२३
उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपं दिवाकरः । दृश्यो भवति भूतानां शिखरं च समास्थितः ॥२४
काञ्चनस्य च शैलस्य तेजसार्कस्य चाहृते । उभे सन्ध्ये प्रकाशेते आताम्रे पूर्वपश्चिमे ॥२५
शृंगे सौमनसे सूर्य उत्तिष्ठत्युत्तरायणे । ज्योतिषे दक्षिणे चापि विषुवे मध्यतस्तयोः ॥२६
ईशेन्द्रोऽग्निश्च ऐशान्यां तत्राग्निः पूर्वदक्षिणे । नैर्ऋतेऽपि ततो ज्ञेयो वायव्ये मरुतस्तथा ॥२७
मध्ये तु कंजजः साक्षाद्ग्रहा ज्योतींषि चैव हि । आदित्यस्तेन रूपेण तस्मिन्व्योम्नि प्रतिष्ठितः ॥२८

सातवाँ रसातल लोक है ।१५। वहाँ भी पूर्व की भाँति अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि, महान्, प्रधान, प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर की उत्तरोत्तर महत्ता अधिक बतायी गयी है और वह भी जगत् ईश्वर से आवृत है । इस प्रकार मेरु का समस्त प्रमाण बता दिया गया ।१६-१७। चौकोर एवं चार शिखरों से युक्त होने के नाते मेरु पर्वत शुभ एवं काञ्चन मय होकर अवस्थित दिखायी देता है पृथिवी के मध्य भाग में उसकी स्थिति बतायी गई है, जो सर्वदा सिद्ध एवं गन्धर्वों द्वारा सेवित होता रहता है ।१८। वह पर्वत जिसके सुवर्ण मय चारों शिखर आकाश मे उभरे हुए रेखा के समान दिखाई पड़ते हैं चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है ।१९। और सोलह सहस्र योजन पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट हैं, एवं अट्ठाइस सहस्र योजन विस्तृत (चौड़ा) है इस प्रकार उसकी लम्बाई, चौड़ाई के तिगुने योजन की बतायी गयी है ।२०। उसका पहला शिखर, सौमनस नामक सुवर्ण निर्मित है दूसरा ज्योतिष्क नामक शिखर पद्मराग मणि से विनिर्मित है ।२१। तीसरा चित्रनामक शिखर शुभ एवं सर्वदेव मय है और चौथा चन्द्रौजष्क नामक शिखर चाँदी का बताया गया है ।२२। सौमनस नामक शिखर जो सुवर्ण निर्मित बताया गया है, उसी पर उदय होते हुए सूर्य दिखाई पड़ते हैं ।२३। इसीलिए उसका 'उदयाचल तथा गांगेय' नाम सर्व विदित है । उसके उत्तर की ओर से जम्बूद्वीप की परिक्रमा करके सूर्य जब उस शिखर पर स्थित होते हैं उसी समय प्राणी वर्ग उन्हें देखता है ।२४। तथा (मेरु के) काञ्चनमय शिर पर सूर्य तेज के भासित होने पर पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं की दोनों संध्याएँ सम्पूर्ण तांबे की भाँति (लालरङ्ग की) प्रकाशित होने लगती है ।२५। उत्तरायण समय में सूर्य सौमनस् नामक शिखर पर उदय होते हैं, दक्षिणायन काल में ज्योतिष्क नामक शिखर पर तथा विषुव समय में उन दोनों के मध्य भाग से उदय होते हैं ।२६। उस पर्वत के ईशान कोण में ईश इन्द्र, आग्नेय में अग्नि, नैऋत्य कोण में पितर, वायव्य में मरुत् और मध्य भाग में स्वयं ब्रह्मा, ग्रह एवं नक्षत्र तारागण अवस्थित हैं । उसी को व्योम कहा गया है क्योंकि उसमें सूर्य अपने रूप से अवस्थित

इदं देवमयं व्योम तथा लोकमयं स्मृतम् । पूर्वकोणस्थिते भृंगे स्थितः शुक्रो महीपते ।।२९
हेलिजश्चापरे ज्ञेयो धननाथस्तथापरे । सोमश्चापि चतुर्थे तु स्थितः भृंगे जनाधिप ।।३०
मध्ये केशास्थितो राजन्हुङ्कारश्च पिनाकिनः । भृंगे पूर्वोत्तरे राजन्स्थितो देवो विधुक्षये[1] ।।३१
ततः स्थितो महादेवो गोपतिर्लोकपूजितः । पूर्वाग्नेयीस्थिते भृंगे स्थितो वै शाण्डिलः सुतः ।।३२
ततः स्थितो महातेजाः कीनाशो हेलिनन्दनः । स्थितो वै नैर्ऋते भृंगे विरूपाक्षो महाबलः ।।३३
तस्मादनन्तरो देवः स्थितो वै यादसां पतिः । ततः स्थितो महातेजा वीर मित्रो महाबलः ।।३४
वायव्यं भृंगमाश्रित्य सर्वदेवनमस्कृतम् । ततः स्थितो दशबलो नरमारुह्य भारत ।।३५
ब्रह्मा मध्ये स्थितो देवो ह्यनन्तश्चाध एव हि । उपेन्द्रशङ्करौ देवौ ब्रह्मणोऽन्ते समास्थितौ ।।३६
एष मेरुस्तथा व्योम एष धर्मश्च पठ्यते । सर्वदेवमयश्चायं मेरुर्व्योम इति स्मृतः ।।३७
तथा वेदमयश्चापि पठ्यते नात्र संशयः । भृंगाणि वेदाश्चत्वारः पूर्वभृंगादयो विदुः ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योममाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२६।

है ।२७-२८। यह व्योम इस प्रकार देवमय एवं लोकमय बताया गया है । हे महीपते ! पूरब कोण वाले शिखर पर स्थित शुक्र सुशोभित हैं ।२९। उसी प्रकार दूसरे पर हेलिज तीसरे पर धननाथ (कुबेर) और चौथे शिखर पर सोम (चन्द्र) स्थित हैं ।३०। हे राजन् ! उसके मध्य भाग में ब्रह्मा, विष्णु एवं पिनाकी की हुंकार (शिव) स्थित हैं । उस पर्वत के पूर्वोत्तर वाले शिखर पर देव विधुक्षय, महादेव, एवं लोक पूजनीय गोपति स्थित हैं । और पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) वाले शिखर पर शांडिल सुत की अवस्थिति है ।३१-३२। उसके अनन्तर महातेजा, सूर्य पुत्र कीनाश (यम) रहते हैं । नैर्ऋत्य वाले शिखर पर महाबली विरूपाक्ष एवं उनके अनन्तर वरुण देव और उनके पश्चात् महातेजस्वी एवं महाबली मित्र अवस्थित हैं ।३३-३४। हे भारत ! समस्त देवों के वन्दनीय वायव्य वाले शिखर पर मनुष्य को वाहन बनाकर दशबल अवस्थित हैं ।३५। मध्यभाग में ब्रह्मा, अधो (नीचे) भाग में अनन्त तथा विष्णु, शंकर ब्रह्मा के अनन्तर अवस्थित हैं ।३६

इस भाँति यह मेरु, व्योम, एवं धर्म के नाम से कहा जाता है तथा सर्व देवमय होने के नाते भी इसे व्योम के नाम से स्मरण किया जाता है ।३७। और यह निश्चित वेदमय भी है क्योंकि इसके चारों शिखर चारों वेद रूप बताये गये हैं ।३८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में व्योम माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२६।

---

१. विधुक्षयः ।

१. तुला और मेषसंक्रान्ति के समय

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यप्रसादवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथमाराधितः सूर्यः साम्बेनामिततेजसा । विमुक्तस्तु कथं रोगैर्ब्रूहि मां द्विजसत्तम ।।१

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणु साम्बकथां पुरा । विस्ताराद्वच्मि ते सर्वां कथां पापविमोचिनीम् ।।२
पुरा संश्रुत्य माहात्म्यं भास्करस्य स नारदात् । विनयादुपसङ्गम्य वचः पितरमब्रवीत् ।।३
कश्मलेनाभिभूतोऽस्मि मलेन व्याधिनाच्युत । वैद्यैरोषधिभिश्चापि न शान्तिर्मम विद्यते ।।४
वनं गच्छामि भगवन्ननुज्ञां दातुमर्हसि । शिवेन पुण्डरीकाक्ष ध्याय मां पुरुषोत्तम ।।५
अनुज्ञातः स कृष्णेन सिन्धोरुत्तरकूलतः । गत्वा सन्तारयामास चन्द्रभागां महानदीम् ।।६
ततो मित्रवनं गत्वा तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । उपवासपरः साम्बः शुष्को धमनिसन्ततः ।।७
आराधनार्थं सूर्यस्य गुह्यं स्तोत्रं[1] जजाप ह । वेदैश्चतुर्भिः समितं पुराणाश्रयबृंहितम् ।।८
यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं ह्यजरमव्ययम् । युक्तं मनोजवैरश्वैर्हारीतैर्ब्रह्मवादिभिः[2] ।।९

अध्याय १२७

सूर्यप्रसाद का वर्णन

शतानीक बोले—हे द्विजसत्तम ! उस अमित तेजवाले साम्ब ने सूर्य की कैसे आराधना की और वह रोग से मुक्त कैसे हुआ, मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! आप ने यह अति उत्तम प्रश्न किया है । अतः इस साम्ब की कथा को बता रहा हूँ सुनो ! मैं इस पापमोचनी को विस्तार पूर्वक तुम्हें बताऊँगा ।२। पहले उसने नारद के मुख से भास्कर के माहात्म्य को श्रवण करके सविनय अपने पिता के समीप जाकर उनसे कहा—हे अच्युत ! इस मल वाले (कुष्ठ) रोग से पीड़ित होने के कारण मैं विवश हो रहा हूँ क्योंकि वैद्यों द्वारा दी गई औषधियों से भी मुझे शांति प्राप्त नहीं है ।३-४। हे भगवन् ! अतः मुझे आज्ञा दें मैं अब वन जाने की तैयारी कर रहा हूँ । हे पुण्डरीकाक्ष, हे पुरुषोत्तम ! मेरे कल्याण के लिए आप इस मेरी प्रार्थना पर विशेष ध्यान दें ।५। पश्चात् कृष्ण के द्वारा आज्ञा देने पर उसके सिन्धनदी के उत्तरी तट पर जाकर उस चंद्रभागा नामक महा नदी को पार किया ।६। पश्चात् वहाँ से तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त उस मित्रवन नामक तीर्थ स्थान में जाकर उस साम्ब ने जिसकी धमनी आदि नाडियाँ उपवास रहने के कारण सूख गई थीं सूर्य की आराधना गुह्य स्तोत्र द्वारा करना आरम्भ किया, जो चारों वेदों से सम्बद्ध एवं पुराणों द्वारा संवर्द्धित है ।७-८। शुक्ल, दिव्य अजर, एवं अव्यय रूप यह मण्डल जो दिखाई दे रहा हैं, जिसमें मन की भाँति वेग वाले अश्व जुते हुए हैं

---

१. मंत्रम् । २. ब्राह्मणादिभिः ।

आदिरेष[1] हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः । त्रैलोक्यचक्षुरेवात्र परमात्मा प्रजापतिः ॥१०
एष वै मण्डले ह्यस्मिन्पुरुषो दीप्यते महान् । एष विष्णुरचिन्त्यात्मा ब्रह्मा चैष पितामहः ॥११
रुद्रा महेन्द्रो वरुण आकाशं पृथिवी जलम् । वायुः शशाङ्कः पर्जन्यो धनाध्यक्षो विभावसुः ॥१२
यष एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान् । एकः साक्षान्महादेवो वृत्रमण्डनिभः सदा ॥१३
कालो ह्येष महाबाहुर्निबोधोत्पत्तिलक्षणः । य एष मण्डले ह्यस्मिंस्तेजोभिः पूरयन्महीम् ॥१४
भ्राम्यते ह्यव्यवच्छिन्नो वातैर्गोऽमृतलक्षणः । नातः परतरं किञ्चित्तेजसा विद्यते क्वचित् ॥१५
पुष्णाति सर्वभूतानि एष एव सुधामृतैः । अन्तस्थाम्लेच्छजातीयांस्तिर्यग्योनिगतानपि ॥१६
कारुण्यात्सर्वभूतानि पासि त्वं च विभावसो । श्वित्रकुष्ठ्यंधबधिरान्पंगूंश्चापि तथा विभो ॥१७
प्रपन्नवत्सलो देव कुरुते नीरुजो भवान् । चक्रमण्डलमग्नांश्च निर्धनाल्पायुषस्तथा ॥१८
प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्धरसि लीलया । का मे शक्तिः स्तवैः स्तोतुमार्तोऽहं रोगपीडितः ॥१९
स्तूयसे त्वं सदा देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । महेन्द्रसिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिः सगुह्यकैः ॥२०
स्तुतिभिः किं पवित्रैर्वा तव देव समीरितैः । यस्य ते ऋग्यजुः साम्नां त्रितयं मण्डलस्थितम् ॥२१

और हारीत (पक्षी) एवं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों से सुसेवित हो रहा है, वही प्राणियों में सर्वप्रथम आदि है अतः आदित्य नाम से स्मरण किया जाता है। और यही तीनों लोकों का नेत्र परमात्मा तथा प्रजापति है।९-१०। इस प्रकार इस मंडल में देदीप्यपान यह महान् पुरुष जो दिखाई देता है, वही अचिंतनीय विष्णु, पितामह ब्रह्मा, रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, चन्द्रमा, पर्जन्य (मेघ), कुबेर, एवं विभावसु है।११-१२। इस मण्डल में जो एक प्रदीप्त तथा महान् पुरुष दिखाई दे रहा है, वह साक्षात् महादेव ही है और वह सदैव अण्डे की भाँति ही घिरा रहता है।१३। इस प्रकार इसी महाबाहु को जगत् के उत्पत्ति लक्षण वाला काल जानना चाहिए एवं इस मण्डल में अवस्थित होकर यह जो समस्त पृथिवी को अपने तेज से आच्छादित किये हैं, तथा जो अमृतमय है और वायु द्वारा बे रोक टोक भ्रमण कर रहा है, उसके तेज से पृथक् कहीं कुछ भी नहीं, यही अपनी सुधामय किरणों द्वारा समस्त प्राणियों का पोषण करता है तथा (ब्रह्माण्ड के मध्य) में अवस्थित अन्तस्थ म्लेच्छों एवं तिर्यक् (पक्षी) योनियों की भी।१४-१६। हे विभावशो! जिस भाँति दयालुता के कारण आप (ऊँच नीच) सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार श्वेत कुष्टी, अंधे, बहिरे, तथा लंगड़े की भी (आप) रक्षा करते हैं।१७। हे देव! आप शरणागतवत्सल हैं, इसीलिए इन्हें (उपरोक्त को) सभी प्रकार के जीवों को आप नीरोग करते हैं। हे देव! चक्रमण्डल में निमग्न, निर्धन एवं अल्पायु वालों का उद्धार प्रत्यक्षदर्शी होने के नाते आप सहज ही में कर देते हैं। इसलिए स्तोत्र द्वारा स्तुति करने की मुझमें शक्ति कहाँ है क्योंकि मैं तो दुःखी एवं रोग पीड़ित हूँ।१८-१९। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिवादि देव तो आपकी सदैव स्तुति करते हैं उसी प्रकार महेंद्र, गंधर्व, अप्सराएँ एवं गुह्यकों द्वारा आप की सदैव स्तुति होती रहती है। हे देव! पवित्रता पूर्ण स्तुतियों द्वारा भी क्या आपकी स्तुति की जा सकती है? जब कि ऋक्, यजु, एवं साम, ये तीनों आप के

---

१. अनादिरेष भूतानामाद्योऽर्क इति संज्ञितः।

ध्यानिनां त्वं परं ध्यानं मोक्षद्वारं च मोक्षिणाम् । अनन्ततेजसाक्षोभ्यो ह्यचिंत्याव्यक्तनिष्कलः ।।२२
यदयं व्याहृतः किञ्चित्स्तोत्रेऽस्मिञ्जगतः पतिः । आर्ति भक्तिं च विज्ञाय तत्सर्वं ज्ञातुमर्हसि ।।२३
तमुवाच ततः सूर्यः प्रीत्या जाम्बवतीसुतम् । प्रीतोऽस्मि तपसा वत्से ब्रूहि तन्मां यदिच्छसि ।।२४

साम्ब उवाच

यदि प्रसन्नो भगवानेष एव वरो मम । भक्तिर्भवतु मेऽत्यर्थं त्वयि देव सनातन ।।२५

श्रीसूर्य उवाच

भूयस्तुष्टोऽस्मि भद्रं ते वरं वरय सुव्रत । स द्वितीयं वरं वव्रे तदैव वरदं विभुम् ।।२६
मलः शरीरसंस्थो मे त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु । येन मे शुद्धसलिलं वपुर्भवतु गोपते ।।२७

सुमन्तुरुवाच

स तथास्त्विति तेनोक्तो भास्करेण महात्मना । तां मुमोच रुजं साम्बो देहात्त्वचमिवोरगः ।।२८
ततो रूपेण दिव्येन रूपवानभवत्पुनः । प्रणम्य शिरसा देवं पुरतोऽवस्थितोऽभवत् ।।२९

श्रीसूर्य उवाच

भूयश्च शृणु मे साम्बं तुष्टोऽहं यद्ब्रवीमि ते । अद्य प्रभृति त्वन्नाम्ना मम स्थानानि सुव्रत ।।
क्षितौ ये स्थापयिष्यन्ति तेषां लोकाः सनातनाः ।।३०

मंडल में ही अवस्थित हैं ।२०-२१। हे देव ! तुम ध्यान करने वालों के लिए उत्तम ध्यान, मोक्षार्थियों के लिए मोक्ष द्वार, अनन्ततेज होने के नाते अक्षोम्य, अचिंत्य, अव्यक्त, एवं निष्फल हो ।२२। आप जगत् के पति हैं इस प्रकार इस स्तोत्र में जो कुछ थोड़ा बहुत कहा गया है, मेरी इस दीनावस्था एवं भक्ति को देखते हुए आप उन सभी बातों को समझ सकते हैं ।२३। तदनन्तर सूर्य ने प्रसन्नतापूर्वक जाम्बवती सुत (साम्ब) से कहा हे वत्स ! मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूँ, अपनी अभिलाषा मुझसे कहो ।२४

साम्ब ने कहा—हे देव, सनातन ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान चाहिए कि मुझे प्रायः अधिकाधिक आप की भक्ति प्राप्त हो ।२५

श्रीसूर्य बोले—हे सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ अतः और भी कोई वर माँगो ! अनन्तर उस विभु एवं वरद सूर्य से साम्ब ने उसी समय दूसरे वरदान की इच्छा प्रकट की ।२६। हे गोपते ! मेरे शरीर में स्थित यह मल (रोग) आप के प्रसाद से नष्ट हो जाय ! जिससे मेरी शरीर सर्वाङ्ग शुद्धि पूर्वक निर्मल हो जाय ।२७

सुमन्तु ने कहा—भगवान् भास्कर ने उसके लिए 'तथास्तु' ज्यों ही कहा उसी समय साम्बने देह में अवस्थित केचुल के परित्याग करने वाले साँप की भाँति अपने रोग का त्याग किया ।।२८। पश्चात् दिव्य रूप की प्राप्ति कर वह सूर्य देव को प्रणाम कर उनके सामने स्थित हुआ ।२९

श्रीसूर्य बोले—हे साम्ब ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसदिन तुमसे जो कुछ कहूँ उसे सुनो ! हे सुव्रत ! आज से जो कोई मनुष्य तुम्हारे नाम से मेरे स्थान को पृथ्वी में बनायेंगे, एवं स्थापित

स्थापयस्वैव मामस्मिश्चन्द्रभागातटे शुभे । तव नाम्ना च साम्बेदं परां ख्यातिं गमिष्यति ॥३१
कीर्तिस्तवाक्षया लोके ख्यातिं यास्यति सुव्रत । भूयश्च ते प्रदास्यामि प्रत्यहं स्वप्नदर्शनम् ॥३२

सुमन्तुरुवाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै वृष्णिसिंहाय चापरम् । प्रत्यक्षदर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधाद्धरिः ॥३३
य इदं पठते स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नरः । त्रिसप्तशतमावर्त्य होमं वा सप्तरात्रकम् ॥३४
राज्यकामो लभेद्राज्यं धनकामो लभेद्धनम् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्यथा साम्बस्तथैव सः ॥३५
सूर्यलोकं व्रजेच्चापि भक्त्या पूज्य दिवाकरम् । रमते च तथा तस्मिन्देवैश्च परिवारितः ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रसादवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२७।

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

साम्बस्तववर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अस्तावीच्च ततः साम्बः कृशो धमनिसन्ततः । राजन्नामसहस्रेण सहस्रांशुं दिवाकरम् ॥१
खिद्यमानं ततो दृष्ट्वा सूर्यः कृष्णात्मजं तदा । स्वप्नेऽस्मै दर्शनं दत्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥२

करेंगे, उनके लिए लोक अचल रहेंगें ।३०। अतः हे साम्ब चन्द्रभागा नदी के उस शुभ तट पर मुझे स्थापित करो । तुम्हारे नाम से उसे विशेष ख्याति प्राप्त होगी ।३१। हे सुव्रत ! लोक में तुम्हारी अक्षय कीर्ति विशेष ख्याति प्राप्त करूँगी और फिर भी प्रतिदिन मैं तुम्हें स्वप्न में दर्शन दिया करूँगा ।३२

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार उस यदुकुल सिंह के लिए वरदान तथा प्रत्यक्ष दर्शन देकर सूर्य उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।३३। इसलिए भक्तिपूर्वक जो पुरुष तीनों काल में इस स्तोत्र का पाठ अथवा एक सौ इक्कीस बार इसके पाठ पूर्वक हवन सात रात तक करता रहता है, उसे राज्य की इच्छा हो तो राज्य, धन की इच्छा हो तो धन और यदि रोगी हो, तो साम्ब की भाँति ही रोग की मुक्ति प्राप्त होती है ।३४-३५। क्योंकि भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने से सूर्य लोक भी प्राप्त होता है जिसमें देवताओं के साथ परिवार की भाँति वह क्रीडा करता रहता है ।३६

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में सूर्य प्रसाद वर्णन नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२७।

अध्याय १२८

साम्बस्तववर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! उस साम्ब ने जो इतना दुर्बल हो गया था कि उसकी देह में केवल नाड़ियाँ (नसें) ही शेष रह गई थीं, उनके सहस्र नाम द्वारा सहस्रांशु सूर्य की आराधना करना आरम्भ किया था ।१। तदुपरांत सूर्य ने उस कृष्ण-पुत्र को खिन्नचित्त देखकर स्वप्न में उसे दर्शन देकर यह कहा ।२

श्रीसूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत । अलं नामसहस्रेण पठ चेमं शुभं स्तवम् ।।३
यानि गुह्यानि नामानि पवित्राणि शुभानि च । तानि ते कीर्तयिष्यामि प्रयत्नादवधारय ।।४
वैकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ।।५
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा । तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ।।६
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः । एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टस्सदा मम ।।७
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः । स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।८
य एतेन महाबाहो द्वे सन्ध्येऽस्तमनोदये । स्तौति मां प्रणतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।९
मानसं वाचिकं वापि कायिकं यच्च दुष्कृतम् । एकजाप्येन तत्सर्वं प्रणश्यति ममाग्रतः ।।१०
एष जप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च । बलिमन्त्रोऽर्घ्यमन्त्रोऽथ धूपमन्त्रस्तथैव च ।।११
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे । पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वपापहरः शुभः ।।१२
एवमुक्त्वा स भगवान्भास्करो जगतां पतिः । आमन्त्र्य कृष्णतनयं तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।।१३
साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनम् । प्रीतात्मा नीरुजः श्रीमांस्तस्माद्रोगाद्विमुक्तवान् ।।१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बस्तववर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८।

श्रीसूर्य बोले—साम्ब, साम्ब ! महाबाहो, हे जाम्बवती सुत ! मेरी बात सुनो ! तुम सहस्र नाम का पाठ बन्द करके इस शुभ स्तोत्र का पाठ करो ।३। एवं मेरे गुप्त, पवित्र, एवं शुभ, जितने नाम हैं मैं उन्हें बता रहा हूँ, प्रयत्न पूर्वक उसे भी धारण करो ।४। वैकर्तन, विवस्वान्, मार्तंड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोक-साक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा, एवं सर्वदेव नमस्कृत इन इक्कीस नामों वाली स्तुति मुझे सदैव प्रिय है ।५-७। यह शरीर के आरोग्य धन की वृद्धि एवं यश फैलाने वाला है क्योंक 'स्तवराज' के नाम से इसकी तीनों लोकों में ख्याति है ।८। हे महाबाहो ! (सूर्य के उदय एवं अस्त होने के पूर्व) दोनों संध्याओं में इस स्रोत्र द्वारा जो विनम्र होकर मेरी स्तुति करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।९। मानसिक, कायिक, एवं वाचिक जो कुछ दुष्कृत हों वे सब मेरे सामने इसके एक बार पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं ।१०। इसलिए इसी का जप एवं हवन करना चाहिए । यह संध्योपासन की भाँति ही नित्य कर्म है ओर बलि देने का मंत्र, अर्घ्य' मंत्र, एवं धूप का मंत्र भी यही होता है ।११। अन्नदान, स्नान, एवं भक्ति पूर्वक प्रदक्षिण करते समय भी इस महामंत्र की पूजा करनी चाहिए । क्योंकि यह शुभ तथा समस्त पाप नाशक बताया गया है ।१२। इस प्रकार जगत् के पति भगवान् भास्कर कृष्ण के पुत्र (साम्ब) से विदा हो कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और साम्ब भी इस स्तवराज द्वारा सात घोड़ों के वाहन वाले (सूर्य) की आराधना करके प्रसन्नचित्त, आरोग्य, एवं और भी सम्पन्न होकर रोग मुक्त हो गया ।१३-१४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बस्तव वर्णन नामक एक सौ अठ्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२८।

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथ लब्धवरः साम्बो वरं प्राप्य पुरातनम् । मन्यमानस्तदाश्चर्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१
पूर्वाभ्यासेन तेनैव सार्धमन्यैस्तपस्विभिः । स्नापनार्थं नातिदूरं चन्द्रभागां नदीं ययौ ॥२
कृत्वात्ममण्डलाकारं श्रद्दधानो दिनेदिने । सस्नौ सञ्चिन्तयामास किं रूपं स्थापयाम्यहम् ॥३
स स्नातः सहसैवाथ प्रणम्य[1] तु प्रभावतीम् । उह्यमानां जलौघेन प्रतिमां सम्मुखीं रवेः ॥४
तां दृष्ट्वा तस्य वीरस्य समुत्पन्नमिदं यथा । देवेन यत्तदाज्ञप्तं तदिदं नात्र संशयः ॥५
स तामुत्तार्य सलिलादानीय च महीपते । तस्मिन्मित्रवनोद्देशे स्थापयामास तां तदा ॥६
निधाय प्रतिमांल्लोके साम्बस्तस्य महात्मनः । मित्रं मित्रवने रम्ये स्थापयित्वा विधानतः ॥७
ततस्तामेव पप्रच्छ प्रणम्य प्रतिमां रवेः । केनेयं निर्मिता नाथ भवतो ह्याकृतिः शुभा ॥८
प्रतिमा तमुवाचाथ शृणु साम्ब ब्रुवे स्वयम् । निर्मिता येन चाप्येषा मदीया पुरुषाकृतिः ॥९
प्रभातितेजसाविष्टं रूपमासीत्पुरातनम् । असह्यं सर्वभूतानां ततोऽस्म्यभ्यर्चितः सुरैः ॥

अध्याय १२९

साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापन का वर्णन

सुमन्तु बोले—इसके पश्चात् अपने पुरातन वर की प्राप्ति करके (अपने सौन्दर्य पर) हर्षातिरेक से युक्त एवं विस्मित होता हुआ वह साम्ब अन्य तपस्वियों के साथ उसी नित्य के मार्ग से थोड़ी दूर पर रहने वाली चन्द्र भागा नदी में स्नान करने के लिए गया।१-२। वहाँ श्रद्धालु हो कर प्रतिदिन अपने को मण्डलाकार बनाकर स्नान करने लगा और चिंता भी करने लगा कि—यहाँ किस रूप को स्थापित करूँ।३। तदुपरांत (एक दिन) उसने ज्यों ही स्नान किया सहसा निकली हुई प्रभापूर्ण एक मूर्ति को देखा जो सूर्य की ओर मुख किये नदीं की लहरों से टकराती चली आ रही थी, और प्रणाम किया।४। उसे देखते ही उस वीर की ऐसी धारणा हुई कि सूर्य देव ने जो आज्ञा प्रदान की थी, यह वही है। इसमें कोई संशय नहीं है।५। हे महीपते ! पश्चात् उसे जल से निकाल कर उसने उसी समय उस मित्र वन में उसकी स्थापना की।६। साम्ब ने उस महात्मा (सूर्य) की प्रतिमा को वहाँ रखकर उस रमणीक मित्रवन में विधान पूर्वक उसकी स्थापना करायी और उस मूर्तिका नाम मित्र रखा।७। तदनन्तर उसने उस प्रतिमा से प्रणाम पूर्वक पूछा कि— हे नाथ ! इस आपकी शुभ आकृति का निर्माण करने वाला कौन है ? ।८

प्रतिभा ने स्वयं उससे कहा—हे साम्ब ! सुनो ! मैं उसे कह रही हूँ जिसने इस मेरे पुरुष आकृति की रचना की है।९। मेरा प्राचीन रूप अत्यन्त तेज से आच्छन्न था प्राणियों के लिए मेरे उस तेज के असह्य

---

१. प्रापश्यत।

सह्यं भवतु ते रूपं सर्वप्राणभृतामिति ॥१०

ततो मया समादिष्टो विश्वकर्मा महातपाः । तेजसां शातनं कुर्वन्रूपं निर्वर्तयस्व मे ॥११

ततस्तु मत्समादेशात्तेनैव निपुणं तदा । शाकद्वीपे भ्रमिं कृत्वा रूपं निर्वर्तितं मम ॥१२

प्रीत्या तेषां प्रपञ्चोऽयं स मया कारितः पुनः । तेनेयं कल्पवृक्षात्तु निर्मिता विश्वकर्मणा ॥१३

कृत्वा हिमवतः पृष्ठे पुरा सिद्धनिषेविते । त्वदर्थं चन्द्रभागायां ततस्तेनावतारिता ॥१४

भवतस्तारणार्थं हि ततः स्थानमिदं शुभम् । रुचिरं सर्वदा साम्ब सान्निध्यं मेऽत्र यास्यति ॥१५

सान्निध्यं मम पूर्वाह्णे सुतीरे द्रक्ष्यते जनैः । कालप्रिये च मध्याह्नेऽपराह्णे चात्र नित्यशः ॥१६

पूर्वाह्णे पूजयेद्ब्रह्मा मध्याह्ने चक्रधृत्स्वयम् । शङ्करश्चापराह्णे तु मां पूजयति सर्वदा ॥१७

इत्युक्तोऽसौ भगवता भास्करेण स यादवः । हर्षमाप महाबाहो भास्करोऽन्तर्दधे ततः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

होने के कारण देवताओं ने मेरी आराधना की कि हे देव ! आप का तेज सभी प्राणियों के सहन करने के योग्य जिस भाँति हो सके वैसा ही करने की कृपा करें ।१०। पश्चात् मैंने महातपस्वी विश्वकर्मा को आज्ञा दिया कि मेरे तेज को काट छाँटकर मेरा (सौन्दर्यपूर्ण) रूप बनाओ ।११। इसके उपरांत मेरे आदेश देने पर उस निपुण विश्वकर्मा ने शाकद्वीप में खराद पर चढ़ा कर मेरे रूप को सौन्दर्य पूर्ण बनाया ।१२। पुनः उन लोगों के प्रसन्नार्थ मैंने इस मूर्ति को भी बनवाया था । विश्वकर्मा ने कल्पवृक्ष के काष्ठ से ही इस मेरी प्रतिमा का निर्माण किया है ।१३। पहले समय में उसने हिमवान् के सिद्ध निषेवित् उस पीठ स्थान से तुम्हारे लिए ही इसी चन्द्रभागा नदी में मुझे प्रवाहित किया था ।१४। तुम्हारे उद्धार के लिए ही यह स्थान मुझे शुभ एवं सुन्दर लग रहा है अतः हे साम्ब ! मैं यहाँ रहूँगा । पूर्वाह्णकाल में सुतीर क्षेत्र में मनुष्यों को दर्शन दूँगा, मध्याह्न में कालप्रिया स्थान में रहकर तथा अपराह्ण (दूसरे समय) में यहाँ रहूँगा ।१५-१६। क्योंकि पूर्वाह्णकाल में ब्रह्मा, मध्याह्न में चक्रधारी (विष्णु), और अपराह्ण दूसरे समय में शंकर मेरी सदैव पूजा करते हैं । हे महाबाहो ! इस प्रकार उस यादव (साम्ब) से भगवान् भास्कर ने सभी बातों को विस्तारपूर्वक कहा था जिससे साम्ब अत्यन्त हर्षित हुआ था । पश्चात् भास्कर वहीं अन्तर्हित हो गये थे ।१७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में साम्बकृतादित्य मूर्ति स्थापन नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२९।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रसादलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथं साम्बेन विप्रेन्द्र प्रतिष्ठा कारिता रवेः । कस्य वा वचनात्तेन प्रासादः कारितो रवेः ।।१

सुमन्तुरुवाच

अत्र ते वच्मि राजेन्द्र यथा साम्बेन धीमता । प्रतिष्ठा कारिता भानोः प्रसादश्च महीपते ।।२
सुलब्ध्वा प्रतिमां भानोश्चिन्तयामास नारदम् । स चापि चिन्तितश्चागाद्यत्र जाम्बवतीसुतः ।।३
तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं मुनिसत्तमम् । सम्पूज्य विधिवत्सांबो नारदं वाक्यमब्रवीत् ।।४
प्रासादं कारयेद्यस्तु भास्करस्य नरो द्विज । किं फलं तस्य देवर्षे प्रतिष्ठां यश्च कारयेत् ।।५

नारद उवाच

प्रासादं शोभने देशे यस्तु कारयते रवेः । स याति नरशार्दूल सूर्यलोकं न संशयः ।।६

साम्ब उवाच

कथं कुर्यादायतनं कस्मिन्देशे द्विजोत्तम । कीदृक्छस्तं चायतनं देवदेवस्य[1] वै द्विज ।।७

अध्याय १३०

प्रसादलक्षण का वर्णन

शतानीक बोले—हे विप्रेन्द्र ! साम्ब ने सूर्य की प्रतिष्ठा कैसे करायी थी और किस के कहने से सूर्य के लिए प्रासाद (विशाल भवन) का निर्माण कराया था ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार बुद्धिमान् साम्ब ने सूर्य की प्रतिष्ठा एवं उनके लिए प्रासाद का निर्माण कराया है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ।२। ! जाम्बवती पुत्र साम्ब ने सूर्य की उस प्रतिमा की प्राप्ति के अनन्तर नारद के लिए कुछ सोंचना आरम्भ किया कि उसी समय नारद का भी आगमन वहाँ हुआ ।३। अनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद को आये हुए वहाँ देख कर साम्ब ने विधान पूर्वक उनकी पूजा की और उनसे कहा— ।४। हे द्विज ! जो मनुष्य भास्कर के लिए प्रासाद का निर्माण एवं उनकी प्रतिष्ठा करता है, उसे कौन फल प्राप्त होता है ।५

नारद बोले—हे नरशार्दूल ! जो उत्तम स्थान में सूर्य के लिए सूर्य प्रासाद (विशाल भवन) का निर्माण करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ।६

साम्ब ने कहा—हे द्विजोत्तम ! किस प्रदेश में किस ढंग के भवन का निर्माण होना चाहिए तथा हे द्विज ! देवाधिदेव (सूर्य) के लिए किस प्रकार का भवन प्रशस्त बताया गया है ।७

---

१. कस्मिन्देशे द्विजोत्तमः ।

नारद उवाच

यत्र प्रभूतं सलिलमागमे च विनाशने । देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्मविवृद्धये ॥८
इष्टापूर्तेन लभते लोकांस्तांश्च[1] विभूषितान् । देवानामालयं कार्यं द्वयं यत्र च दृश्यते ॥९
सलिलाद्यं च आरामः कृतेष्वायतनेषु च । स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥१०
सरःसु नलिनीच्छन्ननिरस्तरविरश्मिषु । हंसंसक्षिप्तकह्लारवीथीविमलवारिषु ॥११
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु । पर्यन्तविमलच्छायाविश्रान्तजनचारिषु ॥१२
क्रौञ्चकाञ्चीसुलापाश्च कलहंसकलस्वनाः । नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥१३
फुल्लद्रुमोत्तमावासाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः । पुलिनाभ्युन्नतोरस्का रसहासाश्च निम्नगाः ॥१४
वनोपान्तनदीशैलसंस्करोपान्तभूमिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥१५
भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि । ता एवं तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥१६
चतुःषष्टिपदं कुर्याद्देवतायतनं सदा । द्वारं च मध्यमं तस्मिन्समदिक्सम्प्रशस्यते ॥१७
यो विस्तारो भवेत्तस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः । उच्छ्रायस्तु तृतीयोऽथ तेन तुल्या कटिर्भवेत् ॥१८

नारद बोले—वर्षा ऋतु के आगमन काल में एवं उसके निकल जाने के पश्चात् भी जहाँ अत्यन्त जल भरा रहता हो, उस जलाशय के तट पर अपने यश एवं धर्म की वृद्धि की कामनावश देव मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए ।८। क्योंकि यज्ञ एवं जलाशय के निर्माण कराने से सौन्दर्य पूर्ण लोकों की प्राप्ति होती है । इसलिए देव मन्दिर का निर्माण ऐसे प्रदेश में होना चाहिए जो सुन्दर जलाशय एवं मनोहर बगीचे से सुशोभित हो ।९। क्योंकि देव मन्दिर के समीप जलाशय एवं बगीचे के लगवाने से उन्हीं स्थानों में देवता लोग निवास करते हैं ।१०। जिस जलाशय में कमलिनी से आच्छन्न होने के नाते सूर्य की किरणें जल तक न पहुँचती हों, हंसों द्वारा सफेद कमल की पंक्तियाँ संक्षिप्त हो गई हों, निर्मल जल हो, हंस, बत्तख, सारस तथा चक्रवाक के कलरवों से कूजित होते हुए उसके चारों ओर वृक्षों की निर्मल छाया हो जिसमें पथिक एवं टहलने घूमने वाले विश्राम लेते हों ।११-१२। ऐसे तालाबों के समीप तथा मधुर ध्वनि करती हुई सारस रूपी करधनी, पहिनने वाली सुंदर हंसों के कलरवों से कूजित, जल रूपी वस्त्र एवं शफरी मछली रूपी मेखला धारण करने वाली नदियों के समीप जिनके फूले हुए वृक्ष रूपी उत्तम आवास स्थान, संगम रूप श्रेणिमंडल, पुलिन (किनारा) रूपी उन्नत छाती, तथा जलरूपी हास विलास हों उस भूमि में जो बने समीपवर्ती नदी एवं पर्वत की सन्निधि मे हों, बगीचे समेत मन्दिर के निर्माण होने पर देवता लोग वहाँ नित्य रमण करते हैं ।१३-१५। तथा ब्राह्मण आदि के लिए गृहनिर्माण के विषय में जिस प्रकार की भूमि की चर्चा की गई है, वैसी ही भूमि देव मन्दिर के लिए भी प्रशस्त बतायी गई है ।१६। अतः चौंसठ पैर (पग) का लम्बा विशाल भवन देवता के लिए होना चाहिए और उसके मध्य भाग में दरवाजा बनाया जाना चाहिए। उनके लिए चौकोर दरवाजा भी उत्तम बताया गया है। विस्तार से दुगुनी कोठी की ऊँचाई होनी चाहिए और उसके तिहाई भाग के समान ऊँचा उसका कटि मध्य भाग रहे।१७-१८। इसी प्रकार

---

१. लोकांस्तांस्तान्स्वभक्तितः ।

विस्तारार्धो भवेद्गर्भो भित्त्योन्याः समन्ततः । गर्भपादोनविस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ।।१९
उच्छ्रयात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरी । विस्तारात्पादप्रतिमाद्बाहुल्यं शेषयोः स्मृतम् ।।२०
नृपं सप्तनवभिः शाखाभिस्तत्प्रशस्यते । अथ शाखाचतुर्भागे प्रतिहारौ निवेशयेत् ।।२१
शैलमङ्गल्यविहगः श्रीवृक्षः स्वस्तिकैर्घटैः । मानाष्टमेन[1] भागेन प्रतिमा स्यात्सपिण्डिका ।।२२
द्विभागा प्रतिमा तत्र तृतीयो भागपिण्डिका । पूर्वे मेरुर्महाबाहो कैलासश्च तथापरे ।।२३
भवन्ति चापरे वीर विमानच्छवनं तथा । समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्द्धनकुञ्जराः ।।२४
गृहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः । सिंहो वृषश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ।।२५
इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादा यदुनन्दन । यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदामि[2] ते ।।२६
नवत्रिंशदुच्छ्रितमेरुर्द्वादशभौमो विविधकुहरश्च । द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ।।२७
त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमः सप्त मन्दरः । शिखरयुतः कैलासोऽपि शिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ।।२८
जालगवाक्षैर्युक्तो विमानसंज्ञस्त्रिसप्तकायामः । नन्दन इति वै भौमो द्वात्रिंशत्षोडशाङ्गयुतः ।।२९
वृत्तः समुद्गनामा पद्माकृतिरयं चाष्टौ । शृङ्गेणैकेन भवेदेकेन च भूमिका तस्य ।।३०

विस्तार के पहले अर्ध भाग में मन्दिर का गर्भ एवं दूसरे में चारों ओर की दीवाल होनी चाहिए । और गर्भ के चौथाई भाग के समान चौड़ा तथा उससे दुगुना ऊँचा दरवाजा बनाना चाहिए ।१९। उसी भाँति विस्तार के चौथाई भाग के समान उदुम्बरी गूलर आदि वृक्षों की शाखा बनाये जो ऊँचाई के चौथाई भाग के समान चौड़ी हो ।२०। मनुष्य के लिए पाँच, सात, एवं नव शाखा वाला दरवाजा प्रशस्त बताया गया है । पुनः शाखा के चौथाई भाग में दो द्वारपालों की मूर्ति स्थापित करके शेष द्वार शाखा के स्थान में शैल (पर्वत) मांगलिक पक्षी श्रीवृक्ष, एवं मांगलिक कलशों की रचना करनी चाहिए । शाखा के आँठवें भाग के समान ऊँची चौकी समेत प्रतिमा का निर्माण होना चाहिए ।२१-२२। उसमें दो भागों के समान (ऊँची) प्रतिमा और (तीसरे) भाग के समान ऊँची पिण्डिका (मूर्ति के स्थित होने की नीचे की भूमि) होनी चाहिए । हे महाबाहो ! प्रथम में मेरु, कैलास, विमान, समुद्र, पद्म, गरुड, नन्दिवर्द्धन, कुंजर, गृहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृष, चतुष्कोण नामक ये सोलह एवं आठ मंजिला वाले भवन बताये गये हैं ।२३-२५। इस भाँति बीस प्रकार के विशालभवन बनाये जाते हैं; मैं उन्हें क्रमशः बता चुका अब उनके लक्षण बता रहा हूँ सुनो ।२६। उनतालीस हाथ का लम्बा मेरु नामक विशाल भवन होता है, उसमें बारह भौम (कोठा) भाँति-भाँति के तहखाने एवं चार दरवाजे होते हैं और वह पच्चीस हाथ का चौड़ा होता है ।२७। तीस हाथ का लम्बा दश कोठे एवं सात शिखर वाला मन्दर नामक विशाल भवन होता है । अट्ठाइस हाथ का विस्तृत एवं आठ कोठे वाला कैलास नामक भवन होता है ।२८। जाल की भाँति गवाक्षों (झरोखों) से पूर्ण, तथा इक्कीस हाथ का विस्तृत विमान नामक भवन होता है । बत्तीस हाथ का विस्तृत छह कोठों से युक्त नन्दन नामक भवन होता है ।२९। समुद्र नामक भवन वर्तुलाकार (गोल) होता है पद्म के आकार के समान पद्मनामक भवन होता है जिसका आठ हाथ का विस्तार एक शिखर,

---

१. मिथुनैर्द्वारमारब्धे भागेन स्यात्सुपिण्डिका । २. निबोध मे ।

गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दी वै षष्टिविस्तीर्णः । कायश्च सप्तभौनो विभूषितोंऽगैश्च सप्तविंशतिभिः ॥३१
कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तोच्छ्रितो मध्ये । गृहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥३२
वृष एवं भूमिश्रृङ्गो द्वादशहस्तः समुन्नतो वृत्तः ! हंसो हंसाकारो घटोऽष्टसहस्रकलशरूपः ॥३३
द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः । बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशद्भागभूमिश्च ॥३४
सिंहः सिंहाकारो[1] द्वादशकोणोऽष्टहस्तश्च ॥३५
सहस्रत्रितयं चैव कथितं विश्वकर्मणा । आहुः स्थापयतश्चात्र मतमेकं विपश्चितः ॥३६
कपोतपालिनीयुक्तमतो गच्छति तुल्यताम् ॥३७

साम्ब उवाच

य एते कथिता विप्र प्रासादा विंशतिस्त्वया । तेषां सूर्यस्य कः कार्यः प्रासादो भास्करस्य तु ॥३८
स्थानानि यानि चोक्तानि प्रासादस्य द्विजोत्तम । तेषां त्वयोक्तं हि पुरं व्ययवद्भिर्नरैर्युतम् ॥३९
तस्मिन्प्रदेशे वै कार्यं भानोर्मन्दिरमुत्तमम् । दिशां भागे च कतमे ब्रूहि शेषं द्विजोत्तम ॥४०

एक ही भूमि (मंजिला) होती है ।३०। गरूड़ के समान गरुड़ नामक भवन होता है । साठ हाथ का विस्तृत नन्दिवर्द्धन नामक भवन होता है जिसमें सात कोठे होते हैं वह सत्ताइस अंगों से सुशोभित होता है ।३१। सोलह हाथ ऊँचा, मध्यमभाग में हाथी की पीठ के समान आकार वाला कुंजर नामक भवन बनाया जाता है । सोलह हाथ का विस्तृत तीन चन्द्रशालाओं से युक्त गृहराज नामक भवन होता है ।३२। बारह हाथ का विस्तृत एक भूमि (मंजिला) एक शिखर एवं गोलाकार वृष नामक भवन होता है । हंस के समान आकार वाला हंस नामक भवन होता है ! आठ सहस्र कलश के समान रूप वाला घट नामक प्रासाद (महल) होता है ।३३। चार दरवाजे, अनेक शिखर, रुचिर चन्द्र शालाओं से पूर्ण, एवं छब्बीस हाथ का विस्तृत सर्वतोभद्र नामक प्रासाद (महल) होता है । एवं बारह कोने वाला और आठ हाथ का विस्तृत तथा सिंह के समान आकार वाला सिंह नामक प्रासाद (महल) होता है ।३४-३५। इस प्रकार पण्डितों ने एक मत होकर इसकी अत्यन्त पुष्टि की है कि विश्वकर्मा ने इसके गृह के तीन सहस्र भेद बताये हैं । गृह के ऊपरी भाग कुछ न्यून रहने पर उसके ऊपर कपोतपालिक (कबूतरों के रहने के स्थान) बना देने से उसकी पूर्ति हो जाती है ।३६-३७

साम्ब ने कहा—हे विप्र ! आप ने बीस प्रकार के प्रासाद (विशाल भवन) बनाने के विधान बताये हैं उनमें कौन-सा प्रासाद (महल) सूर्य के लिए प्रशस्त होता है ।३८। हे द्विजोत्तम ! प्रसाद (महल) के लिए जिन स्थानों को आपने बताया है उनमें तो यह बतला ही चुके हैं कि धार्मिक व्यय करने वाले मनुष्योंको अपने नगर के समीप वाले प्रदेश में सूर्य का उत्तम मन्दिर बनवाना चाहिए। पर हे द्विजोत्तम ! यह बताने की कृपा कीजिए कि दिशा के किस भाग में उस मन्दिर का निर्माण होना चाहिए ।३९-४०

---

१. सिंहाक्रान्तः ।

नारद उवाच

पुरमध्यं समाश्रित्य कुर्यादायतनं रवेः । दिशां भागेऽथ वा पूर्वे पूर्वद्वारसमीपतः ।।४१
भूमिं परीक्ष्य पूर्वं तु कुर्यादायतनं ततः[1] । इष्टगन्धरसोपेता निम्ना[2] भूमिः प्रशस्यते ।४२
शर्करातुषकेशास्थिक्षाराङ्गारविवर्जिता । मेघदुन्दुभिनिर्घोषा सर्वबीजप्ररोहिणी ।।४३
शुक्ला रक्ता तथा पीता कृष्णा च कथिता क्षितिः । द्विजराजन्यवैश्यानां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।।४४
परीक्षितायां तस्यां तु मध्ये तस्याः प्रमाणतः । उपलिप्य चतुर्हस्तं चतुरस्रं[3] समन्ततः ।।४५
हस्तमात्रमधः कृत्वा मध्ये तस्या दशाङ्गुलम् । गर्तमुत्कीर्य तेनैव पांसुना प्रतिपूरयेत्[4] ।।४६
समे समगुणा ज्ञेया हीने हीनगुणा भवेत् । वर्धमाने तु वै पांसौ भवेद्वृद्धिकरी क्षितिः ।।४७
नित्यं सम्मुखमर्कस्य कदाचित्पश्चिमानुखम् । स्थापनीयं गृहं सम्यक्प्राङ्मुखस्थानकल्पनात् ।।४८
भवनाद्दक्षिणे पार्श्वे रवेः स्नानगृहं भवेत् । अग्निहोत्र गृहं कार्यं रवेरुत्तरतः शुभम्[5] ।।
उदङ्मुखं भवेच्छम्भोर्मातॄणां गृहमेव च ।।४९
ब्रह्मा पश्चिमतः स्थाप्यो विष्णुरुत्तरतस्तथा । निम्बस्तु[6] दक्षिणे पार्श्वे वामे राज्ञी प्रकीर्तिता ।।५०
पिंगलो पक्षिणे [7]भानोर्वामतो दण्डनायकः । श्रीमहाश्वेतयोः स्थानं पुरतस्त्वंशुमालिनः ।।५१

नारद बोले—नगर के मध्य भाग में या दिशा के पूर्वभाग अथवा पूरब वाले दरवाजे के समीप भूमि की परीक्षा करके सूर्य मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए क्योंकि (मंदिर के लिए) सुगन्ध रस युक्त एवं निम्न भूमि प्रशस्त बतायी गई है ।४१-४२। उसी भाँति रेह वाली भूमि, तुष (भूसी), केश, अस्थि, खार, एवं कोयले वाली भूमि गृह निर्माण के लिए वर्जित की गई है । जहाँ मेघ या नगाड़े की भाँति शब्द सुनाई पड़े, और सभी प्रकार के बीज जहाँ अंकुरित हो सकें, वही भूमि मन्दिर निर्माण के लिए प्रशस्त होती है ।४३। इस प्रकार गृह निर्माण के विधान में शुक्र, रक्त, पीत, एवं काली पृथिवी क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रो के लिए बतायी गयी है ।४४। सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा करने के उपरान्त उसके मध्य भाग में चार हाथ लम्बी एवं चौकोर भूमि गोबर से लीप कर उसमें एक हाथ का लम्बा और दश अंगुल का गहरा गढ्ढा खोद कर पुनः उसी मिट्टी से उस गढ्ढे को भर दे । यदि उस खोदी गई मिट्टी द्वारा वह गड्ढा भर जाय तो समान फल, और कुछ कम हो जाय तो वह भूमि निकृष्ट होती है एवं यदि गढ्ढे भरने के उपरांत कुछ मिट्टी ही शेष रह जाय, तो वह भूमि वृद्धि करने वाली होती है ।४५-४७। घर का दरवाजा पूरब दिशा की ओर करना चाहिए, यदि उस ओर कारण वश सम्भव न हो सके, तो पश्चिमाभिमुख भी कर लेना चाहिए परन्तु अधिकतर प्रयत्न पूर्वाभिमुख होने के लिए ही करना चाहिए ।४८। सूर्य-मन्दिर के दाहिने पार्श्व बगल, में स्नान गृह, उत्तर की ओर अग्नि होत्र गृह होना चाहिए उसी प्रकार शम्भु एवं माताओं का गृह उत्तराभिमुख होना चाहिए ।४९। सूर्य के पश्चिम की ओर ब्रह्मा, उत्तर की ओर विष्णु की स्थापना करे । सूर्य के दाहिने बगल निम्ब (निक्षु) एवं बायें बगल राज्ञी की स्थिति होनी चाहिए ।५०। दाहिने ओर पिंगल और बायें की ओर दंडनायक तथा श्री

---

१. महत् । २. त्रिधा । ३. हस्तमात्रम् । ४. परिपूरयेत् । ५. तथा । ६. निम्बं श्रीपर्णवृक्षश्च वामे राज्ञः प्रवर्तिता । ७. पार्श्वे ।

ततः स्थाप्याश्विनोः स्थानं पूर्वदेवगृहाद्बहिः । द्वितीयायां तु कक्षायां राज्ञास्रौषौव्यवस्थितौ ॥५२
तृतीयायां तु कक्षायां स्थितौ कल्माषपक्षिणौ । जण्डकामचरौ[1] स्थाप्यौ दक्षिणां दिशमाश्रितौ ॥५३
उदीच्यां स्थापनीयस्तु कुबेरो लोकपूजितः । उत्तरेण ततस्तस्य रेवतः सविनायकः ॥५४
यत्र वा विद्यते स्थानं दिक्षु सर्वा गुहादयः । द्वे मण्डलेऽर्घ्यदानार्थं कार्ये सव्यापसव्यतः ॥५५
दद्यादुदयवेलायामर्घं सूर्याय दक्षिणे । उत्तरे मण्डले दद्यादर्घ्यमस्तमने रवेः ॥५६
चक्राकृतां तथान्यस्मिन्देवस्य प्रतिमां रवेः । स्थापयेद्विधिवद्वीर चतुर्भिः कलशैः शुभैः[2] ॥५७
नानातूर्यनिनादैश्च[3] शङ्खशब्दैश्च पुष्कलैः । तृतीये मण्डले ह्येव[4] पूजनीयो दिवाकरः ॥५८
चतुरस्रं चतुःशृङ्गं व्योम देवगृहाग्रतः । प्रतिमायास्तु सूत्रेण कार्यं मध्येऽस्य मण्डलम् ॥५९
दिण्डी स्थाप्यः पुरस्तस्मादादित्याभिमुखः स्थितः । यदेतत्कथितं व्योम सर्वदेवमयं मया ॥६०
मध्याह्ने तस्य दातव्यमर्घ्यमत्र यदूत्तम । अथ वा मण्डलं चान्यत्तृतीयं चक्रसम्मितम्[5] ॥६१
स्थापयित्वा तु देवेशं दातव्योऽर्घः सुपण्डितैः । देवस्य पुरतः कार्यं व्योमस्थानं समीपतः ॥
पुस्तकवाचनस्थानमथ वा यत्र रोचते ॥६२

महाश्वेता का स्थान सूर्य के सामने होना चाहिए ।५१। मन्दिर के बाहर अश्विनी कुमार की स्थापना दूसरी कक्षा (खंड) के राजा स्रौव की स्थिति एवं तीसरी कक्षा में कल्माष तथा पक्षी की स्थिति होनी चाहिए । दक्षिण दिशा में जड एवं कामचर उत्तर की ओर लोक वन्दनीय कुबेर की स्थिति होनी चाहिए । उनके उत्तर विनायक समेत रैवत की स्थिति होनी चाहिए ।५२-५४। दिशाओं में कहीं भी स्थान दिखाई दे तो वहाँ गुह (स्कन्द) सभी आदि देवताओं की स्थिति करे । इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर की ओर (दाहिने बायें) अर्घ्य देने के लिए दो मण्डल बनाये जाते हैं ।५५। उदय काल में सूर्य के लिए दक्षिण वाले मण्डल में अर्घ्य देना चाहिए और अस्त के समय उत्तर के मण्डल में ।५६। हे वीर ! मन्दिर के भीतर सूर्य की चक्राकार की भाँति वह प्रतिमा चार शुभ कलशों के साथ किसी पीठ पर स्थापित करे ।५७। जो भाँति-भाँति के तुरुही आदि वाद्यों एवं शंखों की ध्वनि कोलाहल में स्थापित की जाती है इसी प्रकार तीसरे मण्डल में सूर्य की पूजा करें ।५८। देव-मन्दिर के अग्रभाग में चार शिखर एवं चौकोर का व्योम बनाना चाहिए । जिसके मध्य में सूत्र द्वारा उनका मण्डल बनाया जाता है ।५९। आदित्य के अभिमुख दिंडी की स्थापना होनी चाहिए । यही सर्व देवमय व्योम है, जिसे मैं पहले ही बता चुका हूँ ।६०। हे यदूत्तम ! इस भाँति मध्याह्न काल में सूर्य के लिए इसी स्थान पर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए, अथवा चक्राकार बने हुए एक अन्य मण्डल में भी ।६१। इस प्रकार देवेश (सूर्य) को स्थापित करके पण्डितों को चाहिए कि उन्हें नित्य अर्घ्य प्रदान करे । देव के सामने उनके समीप ही व्योम स्थान होना चाहिए और उसी स्थान पर अथवा जहाँ कहीं रुचे पुस्तक वाचन का (कथा) स्थान बनाये ।६२। इस प्रकार क्रमशः

---

१. जानुकामाचरौ । २. सह । ३. गीतशब्दैः । ४. अत्र । ५. चक्रसंज्ञितम् ।

एष स्थानविधिः प्रोक्तो देवतानां यथाक्रमम् । गृहराजोऽथ रुद्रस्तु द्वावेतौ भास्करप्रियौ ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
प्रासादलक्षणवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३०।

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दारुपरीक्षावर्णनम्

नारद उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिमाविधिविस्तरम् । सर्वेषामेव देवानामादित्यस्य विशेषतः ॥१
अर्चा[1] सप्तविधा प्रोक्ता भक्तानां शुभवृद्धये । काञ्चनी राजती ताम्री पार्थिवी शैलजा स्मृता ॥२
वार्क्षी चालेख्यका चेति मूर्तिस्थानानि सप्त वै । वार्क्षीविधानं ते वीर वर्णयिष्याम्यशेषतः ॥३
कर्त्रनुकूले दिवसे संवत्सरविशोधिते । शुभैर्निमित्तैः शकुनैः प्रस्थानैश्च वनं विशेत् ॥४
क्षीरिणो वर्जिताः सर्वे दुर्बलास्ते स्वभावतः । चतुष्पथेषु न ग्राह्या ये च पुत्रकवृक्षकाः[2] ॥५
देवतायतनस्था ये तथा वल्मीकसम्भवाः । उत्कीर्णा देवता येषु चैत्यवृक्षाश्च ये स्मृताः ॥६
श्मशानभूमिजा ये च पक्षिणां निलयाश्च ये । सकोटराश्च ये वृक्षाः शुष्काग्रा ये च पादपाः ॥७

देवताओं की यह स्थान-विधि बता दी गई । जिनमें गृह राज एवं सर्वतोभद्र नामक प्रासाद (महल) भास्कर के लिए अत्यन्त प्रिय कहे गये हैं ।६३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में
प्रासादलक्षण वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३०।

अध्याय १३१

दारुपरीक्षा का वर्णन

नारद बोले—इसके पश्चात् सभी देवताओं की विशेष कर सूर्य की प्रतिमा का विधान, विस्तार पूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ।१। यद्यपि भक्तों की कल्याण वृद्धि के लिए सात प्रकार की प्रतिमाएँ बतायी गई हैं । सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, मिट्टी, पत्थर, काष्ठ एवं चित्र ये सात प्रकार की प्रतिमाएँ (पूजन के लिए) बतायी गई हैं । हे वीर ! किन्तु मैं सर्वप्रथम काष्ठ की प्रतिमा का विधान बता रहा हूँ ।२-३

अपने अनुकूल दिन के पञ्चांग शुद्ध मूहुर्त में शुभ शकुनों के समय बन जाने के लिए प्रस्थान करे ।४। वहाँ पहुँच कर जिस प्रकार इन दूध वाले, स्वभाव से पतले, चौराहे वाले, नवीन, देवालय में स्थित, बल्मीक से उत्पन्न, देव का आवास रूप, चैत्य (आश्रम) वृक्ष, श्मशान पक्षियों के निलय वाले, खोखला वृक्ष, जिसका अग्रभाग सूख गया हो, किसी शस्त्र द्वारा कटा हुआ, हांथियों के भक्ष्य, सामादि रोगी, नींचे फैलने

---

१. प्रतिमा सप्तधा प्रोक्ता । २. पुत्रकवृक्षकाः—नवविरूढाः—बालवृक्षा इत्यर्थः ।

शस्त्रेण निहता ये च कुञ्जराशास्तथा कृताः । सामाद्याः सरुजोऽश्च व्याधिनश्च तथैव च ॥८
अकाले पुष्पिता ये च काले ते च विवर्जिताः । शीर्णपर्णाश्च तरवो रक्षोध्वांक्षनिषेविताः ॥
एकशाखातिशाखाश्च त्रिशाखाश्च तथाधमाः ॥९
मधूको देवदारुश्च वृक्षराजश्च चन्दनः । बिल्वश्चाम्रातकश्चैव खदिरोथाञ्जनस्तथा ॥१०
निम्बः श्रीपर्णवृक्षश्च पनसः सरलोऽर्ज्जुनः । रक्तचन्दनपर्यन्ताः श्रेष्ठाः स्युः प्रतिमाद्रुमाः ॥११
वर्णानामानुपूर्व्येण द्वौ द्वौ वृक्षौ प्रकीर्तितौ । निम्बाद्याः सर्ववर्णानां वृक्षा साधारणाः स्मृताः ॥१२
कथ्यमानान्विशेषेण शृणु वीर तथापरान् । सुरदारुः शमी चैव मधूकश्चन्दनस्तथा ॥
एते वै तरवस्तात ब्राह्मणानां शुभाः स्मृताः ॥१३
क्षत्रस्य च तथारिष्टः खदिरस्तिन्दुकस्तथा । अश्वत्थश्च तथा साम्ब द्रुमः करकतः शुभः ॥१४
वैश्यानां तद्वदेव स्युः खदिरश्चन्दनस्तथा । पुण्याश्च तरवश्चैते शुभदास्तु तथैव च ॥१५
केसरः सर्जकश्चाम्रः शालवृक्षस्तथेतरः । एते वै तरवः पुण्याः शूद्राणां शुभदायकाः ॥१६
लिङ्गं च प्रतिमां चैवमवस्थाप्य यथाविधि । वृक्षं चाभिमतं गत्वा पूजयेद्बलिपुष्पकैः ॥१७
शुचौ देशे विविक्ते च केशांगारविवर्जिते । प्रागुदक्प्लवके देशे लोककष्टविवर्जिते ॥१८
विस्तीर्णस्कन्धविटपः पत्रवानृजुवृद्धिगः । आतङ्कहीनो विवशः सत्वक्पर्णः शुभस्तथा ।१९
स्वेनैव पतिता ये च हस्तिभिः पातितास्तथा । शुष्काश्च वह्निदग्धाश्च पक्षिभिश्चापि वर्जिताः ॥२०

वाले, असमय में फूलने वाले, समय में पुष्प हीन रहने वाले, छिन्न-भिन्न पत्तेवाले, राक्षस एवं कौवों से सुसेवित, एक शाखा, तथा तीन शाखा वाले वृक्षों का (मूर्ति के लिए) त्याग करना चाहिए ।५-९। उसी भाँति महुवा, देवदारु, वृक्षराज, चन्दन, बेल, आँवले, खैर, अञ्जन, नीम, श्री पर्ण, कटहल, सरलार्जुन, एवं रक्तचन्दन के वृक्ष (प्रतिमा के लिए) ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके लिए ये अत्यन्त श्रेष्ठ बताये गये हैं ।१०-११। महुआ आदि दो-दो वृक्ष क्रमशः चारों वर्णों के लिए बताये गये हैं और उसी निमित्त सभी वर्णों के लिए नीम आदि वृक्ष साधारण बताये गये हैं ।१२। हे वीर ! विशेषकर अन्य वृक्ष भी बता रहा हूँ सुनो ! देवदारु, शमी, महुआ, चन्दन, इतने वृक्ष, ब्राह्मणों के लिए शुभ बताये गये हैं ।१३। हे साम्ब ! जिस भाँति नीम, खैर, तेंदू, पीपल, तथा अनार के वृक्ष क्षत्रियों के लिए शुभ कहे गये हैं ।१४। उसी भाँति खैर चन्दन के वृक्ष वैश्यों के लिए पुण्य एवं शुभदायक बताये गये हैं ।१५। और केसर, सर्जक, आम, तथा शाल ये वृक्ष शूद्रों के हितार्थ बताये गये हैं ।१६

इस प्रकार काष्ठ की प्रतिमा बनाकर विधान पूर्वक उसकी स्थापना करनी चाहिए । (प्रथम) उस मनचाहे वृक्ष के समीप जाकर बलि एवं पुष्प द्वारा उसका पूजन करे ।१७। जो पवित्र एवं मैदान में स्थित हो और जिसमें केश या अङ्गार (कोयला) और (काँटे) न हो, पूरब तथा उत्तर की ओर ढालू भूमि में उत्पन्न हों एवं जहाँ लोगों को कष्ट का अनुभव न होता हो, चौड़ी शाखाएँ पत्तों से पूर्ण सीधा-लम्बा, आतंक हीन एवं उसकी छाल और पत्ते सुन्दर हों, (प्रतिमा निर्माण के लिए ऐसे ही वृक्ष प्रशस्त होते हैं) ।१८-१९। उसी भाँति जो अपने से गिर गया हो, या इन्द्रियों ने गिराया हो, सूखा, जला तथा पक्षी-रहित, ऐसे वृक्षों का त्याग करके शुभ वृक्ष ग्रहण करना चाहिए—चिकने, पत्र, पुष्प, एवं फल

तरवो वर्जनीयाश्च ग्रहीतव्याः शुभा द्रुमाः । स्निग्धरूपाः सपर्णाश्च सपुष्पाः सफलास्तथा ।।२१
तेषां तु ग्रहणं चाष्टमासेषु कार्त्तिकादिषु । भूत्वा शुभदिने चैव सोपवासोऽधिवासयेत् ।।२२
समन्तादुपलिप्याथ तस्याधस्ताद्वसुन्धराम् । गायत्र्या परिपूतेन परितः प्रोक्ष्य वारिणा ।।२३
शुक्ले च परिधूते च परिधाय च[1] वाससी । पूजयेद्गन्धमाल्यैश्च सधूपबलिकर्मभिः ।।२४
ततः कुशैः परिस्तीर्णे हुत्वाग्नौ तस्य चान्तिके । देवदारुसमिद्भिश्च मन्त्रेणानेन तत्त्ववित् ।।२५

ॐ भूर्भुवः सुवरिति ततो वृक्षं च पूजयेत् ।
ॐ प्रजापतये सत्यसदाय नित्यं श्रेष्ठन्तरात्मन्तसचराचरात्मन् ।।
सन्निध्यमस्मिन्कुरु देव वृक्षे सूर्यावृत मण्डलभाविशेश्च नमः ।।२६

नारद उवाच

एवं सम्पूजयित्वा तु वाक्यैस्तं परिसान्त्वयन् । वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देवालयं शुभम् ।।२७
देव त्वं स्थास्यसे तत्र च्छेददाहविवर्जितः । काले धूपप्रदानेन सपुष्पैर्बलिकर्मभिः ।।२८
लोकास्त्वां पूजयिष्यन्ति ततो यास्यसि निर्वृतिम् । वृक्षमूले कुठारं तु धूपमाल्यैः प्रपूज्य च ।।२९
पूर्वतस्तु शिरः कृत्वा स्थापनीयः प्रयत्नतः । परमान्नमोदकौदनपलपूपिकादिभिर्भक्ष्यैः ।।३०
मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य । सुरपितृपिशाचराक्षसभुजङ्गसुरगणविनायकाद्यानाम् ।।३१
कृत्वा पूजां रात्रौ वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ।।३२

पूर्ण रहने वाले वृक्ष शुभ बताये गये हैं ।२०-२१। इस प्रकार कार्तिक आदि आठ मास तक ही उन वृक्ष के ग्रहण करने का विधान है । किसी शुभ दिन में उपवास पूर्वक वहाँ अधिवास करते हुए उस वृक्ष के चारों ओर की भूमि को गोबर से लीप कर गायत्री द्वारा पवित्र किये गये जल से उसका सेचन तथा शुक्ल एवं नवीन पछारे हुए दो वस्त्रों को धारण कर गन्ध, माला, धूप, एवं बलि द्वारा उसको पूजा करें ।२२-२४। पश्चात् चारों ओर कुश बिछाकर उसके समीप में ही देवदारु की लकड़ी की अग्नि प्रज्वलित करे और 'ओं भूर्भुवः सुवरिति' मंत्र द्वारा हवन सम्पन्न कर वृक्ष की पूजा समाप्त करे । अनन्तर हाथ जोड़ कर इस भाँति कहे हे प्रजापति के सत्य गृह के लिए हे श्रेष्ठान्तरात्मन्, एवं सचराचरात्मन् !, आप के लिए नमस्कार है । हे देव इस वृक्ष में प्रवेश करो तथा सूर्य का मण्डल भी इसमें प्रविष्ट हो ।२५-२६

नारद ने कहा—इस प्रकार वृक्ष की पूजा करके उसे वाक्यों द्वारा शांति भी प्रदान करे—हे वृक्ष ! लोक की शांति के लिए सुन्दर देवमन्दिर में चलो ।२७। हे देव ! वहाँ तुम्हें इस शस्त्र के आघात जनित दाह न होगा, अपितु समय-समय पर लोग धूप, बलि, एवं पुष्पों, द्वारा तुम्हारा पूजन करेंगें ।२८। जिससे तुम्हें परम निर्वृति (शांति) प्राप्ति होगी । पश्चात् वृक्ष के मूल भाग में कुल्हाड़े को रख उसकी धूप एवं मालाओं से पूजा कर पूरब की ओर शिर कर उसे सप्रयत्न वहीं रख दे । पुनः उत्तम अन्न, मोदक, भात आमिष, मालपूआ आदि भक्ष्य पदार्थ, आसव, पुष्प, धूप, तथा गन्धों द्वारा वृक्ष के पूजन पूर्वक देव, पितर, पिशाच, राक्षस, साँप सुरगण, और विनायक आदि की पूजा करे और रात में वृक्ष स्पर्श करते हुए ऐसा

---

१. चापरिभुक्ते ।

अर्चासु देवदेव त्वं देवैश्च परिकल्पितः । नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्परिगृह्यताम् ॥३३

यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥३४

प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनः सम्पूज्य तं नगम् । ब्राह्मणेभ्यस्ततो दत्त्वा भोजकेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥
छिन्द्याद्वनस्पतींस्तज्ज्ञैस्तैः कृतस्वस्तिवाचनैः ॥३५

पूर्वस्यां दिशि पातोऽस्य ऐशान्यां चापि यो भवेत् । अथवा उत्तरस्यां तु तथा छिन्द्यात्तु[1] नान्यथा ॥३६

ऐन्द्र्यैशान्योरुदीच्यां च पातस्त्रिषु शस्यते । नैर्ऋत्याग्नेययाम्यासु दिक्षु पातो न शोभनः ॥
वायव्यां चैव वारुण्यां तस्य पातस्तु मध्यमः ॥३७

यस्य व्याह्यस्थिता शाखा दिक्षु नष्टा चतसृषु । वास्तुपूर्वं ततः स्थित्वा ततः पश्चादवस्थिता ॥३८

अविलग्नमशब्दं तु पतनं तु प्रशस्यते । उत्पद्येद्विद्वदलं यस्य द्रावश्च मधुरो भवेत् ॥३९

सर्पिस्तैलं क्षरेद्यस्य पादपं तं विवर्जयेत् । शुभदं यदुशार्दूल शृणु त्वं कथये शुचि ॥४०

वृक्षं प्रभाते सलिलैर्निषिक्तं पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य ।
मध्वाज्यदिग्धेन कुठारकेण प्रदक्षिणां शोषमभप्रहण्यात् ॥४१
पूर्वोत्तरेऽप्युत्तरदिग्विभागे पाते यदा वृद्धिकरस्तदा स्यात् ।

कहे ।२९-३२। हे देवाधिदेव ! पूजन के लिए ही देवों ने आपकी कल्पना (सृष्टि) की है, अतः आप के लिए नमस्कार है । हे वृक्ष इस मेरी विधान पूर्वक पूजा को आप स्वीकार करो तथा इस (वृक्ष) में जितने (जीव) भूत, आदि रहते हों, विधान पूर्वक दी गई इस बलि को ग्रहण करते हुए कहीं अन्यत्र अपना आवास स्थान बनावें और मुझे क्षमा प्रदान करें मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ ।३३-३४। प्रातः में पुनः वृक्ष की पूजा तथा ब्राह्मणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान कर स्वास्तिक वाचन पूर्वक उस वृक्ष को किसी चतुर बढ़ई द्वारा कटायें ।३५। पूरब् ईशानकोण या उत्तर की ओर उसका पतन हो ऐसा समझ कर उसे काटना चाहिए अन्यथा न होने पाये ।३६। क्योंकि पूरब ईशान कोण अथवा उत्तर की ओर उसका गिरना प्रशस्त बताया गया है । उसी भाँति नैऋत्य, आग्नेय, एवं दक्षिण की ओर वृक्ष का गिरना शुभ दायक नहीं होता है । एवं वायव्य और पश्चिम की ओर गिरना मध्यम बताया गया है ।३७। इस प्रकार जिस वृक्ष की शाखा घर के चारों ओर फैल कर नष्ट हो गयी हो और घर के समीप वाला वृक्ष भी जो घर के पहले से लगा हो, प्रतिमा बनाने हेतु वह भी त्याग देना चाहिए ।३८। किसी के सम्पर्क से रहित एवं शब्द-हीन (वृक्ष का) गिरना श्रेयस्कर बताया गया है । जो गिरते ही दो टुकड़े हो जाये, शहद की भाँति रस निकले घी एवं तेल, जिसमें से निकले, ऐसे वृक्ष भी वर्जित किये गये हैं। हे यदुशार्दूल ! मैं अब पवित्र एवं शुभदायक वृक्षों को बता रहा हूँ सुनों ! ।३९-४०। प्रातःकाल में वृक्ष को जल से सींच कर शहद तथा घी लगाये गये कुठार द्वारा उसके पूर्वोत्तर (ईशानकोण) में ऊपर वृक्ष प्रदक्षिणा पूर्वक सुखाने योग्य प्रहार करें। क्योंकि ईशान, एवं उत्तर दिशा की ओर यदि वह गिरता है तो बुद्धिकारक होता है और आग्नेय कोण

---

१. तुंगं यथा तथा ।

आग्नेयकोणक्रमशोऽग्निदाह उग्रोग्ररोगाः सुधनक्षयश्च ॥४२
गारुडे दिशि पाषाणं कपोतो गृहगोधिका । सितवर्णं जलं ज्ञेयमङ्गुष्ठाभं भवेत्कृमिः ॥
दोषैरेतैर्विनिर्मुक्तं मुदा कालं समुद्धरेत् ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दारुपरीक्षावर्णनं
नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३१।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णनम्

नारद उवाच

हन्त ते सर्वदेवानां प्रतिमालक्षणं परम् । वच्मि ते यदुशार्दूल आदित्यस्य विशेषतः ॥१
एकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिहस्ता वा प्रमाणतः । तथा सार्द्धत्रिहस्ता च सवितुः प्रतिमा शुभा ॥२
प्रसादाद्द्वारतो वापि प्रमाणं च प्रकल्पितम् । तद्वत्प्रयाणं कर्तव्यं सततं शुभमिच्छता ॥३
एकहस्ता भवेत्सौम्या द्विहस्ता धनधान्यदा । त्रिहस्ता प्रतिमा भानोः सर्वकामप्रदा स्मृता ॥४
सार्धत्रिहस्ता प्रतिमा सुभिक्षक्षेमकारिणी । अग्रे मध्ये च मूले च प्रतिमा सर्वतः समा ॥
गान्धर्वी सा तु विज्ञेया धनधान्यावहा स्मृता ॥५

आदि दिशाओं में गिरे तो, क्रमशः उग्र, एवं उग्रतर रोग, किसी अच्छे धन का विनाश होता है ।४१-४२। इसी प्रकार गरुड़ की दिशा में गिरने से उस वृक्ष में पत्थर कपोत (कबूतर) छिपकली दिखाई देती है और सफेद जल निकले तो अगूंठे के समान कीड़े निकलते हैं इसलिए इन दोषों से मुक्त वृक्ष का (प्रतिमा के लिए) शुभ समय में सहर्ष ग्रहण करना चाहिए ।४३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में दारुपरीक्षा वर्णन नामक
एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३१।

अध्याय १३२

श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णन

नारद बोले—हे यदुशार्दूल ! मैं सभी देवताओं एवं विशेषकर सूर्य की प्रतिष्ठा का उत्तम लक्षण तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ।१। सूर्य की प्रतिमा एक, दो, तीन, अथवा साढ़ेतीन हाथ की लम्बी होने से शुभ बतायी गई है ।२। अतः प्रासाद या दरवाजे के प्रमाण के अनुसार प्रतिमा का भी प्रमाण शुभेच्छुकों को निरन्तर रखना चाहिए।३। क्योंकि एक हाथ की प्रतिमा, सौम्य, दो हाथ की प्रतिमा धन-धान्य प्रदान करने वाली होती है और तीन हाथ की सूर्य की प्रतिमा समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली, तथा साढ़े तीन हाथ की प्रतिमा सुभिक्ष एवं कल्याण प्रदान करने वाली कही गयी है। उसी भाँति अग्रभाग, मध्य एवं मूलभाग में चारों ओर से सम रहने वाली प्रतिमा गांधर्वी कही जाती है, जो धन-धान्य की वृद्धि करती है।४-५।

देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टांशमुच्छ्रिता । त्रिभागैः पिण्डिकाः कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ॥६
अङ्गुलैश्च तथा मूर्तिश्चतुरशीतिसंमितैः । विस्तारायामतः कार्या वदनं द्वादशाङ्गुलम् ॥७
मुखात्त्रिभागैश्चिबुकं ललाटं नासिका तथा । कर्णौ नासिकया तुल्यौ पादौ चानियतौ तयोः ॥८
नयने द्व्यंगुले स्यातां त्रिभागा तारका भवेत् । तृतीयतारकाभागात्कुर्याद्दृष्टिं विचक्षणः ॥९
ललाटमस्तकोत्सेधं कुर्यात्तत्समसेव च । परिणाहस्तु शिरसो भवेद्द्वाविंशदङ्गुलः ॥१०
तुल्या नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयांतरम् । मुखमात्रा भवेन्नाभिस्ततो मेढ्रमनन्तरम् ।
मुखविस्तारणमुरस्ततोऽर्द्धं तु कटिः स्मृता ॥११
बाहू प्रवाहतुल्यौ तु ऊरू जङ्घे च तत्समे । गुल्फाधस्तात्तु पादः स्यादुच्छ्रितश्चतुरङ्गुलः ॥१२
षडङ्गुलसुविस्तारस्तस्याङ्गुष्ठाङ्गुलत्रयम् । प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषा नखैर्युताः ॥१३
चतुर्दशाङ्गुलः पाद आयामात्परिकीर्तितः । एवं लक्षणसंयुक्ता प्रतिमार्च्या भवेत्सदा ॥१४
अंसौ हरेस्तथैवोरू ललाटं च सनासिकम् । नियते नयने गण्डौ मूर्तेः कुर्यात्समुन्नते ॥१५
विशालधवलावामपक्ष्मलायतलोचने । सस्मिताननपद्मस्य चारुबिम्बाधरस्तथा ॥१६
रत्नप्रोद्भासिमुकुटकटकाङ्गदहारवान् । अव्यङ्गपदमध्यादिसमायोगोऽपि शोभितः ॥१७

इसलिए देव-मन्दिर के दरवाजे के विस्तार के आठवें भाग के समान ऊँची प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए। उसमें तीसरे भाग के समान ऊँची पिंडिका (मूर्तिस्थापन के लिए चौकी या चबूतरा) और दो भाग के समान प्रतिमा की ऊँचाई बनाये।६। इस भाँति अपने अंगुल से चौरासी, अंगुल की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए जिसमें बारह अंगुल का लम्बा-चौड़ा उसका मुख रहता है।७। एवं मुख के तिहाई भाग के समान उसकी चिबुक (ठोड़ी), और शेष के समान ललाट एवं नासिका की रचना करे। उसी प्रकार नासिका के समान दोनों कान तथा अनियत दोनों चरण और दो-दो अंगुल के नेत्र, एवं उसके तिहाई भाग के समान (आँख की) तारा और उसके तिहाई भाग में बुद्धिमान को दृष्टि की रचना करनी चाहिए।८-९। यद्यपि ललाट और मस्तक की ऊँचाई समान ही होती है किन्तु शिर का घेरा बाईस अंगुल का होना चाहिए।१०। क्योंकि नासिका के समान ही ग्रीवा होती है और मुख के समान हृदय का मध्य भाग निर्मित होता है। मुख के तुल्य नाभि होती है और उसके अनन्तर मेढ्र (शिश्न) बनाया जाता है। तथा मुख-विस्तार के समान उरस्थल (छाती) एवं उसके अर्ध भाग के समान कटि (कमर) बनती है।११। इस भाँति लम्बे बाहू ऊरु, एवं जंघाएं समान होती हैं। गुल्फ के नीचे चार अंगुल के ऊँचे चरण बनाये जाते हैं।१२। जो छह अंगुल के चौड़े होते हैं। चरण के अंगूठे तीन-तीन अंगुल के होते हैं। अंगूठे के समान ही तर्जनी अंगुली होती है। शेष अंगुलियाँ क्रमशः छोटी एवं सभी नख पूर्ण होती हैं।१३। और चरण की लम्बाई चौदह अंगुल की होती है। इस प्रकार लक्षणों से युक्त प्रतिमा सदैव पूजनीय होती है।१४। कन्धे, ऊरु, ललाट, नासिका, नेत्र एवं गण्डस्थल प्रतिमा के ये अंग अवश्य उन्नत होने चाहिए।१५। (प्रतिमा) के विशाल धवल, सुन्दर, पक्ष्म (बरौनी) युक्त बड़े-बड़े नेत्र हों और विकसित कमल की भाँति मुख हो जिसमें मन्द मुस्कान होती है एवं सुन्दर बिम्ब की भाँति अधर होने चाहिए।१६। रत्नों से अत्यन्त भासित मुकुट कड़े केयूर, विजयगढ़ और हार आदि भूषणों से भूषित उस प्रतिमा का इस भाँति निर्माण होना चाहिए जिसके मध्य भाग आदि अंग सुन्दर एवं सुडौल हों जिससे वह सौन्दर्य पूर्ण दिखायी

सुप्रभो मण्डलश्चारुर्विचित्रमणिकुण्डलः । कराभ्यां काञ्चनीं मालां प्रोद्वहन्ससरोरुहाम् ।।१८
एवं लक्षणसंयुक्तां कारयेदीहितप्रदाम् । प्रजाभ्यश्च सदा भानुः शिवारोग्याभयप्रदः ।।१९
अल्पाङ्गायां नृपभयं हीनाङ्गायामकल्पता । खातोदर्यां च क्षुत्पीडा कृशायां तु दरिद्रता ।।२०
सक्षतायां भयं शस्त्रात्स्फुटिता मृत्युकारिणी । दक्षिणावनतायां तु शश्वदायुःक्षयो भवेत् ।।२१
उत्तरावनतायां तु वियोगो भवति ध्रुवम् । नालोक्या नाप्यनालोक्या रक्ष्यामूर्तिः प्रशस्यते ।।२२
तस्माद्भास्करभक्तेन लोकद्वयहितैषिणा । तन्मूर्तेश्चादरः कार्यस्तदधीनास्तु सम्पदः ।।२३
शिरोरुगण्डवदनैः सर्वाङ्गावयवैस्तथा । एवं लक्षणसंपूर्णा प्रतिमा भवते शुभा ।।२४
नासाललाटजङ्घोरुदण्डवक्षोभिरन्विता । कुर्यादादित्यवेषं तु गूढपादोदरं तथा ।।२५
कमलोदरकान्तिनिभः कञ्चुकगुप्तः प्रसन्नमुखः । रक्तोत्पलप्रभामण्डलश्च कर्तुः शुभं करोत्यर्कः ।।२६
कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारोऽपि गृहवृत्तः । नृपतिभयं व्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्पना कर्तुः ।।२७
खातोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशाङ्गायाम् । मरणं तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः ।।२८
वामोन्नता तु पत्नीं दक्षिणावनता हिनस्त्यायुः । अन्धत्वमूर्द्धवदृष्टिः करोति चिन्तामधोमुखी दृष्टिः ।।२९
सर्वप्रतिमास्वेवं शुभाशुभं भास्करेणोक्तम् । ब्रह्मा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पङ्कजस्थश्च ।।३०

दे ।१७। उसका चारु मंडल सुन्दर प्रभा पूर्ण हो और विचित्र मणि कुण्डल को धारण किये, हाथों में सुवर्ण की माला तथा कमल को लिए अभीष्ट प्रदान करने वाली दखायी देती हो । ऐसी प्रजाओं के लिए सूर्य सदैव कल्याण एवं आरोग्य प्रदान करते है ।१८-१९। उसी प्रकार प्रतिमा के अल्पांग होने पर नृप-भय, हीनांग होने पर रोग, उदर बड़ा हो तो भूख की पीड़ा, दुर्बल होने पर दरिद्रता, किसी अंग में क्षत होने पर शास्त्र से भय और फूटी-टूटी प्रतिमा मृत्यु कारक होती है दक्षिण की ओर झुकी रहने से निरंतर आयु क्षय तथा उत्तर की ओर झुकी रहने से निश्चित वियोग होता है । अत्यंत प्रकाश पूर्ण अथवा प्रकाश हीन मूर्ति प्रशस्त नहीं होती ।२०-२२। अतः मध्यवर्ग की मूर्ति रक्षा करने वाली एवं प्रशस्त कही गई है । इसलिए लोक द्वय के हितार्थ सूर्य भक्तों को चाहिए कि सूर्य की उस प्रतिमा का विशेष आदर-सत्कार करें क्योंकि (सुख-सामग्री) की निखिल सम्पत्तियाँ उसी (मूर्ति) के ही अधीन रहती हैं ।२३। इसलिए शिर, उरु, गण्डस्थल, मुख एवं समस्त अंगों में युक्त तथा शुभ लक्षणों वाली प्रतिमा आप के लिए शुभ दायक होगी ।२४। एवं नासिका, भाल, जाँघे, ऊरू तथा वक्षःस्थल से युक्त उस मूर्ति के चरण एवं उदर गुप्त हों ऐसा ही वेष आदित्य का बनाना चाहिए ।२५। क्योंकि कमल के समान कान्ति पूर्ण उदर, कंचुकी पहिने, प्रसन्न मुख और रक्त कमल के समान प्रभा मण्डल वाली सूर्य की प्रतिमा कर्ता के लिए अत्यन्त शुभ दायक होती हैं ।२६। जो गोलाकार मन्दिर में स्थित कुण्डल से भूषित तथा लम्बे हार से सुशोभित रहती है क्योंकि व्यंग मूर्ति से राजभय, हीनांग से रोग, गढ़े वाले उदर के निर्माण होने पर भूख से व्याकुलता, कृशांग होने से अर्थनाश, (किसी अंग में) शस्त्राघात से क्षत होने पर मरण फल, कर्ता को निश्चित प्राप्त होते हैं ।२७-२८। उसी प्रकार बाईं ओर उन्नत होने से पत्नी वियोग, दाहिनी ओर उन्नत होने से आयु-नाश, ऊपर की ओर दृष्टि होने से अन्धा नीचे ओर दृष्टि होने से सदैव चिंतित होता है ।२९। इस प्रकार इन समस्त प्रतिमाओं के इस शुभ एवं अशुभ कारक फलों को सूर्य ने ही स्वयं बताया है । कमल पर स्थित, एवं कमण्डलु लिए चारमुख समेत उस ब्रह्मा की प्रतिमा का भी इसी भाँति निर्माण होना चाहिए ।३०। तथा

स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च । शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् ॥३१
तिर्यगूर्ध्वललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३२।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

विश्वरूपवर्णनम्

नारद उवाच

ततोऽधिवासनं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा । ऐशान्यां दिशि वै कुर्यादधिवासनमण्डपम् ॥१
चतुस्तोरणसम्पन्नं सर्वाभरणसंयुतम् । दिशासु विदिशास्वेव पताकाभिस्तु भूषितम् ॥२
आग्नेय्यां दिशि रक्ताः स्युः कृष्णाः स्युर्याम्यनैर्ऋते । श्वेता दिश्यपरस्यां तु वायव्यामेव पाण्डुरा ॥३
चित्रा चोत्तर पार्श्वे तु पीता पूर्वोत्तरे तथा । श्रियमायुर्जयं चैव बलं यशो यदुत्तम ॥४
ददाति सा वीर कृता सम्पदर्थे न संशयः । हिताय सर्वलोकानां मृण्मयी प्रतिमा भवेत् ॥५

कुमार रूप, शक्ति के लिए और मयूर आसन एवं ध्वजा से सुशोभित ऐसी प्रतिमा स्कन्द की होनी चाहिए। इसी प्रकार शुक्र वर्ण, एवं चार दाँत वाले हाथी पर बैठे, हाथ में वज्र लिए महेन्द्र की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए।३१। और शिव की प्रतिमा में भाल के ऊर्ध्व भाग में तीसरी तिर्छी आँख का चिह्न होना आवश्यक होता है।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में
श्री सूर्य प्रतिमा लक्षण वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३२।

अध्याय १३३

विश्व रूप वर्णन

नारद बोले—इसके पश्चात् विधान पूर्वक अधिवासन कर्म करना बताया जाता है। अधिवासन के लिए मण्डप का निर्माण ईशानकोण में होना चाहिए।१। पुनः उसे चार तोरणों से सुसज्जित एवं समस्त आभूषणों से अलंकृत करके उसकी समस्त दिशाओं तथा विदिशाओं (कोने) को पताकाओं से विभूषित करना चाहिए।२। क्योंकि आग्नेय दिशा में रक्तवर्ण, दक्षिण एवं नैर्ऋत्य में काले रंग, पश्चिम में श्वेत वर्ण, वायव्य में पांडुर वर्ण, उत्तर की ओर चित्र-विचित्र, ईशान एवं पूर्व की ओर पीले रंग की पताकाओं से विभूषित करना बताया गया है। हे यमदूत ! हे वीर ! लक्ष्मी प्राप्ति की कामनावश प्रतिमा के निर्माण कराने से वह भी आयु, जप, बल, एवं कीर्ति प्रदान करती है इसमें संशय नहीं। अतः समस्त लोकों के हित के लिए मिट्टी की मूर्ति होनी चाहिए।३-५। इस प्रकार निर्माण की गई प्रतिमा नित्य सुभिक्ष

सुभिक्षक्षेमदा नित्यं सर्वा मणिमयीकृता । गाङ्गेय[१] पुष्टिदा रौप्या स्याद्वै कीर्तिप्रवर्तिनी ॥६
प्रजावृद्धिं ताम्रमयी कुर्यान्नित्यमसंशयः । भूमेर्लाभं तु विपुलं कुर्यादश्ममयी सदा ॥७
प्रधानपुरुषं हन्ति त्रपुलोहमयी सदा । सर्वदेवमयस्यैवमर्चां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥८

साम्ब उवाच

सर्वदेवमयत्वं हि ब्रूहि मे भास्करस्य तु । सर्वदेवमयो ह्येष कथं नारद कथ्यते ॥९

नारद उवाच

साधु साम्ब महाबाहो शृणु मे परमं वचः । बुधसोमौ स्मृतौ नेत्रे ललाटे चेश्वरः स्थितः ॥१०
सुरज्येष्ठ. शिरस्तस्य कपालेऽस्य बृहस्पतिः । एकादश तथा रुद्राः कण्ठमस्य[२] समाश्रिताः ॥११
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव दशनेषु समाश्रिताः । धर्माधर्मौ च देवस्य ओष्ठसम्पुटके स्थितौ ॥१२
सर्वशास्त्रमयी देवी जिह्वायां च सरस्वती । दिशश्च विदिशश्चैव सर्वाः श्रोत्रेषु संस्थिताः ॥१३
ब्रह्मेन्द्रौ तालुदेशे तु स्थितौ देवैश्च पूजितौ । आदित्या द्वादश विभोर्भ्रुवोर्मध्ये समाश्रिताः ॥१४
ऋषयो रोमकूपेषु समुद्रा जठरे स्थिताः । यक्षकिन्नरगन्धर्वाः पिशाचा दानवास्तथा ॥१५
राक्षसाश्च गणाः सर्वे हृदये स्युः स्थिताः रवेः । नद्यो बाहुगताश्चैव नगाः कक्षान्तरे स्थिताः ॥१६
पृष्ठमध्ये स्थितो मेरुः स्तनयोरन्तरे कुजः । तस्य पुत्रो धर्मराजः स्थितो वै नाभिमण्डले ॥१७
कटिदेशे पृथिव्याद्या लिङ्गे सृष्टिः समाश्रिता । जानुनी चाश्विनौदेवावूरू तस्याचला स्मृताः ॥१८

एवं क्षेम (कल्याण) प्रदान करती है । और सुवर्ण की प्रतिमा पुष्टि, चाँदी की प्रतिमा कीर्ति, ताँबे की प्रतिमा सन्तान वृद्धि, पत्थर की प्रतिमा, सदैव अत्यन्त भूमि लाभ, एवं शीशे तथा लोहे की मूर्ति प्रधान पुरुष का नाश किया करती है । इसलिए देवमय (सूर्य) की अर्चना प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए ।६-८

साम्ब ने कहा—हे नारद ! 'भास्कर सर्वदेवमय हैं' इसे तथा सूर्य का सर्वदेव- मय होना भी आप मुझे बतायें ।९

नारद बोले—हे महाबाहो ! साम्ब ! मेरे उत्तम वचनों को सुनो ! (सूर्य के) बुध, एवं सोम नेत्र हैं ईश्वर (शिव) मस्तक में स्थित हैं ।१०। उसी प्रकार शिर में ब्रह्मा, कपाल भाग में बृहस्पति, कण्ठ में एकादश रुद्र, दाँतों में नक्षत्र एवं ग्रह, ओष्ठ पुट में धर्म-अधर्म, एवं जिह्वा पर सर्वशास्त्रमयी सरस्वती का निवास है । एवं कानों में सभी दिशाएँ, एवं उपदिशाएँ (कोने) स्थित हैं ।११-१३। तालु प्रदेश में देवों द्वारा पूजित ब्रह्मा तथा इन्द्र सुशोभित हैं, उन विभु सूर्य के भौहों के मध्य भाग में बारह आदित्य स्थित हैं ।१४। रोम कूपों में ऋषिगण, जठर में समुद्र, तथा हृदय में यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पिशाच, दानव, एवं समस्त राक्षस गण स्थित हैं । एवं बाहुओं में नदियाँ, कक्ष (कौरव) में पर्वत, पीठ के मध्य भाग में मेरु, स्तनों के मध्य भाग में मंगल, नाभि-मण्डल में उनके पुत्र धर्मराज स्थित हैं ।१५-१७। कटि प्रदेश में पृथिवी आदि, लिंग में सृष्टि, जानु (घुटने) में अश्विनी कुमार, तथा ऊरु प्रदेश में पर्वतों की स्थिति

---

१. काञ्चनी । २. कण्ठमध्ये ।

सप्त पाताललोकास्तु नखमध्ये समाश्रिताः । ससागरवना पृथ्वी पादमध्येऽस्य वर्तते ॥१९
देवः कालाग्निरुद्रो यो दन्तान्तेषु समाश्रितः । सर्वदेवमयो भानुः सर्वदेवात्मकस्तथा ॥२०
व्यंगेषु वायवश्चैव लोकालोकं चराचरम् । व्याप्तं कर्मशरीरेण वायुना तस्य वै विभोः ॥२१
स एष भगवानर्को भूतानुग्रहणे स्थितः । एतत्ते परमं ज्ञानमेतत्ते परमं पदम् ॥२२
तस्य स्थानविभागेन प्रतिमास्थापनं यथा । तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने प्रतिमाप्रतिष्ठाकल्पे विश्वरूपवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मण्डलविधिवर्णनम्

नारद उवाच

प्रतिपच्च द्वितीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा । दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्तिता ॥१
सोमः बृहस्पतिश्चै शुक्रश्चैव बुधस्तथा । एते सौम्या ग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायज्ञकर्मणि ॥२
त्रिषूत्तरासु रेवत्यामश्विन्यां ब्राह्मभे तथा । पुनर्वस्वोस्तथा हस्ते वासवे[1] श्रवणेऽथवा ॥

बतायी गई है ।१८। इस भाँति नख के मध्य में पाताल आदि सात लोक स्थित हैं । इनके चरण के मध्य भाग में सागरों एवं जंगलों समेत पृथ्वी रहती है ।१९। और दाँतों के अन्त में कालाग्नि रुद्र देव वर्तमान हैं । इस प्रकार सर्वदेवमय भानु सर्वदेवात्मक कहे जाते हैं ।२०। प्रकाशित अप्रकाशित चर-अचर स्थानों में व्याप्त वायु की भाँति सूर्य कर्म शरीर रूपी वायु द्वारा समस्त लोकों में व्याप्त हैं । इस भाँति वायु भी उन्हीं के अंग का निवासी है ।२१। इस प्रकार भगवान् सूर्य जीवों के ऊपर, अनुग्रह करने के लिए ही स्थित हैं और यही तुम्हारे लिए परम ज्ञान एवं परम रूप हैं ।२२। स्थान विभाग द्वारा जिस प्रकार उनकी प्रतिमा की स्थापना (प्रतिष्ठा) की जाती है, उसे ब्रह्मा ने पहले समय में जैसे बताया था, मैं उसे उसी ढंग से तुम्हें बताऊँगा ।२३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान के प्रतिमा प्रतिष्ठा कल्प में विश्व रूप वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३३।

अध्याय १३४

मण्डल विधि वर्णन

नारद बोले—प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पंचमी, दशमी, त्रयोदशी, तथा पूर्णिमा तिथियाँ (प्रतिष्ठा के लिए) शुभ बतायी गई हैं ।१। सोम, बृहस्पति, शुक्र, तथा बुध दिन प्रतिष्ठा रूपी यज्ञ में सौम्य ग्रह कहे गये हैं ।२। इसी प्रकार तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य,

---

१. पुष्येण ।

भरण्यां चैव नक्षत्रे भानोः[1] स्थापनमुत्तमम् ।।३
शोधयित्वा तु वै भूमिं तुषकेशविवर्जिताम् । वालुकाङ्गारपाषाणास्थिविहीनां विशोध्य तु ।।४
चतुर्हस्तसमायुक्ता वेदी विस्तरतो रवेः[2] ।।५
मण्डपस्तु प्रमाणेन दशहस्तः समंततः । मण्डलं वृक्षशाखाभिः कारयेद्विधिपूर्वकम् ।।६
नदीसङ्गमतीरोत्थां मृत्तिकां[3] च समानयेत् । उपलिप्य ततो भूमिं कारयेत्कुण्डमुत्तमम् ।।७
चतुरस्रं श्रिया युक्तं पूर्वं कुण्डं तु कारयेत् । दक्षिणे चार्धचन्द्रं स्याद्वारुण्यां दिशि वर्तुलम् ।।८
पद्माकारं तु वै कुर्यादुत्तरे[4] च विचक्षणः । तोरणानि ततः कुर्यात्पञ्चहस्तानि सुव्रत ।।९
न्यग्रोधोदुम्बरौ चैव बिल्वपालाशमेव च । अश्वत्थश्च शमी चैव चन्दनश्चेति कीर्तिताः ।।१०
शुक्लवस्त्रसमायुक्तश्चित्रपट्टसमन्वितः । जपमालान्वितः कुर्यात्तोरणानि विचक्षणः ।।११
अग्निमीळेति मन्त्रेण यजेद्वै पूर्वतोरणम् । इषेत्वोर्जेति मन्त्रेण यजेद्दक्षिणतोरणम् ।।१२
अग्न आयाहीति मन्त्रेण पश्चिमं तु समर्चयेत् । शं नो देवीति मन्त्रेण यजेदुत्तरतोरणम् ।।१३
कलशांस्तु समादाय हेमगर्भसमन्वितान् । श्वेतचन्दनपङ्केन कण्ठस्वस्तिकभूषणान् ।।१४
यवशालिशरावान्नवस्त्रालङ्कारविग्रहान् । आजिघ्रेति च मन्त्रेण कलशांस्तु निवेशयेत् ।।१५
दुकूलैश्चित्रपट्टैश्च वेष्टयेत्स्तम्भमालिकाम्[5] । ध्वजादर्शपताकाभिश्चामरैस्तु वितानकैः ।।१६
शङ्खघण्टानिनादैश्च गेयमङ्गलवाचनैः । तूर्यभेरीनिनादैश्च वेदध्वनिसमन्वितैः ।।१७

श्रवण, और भरणी नक्षत्रों में सूर्य की प्रतिष्ठा उत्तम बतायी गयी है ।३। ऐसी भूमि का, जिसमें तुष (भूसी), केश, बालू, कोयला, पत्थर, एवं हड्डियाँ न हों, संशोधन करके उसमें चार हाथ की विस्तृत वेदी बनाये ।४-५। मण्डप का प्रमाण दश हाथ का बताया गया है । उसमें विधान पूर्वक वृक्ष की शाखाओं का मण्डल भी बनाना चाहिए ।६। नदी के संगम के तीर के पास की मिट्टी लाकर, भूमि को (गोबर से) लीप कर उसमें उत्तम कुण्ड बनाये ।७। पूरब की ओर चौकोर, एवं सुन्दर कुण्ड की रचना करके, दक्षिण में अर्ध चन्द्र, पश्चिम में वर्तुल (गोलाकार) और बुद्धिमान् को चाहिए कि उत्तर में कमल के समान आकार के कुण्ड बनायें । हे सुव्रत ! उस मण्डल में पाँच हाथ का तोरण होना चाहिए ।८-९। बरगद, गूलर, बेल पलाश, पीपल, शमी, एवं चन्दन वृक्ष तोरण के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ।१०। शुभ्र वस्त्र, चित्र (विचित्र) पट्टों से विभूषित, एवं जपमाला समेत तोरण पण्डितों को बनाना चाहिए ।।११। 'अग्नि मीळे' इस मंत्र द्वारा पूर्व वाले तोरण की पूजा करके, 'इषेत्वोर्जेति' मंत्र से दक्षिण वाले 'अग्न आयाहि' इस मंत्र से पश्चिम वाले तथा 'शं नो देवी' ति मंत्र द्वारा उत्तर वाले तोरण की पूजा करनी चाहिए ।१२-१३। एवं उनके भीतर रखे गये सुवर्ण समेत कलशों का जिनके कंठ श्वेत चन्दन द्वारा रचित स्वस्तिका से अलंकृत हों और जवा, या चावल भरे शराबों (कसोरों) एवं अन्न-वस्त्रों तथा अलंकारों से सम्पूर्ण शरीर सुसज्जित हों 'आजिघ्रेति' मंत्र द्वारा स्थापन करना बताया गया है ।१४-१५। पुनः चित्र-विचित्र वस्त्रों से मण्डप के स्तम्भों को आवेष्टित करने के उपरान्त ध्वजा, दर्पण, पताका, चामर, एवं (चाँदनी) से मण्डप सुशोभित करते हुए शंख, घंटा, मांगलिक पाठ, तुरुही, दुन्दुभी, आदि वाद्यों की ध्वनियों से निनादित, तथा पुण्यवेद

---

१. रवेः । २. भवेत् । ३. वालुकां च । ४. उत्तरेण । ५. तान्सुमंगलम् ।

पुष्यैश्च जयशब्दैश्च कारयेत महोत्सवम् । पताकाभिर्विचित्राभिः पूजामाल्योपशोभितम् ॥१८
विचित्रस्रग्वितानाढ्यं प्रकीर्णकुसुमाङ्कुरम् । तन्मध्ये तु कुशास्तीर्णे देवार्चां स्थापयेद् बुधः ॥१९
पताकां पीतवर्णां तु पूर्वे शक्राय दापयेत् । आग्नेय्यां रक्तवर्णाभां[1] [2]यमाशायां यमोपमाम्[3] ॥२०
नीलाञ्जनसमप्रख्यां नैर्ऋत्यां च प्रदापयेत् । वारुण्यां सितवर्णां च कृष्णां वायव्यगोचरे ॥२१
हरितां यक्षराजाय ऐशान्यां सर्ववर्णिकाम् । श्वेतरक्तकचूर्णेन पद्ममालेखयेत्ततः ॥२२
वैद्या वेदीति मन्त्रेण वेद्या आलभनं भवेत् । पूर्वाग्रानुत्तराग्रांश्च कुशानास्तीर्य यत्नतः ॥२३
योगेयोगेति मन्त्रेण कुशैश्चास्तरणं भवेत् । शय्या तत्रैव कर्तव्या दिव्यास्तरणसंयुता ॥२४
गड्डके द्वे विचित्रे तु तन्मध्ये स्थापयेद्बुधः । विचित्रदीपमालाभिर्भक्ष्यभोज्यान्नपानकैः ॥२५
धूपकान्सुविचित्रान्वै मोदकांश्च प्रदापयेत् । पायसं कृशरं चैव दध्योदनसमन्वितम् ॥२६
दधि चन्द्रसमप्रख्यं शुभ्रच्छत्रं च विन्यसेत् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रतिष्ठायां मंडलविधिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३४।

ध्वनि द्वारा मुखरित उस महोत्सव को जय जय (कार) शब्दों के महान् कोलाहल समेत सुसम्पन्न करना चाहिए इसी प्रकार विचित्र पताकाओं से भूषित, पूजा की मालाओं से सुशोभित एवं अन्य मालाओंसे अलंकृत उस लम्बी चौडी चाँदनी (चँदोवा) में बिखरे हुए कोमल कली वाले पुष्पों से सुसज्जित उस मण्डल के मध्य में कुशा का स्तरण बिछौना बना कर उसको पुष्पों से आच्छादित करके प्रतिमा पण्डितों को स्थापित करनी चाहिए ।१६-१९। तथा पीले रंग की पताका पूरब की ओर इन्द्र के लिए, लाल रंग की पताका आग्नेय में, यम की भाँति काले रंग की पताका दक्षिण की ओर, नील-कृष्ण रंग की पताका नैऋत्य में, उज्ज्वल वर्ण की पताका पश्चिम में कालेरंग की पताका वायव्य में हरे रंग की पताका कुबेर के लिए उत्तर की ओर, और समस्त रंगों की पताका ईशान में रखनी चाहिए । अनन्तर श्वेत एवं रक्त (रंग) के चूर्ण द्वारा कमल की रचना 'वैद्या वेदी' इस मंत्र द्वारा वेदी का आलंभन करे । पश्चात् उस वेदी पर पूरब एवं उत्तर की ओर अग्रभाग करके प्रयत्न पूर्वक कुशा बिछायें जिसमें कुश का स्तरण (बिछौना) बनाते समय 'योग योग' इस मंत्र का उच्चारण कहा गया है । अतः दिव्य बिछौने से सुसज्जित वहाँ एक शय्या स्थापित करके, उसके मध्य भाग में पंडित को चाहिए कि दो तकियां भी रखें । तदुपरांत विचित्र दीप माला, भक्ष्य-भोज्य, अन्नपान, मालपूआ, उत्तम मोदक के साथ खीर, कृशर (खिचड़ी), दही, भात, तथा दही और चन्द्रमा की भाँति शुभ छत्र भी वहाँ उपस्थापित करें ।२०-२७

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान के सूर्य प्रतिष्ठा में मण्डलविधि वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३४।

---

१. अग्नये इत्यर्थः । २. याम्यायां यमसंनिभाम् । ९. यमोपमां कृष्णाम् । यमायेति शेषः ।

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिष्ठास्नानविधिवर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्नानकर्मविधिं तव । स्नापकस्तु महाप्राज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥१
अभिज्ञः सौरशास्त्राणामरुणो यदुसत्तम[1] । भोजको भोजकैश्चान्यैर्ब्राह्मणैश्च तथा वृतः ॥२
दिशाभागे मण्डलस्य ईशाने वै यथाक्रमम् । हस्तमात्रप्रमाणं तु भद्रपीठं तु विन्यसेत् ॥३
हस्तिना शकटेनापि शक्त्या ब्रह्मरथेन च । मंगलैर्ब्रह्मघोषैश्च देवं प्रासादमानयेत् ॥४
भद्रपीठं समादाय भद्रं कर्णेति मन्त्रतः । सूत्रधारस्तथा प्रोक्ताः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥५
स्नापयेत्कलशं गृह्य देवदेवं विभावसुम् । सामुद्रं तोयमाहृत्य जाह्नवं यामुनं तथा ॥६
सारस्वतं जलं पुण्यं चान्द्रभागं ससैन्धवम् । पुष्करस्य जलं श्रेष्ठं गिरिप्रस्रवणोदकम् ॥७
अन्यद्वापि शुचि तोयं नदीनदतडागजम् । यथाशक्त्या उपाहृत्य कलशैः काञ्चनादिभिः ॥८
भोजकाश्चाष्टभिः सूर्यं कलशैः स्नापयन्ति वै । ततस्तु मणिरत्नानि सर्वबीजौषधीस्तथा ॥९
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च । चन्दनानि च मुख्यानि गन्धाश्च विविधास्तथा ॥१०

अध्याय १३५

प्रतिष्ठा स्नानविधि का वर्णन

नारद बोले—इसके उपरान्त सूर्य स्नान-विधानक मैं तुम्हें बताऊँगा सुनो ! ।१। जो महाबुद्धिमान्, ब्राह्मण, वेदनिष्णात, एवं सौर (सूर्यसम्बन्धी) शास्त्रों का भली भाँति ज्ञाता हो ऐसे किसी भोजक को भोजक या अन्य ब्राह्मण लोग सूर्य के स्नान कराने के लिए नियुक्त करें ।२। पुनः मंडल के ईशान कोण में एक हाथ के प्रमाण का भद्रपीठ (सुन्दरआसन) रख कर उसी पर बैठाकर स्नान कराने के हेतु, हाथी गाड़ी अथवा ब्रह्मरथ (ब्राह्मण के द्वारा ले जाये जाने वाले) द्वारा सूर्य की वह प्रतिमा मांगलिक ब्रह्मघोष पूर्वक वहाँ (स्नान गृह में) ले जायें ओर 'भद्रं कर्णे' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस पीठासन पर मूर्ति स्थित कर सूत्र एवं पवित्र शुभ्र वस्त्र धारण कराकर उन देवाधिदेव सूर्य का स्नान कलश के जल द्वारा सुसम्पन्न करायें जो पवित्र समुद्र गंगा एवं पुण्य जल यमुना, सरस्वती चन्द्रभागा, सिंधु, पुष्कर तथा पर्वतों के झरनों और अन्य भी नदी, नद, एवं तालाबों से यथाशक्ति सुवर्ण आदि के कलशों में लाकर रखे गये हों ।३-८। भोजक लोगों को उन आठ कलशों के जल से सूर्य का स्नान कराना बताया गया है उन जल पूर्णकलशों में मणि, रत्न, सर्व बीज, सर्व औषधियाँ सुगन्धित मालाएँ, स्थल कमल मुख्य चन्दन और भाँति-भाँति के गंध, ब्राह्मी, सुवर्चला (सोंचर नामक नमक), मुस्ता (मोथा), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), शतावरी, दूर्वा, शिवी पुष्पी (गुल्मानामक औषध), प्रियंगु, रजनी (पर्पटी नाम

---

१. यदि सुव्रतः ।

ब्राह्मी सुवर्चला मुस्ता विष्णुक्रान्ता शतावरी । दूर्वा च शिबिपुष्पी च प्रियङ्गु रजनी वचा ॥११
सम्भृत्यैतांस्तु सम्भारान्स्नानकर्मविभागवित् । बलाश्वत्थशिरीषाणां पल्लवैः कुशसंयुतैः ॥१२
कलशोपरि विन्यस्य दद्यादर्घ्यं रवेः सदा । काञ्चनै राजतैस्ताम्रैर्मृण्मयैः कलशैस्तथा ॥१३
साक्षतैः सहिरण्यैश्च सर्वौषधिसमन्वितैः । गायत्र्या परिपूतैस्तु षोडशैः स्नापयेद्रविम् ॥१४
कुशोत्तरां[1] ततः कृत्वा वेदिं पक्वेष्टकामयीम् । तस्यां वेद्यां समारोप्य परिधाप्य च वाससी ॥१५
प्रतिमामभिषिञ्चेच्च सोपवासः प्रयत्नतः । मूर्ध्नि सर्वौषधीः कृत्वा तथैवामलकानि च ॥१६
मन्त्रेण मृत्तिकां चापि मन्त्रतश्च जलं तथा । त्वं देवी वन्दिता देवैः सकलैर्दैत्यदानवैः ॥१७
तेन संस्थापिता मूर्ध्नि मया देवस्य शुद्धये । आदिस्त्वं सर्वभूतानां देवतानां च सर्वथा ॥१८
रसानां पतये तुभ्यमाह्वानं च कृतं मया । इत्थं पौराणिकैर्मन्त्रैर्वैदिकैश्च विशेषतः ॥१९
कार्यं हि वारुणं स्नानं देवस्य यदुनंदन । इत्थमुच्चारयेद्वाचं कुर्यात्स्नानं विचक्षणः ॥२०
देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः । व्योमगङ्गा च पूर्णेन द्वितीयकलशेन तु ॥२१
सारस्वतस्य पूर्णेन कलशेन सुरोत्तम । शक्रादयोभिषिचन्तु लोकपालाः सुरोत्तमाः ॥२२
सागरोदकपूर्णेन चतुर्थकलशो न तु । वारिणा परिपूर्णेन पद्मपत्रसुगन्धिना ॥२३

वाली, वच, ये वस्तुएँ पहले अवश्य डाल देनी चाहिए ।, क्योंकि स्नान विधान के ज्ञाता को ऐसा करना आवश्यक बताया गया है । और बरगद, पीपल, एवं शिरीष के कोमल पल्लव तथा कुश, इन्हें कलश के ऊपर रखकर सूर्य के लिए सदैव अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, या मिट्टी के कलशों में अक्षत, सुवर्ण, तथा सर्व औषधियाँ डाल कर गायत्री मंत्र से पवित्र किये गये उन सोलहों कलशों के जल से सूर्य का स्नान कराना चाहिए ।९-१४। पश्चात् पक्की ईटों से निर्मित वेदी पर कुश बिछाकर दो वस्त्रों को धारण कर उस प्रतिमा को स्थापित करें ।१५। और उपवास रहते हुए स्वयं उस मूर्ति का अभिषेक करे । अभिषेक विधान में सर्वप्रथम सर्व औषधियों तथा आमले को शिर पर रखने के उपरान्त मिट्टी एवं जल को इन मंत्रों के उच्चारण द्वारा पवित्र करें—हे देवि ! समस्त देव तथा दानवों की तुम वन्दनीया हो ।१६-१७। इसीलिए सूर्य प्रतिमा की शुद्धि के लिए मैंने पहले इसे शिर पर ही स्थापित किया है, समस्त भूत (प्राणी) एवं देवताओं की तुम आदि हो और रसों की स्वामी हो इसीलिए तुम्हें मैंनें यहाँ आवाहित किया है । हे यदुनन्दन ! इस प्रकार पौराणिक एवं विशेषकर वैदिक मंत्रों द्वारा उनका वारुण (जल) स्नान कराये और अपने स्नान करते समय भी इसी प्रकार उच्चारण करते रहना चाहिए ।१८-२०। हे सुरोत्तम ! अभिषेक के समय पुनः प्रार्थना करें, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव तथा आकाश गंगा आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करे, ऐसा कहते हुए दूसरे कलश के जल से स्नान कराये ।२१। सारस्वत- जल से पूर्ण तीसरे कलश द्वारा देवश्रेष्ठ इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारा अभिषेक करें ।२२। सागर से भरे जल चौथे कलश के जल से सुगन्धित कमल-पत्र एवं पूर्ण पाँचवें कलश के जल से नाग लोक तुम्हारा अभिषेक करे ऐसा कह कर चौथे पाँचवें कलश के जल से स्नान कराये एवं हेमकूट

---

१. चतुरस्राम् ।

पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागाश्च कलशेन तु । हिमवद्धेमकूटाद्याश्चाभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।२४
नैर्ऋतोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन तु । सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन पद्मरेणुसुवासिना ।।२५
सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्त ये वराः । वसवश्चाभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन वै ।।२६
अष्टमङ्गलयुक्तेन देवदेव नमोऽस्तु ते । ततो वै कलशैर्दिव्यैः स्नानकर्म समारभेत् ।।२७
समुद्रं गच्छ यः प्रोक्तो मन्त्रमेतमुदीरयेत् । हिरण्यगर्भेति च यो मन्त्रस्तं समुदीरयेत् ।।२८
समुद्रज्येष्ठेति मन्त्रेण क्षालयेन्मृत्तिकान्वितम् । सिनीवालीति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।।२९
शम्युदुम्बरमश्वत्थं न्यग्रोधं च पलाशकम् । यज्ञं यज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायिकम् ।।३०
पञ्चगव्यं पवित्रं च आहरेत्ताम्रभाजने । गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।।३१
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि । तेजोऽसीति घृतं तद्वद्देवस्य त्वा कुशोदकम् ।।३२
एवमादिविधियुतं पञ्चगव्यं प्रकीर्तितम् । या[1] ओषधीति मंत्रेण स्नानमोषधिभिः क्रमात् ।।३३
द्रुपदाभिः पुनस्तस्य कुर्याच्चोद्वर्तनं बुधः । शिरः स्नानं ततो दद्यान्मानस्तोकाभिमन्त्रितम् ।।३४
विष्णोरराटमन्त्रेण दद्याद्गन्धोदकं शुभम् । ततो नद्युद्भवेनैव क्षालयेच्छुद्धवारिणा ।।३५

हिमवान् नैर्ऋत्य दिशा में रखे गये छठवें कलशों से तुम्हारा अभिषेक करें ऐसा कहते हुए छठे कलश जल से स्नान करायें । और सभी तीर्थों के जल से पूर्ण, एवं कमल-पराग से वासित उस सातवें कलश के जल से सातों ऋषि गण तुम्हें अभिषिक्त करें । ऐसा कहकर सातवें कलश के जल से तथा आठमंगलों से युक्त उस आठवें कलश जल द्वारा आप का अभिषेक करें अतः देवाधिदेव ! आप के लिए नमस्कार है । इस भाँति की विनम्र प्रार्थना के उपरांत उन आठों दिव्य कलशों के जल से क्रमशः स्नान करायें ।२३-२७। 'समुद्रं गच्छे' वि 'हिरण्य गर्भे' ति, तथा 'समुद्र ज्येष्ठे' ति, इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उस मूर्ति के शरीर में लगायी गई मिट्टी का प्रक्षालन (स्नान) करना बताया गया है । इसलिए 'सिनी वाली' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक मूर्ति के अंगों में बल्मीकं की मिट्टी लगानी चाहिए ।२८-२९। इस प्रकार 'यज्ञ यज्ञे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक शमी, गूलर, पीपल, बरगद, एवं पलाश, इन पांचों का कषाय (काढ़ा) बनाकर उसे मूर्ति के शिर पर सर्वप्रथम डालने को कहा गया है ।३०। पश्चात् पवित्र गव्य को ताँबें के पात्र में रखे और उससे स्नान करायें जिससे क्रमशः गायत्री मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रथम गोमूत्र, 'गंध द्वारे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गोमय (गोबर), 'आप्यास्वे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक दूध दधिकाव्णेति के उच्चारण पूर्वक दधि, 'तेजोऽसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक घी, और उसी प्रकार 'देवस्य त्वे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कुशोदक रखा गया हो ।३१-३२। इसे ही पंत्रगव्य बताया गया है । तदनन्तर 'या ओषधी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक क्रम प्राप्त औषधि से स्नान कराये ।३३। और 'द्रुपदाभिरिति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक पंडित को चाहिए कि उस (मूर्ति) का उद्धर्तन (अंगों को मलें) करें । पश्चात् 'मानस्तोके' इस मंत्र से अभिमंत्रित जल से उस (मूर्ति) का शिरः स्नान करावें ।३४। और उसके अनन्तर 'विष्णो रराट' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक गन्धोदक से, पुनः नदियों के शुद्ध जल से, और 'जातं वेदसम्' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वस्त्र-पूत (कपड़े

---

१. आपो हिष्टेति ऋचा ।

जातवेदसमुच्चार्य वस्त्रपूतेन वारिणा । तत आवाहयेद्देवं रक्तमाल्याम्बरं शुभम् ॥३६
एह्येहि भगवन्भानो लोकानुग्रहकारक । यज्ञभागं गृहाणार्घ्यमर्कदेव नमोऽस्तु ते ॥३७
हिरण्येन तु पात्रेण देवायार्घ्यं प्रदापयेत् । इदं विष्णुर्विचक्रमे मन्त्रेणार्घ्यं समर्पयेत् ॥३८
पार्थिवैः प्रथमं कलशैः स्नापयेद्भास्करं बुधः । ततस्त्वौदुम्बरैर्वीर राजतैस्तदनन्तरम् ॥३९
ततस्तु काञ्चनैर्देवं स्नापयेद्यदुनन्दन : सर्वतीर्थजलैर्युक्तं सर्वौषधिसमन्वितम् ॥४०
शङ्खमादाय[1] देवस्य ततो मूर्धनि शङ्कर । दत्त्वा पुष्पाणि देवस्य मूर्ध्नि यत्नाद्विचक्षणः ॥४१
तोयमुत्क्षिप्य यत्नेन ततः स्नपनमाचरेत् । प्रथमं स्नापयेद्देवं वारिणा यदुनन्दन ॥४२
ततस्तु पयसा राजन्पायसेन ततस्तु वै । घृतेन मधुना वापि तथा इक्षुरसेन च ॥४३
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य गोमेधस्य[2] च सुव्रत । ज्योतिष्टोमस्य राजेन्द्र वाजपेयस्य वै विभो ॥४४
राजसूयाश्वमेधाभ्यां घृताद्यैर्लभते फलम् । यस्तु कारयते स्नानं यस्तु भक्त्या प्रपश्यति[3] ॥
क्रियमाणं तु देवस्य स्नानं यदुकलोद्वह ॥४५
य एते कथिता यज्ञा एतेषां क्रमशः फलम् । अर्चां च कुरुशार्दूल दृष्ट्वा वै लभते फलम् ॥४६
स्नानं तु यत्नतः कार्यं देवदेवस्य सुव्रत । यथा न लङ्घयेत्कश्चिद्देवस्य स्नपनं विभोः ॥४७
न प्राश्नन्ति यथा काकास्तीर्थं लोकविगर्हिताः । स्नानोदकं तु देवस्य अथवा पय एव हि ॥४८

से छाने गये) जल से क्रमशः स्नान कराये। (इस भाँति सविधि स्नान कराने के उपरांत) लाल रंग के वस्त्र एवं उसी रंग की माला से सुसज्जित कर उसमें प्रति देवता का आवाहन करे।३५-३६। हे भगवन्! आइए, आइए! (इस मूर्ति में अपनी स्थिति कीजिए) लोक के अनुग्रह करने वाले हे देव इस यज्ञ-भाग रूप अर्घ्य को ग्रहण कीजिए।३७। हे सूर्य देव! आप के लिए नमस्कार है। इस प्रकार कहते हुए सुवर्ण के पात्र में सूर्य देव के लिए अर्घ्य प्रदान करे। और अर्घ्य देते समय 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे।३८। सर्व प्रथम मिट्टी के कलशों के जल से पंडितों को चाहिए उनका अभिषेक करें। हे वीर! हे यदुनंदन! पश्चात् चाँदी, एवं सुवर्ण के कलश-जलों से क्रमशः उनका अभिषेक करें। हे शंकर! तदनंतर उस शंख के जल से, जिसमें समस्त तीर्थों के जल एवं समस्त औषधियाँ पड़ी हों, उस मूर्ति के शिर का स्नान करायें और स्नान के समय बुध-जन को चाहिए कि उस प्रतिमा के शिर पर पुष्प रख कर जल को ऊपर उठाये हुए (वारिधारा से) स्नान करायें।३९-४२। ये यदुनन्दन! इसी प्रकार सर्वप्रथम उस मूर्ति का जल से स्नान, पश्चात् दूध, दही, घी, शहद और ऊख के रस से क्रमशः स्नान करायें।४३। हे सुव्रत, हे राजेन्द्र! अग्निष्टोम, गोमेध, ज्योतिष्टोम, बाजपेय राजसूय तथा अश्वमेध, इन यज्ञों से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे समस्त फल, इस प्रकार घृतादि द्वारा (देव के) स्नान कराने से प्राप्त होते हैं।४४-४५। हे कुरुशार्दूल! उस पूजा-विधान के देखने पर भी वे फल प्राप्त होते हैं।४६। हे सुव्रत! देवाधिदेव (सूर्य) का इस भाँति प्रयत्न पूर्वक अभिषेक कराना चाहिए, जिससे कोई भी उस विभु (व्यापक) देव के स्नान कराये गये जलादि का उल्लंघन न करे।४७। उसी भाँति लोक निन्दित कौवे कुत्ते भी देव के

---

१. चरणोपरि देवस्य। २. गोशतस्य।

भूमौ गतं यथा चैव प्राश्नाति यदुनंदन । रोगं प्राप्नोति कर्ता वै दुःखं कारयिता तथा ॥४९
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं देवस्य स्नपनं विभोः ॥५०
स्नापयित्वा क्रमेणेत्थं स्नानकर्म विधानवित् । ततो वर्धनिकां गृह्य वारिधारां समुत्सृजेत् ॥५१
त्रिवारान्पुरतोऽर्कस्य आचमस्वेति च ब्रुवन् । नेदोसीति च मन्त्रेण उपवीतं प्रदापयेत् ॥५२
बृहस्पतेति मन्त्रेण वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् । यत्नक्रमं प्रकुर्वाणः पुष्पमालां प्रदापयेत् ॥५३
धूरसीति च मन्त्रेण धूपं दद्यात्सगुग्गलम्[1] । समिद्धोञ्जनमन्त्रेण अञ्जनं तु प्रदापयेत् ॥५४
युञ्जानीति च मन्त्रेण रोचनां तस्य दापयेत् । आरार्तिकं च वै कुर्याद्दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥५५
स्नानकर्म त्विदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः । भोजका ब्राह्मणाश्चैव क्रियां कुर्युः प्रयत्नतः ॥५६
बह्वृचोऽथर्वणश्चैव छन्दोगोऽध्वर्युरेव च । स्नापकस्य च चिह्नानि ये च मूर्तिधरास्तथा ॥५७
तेषां प्रवक्ष्यामि विभो शृणु चैकमनाः किल । सम्पूर्णगात्रो मतिमाञ्छास्त्रज्ञः प्रियदर्शनः ॥५८
कुलीनः श्रद्दधानश्च आर्यदेशसमुद्भवः । न स्थूलो न कृशो दीर्घः सौरशास्त्रविशारदः ॥५९
यश्च युक्तो जितात्मा च गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः स्थापकः समुदाहृतः ॥६०
वर्जनीयांश्च वक्ष्यामि यैस्तु कर्म न कारयेत् । हीनाङ्गश्चाधिकाङ्गश्च वामनो विकटस्तथा ॥६१
नातिगौरो न कृष्णश्च स्नापनाय प्रयोजयेत् । चार्वाको याजकश्चैव नित्यं गोमुखदम्भकः ॥६२

स्नान कराये गये दूध या जल का पान न कर सके ।४८। हे यदुनंदन ! क्योंकि भूमि में गिरे हुए उस दूध आदि का पान यदि कोई (निन्दित जीव) करता है, तो कर्ता रोगी हो जाता है और उसके कराने वाले को दुःख की प्राप्ति होती है ।४९। इसलिए विभु सूर्य का स्नान प्रयत्न पूर्वक (गुप्त स्थान में) कराना चाहिए ।५०। इस प्रकार क्रमशः स्नान कराने के उपरांत विधानवेत्ता 'वर्धनिका' (अर्घ्यपात्र) द्वारा वारिधारा समर्पित करके 'आचमस्व' ऐसा कह कर तीनबार देवता के सामने जल गिराये। पश्चात् 'नेदोऽसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक यज्ञोपवीत, 'बृहस्पते' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक दो वस्त्रों को धारण कराना चाहिए । तदुपरांत पुष्पमाला, 'धूरसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गुग्गुल की धूप, 'समिद्धोञ्जल' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अंजन, 'युञ्जानी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक रोचना (तिलक) 'दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक आरती करनी चाहिए ।५१-५५। महात्मा सूर्य का स्नान कर्म इसी प्रकार सुसम्पन्न करना बताया गया है । अतः भोजक और ब्राह्मणों को प्रयत्न पूर्वक इस क्रिया की समाप्ति करनी चाहिए।५६। हे विभो ! स्नापक (स्नान कराने वाले) के लक्षण अब मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! बह्वृच (ऋग्वेद), अथर्ववेद, छन्दोग (सामवेद) अध्वर्यु यजुर्वेद, इनके ज्ञाता, समस्त अंगों से युक्त, बुद्धिमान् शास्त्र-कुशल, सुन्दर, कुलीन, श्रद्धालु, आयावर्त देश में उत्पन्न, न स्थूल (मोटा), न दुर्बल न लम्बा, सौर शास्त्रों का ज्ञाता, अध्यात्मशील, संयमी, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय तथा पच्चीस तत्वों (सांख्यशास्त्र) का पूर्ण पंडित, एवं गुण सम्पन्न स्थापक होना चाहिए।५७-६०। मैं उन्हें भी बता रहा हूँ जिन्हें यज्ञ कर्म न करना चाहिए सुनो ! जो अंगहीन, अधिक अंग वाला, वामन (मोटा), विकट (भयंकर), अति गौर वर्ण, अथवा अत्यन्त काले वर्ण का हो, ऐसे लोगों को स्नापक न बनाना चाहिए।

---

१. प्रणम्यति ।

अशुचिव्रतसंयुक्तः श्यामदन्तोऽथ मत्सरी[1] । कोपनो[2] दुष्टशीलश्च युवा वा वृद्ध एव च ।।६३
श्वित्री कुष्ठी च रोगी च काणो दुर्मतिरेव च । संकीर्णो जातिहीनश्च तथा न वृषलीपतिः ।।६४
कुब्जश्चांधस्तथा व्यंगः खल्वाटो विकलेन्द्रियः । अविनीतो दुरात्मा च विकलः पङ्गुरेव च ।।६५
तिथिनक्षत्रयोगानां वाराणां च तथा विभो । सूचको जीविकार्थे[3] हि यश्च मूल्येन पाठयेत् ।।६६
ईदृशान्स्नापकान्सर्वान्विवर्जयेत प्रयत्नतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्याः स्नापका बुधैः ।।६७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सांबोपाख्याने सूर्यप्रतिष्ठास्नानविधिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३५।

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यप्रतिष्ठावर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि अधिवासनमुत्तमम् । सहस्रशीर्षा पुरुषो मण्डप यत्नतो विशेत् ।।१
ततोऽन्ये च शुचौ देशे असंस्पृष्टोपलेपने । मण्डलं पञ्चवर्णैस्तु आलिखेच्चतुरस्रकम् ।।२
पताकातोरणच्छत्रध्वजमाल्याद्यलंकृतम् । विचित्रसुवितानाढ्यं प्रकीर्णकुसुमोत्करैः ।।३

चार्वाक (नास्तिक) माचक, गौ के समान मुख वाला, दम्भी, अपवित्रतापूर्ण, काले दाँतों वाला, मत्सरी, क्रोधी । दुःशील, युवा, बृद्ध, सफेद कुष्ठ, रोगी, काना, दुर्बुद्धि, संकीर्ण जाति, जातिहीन, शूद्र जाति की स्त्री का पति, कुबड़ा, अंधा, व्यंग, खल्वाट, विकलेन्द्रिय, शठ, दुरात्मा, विकल, पंगु, (लंगड़ा) तथा हे विभो ! तिथि, नक्षत्र, योग एवं दिनों की सूचना देकर अपनी जीविका करने वाला, और मूल्य ग्रहण कर पाठ करने वाला इस प्रकार के सभी व्यक्तियों को स्नापक होने के लिए निषेध किया गया है । इसलिए विद्वानों को चाहिए कि समस्त प्रयत्नों से उनकी परीक्षा करके उस कार्य के लिए नियुक्त करें।६१-६७

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प के शाम्बोपाख्यान में सूर्यप्रतिष्ठास्नान-विधि वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३५।

अध्याय १३६

सूर्यप्रतिष्ठा का वर्णन

नारद बोले—इसके उपरान्त मैं तुम्हें उत्तम अधिवासन का विधान बता रहा हूँ । सुनो ! 'सहस्रशीर्षापुरुषः' इस मन्त्र के उच्चारणपूर्वक मण्डप में प्रवेश कर उस पवित्र-स्थान में लेपन करके पाँच रंगों द्वारा चौकोर मण्डल की रचना करे।१-२। पुनः पताका, तोरण, छत्र, ध्वजा एवं मालाओं से उसे अलंकृत करके चित्र-विचित्र वस्त्र के सुन्दर वितान (ऊपर की चाँदनी) से भूषित करे जो बिखरे हुए अधखिले दिव्य, न अधिक उज्ज्वल, एवं न अधिक रक्त वर्ण के शुभ उस केंचुल को सूर्य ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपने मध्य भाग में बाँध लिया। नागराज के अंग (शरीर) से उत्पन्न उसे सूर्य के धारण करने के नाते (सूर्य) के भक्त भी

तस्य मध्ये कुशास्तीर्णे मूर्तिः स्थाप्या विवस्वतः । तत्रास्यावाहनं कृत्वा दद्यादर्घ्यं विवस्वते ।।४
सुवर्णमधुपर्कादि कृत्वा[१] तत्र विधानतः । देवस्य[२] दर्शयेद्गां च सवत्सां रोहिणीं शुभाम् ।।५
नमो गोपतये तुभ्यं सहस्रांशो प्रसीद मे । एवमर्घ्येण सम्पूज्य परिधाय च वाससी ।।६
यज्ञोपवीतमातिथ्यं तथाभ्यङ्गं तथैव च । वत्सरे वत्सरे तस्य नवमभ्यङ्गमाहरेत् ।।७
श्रावणे मासि राजेन्द्र पवित्रं तस्य तद्धि वै । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु वर्षेवर्षे प्रयोजयेत् ।।८
अभ्यङ्गं यदुशार्दूल श्रावणे मासि भास्करम् । सर्वगन्धैः समालभ्य चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।।९
अलङ्कारैरलङ्कृत्य कुसुमैश्च सुगन्धिभिः । मालाभिश्च विचित्राभिराबद्धाभिरनेकशः ।।१०
ततो धूपं निवेद्याशु प्रतिमाग्रे प्रयत्नतः । सहस्रशीर्षा पुरुषो मण्डपं च प्रवेशयेत् ।।११
नमः शम्भवेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् । विश्वतश्चक्षुरित्येव कुर्यात्कमलनिष्कलम् ।।१२
पुनरेव च वक्ष्यामि सङ्कलीकरणं शुभम् । स्नापने तु यथा कार्यः स्वेदेहे न्यास उत्तमः ।।१३
प्रतिमायां तथा कार्यो यथा चालम्भनं बुधः । ॐ हुं खषोल्काय नमो मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ।।१४
आदित्योऽयं स्वयं देवो ह्यक्षरेणोपबृंहितः । ॐकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि हुंकारं नासिकोपरि ।।१५
खकारं च ललाटे तु षकारं वदने न्यसेत् । लकारं चैव कंठे तु ककारं हृदये न्यसेत् ।।१६

पुष्पों से सुशोभित किया गया है ।३। उपरांत उसके मध्य भाग में कुश का स्तरण (बिछौना) बनाकर सूर्य की मूर्ति उस पर स्थापित करे और आवाहन पूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान करे ।४। तदनन्तर सुवर्ण तथा मधुपर्क आदि विधान पूर्वक प्रदान कर बछड़े समेत शुभ एवं कल्याण मूर्ति गाय का दर्शन उन्हें कराये ।५। तुम्हें गोपति को नमस्कार है, हे सहस्रांशो ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो—यह कहते हुए अर्घ्य द्वारा उनकी पूजा करें उन्हें दो वस्त्र धारण कराये ।६। पश्चात् यज्ञोपवीत, अभ्यंग, एवं आतिथ्य सत्कार से उन्हें सत्कृत करना चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में उन्हें नया-नया अभ्यंग प्रदान करना चाहिए ।७। हे राजेन्द्र ! वह अभ्यंग उन्हें श्रावण मास में समर्पित करना बताया गया है क्योंकि उनके लिए वह पवित्रता की वस्तु कही गयी है । इस भाँति प्रति वर्ष ब्राह्मण भोजन पूर्वक उसे सादर समर्पित करना चाहिए ऐसा कहा गया है ।८। हे यदुशार्दूल ! इस भाँति श्रावण मास में सूर्य के लिए वह अभ्यंग जिसमें समस्त गंध, चन्दन, अगुरु, एवं कुंकुम पड़ा हो, समर्पित कर सुगन्धित पुष्पों एवं चित्र-विचित्र मालाओं से उन्हें आबद्ध करते हुए उस (प्रतिमा) के सामने सप्रयत्न धूप समर्पित करना चाहिए । पुनः 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' मंत्र का उच्चारण करते हुए उस प्रतिमा को मंडप में प्रविष्ट कराये ।९-११। और 'नमः शंभवे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे शय्या पर स्थापित करे । 'विश्वतश्चक्षुरि' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कमलासन पर रखकर शुभ संकलीकरण (न्यास) करे । उसे मैं बता रहा हूँ । सुनो ! स्नान के समय अपनी देह में जिस भाँति-न्यास किया जाता है, वैसे ही उस मूर्ति के अंगों का न्यास करते हुए आलम्भन भी उसी भाँति करें । उसके लिए 'ओं हूं खषोल्काय' यही मूल मंत्र बताया गया है ।१२-१४। उसे अनश्वर सूर्य देव के ओंकार से शिर, हुंकार से नासिका के अग्रभाग, खकार से ललाट, षकार से मुख, लकार से कण्ठ, ककार से हृदय, यकार से बाईं भुजा, नकार से दाहिनी भुजा, मकार से बाईं कुक्षि, एवं विसर्ग से दाहिनी कुक्षि के

---

१. सुमनोधूपदीपकैः । २. दद्यात्तत्र प्रयत्नेन ।

यकारं तु भुजे वामे नकारं दक्षिणे भुजे । मकारं वामकुक्षौ च विसर्गं दक्षिणे न्यसेत् ।।१७
ॐकारं तु सदा ध्यायेज्ज्वालामालासमाकुलम् । हुङ्कारं शुद्धवर्णाभं प्रसुवन्तमलं शुभम् ।।१८
खकारं चिन्तयेत्प्राज्ञो भिन्नाञ्जनसमप्रभम् । तरुणादित्यवर्णाभं खकारं चिन्तयेद्बुधः ।।१९
षोकारं तु महाबाहो हेमवर्णं विचिन्तयेत् । शुक्लपद्मनिभाकारमकारं चिंतयेद्बुधः ।।२०
जातीपुष्पकुसुमसंकाशं ह्लींकारं सर्ववर्णकम् । क्षीरवर्णं सकारं तु चिन्तयेत्सततं बुधः ।।२१
नकारं हिमकुन्दाभं मकारममृताक्षरम् । ह्लींकारं विद्युत्संकाशं ह्लींकारं सर्ववर्णकम् ।।२२
क्षीरवर्णं सकारं तु चिन्तयेत्सततं बुधः । नकारं स्वर्णवर्णाभं मकारं कनकप्रभम् ।।२३
ततो देवं महात्मानं सहस्रकिरणं रविम् । प्रसादाभिमुखं देवं शयनीये निवेशयेत् ।।२४
अग्निकार्यं ततः कुर्युरग्निकुण्डेषु वै द्विजाः । ततोऽरण्यां समुत्थाप्य अग्निं लौकिकमेव वा ।।२५
प्रज्वाल्याग्निं विधानेन कुर्याद्धोमं विचक्षणः । बह्वृचः पूर्वकाण्डेषु याम्यां मध्यन्दिनस्तथा ।।२६
पश्चिमे चैव च्छन्दोग उत्तरेऽथर्वणो मतः । मध्ये च भोजकः कुर्याद्धोमं यज्ञे यदुत्तम ।।२७
शमीपालाशोदुम्बराणि ह्यपामार्गास्तथैव च । द्वादश तु सहस्राणि अष्टौ चत्वारि एव च ।।२८
द्वे त्रीणि च सहस्राणि अथ वा एकमेव हि । अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण कुण्डस्यालम्भनं भवेत् ।।२९
उल्लिख्याभ्युक्ष्य तेनैव अग्निं दूतमिति स्मृताः । सम्बुध्यस्वाग्ने मन्त्रेण गर्भाधानं तु कारयेत् ।।३०

न्यास (स्पर्श) करना चाहिए ।१५-१७। उपरान्त ज्वाला रूपी माला से आच्छन्न (अत्यन्त प्रदीप्त) रूप ओंकार का सदा ध्यान करे और शुद्ध वर्ण के समान प्रभापूर्ण, अत्यन्त शुभा वह हुंकार का एवं अंजन (काले) वर्ण के टुकड़े के समान कांति पूर्ण इस खकार का चिंतन प्राज्ञ को करना चाहिए । जो तरुण सूर्य की प्रभा के समान तेज युक्त है ।१८-१९। हे महाबाहो ! सुवर्ण के समान कान्ति वाले षोकार तथा श्वेत कमल की भाँति अकार का भी ध्यान करना बताया गया है ।२०। तथा चमेली के पुष्प की भाँति सर्ववर्णक ह्लींकार, क्षीर के समान वर्ण वाले सकार हिम एवं कुंद की भाँति नकार, अमृत की भाँति मकार, विद्युत तथा सभी वर्णों के समान ह्लींकार, क्षीर वर्ण के समान सकार, एवं सुवर्ण के समान नकार और मकार का भी ध्यान करना चाहिए ।२१-२३। इसके उपरांत सहस्र किरण वाले उन प्रसन्नतोन्मुख महात्मा सूर्य देव को उस हाथ पर शयन कराकर ब्राह्मण वृन्दों द्वारा अग्निकुण्ड में अग्नि कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए जिसमें अरणि द्वारा अग्नि उत्पन्न कर अथवा लौकिक अग्नि को प्रज्वलित करके विधान पूर्वक विद्वानों को हवन संपन्न करना बताया गया है ।२४-२५। उनमें ऋग्वेदी को पूर्व के कुण्ड में, माध्यान्दिन वाले को दक्षिण कुंड में सामवेदी को पश्चिम के कुण्ड में, और अथर्ववेदी को उत्तर वाले कुण्ड में हवन करना चाहिए । और हे यमदूत्तम ! मध्यस्थायी कुंड में भोजको को हवन करना चाहिए ।२६-२७। हवन के लिए अग्नि में शमी, पलाश, गूलर, और चिचिड़ा की लकड़ी को प्रज्वलित कर उसमें बारह, आठ, या चार सहस्र अथवा दो तीन या एक ही सहस्र आहुति डालनी चाहिए । ऐसा बताया गया है । सर्वप्रथम 'अग्नि मूर्धे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कुंड का आलम्भन करके उल्लेखन तथा अभ्युक्षण (सिंचन) भी 'अग्निं दूत' मिति मंत्र के द्वारा सम्पन्न करना चाहिए । एवं 'संवुध्यस्वाग्ने' इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक गर्भाधान कराना चाहिए ।२८-३०। पुनः 'सीमन्तेति' इस महामंत्र के द्वारा हवन सम्पन्न

सीमन्तेति पुनस्तत्र महामन्त्रेण होमयेत् । जातकर्म तथा प्रोक्तं प्राणायामं विदुर्बुधाः ।।३१
नमः स्वाहेति मन्त्रेण नामकरणमेव च । अन्नप्राशनमन्त्रेण अन्नप्राशनमादिशेत् ।।३२
ज्येष्ठमग्रेति मन्त्रेण तेन चूडोपकर्मणि । व्रतबन्धस्य मन्त्रेण व्रतबन्धं समादिशेत् ।।३३
समावर्तनमित्येव आकृष्णेति च होमयेत् । पत्नीसंयोजनं चैव स्वयमेव प्रकल्पयेत् ।।३४
अग्निहोत्रादिकं कर्म यज्ञकर्माणि यानि च । महाव्याहृतिमन्त्रेण होतव्यानि समन्ततः ।।३५
मातृणां यज्ञभूतानां बलिकर्म प्रदापयेत् । सर्वकामसमृद्ध्यर्थं कारयेदधिवासनम् ।।३६
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं च अहोरात्रमथापि वा । ततः स्वलङ्कृतां स्नातां मणिरत्नैर्विभूषिताम् ।।३७
कृतरक्षां प्रयत्नेन प्रतिमामधिवासयेत् । देवागारादथैशाने दिग्भागे दिव्यमन्दिरम् ।।३८
कृत्वा कुशपरिस्तीर्णे वरास्तरणसंवृते । पूर्वशीर्षां तथा शय्यां शुक्लां शुक्लाम्बरोत्तराम् ।।३९
तस्यामावेशयेत्सम्यङ्महाश्वेतमुपाहरेत् । निक्षुभा[1] दक्षिणे पार्श्वे वामे राज्ञी च कीर्तिता ।।४०
दण्डपिङ्गालकौ चास्य स्थितौ पादप्रवेशितौ । तस्यां संवेशितायां तु शर्वर्यां प्रतिमां रवेः ।।४१
वसेत्तां रजनीं तत्र स्तूयमानश्चतुर्दिशम् । ब्राह्मणैर्बन्दिभिश्चापि गीतज्ञैश्चारणैस्तथा ।।४२
कुर्याज्जागरणं तत्र सूर्यभक्तिसमन्वितैः । प्रभातायां तु शर्वर्यां बोधयेदृग्विधानतः ।।४३

करे पश्चात् उसी भाँति जातकर्म और प्राणायाम के करने को विद्वानों ने बताया है ।३१। फिर 'नमः स्वाहे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका नामकरण, अन्नप्राशन-मंत्र का उच्चारण करते हुए अन्नप्राशन 'ज्येष्ठ मग्रे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक चूड़ाकरण एवं व्रत-बंधके मंत्रों से व्रतबंध (यज्ञोपवीत) करके 'आकृष्णे' ति मंत्र के उच्चारणपूर्वक हवन कर्म जो समावर्तन कर्म कहा गया है सुसम्पन्न करे । तदुपरांत पत्नी संयोजन (विवाह) विधान स्वयं संपन्न करना चाहिए ।३२-३४। इस प्रकार अग्नि होमादि कर्म एवं यज्ञ कर्म बताये गयें हैं उन सभी स्थानों में 'महाव्याहृति' मंत्र द्वारा हवन संपन्न करना चाहिए ।३५। तदनन्तर मातृकाओं और यज्ञ-भूतों के लिए बलि प्रदान करके समस्त कामनाओं के सुसमृद्ध होने के लिए प्रतिमा का अधिवासन कर्म करना आवश्यक होता है ।३६। इस भाँति तीन, पाँच अथवा एक ही दिन रात तक स्नान पूर्वक मणि-रत्नों से विभूषित एवं संप्रयत्न रक्षित उस प्रतिमा का अधिवासन कर्म सुसम्पन्न करना चाहिए । देवमन्दिर के ईशान भाग में एक दिव्यस्थान की रचना करके उस पर कुश बिछाकर एक शुक्रवर्ण की शय्या रखे जिसका शिरोभाग पूरब की ओर हो, एवं शुद्ध वस्त्रों तथा उत्तम स्तरणों से वह सुसज्जित हो ।३७-३९। उसी पर उस सूर्य की प्रतिमा का शयन कराये जिसमें प्रतिमा की दाहिनी ओर निक्षुभा और बाई ओर राज्ञी के स्थित करने का विधान बताया गया है ।४०। उसी प्रकार उस (मूर्ति) के चरण के समीप में दंड, तथा पिंगल को स्थित करे । प्रतिमा के उस शय्या पर शयन करने के समय से प्रारम्भ कर शयन की समस्त रात चारों ओर से स्तुति करते हुए व्यतीत करे क्योंकि ब्राह्मण, बंदी, एवं गीत जानने वाले चारण लोगों को सूर्य की भक्ति पूर्वक गुण-गान द्वारा जागरण करते हुए उस रात का अवसान करना बताया गया है । पुनः प्रातःकाल ऋग्वेद के विधान द्वारा उन्हें जागृत करना

---

१. निक्षुभी ।

हविष्यं भोक्तुकामांस्तु ब्राह्मणान्भोजकांस्तथा । दक्षिणाभिश्च सम्पूज्य तैः कृतस्वस्तिवाचनः ।।४४
ततो गर्भगृहस्थाय मध्ये कृत्वा तु पिण्डिकाम् । विधिवत्तत्र सौवर्णं न्यसेत्सप्तहयं रथम् ।।४५
सर्वबीजौषधैश्चैव तत्र धृत्वा विधानवित् । दत्त्वार्घ्यं स्थापयेत्तत्र यजमानः सहायवान् ।।४६
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्जलधारासहाक्षतैः । कृत्वा पुण्याहशब्दं तु आलयस्य प्रदक्षिणाम् ।।४७
शुभलग्ने दिने ऋक्षे पूर्वाह्ले भानदे क्षणे । मुहूर्ते च शुभे भानोः प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ।।४८
नाधोमुखीं नोर्ध्वमुखीं न पार्श्वावनतां तथा । समामभिमुखीं चेमां प्रतिमां तु निवेशयेत् ।।४९
पत्यौ चास्य ततः सम्यक्पार्श्वयोर्विनिवेशयेत् । निक्षुभा दक्षिणे पार्श्वे रवे राज्ञी तु वामतः ।।५०
ततस्तदुपहारार्थं सम्भारैः प्राक्समाहृतैः । मोदकायूपिकापूपशष्कुलीभूतशीर्षकैः ।।५१
कृशरैः पायसोन्मिश्रैः सर्वदिक्षु क्षिपेद्बलिम् । इन्द्राय देवपतये बलिने वज्रपाणये ।।५२
शतयज्ञाधिपतये तस्मै इन्द्राय ते नमः । त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण इन्द्रस्यावाहनं भवेत् ।।५३
अग्नये रक्तनेत्राय ज्वालामालान्विताय वै । शक्तिहस्ताय तीव्राय तथा चैवाजवाहिने ।।
आग्नेय्यामग्निमन्त्रेण वह्नेरावाहनं स्मृतम् ।।५४
दण्डहस्ताय कृष्णाय महिषोत्तमवाहिने । सूर्यपुत्राय देवाय धर्मराजाय वै नमः ।।५५
यमाय त्विति मन्त्रेण मुद्रास्तस्यैव कीर्तिताः । नैर्ऋते खड्गहस्ताय नीललोहितकाय च ।।५६

चाहिए ।४१-४३। इस भाँति हविष्य भोजन के इच्छुक उन ब्राह्मणों एवं भोजकों की दक्षिणा समेत पूजा करके उनके द्वारा स्वस्ति वाचन कराये ।४४। और गर्भ गृह के मध्य में पिंडिका (वेदी या चौकी) रख कर उस पर सुवर्ण के सात घोड़े समेत उस सुवर्ण निर्मित रथ की स्थापना करे ।४५। और सविधान समस्त बीज एवं औषधियां रख कर वहाँ पत्नी समेत यजमान को सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।४६। तदुपरांत शंख एवं नगाड़े की गम्भीर ध्वनियों एवं अक्षत समेत जल धारा के प्रदान पूर्वक मांगलिक शब्द के उच्चारण करते हुए मन्दिर की प्रदक्षिणा करे ।४७। विद्वान् को चाहिए कि शुभलग्न, नक्षत्र एवं दिन के पूर्वार्द्ध समय किसी शुभ मुहूर्त में सूर्य की प्रतिमा की स्थापना करें ।४८। प्रतिमा का मुख नीचे, ऊपर न हो तथा किसी पार्श्व भाग में वह झुकी न हो । इस प्रकार समान तथा संमुखी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए।४९। पश्चात् उस मूर्ति के दोनों पार्श्व भाग में उनकी दोनो पत्नियों का सन्निवेष स्थापित करे जिसमें सूर्य के दाहिने पार्श्व में निक्षुभा और बायें पार्श्व में राज्ञी की स्थिति हो ।५०। उसके अनन्तर उनके उपहार के लिए एकत्र किये गये सामग्री संभार में से मोदक रसदार बने भोज्य मालपूआ, शष्कुली (पूरी) भूत शीर्षक एवं कृशरान्न, इन्हें खीर समेत सभी दिशाओं में देवों के उद्देश्य से बलिरूप में रखे। उसमें विधानानुसार देवपति, बली, वज्रपाणि एवं सौ यज्ञों के अधिपति उस इन्द्र के लिए नमस्कार है, यह कहकर इन्द्र के लिए बलि प्रदान करें और 'त्रातारमि' ति इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक इन्द्र का आवाहन भी किया जाय ।५१-५३। रक्तनेत्र, ज्वालाओं की माला से पूर्ण, हाथ में शक्ति लिए, तीव्र, अज (छाग) वाहन वाले उस अग्नि के लिए नमस्कार है, इसके उच्चारण पूर्वक अग्नि के लिए बलि तथा 'आग्नेय्यामि' ति अग्नि के मंत्र द्वारा उनका आवाहन करे ।५४। हाथ में दंड लिए, कृष्ण वर्ण, विशाल महिष वाहन वाले, सूर्य पुत्र, एवं देव धर्मराज के लिए नमस्कार है, ऐसा कहते हुए धर्मराज के लिए बलि प्रदान करने एवं 'यमायत्वि' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका आवाहन तथा उन्हें मुद्रा प्रदर्शित करे । हाथ

सर्वबाह्याधिपतये विरूपाख्याय वै नमः । आयं गौरिति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां तु प्रकल्पयेत् ॥५७
वारुण्यां पाशहस्ताय वरुणायेति कल्पयेत् । मन्त्रेणावाहनं विद्यात्पञ्चनद्यः सरस्वतीम् ॥५८
प्राणात्मकाय धूपाय अभ्यङ्गायानिलाय च । ध्वजहस्ताय भीमाय नमो गन्धवहाय च ॥५९
तस्याप्यावाहनं विद्याद्यद्देवादेवहेडनम् । गदाहस्ताय सोमाय शुष्मिणे नृगताय च ॥६०
गदापट्टिशहस्ताय सोमराजाय वै नमः । ईशावास्यं च गुह्या वै सोममन्त्रः प्रकीर्तितः ॥६१
चतुर्मुखाय देवाय पद्मासनगताय च । कृष्णाजिननिषण्णाय नमो लम्बोदराय च ॥६२
गणाधिपतये देव नीलकण्ठाय शूलिने । विरूपाक्षाय रुद्राय त्रैलोक्याधिपते नमः ॥
अभि त्वा शूर नो मन्त्र ईशानाय प्रकल्पयेत् ॥६३
सर्वनागाधिराजाय श्वेतवर्णाय भोगिने । सहस्रफणिने नित्यमनन्ताय नमोनमः ॥६४
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति मन्त्रश्चैव प्रकीर्तितः । पञ्चरात्रादिभिर्न्यासो ह्यंगन्यासः प्रयुज्यते ॥६५
तथोत्क्षीरपानैश्च स्तुतिस्तोत्रैश्च भास्करम् । विप्रेभ्यो भोजकेभ्यश्च ततो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥६६
सूर्यक्रतुं महापुण्यं नैव कुर्याददक्षिणम् । स्थाप्यतेऽनेन विधिना तद्भक्तैः प्रतिमा च या ॥६७
सा तु वृद्धिकरा नित्यं सान्निध्याच्च सदा भवेत् । सप्तजन्मसु तेषां तु न रोगाः सम्भवन्ति हि ॥६८
उपासते त्रिरात्रं ये भानोर्यात्राभिवासने । गन्धमाल्योपहारैस्तु ते यान्ति भुवनं रवेः ॥६९

में खड्ग लिए नील, एवं लोहित (रक्त) वर्ण वाले, समस्त बाह्य के अभिनायक उस विरूप के लिए नमस्कार है, यह कहते हुए उन्हें बल प्रदान करे और 'अयं गौरी' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका आवाहन करके नैर्ऋत्य दिशा में उन्हें स्थापित करे ।५५-५७। उसी भाँति पाश हाथ में लिए उनके लिए पश्चिम दिशा में बलि प्रदान करते हुए 'पं चनद्यः सरस्वतीम्' इस मंत्र से उनका भी आवाहन करना चाहिए ।५८। प्राणात्मक, धूप, अभ्यंग, हाथ में ध्वजा लिये गन्धवह वायु के लिए नमस्कार है, इसके उच्चारण पूर्वक वायु के लिए बलि प्रदान एवं, 'यद्देवादेवऽहे डनमि' ति मंत्र द्वारा उनका आवाहन करे । गदा हाथ में लिए सोम तेजस्वी भूप तथा गदापट्टिश धारण किये उस सोमराज को नमस्कार है, ऐसा कहकर सोमराज को बलि प्रदान करे । 'ईशावास्यं च गुह्य' यह उनके आवाहन का मंत्र है।५९-६१। चारमुख कमलासन पर स्थित तथा काले मृगचर्म पर बैठे उस लम्बोदर देव को नमस्कार है, ऐसा कहकर लम्बोदर के लिए बलि प्रदान करके पुनः गणों के अधिनायक, नीलकंठ, शूल अस्त्र, विरूपाक्ष, तीनों लोकों के अधिपति, उस रुद्र देव के लिए नमस्कार है, यह कहकर उन्हें बलि प्रदान करे। और 'अभि त्वा शूर नो' यह उनके आवाहन करने का मंत्र है।६२-६३। समस्त नागों के अधीश्वर, श्वेत वर्ण वाले, भोगी, सहस्रकण वाले, उस अनंत देव को नित्य नमस्कार है । ऐसा कहकर अंनत के लिए बलि प्रदान पूर्वक, 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इस मंत्र से उनका आवाहन करे। इस प्रकार पाँच रात तक उनके अधिवासन समय में अंगन्यास करते रहना चाहिए ।६४-६५। तथा सूर्य के लिए क्षीर का पान सर्मपित करते हुए स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति करते रहें। पश्चात् ब्राह्मणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान करें ।६६। इस प्रकार सूर्य का यह यज्ञ महान् पुण्य दायक बताया गया है अतः उसे कभी भी दक्षिणा हीन सम्पन्न नहीं करना चाहिए । क्योंकि जो सूर्य भक्त इस विधान द्वारा सूर्य की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है तो वह प्रतिमा नित्य वृद्धि कारक होती है, और उस मूर्ति के सान्निध्य में सूर्य देव सदैव वर्तमान रहते हैं तथा उसके सुसम्पन्न करने वाले को सात जन्म तक रोगाभिभूत नहीं होना पड़ता है।६७-६८। और जो तीन रात तक उनके अधिवासन में गंधमाला रूप उपहार पूर्वक उनकी उपासना करता है उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।६९।

आत्मीयं परकीयं वा प्रतिमास्थापनं रवेः । यः पश्यति पुमान्भक्त्या स स्वर्लोकमवाप्नुयात् ।।७०
दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्य च । फलं प्राप्नोति पुरुषः प्रतिष्ठाप्य दिवाकरम् ।।७१
यावत्कीर्तिः पुण्यकृता भानोः स्थाने निवेशिते । तावत्स तु यदुश्रेष्ठ सूर्यलोके महीयते ।।७२
स्थापने चास्य वै मन्त्रः प्रोक्तो लोकेषु पूजितः । ध्रुवा द्यौश्च ध्रुवा पृथ्वी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।।
श्रेयसे यजमानस्य तथा त्वं ध्रुवतां व्रज ।।७३
स्थापयित्वा रविं भक्त्या विधिदृष्टेन कर्मणा । मासे मासे क्रतुफलं लभन्ते नात्र संशयः ।।७४
एकाहेनापि यद्भानोः पूजया प्राप्यते फलम् । न तु क्रतुशतैर्वीर प्राप्यते मानवैर्भुवि ।।७५
कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चात्सेवते रविम् । स याति सूर्यलोकं तु नरो विगतकल्मषः ।।७६
न भवेदिष्टकानां च द्रवणं भूमिसंमिति । स्वर्गे महीयते तावत्कारको देववेश्मनः ।।७७
खण्डस्फुटितसंस्कारं कृत्वा यत्फलमाप्यते । न तु क्रतुसहस्रैस्तु प्राप्यते फलमुत्तमम् ।।७८
सिकतासामपि गृहं यस्तु कुर्याद्विभावसोः । गोपतेः स प्रियसदः प्रगच्छेद्गोपतेर्वरम् ।।७९
इत्येवं सुरवरस्य तस्य भानोर्भूतानां स्थितिनिलयप्रसूतिहेतोः ।
श्रीभागी भवति नरो निकेतकारी कल्पानां वसति शतं स सूर्यलोके ।।८०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रतिष्ठावर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३६।

इस भाँति अपने द्वारा अथवा कहीं किसी दूसरे के द्वारा किये गये सूर्य की प्रतिमा के स्थापन-विधान को भक्ति पूर्वक जो देखता है, उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है ।७०। क्योंकि दश अश्वमेध एवं सौ वाजपेय यज्ञों के फल, सूर्य (मूर्ति) की प्रतिष्ठा करने वाले पुरुष को प्राप्त होते हैं ।७१। हे यदुश्रेष्ठ ! सूर्य की प्रतिमा को उत्तम स्थान में स्थापित करने से उस पुण्य कीर्ति की जब तक स्थिति रहती है, तब तक वह प्राणी सूर्य लोक में पूजित होता रहता है ।७२। सूर्य के प्रतिमा स्थापन में लोक पूजित यही मंत्र कहना चाहिए 'आकाश, पृथिवी, तथा यह समस्त विश्व, ध्रुव (अटल) है, अतः यजमान के कल्याण के लिए आप भी ध्रुव होकर रहें ।७३। इस प्रकार भक्ति से आप्लावित होकर विधान पूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करने से उस प्राणी को प्रत्येक मास में यज्ञफल की निश्चित प्राप्ति होती रहती है ।७४। हे वीर ! क्योंकि सूर्य के एक दिन की पूजा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उन्हें मनुष्य इस भूतल में सैकड़ों यज्ञों द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है ।७५। इसीलिए अत्यन्त महान् पाप करने के पश्चात् भी जो सूर्य की सेवा करता है, वह मनुष्य निष्पाप होकर सूर्य लोक में अवश्य जाता है ।७६। इस भाँति मन्दिर की ईंटे जब तक चूर-चूर होकर नष्ट नहीं हो जाती है उतने दिनों तक उसका कर्ता स्वर्ग में सम्मानित होता है ।७७। इसलिए टूटी, फूटी मूर्तियों के विधान पूर्वक उद्धार करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल, अन्य सहस्र यज्ञों द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते ।७८। इस प्रकार बालुका का भी गृह सूर्य के लिए जिसने बनाया है या कोई बनाता है, उस पर भी सूर्य मुग्ध हुए हैं और होते रहते हैं तथा उसके बनाने वाले को उनके उत्तम लोक की प्राप्ति हुई है और होती रहेगी । इस भाँति उस भानु के लिए जो सुर तथा उत्पत्ति एवं विनाश के मूल कारण हैं, जो मंदिर का निर्माण करता है वह पुरुष श्री का भागी होता है और सूर्य लोक में सौ कल्पों तक निवास भी करता है ।७९-८०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में सूर्य प्रतिष्ठा वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३६।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिष्ठापनविधिवर्णनम्

नारद उवाच

यः प्रासादं रचयति पुमान्देवतानां प्रयत्नात्तत्र प्रीत्या सपदि कुरुते स्थापनां भानुभक्तः।
दिव्यान्भोगाँल्लभति च सदा कामतश्चाप्रमेयांस्तान्भुक्त्वासौ पुनरपि भवेच्चक्रवर्ती पृथिव्याम् ॥१
ये मानवास्त्रिदशमूर्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिमनोहराणि।
तेषां मृतेऽप्यपरमार्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्तिमयं शरीरम् ॥२
इति ते कथितमिदं देवपूज्यस्य सवितुः स्थापनामिवाधानम्।
साधारणं विधानं शृणु देवानां प्रतिष्ठापने वीर ॥३
स्नातो भुक्तो वस्त्रालङ्कृतकुसुमैर्गन्धैः प्रतिमाया आस्तीर्णायां शय्यायां स्थापनं कुर्यात्।
सुप्तायां तु स नृत्यगीतैर्जागरणैः सम्यगेवाधिवास्य दैवज्ञेन प्रतिदिष्टकाले संस्थापनं कुर्यात्।
अभ्यर्च्य कुसुमगन्धानुलेपनैः शङ्खतूर्यनिर्घोषैः प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन कृत्वा बलिं

अध्याय १३७

प्रतिष्ठापन विधि का वर्णन

नारद बोले—जो सूर्य भक्त पुरुष प्रयत्न पूर्वक विशाल देव मन्दिर का निर्माण करके उसमें शीघ्रातिशीघ्र प्रेमपूर्वक सूर्य देव की प्रतिमा का स्थापन करता है, उसे दिव्य उपभोगों एवं सदैव अप्रमेय कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है और पुनः जन्म लेने पर इस भूतल में उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है।१। इसलिए जिन मनुष्यों ने देवताओं की मूर्तियों के स्थापनार्थ इस भाँति के उत्तम देवालयों की रचना की है जिनके सौन्दर्य को देखकर साधु प्राणियों की आँखे विकसित हो जाती हैं रचना की है, उन लोगों के मरणोपरान्त भी इस परमार्थ हीन लोक रूप शरीर में उनकी कीर्तिमयी शरीर नित्य भ्रमण करती रहती है।२। हे वीर ! इस प्रकार मैंने देव शक्ति सूर्य के स्थापन का विशाल विधान बता दिया। अब देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए साधारण विधान बता रहा हूँ सुनो ! ।३। सर्वप्रथम प्रतिमा को स्नान, भोजन एवं वस्त्रों से अलंकृत करके पुनः सुगन्ध एवं पुष्पों से उसे सुसज्जित करें कुशास्तारण के ऊपर सजायी गई शय्या पर स्थापित करके शयन कराये। उसके अनन्तर नृत्य, गायन द्वारा जागरण करते हुए दैवज्ञ (ज्योतिषी) द्वारा बताये गये किसी शुभ मूहूर्त में उसकी स्थापना करे उस समय पुष्प एवं गन्धों का लेपन करके उस प्रतिमा को शंख तुरुही आदि वाद्यों के कोलाहल में प्रदक्षिणा करते हुए प्रयत्न पूर्वक उस मंदिर में जायें और वहाँ उनकी पूजा एवं (देवों के लिए) बलि, साधुओं तथा ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा देकर विधानपूर्वक उस मन्दिर में पिंडिका स्थापित करने के लिए वेदी या चौकी के अत्यन्त

प्रतिमामभ्यर्च्य ब्राह्मणांश्च साधून्दत्त्वा हिरण्यकलशं विधिना निक्षिपेत्पिण्डिकामध्ये सुभ्रभ्रे
स्थापकदैवज्ञद्विजान्सम्यग्विशेषतोऽभ्यर्च्याकल्पान्तं भोगी भवतीह परत्र सुखी ॥४
विष्णोर्भागवता मताश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजा मातृणामपि मातृमण्डलविदो विप्रा विदुर्ब्राह्मणाः।
सर्वे यस्य विमुक्तशुक्लवसना बुद्धस्य रक्ताम्बरा ये यं देवमुपाश्रिताः सुविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया॥५
सामान्यमिदं देवानामधिवासनं भवति मया कथितम्। क्रियमाणमिदं दृष्ट्वा देवानां प्रतिष्ठापनम्॥
नरो भक्त्या इह कामानवाप्य स्वर्गभाजनं भवति ॥६
इदं ते कथितं राजन्प्रतिष्ठापनमादितः । यत्कृत्वा सवितुः स्नानं नरो याति मनोगतिम् ॥७
इत्थं कुर्यान्नरो भक्त्या सवितुः स्थापनं बुधः । कारयेत्पुरतो भक्त्या सवितुः स्थापनं बुधः ॥८
इतिहासपुराणस्य श्रवणं पापनाशनम् । ताभ्यां हि श्रवणाद्वीर सान्निध्यं याति भास्करः ॥९
कृते त्वायतने तस्मिन्ये चान्ये चापि देवताः । तस्मात्कार्यं बुधैर्नित्यं धर्मश्रवणमादितः ॥१०
वाचकं पूजयित्वा तु ब्राह्मणानुपपूज्य च । कारयेद्वाचनं वीर पुस्तकस्याग्रतो रवेः ॥११
सर्वस्वं स्थापके दद्याद्यत्किञ्चिद्गृहमागतम् । गोदानमथवा दद्यात्तस्य चित्तं प्रसादयेत् ॥१२

स्वच्छ मध्य भाग में प्रतिष्ठित करे। क्योंकि ऐसे समय ज्योतिषी, एवं ब्राह्मणों की भली भाँति अर्चना करने वाला पुरुष, कल्प की समाप्ति पर्यंत सुखों का उपभोग यहाँ वहाँ (लोक परलोक में) सदैव करता रहता है।४। इस प्रकार विष्णु के भागवत (वैष्णव), सूर्य के भग (भोजक) शिव के भस्म भूषित ब्राह्मण, मातृकाओं (देवियों) के मातृमण्डल के विद्वान् और बुद्ध के शुक्ल वस्त्ररहित एवं रक्ताम्बरधारी, उपासक होते है, अतः उन्हें चाहिए कि जो जिस देव के उपासक हों, वे उस देव की प्रतिष्ठा करायें।५। इस प्रकार देवताओं के इस सामान्य अधिवासन विधान को मैने तुम्हें बता दिया। देवताओं के इस प्रतिष्ठा विधान को भक्तिपूर्वक देखने वाला मनुष्य भी इस लोक की समस्त कामनाएँ सफल कर पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति करता है।६। हे राजन् ! इस भाँति तुम्हें मैंने आदि से अंत तक सभी देवों की प्रतिष्ठा के उस विधान को भी बता दिया, जिसमें सूर्य के केवल स्नान कराने मात्र से मनुष्य के मनोरथ सफल होते हैं ऐसा बताया गया है। इसलिए विधान समेत उनकी पूजा समाप्ति करने वाले का कहना ही क्या है। इसलिए मनुष्य को भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।७-८। हे वीर ! इस भाँति इतिहास एवं पुराणों का सुनना पापनाशक बताया गया है, क्योंकि उसके श्रवण करने के ब्याज से ही सूर्य वहाँ (मूर्ति में) सदैव वर्तमान रहते है।९। और उस मंदिर में कथा के होने के नाते वहाँ के अन्य देव भी प्रसन्न होते हैं, इसलिए विद्वान् को वहाँ प्रारम्भ से ही कथा श्रवण करना चाहिए।१०। हे वीर ! इस भाँति वाचक तथा ब्राह्मणों की पूजा करके ही सूर्य के सामने पुस्तक वाचन (कथा पारायण) करना चाहिए।११। और प्रतिष्ठा कराने वाले (यजमान) को वहाँ अपने सर्वस्व का दान कर देना चाहिए, पुनः घर आने पर भी कुछ थोड़ा सा गोदान आदि जो अवशिष्ट हो, उसकी पूर्ति कर उसे (वाचक को)

इत्येष कथितो वीर प्रतिष्ठाकल्प आदितः। कृत्वा दृष्ट्वा च श्रुत्वा च यं नरोऽर्कमवाप्नुयात् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
प्रतिष्ठापनविधिवर्णनम् नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१३७।

अथाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणविधिवर्णनम्

नारद उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम्। यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमृषभाधिपते पुरः ॥१
पुरा देवासुरे युद्धे यानि देवैर्जयेप्सुभिः। कृतान्युपरि चिह्नानि वाहनानि ध्वजानि तु ॥२
लक्ष्मचिह्नध्वजं केतुरिति पर्यायनामभिः। कीर्तितः स च तस्येह प्रमाणं गदतः शृणु ॥३
ध्वजो वंशस्य कर्तव्यस्त्वविद्ध ऋजुरव्रणः। प्रासादव्यास तुल्यस्य ध्वजवंशप्रमाणतः ॥४
देवागारस्य ये प्रोक्ता मञ्जरीकलशादयः। अथ वा तत्प्रमाणस्तु ध्वजदण्डः प्रकीर्तितः ॥५
अन्तर्गृहस्य या वेदी सूत्रतः परिकल्पिता। तस्या व्यासो भवेद्वंशः प्रसादस्य यदुत्तम ॥६
अथ वा मूलसूत्रेण यो व्यासोऽन्तर्गृहस्य तु। प्रासादव्यास इति ते प्रोक्तश्चेह न संशयः ॥७

प्रसन्न करना चाहिए।१२। हे वीर ! इस प्रकार प्रतिष्ठा विधान प्रारम्भ से अन्त तक मैंने तुम्हें सुना दिया, जिसे करने या देखने से मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।१३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में
प्रतिष्ठापन विधि वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।१३७।

अध्याय १३८

ध्वजारोपण विधि वर्णन

नारद बोले—तुम्हारे लिए मैं उत्तम ध्वजारोपण का विधान कह रहा हूँ, जिसे पहले समय में ब्रह्मा ने ऋषभाधिपति से कहा था।१। प्राचीन समय में देवों एवं असुरों के उस घोर संग्राम में विजय के इच्छुक देवों ने अपने-अपने रथों के ऊपर जिस प्रकार चिह्न बनाये थे वे ही भाग के नाग से कहे जाते हैं और जो वाहन के रूप में थे वे ही सदैव के लिए वाहन हो गये हैं।२। इस प्रकार लक्षण, चिह्न, ध्वज एवं केतु, इतने नाम ध्वजा के हैं उसका प्रमाण भी मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।३। ध्वजा के लिए सर्वप्रथम सीधा तथा छिद्र रहित और नीरोग बाँस होना चाहिए। पुनः भवन के व्यास के समान ध्वजा के लम्बे होने का प्रमाण बताया गया है।४। अथवा देव-मन्दिरों में जो मञ्जरी या कलश आदि रहता है, उसके प्रमाण का लम्बा रहे।५। हे यदूत्तम ! इसी प्रकार गृह गर्भ के भीतर की सूत्र से नापी गई वेदी तथा प्रसाद के व्यास के समान बाँस का व्यास (लम्बाई) होना उत्तम बताया गया है।६। या मूलसूत्र के समान हो, क्योंकि गृह गर्भ का व्यास ही प्रासाद का व्यास बताया गया है, इसमें संशय नहीं।७। इसलिए उत्तम बाँस का

केतुर्भवेद्वरो वंशो न निम्नो न ऋजुस्तथा । पत्रं ध्वजे युगं चैव नलिकापुरुषस्तथा ॥८
चतुर्हस्ता भवन्त्येते प्रशस्ताः कृष्णनन्दन । अष्टहस्तप्रमाणस्तु विशार्धस्य[१] प्रमाणतः ॥९
सामान्यो ध्वजदण्डस्तु सर्वसाधारणो मतः । दण्डपाणिध्वजो यस्तु स्मृतः षोडशहस्तवान् ॥१०
विंशद्धस्तात्परो दण्डो न कार्यः सर्वथा[२] रवेः । युग्महस्तस्तु कर्तव्यो ध्वजदण्डो मनीषिभिः ॥११
चतुरङ्गुलविस्तीर्णः सुवृत्तो द्व्यङ्गुलोपरि । नातिसूक्ष्मो न च स्थूलो न कार्यो नतपर्वकः ॥१२
सम्पर्वातु कर्तव्यः सुदृढः सूक्ष्म एव हि । वक्रः पुत्रविनाशाय व्रणोऽर्थविनाशनः ॥१३
रोगदो युग्महस्तस्तु भिन्नो दुःखमनन्तकम् । करोति हानिं धर्मस्य हीनो यस्तु प्रमाणतः ॥१४
वैषम्यमसमपर्वा दद्यात्कृच्छ्रमधोन्नतः । जयो जयन्तो जैत्रेयः[३] शत्रुहन्ता जयावहः ॥१५
नन्दोपनन्दनौ चैवेन्द्रोपेन्द्रौ गदितौ तथा । दशैते कीर्तिता भेदा ध्वजस्यानन्दसम्मिताः ॥१६
द्विजहस्तस्तु जयो दण्डो जयन्तो द्विगुणो मतः । द्वादशहस्तस्तु जैत्रेयः शत्रुहन्ता कलान्वितः ॥१७
जयावहस्तु विंशार्धो नन्द आदित्यसन्निभः । चतुर्दशोपनन्दस्तु इन्द्रः षोडश उच्यते ॥१८
उपेन्द्रोऽष्टादशः[५] प्रोक्तस्तथेन्द्रो विंशतिः स्मृतः । भिन्नो वक्रोऽसाधितश्च न कार्यो दण्ड एव हि ॥१९
मूलमन्त्रेण कर्तव्यो व्यासतोऽन्तर्गृहस्य तु । ध्वजदण्डो महाबाहो अथ वा वास्तुमानतः ॥२०

ध्वजदण्ड होना चाहिए, जो न नीचा हो, और न टेढ़ा । ध्वज में चार पत्र लगने चाहिए तथा नलिका पुरुष भी ।८। हे कृष्णनन्दन ! यद्यपि चार हाथ का (लम्बा) ध्वज दण्ड प्रशस्त बताया गया है । और आठ हाथ (लम्बे) प्रमाण का एवं दश हाथ के (लम्बे) प्रमाण का भी ध्वज-दण्ड होता है, पर ये सभी सामान्य ध्वज-दण्ड हैं, ऐसी सर्व साधारणों की सम्मति है । दण्डपाणि ध्वज, जिसे कहा जाता है, वह सोलह हाथ का (लम्बा) बताया गया है । सूर्य के लिए ध्वज-दण्ड (किसी भी दशा में) बीस हाथ से अधिक लम्बा कदापि न करना चाहिए । विद्वानो को चाहिए कि दो हाथ का ध्वज-दण्ड बनाये ।९-११। चार अंगुल का मोटा, तथा दो अंगुल के ऊपर से सुन्दर गोलाकार होना चाहिए, जो अत्यन्त पतला, अधिक मोटा, एवं झुकी हुई जिसकी गाठें न हों ।१२। इस प्रकार समान चार गाठ वाले, अत्यन्त दृढ़, तथा पतले बाँस का ही ध्वज दण्ड बनाना चाहिए । क्योंकि उसे टेढ़े होने से पुत्र नाश, व्रण (रोग) युक्त होने से अर्थ (धन) नाश, दो हाथ लम्बे होने से रोग, फटे रहने से अनंत दुःख तथा प्रमाण से छोटा होने पर धर्म की हानि होती है ।१३-१४। उसी भाँति विषम हाथ के लम्बे, असमान पोर (गाठें) एवं नीचे की ओर उन्नत (ऊपर) होने से दुखः की प्राप्ति होती है । इस प्रकार जय, जयंत, जैत्रेय, शत्रुहंता, जयावह, नंद, उपनंद, इन्द्र एवं उपेन्द्र, आनन्द, ये दश भेद ध्वज दण्ड के बताये गये हैं ।१५-१६। जिसमें दो दाथ के ध्वज दण्ड की जय, उसे दुगुने (चार हाथ) लम्बे ध्वज दण्ड की जयंत, बारह हाथ लम्बे ध्वज दण्ड की जैत्रेय, सोलह हाथ वाले की शत्रुहन्ता, दश हाथ वाले की जयावह, बारह हाथ वाले की नन्द, चौदह हाथ वाले की उपनन्द, सोलह हाथ वाले की इन्द्र, अठारह हाथ वाले की उपेन्द्र, एवं बीस हाथ वाले ध्वज-दण्ड की इन्द्र (आनन्द) संज्ञा है । इसलिए फटे, टेढ़े तथा प्रमाण हीन बाँस के ध्वज दण्ड नहीं बनाने चाहिए ।१७-१९। घर के भीतरी व्यास के समान जो मूल सूत्र से (माप) निश्चित रहते है, ध्वज दण्ड होने चाहिए,

---

१. दण्डं कृत्वा तु यत्नतः । २. इन्द्रकेतुनः । ३. रौद्रः । ४. राजेन्द्रः । ५. अष्टाधिकदशहस्त इत्यर्थः ।

मञ्जरीमानतो वापि तदर्धेनाथवा विभो । पताका वै शुभा कार्या ध्वजवंशादलम्बिनी ॥२१
देवागारस्य शिखरात्त्रिभागपरिमार्जनी । सा प्रोक्ता दशधा वीर मानतोऽमानतस्तथा ॥२२
अङ्कुरः पल्लवश्चैव स्कन्धः शाखा तथैव च । पताका कदली वीर केतुर्लक्ष्म जयस्तथा ॥२३
ध्वजश्च दशमः प्रोक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः । अङ्कुरो द्व्यंगुलः प्रोक्तः पल्लवश्चतुरङ्गुलः ॥२४
स्कन्धः षडङ्गुलः प्रोक्तः शाखा चाष्टाङ्गुलो मता । एकादशपताका तु कदली च चतुर्दश ॥२५
केतुस्तु षोडशः प्रोक्तो लक्ष्माष्टादशमुच्यते । जया विंशति वै प्रोक्ता एतावन्त्यङ्गुलानि तु ॥२६
देवागारस्य कुम्भस्य प्रसन्ना सा प्रमार्जनी । अङ्कुरेति पताका सा विज्ञेया यदुनन्दन ॥२७
पल्लवेति द्वितीयस्य मार्जनी परिकीर्तिता । त्रिभागमार्जनोस्कन्धः शाखा वै पञ्चमस्य तु ॥२८
षष्ठस्योक्ता पताका तु कदली सप्तमस्य तु । अष्टमस्य तथा केतुर्लक्ष्म च नवमस्य तु ॥२९
ततस्तु दशमः प्रोक्तो जयन्तो यदुनन्दन । वृषस्थानावमार्गी तु ध्वजस्तु परिकीर्तितः ॥३०
गजो मेषोऽथ महिषः कबन्धस्तु वृषस्तथा । हरिणोऽथ नरश्चैव नरश्च नरसत्तम ॥३१
स्थानान्येतानि भूयोऽथ[1] प्रयुक्तस्य ध्वजस्य तु । दिशभागे तु पूर्वात्तु क्रमेण परिकल्पयेत् ॥३२
एवं दशविधा प्रोक्ता पताका तत्त्वदर्शिभिः । कर्तव्या सा यथापूर्वं तच्छृणु त्वं नराधिप ॥३३

अथवा वास्तु (गृह) मान के समान ।२०। हे विभो ! इस भाँति मंजरी, या उसके अर्ध भाग के समान भी ध्वज दण्ड बनाया जा सकता है । ध्वज दण्ड में लटकने वाली पताका को भी कल्याण मूर्ति ही बनाना चाहिए ।२१। हे वीर ! देव मंदिर के शिखर के ऊपर तीन भाग को शुद्ध करने के लिए स्थित वह पताका मान अमान (नपी तथा विना नपी हुई) के भेद से दश प्रकार की होती है ।२२। हे वीर ! अंकुर, पल्लव, स्कन्ध, शाखा, पताका, कंदली, केतु, लक्ष्म जय एवं ध्वज, यही दश भेद उसके बताये गये हैं । इस प्रकार वह सर्वदेवमयी तथा अविनाशी होती है । उस विवरण में दो अंगुल की पताका, अंकुर, चार अंगुल वाली पल्लव, छः अंगुल वाली, स्कन्ध, आठ अंगुल वाली शाखा, ग्यारह अंगुल वाली, पताका, चौदह अंगुल वाली कदली, सोलह अंगुल वाली केतु, अठारह अंगुल वाली लक्ष्म, एवं बीस अंगुल वाली जया, तथा इतने ही अंगुल वाली (ध्वज) के नाम से बतायी गई है ।२३-२६। हे यदुनन्दन ! इस प्रकार देवमन्दिर के प्रथम कलश (शिखर) की प्रसन्नता पूर्ण (निरंतर फहराती हुई) शुद्धि करने वाली पताका अंकुरा के नाम से व्यवहृत होती है ।२७। उसी भाँति द्वितीय कलश की शुद्धि करने वाली पल्लवा, मन्दिर के तृतीय भाग तक की शुद्धि करने वाली स्कन्ध, पाँचवे भाग की शुद्धि करने वाली शाखा ।२८। छठें भाग की शुद्धि करने वाली पताका, सातवें भाग की शुद्धि करने वाली कदली, आठवें भाग की शुद्धि करने वाली केतु, नवें भाग की शुद्धि करने वाली लक्ष्म, उसके अनन्तर भाग की शुद्धि करने वाली जयंत (जया) और वृषस्थान की शुद्धि करने वाली (पताका) ध्वज के नाम से कही जाती है ।२९-३०। अतः गज, मेष महिष, कबन्ध, वृष, हरिण, वृक, एवं नग, इन आठों स्थानों में ध्वज लगाना चाहिए । इस प्रकार पूरब की ओर से आरम्भ कर सभी दिशाओं में क्रमशः ध्वजा स्थापित करने का विधान कहा गया है ।३१-३२। इस भाँति तत्त्व द्रष्टाओं ने दश प्रकार की पताकाओं का निर्माण करना बताया है । हे नराधिप ! उसका निर्माण

---

१. भूमौ तु ।

शुक्लवस्त्रमयी चित्रा सघण्टा सुमनोहरा । नानाचामरसम्पन्ना किङ्किणीजालमण्डिता ॥३४
ध्वजाग्रे चैव कर्तव्यो देवतालिङ्गसूचकः । काञ्चनो वाथ रौप्यो वा मणिरत्नमयोऽपि वा ॥३५
रङ्गकैर्लिख्यते वापि तद्वाहनसमाकृतिः । ध्वजदण्डोऽत्र विन्यस्तः कर्तव्यो यदुनन्दन ॥३६
गरुत्मान्स्तु ध्वजो विष्णोरीश्वरस्य ध्वजो वृषः । ब्रह्मणः पङ्कजं कार्यं रवेर्धर्मः स्मृतो ध्वजः ॥३७
हंसो[1] जलाधिपस्योक्तः सोमस्य तु नरो ध्वजः । बलदेवस्य कालस्तु कामस्य मकरध्वजः ॥३८
सिंहो ध्वजस्तु दुर्गायाः कीर्तितो यदुनन्दन । गोधा चापि उमादेव्या रैवतस्य हयः स्मृतः ॥३९
कच्छपो वरुणस्योक्तो वातस्य हरिणो मतः । पावकस्य तथा मेष आखुर्गणपतेर्मतः ॥४०
ब्रह्मर्षीणां कुशः प्रोक्त इत्येषा ध्वज कल्पना । यस्य यद्वाहनं प्रोक्तं तत्तस्य ध्वज उच्यते ॥४१
विष्णोर्ध्वजे तु सौवर्णं दण्डं कुर्याद्विचक्षणः । पताका चापि पीता स्याद्गरुडस्य समीपगा ॥४२
ईश्वरस्य ध्वजे दण्डो राजतो यदुनन्दनः । पताका चापि शुक्ला स्याद्वृषभस्य समीपगा ॥४३
पितामहध्वजे दण्डः स्मृतस्ताम्रमयो बुधैः । पद्मवर्णा पताका स्यात्पङ्कजस्य समीपगा ॥४४
आदित्यस्य च सौवर्णो ध्वजे दण्डः प्रकीर्तितः । पञ्चवर्णा पताका स्याद्धर्मस्याधोगता नृप ॥४५

किस प्रकार होना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।३३। सफेद वस्त्र की बनी हुई चित्र-विचित्र, घंटा समेत, अत्यन्त मनोरम, भाँति-भाँति के चामरों से सुशोभित एवं छोटी-छोटी घंटियों के समूहों से विभूषित पताका होनी चाहिए ।३४। और ध्वजा के अग्रभाग में देवता-सूचक (जिसे देवता के लिए बताया गया हो उसे सूचित करने वाला) चिह्न बना देना चाहिए । उसी भाँति सुवर्ण, चाँदी, मणि, एवं रत्नों में किसी के द्वारा अथवा रंग के द्वारा उस (देवता) के वाहन के समान आकृति निर्माण (चिह्न) भी बनाये । हे यदुनन्दन ! इसलिए ध्वज दण्ड, पूर्व की भाँति बताये गये के अनुसार ही रखना चाहिए ।३५-३६। जिस प्रकार विष्णु की ध्वजा में गरुड़, शिव की ध्वजा में वृष, ब्रह्मा की ध्वजा में कमल, सूर्य की ध्वजा में धर्म, जलाधिप की ध्वजा में हंस, सोम की ध्वजा में नर, बलदेव की ध्वजा में काल, काम की ध्वजा में मकर, और दुर्गा की ध्वजा में सिंह के आकार बनाये जाते हैं, उसी प्रकार उमा देवी के लिए गोधा (रेह) रैवत के लिए अश्व, वरुण के लिए कच्छप, वायु का हरिण, अग्नि का मेष, गणपति का चूहा एवं ब्रह्मर्षियों के लिए कुश का चिह्न निर्माण करना बताया गया है । इसी प्रकार की ध्वजा की कल्पना भी होनी चाहिए । क्योंकि जिस देवता का जो वाहन है, वही उसकी ध्वजा भी है ।३७-४१। इसलिए बुद्धिमान् को चाहिए कि विष्णु की ध्वजा में इस भाँति का सुवर्ण दंड लगाये जिसमें गरुड़की मूर्ति'-चिह्न के समेत पीत वर्ण की पताका भी भूषित हो ।४२। हे यदुनन्दन ! उसी भाँति शिव का ध्वज दण्ड चाँदी का होना चाहिए तथा श्वेत वस्त्र की पताका भी उनके वृष (बैल) के समीप स्थित करे ।४३। विद्वानों ने पितामह की ध्वजा में ताँबे का दण्ड होना चाहिए यह बताया है जिसमें कमल वर्ण की पताका पंकज के समीप स्थित की जाती है ।४४। आदित्य की ध्वजा में सुवर्ण-दण्ड का विधान बताया गया है, हे नृप ! उनकी पाँच रंग की पताका धर्म के नीचे स्थापित होनी चाहिए ।४५। जो छोटी-छोटी घंटियों के समूहों

---

१. सिंहो जलाधिपस्य ।

किङ्किणीजालसम्पन्ना नानबुद्बुदसंनिभा । पुष्पमालोपसम्पन्ना नानावादिभिरावृता ॥४६
दण्ड इन्द्रध्वजस्योक्तः काञ्चनो यदुनन्दन । पताका बहुवर्णा स्यात्कुञ्जरस्य समीपगा ॥४७
आयसश्चापि दण्डोक्तो यमचिह्नं विचक्षणैः । पताका वर्णतः कृष्णा महिषस्य समीपगा ॥४८
जलाधिपध्वजो दण्डो राजतः परिकीर्तितः । पताका सर्वतः श्वेता विचित्रा सा च कथ्यते ॥४९
ध्वजे चापि कुबेरस्य दण्डो मणिमयः स्मृतः । पताका चापि रक्ता स्यान्नरपादसमीपगा ॥५०
बलदेवध्वजे दण्डो राजतो यदुनन्दन । पताका वर्णतः शुक्ला तालस्याधोगता स्मृता ॥५१
कामध्वजे त्रिलोहः स्याद्दण्डो यदुकुलोद्वह । पताका रोहिणी तत्र मकरस्य समीपगा ॥५२
मायूरं कार्त्तिकेयस्य चिह्नं लोकेषु गीयते । त्रिलोहदण्डमारूढं बहुरत्नविभूषितम् ॥५३
बहुवर्णकचित्रा तु पताका कथिता बुधैः । हस्तिदन्तभवं दण्डं कुर्याद्गणपतेर्नृप ॥५४
ताम्रदण्डं समारूढं संशुद्धं सम्प्रतिष्ठितम् । शुक्ला पताका कर्तव्या सुप्रमाणा महीपते ॥५५
मातॄणां चापि कर्तव्यो नैकरूपो ध्वजो बुधैः । पताकाभिरनेकाभिर्बहुरत्नाभिरन्वितः ॥५६
रेवतस्यापि कर्तव्यो ध्वजो वाजी नराधिप । रक्ता पताका तत्रापि कर्तव्या यदुनन्दन ॥५७
चामुण्डामन्दिरे कार्यः शिरोमालाकुलो ध्वजः । नीला पताका कर्तव्या दण्डो लोहमयस्तथा ॥५८
रतीमयश्च मातॄणां रेवतस्य च कारयेत् । गौर्या ध्वजस्ताम्रमयः पताका गोपसन्निभा ॥५९

से सुसम्पन्न, अनेकों फेन की भाँति सौन्दर्यपूर्ण, पुष्पों तथा मालाओं से आच्छन्न एवं अनेक बाजों को बजाने वाले अनेक मनुष्यों की मूर्तियों से आवृत हो ।४६। हे यदुनन्दन ! इन्द्र का ध्वज दण्ड सुवर्ण का बनाये, उनकी अनेकों रंग की पताका हाथी के समीप स्थित करे ।४७। बुद्धिमानों ने लोहे का दण्ड होना यम के चिह्न में बताया है । उनकी काले रंग की पताका महिष के समीप स्थापित होनी चाहिए ।४८। जलाधिप के लिए चाँदी का ध्वज दण्ड बताया गया है, उनकी सफेद वर्ण की एवं चित्र विचित्र पताका होनी चाहिए ।४९। कुबेर का ध्वज दण्ड मणिमय बताया गया है, उनकी लाल रंग की पताका नर के चरण के समीप स्थापित होनी चाहिए ।५०। हे यदुनन्दन ! बलदेव की ध्वजा में चाँदी का दण्ड बनाये, उनकी शुक्ल वर्ण की पताका ताल के नीचे स्थापित करे ।५१। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! काम की ध्वजा में त्रिलोह का दण्ड होना चाहिए उनकी रोहिणी (लाल रंग की) पताका मकर के समीप में स्थापित होनी चाहिए ।५२। लोकों में कार्तिकेय का मयूर (मोर) का चिन्ह विख्यात है, उनकी ध्वजा में त्रिलोह का दंड तथा उस चिह्न को अनेकों भाँति के रत्नों से विभूषित होना चाहिए ।५३। विद्वानों ने उनकी भाँति-भाँति के रंगों की चित्र-विचित्र पताका बतायी है । हे नृप ! गणपति का ध्वज-दण्ड हाथी के दाँत का होना चाहिए ।५४। उसमें विशुद्ध तांबे का संमिश्रण रहे अथवा केवल ताँबे का ही दण्ड बनाया जा सकता है । हे महीपते ! प्रमाण पूर्ण उनकी शुक्ल वर्ण की पताका होनी चाहिए ।५५। विद्वानों को चाहिए कि मातृगणों के लिए अनेकों भाँति ध्वजाएँ बनाये, और अनेकों रत्नों से सुसम्पन्न भाँति-भाँति की पताकाएँ भी ।५६। हे नराधिप ! रैवत की ध्वजा में अश्व का चिह्न होना चाहिए, और हे यदुनंदन ! उनकी लाल रंग की पताका भी होनी चाहिए ।५७। चामुंडा देवी के मंदिर में मुण्ड-माला चिह्न से अंकित ध्वजा बनाये, उसका नील वर्ण एवं उसमें लोहे का दण्ड हो ।५८। मातृगणों एवं रैवत का ध्वज दण्ड पीतल का होना चाहिए । गौरी का ध्वज-दण्ड ताँबे का बनाये तथा इन्द्रगोप की भाँति (अत्यन्त लाल रंग की)

स्वर्णदण्डस्तु वीरस्य ध्वजो मेषसमन्वितः । पताका बहुरत्नाढ्या[1] कर्तव्या यदुनन्दन ।।६०
अश्मसारमयो दण्डो ध्वजो वातस्य उच्यते । पताका कृष्णवर्णा तु हरिणस्य समीपगा ।।६१
भगवत्या ध्वजो दण्डः सर्वरत्नमयः स्मृतः । पताका तु त्रिवर्णा स्यात्सिहस्याधोगता नृप ।।६२
एवंविधमिमं कृत्वा ध्वजं लक्षणलक्षितम् । अधिवास्य ततो राजंस्तत आरोपयेद्बुधः ।।६३
ततः सर्वौषधीभिश्च स्नापयित्वा प्रयत्नतः । समालभ्य च बध्नीयान्मध्ये प्रतिसरान्नृप ।।६४
कारयित्वा शुभां वेदिं कलशैरुपशोभिताम् । तस्यां वेद्यां समारोप्य तां रात्रिमधिवासयेत् ।।६५
नानाकुसुमचित्रां च स्रजं तस्यानुलम्बयेत् । समभ्यर्च्य प्रयत्नेन धूपमस्य निवेदयेत् ।।६६
बलिकर्म ततः कृत्वा कृशरापूपकादिभिः । पलालपूपिकाभिश्च दधिपायससूपकैः[2] ।।६७
उद्दिश्य लोकपालेभ्यो बलिं दद्याच्च वायसैः । ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्याथ कृत्वा पुण्याहमङ्गलम् ।।६८
वादित्रकृतनिर्घोषं जलं[3] संस्कारसंयुतम् । नानाबुद्बुदसंपन्नं वेष्टितं नववाससा ।।६९
शुभे लग्ने दिने ऋक्षे ध्वजं चारोपयेद्बुधः । विन्यस्य स्वर्णकलशं भ्रभ्रराजं ध्वजस्य तु ।।७०
एवमारोपयेद्यस्तु ध्वजं देवालयोपरि । स श्रिया वर्धते नित्यं प्राप्नोति परमां गतिम् ।।७१
असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये । तस्माद्देवालयं प्राज्ञो ध्वजहीनं न कारयेत् ।।७२

पताका बनाये ।५९। अग्नि का ध्वज दण्ड सुवर्ण निर्मित एवं मेष युक्त होना चाहिए, और हे यदुनन्दन ! अनेकों रत्नों या रंगों से सुशोभित उनकी पताका बनाये ।६०। वायु का ध्वजदण्ड लोहे का बताया गया है, उनकी काले रंग की पताका हरिण के समीप स्थापित होनी चाहिए ।६१। भगवती का ध्वजदण्ड समस्त रत्नों से निर्मित होना चाहिए, तथा हे नृप ! तीन रंग की उनकी पताका सिंह के नीचे स्थापित करे ।६२। हे राजन् ! इस प्रकार के लक्षणों से ध्वजाओं को विभूषित करके उसके पश्चात् राजन् ! अधिवासन पूर्वक विद्वानों को उसका आरोपण करना चाहिए ।६३। हे नृप ! तदुपरांत समस्तमिश्रित औषधियों द्वारा प्रयत्न पूर्वक स्नान कराकर मध्य भाग में आलम्भन पूर्वक बाँधकर सैन्य के पिछले भाग में स्थापित करे ।६४। कल्याणप्रद वेदी की रचना कर उसे कलशों से सुशोभित करके उसमें ध्वजा का आरोपण (खड़ा) कर उस रात उसका अधिवासन करना चाहिए ।६५। भाँति-भाँति के पुष्पों की मालाएँ लटकाने के पश्चात् प्रयत्नपूर्वक उसकी भली भाँति पूजा करके धूप प्रदान करे ।६६। और बलिकर्म करने के उपरांत कृशरान्न (मिश्रित अन्न) मालपूआ, दही, खीर, दाल, आदि पदार्थों को लोक पालों एवं कौवे के उद्देश्य से बलि रूप में अर्पित करे । उपरांत ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन कराकर पुण्य एवं मांगलिक वाद्यों की ध्वनियों से पूर्ण, संस्कार सम्पन्न, अनेक भाँति की विधियों से सुशोभित तथा नये वस्त्र से परिवेष्टित उस ध्वजा का किसी शुभ लग्न, दिन एवं नक्षत्र में विद्वानों को आरोपण करना चाहिए। सुवर्ण के कलशों से उसका लगाव रखते हुए ध्वजा की अत्यन्त प्रदीप्त रेखाएँ होनी चाहिए।६९-७०। देवमन्दिर के ऊपर इस प्रकार की ध्वजा का आरोहण जो (पुरुष) करता है, उसकी नित्य वृद्धि होती है। और उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है।७१। ध्वजा हीन देवालयों में असुरों का निवास हो जाता है, इसलिए

---

१. बहुवर्णा च । २. दधिपायसपूर्वकैः । ३. जनफूत्कारसंकुलम् ।

मन्त्रश्च स्थापने प्रोक्तो विधानज्ञैर्ध्वजस्य तु । एह्येहि भगवन्देव देववाहन वै खग ॥७३
श्रीकरः श्रीनिवासश्च जय जैत्रोपशोभित । व्योमरूप महारूप धर्मात्मंस्त्वं च वै गतेः ॥७४
सान्निध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन्साक्षी च ध्रुवतां व्रज । कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ ॥७५
ॐ एह्येहि भगवन्नीश्वरविनिर्मित उपरिचरवायुमार्गानुसारिञ्छ्रीनिवास रिपुध्वंस यक्षनिलय सर्वदेवप्रियं कुरु सान्निध्यं शान्ति स्वस्त्ययनं च मेभय सर्वविघ्रा व्यपसरन्तु ॥७६
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शुभ्रे दण्डे निवेशयेत् । पताकां पूर्वमन्त्रेण स्थित्वा पूर्वमुखो नृप ॥७७
क्षिपेदूर्ध्वमथाकाशं प्रासादशिखराद्विभोः । यजमानस्ततः पश्येत्पताकां यदुनन्दन ॥७८
प्रासादपुरतोऽपि पताकां पातयेद्यदि । इन्द्रलोकं तदा कर्ता विशेद्वै यदुनन्दन ॥७९
आग्नेय्यामग्निलोकं तु याम्यां यमसदो भजेत् । नैर्ऋत्यां नैर्ऋतं लोकं वारुण्यः वारुणं व्रजेत् ॥८०
यस्य देवस्य यद्वेश्म कृतं यदुकुलोद्वह । तस्य लोकमवाप्नोति वृषस्थानगतो यदि ॥८१
वायव्ये वायुमाप्नोति सौम्यायां सोममाप्नुयात् । ऐशान्यामीशमाप्नोति कर्ता वै देववेश्मनः ॥८२
य एवं कारयेद्भक्त्या ध्वजस्यारोपणं रवेः । स हि भुक्त्वा परान्भोगान्सूर्यलोके महीयते ॥८३

बुद्धिमान् को चाहिए कि देवालय कभी ध्वजा शून्य न हो ।७२। विधान के विद्वानों ने ध्वजा स्थापन के लिए यह मंत्र बताये हैं—हे भगवन्, हे देव, हे देववाहन, हे आकाश में गमन करने वाले ! आप श्री उत्पन्न करने वाले तथा श्री के निवास रूप हैं। हे जप एवं जेत्र से सुशोभित, हे व्योमरूप, हे महारूप, हे धर्मात्मन् ! तुम्हीं गति रूप हो ! इस दंड में साक्षी के रूप में प्रविष्ट होकर आप अटल हो जाइये । हे अर्कवल्लभ ! उसके कर्ता एवं प्रासाद की सदैव वृद्धि कीजिए ।७३-७५। हे भगवन् ! हे ईश्वर विनिर्मित ऊपरी भाग में विचरण करने वाले वायु के मार्ग का अनुगमन करने वाले ! हे श्रीनिवास, हे शत्रु का नाश करने वाले, हे यक्षों के आवासस्थान रूप इस (ध्वजदण्ड) में सर्वदेव प्रवेश करके मुझे शान्ति, कल्याण, एवं अभय प्रदान कीजिए जिससे मेरे सभी विघ्न नष्ट हो जाँय ।७६। ओंकार पूर्वक इस मंत्र का उच्चारण करते हुए तथा हे नृप ! पूर्वाभिमुख स्थित होकर पूर्व बताये गये मंत्र के उच्चारण पूर्वक पताका उस शुभ्र (ध्वज-दण्ड) में लगाना चाहिए ।७७। पश्चात् हे यदुनन्दन ! उस विभु (नायक) देव के प्रसाद शिखर से ऊपर आकाश में उस पताका का देव के प्रासाद शिखर से ऊपर आकाश में फहराते हुए यजमान को उसका निरीक्षण करना चाहिए ।७८। हे वीर ! उस प्रासाद (विशाल भवन) के सामने यदि पताका लटके, तो हे यदुनन्दन ! उसके कर्ता को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है । आग्नेय दिशा में लटकने से अग्नि लोक, दक्षिण में यमपुरी, नैर्ऋत्य में नैर्ऋत्य लोक एवं पश्चिम में (लटकने से) वरुण लोक की प्राप्ति होती है ।७९-८०। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! जिस देवता के लिए वह निवास स्थान (मंदिर) बनाया गया है, वृष स्थान में लटकने से उसे उसी देवलोक की प्राप्ति होती है ।८१। एवं वायव्य में वायुलोक, उत्तर में सोमलोक, तथा ऐशान्य में ईश्वर (शिव) लोक की प्राप्ति होती है ।८२। जो भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए इस प्रकार की ध्वजा का आरोपण करता है, अम्बुज के समान तेज एवं कांति, द्विजाति (विप्र) के समान प्रभा पूर्ण और

तेजसाम्बुजसंकाशः कान्त्या चाम्बुजसन्निभः । द्विजातितुल्यः प्रभया विक्रमेण च गोपतेः ।।८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने ध्वजारोपणविधिवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३८।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकानयनवर्णनम्

साम्ब उवाच

त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तं रूपमेतत्पुरातनम् । प्रत्यक्षदर्शनं चापि भास्करस्य महात्मनः ।।१
सर्वमेतत्तु सम्प्राप्य पुनश्चिन्ताकुलं मनः । देवस्य परिचर्यायाः पालनं कः करिष्यति ।।२
गुणयुक्तं द्विजं किञ्चित्समर्थं परिपालने । ममैवानुग्रहाद्ब्रह्मन्द्विजं व्याख्यातुमर्हसि ।।३
एवमुक्तस्तु साम्बेन नारदः प्रत्युवाच तम् । न द्विजाः परिगृह्णन्ति देवस्य स्वीकृतं धनम् ।।४
विद्यते हि धनं ह्यत्र गुणश्चायं प्रतिग्रहः । देवचर्यागतैर्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते ।।५
अवज्ञया च कुर्वन्ति ये क्रिया लोभमोहिताः । अपाङ्क्तेया भवन्तीह ते वै देवलका द्विजाः ।।६
देवस्वं ब्राह्मणस्वं च यो लोभादुपजीवति । स पापात्मा नरो लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ।।

सूर्य के समान पराक्रम की प्राप्ति पूर्वक वह उत्तम भोगों का उपभोग करके सूर्य लोक में पूजित होता है।८३-८४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में ध्वजारोपण विधि वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३८।

अध्याय १३९

भोजकानयन की विधि का वर्णन

साम्ब ने कहा—आप की कृपा वश मैंने अपना पुराना रूप एवं महातमा भास्कर का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है।१। इस सब कुछ की प्राप्ति हो जाने पर भी मेरे मन में फिर चिंता हो रही है कि सूर्य देव की सेवा (पूजा) कौन करेगा।२। हे व्रह्मन्! मुझ पर अनुग्रह करके आप गुणी एवं सेवा करने के लिए उपयुक्त किसी व्राह्मण को बतायें।३। इस प्रकार साम्ब के कहने पर नारद ने कहा—देवता के लिए स्वीकृत धन को कोई व्राह्मण नहीं अपना सकता है क्योंकि यह धन यहाँ प्रतिग्रह (दान) के रूप में स्थित है। देवता की पूजा करने के द्वारा प्राप्त द्रव्य को अपनाने से व्राह्मण की ब्राह्मी (ब्रह्म संबंधी योग आदि) क्रिया नष्ट हो जाती है।४-५। लोभवश कोई व्राह्मण यदि उस क्रिया का अनादर करता है, वह अपांक्तेय (व्राह्मण मण्डली में स्थानच्युत) हो जाता है, क्योंकि उस प्रकार के धन को अपनाने वाले व्राह्मण 'देवलक' कहे जाते हैं।६। जो लोभवश देव धन या व्राह्मण धन से अपनी जीविका निर्वाह करता है, वह मनुष्य लोक में पापी एवं गीधों का उच्छिष्ट (जूठा किये गये) खाकर जीवित रहता है। इसलिए

ततो न ब्राह्मणः कश्चिद्देवचर्यां करिष्यति ॥७
विधिज्ञं ज्ञानवन्तं च परिचर्याक्षमं तथा । देव एव तमाख्यातुं तस्मात्तं शरणं व्रज ॥८
अथवा यदुशार्दूल उग्रसेनपुरोहितम् । गत्वा[1] गौरमुखं पृच्छ स ते कामं विधास्यति ॥९
नारदेनैवमुक्तस्तु साम्बो जाम्बवतीसुतः । सुखासीनं गृहे वीर उग्रसेनपुरोहितम् ॥१०
कृतपूर्वाह्णिकं वीर विप्रं गौरमुखं नृप । विनयेनोपसङ्गम्य साम्बो वाक्यमथाब्रवीत् ॥११
मया भानोः प्रसादेन कारितं विपुलं गृहम् । सपत्नीकं ससैन्यं च पृथिव्यां सारवत्स्थितम् ॥१२
सर्वं तस्मिन्मया दत्तं कृतं मूर्तेश्च मण्डलम् । तस्मादिष्ट्वा विशिष्टेभ्यो देयं दानं मनोगतम् ॥१३
तत्सर्वं मम सम्प्रीत्या गृहाण त्वं महामुने । साम्बवाक्यमिदं श्रुत्वा प्रत्युवाच महामुनिः ॥१४

गौरमुख उवाच

ब्रवीम्यहमशेषेण यथावदनुपूर्वशः । अहं विप्रो भवान्राजा स च देवपरिग्रहः ॥
अपरस्परमेवं तु ग्रहणं मे विरुध्यते ॥१५
ब्रह्मविद्याप्रणीतानि स्वकर्माणि द्विजातयः । कुर्वाणा न प्रहीयन्ते अन्यथा भिन्नवृत्तयः ॥१६
क्षान्तिरध्यापनं[2] जापः सत्यं च यदुनन्दन । एतानि विप्रकर्माणि न देवार्थपरिग्रहः[3] ॥१७

कोई ब्राह्मण देव-मंदिर की पूजा स्वीकार नहीं कर सकता है ।७। विधान का ज्ञाता, ज्ञानी, सेवा करने के योग्य, ऐसे पुरुष को सूर्य देव ही बता सकेंगे, अतः इसके लिए उन्हीं की शरण जाओ ।८। अथवा हे यदुशार्दूल ! उग्रसेन के पुरोहित गौरमुख से इस बात की चर्चा करो । तो तुम्हारा कार्य अवश्य कर देंगे ।९। हे वीर ! नारद के इस प्रकार कहने पर जाम्बवती पुत्र साम्ब घर में सुख पूर्वक बैठे हुए उग्रसेन पुरोहित के समीप पहुँचे ।१०। हे वीर ! हे नृप ! पूर्वाह्ण काल के धार्मिक कृत्यों को समाप्त कर बैठे हुए गौर मुख ब्राह्मण के समीप पहुँच कर साम्ब ने सविनय प्रार्थना की ।११। मैंने सूर्य की कृपावश उनके लिए एक विशाल भवन का निर्माण कराया है, उसमें उन्हें पत्नी एवं सेना समेत स्थापित किया है, जो पृथिवी में सार के रूप में स्थित (सर्वश्रेष्ठ) है । उस मन्दिर के निमित्त मैंने सभी कुछ दे दिया है, मूर्ति मण्डल की रचना कर उस यज्ञ में मैंनें अपनी अभिलषित वस्तुएँ प्रदान की है ।१२-१३। मैं चाहता हूँ कि वह सब किसी विशिष्ट (व्यक्ति) को दे दी जाँय । हे महामुने इस मेरे ऊपर प्रसन्न होकर प्राप्त उन सब को ग्रहण करें । साम्ब की ऐसी बातें सुन कर उन महामुनि ने कहा ।१४

गौरमुख बोले—मैं निखिल बातों को जो जैसी है क्रमशः बता रहा हैं मैं ब्राह्मण हूँ, आप राजा हैं और वह सब धन जो देवता के लिऐ स्वीकृत है प्रतिग्रह के रूप में है । उससे कोई मेरा पारस्परिक संबंध नहीं है, अतः ऐसी वस्तुओं का अपनाना मेरे विरुद्ध है ।१५। (ब्रह्मविद्या) वेद के बताये हुए अपने कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले ब्राह्मण कभी च्युत नहीं होते, उससे भिन्न कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले (विप्र) च्युत हो जाते हैं।१६। हे यदुनन्दन ! क्षान्ति, अध्यापन, जप करना, सत्यबोलना, यही ब्राह्मणों के कर्म हैं न कि देवता के लिए स्वीकृत धन को प्रतिग्रह रूप में ग्रहण करना।१७। क्योंकि देवता

---

१. अथाहो यद्यसौ कुरुतेऽनघ । ततः स गत्वा साम्बस्तु प्रणिपत्य महामुनिम् । २. अध्ययनम् । ३. देवान्नपरिग्रहः ।

यदि देवार्थदानं[1] स्यात्ततो देवलका द्विजाः । देवद्रव्याभिलाषश्च ब्राह्मण्यं तु विमुञ्चति ।।१८
देवद्वारे च यद्दानं ब्राह्मणाय प्रयच्छति । द्वावेतौ पापकर्तारावात्मदोषेण मानदौ ।।१९
देवार्थदानं[2] वार्ष्णेय यद्गृहीत्वा च यो द्विजः । श्राद्धे वा यदि वा सत्रे तज्जुहोति ददाति वा ।।
भिन्न वृत्तो द्विजः पापो राक्षसः सोऽभिजायते ।।२०
द्विजो देवलको यत्र पङ्क्त्यां भुङ्क्ते महीपते । अन्नान्युपस्पृशेन्नीचा सा पङ्क्तिः पापमाचरेत् ।।२१
द्विजो देवलको यस्य संस्कारं सम्प्रयच्छति । सोऽधोमुखान्पितृन्सर्वानाक्रम्य विनिपातयेत् ।।२२
आत्मानं पातयेद्यस्तु सोन्यानुद्धरते कथम् उद्धरिष्यति चात्मानमित्येषा कल्पनाधमा ।।२३
यो हठाच्च[3] भयाच्चैव कुरुते रविवेश्मनः । वृत्तिं विधत्ते विप्रत्वात्पतितस्स तु जायते ।।२४
सप्रतिग्रहमन्त्रेण द्विजोऽश्नाति परिग्रहम् । देवप्रतिग्रहार्थेषु वेदवाक्यं न विद्यते ।।२५
तस्माद्राजा न देवार्थं विप्रे दद्यात्कथञ्चन । ब्रह्मसूत्रमहं छित्त्वा गमिष्यामीति गम्यताम् ।।२६

साम्ब उवाच

अग्राह्यं चेद्द्विजातिभ्यः कस्मै देयमिदं मया । श्रुतं वा दृष्टपूर्वं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।२७

गौरमुख उवाच

मगाय सम्प्रयच्छ त्वं पुरमेतच्छुभं विभो । तस्याधिकारो देवान्ने देवतानां च पूजने ।।२८

के लिए दिये गये धन को स्वीकार करने वाले द्विजों को देवलक कहा जाता है । देव धन की अभिलाषा करने वाला ब्राह्मण ब्राह्मणत्व हीन हो जाता है ।१८। देव मन्दिर में ब्राह्मण के लिए जो दान देता है, ये दोनों देने लेने वाले मनुष्य अपने दोष के नाते पापी हो जाते हैं ।१९। हे वृष्णि कुलोत्पन्न ! जो ब्राह्मण देवधन को लेकर उससे श्राद्ध अथवा यज्ञ में हवन करता है या अन्य को देता है, वह अपने धर्म से भिन्न वृत्ति अपनाने वाला ब्राह्मण पापी एवं राक्षस हो जाता है ।२०। हे महीपते ! देवलक द्विज जिस पंक्ति में बैठकर भोजन करता है, अथवा भक्ष्य अन्नों का स्पर्श करता है, वह पंक्ति नीच (अधम), पाप कारिणी समझी जाती है ।२१। देवलक द्विज जिसका संस्कार कराता है वह अपने सभी पितरों पर आक्रमण कर उन्हें अधोमुख करके पतन कराता है ।२२। इसीलिए जो अपना पतन कराता है, वह दूसरे का उद्धार कैसे कर सकता है ? 'अपना उद्धार कर लेगा' यह तो निम्नकोटि की कल्पना मात्र है ।२३। जो कोई ब्राह्मण होकर हठ, लोभ, एवं भयवश सूर्य मन्दिर की (सेवा) वृत्ति स्वीकार कर लेते हैं, वे ब्राह्मण पतित हो जाते हैं ।२४। यद्यपि मंत्र पूर्वक प्रतिग्रह का ग्रहण कर ब्राह्मण उसका उपभोग करता है, पर, देवधन का प्रतिग्रह (दान) लेने के कोई वैदिक वाक्य नहीं हैं ।२५। इसलिए राजा उस देवधन को किसी ब्राह्मण को कभी न दे । ब्रह्म सूत्र (यज्ञोपवीत) तोड़कर ही मैं ऐसा कर सकूंगा, यदि ऐसा कहकर कोई करने को तैयार है तो वह भले ही करे ।२६

साम्ब ने कहा—यदि इसे द्विजाति लोग नहीं स्वीकार करेंगे, तो मैं यह किसे दूँ, आप इसके विषय में कुछ सुने हों या देखे हों तो मुझे बताने की कृपा करें ।२७

गौरमुख बोले—हे विभो ! तुम उस नगर को मग, के लिए प्रदान कर दो क्योंकि देवताओं के अन्न ग्रहण एवं पूजन करने का एकमात्र उन्हें ही अधिकार है ।२८

---

१. देवान्नदानम् । २. देवान्नदानम् । ३. लोभाच्च ।

साम्ब उवाच

कोऽयं मगेति ते प्रोक्ताः क्व वासौ वसते विभो। कस्य पुत्रो द्विजश्रेष्ठ किमाचारः किमाकृतिः ॥२९

गौरमुख उवाच

योऽयं मगेति वै प्रोक्तो मगो दिव्यो द्विजोत्तमः। निक्षुभायां[1] सुतो वीर आदित्यात्मज उच्यते ॥३०

साम्ब उवाच

कथं स निक्षुभापुत्रः कथं वीरसुतस्तथा। कथं चादित्यतनयो मगोऽसावुच्यतेनऽघ ॥३१

गौरमुख उवाच

मानुषत्वं गता देवी निक्षुभा किल यादव। गता शापमवाप्येह भास्कराल्लोकपूजिता ॥३२
गोत्रं मिहिरमित्याहुस्तस्मै ब्राह्मण्यमुत्तमम्। सुजिह्वा नाम धर्मात्मा ऋषिपुत्रः पुरानघ ॥३३
तस्यात्मजा समुत्पन्ना निक्षुभा सा वराङ्गना। रूपेणाप्रतिमा लोके हारलीला मता तु सा ॥३४
पितुर्नियोगात्सा कन्या विहरेज्जातवेदसि ॥३५
विहरन्ती यथान्यायं समिद्ध पावके तथा। अथ तां देवदेवेशो ह्यंशुमाली ददर्श ह ॥३६
रूपयौवनसम्पन्नां ततः कामवशं गतः। चिन्तयामास देवेशः कथं तां वै भजाम्यहम् ॥३७
अनयावहृतो योऽयं पावको देवपूजितः। वनमाविश्य तन्वङ्गीं भजेयं लोकपूजिताम् ॥३८

साम्ब ने कहा—हे विभो ! ये मग कौन हैं, कहाँ इनका निवास स्थान है, किसके पुत्र हैं, एवं हे द्विजश्रेष्ठ ! इनके आचार तथा आकृति कैसी होती है।२९

गौरमुख बोले—जिस मग को मैंने तुम्हें बताया है, वे दिव्य एवं उत्तम द्विज होते हैं, निक्षुभा से उत्पन्न ये वीर सूर्य के पुत्र कहे जाते हैं।३०

साम्ब ने कहा—हे अनघ ! ये मग निक्षुभा के पुत्र कैसे हुए, वीर सुत एवं आदित्य के तनय कैसे कहे जाते हैं।३१

गौरमुख बोले—हे यादव ! लोकपूजित निक्षुभा देवी भास्कर के शाप देने के कारण मनुष्य रूप में उत्पन्न हुई थीं।३२। पहले समय में मिहिर गोत्र में जिसमें उत्तम ब्राह्मणत्व का होना बताया गया है, हे अनघ ! सुजिह्वा नाम के धर्मात्मा ऋषिपुत्र उत्पन्न हुए।३३। उनकी पुत्री होकर निक्षुभा उत्पन्न हुई, जो सुन्दर अंगों वाली एवं अनुपम सौन्दर्य पूर्ण थी उस समय लोक में वह हार लीला (उत्तम आभूषण) के समान विख्यात थी।३४। पिता की आज्ञा प्राप्त कर वह अग्नि में एक साथ खेला करती थी।३५। इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि के साथ विहार करती हुई उसे एक बार देवाधिदेव सूर्य ने देखा।३६। उस रूप यौवन संपन्न कुमारी को देखकर सूर्य कामपीड़ित हुए और सोचने लगे कि इसका उपभोग हमें कैसे प्राप्त होगा।३७। उन्होंने सोचा कि इसने देव पूजित अग्नि को अपने वश में कर लिया है, इसलिए इस कृशाङ्गी एवं लोक की उत्तम रमणी को बन में ले जाकर मैं रमण करूँगा।३८। हे वीर ! ऐसा निश्चय

---

१. निक्षुभाग्निसुतः।

इति सञ्चिन्त्य देवेशः सहस्रांशुर्दिवस्पतिः । विवेश पावकं वीर तत्पुत्रश्चाभवत्तदा ।।३९
ततो विलासलावण्यरूपयौवनशालिनी । समिद्धं लङ्घयित्वाग्निं जगामायतलोचना ।।४०
क्रुद्धः स्वरूपमास्थाय दृष्ट्वा कन्यां स पीडितः । करं करेण सङ्गृह्य ततस्तां हव्यवाहनः ।।४१
उवाच यदुशार्दूल नोदितो भास्करेण तु । वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यथाहं लंघितस्त्वया ।।४२
तस्मान्मत्तः समुत्पन्नो न च पुत्रो भविष्यति । जरशब्द इति ख्यातो वंशकीर्तिविवर्धनः ।।४३
अग्निजात्या मगाः प्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातयः । भोजकादित्यजात्या हि दिव्यास्ते परिकीर्तिताः ।।४४
तामेवमुक्त्वा भगवानादित्योऽन्तरतस्तदा । अथोत्पन्नां प्रजां ज्ञात्वा ध्यानयोगेन वै ऋषिः ।।४५
पतितः स्यान्महातेजा ऋग्जिह्वः सुमहामतिः । शापमुद्यम्य तेजस्वी ऋग्जिह्वो वाक्यमब्रवीत् ।।४६
आत्मापराधात्कामिन्या यथा गर्भो नलावृतः। सम्भूतस्ते महाभागे अपूज्योऽयं भविष्यति ।।४७
पुत्रशोकाभिसन्तप्ता बाला पर्याकुलेक्षणा । चिन्तयामास दुःखार्ता तमेकं ज्वलनाकृतिम् ।।४८
ततो देववरिष्ठस्य मम योनिसमुद्भवः । अयं दत्तो महाशापः पूज्यतां कर्तुमर्हसि ।।४९
भवेत्पूज्यो हि मे पुत्रो देवेश्वर तथा कुरु । एवं चिंतयमानस्तु भगवानर्यमा किल ।।५०
आग्नेयं रूपमाश्रित्य चेदं वचनमब्रवीत् । स्निग्धो गम्भीरनिर्घोषः शान्तो ज्वरविवर्जितः ।।५१

कर देवेश सहस्र किरण वाले सूर्य ने अग्नि में प्रवेश किया । और इसी लिए उससे पुत्र उत्पन्न हुआ ।३९। एकबार उस विलास सुन्दरी एवं विशाल नेत्रवाली रूप यौवन के मद से मत्त होकर प्रज्वलित अग्नि को लाँघकर चली गई ।४०। उस समय कामपीड़ित अग्नि प्रविष्ट सूर्य ने क्रुद्ध होकर अपने हाथ से उसका हाथ पकड़ कर कहा । हे यदुशार्दूल ! उस समय भास्कर उदय नहीं हुए थे । उन्होंने कहा वेद विधान का त्याग कर तूने मेरा उल्लंघन किया है इसलिए तुम्हारा पुत्र मेरे द्वारा उत्पन्न होने पर भी पुत्र न कहलायेगा प्रत्युत जर शब्द के नाम से उसकी ख्याति होगी ।४१-४३। इस प्रकार वह अपनी वंश कीर्ति को बढ़ायेगा अग्नि जाति वाले मग, सोम जाति वाले द्विजाति, आदित्य जाति वाले भोजक के नाम से (वे उत्पन्न होने वाले) दिव्य ख्याति प्राप्ति करेंगे ।४४। उससे इस प्रकार कहकर सूर्य देव अर्न्तहित हो गये । उस समय ऋषि ने भी अपने ध्यान योग द्वारा उन उत्पन्न हुई सन्तानों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया ।४५। उससे महाबुद्धिमान् एवं महातेजस्वी वे ऋग्जिह्व[1] नामक ऋषि मूर्छित से हो गये । इसीलिए उस तेजस्वी ऋग्जिह्व ने उसे शाप दिया कि तुमने स्वयं कामवश होकर अपने दोष से गर्भ को धारण किया है, अतः हे महाभागे ! तुमसे उत्पन्न यह पुत्र अपूज्य होगा ।४६-४७। (उनके ऐसा कहने पर) पुत्र शोक से संतप्त एवं आँखों में आँसू भरे उस स्त्री ने दुःखी होकर उसी एक प्रज्वलित आकृति वाले (अग्नि) का ध्यान किया ।४८। कि श्रेष्ठ देवद्वारा मेरे (गर्भ) से उत्पन्न इस सन्तान को उन्होंने अपूज्य होने का शाप दिया है, अतः इन्हें पूज्य बनाने की कृपा करें ।४९। हे देवेश्वर ! मेरे पुत्र जिस उपाय से पूज्य हो सकें आप वैसा ही करने की कृपा करें । इस प्रकार उसे चिन्तित देख कर भगवान् सूर्य ने अग्नि का रूप धारण कर उससे कहा—हे सुव्रत ! प्रिय ! गंभीर वाणी वाले शांत, क्रोधहीन एवं महातेजस्वी वे

ऋग्जिह्वः समुहातेजा धर्मं चरति सुव्रत । तेनोत्सृष्टं महाशापं नान्यथा कर्तुमुत्सहे ।।५२
किं तु कार्यगरीयस्त्वादात्मनो योग्यमुत्तमम् । तव पुत्रं विधास्यामि चापूज्यं वेदपारगम् ।।५३
वंशश्च सुमहांस्तस्य निवसिष्यति भूतले । ममाङ्गानि महात्मानो वशिष्ठा ब्रह्मवादिनः ।।५४
मद्गायना मद्यजना मद्भक्ता मत्परायणाः । मम शुश्रूषकाश्चैव मम च व्रतचारिणः ।।५५
त्वां च मां च यथान्यायं वेदं तत्त्वार्थदर्शिनः । पूजयिष्यन्ति निरताः सदा मद्भावभाविताः ।।५६
मत्कर्मणां मदङ्गानां मद्भावविनिवेशनात् । विरजा मत्प्रसादेन मामेवैष्यन्त्यसंशयम् ।।५७
जटाश्मश्रुधरा नित्यं सदा मयि परायणाः । पञ्चकालविधानज्ञा वीरकालस्य यज्विनः ।।५८
पूर्णेकदक्षिणे पाणौ वर्म वामेन धारयन् । पतिदानेन वदनं प्रच्छाद्य नियतः शुचिः ।।५९
प्राणं हि महतां कृत्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः । असमाच्चाप्रसादाच्च व्याकुलेन्द्रियचेतसा ।।६०
विधिहीनं मंत्रहीनं ये वै यक्ष्यन्ति मामतः । तेऽपि स्वर्गाच्च्युताः क्लान्ता रमन्ते सूर्यसन्निधौ ।।६१
एवंविधास्तव सुता भविष्यन्ति महीतले । मगवंशे महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः ।।६२
एवमाश्वास्य तां देवीं भास्करो वारितस्करः । अन्तदर्धे महातेजाः सा च हर्षमवाप ह ।।६३
एवमेते समुत्पन्ना भोजकाः कृष्णनन्दन । विष्णुभास्ते तथादित्या उत्पन्ना लोकपूजिताः ।।६४
तेषामेतत्पुरं देहि पर्याप्तास्ते प्रतिग्रहे । त्वदीयस्यास्य मे वीर तथा भास्करपूजने ।।६५

ऋग्जिह्व धर्म का आचरण कर रहे हैं, अतः उनके द्वारा दिये गये उस महाशाप की प्रतिक्रिया मैं करने में असमर्थ हूँ ।५०-५२। परन्तु उत्तम कार्य करने के नाते मैं तुम्हारे अयोग्य पुत्रों को उत्तम, योग्य, एवं वेद का पारगामी विद्वान् बनाऊँगा ।५३। इस भूतल पर उनकी महान वंश परम्परा निवास करेगी । वे सब मेरे अंग, महात्मा, वशिष्ठगोत्री, ब्रह्मवादी, मेरे ही गान, पूजन, भक्ति, परायण में मेरी सेवा एवं मेरे व्रत-विधानों का पालन करने वाले होंगे ।५४-५५। वेद-तत्व के निष्णात विद्वान् मेरे भावानुरक्त एवं तत्कालीन होकर मेरी और तुम्हारी अर्चना करेंगे ।५६। मेरे लिए कर्म करने के नाते मेरे अंग कहे जायँगे तथा मेरे भावानुरक्त एवं मेरी प्रसन्नता से विरक्त होकर वे मुझे निश्चित प्राप्त करेंगे ।५७। जटा एवं दाढ़ीको धारण कर सदैव मत्परायण होते हुए वे पाँचो कालविधान के ज्ञाता, तथा वीरकाल की नित्य पूजा करेंगे ।५८। दाहिने हाथ को पूर्ण रख और बाँये हाथ में वर्म रूप (केंचुल कवच) धारण कर पति दान द्वारा मुख ढाँक कर संयमी एवं पवित्र होते हुए महान लोगों की भाँति प्राप्त वायु के संयमपूर्वक ही भोजन करेंगे संयमहीन, अकरुण, एवं आकुल मन से विधान तथा मंत्र से हीन मेरे पूजन यज्ञ आदि भी करेंगे ।५९-६०। तो भी स्वर्ग की प्राप्ति तो न कर उससे दुःखी हो सकेंगे पर सूर्य के समीप प्रसन्नतापूर्वक आनन्द का अनुभव करेंगे ।६१। इस प्रकार के तुम्हारे पुत्र इस पृथ्वी तल पर मग वंश में उत्पन्न होकर महात्मा वेद वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान् होंगे ।६२। जल के तस्कर तथा महातेजस्वी भास्कर इस प्रकार उस देवी को आश्वासन प्रदान कर अर्न्तहित हो गये और वह देवी भी अत्यन्त हर्षित हुई ।६३। हे कृष्णनंदन ! इस भाँति वे भोजक अग्नि एवं सूर्य द्वारा उत्पन्न होकर विष्णु और सूर्य के समान तेजस्वी हो होकर लोक में पूजित हुए ।६४। उन्हीं लोगों को इस नगर का दानकर इसका अधिकारी बनाओ क्योंकि वे ही इस प्रतिग्रह के लेने में समर्थ हैं ।६५। उन गौरमुख की ऐसी बातें सुनकर जाम्बवती के पुत्र साम्ब यादव ने

तस्य गौरमुखस्येदं वाक्यं श्रुत्वा स यादवः । साम्बो जाम्बवतीपुत्रः प्रणम्य शिरसोक्तवान् ।।६६
क्व वसन्ते महात्मान एते भास्करपुत्रकाः । भोजका द्विजशार्दूल येन तानानयाम्यहम् ।।६७

गौरमुख उवाच

नाहं जाने महाबाहो वसन्ते यत्र वै मगाः । जानीते तान्रविर्वीर तस्मात्तं शरणं व्रज ।।६८
ब्राह्मणेनैवमुक्तस्तु प्रणम्य शिरसा रविम् । जगाद भास्करं साम्बः कस्ते पूजां करिष्यति ।।६९
विज्ञप्तस्त्वेव साम्बेन प्रतिमा तमुवाच ह । न योग्याः परिचर्यायां जम्बूद्वीपे ममानघ ।।७०
मम पूजाकरं गत्वा शाकद्वीपादिहानय । लवणोदात्परे पारे क्षीरोदेन समावृतः ।।७१
जम्बूद्वीपात्परो यस्माच्छाकद्वीप इति स्मृतः । तत्र पुण्या जनपदाश्चतुर्वर्णसमन्विताः ।।७२
मगाश्च मगगाश्चैव गानगा[1] मन्दगास्तथा । मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मगगाः क्षत्रियाः स्मृताः ।।७३
वैश्यास्तु गानगा ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः । न तेषां सङ्करः कश्चिद्धर्माश्रयकृते क्वचित् ।।७४
धर्मस्यास्य विचारो वा ह्येकतः सुखिनः प्रजाः । तेजसस्ते मदीयस्य निर्मिता विश्वकर्मणा ।। ।।७५
तेभ्यो वेदास्तु चत्वारः सरहस्या मयोदिताः । वेदोक्तैर्विविधैः स्तोत्रैः परैर्गुह्यैर्मया कृतैः ।।७६
ते च ध्यायन्ति मामेव यजन्ते मां च नित्यशः । मन्मानसा नद्यजना मद्भक्ता मत्परायणाः ।।७७
मम शुश्रूषकाश्चैव मम च व्रतचारिणः । अव्यङ्गधारिणश्चैव विधिदृष्टेन कर्मणा ।।७८

उन्हें पुनःशिर से प्रणाम कर कहा—हे द्विजोत्तम ! ये भास्कर के पुत्र महात्मा भोजक लोग कहाँ रहते हैं, (आप बतायें) जिससे मैं उन्हें यहाँ ला सकूँ ।६६-६७

गौरमुख बोले—हे महाबाहो ! वे मग जहाँ रहते हैं, मुझे मालूम नहीं है ! हे वीर ! सूर्य ही इसे जानते हैं, अतः उन्हीं की शरण जाओ ।६८। ब्राह्मण के ऐसा कहने पर साम्ब ने नत मस्तक हो सूर्य को प्रणाम किया और उनसे कहा कि —'आप की पूजा कौन करेगा ।६९। साम्ब के इस प्रकार सूचित करने पर उस (सूर्य की) प्रतिमा ने कहा—हे अनघ ! इस जम्बूद्वीप में मेरी पूजा करने के योग्य कोई नहीं है ।७०। (अतः) मेरी पूजा करने के लिए शाकद्वीप से (किसी को) लाओ । क्षार (खार) समुद्र के उस पार के प्रदेश को जो जम्बू द्वीप से भी दूर हैं और क्षीर सागर से घिरा है वह शाकद्वीप कहा जाता है वहाँ पुण्यात्मक चारों वर्ण के मनुष्य रहते हैं—मग, मगग, गानग एवं मंदग उनके भेद हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण मग, क्षत्रिय मगग, वैश्य गानग, तथा शूद्र मंदग के नाम से वहाँ ख्यात हैं । उस धार्मिक नगर में कोई (वर्ण) संकर (जारज) नहीं है ।७१-७४। वहाँ सभी लोग धार्मिक चर्चा करते हैं, इसीलिए वहाँ की प्रजाएँ नित्य सुखानुभव करती हैं विश्वकर्मा ने मेरे ही तेज द्वारा उनका निर्माण किया है ।७५। उन लोगों के लिए मैंने सरहस्य चारों वेदों का प्रतिपादन किया है, और भाँति-भाँति के वेदोक्त एवं गुह्य स्तोत्रों का निर्माण भी ।७६। वे सब मेरा ही नित्य ध्यान तथा पूजन करते हैं, वे मेरे मानस पुत्र होकर, मेरे लिए पूजन, मेरे भक्त, मेरे लिए अनुरक्त होकर मेरी ही शुश्रूषा एवं मेरे ही व्रतों का पालन करते हैं और विधान पूर्वक अव्यंग्य भी धारण करते

---

१. मानसाः ।

कुर्वन्ति ते सदा भद्रां मम पूजां ममानुगाः । तथा देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥
विहरन्ते रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह ॥७९
जम्बूद्वीपे त्वहं विष्णुर्वेदवेदाङ्गपूजितः । शक्रोऽहं शाल्मलीद्वीपे क्रौञ्चद्वीपे ह्यहं भगः[1] ॥८०
प्लक्षद्वीपे त्वहं भानुः शाकद्वीपे दिवाकरः । पुष्करे च स्मृतो ब्रह्मा ततश्चाहं महेश्वरः ॥८१
तान्मगान्मम पूजार्थं शाकद्वीपादिहानय । आरुह्य गरुडं साम्ब शीघ्रं गत्वाविचारयन् ॥८२
तथेति गृह्य तामाज्ञां रवेर्जाम्बवतीसुतः । पुनर्द्वारवतीं गत्वा कान्त्यातीव समन्वितः ॥८३
आख्यातवान्पितुः सर्वं स्वकीयं देवदर्शनम् । तस्माच्च गरुडं लब्ध्वा ययौ साम्बोऽधिरुह्य तम् ॥८४
शाकद्वीपमनुप्राप्य सम्प्रहृष्टतनूरुहः । तत्रापश्यद्यथोद्दिष्टान्साम्बस्तेजस्विनो मगान् ॥८५
विवस्वन्तं पूजयन्तो धूपदीपादिभिः शुभैः । सोऽभिवाद्य च तान्पूर्वं कृत्वाप्येषां प्रदक्षिणाम् ॥८६
पृष्ट्वा चानामयं तेषां प्रशंसालापपूर्वकम् । यूयं हि पुण्यकर्माणो द्रष्टव्यार्थे शुभार्थिनः ॥
रता येऽर्कस्य पूजायां येषां चैव वरप्रदः ॥८७
तनयं वित्त मां विष्णोः साम्बं नाम्ना च विश्रुतम् । चन्द्रभागातटे चापि मया सूर्यो निवेशितः ॥८८
तेनाहं प्रेषितश्चात्र उत्तिष्ठध्वं व्रजामहे । ते तमूचुस्ततः साम्बमेवमेतन्न संशयः ॥८९
अस्माकमपि देवेन व्याख्यातां पूर्वमेव हि । अष्टादश कुलानीह मगानां वेदवादिनाम् ॥

हैं ।७७-७८। वे मेरे अनुयायी होकर सदैव मेरी उत्तम पूजा करते हैं, तथा देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारणों के साथ विहार, रमण सभी कुछ करते हुए देखे जाते हैं ।७९। जम्बू द्वीप में मैं वेद एवं वेदाङ्ग द्वारा पूजित विष्णु, शाल्मली द्वीप में शक्र (इन्द्र) क्रौंच द्वीप में शिव, लक्षद्वीप में भानु, शाकद्वीप में दिवाकर, पुष्कर में ब्रह्मा, एवं (कुशद्वीप) में महेश्वर के रूप में स्थित हूँ !८०-८१। अतः मेरी पूजा के लिए उन मगों को शाकद्वीप से यहाँ लाओ हे साम्ब ! गरुड़ पर बैठकर शीघ्र प्रस्थान करो, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।८२। जाम्बवती पुत्र साम्ब 'तथा' कहकर सूर्य की आज्ञा शिरोधार्य कर मनोरम सौन्दर्य पूर्ण हो पुनः द्वारवती (द्वारिका) के लिए अवस्थित हुआ ।८३। वहाँ अपने पिता से सूर्य दर्शन आदि सभी वृत्तान्त कह सुनाया पश्चात् उनसे गरुड़ लेकर उसी पर बैठकर साम्ब ने शाकद्वीप के लिए प्रस्थान किया ।८४। वहाँ पहुँचने पर जैसा कि सूर्य ने बताया था, जो धूप दीप द्वारा सूर्य की पूजा करते थे, तेजस्वी मगों को देखकर उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसे रोमांच हो गया ।८५। उसने पहले उन लोगों की प्रदक्षिणा की पश्चात् उनका अभिवादन किया ।८६। शांति पूर्वक उनके (अनामय) कुशल पूछने के उपरांत उनकी प्रशंसा करने लगा कि आप लोग पुण्य कर्म एवं दृष्ट पदार्थों में श्रम कामना करने वाले है । जो सूर्य की पूजा में विशेष अनुरक्त रहता है, उसके लिए सूर्य वर प्रदान करते हैं ।८७। मैं विष्णु का पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है, चन्द्रभागा नदी के तट पर मैंने (एक विशाल भवन में) सूर्य की प्रतिष्ठा करायी है ।८८। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है इसलिए आप लोग उठें और मेरे साथ चलने की कृपा करे । उसके इस प्रकार कहने पर साम्ब से उन लोगों ने भी कहा यह (बात) ऐसी ही है, इसमें कोई संशय नही ।८९। क्योंकि हम लोगों को सूर्य देव ने पहले ही इसे सूचित किया , इसलिए उनके कथनानुसार वेदवादी मग के

---

१. शिवः इ०पा० ।

यास्यन्ति ये त्वया सार्धं यथा देवेन भाषितम् ॥९०

ततस्तानि दशाष्टौ च कुलानीह समन्ततः । आरोप्य गरुडे साम्बस्त्वरितः पुनरभ्यगात् ॥९१

सोऽल्पेनैव तु कालेन प्राप्तो मित्रवनं ततः । कृत्वाज्ञां तु रवेः साम्बः कृत्स्नं त्वेवं न्यवेदयत् ॥९२

रविः शोभनमित्युक्त्वा प्रसन्नः साम्बमब्रवीत् । मम पूजाकरा ह्येते प्रजानां शान्तिकारकाः ॥९३

मम पूजां करिष्यन्ति विधानोक्तां यदूत्तम । तत्कृते न पुनश्चिन्ता तव काचिद्भविष्यति ॥९४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकानयनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३९।

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकोत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एवं स आनयित्वा तु मगान्साम्बो महीपते । स महात्मा पुरा साम्बश्चन्द्रभागासरित्तटे ॥१

पुरं निवेशयामास स्थापयित्वा दिवाकरम् ।कृत्वा धनसमृद्धं तु भोजकानां समर्पयत् ॥२

तत्पुरं सवितुः पुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । सांबेन कारितं यस्मात्तस्मात्साम्बपुरं स्मृतम् ॥३

तस्मिन्प्रतिष्ठितो देवः पुरमध्ये दिवाकरः । सत्कृत्य स्थापिताः सर्वे आत्मनामाङ्किते पुरे ॥४

जो अठारह कुल हैं, वे सभी तुम्हारे साथ प्रस्थान करेंगे ।९०। उसके पश्चात् साम्ब उनके अठारहों कुलों को उसी गरुड़ पर बैठा कर पुनः शीघ्र वापस आया ।९१। थोड़े ही समय में वह सूर्य की आज्ञा का पालन कर उस मित्र वन में गया और सूर्य से सभी बातें कह सुनाया । सूर्य भी 'अति सुन्दर हुआ' कह कर प्रसन्न चित्त हो सांब से बोले—ये लोग मेरी पूजा एवं शांति करने वाले हैं ।९२-९३। हे यदुश्रेष्ठ ! ये विधान पूर्वक मेरी पूजा करेगें, उसके लिए तुम्हें फिर कभी चिंतित होना नहीं पड़ेगा ।९४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजकानयन वर्णन नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३९।

अध्याय १४०

भोजकोत्पत्ति वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महीपते ! इस प्रकार उस महात्मा साम्ब ने मगों को लाकर चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित अपने बसाये ऐसे उस समृद्ध नगर को जिसमें सूर्य की स्थापना हुई थी भोजकों के लिए समर्पित कर दिया ।१-२। सूर्य का वह पवित्र नगर तीनों लोकों में विख्यात है, जो साम्ब के द्वारा निर्माण कराये जाने के नाते साम्बपुर कहा जाता है ।३। उस नगर के मध्य भाग में सूर्य देव प्रतिष्ठित हैं और उसी अपने नाम वाले नगर में उसने उन लोगों को भी स्थित किया ।४। मगों का सदाचार, कुलाचार, एवं

मगानां तु सदाचारो दृष्टाचारकुलोचितः । देवशुश्रूषणं गीतं वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥५
कृतकृत्यस्तदा साम्बो वरं लब्ध्वा पुनर्युवा । आदिदेवं सुरज्येष्ठमादित्यं प्रणिपत्य सः ॥६
अनन्तरं मगान्सर्वान्प्रणिपत्याभिवाद्य च । प्रस्थितो निर्मलः साम्बः पुरीं द्वारवतीं तदा ॥७
मगानां कारणार्थेन प्रार्थिता भोजवंशजाः । वसुदेवस्य पौत्रेण गोत्रजेन महात्मना ॥८
कन्यादानं कृतं तेषां मगानां भोजकोत्तमैः । सर्वास्ताः सहिताः कन्याः प्रवालमणिभूषिताः ॥९
अर्चयित्वा तु ताः सर्वाः प्रेषिताः सवितुर्गृहम् । पुनर्गत्वा तु सांबेन पृष्टो देवो दिवाकरः ॥१०
मगानां ज्ञानमाख्याहि[1] वेदानव्यङ्गमेव च । साम्बस्य वचनं श्रुत्वा भास्करो वाक्यमब्रवीत् ॥११
पृच्छ त्वं नारदं गत्वा स ते सर्वं वदिष्यति । एवमुक्तोऽथ वै साम्बो गतवान्नारदं प्रति ॥१२
गत्वा कृत्स्नमिदं सर्वं तस्मै तेन निवेदितम् । स चाप्याह ततः साम्बं न जाने ज्ञानमुत्तमम् ॥१३
भोजकानां यदुश्रेष्ठ ज्ञानं व्यासो महामुनिः । तं गत्वा परिपृच्छ त्वं प्रणम्य शिरसा मुनिम् ॥१४
कृष्णानुरोधात्ते सर्वं स वक्ष्यति न संशयः । नारदेनैवमुक्तस्तु साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥१५
व्यासाश्रमं स गत्वा तु प्रणम्य शिरसा मुनिम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१६
शाकद्वीपं मया गत्वा आनीता मगपुङ्गवाः । बाला यौवनसम्पन्नाः सन्निविष्टा मगोत्तमाः ॥१७
सत्कृत्य पूजयित्वा तु पुरं तेषां समर्पितम् । सम्प्राप्य तु पुरं ते वै ज्येष्ठमध्यकनीयसः ॥१८
भोजवंशसमुत्पन्नाः कन्यकाः समलङ्कृताः । वरयित्वा कृतं तेषां विप्रप्रणयनं शुभम् ॥१९

वेद-विधान पूर्वक उनके द्वारा की गई सूर्य की परिचर्या को देखकर साम्ब कृतकृत्य हो गया । पुनः अपने युवा होने का वरदान प्राप्त करके वह साम्ब देव श्रेष्ठ, एवं देवों के आदि सूर्य को प्रणाम एवं सभी मगों को नम्रतापूर्वक अभिवादन किया और विशुद्ध होकर पुनः द्वारका पुरी को लौट आया ।५-७। वसुदेव के पौत्र (नाती) उस महात्मा साम्ब ने मगों के (विवाह) के लिए भोज वंशजों से प्रार्थना की ।८। भोजको ने भी सहर्ष मगों के लिए कन्यादान किया सभी कन्यायों को प्रवाल एवं मणियों से अलंकृत एवं पूजित करके उन्हें सूर्य के मन्दिर में भेज दिया ।९-१०। (एक समय) साम्ब ने (कभी) उस मंदिर में जाकर सूर्य से पूछा कि मगों का ज्ञान एवं उनकी वेदों की अनव्यङ्गता (वैदिक ज्ञान की पूर्णता) आप बताने की कृपा करें । साम्ब की बातें सुन कर सूर्य ने कहा— ।११। नारद के पास जाकर उनसे पूछो, वे तुम्हें सब कुछ बतायेंगे इस प्रकार कहने पर साम्ब नारद के पास गया ।१२। वहाँ जाकर उसने उनसे उपरोक्त सभी बातें पूँछी । नारद ने कहा—हे साम्ब ! मैं भोजकों का ज्ञान नहीं जानता ।१३। हे यदुश्रेष्ठ ! इसे महामुनि व्यास जानते हैं, इसलिए वहाँ जाकर नतमस्तक प्रणाम पूर्वक उनसे पूँछो ।१४। कृष्ण के अनुरोध से वे सभी कुछ बतायेंगे, इसमें संशय नहीं । नारद के इस प्रकार कहने पर जाम्बवती पुत्र साम्ब ने व्यास के आश्रम में पहुँच कर नतमस्तक प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर कहा ।१५-१६। शाकद्वीप जाकर मैंने बाल एवं युवावस्था वाले उन उत्तम मगों को यहाँ लाकर सत्कार पूर्वक पूजन करके उस नगर को मैंने अर्पित कर दिया है। हे विप्र ! उस नगर के निवासी होकर वे सभी जो बड़े मध्यम, एवं छोटे हैं, भोजवंश की समलंकृत कन्याओं द्वारा वरण कर विवाहित हो चुके हैं ।१७-१९। आश्चर्य है कि सूर्य की

---

१. वेदसाध्यं हि ।

अहो सभाग्याः श्लाघ्याश्च कृतपुण्याश्च ते सदा । पूजायां ये रता भानोर्येषां चैव वरप्रदः ।।२०
पर्याप्तं सर्वमेतेषामिह चामुष्मिकं फलम् । अनित्ये सति मानुष्ये देवपूजारता हि ये ।।२१
किन्तु चिन्तयतः सूर्यं चिन्तयित्वा तु भोजकान् । ज्ञानं प्रति तथा चैषां हृदये संशयो मम ।।२२
कथं पूजाकरा ह्येते के मगाः के च भोजकाः । ज्ञानं किं परमं तेषां ज्ञेयस्तेषां क एव तु ।।२३
दिव्येति ते कथं प्रोक्ताः किमर्थं कूर्चधारणम् । सौरव्रतं किमर्थं तु वाचकास्ते कथं स्मृताः ।।२४
किमर्थं तेजसा वेदान्गायन्तश्चैव ते कथम् । अथाहिकञ्चुकस्याङ्गं किं प्रमाणं तु कस्य वै ।।२५
कस्य वै का समाख्याता यदुत्पन्नं कथं स्मृतम् । कथं देवांश्च गायन्ति यज्ञं कुर्वन्ति ते कथम् ।।२६
अग्निहोत्रं च किं तेषां पञ्च कालाश्च काः स्मृताः । एतत्सर्वं समाख्याहि भोजकानां विचेष्टितम् ।।२७
साम्बस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनो मुनिः । कालीसुतो महातेजा उवाच परमं वचः ।।२८
साधुसाधु यदुश्रेष्ठ साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । दुर्ज्ञेयचेष्टितं किञ्चिद्भोजकानां न संशयः ।।२९
भास्करस्य प्रसादेन ममापि स्मृतिमागतम् । यथाख्यातं वशिष्ठेन तथा ते वच्मि कृत्स्नशः ।।३०
मगानां चरितं श्रेष्ठं शृणु त्वं कृष्णनन्दन । ज्ञानवेदिन एवैते कर्मयोगं समाश्रिताः ।।३१
श्रूयन्ते ऋषयः सर्वे मौनेन नियमस्थिताः । भुञ्जते चापि मौनेन सर्वे वै परमर्षयः ।।३२
मुनिचर्याकृतस्तेऽपि शाकद्वीपनिवासिनः । तस्मान्मौनेन भोक्तव्यमगुणत्वमनिच्छता ।।३३

पूजा में मग्न रहने के नाते वे सदैव भाग्यवान्, श्लाघ्य एवं पुण्यकर्मा हैं क्योंकि जिनके लिए सूर्य सभी प्रकार से वरदायक रहते हैं ।२०। मनुष्य के शरीर आदि सभी अनित्य (नाशवान) हैं, ऐसा समझ कर ये लोग सदैव सूर्य देव की आराधना करते हैं । इसीलिए इन्हें लोक परलोक के पर्याप्त उत्तम फल प्राप्त हैं ।२१। सूर्य के विषय की चिंता करते हुए मुझे अधिक भोजकों के विषय की चिंता हो रही है कि इनकी उत्पत्ति आदि का ज्ञान किस प्रकार किया जाये ।२२। मुझे यह महान् संशय हो रहा है कि ये पूजा करने वाले मग एवं भोजक कौन हैं, क्या हैं, इनका उत्तम ज्ञान (जानकारी) तथा इनका ज्ञेय (जानने योग्य) क्या है ।२३। वे 'दिव्य' क्यों कहे जाते हैं, दाढ़ी क्यों रखते हैं, सूर्य का ही व्रत क्यों करते हैं, और वे वाचक कैसे कहे जाते हैं ।२४। अपने तेज से वेदों का ज्ञापन क्यों करते हैं, सूर्य का कवच क्यों धारण करते हैं, इनका क्या प्रमाण है ।२५। वे किससे उत्पन्न हैं इनकी जननी किसकी पुत्री हैं इन्हें यदु कुलोत्पन्न कैसे कहा जाता है, देवगायन एवं यज्ञों को किस प्रकार सुसम्पन्न करते हैं ।२६। इनका अग्निहोत्र क्या है, तथा इनके पाँचो काल (समय) कौन-कौन हैं ? कृपया भोजकों की इन सभी बातें को बताइये ।२७। इस प्रकार साम्ब की बातें सुनकर महातेजस्वी, काली पुत्र, मुनि कृष्णद्वैयायन (व्यास) ने उत्तम वाणी से कहा ।२८। हे यदुश्रेष्ठ ! तुम साधु हो एवं महान् साधु हो, हे सुव्रत ! तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है भोजकों की ये सभी बातें अवश्य कठिनाई से जानी जा सकती हैं, इसमें संदेह नहीं ।२९। सूर्य की कृपा द्वारा मुझे भी स्मरण हो गया, वशिष्ठ ने जिस प्रकार बताया है, मैं उन सभी बातों को तुमसे बता रहा हूँ ।३०। हे कृष्णनन्दन ! मगों के उत्तम चरित जानने योग्य हैं सुनो ! ये ज्ञानी कर्मयोगी मौन होकर नियम पालन करते हैं तथा ये परमऋषि मौन होकर भोजन भी करते हैं ।३१-३२। शाकद्वीप में रहते हुए भी ये मुनियों की भाँति आचरण करते हैं। और इसीलिए मौन होकर भोजन करना चाहिए यह इनका सिद्धांत है,

वचः सूर्यसमाख्यातं कारणं च वरं तथा । अर्चायां ते च ते नित्यमर्चयन्तश्च ते स्मृताः ।।३४
भोजकन्यासुजातत्वाद्भोजकास्तेन ते स्मृताः । ब्राह्मणानां यथा प्रोक्तो वेदाश्चत्वार एव तु ।।३५
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वणः । ब्रह्मणोक्तास्तथा वेदा मगानामपि सुव्रत ।।३६
त एव विपरीतास्तु तेषां वेदाः प्रकीर्तिताः । वेदो विश्वमदश्चैव विद्वद्वह्निरसस्तथा ।।३७
वेदा ह्येते मगानां तु पुरोवाच प्रजापतिः । मगा वेदमधीयन्ते वेदाङ्गास्तेन ते स्मृताः ।।३८
शेषो न हि महाभागः सर्वसत्त्वसुखावहः । ससूर्यरथमासाद्य रश्मिभिः सह वर्षति ।।३९
यस्तस्य तु पुनर्मोकः स रवेर्हि महानकः । वन्दिलक्ष्यो मगानां तु अस्त्रमन्त्रेण नित्यशः ।।४०
यथा स्रजो द्विजानां तु पूजाकाले प्रमोयते । सर्वसंस्कारयज्ञेषु यथा दर्भा द्विजातिषु ।।४१
पवित्राः कीर्तितास्तेषां तथा धर्मो मगस्य तु । एभिर्जयन्ति भूयिष्ठं तस्मिन्द्वीपे मगाधिपाः ।।४२
विद्यावन्तः कुलश्रेष्ठाः शौचाचारसमन्विताः । यज्ञावसक्ता[१] भक्ताश्च जपन्तो मन्त्रमादितः ।।४३
प्रियास्तु यदुशार्दूल भोजका यदुनन्दन । अस्त्रमिव वै मन्त्रो वेदस्य परिपठ्यते ।।४४
सर्वेषां ब्राह्मणानां तु सावित्री परिकल्प्यते । अस्माकं तु यदुश्रेष्ठ महाव्याहृतिपूर्तिका ।।४५

अमोहकेनाथ विभामुञ्जी मौनेन चैवापि यथा हि युक्तम् ।
न चापि किञ्चित्स्मृतिकं स्पृशेच्च तच्चापि नाश्चैव च संस्पृशेद्धि ।।४६

गुणहीन नियम का पालन नहीं करते हैं ।३३। सूर्य की बतायी हुई बातें एवं वरदान ग्रहण किये हैं, इनके मूलकारण सूर्य हैं, ये सूर्य की ही नित्य पूजा करते हैं अतः इन्हें पूजक (देवलक) कहा जाता है ।३४। भोजक की कन्या में उत्पन्न होने के नाते ये भोजक कहे जाते हैं । ब्राह्मणों के लिए जिस प्रकार चारों वेदों (ऋग्यजु साम और अथर्व) की व्याख्या की गई है, उसी प्रकार हे सुव्रत ! मगों के लिए भी ब्रह्मा द्वारा वेदों का प्रतिपादन किया गया है ।३५-३६। उनसे भिन्न रीति द्वारा मगों के लिए वे ही वेद बताये गये हैं —वेद विश्वमद, विद्वद् एवं वह्निरस (अंगिरस), यही वेद हैं ऐसा मगों के लिए प्रजापति ने बताया है ।३७। मग लोग वेदाध्ययन करते हैं इसीलिए उन्हें वेदाङ्ग होना भी उन्होंने बताया है ।३८। भाग्यशाली शेष सभी के लिए सुख प्रदान करते हैं, सूर्य के साथ रथ में बैठकर उनके किरणों के साथ वर्षा करते हैं ।३९। उनकी केंचुल सूर्य के लिए महानक (कवच) है, जो अस्त्र मंत्र द्वारा मगों के लिए नित्य वंदनीय है ।४०। जिस भाँति द्विजों की पूजा के समय मालाएँ द्विजातियों के तथा सभी संस्कार रूपी यज्ञों में कुश पवित्र बताया गया है ।४१। उसी प्रकार मगों के लिए धर्म प्रतिपादित है । उस द्वीप में इसी धर्म द्वारा मगाधिनाथ विजयी होते हैं ।४२। वे सदैव विद्वान्, उत्तम कुलोत्पन्न पवित्र सदाचारी, यज्ञ करने में आसक्त एवं भक्त, होते हुए आदित्य मंत्र का जप करते हैं ।४३। हे यदुशार्दूल ! भोजक इसीलिए (सूर्य को) प्रिय हैं, हे यदुनंदन ! अस्त्र की भाँति इनके लिए वेदमंत्र है ।४४। इनका कहना है कि सभी ब्राह्मणों के लिए जिस तरह सावित्री की कल्पना की जाती है, उसी भाँति हम लोगों के लिए महाव्याहृति पूर्वक सूर्य मंत्र है । अमोहक (केंचुल की कवच) को साथ लिए मौन होकर भोजन करना (उनके लिए) नियम है किसी मृतक आदि अशुद्ध का स्पर्श इनसे न हो और ये लोग भी उसका स्पर्श स्वयं न करें ।४५-४६। जिस

---

१. भक्ता मंत्रं जपंते च आदितः पुरुषोत्तम ।

श्वसन्त्यनिच्छंस्तु परिक्षिपेत्तु स्वाभीष्टसूर्यं तु नमेत्सदैव।
यथा यज्ञं हि मन्त्रेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥४७
तत्त्वमन्यन्मगानान्तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । हवि: सम्पद्यते यस्मात्तेन ते यज्विन: स्मृता: ॥४८
यथाग्निहोत्रं प्रथितं द्विजानां तथाध्वहोत्रं विहितं मगानाम्।
अच्छं न नाम्नेति तदध्वरस्य मुनेर्वचो नात्र विचारणास्ति ॥४९
पञ्चधूपा: प्रदातव्या: सिद्धिरस्येह सर्वदा । दण्डनायकवेले द्वे त्रिसन्ध्यं भास्करस्य तु ॥५०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकोत्पत्तिवर्णनं
नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय: ।१४०।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय:

भोजकजातिवर्णनम्

साम्ब उवाच

भोजकानां यत्त्वयोक्तमव्यङ्गो देहशोधक: । व्रतबन्धस्त्वसौ प्रोक्तस्तेषां जातिश्च का स्मृता ॥१

व्यास उवाच

ते पृष्टा भवता सर्वे भोजकानां कुमारका: । किमाख्यातं ततस्तैस्तु तदेवाचक्ष्व कृत्स्नश: ॥२

प्रकार श्वास अनिच्छा पूर्वक भीतर बाहर आती जाती रहती है, उसी भाँति नित्य निरन्तर अपने इष्ट देव सूर्य का सदैव नमस्कार करते रहें। वेदोक्त विधान एवं मंत्र पूर्वक जिस प्रकार यज्ञ सुसम्पन्न किया जाता है, उसी भाँति मगों को प्रधान सूर्य मंत्र द्वारा विधान पूर्वक यज्ञों के लिए निष्पन्न करने को बताया गया है। इन्हीं कारणों से ये याज्ञिक कहे जाते हैं।४७-४८। ब्राह्मणों के लिए जिस प्रकार अग्निहोत्र प्रसिद्ध है, उसी भाँति मगों के लिए अध्वहोत्र बताया गया है। उनके यज्ञ का 'अच्छ' नाम मुनि ने बताया है, अत: उनकी बातों में विचार करने की आवश्यकता नहीं है।४९। पाँच बार धूप समर्पित करना सूर्य के लिए बताया गया है, इस प्रकार नियम करने वाले की सिद्धि सदैव उसके हस्तगत रहती है। दंडनायक के समय दोबार धूप देनी चाहिए। तथा तीनों संध्याओं में तीन बार।५०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजकोत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४०।

अध्याय १४१

भोजकजाति का वर्णन

साम्ब ने कहा—आप भोजकों के लिए शरीर शुद्ध करने के हेतु अव्यंग एवं व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) धारण करना बता चुके हैं, अब, इनकी जाति क्या है, बताने की कृपा करें।१

व्यास बोले—तुम्हारे पूँछने पर उन भोजक के कुमारों ने क्या कहा था, उन सभी बातों को बताओ।२

साम्ब उवाच

सन्निवेषा मया प्रोक्ता भोजकानां समन्ततः । ममैव ब्रूत तत्त्वं तद्वर्णः कोऽत्र कथं स्थितः ।।३
ततस्तु भगवान्प्राह वाक्यं वाक्यविशारदः । ये त्वयोक्ताः श्रुताः साम्ब भोजकानां कुमारकाः ।।४
ममैवैते मगा ज्ञेया अष्टौ शूद्रा मदङ्गजाः । एतद्बुद्ध्वा तु वचनं प्रणम्य शिरसा रविम् ।।५
दत्ता भोजकुलोत्पन्ना दशभ्यो दशकन्यकाः । ततस्तु मन्दकेभ्योऽपि दत्ताश्चाष्टौ हि कन्यकाः ।।६
ततो निवेशितं तेषां मया साम्ब पुरं स्मर । दासकन्यास्तु याश्चाष्टौ भोजकन्याश्च या दश ।।७
एतास्तेषां कुमाराणां ज्ञेयास्ता दश चाष्ट च । तत्र ते भोजकन्यासु द्विजैरुत्पादिताः सुताः ।।८
भोजकास्तानाणान्प्राहुर्ब्राह्मणान्दिव्यसंज्ञितान् । दासकन्यासु ये जाता मन्दगैरन्त्यसंज्ञितैः ।।९
मदङ्गा नाम ते ज्ञेयाः सवितुः परिचारकाः । ते च विप्रपुरे तस्मिन्पुत्रदारशुभैर्वृताः ।।१०
स्वधर्मैर्यष्टुमारब्धैः शाकद्वीपेऽर्चितो रविः । नानाविधैर्वैदिकैस्तु मन्त्रैर्मुनिवरोत्तमाः ।।११
अव्यङ्गधारिणो मर्त्याः पूजयन्ते दिवस्पतिम् । दृष्ट्वा व्यङ्गं तु वै तेषां कौतूहलसमन्वितः ।।१२
साम्बः प्राह नमस्कृत्य भूयः सत्यवतीसुतम् । कथं वरोऽयमव्यङ्गः कथितो मुनिसत्तम ।।१३
कुत एष समुत्पन्नः कस्माच्च स शुचिः स्मृतः । बन्धनीयः कदा चायं किमर्थं चैव धार्यते ।।
किं प्रमाणं च भगवन्व्यङ्गश्चायं किमुच्यते ।।१४

साम्ब ने कहा—वहाँ भोजक कुमारों को प्रविष्ट कर उनसे मैंने कहा—मुझे बताइये कि किसकी कौन जाति एवं कहाँ स्थिति है ।३। उसके पश्चात् वाक्य निपुण भगवान् सूर्य बोले ! हे साम्ब ! जिन भोजक कुमारों को तुमने बताया है, उनमें मेरे अंग के दश भाग और आठ मेरे ही अंग से उत्पन्न शूद्र हैं । इसे जानकर मैंने नतमस्तक प्रणाम पूर्वक सूर्य से कहा—दश के लिए भोजककुल की उत्पन्न दश कन्याएँ, तथा उन मंदकों (शूद्रों) के लिए भी आठ कन्याएँ प्रदान की गई हैं ।४-६। इसके पश्चात् जिस नगर में उन्हें मैंने रहने के लिए स्थान दिया है, वह साम्ब पुर (नगर) के नाम से प्रख्यात है । आठ दास कन्याएँ और दश भोजकन्याएँ मिल कर अठारह की संख्या में उन कुमारों को स्त्री के रूप में प्रदान की गई है । वहाँ रहकर द्विजों ने उन भोजक कन्याओं के द्वारा पुत्रों की उत्पत्ति की । जिन्हें दिव्य (देव) संज्ञक भोजक ब्राह्मण कहा जाता है और उसी भाँति दास कन्याओं से उत्पन्न पुत्रों को अन्त्य (शूद्र) संज्ञक मंदग कहते हैं ।७-९। सूर्य की सेवा करने वाले परिचारक (सेवक) मंदग कहे जाते हैं । हे विप्र ! वे लोग भी कल्याण मूर्ति पुत्रों तथा स्त्रियों समेत उस शाकद्वीप के नगर में रहकर अपने अपने धर्मानुसार प्रारम्भ किये गये यज्ञों द्वारा सूर्य की अर्चना करते हैं । उसी भाँति मुनिवर्य लोग भाँति-भाँति के विधान द्वारा वैदिक मंत्रों के उच्चारण करते हुए सूर्य की पूजा करते हैं ।१०-११। वहाँ अव्यंग धारण कर के ही मनुष्य लोग सूर्य की पूजा करते हैं, इसलिए यहाँ उन लोगों के अव्यंग को देख कर साम्ब को महान् कुतूहल हुआ था । वही बात साम्ब ने फिर सत्यवती पुत्र (व्यास) से नमस्कार पूर्वक पूँछा—हे मुनिसत्तम ! यह अव्यंग उत्तम क्यों माना जाता है, यह कहाँ से उत्पन्न हुआ है, कैसे यह पवित्र कहा गया है, किस समय इसे बाँधना चाहिए, क्योंकि इसे लोग धारण करते हैं (पहनते हैं), और हे भगवन् ! इस अव्यंग का प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाई) क्या है ? १२-१४

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वैवं वचनं व्यासो जाम्बवत्याः सुतस्य च ॥१५
उवाच कुरुशार्दूल साम्बं कालीसुतः स तु ॥

व्यास उवाच

एतच्च मे यथोक्तस्त्वं जातिरेषां न संशयः ॥१६
अव्यङ्गस्यापि ते वच्मि लक्षणं गदतः शृणु ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकजातिवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४१।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यङ्गोत्पत्तिनामवर्णनम्

व्यास उवाच

देवता ऋषयो नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ! यक्षरक्षांसि वै भानौ निवसन्ति ऋतुक्रमात् ॥१
तत्र तु वासुकिर्ह्यब्दमुद्यत्सूर्यरथं जवात् । स्वस्थानमाजगामाशु नमस्कृत्य दिवाकरम् ॥२
अव्यङ्गमेव सूर्याय प्रीत्यर्थं वै समर्पयत् । गाङ्गेयभूषितं दिव्यं नातिरक्तसितं शुभम् ॥३
बबन्ध तं च तत्प्रीत्यै मध्यभागे तमात्मनः । नागराजाङ्गसम्भूतो धृतो यस्माच्च भानुना ॥४

सुमन्तु बोले—जाम्बवती पुत्र (साम्ब) की ऐसी बातें सुनकर काली सुत व्यास ने उससे कहा।

व्यास ने कहा—हे कुरुशार्दूल ! इन लोगों की जाति तुम्हें मैंने भली भाँति बता दी है, अब अव्यंग का लक्षण भी बता रहा हूँ सुनो ।१५-१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजक जाति वर्णन नामक एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४१।

अध्याय १४२

व्यंगोत्पत्ति विधि का वर्णन

व्यास ने कहा—ऋतुओं के क्रम से देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, एवं राक्षस ये सभी सूर्य के साथ निवास करते हैं ।१। उनमें वासुकि भी हैं सूर्य का रथ वेग से चलते हुए वर्ष की समाप्ति कर रहा था कि उसी समय वासुकिने सूर्य को नमस्कार कर अतिशीघ्र अपने स्थान पर आकर एक अव्यंग (केंचुल) उनके प्रसन्नार्थ समर्पित किया। उसे ही अव्यंग कहते हैं, स्वर्ण भूषित, दिव्य, न अधिक उज्ज्वल, एवं न अधिक रक्त वर्ण के शुभ उस केंचुल को सूर्य ने प्रसनन्ता प्रकट करते हुए अपने मध्य भाग में बाँध लिया। नागराज के अंग (शरीर) से उत्पन्न उसे सूर्य के धारण करने के नाते (सूर्य) के भक्त भी

ततस्माद्धार्यते सूर्यप्रीत्यै तद्भक्तिमिच्छता । विधानेन च तत्त्वेन शुचिर्भवति भोजकः ॥५
नित्यं च धारणात्तस्य भवेत्प्रीतो दिवाकरः । न धारयन्ति ये त्वेवं भोजकाः पूजकाः रवेः ॥६
सौरहीना न ते याज्या उच्छिष्टा नात्र संशयः । स्मृत्याचारे ते हि भग्ना रविं नार्हन्ति पूजितुम् ॥७
पूजयन्तो रविं ते हि नरकं यान्ति रौरवम् । न वै हसेन्न उत्तिष्ठेद्यावदर्चां लभन्ति ते ॥८
इत्थं ज्ञात्वा न सन्देहो ह्यव्यङ्गेन विना रविः । नागराजस्य संस्पृष्टो ह्यगरसुस्तेन संस्मृतः ॥९
एकवर्णः स कर्तव्यः कार्यसिद्धिकरस्तथा । प्रमाणेनाङ्गुलानां तु शताद्धि शतमुत्तरम् ॥१०
उत्कृष्टोऽयं प्रमाणेन मध्यमो विंशदुत्तरः । शतमष्टोत्तरं ह्रस्वो न तु ह्रस्वतरस्ततः ॥११
तदाकृतिः कृतश्चैष निर्मितो विश्वकर्मणा । मध्यमे भोजकानां तु परः शत उदाहृतः ॥१२
संस्कृतोऽपि विना तेन शुचिर्नैव भवत्युत । तेनास्य धारणाद्वीर शुचिरेव तदा भवेत् ॥१३
हविर्होमादिकाः सर्वा भवन्त्यस्य क्रियाः शुभाः । अव्यङ्गः पतिताङ्गश्च अव्यङ्गोऽथ महीपते ॥१४
एष सारश्च सा रम्या वै ज्ञेया जयनामभिः । अहेरङ्गात्समुत्पन्नो ह्यव्यङ्गस्तु ततः स्मृतः ॥१५
यस्मादस्मादहेरङ्गमव्यङ्गस्तेन चोच्यते । अर्हेति पूजायां धातोः प्रत्ययो ण्वुलतः स्मृतः ॥१६
पूजितश्च पवित्रश्च यस्मात्तेनार्हकः स्मृतः । सारसारतः स्मृतं रूपं प्रधानं सार उच्यते ॥१७

सूर्य की प्रसन्नता के लिए धारण करते हैं। विधान पूर्वक उसे धारण करने से भोजक पवित्र होते हैं।२-५। एवं उसे नित्य धारण करने से सूर्य भी प्रसन्न होते हैं। सूर्य की पूजा करने वाला भोजक विधान पूर्वक उसे धारण नहीं करता है, तो वह आदित्य भक्ति एवं उनके सभी कार्यों से वंचित होता है, तथा उच्छिष्ट होने के नाते पूजा के योग्य नहीं रहता है। वह सदाचार से भ्रष्ट हो जाता हैं अतः सूर्य की पूजा नहीं कर सकता है।६-७। यदि वह सूर्य का पूजन करता ही है, तो उसे रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है। उसके पूजन काल में सूर्य का प्रसन्न होना तो दूर रहा, वे (अपने स्थान से) उठते (चलते) तक नहीं।८। इस प्रकार जान बूझकर बिना अव्यंग धारण किये सूर्य की पूजा न करनी चाहिए। वासुकि के उस केंचुल की भाँति जिसे अव्यंग कहा जाता है, एक रंग का बनाना चाहिए, उससे कार्य की सफलता प्राप्त होती है, वह अंगुल के प्रमाण से दो सौ अंगुल का होता है।९-१०। यह सर्वोत्तम प्रमाण बताया गया है। एक सौ बीस अंगुल का मध्यम, और एक सौ आठ अंगुल का छोटा बनाया जाता है। इससे छोटा किसी भी दशा में होना चाहिए।११। उसकी आकृति वैसी ही होनी चाहिए जैसा कि विश्वकर्मा ने प्रथम निर्माण के समय किया था। भोजकों के लिए सौ अंगुल का भी मध्यम अव्यंग बताया गया है।१२

भोजकों के संस्कार किये जाने पर भी बिना उसे धारण किये वे पवित्र नहीं होते हैं। हे वीर! इसलिए पवित्र होने के लिए उन्हें उसे अवश्य धारण करना चाहिए।१३। हवि, हवन आदि सभी क्रियाएँ इसके धारण करने पर ही शुभ होती हैं।

हे महीपते! अव्यंग, पतितांग, अर्हक और सार यही जय करने वाले इस अव्यंग के नाम हैं। साँप के अंग से उत्पन्न एवं उनके अंग में लिपटे होने के नाते अव्यंग एवं पूजार्थक अर्ह धातु से ण्वुल् प्रत्यय के संयुक्त होने पूजित एवं पवित्र होने के कारण अर्हक, कहा गया है। इसी प्रकार सारसार (व्याकरण के) रूप से सार (प्रधान) शब्द निष्पन्न होता है।१४-१७

षण भक्तौ स्मृतौ धातुस्तस्मात्सारसनः स्मृतः । यस्मादर्चितमेवं तु सुवर्णमणिमौक्तिकैः ॥१८
स ज्ञेयः पतिताङ्गस्तु नित्ययज्ञैरुपाहृतः । इत्येते कथिता वीर अव्यङ्गा व्यङ्गभोजकाः ॥१९
ऋद्धिवृद्धिकरो नित्यं कायशुद्धिकरस्तथा । सर्ववेदमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ॥२०
सर्वभूतमयः साम्ब सर्वलोकमयस्तथा । मध्येऽस्य संस्थितो ब्रह्मा मूले विष्णुर्महामते ॥२१
शशाङ्कमौलिरन्त्ये तु संस्थितो यदुनंदन । ऋग्वेदोऽस्य स्थितो मूले यजुर्वेदोऽस्य मध्यगः ॥२२
अग्रे स्थितः सामवेदो ग्रन्थिराङ्गिरसोऽनघ । पृथ्वी मूलमाश्रित्य स्थिता च यदुसत्तम ॥२३
मूलाशनास्त्वपः साम्ब मध्ये देवो विभावसुः । तासामनन्तरं वात आकाशोऽग्रे समास्थितः ॥२४
मूले स्थितस्तु भूर्लोको भुवर्लोकस्तु मध्यगः । स्वर्लोकश्चाग्रमाश्रित्य स्थितो व्यङ्गस्य यावतः ॥२५
एवं देवमयः सांब एवं लोकमयस्तथा । धारणीयो महाभक्त्या पूजकैः प्रीतये रवेः ॥२६
पूजयन्ति रविं ये वै विनानेन यदूत्तम । पूजाफलं न तेषां स्यान्नरकं च व्रजन्ति हि ॥२७
तथा तेषां भवेन्नित्यमव्यङ्गो भोजकः सदा । अन्यकाले यदुश्रेष्ठ इत्येतत्कथितं तव ॥२८
बन्धने कारणं वीर भूषणानि च सुव्रत ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने व्यङ्गोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४२।

भक्ति अर्थ में प्रयुक्त षण धातु से सारसन (सार) शब्द की निष्पत्ति होती है। सुवर्ण, मणि, एवं मोतियों द्वारा पूजित (विभूषित) और नित्य यज्ञों द्वारा अपनाने के नाते उसे पतिताङ्ग कहा जाता है। हे वीर! व्यंग (उससे शून्य) भोजकों के लिए यही अव्यंग बताया गया है।१८-१९। यह ऋद्धि, वृद्धि एवं शरीर शुद्धि करने वाला, सर्व वेदमय तथा सर्वदेवमय हैं।२०। और हे साम्ब! इसे सर्वभूतमय एवं सर्वलोक भी जानना चाहिए। हे महामते! इसके मध्य भाग में ब्रह्मा, मूल में विष्णु और हे यदुनन्दन अन्त में भालचन्द्र (शिव) स्थित हैं। इसके मूल भाग में 'ऋग्वेद' मध्य भाग में यजुर्वेद, अग्रभाग में सामवेद, तथा हे अनघ! ग्रन्थियों (गाठों) में अथर्ववेद स्थित है। और हे यदुसत्तम! पृथ्वी इसके मूल भाग में स्थित है।२१-२३। हे साम्ब! सूर्यदेव ने उसके मध्य भाग में जल की स्थिति की है, तथा उनलोगों के अनन्तर वायु एवं अग्रभाग में आकाश स्थित है।२४। मूलभाग में भू-लोक, मध्यभाग में भुवर्लोक और अव्यंग के अग्र भाग में स्वर्ग लोक स्थित है।२५। हे साम्ब! इसी प्रकार यह देवमय एवं लोकमय कहा जाता है। इसीलिए सूर्य के प्रसन्नार्थ पूजा करने वाले उनके भक्तों को उसे धारण करने के लिए महान प्रयत्नशील रहना चाहिए।२६। हे यदुश्रेष्ठ! इसे धारण किये बिना जो लोग सूर्य की उपासना करते हैं, उन्हें पूजा फल की प्राप्ति तो होती नहीं प्रत्युत नरक होता है।२७। इस प्रकार भोजकों को नित्य अव्यंग धारण करना चाहिए, केवल अशौच में नहीं। हे यदुश्रेष्ठ! यह (अव्यंग माहात्म्य आदि) इस प्रकार तुम्हेंबता दिया गया। हे वीर! जिस प्रकार अंगों के बाँधने में भूषण कारण होता है, हे सुव्रत! उसी प्रकार यह भी कारण है। (अर्थात् शरीर के अंगों में आभूषण की भाँति यह भी धारण किया जाता है)।२८-२९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में अव्यंगोत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४२।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धूपादिविविधविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वैवमेव साम्बेन व्यासात्सत्यवतीसुतात् । अभ्यङ्गस्य च उत्पत्तिं पुनरागान्महामतिः ॥१
अथागत्य महातेजाः साम्बो गत्वाश्रमं पुनः ॥२
नारदस्य महाबाहोर्नारदं वाक्यमब्रवीत् । कथमुत्क्षिप्य वै धूपं भोजकैः सवितुर्मुने ॥३
स्नानमाचमनं चैवमर्घ्यदानं महात्मने । साम्बस्य वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः ॥४
उवाच कुरुशार्दूल साम्बं जाम्बवतीसुतम् । हन्त ते कथयिष्यामि रवेर्धूपविधिक्रमम् ॥५
स्नानमाचमनं चैव स्वर्णदानं तथैव च । आचान्तस्त्रिस्ततः स्नात्वा वाससी निर्मले शुभे ॥६
अनार्द्रे संवसीतैव पवित्रे परिधाय च । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वाप्याचामेच्च प्रयत्नतः ॥७
जले जलस्थो नाचामेज्जलादुत्तीर्य यत्नतः । अप्सु[1] सूर्यस्तथाग्निश्च माता देवी सरस्वती ॥८
तस्मादुत्तीर्य चाचामेन्नाचामेत्तु जलाशये । उपविश्य शुचौ देशे प्रयतः प्रागुदङ्मुखः ॥९
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च अन्तर्जानुस्तथाचमेत् । प्रसन्नास्त्रिः पिबेत्त्वापः प्रयतः सुसमाहितः ॥१०
सम्मार्जनं तु द्विः कुर्यात्त्रिभिरभ्युक्षणं पुनः । मूर्धानं खानि चात्मानमुपस्पृश्यानु पूर्वशः ॥११

अध्याय १४३

धूपादि विविध विधियों का वर्णन

सुमन्तु बोले—इस प्रकार सत्यवती पुत्र व्यास के द्वारा अव्यंग की उत्पत्ति आदि सुनकर महाबुद्धिमान् साम्ब वहाँ से लौट आया।१। तदुपरांत महातेजस्वी साम्ब ने पुनः महाबाहु वाले नारद के आश्रम में जाकर उनसे कहा—हे मुने ! भोजकों द्वारा सूर्य के लिए धूप, स्नान, आचमन, एवं उन महात्मा के लिए अर्घ्यदान कैसे समर्पित करना चाहिए। मुनिश्रेष्ठ नारद साम्ब की बातें सुनकर उस जाम्बवती पुत्र से बोले—हे कुरुशार्दूल ! सूर्य के लिए धूप विधान का क्रम, स्नान, आचमन और स्वर्णदान मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! । प्रथम तीन बार आचमन कर निर्मल जल से स्नान करके सूखे वस्त्रों तथा हाथों में पवित्र धारण करे और उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर सप्रयत्न आचमन करे।२-७। जल में स्थित रहकर जल में आचमन न करना चाहिए। क्योंकि जल में सूर्य, अग्नि, एवं माता देवी सरस्वती सदैव सन्निहित रहती है।८। इसलिए जलाशय के पार (उसके) बाहर ही आचमन करना चाहिए न कि किसी जलाशय के मध्य में। किसी पवित्र स्थान में पूर्व या उत्तराभिमुख बैठकर जिसमें हांथ, पैर, तथा घुटने का प्रक्षालन किया गया हो, प्रसन्नचित्त हो नियम ध्यान पूर्वक तीन बार आचमन करे।९-१०। दो बार संमार्जन, अतः तीन बार अभ्युक्षण (सेवन), तथा शिर, कान, नाक, आँख और अपनी शरीर आदि का क्रमशः स्पर्श

---

१. जलमध्ये आचमननिषेधे हेतुमाह - 'अप्सु' इत्यादि ।

आचान्तोऽर्कं नमस्कृत्य शौचेषु शुचितामियात् । क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः ॥१२
भवन्तीह क्रियाः सर्वा वृथा तस्य न संशयः । शुचिकामा हि वै देवा वेदैरेवमुदाहृताः ॥१३
इनोपासाकृतश्चैव सर्वे देवाः प्रयत्नतः । शौचमेव प्रशंसन्ति शौचाङ्गैर्हि विधीयते ॥१४
आचान्तो मौनमास्थाय देवागारं ततो व्रजेत् । श्वासरोधनिमित्तं तु प्राणमाच्छाद्य वाससा ॥१५
शिरः प्रावृत्य यत्नेन केशोदकनिवृत्तये । ततः पूजां रवेः कुर्यात्पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ॥१६
गायत्रीं सशिरस्कां च यजमानः प्रयत्नतः । धूपं ततोऽग्रये दद्यात्प्रथमं गुग्गुलाहुतम् ॥१७
पुष्पाञ्जलिं ततो गृह्य तच्छिखायां प्रयत्नतः । रवेर्मूर्धनि तं दद्याद्देवमन्त्रमुदाहरन् ॥१८
ॐ व्रतेन यद्व्रतिनो वर्जयन्ति देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे । तस्मादित्यं प्रसरं च मनामहे यस्तेजसा प्रथमं नाविभाति ॥१९
धूपवेलाः स्मृताः पञ्च धूपेष्वेव तु पञ्चसु । हवनाद्याः क्रियाः पञ्च रक्षिष्येऽहं तथा पुनः ।२०
दण्डनायकवेला तु प्रत्यृक्षे ऋक्षदर्शनात् । नाज्ञावेला प्रदोषस्तु तत्त्वकार्यं विजानता ॥२१
त्रिकालं तु रवेः पूजा कर्तव्या सूर्यदर्शनात् । अर्धोदितस्तु पूर्वाह्णे ततोऽर्द्धस्तु रविर्विभुः ॥२२
हेलयेति च पूर्वाह्णे मध्याह्ने ज्वलनाय च । तथैव मण्डले देयं नीचाह्ने ज्वलनाय च ॥२३
चन्दनोदकमिश्राणि गन्धोदकयुतानि च । पद्मानि करवीराणि तथा रक्तोत्पलानि च ॥२४

करे ।११। पवित्र देश में आचमन के उपरांत सूर्य को नमस्कार करने से पवित्रता प्राप्त होती है । जो बिना आचमन किये इस क्रिया की (आरम्भ एवं समाप्ति) करता है वह नास्तिक कहा जाता है ।१२। एवं उसकी सभी क्रिया व्यर्थ हो जाती है, इसमें संशय नहीं । क्योंकि वेद में बताया गया है कि देवता पवित्रता के ही इच्छुक होते है ।१३। सूर्य की उपासना करने वाले सभी देव प्रयत्न पूर्वक शौच (पवित्रता) की ही प्रशंसा करते हैं और अपने अंगों को पवित्र करके ही क्रियाविधान प्रारम्भ करते हैं ।१४। आचमन के उपरांत मौन हो देवालयों में प्रवेश करें, वहाँ जाकर श्वास रोकने के लिए वस्त्र से आच्छन्न कर तथा केश के जल को रोकने के लिए शिर को भी वस्त्र से बाँधकर सुगन्धित, एवं भाँति-भाँति के पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा प्रारम्भ करें ।१५-१६। गायत्री मंत्र के उच्चारण पूर्वक शिखा बाँधकर यजमान प्रयत्न पूर्वक प्रथम धूप देने के लिए अग्नि में गुग्गुल की आहुति डाले ।१७। पश्चात् पुष्पांजलि लेकर सूर्य के 'ओं व्रतेन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनके शिर की शिखा पर छोड़ दे । पुनः यह कहता भी रहे—व्रत रहने वाले देव, मनुष्य तथा सभी पितर लोग जहाँ नहीं जा सकते, वहाँ वह प्रकाशित सूर्य विस्तृत रूप में रहते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, जो पहले, अत्यन्त तेज होने के नाते (स्पष्ट रूप से) दिखायी नहीं पड़ते ।१८-१९। पाँच प्रकार के धूप प्रदान करने के लिए पाँच समय बताये गये हैं, उसे तथा हवन आदि पाँचों क्रियाएँ भी मैं सुरक्षित रखूँगा ।२०। दण्डनायक वेला तथा सूर्य के रहते तीनों संध्याएँ यही (धूप देने के लिए) पाँचों समय बताया गया है । तत्त्व के जानने वाले विद्वानों को बताया गया है कि प्रदोष समय में धूप देने की आज्ञा नहीं है ।२१। सूर्य के दर्शन होते तीनों काल में पूजन करना चाहिए । अर्द्धोदय होने पर पूर्वाह्न काल में 'हेलि' नाम का उच्चारण कर, मध्याह्न में ज्वलन, उसी प्रकार सायंकाल में (अस्त के पहले) उसी ज्वलन नाम के उच्चारण पूर्वक अर्घ्य प्रदान करें ।२२-२३। चन्दनोदक मिश्रित गन्ध, कमल, करवीर, रक्तकमल, कुसुमोदक मिश्रित कुरुण्टक पुष्प, एवं उत्तम

कुसुमोदकमिश्राणि कुरुंटकुसुमं तथा । गन्धादीनि च दिव्यानि कृत्वा वै ताम्रभाजने ॥२५
धूपं दत्त्वाग्नये वीर प्रयत्नाद्गुग्गुलाहुतिम् । अर्घ्यपात्रं तदा गृह्य कुर्यादावाहनं रवेः ॥२६
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकम्पय मां देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥२७
अनेनावाहनं कृत्वा जानुभ्यामवनीं गतः । रवेर्निवेदयेदर्घ्यमादित्यहृदये गतः ॥२८
ॐ नमोभगवते[1] आदित्याय विश्वाय खेशाय ब्रह्मणे लोककर्तृणे। ईशानाय पुराणाय सहस्राक्षाय ते नमः ॥२९
सोमाय ऋग्यजुरथर्वाद। ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ब्रह्मणे मुण्डे मध्ये पुरतः ॥
आदित्याय नमः ॥३०

नारद उवाच

सावित्र्याश्च परे तन्त्रे त्रैलोक्यत्राणकारिणे । परितः परिगृह्याथ धूपभाजनमुत्क्षिपेत् ॥३१
निवेदयेत्ततो धूपं वाचमेतामुदीरयेत् । त्वमेक एव रुद्राणां वसूनां च पुरातनः ॥३२
देवानां गीर्भिरभितः संस्तुतः शाश्वतो दिवि । पूर्वाह्णे च तथा तेन मध्याह्ने चापरेण तु ॥३३
ॐ नमो भगवते ज्ञानात्मने त्वां च । विष्णोस्तत्परमं पदं सदा पश्यति सूरयः ॥३४
दिवाकरस्तु सायाह्ने मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत् । ॐ नमो वरुणाय शम्भवे ॥३५

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३६

गन्धादि ताँबें के पात्र में रख कर हे वीर ! प्रथम गुग्गुल की धूप अग्नि को अर्पित करे पश्चात् अर्घ्यपात्र हाथ में लेकर सूर्य का आवाहन करें ।२४-२६। हे सूर्य हे सहस्रांशो ! हे तेजोराशिवाले, एवं हे जगत्पते ! यहाँ आचमन करने की कृपा करते हुए हे दिवाकर ! इस अर्घ्य को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत करें ।२७। इस मंत्र से आवाहन करने के पश्चात् घुटने के बल बैठकर हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।२८। पुनः ओं कार उच्चारण पूर्वक भगवान् आदित्य, विश्वरूप, आकाशस्थित, लोक रचयिता ब्रह्मा, ईशान, प्राचीन, उस सहस्र आँख वाले को नमस्कार है ।२९। सोम, ऋग, यजु, अथर्व रूप, ओं, भूर्भुवः स्वः आदि ऐसा कहकर आदित्य के लिए नमस्कार है, ऐसा कहे ।३०

नारद ने कहा—सावित्री से परे (दूर) रहने वाले, त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले, आप हैं—ऐसा कहते हुए धूप वाले पात्र को लेकर उसे चारों ओर घुमाते हुए धूप दान करे और यह कहता रहे कि आप रुद्रों में प्रधान, वसुओं में पुरातन (श्रेष्ठ) आकाश (स्वर्ग) में देवताओं द्वारा नित्य स्तुति किये जाने वाले हैं इस प्रकार पूर्वाह्ण, मध्याह्न, एवं अपराह्ण काल में उपरोक्त का कथन करते हुए अर्घ्य प्रदान करें ।३१-३३। पुनः सायं काल में इस मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करें। ओंकार के उच्चारण पूर्वक, भगवन्, ज्ञानात्मन, तुम्हें नमस्कार है, जिसे ज्ञानी लोग विष्णु के उस परम पद को सदैव देखा करते हैं । उसके लिए 'दिवाकरस्तु सायाह्ने' यही मन्त्र है । वरुण, एवं शंभु रूप सूर्य को नमस्कार है, 'ओं आकृष्णेन रजसा' इस

---

१. ॐ नमो भगवते आदित्याय विश्वाय खेशाय ब्रह्मणे लोककर्तृणे ईशानाय पुराणाय सहस्राक्षाय ते नमः ॐ सोमाय ऋग्यजुरथर्वाय ।

अनेन विधिना दत्त्वा धूपं सूर्याय भोजकः। उत्क्षिपेच्चैव धूपेन विशेद्गर्भगृहं ततः ।।३७
ततः प्रविश्य धूपं तु प्रतिमायै निवेदयेत् । मन्त्रेण मिहिरायेति निक्षुभायेति नित्यशः ।।३८
ततो राज्ञै नमश्चेति निक्षुभायै ततो नमः । दण्डनायकसंज्ञाय पिङ्गलाय च वै नमः ।।३९
तथा राज्ञाय स्रौषाय तथेशाय गरुत्मते । ततः प्रदक्षिणं कुर्वन्दिग्देवेभ्यो निवेदयेत् ।।४०
दिण्डिने तु ततो दद्याद्धेमन्ताय यदूत्तम । महेश्वराय दद्यात्तु तथा व्योमाय यादव ।।४१
(विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । रुद्रेभ्यो नमः) । ॐ ब्रह्मणे मुण्डपतये आदित्याय पुरुषेश्वराय सूर्याय नमोनमः।।४२
ॐ अनेककान्तये नत्वा शेषाय वासुकितक्षककर्कोटकाय पद्मशङ्खकुलिकेभ्यो नागराजेभ्यो नमः।।४३
तलसुतलपातालातलवितलरसातलादिवासिभ्यो दैत्यदानवपिशाचेभ्यो नमः । ततः प्रदक्षिणं कुर्यान्मातृकाभ्यो नमोनमः (ॐ ग्रहेभ्यो नमः ।।४४ ॐ दण्डनायकाय नमः। ॐमार्तंडाय नमः। ॐ विनायकाय नमः।।४५)
एवमुद्दिश्य नामानि धूपं दत्त्वा वरानन । उत्क्षिप्तो यत्र वै धूपो मुक्त्वा तत्रैव तं पुनः ।।४६
सूर्यगुप्तैरभिष्टूय एवं विज्ञाय ते ततः । अर्चितस्त्वं यथा शक्त्या मया भक्त्या विभावसो ।।
ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं ददस्व मे ।।४७
एवं त्रिषवणं स्नात्वा योऽर्चयेत्प्रणतो रविम् । विधिना तु यथोक्तेन सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।४८
यश्चैवं कुरुते नित्यं यथोक्तं धूपविस्तरम् । स पुत्रवानरोगी च मृतःसंलीयते रवौ ।।४९
विधिना तु यथोक्तेन क्रियमाणानि यत्नतः । सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति सफलानि भवन्ति च ।।५०

मंत्र के द्वारा सूर्य को धूप प्रदान कर भोजक मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हो जाय वहाँ उस प्रतिमा के लिए इस मंत्र द्वारा धूप अर्पित करे मिहिर, निक्षुभा एवं राज्ञी को नित्यशः नमस्कार है, पश्चात् दंडनायक पिंगल, राज्ञ, स्रौष, ईश, गरुड़ का उच्चारण करते हुए प्रदक्षिणा पूर्वक दिग्देवताओं को धूप अर्पित करें।३४-४०। हे यदूत्तम ! पश्चात्, दिंडी, हेमन्त, महेश्वर, व्योम, को क्रमशः धूप प्रदान करके विश्वदेव तथा रुद्र के लिए नमस्कार है, ब्रह्म, मुण्डपति, आदित्य तथा पुरुषेश्वर, सूर्य के लिए नमस्कार है।४१-४२। पुनः अनेक भाँति की कांति वाले को नमस्कार करके शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, शंख, एवं कुलिक नागराजों के लिए नमस्कार है ।४३। तल, सुतल, पाताल, अतल, वितल, रसातल, आदि लोकवासी दैत्य, दानव, एवं पिशाचों को नमस्कार है । उपरांत प्रदक्षिणा पूर्वक मातृकाओं को नमस्कार है, ग्रहों, दण्डनायक, मार्तण्ड एवं विनायक को नमस्कार है।४४-४५। जो उच्चमुख वाले हैं इस प्रकार कहते हुए सब लोगों को धूप प्रदान करे पश्चात् जहाँ से उसे उठाया था, वहीं वह धूप पात्र रख दे । तदनन्तर सूर्य की प्रार्थना करे कि—हे विभावसो ! मैंने अपनी शक्ति एवं भक्ति पूर्वक आप की पूजा की है हे नाथ ! अब मुझे लोक, परलोक की कार्य सफलता आप प्रदान करें।४६-४७। इस प्रकार जो त्रैकालिक स्नान करके विधान पूर्वक विनम्र हो सूर्य की पूजा करता है, उसे अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है।४८। जो उक्त विधान के अनुसार विस्तारपूर्वक नित्य धूप प्रदान करता है, उसे पुत्र एवं आरोग्य के सुखानुभव के उपरांत सूर्य के सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।४९। इस प्रकार उक्त विधान द्वारा यत्न पूर्वक पूजा करने पर सभी

पुष्पं श्रेष्ठं यदा न स्यात्पत्राणि समुपाहरेत् । पत्रं न स्यात्ततो धूपं धूपो न स्यात्ततो जलम् ।।५१
सर्वं न स्याद्यदा चैव प्रणिपातेन पूजयेत् । अशक्तः प्रणिपातस्य मनसा पूजयेद्रविम् ।।५२
असम्भवे तु द्रव्याणां विधिरेष प्रकीर्तितः । द्रव्याणां सम्भवे चैव सर्वमेवोपहारयेत् ।।५३
मन्त्रैः कर्मयुतो यस्तु मित्रे धूपं निवेदयेत् । उच्चारणाच्च वै तेषां धूपप्रीतो भवेद्रविः ।।५४
शिरो नासामुखं चैव भृशमावृत्य यत्नतः । पूजयेद्भास्करं वीर शिथिलं[1] तु न कारयेत् ।।५५
नलिनेन तु राजेन्द्र नरो याति दिवाकरम् । तस्माद्युक्तं सदा कार्यं पूज्यते च दिवाकरः ।।५६
तेऽश्वमेधफलं प्राप्य सूर्यलोकं व्रजन्ति हि । धूपेन पूज्यमानं तु नराः पश्यन्ति यादव ।।५७
यान्ति ते परमं स्थानं यत्र पश्यन्ति सूरयः । क्रियमाणं तथार्कं च भक्त्या पश्यन्ति ये नराः ।।
सर्वान्कामानिह प्राप्य ते यान्ति परमं पदम् ।।५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
धूपादिविविधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४३।

कार्यों की सफलता प्राप्त होती है ।५०। यदि उत्तम पुष्पों का अभाव न हो तो यत्न द्वारा उसके अभाव में धूप और धूप के अभाव में केवल जल द्वारा पूजन करना चाहिए ।५१। सभी का अभाव हो तो, केवल विनम्र हो कर सूर्य की पूजा करे । अशक्त पुरुष नम्र होकर मन द्वारा (मानसिक) सूर्य की पूजा करे ।५२। द्रव्य न होने पर यह विधान बताया गया है, द्रव्य के रहते हुए सभी उपहारों समेत पूजन करने का विधान है ।५३। कर्म करने वाला जो कोई पुरुष मंत्रोच्चारण पूर्वक सूर्य को धूप प्रदान करता है, उसके ऊपर सूर्य अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं ।५४। शिर, नाक, एवं मुख ढाँक कर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । हे वीर ! इसमें शिथिलता कभी न करे ।५५। हे राजेन्द्र ! सूर्य के लिए कमलिनी पुष्प अवश्य प्रदान करे, क्योंकि उससे मनुष्य को सायुज्य मोक्ष प्राप्त होता है । इसलिए पूजन के समय उन्हें कमलिनी युक्त सदैव करना चाहिए ।५६। जो ऐसा करते हैं, उन्हें अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । हे यादव ! जो सूर्य के लिए धूप प्रदान करते हैं, उन्हें उस परम पद की प्राप्ति होती है, जिसे अन्य कोई ज्ञानी देख नहीं सकता है । जो लोग भक्तिपूर्वक (पूजनके) कार्यों द्वारा सूर्य का दर्शन करते हैं, उन्हें यहाँ समस्त कामनाएँ सफल होने के पश्चात् परम पद की प्राप्ति होती है ।५७-५८

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में धूपादि विविध वर्णन
नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४३।

---

१. विवृतमिति पाठः ।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकस्योत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथाजगाम भगवान्व्यासो द्वारवतीं पुरीम् । द्रष्टुं नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।१
तमागतमृषिं दृष्ट्वा वासुदेवो विशांपते । अभ्युत्थाय महातेजाः पूजयामास भारत ।।२
स्वयमेवासनं दत्त्वा पाद्यमर्घ्यं तथैव च । पप्रच्छ प्रयतो भूत्वा व्यासं सत्यवतीसुतम् ।।३
य एते भोजका विप्रा आनीता मत्सुतेन वै । शाकद्वीपमितो गत्वा ज्ञानिनो मोक्षगामिनः ।।४
तान्दृष्ट्वा रूपतो विप्र प्रवेशात्कर्मतस्तथा। कौतूहलं समुत्पन्नं हर्षश्च परमो मम ।।५
कथमेते क्षणमपि तिष्ठन्ते पृथिवीतले । येषां रविः सदा पूज्यस्तेषां मुक्तिः सदा वसेत् ।।६
नागत्वा भोजकत्वं हि मोक्षमाप्नोति कश्चन । इदं मे मनसो ब्रह्मन्सदा सम्प्रतिभाति वै ।।७

व्यास उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं शङ्खचक्रगदाधर । धन्या एते महात्मानो भोजका नात्र संशयः ।।८
ये पूजयन्ति सततं भानुमन्तं दिवाकरम् । ज्ञानिनः कर्मनिष्ठाश्च सदा मोक्षगतिं गताः ।।९
यजन्ते सततं भानुं बलिपुष्पफलैस्तथा । अन्नेनौषधिभिश्चैव आज्यहोमैश्च कृत्स्नशः ।।१०

अध्याय १४४

भोजक की उत्पत्ति का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसके उपरांत भगवान् व्यास का शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले नारायण देव का दर्शन करने के लिए द्वारवती पुरी में आगमन हुआ ।१। हे विशांपते ! हे भारत ! उन ऋषि को आये हुए देखकर महातेजस्वी कृष्ण ने उठ कर उनका स्वागत सत्कार किया ।२। उन्हें स्वयं आसन पर बैठाकर पाद्य, एवं अर्घ्य-जल प्रदान करने के उपरांत सत्यवती पुत्र व्यास से उन्होंने पूछा । मेरे पुत्र (साम्ब) द्वारा शाकद्वीप से जो ये भोजक ब्राह्मण गण यहाँ लाये गये हैं, हे विप्र ! उन मोक्षगामी ज्ञानियों के रूप तथा इस नगर में रहने और उनके कर्मों को देखकर मुझे परम हर्ष एवं कौतूहल हो रहा है ।३-५। कि ये लोग क्षणमात्र भी इस पृथ्वी तल पर कैसे ठहरे हुए हैं, क्योंकि जिनके पूज्य सूर्य हैं, उनकी सदैव के लिए मुक्ति हो जाती है । हे ब्रह्मन् ! मेरे मन में इस समय यही धारणा हो रही है कि बिना भोजकों के धर्म अपनाये कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है ।६-७

व्यास बोले— हे शंख, चक्र, एवं गदा को धारण करने वाले ! आप जो कह रहे हैं, वह वैसा ही है । ये महात्मा भोजक गण धन्य हैं, इसमें संशय नहीं है ।८। जो लोग निरन्तर तेजस्वी सूर्य की पूजा करते हैं, वे कर्मनिष्ठ ज्ञानी सदैव मुक्त रहते हैं ।९। ये (भोजक) बलि, पुष्पों, फलों, अन्न, औषधि तथा घी के हवन द्वारा निरन्तर सूर्य की पूजा करते हैं ।१०। नित्य हवन के उपरांत होम भी करते हैं । क्योंकि पर

होनं च शाश्वतं कृत्वा परं होमं ततः स्थिताः । परहोमस्य करणात्पूतात्मानो ह्यकल्मषाः ॥११
विशन्ति परमां दिव्यां भास्करीं तैजसीं कलाम् । कर्मणः साधने चैका तत्र चाग्नौ प्रतिष्ठिता ॥१२
वायुमार्गस्थिता व्योम्नि द्वितीयान्तः प्रकाशिका । ततः परं तृतीया तु तत्स्मृतं सूर्यमण्डले ॥१३
मण्डलं तच्च सवितुर्दिव्यं ह्यजरमव्ययम् । तस्यासौ पुरुषो मध्ये योऽसौ सदसदात्मकः ॥१४
क्षराक्षरस्तु विज्ञेयो महासूर्यस्तथैव च । निष्कलः सकलश्चापि द्वौ च तस्य प्रकल्पितौ ॥१५
अक्षरः सकलश्चैव सर्वभूतव्यवस्थितः । सतत्त्वः सकलः प्रोक्तस्तत्त्वहीनस्तु निष्कलः ॥१६
तृणगुल्मलतावृक्षवृकसिंहद्विजाधिपान् । सुरसिद्धमनुष्यांश्च स्थलजाञ्जलजान्हरेत् ॥१७
व्यवस्थितः स सर्वत्र सर्वेषामन्तरात्मनि । यदा कल्पात्मकश्चैव द्वितीयां तनुमाश्रितः ॥१८
निष्कलस्तु सदा ज्ञेयः संस्थितस्तैजसीं कलाम् । हिमं घर्मं च वर्षं च त्रैलोक्ये कुरुते सदा ॥१९
द्वितीया या तनुस्तस्य अक्षरं तत्परं पदम् । देवयानं तु पन्थानं कर्मयोगेन संस्थिता ।२०
आदित्यसिद्धान्तरिताः साङ्ख्ययोगविदश्च ये । तेऽभिगच्छन्ति तत्स्थानं स मोक्षः परिकीर्तितः ॥२१
निर्द्वन्द्वो निर्गमश्चैव तत्र गत्वा न शोचति । वेदेषु ब्रह्म वदन्ति ध्यायन्ते तत्त्ववेदिनः ॥२२
ओंकारं तत्त्वतश्चापि ध्यायन्ते पुरुषोत्तम । त्र्यक्षरं च तमोंकारं सार्धमात्रात्रये स्थितम् ॥२३
वदन्ति चार्धमात्रस्थं मकारं व्यञ्जनात्मकम्। ध्यायन्ति ये मकारीयं ज्ञानं ते हि सदात्मकम् ॥२४

होम के करने से ही पवित्र एवं पाप मुक्त होते हैं ।११। इसीलिए ये परम दिव्य सूर्य की तेजस्वी कला में प्रविष्ट (सायुज्य मुक्त) होते हैं । सूर्य की एक कला, कर्मों के साधन के लिए अग्नि में स्थित हैं ।१२। इसी प्रकार दूसरी अन्तः प्रकाशिका कला आकाश में वायु-मार्ग में स्थित है, उसके पश्चात् तीसरी कला सूर्य मण्डल में स्थित है ।१३। सूर्य का वह मण्डल दिव्य, अजर, एवं अव्यय (अविनाशी) है उसके मध्य भाग में जो यह सदसदात्मक, क्षर, अक्षर रूप दिखायी देता है, यही महा सूर्य है निष्कल और सकल भेद से उसकी दो भाँति की कल्पना की जाती है ।१४-१५। वह अक्षर (अविनाशी) कलारहित, एवं सभी प्राणियों में व्यवस्थित हैं । तत्वविशिष्ट (सूर्य) कला सहित होने के नाते सकल और कला हीन होने से निष्कल कहे जाते हैं ।१६। तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, वृक (भोज्या), सिंह, द्विजाधि, सुर, सिद्ध, मनुष्य एवं स्थलों तथा जलों में उत्पन्न होने वाले सभी का ये अपहरण करते हैं ।१७। इस प्रकार यह सभी के अन्तरामा में सदैव व्यवस्थित रहते हैं । जब ये दूसरी कला को अपनाते हैं, उस समय इन्हें कलात्मक कहा जाता है ।१७-१८। अपनी तेजस्वी कला में स्थित रहने पर इन्हें सदैव निष्कल कहते हैं । शीत, धूप एवं वर्षा तीनों लोकों में सदा करते रहते हैं ।१९। इनकी दूसरी कला अक्षर (नाश हीन), तथा परं पद रूप है, देवमार्ग से होकर कर्मयोगी लोग उसे प्राप्त करते हैं ।२०। आदित्य सिद्धान्त वाले, एवं सांख्यवादी भी उस स्थान की प्राप्ति करते है क्योंकि वही मोक्ष रूप हैं ऐसा कहा गया है।२१। वहाँ पहुँच कर जीव निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण दुःखादि से मुक्त) एवं निर्भय (जन्म मरण हीन) होकर चिंतित कभी नहीं होता है। उसे ही वेद में ब्रह्म, तथा तत्त्व ज्ञानी लोग उसी का ध्यान करते हैं।२२। हे पुरुषोत्तम ! तत्त्व ज्ञान पूर्वक ही ओंकार का ध्यान किया जाता है। ओम् शब्द में तीन अक्षर एवं साढ़े तीन मात्रा स्थित है।२३। व्यंजनात्मक मकार की अर्धमात्रा बतायी गई है। मकारीय (मकार जन्य) ज्ञान का जो ध्यान करता है, वह

मकारो भगवान्देवो भास्करः परिकीर्तितः । मकारध्यानयोगाच्च मगा ह्येते प्रकीर्तिताः ॥२५
धूपमाल्यैर्युतश्चापि उपहारैस्तथैव च । भोजयन्ति सहस्रांशुं तेन ते भोजकाः स्मृताः ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकस्योत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकज्ञानवर्णनम्

वासुदेव उवाच

ज्ञानोपलब्धिं विप्रेन्द्र भोजकानां महामुने । ब्रूहि तत्त्वं द्विजश्रेष्ठ कौतुकं परमं मम ॥१

व्यास उवाच

इमां ज्ञानोपलब्धिं तु निबोध गदतो मम । अस्थिस्थूलं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥
चर्मावनद्धं दुर्गंधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥२
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥३
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता । समता सर्वभूतेषु एवं मुक्तस्य लक्षणम् ॥४

सदात्मक का ध्यान करता है ।२४। क्योंकि मकार रूप भगवान भास्कर देव बताये गये हैं, मकार के ही ध्यान करने से वे लोग मग कहलाते हैं ।२५। इस प्रकार धूप, माला, एवं उपहार प्रदान पूर्वक सूर्य को भोजन कराने के नाते वे भोजक कहे जाते हैं ।२६

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजक की उत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४४।

अध्याय १४५

भोजकज्ञान का वर्णन

वासुदेव ने कहा—हे विप्रेन्द्र, हे महामुने ! भोजकों की ज्ञानप्राप्ति कैसे हुई, उसको मार्मिक व्याख्या पूर्वक बताने की कृपा करें । हे द्विजश्रेष्ठ ! (उसके सुनने के लिए) मुझे महान् कौतूहल हो रहा है।१

व्यास बोले—मैं उनकी ज्ञान प्राप्ति बता रहा हूँ, (सावधान होकर) सुनिये ! यह शरीर, मोटी-मोटी अस्थियों (हड्डियों) से पूर्ण, स्नायु (वायुवाली नाडी) समेत, मांस और शोणित से लिप्त, चमड़े से बँधा, मल, मूत्र आदि दुर्गन्ध से भरा है ।२। इसमें जरा (बुढापा) और शोक का निश्चित स्थान है, अतः रोगमन्दिर, आतुर, रज से मलीन, अनित्य (नाशवान्) एवं प्राणी मात्र का आवास स्थान रूप इस शरीर का परित्याग कर देना चाहिए ।३। कपाल को भोजन पात्र बनाना वृक्ष के फूल फल भोजन करना, फटे-पुराने वस्त्र पहनना एवं किसी से सहायता न चाहना और सभी प्राणियों में समान दृष्टि

तिले तैलं गवि क्षीरं काष्ठे पावकसन्ततिः । उपायं चिन्तयेदस्य धिया धीरः समाहितः ॥५
प्रमाथि च प्रयत्नेन मनः संयम्य चञ्चलम् । बुद्धीन्द्रियाणि संयम्य शकुनानिव पञ्जरे ॥६
इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तृप्यते । सततममृतस्यैव जनार्दन महामते ॥७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च[1] किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥८
ध्यायमानस्य दह्यन्ते चान्ते दोषा यथाग्निना । तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥९
चित्तं चित्तेन संशोध्य भावं भावेन शोधयेत् । मनस्तु मनसा शोध्यं बुद्धिं बुद्ध्या तु शोधयेत् ॥१०
चित्तस्यातिप्रसादेन भाति कर्म शुभाशुभम् । शुभाशुभविनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥
निर्ममो निरहङ्कारस्ततो याति परां गतिम् ॥११
पर्वाह्णे लोहितं रूपं प्रथममृङ्ममयं स्मृतम् । यजुर्मयं द्वितीयं तु श्वेतं माध्याह्निकं स्मृतम् ॥१२
कृष्णं तृतीयं सार्याह्णे साम्नो रूपं तु तत्स्मृतम् । प्रथमं राजसं देव द्वितीयं सात्त्विकं स्मृतम् ।१३
तृतीयं तामसं रूपं त्रैगुण्यं तस्य कल्पितम् । त्रयाणां व्यतिरेकेण चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ॥१४
ज्योतिः प्रकाशकं सूक्ष्मं प्रोक्तं देवनिरञ्जनम् । चतुर्थं तु वेदविदः सूर्यसिद्धान्तवेदिनः ॥१५
ॐकारप्रणवैर्युक्ता ध्याननिर्धूतकल्मषाः । स्थिताः पद्मासने वीरा नाभिसंन्यस्तपाणयः ॥१६

रखना, ये सब मुक्तहोने के लक्षण हैं ।४। तिल में तेल, गाय में क्षीर, एवं काष्ठ में अग्नि के अदृष्ट रहने की भाँति सभी पदार्थों में अदृष्ट परमातमा की प्राप्ति रूप मोक्ष के लिए धीर समाधि निष्ठ पुरुष को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह किस उपाय द्वारा प्राप्त होगा ।५। (प्रथम) प्रयत्न पूर्वक मंथन करने वाले चंचल मन को अपने अधीन कर पिंजड़े में पक्षियों की भाँति दुद्धि इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) को अपने अधिकार में रखकर हे जनार्दन, हे महामते ! अमृत धारा में प्राप्त होने की भाँति प्राणी वश में की हुई इन्द्रियों से प्राप्ति करता है ।६-७। प्राणायाम करने से सभी दोष, धारणा से पाप, प्रत्याहार (इन्द्रियों को विषयों से रोकने से) (विषयों के) संसर्ग (साथ) और ध्यान करने से संसारी गुणों की निवृत्ति होती है ।८। अग्नि द्वारा धातु जन्य दोष नाश होने की भाँति ध्यान करने वाले पुरुष के इन्द्रिय जन्य दोष प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं ।९। चित्त द्वारा चित्त भाव, मन से मन, बुद्धि से बुद्धि का संशोधन (शुद्ध) करना चाहिए ।१०। चित्र के अत्यन्त निर्मल होने पर शुभाशुभ कर्म का ज्ञान उत्पन्न होता है । अनन्तर शुभाशुभ (कर्म) से मुक्त होने पर निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण आदि सुख दुःख से रहित), निष्परिग्रह (संसारी वस्तुओं का त्याग), निर्मम (ममत्व शून्य), एवं निरहंकार (अभिमान रहित) होकर उत्तम गति प्राप्त करता है ।११। पूर्वाह्ण काल में रक्त वर्ण रूप ऋंग्वेद मय सूर्य का प्रथम, मध्याह्न काल में यजुर्मय श्वेत रूप दूसरा और सायंकाल में साममय कृष्ण वर्ण रूप (सूर्य का) तीसरा (रूप) बताया गया है । हे देव ! पहला राजस्, दूसरा सात्विक तथा तीसरा तामस् रूप है इस प्रकार तीनों गुण वाला रूप उसका (सूर्य) बताया जाता है । इन तीनों से पृथक चौथा सूर्य मण्डल रूप है ।१२-१४। ज्योतियों के प्रकाशक, सूक्ष्म, एवं निरज्जन, उस मण्डल् को सूर्य सिद्धान्त एवं वेद के निष्णात विद्वानों ने चौथा रूप बताया है ।१५। ओंकार रूप प्रणव से युक्त ध्यान द्वारा निष्पाप होकर पद्मासन पर स्थित हो और नाभि पर

---

१. वायुना चापि किल्बिषम् ।

सुषुम्नानाडिकामार्गं कुम्भरेचकपूरकैः । त्रिभिः संशोध्य तान्पञ्च मरुतो देहमध्यगान् ।।१७
पदाङ्गुष्ठान्वितः स्विन्नमूर्ध्वमुत्क्षेपयेत्क्रमात् । नाभिदेशे तु तं दृष्ट्वा देवमग्निमनामयम् ।।१८
सोमं च हृदये दृष्ट्वा मूर्ध्नि चाग्निशिखां ततः । वातरश्मिभिरासाद्य तं भित्त्वा मण्डलं परम् ।।१९
ततः परं तु यो गच्छेद्योगस्थः सूर्यमण्डलम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति तत्सौरं परमं पदम् ।।२०
देवार्चनं महाबाहो कीर्तितः केशिसूदन । प्रथमं हृदयं स्थानं द्वितीयं चाग्निमाश्रितम् ।।२१
तृतीयं नाभिसंस्थं च चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ।।२२

स्थानं परं वै परमात्मसंस्थं भानोः सुरेशस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।
ज्ञेयः स मोक्षश्च नृणां स एव संसारविच्छित्तिकरं पदं ततः ।।२३
इदममृतसमं परस्य वेद्यं किरणसहस्रभृतो हितं जनानाम् ।
ऋषिचरितमवेत्य तत्त्वसारं व्यपगतमोहधियः प्रयान्तिमोक्षम् ।।२४
इदं मगानां चरितं मया ते प्रख्यापितं यानवरेण युक्तम् ।
ज्ञात्वात्विमं मोक्षविदो वदन्ति सिद्धाश्च तत्स्थानमवाप्नुवन्ति ।।२५

यन्मयोक्तमिदं ज्ञानं देयं श्रद्धावतां नृणाम् । नास्तिकानामबुद्धीनां न देयं भूतिमिच्छता ।।२६

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासो भोजकज्ञानमुत्तमम् । नारायणं महाबाहो जगमायतनं हरेः ।।२७

हाँथ रखे।१६। उपरान्त कुंभक, रेचक, तथा पूरक रूप प्राणायाम द्वारा सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग का संशोधन करते हुए पैर के अंगूठे से लेकर समस्त शरीर में चलने वाले उन पाँचों वायुओं को क्रमशः उपर की ओर सप्रयत्न ले जाये। नाभि प्रदेश में देव के अग्नि एवं अनामय रूप, हृदय स्थल में सोमरूप, शिर में अग्निशिखा रूप के दर्शन करके उसके पश्चात् वात एवं रश्मि द्वारा उसे पुनः ध्यानाकृष्ट कर के उत्तम मण्डल का भेदन करे।१७-१९। पश्चात् योग में स्थित होकर सूर्य मण्डल की प्राप्ति करता है, और जहाँ पहुँचकर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है. उसे परम सौर पद कहते हैं।२०। हे महाबाहो ! इस प्रकार मैंने देवार्चन बता दिया है। हे केशिसूदन ! प्रथम हृदय स्थान, दूसरे अग्नि स्थान, तीसरा नाभि स्थान चौथा सूर्य मण्डल स्थान (सूर्य के ध्यान के लिए) बताया जाता है।२१-२२। उस परम पद के विद्वान् उसी परम स्थान को जहाँ परमात्मा स्थित रहता है, देवेश भानु का परम स्थान कहते हैं। मनुष्यों के लिए वही ज्ञेय एवं मोक्षरूप है और वहीं स्थान उसके संसार का नाश करता है।२३। अमृत के समान यही स्थान, जो दूसरों के लिए जानने योग्य, सहस्र किरण रूप तथा भक्त एवं मनुष्यों का सदैव हितैषी है। इसी को अपना कर ऋषियों ने मोक्ष प्राप्त किया है, अतः उनके चरित के ज्ञान पूर्वक तत्व सार की प्राप्ति द्वारा मोह नष्ट कर शुद्धि बुद्धि वाले पुरुष मोक्ष प्राप्त करते है।२४ मगों के इस चरित को मैंने तुम्हें बता दिया। मोक्ष के ज्ञाता इसे ही मोक्ष कहते हैं, जो सुन्दर विमानों पर बैठ कर प्राप्त किया जाता है और इसे सिद्ध लोग भी उस स्थान पर की प्राप्ति करते रहते हैं।२५। इस मेरे बताये हुए ज्ञान को श्रद्धालु मनुष्यों को प्रदान करना चाहिए, अपना ऐश्वर्य चाहने वाला पुरुष कभी भी नास्तिक एवं मूर्ख पुरुष को इसे न प्रदान करे।२६

सुमन्तु बोले—इस प्रकार भगवान् व्यास ने नारायण को भोजकों का उत्तम ज्ञान बताकर हे

ख्यातो यस्त्रिषु लोकेषु गंगया परितोषितः । बदर्या मण्डितो वीर नरनारायणाश्रमः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भोजकज्ञानवर्णनं
नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४५।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकवर्णनम्

शतानीक उवाच

य एते भोजकाः प्रोक्ता देवदेवस्य पूजकाः । नान्यं भोज्यमथैतेषां ब्राह्मणैश्च कदाचन ॥१
भास्करस्य प्रिया ह्येते पूज्यत्वं च तथा गताः । दिव्याश्चैते स्मृता विप्रा आदित्याम्भःसमुद्भवाः ॥२
अभोज्यत्वं कथं याता भोजकास्तद्वदस्व मे । किं कुर्वाणास्तथा कर्म भोज्यतां यान्ति मे वद ॥३

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो वासुदेवो महीपते । कृतवर्मणा पुरा राजंस्तथा साम्बो महाबलः ॥४
गतौ साम्बपुरीं वीर तथा नारदपर्वतौ । भुक्तवन्तो गृहे सर्वे भोजकस्य महात्मनः ॥५
आदित्यकर्मणो लोके देवान्नख्यातिमागताः । तेन ते पूजिताः सर्वे भक्त्या भोज्यैरनेकशः ॥६
आगतास्ते पुरीं वीर पुण्यां द्वारवतीं विभोः । तावृषी दिवमारुढौ राजन्नारदपर्वतौ ।७

हे महाबाहो ! हे वीर ! विष्णु के उस लोक को प्रस्थान किया जो तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त गंगा एवं बदरी से भूषित तथा नरनारायणाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है ।२७-२८

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भोजकज्ञान वर्णन
नामक एक सौ पैंतालसीवां अध्याय समाप्त ।१४५।

अध्याय १४६

भोजक वर्णन

शतानीक ने कहा—देवाधिदेव सूर्य की उपासना करने वाले जिन भोजकों को आप ने बताया है, ब्राह्मणों को चाहिए कि उन्हें ही भोजन करायें अन्य को नहीं ।१। क्योंकि ये लोग सूर्य प्रिय होने के नाते पूज्य हैं, ये ब्राह्मण दिव्य तथा आदित्य रूप जल द्वारा उत्पन्न हैं ।२। अब मुझे यह जानने की इच्छा है कि भोजक लोग अभोज्य (भोजन न करने योग्य) कैसे होते हैं और किस कर्म से भोजक भोजन कराने के योग्य होते हैं, कृपा करके बतायें ! ।१-३

सुमन्तु बोले—महीपते ! पहले समय में कृतवर्मा ने भगवान् वासुदेव से यही प्रश्न किया था, राजन्! उसी प्रकार महाबली साम्ब से भी पूछा गया था ।४। वीर ! एक बार नारद और पर्वत साम्ब पुरी में पहुँच कर महात्मा भोजकों के यहाँ और लोगों के साथ भोजन किये । आदित्य के पूजनादि करने के नाते उनके अन्न 'देवान्न' के नाम से लोक प्रसिद्ध थे, भक्ति पूर्वक भोजक ने उसी भाँति-भाँति के भोज्य पदार्थों द्वारा लोगों को तृप्त किया । वीर ! तदनंतर वे लोग पुण्य द्वारवती में पहुँच कर नारद तथा पर्वत

वासुदेवं महातेजा हार्दिक्यो वाक्यमब्रवीत् । य एते भोजका विप्र पूजका भास्करस्य तु ॥८
अन्नमेषां कथं विप्रौ भुक्तवन्तौ जनार्दन । तादृशौ दिव्यमाख्यातौ यौ तौ नारदपर्वतौ ॥
अभोज्याः किल एते वै ब्राह्मणानां जनार्दन ॥९

वासुदेव उवाच

न ते भोज्या महाबाहो भोज्या भोजाश्च सर्वदा । अभिवाद्याः प्रयत्नेन यथादित्यो महामते ॥१०
आचरन्तश्च तत्कर्म भोज्यत्वं प्रव्रजन्ति ते । तच्छ्रूयतां यदुश्रेष्ठ यत्कार्यं चापि तैर्विभो ॥
यतमानैर्महाबाहो तदिहैकमनाः शृणु ॥११
वृषली यस्य वै भार्या यश्चाभ्यङ्गं न धारयेत् । अभोज्यः स तु विज्ञेयो भोजको नात्र संशयः ॥१२
अस्नातः पूजयेद्यस्तु तथाभ्यङ्गविवर्जितः । आदित्यं यदुशार्दूल तथा च विधिना विभो ॥१३
सेवको भोजको यस्तु शूद्रान्नं येन भुज्यते । कृषिं च कुरुते यस्तु देवार्चामपि वर्जयेत् ॥१४
जातकर्मादयो यस्य न संस्काराः कृता विभो । आरुणेयैश्च मन्त्रैश्च सावित्रीं न च वै पठेत् ॥
तस्य गेहे द्विजो भुक्त्वा कृच्छ्रपादेन शुध्यति ॥१५
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां भास्करस्य तु । अकृत्वा विधिवत्पूजां यस्तु भुङ्क्ते स धर्महा ॥१६
अभ्यङ्गेन विहीनो यः शंखहीनस्तथैव च । शिरसा धारयेत्केशान्स ज्ञेयो भोजकाधमः ॥१७
देवार्चनं तथा होमं स्नानं तर्पणमेव च । दानं ब्राह्मणपूजां च कुर्वतो भोजकस्य तु ॥
अभ्यङ्गेन विहीनस्य सर्वं भवति निष्फलम् ॥१८

नामक दोनों महातेजस्वी ऋषि ने आकाश स्थित होकर वासुदेव से प्रिय वाणी द्वारा पूँछा—ये भोजक ब्राह्मण, सूर्य के पूजक हैं, अतः जनार्दन ! इनके अन्न का इन दोनों ब्राह्मणों ने कैसे भोजन किया जो नारद एवं पर्वत के नाम से दिव्यख्यातिप्राप्त एवं ऋषिकुल में उत्पन्न हैं । क्योंकि जनार्दन ! ब्राह्मणों के लिए ये भोजन कराने के योग्य नहीं होते हैं ।

वासुदेव ने कहा—महाबाहो ! भोजक ही भोजक कराने के योग्य होते हैं न कि अन्य ब्राह्मण महामते ! ये लोग प्रयत्न पूर्वक सूर्य के समान ही अभिवादन करने के योग्य हैं ।५-१०। सूर्य के लिए कर्मों का आचरण करने के नाते ये भोज्य हैं । विभो ! उनके कर्मों को जिसे प्रयत्नपूर्वक वे करते हैं महामते ! सावधान होकर सुनो ! वृषली अभोज्य है, इसमें संशय नहीं ।११-१२। यदुशार्दूल ! विना स्वयं स्नान किये, अभ्यंग लगाये विधान पूर्वक सूर्य की पूजा करने वाला, भोजक से सेवा कराने वाला, शूद्रान्न भोजी, कृषि करने वाला, देव पूजन का त्यागी । विभो ! जिसके जातकर्म आदि संस्कार न हुए हों, सूर्य के मंत्रों द्वारा गायत्री मंत्र का उच्चारण न करने वाला, पुरुष निषिद्ध है ऐसे लोगों के यहाँ भोजन करने पर ब्राह्मण कृच्छ्रपाद नामक व्रत करने से शुद्ध होता है । पितृ, देव एवं मनुष्यों एवं सूर्य की विधान पूर्वक पूजा बिना किये भोजन करने वाला 'धर्महा' (धर्मघाती) कहा जाता है ।१३-१६। अभ्यंग एवं शंख हीन तथा शिर में केश रखने वाला भोजक अधम कोटि का होता है ।१७। देवार्चन, हवन, स्नान, तर्पण, दान, एवं ब्राह्मण पूजा करने पर भी अभ्यंग हीन होने से भोजक का वह सब निष्फल हो जाता है ।१८। यदुशार्दूल !

सर्वदेवमयो ह्येष सर्ववेदमयस्तथा । अव्यङ्गो यदुशार्दूल पवित्रः परमः स्मृतः ॥१९
भोजकानां यदुश्रेष्ठ तस्य मूले स्थितो हरिः । मध्ये ब्रह्मा महातेजा अग्रे गोश्रुतिभूषणः ॥२०
ऋग्वेदो यस्य मूलस्थो मध्ये सामानि कृत्स्नशः । यजुर्वेदस्तथा श्रेष्ठश्चाथर्वसहितः स्थितः ॥२१
त्रयोऽग्नयस्तथा राजंस्त्रयो लोकाः स्थिताः क्रमात् । एवमेव पवित्रस्तु अव्यङ्गो भोजकस्य तु ॥२२
यस्त्वनेन विहीनस्तु भोजको भोजकाधमः । अभोज्यः स तु विज्ञेयः सोऽशुचिर्नात्र संशयः ॥२३
निर्माल्यमथ नैवेद्यं कुङ्कुमं देवहेलिनाम् । ये प्रयच्छन्ति शूद्राणां विक्रीणन्ति च भोजकाः ॥
तेऽधमा भोजका ज्ञेया ये च देवस्वहारिणः ॥२४
न पूजयन्ति देवेशं देवस्वं क्षपयन्ति च । न ते देव प्रियास्तात विज्ञेया भोजकाधमाः ॥२५
यस्मिन्न भुक्ते नैवेद्यं भोजकोऽश्नातिमानद । तदन्नं भुञ्जतस्तस्य नरकाय न शान्तये ॥२६
नैवेद्यं भोजयेत्तस्माद्भास्करस्य नरः सदा । प्रथमं यदुशार्दूल तच्च देहविशोधनम् ॥२७
ब्राह्मणानां पुरोडाशो यथा कायविशोधनः । भोजकानां तथा वीर नैवेद्यं कायशोधनम् ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकवर्णनं
नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४६।

सर्वदेवमय एवं सर्ववेदमय होने केनाते अभ्यंग अत्यन्त पवित्र बताया गया है । यदुश्रेष्ठ ! भोजकों के उस अभ्यंग के मूलभाग में विष्णु, मध्य भाग में महातेजस्वी ब्रह्मा, अग्रभाग में कान में किरण रूपी कुण्डल धारण करने वाले (सूर्य) स्थित रहते हैं । जिसके मूल भाग में ऋग्वेद, मध्य में समस्त सामवेद तथा अथर्व सहित यजुर्वेद स्थित है, उसी प्रकार राजन् ! तीनों अग्नि एवं तीनों लोक क्रमशः (उसमें) स्थित हैं, इसी लिए भोजकों का यह अव्यंग पवित्र माना जाता है ।१९-२२। इससे हीन भोजक भोजकाधम है, अभोज्य एवं अपवित्र उन्हें जानना चाहिए इसमें संशय नहीं ।२३। सूर्य के निर्माल्य, नैवेद्य, एवं कुंकुम आदि जो भोजकों शूद्रों के देने पर बेंचते हैं उन्हें अधम एवं देवधन का अपहरण करने वाला जानना चाहिए । जो देवेश (सूर्य) की पूजा नहीं करते हैं प्रत्युत यों ही समय व्यर्थ व्यतीत करते हैं, तात ! वे देवप्रिय नहीं है, उन्हें भोजकाधम जानना चाहिए ।२४-२५। मानद ! सूर्य के लिए नैवेद्य बिना समर्पित किये भोजक यदि उसे खा लेता है, तो उसे खाने से उसे नरक होगा न कि शांति प्राप्ति ।२६। अतः सूर्य के लिए प्रथम निवेदन कर ही उस नैवेद्य का सदैव प्रथम भोजन करना चाहिए, क्योंकि यदुशार्दूल ! उससे देह शुद्ध होती है ।२७। वीर ! जिस प्रकार ब्राह्मणों के शरीर शुद्धि के लिए पुरोडाश का भक्षण करना बताया गया है, उसी प्रकार भोजकों की शरीर शुद्धि के लिए नैवेद्य है ।२८

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में भोजक वर्णन
नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४६।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकब्राह्मणवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अत्र पृष्टो यथा देवो भास्करो देवपूजितः । अरुणेन महाबाहो के प्रिया भोजकास्तथा ॥१
पूजायां तव के योग्याः के न योग्या भवन्ति च । इति पृष्टः स भगवानरुणेन दिवाकरः ॥
यदुवाच महाबाहो तदिहैकमनाः शृणु ॥२

भास्कर उवाच

परदारान्परद्रव्यं ये न हिंसन्ति भोजकाः । ते प्रिया मम वै नित्यं ये न निंदन्ति दैवतान् ॥३
वाणिज्यं कृषिसेवां तु वेदानां निन्दनं च ये । कुर्वन्ति भोजका ज्ञेयाः सर्वे ते मम वैरिणः ॥४
येषां भार्यासङ्ग्रहणं कर्षणं ये प्रकुर्वते । नृपसेवां खगश्रेष्ठ विज्ञेयाः पतितास्तु ते ॥
भुञ्जते ये च शूद्रान्नं ज्ञेयास्ते शत्रवो मम ॥५
पूजा कृता तु या तैस्तु तथार्घ्यं च खगोत्तम । पूजां तामथ चाप्यर्घ्यं नाहं गृह्णामि खेचर ॥६
य एते कथिता वीर ये च शङ्खविवर्जिताः । निर्माल्यं ये मदीयं तु नैवेद्यं कुङ्कुमं तथा ॥७
शूद्राय ये प्रयच्छन्ति विकीर्णन्ति च ये खग । यच्छन्ति ये च वैश्याय भोजका मे न ते प्रियाः ॥८
यजन्ते ये च सावित्रीं महाश्वेतां च गोपतेः । ये न जानन्ति मे मुद्रां किङ्कराणां च नामतः ॥९

अध्याय १४७

भोजक ब्राह्मण वर्णन

वासुदेव ने कहा—महाबाहो ! अरुण ने जिस प्रकार देवपूजित सूर्य देव से पूँछा कि कौन भोजक आपके प्रिय हैं। तथा पूजा करने के लिए कौन योग्य कौन अयोग्य हैं, इस प्रकार अरुण के पूँछने पर भगवान् दिवाकर ने जो कुछ कहा है, महाबाहो, उसे मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।१-२

भास्कर बोले—जो भोजक परस्त्री एवं परधन का अपहरण तथा देवों की निन्दा करते हों, वे भोजक मुझे सदैव प्रिय हैं। व्यापार, खेती, और वेदों की निन्दा करने वाले भोजक मेरे शत्रु के समान हैं ।३-४। आकाशचारियों में श्रेष्ठ जिसके कई स्त्रियाँ हों, खेती करने वाले, एवं राजा की सेवा करने वाले भोजक को पतित जानना चाहिए। शूद्र के अन्न का भक्षण करने वाले भोजक मेरे शत्रु के समान हैं ।५। उसके द्वारा की गई जो कुछ पूजा एवं जो अर्घ्य प्रदान होता है, आकाशगामिन् ! उसे मैं कभी स्वीकार नहीं करता हूँ ।६। वीर ! ये लोग, शंख हीन मेरे निर्माल्य, नैवेद्य एवं कुंकुम शूद्र को देने वाले या बेंचने वाले हैं वे तथा आकाश चारिन् ! वैश्य को इन चीजों को देने वाले भोजक मुझे प्रिय नहीं होते हैं ।७-८। सावित्री तथा सूर्य की महाश्वेता का पूजन करने वाला, एवं किंकरों के नाम से मेरी मुद्रा न

य एते[1] कथिता वीर भोजकास्ते मया खग । नैते पूजयितुं शक्ता ये प्रिया मम भोजकाः ॥
ताञ्छृणुष्व खगश्रेष्ठ भूत्वा चैकाग्रमानसः ॥१०
देवद्विजमनुष्याणां पितृणां चापि पूजकाः । ते प्रिया मम वै नित्यं शक्ताः पूजयितुं रविम् ॥११
येषां मुण्डं शिरो नित्यं ये चाभ्यङ्गसमन्विताः । वादयन्ति च ये शङ्खं दिव्यास्ते भोजका मताः ॥१२
त्रिकालं ये च मां नित्यं सुस्नाताः क्रोधवर्जिताः । पूजयन्ति खगश्रेष्ठ ते प्रिया मम भोजकाः ॥१३
वारे मदीये नक्तं तु षष्ठ्यां ये च प्रकुर्वते । सप्तम्यामुपवासं तु तथा सङ्क्रमणे मम ॥१४
दिव्यास्ते ब्राह्मणा ज्ञेया भोजका मम पूजकाः । पूजयन्ति च ये विप्रान्मद्भक्ता मत्परायणाः ॥
ते प्रियाः सततं मह्यं भोजका गरुडाग्रज ॥१५
मयि भक्तिं न कुर्वन्ति ब्राह्मणान्पूजयन्ति नो । न ते पूज्या न वन्द्याश्च ये द्विषन्ति च मां सदा ॥१६
ये कुर्वन्ति महायज्ञान्भोजका गरुडाग्रज । पितृदेवमनुष्याणां पूजार्थं सन्ततं खग ॥१७
प्रियास्ते सततं वीर भोजकानां तथोत्तमाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चयज्ञान्प्रवर्तयेत् ॥१८
एकभक्तेन ये नित्यं वर्तन्ते कश्यपात्मज । भुञ्जते न च ये रात्रौ भोजकास्ते प्रिया मम ॥१९
मम वारे च ये वीर तथा षष्ठ्यां च केशव । न रात्रौ भुञ्जते प्राज्ञा मत्प्रियास्ते मगाः खग ॥२०
प्रतिसंवत्सरं ये तु भोजका गरुडाग्रज । न यच्छन्ति पितुर्मातुर्दिवसे तेन मे प्रियाः ॥२१
इत्थं भूता भोजका या माघमासे च सप्तमी । पुष्पाणां करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥२२

जानने वाला, वीर ! ये सभी भोजक मेरी पूजा करने में असमर्थ होते हैं। मेरे प्रिय भोजकों को खगश्रेष्ठ ! सावधान होकर सुनो ।९-१०। देव, द्विज, एवं मनुष्यों की पूजा करने वाला भोजक मुझे सदैव प्रिय हैं, वे ही सूर्य की पूजा करने में समर्थ हैं ।११। जिनके शिर सदैव मुण्डित, अभ्यंग युक्त शेखर होकर शंख की ध्वनि करते हैं, वे मेरे संमति से दिव्य भोजक हैं ।१२। तीनों काल में स्नान पूर्वक क्रोधहीन हो जो मेरी नित्य पूजा करते हैं, खगश्रेष्ठ ! वे भोजक, मुझे प्रिय हैं। मेरे दिन षष्ठी में या संक्रान्ति के दिन नक्त व्रत तथा सप्तमी में उपवास करने वाले भोजक ब्राह्मणों को दिव्य एवं मेरा प्रिय समझना चाहिए। गरुड़ध्वज ! जो मेरे भक्त, मत्परायण होकर ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे मुझे नित्य प्रिय हैं ।१३-१५। जो मुझ में भक्ति नहीं रखते ब्राह्मणों की पूजा नही करते एवं मुझसे सदैव द्वेष रखते हैं वे पूजा करने के अयोग्य तथा अवंदनीय हैं ।१६। गरुडाग्रज ! जो भोजक पितृ, देव, मनुष्यों की पूजा के लिए महान् यज्ञों का आरम्भ करते हैं, वीर वे मुझे सदैव प्रिय हैं, तथा वे उत्तम भोजक कहे जाते हैं। इसलिए पाँचों यज्ञों के आरम्भ के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ।१७-१८। कश्यपात्मज ! एकाहारी, एवं रात में भोजन न करने वाला भोजक मुझे प्रिय है ।१९। वीर ! केशव ! मेरे दिन, एवं षष्ठी में रात को भोजन न करने वाला मग, मुझे प्रिय है ।२०। गरुड़ाग्रज ! जो भोजक प्रतिवर्ष, मातृ-पितृ के दिनों में उन्हें भक्ष्य आदि प्रदान नहीं करते हैं, वे मुझे प्रिय नहीं है ।२१। इस भाँति के भोजक जो माघ मास की सप्तमी तिथि में करवीर के पुष्प, रक्तचन्दन, ब्राह्मण द्वारा कथा श्रवण, नैवेद्य मोदक, घी की आहुति, गुग्गुल की धूप, क्षीर

---

१. ये वाभ्यंगविहीनास्तु ये च सत्यविवर्जिताः ।

वाचको ब्राह्मणानां तु नैवेद्यं भोजकास्तथा । घृताहुत्यो गुग्गुलश्च क्षीरेण स्नपनं तथा ॥२३
वाद्यानां शङ्खशब्दश्च नृत्यं नाट्यं मतं मम । पञ्चवर्णा पताकास्तु श्वेतं छत्रं च मे प्रियम् ॥२४
नान्यवर्णैः कृता पूजा तथा प्रीणाति मां खग । यथा कृता भोजकेन पूजा प्रीणाति मां सदा ॥
नान्यदेवप्रतिष्ठा तु कर्तव्या भोजकेन तु ॥२५

वासुदेव उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्देवश्चारुणाय पुरानघ । लक्षणं भोजकानां तु ततो मेरुमथाक्रमत् ॥२६
एवं भोज्या भोजकास्तु न चाभोज्याः कदाचन । अनुष्ठानविहीना ये न ते भोज्यास्तु भोजकाः ॥२७
भौमास्तु ब्राह्मणा ये तु अनुष्ठानविवर्जिताः । तेऽप्यभोज्या भवन्तीह विकर्मस्था विशेषतः ॥२८
नास्ति पूज्यतमं किञ्चिन्माङ्गल्यं पावनं तथा । चतुर्णामिह वर्णानां मुक्त्वा भोजकमुत्तमम् ॥
पूजिते भोजके वीर आदित्यः पूजितो भवेत् ॥२९
भुञ्जते यस्य वै गेहे भोजका यदुनंदन । तस्य भुङ्क्ते स्वयं भानुर्ब्रह्मा विष्णुस्तथा शिवः ॥३०
यथेह सर्वसत्त्वानां प्रधानत्वे स्थितो रविः । तथेह सर्वभूतानां भोजकः पूज्य उच्यते ॥३१
तीर्थानां तु कुरुक्षेत्रं सरसां सागरो यथा । तथा पूज्यतमो ज्ञेयः पूज्यानां भोजको विभो ॥३२
विशेषेण च सौराणां भोजकः पूज्य उच्यते । भर्ता पूज्यो यथा स्त्रीणां शिष्याणां च यथा गुरुः ॥
भोजकस्तु तथा पूज्यः सौराणां हृदिकात्मज ॥३३

का स्नान, वाद्यों तथा शंख की ध्वनि, नृत्य, गान पाँच रंग की पताका और आत्म प्रिय हैं श्वेत छत्र के प्रदान पूर्वक मेरी पूजा करने वाले हैं, मुझे अत्यन्त प्रिय है। आकाश गमन करने वाले! अन्य वर्ण के मनुष्यों द्वारा की गई पूजा से मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी कि सदैव की गई भोजक की पूजा से। इसलिए भोजक को चाहिए कि किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा न करें।२२-२५

वासुदेव ने कहा—अनघ ! भगवान् सूर्य देव इस प्रकार भोजकों के लक्षण अरुण से कहते हुए मेरु पर पहुँच गये।२६। इसी प्रकार के भोजकों को भोज्य (भोजन कराने योग्य) जानना चाहिए, इन्हें कभी भी उससे वंचित न रखे। अनुष्ठान हीन भोजकों को भोज्य न समझना चाहिए। भूमि निवासी ब्राह्मण यदि अनुष्ठान अपने (नियमित धार्मिक कार्य) न करता रहे तो वह भी अभोज्य है, यदि अपने कर्म के त्याग कर बुरे कर्म को करता है तो उसका विशेषकर त्याग करना चाहिए।२७-२८। चारों वर्णों के लिए एक मात्र उत्तम भोजन के अतिरिक्त अन्य कोई भी मांगलिक, पवित्र करने वाला एवं पूज्यतम (अत्यन्त पूजा करने के योग्य) किसी अंश में सम्भव नहीं है। वीर ! भोजक की पूजा करने पर सूर्य स्वयं पूजित हो जाते है।२९। यदुनन्दन ! जिसके घर में भोजक को भोजन कराया जाता है उसके यहाँ सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव स्वयं भोजन करते हैं। जिस प्रकार यहाँ सभी प्राणियों के प्रधान देव सूर्य हैं, उसी प्रकार यहाँ सभी जीवों के पूज्य भोजक बताये जाते हैं ३०-३१। तीर्थों में कुरुक्षेत्र एवं जलाशयों में सागर जिस प्रकार पूज्य है उसी भाँति विभो ! पूज्य लोगों में भोजक को अत्यन्त पूज्य समझना चाहिए।३२। विशेषकर सौर (सूर्य भक्त) के पूज्य भोजक कहे जाते हैं। जिस प्रकार स्त्रियों के पूज्य पति महादेव, और शिष्यों के गुरुवर्य पूज्य हैं उसी भाँति हृदिकात्मज ! सौर

यस्य भुङ्क्ते भोजकस्तु गन्धपुष्पादिनार्चितः । तस्य भुङ्क्ते स्वयं भानुः पितरो देवतास्तथा ॥३४
एवं पूज्यास्तथा भोज्या भोजका हृदिकात्मज । ये सौरा भोजकस्यान्नं भुञ्जते निर्विकल्पतः ॥
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति सूर्यसलोकताम् ॥३५
कथितो यत्र यो भोज्यो यत्र भोज्यः स वर्जितः । अथ किं बहुनोक्तेन श्रूयतां वचनं मम ॥३६
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति गङ्गासमा सरित् । अश्वमेधसमं पुण्यं नास्ति पुत्रसमं सुखम् ॥३७
नास्ति भानुसमो देवो नास्ति मातृसमा गतिः । यथैतानि समस्तानि उत्तमानि यदूत्तम ॥
तथोत्तमो भोजकस्तु सम्प्रोक्तो भास्करेण तु ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकलक्षणवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४७।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालचक्रवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथ साम्बो महातेजा दृष्ट्वा चक्रं पितुः करे । ज्वालामालाकरालं तु महता तेजसान्वितम् ॥१
पप्रच्छ पितरं साम्बो भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । कुतस्तात त्वया प्राप्तं चक्रमादित्यसन्निभम् ॥२

लोगों के पूज्य भोजक बताये गये हैं । जिसके यहाँ गन्ध एवं पुष्पादि से पूजित होकर भोजक भोजन करता है, उसके यहाँ सूर्य, पितृगण, एवं देवता लोग भोजन करते हैं ।३३-३४। हृदिकात्मज (प्रियपुत्र) इस प्रकार के भोजक पूज्य एवं भोज्य हैं जो सौर लोग भोजकों के अन्न का स्वच्छन्द होकर भोजन करते हैं, पाप मुक्त होकर सूर्य लोक को जाते हैं । इस प्रकार जो भोज्य हैं, और भोजन कराने में जिसका त्याग करना चाहिए, सभी कुछ बता दिया गया । इस विषय में अधिक क्या कहूँ । मेरी बात सुनो वेद से परे शास्त्र, मंत्र के समान नदी, अश्वमेध के समान पुण्यकार्य, पुत्र प्राप्ति के समान सुख, सूर्य के समान देव, माता के समान गति, अन्य कोई नहीं है । यदूत्तम ! जिस प्रकार ये समस्त उत्तम बताये गये हैं उसी प्रकार भास्कर ने भोजकों को उत्तम बताया है ।३५-३८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में भोजक लक्षण वर्णन नामक एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४७।

अध्याय १४८

कालचक्र का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसके उपरांत महातेजस्वी साम्ब ने अपने पिता के हांथ में प्रज्वलित ज्वाला की भाँति किरणों से भीषण एवं अत्यन्त तेज से आच्छन्न उस चक्र को देखकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक अपने पिता से पूँछा—हे तात ! सूर्य की भाँति इस चक्र को आपने कहाँ से प्राप्त किया है ।१-२। हे देव ! दिव्य एवं ऐसे

किमर्थं वहते देव दिव्यनागुधमुत्तमम् । एतदाख्याहि मे सर्वं श्रोतुकामस्य[1] कौतुकात् ॥३

वासुदेव उवाच

साधुसाधु[2] महाबाहो साधु पृष्टोऽस्म्यहं त्वया । शृणुष्वैकमनाः पुत्र चक्रस्य विधिनिर्णयम् ॥४
दिव्यं वर्षसहस्रं तु भानुमाराध्य श्रद्धया । प्राप्तं चक्रं मया तस्माद्भास्कराल्लोकपूजितात् ॥५
नभोगः पञ्चकाल्वः स्थितः साक्षाद्दिवाकरः । ग्रहाः सोमादयो यस्य संस्थिता नाभिमण्डले ॥६
आदित्या द्वादश समा अरेषु क्रमशस्तथा । प्रोक्तः पथिषु तन्त्वानि पृथिव्यादीनि यानि वै ॥७
एतैस्तत्त्वैः परिव्याप्तं चक्रं कालात्मकं परम् । संक्षेपात्ते मयाख्यातं दत्तं चक्रमिवापरम् ॥८

साम्ब उवाच

कथं कालमयं देव चक्रं कमलमुच्यते । इदं तावन्ममाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥९

वासुदेव उवाच

कमलं ह्यृतुभिः षड्भिः षड्दलं चाक्षयाश्रितम् । पुरुषाधिष्ठितं तद्धि तत्र साङ्गो रविः स्थितः ॥१०
यच्च कालत्रयं लोके तन्नाभित्रयमुच्यते । मासा अरा महाबाहो पक्षाश्च प्रधयः स्मृताः ॥११
नेमी चैव परे प्रोक्ते अयने दक्षिणोत्तरे । पथिनाभिषु योगे च योगाख्यास्तथनादिभिः ॥१२

उत्तम अस्त्र को आप क्यों धारण किये रहते हैं। इसे जानने के लिए मुझे महान् कौतूहल है, आप इन सभी बातों को बताने की कृपा करें।३

वासुदेव बोले—महाबाहो ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो तुमने इस प्रकार का उत्तम प्रश्न मुझसे किया, पुत्र ! सावधान होकर चक्र की प्राप्ति सुनो ! सहस्र दिव्य वर्ष सूर्य की आराधना करने के पश्चात् मैंने लोक पूजित सूर्य से इस चक्र की प्राप्ति की है।४-५। आकाश में स्थित होने पर इस पाँच अंग वाले (चक्र) को देखने पर यही होता है कि साक्षात् दिवाकर ही स्थित हैं। इसके नाभिमंडल (नाभि और नाभि के मध्य वाले भाग) में ग्रहगण, एवं सोम आदि स्थित हैं।६। बारह आदित्य इसके अरों में क्रमशः स्थित हैं, पृथ्वी आदि (पाँचो) तत्त्व उसके मार्ग में स्थित हैं उन्हीं तत्वों से व्याप्त, काल रूप यह उत्तम चक्र है, संक्षेप से मैंने तुम्हें इसे बता दिया, मैंने तुम्हें एक अन्य चक्र ही प्रदान किया, ऐसा समझो।

साम्ब ने कहा—हे देव ! यह कमल चक्र काल मय क्यों कहा जाता है, इसे मुझे बताइये, मैं इस तत्त्व को (विधानपूर्वक) जानना चाहता हूँ।७-९

वासुदेव बोले—छहों ऋतुओं द्वारा अक्षय (अविनाशी) षट्दल में कमल आश्रित है, उस (कमलत्व) में पुरुष प्रतिष्ठित है, वह साङ्गोपाङ्ग सूर्य ही हैं।१०। लोक प्रसिद्ध तीनों काल उसकी तीन नाभि हैं, महाबाहो ! बारह मास और (आरागज) (मास के) दोनों पक्ष प्रधि (पुत्रियां) बताई गई हैं।११। दक्षिण एवं उत्तर दोनों अयन नेमि हैं। नक्षत्र, ग्रह, सदैव इसमें स्थित रहते हैं, यह चक्र स्थूल,

---

१. श्रोतुकामश्च ते मुखात्। २. वत्स। ३. अयनादि तथैव हि।

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव सदा चात्र स्थिताः स्मृताः । एतैर्व्याप्तमिदं चक्रं स्थूलसूक्ष्मप्रभेदतः ॥१३
अत्रोद्दिष्टेषु कालेषु ये नोद्दिष्टा मया तव । युगादिकल्पपर्यन्तास्तेऽपि चात्र स्थिताः क्रमात् ॥१४
यत्ते कालात्मकं चक्रमिदं संक्षेपतो मया । कथितं तद्विनिष्क्रान्तं प्रदीप्तात्सूर्यमण्डलात् ॥१५
असुराणां वधायेदं मया लब्धं दिवाकरात् । आराध्य तपसा सूर्यं पुरा कल्पे जगद्गुरुम् ॥
अतः सम्पूजयाम्येनं ग्रहैस्तत्त्वैर्वृतं सदा ॥१६
अर्कभक्तो हि चक्रस्थं यः पूजयति भक्तिमान् । तेजसा रविसंकाशः पुष्पोत्तरपुरं व्रजेत् ॥१७
तस्मात्तं मत्कुलानन्दं मित्रं सम्पूजयाम्यहम् । ग्रहैस्तत्त्वैर्वृतं भक्त्या स्वमन्त्रैः सततं विभुम् ॥१८
सप्तम्यां चक्रमालिख्य ये यजन्ति दिवाकरम् । रक्तचन्दनचूर्णेन कुंकुमेन सुगंधिना ॥१९
पिष्टगन्धादिभिर्वापि रक्तवर्णकमिश्रकैः । रक्तैश्च कमलैः शुद्धैः करवीरैः सुगन्धिभिः ॥२०
अन्यैर्वा कुसुमैर्वन्यैः प्रत्यग्रैर्जन्तुवर्जितैः अपर्युषितनिश्छिद्रैः शुभपत्रैर्दलैरपि ॥२१
फलैः पक्वैरोषधिभिस्तथा दूर्वाङ्कुरैः कुशैः । धूपैश्च विविधैर्गन्धैर्वस्त्रैश्च भूषणैः ॥२२
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च चोष्यैर्लेह्यैश्च शक्तितः । वितानकैर्भास्वरैश्च पलाशैरुपशोभितैः ॥२३
छत्रचामरघण्टाभिर्भूषणैर्दर्पणादिभिः । नृत्यवाद्यैश्च गीतैश्च वेदैः पुण्यकथास्वनैः ॥२४
सर्वत्र जयघोषैश्च सम्पूर्णं पूजयन्ति ये । सम्पूर्णान्निर्विघ्नान्कामान्निर्विघ्नान्प्राप्नुवन्ति ते ॥२५
स्वचक्रं चापि निर्विघ्नं वृद्धिमायाति सुव्रत । हन्यते परचक्रं च यत्रेदं पूज्यते सकृत् ॥२६

एवं सूक्ष्म रूप से इनसे व्याप्त है ।१३। इसमें जितने भाँति के काल बताये गये हैं, कुछ को मैंने तुम्हें नहीं बताया है, वे सभी युगारम्भ से होकर कल्प पर्यन्त क्रमशः इसमें स्थित रहते हैं ।१४। इस कालात्मक चक्र को जिसे मैंने तुम्हें संक्षेप में बताया था, प्रदीप्त सूर्य मण्डल से निकला हुआ है ऐसा मानो ।१५। राक्षसों के वध करने के लिए मैंने दिवाकर से इसे प्राप्त किया है (इसके लिए) पहले कल्प में मैंने जगद्गुरु सूर्य की आराधना की थी । ग्रहों एवं तत्त्वों से घिरे हुए इस चक्र की इसीलिए मैं पूजा करता हूँ ।१६। जो भक्त चक्रस्थित सूर्य की आराधना करता है, वह रवि के समान तेजस्वी होकर पुष्पोत्तरपुर की प्राप्ति करता है ।१७। अतः मेरे कुल के लिए आनन्द प्रदान करने वाले विभु मित्र (सूर्य) की, जो ग्रह, एवं तत्त्वों से आवृत हैं, भक्ति पूर्वक अपने मंत्र द्वारा निरंतर पूजा करता हूँ ।१८। सप्तमी तिथि में रक्तचन्दन, कुंकुम से इस चक्र का लेखन निर्माण करके जो दिवाकर की पूजा करता है, एवं लाल रंग मिश्रित सुगन्धित पूर्ण, रक्त कमल, सुगंधित कनेर पुष्प, अथवा जंगली पुष्पों, लाख (लाह) को छोड़कर नवीन, ताजे, सौन्दर्य पूर्ण, शुभ दलों, के पके फलों, औषधियों, दुर्वाएँ, कुशों, भाँति-भाँति की धूपों, वस्त्रों, आभूषणों, भक्षण पदार्थों, पीने, एवं स्वादिष्ट कडुवी तथा तिक्त वस्तुएँ, अपनी शक्ति के अनुसार उज्ज्वल शुभ वितान (चाँदनी), जो पलाशों से विभूषित हों, छत्र, चामर, घण्टा, भूषणों दर्पण, नृत्य, वाद्य, गायन, वेदध्वनि, पुण्य कथाओं, सर्वत्र जय जयकार के शब्दों से परिपूर्ण, इन सामग्रियों द्वारा जो उनकी पूजा करते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें निर्विघ्न समाप्त करते हैं ।१९-२५। सुव्रत ! अपने चक्र की भी निर्विघ्न वृद्धि होती है । इसकी एक बार पूजा करने से ही व्यक्ति दूसरे के चक्र का नाश कर सकता है ।२६। साम्ब ! संक्रान्ति के दिन अथवा

सङ्क्रान्तौ ग्रहणे चापि लिखित्वा यो जपेदिदम् । भवन्ति नियताः साम्ब तस्य सानुग्रहा ग्रहाः ॥२७
सर्वरोगविहीनस्तु सर्वदुःखविवर्जितः । चिरं जीवति धर्मात्मा सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥२८
एष वै कथितो वत्स चक्रयोगो मया तव । अर्कस्य सर्वयज्ञानां श्रेष्ठं सिद्धिप्रदो भृशम् ॥२९
पुण्यो धर्मस्तथा पुष्टिदः शत्रुघ्नश्च विशेषतः । श्वेतो रक्तोऽथ पीतश्च कृष्णश्चापि विभागशः ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने कालचक्रवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यदीक्षावर्णनम्

साम्ब उवाच

किं प्रमाणं लिखेच्चक्रं तत्र पद्मं च किं भवेत् । नेमिप्रध्यारनाभीनां विभागः क्रियते कथम् ॥१

वासुदेव उवाच

चतुःषष्ट्यङ्गुलं चक्रं कृत्वा वृत्तं प्रमाणतः । अष्टाङ्गुला भवेन्नेमिः सेयं विभवतः सदा ॥२
नाभिक्षेत्रं तथैव स्यात्पद्मं तत्त्रिगुणं भवेत् । अरक्षेत्रं च पद्मस्य कर्णिकाकेसराणि च ॥३
केसरस्य च पादेन शेषपत्राणि कल्पयेत् । पत्रसन्धिश्च पादाङ्गं क्रमात्तत्रापि भिद्यते ॥४

ग्रहण काल में इसे (यन्त्र रूप में) लिखकर जो पूजन करता है, उसके सभी ग्रह अनुकूल रहते हैं।२७। समस्त रोग से शून्य, एवं सभी दुःखों से हीन होकर वह धर्मात्मा समस्त ऐश्वर्यों समेत चिरकाल का जीवन प्राप्त करता है।२८। वत्स ! मैंने तुम्हें इस चक्र रूप योग की व्याख्या बता दी सूर्य के सभी यज्ञों में श्रेष्ठ एवं अत्यन्त सिद्धि प्रद, पुण्य, धार्मिक, पुष्टि, विशेषकर शत्रुनाशक तथा श्वेत, रक्त, पीले एवं काले रंग का है।२९-३०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में कालचक्र वर्णन नामक एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त।१४८।

अध्याय १४९

सूर्यदीक्षा का वर्णन

सांब ने कहा—कितने बड़े आकार का चक्र लिखना चाहिए, उसमें कमल कौन होगा, नेमि, प्रधि (अर (आरागज) और नाभि का विभाग क्रमशः कैसे किया जायगा।१

वासुदेव बोले—चौसठ अंगुल के गोलाकार सूर्य चक्र की जिसमें आठ अंगुल की नेमि सदैव स्थित रहती है, रचना करनी चाहिए उसी भाँति नाभि का स्थान बनाये, उससे तिगुने आकार का पद्म होता है, कमल की कर्णिका (दलों) के केसर का स्थान अर का क्षेत्र बताया गया है, केसर के (पाद) द्वारा शेष पत्तों की रचना करे, पत्तों की संधियाँ, पादाङ्ग क्रमशः पृथक् पृथक् करके नाभि द्वारा कमल को

उन्नतं कमलं तत्तु कुर्यान्नाभ्यां न संशयः । आकीर्णाः संविभक्ताश्च कर्तव्याः प्रधयः क्रमात् ।।५
अङ्गुलस्थूलमूलं स्यादराग्रं त्रिगुणं ततः । भूमिः पीता बहिर्ज्ञेया कर्णिकाकेसराणि च ।।६
सितं नाभिस्थलं तत्र द्वाराणि परिकल्पयेत् । हस्तमात्रं भवेत्तस्य तन्मानं द्वारसन्निभम् ।।७
शेषं रक्तं समुद्दिष्टं संहताः पत्रसन्धयः । नाभिनेम्यन्तरे लेखाः सिताश्चाङ्गुलमानतः ।।८
सितरक्तसिताभिश्च समन्तादुपशोभितम् । कपोलं द्वारपद्मं च द्वारकोणे प्रकल्पयेत् ।।९
चतुर्द्वारं भवेदेवमैन्द्रद्वारं प्रकल्पयेत् । अपराह्णेऽथ पूर्वाह्णे वरुणमावाहयेत्सदा ।।१०
द्वाराण्येतानि संवर्त्य यथोक्तविधिना यजेत् । यथोक्ता देवताः सर्वाः स्वमन्त्रैरेव भक्तितः ।।११
चक्रमेवं समुद्दिष्टं यजनार्थं मया तव । यज्ञेनानेन सम्बद्धो दीक्षितश्चार्कमण्डले ।।
इत्थं मे भानुना पूर्वमिदमुक्तं वरानन ।।१२

साम्ब उवाच

के मन्त्राश्चक्रयज्ञेऽस्मिन्देवतानां प्रकीर्तिताः । यज्ञक्रमश्च कः प्रोक्तो रूपं किं च पृथक्पृथक् ।।१३

वासुदेव उवाच

खपोल्कं हृदयाध्यक्षं पूर्वोक्ते कमले यजेत् । कर्णिकायां दलेष्वेवमङ्गानि हृदयादि च ।।१४
नाममन्त्राश्चतुर्थ्यंतास्तेषां पूर्वोक्तकोटयः । नमस्कारश्च सर्वत्र एष एव विधिः स्मृतः ।।१५

उन्नत करे, पुनः उसमें क्रमशः प्रधियाँ (पट्टियाँ) लगाये, जो पृथक्-पृथक् चारों ओर से घेर कर स्थित रहती हैं, अंजुल का स्थूल मूल भाग अर का क्षेत्र बताया गया है, जो उस तिगुने आकार का है, कर्णिका के केसर, उसकी पीले रंग की बाहरी भूमि है, श्वेत (कमल) नाभि स्थल है, वहाँ द्वार की कल्पना करनी चाहिए, एक हाथ का लम्बा चौड़ा द्वार बनवाना चाहिए, जो दरवाजे के समान होता है, शेष रक्त (कमल) द्वारा पत्तों की संधियाँ बनानी चाहिए, नाभि और नेमि के अन्तर की रेखा श्वेत वर्ण की एक अंगुल की होनी चाहिए। वह भी श्वेत, रक्त एवं काले कमलों द्वारा जो उसे चारों ओर से सौन्दर्य पूर्ण करे। कपोल और द्वारकमल को द्वार के कोने में कल्पित करे।१-९। इस प्रकार चार दरवाजे होते हैं, उसमें इन्द्र के दरवाजे की भी कल्पना करनी चाहिए। पूर्वाह्ण एवं अपराह्ण काल में सदैव वरुण का आवाहन करे।१०। इतने दरवाजों की कल्पना करके विधान पूर्वक उसकी पूजा करे, उसमें जितने देव स्थित हैं, भक्ति पूर्वक उन्ही के मंत्रों द्वारा (आवाहन पूजन) करे। मैंने तुम्हारे पूजन के लिए इस चक्र का निर्माण विधान बता दिया, जिससे इस यज्ञ द्वारा सूर्य मण्डल से तुम्हारा संबंध एवं तुम्हारी दीक्षा भी हो गई, वरानन ! इस प्रकार सूर्य ने मुझसे पहले (समय) में कहा था।११-१२

साम्ब ने कहा—इस चक्र रूपी यज्ञ में देवताओं के कौन-कौन मंत्र, यज्ञ का क्रम और उनके पृथक् पृथक् रूप क्या है ? ।१३

वासुदेव बोले—'खपोल्क हृदयाध्यक्षं' आदि मंत्र द्वारा जो पहले बता दिया गया है, कमल तथा कर्णिका में स्थित दलों में, अंग एवं हृदय आदि की पूजा करे। उनके नाम मंत्र का संस्कृत व्याकरण के अनुसार चतुर्थ्यन्त का क्रमशः प्रयोग करे। नमस्कार के लिए भी यही विधान सर्वत्र बताया गया है।१४-१५।

स्वाहान्ता होमकाले च कर्मस्वन्येषु ते पुनः । एषां कर्मावसानाश्च प्रयोक्तव्याः समासतः ॥१६
ॐ खषोल्काय विद्महे दिवाकराय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥१७
सावित्री च महाबाहो चतुर्विंशाक्षरा मता । सर्वतत्त्वमयी पुण्या ब्रह्मगोत्रार्कवल्लभा ॥१८
एवं मन्त्राः प्रयोक्तव्याः सर्वकर्मस्वतंद्रितैः । अन्यथा विफलं कर्म भवेदिह परत्र च ॥१९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मन्त्राञ्ज्ञात्वा विधिं तथा । यथावत्कर्म तत्कृत्वा साधयेदीप्सितं फलम् ॥२०

साम्ब उवाच

आदित्यमण्डले दीक्षा कस्य कार्या कथं च सा । कदा केन किमर्थं च कथयेदं ममाखिलम् ॥२१

वासुदेव उवाच

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं कुलीनं शूद्रमेव च । पुरुषं वा स्त्रियं वापि दीक्षयेत्सूर्यमण्डले ॥२२
स्वयं भक्त्योपपन्नश्च प्रणिपत्य गुरुं तथा । गुरुस्तं दीक्षयेद्विप्रः कल्पज्ञः सत्यवाक्छुचिः ॥२३
षष्ठ्यामग्निं समाधाय पूर्वोक्तविधिना क्रमात् । सम्पूज्यार्कं तथा वह्नौ हुत्वा वै हविषा रविम् ॥२४
शिष्यं स्नातमथाचान्तं खषोल्काकृतिविग्रहम् । स्वाङ्गैरालभ्य चाङ्गेषु दर्भैर्वह्निस्तथाक्षतैः ॥२५
पुष्पैः सम्पूज्य चाङ्गानि देयः कार्यो बलिस्तथा । आदित्यो वरुणोऽर्कोऽग्निः साधितो हृदयेन च ॥२६
भवेद् घृतगुडक्षीरैस्तन्दुलैश्च[1] प्रमाणतः । त्रिभिरञ्जलिभिर्हुत्वा देवायाग्नौ हुतं पुनः ॥२७

हवन के समय चतुर्थ्यन्त नाम के अन्त में स्वाहा तथा अन्य कर्मों में स्वाहा छोड़कर वैसा ही प्रयोग करें। शीघ्र कर्मों की समाप्ति के लिए सब के नाम को एक साथ उच्चारण कर अन्त में चतुर्थ्यन्त उच्चारण करें। 'ओं खषोल्काय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्' यही मंत्र है।१६-१७। महाबाहो! सावित्री (गायत्री) चौबीस अक्षर की होती है, जो सर्वतत्त्वमय, पुण्यरूप, एवं ब्रह्म गोत्री सूर्य की अत्यन्त प्रिय है।१८। इस प्रकार सभी कर्मों में सावधान होकर मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा उसके लोक परलोक संबंधी सभी कर्म व्यर्थ हैं इसलिए प्रयत्न पूर्वक मंत्रों एवं विधानों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर यथोचित कर्म की समाप्ति करके अपनी अभिलाषा की पूर्ति करनी चाहिए।

साम्ब ने कहा—सूर्य मण्डल में किसकी दीक्षा होनी चाहिए, और किस प्रकार, कब, किसके द्वारा तथा किस लिए? मुझे इन सभी बातों को बताइये।१९-२१

वासुदेव बोले—सूर्य मण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं कुलीन शूद्र तथा स्त्रियाँ दीक्षित होती हैं।२२। स्वयं भक्तिपूर्वक वहाँ पहुँच कर गुरु को नमस्कार करे, पश्चात् कल्प का ज्ञाता, सत्यवादी, पवित्र, वह ब्राह्मण गुरु उसे दीक्षा प्रदान करे।२३। षष्ठी में अग्नि के स्थापन पूर्वक क्रमशः पूर्वोक्त विधान द्वारा सूर्य की पूजा करनेके उपरांत अग्नि में सूर्य के उद्देश्य से घी की आहुति डाले।२४। स्नान एवं आचमन शिष्य को कराकर जिसकी आकृति खषोल्क के समान रहती है, अंगालम्भन कर पुनः उसके उपरांत कुश अक्षत, एवं पुष्पों द्वारा अंगों की पूजा करके बलि प्रदान करे। आदित्य, वरुण, एवं सूर्यरूपी अग्नि को हृदय से साधन संपन्न करके घी, गुड़, क्षीर, चावल, इन्हें प्रमाणानुसार एक में मिलाकर सूर्य के

---

१. दधिघृतक्षीरैः।

दत्त्वा शिष्टाय मुक्त्वैवं दत्त्वान्ते दन्तधावनम् । क्षीरं वृक्षोद्भवं तस्मै द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ।।२८
दन्तभिर्घृष्टेऽपनीते च तेन प्राच्यां क्षिपेत्ततः । दन्तधावनमास्यं च तदा तस्योपरि क्षिपेत् ।।२९
मैत्रावारुणमीशानं वक्त्रं सौम्यसमाश्रितम् । प्रशस्तं दन्तकाष्ठस्य नूनमन्यत्र निन्दितम् ।।३०
यां दिशं दन्तकाष्ठस्य मुखं पश्यति तत्पतिम् । अर्चयेत्तेन शांतिः स्यादित्युक्तं भानुना स्वयम् ।।३१
पुनस्तद्वचनं श्रुत्वा अङ्गैरालभ्य न क्रमात् । सम्पूज्य लोचने तत्र सञ्चिन्त्य परिजप्य च ।।३२
कामधिया च सङ्कल्पं तथा चेन्द्रियसंयमम् । स्वापयेत स्वयं चापि वरं श्रुत्वा समाहितः ।।३३
आचम्य कृतरक्षस्तु कृतद्रव्याधिवासनः । हृदयेन नमेत्प्रातः स्नात्वा हुत्वा हुताशनम् ।।३४
स्वप्नं पृच्छेद्यथा दृष्टं शुभं संभाषयेच्च तम् । हृदयेनाशुभे दृष्टे शतहोमं समाचरेत् ।।३५
स्वप्ने पश्यति हर्म्याणि देवतानां हुताशनम् । नदीयानानि रम्याणि उद्यानोपवनानि च ।।३६
पत्रपुष्पफलाढ्यानि कमलानि च राजतम् । सम्पश्यति यदि स्वप्ने ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।३७
राजानं शौर्यसम्पन्नं धनाढ्यं क्षत्रियोत्तमम् । शुश्रूषणपरं शूद्रं यदि तत्त्वार्थमादिशेत् ।।३८
प्रशस्तं भाषणं चैव यथासम्भवतो मतम् । एतैः स्पर्शनमेतेषां श्रेष्ठमारोहणं ततः ।।३९
वाहनानि प्रशस्तानि प्रासादं नावमेव च । पर्वतं च समारुह्य विपुलां भार्गवीं भजेत् ।।४०
पीत्वा सुरां समुद्रं च दध्याज्यं क्षीरमेव च । सोमं मांसं हविर्भुक्त्वा काश्यपीं लभते नरः ।।४१
लब्ध्वा वस्त्राणि रत्नानि विविधाभरणानि च । वाहनानि महीं गाश्च धान्योपकरणानि च ।।४२

उद्देश्य से तीन अंजलि पुनः अग्नि में डाले ।२५-२७। शिष्ट को इस विधान के उपरांत दंतधावन (दातून) करने के लिए मुक्त करे । उसे (दातून को) किसी क्षीर वाले वृक्ष की बारह अंगुल की होनी चाहिए । दाँतों को साफ कर उसे पूर्व की ओर त्याग दे दातून एवं सभी मुख से निकले अशुद्ध पदार्थों का उसी स्थान पर त्याग करना चाहिए ।२८-२९। मैत्रावरुण, ईशान-तथा सौम्य का चक्र (मुख) उत्तम बताया गया है, उसी दातून करने वाले का मुख प्रशस्त बताया गया है, उससे भिन्न वाले का मुख निंदित है ।३०। दंतधावन करने वाला जिस दिशा की ओर देखता है, तो उस दिशा के स्वामी पूजित होते हैं, उससे शांति प्राप्त होती है, इसे सूर्य ने स्वयं बताया है ।३१। पुनः गुरुवाणी सुनकर अंगों का आलम्भन करे, पश्चात् नेत्र की पूजा, एवं जप करके संकल्प पूर्वक इंद्रिय संयम के उपरांत स्वयं ध्यान मग्न हो शयन करे । प्रातः काल उठकर आचमन, एवं आत्मरक्षा पूर्वक सामग्री संचित करके स्नान-हवन करने के उपरांत हृदय से नमस्कार करे ।३२-३४। पूछने पर देखे हुए शुभ स्वप्न को बताये उसके संबंध में बात भी करे । यदि अशुभ स्वप्न देखे तो सौ आहुति हवन करे ।३५। स्वप्न में गृह, अग्नि, देव, नदी, नौका, सुन्दर वाटिका जिसमें पत्ते, पुष्प, एवं फूल भरे पड़े हों, सुशोभित कमल, स्वप्न में यदि वेद पारगामी विद्वान्, शूरता संपन्न राजा, जो धनी, एवं क्षत्रिय जाति का हो, सेवा करने वाले शूद्र को उपदेश करना, सुन्दर भाषण इनके स्पर्श, इनके ऊपर आरोहण करना, प्रशस्त यान (सवारी), प्रासाद, नौका, अथवा पर्वत पर चढ़ना, मद्यपान, समुद्र-पान, दही घी, क्षीर, सोम, मांस अथवा हवि के भक्षण, इन्हें स्वप्न में देखने से विपुल पृथिवी की प्राप्ति होती है ।३६-४१। तथा वस्त्रों, रत्नों भाँति-भाँति के आभूषणों अनेक वाहन, मही, गौ, अन्न, की प्राप्तिपूर्वक समृद्धिशाली होता है । ऐसे स्वप्नों को देखना शुभ होता है इस प्रकार शुभ

समृद्धिमाप्नुयात्किञ्चित्स्वप्नानां दर्शनं शुभम् । शुभकर्मानुगं यच्च तत्सर्वं शुभमुच्यते ।।४३
तस्मादन्यदनिष्टं स्यात्तस्माद्युक्ता प्रतिक्रिया । क्रमादालिख्य सप्तम्यां तत्र सम्पूज्य भास्करम् ।४४
तर्पयित्वा द्विजाञ्छिष्टानानम्य पूर्ववद्गुरुम् । सृष्टिक्रमेण भृत्यर्थं मुक्त्यर्थं नान्यथा भवेत् ।।४५
दिवाकरं समालभ्य पुरुषोऽथ यथाक्रमम् । सर्वग्रहेषु तत्त्वेषु यथावत्तन्नियोजयेत् ।।४६
विशुद्धेषु विशुद्धं तं ध्यात्वा आदित्यवत्क्रमात् । नियोजयेत् पृथिव्यां च ततः प्रभृति सर्वशः ।।४७
आदित्यमण्डलं शुद्धं सर्वभूतं नियोजयेत् । एवं तु मनसा ध्यात्वा जुहुयाच्चैव तं शतम् ।।४८
सर्वमन्त्रैः क्रमादेवं दीक्षा प्रोक्ता वरोत्तमा । कृत्वैव पुष्पपातं तु तस्मिन्नादित्यमण्डले ।।४९
बद्धास्यस्त्वञ्जलौ पुष्पं कृत्वा तस्या च मन्त्रितम् । क्षिपेद्वै कुलशुद्ध्यर्थं नामार्थं च विशेषतः ।।५०
यत्र तत्पतितं पुष्पं तस्य तत्कुलमादिशेत् । नाम चादित्यसंयुक्तमित्युक्तं भानुना स्वयम् ।।५१
सम्पूज्य श्रावयेत्तत्र समयानर्कभाषितान् । प्रातः सायं च मध्याह्ने रवेरभिमुखः स्थितः ।।५२
उपस्थानं सदा कुर्यादर्चनं च सदा नरः । अदृष्टार्कं न भोक्तव्यं दिवा रात्रौ हुताशनम् ।।५३
दृष्ट्वा भोक्तव्यमर्काख्ये न भोक्तव्यं कदाचन । न च शय्यां स्पृशेत्तद्वन्नासनं परिवर्जयेत् ।।५४
न लङ्घ्या प्रतिमाच्छाया न लङ्घ्यास्तिथयः क्वचित् । नक्षत्राणि ग्रहा योगा मासा मासाधिपाश्च ये ।।५५
अयने ऋतवः पक्षास्तथैव दिवसादि च । कालः संवत्सरश्चापि यः कश्चित्काल उच्यते ।।५६

कर्म जिसमें हों वे सभी शुभ स्वप्न कहे जाते हैं ।४२-४३। उससे अन्य स्वप्न अनिष्ट फलदायक होते हैं, उसकी प्रतिक्रिया करनी आवश्यक होती है, इस प्रकार क्रमशः सप्तमी में लिखकर सूर्य की पूजा करके शिष्ट ब्राह्मणों की तृप्ति पूर्वक पहले की भाँति गुरु को प्रणाम करे । सृष्टि के क्रम से वह दूसरी भाँति भृत्य कार्य करने अथवा मुक्ति के योग्य नहीं हो सकता है ।४४-४५। पुरुष दिनाकर की प्राप्ति करके उन्हें क्रमशः ग्रहों एवं तत्त्वों में स्थापित करे ।४६। विशुद्धों में विशुद्ध सूर्य की भाँति ध्यान कर सभी को क्रमशः पृथिवी में नियुक्त करे, आदित्य मंडल शुद्ध स्वरूप है, उसमें सभी को नियुक्त करना चाहिए पश्चात् मानसिक ध्यान पूर्वक सौ, आहुति हवन करे । सभी मंत्रों द्वारा इस उत्तम दीक्षा को मैंने बता दिया, इस प्रकार (विधान पूर्वक) करके उस पुष्प को आदित्य मंडल में ऊपर डाल दे मुख बाँधकर अंजलि में पुष्प लेकर उसे अभिमंत्रित कर कुलशुद्धि के लिए विशेषकर नामोच्चारण पूर्वक छोड़ना चाहिए ।४७-५०। जहाँ वह पुष्प गिरे, उसे कुल वालों को आदेश दे कि आदित्य युक्त इसका नाम है । ऐसा स्वयं सूर्य ने कहा था ।५१। उसकी पूजा करके सूर्य के कथनानुसार सब लोगों को बताये कि प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल में सूर्य के सम्मुख स्थित होकर मनुष्य को सदैव अर्चन एवं उपस्थापन करने चाहिए दिन में बिना सूर्य के दर्शन किये भोजन न करे, रात में अग्नि का दर्शन करके भोजन करना चाहिए । पर, रविवार में किसी भी दशा में भोजन न करे । उसी प्रकार शय्या का भी परित्याग करना चाहिए यहाँ तक कि पैर से भी उसका स्पर्श न होने पाये ।५२-५४। प्रतिमा (मूर्ति) की छाया का उल्लंघन न करना चाहिए और उसी भाँति तिथियों का भी उल्लंघन निषिद्ध है, नक्षत्र, ग्रह, योग, मास, मासाधिप, (दोनों) अयन, ऋतुएँ, पक्ष, दिन काल (वर्तमान आदि), वर्ष, एवं यहाँ तक कि काल शब्द से जिसका बोध (ज्ञान) कराया जाय, ये सभी वंदनीय, नमस्कार करने योग्य, तथा पूजनीय हैं । इसीलिए कालाधिप सूर्य स्वयं

अभिवन्द्यः स सर्वोऽपि नमस्यः पूज्य एव च । तस्मात्कालाधिपः सूर्यः स्वयं कालश्च पठ्यते ॥५७
ज्योतिर्गणस्य सर्वस्य स्थावरास्थावरस्य च । चेतनाचेतनस्यापि सर्वात्मा यः प्रकीर्तितः ॥५८
स्तुत्यो वन्द्यः सदा पूज्यस्त्वयायं सर्वथा नृप । मनसा कर्मणा वाचा देवनिन्दां परित्यजेत् ॥५९
अर्पयित्वा[1] च निर्माल्यं तदश्वेभ्यो निवेदयेत् । प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥६०
इत्येषा परमा दीक्षा तव संक्षेपतो मया । भुक्तिमुक्तिकरी चापि कथिता प्रविभागतः ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यदीक्षावर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४९।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यथा पूज्यो दिवाकरः । स्थण्डिले यदुशार्दूल निबोधैकाग्रमानसः ॥१
मण्डलैरष्टभिःकार्यं चक्रं कालात्मकं शुभम् । मध्ये पद्माकृतं चक्रमरैर्द्वादशभिर्युतम् ॥२
तन्मध्ये कमलं प्रोक्तं पत्राष्टकसमन्वितम् । सर्वात्मा सकलो देवः खषोल्कः किरणोज्ज्वलः ॥३

काल (समय) रूप कहे जाते हैं ।५५-५७। ज्योतिर्गण, सभी स्थावर तथा उससे भिन्न सृष्टि वाले, चेतन, एवं अचेतन सभी के आत्मा सूर्य बताये गये हैं ।५८। सूर्य तुम्हारे लिए सर्वथा स्तुति, वंदन, एवं पूजा, करने के योग्य हैं । मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा दूसरे की निन्दा करना छोड़ देना चाहिए ? उनके निर्माल्य को उनके अश्वों के लिए निवेदित करे । पश्चात् हाथ, पैर का प्रक्षालन पूर्वक सूर्य को नमस्कार करे । मैंने संक्षेप में तुम्हारे लिए इस उत्तम दीक्षा की व्याख्या की है, जो विभाग द्वारा (सभी भाँति के) उपभोगों एवं मुक्ति को प्रदान करती है ।५९-६१

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में सूर्य दीक्षा वर्णन नामक एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४८।

अध्याय १५०

आदित्यपूजा विधि का वर्णन

वासुदेव ने कहा—यदुशार्दूल ! इसके उपरात स्थंडिल (भूमि) में सूर्य की पूजा किस भाँति करनी चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! ।१। एक कलात्मक, शुभ, चक्र का निर्माण करना चाहिए जिसमें आठ मण्डल मध्य में कमल की आकृति, और बारह अर पहिये की धुरी और व्यास को मिलाने वाली तीली के समान लकड़िया (आरगज) हों।२। उसके मध्य भाग में बताये गये कमल में आठ पत्ते की रचना होनी चाहिए। महाबाहो ! उसके मध्यभाग में सर्वात्मा, समस्त देवमय, खषोल्क, उज्ज्वल किरण वाले, एवं

---

१. लंघयित्वा च निर्माल्यं तदात्मानं निवेदयेत् ।

पूजनीयः सदा मध्ये सहस्रकिरणायुधः । प्रणवेन महाबाहो चतुर्बाहुसमन्वितः ॥४
अरुणं[1] पूजयेत्प्राज्ञः सदा देवाग्रजं[2] शुभम् । दक्षिणे पूजयेद्देवीं निक्षुभां भास्करस्य तु ॥५
रेवतं दक्षिणे पार्श्वे उत्तरे पिङ्गलं सदा । संज्ञां च यदुशार्दूल श्रेयसे सततं बुधः ॥६
आग्नेय्यां लेखकं वीर नैर्ऋत्यामश्विनौ तथा । वायव्यां पूजयेद्देवं मनुं वैवस्वतं विभुम् ॥७
ऐशान्यां पूजयेद्देवीं यमुनां लोकपावनीम् । द्वितीयावरणे वीर पूर्वतः पूजयेद्द्वियत् ॥८
दक्षिणे च ततो देवीं पश्चिमे गरुडं तथा । उत्तरे नागराजानं पुत्रमैरावतं शुभम् ॥९
आग्नेय्यां पूजयेद्धेलिं प्रहेलिं नैर्ऋते तथा । वायव्यामुर्वशीं देवीमीशाने विनतां तथा ॥१०
तृतीयावरणे पूर्वे पूजयेद्गुरुमादरात् । पश्चिमे त्वर्कपुत्रं तु उत्तरे धिषणं तथा ॥११
ऐशाने शशिपुत्रं तु सोममाग्नेयमण्डले । पूजयेद्दक्षिणे कोणे नैर्ऋते राहुमादरात् ॥१२
वायव्ये विकचं वीर पूजयेत्सततं बुधः । चतुर्थावरणे देवं पूजयेल्लेखमादरात् ॥१३
आग्नेये शाण्डिलीपुत्रं दक्षिणे दक्षिणाधिपम् । विरूपाक्षं नैर्ऋते देवं जलेशं पश्चिमे तथा ॥१४
वायुपुत्रं च वायव्यां सततं पूजयेन्नरः । ईशाने देवमीशानं पूजयेत्सततं बुधः ॥१५
उत्तरे यक्षराजानां कुबेरं पूजयेद्बुधः । पञ्चमे पूजयेद्वीर सदा स्वावरणे द्विजाः ॥१६
पूर्वतः परमां देवीं महाश्वेतां महामतिः । श्रियमृद्धिं विभूतिं च धृतिं चैवोन्नतिं तथा ॥१७

सहस्र किरण रूपी अस्त्र वाले उस सूर्य की, जिसके चार हाथ हों, प्रणव (ओंकार) पूर्वक पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। विद्वानों को चाहिए कि जो शुभ मूर्ति एवं सदा देवों के अग्रज हैं, उस अरुण (वरुण) की भी पूजा सुसम्पन्न करें सूर्य के दक्षिण की ओर स्थित निक्षुभा देवी की पूजा करनी चाहिए।३-५। यदुशार्दूल! दक्षिण पार्श्व भाग में स्थित श्वेत, उत्तर पार्श्व में स्थित पिंगल की तथा बुद्धिमानो को चाहिए कि कल्याणार्थ संज्ञा देवी की भी निरंतर पूजा करते रहें।६। वीर! अग्नि कोण में स्थित लेखक, नैऋत्य में स्थित अश्विनी कुमार, वायव्य में विभु एवं वैवस्वत मनु देव और ऐशान्य में लोक को पावन करने वाली यमुना देवी की पूजा बताई गई है। वीर! द्वितीय आवरण (कक्ष) में पूरब की ओर से, पूजन पूर्वक आरम्भ करना बताया गया है।७-८। दक्षिण में देवी, पश्चिम में गरुड़, उत्तर में शुभ नागराज के पुत्र, ऐरावत, आग्नेय कोण में हेलि (सूर्य) नैऋत्य में प्रहेलि, वायव्य में उर्वशी और ईशान में विनता की पूजा होनी चाहिए।९-१०। तीसरे कक्ष में पूरब में सादर गुरु की पूजा पश्चिम में सूर्य पुत्र, उत्तर में धिषण (बृहस्पति), ईशान में चन्द्र पुत्र (बुध), आग्नेय में चन्द्र, नैऋत्य में सादर राहु, और वायव्य में वकच (केतु) की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए।११-१२। चौथे कक्ष में सादर लेख देव (विश्वकर्मा) आग्नेय में शाण्डिली पुत्र (अग्नि), दक्षिण में दक्षिणाधिप (यम) नैऋत्य में विरूपाक्षदेव, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायुपुत्र तथा ईशान में ईशान (शिव) और उत्तर में यक्षराज कुबेर की पूजा पण्डितों को करनी चाहिए। वीर! पाँचवें कक्ष में ब्राह्मणों को चाहिए कि अपने आवरण रूप देवों की पूजा करें। बुद्धिमानों को पूरब की ओर से उत्तम महाश्वेता देवी, श्री, ऋद्धि, विभूति, धृति, उन्नति, पृथिवी, एवं यदुशार्दूल!

---

१. वरुणम्। २. सदा वेदानुगं शुभम्। ३. वासुदेवम्।

पृथिवीं यदुशार्दूल महाकीर्ति तथैव च । इन्द्रं विष्णुं चार्यमणं भगं पर्जन्यमेव च ॥१८
दिवस्वन्तं तथार्कं च त्वष्टारं किरणोज्ज्वलम् । पूजयेद्वरुणं षष्ठे चैवमेतान्दिवाकरान् ॥१९
शिरो नेत्रे तथा वर्म अस्त्रं च यदुसत्तम । अरुणं सरथं वीर सप्तमे पूजयेद्बुधः ॥२०
तथाश्वान्यदुशार्दूल सदा चावरणे बुधः । यक्षरक्षांसि गन्धर्वान्मासान्पक्षानहानि तु ॥२१
संवत्सरं तथा पूर्वं दैवतान्पूजयेत्क्रमात् । य एवं पूजयेद्देवं भास्करं सततं नरः ॥
स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥२२

(ॐ खखोल्काय नमः)

मूलमन्त्रजपाद्धि चाङ्गानि परिचक्षते । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं रविम् ॥२३
नित्यमुभयसप्तम्यां स गच्छेत्परमं पदम् । इत्युक्त्वा भगवान्देवो जगामाशु गृहं रविः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने आदित्यपूजाविधिवर्णनं
नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५०।

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सूत उवाच

अथ राजा महातेजाः शतानीको द्विजोत्तमम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या सुमन्तुं वाक्यमब्रवीत् ॥१

महाकीर्ति, इन्द्र, विष्णु अर्यमा, भग, पर्जन्य, विवस्वान्, उज्ज्वल किरण वाले सूर्य, और वरुण की पूजा करनी चाहिए। छठें कक्ष में भी इन्हीं दिवाकर रूप देवों की पूजा करके यदुसत्तम ! शिर, नेत्र, वर्म (कवच), अस्त्र, और रथ समेत अरुण की पूजा वीर ! सातवें कक्ष में विद्वानों को करनी चाहिए ।१३-२०। यदुशार्दूल ! पंडित को चाहिए कि कक्ष स्थित अश्वों की पूजा करें : पुन यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मास, पक्ष, दिन, संवत्सर (वर्ष) इन सबकी सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए। इस भाँति जो मनुष्य निरन्तर सूर्य की पूजा करता है, उसे उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार का शोक उत्पन्न नहीं होता है 'ओं खषोल्काय नमः' यही मूल मन्त्र है। इन्हीं द्वारा अंगन्यास आदि करना चाहिए इस विधान द्वारा जो मास की दोनों सप्तमी तिथि में सूर्य की अनवरत पूजा करता है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है, ऐसा कह कर भगवान् सूर्य देव अपने घर के लिए शीघ्र प्रस्थित हुए ।२१-२४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में आदित्य पूजा विधि वर्णन
नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।१५०।

अध्याय १५१

सौरधर्म का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरान्त महातेजस्वी राजा शतानीक ने भक्ति पूर्वक ब्राह्मण श्रेष्ठ सुमन्तु को

अहो देवस्य माहात्म्यं भास्करस्यामितौजसः । कीर्तितं भवता मह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२
तस्मान्नार्कसमं देवं लोके पश्यामि सुव्रत । न चाप्यस्य स्थिता विप्र गतिर्लोकेषु विद्यते ॥३
प्रवर्तते जगद्विप्र सर्गकाले दिवाकरात् । स्थितौ पालयते चापि कल्पान्ते संहरेत्पुनः ॥४
श्रुत्वैवं देवमाहात्म्यं भास्करस्यामितौजसः । कीर्तितं भवता मह्यमश्वमेधशताद्वरम् ॥५
किं तु मे संशयो ब्रह्मन्सुमहान्हृदि वर्तते । केनोपायेन विप्रेन्द्र मुच्यते सम्भवार्णवात् ॥६
दिवाकरप्रसादाद्वै सुप्रसादाद्वृषध्वजात् । कथं तुष्येत्सदा देवो धर्मेण कतरेण तु ॥७
श्रुता मे बहवो धर्माः श्रुतिस्मृत्युदितास्तथा । वैष्णवाः शैवधर्माश्च तथा पौराणिकाः श्रुताः ॥८
श्रोतुकामो ह्यहं विप्र सौरं धर्ममनौपमम् । भगवन्सर्वधन्यास्ते सौरधर्मपरायणाः ॥९
ब्रूहि मे देवदेवस्य भानोर्धर्ममनौपमम् । शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिरमृतस्यैवमेव च ॥१०
अश्वमेधादयो यज्ञा बहुसम्भारविस्तराः । न शक्यास्ते यतः कर्तुमल्पवित्तैर्द्विजातिभिः ॥११
सुखोपायमतो ब्रूहि धर्मकामार्थसाधकम् । हिताय सर्वमर्त्यानां सर्वपापभयापहम् ॥१२
सौरधर्मपरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् । श्रुत्वा तु वचनं राज्ञो व्यासशिष्यो महामुनिः ॥
प्रणम्य शिरसा व्यासमिदं वचनमब्रवीत् ॥१३

शिर से नमस्कार करके उनसे कहा—अमित तेज वाले महात्मा सूर्य देव का माहात्म्य जो समस्त पापों का नाशक है, आपने मुझे बता दिया यह अत्यन्त हर्ष की बात है ।१-२। हे सुव्रत ! इसलिए सूर्य के समान कोई देव मुझे दिखाई नहीं दे रहा है, और विप्र ! लोकों में इनकी गति कहीं स्थित दिखायी नहीं दे रही है ।३। हे विप्र ! सृष्टि काल में यह जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है, तथा इसे अपने में स्थित करके इसका पालन तथा कल्पान्त में संहरण (नाश) भी करते रहते हैं ।४। इस प्रकार अमित तेज वाले महात्मा सूर्य देव का माहात्म्य आपने मुझे बताया और मैंने भलीभाँति सुना भी, जो सौ अश्वमेध यज्ञों से भी उत्तम फलदायक है । परंतु हे ब्रह्मन्! इसे सुनकर भी मेरे हृदय में महान् संशय उत्पन्न हो गया है कि विप्रेन्द्र ! इस जन्म-मरण रूप समुद्र से किस प्रकार बचाव किया जाय ? यदि दिवाकर की प्रसन्नता से ही (बचाव करना) निश्चित है जिसे प्रसन्नता पूर्ण करते हुए वृष (धर्म) ध्वज प्रदान किया गया हो तो (सूर्य) देव किस धर्म के अनुष्ठान से प्रसन्न होते हैं ।५-७। मैंने अनेकों—श्रुति, स्मृति में बताये गये, वैष्णव, शैव एवं पौराणिक धर्मों को सुना है । विप्र ! अब मुझे अनुपम सौर (सूर्य के) धर्म सुनने की इच्छा हो रही है । भगवन् ! सौर धर्म के पारायण करने वाले वे सभी धन्य हैं । अतः देवाधिदेव (सूर्य) के अनुपम धर्म मुझे बताने की कृपा कीजिए ! उसे सुनते हुए मुझे अमृत की भाँति तृप्ति नहीं होती है । अश्वमेध आदि यज्ञ का बहुत बड़ा विस्तृत संभार करना पड़ता है, अतः उसे अल्प धन वाले द्विजाति लोग नहीं कर सकते हैं, अतः धर्म, अर्थ, एवं काम की सफलता के उद्देश्य से किसी सुख साध्य उपाय को बताने की कृपा कीजिए । जो सभी मनुष्यों के लिए हितकर तथा समस्त पाप एवं भय का अपहरण करने वाले हों ।८-१२। (मेरे मत में) सौर धर्म ही उत्तम, पुण्य, पवित्र, एवं पापनाशक है । इस प्रकार राजा की बात सुनकर व्यास के शिष्य महामुनि (सुमन्तु) ने व्यास को शिर से प्रणाम कर यह कहा— ।१३

सुमन्तुरुवाच

श्रूयतामभिधास्यामि सुखोपायं महाफलम् । परमं सर्वधर्माणां सर्वधर्ममनौपमम् ॥१४
रविणा कथितं पूर्वमरुणस्य विशांपते । कृष्णस्य ब्रह्मणो वीर शङ्करस्य न विद्यते ॥१५
संसारार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामयम् । सौरधर्मस्तमः श्रीमान्हिताय जगतोदितः ॥१६
यैरयं शान्तहृदयैः सूर्यभक्तैर्भगार्थिभिः । संसेव्यते परो धर्मस्ते सौरा नात्र संशयः ॥१७
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च । ये स्मरन्ति रविं भक्त्या सकृदेवापि भारत ॥
सर्वपापैर्विमुच्यन्ते सप्तजन्मकृतैरपि ॥१८
स्तुवन्ति ये सदा भानुं न ते प्रकृतिमानुषाः । स्वर्गलोकात्परिभ्रष्टास्ते ज्ञेया भास्कराः भुवि ॥१९
नानर्कः स्मरतेऽर्कं वै नानर्कोऽर्कं समर्चयेत् । नानर्कः कीर्तयेदर्कं नानर्कोऽर्कमवाप्नुयात् ॥२०
सौरधर्मस्य सारोऽयं सूर्यभक्तिः सुनिश्चला । षोडशाङ्गा च सा प्रोक्ता रविणेह दिवौकसाम् ॥२१
प्रातः स्नानं जपो होमस्तथा देवार्चनं नृप । द्विजानां पूजनं भक्त्या पूजा गोऽश्वत्थयोस्तथा ॥२२
इतिहासपुराणेभ्यो भक्तिश्रद्धापुरस्कृतम् । श्रवणं राजशार्दूल वेदाभ्यासस्तथैव च ॥२३
मद्भक्त्या जनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम् । स्वयमभ्यर्चयेद्भक्त्या ममाग्रे वाचकं परम् ॥२४
पुस्तकस्य सदा श्रेष्ठ ममातीव प्रियं सुराः । मत्कथाश्रवणं नित्यं स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥२५

सुमन्तु बोले—आप सुनें ! मैं सुखसाध्य, महाफलदायक, समस्त धर्मों में उत्तम, तथा सब से अनुपम, एवं विशांपते ! सूर्य ने अरुण के लिए जिसे पहले (समय में) कहा था, बता रहा हूँ । वीर ! जिस कर्म के समान कृष्ण, ब्रह्मा, एवं शिव का धर्म नहीं है । क्योंकि इस संसार सागर में निमग्न सभी प्राणियों के हित के लिए श्रीमान् इस सौर धर्म का जगत् में उदय हुआ ।१४-१६। जो शांत चित्त होकर सूर्य भक्त एक मात्र भग (सूर्य) के प्रसन्नार्थ इस उत्तम धर्म की सेवा करते है, वे ही सौर हैं, इसमें संदेह नहीं है ।१७। भारत ! एक दो या तीनों काल और प्रतिदिन जो भक्ति पूर्वक एकबार भी सूर्य का स्मरण करता है, वह सात जन्म के पापों से भी मुक्त हो जाता है ।१८। जो मनुष्य सदैव सूर्य की उपासना करता है, उसे प्रकृति से उत्पन्न मनुष्य न जानना चाहिए, प्रत्युत उसे स्वर्ग से भ्रष्ट होकर इस भूतल में आया हुआ भास्कर ही जानना चाहिए ।१९। सूर्य के आत्मीय हुए बिना उनका स्मरण, पूजन, तथा कीर्तन न करना चाहिए । क्योंकि उसे वैसे दशा में सूर्य की प्राप्ति न हो सकेगी ।२०। यह सौर धर्म का निष्कर्ष है कि 'सूर्य की भक्ति भली भाँति निश्चल होनी चाहिए' जिसके सोलह अंग हैं । इसे स्वयं सूर्य ने देवताओं को बताया है ।२१। प्रातः काल स्नान करके जप, हवन, तथा नृप ! देव की पूजा भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा और आम एवं पीपल वृक्ष की पूजा करके इतिहास पुराणों की कथा भक्त एवं श्रद्धालु होकर सुनना चाहिए । राज शार्दूल ! उसी प्रकार वेदपाठ भी करना बताया गया है ।२२-२३। मेरी भक्ति करते हुए मनुष्यों में प्रेम, पूजा का अनुमोदन, एवं स्वयं मेरे सामने भक्ति पूर्वक उत्तम वाचक की पूजा करनी चाहिए ।२४। उस उत्तम पुस्तक की पूजा करते हुए देवों की भी पूजा करना बताया गया है क्योंकि देवगण भी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । मेरी कथाओं को नित्य श्रवण करते हुए उसमें यथावसर स्वर, नेत्र तथा अंगों के विकार भी होने चाहिए । कहीं करुणा आने पर कारुणिक स्वर, आँखों में आँसू आदि आने

ममानुस्मरणं नित्यं भक्त्या श्रद्धापुरस्कृतम् । षोडशाङ्गा भक्तिरियं यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते ।।
विप्रेन्द्रः स मुनिः श्रीमान्सजात्यः स च पण्डितः ।।२६
न मे पृथक्चतुर्वेदा मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः । तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ।।२७
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।२८
यो मां सर्वगतं पश्येत्सर्वं च मयि संस्थितम् । तस्याहमास्थितो नित्यं स च नित्यं मयि स्थितः ।।२९
अष्टादशार्गकक्षायाः परं चाष्टभिरुद्भवैः । रोधयित्वा महाबाहो तथा ज्ञानतरेण तु ।।३०
दुर्गपालं विजित्याशु भास्करार्थं तु दुर्जयम् । जित्वा च पुरराजानं महातेजमनौपमम् ।।३१
मनसाचलया भक्त्या यो मां ध्यायति मानवः । अहं तस्यैव चिंतामि आत्मवत्सततं नरम् ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं
नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५१।

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूरधर्मेषु प्रश्नवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सूरे च दुर्लभा भक्तिर्दुर्लभं सूरपूजनम् । सूराय दुर्लभं दानं सूरहोमश्च दुर्लभः ।।१

चाहिए ।२५। इस प्रकार भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक मेरा स्मरण प्रतिदिन करना बताया गया है । यही सोलह अंगों वाली भक्ति है । यदि किसी म्लेच्छ जाति का प्राणी इसे अपनाये तो विप्रेन्द्र मुनि, श्रीमान्, जातिश्रेष्ठ, एवं पंडित भी वह हो सकता है । मुझसे पृथक् चारों वेद नहीं है, अतः मेरा भक्त कोई श्वपच (चांडाल) भी हो जाये, तो उसे भी वेद प्रदान करना चाहिए क्योंकि वह मेरे समान ही ग्राह्य एवं पूज्य है ।२६-२७। जो भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल प्रदान करते हैं, उनके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता तथा वे भी मुझे प्राप्त कर कभी नष्ट नहीं होते हैं ।२८। जो मुझे सर्वगत (सभी स्थानों में व्याप्त), और समस्त जगत् को मुझमें स्थित देखता है, उसके लिए मेरी नित्य आस्था बनी रहती है, और वह मुझमें नित्य स्थित होता है ।२९। नव कक्षा के महत्ता वाले दुर्ग को उत्पन्न आठों द्वारा रोक कर दुर्ग पाल को शीघ्र जीतकर नगराधिपति राजा को जिस प्रकार जीत लिया जाता है। उसी भाँति महाबाहो ! अपने उत्तम ज्ञान द्वारा दुर्जेय भास्कर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर भक्ति पूर्वक जो मनुष्य अचल मन द्वारा मेरा ध्यान करता है, अपनी संतानों की भाँति मैं उसकी सदैव चिन्ता किया करता हूँ ।३०-३२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक
एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५१।

अध्याय १५२

सूरधर्म में प्रश्न का वर्णन

सुमन्तु बोले—सूर्य की भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, उनका पूजन भी दुर्लभ है तथा उनके लिए दान, एवं

सुदुर्लभं रवेर्ज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः । सुदुर्लभतरं ज्ञेयं खषोल्कज्ञानमुत्तमम् ।।२
सुदुर्लभतरं ज्ञानं सदा वै भास्करस्य तु । प्रदक्षिणां चक्रतुर्वै पादौ भक्त्यार्कमन्दिरे ।।३
तौ करौ श्लाघ्यतां प्राप्तौ यौ पूजां चक्रतू रवेः । सैवैका रसना धन्या स्तोत्रं या कुरुते रवेः ।।४
तन्मनः पुण्यतां प्राप्तं यद्धित्वा विषयं नृप । निश्चला च रवेर्लीला निर्भीका क्रोधवर्जिता ।।५

शतानीक उवाच

सूर्यार्चनविधिं कुर्वञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ कौतूहलमतीव मे ।।६
यत्पुण्यं स्थापिते सूर्ये कृते सूर्यालये च यत् । सम्मार्जने च यत्पुण्यं यत्पुण्यमुपलेपने ।।७
स्थाने कृते च यत्पुण्यं तथा नीराजने कृते । नीलौषधिप्रदानेन नृत्यमङ्गलवादितैः ।।८
अर्घ्यदानेन यत्पुण्यं तोयस्नानेन यद्भवेत् । पञ्चामृतमहास्नाने दधिस्नाने च यत्फलम् ।।९
चक्राभ्यङ्गे च यत्प्रोक्तं वज्रस्नाने च यत्फलम् । मधुस्नाने पयःस्नाने स्नान इक्षुरसस्य तु ।।१०
उद्वर्तनं शुचिस्थाने कुशपुष्पोदकेन तु । सुवर्णरत्नतोयैश्च गन्धचन्दनवारिभिः ।।११
कर्पूरागुरुतोयेन स्वच्छतोयेन यत्फलम् । विलेपनैश्च गन्धाढ्यैर्विलेपनफलं लभेत् ।।१२
तालपत्रप्रदाने तु प्रदाने चामरस्य तु । रक्तपुष्पार्चने यच्च दामभिः पूजनेन च ।।१३
सुमनसां मण्डपे यच्च पुष्पमालावलम्बनात् । पूजाभक्तिविशेषैश्च गृहमालावलम्बने ।।१४

हवन करना भी दुर्लभ है ।१। सूर्य का ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है और उसका अभ्यास करना भी । जिस प्रकार खषोल्क ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है, उसी भाँति सदैव सूर्य का भी ज्ञान । भक्तिपूर्वक सूर्य के मंदिर में प्रदक्षिणा करने वाले वे चरण, तथा सूर्य की पूजा करने वाले वे हाथ, ये दोनों प्रशस्त बताये गये हैं, वही एक रसना (जिह्वा) धन्य है, जिसके द्वारा सदैव सूर्य के स्तोत्र पाठ होते रहते हैं । नृप ! वही मन पुण्यात्मक है, जिसने विषय वासना का त्याग कर निर्भीक एवं क्रोध के परित्याग पूर्वक सूर्य की निश्चल भक्ति अपना लिया है ।२-५

शतानीक ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मैं रहस्य पूर्वक सूर्य की पूजा का विधान सुनना चाहता हूँ, क्योंकि इसके लिए मुझे अत्यन्त कौतूहल है । सूर्य के स्थापित करने, उनके लिए मंदिर का निर्माण कराने, मंदिर की (सफाई) तथा गोबर से लीपने, सूर्य के स्थापन का स्थान करने, नीराजन करने मंदिर में नील औषधियों के लगाने, सूर्य के सम्मुख नृत्य करने मंगलवाद्यों के बजाने, अर्घ्यदान तथा जल द्वारा स्नान कराने से जितने पुण्य की प्राप्ति होती हो उन्हें और पंचामृतस्नान, दधिस्नान, चक्र के अभ्यंग करने वज्रस्नान, मधुस्नान, दूध स्नान, ईख के रस द्वारा स्नान कराने से, और पवित्र स्थान में कुश के जल से उद्वर्तन (मूर्ति के लेपन) करने, जिसमें सुवर्ण तथा रत्न के जल और गन्ध चन्दन के जल मिश्रित हो कपूर, अगुर-तोय एवं स्वच्छ जल मिश्रित सुगन्धित लेपन करने तालपत्र (व्यजन), चामर के प्रदान करने से जो पुण्य एवं फल प्राप्त होते हैं उसकी व्याख्या समेत रक्त पुष्पों एवं दामों द्वारा पूजन करने, मंडप में सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला लटकाने, पूजा भक्ति की विशेषता वश उस गृह में मालाएँ लटकाने,

पुष्पदानविशेषेण धूपदीपैश्च यत्फलम् । वस्त्रालङ्कारदाने तु पुण्यश्रवणकीर्तने ॥१५
ब्रह्मश्रवस्य दाने तु अव्यङ्गस्य च गोपते । मगानां मत्प्रसादेन अभिवादनपूजने ॥१६
व्योमपूजाफलं यच्च वरुणस्य च पूजनम् । तथान्यदपि यत्प्रोक्तमज्ञानाद्ब्राह्मणोत्तम ॥१७
तत्सर्वं ब्रूहि मे ब्रह्मन्भक्तानामनुकम्पया ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सूरधर्मेषु प्रश्नवर्णनं नाम
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५२।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यतेजोवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सुमतिश्च रवेर्भक्तः पाण्डवेय महामते । अतस्ते निखिलं वच्मि शृणुष्वैकमना नृप ॥१
कल्पादौ सृजतो वीर ब्रह्मणो विविधाः प्रजाः । अहंकारो महानासीन्नास्ति लोके मदुत्तमः ॥२
तथा पालयतो वीर केशवस्य धरापते । तथा संहरतो जज्ञेऽहङ्कारस्त्र्यम्बकस्य च ॥३
चिंतयन्तोथ ते देवाः केशवश्च नराधिप । मिथस्ते स्पर्धया युक्ताः परस्परविरोधिनः ॥४
विवादस्तु महानासीत्कञ्जाम्बुजनौकसाम् । परस्परं महाबाहो मनसाभिन्य केवलम् ॥५

पुष्प दान की विशेषता करने, धूप-दीप करने, वस्त्र एवं अलंकार प्रदान करने, पुण्य ब्रह्म घोष के सुनने, कीर्तन करने ; सूर्य के लिए अव्यंग प्रदान करने, मेरी प्रसन्नता के लिए मगों का अभिवादन एवं पूजा करने व्योम तथा वरुण की पूजा करने, और ब्राह्मणोत्तम ! अज्ञानवश मैं जिसे नहीं कह पाया उसके समेत इन सब के सुसम्पन्न करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, हे ब्रह्मन् ! आप मुझे बताने की कृपा करें ।६-१८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सूरधर्म में प्रश्न वर्णन नामक
एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५२।

अध्याय १५३

सूर्यतेज का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महामते, पाण्डवेय ! तुम्हारी बुद्धि बहुत उत्तम है, तुम सूर्य के भक्त हो अतः नृप ! मैं तुम्हें इन सभी कुछ की व्याख्या समेत बताऊँगा, सावधान होकर सुनो ! ।१। वीर ! कल्प के आदि में भाँति-भाँति की प्रजाओं की सृष्टि करते हुए ब्रह्मा को अभिमान हुआ कि मेरे समान लोक में कोई नहीं है ।२। धरापते ! उसी प्रकार पूजा पालन करते हुए विष्णु, तथा उसका संहार करते हुए शिव को महान अभिमान उत्पन्न हुआ ।३। नराधिप ! उस गर्व से मतवाले होकर तीनों देवों में आपस में ईर्ष्या वश महान विरोध उत्पन्न किया ।४। महाबाहो ! केवल अपने मन से ही गर्वोक्ति की कल्पना करते हुए उन ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर का अपने आप में महान विवाद (झगड़ा) उत्पन्न हुआ ।५। उस कलह के समय

अहं कर्ता विकर्ताऽहं पालकोऽहं जगत्प्रभुः । इत्याह भगवान्ब्रह्मा कृष्णभीमौ समर्चितौ ॥६
तथैत्य शंकरः क्रुद्धः कः शक्तो मदृते भुवि । संहर्तुं जगदेताद्धि स्रष्टुं पालयितुं तथा ॥७
नारायणोऽप्येवमेव मनाक् क्रोधसमन्वितः । न वा शक्तो जगत्स्रष्टुं संहर्तुं रक्षितुं तथा ॥८
एवं तेषां प्रवदतां क्रुद्धानां च परस्परम् । समाविशत्तदाऽज्ञानं तमो मोहात्मकं विभो ॥९
तेन भ्रान्तधियः सर्वे न पश्यन्ति परस्परम् । अत्यर्थं मोहमापन्ना न जानन्तीह किञ्चन ॥१०
अपश्यन्तो मिथस्ते तु निषण्णाः क्ष्मातले विभो । आरमन्ति हि ये चान्ये ते दिवाकरमास्थिताः ॥११
तमसा मोहिताः सर्वे निद्रावत्क्रान्तचेतसः । मनागज्ञानेन त्वाक्रान्ताः किं कुर्यामेति मोहिताः ॥१२
अथ भूताधिपो देवो गोश्रुताभरणोज्ज्वलः । चन्द्रार्धकृतशोभस्तु शीतलांशुविशोधितः ॥१३
आर्तिमेत्य परां वीर मोहितस्तमसा विभो । अपश्यन्नब्रवीद्देवं माधवं भूधरं हरिम् ॥१४

महादेव उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो क्व गतस्त्वं महामते । ब्रह्मा च क्व गतो वीर नाहं पश्यामि वां क्वचित् ॥१५
मोहेन महताहं वै तमसा च विमोहितः । किं करोमि क्व गच्छामि क्वचाहमधुना स्थितः ॥१६
क्ष्माधरं पृथिवीं वृक्षान्देवगन्धर्वदानवान् । विपुलं सागरं सिन्धून्नाहं पश्यामि किञ्चन ॥१७

उस कलह के समय में ही इस जगत् का कर्ता, विकर्ता, (नाशक), एवं पालक हूँ, भगवान् ब्रह्मा कहने लगे । वहाँ पहुँच कर शंकर भी क्रुद्ध होकर कहने लगे कि इस भूतल में जगत् के सर्जन, पालन एवं नाश करने के लिए मेरे अतिरिक्त कौन समर्थ हो सकता है, इसी प्रकार नारायण भी क्रोध कर कहने लगे कि जगत् की सृष्टि, पालन एवं नाश करने के लिए मेरे अतिरिक्त कोई अन्य समर्थ नहीं है विभो ! इस प्रकार क्रुद्ध होकर उन लोगों के इस आपस के विवाद करते समय मोहात्मक अज्ञान रूपी अंधकार उनमें प्रविष्ट हो गया उससे उनकी बुद्धि नष्ट हो गई । अभिव्यक्ति मोह में आसक्त होने के कारण वे लोग आपस में किसी को देख नहीं सकते थे और न कुछ जानते ही थे ।६-९। विभो ! उस महान्धकार में वे लोग एक दूसरे को न देख सकने के कारण पृथिवी तल में बैठ गये और सोचने लगे कि देखो ! ये अन्य लोग सूर्य के आश्रित होकर किस प्रकार का प्रसन्न जीवन व्यतीत कर रहे हैं एक हम सब हैं जो निद्रा की भाँति मोह से लिप्त हो कर सोये पड़े हैं । केवल थोड़ा सा ज्ञान शेष रह गया है, इससे अब क्या करूँ क्या न करूँ ।१०-१२। इस प्रवाह में बहते हुए भूतों के नायक, कानों में उज्ज्वल कुण्डल धारण करने वाले एवं उस चन्द्रार्ध से सुशोभित जिसकी स्वच्छ तथा शीतल किरणें हैं शिव ने अज्ञान मुग्ध तथा दुःखी होकर वीर ! इस पृथिवी को धारण करने वाले उन कृष्ण को न देखकर इस भाँति कहना आरम्भ किया।१३-१४

महादेव ने कहा—महामते ! कृष्ण, कृष्ण, तुम कहाँ चले गये । और ब्रह्मा कहाँ चले गये । वीर तुम दोनों को कहीं नहीं देख पा रहा हूँ । हाय ! इस समय महान् मोहरूपी, अन्धकार से मैं लिप्त हूँ कहाँ जाऊँ, क्या करूँ इस समय मैं कहाँ स्थित हूँ । पर्वत, पृथिवी, वृक्षों, देव, गन्धर्व, दानवों, विपुल सागर तथा सिन्धु को कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ ।१५-१७। देवशार्दूल ! स्थावर एवं जंगम रूपी जगत् को मैं किस

केनोपायेन पश्येयं जगत्स्थावरजङ्गमम् । ब्रूहि मे देवशार्दूल व्रीडा मेऽतीव जायते ॥१८
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा हरिर्वचनमब्रवीत् । शोकगद्गदया वाचा तमसा मोहितो नृप ॥१९

विष्णुरुवाच

भीम भीम न जानेऽहं क्व भवान्वर्ततेऽधुना । ममापि मोहितं चेतस्तमसातीव शङ्कर ॥२०
क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कथं तत्स्वस्थतां व्रजेत् । तमसा पूरितं सर्वं जगद्धि परमेश्वर ॥२१
यद्यसौ दृश्यते देवः सुरज्येष्ठोऽम्बुजोद्भवः । पृच्छावस्तं महात्मानं यदि ते रोचते हर ॥२२
हित्वा दर्पमहङ्कारं सममास्थाय केवलम् । पद्माननं पद्मयोनिं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥२३
इत्येवं वदतो वाक्यं विष्णोरमिततेजसः । श्रुत्वोवाच विभुर्ब्रह्मा गङ्गाधरमहीधरौ ॥२४
कृष्ण कृष्ण महाबाहो भीम भीम महामते । क्व भवन्तौ ब्रूत किं च किं युवामूचतुर्मिथः ॥२५
ममातीव मनोबुद्धी तमसा वशमागते । न शृणोमि न पश्यामि निद्रामोहवशं गतः ॥२६
अहो बत जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । तमसा व्याप्टतं देवौ न जाने क्व गतं महः ॥२७
अथ तेषां प्रवदतां ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् । दर्पक्रोधभयार्तानां तमसाक्रान्तचेतसाम् ॥२८
तेषां दर्पापहाराय प्रबोधार्थं च गोपतेः । तेजोरूपं समुद्भूतमष्टशृङ्गमनौपमम् ॥२९
अलक्ष्यं पापतमसा महद्व्योम नराधिप । ज्वालामालावृतं वीर बहुरूपं च भासते ॥३०

उपाय से देख सकूंगा, बताइये ! मुझे अत्यन्त लज्जा हो रही है ।१८। नृप ! इस प्रकार शंकर की बातें सुनकर अज्ञान से मोहित होकर विष्णु शोक प्रकट करते हुए गद्गद् वाणी से बोले ।१९

विष्णु बोले—भीम, भीम ! मुझे नहीं मालूम हो रहा है कि इस समय आप कहाँ हैं ! शंकर ! मेरा भी चित्त अत्यन्त अन्धकार से आवृत हो गया है ! कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, मेरा मन किस प्रकार से स्वस्थ (मोहमुक्त) हो सकेगा । परमेश्वर ! यह समस्त जगत् अन्धकार से ढँक गया है ।२०-२१। हर ! यदि तुम्हारी भी संमति हो और कहीं देव श्रेष्ठ एवं कमलयोनि, ब्रह्मा दिखाई पड़े तो उन्हीं महात्मा से जो कमल के समान मुख, कमल से उत्पन्न, एवं कमल पत्र के समान नेत्रवाले हैं हम दोनों दर्प पूर्ण अहंकार का यदि त्याग कर केवल ससम्मान भाव से पूछें इस प्रकार कहते हुए उस अमित तेजवाले विष्णु की बातें सुनकर विभु, ब्रह्म, शिव एवं विष्णु से बोले— ।२२-२४

ब्रह्मा बोले—कृष्ण, कृष्ण ! शिव, शिव ! महाबाहो ! महामते ! आप लोग कहाँ से बोल रहे हैं और आपस में कौन सी बातें कर रहे हैं ।२५ मेरा मन एवं बुद्धि ये दोनों अन्धकार से लिप्त है क्योंकि निद्रा द्वारा मोहित हो जाने की भाँति मैं न कुछ सुन रहा हूँ और न कुछ देख रहा हूँ ।२६। महान् आश्चर्य एवं दुःख की बात है देव, राक्षस एवं मनुष्यों समेत यह समस्त जगत् अन्धकार से घिर गया है, कृष्ण एवं शिव ये दोनों देव नहीं जानता कहाँ चले गये हैं ।२७। इसके पश्चात् अभिमान, क्रोध तथा भय से व्याकुल, मोहअन्धकार से ढँके चित्त वाले उन ब्रह्मा आदि देवताओं के इस प्रकार कहने पर उनके अभिमान के नाश करने एवं उन्हें सूर्य का ज्ञान कराने के लिए तेजोमय, आठ सींगो वाला, अनुपम, पाप रूप अन्धकार के लिए अनिरीक्ष्य तथा प्रज्वलित ज्वालाओं की माला से घिरा, नराधिप ! इस प्रकार एक महान् व्योमतेज दिखाई पड़ा। वीर ! वह इस भाँति दिखाई दे रहा था जैसे उसके अनेकों रूप

शतयोजनविस्तीर्णं गतमूर्ध्वं भ्रमत्तथा । गोमध्यतो महाराज कर्णिकेवाम्बुजस्य नु ॥३१
प्रकाशं तेजसा तस्य जगत्सर्वमिदं नृप । पुरेष्वन्तर्यथा वीर अम्बुजस्यार्चिभिः सदा ॥३२
दृष्ट्वा परस्परं सर्वे हुङ्कारादिविकारिणः । तेजसा मोहितास्तस्य जगत्सर्वमिदं नृप ॥३३
तेजसा मोहितं तस्य महद्व्योम नराधिप । ततो विस्मयमासीनः दृष्टगोपतयो नृप ॥३४
पश्यमाना महो व्योम्नि मिथो वचनमब्रुवन् । अहो तेजः समुद्भूतमस्माकं श्रेयसे नृप ॥३५
प्रकाशाय च लोकानां सर्वे पश्याम किन्त्विदम् । ज्ञानायोर्ध्वं गतो ब्रह्मा चाधस्तात्त्रिपुरान्तकः ॥३६
तिर्यग्जगाम देवेशश्चक्राम्बुजगदाधरः । अलब्ध्वा तन्न ते सर्वे प्रमाणं गैरिकाधिपाः ॥३७
विस्मयोत्फुल्लनयनाः समागम्य परस्परम् । सर्वे कञ्जादिका देवा इदं वचनमब्रुवन् ॥३८
कोऽयं किमात्मकश्चायं किमिदं तेजसां निधिः । अहोऽस्य दर्शनात्सर्वे सञ्जाताः ज्ञानिनो वयम् ॥३९
तस्मात्सर्वे प्रणम्यैनं स्तुवीमोऽद्भूतदर्शनम् । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे त्वास्तुवंस्त्रिदिवौकसः ॥४०
स्तुवतामप्यथैतेषां सहस्रकिरणो रविः । आत्मानं दर्शयामास कृपया परया वृतः ॥४१
ज्ञात्वा भक्तिं महाबाहो ब्रह्मादीनां महोपमाम् । अथ ते व्योम्नि देवेशं ददृशुः परमेश्वरम् ॥४२
खषोल्कलोकनाथेशं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् । कृत्तिकाभिरसंस्पृष्टं यद्वा तत्कार्तिकास्थितम् ॥४३

हों ।२८-३०। महराज ! वह सौ योजन में विस्तृत होकर पृथ्वी के मध्य ऊपर आकाश में कमल की कर्णिका की भाँति घूम रहा था ।३१। राजन् ! उसके तेज से सम्पूर्ण जगत् वीर ! बिजली द्वारा सदैव प्रकाशित नगर के भीतरी भाग की भाँति सहसा प्रकाशित हो गया । नृप ! उसके तेज से मोहित हुए उन लोगों ने जो अहंकार आदि विकार को अपनाये हुए थे आपस में एक दूसरे को देखते हुए देखा कि समस्त जगत् उसके तेज से आवृत है । नराधिप ! पश्चात् उस महान् व्योम तेज को देखकर वे देवगण, आश्चर्य चकित हो उस (तेजोमय) को देखते हुए आपस में कहने लगे कि नृप ! हमीं लोगों के हित के लिए यह तेजोराशि उदित हुई है । अथवा जब सभी लोकों के प्रकाशनार्थ यह आविर्भूत हुआ है, तब हमी लोग इसे क्यों न देखें । (इस प्रकार) कहकर उसकी जानकारी के लिए उसके ऊर्ध्व भाग की ओर ब्रह्मा, नीचे की ओर त्रिपुरांतक (शिव) और पार्श्व भाग की ओर शंख-गदाधारी देवेश विष्णु ने प्रस्थान किया । उस (तेजोमय) का प्रमाण (लम्बाई चौड़ाई आदि) न जानकर वे देवगण पुनः लौटकर इतने आश्चर्य चकित हुए कि उनकी आँखें कमल की भाँति विकसित हो गई अनन्तर वे ब्रह्मादि देव इस प्रकार कहने लगे कि 'यह कया है कुछ समझ में नहीं आता है इसका आकार कैसा है, यह तेजोमय विधान है या वस्तु । महान् आश्चर्य की बात है कि इसे देखते ही हम लोगों को ज्ञान उत्पन्न हो गया ।३२-३९। इसलिए हमें चाहिए कि हम लोग प्रणाम पूर्वक इस अद्भुत दर्शन की स्तुति करें । ऐसा कहकर वे देवगण हाथ जोड़कर उसकी स्तुति करने लगे । इसके उपरांत उन लोगों के स्तुति करने पर सहस्र किरण वाले सूर्य ने अत्यन्त दयालु होकर उन्हें दर्शन दिया । महाबाहो ! जो उन ब्रह्मादि देवों की उस भक्ति द्वारा प्रसन्न हो गये थे तदनन्तर उन लोगों ने आकाश में स्थित परमेश्वर, एवं देवेश सूर्य को देखा जो खषोल्करूप, लोकनाथ, ईश, सहस्र किरणों से समुज्ज्वल, कृतिकाओं मे संस्पृष्ट हो, उस कार्तिक में स्थित थे ।४०-४३

दुर्जयं कृत्तिकानां तु तथैकेन विवर्जितम् । तथा हस्तविहीनं च सप्तर्षिरहितं तथा ।।४४
वर्षाब्दरहितं देवं सप्तस्वरविवर्जितम् । सकलं निष्कलं चैव सदैकाकाररूपिणम् ।।४५
तद्दृष्ट्वानेकशिरसमनेकचरणं तथा । अनेकोदरबाह्वंसमनेकाभरणान्वितम् ।।४६
अनेकाननमक्षीबं सहस्राक्षमनौपमम् । अनेकवर्णरूपं च अनेकमुकुटोज्ज्वलम् ।।४७
दृष्ट्वैवं देवदेवस्य रूपं भानोर्महात्मनः । विस्मयोत्फुल्लनयनास्तुष्टवुस्ते दिवाकरम् ।।४८
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ब्रह्मा स्तोतुं प्रचक्रमे । प्रणम्य शिरसा भानुमिदं वचनमब्रवीत् ।।४९

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देवदेवेश सहस्रकिरणोज्ज्वल । लोकदीप नमस्तेऽस्तु नमस्ते कोणवल्लभ ।।५०
भास्कराय नमो नित्यं खषोल्काय नमोनमः । विष्णवे कालचक्राय सोमायामिततेजसे ।।५१
नमस्ते पञ्चकालाय इन्द्राय वसुरेतसे । खगाय लोकनाथाय एकचक्ररथाय च ।।५२
जगद्धिताय देवाय शिवायामिततेजसे । तमोघ्नाय सुरूपाय तेजसां निधये नमः ।।५३
अर्थाय कामरूपाय धर्मायामिततेजसे । मोक्षाय मोक्षरूपाय सूर्याय च नमोनमः ।।५४
क्रोधलोभविहीनाय लोकानां स्थितिहेतवे । शुभाय शुभरूपाय शुभदाय शुभात्मने ।।५५
शान्ताय शान्तरूपाय शान्तयेऽस्मासु वै नमः । नमस्ते ब्रह्मरूपाय ब्राह्मणाय नमोनमः ।।५६
ब्रह्मदेवाय ब्रह्मरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने । ब्रह्मणे च प्रसादं वै कुरु देव जगत्पते ।।५७
एवं स्तुत्वा रविं ब्रह्मा श्रद्धया परया विभो । तूष्णीमासीन्महाभाग प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।५८

कृतिकाओं के लिए अजेय, एक से शून्य, हस्त एवं सप्तर्षि से हीन, वर्ष, अब्द रहित, सप्तस्वर हीन, कला समेत, कलाहीन, सदैव एक रूप धारण करने वाले, अनेक शिर, चरण, उदर, भुजाएँ एवं स्कन्धों में भाँति-भाँति के आभूषणों से सुशोभित, अनेक कांति पूर्ण मुख, सहस्र आँखे, अनुपमेय, अनेक वर्ण एवं रूप वाले तथा अनेक उज्ज्वल मुकुटों से विभूषित थे ।४४-४७। देवाधिदेव, एवं महात्मा सूर्य देव के इस प्रकार के रूप को देखकर आश्चर्य से चकित होने पर उनकी आँखे खिल उठी । तदुपरांत वे सूर्य की स्तुति करने लगे । हाथ जोड़ कर ब्रह्मा ने शिर से प्रणाम कर सूर्य की इस प्रकार स्तुति की ।४८-४९

ब्रह्मा बोले—हे देवाधिदेव ! सहस्र किरणों से समुज्ज्वल होने वाले आप को नमस्कार है । लोक के दीपक ! आप को नमस्कार है कोण (त्रिशूल) प्रिय ! आप को नमस्कार है, भास्कर को नमस्कार है, खषोल्क को नित्य नमस्कार है, विष्णु रूप, कालचक्र, सोम, एवं अमित तेज वाले को नमस्कार है, पाँचों काल, इन्द्र, वसुरेतस, आकाशचारी, लोकनाथ एक चक्के के रथ वाले, जगत् के हितैषी देव, शिव, अमित तेजवाले, तमके नाशक, सौन्दर्यपूर्ण, एवं तेजो निधान आप को नमस्कार है ।५०-५३ धर्म, अर्थ एवं काम रूप अनुपम तेजस्वी, मोक्ष तथा मोक्षरूप, सूर्य को नमस्कार है, क्रोध तथा लोभहीन, लोक की स्थिति के कारण, शुभ रूप, शुभदायक एवं कलात्मक, शांत तथा हम लोगों की शांति के लिए शांत रूप, तुम्हें नमस्कार है, ब्रह्मरूप, तुम्हारे लिए नमस्कार है, ब्राह्मण को नमस्कार है, ब्रह्मदेव, ब्रह्मरूप, ब्रह्म तथा परमात्मा को नमस्कार है । हे जगत्पते, देव ! ब्रह्मा के लिए कृपा कीजिए । विभो ! इस प्रकार अत्यन्त श्रद्धालु होकर ब्रह्मा सूर्य की स्तुति करके हे महाभाग ! प्रसन्न अन्तःकरण पूर्ण हो मौन हो गये ।५४-५८

ब्रह्मणोऽनन्तरं रुद्रः स्तोत्रं चक्रे विभावसोः। त्रिपुरारिर्महातेजाः प्रणम्य शिरसा रविम् ॥५९

महादेव उवाच

जय भाव जयाजेय जय हंस दिवाकर। जय शम्भो महाबाहो खग गोचर भूधर ॥६०
जय लोकप्रदीपन जय भानो जगत्पते। जय काल जयानन्त संवत्सर शुभानन ॥६१
जय देवादितेः पुत्र कश्यपानन्दवर्धन। तमोघ्न जय सप्तेश जय सप्ताश्ववाहन ॥६२
ग्रहेश जय कान्तीश जय कालेश शङ्कर। अर्थकामेश धर्मेश जय मोक्षेश शर्मद ॥६३
जय वेदाङ्गरूपाय ग्रहरूपाय वै नमः। सत्याय सत्यरूपाय सुरूपाय शुभाय च ॥६४
क्रोधलोभविनाशाय कामनाशाय वै जय। कल्माषपक्षिरूपाय यतिरूपाय शम्भवे ॥६५
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्माय वै जय। जयोङ्कार वषट्कार स्वाहाकार स्वधामय ॥६६
जयाश्वमेधरूपाय चाग्निरूपार्यमाय च। संसारार्णवपीताय मोक्षद्वारप्रदाय च ॥६७
संसारार्णवमग्नस्य मम देव जगत्पते। हस्तावलम्बनो देव भव त्वं गोपतेऽद्भुत ॥६८
ईशोऽप्येवमहीनाङ्गं स्तुत्वा भानुं प्रयत्नतः। विरराम महाराज प्रणम्य शिरसा रविम् ॥६९
अथविष्णुर्महातेजाः कृताञ्जलिपुटो रविम्। उवाच राजशार्दूल भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥७०

विष्णुरुवाच

नमामि देवदेवेशं भूतभावनमव्ययम्। दिवाकरं रविं भानुं मार्तण्डं भास्करं भगम् ॥७१

ब्रह्मा के अनन्तर त्रिपुरारि एवं महातेजस्वी, रुद्र शंकर ने शिर से सूर्य को प्रणाम करके उन विभावसु (सूर्य) की स्तुति प्रारम्भ की ।५९

महादेव बोले—भाव (सनातन) की जय हो, अजेय की जय हो, हंस एवं दिवाकर की जय हो, शम्भु, महाबाहु, आकाशगामी, प्रत्यक्ष रूप एवं भूधर की जय हो, लोक के प्रकाशक की जय हो, जगत्पति भानु की जय हो, काल रूप की जय हो, अनंत की जय हो, संवत्सर एवं शुभानन की जय हो, अदिति के पुत्र, कश्यप के आनंद वर्धक देव की जय हो, तमनाशक की जय हो, सप्तेश तथा सात अश्व वाहन वाले की जय हो, ग्रहेश की जय हो, कांति के ईश की जय हो, काल के ईश, शंकर, अर्थ, काम एवं धर्म के ईश, मोक्ष के ईश, लज्जा रखने वाले की जय हो, वेदांग रूप, ग्रह रूप, सत्यरूप, सुरूप, एवं शुभरूप को नमस्कार है। क्रोध, लोभ, एवं काम के नाशक की जय हो, कल्माषपक्षिरूप, पतिरूप, शंभु, विश्व, विश्वरूप एवं विश्वकर्म वाले की जय हो, ओंकार, वषट्कार, स्वाहाकार एवं स्वधारूप की जय हो, अश्वमेध रूप, अग्नि रूप, अर्यमा, संसार सागर का पान करने वाले, तथा मोक्षद्वार प्रदान करने वाले की जय हो। हे जगत्पते! देव! संसार रूपी समुद्र में निमग्न मुझे देव, गोपते! आप हस्तावलम्बन (अपने हांथ का सहारा) प्रदान करें। शंकर भी इस प्रकार अंग पूर्ण भानु की प्रयत्न पूर्वक स्तुति तथा महाराज सूर्य को शिर से प्रणाम करके चुप हो गये।६०-६९। इसके पश्चात् राजशार्दूल! महातेजस्वी विष्णु ने हाथ जोड़कर भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक सूर्य से कहा—।७०

विष्णु बोले—देवाधिदेव, जीवों को उत्पन्न करने वाले, अनश्वर, दिवाकर, भानु, मार्तंड, भास्कर

इन्द्रं विष्णुं हरिं हंसमर्कं लोकगुरुं विभुम् । त्रिनेत्रं त्र्यक्षरं त्र्यङ्गं त्रिमूर्ति त्रिगतिं शुभम् ॥७२
षण्मुखाय नमो नित्यं त्रिनेत्राय नमोनमः । चतुर्विंशतिपादाय नमो द्वादशपाणये ॥७३
नमस्ते भूतपतये लोकानां पतये नमः । देवानां पतये नित्यं वर्णानां पतये नमः ॥७४
त्वं ब्रह्मा त्वं जगन्नाथो रुद्रस्त्वं च प्रजापतिः । त्वं सोमस्त्वं तथादित्यस्त्वमोंकारक एव हि ॥७५
बृहस्पतिर्बुधस्त्वं हि त्वं शुक्रस्त्वं विभावसुः । यमस्त्वं वरुणस्त्वं हि नमस्ते कश्यपात्मज ॥७६
त्वया ततमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । त्वत्त एव समुत्पन्नं सदेवासुरमानुषम् ॥७७
ब्रह्मा चाहं च रुद्रश्च समुत्पन्ना जगत्पते । कल्पादौ तु पुरा देव स्थितये जगतोऽनघ ॥७८
नमस्ते वेदरूपाय अहोरूपाय वै नमः । नमस्ते ज्ञानरूपाय यज्ञाय च नमोनमः ॥७९
प्रसीदास्मासु देवेश भूतेश किरणोज्ज्वल । संसारार्णवमग्नानां प्रसादं कुरु गोपते ॥
वेदान्ताय नमो नित्यं नमो यज्ञकलाय च ॥८०

सुमन्तुरुवाच

स्तुत्वैवं भास्करं भक्त्या विष्णुर्भरतसत्तम । प्रदध्यौ नृपशार्दूल रविं तद्गतमानसः ॥८१
एवं ते नरशार्दूल देवा ब्रह्मादयोऽनघ । स्तुवन्ति तं महात्मानं सहस्रकिरणं रविम् ॥८२
इत्येवं स्तुवतां तेषां रविं भक्त्या महात्मनाम् । अथ तुष्टो रविस्तेषां ब्रह्मादीनां जगत्पतिः ॥८३
विज्ञाय भक्तिं परमां श्रद्धां च परमां विभुः । उवाच स महातेजाः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥८४

भग, एवं रवि को नमस्कार है । इन्द्र, विष्णु, हरि, हंस, अर्क, लोक के गुरु, विभु (व्यापक), तीन नेत्र वाले, तीन अक्षर (ओम) वाले, तीन अंग वाले, तीन मूर्ति वाले, तीन जाति (गढ्ढे या छिद्र) वाले एवं छह मुख वाले को नमस्कार है, त्रिनेत्र को नित्य नमस्कार है, चौबीस चरण तत्व एवं बारह हाथ (मास) वाले को नमस्कार है ।७१-७३। भूत पति को नमस्कार है, लोक के पति को नमस्कार है, देवों के पति एवं वर्णों के पति को नित्य नमस्कार है, तुम्हीं ब्रह्मा, जगन्नाथ, रुद्र, प्रजापति, सोम, आदित्य, तथा ओंकार हो । बृहस्पति, बुध, शुक्र, विभावसु, यम, और वरुण भी तुम्हीं हो । हे कश्यपात्मज ! तुम्हें नमस्कार है । स्थावर जंगम रूप इस जगत् को तुम्हीं ने विस्तृत, एवं देव, असुर और मनुष्य तुम्हारे द्वारा उत्पन्न हुए हैं ।७४-७७। हे जगत्पते ! ब्रह्मा, मैं तथा रुद्र भी तुम्हारे ही द्वारा कल्प के आदि काल में देव, अनघ ! जगत् की स्थिति आदि के लिए उत्पन्न हुए हैं । वेदरूप आपको नमस्कार है, दिन रूप आप को नमस्कार है, ज्ञान रूप एवं यज्ञरूप आप को बार-बार नमस्कार है । हे देव, भूतेश किरणों से समुंज्ज्वल ! आप हम लोगों पर प्रसन्न हों, हे गोपते ! संसार-सागर में डूबते हुए हम लोगों पर आप कृपा प्रदान करें । वेदान्त तथा यज्ञ के कलारूप को नित्य नमस्कार है ।७८-८०

सुमन्तु बोले—भरत सत्तम ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक विष्णु ने भास्कर की स्तुति करके नृपशार्दूल ! तन्मय होकर सूर्य का ध्यान किया। नरशार्दूल, अनघ ब्रह्मादिक देवताओं ने इस प्रकार सहस्र किरण वाले महात्मा सूर्य की स्तुति की । इस प्रकार भक्ति पूर्वक सूर्य की स्तुति करने वाले महात्मा ब्रह्मादि देवों पर जगत्पति सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन लोगों की उत्तम भक्ति एवं अत्यन्त श्रद्धा पूर्ण भक्ति को देखकर अन्तः करण से प्रसन्न होकर महातेजस्वी सूर्य ने जो ग्रहेश, आकाश स्थित, अपने तेज से दिशाओं

ग्रहेशो व्योम चारूढस्तेजसा प्रज्वलन्दिशः । ब्रह्माणं विष्णुमीशानमामन्त्र्यैतान्विशांपते ।।८५
दृष्ट्वा तान्प्रणतान्सर्वाञ्छिरोभिरवनिं गतान् । तुष्टोऽस्मि ते सुरज्येष्ठ चतुर्मुख जगत्पते ।।
वरं वरय भद्रं ते मनसा त्वं यदिच्छसि ।।८६
श्रुत्वा तु वचनं भानोर्ब्रह्मा लोकगुरुर्नृप । जगाम शिरसा भूमावुवाच स कृताञ्जलिः ।।८७

ब्रह्मोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश पूतश्चास्मि खगाधिप । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि गतोऽस्मि परमां गतिम् ।।८८
सहस्रकिरणैर्यन्मे भवान्दर्शनमागतः ।।८९
अपश्यतश्च देवेश मूढमासीन्मनो मम । भगवन्सम्प्रसीद त्वं ममोपरि विभावसो ।।९०
प्रयच्छ त्वं बलं भक्तिमात्मनो मम गोपते । गत्वा शिरोभिरवनिमष्टाङ्गैः पतितस्य च ।।
भक्त्या विज्ञप्तिमाकर्ण्य प्रसादं कुरु गोपते ।।९१
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा पूषा देवो जगत्पतिः । तथेत्याह महाराज विरञ्चिं प्रश्रयान्वितम् ।।९२
ब्रह्मणे च वरं दत्वा राजन्देवो दिवाकरः । उवाच त्र्यम्बकं देवं शशाङ्ककृतशेखरम् ।।९३
वरं वरय भूतेश भूभृज्जादयितानघ । यमिच्छसि महादेव ददेऽहं तदशेषतः ।।९४
भास्करस्य वचः श्रुत्वा ईश्वरस्त्रिपुरान्तक । गत्वा तु शिरसा भूमौ प्रणम्योवाच भास्करम् ।।९५

महादेव उवाच

पुण्योऽहं पुण्यकर्माहं नास्ति धन्यतरो मम । गतोऽहं परमां सिद्धि गतश्च परमां गतिम् ।।९६

को प्रकाशित किये हैं, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव को बुलाकर विशांपते ! उन देवों को पृथ्वी में नतमस्तक हो प्रणाम करते देख कर उनसे कहा---सूरज्येष्ठ, चतुर्मुख, एवं जगत्पते मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, अपनी अभिलाषानुसार वर की याचना करो। नृप सूर्य की ऐसी बातें सुनकर लोक के गुरु ब्रह्मा ने नतमस्तक हो प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर कर कहा ।८१-८७

ब्रह्मा बोले—सहस्र किरणों समेत आपने मुझे दर्शन दिया है, अतः मैं कृतकृत्य हुआ तथा देवेश ! पवित्र हो गया। आकाशचारिन् ! धन्य तथा अनुग्रहीता होकर मुझे उत्तम गति प्राप्त हो गई। हे देवेश ! आपके दर्शन के बिना मेरा मन जड़ हो गया था, हे भगवन् ! हे विभावसो ! मेरे लिए आप प्रसन्न हों और गोपते ! मुझे अपनी भक्ति एवं बल प्रदान करें। अष्टांग समेत शिर से पृथिवी में मैं नमस्कार कर रहा हूँ, हे गोपते ! भक्ति पूर्वक इस विज्ञप्ति को सुनकर मुझे कृपा प्रदान करें। महाराज ! ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर जगत्पति सूर्य देव ने अपने आश्रित ब्रह्मा के लिए 'तथास्तु' शब्द का उच्चारण कर स्वीकृति प्रदान किया ।८८-९२। हे राजन् ! सूर्य देव ने ब्रह्मा को वर प्रदान कर शशांक शेखर महादेव शिव मे कहा—भूतेश ! पार्वती प्रिय, अनघ ! अपने मनोनीत वर की याचना कीजिए महादेव ! आप की इच्छानुसार मैं सभी कुछ प्रदान करूँगा। भास्कर की बातें सुनकर त्रिपुरनाशक ईश्वर (शिव) ने भूमि में शिर टेककर भास्कर को प्रणाम करके उनसे कहा— ।९३-९५

महादेव बोले—मैं पुण्य रूप हूँ, पुण्य कर्मा हूँ, एवं मेरे समान कोई धन्यतर नहीं है। आज मुझे

नाप्राप्यमस्ति देवेश नासाध्यं मम किंचन । यस्य मे भगवान्देवः प्रसादप्रवणः स्थितः ॥९७
त्वया ततमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । त्वत्त एव समुत्पन्नं लयं च त्वयि यास्यति ॥९८
यदि तुष्टो मम विभो अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि । अचलां देहि मे भक्तिमात्मनश्चरणं नय ॥९९
व्योमकेशवचः श्रुत्वा पूषा देवो दिवाकरः । तथेत्याह हरं वीर ततो हरिमुवाच ॥१००
नारायण महाबाहो वरं वरय गोधर । परितुष्टोऽस्मि ते देव यमिच्छसि महाबल ॥१०१
श्रुत्वा तु भास्करवचः कीलालजनको हरिः । उवाच परया भक्त्या नत्वा च शिरसा रविम् ॥१०२

नारायण उवाच

जय देव जगन्नाथ जय देव गुरो रवे । प्रसीद मम देवेश भक्तिं यच्छात्मनो रवे ॥१०३
येनाहं सर्वदेवानामुत्तमः स्यां जगत्पते । अजेयश्च तथा देव दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०४
त्वद्भक्त्या बृंहितबलस्तेजसा महतान्वितः । ततो मया महत्कर्म कर्तव्यं तव शासनात् ॥१०५
प्रजानां पालनं देव देवानां च ग्रहाधिप । वर्णानामाश्रमाणां च वर्णधर्मस्य वा विभो ॥१०६
दुष्टदैत्यविनाशाय लोकानां पालनाय च । सृष्टोऽहं भवता पूर्वं कल्पादौ च कृतोऽनघ ॥१०७
यस्य रुष्टो भवान्स्याद्वै कथञ्चित्पुरुषस्य तु । व्याधिर्दुःखं मनोरोगं दारिद्र्यं सन्ततिक्षयः ॥१०८
तस्यैतानि भवन्तीह आधयो विविधास्तथा । तस्मात्त्वं च ततो देव संस्तव्यः सततं बुधैः ॥१०९

उत्तम सिद्धि एवं उत्तम गति प्राप्ति हो गई । हे देवेश ! अब मेरे लिए कुछ भी अप्राप्य एवं असाध्य नहीं है क्योंकि प्रसन्नता पूर्ण भगवान् (सूर्य) देव (आप) मेरे सम्मुख स्थित हैं । स्थावर जंगम रूप इस जगत् को आपने ही विस्तृत किया है, और आप से उत्पन्न भी हैं, एवं इसका लय भी आप में ही होगा । विभो ! यदि आप प्रसन्न हैं, और मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो अपनी निश्चल भक्ति एवं अपने चरण की सेवा प्रदान कीजिए । उपरांत व्योम केश (शिव) की बातें सुन कर सूर्य ने हर के लिए 'तथा' कहकर स्वीकृति प्रदान की और उसके पश्चात् विष्णु से कहा—नारायण, महाबाहो ! धराधर ! अब अपने इच्छानुसार वर की याचना कीजिए । देव, महावल ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, भास्कर की ऐसी बातें सुनकर कीलाल जनक विष्णु ने अत्यन्त उत्तम भक्ति पूर्वक शिर से नमस्कार करते हुए रवि से कहा— ।९६-१०२

नारायण बोले—देव, जगन्नाथ की जय हो, गुरुदेव सूर्य की जय हो, देवेश ! आप मेरे लिए प्रसन्न हों । रवे ! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिए ।१०३। जगत्पते ! जिसके कारण मैं सभी देवों से श्रेष्ठ हो जाऊँ तथा देव ! दैत्य, दानव, एवं राक्षसों का अजेय भी क्योंकि आपकी भक्ति द्वारा अपने बल को बढ़ाकर तथा महान् तेज सम्पन्न होकर मुझे आप की आज्ञानुसार महान कार्य करना है । देव ! ग्रहाधिप एवं विभो ! प्रजाओं देवों, वर्ण, एवं आश्रमों का मुझे पालन करना है । हे अनघ ! दुष्टों एवं दैत्यों के विनाश, तथा लोकों के पालन करने के लिए ही आप ने कल्प के आदि में मेरी सृष्टि की है । आप जिस प्राणी पर रुष्ट हो जाते हैं, उसके व्याधि, दुःख रोग, दारिद्र्य, संतान-नाश, तथा भाँति-भाँति के मानसिक दुःखों की उत्पत्ति होती है । देव ! इसलिए विद्वान् को चाहिए कि निरंतर आप की स्तुति पूजन करता

एवं त्वां गोपते देव भक्त्या श्रद्धासमन्वितः। अहमर्चितुमिच्छामि तस्मान्मयि कृपां कुरु ॥११०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यतेजोवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५३।

अथ चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रयी-उपाख्यानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वा तु वचनं भानुर्विष्णोरमिततेजसः। उवाच कुरुशार्दूल आदित्यः कृपयान्वितः ॥१

आदित्य उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो शृणु मे परमं वचः। यदर्थं प्रार्थितः कृष्ण तत्सर्वं ते भविष्यति ॥२

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। अजेयस्त्वं महाबाहो भविष्यसि न संशयः ॥३

जगत्पालयितुं सर्वं समर्थश्च भविष्यसि। अचला तव भक्तिश्च भविष्यति ममोपरि ॥४

ब्रह्मापि सततं शक्तो जगत्स्रष्टुं भविष्यति। संहर्तुं शङ्करश्चापि मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥५

भवन्तो मत्प्रसादेन ज्ञानिनामुत्तमं पदम्। गमिष्यन्ति न सन्देहो मत्पूजाप्रसादतः ॥६

रवेर्वचनमाकर्ण्य गोश्रुताभरणो विभो। उवाच गोपतिर्गोगो गोपतिं गोवृषध्वजः ॥७

रहे इस प्रकार गोपते, देव! भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक मैं आपकी पूजा करना चाहता हूँ, इसलिए मुझे कृपापात्र बनायें।१०४-११०

श्री भविष्य महापुराणमें ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सूर्य तेजोवर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।१५३।

अध्याय १५४

त्रयीउपाख्यान का वर्णन

सुमन्तु बोले—कुरुशार्दूल! अपने तेज वाले विष्णु की ऐसी बातें सुनकर सूर्य ने कृपा करते हुए उनसे कहा—।१

आदित्य बोले—कृष्ण, कृष्ण! महाबाहो! मेरी बातें सुनो, जिसके लिए मेरी प्रार्थना की है। कृष्ण! उन सब की सफलता प्राप्त होगी।२। महाबाहो! देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व नाग, एवं राक्षसों के लिए तुम्हारे अजेय होने में संशय नहीं है।३। समस्त जगत् के पालन करने के लिए समर्थ होते हुए तुम में मेरी अचला भक्ति उत्पन्न होगी।४। मेरी प्रसन्नता वश ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करने तथा शंकर भी जगत् के संहार के लिए समर्थ होंगे।५। मेरी पूजा करने से प्राप्त प्रसन्नता के कारण आप लोग सभी ज्ञानियों से उत्तम पद की प्राप्ति करेंगे इसमें संशय नहीं।६। विभो! इस प्रकार सूर्य की बातें सुनकर कुण्डल विभूषित कान वाले, पृथिवी पति एवं गाय, वृष की मूर्ति संपन्न ध्वजा वाले विष्णु ने किरणपति

त्वामाराध्य भविष्यामो वयं सर्वे सुरोत्तमाः । कथमाराधयामो हि भवन्तं श्रद्धयान्विताः ॥
श्रेयसे सततं देव ब्रूहि नस्तत्त्वमात्मनः ॥८
भवतो हि न पश्यामो मूर्ति परमपूजिताम् । पश्यामः केवलं तेजो ह्यब्धेस्तोयमिवोज्झितम् ॥९
ज्वालामालाकुलं सर्वमनेकाकृति चाद्भुतम् । न चाकारविहीनं तु चेतसो लम्बनं भवेत् ॥१०
आलम्बनादृते देव न चित्तरमणं क्वचित् । चेतसोऽरमणे भक्तिर्न पुंसां जायते क्वचित् ॥११
भक्तिं विना पूजयितुं न शक्यन्ते दिवौकसः । त्वत्पूजने हि प्राप्यन्ते देव धर्मादयो नरैः ॥१२
तस्माद्दर्शय तां मूर्तिमात्मनो या परा मता । येन त्वां पूजयित्वा तु वयं सिद्धा भवामहे ॥१३

सूर्य उवाच

साधु साधु महादेव साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । शृणु चैकमनाः कृत्स्नं गदतो मम मानद ॥१४
चतुर्मूर्तिरहं देव जगद्व्याप्य व्यवस्थितः । श्रेयसे सर्वलोकानामादिमध्यान्तकृत्सदा ॥१५
एका मे राजसी मूर्तिर्ब्रह्मेति परिकीर्तिता । सृष्टिं करोति सा नित्यं कल्पादौ जगतां विभो ॥१६
द्वितीया सात्त्विकी प्रोक्ता या परा परिकीर्तिता । जगत्सा पालयेन्नित्यं दुष्टदैत्यविनाशिनी ॥१७
तृतीया तामसी ज्ञेया ईशेति परिकीर्तिता । त्रैलोक्यं संहरेत्सा तु कल्पान्ते शूलपाणिनी ॥१८
चतुर्थी तु गुणैर्हीना सत्यादिभिरनुत्तमा । सा चाशक्या क्वचिद्द्रष्टुं स्थिता सा चाभवत्सदा ॥१९

(सूर्य) से कहा—आप की आराधना करके हम लोग श्रेष्ठ देव हो जायेंगे, पर श्रद्धालु होकर हम लोग किस प्रकार आप की आराधना करें। हे देव ! निरन्तर हम लोगों के कल्याणार्थ अपनी (पूजा आदि की) मार्मिक बातें बताने की कृपा कीजिए।७-८। आपकी परम पूजनीय मूर्ति को हम लोग नहीं देख रहे हैं, समुद्र द्वारा त्यक्त जल की भाँति केवल आप के तेज का ही दर्शन कर रहे हैं।९। ज्वालारूपी मालाओं से परिवेष्टित, सम्पूर्ण अनेक आकृति युक्त, एवं अद्भुत होते हुए भी वह आकार हीन होने के नाते चित्त की स्थिति में होने का स्थान नहीं हो सकती है। हे देव! जब तक चित्त का कोई आलम्बन नहीं होता है, तब तक वह अनुरक्त नहीं होता है, तथा अनुराग हीन पुरुषों में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है, और भक्ति से शून्य होकर कोई भी (सूर्य) देव की पूजा नहीं कर सकता है। हे देव ! मनुष्य लोग आप को ही पूजा करके धर्म और अर्थ आदि की प्राप्ति करते हैं। अतः आप अपनी उस उत्तम मूर्ति का दर्शन प्रदान करने की कृपा करें, जिससे आप की पूजा करके हम लोग सिद्धि प्राप्त कर सकें।१०-१३

सूर्य बोले—साधु, साधु, महादेव ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, सुव्रत ! सावधान होकर सुनो ! मानद ! मैं सब कुछ बता रहा हूँ।१४। देव ! चार प्रकार की मूर्ति धारण कर मैं समस्त लोकों के कल्याणार्थ, एवं उसकी उत्पत्ति स्थिति तथा लय करने के लिए जगत् में व्याप्त होकर स्थित हूँ।१५। विभो ! एक मेरी राजसी रजोगुणमयी मूर्ति ब्रह्मा के नाम से विख्यात है, वह कल्प के आरम्भ काल में समस्त जगत् की सृष्टि का कार्य करती है।१६। दूसरी मेरी सात्विकी सतोगुणमयी, मूर्ति जो परा सबसे (उत्कृष्ट) के नाम से ख्याति प्राप्त किये हैं, दुष्टों एवं दैत्यों का विनाश करने वाली वह मूर्ति नित्य जगत् का पालन करती है।१७। तीसरी तामसी, (तमोगुण मयी) मूर्ति ईश के नाम से प्रख्यात है, वह कल्प के अंतकाल में शूल हाथ में लेकर तीनों लोकों का संहार करती है।१८। चौथी मेरी मूर्ति (सत्व आदि) गुणों से हीन, एवं सत्यादि से युक्त होकर सदैव स्थित रहती है, किन्तु, उसका दर्शन करने में सभी असमर्थ

तया ततमिदं सर्वं यच्चोद्गीयं तु मे गतिः । निष्कला सकला सा तु सुरूपा रूपवर्जिता ॥२०
अन्तर्गता च लोकानां न च कर्मफलं गता । तिष्ठमानाप्यलिप्ता सा पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥२१
अस्पृष्टा च सदा षड्भिः सप्तातीत्य व्यवस्थिता । चतुस्तना च सा षड्भ्यस्तुरीयाख्या सुपूजिता ॥२२
न सा स्प्रष्टुं त्वया शक्या हरिणा ब्रह्मणा न च । मामनाराध्य भूतेश व्योमरूपं कदाचन ॥२३
यदेतद्भवतां देव प्रबोधार्थमुपस्थितम् । अहंकारविमूढानां तमसा च त्रिलोचन ॥२४
प्रकाशाय च लोकानां ज्वालामालासमाकुलम् । कर्णिकेव स्थितं देवभूपद्मस्याखिलस्य च ॥२५
यस्य सन्दर्शनादेव यूयं सर्वे प्रबोधिताः । प्रकाशमभवद्धामि जत्सर्वभयार्चिभिः ॥२६
तस्मादाराधयस्वैनमस्पृष्टं गमनोपमम् । मन्मूर्ति येन तां दिव्यां द्रक्ष्यसि त्वं त्रिलोचन ॥२७
यत्त्वाद्यमीश्वरं जज्ञे तद्व्योम परिकीर्तितम् । कल्पान्ते ह्यत्र वै व्योम्नि लीयन्ते सर्वदेवताः ॥२८
दक्षिणे लीयते ब्रह्मा वामे तस्य जनार्दनः । त्वं सदा कचदेशे तु लीयसे त्रिपुरान्तक ॥२९
गायत्री लीयते तस्य हृदये लोकमातरः । लीयन्ते मूर्ध्नि वै वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥३०
जठरे लीयते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । पुनरुत्पद्यते ह्यस्माद्ब्रह्माद्यं सचराचरम् ॥३१
आकाशं व्योम इत्याहुः पृथिवी निक्षुभा मता । भूतश्रेयोहऽमाकाशो निक्षुभा दयिता मम ॥३२
मया निक्षुभया सर्वं जगद्व्याप्तं त्रिलोचन । तस्मादाराधय व्योम त्वं ब्रह्मा केशवस्तथा ॥३३

हैं ।१९। उसी द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् विस्तृत हुआ है और सामवेद मे मेरी जाति की व्याख्या भी की गई है । वह कलाहीन, कलासमेत, सौन्दर्य पूर्ण एवं रूपहीन भी है ।२०। लोकों के अन्तः स्थल में स्थित रहते हुए भी वह कर्म फल की भागिनी नहीं होती है, एवं इन लोकों में जल में स्थित कमल पत्र की भाँति वह सदैव निलिप्त रहती है । इस प्रकार (ईर्ष्या आदि) इन छहों के स्पर्श से हीन तथा सातों (लोकों) को आक्रान्त कर वह स्थित है । इसके चार (वेद) स्तन हैं, छहों (शास्त्रों) से भली भाँति पूजित हैं, तथा 'तुरीय' (चौथी) के नाम से विश्वविख्यात हैं ।२१-२२। तुम, ब्रह्मा एवं विष्णु कोई भी उसका स्पर्श तक नहीं कर सकते हो भूतेश ! जब तक कि मेरे व्योम रूप की पूजा नहीं करोगे ।२३। देव ! अहंकार एवं अन्धकार से जड़ भाव प्राप्त आप लोगों के सम्मुख प्रबोधनार्य (ज्ञानार्थ) जो यह उपस्थित है, तथा ज्वाला रूपी मालाओं से घिरा, समस्त पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका की भाँति लोकों के प्रकाशनार्थ स्थित, और जिसके केवल दर्शन मात्र से तुम्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ, एवं उसकी किरणों द्वारा जगत् प्रकाशमय हो गया है, आकाश की भाँति (विस्तृत) एवं निर्लिप्त उस (तेजोमय) की आराधना करो, त्रिलोचन, जिससे मेरी उस दिव्य मूर्ति का दर्शन तुम्हें प्राप्त हो सके ।२४-२७। यह जो प्रथम एवं ईश्वर भाव से उत्पन्न है, इसे व्योम कहते हैं, इसी व्योम में समस्त देवगण लीन होते हैं ।२८। उसके दक्षिण में ब्रह्मा, वाम भाग में जनार्दन, एवं त्रिपुरांतक ! तुम सदैव कच (केश) स्थान में लीन होते हो ।२९। गायत्री तथा लोकमाताएँ उसके हृदय स्थान में, षडङ्ग (छहो शास्त्रों) तथा एवं क्रम समेत वेद उसके शिर स्थान में, लीन होता है, और जठर (उदर) प्रदेश में स्थावर-जंगम रूप इस समस्त जगत् का लय होता है तथा पुनः ब्रह्मा आदि सचराचर (जगत्) की इसी द्वारा उत्पत्ति भी होती है ।३०-३१। व्योम, आकाश, तथा निक्षुभा पृथिवी रूप है, प्राणियों के श्रेय (कल्याण) के लिए मैं आकाश हूँ, एवं निक्षुभा मेरी प्रिया है।३२। त्रिलोचन ! मैं तथा निक्षुभा मिलकर इस जगत् में व्याप्त हूँ। इसलिए तुम, ब्रह्मा एवं नारायण (तीनों)

तन्मे रूपं महद्व्योम पूजयित्वा त्रिलोचन । दिव्यं वर्षसहस्रं हि गिरौ त्वं गन्धमादने ॥
ततो यास्यसि संसिद्धिं षडङ्गां परमां शुभाम् ॥३४
कलापग्राममाश्रित्य शङ्खचक्रगदाधरः । आराधयतु मां भक्त्या व्योमरूपं जनार्दनः ॥३५
अन्तरिक्षगतं तीर्थं पुष्करं लोकपावनम् । तत्र गत्वा विरिञ्चो मे व्योमरूपं सदार्चतु ॥३६
एवं मां सततं यूयं समाराध्य जगत्पतिम् । समानां च सुदिव्यानां सहस्रत्रयमादरात् ॥३७
ततो द्रक्ष्यथ मे मूर्ति परमां यां विदुर्बुधाः । कदम्बगोलकाकारां रश्मिमालाकुलां पराम् ॥३८
अथ नारायणो देवः प्रणम्य शिरसा रविम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥३९

विष्णुरुवाच

यदि ते परमं रूपं मतं व्योमह्यनौपमम् । तमाराध्य वयं सर्वे यास्यामः सिद्धिमुत्तमाम् ॥४०
कीदृग्व्योम त्वहं ब्रह्माहरश्च त्रिपुरान्तकः । आराधयामहे देव भक्त्या श्रेयोऽर्थमात्मनः ॥४१
येन सिद्धिं गमिष्यामस्तमाराध्य दिवाकरम् । तस्मान्नो लक्षणं ब्रूहि व्योम्नः परमपूजित ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे त्र्य्युपाख्याने
चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५४।

व्योम की आराधना करो ।३३। त्रिलोचन ! गंधमादन पर्वत पर मेरे महान् व्योम रूप की पूजा एक सहस्र दिव्य वर्ष तक करते हुए तुम लोग उत्तम एवं शुभ षडङ्ग समेत सिद्धि प्राप्त कर सकोगे ।३४। शंख, चक्र, एवं गदा धारण करने वाले जनार्दन कलाप (काञ्ची) नगर में स्थित होकर भक्ति पूर्वक मेरे व्योम रूप की आराधना करें ।३५। उसी प्रकार ब्रह्मा अंतरिक्ष में स्थित एवं लोक को पवित्र करने वाले उस प्रकार तीर्थ में प्राप्त होकर मेरे व्योम रूप की सदा आराधना करें । इस प्रकार तुम लोग मुझ जगत्पति की आराधना तीन सहस्र दिव्य वर्ष तक करने के पश्चात् कदंब की भाँति गोलाकार वाली एवं किरण रूपी मालाओं से व्याप्त, उस मेरी उत्तम मूर्ति के दर्शन करोगे, जिससे विद्वद्गण परिचित हैं ।३६-३८। इसके उपरांत विष्णु देव ने शिर से प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए सूर्य से यह कहा— ।३९

विष्णु बोले—यदि आपका व्योम रूप, परमोत्तम, एवं अनुपम हैं, और उसी की आराधना करके हम लोग उत्तम सिद्धि की प्राप्ति करेंगे, तो वह किस भाँति का है, अपने अपने कल्याणार्थ जिसकी आराधना मैं ब्रह्मा एवं त्रिपुरनाशक शिव करेंगे । हे परमपूजित ! जिसके द्वारा सूर्य की आराधना करके हम लोग सिद्ध हो जाँयगे, उस व्योम का लक्षण हमें बताने की कृपा करें ।४०-४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरपर्व में त्रयी-उपाख्यान वर्णन
नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।१५४।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मनिरूपणम्

आदित्य उवाच

साधुसाधु सुरश्रेष्ठ साधु पृष्टोऽस्मि भूधर । शृणुष्वैकमना: कृष्ण गदतो निखिलं मम ।।१
आराधयत्वयं देवो मम रूपमनौपमम् । चतुष्कोणं परं व्योम अद्भुतं गैरिकोज्ज्वलम् ।।२
त्वामाराध्य च चक्राङ्कं शङ्करो वृत्तमादरात् । शब्दादौ सततं ब्रह्म सगरादौ त्रिलोचनः ।।३
मध्याह्ने त्वं सदा देव भक्त्या मामर्चयस्व वै । यथेष्टं नृभवः सर्वे भक्त्या मां पूजयन्तु वै ।।४
ततो ब्रह्मादयो देवाः श्रुत्वा वाक्यं विभावसोः । प्रणम्य शिरसा सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ।।५
धन्या देव वयं सर्वे कृतकृत्यास्तथैव च । अस्माभिर्भगवान्पृष्टस्तेजसा प्रज्वलन्ति च ।।६
सम्भूता ज्ञानिनः सर्वे भवतो दर्शनाद्वयम् । तमोमोहात्तथा तन्द्रा सर्वमेकपदे गतम् ।।७
वयं त्वन्मूर्तयः सर्वे तेजसा तव संवृताः । उत्पत्तिस्थितिनाशाय लोकानां तव शासनात् ।।८
स्थिताः सर्वे सुरज्येष्ठ लोकपालाश्च कृत्स्नशः । अधुना साधयामेह व्योम्नः पूजां व्रजामहे ।।९
इत्थं तेषां वचः श्रुत्वा भास्करो वारितस्करः । उवाच ब्रह्मविष्ण्वीशान्सामपूर्वमिदं वचः ।।१०

आदित्य उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यदा वदथ सुव्रताः । यूयं मन्मूर्तयः सर्वे युष्माकमहमेव हि ।।११

अध्याय १५५

सौरधर्मनिरूपण वर्णन

आदित्य बोले—सुरश्रेष्ठ ! साधु ! साधु ! ! भूधर ! (तुमने) अत्युत्तम प्रश्न किया है, कृष्ण ! मैं उन सभी बातों को बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।१। चौकोर, उत्तम, अद्भुत एवं चाँदी की भाँति समुज्ज्वल, उस मेरे देव रूप की आराधना करो ।२। देव ! भक्ति पूर्वक मध्याह्न में मेरी पूजा करो और सभी देवगण भी मेरी पूजा इच्छानुसार करें ।३। पश्चात् ब्रह्मादि देवगण सूर्य की ऐसी बातें सुनकर शिर से उन्हें प्रणाम करते हुए यह कहने लगे कि देव ! गोलाकार (वृत्तरूप) आप की आदरपूर्वक आराधना करके सब कुछ निगल जाने वालों में (जहर तक पी जाने वालों में) कल्याणकारी शिव की तथा शब्द में ब्रह्म (ब्रह्मा) की आदि (प्रथम) स्थिति बनी । हम लोग धन्य हैं, तथा कृतकृत्य भी हो गये, क्योंकि हम लोगों ने आप से (सभी कुछ) प्रश्न किया, उसके परिणाम स्वरूप आप के दर्शन द्वारा तेज युक्त एवं ज्ञानी होते हुए हम लोगों का तम, तथा मोहवश उत्पन्न तंद्रा (आलस्य) आदि ये सभी (आपके द्वारा) एक शब्द के उच्चारण करते ही नष्ट हो गये ।४-७। हम लोग तेजोमय आप की मूर्ति के समान हो गये । हे सुरज्येष्ठ ! आपके शासनाधिकार में स्थित रहकर (जगत् की) उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश कार्य के नियम पालन के लिए दृढ़ होते हुए हम लोग अब भली भाँति लोक-पाल पद पर प्रतिष्ठित हो गये। अब इस समय व्योम की पूजा को साधन संपन्न करने के लिए हम लोग यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं।८-९। इस प्रकार उनकी बातें सुनकर जल चुराने वाले भास्कर ने ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर से शांतिपूर्वक यह कहा।१०

आदित्य बोले—सुव्रत ! आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही है । इसमें संदेह नहीं । आप लोग मेरी ही मूर्ति

यदेतद्दर्शनं देवाः प्रमाणं च यदुत्तमम् । ज्वालामालाकुलं शुभ्रं शांडिलेयमिवोज्झितम् ॥१२
युष्माकं देवशार्दूलास्तन्निबोधत कारणम् । अहङ्कारविमूढानां मिथः कलहिनां तथा ॥१३
प्रबोधार्थं हि युष्माकं तमसो नाशनाय च । प्रवर्तनाय सर्वेषां कर्मणां च प्रदर्शितम् ॥१४
तस्मादेवं विदित्वा तु नाहङ्कारः कदाचन । कर्तव्यो भूतिमिच्छद्भिः सततं देवसत्तमाः ॥१५
मानं दर्पमहङ्कारं पूर्वं त्यक्त्वा सुदूरतः । आराधयत मां भक्त्या सततं श्रद्धयान्विताः ॥१६
ततो द्रक्ष्यथ मे रूपं सकलं निष्कलं च यत् । यस्य सन्दर्शनादेव सर्वे सिद्धिमवाप्स्यथ ॥१७
एवमुक्त्वा महाराज सहस्रकिरणो विभुः । जगामादर्शनं तेषां पश्यतामेव भारत ॥१८
अथ ते विस्मिताः सर्वे ब्रह्मविष्णुपिनाकिनः । तेजसा तस्य देवस्य भास्करस्य महौजसः ॥१९
परस्परमथोचुस्ते विस्मयेन तदा नृप । अहो महात्माऽयं देवोऽदितिपुत्रो दिवस्पतिः ॥२०
बृहद्भानुर्महातेजा लोकदीपो विभावसुः । येन सर्वे वयं त्राता निघ्नता विपुलं तमः ॥२१
आराधयामस्तं सर्वे गत्वा स्थानानि कृत्स्नशः । येन सर्वे वयं तस्य प्रसादात्सिद्धिमाप्नुमः ॥२२
तद्व्योम पूजयित्वा तु परया श्रद्धया विभोः । आमंत्र्य ते मिथः सर्वे गताः पूजार्थमादरात् ॥२३
जगाम पुष्करं ब्रह्मा शालग्रामं जनार्दनः । वृषभध्वजो गतो वीर पर्वतं गन्धमादनम् ॥२४
त्यक्त्वा मानमहङ्कारं कुर्वतस्तप उत्तमम् । आराधयन्ति तं देवं भास्करं वारितस्करम् ॥२५

हो और मैं भी तुम लोगों का ही हूँ । तुम लोगों को इस उत्तम रूप का दर्शन हुआ जो ज्वाला रूपी मालाओं से व्याप्त है, शुभ्र (स्वच्छ) एवं पृथक् रखी गयी प्रदीप्त अग्नि की भाँति है । उस (दर्शन) में आप ही लोग प्रमाण (साक्षी) हैं । तुम लोगों को ऐसे रूप का दर्शन कैसे प्राप्त हुआ इसका कारण भी सुनिये ! ।११-१२। अभिमानवश विशेष मूढ़ता (जड़भाव) प्राप्त होने के नाते आपस में कलह करने वाले तुम लोगों के अन्धकार नाश पूर्वक प्रबोधन के लिए एवं समस्त कर्मों के प्रवर्तनार्थ तुम्हें इस रूप के दर्शन हुए हैं ।१३-१४ इसलिए देवश्रेष्ठ तुम लोगों को चाहिए कि अपने ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए तुम्हें कभी भी अहंकार न होने पाये । सर्वप्रथम दूर से ही मान, दर्प, अहंकार के त्याग करके भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक मेरी आराधना करो, जिससे कला समेत, तथा कलाहीन उस मेरे रूप के दर्शन हो सकें और उसके दर्शन से तुम लोगों को सिद्धि प्राप्त हो जाये । महाराज ! भारत ! इस प्रकार सहस्र किरण वाले विभु (सूर्य) उन लोगों के देखते-देखते अन्तर्निलीन हो गये ।१५-१८। इसके उपरांत वे सभी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव देवगण महातेजस्वी भास्कर के उस तेज से अत्यन्त विस्मित हो गये ।१९। नृप ! विस्मित होकर आपस में कहने भी लगे कि यह महात्मा, अदितिपुत्र, दिनपति, बड़ी किरण वाले, महातेजस्वी, लोक के दीपक एवं विभावसु (सूर्य) देव हैं जिन्होंने अत्यन्त तम के नाश पूर्वक हमारी रक्षा की है ।२०-२१। हम लोग अपने निर्दिष्ट स्थानों पर पहुँच कर उनकी आराधना करें जिसमें हमें सिद्धि प्राप्त हो जाये । विभु सूर्य के उस व्योम रूप का अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजन करके आपस में एक दूसरे को बुलाते हुए वे देवगण सादर पूजार्थ अपने निश्चित स्थानो को चले गये ।२२-२३। ब्रह्मा पुष्कर तीर्थ जर्नादन शालग्राम, और वीर ! शंकर ने गंधमादन पर्वत के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर मान एवं अहंकार के त्याग पूर्वक जल तस्कर उस उत्तम सूर्य देव की आराधना करने लगे ।२४-२५। व्योम को चौकोर बनाकर ब्रह्मा, एवं

व्योम्नि कृत्वा चतुष्कोणं ब्रह्मा नित्यमपूजयत् । चक्राङ्कितं हरिर्नित्यं सम्यग्व्योम त्वपूजयत् ॥२६
हरोऽपि सततं वीर तेजसा वह्निसन्निभम् । अपूजयत्सदा वृत्तं व्योम भक्त्या समन्वितः ॥२७
दिव्यवर्षसहस्रान्ते पूजयन्तो दिवाकरम् । गन्धमाल्योपहारैस्तु नृत्यगीतप्रवादितैः ॥२८
अतोषयन्महात्मानं कुर्वाणास्तप उत्तमम् । भक्त्या चलेन मनसा विवस्वन्तमनुत्तमम् ॥२९
अथ तेषां महाराज प्रसन्नो भुवनाधिपः । दर्शयामास लोकात्मा युगपद्वै विभावसुः ॥३०
कृष्णात्मा च महातेजाश्चतुर्धा योगतोऽनघ । एकत्वेन सुरश्रेष्ठं सोऽब्रवीत्परमं वचः ॥३१
अन्येन शङ्करं मन्ये अन्येन गरुडध्वजम् । स [illegible] रथारूढो दिवं सदा ॥३२
एवं योगबलाद्भानुः कृतवान्महदद्भुतम् । उग्रे तपसि वर्तन्तं दृष्ट्वा देवं चतुर्मुखम् ॥३३
पूजयन्तं महद्व्योम भूगतैर्मुखपङ्कजैः । उवाच तं महाराज भास्करश्चतुराननम् ॥३४
पश्य पश्य सुरज्येष्ठ वरदं मामुपागतम् । श्रुत्वैवं वचनं भानोर्वैरिञ्चस्तमथैक्षत ॥३५
दृष्ट्वा जगाम प्रणतो ह्यवनिं मुखपङ्कजैः । हर्षादुत्फुल्लनयनः पुनरुत्थाय भास्करम् ॥
उवाच परमं वाक्यं कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥३६

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते तिमिरापह । नमस्ते भूतभव्येश भूतादे भूतभावन ॥३७
प्रसादं कुरु मे देव प्रसन्नोऽथ दिवाकरः । गतिरन्या न मे देव विद्यते त्वदृते विभो ॥३८

विष्णु ने भी चक्र से अंकित कर उस व्योम की पूजा करना आरम्भ किया और वीर ! शङ्कर ने भी अग्नि के समान प्रकाशमान वृत्तस्वरूप उस व्योम की भक्ति पूर्वक पूजा प्रारम्भ की ।२६-२७। एक सहस्र दिव्य वर्ष गंध, माला आदि उपहार, नृत्य, गायन एवं कथा श्रवण द्वारा दिवाकर की पूजा करके भक्ति पूर्वक अपने निश्चय मन से किये गये उत्तम तपद्वारा उस अनुत्तम विवस्वान् महात्मा सूर्द को प्रसन्न किया । महाराज ने प्रसन्न होकर भुवनेश्वर लोक के आत्मा सूर्य ! उन्हें एक साथ ही दर्शन दिया । अनघ ! महातेजस्वी एवं कृष्णात्मा सूर्य ने योग द्वारा चार रूप धारण कर एकरूप से सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा से उत्तम वाणी कहा । इसी प्रकार शिव, एवं गरुडध्वज (विष्णु) के समीप अन्य अन्य रूप से वे प्राप्त हुए जो अपने चौथे रूप से रथ पर स्थित होकर आकाश में सदैव तप किया करते हैं ।२८-३२। इस प्रकार अपने योगबल द्वारा सूर्य महान् विस्मित करने वाले रूप को धारण किये । महाराज ब्रह्मा को उग्रतप करते देख कर जो अपने मुख रूपी कमलों को भूमि में स्पर्श कर उसके द्वारा उस महद्व्योम की पूजा कर रहे थे, सूर्य चर्तुमुख ब्रह्मा से बोले—सुरज्येष्ठ ! देखो, देखो ! दर प्रदान के लिए मैं आ गया हूँ । सूर्य की ऐसी बातें सुनकर ब्रह्मा ने उनकी ओर देखा ।३३-३५। देखते ही ब्रह्मा अपने मुख कमलों को पृथिवी में स्पर्श करने के द्वारा उन्हें प्रणाम करके पुनः हर्षातिरेक से विकसित नेत्र करते हुए एवं हाँथ जोड़ कर उत्तम वाणी द्वारा सूर्य से बोले— ।३६

ब्रह्मा बोले—देवाधिदेव ! तुम्हें नमस्कार है । तमनाशक को नमस्कार है । प्राणियों के भव्य ईश एवं भूत भावन को नमस्कार है, हे देव ! कृपा कीजिए, दिवाकर प्रसन्न हों, आप देव, विभो ! आपके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति (प्राप्ति) नहीं है ।३७-३८

आदित्य उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं नास्ति तत्र विचारणा । त्वं मे प्रथमजः पुत्रः सम्भूतः कारणात्पुरा ॥३९
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मि तवाग्रतः । यमिच्छसि सुरज्येष्ठ मा त्वं शङ्कां कुरु प्रभो ॥४०

ब्रह्मोवाच

यदि मे भगवांस्तुष्टो ददाति वरमुत्तमम् । कर्तुं शक्नोमि सृष्टिं च प्रसादात्तव गोपते ॥
कृताकृता हि मे देव सृष्टिर्नेह प्रसिध्यति ॥४१

आदित्य उवाच

न पुत्रत्वमहं प्राप्तस्तव देव चतुर्मुख । तवान्वये गमिष्यामि पुत्रत्वं हि मरीचये ॥४२
ततो यास्यति ते सिद्धिं कृत्स्ना सृष्टिश्चतुर्मुख । भवितैवं न सन्देहो मत्प्रसादाज्जगत्पते ॥४३
एवमुक्तो विरिञ्चिस्तु रविणा पृथिवीपते । तं वै ब्योढं विवस्वन्तं लोकनाथं जगत्पतिम् ॥४४
पुनराह सुरज्येष्ठः प्रणम्य शिरसा रविम् । क्व मे वासो जगन्नाथ भविष्यति दिवस्पते ॥४५

आदित्य उवाच

यन्मे रूपं महद्व्योम पृष्ठशृङ्गमनुत्तमम् । तत्र देवकदम्बैस्तु भवान्नित्यं निवत्स्यति ॥४६
इन्द्रः पूर्वदिशो भागे आग्नेय्यां शाण्डिलीसुतः । दक्षिणस्यां यमो नित्यं नैर्ऋत्यामथ निर्ऋतिः ॥४७
पश्चिमायां तु वरुणो वायव्यां तु सदागतिः । उत्तरे तु दिशो भागे निवसेद्धनदस्ततः ॥४८

आदित्य बोले—जैसा तुम कह रहे हो, ठीक है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । तुम मेरे प्रथम पुत्र हो, कारणवश मैंने पहले ही तुम्हें उत्पन्न किया था । सुरज्येष्ठ ! वरदान देने के लिए मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ । इच्छानुसार कहो, इसमें शंका करने की आवश्यकता नहीं ।३९-४०

ब्रह्मा बोले—यदि भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उत्तम वरदान देना चाहते हैं तो गोपते ! आप की कृपा वश मैं सृष्टि कर सकूँ। देव ! मैं जो कुछ सृष्टि करता हूँ उससे कोई ख्याति प्राप्त नहीं होती है।४१

आदित्य बोले—देव चतुर्मुख ! मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया किन्तु तुम्हारा पुत्र तो मैं नहीं हो सकता, हाँ, तुम्हारे कुल में मरीचि के यहाँ मैं पुत्र रूप से उत्पन्न हूँगा ।४२। चतुर्मुख ! उस समय तुम्हारी सृष्टि को ख्याति प्राप्त हो सकेगी । जगत्पते ! मेरी कृपा वश ऐसा ही होगा इसमें संदेह नहीं ।४३। पृथिवीपते ! इस प्रकार सूर्य के कहने पर ब्रह्मा ने विवस्वान् लोकनाथ, एवं जगत्पति सूर्य से नतमस्तक प्रणाम पूर्वक पुनः पूँछा—हे जगन्नाथ ! दिवस्पते ! मेरा निवास स्थान कहाँ होगा ।४४-४५

आदित्य बोले—मेरे महान् व्योम रूप के शिखर पर सभी देव गणों के साथ आप वहां निवास करना । पूरब दिशा में इन्द्र, आग्नेय में शांडिलीसुत (अग्नि), दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य में निर्ऋति पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायु, उत्तर की ओर कुबेर, ऐशान्य में शंकर, और मध्य भाग में विष्णु के साथ तुम्हारा निवास होगा । भानु की ऐसी बातें सुनकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्मा ने कहा—नराधिप ! मैं अब अपने को कृतकृत्य मान रहा हूँ । इस प्रकार भास्कर के कथनानुसार उन्होंने समस्त कार्य संपन्न किया, वीर !

ऐशान्यां शंकरो देवो मध्ये त्वं विष्णुना सह । श्रुत्वैतं वचनं भानोर्वेधाः प्रीत्या तमब्रवीत् ।।४९
कृतकृत्य तथात्मानं मन्यते च नराधिप । चकार च तथा सर्वं भास्करोक्तमशेषतः ।।५०
स च सिद्धिं गतो वीर प्रसादाद्भास्करस्य तु । आदित्योऽपि वरं दत्त्वा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणेऽनघ ।।५१
जगाम सह देवेन पर्वतं गन्धमादनम् । ददर्श तत्र भूतेशं तपस्तीव्रं समाश्रितम् ।।५२
कपर्दिनं शूलधरं चन्द्रार्ककृतशेखरम् । पूजयन्तं परं व्योम सुव्रतं तेजसान्वितम् ।।५३
गन्धमाल्योपहारैश्च नृत्यगीतप्रवादितैः । मुखवाद्यैश्च बहुभिः प्रणवस्तोत्रगीतिभिः ।।
सम्पूज्यैवं महद्व्योम जगाम शिरसा महीम्
दृष्ट्वैवं पूजयन्तं च भास्करस्त्रिपुरान्तकम् । तुष्टोवोचन्महातेजा गोश्रुताभरणं हरम् ।।५५
भीम तुष्टोऽस्मि ते वत्स वरं मत्तोवृणुष्व वै । तवान्तिकमहं प्राप्तो वरदं भूभृदालय ।।५६
श्रुत्वैवं वचनं भानोर्महादेवो महीपते । ददर्श लोकनाथं तं प्रज्वलन्तमनुत्तमम् ।।
उवाच प्रणतो भूत्वा अष्टाङ्गैर्भूतलं गतः ।।५७
नमो नमस्ते देवेश प्रभाकर दिवाकर । शुभालय शुभाधार विकर्तन शुभानन ।।५८
प्रसादं कुरु देवेश प्रसन्नस्त्वं विकर्तन । संसारार्णवमग्नस्य भव पोतो जगत्पते ।।५९
तवाङ्गसम्भवो देव पुत्रो हं वल्लभस्तव । यत्करोति महादेव पिता पुत्रस्य तत्कुरु ।।६०

आदित्य उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि शङ्कर । ललाटात्त्वं समुत्पन्नः पुत्रः पुत्रवतां वर ।।६१

इसीलिए सूर्य की प्रसन्नता वश उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी । अनघ ! ब्रह्मण्य सूर्य भी ब्रह्मा को वर प्रदान कर देने के साथ गन्धमादन के लिए प्रस्थित हुए । वहाँ तीक्ष्ण तप करते हुए भूतेश, कपर्दी, शूलधारी एवं चन्द्रार्ध को अपने ललाट (भाग) में स्थापित करने वाले (शंकर) को उन्होंने देखा, जो सुव्रत, एवं तेजस्वी व्योम की पूजा कर रहे थे । गन्ध एवं मालारूपी उपहार तथा नृत्य, गायन, कथा श्रवण वाचन मुखवाद्यके एवं प्रणव पूर्वक स्तोत्रों के गान द्वारा उस महान् व्योम की पूजा करते हुए तदनन्तर शिर से प्रणाम करते हुए शंकर को महातेजस्वी सूर्य ने देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और कान में कुण्डलों से विभूषित हर से उन्होंने कहा—भीम मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ । वत्स ! मुझसे मनइच्छित वर की याचना करो, पर्वत निवासिन् ! वर प्रदान के लिए मैं तुम्हारे समीप आया हूँ । महीपते ! भानु की ऐसी बातें सुनकर महादेव ने लोकनाथ, प्रदीप्त एवं अनुपम सूर्य के दर्शन करके अपने आठों अंगों से पृथ्वी में स्पर्श (साष्टांग दण्डवत्) द्वारा उन्हें प्रणाम करते हुए कहा ।४६-५७। देव ईश, प्रभा (प्रकाश) करने वाले, दिननायक, शुभ के विधान, आधार, विकर्तन एवं कल्याण मुख वाले आप को नमस्कार है, हे देवेश ! आप कृपा प्रदान करे । विकर्तन ! आप प्रसन्न हों, हे जगत्पते ! संसार सागर में निमग्न मेरे लिए आप पोत (जहाज) की भाँति सहायक हों । देव ! मैं आप के ही अंगों से उत्पन्न, एवं आप का प्रिय पुत्र हूँ । महादेव ! पुत्र के निमित्त पिता जो कुछ करता है, वही आप भी मेरे लिए करने का कष्ट करें ।५८-६०

आदित्य बोले—शंकर ! जैसा कह रहे हो, वैसा ही होगा, इसमें संदेह नहीं । पुत्रों में श्रेष्ठ ! मेरे भाल से उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा कल्याण हो, अपनी अभिलाषानुसार वर की याचना करो, त्रिपुरान्तक

वरं वरय भद्रं ते मनसा यं यमिच्छसि । दुर्लभं चापि ते दास्ये त्रिपुरान्तक सुन्दर ॥६२

महादेव उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि । प्रयच्छ मे वरं भानो देहि भक्तिं समाचलाम् ॥६३
देवदानवगंधर्वयक्षरक्षोगणांस्तथा । निर्जित्याहं यथा देव युगान्ते संहरे प्रजाम् ॥६४
तथा प्रयच्छ मे देव स्थानं च परमं विभो । येनाहं हेतिसर्वं च जये देव जगत्प्रभो ॥६५

आदित्य उवाच

देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगान् । हनिष्यसि जगच्चापि युगान्ते त्रिपुरान्तक ॥६६
यदेतत्पूजितं नित्यं मद्रूपं व्योम चोत्तमम् । एतत्त्रिशूलं परमं तव शस्त्रं भविष्यति ॥
ईशाने च तथा भागे व्योम्नो वासो भविष्यति ॥६७

महादेव उवाच

एवं भवतु मे देव यः प्रसादस्त्वया कृतः । कृतकृत्योऽस्मि देवेश त्वं मे देवो वरप्रदः ॥६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५५।

सुन्दर ! कठिन से कठिन वस्तु भी मैं तुम्हें प्रदान करूँगा ।।६१-६२

महादेव ने कहा—हे देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो भानो ! अपनी अचल भक्ति मुझे प्रदान कीजिए ।६३। हे देव ! दानव, गन्धर्व, यक्ष एवं राक्षसों, पर विजय प्राप्त कर युग के अन्त में प्रजा का संहार कर सकूँ ।६४। हे देव, विभो ! मुझे उत्तम स्थान भी प्रदान कीजिए, जगत्प्रभो ! जिससे मैं समस्त अस्त्रों पर विजय प्राप्त करूँ ।६५

आदित्य बोले—त्रिपुरान्तक ! युग के अन्तिम समय में देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं नागों आदि समस्त जगत् का संहार करने में आप अवश्य समर्थ होंगे क्योंकि मेरे उत्तम रूप व्योम की तुमने पूजा की है । इससे यह त्रिशूल तुम्हारा परम शस्त्र होगा और व्योम के ईशान भाग में तुम्हारे निवास भी होंगे ।६६-६७

महादेव ने कहा—हे देव ! आप ने प्रसन्न होकर मेरे लिए जो कुछ वर (प्रसाद) रूप में प्रदान किया है, वह वैसा ही हो, देवेश ! मैं अब कृतकृत्य हो गया, क्योंकि आप ऐसे देव मेरे वरदायी हैं ।६८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म निरूपण नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।१५५।

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैसुरोपाख्यानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं दत्त्वा वरं भानुरीश्वराय विशाम्पते । शालग्रामं जगामाशु वरं दातुं हरेर्नृप ॥१
ददर्श स हरिं तत्र तपन्तं परमं तपः । कृष्णाजिनधरं शान्तं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥२
पूजयन्तं महद्व्योम चक्राकारमनौपमम् । गन्धमाल्योपहारैश्च नृत्यगीतप्रवादितैः ॥३
एवं सम्पूज्य तद्व्योम भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । जगाम शिरसा भूमिं हृदि ध्यायन्दिवाकरम् ॥४
विष्णुं तं प्रणतं दृष्ट्वा तुष्टो देवो विभावसुः । उवाच विष्णुमामन्त्र्य पश्य मामागतं हरे ॥५
तद्वाक्यं केशवः श्रुत्वा शिरसा च महीं गतः । नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते गगने चर ॥६
जगत्पते नमस्तेऽस्तु ग्रहाणां पतये नमः । दारिद्र्यव्याधिदुःखघ्न नमस्ते भवनाशन ॥७
आदित्यार्क रवे भानो भग पूर्ण दिवाकर । नमस्ते सर्वतत्त्वज्ञ सर्वपापविवर्जित ॥८
प्रसीद मे जगन्नाथ हंसानघ दिवस्पते । संसारार्णवमग्नानां त्राहि देव वृषध्वज ॥९
पुत्रोऽहं तव देवेश द्वितीयो ब्राह्मणोऽनघ । पितेव पुत्रस्य रवे देहि कामाञ्जगत्पते ॥१०
विष्णोर्वचनमाकर्ण्य हर्षं प्राप्य दिवाकरः । उवाच कुरुशार्दूल हर्षगद्गदया गिरा ॥११

अध्याय १५६

त्रैसुरोपाख्यान वर्णन

सुमन्तु बोले—विशांपते ! शिव के लिए इस प्रकार वर प्रदान करने के उपरांत सूर्य ने विष्णु के लिए वर प्रदान के निमित्त शालग्राम को प्रस्थान किया ।१। वहाँ परम तप करते हुए विष्णु को देखा, जो कालामृग चर्म धारण कर, शान्त एवं अपने तेज द्वारा प्रदीप्त हो रहे थे ।२। तथा जो नित्य गन्ध मालोपहार, नृत्य, गायन एवं कथाओं द्वारा चक्राकार, एवं अनुपम उस महान् व्योम की पूजा करते थे । इस प्रकार उस व्योम की पूजा भक्ति तथा श्रद्धा द्वारा सुसम्पन्न करके हृदय में सूर्य के ध्यान पूर्वक पृथिवी में नतमस्तक हो प्रणाम करते हुए विष्णु को सूर्य ने देखा ! देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने विष्णु को बुलाकर कहा भी कि—हरे ! मुझे देखो, मैं आ गया हूँ ।३-५। उनकी बातें सुनकर केशव पृथिवी में मस्तक रख उन्हें प्रणाम करने लगे । समस्त देवों के ईश को नमस्कार है, आकाशचारी को नमस्कार है, जगत्पति को नमस्कार है, ग्रहों के पति को नमस्कार है, दारिद्य, रोग, एवं दुःख के नाश पूर्वक संसार (जन्म मरण दुःख) के नाश करने वाले को नमस्कार है, आदित्य, अर्क, रवि, भानु, भग, पूर्ण, एवं दिवाकर नाम वाले, समस्त तत्त्वों के ज्ञाता तथा समस्त पापों से मुक्त को नमस्कार है ।६-८। हे जगन्नाथ, हंस, अनघ, एवं हे दिवस्पते ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, हे वृषध्वज देव ! संसार सागर में डूबते हुए मेरी रक्षा करो ।९। हे देवेश, अनघ ! मैं तुम्हारा दूसरा ब्राह्मण पुत्र हूँ, हे रवे, हे जगत्पते, पुत्र के लिए पिता की भाँति सभी (सफल) कामनाएँ प्रदान कीजिए ।१०। कुरुशार्दूल ! इस भाँति विष्णु की बातें सुनकर सूर्य अत्यन्त हर्षित हुए, उन्होंने गद्गद वाणीसे कहा—कृष्ण, महाबाहो ! तुम्हारा कथन साधु (ठीक) है,

साधु कृष्ण महाबाहो तुष्टोऽहं तव केशव । निशम्य ते परां भक्तिं श्रद्धां च पुरुषोत्तम ॥१२
वरं वरय तस्मात्त्वं वत्स यं मनसेच्छसि । वरदोऽहमनुप्राप्तो भक्त्याक्रान्तस्तवानघ ॥१३
निशम्य वचनं भानोर्विष्णुर्भक्त्या समन्वितः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१४
कृतकृत्योऽस्मि देवेश नास्ति धन्यतरो मम । यस्य मे भगवांस्तुष्टो वरदस्त्वं गतः स्वयम् ॥१५
यदि तुष्टो मम विभुर्भक्त्या क्रीतो मया यदि । प्रयच्छ त्वचलां भक्तिं यथा शत्रुं [illegible] ॥
तथा मम वरं देहि सर्वारातिविनाशनम् ॥१६
मम स्थानं च परमं सर्वलोकनमस्कृतम् । लोकानां पालने युक्तिं बलं वीर्यं यशः सुखम् ॥१७
एवमुक्तो रविर्भक्त्या विष्णुना वाक्यमुत्तमम् । उवाच कुरुशार्दूल गजन्संनादयन्निव ॥१८
साधु साधु महाबाहो ब्रह्मणस्त्वं जघन्यजः । हरस्य अग्रजश्चापि सर्वदेवनमस्कृतः ॥१९
भक्तश्चापि ममात्यन्तं ब्रह्मण्यश्च सदानघ । तस्मात्तवाचला भक्तिर्भविष्यति ममोपरि ॥२०
एतदेव महद्व्योम चक्रं ते प्रभविष्यति । सर्वायुधवरं वीर सर्वारातिविनाशनम् ॥
तथा स्थानं च परमं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥२१
इत्थं भानोर्वरं प्राप्य हरिर्देवो जगत्पतिः । महाप्रसादमित्युक्त्वा जगाम शिरसा महीम् ॥२२
भास्करोऽपि वरं दत्त्वा केशवायामितौजसे । जगामाशु महाराज स्वपुरं विबुधाधिपः ॥२३
लोकानां पालने शक्तिं बलं वीर्यं यशः सुखम् । दत्त्वा कृष्णाय देवेशस्तथान्यदपि कांक्षितम् ॥२४

केशव ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। पुरुषोत्तम ! मैंने तुम्हारी श्रद्धापूर्ण उत्तम भक्ति देख ली।११-१२। वत्स ! जो तुम्हारी इच्छा हो, वर की याचना करो, अनघ ! मैं तुम्हारी भक्ति से आक्रान्त होकर वर दान देने लिए यहाँ आया हूँ।१३। सूर्य की ऐसी बातें सुनकर भक्ति पूर्वक विष्णु ने हाथ जोड़कर यह कहा—देवेश ! मैं कृतकृत्य हो गया, मेरे समान कोई धन्यतर नहीं है, क्योंकि भगवन् ! मेरे लिए वर प्रदान करने के निमित्त आप स्वयं उपस्थित हुए हैं।१४-१५। यदि आप विभु मुझसे प्रसन्न हैं तब मेरी भक्ति से क्रीत होने (खरीदने) के समान है, तो मुझे निश्चला भक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकूँ। हे समस्त शत्रु नाशक ! मुझे यही कहना चाहिए।१६। मेरे लिए समस्त लोक के वन्दनीय उत्तम स्थान तथा लोकों के पालन के लिए युक्ति, बल, पराक्रम, यश एवं सुख भी प्रदान कीजिए।१७। कुरुशार्दूल ! विष्णु के इस प्रकार कहने पर सूर्य ने अपनी गर्जना पूर्ण वाणी से जगत् को निनादित करते हुए कहा—महाबाहो ! साधु, साधु ! तुम ब्रह्मा से छोटे एवं शिव से सर्वदेव पूजित अग्रज (बड़े भ्राता) हो। अनघ ! तुम मेरे महान एवं ब्रह्मण्य भक्त हो, इसलिए मेरी निश्चला भक्ति तुम्हें प्राप्त होगी।१८-२०। यही महान् व्योम रूप में चक्र तुम्हारा श्रेष्ठ शस्त्र होगा, वीर ! यही समस्त शत्रुओं का नाश करेगा और समस्तलोक वन्दनीय एवं उत्तम स्थान की प्राप्ति भी इसी से होगी।२१। जगत्पति नारायण देव ने इस प्रकार सूर्य से वर की प्राप्ति कर उसे (वर को) 'महाप्रसाद' के रूप में स्वीकार कर के उन्हें नतमस्तक प्रणाम पूर्वक प्रस्थान किया। महाराज ! देव नायक सूर्य भी अजेय तेज वाले विष्णु को वर प्रदान कर अपने नगर के लिए प्रस्थित हो गये।२२-२३। उन्होंने कृष्ण के लिए लोकों के पालन करने की शक्ति, बल, वीर्य, यश, एवं सुख के प्रदान पूर्वक उनके और मनोरथ की भी पूर्ति की। इस

एवं ब्रह्मादयो देवाः पूजयित्वा दिवाकरम् । शक्तिमन्तो बभूवुस्ते सर्गादीनां प्रवर्तने ॥२५
इति ते कथितं पुण्यमाख्यानं पापनाशनम् । त्रिदैवत्यमुपाख्यानं त्रैसुरं लोकपूजितम् ॥२६
स्तोत्रत्रयसमायुक्तं धर्मकामार्थसाधनम् । धर्म्यं स्वर्ग्यं तथा पुण्यमारोग्यधनधान्यदम् ॥२७
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेत्स्तोत्रत्रयं च यः । सोऽग्नेयं यानमारूढो याति भानोः परं पदम् ॥२८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमश्नुते । विद्यार्थी लभते विद्यां प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥२९
तेजसा रविसंकाशः प्रभया पृश्निसंनिभः । मोदते सुचिरं कालं ज्ञानिनामुत्तमो भवेत् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे त्रैसुरोपाख्यानवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५६।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारकथाप्रस्ताववर्णनम्

शतानीक उवाच

एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्प्रचुरं ब्रह्मणे रविः । दत्तवांस्तव पुत्रत्वमन्वये कश्यपस्य तु ॥१
यास्यामि द्विजशार्दूल प्रपन्नतिमिरापहः । एतन्मे महदाश्चर्यं शंस भूमिं कथं व्रजेत् ॥२
देवादीनां प्रणेता यो यो भुवि प्रभवो विभुः । स कथं भूतले व्योम जन्मभाजं गमिष्यति ॥३
किमर्थं दिव्यमात्मानं जन्मने स नियोक्ष्यति । यश्चक्रं वर्तयत्येको ब्रह्मादीनां मनोरमम् ॥४

इस प्रकार ब्रह्मादि देवता सूर्य की पूजा करके सृष्टि आदि कार्यों के लिए सुशक्ति संपन्न हुए । इस भाँति मैंने तुम्हें इस पुण्य कथा को सुनाया जो पाप नाशक तीनों देव संबंधी कथाओं से युक्त तीनों देवों एवं लोकों द्वारा पूजित है । जो इस तीनों कथाओं समेत आख्यान को धर्म, अर्थ, एवं काम साधक, धार्मिक, स्वर्ग संबंधी, पुण्य, आरोग्य, धन एवं धान्य प्रदान करने वाला है, सुनता या पाठ करता है, वह आग्नेय विमान पर बैठकर सूर्य के उत्तम लोक की प्राप्ति करता है । सूर्य के कृपावश पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन, तथा विद्यार्थी को विद्या की प्राप्ति होती है । सूर्य के समान तेजस्वी एवं पृश्नि (सूर्य) के समान प्रभापूर्ण, तथा ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ होकर वह चिरकाल तक आनन्दका अनुभव करता है ।२४-३०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में त्रैसुरोपाख्यान वर्णन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।१५६।

अध्याय १५७

सूर्यावतारकथाप्रस्ताव वर्णन

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! सूर्य ने ब्रह्मा के लिए वरदान दिया कि कश्यप के कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न हूँगा । द्विजशार्दूल ! यही सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि घोर अन्धकार नाशक सूर्य पृथिवी पर किस भाँति जायेंगे ।१-२। इस भूतल में जो देवों का प्रणेता तथा अन्यों का उत्पत्ति स्थान है वही विभु व्योम पृथिवी पर कैसे जन्म ग्रहण कर सकता है ।३। वह ब्रह्मादिक देवों के एक मनोहरचक्र के रूप में सदैव वर्तमान रहता है, अतः अपने दिव्य आत्मा को जन्म ग्रहण के लिए वह कैसे प्रेरित कर सकता है । हे

स जन्मनि कथं पुण्यां बुद्धिं चक्रे विदां वर । गोपायनं यत्कुरुते जगतः सर्वलोककृत् ...
गोभिःपालयते कृत्स्नमात्मनो यः स्वयं रविः । महाभूतानि भूतात्मा यश्चकार दधार च ...
कर्माः स कथं गर्भमुदरे चाविशे द्विज । येन गोभिः समाक्रान्ता द्विज लोकाश्चतुर्दश ...
स्थापिता जगती मार्गास्त्रिवर्गस्त्रय ... । योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा पञ्चमयं वपुः
... दृश्यते ... । ... पुराणे पुराणात्मा तेजसा ...
... द्विजश्रेष्ठ यः ... वसुंधराम् । चकार च पुरा यश्च त्रैलोक्यमिदमव्ययः
ददौ कृत्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः । ... स्थितो ... संवत्सरात्मक ...
पातालस्थोऽर्णवरसं मध्यतोऽमृतं हविः

सहस्रशिरसं देवं सहस्राक्षं सहस्रशः । सहस्रचरणं ... युगे युगे ...
मुखादस्य समुत्पन्नो वेधाः लोकपितामहः । ... वक्षसो यस्य ललाटादस्य शङ्करः ...
येन ते निहता दैत्या मंदेहा नाम नामतः । ब्रह्मादीनां दुराधर्षो यः सदा विघ्ननाशकः
सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः । एकचक्ररथारूढो गरुडाग्रजसारथिः ...
करान्ते यो जगत्सर्वं सह दानवराक्षसम् । प्रकाशतममस्पृष्टं वपुर्यस्य सदा द्विज ...
पूर्वां दिशं गतो नित्यमुदयाचलमक्रमम् नाशयेदस्तु सततं तमो लोकस्य शान्तये ...
नाशयित्वा तमो यस्तु क्रियाः सर्वाः प्रवर्तयेत् । योऽस्त्राणि दक्षिणादीश्य मुसलोलूखलानि च ...

द्विजवर ! समस्त लोकों समेत जगत् की रक्षा करने वाला वह अपनी पुण्य बुद्धि में जन्म लेने के लिए ... कैसे स्थान दिया ।४-५। जिस सूर्य ने स्वयं अपनी किरणों द्वारा समस्त लोकों का पालन तथा भूतात्मा होकर पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति एवं उन्हें धारण किया है । हे विप्र ! जो अपनी किरणों द्वारा ... चौदहों लोकों को आक्रान्त किये हैं, वह जन्महीन होकर उदर गर्भ में स्थित होने की ... कैसे ... जो इस जगत् के निमित्त तीन मार्ग एवं तीन प्रकार का निर्माण किया है, और प्रलय के समय ... अपनी शरीर बनाकर समस्त जगत् का पान कर अपने कर्म से लोकों को एक समुद्र के रूप में परिणत ... देखता रहता है, एवं पुराणों में पुराणात्मक तथा तेजस्वी रूप धारण कर स्थित है । द्विजश्रेष्ठ ! ... भी—वृष्टि द्वारा पृथिवी को उत्पन्न कर उस अविनाशी ने पहले इस त्रैलोक्य की रचना की है । इस पृथ्वी को 'वसुमती' (धनपूर्ण) बनाकर उस देव श्रेष्ठ ने इसे देवों को प्रदान किया है, अग्नि का जिसने पान कर लिया है, जो संवत्सर (वर्ष) रूप है, पातालस्थायी समुद्र का रस, मध्य भाग में पयरूप हवि है । ... जिसे प्रत्येक युगों में ऐसा देव बताया गया है जिसके सहस्र आँखें, सहस्रों रूप एवं गुण हों । जिसके मुख द्वारा लोक पितामह ब्रह्मा, वक्षःस्थल द्वारा विष्णु, और भाल द्वारा शंकर उत्पन्न हुए हैं । जिसने मंदेह नामक राक्षसों का वध किया है, ब्रह्मादि देवों के लिए दुर्धर्ष एवं सदैव विघ्ननाशक हैं ।६-१४। जो सर्वदेवमय शरीर बनाकर समस्त अस्त्रों को धारण किया, तथा एक चक्केवाले रथ पर बैठकर गरुड़ के ज्येष्ठ भ्राता अरुण को अपना सारथी बनाया है । सायंकाल में भी जिसकी शरीर अत्यन्त प्रकाशमय होने के नाते दानवों एवं 'राक्षसों' के लिए स्पर्शहीन ही सदैव रहती है । जो पूरब दिशा में स्थित उदयाचल पर नित्य पहुँच कर लोक की शांति के लिए निरंतर तम का नाश करते रहते हैं जो अन्धकार

गार्हपत्येन विधिना तद्वद्धार्येण कर्मणा । अग्निमाहवनीं चैव वेदिं चैव कुशं स्रुचम् ॥
प्रोक्षणीयव्रतं चैव अवभृथं तथैव च ॥१९
सर्वानिमांश्च यश्चक्रे हव्यभागप्रदान्मुखे । हव्यादांश्च सुरान्यज्ञे कव्यादांश्च पितॄनपि ॥२०
भागार्थं मधुपानाय चक्रे यो यज्ञकर्मणि । पूषणं च सुतं सोमं पवित्रामरणीमपि ॥२१
यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्चापि सऋत्विजः । सदस्यान्यजमानांश्च मेधाविनस्तथोत्तमान् ॥२२
विभभाज पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा । युगानुरूपो यः कृत्वा लोकाननुचरं क्रमात् ॥२३
क्षणान्कलाश्च काष्ठाश्च कालश्चैकल्यमेव च । मुहूर्तांस्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा ॥२४
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं नृषु । आयुः क्षेत्राण्यपचयोपचयांश्चैव योऽकरोत् ॥२५
सृष्टा लोकास्त्रयोऽनन्ता येन ज्ञानेन वर्त्मना । सर्वभूतगणाः सृष्टाः सर्वभूतात्मना सदा ॥२६
प्रणामत्रयपूर्वेण योगेन रमते च यः । यो गतागतिपोतेन त्राताऽस्ति जगदीश्वरः ॥२७
यो गतिर्धर्मयुक्तानां गतिर्योऽपापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यप्रभावश्च वपुर्होत्रस्य रक्षिता ॥२८
धातुर्वैद्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसंश्रयः । दिगम्बरानुभूतश्च वायुर्वायुविभावनः ॥२९
अग्नीषोमात्मकं ज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः । यः परं श्रूयते ज्योतिर्यः परं श्रूयते तपः ॥३०
यं परं परमं प्राहुः परमात्मानमच्युतम् । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवो यश्च दैत्यान्तकृद्विभुः ॥३१
युगान्तेष्वन्तको यस्तु यश्च लोकान्तकोत्तमः । सेतुर्यो लोकसेतूनां मध्ये यो मध्यकर्मणाम् ॥३२

का नाश कर समस्त क्रियाओं को प्रारम्भ कराते हैं यज्ञ में दक्षिण की ओर स्थित रस्सी, ओखली तथा मूसल के दर्शन पूर्वक गार्हपत्य विधान द्वारा (यज्ञ) में आहवनीय अग्नि वेदी, कुशाओं, स्रुच, प्रोक्षणीय व्रत, तथा अवभृथ, इन पदार्थों के निर्माण करके मुख में हव्य भाग को धारण किया है । यज्ञ में हव्य भक्षण करने के लिए देवताओं एवं (श्राद्ध) में कव्य भक्षण के लिए पितरों का निर्माण किया है । भाग समेत मधुपान के लिए यज्ञ में जिसने पूषा (सूर्य) सुत, सोम, पवित्र, अरणी, यज्ञीय द्रव्य, ऋत्विक समेत यज्ञ, सदस्य एवं उत्तम मेधावी यजमान की सृष्टि की है ।१५-२२। ब्रह्म कर्म द्वारा जिसने सब का विभाग किया । युगों के अनुरूप छोटे बड़े लोकों का निर्माण, क्षण, कला, काष्ठ (दिशाएँ) किल, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, संवत्सर (वर्ष), तथा ऋतुओं के निर्माण कर इस भाँति मनुष्यों के लिए भाँति-भाँति के काल एवं योगों की प्रमाण रूप में रचना की है । आयु और शरीर की रचना कर शरीर की वृद्धि एवं ह्रास का निर्माण किया है ।२३-२५। जिसने अपने ज्ञानयोग द्वारा अनंत बार तीनों लोकों की रचना की है और सर्व भूतात्मा होकर समस्त भूत (जीव) गणों की सृष्टि की है । जो तीन बार प्रणाम रूपी योग करने से प्रसन्न रहता है, तथा जो जगदीश्वर रूप होकर गतागत रूपी जहाज त्राण करता है । जो धार्मिकों एवं पापहीनों का गतिरूप है, तथा चारों वर्णों में प्रभाव उत्पन्न कर जिसकी शरीर (अग्नि) होत्र (यज्ञ) की रक्षा करती है ।२६-२८। धातुओं एवं वैद्यों का वेत्ता, चारों आश्रमों में स्थित, दिगम्बर, अनुभूतवायु, वायु संचालक, अग्निषोमात्मक, ज्योति, योगीश, रात्रिनाशक, परम ज्योति, उत्तम तप तथा परमात्मा एवं अच्युत कहा जाता है, ब्रह्मादि देव जिसकी स्तुति करते हैं, जो दैत्यों का नाशक तथा विभु है, जो युग के अन्त में सृष्टि (नाशक), ऊपरी उत्तम लोक, लोक के सेतुओं में सेतु, मध्य भाग में मध्य कर्मों तथा वेद निष्णात विद्वानों

वेत्ता यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभविष्णुनाम् । सौम्यभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥३३
मानुषाणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् । विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि ॥३४
विग्रहो विग्रहाणां च गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रसवो वायुर्वायुः प्राणो हुताशनः ॥
देवाहुतिप्रदानोद्यत्प्राणाग्निस्तमनाशनः ॥३५
रसाद्धि शोणितं भवति शोणितान्मांसमुच्यते । मांसान्मज्जावसोर्जन्म मज्जनोस्थीनि जन्मतः ॥३६
अस्थिमज्ज समभवत्ततो वै शुक्रमादिशेत् । शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा ॥
तत्रापः प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते ॥३७
ततःक्षमासम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते । शुक्रं सोमात्मकं विद्यादात्मरूपं यदात्मकम् ॥३८
भवो रसात्मकस्तेषां वीर्यं च शशिपावकम् । कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥३९
कफस्य पृथिवी स्थानं पित्तं नाभौ प्रतिष्ठितम् । देवस्य मध्यहृदयं स्थानं तु मनसः स्मृतम् ॥
नाभिकोष्ठान्तरस्थं तु तत्र देवो दिवाकरः ॥४०
मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते । पित्तमग्नि स्मृतो यस्मादग्नीषोमात्मकं जगत् ॥४१
एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्धितेऽम्बुदसन्निभे । वायु प्रवेशं सञ्चक्रे सङ्गत परमात्मना ॥४२
ततोऽङ्गानि विसृजते बिभर्ति परिवर्तयन् । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४३
प्राणोऽस्य प्रथमं स्थानं वर्धयन्परिवर्तते । अपानं पश्चिमे काय उदानोर्ध्वं शरीरगः ॥
व्यानोऽस्य व्यापको देहे समानः संनिवर्तते ॥४४

का ज्ञाता, प्रभावशालियों के प्रभु, सौम्यों के सौम्य, अग्नि तेज में अग्नि, मनुष्यों में मनु, तपस्वियों में तप विनीतवादियों में नम्रता, तेजस्वियों में तेज, शरीरधारियों में शरीर, गतिमानों में गति, वायु के उत्पत्तिस्थान, आकाश, प्राण, अग्नि, देवों के लिए आहुति प्रदान करने के लिए प्राणाग्नि एवं तमोनाशक है रस से शोणित, शोणित से मांस, मांस से मज्जा, मज्जा से अस्थियाँ, और उससे वीर्य की उत्पत्ति होती है। वीर्य से रसमूलात्मक कर्म द्वारा गर्भ होता है। उसमें प्रथम भाग जल होता है, जिसे सौम्य राशि कहा है।२९-३७। उससे क्षमा की उत्पत्ति होती है, जिसे दूसरी राशि कहते हैं। वीर्य, सोमात्मक कहा जाता है। यही अपना रूप है। वह वीर्य रसात्मक एवं शशि के समान धौत, पावक के समान तेज पूर्ण होता है। वही कफ वर्ग में शुक्र (वीर्य) और पित्त वर्ग में शोणित (रक्त) हो जाता है। कफ का स्थान पृथ्वी, पित्त का नाभिस्थान, मन (आत्मा) देव का मध्य हृदयस्थान बताया गया है। नाभि के बीच वाले कोष्ठ में सूर्य देव स्थित रहते हैं।३८-४०। मन, प्रजापति (ब्रह्मा), कफ सम, एवं पित्त अग्नि रूप है ऐसा अग्नीषोमात्मक जगत् की व्याख्या में बताया गया है। इस प्रकार बादल के समान बढे हुए गर्भ में परमात्मा से संगत होकर वायु प्रवेश करता है। पश्चात् अंगों की उत्पत्ति, पालन एवं परिवर्तन (वायुद्वारा) हुआ करता है। वह वायु प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान रूपात्मक होता है। प्रथम स्थान की वृद्धि एवं परिवर्तन प्राण वायु, शरीर के पश्चिमी (पृष्ठ) भाग को अपानवायु, ऊपरी भाग में उदान वायु, शरीर में व्यान तथा समस्त देह में समान भाव से व्यापक समान वायु रहता है। जीव के प्रविष्ट होने पर उस शरीर में इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं—पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा ज्योति तेज रूप

भूतान्याप्तास्ततस्तस्य जायन्तेऽभिप्रचोदनात् । पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिश्च पञ्चमः ॥४५
तस्येन्द्रियाणि पिष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रमुः । पार्थिवं देहमाहुस्तु प्राणात्मानं च मारुतम् ॥४६
निद्रा ह्याकाशयोनिश्च जलाश्रये प्रवर्तते । ज्योतिश्चक्षुषि तज्जन्म तदंशस्तामसः स्मृतः ॥४७
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य नाम प्रवर्तितम् । एवं यः सृजते लोकान्स देवासुरमानवान् ॥४८
स कथं देवदेवेशो गर्भेऽभ्येति चांशुमान् । यथादित्यादितेस्तु स स्वयं चाविशत्पुरा ॥४९
एवं मे संशयो ब्रह्मन्नेष नित्यं विस्मयो महान् । कथं रविर्यथा गर्भमागतं द्विजवरेति मे ॥५०
आश्चर्यं परमं पृच्छे त्वामहं भास्करस्य वै । भानोरुत्पत्तिराश्चर्यं हृदि मे परिवर्तते ॥५१
एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व महामुने । समाख्याहि बलं वीर्यं भानोरमिततेजसः ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यावतारकथाप्रस्तावर्णनं
नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५७।

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सूर्योत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तो रश्मिमालिनि । यथाशक्ति तु वक्ष्यामि शृणुतां भानवं यशः ॥१

में वे इन्द्रियाँ अपना-अपना संबंध स्थापित करती हैं। देह को पार्थिव एवं वायु को प्राण कहते हैं। आकाश से उत्पन्न निद्रा का जलाशय में वर्तमान रहना बताया गया है। ज्योति के कुछ अंश को नेत्रों में रखा जाता है, जिसे तामस भी कहा गया है। समस्त इन्द्रिय वर्ग एवं विषयों में जिसका पराक्रम व्याप्त है, और जिसने देव, असुर एवं मनुष्य के ऐसे लोकों की रचना की है, वह देवाधिदेव अंशुमान (सूर्य) गर्भ में कैसे प्रविष्ट होगा, जिसे कि अदिति के गर्भ में वह पहले प्रविष्ट हुआ था। ब्रह्मन्! यही मुझमें महान् विस्मय उत्पन्न कर रहा है कि सूर्य किस प्रकार गर्भ में प्रविष्ट होंगे। मुझे सूर्य के बारे में महान् आश्चर्य हो रहा है। इसीलिए आपसे पूछ रहा हूँ क्योंकि सूर्य की उत्पत्ति मेरे हृदय में एक आश्चर्य उत्पन्न किये है। हे महामुने! अजेय तेज वाले सूर्य का आश्चर्यकारी यह आख्यान तथा उनके बल, वीर्य का भी वर्णन कीजिए।४१-५२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यावतारकथा प्रस्ताव वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।१५७।

अध्याय १५८

सौर धर्मों में सूर्योत्पत्ति का वर्णन

सुमन्तु बोले—तात! तुमने तो किरणमाला वाले सूर्य के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा दी, अस्तु, मैं यथाशक्ति भानु के यश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो!।१

भानोः प्रभावश्रवणे यस्य ते मतिरुत्थिता । इमां भानोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम् ॥२
[1]सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रकिरणं च यम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥३
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् । सहस्रदं सहस्रारिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥४
भवनं सदनं चैव हव्यं होतारमेव च । पात्राणि समितोयानि वेदवेदीं चरुं शुभम् ॥५
औक्षिथं सुक्स्रुवौ प्रोक्षणं दक्षिणाधिपम् । अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं तथा ॥६
यूपं समित्कुशं दर्वीं मुसलोलूखलानि च । प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत् ॥७
रहस्यानि प्रमाणानि स्थावराणि चराणि च । प्रतिष्ठितानि सहजं स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥८
मन्त्रयज्ञवहं वह्निं भार्गवं भार्गवेय च । अग्रभुजः सोमभुजस्त्रिषु विश्रुताः ॥९
आयुर्वेदविदो विप्रा यजन्ते भास्करं विभुम् । तस्य भानोः सुरेशस्य वीर चन्दनमालिनः ॥१०
जन्मानि च सहस्राणि समतीतान्यनेकशः । भूयश्चैव भविष्यन्ति विनश्यन्ति दिनेदिने ॥११
यत्पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम् । यदर्थं भगवान्भानुः कश्यपस्य सुतोऽभवत् ॥१२
तामहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः । हितार्थं सर्वमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥१३
बहुधा सर्वभूतात्मा स्वयं सर्वोऽभिजायते । तथा समभवद्देवः कश्यपस्यादितेः सुतः ॥१४
तुष्टो दत्त्वा वरं वीर विरिञ्चस्य महात्मनः । यं यं जनयते पुत्रमदितिः कश्यपाद्विभोः ॥१५
स स याति विनाशं वै तत्क्षणादेव भारत । दृष्ट्वा सुतान्नश्यमानान्पुत्रशोकान्वितादितिः ॥१६

सूर्य के प्रभाव को सुनने के लिए तुम्हारी बुद्धि अग्रसर हुई है, अतः सूर्य की दिव्य प्रवृत्ति (कथा) मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ।२। जिसके सहस्र मुख, सहस्रनेत्र, सहस्रकिरणें, सहस्र शीश, सहस्र हाथ, अव्यय, सहस्र जिह्वा एवं देदीप्यमान सहस्र मुकुट हैं तथा जो प्रभु, सहस्रदानी, सहस्रशत्रु जेता, सहस्र भुजाएँ अविनाशी, भवन, सदन, हव्य, होता, (यज्ञ) पात्र, वेद वेदी, शुभ चरु, औक्षिथ, स्रुव, मूसल, प्रोक्षण, दक्षिणाधिप, अध्वर्यु, सामगविप्र, सदस्य, सदन, यूप (खम्भ), समिधा, कुशा, दर्वी, ओखली प्रथम वंश जय भूमि, होता एवं चयन रूप हैं और रहस्य, प्रमाण तथा स्थावर चर जिसमें सहजपूर्वक प्रतिष्ठित हैं, और भूमि, कुश, मंत्र, यज्ञ, अग्नि, भार्गव, अग्रभोजी, सोमभोजी, तीनों में प्रख्यात हैं, आयुर्वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणगण जिस विभु की निरन्तर पूजा करते हैं, वीर ! उस देवेश चन्दन माली सूर्य के अनेकों बार सहस्रों जन्म हो चुके हैं और फिर भी दिन-प्रतिदिन उत्पन्न एवं नष्ट होते रहेंगे ।३-११। महाराज ! जिस दिव्य एवं पुण्यकथा की चर्चा आप कर रहे हैं, जिसमें भगवान् सूर्य कश्यप के पुत्र हुए, उसी कथा को विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ, सुनो ! मनुष्यों के कल्याणार्थ एवं लोकों के उत्पत्त्यर्थ सर्वभूतात्मा सूर्य जिस प्रकार स्वयं अनेकों बार अनेक रूप से उत्पन्न होते हैं, उसी भाँति (सूर्य) कश्यप द्वारा अदिति पुत्र भी हुए ।१२-१४। वीर ! प्रसन्न न होकर सूर्य ने महात्मा ब्रह्मा को यही वर प्रदान किया था । भारत ! कश्यप के संयोग से अदिति जिन पुत्रों को उत्पन्न करती थीं, वे उसी समय नष्ट हो जाते थे । इस प्रकार पुत्रों को नष्ट होते देखकर पुत्र शोक से दुःखी अदिति ने एक बार चिंतित एवं आँखों में आँसू भरे कश्यप को

---

१. वेदा विदन्तीति भेदः ।

जगाम कश्यपस्थानं शोकव्याकुलितेक्षणा । सापश्यत्तं च मारीचं मुनिं दीप्तं तपोनिधिम् ॥१७
आद्यं देवगुरुं विप्रं दिव्यं त्रिषवणाम्बुभिः । तेजसा वह्निसंकाशं सौरं वृकसमप्रभम् ॥१८
न्यस्तदण्डश्रिया युक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम् । वल्कलाजिनसवीतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसम् ॥१९
हुताशमिव दीप्यन्तं तपन्तमिव भास्करम् । अथादितिश्च दृष्ट्वैवं भर्तारममितौजसम् ॥२०
शोकगद्गदया वाचा इदं वचनमब्रवीत् । किमर्थं भगवान्देवो निरुद्योगस्तु तिष्ठति ॥२१
जातो जातो हि मे पुत्रः सद्य एव विनश्यति । श्रुत्वा तु वचनं तस्याः कश्यपो मुनिसत्तमः ॥२२
चकार गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकं प्रति प्रभो । स गत्वा ब्रह्मभवनं नानाभावसमन्वितम् ॥२३
तद्वाक्यमुक्तं तं सर्वं यदुक्तं तस्य जायया । कश्यपस्य वचः श्रुत्वा कञ्जजो वाक्यमब्रवीत् ॥२४
पुत्र गच्छाम सदनं भानोः परमदुर्लभम् । इत्युक्त्वा यानमारुह्य आग्नेयं पद्मलोचनः ॥२५
वेधा जगाम भवनमादित्यस्य महात्मनः । अदितिः कश्यपो ब्रह्मा जग्मुर्विपुलमाश्रिताः ॥२६
ते मुहूर्तेन सम्प्राप्ताः सूर्यलोकं सुवर्चसम् । दिव्यकामगमैर्यानैर्यथार्हं कुरुनन्दन ॥२७
आदित्यं द्रष्टुमिच्छन्तस्तेजसां राशिमुत्तमम् । गच्छन्तस्ते च विस्तीर्णामादित्यस्य परां सभाम् ॥२८
षट्पदोद्गीतनिनदां सामगैस्तु समीरिताम् । श्रुतवो बह्वृचमुखाः प्रोक्ताः पुण्यवदक्षराः ॥२९
तुष्टुवुः पुरुषव्याघ्रं विततेषु च कर्मसु । यज्ञसन्धौ वेदविदां पदक्रमविदां तथा ॥३०

कुटिया के लिए प्रस्थान किया, वहाँ पहुँचकर उसने कश्यप को देखा, जो मरीच के पुत्र, मुनि, दीप्त, तपोनिधान, सबमें प्रथम, देवों के गुरु, विप्र, दिव्य, जलद्वारा त्रैकालिक स्नान करने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, सौर, वृक के समान कान्तिमान, त्याग किये गये दण्डकी श्री से सम्पन्न, काले मृगचर्म पहिने, वल्कल एवं (मृग) चर्म धारण किये, देदीप्यमान, ब्रह्मतेज संपन्न, अग्नि के समान दिव्य (सुशोभित) तथा भास्कर की भाँति तप रहे , ऐसे अमित तेज वाले अपने भर्ता को देखकर अदिति ने चिन्तित होने के नाते गद्गद वाणी द्वारा उनसे कहा—मेरे भगवान् पतिदेव (पुत्र के विषय में) उद्योगहीन होकर क्यों बैठे हैं। क्या आपको मालूम नहीं कि मेरे पुत्र उत्पन्न होते ही मर जाते हैं। प्रभो ! मुनिश्रेष्ठ कश्यप ने अपनी पत्नी की बातें सुनकर ब्रह्मलोक जाने के लिए मन में निश्चय किया और गये भी। भाँति-भाँति की सृष्टि कला से युक्त उस ब्रह्मलोक में पहुँचकर उन्होंने अपनी स्त्री की सभी बातें ब्रह्मा से कह सुनायी। कश्यप की बातें सुनकर ब्रह्मा ने कहा—पुत्र ! मैं सूर्य के उस अत्यन्त जन दुर्लभ भवन को जा रहा हूँ, तुम भी चलो। इस प्रकार कहकर कमल नेत्र ब्रह्मा ने आग्नेय विमान पर बैठकर महात्मा सूर्य के गृह को प्रस्थान किया। कश्यप और ब्रह्मा के साथ उस बड़े विमान पर अदिति भी बैठी थी।१५-२६। कुरुनन्दन ! इस प्रकार दिव्य एवं मन इच्छित चलने वाले, उस योग्य विमान द्वारा वे सब क्षणमात्र में तेजपूर्ण सूर्य के लोक में पहुँच गये।२७। उनकी उस उत्तम सभा में पहुँच कर वे सब तेजोराशि एवं उत्तम सूर्य से अपनी दुःख कथा स्फुट की, जो सभा षट्पद नामक छन्दों की ध्वनियों से निनादित एवं सामवेदी ब्राह्मणों द्वारा मुखरित हो रही थी। उसी सभा में स्थित पुण्य तथा अविनाशी क्रतु उस विस्तृत कर्मों में पुरुष व्याघ्र (सूर्य) की स्तुति कर रहे थे, जो यज्ञ-सन्धि में पद-क्रम के वैदिक विद्वान् एवं श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा किये गये वेदपाठ को

घोषेण परमर्षीणां सर्वं तत्र निनादितम् । यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ॥३१

अष्टादशपुराणज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः । मीमांसाहेतुवादज्ञैः सर्ववादविशारदैः ॥३२

लोकायतिकमुख्यैश्च तुष्टुवुः सूर्यमीरितम् । तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान् नियतान्संशितव्रतान् ॥३३

जपहोमपरान्योगान्ददृशुः कश्यपादयः । तस्यां सभायामास्ते स रश्मिमाली दिवाकरः ॥३४

सुरासुरगुरुः श्रीमाञ्छुशुभे वीर मायया । उपासते च तत्रैव प्रजानां पतिमीश्वरम् ॥३५

दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तम । भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥३६

दिव्या आत्मान्तरिक्षं च वायुस्तेजोबलं मही । शब्दः स्पर्शः स्वरूपं च रसगन्धौ तथैव च ॥३७

प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत्कारणं महत् । साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपते तथा ॥३८

लवाश्च ऋतवश्चैव सङ्कल्पप्रणवास्तथा । एते चान्ये च बहवो भानुमन्तमुपासते ॥३९

अर्थो धर्मश्च कामश्च मोक्षश्च सविशेषतः । द्वेषो हर्षश्च मोहश्च मत्सरो मान एव च ॥४०

वृको विष्णुसुतः पुत्रः पुष्पजो विशपस्तथा । माहेश्वरस्तथा सौरो विटपो विकचस्तथा ॥४१

मारुतो विश्वकर्मा च अश्विनावन्यवाहनौ । एवमुक्तः सुवचनैर्भानुना प्रभविष्णुना ॥४२

जगाम कश्यपो वीर सहादित्या स्वमाश्रमम् । अदितिर्देवमाता च तं गर्भं निदधे स्वयम् ॥४३

भूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहस्रकम् । पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूतो गर्भ उत्तमः ॥४४

ध्वनियों से सम्मिलित पाठ कर रहे थे। वहाँ यज्ञ-स्तुति करने वाले विद्वानों, शिक्षा के पूर्णज्ञान वाले ब्राह्मणों, अट्ठारहों पुराणों के ज्ञाता, सर्वविद्या निष्णात, मीमांसा, हेतुवाद के विद्वानों, समस्तवाद विशारदों तथा चार्वाक मत के प्रवर्तकगणों द्वारा इस भाँति सूर्य की स्तुति हो रही थी—जैसे सूर्य ही उन अनेक रूपों से बोल रहे हों। कश्यपादि आगन्तुकों ने वहाँ सभी स्थानों में नियम, संयम एवं व्रतपूर्वक जप-हवन करने वाले योग्य ब्राह्मणों का दर्शन किया। वीर! उसी सभामण्डप में जहाँ किरणमाली सूर्य जो देव असुर के गुरु तथा शोभासम्पन्न थे, अपनी माया से सुशोभित हो रहे थे। उसी स्थान पर प्रजाओं के पति एवं ईश्वर (सूर्य) की उपासना हो रही थी—दक्ष, प्रचेता, पुलह, द्विजश्रेष्ठ, मरीचि, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, नारद, दिव्य आत्मा, अंतरिक्ष, वायु, तेज, बल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, स्वरूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकार, अल्प और भी जो महत्कारण हैं वे सांगोपांग चारों वेद, तथा लोकपते! उसी भाँति लव, ऋतुएँ एवं कल्प प्रणव ये सभी किरणमाली सूर्य की उपासना कर रहे थे।२८-३९। विशेषकर अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, द्वेष, हर्ष, मोह, मत्सर, मान, वृक (अग्नि), विष्णुसुत (प्रद्युम्न), कामदेव, वृहस्पति, महेश्वर तथा सूर्य के पुत्र, विटप, विकच, मारुत, विश्वकर्मा, अश्विनी कुमार एवं अन्य वाहन भी उनकी उपासना कर रहे थे। तदनन्तर प्रभावशाली सूर्य ने कश्यप की बातें सुनकर उन्हें मधुर वाणी द्वारा आश्वासन प्रदान कर सन्तुष्ट किया। वीर! इसके पश्चात् कश्यप, अदिति को साथ लेकर अपने आश्रम लौट आये। कुछ काल के उपरांत देवमाता अदिति ने स्वयं उस गर्भ को धारण किया, जिसमें भूतात्मा एवं महात्मा (सूर्य) एक सहस्र दिव्य वर्ष तक स्थित थे। सहस्र वर्ष की पूर्ण समाप्ति पर वह गर्भ, जो देवों का शरण भूत, और असुरों का विनाशक था, मुक्त हुआ। नराधिप! गर्भ में स्थित रहने पर ही उन्होंने तीनों

सुराणां शरणं देवश्चासुराणां विनाशनः । गर्भस्थेन तु तेनैव परित्रातः सुतस्तथा ॥४५
आह्लादनस्तु तेजांसि त्रैलोक्यस्य नराधिप । तस्मिञ्जाते तु देवेशे त्रैलोक्यस्य सुखावहे ॥४६
प्रहृत्य दैत्यसङ्घांश्च सुराणां नादवर्धिनि । अभवत्परमानन्दः सर्वेषां तत्र तस्थुषाम् ॥४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मपर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
सूर्योत्पत्तिनामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५८।

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

दक्षः प्रजापतिश्चैव नमस्कारं चकार ह । विद्योतमानो वपुषा सर्वाभरणभूषितः ॥१
उपातिष्ठन्त देवेशं भानुं चर्षिगणैः सह ॥ ततो गन्धर्वमुख्येषु प्रणदत्सु विहायसि ॥
बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायन्त महीपते ॥२
एवं ते देवगन्धर्वा उपागायन्त भक्तितः । उत्पन्नं द्वादशात्मानं भास्करं वारितस्करम् ॥३
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा । भर्गोऽंशुमानर्यमार्कः पृश्निर्मार्तण्ड एव च ॥
इत्येकादश एवैते द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥४
एवं द्वादशधा जातमंशुमन्तं महाद्भुतम् । स्तुवन्ति देवताः सर्वे गताश्च तरसा महीम् ॥५

लोकों के तेजों को अपनाते हुए रक्षा की । उस देव नायक के उत्पन्न होने पर, जो तीनों लोकों को सुख प्रदान करने वा , दैत्य समूहों के नाशक, तथा देवताओं के हर्ष ध्वनि को बढ़ाने वा थे, वहाँ स्थित रहने वा सभी को परम आनन्द की प्राप्ति हुई ।४०-४७

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सूर्योत्पत्ति वर्णन नामक
एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५८।

अध्याय १५९

सूर्य अवतार का वर्णन

सुमन्तु बोले—उस समय सभी अलंकारों से अलंकृत एवं शरीर से शोभासम्पन्न दक्षप्रजापति ने उन्हें (सूर्य को) नमस्कार किया । और ऋषिगण भी देवनायक सूर्य की उपासना करने लगे । महीपते ! प्रधान गन्धर्व ने अपने अनेक गन्धर्वों को साथ कर आकाश में गाने बजाने लगे ।१-२। इस प्रकार देव गन्धर्व भक्तिपूर्वक अपनी कला द्वारा उन्हें प्रसन्न कर रहे थे, जो जल तस्कर सूर्य अपने बारह रूपों से उत्पन्न हुए थे । इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता, भर्ग, अंशुमान्, अर्यमा, अर्क, पृश्नि और मार्तण्ड, ये ग्यारह (सूर्य) बताये गये हैं और और बारहवें सूर्य विष्णु कहे जाते हैं ।३-४। इस प्रकार बारहों रूपों द्वारा महान् आश्चर्य कारक सूर्य के उत्पन्न होने पर सभी देवगण शीघ्र पृथिवी पर जाकर उनकी स्तुति

मृगव्याधश्च शर्वश्च मृगाङ्काङ्को महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पीतः काव्यः परन्तपः ॥६
दमनश्चेश्वरश्चैव कपाली च विशांपते । स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्राश्चैतेऽवतस्थिरे ॥७
अश्विनौ वसवश्चाष्टौ गरुडश्च महाबलः । विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्थुः प्राञ्जलयो नृप ॥८
नागराजो महाराज वासुकिः प्राञ्जलिः स्थितः । अन्ये च बहवो नागा राक्षसाश्च महाबलाः ॥९
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः । अरुणश्चारुणिश्चैव तत्र प्राञ्जलयः स्थिताः ॥१०
पितामहश्च भगवान्स्वयमागम्य लोककृत् । प्राह देवगुरुः श्रीमान्सर्वैर्महर्षिभिः ॥११
यस्मात्प्रेक्षयते सर्वं प्रभविष्णुः सनातनः । तस्माल्लोकेश्वरः श्रीमान्विवस्वांश्च भविष्यति ॥१२
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । यस्मादयमादिदेवस्तस्मादादित्य एव हि ॥१३
एवमुक्त्वा तु भगवान्सार्धं देवर्षिभिः प्रभुः । नमस्कृत्वा सुसम्पूज्य ययौ तत्सदनं प्रति ॥१४
या गतिर्यज्ञशीलानां या गतिः पुण्यकर्मिणाम् । या गतिः सिद्धयोगानां या गतिश्च महात्मनाम् ॥१५
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं समभूद्देवसत्तमम् । यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नावर्तन्ते भवार्णवे ॥१६
वालखिल्यादयो ये च सर्वाश्रमनिवासिनः । सेवन्ते यं यतात्मानो दुष्करं व्रतमास्थिताः ॥१७
योऽनन्त इव नागेषु यस्य ते सर्वयोगिनः । सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः ॥१८
यो यज्ञ इति विप्रेन्द्रैरर्च्यते सुखमीप्सुभिः । सर्वे च यं महात्मानो ध्यायन्ति ब्रह्मरूपिणम् ॥१९
यं वेदविदो गायन्ति वेत्तारं यज्ञदायिनम् । तं पुत्रं द्वादशात्मानं कश्यपः प्राप सत्तमम् ॥२०

करने लगे ।५। मृगव्याध, शर्व, महायशस्वी, चन्द्रमा, अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पीत, काव्य, परंतप, दमन, ईश्वर तथा विशांपते ! कपाली (शिव), स्थाणु, भग, भगवान् रुद्र, ये सभी वहाँ उपस्थित हुए ।६-७। नृप ! अश्विनी कुमार, आठों वसु, महाबली गरुड़, विश्वेदेव और साध्य भी वहाँ हाथ जोड़े खड़े थे ।८। महाराज ! नागराज वासुकी हाथ जोड़े तथा अन्य सभी नाग, महाबली राक्षस, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, अरुण और उनके पुत्र सभी हाथ जोड़े खड़े थे ।९-१०। लोकरचयिता भगवान् पितामह श्रीमान् देव गुरु (ब्रह्मा) ने स्वयं सभी देवों एवं महर्षियों के साथ वहाँ आकर यह कहा—अत्यन्त प्रभावशाली, तथा सनातन (नित्य) रूप, यह सभी को देख रहा है अतः लोकेश्वर, श्रीमान् और विवस्वान् तथा देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग एवं राक्षसों के आदि देव होने के कारण इसका आदित्य, नाम होगा ।११-१३। इस प्रकार भगवान् प्रभु ब्रह्मा देवर्षियों के साथ भली-भाँति उनकी पूजा एवं नमस्कार करके अपने घर च गये ।१४। जो यज्ञ करने के लिए प्रयत्नशील रहने वा , पुण्यकर्मा मनुष्यों, सिद्धयोगियों एवं महात्माओं की गति (प्राप्ति) रूप है, जिस देव श्रेष्ठ के साथ ही ऐश्वर्य समेत आठ गुण उत्पन्न हुए हैं। जिसकी निरंतर प्राप्ति करके ब्राह्मणगण संसार सागर में नहीं पड़ते हैं, बालखिल्य आदि जितने आश्रम निवासी हैं, इन्द्रिय संयमपूर्वक कठिन व्रत का पालन करते हुए जिसकी सेवा करते हैं। जो कामों में अनंत रूप है, जिसके लिए सभी योगधारण करते हैं तथा शेष आदि से भी उत्तम जिसके सहस्र शिर एवं रक्त नेत्र है, सुख इच्छुक ब्राह्मणगण, जिसे यज्ञ रूप मानकर पूजा करते हैं, सभी योगी जिसे ब्रह्म रूप मानकर ध्यान करते हैं, वेद के विद्वान् जिसका गान करते हैं, जो वेत्ता एवं यज्ञदायक हैं, उसी बारहों रूपों को धारण करने वा (सूर्य) को पुत्र के रूप में प्राप्त कर विभो ! कश्यप तथा अदिति ने अत्यन्त

मुदं लेभे सहाऽदित्या सुखं च परमं विभो । लोकश्च मुमुदे सर्वो राक्षसा भयमाप्नुवन् ॥२१
मधुपिङ्गलो महाबाहुः कम्बुग्रीवो हसन्निव । इङ्गुदीबद्धमुकुटो दिशः प्रज्वलयन्निव ॥२२
स उवाच महातेजाः कश्यपं चर्षिसत्तमम् । एषोऽहं तव पुत्रत्वं गतो गर्भस्य सिद्धये ॥२३
दत्त्वा वरं पुरा विप्र विरञ्चस्य महात्मनः । तस्मात्त्वमृषिशार्दूल कुरु सृष्टिमनौपमाम् ॥२४
एवमाराध्य देवेशं ब्रह्मा सृष्टिमवाप्तवान् । आराध्य कश्यपश्चापि भास्करं सुतमाप्तवान् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे उभयसप्तमीमाहात्म्ये सूर्यावतारवर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१५९।

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारवर्णनम्

शतानीक उवाच

अहो देवस्य चरितं भास्करस्य त्वयोदितम् । ब्रह्मादयोऽपि यं नित्यं पूजयन्ति विधानतः ॥१
ब्रह्मा विष्णुः सुरा ब्रह्मंस्तमाराध्य दिवाकरम् । ददृशुस्तस्य किं भूतं रूपं यत्तन्महाद्भुतम् ॥२

आनन्द निमग्न होकर उत्तम सुख का अनुभव किया । सभी लोकों को प्रसन्नता हुई, परन्तु राक्षस गण भयभीत होने लगे ।१५-२१। मधु की भाँति पिंगल वर्ण, शंख के समान सौन्दर्यपूर्ण ग्रीवा महाबाहु एवं महातेजस्वी (सूर्य) ने, जो मन्द-मन्द हास करने के समान तथा मुकुट में इंगुदी के लगाने से दिशाओं को प्रकाशित करने की भाँति दिखाई दे रहे थे, ऋषिश्रेष्ठ कश्यप ने कहा—गर्भ की सिद्धि (सफलता) के लिए मैं यह तुम्हारा पुत्र हुआ । विप्र ! मैंने पह ही महात्मा ब्रह्मा को वर प्रदान किया था । इसलिए हे ऋषिशार्दूल ! तुम अनुपम सृष्टि की रचना करो ।२२-२४। इस प्रकार देवेशसूर्य की आराधना करके ब्रह्मा ने सृष्टि की सफलता प्राप्त की और उसी भाँति भास्कर की आराधना कर कश्यप ने पुत्र की प्राप्ति की ।२५

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के उभयसप्तमी माहात्म्य में सूर्यावतार वर्णन नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।१५९।

अध्याय १६०

सूर्य अवतार का वर्णन

शतानीक ने कहा—सूर्यदेव का चरित, जिसका आपने वर्णन किया है, कितना आश्चर्यकारक है कि ब्रह्मादि देवता भी विधानपूर्वक उस (देव) की नित्य पूजा करते हैं ।१। हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, विष्णु एवं देव गण उस सूर्य की आराधना करके उनके जिस रूप का दर्शन किया है, महान् अद्भुतकारक वह (रूप) किस प्रकार था ।२

सुमन्तुरुवाच

आराध्य देवमीशानं भास्करं सूचिवाचकम् । कविष्णू कुरुशार्दूल जग्मतुस्तौ हिमाचलम् ॥३
गोपतेरन्तिकं वीर प्रहृष्टौ विभुदर्शने । कुन्देन्दुसन्निभं गत्वा कञ्जजाच्युतश्च तौ ॥४
ददृशातुर्महात्मानं चन्द्रार्धकृतशेखरम् । पूजयन्तं विवस्वन्तं भास्करं वीरवन्नृप ॥५
आचख्योचतुर्महात्मानं कविष्णू तं त्रिलोचनम् । भोभो भीम सुरज्येष्ठ पश्यावामिह चागतौ ॥६
श्रुत्वोवाच तयोर्वाक्यं कञ्जजस्याच्युतस्य च । प्रणम्य शिरसा भूमौ कृत्वा पूजां विधानतः ॥७
उवाच मधुरं वाक्यं शिक्षाक्षरसमन्वितम् । हर्षगद्गदया वाचा दिशः सम्पूरयन्निव ॥८
किमाराध्य रविं प्राप्तौ सर्वदेववरं विभुम् । कथ्यतां निखिलं देवौ परमं कौतुकं मम ॥९
दृष्टवन्तौ परं किञ्चिद्रूपं देवस्य शङ्करम् । अव्ययस्याप्रमेयस्य भानोरमिततेजसः ॥१०
निशम्य वचनं वीर शङ्करस्य महात्मनः । ऊचतुस्तौ महात्मानौ कविष्णू देवसत्तमौ ॥११
न तत्पश्यावहे रूपं यत्तत्परमनद्भुतम् । आराधयितुमेवापि ह्यागतौ तेऽन्तिकं च तम् ॥१२
तस्मादाराधयामो हि एकीभूय विभावसुम् । गत्वोदयगिरिं पुण्यं पर्वतं कनकोज्ज्वलम् ॥१३
श्रुत्वा तु वचनं वीर कञ्जजाच्युतयोर्हरः । तथेत्याह महाबाहो हर्षादुत्फुल्ललोचनः ॥१४
अथ ते राजशार्दूल विविगोगतयो नृप । जग्मुस्तं पर्वतश्रेष्ठमुदयाचलमाशु वै ॥१५

सुमन्तु बोले—कुरुशार्दूल ! ईशान एवं उत्पत्ति की व्याख्या कराने वा भास्कर देव की आराधना करके ब्रह्मा और विष्णु अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए विभु (सूर्य) के दर्शनार्थ हिमालय के लिए प्रस्थित हुए, वीर ! जो सूर्य के समीप में ही स्थित था । नृप ! कुंद और इंदु की भाँति धवलमूर्ति (सूर्य) के दर्शन के लिए ब्रह्मा एवं विष्णु वहाँ पहुँचकर नृप ! चन्द्रखण्ड को अपने मस्तक में रखने वा महात्मा शंकर को देखे जो वीर की भाँति बैठकर सूर्य की आराधना कर रहे थे ।३-५। उन महात्मा त्रिलोचन (शिव) से उन दोनों ने कहा—भीम, भीम ! सुरज्येष्ठ ! देखो, हम लोग भी यहाँ आ गये हैं ।६। ब्रह्मा और विष्णु की ऐसी बातें सुनकर (घुटने) भूमि में शिर रख नमस्कारपूर्वक उनकी पूजा (आतिथ्यसत्कार) करके शिक्षा देने की भाँति मधुर वाणी द्वारा हर्ष से गद्गद होकर दिशाओं को मुखरित करते हुए शिव ने उन लोगों से कहा—समस्त देवों में श्रेष्ठ एवं विभु सूर्य की आराधना करके प्रसाद रूप में किस वस्तु की प्राप्ति हुई, मुझे इसकी जानकारी के लिए महान् कौतूहल है, आप लोग यह सभी बातें बताइये, और अजेय, अमेय एवं अमित तेजस्वी उस (सूर्य) देव के कल्याणकारी रूप का भी दर्शन हुआ । वीर ! महात्मा शंकर की ऐसी बातें सुनकर महात्मा एवं देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और विष्णु ने कहा—उनके परम अद्भुत रूप का दर्शन हम लोगों को नहीं प्राप्त हुआ है । अतः दर्शनार्थ एवं उनकी आराधना के लिए ही हम आपके समीप आये हैं ।७-१२। पुष्प एवं कनक (धतूरा के फूल) के समान उज्ज्वल, उस उदयाचल पर हम लोग (और आप) अब एक साथ ही सूर्य की आराधना करेंगे ।१३। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु की बातें सुनकर महाबाहो ! शिव ने 'तथा' कहकर उसे स्वीकार किया जिससे हर्षातिरेक से उनकी आँखें खिल गई थीं ।१४। राजशार्दूल ! इसके बाद वे (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) तीनों नृप ! पर्वतश्रेष्ठ उस उदयाचल के लिए शीघ्र प्रस्थित

तमासाद्य नगं पुण्यं शृङ्गैस्त्रिभिरलङ्कृतम् । नानाधातुपिनद्धाङ्गं नानाधातुविभूषितम् ॥१६
आराधनाय विधिवद्यत्नं चक्रुर्विभावसोः । स्तुवन्तस्ते समर्चन्तो ध्यायन्तश्च विभावसुम् ॥१७
दिव्यवर्षसहस्रान्ते तपन्तः संस्थिता नगे । पद्मासनगतो ब्रह्मा ध्यायमानो दिवाकरम् ॥१८
स्थाणुवत्संस्थितो भूमावूर्ध्वबाहुस्त्रिलोचनः । पञ्चाग्निं भजमानस्तु स्थितो विष्णुरवाक्शिराः ॥१९
एवं वर्षसहस्रान्ते तपश्चक्रुः सुदारुणम् । आराधयन्तो विधिवद्गोपतिं पुष्करमालिनम् ॥२०
अथ ब्रह्मेशविष्णूनां कुर्वतां तप उत्तमम् । तुतोष भगवान्भानुरुवाच च महीपते ॥२१
ब्रह्मञ्छम्भो हरे ब्रूत मत्तः किमभिवाञ्छथ । तुष्टोऽहं भवतां दातुमिहायातो वरं स्वयम् ॥२२

सुमन्तुरुवाच

निशम्य वचनं भानोः शान्तं हृद्यं मनोरमम् । प्रणम्य शिरसा देवा इदं वचनमब्रुवन् ॥२३
कृतकृत्या वयं सर्वे प्रसादात्तव गोपते । त्वामाराध्य पुरा देव त्वत्तः प्राप्य वरं शुभम् ॥२४
उत्पत्तिस्थितिनाशानां वयं सर्वे दिवाकर । कार्येऽपीह समर्था वै त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥२५
एकं त्वेकं देवदेवेश वरमिच्छामहे विभो । यत्ते परमकं रूपं दुर्लभं दुर्दृशं तथा ॥२६
तस्मात्स्वमात्मनो नाथ रूपं दर्शय देवाच्युतम् । सर्वदेवमयं यत्ते यत्त्वयोक्तं पुरानघ ॥२७
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुशिवात्मनाम् । दर्शयामास तद्रूपमद्भुतं लोकपूजितम् ॥२८

हुए । उस पर्वत पर पहुँचकर जो पुण्य, तीन शिखरों से अलंकृत, भाँति-भाँति के धातुओं द्वारा बंधे हुए अंग तथा भाँति-भाँति की धातुओं से विभूषित था, वे लोग सूर्य की आराधना के लिए विधानपूर्वक प्रयत्नशील हुए । सूर्य की स्तुति, पूजा एवं ध्यान करना आरंभ किया । इस प्रकार तप करते हुए उस पर्वत पर उन्हें दिव्य एक सहस्र वर्ष बीत गया । दिवाकर का ध्यान पद्मासन पर स्थित होकर ब्रह्मा, भूमि में स्थाणु की भाँति स्थित एवं ऊपर दोनों हाथ उठाकर शंकर, और नीचे शिर लटकाकर पंचाग्नि तापते हुए विष्णु ने सुसम्पन्न किया । पुत्र मण्डली (अनेक पुत्र वाले), एवं किरणपति सूर्य का इस प्रकार घोर तप करते हुए उन देवों का एक दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हुआ । १५-२० । महीपते ! इसके उपरान्त श्रेष्ठ तप करने वाले उन ब्रह्मादि देवों के ऊपर भगवान् सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—ब्रह्मन्, शंभो एवं हरे ! मुझसे क्या चाहते हो, प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर प्रदान के लिए स्वयं यहाँ आया हूँ । २१-२२

सुमन्तु बोले—सूर्य की ऐसी शांत, प्रिय एवं मनोहर वाणी सुनकर शिर से प्रणाम करके उन लोगों ने कहा—हे गोपते ! आपकी कृपा से हम लोग कृतकृत्य हो गये हैं क्योंकि देव ! पहले ही आपकी आराधना कर उत्तम वरों की प्राप्ति हम लोगों ने कर ली है । दिवाकर ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश करने रूप कार्य के लिए अब आपकी कृपा से हम लोग समर्थ भी हो जायँगे, इसमें संदेह नहीं । २३-२५ । देवाधिदेव विभो ! किन्तु एक और वर की हमें इच्छा है, वही कि आपके परम दुर्लभ एवं दुर्दर्श तथा अच्युत रूप का दर्शन करना चाहते हैं, इसलिए जगन्नाथ ! आप अपने उसी सर्वदेवमय रूप को दिखाइये, अनघ ! जिसे आपने पहले बताया था । २६-२७ । ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी बातें सुनकर (उन्होंने) अपने अद्भुत एवं लोकपूज्य रूप का दर्शन दिया । २८ । उसमें अनेक मुख, शिर, अनेक अद्भुत

अनेकवक्त्रशिरसमनेकाद्भुतदर्शनम् । सर्वदेवमयं दिव्यं सर्वलोकमयं तथा ॥२९
भूः पादौ द्यौः शिरश्चापि तत्राग्नी लोचने मते । पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥३०
विश्वे देवाः स्मृतास्तस्य जङ्घासङ्घाः सुरोत्तमाः । यक्षाः कुक्षिषु संल्लीनाः केशाश्चाप्सरसां गणाः ॥३१
दृष्टिधृष्टयश्च विपुलाः केशा वीरांशवः स्मृताः । तारका रोमरूपाणि रोमाणि च महर्षयः ॥३२
बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे नराधिप । अश्विनौ श्रवणे चास्य नासा वायुर्महाबलः ॥३३
प्रसादश्च क्षमा चैव मनो धर्मस्तथैव च । सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥३४
ग्रीवादितिर्महादेवी तालू रुद्रश्च वीर्यवान् । द्वारं स्वर्गोस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा पिचण्डकः ॥३५
मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ च भगस्तथा । हृदयं भगवान्ब्रह्मा ह्युदरं कश्यपो मुनिः ॥३६
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु । सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमला प्रभा ॥३७
प्राणो रुद्रो महादेवः कुक्षौ चास्य महार्णवाः । उदरे चास्य गन्धर्वा भुजङ्गाश्च महाबलाः ॥३८
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वा विद्याश्च वै कटौ । ललाटमस्य परमं वयःस्थानं परात्मनः ॥३९
सर्वज्योतींषि जानीहि तपश्चक्रश्च देवराट् । तदेतदादिदेवस्य तनौ ह्याहुर्महात्मनः ॥४०
स्तनौ कुक्षौ च वेदाश्च तेऽष्टौ चास्य मखाः स्मृताः । यष्टव्यपशुबन्धाश्च द्विजानां वेष्टितानि च ॥४१
सर्वदेवमयं दृष्ट्वा रूपमर्कस्य ते नृप । ब्रह्मा हरो हरिर्देवाः परं विस्मयमागताः ॥४२
प्रणम्य शिरसा देवं वेपमाना धरां गताः । भयगद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन् ॥४३
समीक्ष्य रूपं ते देव भीमं ज्वालासमाकुलम् । अनेकमुखबाहूरुचरणं चकिता वयम् ॥४४

दर्शन, सर्वदेवमय, दिव्य, सर्वलोकमय, पृथिवी दोनों चरण, आकाशशिर, अग्नि दोनों नेत्र विशाल पैर की अंगुलियाँ गुह्य हाथ की अंगुलियाँ गुह्य, सुरश्रेष्ठ विश्वेदेव जाँघों की सन्धियाँ, कुक्षि में यक्ष, केश में अप्सराएँ आँखों की धृष्टता एवं किरणें विपुलकेश, तारागण और महर्षिगण रोम, विदिशाएँ (क्षेत्र) बाहू, नराधिप ! दिशाएँ कान, अश्विनी कुमार श्रवण, महाबली वायु नासिका, प्रसन्नता एवं क्षमाशीलता मन धर्म, सत्यवाणी, देवी सरस्वती जिह्वा, महादेवी अदिति ग्रीवा, पराक्रमी रुद्र तालु, स्वर्ग द्वारनाभि, मित्र, त्वष्टा तथा पिचण्डक, वैश्वानर (अग्नि) मुख, भग दोनों वृषण (अण्डकोष), भगवान् ब्रह्मा हृदय, कश्यप मुनि उदर, पीठ में वसुदेव, सभी संधियों में मरुत, समस्त छंद दशन (दाँत), ज्योतियाँ निर्मलप्रभा, रुद्र महादेव प्राण, कुक्षि में महासागर, उदर में गन्धर्व, महाबली भुजंग, लक्ष्मी, मेधा धृति, कांति एवं समस्त विद्याएँ कटि (कमर) में वर्तमान हैं और इस परमात्मा के ललाट में आयु, सभी ज्योतिर्गण, तथा चक्रतप रूप स्थित हैं, इस प्रकार इस देवराट की शरीर को जानना चाहिए। जिसकी उपरोक्त व्याख्या की गई है। इसी भाँति महात्माओं ने इस आदिदेव के शरीर की व्याख्या की है।२९-४०। दोनों स्तन, कुक्षि तथा चारों वेद मिलकर उसके यक्ष रूप हैं यही द्विजों के वेष्टन यज्ञ करने योग्य पशुबंधन है। नृप ! सूर्य के ऐसे सर्व देवमय रूप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर अत्यन्त विस्मित हुए। उस देव को शिर से प्रणाम कर काँपते हुए भयभीत होने के नाते गद्गद वाणी से उन लोगों ने यह कहा—हे देव ! भीम (भीषण), ज्वालाओं की भाँति प्रदीप्त, अनेकों मुख, भुजा, उरु एवं चरण वाले आपके इस रूप को देखकर हम लोग

दिग्ज्ञानं हृतमस्माकं तत्प्रसीद जगत्पते । उपसंहर विश्वात्मन्द्रष्टुं शक्ता न ते वयम् ॥४५
इति तेषां वचः श्रुत्वा देवदेवो दिवाकरः । प्रसन्नो भगवानाह वचस्तान्प्रहसन्निदम् ॥४६

आदित्य उवाच

इति यदेतत्परमं पुण्यमद्भुतं लोकभावनम् । दृष्टं भवद्भिर्देवेन्द्रा मम सर्वजगन्मयम् ॥४७
एतन्मया प्रसन्नेन युष्माकं श्रेयसेऽनघाः । दर्शितं पूजितेनेह योगिनां यन्महालयम् ॥४८

ब्रह्मेशाच्युता ऊचुः

एवमेतन्न संदेहो यथात्थ त्वं दिवस्पते । योगिनामपि देवेश दर्शनं ह्यस्य दुर्लभम् ॥४९
त्वामाराध्य जगन्नाथं नाप्राप्यमिह विद्यते । तस्मात्पूज्यतमो लोके नान्यो देवेषु विद्यते ॥५०
एवमुक्त्वाऽदितेः पुत्रो जगामादर्शनं रविः । ब्रह्मादयोऽपि ते हर्षं प्रापुर्देवस्य दर्शनात् ॥५१
एवं ब्रह्मादयो देवाः पूजयित्वा दिवाकरम् । गतास्ते परमां सिद्धिं गन्धर्वा ऋषयस्तथा ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु ब्रह्मादीनां सूर्यरूपदर्शनवर्णनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६०।

चकित हो रहे हैं ।४१-४४। जगत्पते ! हमें दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है, इसलिए आप प्रसन्न हो जायें और विश्वात्मन् ! आप अपने इस रूप को त्याग दें क्योंकि हम लोग इसके दर्शन करने में असमर्थ हो रहे हैं ।४५। उनकी ऐसी बातें सुनकर देवाधिदेव सूर्य ने प्रसन्न होकर हँसते हुए यह कहा— ।४६

आदित्य बोले—देवेश्वर ! परमपुण्यदायक, आश्चर्यकारी, लोकसत्तात्मक एवं सर्वजगन्मय मेरे इस रूप को आप लोगों ने देखा है । अनघ ! आप लोगों ने मेरी पूजा की है, अतः प्रसन्न होकर मैंने आप लोगों के कल्याण के लिए इस रूप को दिखाया है, जो योगियों के महान् मन्दिर के रूप में है । तदनन्तर ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु ने कहा—हे दिवस्पते ! आप जैसा कह रहे हैं वह वैसा ही है इसमें संदेह नहीं । देवेश ! यह दर्शन योगियों के लिए भी दुर्लभ है ।४७-४९। आप जगन्नाथ की पूजा करने पर यहाँ हमें कुछ अप्राप्य (वस्तु) नहीं है, अतः देवों में आपके अतिरिक्त कोई अन्य आपकी भाँति पूज्यतम (अत्यन्त पूजनीय) नहीं है ।५०। अदिति-पुत्र, भगवान्, सूर्य अन्तर्हित हो गये और उनके उस रूप के दर्शन करने से ब्रह्मादि देवता भी अत्यन्त हर्षित हुए ।५१। इस भाँति ब्रह्मादि देवता, गन्धर्व एवं ऋषियों ने भी भास्कर की आराधना करके परमसिद्धि प्राप्त की है ।५२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में ब्रह्मादिकों का सूर्य रूप दर्शन वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।१६०।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजाफलप्रश्नवर्णनम्

शतानीक उवाच

एवमेतद्यथात्थ त्वं भास्करो दैवतं परम् । नास्त्यादित्यसमो देवो नास्त्यादित्यसमा गतिः ॥१
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥२
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रकेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् । द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना तेजो यत्सार्वलौकिकम् ॥३
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥४
ततः सञ्जायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते । भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥५
जगज्ज्येष्ठो ग्रहो विप्र प्रदीप्तः प्रभवो रविः । तत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ॥६
क्षणा मुहूर्ता दिवसा रात्रिपक्षाश्च कृत्स्नशः । मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥७
स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः । प्रभासयति विप्रेन्द्र त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८
तस्मादस्य द्विजश्रेष्ठ पूजने यत्फलं भवेत् । तन्मे ब्रूहि प्रयत्नेन प्रसादप्रवणो भव ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे सप्तमीकल्पे ब्राह्मे पर्वणि सौरधर्मे सूर्यपूजाफलप्रश्नवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६१।

अध्याय १६१

सूर्यपूजा फल प्रश्न का वर्णन

शतानीक ने कहा।—आपने जो बताया है कि सूर्य ही महादेव हैं, यह सर्वथा ठीक है । सूर्य के समान कोई देव नहीं है और उनके समान कोई गति (प्राप्ति) भी नहीं है ।१। इसमें संदेह नहीं कि निखिल त्रैलोक्य के मूल कारण आदित्य ही है । इन्हीं द्वारा देव, मनुष्य एवं राक्षसों समेत समस्त जगत् उत्पन्न होता है । विप्रेन्द्र ! शिव, इन्द्र एवं उपेन्द्र (विष्णु) इन केन्द्रस्थलवर्ती एवं आकाशपूर्ण देवों के समस्त तेज रूप सूर्य हैं, जिससे समस्तलोक प्रकाशमय है ।२-३। सर्वात्मा, समस्त लोकों के ईश, महादेव एवं प्रजापति सूर्य ही तीनों लोकों के (निर्माण में) प्रधान कारण है ।४। (समस्त लोक) उन्हीं द्वारा उत्पन्न होकर उन्हीं में लय हो जाता है, अतः सूर्य द्वारा लोकों की स्थिति और प्रलय पहले से ही निश्चित है ।५। विप्र ! जगत् के श्रेष्ठ ग्रह, प्रज्वलित एवं (उसके) उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं, उन्हीं में उसका लय होता है, और बार-बार जन्म भी ।६। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, समस्तमास, वर्ष, ऋतुएँ, चारों युग, काल, आदि तथा बारह रूप धारण करने वाले प्रजापति यही हैं । विप्रेन्द्र ! चर एवं अचर रूप तीनों लोकों को इन्होंने प्रकाशपूर्ण बनाया है ।७-८। इसलिए द्विजश्रेष्ठ ! इस देव के पूजन करने के जितने फल प्राप्त होते हों मेरे ऊपर कृपा करते हुए आप प्रयत्नपूर्वक उन्हें बताइये ।९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरगर्भ में सूर्य पूजा फलप्रश्न वर्णन नामक एक सौ एकसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६१।

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

भानुं प्रतिष्ठाप्य नरः सर्वदेवमयं विभुम् । प्राप्नोत्यमरतां वीर तेजसा रविसन्निभः ।।१
यो भानुं द्वेष्टि सम्मोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् । नरो नरकगामी स्यात्तस्य सम्भाषणादपि ।।२
भानुमिष्टं प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः । यत्पुण्यफलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ।।३
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थदेवेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं स्थाप्य भानुं लभेन्नरः ।।४
यो भानुं स्थापयेद्भक्त्या विधिपूर्वं नराधिप । सर्वाङ्गमुदितं पुण्यं लभेत्कोटिगुणं नरः ।।५
मातृजान्पितृजांश्चैव यत्र चोद्वहते स्त्रियम् । कुलत्रयं समुद्धृत्य शक्रलोके महीयते ।।६
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्रविमुच्यते ।।७
अथ वा राज्यमाकांक्षेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ।।८
यत्कृत्वा पार्थिवं व्योम्नि अर्चयेत्सर्वदेवकम् । समूलमखिलं तेन त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ।।९
इहैव धनवाञ्छ्रीमान्सोऽन्तेऽर्कत्वमवाप्नुयात् । त्रिसन्ध्यं कीर्तयेद्व्योम कृत्वा बिम्बेन पार्थिवम् ।।१०

अध्याय १६२

सौरधर्म का वर्णन

सुमन्तु बोले—वीर ! सर्वदेवमय एवं विभु सूर्य की प्रतिष्ठा करके मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी होकर अमरत्व प्राप्त करता है ।१। अत्यधिक मोहवश जो समस्त देव के वन्दनीय सूर्य से द्वेष करता है, उससे भाषण (बात-चीत) करने वाला मनुष्य नरकगामी होता है ।२। यत्नशील रहकर विधानपूर्वक अपने इष्टदेव सूर्य की प्रतिष्ठा करके मनुष्य जिस फल की प्राप्ति करता है, उसे सावधान होकर सुनो ।३। समस्त यज्ञ, तप, दान, तीर्थ एवं देवों के पूजन द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके कोटि करोड़, गुने फल की प्राप्ति मनुष्य को सूर्य की स्थापना करने से होती है ।४। नराधिप ! जो विधानपूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करता है, उसे उसके सर्वाङ्ग उदयकारक एवं कोटि गुने पुण्य की प्राप्ति होती है ।५। यदि स्त्री प्रतिष्ठा करती है, तो मातृकुल, पितृकुल एवं पतिकुल, इन तीनों कुलों के उद्धारपूर्वक इन्द्रलोक में सम्मानित होती है ।६। इस प्रकार (प्राणी) समस्त भोगों का उपभोग करके प्रलय के समय ज्ञानयोग द्वारा उन्हीं में लीन हो जाता है। राज्य की इच्छा होने पर वह जन्मान्तर में सातों द्वीपों वाले समुद्रों से घिरी समस्त पृथिवी का अधिनायक होता है ।७-८। जो व्योम (आकाश) में सर्वदेवमय एवं प्रधान कारणभूत (सूर्य) के पार्थिव रूप का पूजन करता है, उसने तीनों लोकों की पूजा की इसमें संदेह नहीं ।९। बिम्ब द्वारा (सूर्य के) पार्थिव रूप को बनाकर पूजा एवं तीनों समय व्योम के कीर्तन करने से मनुष्य यहाँ ही धनवान् एवं श्रीमान् होकर पश्चात् अन्त (समय) में सूर्य के सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति करता है ।१०। इस प्रकार एक

शतैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु । अनेन सह देहेन भानुः सन्तिष्ठते क्षितौ ॥११
पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि । उद्धारयेच्च संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम् ॥१२
गीर्वाणैः सहितो नित्यं मोदते दिवि सूर्यवत् । योऽपि पिष्टमयं व्योम सर्वगन्धोपशोभितम् ॥१३
कुसुमैः सुसुगन्धैश्च फलैश्च विविधैर्नृप । भक्ष्यलेह्यरसैश्चैव घृतदीपैरलङ्कृतैः ॥१४
नानारत्नसमायुक्तं नानागन्धसमन्वितम् । तस्य दक्षिणपार्श्वे तु विन्यसेदगुरुं बुधः ॥१५
दद्यादै पश्चिमे भागे श्रीखण्डं चन्दनं शुभम् । उत्तरे चन्दनं दद्याद्रक्तं दद्याच्च पूर्वतः ॥१६
एवं वित्तानुसारेण कृत्वा विभवविस्तरम् । कृष्णपक्षे तु सप्तम्यां भास्करस्य निवेदयेत् ॥१७
सकृदेव तु यः कुर्याद्व्योम भरतसत्तम । यत्फलं हि भवेत्तस्य तन्मे निगदतः शृणु ॥१८
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः । निष्कलः सर्वगो भूत्वा प्रविशेत्परमव्ययम् ॥
तेजसा रविसंकाशः प्रभयार्कसमप्रभः ॥१९
पांसुना क्रीडमानो[1] यः कुर्याद्व्योम ह्यकार्यतः । स राजन्भवते राजा पर्वतेषु समन्ततः ॥२०
सर्वेषामेव पात्राणां परं पात्रं विभावसुः । एतत्सन्तारयेद्यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥२१
तस्य पात्रस्य माहात्म्यं ध्रुवमक्षयमादिशेत् । तस्मात्तस्मै सदा देयमप्रमेयफलार्थिभिः ॥२२

सौ ग्यारह (उनके पार्थिव) रूपों के पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती, उसे सुनो ! इसी शरीर से सूर्य पृथिवी पर स्थित रहते हैं, उनके दर्शन एवं स्पर्शन करने से सभी मनुष्यों के पाप नाश होते हैं, और उनकी प्रतिष्ठा करके इक्कीस कुलों का उद्धार होता है।११-१२। पश्चात् अंत में वह व्यक्ति देवों के साथ सूर्य की भाँति स्वर्ग का आनन्दानुभव करता है। नृप ! पिष्ट (चूर्ण) मय तथा समस्त गंधों से सुशोभित व्योम की रचना करके सुगन्धित पुष्पों, भाँति-भाँति के फलों, भक्ष्य और स्वादिष्ट भोजन, घी के दीपकों से उसे अलंकृत कर विद्वानों को चाहिए कि उनके दाहिने पार्श्व भाग में भाँति-भाँति के रत्नों एवं गन्धों समेत अगुरु स्थित करें। उनके पश्चिम भाग को शुभ श्रीखंड चन्दन (मलयगिरि), उत्तर को चंदन और पूर्व की ओर रक्तचंदन से सौन्दर्यपूर्ण करना चाहिए।१३-१६। इस प्रकार अपनी धनशक्ति के अनुसार उसे ऐश्वर्यपूर्ण कर कृष्ण पक्ष की सप्तमी में भास्कर के लिए समर्पित करना बताया गया है। भरतसत्तम ! इस प्रकार के व्योम की एक बार भी रचना करने से जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें मैं बता रहा हूँ, सुनो !१७-१८। वह समस्त पापों एवं समस्त दुःखों से मुक्त कलाहीन तथा सर्वगामी होकर सूर्य के समान तेज और प्रभापूर्ण हो परम अविनाशी (सूर्य) में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति करता है।१९। राजन् ! जो धूलिकणों में खेलता हुआ बालक उसी धूलि द्वारा निष्प्रयोजन व्योम की रचना करता है, वह समस्त पर्वतों का राजा होता है।२०। सभी पात्रों में सूर्य उत्तम पात्र बताये गये हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा (प्राणी) नरकसमुद्र से पार होता है।२१। उस पात्र का माहात्म्य ध्रुव एवं अक्षीण बताया गया है, इसलिए अतुल फल के इच्छुकों को चाहिए कि उनके लिए सदैव (यज्ञ रूप में) कुछ न कुछ देते ही रहें।२२। सूर्य के लिए

---

१. 'क्रीडोनुसम्परिभ्यश्च' इति सूत्रे 'आङो दोऽनास्यावहरण' इत्याङोनुवर्तनादात्मनेपदम् ।

रवौ दत्तं हुतं जप्तं बलिं पूजां निवेदयेत् । अनन्तफलमादिष्टं ब्रह्मादिसुरसत्तमैः ॥२३
भक्त्या वित्तानुसारेण यः कुर्यादालयं रवेः । सोऽग्नेयं यानमारुह्य मोदते सह भानुना ॥२४
महाविभवसारोऽपि यः कुर्याद्भक्तिवर्जितम् । अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ॥२५
वित्तशाठ्येन यः कुर्याद्वित्तवानपि मानवः । न स फलमवाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥२६
तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् । भागद्वयं च धर्मार्थे अनित्यं जीवितं यतः ॥२७
भक्त्या प्रचोदितं कुर्यादल्पवित्तोऽपि यो नरः । महाविभवसारोऽपि न कुर्याद्भक्तिवर्जितः ॥२८
सर्वस्वमपि यो दद्यादर्के भक्तिविवर्जितः । न तेन धर्मभागी स्याद्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥२९
न तपोभिर्विभोरुग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः । गच्छेदैकं पुरं दिव्यमर्के भक्तियुतो नृप ॥३०
रुचिरं शुभशैलोत्थं कुर्याद्यस्तु रवेर्गृहम् । त्रिसप्तकुलसंयुक्तः सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥३१
यन्मया कोटिगुणितं कृतं स्यादिष्टकाम्यया । द्विपरार्धगुणं पुण्यं शैलजेऽपि विदुर्बुधाः ॥३२
मृच्छैलेन समं ज्ञेयं पुण्यमाढ्यदरिद्रयोः । यत्र तत्र गतः कुर्याद्भक्त्या पुण्यं भगालयम् ॥३३
शैलोत्थमिष्टकाभिर्वा दृढं दारुमयं शुभम् । स गच्छेत्परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥
गैरिकं यानमारुह्य यः कुर्याद्धृतभूषणः ॥३४

दिये गये दान, हवन, जप, बलि एवं पूजन करने से अनंत फलों की प्राप्ति होती है, इसे ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवों ने बताया है।२३। अपने धन के अनुसार जो सूर्य के लिए मन्दिर निर्माण कराता है, वह आग्नेय विमान पर बैठकर सूर्य के साथ विहार करता है।२४। महाधनवान होते हुए भी भक्तिहीन होकर जिसने छोटे या बड़े उस मन्दिर की रचना की है, उसे (गृह न बनाने वाले के तुल्य फल की प्राप्ति होगी अर्थात् उसके और दरिद्र मनुष्य में कोई भेद नहीं होता है) ।२५। धनवान होने पर भी जो मनुष्य शठतावश अधिक धन (सूर्य के लिए) व्यय न कर सका, तो उस लोभी को पुण्य फल की प्राप्ति नहीं होती है।२६। इसलिए धन का तीसरा भाग अपने जीवन के लिए संचित कर दो भागों को धर्मार्थ में व्यय करना चाहिए। क्योंकि जीवन नश्वर है।२७। अल्प धन के होते हुए भी भक्ति में निमग्न होकर ही (यह कार्य) करना चाहिए इसलिए कि महाधनवान् होने पर भक्तिहीन होकर यह कार्य करना निषिद्ध बताया गया है।२८। भक्तिहीन होकर जिसने अपने सर्वस्व का दान सूर्य के लिए कर दिया है, वह धर्म भागी कभी नहीं कहा जायगा क्योंकि धार्मिक होने में भक्ति ही कारण बतायी गयी है।२९। विभु (सूर्य) के लोक की प्राप्ति उग्रतप एवं समस्त यज्ञों द्वारा भी नहीं हो सकती है, नृप ! उनके दिव्यलोक की प्राप्ति केवल भक्तिमान् ही कर सकता है।३०। जो शुभ शिला द्वारा सौन्दर्य पूर्ण सूर्य का मन्दिर बनाता है, वह अपने इक्कीस कुल (पीढ़ी) के समेत सूर्यलोक की प्राप्ति करता है।३१। जो मैंने बताया कि अपनी इष्ट कामनावश करने से कोटि गुने फल की प्राप्ति होती है, उसी भाँति विद्वानों को यह भी जानना चाहिए कि पत्थर के मन्दिर निर्माण कराने से परार्ध के दुगुने पुण्य की प्राप्ति होती है।३२। मिट्टी और पत्थर द्वारा मन्दिर के निर्माण कराने वाले धनवान् एवं दरिद्रों के पुण्य में कोई विशेषता नहीं होती है। इसलिए जहाँ कहीं भी हो सके भक्तिपूर्वक ही सूर्य के मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए। इस प्रकार पत्थर, ईंटे अथवा काष्ठ द्वारा दृढ़ एवं शुभ मन्दिर की रचना अजेय तेज वाले सूर्य के लिए करानी चाहिए। जो ऐसा करता है उसे विमान

क्रीडमानोऽपि यः कुर्याद्बालभावेऽर्कमंदिरम् । सोऽर्कलोकमवाप्नोति विमानवरमास्थितः ।।३५
पुष्पमालाकुलं दिव्यं धूपगन्धादिवासितम् । अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ।।३६
तत्र रूढो महाराज वत्सरं वृन्दमुत्तमम् । उषित्वा भास्करपुरे पूज्यमानस्तु दैवतैः ।।३७
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति धार्मिकः । धर्मार्थकामसम्पन्नो यशसा च नराधिप ।।३८
पश्यन्परिहरञ्जन्तून्मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया । शनैः सम्मार्जनं कुर्याच्चान्द्रायणफलं भवेत् ।।३९
पुत्रार्थं देहजीर्णाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः । रोगार्तानां च भूतानामारोग्यार्थं प्रपूजयेत् ।।४०
गृहीत्वा गोमयं स्वच्छं स्थाने च पतितं शुभे । उपर्युपरि सन्त्यज्य ह्यग्रं जन्तुवर्जितम् ।।४१
वस्त्रपूतगोमयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्येत्तु सुखिताञ्जन्तूंश्चान्द्रायणशतं[१] लभेत् ।।४२
यः कुर्यात्सर्वकार्याणि वस्त्रपूतेन वारिणा । स मुनिः स महासाधुः स गच्छेत्परमां गतिम् ।।४३
क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः । अक्षरं तु महादानं सुखदं सर्वदेहिनाम् ।।४४
नैरन्तर्येण यः कुर्यात्पक्षं सम्मार्जनार्चनम् । वर्षमेकं शतं दिव्यं सुरलोके महीयते ।।४५
तस्यान्ते च चतुर्वेदसुरूपः प्रियदर्शनः । आद्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ।।४६
सम्पर्केणापि यः कुर्यान्नरः कर्म भगालये । सोऽपि सौमनसं गत्वा पुरं क्रीडति नित्यशः ।।४७

द्वारा उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है।३३-३४। बाल्यावस्था में खेलते हुए भी जो सूर्य मन्दिर बनाकर खेलता है, वह भी उत्तम विमान पर बैठकर सूर्य की प्राप्ति करता है।३५। महाराज! पुष्पों की मालाओं से अलंकृत, दिव्य, धूप एवं गंधों से सुगन्धित, अप्सराओं से घिरे, समस्त कामनाएँ तथा सुख प्रदान करने वाले उस विमान द्वारा उस लोक में अनेकों वर्ष देवों से पूजित रहकर पुनः क्रम प्राप्त कर यहाँ आकर धार्मिक राजा होता है, नराधिप! उसके धर्म, अर्थ, काम एवं यश सभी सुसम्पन्न होते रहते हैं। मन्दिर में जीवों को देखकर उनकी रक्षापूर्वक जो कोमल एवं सूक्ष्म मार्जनी (झाडू) द्वारा धीरे-धीरे सफाई करता है, उसे चान्द्रायण फल की प्राप्ति होती है।३६-३९। जिस प्रकार बन्ध्याओं को बूढ़ी हो जाने पर भी पुत्रार्थ उनकी पूजी करनी चाहिए उसी भाँति रोगी प्राणियों को सदैव अपने आरोग्य के लिए भी।४०। अच्छे स्थान से गोबर लाकर कपड़े से छानकर उनके मन्दिर के ऊपरी भाग को छोड़ केवल नीचे वाले भाग (भूमि) को जीवों (कीड़े-मकोड़े) को देखते हुए लीपने से सौ चान्द्रायण की पुण्य प्राप्ति होती है।४१-४२। जो वस्त्रपूत जल द्वारा सभी कार्य करता है, वह मुनि, तथा महान् साधु है, उसे परमगति की प्राप्ति होती है।४३। सभी प्रकार के दान, यज्ञ, हवन एव बलि की क्रियाएँ नश्वर बतायी गयी हैं, किन्तु समस्त प्राणियों के लिए केवल अक्षर अनश्वर और सुखदायी (वह सूर्य का) महादान ही है। एक पक्ष तक निरन्तर सम्मार्जन (सफाई) और पूजन जो करता है, वह दिव्य सौ वर्ष तक स्वर्ग लोक में सम्मानित होता है।४४-४५। तत्पश्चात् चारों वेद के स्वरूप (प्रखरविद्वान्) सर्व प्रिय, प्रथम एवं समस्त गुणों समेत धार्मिक राजा होता है।४६। जो किसी के साथ भी सूर्य के मन्दिर में कार्य करता है, वह भी देवलोक में जाकर प्रतिदिन

---

१. कृतशतवारचान्द्रायणजं फलमित्यर्थः।

तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकपरिप्लुताः । न भजन्ति रविं भक्त्या यावत्सर्वेऽपि देहिनः ॥४८
समासक्तं तथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्यर्को न भवद्देवः को मुच्येदेव बन्धनात् ॥४९
यः कुर्यात्कुट्टिमां भूमिं दर्पणोदरसन्निभाम् । नानावर्णविचित्रां च विचित्रकुसुमोज्ज्वलाम् ॥५०
क्वचित्कलशविन्यस्तां पङ्कजैरुपशोभिताम् । रम्यां मनोरमां सौम्यामर्कायतनसंसदि ॥५१
यावद्दण्डा भवेद्भूमिः समन्ताच्च सुशोभना । तावद्युगसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥५२
कारयेच्चित्रशास्त्रज्ञैश्चित्रकर्मार्कमन्दिरे । विचित्रं यानमारुह्य चित्रभानोर्गृहं व्रजेत् ॥५३
यावन्त्स देवरूपाणि ग्रहरूपाणि लेखयेत् । तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥५४
भवेद्भूमिः समन्ताच्च यः कुर्याद्रविमन्दिरम् । आरामावसथादीनां लभेदामूल्यकं फलम् ॥५५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं नाम
द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु पुष्पपूजावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

भास्करस्य महाबाहो भानोरमिततेजसः । स्नानकाले प्रकुर्वीत जयशब्दादिमङ्गलम् ॥१

क्रीड़ा करता है ।४७। संसार में दुःख एवं शोक में निमग्न होकर समस्त प्राणी तभी तक घूमते रहते हैं, जब तक सूर्य की भक्तिपूर्वक आराधना नहीं करते ।४८। प्राणियों के चित्त प्रत्येक क्षण विषयों में उन्हें देखकर आसक्त रहते हैं इसलिए ऐसी दशा में यदि सूर्य देव न हों तो उन्हें बन्धन मुक्त कौन कर सकता है ।४९। जो दर्पण के समान चमकीला फर्श (मन्दिर के भीतर भूमि का ऊपरी भाग) बनाता है, भाँति-भाँति के रंग एवं भाँति-भाँति के पुष्पों से सुशोभित करता है, तथा कहीं कमलों से सुसज्जित कलशों के रखने के द्वारा उसे सौन्दर्यपूर्ण करता है, इस प्रकार सूर्य के मन्दिर की भूमि रमणीक एवं मनोहर बनाने वाला वह मनुष्य जितने दंडों के प्रमाण वह चौकोर भूमि रहती है, उतने सहस्रयुग सूर्य लोक में पूजित होता है ।५०-५२। जो कुशल चित्रकार सूर्य के मन्दिर में चित्र बनाता है वह विचित्र विमान पर बैठकर चित्रगुप्त के लोक की प्राप्ति करता है ।५३। ग्रह रूप में उन देव की जितनी मूर्ति (चित्र) वह बनाता है, उतने सहस्र युग सूर्य लोक में सम्मानित होता है । सूर्य के मन्दिर में चारों ओर इस भाँति लम्बी-चौड़ी भूमि होनी चाहिए, जिसमें भलीभाँति बगीचा एवं रहने के स्थान बने हों ऐसा निर्माण कराने वाले उस पुरुष को अमूल्य फल की प्राप्ति होती है ।५४-५५

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ।१६२।

अध्याय १६३

सौरधर्म में पुष्पपूजा का वर्णन

सुमन्तु बोले—महाबाहो ! अमित तेज एवं किरण युक्त सूर्य के स्नान के समय 'जप' आदि मांगलिक

पद्मस्वास्तिकशङ्खं तु श्रीवत्सं द्विजसत्तम । हेमरूप्यादिपात्रेषु कल्पितं गोमयादिभिः ॥२
नानावर्णकसंयुक्तैरक्षतैस्तिलतन्दुलैः । स्वच्छैश्च दधिसम्मिश्रैर्यथाशोभं प्रपूरितैः ॥३
द्रव्यपीठप्रदीपाश्च भूताश्वत्थादिपल्लवैः । औषधीभिश्च मेध्याभिः सर्वबीजैर्यवादिभिः ॥४
सप्तम्यादिषु सर्वेषु षष्ठ्यादिषु विशेषतः । शङ्खभेर्यादिभिः कुर्याद्वाद्यघोषं सुशोभनम् ॥५
त्रिसन्ध्यं वेदनिर्घोषं कुर्वीत फलमुत्तमम् । कुर्यान्नीराजनं चैव शङ्खवादित्रमङ्गलैः ॥६
यावन्नीराजनं कुर्यात्पर्वाणि विधिवद्रवौ । तावद्युगसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥७
कपिला पञ्चगव्येन कुशवारियुतेन वै । स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्रह्मस्नानं हि तत्स्मृतम् ॥८
वर्षस्यैकमपि सकृद्वै ब्रह्मस्नानं प्रयच्छति । स मुक्तः सर्वपापैस्तु सूर्यलोके महीयते ॥९
कपिलापञ्चगव्येन [1]दधिक्षीरयुतेन च । स्नानं दशगुणं ज्ञेयं महत्पुण्यं नराधिप ॥१०
देवो धीरमुद्दिश्य देहशुद्धिं च शाश्वतीम् । कपिलामाहरेन्नित्यं मुनिदेवाग्निनिर्मिताम् ॥११
कापिलं यः पिबेच्छूद्रो देवकार्यार्थनिर्मितम् । स पच्यते महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥१२
वर्षकोटिसहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम् । घृताभ्यङ्गेन सूर्यस्य दहेत्सर्वं न संशयः ॥१३
कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पाप समुपार्जितम् । वज्रस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥१४
सप्तम्यां च कृतस्नानो यजेत्सूर्यं सकृन्नरः । कुलान्युद्धृत्य सप्तेह सूर्यलोके महीयते ॥

शब्दों का उच्चारण करना चाहिए।१। सुवर्ण और चाँदी के पात्रों में गोबर आदि द्वारा कमल, स्वास्तिक, शंख एवं श्रीवत्स रूपी अंकों को बनाये, पुनः भाँति-भाँति के मिश्रित अक्षत, तिल, चावल स्वच्छ दही आदि मिलाकर उसी द्वारा सौन्दर्यपूर्ण उत्तम आसन दीपक, पीपल आदि के पल्लव, औषधियों, जवा आदि समस्त बीजों के अंकुरों से सुसम्पन्न करके सभी सप्तमी या षष्ठी में शंख भेरी आदि वाद्यों समेत मनमोहक वाद्यों (बाजों को बजाये)।२-५। तीनों संध्यायों में वेदपाठ करना चाहिए, उससे (महान्) फल प्राप्त होते हैं, शंख आदि मांगलिक वाद्यों समेत पर्वतिथियों में सूर्य का जितने बार नीराजन किया जाता है, उतने सहस्र युग वह सूर्य लोक में पूजित होता है।६-७। कपिला गाय के पञ्च गव्य से कुश जल द्वारा मंत्र से पवित्र स्नान कराना चाहिए, क्योंकि यही 'ब्रह्म स्नान' बताया गया है।८। जो प्रत्येक वर्ष में एक बार भी सूर्य का ब्रह्मस्नान कराता है, वह समस्त पातकों से मुक्त होकर सूर्यलोक में सम्मानित होता है।९। नराधिप! कपिलागाय के पञ्चगव्य अथवा अन्य गाय के दही, क्षीर मिश्रित जल से स्नान कराने से दशगुने पुण्य की प्राप्ति होती है।१०। देवों को चाहिए कि सूर्य के उद्देश्य से अपनी शरीर शुद्धि के निमित्त मुनि, देव एवं अग्नि के लिए उत्पन्न की गई कपिला गाय का नित्य पालन करें।११। देव-कार्य के लिए विनिर्मित कपिलागाय के दूध का पान जो शूद्र करता है, वह अत्यन्त दुःखदायी नरक सागर में पड़कर चिरकाल तक दुःखों का अनुभव करता रहता है।१२। सूर्य के लिए घी का अभ्यंग प्रदान करने से सहस्र कोटि (करोड़ों) वर्षों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं।१३। वज्र स्नान कराने से अग्नि द्वारा ईंधन की भाँति सहस्र कोटिकल्पों के किये हुए समस्त पाप जल जाते हैं।१४। सप्तमी में स्नान करके एक बार भी सूर्य

---

१. कपिलेतरगवामिति शेषः।

वसुमेहादियुक्तं च क्षीरस्नानस्य तत्समम् ॥१५
सकृदाढकेन पयसा यो भानुं स्नापयेन्नरः । राजतेन विमानेन सोऽर्कलोके महीयते ॥१६
स्नाप्य दध्ना सकृद्भानुं स त्रिलोके महीयते । मधुना स्नपयित्वा तं शुक्रलोके महीयते ॥१७
उद्वृत्य शालिपिष्टेन वायुलोकेषु पूज्यते । स्नानमिक्षुरसेनेह यः सूर्ये सकृदाचरेत् ॥
स गोपतिपुरं गच्छेत्सर्वकामसमन्वितः ॥१८
फलोदकेन यो भानुं सकृत्स्नापयते नरः । उत्सृज्य पापकलिलं पितृलोके महीयते ॥१९
श्रीखण्डवारिणा स्नाप्य सकृद्भानुं नराधिप । चन्द्रांशुनिर्मलः श्रीमांश्चरेदादैन्दवमन्दिरे ॥२०
वस्त्रपूतेन तोयेन यद्यर्कं स्नापयेत्सकृत् । स सर्वकामतृप्तात्मा राकाधिपपुरं व्रजेत् ॥२१
आपो हिष्ठेति जप्येन गङ्गातोयेन भारत । गैरिकेण विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥२२
कर्पूरागुरुतोयेन योऽर्कं स्नापयते सकृत् । स्नाप्य भानुं सकृन्मन्त्रैः सप्तम्यां समुपोषितः ॥
स कुलानेकविंशतिमुत्तार्य रविभाव्रजेत् ॥२३
पितृनुद्दिश्य यो भानुं स्नापयेच्छीतवारिणा । तृप्ताः स्वर्गं व्रजन्त्याशु पितरो नरकादपि ॥२४
भानुं शान्ताम्बुनास्नाप्य धारोष्णपयसा सह । स्नाप्य पश्चाद्व्रतेनेशमग्निलोके महीयते ॥२५
एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भारत । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२६

के पूजन करने से मनुष्य अपने सात पीढ़ियों के उद्धारपूर्वक सूर्य लोक में सम्मानित होता है। क्षीर से स्नान कराने वाला पुरुष रत्न एवं सुवर्णयुक्त होकर उसके समान ही फलभागी होता है।१५। एक सेर दूध द्वारा एक बार भी सूर्य को स्नान कराने वाला पुरुष चाँदी के विमान पर स्थित होकर सूर्य लोक में पूजित होता है।१६। दही द्वारा एक बार भी (सूर्य को) स्नान कराने वाला मनुष्य तीनों लोकों में सम्मानित होता है। शहद द्वारा स्नान कराने वाला शुक्रलोक में पूजित होता है।१७। चावल के चूर्ण (आटे) द्वारा स्नान कराने से यह वायुलोक में पूजित होता है, ईख के रस द्वारा जो एक बार भी सूर्य को स्नान कराता हैं, वह समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।१८। फल से रस द्वारा एक बार भी सूर्य को स्नान कराने वाला मनुष्य पाप समूह से मुक्त होकर पितृलोक में पूजित होता है।१९। नराधिप ! श्रीखंड (चन्दन) के जल से भी एक बार सूर्य को स्नान कराने के चन्द्र किरण की भाँति निर्मल एवं श्रीसम्पन्न होकर वह चन्द्रलोक में विचरण करता है यदि वस्त्रपूत (कपड़े से दानकर) जल द्वारा एक बार भी सूर्य का स्नान कराया जाय, तो समस्त कामनाओं की तृप्तिपूर्वक मनुलोक की प्राप्ति होती है।२०-२१। भारत ! गंगाजल द्वारा 'आपोहिष्टे' ति मंत्र से सूर्य के मार्जन-स्नान कराने से वह सुवर्ण मयविमान पर बैठकर व्रह्म लोक में सम्मानित होता है।२२। जो मनुष्य सप्तमी में उपवास कर कपूर एवं अगुरु के जल द्वारा एक बार मंत्रपूर्वक सूर्य को स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों के उद्धार करके सूर्यलोक की प्राप्ति करता है।२३। जो अपने पितरों के उद्देश्य से शीतल जल द्वारा सूर्य को स्नान कराता है, उसके पितरलोग नृप होकर नरक से शीघ्र स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर देते हैं।२४। धारोष्ण (तुरन्त के दुहे हुए) दूध के साथ शीतल जल द्वारा सूर्य को स्नान कराकर व्रत पालन करे तो, वह अग्नि लोक में सम्मानित होता है।२५। भारत ! इस प्रकार तीन भाँति के स्नान एवं पूजन करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध

मृत्कुम्भात्ताम्रकुम्भैस्तु स्नानं शतगुणं मतम् । रोप्यैः पादोत्तरं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं परम् ॥
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम् ॥२७
इहामुत्र कृतं पापं घृतस्नानेन नश्यति । सप्तजन्मकृतं पापं पुराणश्रवणेन तु ॥२८
दशापराधांस्तोयेन क्षीरेण तु शतं क्षमेत् । सहस्रं क्षमते दध्ना घृतेनाप्ययुतं क्षमेत् ॥२९
नैरन्तर्येण यो मासं घृतस्नानं समाचरेत् । दशैकादश कुलानीह नयत्सूर्यस्य मान्दिरम् ॥३०
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः । पलानां द्विसहस्रेण महास्नानमिति श्रुतिः ॥३१
घृताभ्यङ्गं घृतस्नानं भानोः कुर्य्याद्द्विजोत्तम । यश्च गोधूमचूर्णैस्तु कषायैर्दर्भसंमितैः ॥३२
दशधेनुसहस्राणि यद्दत्वा लभते फलम् । तत्फलं लभते सर्वमर्कस्योद्वर्तने कृते ॥३३
अर्घ्यं पुष्पफलोपेतं यस्त्वर्काय निवेदयेत् । स पूज्यः सर्वलोकेषु अर्कवन्मोदते दिवि ॥३४
गन्धतोयेन सम्मिश्रमुदकाद्द्वादशोत्तरम् । पञ्चगव्यसमायुक्तमर्घ्यं शतगुणं नृप ॥३५
योऽष्टाङ्गगर्भमापूर्य भानोर्मूर्ध्नि निवेदयेत् । दशवर्षसहस्राणि रमते चार्कमन्दिरे ॥३६
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु । रक्तानि करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥३७
अष्टाङ्ग एष अर्घो वै ब्रह्मणा परिकीर्तितः । सततं प्रीतिजननो भास्करस्य नराधिप ॥३८
दातुर्वैणवपात्रेण दत्तेऽर्घ्ये यत्फलं भवेत् । तस्माच्छतगुणं पुण्यं मृत्पात्रेण नराधिप ॥३९

के फल की प्राप्ति करता है ।२६। मिट्टी के कलशों और ताँबे के घड़ों द्वारा स्नान कराने से सौ गुने एवं चाँदी के कलशों से चौथाई और अधिक प्राप्ति होती है । दर्शन से स्पर्श करना श्रेष्ठ होता है, स्पर्शन से पूजन श्रेष्ठ तथा उसमें भी घी द्वारा स्नान कराना परमोत्तम बताया गया है ।२७। लोक-परलोक के सभी पाप घी स्नान से नष्ट हो जाते हैं । उसी प्रकार सात जन्म का पाप पुराण श्रवण से नष्ट होना बताया गया है ।२८। जल द्वारा स्नान कराने से दश अपराधों की क्षमा प्राप्त होती है, क्षीर द्वारा सौ अपराधों, दही से सहस्र अपराधों एवं घी द्वारा दश सहस्र अपराधों की क्षमा प्राप्त होती है ।२९। एक मास तक निरंतर जो सूर्य को घृत स्नान कराता है, वह अपने इक्कीस पीढ़ी के परिवारों को सूर्यलोक की प्राप्ति कराता है ।३०। सौ पल का स्नान विधान बताया गया है (अर्थात् स्नान की वस्तु सौपल के परिमाण से कम न हो) उसी प्रकार पच्चीस पल का अभ्यंग, एवं दो सहस्र पल का महास्नान बताया गया है ।३१। अतः द्विजोत्तम ! सूर्य को घी का अभ्यंग एवं स्नान कराना चाहिए । जो एक पीतमिश्रित वर्णवाले कुशों की भाँति गेहूँ के चूर्ण (आटे) द्वारा सूर्य का उद्वर्तन (मूर्ति की रूप सफाई) करता है, उसे दशसहस्र धेनु-दान के समान फल की प्राप्ति होती है ।३२-३३। पुण्य एवं फल समेत अर्घ्य जो सूर्य के लिए अर्पित करता है, वह समस्त लोकों का पूज्य होकर सूर्य के समान स्वर्ग में आनन्दानुभव प्राप्त करता है ।३४। नृप ! सुगन्धित जल मिश्रित जल द्वारा दिया गया अर्घ्य बारह गुने एवं पंचगव्य मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है ।३५। जो अष्टांग समेत अर्घ्य सूर्य के शिर पर अर्पित करता है, सूर्य के मन्दिर में वह दशसहस्र वर्ष विहार करता है ।३६। जल, क्षीर, कुशाग्र भाग, घी, दही, शहद, रक्त करवीर (कनेर), और रक्तचन्दन, ब्रह्मा ने इसे ही अष्टांग अर्घ्य बताया है । नराधिप ! यह भास्कर के लिए निरन्तरप्रिय है ।३७-३८। बाँस के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उससे सौगुना पुण्य

ताम्रार्घ्यपात्रदानेन पुण्यं शतगुणं मतम् । पालाशपद्मपत्राभ्यां ताम्रपात्रे फलं लभेत् ।।४०
रौप्यपात्रेण विज्ञेयं लक्षार्घ्यं नात्र संशयः । सुवर्णपात्रविन्यस्तमर्घ्यं कोटिगुणं भवेत् ।।४१
एवं स्नानार्घ्यनैवेद्यबलिधूपादिषु क्रमात् । पात्रान्तरविशेषेण तत्फलं तूत्तरोत्तरम् ।।४२
रौप्यपात्रप्रदानेन यत्पुण्यं वेदपारगे । ताम्रपात्रप्रदानेन तस्माच्छतगुणं रवौ ।।४३
फलं कोटिसुवर्णस्य यो दद्याद्वेदपारगे । सूर्याय रूप्यपात्रे तु भवेत्पुण्यं ततोऽधिकम् ।।४४
सुवर्णपात्रं यो दद्याद्भास्कराय महीपते । न शक्यं तस्य तद्वक्तुं पुण्यं पात्रविशेषतः ।।४५
तुल्यमेव फलं प्रोक्तं सर्वमाढ्यदरिद्रयोः । तयोरभ्यधिकं तस्य यस्त्वर्के भावनाधिकः ।।४६
विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम् । नैव तत्फलमाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ।।४७
तस्मान्मन्त्रैः फलैस्तोयैश्चन्दनाद्यैश्च यत्नतः । तदनन्तफलं ज्ञेयं भक्तिरेवात्र कारणम् ।।४८
वर्षकोटिशतं दिव्यं सूर्यलोके महीयते । गन्धानुलेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।।४९
गन्धाच्चतुर्गुणं ज्ञेयं पुष्पमष्टगुणं नृप । कृष्णागुरु विशेषेण द्विगुणं फलमादिशेत् ।।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ।।५०
चन्दनागुरुकर्पूरैः श्लक्ष्णपिष्टैः सकुङ्कुमैः । भानुं पर्याप्तमालिप्य कल्पकोटिं वसेद्दिवि ।।५१

मिट्टी के पात्र द्वारा प्रदान करने से होता है।३९। ताँबे के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से सौ गुना पुण्य होता है, पलाश एवं कमल पत्र द्वारा ताँबे के पात्र के समान ही फल प्राप्त होता है।४०। चाँदी के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से लक्ष गुने अधिक पुण्य होता है इसमें संदेह नहीं। सुवर्ण पात्र द्वारा दिया गया अर्घ्य कोटि गुने फल प्रदान करता है।४१। इस प्रकार स्नान, अर्घ्य, नैवेद्य, बलि एवं धूप आदि प्रदान करने में पात्रों की विशेषता वश उत्तरोत्तर अधिक फल प्राप्त होता है।४२। वेद पारगामी (सूर्य) के लिए चाँदी के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, ताँबे के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान से उससे सौ गुने फल की प्राप्ति होती है।४३। वेदनिष्णात (सूर्य) के लिए जो सुवर्ण पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करता है, उसे कोटिफल की प्राप्ति होती है। चाँदी के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से उससे भी अधिक पुण्य प्राप्त होत है।४४। महीपते ! सूर्य के लिए सुवर्णपात्र जो अर्पित करता है, पात्र विशेष होने के कारण उसका पुण्य-परिमाण इतना विस्तृत रहता है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।४५। इस प्रकार धनवान् और दरिद्र पुरुषों के फल की समानता बतायी गई है। उन दोनों से भी अधिक पुण्य उसे प्राप्त होती है, जिसकी भावना (प्रेम) सूर्य के लिए उत्तरोत्तर अधिक होती रहती है।४६। धन के रहते हुए जो मोहवश विस्तार रूप में विधान की समाप्ति नहीं करता है, उस लोभी पुरुष को उसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है।४७। इसलिए भक्तिपूर्वक ही मन्त्र, फल, जल एवं चन्दन आदि प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। उसका अनन्त फल होता है, क्योंकि आराधना में भक्ति ही एक मुख्य कारण बतायी गया है। उसे सुसम्पन्न करनेवाला पुरुष सौ करोड़ वर्ष तक सूर्य लोक में पूजित होता है। गंध के उपलेपन से चन्दन के लेप करने में न दुगुना पुण्य, गंध से चौगुना पुण्य से आठगुना तथा नृप ! काले अगुरु से विशेषकर दुगुने फल की प्राप्ति होती है और उससे सौगुना पुण्य कुंकुम द्वारा प्राप्त होता है।४८-५०। चन्दन, अगुरु तथा कपूर को भली-भाँति पीसकर उसमें कुंकुम डालकर सूर्य के शरीर में भली-भाँति लेपन

स दीव्येत्सुरवृन्देन पुण्यगन्धैः प्रलेपितः । दशवर्षसहस्राणि वीर मित्रपुरे वसेत् ॥५२
भक्त्या निवेद्य अर्काय तालवृन्तं नराधिप । दशवर्षसहस्राणि वीरलोके महीयते ॥५३
मायूरं व्यजनं दत्त्वा सूर्यायातीव शोभनम् । वर्षकोटिशतं पूर्णं प्रभञ्जनपुरे वसेत् ॥५४
पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः । अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥५५
आत्मारामभवैश्चैव पुष्पैः सम्पूजयेद्रविम् । पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं ततोऽधिकम् ॥५६
तपःशीलगुणोपेत इतिहासविदि द्विजे । दत्त्वा दश सुवर्णस्य निष्कान्यल्लभते फलम् ॥५७
करवीरस्य कुसुममर्काय विनिवेदयेत् । लभते तत्फलं वीर यथाह भगवान्रविः ॥
एवं पुष्पविशेषेण फलं तदधिकं भवेत् । ज्ञेयं पुण्यं रसज्ञेन यथा स्यात्तन्निबोध मे ॥५८
सदा पुष्पसहस्रेभ्यः करवीरं विशिष्यते । बिल्वपत्रसहस्रेभ्यः पद्ममेकं नराधिप ॥५९
पद्मपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते । बकपुष्पसहस्रेभ्यो मुद्गरं परमुच्यते ॥६०
कुशपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते । शमीपुष्पसहस्रेभ्यो नृप नीलोत्पलं परम् ॥
सर्वासां पुष्पजातीनां प्रवरं नीलमुत्पलम् ॥६१
रक्तोत्पलसहस्रेण नीलोत्पलशतेन च । रक्तैश्च करवीरैश्च यस्तु पूजयते रविम् ॥६२
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । वसेदर्कपुरे श्रीमान्सूर्यतुल्यपराक्रमः ॥६३
शेषाणां पुष्पजातीनां यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्फलस्यानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥६४

करे तो, कोटिकल्प तक स्वर्ग में निवास रहता है।५१। वीर ! पुण्य मेघों के उपलेप करने से वह पुरुष देव समूहों के साथ क्रीडा करता है, पश्चात् सूर्य लोक में दश सहस्र वर्ष का निवास उसे प्राप्त होता है।५२। नराधिप ! भक्तिपूर्वक ताड़फल के गुच्छे को सूर्य के लिए समर्पित करने से (मनुष्य) दश सहस्र वर्ष सूर्य लोक में पूजित होता है।५३। मोरपुच्छ का व्यंजन (पंख) अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण बनाकर सूर्य के लिए समर्पित करने से सौ कोटिवर्ष सूर्यलोक में निवास प्राप्त होता है।५४। पहाड़ी प्रदेश के जंगलों के पुष्पों एवं पत्तों द्वारा जो बासी एवं फटे-कटे आदि न हों, जन्तुहीन हों। अथवा अपने बगीचे के पुष्प हों, सूर्य की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि पुष्प-जाति की विशेषता दश पुण्य भी उत्तरोत्तर अधिक होता है।५५-५६। तपस्वी गुणयुक्त एवं इतिहासज्ञ ब्राह्मण को दश निष्क सुवर्ण प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वीर ! सूर्य के लिए कनेर के पुष्प प्रदान करने से उसी फल की प्राप्ति होती है, भगवान् सूर्य ने बताया है। इस भाँति पुण्य की विशेषता वश उससे अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जिसे रासायनिक लोग जानते हैं। उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! अन्य एक सहस्र पुष्पों से अधिक कनेर के पुष्प की विशेषता रहती है, नराधिप ! सहस्र विल्वपत्रों से कमल, सहस्र कमलों से वकपुष्प, एवं सहस्र वक पुष्प से मुद्गर की विशेषता अधिक बतायी गयी है।५७-६०। सहस्र कुश पुष्प से शमीपत्र की विशेषता अधिक है, नृप ! सहस्र शमीपत्र से अधिक लीलाकमल की विशेषता है, तथा पुष्पजातियों में नीलकमल उत्तम बताया गया है।६१। सहस्र रक्तकमल, सौ नील कमल एवं रक्त कनेर के पुष्प द्वारा जो सूर्य की पूजा करता है, वह श्रीमान् सूर्य के समान पराक्रमशाली होकर सहस्र कोटि एवं सौ कोटि कल्प वर्ष की संख्या पर्यन्त सूर्य लोक में निवास करता है।६२-६३। शेष पुष्पजातियों के जितने फल बताये गये हैं, उसी के अनुसार वह सूर्य लोक में पूजित

शमीपुष्पं बृहत्याश्च कुसुमं तुल्यमुच्यते । करवीरसमा ज्ञेया जातीविजयपाटला ॥६५
श्वेतमन्दारकुसुमं सितपुष्पं च तत्समम् । नागचम्पकपुन्नागमुद्गराणां समाः स्मृताः ॥६६
गन्धवन्त्यपवित्राणि कुसुमानि विवर्जयेत् । गन्धहीनमपि ग्राह्यं पवित्रं यत्कुशादिकम् ॥६७
सात्त्विकं तद्धि कुसुममपवित्रं च तामसम् । मुद्गराणि कदम्बानि रात्रौ देयानि सूरये ॥६८
दिवाशेषाणि पुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च । मुकुलैर्नार्चयेद्भानुमपक्वं न निवेदयेत् ॥६९
फलं क्वथितविद्धं च यत्नात्पक्वमपि त्यजेत् । अलाभे बत पुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् ॥७०
पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् । फलानामप्यलाभेन तृणगुल्मौषधीरपि ॥७१
औषधीनामभावे तु भक्त्या भवति पूजितः । प्रत्येकं मुक्तपुष्पेण दशसौवर्णिकं फलम् ॥७२
यः सुगन्धैर्मुक्तपुष्पैः सम्यग्भानुं प्रपूजयेत् । माघासितेऽपि सुमनाः सोऽनन्तफलमश्नुते ॥७३
करवीरैर्महाराज संयतो भानुमर्चयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥७४
अगस्त्यकुसुमैर्भक्त्या यः सकृद्भानुमर्चयेत् ।गवां प्रयुतदानस्य फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥७५
मल्लिकोत्पलपद्मैश्च जातीपुन्नागचम्पकैः । अशोकश्वेतमंदारकर्णिकारान्धुकैस्तथा ॥७६
करवीरार्ककह्लारशमीतगरकेशरैः । अगस्तिबकपुष्पैस्तु शतपत्रैर्नराधिप ॥७७
पुष्पैरेतैर्यथालाभं यो नरः पूजयेद्रविम् । स तत्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥७८

होता है।६४। शमी पुष्प और वृहती पुष्प समान हैं और करवीर के समान चमेली, विजय एवं पाटल पुष्प बताया गया है।६५। श्वेतमंदार (मदार) के पुष्प सितपुष्प के समान हैं, नाग, चंपक, पुन्नाग एव मुद्गर आपस में समान हैं।६६। सुगन्धित होते हुए भी अपवित्र पुष्प का सर्वथा त्याग करना चाहिए। गंधहीनों में केवल कुश और दिशाओं का ही ग्रहण किया जाता है।६७। पवित्र पुष्प सात्त्विक और अपवित्र पुष्प तामस बताया गया है। मुद्गर एवं कदम्ब पुष्प को रात में भी सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए। दिन के शेष सभी उपहत (कुम्हलाने आदि द्वारा नष्ट प्राय) पुष्प का त्याग करना बताया गया है। मुकुल (अविकसित) सूर्य के लिए अर्पित न करनी चाहिए। उसी प्रकार बिना पके फल भी अर्पित करना निषिद्ध है। कथित फल तथा यत्न द्वारा पकाया गया फल निषिद्ध है। पुष्पों के अभाव में पत्र का अर्पण करना चाहिए।६८-७०। पत्तों के अभाव में फल, फलों के अभाव में तृण गुल्म एवं औषधि और उसके अभाव में केवल भक्ति द्वारा ही पूजन करना श्रेयस्कर कहा गया है। अपने आप गिरे हुए प्रत्येक पुष्पों द्वारा (पूजन करने से) दश निष्क सुवर्ण प्रदान करने के समान फल प्राप्त होता है।७१-७२। माघ मास के कृष्ण पक्ष में प्रसन्न चित्त होकर जो सुगन्धित एवं स्वयं पालित पुष्पों द्वारा सूर्य की भली भाँति पूजा करता है, उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है।७३। महाराज ! संयमपूर्वक कनेर के पुष्पों से सूर्य की पूजा करने पर समस्त पापों से मुक्त होकर वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है।७४। जो भक्तिपूर्वक अगस्त्य पुष्प द्वारा एक बार भी सूर्य की पूजा करता है, उसे दशसहस्र गोदान के फल की प्राप्ति होती है।७५। मल्लिका, कमल, चमेली, पुन्नाग, चम्पा, अशोक, श्वेतमंदार, कर्णिकार, अन्धुक, कनेर, अर्ककह्लार, शमी, तगर, केशर, अगस्त्य, बक एवं शतपत्र (कमल) नराधिप ! इन पुष्पों द्वारा जो मन इच्छित सूर्य की पूजा करता है, उसे जिन फलों की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो ! कोटि सूर्य के समान प्रकाशपूर्ण तथा समस्त मनोरथ प्रदान करने वाले, विमानों पर बैठकर जो चारों ओर से पुष्पमाला से सुशोभित और गायन एवं

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिभिः । पुष्पमालापरिक्षिप्तैर्गीतवादित्रनादितैः ॥७९
तन्त्रीमधुरवाद्यैश्च स्वच्छन्दगमनैर्नृप । सूर्यकन्यासमाकीर्णैर्देवानां च सुदुर्लभैः ॥८०
दोधूयमानश्चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः । गच्छेदर्कपुरीं दिव्यां तत्र सम्पूजितो भवेत् ॥८१
यैस्तैश्च वापि कुसुमैर्जलजैः स्थलजैर्नृप । सम्पूज्य श्रद्धया भानुमर्कलोके महीयते ॥८२
सूर्यस्योपरि यः कुर्याच्छोभनं पुष्पमण्डलम् । शोभितं पुष्पस्रग्दामैरापीठान्त प्रलम्बितैः ॥८३
अत्याश्चर्यमहायानैर्दिव्यपुष्पोपशोभितैः । सर्वेषामुपरिष्टाच्च वसेदर्कपुरे सुखी ॥८४
अनेकरागविन्यस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्गृहम् । यः कुर्यात्पर्वकाले तु विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥८५
स पुष्पकविमानेन पुष्पमालाकुलेन तु । पुष्पेतरपुरं दिव्यं श्रयते नात्र संशयः ॥८६
अक्षयं मोदते कालमतिरस्कृतशासनः । सौरादिसर्वलोकेषु यत्रेष्टं तत्र याति सः ॥८७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु पुष्पपूजावर्णनं
नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६३।

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यषष्ठीव्रतवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनस्त्वं देवदेवस्य भास्करस्य महौजसः । पूजने यत्फलं प्रोक्तं तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१

वाद्यों से निनादित हो रहे तंत्री, मधुर वाद्यों को बजाती हुई, स्वतंत्र विचरण करने वाली एवं देव-दुर्लभ सूर्य की कन्याओं से घिरकर उनकी धवल चामरों की सेवा ग्रहणपूर्वक सुर एवं असुरों की स्तुतियों से पूजित होते हुए दिव्य सूर्यलोक की प्राप्ति करता है, और वहाँ पहुँचकर भली भाँति सम्मानित किया जाता है ।७९-८१। नृप ! स्थल या जल में उत्पन्न किसी पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा श्रद्धापूर्वक सुसम्पन्न करने पर वह सूर्य लोक में पूजित होता है ।८२। मन्दिर में सूर्य के ऊपर जो सौन्दर्यपूर्ण पुष्प-मण्डल की रचना करता है, जिसमें पुष्पों की मालाएँ रस्सियों द्वारा पीठासन तक लटकती हों । वह दिव्य पुष्पों से सुशोभित होकर आश्चर्यचकित करने वाले यान विमान पर बैठकर वह सभी के ऊपर सूर्यलोक में सुखपूर्वक निवास करता है । जो अनेक रंग के सुगन्धित पुष्पों द्वारा (सूर्य के) मन्दिर को पर्व के समय में विचित्र एवं सौन्दर्यपूर्ण करता है, वह पुष्पमाला से विभूषित होकर पुष्पक विमान पर स्थित दिव्य पुष्पपुर का निवासी होता है, इसमें संदेह नहीं और शासनपूर्वक अक्षयकाल तक आनन्द का अनुभव तथा सूर्य आदि सभी लोकों में मनइच्छित विचरण करता है ।८३-८७

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म में पुष्पपूजा वर्णन नामक
एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६३।

अध्याय १६४

सूर्यषष्ठी व्रत का वर्णन

शतानीक ने कहा—द्विजोत्तम ! महातेजस्वी देवाधिदेव सूर्य के पूजन करने से प्राप्त होने वाले जिन फलों को आपने बताये हैं, उन्हें पुनः कहने की कृपा करें ।१

सुमन्तुरुवाच

शृणु त्वं हि महाराज सर्वदं लोकपूजितम् । ब्रह्मेशोपेन्द्रदेवानां त्रयाणामपि भारत ।।२
सुखासीनं सुरज्येष्ठं मनोवत्यां चतुर्मुखम् । प्रणम्य शिरसा भूमौ विष्ण्वीशौ वाक्यमूचतुः ।।३
य एष भगवान्देवः सहस्रकिरणो रविः । अस्य यत्पूजने पुण्यं प्राप्यते तद्वदस्व नौ ।।४

ब्रह्मोवाच

साधु साधु जगन्नाथ साधु पृष्टोऽस्मि वामिह । तस्माच्छृणुतमेकाग्रौ गदतो निखिलं मम ।।५
स्वयमुत्पाद्य पुष्पाणि यः सूर्यं पूजयेत्स्वयम् । तानि साक्षात्प्रगृह्णाति तद्भक्त्या सततं रविः ।।६
यस्त्वारामं रवेः कुर्यादाम्रबिल्वादिशोभितम् । जातीविजयराजार्ककरवीरैः सकुङ्कुमैः ।।७
पुन्नागनागबकुलैरशोकतिलचम्पकैः । अगस्तिकदलीखण्डैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।।८
यावद्धि पत्रं कुसुमं बीजं सुतफलानि च। तावद्वर्षसहस्राणि सूरलोके महीयते ।।९
सघृतं गुग्गुलं दद्याद्राजन्वा कुन्दुरुं तथा । चतुर्वेदिगृहे जन्म प्राप्नोति सततं सुखी ।।१०
कृष्णागुरुं च कर्पूरधूपं दद्याद्दिवाकरे । नैरन्तर्येण यस्तस्य राजन्पुण्यफलं शृणु ।।११
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । भुक्त्वा सूर्यपुरे भोगांस्तस्यान्ते क्ष्माधिपो भवेत् ।।१२
गुग्गुलं घृतसंयुक्तं यक्षो गृह्णाति शब्दकृत् । यक्षाद्व्ययस्य दानेन तस्य लोके महीयते ।।१३
कृष्णांशौ कृष्ण सप्तम्यां यः साज्यं गुग्गुलं दहेत् । स चासौ सौरमासाद्य वर्षाणां च दशार्बुदम् ।।१४

सुमन्तु बोले—महाराज ! सब कुछ देने वाली, तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर और लोक से पूजित उस कथा को मैं कह रहा हूँ, सुनो ! २। भारत ! एक बार मनोवती तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए देवश्रेष्ट उन चतुर्मुख (ब्रह्मा) से भूमि में शिर स्पर्श प्रणामपूर्वक विष्णु तथा महेश्वर ने कहा—यह जो सहस्र किरण वाले भगवान् सूर्य दिखायी पड़ते हैं, इनके पूजन करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, हमें बताइये।३-४।

ब्रह्मा बोले—साधु, साधु, ! जगन्नाथ ! तुम दोनों ने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है. मैं सब कह रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ।५। अपने द्वारा उत्पन्न किये गये पुष्पों से जो सूर्य की स्वयं पूजा करता है, उसकी भक्तिवश होकर सूर्य साक्षात् स्वयं उसे स्वीकार करते हैं । जो सूर्य के लिए इस प्रकार के उपवन (बगीचे) बनाता है, जिसमें आम, बेल आदि सुशोभित हों और चमेली, विजय राज, अर्क (मंदार) कनेर, कुंकुम, पुन्नाग, नाग, वकुल, अशोक, तिल, चम्पा, अगस्त्य एव केले के वृक्षों से सौन्दर्य भरा पड़ा हो, उसके पुण्य फल को सुनो।६-८। जितने दिन उसके पत्ते, बीज, पुष्प तथा फलों की उत्पत्ति, आदि होती रहती है, उतने सहस्र वर्ष सूर्यलोक में वह पुरूष सम्भानित होता है।९। राजन् ! घी समेत गुग्गुल और कुंदरु, जो उन्हें अर्पित करता है, उसका जन्म चतुर्वेदी के घर में होता है, तथा वह निरन्तर सुखी रहता है। काले अगुरु, कपूर एवं धूप को जो नित्य सूर्य के लिए अर्पित करता है, राजन् ! उसके पुण्य फल को सुनो ! सहस्रकोटि एवं सौ कोटि कल्प के समान दिन तक सूर्य लोक में भोगों का उपभोग कर अंत समय में वह पृथिवीपति होता है।१०-१२। घी मिश्रित गुग्गुल को समर्पित करने पर उसे ध्वनि करते हुए यक्ष ग्रहण करता है एवं इसके दान से उसके लोक में वह पूजित होता है।१३। कृष्ण सप्तमी के दिन सूर्य के लिए घी समेत गुग्गुल की धूप

देवदारुं नमेरुं च श्रीवासं कुन्दुरुं तथा । श्रीफलं चाज्यसंयुक्तं दग्ध्वाश्रयमवाप्नुयात् ॥१५
एवं सौगंधिकं रूपं षट्सहस्रगुणोत्तरम् । अगुरुं दशसाहस्रं सघृतं द्विगुणं भवेत् ॥१६
अनन्तफलदं दैवं सदा कुन्दरुकामुकम् । द्विसहस्रपलानां तु महिषाक्षस्य गुग्गुलोः ॥१७
दग्ध्वार्धमविमिश्रस्य सूर्यतुल्यः प्रजायते । शोधयेत्पापसंयुक्तं पुरुषं नात्र संशयः ॥१८
कृष्णागुरुभवं धूपं तुषाग्निरिव काञ्चनम् । योन्तःपुरगृहं गन्धैः सुगन्धैः प्रविलेपयेत् ॥१९
कपाटद्वारकुड्यादितिर्यगूर्ध्वं सवेदिकम् । वासयेत्पुष्पमालाभिर्धूपैश्चापि सुगन्धिभिः ॥२०
तस्य पुण्यं यथावत्तु युवयोर्वच्मि कृत्स्नशः । आपूरयन्दिशः सर्वा नानागन्धसमन्वितैः ॥२१
कल्पकोटिशतं दिव्यं तेजसा वह्निसन्निभः । शक्रवत्प्रज्वलन्देवः सूर्यलोके महीयते ॥२२
तस्यान्ते धर्मशेषेण त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् । शतावृतं तु यः कुर्यादेवं गन्धैर्भगालयम् ॥२३
स सर्वशर्मसंयुक्तः सूर्यतुल्यपराक्रमः । सूर्यलोके वसेद्देवो युवाभ्यां सम्प्रपूजितः ॥२४
तद्वच्छुक्लैश्च संवीतं पट्टसूत्रैर्विनिर्मितम् । दत्त्वोपवीतं सूर्याय भवेद्वेदाङ्गपारगः ॥२५
वासांसि सुविचित्राणि सूरलोके महीयते । त्रुटिमात्रं तु यो दद्याद्दूर्णावस्त्रं सपङ्कजम् ॥२६
भास्करस्योत्तमाङ्गेषु तस्य पुण्यं ब्रवीम्यहम् । इन्द्रस्यार्धासने तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२७
एवं वित्तानुसारेण सर्वं ज्ञेयं समासतः । सर्वेषां हेमपात्राणां मुकुटानां च सर्वशः ॥२८

जो अर्पित करता है वह सूर्यलोक में पहुँचकर दश अर्बुद वर्ष निवास करता है ।१४। देवदारु, नमेरु, श्रीवास, कुंदुरु, श्रीफल, उन्हें घी समेत जलाकर धूप देने से सूर्यलोक की प्राप्ति करता है ।१५। इस प्रकार सामान्य सुगंध से सहस्र अगुरु से दश सहस्र एवं घी मिश्रित होने से उससे दुगुने फल प्राप्त होते हैं ।१६। और कुंदरु प्रिय सूर्य उसे अनन्त फल प्रदान करते हैं, महिषाक्ष तथा गुग्गुल के दो सहस्र परिमाण को जलाने से सूर्य के समान वह सुशोभित होता है वह पापी पुरुषों का संशोधक है, इसमें संदेह नहीं ।१७-१८। जो काले अगुरु की धूप द्वारा मन्दिर के भीतरी समस्त भाग को भूसी डाली गई अग्नि के समान गन्ध के धुएँ से पूर्ण कर देता है, तथा किंवाड़े, दरवाजे एवं कुण्डी आदि सभी ऊपर नीचे एवं वेदिसमेत सभी भाग को पुष्पमालाओं एवं सुगन्धित धूपों से सुगन्धित करता है, उसके पुण्य को मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ । भाँति-भाँति के गंधों से दिशाओं को सुगन्धित करते हुए अग्नि के समान दिव्य तेज प्राप्त कर वह इन्द्र की भाँति सौन्दर्य सम्पन्न होकर सौ कोटि कल्प तक सूर्य लोक में पूजित होता है ।१९-२२। उसके पश्चात् धर्म शेष रहने के नाते तीनों लोकों का अधिनायक होता है । इस प्रकार जो सौ बार सूर्य के मन्दिर को सुगन्धिपूर्ण करता है, समस्त कल्याण युक्त एवं सूर्य के समान पराक्रमी होकर सूर्यलोक में निवास करते हुए वह आप (विष्णु, शिव) दोनों से पूजित होता है ।२३-२४। उसी प्रकार शुक्र वर्ण के सूत्रों से निर्मित यज्ञोपवीत सूर्य के लिए प्रदान करने से वेदनिष्णात विद्वान् होता है ।२५। और चित्र-विचित्र वस्त्र प्रदान करने से सूर्यलोक में सम्मान प्राप्त करता है । उनके वस्त्र चाहे वे फटे पुरने भी हों, जो कमल के साथ उन्हें उनके अंगों में सादर समर्पित करता है, उसके पुण्य फल को बता रहा हूँ । जब तक चौदहों इन्द्र वर्तमान रहेंगे तब तक इन्द्र के आधे आसन का अधिकारी रहता है ।२६-२७। इस प्रकार अपने धनानुसार सुवर्ण के पात्र एवं मुकुट प्रदान करना चाहिए । मदार के पत्ते की दोनियों में चूर्ण, शहद, एवं पत्ते समेत

अर्कपत्रपुटं चूर्णं मधुपर्णसमन्वितम् । यो निवेदतेऽर्काय सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥२९
शालितण्डुलप्रस्थस्य कुर्यादन्नं सुसंस्कृतम् । सूर्याय च चरुं दत्त्वा सप्तम्यां तु विशेषतः ॥३०
संयावं कृशरं पूपं पायसं यावकं तथा । दध्योदनरसालान्नमोदकान्गुडपूपकान् ॥३१
यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्नैवेद्ये परिसङ्ख्यया । तावद्वर्षसहस्राणि सूरलोके महीयते ॥३२
गुडखण्डकृतानां च भक्ष्याणां विनिवेदने । घृतेन प्लावितानां च फलं शतगुणं लभेत् ॥३३
रसालखाद्यकाद्यानां भक्ष्याणां फलमिष्यते । तदर्धं सलिलस्यापि वासितस्य निवेदयेत् ॥३४
यथाकालोपलब्धानि भक्ष्याणि विविधानि च । निवेद्यार्काय परमं स्थानं प्राप्नोति पूजनात् ॥३५
प्रज्वाल्य घृतदीपं तु भास्करस्यालये शुभम् । आग्नेयं यानमारुह्य गच्छेत्सौमनसं पुरम् ॥३६
यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् । सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वामास्यायामथापि वा ॥३७
भास्करायुतसंकाशस्तेजसा भासयन्दिशः । दिव्याभरणसम्पन्नः कुलमुद्धृत्य सर्वशः ॥३८
यावत्प्रदीपसङ्ख्यानं घृतेनापूर्य बोधितम् । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३९
दीपवृक्षमथोद्बोध्य पर्वस्वायतनेषु वै । पूर्वस्माद्द्विगुणं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥४०
दीपवृक्षं समुद्बोध्य भास्करायतनेषु भोः । सर्वलोहमयं वीर रविलोके महीयते ॥४१
शिरसा धारयेद्दीपं भास्करस्याग्रतो निशि । ललाटे चैव हस्ताभ्यां समुद्युक्तस्तथोरसि ॥४२

रखकर जो सूर्य के लिए निवेदित करता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।२८-२९। एक सेर साठी चावल की स्वादिष्ट खीर बनाकर विशेषकर सप्तमी तिथि में सूर्य को अर्पित करना बताया गया है, लपसी, कुशर (खिचड़ी), मालपूआ, जौ की खीर, दही, भात, आम, लड्डू एवं गुड़ के मालपुए को भी उसी भाँति अर्पित करने से उस नैवेद्य में जितने चावल रहते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह सूर्यलोक में सम्मानित होता है ।३०-३२। खाँड़ और घी के भली-भाँति बने हुए भक्ष्य पदार्थ को सूर्य के लिए अर्पित करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है ।३३। आम के फल अर्पित करने से । भक्ष्य पदार्थों के समान ही फल प्राप्त होता है, और सुगन्धित जल प्रदान करने से उसके आधे फल की प्राप्ति होती है ।३४। समयानुसार भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थ सूर्य के लिए समर्पित करने तथा पूजन करने से उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।३५। सूर्य के मन्दिर में शुद्ध घी के दीपक जलाने से आग्नेय विमान पर बैठकर देवलोक की प्राप्ति होती है ।३६। कार्तिक मास की सप्तमी, षष्ठी या अमावस्या के दिन जो सौन्दर्यपूर्ण दीपमालिका प्रदान करता है, वह सूर्य के समान तेज प्राप्त कर उसके द्वारा दिशाओं को प्रकाशपूर्ण करते हुए दिव्य आभूषणों से सुशोभित होकर वह अपने कुल के उद्धारपूर्वक घी से पूर्ण भरे उन दीपकों की संख्या के समान उतने सहस्र वर्ष सूर्यलोक में पूजित होता है । पर्व तिथियों में मन्दिरों में दीपवृक्ष को (दीपों द्वारा) प्रकाशित करने पर उससे दुगुने पुण्य फल की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ।३७-४०। वीर ! सूर्य के मन्दिर में वृक्ष के आकार-प्रकार-स्कन्ध, शाखा, डाली, टहनी, एवं पत्तियों के समान लोहे के वृक्ष बनाकर उसके सभी स्थान में दीपक जलाने से सूर्य लोक में वह पूजित होता है ।४१। इसमें सूर्य के समान (उस दीपवृक्ष के) शिर, मस्तक, हाथों एवं हृदय पर दीपक धारण करने से दशसहस्र भास्कर के समान तेजस्वी होकर सूर्य के

भास्करायुतसंकाशो विमानैरर्कसन्निभैः । कल्पायुतशतं चैव सूर्यलोके महीयते ।।४३
अन्नदाता तु यो वीर वीरलोके महीयते । भास्करस्याग्रतो दत्त्वा दर्पणं निर्मलं शुभम् ।।४४
पर्यङ्के शोभितं कृत्वा श्वेतमाल्यैः सचन्दनैः। वृकार्कनिर्मलः श्रीमान्दिव्याभरणरूपधृक् ।।
कल्पायुतसहस्राणि सूरलोके महीयते　　　　।।४५
कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या श्रद्दधानो रवेर्नरः । अश्वमेधसहस्रस्य सुखेन लभते फलम् ।।४६
कृत्वा प्रदक्षिणं यस्तु नमस्कारं प्रयोजयेत् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां सकलं विन्दते फलम् ।।४७
नमस्कारः स्मृतो यज्ञः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः । नमस्कृत्वा सहस्रांशुमश्वमेधफलं लभेत् ।।४८
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् । स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ।।४९
सर्वयज्ञोपवासेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । अभिज्ञाप्योपहारेण पूजया फलमश्नुते ।।५०
श्वेतं महाध्वजं कृत्वा कृत्वा चापं च रङ्गकम् । किङ्किणीजालनिर्घोषं मयूरच्छत्रभूषितम् ।।
यस्त्वर्यम्णे नरो दद्याच्छ्रद्धया परयान्वितः　　　　।।५१
स शतेन विमानानां सर्वदेवनमस्कृतः । मन्वन्तरशतं देव मोदते दिवि देववत् ।।५२
ध्वजमालाकुलं कुर्याद्यः प्रान्तेषु भगालयम् । महाध्वजाष्टकं चापि दिग्विदिक्षु निवेदयेत् ।।५३
स विमानसहस्रेण ध्वजमालाकुलेन तु । कल्पायुतशतं दिव्यं मोदते दिवि सूरवत् ।।५४
शतचन्द्रांशुविमलं मुक्तादामोपशोभितम् । मणिदण्डमयं छत्रं दद्याद्वा काञ्चनादिकम् ।।५५

समान प्रकाशमय विमानों पर बैठकर वह सौ सहस्र कल्प सूर्यलोक में सम्मानित होता है ।४२-४३। वीर ! अन्न दान करने वाला सूर्य लोक में प्रतिष्ठित होता है । सूर्य के सामने शुभ, निर्मल, दर्पण श्वेत वर्ण की मालाओं एवं चन्दनों से सुशोभित शय्या (पलंग) रखकर उन्हें समर्पित करने से वृक्ष (अग्नि) तथा सूर्य के समान निर्मल, श्रीसम्पन्न, दिव्याभूषणों से सुसज्जित होकर वह दश सहस्र वर्ष सूर्य के लोक में सम्मानित होता है ।४४-४५। भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक जो मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, उसे सुखपूर्वक सहस्र अवश्वमेध के फल प्राप्त होते हैं ।४६। प्रदक्षिणा करके जो उन्हें नमस्कार करता है, उसे राजसूय एवं अश्वमेध के समस्त फल प्राप्त होते हैं ।४७। क्योंकि समस्त यज्ञों से उत्तम नमस्कार रूपी यज्ञ बताया गया है, अत: सूर्य को नमस्कार करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होनी बतायी गयी है ।४८। भूमि में दण्डे की भाँति पड़ने (साक्षात् दण्डवत् करने) के द्वारा जो उनकी पूजा करता है, उसे उस गति की प्राप्ति होती है, जिसे सौ यज्ञ करने वाले भी प्राप्त नहीं कर सकते ।४९। समस्त यज्ञ, उपवास, एवं समस्त तीर्थों द्वारा जितने फलों की प्राप्ति होती है, सूर्य के विधानपूर्वक केवल पूजोपहार द्वारा उतने फल प्राप्त होते है ।५०। जो मनुष्य अत्यन्त श्रद्धालु होकर सूर्य के लिए श्वेत महाध्वज और रक्तरञ्जित धनुष प्रदान करता है, जिनमें छोटी-छोटी घंटियाँ जाल के समान लगी हुई ध्वनि करती हों तथा मोर पंख से विभूषित हो, वह समस्त देवों का वन्दनीय होकर सैकड़ों विमानों समेत स्वर्ग में सौ मन्वन्तर के समान वर्षों तक देवता की भाँति आनन्द का अनुभव करता है ।५१-५२। जो सूर्य के मन्दिर के कोने-कोने को अधिकसंख्या में ध्वज एवं मालाओं से सुशोभित तथा दिशाओं एवं विदिशाओं को आठ महाध्वजाओं द्वारा शोभा सम्पन्न करता है, वह ध्वज और मालाओं से पूर्ण सहस्र विमानों को अपने अधीन करते हुए दिव्य सौ सहस्र कल्प तक स्वर्ग में सूर्य की भाँति आनन्द प्राप्त करता है ।५३-५४। सौ चन्द्रमा की भाँति निर्मल, मोतियों की रस्सियों से

स धार्यमाणच्छत्रेण हेमदण्डोपशोभिना । मोदते सूर्यलोके तु विमानवरमास्थितः ॥५६
ततस्तमाच्च्युतो लोकान्निसर्गाद्भुवमागतः । भुङ्क्ते समुद्रपर्यन्तामेकच्छत्रां वसुन्धराम् ॥५७
यः शृङ्खलासमायुक्तां महाघण्टां महास्वनाम् । कांस्यलोहमयीं वापि निबन्धीयाद्भगालये ॥५८
शोभनः स्यान्नरः श्रीमान्भगस्यातीव वल्लभः । सूर्यतुल्यबलो भूत्वा सूर्यलोके महीयते ॥५९
भेरीमृदङ्गपटहझर्झरीमर्दलादिकम् । वंशकांस्यादिवादित्रं यो भगाय निवेदयेत् ॥६०
स विमानैर्महाभागैर्वंशवीणानुतस्वनैः । युगान्तकशतं दिव्यं भगलोके महीयते ॥६१
सुसङ्गीतकदानेन सवाद्येन विशेषतः । यथेष्टं भास्करे लोके मोदते कालमक्षयम् ॥६२
महामहास्वनं दत्त्वा शङ्खयुग्मं भगालये । युगकोटिशतं दिव्यं भगलोके महीयते ॥६३
विमानं बहुवर्णानि मध्ये पङ्कजभूषितम् । विचित्रमेकवर्णं वासनवस्त्रोपकल्पितम् ॥६४
किङ्किणीजालसम्पन्नं वर्णकैश्चोपशोभितम् । पुष्पमालाप्रभं वापि घण्टाचामरभूषितम् ॥६५
भगस्योपरि यो दद्यात्सर्वरत्नोपशोभितम् । दुकूलपट्टदेवाङ्गैर्वस्त्रैर्वा वर्णकान्वितैः ॥६६
पट्टादिवस्त्रतन्तूनां परिसङ्ख्या तु या भवेत् । तावद्युगसहस्राणि सूरलोके महीयते ॥६७
भगाहुत्या जगत्सर्वं सृष्टिद्वारेण धार्यते। अग्निवर्त्मा वचस्युक्तो ह्यग्निस्यात्मजः सदा ॥६८

सुशोभित एवं मणि के दण्ड से विभूषित, अथवा सुवर्ण के दण्ड वाले उस छत्र को जो उन्हें प्रदान करता है, तो सूर्य के सुवर्ण दण्ड से विभूषित उस छत्र के धारण करने से वह उत्तम विमान पर स्थित होकर सूर्यलोक में सदैव प्रसन्नतापूर्वक रहता है। पश्चात् उस लोक से च्युत होने पर सृष्टि के क्रम से इस भूतल पर जन्म ग्रहण कर समुद्र पर्वत पृथ्वी का एक छत्र उपभोग करने वाला राजा होता है। जो सूर्य मन्दिर में जंजीर लगे काँसे या लोहे का बड़ा घंटा बाँधता है, जिसकी अत्यन्त गम्भीर ध्वनि हो, वह मनुष्य सौन्दर्यपूर्ण, श्रीसम्पन्न, सूर्य का अति प्रिय एवं सूर्य के समान पराक्रमशाली होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है ।५५-५९। जो सूर्य के लिए भेरी, मृदङ्ग, पटह, झर्झरी (झाँझ), मर्दल (मृदङ्ग की भाँति एक वाद्य) आदि काँसे के वाद्य अर्पित करता है, वह बाँस की वीणा ध्वनि से निनादित उस अत्यन्त भाग्यशाली (उत्तम) विमान पर बैठकर दिव्य सौ युग पर्यंत भग (सूर्य) लोक में सम्मान प्राप्त करता है ।६०-६१। विशेषकर वाद्य समेत उत्तम संगीत कराने वाला पुरुष भास्कर के लोक में अक्षय काल तक मन इच्छित आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है ।६२। सूर्य मन्दिर में अत्यन्त गम्भीर ध्वनिपूर्ण दो शंखों को उन्हें समर्पित करने से दिव्य सौ कोटि युग पर्यंत सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।६३। अनेक रंगों से सुशोभित मध्य भाग कमल से विभूषित, एक रंग के चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुसज्जित आसन, जाल की भाँति छुद्र घंटिकाओं से सुसज्जित, रंगरञ्जित, पुष्पमालाओं, घंटा और चामर से सुसम्पन्न एवं समस्त दलों से सुसज्जित तथा देवों के चित्र-विचित्र दुपट्टे आदि रंगीन वस्त्रों समेत ऐसे विमान को जो उन्हें अर्पित करता है, तो वह उस दुपट्टे आदि वस्त्रों के सूत की संख्या के समान उतने सहस्र युग पर्यंत सूर्य लोक में पूजित होता है।६४-६७। सूर्य में आहुति की भाँति नष्ट यह समस्त जगत् सृष्टि द्वारा पुनः उनसे उत्पन्न एवं स्थित होता है। उन्हें अग्नि वर्त्मा भी कहा गया है, क्योंकि अग्नि उनके सदैव आत्मज हैं ।६८।

यस्त्वग्निकायं विधिवत्कुर्यान्नित्यं भगालये । भगमुद्दिश्य राजेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥६९
सर्वान्नं यावकोपेतं यस्तु नित्यविधिं हरेत् । पुष्पधूपजलोपेतं काले काले विशेषतः ॥७०
महाश्वेतादिमातॄणां त्रिकल्पानां च सर्वशः । यः कृत्वा सकृदप्येवं सर्वदिक्षु बलिं हरेत् ॥
स नरश्च सहस्राणि शाण्डिलेयपुरे वसेत् ॥७१
सौरसन्ध्याबलिं कृत्वा दिनान्ते सततं रवेः । वर्षायुतशतं साग्रं भगलोके महीयते ॥७२
दध्योदनपयोभिर्यः पूरितं पात्रमावृतम् । पुष्पधूपार्चितं चैव वितानोपरि शोभितम् ॥७३
शिरसा धारयेत्पात्रं शनैर्गच्छेत्प्रदक्षिणम् । रव्यायतनपर्यन्ते शङ्खवीणादिनिस्वनैः ॥७४
दर्पणैर्धूपमालाभिर्गेयनृत्यादिशोभितम् । भानोर्हि स्मृतिशीलश्च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७५
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिव्यं वर्षशतं तथा । तपस्तप्तं महत्तेन भवेदेवं न संशयः ॥७६
भगभक्तिप्रसन्नात्मा यद्यपि स्यात्स पापकृत् । भगलोके वसेन्नित्यं भगानुचरतां गतः ॥७७
कृष्णां तु षष्ठीं नक्तेन यश्च कृष्णां च सप्तमीम् । इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम् ॥७८
योऽब्दमेकं तु कुर्वीत नक्तं भगदिने नरः । ब्रह्मचारी जितक्रोधो भगार्चनपरो नरः ॥
अयाचितात्परं नक्तं तस्माच्छक्तेन वर्तयेत् ॥७९
देवैस्तु भुक्तं मध्याह्ने पूर्वाह्ने ऋषिभिस्तथा । अपराह्ने तु पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ॥८०

राजेन्द्र ! जो सूर्य मन्दिर में उनके उद्देश्य से विधानपूर्वक नित्य अग्नि स्थापन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है ।६९। नित्य विधान पूर्वक जो यावक (लप्सी) समेत समस्त अन्न के भक्ष्य एवं जलयुक्त पुष्प-धूप समय-समय पर महाश्वेता आदि मातृकाओं तथा त्रिकल्पों के लिए समर्पित करता रहता है, उसे इस भाँति एक बार के भी करने एवं समस्त दिशाओं में बलि प्रदान करने पर सहस्र वर्ष तक अग्निलोक का निवास प्राप्त होता है ।७०-७१। दिन के अन्तिम समय में सूर्य के लिए सौर संध्या एवं बलि प्रदान करने से सौ सहस्र वर्ष सूर्य लोक में उत्तम सम्मान प्राप्त होता है ।७२। दही, चावल एवं दूध के पात्र पूर्ण तथा ढँककर पुष्प-धूप से उनकी पूजा करके वितान के ऊपर रख दे, पश्चात् उसे शिर पर रख धीरे-धीरे सूर्य मन्दिर तक प्रदक्षिणा की भाँति जाये जिसमें शंख, वेणु आदि की ध्वनि होती हो तथा दर्पण, धूप, माला एवं गान, नृत्य आदि से सुसम्पन्न हो, और वह निरन्तर सूर्य का स्मरण करता रहे, तो उसके पुण्य फलों को सुनो ! उसके प्राप्त फलों के अनुसार दिव्य सहस्र वर्ष तथा दिव्य सौ वर्ष तक उसने महान् तप किया इसमें संदेह नहीं, ऐसा वह कहा जायगा ।७३-७६। क्योंकि पापी ही क्यों न हो, पर सूर्य की भक्ति से उसे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हो, तो उस सूर्य सेवक का भी सूर्यलोक में नित्य निवास होता है ।७७। जो कृष्ण पक्ष की षष्ठी में नक्तव्रत तथा कृष्ण पक्ष की सप्तमी में पूजन करता है, उसे यहाँ भाँति-भाँति के उपयोग की प्राप्ति पूर्वक परलोक में शुभ फल की प्राप्ति होती है ।७८। इसलिए वर्ष पर्यन्त सूर्य के दिन ब्रह्मचारी एवं क्रोधहीन होकर नक्तव्रतपूर्वक सूर्य का पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । अयाचित अन्न से नक्तव्रत करना उत्तम बताया गया है, इसलिए नक्त व्रत अवश्य करें । मध्याह्न में देवगण, पूर्वाह्न में ऋषि, अपराह्न में पितरलोग संध्या में गुह्यक आदि भोजन करते हैं । अतः इसके अतिरिक्त समय में सूर्य भक्तों को भोजन करना उत्तम बताया

सर्वां देवा ह्यतिक्रम्य सौराणां भोजनं परम् । भुञ्जानो नक्तकाले तु सूर्यभक्तिपरायणः ॥८१
भगलोकमवाप्नोति सुमनाः सुमनोव्रतः । भुक्त्वा सौमनसाँल्लोकान्राजा भवति भूतले ॥८२
हविष्यभोजनं स्नानमाहारस्य च लाघवम् । अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी समाचरेत् ॥८३
कृष्णषष्ठ्यां प्रयत्नेन कृत्वा नक्तं विधानतः । नरो मार्गशिरे मासि अंशुमानिति पूजयेत् ॥८४
विधिवत्प्राश्य गोमूत्रमनाहारो निशि स्वपेत् । अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥८५
पुष्येऽप्येवं सहस्रांशुं भानुमन्तमुशन्ति च । वाजपेयफलं प्राप्य घृतं प्राश्य लभेन्नरः ॥८६
माघे दिवाकरं[1] नाम कृष्णषष्ठ्यां नरोत्तम । निशि पीत्वा तु गोक्षीरं गोमेधफलमाप्नुयात् ॥८७
मार्तण्डं फाल्गुने मासि पूजयित्वा गवां पयः । पिबेत्ततः सूर्यलोके मोदते सोऽयुतायुतम् ॥८८
चैत्रे मासि विवस्वन्तं पूजयित्वा सुभक्तिमान् । हविष्याशी सूर्यलोकेऽप्सरोभिः सह मोदते ॥८९
वैशाखे चण्डकिरणं पूजयेच्च पयोव्रतः । वर्षाणामयुतं साग्रं मोदते सूर्यसन्निधौ ॥९०
ज्येष्ठे दिवस्पतिं पूज्य गवां भृङ्गोदकं पिबेत् । गवां कोटिप्रदानस्य निखिलं फलमाप्नुयात् ॥९१
आषाढे त्वर्कनामानमिष्ट्वा प्राश्य च गोमयम् । प्रयात्यर्कसलोकं तु वर्षाणां च शतं शतम् ॥९२
श्रावणेऽर्यमनामानं पूजयित्वा पयः पिबेत् । वर्षाणामयुतं साग्रं मोदते भास्करालये ॥९३

गया है । जो सूर्य की भक्ति का पारायण करने वाला मनुष्य नक्त समय में भोजन करता है, देवता की भाँति वह देवव्रती होकर सूर्य लोक में पहुँचता है । पश्चात् देवलोकों के विहार करने के उपरांत इस भूतल में राजा होता है ।७९-८२। हविष्य भोजन, स्नान, अल्पाहार, अग्नि स्थापन एवं भूमिशयन नक्त भोजी के लिए आवश्यक बताया गया है ।८३। मार्गशीर्ष (अगहन) मास में कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन प्रयत्नपूर्वक नक्त, विधान सुसम्पन्न कर मनुष्य को 'अंशुमान' नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।८४। उसमें विधान पूर्वक गोमूत्र का प्राशन करके रात में शयन करे, तो मनुष्य को अतिरात्र नामक यज्ञ का फल प्राप्त होता है । इसी प्रकार पुष्य में 'सहस्रांशु' नामक सूर्य की पूजा करके घी का प्राशन करे तो मनुष्य को वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ।८५-८६। नरोत्तम ! माघ मास में कृष्ण पक्ष षष्ठी के दिन 'दिवाकर' नामक सूर्य की पूजा करके रात में गो दुग्धपान (प्राशन) करने से गोमेध फल की प्राप्ति होती है । फाल्गुन मास में 'मार्तण्ड' नामक सूर्य की पूजा करके जो दुग्ध का प्राशन करता है वह सूर्यलोक में दश अयुत वर्ष तक आनन्दानुभव करता है । भक्तिमान् पुरुष को चैत्रमास में 'विवस्वान्' नामक सूर्य की पूजा और हविष्य का प्राशन करने से अप्सराओं के साथ सूर्यलोक का विहार प्राप्त होता है ।८७-८९। वैशाख मास में 'चण्डकिरण' नामक सूर्य की पूजा एवं गो दुग्ध का प्राशन करने से सूर्य के समीप दशसहस्र वर्ष उत्तम आनन्द प्राप्त होता है ।९०। ज्येष्ठमास में 'दिवस्पति' नामक सूर्य की पूजा और शृंगोदक (सींगद्वारापूत जल) का पान करने से कोटि गोदान का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है ।९१। आषाढ़ मास में 'अर्क' नामक सूर्य की पूजा तथा गोमय (गोबर) का प्राशन करने से दश सहस्र वर्ष तक निवास सूर्य लोक में प्राप्त होता है ।९२। सावनमास में 'अर्यमा' नामक सूर्य की पूजा एवं पयपान करने से सूर्यलोक में दश सहस्र वर्ष तक

---

१. पूजयित्वेति शेषः ।

मासि भाद्रपदे षष्ठ्यां भास्करं नाम पूजयेत् । भास्करं पञ्चगव्यस्य सर्वमेधफलं लभेत् ।।९४
मासि चाश्वयुजे षष्ठ्यां भगाख्यं नाम पूजयेत् । पलगोमूत्रभुक्चैव अश्वमेधफलं लभेत् ।।९५
मासे तु कार्तिके षष्ठ्यां शक्राख्यं नाम पूजयेत् । दूर्वाङ्कुरं सकृत्प्राश्य राजसूयफलं लभेत् ।।९६
वर्षांते भोजयेद्विप्रान्सूर्यभक्तिपरायणान् । पायसं मधुसंयुक्तं व्रजेण च परिप्लुतम् ।।९७
शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् । निवेदयेच्च सूर्याय कृष्णां गां च पयस्विनीम् ।।९८
वर्षमेकं च देवे वै नैरन्तर्येण यो नयेत् । कृष्णषष्ठीव्रतं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।।९९
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वकामसमन्वितः । मोदते सूर्यलोके तु स नरः शाश्वतीः समाः ।।१००
पुण्येष्वहःसु सर्वेषु विषुवद्ग्रहणादिषु । दानोपवासहोमाद्यैरक्षयं खग जायते ।।१०१

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वान्पुरा भानुररुणाय विशांपते । कृष्णषष्ठीव्रतं पुण्यं सर्वपापभयापहम् ।।१०२
कृत्वेदं पुरुषो भक्त्या भास्करस्य महात्मनः । प्रयाति परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ।।१०३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यषष्ठीव्रतवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६४।

आनन्दानुभव प्राप्त होता है ।९३। भादों मास में 'भास्कर' नामक सूर्य की पूजा करके पचगव्य का प्राशन करने से सर्वमेध फल की प्राप्ति होती है ।९४। आश्विन मास को षष्ठी में 'भग' नामक सूर्य की पूजा तथा गोमूत्र का प्राशन करे तो उसे अश्वमेध के फल प्राप्त हों ।९५। कार्तिक मास की षष्ठी में 'शक्र' नामक सूर्य की पूजा और एक बार दूर्वा के अंकुर का प्राशन करने से राजसूय के फल प्राप्त होते हैं ।९६। वर्ष की समाप्ति में सूर्य भक्त ब्राह्मणों को भोजन में खीर, शहद एवं वज्र तथा भक्तिपूर्वक अपनी इच्छानुसार सुवर्ण तथा वस्त्र उन्हें प्रदान करे और सूर्य के लिए एक दूध देने वाली कृष्णा गाय का दान भी। इस प्रकार जो पूर्ण वर्ष की समाप्ति तक सूर्य के लिए कृष्ण षष्ठी व्रत करता है, उसके पुण्य फल को सुनो ।९७-९९। समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक वह मनुष्य सूर्यलोक में निरंतर अनेकों वर्ष का आनंदानुभव प्राप्त करता है ।१००। आकाशचरिन् ! सभी पुण्य दिनों में विषुवत् ग्रहण आदि के समय दान, उपवास एवं हवन आदि के करने से अक्षय लोक की प्राप्ति होती है ।१०१

सुमन्तु बोले—विशांपते ! इस प्रकार सूर्य ने पहले समय में अरुण से कहा था, समस्त पापनाशक इस कृष्ण षष्ठी व्रत की विधानपूर्वक समाप्ति करने से वह भक्त पुरुष अजेय तेजवाले महात्मा सूर्य के परमस्थान की प्राप्ति करता है ।१०२-१०३

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्यषष्ठी व्रत वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६४।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयसप्तमीवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अहं ते सम्प्रवक्ष्यामि सूर्यस्य व्रतमुत्तमम् । धर्मकामार्थमोक्षाणां प्रतिपादनमुत्तमम् ॥१
पौषमासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । जितेन्द्रियः सत्यवादी शालिगोधूमगोरसैः ॥२
पक्षयोः सप्तमीं यत्नादुपवासेन यापयेत् । त्रिसन्ध्यमर्चयेद्भानुं शाण्डिलेयं च सुव्रत ॥३
अधःशायी भवेन्नित्यं सर्वभोगविवर्जितः । मासि पूर्णे तु सप्तम्यां घृतादिभिररिन्दम ॥४
कृत्वा स्नानं महापूजां सूर्यदेवस्य भारत । नैवेद्यं मोदकप्रस्थं क्षीरं सिद्धं निवेदयेत् ॥५
भोजयेच्च द्विजानष्टौ भगार्चां शुभलक्षणाम् । गां च दत्त्वा महाराज कपिलां भास्कराय तु ॥६
य एवं कुरुते पुण्यं सूर्यस्य व्रतमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलं वच्मि सर्वकामसमन्वितम् ॥७
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । अप्सरोगणसङ्कीर्णैर्महाविभवसयुतैः ॥८
सङ्गीतनृत्यवाद्याद्यैर्गन्धर्वगणशोभितैः । दोधूयमानश्चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥९
सहस्रकिरणाभासः सौरैः सूर्यसमन्वितैः । स याति परमं स्थानं यत्रास्ते रविरंशुमान् ॥१०
रोमसङ्ख्या तु या तस्यास्तत्प्रसूतिः कुलेषु च । तावद्युगसहस्राणि सूरलोके महीयते ॥११

अध्याय १६५

उभयसप्तमी नामक वर्णन

सुमन्तु बोले—मैं तुम्हें सूर्य के उत्तम व्रत का विधान बता रहा हूँ जिसमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की भली भाँति व्याख्या की गयी है ।१। सुव्रत ! पौष मास में जो इन्द्रिय संयमी सत्यवादी पुरुष साठी चावल, गेहूँ और मट्ठे द्वारा नक्त भोजन करते हुए इसी प्रकार दोनों पक्ष की सप्तमी में उपवास रहकर तीनों काल में सूर्य एवं अग्नि का पूजन, भूमि में शयन और सभी भोगों के त्याग पूर्वक मास की समाप्ति वाली सप्तमी में स्नान करके सूर्य देव की महापूजा करता है, जिसमें भारत ! एक सेर मोदक का नैवेद्य तथा भली भाँति पका हुआ दूध उन्हें अर्पित किया गया हो तथा पश्चात् आठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर सूर्य के लिए शुभलक्षण संपन्न पूजनीय कपिला गाय का दूध भी दिया गया हो महाराज ! उसके इस प्रकार सूर्य के पुण्य एवं उत्तम व्रत के विधान द्वारा जिन फलों की प्राप्ति करती है, समस्त कामना प्रदायक उन पुण्यफलों को मैं कह रहा हूँ सूनो ! कोटि सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण, मनोरथ सिद्ध करने वाले अप्सराओं से आच्छन्न तथा महासम्पत्तिशाली उस विमान पर बैठकर संगीत, नृत्य करते हुए गन्धर्व गणों से सुशोभित चामर डुलाते हुए देव एवं राक्षसों द्वारा की गयी स्तुति सम्पन्न तथा सहस्र किरण की भाँति तेजस्वी होकर वह सूर्य भक्तों को साथ ले अंशुमान सूर्य के उत्तम निजी स्थान की प्राप्ति करता है, उस गाय के रोम संख्या के समान उसके कुल की संतान वृद्धि तथा उतने सहस्र युग तक सूर्य लोक की प्रतिष्ठा भी उसे प्राप्त होती है।२-११।

त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । ज्ञानयोगं समासाद्य पुनरेव प्रमुच्यते ॥१२
योगाद्दुःखान्तमाप्नोति ज्ञानयोगं प्रवर्तते । सौरधर्माद्भवेज्ज्ञानं सौरधर्मो भगार्चनात् ॥१३
इत्येवं ते समाख्यातं भवार्णवव्यपोहनम् । सौरमोक्षक्रमोपायं सूराश्रयनिवेषणम् ॥१४
माघमासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । पिण्याकं घृतसंयुक्तं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ॥१५
सोपवासश्च सप्तम्यां भवेदुभयपक्षयोः । घृताभिषेकमष्टम्यां कुर्याद्भानोर्नराधिप ॥
गां च दद्याद्दिनेशाय तरुणीं नीलसन्निभान् ॥१६
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः शिखिसंयुतैः । गत्वादित्यपुरं रम्यं भोगान्भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥१७
राजेन्द्र फाल्गुने मासि यःकुर्यान्नक्तभोजनम् । श्यामाक्षीरनीवारैर्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१८
षष्ठ्यां वाप्यथ सप्तम्यामुपवासपरो नरः । अष्टम्यां तु महास्नानं पञ्चगव्यघृतादिभिः ॥१९
वल्मीकजादिमृद्भिश्च गोमूत्रशकृदादिभिः । त्वग्भिश्च क्षीरवृक्षाणां स्नापयित्वा प्रमार्जयेत् ॥२०
सौरभेयीं ततो दद्याद्रक्ताभां रक्तमालिने । पद्मरागप्रतीकाशैर्विमानैर्हस्तिसंयुतैः ॥
गत्वादित्यपुरं रम्यं मोदते शाश्वतीः समाः ॥२१
मासि चैत्रे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । शाल्यन्नं पायसैर्युक्तं भुञ्जानश्च जितेन्द्रियः ॥
भानवे पाटलां दद्याद्वैष्णवीं तरुणीं नृप ॥२२
पुष्परागप्रभैर्यानैर्नानाहंसादियायिभिः । गच्छेत्सूर्यपुरं रम्यं मोदते शाश्वतीः समाः ॥२३

अपनी इक्कीस पीढ़ी के परिवारों के साथ मन इच्छित उपभोग करके ज्ञान भोग की प्राप्ति कर पुनः मुक्त हो जाता है।१२। इस प्रकार प्रथम योग द्वारा दुःखों का नाश होता है, पश्चात् ज्ञानयोग का उदय सौर धर्माचरण द्वारा ही ज्ञान उत्पन्न होता है और सूर्य के अर्चन द्वारा सौर धर्म की प्राप्ति। इस प्रकार मैंने उस व्रत की व्याख्या समाप्त की, जो भवसागर का नाश करती है, क्रमशः सौर मोक्ष का उपाय उनके आश्रित रहकर उनकी एकमात्र सेवा करना ही बताया गया है।१३-१४। नराधिप ! माघ मास में नक्त भोजन घी समेत पिण्याक का प्राशन इन्द्रिय संयम पूर्वक दोनों पक्ष की सप्तमी में उपवास रहकर जो अष्टमी में घीका अभिषेक तथा सूर्य के लिए युवती नीलगाय, प्रदान करता है उसे इन्द्रनील की भाँति विमानों द्वारा जिसमें मयूर की रक्षा की गयी हो उत्तम सूर्य लोक में पहुँचने पर मनइच्छित भोगों का उपभोग प्राप्त होता है।१५-१७। राजेन्द्र ! फाल्गुन मास में जो नक्त भोजन करता है कृष्णा गाय के दूध मिश्रित नीवार का भोजन क्रोधहीन एवं इंद्रिय संयम पूर्वक षष्ठी और सप्तमी में उपवास रहकर अष्टमी में पञ्चगव्य तथा घी द्वारा सूर्य का महास्नान, जिसमें बल्मीक की मिट्टी, गोमूत्र, तथा क्षीरवाले वृक्षों की ऊपरी छाल पड़ी हो और उसी से मार्जन भी करते हैं पश्चात् रक्तमाली (सूर्य) के लिए रक्तवर्ण वाली गाय का दान भी करे तो पद्मराग मणि के समान विमानों द्वारा जो हांथी युक्त हों वह सूर्य के उत्तम लोक में जाकर अनन्त वर्ष आनन्दानुभव करता है।१८-२१। चैत्र मास में जो नक्त भोजन करता है—जितेन्द्रिय होकर साठी चावल की खीर खाकर पाटलवर्ण की युवती वैष्णवी गाय प्रदान करता है तो वह पुष्पराग मणि की भाँति प्रभापूर्ण विमानों द्वारा जिसमें अनेक हंस जुते हों, सूर्य लोक की प्राप्ति कर अनन्त वर्ष आनन्दमग्न रहता है।२२-२३। वीर ! वैशाख में जो नक्त भोजन संपन्न

वैशाखे वीर मासे तु यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । सूर्ये खण्डाज्य सम्मिश्रं सकृद् दद्यान्निवेदनम् ॥२४
गां च दद्यान्महाराज भास्कराय शुभानन । सामान्यं च विधिं कुर्यात्प्रयुक्तो यो मया तव ॥२५
शुद्धस्फटिकसंकाशैर्यानैर्बर्हिणवाहनैः । अणिमादिगुणैर्युक्तः सूर्यवद्विचरेद्दिवि ॥२६
सम्प्राप्ते श्रावणे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । क्षीरपौष्टिकभक्तेन सर्वसत्त्वहिते रतः ॥२७
पीतवर्णां च गां दद्याद्भास्कराय महात्मने । सामान्यमखिलं कुर्याद्विधानं यत्प्रकीर्तितम् ॥२८
स विचित्रैर्महायानैर्हंससारसगामिभिः । गत्वादित्यपुरं श्रीमान्पूर्वोक्तं लभते फलम् ॥२९
वीर भाद्रपदे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । हुतशेषहविष्याशी वृक्षमूलमुपाश्रितः ॥३०
स्वप्यादायतने रात्रौ सर्वभूतानुकम्पकः । दद्याद्गां रोहिणीं श्रेष्ठां भास्कराय महात्मने ॥३१
निशाकरकरप्रख्यैर्वज्रवैदूर्यसन्निभैः । चक्रवाकसमायुक्तैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥३२
गत्वादित्यपुरं रम्यं सुरासुरसुवन्दितम् । मोदते स महाभागो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३३
श्रीमानाश्वयुजे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । मिताशनं प्रभुञ्जानो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥३४
दद्याद्गां पद्मवर्णाभां भानवेऽमिततेजसे । दिव्याभरणसम्पन्नां तरुणीं च पयस्विनीम् ॥३५
स्वस्तिभक्तिकसंकाशैरिन्द्रनीलोपशोभितैः । जीवो जीवकसंयुक्तविमानैः सार्वकामिकैः ॥
गच्छेद्भानुसलोकत्वं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ॥३६

करता है—सूर्य के लिए खांड़ घी मिलाकर निवेदन करने के उपरांत महाराज उन्हें गाय भी प्रदान करता है तो शुद्ध स्फटिक के समान विमानों द्वारा जिनमें मयूर जुते हों, अणिमादि गुणों समेत सूर्यलोक में पहुंच कर वह स्वर्ग में सूर्य की भाँति विचरण करता है। इसमें सामान्य विधान का प्रयोग करना चाहिए जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है।२४-२६। सावन के मास में जो नक्त भोजन करता है क्षीर का पौष्टिक भोजन करके सभी प्राणियों के उपकार मे मग्न होकर महात्मा सूर्य के लिए पीले रंग की गाय एवं बताये गये सामान्य विधान समस्त कार्य द्वारा समाप्त करता है, विचित्र विमानों द्वारा जिसमें सारस जुते हों उस विमान से सूर्य लोक में पहुँचने पर उसे पूर्वोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं।२७-२९। वीर ! भादों के मास में जो नक्त भोजन तथा हवन करने से शेष हवि का प्राशन करके वृक्ष के मूल (जड़) पर स्थित रहकर रात में मन्दिरमें शयन पूर्वक सभी प्राणियों पर दया करते हुए महात्मा भास्कर के लिए श्रेष्ठ रोहिणी (लाल रंग की) गाय प्रदान करता है तो वह चन्द्रमा, वज्र, एवं वैदूर्य मणि की भाँति धवल तथा समस्त कामना प्रदान करने वाले उन विमानों द्वारा जिसमें चकोर जुंते हों उत्तम सूर्य लोक में पहुँचकर देवों एवं राक्षसों से पूजित होता है तथा प्रलय होने तक आनन्द का अनुभव करता है।३०-३२। जो श्रीमान् आश्विन मास में नक्त भोजन करते हैं—अल्पाहार करके क्रोधहीन एवं इन्द्रिय संयम रखते हैं, तथा अजेय तेज वाले सूर्य के लिए कमल के समान सौन्दर्य पूर्ण ऐसी गाय प्रदान करते हैं जो दिव्य आभूषणों से सुसज्जित तरुणी, एवं निरन्तर दूध देती है। वे मोती एवं इन्द्रनील से सुशोभित तथा जीवक मुक्त विमानों द्वारा मन इच्छित आनन्द लेते हुए सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं। कार्तिक मास में नक्त भोजन पूर्वोक्त विधान पूर्वक जितेन्द्रिय रहकर सम्पन्न कर प्रज्वलित सूर्य के समान गोदान उनके लिए प्रदान करे। इसमें पूर्वोक्त विधान द्वारा सभी सम्पन्न करना चाहिए ऐसा करने से सूर्य के तुल्य होता है। तथा काली अग्नि शिखा के

दिवाकराय गां दद्याज्ज्वलनार्कसमप्रभाम् । पूर्वोक्तं च विधिं कुर्यात्सूर्यतुल्यो भवेन्नरः ।।३७
कालानलशिखप्रख्यैर्महायानैर्नगोपमैः । महासिंहकृतारोपैः सूर्यवन्मोदते सुखी ।।३८
मार्गशीर्षे शुभे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । यच्चान्नं पयसा युक्तं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ।।३९
प्रयच्छेद्गां तथा रक्तां नानालङ्कारभूषिताम् । सूर्याय कुरुशार्दूल विधिं चापि समाचरेत् ।।४०
सितपद्मनिभैर्यानैः श्वेताश्वरथसंयुतैः । गत्वा तत्र पुरे रम्ये प्रभया परयान्वितः ।।४१
अहिंसासत्यवचनमस्तेयं क्षान्तिरार्जवम् । त्रिषवणाग्निहवनं भूशय्या नक्तभोजनम् ।।४२
पक्षयोरुभयोर्मार्गे सप्तम्यां कुरुनन्दन । एतान्गुणान्समाश्रित्य कुर्वाणो व्रतमुत्तमम् ।।४३
सप्तम्योभयविख्यातं सर्वपापभयापहम् । सर्वरोगप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ।।४४
इत्येवमादीन्नियमांश्चरेत्सूर्यव्रती सदा । य इच्छेद्विपुलं स्थानं भानोरमिततेजसः ।।४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे उभयसप्तमीवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६५।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे निक्षुभाव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् । स्त्री पुत्रमुत्तमं सा चेत्कांक्षते शृणु तद्व्रतम् ।।१

समान और पर्वतों की भाँति उन विधानों द्वारा जिसमें भीषण सिंह जुते हों, सूर्य के समीप पहुँचकर उनके समान सुखी एवं आनन्द का अनुभव करता है ।३४-३८। मार्गशीर्ष में जो नक्त भोजन सम्पन्न करता है—जितेन्द्रिय होकर खीर के भोजन तथा कुरुशार्दूल ! सूर्य के लिए रक्तवर्ण और भाँति-भाँति के आभूषणों से सुशोभित गाय विधान पूर्वक प्रदान करता है तो वह श्वेत कमल की भाँति सौन्दर्य पूर्ण विमानों द्वारा जिसमें श्वेत वर्ण के अश्व एवं रथ हों सूर्य की उस उत्तम पुरी में पहुँचकर उत्तम कान्ति से सुशोभित होता है ।३९-४१। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, क्षमा, सरलता तीनों काल स्नान, हवन, और भूमि शयन नक्त भोजन में आवश्यक बताये गये हैं । कुरुनंदन ! इस प्रकार मार्गशीर्ष की दोनों सप्तमियों में इन गुणों समेत उत्तम व्रत का विधान करना चाहिए । इस प्रकार समस्त पाप नाशिनी, समस्त रोग नाश करने वाली, तथा समस्त कामना प्रदान करने वाली दोनों सप्तमीकी व्याख्या बतायी गई है । अमित तेज वाले सूर्य के उस विपुल स्थान के इच्छुक जो सूर्य के व्रत करने वाले मनुष्य हैं इन्हीं नियमों द्वारा सदैव व्रत समाप्ति करें ।४२-४५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के उभय सप्तमी वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६५।

अध्याय १६६

सौरधर्म में निक्षुभाव्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—सूर्य की भक्ति करने वाली स्त्री (अगले जन्म में) निश्चित पुरुष होती है । यदि वह उत्तम पुत्र की ही कामना प्रकट करती है तो उसमें भी सफलता प्राप्त होती है मैं उसे बता रहा हूँ सुनो ! १।

निक्षुभार्काख्यमाख्यातं सदा प्रीतिविवर्धनम् । अवियोगकरं वीर धर्मकामार्थसाधकम् ॥२
सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वा सङ्क्रान्तौ च रवेर्दिने । हविषा हविर्होमं तु सोपवासः समाचरेत् ॥३
निक्षुभां कांस्यनिष्पन्नां कृत्वा स्वर्णमयीं शुभाम् । राजतीं वाथ वा वर्षं स्नापयेच्च घृतादिभिः ॥४
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य वस्त्रयुग्मैश्च शोभनैः। भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च वितानध्वजचामरैः ॥५
भोजयेत्सूर्यभक्तांश्च शुक्लवस्त्रावगुण्ठितान् । कृत्वायतनमध्ये तु प्रतिमामुपकल्पयेत् ॥६
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं वितानच्छत्रशोभितम् । ध्वजशङ्खादिविभवैर्भगस्यायतनं नयेत् ॥७
निक्षुभार्कदिनेशस्य व्रतमेतन्निवेदयेत् । तत्पिण्डयां स्थापयेत्पात्रमुपशोभासमन्वितम् ॥८
प्रदक्षिणीकृत्य रविं प्रणिपत्य क्षमापयेत् । समाप्य तद्व्रतं पुण्यं भृणुयात्फलमश्नुते ॥९
द्वादशादित्यसंकाशैर्महायानैर्नगोपमैः । यथेष्टं भानवे लोके सौरैः सार्धं प्रमोदते ॥१०
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । नन्दतेऽसौ महाभाग विष्णुलोके महीयते ॥११
ततः कर्मविशेषेण सर्वकामसमन्वितम् । ब्रह्मलोकं समासाद्य परं सुखमवाप्नुयात् ॥१२
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः श्रीमान्सुरसुपूजितः । प्रजापतित्वमाप्नोति सुरासुरनमस्कृतः ॥१३
लोकानिह चिरं भुक्त्वा सोमलोके महीयते । सोमादैन्द्रं पुनर्लोकमासाद्येन्द्रपतिर्भवेत् ॥१४
इन्द्रलोकाच्च गन्धर्वलोकं प्राप्य स मोदते । ततस्तद्धर्मशेषेण भवत्यादित्यभावितः ॥१५

वीर ! 'निक्षुभार्क' उस व्रत का नाम है, वह सदैव प्रीति वर्द्धक, वियोग नाशक और धर्म, तथा काम की सफलता प्रदान करता है ।२। सप्तमी, षष्ठी, एवं संक्रान्ति वाले सूर्य के दिन उपवास रहकर घी का हवन करना चाहिए । कांस्य, सुवर्ण, अथवा चाँदी द्वारा शुभ-प्रतिमा (मूर्ति) निक्षुभा की बनावे पश्चात् घी आदि से स्नान कराकर दो वस्त्र, गंध एवं मालाओं से अलंकृत करके पुनः वितान (चाँदनी) ध्वज तथा चामर से सुसज्जित करने के उपरांत भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थों को उन्हें अर्पित करते हुए सूर्य भक्तों को भोजन कराये । पुनः मन्दिर के मध्य भाग में शुक्ल वस्त्रों में लिपटी उस प्रतिमा को स्थित करके वितान एवं छत्र से सुशोभित उस पात्र को सिर पर रख ध्वज, शंख आदि वस्तुओं समेत उसे सूर्य मन्दिर में ले जाये ।३-७। निक्षुभार्क नामक इस व्रत को उन्हें निवेदित करके सामग्रियों से सुशोभित उस पात्र को उनकी पिंडी पर स्थापित करने के पश्चात् सूर्य की प्रदक्षिणा करके नमस्कार पूर्वक (अपने अपराधों को) क्षमा कराये । इस प्रकार उस व्रत की समाप्ति करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, सुनो ! बारहों सूर्यों के समान प्रकाश पूर्ण एवं पर्वत के समान विशाल काय वाले उन विमानों पर बैठकर सूर्य लोक में सूर्य के अनुयायियों के साथ उसे मनइच्छित आनन्दानुभव प्राप्त होता है ।८-१०। महाभाग ! सहस्र कोटि एवं सौ कोटि वर्ष विष्णु लोक में वह पूजित होता है ।११। पश्चात् (उत्तम) कर्म की विशेषतावश समस्त कामनाओं को सम्पन्न कर ब्रह्मलोक में पहुँचकर उत्तम सुख की प्राप्ति करता है ।१२। पुनः कदाचित् ब्रह्मलोक से च्युत होकर देव वन्दित वह श्रीमान् प्रजापति होता है, देव एवं असुरों से नमस्कृत होते हुए चिरकाल तक उस लोक के सुखानुभव प्राप्त करने के उपरांत सोम लोक में पहुँचता है, और सोम लोक से फिर इन्द्र लोक में जाकर इन्द्रपति होता है ।१३-१४। एवं इन्द्रलोक से गन्धर्व लोक पहुँचकर आनन्दानुभव करता है । इसके उपरांत भी उस धर्म के शेष रहने के कारण सूर्य में सायुज्य मोक्ष

स्वकर्मभावनोद्योगात्पुनः प्रारभते शुभम् । शुभाच्च पुनरेत्येह स यात्यतिसहस्रशः ॥१६
यावन्नाप्नोति मरणं तावद्भ्रमति कर्मणा । सुनिर्वेदात्सुवैराग्यं वैराग्याज्ज्ञानसम्भवः ॥१७
ज्ञानात्प्रवर्तते योगो योगाद्दुःखान्तमाप्नुयात् ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे निक्षुभाव्रतवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६६।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

निक्षुभार्कव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

षष्ठ्यां चाप्यथ सप्तम्यां नियता ब्रह्मचारिणी । वर्षमेकं न भुङ्क्ते या महाभागजिगीषया ॥१
वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा निक्षुभाङ्केति विश्रुताम् । स्नानाद्यं च विधिं कृत्वा पूर्वोक्तं लभते गुणम् ॥२
जाम्बूनदमयैर्यानैश्चतुर्द्वारैरलङ्कृते । गत्वादित्यपुरे रम्ये अशेषं विन्दते फलम् ॥३
सौरादिसर्वलोकेषु भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजानं पतिमाप्नुयात् ॥४
या नार्युपवसेदेवं कृष्णामेकां तु सप्तमीम् । सा गच्छेत्परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥५

प्राप्त करता है ।१५। इस प्रकार अपने कर्म की भावना वश पुनः उसका शुभ (कर्म) प्रारम्भ होता है और उसी शुभ कर्म द्वारा इस लोक में अनेकों बार जन्म ग्रहण करता रहता है ।१६। इस भाँति जब तक मरण धर्म प्राप्त नहीं होता तब तक कर्मवश भ्रमण करता है । इस प्रकार अत्यन्त दुःख होने से उत्तम वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्य से ज्ञान, ज्ञान से योग, और योग द्वारा दुःख का अत्यन्त नाश बताया गया है ।१७-१८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में निक्षुभाव्रत वर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।१६६।

अध्याय १६७

निक्षुभार्कव्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—षष्ठी और सप्तमी में संयमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर जो पुरुष (सूर्य) लोक की यात्रा करने की कामनावश पूरे एक वर्ष तक भोजन नहीं करती है, तथा वर्ष की समाप्ति में निक्षुभा की सौन्दर्यमयी प्रतिमा बनवाकर विधानपूर्वक स्नान आदि कर्म की समाप्ति करती है, तो उसे पूर्वोक्त सभी गुण प्राप्त होते हैं ।१-२। सुवर्ण के विमान पर बैठकर सौन्दर्यपूर्ण चारों दरवाजे से सुशोभित उस उत्तम सूर्य लोक में पहुँचकर अशेष (सम्पूर्ण) फलों का उपभोग करती है ।३। सूर्य के सभी लोकों में मनइच्छित भोगों का उपभोग करके क्रम प्राप्त इस लोक में राजा को पति रूप में वरण करती है अर्थात् (राजरानी) होती है ।४। इस प्रकार जो स्त्री एक ही कृष्ण पक्ष की सप्तमी में पूर्वोक्त नियमानुसार उपवास करती है, उसे अजेय तेज वाले सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।५। वर्ष के अन्त में साठी चावल के चूर्ण

वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा शालिपिष्टमयीं शुभाम् । पीतानुलेपनैर्माल्यैः पीतवस्त्रैश्च पूजयेत् ॥
पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भास्कराय निवेदयेत् ॥६
सप्तभीमैर्महायानैर्दन्तिचामीकरप्रभैः । वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ॥७
सौरलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्नराधिप । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं धनधान्यसमन्वितम् ॥८
कृष्णपक्षे तु सप्तम्यां या नारी नु दृढव्रता । वर्षमेकमुपवसेत्सर्वभोगविवर्जिता ॥९
वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्यं निक्षुभार्कं निवेदयेत् । सुवर्णमणिमुक्ताभ्यां भोजयित्वा मगाङ्गनाम् ॥१०
सुविचित्रैर्महायानैर्दिव्यगन्धर्वशोभितैः । सा वै युगसहस्राणि सूर्यलोके नराधिप ॥११
यथेष्टं भानवे लोके भोगान्भुक्त्वा तु कृत्स्नशः । क्रमादागत्य लोकेस्मिन् राजानं विन्दते पतिम् ॥१२
एवं या कुरुते राजन्व्रतं पापभयापहम् । निक्षुभार्कमिदं पुण्यं सा याति परमं पदम् ॥१३
वर्षमेकं महाबाहो श्रद्धया परयान्वितः । वर्षांते वै भोजयेद्वीर दाम्पत्यं भोजकेषु वै ॥१४
भोजयित्वा तु दाम्पत्यं भोगकानां महाबलैः । पूजयेद्गन्धमाल्यैस्तु वासोभिः कुरुनन्दन ॥१५
कृत्वा ताम्रमये पात्रे वस्त्रपूर्णैरलङ्कृतम् । निक्षुभार्कं तु सौवर्णं दत्त्वा ताभ्यां तु शक्तितः ॥१६
निक्षुभा भोजिका ज्ञेया भोजकोऽर्कः प्रकीर्तितः । तस्मात्तौ पूजयेत्सौरीश्वरवच्छ्रद्धयान्वितः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु निक्षुभार्कव्रतं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६७।

(आटे) की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर पीले अनुलेपन, मालाओं एवं पीत वस्त्रों से अलंकृत करके पूर्वोक्त सभी कर्मों की समाप्ति करती हुई उसे सूर्य के लिए अर्पित करती है तो विशाल कायवाले सात विमानों पर जो गजदन्त एवं सुवर्ण की भाँति प्रभापूर्ण हों, बैठकर सौ कोटि वर्ष सूर्य लोक के उत्तम स्थान में आनन्द का अनुभव प्राप्त करती है।६-७। नराधिप ! सूर्य लोक आदि सभी लोको में भोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में जन्म ग्रहण कर समस्त लक्षण सम्पन्न एवं धन धान्य पूर्ण मनोनुकूल पति की प्राप्ति करती है ।८। जो स्त्री कृष्ण पक्ष की सप्तमी में दृढ़ता पूर्वक व्रत रह कर उसी प्रकार समस्त भोगों के त्याग पूर्वक एक वर्ष का उपवास रहकर समय व्यतीत करती है, और वर्ष की समाप्ति में निक्षुभा की प्रतिमा को गन्ध आदि सुवर्ण मणि तथा मोतियों से अलंकृत करके मग की स्त्रियों को भोजन कराने के उपरांत उसे सूर्य को समर्पित करती है, तो वह चित्रविचित्र एवं दिव्य गंधर्व सुशोभित महाविमान पर बैठकर सूर्य लोक में जाती है और सहस्र युग पर्यन्त उन लोकों से सभी भोगों के उपभोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में उत्पन्न होकर राजरानी होती है।९-१२। राजन् ! इस प्रकार जो सभी पापनाशक इस निक्षुभार्क नामक व्रत का विधान पालन करती है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है।१३। अतः महाबाहो ! अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न हो एक वर्ष तक उसका विधान पालन करे, और वीर ! वर्ष के अंत में दम्पति (स्त्री पुरुष) भोजक को भोजन करावे, पश्चात् कुरुनन्दन ! गन्ध, मालाओं, एवं वस्त्रों द्वारा अलंकृत करके तांबे के पात्र में वस्त्र समेत उस निक्षुभाकी प्रतिमा को रखकर उसे सूर्य को निवेदित कर दोनों को शक्त्यनुसार सुवर्ण दान करे।१४-१६। निक्षुभा भोजिका और सूर्य भोजक बताये गये हैं। इसलिए इन दोनों की पूजा ईश्वर की भाँति अत्यन्त श्रद्धालु होकर करनी चाहिए।१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में निक्षुभार्क व्रत वर्णन नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६७।

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कामप्रदस्त्रीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एकभक्तेन या नारी कार्त्तिकं क्षपयेन्नृप । क्षमाहिंसादिनियमैः संयता ब्रह्मचारिणी ।।१
गुडाज्यमिश्रं शाल्यन्नं भास्कराय निवेदयेत् । पक्षयोरुभयोस्तात श्रद्धया परयान्विता ।।२
पुष्पाणां करवीराणां गुग्गुलं साज्यमादिशेत् । सप्तम्यां तात षष्ठ्यां वै उपवासरतिर्भवेत् ।।३
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । वर्षायुतशतं साग्रं सूरलोके महीयते ।।४
तथा च सर्वलोकेषु भोगमासाद्य यत्नतः । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं विन्दते पतिम् ।।५
इत्येवं सर्वयज्ञेषु विधिस्तुल्यः प्रकीर्तितः । एकभक्तोपवासस्य फलं च सदृशं भवेत् ।।६
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । सूर्यपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ।।७
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः । निःशेषमहं वक्ष्यामि मासान्मासव्रतं प्रति ।।८
मार्गशीर्षे शुभे मासि व्योमपृष्ठे विनिर्मितम् । गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शुभाननमनौपमम् ।।९
ताम्रपात्रादिकैश्चैवाप्यप्सरोगणसेवितैः । समेरो दशसाहस्रे सूर्यलोके महीयते ।।१०
सर्वदेवकदम्बेषु सम्प्राप्य विमलां श्रियम् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजानं पतिमाप्नुयात् ।।

अध्याय १६८

कामदासप्तमी व्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—नृप कार्तिक मास में जो स्त्री क्षमा एवं अहिंसा आदि नियमों के पालन समेत संयम पूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर एकाहार से समय व्यतीत करती हुई, तथा तात ! उत्तम श्रद्धापूर्वक दोनों पक्षों में सूर्य के लिए गुड़, तथा घी मिश्रित साठी चावल के भात, कनेर के पुष्प एवं घी समेत गुग्गुल प्रदान कर तात ! षष्ठी और सप्तमी में उपवास करती है ? तो वह इन्द्रनील की भाँति विमानों पर बैठकर जो समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं, सूर्य लोक में जाकर सौ अयुत वर्ष उस लोक के उत्तम स्थान में सम्मानित होती रहती है । उसके उपरांत समस्त लोकों के उपभोगों के सुखानुभव करके क्रम प्राप्त इस लोक में पुनः जन्म ग्रहण कर मनोनीत पति प्राप्त करती है ।१-५। समस्त यज्ञों में इसी प्रकार का समान विधान बताया गया है । और एकाहार एवं उपवास रहने के फल भी समान ही होते हैं ।६। यह भी बता दिया गया है क्षमा, सत्य, दया, दान, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, सूर्य, पूजा, अग्निहवन, संतोष, और स्तेय (चोरी) के त्याग, यही दश प्रकार के सामान्य धर्म सभी व्रतों में बताये गये हैं । सभी मासों के समस्त धर्म क्रमशः मैं बता रहा हूँ ।७-८। मार्गशीर्ष (अगहन) के शुभमास में व्योम के पीठ पर सौन्दर्यपूर्ण एवं अनुपम मुख-मूर्ति की रचना करके गन्ध-माला से सुशोभित कर ताँबें आदि के पात्र में स्थापित करे तो उसे अप्सराओं के साथ सूर्यलोक में दशसहस्र वर्ष सम्मान पूर्वक आनन्द का उपभोग प्राप्त होता है ।९-१०। पुनः समस्त देव समूहों से उत्तम श्री सम्पन्न होकर क्रम प्राप्त इस लोक में जन्म ग्रहण करके राजरानी

पुष्पैरमलङ्कृत्य भानवे विनिवेदयेत् ॥११
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शुभाननमतोपमम् । ताम्रपात्रादिकांस्यं वा कृत्वा तत्र निवेदयेत् ॥१२
महापुष्पकयानेन दिव्यगन्धप्रवाहिना । सुमेरौ दशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ॥१३
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्सर्वलोकेषु भारत । सम्प्राप्यैतं क्रमाल्लोकं यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥१४
माघे रथमश्वयुजं दीपमाल्यविभूषितम् । पिष्टस्तानुसमायुक्तं कृत्वायतनमानयेत् ॥१५
महारथोपमैर्यानैः श्वेताश्ववरसंयुतैः । वर्षायुतशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ॥१६
सर्वामराणां लोकेषु प्राप्य भोगान्यथेप्सितान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं पतिमाप्नुयात् ॥१७
प्रतिमां फाल्गुने मासि कृत्वा पिष्टमयीं रवेः । गंधमाल्यैरलङ्कृत्य स्थापयेद्भास्करालये ॥१८
यानैरप्रतिमैर्दिव्यैर्गीतनादसमाकुलैः । सुमेरौ दशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ॥१९
सर्वाभिमतलोकेऽस्मिन्प्राप्य भोगान्यथेप्सितान् । पुनरेत्य इमं लोकं यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥२०
कृत्वारुणं तथा चैत्रे गन्धमाल्योपशोभितम् । स्थाप्य पात्रे यथोक्ते तु भास्कराय निवेदयेत् ॥२१
शरदिन्दुप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । वर्षायुतशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ॥२२
कर्मक्षयादिहागत्य पुत्रपौत्रसमन्वितम् । अभीष्टं पतिमासाद्य लभेद्भोगान्सुदुर्लभान् ॥२३
तण्डुलाढकपिष्टेन कृत्वा वै मेरुपर्वतम् । निक्षुभार्कसमायुक्तं सर्वधातुविभूषितम् ॥२४
नानालङ्कारसम्पन्नं नानामाल्यविभूषितम् । सर्वरत्नसमायुक्तं स्थापयेद्भास्करालये ॥२५

होती है। एवं पौष मास में जो स्त्री उस प्रतिमा को पुष्पों से सुशोभित करके सूर्य के लिए अर्पित कर उस सौन्दर्य पूर्ण मुख वाली मूर्ति को गन्ध मालाओं द्वारा अलंकृत करके कांसे आदि किसी पात्र में स्थापित करके उन्हें निवेदित करती है।११-१२। उसे दिव्य गंध से विभूषित महापुष्पक विमान द्वारा उस सुन्दर शिखर वाले सूर्य लोक में पहुँचने पर दश सहस्र वर्ष सम्मान तथा भारत ! इस प्रकार सभी लोकों के विपुल भोगों के उपभोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में आने पर मन इच्छित पति प्राप्त होता है। माघमास में अश्व समेत रथ की रचना कर जो दीपमाला से विभूषित हो तथा चूर्ण के शिखर जहाँ बनाये गये हों, सूर्य मन्दिर में लाये तो श्वेत वर्ण के अश्व जुते महारथ की प्राप्ति होती है वीर सभी देवों के मनइच्छित भोगों के उपभोग करके क्रम प्राप्त इस लोक मे आने पर मनोनीत पति की भी प्राप्ति होती है।१३-१७। फाल्गुन मास में चूर्ण (आटे) की सूर्य की प्रतिमा बनाकर गंध एवं मालाओं द्वारा अलंकृत करके सूर्य मन्दिर में स्थापित करे तो दिव्य, एवं अनुपम विमान द्वारा गायनवाद्यों समेत उस उत्तम शिखर वाले सूर्य लोक में दशसहस्र वर्ष सम्मानित रहकर समस्त मनोनीत उपभोगों के सुखानुभव पूर्वक पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में जल ग्रहण करने पर मनोनुकूल पति की प्राप्ति होती है।१८-२०। चैत्रमास में रक्तवर्ण की प्रतिमा बनाकर गन्ध माला से सुशोभित करके उक्त पात्र में स्थापित कर सूर्य को अर्पित करे तो शरदकालीन चन्द्र की भाँति एवं समस्त कामनाप्रदायक विमानों द्वारा सूर्य लोक में पहुंच कर उसके उत्तम स्थान में सौ सहस्र वर्ष आनन्द मग्न रह कर पश्चात् कर्मक्षीण होने के कारण यहाँ आने पर उसे मनोनीत पति, पुत्र तथा पौत्र की प्राप्ति पूर्वक समस्त दुर्लभ भोगों का उपभोग प्राप्त होता है।२१-२३। वैशाख मास में आधे पसेरी चूर्ण (आटे) के मेरु पर्वत समेत निक्षुभा की मूर्ति बनाकर समस्त धातुओं से विभूषित भाँति-भाँति के आभूषण, एवं भाँति-भाँति की मालाओं, तथा समस्त रत्नों से सुसम्पन्न करके सूर्य मन्दिर में स्थापित करे।२४-२५।

महद्व्योमव्रतं ह्येतद्वै शाखे यः समाचरेत् । नानाविधैश्च यानैस्तु सूर्यलोके महीयते ।।२६
सौरादिसर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः । क्रमादागत्यलोकेऽस्मिन्राजानं पतिमाप्नुयात् ।।२७
द्वितीयं च तथा पद्ममाषाढे पिष्टमुत्तमम् । सर्वबीजरसैः पूर्णं कृत्वा तु शुभलक्षणम् ।।
नानाकेसरगन्धाढ्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।।२८
एतैर्वा हैमभिर्यानैः[1] सर्वभोगान्वितैर्नृप । वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ।।२९
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्सर्वलोकेष्वनुक्रमात् । प्राप्ता[2] तु सर्वभोगाढ्यं तरुणं विन्दते पतिम् ।।३०
सर्वधातुसमाकीर्णं विचित्रध्वजशोभितम् । निवेदयेत् सूर्याय श्रावणे तिलपर्वतम् ।।३१
स्वच्छन्दगामिभिर्यानैर्नानावर्णविभूषितैः । वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ।।३२
सम्प्राप्य विविधान्भोगान्बह्वाश्चर्यसमन्वितान् । क्रमाल्लोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिम् ।।३३
कृत्वा भाद्रपदे मासि व्योम शालिमयं नृप । वितानध्वजच्छत्राढ्यं नानामालादिभूषितम् ।।३४
तरुणार्ककरप्रख्यैर्महायानैः सुशोभनैः । वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ।।३५
सम्प्राप्य विविधान्भोगान्सर्वान्निमिषसम्भवान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजानं विन्दते पतिम् ।।३६
कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं धान्यपर्वतम् । सुवर्णवस्त्रगन्धाढ्यं भास्कराय निवेदयेत् ।।३७

इस प्रकार के महाव्योम वाले इस व्रत का विधान समाप्त करने से उसे अनेक भाँति की सवारियों द्वारा सूर्य लोक के सम्मान समेत सूर्य आदि समस्त लोकों के निखिल भोगों के सुखानुभव के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में आने पर राजा के रूप में पति प्राप्त होता है ।२६-२७। आषाढ मास में चूर्ण (आटे) द्वारा द्वितीय (निक्षुभा) और पद्म (सूर्य) कल्याण की मूर्ति बनाकर समस्त बीजों के रसों से पूर्ण कर भाँति-भाँति के केसर गंध एवं समस्त रत्नों से सुसज्जित करे तो, नृप ! सुवर्ण के विमानों पर बैठकर जिसमें समस्त उपभोग की सामग्रियाँ परिपूर्ण हों, सूर्य लोक में पहुँच कर उत्तम स्थान में सौ करोड़ वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है और समस्त लोकों के विपुल भोगों के क्रमशः उपभोग करने के पश्चात् (इस लोक में) समस्त उपभोग की सामग्रियाँ समेत युवा पति भी प्राप्त होता है ।२८-३०। सावन मास में समस्त धातु एवं चित्रविचित्र ध्वजों से सुशोभित तिल-पर्वत सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए । उससे उस स्त्री को भाँति-भाँति के वर्णों (रंगों) से सुसज्जित उस स्वच्छन्द गामी विमानों द्वारा सूर्य लोक के उत्तम स्थान में सौ कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है। और इस प्रकार आश्चर्य जनक अनेक भोगों की प्राप्ति पूर्वक कभी क्रमशः इस लोक में आने पर भी वह राजरानी होती है। नृप ! भादों के मास में साठी चावल के चूर्ण (आटे) का व्योम बनाकर उसे बितान, ध्वज, दल एवं भाँति-भाँति की मालाओं से सौन्दर्य पूर्ण करे तो तरुण सूर्य की किरणों के समान प्रखर तेजस्वी महाविमान पर बैठकर जिसमें उत्तम भोग की व्यवस्था निश्चित है, सूर्य लोक में पहुँच कर सौ कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है।३१-३५। समस्त भोगों के उपभोग करके जो प्रत्येक क्षणों के लिए निश्चित हैं, क्रमशः इस लोक में आकर राजा रूप में पति प्राप्त होता है।३६। आश्विन मास में विपुल धान्य के पर्वत बनाकर उसे सुवर्ण, वस्त्र एवं गन्धों से सुसज्जित

---

१. ऐसभावश्छान्दसः । २. इह लोक इति शेषः ।

सावित्रैश्च महायानैर्वरभोगसमन्वितैः । वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३८
सूर्यलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । अस्मिंल्लोके च सम्प्राप्ता राजानं विन्दते पतिम् ॥
चन्द्राग्निभास्कराणां तु कान्तितेजः प्रभान्वितम् ॥३९
यं यं कामं समुद्दिश्य नरनारीनपुंसकाः । पूजयन्ति रविं भक्त्या तत्सर्वं प्राप्नुवन्ति हि ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु कामप्रदस्त्रीव्रतवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६८।

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

मृण्मयं दारुजं शैलं पक्वेष्टकमथापि वा । कृत्वा मठं गृहं वापि यथा विभवसम्भवात् ॥१
सर्वोपकरणोपेतं सर्वधान्यसमन्वितम् । सूर्यायेत्थं गृहं दद्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२
कृत्वैकभक्तं हेमन्ते माघमासमतन्द्रितः । मासान्तेन रथं कुर्याच्चित्रवस्त्रोपशोभितम् ॥३
श्वेतैश्चतुर्भिः संयुक्तं तुरङ्गैः समलङ्कृतम् । श्वेतध्वजपताकाभिश्छत्रचामरदर्पणैः ॥४
तण्डुलाढकपिष्टेन कृत्वा भानुं नराधिप । विन्यस्य तं रथोपस्थे संज्ञया सह भूपते ॥५

कर भास्कर के लिए समर्पित करे तो, उत्तम भोग साधन पूर्ण सूर्य के उस महाविमान, द्वारा उनके लोक में पहुँच कर सहस्र कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है । पुनः सूर्य आदि लोकों के समस्त मनोनीत भोगों के उपभोग करने के उपरांत इस लोक में इसी भाँति का राजा पति रूप में प्राप्त होता है, जो चंद्र के समान कांति अग्नि के समान तेज एवं सूर्य के समान प्रभा पूर्ण रहता है । इस प्रकार नर, नारी तथा नपुंसक जिन उद्देश्यों से सूर्य की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं उन्हें वे अवश्य प्राप्त होते हैं ।३७-४०

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म मे कामप्रद स्त्री व्रत वर्णन नामक एक सौ असरठवाँ अध्याय समाप्त ।१६८।

अध्याय १६९

सूर्यव्रत का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—मिट्टी, काष्ठ, पत्थर अथवा पके ईंट का मठ या मन्दिर अपने शक्त्यनुसार निर्माण कराकर सभी साधन, धन-धान्य से पूर्ण कर उसे सूर्य के लिए समर्पित करने से समस्त कामनाएँ सफल होती हैं ।१-२। हेमन्त (अगहन पौष) तथा माघ के मास में आलस्यहीन एवं एकाहारी होकर मास की समाप्ति में चित्रविचित्र वस्त्रों से सुशोभित ऐसे उत्तम स्थान का निर्माण कराये जिसमें श्वेत वर्ण के एवं सौन्दर्य पूर्ण आभूषणों से अलंकृत चार घोड़े जुते हों उसे श्वेत ध्वज, पताका, पत्र, चामर एवं दर्पणों से विभूषित करने के पश्चात् नराधिप ! आधेपसेरी चावल के साथ उस रथ पर प्रतिष्ठित करे।

तं रात्रौ राजमार्गेण शङ्खभेर्यादिनिस्वनैः भ्रमयित्वा शनैः पश्चात्सूर्यायतनमाविशेत् ॥६
तत्र जागरपूजाभिः प्रदीपावलिशोभितैः । प्रेक्षणीयैः प्रदानैश्च क्षपयित्वा शनैः क्षपाम् ॥७
प्रभाते स्नपनं कृत्वा मधुक्षीरघृतेन च । दीनान्धकृपणेभ्योऽन्नं यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ॥८
रथं संवाहनोपेतं भास्कराय निवेदयेत् । भुक्त्वा च बान्धवैः सार्धं प्रणम्यार्कगृहं व्रजेत् ॥९
सर्वव्रतानां प्रवरं मन्त्रधर्मान्वितः सदा । व्रतं सूर्यव्रतं नाम सर्वकामार्थसिद्धये ॥१०
सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । सर्वं सूर्यरथेनेह तत्पुण्यं लभते नृप ॥११
सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । त्रिसप्तकुलजैः सार्धं सूर्यलोके महीयते ॥१२
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्सर्वलोकेष्वनुक्रमात् । कल्पायुतशतं साग्रं ततो राजा भवेत्क्षितौ ॥१३
पञ्चबलिसमायुक्तं मृदुषड्वास्तुकल्पितम् । सर्वोपकरणोपेतं सूर्यं संज्ञां प्रकल्पयेत् ॥१४
संज्ञादेवीसमायुक्तं पैष्टांशाढ्यं निवेदयेत् । सौरज्ञानार्थतत्त्वज्ञमाचार्यमुदयान्वितम् ॥१५
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रालङ्कारचामरैः । भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च ततः शय्यां निवेदयेत् ॥१६
तदूर्णातूलवस्त्राणां परिसङ्ख्या तु यावती । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥१७
सुरादिसर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः । कामादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति धार्मिकः ॥१८
दश गोभिः सह वृषं ता वृषैकादशाः स्मृताः । सूर्याय विनिवेद्येह यत्फलं लभते शृणु ॥१९

भूपते ! पुनः रात्रि में राजमार्ग द्वारा शंख भेरी बजाते हुए धीरे-धीरे परिभ्रमण करते उन्हें सूर्य मन्दिर में पहुँचाये वहाँ उस रात में जागरण करके पूजा, सुन्दर प्रदीपवाले, इस प्रकार के दर्शनीय वस्तुएँ प्रदान करके रात व्यतीत करें। ३-७। पुनः प्रातः काल शहद, क्षीर, एव घी से स्नान कराकर यथाशक्ति दान, अंधे तथा कृपणों को अन्न दक्षिणा प्रदान पूर्वक घोड़ों समेत उस रथ को सूर्य के लिए समर्पित करें। पश्चात् बंधुओं के साथ भोजन करके सूर्य को प्रणाम कर घर जायें। सदा व्रतों में श्रेष्ठ एवं मंत्र-धर्म युक्त इस व्रत को सूर्य व्रत कहते है, यह समस्त कामनाओं को सफल करता है। नृप ! समस्त व्रत, तथा समस्त यज्ञ के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, इस सूर्यव्रत द्वारा वे सभी पुण्य फल होते हैं।८-११। पुनः दशसहस्र सूर्य के समान प्रकाशित तथा समस्त कामना वाले उस विमान पर बैठकर अपनी इक्कीस, पीढ़ी परिवार के समेत वह सूर्य लोक के प्रतिष्ठित होता है इस प्रकार सौ सहस्र कल्प सभी लोकों के क्रमशः समस्त विपुल लोगों के उपभोग करने के पश्चात् पृथिवी का राजा होता है।१२-१३। सूर्य और संज्ञा की मूर्ति निर्माण करके उन्हें पाँच बलि, छह गृह जो सभी साधनों से सम्पन्न हो प्रदान करे। संज्ञा के समेत पिष्ट (आटे) से बने हुए उसको सूर्य को निवेदित करके सूर्य सम्बन्धी तत्त्व के ज्ञानार्थ आचार्य की पूजा करे गंध, पुष्प आदि वस्त्र चामर, आभूषण, तथा अधिक भक्ष्य पदार्थों समेत शय्या उन्हें अर्पित करें तो ऊनी एवं सूती वस्त्रों की सूत की संख्या के समान उतने सहस्र वर्ष सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।१४-१७। देवलोकों के सुखानुभव के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में वह धार्मिक राजा होता है । दशगायों के साथ एकवृष के रखने एवं इन्हीं के दान करने से इसे वृषैकादश (ग्यारह) के नाम से बताया गया है। सूर्य को इस का निवेदन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे सुनो ! राजन् बारहों सूर्यों के समान तेजस्वी एवं अणिमादि

द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिगुणैर्युतः । सर्वत्र मोदते राजन्सूर्यस्यानुचरो भवेत् ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यव्रतवर्णनं
नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६९।

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोदानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सवृषं गोशतं दत्त्वा भास्कराय नराधिप । त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥१
वरकोटिप्रतीकाशैः सर्वकामसमन्वितैः । महायानैरसङ्ख्येयैरमरासुरपूजितैः ॥२
द्वादशादित्यसंकाशो दिवाकर इवापरः । गत्वादित्यपुरं रम्यं क्रीडते सूर्यमण्डपे ॥३
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्प्रलये सर्वदेहिनाम् । मोहकञ्चुकमुत्सृज्य विशत्यादित्यमण्डले ॥४
सर्वज्ञः सूरपरमः शुद्धः स्वात्मन्यवस्थितः । सर्वगः परिपूर्णत्वात्सूर्यवद्दीप्तिमान्भवेत् ॥५
यो दद्यादुभयमुखीं सौरभेयीं दिवाकरे । सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
पादद्वयं शिरोऽर्धं च सशैलवनकानना ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
गोदानवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७०।

(ऋद्धियों) गुणों से संयुक्त तथा सर्वत्र सूर्य का अनुचर होकर आनन्दानुभव करता रहता है।१८-२०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प में सूर्य व्रत वर्णन नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१६९।

अध्याय १७०

गोदान वर्णन

सुमन्तु बोले—नराधिप ! वृष समेत सौ गोदान सूर्य के लिए प्रदान करने से इक्कीस पीढ़ी समेत जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, सुनो ! करोड़ों सूर्य के समान, समस्त कामना प्रदायक महाविमान पर बैठकर जिसकी पूजा अनेक देव एवं असुर गण करते हों, बारहों सूर्यों के समान तेज प्राप्त करके द्वितीय (सूर्य) की भाँति उत्तम सूर्य लोक में पहुँच कर सूर्य मन्दिर में क्रीड़ा करता है तथा विपुल भोगों के उपभोग के पश्चात् प्राणियो के प्रलय के समय मोहरूपी आवरण के त्याग पूर्वक सूर्य मंडल में प्रविष्ट हो जाता है ।१-४। एवं सर्वज्ञ, उत्तम सूर्य की भाँति शुद्ध, अध्यात्मज्ञानी, सर्वत्र गमन की शक्ति युक्त इस प्रकार परिपूर्ण होकर सूर्य के समान तेजस्वी होता है । जो सूर्य के लिए उभय मुख वाली सुरभी (गाय) प्रदान करता है, उसे दो पैर, आधा शीश, पर्वत एवं मण्डलों से युक्त पृथिवी के दान के समान (उसी रूप में) फल प्राप्त होता है ।५-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प का गोदान वर्णन नामक
एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७०।

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनम्

शतानीक उवाच

मगानां ब्रूहि मे धर्मं समासव्यासयोगतः । फलं च किं भवेद्ब्रह्मन्मगधर्मनिषेवणात् ॥१

सुमन्तुरुवाच

स एष धर्मः सूर्येति तवाख्यातो मयानघ । मगधर्मः स एवोक्तः सर्वपापभयापहः ॥२
सर्वेषामेव वर्णानां मगधर्मनिषेवणम् । मगधर्मश्च सम्प्रोक्त एतेषां भवमुक्तये ॥३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्री शूद्रो वा मगाश्रमी । यः पूजयति मार्तंडं स याति परमां गतिम् ॥४
त्रिसन्ध्यमर्चयेद्भानुमग्निकार्यं च शक्तितः । कुर्यान्मगो महाबाहो मुखमावृत्य यत्नतः ॥५
त्रिसन्ध्यमेककालं वा पूजयेच्छ्रद्धया रविम् । असम्पूज्य रविं मोहान्न भुञ्जीत कदाचन ॥६
एष धर्मः परो ज्ञेयः शेषो भवति मानवः । अपूजयित्वा भुञ्जानो विष्ठां भुङ्क्ते च वै मगः ॥७
देवं समाश्रितैः पूजा कर्तव्येयं त्रिभिः सदा । मनसा पूजयेद्योगी पुष्पैश्चारण्यसम्भवैः ॥८
देवार्थपुष्पहिंसायां न भवेत्तस्य हिंसकः । यद्यल्पमपि चात्मार्थं निहन्याद्धिंसकस्तदा ॥९
मगश्चाग्निपरो नित्यं तद्भक्तोऽतिथिपूजकः । मगी मैथुनवर्ज्यः स्याच्छ्रीमान्गृहमगाश्रमी ॥१०

अध्याय १७१

भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनम्

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! विस्तृत व्याख्या पूर्वक मगों के धर्म बताने की कृपा कीजिए । और यह भी मग के धर्माचरण करने से किस फल की प्राप्ति होती है ।१

सुमन्तु बोले—अनघ ! जिस सूर्य नामक धर्म को मैंने तुम्हें बताया है, समस्त पाप नाशक वही मग धर्म कहा जाता है ।२। इसीलिए सभी जाति वालों को मगधर्म का अनुसरण करना चाहिए ।३। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री अथवा शूद्र कोई भी, मगधर्म अपनाकर सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।४। महाबाहो ! मगों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक मुखाच्छन्न कर शक्त्यनुसार तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा एवं अग्निकार्य सम्पन्न करते रहें ।५। कारण वश तीनों समय में न हो सके तो वह एक ही काल में श्रद्धालु होकर अवश्य सूर्य की पूजा करें और सूर्य की पूजा बिना किये मोहवश कभी भोजन न करें ।६। इसे ही उत्तम धर्म समझें, क्योंकि इसका आचरण करने वाला 'मग' और शेष धर्म का पालन करने वाला 'मनुष्य' बताया गया है । सूर्य की पूजा बिना किये ही भोजन करने वाले मग को 'विष्ठा भोजन' करना बताया गया है ।७। अतः देव की यह पूजा तीनों काल में सदैव करनी चाहिए । योगी को चाहिए कि अत्यन्त मन लगाकर वन पुष्पों द्वारा उनकी पूजा करें ।८। देवता के लिए पुष्प संचय करने में वह उसका हिंसक नहीं कहा जा सकता है, यदि अपने लिए पुष्प के अंग को कुछ भी बिगाड़े तो वह निश्चित हिंसक कहा जायेगा ।९। मग को नित्य अग्नि होत्र करना चाहिए और उसके भक्तों को अतिथि

**देवाग्निस्वतिथौ भक्तं पचन्ते चात्मकारणात् । आत्मार्थे यः पचेन्मोहात्स मगो नरकं व्रजेत् ।।११
देवार्थे पचनं येषां सन्तानार्थं तु मैथुनम् । अर्थो दानार्थ उद्दिष्टो नरकं हि विपर्ययात् ।।१२
जीवत्तृतीयभागेऽपि न प्रकुर्वीत वार्चनम् । वित्तार्जने तदर्धेन यतो नित्यं हि जीवितम् ।।१३
न्यायोपार्जितवित्तः स्यादन्यायं परिवर्जयेत् । अन्यायार्जितवित्तैस्तु कुर्वन्नरकमाप्नुयात् ।।१४
वाचोऽर्थे ब्रह्मचारी यः सूर्यपूजाग्नितत्परः । भवेज्जितेन्द्रियः शान्तो नैष्ठिको भौतिकोऽपि वा ।।१५
सर्वगन्धविनिर्मुक्तः कन्दमूलफलाशनः । मम वैखानसो ज्ञेयः सूर्यपूजाग्नितत्परः ।।१६
निवृत्तः सङ्गमेभ्यस्तु सूर्यध्यानरतः सदा । ज्ञेयः सौरयतीन्द्राय पूजानिष्ठो जितेन्द्रियः ।।१७
मुण्डोपनयनो व्यङ्गी शुक्लवासः समन्वितः । ज्ञेयं तदर्चनस्थानमेतत्कार्यं प्रयत्नतः ।।१८
अथाव्यङ्गो महाराज धारयेद्यस्तु भोजकः । अगम्यं सर्वसत्त्वानां सूर्यलोकं स गच्छति ।।१९
ध्वंसनं सर्वदुष्टानां सर्वपापभयापहम् । भावशुद्धेन सततमर्चनीयो दिवाकरः ।।२०
गन्धलेपविहीनोऽपि भावशुद्धो न दुष्यति । भावेषु च चरेच्छौचं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।।२१
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं सत्यपूतं वचो वदेत् । सौरध्यानरताः शान्ताः सौरधर्मपरायणाः ।।२२
सर्व एवाश्रमा ज्ञेया भास्कराङ्गसमुद्भवाः । भोजकाष्टव्रतं धार्यं रविणोक्तमनौपमम् ।।२३**

पूजा । मग धर्मी को मैथुन वर्जित किया गया है श्रीमान् मगाश्रमी गृहस्थ, देव, अग्नि एवं अभ्यागत के निमित्त पाक बनाते हैं । जो मग केवल अपने लिए ही पाक बनाये, उसे नरक जाना पड़ता है ।१०-११। देवता के निमित्त पाक, संतानार्थ मैथुन औरदान करने के लिए जो अर्थसंचय करता है, उसी का कर्म प्रशस्त माना गया है । इसके विपरीत उक्त बातें करने से नरक गामी होना पड़ता है ।१२। अपनी आय के तिहाई भाग से जीविका निर्वाह करना चाहिए न कि उसमें देवार्चन भी । धनोपार्जन के समय उसके आधे भाग से भी जीविका निर्वाह करना अनुचित नहीं होता है क्योंकि जीवन तो नित्य का ही रहता है ।१३। न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करना चाहिए तथा, अनुचित रीति का त्याग । क्योंकि अन्याय पूर्ण ढंग से धनोपार्जन करने पर नरक की प्राप्ति होती है ।१४। विधान प्राप्ति के लिए जो ब्रह्मचारी रहकर सूर्य की पूजा एवं अग्नि होत्र करता है वह जितेन्द्रिय, शांत, नैष्ठिक, भौतिक होते हुए उस समस्त गंधों का त्याग और कन्दमूल फल भोजन करे, तो उसे मेरा 'वैरवानस' समझना चाहिए ।१५-१६। संगम से निवृत्ति पूर्वक सदैव सूर्य के ध्यान करने वाले को सूर्य पूजा निष्ठ एवं जितेन्द्रिय जानना चाहिए ।१७। मुंडन कराकर यज्ञोपवीत व्यंग, तथा शुक्लवस्त्र धारण करने वाला ही पूजा के योग्य होता है इसलिए उसे प्रयत्न पूर्वक उपर्युक्त आचरण करना चाहिए ।१८। महाराज ! इसके पश्चात् जो भोजक अम्यंग धारण करता है, वह सभी प्राणियों के लिए अगम्य उस सूर्य लोक की प्राप्ति करता है जो सभी दुष्टों एवं समस्त पापों का नाशक हैं। अतः शुद्ध भावना से निरन्तर सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।१९-२०। गंध तथा लेपन के न रहने पर भी शुद्ध भाव से की गई पूजा दूषित नहीं कही जा सकती है। क्योंकि यह बताया जाता है कि भाव की पवित्रता, वस्त्रपूत_जल का पान, दृष्टिपूत (पवित्र दृष्टि) (आँख से भली भाँति देखकर) पैर रखना (चलना) और सत्य पूत वाणी बोलना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। सूर्य का तन्मय ध्यान करते हुए शांत एवं सौर धर्म परायण होना चाहिए क्योंकि सभी आश्रम भास्कर के अंग से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निश्चित समझा जाता है भोजकों को 'अष्टव्रत' धारण करना चाहिए, इसलिये कि उस अनुपम धर्म को

सर्वव्रतानां परमं धर्मालयमनुत्तमम् । सौरभक्ते सदा क्षान्तिरहिंसा सर्वदा शमः ।।२४
सन्तोषः सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तथाष्टमम् । यथासम्भवपूजाभिः कर्मणा मनसा गिरा ।।२५
सौरभक्तिः सदा कार्या भोजकेषु विशेषतः । स्वदेहान्निर्विशेषं हि भोजकान्पालयेद्बुधः ।।२६
भयदारिद्र्यरोगेभ्यस्तेषां कुर्यात्प्रियाणि वै । सूर्यस्य परिपूर्णस्य किं नाम क्रियते नरैः ।।२७
यत्कृतं भोजकानां वै तत्कृतं स्याद्रवेर्नृप । सुदूरमपि गन्तव्यं मगानां यत्र वै गणः ।।२८
स च प्रयत्नाद्द्रष्टव्यस्तत्र सन्निहितो रविः । भोजकस्य तु भक्तस्य सूर्यपूजारतस्य च ।।२९
आज्ञां कृत्वा यथान्यायमश्वमेधफलं लभेत् । देवाश्रमगतो भक्त्या देवार्चां पूजयेन्नृप ।।३०
स्वागतासनपाद्यार्घ्यमधुपर्काद्यनुक्रमात् । भोजयित्वा यथान्यायं सूर्यलोके महीयते ।।३१
प्रतिश्रयप्रदानेन राजा भवति भारत । दत्त्वा स्थानं तथा शौचं वारुणं लोकमाप्नुयात् ।।३२
श्वेतबिन्दुपरीताङ्गं ध्यानश्रमविकर्शितम् । संवीज्य तालवृन्तेन वायुलोके महीयते ।।३३
क्षुत्पिपासातुरं श्रान्तं मलिनं रोगिणं तथा । पालयित्वा यथा शक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।३४
पतिताशस्तसङ्कीर्णचण्डालादीनां पक्षिणाम् । कारुण्यात्सर्वभूतानां देयमन्नं स्वशक्तितः ।।३५
अत्यल्पमपि कारुण्याद्दत्तं भवति चाक्षयम् । तस्मात्सर्वेषु भूतेषु देव कारुण्यमुच्यते ।।३६

स्वयं सूर्य ने ही बताया है ।२१-२३। यह (व्रत) सभी व्रतों से उत्तम, श्रेष्ठ तथा धर्मालय बताया गया है । सूर्य भक्त को सदैव क्षमता, अहिंसा, शान्ति, संतोष, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य आदि इन्हें अपनाते हुए मनसा, वाचा, तथा कर्मणा यथा शक्ति सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।२४-२५। सदैव सौर भक्ति करनी चाहिए, विशेषकर बुद्धिमानों को चाहिए कि अपनी शरीर के समान ही भोजकों का पालन पोषण करे ।२६। भयभीत, दरिद्र, एवं रोगी होते हुए भी उनके प्रिय कार्यों को सम्पन्न करते रहे क्योंकि सूर्य तो सभी भाँति परिपूर्ण हैं और उनके लिए मनुष्य कर ही क्या सकता है ।२७। नृप ! भोजक के लिए जो कुछ किया जाय उसे सूर्य के लिए ही किया गया समझना चाहिए यदि मगों का गण अत्यन्त दूरी पर रहता है तो भी वहाँ जाना चाहिए ।२८। प्रयत्न पूर्वक उनके दर्शन करना चाहिए क्योंकि वहाँ सूर्य सदैव सन्निहित रहते हैं ऐसा बताया गया है अतः भक्त एवं सूर्य पूजा में निमग्न भोजक की आज्ञा का पालन करने से अश्वमेध के फल प्राप्त होते हैं । इसलिए नृप देवता के आश्रम में जाकर भक्ति पूर्वक देव-पूजा करनी चाहिए ।२९-३०। (भोजन के लिए) सुस्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, और मधुपर्क आदि क्रमशः प्रदान करते हुए भोजन करायें तो उसकी सूर्य लोक में प्रतिष्ठा होती है ।३१। भारत ! उन्हें आश्रय प्रदान करने वाला राजा होता है, तथा उसी भाँति पवित्र स्थान प्रदान करने से वरुण लोक की प्राप्ति भी होती है श्रम पूर्वक ध्यान करने पर शरीर के समस्त अंगों से जल (पसीने) की बूँद झरने लगती है, उस समय ताड़ के व्यंजन (पंखे) झलने से वायुलोक का सम्मान प्राप्त होता है ।३२-३३। भूख-प्यास से आकुल, शांत, दीन-हीन, एवं रोगी का यथाशक्ति पालन करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं। पतित, अधम, धन-हीन, एवं चांडाल आदि या पक्षी, कोई भी हो, करुण भाव से सभी प्राणियों को शक्त्यनुसार अन्न प्रदान करना चाहिए।३४-३५। कारुणिक होकर थोड़ा भी प्रदान करना अक्षय होता है, इसलिए देव ! सभी प्राणियों के लिए अपने में दया का संचार करना आवश्यक होता है।३६। उसके अभाव में सर्वथा तृण, भूमि, अन्न,

अभावे तृणभूम्यन्नं पत्रं धनफलानि च । दत्त्वाऽऽगताय प्रणतः स्वर्गं याति प्रियेण वा ।।३७
न हीदृक्स्वर्गयानाय यथा लोके प्रियं वचः । इहामुत्र सुखं तेषां वाग्येषां मधुरा भवेत् ।।३८
अमृतस्यन्दिनीं वाचं चन्दनस्पर्शशीतलाम् । धर्माविरोधिनीमुक्त्वा सुखमक्षय्यमाप्नुयात् ।।३९
अलं दानेन राजेंद्र पूजयाध्यापनेन वा । इदंस्वर्गस्य सोपानमचलं यत्प्रियं वचः ।।४०
पूजाभिभाषणं दृष्टिः प्रत्येकं स्वर्गहेतवः । सम्पृच्छेदागतं भक्त्या कुशलं प्रश्नमादरात् ।।४१
गमने तस्य वक्तव्य पन्थानः सन्तु ते शिवाः । सुखं भवतु ते नित्यं सर्वकार्यकरं भृशम् ।।४२
आशीर्वादमिदं वाक्यं सर्वकालेषु सर्वदा । नमस्कारादिवाक्येषु स्वस्ति मङ्गलवादने ।।४३
शिवं भवतु ते नित्यं त ब्रूयात्सर्वकर्मसु । एवमादि च वाचारमनुष्ठाय सदाश्रमी ।।४४
अशेषपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते । सूर्यभक्ते तु या भक्तिः सद्भक्तैः क्रियते नरैः ।।
सूर्ये भक्तिसमा नित्यं भक्ते भक्तिरनुष्ठिता ।।४५
आक्रुष्टे ताडिते वापि यो नाक्रोशेन्न ताडयेत् । वाक्यादधिकृतः स्वस्थः स दुःखात्परिमुच्यते ।।४६
सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता । तस्मात्पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासु वै ।।४७
ज्ञानयोगतपो यस्य यज्ञदानानि सत्क्रिया । क्रोधनस्य वृथा यस्मात्तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत् ।।४८

पत्ते, धन, और फलों को प्रदान करना चाहिए क्योंकि असहाय के लिए नम्रता पूर्वक इन वस्तुओं के प्रदान करने एवं मधुर बोलने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३७। लोक में स्वर्ग यात्रा के लिए कोई ऐसी दूसरी सवारी नहीं है जैसी कि मधुरवाणी । क्योंकि जिसकी वाणी मधुर होती है, उन्हें लोक परलोक के सभी स्थानों में सुख प्राप्त होता है ।३८। अमृत की बूँद झरने वाली एवं चन्दन स्पर्श की भाँति शीतल करने वाली उस धर्मानुकूल वाणी बोलने से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है ।३९। अतः राजेन्द्र ! दान, पूजा एवं अध्यापन करना व्यर्थ है क्योंकि स्वर्ग गमन के लिए प्रिय वाणी बोलना ही निश्चल सोपान (सीढ़ी) है । पूजा में मधुर बोलना और मनमोहन देखना ये प्रत्येक स्वर्ग के हेतु बताये गये हैं अपने यहाँ (अतिथि आदि किसी के) आगमन पर भक्ति पूर्वक सादर कुशल प्रश्न और (उसके) जाते समय तुम्हारा मार्ग कल्याण प्रद हो तुम्हें नित्य सुखानुभव होता रहे एवं सभी कार्यों की भली भाँति सफलता हो इस भाँति कहे इसी प्रकार सभी समय नमस्कार आदि करने पर आशीर्वाद देना चाहिए । मांगलिक कार्य में 'स्वस्ति' तथा सभी कार्यों में नित्य कल्याण प्राप्ति होती रहे, इस प्रकार की बातें अनुष्ठान करने वाले के लिए आश्रम वालों को सदैव कहनी चाहिए ।४०-४४। इससे वह निखिल पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है । सद्भक्त पुरुषों को चाहिए कि सूर्य-भक्त की भक्ति करे क्योंकि भक्त में भक्ति भावना करने से वह सूर्य में भक्ति करने के समान माना जाता है ।४५। जो निन्दा करने पर निन्दा, और ताडना करने (मारने) पर मारता नहीं, है किन्तु (मधुर) वाणी द्वारा अपनी निर्भीकता प्रकट करता है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं हो सकता है ।४६। सभी तीर्थों की क्षमता आदरणीय वस्तु है, इसलिए सभी क्रियाओं में क्षमता के लिए प्रयत्न शील रहना चाहिए । ज्ञान योग रूपी तप एवं यज्ञदान रूप सत्क्रिया करते हुए यदि वह क्रुद्ध होता है तो उसके ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं अतः क्रोध का त्याग करना अत्यन्त आवश्यक होता है । कठोर वाणी, मर्मस्थल, अस्थि, प्राण एवं हृदय में दाह उत्पन्न करती है,

मर्मास्थिप्राणहृदयं निर्दहेदप्रियं वचः । न वाच्यो ह्यप्रियं तस्माद्भोजकेषु विशेषतः ।।४९
क्षमा दानं त्विषः सत्यं क्षमाहिंसार्कसम्भवाः । न शक्या विस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि ।।५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७१।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पुनः शृणु महाराज धर्ममादित्यसम्मतम् । सौरं प्रियं सदा सौरं पवित्रं पापनाशनम् ।।१
क्वचिद्गच्छन्यदा पश्येत्सूर्यार्चासम्प्रपूजनम् । यत्र पूजा ततो गच्छन्स सूर्यो नात्र संशयः ।।२
स्नाननैवेद्यवस्त्रैश्च नानालङ्कारभूषणैः । यथाविभवमाश्रित्य नमस्कारादिसंस्तवैः ।।३
दृष्ट्वायतनमाक्रम्य नमस्कृत्य रविं व्रजेत् । क्वचित्पथि नदीं शैलं गच्छमानं च भोजकम् ।।४
उपश्रुत्यावनिं गत्वा भोजकं पूजयेद्बुधः । रथाश्वगजयानेभ्यो ह्यवतीर्य मगान्नृप ।।
मगानां भोजनं भक्त्या शक्त्या दानं प्रकल्पयेत् ।।५
दशपूर्वान्दश परानात्मना सह भारत । समादाय व्रजेत्स्थानं रवेरमिततेजसः ।।६

इसलिए कठोर वाणी कभी न बोलना चाहिए विशेष कर भोजकों के सम्मान में । क्षमा, दान, कान्ति, सत्य एवं अहिंसा ये सभी सूर्य लोक से ही उत्पन्न हैं । बस ! यथाशक्ति इसकी व्याख्या कर चुका और इसका वर्णन मैं सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कर सकता ।४७-५०

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में भोजक भोजनानुष्ठान वर्णन नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७१।

अध्याय १७२

सौरधर्म वर्णन

सुमन्तु बोले—महाराज ! सूर्य सम्मत, सदैव सूर्य भक्तप्रिय, सौर, पवित्र, एवं पापनाशक उस धर्म को पुनः सुनो । यात्रा करते हुए कहीं सूर्य की पूजा होती हुई दिखाई पड़े तो वहाँ अवश्य जाना चाहिए क्योंकि वह सूर्य रूप है इसमें संदेह नहीं ।१-२। वहाँ मन्दिर में जाकर स्नान, नैवेद्य, वस्त्र, भाँति-भाँति के सौन्दर्यपूर्ण आभूषण, अपनी शक्ति के अनुसार इन सामग्रियों द्वारा उनकी पूजा, नमस्कार एवं स्तुति पाठ पूर्वक नमस्कार करके ही अन्यत्र आये । कहीं मार्ग में नदी, अथवा पर्वत की यात्रा करते हुए किसी भोजक को सुनकर बुद्धिमान् को चाहिए कि वहाँ जाकर दण्डवत् प्रणाम पूर्वक उसकी पूजा करें । नृप ! रथ, अश्व अथवा हाथी पर बैठकर मग प्रदेशों में जाकर भक्ति पूर्वक शक्त्यनुसार वहाँ दान करना चाहिए । भारत ! ऐसा करने से दश पूर्व और दश पर की पीढ़ियों के साथ उन्हें अमित तेजवाले सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।३-६। दैवपर्व, उत्सव, श्राद्ध अथवा किसी भी पुण्य दिन में विधानपूर्वक भानु

देवपर्वोत्सवे श्राद्धे पुण्येषु दिवसेषु च । भानुं सम्पूज्य विधिवद्भोजकान्भोजयेत्ततः ।।७
पितरः सर्वदेवानां सूर्यमाश्रित्य संस्थिताः । प्रीते सूर्ये तु ते सर्वे प्रीताः स्युर्नात्र संशयः ।।८
यदा च श्रद्धया युक्तं प्रसक्तं रविपूजनम् । भोजयेद्भोजकं भक्त्या श्राद्धेषु विधिवन्नृप ।।९
भोजकस्य महाराज दिवसेनापि यत्फलम् । न तच्छक्यमिदं तेन प्राप्तुं वर्षशतैरपि ।।१०
यः पश्यति प्रसन्नात्मा यो न द्वेष्टि न कांक्षति । शब्दादीनां तु सम्भोगं स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ।।११
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सूर्यभक्त्या समन्वितः । पाखण्डयोगमुक्तश्च स वै भोजक उच्यते ।।१२
सूर्यधर्माद्भवेज्ज्ञानं ज्ञानाद्वैराग्यसम्भवः । ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य सूर्ययोगः प्रवर्तते ।।१३
सूर्ययोगाच्च सर्वज्ञः परिपूर्णः सुनिर्वृतः । आत्मन्यवस्थितः शुद्धः सूर्यवद्दिवि मोदते ।।१४
सर्वेषामेव भूतानामुत्तमः पुरुषः स्मृतः । पुरुषेभ्यो द्विजः श्रेष्ठो द्विजेभ्यो ग्रन्थपारगः ।।१५
ग्रन्थिभ्यो वेदविद्वांसस्तेभ्यस्तत्त्वार्थचिन्तकाः । अर्थविद्यश्च ज्ञानार्थप्रतिबुद्धो विशिष्यते ।।१६
ज्ञानार्थकोटिकोटिभ्यो वरिष्ठा योगिनो मताः । योगिनां कोटिकोटिभ्यो भोजकश्चोत्तमो भवेत् ।।१७
योगज्ञा योगनिष्ठाश्च पितरो योगसम्भवाः । भोजिते भोजके सर्वे प्रीताः स्युस्ते न संशयः ।।१८
सर्वज्ञानतपोदानैः कृतैर्दत्तैश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते सर्वं विधिवद्भोज्य भोजकम् ।।१९
यश्च द्रव्यकलापात्मा दक्षिणा हविर्ऋत्विजः । ऋग्यजुः सामयोगैश्च देवयज्ञः प्रकीर्तितः ।।२०
ब्रह्मचर्यं तपो मौनं क्षान्तिराहारलाघवम् । इत्येतत्तपसां रूपं सुधीरं पञ्चलक्षणम् ।।२१

की पूजा करके पश्चात् भोजकों को भोजन कराये। क्योंकि पितृगण तथा समस्त देवगण सूर्य के ही आश्रित रहते हैं, अतः सूर्य के प्रसन्न होने पर वे सभी प्रसन्न होते हैं इसमें संदेह नहीं।७-८। नृप! श्रद्धालु होकर सूर्य पूजन में अनुरक्त भोजक को श्राद्ध में भक्ति पूर्वक भोजन कराये तो महाराज! उस भोजक के भोजन करने से उसे उस दिन जितने फल की प्राप्ति होती है, वे फल अन्य द्वारा उसे सैकड़ों वर्षों में भी नहीं प्राप्त हो सकते।९-१०। जो प्रसन्न रहकर देखता सुनता है, न द्वेष करता है और न विषयों की अभिलाषा ही करता है वही जितेन्द्रिय है। ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर सूर्य भक्ति करने वाला यदि पाखंडी न हो तो उसे भोजक कहा जाता है।११-१२। सूर्य धर्मानुष्ठान करने से ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञान से वैराग्य और ज्ञान वैराग्य से युक्त होने पर वह सूर्य योग (संयुक्त) कहा जाता है। पुनः सूर्य योग से सर्वज्ञ, परिपूर्ण, भलीभाँति निर्वृत एवं आत्मा में अवस्थित होकर वह शुद्ध सूर्य की भाँति स्वर्ग में आनन्द का उपभोग करता है।१३-१४। सभी प्राणियों में पुरुष उत्तम बताये गये हैं, पुरुषों में द्विज श्रेष्ठ, द्विजों में शास्त्रनिष्णात, शास्त्रियों में वेदविद् उनसे तत्त्व की चिंता करने वाले और उनसे उद्बोधक ज्ञानी विशिष्ट होते हैं। करोड़ों ज्ञानियों से योगी, और करोड़ों योगियों से भोजक उत्तम होते हैं। ऐसा कहा गया है।१५-१७। योग-ज्ञानी, तथा योगनिष्ठ पितर योग से ही उत्पन्न होते हैं और भोजक के भोजन कराने पर प्रसन्न होते हैं इसमें संदेह नहीं।१८। समस्त ज्ञान, एवं तप करने अथवा देने से जिस फल की प्राप्ति होती है,वह समस्त फल विधिवत् भोजक को भोजन कराने से प्राप्त होता है।१९। जिसमें यज्ञ, अनेक उपायों द्वारा द्रव्य, व्यय, दक्षिणा, हवि, ऋत्विक, ऋग, यजु एवं सामवेदों के संबध स्थापित हों वह देवयज्ञ कहा जाता है। ब्रह्मचर्य, तप, मौन, शान्ति, अल्पाहार, तप का यही धीर गम्भीर पाँच लक्षण बताया गया

यच्च दिष्टं विशिष्टं च न्यायप्राप्तं च यद्भवेत् । तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ।।२२
विवर्धनीं सहस्राणां सर्वसस्यप्ररोहिणीम् । दद्याद्भूमिं जलोपेतां भूमिदानं तदुच्यते ।।२३
एकच्छत्रां महींकृत्वा द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत् । सम्पूर्णां पर्वतारण्यैर्भूमिदानं तदुच्यते ।।२४
कन्यामलङ्कृतां दद्याद्धनाय नराधिप । द्विजाय वेदविदुषे कन्यादानं तदुच्यते ।।२५
सर्वदोषविनिर्मुक्तां कुलयोग्यामलङ्कृताम् । मध्यमोत्तमवस्त्राणां यो दद्यादहतानि च ।।२६
एतत्समासतो ज्ञेयं वस्त्रदानस्य लक्षणम् । ब्रह्मविष्णुसमाधिक्यकान्तिशीलपरायणः ।।
अहोरात्रं न भुञ्जीत ह्युपवासस्य लक्षणम् ।।२७
चत्वारिंशत्समायुक्तं पिण्डानां हि शतद्वयम् । मासे ह्यद्याद्यथाकाममिदं चान्द्रायणं स्मृतम् ।।२८
ऋषिभिः सर्वशास्त्रज्ञैस्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियैः । देवैश्च सेवितं तोयं क्षितौ तत्तीर्थमुच्यते ।।२९
सूर्यावान्तरस्थानानि पुण्यक्षेत्राणि निर्दिशेत् । मृतानां तेषु सूर्यत्वं सौरक्षेत्रेषु देहिनाम् ।।३०
दानान्यावसथं कुर्यादुद्यानं देवतागृहम् । तीर्थेष्वेतानि यः कुर्यात्सोऽक्षयं लभते फलम् ।।३१
शान्तिः स्पृहा तथा सत्यं दानं शीलं तपः श्रुतम् । एतदष्टाङ्गमुद्दिष्टं परं पात्रस्य लक्षणम् ।।३२
यज्ञोपवासदानानि तपस्तीर्थफलानि च । सम्पूर्णं लभते भक्त्या भोजयित्वा तु भोजकान् ।।३३
सूरे भक्तिः क्षमा सत्यं दशेन्द्रियविनिग्रहः । सुखितेषु च मैत्री च सूर्यधर्मस्य लक्षणम् ।।३४
सूर्यभक्तं द्विजं भक्त्या यः श्राद्धेषु च भोजयेत् । कुलसप्तकमुद्धृत्य सूर्यलोके महीयते ।।३५

है ।२०-२१। जिसके लिए जो समय निश्चित हो, जिसका जो विशिष्ट ज्ञाता हो और जो समय न्याय प्राप्त हो, उसी समय उसी विद्वान् को वही वस्तु प्रदान करनी चाहिए, यही दान का लक्षण है । सहस्रों को भोजन द्वारा बढ़ाने वाली, सभी प्रकार अन्न पैदा करने वाली और जलयुक्त भूमि का दान करना 'भूमिदान' कहलाता है ।२२-२३। तथा पर्वत, जंगल आदि समस्त पृथ्वी को एक छत्र करके द्विजों को प्रदान करना भूमि दान बताया गया है । नराधिप ! आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत हुई कन्या को वेदविद्वान् किसी निर्धन ब्राह्मण को देना चाहिए क्योंकि इसे ही कन्यादान बताया गया है । कन्या भी, सभी दोषों से मुक्त अपने कुल के योग्य और अलंकृत होनी चाहिए । किसी भाँति का मध्यम एवं उत्तम वस्त्र नवीन होने से दान के योग्य होता है, यही दान वस्त्र दान कहा गया है । दिन-रात भोजन न करने पर भी ब्रह्मा, तथा विष्णु से भी अधिक कांति पूर्ण रहे तो वही उपवास का लक्षण बताया गया है ।२४-२७। दो सौ चालीस पिंड दान मास में इच्छानुसार भक्षण करे, इसे चान्द्रायण व्रत कहते हैं । समस्त शास्त्र ज्ञाता, तपोनिष्ठ, जितेन्द्रिय, इस प्रकार के ऋषियों और देवों से संसेवित पृथिवी के जल को तीर्थ बताया गया है ।२८-२९। सूर्य के अवान्तर स्थान को पुण्य क्षेत्र बताया गया है । उस सौर क्षेत्र में मरण प्राप्त होने से उसे सूर्य सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है ।३०। गृह बनाकर उसमें देव प्रतिष्ठा करके बगीचे समेत उस तीर्थ में जो दान देता है, उसे अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।३१। शान्ति, स्पृष्टा (इच्छा), सत्य, दान, शील, तप, अध्ययन यही अष्टांग युक्त उत्तम पात्र होने का लक्षण है । यज्ञ, उपवास, दान, तप तथा तीर्थ के फल ये सभी फल भक्ति पूर्वक भोजक को भोजन कराने से प्राप्त होते हैं ।३२-३३। सूर्य भक्ति, क्षमा, सत्य, दशों इन्द्रियों का संयम, सुखी लोगों मे मित्रता, यही सूर्य धर्म का लक्षण है । जो श्राद्धों भक्ति पूर्वक सूर्य भक्त को भोजन

बहुनात्र किमुक्तेन सूर्यभक्तं तु भोजयेत् । सूर्यभक्तेन यद् भुक्तं भानुनात्माश्रयं नृप ।।३६
न वेदविदुषां कोट्या लभ्यते चेह तत्फलम् । तत्फलं लभते राजन्भोजं भोज्य विधानतः ।।३७
तस्माच्छ्राद्धे विशेषेण पुण्येषु दिवसेषु च । सूर्यमुद्दिश्य विप्रेन्द्र भोज लभोजयेन्नृप ।।३८
असंयतः संयतो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यश्चासौ रविभक्तः स्यात्सूर्यवत्पूज्य एव हि ।।३९
संसर्गादपि वा लोभाद्भोजकं यस्तु भोजयेत् । सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि ।।४०
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च रक्षणीयश्च सर्वदा । भोजकः कुरुशार्दूल सौरेण गतिमिच्छता ।।४१
नाममात्रप्रयत्नोऽपि यदि स्याद्भोजको रवेः । सूर्यवत्स हि द्रष्टव्यः पूजनीयश्च भारत ।।४२
गृहे श्राद्धस्य यत्पुण्यमरण्ये तच्छताधिकम् । सौराश्रमेषु विज्ञेयं तत्पुण्यमयुताधिकम् ।।४३
दत्त्वा तु भोजके सौम्य ह्यासनं सपरिच्छदम् । धातुदन्तमयं चापि राजा भवति भूतले ।।४४
विमले वाससी दत्त्वा भोजकाय महीपते । उद्धृत्य शतसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ।।४५
दत्त्वा तु लोमशां राजन्भोजकाय शुभां बृहत् । रोम्णि रोम्णि सुवर्णस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ।।४६
शङ्खं ददाति यो भक्त्या तथा दिव्ये च पादुके । सूर्यलोकमवाप्नोति तेजसा रविसन्निभः ।।४७
लिखापयति यो भक्त्या पुराणेन तु पुस्तकम् । युगकोटिशतं दिव्यं सूर्यलोके महीयते ।।४८
भवेदिहागतः श्रीमान्सुखाढ्यो वेदपारगः । यः करोति गृहं भानोस्तत्स्थानं चोत्तमं भवेत् ।।४९

कराते हैं, वे अपने सात पीढ़ी के परिवार समेत सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त करते हैं।३४-३५। नृप ! अधिक क्या कहा जाय सूर्य भक्त जो कुछ भोजन करता है, वही सूर्य का आश्रय होता है।३६। राजन् ! करोड़ों पूज्य विद्वानों से उस फल की प्राप्ति नहीं होती है जिसकी प्राप्ति विधान पूर्वक भोजक को भोजन कराने से होती है।३७। दिप्रेन्द्र ! इसलिए श्राद्धों पर विशेष पुण्य दिनों में सूर्य के उद्देश्य से भोजक को भोजन कराना चाहिए।३८। वह संयमी असंयमी किसी भी दशा में क्यों न हो, सूर्य भक्त होने से वह सूर्य के समान ही पूज्य है।३९। संसर्ग या लोभवश जो भोजक को भोजन कराता है, उसे जिस गति की प्राप्ति होती है, वह उसे सैकड़ों यज्ञों द्वारा दुर्लभ है। कुरुशार्दूल ! इस लिए उसके लिए मान्य, पूज्य, एवं सदैव रक्षणीय, भोजक हैं, जो सूर्य से अपने उत्तम गति प्राप्त करने का इच्छुक है। भारत ! नाम मात्र का प्रयत्न करने वाला भी यदि भोजक है तो वह सूर्य के समान आदरणीय एवं पूज्य हैं। घर में श्राद्ध करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उससे अधिक अरण्य में और सौर के आश्रमों में भक्ति करने से वे ही पुण्य दश सहस्र गुने अधिक हो जाता है। भोजक के लिए धातु या गजदन्त की शय्या सभी साधनों समेत देने से वह इस भूतल में राजा होता है।४०-४४। महीपते ! उत्तम युगल वस्त्र भोजक को प्रदान करने से सौ सहस्र कुल के उद्धार पूर्वक वह सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।४५। राजन् ! भोजक के लिए लम्बे चौड़े ऊनी (कम्बल आदि) वस्त्र प्रदान करने से उसके प्रत्येक लोम से सुवर्ण दान के फल प्राप्त होते हैं।४६। जो उन्हें भक्ति पूर्वक शंख, तथा दिव्य पादुका प्रदान करता है, सूर्य के समान तेज पूर्ण होकर वह सूर्य लोक प्राप्त करता है।४७। जो भक्तिपूर्वक पुराणों द्वारा पुस्तक लेखन कराता है, सौ करोड़ युग पर्यंत वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है।४८। जो सूर्य के लिए उत्तम स्थान (गृह) की कल्पना करता है, वह यहाँ आकर श्रीमान् सुखी और वेद निष्णात विद्वान् होता है। भोजक सूर्य है और सूर्य ही भोजक हैं,

तत्सूर्यो भोजकः सोऽत्र भोजकः सूर्य एव हि । तेन भोजकविप्रेषु दानमक्षय्यमित्यपि ।।५०
यद्यद्यस्योपयुज्येत देयं तत्तस्य यत्नतः । उपयोगपरो नित्यं सूर्यस्तदुभयोरपि ।।५१
व्याख्याने सौरधर्मस्य कृत्वा आमलकं महत् । शोभितं पुष्पपत्राद्यैर्न्यसेत्तत्रासने सुराः ।।५२
शोभित माल्यगन्धैस्तु सूर्यस्य साधन महत् । पुरस्तात्तस्य संस्थाप्य आचार्यं पूजयेत्सदा ।।
सूर्ये तत्सौरधर्मे च तुल्यमेतद्द्वयं वचः ।।५३
य एवं न्यायतो वक्ति सौरधर्मं शृणोति च । आयुर्विद्यां यशः कीर्तिमुपलभ्य रविं व्रजेत् ।।
वदन्त्यन्ये पिबन्त्यन्ये सर्वे ते फलभागिनः ।।५४
तस्मादेवं विधो धर्मो वाचकश्च विदुर्बुधाः । तस्यान्ते पूजयेद्भक्त्या य इच्छेद्विपुलं यशः ।।५५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७२।

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनर्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र सौरं धर्ममनुत्तमम् । समासात्कथितं ब्रह्मन्विस्तरेण प्रकीर्तय ।।१

इसलिए भोजक ब्राह्मण में दिया गया दान अक्षय होता है ।४९-५०। जिस-जिस की आवश्यकता होती है, उसे अवश्य देना चाहिए, क्योंकि सूर्य दोनों ओर नित्य सहायक रहते हैं । सौर धर्म की व्याख्या होते समय पुष्प एवं पत्रों से सुशोभित तथा सौन्दर्य पूर्व दर्पण उस आसन पर रखना चाहिए ।५१-५२। सूर्य के महान साधन रूप आचार्य को उनके सामने आसनासीन कर गंधमालाओं द्वारा उन्हें सुशोभित करते हुए सदैव उनकी पूजा करे। सूर्य के समान सौर धर्म में भी दोनों बातों का समान रूप से पालन करना चाहिए ।५३। इस प्रकार जो न्यायपूर्वक वाणी-व्यवहार से सौर धर्म का श्रवण करता है, उसे आयु, विद्या, यश, तथा (कीर्ति की प्राप्ति पूर्वक सूर्य की साक्षात् प्राप्ति होती है । जो केवल सत्य का ही पालन करते हैं, अथवा सौर धर्म का अमृत पान ही करते हैं, उन सभी को वे फल प्राप्त होते है । अतः इस प्रकार के धर्म वाचकों द्वारा बुद्धिमानों को (ये सभी बातें) जान लेना परमावश्यक होता है । विपुल यश की कामना वाले को चाहिए कि उनकी पूजा के अन्त में आचार्य वाचक, की पूजा अवश्य करें ।५४-५५

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक
एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७२।

अध्याय १७३

सौरधर्म वर्णन

शतानीक बोले—विप्रेन्द्र ! आप पुनः उस सौर धर्म का वर्णन कीजिए, क्योंकि आप ने उसकी व्याख्या संक्षेप में की है, अतः मैं अब उसे विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ।१

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि भारत। त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्सौरः पार्थिवसत्तम ॥२
कीर्तयाम्यद्य तं पुण्यं संवादं पापनाशनम्। गरुडारुणयो राजन्पुरावृत्तं नराधिप ॥३
सुखासीनं पुरा राजन्नरुणं सूर्यसारथिम्। उपगम्य महाबाहो गरुडो वाक्यमब्रवीत् ॥४
धर्माणामुत्तमं धर्मं सर्वपापप्रणाशनम्। सौरधर्मं खगश्रेष्ठ ब्रूहि मे कृत्स्नशोऽनघ ॥५

अरुण उवाच

साधु वत्स महात्मासि धन्यस्त्वं पापवर्जितः। श्रोतुकामोऽसि यत्पुत्र सौरधर्ममनुत्तमम् ॥६
शृणु त्वं कीर्तयाम्येष सुखोपायं महत्फलम्। परमं सर्वधर्माणां सौरधर्ममनुत्तमम् ॥७
अज्ञानार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामयम्। सौरधर्मो ह्ययं श्रीमान्परतीरप्रदो यतः ॥८
ये स्मरन्ति रविं भक्त्या कीर्तयन्ति च ये खग। पूजयन्ति च ये नित्यं ते गताः परमं पदम् ॥९
आत्मद्रोहः कृतस्तेन जातेनेह खगाधिप। नार्चितो येन देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥१०
सुचिरं सम्भ्रमत्यस्मिन्दुःखदे च भवार्णवे। जराभूतमहाग्राहे तृष्णावेलाकुलम्परे ॥११
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य येऽर्चयन्ति दिवाकरम्। तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः ॥१२
सूर्यभक्तिपरा ये च ये च तद्गतमानसाः। ये स्मरन्ति सदा सूर्यं न ते दुःखस्य भागिनः ॥१३

सुमन्तु बोले—महाबाहो! साधु, साधु! भारत! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, अतः पार्थिव सत्तम! इस लोक में तुम्हारे समान कोई सूर्य भक्त नहीं है।२। राजन्! प्राचीन काल में गरुड़ और अरुण के किये गये पुण्य एवं पाप नाशक संवाद को मैं बता रहा हूँ।। नराधिप! पहले समय में एक बार सूर्य के सारथी अरुण सुख पूर्वक बैठे हुए थे, महाबाहो! वहाँ आकर गरुड ने यह कहा हे खगश्रेष्ठ, अनघ! सभी धर्मों में उत्तम तथा समस्त पाप के नाश करने वाले उस सौर धर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन (मुझसे) कीजिए।३-५

अरुण बोले—वत्स, साधु (बहुत उत्तम) तू महात्मा है, धन्य है, तथा पाप मुक्त है। क्योंकि पुत्र! उत्तम सौर धर्म के सुनने की तुम्हारी इच्छा है।६। यह (सौर धर्म) सुख साध्य, एवं महान् फल दायक है अतः सभी धर्मों में परमोत्तम इस सौर धर्म को मैं बता रहा हूँ, सुनो! अज्ञान रूपी समुद्रों में डूबने वाले सभी प्राणियों को उस पार पहुँचाने वाला यही श्रीमान् सौर धर्म ही है।७-८। खग! भक्ति पूर्वक जो नित्य सूर्य का ध्यान पूजा एवं कीर्तन करते हैं, उन्हें परम पद की प्राप्ति होती है।९। खगाधिप! जिसने देवनायक, तथा सहस्र किरण वाले सूर्य का अर्चन नहीं किया, इस लोक में जन्म ग्रहण कर उसने मानों अपने आत्मा का हनन किया है।१०। जरा (बुढ़ाई) रूप महाग्राह (मगर), तृष्णा एवं आकुलता रूप तट वाले इस दुःख दायी संसार सागर में चिरकाल से डूबते उतराते हुए इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जो सूर्य की पूजा करते हैं, उन्हीं का जन्म सफल माना जाता है, क्योंकि वे ही श्रेष्ठ पुरुष कृतार्थ होते हैं।११-१२। सूर्य की भक्ति में निमग्न होकर जो सदैव सूर्य का ध्यान एवं पूजा करते हैं वे कभी भी दुःख का अनुभव नहीं करते हैं।१३। अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत जो भाँति-भाँति की मनमोहक रूप रंग

विविधानि मनोज्ञानि विविधाभरणाः स्त्रियः । धनं वा दृष्टपर्यन्तं सूर्यपूजाविधेः फलम् ।।१४
ये वाञ्छन्ति महाभोगान्राज्यं वा त्रिदशालये । सौभाग्यं कान्तिमतुलां भोगं त्यागं यशः श्रियम् ।।१५
सौन्दर्यं जगतः ख्यातिः कीर्तिर्धर्मादयः स्मृताः । फलान्येतानि वै पुत्र सूर्यभक्तिविधेर्बुध ।।१६
तस्मात्सम्पूजयेत्सूर्यं सर्वदेवगणार्चितम् । दुर्लभा भास्करे भक्तिर्दुर्लभं च तदर्चनम् ।।१७
दानं च दुर्लभं तस्मै तद्धोमश्च सुदुर्लभः । दुर्लभं तस्य विज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ।।१८
सुदुर्लभतरं ज्ञेयं तदाराधनमुत्तमम् । लाभस्तेषां मनुष्याणां ये रविं शरणं गताः ।।१९
येषामिहेश्वरे भानौ नित्यं सूर्ये गतं मनः । नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम् ।।२०
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् । य एवं पूजयेद्भानुं श्रद्धया परयान्वितः ।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स नरो नात्र संशयः ।।२१
डाकिन्यो विविधाकारा राक्षसाः सपिशाचकाः । न तस्य पीडां कुर्वंति तथान्याश्च विभीषणाः ।।२२
शत्रवो नाशमायान्ति सङ्ग्रामे जयमाप्नुयात् । न रोगैः पीड्यते वीर आपदो न स्पृशन्ति तम् ।।२३
धनमायुर्यशो विद्या प्रभवोह्यतुलं तथा । शुभेनोपचयं यान्ति नित्यं पूर्णमनोरथाः ।।२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे गरुडसंवादे सौरधर्मवर्णनं
नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।१७३।

वाली स्त्रियाँ और महत्वपूर्ण धन संसार में दिखायी देते हैं, ये सभी विधान पूर्वक की गई सूर्य पूजा के दृष्टफल हैं।१४। जो लोक देवलोक के महान् भोगों के उपभोग, राज्य, सौभाग्य, असाधारण शोभा, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, विश्व की ख्याति कीर्ति, एवं धर्म आदि की अभिलाषा करते हैं, ज्ञानी पुत्र ये सभी विधान पूर्वक की हुई भक्ति के फल हैं।१५-१६। इसलिए समस्त देवगणों के पूज्य सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए क्योंकि सूर्य की भक्ति एवं उनकी पूजा अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है।१७। उनके लिए दान करना भी दुर्लभ है, तथा उनके लिए हवन करना तो और भी दुर्लभ है और उनका विज्ञान एवं अभ्यास भी दुर्लभ है।१८। उनकी उत्तम आराधना तो अत्यन्त दुर्लभ है जिसने मनुष्यों को सूर्य की शरण प्राप्त है, वही उन लोगों का लाभ है।१९। जिन लोगों के मन नमस्कारादि पूर्वक किरण वाले, उस ईश्वर सूर्य में लीन है, और जिह्वा के अग्रभाग पर सदैव रबि यह दो अक्षर वर्तमान रहता है, उन्हीं का जीवन सफल है। इस प्रकार जो अत्यन्त श्रद्धालु होकर सूर्य की पूजा करता है, वह मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें संदेह नहीं डाकिनी, भाँति-भाँति के आकार वाले राक्षस तथा पिशाच गण उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते हैं। एवं अन्य भीषण शरीर वाले भी पीड़ा नहीं कर पाते संग्राम में शत्रुओं के नाश पूर्वक विजय प्राप्त होती है, वीर ! रोग की पीड़ा एवं आपत्तियाँ उसका स्पर्श तक नहीं कर सकती हैं। और धन, आयु, यश, विद्या, असाधारण प्रभाव ये सभी उस शुभ कर्म द्वारा प्राप्त होते हैं तथा नित्य मनोरथों की सफलता भी प्राप्त होती है।२०-२४

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के गरुडारुण संवाद में सौर धर्म वर्णन
नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७३।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तुतिवर्णनम्

अरुण उवाच

पूजयित्वा रविं भक्त्या ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः । विष्णुत्वं चापि देवेशो विष्णुराप तदर्चनात् ॥१
शङ्करोऽपि जगन्नाथः पूजयित्वा दिवाकरम् । महादेवत्वमगमत्तत्प्रसादात्खगाधिप ॥२
सहस्राक्षोऽपि देवेश इन्द्रो भानुं तमोऽपहम् । इन्द्रत्वमगमद्देवं पूजयित्वा दिवाकरम् ॥३
मातरो देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । पूजयन्ति सदा भानुमीशानं सुरनायकम् ॥४
सर्वमेतज्जगन्नित्यं भानौ देवे प्रतिष्ठितम् । तस्मात्सम्पूजयेद्भानुं य इच्छेत्स्वर्गमक्षयम् ॥५
यो न पूजयते सूर्यं भास्करं तमसूदनम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां न नरो भाजनं भवेत् ॥६
तस्मात्कार्यं हि तद्ध्यानं यावज्जीवं प्रतिज्ञया । अर्चयेत सदा भानुमापन्नोऽपि सदा खग ॥७
यस्तु सन्तिष्ठते नित्यं विना सूर्यस्य पूजनात् । वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ च्छेदनम् ॥८
सूर्यं सम्पूज्य भुञ्जीत त्रिदशेशं दिवाकरम् । इत्थं निर्वहते यस्य यावज्जीवं तदर्चनम् ॥
मनुष्यचर्मणा नद्धः स रविर्नात्र संशयः ॥९
न हि अर्कार्चनादन्यत्पुण्यमप्यधिकं भवेत् । इति विज्ञाय यत्नेन पूजयस्व दिवाकरम् ॥१०

अध्याय १७४

सूर्यस्तुति वर्णन

अरुण बोले—सूर्य की पूजा करके ब्रह्मा ब्रह्मत्व, तथा देव नायक विष्णु ने विष्णुत्व धर्म की प्राप्ति की है।१। खगाधिप ! जगत् के स्वामी शंकर ने सूर्य कीही पूजा करके उनकी प्रसन्नता वश महादेवत्व धर्म की प्राप्ति की है।२। तथा सहस्र आँख वाले देवेश इन्द्र ने भी अन्धकार के नाशक सूर्य की पूजा करके इन्द्रत्व की प्राप्ति की है। इस प्रकार मातृकाएँ, देव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, एवं राक्षस लोग ईशान तथा सुराधिपति सूर्य की सदैव पूजा करते हैं।३-४। यह समस्त विश्व सूर्य देव में नित्य स्थित हैं, अतः स्वर्ग के इच्छुकों को चाहिए की सूर्य की पूजा अवश्य करें।५। जो तमनाशक भास्कर सूर्य की पूजा नहीं करता है, वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का अधिकारी कभी नहीं हो सकता।६। खग ! इसलिए समस्त जीवन में प्रतिज्ञाबद्ध होकर उनका ध्यान करना चाहिए तथा आपत्तिकाल में भी सदैव उनकी पूजा करें।७। जो सूर्य की पूजा बिना किये समय व्यतीत करता है शिर काटने के द्वारा अथवा यों ही प्राण त्याग करना उससे कहीं अच्छा है।८। देवेश दिवाकर की पूजा करके जो भोजन करता है और इसी प्रकार उनकी पूजा में यदि समस्त जीवन निभाता है तो मनुष्य नहीं प्रत्युत मनुष्य के चमड़े से बंधा हुआ सूर्य है, इसमें संदेह नहीं।९। सूर्य की पूजा करने के अतिरिक्त किसी भी द्वारा अधिक पुण्य प्राप्त नही हो सकता है, ऐसा समझकर सूर्य की पूजा अवश्य करो। नित्य सूर्य की पूजा करने वाले एवं संयमी सूर्य भक्त के आने पर धर्म सम्पन्न होते हैं क्योंकि धर्म आदि को वे ही सिद्ध करते हैं।१०-११। सभी प्रकार के द्वन्द्व दुःखों का सहन करने वाले,

सूर्यभक्तागमाश्चैव सूर्यार्चनपरायणाः । संयता धर्मसम्पन्ना धर्मादीन्साधयन्ति ते ।।११
सर्वद्वन्द्वसहा वीरा नीतिविध्युक्तचेतसः । परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।।१२
अमानिनो बुद्धिमन्तोऽव्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः । शान्ता स्वान्तगताः भद्रा नित्यं स्वागतवादिनः ।।१३
स्वल्पवाचः सुमनसः शूराः शास्त्रविशारदाः । शौचाचारसुसम्पन्ना दयादाक्षिण्यगोचराः ।।१४
दम्भमत्सरनिर्मुक्तास्तृष्णालोभविवर्जिताः । संविभागपराः प्रोक्ता न शठाश्चाप्यकुत्सिताः ।।१५
विषयेष्वपि निर्लेपाः पद्मपत्रमिवाम्भसा । न दीना मानिनश्चैव न च रोगवशानुगाः ।।१६
भवन्ति भावितात्मानः सुस्निग्धाः साधुसेविताः । न पाणिपादवाक्चक्षुः श्रोत्रशिश्नोदरे रताः ।।१७
चपलानि न कुर्वन्ति सर्वव्यासङ्गवर्जिताः । सूर्यासनरताः शान्ताः षडक्षरमनोगताः ।।१८
इत्याचारसमायुक्ता भवन्ति भुवि मानवाः । एकान्तभक्तिमास्थाय धर्मकामार्थसिद्धये ।।१९
पूजनीयो रविर्नित्यं गुणेष्वेतेषु वर्तते । सर्वेषामेव पात्राणामतिपात्रं दिवाकरः ।।
पतन्तं त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात् ।।२०
तस्य पात्रातिपात्रस्य माहात्म्यं दानमण्वपि । अनेन फलमादिष्टमिहलोके परत्र च ।।२१
द्रव्येणापि हि यः कुर्यान्नरः कर्म तदालये । सोऽपि देहक्षये ज्ञानं प्राप्य शान्तिमवाप्नुयात् ।।२२
सर्वद्विजकदम्बेषु कश्चिज्ज्ञानमवाप्नुयात् । कश्चिदेतत्तु मे दिव्यं लब्ध्वा ज्ञानं विमुञ्चति ।।२३
तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकपरिप्लुताः । न भवन्ति रवेर्भक्ता यावत्सर्वेऽपि देहिनः ।।२४

वीर,नीतिविधान के अनुसरण करने वाले, परोपकारी, गुरु की सेवा करने वाले, मान हीन, बुद्धिमान् कोध काम के अतिरिक्त किसी से भी स्पर्धा न करने वाले, शान्ति, आत्मा में रमण करने वाले, कल्याण मूर्ति, नित्य सुस्वागत कहने वाले, सत्यवादी, शुद्धचित्तवाले, शूर शास्त्र कुशल, पवित्रता एवं प्रचार से सुसम्पन्न, दया, दाक्षिण्य (चातुर्य) पूर्ण, दंभ मत्सर हीन, तृष्णा लोभ के त्यागी, शठता हीन अनिन्दित, जल में कमल पत्र की भाँति विषयों से निर्लिप्त, दीन एवं मान रहित, और आरोग्य एवं साधुओं के संसर्ग में रहकर कोमल चित्त एवं उदार प्रकृति के वे हो जाते हैं। पुनः कभी भी हाथ, पैर, वाणी, आँखें, कानों, तथा शिश्न एवं पेट के लिए अनुरक्त नहीं होते हैं।१२-१७। इतर सभी लोगों के संपर्क से दूर रहते हैं एवं चंचलता नहीं करते किन्तु सूर्य के आसन में अनुरक्त रहकर शांत तथा षडक्षर का जप किया करते हैं।१८। धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता के लिए सूर्य की एकांत भक्ति करने वाले इस प्रकार के आचार सम्पन्न मनुष्य इस भूतल में होते रहते हैं।१९। पूज्य सूर्य में ये सभी गुण सदैव वर्तमान रहते हैं क्योंकि सभी पात्रों से सूर्य उत्तम पात्र बताये गये हैं। गिरे हुए नरक सागर से जो भली भाँति निकाल कर बचा ले वही अतिपात्र कहा जाता है। उस अतिपात्र सूर्य के माहात्म्य का दान लेश मात्र भी किया जाये तो उसी द्वारा ये समस्त फल लोक परलोक में प्राप्त होते रहते है। जो उनके मन्दिर में द्रव्य द्वारा कर्म करता रहता है, उसे मरणानन्तर ज्ञान एवं शांति प्राप्त होती है।२०-२२। सभी द्विज समूहों में किसी को ज्ञान की प्राप्ति होती है, और कोई मेरे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति करके इस (संसार) का त्याग करता है।२३। सभी प्राणी जब तक सूर्य की भक्ति अपनाते नहीं तब तक इस संसार में दुःख शोक में लिप्तं होकर घूमते रहते

सूर्यस्यालेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु । चन्दनादगुरौ ज्ञेयं पुण्यमष्टगुणोत्तरम् ॥२५
कृष्णागुरौ विशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते । तस्माच्छतगुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥२६
सूर्ययज्ञोपकरणं कृत्वाल्पं यदि वा बहु । भावाद्वित्तानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥२७
यदपीष्टमनिष्टं च न्यायेनोभयनागतम् । तत्सूर्याय निवेद्यं सद्भक्त्यानन्तफलार्थिना ॥२८
कर्मशाठ्येन यः कुर्याद्दुःखेनापि तदर्चनम् । सोऽपि द्विजो दिवं याति कर्मणा पापवर्जितः ॥२९
सर्वमन्यत्परित्यज्य सूर्ये चैकमनाः सदा । सूर्यपूजाविधिं कुर्याद्य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥३०
त्वरितं जीवितं याति त्वरितं यौवनं तथा । त्वरितं व्याधिरप्येति तस्मान्नित्यं रविं व्रजेत् ॥३१
यावन्नाभ्येति मरणं यावन्नाक्रमते जरा । यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदर्चेद्दिवाकरम् ॥३२
न सूर्यार्चनतुल्योऽपि न धर्मोऽन्यो जगत्त्रये । इत्थं विज्ञाय देवेशं पूजयस्व दिवाकरम् ॥३३
ये भक्त्या देवदेवेशं सूर्यं[1] शान्तमजं प्रभुम् । इह लोके सुखं प्राप्य ते गताः परमं पदम् ॥३४
गोपतिं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पुरा ब्रह्मा ब्रवीदिदम् ॥३५

ब्रह्मोवाच

भगवन्तं भगकरं शान्तचित्तमनुत्तमम् । देवमार्गप्रणेतारं प्रणतोऽस्मि रविं सदा ॥३६

हैं ।२४। सूर्य का लेपन करना पुण्यकारक होता है, चन्दन के लेप से उससे दुगुना पुण्य, और चन्दन से अगुरु द्वारा उससे आठ गुना पुण्य प्राप्त होता है ।२५। विशेषकर काले अगुरु से दुगुने फल प्राप्त होते हैं, और उससे सौगुने फल कुंकुम द्वारा प्राप्त होते हैं ।२६। सूर्य-यज्ञ के लिए अपने भाव एवं धन के अनुसार विस्तृत अथवा अल्प ही संभार करने से सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त होता है ।२७। न्याय पूर्वक प्रिय क्षत्रिय ! जिस किसी (वस्तु) की प्राप्ति हो जाय, अनन्त फल के इच्छुक को चाहिए कि उसे सद्‌भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए समर्पित करे ।२८। कर्म की शठता वश यदि कोई दुःखी अवस्था में भी उनकी पूजा करता है, उसी कर्म द्वारा वह द्विज पापमुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है ।२९। अपने हित की कामना वाले को सभी कुछ के परित्याग पूर्वक एकाग्रचित्त होकर विधान द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।३०। यह मनुष्य जीवन शीघ्र समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार युवावस्था भी शीघ्र चली जाती है । व्याधि भी इसी शरीर में शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए अपने सूर्य सन्निधान के लिए नित्य तैयार रहना चाहिए ।३१। जब तक मरण धर्म बुढापे का आक्रमण एवं इन्द्रियों की विफलता न प्राप्त हो तब तक दिवाकर की पूजा करनी चाहिए ।३२। तीनों लोकों में सूर्य पूजा के समान कोई अन्य धर्म नहीं है, ऐसा समझकर देवनायक सूर्य की पूजा करो ।३३। जो देवाधिदेव, शांत, अजन्मा, एवं प्रभु सूर्य की पूजा करता है, उसे इस संसार के समस्त सुख की प्राप्ति पूर्वक उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।३४। प्राचीन समय में ब्रह्मा ने हर्षातिरेक प्राप्त कर सूर्य की पूजा समाप्ति के अनन्तर हाथ जोड़कर इसे स्तुति रूप में कहा था— ।३५

ब्रह्मा बोले—भग, शांत चित्त वाले सर्वश्रेष्ठ, एवं देवमार्ग के प्रणेता उस सूर्य को मैं सदैव नमस्कार

---

१. अर्चयन्त इति शेषः ।

शाश्वतं शोभनं शुद्धं चित्रभानुं दिवस्पतिम् । देवदेवेशमीशेशं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥३७
सर्वदुःखहरं देवं सर्वदुःखहरं रविम् । वराननं वराङ्गं च वरस्थानं वरप्रदम् ॥३८
वरेण्यं वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । अर्कमर्यमणं चेन्द्रं विष्णुमीशं दिवाकरम् ॥३९
देवेश्वरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । य इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मणोक्तं स्तवं परम् ॥
स हि कीर्ति परां प्राप्य पुनः सूर्यपुरं व्रजेत् ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे गरुडारुणसंवादे सूर्यस्तुतिर्नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७४।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्याग्निकर्मवर्णनम्

गरुड उवाच

सर्वरोगहता ये तु आधिव्याधिसमन्विताः । ग्रहोपघातैर्विविधैरर्दिता ये च मानवाः ॥१
अरिभिः पीडिता ये च विनायकहताश्च ये । कर्तव्यं किं भवत्तेषामात्मनः श्रेयसेऽनघ ॥२

अरुण उवाच

नानारोगहतानां तु अर्दितानां तथारिभिः । आदित्याराधनं मुक्त्वा नान्यच्छ्रेयस्करं परम् ॥३

करता हूँ। शाश्वत, सौन्दर्यपूर्ण, शुद्ध, चित्रभानु, दिवस्पति, देवाधिदेव और ईश के ईश उस दिवाकर को मैं प्रणाम करता हूँ ।३६-३७। समस्त दुःखनाशक, देव, सर्वदुःख का अपहरण करने वाले, सूर्य, सौन्दर्यपूर्ण मुख उत्तम अंग, उत्तम स्थान, वर प्रदायक, वरेण्य, तथा वरदानी, विभावसु को प्रणाम है । अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेश्वर एवं देवानुरक्त उस विभावसु को प्रणाम है । जो कोई ब्रह्मा द्वारा की गई इस प्रकार की उत्तम स्तुति का पाठ नित्य करता एवं सुनता है उसे उत्तम यश की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३८-४०

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के गरुडागरुण संवाद में सूर्य स्तुति वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७४।

अध्याय १७५

सूर्याग्निकर्म का वर्णन

गरुड़ बोले—हे अनघ ! जो मनुष्य शारीरिक-मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होने के नाते समस्त रोगों द्वारा नष्ट प्राय अरिष्ट ग्रहों द्वारा भाँति-भाँति के उपघातों से पीड़ित, शत्रुओं से दुर्दशाग्रस्त, एवं विघ्नविनायक द्वारा मरणासन्न हो रहे हैं, उन्हें अपने कल्याणार्थ किस कर्तव्य का पालन करना चाहिए आप इसे बताने की कृपा करें ।१-२

अरुण बोले—भाँति-भाँति के रोगों एवं शत्रुओं से पीड़ित मनुष्यों के लिए सूर्य की आराधना के

तस्मादाराधयेन्नित्यं सर्वरोगविनाशनम् । ग्रहोपघातहन्तारं राजोपद्रवनाशनम् ।।४

गरुड उवाच

सर्वपत्रविहीनं मे सर्वरोगविवर्जितम् । शापेन ब्रह्मवादिन्याः पश्याङ्गं द्विजसत्तम ।।५
एवं मतस्य मे तात किं कार्यमवशिष्यते । येनाहं कर्मणा कल्पो भवेयं पत्रवान्पुनः ।।६
तन्मे ब्रूहि खगश्रेष्ठ प्रपन्नस्य खगाधिप । यत्कृत्वा कल्पतां प्राप्य पूजयामि दिवाकरम् ।।७

अरुण उवाच

पूजयस्व जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहम् । सूर्याग्निकार्यं सततं शुद्धचित्तः समाचर ।।८
महाशान्तिकरं ख्यातं सर्वोपद्रवनाशनम् । ग्रहोपघातहन्तारं शुभकार्यकरं परम् ।।९

गरुड उवाच

नाहं शक्तोऽस्मि वै कर्तुं पूजां दिनकरस्य च । न चाग्निकार्यं शक्नोमि कर्तुं विकलतां गतः ।।१०
तस्मान्मे कुरु शान्त्यर्थमग्निकार्यं खगाधिप । महाशान्तिरिति ख्यातं शान्तये मम सुव्रत ।।११

अरुण उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं वैनतेय खगाधिप । अकल्पस्त्वं न शक्नोषि महाव्याधिप्रपीडितः ।।१२
अहं करोमि ते पुत्र शान्तये पावकार्चनम् । यत्कृतं मम चार्केण पुरा शान्तिदमादरात् ।।१३

अतिरिक्त अन्य कोई उपाय उत्तम कल्याणप्रद नहीं है ।३। इसलिए समस्त रोगों के नाशक, ग्रहों के उपघातों एवं राजा जनित उपद्रवों के विनाशक उस सूर्य की नित्य आराधना करनी चाहिए ।४।

गरुड ने कहा—हे द्विजसत्तम ! मेरे अंग को देखो ब्रह्मवादिनी के शाप से मेरे सभी पत्र (पंख) नष्ट हो गये हैं, इसीलिए मैं सर्वरोगहीन भी हूँ । तात ! मुझ ऐसे मतवाले के लिए कुछ करना क्या अब भी अवशिष्ट है ? खगश्रेष्ठ ! कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें जिससे मैं पहले की भाँति पुनः पंखों आदि से परिपूर्ण हो जाऊँ और पूर्व की भाँति अंग सम्पन्न होकर दिवाकर की पूजा कर सकूँ । खगाधिप ! मैं आप की शरण आया हूँ ।५-७

अरुण बोले—जगन्नाथ, अन्धकार नाशक भास्कर की पूजा करो । शुद्धचित्त होकर सूर्य पूजन एवं अग्नि स्थापन आदि कार्य निरन्तर किया करो जो महाशान्तिकारक, ख्यात, समस्त उपद्रवनाशक, ग्रहों के उपघातों के हन्ता, तथा उत्तम शुभकार्य करने वाले हैं ।८-९

गरुड ने कहा—मैं दिनकर की पूजा करने में असमर्थ हूँ, और विकल होने के नाते अग्नि कार्य भी सम्पन्न नहीं कर सकता । अतः खगाधिप ! मेरी शांति के लिए अग्नि कार्य एवं सुव्रत ! उस विख्यात महाशांति का अनुष्ठान भी आप सुसम्पन्न करें ।१०-११

अरुण बोले—खगाधिप, वैनेतय ! तुम्हारा कहना सर्वथा उचित है क्योंकि अंगहीन एवं महान रोग ग्रस्त होने के कारण तुमसे उस कार्य का होना सर्वथा असम्भव है ।१२। अतः पुत्र ! तुम्हारी शांति के निमित्त मैं ही वह अग्नि पूजन करने जा रहा हूँ, जिसे प्राचीन समय में सूर्य ने सादर मुझे बताया था, वह

सर्वपापहरं पुण्यं महाविघ्नविनाशनम् । महोदयं शान्तिकरं लक्षहोमविधि[1] स्मृतम् ॥१४
अपमृत्युहरं वीर सर्वव्याधिहरं परम् । परचक्रप्रमथनं सदाविजयवर्धन ॥१५
तृप्तिदं सर्वदेवानां भास्करप्रियमुत्तमम् । आग्नेय्यां दिशि लिप्याथ स्थण्डिलं गोमयेन तु ॥१६
देवालयस्य विधिवत्कुर्यावह्निप्रबोधनम् । महाव्याहृतिभिर्वीर लक्षहोमं समाचरेत् ॥१७
भूर्भुवः स्वरितिस्वाहा प्रणवेन समन्वितम् । आरक्तदेहरूपाय रक्ताक्षाय महात्मने ॥१८
धराधराय शान्ताय सहस्राक्षिशिराय च ॥१९
अधोमुखाय श्वेताय स्वाहा पूर्वाहुतिं सृजेत । चतुर्मुखाय शान्ताय पद्मासनगताय च ॥२०
पद्मवर्णाय देहाय कमण्डलुधराय च । द्वितीयोर्ध्वमुखायेह स्वाहाकाराहुतिं सृजेत ॥२१
हेमवर्णाय देहाय ऐरावतगताय च । सहस्राक्षशरीराय पूर्वदिश्युन्मुखाय च ॥२२
देवाधिपाय चेन्द्राय विहस्ताय शुभाय च । स्वाहाकारं चोत्सृजेदेव तृतीयवदनाय च ॥२३
दीप्ताय व्यक्तदेहाय ज्वालामालाकुलाय च । इन्द्रनीलाभदेहाय सर्वारोग्यकराय च ॥२४
यमाय धर्मराजाय दक्षिणाशामुखाय च । कृष्णाम्बरधरायेह स्वाहाहुतिमनुत्सृजेत् ॥२५
नीलजीमूतवर्णाय रक्ताम्बरधराय च । मुक्ताफलशरीराय पिंगाक्षाय महात्मने ॥२६
शुक्लवस्त्राय पीताय दिव्यपाशधराय च । स्वाहाकाराय च तथा पश्चिमाभिमुखाय च ॥२७

वही शांति प्रदायक, समस्त पापों का अपहरण करने वाला, पुण्य, महाविघ्नविनाशक, महान् अभ्युदयकारक, तथा शांतकारी है, उस कार्य के निमित्त लक्ष आहुति डालने का विधान बताया गया है। वीर! अपमृत्यु एवं समस्त व्याधियों का नाशक, शत्रु के चक्र का मन्थन करने वाला, सदैव विजय वर्धक सभी देवों के तृप्ति कारक वह भास्कर को अत्यन्त प्रिय हैं। मंदिर के आग्नेय दिशा में ऊँची वेदी को गोबर से लीप कर उसमें विधान पूर्वक अग्नि स्थापन करके वीर! महाव्याहृतियों द्वारा उसमें लक्ष आहुति डालनी चाहिए।१३-१७। पूर्वाभिमुख होकर, 'ओं भू र्भुवः स्वाहा' इस आहुति के पश्चात् सर्वाङ्ग रक्तवर्ण वाले, रक्तनेत्र, महात्मा, धराधर, शान्त, सहस्र आँख एवं शिर वाले, अधोमुख, एवं श्वेत वर्ण के लिए यह आहुति है, चतुर्मुख, शांत, पद्मासन पर स्थित, कमल वर्ण, कमण्डलु धारण करने वाले एवं द्वितीय ऊर्ध्व मुख वाले ब्रह्मा के लिए यह आहुति है, कनक वर्ण, देह, ऐरावत पर स्थित, सहस्र आँख की शरीर वाले, पूर्व दिशा की ओर उन्मुख रहने वाले देवनायक, विहस्त तथा शुभ, ऐसे इन्द्र के लिए यह आहुति है। देव! तृतीय मुख वाले, दीप्त, व्यक्त देह, ज्वालारूपी माला से घिरे, इन्द्रनील, के समान आभा पूर्ण देह वाले, सभी भाँति आरोग्य करने वाले, दक्षिण दिशा की ओर मुख वाले, एवं कृष्ण वस्त्र धारण किये यम तथा धर्मराज के लिए यह आहुति है, नील मेघ के समान रंग वाले, रक्ताम्बर धारी, मोती के समान शरीर वाले, पिंगाक्ष, महात्मा, शुक्ल वस्त्र, पीत, दिव्यास्त्र पाश धारण करने वाले एवं पश्चिमाभिमुख वाले के लिए यह आहुति है, कृष्ण एवं पिंगल नेत्र, वायाव्याभिमुख, नीलध्वज, वीर, इन्द्र, वेध तथा पवन के लिए

---

[1] लक्षसंख्यापरिच्छिन्नो होमविधिर्यत्र तत्पावकार्चनमहं करोमीति त्रयोदशचतुर्दशपञ्चदशषोडश-श्लोकानामेकत्रान्वयः।

कृष्णपिङ्गलनेत्राय वायव्याभिमुखाय च । नीलध्वजाय वीराय तथा चेन्द्राय वेधसे ।।२८
स्वाहेति पवनायेह आहुतिं चोत्सृजेद्बुधः । गदाहस्ताय सूर्याय चित्रस्रग्भूषणाय च ।।२९
महोदराय शान्ताय स्वाहाधिपतये तथा । उत्तराभिमुखायेह महादेवप्रियाय च ।।३०
श्वेताय श्वेतवर्णाय चित्राक्षाय महात्मने । शान्ताय शान्तरूपाय पिनाकवरधारिणे ।।३१
ईशानाभिमुखायेह दद्यादीशाय चाहुतिम् । विसृजेत्खगशार्दूल विधिवच्छ्रेयसेऽनघ ।।३२
एवं देवं महात्मानं पावकं विधिवत्खग । अर्हेदिति तु यत्कार्यं तत्सौरं खगसत्तम ।।३३
लक्षहोमं च विधिवत्कृत्वा शान्तिकमाचरेत् । भूर्भुवःस्वरिति स्वाहा लक्षहोमविधिः स्मृतः ।।३४
महाहोमे च वै सौर एष एव विधिः परः । कृत्वैवमग्निकार्यं तु भोजको भास्कराय वै ।।३५
शान्त्यर्थं सर्व लोकानां ततः शान्तिकमाचरेत् । सिन्दूरासनरक्ताभः रक्तपद्माभलोचनः ।।३६
सहस्रकिरणो देवः सप्ताश्वरथवाहनः । गभस्तिमाली भगवान्सर्वदेवनमस्कृतः ।।३७
करोतु ते महाशान्तिं ग्रहपीडानिवारिणीम् । त्रिचक्ररथमारूढ अपां सारमयं तु यः ।।३८
दशाश्ववाहनो देव आत्रेयश्चामृतस्रवः । शीतांशुरमृतात्मा च क्षयवृद्धिसमन्वितः ।।
सोमः सौम्येन भावेन ग्रहपीडां व्यपोहतु ।।३९
पद्मरागनिभो भौमो मधुपिङ्गललोचनः । अङ्गारकोऽग्निसदृशो ग्रहपीडां व्यपोहतु ।।४०
पुष्परागनिभेनेह देहेन परिपिङ्गलः । पीतमाल्याम्बरधरो बुधः पीडां व्यपोहतु ।।४१

यह, आहुति है, गदाहस्त, सूर्य, चित्रविचित्र की मालाओं से सुसज्जित शांत महोदर, स्वाहाधिपति, उत्तराभिमुख, महादेव प्रिय, श्वेत, श्वेतवर्ण, चित्राक्ष, महात्मा, शांत, शांतरूप, उत्तम पिनाक धारी, और ईशानाभिमुख उस ईश के लिए यह आहुति है, इस प्रकार प्रत्येक नाम के अंत में 'स्वाहा' पद के उच्चारण पूर्वक आहुति डालता जाये । खगशार्दूल ! विधानपूर्वक इन आहुतियों के त्यागने से उसका कल्याण निश्चित होता है।१८-३२। अनघ, खग, ! इस प्रकार महात्मा पावक देव का विधान पूर्वक किया गया अर्चना रूपी कार्य सौ कार्य कहलाता है, खगसत्तम ! विधान पूर्वक इस लक्ष आहुति वाले हवन को सुसम्पन्न करके शांति कार्य आरम्भ होना चाहिए । 'भूर्भुवः स्वरिति स्वाहा' इसी से लक्ष आहुति वाले हवन का विधान सम्पन्न करना बताया गया है।३३-३४। इस प्रकार के सौर महाहवन में यही विधान उत्तम कहा गया है । भोजक इस भाँति सूर्य के लिए अग्नि कार्य सुसम्पन्न करके समस्त लोकों के शांति की लिए शांति कर्म का आरम्भ करे—सिन्दूर के आसन की भाँति रक्त वर्ण की आभा, रक्तकमल के समान नेत्र, सहस्र किरण वाले, सात अश्व जुते हुए रथ, किरण रूपी माला धारी, एवं समस्त देवों द्वारा नमस्कृत। इस प्रकार के भगवान् (सूर्य) तुम्हें ग्रहपीड़ा से मुक्ति कर महाशांति प्रदान करें। तीन चक्के वाले रथ पर स्थित, जल के तात्त्विक रूप, दश अश्व वाहने, देव आत्रेय, अमृतस्रवण करने वाले, शीत किरण, अमृतमय, तथा क्षय एवं वृद्धि युक्त, ऐसे सोम (चन्द्र) देव ! सौम्य भाव से तुम्हारी ग्रहपीड़ा निवारण करें।३५-३९। पद्मरागमणि के समान वर्ण वाले, भौम, मधु की भाँति पिंगल नेत्र, अंगारक, अग्नि सदृश, ऐसे मंगल देव ग्रहपीड़ा का अपहरण करें।४०। पुष्पराग के समान देह के कारण आपाद पिंगल, और पीत माला एवं पीत वस्त्र धारण करने वाले बुध तुम्हारी पीड़ा शांत करें।४१।

तप्तगैरिकसंकाशः सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वदेवगुरुर्विप्रो ह्यथर्वणवरो मुनिः ॥४२
बृहस्पतिरिति ख्यात अर्थशास्त्रपरश्च यः । शान्तेन चेतसा सोऽपि परेण सुसमाहितः ॥४३
ग्रहपीडां विनिर्जित्य करोतु तव शान्तिकम् । सूर्यार्चनपरो नित्यं प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥४४
हिमकुन्देन्दुवर्णाभो दैत्यदानवपूजितः । महेश्वरस्ततो धीमान्महासौरो महामतिः ॥४५
सूर्यार्चनपरो नित्यं शुक्रः शुक्लनिभस्तदा । नीतिशास्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥४६
नानारूपधरोऽव्यक्त अविज्ञातगतिश्च यः । नोत्पत्तिर्जायते यस्य नोदयपीडितैरपि ॥४७
एकचूलो द्विचूलश्च त्रिशिखः पञ्चचूलकः । सहस्रशिररूपस्तु चन्द्रकेतुरिव स्थितः ॥४८
सूर्यपुत्रोऽग्निपुत्रस्तु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अनेकशिखरः केतुः स ते पीडां व्यपोहतु ॥४९
एते ग्रहा महात्मानः सूर्यार्चनपराः सदा । शान्तिं कुर्वन्तु ते हृष्टाः सर्वकालं हितेक्षणाः ॥५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
सूर्याग्निकर्मणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७५।

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पद्मासनः पद्मवर्णः पद्मपत्रनिभेक्षणः । कमण्डलुधरः श्रीमान्देवगन्धर्वपूजितः ॥१

तप्त सुवर्ण के समान वर्ण, समस्त शास्त्र कुशल, समस्त देवों के गुरु, ब्राह्मण, उत्तम अथर्वण गोत्री, मुनि, बृहस्पति नाम से विख्यात, अर्थशास्त्र निष्णात, ऐसे गुरुदेव अति शांत चित्त एवं समाधिस्थ होकर नित्य सूर्य की पूजा करते हैं, अतः भास्कर की प्रसन्नता वश तुम्हारी ग्रह पीड़ा दूर कर शांति प्रदान करें ।४२-४४। बर्फ कुन्दपुष्प एवं चन्द्र की भाँति वर्ण, दैत्य तथा दानव द्वारा पूजित, महेश्वर, धीमान, महान् सूर्यभक्त, महाबुद्धिमान्, शुक्लवर्ण, नीतिशास्त्र कुशली, एवं नित्य सूर्य की पूजा करने वाले शुक्रदेव नित्यग्रहपीड़ा का अपहरण करें। भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाले, व्यक्त, अविज्ञात गति वाले, उत्पन्न कालीन पीड़ा से पीड़ित होने पर भी अनुत्पन्न ही रहने वाले, एक चूडा, दो चूड़ा, तीन शिखाएँ एवं पाँच चूड़ा वाले, सहस्रशिर रूप वाले, चन्द्र केतु की भाँति स्थित होने वाले, सूर्य पुत्र, अग्नि पुत्र, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप वाले, एवं अनेक शिखर वाले, ऐसे केतु (देव) तुम्हारी पीड़ा दूर करें ।४५-४९। ये सभी ग्रह महान् आत्मा वाले सदेव सूर्य-पूजन करते रहते हैं अतः प्रसन्न होकर सर्वथा हित की कामना से कारुणिक नेत्रों से देखते हुए सूर्य तुम्हें शांति प्रदान करें ।५०

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में सूर्यपीड़ित कर्म (वर्णन)
नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७५।

अध्याय १७६

सौरधर्म वर्णन

सुमन्तु बोले—कमल का आसन, कमल वर्ण, कमल पत्र के समान नेत्र, कमण्डलु धारी, श्रीसम्पन्न,

चतुर्मुखो देवपतिः सूर्यार्चनपरः सदा । सुरज्येष्ठो महातेजाः सर्वलोकप्रजापतिः ।।
ब्रह्मशब्देन दिव्येन ब्रह्मा शान्तिं करोतु ते ।।२
पीताम्बरधरो देव आत्रेयीदयितः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः ।।३
यज्ञदेहः क्रमो देव आत्रेयीदयितः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवो मधुसूदनः ।।४
सूर्यभक्त्यान्वितो नित्यं विगतिर्विगतत्रयः । सूर्यध्यानपरो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु ते ।।५
शशिकुन्देन्दुसंकाशो विश्रुताभरणैरिह । चतुर्भुजो महातेजाः पुष्पार्धकृतशेखरः ।।६
चतुर्मुखो भस्मधरः श्मशाननिलयः सदा । गोत्रारिर्विश्वनिलयस्तथा च क्रतुदूषणः ।।७
वरो वरेण्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः । आदित्यदेहसंभूतः स ते शान्तिं करोतु वै ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७६।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्निकार्यविधिवर्णनम्

अरुण उवाच

पद्मरागप्रभा देवी चतुर्वदनपङ्कजा । अक्षमालार्पितकरा कमण्डलुधरा शुभा ।।१
ब्रह्माणी सौम्यवदना आदित्याराधने रता । शान्तिं करोतु सुप्रीता आशीर्वादपरा खग ।।२

देवों एवं गन्धर्वों द्वारा पूजित, चर्तुमुख, देवनायक, सदैव सूर्य पूजक, देवों में ज्येष्ठ, महातेजस्वी, समस्त लोकों के प्रजापति, एवं दिव्य ब्रह्म शब्द से विख्यात, ऐसे ब्रह्मा तुम्हें शांति प्रदान करें। पीताम्बर धारी, देव, आत्रेपी वल्लभ, शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले, श्यामवर्ण, चतुर्भुज, यज्ञरूपी देह, क्रम रूप, सदैव आत्रेयी प्रिय, शंख, चक्र गदाधारी, माधव, मधुसूदन, सूर्यभक्त, गति हीन एवं तीनों से शून्य, इस प्रकार के सूर्य ध्यान परायण विष्णु तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें।१-५। चन्द्र, कुन्द, एवं इन्दु के समान कान्ति, कर्ण कुण्डल विभूषित, चतुर्भुज, महातेजस्वी, पुष्पों से शिर के अर्ध भाग को अलङ्कृत करने वाले, चतुर्मुख, भस्मांगभूषित, श्मशान रूप गृह में सदैव रहने वाले, पर्वत शत्रु, विश्वनिलय, क्रतुदूषण, उत्तम, वरेण्य, वरद तथा आदित्य से उत्पन्न, ऐसे देवाधिदेव महेश्वर तुम्हें शांति प्रदान करें।६-८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक
एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७६।

अध्याय १७७

अग्निकार्यविधि का वर्णन

अरुण बोले—खग ! पद्मरागमणि की भाँति प्रभा पूर्ण, देवी, कमल की भाँति चार मुख वाली, हाथ में अक्षमाला लिए, कमण्डलु धारिणी शुभात्मक, प्रसन्नचित्त होकर आदित्य की आराधना में निमग्न रहने वाली, अत्यन्त प्रसन्न मूर्ति, एवं आशीर्वाद परायण ब्रह्माणी तुम्हें शांत करें।१-२ महाश्वेता नाम से ख्याति

महाश्वेतेति विख्याता आदित्यदयिता सदा । हिमकुन्देन्दुसदृशा महावृषभवाहिनी ॥३
त्रिशूलहस्तावरणा विश्रुताभरणा सती । चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रा पापनाशिनी ॥
वृषध्वजार्चनरता रुद्राणी शान्तिदा भवेत् ॥४
मयूरवाहना देवी सिन्दूरारुणविग्रहा । शक्तिहस्ता महाकाया सर्वालङ्कारभूषिता ॥५
सूर्यभक्ता महावीर्या सूर्यार्चनरता सदा । कौमारी वरदा देवी शान्तिमाशु करोतु ते ॥६
गदाचक्रधरा श्यामा पीताम्बरधरा खग । चतुर्भुजा हि सा देवी वैष्णवी सुरपूजिता ॥७
सूर्यार्चनपरा नित्यं सूर्यैकगतमानसा । शान्तिं करोतु ते नित्यं सर्वासुरविमर्दिनी ॥८
ऐरावतगजारूढा वज्रहस्ता महाबला । सर्वत्रलोचना देवी वर्णतः कर्बुरारुणा ॥९
सिद्धगन्धर्वनमिता सर्वालङ्कारभूषिता । इन्द्राणी ते सदा देवी शान्तिमाशु करोतु वै ॥१०
वराहघोणा विकटा वराहवरवाहिनी । श्यामावदाता या देवी शङ्खचक्रगदाधरा ॥११
तेजयन्ती निमिषान्पूजयन्ति सदा रविम् । वाराही वरदा देवी तव शान्तिं करोतु वै ॥१२
अर्धकोशा कटीक्षामा निर्मांसा स्नायुबन्धनात् । करालवदना घोरा खड्गघण्टोद्गता सती ॥१३
कपालमालिनी क्रूरा खट्वाङ्गवरधारिणी । आरक्ता पिङ्गनयना गजचर्मावगुण्ठिता ॥१४
गोश्रुताभरणा देवी प्रेतस्थाननिवासिनी । शिवारूपेण घोरेण शिवरूपभयङ्करी ॥
चामुण्डा चण्डरूपेण सदा शान्तिं करोतु ते ॥१५

प्राप्त, सदैव आदित्य की प्रिया, हिम, कुंद तथा इंदु के समान रूपरंग, महावृषभ वाहिनी, हाथों में त्रिशूल लिए, कान में कुंडलों से विभूषित, चार भुजाएँ, चार मुख एवं तीन नेत्रों वाली, पापनाशिनी, महावृषभ-ध्वज के अर्चन करने में सदैव मग्न, इस प्रकार की रुद्राणी तुम्हें शांति प्रदान करे ।३-४। मयूर वाहन वाली देवी, सिंदूर की भाँति रक्त वर्ण वाली, हाथ में शक्ति लिए, विशाल देह, समस्त अलंकारों से विभूषित, सूर्य भक्त, महापराक्रम शालिनी, सदैव सूर्य पूजा में अनुरक्त, ऐसी वरदायिनी कौमारी (देवी), तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करें ।५-६। खग ! गदा एवं चक्र धारण करने वाली, श्यामा, पीताम्बरधारिणी, चारभुजा वाली देवी वैष्णवी, जो देवपूजित सूर्य में ध्यान मग्न हो कर उनकी पूजा करने वाली, जो समस्त असुरों का मर्दन करती है, तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें ।७-८। ऐरावत हाथी पर स्थित, हाथ में वज्र लिए, महाबलशालिनी, चारों ओर आँख वाली, चित्र एवं रक्त वर्ण वाली, सिद्ध, तथा गन्धर्वों से वन्दित, सर्वाभरण भूषित, ऐसी इन्द्राणी देवी सदैव तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करती रहें ।९-१०। वराह की भाँति नासिका, भाषण, उत्तम वराह रूप वाहन वाली, शुद्ध श्याम वर्ण, शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाली, निमिषों को तेजस्वी करने वाली, सदैव सूर्य पूजा में अनुरक्त रहने वाली, एवं वरदायिनी ऐसी वाराही देवी तुम्हारी शांति करें ।११-१२। अर्ध कोश एवं क्षीण कटि वाली, केवल स्नायु से बंधे हुए के नाते मांसहीन, तलवारों को लिए, घोर, खड्ग तथा घंटा युक्त, कपाल की माला पहने, क्रूर, उत्तम खट्वांग धारण करने वाली रक्त वर्ण, पिंगल नेत्र वाली, हाथी के चमड़े से अवगुण्ठित, कर्ण कुण्डल भूषित, प्रेतस्थान की निवासिनी, तथा घोर शिवारूप और भयंकर शिवरूप धारिणी, ऐसी चामुण्डा देवी चंड रूप होकर सदैव

चण्डमुण्डकरा देवी मुण्डदेहगता सती । कपालमालिनी क्रूरा खट्वाङ्गवरधारिणी ॥१६
आकाशमातरो देव्यस्तथान्या लोकमातरः । भूतानां मातरः सर्वास्तथान्याः पितृमातरः ॥१७
वृद्धिश्राद्धेषु पूज्यन्ते यास्तु देव्यो मनीषिभिः । मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे इति मातृमुखास्तथा ॥१८
पितामही तु तन्माता वृद्धा या च पितामही । इत्येतास्तु पितामह्यः शान्तिं ते पितृमातरः ॥१९
सर्वा मातृमहादेव्यः स्वायुधाग्रप्रपाणयः । जगद्व्याप्य प्रतिष्ठन्त्यो बलिकामा महोदयाः ॥२०
शान्तिं कुर्वन्तु ता नित्यमादित्याराधने रताः । शान्तेन चेतसा शान्त्यः शान्तये तव शान्तिदाः ॥२१
सर्वावयवमुख्येन गात्रेण च सुमध्यमा । पीतश्यामातिसौम्येन स्निग्धवर्णेन शोभना ॥२२
ललाटतिलकोपेता चन्द्ररेखार्धधारिणी । चित्राम्बरधरा देवी सर्वाभरणभूषिता ॥२३
वरा स्त्रीमयरूपाणां शोभा गुणसुसम्पदा । भावनामात्रसन्तुष्टा उमा देवी वरप्रदा ॥२४
साक्षादागत्य रूपेण शान्तेनामिततेजसा । शान्तिं करोतु ते प्रीता आदित्याराधने रता ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दशमुखे अग्निकार्यविधौ
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७७।

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

अरुण उवाच

अबलो बालरूपेण खट्वाङ्गशिखिवाहनः । पूर्वेण वदनः श्रीमांस्त्रिशिखः शक्तिसंयुतः ॥१

तुम्हें शांति प्रदान करें ।१३-१५। जो चंड, मुंड को हाथ में लिए एवं मुण्ड के देह में व्याप्त हैं । आकाश मातृकाएँ अन्य लोक मातृकाएँ, भूतमातृकाएँ, पितृमातृकाएँ, वृद्धि श्राद्ध में मनीजियों द्वारा पूजित होने वाली माता, प्रमाता, एवं वृद्धप्रमाता रूप प्रधान मातृकाएँ, पितामही, प्रपितामही, तथा वृद्धप्रपितामही ये पितृ मातृकाएँ तुम्हें शांति प्रदान करें ।१६-१९। समस्त मातृ महादेवियाँ हांथों से अपने तीक्षण अस्त्रों को लिए बलिग्रहण एवं महान् अम्युदय करने के लिए जगत् में व्याप्त होकर प्रतिष्ठित हैं ।२०। आदित्य की आराधना में अनुरक्त रहने वाली, एवं शांति स्वरूप वे देवियाँ शांत चित्त से तुम्हें शांतिदायक हों ।२१। समस्त उत्तम अंगों एवं सौन्दर्य पूर्ण मध्यम भाग (कटि) वाले, पीत, श्यामल एवं अति सौम्य मनमोहन रूप रंग के कारण सौन्दर्य पूर्ण, भाल में तिलक एवं चन्द्रार्ध की रेखा को धारण किये, चित्र विचित्र के वस्त्र तथा समस्त आभरणों से सुशोभित, स्त्रियों में परम सुन्दरी, शोभासम्पन्न, गुणपूर्ण, भावना मात्र से संतुष्ट होने वाली आदित्य की आरधना में रत ऐसी वरप्रदायिनी उमादेवी साक्षात् आकर अपने अजेय तेज एवं शांतिरूप से प्रसन्न होकर तुम्हें शांति प्रदान करें ।२२-२५

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में दशमुख अग्नि कार्य विधान वर्णन
नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७७।

अध्याय १७८

सौरधर्म का वर्णन

अरुण बोले—बालरूप से बलहीन, खट्वांग एवं मयूर वाहन वाले पूर्वाभिमुख, धीमान्, तीन शिखा

कृत्तिकायाश्च रुद्रस्य चाङ्गोद्भूतः सुरार्चितः । कार्तिकेयो महातेजा आदित्यवरदर्पितः ॥
शान्तिं करोतु ते नित्यं बलं सौख्यं च तेजसा ॥२
आत्रेयीबलवान्देव आरोग्यं च खगाधिप । श्वेतवस्त्रपरीधानस्त्र्यक्षः कनकसुप्रभः ॥३
शूलहस्तो महाप्राज्ञो नन्दीशो रविभावितः । शान्तिं करोतु ते शान्तो धर्मे च मतिमुत्तमाम् ॥४
धर्मेतरावुभौ नित्यमचलः सम्प्रयच्छतु । महोदरो महाकायः स्निग्धाञ्जनसमप्रभः ॥५
एकदंष्ट्रोत्कटो देवो गजवक्त्रो महाबलः । नागयज्ञोपवीतेन नानाभरणभूषितः ॥६
सर्वार्थसम्पदोद्धारो गणाध्यक्षो वरप्रदः । भीमस्य तनयो देवो नायकोऽथ विनायकः ॥
करोतु ते महाशान्तिं भास्करार्चनतत्परः ॥७
इन्द्रनीलनिभस्त्र्यक्षो दीप्तशूलायुधोद्यतः । रक्ताम्बरधरः श्रीमान्कृष्णाङ्गो नागभूषणः ॥८
पापापनोदमतुलमलक्ष्यो मलनाशनः । करोतु ते महाशान्तिं प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥९
वराम्बरधरा कन्या नानालङ्कारभूषिता । त्रिदशानां च जननी पुण्या लोकनमस्कृता ॥१०
सर्वसिद्धिकरा देवी प्रसादपरमास्पदा । शान्तिं करोतु ते माता भुवनस्य खगाधिप ॥११
स्निग्धश्यामेन वर्णेन महामहिषमर्दनी । धनुश्चक्रप्रहरणा खड्गपट्टिशधारिणी ॥१२
आतर्जन्यायतकरा सर्वोपद्रवनाशिनी । शान्तिं करोतु ते दुर्गा भवानी च शिवा तथा ॥१३
अतिसूक्ष्मो ह्यतिक्रोधस्त्र्यक्षो भृङ्गिरिटिर्महान् । सूर्यात्मको महावीरः सूर्यैकगतमानसः ॥

शक्ति सम्पन्न, कृत्तिकाओं और रुद्र द्वारा उत्पन्न, देव-चरित्र तथा आदित्य के वर प्रदान से मानपूर्ण, ऐसे महान्तेजस्वी कार्तिकेय अपने तेज द्वारा नित्य सौख्य एवं बल प्रदान करते हुए तुम्हें शांति प्रदान करें।१-२। खगाधिप ! आत्रेयी (अत्रि के पुत्र), बलवान्, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले, त्र्यम्बक, कनक की भाँति कांतिपूर्ण, हाथ में शूल लिए, महाप्राज्ञ, नंदीश, तथा रविप्रिय, ऐसे शान्त स्वरूप शिव, उत्तम धार्मिक बुद्धि, आरोग्य, एवं शांति प्रदान करें। तथा धर्म के अतिरिक्त आरोग्य एवं शांति तो अचल होकर नित्य किया करें। महान उदर वाले, विशालकाय, मनोरम अंजन के समान कांतियुक्त, एक दाँत वाले, उत्कट, गजमुख, महाबली, नागयज्ञ के उपवीत (यज्ञोपवीत), एवं भाँति-भाँति के आभरणों से सुसज्जित, समस्त अर्थ संपत्तियों के उद्धारक, गणों के अध्यक्ष, वरदायक एवं शिव के पुत्र देवनायक विनायक देव भास्कर की पूजा में तत्पर रहते हुए तुम्हे महाशांति प्रदान करें। इन्द्रनील की भाँति प्रभापूर्ण, तीन नेत्र वाले, प्रदीप्त शूल अस्त्र लिए रक्ताम्बरधारी, श्रीमान्, कृष्णांग, नागभूषण भूषित, अतुलपापों के नाशक, अदृश्य, मलनाशक, ऐसे देव प्रसन्नता पूर्ण चित्त से तुम्हें महाशांति प्रदान करें।३-९। सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कन्या, भाँति-भाँति के अलंकारों से अलंकृत, देवों को उत्पन्न करने वाली, पुण्यस्वरूप, लोकों की वन्दनीया, सर्वसिद्धिदायिनी, लोकमाता, प्रसन्नतारूप उत्तमस्थान स्थित ऐसी देवी तुम्हें शांति प्रदान करें।१०-११। मनमोहक श्यामल वर्ण वाली, महामहिष का मर्दन करने वाली, धनुष, चक्र, खड्ग एवं पट्टिश अस्त्र धारण करने वाली तर्जनी तक हांथ फैलाकर समस्त उपद्रवों के नाश करने वाली दुर्गा एवं शिवा भवानी तुम्हें शांति प्रदानकरें।१२-१३। अतिसूक्ष्म, अतिक्रुद्ध, तीन नेत्र वाले, सूर्यात्मक,, महावीर, सूर्य ध्याननिमग्न , सूर्य की भक्ति करने वाले

सूर्यभक्तिकरो नित्यं शिवं ते सम्प्रयच्छतु ॥१४
प्रचण्डगणसैन्येशो महाघण्टाक्षधारकः । अक्षमालार्पितकरश्चाक्षचण्डेश्वरो वरः ॥१५
चण्डपापहरो नित्यं ब्रह्महत्याविनाशनः । शान्तिं करोतु ते नित्यमादित्याराधने रतः ॥
करोति च महायोगी कल्याणानां परम्पराम् ॥१६
आकाशमातरो दिव्यास्तथान्या देवमातरः । सूर्यार्चनपरा देव्यो जगद्व्याप्य व्यवस्थिताः ॥
शान्ति कुर्वन्तु मे नित्यं मातरः सुरपूजिताः ॥१७
ये रुद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः । मातरो रुद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥१८
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः । सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्तु मे बलिम् ॥
सिद्धि कुर्वन्तु ते नित्यं भयेभ्यः पान्तु सर्वतः ॥१९
ऐन्द्रादयो गणा ये च वज्रहस्ता महाबलाः । हिमकुन्देन्दुसदृशा नीलकृष्णाङ्गलोहिताः ॥२०
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः । ऐन्द्राः शान्तिं प्रकुर्वन्तु भद्राणि च पुनः पुनः ॥२१
आग्नेय्यां ये भूताः सर्वे ध्रुवहत्यानुषङ्गिणः । सूर्यानुरक्ता रक्ताभा जपासुमनिभास्तथा ॥२२
विरक्तलोहिता दिव्या आग्नेय्यां भास्करादयः । आदित्याराधनपरा आदित्यगतमानसाः ॥२३
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं प्रयच्छन्तुच बलिं मम । भयाऽऽदित्यसमा[1] ये तु सततं दण्डपाणयः ॥
आदित्याराधनपराः क प्रयच्छन्तु ते सदा ॥२४

ऐसे महान् देव नन्दिकेश्वर, तुम्हारा नित्य कल्याण करें।१४। प्रचण्ड गणों वाली सेनाओं के अधिनायक, महान् घंटा एवं अक्षमाला धारण करने वाले, हाथ में अक्षमाला लिए ऐसे अक्ष चण्डेश्वर जो प्रचण्ड पापों एवं ब्रह्म हत्या का नित्य विनाश करते हैं, सूर्य की आराधना करते हुए तुम्हें शांन्ति एवं महायोगी कल्याणों की अनवरत परम्परा प्रदान करें।१५-१६। आकाश माताएँ, देवमाताएँ, एवं सूर्य परायण ये देवियाँ जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं, इन्हें देवगण पूजते हैं। ये दयालु हों मुझे शांति प्रदान करें।१७। रुद्ररूप, भीषण कर्म करने वाले, भीषण स्थान के निवासी, एवं माताएँ, गणनायक, तथा विघ्नस्वरूप होकर जो दिशाओं एवं विदिशाओं में स्थित हैं, वे सभी प्रसन्न चित्त होकर इस मेरी बलि को स्वीकार करें और मुझे सिद्धि प्रदान करते हुए नित्य भय से मेरी रक्षा करें।१८-१९। हाथ में वज्र लिए महाबली इन्द्र के गण जो हिम, कुन्द, एवं इन्दु की भाँति कांति वाले, नील कृष्ण, एवं रक्तवर्ण, तथा दिव्य अंतरिक्ष, भूमि एवं पाताल तल में निवास करते हैं, शांति प्रदान करते हुए बार बार कल्याण प्रदान करें। आग्येन दिशा के निवासी ध्रुव की आकस्मिक हत्या की चेष्टा करने वाले, सूर्य में सानुरक्त, रक्त वर्ण, प्रभापूर्ण, जपापुष्प एवं रक्त के समान वर्ण वाले लोहित वर्ण, दिव्य, आग्नेय दिशा में भास्करादि, आदित्य में लीन होकर उनकी पूजा करने वाले, ये सभी देव बलि प्रदान पूर्वक तुम्हें शांति प्रदान करें। आदित्य के समान प्रभापूर्ण एवं हाथ में दण्ड लेकर निरन्तर सूर्य की आराधना करते हुए सदैव तुम्हें सुख प्रदान करें।२०-२४।

---

१. प्रभयेत्यर्थः ।

ऐशान्यां संस्थिता ये तु प्रशान्ताः शूलपाणयः । भस्मोद्धूलितदेहाश्च नीलकण्ठा विलोहिताः ॥२५
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः । सूर्यपूजाकरा नित्यं पूजयित्वांशुमालिनम् ॥२६
ततः सुप्रीतमनसो लोकपालैः समन्वितः । शान्तिं कुर्वन्तु मे नित्यं कं प्रयच्छन्तु पूजिताः ॥२७
अमरावती पुरी नाम पूर्वभागे व्यवस्थिता । विद्याधरगणाकीर्णा सिद्धगन्धर्वसेविता ॥२८
रत्नप्राकाररुचिरा महारत्नोपशोभिता । तत्र देवपतिः श्रीमान्वज्रपाणिर्महाबलः ॥
गोपतिर्गोसहस्रेण शोभमानेन शोभते ॥२९
ऐरावतगजारूढो गैरिकाभो महाद्युतिः । देवेन्द्रः सततं हृष्ट आदित्याराधने रतः ॥३०
सूर्यज्ञानैकपरमः सूर्यभक्तिसमन्वितः । सूर्यप्रणामः परमां शान्तिं तेऽद्य प्रयच्छतु ॥३१
आग्नेयदिग्विभागे तु पुरी तेजस्वती शुभा । नानादेवगणाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥३२
तत्र ज्वाला समाकीर्णो दीप्ताङ्गारसमद्युतिः । पुरगो वहनो देवो ज्वलनः पापनाशनः ॥३३
आदित्याराधनरत आदित्यगतमानसः । शान्तिं करोतु ते देवस्तथा पापपरिक्षयम् ॥३४
वैवस्वती पुरी रम्या दक्षिणेन महात्मनः । सुरासुरशताकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥३५
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिङ्गललोचनः । महामहिषमारूढः कृष्णस्रग्वस्त्रभूषणः ॥३६
अन्तकोऽथ महातेजाः सूर्यधर्मपरायणः । आदित्याराधनपरः क्षेमारोग्ये ददातु ते ॥३७

ऐशान्य में स्थित होकर अत्यन्त शांत, हाथ में शूल लिए, भस्म भूषित देह, नीलकण्ठ, लोहित वर्ण, दिव्य, अंतरिक्ष, भूमि तथा पाताल तल वासी, सूर्य के पूजक, जो नित्य सूर्य की पूजा करते हैं, लोकपालों के समेत वे सभी देव पूजित होने पर शांति-सुख प्रदान करे ।२५-२७। पूर्व भाग में अमरावती नामक पुरी स्थित है उसमें विद्याधरों के गण एवं सिद्ध तथा गन्धर्वों के गण निवास करते हैं । उनके रत्नों से प्राकार सुसज्जित है एवं वह महारत्नों से सुशोभित है, वहाँ हाथ में वज्र लिये महाबली ब्रह्म अपने सहस्र किरणों समेत देवनायक श्रीमान् सूर्य देव सुशोभित हैं । ऐरावत हांथी पर बैठ कर जिसकी सुवर्ण की भाँति कान्ति तथा महान् प्रकाश पूर्ण होकर देवेन्द्र, प्रसन्नतापूर्वक चित्त से निरन्तर सूर्य की आराधना में अनुरक्त रहते हैं उनका सूर्य ज्ञान ही एक परमोत्तम ज्ञान है वे सूर्य की भक्ति अपनाकर सूर्य को प्रणाम करते हुए आज तुम्हें शांति प्रदान करें ।२८-३१। आग्नेय दिशा में शुभ तेजस्वती नामक पुरी वर्तमान है, उसमें भाँति-भाँति के देव गणों का आवास स्थान है, एवं पुरी भी अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित है। उस पुरी में ज्वालाओं से आच्छन्न एवं प्रदीप्त अंगार के समान प्रभापूर्ण अग्नि देव अधिष्ठित हैं, जो ज्वलनात्मक, पापनाशक सूर्य की आराधना में तन्मय आदित्य के ध्यान में निमग्न रहते हैं, वे देव शांति प्रदान करते हुए तुम्हारे समस्त पापों का उन्मूलन करें।३२-३४। दक्षिण दिशा में महात्मा (यम) की रमणीक वैवस्वती नामक पुरी है, उसमें सैकड़ों देव-राक्षस निवास करते हैं, और वह स्वयं अनेक रत्नों से विभूषित हैं। उसमें कुंद एवं इंदु के समान कांति बन्दरों की भाँति पिंगलनेत्र, महान् महिष वाहन पर स्थित, काले वस्त्र एवं मालाओं से सुसज्जित। महातेजस्वी, सूर्य धर्म का पारायण करने वाले तथा उनकी पूजा में निमग्न होने वाले अन्तक (यमराज) देव अधिष्ठित हैं, ये तुम्हारे लिए कुशल एवं आरोग्य प्रदान करें।३५-३७। नैर्ऋत्य दिशा में कृष्णा नामक पुरी स्थित है, उसमें मोहात्मक राक्षसगण,

नैर्ऋते दिग्विभागे तु पुरी कृष्णेति विश्रुता । मोहरक्षोगणःशौचपिशाचप्रेतसङ्कुला ॥३८
तत्र कुन्दनिभो देवो रक्तस्रग्वस्त्रभूषणः । खड्गपाणिर्महातेजाः करालवदनोज्ज्वलः ॥३९
रक्षेन्द्रो वसते नित्यमादित्याराधने रतः । करोतु मे सदा शान्तिं धनं धान्यं प्रयच्छतु ॥४०
पश्चिमे तु दिशो भागे पुरी शुद्धवती सदा । नानाभोगिसमाकीर्णा नानाकिन्नरसेविता ॥४१
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिङ्गललोचनः । शान्तिं करोतु मे प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ॥४२
यशोवती पुरी रम्या ऐशानीं दिशमाश्रिता । नानागणसमाकीर्णा नानकृतशुभालया ॥
तेजःप्रकारपर्यन्ता अनौपम्या सदोज्ज्वला ॥४३
तत्र कुन्देन्दुसंकाशश्चाम्बुजाक्षो विभूषितः । त्रिनेत्रः शान्तरूपात्मा अक्षमाला धराधरः ॥
ईशानः परमो देवः सदा शान्तिं प्रयच्छतु ॥४४
भूलोके तु भुवर्लोके निवसन्ति च ये सदा । देवादेवाः शुभायुक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४५
महर्लोके जनोलोके परलोके गताश्च ये । ते सर्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४६
सरस्वती सूर्यभक्ता शान्तिवा विदधातु मे । चारुचामीकरस्था[१] या सरोजकरपल्लवा ॥
सूर्यभक्त्याश्रिता देवी विभूतिं ते प्रयच्छतु ॥४७
हरेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकमेखला । अपराजिता सूर्यभक्ता करोतु विजयं तव ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मवर्णनं
नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७८।

अशौच पिशाच एवं प्रेतों के समूह भरे पड़े हैं । उसके अधीश्वर रक्षेन्द्र देव वहाँ निवास करते है, जो कुन्द के समान प्रभा पूर्ण, रक्तवर्ण की माला एवं वस्त्रों से विभूषित, हाथ में खड्ग लिए, महातेजसम्पन्न, कराल (भीषण) मुख एवं उज्ज्वल वर्ण के हैं । वे नित्य आदित्याराधन में अनुरक्त रहते हैं, मुझे भी सदैव शांति, धन, एवं धान्य प्रदान करने की कृपा करें ।३८-४०। पश्चिम दिशा में शुद्धवती नामक पुरी सुशोभित है, उसमें सदैव अनेक प्रकार के भोगी (नाग) एवं अनेक किन्नर गण विहार करते हैं । उसके अधिनायक जो कुन्द एवं इन्दु के समान कांति, बन्दरों की भाँति पिंगल नेत्र वाले हैं, प्रसन्नतापूर्ण तथा शांतचित्त होकर मुझे शांति प्रदान करें ।४१-४२। ऐशान्य दिशा में सौन्दर्य पूर्ण यज्ञोपवीत नामक नामक पुरी स्थित है, जिसमें भाँति-भाँति के गण, अनेक प्रकार के शुभ गृह हैं तथा जो स्वयं तेजपूर्ण आकार-प्राकार, अनुपम, एवं सदैव उज्ज्वल वर्ण की है । उसमें अधिष्ठित परमोत्तम ईशान देव, जो कुन्द तथा इन्दु की भाँति कान्ति, कमल के समान नेत्र, सौन्दर्यपूर्ण, तीन नेत्र, शांतरूप, अक्ष (रुद्र या स्फटिक) की माला धारण किये हैं, सर्वदा शांति प्रदान करें ।४३-४४। भूलोक एवं भुवर्लोक में सदैव निवास करने वाले देव तथा उससे इतर लोग सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें ।४५। महर्लोक, जनलोक एवं परलोक में स्थित वे देवगण प्रसन्नता पूर्ण तुम्हें सदैव शांति प्रदान करते रहें ।४६। सूर्य भक्त एवं शांतिदायिनी सरस्वती देवी मेरे लिए कल्याण प्रदान करें । और ऐश्वर्य भी । जो सौन्दर्यपूर्ण सुवर्ण के सिंहासन में आसीन, कमल की भाँति करपल्लव (हाथ) से भूषित और सूर्य भक्ति के आश्रित हैं ।४७। चित्र विचित्र हार एवं प्रदीप्त सुवर्ण की मेखला (करधनी) पहने सूर्य भक्त अपराजिता नामक देवी तुम्हें विजय प्रदान करें ।४८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७८।

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

अरुण उवाच

कृत्तिका परमा देवी रोहिणी च वरानना । श्रीमन्मृगशिरो भद्रा आर्द्रा चाप्यपरोज्ज्वला ।।१
पुनर्वसुस्तथा पुष्य आश्लेषा च तथाधिप । सूर्यार्चनरता नित्यं सूर्यभावानुभाविताः ।।२
अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरते सदा । नक्षत्रमातरो ह्येताः प्रभामालाविभूषिताः ।।३
मघा सर्वगुणोपेता पूर्वा चैव तु फाल्गुनी । स्वाती विशाखा वरदा दक्षिणां दिशमाश्रिताः ।।४
अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरपूजितम् । तवापि शान्तिकं द्योतं कुर्वन्तु गगनोदिताः ।।५
अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूलं सूर्यपुरःसराः । पूर्वाषाढा महावीर्या आषाढा चोत्तरा तथा ।।६
अभिजिन्नाम नक्षत्रं श्रवणं च बहुश्रुतम् । एताः पश्चिमतो दीप्ता राजन्ते चानुमूर्तयः ।।७
भास्करं पूजयन्त्येताः सर्वकालं सुभाविताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकाम् ।।८
धनिष्ठा शतभिषा तु पूर्वभाद्रपदा तथा ।।९
उत्तरा भाद्ररेवत्यौ चाश्विनी च महामते । भरणी च महादेवी नित्यमुत्तरतः स्थिताः ।।१०
सूर्यार्चनरता नित्यमादित्यगतमानसाः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकाम् ।।११
मेषो मृगाधिपः सिंहो धनुर्दीप्तिमतां वरः । पूर्वेण भासयन्त्येते सूर्ययोगपराः शुभाः ।।

अध्याय १७९

सौरधर्म का वर्णन

अरुण बोले—अधिप ! उत्तम कृत्तिका देवी, सौन्दर्य पूर्ण मुख वाली रोहिणी, श्रीमान्, मृगशिरा, भद्र आकृति वाली उज्ज्वल वर्ण को आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा, ये सभी नित्य सूर्यपूजा में अनुरक्त एवं सूर्य की ही भावना (प्रेम) में ओतप्रोत रहकर सदैव सूर्य की आराधना किया करते हैं तथा वे नक्षत्र मातृकाएँ भी प्रभा रूपी मालाओं से विभूषित हैं । समस्त गुणसम्पन्न मघा, पूर्वा, फाल्गुनी, स्वाती, एवं वरदायिनी विशाखा दक्षिण दिशा में स्थित रहकर सुरपूज्य सूर्य देव की सदैव पूजा करते हैं । आकाश में उदय होने वाले ये सभी नक्षत्र-देव तुम्हें शांति समेत प्रकाश पूर्ण करें ।१-५। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, सूर्य प्रधान पूर्वाषाढ तथा महापराक्रमशालिनी उत्तराषाढ़ा, अभिजित् नामक नक्षत्र, एवं प्रख्यात श्रवण, ये सभी देव जो क्रमशः पश्चिम की ओर से प्रकाश पूर्ण तथा सुशोभित होकर उत्तम भावना रखते हुए सभी समय में सूर्य की पूजा करते रहते हैं, तुम्हारे लिए नित्य शांति एवं महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ।६-८। धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, अश्विनी, तथा महामते ! भरणी महादेवी ये सभी जो नित्य उत्तर की ओर स्थित रहकर सूर्य की पूजा में तन्मय होकर रहती हैं तुम्हें नित्य शांति उत्तम बुद्धि सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करें ।९-११। मेष, मृगाधिनायक सिंह तथा तेजस्वियों का उत्तम धनु जो सूर्य के साथ योग करने के लिए तत्पर रहते हैं ये सभी जो पूरब की ओर प्रभापूर्ण भासित

शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं भक्त्या सूर्यपदाम्बुजे ॥१२
वृषः कन्या च परमा मकरश्चापि बुद्धिमान् । एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति रविं सदा ॥
भक्त्या परमया नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१३
मिथुनं च तुला कुम्भः पश्चिमे च व्यवस्थिताः । जपन्त्येते सदाकालमादित्यं ग्रहनायकम् ॥१४
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं खखोल्काज्ञानतत्पराः । सतपोदत्तपुष्पाभ्यां ये स्मृता सततं बुधैः ॥१५
ऋषयः सप्त विख्याता ध्रुवान्ताः परमोज्ज्वलाः । भानुप्रसादात्सम्पन्नाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१६
कश्यपो गालवो गार्ग्यो विश्वामित्रो महामुनिः । मुनिर्दक्षो वशिष्ठश्च मार्कण्डः पुलहः क्रतुः ॥१७
नारदो भृगुरात्रेयो भारद्वाजश्च वै मुनिः । वाल्मीकि. कौशिको वात्स्यः शाकल्योऽथ पुनर्वसुः ॥१८
शालङ्कायन इत्येते ऋषयोऽथ महातपाः । सूर्यध्यानैकपरमाः शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥१९
मुनिकन्या महाभागा ऋषिकन्याः कुमारिकाः । सूर्यार्चनरता नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२०
सिद्धाः समृद्धतपसो ये चान्ये वै महातपाः । विद्याधरा महात्मानो गरुडश्च त्वया सह ॥२१
आदित्यपरमा ह्येते आदित्याराधने रताः । सिद्धिं ते सम्प्रयच्छन्तु आशीर्वादपरायणाः ॥२२
नमुचिर्दैत्यराजेन्द्रः शङ्कुकर्णो महाबलः । महानाथोऽथ विख्यातो दैत्यः परमवीर्यवान् ॥२३
ग्रहाधिपस्य देवस्य नित्यं पूजापरायणाः । बलं वीर्यं च ते ऋद्धिमारोग्यं च ब्रुवन्तु ते ॥२४
महाढ्यो यो हयग्रीवः प्रह्लादः प्रभयान्वितः । तानैकाग्निमुखो दैत्यः कालनेमिर्महाबलः ॥२५
एते दैत्या महात्मानःसूर्यभावेन भाविताः । तुष्टिं बलं तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छन्तु सुरारयः ॥२६

होते हैं और नित्य सूर्य के चरण कमल की भक्ति अपनाते रहते है, तुम्हें शांति प्रदान करें । वृष, उत्तम कन्या, बुद्धिमान् मकर, ये सब दक्षिण की ओर स्थित रहकर उत्तम भक्ति पूर्वक सदैव सूर्य की पूजा करते हैं, तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें ।१२-१३। मिथुन, तुला, और कुंभ पश्चिम की ओर स्थित होकर सदैव ग्रहाधीश्वर सूर्य की आराधना करते हैं, तुम्हें शाति प्रदान करें, खखोल्क ज्ञान के लिए तत्पर जिन्हें तप पूर्वक दिये गये दो पुष्पों द्वारा बुधजन स्मरण करते हैं ।१४-१५। विख्यात सातों ऋषि, जो ध्रुव के समीप अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण होकर स्थित हैं तथा सूर्य की कृपावश सुसम्पन्न हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें कश्यप, गालव, गार्ग्य, महामुनि विश्वामित्र, दक्ष मुनि, वशिष्ठ, मार्कण्डेय, पुलह, क्रतु, नारद, भृगु, आत्रेय, भारद्वाज मुनि, वाल्मीकि, कौशिक, वात्स्य, शाकल्य, पुनर्वसु और शाकलायन, ये महातपस्वी ऋषिगण, परमोत्तम एक सूर्य का ही ध्यान करते रहते हैं ये सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें ।१६-१९। पुण्य स्वरूप मुनि की कन्याएं ऋषि की कन्याएँ, कुमारियाँ, नित्य सूर्य की उपासना में जो अनुरक्त रहती हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें ।२०। तप से समृद्ध सिद्ध, अन्य महातपस्वी, महात्मा विद्याधर, तुम्हारे साथ गरुड़ ये सर्पप्रिय आदित्य की आराधना में सदा अनुरक्त एवं आशीर्वाद प्रदान करते हुए तुम्हें सिद्धि प्रदान करें ।२१-२२। दैत्य राज नमुचि, महाबली शंकुकर्ण, और महानाथ, से उत्तम पराक्रम संपन्न तथा ख्याति प्राप्त दैत्य हैं जो ग्रहाधीश्वर सूर्य देव की नित्यपूजा करते है, ये सभी, तुम्हें बल वीर्य, ऋद्धि एवं आरोग्य प्रदान करें । महान्, हयग्रीव, प्रभापूर्ण प्रह्लाद, अग्निमुख दैत्य, महाबली कालनेमि, ये सभी महात्मा दैत्य गण सूर्य की भावना से मुग्ध रहते हैं, तुम्हें तुष्टि, बल, एवं आरोग्य प्रदान करें ।२३-२६।

वैरोचनो हिरण्याक्षस्तुर्वसुश्च सुलोचनः । मुचकुन्दो मुकुन्दश्च दैत्यो रैवतकस्तथा ॥२७
भावेन परमेणेमं यजन्ते सततं रविम् । सततं च शुभात्मानः पुष्टिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२८
दैत्यपत्न्यो महाभागा दैत्यानां कन्यकाः शुभाः । कुमारा ये च दैत्यानां शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२९
आरक्तेन शरीरेण रक्तान्तायतलोचनाः । महाभागाः कृताटोपाः शङ्खाद्याः कृतलक्षणाः ॥३०
अनन्तो नागराजेन्द्र आदित्याराधने रतः । महापापविषं हत्वा शान्तिमाशु करोतु ते ॥३१
अतिपीतेन देहेन विस्फुरद्भोगसम्पदा । तेजसा चातिदीप्तेन कृतस्वस्तिकलाञ्छनः ॥३२
नागराट् तक्षकः श्रीमान्नामकोटया समन्वितः । करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविषापहाम् ॥३३
अतिकृष्णेन वर्णेन स्फुटाधिकटमस्तकः । कण्ठरेखात्रयोपेतो घोरदंष्ट्रायुधोद्यतः ॥३४
कर्कोटको महानागो विष दर्पबलान्वितः । विषशस्त्राग्निसन्तापं हत्वा शान्तिं करोतु ते ॥३५
पद्मवर्णः पद्मकान्तिः फुल्लपद्मायतेक्षणः । ख्यातः पद्मो महानागो नित्यं भास्करपूजकः ॥३६
स ते शांतिं शुभं शीघ्रमचलं सम्प्रयच्छतु । श्यामेन देहभारेण श्रीमत्कमललोचनः ॥३७
विषदर्पबलोन्मत्तो ग्रीवायां रेखयान्वितः । शङ्खपालश्रिया दीप्तः सूर्यपादाब्जपूजकः ॥३८
महाविषं गरश्रेष्ठं हत्वा शांतिं करोतु ते । अतिगौरेण देहेन चंद्रार्धकृतशेखरः ॥३९
दीपभागे कृताटोपशुभलक्षणलक्षितः । कुलिको नाम नागेन्द्रो नित्यं सूर्यपरायणः ॥
अपहृत्य विषं घोरं करोतु तव शान्तिकम् ॥४०

वैरोचन, हिरण्याक्ष, तुर्वसु, सुलोचन, मुचकुन्द, मुकुन्द, दैत्य रैवतक, ये सभी अत्यन्त प्रेम पूर्ण हो कर निरन्तर सूर्य की पूजा करते हैं और स्वयं निरन्तर कल्याण मूर्ति भी हैं, सदैव तुम्हारी पुष्टि करते रहें।२७-२८। पुण्य स्वरूपा दैत्य की पत्नियाँ, उनकी शोभा पूर्ण कन्याएँ एवं कुमारगण सदैव तुम्हें शांति प्रदान करते रहें।२९। रक्त वर्ण की समस्त शरीर, रक्तवर्ण के विशाल नेत्र, महान् पुण्यात्मा, शंख आदि लक्षण सम्पन्न नागराजेन्द्र अनन्त जो आदित्य की आराधना में तल्लीन रहते हैं, महापाप रूपी विष के त्याग पूर्वक तुम्हारी शांति करें।३०-३१। जिसकी अत्यन्त पीत वर्ण की देह द्वारा भोग की सम्पत्ति स्फुरित होती रहती है, उस प्रदीप्त तेज से सम्पन्न मांगलिक अंकों से विभूषित सार्थक नाम वाले ऐसे श्रीमान् तक्षक नागराज, समस्त दोष वाले विष का अपहरण करने वाली महाशान्ति तुम्हें प्रदान करें।३२-३३। अत्यन्त कृष्ण वर्ण के होने के नाते जिसकी कटि और मस्तक स्फुट (साफ) दिखायी नहीं देता है, कण्ठ में तीन रेखाओं से अलंकृत, घोर दंष्ट्रा (दाढ के दाँत) रूप आयुध सम्पन्न विष के अभिमान से मत्त इस प्रकार के महानाग कर्कोटक विषजनित अग्नि संताप के त्याग पूर्वक तुम्हारी शांति करे।३४-३५। कमल वर्ण, कमल की कान्ति, खिले कमल की भाँति विशाल नेत्र, विख्यात, एवं भास्कर के आराधन करने वाले महानग पद्म तुम्हें शुभ एवं अचल संगीत शीघ्र प्रदान करें। श्यामल रंग की देह से सुशोभित, श्रीमान्, कमल लोचन, विषाभिमान से उन्मत्त रेखा युक्त ग्रीवा, सूर्य के कमल चरण के उपासक, ऐसे श्री सम्पन्न शंखपाल उस प्रखर महाविष के नाश पूर्वक तुम्हें शांति प्रदान करें। अत्यन्त गौरवर्ण की है, मस्तक में चन्द्रार्ध से शोभित, दीप भाग में विस्तृत शुभ लक्षणों से विभूषित, एवं नित्य सूर्य के पारायण करने वाले ऐसे कुलिक नामक नागेन्द्र घोर विष के अपहरण पूर्वक तुम्हारी शांति करें। जो अन्तरिक्ष में

अन्तरिक्षे च ये नागा ये नागाः स्वर्गसंस्थिताः । गिरिकन्दरदुर्गेषु ये नागा भुवि संस्थिताः ॥४१
पाताले ये स्थिता नागाः सर्वे यत्र समाहिताः । सूर्यपादार्चनासक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४२
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः । सूर्यभक्ताः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४३
य इदं नामसंस्थानं कीर्तयेच्छृणुयात्तथा । न तं सर्पा विहिंसन्ति न विषं क्रमते सदा ॥४४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं
नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७९।

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शान्तिकवर्णनम्

गङ्गा पुण्या महादेवी यमुना नर्मदा नदी । गौतमी चापि कावेरी वरुणा देविका तथा ॥१
सर्वग्रहपतिं देवं लोकेशं लोकनायकम् । पूजयन्ति सदा नद्यः सूर्यसद्भावभाविताः ॥
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं सूर्यध्यानैकमानसाः ॥२
निरञ्जना नाम नदी शोणश्चापि महानदः । मन्दाकिनी च परमा तथा सन्निहिता शुभा ॥३
एताश्चान्याश्च बहवो भुवि दिव्यन्तरिक्षके । सूर्यार्चनरता नद्यः कुर्वन्तु तव शान्तिकम् ॥४
महावैश्रवणो देवो यक्षराजो महर्षिकः । यक्षकोटिपरीवारो यक्षसङ्ख्येयसंयुतः ॥५

रहने वाले, स्वर्ग में स्थित, पर्वतों के दुर्गम कंदराओं पृथिवी एवं पाताल में रहने वाले सभी नाग ध्यान मग्न होकर सूर्य की आराधना में अनुरक्त रहते है वे तुम्हें सदैव शांति प्रदान करते रहे।३६-४२। नागपत्नियाँ, नागकन्याएँ एवं उनके कुमार गण शांतचित्त होकर वे सभी सूर्य के भक्त गण सदैव शांति प्रदान करते रहें। जो कोई इस नाम के आख्यान का कीर्तन या श्रवण करते रहते हैं सर्पगण उनकी हिंसा नहीं करते, और उनके विष का संक्रमण भी कभी नहीं होता है।४३-४४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
एक सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त।१८९।

अध्याय १८०

शांति का वर्णन

पुण्यरूपा गंगा, महादेवी, यमुना, नर्मदा, गौतमी, कावेरी, वरुणा, देविका ये सभी नदियाँ समस्त ग्रहों के अधीश्वर, देव, लोकपति, लोकनायक सूर्य की आराधना उनके प्रेम में मुग्ध होकर करती रहती हैं और सदैव सूर्य के ध्यान में ही निमग्न रहती हैं वे शांति करें।१-२। निरंजना नामक नदी, महानदशोण, उत्तम मन्दाकिनी तथा शुभ एवं सन्निहित रहने वाली अन्य और बहुत सी नदियाँ जो स्वर्ग और अंतरिक्ष में रहकर सूर्य की उपासना में अनुरक्त रहती हैं, तुम्हें शान्ति प्रदान करें।३-४। यक्षराज महावैश्रवण (कुबेर) देव जो महर्षिपुत्र, यक्ष के कोटि परिवारों समेत, महान् ऐश्वर्यशाली, सूर्य के चरण की सेवा में

महाविभवसम्पन्नः सूर्यपादार्चने रतः । सूर्यध्यानैकपरमः सूर्यभावेन भावितः ॥६
शान्तिं करोतु ते प्रीतः पद्मपत्रायतेक्षणः । मणिभद्रो महायक्षो मणिरत्नविभूषितः ॥७
मनोहरेण हारेण कण्ठलग्नेन राजते । यक्षिणीयक्षकन्याभिः परिवारितविग्रहः ॥
सूर्यार्चनसमासक्तः करोतु तव शान्तिकम् ॥८
सुचिरो नाम यक्षेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः । ललाटे हेमपटलप्रबद्धेन विराजते ॥९
बहुयक्षसमाकीर्णो यक्षैर्नमितविग्रहः । सूर्यपूजापरो युक्तः करोतु तव शान्तिकम् ॥१०
पाञ्चिको नाम यक्षेन्द्रः कण्ठाभरणभूषितः । कुक्कुटेन विचित्रेण बहुरत्नान्वितेन तु ॥११
यक्षवृन्दसमाकीर्णो यक्षकोटिसमन्वितः । सूर्यार्चनकरः श्रीमान्करोतु तव शान्तिकम् ॥१२
धृतराष्ट्रो महातेजा नानायक्षाधिपः खग । दिव्यपट्टः शुक्लच्छत्रो मणिकाञ्चनभूषितः ॥१३
सूर्यभक्तः सूर्यरतः सूर्यपूजापरायणः । सूर्यप्रसादसम्पन्नः करोतु तव शान्तिकम् ॥१४
विरूपाक्षश्च यक्षेन्द्रः श्वेतवासा महाद्युतिः । नानाकाञ्चनमालाभिरुपशोभितकन्धरः ॥१५
सूर्यपूजापरो भक्तः कञ्जाक्षः कञ्जसन्निभः । तेजसादित्यसंकाशः करोतु तव शान्तिकम् ॥१६
अन्तरिक्षगता यक्षा ये यक्षाः स्वर्गगामिनः । नानरूपधरा यक्षाः सूर्यभक्ता दृढव्रताः ॥१७
तद्भक्तास्तद्गमनसः सूर्यपूजासमुत्सुकाः । शान्तिं कुर्वंतु ते हृष्टाः शांताः शांतिपरायणाः ॥१८
यक्षिण्यो विविधाकारास्तथा यक्षकुमारकाः । यक्षकन्या महाभागाः सूर्याराधनतत्पराः ॥१९

अनुरक्त, एक सूर्य के उत्तम ध्यान में निमग्न एवं सूर्य की भावना में ओत-प्रोत हैं प्रसन्न होकर तुम्हें शांति प्रदान करें। कमल पत्र की भाँति विशाल नेत्र, मणिरत्नों से विभूषित महायक्ष मणिभद्र, जो कण्ठ में मनोहर हार से सुशोभित, तथा यक्ष की पत्नी, एवं कन्याओं समेत पविार की भाँति उन्हें साथ लेकर सूर्य की पूजा में आसक्त हैं, तुम्हारी शान्ति करें।५-८। जो मणि कुण्डलों से विभूषित, भाल में सुवर्ण पटल धारण किये अनेक यक्षों से घिरे, यक्षों द्वारा किये गये प्रणाम को स्वीकार करने के लिए नत मस्तक एवं सूर्य की पूजा में दत्तचित्त हैं ऐसे सुचिर नामक यक्षेन्द्र तुम्हें शांति प्रदान करें।९-१०। कण्ठाभरण से अलंकृत जिसमें चित्र विचित्र रत्नों द्वारा मुर्गे बनाये गये हों और स्वयं वह अनेक प्रकार के रत्नों से संयुक्त हो, करोड़ों यक्ष व्यूहों से आच्छन्न, एवं अनेकों यक्षों समेत सूर्य-पूजा में निमग्न रहते हैं, ऐसे श्रीमान् पांचिक नामक यक्षेन्द्र तुम्हें शांति प्रदान करें।११-१२। खग ! महातेजा, अनेक यक्षों के अधिनायक, दिव्य (वस्त्र) एवं मणि तथा सुवर्ण से विभूषित शुक्लछत्र को धारण करने वाले, सूर्य भक्त, सूर्य में अनुरक्त, सूर्य पूजा परायण, एवं सूर्य की कृपा के पात्र, ऐसे धृतराष्ट्र नामक यक्ष तुम्हें शांति प्रदान करें।१३-१४। विरूपाक्ष नामक यक्षेन्द्र, जो श्वेत वस्त्र, महान् प्रकाश पूर्ण, भाँति-भाँति की काञ्चन-मालाओं से अलंकृत। कन्ध प्रदेश, सूर्यपूजा परायण, भक्त, कमलनेत्र, कमल सौन्दर्यपूर्ण और आदित्य के समान तेजस्वी हैं, तुम्हें शान्ति प्रदान करें।१५-१६। अन्तरिक्ष में स्थित यक्ष, स्वर्गगामी, अनेक रूप धारण करने वाले, सूर्य के भक्त, दृढ़ व्रती, सूर्य में भक्ति पूर्वक एकाग्र चित्त वाले, और सूर्य की पूजा के लिए सदैव समुत्सुक रहने वाले, ये सभी यक्ष, हर्ष पूर्ण, शांत, एवं शान्ति परायण होकर तुम्हें शांति प्रदाने करें।१७-१८। अनेक प्रकार के आकार वाली उनकी पत्नियाँ, उनके कुमार, एवं उनकी पुण्य स्वरूप

शान्तिं स्वस्त्ययनं क्षेमं बलं कल्याणमुत्तमम् । सिद्धिं चाशु प्रयच्छन्तु नित्यं च सुसमाहिताः ।।२०
पर्वताः सर्वतः सर्वे वृक्षाश्चैव महर्द्धिकाः । सूर्यभक्ताः सदा सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ।।२१
सागराः सर्वतः सर्वे गृहारण्यानि कृत्स्नशः । सूर्यस्याराधनपराः कुर्वन्तु तव शान्तिकम् ।।२२
राक्षसाः सर्वतः सर्वे घोररूपा महाबलाः । स्थलजा राक्षसा ये तु अन्तरिक्षगताश्च ये ।।२३
पाताले राक्षसा ये तु नित्यं सूर्यार्चने रताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे तेजसा नित्यदीपिताः ।।२४
प्रेताः प्रेतगणाः सर्वे ये प्रेताः सर्वतोमुखाः । अतिदीप्ताश्च ये प्रेता ये प्रेता रुधिराशनाः ।।२५
अन्तरिक्षे च ये प्रेतास्तथा ये स्वर्गवासिनः । पाताले भूतले वापि ये प्रेताः कामरूपिणः ।।२६
एकचक्रो रथो यस्य यस्तु देवो वृषध्वजः । तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ।।२७
ये पिशाचा महावीर्या वृद्धिमन्तो महाबलाः । नानारूपधराः सर्वे सर्वे च गुणवत्तराः ।।२८
अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्वर्गे ये च महाबलाः पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजवाः ।।२९
यस्याहं सारथिर्वीर यस्य त्वं तुरगः सदा । तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु तेऽञ्जसा ।।३०
अपस्मारग्रहाः सर्वे सर्वे चापि ज्वरग्रहाः । ये च स्वर्गस्थिताः सर्वे भूमिगा ये ग्रहोत्तमाः ।।३१
पाताले तु ग्रहा ये च ये ग्रहाः सर्वतो गताः । दक्षिणे किरणे यस्य सूर्यस्य च स्थितो हरिः ।।३२
हरो यस्य सदा वामे ललाटे कञ्जजः स्थितः । तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ।।३३
इति देवादयः सर्वे सूर्ययज्ञविधायिनः । कुर्वन्तु जगतः शान्तिं सूर्यभक्तेषु सर्वदा ।।३४

कन्याएँ, जो सूर्य की आराधना में सदैव तत्पर रहती हैं, ध्यानावस्थित होकर, शांति, स्वस्तयन (मंगल), क्षेम, बल, उत्तम कल्याण, तथा आशु (शीघ्र) सिद्धि नित्य प्रदान किया करें।१९-२०। साङ्गोपाङ्ग पर्वत, एवं महान् ऋद्धि संपन्न सभी वृक्ष, सूर्य भक्त होते हुए सदैव शांति प्रदान करें। सभी समुद्र, सम्पूर्ण गृह एवं अरण्य, सूर्य की आराधना में अनुरक्त होने के नाते तुम्हें शांति प्रदान करें।२१-२२। भीषण रूप एवं महान् बल शाली राक्षस गण, जो भूमि, अन्तरिक्ष एवं पाताल के निवासी हैं, नित्य सूर्य की अर्चना में अनुरक्त रहने के नाते उनके तेज द्वारा प्रदीप्त रहते हैं तुम्हें शांति प्रदान करें।२३-२४। प्रेत एवं सभी प्रेतगण, जो सर्वतोमुख (चारों ओर मुख वाले), अति प्रदीप्त, रक्तभोजी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, भूतल तथा पाताल में निवास करते हैं, स्वेच्छा रूप धारण करते रहते हैं, एक चक्के के रथ वाले और प्रधान वृषध्वज उस (सूर्य) देव की उपासना करते हैं, उस देव के तेज द्वारा तुम्हें शांति प्रदान करें।२५-२७। महापराक्रमी, वृद्धिसम्पन्न, महाबली, भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाले, उत्तम गुणों से युक्त अंतरिक्ष, स्वर्ग, पाताल एवं पृथिवी में अनेक रूप धारण करके मन की भाँति द्रुतगामी होने वाले ऐसे पिशाच गण उस देव के तेज द्वारा वीर ! मैं जिसका सारथी और तू तुरग (घोड़े की भाँति वाहन) है, तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करें।२८-३०। अपस्मार (मृगी) के ग्रह, समस्त ज्वर के ग्रह, स्वर्ग और भूमि में रहने वाले उत्तम ग्रह, पाताल स्थायी ग्रह, तथा सर्वत्र प्राप्त होने वाले ग्रह, ऐसे ग्रहगण उस देव के तेज द्वारा, जिस सूर्य के दक्षिण किरण में हरि, बायें हर एवं ललाट में ब्रह्मा स्थित हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान् करें।३१-३३। इस प्रकार सूर्य-यज्ञ के विधान के आरम्भ करने वाले समस्त देव आदि गण, जगत् एवं सूर्य भक्तों की सदैव

जयःसूर्याय देवाय तमोहन्त्रे विवस्वते । जयप्रदाय सूर्याय भास्कराय नमोस्तु ते ।।३५
ग्रहोत्तमाय देवाय जयः कल्याणकारिणे । जयः पद्मविकाशाय बुधरूपाय ते नमः।।३६
जयः दीप्तिविधानाय जयः शान्तिविधायिने । तमोघ्नाय जयायैव अजिताय नमोनमः ।।३७
जयार्क जयदीप्तीश सहस्रकिरणोज्ज्वल । जय निर्मितलोकस्त्वमजिताय नमोनमः ।।३८
गायत्रीदेहरूपाय सावित्रीदयिताय च । धराधराय सूर्याय मार्तण्डाय नमोनमः ।।३९

सुमन्तुरुवाच

एवं हि कुर्वतः शान्तिमरुणस्य महीपते । श्रेयसे वैनतेयस्य गरुडस्य महात्मनः ।।४०
एतस्मिन्नेव काले तु सुपर्णः पत्रवानभूत् । तेजसा बुधसंकाशो बलेन हरिणा समः ।।४१
सम्पूर्णावयवो राजन्यथापूर्वं तथाभवत् । प्रसादाद्देवदेवस्य भास्करस्य महात्मनः ।।४२
एवमन्येऽपि राजेन्द्र मानवा ये च रोगिणः । अस्मिन्कृतेऽग्निकार्ये तु विरुजास्ते भवन्ति हि ।।
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यमग्निकार्यं विधानतः ।।४३
करणीयं च राजेन्द्र मानवैश्च प्ररोगिभिः । अस्मिन्कृते अग्निकार्ये विरूजास्ते भवन्ति हि ।।४४
ग्रहोपघाते दुर्भिक्ष उत्पातेषु च कृत्स्नशः । अवर्षमाणे पर्जन्ये लक्षहोमसमन्वितः ।।४५
पूजयित्वा प्रसूक्तं तु ध्यात्वा वीरं प्रयत्नतः । वारुणैश्च तथा सूक्तैर्होमं कुर्याद्विचक्षणः ।।४६
चेतसा सुप्रसन्नेन सर्पिषा मधुना सह । तिलैर्यवैश्च सहितैः पायसं मधुना तथा ।।४७
इदं च शान्तिकं कुर्याद्बलिं दद्यात्प्रयत्नतः। एवं कृते श्रियं देवा वर्षन्ते कामना नृणाम् ।।४८

शाति करें ।३४। तमनाशक, विवस्वान् सूर्य देव की जय हो, जय प्रदायक सूर्य भास्कर के लिए नमस्कार है ।३५। उत्तम गृह, कल्याण करने वाले (सूर्य) देव की जय हो, कमल को विकसित करने की जय हो, बुधरूप तुम्हें नमस्कार है। प्रकाश करने वाले की जय हो, शांति स्थापन करने वाले की जय हो, तमनाशक, जयरूप, एवं अजेय को नमस्कार है।३६-३७। अर्क, प्रकाश के ईश, तथा सहस्र किरणों द्वारा उज्ज्वल वर्ण वाले की जय हो, लोक निर्माता की जय हो, अजेय को बार बार नमस्कार है ।३८। गायत्री के शरीर रूप, सावित्री के प्रिय, पृथिवी को धारण करने वाले, सूर्य एवं मार्तण्ड को बार-बार नमस्कार है।३९

सुमन्तु बोले—महीपते ! इस प्रकार विनतापुत्र महात्मा गरुड़ के कल्याणार्थ अरुण के शान्ति-अनुष्ठान करते हुए उसी समय गरुड़ के पंख निकल आये । उससे बुध के समान तेज और विष्णु के समान बल भी उन्हें प्राप्त हुए ।४०-४१। इस प्रकार राजन् उनकी शरीर के समस्त अंग देवाधिदेव महात्मा सूर्य की प्रसन्नतावश पूर्व की भाँति सुसम्पन्न हो गये । राजेन्द्र ! अन्ध रोगी मनुष्य भी इस भाँति अग्नि कार्य के सम्पन्न करने पर नीरोग हो जाते हैं ।४२-४४। अरिष्ट ग्रहों के उपघातों, दुर्भिक्ष, सम्पूर्ण उत्पातों के समय एवं मेघ के वृष्टि न करने पर लक्ष आहुति का विधान प्रारम्भ करना चाहिए ।४५। सूक्त द्वारा उन वीर (सूर्य) की पूजा, प्रयत्न पूर्वक ध्यान एवं वरुण सूक्त द्वारा हवन बुद्धिमान् को करना चाहिए । प्रसन्न चित्त होकर घी, शहद, तिल, जवा एवं मधुमिश्रित खीर से हवन करना बताया गया है । इस प्रकार शांति कर्मानुष्ठान आरम्भ करके प्रयत्न पूर्वक बलि प्रदान करें । उसके सुसम्पन्न होने पर भी श्री की प्राप्ति, मेघों द्वारा वृष्टि, और मनुष्यों की कामनाएँ सफल होती हैं ।४५-४८। जो इस

इत्येवं शान्तिकाध्यायं यः पठेच्छृणुयादपि । विधिना सर्वलोकस्तु ध्यायमानो दिवाकरम् ॥४९
स विजित्य रणे शत्रुं मानं च परमं लभेत् । अक्षयं मोदते कालमतिरस्कृतशासनः ॥५०
व्याधिभिर्नाभिभूयेत पुत्रपौत्रप्रतिष्ठितः । भवेदादित्यसदृशस्तेजसा प्रभया तथा ॥५१
यानुद्दिश्य पठेद्वीर वाचको मानवो भुवि । पीड्यते न च तैः रोगैर्वातपित्तकफात्मकैः ॥५२
नाकाले मरणं तस्य न सर्पैश्चापि दश्यते । न विषं क्रमते देहे न जडान्ध्यं न मूकता ॥५३
न चोत्पत्तिभयं तस्य नाभिचारकजं भवेत् । ये रोगा ये महोत्पाता येऽहयश्च महाविषाः ॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति श्रवणादस्य भारत ॥५४
यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां गङ्गादीनां विशेषतः । तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्नोति श्रवणादिभिः ॥५५
दशानां राजसूयानामन्येषां च विशेषतः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वव्याधिविवर्जितः ॥५६
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । शरणागतदीनार्तमित्रविश्रम्भघातकः ॥५७
दुष्टः पापसमाचारः पितृहा मातृहा तथा । श्रवणादस्य पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥५८
इतिहासमिमं पुण्यमग्निकार्यमनुत्तमम् । न दद्यात्कस्यचिद्वीर मूर्खस्य कलुषात्मनः ॥५९
सूर्यभक्ते सदा देयं सूर्येण कथितं पुरा । अरुणस्य महाबाहो गरुडस्यारुणेन च ॥६०
गरुडेन पुरा प्रोक्तं भोजकानां महात्मनाम् । सूर्यशर्मसुखादीनां शाकद्वीपे महीपते ॥६१

शांतिक अध्याय का पाठ या श्रवण अथवा विधिपूर्वक दिवाकर का ध्यान करते हैं वह रण स्थल में शत्रु पर विजय प्राप्ति पूर्वक अत्यन्त मान प्राप्त करता है, पुनः अलंघित शासन प्राप्त कर अक्षय काल तक आनन्दानुभव, व्याधिहीन, पुत्रों एवं पौत्रों समेत आदित्य के समान तेज तथा कांति पूर्ण होकर प्रतिष्ठित होता है ।४९-५१। वीर ! इस पृथ्वीतल में जिस उद्देश्य से मनुष्य इसका पाठ करता है, (वे निर्विघ्न सफल होते हैं) और वे वात, पित्त एवं कफात्मक किसी रोगों से पीड़ित नहीं होते हैं, अकाल में मरण नहीं होता, कोई साँप नहीं काटता, उसके शरीर में विष संक्रमण नहीं होता, न जड़ता रूपी अंधकार से आच्छन्न होता है, और न कभी मूक भाव (गूंगा) होता है । भारत ! इसके श्रवण करने से जन्म मरण भय, शस्त्राघात या अनुष्ठान (पुनश्चरण) द्वारा मरण का भय कभी नहीं होता है, समस्त रोग, महोत्पात, महाविषधर, सर्प, शांत हो जाते हैं ।५२-५४। समस्त तीर्थों विशेषकर गंगादि तीर्थों तथा दश राजसूय विशेषकर अन्य और यज्ञों द्वारा जो पुण्य होता है, उससे कोटि गुने पुण्य इसके श्रवणादि करने से प्राप्त होते हैं ।५५। समस्त रोग मुक्त होकर सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । जो हत्या करने वाला, कृतघ्नी, ब्रह्महत्या करने वाला, गुरु पत्नी गामी, शरण प्राप्त हीन-दुखी एवं मित्र के साथ विश्वास घात करने वाला, दुष्ट, पापी तथा माता-पिता का बध करने वाले, ये सभी इसके श्रवण करने से पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ।५६-५८। वीर ! किसी अज्ञानी मूर्ख के लिए उस उत्तम पुण्योपाख्यान का उपदेश कभी न करें । सदैव सूर्य के भक्त को ही इसे प्रदान करना चाहिए, ऐसा सूर्य ने पहले ही अरुण को बताया गया था । महाबाहो ! अरुण ने गरुड को तथा महीपते ! शाकद्वीप में गरुड ने भोजकों को बताया था ।५९-६०। जो सूर्य के कल्याण एवं सुख रूप तथा महात्मा हैं, और उन्होंने मुनि एवं पंडित व्यास जी से तथा व्यास ने भी

तैश्चापि कथितं पुण्यं मुनेर्व्यासस्य धीमतः । तेनापि कथितं पुण्यं सर्वपापभयापहम् ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे गरुडारुणसंवादे शान्तिकवर्णनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८०।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्मृतिभेदवर्णनम्

शतानीक उवाच

पञ्चप्रकारं धर्मं मे वद स्मार्तं यथाक्रमम् । कौतुकं[1] पृच्छ ते ब्रह्मन्समासव्यासयोगतः ।।१

सुमन्तुरुवाच

पञ्चधा वर्णितं धर्मं शृणु राजन्समासतः । यथोक्तं भास्करेणेह अरुणस्य महात्मनः ।।२
सहस्रकिरणं भानुमुदयस्थं दिवाकरम् । प्रणम्य शिरसा देवमुवाच गरुडाग्रजः ।।३
भगवन्देवदेवेश सहस्रकिरणोज्ज्वल । स्मृतिधर्मान्यथातत्त्वं वक्तुमर्हसि पृच्छतः ।।४
एवं पृष्टस्तु भगवानरुणेन खगाधिपः[2] । उवाच परया प्रीत्या पूजयित्वा महीपते ।।५

समस्त पाप एवं भय नाशक इस पुण्योपाख्यान का वर्णन किया है ।६१-६२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प के गरुडारुण संवाद में शांतिक वर्णन नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।१८०।

अध्याय १८१

स्मृतिभेद का वर्णन

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! स्मार्त धर्म का वर्णन, जिसकी पाँच प्रकार से व्याख्या की गई है, संक्षेप एवं विस्तार से संमिश्रण पूर्वक क्रमशः मुझे सुनाने की कृपा कीजिये, इसके सुनने के लिए मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ।१

सुमन्तु बोले—राजन् ! पाँच प्रकार से वर्णित उस स्मार्त धर्म का वर्णन महात्माअरुणके लिए सूर्य ने जिस प्रकार किया था, विस्तार पूर्वक मैं वही बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार अरुण ने सहस्र किरण वाले उस दिवाकर सूर्य से उनके उदय होते समय प्रणाम करके यह कहा——भगवन्, देवाधिदेव, एवं सहस्र किरणोज्ज्वल ! मुझे स्मृति (स्मार्त) धर्म जानने की इच्छा है, आप उसके तत्त्व को यथोचित ढंग से बताने की कृपा करें । ! महीपते ! परम प्रसन्न अरुण द्वारा पूजित होने के उपरांत इस प्रकार पूँछने पर आकाशचारियों के अधिनायक सूर्य ने कहा ।२-५

---

१. कौतुकं पृच्छते मह्यं संक्षेपविस्तारयोगात्कथयेत्यर्थः । पृच्छते इति चतुर्थ्येकवनान्तम् । २. ग्रहेशः इत्यर्थः ।

भास्कर उवाच

स्मृतिधर्मं वेदमूलं शृणु त्वं गरुडाग्रज । पूर्वानुभूतं यद्ध्यानमथ तत्स्मरणं स्मृतिः ॥६
धर्मः क्रियात्मा निर्दिष्टः श्रेयोऽभ्युदयलक्षणः । स च पञ्चविधः प्रोक्तो वेदमूलः सनातनः ॥७
अस्य शब्दस्यानुष्ठानात्स्वर्गो[३] मोक्षश्च जायते । इह लोके सुखैश्वर्यमतुलं यच्च खगाधिप ॥८

अनूरुरुवाच

कथं पञ्चविधो ह्येष प्रोक्तो धर्मः सनातनः । कस्य भेदास्तु ते पञ्च ब्रूहि मे देवसत्तम ॥९

भास्कर उवाच

वेदधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणां स तत्परः । वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गुणनैमित्तिको यथा ॥१०
वर्णत्वमेकमाश्रित्य अधिकारे प्रवर्तते । सवर्णाश्रमदण्डस्तु भिक्षा दण्डादिको यथा ॥११
वर्णाश्रमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्तते । स वर्णाश्रमधर्मस्तु दण्डाद्या मेखला यथा ।१२
यो गुणेन प्रवर्तेत स गुणो धर्म उच्यते । यथा मूर्धाभिषिक्तस्य प्रजानां पालनं परम् ।१३
निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्तते । नैमित्तिकः स विज्ञेयो जातिद्रव्यगुणाश्रयः ॥१४
एष तु द्विविधः प्रोक्तः समासादविशेषतः । नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ॥१५

भास्कर बोले—गरुडाग्रज ! वेदमूलक स्मृति धर्म को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ध्यान में निमग्न होकर पहले जिसका अनुभव किया जाता है, पुनः उसी के स्मरण करने का नाम स्मृति है धर्म का स्वरूप क्रियात्मक है, श्रेय और अभ्युदय उसके लक्षण हैं, वह पाँच प्रकार से बताया गया है तथा वह वेदमूलक है, और सनातन अविनाशी भी । खगाधिप ! इस धर्म के अनुष्ठान करने से स्वर्ग, मोक्ष, तथा इस लोक के समस्त सुख ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ।६-८

अनूरु (अरुण) ने कहा—हे देवश्रेष्ठ ! इस सनातन धर्म के पाँच भेद कैसे हुए और वे पाँच भेद कौन से हैं, मुझसे बताने की कृपा कीजिये ! ।९

भास्कर बोले—एक ही वेदधर्म है, उसी का स्मरण किया गया है और चारों आश्रमों में कार्य रूप में वहीं परिणत किया गया है, जैसे वर्णाश्रम में तीसरे गुण नैमित्तक धर्म का प्रविष्ट होना बताया गया है । उसमें जाति की कल्पना करके ही अधिकार में प्रवृत्त होना कहा गया है इसीलिए वर्णाश्रमों में ब्राह्मण जाति से लेकर वैश्य वर्ण तक के उपनीत होते समय भिक्षा याचना एवं दण्डग्रहण का विधान समान ही बताया गया है वर्णाश्रम एवं आश्रमों के अधिकार वश जिस धर्म का प्रयोग (आचरण) किया जाता है, वही वर्णाश्रम धर्म है, जैसे दण्ड आदि और मेखला का धारण ब्रह्मचारियों एवं संन्यासियों में समान होता है, गुण की प्रधानतावश जिस धर्म का प्रयोग किया जाये, वह गुण धर्म कहा जाता है, जैसे तिलकधारी राजाओं के लिए प्रजाओं का पालन करना ही उत्तम धर्म बताया जाता है ।१०-१३। किसी निमित्त को अपनाकर जिस धर्म का प्रयोग होता है, उसे नैमित्तिक धर्म जानना चाहिए, वह सर्वत्र जाति, द्रव्य अथवा गुण को निमित्त मान कर प्रयुक्त होता है । इस भाँति दो प्रकार मूलधर्म से इसकी विस्तृत व्याख्या की

---

३. धर्मशब्दवाच्यस्येत्यर्थः ।

स चतुर्धा निरूप्यस्तु स्वरूपफलसाधनैः । प्रमाणतस्तु प्रत्येकं समस्तैश्च यथाक्रमम् ॥१६
श्रुत्या सह विरोधे तु बाध्यते विषयं विना । व्यवस्थया विरोधेन कार्यो यत्नः परीक्ष्यते ॥१७
स्मृत्या सह विरोधेन चार्थशास्त्रस्य साधनम् । परस्परविरोधे तु अर्थशास्त्रस्य साधनम् ॥१८
अदृष्टार्थे विकल्पस्तु व्यवस्थासम्भवे सति । स्मृतिशास्त्रविकल्पस्तु आकांक्षापूरणे सति ॥१९
वेदमूले स्थितं त्वेतदनुष्ठानं क्रिया सती । एवं शक्यविधानं तु न्यायो ह्येवं व्यवस्थितः ॥२०
निषेधविधिरूपं तु द्विधा शास्त्रं खगाधिप । एकरूपं वदन्त्यन्ये बहुरूपमथापरे ॥२१
पञ्चप्रकाराः स्मृतय एवं शिष्यव्यवस्थिताः । त्रिधा चतुर्धा द्वेधा वा एकधा बहुधा खग ॥२२
दृष्टार्था तु स्मृतिः काचिददृष्टार्था तथापरा । अनुवादस्मृतिस्त्वन्या दृष्टादृष्टा तु पञ्चमी ॥
सर्वा एता वेदमूलाः स्मृता वै ऋषिभिः स्वयम् ॥२३

अरुण उवाच

या एता भवता प्रोक्ताः स्मृतयः पर्वगोपने । एतासां लक्षणं ब्रूहि समासादेव सत्तम ॥२४
दृष्टार्था का मता देव अदृष्टार्था च का भवेत् । दृष्टादृष्टस्वरूपा का न्याय्यमूला च का भवेत् ॥
अनुवादस्मृतिः का स्याद्दृष्टादृष्टा तु का भवेत् ॥२५
एवमुक्तो महातेजा भास्करो वारितस्करः । उवाच तं खगं वीरं प्रणतं विनयान्वितम् ॥२६

गयी है, पर इन दोनों के विभिन्न होने में कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता नहीं है। जैसे किसी भी प्रायश्चित्त धर्म का अनुष्ठान करना नैमित्तिक धर्म कहा जाता है। स्वरूप, फल एवं साधनों द्वारा वह (धर्म) चार प्रकार का बताया गया है—उनमें से क्रमशः प्रत्येक धर्म का प्रमाण एवं स्वरूपादि द्वारा विस्तृत व्याख्यान किया गया है।१४-१६। श्रुति के साथ विरोध होने पर यह बिना विषय के बाधित होता है। व्यवस्था एवं विरोध के द्वारा करणीय यत्न की परीक्षा होती है। स्मृति के साथ विरोध होने पर यह (धर्म) अर्थशास्त्र का साधन होता है। परस्पर विरोध में तो यह अर्थशास्त्र का साधन बनता ही है। व्यवस्था सम्भव होने पर कल्पित अर्थ में विकल्प होता है। स्मृतिशास्त्र विषयक विकल्प तो आकांक्षा की पूर्ति होने पर ही होता है। क्रियात्मक यह अनुष्ठान वेद के मूल में अधिष्ठित है। इसी प्रकार समस्त समर्थ विधान एवं न्याय व्यवस्थित है। हे पक्षिराज! निषेध एवं विधिरूप दो प्रकार के शास्त्र होते हैं। कुछ लोग इसे एकरूप कहते हैं तथा कुछ लोग इसे अनेकरूप कहते हैं। हे खग! एक प्रकार, दो प्रकार, तीन प्रकार, चार प्रकार एवं अनेक प्रकार के स्वरूपों वाली ये स्मृतियाँ इस तरह पाँच प्रकार से शिष्यों के लिए व्यवस्थित हैं। कोई स्मृति अर्थ वाली तथा कोई अदृष्ट अर्थ वाली है। कोई अनुवाद स्मृति है तो कोई दृष्टादृष्ट उभय रूप है। ये समस्त स्मृतियाँ ऋषियों द्वारा वेद मूलक कहीं गयी है।१७-२३

अरुण ने कहा—हे सत्तम! पर्व (तिथियों) के रक्षार्थ इन स्मृतियों को आप ने बताया है, इनके लक्षणों को भी विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा कीजिये! मैं इसे जानना चाहता हूँ, देव! दृष्टार्थ प्रतिपादन करने वाली, अदृष्टार्थ प्रतिपादन करने वाली, दृष्टादृष्ट स्वरूप वाली, न्यायमूलक और अनुवाद मात्र प्रतिपादन करने वाली इन स्मृतियों को आप बताने की कृपा कीजिए। इस प्रकार (अरुण के) पूछने पर महातेजा तथा जलतस्कर भास्कर ने वीर, एवं नतमस्तक बैठे हुए नम्रतापूर्वक उस अरुण पक्षी से कहा २४-२६

आदित्य उवाच

षड्गुणस्य स्वरूपं तु प्रयोगात्कार्यगौरवात् । समयानामुपायानां योगो व्याससमासतः ।।२७
अध्यक्षाणां च निक्षेपः करणानां निरूपणम् । दृष्टार्थेयं स्मृतिः प्रोक्ता ऋषिभिर्गरुडाग्रज ।।२८
सन्ध्योपास्तिस्तथा कार्या शुनो मांसं न भक्षयेत् । अदृष्टार्था स्मृतिः प्रोक्ता मनुना विनतात्मज ।।२९
पालाशं धारयेद्दण्डमुभयार्थां विदुर्बुधाः । विरोधे तु विकल्पः स्याद्यागो होमस्ततो यथा ।।३०
श्रुतौ दृष्टं यथा कार्यं स्मृतेः तत्तादृशं यदि । उक्तानुवादिनी सा तु पारिव्राज्यं तथा गृहात् ।।३१
उक्तो धर्मश्च संक्षेपात्परिभाषा च तद्गता । तत्साधनं च देशादि इत्यमित्यब्रवीद्रविः ।।३२
ब्रह्मावर्तः परो देश ऋषिदेशस्तस्त्वनन्तरः । मध्यदेशस्ततोऽप्यन्य आर्यावर्तस्त्वनन्तरः ।।३३
कृष्णसारस्तु विचरेन्मृगो यत्र स्वभावतः । यज्ञियः स तु देशः स्यान्म्लेच्छदेशस्ततः परः ।।३४
ब्रह्मादीनां च देवानां ब्राह्मणादेस्तथैव च । भूतग्रामस्य कृत्स्नस्य त्रयं कृत्स्नस्य खेचर ।।३५
साधनत्वं मनुः प्राह वेदमूलं सनातनम् । प्रकाशयज्ञसंसिद्ध्यै यदशब्दस्य एव तु ।।३६
उपलभ्य यथातत्त्वं स च दर्शितवानृषिः । सम्यक्संसाधनं धर्मः कर्तव्यस्त्वधिकारिणा ।।३७
निष्कामेन सदा वीर काम्यं रूपान्वितेन च । आचारयुक्तः श्रद्धालुर्वेदज्ञोऽध्यात्मचिन्तकः ।।
कर्मणां फलमाप्नोति न्यायार्जितधनश्च यः ।।३८

आदित्य बोले—इस स्मार्त धर्म के स्वरूप, प्रयोग कार्य की गौरवता समय तथा उपायों के संक्षिप्त एवं विस्तृत योग द्वारा छः प्रकार के बताये गये हैं ।२७। गरुडाग्रज ! अध्यक्षों के निक्षेप तथा करणों के निरूपण करने वाली स्मृति, दृष्टार्थ स्मृति बतायी गई है ।२८। विनतात्मजो ! (तीनों काल) संध्या की उपासना करनी चाहिए और कुत्ते का मांस भक्षण कभी न करना चाहिए, इसे बतलाने वाली को मनु ने अदृष्टार्थ स्मृति बताया है ।२९। पलाश का ही दण्ड धारण करना चाहिए, ऐसा कहने वाली को 'दृष्टादृष्टार्थ स्मृति' कहा जाता है, ऐसा विद्वानों ने बताया है । यदि किसी स्मृति द्वारा विरोध संभव हो तो, प्राप्त याग एवं हवन के त्याग का ग्रहण करने की भाँति विकल्प करना चाहिए ।३०। जो श्रुति में दृष्ट है, वही यदि स्मृति में भी आनुपूर्वी वर्णित है, तो उस श्रुति में दृष्ट विषय को स्मृति में बतलाना अनुवाद कहलाता है और ऐसा कहने वाली यह स्मृति अनुवाद मात्र स्मृति कही जाती है, जैसे घर से निकलकर संन्यास ले लेना । इस प्रकार संक्षेप में धर्म की व्याख्या बताई गई एवं उसकी अन्वर्थ परिभाषा भी बताई गयी । उसके साधन देश-काल हैं, ऐसा सूर्य ने कहा था ।३१-३२। ऋषियों का प्रशस्त देश 'उत्तम ब्रह्मावर्त देश है' उसके अनन्तर 'मध्यदेश' और उसके अनन्तर 'आर्यावर्त' नामक देश कहा जाता है ।३३। जिस प्रदेश में कृष्ण सार 'मृग' स्वभावानुसार इधर उधर विचरण करते हैं, वह 'यज्ञिय' यज्ञ करने के लिए प्रशस्त प्रदेश कहलाता है, और उसके पश्चात् वाला म्लेच्छों का देश कहा गया है ।३४। आकाशगामिन् ! ब्रह्मादि देवता, ब्राह्मणादि वर्ण एवं समस्त जीव समूह इन तीनों का साधन वही (धर्म) है, और मनु ने उसे वेद मूलक तथा सनातन (अविनाशी) बताया है, जो ब्रह्मा की वेदवाणी में प्रकाश रूप में यज्ञों की सिद्धि के लिए निहित हैं । ऋषि ने ध्यानयोग द्वारा उसके तत्त्व को भली भाँति जानकर लोक हितार्थ प्रकाशित किया है, अतः अधिकारी वर्ग को चाहिए कि उस धर्म का भलीभाँति साधन पूर्वक पालन करें ।३५-३७। वीर ! 'निष्काम और सकाम' उसके दो रूप बताये गये हैं । आचार समेत श्रद्धालु पुरुष जो वेद-मर्मज्ञ एवं अध्यात्मचिंतन करता है, कर्मों के फल को अवश्य प्राप्त करता है, तथा न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करने वाला भी उसे प्राप्त करता है ।३८

अरुण उवाच

ब्रह्मावर्तादिदेशानां समस्तानां विभावसो । विभागं ब्रूहि देवेन्द्र सम्मानय ग्रहाधिप ॥३९

आदित्य उवाच

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥४०
हिमवद्विन्ध्यधरयोर्यदन्तरमुदाहृतम् । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ॥४१
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः । एतान्विज्ञाय सद्देशान्संश्रयेत प्रयत्नतः ॥४२
शूद्रस्तु यस्मिंस्तस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः । एषा धर्मस्य वै ज्योतिः समासात्कथिता तव ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मेषु अरुणादित्यसंवादे स्मृतिभेदवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८१।

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

विवाहविधिवर्णनम्

आदित्य उवाच

उक्तं धर्मस्य रूपं तु साधिकारं सनातनम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्ममाश्रमिणां खग ॥१

अरुण ने कहा—हे विभावसो ! ब्रह्मावर्त आदि समस्त देशों के विभाग, मुझसे बतायें, हे देवेन्द्र, ग्रहाधिनायक ! मेरी इस अर्चना को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करें ।३९

आदित्य बोले—सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों नदियों के आन्तरिक प्रदेश को जिसका निर्माण देवताओं ने किया था, ब्रह्मावर्त कहते हैं ।४०। हिमालय और विन्ध्य पर्वत के आन्तरिक प्रदेश को, जो प्रयाग से पश्चिम दिशा में है, 'मध्य देश' बताया गया है, एवं पूर्व समुद्री तट से लेकर पश्चिम समुद्र तट के मध्य भू भाग को विद्वानों ने 'आर्यावर्त' प्रदेश बताया है, ऐसा समझकर इस उत्तम देश के निवास करने के लिए सर्वथा प्रयत्न शील रहना चाहिए । क्योंकि शूद्र अपनी जीविकाके लिए जिस किसी देश में रह सकता है । इस प्रकार धर्म का पूर्ण प्रकाश तुम्हें दिखा दिया गया ।४१-४३

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में
अरुणादित्य संवाद रूप स्मृति भेद वर्णन नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८१।

अध्याय १८२

विवाहविधि का वर्णन

आदित्य बोले—तुम्हें धर्म का अधिकार पूर्वक सनातन रूप बता दिया गया, खग ! अब मैं आश्रमों के धर्म बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ (वानप्रस्थ) तथा भिक्षु (सन्यासी) ये चार

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वनस्थो भिक्षुरेव च । चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः एक एव चतुर्विधः ।।२
गायत्री ब्रह्मचारी तु प्राजापत्यो द्वितीयकः । देवव्रतस्तृतीयस्तु नैष्ठिकस्तु चतुर्थकः ।।३
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः सवेदाः समधर्मकाः । अतःपरं प्रवक्ष्यामि संस्कारं धर्मसिद्धये ।।४
गर्भाधानमृतौ कार्यं हृष्टयोस्तु समन्त्रकम् । कार्यं पुंसवनं मातुस्तृतीये मासि संयुतैः ।।५
सीमन्तः सप्तमे गर्भे षष्ठे वा सप्तमेऽपि वा । पात्रसंस्कारकाः इष्टा गर्भाधानादयस्त्रयः ।।६
जातकर्मादयः सर्वे संस्काराः पुरुषस्य तु । जातस्य प्राशनं यत्र स्वर्णादीनां समन्त्रकम् ।।७
जातकर्मेति तत्प्रोक्तं गुह्यं नाम तदैव तु । प्रकाशो नाम कर्तव्यं दिने त्वेकादशेऽर्थवत् ।।८
धर्मशास्त्रादिसंयुक्तं षष्ठेऽन्नप्राशनं खग । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा चूडाकर्म विधीयते ।।९
अष्टमे दशमे वापि ब्राह्मणस्योपनायनम् । पुरुषस्य तथा चान्यजातीयानां विशेषतः ।।१०
एकादशे द्वादशे वा कार्यं क्षत्रियवैश्ययोः । वेदसंस्कारकं वच्मि मन्यते त्वौपनायनम् ।।११
पुरुषस्य तथा चान्य उभयोश्च ब्रवीम्यहम् । सावित्रं वैदिकं चैव महानाम्नीमहाव्रतम् ।।१२
तथौपनिषदं चाब्दं गोदानं च सुवर्णकम् । व्रतानि ग्रहणार्थानि वेदस्येति मनोर्मतम् ।।१३
वेदैकदेशपाठस्य उक्तं गृह्ये प्रपञ्चकम् । उक्ता गुरोस्तु शुश्रूषा दृष्टादृष्टार्थसाधनम् ।।१४

आश्रमी बताये गये हैं, यह एक ही (आश्रम) चार प्रकार से ख्यात हैं।२। मुख्य गायत्री का उपासक ब्रह्मचारी, प्राजापत्य धर्मानुष्ठान करने वाला दूसरा (गृहस्थ), देव व्रती (तीसरा), और नैष्ठिक (निष्ठा पूर्वक उसका अनुष्ठान करने वाला) चौथा आश्रम कहा जाता है। वेदों समेत इन समान धर्म वाले चारों आश्रमों को बता दिया गया, इसके उपरांत धर्म-सिद्धि के लिए मैं संस्कारों को बता रहा हूँ (सुनो)! स्त्री-पुरुष दोनों को प्रसन्न चित्त होकर ऋतु काल के पश्चात् मन्त्र पूर्ण गर्भाधान करना चाहिए, तीन मास के गर्भ हो जाने पर माता का 'पुसवन' (संस्कार) कार्य सम्पन्न होना चाहिए। सातवें मास में या छठें मास में 'सीमन्तोन्यन' संस्कार करे। इन तीनों गर्भाधानादि संस्कार के सुसम्पन्न होने से पात्र संस्कृत (शुद्ध) हो जाते हैं। इसीलिए ये सभी के लिए आवश्यक बताये गये हैं। जात कर्मादि सभी संस्कार पुरुष (पुरुष रूप में उत्पन्न बालक) के होते हैं। मंत्र पूर्वक सुवर्ण (शलाका) द्वारा उत्पन्न बालक का प्राशन करना 'जातकर्म' कहलाता है, उसमें उसका नाम (गुहा) रहता है। नाम का प्रकाश (नाम का उच्चारण) ग्यारहवें दिन करना चाहिए।३-८। खग! धर्मशास्त्रों के अनुसार छठें मास में उसका 'अन्नप्राशन' होना चाहिए। प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में चूड़ा कर्म (मुंडन) का विधान बताया गया है। आठवें या दशवें वर्ष में ब्राह्मण का 'उपनयन' (यज्ञोपवीत) संस्कार करना आवश्यक होता है, तथा विशेषकर अन्यजाति के पुरुष का भी। क्षत्रिय एवं वैश्यों के वैदिक उपनयन संस्कार ग्यारहवें या बारहवें वर्ष में सम्पन्न होने चाहिए। ऐसा लोगों का सम्मत है।९-११। ब्राह्मण एवं अन्य जाति वाले पुरुषों के इन दोनों के सावित्र एवं वैदिक धर्म जो महानामी महाव्रत के नाम से ख्यात हैं, बता रहा हूँ, (सुनो)! उपनिषद् सम्बन्धी वार्षिक विधान, सुवर्ण के गोदान, ग्रहण करने योग्य व्रत, ये भी वैदिक धर्म हैं ऐसा मनुजी का सम्मत है।१२-१३। वेद का आंशिक पाठ, जिसकी गृह्यसूत्र में विस्तार पूर्वक व्याख्या की गयी है, गुरु की शूश्रूषा, ये दृष्टादृष्टार्थ के साधन हैं। गुरुद्वारा न्यायोचित ढंग से कहे गये वाक्यों का आनुपूर्वी

उभयोर्वा तथा चान्यायथान्यायं यथाश्रुतम् । गुरोरप्येव तं विद्यात्तद्ध्यानं त्रिविधं स्मृतम् ॥१५
तोषः परस्परस्येति एतावान्धर्मसङ्ग्रहः । कृत्स्नो वेदोऽधिगन्तव्यः स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥१६
ज्ञात्वा वेदं ब्रह्मचारी ग्रन्थार्थान्यान्यथाविधि । नैष्ठिकश्च विधानं तु यावत्क्लीबं विधीयते ॥
विद्यान्तेऽभीष्टदानं च अनुज्ञातो गृही भवेत् ॥१७
निष्कासनं गुरुगृहाद्गृहस्थस्य यथाभवेत् । नैष्ठिकश्च तथा स्नानं कुर्यात्सम्यग्यथाविधि ॥१८
उद्वहेद्वै ततो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् । अविप्लुतब्रह्मचर्यश्चाधिकारी खगोत्तम ॥१९
स्वतन्त्रमन्ये चेच्छन्ति ह्यधिकारं द्विजोत्तमाः । सप्तमीं पञ्चमीं चैव कन्यकां पितृमातृतः ॥२०
उद्वहेत द्विजो भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् । सङ्ख्याविधिविवाहेषु गोत्रार्थं विधिवर्जितम् ॥२१
विकल्पेनैव मन्तव्यमृषीणां विविधा श्रुतिः । अष्टौ विवाहा वर्णानां संस्काराख्या इति श्रुतिः ॥२२
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥२३
पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । पतन्ति पितरस्तस्य कन्या न वृषली भवेत् ॥२४
यस्तु तां वरयेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥२५
सर्वदोषान्हि विख्याप्य स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । उभयोरपि विख्याप्य ततः सम्बन्धमाचरेत् ॥२६

उच्चारण करना अत्यन्त आवश्यक होता है । अतः उसका ध्यान भी तीन प्रकार के होते हैं । आपस में सन्तुष्ट रहना तो बहुत ही आवश्यक होता है प्रत्युत धर्म संग्रह करने का यही इतना फल बताया गया है । अपने धर्म का यथावत् पालन करते हुए समस्त वेद का अध्ययन करना चाहिए, ब्रह्मचारी को उचित है कि विधान पूर्वक वेदाध्ययन के अनन्तर अन्यान्य ग्रंथों (शास्त्रों) के तत्त्व को भली भाँति जानने के लिए भी प्रयत्नशील रहें । नैष्ठिक (संन्यस्त) विधान तो इन्द्रियों के शिथिल होने पर ही संभव होता है। विद्याध्ययन समाप्ति के उपरांत गुरु के लिए अभीष्ट दान देकर तथा उसकी आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थ होना चाहिए ।१४-१७। गुरु के गृह से गृहस्थ होने के लिए पात्र का जिस प्रकार निष्कासन होता है, उसी भाँति नैष्ठिक का विधान पूर्वक स्नान बताया गया है ।१८। खगाधिप ! उस अखण्ड ब्रह्मचारी अधिकारी को उसके पश्चात् घर आने पर सौन्दर्य पूर्ण एवं लक्षणों से भूषित कन्या का विग्रहण भार्या होने के लिए करना चाहिए अन्य श्रेष्ठ द्विज भी स्वतंत्र अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते हैं अपने मातृ-पितृ कुल सातवीं अथवा पाँचवी पीढ़ी की कन्या को जिसके ऋषि, एवं गोत्र समान न हों, द्विज को चाहिए कि भार्या बनायें । संख्या वाले वैधानिक विवाहों में अपने गोत्रार्थ (विवाह) में विधान अपनाया नहीं जाता । श्रुतियाँ भाँति-भाँति की हैं, इससे ऋषियों में विकल्प भी होता है । श्रुतियों में बताया गया है कि सभी वर्णों के आठ प्रकार के विवाह संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं ।१९-२२। जिस किसी ने अपनी दोषपूर्ण कन्या का पाणिग्रहण बिना दोष बताये ही किसी के साथ सुसम्पन्न करा दिया है, तो राजा को चाहिए कि उस दाता से दंड रूप में छानवे पण प्राप्त करे । पिता के घर में स्थित कन्या अविवाहित अवस्था में ही रजस्वला हो जाती है, तो, उस पिता के पितर लोगों का (नरक में) पतन होता है, और वह कन्या वृषली (शूद्रा) कहलाती है।२३-२४। जो ज्ञान दुर्बल (अल्पज्ञ) ब्राह्मण उसका पाणिग्रहण करता है, उसे श्राद्ध कर्तव्यहीन, पंक्ति से पृथक् वृषली पति रूप में जानना चाहिए ।२५। स्त्री हो या पुरुष दोनों के दोषों को प्रकट करके ही दोनों का सम्बन्ध स्थापित करे । (कन्याओं में) गौरी कन्या प्रधान, कन्या

गौरी कन्या प्रधाना है मध्यमा कन्यका स्मृता। रोहिणी तत्समा ज्ञेया अधमा तु रजस्वला ॥२७

अनूरुरुवाच

गौरी तु का स्मृता कन्या रोहिणी च जगत्पते। रजस्वला नग्निका च देवकन्या च का भवेत् ॥२८

भास्कर उवाच

असम्प्राप्तरजा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी। अव्यञ्जनयुता कन्या कुचहीना च नग्निका ॥२९
सप्तवर्षा भवेद्गौरी दशवर्षा तु नग्निका। द्वादशे तु भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥३०
व्यञ्जनेन समोपेतां सोमो भुङ्क्ते हि कन्यकाम्। पयोधरेषु गन्धर्वा रजस्यग्निः प्रकीर्तितः ॥३१
हिनस्ति व्यञ्जनैः पुत्रान्कुलं हन्यात्पयोधरैः। गतिमिष्टां तथा लोकान्हन्यात्तु रजसा पितुः ॥३२
तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजस्कपयोधराम्। नान्योपभुक्तां सोमाद्यैर्दद्याद्दुहितरं पिता ॥३३
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा पाको हि स स्मृतः। वृथा पाकस्य भुक्त्वान्नं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३४
प्राणायामं त्रिरभ्यस्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति। विवाहयेदेकगोत्रां समानप्रवरां खग ॥
कृत्वा तस्यां समुत्सर्गमतिकृच्छ्रो विशोधनम् ॥३५
उद्वाहयेत्सगोत्रां च तनयां मातुलस्य च। ऋषिभिश्चैव तुल्यो यो द्विजश्चान्द्रायणं तरेत् ॥३६

नाम वाली मध्यम, रोहिणी उसी के समान और रजोवती कन्या अधम बतायी गयी है।२६-२७

अनूरु ने कहा—हे जगत्पते! गौरी, कन्या नाम वाली, रोहिणी, रजस्वला, नग्निका, एवं देव कन्या किसे कहते हैं? २८

भास्कर बोले—ऋतुमती न होने वाली कन्या को गौरी, रजस्वला को रोहिणी व्यञ्जन (चिन्ह) हीन को कन्या, एवं कुल हीना को नग्निका, कन्या बताया गया है। सात वर्ष वाली कन्या को गौरी, दशवर्ष वाली को नग्निका, बारहवर्ष वाली को कन्या, तथा इससे अधिक आयु वालीको ऋतुमती बताया गया है।२९-३०। व्यञ्जन सुन्दर कन्या का उपभोग सोम, पयोधरों का उपभोग गन्धर्व करते हैं और रज में अग्नि की स्थित बतायी जाती है।३१। अविवाहिता कन्या के व्यञ्जन (चिह्न-मुखलोम आदि) दिखायी देने से उस पिता के पुत्र-नाश, पयोधरों से कुल-नाश, ऋतुमती होने पर उसे अभीष्ट गति एवं उत्तम लोक प्राप्ति से वंचित होना पड़ता है।३२। इसलिए पिता को चाहिए कि व्यञ्जन, रज, एवं पयोधर के निकलने के पूर्व ऐसी कन्या को जो सोमादिकों से अनुपभुक्त रहती है, प्रदान करे। जिसकी कन्या उपरोक्त कथनानुसार न हो, उसके अन्न का भोजन न करना चाहिए क्योंकि उसके यहाँ का सिद्ध प्रक्वान्न व्यर्थ बताया गया है और व्यर्थ अन्नभोजन करने से प्रायश्चित्त करने का भागी होना पड़ता है।३३-३४। उसके भोजन करने से तीन बार प्राणायाम और घी का प्राशन रूप प्रायश्चित्त करे। खग! यदि एक गोत्र, एवं समान प्रवर वाले की कन्या का पाणिग्रहण करके उसमें वीर्य निक्षेप करे तो उस अशुद्ध शरीर के शोधनार्थ अति कृच्छ्र नामक व्रत विधान बताया गया है।३५। सगोत्र की, एवं मातुल (मामा) की कन्या के साथ जिसके ऋषि भी समान हों, विवाह करने पर उस द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।३६।

असपिण्डा तु या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३७

अरुण उवाच

दारकर्म किमुक्तं वै यदुक्तं भवता इदम् । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३८

आदित्य उवाच

अग्निहोत्रादि यत्कर्म वैदिकं विनतात्मज । तदुक्तं दारकर्मेति द्वाभ्यां योगात्तु मैथुने ॥३९
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोमां न चाकूटां न पिङ्गलाम् ॥४०
ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्यपर्वतनामिकाम् । न यक्षाहिप्रेष्यनाम्नीं नातिभीषणनामिकाम् ॥४१
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वै पिता । नोपगच्छेद्धि तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥४२
हंसस्वरानेकवर्णां मधुपिङ्गललोचनाम् । तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहार्थी खगसत्तम ॥४३
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥४४
परिवित्तिः परिवेत्ता च यया स परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥४५
क्लीबे देशान्तरस्थे वा पतिते व्रजिते तथा । योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥४६
खञ्जवामनकुब्जेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥४७

माता के सपिण्ड से पृथक् और पिता की असगोत्री कन्याएँ द्विजातियों के लिए विवाह तथा उपभोग के लिए प्रशस्त बतायी गई हैं ।३७

अरुण ने कहा—आप ने द्विजातियों के लिए दार कर्म एवं मैथुन के लिए उसी कन्या को प्रशस्त बताया है, ठीक है, पर, वह दार-कर्म क्या वस्तु है ।३८

आदित्य बोले—विनतात्मज ! वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म ही दार-कर्म कहलाता है, इसके लिए पाणिग्रहीत स्त्री का होना अत्यन्त आवश्यक है, और मैथुन के लिए भी । क्योंकि दो व्यक्ति (स्त्री पुरुष) के इन्द्रिय संयोग के कर्म को ही मैथुन कहते हैं ।३९। कपिल वर्ण वाली, अधिकांगी, रोगिणी, लोमहीना, अधिक लोम वाली, कपट करने वाली, पिङ्गल वर्ण की तथा नक्षत्र, वृक्ष, नदी, पर्वत, यक्ष, नाग, दूत, एवं अतिभीषण नाम वाली कन्याओं का पाणिग्रहण न करना चाहिए । जिसके भ्राता न हों, और पिता निश्चित न हो, बुद्धिमान को चाहिए कि ऐसी कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध न स्थापित करें, क्योंकि कदाचित् अपने ही कुल की उसे पुत्री होने से धर्म के नाश होने की संभावना रहती है ।४०-४२। खगाधिप ! गृहस्थ होने के लिए, हंस के समान स्वर, समान रूप रंग, मधु एवं पिंङ्गल वर्ण के समान नेत्र वाली कन्याओं के पाणिग्रहण करने चाहिए ।४३। अपने ज्येष्ठ भ्राता के पहले ही जो स्त्री-विवाह एवं अग्नि होत्र कर्म करता है, उसे परिवेत्ता कहा जाता है, और उसके पूर्वज को परिवित्ति । परिवित्ति, परिवेत्ता, उसकी स्त्री, कन्या पिता एवं यज्ञ (विवाह में हवन) करने वाले ब्राह्मण इन सभी को नरक की प्राप्ति होती है ।४४-४५। यदि ज्येष्ठ भ्राता में कोई रोग हो—नपुंसक, विदेश का निवासी, पतित, संन्यासी एवं योगी हो गया हो—तो उसे (छोटे भाई को) अपनी स्त्री के साथ कर्म करने में दोष का भागी नहीं बनना पड़ता । बड़े भाई लंगड़, वामन, कूबड़े साफ न बोलने वाले जड़, जन्मान्ध, बहिरा, और गूंगे होने पर भी छोटे भ्राता को अपनी स्त्री के साथ रहन-सहन में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है । जिस

न श्राद्धं तु कनिष्ठस्य विकुलाय च कन्यका । वरश्च कुलशीलाभ्यां न शुद्ध्येत कदाचन ॥
न मन्त्राः कारणं तत्र न च कन्या वृता भवेत् ॥४८
उद्वाहिता तु या कन्या न च प्राप्ता तु मैथुनम् । पुनरभ्येति भर्तारं यथा कन्या तथैव सा ॥४९
समाक्षिप्य मतां कन्यां पिता त्वक्षतयोनिकाम् । कुलशीलवते दद्यान्न स्याद्दोषः खगाधिप ॥५०

अनूरुरुवाच

एतेऽष्टौ प्रभवाः प्रोक्ता विवाहा ये जगत्पते । लक्षणं ब्रूहि चैतेषां समासात्तिमिरापह ॥५१

आदित्य उवाच

शुभां लक्षणसम्पन्नां कुलशीलगुणान्विताम् । अलङ्कृत्यार्हते दानं विवाहो ब्राह्म उच्यते ॥५२
सहधर्मक्रियाहेतोर्दानं समयबन्धनात् । अलङ्कृत्यैव कन्यायाः प्राजापत्यः स उच्यते ॥५३
प्रदानं यत्र कन्यायाः सहगोमिथुनेन तु । सवर्णायाः सगोत्रायास्तमार्षमृषयो विदुः ॥५४
अन्तर्वेद्यां समानीय कन्यां कनकमण्डिताम् । ऋत्विजे चैव यद्दानं विवाहो दैवसंज्ञकः ॥५५
एते विवाहाश्चत्वारो धर्मकामार्थदायकाः । अशुल्का ब्रह्मणा प्रोक्तास्तारयन्ति कुलद्वयम् ॥५६
चतुर्ष्वेतेषु दत्तायामुत्पन्नो यः सुतः स्त्रियाम् । दातुः प्रतिग्रहीतुश्च पुनात्यासप्तमान्पितॄन् ॥५७
विविक्ते स्वयमन्योऽन्यं स्त्रीपुंसोर्यः समागमः । प्रीतिहेतुःस गान्धर्वो विवाहः पञ्चमो मतः ॥५८

प्रकार कनिष्ठ (छोटे) का श्राद्ध नहीं होता है उसी प्रकार कुलहीन को कन्या प्रदान न करना चाहिए, क्योंकि कुल-शील-हीन होने पर उस वर की कभी शुद्धि नहीं हो सकती है । उसमें न मंत्र कारण होते हैं और न कन्या का वरण ही किया जाता है ।४६-४८। जिस कन्या का केवल विवाह संबंध हो चुका हो न कि मैथुन भी, वह किसी दूसरे को अपना पति बना सकती है, क्योंकि वह कन्या के समान ही होती है ।४९। खगाधिप ! पिता को चाहिए अपनी उस अक्षता कन्या को अलंकृत करके किसी कुल-शील वाले वर को प्रदान करे, इससे उसे दोष भागी नहीं होना पड़ता ।५०

अनूरु ने कहा—हे जगत्पते ! आप ने इन आठ प्रकार के विवाह को बता दिया जो सृष्टि के लिए उपयुक्त होते हैं, हे अन्धकारनाशक ! उनके विस्तृत लक्षण भी बताने की कृपा करें ।५१

आदित्य बोले—शुभ, लक्षणों से युक्त, कुल-शील एवं गुण सम्पन्न कन्या को अलंकारों से अलंकृत करके किसी योग्य व्यक्ति को विवाह द्वारा देना ब्राह्म कहलाता है ।५२। धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न होने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध दान आभरण भूषित कन्याओं का परिणय करना 'प्राजापत्य' विवाह कहा जाता है ।५३। जिस विवाह में दोगायों के साथ ऐसी कन्या का जो समान जाति एवं समान गोत्र की हो, दान किया जाता है, उसे ऋषिगण, 'आर्ष' (विवाह) कहते हैं । सुवर्णो से भूषित करके वेदी के मध्य में लाई गयी कन्या का ऋत्विज् के लिए दान करना 'दैव' विवाह कहलाता है।५४-५५। इन चार प्रकार के विवाहों द्वारा धर्म, अर्थ, एवं काम के सफलता पूर्वक दोनों कुलों का उद्धार होता है, और इसमें शुल्क के आदान प्रदान की व्यवस्था नहीं होती है, ऐसा ब्रह्मा ने बताया है ।५६। इन चारों विवाहों द्वारा स्त्री में उत्पन्न किये गये पुत्र, दाता, प्रतिग्रहीता एवं अपने सात पीढ़ी के परिवार का उद्धार करता है ।५७। जब स्वयं स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की पूर्ण विवेचना कर प्रेमवश आपस में स्त्री पुरुष का संबंध स्थापित करते हैं, वह

हत्वा च्छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसोद्वाह उच्यते ॥५९
शुल्कं प्रदाय कन्याया हरणं व्यसनादपि । प्रसाद हेतुरुक्तोयमासुरः सप्तमस्तथा ॥६०
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥६१
एतान्सशुल्कान्सामान्यान्विवाहांश्चतुरो विदुः । केवलं क्षत्रियस्यैव वीर्यं छित्वा हि राक्षसः ॥६२
प्राप्ते पूर्वविवाहे तु विधिर्वैवाहिकः शिवः । कर्तव्यस्तु त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः ॥६३
दोषवत्याः प्रदाने तु दातुः षण्णवतिर्दमः । स्यात्तु शुल्कप्रदाने च कन्यायाश्चापवर्जने ॥६४
मोक्षोपवर्तनं द्वेषः स्त्रीधनस्य निवर्तनम् । आकांक्षा तीर्थसंरोधस्त्यागहेतुश्च वक्ष्यते ॥६५
परस्परस्य सम्बन्धान्मोक्षः स्त्रीपुंसयोः स्मृतः । न स्यादन्यतरः प्रीतो रोषात्साम्प्रतिकादपि ॥६६
बाधते चेत्पतिर्भार्यां स तु द्वेष इति स्मृतः । वृत्तिराभरणं शुल्कं लाभश्च स्त्रीधनं भवेत् ॥६७
भोक्तुस्तु स्वयमेवेदं प्रतिज्ञाहननं भवेत् । वृथा मोक्षेण भोगेन स्त्रियै दद्यात्सवृद्धिकम् ॥६८
आपत्तिसमये जाते स्त्रीधनं भोक्तुमर्हति । आकांक्षेताष्टवर्षाणि भर्तापि प्रसवं स्त्रियाः ॥६९
जायन्ते यदि नो पुत्रास्तस्यां यत्ने महत्यपि । ततो विन्देत पुत्रार्थी धर्मतः कुलजां स्त्रियम् ॥७०

पाँचवा 'गान्धर्व' विवाह कहलाता है ।५८। मार-काट मचाकर रोती, बिलखती हुई कन्या का बलात् अपहरण करने को छठाँ 'राक्षस' विवाह बताया गया है ।५९। व्यसनी होने के नाते अपने प्रसन्नार्थ शुल्क प्रदान कर किसी कन्या का हरण करना सातवाँ 'असुर' विवाह कहा गया है ।६०। अत्यन्त निद्रा में निमग्न मत्त एवं अधिक मदोन्मत्त कन्या का एकान्त में उपभोग करना यह पापी, आठवाँ 'पैशाच' विवाह के नाम से ख्यात है ।६१। ये चारों विवाह सशुल्क होने के कारण सामान्य विवाह बताये गये हैं, और राक्षस विवाह में केवल क्षत्रियों के पराक्रम के नाशपूर्वक उन्हीं की कन्याओं का अपहरण होना बताया गया है । प्रथम बताये गये चार प्रकार के विवाह का विधान कल्याणात्मक कहा गया है, अतः तीनों वर्णों को चाहिए कि विधानपूर्वक प्रतिज्ञा बद्ध अग्नि को साक्षी बनाकर उन्हीं विवाहों को सुसम्पन्न करें ।६२-६३। किसी दोषपूर्ण कन्या के प्रदान करने वाले से छानवे पण दंड के रूप में ले लेना चाहिए । शुल्क प्रदान करने एवं कन्या विवाह के रोकने वाले से भी इतना ही दंड के रूप में लेना चाहिए स्वयं मोक्ष की चेष्टा करना, द्वेष, स्त्री धन का व्यय करना, आकांक्षा, एवं तीर्थ-वास ये सभी आपस में एक दूसरे के त्याग के हेतु बताये गये हैं, मैं इन्हें क्रमशः विस्तृत रूप में बता रहा हूँ ! स्त्री पुरुष के पारस्परिक संबंध स्थापित होने से मोक्ष होना निश्चित बताया गया है, और वही उपयुक्त भी है, न कि उनमें किसी एक का प्रसन्नता या तात्कालिक रोष वश उसका त्यागकर मोक्ष की चेष्टा करना ।६४-६६। पति स्त्री को कष्ट पहुँचा रहा हो, वही द्वेष लाभ होना, ये सभी स्त्री के धन बताये गये हैं । भोक्ता के स्वयं इसके उपभोग करने से उसकी प्रतिज्ञा का हनन हो जाता है । एकाकी मोक्ष के लिए चेष्टा करना व्यर्थ होने की भाँति स्वयं उसका उपभोग भी व्यर्थ है अतः अपनी वृद्धि के लिए उसे स्त्री को प्रदान करना ही श्रेयस्कर होता है । आपत्ति काल में स्त्री धन का उपभोग करना अनुचित नहीं होता है । पति को चाहिए कि प्रसव के लिए स्त्री की आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहे, यदि उस बीच में महान् प्रयत्नशील रहने पर भी उससे पुत्रोत्पन्न नहीं हुआ तो उसके पश्चात् पुत्र के लिए किसी प्रशस्त कुल की कन्या का पाणिग्रहण धार्मिक विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे । क्योंकि इस लोक में प्रसवार्थियों के लिए पुत्र लाभ से उत्तम कोई अन्य वस्तु नहीं है । यदि शुल्क प्रदान कर किसी

पुत्रलाभात्परं लोके नास्ति हि प्रसवार्थिनः । एतां शुल्कस्य तां मुक्त्वा अन्यां लब्धुं यदीच्छति ॥
समस्तास्तोषयित्वार्थैः सूर्योढां परमां वरेत् ॥७१
एका शूद्रस्य वैश्यस्य द्वे तिस्रः क्षत्रियस्य तु । चतस्रो ब्राह्मणस्य स्युर्भार्या राज्ञो यथेष्टतः ॥७२
अतीर्थगमनात्पुंसस्तीर्थे संग्रहनात्स्त्रियाः । उभयोर्धर्मलोपः स्यात्स्वेष्वेव[1] तु विशेषतः ॥७३
यौगपद्ये तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत् । तत्साम्यं जीवपुत्रा द्वः ग्रहणक्रमशोऽपि वा ॥७४
ब्राह्मादिभिर्विवाहैस्तु संस्कृतौ तौ खगाधिप ! अष्टौ विवाहा वर्णानां वैनतेय उशंति वै ॥७५
ब्राह्मो दैवस्तथार्षश्च प्राजापत्यः खगाधिप । गान्धर्वश्चासुरो रक्षः पैशाचस्त्वष्टमोऽधमः ॥७६
प्रशस्ताः क्षत्रियादीनां विप्रादीनां तु मानताः । प्रतिग्रहादयो बद्धा[2] विवाहा ब्राह्मणस्य तु ॥७७
क्षत्रियस्यापि देया तु प्रतिग्रहविवर्जिता । प्रवृत्तिं केचिदिच्छन्ति दानमित्यपरे स्त्रियाः ॥
पावनं पुरुषाणां तु विवाहं परिचक्षते ॥७८

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे सप्तमीकल्पे ब्राह्मे पर्वणि सूर्यारुणसंवादे विवाहविधिवर्णनं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८२।

अन्य स्त्री को उपभोगार्थ रखना चाहता है, तो उस धन द्वारा सभी भाँति के संतोषार्थ किसी सूर्योढा स्त्री का वरण करे । क्योंकि शूद्र के लिए एक स्त्री वैश्य के लिए दो, क्षत्रिय के लिए तीन एवं श्रीसम्पन्न ब्राह्मण के लिए चार स्त्रियों के रखने का यथेच्छ नियम है । पुरुष के तीर्थ यात्रा न करने और स्त्री के तीर्थ सेवन करने से दोनों के धर्म का लोप होना बताया गया है, विशेषकर द्रव्य वाले के लिए ।६७-७३। स्त्री पुरुष दोनों तीर्थ यात्रा करना चाहते हैं तो विवाह का क्रम लेना चाहिए अर्थात् प्रथम विवाहिता रहते दूसरी आदि स्त्री के साथ यात्रा न करे । यदि किसी के पुत्र हो, तो उसे साथ ले जाने में क्रम की अपेक्षा नहीं की जाती है । क्योंकि खगाधिप ! ब्राह्म आदि विवाहों द्वारा वे दोनों दम्पति सुसंस्कृत हो जाते हैं । इस प्रकार वैनतेय ! जातिवालों के लिए आठ प्रकार के विवाह बताये गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गांधर्व, आसुर, राक्षस, एवं पैशाच ये ही आठ प्रकार के विवाह हैं । क्षत्रियों के लिए क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र इन तीनों वर्णों के साथ, ब्राह्मणों के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों वाली कन्याओं के साथ मान पूर्वक विवाह करना प्रशस्त बताया गया है । मन्त्र पूर्वक प्रतिग्रह आदि के ग्रहण स्वरूप ब्राह्मणों के विदाह होने चाहिए । क्षत्रियों को प्रतिग्रह स्वरूप कन्यादान न लेना चाहिए । कुछ लोगों ने प्रवृत्ति द्वारा और कुछ लोगों के दान के रूप में स्त्रियों का ग्रहण करना बताया गया है । इस प्रकार पुरुषों के पावन विवाह की व्याख्या कर दी गई है ।७४-७८

श्रीभविष्यमहापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सूर्यारुण संवाद में विवाह विधि वर्णन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८२।

---

१. द्रव्येषु सत्स्वेवेत्यर्थः । २। मन्त्रबद्धा इत्यर्थः ।

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय:

श्राद्धविधिकथावर्णनम्

भास्कर उवाच

कुर्यात्पञ्चमहायज्ञानधिकारो द्विजस्य सः । भूतपितृमरब्रह्ममनुष्याणां यथाविधि ॥१
सदा सदानकृत्यानां फलार्थमपरे स्थिताः । नित्यानित्यमिति प्राहुरनुषङ्गात्फलं परे ॥२
अतिथेः परितोषाय परिचर्या विधीयते । अदृष्टनियमादृष्टमारोग्यान्तं न वर्जनम् ॥३
त्रिस्रोष्टकास्तु कर्तव्या मध्यावता चतुर्थिका । शाकपायसपूपैस्तु मांसेन तु चतुर्थिका ॥४
प्रतिपदि क्रियते यत्तु चतुष्पार्वणमुच्यते । स्वगृह्योक्तविधानेन तत्तु पक्षादि कीर्त्यते ॥५
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठशुद्धयर्थमुत्तमम् ॥
कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं वैदिकं दशमं स्मृतम् ॥६

अनूरुरुवाच

यदेतद्भवता प्रोक्तं श्राद्धं द्वादशधा विभो । तस्य सर्वस्य मां ब्रूहि लक्षणं वै पृथक्पृथक् ॥७
नित्यं किमुच्यते श्राद्धं किं वा नैमित्तिकं भवेत् । काम्यादि देवदेवेश एतेषां लक्षणं वद ॥८

अध्याय १८३

श्राद्धविधि कथा-वर्णन

भास्कर बोले—विधान पूर्वक, भूत, पितृ, देव, ब्रह्म एवं मनुष्यों के उद्देश्य से पाँच महायज्ञों का अनुष्ठान करना द्विजों के लिए आवश्यक होता, क्योंकि यह उसकी अधिकारपूर्ण चेष्टा है।१। किसी का सम्मत है कि धन समेत इन कृत्यों को फलार्थ करना चाहिए, कोई इस कर्म को नित्य और अनित्य बतलाते हैं और कोई इसे आनुषांगिक फलार्थ करने को कहते हैं।२। अतिथि के भली भाँति संतोष के लिए परिचर्या (सेवा) करनी आवश्यक होती है। अदृष्ट नियमों के पालन स्वस्थ्य रहने पर ही संभव होता है, अतः अस्वस्थ होने पर उसका त्याग करना अनुचित नहीं है।३। शाक, खीर, एवं मालपूए द्वारा तीन अदृष्ट (पितृदेव के उद्देश्य से क्रियाएँ) और मांस द्वारा मध्यवर्ती चतुर्थिका नामक क्रियाएँ सम्पन्न करना चाहिए। प्रतिपदा तिथि में जो क्रिया सुसम्पन्न होती है, उसे चतुष्पार्वण कहा जाता है। अपने गृह्यसूत्रोक्त विधान द्वारा सम्पन्न किये गये कर्म को 'पक्षादि' कहते हैं।४-५। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध, सपिण्डन पार्वण, उत्तमगोष्ठ (गौवों के आवासस्थान) के शुद्धिनिमित्तक कर्माङ्ग तथा दशवाँ वैदिक कर्म, 'इन्हें सुसम्मन्न करना मनुष्यों के लिए नितान्त आवश्यक हैं।६

अनूरु ने कहा—विभो ! आप ने इन बारह प्रकार के श्राद्ध कर्म करने के लिए आवश्यक बताये हैं। पर इनके लक्षणों को बिना जाने कैसे संभव हो सकता है, अतः इनके पृथक्, पृथक, लक्षण भी बताने की कृपा करें।७। देवाधिदेव ! नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्यादि श्राद्धों के लक्षण क्या हैं ? आप मुझे बताने की कृपा करें।८

आदित्य उवाच

अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यं खग कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तु अशक्तावुदकेन तु ॥९
एकोद्दिष्टं तु यच्छाद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तत्सदैव प्रकर्तव्यमयुग्मान्भोजयेद्द्विजान् ॥१०
कामयुक्तं हि तत्काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । पार्वणेन विधानेन तदप्युक्तं खगाधिप ॥११
वृद्धौ यत्क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते । सर्वं प्रदक्षिणं कार्यं पूर्वाह्ले तूपवीतिना ॥१२
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रमोचयेत् ॥१३
ये समाना इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् । नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥१४
दर्शे वै क्रियते यत्तु तत्पार्वणमुदाहृतम् । पर्वणि क्रियते यच्च तत्पार्वणमिति स्थितिः ॥
गोभ्यश्च क्रियते श्राद्धं तद् गोष्ठश्राद्धमुच्यते ॥१५
बहूनां विदुषां सम्पत्सुखार्थं पितृतृप्तये । क्रियते शुद्धये यद्वै ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥
शुद्ध्यर्थमिति तत्प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥१६
निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं तच्च कर्माङ्गमेव च ॥१७
क्रियते देवमुद्दिश्य सप्तम्यादिषु यत्नतः । गच्छेद्देशान्तरे यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥
तद्यत्नार्थमिति प्रोक्तं प्रदिशेच्च न संशयः ॥१८

आदित्य बोले—खग ! प्रतिदिन किये जाने वाले श्राद्ध को 'नित्य श्राद्ध' कहा जाता है । बलि वैश्वदेव कर्म अन्नादि द्वारा सुसम्पन्न करने में असमर्थ होने पर केवल उदक (जल) से ही सम्पन्न करना चाहिए ।९। एकोद्दिष्ट श्राद्ध को 'नैमित्तिक श्राद्ध' कहते हैं, उसे सदैव करते रहना चाहिए और उसमें विषमसंख्या वाले ब्राह्मणों का भोजन भी कराना चाहिए ।१०। कामना वश (किसी मनोरथ की सफलता के लिए) किये गये कर्म को 'काम्य' कहा जाता है, खगाधिप ! उसे पार्वण के विधान द्वारा समाप्त करना चाहिए ।११। वृद्धि के लिए किये गये श्राद्धों को 'वृद्धिश्राद्ध' बताया गया है। यज्ञोपवीतधारी को आवश्यक है कि इन बताये गये कर्मों को पूर्वाह्न काल में प्रदक्षिणापूर्वक सुसम्पन्न करें ।१२। गंध (चन्दन आदि) जल तथा तिल मिश्रित चार पात्रों की स्थापना अर्घ्य के निमित्त करके पितृ के पात्रों में प्रेत पात्र के अर्घ्य जल का संमिश्रण 'ये समाना' आदि मंत्र के उच्चारण पूर्वक करें इसी का नाम 'सपिंडन कर्म है । शेष कर्म नित्य कर्म की भाँति होते हैं, स्त्रियों के उद्देश्य से भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है । अमावस्या के दिन किये गये श्राद्ध को भी पार्वण कहा जाता है और पर्व की तिथियों में किये जाने वाले को पार्वण कहते ही हैं । गौओंके उद्देश्य से किये जाने वाले को 'गोष्ठ श्राद्ध' कहा जाता है । पितरों की तृप्ति के लिए एवं इसी व्याज से विद्वान ब्राह्मणों की कुछ सेवा भी हो जायेगी, इस विचार से किये गये श्राद्ध कर्म को 'सम्पत्सुखार्थ' कहा जाता है और वैनेतेय ! बुद्धि-शुद्धि के निमत्त जिस कर्म में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, उसे मनीषियों (विद्वानों) ने 'शुद्ध्यर्थ' बताया है ।१३-१६। गर्भाधान के समय चन्द्र शुद्धि में, सीमंतोंन्नयन, तथा पुंसवन में किये जाने वाले श्राद्ध को 'कर्माङ्ग' कहते हैं ।१७। देवताओं के उद्देश्य से विदेश यात्रा के समय सप्तमी आदि तिथियों में घी द्वारा जो श्राद्ध किया जाता है उसे 'यत्नर्थक' कहा जाता है और उसके सुसम्पन्न करने पर वह उस यात्रा में सफल होता है, इसमें संदेह नहीं ।१८। शरीर के

शरीरोपचये श्राद्धमश्ववृद्ध्यर्थमेव च । पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचारिकमुच्यते ॥१९
सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम् । क्रियते यत्खगश्रेष्ठ मृतेऽहनि बुधैः सह ॥२०
मृतेऽहनि पुनर्यस्तु न कुर्याच्छ्राद्धमादरात् । मातुश्च खगशार्दूल वत्सरान्ते मृतेऽहनि ॥२१
नाहं तस्य खगश्रेष्ठ पूजां गृह्णामि नो हरिः । न ब्रह्मा न च वै रुद्रो न चान्ये देवतागणाः ॥२२
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि । नरेण खगशार्दूल भोजकेन विशेषतः ॥२३
भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप । मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि ॥२४
स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः । ततो भवति दुष्टात्मा नगरे सूकरः खग ॥२५

अनूरुरुवाच

न जानाति दिनं यस्तु न मासं विबुधाधिप । मृतौ यत्र महाप्राज्ञ पितरौ स कथं नरः ॥
श्राद्धं करोतु वै ताभ्यां विधिवद्वत्सरात्मकम् ॥२६

आदित्य उवाच

न जानाति नरो यस्तु मृतानां विनतात्मज । मासं दिनं मृतानां तु पितॄणां खगसत्तम ॥२७
यथा कुर्यात्खगश्रेष्ठ शृणु कृत्स्नं समासतः । मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज ॥२८
तेन कार्यममायां च श्राद्धं सांवत्सरं खग । मासे मार्गशिरे वीर माघे वा विधिवत्खग ॥२९
विशेषतो भोजनेन यो मां पूजयते सदा । प्रीतये मम वै तेन सम्पूज्याः पितरः सदा ॥३०

अव्ययों के उपचयार्थ, अश्वों के वृद्ध्यर्थ, और पुष्टि के लिए किये गये श्राद्ध को 'औपचारिक' कहा जाता है ।१९। खगश्रेष्ठ ! सभी श्राद्धों में 'वार्षिक श्राद्ध' श्रेष्ठ बताया जाता गया है जो (वर्ष के अंत में) मृत प्राणी के मरण मास-तिथि में विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा सुसम्पन्न किया जाता है ।२०। खगशार्दूल ! मृतप्राणी के वार्षिक दिन में तथा माता के वर्ष की समाप्ति में मरण दिन पर जो सादर श्राद्ध नहीं करते, तो खगश्रेष्ठ उनके द्वारा की गई पूजा को मैं हरि (विष्णु), ब्रह्मा, रुद्र, एवं अन्य देवगण, कोई भी नहीं स्वीकार करता है । अतः खगशार्दूल ! मनुष्य को उचित है कि मृत प्राणी के प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में श्राद्ध अवश्य करे, विशेषकर भोजकों के लिए ।२१-२३। खगाधिप ! जो भोजक अपने माता-पिता के लिए उनके प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में मरण दिन में निरन्तर श्राद्ध नहीं करता है, उसे 'तामिस्र' नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है, उसके अनन्तर खग ! वह दुष्टात्मा नागरिक शूकर होता है ।२४-२५

अरुण ने कहा—हे विबुधाधिनायक ! जो अपने माता पिता के मरण दिन (तिथि) एवं मास नहीं जानता है, वह उनके निमित्त विधान पूर्वक वार्षिक श्राद्ध कैसे सुसम्पन्न करे ? ।२६

आदित्य बोले—विनतात्मज ! खगसत्तम ! जो मृतप्राणी के तथा मृत अपने माता-पिता के मास एवं तिथि को नहीं जानता है, तो खगश्रेष्ठ ! जिस प्रकार उसे करना चाहिए, वह सब कुछ मैं बता रह हूँ, सुनो ! विनतात्मज ! जो मनुष्य मृत प्राणी के दिन को न जानता हो, तो अमावस्या के दिन उसे उस मृत प्राणी के निमित्त वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए । खग ! मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघ के मास में विशेषकर भोजन द्वारा जो मेरी प्रसन्नता के लिए सदैव मेरी पूजा करते हैं, उनके पितर गण भी

ममेष्टाः पितरो नित्यं गावो विप्राश्च सुव्रत । तस्माच्च ते सदा पूज्याः मद्भक्तेन विशेषतः ।।३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे श्राद्धविधिकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८३।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणधर्मविधिवर्णनम्

प्रख्याते प्रत्यये नैव प्रश्नपूर्वं प्रतिग्रहः । यजनेऽध्यापने वादे षड्विधो वेदविक्रयः ।।१
वेदविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया चावर्जितं धनम् । न देयं पितृदेवेभ्यो यच्च क्लीबात्खगाधिप ।।२
अनुयोगेन यो दद्याद्ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम् । स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ।।३
वेदाक्षराणि यावन्ति नियुज्यन्तेऽर्थकारणात् । तावत्यो भ्रूणहत्या वै वेदविक्रयमाप्नुयात् ।।४
वैश्वदेवेन यो हीन आदित्यस्य च कर्मणः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदाश्च ब्राह्मणाः ।।५
येषामध्ययनं नास्ति ये च केचिदनग्नयः । कुलं चाऽश्रोत्रियं येषां सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ।।६
अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुङ्क्ते सोऽबुधः खग । वृथा तेनान्नपाकेन यमयोनिं व्रजेत्तु सः ।।७

सदैव पूजित होते हैं। सुव्रत ! पितर, गायें, एवं ब्राह्मण लोग मुझे नित्य अत्यन्त प्रिय हैं, अतः मेरा भक्त विशेषकर इनकी पूजा सदैव करता रहे, क्योंकि ये उसके पूज्य हैं।२७-३१

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में श्राद्धविधिकथा वर्णन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।१८३।

अध्याय १८४

ब्राह्मणधर्म का वर्णन

अपने को विख्यात करने, विश्वास पात्र बनने के लिए, परिचित लोगों के यहाँ आग्रह न करने पर भी प्रतिग्रह लेने, यज्ञ कराने, अध्यापन करने एवं वाद-विवाद (व्याख्यान) के द्वारा छः प्रकार से वेद का विक्रय होना बताया गया है।१। खगाधिप ! पितृ तथा देव के उद्देश्य से वेद-विक्रय द्वारा प्राप्त धन, एवं स्त्री धन का व्यय न करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने वाला पुरुष नपुंसक कहलाता है।२। जो कोई किसी ब्राह्मण को किसी अनुयोग द्वारा प्रतिग्रह प्रदान करता है, तो पहले देने वाला नरक गामी होता है ओर पश्चात् लेने वाला ब्राह्मण भी।३। द्रव्योपार्जन के लिए जितने वेदाक्षरों को (प्रमाण रूप में) एकत्र किया जाता है, उस वेद के विक्रय द्वारा उतनी भ्रूण हत्या का भागी वह होता है।४। वेद ज्ञाता ब्राह्मण भी वैश्वदेव एवं सूर्य की उपासना से वंचित रहने पर 'वृषल' (शूद्र) कहलाते हैं।५। जिनके कुल में अध्ययन, अग्नि कार्य (अग्नि होत्र), एवं वेदपाठ नहीं होता है, उन्हें शूद्र धर्म का समझना चाहिए। खग ! वैश्वदेव किये बिना जो भोजन करता है, वह अज्ञानी है एवं उसका पाक बनाना व्यर्थ है, क्योंकि उसे नरक गामी होना ही पड़ेगा।६-७। वैश्वदेव के समय प्रिय, द्वेषी,

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव च। वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ।।८
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रसङ्गतिकं तथा । अचिन्त्योऽभ्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।।९
अचिन्त्यः स तु वै नाम्ना वैश्वदेव उपागतः । अतिथिं तं विजानीयान्न पुनः पूर्वमागतः ।।१०
याहञ्च प्राप्नुयादन्नं कृताशीः स्नातको द्विजः । तस्यान्नस्य चतुर्भागं हन्तकारं विदुः खग ।।११
ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुष्कालं चतुर्गुणम् । पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते ।।१२
आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः । चांद्रायणं चरेन्मासमिति विद्धि खगाधिप ।।१३
आरूढपतितापत्या ब्राह्मणो वृषलेन च । द्वावेतौ विद्धि चाण्डालौ देविश्राद्धश्च जायते ।।१४
ब्राह्मणी कुलटा नित्यं स्वकं त्यक्त्वा पतिं खग । अन्यस्य विशते गेहे ब्राह्मणस्य खगाधिप ।।१५
उत्पद्यते तु यत्तस्या ब्राह्मणेन महामते । स चांडालो महान्प्रोक्तो महाचाण्डाल इत्युत ।।१६
यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवति मैथुनम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।।
पञ्चगव्येन शुद्धिः स्यादित्याह मम देहकृत् ।।१७
अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् । तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ।।१८
ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् । उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।१९

मूर्ख, अथवा पंडित कोई भी आ जाये वह 'अतिथि' कहलाता है, और उसकी सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति संभव बतायी गयी है ।८। जो एक ही गाँव में न रहे, आने के लिए कोई तिथि निश्चित न हो ब्राह्मणों की भाँति सदाचारी हो, एवं जिसके विषय में कभी कोई कल्पना न की गई हो, इस प्रकार के आये हुए पुरुष को अतिथि कहा जाता है ।९। उस अकाल्पनिक पुरुष के आने पर समझना चाहिए कि उसी नाम एवं रूप द्वारा वैश्वदेव का समागम हुआ है । उसे ही अतिथि जाने, न कि पहले से उपस्थित को ।१०। खग ! स्नातक ब्राह्मण भोजन के निमित्त प्राप्त अपने अन्न के चौथाई भाग को हंतकार (अतिथि के देने के लिए) समझे ।।११ भिक्षा, जो एकग्रास मात्र की होती है, चतुष्काल, चौगुने, एवं पुष्कल ये चार के हंतकार (अतिथि के लिए प्रदेय भोजन) होते हैं ।१२। खगाधिप ! किसी नैष्ठिक धर्म का पालन करते हुए कभी उससे च्युत हो जाये, तो उसे एक मास का चांद्रायण व्रत करना चाहिए ।१३। किसी धर्मानुष्ठान में पतित होने वाले ब्राह्मण की संतान एवं वृषल ब्राह्मण, इन दोनों को ही चांडाल जानना चाहिए ।१४। खग ! जो कुलटा (व्यभिचारिणी) ब्राह्मणी नित्य अपने पति का त्याग कर किसी अन्य ब्राह्मण के घर में जाती है, हे खगाधिप, महामते ! उसमें उस ब्राह्मण द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे 'चांडाल' एवं 'महाचांडाल' बताये गये हैं ।१५-१६। जो संन्यस्त होकर पुनः मैथुन कर्म करता है, वह साठ सहस्र वर्षों तक विष्टा (मल) में कीड़ा होकर उत्पन्न होता रहता है । एकमात्र पंचगव्य से ही उसकी शुद्धि संभव होती है, ऐसा मेरी शरीर के रचयिता (विश्वकर्मा) ने बताया है ।१७। किसी वृषल ब्राह्मण द्वारा निमंत्रित ब्राह्मण का अन्न अभोज्य हो जाता है, उसी प्रकार वृषल के अन्न ब्राह्मण द्वारा निमन्त्रित होने पर । कहीं भी किसी भोज में ब्राह्मण के यहाँ शूद्र भोजन देने वाला एवं शूद्रके यहाँ ब्राह्मण भोजन देने (परसने) वाला हो, तो उन दोनों के अन्न अभोज्य बताये गये हैं उनके अन्न भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत का विधान करना बताया गया है ।१८-१९। यद्यपि किसी शूद्र के यहाँ उसके अन्न की सभी प्रकार की

उपनिक्षेपधर्मेण शूद्रान्नं च पचेद्द्विजः । अभोज्यं तद्भवेदन्नं स च विप्रः पुरोहितः ॥२०
शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण सह वासनम् । शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥२१
शूद्रान्नोपहता विप्रा विह्वला रतिलालसाः । कुपिताः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥२२
हस्तदत्तास्तु ये स्नेहाल्लवणव्यञ्जनादयः । दातारं नाधितिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ॥२३
आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते । भोक्ता विष्ठाशनं भुङ्क्ते दाता तु नरकं व्रजेत् ॥२४
अङ्गुल्या दन्तकाष्ठां यत्प्रत्यक्षलवणं च यत् । मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥२५
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो द्विजः । तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥२६
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धमाल्यानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥२७
गृहान्ते वसते मूर्खो दूरे चास्य गुणान्वितः । गुणान्विते च दातव्यं नास्ति मूर्खव्यतिक्रमः ॥२८
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥२९
सन्निकृष्टमधीयानां ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजनेनैव दानेन दहत्यासप्तमं कुलम् ॥३०

अनूरुरुवाच

एवमेव जगन्नाथ देवदेव जगत्पते । किं तु यत्ते पुरा देव श्रुतं वाक्यं महात्मनः ॥३१

सुरक्षा ब्राह्मण द्वारा ही सुसम्पन्न होती हो, और वही ब्राह्मण पाक भी बनाता हो, किन्तु फिर भी उसका अन्न अभोज्य ही होता है और वह ब्राह्मण उसका पुरोहित कहा जायेगा ।२०। शूद्र के अन्न, शूद्र के साथ संपर्क रखना शूद्र के साथ निवास एवं शूद्र द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करना ये सभी अग्नि के समान प्रज्वलित ब्राह्मण का भी अधः पतन करा देता है ।२१। शूद्रान्न के भक्षण करने से हत तेज एवं रति करने के लिए आकुल, कोई ब्राह्मण, क्रुद्ध होने पर विषहीन सर्प की भाँति (किसी की प्रतिक्रिया के रूप में) कुछ भी करने में असमर्थ रहता है ।२२। स्नेह वश शूद्र ने यदि लवण एवं व्यंजन किसी ब्राह्मण के हाथ में दे दिया तो देने वाले को किसी फल की प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत भोक्ता के लिए वह पापरूप हो जाता है ।२३। लोहे के पात्र द्वारा अन्न प्रदान करने से भोक्ता के लिए वह अन्न विष्ठा (मल) स्वरूप होता है और उससे देने वाले को नरक की प्राप्ति होती है ।२४। अंङ्गुली से दंतधावन (दातून) करना, प्रत्यक्ष लवण का भोजन, एवं मिट्टी भक्षण करना, ये तीनों गोमांस भक्षण के समान हैं ।२५। सवेरे प्रातः काल उठने पर मुख प्रतिदिन प्रर्युषित (वासी) हो जाता है, उससे ब्राह्मण किसी भी कर्म के करने में असमर्थ रहता है, इसलिए प्रथम सूखी या हरी दातून से भली भाँति मुखशुद्धि करना आवश्यक होता है ।२६। उपवास में पुष्प, अलंकार, वस्त्र, गंध, माला, उबटन और दंतधावन एवं अंजन दूषित नहीं होते हैं ।२७। मूर्ख घर में ही रह सकता है, और गुणी पुरुष उससे बहुत दूर, इसलिए जो कुछ प्रदेय वस्तु हो गुणी पुरुष को ही देना चाहिए, मूर्ख को कभी नहीं । वेदाध्ययन हीन ब्राह्मण का भी अतिक्रमण (त्याग) न होना चाहिए क्योंकि आहुति प्रज्वलित अग्नि में ही डाली जाती है, भस्म (राख) के ढेर में नहीं । जो अपने समीप रहने वाले विद्वान् ब्राह्मण की सेवा भोजनादि दान द्वारा नहीं करता है, अपितु अन्य दूर वालों की करता है, वह उससे अपने सातपीढ़ियों का दहन करता है ।२८-३०

अनूरु ने कहा—हे जगन्नाथ, देवाधिदेव ! एवं जगत्पते ! आप ने जैसा कहा, सभी सत्य है, किंतु

गदतो नारदस्यैव शृणु त्वं विबुधाधिप । गदतो मे सुरश्रेष्ठ धर्म्यमर्थं सुखावहम् ॥३२
सत्यनिष्ठं द्विजं यस्तु शुक्लजातिं प्रियंवदम् । मूर्खं पाखण्डिनं वापि वृत्तिहीनमथापि वा ॥३३
अतिक्रम्य नरो घोरं नरकं पातयेत्खग । सप्त परान्सप्त पूर्वान्पुरुषानात्मना सह ॥३४
तस्मान्नातिक्रमेद्राजा ब्राह्मणं प्रातिवेशिकम् । सम्बन्धतस्तथासन्नं दौहित्रं विद्यते तथा ॥३५
भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धुं ग्रहाधिप । नातिक्रमेन्नरस्त्वेतान्सुमूर्खानपि गोपते ॥
अतिक्रम्य महद्रौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३६

आदित्य उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि खेचर । ममात्यवगतं वीर ब्राह्मणं न परीक्षयेत् ॥३७
सर्वदेवमयं विप्रं सर्वलोकमयं तथा । तस्मात्सम्पूजयेदेनं न गुणांस्तस्य चिन्तयेत् ॥३८
केवलं चिन्तयेज्जातिं न गुणान्विनतात्मज । तस्मादामन्त्रयेत्पूर्वमासन्नं ब्राह्मणं बुधः ॥३९
यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते । दूरस्थान्पूजयेन्मूढो गुणाढ्यान्नरकं व्रजेत् ॥४०
देवकर्मविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च । देवद्रव्यं द्विजान्नं च ब्रह्मस्वं ब्राह्मणार्जितम् ॥
वियोन्यां क्षिपते यस्तु वियोनिमधिगच्छति ॥४१
मा ददस्वेति यो ब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषु वै । तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥४२

विबुधाधिप ! पहले समय में महात्मा नारद देव के मुख से इस विषय में मैंने जो कुछ सुना है, सुरश्रेष्ठ ! धार्मिक एवं सुख प्रदान करने वाली उन बातों को मैं आपसे कह रहा हूँ, कृपया, सुन लें । समीप रहने वाले सत्यवादी, जाति (गौरवर्ण) शुक्ल प्रियंवद, मूर्ख, पाखण्डी एवं वृत्तिहीन ब्राह्मण के त्यागपूर्वक किसी दूरस्थ ब्राह्मण को जो दान द्वारा सम्मानित करता है, वह अपने पूर्व की सातपीढ़ी तथा होने वाली सात पीढ़ियों समेत नरक की प्राप्ति करता है ।३१-३४। अतः राजा को चाहिए कि अपने समीप वाले (पड़ोसी) ब्राह्मणों का त्याग कभी न करें । यदि उस पड़ोसी से दौहित्र (कन्या, पुत्र) भागिनेय (भाञ्जा) अथवा बंधु का संबंध हो तो ग्रहाधिप ! वे कितने बड़े मूर्ख क्यों न हों, उनका त्याग कभी न करे । गोपते ! उनके त्याग करने पर उसे 'महारौरव' नामक नरक की प्राप्ति होती है ।३५-३६

आदित्य बोले—आकाशचारिन् ! तुम जैसा कह रहे हो, उसमें संदेह नहीं है । वीर ! मैंने भी यही निश्चय किया है यही जाना है कि ब्राह्मण की परीक्षा कभी न करनी चाहिए ।३७। ब्राह्मण, सर्वदेवमय एवं सर्वलोकमय रूप हैं इस लिए गुण की बिना परीक्षा किये ही उनकी पूजा अवश्य करे ।३८। विनतात्मज ! केवल उनकी जाति का ज्ञान कर लेना चाहिए, न कि गुण का । इसलिए बुद्धिमानों को चाहिए कि समीप रहने वाले ब्राह्मण का सम्मान पहले करें ।३९। केवल पतित को छोड़कर अन्य पड़ोसी ब्राह्मणों को त्याग कर अन्य दूरस्थ ब्राह्मण विद्वान् का जो सम्मान करता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है ।४०। देवताओं के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्म के विनाश, ब्राह्मण धन का अपहरण, देव द्रव्य, एवं ब्राह्मण के अन्न का अपहरण, जिसे ब्राह्मण ने स्वयं उपार्जित किया है । नपुसंक स्त्री में वीर्य निक्षेप करने वाले एवं उसके साथ सम्भोग करने वाले , गो, अग्नि, एवं ब्राह्मण के निमित्त दान करने वाले को मना करने वाले ये सभी सैकड़ों बार पक्षी की योनि में उत्पन्न हो कर पश्चात् चांडाल के यहाँ उत्पन्न होते

यत्तु वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् । तदृणं धर्मसंयुक्तमिह लोके परत्र च ।।४३
वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते । क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ।।४४
मधु मांसं सुरां सामं लाक्षाद्यं लवणं तथा । विक्रीयान्यतमं तेषां द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।।४५
गुडं तिलं तथा नीलं केशान्गोधूमकान्यवान् । विक्रीय ब्राह्मणो गां च कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।।४६
औष्ट्रमाविकदुग्धं च अन्नं मृतकसूतके । चौरस्यान्नं मृतश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।४७
गवां शृङ्गोदके स्नातो महानद्याश्च संगमे । समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ।।४८
वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजः खग । हिरण्योदकमिश्रं तु घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ।।४९
तिष्ठन्वाप्यथ वा गच्छञ्छुना दष्टो द्विजः खग । वज्रं प्राश्य शुचिः स्याद्वै यथाह भगवान्मनुः ।।५०
व्रतिनश्चापि दष्टस्य त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । सघृतं च ततो भुक्त्वा व्रतशेषं समाचरेत् ।।५१
ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे दृष्टे[1] समाचरेत् । यदा न दृश्यते[2] सोमः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।५२
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चावलोकयेत् । सोममार्गेण सा पूर्वा पञ्चपूतेन शुध्यति ।।५३
ब्राह्मणस्य ब्रह्मद्वारे पूयशोणितसम्भवे । क्रिमिभिर्दश्यते यश्च निष्कृतिं तस्य वच्मि ते ।।५४
गवां तत्र पुरीषेण त्रिकालं स्नानमाचरेत् । दधि क्षीरं घृतं पीत्वा कृमिदष्टो विशुध्यति ।।५५

हैं ।४१-४२। जो वाणी द्वारा कहकर उसे कार्यरूप में परिणत नहीं किया उसे लोक-परलोक में उस धार्मिक ऋण का भागी होना पड़ेगा ।४३। वेदज्ञाता, व्रती, स्नातक, एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण के आने पर घर की सभी औषधियाँ क्रीडा करने लगती हैं कि मुझे पहले उत्तम गति प्राप्त होगी ।४४। मधु, मांस, सुरा, सोमरस, लाक्षा (लाह) आदि, तथा लवण इनमें किसी की बिक्री करने वाला ब्राह्मण चान्द्रायण करने पर शुद्ध होते है ।४५। गुड़, तिल, नील, केश, गेहूँ या जवा के आटे एवं गाय, इनमें से किसी के विक्रय करने वाला ब्राह्मण 'सांतपन' नामक व्रत विधान से शुद्ध होता है ।४६। उंटिनी तथा भेंड़ी के दूध, मरणाशौच के या सूतक के अन्न, चोरी के अन्न, और मृतकश्राद्ध (तेरही) में भोजन करने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।४७। कुत्ते के काट लेने पर गौओं के सीगों द्वारा पवित्र जल वाले जलाशय, तथा महानदियों के संगम में स्नान एवं समुद्र दर्शन से शुद्ध होना बताया गया है ।४८। खग ! वेदविद्याध्यायी व्रती एवं स्नातक ब्राह्मण को कुत्ते के काटने पर सुवर्ण पात्र में जल मिश्रित घी के प्राशन से शुद्धि होती है ।४९। खग ! बैठे रहने पर अथवा आते-जाते ब्राह्मण को कुत्ते के काटने पर वज्र के प्राशन से उसकी शुद्धि भगवान् मनु ने बताया है ।५०। किसी व्रती को काटने पर उसे तीन रात तक केवल घी का प्राशन करके उसके पश्चात् शेष व्रत विधान की समाप्ति करना चाहिए ।५१। किसी ब्राह्मणी को कुत्ता के काट लेने पर चन्द्र दर्शन से उसकी शुद्धि हो जाती है । यदि चन्द्र दर्शन सम्भव न हो तो, जिस जिस दिशा में चन्द्र की यात्रा हो उस दिशा का दर्शन करे, चन्द्र मार्ग से उसकी शुद्धि निश्चित हो जाती है । किसी ब्राह्मण के घर ब्राह्मण के पूप (पीव) और शोणित से उत्पन्न कीड़े किसी ब्राह्मण को काट लेते हैं तो उसकी जो निष्कृति (शुद्धि) होगी, मैं तुम्हें बता रहा हूँ । गौओंके पुरीष से उत्पन्न (गोबर) से स्नान, दही, दूध, एवं घी का

---

१. दर्शनमित्यर्थः, भावे निष्ठाविधानात् । २. तयेति शेषः ।

अथ नाभ्याः प्रदष्टस्य आपादाद्विनतात्मज । एतद्विनिर्दिशेत्प्राज्ञः प्रायश्चित्तं खगाधिप ॥५६
नाभिकण्ठान्तरे वीर यदा चोत्पद्यते कृमिः । षड्रात्रं तदा प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ॥५७
यदा दशन्ति शिरसि कृमयो विनतात्मज । कृच्छ्रं तदा चरेत्प्राज्ञः शुद्धये कश्यपात्मज ॥५८
मृतान्नं मधु मांसं च यस्तु भुञ्जीत ब्राह्मणः । स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पेऽनूर्वादित्यसंवादे ब्राह्मणधर्मवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८४।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

मातृश्राद्धविधिवर्णनम्

आदित्य उवाच

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । सन्ध्योरुभयोर्वीर सूर्ये चैव तिरोहिते ॥१
अकृत्वा मातृयज्ञं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् । तातस्य क्रोधसंयुक्ता हिंसामिच्छन्ति दारुणाम् ॥२

अनूरुरुवाच

मातृश्राद्धं कथं कार्यं काश्च ता मातरः स्मृताः । नान्दीमुखाश्च पितरः कथं पूजामवाप्नुयुः ॥३

पान करने से उसकी शुद्धि बतायी गयी है ।५२-५५। विनतात्मज ! पैर से लेकर नाभि तक के स्थान में कहीं कीड़े द्वारा काटने पर उपरोक्त प्रायश्चित को विद्वानों ने बताया है ।५६। वीर ! नाभि और कण्ठ के मध्यम में यदि कीड़े उत्पन्न हो जाँये तो मनीषियों ने उसका छह रात्रि तक प्रायशित करना बताया है ।५७। विनतात्मज ! यदि सिर में कीड़े उत्पन्न हो कर काटें तो कश्यपात्मज ! उसे 'कृच्छ्र' नामक व्रत बताया गया है । मृतप्राणी के अन्न, मधु, एवं मांस का जो ब्राह्मण भक्षण करता है, उसे तीन दिन निर्जल और एकदिन सजल उपवास करना चाहिए ।५८-५९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के अनूर्वादित्य संवाद में ब्राह्मण धर्मवर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८४।

अध्याय १८५

मातृश्राद्धविधि का वर्णन

आदित्य बोले—रात में श्राद्ध न करना चाहिए, क्योंकि वह रात राक्षसी बतायी गई है । तथा वीर ! दोनों संध्याओं एवं सूर्य के अस्त समय में भी श्राद्ध नहीं करें ।१। मातृ यज्ञ बिना किये जो पिता श्राद्ध का परिवेषण (सूर्य मण्डल में निक्षिप्त करना) करता है, वह क्रोधपूर्ण एवं दारुण हिंसा करता है ।२

अनूरु ने कहा—मातृश्राद्ध किस भाँति सम्पन्न करना चाहिए, वे माताएँ कौन हैं और नांदी मुख पितृगण, उस पूजा की प्राप्ति कैसे करते हैं ।३

आदित्य उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि मातृश्राद्धविधिं खग : शृणु त्वं खगशार्दूल गदतो मम कृत्स्नशः ।।४
पूर्वाह्ले भोजयेद्विप्रानष्टौ सर्वान्प्रदक्षिणान् । तथान्यं नवमं विप्रं चतुरश्च खगाधिप ।।५
ऋजून्वै कुतपान्दत्त्वा सत्येन विधिवत्खग । कृत्वा यवैस्तिलार्थं तु दधिमिश्रं क्रमेण च ।।६
गन्धपुष्पादिकं सर्वं कुर्याद्विप्रप्रदक्षिणम् । ब्राह्मणेभ्यस्ततो दद्यान्मधुरं भोजनं खग ।।७
गुडमिश्रं खगश्रेष्ठ सवस्त्रमोदनं परम् । रसानां मोदकांश्चैव न च तान्कटुकांस्तथा ।।८
एवं भुक्तेषु विप्रेषु दद्यात्पिण्डान्समाहितः । दध्यक्षतविनिश्रांस्तु बदरैश्च खगाधिप ।।९
कृत्वा तु मण्डपं वीर चतुरस्रं प्रदक्षिणम् । पूर्वाग्रांश्च कुशान्दत्त्वा पुष्पाणां प्रकरं तथा ।।१०
सव्येन पाणिना वीर विधिवत्खगसत्तम । मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे निर्वपेत्पूर्वतोमुखः ।।११
पितुर्मात्रे तु तन्मात्रे निर्वपेद्विधिवत्खग । वृद्धायै प्रपितामह्यै तथान्यं निर्वपेद्बुधः ।।१२
एवमुद्दिश्य वै मातृः षड् पिण्डान्निर्वपेत्खग । अष्टाशयेद्द्विजान्वीर मातृश्राद्धे खगाधिप ।।
नवमं सर्वदैवत्यं भोजयेद्विधिवत्खग ।।१३
नान्दीमुखांस्तानुद्दिश्य पितॄन्पञ्च द्विजोत्तमान् । भोजयेद्विधिवच्छ्राद्धे वृद्धिश्राद्धे प्रदक्षिणम् ।।१४
इत्थं श्राद्धद्वयं कुर्याद्वृद्धौ कश्यपनन्दन । तथान्यमपि ते वच्मि परं श्राद्धविधिं तव ।।१५
अथैवं भोजयेच्छ्राद्धे तत्पूर्वं तु प्रवर्तयेत् । अन्यथा तत्र लुम्पन्ति सदेवासुरमानुषाः ।।१६

आदित्य बोले—खग ! मैं तुम्हें मातृ श्राद्ध के विधान बता रहा हूँ, खगशार्दूल ! मैं विस्तार पूर्वक कह रहा हूँ सुनो ।४। खगाधिप ! पूर्वाह्ल के समय आठ ब्राह्मणों को प्रदक्षिणा पूर्वक भोजन कराये, तथा अन्य नवाँ ब्राह्मण का भी । खग ! कुतप (दिन के पन्द्रह मुहुर्त में आठवें मूर्हूत) के समय चार ऋजु (कुशाओं) को रख कर उनमें से क्रमशः प्रत्येक का यव, दधिमिश्रित तिल से आवाहन, गन्ध एवं पुष्पादि द्वारा पूजन प्रदक्षिणा पूर्वक सुसम्पन्न करके पश्चात् ब्राह्मणों के लिए मधुर भोजन प्रदान करें——भोजन में उत्तभ गुडमिश्रित भात, उत्तम रस वाले मोहक (लड्डू) देना चाहिए, जिसमें कडुवापन का लेश मात्र भी न हो, खगाधिप ! इस प्रकार ब्राह्मण भोजन के उपरांत सावधान होकर दही, अक्षत मिश्रित बैर के फलों द्वारा पिंड दान का कार्य सपन्न करे ।५-९। वीर ! प्रथम चौकोर मण्डप का निर्माण करके उसके मध्य में बनी हुई बेदी पर पूर्व की ओर अग्रभाग कर कुशाओं को रखे । पुष्पों के समूहों से उन्हें भूषित भी करे । खगसत्तम ! विधानपूर्वक इन कर्मों को सव्य होकर दाहिने हांथ से करना चाहिए । उसके उपरांत खग ! माता, मातामही, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, एवं वृद्ध प्रमातामह के उद्देश्य से पिंडदान करे । खग ! इस प्रकार माताओं के उद्देश्य से छः पिण्ड प्रदान करना चाहिए और मातृश्राद्ध में आठ ब्राह्मण का भोजन कराना चाहिए तथा एक और ब्राह्मण का भोजन कराना चाहिए । सर्व दैवत्य (विश्वदेव) के नाम परा नांदी मुख पितरों के उद्देय से पाँच श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन करायें । यही वृद्धि श्राद्ध का भी नियम है। कश्यपनंदन ! इस प्रकार वृद्धि श्राद्ध में दो प्रकार से श्राद्ध होते हैं। इसके अनन्तर तुम्हें अन्य श्राद्धों के विधान भी बता रहा हूँ।१०-१५। इसी प्रकार अन्य श्राद्धों में भी ब्राह्मण भोजन आवश्यक है, क्योंकि उनके भोजनान्तर श्राद्ध विधान प्रारम्भ होता है। न करने से देव, असुर, एवं मनुष्य

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । यो ह्यग्निः स द्विजो वीन्द्र[1] मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥१७
पूर्वं पात्रे यदन्नं च यच्चान्नमुपकल्पितम् । तेनैव सह भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥१८
द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये त्रीनुदगास्यांश्च वृद्धौ चाध्वर्युसङ्गमान् ॥१९
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपास्तिलाः । त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वरम् ॥२०
दौहित्रं खण्डमित्युक्तं ललाटाय प्रजापते । तत्र भृङ्गस्य यत्पात्रं तद्दौहित्रमिति स्मृतम् ॥२१
सव्यादंसात्परिभ्रष्टं नाभिदेशे व्यवस्थितम् । एकवस्त्रं तु तं विद्याद्दैवे पित्र्ये च वर्जयेत् ॥२२
पितृदेवमनुष्याणां पूजनं भोजनं तथा । नोत्तरीयं विना कार्यं कृतं स्यान्निष्फलं यतः ॥२३
परिधानकृते स्कन्धे गृहस्थो योऽर्चयेत्पितॄन् । न स तत्फलमाप्नोति यथा योगपटावृतः ॥२४
वनस्थानां खगश्रेष्ठ यतीनां च महामते । सिद्धये कर्मणां वीर योगपट्टकमुच्यते ॥२५
हस्तौ प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः । स तु दैवं च पित्र्यं च आत्मनं चोपघातयेत् ॥२६
भोजनेष्वेव तिष्ठन्ति स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥२७

निमित्तक किये गये कर्म लुप्त हो जाते हैं ।१६। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के हाथ में प्रदान करना चाहिए मन्त्रविदों का कहना है कि अग्नि एवं ब्राह्मण भिन्न वस्तु नहीं है । पात्र में प्रथम जो अन्न रखा जाये अथवा जो प्राप्त हो सके, उसके साथ ही भोजन करना चाहिए न कि पृथक्-पृथक् ।१७-१८। देव कर्म में दो वैदिक ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख, पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को उत्तराभिमुख, एवं वृद्धि श्राद्ध में वेदपाठी ब्राह्मणों को (भोजनार्थ) बैठाना चाहिए । श्राद्धों में कन्यापुत्र, कुतप (दिन का आठवाँ मुहूर्त), और तिल ये तीन पवित्र माने गये हैं । शौच (पवित्रता), अक्रोध (शान्ति), तथा शीघ्रता न करना ये तीनों श्राद्ध में प्रशस्त बताये गये हैं ।१९-२०। प्रजापते ! दौहित्र शिरोभूषण कहा जाता है; एवं भृंग के पात्र का नाम दौहित्र है । देव एवं पितृकर्मों में एक वस्त्र धारण करना निषिद्ध बताया गया है, इसलिए कि एक ही वस्त्र पहन कर उसका एक भाग कंधे पर रखने से गिर कर कटि प्रदेश में ही स्थित रह सकता है । पितृ, देव, एवं मनुष्यों के पूजन तथा भोजन में एक उत्तरीय वस्त्र का होना आवश्यक है क्योंकि उसके न रहने से किये गये कर्म निष्फल हो जाते हैं । पहिने हुए वस्त्र के दूसरे भाग को कंधे पर किसी प्रकार स्थित कर जो गृहस्थ पितृ कर्म करता है, उसे उस कर्म के फल नहीं प्राप्त होते हैं, जैसा कि योगियों को उनके पट्ट-सूत्र द्वारा ।२१-२४। खगश्रेष्ठ ! वनस्थ योगियों के कर्मसिद्धि के लिए यह वस्त्र धारण का विधान बताया गया है ।२५। जो कोई हाथ धोकर शेष जल को गंडूष (कुल्ला करने) के द्वारा पान करता है, वह अज्ञानी देव, पितृ निमित्तक कर्म एवं स्वयं का नाश करता है ।२६। जो ब्राह्मण भोजन के समय बैठकर 'स्वस्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह श्राद्ध उसके द्वारा आसुर हो जाने के कारण पितरों को उपलब्ध नहीं होता

---

१. पक्षिराजत्वं न केवलं गरुडस्यैव, अरुणस्याप्यस्ति । अत एव 'एतद्विनिर्दिशेत्प्राज्ञः प्रायश्चित्तं खगाधिप, इति चतुरशीत्यधिकशततमेऽध्याये चतुष्पञ्चाशत्तमे श्लोके उक्तं संगच्छते । तेन गरुड एव पक्षिराज इति न भ्रमितव्यम् ।

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्तिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे अरुणादित्यसंवादे मातृश्राद्धविधिवर्णनं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८५।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुद्धिप्रकरणवर्णनम्

भास्कर उवाच

श्रावण्यां तु बलिः कार्यः सर्पाणां मन्त्रपूर्वकः । शयनारोहणे चैव कार्या सुखमभीप्सता ॥१
कार्यः प्रत्यवरोहस्तु मार्गशीर्ष्यां न संशयः । फलं बिना त्वनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम् ॥२
काम्यानां सफलार्थं तु दोषप्राप्त्यर्थमेव च । नैमित्तिकानां करणं त्रिविधं कर्मणां फलम् ॥३
फलं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते । अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्येत्याम्युपमन्त्र्य च ॥४

है ।२७। प्रत्युत उन्हें ऐसा मेरे कुल में दाताओं की वृद्धि हो, वेदाध्ययन एवं वैदिक कर्मों के वृद्धि हो, सन्तानों की वृद्धि हो, हम में श्रद्धा की कमी न हो, और मेरे यहाँ दान के लिए अधिक सम्पत्तियाँ हो, कहना चाहिए ।२८

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में अरुणादित्य संवाद में मातृश्राद्ध विधि वर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८५।

अध्याय १८६

शुद्धिप्रकरण-वर्णन

भास्कर बोले—श्रावणी (श्रावण की पूर्णिमा के दिन) मंत्र पूर्वक सर्पों के लिए बलि प्रदान, एवं सुखेच्छुक को शयन तथा आरोहण ये दोनों कार्य भी सम्पन्न करना चाहिए ।१। उसी भाँति मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा के दिन प्रत्यवरोह का कार्य निष्पन्न करना चाहिए । नित्य कर्मों के अनुष्ठान में फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए एवं कामनाओं की सिद्धि के लिए तथा उसके दोष की प्राप्ति के लिए भी काम्य कर्म का आरम्भ होता है । नैमित्तिक कर्म के करने में तीन प्रकार के फलों की अपेक्षा बतायी गई है किसी का सम्मत है कि प्राप्त पाप-फलों का नाश तथा कुछ लोगों ने (पाप) विघ्न बाधा के उपस्थित होने पर भी उसके नाश पूर्वक नित्य क्रिया के सम्पन्न हो जाने को फल बताया गया है । और किसी ने श्रुति के आधार पर आनुषंगिक (आकस्मिक) फल को भी । वैदिक (मंत्र पूर्वक) अग्न्यापन, दर्श (अमावास्या) तथा पूर्णिमा के दिन यज्ञ-विधान, चातुर्मास्य व्रत विधान, अग्निहोत्र, पशुबंध एवं [1]सौत्रामणी नामक यज्ञ, हवि द्वारा सुसम्पन्न करने के लिए श्रुतियों में बताया गया है । इस भाँति

---

१. इस यज्ञ में ब्राह्मणों के सुराधान का विधान बताया गया है ।

नित्यक्रियं तथा चान्ये अनुषङ्गात्फलं श्रुतिः । अग्न्याधेयं तथा दर्शं पौर्णमासं द्वितीयकम् ।।५
चातुर्मास्यमग्निहोत्रं पशुबन्धो निरूढकः । सौत्रामणी च संस्थाः स्युर्हविषः श्रुतिनोदिताः ।।६
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः संषोडशी तथा । वाजपेयातिरात्रश्च आप्तोर्यामः श्रुतौ श्रुतः ।।७
दया स्यात्सर्वभूतेषु अनसूयाथ मङ्गलम् । क्षान्तिर्दया त्वनायासः शौचमस्पृहता व्रतम् ।।८
सम्यगुक्तास्तु संस्कारा ब्रह्मप्राप्तिनिमित्तकाः । अनन्तरं प्रवक्ष्यामि विप्राणां वृत्तयः शुभाः ।।९
ऋतामृते च विप्राणामृतं प्रमृतमेव च । प्रतिग्रहवणिज्यादि श्रेयसी नोत्तरोत्तरा ।।१०
आजीविकावृत्तयस्तु इत्याद्याः सम्प्रदर्शिताः । तासां कयापि जीवेत्तु अनुतिष्ठेद्यथाविधि ।।११
नित्यं शुचिः सुगन्धश्च स्नानशीलः प्रियंवदः । पूज्यश्च पूजयेद्देवान्कार्याणि स्वयमाचरेत् ।।१२
नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च सपृष्टमैथुनम् । नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा नाशुची रात्रितारकाः ।।१३
शास्त्रोक्ता यन्त्रणा या तु नानुक्तानि व्रतानि च । स्वर्गार्थं साधयेत्तैश्च शक्तिमान्मनसा तथा ।।१४
नित्यानि केचिदिच्छन्ति काम्यानि च तथापरे । काम्याप्रवृत्तौ सङ्गे च प्रायश्चित्तं विधीयते ।।१५
व्रतानि मनसा त्विष्टसङ्कल्प इति मानसः । अन्तरानुफलं यत्तदृषिवादाः प्रकीर्तिताः ।।१६
अनध्यायं स्वयं सम्यग्वर्जयेत्फलसाधनम् । आत्माशुद्धस्तथा देशो ह्यसुहारः प्रजापदः ।।१७
अशुभानि निमित्तानि उत्पातो विकृतं तथा । पर्वाणि मनसोऽशुद्धिरनध्याय इति स्मृतः ।।१८

अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्त एवं याम के विधान को श्रुतियों में बताया गया है । इन्हें सुसम्पन्न करते हुए मनुष्यों को सभी प्राणियों के प्रति दया, प्रशंसा तथा मंगल की कामना करनी चाहिए । स्वभावतः शान्ति, दया, पवित्रता एवं अस्पृहता (विराग) व्रत में आवश्यक होते हैं ।२-८। ब्रह्म प्राप्ति के उद्देश्य से इन सभी संस्कारों की व्याख्या की गयी है इसके उपरांत ब्राह्मणों की शुभ मूर्ति वृत्तियाँ (आजीविका) बता रहा हूँ । यद्यपि ऋत (उच्छवृत्ति-एक-एक दाने को खेतों से एकत्र करने) अमृत (आयाचित अन्न) प्रतिग्रह (दान) एवं वाणिज्यादि कर्म द्वारा ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह करना बताया गया है पर इनमें प्रथम श्रेयस्कर और अन्य अप्रशस्त कहे गये हैं किन्तु (परिस्थिति के अनुसार) किसी भी जीविका द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए विधान पूर्वक कर्मों के अनुष्ठान अवश्य करने चाहिए । अनुष्ठान करने वाले को नित्य पवित्रता, सुगन्धलेपन स्नान, एवं मधुर भाषण करने के द्वारा पूज्य होकर देवों की पूजा एवं कर्मों को स्वयं करना चाहिए ।९-१२। उन्हें चाहिए कि सूर्य (उदय और अस्त समय में) नग्न स्त्री, मैथुन, जल में मूत्र एवं पुरीषोत्सर्ग, अपवित्रता, रात्रि में अस्तकालीन ताराएँ न देखें । शक्तिमान् पुरुष को शास्त्रोक्त नियमों के पालनपूर्वक दृढ प्रतिज्ञ होकर व्रतों द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की सफलता करनी चाहिए ।१३-१४। कुछ लोग नित्य कर्मों के ही अनुष्ठान करते हैं तथा कुछ लोग काम्य कर्मों के भी । काम्य कर्मों के न करने अथवा उसी में आसक्त रहने पर प्रायश्चित का विधान बताया गया है ।१५। व्रतों के लिए मनद्वारा इष्ट संकल्प करना 'मानसिक' संकल्प और कर्म के मध्य में आकस्मिक फलानुसार मानसिक प्रतिज्ञा बद्ध होना 'ऋषिवाद' कहा जाता है।१६। सभी प्रकार के अनध्यायों का त्याग करना चाहिए स्वयं अशुद्ध एवं देश के अशुद्ध होने के समय जब कि राजा का प्राणोत्सर्ग हुआ हो अशुभ निमित्त, उत्पात, विकार, पर्वदिन, तथा मन की अशुद्धि ये सब अनध्याय बताये गये हैं । दृष्ट, एवं

अनध्यायाश्च दृष्टार्था अदृष्टार्थास्तथापरे । वेदाध्ययनमेवेति त्रिधा मद्ध्यानदर्शनम् ॥१९
अभक्ष्यं सर्ववर्णानां शावाशौचं खगाधिप । द्रव्यशुद्धिस्तथैव स्यादन्यथा त्वसमञ्जसम् ॥२०
जातिदुष्टं क्रियादुष्टं कालदुष्टं विभूषितम् । संसर्गाश्रयदुष्टं च सहृल्लेखं स्वभावतः ॥२१
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ॥ वार्ताकं नालिकेरं तु मूलकं जातिदुष्टकम् ॥२२
नो भुञ्जीत क्रियादुष्टं दुष्टं च पतितैः पृथक् । कालदुष्टं तु विज्ञेयं हानिदं चिरसंस्थितम् ॥२३
दधिभक्ष्यविकाराश्च मधुवर्ज्यास्तविष्यते ॥२४
सुरालशुनसंस्पृष्टं पेयूषादिसमन्वितम् । संसर्गदुष्टमेतद्धि शुनोच्छिष्टं खगेश्वर ॥२५
शूद्रसक्तं खण्डसक्तं ज्ञेयमाश्रयदूषितम् । विचिकित्सा तु हृदये भक्ष्ये यस्मिन्प्रजायते ॥२६
सहृल्लेखं तु तज्ज्ञेयं पुरीषं तु स्वभावतः । रसदुष्टे विकारोऽपि रसस्येति प्रदर्शितः ॥२७
पायसं क्षीरपाकादि तस्मिन्नेव दिने तथा । यथाशास्त्रं खगश्रेष्ठ भक्ष्याभक्ष्ये निरूपयेत् ॥२८
प्राणात्यये प्रोक्षितं च श्राद्धे न द्विजकाम्यया ! पितृन्देवांश्चार्पयित्वा भुञ्जन्मांसं न दोषभाक् ॥२९
प्रेतशुद्धिः सपिण्डानां तस्मिन्नेव मृते सति । दशाहं द्वादशाहं वा पक्षं मासं त्वशुद्धता ॥३०
दशाहादिविभक्ते भागे वर्णशो न भवन्ति हि । दशाहेन तु भोज्याः स्युः सूतकाशौचयोस्तथा ॥३१
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहश्रवणे सति जायते । संवत्सरे व्यतीते तु स्नानादेव विशुध्यति ॥३२

अदृष्ट अनध्याय, और वेदाध्ययन, यह तीन प्रकार के मेरे ध्यान दर्शन कहे गये हैं ।१७-१९। खगाधिप ! सभी वर्णों के लिए अभक्ष्य एवं शावाशौच (मरणाशौच) के विशेष ध्यान रखना आवश्यक है । क्योंकि पदार्थों की शुद्धि तभी संभव है अन्यथा नहीं ।२०। जाति, क्रिया, काल, संसर्ग, एवं आश्रय दूषित तथा स्वभावतः सहस्रलेख का विशेष ध्यान होना चाहिए । लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, भाँटा, एवं मूली ये जाति दूषित होने के नाते त्याज्य हैं ।२१-२२। इसी भाँति क्रिया दूषित तथा पतितों द्वारा दूषित पदार्थ अभक्ष्य है, और चिरकाल तक रखे हुए पदार्थ काल दूषित होने के कारण अभक्ष्य बताये गये हैं क्योंकि उनसे विशेष हानियाँ सम्भव हैं जैसे दही द्वारा बने हुए भक्ष पदार्थ के विकृत होने से मधु (शहद) भी त्याज्य हैं । मदिरा और लहसुन मिश्रित पान करने की वस्तु संसर्ग दूषित होने के कारण त्याज्य होती है । तथा खगेश्वर ! उसी प्रकार कुत्तों के द्वारा उच्छिष्ट (दूषित) वस्तु भी । खण्डों में विभाजित जो शूद्रों से स्पृष्ट की गयी है, वह वस्तु आश्रय दूषित होने के नाते त्याज्य है जिस भक्ष्य के विषय में हृदय में जानकारी की विशेष भावना उत्पन्न हो, उसे सहृल्लेख, कहते हैं, जैसे स्वभावतः पुरीष (मन्त्र) कभी भी गृहीत नहीं होता है । इसके दूषित होने पर उससे बने विकृत पदार्थ भी दूषित होते हैं ।२३-२७। जैसे खीर अथवा क्षीर पाकादि उसी दिन का अच्छा होता है। खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने शास्त्रोक्त भक्ष्याभक्ष्य का निरूपण कर दिया ।२८। भूख से व्याकुल होकर प्राण के निकलते समय, यज्ञ निमित्तक, और श्राद्ध में देव एवं पितृ-तर्पण के उपरांत मांस भोजन करना दूषित नहीं बताया गया है ।२९। किसी के मरने पर उसके सपिण्ड के लोगों को मरणाशौच, दश, बारह, पन्द्रह और मास का वर्णों का क्रमशः होता है । दशाह का सभी वर्णों का अशौच नहीं रह जाता, अतः दशाह के उपरांत जननाशौच और मरणाशौच दोनों प्रकार के अशौच ब्राह्मण भोजन होना चाहिए । दशाह के उपरांत अशौच सुनने पर एक दिन अशौच होता है एवं वर्ष के बीत जाने पर सुनने से स्नान मात्र से शुद्धि बतायी गई है।३०-३२। (कुल में) जल

समानोदकता प्रोक्ता जन्मनाम्नोरपर्यये । सपिण्डाः सप्तपुरुषाः श्रुतावेतन्निदर्शनम् ॥३३
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैष्ठिकी स्मृता । त्रिरात्रमाव्रतादेशात्सपिण्डेषु मृतेषु च ॥३४
तेषामपि तदेकं स्याद्द्वयोऽवस्थाप्यपेक्ष्यते । समानोदकात्त्रिरात्रेण शुध्येद्‌ मृत्युजन्मनोः ॥३५
गर्भस्रावे त्रिरात्रेण उदक्या शुध्यते तथा । अनन्तजन्ममरणे तच्छेषेण विशुध्यति ॥३६
द्विजानां त्वेवमेव स्यात्पित्र्यर्थं मातुरेव वा । अग्निहोत्रार्थं विज्ञेयं सद्यः शौचमिति स्थितिः ॥३७
असपिण्डे तु निर्हारात्त्रिरात्रमपि मानवः । तस्यैवानुगतौ ज्ञेयं सद्यः शौचं खगाधिप ॥३८
शुध्येद्विप्रो दशाहेन जन्महानौ द्विजोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरहैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥३९
उक्तशौचं यथान्यायं शारीरं तत्त्वदर्शिभिः । द्रव्यशुद्धिविधानं तु यथावदभिधीयते ॥४०
तैजसी मार्तिकी वीर वारिशुद्धिः स्मृता तथा । निर्लेपक्षालने नैव स्पर्शो तु प्रोक्षणेन वै ॥४१
अशुद्धं नैव किञ्चिद्धि द्रव्यमस्तीति खेचर । वचनाच्छुद्ध्यशुद्धी तु द्रव्याणामिह खेचर ॥४२
स्नानं शौचं च कर्तव्यं द्रव्यशौचादनन्तरम् । प्रातः स्नानं तु नित्यं स्याद्ग्रहणे काम्यमेव च ॥४३
नैमित्तिकं क्षुराशौचं तेन पापाद्विशुध्यति । उक्तं तु शौचं विज्ञेयं दोषक्षयकरं खग ॥४४
कर्माङ्गं चेति विज्ञेयं षट्प्रकाराः समासतः । एवमाचमनं विद्याद्विशिष्टं तु द्विजन्मनाम् ॥४५
तदा मृतानां तद्वत्स्यादन्येषां तु यथासुखम् । कन्यानिवृत्ति पुत्रैस्तु यथान्यायं समाचरेत् ॥४६

और नाम दोनों से समानोदकता बतायी गयी है और सातवीं पीढ़ी तक सपिण्ड कहा जाता है, ऐसा श्रुति (वेद) में बताया गया है। सपिण्ड में दाँत निकलने के पूर्व, मरणाशौच में स्नान से शुद्धि, तथा प्रथमवर्ष चूड़ाकर्म होने के उपरांत उपनयन के पूर्वतक तीन रात का अशौच प्राप्त होता है। समानोदक के जनन अथवा मरणाशौच में तीन रात का अशौच प्राप्त होता है।३३-३५। गर्भ के स्राव में माँ को तीन रात के अशौच होने के उपरांत उदक (जल) द्वारा शुद्धि होती है कई व्यक्तियों के जन्म एवं मरण में (पूर्व पुरुष के अशौच के शेष दिन के साथ) वह भी शुद्ध हो जाता है।३६। मातृ-पितृ निमित्तक यह अशौच द्विजों के लिए बताया गया है। अग्नि होत्र वाले की उसी समय स्नान से शुद्धि हो जाती है। सपिण्ड में किसी के मरण में तीन रात तक के अशौच के अनन्तर उसकी शीघ्र शुद्धि हो जाती है।३७-३८। खगाधिप ! जननाशौच एवं मरणाशौच में ब्राह्मण दशवें दिन शुद्ध होता है, बारहवें दिन क्षत्रिय, पन्द्रहवें दिन वैश्य, मास में शूद्र की शुद्धि होती है।३९। इस प्रकार तत्त्वदर्शियों ने न्यायपूर्ण शरीर सम्बन्धी पवित्रता का वर्णन किया है, पूर्व द्रव्य शुद्धि का विधान बताया जा रहा है। वीर ! तेजपूर्ण एवं मृत्तिका से बनीमूर्ति, जल द्वारा शुद्ध होती है, उसमें जल से धोना नहीं चाहिए प्रत्युत कुशादिक से सेचन करना आवश्यक होता है। आकाशचारिन् ! यों ही कोई द्रव्य (पदार्थ) अशुद्ध है ही नहीं, केवल वाक्य द्वारा द्रव्यों की शुद्धि एवं अशुद्धि होती है ! द्रव्य शुद्धि के उपरांत भी स्नान तथा पवित्रता आवश्यक होती है। काम्य आदि सभी कर्म में नित्य स्नान होना ही चाहिए। नैमित्तिक केवल क्षुराशौच होता है, खग ! इस प्रकार मैंने दोष नाशक शौच निर्णय बता दिया छः प्रकार के कर्मांग होते हैं, इसी प्रकार आचमन भी बताया गया है विशेषकर द्विजन्मों के लिए। मरण में वैसा ही करना होगा और अन्य कार्यों में यथेष्ट नियम हैं। पुत्रों को न्याय पूर्वक कन्याओं की निवृत्ति करनी चाहिए। स्त्रियों को कला, शिल्प आदि सभी कार्य सीखने

कलाशिल्पानि सर्वाणि गृह्णीयात्परितुष्टये ॥४७

शुश्रूषेत पतिं भार्या परितोषं यथा व्रजेत् । गुरूणां परितोषश्च धर्मः स्त्रीणां सनातनः ॥४८

वृद्धाऽपुत्रा यदि मृता तदभावे नृपस्य तु । मृतापत्याप्यगर्भा च वृद्धापत्या पतिव्रता ॥४९

कुर्यादनिर्वृतं भर्तुर्गते सन्निहितेऽपि सा । एतां धर्मसमां निष्ठां भर्तृलोकमवाप्नुयात् ॥५०

स्त्री धर्मचारिणी साध्वी मृता दाह्या तथाग्निभिः । विपरीताऽदाह्या तु पुनर्दारक्रिया तथा ॥५१

स्त्रीणां नियोगो विहितो मरणाद्ब्रह्मचारकम् । आप्तव्यश्च यथाधर्मो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥५२

तस्माद्धर्मं सदा कुर्यात्कुर्वती स्वर्गमाप्नुयात् ॥५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु शुद्धिप्रकरणवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८६।

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे धेनुमाहात्म्यवर्णनम्

अनूरुरुवाच

कानि पुण्यानि कृत्वेह स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः । मनुष्यलोके सम्भूताः स्वर्लोके गामिनः परम् ॥१

कर्मयज्ञस्तपोयज्ञः स्वाध्यायो ध्याननिर्मितः । ज्ञानयज्ञश्च पञ्चैते महायज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥२

चाहिए तथा पति की इच्छानुसार उनकी शुश्रूषा अत्यन्त आवश्यक है । (स्त्रियों के लिए पति गुरु रूप है) अतः गुरुओं को भली भाँति प्रसन्न रखना स्त्रियों का सनातन धर्म है । पुत्रहीन विधवा का मरण होजाये तो अच्छा है, अन्यथा उसे राजा की सेवा करनी चाहिए, उसी प्रकार जिसके मृत बालक उत्पन्न होते हों, गर्भहीना हो, अथवा वृद्ध की भाँति संतान होते हों, ऐसी पतिव्रता स्त्री को चाहिए कि पति समीप रहे या न रहे, इन दोषों का निराकरण करे । क्योंकि धार्मिक निष्ठा (प्रेम) होने से उसे पतिलोक प्राप्त होते हैं । धर्माचरण करने वाली सती स्त्री के मरण में अग्निदाह करना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत हो तो दाह अनावश्यक है । स्त्री के लिए मरने अथवा ब्रह्मचारी रहने से नियोग करना कहीं अच्छा है । क्योंकि उससे दृष्ट एवं अदृष्ट फल प्राप्त होते हैं, अतः स्त्री को सदैव धर्म करना चाहिए जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सके ।४०-५३

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में शुद्धिकरण वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८६।

अध्याय १८७

सौर धर्म में धेनुमाहात्म्य का वर्णन

अनूरु ने कहा—इस मनुष्यलोक में उत्पन्न मनुष्य लोग, जो स्वर्गलोक के गामी हैं, किन पुण्यकर्मों द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति करते हैं । कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ एवं ज्ञानयज्ञ—ये पाँच

एतेषमेव यज्ञानामुत्तमः कतमः स्मृतः । एतद्यज्ञफलानां च किं फलं का गतिर्भवेत् ॥३
धर्माधर्मप्रभेदाश्च कियन्तः परिकीर्तिताः । तत्साधनानि कतिधा गतयश्च यथा वद ॥४
खग नारकिणां पुंसामागतानां पुनः क्षितौ । कानि चिह्नानि जायन्ते भुक्तशेषेण कर्मणा ॥५
महाभवार्णवाद् घोराद्धर्माधर्माभिसङ्कुलात् । गर्भादिदुःखफेनाढ्यान्मुच्यन्ते देहिनः कथम् ॥६
इत्युक्तो भगवान्भानुः सर्वप्रश्नार्थमादरात् । प्रत्युवाच महातेजाः समासव्यासयोगतः ॥७

आदित्य उवाच

स्वर्गापवर्गफलदं नरकार्णवतारणम् । धर्मं पापहरं पुण्यं शृणु शूर प्रभाषतः ॥८
श्रद्धापूर्वः सदा धर्मः श्रद्धामध्यान्तसहस्थितः । श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठश्च धर्मः श्रद्धा प्रकीर्तिता ॥९
श्रुतिमन्त्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वरः । श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते न परेण च चक्षुषा ॥१०
कायक्लेशैर्न बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः । धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि ॥११
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाहुतं तपः । श्रद्धा मोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥१२
सर्वस्वं जीवितं वापि दद्यादश्रद्धया च यः । नाप्नुयात्स फलं किञ्चित्तस्माच्छ्रद्धापरो भवेत् ॥१३
एवं श्रद्धामयाः सर्वे मम धर्माः प्रकीर्तिताः । पूज्यस्तु श्रद्धया पुंसा ध्येयः पूज्यश्च श्रद्धया ॥१४

महायज्ञ के नाम से विख्यात हैं, इनमें कौन यज्ञ श्रेष्ठ बताया गया है और इनके द्वारा किस फल की एवं किस गति की प्राप्ति होती है ? तथा धर्माधर्म के कितने भेद बताये गये हैं कितने प्रकार के उनके साधन हैं एवंम् कितने प्रकार की गति प्राप्ति होती है, और खग ! नारकीय पुरुषों के, जो नरक की यातनाओं के अनुभव के पश्चात् पुनः इस पृथ्वी तल पर जन्म ग्रहण किये हैं उन्हें शेष भोग्य कर्मद्वारा किन लक्षणों की उपलब्धि होती है, एवं इस घोर संसार महासागर से जिसमें धर्माधर्मसमूह से प्राप्त गर्भादिदुःख, फेनसंकुल के समान हैं, यह प्राणी कैसे मुक्त होता है ? इस प्रकार सादर विनम्रभाव से पूछने पर महा तेजशाली भगवान् भास्कर ने संक्षेप तथा विस्तृत के सम्मिश्रण द्वारा सभी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहना आरम्भ किया।१-७

आदित्य बोले—शूर ! मैं उस धर्म की चर्चा कर रहा हूँ, जिसके द्वारा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति, नरकसागर से उद्धार, पाप का नाश तथा पुण्य की प्राप्ति होती है, सुनो ! ८। धर्म के पूर्व, मध्य एवं अंत में श्रद्धा स्थित है, क्योंकि श्रद्धानिष्ठ एवं उसी में प्रतिष्ठित धर्म का नामान्तर (दूसरा नाम) ही श्रद्धा है।९। सूक्ष्म श्रुतियों के मंत्र-रस तथा प्रधान पुरुषेश्वर केवल श्रद्धामात्र से गृहीत होते हैं, न कि सूक्ष्म (अन्य) नेत्रों द्वारा।१०। श्रद्धाहीन देवगण भी शारीरिक कष्ट एवं अतुल धनराशि द्वारा सूक्ष्म धर्म की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते।११। श्रद्धा ही सूक्ष्म एवं उत्तम धर्म, यज्ञ में आहुति, तप, मोक्ष तथा स्वर्ग रूप है इस प्रकार जगत् श्रद्धामय है। श्रद्धाविहीन कोई भी अपना सर्वस्व अथवा जीवनदान ही क्यों न प्रदान करे उससे उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए सदैव श्रद्धासम्पन्न होने की चेष्टा करनी चाहिए।१२-१३। मेरे सभी धर्म श्रद्धामय बताये गये हैं, अतः पुरुष को श्रद्धायुक्त होकर धर्म की (मेरी) पूजा एवं ध्यान अवश्य करना चाहिए।१४। मेरी ये सभी बातें जो तुम्हें अज्ञ के कहने की भाँति एवं संदिग्ध मालूम

अधिकारस्य प्राप्त्यर्थं महासारविमुक्तदम् । अज्ञावुक्तं ससंदिग्धं वाक्यमेतन्ममाद्‌भुतम् ॥१५
नानासिद्धिकरं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जनम् । सुनिश्चितार्थगम्भीरं वाक्यं मम मनोरमम् ॥१६
मन्मानससमुद्रो हि द्विपदोऽयं विदुर्बुधाः । स खषोल्केति विख्यातः सशिव मण्डलं खग ॥१७
देवत्रयगुणातीतः सर्वज्ञः सर्ववित्प्रभुः । ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः स परमो मम ॥१८
यथानादिप्रवृत्तोयं घोरः संसारसागरः । खषोल्कोऽपि तथानादिः संसारार्णवशोधनः ॥१९
व्याधीनां भेषजं यद्वत्प्रतिपक्षस्वभावतः । मोक्षिणां मुक्तिहेतुश्च सिद्धः सर्वार्थसाधकः ॥२०
ममाभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयः सदा स्मृतः । अभिधानाभिधेयोऽहं मन्त्रसिद्धोऽस्मि खेचर ॥२१
वेदो मनोगमे चात्र षडक्षरमन्त्रसंस्थितः । यद्वा मुक्तोऽक्षरैकेन लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥२२
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः । यस्यों नमः खषोल्केति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥२३
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् । येनों नमः खषोल्केति मम वाक्यं षडक्षरम् ॥२४
विधिवाक्यमिदं सर्वं नार्थवादं वचो मम । एतत्ते वक्ष्यतेऽशेषं मम वाक्यार्थमुत्तमम् ॥
पृच्छस्वेमं प्रणम्याशु वैनतेय महामते ॥२५

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वा तु वचनं भानोर्वैनतेयो महाबलः । सप्ताश्वतिलकं भक्त्या प्रणम्योवाच भारत ॥२६

होती हैं, अधिकार की प्राप्ति और महासार मोक्ष को प्रदान करने वाली हैं ।१५। भाँति-भाँति की सफलता, दिव्य लोक के चित्त को मुग्ध करने एवं निश्चित किन्तु अर्थगम्भीर वाले ये सुन्दर वाक्य मेरे हैं ।१६। खग ! वह खषोल्क नामक मेरा कल्याणात्मक मंडल, मेरे मानससमुद्र का (संतरण करने वाला) द्विपद देव रूप है, ऐसा विद्वानों का कहना है ।१७। वह मेरा परमोत्तम देव, जो त्रिगुणरहित, सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला एवं प्रभु रूप है, 'ओम्' इस एकाक्षर वाले मंत्र में सदैव स्थित रहता है ।१८। इस घोर संसारसागर के अनादिकाल से प्रवृत्त होने की भाँति संसारसागर के समुद्धारक खषोल्क भी अनादि हैं ।१९। यह रोगों की औषधि की भाँति प्रबल संक्रामक तथा मोक्षार्थियों के लिए मुक्तिप्रदायक, सिद्ध एवं समस्त कामनाओं का साधन भी है ।२०। आकाशाचारिन् ! मेरे नाम का यह मन्त्र सभी के लिए सदैव ध्यान करने के योग्य है, तथा मैं ही नाम, ध्येय एवं मन्त्रसिद्धि हूँ ।२१। मन के द्वारा जानने योग्य इस षडक्षर मंत्र में समस्त वेद स्थित हैं, इस लोक में मनुष्य एक ही अक्षर से मुक्त हो जाता है, इस मंत्र में तो पाँच अक्षर 'ओं खषोल्क हैं ।२२। जिसके हृदय में भली भाँति 'ओं नमः खषोल्काय' इस मंत्र की स्थिति दृढ़ हो गई है, उसे अनेक मंत्रों एवं अति विस्तृत शास्त्रों की आवश्यकता क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं) ।२३। 'ओं नमः खषोल्क', इस षडक्षर वाले मेरे वाक्य को जिसने अपना लिया है, उसी ने सब कुछ अध्ययन एवं सभी उत्तम कर्मों का अनुष्ठान सम्पन्न किया है ।२४। वैनेतेय, महामते ! यह मेरा कहना विधि वाक्य है, न कि अर्थवाद (प्रशंसा) रूप । तुम शीघ्र इनसे सादरप्रणामपूर्वक पूछो, ये मेरी सभी बातें तुम्हें बतायेंगे ।२५

सुमन्तु बोले—भारत ! इस प्रकार भानु की बातें सुनकर महाबली वैनतेय (अरुण) ने सप्ताश्वतिलक से भक्ति एवं प्रणामपूर्वक पूँछा— ।२६

अनूरुरुवाच

ब्रूहि मा देवशार्दूल यत्पृच्छामि महामते । कीदृग्वाक्यमिदं भानोर्वैनतेयो महाबलः ॥२७

सप्ताश्वतिलक उवाच

विमुक्ताशेषदोषेण सर्वज्ञेन भगेन यत् । प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः ॥२८
यस्मान्मार्तण्डनामासौ कथ्यते च मनीषिभिः । यथार्थं पुण्यमाप्नोति पतत्यश्रद्धया त्वधः ॥२९
सौरवाक्यप्रवक्तारं सूरवत्पूजयेद्गुरुम् । संसारार्णवनिर्मग्नं यः समुद्धरते जनम् ॥३०
सौरधर्माम्बुहस्तेन कस्तेन सदृशो गुरुः । अज्ञानवह्निसन्तप्तं निर्वापयति यः शनैः ॥
ज्ञानामृतेन वै भक्तान्कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥३१
नैव राज्येन महता न चैवार्थस्य राशिभिः । प्राप्तमज्ञानशमनं परलोके सुखावहम् ॥३२
स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्तु शोभनम् । वाक्यं ते देवदेवेन तद्विज्ञेयं सुभाषितम् ॥३३
रागद्वेषाक्षमाक्रोधकामतृष्णानुसारिणाम् । वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते ॥३४
संस्कृतेनापि किं तेन मृदुलालित्यसङ्गिना । अविद्यारामवाक्येन संसारक्लेशहेतुना ॥३५
यच्छ्रुत्वा जायते पुण्यं रागादीनां च संक्षयः । विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमतिशोभनम् ॥३६
स्मृतयो भारतं वेदाः शास्त्राणि सुमहान्ति च । स्वायुषः क्षपणायैव धर्मोऽर्थसमग्रन्थितः ॥३७
पुत्रदारादिसंसारे नराणां मूढचेतसाम् । संसारविदुषां शास्त्रमनादिमुखनिर्गतम् ॥३८

अनूरू ने कहा—हे देवशार्दूल, महामते ! मैं जो कुछ पूँछूँ, उसे आप बताने की कृपा करें हे प्रभो ! सूर्य के वे वाक्य कैसे हैं, उनके अर्थ बतायें।२७

सप्ताश्वतिलक बोले—समस्त दोषरहित एवं सर्वज्ञ सूर्य ने जिन वाक्यों के प्रयोग किये हैं, वे शुद्ध एवं प्रमाणरूप हैं, इसमें संदेह नहीं।२८। जिसके द्वारा श्रद्धा सम्पन्न होकर मनीषी लोग मार्तण्ड नाम का उच्चारण करते हैं, उन्हें ही वास्तविक पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसी भाँति श्रद्धाहीन वालों का अधःपतन होता है।२९। सूर्य के वाक्यों के प्रयोग करने वाले गुरु की पूजा सूर्य की भाँति ही करनी चाहिए, क्योंकि संसारसागर में निमग्नप्राणी का उद्धार उन्हीं द्वारा सुलभ होना बताया गया है।३०। सौर धर्म रूपी जल के करस्थ होने पर उसके समान अन्य कौन गुरु हो सकता है, जिसने धीरे-धीरे अज्ञान रूपी प्रज्वलित अग्नि का और ज्ञान रूपी अमृतपान से भक्तों को तृप्त कर दिया है। अतः उसे सम्मानित कौन नहीं करेगा ?।३१। इस प्रकार महान् राज्यप्राप्ति अथवा असंख्य धनराशि द्वारा परलोक में सुखप्रदान करने वाले उस अज्ञान-नाशक की प्राप्ति नहीं हो सकती है।३२। देवाधिदेव (सूर्य) ने जिन सुन्दर वाक्यों के प्रयोग किये हैं, वे सौन्दर्यपूर्ण स्वर्ग और मुक्तिप्रदायक हैं।३३। अनुराग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम एवं तृष्णायुक्त प्राणियों के वाक्य नरक की प्राप्ति कराते हैं, अतः वे दुर्भाषित कहे जाते हैं।३४। उस सुसंस्कृत वाणी के प्रयोग से, जो कोमल स्वरपूर्ण होते हुए भी अविद्या रूपी उपवन में विचरण करने वाली एवं संसार के क्लेशों की प्रदायिका हैं, क्या लाभ हो सकता है।३५। जिसके सुनने से पुण्य एवं रागादि दोषों के नाश होते है, उसे विरूप होते हुए भी उसी वाणी को अत्यन्त सुन्दर समझना चाहिए।३६। अतः स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, तथा बड़े-बड़े दुरूह शास्त्र, ये सभी अर्थ की ग्रन्थियों द्वारा निबद्ध होकर धर्म के नाम पर आयु को केवल क्षीण करने के लिए ही हैं।३७। पुत्र-स्त्री रूप संसार में मूढ़ चित्त वाले मनुष्यों के, जो संसारी विद्वान् कहे जाते हैं, मुख से निकले हुए ये शास्त्र अनादि कहे जाते हैं यद्यपि यह श्रेष्ठ है, एवं यह तुम्हें

इदं श्रेष्ठमिदं ज्ञेयं सर्वं त्वं ज्ञातुमिच्छसि । अपि वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ॥३९
विज्ञायाक्षरतन्मात्रं जीवितं चातिवञ्चनम् । विहाय सर्वशास्त्राणि परलोकं समाचरेत् ॥४०
पण्डितेनापि किं तेन समर्थेन च देहिनाम् । यः पुण्यभारमुद्वोढुमशक्तः पारलौकिकम् ॥४१
पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोऽप्यशक्तिकः । यः सौरज्ञानमाहात्म्यमुच्चारयितुमक्षमः ॥४२
तस्मात्स पण्डितः शक्तः स तपस्वी जितेन्द्रियः । यः सौरज्ञानसद्भावमालोचयितुमुद्यतः ॥४३
यः प्रदद्यान्नृपः कृत्स्नां क्ष्मां धनं काञ्चनं तथा । सर्वमन्यायतः पृच्छेन्न तस्योपदिशेद् गुरुः ॥४४
यः शृणोति रवेर्धर्मं न्यायतः स च वक्ति च । ततो गच्छति सुस्थानं नरकं तद्विपर्यये ॥४५
दत्तगोदोहसम्भूतः षडक्षरविधानतः । रविसम्पूजितः शीघ्रं नराणां तुल्यता भृशम् ॥४६
सुरासुरैर्मथ्यमानात्क्षीरोदात्सागरात्पुरा । पञ्च गावः समुत्पन्नाः सर्वलोकस्य मातरः ॥४७
नन्दा सुभद्रा सुरभी सुमना शोभनावती । गावः सूर्यसमा भासा उत्पन्नाः कृतिमागताः ॥४८
सर्वलोकोपकारार्थं देवानां तर्पणाय च । मामाश्रित्य स्थिता गावः स्नानार्थं भास्करस्य तु ॥४९
तासामङ्गानि पुण्यानि षड्रसाः खगसत्तम । खगादिषु च सर्वेषु स्थिराणीत्युपधारय ॥५०
गोमयं रोचनं मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् । षडङ्गानि पवित्राणि सर्वसिद्धिकराणि च ॥५१
गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षोऽर्कवल्लभः । तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीर्वृक्षस्तेन च स स्मृतः ॥५२

जानना नितान्त आवश्यक है, ऐसा करते हुए सहस्रों वर्ष की आयु नष्ट हो जाती है, तथापि वह शास्त्र का निष्णात विद्वान् नहीं होता है।३८-३९। (शास्त्र को) केवल अक्षरमात्र उसके अध्ययन से व्यर्थ जीवन नष्ट करना है, ऐसा समझकर शास्त्रों के त्यागपूर्वक (किसी अन्य द्वारा) परलोक की प्राप्ति के लिए उद्योग करना चाहिए। उस पण्डित के द्वारा, जो समर्थ होते हुए प्राणियों के पारलौकिक पुण्यभार के वहन करने में अशक्त है, क्या लाभ हो सकता है।४०-४१। पण्डित होते हुए वह मूर्ख है, जो समर्थ होकर इस प्रकार की अपनी दुर्बलता प्रकट करता है—मैं सौर-ज्ञान के माहात्म्य के उच्चारण करने में असमर्थ हूँ।४२। इसलिए वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी एवं जितेन्द्रिय है, जो सौर ज्ञान की सद्भावनापूर्ण विवेचना करने को सदैव कटिबद्ध रहता हैं।४३। गुरु को भी चाहिए कि उस राजा को, जो अपनी समस्त पृथ्वी, धन एवं सुवर्ण के प्रदानपूर्वक अन्यायपूर्ण प्रश्न करे, उपदेश न प्रदान करे। जो सूर्य धर्म का श्रवण और न्यायूपर्ण वाणी का व्यवहार करता है, उसे ही अच्छे स्थान (स्वर्ग) की प्राप्ति होती है तथा उसके प्रतिकूल आचरण वाले को नरक की।४४-४५। षडक्षर के विधानपूर्वक दूध द्वारा सूर्य की पूजा करने से वह मनुष्य भी सूर्य के समान हो जाता है।४६। पहले समय में देव और राक्षसों ने मिलकर क्षीर सागर का मंथन किया था, उसी से पाँच गाएँ, जो समस्त लोकों की माताएँ हैं, उत्पन्न हुई हैं।४७। नंदा, सुभद्रा, सुरभी, सुमना तथा शोभनावती, इन नाम की पाँच गायों ने सूर्य के समान तेजस्वी रूप धारण किया।४८। समस्त लोकों के उपकारार्थ, एवं देवों की तृप्ति तथा भास्कर के स्नान करने के लिए ये गायें मेरे आश्रित स्थित हुईं।४९। खगसत्तम ! उनके अंगों एवं छः रसो, पक्षी आदि सभी प्राणी में स्थित हैं, ऐसा समझना चाहिए।५०। गोबर, गोरोचन, मूत्र, दूध, दही तथा घी गौओं के यही छहों अंग पवित्र एवं सर्वसिद्धिकारक हैं।५१। गोमय द्वारा विल्व वृक्ष का उत्थान हुआ है, जो श्रीसम्पन्न एवं सूर्यप्रिय है, उसी वृक्ष पर पद्महस्ता

पङ्कान्युत्पलपद्मानि पुनर्जातानि गोमयात् । गोरोचनं च माङ्गल्यं पवित्रं सर्वकामदम् ।।५३
गोमूत्राद्गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः । आहारः सर्वदेवानां भास्करस्य विशेषतः ।।५४
यद्बीजं जगतः किञ्च चित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् । दध्नः सर्वाणि जातानि माङ्गल्यान्यर्थसिद्धये ।।५५
घृतादमृतमुत्पन्नममराणामतिप्रियम् । तस्माद्घृतेन पयसा दध्ना यः स्नापयेद्रविम् ।।५६
तदन्ते चोष्णतोयेन कषायैश्च निरूपयेत् । स्नाप्य शीताम्बुना पश्चाद्भानुं रोचनया लभेत् ।।५७
पूजयेद्बिल्वपत्रैश्च पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा । अर्घ्यं दद्यात्ततः पश्चात्सवज्रं गुग्गुलं खग ।।५८
पायसं दधिभक्तं च वज्रं च मधुना सह । निवेदयेच्च सद्भक्त्या भक्ष्याणि विविधानि च ।।५९
कृत्वा प्रदक्षिणं पश्चात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् । अनेन विधिना भानुं षडङ्गेन दिवस्पतिम् ।।६०
इह लोके परे चैव सर्वान्कामान्स गच्छति । षडङ्गविधिना तं चापूज्यैवं सुमना रविम् ।।६१
स्वर्गं नयेत्सधीमांस्तु कुलानामेकविंशतिम् । स्वर्गे स्थाप्य स्वयं गच्छेज्ज्यौतिषं नाम तत्पदम् ।।६२
अंशेन भोजका वीर देवकार्ये नियोजिताः । प्रयान्ति स्वामिना सार्धं श्रीमद्भानुं परं महः ।।६३
भुक्त्वा भोगांस्तु विपुलान्भोजको भोगसंमितः । कालात्पुनरिहायातः पृथिव्यामेकराड्भवेत् ।।६४
पुष्पं पत्रं फलं तोयं यद्गतं भास्करार्चने । सौरा गावश्च गच्छन्ति सूर्यलोकं न संशयः ।।६५
यः पिबेद्भोजने धेनोरदत्वाभानवे पयः । स गच्छेन्नरकं घोरमकुर्वंस्तर्पणं रवेः ।।६६

श्री, निवास करती है, इसीलिए उस वृक्ष का स्मरण किया जाता है ।५२। पुनः उसी गोमय द्वारा पंक में उत्पन्न (नीले कमल) तथा लाल कमल की उत्पत्ति हुई है, और मांगलिक, पवित्र एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले गोरोचन की भी ।५३। गो-मूत्र द्वारा गुग्गुल की भी उत्पत्ति हुई है, जो सुगंधित एवं मनमोहक होता है । तथा समस्त देवों एवं विशेषकर भास्कर का भक्ष्य पदार्थ है ।५४। इस भूतल में जो कुछ बीज के रूप में है, वह क्षीर से उत्पन्न हुआ है । अर्थसिद्धि के लिए दही से सभी मांगलिक वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है ।५५। घी द्वारा अमृत की उत्पत्ति हुई है, जो देवों को अतिप्रिय है, इसलिए घी, दूध एवं दही से प्रथम सूर्य को स्नान कराकर पश्चात् गर्म जल तथा कषायों द्वारा स्नान कराने के उपरांन्त शीतजल से स्नान कराकर सूर्य के शरीर में गोरोचन का लेपन करना चाहिए ।५६-५७। इसके उपरान्त विल्वपत्र, कमल, नीलकमल द्वारा उन्हें अर्घ्य प्रदान कर वज्र समेत गुग्गुल प्रदान करे । खग ! इस प्रकार दूध एवं दही द्वारा बने हुए उत्तम भक्ष्यपदार्थ, जिसमें शहद मिलाया गया हो, भक्तिपूर्वक ऐसे विविध व्यंजनों को वज्र समेत उन्हें अर्पित करे ।५८-५९। पश्चात् प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणाम करके षडङ्ग द्वारा विधानपूर्वक पूजित सूर्य से क्षमा प्रार्थना करे । इस भाँति करने वाले के लोक-परलोक की सभी कामनाएँ सफल होती हैं। प्रसन्नचित्त होकर षडङ्गविधानपूर्वक सूर्य की पूजा करने से वह बुद्धमान् अपने इक्कीस पीढ़ी के लोगों को स्वर्ग पहुँचा कर स्वयं 'ज्यौतिष' नामक स्थान की प्राप्ति करता है ।६०-६२। वीर ! इस प्रकार भोजक भी जो उनके अंशमात्र से समुत्पन्न तथा देवकार्य के लिए नियुक्त किये गये हैं, स्वामी के साथ उत्तम एवं पूजनीय लोक में विचरण करते हैं ।६३। वहाँ भोजक विभिन्न भोगों के उपभोग करने के पश्चात् कालचक्रवश इस भूतल में पुनः जन्म ग्रहण किया, तो पृथ्वी का एकच्छत्र राजा होता है ।६४। सूर्य की पूजा में पुष्प, पत्र, फल जल एवं सौर गायें ये जो कुछ सहायता प्रदान करने के लिए उत्पन्न किये गये हैं, वे सभी निस्संदेह सूर्यलोक की प्राप्ति कराते हैं ।६५। जो सूर्य को बिना दिये हुए भोजन में दुग्ध-पान करता है, उसे

एककालं पिबेत्क्षीरं धेनूनां भास्करस्य तु । अनेन स्नापयेद्देवं क्षीरेण खगसत्तम ॥६७
प्रत्यूषे यद्भवेत्क्षीरं धेनूनां भास्करस्य तु । स्नापयेत्तेन वै भानुं कृत्स्नेन गरुडाग्रज ॥६८
यस्तु लोको भजेत्सर्वं न देवाय निवेदयेत् । यावन्तो रोमकूपाश्च गवां देहे खगाधिप ॥
तावद्वर्षसहस्राणि नरके पच्यते खग ॥६९
पूजितं पूज्यमानं वा यः कश्चिच्छृणुयाद्धविः । श्रुत्वानुमोदते यस्तु स यज्ञफलमश्नुते ॥७०
भास्करं पूजितं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । हर्षात्प्रणम्य वै भानुं तस्य लोके महीयते ॥७१
पूज्यमानं रविं भक्त्या यः पश्येन्मानवः खग । सोऽपि यज्ञफलं कृत्स्नं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥७२
श्रुत्वानुमोदते यस्तु पूज्यमानं दिवाकरम् । तत्सर्वं फलमाप्नोति प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥७३
एकजन्मानुगं दानं भक्त्या यच्च निवेदितम् । जपयज्ञादियुक्तेभ्यः सहस्रभविकं स्मृतम् ॥
आभूतसम्प्लवस्थायिप्रदानं जपजीविनाम् ॥७४
अत्यल्पमपि यद्दत्तं वाचकाय खगाधिप । तन्महाप्रलयं यावद्दातुर्भोगाय कल्पते ॥७५
न दानमल्पं बहुधा किञ्चिदस्ति विजानताम् । देशकालविधिश्रद्धापात्रयुक्तं तदक्षयम् ॥७६
पात्रे देशे च काले च विधिना श्रद्धया च यत् । दत्तं हुतं कृतं चैव तदनन्तफलं भवेत् ॥७७
तिलार्धमपि यद्वीर दीयते श्रद्धया द्विज । सत्पात्रे विधिवद्भक्त्या तद्भवेत्सर्वकामिकम् ॥७८

घोर नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि उससे सूर्य को उसने तृप्त नहीं किया।६६। खगसत्तम ! उन सौर गायों के दूध का पान एक समय करना चाहिए और उसी दूध से (सूर्य) देव का स्नान भी कराना चाहिए।६७। गरुडाग्रज ! प्रातःकाल उन सौर गायों के दूध से सूर्य को भली-भाँति स्नान कराकर उसका पान करे।६८। जो उन्हें अर्पित किये बिना स्वयं पी जाता है, खगाधिप ! गाय के शरीर में जितने रोमकूप हैं, उतने सहस्र वर्ष के दिन उसे नरक में रहना पड़ता है। सूर्य की की गई पूजा अथवा की जाने वाली पूजा को सुनकर जो उसका अनुमोदन करता है, उसे यज्ञफल की प्राप्ति होती है।६९-७०। पूजा के उपरान्त सूर्य के दर्शन करने से समस्त पाप से मुक्ति प्राप्ति होती है, एवं हर्षपूर्ण उन्हें प्रणाम करने पर वह उनके लोक में सम्मानित होता है।७१। खग ! भक्तिपूर्वक सूर्य के दर्शन करने से भी समस्त यज्ञ-फल की प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं।७२। जो पूज्यमान सूर्य को सुनकर उसका अनुमोदन करते हैं, उन्हें भी भास्कर की प्रसन्नतावश समस्त फलों की प्राप्ति होती है।७३। भक्तिपूर्वक उन्हें दान प्रदान करने से एक जन्म में उसकी फल प्राप्ति होती रहती है, जो जप यज्ञ विहीन होकर भी भक्तिपूर्वक उसी काम को करते रहते हैं, उन्हें सहस्र जन्म तक तथा जप यज्ञ समेत प्रदान करने वाले को महाप्रलय तक उसके फल प्राप्त होते रहते हैं।७४। खगाधिप! वाचक के लिए दिया गया अल्प दान भी उस दाता के भोग के लिए महाप्रलय तक अक्षय रहता है।७५। बुद्धिमानों के लिए अन्य या विविध प्रकार के दान नहीं बताये गये हैं, प्रत्युत देश, काल, विधान, श्रद्धा एवं पात्र द्वारा प्राप्त वह अत्यल्प दान भी उसके लिए अक्षय होता है यह कहा गया है।७६। पात्र, देश और काल में विधान एवं श्रद्धापूर्वक दिया गया दान देने वाले के लिए अनन्त फल प्रदान करता है।७७। वीर ! द्विज ! श्रद्धापूर्वक सत्पात्र में विधान एवं भक्ति द्वारा तिलार्धभाग के समान भी दिया गया दान

यत्स्नातं ज्ञानसलिलैः शीलभस्मप्रमार्जितम् । तत्पात्रं सर्वपात्रेभ्य उत्तमं परिकीर्तितम् ॥७९
जपो दमो यमः पुंसां त्राता संसारसागरात् । अज्ञानां पापनेत्राणां तत्पात्रं परमं स्मृतम् ॥८०
ज्ञानप्लवेन चोपेत शास्त्रं पापमहार्णवात् । अज्ञान्सन्तारयेन्नूनं किं शिला तारयेच्छिलाम् ॥८१
द्विजानां वेदविदुषां कटिसम्भोगि यत्फलम् । हन्तकारप्रदानेन तत्फलं जपजीविने ॥८२
जीवो यस्यैत्य गृहे च भुङ्क्ते तत्कृतिसत्कृतः । कुलमुत्तारयेत्तस्य नरकार्णवसंस्थितम् ॥८३
यज्ञाग्निहोमतीर्थेषु यत्फलं परिकीर्तितम् । जपिनामन्नदानेन तत्समग्रं फलं लभेत् ॥८४
भोजिने शान्तिचित्ताय परिध्यानरताय च । श्रद्धयान्नं सकृद्दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८५
जपकाञ्छान्तिसंयुक्तानादित्यार्पितचेतसः । भोजयित्वा सकृद्भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥८६
ध्यायमानो रवेः सूक्तं भोजयेत्सततं च यः । ततः साक्षादनेनैव तद्भुक्तमशनं भवेत् ॥८७
पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धे भोजयेद्भोजकं नरः । तत्स्थानं समवाप्नोति भानवीयमसंशयः ॥८८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे धेनुमाहात्म्यवर्णनं
नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८७।

उसकी समस्त कामनाएँ सफल करता है ।७८। ज्ञानरूपी जल से स्नान तथा शीलरूपी भस्म से मार्जन (शुद्धि) करने वाला सभी पात्रों में उत्तम बताया गया है ।७९। जप, दम (इन्द्रिय दमन) और संयम, यही संसारसागर से मनुष्यों की रक्षा करता है, अतः अज्ञानी एवं पापी नेत्र वाले के लिए वही (उपरोक्त नियमपालक ही) सत्पात्र बताया गया है ।८०। ज्ञाप रूपी नौका समेत शास्त्र ही अज्ञानियों को पाप महासागर से रक्षित रखने में समर्थ होता है, न कि शिला द्वारा शिला का संतरण कहीं कभी संभव हुआ है ।८१। वैदिक विद्वान् के लिए परिधान वस्त्र (धोती) प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, जप यज्ञ करने वाले के लिए हंतकार प्रदान करने से भी उसी फल की ।८२। प्राणी जिसके घर में पहुँचकर सम्मानपूर्वक भोजन करता है, तो वह गृहस्थ नरकसागर में निमग्न अपने सभी कुटुम्ब का उद्धार करता है ।८३। यज्ञ, अग्नि-हवन तीर्थों में जिन फलों की प्राप्ति होती है, वही समस्त फल केवल जप यज्ञ करने वाले को अन्न प्रदान द्वारा प्राप्त होता है ।८४। शांतचित्त एवं ध्यान में निमग्न रहने वाले ऐसे भोजक को श्रद्धालु होकर एक बार भी अन्न प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।८५। शांत तथा आदित्य के लिए अर्पित चित्त वाले ऐसे जापक को एक बार भी भोजन दान करने से समस्त कामनाएँ सफल हो जाती हैं ।८६। सूक्तपूर्वक सूर्य के निरन्तर ध्यान मग्न रहने वाले को जो सदैव भोजन कराता है, उसके उस रूप में सूर्य ही भोजन करते हैं ।८७। जो अपने पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध में भोजकों को भोजन कराता है, वह निःसन्देह सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति करता है ।८८

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में धेनुमाहात्म्य वर्णन
नामक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८७।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भोजकसत्कारवर्णनम्

सप्ताश्व उवाच

सूर्याय सर्वपाकान्नं निवेद्याग्नौ च होमयेत् । हुत्वाग्नौ प्रक्षिपेद्वीर बलिं दिक्षु समन्ततः ॥१
सूर्याग्निगुरुविप्राणां सर्वपाकान्नमन्वहम् । योऽनिवेद्यात्मना[1] भुङ्क्ते स भुङ्क्ते किल्बिषं नरः ॥२
कृषिपाल्ये च वाणिज्ये क्रोधतत्यक्षयादिभिः । पुंसां पापानि वर्धन्ते सूनादोषैश्च पञ्चभिः ॥३
कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भः प्रमार्जनी । पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति ॥४
सूर्याग्निगुरुपूजाभिः पापैरेतैर्न लिप्यते । अन्यैश्च पातकैर्घोरैस्तस्मात्सम्पूजयेत्सदा ॥५
सूर्याग्निगुरुनैवेद्यं यावत्स्यादन्नसङ्ख्यया । तावद्वर्षसहस्राणि दाता सूर्यपुरे वसेत् ॥६
घृतपूपयुतैः सिक्तैः पुण्यं दशगुणोत्तरम् । अवदंशगुणैर्युक्तं पुण्यं शतगुणं खग ॥७
षाष्टिकौदननैवेद्यं सहस्रगुणितं फलम् । सुगन्धशालिनैवेद्यं विज्ञेयमयुतोत्तरम् ॥८
भक्ष्यान्नपानदानानि तत्फलानि तथा तथा । यद्वा तद्वा सदा देयं सूर्याग्निगुरुसाधुषु ॥
भक्ष्यं निवेद्य पूर्वोक्तमक्षयं लभते फलम् ॥९

अध्याय १८८

भोजकों के सत्कार का वर्णन

सप्ताश्व बोले—वीर ! सभी भाँति के बने हुए पक्वान्न प्रथम सूर्य को निवेदित कर, अग्नि में हवन करे, पश्चात् दिशाओं में बलि के रूप में रखे।१। सूर्य, अग्नि, गुरु एवं ब्राह्मणों के निवेदन किये बिना जो पकवान का भक्षण करता है, वह मनुष्य अन्न का नहीं प्रत्युत पाप का भोजन करता है।२। कृषि, वाणिज्य, क्रोध, असत् तथा पाँच प्रकार के हिंसा दोष के द्वारा मनुष्यों के पाप की वृद्धि होती है।३। कंडनी (ओखली में मूसल द्वारा धानादि की भूसी निकालने), पेषणी (जांता चक्की), चुल्ली (चूल्हा पोतने), उदकुंभ (जलघट रखने) एव मार्जनी (झाड़ू) द्वारा यही पाँच प्रकार के हिंसा दोष होते हैं, इसी से गृहस्थ स्वर्ग की प्राप्ति नहीं कर सकता है।४। सूर्य, अग्नि एवं गुरु की पूजा करने से ये पाँचों दोषों तथा अन्य घोर पातकों से मुक्ति हो जाती है, अतः इनकी सदैव पूजा करनी चाहिए।५। सूर्य, गुरु, एवं अग्नि को निवेदित किये गये अन्न की जितनी संख्या होती है, उतने सहस्र वर्ष वह प्रदाता सूर्य के लोक में निवास करता है।६। घी एवं मालपूए समेत भोजन द्वारा दश गुने अधिक एवं अवदंश (नशीली) वस्तु समेत प्रदान करने से सौ गुने पुण्य प्राप्त होता है, तथा खग ! साठी चावल के भात प्रदान करने से सहस्र गुने एवं उसे सुगंधपूर्ण प्रदान करने से उससे अधिक गुने पुण्य की प्राप्ति होती है।७-८। सूर्य, अग्नि, गुरु एवं साधुओं को सदैव भक्ष्य अन्न-पान उन-उन फलों के निमित्त प्रदान करते रहना चाहिए। क्योंकि उसके निवेदन करने से

---

१. नञ्पूर्वकाल्ल्यबार्षः।

एवं यः कुरुते भक्तिं देवदेवे दिवाकरे । स पितॄन्सर्वपापेभ्यः समुद्धृत्य दिवं नयेत् ॥१०
गङ्गास्नानमिदं पुण्यं दर्शनात्प्राप्नुयाद्रवेः । सर्वतीर्थाभिषेकं च प्रणामाद्विन्दते खग ॥११
मुच्यते सर्वपापेभ्यः प्रणम्य शिरसा रविम् । शुश्रूषेत च सन्ध्यायां सूर्यलोके महीयते ॥१२
युगपत्पूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । पितरः सर्वदेवाश्च भवेयुः पूजिता रवौ ॥१३
तुष्यन्ति पितरस्तस्य सुकृष्टेनेव कर्षुकाः । यः श्राद्धे भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणं जपजीविनम् ॥१४
अपि नः स कुले कश्चिदुद्धरेत्किं खगेश्वर । यः सम्पूज्य रविं श्राद्धे भोजयेज्जपजीविनम् ॥१५
तृप्यन्ति पितरस्तस्य गायन्ति च पितामहाः । अद्य नः स कुले प्राज्ञो वाचकं भोजयिष्यति ॥१६
पुराणविदमायान्तं दृष्ट्वैव सह संस्थिताः । क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः स्वर्गमक्षयम् ॥१७
अनुग्रहाय लोकानां श्रद्धायाश्च परीक्षणे । चरंत्यतिथिरूपेण पितरो देवतास्तथा ॥१८
तस्मादतिथिमायान्तमग्रे गच्छेत्कृताञ्जलिः । स्वागतासनपाद्यार्घ्यस्नानान्नशयनादिभिः ॥१९
रूपान्वितं विरूपं वा मलिनं मलिनाम्बरम् । वेलायामतिथिं प्राप्तं पण्डितो न विचारयेत् ॥२०
भोजकानां शरीरेषु नित्यं सन्निहितो रविः । ये भोजकास्त्यजन्त्यन्ये सर्वपापेष्ववस्थिताः ॥
अधोमुखोद्र्ध्वपादास्ते पतन्ति नरकाग्निषु ॥२१

पूर्वोक्त अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।९। इस प्रकार की भक्ति जो देवाधिदेव की करता है, उसके समस्त-पाप की निवृत्ति एवं उसके पितरगण स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ।१०। खग ! सूर्य के दर्शन से गंगास्नान के फल एवं उनके प्रणाम करने से समस्त तीर्थों के अभिषेक के फल प्राप्त होते हैं ।११। सूर्य को शिर से प्रणाम करने से समस्त पाप-मुक्ति तथा संध्या समय उनकी सेवा करने से सूर्य लोक का सम्मान प्राप्त होता है ।१२। सूर्य की स्तुति करने से युगपत् (साथ ही साथ) ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पितृगण तथा समस्त देवगण पूजित होते हैं ।१३। जो श्राद्ध में भक्तिपूर्वक जापक ब्राह्मण को भोजन प्रदान करता है, अच्छी जुताई द्वारा सस्य सम्पन्न भूमि की भाँति उसके पितृगण प्रसन्न होते हैं। खगेश्वर ! जो श्राद्ध में सूर्य की पूजा के उपरान्त जापक ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसने क्या हमारे कुल में किसी का उद्धार नहीं किया ? (अर्थात् समस्त कुल का उद्धार कर दिया) ।१४-१५। उसके पितर तृप्त हो जाते हैं और पितामह यह गायन करते हैं कि आज हमारे कुल में उत्पन्न वह बुद्धिमान् वाचक (ब्राह्मण) को भोजन करायेगा ।१६। अपने घर किसी पौराणिक विद्वान् के आते ही समस्त औषधियाँ हर्षातिरेक से क्रीड़ा करने लगती हैं कि—अब मुझे अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होगी ।१७। लोगों के ऊपर अनुग्रह (कृपा) करने एवं उसकी श्रद्धा की परीक्षा करने के लिए पितर तथा देवगण अतिथि के रूप में विचरण करते रहते हैं ।१८। इसलिए किसी अतिथि को आते हुए देखकर उसके सामने हाथ जोड़ कर पहुँच जाये और सादर उसे घर लाकर आसन, पाद्य (पैर धोने के जल), अर्घ्य जल, स्नान, अन्न भोजन एवं शयन आदि की सुविधा प्रदान द्वारा उसका स्वागत करे ।१९। सुरूप, विरूप, मलिन, दीन तथा मैले-कुचैले वस्त्र वाला, किसी प्रकार का अतिथि घर पर समयानुसार आ जाये तो पंडितों को उसके विषय में किसी प्रकार के विचार नहीं करना चाहिए ।२०। भोजकों के शरीर में सूर्य सदैव सन्निहित रहते हैं, अतः जो कोई भोजकों को त्याग करते हैं, वे समस्त पाप कर्म के भागी होते हुए नरक की अग्नि में अधोमुख तथा ऊर्ध्वपाद होकर गिरते हैं ।२१। कीड़े लोग उनकी

कृमिभिर्भिन्नवदनास्तप्यमानाश्च वह्निना । पीड्यन्ते चायुधैर्घोरैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।२२
ये चापवादं शृण्वन्ति विमूढा ब्राह्मणेषु वै । ते विशेषेण पच्यन्ते नरकेषु मदिच्छया ।।२३
सर्वेषामेव पात्राणां सत्पात्रं जापकः परः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेत्सुसमाहितः ।।२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मेषु भोजकसत्कारवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८८।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सप्ताश्वसंवादः

सप्ताश्वतिलक उवाच

आमपात्ररसः यद्वन्नश्यंते नश्यभाजने । जपोपेक्षे तथा दानं सह पात्रेण नश्यति ।।
सद्बीजमूषरे यद्वत्समुप्तं निष्फलं भवेत् ।।१
भस्मनीव हुतं हव्यं यथा होतुश्च निष्फलम् । जपेन रहिते विप्रे तथा दानं निरर्थकम् ।।२
यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । ब्राह्मणस्य तथा जन्म जपहीनस्य निष्फलम् ।।३
लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यथा । दाता दाता ग्रहीता च पतत्यन्धे तमस्यथ ।।४

शरीर को विदीर्ण कर देते हैं, एवं उस अग्नि में संतप्त होते हुए वे घोर अस्त्रों द्वारा चौदहों इन्द्रों के वर्तमान समय तक पीड़ित होते रहते हैं ।२२। जो मूढ़ ब्राह्मणों की निन्दाएँ सुनते हैं, वे विशेषकर मेरी इच्छा से नरक कुण्ड में सदैव पका करते हैं ।२३। सभी पात्रों में जापक सत्पात्र बताया गया है । अतः विधानपूर्वक उसकी पूजा करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।२४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में भोजक सत्कार वर्णन नामक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८८।

अध्याय १८९

सौरधर्म में सताश्वसंवाद

सप्ताश्वतिलक बोले—किसी दूषितपात्र में कच्चे घड़े के रस को रखने से उसके नष्ट होने की भाँति जापक को त्याग कर अन्य पात्र में दिया गया दान उस पात्र के समेत नष्ट हो जाता है तथा ऊषर भूमि में बोये हुए अच्छे बीज की भाँति वह निष्फल भी ।१। किसी होता द्वारा भस्म (राख) की ढेर में हवन करने की भाँति जप-हीन ब्राह्मण को दान देना व्यर्थ है ।२। स्त्रियों के लिए षण्ढ (नंपुसक) गौओं में नंपुसक बैल के निष्फल होने की भाँति जपहीन ब्राह्मण का जन्म व्यर्थ है ।३। लोहे के उड्डुप (घनई) द्वारा जल के संतरण करने एवं कराने वाले (दोनों) के डूब जाने की भाँति जपहीन ब्राह्मण को दान देने एवं लेने वाले (वे) दोनों घोर अंधकार में गिरते हैं ।४। खग ! श्रद्धालु होकर करुणावश सभी प्राणियों में जो कुछ दान

कारुण्यात्सर्वभूतेषु श्रद्धया यत्प्रदीयते । दानं तद्वै खग ज्ञेयं सार्दकामिकमुत्तनम् ॥५
दीनान्धकृपणानां च बालवृद्धातुरेषु च । यद्दीयते खगश्रेष्ठ तस्यानन्तफलं भवेत् ॥६
न हि स्वार्थं समुद्दिश्य प्रतिगृह्णन्ति साधवः । दातुरेवोपकाराय जगृहुः श्रावणादयः ॥७
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थी ददस्व मे । यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत्प्रतिग्रही ॥८
देहीति सुवदन्नर्थी धनं बोधयतीव सः । यन्मया कृतमर्थित्वं प्रागेऽदानफलं हि तत् ॥९
बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणा जनाः । अवस्थेयमदानस्य यद्याचामो गृहेगृहे ॥१०
आयात्यर्थी गृहं यस्तु कस्तं न प्रतिपूजयेत् । कोऽयमर्थी न पूज्यः स्याद्याचमानो दिनेदिने ॥११
यद्बलादप्यनिच्छन्तं योजयन्ति नराश्रयान् । अहन्यहनि याचन्ते दातुस्ते नर्शयन्ति हि ॥१२
एकस्तिष्ठति चाधस्तादन्यश्चोपरि तिष्ठति । दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः ॥१३
यः प्राप्तायार्थिने दानं त्यक्त्वा पात्रमुदीक्षते । सर्वकर्मसु युक्तत्वान्न दाता पारमार्थिकः ॥१४
यद्यर्थिनो नरा न स्युर्दानधर्मः कथं भवेत् । तदर्थिषु भवेद्दानं स्वागतं स्वागतं प्रियम् ॥१५
पादोदकमनुव्रज्यात्स्वर्गसोपानसप्तकम् । चिन्ताचिन्तानुरूपेण कदा कस्य विनश्यति ॥१६

दिया जाता है, वही दान श्रेष्ठ एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाला होता है।५। खगश्रेष्ठ ! दीन, अंधे, कृपण, बाल, वृद्ध एवं आतुर आदि किसी में जो कुछ दान रूप में दिया जाता है, उससे अनन्त फल प्राप्त होते हैं।६। साधुगण अपने स्वार्थ के लिए किसी के द्वारा दी गई वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते हैं, प्रत्युत देने वाले के उपकारार्थ उस (श्रावणी आदि) का ग्रहण करते हैं।७। दाता के उपकार के लिए ही उनके घर पहुँच कर वे लोग कहते हैं कि—'मुझे दीजिए' इससे यह होता है कि दाता को स्वर्गादिलोक की प्राप्ति और प्रतिग्राही (उसके लेने वाले) का अधःपतन होता है।८। अर्थी (याचक) दरवाजे पर पहुँचकर 'मुझे दीजिये' इस प्रकार की मधुरवाणी द्वारा किसी वस्तु की याचना नहीं करते, प्रत्युत धन के प्रति स्मरण दिलाते हैं कि मैंने जन्मान्तर में दान नहीं किया था इसीलिए इस याचनावृत्ति को अपनाना पड़ा।९। कृपण लोग 'दीजिये' इस शब्दोच्चारण के द्वारा याचना नहीं करते प्रत्युत स्मरण कराते हैं कि मेरी यह अवस्था—जो घर-घर माँगता फिरता हूँ—दान न देने के उपलक्ष में प्राप्त हुई है।१०। घर-घर आये हुए अर्थी (याचक) की पूजा कौन नहीं करता है, क्योंकि प्रतिदिन याचना करने वाले अर्थी (याचक) किसके पूज्य नहीं हैं।११। जो याचक किसी अनिच्छुक व्यक्ति को बलात् उस कर्म (देने) के लिए प्रेरित कर कुछ न कुछ ले ही लेते हैं, वे अपनी प्रतिदिन की याचना द्वारा उस दाता को दाता और याचक के भेद दिखा देते हैं।१२। क्योंकि एक का हाथ नीचे रहता है और दूसरे का उसके ऊपर, इससे दाता और याचक के भेद से ही स्पष्ट सूचित हो जाता है।१३। जो घर पर आये हुए अभ्यागत के लिए दान का त्याग कर पात्र के विचार में लीन हो जाते हैं, समस्त कर्म के सुसंपन्न करने पर भी उस दाता को परमार्थ के फल की प्राप्ति नहीं होती हैं।१४। याचक यदि न हो तो दान धर्म कैसे सम्पन्न हो सकता है, क्योंकि याचकों को दिये गये दान का स्वागत उस अभ्यागत का प्रिय स्वागत करना है।१५। अभ्यागत के पादोदक का सम्मान (शिरोधार्य) करना चाहिए क्योंकि वही स्वर्ग जाने के लिए सातों सीढ़ियाँ हैं और तो यों ही (संसार की) चिन्ताएँ घेरे ही रहती हैं, कभी कोई निश्चिन्त नहीं हुआ है।१६। दाता को

ग्रासादर्धमपि ग्रासं युक्तं दातुं सदार्थिनाम् । दानं प्रियविनिर्मुक्तं नष्टमाहुर्मनीषिणः ॥१७
तस्मात्सत्कृत्य दातव्यमनन्तफलमिच्छता । प्रेत्याख्यानमपि श्रेयः प्रियानुनयपेशलम् ॥१८
न तद्दानमसत्कारपारुष्यमलिनीकृतम् । वरं न दत्तमर्थिभ्यः सङ्क्रुद्धेनान्तरात्मना ॥१९
न तद्धनं न च प्रीतिर्न धर्मः प्रियवर्जितः । दानप्रदाननियमयज्ञध्यानं हुतं तपः ॥
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽस्य निष्फलं खग ॥२०
यः श्रद्धयार्चितं दद्यात्प्रतिगृह्णाति चार्चितम् । तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तद्विपर्ययात् ॥२१
औदार्यं स्वागतं मैत्री ह्यनुकम्पा च मत्सरः । पञ्चभिस्तु गुरौ दानं ददतां हि महाफलम् ॥२२
वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्कराणि च । गङ्गातटं समुद्रश्च नैमिषारण्यमेव च ॥२३
मूलस्थानं महापुण्यं पुण्डीरस्वामिकं तथा । कालप्रियं खगश्रेष्ठ क्षीरिकावास एव च ॥२४
इत्येते कीर्तिता देशाः सुरसिद्धिनिषेविताः । सर्वे सूर्याश्रमाः पुण्याः सर्वा नद्यः सपर्वताः ॥
गोसिद्धमुनिवासाश्च देशाः पुण्याः प्रकीर्तिताः ॥२५
सूर्यायतनसंस्थानां यद्यदल्पं तु दीयते । तदनन्तफलं ज्ञेयं दत्तं क्षेत्रानुभावतः ॥२६
ग्रहणं चन्द्रसूर्याभ्यामुत्तरायणमुत्तमम् । विषुवं सव्यतीपात षडशीतिमुखं तथा ॥२७
दिनच्छिद्राणि सङ्क्रान्तिः पुण्यं विषुपदं खग । इति कालः समाख्यातः पुंसां पुण्यविवर्धनः ॥२८

अपने ग्रासार्ध के अर्धभाग भी याचक के लिए सदैव देना उचित है, अन्यथा ऐसे प्रिय (याचक) को त्याग कर अन्य में दान करना मनीषियों ने व्यर्थ बताया है।१७। इसलिए अनन्तफल के इच्छुक को आवश्यक है कि उन्हें सत्कारपूर्वक दान दें। उनके समीप बैठकर बात-चीत भी करना श्रेयस्कर होता है, क्योंकि प्रियजन के अनुनय-विनय करना सभी भाँति से सुन्दर ही बताया गया है।१८। अविनय एवं आत्मक्रोध द्वारा दिया गया दान प्रशस्त नहीं होता है, क्योंकि क्रुद्ध होकर याचक के लिए दान न देना ही उत्तम बताया गया है।१९। वह धन, प्रीति एवं धर्म व्यर्थ हैं, जो अपने प्रिय (याचक) के लिए उपयुक्त न हो सके। खग ! दान-प्रदान, नियमपालन, यज्ञ, ध्यान, हवन एवं तप सभी प्रयत्नपूर्वक सुसम्पन्न करने पर भी क्रोध द्वारा निष्फल हो जाते हैं।२०। जो श्रद्धापूर्ण होकर उत्तम वस्तुओं (दान) का आदान-प्रदान करता है, उन दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, और उससे प्रतिकूल आचरण वाले को नरक की।२१। उदारता, स्वागत करना, मैत्री, अनुकम्पा एवं मत्सरहीनता, इन पाँचों गुणों द्वारा जो अभ्यागत को दान प्रदान करता है, उसके दान का महान् फल बताया गया है।२२। खगश्रेष्ठ ! बनारस, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गंगातट, समुद्र, नैमिषारण्य, महापुण्य मूलस्थान, पुंडीरस्वामिक, कालप्रिय तथा क्षीरसागर, इन प्रदेशों में देव एवं सिद्ध गण निवास करते हैं। सूर्य के सभी आश्रम, पर्वतों समेत सभी नदियाँ, तथा गौ, सिद्ध और मुनियों के आवास प्रदेश पुण्य रूप बताये गये हैं।२३-२५। सूर्य के मन्दिर में रहने वालों को यदि अल्प भी प्रदान किया जाये, तो उसका अनन्त फल बताया गया है, ऐसा सिद्ध पुरुषों का कथन है। खग ! सूर्य-चन्द्र के ग्रहण समय, सूर्य के उत्तरायण, विषुव, व्यतीपात, षडशीतिमुख (तुला, वृश्चिक संक्रांति एवं धन की संक्रान्ति के दिन), न्यूनदिन वाली संक्रान्ति, तथा विषुव यही मनुष्यों के पुण्यवर्धक समय बताये

भक्तिभावः परा प्रीतिर्धर्मो धर्मैकभावनः । प्रतिपत्तिरिति ज्ञेयं श्रद्धापर्यायपञ्चकम् ॥२९
श्रद्धया विधिवत्पात्रे प्रतिपादितमुत्तमम् । तस्माच्छ्रद्धां समास्थाय देयमक्षयमिच्छता ॥३०
यद्दानं श्रद्धया पात्रे विधिवत्प्रतिपादितम् । तदनन्तफलं ज्ञेयमपि वा भारमात्रकम् ॥३१

आर्तेषु दीनेषु गुणान्वितेषु यः श्रद्धया स्वल्पमपि प्रदद्यात् ।
स सर्वकामान्समुपैति लोकाञ्छ्रद्धैव दानं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३२

श्रद्धा दानं परं ज्ञेयं श्रद्धा एव तपः परम् । श्रद्धां यज्ञमुशन्तीह श्रद्धा परमुपोषितम् ॥३३
अथाहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीः श्रद्धेन्द्रियसंयमः । दानमिष्टं तपो ध्यानं दशकं धर्मसाधनम् ॥३४
हन्त व्यस्तैः समस्तैर्वा सूर्यधर्मैरनुष्ठितैः । सूर्यलोकस्य च सम्प्राप्तेर्नातिरेका प्रकीर्तिता ॥३५
यथा भूः सर्वभूतानां शान्तेरतिशयः स्मृतः । कुर्यात्पुण्यं महत्तस्मान्मम लोकेप्सया सुधीः ॥३६
परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पं यः सापेक्षं करोति च । गुरुमार्तमशक्तं वा विदेशे प्रस्थितं तथा ॥
अरिभिः परिभूतं च सन्त्यजेच्चैव पापकृत् ॥३७
तद्भार्यामित्रपुत्रेषु यश्चावज्ञां करोति च । इत्येतत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं भवेत् ॥३८
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ॥३९
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्य वदेत यः । प्राणान्तिकं महादोषं ब्रह्महा स उदाहृतः ॥४०

गये हैं।२६-२८। भक्तिभाव, उत्तमप्रीति, धर्म, धार्मिक भावना और प्रतिपत्ति (कर्तव्य ज्ञान) यही श्रद्धा के पाँच नामान्तर (दूसरे नाम) कहे गये हैं।२९। श्रद्धालु होकर ही विधानपूर्वक सत्पात्र में दान देना उत्तम बताया गया है, इसलिए अक्षय फल के इच्छुक को चाहिए कि श्रद्धा पूर्ण ही दान करें।३०। श्रद्धा समेत विधानपूर्वक पात्र में दान देना इसलिए उत्तम बताया गया है कि उससे अनन्त फल की प्राप्ति होती है, तथा उसके अतिरिक्त भारस्वरूप होते हैं।३१। दुःखी, दीन अथवा गुणी पुरुषों को जो श्रद्धापूर्वक अत्यल्प भी दान करता है, वही समस्त कामनाओं के सफलतापूर्ण लोकों की प्राप्ति करता है, क्योंकि दानविचक्षणों का कहना है कि श्रद्धा ही दानस्वरूप है।३२। श्रद्धा ही, उत्तम दान, उत्तम तप, यज्ञ, तथा उत्तम उपवास वाला व्रत रूप है।३३। अहिंसा, क्षमा, सत्य, (लज्जा), श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप और ध्यान यही दश धर्म के साधन बताये गये हैं।३४। इन समस्त के समेत या किसी एक ही को अपनाकर सूर्य धर्म के अनुष्ठान करने पर सूर्य के लोकों की प्राप्ति होती है, क्योंकि उनके लोकों की प्राप्ति के लिए यही एक प्रशस्त उपाय है।३५। सभी प्राणियों की शांति के लिए जिस प्रकार पृथ्वी की प्रशंसा की गई है, उसी भाँति मेरे लोकों के इच्छुक विद्वानों को उचित है कि महान् पुण्य कार्य सम्पन्न करें।३६। जो किसी पर स्त्री के देने के लिए संकल्पित द्रव्य को अपना लेता है, तथा उस गुरु का, जो, अति, अशक्त, विदेश के लिए प्रस्थित एवं शत्रुओं द्वारा अपमानित हो रहा है, त्याग करता है, वह पापी कहा जाता है।३७। उसकी स्त्री मित्र पुत्रों का अनादर करना, गुरुनिंदा के समान पातक बताया गया है।३८। ब्रह्महत्या करने वाले, मद्यपान करने वाले, चोर, गुरु स्त्री को उपभोग और इन चारों के साथ सभी प्रकार के व्यवहार रखने वाले, ये पाँचों महापातकी कहे गये हैं।३९। क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभवश जो ब्राह्मण के लिए प्राण निकलने के समान दुःखदायी वाणी का प्रयोग करता है, वही महादोष करने वाला 'ब्रह्मघाती' कहा गया

ब्राह्मणं च समाहूय याचमानमकिञ्चनम् । यन्नास्तीति च यो ब्रूयात्स चाण्डाल उदाहृतः ॥४१
देवद्विजगवां भूमिं पूर्वदत्तां हरेत यः । प्रनष्टामपि[1] काले तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥४२
अधीत्य यो रवेर्ज्ञानं परित्यजति मन्दधीः । सुरापेन समं ज्ञेयं तस्य पापं च सुव्रत ॥४३
अग्निहोत्रपरित्यागः पञ्चयज्ञियकर्मणाम्[2] । मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥४४
अप्रियं सूर्यभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् । एवं निरपराधानां प्राणिनां च प्रमारणम् ॥४५
सर्वाधिपत्यमेतेषां नास्ति देवपुरोत्तमे । आत्मलोकाधिपत्यं तु यच्छेत्सर्वजगत्पतिः ॥४६
केचिदत्रैव मुच्यन्ते ज्ञानयोगपरा नराः । आवर्तन्ते पुनश्चान्ये संसारे भोगतत्पराः ॥४७
तस्माद्विमोक्षमन्विच्छन्भोगासक्तिं विवर्जयेत् । विरक्तः शान्तचित्तात्मा सौरलोकमवाप्नुयात् ॥४८
यच्चाप्यसक्तहृदये जपन्तीमं प्रसङ्गतः । तेषामपि वदत्येकः स्वानुभावानुरूपतः ॥४९
तन्नार्चयन्ति ये भानुं सकृदुच्छिष्टदेहिनः । तेषां पिशाचलोके तु भोगान्भानुः प्रयच्छति ॥५०
द्विर्जपन्ति च ये भानुं क्रूराः सङ्क्रुद्धलोचनाः । रक्षोलोके रविस्तेषां महाभागं प्रयच्छति ॥५१
त्रिरर्चयन्ति ये भानुं मद्यमांसरता नराः । ऋषिलोके रविस्तेषां भोगान्दिव्यान्प्रयच्छति ॥५२
ये नृत्यगीतं कुर्वन्ति त्रिश्चतुर्धा यदृच्छया । सूर्यस्याग्रे तु ते यान्ति गन्धर्वभवनं खग ॥५३

है ।४०। याचना करने वाले किसी अकिंचन ब्राह्मण को बुलाकर जो 'नहीं है' कह देता है, उसे चाण्डाल कहते हैं ।४१। देव, ब्राह्मण एवं गाय के लिए प्रदत्त भूमि का अपहरण जो करता है, चाहे वह कितनी खराब क्यों न हो, उसे ब्रह्मघाती बताया गया है ।४२। सुव्रत ! जो कोई सूर्य के ज्ञान की प्राप्ति कर पुनः उसका त्याग कर देता है, वही मूर्ख एवं उसका पाप मद्यपान करने वाले के समान कहा गया है ।४३। अग्निहोत्र के त्याग, पाँचों यज्ञ-कर्मों के त्याग, माता-पिता के त्याग, कपटपूर्ण साक्षी (गवाही) देना, मित्र-वध, सूर्यभक्तों के लिए अप्रिय (कठोर) वाणी बोलना, अभक्ष्य के भक्षण और निरपराध प्राणियों के वध करने वाले प्राणी कभी देवलोक के सर्वाधिपत्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं, किन्तु समस्त जगत् के नायक (सूर्य) (कभी प्रसन्न होने) अपने लोक का आधिपत्य उसे प्रदान कर सकते हैं ।४४-४६। इस संसार में कोई मनुष्य ज्ञान योग द्वारा मुक्त हो रहा है, और कोई भोगों के उपभोगार्थ यहाँ आकर जन्म ग्रहण कर रहा है ।४७। अतः मुक्ति के इच्छुक को चाहिए कि उपभोग की आसक्ति (अधिकता) का त्याग करे, क्योंकि विरक्त तथा शांत पुरुष को ही सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।४८। भोगों में जिनकी अनुरक्ति नहीं है, और प्रसंगवश सूर्य नाम का ही जप करते हैं, ऐसे लोगों के लिए भी उनके स्वभावानुरूप एक सूर्य ही आधार हैं ।४९। अतः मनुष्य शरीर प्राप्त कर एक बार भी जो सूर्य की आराधना नहीं करते हैं, उन्हें सूर्य पिशाचलोक के भोग प्रदान करते हैं ।५०। राक्षस लोक में रहते हुए भी जो क्रूर एवं क्रुद्ध होकर रक्त नेत्र करने वाले प्राणी दो बार भी सूर्य के नाम का जप करते हैं, उन्हें भानु महाभाग्यशाली बना देते हैं ।५१। मद्य-मांस में अनुरक्त रहने वाले जो प्राणी तीन बार सूर्य की पूजा करते हैं, उन्हें सूर्य ऋषिलोक के दिव्य भोग प्रदान करते हैं ।५२। खग ! सूर्य के सामने जो मनइच्छित तीन या चार प्रकार से नृत्य एवं गायन

---

१. 'नशेःषान्तस्य' इति णत्वनिषेधः । २. 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' इति घः ।

लोकाः ख्यातिं समुद्दिश्य पूजयन्ति च गोपतिम् । तेषां शक्रालये भानुः कामान्सर्वान्प्रयच्छति ।।५४
कामासक्तेन चित्तेन यः षडर्चयते रविम् । प्राजापत्ये रविस्तस्य लोके भोगान्प्रयच्छति ।।५५
नवकृत्वोर्चयेद्यस्तु चित्रभानुं खगाधिप । स याति विष्णुसालोक्यं विष्णुना सह मोदते ।।५६
तस्मादपि परं स्थानं यद्भूतानां मनोहरम् । अप्रमेयगुणैर्दिव्यैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।।५७
असंख्यैर्वस्तुभिर्व्याप्तं गैरिकै रक्तचित्रकैः । नानागृहसमाकीर्णैः सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।५८
तत्स्थानं ते प्रगच्छन्ति अर्चयन्ति च ये द्विजान् । तत्र लोके खगश्रेष्ठ वसन्ति विहरन्ति च ।।
तस्मादपि परं स्थानं ज्योतिष्कं सौरमुच्यते ।।५९
एवं सूर्यानुभावेन निकृष्टेनापि कर्मणा । नरैः स्थानान्यवाप्यन्ते श्रद्धाभावानुरूपतः ।।६०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सप्ताश्वानूरुसंवादो नाम एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८९।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सूर्यानूरुसंवादवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

तारारूपविमानानामिमाः सन्ति च कोटयः । यः कुर्यात्तु नमस्कारं तस्यैव च फलं भवेत् ।।१

करता है, उसे गन्धर्व भवन की प्राप्ति होती है ।५३। जो अपनी ख्याति के लिए सूर्य की उपासना करते हैं, भानु उन्हें इन्द्रलोक की समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं ।५४। काम में अनासक्त रहकर जो छः बार सूर्य की पूजा करता है, सूर्य उसे प्राजापत्य लोक के भोग प्रदान करते हैं ।५५। खगाधिप ! जो नव बार चित्रभानु नामक सूर्य की उपासना करता है, वह विष्णु के स्वर्गलोक मोक्ष की प्राप्तिपूर्वक उनके साथ आनन्दानुभव प्राप्त करता है ।५६। उससे भी उत्तम स्थान, जो प्राणियों के लिए मनोरम तथा कोटिसूर्य के समान प्रभापूर्ण है, एवं अप्रेमय गुणों समेत दिव्य विमानों द्वारा, जो समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली, असंख्य वस्तुओं से पूर्ण एवं सुवर्ण के चित्र-विचित्र भाँति-भाँति के घरों में व्याप्त हैं, वे प्राणी प्राप्त करते हैं जो द्विजों की पूजा करते हैं। खगश्रेष्ठ ! वे उस लोक में रहते और विहार करते हैं। उससे भी उत्तम 'ज्योतिष्क' नामक सूर्य का स्थान है। इस प्रकार मनुष्य लोग सूर्य में अनुरक्त रहने के कारण छोटे-छोटे कर्मों द्वारा भी अपनी श्रद्धा के अनुकूल लोकों की प्राप्ति किया करते हैं ।५७-६०

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सप्ताश्वानूरुसम्वाद नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८९।

अध्याय १९०

सौर धर्म में सूर्यानूरुसंवाद वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—करोड़ों की संख्या में वर्तमान ये तारा रूप विमान, उसे ही प्राप्त होते हैं,

इत्येता गतयः प्रोक्ता महत्त्वः सौरधर्मिणाम् । तस्मात्सौरः सदा धर्मः कर्त्तव्यः सुखमिच्छता ॥२
इदानीं पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः । ते समासेन कथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनैः ॥३
गवां मार्गे वने चाग्नेः पुरे ग्रामे समर्पणम् । इत्येतानीह पापानि सुरापानसमानि च ॥४
वने सर्वस्य हरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम् । गोभूसमीपजातानामोषधीनां च खेचर ॥५
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् । हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥६
कन्यानां वरयोग्यानामाकर्षणमसङ्गतः । पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥७
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम् । सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥८
महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसञ्ज्ञानि ब्रूमहे चोपपातकम् ॥९
द्विजायार्थं परिश्रुत्य न प्रयच्छति यो द्विज[1] । सद्भार्याणां च संत्यागः साधुबन्धुतपस्विनाम् ॥१०
गोभूहिरण्यवस्त्राणामपहारः प्रयत्नतः । ईश्वरार्पितबुद्धीनां पीडनं सुमहत्कृतम् ॥११
यः पीडामाश्रमं स्थाने आचरेदल्पिकामपि । तद्भृत्युपरिभूतस्य पशुधान्यधनस्य च ॥१२
कूपधान्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् । यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयः ॥१३
तीर्थयात्रोपवासानां व्रते च जपकर्मणि । स्त्रीधनान्युपकर्षंति ये जनाः पापकर्मणा ॥१४
अरक्षणं च नारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । ऋषीणामप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपसेवनम् ॥१५

जो सूर्य को नमस्कार करता है।१। सौर धर्म के अपनाने वाले के लिए यही गतिरूप है, अतः सुखेच्छुक को सदैव सौरधर्म का पालन करना चाहिए।२। इस समय मैं तुम्हें वे स्थूल पाप समूह, जो नरक के कारण हैं, तथा मन, वाणी एवं शरीर द्वारा उसे लोग उत्पन्न करते हैं, विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ।३। गौओं के पथ, जंगल, नगर एवं गाँव को अग्नि द्वारा प्रज्वलित कर नष्ट करना, ये सब पाप मद्यपान के समान बताये गये हैं।४। जंगल में मनुष्य, स्त्री, हाथी एवं घोड़े के रहने वहले स्थान, गाय के समीप उत्पन्न औषधि के अपहरण तथा आकाशगामिन्! चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, पद वस्त्र (दुपट्टा), और हाथ की दी हुई धरोहर, इनके अपहरण करना ये सब सुवर्ण की चोरी करने के समान हैं।५-६। वर के योग्य कन्या का अनायास अपहरण, पुत्र अथवा मित्र की पत्नी के तथा भागिनी के साथ उपभोग करने, कुमारी के साथ बलात्कार, किसी घोर शूद्र स्त्री के भोग तथा अपनी जाति की स्त्री के साथ गमन, ये गुरु पत्नी गमन के समान दोष हैं।७-८। ये सभी पातक, जो बताये गये हैं, महापातक के समान हैं। अब तुम्हें उपपातक बता रहा हूँ।९। द्विज! जो ब्राह्मण के लिए किसी वस्तु की प्रतिज्ञा कर पूरी नहीं करते हैं और सती स्त्री का त्याग, साधु, बन्धु, एवं तपस्वियों के गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्रों के प्रयत्नपूर्वक अपहरण, ईश्वर में अनुराग करने वाले को पीड़ित करके, आश्रमों में किसी प्रकार के अल्प भी कष्ट देने, उसके ऐश्वर्य-पशु, धन-धान्य, कुएँ, धान्य एवं पशुओं की चोरी करने, यज्ञ के अयोग्य को यज्ञ कराने, यज्ञ के बगीचे, तालाब एवं स्त्री पुत्र के विक्रय करने, तीर्थयात्रा, उपवास के व्रतों में जप करते हुए जनों के, सभी धनके अपहरण करने, स्त्री की रक्षा न करने, मद्यपान करने वाली स्त्री के भोग, ऋषियों को कुछ न देकर स्वयं उस धान्यवृद्धि के

---

१. हेखगेत्यर्थः। २. षष्ठ्यर्थे द्वितीया, माण्डलिकनृपाणामित्यर्थः।

देवाग्निसाधुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राजमाण्डलिकानपि[१] ॥१६
उत्सन्नपितृदेवाश्च स्वकर्मत्यागिनश्च ये । दुःशीला नास्तिकाः पापाः सदसच्छून्यवादिनः ॥१७
एवं कामे प्रवृत्ते तु वियोनौ पशुयोनिषु । रजस्वलास्वयोनौ[२] तु मैथुनं यः समाचरेत् ॥१८
स्त्रीपुत्रमित्रसम्प्रीतेरारामोच्छेदकाश्च ये । जनस्याप्रियवक्तारो जनाभिप्रायभेदिनः ॥१९
भेत्ता तडागवप्राणां सङ्क्रमाणां रसस्य च । एकपङ्क्तिस्थितानां च पङ्क्तिभेदं करोति यः ॥२०
इत्येतैस्तु नराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यानूरुसंवादे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९०।

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताश्वतिलकारुणसंवादम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

ये गोब्राह्मणसस्यानां साधूनां तु तपस्विनाम् । दूषकाश्चैव वर्तन्ते नरा नरकगामिनः ॥१
परिश्रमेण तप्यन्ते येऽपरे तस्य सूचकाः । परदाररतानां च कन्याया दूषकाश्च ये ॥२

सेवन, देव, अग्नि, सज्जन, सती, गो, ब्राह्मण एवं परोक्ष या प्रत्यक्ष राजाओं की निन्दा करने, पितृगण, देवों के त्याग, अपने कर्म के त्याग, दुःशील, नास्तिक, पापी, सत् असत् अथवा शून्यवादी कामुक होकर नपुंसक नारी, या पशुओं के संभोग करने, अथवा रजस्वला के साथ मैथुन, स्त्री, मित्र एवं पुत्र की प्रीति के नाश एवं बगीचे का नाश करने वाले, सभी से कठोर भाषण करने, किसी के अभिप्राय को दूसरे से बताने, तालाब, बावली, एव संक्रामक रस के नाश करने, और एक पंक्ति में बैठे हुए लोगों में भेद उत्पन्न करने वाले, ये सभी उपपातकी बताये गये हैं ।१०-२१

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सूर्यानूरुसंवाद वर्णन नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।१९०।

अध्याय १९१

सप्ताश्वतिलक एवं अरुण का संवाद

सप्ताश्व बोले—गौ, ब्राह्मण, सस्य (धान्य), एवं तपस्वी साधुओं को कष्ट प्रदान करने वाले ऐसे नारकीय मनुष्यों की इस भूतल में कमी नहीं है, उसी भाँति परिश्रमपूर्ण किसी के तप करने की सूचना अन्य को देने वाले की भी । परस्त्रीगामी, एवं कन्या निन्दक, गोशाला, अग्निस्थान, जलाशय, पर्वतों के

---

१. षष्ठ्यर्थे द्वितीया, माण्डलिकनृपाणामत्यर्थः । २. स्वेतरस्यां वा योनीतरदेशे वा पुरुषसमागमाक्षमयोनौ ।

गोष्ठाग्निजलरम्यासु सच्छायानगेषु च । त्यजन्ति ये पुरीषाणि आरामायतनेषु च ॥३
मद्यपानरता नित्यं गीतवाद्यरता नराः । कामक्रोधमदाविष्टा रन्ध्रान्वेषणतत्पराः ॥४
पाखण्डमतसंयुक्ता वृथा संलापकौतुकाः । ये मार्गानुपरुन्धन्ति परसीमां हरन्ति च ॥५
कूटशासनकर्तारः कूटकर्मकृतो नराः । धनुषः शिल्पिशस्त्राणां यः कर्ता यश्च विक्रयी ॥६
निर्दयोऽतीवभृत्येषु पशूनां दमकश्च यः । मिथ्या प्रवदतो वाचमाकर्णयति यः शनैः ॥
स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठः ॥७
ये भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् । भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यजन्ति च बुभुक्षितान् ॥८
यः स्वयं पक्वमश्नाति विप्रायान्नं न यच्छति । वृथा पाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥९
नियमं स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः । प्रव्रज्यावसिता ये च रहस्यानां तु भेदकाः ॥१०
ये ताडयन्ति गां मूढास्त्रासयन्ति मुहुर्मुहुः । दुर्बलं न च पुष्णन्ति प्रनष्टान्नान्विषन्ति च ॥११
पीडयन्त्यतिभारेण अक्षम्यं वाहयन्ति च । वृषाणां वृषणानन्ये पापिष्ठा गालयन्ति हि ॥
वाहयन्ति च गां वन्ध्यां ते पापिष्ठा नराधमाः ॥१२
अर्थविकलं हीने बालवृद्धकृशानुगम् । नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकं नराः ॥१३
अजाविका माहिषिकाः सविश्रीवृषलीपतिः । क्षत्रविट्शूद्रवृद्धाश्च स्वधर्मविहिताः सदा ॥१४
शिल्पिनः कारुका वेश्याः क्षेमकारनृपध्वजाः । नर्तक्यो ज्योतिषि हताः सर्वे नरकगामिनः ॥१५

वृक्षों की छाया, बगीचे एवं (जीर्ण-शीर्ण) मन्दिरों में या उसके निकट पुरीषोत्सर्ग (पाखाना-पेशाब) करने वाले, नित्य मद्यपान करने वाले, गाने-बजाने वाले, कामी, क्रुद्ध, मदांध, रन्ध्रान्वेषी, पाखंडी, व्यर्थ की बातें करके प्रसन्न होने वाले, पथ को काँटे आदि से अवरुद्ध करने वाले, दूसरे की सीमा का अपहरण करने वाले, कूट-नीतिपूर्ण शासन करने वाले, कूटनीति करने वाले, धनुष एवं शस्त्रों के निर्माता, तथा उनके विक्रय करने वाले, सेवकों के लिए निर्दयी होने वाले, पशुओं के दमन करने वाले, किसी की मिथ्या बातों को धीरे-धीरे सुनने वाले, तथा स्वामी, मित्र, एवं गुरु के द्रोही, मायावी, चंचल, शठ, भूख-प्यास से दुखी स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, रोगी, सेवक, अतिथि एवं बन्धुगण, के त्याग करने वाले, ये सभी पातकी कहे गये हैं ।१-८। जो स्वयं पक्वान्न को ब्राह्मण को बिना दिये भक्षण करता है, उसका पाक व्यर्थ है एवं ब्रह्मवादियों में वह निन्दित पुरुष समझा जाता है ।९। इसी प्रकार नियमों का यथावत् पालन न करने वाले, असंयमी, संन्यासी होकर पुनः गृहस्थ होने वाले, रहस्यों को प्रकट करने वाले, गौओं एवं दुर्बलों को बार-बार पीड़ित करने वाले, अन्नों को नष्ट करने वाले, बैलों को अत्यन्त भार से पीड़ित कर निरन्तर बोझा ढोने वाले और उनके अण्डकोषों के मर्दन कर उन्हें पुंस्त्वहीन करने वाले, तथा बंध्या गायों द्वारा बोझा का वहन करेने वाले ये सभी पापी तथा नराधम कहे गये हैं ।१०-१२। धनहीन, व्याकुलेन्द्रिय, हीन, बाल, वृद्ध एवं रोगी, के लिए कृपा न करने वाले मूढ़ मनुष्य नरक गामी होते हैं ।१३। भेंड़-बकरी एवं भैंसे पालने वाले, सावित्री तथा वृषली पति (शूद्र) सौर स्वधर्महीन क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वृद्धा, शिल्पी (दीवाल पर चित्र बनाने वाले), राजगीर, वेश्याएँ, क्षेमकार नृपध्वज नर्तकियाँ, अग्नि एवं विद्युत द्वारा प्राण त्याग करने वाले ये सभी नरकगामी होते हैं ।१४-१५। घी, तैल, अथवा इनके पक्वान्न, शहद, मांस, रस,

घृततैलानुपानानि मधुमांसरसासवम् । गुडेक्षुक्षीरशाकान्हि दधिमूलफलानि च ॥१६
तृणानि काष्ठं पुष्पाणि बीजौषधिननुत्तमाम् । उपानच्छत्रशकटमासनं शयनं मृदः ॥१७
ताम्रं सीसं त्रपुं कांस्यं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम् । वार्क्षं वा वैणवं वापि गृहोपकरणानि च ॥१८
और्णकार्पासकौशेयभङ्गपट्टोद्भवानि च । स्थूलसूक्ष्माणि सम्मूढा ये च लोका हरन्ति वै ॥१९
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च । नरकेषु ध्रुवं गच्छेद्यो हरेत पुरुषो बलात् ॥२०
यद्वा तद्वा तु पारोक्ष्यमपि सर्षपमात्रकम् । अपहृत्य नरो याति नरकं नात्र संशयः ॥२१
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तेः समनन्तरम् । शरीरयातनार्थं तत्पूर्वकालमवाप्नुयात् ॥२२
यमलोके व्रजदेवं शरीरेण यमाज्ञया । यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानः सुदुःखितः ॥२३
देवमानुषजीवानामधर्मनिरतात्मनाम् । धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥२४
विनयाभावयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् । प्रायश्चित्तैर्बहुविधैः पातकं नष्टतामियात् ॥२५
पारदारिकचोराणामन्यायव्यवहारिणाम् । शास्ता क्षितिपतिः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां च धर्मराट् ॥२६
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चितं समाचरेत् । नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥२७
यः करोति शुभं कर्म कारयेदनुमोदयेत् । कायेन मनसा वाचा स विन्देतोत्तमं सुखम् ॥२८

आसव, गुड़, ऊख, क्षीर, शाक, दही, मूलकन्द आदि फल तृण, काष्ठ, पुष्प, बीज, औषधि, उपानह (जूते), छत्र (छाता), गाड़ी (बैलगाड़ी आदि), आसन, शयन (पलंग बिछौने आदि), मिट्टी, ताँबा, शीशा, रांगा, कांसा, जल से उत्पन्न शंख आदि, भेंड़े, बांस के फल, घर बनाने के सामान, (ऊनी, सूती एवं रेशमी वस्त्र, भांग, पत्थर की मोटी-पतली चक्कियाँ आदि के अपहरण करने वाले मूर्ख लोग, एवं इसी प्रकार भाँति-भाँति के अन्य द्रव्यों के अपहर्त्ता मनुष्य बलात् नरकों में डाले जाते हैं।१६-२०। किसी की किसी प्रकार की कोई भी वस्तु, चाहे वह राई के बराबर की क्यों न हो, परोक्ष में ले लेने से वह पुरुष नरकगामी होगा इसमें संदेह नहीं।२१। ऐसे अनेक पापों द्वारा मनुष्य प्राण त्याग करने के साथ ही शारीरिक यातनाएँ भोगने के लिए पूर्व की भाँति ही शरीर प्राप्त करता है।२२। और उसी शरीर से दुःखों का अनुभव करता हुआ वह यमलोक में वहाँ भीषण एवं घोर रूप वाले यमदूतों द्वारा ले जाया जाता है।२३। अधर्म करने वाले देव एवं मनुष्य जीवों के भाँति-भाँति के भयानक बध करने के द्वारा धर्मराज अपनी पुरी में उन जीवों पर अपना शासन करते हैं।२४। नम्रताहीन, प्रमादी एव स्खलित आत्मा वालों के पातक अनेक प्रकार के प्रायश्चितों द्वारा नष्ट होते हैं।२५। क्योंकि परस्त्री के चोर एवं अन्याय पूर्ण व्यवहार करने वाले मनुष्यों के ऊपर शासक (नियंत्रण करने वाला) राजा होता है, और प्रच्छन्न (गुप्त) पापियों के ऊपर नियंत्रण करने वाले धर्मराज होते हैं। अतः किये हुए पाप का प्रायश्चित करना आवश्यक है, क्योंकि अन्यथा सैकड़ों करोड़ कल्प प्रयत्न करने पर भी बिना भोगे उस पाप का नाश सम्भव नहीं होता है।२६-२७। जो मन, वाणी एवं कर्म द्वारा शुभ कर्म करता-कराता या अनुमोदन करता है, उसे उत्तम सुख की

इति संक्षेपतः प्रोक्ता पापभेदात्त्रिधा गतिः । तथान्या गतयश्चित्राः कथ्यन्ते कर्मभेदतः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सप्ताश्वातलकारुणसंवाद-
नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९१।

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताश्वतिलकानूरुसंवादवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

सन्त्रासजननं घोरं पापानां पापकारिणाम् । गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ॥१

स्त्रीपुंनपुंसकैर्वृद्धैर्गन्तव्यं सर्वजन्तुषु । शुभाशुभफलं तत्र भोक्तव्यं देहिभिस्तथा ॥२

चित्रगुप्तादिभिः सर्वैर्धर्मस्थैः सत्यवादिभिः । प्रोक्तं वै धर्मराजस्य निकटे यच्छुभाशुभम् ॥
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचारितम् ॥३

तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः । ते नरा यान्ति सौम्येन यथा यमनिकेतनम् ॥४

यः प्रदद्याद्द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठछत्रकम् । स च धर्मेण महता सुखं याति यमालयम् ॥५

सोपानत्को नरो यस्तु देवायतनमाविशेत् । विशेषतो गर्भगृहं स सन्त्रासमुपाश्नुते ॥६

जो मन वाणी एवं कर्म द्वारा शुभ कर्म करता कराता या अनुमोदित करता है उसे उस सुख की प्राप्ति होती है ।२८। इस प्रकार संक्षेप में पाप भेद की तीन गति बतायी गई है और उसकी आश्चर्यकारी गतियाँ जो कर्मभेद वश प्राप्त होती हैं, कह रहा हूँ ।२९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सप्ताश्वतिलकारुण संवाद वर्णन नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९१।

अध्याय १९२

सप्ताश्वतिलाकानूरुसंवाद का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—पापी प्राणियों को अपने पापों के परिणामस्वरूप घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, चाहे वे बाल, तरुण, मध्यम, स्त्री, पुरुष, नपुंसक एवं वृद्ध क्यों न हों। उन्हें गर्भस्थ या उत्पन्न होकर सभी छोटे-बड़े शरीर धारण करके उसी शरीर द्वारा अपने किये कर्मों के शुभ-अशुभ फल भोगने पड़ते हैं ।१-२। चित्रगुप्त आदि सभी धार्मिक एवं सत्यवादियों द्वारा, जो धर्मराज के निकट सम्पर्क में स्थित रहते है, जो कुछ शुभ-अशुभ कर्मों के निर्णय हो जाते हैं, उन्हें अवश्य प्राणियों को भोगने पड़ते हैं ।३। उनमें जो शुभ-कर्म करने वाले प्राणी हैं, जो सौम्य चित्त एवं दयालु होते हैं, वे जिस प्रकार सुखपूर्वक यमपुरी को प्रस्थान करते हैं (बता रहा हूँ) । जो ब्राह्मणों को उपानह (जूते आदि), काठ के दंडे वाले छत्ते दान रूप में प्रदान करता है, वह धार्मिक होने के कारण अत्यन्त सुखपूर्वक यमराज के यहाँ पहुँचता है ।४-५। पादत्राण पहने हुए जो कोई देवालयों में विशेषकर मंदिर के भीतर प्रवेश करता है, उसे दंडरूप में यातना

सोपानत्कानि दानानि तथान्नं तु विशेषतः । एवं दानविशेषेण धर्मराजपुरं नरः ॥
यस्माद्याति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥७
ये पुनः क्रूरकर्माणो नराः पापरताः खग ! ते घोरेण तथा यान्ति दक्षिणेन यमालयम् ॥८
षडशीतिसहस्राणि योजनानामशीति च । वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपमिति स्थितम् ॥९
समीपस्थमिवाभाति नराणां शुभचारिणाम् । पापानामतिदूरस्थं तथा रौद्रेण गच्छताम् ॥१०
तीक्ष्णकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च । क्षुरधारातिनिस्त्रिंशैः पाषाणैश्चिन्तितेन च ॥११
क्वचिदर्केण महता दुरन्तैश्चैव खातकैः । लोहशङ्कुभिराच्छिन्नास्तथा खड्डैः समन्विताः ॥१२
ततः पतद्भिर्विमलैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः । प्रेतप्राकारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ॥१३
क्वचिद्विषमगर्ताभिः क्वचिल्लोष्ठैः सपिच्छलैः । सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ॥१४
अनेकशाखारचितैर्व्याप्तैर्वंशवनैः क्वचित् । कष्टेन तमसः मार्गे अनालम्बे सुदारुणे ॥१५
अथ भृङ्गाटकैर्व्याप्तैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः । क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद् व्याप्तं हिमेन तु ॥१६
क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तं प्रवेशयेत् । क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषा[1]ग्निना ॥१७
क्वचित्सिंहैः क्वचिद्व्याघ्रैर्दंशैः कीटैश्च दारुणैः । क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिद्वाजगरैः पुनः ॥१८

का अनुभव करना पड़ता है ।६। पादत्राण समेत दान एवं विशेषकर अन्न दान करने वाला पुरुष उसी दान विशेष द्वारा पुनः सुखपूर्वक धर्मराज के नगर को प्रस्थान करता है, अतः धर्माचरण करना सभी के लिए आवश्यक है ।७। खग ! जो मनुष्य क्रूर कर्म करने वाले एवं पाप में आसक्त रहने वाले हैं, वे उस दक्षिण के दुर्गम पथ द्वारा यम की पुरी में प्रविष्ट कराये जाते हैं ।८। छियासी सहस्र योजन की दूरी पर यमराज के वे भाँति-भाँति के नगर स्थित हैं ।९। वे नगर शुभ कर्म करने वाले के लिए अत्यन्त सन्निकट की भाँति प्रतीत होते हैं, और पापियों के लिए, जिनकी अत्यन्त दूरस्थ दुःखपूर्ण यात्रा होती है ।१०। (पापियों के मार्ग) तीक्ष्ण काँटे एव पत्थर की कंकड़ियों द्वारा संकीर्णता प्राप्त, क्षुरा (नाई के छुरे) की धार की भाँति तीक्ष्ण बड़े-बड़े पत्थरों से व्याप्त होते हैं ।११। कहीं सूर्य द्वारा भीषण गर्मी के अनुभव, अगाध खाइयाँ, लोह के कीलों से आच्छन्न एवं खड्ढों से युक्त, सघन वृक्ष समूहों वाले पर्वतीय प्रदेशों में गिरते-पड़ते गमन करना, इस प्रकार उसे दुःखी होकर प्रेत मार्ग से जाना पड़ता है ।१२-१३। कहीं विषम (ऊँचे-नीचे) गड्डे को पार करना, कहीं दल-दल एवं फिसलने वाली भूमि मार्ग का अनुसरण करना, अत्यन्त तप्त बालुकाओं, तीक्ष्ण कीलों एवं अनेक शाखा वाले बाँस के दुर्गम जंगलों के भीषण मार्ग को घोर अन्धकार में निःसहाय होकर पार करना पड़ता है ।१४-१५। कहीं मार्ग काँटेदार वृक्षों से अवरुद्ध है,कहीं दावाग्नि लगी है । कहीं अत्यन्त जलती हुई पत्थर की शिलाएँ पड़ती हैं, पुनः कहीं बर्फ के ढेर लगे हैं ।१६। कहीं इतनी बालुकाएँ पड़ी हैं, जहाँ पहुँचने पर कण्ठ तक समस्त शरीर उसमें धस जाता है । कहीं दूषित जल भरा पड़ा है, कहीं उपलों की भीषण अग्नि व्याप्त है, कहीं सिंह, कहीं बाघ, कहीं मच्छर, कहीं भयानक कीड़े, कहीं भीषण आकार की जोकें, कहीं अजगर वृन्द, रक्तशोषक मक्खियाँ, कहीं भीषण विषैले साँप, कहीं अत्यन्त बलवान एवं

---

१. ईकारह्रस्व आर्षः ।

मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः । महागजेन्द्रयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१९
पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः । महाशृङ्गैश्च महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैर्मदातुरैः ॥२०
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः । व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजन्ति हि ॥२१
महापाशविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना । महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥२२
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दीर्यमाणा व्रजन्ति हि । पतद्भिर्वज्रसङ्घातैरुल्कापातैश्च दारुणैः ॥२३
प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना व्रजन्ति हि । महान्धकारशुक्रेण पीड्यमाना व्रजन्ति हि ॥२४
महामेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः । तीक्ष्णपाषाणयुक्तेन पूर्यमाणाः समन्ततः ॥२५
महाक्षुराम्बुधाराभिः सेव्यमाना व्रजन्ति हि । महामेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२६
भृशं शीतेन तीक्ष्णेन रूक्षेण मारुतेन च । इत्थं मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च ॥२७
निरालम्बेन दुर्गेण निर्जनेन समन्ततः । अविश्रामेण महता विगतापायवुर्धरैः ॥२८
नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकारिणः । इति ज्ञात्वा नरः कुर्यात्पुण्यं पापं च वर्जयेत् ॥
पुण्येन याति देवत्वं पापेन नरकं व्रजेत् ॥२९
यैर्मनागपि देवेशो मनसा पूजितो रविः । ते कदापि न पश्यन्ति यमस्य वदनं खग ॥३०
किन्तु पापैर्महाघोरैः किञ्चित्कालं तवाज्ञया । भवन्ति प्रेतराजानस्ततो यान्ति रवेः पुरम् ॥३१
ये पुनः सर्वभावेन भजन्ते भुवि भास्करम् । न ते लिम्पन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२

मदोन्मत्त। होने के कारण बलात् मंथन करने वाले विशालकाय गजेन्द्र, कहीं तीक्ष्ण सींग वाले बड़े-बड़े बैल एवं महान सींग वाले भैंसे मार्ग को सीमा द्वारा उथल पुथल मचाकर अवरुद्ध किये हैं, कहीं मदान्ध ऊँटों के वृन्द भरे पड़े हैं, कहीं भीषण डाकिनियाँ, एवं विकराल राक्षसों के दल खड़े हैं। इस प्रकार अत्यन्त घोर पापियों से पीड़ित होते हुए इन्हीं दुर्गम मार्गों से यमलोक जाना पड़ता है।१७-२१। महान् पाशों में बँधकर प्रचण्ड वायु के झोंके एवं बड़े-बड़े पत्थर खंडों की वर्षा के आघातों को सहन करते हुए अकेले उस मार्ग से, जहाँ कहीं-कहीं बिजलियों के गिरने से शहर विदीर्ण हो जाता हैं, जान पड़ता है।२२-२४। (कहीं मार्ग में) मेघगण अपने भीषण गड़गड़ाहट द्वारा बार-बार त्रास दिखा रहे हैं, कहीं चारों ओर तीक्ष्ण पत्थर भरे पड़े हैं, कहीं क्षुर के धार के समान तीक्ष्ण जलधाराएँ गिर रही हैं। इस भाँति जहाँ भी मेघ अपने भयानक शब्दों द्वारा बार-बार त्रस्त करने की चेष्टा करते रहते हैं, उन्हीं मार्गों द्वारा जाना पड़ता है।२५-२६। कहीं अत्यन्त ठंडी है, कहीं तीक्ष्ण एवं रूखे वायु के झोंके हैं, ऐसे भयानक मार्ग से जो दुर्गम एवं निर्जन पाथेय (सम्बल) रहित होकर निराधार, अविश्राम गति से जिसमें कहीं भी रुकावट, विघ्नबाधा के द्वारा होती ही नहीं, सभी पाप करने वाले मूर्ख प्राणी ले जाये जाते हैं। ऐसा समझकर मनुष्य को पुण्य करना चाहिए न कि पाप। क्योंकि पुण्य कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पाप द्वारा नरक की प्राप्ति होती है।२७-२९। खग ! जो चित्त लगाकर कभी देवेश (सूर्य) का थोड़ा भी पूजन किया है, उसे कदापि नहीं यमराज का मुख देखना पड़ता है।३०। किन्तु महाघोर पापियों को भी (आपके पूजन करने पर) आपके आदेशानुसार कुछ दिन प्रेम के अधिनायकत्व को स्वीकार करके पश्चात् सूर्यलोक की प्राप्ति हो जाती है।३१। जो फिर समस्त भावनाओं द्वारा उस भूतल में भास्कर की उपासना करता है, जल में स्थित

तस्मात्प्रकुर्याद्भक्तिं वै भास्करे सततं नरः । श्रद्धया पूजयेद्भानुं य इच्छेद्विपुलं धनम् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सप्ताश्वतिलकानूरुसंवादे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९२।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दन्तकाष्ठविधिवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अयने विषुवे वारे सङ्क्रान्तौ ग्रहणे तथा पूजयेत्सततं भानुं सप्तम्यां तु विशेषतः ॥१
वैनतेय निबोध त्वं विधानं सप्तमीव्रते । एतद्धि परमं गुह्यं रवेराराधनं परम् ॥२
सिद्धार्थकैस्तु प्रथमा द्वितीया चार्कसम्पुटैः । तृतीया मरिचैः कार्या चतुर्थी तिलसप्तमी ॥३
सप्तमी [1]चौदनैर्वीर सप्तमी परिकीर्तिता । इत्येताः सप्त सप्तम्यः कर्तव्या भूतिमिच्छता ॥४
तथा चानुक्रमे तासां लक्षणं कथयाम्यहम् । माघे वा मार्गशीर्षे वा कार्या शुक्ला तु सप्तमी ॥५
आर्तस्य तु न नियमः पक्षमासकृतो भवेत् । अर्धप्रहरशेषे तु कुर्याद्वै दन्तधावनम् ॥६

कमलपत्र की भाँति पाप उसका स्पर्श तक नहीं करता है ।३२। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि भगवान् भास्कर की निरन्तर पूजा करें और विपुल धन के इच्छुक भी श्रद्धालु होकर भानु की आराधना करें ।३३

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सप्ताश्वतिलकानूरुसंवाद वर्णन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९२।

अध्याय १९३

दन्तकाष्ठविधि का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—अयन (दक्षिणायन एवं उत्तरायण) विषुव दिन, संक्रान्ति, ग्रहण और विशेषकर सप्तमी के दिन भानु की निरन्तर पूजा करनी चाहिए ।१। वैनतेय ! सप्तमीव्रत के विधान को, जो परमगुप्त एवं जिसमें सूर्य की उत्तम आराधना बतायी गयी है, (बता रहा हूँ) सुनो ! २। वीर ! पहली सप्तमी का व्रत श्वेत राई, दूसरी में अर्क सम्पुट तीसरी में मरिच, चौथी में तिल एवं सातवीं में भात के पारण द्वारा व्रत की समाप्ति होती है, इस प्रकार ऐश्वर्य इच्छुक को सातों सप्तमी की समाप्ति करनी चाहिए ।३-४। क्रमशः उन व्रतों के विधान-लक्षण भी बता रहा हूँ । माघ अथवा मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्ल सप्तमी में उसे करना चाहिए । आर्त प्राणी के लिए पक्ष एवं मास का कोई नियम नहीं है । अतः प्रहरार्ध भाग दिन के अवशिष्ट रहने पर दंत धावन करना कहा गया है । पंचमी में कामना सफल करने

---

१. अत्रत्यः पाठः पञ्चमीषष्ठ्योः सप्तम्योः पारणानुक्तेत्रुटित इति प्रतिभाति ।

एश्वर्म्या तत्र ये वृक्षाः कामितास्तान्वदाम्यहम् । मधूके पुत्रलाभः स्याद्दुःखहा नार्कवो भवेत् ।।७
बदर्या च बृहत्या च क्षिप्रं रोगात्प्रमुच्यते । ऐश्वर्यं च भवेद्बिल्वैः खदिरेण च सञ्चयः ।।८
शत्रुक्षयः कदम्बेषु अर्थलाभोतिऽमुक्तके । गुरुतां याति सर्वत्र आटरूषकसम्भवैः ।।९
ज्ञातिप्रधानतां याति अश्वत्थो यच्छते यशः । करवीरात्परिज्ञानमचलं स्यान्न संशयः १०
श्रियं प्राप्नोति विपुलां शिरीषस्य निशेवने । प्रियङ्गुं सेव्यमानस्य सौभाग्यं परमं भवेत् ।।११
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं सुखासीनोऽथ वाग्यतः । कामं यथेष्टं हृदये कृत्वा समभिमन्त्र्य च ।।
मन्त्रेणानेन मतिमानश्नीयाद्दन्तधावनम् ।।१२
वरं दत्त्वाभिजानासि कामदं च वनस्पते । सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठ नमोऽस्तु ते ।।१३
त्रीन्वारान्परिजप्यैवं भक्षयेद्दन्तधावनम् । पश्चात्प्रक्षाल्य काष्ठं तु शुचौ देशे विनिक्षिपेत् ।।१४
ऊर्ध्वे निपातिते सिद्धिस्तथा चाभिमुखस्थिते । अतोऽन्यथा तु पतिते आनीय पुनरुत्सृजेत् ।।१५
पराङ्मुखं यदि भवेत्त्रीन्वारान्दन्तधावनम् । असिद्धां तु विजानीयान्न ग्राह्या सा तु सप्तमी ।।१६
ब्रह्मचारी तु तां रात्रिं स्वप्यान्मङ्गलसेवया । बिभ्रद्वासोनुपहतं शुचिराचारसंयुतः ।।१७
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय वै खग । प्रक्षालयेन्मुखं धीमानश्नीयाद्दन्तधावनम् ।।१८
उपविश्य शुचिर्भूत्वा प्रणम्य शिरसा रविम् । जपं यथेष्टं कृत्वा तु जुहुयाच्च हुताशने ।।१९
ततोऽपराह्णसमये स्नात्वा मृद्गोमयाम्बुभिः । विधिवन्नियमं कृत्वा मौनी शुक्लाम्बरः शुचिः ।।२०

वाले उन वृक्षों को बता रहा हूँ। महुवे के सेवन करने से पुत्र लाभ, भृङ्गराज (भंगैरया) से दुःखनाश, बेर और वृहती से शीघ्र रोगमुक्ति, बेल से ऐश्वर्य, खदिर (खैर) से धनसंचय, कदम्ब से शत्रु-क्षय, अतिमुक्तक (तेंदू एवं ताल) के वृक्ष से अर्थ लाभ, आटरूषकोत्पन्न वृक्ष से सर्वत्र गुरुता, पीपल से जाति प्राधान्य एवं यश की प्राप्ति, करवीर (कनेर) से निश्चल एवं विस्तृत ज्ञान होता है, इसमें संदेह नहीं। शिरीष के सेवन से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति और प्रियंगु के सेवन से उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति होती है।५-११। अपने मनोरथ सिद्ध्यर्थ सुखपूर्वक बैठकर वाक्संयमपूर्वक अपने हृदय में अपनी कामना का स्मरण करते हुए उस कष्ट के दंतधावन को इस मंत्र द्वारा—हे वनस्पते ! मेरे मनोरथ को आप जानते हैं, अतः उसकी पूर्ति के लिए वर प्रदान कीजिए, हे दंतकाष्ठ ! मुझे सिद्धि प्रदान कीजिए, आप को नित्य नमस्कार है। इस प्रकार तीन बार उसे अभिमंत्रित कर पश्चात् दाँतों को साफ़ करे। तदनंतर उसे धोकर पवित्र स्थान पर फेंक दे। उर्ध्व मुख या अधोमुख होकर उसके गिरने से सिद्धि प्राप्त होती है, अतः अन्यथा गिरने पर पुनः उसे उठाकर फेंक दे। यदि पहले की भाँति तीन बार तक वह दंतधावन पराङ्मुखी होती जाये तो उस सप्तमी का त्यागकर अन्य सप्तमी से व्रत प्रारम्भ करे। ब्रह्मचारी को तो मंगल के लिए उस रात्रि उत्तम नवीन वस्त्र धारण कर आचार संयमपूर्वक शयन करना चाहिए। खग ! उस रात के व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल उठकर हाथ मुख धोकर दंत धावन करे। पुनः पवित्र होकर शिर से सूर्य को प्रणाम पूर्वक यथेष्ट जप करके हवन करे, पश्चात्, अपराह्न समय में मिट्टी एवं गोबर से स्नान कर जल से शुद्ध हो शुक्लाम्बर

पूजयित्वा विधिं भक्त्या देवदेवं दिवाकरम् । स्वप्याद्देवस्य पुरतो गायत्रीजपतत्परः ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे दन्तकाष्ठविधिवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९३।

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यैर्यैर्यत्फलमश्नुते । स्वप्ने दृष्टे तु सप्तम्यां पुरुषो नियतव्रतः ॥१
समाप्य विधिवत्सर्वां जपहोमादिकां क्रियाम् । भूमौ शय्यां समास्थाय देवदेवं विचिन्तयेत् ॥२
हन्त सुप्तो यदि नरः पश्येत्स्वप्ने दिवाकरम् । शक्रध्वजं वा चन्द्रं वा तस्य सर्वाः समृद्धयः॥३
भृङ्गारचमरादर्शकनकाभरणानि च । रुधिरस्य स्रुतिः केशपात ऐश्वर्यकारकः ॥
स्वप्ने वृक्षाधिरोहे तु क्षिप्रमैश्वर्यमाहवे ॥४
दोहनं महिषीसिंहीगोधेनूनां करे स्वके । बन्धश्चासां राज्यलाभो नाभेः स्पर्शे तु दुर्मतिः ॥५
अविं हत्वा स्वयं खादेत्सिंहमम्बुजमेव च । स्वाङ्गमस्थि हुताशं च सुरापानं खगाधिप ६॥

को धारण करे और देवाधिदेव सूर्य की विधानपूर्वक पूजा के उपरान्त गायत्री जप करते हुए उनके सामने शयन कर जाये ।१२-२१

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में दंतकाष्ठ विधिवर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९३।

अध्याय १९४

सूर्यारुणसंवाद का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—इसके उपरान्त संयमपूर्वक सप्तमीव्रत का पालन करने वाला ब्रह्मचारी पुरुष स्वप्न को देखकर जिन-जिन फलों को प्राप्त करता है, मैं उन्हें बता रहा हूँ ।१। जप होम आदि सभी क्रियाओं को विधानपूर्वक सुसम्पन्न करके भूमि में शयनासन पर बैठकर देवाधिदेव (सूर्य) का चिन्तन करे ।२। उस समय स्वप्न में मनुष्य यदि सूर्य, इन्द्र की ध्वजा अथवा चन्द्र दर्शन करता है, तो उसे समस्त समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।३। भृङ्गार (झारी), चामर, दर्पण, सुवर्ण के आभूषण, रक्तपात एवं केशों का पतन देखने से ऐश्वर्य और वृक्षारोहण करने से युद्ध स्थल में शीघ्र ऐश्वर्य, प्राप्ति होती है ।४। भैसे, सिंहनी, गौ एवं धेनु के दूध अपने हाथ में दोहन करने अथवा इन्हें बाँधने से राज्यलाभ, तथा उनके नाभि स्पर्श करने से दुष्टबुद्धि होती है ।५। खगाधिप ! भेड़ अथवा सिंह का शिकार कर स्वयं भक्षण करे उसी प्रकार अम्बुज, अपने अंग, हड्डियाँ एवं अग्नि के भक्षण,

हैमे वा राजते वापि यो भुंक्ते पायसे नरः । पात्रे तु पद्मपत्रे वा तस्यैश्वर्यं समं भवेत् ।।७
द्यूते च वाथवा युद्धे विजयो हि सुखावहः । गात्रस्य स्वस्य ज्वलनं शिरोबन्धश्च भूतये ।।८
[1]माल्यांबराणां शुक्लानां हयानां पशुपक्षिणाम् । सदा लाभं प्रशंसंति विष्ठानां चानुलेपनम् ।।९
हययाने भवेत्क्षिप्रं रथयाने प्रजागमः । नानाशिरोबाहुता च गृहस्थां कुरुते श्रियम् १०
अगम्यागमनं धन्यं वेदाध्ययनमुत्तमम् । देवद्विजश्रेष्ठवीरगुरुवृद्धतपस्विनः ।।११
यद्वदन्ति नरं स्वप्ने सत्यमेवेति तद्विदुः । प्रशस्तं दर्शनं चैषामाशीर्वादः खगाधिप ।।१२
राज्यं स्यात्स्वशिरश्छेदे धनं बहुवधे भवेत् । रुदिते भक्ष्यसम्प्राप्ती राज्यं निगडबन्धने ।।१३
पर्वतं तुरगं सिंहं वृषभं गजमेव हि । महदैश्वर्यमाप्नोति यो विक्रम्याधिरोहति ।।१४
आगृह्णानो ग्रहांस्तारा मरीचिं परिवर्तयन् । उन्मूलयति पर्वतांश्च राजा भवति भूतले ।।१५
देहान्निष्क्रान्तिरन्त्राणां सर्वेषां च खगाधिप । पानं समुद्रसरितामैश्वर्यसुखकारकम् ।।१६
बलं चाम्बुनिधिं वापि तीर्थपारं प्रयाति यः । तस्यापत्यं भवेद्वीर अचलं च खगाधिप ।।१७
भवत्यर्थागमः शीघ्रं कृमिर्वा यदि भक्षयेत् । अंगानां च सुरूपाणां लाभो दर्शनमेव च ।।
संयोगश्चैव माङ्गल्यैरारोग्यं धनमेव च ।।१८
ऐश्वर्यं राज्यलाभश्च यस्मिन्स्वप्न उदाहृतः । सप्त स्यान्नात्र संदेहश्चतुर्भिः श्रुत उत्तमः ।।१९

मद्यपान करने सुवर्ण या चाँदी के पात्र अथवा कमल पत्र के पात्र में खीर खाने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।६-७। द्यूत क्रीडा (जूए) या युद्ध में विजय प्राप्त होने से अत्यन्त सुख, अपने शरीर के जलने अथवा शिरोबन्धन से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।८। शुक्लवर्ण के वस्त्र एवं मालाओं से सुसज्जित अश्व के दर्शन, अथवा पशु-पक्षियों के मल के अनुलेपन करने से सदैव लाभ होना बताया गया है ।९। अश्ववाहन पर बैठने से शीघ्र एवं रथारोहण करने से संतानोत्पत्ति होती है, और भाँति-भाँति के शिर एवं भुजाओं के होने से श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती हैं ।१०। अगम्या के उपभोग करने से प्रतिष्ठा तथा वेदाध्ययन से उत्तम फल की प्राप्ति होती है । वीर ! देव, द्विज, गुरु, वृद्ध एवं तपस्वी इनमें से कोई भी स्वप्न में मनुष्य के लिए जो कुछ कहते हैं, उसे सत्य जानना चाहिए । खगाधिप ! इनके दर्शन तथा आशीर्वाद प्रशस्त बताये गये हैं ।११-१२। अपना शिरच्छेदन करने से राज्य लाभ और अनेक प्रकार से छेदन करने से धन की प्राप्ति, रुदन करने से भक्ष्य पदार्थ की प्राप्ति, शृंखला (वेणी) बन्धन से राज्य, पर्वत, अश्व, सिंह, वृषभ, तथा गजराज पर तीव्रता से आरोहण करने से महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।१३-१४। ग्रहों एवं ताराओं के ग्रहण करने, मरीचि महर्षि के परिवर्तन करने तथा पर्वतों के उन्मूलन करने से इस भूतल में राजा होता है ।१५। खगाधिप ! देह से सभी अंतड़ियों के निकलने तथा समुद्र-सरिताओं के पान करने से ऐश्वर्य-सुख की प्राप्ति होती है ।१६। खगाधिप ! जो सेनाओं, एवं समुद्र का अवगाहन तथा तीर्थ-पार की यात्रा करता है, उसे वीर तथा निश्चल सन्तान की प्राप्ति होती है ।१७। यदि कीड़े काटें, तो शीघ्र धनागम, सौन्दर्यपूर्ण अंगों के दर्शन से लाभ, मांगलिक दर्शन से उत्तम संयोग, आरोग्य एवं धन की प्राप्ति होती है ।१८। जिस स्वप्न में ऐश्वर्य एवं राज्य लाभ बताया गया है, उसमें सात अवश्य है, इसमें संदेह नहीं । चार से उत्तम श्रवण,

---

१. दर्शन इति शेषः ।

पञ्चभिः [1]पुत्रबाहुल्यं षड्भिरायुः सुतान्धनम् । सप्तभिर्विविधान्कामानष्टभिर्विविधं यशः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनं
नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९४।

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनम्

अनूरुरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि सप्तमीनां परं विधिम् । सर्वासामनुरूपाणां कथयस्व महामुने ॥१

सप्ताश्वतिलक उवाच

शृणु वीर खगश्रेष्ठ सप्तमीनां परं विधिम् । कीर्तयिष्यामि ते सर्वं यथावत्परिपृच्छते ॥२
तुल्यं किल खगश्रेष्ठ यथाख्यातं दिवस्पता । शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥३
पुत्रदारधनक्षेत्रे गृह्णीयात्सप्तमीव्रतम् । ऋषिभिर्ज्ञानसम्पन्नैः सर्वकामफलप्रदैः ॥४
सप्तम्यः सप्त आख्यातास्तासां नामानि मे शृणु । अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा ॥५

पाँच से पुत्र की अधिकता छः से आयु, पुत्रों एवं धन की प्राप्ति, सात से भाँति-भाँति की कामनाओं की सफलता और आठ से अनेक प्रकार के यश की प्राप्ति होती है।१९-२०

श्री भविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प के सूर्यारुणसंवाद में स्वप्न वर्णन नामक
एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त।१९४।

अध्याय १९५

सूर्यारुण संवाद में स्वप्न वर्णन

अनूरु ने कहा—हे भगवन्, महामुने ! सभी सप्तमियों के उत्तम विधान जानने की इच्छा है, आप उसे क्रमशः सुनाने की कृपा करें।१

सप्ताश्वतिलक बोले—वीर, खगश्रेष्ठ ! तुम्हारे पूंछने पर सभी सप्तमियों के उत्तम विधान का यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, सुनो।२। खगश्रेष्ठ ! यह वर्णन वैसा ही होगा, जैसा कि सूर्य ने पहले बताया था। सूर्य के उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन जो पुत्र, स्त्री अथवा धन के क्षेत्र (राशि) के दिन भी हो, सप्तमी व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। ज्ञान सम्पन्न एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले ऋषियों ने सात सप्तमियों का वर्णन किया है, उनके नामों को सुनो ! अर्क संपुटक वाली पहली, मरिचवाली दूसरी, निंबपत्र वाली तीसरी, चौथी फल सप्तमी और सातवीं कामिका नामक

---

१. लभेतेति शेषः, एवमायुरादीनि कर्मणि लाभक्रियायामन्वितानीत्यपि बो

तृतीया निम्बपत्रैश्च चतुर्थी फलसप्तमी । सप्तमी कानिका नाम्ना विधिमासां निबोध मे ॥६
पञ्चम्यामेकभक्तं तु कुर्यान्नियतमानसः । अल्पाहारं न कुर्वीत मैथुनं दूरतस्त्यजेत् ॥७
वर्जयेन्मधु मांसं च अत्यम्लं च खगाधिप । प्रभाते चैव षष्ठ्यां तु एकैकपर्णसम्पुटे ॥८
घृतशाल्योदनं कृत्वा भक्षयेत्तु विधानतः । अन्यदन्नमभुञ्जानः सप्तम्यां भोजनं भवेत्॥९
एकैकवृद्ध्याभियुक्तैर्यो वसेत्तु खगेश्वर । अन्यत्र मरिचं भक्षेन्निम्बपत्राण्यतः परम् ॥१०
एवं लब्धफलानीह पक्षयोरुभयोरपि । अन्नाद्यै रहितो यत्नादनोदन इति स्मृतः ॥११
आचरेद्विधिवद्भक्त्या पूजयित्वा विभावसुम् । अहोरात्रं वायुभक्षः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ॥१२
एकैकं सप्त सप्तमीरत्रैव विधिवच्चरेत् । प्रालेख्य तासां नामानि पत्रकेषु पृथक्पृथक् ॥१३
तानि सर्वाणि नामानि विलेख्य सुसमाहितः । श्वेतचन्दनदिग्धाङ्गे माल्यदामोपशोभिते ॥१४
सप्तधान्यहिरण्याढ्ये शशिकुन्देन्दुसन्निभे । अश्वत्था शोकपत्राढ्ये दध्योदनसमिन्वते ॥१५
तदर्थं पूजयेद्भक्त्या तैस्तैर्दृष्टैर्न संशयः । दृष्ट्वा तु शोभनं स्वप्नं न भूयः शयनं स्वपेत् ॥१६
प्रातश्च कीर्तयेत्स्वप्नं यथादृष्टं खगाधिप । प्राज्ञभोजकविप्रेभ्यः सुहृद्भ्यश्च खगाधिप ॥१७
ततो मध्याह्नसमये स्नातः प्रयतमानसः । तं चैव देवं विधिवत्पूजयित्वा दिवाकरम् ॥१८

सप्तमी बतायी गई है। इनके विधानों को मैं बता रहा हूँ, सुनो। संयमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर पञ्चमी में एक भक्त करे उसमें अल्पाहार होना चाहिए और मैथुन का तो दूर से ही त्याग करना बताया गया है। खगाधिप ! शहद, मांस, अत्यन्त दुखी वस्तु का सर्वथा त्याग करना चाहिए। प्रातःकाल षष्ठी में एक-एक पत्ते की दोनियाँ बनाकर उसमें प्रत्येक में घी मिश्रित साठी चावल के भात रखकर विधान समेत भक्षण करे, अन्य किसी अन्न का नहीं, पश्चात् सप्तमी में भोजन-विधान बताया गया है।३-९। खगेश्वर ! एक-एक की वृद्धि पूर्वक उसे सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार दूसरी को मरिच (मिर्च), तथा तीसरी में निंबपत्र का पारण बताया गया है। इस प्रकार दोनों पक्षों के सप्तमी-व्रतानुष्ठान से फलों की प्राप्ति बतायी गयी है। चौथी सप्तमी को फल द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए, इसीलिए अन्नादि रहित होने के नाते उसे 'अनोदन' भी कहा जाता है।१०-११। विजयासप्तमी में विधानपूर्वक सूर्य की आराधना करते हुए दिन रात वायु भक्षण करके ही व्रत की समाप्ति होनी चाहिए। प्रत्येक सप्तमी के व्रतानुष्ठान को विधानपूर्वक सुसम्पन्न होना आवश्यक बताया गया है। पर्चों में उनके नामों को पृथक्-पृथक् लिखकर उस (सूर्य) मूर्ति की सन्निधि में, जिसके अंग श्वेतचन्दन से चर्चित, मालाओं से विभूषित, सप्तधान्य एवं हिरण्य में स्थित, चन्द्र, कुन्द, इन्दु के समान वर्ण, पीपल तथा अशोक के पत्तों की ढेरियों समेत और दही मिश्रित भात युक्त सुशोभित हो, स्थापित कर भक्तिपूर्वक तदर्थ पूजन करने से वे (स्वप्न में) अवश्य दिखायी पड़ते हैं, इसमें संदेह नहीं। सुन्दर स्वप्न देखकर पुनः निहित शयन न करना (सोना नहीं चाहिए) चाहिए। खगाधिप ! प्रातःकाल उठकर देखने के अनुसार स्वप्न का वर्णन करें, खगाधिप ! विद्वान् भोजक, ब्राह्मण अथवा मित्रों के ही सामने उसकी चर्चा करनी चाहिए।१२-१७। पश्चात् मध्याह्नकाल में संयमपूर्वक स्नानकर विधानपूर्वक सूर्य देव की पूजा करे।१८। मौन धारण कर भली-भाँति जपपूर्वक मनुष्य को हवन

सम्यक्कृतजपो मौनी नरो हुतहुताशनः । निष्क्रम्य देवायतनाद्भोजकाय निवेदयेत् ।।१९

भवेदलाभो यदि भोजकानां विप्रास्तमर्हन्ति पुराणविज्ञाः ।
ये मन्त्रवेदावयवेषु निश्चिता विभुं समभ्यर्च्य दिवं व्रजेयुः ।।२०

कृत्वैवं सप्तमीः सप्त नरो भक्तिसमन्वितः । श्रद्दधानोऽपि सूर्यस्य स कथं नाप्नुयात्फलम् ।।२१
दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत् । तत्फलं सप्तमी सप्त कृत्वा भक्त्या लभेत ना ।।२२
दुष्पापं नास्ति तद्वीर सप्तम्यां यन्न दह्यते । न च रोगोऽस्त्यसौ लोके य एताभिर्न शाम्यति ।।२३
कुष्ठानि यानि रौद्राणि दुश्छेद्यानि भिषग्जनैः । नीयन्ते तानि सर्वाणि गरुडेनेव पन्नगाः ।।२४

सकलविबुधमान्यं स्वप्रकाशं जनानामभिमतफलदाने दीक्षितं तं सुपूज्यम् ।
सुतधनकुलभोगैः सौख्यपुण्यैरुपेतो व्रजति च सुतनुं कां शाश्वतां तिग्मरश्मेः ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९५।

कर्म समाप्त करना चाहिए, पश्चात् देवालय से निकल कर किसी भोजक से उसका निवेदन करे। भोजक अप्राप्य होने पर किसी पुराणवेत्ता ब्राह्मण से जो मंत्र एवं वेद के प्रत्येक अंग का निश्चित मर्मज्ञ हों, तथा सूर्य की उपासना में रत रहकर स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक हों, उनसे उस स्वप्न की चर्चा करें। इस प्रकार मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा सम्पन्न होकर सातों सप्तमी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करे, तो उसे वे फल प्राप्त क्यों नहीं होंगे ? दश अश्वमेध यज्ञ के सुसम्पन्न करने पर जिन फलों की प्राप्ति बतायी गयी है, वे फल भक्तिपूर्वक सातों सप्तमी के सम्पन्न करने पर मनुष्य को प्राप्त होते हैं। वीर ! कोई भी इस प्रकार का दुष्पाप नहीं है, जो सप्तमी में दग्ध न हो जाये, कोई रोग ऐसे नहीं, जिनका शमन इन सप्तमियों द्वारा न हो सके। भीषण कुष्ठ के रोग जितने बताये गये हैं, जो वैद्यों द्वारा दुर्भेद्य हैं, वे सभी गरुड़ द्वारा साँप की भाँति इस अनुष्ठान के प्रारम्भ करने से विलीन हो जाते हैं। समस्त देवों के सर्वमान्य, स्वप्रकाशित, मनुष्यों के अभीष्ट फल-प्रदायक उस दीक्षित सूर्य की विधानपूर्वक आराधना सुसम्पन्न करने से पुत्र, धन, उत्तम कुल के उपभोगपूर्वक पुण्ययुक्त सौख्यों की प्राप्ति होती है, और पश्चात् उनके शरीर की प्राप्ति कर उत्तम लोक की प्राप्ति भी।१९-२५

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म के सूर्यारुण संवाद में स्वप्न वर्णन नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त।१९५।

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नामपूजाविधिवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतीत्य भुक्तं पुरुषः सप्तम्यां गरुडाग्रज । मैत्रीं विदध्यात्सर्वत्र जीवहिंसां विवर्जयेत् ॥१
सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलं वस्त्रं न धारयेत् । न शयीत स्त्रिया सार्धं न सेवेत दुरोदरम् ॥२
न रुद्यादश्रुपातेन न वा ध्यायेत्पिशाचकान् । नाकृषेच्छिरसो यूका न वृथावादमाचरेत् ॥
परस्यानिष्टकथनमतिवादं च वर्जयेत् ॥३
न कञ्चित्ताडयेज्जन्तुं न विशेत्[1] कदाचन । ब्रह्महत्यामवाप्नोति विशमानो रवेर्गृहम् ॥४
इत्येते समयाः प्रोक्ताः सौराणां गरुडाग्रज । भोजकानां विशेषेण पुरा मे भानुनानघ ॥५
भोजकः खगशार्दूल यो लोभाद्द्रव्यमुत्सृजेत् । वृद्ध्यर्थं तु सततं वीर स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ॥६
विशेषे चाल्पकशते कामयाने खगाधिप । प्रयुज्यमानो भोजकस्तु पञ्चकेन शतेन वै ॥७
प्रायश्चित्ती भवेद्वीर न चार्हः पूजने रवेः । कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं ततः सम्पूजयेद्रविम् ॥८
नान्यदेवप्रतिष्ठा तु कर्तव्या भोजकेन तु । कृत्वा तु तां खगश्रेष्ठ प्रायश्चित्तीयते नरः ॥९

अध्याय १९६

नामपूजा विधि का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—गरुडाग्रज ! पुरुष को सप्तमी में भोजन करके सर्वत्र मैत्री स्थापन पूर्वक जीव हिंसा का त्याग करना चाहिए ।१। सप्तमी में तेल का स्पर्श नील वस्त्र का धारण, स्त्री के साथ शयन, दुष्ट का साथ, अश्रुपात समेत रुदन, पिशाचों के ध्यान, सिर से खींचकर जूयें निकालना, और निरर्थक वाद ये सभी कर्म वर्जित हैं उसी प्रकार दूसरे का अनिष्ट कहने एवं अत्यन्त वाद-विवाद का भी परित्याग करना आवश्यक है ।२-३। इस समय किसी भी जीव को आघात न पहुँचाये और सूर्य मन्दिर में कदापि न प्रवेश करे, क्योंकि सूर्य गृह में प्रविष्ट होने पर उसे ब्रह्महत्या का पातक प्राप्त होता है ।४। गरुडाग्रज ! सूर्य भक्तों के लिए इन प्रतिज्ञाओं के पालन करने आवश्यक हैं । विशेषकर भोजकों को अनघ ! इसे सूर्य ने मुझे पहले ही बताया था । खगशार्दूल ! जो भोजक लोभवश वृद्धि (ब्याज) के लिए धन को बाँटता है, वीर ! उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है ।५-६। खगाधिप ! जो भोजक शताधिक या उससे अल्प ब्याज की इच्छा से पाँच सौ तक द्रव्य के देन-लेन करता है, वह बिना प्रायश्चित के सूर्य-पूजा के योग्य नहीं होता है, उसे 'सांतपन नामक कृच्छ्र' व्रत सम्पन्न करने के उपरांत सूर्य पूजन करना बताया गया है ।७-८। खगश्रेष्ठ ! भोजक को कभी किसी अन्य देवता की प्रतिष्ठा न करनी चाहिए क्योंकि उसे वैसा करने पर प्रायश्चित करना आवश्यक हो जाता है ।९। खगसत्तम ! इसलिए भोजक को चाहिए कि

---

१. रवेर्गृहमिति शेषः अत एवाग्रिमे—'ब्रह्महत्यामवाप्नोति' इत्याद्युक्तं संगच्छते ।

तस्मात्तु तां न कुर्याद्वै भोजकः खगसत्तम । मुक्त्वा तु भास्करं देवं नान्यं देवं निवेदयेत् ॥१०
कृत्वाधिवेशं देवानां ब्रह्मादीनां खगाधिप । भोजको न स्पृशेद्भानुं कुर्यात्कृच्छ्रं च शुद्धये ॥११
कृत्वा तु कृच्छ्रं विधिवच्छुद्धेर्हेतुं खगाधिप । ततः पूजयितुं भानुमधिकारी भवेन्नरः ॥१२
न दिग्जातं प्रदातव्यं न म्लानं न च दूषितम् । न च पर्युषितं माल्यं दातव्यमृद्धिमिच्छता ॥१३
देवमुल्लोचयेद्यस्तु स खलः पुष्पलोभतः । पुष्पाणि च सुगंधीनि भोजको नेतराणि च ॥१४
ब्रह्महत्यामवाप्नोति भोजको लोभमोहितः । महारौरवमासाद्य पच्यते शाश्वतीः समाः ॥१५
हन्त ते कीर्तयिष्यामि धूपदानविधिं परम् । प्रदाने देवदेवस्य येन धूपेन यत्फलम् ॥१६
सदा चन्दनधूपेन सान्निध्यं कुरुते रविः । प्रदद्यान्मानसे चैव यद्यदिच्छति मानवः ॥१७
तथैवागुरुधूपेन वरं दद्यादभीप्सितम् । आरोग्यं वा स्त्रियं प्रेप्सुर्नित्यदा गुग्गुलं दहेत् ॥१८
मङ्गलं धूपदानेन सदा यच्छति भानुमान् । आरोग्यं च स्त्रियंदद्यात्सौख्यं च परमं भवेत् ॥१९
सदा कुङ्कुमधूपेन सौभाग्यं लभते नरः । श्रीवासकस्य धूपेन वाणिज्यं सफलं भवेत् ॥२०
रसं सर्वरसोपेतं ददतोऽर्थागमो ध्रुवम् । देवदारुं च दहतो भवत्यन्नं तथाक्षयम् ॥२१
विलेपनं कुङ्कुमेन सर्वकामफलप्रदम् । इह लोके सुखी भूत्वा दाता स्वर्गमवाप्नुयात् ॥२२
चन्दनस्य प्रदानेन श्रियमायुश्च विन्दति । रक्तचन्दनदानेन सर्वं दद्याद्दिवाकरः ॥२३

भास्कर देव के अतिरिक्त किसी देवता से कभी निवेदन न करे।१०। खगाधिप ! भोजक ब्रह्मादि देवताओं के पूजन करके सूर्य स्पर्श का अधिकारी नहीं रह जाता है, प्रत्युत आत्मशुद्धि के लिए उसे 'कृच्छ्र' व्रत करना आवश्यक हो जाता है।११। खगाधिप ! आत्मशुद्धि के लिए विधानपूर्वक कृच्छ्र व्रत की समाप्ति के अनन्तर वह पुरुष सूर्य-पूजन का अधिकारी होता है।१२। समृद्धि के इच्छुक को चाहिए कि अनिश्चित, म्लान, दूषित, एवं पर्युषित (वासी) माला सूर्य के लिए अर्पित न करें।१३। पुष्प के लोभवश जो सूर्य देव का वितान बना लेता है, उसे दुष्ट समझना चाहिए। भोजकों को सुगन्धित पुष्पों के वितान बनाने चाहिए, अन्य के नहीं। अन्यथा लोभ-मुग्ध भोजक को ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप महारौरव नामक नरक में अनेकों वर्ष रह कर 'पकना' आवश्यक होता है।१४-१५। अब मैं तुम्हें धूप-दान का उत्तम विधान जिसमें देवाधिदेव (सूर्य) को किस प्रकार की धूप देने से किस फल की प्राप्ति होती है, (विवेचन पूर्वक) कथित हैं, बता रहा हूँ।१६। चंदन की धूप प्रदान करने से सूर्य उस मनुष्य के मानसिक कामनाओं की पूर्ति सदैव करते रहते हैं।१७। उसी भाँति अगुरु की धूप देने से अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति, गुग्गुल की धूप प्रदान करने से आरोग्य और प्रेयसी की प्राप्ति होती है इस भाँति धूपदान से सदैव सूर्य कल्याण करते रहते हैं, तथा आरोग्य, स्त्री, एवं उत्तम सौख्य की भी प्राप्ति होती है।१८-१९। कुंकुम की धूप से सौभाग्य श्री वासक धूप द्वारा वाणिज्य (व्यापार) की सफलता, समस्त रसों समेत रस प्रदान करने से निश्चित धनागम, एवं देवदारु की धूप प्रदान करने से अक्षय अन्न की प्राप्ति होती है।२०-२१। कुंकुम का लेप समस्त कामनाओं को सफल करने वाला बताया गया है इससे इस लोक में सुखानुभव के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है।२२। चन्दन के लेप प्रदान करने से श्री, और आयु तथा रक्त चन्दन के लेप से सूर्य सभी कुछ प्रदान करते हैं।२३। एवं सैकड़ों रोगों से ग्रस्त होने पर भी

अपि रोगशतैर्ग्रस्तैः क्षिप्रारोग्यमवाप्नुयात् । वर्तिगन्धैश्च सौगन्ध्यं परमं विन्दते नरः ॥२४
कस्तूरिकालेपनकैरैश्वर्यमतुलं लभेत् । कर्पूरसंयुतैर्गन्धैः क्ष्माधिपाधिपतिर्भवेत् ॥२५
चतुः समेन गन्धेन किं तुल्यं प्राप्नुयान्नरः । देवागारं तु तन्मन्ये भक्त्या य उपलेपयेत् ॥२६
स रोगान्मुच्यते क्षिप्रं पुरुषो भोगवान्भवेत् । अष्टादशेह कुष्ठानि ये चान्ये व्याधयो नृणाम् ॥
प्रलयं यान्ति ते सर्वे मृदा यद्युपलेपयेत् ॥२७
प्रलेपनानां सर्वेषां रक्तचन्दनमुत्तमम् । नातः परतरं किञ्चिद्भानोस्तुष्टिकरं परम् ॥२८
किं तस्य न भवेल्लोके यो ह्यनेन प्रलेपयेत् । सर्वकामसमृद्धोऽसौ सूर्यलोके महीयते ॥२९
उपलिप्य रवेर्गेहं कुर्याद्वै मण्डलं पुनः । एकेनाथ समाप्नोति भाग्यमारोग्यमुत्तमम् ॥३०
त्रिभिः सप्तभिरच्छिन्नैः बालो वान्योऽपि यो नरः । तेन प्रदापयेद्देवान्कुर्यात्तान्न निवारयेत् ॥
अनेन विधिना कुर्याद्यावतीः सप्त सप्तमीः ॥३१
एता वै सप्त सप्तम्यो यथाप्रोक्ता विवस्वता । कुर्वीत यो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३२
अर्कसम्पुटकैर्वित्तं मरिचैः प्रियसङ्गमम् । निम्बपत्रैः रोगनाशं फलैः पुत्रान्यथेप्सितान् ॥
धनं धान्यं सुवर्णं च ततो दद्याद्विवस्वते ॥३३
जयं प्राप्नोति विपुलं कृत्वा सर्वत्र खेचर । सर्वान्कामान्कामिकस्तु प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥३४

(वह पुरुष) शीघ्र आरोग्य हो जाता है। बत्ती के गंध प्रदान करने से मनुष्य को उत्तम सुगन्धि की प्राप्ति होती है।२४। कस्तूरी के लेप से असाधारण ऐश्वर्य की प्राप्ति कपूरमिश्रित सुगंध के लेप से वह 'महाराजा' (राजाओं के राजा) होता है।२५। चारो गंधों के लेप करने से मनुष्य को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे असाधारण हैं (अर्थात् उनकी उपमा नहीं की जा सकती) किन्तु वह देवलोक के रूप में है, भक्तिपूर्वक जो मनुष्य उसका लेप करता है, मानो वह एक देवालय की रचना कर सूर्य को प्रदान करता है।२६। उससे वह पुरुष शीघ्र रोगमुक्त होकर भोगों के उपभोग प्राप्त करता है। मनुष्यों के अट्ठारह भाँति के कुष्ठ और अन्यव्याधियाँ भी शान्ति हो जाती हैं, यदि वह मिट्टी के उपलेपन प्रदान करता है।२७। सभी उपलेपों में रक्त चन्दन का उपलेप अत्यन्त प्रशस्त बताया गया है, यहाँ तक कि सूर्य को प्रसन्न करने के लिए इसके समान दूसरा कोई लेप है ही नहीं।२८। इसके उपलेप प्रदान करने वाले पुरुष के यहाँ किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती ? अर्थात् सभी वस्तुएँ सदैव वर्तमान रहती हैं, इस लोक में समस्त कामनाओं को सफल कर वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है।२९। उसी एक ही वस्तु से सूर्य के गृह के लेप तथा उनके लिए मण्डल बनाने से भाग्य और उत्तम आरोग्य, दोनों की प्राप्ति होती है।३०। उपरोक्त सभी धूपों अथवा किसी एक ही धूप का प्रदान कोई बालक या अन्य पुरुष करे तो करने से इस प्रकार इस विधान द्वारा सातों सप्तमी का व्रत समाप्त करना चाहिए। सूर्य की बतायी हुई इन सातों सप्तमियों का व्रत विधान द्वारा जो मनुष्य भक्ति पूर्वक समाप्त करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।३१-३२। अर्क संपुट वाली (सप्तमी) से धन, मरिचवाली से प्रिय का साथ, निम्बपत्र वाली से रोगनाश, और फूल वाली सप्तमी के व्रत से मनोनुकूल पुत्रों की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् यथा शक्ति धन धान्य, एवं सुवर्ण सूर्य के लिए प्रदान करना चाहिए।३३। आकाशगामिन् ! इस भाँति उसे सुसम्पन्न करने से सर्वत्र जय की प्राप्ति तथा उस कामना वाले की समस्त कामना सफल होती है, इसमें

नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं सप्तमीव्रतम् । यः करोति खगश्रेष्ठ स याति परमं पदम् ॥३५
न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् । ये भक्त्या लोकनाथस्य व्रतिनः संयतेन्द्रियाः ॥३६
सर्वयज्ञफलं तेषां यथा वेदोदितं भवेत् । ब्रह्मेन्द्रविष्णवस्तेन पूजिता नात्र संशयः ॥३७
नान्धो न कुष्ठी न क्लीबो न व्यङ्गो न च निर्धनः । कदापि च भवेत्कश्चिद्यश्चरेत्सप्तमीव्रतम् ॥३८
पुत्रार्थी सुतिसम्पन्नाल्लभेत्पुत्रांश्चिरायुषः । न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् ॥
भोगार्थी लभते भोगान्व्रतेनानेन सुव्रत ॥३९
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाच्च व्रतभङ्गो यदा भवेत् । प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ॥४०
सप्तैव यास्तस्त्वम्यः सम्प्राप्ताः गुरुणा खग । तासु भास्करमभ्यर्च्य माल्यधूपादिभिर्नरः ॥
भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या प्राप्नुयात्स्वर्गमक्षयम् ॥४१
सप्तम्यां विप्रमुख्येभ्यो योऽन्नं दद्यात्खगेश्वर । तदक्षयं भवेत्तस्य स च सूर्यगृहं व्रजेत् ॥४२
इति ते कीर्तितं वीर सप्तमीव्रतमुत्तमम् । भूय एवाभिधास्यामि शृणु मे वदतोऽनघ ॥४३
येन व्रतप्रभावेण कामिकं फलमश्नुते । सप्तमीं खगशार्दूल शुक्लां द्वादशनाम्निकाम् ॥४४
गोमूत्रगोमयाहारः षड्वृताहार एव च । अथ वा यावकाहारः शीर्णपर्णाशनोऽपि वा ॥४५
क्षीराशी चैव भक्तं वा सिक्थाहारोऽथवा पुनः । जलाहारोथ वा विद्वान्पूजयेत दिवाकरम् ॥४६

सन्देह नहीं । खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार विधान पूर्वक सप्तमी व्रत की समाप्ति पुरुष स्त्री कोई भी करे तो उसे परम पद की प्राप्ति होती है।३४-३५। और लोकनाथ (सूर्य) की भक्ति एवं संयम पूर्वक व्रतानुष्ठान करने वालों के लिए तीनों लोकों में कोई वस्तु अप्राप्य भी नहीं रहती है।३६। समस्त यज्ञों के फल जो वेदों में बताये गये हैं इससे उसे सभी फल प्राप्त होते हैं और ब्रह्मा, इन्द्र, एवं विष्णु सभी उससे पूजित हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं।३७। सप्तमी व्रतानुष्ठान करने वाला कोई भी हो वह अंधा, कुष्ठी, नपुंसक, व्यंग तथा निर्धन कभी भी नहीं होता है।३८। पुत्र की कामना वाले प्राणी वैदिक विद्वान्, एवं चिरायु पुत्रों की प्राप्ति करते हैं। उन्हें भी तीनों लोकों में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं रहती है। सुव्रत ! इस व्रत के प्रभाव से भोगी सभी उपभोगों को प्राप्त करते हैं।३९। क्रोध, प्रमाद, अथवा लोभ वश कभी व्रत भंग हो जाने पर प्रायश्चित्त करके पुनः व्रती होना चाहिए।४०। खग ! गुरुओं द्वारा बतायी गयी सातों सप्तमी के उपस्थित होने पर मनुष्य को माला धूप आदि द्वारा भास्कर की अर्चना करने के उपरांत यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए उससे उसे अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है।४१। खगेश्वर ! सप्तमी में प्रधान ब्राह्मणों को अन्न प्रदान करने से वह उसके लिए अक्षय होता है, और पश्चात् उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।४२। वीर ! इस प्रकार मैने सातों सप्तमी का व्रत विधान तुम्हें बता दिया। अनघ ! मैं पुनः उसी बात को बता रहा हूँ सुनो ! ।४३। खगशार्दूल ! जिस व्रत के प्रभाव से सकाम पुरुषों की कामनाएँ सफल होती है, उन द्वादश नाम वाली शुक्ल सप्तमी को भी बता रहा हूँ।४४। गोमूत्र, गोबर, षडवृत, यावक (लप्सी), विशीर्ण (फटे पुराने सूखे पत्ते), क्षीर, भात, सिक्थ (मधु मक्खियों से अवशिष्ट शहद), एवं जल, इन्हीं वस्तुओं के आहार करके भास्कर की उपासना करनी चाहिए।४५-४६। द्विजश्रेष्ठ ! भाँति

पुष्पोपहारैर्विविधैः पद्मसौगन्धिकोत्पलैः । नानाप्रकारैर्गन्धैश्च धूपैर्गुग्गुलुचन्दनैः ॥४७
कृशरैः पायसाद्यैर्वा विविधैश्च विभूषणैः । अर्चयित्वा द्विजश्रेष्ठ भक्ष्यवस्त्रादिभूषणैः ॥४८
सर्वपक्षफलं प्राप्य सूर्यलोकं ततो व्रजेत् । तपसोऽन्ते ततो वीर कुले महति जायते ॥४९
यथाक्रमं प्रयत्नेन नामानि परिकीर्तयेत् । माघे च फाल्गुने मासि चैत्रे च गरुडाग्रज ॥५०
वैशाखे त्वथ ज्येष्ठे तु आषाढे श्रावणे तथा । मासि भाद्रपदे वीर तथा चाश्वयुजे खग ॥५१
मार्गशीर्षे तथा पौषे पूजयेत्सततं रविम् । विभावसुं विवस्वन्तं भास्करं पक्षिसत्तम ॥५२
विकर्तनं पतङ्गं च सहस्रांशुं खगाधिप । एतानि देवनामानि मासेष्वेतेषु खेचर ॥५३
पूजयेद्देवदेवेशं देवानामपि दुर्लभम् । एवं क्रमेण तीक्ष्णांशुं नामभिः परिपूजयेत् ॥५४
इत्येवं ते समाख्यातं मया गुह्यमिदं खग । अभक्ताय न दातव्यं नाशिष्याय कथञ्चन ॥५५
न च पापकृते वीर दातव्यं विनतात्मज । व्याधेस्तु नाशनार्थाय देयं विप्राय सुव्रत ॥५६
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति श्रुत्वा च विधिवत्खग ॥५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सौरधर्मे सप्तमीकल्पे नामपूजाविधिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९६।

भाँति के पुष्पोपहार, रक्तकमल, नीलकमल, अनेक प्रकार की गंध, धूप, गुग्गुल, चन्दन, कृशरान्न (खिचड़ी), खीर, अनेक भाँति के आभूषण, भक्ष्य एवं वस्त्रादि वस्तुओं द्वारा सूर्य की पूजा करने पर समस्त पक्ष के फलों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । वीर ! पश्चात् वह प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न होता है ।४७-४९। क्रमशः उनके नाम भी बता रहा हूँ । गरुडाग्रज ! माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण, भाद्रपद, आश्विन (कार्तिक) मार्गशीर्ष और पौष इन मासों में निरन्तर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । पक्षिसत्तम ! विभावसु, विवस्वान्, भास्कर, विकर्तन, पतंग, एवं सहस्रांशु, इन मासों में सूर्य के इन्हीं नामों की पूजा होती है ।५०-५३। आकाशगामिन् ! देवाधिदेव (सूर्य) के तीक्ष्णांशु आदि नाम से क्रमशः उनकी पूजा जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ हैं, करनी चाहिए ।५४। खग ! इस प्रकार तुम्हें इन बातों को बता दिया गया, इसे अभक्त तथा अशिष्य को कभी न प्रदान करना चाहिए ।५५। वीर, विनतात्मज, किसी पापी को भी इसे न देना चाहिए । सुव्रत ! रोग-मुक्त होने के लिए ब्राह्मण को बता देना अनुचित नहीं है । खग ! इसके प्रदान या विधान पूर्वक श्रवण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।५६-५७

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सौर धर्म के सप्तमी कल्प में नाम पूजाविधि वर्णन नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९६।

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वराटिकावर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पुष्पधूपानिकामिकम् । येन येन तु दानेन तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।।१
मालतीकुसुमैः पूजा भवेत्सान्निध्यकारिका । आरोग्यं करवीरैस्तु भवत्यर्थश्च शाश्वतः ।।२
ऐश्वर्यमतुलं चैव यशश्च विपुलं तथा । मल्लिकायाश्च कुसुमैर्भगवत्सम्मुखो भवेत् ।।३
सौभाग्यं पुण्डरीकैस्तु परमैश्वर्यमाप्नुयात् । कमलोत्पलकुन्दैस्तु यशो विद्या बलं भवेत् ।।४
नानाविधैः सुकुसुमैः क्षिप्रं रोगात्प्रमुच्यते । भवत्यक्षयमन्नं च नित्यमर्चयतो रविम् ।।५
मन्दारकुसुमैः पूजा सर्वकुष्ठनिवारिणी । बिल्वस्य पत्रकुसुमैर्महतीं श्रियमाप्नुयात् ।।६
अर्कस्रजा भवत्यर्कः सर्वदा वरदः प्रभुः । प्रदद्याद्रूपिणीं कन्यामर्चितो बकुलस्रजा ।।७
किंशुकैः पूजितो देवो न पीडयति भास्करः । अगस्त्यकुसुमैः सिद्धिं सानुकूल्यं प्रयच्छति ।।८
स्वयं रूपवतीं दद्यात्पूजितश्चम्पकस्रजा । निरुद्वेगो भवेन्नित्यं पूजितः पुष्पमालया ।।९
अशोककुसुमैर्देवमर्चयेद्यो दिवाकरम् । आम्रातकस्य कुसुमं निर्माल्यमिव दृश्यते ।।१०

अध्याय १९७

वराटिका का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—इसके उपरांत मैं कामना सफल करने वाले उन पुष्प एवं धूपों को जिसमें यह बताया गया है कि किसके प्रदान करने से किन फलों की प्राप्ति होती है बता रहा हूँ ।१। मालती पुष्प से पूजा करने पर सूर्य का सान्निध्य, करवीर (कनेर) द्वारा पूजा करने पर निरन्तर अर्थागम, असाधारण ऐश्वर्य, तथा विपुल यश की प्राप्ति होती है । मल्लिका (मालती) पुष्पों द्वारा अर्चना करने पर भगवान् सूर्य की विशेष कृपा, पुण्डरीक से सौभाग्य, उत्तम ऐश्वर्य, रक्तकमल, नीलकमल एवं कुंद पुष्पों द्वारा यश, विद्या, एवं बल की प्राप्ति होती है ।२-४। अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों द्वारा शीघ्र रोग मुक्ति, सूर्य की नित्य उपासना करने से अक्षय अन्न, मंदार पुष्पों द्वारा सभी भाँति के कुष्ठों के नाश, विल्पपत्र एवं कुसमों द्वारा महान् श्री, प्राप्त होती है ।५-६। मंदार की माला अर्पित करने से सूर्य सदैव वर प्रदान करते रहते हैं । वकुलपुष्पों की माला द्वारा उपासना करने पर सूर्य रूपसौन्दर्यपूर्ण कन्या प्रदान करते हैं ।७। किंशुक द्वारा पूजा करने पर (सूर्य) देव पीडित नहीं करते हैं, और अगस्त्य पुष्पों द्वारा पूजा करने पर मनोनुकूल सिद्धि प्रदान करते हैं ।८। चंपे की माला प्रदान करने से रूपवती कन्या, पुष्पमाला अर्पित करने से नित्य निरुद्वेग (शांति) प्राप्त होता है ।९। अशोक पुष्प से भी पूजन करने वाला सुखी रहता है । आम्रातक (आमले) का पुष्प भी निर्माल्य की भाँति पवित्र बताया गया है ।१०। किन्तु उसका भीतरी

अप्रत्यग्रं बहिर्यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । नवभिस्त्वचलां कीर्तिं दशभिः सुखमुत्तमम् ॥११
भोगानेकादशेनेह प्राप्नुयान्नात्र संशयः । द्वादशेनाचलं राज्यं द्वादशाख्यमवाप्नुयात् ॥१२
प्रथमं पूजयेद्भक्त्या भूरूपं प्रणमेत्सदा । भुवर्नमो द्वितीयं च तृतीयं स्वर्नमेन्नरः ॥१३
महर्नमश्चतुर्थं तु पञ्चमं तु जनोनमः । तपो नमस्तथा षष्ठं नमः सत्यं तु सप्तमम् ॥१४
अष्टमं भूर्भुवश्चेति नवमं स्वेति खगसत्तम । दशमं अडतो वीर नमोल्काय तथा परम् ॥१५
द्वादशं तु खषोल्केति ॐ नमः पूजयेत्खग । एवं मण्डलकारी तु क्रमादेवं फलं लभेत् ॥१६
घृतदीपप्रदानेन चक्षुष्मान्जायते नरः । कटुतैलस्य दीपेन शत्रूणां संक्षयो भवेत् ॥
मधूकानां तु तैलेन सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१७
सम्पूज्य विधिवद्देवं पुष्पधूपादिभिर्नरः । यथाशक्त्या ततः पश्चान्नैवेद्यं तु प्रकल्पयेत् ॥१८
पुष्पाणां प्रवरा जाती धूपानां चैव चन्दनम् । गन्धानङ्कुङ्कुमं श्रेष्ठं मोदकाश्च निवेदने ॥१९
एतैस्तुष्यति देवेशः सान्निध्यं चाधिगच्छति । ददाति प्रवरानिष्टान्दातुश्च स्वर्गति तथा ॥२०
एवं सम्पूज्य विधिवत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् । प्रणम्य शिरसा देवं भास्करं तिमिरापहम् ॥
आरुह्य सुविमानं स याति भानोः सलोकताम् ॥२१
पुनः संपूज्य देवेशं जपं कुर्याद्यथेष्टकम् । हुताशने च जुहुयाद्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥
एवमेकैकशः कार्या सप्तम्यः सप्त सर्वदा ॥२२

भाग वहिर्याग में स्थित होने की भाँति दिखायी देता है, इसीलिए वह त्याज्य है । नव (प्रकार) के पुष्पों द्वारा निश्चल ख्याति, दश से उत्तम सुख, और एकादश (ग्यारह) से उपभोग प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं । बारह से अचल राज्य प्राप्त होता है, क्योंकि उसकी 'द्वादशाख्य' से प्रसिद्धि है ।११-१२। प्रथम भूरूप (सूर्य) का सदैव प्रणाम पूर्वक पूजन करे, दूसरे भुवरूप, तीसरे स्वर रूप, चौथे महः रूप, पाँचवें जन रूप, छठें तप रूप, सातवें सत्यरूप, आठवें भूरूप, नवें भुवरूप, दशवें भू से तप तक के रूप, ग्यारहवें उल्क और बारहवें खषोल्क की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार मंडल बनाकर क्रमशः पूजन करने वाला फलों की प्राप्ति करता है ।१३-१६। घी के दीपक प्रदान करने वाले पुरुष चक्षुष्मान् होते हैं, कड़वे तेल के दीपक द्वारा शत्रुनाश एवं महुवे के तेल से परम सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।१७। इस भाँति विधान पूर्वक सूर्य की पूजा के अनन्तर मनुष्य उन्हें नैवेद्य अर्पित करें ।१८। पुष्पों में श्रेष्ठ चमेली, धूपों में चन्दन, गंधों में कुंकुम, एवं नैवेद्यों में भोजन उत्तम बताया गया है ।१९। इन्हीं के अर्पण करने से देवेश सूर्य प्रसन्न होकर उसे अपना सानिध्य प्रदान करते हैं, तथा उसे मनोरथों की सफलता पूर्वक स्वर्ग भी प्राप्त होता है ।२०। इस प्रकार विधान पूर्वक उनकी पूजा, प्रदक्षिणा एवं शिर से प्रणाम करने पर अन्धकार नाशक सूर्य देव, उसे सौन्दर्य पूर्ण विमान द्वारा अपने उत्तम लोक में निवास प्रदान करते हैं ।२१। पूजा के उपरांत सूर्य देव का मन इच्छित जप भी करे, तथा विधान पूर्वक हवन भी । इस प्रकार सदैव एक-एक के क्रम से सातों सप्तमी के व्रतानुष्ठान करना चाहिए । आधी अंजलि जल का पान कर जिस सप्तमी के व्रत की समाप्ति की जाती है, वह सुख प्रदान करती हैं, तथा उसकी उदक सप्तमी के नाम से ख्याति है ।२२। वह सुख

उदकप्रसृति पीत्वा क्रियते या तु सप्तमी । सा ज्ञेया सुखदा वीर सदैवोदकसप्तमी ॥२३
या काचित्सप्तमी नोक्ता तां ते वक्ष्यामि सर्वदा । वराटिका क्रमेणाप्तं यत्किञ्चित्प्रतिभक्षयेत् ॥२४
अनेन देयमूल्येन यल्लब्धं तत्प्रभक्षयेत् । अभक्ष्यं चापि भक्ष्यं वा नात्र कार्या विचारणा ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु वराटिकावर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९७।

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्यासभीष्मसंवादवर्णनम्

शतानीक उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् । स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥१
को धर्मः सर्वधर्माणां कश्च पूज्यो मतस्तव । ब्रह्मादयः कमर्चन्ति कश्चादिस्त्रिदिवौकसाम् ॥२

सुमन्तुरुवाच

अत्राहं ते प्रवक्ष्यामि संवादं पापनाशनम् । भीष्मस्य नरशार्दूल व्यासस्य च महात्मनः ॥३
सुखासीनं महाव्यासं गङ्गाकूले द्विजोत्तम । तं दृष्ट्वा सुमहातेजा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥४
साक्षान्नारायणं देवं तेजसादित्यसन्निभम् । प्रणम्य शिरसा वीर सर्वशास्त्रालयं परम् ॥५

प्रदान करती है, तथा उसकी उदक सप्तमी के नाम से ख्याति है ।२३। जिस किसी सप्तमी या उसके विधान को मैंने तुम्हें नहीं बताया है, उसे बता रहा हूँ । वराटिका (कौड़ी) के देने से जो कुछ मिल जाये उसी का भक्षण कर व्रत की समाप्ति करे, उस मूल्य द्वारा जो कुछ प्राप्त हो सके वही भक्ष्य है, उसमें भक्ष्याभक्ष्य का विचार अनावश्यक है ऐसा बताया गया है ।२४-२५

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में वराटिका वर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९७।

अध्याय १९८

व्यासभीष्म संवाद-वर्णन

शतानीक ने कहा—इस लोक में सर्वश्रेष्ठ देवता एक कौन है, किस एक का पारायण किया जाता है, किस की स्तुति पूजन करते हुए मनुष्य कल्याण प्राप्त करते हैं, समस्त धर्मों में कौन उत्तम धर्म एवं तुम्हारे सम्मत में पूज्य कौन है, ब्रह्मादि देव किसकी उपासना करते हैं, तथा देवों में आदि (प्रथम) कौन हैं।१-२

सुमन्तु बोले—नरशार्दूल ! इस विषय में मैं तुम्हें भीष्म और महात्मा व्यास के पाप नाशक संवाद को बता रहा हूँ ।३। द्विजोत्तम ! एक समय गंगा के तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए महाव्यास को, जो प्रज्वलित पावक, साक्षात्, नारायण देव, सूर्य के समान तेजस्वी तथा समस्त शास्त्रों के उत्तमालय की भाँति दिखायी दे रहे थे महाभारत के रचयिता, परमर्षि, एवं राजर्षियों के आचार्य, मेरे कुरुवंश के

महाभारतकर्तारं देवार्थनिकषं परम् । आचार्यं परमर्षीणां राजर्षीणां च भारत ॥६
कर्तारं कुरुवंशस्य दैवतं परमं मम । पप्रच्छ कुरुशार्दूलो द्विजभक्त्या समन्वितः ॥७
देव देवस्य माहात्म्यं चित्तस्थं भास्करस्य तु । स महात्मा महातेजा भीष्मः पूर्वं मुनिं तथा ॥८

भीष्म उवाच

भगवन्द्विजशार्दूल पाराशर्य महामते । समाख्यातं त्वया सर्वं वाङ्मयं सचराचरम् ॥९
भास्करस्य मुनिश्रेष्ठ संशयोऽद्यापि वर्तते । आदौ तस्य नमस्कारमन्येषां तदनन्तरम् ॥१०
ब्रह्मादीनां तु रुद्राद्यैर्ब्रूहि तत्त्वेन हेतुना । क एष भास्करो ब्रह्मन् कुतो जातः क उच्यते ॥११
कीर्तयस्व यथान्यायं कौतुकं हि परं मम । कुशलो हि भवाँल्लोके तस्मात्त्वं वक्तुमर्हसि ॥१२

व्यास उवाच

अहो तव महत्कष्टं प्रमूढोऽसि न संशयः । स्तुवन्तश्च तमर्चाभिः सिद्धाः ब्रह्मादयः सुराः ॥१३
सर्वेषामेव देवानामादिरादित्य उच्यते । स हन्ति तिमिरं सर्वं दिग्विदिक्षु व्यवस्थितम् ॥१४
स धर्मः सर्वधर्माणां स च पूज्यतमो मतः । ब्रह्मादयस्तमर्चन्ति स चादिस्त्रिदिवौकसाम् ॥१५
अदितिः कश्यपसती आदित्यस्तेन चोच्यते । आदिकर्ताथ वा यस्मात्तस्मादादित्य उच्यते ॥१६
तस्मादेतज्जगत्सर्वमादित्यात्सम्प्रवर्तते । सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥१७
रुद्रोपेन्द्रौ तथेन्द्रश्च ब्रह्मादक्षोऽथ कश्यपः । आदित्यदेवताः सर्वे तथान्ये देवदानवाः ॥१८

निर्माता तथा उत्तम देव को ब्राह्मण भक्ति वश प्रणाम करके महात्मा, महातेजस्वी, भीष्म ने देवाधिदेव भास्कर के माहात्म्य को मन में स्थित कर उन पूर्व मुनि (व्यास) से पूछा— ।४-८

भीष्म ने कहा—हे भगवन् ! द्विजशार्दूल, पाराशर्य, महामते ! आप ने इस चराचर वाङ्मय (शास्त्रों) को मुझे बता दिया है, किन्तु, इन भास्कर के विषय में मुझे आज भी संदेह हो रहा है कि मुनिश्रेष्ठ ! प्रथम इन्हें नमस्कार करके पश्चात् अन्य देवताओं को नमस्कार किया जाता है— हे ब्रह्मन् ! किस तात्त्विक हेतु द्वारा सूर्य रुद्रादि देवों के पहले वन्दनीय है, ये भास्कर कौन हैं, और कहाँ उत्पन्न हुए हैं ? इन बातों के जानने के लिए मुझे महान् कौतुक हो रहा है, और आप भी इस लोक में एक ही कुशल वक्ता हैं, अतः न्यायोचित ढंग से मुझे बताने की कृपा करें ।९-१२

व्यास बोले—इन बातों में तुम्हें महान् कष्ट है, यह एक आश्चर्य की बात है इसलिए तुम्हारे मूढ़होने में संदेह नहीं ब्रह्मादिक देव गण उन्हीं (सूर्य) की उपासना करके सिद्ध हुए हैं । सभी देवों में आदि (ज्येष्ठ) आदित्य हैं । दिशाओं-विदिशाओं में व्याप्त अन्धकार उन्हीं द्वारा नष्ट होता है । समस्त धर्मों में वहीं प्रधान धर्म हैं अतः मेरे सम्मत से पूज्यतम भी वहीं हैं । ब्रह्मादि देव उन की उपासना करते हैं, वही देवों के आदि हैं, कश्यप तथा उनकी सती स्त्री अदिति द्वारा जल ग्रहण करने तथा आदिकर्ता होने के नाते इन्हें 'आदित्य' कहा जाता है ।१३-१६। इसी लिए आदित्य द्वारा इस समस्त जगत् की सृष्टि हुई है जिसमें देव, असुर, राक्षस, गन्धर्व एवं यक्ष लोग हैं तथा रुद्र, उपेन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप, आदित्य देवता एवं अन्य देव-दानव भी। उनके मुख द्वारा ब्रह्मा, वक्षस्थल द्वारा रुद्र, दाहिने हाथ

मुखाद्भूतो विरिञ्चिस्तु रुद्रो वक्षस्थलात्ततः । उपेन्द्रो दक्षिणाद्धस्ताद्धाता वामकरात्तथा ॥१९
वामपादतलाद्दक्षो दक्षिणात्कश्यपस्तथा । इत्युत्पन्नास्तथा चान्ये देवासुरनराः खगाः ॥
तेनासौ देव आदित्यः सर्वदेवेषु पूजितः ॥२०

भीष्म उवाच

यदीत्थं गीयते वीर दिग्विदिक्षु स भास्करः । यदि तस्य प्रभावोऽयं पाराशर्य जगत्पतेः ॥२१
स किमर्थं त्रिसन्ध्यं तु राक्षसैः परिभूयते । द्विजैः संरक्ष्यते भूयश्चक्रवद्भ्रमते पुनः ॥
राहुणा गृह्यतेऽभ्याह्यस्तात्किमर्थं द्विजोत्तम ॥२२

व्यास उवाच

पिशाचोरगरक्षांसि डाकिनीदानवांस्तथा । दक्षिणाग्निर्दहेत्क्रोधात्तमाक्रामति भास्करः ॥२३
त्रिसन्ध्यं तु त्रयो देवाः सान्निध्यं रविमण्डले । मुहूर्तस्य प्रभावोऽयमसाध्ये दृष्टके तथा ॥२४
तमेकमेवमुद्दिश्य लोके धर्मः प्रवर्तते । नमस्कृते स्तुते तस्मिन्सर्वे देवा नमस्कृताः ॥२५
त्रिसन्ध्यं वसुधादेवैर्भास्करस्त्रिः प्रणम्यते । राहुरादित्यबिम्बस्य स्थितोऽधस्तान्न संशयः ॥२६
अमृतार्थी विमानस्थो यावत्संस्रवतेऽमृतम् । विमानान्तरितं बिम्बमादिशेद्ग्रहणं ततः ॥२७

द्वारा उपेन्द्र (विष्णु) बायें हाथ द्वारा धाता, बायें पादतल द्वारा दक्ष, दाहिने पाद तत्व द्वारा कश्यप तथा अन्य देव, असुर मनुष्य एवं पक्षियों आदि की सृष्टि हुई है। इसीलिए आदित्य देव सभी देवों के पूज्य हैं। १७-२०

भीष्म ने कहा—हे वीर ! यदि भास्कर का इस प्रकार दिशाओं तथा विदिशाओं में गुणगान गाया जाता है, और हे पाराशर्य ! उन्हीं जगदीश्वर का ही यह प्रभाव है, तो तीनों संध्याओं में राक्षसों द्वारा उनका पराभव क्यों होता रहता है, जिसमें द्विजों द्वारा उनकी रक्षा होती है, वे पुनः चक्र की भाँति भ्रमण किया करते हैं तथा हे द्विजोत्तम ! राहु उन्हें ग्रहण करने क्यों दौड़ता है। २१-२२

व्यास बोले—पिशाच, नाग, राक्षस, डाकिनी, एवं दानवों को दक्षिणाग्नि दहन करता है, क्रुद्ध होकर भास्कर उस पर आक्रमण करते हैं। तीनों संध्याओं में तीनों देव सूर्य मंडल के सान्निधि में स्थित रहते हैं। यह मुहूर्त का प्रभाव है, तथा प्रत्यक्ष दीखते हुए भी असाध्य है, और उन्हीं एक सूर्य देव का ही उद्देश्य मानकर समस्त लोक धर्म में प्रवृत्त होता है, एवं उन्हें नमस्कार तथा स्तुति करने पर समस्त देव गण नमस्कृत होते हैं। २३-२५। तीनों संध्याओं में समस्त भू देव वृन्द भास्कर को तीन बार प्रणाम करते हैं। हाँ अमृत के लिए राहु भी उनके बिम्ब के नीचे अवश्य स्थित होता है इसमें संदेह नहीं है वह विमान पर बैठकर जितने समय तक अमृत का स्राव होता है उतने समय तक विमन्तनांतरित होकर वह उनके लिए विम्ब का आलम्बन किये रहता है, वही ग्रहण के नाम से ख्यात है। २६-२७। दहन करने के लिए

न कश्चिद्धर्षितुं शक्त आदित्यो वहते ध्रुवम् । दिवारात्रिमुहूर्तानां ज्ञानायाक्रमते रविः ॥२८
नादित्येन विना रात्रिर्न दिनं न च तर्पणम् । नाधर्म्मो नाथवा धर्म्मस्तेन दृष्टं चराचरम् ॥२९
आदित्यः पाति वै सर्वमादित्यः सृजते सदा । एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं भवता मम ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे
व्यासभीष्मसंवादेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९८।

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मव्याससंवादवर्णनम्

भीष्म उवाच

स आदित्यो भवेद्येन अचिरात्तु वरप्रदः । तदहं श्रोतुमिच्छामि विप्र मां ब्रूहि तत्त्वतः ॥१

व्यास उवाच

पूजया जपहोमेन ध्यानधारणया सह । सकलं मण्डलं कृत्वा तद्दीक्षां समयं तथा ॥२
लब्ध्वाराधयते यस्तु भक्त्या तद्गतमानसः । तस्य भानुर्भवेद्वीर अचिरात्तु वरप्रदः ॥३
बलसिद्धिं महद्वीर्यं प्रतापं च स्वकायनम् । धनं धान्यं सुवर्णं च रूपं सौभाग्यसम्पदम् ॥४
आरोग्यमायुः कीर्ति च यशः पुत्रांश्च मानद । ददते नात्र सन्देहो यस्य तुष्टो दिवाकरः ॥५

निश्चित शक्ति आदित्य में ही है, उन पर आक्रमण के लिए कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है । दिन, रात एवं मूहुर्तों के ज्ञानार्थ सब के ऊपर सूर्य का आक्रमण (उदय) होता है ।२८। बिना भास्कर के रात, दिन, तर्पण, धर्म, एवं अधर्म की प्रगति चर चराचर किसी में भी सम्भव नहीं होती है । समस्त जगत् का पालन, एवं सर्जन आदित्य ही करते हैं । जो आपने पूछा था, मैंने उन सभी बातों को बता दिया ।२९-३०

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में व्यास भीष्म संवाद वर्णन
नामक एक सौ अठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९८।

अध्याय १९९

भीष्म संवाद-वर्णन

भीष्म ने कहा—हे विप्र ! वह आदित्य जिस प्रकार शीघ्र वर प्रदान करते हैं, उस विधान को मुझे जानने की इच्छा है, आप विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें ।१

व्यास बोले—वीर ! समस्त मण्डल की रचना कर दीक्षाग्रहण पूर्वक नियम पालन करते हुए जो कोई पूजा, जप, हवन, एवं ध्यान-धारणा के साथ भक्ति पूर्वक तन्मय होकर उनकी आराधना करता है, उसी के लिए सूर्य शीघ्र वर दायक होते हैं ।२-३। बल की सिद्धि, महान् पराक्रम, प्रताप, निजी (गृह) धन, धान्य, सुवर्ण, रूपसौन्दर्य, सौभाग्य-सम्पत्ति, आरोग्य, कीर्ति, यश, एवं पुत्र, ये सभी वस्तुएँ जिस पर सूर्य प्रसन्न होते हैं, उसे प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं । प्रसन्न होने पर

धर्ममर्थं तथा कामं विद्यां मोक्षश्रियं तथा । ददते भास्करस्तुष्टो नराणां नात्र संशयः ॥६
सौरेण विधिना तात पूजयित्वा दिवाकरम् । सर्वान्कामानवाप्नोति तथादित्यालयं नृप ॥७

भीष्म उवाच

सौरस्नानविधिं ब्रूहि सरहस्यं महामते । ये न स्नातोऽमलो याति नरः पूजयितुं रविम् ॥८

व्यास उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि स्नानं पापप्रणाशनम् । शुचौ मनोरमे स्थाने सङ्गृह्यास्त्रेण मृत्तिकाम् ॥९
सन्धिसन्धो हकारस्तु टरेफोफसमन्विते । अनेनास्त्रेण सङ्गृह्य ततः स्नानं समाचरेत् ॥१०
मलस्नानं ततः पश्चाच्छेषार्धेन तु कारयेत् । भागत्रयं तु सार्धं तु तृणपाषाणवर्जितम् ॥११
एकमस्त्रेण चालम्ब्य तथान्यं भास्करेण तु । अङ्गं चैव तृतीयेन अभिमन्त्र्य सकृत्सकृत् ॥१२
जप्त्वास्त्रेण क्षिपेद्दिक्षु निर्विघ्नं तु जलं भवेत् । सूर्यतीर्थे द्वितीयेन अभिमन्त्र्य सकृत्सकृत् ॥१३
गुण्डयित्वा ततः स्नायादिति तीर्थेषु मानवः । तूर्यशङ्खनिनादेन ध्यात्वा देवं दिवाकरम् ॥१४
स्नात्वा राजोपचारेण पुनराचम्य यत्नतः । स्नानं कृत्वा ततो भीष्म मन्त्रराजेन संयुतम् ॥१५
हरेफौ बिन्दुयुक्तश्च तथान्यो दीर्घया सह । मात्रया रेफसंयुक्तो हकारो बिन्दुना सह ॥१६
सकारः सविसर्गस्तु मन्त्रराजो यमुच्यते । ततस्तु तर्पयेन्मन्त्रान्सर्वांस्तास्तु कराग्रजैः ॥१७

भास्कर मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, विद्या एवं मोक्ष भी अवश्य प्रदान करते हैं इसमें संदेह नहीं । नृप ! विधानपूर्वक सूर्य की उपासना करके समस्त कामनाओं की सफलता एवं आदित्य लोक की प्राप्ति होती है ।४-७

भीष्म ने कहा—हे महामते ! उस सौर स्नान के विधान को जिसके द्वारा स्नान कर मनुष्य स्वच्छ होकर सूर्य पूजन के योग्य होता है, रहस्य समेत बताने की कृपा करें ।८

व्यास बोले—मैं तुम्हें उस पाप नाशक स्नान-विधान को बता रहा हूँ (सुनो) किसी पवित्र एवं रमणीक स्थान की मिट्टी मंत्र (मंत्रोंच्चारण) पूर्वक ग्रहण करे । मन्त्राक्षर के ह, ट, र, फ, यही वर्ण हैं इसी अस्त्र द्वारा उस मृत्तिका का ग्रहण पश्चात् स्नान करना चाहिए ।९-१०। उपरांत अवशिष्ट अर्ध भाग से मलस्नान करके पूर्व अर्धभाग में तीन भाग बनाये, उसमें तृण-कंकड़ आदि न रहे । एक का अस्त्र द्वारा और दूसरे का भास्कर के नामोच्चारण द्वारा ग्रहण करना चाहिए तीसरे भाग द्वारा प्रत्येक अंगों को एक-एक बार अभिमन्त्रित कर अस्त्र के जप पूर्वक उसे सभी दिशाओं में फेंक दे जिससे स्नान जल निर्विघ्न समाप्त हो जाये । दूसरे भाग द्वारा सूर्य तीर्थ को चारों ओर से (घेरे के रूप में) एक-एक बार अभिमंत्रित कर पश्चात् उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करे । स्नान के समय दिवाकर के ध्यान पूर्वक तुरुही एवं शंख की ध्वनि होनी चाहिए । भीष्म ! इस प्रकार राजोपचार पूर्वक स्नान करने के उपरांत पुनः आचमन करके मंत्रराज के उच्चारण पूर्वक स्नान करें । बिन्दु युक्त ह और र दीर्घमाला, बिन्दु के समेत, र और ह, तथा विसर्ग समेत स, यही ह्रं ह्रां सः, मन्त्रराज के नाम से ख्यात हैं ।११-१६। पश्चात् अंगुलियों द्वारा सभी मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तर्पण करे । अंगुलियों के पर्व (गाँठ) के ऊपरी भाग द्वारा देवों के सव्य होकर

पर्वणामूर्ध्वतो देवाः सव्येन मुनयस्तथा । पितरश्चापसव्येन तद्बीजेन प्रतर्पयेत् ॥१८
यद्गीतं प्रवरं लोके अक्षराणां मनीषिभिः । तद्बिन्दुसहितं प्रोक्तं तद् बीजं नात्र संशयः ॥१९
कृत्वा वामकरे हस्तादृत्वात्वा प्राज्ञो विधानवित् । एवं स्नात्वा विधानेन सन्ध्यां वन्देद्विधानतः ॥२०
ततो विद्वान्क्षिपेत्पश्चाद्भास्करायोदकाञ्जलिम् । जपेच्च त्र्यक्षरं मन्त्रं षण्मुखं वा यदिच्छया ॥२१
मन्त्रराजेति यः पूर्वं तवाख्यातो मया नृप । पश्चात्तीर्थे तु मन्त्रांस्तु संहृत्य हृदयं न्यसेत् ॥२२
मन्त्रैरात्मानमेकत्र कृत्वा ह्यर्घ्यं प्रदापयेत् । रक्तचन्दनगन्धैस्तु शुचिस्नातो महीतले ॥२३
कृत्वा मण्डलकं चित्तमेकाचित्तो व्यवस्थितः । गृहीत्वा करवीराणि संस्थाप्य ताम्रभाजने ॥२४
तिलतण्डुलसंयुक्तं कुशगन्धोदकेन तु । रक्तचन्दनधूपेन युक्तमर्घ्यं प्रसाध्य तत् ॥२५
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यामवनिं गतः । पूर्वमन्त्रेण संयुक्तमर्घ्यं दद्यात्तु भानवे ॥२६
मुच्यते सर्वपापैस्तु यो ह्येवं विनिवेदयेत् । यद्युगादिसहस्रेण व्यतीपातशतेन च ॥२७
अयनानां सहस्रेण चन्द्रस्य ग्रहणे तथा । गवां शतसहस्रेण यत्फलं ज्येष्ठपुष्करे ॥
दत्ते कुरुकुलश्रेष्ठ तदर्घ्येण फलं लभेत् ॥२८
दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि भक्त्या संवत्सरेण तु । फलमर्घ्येण वै वीर लभते नात्र संशयः ॥२९
यः पुनर्दीक्षितो विद्वान्विधिनार्घ्यं निवेदयेत् । नासावुत्पद्यते भूमौ स लयं याति भास्करे ॥३०
इह जन्मनि सौभाग्यमायुरारोग्यसम्पदाम् । अचिराद्भवते वीर स भार्यासुखभाजनम् ॥३१

मुनिगण, और अपसव्य होकर पितरों के तर्पण करने का विधान बताया गया है । मनीषियों ने जिस वर्ण को, अक्षरों में श्रेष्ठ बताया है, बिंदु समेत वहीं वर्ण 'हृद्‌बीज' है ।१७-१९। विधानवेत्ता विद्वान् को चाहिए कि दाहिने हाथ द्वारा बायें हाथ में उसे स्थित कर विधान पूर्वक स्नान एवं संध्या-वन्दन करे ।२०। उसके उपरांत भास्कर के लिए 'जलाञ्जलि' प्रदान करें। नृप ! अक्षर या षडक्षर के जपपूर्वक मंत्रराज का जप करें, जिसे मैंने तुम्हें बताया है । पश्चात् तीर्थ में मंत्रों के संहार पूर्वक हृदय में धारण कर मंत्रमय होकर अर्घ्य प्रदान करें । इस भूतल में रक्त चन्दन अति पवित्र बताया गया है, उसके गंध द्वारा पवित्र स्नान पूर्वक सावधान हो मंडल बनाकर करवीर (कनेर) के पुष्प ताँबें के पात्र में रखे । तिल, तंडुल, कुश, गन्ध, एवं रक्तचन्दन की धूप समेत उस ताँबें के अर्घ्य पात्र में सभी वस्तुएँ रख कर घुटने के बल बैठकर उस पात्र को सिर से स्पर्श किये हुए पूर्वोक्त मंत्र द्वारा भानु के लिए अर्घ्य प्रदान करे ।२१-२६। इस भाँति अर्घ्य प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्ति होती है । सहस्रयुगादि (कृतयुग), सौ व्यतीपात, सहस्र अयन, चन्द्र ग्रहण एवं सौ सहस्र गोदान श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थ में प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, कुरुकुल श्रेष्ठ ! वह समस्त फल ऐसे अर्घ्य प्रदान द्वारा प्राप्त होता है ।२७-२८। वीर ! दीक्षा, एवं मंत्र विहीन होने पर भी भक्ति पूर्वक पूर्ण वर्ष तक इस प्रकार अर्घ्य प्रदान करने से उस समस्त फल की प्राप्ति होती है, इसमे संदेह नहीं ।२९। और जो पुनः दीक्षित होकर कोई विद्वान् विधान पूर्वक अर्घ्य प्रदान करते है, उसे इस भूतल पर जलग्रहण नहीं करना पड़ता तथा भास्कर में उसका सायुज्य मोक्ष भी हो जाता है । इस जन्म में सौभाग्य, आयु, आरोग्य उसे शीघ्र प्राप्त होते हैं तथा वीर ! वह स्त्रीसुख का एक मात्र पात्र

एष स्नानविधिः प्रोक्तो मया संक्षेपतस्तव । हिताय मानवेन्द्राणां सर्वपापप्रणाशनः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
भीष्मव्याससंवादो नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९९।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे वर्णनम्

भीष्म उवाच

कथितस्ते स्नानविधिर्ब्रह्मन्वै पापहारकः । सम्यक्सूर्यार्चनविधिं पूजयिष्यामि येन वै ।।१

व्यास उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विधिमादित्यपूजने । विविक्ते विजयस्थाने सुप्रसन्ने सुशोभने ।।२
पूजयेद्भास्करं मन्त्री सरलीकृतविग्रहः । भद्रासनसमारूढः प्राङ्मुखः साधकोत्तमः ।।३
अस्त्रबीजेन मन्त्रेण नरः स्वाङ्गानि विन्यसेत् । अङ्गुष्ठमादितः कृत्वा कनिष्ठान्तं सुविन्यसेत् ।।४
हृदयादीन्फडन्तांस्तान्विन्यसेत्क्रमतः सदा । नेत्रपाणितले वीर न्यस्य अर्घ्यादि मन्त्रवित् ।।५
यवर्गे यचतुर्थे तु कर्णबिन्दुसमन्वितम् । नेत्रबीजमिति प्रोक्तं ज्योतीरूपं न संशयः ।।६

ही होता है । मैंने संक्षेप में तुम्हें इस स्नान विधान को बता दिया, जिसमें सभी मनुष्यों के समस्त पापनाश पूर्वक सभी प्रकार के हित निहित हैं ।३०-३२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में भीष्म व्यास संवाद
वर्णन नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९९।

अध्याय २००

सौरधर्म का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप ने पापनाशक उस स्नान विधान को बता दिया, परन्तु मैं उनके अर्चन विधान को भी जानना चाहता हूँ, इसलिए कि मुझे उसके पूजन की इच्छा हो रही है, अतः आप उसे भी बतायें ।१

व्यास बोले—मैं तुम्हें आदित्य पूजन का विधान बता रहा हूँ ! किसी सौन्दर्य सम्पन्न एवं प्रसन्नचित्त होने वाले विजय स्थान में मन्त्र द्वारा अपने शरीर को अभिमंत्रित कर भद्रासन पर पूर्वाभिमुख स्थित हो साधक को भास्कर की पूजा करनी चाहिए ।२-३। अस्त्रबीज के मंत्र से मनुष्य को प्रथम अंगन्यास करना चाहिए जिसमें हाँथ के अंगूठे से प्रारम्भ कर उसकी कनिष्ठिका अंगुली तक स्पर्श करना 'करंन्यास' कहलाता है । उसी प्रकार हृदय आदि से प्रारम्भ कर 'अस्त्रायफट्' तक क्रमशः विन्यास करना चाहिए । वीर ! मंत्रवेत्ता नेत्र तथा हथेली का न्यास करें । यवर्ग में चौथे अक्षर (य) पर बिंदु लगाने से (वृ) उसे ज्योतिरूप नेत्रबीज बताया गया है ।४-६। वीर ! पश्चात् सूर्य के कवच रूप तीनों अक्षरों के

पश्चात् त्र्यक्षरं सूर्ये कवचं विन्यसेद्बुधः। कथितं तन्मदे वीर मन्त्रराजेति पृच्छतः ॥७
प्राणायामं ततः कुर्यात्प्रथमं बीजमुद्गिरन् । शेषक्रमेण हुत्वायं विरजे भीष्मशक्तितः ॥८
त्रिभिरेव ततो घोरैरात्मशुद्धिः कृता भवेत् । इति संशोध्य चात्मानं सूर्ये सर्वान्तिकं न्यसेत् ॥९
हृदये हृदयं न्यस्य शिरः शिरसि विन्यसेत् । एकविंशतिमातृकाया अक्षरं यत्प्रकीर्तितम् ॥१०
हृद्बीजमिति विख्यातं ब्रह्मस्थानमनौपमम् । शिरसार्कस्य पूजा तु लोकेऽर्कः प्रतिकथ्यते ॥११
शिखायां तु शिखां न्यस्यच्छरीरे कवचं न्यसेत् । नेत्रयोर्विन्यसेन्नेत्रं करयोरस्त्रमेव च ॥१२
महाव्याहृतयो राजंस्तथारज्वालिनी शिखा । हकारश्च रकारश्च कुकारो बिन्दुना सह ॥१३
एतेषां समदाश्चैव कवचं परिकथ्यते । नेत्रयोर्विन्यसेन्नेत्रं करयोरस्त्रमेव च ॥१४
एवमङ्गानि विन्यस्य नासौ केनापि बाध्यते । शत्रवो मित्रतां यान्ति अलाभे लाभमाप्नुयात् ॥१५
आत्मानं भास्करं ज्ञात्वा यथोक्तं तत्त्वदर्शिभिः । ततस्तु पूजयेद्भानुं स्थण्डिले विधिवत्पुनः ॥१६
कृत्वा तु दक्षिणे पार्श्वे दिव्यपुष्पकरंडकम् । कृत्वा सुशोभिते वामे ताम्रपूर्णेन वारिणा ॥१७
अस्त्रेण क्षालितां पूर्णां शेषं मन्त्रैर्जलैस्तया । अभिमन्त्र्य ततः स्थाप्य कवचेनावगुण्ठिताम् ॥१८
स्थण्डिले चैव द्रव्याणि पूजार्थं कल्पितानि तु । सर्वाणि प्रोक्षयेद्विद्वानर्घ्यपात्रं जलेन तु ॥
ततो मन्त्रं जपेत्पश्चादेकचित्तेन मन्त्रवित् ॥१९

भीष्म उवाच

पुराणसहितैर्मन्त्रैर्यो विधिः कथितो बुधैः ॥२०

न्यास करे, यही मंत्र का रहस्य है उसे मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ ।७। पुनः प्रथमबीज के उच्चारण पूर्वक प्राणायाम करके हवन करे । भीष्म ! इस प्रकार इस भीषण के तीनबार उपक्रम करने से आत्म शुद्धि होती है । इस भांति शुद्ध होकर अपने को सूर्य के लिए अर्पित करे । हृदय में हृदय एवं शिर में शिर के न्यास पूर्वक, इस हृद्बीज का प्रयोग करे, जिसमें इक्कीस मातृकाओं के अक्षर को हृद्बीज बताया गया है, वही अनुपम ब्रह्मस्थान है । लोक में सूर्य का शिरसा पूजन सूर्य के ही लिए बताया गया है । शिखा में शिखा, शरीर में कवच, नेत्र में नेत्र, एवं हांथों में अस्त्र के न्यास का विधान बताया गया है ।८-१२। राजन् ! र को ज्वाला वाली शिखा रूप बताया गया है, अतः हकार, रकार तथा कुकार विन्दु समेत महाव्याहृतियाँ हैं । इन्हीं के समय को कवच कहते हैं। कवच के धारण में नेत्र में नेत्र, हाथों में अस्त्र का न्यास कियाजाता है। इस प्रकार अंगों के न्यास करने से किसी प्रकार की बाधा का सम्भव नहीं होता है—शत्रु मित्र हो जाते हैं, अलाभ में लाभ की सम्भावना होती है—तत्वदर्शियों के कथनानुसार अपने को भास्कर समझकर भूमि में विधान पूर्वक सूर्य की आराधना करे।१३-१६। दाहिनी ओर पुष्प करंडक (पुष्प रखने का वंश-पात्र) को और बाँयें ओर जल पूर्ण ताँबें के अर्घ्यपात्र में रख कर अस्त्र (मंत्र) द्वारा उसे भूमि की शुद्धि करके शेष मंत्र एवं जल से अभिमंत्रित किए कवच द्वारा एक रेखांकित वृत्त बनाकर उस भूमि में रखी हुई पूजन-सामग्री को उस अर्घ्य पात्र के जल से प्रक्षालन (शुद्ध) करके पश्चात् वह मंत्र वेत्ता तन्मय होकर जप प्रारम्भ करें।१७-१९

भीष्म ने कहा—पुराण समेत मंत्रों द्वारा उस विधान को जिन विद्वानों ने बताया था, मैं ब्राह्मण

स मया विदितः कृत्स्नः कथितो नैकशो द्विजैः । वेदोक्तैर्विविधैर्मन्त्रैर्यथा सम्पूज्यते रविः ॥२१
तथा मे ब्रूहि सकलं वैदिकं विधिसत्तमम् ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सौरधर्मे द्विशततमोऽध्यायः ।२००।

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यमण्डलदेवतार्चनविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ त्वां कथयिष्येऽहं संवादं धर्मवर्द्धनम् । सुरज्येष्ठस्य देवस्य केशवस्य च भारत ॥१
मनोवत्यां सुरज्येष्ठं सुखासीनं चतुर्मुखम् । प्रणम्य शिरसा विष्णुरिदं वचनमब्रवीत् ॥२

विष्णुरुवाच

भगवन्देवदेवेश सुरज्येष्ठ चतुर्मुख । आराधनविधिं ब्रूहि भास्करस्य महात्मनः ॥३
कमाराधयेद्भानुं मण्डलस्थं दिवस्पतिम् । ब्रूहि मेऽत्र गणं देवं येनाहं पूजये विभुम् ॥४
साधु साधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि भूधर । शृणु चैकमना देव भास्करारा‌धने विधिम् ॥५
खषोल्कं निर्मलं देवं पूजयित्वा विभावसुम् । पूर्वे मध्ये तथाग्नेय्यां विरूपाक्षे प्रभञ्जने ॥६

विद्वानों से उसे कई बार सुन चुका हूँ । अब वेदोक्त मंत्रों द्वारा जिस प्रकार सूर्य की पूजा की जाती है उस वैदिक उत्तम विधान को मुझे बताने की कृपा करें ।२०-२२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन
नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त ।२००।

अध्याय २०१

सूर्यमण्डलदेवतार्चन विधि का वर्णन

व्यास बोले—भारत ! मैं तुम्हें (इस विषय का) एक धार्मिक संवाद, जिसे देवश्रेष्ठ भगवान् केशव देव एवं ब्रह्मा के संबंध का बताया जाता है, सुना रहा हूँ । एक समय मनोवती में सुखासीन एवं देवश्रेष्ठ ब्रह्मा से विष्णु ने शिर से प्रणाम करते हुए यह कहा— ।१-२

विष्णु ने कहा—भगवान्, देवाधिदेव, देवश्रेष्ठ तथा चर्तुमुख ! (आप) महात्मा भास्कर के आराधन-विधान को बताने की कृपा करें ।३। मण्डल स्थायी एवं दिनाधिनाथ सूर्य की आराधना किस भाँति की जाती है, तथा गणदेव का भी वर्णन कीजिए, क्योंकि मैं उस विभु की पूजा करना चाहता हूँ ।४। महाबाहो ! साधु-साधु ! धरणिधर ! आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । देव ! मैं भास्कर की आराधना का विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।५। खषोल्क एवं निर्मल भास्कर देव की अर्चना के उपरांत पूर्व, मध्य, आग्नेय, पश्चिम, एवं वायव्य दिशाओं में क्रमशः ईशान तक तथा हृदय में बीज मंत्र का न्यास

क्रमेण यावदीशानीं हृदि बीजेन विन्यसेत् । खषोल्कासनमेतत्तु विन्यस्तं मानवोत्तमैः ॥७
ततस्तयोपरिष्टात्तु हृदयेन तु कञ्चुकम् । सप्तावरणसंयुक्तमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥८
केसरालम्बदेवत्वं पञ्चवर्णं महाद्भुतम् । परीक्षाभूमिविधिवच्छास्त्रोक्तविधिना कृतम् ॥९
दीप्तादिपूर्वादारभ्य यावदीशानगोचरम् । न्यसेच्छक्त्यष्टकं मन्त्री मध्यतः सर्वतोमुखीम् ॥१०
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । अमोघा विश्रुता चैव नवमी सर्वतोमुखी ॥११
तत आवाहयेद्भानुं स्थापयेत्कर्णिकोपरि । उपस्थानं तु वै कृत्वा मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥१२
उदुत्यं जातवेदसमिति मन्त्रः प्रकीर्तितः । अग्निं दूतेन मन्त्रेण अनेन विश्वसुव्रत ॥१३
आकृष्णेन रजसा मन्त्रेणानेन चार्चयेत् । हंसः शुचिषदिति च मन्त्रेणार्कं प्रपूजयेत् ॥१४
अतप्तं तारकं देवी दीप्तानेन प्रपूजयेत् । अदृश्रमस्यकेतवः सूक्ष्मां देवीं समर्चयेत् ॥१५
तरणिर्विश्वदर्शेति अनेन सततं जयम् । प्रत्यङ्देवानां विशेति भद्रां देवीं समर्चयेत् ॥१६
विभूतिमर्चयेन्नित्यं येनापावकचक्षसा । विद्यामेषीति मन्त्रेण ह्यनेन विमलां सदा ॥१७
अमोघां पूजयेन्नित्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत । नवमीं पूजयेद्देवीं सततं सर्वतोमुखीम् ॥१८
मन्त्रणानेन कृष्णस्य उद्वयन्तमितीह च । उद्यनद्यमित्रहोमं प्रथममक्षरं व्रजेत् ॥१९
द्वितीयं पूजयेत्कृष्णं शुक्लेषु हरिमाहवे । उदगादयमादित्यो अनेनापि तृतीयकम् ॥२०
तत्सवितुर्वरेण्येति चतुर्थं परिकीर्तितम् । महितोमहितोयेति पञ्चमं परिकीर्तयेत् ॥२१

करे। उत्तम मनुष्यों द्वारा किये गये विन्यस्त अंग खषोल्क देव (सूर्य) के आसन बताये गयें हैं।६-७। पश्चात् उनके आसन पर सात आवरण समेत अष्टदल (कमल) जिसमें कर्णिका सौन्दर्य पूर्ण बनी हो, शास्त्रोक्त विधान द्वारा परीक्षा की हुई भूमि में पाँच रंग के बने हुये उस महान् एवं अद्भुत स्थान पर स्थापित करके उसके केसर भाग में देव का अधिष्ठान बनाये। पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर ईशान पर्वत क्रमशः दीप्त आदि सूर्य शक्ति के नाम एवं रूपान्तर की स्थापना उस अष्टदल में करके उसके मध्य में उस मंत्रवेत्ता को चाहिए कि सर्वतोमुखी का स्थापन करे। दीक्षा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विश्रुता एवं सर्वतोमुखी के आवाहन के उपरांत उस कर्णिका के ऊपर सूर्य का आवाहन एवं पूजन करके सुव्रत ! 'उदुत्यं जातवेदसम्' इस मंत्र से उनका उपस्थापन करें। विश्व सुव्रत ! 'अग्नि' दूतेन, और 'आकृष्णेन रजसा' इन मंत्रों से उनकी अर्चना तथा 'हंस शुचिषदिति' मंत्र से उनका पूजन करके 'अतप्तं तारकं देवी' इस मंत्र से दीक्षा देवी, 'अदृश्रमस्य केतवः' इस मंत्र से सूक्ष्मा देवी, 'तरणिर्विश्व दर्शेति' मंत्र से जया देवी, 'प्रत्यङ् देवानां विशेति' से भद्रा देवी, 'सना पावक चक्षुसा' इस मंत्र से विभूति देवी, 'विद्यामेषीति' मंत्र द्वारा विमला देवी, तथा सुव्रत ! इसी मंत्र द्वारा अमोघा एवं नवीं सर्वतोमुखी देवी का आवाहन पूजन करे।८-१८। उपरांत 'कृष्णस्य उद्वयंतमितीह च' तथा 'उद्यनद्यमित्र होमं' इस मंत्र द्वारा प्रथम आवरण, 'कृष्णं शुक्लेषु हरिमाहवे' इस मंत्र द्वारा दूसरे आवरण, 'उदगादयमादित्यः' इस मंत्र द्वारा तीसरे आवरण, 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इस मंत्र द्वारा चौथे आवरण, 'महितो महितोये' ति इस मंत्र द्वारा पाँचवें आवरण, 'हिरण्यगर्भः समवर्ततागे्र' इस मंत्र द्वारा छठें आवरण, एवं देवसत्तम ! 'सविता

हिरण्यगर्भः समवर्तता षष्ठं बीजं प्रकीर्तितम् । सविता पश्चात्पुरस्तात्सप्तमं देवसत्तम ।।२२
एवं बीजानि विन्यस्य आदित्यं स्थापयेद्द्विजः । आदित्यं स्थापयेद्ध्याने सर्वेषां पूजयेद्बुधः ।।२३
बाह्यतो देवशार्दूल इन्द्रादीनां समन्ततः । रक्तवर्णं महातेजं सितपद्मोपरि स्थितम् ।।२४
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् । द्विभुजं चैकचक्रं च सौम्यं पद्मधनुष्करम् ।।२५
वर्तुलं तेन बिम्बेन मध्यस्थमतितेजसम् । आदित्यस्य त्विदं रूपं सर्वलोकेषु पूजितम् ।।२६
ध्यात्वा तम्पूजयेन्नित्यं स्थण्डिलं मण्डलाश्रितम् ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यमण्डलदेवतार्चनविधिवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०१।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

विष्णुरुवाच

मण्डलस्थं सुरश्रेष्ठ विधिना येन भास्करम् । पूजयेन्मानवो भक्त्या स विधिः कथ्यतां मम ।।१
पूजयेद्विधिना येन भास्करं पद्मसम्भवम् । मूर्तिस्थं सर्वगं देवं पूजितंससुरासुरैः ।।२

ब्रह्मोवाच

साधु कृष्ण महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । शृणु चैकमना. पूर्वं मूर्तिस्थं येन पूजयेत् ।।३

पश्चात्पुरस्तात्' मंत्र द्वारा सातवें आवरण की पूजा करें । इस भाँति बीज मंत्र के न्यास पूर्वक ब्राह्मण आदित्य की स्थापना करे । विद्वान् को चाहिए कि सभी देवताओं के ध्यान-पूजन में आदित्य का स्थापन पूजन अवश्य करें ।१९-२३। देवशार्दूल ! बाह्य भाग में चारों ओर इन्द्रादि देवताओं का आवाहन पूजन करना चाहिए । रक्त वर्ण, महातेजस्वी, उज्ज्वल कमल पर स्थित, समस्त लक्षणों समेत, एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत उस आदित्य के रूप का, जिसमें दो भुजाएँ, एक चक्र हो तथा, सौम्याकृति, कमल-धनुष लिए, वर्तुलाकार (गोलाकार) बिम्ब के मध्य में स्थित हो, ध्यान एवं पूजन नित्य भूमि में मण्डल बनाकर करना चाहिए । क्योंकि भास्कर का यही रूप सर्व लोकों में पूजित होता है ।२४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्य मण्डल देवतार्चन विधि वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ।२०१।

अध्याय २०२

आदित्यपूजा की विधि का वर्णन

विष्णु बोले—हे सुरश्रेष्ठ ! भक्तिपूर्वक मण्डलस्थित भास्कर की पूजा जिस विधान द्वारा मनुष्य करते हैं, वह मुझे बताने की कृपा करें ।१। और जिस विधान द्वारा कमलोद्भूत भास्कर की पूजा, जो मूर्ति में स्थित, एवं सर्वगामी देव हैं, सुर असुर करते हैं, उसे भी बताने की कृपा करें ।२

ब्रह्मा बोले—कृष्ण, महाबाहो ! साधु, सुव्रत ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया है, जिस विधान द्वारा

इषे त्वेति च मन्त्रेण उत्तमाङ्गं तवार्चयेत् । अग्निमीळेति मन्त्रेण पूजयेद्दक्षिणे करे ॥४
अग्र आयाहि मन्त्रेण पादौ देवस्य पूजयेत् । आजिघ्रेति च मन्त्रेण पूजयेत्पुष्पमालया ॥५
योगयोगेति मन्त्रेण मुक्तपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । समुद्रं गच्छ यत्प्रोक्तमनेन स्नापयेद्रविम् ॥६
इमं मे गङ्गेति यत्प्रोक्तमनेनापि च भूधर । समुद्रज्येति मन्त्रेण कषायैः परिरूषयेत् ॥७
स्नापयेत्पयसा कृष्ण आप्यायस्वेति मन्त्रतः । दधिक्राव्णेति वै दध्ना स्नापयेद्दिवि वद्रविम् ॥८
तेजोऽसि शुक्रमिति च घृतेन स्नपनं परम् । या औषधीति मन्त्रेण स्नानमोषधिभिः स्मृतम् ॥९
उद्वर्तयेत्ततो भानुं द्विपदाभिः सुराधिप । मानस्तोकेति मन्त्रेण युगपत्स्नानमाचरेत् ॥१०
विष्णोरराटमन्त्रेण स्नापयेद्गन्धवारिणा । सौवर्णेन तु मन्त्रेण अर्घ्यं पाद्यं निवेदयेत् ॥११
इदं विष्णुर्विचक्रमे मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् । वेदोऽसीति हि मन्त्रेण उपवीतं प्रदापयेत् ॥१२
बृहस्पतेति मन्त्रेण दद्याद्वस्त्राणि भानवे । येन श्रियं प्रकुर्वाणा पुष्पमालां प्रयोजयेत् ॥१३
धूरसीति च मन्त्रेण धूपं दद्यात्सगुग्गुलम् । समिद्धोऽञ्जनमन्त्रेण अञ्जनं तु प्रयच्छति ॥१४
युञ्जानीति च मन्त्रेण भानुं रोचनयार्चयेत् । आरक्तकं च वै कुर्याद्दीर्घायुष्ट्वाय वै बुधः ॥१५
सहस्रशीर्षा पुरुषो रविं सरसि पूजयेत् । सम्भावयेतिमन्त्रेण पद्मनेत्रे परामृशेत् ॥१६
विश्वतश्चक्षुरित्येवं भानोर्देहं समालभेत् । श्रीश्च ते लक्ष्मीश्चेति मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे
आदित्यपूजाविधिवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०२।

मूर्तिस्थ (सूर्य) की पूजा होती है, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! 'इषे त्वे' ति मंत्र द्वारा (सूर्य) के उत्तमांगों की पूजा सदैव करें, उसी भाँति 'अग्नि मीळेऽति मंत्र द्वारा दाहिने हाथ, एवं 'अग्रआयाहि' मंत्र द्वारा सूर्य के चरण की पूजा करके 'आजिघ्रेति मंत्र द्वारा पुष्प माला अर्पित करे ।३-५। 'योग योगे ति' मंत्र द्वारा मुक्त पुष्पांजलि प्रदान पूर्वक 'समुद्रं गच्छ यत्प्रौक्तमि ति मंत्र द्वारा सूर्य के स्नान कराये तथा भूधर ! 'इमं मे गङ्गे' इसे भी उच्चारण करता रहे। 'समुद्रज्ये' ति मंत्र द्वारा कषाय लेप करके पुनः कृष्ण ! 'आप्यायस्वेति मंत्र द्वारा पयस्नान, 'दीर्घ क्राव्णे, ति मंत्र द्वारा दही, 'तेजोऽसि शुक्रमि ति' मंत्र द्वारा घी, तथा 'या औषधी' ति मंत्र द्वारा सूर्य को औषधि स्नान कराये ।६-९। सुराधिप ! 'द्विपदाभि' इस मंत्र से सूर्य का उद्वर्तन (अंगों को मलना) करने के अनन्तर 'मानस्तोके' ति मंत्र द्वारा सर्वमिश्रित स्नान कराये । पश्चात् 'विष्णोरराटे' ति मंत्र द्वारा गन्ध मिश्रित जल से स्नान कराकर 'सौवर्णेने' ति मंत्र द्वारा उन्हें अर्घ्य पाद्य निवेदित करे ।१०-११। 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने के उपरांत 'वेदोऽसी' ति मंत्र द्वारा यज्ञोपवीत प्रदान पूर्वक 'वृहस्पते' ति मंत्र द्वारा उन्हें वस्त्र समर्पित करे । 'येनश्रिय' प्रकुर्वाणे' ति मंत्र मंत्र द्वारा पुष्प'-माला, 'धूरसी' ति मंत्र द्वारा गुग्गुल की धूप, 'समिद्धोंजम' ति मंत्र द्वारा अंजन, 'युज्जानी' ति मंत्र और रोचन द्वारा उनके तिलक लगाये । विद्वान् को चाहिए कि शिर से पैर तक उन्हें रक्तवर्णमय सौन्दर्यपूर्ण करें क्योंकि इससे दीर्घजीवन प्राप्त होता है।१२-१५। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मंत्र द्वारा उनके शिर स्पर्श पूजन, 'संभावये' ति मंत्र द्वारा कमल नेत्र स्पर्श, तथा 'विश्वतश्चक्षुरि' ति मंत्र द्वारा भानु का देहालम्भन करके श्रीश्चते लक्ष्मीश्चे' ति मंत्र द्वारा पूजन करें।१६-१७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में आदित्य पूजा विधि वर्णन
नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त ।२०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

भास्कराराधनविधिवर्णनम्

विष्णुरुवाच

व्योमपूजाविधिं ब्रूहि समासाच्चतुरानन । अष्टशृङ्गं कथं व्योम पूजयेद्भास्करस्य तु ॥१

ब्रह्मोवाच

व्योमपूजाविधिं कृष्ण निबोध गदतो मम । अष्टशृङ्गं यथा व्योम पूजयन्ति मनीषिणः ॥२
सौवर्णं राजतं ताम्रं कृत्वा चाश्ममयं तथा । अष्टशृङ्गं महाबाहो अनेन विधिनार्चयेत् ॥३
प्रथमं पूजयेद्भानुं मध्ये मन्त्रेण सुव्रत । महिषा द्यो महायेति नानापुष्पकदम्बकैः ॥४
त्रातारमिन्द्रं मन्त्रेण सर्वशृङ्गं सदार्चयेत् । उदीरतामवर इत्यथवानेन पूजयेत् ॥५
आयं गौरिति मन्त्रेण नैर्ऋतं शृङ्गमर्चयेत् । रक्षोहणं वाजिनं वा पूजयेदसुरान्तकम् ॥६
इन्द्रसोमान्तपतये ह्यथ वानेन पूजयेत् । अभित्वा शूर नो नुम ऐशानं शृङ्गमर्चयेत् ॥७
एवं भानुं च परितः पूजयन्ति सदाच्युत । येनेदं भूतमिति वै अथवानेन प्रपूजयेत् ॥८
नमोऽस्तु सर्वपापेभ्यो व्योमपीठं सदार्चयेत् । ते नराः सततं कामान्प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥९
त्वमेको रुद्राणां वसूनां पूर्वाह्णे तेन पूजयेत् । तद्विष्णोः परमं पदं हंसः शुचिषदिति वै अपराह्णे सदार्चयेत् ॥१०

अध्याय २०३

सूर्याराधन विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे चतुरानन ! भास्कर के अष्टशृंग वाले व्योम की पूजा किस विधान द्वारा होती है, उसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करे ।१

ब्रह्मा बोले—कृष्ण ! मैं तुम्हें व्योम-पूजा विधान जिस विधान द्वारा मनीषी गण अष्टशृंग वाले व्योम की पूजा करते हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! ।२। महाबाहो ! सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा पत्थर के द्वारा अष्टशृंग वाले उस व्योम की रचना करके प्रथम उसके मध्य भाग में सूर्य की पूजा करे । पश्चात् 'महिषा दो महाय' एवं 'त्रातारमिन्द्र' इन मंत्रों द्वारा सब शृंगों की सदैव अर्चना करे अथवा उस समय 'उदीरतामवर' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे । पुनः 'आयंगौरि' ति मंत्र द्वारा नैर्ऋत्य वाले शृंग, 'रक्षोहणं वाजिनं' या इन्द्र सोमांत पतये इस मंत्र द्वारा असुरांतक की पूजा के उपरांत 'अभित्वा शूर नो नुम' इस मंत्र द्वारा ऐशान शृंग की पूजा करें ।३-७। अच्युत ! इस प्रकार चारों ओर से 'येनेदं भूतमि' ति मंत्र द्वारा सूर्य की पूजा के अनन्तर 'नमोऽस्तु सर्वपापेभ्यः मंत्र द्वारा व्योमपीठ की सदैव अर्चना करनी चाहिए क्योंकि इस भाँति करने वाले मनुष्यों की कामनाएँ निरन्तर सफल होती रहती हैं इसमें संदेह नहीं ।८-९। 'त्वमेको रुद्राणां वसूनां' इस मंत्र द्वारा पूर्वाह्न और 'तद्विष्णोः परमं पदं हंसः शुचिषदिति' इस मंत्र द्वारा अपराह्ण में सदैव उनकी पूजा करे ।१०। सदस्पते ! इस प्रकार ग्रहों के साथ सूर्य की पूजा करने वाले मनुष्यों की

एवं भानुं ग्रहैः सार्धं पूजयन्ति सदस्पते । ते सर्वान्विविधान्कामान्प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥११
विमले वाससी दत्त्वा गुरवे सपवित्रके । उपानहौ तथा कृष्ण सौवर्णमङ्गुलीयकम् ॥१२
गन्धपुष्पाणि चित्राणि भक्ष्यभोज्यान्यनेकशः । अनेन विधिना यस्तु सोपवासोर्चयेद्रविम् ॥
बहुपुत्रो बहुधनः स नरो भव्यवान्भवेत् ॥१३
उत्तरे चायने यस्तु सोपवासोऽर्चयेद्रविम् । सोऽश्वमेधफलं विन्द्याद्बहुपुत्रश्च जायते ॥१४
कृत्वोपवासं विषुवे यस्तु पूजयते रविम् । बहुपुत्रो बहुधनो कीर्तिमांश्चापि जायते ॥१५
कृत्वोपवासं ग्रहणे विधिवच्चन्द्रसूर्ययोः । पूजयेद्भास्करं भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥१६
इति ते कथितो विष्णो भास्कराराधने विधिः । यं श्रुत्वा पुरुषो भक्त्या मम लोके महीयते ॥१७
पुनरेत्य महीं कृष्ण राजा भवति भूतले । बहुपुत्रो बहुधनः समरेष्वपराजितः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भास्कराराधनविधिवर्णनं
नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०३।

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्योमार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विधिं परमपूजितम् । रत्नव्योमप्रतिष्ठायां यथा भानुं प्रपूजयेत् ॥१

सभी कामनाएँ सफल होती हैं इसमें संदेह नहीं ।११। कृष्ण ! निर्मल एवं पवित्र दो वस्त्रों के प्रदान पूर्वक उन्हें उपानह (जूते) सुवर्ण की अंगूठी, गन्ध पुष्प एनं भाँति-भाँति के अनेक भक्ष्य पदार्थ प्रदान करने चाहिए । इस विधान द्वारा जो उपवास रह कर सूर्य की पूजा करता है, उसे बहुपुत्र एवं बहुधन की प्राप्ति पूर्वक सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।१२-१३। उत्तरायण सूर्य में उपवास रहकर जो इस विधान द्वारा उनकी पूजा करता है, उसे अश्वमेध के फल समेत अनके पुत्रों की प्राप्ति होती है ।१४। विषुव काल में जो उपवास रह कर सूर्य की आराधना करता है, उसे बहुत पुत्र, अनके प्रकार के धन, एवं कीर्ति की प्राप्ति होती है ।१५। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण काल में उपवास रहकर भक्ति तथा विधान पूर्वक पूजा करने वाला ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।१६। कृष्ण ! मैंने इस प्रकार तुम्हें विष्णु के लिए बताये गये आराधना-विधान को बता दिया, जिसके भक्ति पूर्वक श्रवण करने से मनुष्य मेरे लोक की प्राप्ति करते हैं और पुनः कभी इस भूतल पर जन्म ग्रहण करने पर बहुत पुत्र, धन की प्राप्ति पूर्वक संग्राम में अजेय राजा होते है।१७-१८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में भास्कराराधन विधि वर्णन
नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ।२०३।

अध्याय २०४

व्योमार्चन विधि वर्णन

सुमन्तु बोले—इसके उपरांत मैं तुम्हें व्योम की प्रतिष्ठा में, जिस विधान द्वारा सूर्य की पूजा की

अर्चयित्वा तु प्रकृतिं गन्धपुष्पाक्षतैर्विभो । सहोदकेनाञ्जलिना सहपुष्पाक्षतेन वा ॥२
आवाहयेन्महादेवं खषोल्कं भास्करं विभुम् । मन्त्रेण कुरुशार्दूल प्रत्यक्षकिरणाय वै ॥३
ॐ खषोल्कमावाहयामि ॐ भूर्भुवः स्वरों आदित्याराधने मन्त्रः ॥४
अभिमन्त्र्य भुवे मात्रं सावित्र्या च ऋचा विभो । आपो हिष्ठेति या प्रोक्ता पृथा सूर्यस्य सर्वदा ॥५
यथान्यायं तु संक्षाल्य पूरयेच्चान्यतो यतः । हिरण्यगर्भः समवर्ततेत्यनया क्षालयेद् बुधः ॥६
सविता पश्चातात्सविता ह्यनया पूरयेद्बुधः । इत्येवं पूरयित्वा तु वारिपुष्पाक्षतैर्बुधः ॥७
पात्रमौदुम्बरं गृह्य कृत्स्नं सूर्यस्य दर्शयेत् । उदुत्यं जातवेदसमनया व्योम्नि निक्षिपेत् ॥८
हंसः शुचिषदिति पाद्यं दद्याद्विचक्षणः । निर्वापयेच्च पयसा खषोल्कं स्नापयेत्ततः ॥९
अग्निस्तु सप्तभिर्वीर कीर्तितास्ताश्च कृत्स्नशः । आपो हिष्ठेति च क्रमात्तिसृभिः कुरुनन्दन ॥१०
हिरण्यवर्णेति क्रमाच्चतुर्भिश्च[1] नराधिप । अभिमन्त्र्योदकमृग्भिस्तिसृभिर्निक्षिपेन्नृप ॥११
भानोः प्रदक्षिणं कृत्वा कृणुष्वपाज इत्यपि । इत्यमूषु वाजिनं गिरः प्रथमा परिकीर्तिता ॥१२
पतिमिन्द्रस्तवाचाम द्वितीया परिकीर्तिता । पतिमिन्द्रस्तु शुद्धो न आगहि तृतीया परिकीर्तिता ॥१३
सिध्ये वृत्राणि जिघ्रे शगन्धैर्भानुं प्रपूजयेत् । अस्य वामस्येत्यनया अक्षतैः पूजयेद्रविम् ॥१४
सप्त युञ्जन्ति रथमनया पूजयेद्रविम् । पुष्पैर्भरतशार्दूल सततं तमनाशनम् ॥१५

जाती है, उस परम पूजित विधान को बता रहा हूँ । (सुनो) ।१। विभो ! गंध, पुष्प और अक्षतों द्वारा प्रतिमा की पूजा करके पुष्पाक्षत समेत उदकांजलि प्रदान करें ।२। कुरुशार्दूल ! पुनः उन्हें प्रत्यक्ष करने वाले के लिए मंत्र द्वारा खषोल्क, विभु एवं महादेव भास्कर का आवाहन करें ।३। ओं खषोल्क मावाह्यामि ओं भुभुवः स्वरों, यही मंत्र आदित्य की आराधना एवं आवाहन के लिए निश्चित है ।४। विभो ! सावित्री ऋचा द्वारा 'भू' तथा 'आपोहिष्ठेति' मंत्र द्वारा सूर्य का सर्वदा आवाहन पूजन करना चाहिए ।५। यथोचित इनकी शुद्धि एवं पूर्ति करके 'हिरण्यगर्भः समर्वताग्रे' इस मंत्र द्वारा प्रक्षालन करें ।६। 'सविता पश्चातात्सविता' इस मंत्र द्वारा पुष्प, अक्षत समेत औदुम्बर (गूलर) के पात्र में जल रख करके सूर्य के सामने दर्शनार्थ रखे ।७। और पुनः 'उदुत्यं जात वेदसम्' इस मंत्र द्वारा उस व्योम के ऊपर उस जल को डाल दे । 'हंसः शुचिवदि' ति मंत्र द्वारा पाद्य जल प्रदान करके पश्चात् खषोल्क को प्रथम दूध से तदनन्तर जल द्वारा स्नान कराये ।८-९। वीर ! 'अग्निस्तु सप्तभिः' तथा कुरुनन्दन ! 'आपोहिष्टे' ति मंत्रों, एवं नराधिप ! 'हिरण्यवर्णे' ति आदि चार मंत्रों तथा तीनों ऋचाओं द्वारा उस जल को अभिमंत्रित कर पश्चात् उसे (व्योम पर) डाल देना चाहिए ।१०-११। 'कृणुष्वपाजं' 'इत्यभूष वाजिनं गिरः इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पहली प्रदक्षिणा 'पतिमिन्द्रस्तवाचाम, से दूसरी, 'प्रतिमिन्द्रस्तु शुद्धो न आगहि' से तीसरी प्रदक्षिणा संपन्न करे ।१२-१३। 'सिध्ये वृत्राणि जिघ्रने' इस से गंध, 'अस्यवामस्ये' ति मंत्र द्वारा अक्षत सूर्य के लिए प्रदान करे । 'सप्त युंजंति रथम्' इससे उनका पूजन करना बताया गया है । भरतशार्दूल ! तमनाशक सूर्य की आराधना पुष्पों द्वारा करनी चाहिए

---

१. चतस्रादेशाभावश्छान्दसः ।

को ददर्श प्रथममनया धूपमाविशेत् । पाकः पृच्छाम्यनया चन्दनं प्रतिपादयेत् ॥१६
उद्दीप्यस्येत्यनया दीपं दद्याद्विभावसोः । अर्चित्वा कुङ्कुमं चैव शीर्षे क्षीरं तु मण्डलम् ॥१७
युक्ता मातासीत्यनया नैवेद्यं प्रतिपादयेत् । गौरीर्मिमायेति दद्यात्तया शुक्ले च वाससी ॥१८
तस्याः समुद्रेत्यनया उपवीतं निवेदयेत् । इति सम्पूज्य देवेशं ततः कुर्यात्परां स्तुतिम् ॥१९
ऋग्भिर्वै पञ्चभिस्तात शृणु चैकमनावृतः । उक्षाणं पृश्निरिति च प्रथमा परिकीर्तिता ॥२०
चत्वारि वागिति भवेद्द्वितीया परिकीर्तिता । इन्द्रं मित्रं तृतीया तु वराधिक्ये प्रकीर्तिता ॥२१
कृष्णं नियानं हि तथा चतुर्थी परिकीर्तिता । यो रत्नवाहीत्यनया किरीटं योजयेद्रवौ ॥२२
गतेहनामित्यनया अव्यङ्गं भास्करं न्यसेत् । इयमददाद्रभसमृणच्युतमिति ऋगादितः ॥२३
कृत्वा पूजां ततश्चाग्भिरष्टाभिरिति चाच्युत । देवस्य शक्तयोऽष्टौ च पूजयेद्विधिवत्क्रमात् ॥२४
इत्येष ते मयाख्यातः प्रतिमापूजने विधिः । य पुरोक्तो महाबाहो ब्रह्मणा विष्णवे तथा ॥२५
अनेन विधिना यस्तु सततं पूजयेद्रविम् । स प्राप्नोत्यखिलान्कामानिह लोके परत्र च ॥२६
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम् । कन्यार्थी लभते कन्यां वेदार्थी वेदविद्भवेत् ॥२७
निष्कामः पूजयेद्यस्तु स मोक्षं प्राप्नुयान्नरः । अनेन विधिनापूज्य गतः सिद्धिं स वैष्णवः ॥२८
ब्रह्मादयास्तथा देवं पूजयित्वा विभावसुम् । अनेन विधिना पूज्य सन्तः सिद्धिं परां गताः ॥२९

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योमार्चनविधिवर्णनं
नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०४।

।१४-१५। 'को ददर्श प्रथमं इससे धूप, 'पाकः पृच्छामि' से चंदन, 'उद्दीप्यस्य. से दीप, सूर्य को प्रदान कर कुंकुम से उनके शिर को भूषित करके क्षीर का मण्डल करे। पुनः 'युक्ता मातासी' ति मंत्र द्वारा नैवेद्य, गौरी मि 'माये' ति मंत्र द्वारा दो शुभ्र वस्त्र 'तस्याः समुद्र' से यज्ञोपवीत अर्पितकर उनकी उत्तम स्तुति करें। तात् ! वह स्तुति पाँच ऋचाओं द्वारा की जाती है—उक्षाणं पृश्निः' पहली, 'चत्वारिवागिति, दूसरी, 'इदं मित्रं' तीसरी, 'कृष्णंनियानं', चौथी, 'यो रत्न वाही' ति पांचवी ऋचा के उच्चारण पूर्वक उन्हें किरीट से भूषित करे।१६-२२। 'गते हनामि इति मंत्र द्वारा उन्हें अव्यंग प्रदान करें। 'इयमददा द्रभमसृणच्युतमि, ति आदि आठ ऋचाओं द्वारा सूर्य की आठों शक्तियों का क्रमशः विधान पूर्वक पूजन करना चाहिए। महाबाहो ! प्रतिमापूजन के विधान, जिसे ब्रह्मा ने विष्णु के लिए कहा था, तुम्हें बता दिया गया। इस विधान द्वारा जो निरंतर सूर्य की पूजा करता है, उसकी लोक-परलोक संबंधी सभी कामनाएँ सफल होती रहती है और पुत्रार्थी 'पुत्र, धनार्थी धन, कन्यार्थी कन्या, एवं ज्ञानार्थी, वेदज्ञान की प्राप्ति करते हैं। निष्काम पूजन करने वाले मनुष्य मोक्ष प्राप्ति करते हैं। इसी विधान द्वारा पूजन कर वैष्णव ने सिद्धि प्राप्त किया है तथा इसी विधान द्वारा ब्रह्मादि देवों ने भी सूर्य की पूजा कर उत्तम सिद्धि की प्राप्ति की है।२३-२९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में व्योमार्चन विधिवर्णन
नामक दो सौ चौथा अध्याय समाप्त।२०४।

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादेवार्चनविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

पुनर्निबोध मे भीष्म गदतः परमं विधिम् । येन पूजयते नित्यं महादेवं दिवाकरम् ॥१
प्रभूतं निर्मलं तेज आराध्य परमं सुखम् । पूर्वमग्नेस्तथाग्नेय्यां नैर्ऋत्यां पवनालये ॥२
क्रमेण यावदीशानं हृदि बीजं च विन्यसेत् । भास्करासनमेतत्तु न्यस्तव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥३
उपरिष्टात्ततस्तस्य हृदयेन तु पंकजम् । अष्टपत्रं केशराल पंचवर्णं सकेसरम् ॥४
दीप्तादिपूर्वमारभ्य आमहादेवगोचरम् । शक्त्यष्टकं न्यसेन्मन्त्रैरादितः सर्वतोमुखीम् ॥५
अबीजैः केसराग्रेषु क्रमेणैव च पूजयेत् । ततस्त्वावाहयेद्भानुं स्थापयेत्कर्णिकोपरि ॥६
तस्योपहृत्य तं चान्यं वेदितव्यं खपुष्करम् । तेनैवावाहनं चार्च्यं स्थापनं चार्घमेव च ॥७
पाद्यमाचमनं स्थानं वस्त्रगन्धादिभूषणम् । विधिना वीरपुष्पाणि नैवेद्यं धूपमेव च ॥८
कर्तव्यं श्रद्धया भक्त्या एवं तुष्यति भास्करः । महापातकिनोऽप्याशु लभन्ते चिन्तितं फलम् ॥९
आदित्यं पूजयित्वा तु पश्चादंगानि पूजयेत् । दीप्तायां हृदयं न्यस्य भवान्यां शिरसो न्यसेत् ॥१०

अध्याय २०५

महादेव की पूजा विधि

व्यास बोले—भीष्म ! उस परमोत्तम विधान को जिसके द्वारा देवश्रेष्ठ भास्कर देव की पूजा होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ।१। उस प्रचण्ड एवं निर्मल तेजपुञ्ज की आराधना करने से अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है । पूर्व, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य इस भाँति क्रमशः ईशान पर्यंत बीज मंत्र द्वारा हृदयन्यास करे । क्योंकि तत्त्वदर्शियों ने इसी न्यास को भास्कर का आसन बताया है ।२-३। उसके ऊपर अष्टदल वाला कमल केशर समेत पाँच रंग की रेखाओं से सुशोभित भूमि पर स्थापित करके उसमें पूर्व की ओर से दीप्त आदि से आरम्भ कर सूर्य तक की सभी देव शक्तियों के आवाहन और पूजन करे । उसमें सर्वतोमुखी नामक देवी मध्य में प्रवाहित होती है । बीज मंत्र से पृथक् मंत्र द्वारा केशर कर्णिकाओं में क्रमशः इनके आवाहन पूजन के अनन्तर उसी कर्णिका के ऊपर सूर्य को स्थापित करे ।४-६। उनके आवाहन, पूजन, एवं अर्घ्य प्रदान खषोल्क मंत्र द्वारा करना बताया गया है । उसी प्रकार भक्तिपूर्वक पाद्य (पैर शुद्धि के जल), आचमन, स्नान, वस्त्र, गंध, भूषण, पुष्प, नैवेद्य, धूप इन्हें विधान द्वारा श्रद्धालु होकर प्रदान करने से भास्कर प्रसन्न होते हैं, और इसके पूजन द्वारा महापातक करने वाले की भी सभी कामनाएँ शीघ्र सफल होती है ।७-९। पहले सूर्य की पूजा करके पश्चात् उनके अगों की पूजा करे जिसमें दीप्ता आदि के लिए हृदयन्यास और भवानी के लिए शिरोन्यास करना चाहिए ।१०। दिशाओं में अस्त्र

दिग्विदिक्षु न्यसेदस्त्रमिन्द्रादि दिशोत्तरांतिकम् । कर्णिकायां न्यसेन्नेत्रं स्वबीजेन तु वार्चयेत् ।।११
पुष्पैर्गन्धैश्च धूपैश्च हृदयानि क्रमेण तु । पूजयित्वा तु विधिवद्गर्भे पश्चात्तु मन्त्रवित् ।।१२
बाह्यतः पूर्वतो मन्दं दक्षिणेन बुधं तथा । विषाणां पश्चिमे पूज्य उत्तरेण तु भार्गवम् ।।१३
आग्नेय्यां च कुजं पूज्य नैर्ऋत्यां भानुदेहजम् । वायव्यां पूजयेत्कृष्णमैशान्यां विकचं नृप ।।१४
इन्द्रादिलोकपालांश्च ततोऽष्टौ पूजयेद्बुधः । सुगन्धैर्विविधैः पुष्पैर्धूपैश्चैव मनोरमैः ।।१५
क्रमेण पूजयेद्भानुं लोकपालैर्ग्रहैः सह । मन्त्रैः कुरुकुलश्रेष्ठ य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।।१६
अनेन विधिना यत्र देवः सम्पूज्यते रविः । न चौराग्निभयं तत्र न चापि नरकाद्भयम् ।।१७
वर्षोपलविषादिभ्यो भयं तत्र न विद्यते । सुखमारोग्यमानन्दं सुभिक्षमचलां श्रियम् ।।१८
तेजोबिम्बांतमध्यस्थ आदित्यः परमार्थतः । यष्टव्यः साधकैर्नित्यं न रथो न च वाजिनः ।।१९
इत्येष विधिराख्यातो मया भीष्म तवाखिलः । येन पूजयते नित्यं महादेवो दिवाकरम् ।।२०
इत्थं पूज्य विवस्वन्तं हृद्बीजेन विसर्जयेत् । य एवं पूजयेद्भानुं स याति परमां गतिम् ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भीष्मव्याससंवादे
महादेवार्चनविधिवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०५।

एवं विदिशाओं में इन्द्रादि की स्थापना करके कर्णिका में बीजमंत्र द्वारा नेत्र की पूजा करे ।११। पश्चात् क्रमशः पुष्प, गंध, एवं पुष्पों द्वारा हृदय की पूजा करे इस प्रकार मंत्रवेत्ता विधान पूर्वक गर्भस्थित देवों कीपूजा करने के उपरांत वाह्य भोगों में स्थित देवों की पूजा करें—नृप ! पूरब की ओर शनि, दक्षिण की ओर बुध, पश्चिम में विषाण (गणेश), उत्तर में शुक्र, आग्नेय में आठों इन्द्रादि लोकपाल की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए । कुरुकुलश्रेष्ठ ! अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों, एवं मनोरम धूपों द्वारा लोकपाल, एवं ग्रहों समेत सूर्य की पूजा अपने कल्याणार्थ अवश्य करनी चाहिए ।१२-१६। जिस प्रदेश में इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा होती है, वहाँ चोरी, अग्नि एवं नरक का भय नहीं रहता है, तथा उसी भाँति वर्षा, बर्फ, (पत्थर) और विष आदि के भय भी नहीं होते हैं । प्रत्युत सुख, आरोग्य, आनन्द, सुभिक्ष, एवं अचल श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती है ।१७-१८। साधक को सदैव तेजबिम्ब के मध्य में आदित्य की ही परमार्थ के लिए नित्य पूजा करनी चाहिए, न रथ की और न घोड़े की ।१९। भीष्म ! मैंने तुम्हें वह समस्त विधान, जिसके द्वारा महादेव दिवाकर की नित्य पूजा होती है, बता दिया । इस प्रकार विवस्वान् (भानु) की पूजा के उपरांत हृद्बीज द्वारा विसर्जन करे । इस भाँति भानु की आराधना करने वाले उत्तम गति प्राप्त करें ।२०-२१

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में भीष्म व्यास संवाद में
महादेवार्चनविधि वर्णन नामक दो सौ पाँचवा अध्याय समाप्त ।२०५।

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णनम्

भीष्म उवाच

मन्त्रोद्धारं परं ब्रूहि मुद्राशक्तिसमन्वितम् । रूपवर्णसमं चैव पौराणिकमनुत्तमम् ।।१

व्यास उवाच

शृणु भीष्म महाबाहो यथा वक्ष्यामि तेऽनघ । पौराणिकानां मन्त्राणामुद्धारं वैदिकादृते ।।२
वर्णरेफसमायुक्तं विद्रुमेनैव भूषितम् । अन्तस्थानां हि अन्त्यं वै ब्रह्मदैवत्यमुच्यते ।।३
बिन्दुरेफसमायुक्तं दीर्घया मात्रया तथा । दीक्षाक्षरं समुद्दिष्टं द्वितीयं विष्णुदैवतम् ।।४
तृतीयं तु तथा प्रोक्तं सुविसर्गं जनाधिप । स तृतीयो बुधैः प्रोक्तो रुद्रदैवत एव हि ।।५
भास्करोऽयं महान्साक्षान्मन्त्रमूर्तिस्त्रिरक्षरः । दुर्लभः परमो गुह्यस्त्रिदेवो देवपूजितः ।।६
यस्त्विदं जपते भक्त्या स याति परमां गतिम् । ततश्च मुद्रां वक्ष्यामि सान्निध्यकारणं परम् ।।७
पद्माकारौ करौ कृत्वा मध्ये श्लिष्टे तु मध्यमे । अङ्गुलिं क्षारयेत्तस्मिन्विनुद्रेति च सोच्यते ।।८
अनया बद्धया राजन्भास्करस्य प्रियो भवेत् । महाभयेषु सर्वेषु मातृवत्परिरक्षति ।।९
हृदयं तस्य विज्ञेयं यदक्षरवरं स्मृतम् । विद्रुमोपरि सञ्छन्नं हृद्गतं तद्गतं सदा ।।१०

अध्याय २०६

सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णन

भीष्म ने कहा--मुद्रा शक्ति समेत उत्तम पौराणिक मन्त्रों के उद्धार जो उनके रूप वर्ण के अनुसार बताया गया है, मुझे बताने की कृपा करें।१

व्यास बोले--महाबाहो, भीष्म ! मैं तुम्हें पौराणिक मत्रों के उद्धार उचित ढंग से बता रहा हूँ उसमें वैदिक का कोई सम्बन्ध नहीं है, सुनो ! ।२। विद्रुम से विभूषित रेफ (र) वर्ण, अन्तस्थ (वर्णों) के सन्निकट रहने वाला ब्रह्म देव है, ऐसा बताया गया है।३। बिन्दु तथा दीर्घमात्रा के समेत (रां) वर्ण, यह दूसरा, विष्णु देव प्रधान दीक्षा का अक्षर कहा गया है। जनाधिप ! विसर्ग समेत (रः) तीसरा, जो रुद्रदेव प्रधान है विद्वानों द्वारा बताया गया है।४-५। इसी तीन (र रां रः) अक्षर रूपी शरीर वाले महात्मा भास्कर, जो दुर्लभ, परम गुह्य, त्रिदेव मय, एवं देवपूजित हैं, साक्षात् मंत्र मूर्ति है।६। जो भक्ति पूर्वक इस का जप करता है, उसे उत्तम गति की प्रप्ति होती है। अब तुम्हें सूर्य का सान्निध्य प्राप्त कराने वाली उत्तम मुद्राएँ बता रहा हूँ।७। कमल की भाँति दोनों हांथ की अंगुलियों को एकत्र कर मध्य भाग में दोनों मध्यमा अंगुली को संयुक्त करने और अंगुलियों को उसमें पृथक्-पृथक कर स्थित रखने, को विशिष्ट मुद्रा बताया गया है।८। राजन् ! इस मुद्रा से आबद्ध होने पर वह, सूर्य प्रिय हो जाता है, समस्त महाभय के उपस्थित होने पर वे माता की भाँति उसकी रक्षा करते हैं।९। उस श्रेष्ठ अक्षर को उनका हृदय जानना चाहिए। भारत ! विद्रुम के ऊपर संच्छन्न एवं उनके हृदयस्थल में स्थित उसे देवाधिदेव

शिरस्यर्कमिति प्रोक्तं देवदेवस्य भारत । महाव्याहृतयस्तिस्रस्तथारज्वालिनी शिखा ॥११
अष्टाक्षरा तु विज्ञेयमादित्यस्य महात्मनः । यः स्मरेत्साधकस्त्वेनं नासौ केनापि बाध्यते ॥१२
अकारेण समायुक्तं बिन्दुरेफसमन्वितम् । हकारमग्निदैवत्यं कवचं भास्करप्रियम् ॥१३
एकाक्षरमिदं प्रोक्तमभेद्यं यः स्मरेदिदम् । दुष्टानां चैव विघ्नानां नाशनं नात्र संशयः ॥१४
सविसर्गो रेफ इति अस्त्रमेकाक्षरं स्मृतम् । नाशयेद्दुष्टकर्माणि साधकस्य न संशयः ॥१५
सम्मुखौ तौ करौ कृत्वा श्लिष्टौ तु ग्रथिताङ्गुली । कनिष्ठानामिके योज्ये तर्जन्यौ मध्यमे तथा ॥१६
हृच्छिरः सशिखा चर्म मुद्रेयं व्योमसंज्ञिता । मुष्टिवक्रोच्छ्रितं कुर्यात्सव्यहस्तस्य तर्जनीम् ॥१७
मालशब्दकृतादिस्तु मुद्रा ह्यस्त्रस्य कीर्तिता । त्रासनी नाम विख्याता सर्वविघ्नक्षयङ्करी ॥१८
कर्णबिन्दुसमायुक्तं यं चतुर्थं महामते । भास्करस्य त्विदं नेत्रमग्निदैवतमुच्यते ॥१९
स्मरः स्यात्साधकेन्द्राणां दुरन्तो नाशने ध्रुवम् । मध्यमा तर्जनी चैव सव्यहस्तस्य चोच्छ्रितम् ॥२०
कनिष्ठानामिके कुञ्च्य अङ्गुष्ठेन ततः क्रमेत् । नेत्राभ्यां स्पर्शयेदेनां नेत्रमुद्रा प्रकीर्तिता ॥२१
गोवृषा नाम विख्याता दर्शयेद्दिव्यगोचरम् । रां दीप्तिारिं ततः सूक्ष्मारीं जया भीष्म उच्यते ॥२२
रूमाह्वारूं विभूतिश्च विमला रैं प्रकीर्तिता । अघहा च महाबाहो विद्युता रौं प्रकीर्तिता ॥२३
गोवृषा नाम रं सर्ववीरभद्रकरी तथा । इत्येता बीजरूपास्तु कथिताश्चैव शक्तयः ॥२४
उत्तानौ तु करौ कृत्वा सव्याकुञ्च्य ततोऽङ्गुलीः । कुर्यादुपरि चांगुष्ठौ चालयेत पुनः पुनः ॥२५

(सूर्य) का 'शिरस्यर्क' बताया गया है उनकी ज्वालिनी शिखारूप 'र' आदि तीन महाव्याहृतियाँ एवं उन महात्मा आदित्य की 'अष्टाक्षरा' विद्या बतायी गयी है, जिसके स्मरण मात्र से साधक को किसी भाँति के कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ता है ।१०-१२। अकार, बिंदु-युक्त रेफ समेत हकार के प्रधान देव अग्नि हैं, यही (हूं) सूर्य के प्रिय कवच के नाम से ख्यात है ।१३। यह एकाक्षर सूर्य का अभेद्य कवच है, इसके स्मरण से दुष्टों एवं विघ्नों के नाश होते हैं, इसमें संदेह नहीं ।१४। विसर्ग समेत रेफ (रः) यही एकाक्षर अस्त्र के नाम से बताया गया है, यह साधक के दुष्टकर्मों का नाश करता है, इसमें संदेह नहीं ।१५। दोनों हाथों को अपने सम्मुख एक में संयुक्त कर उनकी अंगुलियों को जिसमें कनिष्ठा के साथ दोनों अनामिका, तर्जनी, मध्यमा मिली हों, आबद्ध करे, इस प्रकार शिरहीन, तथा शिखा समेत इस मुद्रा की व्योम संज्ञा प्रदान की गयी है । टेढ़ी मुट्ठी बाँधकर उसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को उन्नत रखने से अस्त्र की मालमुद्रा बतायी गयी है और समस्त विघ्नों के नाश करने के कारण इसे त्रासनी भी कहते हैं ।१६-१८। महामते ! कर्ण बिन्दु समेत वह सूर्य का चौथा नेत्र कहा गया है, उसके अग्नि प्रधान देव हैं ।१९। जिस मुद्रा में यह दाहिने हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियाँ उन्नत रहती हैं, उसे भी मुद्रा कहते हैं, जो साधकों के अरिष्ट नाश के लिए दुरोपगम है । जिसमें कनिष्ठा, अनामिका को आकुंचित कर केवल अंगुष्ठ मात्र से दोनों नेत्रों के स्पर्श किये जाते हैं, उसे 'नेत्र मुद्रा' बताया गया है ।२०-२१। रं का नाम गोवृषा है, उसके द्वारा देव दर्शन प्राप्त होते हैं । भीष्म ! रां दीक्षा, रिं सूक्ष्मा, रीं जया, रूं विभूति, रैं विमला, तथा महाबाहो ! रौं अमोघा एवं विद्युता के रूप हैं ।२२-२३। इस प्रकार इन बीजरूप शक्तियों को बता दिया गया ।२४। दोनों हाथों को उत्तान कर दाहिने हाथ की अंगुलियों को आकुंचित कर पुनः ऊपर से दोनों अंगुष्ठों का

सर्वासां चैव शक्तीनामेता मुद्राः प्रदर्शयेत् । नाम्ना च विद्युता चैव नदन्ती सर्वतोमुखी ।।२६
नामान्येतानि शक्तीनां समासात्कथितानि तु । सबीजानि महाबाहो मया स्नेहेन भारत ।।२७
ग्रहाणां शृणु बीजानि रूपं च गदतो मम । सर्वत्र भं तथा खं च कञ्जकुतुहलोद्वह ।।२८
ॐकारा दीपिताः सर्वे नमस्कारान्तयोजिताः । पूजाकाले प्रयोक्तव्या जपकाले तथैव च ।।२९
होमकाले तु स्वाहान्तं मन्त्रं षट्कारसंयुतम् । सर्वे बिन्दुयुता भीष्म शिखा बिन्दुविभूषिताः ।।३०
सोमाद्याः केतुपर्यन्ता ग्रहा ह्येवं प्रकीर्तिताः । एता मुद्रा प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ।।३१
सुमुखौ तु करौ कृत्वा श्लिष्टौ चैव प्रसारितौ । इयं मुद्रा नमस्कारे ग्रहसान्निध्यकारिका ।।३२
मन्त्रोद्धारस्तदाख्यातो रहस्यो दुर्लभो नृप । शृणुष्व रूपं देवानां ध्यानकाले ह्युपस्थिते ।।३३
जपावर्णं महातेजं श्वेतपद्मोपरिस्थितम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम् ।।३४
तथैकवक्त्रं द्विभुजं सोमपङ्कजकन्धरम् । मण्डलेन च रूपं तु मध्यस्थं रक्तवाससम् ।।३५
मार्तण्डस्य इदं रूपं शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः । त्रिकालं यः स्मरेद्भीम एकचित्तो व्यवस्थितः ।।३६
सोऽचिराद्भवते लोके वित्तेन धनदोपम । मुच्यते सर्वभोगैस्तु तेजस्वी बलवान्भवेत् ।।३७
हृदयं चोत्तमाङ्गं च शिखा वै वक्रमेव च । रक्तवर्णा इमे श्यामाः सर्वाभरणभूषिताः ।।३८
वरदाऽभयहस्ताश्च ध्यातव्याः साधकेन तु । तडित्पुञ्जनिभं शस्त्रं रौद्रं चन्द्रकरालिनम् ।।३९

बार-बार संचालन करे यही मुद्रा समस्त शक्तियों के लिए प्रदर्शित करना चाहिए । भारत ! महाबाहो ! इस प्रकार मैंने समस्त शक्तियों को, जिनके दीप्ता आदि नाम पहले कहे गये हैं बीजों समेत स्नेह पूर्वक तुम्हें बता दिया ।२५-२७। अब ग्रहों के बीजों बता रहा हूँ सुनो ! ब्रह्मकुतूहलोद्वह ! ग्रहों के बीज में सर्वत्र भं, और खं को ओंकार पूर्वक उच्चारण कर अन्त में नमः शब्द का प्रयोग करता रहे, चाहे वह पूजा समय हो या जपकाल । हवन के समय में अंत में स्वाहा शब्द समेत मंत्रोच्चारण करे । भीष्म ! इस प्रकार चन्द्र आदि केतु पर्यंत सभी ग्रह, बिन्दु विभूषित शिखा वाले एवं बिन्दुयुक्त हैं ।२८-३०। इनके वर्णन के उपरांत समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली इनकी समस्त मुद्राओं को बता रहा हूँ । प्रथम दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा सुमुख मुद्रा बना कर पश्चात् वैसी मिली हुई अंगुलियों को विस्तृत करे, इस मुद्रा द्वारा ग्रहों का सान्निध्य प्राप्त होता है, तथा नमस्कार में भी इनका प्रयोग किया जाता है ।३१-३२। नृप ! इस प्रकार इस दुर्लभ मंत्रोद्धार को रहस्य समेत तुम्हें बता दिया, अब ध्यान के समय उपस्थित देवताओं के रूपों को सुनो ! जपा पुष्प के समान वर्ण, महातेजस्वी, श्वेत कमल पर स्थित, समस्त लक्षणों समेत, सभी अलंकारों से अलंकृत, एक मुख, दो भुजाएँ, चन्द्र कमल की भाँति ग्रीवा, मण्डल के मध्य में स्थित एवं रक्त वर्ण के वस्त्रों से सुसज्जित, ऐसा ही मार्तण्ड का शोभनरूप ध्यान के समय देखना चाहिए । भीम ! संयम पूर्वक स्नान कर पवित्रता पूर्ण व्यवस्थित होकर तन्मयता से जो उनके इस रूप का ध्यान करता है, वह शीघ्र इस लोक में कुबेर की भाँति धनवान् होकर समस्त कष्टों से मुक्त, तेजस्वी, एवं बलशाली होता है ।३३-३७। साधक को उनके हृदय, उत्तमांग (शिर), शिखा, मुख, रक्तवर्ण तथा समस्त आभूषणों से विभूषित श्यामल वरद एवं अभय प्रदायक हाथों का ध्यान करना चाहिए । उसी भाँति विद्युत-पुंज की भाँति रौद्र, तलवार आदि शस्त्र का भी ।३८-३९। इस स्वाभाविक तथा अपने

विशेषः कथितो ह्येष कामरूपः स्वभावतः । दीप्ता दीप्तशिखाकारा ध्यातव्या मम शक्तयः ।।४०
श्वेतवर्णं स्मरेत्सोमं रक्तवर्णं कुजं स्मरेत् । सौम्यमष्टापदाभं च गुरुं च पीतिवर्णकम् ।।४१
शङ्खक्षीरनिभं श्वेतं काणं याञ्जनसन्निभम् । रजावर्तनिभं राहुं धूम्रं च विकचं स्मरेत् ।।४२
वामहस्तौ कटिन्यस्तौ दक्षिणौ चाभयप्रदौ । रक्तभ्रूरक्तनेत्रास्य अर्धकायकृताञ्जलिः ।।४३
इति भानुं ग्रहैः सार्धं ये ध्यायन्ति नृपोत्तम । लभन्ते ते महासिद्धिमचिरान्नात्र संशयः ।।४४
तवाख्यातमिदं चक्रं ग्रहाणां भीष्म कृत्स्नशः । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते भुवि मानवाः ।।४५
अनेन विधिना भीष्म सदा देवं दिवाकरम् । त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या वीर श्रद्धासमन्वितः ।।४६
इत्थं पूजयमानस्तु सर्वदेवं दिवाकरम् । ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तो महादेवत्वमाप्नुयात् ।।४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०६।

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

भीष्म उवाच

अहो देवस्य माहात्म्यं भास्करस्य त्वयोदितम् । पूजयन्ति सदा ह्येनं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।।१

काम रूप (इच्छारूप) का भी विशेषतया वर्णन कर दिया । प्रदीप्त शिखा के समान आकार वाली दीप्ता आदि मेरी शक्तियों का ध्यान सदैव करना चाहिए ।४०। श्वेत वर्ण के चन्द्रमा, रक्तवर्ण के मंगल, हरिद्वर्ण के बुध, पीले वर्ण के बृहस्पति, शंख एवं क्षीर की भाँति श्वेत वर्ण के शुक्र, अंजन की भाँति काले वर्ण के शनि, रज की भाँति धूमिल वर्ण के राहु और धूएँ के समान केतु का रूप बताया गया है । नृपोत्तम ! इस प्रकार जो ग्रहों समेत सूर्य का ध्यान-पूजन करता है, जिसके बाये दोनों हाथ कटि में हो दाहिने दोनों हाथ अभय प्रदान करते हों, तथा रक्त नेत्र, रक्त भौहें, मुख, एवं अंजली की भाँति अर्ध शरीर स्थित हो, उसे शीघ्र महासिद्धि की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं । भीष्म ! मैंने तुम्हें समस्त ग्रहों के मुख का विस्तृत वर्णन बता दिया, जिसके सुनने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । भीष्म ! इस प्रकार इस विधान द्वारा भास्कर देव की तीनों काल में भक्ति पूर्वक आराधना करनी चाहिए। इस भाँति समस्त देवमय सूर्य की आराधना करने वाले मनुष्य ब्रह्म हत्या से मुक्त होकर महादेवत्व की प्राप्ति करते हैं।४१-४७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यपूजा-माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ छठवाँ अध्याय समाप्त ।२०६।

अध्याय २०७

आदित्यपूजा की विधि का वर्णन

भीष्म ने कहा—भास्कर देव का माहात्म्य, जिसे आप ने सविधि बता दिया है, कितना आश्चर्य-जनक है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देव उन्हीं की पूजा करते हैं ।१

व्यास उवाच

एवमेतन्न संदेहो यथा वदसि भारत । नास्ति सूर्यसमो देवो नास्ति सूर्यसमा गतिः ॥२
नास्ति सूर्यसमं ब्रह्म नास्ति सूर्यसमं हुतम् । नास्ति सूर्यसमो धर्मो नास्ति सूर्यसमं धनम् ॥३
नास्ति सूर्यादृते कामो नास्ति सूर्यादृते पदम् । नास्ति सूर्यसमो बन्धुर्नास्ति सूर्यसमः सुहृत् ॥४
नास्ति सूर्यसमा माता नास्ति सूर्यसमो गुरुः । नास्ति सूर्यसमं तीर्थं न पवित्रं ततः परम् ॥५
तमेकं दैवतं विद्यान्नैवाप्यर्कपरायणम् । लोकानां देवतानां च पितॄणां चापि भारत ॥६
तमर्चन्तः स्तुवन्तश्च प्राप्नुवन्ति परां गतिम् । ते प्रपन्नास्तु ये भक्त्या मुक्तास्ते भवसागरात् ॥७
राजा चोरा ग्रहाः सर्पा दारिद्र्य दुःखसम्पदः । नैते पीडयितुं शक्ताः प्रसन्ने भास्करे सति ॥८

व्यास उवाच

एवं तात महाबाहो देवो भास्करतत्परः । स पूज्यः स नमस्कार्यः स हि ध्यातव्य एव च ॥९
प्रत्यक्षदेवता ह्येषा देवदेवोऽयमादरात् । अथ किं बहुनोक्तेन यद्वक्ष्यामि निबोध मे ॥१०
पूजयेत्तनयः पापी तथादित्यदिनैरपि । पूजयन्ति नरा ये वै ते यान्ति परमां गतिम् ॥११
प्राप्ते सूर्यदिने भक्त्या भानुं सम्पूज्य श्रद्धया । नक्तं करोति पुरुषः स यात्यमरलोकताम् ॥१२
यस्तु पूर्वं रवेर्भक्त्या पञ्चरत्नसमन्वितम् । निवेदयति मंत्रेण स यात्यमरलोकताम् ॥१३
मार्तण्डप्रीतये यस्तु कुर्याच्छ्राद्धं विधानतः । संक्रान्तावयने वीर सूर्यलोकं स गच्छति ॥१४

व्यास बोले—भारत ! जैसा तुम कह रहे हो, वह वैसा ही है, इसमें संदेह नहीं । सूर्य के समान देव और सूर्य के समान कोई गति (प्राप्य) नहीं है ।२। सूर्य के समान ब्रह्म, अग्नि, धर्म, एवं धन आदि कुछ भी नहीं है ।३। बिना सूर्य के कोई कामना या कोई पद है ही नहीं । सूर्य के समान कोई बन्धु तथा कोई मित्र नहीं है ।४। सूर्य के समान माता, गुरु, एवं पवित्र तीर्थ कोई नहीं है ।५। भारत ! लोक, देवता तथा पितरों के प्रधान देव एकमात्र वहीं हैं तथा सूर्य-पारायण के समान किसी का पारायण नहीं है ।६। उनकी पूजा एवं स्तुति करने वाले उत्तम गति प्राप्त करते हैं, भक्ति पूर्वक उनकी शरण प्राप्त मनुष्य संसार सागर (जन्म मरण बन्धन) से मुक्त होते हैं ।७। सूर्य के प्रसन्न होने पर राजा, चोर, ग्रह, सर्प, दारिद्र्य, दुख के साधन ये कभी पीड़ित नहीं करते ।८

व्यास बोले—तात, महाबाहो ! भास्कर देव की आराधना में कटिबद्ध पुरुष देव, पूजन, नमस्कार, एवं ध्यान करने के योग्य होता है ।९। यही प्रत्यक्ष देवता, तथा आदरणीय देवाधिदेव हैं, और अधिक क्या कहूँ, बस, जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो ।१०। रविवार के दिनों में सूर्य पूजन सभी के लिए परमावश्यक है, चाहे (पूजक) महान् पापी ही क्यों न हो, क्योंकि जो उनकी पूजा करता है, उन्हें परम गति प्राप्त होती है ।११। रविवार के दिन आने पर भक्ति एवं श्रद्धा समेत सूर्य की पूजा के उपरांत जो पुरुष नक्त व्रत करता है, उसे अमरलोक (स्पर्श) की प्राप्ति होती है ।१२। भक्तिपूर्वक जो सर्वप्रथम पञ्चरत्न (उपहार) मंत्र द्वारा उन्हें प्रदान करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।१३। वीर ! संक्रान्ति अथवा अयन के दिन उनके प्रसन्नार्थ जो विधान पूर्वक श्राद्ध कर्म सुसम्पन्न करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति

कृत्वोपवासं षष्ठ्यां तु सप्तम्यां यस्तु मानवः। करोति विधिवच्छ्राद्धं भास्करः प्रीयतामिति ।।१५
सर्वदोषविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते । मानवो यस्तु सप्तम्यां योषिद्वापि दिवाकरम् ।।१६
प्रपूज्य विधिवद्भानुं सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विशेषतस्तस्य दिने ग्रहणे च नराधिप ।।१७
इति भीष्म विजानीहि न देवो भास्करात्प्रियः । आदित्यमेकं परमं देवदेवेषु पूजितम् ।।१८
रत्नपर्वतमारुह्य यथा भुवि नराधिपाः । सत्त्वानुरूपं गच्छन्ति रत्नभागानशेषतः ।।१९
तथा भानुं समाराध्य प्राप्नुवन्ति नराः फलम् । धनार्थी प्राप्नुयादर्थं पुत्रार्थी प्राप्नुयात्सुतम् ।।२०
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति त्वाथ वाऽमरतां व्रजेत् । अथ किं बहुनोक्तेन शृणु त्वं वचनं मम ।।२१
ब्रह्मादयो देवगणा भानुमाराध्य भारत । मनोहराणि दिव्यानि दिवि स्थानान्यवाप्नुवन् ।।२२
अचलानि महाभागाः सर्वपापहराणि च ।।२३

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत । भीष्मोऽपि पूजयामास भक्त्या भानुं विधानतः ।।२४
तथा त्वमपि राजेन्द्र पूजयेमं दिवाकरम् । पूजयित्वा रविं भक्त्या स्थानं यास्यसि शाश्वतम् ।।२५
यथा गतः स भगवान्व्यासो भीष्मश्च मानद । सकृत्प्रपूज्य सप्तम्यां भक्त्या देवं दिवाकरम् ।।२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्यासभीष्मसंवादे आदित्यपूजाविधिवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०७।

होती है ।१४। षष्ठी के दिन उपवास रहकर सप्तमी में विधान पूर्वक जो श्राद्ध करता है, उससे भास्कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।१५। और वह समस्त दोषों से मुक्त होकर सूर्य लोक का सम्मान प्राप्त करता है । नराधिप ! स्त्री अथवा पुरुष के सूर्य की विधान पूर्वक विशेषकर ग्रहण या उनके दिन उपासना करने पर उनकी समस्त कामनाएँ सफल होती हैं ।१६-१७। भीष्म ! इतना ही जानें कि सूर्य से बढ़कर प्रिय कोई अन्य देव नहीं है, क्योंकि अधिनायक देवों द्वारा भी यही एक आदित्य ही पूजित होते हैं ।१८। जिस प्रकार इस भूतल में राजा गण रत्नों के पहाड़ पर पहुँचकर अपने सत्वानुरूप शक्ति के अनुसार निखिल रत्नों की प्राप्ति करते हैं, उसी भाँति मनुष्य गण भास्कर की आराधना द्वारा समस्त फलों की प्राप्ति करते हैं । धनेच्छुक को धन, पुत्रेच्छुक को पुत्र, एवं मोक्षार्थी को मोक्ष तथा अमरत्व की प्राप्ति होती है । भारत ! मैं इनके विषयं में अधिक क्या कहूँ, इतना ही जाने कि ब्रह्मा आदि देवगण सूर्य देव की आराधना करके ही स्वर्ग के दिव्य स्थानों की प्राप्ति किये हैं । जो अचल एवं समस्त पापों के अपहर्ता तथा स्वयं महान् सौभाग्य सम्पन्न हैं ।१९-२३

सुमन्तु बोले—इतना कहकर भगवान् ! व्यास उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और भीष्म ने भी भक्ति पूर्वक विधान द्वारा सूर्य की पूजा सुसम्पन्न किया ।२४। राजेन्द्र ! उसी भाँति आप भी भक्ति पूर्वक दिवाकर की पूजा करके उस अविनाशी स्थान की प्राप्ति करेंगें । हे मानद ! जिस प्रकार भगवान् व्यास और भीष्म ने सप्तमी में भक्ति पूर्वक दिवाकर देव की एक ही बार पूजा कर के उसी स्थान की प्राप्ति की है ।२५-२६

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के व्यास भीष्म संवाद में आदित्य पूजा माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।२०७।

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनर्मे ब्रूहि सप्तम्याः प्रीतये भास्करस्य तु । उपोषितो भवतीह नरो यस्तु द्विजोत्तम ।।१

सुमन्तुरुवाच

कथिताः सप्त सप्तम्यः पुनरस्मिन्महामते । बहवः कुरुशार्दूल भूयस्त्वेताः शृणुष्व मे ।।२
स्वयं याः कथिताः पूर्वमादित्येन खगाधिप । अरुणस्य महाबाहो सप्तम्यः सप्तपूजिताः ।।३
अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा । तृतीया निम्बपत्रैश्च चतुर्थी फलसप्तमी ।।४
अनोदना पञ्चमी स्यात्षष्ठी विजयसप्तमी । सप्तमी कामिका ज्ञेया विधिं तासां निबोध मे ।।५
शुक्लपक्षे रविदिने दक्षिणे चोत्तरायणे । ग्रहणे सूर्यनक्षत्रे गृह्णीयात्सप्तसप्तमीः ।।६
स तां तु ब्रह्मचारी स्याच्छौचयुक्तो जितेन्द्रियः । सूर्यार्चनरतो दान्तो जपहोमपरस्तथा ।।७
पञ्चम्यामेव पुरुषः कुर्यान्नित्यमनात्मकम् । षष्ठ्यां न मैथुनं गच्छेन्मधुमांसं च वर्जयेत् ।।८
अर्कसम्पुटकैरेकां तथान्यां मरिचैर्नयेत् । तथापरां निम्बपत्रैः फलाख्यायो फलं चरेत् ।।९
अनोदनामन्नरहित उपासीत यथाविधि । अहोरात्रं वायुभक्षः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ।।१०

अध्याय २०८

सप्तमीव्रत विधि वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विजोत्तम ! भास्कर के प्रसन्नार्थ उस सप्तमी व्रत विधान को, जिसमें मनुष्यों को उपवास करना पड़ता है, पुनः मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१

सुमन्तु बोले—महामते ! यद्यपि सातों सप्तमी के विधान को मैंने पहले बता दिया है, तथापि कुरुशार्दूल ! उनका वर्णन मैं पुनः कर रहा हूँ, खगाधीश, महाबाहो ! जिन सातों सप्तमी विधान के वर्णन सूर्य ने अरुण से पहले किया था, सुनो ।२-३। अर्क संपुट का विधान पहली सप्तमी में बताया गया है उसी प्रकार दूसरी सप्तमी में मिर्च का पारण, तीसरी में निम्बका, चौथी में फल, पाँचवी में भात के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु, छठीं विजयसप्तमी और कामिका नामक सातवीं सप्तमी बतायी गई है, इनके विधानों को मैं बता रहा हूँ, शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन, सूर्य के दक्षिणायन एवं उत्तरायण होने के दिन, ग्रहण और सूर्यनक्षत्र (संक्रान्ति) के दिनों में सातों सप्तमी के विधानारम्भ करने चाहिए । संयम- पूर्वक पवित्रतापूर्ण ब्रह्मचारी शुद्ध होकर सूर्य की अर्चना, जप, एवं हवन करे ४-७। पुरुष को चाहिए कि सर्वप्रथम पञ्चमी में अनात्मक करके षष्ठी में मैथुन, मधु एवं मांस का भी त्याग करे ! इसके उपरांत प्रथम सप्तमी का अर्कसंपुट द्वारा दूसरी को मिर्च द्वारा तीसरी को नीम के पत्तों द्वारा, चौथी को फल द्वारा, तथा अन्नरहित होकर अनोदना (भातहीन) नामक पाँचवी सप्तमी और दिन रात वायु भक्षण कर छठीं विजय सप्तमी को विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे ।८-१०। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष एक सप्तमी के व्रत विधान

तथैकां सप्तमीं कृत्वा प्रतिमासं विचक्षणः । कुर्याद्यथाविधि मुदा ततः कुर्वीत कामिकाम् ।।११
आसां लिखित्वा नामानि पत्रकेषु पृथक्पृथक् । तानि सर्वाणि पत्राणि क्षिपेदभिनवे घटे ।।१२
तदर्थं यो न जानाति लोकबाह्योऽपि वा नरः । तेन ह्युद्धारयेदेकं न कुर्याच्च विचारणम् ।।१३
तेनैव विधिना यस्तु प्रतिमासं च तत्तपः । सप्तैव यावत्सप्तम्यो विज्ञेया सा तु कामिका ।।१४
इत्येताः सप्तसप्तम्यः स्वयं प्रोक्ता विवस्वता । कुर्वीत यो नरो भक्त्या स यात्यर्कसवो नृप ।।१५
अर्कसम्पुटकैर्वित्तमचलं सप्तपौरुषम् । मरिचैः सङ्गमः स्याद्वै प्रियैः पुत्रादिभिः सदा ।।१६
सर्वरोगाः प्रणश्यन्ति निम्बपत्रैर्न संशयः । फलैस्तु पुत्रपौत्रश्च दौहित्रश्चापि पुष्कलः ।।१७
अतो धनं धनं धान्यं सुवर्णं रजतं तथा । तथा पशुर्हिरण्यं च आरोग्यं सततं नृप ।।१८
उपोष्य विजयां शत्रून्राजञ्जयति नित्यशः । साधयेत्कामदा कामान्विधिवत्समुपासिता ।।१९
पुत्रकामो लभेत्पुत्रमर्थकामोऽर्थमक्षयम् । विद्याकामो लभेद्विद्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ।।
कृत्स्नान्कामान्ददात्येषा कामदा कुरुनन्दन ।।२०
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं सप्तमीव्रतम् । करोति नियतात्मा वै स याति परमां गतिम् ।।२१
न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् । ये भक्त्या लोकनाथस्य व्रतिनः संशितव्रताः ।।२२
व्रतैस्तु विविधैर्वीर तपोभिर्वा सुदुष्करैः । न तत्फलमवाप्नोति यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः ।।२३

को सुसम्पन्न करने के उपरांत प्रसन्नतापूर्ण हो प्रतिमास की सप्तमी के व्रत-विधान की समाप्ति करे और पश्चात् कामिका नामक सातवीं सप्तमी के विधान को पूरा करे ।११। पृथक्-पृथक् पत्रों पर इनके नाम लिख कर उसे नवीन कलश में रखने चाहिए ।१२। उसके अर्थ को जो मनुष्य न जानता हो, चाहे वह चार्वाक् मतावलम्बी क्यों न हो वह एक ही का समुद्धार करे, उसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।१३। उसी प्रकार प्रतिमास की सप्तमी व्रत-विधान के समाप्ति के अनंतर सातवीं कामिका नामक सप्तमी की समाप्ति करे । इसी प्रकार सातों सप्तमी के व्रत विधान की समाप्ति होनी चाहिए, जिसे स्वयं सूर्य ने बतायाथा । नृप ! भक्ति पूर्वक जो इस की समाप्ति करते हैं, उन्हें सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।१४-१५। अर्क सम्पुट-वाली सप्तमी के व्रत पालन करने से निश्चय धन, एवं सातों पौरुष और मिरचवाली सप्तमी द्वारा प्रिय पुत्रादिकों की सदैव प्राप्ति होती है । निम्बपत्र द्वारा समस्त रोगों के नाश होते हैं, इसमें संदेह नहीं । इसी प्रकार फलों (फलवाली सप्तमी) द्वारा पुत्र, पौत्र, एवं दौहित्र (पुत्री के पुत्र) की निश्चित प्राप्ति होती है ।१६-१७। नृप ! धन, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, पशु, हिरण्य, एवं निरन्तर आरोग्यता की भी प्राप्ति होती है ।१८। राजन् ! उसी भाँति विजया सप्तमी (छठीं) की उपासना द्वारा शत्रुओं पर विजय तथा कामदा नामक सातवीं सप्तमी की विधान पूर्वक उपासना द्वारा सभी कामनाएँ सफल होती हैं ।१९। पुत्रेच्छुक को पुत्र, धनेच्छुकों को अक्षय धन, विद्यार्थी को विद्या राज्य की कामना वाले को राज्य प्राप्त होता है तथा कुरुनन्दन ! कामदा नामक सातवीं सप्तमी समस्त कामनाएँ सफल करती हैं।२०। स्त्री पुरुष किसी के भी संयमपूर्वक विधान द्वारा सप्तमी की समाप्ति करने से परम गति की प्राप्ति होती है।२१। लोकाधिनायक (सूर्य) के व्रतों के भक्तिपूर्वक नियमित पालन करने से उसके लिए तीनों लोकों में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं रहती है।२२। वीर पार्थिव श्रेष्ठ ! अनेक भाँति के व्रतविधानों, अत्यन्त कठोर तप, बहु

तीर्थाभिषेचनैर्वापि दानहोमार्चनैस्तथा । यत्फलं च पूजयितुं सप्तम्यां प्राप्य मोक्षदम् ॥
मोक्षार्थी पार्थिवश्रेष्ठ यथाह भगवान्रविः ॥२४
कृत्वादित्यदिने नक्तं भक्त्या सम्पूजयेद्रविम् । अचलं स्थानमाप्नोति मानवः श्रद्धयान्वितः ॥
सूर्यलोके च नियतं तस्य वासो न संशयः ॥२५
यस्तु पूजयते भक्त्या सप्तम्यां भास्करं नरः । ब्रह्मेन्द्ररुद्रलोकेषु तस्याप्रतिहता गतिः ॥२६
नान्धो न कुष्ठी न क्लीबो न व्यङ्गो न च निर्धनः । कुले तस्य भवेद्वीर यश्चरेत्सप्तमीव्रतम् ॥२७
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात् । भार्यार्थी रूपसम्पन्नां स्त्रियं पुत्रांश्च भारत ॥२८
लोभात्प्रमादान्मोहाच्च व्रतभङ्गो यदा भवेत् । तदा त्रिरात्रं नाश्नीयात्कुर्याद्वा केशमुण्डनम् ॥२९
प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् । सप्तैव यावत्सप्तम्यो भवन्ति च खगेश्वर ॥३०
अभ्यर्च्य सूर्यसप्तम्यां माल्यधूपादिभिर्नरः । भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या प्राप्नुयात्स्वर्गमक्षयम् ॥३१
सप्तम्यां विप्रमुख्येभ्यो हिरण्यं यः प्रयच्छति । स तदक्षय्यमाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥३२
इतीदं कीर्तितं वीर सप्तमीव्रतमुत्तमम् । भूय एवाभिधास्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यसंवादे सप्तसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०८।

दक्षिणा वाले यज्ञ, तीर्थों के अभिषेचन, दान, हवन, एवं उपासना द्वारा उस मोक्षदायक फल की प्राप्ति नहीं होती है जिसे मोक्षार्थी सप्तमी व्रत विधान द्वारा प्राप्त करता है । ऐसा सूर्य भगवान् ने बताया है ।२३-२४। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नक्त व्रत करके रविवार के दिन जो सूर्य की आराधना करता है, उस मनुष्य को अचल स्थान की प्राप्ति एवं सूर्य लोक में नियतनिवास प्राप्त होता है ।२५। भक्ति पूर्वक सप्तमी के दिन जो सूर्य की अर्चना करता है, ब्रह्मा, इन्द्र एवं रुद्र के लोकों में वह अप्रतिहत गति द्वारा पहुँचकर विचार करता है ।२६। वीर ! जो पुरुष सप्तमी व्रत विधान का यथावत् पालन करता रहता है, उसके कुल में कोई व्यक्ति अंधा, कुष्ठी, नपुंसक, व्यंग, एवं निर्धन नहीं होता है ।२७। भारत ! विद्यार्थी विद्या, धनेच्छुक धन तथा स्त्री के अभिलाषी रूप सौन्दर्य पूर्ण स्त्री और पुत्रों की प्राप्ति करता है ।२८। लोभ, मोह, अथवा प्रमाद वश यदि व्रत भंग हो जाये तो तीन रात का अनशन या केश मुंडन रूप प्रायश्चित सुसम्पन्न करके पुनः व्रत के योग्य हो जाता है । खगेश्वर ! वह सातों सप्तमी के व्रत-विधान को सुसम्पन्न करने की योग्यता प्राप्त करता है ।२९-३०। सप्तमी के दिन मनुष्य माला-धूपादि द्वारा सूर्य की अर्चना, एवं ब्राह्मण भोजन कराके अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति करता है ।३१। सप्तमी के दिन जो उत्तम ब्राह्मणों को हिरण्य दान देता है, उसे अक्षय सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३२। वीर ! इस प्रकार तुम्हें मैंने सप्तमी व्रत का विधान सुना दिया । नृप ! उसी विषय को मैं पुनः तुम्हें सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।३३

श्रीभविष्यपुराण के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यारुणसंवाद में सप्तमी व्रत वर्णन नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।२०८।

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

यः क्षिपेद्गोमयाहारः शुक्ला द्वादश सप्तमीः । अथवा यावकाहारः शीर्णपर्णाशनोऽपि वा ॥१
क्षीराशी चैकभक्तो वा मिताहारोऽथ वा पुनः । जलाहारोऽपि वा विद्वान्पूजयित्वा दिवाकरम् ॥२
पुष्पोपहारैर्विविधैः पद्मसौगन्धिकोत्पलैः । नानाप्रकारैर्गन्धैश्च धूपैर्गुग्गुलचन्दनैः ॥३
कृष्णगन्धपायसाद्यैर्विचित्रैः सुविभूषणैः । अर्चयित्वा द्विजाञ्छ्रेष्ठान्हिरण्यान्नादिभिर्नरः ॥४
स तत्फलमवाप्नोति क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । यदेह तप्यते वीर प्राप्यते केवलं रवेः ॥५
विमानवरमारूढः सूर्यलोके महीयते । ततः पुण्यक्षयाद्राजन्कुले महति जायते ॥६
एवं भक्त्या विवस्वंतं प्रतिमासं समाहितः । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या नामानि परिकीर्तयेत् ॥७
चैत्रिके मासि विष्णुश्च माधवे ह्यर्यमेति वै । शुक्रे विवस्वान्मासे तु शुचौ मासे दिवाकरः ॥८
पर्जन्यः श्रावणे मासि नभस्ये वरुणस्तथा । मार्तण्डेति च विज्ञेयः कार्तिके भार्गवः पुनः ॥९
मार्गशीर्षेऽपि मित्रस्तु कीर्तितः सततं बुधैः । पूषा पौषे तु वै मासे पूजनीयः प्रयत्नतः ॥१०
माघे भगेति विज्ञेयस्त्वष्टा चैवायं फाल्गुने । एवं क्रमेण नामानि कीर्तयेत्प्रीतये रवेः ॥११
धूपार्चनविधिमिमं सप्तम्यां सुसमाहितः । यः करोति नरो भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥१२

अध्याय २०९

सप्तमीव्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—बारहों मास के शुक्ल पक्ष की बारहों सप्तमी के व्रतानुष्ठान के पश्चात् गोमय (गोबर), यावक जीर्ण शीर्ण पत्ते, क्षीर, एकभक्त, मिताहार, तथा जलाहार के पारायण का विधान बताया गया है। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि भाँति-भाँति के पुष्पोपहार, कमल, नील कमल, भाँति-भाँति के गंध, धूप, गुग्गुल एवं चन्दन, कृष्ण गंध, पायस आदि तथा अनेक प्रकार के आभूषणों द्वारा भास्कर की उपासना सुसम्पन्न कर सुवर्ण और अन्न भक्ष्य-भोज्य द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा करे, तो उसे उन फलों की प्राप्ति होती है, जो अत्यन्त दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। वीर ! जो केवल सूर्य के प्रसन्नार्थ तप करता है, वह विमान द्वारा सूर्य लोक में पहुँच कर सम्मानित होता है, और राजन् ! पुण्यक्षय होने के उपरांत वह किसी उत्तम कुल में जन्म-ग्रहण करता है।१-६। इस प्रकार प्रतिमास में विवस्वान् (सूर्य) की भक्ति पूर्वक आराधना करनी चाहिए तथा उनके नामों का कीर्तन भी। चैत्र मास के विष्णु, वैशाख मास के अर्यमा, ज्येष्ठ के विवस्वान्, आषाढ़ मास के दिवाकर, श्रावण मास के पर्जन्य, भादों मास के वरुण, आश्विन मास के मार्तण्ड, कार्तिक मास के भार्गव, मार्गशीर्ष (अगहन) मास के मित्र पौष मास के पूषा, माघमास के भग, और फाल्गुन मास के त्वष्टा नामक सूर्य की क्रमशः अर्चना एवं प्रीति पूर्वक कीर्तन करे।७-११। इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य के धूपार्चन विधान को सुसम्पन्न करता

ततस्ते सर्वमाख्यातं यथगुह्यतमं विभोः । नैव देयमशिष्याय नाभक्ताय कदाचन ॥१३
न च पापकृते देयं न देयं नास्तिकाय वा । कृतघ्ने नास्तिके वीर न देयं क्रूरकर्मणि ॥१४
य इदं शृणुयान्नित्यं सप्तमीव्रतमुत्तमम् । पठेद्यश्चापि नियतः श्रद्धया परयान्वितः ॥१५
इह लोके सुखं प्राप्य सूर्यलोके महीयते । पुण्यक्षयादिहागत्य राजा भवति भूतले ॥१६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मेपर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यारुणसंवादे प्रतिमाससप्तमीव्रतवर्णनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०९।

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्येष सप्तमीकल्पः समासात्कथितस्तव । विस्तरात्ते पुनर्वच्मि शृणु चैकमना विभो ॥१
फाल्गुनामलपक्षस्य षष्ठ्यां च समुपोषितः । पूजयेद्भास्करं स्नात्वा गन्धपुष्पविलेपनैः ॥२
अर्कपुष्पैर्महाबाहो गुग्गुलेन सुगन्धिना । श्वेतेन करवीरेण चन्दनेन दिवाकरम् ॥३
गुडोदकेन नैवेद्यं निवेद्यं प्रीतये रवेः । एवं पूज्य दिवा भानुं रात्रौ तस्याग्रतः स्वपेत् ॥
जपन्भौमं परं जाप्यं विनिद्रः सततं बुधः ॥४

है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है ।१२। इस भाँति मैंने तुम्हें विभु (सूर्य) के अत्यन्त गुह्य आख्यान सुना दिये जो किसी अशिष्य एवं भक्ति हीन को कभी नहीं दिया जा सकता है ।१३। वीर ! किसी पापी, नास्तिक, कृतघ्न, एवं क्रूरकर्मा को कभी नहीं (सूर्योपाख्यान का उपदेश) देना चाहिए ।१४। जो इस सप्तमी व्रत-विधान का श्रवण अथवा अत्यन्त श्रद्धालु होकर पाठ करता है, उसे इस भूतल के समस्त सुखों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य-लोक के सम्मान प्राप्त होते हैं और पुण्य क्षय के पश्चात् वह इस भूतल का राजा होता है ।१५-१६
श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सूर्यारुणसंवाद में सप्तमी व्रत वर्णन नामक दो सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ।२०९।

अध्याय २१०

सूर्यपूजा का वर्णन

सुमन्तु बोले—विभो ! मैंने तुम्हें इस सप्तमी कल्प को विवेचन पूर्वक सुना दिया, किन्तु, पुनः उसी का विस्तृत रूप में वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! ।१। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि के दिन उपवास रहकर स्नान, गंध, पुष्प, एवं लेपों द्वारा भास्कर की आराधना करनी चाहिए ।२। महाबाहो ! अर्क (मदार) के पुष्प, गुग्गुल की सुगंधित धूप, श्वेत कनेर के पुष्प, एवं चन्दन द्वारा दिवाकर की अर्चना करके प्रीति पूर्वक उन्हें गुड़-जल द्वारा बनाये गये नैवेद्य को अर्पित करे । इस भाँति दिन में उनकी पूजा सुसम्पन्न करके रात में उन्ही के सामने शयन कर विद्वानों को चाहिए कि जब तक निद्रित अवस्था न आये, उनके उत्तम मंत्र का जप करते रहें ।३-४

शतानीक उवाच

किं तत्परं भगवतः प्रियं जाप्यमनुत्तमम् ॥५
जप्तव्यो यत्परैर्भक्त्या भानुस्तस्याग्रतो नरैः । तन्मे ब्रूहि तथा मन्त्रान्धूपदीपान्विशेषतः ॥
येनाहं तं जपञ्जप्यं पूजयामि दिवाकरम् ॥६

सुमन्तुरुवाच

वक्ष्ये ते भरतश्रेष्ठ समासान्न तु विस्तरात् ॥७
षडक्षरेण मन्त्रेण कुर्यात्सर्वं समाहितः । जपं होमं तथा पूजां शतजप्तेनसर्वदा ॥८
सावित्र्या च जपं पूर्वं कृत्वा शतसहस्रशः । पश्चात्सर्वं प्रकुर्वीत जपादिकमनाकुलम् ॥९
ॐ भोः सावित्रि भास्कराय सहस्ररश्मिं धीमहि । तेन सूर्यः प्रचोदयात् ॥१०
जप एष परः प्रोक्तः सप्तम्यां भानुना स्वयम् । जप्त्वा सकृद्भवेत्पूतो मानवो नात्र संशयः ॥११
प्रभाते त्वथ सप्तम्यां जपन्नियतमानसः । पूजयेद्भास्करं भक्त्या पूर्वोक्तविधिना नृप ॥१२
श्रद्धया भोजयेच्चापि ब्राह्मणाञ्छक्तितो नृप । दिव्यान्भोगांश्च विधिवद्भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥१३
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत भोजकांश्च प्रभोजयेत् । न भोजयेत्तथाऽसौरान्सौरान्यत्नेन भोजयेत् ॥१४

शतानीक उवाच

के भोज्या के न वा भोज्या ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तम । केषु चित्तेषु सप्तम्यां देवदेवो दिवाकरः ॥१५

शतानीक बोले—भगवान् भास्कर को किस उत्तम मंत्र का जप प्रिय है, जिसे भक्ति पूर्वक मनुष्य उनके सामने शयन-काल में जपता रहे ! उनके मंत्र तथा विशेषकर धूप-दीप बताने की कृपा करें क्योंकि मैं दिवाकर की आराधना तथा उस मंत्र का जप करना चाहता हूँ ।५-६

सुमन्तु बोले—भरत श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें संक्षेप में उसे बता रहा हूँ, सुनो । क्योंकि विस्तृत वर्णन करने का समय नहीं है । ध्यान लगाकर उनके षडक्षर मंत्र का जप करना चाहिए तथा जप, हवन, एवं पूजन काल में सदैव उस मंत्र की एक सौ संख्या का जप करना आवश्यक रहता है ।७-८। सर्वप्रथम सावित्री मंत्र की एक लक्ष संख्या का जप करके पश्चात् सावधान होकर इसका जप आदि प्रारम्भ करे ।९। 'ओं भोः सावित्रि भास्कराय सहस्ररश्मिं धीमहि, तेन सूर्यः प्रचोदयात्, सप्तमी के दिन इसी उत्तम मंत्र का जप-विधान सुसम्पन्न करना बताया गया है क्योंकि इसे सूर्य ने स्वयं कहा है । इसके एक बार के जप करने से मानव अवश्य पवित्र हो जाता है इसमें संदेह नहीं ।१०-११। नृप ! सप्तमी के दिन प्रातः काल पवित्र होकर संयम पूर्वक इस का जप करते हुए पूर्वोक्त विधान द्वारा भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना करनी चाहिए तथा श्रद्धा समेत अपनी इच्छानुसार दिव्यभोग एवं अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्यों द्वारा ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे ।१२-१३। उसमें अपने धन का मोह न कर भोजकों को भोजन कराये और (सूर्य-भक्तिहीन) ब्राह्मण के त्याग और प्रयत्न पूर्वक सौर (सूर्य-भक्त) ब्राह्मणों के भोजन पर विशेष ध्यान रखने चाहिए ।१४

शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मवित्तम ! किस ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए, और किसे नहीं तथा देवाधिदेव दिवाकर सप्तमी के दिन किन ब्राह्मणों के चित्त में अधिष्ठित रहते हैं ।१५

सुमन्तुरुवाच

घटीभोज्यो भवेद्विप्रः सप्तमीं कुरुते च यः । सौरभिन्नेष्वभोज्यो यो यश्च भुक्तो दिवाकरे ॥१६
एते भोज्या द्विजा राजन्नादित्येन समासतः । प्रोक्ताः कुरुकुलश्रेष्ठ तथाऽभोज्याञ्छृणुष्व वै ॥१७
सभार्यः सपतिर्यस्तु कुष्ठरोगैर्हतश्च यः । यश्चान्यदेवताभक्तस्तथा नक्षत्रसूचकः ॥१८
परापवादनिरतो यश्च देवलकस्तथा । एतेऽभोज्याः तविप्रा तु स्वयं देवेन चिन्तिताः ॥१९

शतानीक उवाच

ये भोज्या ब्राह्मणाः प्रोक्ता ये आभोज्या द्विजोत्तमाः । एतेषां लक्षणं ब्रूहि सर्वेषां वै समाहितः ॥२०

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र कीर्तयिष्येव कृत्स्नशः । पठतां तु त्रयीं विद्यां ब्राह्मणानां कदम्बकः ॥२१
घटेत्युक्ता तु सा राजन्स्वयं देवेन भानुना । सा घटा विद्यते यस्य स घटीत्युच्यते द्विजः ॥२२
ब्रह्मक्षत्रविशां वीर शूद्राणां च कदम्बकः । शृण्वतां विधिवत्पुण्यं भक्त्या पुस्तकवाचनम् ॥२३
इति मासे निबद्धस्य होमस्येति च भानुना । कथितं कुरुशार्दूल स्वयमाकाशगामिना ॥२४
यस्याः कर्ता भवेद्यस्तु मम स्यात्करको मतः । स विप्रो राजशार्दूल सदेष्टो भास्करस्य तु ॥२५
जयोपजीवी व्यासश्च समः स्याज्जीवकस्तथा । यान्येतानि पुराणानि सेतिहासानि भारत ॥

सुमन्तु बोले—सप्तमी व्रतानुष्ठान को सम्पन्न करने वाला ब्राह्मण बार-बार भोजन कराने योग्य होता है किन्तु वह जो दिवाकर की आराधना में किसी असौर (सूर्य भक्तिहीन) के यहाँ भोजन न करने वाला, एवं दिवाकर की आराधना में भोजन करने वाला, ब्राह्मण सदैव क्षण-क्षण पर भोजन कराने योग्य होता है। राजन् ! इन्हीं ब्राह्मणों को सूर्य ने स्वयं भोज्य (भोजन करने के योग्य) बताया है। कुरुकुल श्रेष्ठ ! उन अभोज्य ब्राह्मणों को, जिन्हें कभी भोजन न कराना चाहिए, बता रहा हूँ, सुनो ! स्त्री के समेत रहने वाला, सेवक का कार्य करने वाला, कुष्ठी, रोगी अन्य देवता के उपासक, नक्षत्र की सूचना देने वाले (ज्योतिषी), निंदक तथा देवलक, इन्हीं ब्राह्मणों को स्वयं सूर्य अभोज्य भोजन कराने के अयोग्य बताया है।१६-१९

शतानीक ने कहा—देव ! जो ब्राह्मण भोज्य हैं तथा जो अभोज्य हैं, उनके लक्षण बताने की कृपा करें।२०

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आप ने साधु प्रश्न किया है अतः मैं सम्पूर्ण लक्षण बता रहा हूँ सुनो ! वेदत्रयी (तीनों वेदों) के अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के समूह को 'घटा' कहा गया है, स्वयं सूर्य देव ने ऐसा बताया है। उसी 'घटा' वाले ब्राह्मण को 'घटी ब्राह्मण' कहा जाता है।२१-२२। वीर ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्रों के समूह, भक्तिपूर्वक पुस्तक पारायण को सुनकर अधिक पुण्य प्राप्त करते हैं। इन्ही उपरोक्त ब्राह्मणों को मास सप्तमी के दिन भोजन एवं उन्हीं द्वारा हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। कुरुशार्दूल ! इसे स्वयं आकाशचारी सूर्य ने बताया है।२३-२४। सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को जो सुसम्पन्न करता है, वह मेरी सम्मति से 'करक' है, राजशार्दूल ! वह ब्राह्मण भास्कर को सदैव प्रिय है। उसी प्रकार उन्हें जयोपजीवी, व्यास, और जीवक भी कहा जाता है। भारत ! इतिहास (महाभारत)

जयेति कथितानीह स्वयं देवेन भास्वता ॥२६
एकं निवासयन्यस्तु ब्राह्मणं तूपजीवति । जयोपजीवी स ज्ञेयो वाचकश्च तथा नृप ॥२७
आदित्येयादिशास्त्राणि सप्ताश्वतिलकं तथा । यश्च जानाति सौराणि विप्रः सौरस्स तत्त्ववित् ॥२८
पूजयेत्सततं यस्तु भास्करं नृपसत्तम । भोजकांश्च तथा राजन्यथा देवं दिवाकरम् ॥२९
स ज्ञेयो भास्करे भक्तो भोजनीयः प्रयत्नतः । भोज्यानां लक्षणं ह्येतदभोज्यानां शृणुष्व मे ॥३०
वृषली यस्य वै भार्या ब्राह्मणस्य विशेषतः । परभार्यापतिरसौ ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः ॥३१
दैवेन निहतः कुष्ठी ब्राह्मणो ब्रह्मघातकः । भोजको विन्दते यस्तु न च तं पूजयेत्तथा ॥३२
ज्ञेयोऽन्यदेवभक्तोऽसौ स द्विजः कुरुनंदन । आदित्यं भोजकं विद्धाद्गात्रैर्देहसमुद्भवम् ॥३३
नादित्यं पूजयेद्यस्तु स भोज्यो न कदाचन । मुण्डो व्यङ्गधरो गौरः शङ्खपुष्पधरस्तथा ॥३४
यस्य याति गृहे राजन्भोजको मानवस्य तु । तस्य यांति गृहे देवाः पितरो भास्करस्य तु ॥३५
रक्षोभूतपिशाचाश्च योगिन्योऽपि पलायिताः । सकृद्भुङ्क्ते गृहे यस्य भोजको गृहधर्मिणः ॥३६
सप्तसंवत्सरं यावत्तृप्तो भवति भास्करः । तस्मात्तान्भोजयेद्दिव्यान्भोजकान्सततं बुधः ॥
यस्तु तान्निन्दते विप्रः स न भोज्यः कदाचन ॥३७
निजं भर्तारमुत्सृज्य स्वैरं यान्यत्र गच्छति । स्वैरिणी सा तु वै प्रोक्ता पापिष्ठा कुलदूषिणी ॥३८

समेत समस्त पुराणों की 'जय' संज्ञा बतायी गयी है, इसे स्वयं सूर्य देव ने बताया है। उसके विशिष्ट विद्वान् किसी एक ब्राह्मण को अपने यहाँ रखकर उसके पालन पोषण करने वाले ब्राह्मण को जयोपजीविन् एवं वाचक कहते हैं। तथा नृप ! सूर्य के समस्त शास्त्र, एवं सप्ताश्व तिलक का परिज्ञाता ब्राह्मण, जो सौर (सूर्य) शास्त्र के तत्त्व को जानता है वह तत्त्ववित् बताया गया है।२५-२८। नृपसत्तम ! भास्कर देव की निरन्तर उपासना करने वाले तथा राजन् ! दिवाकर देव की भाँति भोजक ब्राह्मण के उपासक ब्राह्मणों को भास्कर के पूजन में भोजन करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। भोज्यों ब्राह्मणों के लक्षण मैंने बता दिये हैं, अब अभोज्य ब्राह्मणों के लक्षण बता रहा हूँ सुनो ! जिस ब्राह्मण की स्त्री वृषली (कोई शूद्र जाति की स्त्री) हो, तथा वह दूसरे स्त्री का उपभोक्ता हो उसे ब्राह्मणाधम बताया गया है।२९-३१। दैव (भाग्य) द्वारा कुष्ठ का रोगी और ब्रह्मघाती ब्राह्मण, यदि भोजक हो तो उसे कभी भी पूज्य न बनाये।३२। कुरुनन्दन ! अन्य देव के उपासक ब्राह्मण भी अभोज्य हैं। भोजक ब्राह्मण तो आदित्य का ही रूप है, क्योंकि वह उनके शरीर द्वारा उत्पन्न हुआ है।३३। उसी प्रकार आदित्य की उपासना न करने वाला, मुण्डी, व्यंग धारण करने वाला गौर वर्ण, शंख एवं पुष्प धारण करने वाला ब्राह्मण सर्वदा अभोज्य है।३४। राजन् ! जिस मनुष्य के घर भोजक पहुँच जाता है, उसके यहाँ भास्कर सम्बन्धी समस्त देव, पितर पहुँचते हैं।३५। जिस गृहस्थ के घर भोजक को एक बार भी भोजन कराया जाये उसके गृह से राक्षस, भूत, पिशाच, एवं योगिनियाँ पलायन कर जाती है।३६। दिव्य भोजकों को एक बार भोजन कराने से भगवान् भास्कर सात वर्ष तक तृप्त रहते है, अतः विद्वान् को चाहिए कि वह भोजकों को निरन्तर भोजन कराये। इनकी निंदा करने वाले ब्राह्मण को भी कभी भोजन न कराये।३७। जो स्वेच्छा पूर्वक अपने पति को त्याग कर स्वतंत्रता से घूमती फिरती हैं अर्थात् (खुला व्यभिचार करती हैं),

प्रच्छन्नं रोदते राजन्या नारी भवद्दोषतः । मता सा स्वैरिणी राजन्कुले नश्यति [illegible] ॥३९
योऽस्यां रतो भवेद्विप्रः स ज्ञेयः स्वैरिणीरतः । रङ्गोपजीवी कथको यश्च [illegible] ॥४०
रङ्गोपजीवी राजेन्द्र तथा च बहुयाचकः । द्वे एते नामनी राजन्कथकस्य [illegible] ॥
छलेनानेन [illegible] उद्धृतः कुरुनन्दन ॥४२
[illegible] गायते विप्रः प्रोच्चैस्तु जनसंसदि । रंगोपजीवी प्रोक्तोऽयं द्वितीयः परिकीर्तितः ॥४१
सूचनं कथनं प्रोक्तं सर्वशास्त्रेषु भारत । [illegible] स वै [illegible] ॥४३

शतानीक उवाच

अहो बत महत्कष्टं भवतो यदिह [illegible] । वेदाङ्गं ज्योतिः शास्त्रं तु षष्ठं प्रोक्तं [illegible] ॥४४
षडङ्गो न भवेत्तेन रहितेन द्विजेन च । अभोज्यो पठनात्तस्य यद्वत्स्यावृत[illegible] द्विज ॥४५
भोज्योऽखण्डं यथा विप्रोऽनर्थकेन [illegible] । विवृत्य कथ्यतां विप्र अत्र मे संशयो महान् ॥४६

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता श्रूयतामत्र निर्णयः । यस्य जीव्यमिदं श्रेयमङ्गं विप्रस्य [illegible] ॥४७
सांवत्सरेण ज्योतिषः ज्ञानं नक्षत्रसूचकः । न स भोज्यो भवेद्राजन्यस्येदं जीविका [illegible] ॥४८
निष्कारणं पराणां च परोक्षं दोषकीर्तनम् । गुणानां च यथा गुप्तिः परिवाद[illegible] ॥४९

उसी कुल कलंकिनी एवं पापिनी को 'स्वैरिणी' बताया गया है ।३८। राजन् ! जन्म-दोष वश प्रच्छन्न व्यभिचार रूप पाप करने वाली स्त्री को भी 'स्वैरिणी' कहा गया है राजन् ! वह भी कुल का नाश करती है ।३९। ऐसी स्त्रियों के साथ रमण करने वाले ब्राह्मण, तथा रंगोपजीवी, कत्थक (नृत्य करने वाले पुरुष), जो प्राकृत (स्वभावतः) नर्तक हैं, (भोजन कराने के अयोग्य हैं) राजेन्द्र ! कत्थकों के, रंगोपजीवी, एवं बहुयाचक दो प्रकार के नाम बताये गये हैं । कुरुनन्दन ! जो ब्राह्मण किसी सभा आदि जन समूहों में उच्च स्वर से गायन करता है, उसे 'रंगोपजीवी' कहते हैं । उसी प्रकार भारत ! जो नक्षत्रों की सूचना देते फिरते हैं, उन्हें 'नक्षत्र सूचक' कहा जाता है । (ये सभी अभोज्य हैं) ।४०-४३

शतानीक ने कहा—मुझे ब्राह्मणों के विषय में ऐसी बातें सुनकर महान् कष्ट हो रहा है, क्योंकि विद्वानों ने ज्योतिषशास्त्रों को छठाँ वेदांग बताया है ।४४। अतः बिना उसके अध्ययन किये ब्राह्मण 'षडंग पाठी' नहीं कहा जा सकता है किन्तु उसके अध्ययन करने वाले ब्राह्मण अभोज्य हैं (महान दुःख की बात है) हे द्विज ! इस विषय में मुझे महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, भोज्य अखंड हो, तथा ब्राह्मण अनर्थ की प्राप्ति न करे, इसलिए इस विषय को पुनः विवेचनपूर्ण कहने की कृपा कीजिए ।४५-४६

सुमन्तु बोले—आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, मैं इस विषय के निर्णय को कह रहा हूँ सुनो ! जिस ब्राह्मण का यह अंग (ज्योतिष शास्त्र) जीविका है, उसी के लिए निषेध किया गया है—राजन् ! जो ज्योतिषी ज्योतिष् शास्त्र का अध्ययन करके जनता को नक्षत्र आदि की सूचना (जीविका के नाते) देते हैं, वहीं अभोज्य बताये गये हैं ।४७-४८। जो अकारण परोक्ष में किसी के दोष का वर्णन एवं गुण का छिपाव करते हैं, उन्हें 'निन्दक' कहा जाता है । राजेन्द्र ! जो ब्राह्मण जीविका के नाते देवालय में देवताओं के

ब्राह्मणो यस्तु राजेन्द्र वृत्त्या कर्म करोति वै । देवतायतने चेह देवानां पूजनं तथा ।।५०
आधिपत्यं भक्षणं च नैवेद्यस्य परन्तप । स ज्ञेयो देवलो राजन्ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः ।।५१
नाधिकारस्तु विप्राणां भौमानां देवपूजने । वृत्त्या भरतशार्दूल आधिपत्ये विशेषतः ।।५२
यस्तु पूजयते देवीं ब्राह्मणो द्रव्यलोभतः । वृत्त्यै कुरुकुलश्रेष्ठ स याति नरकं ध्रुवम् ।।५३
देवालयेषु सर्वेषु अग्निकार्यं च सुव्रत ! यः कुर्याद्द्रव्यलोभेन अधोगतिमवाप्नुयात् ।।५४
देवालयेषु सर्वेषु वर्जयित्वा शिवालयम् । देवानां पूजनं राजन्नग्निकार्येषु वा विभो ।।५५
अधिकारः स्मृतो राजन्भोजकानां न संशयः । पूजयन्तस्तु ते देवान्प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ।।५६
नैवेद्यं भुञ्जते यस्माद्भोजयन्ति च भास्करम् । पूजयन्ति च देवानां[1] दिव्यतन्त्रेण ते गताः ।।५७
पूजयित्वा तु वै देवान्नैवेद्यं भक्ष्य च प्रभोः । यान्ति ते परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ।।५८
ब्राह्मणश्चापि तं ब्रूयात्तीव्रे सति महामते । एवं करिष्ये श्रेयोऽर्थं नात्मनस्तव वा विभो ।।५९
इत्यामन्त्र्य ततो गच्छेत्स्वगृहं कुरुनन्दन । तथा परेऽह्नि सम्पूज्य देवं भक्त्या दिवाकरम् ।।६०
कृत्वा च पावकं राजन्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । शाल्योदनं तथा मुद्गं सुगन्धं मुद्गमेव हि ।।६१
अपूपान्गुडपूपांश्च पयो दधि तथा नृप । एतैस्तु तृप्तिमायाति भास्करो नरसत्तम ।।६२
वर्ज्यानि भरतश्रेष्ठ शृणु त्वं गदतो मम । कुलत्थकान्मसूरांश्च निष्पावादींस्तथैव च ।।६३

पूजन आदि कार्य करते हैं तथा वहाँ के अधिपत्य स्वीकार कर देवता के लिए समर्पित किये गये नैवेद्य के भक्षण भी करते हैं वे भी अभोज्य हैं। परंतप ! राजन् ! वे ब्राह्मणाधम 'देवलक ब्राह्मण' कहे जाते हैं।४९-५१। भरतशार्दूल ! इस भूतल के ब्राह्मणों को सूर्य देव की मूर्ति पूजा करने का अधिकार नहीं है, विशेषकर उनके मंदिर के आधिपत्य स्वीकार करने वाले की।५२। कुरुकुलश्रेष्ठ ! जो ब्राह्मण द्रव्य के लोभवश देवी का पूजन करता है, उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है।५३। सुव्रत ! सभी मंदिरों में जो द्रव्य के लोभवश हवन (यज्ञ) करता है, उसकी अधोगति होती है।५४। एक शिवालय के अतिरिक्त और सभी मन्दिरों में देव पूजन एवं कर्म करने का अधिकार भोजकों को दिया गया है इसमें संदेह नहीं। वे ही देवों की पूजा करते हुए उत्तम गति प्राप्त करते हैं।५५-५६। भास्कर के भोजन कराने एवं उनके नैवेद्य के भक्षण करने और देवों की पूजा करने से दिव्यधिकार द्वारा उन्हें उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। सूर्य की पूजा एवं उनके लिए अर्पित किये गये नैवेद्य के भक्षण करने से उसे देव के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है।५७-५८। महामते! उनके (भोजक के) उग्र होने पर ब्राह्मण उनसे कहे कि 'विभो' मैं अपने अथवा आप के लिए नहीं प्रत्युत सर्वदा कल्याणार्थ यों ही करता आया हूँ, इसलिए ऐसा ही करूँगा कुरुनन्दन ! इस प्रकार उसे आमंत्रित कर अपने घर को प्रस्थान करे। पश्चात् दूसरे दिन भक्ति पूर्वक सूर्य देव की आराधना करके हवन के उपरांत ब्राह्मण भोजन कराये। नृप ! साठी चावल के भात, सुगंधित मूंग, मालपूआ, गुडमिश्रित माल पूआ, दूध और नृपसत्तम ! इन्हीं भक्ष्य पदार्थों द्वारा भास्कर देव अत्यन्त तृप्त होते हैं।५९-६२। भरत श्रेष्ठ ! किन पदार्थों का त्याग करना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कुलथी (मोथी), मसूर, निष्पाव आदि (मान्य

---

१. कर्मणः शेषत्वविवक्षया षष्ठी।

सिल्कं च तथान्यच्च राजमाषांस्तथैव च । नैतानि भास्करे दद्याद् इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥६४
दुर्गन्धं यच्च कटुकमत्यल्पं भास्करस्य तु । विमिश्रांस्तंडुलांश्चापि न दद्याद्भास्कराय वै ॥६५
इत्थं भोज्य द्विजं राजन्प्राशयेदर्कसम्पुटम् । प्रणम्य शिरसा देवमुदकेन समन्वितम् ॥६६
गृहीत्वा केतनं यस्तु भजतेऽन्यत्र लोकतः । नाश्नन्ति पितरस्तस्य न देवा न च मानवाः ॥६७
निष्क्रम्य नगराद्राजन्गत्वा पूर्वोत्तरां दिशम् । नात्युच्चे नातिनीचे च शुचौ देशेऽर्कमुत्तमम् ॥६८
जातं वृष्ट्वा महाबाहो पूजयित्वा खगोत्तम : पूर्वोत्तरगताश्चैव यस्य शाखा विशन्नृप ॥६९
शाखाया अग्रतः पार्श्वे सुसूक्ष्मे पल्लवाश्रिते । सुश्लिष्टे न पृथग्भूते सम्पूज्य गृहमाव्रजेत् ॥७०
स्नातः पूज्य विवस्वन्तमर्कपुष्पैः खगोत्तम । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु अर्को मे प्रीयतामिति ॥७१
प्राश्य मन्त्रेणार्कपुटं ततो भुञ्जीत वाग्यतः । देवस्य पुरतो वीर त्वस्पृशन्दशनैः पुटम् ॥७२
ॐ अर्कसम्पुट भद्रं ते भद्रं तेऽर्क सदास्तु वै । ममापि कुरु भद्रं च प्रायश्चित्तप्रदो भव ॥७३
इमं मन्त्रं जपन्राजन्स्मरन्नर्कं महामते । स्थित्वा पूर्वमुखो ब्रह्म वारिणा सहितं नृप ॥७४
प्राश्य भुङ्क्ते च यो राजन्स याति परमां गतिम् । दन्तैरस्पृश्य हे वीर तत्पुटं चार्कसंज्ञितम् ॥७५
अनेन विधिना भक्त्या कर्तव्या सप्तमी सदा । यावद्वर्षं महाबाहो प्रीतयेऽर्कस्य श्रद्धया ॥७६
यश्चेमां सप्तमीं कुर्याद्भास्करं प्रीणयन्नरः । तस्याक्षयं भवेद्वित्तमचलं साप्तपौरुषम् ॥७७

विशेष), सिल्क, और राजमाष कल्याणेच्छुक को चाहिए कि ये सभी वस्तुएँ सूर्य के लिए समर्पित न करें। उसी प्रकार दुर्गंधवाली वस्तु, कड़वी वस्तु, चाहे उसमें कडवापन अत्यन्त ही क्यों न हो, और मिश्रित चावल (खिचड़ी) सूर्य के लिए कभी समर्पण न करना चाहिए ।६३-६५। राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण भोजन के उपरांत अर्कसंपुट का प्राशन करे। सर्वप्रथम जल समेत सूर्य देव को शिर से प्रणाम करना चाहिए। जो लोगों से पृथक्-होकर केवल उनके केतन (चिह्न) रूप को ग्रहण कर उसकी पूजा आदि करते हैं, उनके घर पितर, देव, और मनुष्य कोई भी भोजन नहीं करते हैं ।६६-६७। राजन् ! नगर या गाँव से निकल कर पूर्व दिशा की ओर जाकर किसी पवित्र स्थान में उत्पन्न हुए उत्तमाक्षर के जो अत्यन्त ऊँचे या नीचे न हो, वृक्ष की पूजा सुसम्पन्न कर महाबाहो, खगोत्तम ! उसके उस शाखा के जो पूर्व और उत्तर की ओर गयी हो, अग्रभाग में स्थित किसी पल्लव के किसी पत्ते की, जो उनमें मिला हो पृथक् न हो, पूजा कर अपने घर लौट आयें ।६८-७०। खगोत्तम ! स्वयं स्नान कर अर्क पुष्पों द्वारा सूर्य की अर्चना एवं ब्राह्मण भोजन के उपरांत प्रार्थना करे 'सूर्य मेरे ऊपर प्रसन्न हों,' इस प्रकार उसे (अर्क पुष्पों) से अभिमंत्रित कर और मौन होकर सूर्य के सामने, दाँतों से उस का स्पर्श न होने पाये, भक्षण करे ।७१-७२। राजन्, महामते ! जो अर्क संपुट, इत्यादि मंत्र के जप करके पूर्वाभिमुख स्थित हो, जो जल समेत अभिमंत्रित कर उसके भक्षण करते हैं, पर, वीर ! उस अर्कपुट का दाँतों से स्पर्श न होने पाये, तो उसे उत्तम गति प्राप्त होती है ।७३-७५। महाबाहो ! श्रद्धा समेत वर्ष की समाप्ति तक प्रत्येक सप्तमी व्रत इसी तत्त्वविधान द्वारा समाप्त करना चाहिए इससे सूर्य प्रसन्न होते हैं। भास्कर के प्रसन्नार्थ जो पुरुष इस प्रकार सप्तमी व्रत के अनुष्ठान करते हैं, उसकी सात पीढ़ी तक अक्षय एवं निश्चल सम्पत्ति प्राप्त होती

सुवर्णं रजतं ताम्रं हिरण्यं च तथा क्षयम्। कृत्वेनां सिद्धिमायातः कौथुमिः सहसा गतः ॥७८
कुष्ठरोगाच्च वै मुक्तो जयस्तोमो महीपतिः। बृहद्वलध्वजः कोपि याज्ञवल्क्योऽथ कृष्णजः ॥७९
अर्कं चैव समाराध्य ततोऽगुस्तेऽर्कसाम्यताम्। इयं धन्यतमा पुण्या सप्तमी पापनाशिनी ॥८०
पठतां शृण्वतां राजन्कुर्वतां च विशेषतः। तस्मादेषा सदा कार्या विधिवच्छ्रेयसेऽनघ ॥८१

शतानीक उवाच

जनकादयो यथा सिद्धिं गता भानुं प्रपूज्य च। श्रुतं मया तु बहुशो न श्रुतं कौथुमिर्यथा ॥८२
सिद्धिं गतोऽर्कमाराध्य कुष्ठान्मुक्तश्च सुव्रत। कश्चासौ कौथुमिर्विप्रः कथं कुष्ठमवाप्तवान् ॥८३
कथमाराधयामास भानुं देवपतिं द्विज। एतन्मे विप्र निखिलं कीर्तयस्व समासतः ॥८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यपूजादिवर्णनं
नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१०।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अर्कसम्पुटिकावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणुष्व गदतो मम। आसीत्पुरा महाविद्वान्ब्राह्मणः स्थानगोत्तमः ॥१

है ।७६-७७। और स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, एवं हिरण्य की अक्षय निधि प्राप्त होती है, इसी सप्तमी व्रतानुष्ठान द्वारा कौथुमि ने शीघ्र सिद्धि प्राप्ति की है ।७८। एवं इसी के आचरण द्वारा वे कुष्ठ रोग से मुक्त हुए हैं और उसी प्रकार जयस्तोम राजा वृहद्वलध्वज, कोपी, याज्ञवल्क्य तथा कृष्ण पुत्र इस सप्तमी द्वारा सूर्य की उपासना करके सूर्य के समान हो गये हैं, इसलिए यह सप्तमी धन्यतम, पुण्य रूप, एवं पापनाशिनी है ।७९-८०। राजन्! इसके पढ़ने, सुनने अथवा विशेष (सप्तमी व्रत का अनुष्ठान) करने से समस्त पापों के नाश होते हैं, अतः अनघ! कल्याणार्थ इसके अनुष्ठान, विधान पूर्वक सदैव सुसम्पन्न करना चाहिए ।८१

शतानीक ने कहा—जनकादि ने जिस प्रकार सूर्य की आराधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति की है, मैंने अनेकों बार सुना है, किन्तु, सुव्रत! कौथुमि ब्राह्मण ने किस प्रकार सूर्य की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की और कुष्ठ रोग से मुक्त हुए हैं, मैनें कभी नहीं सुना, तथा द्विज! यह कौथुमि नामक ब्राह्मण कौन है, कैसे कुष्ठ रोगग्रस्त हुआ और उसने देवपति सूर्य की आराधना कैसे की, हे विप्र! ये सभी बातें बताने की कृपा कीजिए ।८२-८४

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में सूर्य पूजादि वर्णन
नामक दो सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ।२१०।

अध्याय २११

अर्कसम्पुटिकावर्णन

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र! आप ने अत्युत्तम प्रश्न किया है, मैं उसका उत्तर दे रहा हू, सुनो! पहले

स गतः पुत्रसहितो जनकस्याश्रमं द्विजः । तत्र वादोऽभवत्तेषां विप्रैरन्यैर्नृपोत्तम ॥२
क्रोधाविष्टेन वै तत्र हतः कौथुमिना द्विजः । तं दृष्ट्वा हतं विप्रं त्यक्तः पित्रा स कौथुमिः ॥३
भ्रातृभिश्च महाबाहो तथा शिष्टैश्च कृत्स्नशः । प्रत्युक्तः स च सर्वैस्तु शोकदुःखसमन्वितः ॥४
तीर्थानि स जगामाथ दिव्यान्यायतनानि च । न च मुक्तस्त्वसौ विप्रः सहसा ब्रह्महत्यया ॥५
अनुक्तेऽथ तया विप्रे परो व्याधिरजायत । कर्णनासाविहीनस्तु पूयशोणितविस्रवः ॥६
पृथिवीं पर्यटन्सर्वां पुनरागात्पितुर्गृहम् । दुःखोपहतचित्तस्तु पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥७
पितर्गतस्तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । मुक्तोऽस्मि नानया तात क्रूरया ब्रह्महत्यया ॥८
कृतेऽपि हि परे तात प्रायश्चित्ते तु मेऽनघ । किं करोमि क्व गच्छामि तातातीव रुजो मम ॥९
कृतेन कर्मणा येन अल्पायासेन मे विभो । नश्येत्तु ब्रह्महत्येयं व्याधिश्चायं परन्तप ॥१०
कथ्यतां मा चिरं तात कुरु निःश्रेयसं मम । हिरण्यनाभो विप्रस्तु श्रुत्वा वाक्यं सुतस्य तु ॥
शोकदुःखाभिभूतस्तु वाक्यं पुत्रमुवाच ह ॥११

हिरण्यनाभ उवाच

ज्ञातः पुत्र तव क्लेशः प्राप्तो यस्त्वटता महीम् ॥१२
तीर्थानि च त्वया वत्स प्रायश्चित्तानि कुर्वता । न चापि ब्रह्महत्या त्वां मुञ्चते मत्कुलोद्वह ॥१३

समय में एक उत्तम ब्राह्मण था, महान् विद्वान् उसने अपने पुत्र को साथ लेकर राजा जनक के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर जनक जी के प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ उसके पुत्र से वाद-विवाद हो गया। १-२। नृपोत्तम ! क्रोध के आवेश में आकर उसके पुत्र कौथुमि ने किसी एक ब्राह्मण की हत्या कर डाली। ब्राह्मण की हत्या देखकर उसके पिता ने कौथुमि का त्याग कर दिया। महाबाहो ! उसी भाँति उसके भाई बन्धु एवं शिष्ट मण्डल आदि सभी के द्वारा त्याग किये जाने पर दुःखी एवं चिंतित होकर उसने तीर्थ यात्रा तथा दिव्य देवालयों में दर्शनार्थ आना-जाना आरम्भ किया। पर वह ब्राह्मण ब्रह्म हत्या से सहसा मुक्त न हो सका। ब्रह्म हत्या से बिना मुक्त हुए ही उसे एक दूसरी व्याधि (कुष्ठ) भी उत्पन्न हो गई। उसके द्वारा उसके नाक-कान गलित होकर गिर गये और प्रत्येक अंगों से (पीव) तथा रक्तस्राव होने लगा। उसने समस्त पृथ्वी का भ्रमण करने पर भी किसी भाँति उससे अपने को मुक्त होते न देख पुनः घर आकर दुःखपूर्ण वाणी द्वारा अपने पिता से कहा—हे पिता ! मैंने समस्त पुण्यतीर्थों तथा देवालयों की यात्रा की, किन्तु, इस क्रूर ब्रह्म हत्या से मुक्त न हो सका। तात ! मैंने इसके लिए उत्तम प्रायश्चित भी किये, पर, सफलता न मिली। हे अनघ ! यह महान् रोग मुझे अत्यन्त कष्ट दे रहा है, मैं क्या करूँ, और कहाँ जाऊँ। हे विभो ! कोई ऐसा छोटा उपाय बताने की कृपा कीजिए जिसके द्वारा थोड़े ही प्रयत्न करने पर इस ब्रह्म हत्या तथा रोग का शमन हो जाय, परंतप तात ! शीघ्र बताइये, देर न कीजिए तात ! मेरा कल्याण आप से ही हो सकेगा। ब्राह्मण हिरण्यनाभ ने अपने पुत्र की ऐसी बातें सुनकर चिंतित एवं दुःखी होकर उससे कहा—३-११

हिरण्यनाभ बोले—पुत्र ! पृथिवी के भ्रमण करते हुए तुम्हें जिन कष्टों का सामना करना पड़ा है, मुझे अच्छी तरह मालूम है। वत्स ! तुमने तीर्थयात्रा तथा प्रायश्चित्त किये, पर इस ब्रह्म हत्या से मुक्त न

उपायमेकं वक्ष्यामि येन त्वं मोक्षमाप्स्यसि । अल्पायासेन वै पुत्र शृणुष्व गदतो मम ॥१४

कौथुमिरुवाच

आराधयामि कं देवं ब्रह्मादीनां कथं विभो । शरीरेण विहीनोऽस्मि हेतुना सर्वकर्मणाम् ॥१५

हिरण्यनाभ उवाच

सिद्धिसन्ततियुक्तेन कर्मणा तुष्टिमाप्नुयुः । देवैरपि सुपूज्योऽयमुपलेपनमार्जनैः ॥१६
भानुरेको द्विजश्रेष्ठ ऊचुरेवं मनीषिणः । ब्रह्मा विष्णुर्महादेवो जलेशो धनदस्तथा ॥१७
भानुमाश्रित्य सर्वे ते मोदन्ते दिवि पुत्रक । तस्माद्भानोः समं देवं नाहं पश्यामि कञ्चन ॥१८
एवं भानुं सर्वमान्यमधुनाखिलकामदम् । पितरं मातरं तात नराणां नात्र संशयः ॥१९
तमाराधय वै भक्त्या जपन्मन्त्रमनुत्तमम् । इतिहासपुराणानि शृणु श्रद्धासमन्वितः ॥२०
आरधयन्रविं भक्त्या जपन्साम महामते । पुराणानि ततो लोके मोक्षं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥२१

कौथुमिरुवाच

दिश सामानि वै तात प्रवराणि महामते । ॐकारप्रवरोद्गीथं प्रस्थानं च चतुष्टयम् ॥२२
पञ्चमः परिहारोऽत्र षष्ठमाहुस्तमद्भुतम् । निधनं सप्तमं साम्नां साप्तविध्यमिति स्मृतम् ॥२३
साप्तविध्यमिति प्रोक्तं हिङ्कारप्रणवेषु च । अष्टमं च तव शाठ्यं नवमं वामदेविकम् ॥२४

हो सके। मत्कुलकमल ! एक उपाय जिसके द्वारा तुम्हें इस कष्ट से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी, पुत्र ! वह अल्प प्रयत्न साध्य है, मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१२-१४

कौथुमि ने कहा—विभो ! किस देव की आराधना करूँ, ब्रह्म आदि देवों की आराधना इस शरीर से कैसे की जा सकती है, क्योंकि महान् रोगग्रस्त होने के नाते मैं अपने को शरीर हीन समझता हूँ और सभी कर्म शरीर द्वारा ही सुसम्पन्न किये जा सकते हैं ।१५

हिरण्यनाभ बोले—(सूर्य) जिस कर्म द्वारा प्रसन्न होते हैं, उसके पग-पग में सिद्धियाँ निहित हैं, उपलेपन एवं मार्जन द्वारा समस्त देव उनकी पूजा करते हैं क्योंकि वे उनके पूज्य हैं ।१। मनीषियों ने बताया भी था कि द्विजश्रेष्ठ ! 'एक सूर्य ही पूज्य हैं' ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वरुण, और कुबेर ये सभी सूर्य देव के आश्रित रहकर स्वर्ग में आनन्दानुभव करते हैं, इसलिए पुत्र ! सूर्य के समान कोई अन्य देव दिखायी नहीं दे रहा है ।१६-१८। तात ! सभी मनुष्यों के सूर्य मात्र निखिल कामनाओं के सफल करने वाले, एवं माता पिता हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥१९। अतः भक्ति पूर्वक उनके मंत्र के जप करते हुए उनकी आराधना और श्रद्धा समेत इतिहास पुराणों का श्रवण करो ।२०। महामते ! भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना, शान्ति समेत (साम के) जप एवं पुराण श्रवण करने से तुम्हें इसी लोक में मोक्ष प्राप्त हो जायेगा ।२१

कौथुमि ने कहा—तात ! महामते ! उस उत्तम साम तथा ओंकार प्रवरोद्गीथ के जिसमें चार प्रस्थान बताये गये हैं, पाँचवाँ परिहार, छठाँ अद्भुत, सातवाँ निधन, इस प्रकार साम के सात भेद हैं ।२२-२३। इस प्रकार इस सात प्रकार के साम और हिंकार प्रणव वाले में भी सात विध्य हैं, आठवाँ शाठ्य, नवाँ वामदेविक (वामदेव वाला), दशवाँ ज्येष्ठसाम, जो ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय है, तात ! इन्हीं

ज्येष्ठं तु दशमं साम वेधसे प्रियमुत्तमम् । एतेषां तात साम्नां वै कण्ठे जाप्यं परं मतम् ॥
जपित्वा तु अहं शक्त्या गच्छामि परमं पदम् ॥२५

हिरण्यनाभ उवाच

साधु पुत्र कुलं पूतं त्वत्पुत्रेण समेन च ॥२६
एवं गतस्यापि हि ते जाता पुत्र विधेः स्मृतिः । एवं तात न सन्देहः सामान्येतानि पुत्रक ॥२७
प्रवराणि हि साम्ना वै ब्रह्मणा कथितानि ह । एषामपि परं प्रोक्तं सामद्वयमनुत्तमम् ॥
तस्यानेकं परं जाप्यं सर्वपापभयापहम् ॥२८

कौथुमिरुवाच

कथ्यतां तात तच्छीघ्रं यत्तु सामद्वयं परम् । एतेषां तात साम्नां तु नान्यज्जाप्यं च यद्भवेत् ॥२९

हिरण्यनाभ उवाच

ज्येष्ठसामपरं पूर्वं द्वितीयं गदतः शृणु ॥३०
ततः श्राव्यं तृतीयं तु जप्तव्यं मुक्तिमिच्छता । ततश्च परमं प्रोक्तं स्वयं देवेन भानुना ॥३१
स्वयं दैवतमादिष्टं छन्दसामुत्तमं व्रतम् । प्रियं हिरण्यगर्भस्य प्रियं सूर्यस्य सर्वदा ॥३२
जपश्च विनियोगोऽपि लक्षणं च निबोध मे । सत्येन स्वरलीनस्तु शूकरादि स्मृतं बुधैः ॥३३
ऋतुर्भावस्तथा धर्मो विधर्मः सत्यकृत्तथा । धर्माधर्मौ तथा कार्यौ धर्मवेदनमेव च ॥३४
यदेभिर्गीयते शब्दै रुचिरं समयैर्द्विजैः । जाप्यं तत्परमं प्रोक्तं स्वयं देवेन भानुना ॥३५

सामों को कण्ठस्थ जपकर, (क्योंकि यही (कण्ठस्थ) जप उत्तम बताया गया है) मैं परम पद की प्राप्ति में समर्थ हो जाऊँगा ।२४-२५

हिरण्यनाभ बोले—पुत्र ! अच्छा कहा । तुम्हारे ही समान पुत्रों से कुल पवित्र होता है, क्योंकि इस विपन्नावस्था में भी तुम्हें विधान का स्मरण हो रहा है । पुत्र ! साम के इन सामान्य प्रवरों को स्वयं ब्रह्मा ने कहा है, इसमें संदेह नहीं । इनसे भी उत्तम दो साम बताये गये हैं और उनमें एक का जप अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यह उत्तम और समस्त पाप नाशक हैं ।२६-२८

कौथुमि ने कहा—तात ! उसे शीघ्र बताने की कृपा कीजिए, जिन देवों को आप उत्तम बता रहे हैं क्योंकि उसके सामने किसी अन्य का जप अनावश्यक होगा ।२९

हिरण्यनाभ बोले—प्रथम ज्येष्ठ साम उत्तम बताया गया है, अब दूसरे को बता रहा हूँ सुनो ! ।३०। पश्चात् तीसरे को बताऊँगा, जो श्राव्य एवं मुक्ति के इच्छुकों के जप करने के अत्यन्त योग्य हैं, और जिसे सूर्य देव ने बताया है ।३१। वेद के इस व्रत विधान को देवों के हितार्थ स्वयं सूर्य ने बताया था, जो हिरण्य गर्भ (ब्रह्मा) तथा सूर्य को सदैव अत्यन्त प्रिय है ।३२। उनके जप, विनियोग, एवं लक्षणों को बता रहा हूँ, सुनो ! उसके स्वर विलीन होने पर पाठक को शूकरादि होना विद्वानों ने बताया है ।३३। ऋतु, भाव, धर्म, विधर्म, सत्यकृत्, धर्म-अधर्म, तथा धर्म वेदन, इनके गायन रुचिर शब्दों द्वारा ब्राह्मणों को करना चाहिए । क्योंकि उत्तम, जप को स्वयं सूर्य देव ने बताया है ।३४-३५। इसका जप करने वाला

एतद्वै जपमानस्तु पुनरावर्तते न तु । सर्वरोगविनिर्मुक्तो मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।३६
एतज्जाप्यं तु सञ्जप्य आराधय दिवाकरम् । गायन्साम तव प्रोक्तं शृणु पौराणिकं सुत ।।३७
ज्येष्ठसाम्नोऽपि ते पुत्र लक्षणं कथयामि हि । आद्यायादाज्यदोहेति ज्येष्ठसाम्नोऽपि लक्षणम् ।।३८
तव श्राव्यं जपं पुत्रज्येष्ठगाथै रविः सदा । समाराधय शृण्वन्वै पुराणानिव पुत्रक ।।
एवमाराध्य देवेशं ततो दुःखं प्रहास्यसि ।।३९

सुमन्तुरुवाच

ततः श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सामगः कौथुमिस्तथा ।।४०
आराधयामास रविं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । ततः श्राव्यं जपन्राजंस्त्रिकाले पुरतो रवेः ।।४१
शृण्वतस्तु पुराणानि ब्रह्महत्या गता सदा । व्याधिश्च कुरुशार्दूल फलमेतच्छ्रुतस्य वै ।।४२
जपता यत्फलं तेन देवं पूजयता नृप । सोऽपि प्राप्तो रविं राजञ्छृणुष्वैकमना नृप ।।४३
स गतो मूर्तिमान्विप्रः प्रसादाद्भास्करस्य तु । प्रविश्य मण्डलं भानोः गतं यत्परमं विभोः ।।४४
आवर्तते न चाद्यापि गतोऽसौ परमं पदम् । इति ते कथितं राजन्नतः सिद्धिं महाद्विजः ।।४५
उपोष्येमां भवेद्वीर सप्तमीं याति भास्करम् । कौथुमिर्नरशार्दूल प्रसादाद्भास्करस्य तु ।।४६
जपमानस्तु वै सोऽपि पुराणश्रवणस्तथा । इत्येषा कथिता राजन्प्रथमा सप्तमी तथा ।।४७

पुनर्जन्मा नहीं होता है, समस्त रोगों की मुक्ति पूर्वक वह ब्रह्म हत्या से भी छुटकारा पा जाता है।३६। इसी के जपपूर्वक तुम सूर्य की आराधना करो। तुम्हें इस प्रकार साम गायन का वर्णन बता दिया गया, सुत! पर्व पौराणिक का लक्षण बताया जा रहा है, सुनो! पुत्र! ज्येष्ठ साम के लक्षण भी तुम्हें बता रहा हूँ। 'आद्यायादाज्य दोहेति' यही ज्येष्ठ साम का लक्षण है, पुत्र! यही तुम्हारे लिए श्राव्य है तथा इसी के गायन द्वारा सूर्य की आराधना करो। पुत्र इसी प्रकार सूर्य की आराधना करने पर तुम्हारे कष्ट के शमन होंगे।३७-३९

सुमन्तु बोले—सामगायन करने वाले कौथुमि ने अपने पिता की ऐसी बातें सुनकर श्रद्धा-भक्ति समेत सूर्य की आराधना प्रारम्भ की। राजन्! सूर्य के सामने तीनों संध्याओं में वह उस का जप करने लगा। कुरुशार्दूल! इसी भाँति (सूर्य) पूजन एवं पुराणों के श्रवण करने से उसकी ब्रह्महत्या तथा (कुष्ठ की) व्याधि नष्ट हो गई। यह उसके श्रवण का फल है। नृप! जप करते हुए उसने सूर्य की आराधना द्वारा जिस फल की प्राप्ति की है, राजन्! सावधान होकर सुनो! मैं बता रहा हूँ। नृप! भास्कर की कृपावश उस ब्राह्मण ने मूर्तिमान् (शरीर धारण कर) होकर विभु सूर्य के मण्डल में प्रवेश करके उनके उत्तम पद की प्राप्ति की है।४०-४४। उसने ऐसे उत्तम पद की प्राप्ति की है, जिसके कारण आज भी उसे जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ा है। राजन्! इस प्रकार तुम्हें इस उत्तम बाह्मण की सिद्धि की कथा बता दी गयी। वीर उपवास रहकर सप्तमी के व्रतानुष्ठान द्वारा उस कौथुमि ने भास्कर में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति की है। यह भास्कर की कृपा है। राजन्! इस प्रकार प्रथम सप्तमी तथा अर्क पुटवाली

अर्कस्य पुटिका पुण्या वित्तदा या प्रिया रवेः ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेऽर्कसम्पुटिकानामसप्तमीव्रतवर्णनं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२११।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सौरार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्येषा कथिता वीर अर्कसम्पुटिका तव । द्वितीया मरिचैर्दा तु शृणुष्व गदतो मम ॥१

शुक्लपक्षे तु चैत्रस्य षष्ठ्यां सम्यगुपोषितः । पूजयेद्भास्करं भक्त्या सौरधर्मविधानतः ॥२

शतानीक उवाच

ब्रूहि सर्वान्मम ब्रह्मन्मन्त्रान्पुण्यान्विशेषतः । सूर्यादिहृदयं चापि शिरोन्यासयुतांस्तथा ॥३

सुमन्तुरुवाच

अहं ते कथयिष्यामि रहस्यं परमं विभो । यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं भक्त्या भानोर्महात्मनः ॥४

सर्वपापक्षयार्थाय तच्छृणुष्व महामते । सर्वपापहरं पुण्यमादित्यं लोकपूजितम् ॥५

शिखादामसमायुक्तं वकारामृतमुत्तमम् । ॐ वं फट् । ॐ एष सूर्यः स्वयं तात मन्त्रमूर्तिर्महाबलः ॥६

सप्तमी, जो पुण्य, एवं धन प्रदान करने वाली होती है, और सूर्य को अत्यन्त प्रिय है, बता दी गई।४५-४८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में अर्कसंपुटिका सप्तमी व्रत-वर्णन नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।२११।

अध्याय २१२

सौरार्चन विधि वर्णन

सुमन्तु ने कहा—वीर ! अर्कसंपुट वाली प्रथम सप्तमी की व्याख्या तुम्हें बता दी गयी अब मिर्च धारण वाली दूसरी सप्तमी की व्याख्या बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन उपवास करते हुए सौर धर्म के विधान द्वारा भक्ति पूर्वक सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।२

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! सभी पुण्यस्वरूप वेद मंत्र तथा विशेषकर आदित्य हृदय, जिसमें शिरोन्यास बताया गया है, ये सभी बातें मुझे बताने की कृपा कीजिए ।३

सुमन्तु बोले—विभो ! रहस्य समेत उस उत्तम विधान को, जिसे महात्मा सूर्य के विशेष भक्त होने के कारण ब्रह्मा ने स्वयं कहा था बता रहा हूँ सुनो ! ।४। महामते ! उस विधान पूर्ण आराधना को करने से समस्त पापों के नाश होते हैं । सभी पापों के अपहरण करने वाला, पुण्य, आदित्यरूप, एवं लोकपूजित उस उत्तम वकार को जिसमें शिखा लगायी गयी हो (ओं वं फट्) मंत्र रूप जाने । तात ! ओंसमेत

अस्यानुस्मरणान्मन्त्री नित्यं मधुरभोजनः । संवत्सरेण देवेशं साक्षाद्भानुं प्रपश्यति ॥७
व्याधिमृत्योश्च निर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति । सततं जपमानस्तु राजन्मन्त्रविदां वरः ॥८
मनसा कर्मणा वाचा शापानुग्रहतोऽपि वा । क्षीराशी मौनमाश्रित्य विविक्ते नियतेन्द्रियः ॥९
जपित्वा द्वादशलक्षं सशरीरो दिवं व्रजेत् । त्रैलोक्यं चरते राजश्चिन्तामणिरिवेच्छया ॥१०
अथेदं परमं वाच्यं सूर्यस्य हृदयं शृणु । स्मर्तव्यं शुचिना नित्यं सर्वपापभयापहम् ॥११
वियुक्तं चन्द्रसंपुटमृकारेण च भारत । ॐकारदीपितं चैव हृदयं परिकीर्तितम् ॥१२
यकारबिन्दुसंयुक्तं वैशाखः कथितो बुधैः । यकारश्च वकारश्च मात्रा बिन्दुस्तथा नृप ॥१३
इष्टं कवचमादिष्टमस्त्रं वक्ष्ये निबोध मे । प्रणवादिं दुकारं च सानुस्वारं कटस्तथा ॥१४
इदमस्त्रं स्मृतं राजन्नमृतं च निबोध मे । बिन्दुचन्द्रसमायुक्तं वकारममृतं स्मृतम् ॥१५
ॐ ब्रह्मन्नस्त्रममृतं गायत्री चापि तेरतोरां धेनुर्दं परिकीर्तितम् । यकारश्च वकारश्च रिरोवेत्रमादिशेत् ॥१६
व्यनेत्र एतान्यङ्गानि सूर्यस्यामिततेजसः । आदित्यं मूर्ध्नि विन्यस्य हृदये हृदयं न्यसेत् ॥१७
सावित्री कण्ठदेशे तु अशेषं मूर्ध्नि चिन्तयेत् । अर्कन्यासो मयाख्यातो विद्वान्न्यासं प्रकल्पयेत् ॥१८
एकाक्षरस्य सूर्यस्य शृण्वर्चनविधिं परम् । प्रथमं किंकिणीमुद्रां बध्द्वा तु हृदये नृप ॥१९
प्राणायामे च तथा परिवीरसमन्वितम् । एकाक्षरं समावेत्ति आत्मशुद्धयर्थमादरात् ॥२०

यह मंत्र मूर्तरूप, महाबली, एवं स्वयं सूर्य रूप है, इसका अनुष्ठान करने वाला, इस मंत्र केस्मरण मात्र से मधुर भोजन प्राप्त करता है । इस प्रकार एक वर्ष तक इसके अनुष्ठान करने से सूर्य के साक्षात् दर्शन भी प्राप्त होते हैं ।५-७। राजन् ! वह मंत्र वेत्ता निरन्तर जप करके व्याधि एवं भृत्य से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । मन, वाणी, एवं शरीर द्वारा अनुष्ठान के पालन पूर्ण करते हुए क्षीर भोजी मौन, तथा विवेचन पूर्वक संयमी रहकर उस मंत्र की बारह लक्ष संख्या के जप करने से वह पुरुष इस शरीर से स्वर्ग प्राप्त करता है, चाहे वह प्रथम शापित ही क्यों न रहा हो, तथा राजन् ! वह चिंतामणि (सूर्य) की भाँति तीनों लोकों में यथेच्छ विचरण करता है ।८-१०। इसके पश्चात् सूर्य का हृदय, जो पवित्रता पूर्ण स्मरण करने योग्य एवं समस्त पापों के नाश करता है, बता रहा हूँ, सुनो ! भारत ! चन्द्राकार (मात्रा) समेत ऋकार, ओंकार समेत होने पर वह उनका हृदय बताया गया है ।११-१२। नृप ! बिंदु समेत यकार को विद्वानों ने 'वैशाख'[1] बताया है, और मात्रा बिन्दु समेत यकार तथा वकार को इष्ट 'कवच' बताया गया है अतः अस्त्र को मैं बता रहा हूँ सुनो ! प्रणव (ओं) समेत दुकार, अनुस्वार समेत कट को अस्त्र बताया गया है । राजन् ! इस अमृतास्त्र को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! चन्द्र बिन्दु समेत वकार (वं) को अमृतास्त्र कहा गया है ।१३-१५। ब्रह्मन् ! ओं समेत इस अमृतास्त्र तथा 'तेरोरां धेनुः' गायत्री, यकार, वकार, रिरोवेत्र, एवं व्यनेत्र, अमित तेज वाले सूर्य के यहीं अंग बताये गये हैं । शिर से आदित्य के न्यास पूर्वक हृदय में हृद के न्यास करें । कंठप्रदेश में गायत्री और सभी के न्यास शिर में होने चाहिए । इस प्रकार सूर्य के न्यास, जिसे विद्वानों ने बताया है, तुम्हें सुना दिया । अब एकाक्षरात्मक सूर्य के उत्तम अर्चन विधान को सुनो ! बता रहा हूँ सुनो! नृप ! प्रथम हृदय में किंकणी मुंद्रा से बाँधकर आत्म शुद्धि के लिए उस एकाक्षर का स्मरण चिन्तन करे प्राणायाम में भी यह मुद्रा आवश्यक है ।१६-२०। पुनः उसी वकार

पुनस्त्वामेव बध्यं तु यकारेणात्मना लभेत् ॥२१
एतत्कृत्वादित्यसमो भवतीति न संशयः । कृत्वा च मुद्रां प्रासादे अस्त्रं योज्य महीपते ॥२२
प्रासादशोभनं स्याद्धि कृत्वा तद्भरतर्षभ । कवचेनार्कवाञ्छत्रुं क्षालयेद्वर्धनक्रियाम् ॥२३
ततोऽर्घ्यपात्रं पुष्पैश्च पूजयेद्विधिवन्नृप । हृदि ना स्नापयेद्देवं ततः पूजां समाचरेत् ॥२४
पद्ममुद्रा पुष्पगर्भा देवं शिरसि विन्यसेत् । आवाहितो भवेदेवं देवदेवो दिवाकरः ॥२५
हृदयेनार्घ्यसंयुक्तां पूजां बध्नीत भारत । हृदयेन च नैवेद्यं दातव्यं शक्तितो विभोः ॥२६
यथाशक्ति जपं कुर्यात्सुव्रती वाग्यतेन्द्रियः । अनेन विधिना राजन्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२७
न क्वचित्प्रतिघातः स्यान्न चापि दुरितं भवेत् । ततो मुद्रां परं बध्द्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥२८
देवं विसर्जयेत्पश्चाद्धृदयेन महीपते ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सौरार्चनविधिवर्णनं नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१२।

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सौरार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

दृष्ट्वा तु पावकं देवं पावकस्थं दिवाकरम् । अध्यात्तु सपरीवारं घुकारं परिकीर्तयेत् ॥१

द्वारा आत्मालम्भन करे। महीपते ! इस प्रकार प्रासाद पर मुद्रा की रचना कर एवं अस्त्र समेत उसे सुसम्पन्न करने पर वह सूर्य के समान हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। भरतर्षभ ! ऐसा करने से प्रासाद सुशोभित होता है। कवच के धारण करने से वह सूर्य के समान होकर वर्धन क्रिया द्वारा शत्रु का प्रक्षालन (सफाया) करता है।२१-२३। नृप ! इसके उपरांत पुष्पों से अर्घ्यपात्र को अलंकृत कर उसी द्वारा हृदय में सूर्य के ध्यान करते हुए उन्हें स्नान कराना चाहिए।२४। पुष्प गर्भित पद्म मुद्रा का न्यास सूर्य देव के शिर स्थान में करना चाहिए। इस भाँति देवाधिदेव दिवाकर का आवाहन बताया गया है।२५। भारत ! अर्घ्य समेत उनकी अर्चना सुसम्पन्न करके उन्हें हृदय से आबद्ध करे और उसी विभु (सूर्य) के लिए यथाशक्ति हृदय द्वारा ही (ध्यानमग्न) ही नैवेद्य समर्पित करना चाहिए।२६। इस व्रत के अनुष्ठापक का वाणी तथा इन्द्रियों के संयम पूर्वक यथाशक्ति जप करना चाहिए। राजन् ! इसी विधान द्वारा इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर उसके सभी कार्यों की सिद्धि होती है।२७। कहीं पर भी उसके ऊपर आघात प्रतिघात एवं पाप-परिणाम दुःख के उदय नहीं होते हैं। महीपते ! उस उत्तम मुद्रा द्वारा आबद्ध एवं प्रदक्षिणा की पूर्ति करके ही हृदय द्वारा सूर्य देव की विसर्जन क्रिया सुसम्पन्न करनी चाहिए।२८-२९

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सौरार्चन विधि वर्णन नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त।२१२।

अध्याय २१३

सौरार्चनविधिवर्णन

सुमन्तु ने कहा—पावकस्थ पावक रूप दिवाकर देव को देखकर उनके साङ्गोपांग घुकार रूप का

एवं कृते शोधनं स्यात्पावकस्य न संशयः । पद्मगर्भे ततो वायं हृदयाग्नौ समाक्षिपेत् ।।२
आवाहितो भवेद्देवदेवः साक्षान्न संशयः । ओंकारेणाहुतिशतं नेत्राञ्जनसमाधिना ।।३
पश्चाहुतीस्ततो दद्यादङ्गानां प्रीतये नृप । विसर्जनं ततः कुर्याद्धृदयेन विचक्षणः ।।४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरार्चनविधिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१३।

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मरिचसप्तमीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पद्मिनी च तथान्या तु मध्यमानामनी तथा । अर्किणी ज्वालिनी चैव तेजनी च गभस्तिनी ।।१
शङ्खमुद्रा च दशमी सूर्य वक्रा तथापरा । सहस्रकिरणा चैव मुद्रा द्वादश कीर्तिताः ।।२
दद्यादर्घ्यं तु पद्मिन्या व्योम बद्ध्वा जपेद्बुधः । उदयाश्रयः समाकर्षे मध्यमा व्याधिनाशिनी ।।३
अर्किण्या पश्यते सूर्यं विधिस्थस्तु भवेद्यदि । ज्वालिनीमुपसङ्गन्तुं बद्ध्वा सूर्यमुखो जपेत् ।।४
सप्ताहाद्वीक्षते सूर्यं सिध्यते च ततः स्वयम् । अवतीर्य पद्मखण्डं सूर्यादभिमुखो नरः ।।५

स्मरण करना चाहिए, जो सदैव रक्षक के रूप में रहता है। ऐसा करने से पावक का संशोधन हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। पद्मगर्भित उस हृदय रूपी अग्नि में उस (प्रकार) का आक्षेप करना चाहिए। इसी भाँति देवाधिदेव सूर्य के आवाहन सुसम्पन्न होता है, इसमें संदेह नहीं। समाधिस्थ होकर ओंकार के उच्चारण पूर्वक का आहुति प्रदान करनी चाहिए। नृप ! इसके उपरांत बुद्धिमान् पुरुष को हृदय में ध्यान करते हुए उनका विसर्जन करना चाहिए।१-४

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरार्चन विधि वर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त।२१३।

अध्याय २१४

मरिचसप्तमीव्रत विधि वर्णन

सुमन्तु ने कहा—पद्मिनी, व्योम, मध्यमा, अर्किणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभस्तिनी, शंखमुद्रा, सूर्यवक्त्रा, सहस्रकिरणा, आदि बारह मुद्राएँ बतायी गयी हैं।१-२। पद्मिनी मुद्रा द्वारा (सूर्य के लिए) अर्घ्य प्रदान तथा व्योम मुद्रा द्वारा जप करना विद्वानों ने बताया है। किसी के आकर्षण में उदयाश्रय मुद्रा, तथा व्याधियुक्त होने के लिए मध्यमा मुद्रा का प्रयोग करने चाहिए।३। विधानपूर्वक यदि अर्किणी मुद्रा का प्रयोग किया जाये, तो सूर्य के साक्षात् दर्शन प्राप्त होते हैं। सूर्याभिमुख होकर ज्वालिनी मुद्रा का प्रयोग करके जप करना चाहिए।४। इस प्रकार जप करने से एक सप्ताह के भीतर सूर्य के दर्शन एवं सिद्धि प्राप्त हो जाती है। पद्मखण्ड में (कमलों के मध्य) पहुंचकर सौ सहस्र (एक लक्ष) संख्या के

जपञ्छतसहस्रं हि अक्षयं लभते निधिम् । शङ्खमुद्रादिभिरिमं सूर्यचक्रविधिं शृणु ॥६
अहोरात्रोषितो भूत्वा बद्ध्वा सूर्यमुखो नरः । स्थितः पद्मासने राजञ्जपंश्चाप्ययुतं मनुम् ॥७
पश्यते तु त्र्यहात्सूर्यं भवेत्सिद्धिश्च मानसी । सहस्रकिरणं बद्ध्वा नाभिमात्रजले स्थितः ॥८
जपेदयुतमात्रं तु भवेत्तद्गतमानसः । सहस्रकिरणं देवं परं रश्मिभिरावृतम् ॥९
स पश्यति परं धाम भवेत्सिद्धिश्च पुष्कला । शापानुग्रहकर्तासौ सर्वेषां प्राणिनां भवेत् ॥१०
सर्वतः कञ्चुकं मुक्त्वा भवेद्धि विगतज्वरः ॥११
परौ गुल्फौ करौ कृत्वा संलग्नौ च परस्परम् । वामानामिकयाक्रम्य दक्षिणां तु कनीयसीम् ॥१२
वामा दक्षिणया चैव दक्षिणा वामया तथा । मुद्रैषा हि महापुण्या व्योममुद्रा प्रकीर्तिता ॥१३
बद्धया चानया सद्यो हीयन्ते व्याधयो नृणाम् । नानया रहितः कश्चित्सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥१४
सर्वत्रैवोत्तमा ह्येषा मन्त्रतुष्टिरिति स्मृता । सूर्यस्य हृदयं सेयमर्कमुद्रेति विश्रुता ॥१५
बध्नीयात्सततं मन्त्रैरायुरारोग्यवृद्धये । सूर्यमण्डल अभ्यग्रे मन्त्री सूर्योदये स्थितः ॥१६
स सूर्याभिमुखो भूत्वा जपेन्मन्त्रं तु साधकः । दिनत्रयेण वीक्षेत ध्यानी जपपरायणः ॥१७
तं दृष्ट्वा नाश्नुते मृत्युं दुःखी न च न संशयः । प्राप्नोति च परं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥१८
उत्तानौ तु करौ कृत्वा पृष्ठलग्नौ परस्परम् । बद्ध्वा त्वङ्गुलयः सर्वाः सुप्रकीर्णा न संशयः ॥१९
आक्रम्य चाङ्गुलीमूलमङ्गुष्ठाभ्यां यथाक्रमम् । उदया नाम मुद्रैषा बध्नीयादुदये रवेः ॥२०

जप करने से मनुष्य को अक्षय निधि की प्राप्ति होती है । अब शंखमुद्रादि द्वारा किये जाने वाले उस दिन रात के विधान बता रहा हूँ । सुनो ।५-६। राजन् दिन रात के उपवास रह कर सूर्याभिमुख पद्मासन पर स्थित होकर दश सहस्र जप करने से मनुष्य को तीन दिन के भीतर सूर्य के दर्शन एवं मानसी सिद्धि प्राप्त होती है । नाभि तक जल में स्थित होकर 'सहस्रकिरण' मुद्रा के प्रयोग कर ध्यानमग्नावस्था में केवल दशसहस्र मंत्र के जप करने से सहस्र किरण (सूर्य) देव के, जो किरणों से आच्छन्न, उत्तम देव, तथा उत्तम धाम स्वरूप हैं, दर्शन एवं आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त होती है, और वही सभी प्राणियों के शापनाशानुग्रह करने से समर्थ भी होता है ।७-१०। सभी प्रकार के कञ्चुक के त्याग करने से ही शांति प्राप्त होती है ।११। हाथ एवं गुल्फ को परस्पर संलग्न करके बाँये हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका पर रखना तथा दाहिने हाथ की अनामिका को बाँये हाथ की कनिष्ठिका पर रखना ही व्योम मुद्रा कही जाती है ।१२-१३। इस महापुण्य स्वरूप मुद्रा को व्योम मुद्रा बताया गया है, इसी से क्रमबद्ध होने पर मनुष्यों की व्याधियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, एवं कोई भी साधक इसके बिना सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है ।१४। यही स्त्री में उत्तम एवं मंत्र तुष्टि के नाम से विख्यात है, और सूर्य के हृदय स्वरूप इसी मुद्रा को अर्क मुद्रा बताया गया है ।१५। इसी मंत्र के वेत्ता को चाहिए कि सूर्योदय समय में उनके मण्डल के सामने स्थित होकर आयु एवं आरोग्य वृद्धि के लिए मंत्र समेत उस मुद्रा द्वारा निरन्तर आबद्ध होवे ।१६। उस साधक को चाहिए कि सूर्याभिमुख होकर मंत्र का जप करे क्योंकि उससे ध्यान एवं जप करने वाला पुरुष, तीन दिन के भीतर सूर्य का दर्शन प्राप्त करता है, और उसे देख कर मृत्यु उसका भक्षण नहीं करती है, न वह किसी भाँति दुःखी रह सकता है, इसमें संदेह नहीं । इसके पश्चात् उसे उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ सूर्य देव स्वयं निवास करते हैं ।१७-१८। दोनों हाथों के पृष्ठ भाग को एक में मिलाकर अंगुलियों को एक दूसरे से आबद्ध करके दोनों अंगूठों से उन (अंगुलियों) के मूल भाग को क्रमशः पकड़े इसे उदय मुद्रा कहा गया है ।१९-२०। इस मुद्रा के प्रयोग

द्वादशाद्वीक्षते सूर्यं दिनान्ते हि न संशयः । सर्वपापहरा चैव सर्वपापविनाशिनी ॥२१
उदया च विना कामं मध्यतश्चैव तं क्षिपेत् । मध्यमा नाम विख्याता मध्यसूर्ये तु चिन्तयेद् ॥२२
मध्यमा विधिना तेन बद्ध्वा मुद्रां तु साधकः । अङ्गुल्योः परमङ्गुष्ठौ विधिना तावुभौ ग्रथेत् ॥२३
मुद्रा सास्तमनी ह्येषा सर्वतन्त्रेश्वरी शुभा । सूर्यस्यास्तमने मुद्रां बध्द्वा जप्तं समारभेद् ॥२४
सहस्रं हि शतं वापि मुद्रां बद्ध्वा जपेद्बुधः । सर्वपातकसंमुक्तः सप्ताहादनुशोभनम् ॥२५
करौ परस्परं लग्नावङ्गुष्ठौ चोर्ध्वसंस्थितौ । उभौ चाङ्गुष्ठकौ चोर्ध्वौ संलग्नौ मूर्ध्नि संस्थितौ ॥२६
मुद्रा न मालिनी चैव निर्दहेत्पापपञ्जरम् । ब्रह्महत्यादि यत्पापं योजिता सा तु मूर्धनि ॥२७
विदर्भ्याङ्गुलयः सर्वा इषन्मध्यस्तथाग्रतः । ऊर्ध्वस्थितौ तथाङ्गुष्ठौ मुद्रेयं तर्जनी स्मृता ॥२८
सर्वव्याधिहरा देवी सर्वशत्रुविनाशिनी । एतां बध्द्वा महापुण्यां सर्वान्स्तम्भयते रिपून् ॥२९
उभौ प्रसार्य वै हस्तौ मध्ये सार्धेन संस्थितौ । शेषानाम्या ततश्चैव अङ्गुष्ठाग्रं तथा क्रमात् ॥३०
मुद्रा गभस्तिनी नाम सूर्यस्य हृदयं परम् । मृत्युं नाशयते ह्येषा बद्ध्वा सूर्योदये शुभा ॥३१
अर्घ्यकाले तु बध्नीयादर्चयाग्निं प्रपूजयेत् । जपकाले च बध्नीयान्मन्त्राणां नात्र संशयः ॥३२
विदक्षिणकनिष्ठिभ्यां तर्जनीभ्यां तथा भवेत् । तर्जनीभ्यां तथाङ्गुष्ठौ संलग्नौ तु परस्परम् ॥
जपं यः कुरुते नित्यं त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति ॥३३

करने से बारह दिन के भीतर सूर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं और यही समस्त पापोंके नाश करती है ।२१। उदया मुद्रा किसी भी प्रकार की हीनता से रहित है । मध्यकाल से जिसे सूर्य के प्रति प्रयुक्त किया जाता है वह मध्यमा नाम से प्रसिद्ध है । सूर्य के मध्याह्न का लीन होने पर उसका चिन्तन करना चाहिए । विधिपूर्वक मध्यमा मुद्रा को धारण करके साधक अपने दोनों अँगूठों को अंगुलियों के साथ गूँथे । ऐसी स्थिति में समस्त तन्त्रों में श्रेष्ठ कल्याणकारिणी वह अस्तमनी मुद्रा हो जाती है । सूर्य के अस्तमन में (अस्त होते समय) यह मुद्रा बाँधकर जप का आरम्भ करना चाहिए । इस मुद्रा को बाँधकर जो एक लाख बार सूर्य के मन्त्र का जप करता है, वह बुद्धिमान् प्राणी एक सप्ताह बाद ही समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । हाथ परस्पर मिले हुए हों तथा अँगूठे ऊपर की ओर स्थित हो, तथा सिर तक पहुँचे उसे मालिनी नामक मुद्रा कहते हैं, यह समस्त पाप के पिंजड़ों को जला डालती है । ब्रह्महत्या तक के पापों को नष्ट कर देती है । अंगुलियों को फैला कर थोड़ा मध्य भाग में तथा थोड़ा सामने की ओर ऊपर करके अँगूठों को ऊपर स्थापित करना तर्जनी नामक मुद्रा है । यह समस्त रोगों का नाश करने वाली तथा समस्त शत्रुओं की विनाशिनी है । इस महापुण्यमयी को बाँधकर समस्त शत्रुओं को स्तम्भित (वशीभूत) किया जा सकता है । दोनों हाथों को फैलाकर मध्य आधे भाग में स्थापित कर अँगूठों के अग्र भाग को चलाना सूर्य की परम हृदय गभस्तिनी नामक मुद्रा कही गयी है । सूर्य के उदय होते समय बाँधी गयी यह मुद्रा मृत्यु का भी नाश कर देती है । अर्घ्य देते समय इसको बाँधना चाहिए । और अग्नि की पूजा एवं अर्चना करनी चाहिए । इससे जप करने वाला व्यक्ति निःसन्देह मन्त्रों को बाँध लेता है । दाहिने हाथ की कनिष्ठिका पर दोनों हाथों की तर्जनियों को संलग्न करना तथा फिर अँगूठों को भी संलग्न करना, इस क्रिया के द्वारा जो जप करता है वह तीन महीने में शुद्ध हो जाता है ।२२-३३।

करौ तु सम्पुटौ कृत्वा तर्जन्यौ द्वे च कुञ्चयेत् ॥३४
सहस्रकिरणा ह्येषा सर्वमुद्रेश्वरेश्वरी । त्रिसन्ध्यमेतां बध्नीयात्साधको मन्त्रमूर्धनि ॥
नाशयेत्सर्वपापानि तमोराशिमिवांशुमान् ॥३५
मुद्रा मुद्रककुम्भेति बद्ध्वा पश्चाच्च मन्त्रयेत् । मासेन नाशयेत्कुष्ठं त्रिभिर्मासैर्न संशयः ॥
इति मुद्राङ्गसहितं सूर्यं पूजयते तु यः ॥३६
अनेन विधिना राजन्ब्रह्मा पूजयते रविम् । तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र पूजयानेन भास्करम् ॥३७
ततः सूर्यमवाप्येह सूर्यलोकं स गच्छति । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं रविम् ॥३८
स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः । इत्थं पूज्य च देवेशमनेन विधिना नृप ॥३९
भोजयित्वा यथाशक्ति ब्राह्मणांश्च विधानतः । सप्तम्यां प्राशयेद्वापि मरिचं मन्त्रतस्तथा ॥४०
एकं गृहीत्वा मरिचमव्रणं च दृढं परम् । सजलं प्राशयेद्राजन्मन्त्रेणानेन वा स्मृतम् ॥४१
यथोक्तेन विधानेन पूजयित्वा दिवाकरम् । इति सम्प्राप्य मरिचं ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥४२
प्रियसङ्गमवाप्नोति तत्क्षणादेव नान्यथा । इतीयं सप्तमी पुण्या प्रियसङ्गमदायिनी ॥४३
कुर्यादेकेन मासांस्तु वत्सरेण स गच्छति । पुत्रादिभिर्नरश्रेष्ठ पुनः सङ्गममृच्छति ॥४४
कुरु तस्मान्महाबाहो त्वमेव प्रियदायिनीम् । उपोष्य इन्द्रो विधिवत्सुरामरिचसप्तमीम् ॥४५
संयोगं कृतवान्वीर सह शच्या विधानतः । उपोष्यैनां नलश्चापि दमयन्त्या महाबलः ॥४६

दोनों हाथों के संपुटित करके दोनों तर्जनियों को आकुञ्चित (टेढी) करने से 'सहस्र किरण' नामक मुद्रा होती है जो समस्त मुद्राओं में प्रधान मुद्रा बतायी जाती है तीनों संध्या समय उस मुद्रा के प्रयोग करने से साधक के समस्त पाप सूर्य द्वारा तमोराशि की भाँति नष्ट हो जाते हैं ।३४-३५। मुद्रककुंभा नामक मुद्रा के प्रयोग करने से तीन मास के भीतर कुष्ट के रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं । इस प्रकार मुद्राओं समेत सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।३६। राजन् ! इसी विधान द्वारा ब्रह्मा सूर्य की पूजा करते है अतः तुम भी ऐसा ही करो जिससे सूर्य तथा उनके लोक की प्राप्ति हो जाये । इस विधान द्वारा सूर्य की आराधना करने वाले उस उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं, जहाँ सूर्य देव स्वयं निवास करते हैं । नृप ! इस प्रकार इस विधान द्वारा देवेश (सूर्य) की अर्चा करके यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे तथा सप्तमी के दिन मिर्च को अभिमंत्रित करके उसका प्राशन (पारण) करे ।३७-४०। राजन् ! एक दृढ़ एवं व्रणरहित मिर्च का प्राशन जल समेत इसी मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए ।४१। उत्तम विधान-पूर्वक दिवाकर देव की पूजा के उपरांत मिर्च के प्राशन और मौन होकर भोजन करे ।४२। इससे उसी क्षण उसे अपने प्रिय के संगम की उपलब्धि होगी । इसीलिए इस पुण्य स्वरूप सप्तमी को प्रियसंगम दायिनी बताया गया है ।४३। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कोई इसका अनुष्ठान पूर्ण वर्ष तक करे तो नरश्रेष्ठ ! उसे पुनः उसके पुत्रादि का साथ प्राप्त हो ।४४। महाबाहो ! इसलिए तुम भी उस व्रतविधान को अवश्य करो, क्योंकि उपवास पूर्वक इसी मिर्च वाली सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा इन्द्र ने शची का संयोग प्राप्त किया है । तथा महाबली नल ने उपवास रहकर इसी द्वारा दमयन्ती के संयोग और

रामोऽप्यात्सीतया सार्धमुपोष्यैनां नराधिप ॥४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे मरिचसप्तमीव्रतवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१४।

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यमन्त्रोद्धारवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

तृतीयां सप्तमीं वीर शृणुष्व गवतो मम । निम्बपत्रैः स्मृता या तु परमा रोगनाशिनी ॥१
यथार्चनविधिर्दान्यी येन पूजयते रविम् । देवदेवः शार्ङ्गपाणिः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२
अथार्चनविधिं वच्मि मन्त्रोद्धारं निबोध मे ॥३

ॐ खषोल्काय नमः । मूलमन्त्रः । ॐ विटि २ शिरः । ॐ सहस्ररश्मये अस्त्रम् । ॐ सहस्रकिरणाय २०० ऊर्ध्वबन्धः । ॐ घनाय मूलमालिने नमः इति भूतबन्धः । ॐ ज्वल २ प्रज्वल २ अग्निप्रकर ॥४
ॐ आदित्याय विद्महे विश्वभागाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥५
॥ गायत्रीसङ्कलीकरणमिदम् ॥ ॐ धर्मात्मने नमः ऐशान्याम् । ॐ दक्षिणाय नमः आग्नेय्याम् । ॐ वज्रपाणयेऽनन्ताय नमः उत्तरतः । ॐ श्यामपिङ्गलाय नमः ऐशान्याम् । ॐ अमृताय नमः आग्नेय्याम् । ॐ बुधाय सोमसुताय नमो दक्षिणतः । ॐ वागीश्वर सर्वविद्याधिपतये नैर्ऋत्याम् । ॐ शुक्राय

नराधिप ! राम ने भी इसी के उपवास आदि द्वारा सीता के साथ प्राप्त किये हैं ।४५-४७

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में मरिचसप्तमी व्रत वर्णन नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।२१४।

अध्याय २१५

सूर्यमंत्र के उद्धार का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—वीर ! मैं उस तीसरी सप्तमी के व्रत-विधान जिसमें नीम के पत्ते का पारण बताया गया है, बता रहा हूँ, सुनो ! नीम के पत्ते वाली यह सप्तमी परम रोग के नाश करने वाली बतायी गयी है ।१। इस अर्चन-विधान जिसके द्वारा देवाधिदेव, शार्ङ्गपाणि, शंख चक्र गदा के धारण करने वाले सूर्य की उपासना की जाती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।२-३। 'ओं खषोल्काय नमः' यही मूलमंत्र है । 'ओं विटि' से दो बार शिर का स्पर्श करे, 'ओं सहस्र रश्मये' से अस्त्र 'ओं सहस्र किरणाय' से ऊर्ध्व बंधन' 'ओं घनाय ' आदि से भूतबंधन, ओं ज्वल, इत्यादि से गायत्री मिश्रित उच्चारण करे । ईशान में धर्म के, आग्नेय में दक्षिण के, उत्तर में वज्र पाणि के, ईशान में श्याम पिंगल के, आग्नेय में अमृत के, दक्षिण में सोमसुत बुध के, उत्तर में समस्त विद्याधिपति वागीश्वर के, पश्चिम में महर्षि शुक्र के, वायव्य में सूर्यात्मा

महर्षये भूताय पश्चिमतः । ॐ ईश्वराय सूर्यात्मने वायव्याम् । ॐ कृतवते नमः उत्तरतः । ॐ राहवे नमः ऐशान्याम् । ॐ अन्तराय सूर्यात्मने नमः पूर्वतः । ॐ ध्रुवाय नमः ऐशान्याम् । ॐ अन्तराय सूर्यात्मने नमः पूर्वतः । ॐ ध्रुवाय नमः ऐशान्याम् । ॐ भगवते पूषन्मालिन्सकलजगत्पते सप्ताश्ववाहन भूभुज परमसिद्धिशिरसि गतं गतं गृह्ण तेजोऽग्ररूप अनंतज्वाल २ ।

आवाहनमन्त्रः

ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय यथासुखं पुनरागमनाय इति ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यमन्त्रोद्धारवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१५।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुराणश्रवणविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वर्चाविधि राजन्मन्त्रपूतेन वारिणा । प्रोक्षणीयं प्रयत्नेन किमर्थं सुसमाहितः ॥१
हृदयादिष्वथाङ्गेषु मन्त्रं विन्यस्य मन्त्रवित् । आत्मानं भास्करं ध्यात्वा परिचारसमन्वितः ॥२
कुर्यात्सम्मार्जनीं मुद्रां दिशां च प्रतिबोधनम् । पाताले भूशोधनं चैव नभसश्च तथा मतम् ॥३
अर्चनस्य प्रकारोऽयं सर्वेषामीप्सितप्रदः । सर्वैरपि बुधैर्वीर पद्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥४

ईश्वर, के उत्तर में कृतवान् के, ईशान में राहु के, पूर्व में अन्तरात्मा सूर्य के, ईशान में ध्रुव के, तथा ओं भगवान् आदित्य, सकल जगत् के पति, सप्ताश्ववाहन वाले, नृप, उत्तम सिद्धि स्वरूप, तेजस्वी एवं उग्ररूप, और अनंत ज्वाला वाले यहाँ उत्तम स्थान में आकर इसे स्वीकार करो । तथा ओं नमः भगवन् ! आदित्य, सहस्र किरण, यथासुख, पुनः यहाँ आगमन के लिए कृपा कीजिएगा । इस प्रकार सूर्य के आवाहन एवं विसर्जन करना चाहिए ।४-६

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सूर्यमन्त्रोद्धार वर्णन नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।२१५।

अध्याय २१६

पुराण के श्रवणविधान का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! उस अर्चन-विधान को, जिसमें सावधान होकर मंत्र पूत (अभिमंत्रित) जल से प्रोक्षण क्यों किया जाता है, बता रहा हूँ, सुनो ! मंत्रवेत्ता प्रथम हृदयादि अंगों में मंत्र के न्यास पूर्वक साङ्गोपाङ्ग भास्कर रूप में स्वयं का ध्यान करके सम्मार्जनी मुद्रा के प्रयोग, दिशाओं के प्रति बोधन (ज्ञान) एवं पाताल तथा आकाश तल के संशोधन करना, यही सभी कामनाओं के सफल करते वाले अर्चन का प्रकार बताया गया (स्वरूप) है । समस्त विद्वद्गण इसे ही 'पद्य कहा करते हैं ।१-४। किसी

अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं शुचौ देशे सकर्णिकम् । आवाहनीं ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्रविम् ।।५
खषोल्कं स्नापयेत्तत्र स्वरूपं लोभदायकम् । स्थापयेत्स्नापयेच्चैव मन्त्रैर्मन्त्रशरीरिणम् ।।६
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेन्नरः ! ऐशान्यां तु शिरः स्थाप्य नैर्ऋत्यां विन्यसेच्छिखाम् ।।७
पौरन्दर्यां न्यसेन्नेत्रे एकाग्रहृदयस्तु सः । आवाह्य चैकं कवचं वारुण्यामस्त्रमेव ।।८
ऐशान्यां स्थापयेत्सोमं पौरन्दर्यां तु लोहितम् । आग्नेय्यां सोमतपनं याम्यां चैव बृहस्पतिम् ।।९
नैर्ऋत्यां [1]दानवं शुक्रं वारुण्याञ्च शनैश्चरम् ! वायव्यां तथा केतुं कौबेर्यां राहुमेव च ।।१०
द्वितीयायां तु कक्षायां देवतेजः समुद्भवान् । स्थापयेद्द्वादशादित्यान्काश्यपेयान्महाबलान् ।।११
भगः सूर्योऽर्यमाश्चैव मित्रो वरुण एव च । सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः ।।१२
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते । पूर्वे चेन्द्राय दक्षिणे यमाय पश्चिमे वरुणाय उत्तरे
कुबेराय ऐशान्यामीश्वराय आग्नेय्याग्निदेवतायै नैर्ऋत्यां पितृदेवेभ्यो वायव्यां वायवे ।।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता । शेषश्च वासुकिश्चैव रेवती च विनायकः ।।
महाश्वेता महादेवी राज्ञी चैव सुवर्चला ।।१३
तथान्यो वापि देवानां समूहस्तत्र तत्र ह । तथान्यो लोकविख्यातो योगः प्रोक्तश्च दक्षिणे ।।१४
पुरस्ताद्भासुरस्थाने स्थापनीया विजानता । सिद्धिर्वृद्धिः स्मृतिर्देवी श्रीश्चैवोत्पलमालिनी ।।१५
स्थाप्या स्वदक्षिणे पार्श्वे लोकपूज्या समन्ततः । प्रज्ञावती क्षुधा वीर हारीता बुद्धिरेव च ।।१६

पवित्र प्रदेश में अष्टदल कमल की रचना करे जिसमें सौन्दर्य कर्णिका निर्मित की गई हो । पश्चात् उसमें आवाहनीय मुद्रा के प्रयोग द्वारा सूर्य का आवाहन करना चाहिए । सूर्य के खषोल्क स्वरूप का जिसमें अधिक लोभ-लाभ निहित है, मंत्र रूपी सम्पन्न शरीर का मंत्र पूर्वक स्थापन एवं स्नान सुसम्पन्न करे ।५-६। मनुष्य को एकाग्रचित्त होकर आग्नेय दिशा में सूर्य देव के हृदय ईशान में शिर, नैर्ऋत्य में शिखा, पूर्व में नेत्र की कल्पना करके उनके आवाहन एवं पश्चिम दिशा में कवच तथा शस्त्र तथा अस्त्र की कल्पना करनी चाहिए ।७-८। इसी प्रकार ईशान में सोम, पूर्व में भौम, आग्नेय में बुध, दक्षिणा में बृहस्पति, नैर्ऋत्य में दानव श्रेष्ठ शुक्र, पश्चिम में शनैश्चर, वायव्य में केतु, उत्तर में राहु की स्थापना करनी चाहिए ।९-१०। दूसरी कक्षा में सूर्य देव के तेज द्वारा उत्पन्न एवं महाबली बारह आदित्यों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, चन्द्र, एवं विष्णु यही बारह सूर्यों के नाम हैं । पूरब में इन्द्र, दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण, उत्तर में कुबेर, ईशान में ईश्वर (शिव), आग्नेय में अग्नि देवता, नैर्ऋत्य में पितृ देव, वायव्य में वायु, एवं जया, विजया, जयंती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महाश्वेता, महादेवी (सूर्य पत्नी) राज्ञी देवों के अन्य समूह, तथा लोक विख्यात योग की प्रतिष्ठा दक्षिण दिशा में करनी चाहिए । भास्कर के सामने उत्तम स्थान में सिद्धि, वृद्धि, स्मृति एवं कमल की मालाओं से सुशोभित श्री की स्थापना होनी चाहिए, वीर ! उनके दक्षिण पार्श्व में लोक पूज्य, प्रज्ञावती, क्षुधा, हारीता, तथा बुद्धि की प्रतिष्ठा भास्कर की श्री के इच्छुकों को

---

१. दानवास्मन्यस्येति दानवः, अर्शआद्यच ।

स्थाप्य बुद्धिमती नित्यं श्रीकामैर्वा विवस्वतः। ऋद्धिश्चैव विसृष्टिश्च पौर्णमासी विभावरी ॥
स्थाप्याश्च स्वोत्तरे पार्श्वे इत्येता देवशक्तयः ॥१७
दीपश्चान्नमलङ्कारो वासः पुष्पाणि मन्त्रतः। देयानि देवदेवाय सानुगाय समूर्तये ॥१८
विधिनानेन सततं सदा योऽर्चयति भास्करम्। सम्प्राप्य परमान्कामान्ततो भानुसदो व्रजेत् ॥१९
अनेन विधिना यस्तु भोजयेद्भास्करं नृप। त्वं निम्बकटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा ॥
सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा ॥२०
इत्थं प्राश्य जपेद् भूमौ देवस्य पुरतो नृप। ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु शक्त्या दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥२१
भुञ्जीत वाग्यतः पश्चान्मधुरं क्षारवर्जितम्। इत्येषा वर्षपर्यन्तं कर्तव्या चैव सप्तमी ॥२२
कुर्वाणः सप्तमीमेतां सर्वरोगैः प्रमुच्यते। सर्वरोगविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति ॥२३

सुमन्तुरुवाच

अथ भाद्रपदे मासि सिते पक्षे महीपते। कृत्वोपवासं सप्तम्यां विधिवत्पूजयेद्रविम् ॥२४
माहेश्वरेण विधिना पूजयेदत्र भास्करम्। अष्टम्यां तु पुनः स्नातः पूजयित्वा दिवाकरम् ॥२५
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति। खर्जूरं नारिकेलं च मातुलिङ्गफलानि च ॥२६
देवस्य पुरतो दत्त्वा तथा चाम्रफलानि च। इति ते कथितं राजन्सप्तमीफलमादितः ॥२७
महातपो महाश्रेष्टं भास्करस्य विशाम्पते। यच्छ्रुत्वा मानवो राजन्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।२८

नित्य करनी चाहिए। ऋद्धि, विसुष्टि, पौर्णमासी, विभावरी, इन देव शक्तियों की प्रतिष्ठा उनके उत्तर पार्श्व में करनी चाहिए।११-१७। मंत्रोच्चारण पूर्वक दीप, अन्न, आभूषण, वस्त्र, और पुष्पों को देवाधिदेव सूर्य तथा मूर्त रूप उनके गणों को प्रदान करना बताया गया है।१८। इस भाँति विधान पूर्वक जो भास्कर की अर्चा निरन्तर करता है, उसे सभी कामनाओं की सफलता पूर्वक भानु लोक की प्राप्ति होती है।१९। नृप! इसी विधान द्वारा भास्कर को भोजन कराये—हे नीम तू कड़वी होती हुई सूर्य का आवास स्थान (घर) रूप है, इसलिए 'मेरा यह प्राशन सर्व रोग नाशक एवं शांत' हो। नृप! इस प्रकार सूर्य के सामने भूमि में इसके प्राशन पूर्वक जप करें। पुनः इसके उपरांत ब्राह्मणों को भोजन कराकर शक्त्यनुसार दक्षिणा उन्हें प्रदान कर मौन होकर क्षार (नामक) के त्याग पूर्वक मधुर भोजन करे इसी प्रकार पूर्ण वर्ष की सभी सप्तमी के व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करना चाहिए इसमें समस्त रोगों की शान्ति होती है, और सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।२०-२३

सुमन्तु बोले—महीपते! भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन उपवास कर माहेश्वर विधान समेत सूर्य की पूजा करनी चाहिए।२४। पुनः अष्टमी में स्नान करके सूर्य की पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत 'सूर्य प्रसन्न हों' ऐसी भावना रख खजूर, नारियल, एवं विजौरानीबू, इन फलों को ब्राह्मण के लिए प्रदान करे। सर्वप्रथम आम समेत इन फलों को सूर्य देव के सामने रख उन्हें निवेदित करे पश्चात् ब्राह्मण को अर्पित करे। राजन्! इस भाँति फल सप्तमी की व्याख्या तुम्हें मैंने सुना दी। विशाम्पते! भास्कर का यह अत्युत्तम व्रत है, राजन्! इसके श्रवण मात्र से मनुष्य ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो जाता है।२५-२८।

तवेदं परमं पर्व कथितं ब्रह्मसंज्ञितम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते मानवा नृप ॥२९
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । सर्वतीर्थाभिगमने वेदाभ्यासे च यत्फलम् ॥
यत्फलं पृथिवीदाने तत्सर्वं प्राप्नुयान्नरः ॥३०
राजसूयसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । सहस्रशतदानस्य फलं विन्दति मानवः ॥३१
देवत्वं ब्राह्मणो गच्छेत्क्षत्रियो विप्रतां व्रजेत् । वैश्योऽपि क्षत्रतां याति शूद्रो वैश्यत्वमेव च ॥३२
सूतमागधबन्द्याद्या ये चान्ये सङ्करोद्भवाः । तेऽपि यान्त्युत्तमं स्थानं पुराणश्रवणाद्विभो ॥३३
इतिहासपुराणाभ्यां नत्वन्यत्पावनं नृणाम् । येषां श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥३४
विधिना राजशार्दूल शृण्वतां यत्फलं किल । यथोक्तं नात्र सन्देहः पठतां च विशांपते ॥३५

शतानीक उवाच

भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं नरैः । चरितं रामभद्रस्य पुराणानि विशेषतः ॥३६
कथं तु वैष्णवा धर्माः शिवधर्मा अशेषतः । सौराणां चापि विप्रेन्द्र उच्यतां श्रवणे विधिः ॥३७
वाचनीयं कथं चापि वाचको द्विजसत्तम । लक्षणं चास्य मे ब्रूहि वाचकस्य महात्मनः ॥३८
स्वरूपं चैव मे ब्रूहि खषोल्कस्य महात्मनः । फलं च पूजिते किं स्याद्वाचके विधिवद्द्विज ॥३९
पारणेपारणे पूज्यो वाचकः श्रावकैः कथम् । समाप्ते भगवन्किं किं देयं पर्वणि वाचके ॥
न च किं कार्यसिद्धं यत्सिद्धं पर्वणि पर्वणि ॥४०

नृप ! इस प्रकार के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सहस्र अश्वमेध, सौ वाजपेय, समस्त तीर्थों की यात्रा, वेदाध्ययन, पृथिवी दान, सहस्र राजसूय, सौ वाजपेय, सौ सहस्र के दान, इनके समस्त फलों की प्राप्ति मनुष्य को पुराण श्रवण मात्र से होती है, तथा विभो ! उसके सुनने मात्र से ही ब्राह्मण देवत्व, क्षत्रिय ब्राह्मणत्व, वैश्य, क्षत्रियत्व, और शूद्र वैश्यत्व की प्राप्ति करते हैं, एवं सूत, मागध, बन्दी आदि अन्य सभी वर्ण संकर वाले उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं।२९-३३। मनुष्यों के लिए इतिहास एवं पुराण से अन्य कोई पवित्रता की वस्तु नहीं है, क्योंकि जिसके श्रवणमात्र से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।३४। राजशार्दूल ! विधान पूर्वक इसके श्रवण, एवं विशाम्पते ! पठनमात्र से भी जिन फलों की प्राप्ति बतायी गयी है, वे सत्य हैं इसमें संदेह नहीं।३५

शतानीक ने कहा—हे भगवन् ! मनुष्यों को किस विधान द्वारा महाभारत का श्रवण करना चाहिए तथा रामभद्र के चरित्र (रामायण) एवं विशेषकर पुराण, के भी कैसे श्रवण हों।३६। हे विप्रेन्द्र वैष्णवधर्म तथा सम्पूर्ण शिव धर्म और सूर्य धर्म के श्रवण विधान भी बताने की कृपा कीजिए।३७। द्विजसत्तम ! किस भाँति के वाचकों द्वारा पुराणों के पारायण कराना चाहिए, अतः वाचक महात्मा के लक्षण, एवं खषोल्क माहात्म्य के स्वरूप को बताने की कृपा कीजिए। द्विज ! वाचक की विधान पूर्वक पूजा करने से किस फल की प्राप्ति होती है, प्रत्येक पारण में श्रोताओं द्वारा वाचक की किस भाँति पूजा होनी चाहिए, तथा भगवन् ! पर्व की समाप्ति में वाचक के लिए क्या-क्या देना चाहिए, एवं प्रत्येक पर्व में जिस कार्य की सिद्धि होती है पृथक् उनकी सिद्धि संभव नहीं है क्या ३८-४० ?

सुमन्तुरुवाच

सम्यक्पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र इतिहासपुराणयोः ॥४१

श्रवणे तु महाबाहो श्रूयतां यन्मया पुरा । पृष्टो वोचन्महातेजा विरिञ्चो भगवान्गुरुः ॥४२

हन्त ते कथयाम्येष पुराणश्रवणे विधिम् । इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विशेषतः ॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो ॥४३

सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा ॥४४

प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः । महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां तुष्यते विभुः ॥

पारणानि दशाहेषु एके कुर्वन्ति तानि भोः ॥४५

भवेद्वै राजशार्दूल शृणु तेषां च यत्फलम् । विधानं वाचकस्येह शृण्वतां च विशांपते ॥४६

शुद्धवासा गृहादेत्य स्थानं यत्समदान्वितम् । प्रदक्षिणं ततो गत्वा यस्तस्मिन्देव एव हि ॥४७

नात्युच्चं नातिनीचं च ह्यासनं भजते ततः । आसनं तस्य वै राजन्बोधकस्य सदा भवेत् ॥४८

वन्दनीयं प्रपूज्यं च श्रोतृभिः कुरुनन्दन । व्यासपीठं तु तत्प्रोक्तं गुरोरासनमादिशेत् ॥४९

न स्थेयं श्रावकैस्तस्माद्वाचकस्यासने नृप । राजासने यथा भृत्यैर्यथा पुत्रैः पितुर्नृप ॥५०

यथा शिशुर्गुरोर्वीर स तेषां हि गुरुर्मतः । देवार्चानग्रतः कृत्वा ब्राह्मणार्चां विशेषतः ॥५१

उपविश्य ततः पश्चाच्छ्रावकः शृणुयान्नृप । समस्तानागतान्कृत्वा ततः पुस्तकमाददेत् ॥५२

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आप ने अत्युत्तम प्रश्न किया है, महाबाहो ! पहले समय में इतिहास एवं पुराण के सुनने के विषय में पूँछने पर महातेजस्वी भगवान् गुरु ब्रह्मा ने जो कुछ बताया था, मैं उसी पुराण- श्रवण के विधान को बता रहा हूँ, (सुनो) ! विभो ! भक्ति पूर्वक इतिहास एवं पुराणों के श्रवण करने से ब्रह्म हत्या आदि सभी पापों के नाश होते है ।४१-४३। सायंकाल, प्रातः काल एवं रात्रि में पवित्रता पूर्ण होकर उसके श्रवण करने पर उस श्रोता के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।४४। प्रत्यूष (प्रातः) काल में सुनने पर भगवान् ब्रह्मा, सायंकाल में विष्णु, तथा रात्रि में विभु महादेव उस श्रोता के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । उनके दश दिन का पारायण करने का विधान बताया गया है ।४५। राजशार्दूल ! उनके पारायण करने के फल, तथा विशांपते ! सुनने एवं सुनाने के विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! शुद्ध वस्त्र धारण कर घर से उस स्थान पर जाय, जो पुराण पारायण कराने के लिए निश्चित किया गया हो । उसी (सूर्य) देव के मन्दिर में सर्वप्रथम प्रदक्षिणा करके वाचक के लिए ऐसे आसन का निर्माण कराये, जो अत्यन्त ऊंचा या नीचा न हो । राजन् ! वाचक का सदैव वैसा ही आसन होना चाहिए ।४६-४८। कुरुनन्दन ! श्रोताओं द्वारा उस वाचक की महत्त्व पूर्ण अर्चा होनी चाहिए । क्योंकि यह व्यास आसन एवं गुरु का आसन कहा जाता है ।४९। हे नृप ! उसी भाँति वाचक के आसन पर किसी श्रावक (श्रोता) को न बैठना चाहिए, जिस प्रकार राजा के आसन पर सेवकों को तथा पिता के आसन पर पुत्रों को न बैठने का नियम कहा गया है ।५०। वीर ! शिशुओं को गुरु (अध्यापक) के आसन पर न बैठना चाहिए, क्योंकि वह महान् पुरुष, उन बच्चों का गुरु है । नृप ! पहले देवता की अर्चा सुसम्पन्न कर विशेष कर ब्राह्मण की पूजा के उपरांत बैठकर श्रोता को उसका श्रवण करना चाहिए । विशांपते ! वाचक को चाहिए कि समस्त आगन्तुकों की ओर प्रसन्नतासूचक दृष्टिपात करके पश्चात् पुस्तक को ग्रहण करे । पुस्तक-ग्रहण में सर्व प्रथम उसे शिर से प्रणाम करने का विधान

प्रणम्य[1] शिरसा तस्य पुस्तकस्य विशांपते । ग्रन्थिं च शिथिलां कुर्याद्वाचकः कुरुनन्दन ।।
पुनर्बध्नीत तत्सूत्रं तन्मुक्त्वा वाचयेत्क्वचित् ।।५३
त्रिविधं पुस्तकं विद्यात्सूत्रं वासुकिरुच्यते । पत्राणि भगवान्ब्रह्मा अक्षराणि जनार्दनः ।।५४
शङ्करश्च तथा सूत्रं पङ्क्तयः सर्वदेवताः । पावकश्च तथा सूत्रे मध्ये भानुः समाश्रितः ।।५५
अग्रे स्थिता ग्रहाः सर्वे दिशो वापि तथा विभो । स्मृतः मेरुः सदा शङ्कुश्छिद्रमाकाशमुच्यते ।।५६
यंत्रद्वयं काष्ठमयमधोर्ध्वं यदुदाहृतम् । द्यावापृथिव्योश्च शङ्खस्तथा चन्द्र उदाहृतः ।।५७
इत्थं वेदमयं ह्येतत्पुस्तकं वेदपूजितम् । नमस्यं पूजनीयञ्च गृहे स्थाप्यं विभूतये ।।५८
योऽस्य सूत्रं बृहत्कृत्वा प्रयच्छति नरोत्तमः । स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ।।५९
निरूप्य पात्रं राजेन्द्र कराभ्यां गृह्य वाचकः । प्रणम्य शिरसा सर्वान्ब्रह्मादीन्व्यासमेव च ।।
वाल्मीकिं च तथा राजन्विधिं विष्णुं शिवं रविम् ।।६०
नमस्कारमथैषां तु पठित्वा कुरुनन्दन । ततोऽसौ व्याहरेद्विप्रान्वाचकः[2] श्रद्धयान्वितः ।।६१
अलम्बितमतस्तब्धमद्भुतं वीरमूर्जितम् । असंसक्ताक्षरपदं रसभावसमन्वितम् ।।६२
सप्तस्वरसमायुक्तं कालाकाले विशांपते । प्रदर्शयन्रसान्सर्वान्वाचको व्याहरेन्नृप ।।६३

बताया गया है। तदुपरांत कुरुनन्दन ! उसके बंधनों को शिथिल कर उसे बन्धन मुक्त कर शेष जिस अध्याय के आराधन उस दिन न करना हो, उन्हें उन्हीं बंधनों से बाँधकर सुप्रतिष्ठित कर दे, क्योंकि उसके पारायण उस दिन न होकर दूसरे दिन होंगे।५१-५३। पुस्तकों का तीन प्रकार का स्वरूप बताया गया है बन्धन वासुकी, उसके पत्र (पन्ने) भगवान् ब्रह्मा, एवं अक्षरगण जनार्दन देव के रूप हैं—सूर्य शंकर, पंक्तियाँ समस्त देवता, सूत्र में पावक एवं मध्य में सूर्य प्रतिष्ठित हैं।५४-५५। विभो ! (उनके) अग्रभाग में समस्त ग्रह, दिशाएँ, शंकु मेरुपर्वत, काठ की दोनों पटरियों पर (रेहल), जो नीचे-ऊपर स्थित रहती है, आकाश एवं पृथिवी, एवं शंख चक्र देव के रूप में बताये गये हैं।५६-५७। इस प्रकार देवमय देवपूजित उस पुस्तक को, जो नित्य नमस्कार करने एवं पूजन के योग्य हैं, अर्चना, कर ऐश्वर्य वृद्धि के लिए गृह में स्थापित करना चाहिए।५८। जो पुस्तक बन्धनार्थ लम्बा-चौड़ा सूत्र प्रदान करता है, उस नरश्रेष्ठ को उस उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ दिवाकर देव स्वयं निवास करते है।५९। राजेन्द्र ! वाचक को सर्वप्रथम कथाविषयक पात्रों के निरूपण करने के पश्चात् पुस्तक पन्ने को हाथों में लेकर राजन् ! ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं, व्यास, बाल्मीकि, ब्रह्मा विष्णु, शिव, एवं रवि को शिर से नमस्कार करके पुस्तक-पारायण (कथा) प्रारम्भ करना चाहिए। कुरुनन्दन ! तदुपरांत वाचक श्रद्धा सम्पन्न होकर ब्राह्मणों को उसे सुनाये।६०-६१। विशांपते ! धीरे-धीरे शब्दों एवं अर्थों के पृथक्-पृथक् विवेचन करते हुए, सन्देह रहित, अद्भुत, वीर, तथा तेज पूर्ण उनके अक्षरों एवं वेदों को इस भाँति उच्चारण करे, जिसमें रस तथा भावों के संचार माधुर्य पूर्ण प्रवाहित होते रहें। समय-समय पर सातों स्वरों का प्रयोग भी करना चाहिए। नृप ! इस भाँति वाचक को समस्त रसों के प्रदर्शन पूर्वक उनके

---

१. शिरसा पुस्तकं प्रणम्य तदा पुस्तकमादद्यादित्यर्थः। इहेत्थं पदद्वयं पूर्वान्वयि। २. व्याङ्पूर्वस्य हरतेरिहान्यत्र च वचनमेवार्थः, अत्र प्रमाणममर एव तथा 'व्याहारउक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' इति।

ईदृशाद्वाचकाद्विप्राच्छ्रुत्वा श्रद्धासमन्वितः । इतिहासपुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥६४
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृणुयात्फलमश्नुते । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चापि विशेषतः ॥६५
अश्वमेधमवाप्नोति सर्वान्कामानवाप्नुते । रोगैश्च मुच्यते सर्वैर्महत्पुण्यं च विन्दति ॥
गच्छेद्रवेः परं स्थानं देवस्याद्भुतमुत्तमम् ॥६६
स्नातैर्गृहं समागम्य श्रोतृभिर्वाचकस्य तु । प्रणम्य शिरसा विप्रं वाचकं श्रद्धया नृप ॥६७
आसनं च समाश्रित्य स्थातव्यं[1] वाचकस्य तु । सम्मुखं राजशार्दूल वाग्यतैः समाहितैः ॥६८
वाचकेन नमस्कारे कृते व्यासस्य भूपते । न वक्तव्यं महाबाहो श्रावकैः संशयादृते ॥६९
संशये सति प्रष्टव्यो वाचकः सम्प्रसाद्य तु । यतश्च स गुरुस्तेषां धर्मतो बन्धुरुच्यते ॥७०
वाचकेनापि वक्तव्यं यत्स्यात्तेषां निबोधनम् । अनुग्रहाय सर्वेषामशेषा गुरवो नृप ॥७१
नमस्कारादयः श्राव्याः शिष्यास्त्विति बोद्धतैः । वाग्यतैर्नृपशार्दूल वर्णैः सर्वैर्महीपते ॥७२
शूद्राणां पुरतो वैश्या वैश्यानां क्षत्रिणस्तथा । मध्यस्थितोऽथ सर्वेषां वाचको व्याहरेन्नृप ॥
ये च सङ्करजा राजन्नरास्ते शूद्रपृष्ठतः ॥७३
ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्नान्यवर्णजमादरेत् । श्रुत्वान्यवर्णजाद्वाचं वाचकान्नरकं व्रजेत् ॥७४
इत्थं हि शृण्वतां तेषां वर्णानामनुपूर्वशः । मासि मासि भवेद्राजन्पारणं कुरुनन्दन ॥७५

पारायण या कथा कहनी चाहिए ।६२-६३। श्रद्धा सम्पन्न होकर ऐसे वाचक ब्राह्मणों द्वारा इतिहास, पुराण एवं रामचरित के श्रवण करने से उस पवित्रतापूर्ण एवं नियम पालक श्रोता को फल की प्राप्ति होती है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, विशेषकर शूद्र को अश्वमेध के फल, समस्त कामनाओं की सफलता, समस्त रोगों से मुक्ति एवं महान् पुण्य की प्राप्ति पूर्वक सूर्य देव के उस अद्भुत एवं उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।६४-६६। नृप ! श्रोता को चाहिए कि घर में स्नान करके कथा में आकर श्रध्दा समेत ब्राह्मण वाचक के सम्मुख आसन पर बैठे । भूपते ! महाबाहो, जिस समय वाचक, व्यास को नमस्कार कर स्थिर हो जाये, उस समय श्रोताओं को केवल सन्देह विषय के अतिरिक्त अन्य विषय की बातें न करनी चाहिए ।६७-६९। यदि कहीं श्रोता को संदेह उत्पन्न हो जाये, तो वाचक को प्रसन्न करके उसे पूँछना चाहिए, क्योंकि वाचक वहाँ के उपस्थित लोगों का गुरु एवं धर्मतः बन्धु रूप बताया गया है ।७०। नृप ! वाचक को भी श्रोताओं के ऊपर कृपा कर इस प्रकार की सरल भाषा एवं प्रिय वाणी का उपयोग करना चाहिए, जिससे उन्हें निर्भ्रान्त अर्थ का ज्ञान हो क्योंकि वह सब भाँति उनके गुरु रूप हैं ।७१। नृपशार्दूल ! शूद्र वर्ण के श्रोताओं के सामने वैश्य, तथा वैश्यों के सामने क्षत्रिय एवं सभी के मध्य में वाचक को बैठकर कथा सुननी चाहिए । राजन् ! वर्ण शंकर वालों को शूद्र के पीछे बैठना चाहिए । ब्राह्मण के अतिरक्ति किसी अन्य वर्ण वाले को वाचक न बनाना चाहिए, क्योंकि अन्यवर्ण के वाचक द्वारा पुराणादि सुनने पर नरक की प्राप्ति होती है ।७२-७४। राजन् ! कुरुनन्दन ! इस प्रकार श्रोताओं को प्रत्येक मास में पुराणों की समस्त पंक्तियों के श्रवण विधान को सुसम्पन्न करके पारण करना बताया गया है ।७५। राजन् !

---

१. इदं पूर्वान्वयि ।

श्रेयोऽर्थमात्मनो राजन्पूजयेद्वाचकं बुधः । मासि पूर्णे द्विजश्रेष्ठे दातव्यं स्वर्णमाषकम् ।।७६
ब्राह्मणेन महाबाहो द्वे देये क्षत्रियस्य तु । वाचकाय द्विजश्रेष्ठ वैश्येनापि त्रयं तथा ।।७७
शूद्रेणैव च चत्वारो दातव्याः स्वर्णमाषकाः । मासि मासि द्विजश्रेष्ठ श्रद्धया वाचकाय तु ।।७८
प्रथमे पारणे राजन्वाचकं पूज्य शक्तितः । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं विन्दति मानवः ।।७९
कार्तिकादीन्समारभ्य यावत्कार्त्तिकमच्युत[1] । अग्निष्टोमं गोसवं च ज्योतिष्टोमं तथा नृप ।।८०
सौत्रामणिं वाजपेयं वैष्णवं च तथा विभो । माहेश्वरं तथा ब्राह्मं पुण्डरीकं यजेत यः ।।८१
आदित्ययज्ञस्य तथा राजसूयाश्वमेधयोः । फलं प्राप्नोति राजेन्द्र मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ।
इत्थं यज्ञफलं प्राप्य याति लोकांस्तथोत्तमान् ।।८२
वज्रवेदिकसम्पन्नं मणिरत्नविभूषितम् । विमानमास्थितो राजन्मोदते शक्रमन्दिरे ।।८३
ततश्चन्द्रस्य भवने वारुणे भवने ततः । शोचिष्केशगृहे गत्वा गच्छेच्चैलबिले गृहे ।।८४
धिषणस्य गृहं गत्वा ततश्चित्रशिखण्डिनः । वृद्धश्रवसमासाद्य गच्छेत्कञ्जजमन्दिरे ।।
एवमेव नृपश्रेष्ठ नात्र कार्या विचारणा ।।८५
फलमेतत्समुद्दिष्टं शृण्वतां सततं नृणाम् । एतत्फलं वत्सरेण शृण्वतो विधितो नृप ।।८६
एतानि परिमाणानि वत्सरेण भवन्ति वै । शृण्वतां नृपशार्दूल ददतां वाचकाय वै ।।८७

विद्वान् को चाहिए कि आत्म कल्याणार्थ वाचक की पूजा करें। और महाबाहो! मास की समाप्ति में उस ब्राह्मण श्रेष्ठ (वाचक) को ब्राह्मणों द्वारा एक माशा, क्षत्रियों द्वारा दो, वैश्यों द्वारा तीन एवं द्विजश्रेष्ठ! शूद्रों द्वारा चार माशे सुवर्ण प्राप्त होने चाहिए। द्विजश्रेष्ठ! श्रद्धा सम्पन्न होकर प्रत्येक मास में चारों वर्णों को ऐसी ही दक्षिणा वाचक के लिए प्रदान करनी चाहिए।७६-७८। राजन्! प्रथम पारण में वाचक का यथाशक्ति पूजन करने पर मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं।७९। नृप! कार्तिक मास से आरम्भ कर बारहों मासों में अग्निष्टोम, गोसव, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्डरीक, आदित्य यज्ञ तथा राजेन्द्र! राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ के फल क्रमशः बारहों मासों में सूर्य के व्रतानुष्ठान द्वारा प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वह समस्त यज्ञ के फलों की प्राप्ति पूर्वक उत्तम लोक की प्राप्ति करता है।८०-८२। राजन्! वज्र की वेदियों एवं मणिरत्नों से विभूषित विमान पर स्थित होकर वह इन्द्र के भवन में आनन्दानुभव प्राप्त करता है।८३। पुनः उसे चन्द्र-भवन, वरुण-भवन, अग्नि-भवन, एवं कुबेर के गृह, पहुँचकर ग्रहों के आनन्दानुभव के उपरांत चित्र शिखंडी (अग्नि) इन्द्र तथा ब्रह्मा के मन्दिर की प्राप्ति होती है। नृपश्रेष्ठ! इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं।८४-८५। नृप! पुराण श्रवण करने वाले मनुष्यों को जो निरन्तर पूर्ण वर्ष तक विधान पूर्वक श्रवण करते रहते हैं, इन फलों की प्राप्ति होती है, ऐसा बताया गया है। नृप शार्दूल! पूरे वर्ष भर कथा श्रवण करते हुए वाचक की सेवा में दक्षिणा प्रदान करने पर श्रोताओं को इन फलों की प्राप्ति होती है।८६-८७। विशांपते! ब्राह्मणादि वर्णों को क्रमशः वाचक के लिए एक दो, तीन, एवं चार माशे सुवर्ण

---

१. श्लोकद्वयमेकान्वयि।

एकं च द्वे तथा त्रीणि चत्वारि च विशांपते । देयानि वाचकायेह मासि मासि नराधिप ।।८८
ब्राह्मणाद्यैर्नृपश्रेष्ठ सर्ववर्णविभागशः । समाप्ते पर्वणि तथा वाचकं पूजयेत्पुनः ।।८९
वाचकं ब्राह्मणं चैव सर्वकामैः प्रपूजयेत् । गन्धमाल्यादिभिर्दिव्यैर्वासोभिर्विविधैरपि ।।९०
वाचकाय प्रदत्त्वा तु ततो विप्रान्प्रपूजयेत् । हिरण्यं रजतं रुक्मं गाश्च कांस्योपदोहनाः ।।९१
दत्त्वा च वाचकायेह श्रुतस्य प्राप्यते फलम् । यथा सदक्षिणं चान्नं श्राद्धकाले प्रकीर्तितम् ।।
तथा श्रुतं नृपश्रेष्ठा सदक्षिणमुदाहृतम् ।।९२
वाचकं पूजयेद्यस्मात्पश्चाल्लेखकपूजनम् । समाप्ते पर्वणि विभो विशेषेणैव चार्चयेत् ।।९३
वाचकः पूजितो येन पूजितास्तेन देवताः । वाचके परितुष्टे न मम प्रीतिरनुत्तमा ।।९४
इति वेधाः सदा प्राह देवानां पुरतः पुरा । तस्मिंस्तुष्टे जगत्सर्वं तुष्टं भवति नित्यशः ।।९५
तस्मात्प्रपूजयेद्विप्रं वाचकं नृपसत्तम । न तुल्यं वाचकेनेह पात्रं दानस्य विद्यते ।।९६
तिष्ठंति यस्य शस्त्राणि जिह्वाग्रे पृथिवीपते । दृष्टश्च गोचरस्तात कस्तेन सदृशो द्विजः ।।९७
न तुल्यं विद्यते तेन भुवि पात्रं नरेषु वै । तस्मादन्नं सदा पूर्वं तस्मै देयं विदुर्बुधाः ।।
श्राद्धे यस्य द्विजो भुङ्क्ते वाचकः श्रद्धयान्वितः । भवन्ति पितरस्तस्य तृप्ता वर्षशतं नृप ।।९८

प्रदान करने चाहिए । नराधिप ! प्रत्येक मास में वाचक के लिए श्रोताओं को ऐसा ही करने का विधान बताया गया है ।८८। नृपश्रेष्ठ ! ब्राह्मणादि सभी वर्ण को क्रमशः पर्व की समाप्ति में भी पुनः उसी भाँति वाचक की पूजा करनी चाहिए ।८९। समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए दिव्य एवं गन्ध मालाओं आदि द्वारा अनेक भाँति से वाचक ब्राह्मण की पूर्व भाँति ही पूजा करना बताया गया है ।९०। वाचक की पूजा एवं दक्षिणा दान के उपरांत ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए और सुवर्ण चाँदी, रकम तथा कांसे की दोहनी पात्र समेत अलंकृत गायें वाचक को देनी चाहिए । इस प्रकार वाचको को इन वस्तुओं के प्रदान पूर्वक उनसे (पुराण) श्रवण करने पर उपरोक्त फलों की प्राप्ति होती है । नृपश्रेष्ठ ! जिस प्रकार श्राद्ध के समय दक्षिणा समेत भोजन प्रदान करना बताया गया है, उसी भाँति दक्षिणा समेत श्रवण का विधान भी जानना चाहिए ।९१-९२। विभो ! वाचक की अर्चा के उपरांत लेख की पूजा आवश्यक बतायी गयी है, विशेषकर पर्व की समाप्ति में ।९३। जिसने वाचक की पूजा सुसम्पन्न किया, उसने समस्त देवों की पूजा की क्योंकि वाचक के भली भाँति प्रसन्न होने पर मेरा वह अनुपम प्रीति भाजन होता है ।९४। इस प्रकार ब्रह्मा ने पहले समय में समस्त देवों के समक्ष भाषण किया था । वाचक के प्रसन्न होने पर उसके ऊपर समस्त जगत् (श्रोता के) नित्य प्रसन्न रहता है ।९५। नृपसत्तम ! इसलिए ब्राह्मण वाचक की अत्युत्तम अर्चा करनी चाहिए । क्योंकि वाचक के समान अन्य कोई दान का पात्र नहीं होता है ।९६। पृथिवीपते ! समस्त शास्त्र जिसके जिह्वाग्रभाग पर स्थित एवं दृष्टिगोचर रहता है, तात ! उसकी समानता कौन दूसरा ब्राह्मण कर सकता है ।९७। इस भूतल पर मनुष्यों में उसके समान अन्य वाचक न होने के कारण विद्वानों ने सदैव सर्वप्रथम उन्हें अन्न प्रदान करने के लिए बताया है । नृप ! जिसके यहाँ

---

१. पुष्पस्य भवने ततः । ३. ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ।

यथेह सर्वदेवानां भास्करः प्रवरः स्मृतः । विस्पष्टमद्भुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा ॥
कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥९९
बुध्यमानः सदात्यर्थं ग्रन्थार्थं कृत्स्नशः नृप ! ब्राह्मणादिषु वर्णेषु ग्रन्थार्थं श्रावयेन्नृप ॥१००
स एवं वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते । अतोऽन्यथा कथयिता ज्ञेयोऽसौ वक्तृनामकः ॥१०१
इत्थंभूतो वसेद्यस्मिन्वाचको व्याससन्निभः । देशेऽथ पत्तने राजन्स देशः प्रवरः स्मृतः ॥१०२
ते धन्यास्ते महात्मानस्ते कृतार्था न संशयः । वसन्ति यत्नतो यस्मिन्स देशः प्रवरः स्मृतः ॥१०३
न शोभते पुरं वीर व्यासहीनं कदाचन । यथार्कहीनं हि दिनं चन्द्रहीना यथा निशा ॥१०४
न राजते सरो यद्वत्पद्मिनी रहितं नृप । तथा व्यासविहीनं नु राजते न पुरं क्वचित् ॥१०५
प्रणम्य वाचकं भक्त्या यत्फलं प्राप्यते नरैः । न तत्क्रतुसहस्रेण प्राप्यते कुरुनन्दन ॥१०६
यथैकतो ग्रहाः सर्वे एकतस्तु दिवाकरः । तथैकतो द्विजाः सर्वे एकतस्तु स वाचकः ॥१०७
यथा वेदसमो नास्ति आगमो भुवि कश्चन । तथा व्याससमो नास्ति ब्राह्मणो भुवि कश्चन ॥१०८
कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं न द्वितीयं प्रचक्षते । न नदी गङ्गया तुल्या न देवो भास्करात्परः ॥१०९
नाश्वमेधसमं पुण्यं न पापं ब्रह्महत्यया । पुत्रजन्मसुखैस्तुल्यं न सुखं विद्यते यथा ॥११०

श्राद्ध के दिन श्रद्धालु होकर कोई वाचक ब्राह्मण भोजन करता है, उसी समय उसके पितर लोग सौ वर्ष के लिए तृप्त हो जाते हैं ।९८। जिस प्रकार समस्त देवताओं में भास्कर सर्वश्रेष्ठ बताये गये हैं, उसी भाँति ब्राह्मण वाचक जो अत्यन्त स्पष्ट, अद्भुत, शांत, स्पष्ट अक्षर एवं कलस्वर का स्पष्ट उच्चारण करने वाले, मधुर स्वर तथा इस भावपूर्ण उस ग्रंथ के विशद अर्थों को सदैव ही भली भाँति समझता है, सर्वप्रधान कहा गया है। नृप ! ब्राह्मण आदि सभी वर्णों को उस ग्रन्थ के अर्थों को उससे सुनना चाहिए ।९९-१००। राजन् ! जो इस प्रकार से ग्रन्थों के पारायण करता है, उसे 'व्यास' कहा जाता है, और इससे अन्य प्रकार के पारायण करने वाले को 'वक्ता' ।१०१। राजन् ! जिस देश या गाँव में इस प्रकार व्यास के समान वाचक रहता है, वह देश-गाँव सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ।१०२। इसलिए वे (वाचक) धन्य हैं, महात्मा हैं, एवं कृतार्थ हैं अतः जिस देश में ऐसे वाचक-दल निवास करते हैं, वह देश सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ।१०३। वीर ! सूर्यहीन दिवस, एवं चन्द्रप्रभाहीन रात्रि की भाँति व्यासहीन ग्राम की कभी भी शोभा नहीं होती है ।१०४। नृप ! कमलिनी विहीन तालाब जिस प्रकार सुशोभित नहीं होता है, उसी भाँति व्यास हीन गांव भी कभी सुशोभित नहीं होता है ।१०५। कुरुनन्दन ! भक्ति पूर्वक वाचक को प्रणाम करके मनुष्य जिन फलों की प्राप्ति करता है, वे फल सहस्र यज्ञों द्वारा भी प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं ।१०६। एक ओर सभी ग्रह और एक ओर सूर्य स्थापित करने पर भी जिस भाँति वे ग्रह समस्त सूर्य की तुलना नहीं कर सकते, उसी भाँति एक ओर समस्त द्विज एवं एक ओर वाचक के स्थित रहने पर समस्त द्विज उस वाचक की तुलना करने में असमर्थ हैं ।१०७। पृथिवी में जिस प्रकार वेद के समान कोई आगम (शास्त्र) नहीं है, उसी प्रकार इस भूतल में व्यास के समान कोई दूसरा तीर्थ एवं गंगा के समान अन्य नदी नहीं है, उसी प्रकार भास्कर से श्रेष्ठ कोई अन्य देव नहीं है ।१०८-१०९। नृप ! जिस प्रकार अश्वमेध के समान पुण्य, ब्रह्म हत्या के समान पाप, एवं पुत्र जन्म के समान सुख अन्य कोई नहीं है, उसी प्रकार व्यास के समान अन्य ब्राह्मण

तथा व्याससमो विप्रो न क्वचित्प्राप्यते नृप । दैवकर्मणि पित्र्ये च पावनः परमो नृणाम् ॥१११

नास्ति व्याससमः श्रेष्ठ इतीयं वैदिकी श्रुतिः । अथ विप्रसहस्राणां विप्रोऽयं श्रेष्ठ ईरितः ॥

उपविष्टो यदा भुङ्क्ते व्यासो वै विप्रमण्डले ॥११२

श्राद्धे तात पवित्राणि कथितानि पुरा मम । ब्रह्मणा राजशार्दूल शृणु तानि यथाविधि ॥११३

मधु पायसं कालशाकस्तिलाश्च कुतपस्तथा । राजतं चापि पात्रेषु ब्राह्मणेष्वपि वाचकः ॥११४

दैवकर्मणि पित्र्ये च स ज्ञेयः पङ्क्तिपावनः । वाचकश्च यतिश्चैव तथा [illegible] षडंगवित् ॥११५

एते सर्वे नृपश्रेष्ठ विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः । नामनी वाचकस्यैते शृणुष्वार्थमथैनयोः ॥११६

इतिहासपुराणानि जयेति विदितानि वै । उपजीवति यस्मात्तं वाचकानां द्विजो नृप ॥

जयोपजीवो तेनासौ गतः ख्यातिं तु वाचकः ॥११७

विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षरमिदं तथा । कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥११८

बुध्यमानोथवात्यर्थं ग्रन्थार्थं कृत्स्नशो नृप । ब्राह्मणादिषु वर्णेषु ग्रन्थार्थं श्रावयेत्तथा ॥११९

य एवं च वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते । अतोऽन्यथा वाचयिता न गच्छेद्व्यासतां क्वचित् ॥१२०

त्रिविधं वाचकं विद्यात्सदा गुणविभेदतः । श्रावकं च महाबाहो त्रिविधं गुणभेदतः ॥१२१

द्वावेतौ कथ्यमानौ तु निबोध गदतो मम । अभिद्रुतं तथास्पष्टं विस्तरं स्वरवर्जितम् ॥१२२

अप्राप्य है ! देव तथा पितृकर्मों में उनके समान पवित्र अन्य कोई मनुष्य नहीं होता है, क्योंकि यह परम्परागत प्रसिद्धि एवं वैदिक जनश्रुति है कि व्यास के समान अन्य कोई मनुष्य श्रेष्ठ नहीं है । सहस्रों ब्राह्मणों में यह (व्यास) ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ बताया गया है । तात ! श्राद्ध के दिन ब्राह्मण या मंडली के मध्य में बैठकर जिस समय वह व्यास (वाचक) भोजन करता है, उस समय सब कुछ पवित्र हो जाता है । राजशार्दूल ! पहले समय में ब्रह्मा ने ही उसे बताया था, मैं उसे विधान पूर्वक बता रहा हूँ, सुनो ! मधु (शहद) पायस, कालशाक (श्राद्धीय साग), तिल, एवं कुतप (मृगचर्म और दिन का आठवाँ भाग), की भाँति पात्रों में चाँदी के पात्र और ब्राह्मणों में वाचक उत्तम होते हैं ।११०-११४। देव तथा पितरों के कर्मों में उन्हें पवित्र श्रेणी के समझना चाहिए । नृपश्रेष्ठ ! वाचक, यति, षडंगो का वेत्ता, ये सभी पंक्तिपावन (उत्तम श्रेणी के) हैं । वाचक के वाचक और व्यास, ये दोनों नाम हैं, अतः इनके अर्थ बता रहा हूँ, सुनो ! नृप ! इतिहास एवं पुराणों के जिनके 'जय' यह नाम ख्याति प्राप्त है, पारायण द्वारा जो ब्राह्मण अपनी जीविका निर्वाह करता है, उसका ख्याति प्राप्त नाम जपोपजीवी वाचक होता है, और अत्यन्त स्पष्ट, अद्भुत, शांत, स्पष्ट अक्षर एवं पद मधुर स्वर, रस तथा भावपूर्ण उस ग्रन्थ के समस्त विशद ग्रंथों के ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण आदि वर्णों के मध्य बैठकर उसके श्रवण कराने वाले ब्राह्मण वाचकों को 'व्यास' कहा गया है ।११५-१२०। महाबाहो ! गुण के भेद होने से जिस प्रकार वाचक के तीन भेद बताये गये हैं, उसी प्रकार गुण के भेद से श्रोता भी तीन भाँति के होते हैं ।१२१। शेष दोनों प्रकार के वाचकों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! क्ष्माधिपेश्वर ! शीघ्रता से, स्पष्ट, विस्तृत, स्वरहीन,

पदच्छेदविहीनं च तथा भावविवर्जितम् । अबुध्यमानो ग्रन्थार्थमभीष्टोत्साहवर्जितः ॥१२३
ईदृशं वाचयेद्यस्तु वाचकः क्ष्माधिपेश्वर । क्रोधनोऽप्रियवादी च अज्ञानाद्ग्रन्थदूषकः ॥१२४
बुध्यते न च कष्टाच्च स ज्ञेयो वाचकाधमः । विस्पष्टमद्भुतं शांतं रसभावसमन्वितम् ॥१२५
अबुध्यमानो ग्रन्थार्थं वाचयेद्यस्तु वाचकः । स ज्ञेयो राजसो राजन्निदानीं सात्त्विकं शृणु ॥१२६
विस्पष्टमद्भुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा । कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥१२७
अत्यर्थं बुध्यमानस्तु ग्रन्थार्थं कृत्स्नशः नृप । ब्राह्मणादिषु वर्णेषु आचार्यो विधिवन्नृप ॥१२८
य एवं वाचयेद्राजन्स ज्ञेयः सात्त्विको बुधैः । श्रद्धाभक्तिविहीनो यो लोभिष्ठः कटुको यथा ॥१२९
हेतुवादपरो राजंस्तथासूयासमन्वितः । नित्यां नैमित्तिकां काम्यामाददद्दक्षिणां नृप ॥१३०
वाचको यो महाबाहो शृणुयाद्यस्तु मानवः । स ज्ञेयस्तामसो राजञ्छ्रावको मानवोऽपि सः ॥१३१
न तस्य पुरतो वीर वाचयेत्प्राज्ञ एव हि । प्रसङ्गाच्छृणुयाद्यस्तु श्रद्धाभक्तिविवर्जितः ॥१३२
राजन्कौतुक पात्रं स ज्ञेयो राजसो भवेत् । संत्यज्य सर्वकार्याणि भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥१३३
सततं पूजयेद्यस्तु वाचकं श्रद्धया मुदा । नित्ये नैमित्तिके काम्ये गुरून्वै देवतास्तथा ॥१३४
य एवं शृणुयाद्वीर स ज्ञेयः सात्त्विको बुधैः । व्यासः पूज्यः श्रावकाणां यथा व्यासवचो नृप ॥१३५
तस्मात्पूज्यतमो नान्यः श्रावकाणां नृपोत्तम । यतः स वै गुरुस्तेषां ज्ञानदाता सदा नृप ॥१३६

पदच्छेद तथा भावहीन उच्चारण करने वाला ग्रन्थ के अर्थों को भली भाँति न जानने वाला, एवं उत्साह हीन, पारायण करने वाले को 'वाचक' कहा गया है, तथा क्रुद्ध स्वभाव, कठोर वाणी, अज्ञानता वश ग्रंथ को दूषित करने वाले एवं परिश्रमपूर्ण कष्ट के अनुभव करनेपर भी अर्थों को न जानने वाले को 'वाचकाधम' बताया गया है। राजन् ! स्पष्ट वाणी, आश्चर्य शांत, स्पष्ट अक्षर एवं पदों के उच्चारण, माधुर्य पूर्ण स्वर रस एवं भाव समेत समस्त ग्रन्थों के अर्थों का अज्ञानतावश विस्तृत व्याख्यान करने वाले को 'राजस्' बताया गया है, अब सात्त्विक की व्याख्या कह रहा हूँ सुनो ! अत्यन्त स्पष्ट, आश्चर्यजनक, शांत स्पष्ट, अक्षर एवं पदों के उच्चारण मधुर स्वर, रस एवं भावों समेत सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थों की विशद व्याख्या करने में कुशल व्यक्ति को ब्राह्मण आदि वर्णों का आचार्य बताया गया है। राजन् ! इस प्रकार के पारायण करने वाले को विद्वानों ने 'सात्त्विक वाचक' कहा है, राजन् ! उसी भाँति श्रद्धा भक्तिहीन, लोभी, मदार वृक्ष की भाँति कडुवा (कठोर) अकारण वाद विवाद करने वाला, निंदित, नित्य नैमित्तिक क्रियाओं की पूर्ति के लिए निश्चित दक्षिणाओं के ग्रहण करने वाले पुरुष, महाबाहो ! तामस वाचक बताये गये हैं तथा राजन् ! उसके सभी श्रोतागण मनुष्य भी तामस कहे गये है। १२२-१३१। वीर ! ऐसे श्रोताओं के सामने विद्वान् वाचकों को पारायण न करना चाहिए। राजन् श्रद्धा भक्तिहीन पुरुष प्रसङ्ग वश यदि कथा का श्रवण करता है, उसे कौतुक (मनोरंजन) पात्र होने के नाते 'राजस श्रोता' बताया गया है। भक्ति पूर्वक जो श्रद्धालु पुरुष सभी कार्यों को त्याग कर अत्यन्त प्रसन्नता से निरन्तर वाचक की पूजा करता है, उसी प्रकार नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों से गुरुवर्य्यों तथा देवताओं की आराधना करता है, वीर ! इस प्रकार के श्रोता को विद्वानों ने 'सात्त्विक श्रोता' कहा है। नृप ! व्यास के वचनानुसार व्यास श्रोताओं के परम पूज्य हैं, इसलिए नृपोत्तम ! उनसे बढ़कर श्रोताओं के पूज्यतम अन्य कोई नहीं है, क्योंकि वह उनके सदैव ज्ञान प्रदान करने के नाते गुरु रूप है। १३२-१३६। नृपश्रेष्ठ ! वेद

चतुर्णामिह वर्णानां नान्यो बन्धुः प्रचक्ष्यते । व्यासादृते नृपश्रेष्ठ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ।।१३७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेद्वाचकं सदा । स गुरुः स पिता माता स बन्धुः स सुहृत्तथा ।।१३८
वाचको नृपशार्दूल विप्रादीनामशेषतः । इत्थं व्यासो गुरुर्ज्ञेयः पूज्यो मान्यो द्विजातिभिः ।।१३९
शृण्वन्ति ये नरा राजन्स्तेषां गुरुरुच्यते । पूजार्थं तस्य समयः श्रावकाणामुदाहृतः ।।१४०
ये शृण्वन्ति नृपश्रेष्ठ मासि मासि ददन्ति ते । स्वर्णमाषकमेकस्मै वाचकाय पृथक्पृथक् ।।१४१
द्वादश्यां वामावस्यायामथ दा रवि सङ्क्रमे । सा नित्या दक्षिणा तस्यां या च श्रेयोऽर्थमात्मनः ।।१४२
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । प्राप्ते वापरपक्षे च दानं तस्मै स्वशक्तितः ।।१४३
देयं स्याच्छ्रावकैस्तात तं मुक्त्वा नान्यतो नृप । प्रथमं तस्य दातव्यं श्रेयोऽर्थं श्रावकैः सदा ।।१४४
अदत्त्वा तस्य येन्यस्मै सम्प्रयच्छन्ति श्रावकाः । अवमानः कृतस्तैस्तु वाचकस्य भवेन्नृप ।।१४५
कृत्वावमानमस्य तैः प्राप्यते यत्फलं नृप । ब्राह्मणाद्यैः समस्तैश्च तच्छृणुष्व वरानन ।।१४६
शूद्रत्वं ब्राह्मणो याति क्षत्रियो याति काकताम् । जायते च तथा वैश्यः शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ।।१४७
तस्मात्पूज्यो नृपश्रेष्ठ प्रथमं वाचको बुधैः । आपत्काले च वृद्धौ च यतश्चासौ गुरुः स्मृतः ।।१४८
वैशाख्यामयने वीर तृतीयायां च सुव्रत । कार्त्तिक्यामथ माग्यां च सम्पूज्यः प्रथमं भवेत् ।।१४९

की श्रुतियों का यह कहना है कि चारों वर्णों के व्यास का अतिरिक्त कोई बन्धु नहीं होता है ।१३७। इसलिए सभी भाँति प्रयत्नशील रहकर वाचक की सैदव पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वहीं गुरु, पिता, माता, बंधु एवं मित्र है ।१३८। नृपशार्दूल ! निखिल ब्राह्मणों के लिए भी वाचक उसी भाँति पूज्य बताया गया है । पुनः इस प्रकार के व्यास को गुरु जानना चाहिए और द्विजातियों के लिए वही पूज्य एवं मान्य है ।१३९। राजन् ! जितने लोग कथा श्रवण करते हैं, उन सभी के वह गुरु कहलाता है । उसकी पूजा करने के लिए श्रोताओं को समय बताया गया है ।१४०। नृपश्रेष्ठ ! जो लोग प्रत्येक मास के कथापारायण के श्रवण करते हैं वे सब पृथक्-पृथक् रूप से एक एक माशे सुवर्ण वाचक के लिए प्रदान करते हैं द्वादशी, अमावस्या एवं सूर्य संक्रान्ति के दिन भी कथा सुनने पर वाचक की वही नियत दक्षिणा होती है । क्योंकि देने वाला अपने कल्याणार्थ प्रदान करता है ।१४१-१४२। दोनों अयन, बिषुव, चन्द्र सूर्य के ग्रहण के समय, अपनी भक्तयनुसार उन्हें दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए ।१४३। नृप ! तात ! उससे अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु वाचक को श्रोता न प्रदान करे । अन्य वस्तु के प्रदान में अपने कल्याणार्थ प्रथम उसी (एक माशे सुवर्ण) को प्रदान कर पश्चात् अन्य वस्तुएं दे ।१४४। नृप ! सर्व प्रथम बिना उसे प्रदान किये अन्य वस्तु के देने से श्रोताओं द्वारा किया गया वाचक का अपमान समझना चाहिए ।१४५। नृप ! अपमान करने पर भी सभी वर्णों को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वरानन ! मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! ।१४६। ब्राह्मण, शूद्रत्व की प्राप्ति करता है, क्षत्रिय कौवे होते हैं और इसी भाँति वैश्य एवं शूद्र चाण्डाल के यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं ।१४७। अतः नृपश्रेष्ठ ! विद्वानों को चाहिए कि वाचक की सर्वप्रथम पूजा करें, क्योंकि आपत्तियों के समय वृद्धि काल में भी वह उनका गुरु बताया गया है ।१४८। वीर ! वैशाख मास की पूर्णिमा, अयन, तृतीया तथा सुव्रत ! उसी भाँति कार्तिक एवं मागशीर्ष की पूर्णिमा में सर्वप्रथम वाचक की पूजा होनी चाहिए ।१४९। विभो ! उसी भाँति अन्य पर्व तिथियों में भी उनकी

पर्वस्वन्येषु च विभो सम्पूज्यो धर्मतः स्मृतः । हिरण्यं च सुवर्णं च धनं धान्यं तथैव च ।।१५०
अन्नं चापि तथा पक्वं मांसं च कुरुनन्दन । दातव्यं प्रथमं तस्मै श्रावकैर्नृपसत्तम ।।१५१
वाचकस्तु यथा नित्यं सुखमास्ते नराधिप । न पीडयते यथा द्वन्द्वैस्तथा कार्यं वरानन ।।१५२
हेमन्ते लोमशा देयाश्छत्रं प्रावृषि सत्तम । उपानहौ कालयोग्ये काले चैवानुलोमशः ।।१५३
इत्थं द्वन्द्वविनिर्मुक्तः स येषां वाचको नृप । ते धन्याः श्रावका लोके ते गताः परमं पदम् ।।१५४
आत्मना तु कथं वीर सुखमिच्छेद्विचक्षणः । विषमस्थे गुरौ राजन्यतश्च स गुरुः स्मृतः ।।१५५
वाचकश्रावकाणां च तस्माद्द्वन्द्वं विघातयेत् । यत्नः कार्यः श्रावकैश्च वाचकस्य जनाधिप ।।१५६
इत्थं पूज्यः सदा व्यासः श्रेयोऽर्थं प्रथमं नृप । भर्ता पूज्यो यथा स्त्रीणां सर्वासां वै महीपते ।।१५७
श्रावकाणां तथा राजन्वाचकः पूज्य उच्यते । उपाध्यायस्तु शिष्याणां यथा भागवतो हरिः ।।१५८
सौराणां च यथा भानुः शैवानां शङ्करो यथा । वाचकस्तु तथा पूज्यः श्रावकाणां नराधिप ।।१५९
वाञ्छितां ददता नित्यं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता । पूर्वोक्तमाषकं तस्मै वाचकाय जनाधिप ।।१६०
यदा दातुं न शक्नोति माषकं काञ्चनस्य तु । रजतस्य तदा देयं माषकं श्रेयसे नृप ।।१६१
तदभावे हिरण्यं च वित्तशाठ्यविवर्जितः । मृत्तिकापि हि दातव्या प्राप्नोति सत्फलं शुभम् ।।१६२
इत्येषा दक्षिणा नित्या मासि मासि भवेन्नृप । नैमित्तिका भवेद्राजन्ग्रहणादिषु पर्वसु ।।१६३

धार्मिक पूजा के उपरांत हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य एवं अन्न समेत कुरुनन्दन ! पके मांस भी श्रोताओं को चाहिए उन्हें प्रदान करें।१५०-१५१। नराधिप ! वाचक को जिस किसी उपाय द्वारा दुःख द्वन्द्व की मुक्ति पूर्वक नित्य सुख प्राप्ति हो, वही श्रोताओं को करना चाहिए।१५२। हेमन्त ऋतु के समय कम्बल वर्षा के समय छत्ते, तथा शीत और गर्मी के समय पादत्राण (जूते) प्रदान करने चाहिए।१५३। नृप ! इस प्रकार जिन श्रोताओं द्वारा वाचक दुःख द्वन्द्व की मुक्ति प्राप्त करता है, लोक में श्रोता लोग धन्य हैं, एवं उन्हें परम पद की प्राप्ति होती है।१५४। वीर ! गुरु की विषम परिस्थिति देखकर कौन बुद्धिमान् अपने सुख की आकांक्षा करेगा, क्योंकि यह गुरु बताया गया है।१५५। जनाधिप ! इसलिए वाचक श्रोताओं के द्वन्द्व दुःख का हनन करे और श्रोता लोग वाचकों के ।१५६। नृप ! इस प्रकार व्यास की सदैव सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए। महीपते ! जिस प्रकार सभी स्त्रियों के पूज्य उनके पति होते हैं और राजन् ! जिस प्रकार शिष्यों के उपाध्याय एवं वैष्णवों के विष्णु पूज्य हैं, उसी भाँति वाचक श्रोताओं के पूज्य बताये गये हैं। नराधिप ! सौर (सूर्य भक्तों) के सूर्य तथा शैवों के शिव, जिस प्रकार पूज्य हैं, उसी प्रकार श्रोताओं के पूज्य वाचक होते हैं।१५७-१५९। जनाधिप ! अपने ऐश्वर्य की कामना वश पूर्वोक्त कथनानुसार एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा नित्य प्रदान करते हुए नित्य कथा श्रवण करनी चाहिए।१६०। नृप ! यदि श्रोता एक माशा सुवर्ण की दक्षिणा को देने में असमर्थ हो तो कल्याणार्थ उतनी चाँदी की ही दक्षिणा प्रदान करे।१६१। देने में धन की शठता न करे प्रत्युत उसके अभाव में हिरण्य (सामान्यद्रव्य) ताँबे आदि ही प्रदान करे। उसका भी अभाव हो तो मृत्तिका (मिट्टी) ही प्रदान करनी चाहिए। उससे भी उत्तम फल की प्राप्ति होती है।१६२। नृप ! प्रत्येक मास तथा राजन् ! ग्रहण आदि की पर्व तिथियों को भी यही नियमित दक्षिणा वाचक को नित्य प्रदान करने के लिए बताया गया है।१६३। राजन् !

अमले वाससी राजन्गन्धमाल्यविभूषणे । समाप्ते पर्वणि विभो दातव्ये भूतिमिच्छता ।।१६४
ज्ञात्वा सर्वसमाप्तिं तु पूजयेच्छ्रावको ध्रुवम् । आत्मानमपि विक्रीय य इच्छेत्सफलं श्रुतम् ।।१६५
नैमित्तिकां च नित्यां च दक्षिणामप्रदाय च । शृणोति च सदा यस्तु तस्य तन्निष्फलं श्रुतम् ।।१६६
यथा च दक्षिणाहीनाद्यज्ञान्न फलमश्नुते । तथा श्रुतं च राजेन्द्र दक्षिणारहितं स्मृतम् ।।१६७
चतुर्गुणा भवेद्राजन्या नित्या दक्षिणा विभो । समाप्ते पर्वणि विभो इत्याह भगवाञ्छिवः ।।१६८
इत्येष कथितो राजन्पुराणश्रवणे विधिः । यतश्च विधिहीनं तु न कर्मफलमुच्यते ।।१६९
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । विधिपूर्वं स्मृतं ज्ञेयं यथेह कुरुनन्दन ।।१७०
फलदं नृपशार्दूल पुराणश्रवणं तथा । यथार्थं कथितं तुभ्यं विधिना श्रवणं मया ।।१७१
यथोक्तं तु यथा जीवं यथोक्तं ब्रह्मवादिना । स ब्राह्मणो महाराज सर्वलोकेषु पूजितः ।।१७२
यथाश्रुतं महाबाहो तथेदं कथितं तव । भास्करस्य तु माहात्म्यं माहात्म्यं वाचकस्य तु ।।१७३
तथा च सप्तमीकल्पः सर्वपापभयापहः । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं नरः ।।१७४
भगलोकं समासाद्य त्रिषु लोकेषु गीयते । ततोऽर्कलोकमासाद्य गच्छेच्चित्रशिखण्डिनः ।।१७५
तस्मादपि महाबाहो गच्छेल्लोकं दिवाकरम् । अर्कलोके ततो यातस्ततो गोलोकमश्नुते ।।१७६

विभो ! पर्व की समाप्ति में अपने एश्वर्य प्राप्ति के लिए स्वच्छ दो वस्त्र, गंध, माल्य, एवं आभूषण प्रदान करने चाहिए । सब की समाप्ति में अपने कथा सुनने को सफल बनाने के लिए श्रोता को चाहिए कि अपने आप का विक्रय कर वाचक की निश्चित पूजा करे ।१६४-१६५। नैमित्तिक या नित्य के (पूजन विधान में) जो बिना दक्षिणा प्रदान किये ही कथा श्रवण करता है, उसका सुनना निष्फल हो जाता है ।१६६। राजेन्द्र ! जिस प्रकार दक्षिणा हीन यज्ञ के फल की प्राप्ति नहीं होती है, उसी भाँति कथा श्रवण भी दक्षिणा हीन होने पर फलप्रदायक नहीं होता है ।१६७। राजन् ! जो दक्षिणा नित्य प्रदान की जाती है, विभो ! पर्व की समाप्ति में वहीं चौगुनी हो जाती है ।१६८। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुराण श्रवण के विधान बता दिया जिससे विधान हीन कर्म-फल के लिए उद्योग न किया जाये ।१६९। कुरुनन्दन ! स्नान, दान, जप, होम, पितृ तथा देव पूजन विधान पूर्वक करना चाहिए ।१७०। नृपशार्दूल ! पुराण सुनने का यथार्थ विधान, जो फल दायक होता है, मैंने तुम्हें बता दिया ।१७१। महाराज ! जिस प्रकार ब्रह्मवादियों ने जीव की व्याख्या की है, उसी भाँति समस्त लोकों में वह ब्राह्मण पूजनीय है ।१७२। महाबाहो ! भास्कर एवं वाचक के माहात्म्य जिस प्रकार मैंने सुना था, तुम्हें सुना दिया ।१७३। उसी भाँति समस्त पाप नाशक इस सप्तमी कल्प की व्याख्या भी कर दी । इस विधान द्वारा जो मनुष्य निरन्तर सूर्य की अर्चा करते हैं, भग लोक की प्राप्ति पूर्वक तीनों लोकों में उसके गुणगान किये जाते हैं । पश्चात् अर्क, चित्र शिखंडी (अग्नि), तथा महाबाहो ! दिवाकर सूर्य के उपरांत उसे गो लोक की प्राप्ति

ऋतस्य च ततो गच्छेत्कञ्जजस्य ततः परम् । दशानां राजसूयानामग्निष्टोमशतस्य च ।।१७७
श्रवणात्फलमाप्नोति पितामहवचो यथा ।।१७८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे आदित्यमाहात्म्यवाचकमाहात्म्य-
पुराणश्रवणविधिवर्णनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१६।
पूर्वार्धः समाप्तोऽयम् ।।ॐ।। ।।श्रीनारायणार्पणमस्तु ।।

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रथमं ब्राह्मपर्व समाप्तम् ।१।

होती है । उपरांत सत्य एवं ब्रह्मा के लोक की प्राप्ति पूर्वक उसे दश राजसूय और सौ अग्निष्टोम यज्ञ के फलों की प्राप्ति भी ब्रह्मा के वचनानुसार श्रवण करने से होती है ।१७४-१७८

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में आदित्य माहात्म्य वाचक—
माहात्म्यपुराणश्रवणविधानवर्णननामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।२१६।

।। भविष्यमहापुराणान्तर्गत प्रथम ब्राह्म-पर्व समाप्त ।।

॥ भविष्य महापुराणम् ॥

(द्वितीय खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

(द्वितीय खण्ड)

मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व

(हिन्दी–अनुवाद सहित)

अनुवादक :
पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९२८ : सन् २००६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक
प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद – ३

प्रकाशन वर्ष — शक १९२८ : सन् २००६

संस्करण — द्वितीय

प्रति — २२००

मूल्य — तीन सौ पचास रुपये मात्र

मुद्रक एवं फोटो कम्पोजिंग — मनोज आफसेट
२५५, चक, जीरोरोड, इलाहाबाद

आवरण–सज्जा — कृष्णकुमार मित्तल

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत पुराण साहित्य के संवर्धन हेतु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के आकांक्षानुरूप अब तक ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण तथा स्कन्द पुराणान्तर्गत केदारखण्ड का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। जिसका समादर सुधीजनों द्वारा व्यापक स्तर पर हुआ है। फलस्वरूप सम्मेलन को अनेक पुराणों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा।

सुधी पाठकों की पिपासा को शान्त करने तथा अपनी गौरवशाली पुराण-प्रकाशन-योजना को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु सम्मेलन ने २६,३०६ श्लोक वाले भविष्यमहापुराण के प्रकाशन का गुरुतर कार्य अपने हाथ में लिया, जिसका प्रथम खण्ड "ब्राह्मपर्व" आपके सम्मुख पूर्व में प्रस्तुत हो चुका है और द्वितीय खण्ड मध्यमपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व प्रस्तुत किया जा रहा है। सम्पूर्ण भविष्यमहापुराण का अनुवाद राजर्षि टण्डन जी ने श्री बाबूराम उपाध्याय से स्वयं कराया था। परन्तु दुर्योग से उन दोनों के जीवनकाल में इसका प्रकाशन न हो सका। आज इसे प्रकाशित हो जाने से उन दोनों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास है।

'भविष्यमहापुराण' को प्रकाशन की दृष्टि से कुल तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जबकि यह पुराण चार पर्वों में निबद्ध है। (१) ब्राह्मपर्व (२) मध्यमपर्व (३) प्रतिसर्गपर्व (४) उत्तरपर्व।

भविष्यपुराण के मध्यमपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व में ८९५६ श्लोक हैं। मध्यमपर्व तीन भागों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ८९८, १४७१ और ५७१ श्लोक हैं। इस पर्व में सृष्टिवर्णन, यज्ञादिविधान तथा जलाशयादि वाटिकोपवनप्रतिष्ठाविधान के साथ ग्रहोपद्रवोत्पातशान्ति का विस्तृत विधान वर्णित है। प्रतिसर्गपर्व चार खण्डों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ४०६, १११८, २३९० तथा २१०२ श्लोक हैं। इस पर्व में सर्वांशतः कलियुगीयेतिहाससमुच्चय के अन्तर्गत सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग के राजाओं एवं विशिष्ट महापुरुषों के जीवन-वृत्त वर्णित हैं।

इस पुराण की पाण्डुलिपि एवं प्रथमखण्ड की विस्तृत भूमिका उपलब्ध कराने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के सुष्ठु सम्पादन हेतु पण्डित रुद्रप्रसाद मिश्र, श्री शेषमणि पाण्डेय तथा डॉ० शेषनारायण शुक्ल के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आकर्षक आवरण एवं मुद्रण तथा अल्प-समय में ग्रन्थ-उपलब्ध कराने हेतु इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स प्रा० लि० एवं मनोज आफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्णकुमार मित्तल एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति आभारी हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमहापुराण के इस 'मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व' का द्वितीय संस्करण सुधीजनों द्वारा समादृत होगा तथा जनकल्याणकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

मकरसंक्रान्ति
संवत् २०६२

विभूति मिश्र

विषय-अनुक्रमणिका

मध्यमपर्व - प्रथम भाग

मध्यमपर्व - द्वितीय भाग

मध्यमपर्व - तृतीय भाग

प्रतिसर्गपर्व - प्रथम खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - द्वितीय खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - तृतीय खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - चतुर्थ खण्ड

भविष्यपुराणम् - मध्यमपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रथमोऽध्यायः

पातालवर्णनम्

ॐ नमः कमलदलनयनाभिरामाय श्रीरामचन्द्राय ।

स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसञ्जातफेनं ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।
ॐकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टपूतं सम्भोगाभोगरम्यं जनकलुषहरं पौष्करं वः पुनातु ॥१
जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्ता जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ॥
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो जयति सकलमौलिर्भानुमांश्चित्रभानुः ॥२
नमस्कृत्याप्रमेयाय देवाय[1] ब्रह्मरूपिणे । पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयोगिना ॥३
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छू रोमहर्षणिम् । वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद ॥४
मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः । प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम् ॥५

सूत उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं ब्रह्मरूपधरं हरिम् । वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥६
यच्छ्रुत्वा पापकर्माणि[2] स गच्छेत्परमां गतिम् । पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः ॥७

अध्याय १

पातालवर्णन

पुष्कर का वह जल तुम्हें पवित्रात्मा, बनाये, जो स्वच्छ, चन्द्र की भाँति विशुद्ध, कवि (ब्रह्मा) के हाथ रूपी मकर के क्षुब्ध होने पर जिसमें फेन उत्पन्न हुआ है, ब्रह्मोत्पत्ति के प्रवचन एवं व्रत-नियम के एकमात्र पालन करने वाले मुख्य ब्राह्मणगण द्वारा सुसेवित, ओंकार से विभूषित तथा तीनों लोकों के गुरु ब्रह्मा की आँखों द्वारा (देखने से) पवित्र, अमीर गरीबों सभी के लिए प्राप्य एवं मनुष्यों के पापनाशक हैं। दीपक की भाँति भुवनों को प्रकाशित करने वाले एवं लोकों के रचयिता भास्कर की जय हो, शुक्ल वर्ण, तथा हाथ में धनुष लिए हुए मुरारि भगवान् की जय हो, भाल में चन्द्र को रखने वाले रुद्रदेव की जय हो, एवं समस्त संसार के शिरोमणि और किरण वाले चित्रभानु (सूर्य) की जय हो। १-२। अप्रमेय एवं ब्रह्मरूप उस देव को नमस्कार करके मैं उस पुराण के विषय को, जिसे ब्रह्मयोगी व्यास ने बताया है, बता रहा हूँ। ३। (महर्षियों ने) रोमहर्षण (सूत) से पूँछा कि हे पुराणार्थ विशारद (पुराण के अर्थों की विशदव्याख्या करने वाले)! हमें उस परम पवित्र पुराण की संहिता को सुनाने की कृपा कीजिए। ४। प्रधान पौराणिक सूत जी ने मुनियों की बातें सुनकर अपने गुरु व्यास को मानसिक प्रणाम करके उन लोगों से कहा। ५

सूत बोले—जगत् को उत्पन्न करने वाले एवं ब्रह्मरूप धारण करने वाले विष्णु को नमस्कार करके मैं दिव्य तथा पापनाशिनी उन पुराण की कथाओं को सुना रहा हूँ, जिसे सुनकर समस्त पाप-कर्मों की

---

१. भक्ताय। २. अतिहायेति शेषः।

भविष्यपुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः । मध्यपर्व ह्यथो वक्ष्ये प्रतिष्ठादिविनिर्णयम् ॥८
धर्मप्रशंसनं चात्र ब्राह्मणादिप्रशंसनम् । आपद्धर्मस्य कथनं विद्यामाहात्म्यवर्धनम् ॥९
प्रतिमाकरणं चैव स्थापनाचित्रलक्षणम् । कालव्यवस्थासर्गादिप्रतिसर्गादिलक्षणम् ॥१०
पुराणलक्षणं चैव भूगोलस्य च निर्णयम् । निरूपणं तिथीनां च श्राद्धसङ्कल्पमन्तरम् ॥११
मुमूर्षोरपि यत्कर्म दानमाहात्म्यमेव च । भूतं भव्यं भविष्यं च युगधर्मानुशासनम् ॥१२
उच्चावचावधानं च प्रायश्चित्तादिकं च यत् । षष्ट्याधिकाष्टसाहस्रनवश्लोकशतोद्भवम् ॥१३
पञ्चतन्त्रसमायुक्तं प्रतितन्त्रे च विंशतिः । पञ्चोत्तरं तथाध्यायाः पुराणेऽस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥१४
त्रयाणामाश्रमाणां च गृहस्थो योनिरुच्यते । अन्येऽपि समुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥१५
एकाश्रमं गृहस्थस्य त्रयाणां सूतिदर्शनम्[1] । तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मशासनम् ॥१६
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ । सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरन्न तु ॥१७
तडागस्य च सान्निध्ये तडागं परिवर्जयेत् । प्रपास्थाने प्रपा वर्ज्या मठस्थाने मठं त्यजेत् ॥१८
धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते । धर्मादेवापवर्गोऽयं तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥१९
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः । सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥२०

शान्ति, और उत्तम गति की प्राप्ति होती है । ब्राह्मणगण ! उस पुण्य, पवित्र, एवं आयुप्रदायक भविष्य-पुराण की समस्त बातों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जिसे गदाधर भगवान् ने स्वयं बताया है, इस पर्व का नाम मध्यम पर्व होगा इसमें प्रतिष्ठा आदि के निर्णय, धर्म की प्रशंसा, ब्राह्मणों की प्रशंसा आपत्ति काल के धर्म-स्वरूप, विद्या के माहात्म्य, प्रतिमाओं के निर्माण, उनकी स्थापना एवं चित्र (आश्चर्य) जनक लक्षण, काल की व्यवस्थाएँ सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्गादि के लक्षण, पुराणों के लक्षण, पृथ्वी के गोलाकार होने का निर्णय, तिथियों के निर्णय, श्राद्धों के संकल्प आदि बताये गये हैं । उसी भाँति मरणासन्न प्राणियों के कर्म, दान-माहात्म्य एवं युगधर्म के भूत, वर्तमान, तथा भविष्य अनुशासन की व्याख्या की गई है । तथा प्रायश्चित्तों के विषय में ऊँची-नीची (छोटी-बड़ी) व्यस्थाएँ भी । इस पर्व में आठ सहस्र नव सौ साठ श्लोक हैं, और पाँच तंत्र । द्विजोत्तम ! प्रत्येक तंत्र में पचीस अध्याय किये गये हैं ।६-१४। तीनों आश्रमों का उत्पत्ति स्थान एकमात्र गृहस्थ आश्रम बताया गया है, क्योंकि वह अन्य को भी जीवन प्रदान करता है, इसलिए गृहाश्रम सर्वप्रधान है ।१५। एक मात्र गृहस्थाश्रम ही तीनों आश्रमों का दृष्ट प्रसव स्थान है, अतः धार्मिक शासन से आबद्ध एकमात्र गृहस्थ धर्म की जानकारी प्राप्त करना परमावश्यक है ।१६। धर्म रहित अर्थ और काम के भी परित्याग करने चाहिए, तथा समस्त लोगों के विरुद्ध धर्म के भी ।१७। तालाब के समीप तालाब, प्रपा (पियाऊ) के समीप पियाऊ और मठ के समीप मठ (मन्दिर) न बनाने चाहिए । धर्म द्वारा अर्थ, काम की उत्पत्ति होती ही है, मोक्ष की भी प्राप्ति होती है, इसलिए धर्माचरण करना परमावश्यक होता है ।१८-१९। धर्म, अर्थ, एवं काम को त्रिवर्ग कहा जाता है । एवं सत्त्व, रज, तथा तम इन त्रिगुणों की उपलब्धि भी धर्म द्वारा ही बतायी गयी है, अतः धर्म का सेवन करना, अत्युत्तम बताया

---

१. सूतिदर्शवत् ।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।२१
यस्मिन्धर्मः समायुक्तो ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ। इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ।।२२
तस्मादर्थं च कामं च युक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्। धर्मात्सञ्जायते कामो धर्मादर्थोऽभिजायते ।।२३
एवं धर्मस्य मध्येऽयं चतुर्वर्गः प्रदर्शितः। एवं च धर्मकामार्थं मोक्षस्यापि च मानवः ।।
माहात्म्यं वानुतिष्ठेच्च स चानन्त्याय कल्पते ।।२४
तस्मादर्थं च कामं च मुक्त्वा धर्मं समाचरेत्। धर्मात्सञ्जायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ।।२५
धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। अनादिनिधना शक्तिर्नैषा ब्राह्मी द्विजोत्तम ।।२६
कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः। तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाचरेत् ।।२७
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम्। ज्ञानपूर्वा निवृत्तिः स्यात्प्रवृत्तिर्वर्ततेऽन्यथा ।।२८
निवृत्तिं सेवमानस्तु याति तत्परमं पदम्। तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत्पुनः ।।२९
शमो दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च। आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ।।३०
सत्यं संतोष आस्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः। देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ।।३१
अहिंसा सत्यवादित्वमपैशुन्यं सुकल्पता। शौचाचारश्चानुकम्पा सर्ववर्णेऽब्रवीन्मुनिः ।।३२
श्रद्धापूर्वाः स्मृता धर्माः श्रद्धामध्ये तु संस्थिताः। श्रद्धानिष्ठाः प्रतिष्ठाश्च धर्माः श्रद्धैव कीर्तिताः ।।३३

गया है।२०। सात्त्विक गुण प्रधान प्राणी ऊर्ध्व (स्वर्ग) में प्रधान रजोगुणी मध्य (मर्त्य) लोक में, तथा निंदित कर्मों के करने वाले प्रधान तमोगुणी प्राणी अधोलोक (पाताल) में निवारा करते हैं।२१। जिस प्राणी के अर्थ एवं काम धार्मिक होते हैं, वे इस लोक में सुखानुभव प्राप्त कर अंत में अनन्त भगवान् में लीन हो जाते हैं।२२। इसलिए धार्मिक अर्थ एवं काम की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि धर्म द्वारा ही काम तथा अर्थ की उत्पत्ति बतायी गयी है।२३। इस भाँति धर्म के मध्य में चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष) का सन्निहित होना बताया गया है। मनुष्य इस प्रकार धर्म, अर्थ, एवं काम के आचरण करता हुआ यदि मोक्ष के महत्त्व का अनुशीलन ही करता है, तो उसे अनन्त भगवान् की प्राप्ति होती है।२४। इसलिए अर्थ तथा काम के परित्याग करके भी धर्माचरण अवश्य करे, क्योंकि ब्रह्मवादियों ने बताया है कि धर्म द्वारा सभी कुछ की प्राप्ति होती है।२५। द्विजोत्तम ! स्थावर-जंगम स्वरूप समस्त जगत् धर्माश्रित होकर ही स्थित है न कि ब्रह्म की अनादि शक्ति इसे धारण करती है।२६। ज्ञान समेत कर्म द्वारा धर्म की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं। अतः ज्ञानपूर्वक कर्मो को प्रारम्भ करना चाहिए।२७। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो प्रकार के वैदिक कर्म बताये गये है उसमें ज्ञान-पूर्वक कर्मों के आचरण द्वारा प्राणियों की निवृत्ति और उससे हीन कर्मों द्वारा प्रवृत्ति होती है, ऐसा बताया गया है।२८। निवृत्ति करने वाले कर्मो के आचरण द्वारा उसे उत्तम पद की प्राप्ति होती है, इसलिए सदैव निवृत्यर्थ कर्म का ही आचरण करना चाहिए, अन्यथा संसार (जन्म-मरण) का त्याग होना असम्भव है।२९। शमन, दमन, दया, दान, निर्लोभ, त्याग, आर्जव, निद्रा, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिक होना, श्रद्धा, इन्द्रिय संयम, देवताओं की अर्चा, विशेषकर ब्राह्मणों की, अहिंसा, सत्यवादी होना, चुगुली न करना, सुन्दर कल्पनायें करना, पवित्रता, आचारकर्म, एवं कृपा करना सभी वर्णों के लिए मुनि ने बताया है।३०-३२। धर्म में श्रद्धा नियुक्त हैं, श्रद्धा के मध्य में धर्म स्थित हैं, एवं श्रद्धानिष्ठ तथा उसी में प्रतिष्ठित धर्म ही श्रद्धा के रूप में बताया

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां श्रुतं स्थानं क्रियावताम् । स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां सङ्ग्रामेष्वपलायिनाम् ॥३४
वैश्यानाममृतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम् । गान्धर्वशूद्रजीवानां[1] परिचारेण वर्तताम् ॥३५
अष्टाशीति सहस्राणां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं स्थानं तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥३६
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं श्रुतं तद्वै वनौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ॥३७
यतीनां यतचित्तानां तदेव वनवासिनाम् । हिरण्यगर्भं यत्स्थानं तस्मान्नावर्तते पुनः ॥३८
योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाकरम् । आनन्दमैश्वरं नाम सा काष्ठा परमा गतिः ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

सूत उवाच

इदानीं विस्तरं चैव विभागं रूपमैश्वरम् । वक्ष्ये कल्पानुसारेण मन्वन्तरशतानुगम् ॥१
आसीत्तमोमयं सर्वमप्रज्ञातमलक्षणम् । तत्र चैको महानासीद्रुद्रः परमकारणम् ॥२
आत्मना स्वयमात्मानं सञ्चिन्त्य भगवान्विभुः । मनः संसृजते पूर्वमहङ्कारं च पृष्ठतः ॥३

गया है । क्रियाशील ब्राह्मणों के लिए प्रजापति के स्थान, युद्धस्थल से पलायन न करने वाले क्षत्रियों के लिए इन्द्र के स्थान, अपने धर्म के आचरण करने वाले वैश्यों के लिए अमृत स्थान, और सेवा कर्म करने वाले शूद्रों के लिए गन्धर्व के स्थान की प्राप्ति बतायी गयी है ।३३-३५। ऊर्ध्वरेता बालखिल्यरूप मुनियों के जो अट्ठासी सहस्र की संख्या में वर्तमान रहते हैं, जो स्थान बताये गये हैं, वही स्थान गुरुगृहनिवासियों के भी हैं । सप्तर्षियों के स्थान तपस्वियों के लिए भी नियत हैं और गृहस्थों के लिए प्राजापत्य स्थान स्वयं ब्रह्मा ने बताया है । योगियों का हिरण्यगर्भ नामक स्थान, जहाँ पहुँचकर पुनः लौटा नहीं जाता है, योगाभ्यास करने वालों के लिए भी कहा गया है । योगियों के लिए व्योम नामक परमोत्तम स्थान बताया गया है, जिसे ईश्वरानंद भी कहते हैं, तथा वही अन्तिम सीमा भी हैं ।३६-३९

श्री भविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में प्रथम अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

सृष्टि का वर्णन

सूत बोले—ईश्वर के रूप के विभाग एवं विस्तार बता रहा हूँ, जिसमें कल्प के अनुसार सैकड़ों मन्वन्तर जन्म ग्रहण करते हैं।१। एक तमोमय स्वरूप था, जो समस्त लोक को आच्छन्न किये था, जिसका कोई लक्षण बताया नहीं जा सकता। किन्तु इसके मूल कारण 'रुद्र' परम एवं महान् कारण बताये जाते हैं ।२। विभु (व्यापक) भगवान् स्वयं अपना चिन्तन करके सर्वप्रथम मन की सृष्टि करते हैं, पश्चात्

---

१. शुभ्रजीवानाम् ।

अहङ्कारात्प्रजानाति महाभूतानि पञ्च च । अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराश्चैव षोडश ।।४
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च । प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ।।५
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणाः प्रोक्तास्तु ते त्रयः । तस्माद्भागवतो ब्रह्मा तस्माद्विष्णुरजायत ।।६
ब्रह्मविष्णुसंमोहनार्थं ततः शम्भुस्तु तेजसा । अशरीरो वासुदेवो ह्यनुत्पत्तिरयोनिजः ।।७
व्यामोहयित्वा तत्सर्वं तेजसाऽमोहयज्जगत् । तस्मात्परतरं नास्ति तस्मात्परतरं न हि ।।८
ब्रह्मा विष्णुश्च द्वावेतावुद्भूतौ भगवत्सुतौ । कल्पे कल्पे तु तत्सर्वं सृजतेऽसौ जनं जगत् ।।९
उपसंहरते चैव नानाभूतानि सर्वशः । द्वासप्ततियुगान्येव मन्वन्तर इति स्मृतः ।।१०
चतुर्दश तु तान्येवं कल्प इत्यभिधीयते । दिनैकं ब्रह्मणः प्रोक्तं निशि कल्पस्तथोच्यते ।।११
एवं मासश्च वर्षश्च तथा चाष्टशतं द्विजाः । एवं बुद्धीन्द्रियस्थास्य विष्णोश्च निमिषः स्मृतः ।।१२
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं निमेषश्च ध्रुवस्य वै । निमेषजीवनं सर्वं सर्वलोकचराचरम् ।।१३
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च प्रकीर्तितः । जनस्तपश्च सत्यं च ब्रह्मलोकश्च सप्तमः ।।१४
पातालं वितलं तद्धि अतलं तलमेव च । पञ्चमं विद्धि सुतलं सप्तमं च रसातलम् ।।१५
एतेषु सप्त विख्याता अधः पातालवासिनः । तेषामादौ च मध्ये च अन्ते रुद्रः प्रकीर्तितः ।।१६
ग्रसते जायते लोकान्क्रीडार्थं तु महेश्वरः । ब्रह्मलोकपरीप्सूनां गतिरूर्ध्वं प्रकीर्तिता ।।१७
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च विदिशस्तथा । समुद्राणां गिरीणां च अधस्तिर्यक्प्रसङ्ख्यया ।।१८

अहंकार की ।३। पुनः अहंकार द्वारा पाँच महाभूत, आठों प्रकृतियाँ, तथा सोलहों विकार उत्पन्न होते हैं ।४। तथा शब्द, रूप, रस, गंध, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान भी ।५। सत्व, रज, एवं तम यही तीनों गुण बताये गये हैं । इसलिए उस (ब्रह्म) द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और ब्रह्मा द्वारा विष्णु की ।६। ब्रह्मा और विष्णु के संमोहनार्थ (उसके) तेज द्वारा शंभु की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार शरीर-हीन (परब्रह्म) वासुदेव, जिसकी अयोनिज आविर्भूति बतायी गयी है, इन्हें मोहाच्छन्न करके इसी प्रकार समस्त जगत् को मोह मुग्ध करते हैं । उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है और न कभी होने की आशा है ।७-८। भगवान् के यही ब्रह्मा और विष्णु नामक दो पुत्र सर्वप्रथम उत्पन्न हुए हैं । यही प्रत्येक कल्पों में समस्त जगत् की रचना करते हैं, तथा समय पर सभी का उपसंहार भी । बहत्तर युगों का समय एक मन्वन्तर के लिए बताया गया है ।९-१०। उसी प्रकार चौदह युगों का एक कल्प होता है । यही एक कल्प ब्रह्मा का दिन तथा उसी भाँति की रात्रि बतायी गयी है ।११। हे द्विजगण ! इसी भाँति आठ सौ मास तथा वर्ष का समय, बुद्धि, इन्द्रिय एवं विष्णु के एकनिमिष का समय कहा गया है ।१२। ब्रह्मा आदि से आरम्भ और साम्बपर्यन्त के समय ध्रुव का एक निमिष होता है, इस भाँति समस्त लोक के चर-अचर सभी का निमेष मात्र जीवन कहा गया है ।१३। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, और सातवाँ ब्रह्मलोक स्थित है ।१४। पाताल, वितल, अतल, तल, सुतल, तथा सातवाँ रसातल, ये सात अधोलोक कहे जाते हैं, इनके निवासी पाताललोक वासी के नाम से ख्यात है । उपरोक्त सभी लोकों के आदि, मध्य, एवं अंत में रुद्र की स्थिति, बतायी गयी है ।१५-१६। महेश्वर ! अपनी क्रीडार्थ ये लोकों के संहार करते हैं, उनमें ब्रह्म लोक के इच्छुकों को स्वर्गादि लोक की प्राप्ति होती है ।१७। पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा, समुद्र, पर्वत, जिनकी ऊपर तिर्छी जसी स्थिति है, तथा समुद्रों के विस्तार और प्रमाण मैं

समुद्राणां च विस्तारं प्रमाणं च ततः शृणु । स्थावराणां च शैलानां देवानां च दिवौकसाम् ।।१९
चतुष्पदानां द्विपदां तथा धर्मैकभाषिणाम् । सहस्रगुणमाख्यातं स्थावराणां प्रकीर्तितम् ।।२०
सहस्रगुणशीलाश्च इत्याह भगवान्मुनिः । ऋषिस्तु प्रथमं कुर्वन्प्रकृतिं नाम नामतः ।।२१
तस्या ब्रह्मा प्रकृत्यास्तु उत्पन्नः सह विष्णुना । तस्माद् बुद्धया प्रकुरुते सृष्टिं नैमित्तिकीं द्विजाः ।।२२
तस्मात्स्वयम्भुवो ब्रह्मा ब्राह्मणानकल्पयत् । पादहीनान्क्षत्रियांश्च तस्माद्धीनांस्तु वैश्यकान् ।।२३
चतुर्थपादहीनांश्च आचारेषु बहिष्कृतान् । पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवाप्यकल्पयत् ।।२४
लोकालोकस्य संस्था च द्वीपानामुदधेस्तथा । सरितः सागराणां च तीर्थान्यायतनानि च ।।२५
मेघस्तनितनिर्घोषरोहितेन्द्रधनूंषि च । उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्यायतनानि च ।।२६
उत्पन्नं तस्य देहेषु भूयः कालेन पीडयेत् ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

पातालवर्णनम्

सूत उवाच

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तरः । कल्पाभिकरणे तत्र संस्थिता द्विजपुङ्गवाः ।।१
जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयात्मकः । सनन्दनादयस्तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुताः ।।२

बता रहा हूँ, सुनो ! स्थावर, शैलगण, स्वर्गस्थित देवता, चतुष्पद, द्विपद और धर्म के एकान्त भाषी के स्थावरों के सहस्र गुण बताये गये हैं ।१८-२०। भगवान् मुनि ने भी इन्हें सहस्रगुणशील बताया है। ऋषियों ने सर्वप्रथम क्रियाशील को उसके नामानुसार प्रकृति कहा है ।२१। उसी प्रकृति द्वारा विष्णु के समेत ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं द्विज ! इसीलिए वे अपनी बुद्धि के अनुसार नैमित्तिकी सृष्टि करते हैं ।२२। उसी द्वारा स्वयंभू ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सृष्टि की और पादहीन क्षत्रिय, वैश्यों, एवं आचार कर्मों के अयोग्य चतुर्थ पादहीन शूद्रों के सर्जन भी । पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशाएँ, लोकालोक की स्थिति, द्वीप, सागर, सरितायें, लम्बे चौड़े तीर्थ, मेघ, विद्युत, उनके निर्घोष, रक्तवर्ण के इन्द्र धनुष, उल्का, निर्घात, केतु एवं प्रकाश-गृह इत्यादि उन्हीं के शरीर से होकर पुनः काल में उसी में विलीन होते हैं।२३-२७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

पातालवर्णन

सूत बोले—ध्रुवलोक के ऊपर कोटि योजन के विस्तार में महर्लोक स्थित है, जिसमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कल्प पर्यंत स्थित रहते हैं ।१। महर्लोक से दो करोड़ की दूरी पर जनलोक स्थित है, जिसमें ब्रह्मा के पुत्र

जनलोकात्तपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः । विराजन्ते तु देवा वै स्थिता दाहविवर्जिताः ।।३
प्राजापत्यात्तु भूर्लोकः कोटिषट्केन संयुतः । सनत्कुमारकस्तत्र ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः ।।४
तत्र लोके गुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः । आस्ते यद्योगिभिः पीत्वा योगं मृत्योः परं गतम् ।।५
गायन्ति यतयो गाथा ह्यास्तिका ब्रह्मवादिनः । योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनम् ।।६
द्वारं तु योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम् । तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शङ्करः ।।७
सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम् । न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम् ।।८
तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे । शेते तस्य हरिः श्रीमान्मायासहचरः परः ।।९
स विष्णुर्लोककथितः पुनरावृत्तिवर्जितः । प्रयान्ति च महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम् ।।१०
ऊर्ध्वं ब्रह्मासनात्पूर्वं परं ज्योतिर्मयं शुभम् । वह्निना उपरि क्षिप्तं तत्रास्ते भगवान्भवः ।।११
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः । योगिभिः शतसाहस्रैर्वृतैकत्वैश्च संवृतः ।१२
तत्र ते यान्ति नियता द्विजा वै ब्रह्मवादिनः । महादेवपरेशानास्तापसा ब्रह्मवादिनः ।।१३
निर्ममा निरहङ्काराः कामक्रोधविवर्जिताः । द्रक्ष्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोकःस वै स्मृतः ।।१४
एते सप्त महर्लोकाः पृथिव्यां परिकीर्तिताः । महीतलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः ।।१५

सनंदन आदि निवास करते हैं ।२। जनलोक से तीन करोड़ की दूरी पर तप लोक स्थित है, उसमें देवगण तापहीन होकर (सुखपूर्वक) निवास करते हैं ।३। प्राजापत्य लोक से छः करोड़ की दूरी पर भूर्लोक स्थित है, जिसे ब्रह्मलोक कहा जाता है, वह सनत्कुमार का निवास स्थान है ।४। उसी लोक में गुरु, ब्रह्मा, जो विश्वात्मा एवं विश्तोमुख बताये गये हैं, योगरूपी अमृत को पानकर स्थित हैं, जिसका पान करके योगी लोग मृत्यु से उत्तम गति प्राप्ति करते हैं ।५। यती, आस्तिक, ब्रह्मवादी, योगी, तापस, सिद्ध एवं जापक, ये सभी इसी गाथा का गान करते हैं कि परम पद की प्राप्ति करने वाले योगियों के ब्रह्मा ही एक द्वार-रूप हैं, वहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है वही विष्णु है, तथा शंकर भी ।६-७। उनका आवास स्थान करोड़ों सूर्य के समान दुर्धर्ष है, प्रचण्ड तेज से आच्छन्न उस पुरी का वर्णन करने में सभी असमर्थ हैं ।८। उसी ब्रह्मपुरी में नारायण का भी वह भवन स्थित है, जिसमें माया (लक्ष्मी) समेत श्रीमान् भगवान् शेषशायी होकर स्थित हैं ।९। वह विष्णु-लोक कहा जाता है, जहाँ पहुँचने पर जीव, कभी जन्म ग्रहण नहीं करता है, किन्तु वहाँ वही लोग पहुंचते हैं, जो जनार्दन भगवान् के शरण में प्राप्त होते हैं ।१०। उस ब्रह्मलोक के ऊपरी भाग में सर्वप्रथम, अत्यन्त ज्योतिर्मय पुरी स्थित है, जो उस ऊपरी भाग में प्रक्षिप्त अग्नि की भाँति स्थित है, वहाँ देवी को साथ लिए भगवान् शिव सुशोभित हो रहे हैं। उन्हीं महादेव के ध्यान में मग्न सैंकड़ों मनीषी योगिजन रहा करते हैं, जो एक मात्र उन्हीं की तृप्ति के लिए संकल्पपूर्वक कटिबद्ध हैं ।११-१२। वहाँ उन्हीं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की नियम यात्रा होती है, जो सर्वश्रेष्ठ ईशान रूप महादेव की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे हैं।१३। निर्मम निरहंकार, एवं काम, क्रोधहीन होकर जहाँ सभी ब्रह्म मग्न दिखाई देते हैं, उसे 'रुद्र लोक' कहा गया है।१४। ये सात प्रकार करके महर्लोक पृथिवी में बताये गये हैं और द्विजगण ! महीतल आदि पाताल लोक नीचे स्थित है ।१५। सुवर्ण की भाँति

महातलं हैमतलं सर्ववर्णोपशोभितम् । प्रासादैर्विविधैः शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम् ।।१६
अनन्तेन समायुक्तं मुचकुन्देन धीमता । नृपेण बलिना चैव पातालं स्वर्गवासिना ।।१७
शैलं रसातलं विप्राः शाङ्करं हि रसातलम् । पीतं सुतलमित्युक्तं वितलं विद्रुमप्रभम् ।।१८
सितं हि वितलं प्रोक्तं तलं चैव सितेतरम् । सुवर्णेन मुनिश्रेष्टास्तथा वासुकिना शुभम् ।।१९
रसातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम् । वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः ।।२०
शङ्कुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकम् । तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलं चैव सुशोभनम् ।।२१
तेषामधस्तान्नरका रौरवाद्याश्च कोटयः । पापिनस्तेषु पात्यन्ते न तेऽवनमितुं क्षमाः ।।२२
पातालानामधश्चान्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः । कालाग्निरुद्रयोगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः ।।२३
योऽनन्तः पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः । तदाधारमिदं सर्वं सकलाग्निमुपाश्रितम् ।।२४
तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनानलः । विषज्वालासमोऽनन्तो जगत्संहरति स्वयम् ।।२५
तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालात्मा परमेश्वरः । स एव गर्भमाश्रित्य प्रकाशयति नित्यशः ।।२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पातालवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

सौन्दर्यपूर्ण तल वाला महातल, बताया गया है, जो समस्त वर्ण के प्राणियों से सुशोभित, तथा शुभ्र वर्ण के अनेक प्रकार के प्रासादों समेत सौन्दर्य पूर्ण देवालयों से युक्त हैं ।१६। अनंत के समेत बुद्धिमान् मुचुकुन्द, स्वर्गवास के इच्छुक राजा बलि पाताल लोक में प्रतिष्ठित हैं ।१७। विप्रवृन्द ! शंकर जी के निवास स्थान रूप उस पर्वत को रसातल, पीले वर्ण का सुतल, विद्रुम की भाँति प्रभा से पूर्ण एवं स्वच्छ वर्ण का वितल, और कृष्ण वर्ण का तल लोक बताया गया है । श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! सुवर्ण की प्रभा पूर्ण वासुकी उस शुभ रसातल में निवास करते हैं, तथा वह समस्त भाँति की शोभा से सुशोभित हैं, कालनेमि आदि तथा

एवं भाँति-भाँति के अन्य नाग लोग बढ़ाते हैं । उन लोकों के नीचे रौरव आदि करोड़ों नरक कुण्डों की रचना हुई है, उसमें उसी भाँति के पापी जो कभी विनम्र हो ही नहीं सकते, लाकर डाले जाते हैं । इन पाताल आदि लोकों के नीचे शेष भगवान् वैष्णवी शरीर धारण कर स्थित हैं, जिसे काल, अग्नि, रुद्र, योगात्मा, नरसिंह, माधव, और अनन्त कहा जाता है, वहीं नागरूपी जनार्दन भगवान्, उस समस्त लोको के आधार रूप हैं, और सभी प्रकार के अग्नि वहाँ रहते हैं । उसी लोक में महायोगी की भाँति कालाग्निरूप अनंत देव, अपनी विषज्वाला समेत रहकर स्वयं जगत् का संहार करते हैं । उसी तामसी, एवं शांभवी (शंभुकी) मूर्ति को, कालात्मा और परमेश्वर कहते हैं । वह इस ब्रह्माण्डोदर के गर्भ में प्रविष्ट होकर इसे नित्य प्रकाशित करता रहता है ।२१-२६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पाताल वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रवर्णनम्

सूत उवाच

एतद्ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्विधमिदं महत्। अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्य विनिर्णयम् ।।१
तद्द्वीपप्रधानो जम्बू प्लक्षः शाल्मल एव च । कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः ।।२
एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः । द्वीपाद्द्वीपो महानुक्तः सागरादपि सागरः ।।३
क्षीरोदेक्षुरसोदोऽथ क्षारोदश्च घृतोदकः । दध्योदः क्षीरसलिलो जलोदश्चेति सागराः ।।४
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा समुद्रवलया स्मृता । द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समानतः ।।५
जम्बूद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः शुभः । तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः ।।६
चतुराशीतिसाहस्रयोजनैरस्य चोच्छ्रयः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विष्कृतः ।।७
मूले षोडशसाहस्रं विस्तारस्तस्य सर्वतः । भूप्रमुख्यश्च शैलोऽसौ कलिकात्वेन संस्थितः ।।८
हिमवान्हिमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे । नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वतः ।।९
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयं दीर्घास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।।१०
भारतं दक्षिणं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः ।।११

अध्याय ४

ज्योतिश्चक्र का वर्णन

सूत बोले—मैंने इस महान् ब्रह्माण्ड के चार प्रकार का वर्णन सुना दिया, इसके उपरान्त भूर्लोक का वर्णन सुना रहा हूँ, (सुनो) ! भूलोक में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्कर नामक प्रधान द्वीप बताये गये हैं, उसी भाँति सात समुद्रों का भी वर्णन है । ये सातों महाद्वीप क्रमशः सातों समुद्रों द्वारा घिरे हुए हैं। एकद्वीप से दूसरा द्वीप महान् है, उस भाँति एक सागर से दूसरा सागर भी ।१-३। क्षीरसागर, इक्षुसागर, रससागर, क्षार(खारा) सागर, घृतसागर, दधिसागर, और क्षीरसागर यही सातों सागरों के नाम बताये गये हैं । पचास करोड़ योजन पृथिवी विस्तीर्ण है, जिसे चारो ओर से 'कंकड़' आभूषण की भाँति समुद्र ने घेर लिया है और सातों समुद्रों से युक्त है । समस्त द्वीपों के मध्य में शुभ जम्बू द्वीप स्थित है, उसके मध्य में सुवर्णमय प्रभापूर्ण महामेरु पर्वत सुशोभित हैं ।४-६। इसकी ऊपर की ऊँचाई चौरासी सहस्र योजन की है, पृथिवी के भीतर सोलह योजन और ऊपर की चौड़ाई बत्तीस योजन की बतायी गयी है । इसका मूल भाग पृथिवी पर सोलह सहस्र योजन में विस्तृत है । पृथिवी में सर्वप्रधान यहीपर्वत बताया गया है, हिमालय, हेमकूट और निषध पर्वत इसके दक्षिण भाग में स्थित हैं, उसी भाँति नील, श्वेत एवं शृंगी पर्वत उसके उत्तर प्रदेशों में स्थित है ।७-९। मध्य भाग में स्थित रहने वाले दोनों पर्वतों के प्रभाव एक लक्ष और अन्य पर्वतों के नब्बे बताये गये हैं और दो सहस्र योजनों की समान लम्बाई चौड़ाई बतायी गयी है ।१०। द्विजगण ! उसके दक्षिण प्रदेश में भारतवर्ष,

चम्पकं चोत्तरं सर्वं तथैवाश्वहिरण्मयम् । उत्तराः कुरवश्चैव यथैते भारतास्तथा ।।१२
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः । इलावृतश्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ।।१३
मेरोश्चतुर्दिशस्तत्र नवसाहस्रविष्कृतम् । इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वताः ।।१४
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः । पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।।१५
विपुलः पश्चिमे भागे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः । कदम्बेष्वेषु नद्यश्च पिप्पलो वट एव च ।।१६
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतोर्महर्षयः । महागजप्रमाणानि जम्बून्यस्य फलानि च ।।१७
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वशः । रसेन चैव प्रख्याता तस्य जम्बूनदी इति ।।१८
सरित्तु वर्तते सापि पीयते तत्र वासिभिः । न खेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ।।
उत्पन्नाः स्वच्छमनसो नरास्तत्र भवन्ति वै ।।१९
तीरसूत्रं समं प्राप्य वायुना च विशोषितम् । जम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ।।२०
भद्राश्वः पार्श्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे । वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम्।।२१
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्। तदूर्ध्वे वासवस्थानं तदूर्ध्वे शङ्करस्य च ।।२२
तदूर्ध्वे वैष्णवो लोको दुर्गालोकस्तदूर्ध्वतः । ज्योतिर्मयं परं स्थानं निराकारं हिरण्मयम् ।।२३

पश्चात् किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष और उसी भाँति अन्य वर्ष भी स्थित हैं ।११। उसके (मेरु) के उत्तर प्रदेश में चंपक वर्ष, अश्व हिरण्यमय, उत्तर कुरु आदि प्रदेश भारत के समान ही स्थित हैं ।१२। द्विजसत्तम ! इन प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई नव सहस्र योजन की बतायी गयी है । इसके मध्य में इलावृत प्रदेश है । उसके मध्य में मेरु के चारो ओर नवसहस्र योजन के विस्तार में रत्ना वृत प्रदेश बताया गया है, और उस प्रदेश में परम पवित्र चार पर्वत की स्थिति भी । मेरु का विस्तार दशसहस्र योजन का कहा गया है । पूर्व में मंदराचल, दक्षिण में गन्धमादन ।१३-१५। पश्चिम में विपुल, एवं उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत स्थित है । इनमें अनेक नदियाँ और पीपल का वृक्ष बताया गया है महर्षि गण ! जम्बू द्वीप में स्थित उस जम्बू नामक वृक्ष के फल जो इस प्रद्वीप के नाम करण में मूल कारण हैं, विशाल गजराजों के समान लंबे चौड़े होते हैं ।१६-१७। और पर्वत के पृष्ठभाग (ऊपर) पर वे छिन्न-भिन्न होकर गिरते रहते हैं । इस प्रद्वीप में अत्यन्त मधुर रसवाली जम्बू नामक नदी भी प्रवाहित होती है ।१८। उस द्वीप के निवासी गण उस नदी के जल का पान करते हैं, जिससे वे शोक रहित, सभी भाँति के दुर्गन्ध से हीन, होकर कभी बुढ्ढे नहीं होते हैं, न उनकी इन्द्रियाँ कभी क्षीण होती हैं तथा वे सभी मनुष्य स्वच्छ मनवाले होते हैं ।१९। उस सरिता के तट में वायु द्वारा सुखाये जाने पर जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है, जिसके आभूषण बनाकर सिद्ध तथा उनकी स्त्रियाँ आभूषित होती हैं ।२०। मुनिश्रेष्ठ ! मेरु के पार्श्व में भद्रा, पूर्व पश्चिम में केतुमाल, नामक दो वर्ष हैं जिनके मध्य में इलावृत नामक प्रदेश है ।२१। विप्रेन्द्र ! उस मेरु के ऊपरी भाग में ब्रह्मा का सुन्दर स्थान निर्मित है, उसके ऊपर वासव का स्थान उनके ऊपर शंकर के, उनके ऊपर विष्णुलोक, उसके ऊपर दुर्गा के लोक और उसके ऊपर ज्योतिर्मय, निराकार एवं हिरण्यमयस्थान भक्तों के लिए बनाया गया है, एवं उसके ऊपर भगवान सूर्यदेव, जो ज्योतिर्मण्डल रूपी चक्र पर स्थित होकर

भक्तस्थानं तदूर्ध्वं च देवो हि भगवान्रविः । ज्योतिश्चक्रस्थितः शुद्धो निश्चलः परमेश्वरः ।।
राशिचक्रे च भ्रमति मेरोरुपरि सत्तमाः ।।२४
बिम्बषट्केद्रिनाभौ च रथचक्रं दिवानिशम् । वातरज्जुनिबन्धेन ध्रुवाधारे प्रतिष्ठितम् ।।२५
दिक्पालाद्या ग्रहास्तत्र दक्षिणादुत्तरायणम् । प्रतिमासं गतः पन्था ह्रासवृद्धिदिनक्षयः ।।२६
रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः । द्वादशे भगवत्सूर्ये प्रत्यहं भक्तसेवके ।।२७
कृत्वा त्रिषु त्वहोरात्रं तारामयगतं विभुम् । यामे यामे चोदयश्च देशेदेशे च शर्वरी ।।२८
दिवा चरति यः सूर्यो रात्रौ चरति चन्द्रमाः । नक्षत्राणि दिवा रात्रौ सूर्यचक्रे प्रतिष्ठितम् ।।२९
देशान्नं चावगमनं यत्र तस्मादिवाभवत् । यत्र चन्द्रक्षयो भवति यत्र सूर्यः प्रवर्तते ।।३०
रात्रिन्दिवं विजानीयाज्ज्योतिश्चक्रे प्रतिष्ठितम् । उदयास्तमनं नास्ति नक्षत्राणां विशेषतः ।।३१
यन्नक्षत्रे च यो देशः स तेषामुदयः स्मृतः । तत्रास्तो जीवशुक्राणां सूर्यादीनां च सर्वशः ।।३२
तदा काले नियोक्तव्यो भार्गवास्तादिकी क्रिया । सूर्यः सोमो बुधश्चन्द्रो भार्गवश्चैव शीघ्रकः ।।३३
दक्षिणायनमास्थाय यदा चरति रश्मिमान् । तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति ।।३४
विस्तीर्णमण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वे चरते शशी । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ।३५
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः । चन्द्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं चन्द्रादूर्ध्वं शनैश्चरः ।।३६

शुद्ध, निश्चल एवं परमेश्वर हैं, चक्राकार राशि मण्डलों पर स्थित होकर मेरु के ऊपर चारों ओर भ्रमण किया करते हैं ।२२-२४। छह विम्ब रूपी उस पर्वत की नाभि प्रदेश पर स्थित होकर वह रथचक्र, जो ध्रुव के आधार पर निर्भर हैं, वायु रूपी रस्सी से आबद्ध होकर रातदिन चलता रहता है ।२५। उसी पर स्थित दिक्पालादि एवं सभी ग्रहों के प्रत्येक मास में दक्षिणायन और उत्तरायण में क्रमशः आने जाने की यात्रा के दिन घटते बढ़ते रहते हैं ।२६। जिस मास में सूर्य का संक्रमण काल नहीं आता है, वह चन्द्रमास 'मलमास' के नाम से ख्यात होता है । भक्त श्रेष्ठ भगवान् भास्कर के बारहों मासों में तीनों समय (प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल) में (प्रदेशों की दूरी एवं समीपता के अनुसार) व्यापक एवं तारामय दिन-रात हुआ करता है जिस प्रहर में कहीं सूर्योदय हुआ उससे दूर के प्रदेशों में उस समय रात्रि का होना आरम्भ होता है । दिन में सूर्य तथा रात्रि में चन्द्र तथा सूर्य के चक्र में प्रतिष्ठित होकर नक्षत्र गणों के दिन रात भ्रमण हुआ करता है ।२७-२९। प्रदेशों में चन्द्र का क्षय और सूर्योदय का होना निश्चित है क्योंकि उन्हीं द्वारा देशों में अन्न और यात्राएँ सम्भव होती हैं ।३०। इस भाँति उन्हें ज्योतिश्चक्र के ऊपर रातदिन प्रतिष्ठित रहना पडता है, विशेषकर नक्षत्रों के उदय अस्त नहीं होते ।३१। जिस नक्षत्र में जो प्रदेश निश्चित है, उसी प्रदेश में उनका उदय बताया गया है और उसी प्रदेश से बृहस्पति, शुक्र, एवं सूर्य आदि ग्रहों के अस्त भी ।३२। शुक्र का उदय एवं अस्त होना समय-समय पर निश्चित है, सूर्य, सोम, बुध, तथा शुक्र, ये शीघ्रगामी (अतिचारी) भी कभी-कभी होते हैं।३३। जिस समय सूर्य दक्षिणायन में भ्रमण करते हैं उस समय समस्त ग्रहों के नीचे भाग में सूर्य समेत चला करते हैं।३४। अपने विस्तीर्ण मण्डल समेत चन्द्रमा उनके ऊपर विचरण करता है। उसी भाँति सोम के ऊपरी भाग में सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल, उसके ऊपर बुध, बुध के ऊपर शुक्र, शुक्र के ऊपर चंद्र, चन्द्र के ऊपर शनि, और शनि के ऊपर सप्तर्षियों का मण्डल

तस्माच्छनैश्चराद्रूर्ध्वं ततः सप्तर्षिमण्डलम् । ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः ॥३७
कालचक्रमये चक्रे सूर्यो भवति सर्वदा । राश्यर्द्धेषु गतिर्यत्र तिथीनां च तिथौ स्मृता ॥३८
स्तम्भते चरते शीघ्रं ह्रासे चापि दिनक्षयः। पादास्तं चापि शुक्रस्य महास्तं तत्र दृश्यते ॥३९
पादास्ते पक्षमात्रं स्यान्महास्ते याममात्रकम् । चक्रे पक्षार्धमासः स्यादतिचारोऽष्टवासरान् ॥४०
न गण्यते देशभेदे नक्षत्रेण च गण्यते । बालवृद्धस्तु शुक्रस्य देशस्थे वा गणस्य च ॥४१
बाल्यवार्द्धये क्षत्रियस्य न गण्येते सदा बुधैः । पादादूर्ध्वं महास्तस्य वैश्यस्य द्विजसत्तमाः ॥४२
शेषार्धं भार्गवास्तस्य शूद्राणामथ गर्हितम्। अभिचारे च चक्रे च न शूद्रस्य विधीयते ॥४३
वर्जयेद्वासरान्सप्त इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे ज्योतिश्चक्रे चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कर्मानुसारव्यक्तिनिर्धारणवर्णनम्

सूत उवाच

त्रयाणामेव वर्णानां जन्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । संसृष्टा ब्राह्मणाः पूर्वं तपस्तप्त्वा द्विजोत्तमाः ॥१

घूमता फिरता है एवं सातों ऋषियों के ऊपर ध्रुव की स्थिति की गयी है ।३५-३७। इस प्रकार काल-चक्र के ऊपर सूर्य सदैव स्थित रहते हैं, उसी रथ पर स्थित रहने के नाते सूर्य एवं तिथियों को राशियों के अर्ध भाग में भी अपनी उपस्थिति करनी पड़ती है तिथियों द्वारा सूर्य कहीं स्तम्भित कहीं शीघ्रचारी होते है और उसके ह्रास होने पर दिनक्षय होना निश्चित बताया गया है शुक्र का भी (कमलरूपी चक्रपरस्थित होने के नाते) पादास्त होना कहा गया है एवं कहीं उनका महास्त भी देखा जाता है । पक्षमात्र का नाम पादास्त, याम (प्रहर) मात्र को महास्त, एवं पक्षार्ध (आठ दिनों) का अतिचार नाम बताया गया है ।३८-४०। तथा शुक्र गण के बाल अथवा वृद्ध होने की गणना देश-भेद के द्वारा न होकर एक मात्र नक्षत्र द्वारा की जाती है ।४१। द्विजसत्तम ! क्षत्रिय के बाल अथवा वृद्ध होने की गणना बुध लोग कभी नहीं करते हैं । किन्तु महास्त वैश्य के पाद से ऊपर की गणना होती है उनका शेषार्ध भार्गव (शुक्र) के अस्त का समय है, वही शूद्रों के लिए निंदित है । अभिचार और चक्र में शूद्र के लिए विधान नहीं बताया गया है। अतः अथर्वण वेद की श्रुति इसी बात की पुष्टि करती है कि सातों दिनों के त्याग अवश्य करने चाहिए।४२-४४

श्री भविष्य महापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में ज्योतिश्चक्र वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त।४।

अध्याय ५

कर्मानुसार व्यक्तिनिर्धारण का वर्णन

सूत बोले—उत्तमद्विजगण ! तीनों वर्णों के स्वामी ब्राह्मण हैं, यह उनका जन्म सिद्ध अधिकार है, क्योंकि ब्रह्मा ने तपश्चर्या करके सर्वप्रथम ब्राह्मणों का सर्जन किया है ।१। उसी भाँति सभी हव्य के

हव्यानामिह कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये । अश्नन्ति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः ।।२
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः । जन्मना चोत्तमोऽयं च सर्वार्चा ब्राह्मणोऽर्हति ।।३
स्वकीयं ब्राह्मणो भुङ्क्ते विदधाति द्विजोत्तमाः । त्रयाणामिह वर्णानां भावभावाय वै द्विजः ।।४
भवेद्विप्रो न सन्देहस्तुष्टो भावाय वै भवेत् । अभावाय भवेत्क्रुद्धस्तस्मात्पूज्यः सदा हि सः ।।५
गर्भाधानादयश्चेह संस्कारा यस्य सत्तमाः । चत्वारिंशत्तथा चाष्टौ निर्वृत्ताः शास्त्रतो द्विजाः ।।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वेन संयुतः ।।६
संस्कारपूतः प्रथमो वेदपूतो द्वितीयकः । विद्यापूतस्तृतीयः स्यात्तीर्थपूतस्त्वनन्तरम् ।।७
क्षेत्रपूतं ब्रविज्ञाय विपूतं पूजयेद्द्विजाः । स्वर्गापवर्गफलदमन्यथा श्रमतामियात् ।।८
पूतानां परमः पूतो गुरूणां परमो गुरुः । सर्वसत्त्वान्वितो विप्रो निर्मितो ब्रह्मणा पुरा ।।९
पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्वर्गं भुञ्जन्ति चाक्षयम्। मनुष्याश्चापि देवत्वं स्वं स्वं राज्यं गतेन सः ।।१०
यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य विष्णुः प्रसीदति। तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ।।११
यस्माद्विष्णुमुखाद्विप्रः समुद्भूतः पुरा द्विजाः । वेदास्तत्रैव सञ्जाताः सृष्टिसंहारहेतवः ।।१२
तस्माद्विप्रमुखे वेदाश्चार्पिताः पुरुषेण हि । पूजार्थं ब्रह्मलोकानां सर्वज्ञानार्थतो ध्रुवम् ।।१३
पितृयज्ञविवाहेषु वह्निकार्येषु शान्तिषु । प्रशस्ता ब्राह्मणा नित्यं सर्वस्वस्त्ययनेषु च ।।१४

आदि की सुरक्षा करना एक मात्र ब्राह्मणों का ही कर्तव्य है क्योंकि देवगण ब्राह्मण के मुख द्वारा ही हव्यों के भक्षण करते हैं । और पितर लोग कव्यों के । इसलिए उनसे बढ़कर कोई नहीं है । ब्राह्मण जन्म से ही सर्वप्रधान है, अतः सभी भाँति की अर्चा के योग्य हैं ।२-३। द्विजोत्तम ! ब्राह्मण सर्वत्र अपनी ही वस्तु का भक्षण करता है और उसी का पालन पोषण भी । तीनों जातियों की वृद्धि एवं नाश के लिए ब्राह्मण की रचना हुई है । भली भाँति सन्तुष्ट होने पर ब्राह्मण उनकी वृद्धि करता है इसमें संदेह नहीं, तथा क्रुद्ध होने पर उनके सर्वनाश का मूल कारण भी होता है, इसलिए ब्राह्मण सदैव उनके लिए पूज्य है ।४-५। द्विजः जिस ब्राह्मण के गर्भाधानादि संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं तथा वह शास्त्र के अड़तालीस प्रकार के नियमों से निवृत्त हो गया है, अतः ब्राह्मणत्व प्रधान होने के नाते उसे ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ।६। प्रथम संस्कार द्वारा पवित्र, दूसरे वेदाध्ययन द्वारा पूत, तीसरी विद्याद्वारा पूत, पश्चात् तीर्थ-यात्रादि से पूत एवं क्षेत्रपूत (पवित्र क्षेत्र से उत्पन्न), ऐसे विशिष्ट पूत ब्राह्मणों की पूजा अवश्य करनी चाहिए । इससे पूजने वाले को स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अन्यथा (इनकी पूजा न करने से) श्रम व्यर्थ हो जाता है ।७-८। सभी पवित्रों में परम पवित्र, गुरुओं के परम गुरु एवं सभी प्रकार के सत्त्व समेत ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ही उत्पन्न किया है ।९। देवगण ब्राह्मणों की अर्चा के द्वारा ही स्वर्ग का अक्षय उपभोग प्राप्त किये हैं और मनुष्य भी अपने-अपने राज्य की प्राप्ति द्वारा देवत्व की प्राप्ति करते रहते हैं ।१०। जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसके ऊपर विष्णु निश्चित प्रसन्न होते हैं, इसलिए ब्राह्मण की पूजा करते समय विष्णु उसी समय प्रसन्न हो जाते हैं ।११। क्योंकि जिस विष्णु के मुख द्वारा सर्वप्रथम ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, उसी द्वारा सर्जन एवं नाश के हेतु समस्त वेदों की भी उपलब्धि बतायी गयी है ।१२। इसीलिए पुरुषोत्तम भगवान् ने निश्चित सभी लोगों के ज्ञानार्थ एवं ब्रह्मलोक के पूजन के लिए समस्त वेदों को ब्राह्मण के मुख में समर्पित कर दिया ।१३। पितृ कर्म, यज्ञ, विवाह, हवन, शांति तथा सभी भाँति

देवा भुञ्जन्ति हव्यानि बलिं प्रेतादयोऽसुराः । पितरो हव्यकव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम् ।।१५
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च ये दद्याद्यज्ञकर्मसु । दानं होमं बलिं चैव विना विप्रेण निष्फलम् ।।१६
विना विप्रं च यो धर्मः प्रयासफलमात्रकः । भुञ्जते चासुरास्तत्र प्रेता भूताश्च राक्षसाः ।।१७
तस्माद्ब्राह्मणमाहूय तस्य पूजां च कारयेत् । काले देशे च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् ।।१८
श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवादनम् । दीर्घायुस्तस्य वाक्येन चिरञ्जीवी भवेन्नरः ।।१९
अनभिवादिनां विप्रे द्वेषादश्रद्धयापि च । आयुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूमिनाशश्च दुर्गतिः ।।२०
आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्वृद्धिर्विद्याधनस्य च । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्भवेन्नास्त्यत्र संशयः ।।२१

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ।।२२

षड्विंशतिदोषमाहुर्नरा नरकभीरवः । विमुच्यैव वसेत्तीर्थे ग्रामे वा पत्तने वने ।।२३
ते स्वर्गे पितृलोके च ब्रह्मलोकेष्ववस्थिताः ।।२४
अन्यथा न वसेद्ग्रामस्तस्मात्स्तेयो न पालयेत् । अधर्मो विषमश्चैव पशुश्च पिशुनस्तथा ।।२५
पापिष्ठो नष्टकष्टौ च रुष्टो दुष्टश्च पुष्टकः । हृष्टः कुण्ठश्च[1] अन्धश्च काणश्चैव तथापरः ।।२६

के कल्याणार्थ कार्यों में ब्राह्मण ही प्रशस्त बताये गये हैं । यही निश्चित है कि ब्राह्मणों के मुख द्वारा ही देवगण हव्य प्रेतादि असुर गण बलि, एवं पितर लोग हव्यों के भक्षण करते हैं ।१४-१५। देवताओं एवं पितरों के उद्देश्य से यज्ञों में दान, हवन, तथा बलि जो कुछ बिना ब्राह्मण के किया जाता है, वह सब निष्फल होता है ।१६। बिना ब्राह्मण के जो भी धर्म-कार्य किया जाता है, उसके केवल परिश्रम मात्र करना ही फल बताया गया है, क्योंकि उस प्रदत्त वस्तु का ग्रहण एवं भोजन असुर, प्रेत, भूत, एवं राक्षस ही करते हैं ।१७। इसलिए (सभी छोटे-बड़े कार्यों में) ब्राह्मण को बुलाकर उसकी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि देश, काल, एवं पात्र को दी गयी वस्तु कोटिलक्ष फलदायी होती है ।१८। ब्राह्मण को देखते ही श्रद्धालु होकर अभिवादन करना चाहिए, क्योंकि आशीर्वाद के रूप में उसके 'दीर्घायु' हो कहने पर वह मनुष्य चिरजीवन प्राप्त करता है ।१९। जो मनुष्य द्वेष के कारण श्रद्धाहीन होने के नाते ब्राह्मणों का अभिवादन नहीं करते हैं, उन मनुष्यों की आयु क्षीण हो जाती है, और भूमिनाश एवं दुर्गति भी होती है ।२०। श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करने से आयु, यश, विद्या एवं धन की अत्यन्त वृद्धि होती है, इसमें संदेह नहीं ।२१। जिनके घरों में ब्राह्मण चरण के प्रक्षालन करने से उत्पन्न कीचड़, वेद-शास्त्रों के गर्जन (ऊँचे स्वर से पाठ), एवं स्वाहा, स्वधा तथा स्वस्ति के उच्चारण नहीं होते हैं, वे श्मशानों के समान बताये गये हैं ।२२। नरक के भीरु मनुष्यों के लिए छब्बीस दोषों से मुक्त रहने के लिए बताया गया है, उनके त्याग पूर्वक तीर्थ, ग्राम, छोटे छोटे गाँव (पुरवा) अथवा वन में कहीं भी निवास करने वाले ही मनुष्य स्वर्ग, पितृलोक और ब्रह्मलोकों में अवस्थित हैं । अन्यथा कहीं भी निवास करना उचित नहीं है जिससे कि चोरों का पालन भी न हो । अधर्म, विषम, पशु, पिशुन, (चुगुली), पाप कर्म, नष्ट, कष्ट एवं रुष्ट होना, दुष्ट, पुष्टक (पालन करना), हृष्ट, कुबड़ापन, अन्धा, काना, उग्रस्वभाव, खण्ड, वक्ता, दिये गये का

---

१. कुब्जः ।

चण्डः खण्डश्च वक्ता च दत्तस्यापहरस्तथा । नीचः खलश्च वाचालः कदर्यश्चपलस्तथा ॥२७
मलीमसश्च ते दोषाः षड्विंशतिरमी मताः । एतेषां चापि विप्रेन्द्राः पञ्चाशीतिर्निगद्यते ॥२८
शृणुध्वं द्विजशार्दूलाः शास्त्रेऽस्मिन्ब्रुवतः क्रमात् । अधमोऽत्र त्रिधा विद्याद्विषमः स्याद्द्विधोचितः ॥२९
पशुश्चतुर्विधश्चैव कृपणोऽपि हि वै द्विधा । द्विधाथापि च पापिष्ठो नष्टः सप्तविधः स्मृतः ॥३०
कष्टः स्यात्पञ्चधा ज्ञेयो रुष्टोऽपि स्याद्द्विधा द्विजाः । दुष्टः स्यात्षड्विधो ज्ञेयः पुष्टश्चैव भवेद् द्विधा ॥३१
हृष्टश्चाष्टविधः प्रोक्तः कुण्ठश्चैव त्रिधोदितः । अन्धः काणश्च तौ द्वौ द्वौ स्याद्वै च सगुणोऽगुणः ॥३२
द्वौ चण्डौ चपलश्चैकाऽवण्डचण्डौ द्विगुर्भवेत् । दण्डपण्डौ तथा ज्ञेयौ खलनीचौ चतुर्द्वयम् ॥३३
वाचालश्च कदर्यश्च क्रमात्त्रिभिरुदाहृतः । कदर्यश्चपलश्चैव तथा ज्ञेयो मलीमसः ॥३४
द्वावेकौ चतुरश्चैव स्तेयी चैकविधो भवेत् । पृथग्लक्षणमेतेषां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥३५
सम्यग्यस्य परिज्ञानं नरो देवत्वमाप्नुयात् । उपानच्छत्रधारी च गुरुदेवाग्रतश्चरन् ॥३६
उच्चासनं गुरोरग्रे तीर्थयात्रां करोति यः । यानमारुह्य विप्रेन्द्राः सोप्येकत्राधमो मतः ॥३७
निमज्ज्य तीर्थे विधिवद्ग्राम्यधर्मेण वर्तयन् । द्वितीयश्चाधमः प्रोक्तो निन्दितः परिकीर्तितः ॥३८
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा हृदि हालाहलं विषम् । वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्द्वावेतौ विषमौ स्मृतौ ॥३९
मोक्षचिन्तामतिक्रम्य योऽन्यचिन्तापरिश्रमः । हरिसेवाविहीनो यः स पशुर्योनितः पशुः ॥४०
प्रयागे विद्यमानेऽपि योऽन्यत्र स्नानमाचरेत् । दृष्टं देवं परित्यज्य अदृष्टं भजते तु यः ॥४१

अपहरण, नीच, खल, वाचाल (अधिक बोलने वाला), कायर, चपल और अज्ञान, यही छब्बीस दोष बताये गये है, (नरक भीरुओं को इन्हीं से बचना चाहिए) । विप्रेन्द्र ! इनके पचासी भेद भी बताये गये हैं, द्विजशार्दूल ! शास्त्र में उनके वर्णन किये हैं, मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! तीन प्रकार के अधम, दो भाँति के विषम, चार प्रकार के पशु एवं कृपण (कायर) के दो भेद, पापिष्ठ के दो भेद, नष्ट के सात भेद ।२३-३०। कष्ट के पाँच भेद तथा रुष्ट के दो भेद होते हैं, उसी प्रकार दुष्टों के छह भेद, पुष्ट के दो भेद, हृष्ट के आठ भेद, कुण्ठ के तीन भेद एवं अन्धे और काने के सगुण, और निर्गुण के भेद से दो-दो भेद होते हैं । चण्ड के दो, चपल के एक, चण्ड के तीन, दण्ड, खण्ड के भी दो तथा खल और नीच के आठ आठ भेद बताये गये हैं । वाचाल तथा कायर के तीन-तीन भेद एवं कायर, चपल, मलीमस (अज्ञानी) के क्रमशः दो, चार, स्तेयी (चोरी) के लक्षण कहे गये हैं—द्विजसत्तम ! इनके लक्षणों को जिनके ज्ञान होने से मनुष्य देव हो जाता है पृथक्-पृथक् मैं बता रहा हूँ, सुनो ! विप्रेन्द्र ! जूते और छत्र धारण कर गुरु एवं देवताओं के सामने चलने वाला, गुरु के सम्मुख ऊँचे, आसन पर बैठने वाला, तथा सवारी पर बैठ कर तीर्थयात्रा करने वाला प्रथम प्रकार का अधम बताया गया हैं ।३१-३७। विधान पूर्वक तीर्थ में स्नान करके पुनः ग्राम्य धर्म (पशु की भाँति सभी कर्म) करने वाला वह निंदित पुरुष दूसरे प्रकार का अधम बताया गया है ।३८। हृदय में हालाहल विष रख कर मधुर एवं आकर्षक वाणी बोलने वाले, तथा जो कहते हैं कुछ करते हैं कुछ इस प्रकार दो भाँति का विषम कहा गया है ।३९। मोक्ष की चिन्ता न कर जो अन्य बातों के लिए ही चिन्ता एवं उपाय आदि करते हैं तथा हरि सेवा से वञ्चित हैं वे पशु योनि वाले से भी प्रथम पशु हैं ।४०। प्रयाग के विद्यमान होते हुए भी जो अन्यत्र स्नान तथा प्रत्यक्ष देव के त्यागपूर्वक न दिखायी पड़ने

आयुषस्तु क्षयार्थाय शास्त्रेयमृषिसम्मतः । योगाभ्यासं ततो हित्वा तृतीयश्चाधमः पशुः ॥४२
बहूनि पुस्तकानीह शास्त्राणि विविधानि च । तस्य सारं न जानाति स एव जम्बुकः पशुः ॥४३
बलेनच्छलछद्मेन[1] उपायेन प्रबंधनम् । सोऽपि स्यात्पिशुनः ख्यातः प्रणयाद्वा द्वितीयकः ॥४४
मधुरान्नं प्रतिष्ठाप्य दैवे पित्र्ये च कर्मणि । म्लानं चापि च तिक्तान्नं यः प्रयच्छति दुर्मतिः ॥४५
कृपणः स तु विज्ञेयो न स्वर्गी न मोक्षभाक् । कुदाता च मुदा हीनः सक्रोधस्तु यजेत यः ॥४६
स एव कृपणः ख्यातः सर्वधर्मबहिष्कृतः । अदोषेण शुभत्यागी शुभकार्योपविक्रयी ॥४७
पितृमातृगुरुत्यागी शौचाचारविवर्जितः । पित्रोरग्रे समश्नाति स पापिष्ठतमः स्मृतः ॥४८
जीवत्पितृपरित्यक्तं सुतं सेवन्न वा क्वचित् । द्वितीयस्तु स पापिष्ठो होमलोपी तृतीयकः ॥४९
साध्वाचारं च प्रच्छाद्य सेवनं चापि दर्शयेत् । स नष्ट इति विज्ञेयः क्रयक्रीतं च मैथुनम् ॥५०
जीवेद्देवलवृत्तिर्यः भार्याविपणजीवकः । कन्याशुल्केन जीवेद्वा स्त्रीधनेन च वा क्वचित्॥५१
षडेव नष्टाः शास्त्रे च न स्वर्गमोक्षभागिनः । सदा क्रुद्धं मनो यस्य हीनं दृष्ट्वा प्रकोपवान् ॥५२
भ्रुकुटीकुटिलः क्रुद्धो रुष्टः पञ्चविधोदितः । अकार्ये भ्रमते नित्यं धर्मार्थे न व्यवस्थितः ॥५३

वाले देव की आराधना करता है, वह दूसरे प्रकार का प्रथम पशु है । ऋषियों द्वारा निश्चित एवं शास्त्रीय योगाभ्यास के त्याग करने वाले तीसरे प्रकार के अधम पशु हैं ।४१-४२। सभी भाँति की पुस्तकें एवं सभी शास्त्रों को अपने यहाँ रखकर उसके मर्म को जानने वाला जम्बूक पशु बताया गया है ।४३। जो बलपूर्वक अथवा छल-कपट के उपायों द्वारा किसी को बंधन में डाल देता है, उसे पिशुन (चुगल) कहते हैं, और प्रणय द्वारा वही कार्य करने वाला भी दूसरे प्रकार का चुगुल कहा गया है ।४४। देवकार्य अथवा पितृ-कार्यों में जो मधुर भक्ष्य पदार्थों को अलग रख कर रूखी-सूखी और कड़वी वस्तु भोजनार्थ प्रदान करता है, ऐसे दुष्ट को स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं होती है, उसे कृपण बताया गया है । म्लान मुख होकर जो कुत्सित वस्तुओं का दान करने, एवं क्रुद्ध होकर हवन पूजन करने वाले को कृपण कहा गया है, वह सभी धर्मों से बहिष्कृत है । दोषहीन होने पर भी किसी शुभ वस्तु के त्याग, कल्याण मूर्ति के विक्रम, पिता, माता, एवं गुरु के त्याग करने वाले पवित्र आचरणहीन, तथा माता-पिता के समक्ष खाने वाले को पापिष्ठ (महान्पापी) बताया गया है ।४५-४८। जीवित माता-पिता के त्याग, पुत्र का पालन न करने वाले दूसरे प्रकार के पापी, एवं हवन न करने वाला तीसरे प्रकार का पापिष्ठ (पापी) है ।४९। अपने पवित्र आचार को छिपा कर सेवा करने वाले को नष्ट जानना चाहिए । क्रीत (खरीद कर) मैथुन करने, देवताओं की पूजा द्वारा जीविका निर्वाह करने, बाजार में स्त्री को बैठाकर जीवन निर्वाह करने, कन्याओं के विक्रय, और स्त्री के धन से जीवन निर्वाह करने वाले ये छह भाँति के नष्ट शास्त्र में बताये गये हैं। जो कभी भी स्वर्ग एवं मोक्ष के भागी नहीं हो सकते हैं । जिसका मन सदैव क्रुद्ध रहता है, किसी हीन (तुच्छ) को देखते ही कोप करना, भौहें टेढी रखने एवं क्रुद्ध रहने वाले ये पाँच प्रकार के रुष्ट कहे गये हैं । अकारण नित्य भ्रमण, धर्म के लिए कोई व्यवस्था न रखने, निद्रालु (अधिक सोने वाला), व्यसनी, शराबी, स्त्रीसेवी, सदैव

---

१. अदन्तत्वमार्षम् ।

निद्रालुर्व्यसनासक्तो मद्यपः स्त्रीनिषेवकः । दुष्टैः सह सदालापः स दुष्टः सप्तधा स्मृतः ॥५४
एकाकी मिष्टमश्नाति वञ्चकः साधुनिंदकः । यथा सूकरः पुष्टः स्यात्तथा पुष्टः प्रकीर्तितः ॥५५
निगमागमतन्त्राणि नाध्यापयति यो द्विजः । न शृणोति च पापात्मा स दुष्ट इति चोच्यते ॥५६
श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते । एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥५७
विवादः सोदरैः सार्द्धं पित्रोरप्रियकृद्वदेत् । द्विजाधमः स विज्ञेयः स चण्डः शास्त्रनिन्दितः ॥५८
पिशुनो राजगामी च शूद्रसेवक एव च । शूद्राङ्गनागमो विप्रः स चण्डश्च द्विजाधमः ॥५९
पक्वान्नं शूद्रगेहे च यो भुङ्क्ते सकृदेव वा । पञ्चरात्रं शूद्रगेहे निवासी चण्ड उच्यते ॥६०
अष्टकुष्ठान्वितः कुष्ठी त्रिकुष्ठी शास्त्रनिन्दितः । एतैः सह सदालापः स भवेत्तत्समोऽधमः ॥६१
कीटवद्भ्रमणं यस्य कुव्यापारी कुपण्डितः । अज्ञानाच्च वदेद्धर्ममग्रवृत्तिः प्रधावति ॥६२
अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यदेशे वसेच्चिरम् । स द्विधा शूकरपशुर्निन्दितः सिद्धसम्मतः ॥६३
कपोलेन हि संयुक्तो भ्रुकुटीकुटिलाननः । नृपवद्दण्डयेद्यस्तु स दण्डः समुदाहृतः ॥६४
ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा नृपदेवस्वमेव च । धनेन तेन इतरं देवं वा ब्राह्मणानपि ॥६५
सन्तर्पयति योऽश्नाति यः प्रयच्छति वा क्वचित् । स खरश्च पशुश्रेष्ठः सर्ववेदेषु निन्दितः ॥६६
अक्षराभ्यासनिरतः पठत्येव न बुध्यते । पदशास्त्रपरित्यक्तः स पशुः स्यान्न संशयः ॥६७

दुष्टों के साथ बातचीत करने वाले ये सभी सात प्रकार के दुष्ट बताये गये हैं ।५०-५४। औरों को वञ्चित कर अकेले ही मधुर भक्ष्यों के खाने, एवं साधुओं की निंदा करने वाले को सूकर की भाँति पुष्ट बताया गया है जो द्विज, निगम-आगम एवं तंत्रों का न अध्ययन करता है और न श्रवण ही करता है, उस पापात्मा को दुष्ट जानना चाहिए । श्रुति और स्मृति यही दोनों ब्राह्मणों के नेत्र हैं—इसमें एक से हीन होने पर काना और दोनो से हीन रहने पर अंधा कहा गया है ।५५-५७। भाइयों से झगड़े, माँ बाप को कठोर वाणी कहने वाले द्विजाधम को चंड बताया है, जो शास्त्र में निंदित है ।५८। चुगुल, राजा के यहाँ जाने वाले, शूद्रों की सेवा करने वाले, शूद्रस्त्रियों के साथ मैथुन करने वाले को चंड ब्राह्मण कहा गया है ।५९। शूद्रों के घर में एक बार भी भोजन करने, और पाँच रात निवास करने वाले को भी चंड कहा गया है ।६०। आठ प्रकार के कुष्ठों के रोगी, तथा तीन प्रकार के कुष्ठों के रोगियों से सदैव बातचीत करने वाले उसी के समान अधम होते हैं ।६१। कीटों की भाँति इधर-उधर भ्रमण करने वाला, निंदित वस्तुओं का व्यापारी, मूर्ख पंडित, अज्ञानता पूर्ण धर्म की व्याख्या करने वाला, जीविका के लिए सर्वप्रथम दौड़ने वाला, अपने यहाँ के लोगों के त्याग कर जो अन्य देश में चिरकाल तक रह जाता है, वह निंदित शूकर पशु सिद्धों के समान विख्यात है ।६२-६३। जो कपोल, मुख एवं भौहें टेढ़ी कर राजा की भाँति दंड प्रदान करता है, उसे दंड कहा जाता है ।६४। जो ब्राह्मण धन, तथा राजा अथवा किसी देवता की सम्पत्ति का अपहरण कर पुनः उसे किसी अन्य देव या ब्राह्मण को समर्पित, अथवा स्वयं उसके उपभोग कर या कहीं भी प्रदान करते है, उन्हें पशु श्रेष्ठ खर (गधा) बताया गया है, जो सभी वेदों में निंदित है ।६५-६६। जो केवल अक्षराभ्यास में ही समय व्यतीत करता है, और पढ़ता है, उसको समझता नहीं, वह यह शास्त्र का त्याग करने वाला पशु है, इसमें संदेह नहीं ।६७। जो गुरु और देवताओं के सम्मुख कहते हैं कुछ, करते हैं कुछ,

वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्गुरुदेवाग्रतो यतः । स नीच इति विज्ञेयो ह्यनाचारस्तथापरः ॥६८
षड्गुणालङ्कृतेः साधोर्दोषान्मृगयते खलः । वने पुष्पफलाकीर्णे शलभः कण्टकानिव ॥६९
दैवेन च विहीनो यः कुसम्भाषां वेदत्तु यः । स वाचाल इति ख्यातो यो ह्यपत्रपतायुतः ॥७०
चाण्डालैः सह आलापः पक्षिणां पोषणे रतः । मार्जारैश्चापि सम्भुक्ते यत्कृत्यं मर्कटोदितम् ॥७१
तृणच्छेदी लोष्टमर्दी वृथा मांसाशनश्च यः । चपलः स तु विज्ञेयः परभार्यारतस्तथा ॥७२
स्नेहोद्वर्तनहीनो यो गन्धचन्दनवर्जितः । नित्यक्रिया अकुर्वाणो नित्यं स च मलीमसः ॥७३
अन्यायेन गृहं विन्देदन्यायेन गृहान्धनम्[1] । शास्त्रादन्यद्गृहं मन्त्रं स स्तेयी ब्रह्मघातकः ॥७४
देवपुस्तकरत्नानि[2] मणिमुक्ताश्वमेव च । गोभूमिस्वर्णहरणः स स्तेयीति निगद्यते ॥७५
देवोऽपि भावयेत्पश्चान्मानुजोऽपि न संशयः । अन्योऽन्यभावना कार्या स स्तेयी यो न भावयेत् ॥७६
गुरोः प्रसादाज्जयति पित्रोश्चापि प्रसादतः । करोति च यथार्हं च स च स्वर्गे महीयते ॥७७
न पोषयति दुष्टात्मा स स्तेयी चापरः स्मृतः ॥७८
उपकारिजनं प्राप्य न करोति परिष्क्रियाम् । स तप्तनरके शेते शोणिते च पतत्यधः ॥७९
सर्वेषां च सवर्णानां धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । पृथिवीपालको राजा धर्मचक्षुरुदाहृतः ॥८०

उन आचार हीनों को नीच जानना चाहिए ।६८। पुष्पों एवं फलों से सुशोभित वन के काँटों को खोजकर जिस प्रकार पतङ्ग निंदा करता है, उसी भाँति छहो गुणों से सुशोभित साधु-सज्जनों में दोषों के अन्वेषण दुष्ट लोग करते हैं ।६९। भाग्यहीन तथा निंदित भाषाभाषी, ऐसे निर्लज्ज को वाचाल कहा गया है ।७०। चांडालों के साथ भाषण, पक्षियों के पालन में अनुरक्त, विल्लियों के साथ भोजन करने वाले, वानरों के समान कार्य करने वाले, (अकारण) हाथ से तृण को तोड़ने वाले, मिटटी को चूर्ण करने वाले, मांसभोजी, एवं दूसरे की स्त्री से प्रेम (भोग) करने वाले, इन सबों की चपल संज्ञा है ।७१-७२। तेल, उबटन से सदैव वञ्चित रहकर गंध, एवं चन्दन का भी कभी स्पर्श तक न प्राप्त करने वाले एवं नित्यक्रिया न करने वाले को मलीमस (अस्पृश्य) कहते हैं ।७३। अन्याय से घर, स्त्री, एवं धन की प्राप्ति कर शास्त्र के अतिरिक्त मंत्र को गृह्य स्वीकार करने वाले को ब्रह्मघाती स्तेयी कहा गया है। देवताओं की (प्रतिमा), पुस्तक रत्न, मणि, मोती, अश्व, गो भूमि, तथा सुवर्ण के अपहरण करने वाले स्तेयी (चोर) कहते हैं ।७४-७५। मनुष्यों को देवों का विशिष्ट सम्मान प्रदर्शन करना चाहिए, पश्चात् मनुष्यों का भी । इस प्रकार अन्योन्य में सम्मान की भावना आवश्यक है, जो ऐसा न करे, वह स्तेयी है ।७६। गुरु, माता एवं माता पिता की कृपावश सर्वत्र विजय होती है, इस भाँति यथायोग्य (कर्म) करने वाले को स्वर्ग में सम्मान प्राप्त होता है ।७७। जो इन महानुभावों का पोषण न करे उसे भी स्तेयी जानना चाहिए ।७८। किसी उपकारी प्राणी के समागम में उसका स्वागत सत्कार न करने पर उसे तप्तनरक एवं शोणित (रक्त) वाले नरक में दुःखानुभव करना पड़ता है ।७९। समस्त जातियों के ब्राह्मण धर्मतः स्वामी तथा पृथिवी का पालन करने वाला राजा धर्मतः नेत्र बताया गया है ।८०। प्रजा पति के मुख से उत्पन्न,

---

१. दारानित्यर्थः । २. हरेदिति शेषः ।

प्रजापतेर्मुखोद्भूतो होरातन्त्रे यथोदितम् । तद्विदो गणनाभिज्ञा अन्यविप्राः प्रचक्षते ।।८१
गंगाहीनो हतो देशो विप्रहीना यथा क्रिया । होराज्ञप्तिविहीनो यो देशोऽसौ विप्लवप्लवः ।।८२
अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः । तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ।।८३
स्थापयेद्धर्मतो विप्रं भावयेत्कर्मवृद्धये । श्मश्रुयुक्तो द्विजः पूज्यः सूर्यो विप्रस्तु श्मश्रुलः ।।८४
प्रत्यक्प्रदर्शनात्पुण्यं त्रिदिनं कल्मषापहम् । दर्शने व्रात्यविप्रस्य सूर्यं दृष्ट्वा विशुध्यति ।।८५
न व्रात्यत्वं सूर्यविप्रे पूजयेद्यज्ञसिद्धये । ज्योतिर्वेदरयाधिकारः सूर्यविप्रस्य वै द्विजाः ।।८६
जातिभेदाश्च चत्वारो भोजकः कथकस्तथा । शिवविप्रः सूर्यविप्रश्चतुर्थः परिपठ्यते ।।८७
कथको मध्यमस्तेषां सूर्यविप्रस्तथोत्तमः । शिवलिङ्गार्चनरतः[1] शिवविप्रस्तु निन्दितः ।।८८
सूर्यविप्रस्य[2] विप्रस्य वैद्यस्य च नृपस्य च । प्रवासयेदक्षतेन सपुत्रपशुबान्धवः ।।
अवध्यः सर्वलोकेषु राजा राज्येन पालयेत् ।।८९
वसुभिर्वस्त्रगन्धाद्यैर्माल्यैश्च विविधैरपि । देशचक्रविदः पूज्या होराचक्रविदः पराः ।।९०

तथा होरा-तंत्र में कही गयी समस्त बातों के वेत्ता को जो अन्य ब्राह्मण है, गणक (ज्योतिषी) कहा गया है ।८१। गंगाहीन देश उसी प्रकार नष्ट है, जिस प्रकार ब्राह्मण के बिना सम्पन्न की हुई कोई क्रिया और होरा का विशिष्ट विद्वान जिस प्रदेश में नहीं है, वह विप्लवों से सदैव आच्छन्न रहता है ।८२। जिस प्रकार बिना दीपक की रात्रि, एवं सूर्य हीन आकाश सुशोभित नहीं होता, उसी भाँति संवत्सर (वर्ष) हीन राजा भी मार्ग में अन्ध के समान इधर उधर भटकता रहता है ।८३। धर्मतः ब्राह्मणों की स्थिति करके अपने कर्म के वृद्ध्यर्थ उन्हें सम्मान प्रदर्शित करे, श्मश्रु (दाढ़ी) युक्त द्विज की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि दाढ़ी युक्त ही ब्राह्मण सूर्य का स्वरूप बताया गया है ।८४। दिन के अवसान समय में उनके दर्शन मात्र से पुण्य होता है, यदि वैसा ही दर्शन तीन दिन तक होता रहे तो उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रात्य (जाति च्युत अथवा समयपर यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो) ऐसे ब्राह्मण के दर्शन हो जाने में सूर्य के देखने ही पर वह विशुद्ध होता है ।८५। सूर्य-विप्र (दाढ़ी वाला ब्राह्मण) कभी पतित नही होता है, यज्ञ की सफलता के लिए उसकी पूजा अवश्य करनी चाहिए । द्विजवृन्द ! सूर्य-विप्र ही ज्योतिष् शास्त्र, के अधिकारी कहे गये हैं ।८६। भोजक, कथक, शिव विप्र, और सूर्यविप्र, यही चार प्रकार के उनमें जाति भेद भी बताये गये हैं ।८७। इनमें कथक मध्यम, सूर्य विप्र सर्वश्रेष्ठ एवं शिवलिंग की अर्चा में अनुरक्त होने के नाते शिव-विप्र निंदित कहा गया है ।८८। सूर्य-विप्र, ब्राह्मण, वैद्य, एवं राजा की विदेश यात्रा में अक्षत द्वारा मांगलिक पूजा होनी चाहिए । तथा वहाँ के राजा का सहयोग इस प्रकार प्राप्त होना चाहिए जिससे उन्हें किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न करना पड़े । उनके पुत्र, पशु और बन्धु गण सभी समस्त लोकों में अवध्य है, तथा राजा अपने राज्य द्वारा उनका पालन पोषण करता रहे ।८९। धन, वस्त्र, गंध, माल्य आदि अनेक भाँति के उपकरणों द्वारा देश चक्र वेत्ता (समस्त देशों के भली भाँति ज्ञाता), की पूजा करनी चाहिए, होरा चक्र के विद्वान् की पूजा तो परमावश्यक है, एवं सूर्य-चक्र वेत्ता की भी अवहेलना किसी

---

१. जीविकायै इति शेषः । २. शेषषष्ठी ।

सूर्यचक्रविदः पूज्या नावमन्येत्कथञ्चन । सिद्धयृद्धिं च धनर्द्धिं च य इच्छेदायुषा समम् ॥
गणविप्रसमः पूज्यो दैवज्ञः समुदाहृतः ॥९१
जाते बाले निरूप्ये च लग्नग्रहनिरूपणम् । संस्थानं सूर्यविप्रो यः सूर्यविप्रस्य सत्तमाः ॥
द्विमात्रिकां समभ्यस्य सर्ववेदफलं लभेत् ॥९२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

गुरुवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्णामपि वर्णानां नान्यो बन्धुः प्रचक्षते । ऋते पितुर्द्विजश्रेष्ठा इतीयं नैगमी स्मृतिः ॥१
त्रयोऽपि गुरवः श्रेष्ठास्ताभ्यां माता परो गुरुः । ये सोदरा ज्येष्ठश्रेष्ठा उत्तरोत्तरतो गुरुः ॥२
द्वादश्यां तु अमावस्यामथ वा रविसङ्क्रमे । वासांसि दक्षिणा देया मणिमुक्ता यथारुचि ॥३
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । प्राप्ते चापरपक्षे तु भोजयेच्चापि शक्तितः ॥४
पश्चात्प्रवन्दयेत्पादौ मन्त्रेणानेन सत्तमाः । विधिवद्वन्दनादेव सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥५
स्वर्गापवर्गप्रदमेकमाद्यं ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि ।

प्रकार न करनी चाहिए । अपने जीवन के साथ ही जो सिद्धि, ऋद्धि, एवं धन वृद्धि के इच्छुक हैं, उन्हें गणविप्र के समान ही दैवज्ञ (ज्योतिषी) की अर्चा अवश्य करनी चाहिए ।९०-९१। श्रेष्ठगण ! सूर्य-विप्र के गृहपुत्र उत्पन्न होने पर किसी सूर्य-विप्र को उचित है कि उसके लग्न, ग्रह, एवं लक्षणों की व्याख्या करे, द्विमात्रिक के अभ्यास (अध्ययन) करने से समस्त वेदाध्ययन के फलों की प्राप्ति होती है ।९२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

गुरु का वर्णन

सूत बोले—द्विजश्रेष्ठ ! पिता के अतिरिक्त चारो वर्णों का अन्य कोई बंधु नहीं बताया गया है, यह निगमों का सम्मत है । तीनों भाँति के गुरुगण श्रेष्ठ बताये गये है, किन्तु उन दोनों में माता सर्वप्रधान गुरु हैं, सहोदरों (भाइयों) में अपने से ज्येष्ठ सभी क्रमशः गुरु एवं श्रेष्ठ कहे गये हैं ।१-२। द्वादशी, अमावस्या, एवं सूर्य की संक्रान्ति के समय वस्त्रों के साथ मनोनुकूल मणि मुक्ता की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए ।३। (दोनों) अयन, विषुव, चन्द्र, सूर्य ग्रहण, और श्राद्ध काल में शक्त्यनुसार उन्हें भोजन कराना चाहिए ।४। श्रेष्ठवृन्द ! उसके पश्चात् मंत्रोच्चारण पूर्वक उनका पादाभिवंदन करे, क्योंकि विधान पूर्वक उनकी वंदना करने से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं ।५। मैं उस पिता को नमस्कार करता हूँ, जो स्वर्ग, मोक्ष का प्रदायक, सर्वश्रेष्ठ, सभी के आदि में स्थित एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, जिसके ही द्वारा

यतो जगत्पश्यति चारुरूपं तं तर्पयामः सलिलैस्तिलैर्युतैः ॥६
पितरो जनयन्तीह पितरः पालयन्ति च । पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्यं नमोनमः ॥७
यस्माद्विजयतो लोकस्तस्माद्धर्मः प्रवर्तते । नमस्तुभ्यं पितः साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥८
या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः । नमामि जननीं देवीं परां प्रकृतिरूपिणीम् ॥९
कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे । त्वत्प्रसादाज्जगद्दृष्टं मातर्नित्यं नमोऽस्तु ते ॥१०
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः । वसन्ति यत्र तां नौमि मातरं भूतिहेतवे ॥११
गुरुदेवप्रसादेन लब्धा विद्या यशस्करी । शिवरूप नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे ॥१२
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् । आधारः सर्वभूतानामग्रजन्मन्नमोऽस्तु ते ॥१३
ब्राह्मणो जगतां तीर्थं पावनं परमं यतः । भूदेव हर मे पापं विष्णुरूपिन्नमोऽस्तु ते ॥१४
पितामहं च प्रणमेत्सर्वादौ मातरं गुरुम् । मातामहं च तदनु आचार्यमथ ऋत्विजम् ॥१५
मातृमन्त्रैश्च प्रथमं प्रणमेद्भक्तिभावतः । यथाग्रजस्तथा ज्येष्ठः पितृव्योऽपि द्विजोत्तमाः ॥१६
दृष्टादृष्टे च स गुरुर्गुरुर्माता तथा गुरुः । दृष्टादृष्टस्तृतीयः स्यात्सूर्योऽग्निश्चन्द्र एव च ॥१७
मन्त्रदाता गुरुः ख्यातस्सप्तमः परिकीर्तितः । कभोजनगुरुः श्रेष्ठः स्वर्गापवर्गहेतुकः ॥१८
दृष्टदेवं च यो हित्वा अदृष्टं च निषेवते । पापात्मा परमः सैकस्तिर्यग्योनिं च गच्छति ॥१९

समस्त शिव का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है, सौन्दर्यपूर्ण इसी के लिए तिल-जलयुक्त का मैं तर्पण कर रहा हूँ ।६। पिता ही उत्पन्न करता है, और पालन-पोषण भी, इसलिए ब्रह्मस्वरूप उस पिता को नित्य नमस्कार है, ।७। उन्हीं द्वारा लोक में विजय प्राप्त होती है और धर्म का प्रवर्तक वहीं है, अतः हे साक्षात् ब्रह्म रूप पिता ! तुम्हें नमस्कार है ।८। जो अपने कुक्षिस्थल में रखकर सभी भाँति रक्षा करती है, प्रकृति-रूप एवं सर्वप्रथम उस जननी देवी को नमस्कार है ।९। हे माता ! अपनी कुक्षि में रखकर अत्यन्त दुःखों के अनुभव करती हुई आपने मुझे सुरक्षित रखा है, और आप की ही प्रसन्नता से मैं संसार का दर्शन कर रहा हूँ, इसलिए तुम्हें नित्य नमस्कार है । इस भूतल के समस्त तीर्थ, तथा समस्त समुद्र जिनके अंगों में निवास करते हैं, अपने ऐश्वर्यार्थ मैं उस माता को नमस्कार करता हूँ ।१०-११। गुरुदेव के प्रसाद से मैंने उस प्रसिद्ध विद्या की प्राप्ति कीहै, अतः संसारसागर के पार होने के लिए हे कल्याण रूप ! आपको नमस्कार है ।१२। वेद, वेदांग, एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा समस्त प्राणियों के आधार रूप उस अग्रजन्मा (ब्राह्मण) को नमस्कार है ।१३। भूदेव ! मेरे पापोंका अपहरण कीजिए, क्योंकि ब्राह्मण ही संसार में परम पवित्र तीर्थ रूप है, हे विष्णुरूप वाले ! तुम्हें नमस्कार है ।१४। सर्वप्रथम पितामह, गुरुरूपमाता, मातामह, आचार्य, और ऋत्विजों को क्रमशः अभिवादन करना चाहिए ।१५। द्विजोत्तम ! भक्तिपूर्वक माता के मंत्रों द्वारा प्रथम माता की वंदना करके पश्चात् ज्येष्ठ माता के समान पितृव्य (चाचा) की भी वंदना करे, क्योंकि वे भी उसी भाँति ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हैं । गुरु के प्रत्यक्ष दर्शन होने पर गुरु का रूप है ही, किन्तु उनके परोक्ष रहने पर माता गुरु रूप है । उसी दृष्ट एवं अदृष्ट की भाँति सूर्य, अग्नि, तथा चन्द्रमा भी तीसरे गुरू हैं ।१६-१७। मंत्र देने वाला ब्राह्मण सातवाँ प्रख्यात गुरु बताया गया है, तपस्वी गुरु द्वारा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः वह सर्वश्रेष्ठ है ।१८। प्रत्यक्ष देवता के त्याग कर अदृष्ट देव की उपासना करने

यथा पिता ज्येष्ठपिता कनीयांश्च तथा द्विजाः । ज्येष्ठो भ्राता पितृतुल्यो मान्यः सत्कारभाग्यतः ।।२०
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माता स्यात्पृथिवीमूर्तिर्भ्रातरो मूर्तिरात्मनः ।।२१
पिता मेरुर्वशिष्ठः स्याद्धर्ममूर्तिः सनातनः । स चापि दृष्टदेवः स्यात्तदाज्ञां परिपालयेत् ।।२२
पितामहं च पित्रग्रे हव्यकव्यैश्च तर्पयेत् । स याति ब्रह्मणः स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः ।।२३
तस्य पादोदकस्नानाद्गङ्गा नार्हति केवलम् । तथावलोकनात्तस्य ज्योतिर्लिङ्गशतैश्च किम् ।।२४
द्वात्रिंशत्कुण्डकशिलास्पर्शने यादृशं फलम् । तादृशं कोटिगुणितं पितामहप्रदक्षिणे ।।२५
शतमातृवरिष्ठाश्च पितामह्याश्च पोषणे । गुणास्तद्दर्शने विप्राः संसारे न पुनर्विशेत् ।।२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे गुरुगुणवर्णनं नाम षष्ठोध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

गुरुवर्णनम्

सूत उवाच

समाख्यामीह विप्रेन्द्रा इतिहासपुरातनम् । श्रवणेऽपि च धर्मात्मञ्छ्रूयतां यन्मया पुरा ।।१

वाला महान् पापी होता है, एवं उसे पक्षी के यहाँ जन्म लेना पड़ता है ।१९। द्विज ! पिता की भाँति पिता के बड़े भ्राता (ताऊ) एवं छोटे भ्राता तथा अपना ज्येष्ठ भ्राता ये सभी पिता के समान ही सत्कार के योग्य होते हैं ।२०। आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति, पिता प्रजापति का स्वरूप, माता पृथिवी का स्वरूप, और मातृगण आत्मीय स्वरूप हैं ।२१। पिता, मेरु, वशिष्ठ, धर्मस्वरूप, सनातन, एवं प्रत्यक्ष देव भी हैं, अतः उनकी आज्ञा सदैव शिरोधार्य तथा पालन करना चाहिए ।२२। पिता के समक्ष जो हव्य-कव्य द्वारा पितामह को तृप्त करता है, उसे ब्रह्म के उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ से कभी लौटना नहीं पड़ता ।२३। उनके पाद-प्रक्षालन वाले जल से स्नान करने पर उसकी मर्यादा गंगा से कहीं अधिक होती है, यही नहीं प्रत्युत उसके दर्शन मात्र से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल सैकड़ों ज्योतिलिङ्ग की आराधना द्वारा प्राप्त नहीं हो सकते हैं ।२४। बत्तीस कुण्डों वाली शिला के स्पर्श से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल करोड़ों गुने होकर पितामह की प्रदक्षिणा करने पर प्राप्त बताये गये हैं ।२५। पितामही सैकड़ों माताओं से श्रेष्ठ है, उसके दर्शन में वह पुण्य प्राप्त होता है, जिसके द्वारा पुनर्जन्म नहीं होता है।२६

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में गुरुवर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

गुरु-वर्णन

सूत बोले—विप्रेन्द्र ! धर्मात्मन् ! मैंने प्राचीन इतिहास एवं पुराण-श्रवण के विधान को पहले समय में जिस भाँति सुना है, वैसा ही वर्णन कर रहा हूँ ।१। पूँछने पर महातेजा एवं प्रभु भगवान् विरिञ्च

पृष्टोऽप्योचन्महातेजा विरिञ्चो भगवान्प्रभुः। हंत ते कथयाम्येष पुराणश्रवणे विधिम् ॥२
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्याशतं च यत् ॥३
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा॥४
प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः । महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां पठतां नृणाम् ॥५
शुक्लवस्त्रधरश्चैव चैलाजिनकुशोत्तरः। प्रदक्षिणत्रयं कुर्याद्या तस्मिन्देवता गुरौ ॥६
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं स्वासनं भजते ततः । दिक्पतिभ्यो नमस्कृत्य ॐ काराधिष्ठितानपि ॥७
पुस्तकं धर्मशास्त्रस्य धर्माधिष्ठानशाश्वतम् । आगमानां शिवो देवतन्त्रादीनां च शारदा ॥८
जामलानां गणपतिर्डामराणां शतक्रतुः । नारायणो भारतस्य तथा रामायणस्य च ॥९
वासुदेवो भवेद्देवः सप्तानां शृणु सत्तम ! आदित्यो वासुदेवश्च माधवो रामकेशवौ ॥१०
वनमाली महादेवः सप्तानां सप्तपर्वसु । विष्णुधर्मादिकानां च शिवो ज्ञेयः सनातनः ॥
अथ चादिपुराणस्य विरिञ्चिः परिकीर्तितः ॥११
शुद्धौदनं यवक्षीरं पायसं कृशरं तथा । कृशरान्नं च वा दद्यात्क्रमाद्बलिगणं विदुः ॥१२
शालिभक्तं सगोधूमं तिलाक्षतविनिश्रितम् । गव्यं च सफलं चैव देयश्चैभ्यस्त्वयं बलिः ॥१३
पृथक्पृथक्चैव कांस्ये विन्यसेद्दिक्षु मध्यतः । पठेच्चापि विधानेन स यागः षण्मयः परः ॥१४
शीतोदकं मधु क्षीरं सितेक्ष्वोश्च रसो गुडः । सगर्भश्च परो ज्ञेयः षण्मयश्चापरो बलिः॥१५
शालितण्डुलप्रस्थं तु तदर्धं वा तदर्धकम् । क्षीरेणापि च संभक्तं यवक्षीरमिदं स्मृतम् ॥१६

देव ने जो कुछ कहाथा, मैं उसी पुराण-श्रवण के विधान को बता रहा हूँ ! द्विजोत्तम ! भक्तिपूर्वक इतिहास-पुराणों के श्रवण करने से समस्त पाप यहाँ तक कि सैकड़ों ब्रह्म हत्याएँ भी नष्ट हो जाती हैं ।२-३। सायंकाल, प्रातःकाल तथा रात्रि के समय पवित्रतापूर्ण जो उसका श्रवण करता है, उसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर प्रसन्न होते हैं ।४। प्रातःकाल में भगवान्, सायंकाल में ब्रह्मा और रात्रि में सुनने अथवा पढ़ने वाले के ऊपर महादेव प्रसन्न होते हैं ।५। शुक्लवस्त्रधारणकर मृगचर्म तथा कुशों के आसन पर स्थित उस देव-गुरु की तीन प्रदक्षिणा करने के उपरान्त उस आसन पर जो अत्यन्त ही ऊँचा-नीचा न हो, स्थित होकर ओंकारपूर्वक दिक्पालों को नमस्कार करे, क्योंकि धर्मशास्त्र की पुस्तक, धर्म का सनातन अधिष्ठान रूप है। वेदों के प्रधान देव शिव, तंत्रों की शारदा देवी, जामलों के गणपति, डामरों के शतक्रतु (इन्द्र), महाभारत के नारायण, रामायण के वासुदेव, आदित्य, वासुदेव, माधव, राम, केशव, वनमाली और महादेव यही सातों पर्वों के अधीश्वर हैं, तथा उसी भाँति विष्णु धर्मादिकों के सनातन (अनश्वर) शिव एवं आदि पुराण के अधिपति विरिंचि भगवान् हैं ।६-११। शुद्धतापूर्ण बनाया गया भात, यव, क्षीर, खीर और कृशरान्न (खिचड़ी) क्रमशः इन्हीं की बलि प्रदान करनी चाहिए, तथा साठी चावल के भात, गेहूँ समेत तिल एवं अक्षत और फल सहित गाय के घी, दूध भी उन्हें प्रदान करे ।१२-१३। दिशाओं के मध्य में स्थित कांस्यपात्र में रखकर पृथक्-पृथक् बलि के निमित्त समर्पित कर विधानपूर्वक उसके पठन होने चाहिए, इसे षण्मय याग बताया गया है ।१४। शीतल जल, शहद, क्षीर, उसके सफेद रस (चीनी) गुड, इसी को षण्मय बलि कहते हैं ।१५। साठी चावल एक सेर, आधा सेर अथवा पाव भर के खीर बनाकर

क्षीरं भागाष्टकं प्राह्यं सप्तभागेन संस्थितम् । हैमन्तिकं सिताख्यं च ताण्डुलं प्रपचेच्चरुम् ।।१७
अशीतिपलमानेन सिद्धमासादयेत्ततः । भागार्धेन ददेत्पश्चान्माक्षिकं वा सितामपि ।।१८
गुडमिश्रेण यो दद्यात्सम्पर्को जायते क्वचित् । सम्पृक्तं माक्षिकेणापि दद्यादिक्षुरसं बुधः ।।
गृहीत्वा याचकः शुद्धः शृणुत द्विजसत्तमाः ।।१९
शृणुते वाधीयानो यो दद्याद्धस्ते च पुस्तकम् । समुत्थाय च गृह्णीयात्प्रणम्य विनिवेदयेत् ।।२०
पूर्वस्थः श्रावको विप्रो विख्यातस्तस्यदक्षिणे । पश्चिमाशामुखेनैव तर्जन्याङ्गुष्ठया सह ।।२१
प्रस्तरेणापि हस्तेन विन्यासः पण्डितैः सदा । इतोऽन्यथा न कर्तव्यः कृत्वा न्यासमथाप्नुयात् ।।२२
असकृद्विन्यसेद्विप्राः पावमानीं जले जपेत् । वेदान्तागमवेदान्तविधिरेष स्मृतो बुधैः ।।२३
यमदिक्संमुखे श्रोता वाचकश्चोत्तरामुखः । पुराणभारताख्यान एव वै कथितो विधिः ।।२४
वैपरीत्येन विधिना विज्ञेयो द्विजसत्तमाः । रामायणे धर्मशास्त्रे हरिवंशे च सत्तमाः ।।२५
इतोऽन्यथा यातुधानाः प्रलुम्पन्ति फलं यतः । तस्माद्विधिविधानेन शृणुयादथवा पठेत् ।।२६
श्रुत्वा प्रति पुण्यविद्यां योऽश्नीयान्मांसमेव तु । स याति गार्दभीं योनिं यदि मैथुनिनः क्वचित् ।।२७
यदि देवालये तीर्थे वाचयेच्छृणुयादथ । यस्य देवगृहे तस्य तस्य तीर्थस्य वर्णनम् ।।२८
माहात्म्यश्रवणादेव गोदानस्य फलं लभेत् । महागुरोश्च माहात्म्यं पित्रोरग्रे न च स्मरेत् ।।

बलि प्रदान करे, इसे यवक्षीर नामक बलि बताया गया है ।१६। आठवाँ भाग पृथक् रख कर दूध के शेष सात भाग में चीनी डालकर बनाये गये उस चावल के चरु को हैमन्तिक (बलि) बताया गया है । अस्सी पल (एक सेर) की खीर में आधाभाग शहद अथवा चीनी डालें, उसके प्रभाव में गुड़मिश्रित ही बनाये, विद्वानों को चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो, ऊख के रस के लिए ही प्रयत्न करें । द्विजसत्तम ! इस प्रकार याचक शुद्ध होकर (पुराण के) श्रवण करे, पुराण की पुस्तक कोई हाथ में प्रदान करना चाहे, तो उठकर उसे सादर ग्रहण कर प्रणामपूर्वक देव के सम्मुख उसका निवेदन करना चाहिए ।१७-२०। श्रवण करने वाले ब्राह्मण को पूर्वाभिमुख और उसकी दाहिनी ओर पश्चिमाभिमुख बैठकर वाचक सदैव अपनी तर्जनी और अंगूठे के द्वारा अथवा मणि एवं बहुमूल्य पत्थरों से विभूषित हाथ के द्वारा (पुराणों के भावों को) श्रोताओं को हृदयङ्गम कराये, इसके विपरीत न होने चाहिए ।२१-२२। जल में स्थित होकर पवमानी के न्यास करना आवश्यक बताया गया है, विद्वानों ने इसे ही वेदान्त विधान कहा है ।२३। श्रोता को दक्षिणाभिमुख तथा वाचक को उत्तराभिमुख होकर पुराण एवं महाभारत के श्रवण-परायण करने के विधान बताये गये हैं ।२४। द्विजसत्तम ! इसके विपरीत रामायण, धर्मशास्त्र और हरिवंश के श्रवण-परायण के विधान कहे गये हैं ।२५। इसके प्रतिकूल अनियिमित श्रवणादि करने से उसके फलों को यातुधान (राक्षस) नष्ट कर देते हैं, इसलिए विधानपूर्वक ही श्रवण-पारायण करने चाहिए ।२६। इन पुण्यविद्याओं के श्रवण करने पर भी जो मांस भोजन करता है, उसे एवं मैथुन करने वाले को गधे की शरीर धारण करनी पड़ती है ।२७। जहाँ तक सम्भव हो सके तो किसी देवालय अथवा तीर्थ में श्रवण करना चाहिए, क्योंकि किसी भी देवालय या तीर्थ में उसके वर्णनपूर्वक केवल माहात्म्य का ही श्रवण करने से गोदान के फल प्राप्त होते हैं । माता-पिता के सम्मुख महागुरु के महत्त्व की चर्चा न करनी चाहिए, प्रत्येक

पितुर्माहात्म्यं यत्पुत्रैर्वाच्यं संसदि पर्वणि ॥२९
वासुदेवाग्रतश्चापि रुद्रमाहात्म्यवर्णनम् । रुद्राग्रे वासुदेवस्य कीर्तनं पुण्यवर्धनम् ॥३०
दुर्गाग्रे शिवसूर्यस्य वैष्णवाख्यानमेव च । यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत् ॥३१
गुरोरनुज्ञया पित्रोः प्रकुर्यादभिवादनम् । अनुज्ञया तथा पित्रोर्हरेः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥३२
न विष्णुर्न च ब्रह्मा न च रुद्रः शचीपतिः । सर्ववेदेन तत्तुल्यं सर्वधर्मपरायणम् ॥३३
सर्वज्ञानमयं चैव सर्वज्ञेन च तत्समम् । तस्माद्द्विजन्मन्पित्रोर्हि सेवनाद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥३४
गुरुभ्यो वन्दनं व्यर्थं पितरं यो न तर्पयेत् । जीवन्न तर्पयेन्मुख्यं गङ्गायां मरणेऽपि च ॥
उभयोस्तर्पणं नास्ति जीवन्नपि न जीवति ॥३५
व्यर्थं भागवतं विप्रा नारसिंहविहीनकम् ॥३६
आदिपर्वणि हीने तु भारताख्यं न धारयेत् । विनाश्वमेधिकं विप्रा विना यज्ञाननं विना ॥३७
दानकर्मविहीनं च मोक्षधर्मं न धारयेत् । भारतं च दिवारोहधारणादौ वरं व्रजेत् ॥३८
वायुपुराणमश्रुत्वा शास्त्रं च यौगिकं विना । वायुहीनं देहिकुलं वृथा तस्य न धारकम् ॥३९
तथा वायुपुराणं यद्विहीनं श्रव्यमन्यकम् । यथा सुन्दरकाण्डेन आरण्यं च न धारयेत् ॥४०
लङ्कां विना चादिकाण्डं तल्लिखित्वा न धारयेत् । पाराशरं विना व्यासं याज्ञवल्क्यं विना मखम् ॥४१
दक्षं विना न शङ्खं च शङ्खहीनं बृहस्पतिम् । वह्नीयं श्रवणाद्येन न च युक्तिमथापयेत् ॥४२

पर्व के दिनों में एकचित्त मनुष्यों के समक्ष पुत्र ही अपने पिता के महत्त्व की व्याख्या करे।२८-२९। भगवान् वासुदेव के सम्मुख रुद्र माहात्म्य तथा रुद्र के समक्ष वासुदेव के माहात्म्य का वर्णन करना पुण्यवर्धक होता है।३०। दुर्गाजी के सम्मुख शिव, सूर्य एवं विष्णु के माहात्म्य का वर्णन जो करता है, उस मूढ़ को गधा होना अनिवार्य होता है।३१। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर माता-पिता, का अभिवादन तथा माता-पिता की आज्ञा प्राप्त होने पर हरि की प्रदक्षिणा अवश्य करनी चाहिए।३२। विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र एवं इन्द्र भी उनकी समता प्राप्त नहीं कर सकते, सर्वधर्मों के पारायण होने के नाते केवल वेद ही उनकी समता के योग्य है, क्योंकि वह समस्त ज्ञानमय है और वे सर्वज्ञ हैं, इसीलिए उन दोनों की समता अनुचित नहीं कही गयी है, अतः द्विजन्मन् ! माता-पिता की सेवा करने से ब्रह्मा की प्राप्ति होती है। जो अपने माता-पिता के तर्पण नहीं करता है, उसकी गुरु-वन्दना व्यर्थ हो जाती है, उनके जीवित रहने पर तर्पण करना अनुचित है और गंगा में प्राणान्त होने पर भी तर्पण करना अनावश्यक है, क्योंकि जीवित के तर्पण करने पर उसके जीवित रहने पर भी वह जीवित नहीं कहा जा सकता है।३३-३५। पुराणों का श्रवण करना पुण्य बताया गया है, किन्तु भागवत-विहीन के श्रवण में नहीं। विप्रगण ! नरसिंह चरित्रहीन भागवत-श्रवण भी पुण्यदायक नहीं होता है।३६। विप्रवृन्द ! आदिपर्व, अश्वमेध के पर्व, यज्ञप्रमुखपर्व हीन महाभारत का श्रवण भी व्यर्थ-सा कहा गया है।३७। दान कर्म-विहीन मोक्ष धर्माचरण न करना चाहिए। स्वर्ग-प्रस्थान के समय एवं नियमों के विवेचनपूर्वक पालन करने के लिए महाभारत का श्रवण आवश्यक होता है।३८। प्राण-वायुहीन प्राणी का रहना सर्वथा असम्भव है, उसी भाँति योगशास्त्र बिना तथा वायु पुराण के श्रवण बिना (अन्य के श्रवण) व्यर्थ है।३९। जिस प्रकार सुन्दरकाण्ड के पश्चात् आरण्यकाण्ड के पारायण आदि नहीं होते उसी भाँति वायुपुराणहीन अन्य (पुराणों) के श्रवण भी।४०। आदिकाण्ड के बिना केवल लङ्काकाण्ड को लिखकर न धारण करना चाहिए, उसी भाँति पाराशर के बिना व्यास, याज्ञवल्यक्य के बिना मख (यज्ञ),

द्यावापृथिव्यौ पातालं तस्यान्तः समुदाहृतम् । पौराणिककथायुक्तपुस्तको देवपूजितः ॥६८
न शस्यः पूजनीयश्च गृहे स्थाप्येत मानवः । यो यस्मै शूद्रो विप्राय वृत्तिं दद्याच्च मानवः ॥६९
स याति ब्रह्मसदनं मणिवर्त्मादिकुट्टिमम् । न शस्यः पूजनीयश्च गृहे स्थाप्येत मानवः ॥७०
पत्राणामग्रभागे तु वेधं कुर्यात्सुवर्तुलम् । श्रवणाग्र मात्रेण तत्र पद्मं च वर्तुलम् ॥७१
संहितागमतन्त्रेषु प्रतिवेधे च सङ्कुलम् । प्रकुर्याच्चित्ततापेन ततः शक्रपुरं व्रजेत् ॥७२
मध्यं तस्य हरेदायुः पार्श्ववेधः शिवं हरेत् । युग्मवेधे जयं दद्यादेकवेधे बलिर्भवेत् ॥७३
परमं प्रकृतेर्गुह्यं स्थानं देवैर्विनिर्मितम् । पूरयेत्ताम्रलिङ्गेन अथ रैत्यमयेन वा ॥७४
अशक्तो बिल्वकाष्ठस्य तथा श्रीपर्णिकस्य च । न काष्ठस्य नवं शस्यं न लौहं योजयेत्क्वचित् ॥७५
प्रागारम्भश्लोकशतं धर्मशास्त्रस्य वै लिखेत् । संहितायां पुराणायां युग्मकल्पं तदर्धकम् ॥७६
ब्रह्मचर्येण विलिखेन्न मोहाद्ब्रह्मणः क्वचित् । तथापि चाखिलव्यासलेखनात्सन्ततिक्षयः ॥७७
अनामत्वे हेमयुतां बलाकं चित्तमेव च । न लिखेत्खिलभागं च हरिवंशस्य सत्तमाः ॥७८
गारुडस्य च स्कान्दस्य न लिखेन्मध्यतन्त्रकम् । लेखनं हरिवंशस्य व्रतस्थो नियमैर्युतः ॥७९
गृहस्थो न लिखेद्ग्रन्थं लिखेच्च मथुरां विना । लेखने पारिजातस्य मत्स्यमांसाशिनं लिखेत् ॥८०

दूसरे चरण से आबद्ध होने को काम-रूप तथा आकाश, पृथिवी एवं पाताल रूप उसका मध्य भाग बताया गया है। इस पौराणिक कथाओं समेत वह पुस्तक देवों द्वारा सम्मानित होती है।६७-६८। मनुष्यों को चाहिए कि उस प्रशस्त एवं पूजनीय पुस्तक को घर में स्थापित न करें। जो शूद्र किसी ब्राह्मण के लिए जीविका प्रदान करता है, उसे मणिविभूषित मार्ग एवं कुट्टिम (भूमि के ऊपरी भाग) वाले ब्रह्ममन्दिर की प्राप्ति होती है। प्रत्येक पत्रों के अग्रभाग में सौन्दर्यपूर्ण गोलाकार वेध तथा गोलाकार के पद्म की रचना करनी चाहिए।६९-७१। संहिता, आगम (शास्त्र) एवं तन्त्रों के प्रत्येक वेधों में संतप्तचित्त द्वारा संकुल की रचना करने से इन्द्रपुर की प्राप्ति होती है।७२। (उसके) मध्य में वेधनिर्माण द्वारा आयु-क्षय, पार्श्व भाग में वेध करने से शिव (कल्याण) के अपहरण, युग्मवेधों द्वारा जय की प्राप्ति और एक वेध द्वारा बलि प्राप्ति बताया गया है।७३। प्रकृति के दैव द्वारा निर्मित उस परम गुह्य स्थान की पूर्ति ताँबे अथवा पीतल द्वारा होनी चाहिए।७४। समर्थता के कारण वेल के काष्ठ या सेमर के काष्ठ द्वारा उसकी पूर्ति करनी चाहिए, किन्तु किसी वृक्ष के नये फल अथवा लोह द्वारा उसकी पूर्ति कभी न करे।७५। धर्मशास्त्र के लिखते समय आरम्भ करने पर सौ श्लोकों के उपरान्त ही विराम करना चाहिए। इसी प्रकार प्राचीन संहिताओं के एक कल्प के पश्चात् ही विराम करें। ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक उसका लेखन-विधान बताया गया है,कभी भी मोह के आवेश में आकर उसके स्खलन न होने पाये। तथापि (नियमपूर्वक रहने पर भी) संतान-क्षय हो जाता ही है।७६-७७। सत्तम ! उसके लेखक के नाम न लिखने पर भी वही दोष बताया गया है, चंचलचित्त होकर कभी न लिखना चाहिए तथा हरिवंश का लेख कभी अधूरा न करें।७८। गरुड़ पुराण एवं स्कन्दपुराण के मध्य में स्थित तन्त्र भाग को न लिखना चाहिए। व्रत एवं नियम पालनपूर्वक ही हरिवंश का लिखना बताया गया है, गृहस्थ को ग्रन्थ-लेखन न करना चाहिए, किन्तु यदि लिखना ही चाहे, तो मथुरा का त्याग करके लिखे। पारिजात के लिखने में मत्स्य-मांस भोगी का ही उल्लेख करना

वाल्मीकिसंहितायाश्च लेखने च तथा क्वचित् । स्तोत्रमात्रं लिखेद्विप्रा अव्रती न लिखेत्क्वचित् ॥८१
अब्राह्मणेन लिखितं निष्फलं परिकीर्तितम् ॥८२
पतितैरपि पाखण्डैर्न स्त्री विलिखति क्वचित् ! दुर्विचारो दुष्टभार्यो दुर्मतिश्चापि लेखकः ॥
न लिखेद्धर्मशास्त्रं च पुराणं स्तोत्रसंहितम् ॥८३
तत्र प्राप्नुवन्कर्तव्यं सुवर्णरजतस्य च । कज्जलैर्नीलनं कुर्यान्मन्त्री निर्यासमन्त्रितैः ॥८४
जीवन्त्याश्च रसैर्युक्तैर्मणिकर्दमलोलुपैः । वङ्गुन्यान्मुख्यायुतैर्वापि पीतयोगैरथापि वा ॥८५
कृष्णे वायुप्रदं विद्यात्पीते वायुक्षयो भवेत् । रक्ते पुष्टिमवाप्नोति कृष्णे च सम्पदागमः ॥८६
इतिहासपुराणानां विलिखेद्यन्मुखाच्छृणु । वायव्यादिमुखेनैव काष्ठवेदं च संलिखेत् ॥८७
पूर्वामुखे चार्थहानिरुत्तरे च मुखे श्रियः । मरणं दक्षिणास्ये तु पश्चिमास्ये धनक्षयः ॥८८
पितृमेधे भुवः कम्पे न लिखेज्जन्मवासरे । अशौचे मृतके सूतावमायां रविसङ्क्रमे ॥८९
अत्र लेखाद्दरिद्रः स्यात्तथा पुत्रविनाशनम् । बलधर्मं क्षयं चैव तस्माद्यत्नेन वर्जयेत् ॥९०
पितृश्राद्धदिने लेखः कुलक्षयकरो भवेत् । एकरात्रं भुवः कम्पे तस्मिँल्लेखे धनक्षयः ॥९१
अशौचेऽपि दरिद्रः स्याज्जन्माहे चायुषः क्षयः । लिपिच्छन्दःपदज्ञश्च युवा धीमाञ्जितासनः ॥९२
द्रुतलेखी च तेजस्वी यो लेखयति लेखकः । असंवलितभावेन ऊर्ध्वोर्ध्वे स्यात्समाक्षरम् ॥९३

चाहिए । यदि कभी बाल्मीकि-संहिता को लिपिबद्ध करने की इच्छा हो, तो केवल स्तोत्रमात्र ही लिखना चाहिए, तथा विप्रवृन्द ! व्रतहीन होकर कभी न लिखना चाहिए ।७९-८१। इसी भाँति किसी अब्राह्मण का लिखा निष्फल बताया गया है ।८२। पतित, पाखण्डी एवं स्त्री के लिए लिखने का विधान नहीं है, एवं दूषित विचार वाले, दुष्टा स्त्री के पति और अविवेकी को कभी लेखक न बनना चाहिए, यदि लिपिबद्ध करना ही चाहता है, तो धर्मशास्त्र, पुराण, स्तोत्र एवं संहिता के अतिरिक्त अन्य किसी का उल्लेख कर सकता है ।८३। सुवर्ण या चाँदी के पात्र में, गोंद, काजल, मणिकर्दम (जालामिश्रित) जीवन्ती (गुरचि) के रस समेत, इन्हीं द्वारा मसी (स्याही) बनाये उसमें राङ्गा (धातु) भी डाले । हरिताल एवं हरदी मिश्रित करने का भी विधान बताया गया है, पर कालारंग वायुयुद्ध, पीत से वायुप्रद, रक्तवर्ण से पुष्टि तथा कृष्णवर्ण की स्याही से धनागम होता है ।८४-८६। इतिहास पुराणों को किस दिशा के सम्मुख बैठकर लिखना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! प्रथम दिशाओं के ज्ञानपर्वूक वायव्यादि प्रशस्त दिशाओं की ओर मुख करके लिखना आरम्भ करना चाहिए । पूर्वाभिमुख होकर लिखने से अर्थ हानि, उत्तरमुख से लक्ष्मी, दक्षिणाभिमुख से मरण एवं पश्चिमाभिमुख होकर लिखने से धन नाश होता है ।८७-८८। पितृ-श्राद्ध, पृथिवी के हिलने (भूचाल) एवं जन्म के दिवस में न लिखना चाहिए। दोनों प्रकार के अशौच, अमावस्या तथा संक्रान्ति के दिन लिखने से दरिद्रता, पुत्रनाश, बल-तथा धर्म का क्षय प्राप्त होता है। इसलिए इसके त्याग के लिए विशेष सावधान रहना चाहिए ।८९-९०। पितृ-श्राद्ध के दिन लिखने से कुल का नाश होता है, एक रात्रि के भूचाल के दिन लिखने से धन क्षय, अशौच में दरिद्रता, जन्मवासर में आयु क्षीण होती है । लिपि, छंद एवं शब्द के ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा तेजस्वी उस युवा लेखक को चाहिए कि इन्द्रियसंयमपूर्वक आसन पर बैठकर असंवलित भाव रखकर द्रुतगति से लिखना आरम्भ करे, (पंक्ति में)

लिपियुक्तः समायुक्तः एवागमलेखकः । नान्दीनागरकैर्वर्णैः शुद्धनागरकैरपि ॥९४
कामरूपाक्षरैर्वापि यावच्च संहितागणः । अचेतनेन लिखितं यावत्कालं प्रवर्तते ॥९५
यावदक्षरसंस्थानं तावत्स्वर्गे महीयते । अनुक्तो वाचयेद्यस्तु धर्मशास्त्रस्य वेतनम् ॥९६
लिखित्वा यस्तु पापात्मा यावदक्षरसंख्यया । तावत्कालं तु नरके पच्यते नात्र संशयः ॥९७
कुटुम्बभरणार्थं तु गृह्णीयाद्वापि वेतनम् । न जीवति स दुष्टात्मा धनवस्त्रफलान्वितः ॥९८
पतितैरन्त्यजैर्म्लेच्छै रोगी कुष्ठी क्षयी तथा । रोगी शिलीपदश्चैव मूकोऽपि धर्मसंहृतः ॥९९
एतैर्विलिखितं यच्च धारयेन्न गृहाश्रमी । अनायुष्यकरं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१००
हीनांगा प्रतिमा चैव पुस्तकं मानहीनकम् । न कलौ धारयेद्देह अनायुष्यकरं भवेत् ॥१०१
द्वात्रिंशदङ्गुलैर्युक्तं कर्तव्यं पुस्तकोत्तमम् । स वै नारायणः ख्यातो धारणाच्च कुतोऽप्यलम् ॥१०२
चतुर्विंशाङ्गुलं यच्च तद्वै स्वधनमुच्यते । शङ्करः स तु विज्ञेयो धर्मकामफलप्रदः ॥१०३
अष्टाङ्गुलं भवेद्यच्च तत्कनिष्ठमिहोच्यते । तस्माद्ब्रह्ममयं ज्ञेयं त्रिवर्गफलदायकम् ॥१०४
ताडिता जलपत्रे च अथ वा चागुरत्वचि । एत्याः पत्रकृते मानं भूर्जे मानं न विद्यते ॥१०५
द्वादशाङ्गुलकं यच्च भूर्जतैडादिनिर्मितम् । अङ्गुलानां प्रमाणं यत्तेनापि ज्ञानपुस्तकम् ॥१०६

ऊपर-ऊपर के अक्षरों को समान रक्खे, इस प्रकार समाधिस्थ पुरुष की भाँति तन्मय होकर लिपिबद्ध करने वाले को ही आगम लेखक बताया गया है। नांदी नागरक (जिस नागरी लिपि के प्रयोग करने पर देव तथा पितृगण प्रसन्न होते हैं) अथवा शुद्ध नागरी लिपि में सुन्दर अक्षरों द्वारा उसे आबद्ध करना चाहिए। अचेतन द्वारा लिखने पर वह जितने समय तक वर्तमान रहता है, और उसमें जितने अक्षरों के समावेश किये गये हों, उतने दिनों तक वह (लेखक) स्वर्ग में सम्मानित होता है। बिना पूँछे ही अथवा वेतन लेकर धर्मशास्त्र की व्यवस्था देने एवं लिखने वाले उस पापी को उन अक्षरों कीसंख्या के समान दिन तक नरक का अनुभव करना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं।९१-९७। परिवार के पालन-पोषण के लिए भी जो वेतन ग्रहण करता है, धन, वस्त्र एवं फल युक्त रहने पर भी वह दुष्टात्मा (अधिक दिन) जीवित नहीं रहता है।९८। पतित, शूद्र, चाण्डाल, म्लेच्छ, रोगी, कुष्ठी, क्षयी का रोगी, पीलपाँव वाला और गूंगे द्वारा लिखे गये का उपयोग गृहस्थ को न करना चाहिए, उसके उपयोग करने पर आयु क्षीण होती है, अतः उसका त्याग ही श्रेयस्कर बताया गया है।९९-१००। हीन अंग वाली प्रतिमा (मूर्ति) और असम्मानित पुस्तक के उपयोग कलियुग में करने से आयु क्षीण होती है।१०१। पुस्तक का आकार बत्तीस अंगुल के प्रमाण का होना चाहिए, ऐसी उत्तम पुस्तक का ख्याति प्राप्त नाम नारायण होता है, उसके धारण करने में कौन असमर्थ हो सकता है? (अर्थात् कोई नहीं) चौबीस अंगुल प्रमाण के अक्षर वाली पुस्तक का शंकर नाम होता है, उससे धर्म एवं कामनाएँ सफल होती है।१०२-१०३। आठ अंगुल के आकार वाली पुस्तकों को 'कनिष्ठ' कहा गया है, इसलिए उसे ब्रह्ममय एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की सफलता का प्रदायक जानना चाहिए।१०४। जलपत्र अथवा अगुरु की त्वचा (छाल) इन्हीं पत्रों पर लिखने के लिए पुस्तक के आकार-प्रमाण की आवश्यकता बतायी गयी है, और भोजपत्र को पुस्तकाकार बनाने में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।१०५। बारह अंगुल प्रमाण के आकार की बनायी गयी वह भोजपत्र, अथवा तैड

हस्तसंस्थापिते तस्य तेनायुष्यकरं भवेत् । धर्मशास्त्रस्य साहस्रे धर्मशास्त्रस्य वेतनम् ॥१०७
स्वर्गमार्गस्य गमने भारते च तदर्धकम् । हरिवंशे स्वर्णमाने कृते मूल्यसहस्रके ॥१०८
युगे युगे पादहीनं धर्मं कुर्याद्यथारुचि । प्रणम्य शिरसा सर्वान्व्यासादीन्संहिताश्रुतान् ॥१०९
जैमिनिं च ततो व्यासं शङ्करं च तथा हरिम् ।नमस्कारमथैषां तु आदिमध्यावसानके ॥११०
ततः प्रवाचयेद्विप्रो धर्मशास्त्रार्थकोविदः । अलक्षितमनास्तद्वद्यद्रूपं स्पष्टमुच्चरन् ॥१११
असंयुक्ताक्षरपदं स्पष्टभागसमन्वितम् । सप्तस्वरसमायुक्तं सप्तनादविभूषितम् ॥११२
सामगाथाः समाश्रित्य रागयुक्तान्तरं पठेत् । मणिवारोधनं यत्स्याद्गौरान्धा सन्तिकस्तथा ॥११३
श्रीरागश्चैव हिल्लोलरागो वाजाविकस्तथा । एवं प्रक्रमनाणेन भृणुयाद्धर्मसंहिताः ॥११४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चापि विशेषतः । अश्वमेधमवाप्नोति सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
पापैः प्रमुच्यते सर्वैर्महापुण्यं च विन्दति ॥११५
शूद्राणां पुरतो वैश्यो वैश्यानां क्षत्रियः परः । क्षत्रियान्ते तथा विप्राः भृणुयुश्चाग्रतः सदा ॥११६
न शूद्रः कथयेद्धर्मांस्तपअध्यापने तथा । नैह्किकत्वं परत्वं च न शुभं न परां गतिम् ॥११७

आदि की पुस्तक भी अंगुल प्रमाण के नाते ज्ञान पुस्तक ही कही जाती हैं।१०६। उसे हाथ में लेकर पढ़ने से आयुवृद्धि होती है। धर्मशास्त्र की एक सहस्र प्रतियाँ लिखने पर उसका वेतन ग्रहण करना चाहिए।१०७। महाभारत के स्वर्गारोहण वाले पर्व के लिखने में उसका अर्धभाग वेतन के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसी भाँति हरिवंश को लिपिबद्ध करने में एक सहस्र सुवर्ण प्रत्येक युगों में व्यास आदि प्रमुख ऋषियों को, जों संहिता के निष्णात विद्वान् हैं, शिर से प्रणाम करके पादहीन धर्म का पालन यथेच्छ करना चाहिए।१०८-१०९। पश्चात् जैमिनि, व्यास, शंकर और हरि इन लोगों को नमस्कार करे, ग्रन्थ के आदि, मध्य एवं समाप्ति में नमस्कार करने का विधान बताया गया है।११०। पुराण के पारायण में भी धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ को उचित है कि नमस्कारपूर्वक ही उसका आरम्भ करें, तथा धीर-गम्भीर स्वभाव से उसका इस प्रकार उच्चारण करें जिससे सभी को वह स्पष्ट सुनाई पड़े।१११। उसके अक्षर एवं पदों के स्पष्ट उच्चारण करते हुए सप्तस्वर एवं सातों ध्वनियों के भी विशेष ध्यान रखने चाहिए। सामवेद की गाथाओं की भाँति इसमें भी अनेक भाँति के रागों के प्रयोग किये जाते हैं—[1]मणिवारोधन, गौरान्ध, संतिक, श्रीराग, हिल्लोल राग तथा वाजाविक इन्हीं रागों के क्रमशः प्रयोगपूर्ण संहिता के श्रवण करना चाहिए।११२-११४। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं विशेषकर शूद्र अश्वमेध के फल की प्राप्तिपूर्वक अपनी समस्त कामनाएँ सफल करते हैं तथा समस्त पापों की मुक्तिपूर्वक महान पुण्यों की प्राप्ति भी करते हैं।११५। उसे सुनने के लिए शूद्रों के सामने वैश्य, वैश्यों के सामने क्षत्रिय, क्षत्रियों के अग्रभाग में ब्राह्मणों को स्थित होकर सदैव प्रत्येक में इसी प्रकार की पंक्तियों से आबद्ध होकर सुनना चाहिए।११६। शूद्रों को तप अध्यापन आदि कोई भी धार्मिक प्रवचन न करना चाहिए, उसी भाँति लोक-परलोक, धर्म एवं उत्तम गति की प्राप्ति के

---

१. केवल सतयुग में धर्म अपने चारों चरणों से पूरित रहता है और त्रेता आदि युगों में क्रमशः एक-एक चरण की कमी होती जाती है।

शूद्रेणाधिगतं नास्ति विशेषाच्छब्दलक्षणम् । यद्द्विजस्य कृतो दासो ब्रह्मणाऽव्यक्तयोनिना ।।११८
श्वशृगालखरीक्षीरमपेयं हि यथा भवेत् । एवं शूद्रमुखाद्धर्मा न ग्राह्याः शब्दसंस्कृताः ।।११९
अमेध्यं शुध्यते तोयैः शूद्रः श्रोता हि शुद्ध्यति । एवं शूद्रोऽप्यशुचिः स्याद्यदि व्याकरणार्थवित् ।।१२०
यः शूद्र उद्दिशेद्धर्मं तथा चागमवैदिकम् । स वै वध्यो नरेन्द्रेण जिह्वां चक्रेण छेदयेत् ।।१२१
बुध्यमानः सदा ह्यर्थं ग्रन्थार्थं कृत्स्नमेव च । य एवं कथयेत्सम्यक्स विप्रो व्यास उच्यते ।।१२२
वसेत्स पत्तने ग्रामे पुण्ये देशे स कीर्तितः । ते धन्यास्ते कृतात्मानस्ते कृतार्था न संशयः ।।
वसन्ति पत्तने तस्मिन्व्याख्याता यत्र संवसेत् ।।१२३
यथार्कहीनं दिवसश्चन्द्रहीना यथा निशा । न रराज सभा तद्वद्व्यासेन रहिता द्विजाः ।।१२४
यद्गृहे नैव शिशवो न रराज गृहं क्वचित् । यथैकतो ग्रहाः सर्वे एकतस्तु दिवाकरः ।।
तथैव सोदरगेहे दृष्ट्वा पुष्करदर्शनम् ।।१२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

अङ्कमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

शृणुध्वं विप्रसन्घाताः पुराणं देवसंमतम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापात्पुरुषो ब्रह्महत्यया ।।१

लिए चेष्टा भी न करनी चाहिये।११७। शूद्रों को विशेषकर शब्दशास्त्र (व्याकरण) का अध्ययन वर्जित किया गया है, क्योंकि ब्रह्मयोनि ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणों का दास बनाया है ।११८। जिस प्रकार कुतिया शृगाली एवं गधी के दूध को पान करने के अयोग्य बताया गया है, उसी भाँति शूद्रों के मुख से निकले धार्मिक संस्कृत शब्द, श्रवण-मनन के अयोग्य हैं।११९। अपवित्र वस्तु जल से पवित्र की जाती है, उसी प्रकार शूद्र (पुराणादिक) सुनने से शुद्ध होता है । व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने वाला शूद्र नितान्त अपवित्र होता है। राजाओं को शास्त्रीय अथवा वैदिक धर्मों के उपदेष्टा शूद्रों का वध तथा चक्र अस्त्र द्वारा उनकी जिह्वा कटवा लेनी चाहिए।१२०-१२१। सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थ उसके मर्मस्थलों के विशेषज्ञ एवं सुन्दर ढंग से उसकी व्याख्या करने वाले ब्राह्मण को व्यास कहा गया है।१२२। जिस ग्राम, या नगर में ऐसे ब्राह्मण का निवास होता है, वह पुण्य प्रदेश बताया गया है, इस प्रकार व्याख्याता जिस नगर आदि में निवास करता है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं।१२३। द्विजगण ! सूर्यहीन वासर और चन्द्रहीन रात्रि की भाँति, व्यास की अनुपस्थिति में सभा सुशोभित नहीं होती है। जिस घर में बच्चे न हों, उस घर की शोभा कभी नहीं हो सकती है। जिस प्रकार एक ओर समस्त ग्रह सुशोभित हैं और एक ओर सूर्य, उसी भाँति घर में भ्राताओं के बीच में बालकों को देखकर एक महान् आह्लाद उत्पन्न होता है।१२४-१२५

श्री भविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

अंक माहात्म्य का वर्णन

सूतजी बोले—विप्रवृन्द ! देव सम्मत उस पुराण को, जिसके सुनने से पुरुष पाप एवं ब्रह्म हत्या से

तृतीयं शैवमाख्यातं ततो भागवतं परम् । पञ्चमं च तथा मात्स्यं भविष्यं षष्ठमुच्यते ।।२
असामर्थ्ये च मात्स्योक्तं वैष्णवं च भविष्यकम् । भारते चापि [1]पर्वं च शान्तिभैष्मीयकं तथा ।।३
पराशरमतं गृह्यं गोभिलोक्तानि यानि च । कात्यायनोक्तमपरमभ्यसेन्निगमादितः ।।४
अन्तरेणागते मर्त्ये शास्त्रं नाध्यापयेत्क्वचित् । एकरात्रं गते मर्त्ये त्रिरात्रमजमेषयोः ।।५
मण्डूके पञ्चरात्रं तु सर्पे रात्रिचतुष्टयम् । सम्वत्सरं तु तुरगे गजे द्वादशवत्सरान् ।।६
मासमेकं खरे काके स्थानत्यागान्न कुत्रचित् । केरवे वा रवे चैव अहोरात्रं प्रचक्षते ।।७
त्रिरात्रमपि मार्जारे नकुले मूषके खरे । हंसे दिनमनध्यायं क्षुद्रजन्तौ न दूषणम् ।।८
अध्यापयेद्गुरोः पुत्रं मानिनं धार्मिकं शुचिम् । भक्तं शान्तं वैष्णवं च जितक्रोधं जितेन्द्रियम् ।।९
अध्यात्माध्यापयेदेभ्यः शठं पापहरं द्विषम् । अन्यायेनैव यच्छतमभयं दाम्भिकं द्विषम् ।।१०
निरर्थकं मन्थरं च विशुश्रूषुमयाजकम् । षण्डं चैवानृजुं क्रुद्धं कृपणं व्यसनार्थिनम् ।।११
निन्दकं चाविधिज्ञं च दूरतः परिवर्जयेत् । अप्रच्छन्ननतं ब्रूयात्पुत्रपौत्रादिकादृते ।।१२
विद्यया सह मर्तव्यं न दद्यान्च पृथग्जने । अतो विद्या वदत्येवं पाठयन्तं द्विजोत्तमम् ।।१३
मा दद्याद्भक्तिहीनाय दुर्जनाय दुरात्मने । अप्रमादाय विप्राय शुचये ब्रह्मचारिणे ।।१४

मुक्त हो जाता है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीसरे शिव पुराण, चौथे भागवत, पाँचवें मत्स्य, छठवे भविष्य पुराण का श्रवण करना चाहिए, यदि किसी प्रकार इन्हें श्रवण करने में असमर्थता हो तो, मत्स्य पुराण, भविष्यपुराण तथा महाभारत के शांति और भीष्मपर्व का ही श्रवण करे।१-३। पराशर के विचार-विमर्श (स्मृतियों) गृह्यसूत्र, गोभिल द्वारा रचित समस्तग्रन्थ तथा कात्यायन सूत्र तक का अध्ययन मनन, निगम (निरुक्त) के प्रारम्भ से लेकर करना चाहिए।४। शिष्य और गुरु के अध्ययन एवं अध्यापन के समय उनके बीच से किसी मनुष्य के आ जाने पर एकरात्र, भेड़-बकरी के आने पर तीन दिन, मेढक के आने पर पाँच रात, साँप के आने पर चार रात, घोड़े के आने पर एक वर्ष, हाथी के आने पर बारह दिन, गधे तथा कौवे के आने पर एक मास तक अनध्याय रखना चाहिए। स्थान त्याग करने पर अनध्याय कभी न करें, निन्दित शक एवं (उत्पात के) शक सुनने पर दिन-रात, बिल्ली, नेवला, चूहा एवं गधे के आने पर तीन रात का भी अनध्याय होता है, उसी भाँति हंस के आने के एक दिन का अनध्याय बताया गया है, तथा और छोटे-छोटे जीवों के आने पर कोई दोष नहीं होता है।५-८। उस गुरु पुत्र को पढ़ाना चाहिए, जो ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शांत, वैष्णव, क्रोधरहित, एवं इन्द्रियसंयमी हो।९। किसी भी अध्यात्म पुरुष को शठ, पापी, द्वेषी, अन्याय से देने वाला, निर्भीक, दम्भी, शत्रु, व्यर्थ की बातें करने वाला, मंथर गति वाला, गुरु सेवा न करने वाला, यज्ञ-पूजनहीन, षण्ड नपुंसक, कुटिल, क्रोधी, कृपण (कायर), व्यसनी, निंदक, विधि न जानने वाला, इस भाँति के पुरुषों को न पढ़ाना चाहिए, प्रत्युत, दूर से देखते ही इनका त्याग करे, केवल अपने पुत्र-पौत्र के अतिरक्ति और सभी लोगों से नम्रता प्रकट करते हुए बात-चीत करनी चाहिए।१०-१२। विद्या को साथ लिए मर जाये किन्तु उपरोक्त ऐसे किसी पुरुष को कभी न प्रदान करे, इसीलिए पढ़ाने वाले ब्राह्मणों से विद्या कहती है कि—भक्तिहीन, दुर्जन एवं दुष्ट को मुझे न प्रदान करो।

---

१. अदन्तत्वमार्षम् ।

सार्थकाय विधिज्ञाय साधवे देहि सत्तम । दद्याद्यदि निषिद्धाय विद्याधनमनुत्तमम् ।।१५
तयोरेकतरो गच्छेदचिरेण यमक्षयम् । अन्यायेन ग्रहं विद्यामन्यं पाठयते सुखात् ।।१६
स याति नरकं घोरं विद्यावर्ज्यः स उच्यते । आध्यात्मिकं वैदिकं चालौकिकं वाथ यो वदेत् ।।१७
मानमादौ प्रणम्याथ ततोऽधीयीत सुव्रतः । कर्मकाण्डं ज्योतिषस्य तद्विना न समभ्यसेत् ।।१८
चूतभागसमभ्यासाद्दरिद्रश्चाभिजायते । वादभागसमभ्यासाद्धननाशाय जायते ।।१९
निधिभागसमभ्यासाज्जायते नारके कुले । यान्यनुक्तानि शास्त्राणि माननीयानि यानि च ।।२०
म्लेच्छोक्तानि महिम्नानि नाभ्यसेद्दूरतस्त्यजेत् । लोकानां ज्ञानवृद्ध्यर्थं यः कुर्याद्धर्मसङ्ग्रहम् ।।२१
प्रवर्तयित्वा स गुरुर्भवेज्ज्ञानप्रदः पिता । ज्ञानदाता च लोकानां तेषु धर्मः प्रवर्तते ।।२२
निगमानां ज्योतिषाणां वेदानां नाटकस्य च । व्याख्यानसङ्ग्रहं कृत्वा कलौ नाशमवाप्नुयात् ।।२३
वेदानां धर्मशास्त्राणां पुराणानां तथैव च । मीमांसाज्योतिषां चैव नाटकानां विरञ्चिनी ।।२४
भागावसाने कथितः पुराणाध्याय एव च । पुष्पकश्च परिच्छेद खण्डश्च प्रतिखण्डकः ।।२५
व्यवहारश्चार्थशास्त्रमश्वशास्त्रस्य चैव हि । यस्य भागावसाने तु प्रयोक्तव्यः स एव हि ।।२६
तत्सङ्ग्रहेऽपि कविना नियोक्तव्यः स एव हि । यस्य नाम्नोपदेशे तु प्रवर्तयति सङ्ग्रहः ।।२७
तत्तदक्षरसंख्यानां ब्रह्मलोकान्न तच्च्युतिः । न सङ्ग्रहस्तन्त्रमन्त्रे वेदमन्त्रे च वर्जयेत् ।।२८

सत्तम! यदि मुझे देना है तो किसी प्रमादहीन, पवित्र, ब्रह्मचारी, साथी, विधानवेत्ता एवं सज्जन ब्राह्मण को प्रदान करो ।१३-१५। यदि इस उत्तम विद्यारूपी धन को किसी निषिद्ध व्यक्ति को प्रदान किया तो दोनों में से एक कोई चिरकाल तक यमयातनाओं का अवश्य अनुभव करेगा । सुखपूर्वक किसी के पढ़ाते समय यदि कोई दूसरा अन्याय से उसको ग्रहण करता है, तो उसे घोर नरक की प्राप्ति होती है, इसलिए कि उसे विद्यादान का निषेध किया गया है । वेदान्त, वैदिक या अन्य किसी अलौकिक (शास्त्र) के पठन-पाठन में प्रथम उसको सम्मानपूर्वक प्रणाम करके ही प्रारम्भ करना चाहिए, इसी प्रकार कर्मकाण्ड और ज्योतिष् का मनन आदि बिना प्रणामादि के कभी न प्रारम्भ करें ।१६-१८। चूतभाग के अभ्यास करने से दरिद्रता, वादभाग के अभ्यास से धन नाश एवं निधिभाग के अभ्यास करने से नरक की प्राप्ति होती है । जितने सम्मानित शास्त्रों को नहीं कहा गया है, उन्हें एवं माहात्म्यों को जो म्लेच्छों द्वारा कहे गये हों, दूर से ही उनका त्याग करे । लोगों के ज्ञान वृद्धि के लिए जो धर्म का संग्रह करता है, वह उसके प्रवर्तक होने के कारण गुरु कहा जाता है और ज्ञान प्रदान करने के कारण पिता । वही लोगों को ज्ञान प्रदान करता है, इसलिए उसी में सभी धर्मों का समावेश होता है ।१९-२२। कलियुग में निगम, ज्योतिष्, वेद एवं नाटकों के व्याख्यान संग्रह करने वाले का नाश होता है, उसी प्रकार वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा, ज्योतिष्, नाटक विरंचिनी का भी । प्रत्येक भाग के अंत में एवं पुराणों के अध्याय की समाप्ति में गुच्छे का चिह्न, परिच्छेद, खण्ड, अथवा प्रतिखंड का निर्माण करना चाहिए ।२३-२५। अर्थशास्त्र का प्रयोग व्यवहार में लाना चाहिए, उसी प्रकार अश्वशास्त्र भागों का भी ।२६। जिसके नाम के उपदेश करना हो, उसके संग्रह के लिए किसी कवि को नियुक्त करना चाहिए, क्योंकि उस संग्रह का प्रवर्तक वही है ।२७। उसके अक्षरों की संख्या के समान दिनों तक वह ब्रह्मलोक से च्युत नहीं होता है । तंत्र, मंत्र एवं वेद-मंत्रों

मोहात्कृत्वा होमधेनुं दत्त्वा शुद्धिर्भविष्यति । कृत्वा चाख्यायिकाग्रन्थस्वरूपान्स दिवं व्रजेत् ।।२९
धर्मशास्त्रस्य गम्यस्य व्यवहारस्य चैव हि । कलौ यः सङ्ग्रहं कुर्यात्प्रसुप्ते चैव केशवे ।।३०
यावत्प्रवर्तते लोकस्तावत्स्वर्गे महीयते । सिंहे पौषे च चैत्रे च न कुर्यात्संग्रहं क्वचित् ।।३१
प्रातःकाले न कुर्वीत तथा मध्यन्दिने द्विजाः । पक्षान्ते भूमिदाहे च भुवः कम्पे दिनक्षये ।।३२
मलमासे विशेषेण सन्ध्ययोश्च विवर्जने । अमेध्याक्तं च पत्रं च लिप्यक्षरविभूषितम् ।।३३
पूतं स्यात्तत्क्षणाद्विप्राश्चतुः पञ्चाक्षरेण वा । नारसिंहस्य विन्यासे पूतो भवति तत्क्षणात् ।।३४
मायाविभवविन्यस्ते महापापकलेवरे । मुहूर्तार्धेन पूतत्वं प्रभोर्यान्ति परां गतिम् ।।३५
स्त्रियो वा निन्दितो वापि म्लेच्छो याति परां गतिम् । यो मूढो मन्यते दोषं तस्य शौचं समाचरेत् ।।
स गर्दभीं खरीं योनिं प्रविशेन्नात्र संशयः ।।३६
एकमेवात्मकं ब्रह्म तत्प्रकृत्यात्मकं द्वयम् । नवात्मको भैरवश्च दशमश्च जनार्दनः ।।३७
रुद्र एकादशश्चैव अर्कार्कश्चापि द्वादशः । त्रयोविंशे च भूतात्मा षड्विंशे मनुरीरितः ।।३८
तिथ्यात्मकं पञ्चदशे षोडशाख्या कलापरा । वातात्मकः सप्तदशो मन्त्रः समनुवर्तते ।।३९
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः पुराणात्मक एव च । ऊनविंशश्चन्द्रमाः स्याद्विंशो नारायणो वपुः ।।४०
ज्योतिर्मयश्चैकविंशो द्वाविंशे केशवार्चनम् । नक्षत्राणि त्रयोविंशे चतुर्विंशे च तानकम् ।।४१

का संग्रह करना निषिद्ध है, यदि अज्ञानवश उसका संग्रह कर ही दिया तो, सुवर्ण की धेनु के दान से उसकी शुद्धि बतायी गयी है। आख्यायिका ग्रंथों के स्वरूप निर्माण करने से उसे स्वर्ग प्राप्ति होती है।२८-२९। जो इस कलि में व्यवहारार्थ धर्मशास्त्र के सरल एवं व्यावहारिक भाग का संग्रह, विष्णु शयन (चातुर्मास काल) में करता है, तो जितने लोग उससे लाभ उठाते हैं, उतने दिनों तक वह स्वर्ग में सम्मानित होता है। किन्तु सिंह के सूर्य में, पौषमास एवं चैत्रमास में कभी भी संग्रह न करे।३०-३१। द्विजगण ! प्रातःकाल, मध्याह्न, पक्ष के अंतिम समय, भूमि दाह, भूचाल, दिन क्षय, अधिकमास) और विशेषकर दोनों संध्याओं में संग्रह (लिपिबद्ध) न करना चाहिए। विप्रगण ! लिपि अक्षर विभूषित पत्र के अपवित्र होने की आशंका उत्पन्न होने पर नरसिंह (पुराण) के चार या पाँच अक्षरों का सन्निवेश उसमें करने से वह उसी समय पवित्र हो जाता है।३२-३४। माया के ऐश्वर्य से परिपूर्ण इस (असार संसार) में यह शरीर बड़े-बड़े पापों द्वारा दूषित हो जाती है, इसलिए उसके उद्धार के लिए बताया गया है कि यदि वह क्षणमात्र भी भगवद्गुणगान या स्मरण किया तो उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। चाहे वह स्त्री, निन्दित, अथवा म्लेच्छ ही क्यों न हो। जो मूर्ख उसमें दोष मानते हैं, उन्हें शुद्ध होने की आवश्यकता है, अन्यथा गधी एवं राक्षसी योनि में उन्हें प्रवेश करना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं।३५-३६। ब्रह्म एक ही है, वही अपनी प्रकृति (माया) के साथ रहने से दो रूपों में हो जाता है। उसका नवाँ रूप भैरव और दशवाँ जनार्दन है, ग्यारहवाँ रुद्र, बारहवाँ सूर्य, तेइसवाँ भूतात्मा (समस्त जीवों में) छब्बीसवाँ मनु बताये गये हैं। पन्द्रह तिथियाँ, सोलह कलाएँ भी उसी के रूप हैं। उसके सत्रहवें वायुरूप को मन्त्र स्पष्ट बता रहा है।३७-३९। अठ्ठारह अक्षर के मंत्र और अठ्ठारह पुराण भी भगवान् के स्वरूप हैं, उन्नीसवाँ चन्द्रमा, बीसवाँ नारायण की शरीर, इक्कीसवाँ ज्योतिर्मयस्वरूप, बाईसवाँ केशव, तेईसवाँ नक्षत्रगण, चौबीसवाँ संगीत के स्वर,

पञ्चविंशे च तीर्थानि षड्विंशे च त्रियम्बकः । अष्टाविंशे धनेशश्च ऊनविंशे सरस्वती ॥४२
त्रिंशद्योगे शिवः प्रोक्तः पातालमेकत्रिंशके । अहोरात्रश्च द्वात्रिंशे चतुस्त्रिंशे च जाह्नवी ॥४३
पञ्चत्रिंशे तदन्तः स्याच्छते पूर्णे दिवाकरः । सहस्रे च शिवो ज्ञेयश्चायुते मेरुरुच्यते ॥४४
लक्षे ब्रह्मा तथा कोटयां देवो नारायणः परः । पुम्प्रकृत्यात्मकं चान्यच्छारदालिपिमातृका ॥४५
शुद्धब्रह्ममयं नित्यं ज्ञानरूपं परं महत् । यस्मिन्व्यसनादेव शुचौ चाप्यशुचिस्थले ॥
क्षणे ब्रह्ममयं याति इत्याह भगवान्मनुः ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागेऽङ्कमाहात्म्यकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अथ नवमोऽध्यायः

पूर्तनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

अन्तर्वेदिं प्रवक्ष्यामि ब्राह्मणोक्तं युगान्तरे । बहिर्वेदं तथैवोक्तं शस्तं स्याद्द्वापरे कलौ ॥१
ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अंतर्वेदीति कथ्यते । देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिरुदाहृता ॥२
प्रपापूर्तादिकं चैव ब्राह्मणानां च तोषणम् । गुरुभ्यः परिचर्या च बहिर्वेदी द्विधा मता ॥३
अकामेन कृतं कर्म कर्म च व्यसनादिकम् । अन्तर्वेदी तदेवोक्तं बहिर्वेदी विपर्ययः ॥४

पच्चीसवाँ तीर्थवृन्द, छब्बीसवाँ त्र्यम्बक (महेश), अट्ठाईसवाँ धनेश (कुबेर), उन्नीसवाँ सरस्वती, तीसवाँ शिव, एकतीसवाँ पाताल, बत्तीसवाँ दिन-रात, चौंतीसवाँ गंगा, पैंतीसवाँ उसका अंतिम भाग, सौवाँ दिवाकर, एक सहस्र में शिव, दशसहस्र में मेरु, लक्ष में ब्रह्मा, कोटि (करोड़) में श्रेष्ठ नारायण देव हैं और वही पुरुष प्रकृतिमय ब्रह्मा दूसरे लिपि-माता शारदा के रूप में स्थित है ।४०-४५। वही शुद्ध (निर्गुण) ब्रह्म, नित्य, ज्ञानरूप एवं परम महान् है, पवित्र, अपवित्र किसी भी स्थान में या अवस्था में रहकर उसके प्रेम भाजन होने पर क्षणमात्र में वह ब्रह्ममय हो जाता है, ऐसा भगवान् मनु ने बताया है।४६

श्री भविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में अंक माहात्म्य वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अध्याय ९

पूर्तनिर्णय का वर्णन

सूतजी बोले—मैं तुम्हें अन्तर्वेदी, जिसे ब्रह्मा के युगारम्भ में बताया था, सुना रहा हूँ, और उसी प्रकार बहिर्वेदी को भी, जो द्वापर तथा कलियुग के लिए प्रशस्त है ।१। जो कर्म, ज्ञान द्वारा सिद्ध होते हैं, उसे अन्तर्वेदी, एवं देवताओं की मूर्तियों के स्थापन-पूजन को बहिर्वेदी बताया गया है ।२। पौंसला स्थापन, जलाशय दान एवं ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना तथा गुरुओं की सेवा करना, इस प्रकार बहिर्वेदी के दो रूप हैं ।३। निष्काम कर्म और व्यसनादिक कर्म अन्तर्वेदी के रूप हैं तथा उससे भिन्न कर्म बहिर्वेदी के ।४। धर्म

धर्मस्य कारणं राजा धर्ममेतद्भवेन्नृपः । तस्मान्नृपं समाश्रित्य बहिर्वेदी ततो भवेत् ॥५
सप्ताशीतिर्बहिर्वेदी सारमेषां तृतीयकम् । देवतास्थापनं चैव प्रसादकरणं तथा ॥६
तडागकरणं चैव तृतीयं न चतुर्थकम् । पञ्चमं पितृपूजा च गुरुपूजापुरःसरा ॥७
अधिवासः प्रतिष्ठा च देवतानामविक्रिया । प्रतिमाकरणं चैव वृक्षाणामथ रोपणम् ॥८
त्रिविधा सा विनिर्दिष्टा उत्तमा चाथ मध्यमा । कनिष्ठा शेषकल्पश्च सर्वकार्येष्वयं विधिः ॥९
त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः । पूजाहोमादिभिर्दानैर्मानतश्च त्रिभागतः ॥१०
त्र्यहसाध्यविधानेन अष्टाविंशतिदेवताः । त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः ॥११
प्रत्यहं पूजयेत्तत्र जापकास्तत्र षोडश । उत्तमोऽसौ विधिः कृत्स्नो ह्यश्वमेधफलप्रदः ॥१२
चत्वारो याजकास्तत्र त्रयोविंशतिदेवताः । ग्रहदिक्पालवारुण्यं पृथिवी च शिवस्तथा ॥१३
एकाहेनैव पूजा च मध्यमः कथितो विधिः । गणेशग्रहदिक्पालान्वरुणं च शिवं तथा ॥१४
सम्पूज्य पूज्यते यत्र कनिष्ठोऽसौ विधिः स्मृतः । एकवृक्षैश्चैकरूपैः प्रतिमाक्षुद्रदेवताः ॥१५
नलिनीदीर्घिकागर्तवापीमलप्रपादिकम् । एषां संस्कारकार्येषु प्रतिमानां परिष्क्रिया ॥१६
अग्निकार्यं ततः कृत्वा न कुर्याद्विधिविस्तरम् । गणेशग्रहदिक्पालान्पूजयेदुपचारतः ॥१७

का कारण और धर्म का प्रत्यक्ष स्वरूप राजा होता है, इसलिए राजा के आश्रित रह कर बहिर्वेदी का कर्म सुसम्पन्न करना चाहिए।५। बहिर्वेदी कर्म के सत्तासी स्वरूप बताये गये हैं, किन्तु तीसरा स्वरूप, उसका साररूप है, देवतास्थापन, प्रासाद (कोठे) समेत देवालय बनाना, सरोवर बनाना यही तीन के लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए, चौथे के लिए उतना नहीं और पाँचवाँ, गुरु पूजापूर्वक पितृपूजा का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।६-७। देवता का अधिवास एवं निर्विकार उनकी प्रतिष्ठा, प्रतिमा (मूर्ति) बनवाना, बगीचे लगाने के रूप में इस प्रकार इसके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन रूप बताये गये हैं। समस्त कार्यों में यही विधान आवश्यक है।८-९। सर्वत्र (देवताओं की) प्रतिष्ठादि विधि पूजा, होम और दान के भेद से तीन प्रकार की होती है, और मान द्वारा भी उसके तीन भेद हैं।१०। जिस विधान में तीन दिन में (प्रतिष्ठादि कर्म) साध्य बताया गया है, उसमें अट्ठाईस देवताओं का आवाहन-पूजन होता है। उसमें भी वह प्रतिष्ठादि विधि तीन प्रकार की कही गयी है।११। उस विधान में प्रतिदिन सोलह जप करने वाले ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, यही विधान उत्तम बताया गया है, क्योंकि इसके सुसम्पन्न करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है।१२। जिसमें चार याजक (यज्ञ कराने वाले) हों, उसमें तेईस देवताओं का स्थापन-पूजन पूर्वक ग्रह, दिक्पाल, वरुण, पृथिवी, तथा शिव की भी स्थापना आदि अपेक्षित होती है, यह विधान एक दिन में समाप्त किया जाता है, इसलिए इसे मध्यम विधान बताया गया है। जिसमें गणेश, ग्रह, दिक्पाल, वरुण और शिव की पूजा आदि करने के उपरान्त प्रतिष्ठा आदि विधान सुसम्पन्न किया जाता है, उसे कनिष्ठ विधान कहा गया है। एक वृक्ष की शाखा आदि अनेक रूपों की भाँति प्रतिमा भी वहाँ सर्वप्रथम एक क्षुद्र देवता के ही रूप में रहती है।१३-१५। कुमुदिनी वाले सरोवर, गृहवावली, छोटे-छोटे जलाशय, बावली एवं गृह की नालियों के संस्कार करते समय प्रतिमाओं को परिष्कृत करने के पश्चात् अग्नि द्वारा उन्हें शुद्ध करे। उसमें विधान के विस्तार रूप को अपनाना अनावश्यक बताया गया है। उसमें गणेश, ग्रह एवं दिक्पाल की उपचार समेत पूजा करनी चाहिए।१६-१७। बावली आदि तथा

वाप्यादेः पुष्करिण्याश्च क्षिपेद्गङ्गाजलं ततः । उलूखलद्वयेनापि जीर्णानां तु कदाचन ।।१८
सेतुप्रासादवापीनां प्रतिष्ठां नैव कारयेत् । प्रासादः सेतवश्चैव तडागाद्यास्तथैव च ।।१९
त्रिभिर्वर्णैः प्रतिष्ठार्हा जीर्णानां तु समुद्गताः । मुनयो मानमिच्छन्ति अमानं न हि दृश्यते ।।२०
तस्मान्मानं प्रवक्ष्यामि यन्मानं यादृशं फलम् । षष्टिहस्तप्रमाणेन तदुक्तं वारणोदितम् ।।२१
एकषष्टिहस्तमितं प्रासादं चोत्तमं विदुः । मध्यं तदर्धं विज्ञेयं कनिष्ठं तत्परं स्मृतम् ।।२२
अथ वा देवमानेन कर्तव्यं भूतिमिच्छता । यस्तडागं नवं कृत्वा जीर्णं वा नवतां नयेत् ।।२३
सर्वं कुलं समुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते । वापीकूपतडागाश्च उद्यानप्रवहास्तथा ।।२४
पुनः पुनश्च संस्कार्यो लभते मौक्तिकं फलम् । गुणानां च प्रमाणेन प्रतिमानं विभागतः ।।२५
द्विशतेन शतेनापि प्रासादस्यैष निश्चयः । सहस्रहस्तविस्तारं दैर्घ्येणाष्टाधिकं भवेत् ।।२६
तडागं तु विजानीयात्प्रथमं मानमीरितम् । मध्यं चतुःशतेनापि प्रस्तावे दशहीनकम् ।।२७
कनिष्ठं त्रिशतं चैव प्रस्थेस्याद्विंशहीनकम् । तदर्धेन कलौ ज्ञेयं तदर्धेन तदर्धकम् ।।२८
तडागमानं विज्ञेयं त्रिवर्गफलदायकम् । अथ पुष्करिणीपक्षे द्वे शते मानमुत्तमम् ।।२९
तडागे द्विगुणा नेमी मानार्धे गर्तमीरितम् । तत्क्षेत्रं वारुणं स्थानं त्र्युदितं तद्बहिः स्मृतम् ।।३०

(कमल वाला तालाब) के जलों में दो ओखली द्वारा गंगा जल को डाले। जीर्ण-शीर्ण सेतु, प्रासाद और बावलियों की प्रतिष्ठा कभी भी न करनी चाहिए। प्रासाद, सेतु और सरोवर आदि की प्रतिष्ठा आदि कर्म तीनों वर्णों के लिए बताये गये है मुनियों ने सभी कार्यों में मान की भी अपेक्षा की है, इसलिए बिना मान के उनको कोई नहीं दिखायी देते हैं।१८-२०। इसलिए जिस प्रकार के मान के जो फल प्राप्त होते हैं (मैं बता रहा हूँ सुनो) गजशाला के निर्माण में साठ हाथ का प्रमाण बताया गया है, एकसठ हाथ के प्रमाण वाले प्रासाद (महल) को विद्वानों ने उत्तम बताया है।उसके अर्ध प्रमाण वाले को मध्यम तथा उसके अतिरिक्त को कनिष्ठ कहते हैं।२१-२२। अथवा देवों के मान के अनुसार उनके निर्माण करने चाहिए, यह ऐश्वर्य इच्छुकों के लिए आवश्यक है। उस मान के अनुसार जो किसी नवीन सरोवर, अथवा किसी जीर्ण-शीर्ण को नवीन रूप प्रदान करते हैं, वे अपने समस्त कुलों के उद्धारपूर्वक स्वर्ग में सम्मानित होते हैं। वावली, कुएँ एवं सरोवर के, जिससे बगीचे की सिंचाई होती है, बार-बार संस्कार करने से मुक्ति रूप फल प्राप्त होता है। गुणों के प्रमाण तथा प्रत्येक मान के विभाजन द्वारा महल के निर्माण में दो सौ तथा सौ हाथ भी निश्चित किया हुआ है। एक सहस्र हाथ के विस्तार और उससे आठ हाथ अधिक लम्बाई वाला तालाब बताया गया है। यह उसका प्रथम मान है।२३-२६। चार सौ हाथ का सरोवर मध्यम बताया गया है, उसको प्रारम्भ में दश हाथ कम भी किया जा सकता है।२७। उसी प्रकार तीन सौ हाथ वाला कनिष्ठ कहा जाता है, उसमें आवश्यकतानुसार बीस हाथ कम हो सकता है। कलियुग में उसके आधे प्रमाण अथवा उसके आधे के आधे प्रमाण में सरोवर निर्माण कराने से त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की प्राप्ति बतायी गयी है। पुष्करिणी के पक्ष में दो सौ हाथ का मान कहा गया है, तालाब के किनारे की भूमि दुगुनी होनी चाहिए और उसके मान के आधे भाग के समान उसमें गड्ढा खोदना बताया गया है। वहीं वरुण का निवास रहता है, इसी भाँति के सरोवर निर्माण को बहिर्वेदी में तीसरा प्रशस्त कर्म कहा गया है चौथा

चतुर्थं चैव गान्धर्वं पैशाचं पञ्चमं विदुः । यक्षस्थानमिता भागे एवं सर्वक्रमाणि हि ॥३१
अशीतिहस्तमानेन नलिन्या मणिरुच्यते । पञ्चहीनं च प्रस्तावे एवं मानविदो विदुः ॥३२
षष्टिहस्तेन नलिनी प्रस्तावे तुर्यहीनकम् । चतुःषष्टिहस्तमिता दीर्घिका च प्रकीर्तिता ॥३३
तुर्यहीनं च प्रस्तावे गर्ते मानं न विद्यते ॥३४

अग्नौ रोगो बन्धुनाशश्च याम्यां मृत्युश्चोग्रः प्राप्यते राक्षसे च ।
भीतिश्चोग्रा प्राप्यते वायवीये तस्मादेता वर्जनीयाः प्रयत्नात् ॥३५
विप्रादीनां देवतानां समाजे मेरुस्थाने यत्र तत्रैव कुर्यात् ।
नद्यास्तीरे वर्जयेद्वा स्मशाने तडागाद्वै आश्रमादीञ्जनानाम् ॥३६
यदा प्रतिष्ठां न करोति मूढः प्रासादवाप्यादिषु पापचेताः ।
भयं समाप्नोति च पापमुग्रं पदेऽहिना वै वधभागितां व्रजेत् ॥३७
यदा तु दीर्घासरसीतडागप्रासादकूपादिषु निर्मितानि ।
कुर्वन्ति चान्यानि यदा मखानि भवन्ति नैवास्य फलप्रदानि ॥३८
यदप्रतिष्ठेषु निपानकेषु प्रासादकूपेषु वनादिकेषु ।
प्रतिष्ठिते यत्फलमाप्नुवन्ति फलं तदाल्पाल्पकमाहुरस्य ॥३९
तस्मात्प्रतिष्ठां विधिना जलादेः कुर्याद्यथेष्टं प्रयतो मनुष्यः ।
पुण्यार्जनेनैव धनेन काले स्ववित्तसाध्येन शुभाशयेन ॥४०

नहीं, क्योंकि चौथा गान्धर्व (गान आदि) पाँचवाँ पिशाचों के कर्म, शेष यक्ष स्थान कहा गया है।२८-३१। अस्सी हाथ के मान वाली नलिनी को मणि कहा गया है। उसके निर्माण के समय मानवेत्ताओं ने आवश्यकतानुसार पाँच हाथ कम करने को बताया है।३२। साठ हाथ की नलिनी (कुमुदिनी वाला सरोवर) के प्रारम्भ में चार कम हो सकता है और उसी भाँति चौंसठ हाथ की गृहवावली बनाना चाहिए।३३। उसके प्रारम्भ में चार कम किया जा सकता है, उसके गड्ढे का कोई मान नहीं बताया गया है।३४। (अग्निकोण) में जलाशय के निर्माण कराने से रोग, दक्षिण में बन्धुनाश, नैऋत्य में भीषण मृत्यु तथा वायव्य में उग्र भय प्राप्त होता है, इसलिए इनके त्याग आवश्यक हैं।३५। ब्राह्मणों एवं देवताओं के समाजों में तथा मरुस्थल में जहाँ चाहे वहाँ बना सकता है। नदी के तीर, श्मशान और मनुष्यों के आश्रमों के सन्निकट तालाब का निर्माण न करना चाहिए।३६। जो मूर्ख पापी मनुष्य प्रासाद एवं बावली आदि की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं, उन्हें भय, भीषण पाप की प्राप्ति होती है और ऐसे मनुष्य का पैर में सर्प कटवा कर प्राणान्त कर देना चाहिए।३७। गृहवावली, सरोवर, तालाब, महल, कूप आदि के नवनिर्माण करने के उपरान्त उसकी प्रतिष्ठा के साथ किसी अन्य यज्ञ का प्रारम्भ भी जो करते हैं, उन्हें उसका फल नहीं मिलता है।३८। किसी जलाशय, महल, कूप, वन आदि की जिसकी प्रतिष्ठा न हुई हो, प्रतिष्ठा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उनके साथ अन्य यज्ञ के आयोजन करने वाले को उसके न्यून से न्यून फल प्राप्त होते हैं, जो न प्राप्त होने के समान हैं।३९। इसलिए मनुष्य को जल आदि की प्रतिष्ठा करने के लिए यथेष्ट प्रयत्नशील रहना चाहिए। अपनी पुण्य की कमाई से यथाशक्ति समयानुसार उसमें व्यय करना चाहिए

प्रसादे मृण्मयं पुण्यं मयैतत्कथितं द्विजाः । तस्माच्चतुर्गुणं प्रोक्तं तृणकाष्ठमये तथा ।।४१
तृणमये शतमयं तदर्धं नववल्कले । तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं कृते दारुमये भवेत् ।।४२
ततो दशगुणं प्रोक्तमिष्टिकारचिते शुभे । तस्माच्छतगुणं शैले सहस्रं ताम्ररौप्यके ।।४३
ततश्च शतसाहस्रं सौवर्णे द्विजसत्तमाः । अनन्तफलमाप्नोति रत्नादिरचिते तथा ।।४४
यदतीतं भविष्यच्च कुलानामयुतं नरः । विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् ।।४५
कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् । अर्धं च वैष्णवं लोकं मोक्षं च लभते क्रमात् ।।४६
हस्तानां षोडशैर्यावत्प्रस्थे स्यात्करहीनकम् । तृणवंशमये मानं मध्यं चार्ककरं भवेत् ।।४७
कनिष्ठतारहस्तं स्यादुत्तमं पञ्चविंशतिः । सर्वोत्तमं च द्वात्रिंशच्चतुष्कोणे महाफलम् ।।४८
पुरद्वारं च कर्तव्यं चतुरस्रं समं भवेत् । अष्टकोणं न कर्तव्यं त्रिपुरं च कलौ युगे ।।४९
सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्राः[१] परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।५०
कर्तुर्दशगुणं प्रोक्तमापानपरिपालकः । पतितान्युद्धरेद्यस्तु स सर्वं फलमश्नुते ।।५१
पतितं पतमानं च तथार्द्धस्फुटितं तथा । समुद्धृत्य हरेर्वेश्म द्विगुणं फलमाप्नुयात् ।।५२

।४०। द्विजगण ! मिट्टी के प्रासाद (महल) बनाने से पुण्य की प्राप्ति होती है, यह मैंने तुम्हें बता दिया और उसी भाँति तृण अथवा लकड़ी के बनाने में उससे चौगुने पुण्य की प्राप्ति होती है । केवल तृण के बनाने से सौ गुनी, नवीन वल्क (छाल) में उसकी आधी पुण्य-प्राप्ति होती है, और लकड़ी के बनाने में उससे दश गुनी ।४१-४२। सुन्दर ईंटों द्वारा बनाने से उससे दशगुनी, पत्थर से सौ गुनी, ताँबे या चाँदी से सहस्र गुनी और द्विजसत्तम ! सुवर्ण द्वारा उससे सौ सहस्र एवं रत्नादिकों द्वारा निर्मित होने पर अनन्त पुण्य प्राप्ति होती है ।४३-४४। भगवान् के लिए मन्दिर बनवाने पर मनुष्य अपने कुल के पूर्व और पर पीढ़ी के दश सहस्र परिवारों को शीघ्र विष्णुलोक में पहुँचाता है ।४५। कनिष्ठ, मध्यम एवं श्रेष्ठ भाँति के मन्दिर भगवान् के लिए बनवाने पर उसे क्रमशः आधे पुण्य, विष्णुलोक एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४६। तृण और बाँस के प्रासाद बनाने में सोलह हाथ का मान बताया गया है, जो प्रारम्भ में एक हाथ कम कर दिया जा सकता है, इसे मध्यम मान कहते हैं ।४७। तार एवं हस्त के प्रमाण वाला कनिष्ठ और पच्चीस हाथ के प्रमाण वाला श्रेष्ठ बताया गया है। इसी प्रकार बत्तीस हाथ वाला सर्वोत्तम एवं चौकोर महल बनवाने से महान् फल प्राप्त होता है ।४८। पुर का दरवाजा भी चौकोर ही बनवाना चाहिए, इस कलियुग में आठ कोने वाला तीन तल का मकान न बनाना चाहिए । द्विजेन्द्रवृन्द ! देवमन्दिर के परमाणु जितनी संख्या में रहते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह पुरुष स्वर्गलोक की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ।४९-५०। आपान के पालन करने वाले को उसके रचयिता से दशगुने अधिक पुण्य प्राप्ति होती है, और जो पतितों जीर्ण-शीर्ण देवालयों के उद्धार करता है, उसे सभी फलों की प्राप्ति होती है ।५१। एकदम नष्ट-भ्रष्ट, जीर्ण-शीर्ण एवं अर्द्धांश भग्न विष्णु मन्दिरों के उद्धार करने से दुगुनी पुण्य प्राप्ति होती है ।५२। एकदम नष्ट-भ्रष्ट देवमन्दिर के निर्माण तथा

---

१. हे द्विजेन्द्राः सुरवेश्मनि यावन्तः परमाणवः स्युस्तावद्वर्षसहस्राणि कर्त्ता स्वर्गे पूजितो भवतीत्यर्थः ।

पतितस्य तु यः कर्ता पतमानस्य रक्षिता । विष्णोरधितलस्यैव मानवः स्वर्गभाग्भवेत् ।।५३
यः कुर्याद्विष्णुप्रासादं ज्योतिर्लिङ्गस्य वा क्वचित् । सूर्यस्यापि विरिञ्चेश्च दुर्गायाः श्रीधरस्य च ।।५४
स्वयं स्वकुलमुद्धृत्य कल्पकोटिं वसेद्दिवि । स्वर्गाद् भ्रष्टो भवेद्राजा धनी पूज्यतमोऽपि वा ।।५५
देवीलिङ्गेषु योनौ वा कृत्वा देवकुलं नरः । स्मरत्वं प्राप्नुयाल्लोके पूजितो दिवि सर्वदा ।।५६
प्रावृट्काले स्थितं तोयमग्निष्टोमफलं लभेत् । शरत्कालस्थितं तोयं यज्ञतोयाद्विशिष्यते ।।५७
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वापिनः । स्वर्गं गच्छेत्स नरकं न कदाचिदवाप्नुयात् ।।५८
एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां द्विजसत्तमाः । कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराणि च ।।५९
पूर्वं पितृकुले सप्त तद्वन्मातृकुले द्विजाः । चतुर्दशमिदं ज्ञेयं शतलेखं ततः शृणु ।।६०
पितुरूर्ध्वं कुलं विंशं मातुरूर्ध्वं कुलं तथा । तद्वत्परं विजानीयाद्भार्यायाः पञ्च एव च ।।६१
पञ्च वै मातृतश्चास्य पितुर्मातामहे कुले । पञ्च पञ्च विजानीयान्मातुर्मातामहस्य च ।।६२
गुरोः पितृकुले पञ्च तस्य मातृकुले तथा । आचार्यस्य कुले द्वन्द्वं दशराजकुलस्य च ।।६३
राज्ञो मातामहकुले पञ्च चैव प्रकीर्तिताः । एकोत्तरं शतकुलं परिसङ्ख्यातमेव च ।।६४
आत्मना सह विप्रेन्द्रा उद्धारः सम्मतः स्मृतः । कुर्याद्देवार्चनं तीर्थे स्वविमुक्ते दशार्णवे ।।६५
समुद्धरेत्कुलशतं शृणु विंशं कुलं द्विज । पञ्च पञ्च च पित्रोश्च पितुर्मातामहस्य च ।।६६
मातुर्मातामहस्यैव जातिं द्वन्द्वमुदाहृतम् । गुरोः सन्तानके द्वन्द्वं तद्वद्यादवसात्वतौ ।।६७

जीर्ण-शीर्ण वाले की रक्षा करने वाला मनुष्य विष्णुलोक के नीचे स्थित स्वर्गलोक में सुशोभित होता है ।५३। जो मनुष्य विष्णु के निमित्त महल, उसी प्रकार कहीं ज्योतिर्लिङ्ग, सूर्य, विरंचि, दुर्गा एवं श्रीधर के लिए भी मन्दिर निर्माण करता है, वह अपने कुल के उद्धारपूर्वक कोटि (करोड़) कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। पुनः कभी स्वर्ग से हटने पर धनी एवं पूज्यतम राजा होता है ।५४-५५। देवी के चिह्न स्थानों अथवा योनि में देव-समूह के स्थापित करने से वह लोक में स्मरणीय एवं स्वर्ग में सदैव पूजित होता है ।५६। वर्षाकाल में वावली में जल रखने से अग्निष्टोम यज्ञ के फल, शरद् काल में उसमें जल रखे तो वह जल यज्ञीय जल से अधिक महत्वपूर्ण होता है ।५७। गर्मी के दिनों में उसमें सुन्दर पान करने योग्य जल रखने से उसे स्वर्ग की प्राप्ति इस भाँति हो जाती है, जिससे उसे कभी भी नरक नहीं जाना पड़ता ।५८। द्विजसत्तम ! इस पृथिवी में उस जल को केवल एक दिन के रखने से उसके सात पूर्व के और सात पर पीढ़ी के परिवार पवित्र हो जाते हैं ।५९। द्विजवृन्द ! इन चौदह कुलों में पूर्व के सात पितृकुल और पर के सात मातृकुल बताये गये हैं, अब सौ कुल की व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो ! पिता के पूर्व के बीस कुल एवं माता के पूर्व बीस कुल, उसी प्रकार स्त्री के कुल के घर वाले पाँच कुल, पाँच मातृकुल, पाँच पितृकुल, मातामह के पाँच कुल, माता के मातामह कुल के पाँच, गुरु के पितृकुल के पाँच, उनके मातृकुल के पाँच, आचार्य कुल के दो, राजकुल के दश एवं राजा के मातामह कुल के पाँच परिसंख्यात बताये गये हैं, इस प्रकार एक सौ एक परिवार का यह विशाल कुटुम्ब हुआ। विप्रेन्द्र ! अपने साथ-साथ इनका उद्धार परमावश्यक होता है। मुक्त होने के लिए दशार्णव में तीर्थ के देव की अर्चा करके उस सौ कुलों के उद्धार करना चाहिए। द्विज ! मैं अब बीस कुल का विवेचन कर रहा हूँ, सुनो ! मातृकुल के पाँच, पितृकुल के पाँच, पिता के मातामह कुल के दो, माता के मातमह कुल के दो, गुरु कुल के दश, और परपक्ष के एक, इस प्रकार यह इक्कीस कुल का

परपक्षस्य चैकं स्यादेकदिशं कुलं क्रमात् । पानीयमेतत्सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।६८
पानीयेन विना वृत्तिर्लोके नास्तीति कर्हिचित् । वारस्वस्थं पुण्यखण्डं तोये पतति यावति ।।६९
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे चान्ते ब्रह्मत्वमाप्नुयात् । तस्मात्तोयोपरि गृहं प्रसादोपरि वर्जयेत् ।।७०
सूर्यरश्मियुतं यद्वै तत्तोयं तु विनिन्दितम् । चन्द्ररश्मिविहीनं यन्नामृतत्वाय कल्पते ।।७१
तस्माद्दशगुणं कुण्डे तस्माद्दशगुणं ह्रदे । देवानां स्थापनं कुर्यादविमुक्तफलं शुभम् ।।७२
सुस्थितं दुःस्थितं वापि शिवलिङ्गं न चालयेत् । चालनाद्रौरवं याति न स्वर्गं न च स्वर्गभाक् ।।७३
उच्छन्ननगरग्रामे स्थानत्यागे च विप्लवे । पुनः संसारधर्मेण स्थापयेदविचारयन् ।।७४
बाहुदन्तादिप्रतिमा विष्णोश्चान्यस्य सत्तमाः । न चालयेत्स्थापिते च विप्रवृक्षं न चालयेत् ।।७५
केशवं हरिवृक्षं च मधूकं किंशुकं तथा । नाकाले स्थापयेज्जातु चालनाद्ब्रह्महा भवेत् ।।७६
देवालयस्य पुरतः कुर्यात्पुष्करिणीं द्विजाः । ब्राह्मणानां समाजे च राजद्वारे चतुष्पथे ।।७७
देवार्थे ब्राह्मणार्थे च मुखं कुर्याच्च सर्वतः । पश्चिमे पुष्टिकामं तु उत्तरे सर्वकामदम् ।।७८
याम्ये स्वार्थं न कुर्वीत कोणे तु नरकं भवेत् । मुखं प्रकल्पयेन्मध्ये केचिदुत्तरलङ्घनम् ।।७९

एक परिवार हो गया, क्रमशः इनके उद्धार आवश्यक हैं, अतः सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए । यह चराचरात्मक समस्त तीनों लोक सदैव रक्षा करने के योग्य है, बिना पानीय के किसी की कहीं भी स्थिति नहीं हो सकती है, वार स्वस्थ, और पुण्यखंड जब तक जल में गिरता रहता है, उतने दिनों तक उसकी स्थिति स्वर्ग में रहती है और पश्चात् ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाती है । इसलिए जल के ऊपर और प्रासाद के ऊपर गृह बनाने का निषेध किया गया है ।६०-७०। सूर्य की किरणों से संयुक्त जल प्रशस्त नहीं कहा गया है, और उसी भाँति चन्द्र की किरणों से हीन जल मुक्तिप्रदायक नहीं होता है ।७१। उससे दश गुना पुण्य कुण्ड की रचना में, और उससे दशगुना पुण्य ह्रद (सरोवर) के बनाने में प्राप्त होता है । देवताओं का स्थापन करना एक मुक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी शुभ फलों को प्रदान करता है ।७२। शिवलिंग, अच्छी-बुरी किसी भी परिस्थिति में हो, उसका संचालन (एक स्थान से दूसरे स्थान से ले जाना) कभी न करे, क्योंकि उसके संचालन करने से रौरव नरक के अतिरिक्त न उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, और न वह कभी स्वर्ग का भाजन ही बन सकता है ।७३। किसी विप्लव के कारण नगर अथवा गाँव के नष्ट हो जाने पर स्थान त्याग के समय उन्हें भी जैसा कि संसार के धर्म हैं, कहीं विना विचारे ही स्थापित कर देना चाहिए ।७४। सत्तम ! विष्णु तथा अन्य की प्रतिमा के बाहु एवं दाँत आदि कोई अंग अथवा समस्त मूर्ति के संचालन उनकी प्रतिष्ठा होने के उपरान्त न करना चाहिए, उसी भाँति ब्राह्मण वृक्ष का भी ।७५। केशव, हरि वृक्ष, मधूक (महुवा) एवं किंशुक (पलाश) इन्हें कुसमय में कभी आरोपित न करे, और कर देने पर वहाँ से पुनः अन्यत्र न लगाये, क्योंकि वैसा करने पर उसे ब्रह्म हत्या का दोष लगता है ।७६। द्विजगण ! देवालय के सामने ब्राह्मणों की सामूहिक बस्ती राजद्वार और चौराहे पर पुष्करिणी नामक जलाशय बनाना चाहिए ।७७। देव और ब्राह्मणों के लिए सभी भाँति से सुख प्रदान करना चाहिए । सरोवर आदि जलाशयों के मुख पश्चिम की ओर करने से पुष्टि, उत्तर में समस्त कामनाओं की सफलता होती है ।७८। दक्षिण दिशा में अपना किसी प्रकार का स्वार्थ न करना चाहिए, और अग्नि तथा नैऋत्य कोण में करने से नरक की प्राप्ति होती है, इसलिए मध्यभाग में उसके मुख करने को बताया गया

कुर्याद्दक्षिणपूर्वे तु अर्कहस्तप्रमाणतः । तडागे तु कलाहस्तं हस्तिकं ह्रासयेत्क्रमात् ।।८०
तृप्ये हस्तं नलिन्यादावतो हीनं न कारयेत् । गर्ततृणं कलाहस्तं तडागेऽत्र प्रचक्ष्यते ।।
हीने हीनतरं कुर्याद्धस्तमानेन ह्रासयेत् ।।८१

यूपस्तथा खादिर एव कार्यः श्रैपर्णिको धात्रिसमुद्भवश्च ।
मानस्तथा षोडशहस्तसम्मितो रत्नात्सगण्डीयुगकामयोजितैः।।८२
आनाहभग्ने च भवेच्च तस्य विंशाङ्गुलो द्विगुणो मध्यगश्च ।
मध्येऽङ्गुलैश्च हीनः कार्यः शुभदः सर्वदा स्यात् ।।८३
एवंविधश्चैव तडागयूपो मध्ये तथा षोडशहस्तसंमितः ।
कूपे च यूपोप्यथ हस्तमात्रस्ततश्चतुर्हस्तमितः प्रकीर्तितः ।।८४
आरामयोगेऽप्यथ मण्डपे च कार्यश्चतुर्हस्तमितोऽथ यूपः ।
सम्पूर्णमाने कथितं प्रमाणं हीने तु हीनं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।।
हस्तद्वयं प्रापितव्यं तडागे हस्तः सार्धः पुष्करिण्यां प्ररोपः ।।८५

प्रादेशं वै हस्तमानं कूपयूपस्य रोपतः । न कुर्याज्जलमग्नं च यूपं सर्वत्र सत्तमाः ।।८६
तडागे चापि आरामे स्थापयेच्च जलोपरि । हस्तमर्धं तदर्धं स्यान्मानेनानेन दापयेत् ।।
वाप्यां गर्ते पुष्करिण्यां प्रकुर्याज्जलसम्मितम् ।।८७

है, और कुछ लोगों की सम्मति उत्तर की ओर के लिए ही है ।७९। दक्षिण-पूर्व की ओर बारह हाथ के प्रमाण से बनाना चाहिए, तालाब में क्रमशः कम कर देना चाहिए ।८०। नलिनी आदि (जलाशय) में कुछ भी कम करने की आवश्यकता नहीं होती है । सरोवर के मध्य में स्तम्भ का सोलह हाथ का मान बताया गया है ।८१। यदि छोटा (जलाशय) है, तो क्रमानुसार हाथ के मान से उसे कम कर उसी भाँति का छोटा स्तम्भ भी लगाना चाहिए । खैर, सेमर आदि और आँवले के ही स्तम्भ सोलह हाथ के मान से सौन्दर्यपूर्ण बनाकर यथाशक्ति रत्न से विभूषित करके खड़ा करना बताया गया है ।८२। कदाचित् उस स्तम्भ की लम्बाई भाग हो जाये तो, चालीस अंगुल के उसके मध्य भाग के मध्य में कुछ अंगुल कम (पतला) कर देने पर सदैव के लिए वह शुभदायक हो जाता है । इसी प्रकार का स्तम्भ जो सोलह हाथ का लम्बा हो, तालाब के मध्य में स्थापित करने के लिए आदेश दिया गया है । और कुएँ के लिए एक हाथ अथवा चार हाथ का स्तम्भ कहा गया है ।८३-८४। उसी भाँति बगीचे, और मण्डप में भी चार हाथ का स्तम्भ लगाना चाहिए । इस भाँति सम्पूर्ण मानों की विवेचनपूर्ण व्याख्या करते हुए यह बता दिया गया कि बड़े सरोवर आदि में बड़ा स्तम्भ और छोटे में छोटे स्तम्भ के लिए सदैव ध्यान रखना चाहिए। जैसे—तालाब के स्तम्भ के लिए दो हाथ और पुष्करिणी के स्तम्भ के लिए डेढ़ हाथ भूमि के मध्य रहने को बताया गया है । उसी प्रकार कुएँ के स्तम्भ के लिए आदेश के मान से एक हाथ कहा गया है, सत्तम ! इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि स्तम्भ कहीं भी जलमग्न न होने पाये ।८५-८६। तालाब और बगीचे के स्तम्भ, क्रमशः आधा हाथ और उसके आधे हाथ जल के ऊपर रहने चाहिए, उसी भाँति बावली, गड्ढे तथा पुष्करिणी के स्तम्भ जल सतह के बराबर रहने को बताये गये है ।८७। गलियों में जितने धूलिकण हैं, तथा जितने दिन

यावत्प्रतोलीगतरेणुसङ्गसंख्यागणो नो जरतानुपैति ।
तावत्सुरेशः सुरलोकवासी प्रासादकृज्जातु न जायते हि ॥८८
किं वा वाच्यः पुष्करिण्या प्रभावः कर्ता यः स्याद्वारुणो ब्रह्मलोकात् ।
यावत्कालो बाहुमात्रोद्धता स्याद्दृष्टिःप्रोक्ता न निवर्तेत्कदाचित् ।८९
लक्षैकमारामसयोत्तमः स्यान्मध्यं तदर्धं च कनिष्ठमानम् ।
विनार्जुनैर्बदरैः शैलुकैश्च हीनं कुर्याच्छानलैः पातिलैश्च॥९०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्तनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

पूर्तनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

शोधयेत्प्रथमं भूमिं मितां कृत्वा ततो द्विजाः । दशहस्तेन दण्डेन पञ्चहस्तेन वा पुनः ॥१
वाहयेत्सदा वृषभैस्तडागार्थेऽपि भूमिकाम् । देवागारस्य या भूमिः श्वेतैश्च वृषभैरपि ॥२
या भूमिर्ग्रहयागार्थे तन्न वाहैरपि स्पृशेत् । आरामार्थे कृष्णवृषैः कूपार्थखननैरपि ॥३

वे वर्तमान रहेंगे (अर्थात् महाप्रलय तक), उतने समय तक वह पुरुष जो देवों के लिए महल निर्माण कराता है, सुरलोक में देवताओं का आधिपत्य प्राप्त कर वहाँ सुशोभित होता है ।८८। पुष्करिणी के प्रभाव का वर्णन कौन कर सकता है, क्योंकि जिसका निर्माण कर्त्ता स्वयं वरुण रूप होकर जब तक कि बाहुमात्रोद्धत दृष्टि का विधान है उतने दिनों तक ब्रह्मलोक का निवासी होता है । बगीचे में स्थापित होने वाले लोहे के स्तम्भ का एक लक्ष मान बताया गया है, उसके आधे मान के स्तम्भ को मध्यम, और उसके आधे मान को कनिष्ठ कहा गया है. इन दोनों से भिन्न (अर्थात् उत्तम मान वाला स्तम्भ) मुनियों की सम्मति से प्रशस्त है, काष्ठ के भी स्तम्भ बनाने में अर्जुन, बेर, शैलुक, शानल और पातिल का त्याग आवश्यक है ।८९-९०

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पूर्तनिर्णय नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

पूर्त का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजगण ! दश हाथ के दण्ड अथवा पाँच हाथ के दण्ड से प्रथम भूमि संशोधन करने के पश्चात् सरोवर आदि जिसका निर्माण कराना हो, कराये ।१। सरोवर के खोदते समय निकली हुई मिट्टियों को बैलों द्वारा अन्यत्र रखनी चाहिए, उसी भाँति देव मन्दिर के निर्माण के समय उसकी मिट्टी को श्वेत वर्ण के बैलों द्वारा निकालने को कहा गया है ।२। गृह-यज्ञ के मण्डपादि निर्माण के समय उसकी मिट्टी को किसी भी वाहन द्वारा न हटाना चाहिए, क्योंकि वाहनों को उसका स्पर्श करने के लिए निषेध किया गया है । बगीचे एवं कुएँ के खोदने में काले रंग के बैलों द्वारा उसे मिट्टी के कार्य को संपन्न करना

वाहयेत्त्रिदिनं विप्राः पञ्चव्रीहींश्च वापयेत् । देवपक्षे सप्तगुण आरामकरणे गुणः ॥४
मुद्गमाषौ धान्यतिलाः श्यामाकश्चेति पञ्चमः । मसूरश्च कलायश्च सप्तव्रीहिगणः स्मृतः ॥५
सर्षपश्च कलायश्च मुद्गो माषश्चतुर्थकः । व्रीहित्रयं माषमुद्गौ श्यामाको महिषो गणः ॥६
सुवर्णमृत्तिका ग्राह्या वर्णानामनुपूर्वशः । बिल्ववृक्षैरियं कुर्याद्यूपशूनध्वजे दिने ॥७
अरत्निमात्रं विज्ञेयं प्रशस्तं यष्टिहस्तकम् । ऊर्णासूत्रमयीं मूर्तिं कृत्वा कुर्याच्चतुष्टयम् ॥८
क्षीरदारुगर्तयुतं द्वादशाङ्गुलमेव च । ज्वालयेत्तिलतैलेन तथा केशरजेन वा ॥९
पूर्वदिक्प्रणवे सिद्धिः पश्चिमाशागतिः शुभा । मरणे दक्षिणायां च हानिः स्यादुत्तरे स्थिते ॥१०
कल्पे विपत्करं विद्यात्तथा चैव च दिग्गते । नारसिंहेन मनुना चाग्निं प्रज्वाल्य दापयेत् ॥११
मासे घटे तथा मासे कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् । सूत्रयेत्कीलयेत्पश्चान्महामाने द्विजोत्तमाः ॥१२
ततो वास्तुबलिं दद्यात्खनित्रं परिपूजयेत् । आब्रह्मन्निति मन्त्रेण खनयेन्मध्यदेशतः ॥१३
आज्येन मधुयुक्तेन गात्रमेकं प्रलेपयेत् । स्वर्णतोयैस्तथा रत्नतोयैः स्नात्वा प्रलेपयेत् ॥१४
ईशानाभिमुखेनैव कूपपक्षे विदुर्बुधाः । अकृत्वा वास्तुयागं च यस्तडागं समुत्सृजेत् ॥१५
तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्धं निकृन्तति । प्रासादे च तथारामे महाकूपे तथैव च ॥१६
गृहारम्भे च विप्रेन्द्रा दद्याद्वास्तुबलिं ततः । शालैश्च खादिरैश्चैव पलाशैः केशरस्य च ॥१७

चाहिए।३। विप्रवृन्द ! तीन दिन के भीतर मिट्टी के कार्य समाप्त कर उपरान्त पाँच प्रकार के अन्न, देवमन्दिर-निर्माण अथवा बगीचे का कार्य हो तो सात प्रकार के अन्नों का बीजारोपण करना बताया गया है—मूँग, उरद, पान, तिल, और श्यामा ककुनी, ये पाँच अथवा मसूर और मटर समेत सात प्रकार के अन्न कहे गये हैं।४-५। सरसों (राई), मटर, मूँग, उरद, इसमें उरद, मूँग और श्यामाक (काकुन) को महिष गण बताया गया है।६। सभी वर्ण के मनुष्यों को गृह-निर्माण करने के विषय में बेल के बने हुए स्तम्भ, शून (चक्राकार) और ध्वज (स्थापन) के दिन, सर्वप्रथम क्रमशः (शास्त्र में बताये गये रंग की) अच्छी मिट्टी की अरत्नि मात्र की एक मूर्ति बनाकर उसे ऊनी सूत्रमय करे।७-८। पुनः उसे तिल के तेल अथवा केशर-तेल के द्वारा प्रज्वलित करना चाहिए, पूरब दिशा की ओर प्रणव के होने से सिद्धि, पश्चिम में शुभ गति, दक्षिण में मरण और उत्तर की ओर स्थित होने पर हानि होती है, उसी प्रकार कल्प दिशाओं के मध्य में स्थित होने पर आपदायें घेरती हैं। द्विजोत्तम ! मास, घट एवं मास में भूमि ग्रहण करके पश्चात् महामान के अनुसार सूत्र से घेर कर कील लगाना चाहिए।९-१२। तदुपरान्त वास्तु बलि प्रदान कर खोदने वाले अस्त्र (कुदार, फरुहा आदि) की पूजा विधिवत् सुसम्पन्न करे—'आ ब्रह्मन्निति' मंत्र के उच्चारणपूर्वक मध्य स्थल में खनना चाहिए।१३। सुवर्ण के जल और रत्न के जल से स्नान कराकर उसमें घी मिश्रित शहद का लेपन करे, यह सभी कर्म ईशानकोण के सम्मुख होकर करना चाहिए, इस प्रकार कुएँ खोदने के विषय में विद्वानों ने अपनी सम्मितियाँ प्रकट की हैं। वास्तु बलि के बिना प्रदान किये यदि तालाब का निर्माण कराया जाये, तो उसका आधा पुण्य वैवस्वत राजा नष्ट कर देते हैं। विप्रेन्द्रवृन्द ! उसी भाँति प्रासाद (महल), बगीचा, महाकूप और गृहारम्भ आदि सभी में सर्व प्रथम वास्तु बलि प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक होता है। शाल (शाखू), खैर, पलाश, केशर, बेल एवं बकुल का ही स्तम्भ

बिल्वस्य बकुलस्यैव कलौ यूपः प्रशस्यते । शुना चक्रोदरकृतं तत्पार्श्वे तु ध्वजद्वयम् ।।१८
सर्पाकारस्तडागे च कूपे कुम्भाकृतिर्भवेत् । आरामे पद्मपुष्पाभश्छत्रकारस्तु मण्डले ।।१९
कुर्याच्छुनाकृतिं सेतौ विष्णुगेहे गदाकृतिम् । अश्वाकारं चाश्वमेधे नरमेधे नराकृतिम् ।।२०
गोयागे च वृषाकारं गृहयागे ध्वजाकृतिम् । श्मशानगोप्रचारार्थे चैत्यवृक्षालयोत्तमाः ।।२१
चक्राकारो लक्षहोमे कोटिहोमे हलाकृतिः । नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यते द्रुमरोपणे ।।२२
एवं शस्योदितां भूमिं शुद्धां पूर्वप्लवान्विताम् । परिगृह्य यजेद्देवं वनपालं शिखिध्वजम् ।।२३
सोमं च नागराजानं ततो बीजं सुशोधयेत् । आनयेद्धारयेत्ताश्चाद्रौद्रतापेन तापयेत् ।।२४
दिनद्वयान्तरे चैव मन्त्रैश्च परिमन्त्रयेत् । गर्भाधानं ततः कुर्याद्विष्णुमन्त्रं जपंस्त्रिधा ।।२५
एवमस्येति मन्त्रेण त्रिधा जप्त्वा विमार्जयेत् । देहि मेति च मन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य दशवारिणा ।।२६
इत्यगृहीतमनुना पञ्चधा परिमन्त्रितम् । त्र्यम्बकेनेति मन्त्रेण बीजमारोपयेत्ततः ।।२७
भार्यामृतुमतीं स्नात्वा पञ्चमेऽहनि सत्तमाः । उत्सङ्गे स्थापयित्वा च चुम्बयेन्मन्त्रयेत्ततः ।।२८
एवं वृक्षस्य संस्कारमध्येऽपि त्वनुगच्छति । तेन पुत्रत्वमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।।२९
तुलस्या बीजमादाय वैष्णवर्क्षे द्विजोऽहनि । खानयेदपि गोमूत्रबिन्दुतोयैः प्रसेचयेत् ।।३०

कलियुग के लिए प्रशस्त कहा गया है। पुनः उसके पार्श्व में कुत्ते के आकार की भाँति दो ध्वजाएँ, जिसका उदर चक्राकार होता है, स्थापित करनी चाहिए।१४-१८। सरोवर में उसका आकार सर्प की भाँति, कुएँ में घड़े के समान, उद्यान (बगीचे) के लिए कमल पुष्प की भाँति, मंडल के लिए छत्राकार, पुल के लिए कुत्ते के आकार, विष्णु मन्दिर में गदा की भाँति, अश्वमेध यज्ञ में अश्व की भाँति, नरमेध यज्ञ में मनुष्य की भाँति, गो-यज्ञ में बैल की भाँति, गृहयज्ञ में ध्वज की भाँति बनाना चाहिए, और श्मशान एवं गो प्रचारार्थ पीपल आदि वृक्षों की भाँति बनाना उत्तम बताया गया।१९-२१। लक्ष आहुति वाले हवन में चक्राकार, करोड़ आहुति वाले हवन में हलाकार एवं वृक्ष के आरोपण करने में उसके मूल भाग में नक्षत्रों की भाँति बनाना चाहिए।२२। इस प्रकार शस्य के प्रशस्त एवं शुद्ध भूमि में जिसमें पहले पानी भर दिया गया रहा हो, मयूर ध्वजा वाले वनपाल देव की अर्चा करने के उपरान्त नागराज सोम की पूजा करे, तथा पश्चात् बीज के संशोधन, आनयन और धारण आदि क्रियाओं को सुसम्पन्न करना चाहिए, उसे भीषण ताप से संतप्त कर दो दिन के भीतर ही मंत्रों से अभिमंत्रित करके पुनः विष्णुमंत्र का तीन बार जपपूर्वक गर्भाधान आरम्भ करे।२३-२५। पश्चात् 'अस्येति' मंत्र के तीन बार जपपूर्वक उसका मार्जन (शुद्धि) और 'देहि मेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए देश जल से उसका संप्रोक्षण करना चाहिए।२६। मनु की बात को न मानने वालों ने इस भाँति पाँच प्रकार से अभिमंत्रित करना बताया है, तदनन्तर 'त्र्यम्बकेन' इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक बीजारोपण करना चाहिए। सत्तमगण! रजोवती स्त्री को स्नान से शुद्ध होने पर पाँचवें दिन अपने गोद में लेकर उसका चुम्बन एवं पश्चात् उसे अभिमंत्रित करना चाहिए।२७-२८। इसी भाँति वृक्ष के संस्कार के मध्य समय में भी यही अनुकरण करना चाहिए, इससे उसे निश्चित पुत्र की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं।२९। विष्णु भगवान् के नक्षत्र के दिन ब्राह्मण को चाहिए कि तुलसी के बीज लेकर भूमि खोदकर उसमें रखे और गोमूत्र के बिन्दु-जल से उसका सेवन करता रहे, इस

एतां तु स्वर्गमाप्नोति सितकुम्भे निपातयेत् । एकरात्रं परिस्थाप्य तत आरोपयेद्भुवि ।।३१
अविधौ कूपवाप्यादौ खनने सूयते क्वचित् । कुर्वन्ति सहकारादिरोपणं ये नराधमाः ।।
लभन्ते न फलं तेषामिह चाप्येत्यधोगतिम् ।।३२
नदीतीरे श्मशाने च स्वगृहस्य च दक्षिणे । तुलसीरोपणं कृत्वा याति कर्ता यमालयम् ।।३३
पत्रपुष्पफलानां च रजोरेणुसमागमाः । पोषयन्ति च पितरं प्रत्यहं प्रतिकर्मणि ।।३४
यस्तु वृक्षं प्रकुरुते छायापुष्पफलोपगम् । पथि देवालये चापि पापात्तारयते पितॄन् ।।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रत्यभ्येति शुभं फलम् ।।३५
अतीतानागतांश्चातः पितॄन्स स्वर्गतो द्विजाः । तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षं प्ररोपयेत् ।।३६
अपुत्रस्य हि पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते । यत्नेनापि च विप्रेन्द्रा अश्वत्थारोपणं कुरु ।।३७
शतैः पुत्रसहस्राणामेक एव विशिष्यते । कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्वित्रिप्रसङ्ख्यया ।।३८
मुक्तिहेतुः सहस्राणां लक्षकोटीनि यानि च । धनी चाश्वत्थवृक्षे च अशोकः शोकनाशनः ।।३९
प्लक्षो भार्याप्रदश्चैव बिल्व आयुष्प्रदः स्मृतः । धनप्रदो जम्बुवृक्षो ब्रह्मदः प्लक्षवृक्षकः ।।४०
तिन्दुकात्कुलवृद्धिः स्याद्दाडिमी कामिनीप्रदः । बकुलो वञ्जुलश्चैव पापहा बलबुद्धिदः ।।४१
स्वर्गप्रदा धातकी स्याद्वटो मोक्षप्रदायकः । सहकारः कामप्रदो गुवाकः सिद्धिमादिशेत् ।।४२

प्रकार करने से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, पुनः उसे श्वेत कुम्भ की भाँति (गमले आदि) में एक रात रखकर पश्चात् भूमि में उसका आरोपण करना चाहिए।३०-३१। विधानहीन होकर कुएँ, बावली आदि के खोदने के समय जो नराधम सहकार (आम) आदि के आरोपण प्रसव आदि करते हैं, उन्हें उनके फल प्राप्त नहीं होते हैं, प्रत्युत उनकी अधोगति होती है।३२। नदी के तट, श्मशान अथवा अपने घर के दक्षिण की ओर तुलसी वृक्ष के आरोपण करने से नरक की प्राप्ति होती है।३३। आरोपित वृक्षों में पत्र, पुष्प और फलों के रजकण, प्रत्येक कर्मों में पितरों को पोषित करता है।३४। जो कोई (अत्यन्त सघन) छाया, पुष्प और फलों वाले वृक्ष का आरोपण किसी मार्ग, चौराहे या देवालय में करता है, उसके पितरगण, पाप से मुक्त हो जाते हैं, और उसे स्वर्ग लोक में ख्याति एवं शुभ फल की प्राप्ति होती है।३५। द्विजवृन्द ! वृक्ष का आरोपण करने वाला व्यक्ति अपने पूर्व और पर के पितरों को पाप-मुक्त कराकर स्वर्ग प्रदान कराता है, अतः वृक्ष का आरोपण परमावश्यक होता है।३६। विप्रेन्द्रवृन्द ! इस लोक में वृक्षगण, पुत्रहीन को पुत्र प्रदान की शक्ति देते हैं, इसलिए अश्वत्थ (पीपल) के आरोपण के लिए प्रयत्नशील रहो।३७। सैकड़ों एवं सहस्रों पुत्रों में एक ही कोई विशिष्ट व्यक्ति होता है, जो इसको अपनाता है, विप्रवृन्द ! कामनावश एक, दो या तीन वृक्ष के आरोपण अवश्य करने चाहिए।३८। उसी भाँति मुक्ति प्राप्ति के लिए सहस्रों, लाखों एवं करोड़ों (अर्थात् जहाँ तक हो सके) वृक्षों के आरोपण करे। पीपल के वृक्ष आरोपण करने से धन, अशोक से शोक नाश, पाकड़ से स्त्री प्राप्ति, बेल से आयु, जामुन से धन, और पाकड़ से ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है।३९-४०। तेंदू से कुल वृद्धि, अनार से कामिनी, वकुल एवं अशोक से पापमुक्ति और बल बुद्धि की प्राप्ति होती है।४१। आवले से स्वर्ग, बरगद से मोक्ष, आम से सभी कामनाएँ, सुपारी से सिद्धि, बलवल से सभी प्रकार के धान्य, और महुवे तथा अर्जुन के भी वही फल बताये गये हैं। कदम्ब से विपुल कीर्ति,

सर्वशस्यं बलवले मधूके चार्जुने तथा । कदम्बे विपुला कीर्तिस्तिन्तिडी धर्मदूषिकः ।।४३
जीवन्त्यां रोगशान्तिः स्यात्केशरः शत्रुमर्दनः । धनप्रदश्चैव वटो वटः श्वेतवटस्तथा ।।४४
पनसे मन्दबुद्धिः स्यात्कलिवृक्षः श्रियं हरेत् । कलिवृक्षं च शाखोट उदरावर्तकं तथा ।।४५
तथा च [1]मर्कटीनीपरोपणात्संततिक्षयः । शिंशपां चार्जुनं चैव जयन्ती हय[2]मारकान् ।।
श्रीवृक्षं किंशुकं चैव रोपणात्स्वर्गमादिशेत् ।।४६
न पूर्वां रोपयेज्जातु समिधं कण्टकीद्रुमम् । कुशं पद्मं जलजानां रोपणाद्दुर्गतिं व्रजेत् ।।४७
मन्दारे कुलहानिः स्याच्छाल्मले शुक्रबुद्धिमान् । निम्बे पशुविनाशः स्याच्छत्राके कुलपांसलः ।।४८
उत्पन्ने कुलपातः स्यात्पशोरेव क्षयो भवेत् । शत्रुवृद्धिः काकनादे बलपूगे हतश्रियः ।।४९
विना क्रतौ विरुद्धश्च न सिंहं द्विजसत्तमाः । क्रतौ हि स्याद्विरुद्धश्च प्राप्नुयान्नरकाकृतिम् ।।५०
सहकारसहस्रात्तु वरिष्ठं धातकीद्वयम् । तस्माच्चैव सहस्राद्धि पाटलैका विशिष्यते ।।५१
पाटलानां शतात्पश्चादेकरक्तवटो भवेत् । वटानां द्विसहस्राच्च पञ्चकं नागकेशरम् ।।५२
तस्माद्वरिष्ठः श्रीवृक्षो जम्बूवृक्षः प्रशस्यते । तस्माद्धिमवतो ज्ञेयः श्रीपर्णीवृक्ष उत्तमः ।।५३
तिन्दुकस्य त्रयश्चैव जम्बूवृक्षस्य पञ्चकम् । कदम्बार्जुनवृक्षस्य नारिकेरस्य च त्रयम् ।।
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा कारयेत्कीदृशं बलम् ।।५४
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । स्वर्गभोगं समश्नाति विधिवद्द्रुमरोपणे ।।५५

इमली से दूषित धर्म, हर्रे से रोगशांति, केशर से शत्रु-नाश, बरगद तथा श्वेत बरगद से धन, कटहल से मंदबुद्धि, कलिवृक्ष से श्रीहानि नाभि की भाँति प्रकार वाले शाखोट को ही कलिवृक्ष बताया गया है। जवास से संताननाश एवं शिंशपा, अर्जुन, जयंती, कनेर श्री वृक्ष तथा किंशुक के लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।४२-४६। काँटे वाले एव समिध शमी के वृक्ष पहले कभी नहीं लगाने चाहिए, कुश, कमल, एवं पानी में उत्पन्न रहने वाले आदि वृक्षों के लगाने से दुर्गति प्राप्ति होती है।४७। मदार से कुल नाश, सेमर से शुक्र की भाँति तीव्र बुद्धि, नीम से पशु विनाश, तथा छत्राक (केला आदि) से व्यभिचारी कुल हो जाता है।४८। हाते के भीतर इसके स्वयं उत्पन्न होने पर कुल नाश, एवं पशुक्षय होता है। काकनाद से शत्रुवृद्धि, और बलपूग से श्री नाश होता है।४९। द्विजसत्तम! यज्ञ में सिंह के बिना विरोध न करना चाहिए। और क्रतु में विरुद्ध होने पर उसे नारकीय आकृति की प्राप्ति होती है।५०। सहस्रों आम के पेड़ से घातकी के दो ही वृक्ष लगाना अत्यन्त उत्तम बताया गया है, उसी भाँति सहस्रों घातकी से पाटल का एक वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है।५१। सैकड़ों पाटल से एक रक्तवट, दो सहस्र वटों से नागकेशर के पाँच वृक्ष, उससे श्रीवृक्ष और जामुन के वृक्ष कहे गये हैं पुनः उससे भी पर्णी वृक्ष, तथा तीन तेंदू, पाँच जामुन, कदम्ब, अर्जुन एवं नारियल के तीन वृक्ष उत्तम बताये गये हैं, इन्हें अवश्य लगाने चाहिए, इस प्रकार के वृक्षों के लगाने से उस धर्मात्मा को किस भाँति बल की प्राप्ति होती है, (मैं बता रहा हूँ)। सहस्रकोटि कल्प, एवं सौ कोटि कल्प एवं सौ कोटिकल्प तक स्वर्ग के उपभोग उसे इन अनेक भाँति के वृक्षों के लगाने से प्राप्त होते हैं

---

१. केवाँछ इत्युदीच्यभाषयोच्यते। २. करवीरान्। इह सर्वत्र शेषषष्ठीविषये कर्मत्वमार्षम्।

जन्मत्रयादिकं पापं विनाश्य स्वर्गमादिशेत् । शतरोपी च ब्रह्मत्वं विष्णुत्वं च सहस्रके ।।५६
तुलसीरोपणाच्चैत्र आधिव्याधियुतो भवेत् । वैशाखे कीर्तिमाप्नोति ज्येष्ठे तु मरणं व्रजेत् ।।५७
आषाढे कीर्तिमाप्नोति श्रावणे परमां गतिम् । भाद्रे धनागमश्चैव आश्विने कार्तिके क्षयः ।।
तुलसी त्रिविधा लोके कृते श्वेता प्रशस्यते ।।५८
किञ्चिच्छेदं च यः कुर्यादश्वत्थस्य वटस्य च । श्रीवृक्षस्य च विप्रेन्द्राः स भवेद्ब्रह्मघातकः ।।५९
मूलच्छेदेन विप्रेन्द्राः कुलपातो भवेदनु । वृक्षच्छेदी भवेन्मूक आधिव्याधिशतं भजेत् ।।
सायं प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ।।६०
फलमामकुलत्थश्च माषो मुद्गास्तिला यवाः । नृत्यगीतपयःकेशफलपुष्पप्रदो भवेत् ।।६१
अविकाकसकृच्चूर्णं यवचूर्णानि यानि च । गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ।।६२
तमेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदम् । रोहिमत्स्यस्य पित्तानि धान्याकं तत्र स्थापयेत् ।।६३
तेनोदकादिसेकश्च कृतो वै वृद्धिमादिशेत् । तित्तिडीबीजमादाय इक्षुदण्डेन मर्दयेत् ।।६४
तेनाशोके प्रसेकः स्यात्सहकारस्य वृद्धिमान् । नालिकेरोदकं चैव माक्षिकैः सह सेचयेत् ।।६५
दोहदं सर्ववृक्षाणां पूगादीनां विशेषतः । दशशिराबीजयुतादभिषेकाच्च जीवति ।।६६
प्राक्प्रसूतिर्गवादीनां छागादिमहिषस्य च । जरासु तोयं वृक्षाग्रे स्थापयेदविचारयन् ।।६७
परस्य सहकारस्य फलं स्यान्नात्र संशयः । मेषस्य च वितालस्य यवागूं च समाहरेत् ।।६८

।५२-५५। उसके तीन जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और शीघ्र स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है, सो वृक्षों को लगाने से ब्रह्मत्व एवं सहस्र से विष्णुत्व की प्राप्ति बतायी गयी है। चैत्र मास में तुलसी के वृक्ष लगाने से शारीरिक-मानसिक दोनों के कष्ट, वैशाख में कीर्ति, ज्येष्ठ में मरण, आषाढ़ में कीर्ति, सावन में परमगति, भादों में धनागम, आश्विन और कार्तिक में क्षय होता है। लोक में तीन प्रकार की तुलसी में श्वेत तुलसी प्रशस्त बतायी गयी है।५६-५८। विप्रेन्द्रगण ! पीपल, बरगद तथा श्रीवृक्ष के लेशमात्र भी काटने से उसे ब्रह्मघाती कहा जाता है।५९। विप्रेन्द्र ! इनके जड़ समेत काटने पर तो कुल नाश ही हो जाता है, क्योंकि वृक्ष काटने वाला गूंगा होता है, उसे सैकड़ों शारीरिक एवं मानसिक कष्ट सदैव घेरे रहते हैं। प्रातःकाल, सायंकाल, धूप के अंत में, शीतकाल (जाड़ों) में एक आध दिन के उपरान्त आम, मटर, उरद, मूँग, तिल और यवा, नृत्य, गीत, पय, केश, फल और पुष्प प्रदान करते हैं।६०-६१। भेड़, कौवे के चूर्ण, यव के चूर्ण, गोमांस, जल, इन्हें सात रात-दिन ढाँक के रख देने पर इनमें से एक-एक समस्त वृक्षों के फल, पुष्प आदि की वृद्धि प्रदान करते हैं, और रोहू मछली के पित्त में धान्याक रखकर उसके जल से जिसका सेचन किया जाये, उसकी वृद्धि होती है। तित्तड़ी के बीज को ऊख के दंडे से अच्छी तरह घिसने से अशोक में प्रसेक और आम के लिए वृद्धि प्राप्त होती है। नारियल के जल में माक्षिक (मोम) जलाकर सींचने से सभी वृक्षों में विशेषकर सुपाड़ी में अंकुर उत्पन्न होता है। दशशिरा के बीज मिलाकर सीचने से तो उसमें प्राण संचार ही होने लगता है।६२-६६। गौ आदि के प्रथम प्रसव को बकरी भैंसे आदि के जरा में मिश्रित जल को वृक्षों के अग्रभाग में रख दे, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं।६७। उससे आम में फलों की अत्यन्त वृद्धि होती है, भेंड़ और विताल के लप्सी बनाकर उसमें एक मास तक राई डालकर मर्दन करे, पश्चात् उसे तीन दिन

तत्र मासैः सर्षपैश्च पूरयेन्मर्दयेत्ततः । गुवाकवृक्षकं देव घर्षयेन्मर्दयेत्त्रिभिः ।।६९
मृतोऽपि जीवयेच्छीघ्रं म्रियमाणोऽपि जीवति । निम्बपत्रं योगपत्रं शतावरिपुनर्नवाम् ।।७०
क्षीरिकाताम्रकैः पत्रैर्धूमं दद्याद्दिनत्रयम् । सहकारस्य मूलेन कीटरोधो न जायते ।।७१
ततः प्राधान्यतो वक्ष्ये द्रुमाणां दोहदोऽन्यथा । मत्स्योदकेन सिक्तेन आम्राणां वृद्धिरिष्यते ।।७२
पक्वाम्रं रुधिरं चैव दाडिमानां प्रशस्यते । यवोदकं सगोमांसं केतकीनां प्रशस्यते ।।७३
क्षीरके बलवृद्धिः स्यात्तिंदुकः करमर्दकः । मांसपूतिरसामज्जा शोकताले गुवाकके ।।७४
सपूतिमांसं सघृतं नालिकेरस्य रोहितम् । मधुयष्ट्युदकैः सेकात्सामान्यं निहितं भवेत् ।।७५
कपित्थबिल्वयोः सेकं गुडतोयेन सेचयेत् । जातीनां मल्लिकानां च कुन्दानां रन्तिकस्य च ।।७६
गंधतोयसितकरं सर्पनिर्मोक धूपकम् । कूर्ममांसमन्नरसं विडंगस्य च पुष्पकम् ।।७७
रथ्याद्वृक्षे प्रतिष्ठाप्य फलवाञ्जायते ततः । वातसर्पस्य निर्मोकं तगराजगवस्य च ।।७८
दद्याद्धूपं धान्यमध्ये धान्यवृद्धिश्च जायते । मयूरपत्रमादायच्छागरोमाणि सप्त वै ।।७९
एरण्डतैलयोगेन दद्याद्धूपं निशागमे । हिंगुकुसुमसंयोगान्मूषिकाणां पलायनं ।।८०
करिविष्ठामृच्छविष्ठां कृत्तिकायां समाहरेत् । निशातोये प्रसेकः स्यात्तत्क्षात्रमूलकं हरेत् ।।८१
अश्वत्थमूले दशहस्तमात्रं क्षेत्रं पवित्रं पुरुषोत्तमस्य ।
अश्वत्थच्छायासलिलस्य मध्ये विशेषतो वै त्रिपथैव गंगा ।।८२

तक गुवाक वृक्ष में घिसता रहे, तो यदि वह मृत हो गया हो तो जीवित हो जाता है, और मरणासन्न भी जीवित हो जाता है। नीम की पत्ती, योग की पत्ती, शतावर, पुनर्नवा (गदहपुन्ना) और क्षीरिका को रक्तपत्रों में मिलाकर उसकी तीन दिन धूप प्रदान करने से आम के जड़ में कीड़े नहीं लगते हैं।६८-७१। इसके उपरान्त मैं तुम्हें वृक्षों में अंकुर के शीघ्र निकलने की क्रिया बता रहा हूँ ! मछली के जल से सींचने पर आमों की शीघ्र और अत्यन्त वृद्धि होती है।७२। पके आम और रुधिर अनार की वृद्धि के लिए प्रशस्त बताया गया है, उसी भाँति केतकी के लिए जवा के जल मिश्रित गोमांस अत्यन्त प्रशस्त हैं।७३। उससे (दूध वाले) क्षीरक वृक्षों में बल की बृद्धि होती है, उसी प्रकार तिंदुक से हाथ में खुजलाहट, शोकतालं सुपारी से मांस की दुर्गन्ध और रस मज्जा उत्पन्न होता है। रोहित (रोहू) मछली के जल से नारियल में, घी, गन्ध और मांस की वृद्धि होती है। शहद, जेठीमधु (पान की जड़) के जल से सामान्य वृद्धि होती है।७४-७५। कैथ और बेल की वृद्धि के लिए गुड़ के जल से सींचना चाहिए। जूही, चमेली, कुंद, एवं रन्तिक में गंध, जल और श्वेत घने की वृद्धि साँप की केचुल की धूप देने से होती है। कछुए के मांस अन्न रस तथा विडङ्ग के पुष्प को गावों के मध्यवाले एवं नगरों की गलियों के वृक्षों में छोड़ने से उनकी अत्यन्त वृद्धि होती है। वायुप्रकृतिक साँप की केंचुल और तगर की धूप शस्यों में देने से धान्य वृद्धि होती है। मयूर के पखने बकरी के सातलोम, इन्हें रेड़ी के तेल में मिलाकर आधी रात के समय इसकी धूप देने से चूहे पलायन कर जाते हैं, तथा हींग एवं कुसुम के संयोग से भी यही होता है।७६-८०। कृत्तिका नक्षत्र के दिन हाथी एवं रीक्ष के मल को जल में मिलाकर आधी रात के समय उससे सींचने से क्षात्र मूल नष्ट हो जाता है।८१। पीपल के वृक्ष में दशहाथतक पुरुषोत्तम का क्षेत्र कहा जाता है, पीपल की छाया यदि कहीं जल में हो तो वह विशेष कर त्रिपथगा

बाहुविंशान्तरे रोपेत्सहकारं स धर्मवित् । कलाहस्तान्तरं धात्रीं बकुलं वंजुलं तथा ।।८३
श्रीपर्णिकं च पुन्नागं श्रीवृक्षं द्विगुणं तरौ । हस्ते शैलमये चैव उत्तमं मानमीरितम् ।।८४
शैलेष्टकादिरचिते चतुर्हस्ते तु सम्मिते । वाप्यादीनां तु कूपानामेकवृक्षादिकस्य च ।।८५
श्रीविष्णोर्वृक्षपक्षे च वरुणेष्टं च कूपके । गणेशं पूजयेत्कुम्भं दिक्पालांश्च विशेषतः ।।८६
अग्निकार्यं विना कुर्यात्प्रकुर्याच्च सतां गतिम् । श्रुत्वा कृतिं विधानेन अन्येषां वा तथोद्भवम् ।।८७
अन्येषां चैव वृक्षे च तत्र च तुलसीवने । कुम्भे वनस्पतिः स्थाप्यः पूजयेद्धोमयेत्ततः ।।८८
वृक्षान्वानेन संस्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् । शुच्यमानमिदं ज्ञेयमन्येषां वा तथोद्भवम् ।।८९
तुलस्याः सहकारस्य ब्रह्मवृक्षस्य चैव हि । अश्वत्थस्य वटस्यैव स्वर्णतामथ वेधयेत् ।।९०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्तनिर्णये दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

तन्त्रात्मकप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अथ तन्त्रविधिं वक्ष्ये पुराणेष्वपि गीयते । तन्त्रे चैव प्रतिष्ठां च कुर्यात्पुण्यतमेऽहनि ।।१

गंगा के समान होता है ।८२। धर्मवेत्ता को चाहिए कि बीस हाथ की दूरी पर आम के वृक्ष लगाये, आँवला, वकुल, बंजुल सोलह हाथ की दूरी पर लगाने चाहिए ।८३। सेमर के वृक्ष, नागकेसर और पीपल के वृक्ष को उसकी दुगुनी दूरी पर लगाना चाहिए, इस प्रकार शैलमय हाथ के उत्तम मान को बता दिया गया ।८४। बावली आदि कुएँ और वृक्षादिकों की प्रतिष्ठा में पत्थर या ईंटे से चार हाथ की वेदी बनाकर वृक्षों की प्रतिष्ठा में श्री विष्णु, कुएँ में वरुण की पूजा में सर्वप्रथम कलशस्थापन पूर्वक गणेश और विशेषकर दिक्पालों की पूजा आवश्यक होती है ।८५-८६। इसमें हवन न करने पर उत्तम गति प्राप्त होती है । उपरोक्त विधान में अथवा जिस किसी वृक्ष आदि की प्रतिष्ठा करनी हो, उसमें तुलसी वन में घड़े के ऊपर उस वृक्ष का स्थापन करके पूजन एवं हवन करना चाहिए ।८७-८८। पुनः उसी से संस्कृत (संस्कार किये हुए) वस्त्र से उसे चारो ओर से आवेष्टित (लपेट) कर इस पवित्रतापूर्ण कार्य के समेत उसकी प्रतिष्ठा का विधान सुसम्पन्न करना चाहिए ।८९,। तुलसी, आम, ब्रह्मवृक्ष, पीपल एवं बरगद इन्हीं की स्वर्णता के वेधन करना चाहिए ।९०

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—अब मैं उस तंत्र के विधान को बता रहा हूँ, जिसकी व्याख्या पुराणों में भी की गई है । उस तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा को किसी अत्यन्त पुण्य दिवस में सुसम्पन्न करना चाहिए ।१। छोटे-छोटे सौ वृक्ष,

शतवृक्षक्षुद्रवृक्षे दशद्वादशवृक्षके । दृष्टिमात्रान्तरे सेतौ कूपयागे समुत्सृजेत् ॥२
न कूपमुत्सृजेज्जातु वृक्षयागे कथञ्चन । तुलसीवनयागे तु न चान्यं यागमाचरेत् ॥३
तडागयागे सेत्वादीन्न चारामे कदाचन । न सेतुं देवयागे तु तडागं न समुत्सृजेत् ॥४
तन्त्रे श्राद्धं पृथङ्नास्ति कर्तृभेदे पृथग्भवेत् । शिवलिङ्गस्थापनायां न चान्यद्देवस्थापनम् ॥५
स्वदेशे वर्जयेत्तं तं स्वतन्त्रेण विधीयते । विपरीते कृते चापि आयुःक्षय इति स्मृतिः ॥६
तडागे पुष्करिण्यां वा आरामेऽपि द्विजोत्तमाः । मानहीने मानपूर्णे दशहस्ते न दूषणम् ॥७
द्विसहस्राधिकं यत्र तत्प्रतिष्ठां समाचरेत् । दश द्वादशवृक्षे च आरामे पूर्ववद्द्विजाः ॥८
प्रतिष्ठां बिल्ववृक्षे च अन्यथा कर्णवेधनम् । कुर्याद्दोहददानं च तत्र निर्मन्थनादिकम् ॥९
अनन्तरं प्रदातव्यं लाजा मूर्ध्न्यक्षतादिकम् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि पूर्वभागे तन्त्रप्रतिष्ठावर्णनम् नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्रतिमालक्षणवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिमालक्षणं वक्ष्ये यथाशास्त्रमतं द्विजाः । प्रतिमां लक्षणैर्हीनां गृहीतां नैव पूजयेत् ॥१

या दश बारह वृक्ष और छोटे पुल की प्रतिष्ठा अलग न करके कुएँ की प्रतिष्ठा में ही सम्मिलित कर लेना चाहिए।२। कूप-यज्ञ को कभी भी वृक्ष याग में सम्मिलित न करना चाहिए, उसी भाँति तुलसी वन के यज्ञ में किसी अन्य यज्ञ का सम्मिश्रण न होना चाहिए।३। पुल आदि की प्रतिष्ठा सरोवर यज्ञ, अथवा बगीचे की प्रतिष्ठा में सम्मिलित न करना चाहिए, उसी भाँति देवयज्ञ में सेतुयज्ञ, और सरोवर यज्ञ न सम्मिलित करना चाहिए।४। तंत्र विधान में पृथक् श्राद्ध करना नहीं बताया गया है, पर, कर्ता के भेद से पृथक् करना अनुचित नहीं कहा गया है। शिवलिंग की स्थापना में किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा सम्मिलित न करनी चाहिए।५। प्रत्येक की प्रतिष्ठा को स्वतन्त्रता से सुसम्पन्न करने और किसी अन्य का सम्मिश्रण न करने का विधान बताया गया है, इसके प्रतिकूल करने से आयु क्षीण होती है, ऐसा स्मृतियों में कहा गया है।६। द्विजोत्तम ! सरोवर, पुष्करिणी एवं बगीचे की प्रतिष्ठा के विषय में बताया गया है कि वह पूरे मान के अनुसार हो अथवा मानहीन केवल दश हाथ प्रमाण का ही हो, तो उसमें दोष नहीं होता है।७। वृक्षों की दो सहस्र से अधिक संख्या जिस बगीचे में हो उसी की प्रतिष्ठा समुचित बतायी गयी है। दश-बारह आम के वृक्षों के लिए तो वही पूर्वोक्त विधान ही कराना चाहिए।८। बेल की प्रतिष्ठा, कर्णवेध, दोहद दान, और निर्मंथनादि के उपरान्त उनके सिर पर लाजा (लावा) और अक्षत चढ़ाने चाहिए।९-१०

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के पूर्व भाग में तन्त्रप्रतिष्ठावर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।११।

अध्याय १२

प्रतिमा-लक्षण का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! मैं प्रतिमा के शास्त्र सम्मत लक्षण बता रहा हूँ, लक्षणहीन प्रतिमाओं

शैलजा दारुजा ताम्री मृद्भूवा सर्वकामदा । एकहस्ता द्विहस्ता वा सार्धहस्ता तथापि वा ।।२
प्रासादमानमथवा अथवा सर्वलक्षणम् । अष्टाङ्गुलोत्सेधकं च न तु गेहेऽर्चयेत्कृती ।।३
देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टाङ्गुलेन तु । त्रिभागपिण्डिका कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ।।४
अङ्गुलं वै भवेद्वृद्धिरशीतिश्चतुरुत्तरा । विस्तारमानतः कार्यं वदनं द्वादशाङ्गुलम् ।।५
मुखत्रिभागे चिबुकं ललाटं नासिकां तथा । कर्णौ नासिकया ग्रीवातुल्यौ वा नियतौ तु यौ ।।६
नयने द्वयङ्गुले स्यातां त्रिभागा तारका भवेत् । तृतीयतारकाभागे शुभदृष्टिं विचक्षणः ।।७
ललाटमस्तकग्रीवं कुर्यात्तत्सममेव तु । परिणाहस्तु शिरसो भवेद्द्वात्रिंशदङ्गुलः ।।८
तुल्यौ नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयान्तरम् । अथ विस्तारपङ्क्तिस्तु ततोऽर्धं तु कटिः सदा ।।९
बाहू च बाहुतुल्यौ च ऊरू जङ्घे च जाघनम् । गुल्फावस्थ्नस्तु पादः स्याद्वाटितश्चतुरङ्गुलः ।।
षडङ्गुलस्तु विस्तारस्तुल्याङ्गुष्ठोऽङ्गुलत्रयम् ।।१०
प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषान्नखानखम् । चतुर्दशाङ्गुलः पादस्यायामः परिकीर्तितः ।।११
एवं लक्षणसंयुक्ता सा पूज्या प्रतिमा शुभा । अधरोष्ठस्तथैवोरुभ्रूललाटमनीषिकम् ।।१२
गण्डं च नियतं मूर्तौ कुर्यादंगसमुन्नतेः । विशालनयनस्ताम्रपदो वायतलोचनः ।।१३
सवितानलपत्रस्य चारुविद्याधरस्तथा । वत्सप्रोक्तोऽतिमुकुटः कटकाङ्गदहारवान् ।।१४

की पूजा कभी न करनी चाहिए।१। पत्थर, काष्ठ, ताँबे और मिट्टी की प्रतिमा एक हाथ दो हाथ अथवा डेढ़ हाथ की बनानी चाहिए, उससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं।२। प्रासाद (महल) की भाँति मानपूर्ण, मन्दिर में प्रतिमाओं का पूजन करना चाहिए और समस्त लक्षणों वाली प्रतिमा जिसकी शरीर आठ अंगुल प्रमाण की हो, का पूजन आदि अपने घर में किसी कुशल व्यक्ति को कभी न करना चाहिए।३। देवालय के दरवाजे क्षेत्रफल में आठ अंगुल और मिलाकर उसके तिहाई भाग पीड़ी (मूर्ति के खड़े रखने की वेदी) और दो भाग की लम्बाई के अनुसार प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए।४। प्रतिमा की लम्बाई-चौड़ाई एवं अंग (प्रत्यंग) का मान मिलकार कुल चौरासी अंगुल होना चाहिए। बारह अंगुल का लम्बा-चौड़ा मुख उसमें मुख, ठोढ़ी, भाल और नाक तीन-तीन अंगुल के होने चाहिए, नाक और गले के समान दोनों कान, दो अंगुल के नेत्र, और उसके तीसरे भाग के समान आँख की कनीनिका तारा होनी चाहिए, तीसरे भाग के समान तारका वाली आँखे विद्वानों ने शुभ बतायी है।५-७। भाल, मस्तक, और गले को उसी के अनुसार रखना चाहिए, यों ही शिर का बत्तीस अंगुल का मान बताया गया है।८। नाक के समान कान और कण्ठ तथा मुख के समान हृदय का मध्यभाग बनाना चाहिए। जितनी लम्बाई हो, उसकी आधी कटि सदैव होनी चाहिए, उसी भाँति बाहु के समान भुजाएँ, और ऊँचे जंघे के समान जंघे का निर्माण करना चाहिए, गुल्फ (एड़ी), पैर चार अंगुल के न होने चाहिए। उसका विस्तृत मान छः अंगुल का बताया गया है—तीन अंगुल के अंगूठे एवं उसी के समान तर्जनी अंगुली तथा शेष अंगुलियाँ क्रमानुसार छोटी-बड़ी बनानी चाहिए, इसप्रकार पैर का पूर्ण मान चौदह अंगुल का होता है।९-११। इस भाँति की लक्षण सम्पन्न एवं शुभ प्रतिमा की पूजा करना कहा गया है। उपरोक्त उसी प्रकार उरु भौहें, ललाट, जिह्वा एवं कपोल, इतने अंग मूर्ति के अवश्य उन्नत होने चाहिए, विशाल नेत्र, रक्तवर्ण के चरणतल अथवा दीर्घ नेत्र बनाने चाहिए।१२-१३। सूर्य एवं नल यम की प्रतिमा का इस भाँति वर्णन कर दिया गया, उसी

अभ्यंगपदबन्धादि सामान्येनोपशोभि च । सुप्रभामण्डला चारु विचित्रमणिकुण्डला ।।१५
कराभ्यां काञ्चनीं मालां प्रोद्वहंती शिरोरुहान् । एवं लक्षणसम्पन्नां कारयेद्विहितप्रदाम् ।।१६
सुस्निग्धां वरदां सौम्यां द्वितीयाश्रमिणामिमाम् । नवतालो भवेद्विष्णुर्वासुदेवस्त्रितालकः ।।१७
नृसिंहः पञ्चतालः स्याद्धयग्रीवस्तु पञ्चमः । नारायणश्चाष्टतालो महेशः पञ्चतालकः ।।१८
नवताला भवेद्दुर्गा लक्ष्मीश्चैव त्रितालिका । वाणीं त्रितालिकां विद्यात्सविता सप्ततालकः ।।१९
दक्षिणे वासुदेवस्य करे चक्रं प्रतिष्ठितम् । शङ्खो भवेच्च तदधो वामार्धे तस्य वै गदा ।।२०
तदधश्च भवेत्पद्मं श्रीवत्सेनोपशोभितम् । सव्येऽर्धे तारकास्यं च त्रिनेत्रमुभयात्मकम् ।।२१
पार्श्वे नलिनसिंहौ द्वौ सुभद्रां दक्षिणे न्यसेत् । रुक्मिणीं वामभागे च तदधस्ताद्दिवीन्द्रकम् ।।२२
कृताञ्जलिपुटस्थश्च नारदः कपिलस्तथा । धर्माधर्मावुभौ पार्श्वे कर्तव्यौ स्रग्विणां वरौ ।।२३
यदुग्रं वासुदेवस्य तथा नारायणस्य च । वैपरीत्यं विजानीयान्माधवानां तथैव च ।।२४
तीर्थे गिरौ तडागे च समीपे स्थापयेत्सुधीः । नगरग्राममध्ये वा ब्राह्मणानां च संसदि ।।२५
अविमुक्ते विशेषेण सिद्धक्षेत्रे दशार्णके । त्रीण्युत्तरसहस्राणि पञ्चपञ्चोत्तराणि षट् ।।२६
कुलानि पूर्वं विप्रेन्द्राः समुद्धरति नान्यथा । कलौ दारुमयः कार्यो ह्यशक्तौ मृण्मयोऽथ वा ।।२७

भाँति सौन्दर्यपूर्ण विद्याधर की मूर्ति का निर्माण होना चाहिए । उस मूर्ति को श्रीवत्स, मुकुट, कटकांगद और हार आदि आभूषणों से भूषित कर, उबटन, पदबन्ध आदि से उसे सुशोभित करे, उसके मण्डल की प्रभा सुन्दर होनी चाहिए, सौन्दर्यपूर्ण एवं चित्र-विचित्र मणि के कुण्डलों से अलंकृत करना परमाश्वयक होता है ।१४-१५। उसके हाथों में काञ्चनी माला और शिर में सौन्दर्यपूर्ण केश का निर्माण कर उसे इस भाँति के लक्षणों से सुसम्पन्न करे जिससे अपना अभीष्ट शीघ्र सिद्ध हो । उसका स्निग्ध वर्ण, वर प्रदायक स्वभाव चेष्टा और सौम्य दर्शन होना परमावश्यक होता है, ऐसी ही मूर्ति, गृहस्थों को अभीष्ट प्रदान करती है । विष्णु के नवताल, वासुदेव के तीन ताल, नृसिंह के पाँच, हयग्रीव के भी वही, नारायण के आठ, महेश्वर के पाँच, दुर्गा देवी के नव, लक्ष्मी के तीन, सरस्वती के तीन, और सूर्य के सात ताल होते हैं ।१६-१९। वासुदेव के दाहिने हाथ में चक्र, उसके नीचे वाले में शंख, बायें ऊपर वाले में गदा और नीचे वाले में कमल सुशोभित करना चाहिए । श्रीवत्स से विभूषित कर पहले उनकी दाहिनी आँख में पुतली सम्पन्न कर पश्चात् बायें लगाये ।२०-२१। उनके पार्श्व भाग में कमल और सिंह तथा दाहिनी ओर सुभद्रा बायें रुक्मिणी एवं उनके नीचे भाग में इन्द्र की स्थापना करनी चाहिए ।२२। पुनः उनके अञ्जलि पुट में नारद और कपिल तथा पार्श्व भाग में मालाधारी धर्म और अधर्म की स्थिति होनी चाहिए ।२३। वासुदेव, नारायण के जो अङ्ग भीषण हों, उन्हें अपने लिए प्रतिकूल ही जानना चाहिए, उसी भाँति माधव के भी । इनका स्थापन-तीर्थ, पर्वत प्रदेश, सरोवरतट, नगर-गाँव के मध्य अथवा ब्राह्मणों के सामूहिक बस्ती में करना चाहिए ।२४-२५। अविमुक्त, विशेषकर सिद्ध क्षेत्र दशार्ण में देश में हो तो अत्यन्त उत्तम होता है । इस प्रकार उनकी इस भव्य मूर्ति के स्थापन से उन्नीस सहस्र कुल के उद्धार होते

चन्दनागुरुभिः कुर्याद्बिल्वश्रीपर्णिकस्य च । पद्मकाष्ठमयश्चैव वासमस्य तथैव हि ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कुण्डनिर्माणविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कुण्डानामथ निर्णयम् । तस्योद्धारं च संस्कारं शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१
चतुरस्रं च वृत्तं च पादार्धं चार्धचन्द्रकम् । योन्याकारं चन्द्रकं च अष्टार्धमथ पञ्चमम् ॥२
सप्तार्धं च नवार्धं च कुण्डं दशकमीरितम् । भूमिं संशोध्य विधिवत्तुषकेशादिवर्जिताम् ॥३
भ्रामयेच्चोर्ध्वतस्तस्या भस्माङ्गाराणि यत्नतः । अङ्कुरार्पणकं कुर्यात्सप्ताहादेव बुद्धिमान् ॥४
स्थानं विमर्दितं कुर्यात्खनित्वा सेचयेज्जलैः । पुष्टिहस्तोच्छ्रायमितं प्रकुर्यात्परिसूत्रयेत् ।५
अर्काङ्गुलमितं सूत्रं चतुरस्रं प्रकल्पयेत् । अष्टादशाङ्गके क्षेत्रे न्यसेदेकं बहिस्ततः ॥६
मापयेत्तेन मानेन त्रिवृत्तं कुण्डमुज्ज्वलम् । पूर्ववद्विभजेत्क्षेत्रं भागैकं पुरतो न्यसेत् ॥७
वृत्तानि कालिकादीनि बहिस्त्रीणि विवर्जयेत् । पद्मकुण्डमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् ॥८

हैं, कलियुग में काष्ठ के अथवा अशक्त होने पर मिट्टी की ही मूर्ति बनाये तथा चंदन, अगुरु बेल, पीपल एवं मनोहर पद्म काष्ठ की भी प्रतिमा बनायी जाती है ।२६-२८
श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में प्रतिमालक्षण वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अध्याय १३

कुण्डनिर्माण—विधिवर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! इसके उपरान्त मैं कुण्डो के निर्णय, उद्धार और संस्कार बता रहा हूँ, सुनो ! चौकोर, गोलाकार, पादार्ध, अर्धचन्द्राकार, योनि के समान, चन्द्र की भाँति, अष्टार्ध, पञ्चमार्ध, सप्तार्ध, और नवार्ध, ये दश भाँति के कुण्ड बताये गये हैं । प्रथम भूमि संशोधन—तुष (भूसी) केश आदि रहित करके उसके ऊपर भस्मांगार को बलपूर्वक चारों ओर घुमाये, और उस बुद्धिमान् को सप्ताह के भीतर उस पर बीज आरोपित कर अंकुर उत्पन्न कर लेना चाहिए ।१-४। पुनः उस दृढ़ भूमि को खन कर जल से सेचन करे, इस प्रकार एक हाथ के ऊँचे कुंड बनाकर सूत्र से चारों ओर उसे आवेष्टित करना चाहिए ।५। चौकोर कुण्ड के निर्माण में बारह अंगुल का सूत्र होना चाहिए, अष्टादश अंग वाले कुण्ड के क्षेत्र में एक भाग बाहर रखकर उसी माप दण्ड के मान से उस त्रिवृत (तीन बार घिरा) एवं उज्ज्वल कुण्ड का मान पूरा करना चाहिए, उसके क्षेत्र का प्रथम पूर्व की भाँति विभाजन करके एक भाग उसके सामने रखे ।६-७। उसमें कालिकादिक तीन वृत्त, बाहरी भाग में त्याग करने को बताया गया है, इस भाँति के नयनाभिराम कुण्ड को 'पद्मकुण्ड' के नाम से कहा गया है ।८। प्रथम क्षेत्र को दश प्रकार से

दशधा भेदयेत्क्षेत्रे उर्ध्वाधोर्ध्वाङ्गुलद्वयम् । सम्परिपातयेत्सूत्रं पाटयेत्तत्प्रमाणतः ॥९
पञ्चधा भेदिते क्षेत्रे कामं वा विभजेत्सुधीः । न्यसेत्पुरस्ताद्‍देवाङ्गं कोणार्धार्धप्रमाणतः ॥१०
योनिस्थानं प्रतिष्ठाप्य अश्वत्थस्य दलाकृतिः । सूत्रद्वयं ततो दद्यात्कुण्डं परिमितं भवेत् ॥११
चतुरस्रं समुद्धृत्य सूत्रं सङ्कल्पयोगतः । दिशं प्रति यथान्यायं पातयेच्च द्विजोत्तमाः ॥१२
शृङ्गाटकं युग्मपुटं षडस्रं कुण्डत्रयं बुधाः । जलाशयारामकूपे नित्ये गृहमये यथा ॥१३
चतुरस्रं भवेत्कुण्डं द्विजसंस्कारकर्मणि । देवप्रतिष्ठायागे च गृहवास्तौ चतुर्थकम् ॥१४
वसुन्धरायोगभेदे प्रपञ्चे वर्तुलादिशेत् । सोमेऽष्टौ पङ्कजं प्रोक्तं नरमेधाश्वमेधयोः ॥१५
अङ्कुरार्पणयागे च वैष्णवे यागकर्मणि । शिवदेव्योश्च जन्मादावष्टम्यां चार्धचन्द्रकम् ॥१६
मार्जारपौष्टिके वैरं रम्ये च शान्तिके तथा । शान्तिप्रतिष्ठायागे तु शाक्तानां काम्यकर्मणि ॥१७
पुरश्चरणकाम्येषु ज्वरादीनां विमोक्षणे । एवंविधेषु कार्येषु योनिकुण्डं प्रशस्यते ॥१८
देवतातीर्थयात्रादौ महायुद्धप्रवेशने । सौरे शान्ते पौष्टिके च षट्पुरं कुण्डमुत्तमम् ॥१९
मारणोच्चाटने चैव तथा रोगोपशांतये । वैष्णवानां कोटिहोमे नृपाणामतिशोचने ॥२०
अष्टास्रमब्जकुण्डं च सप्तास्रं निधिसाधने । राज्ञा साध्ये च पञ्चास्रं कन्याप्राप्तौ त्रिरस्रकम् ॥२१
यावन्निम्नं भवेदेव विस्तारस्तावदेव तु । कुण्डानुरूपतः कार्या मेखला सर्वतो बुधैः ॥२२

ऊपर-नीचे और पुनः ऊपर दो-दो अंगुल के अनुपात से सूत्र को रखना चाहिए।९। पाँच प्रकार के भेद वाले क्षेत्र को विद्वान् यथेच्छ विभाजित कर सकता है, उसमें कोण के अर्ध भाग अथवा तदर्धभाग के प्रमाण से सामने रखना चाहिए।१०। पीपल के पत्ते के समान योनि के प्रकार के कुण्ड-निर्माण को योनि कुण्ड बताया गया है। उसमें दो सूत्र लगाने से कुण्ड का परिमाप शुद्ध होता है।११। द्विजोत्तमवृन्द ! अपनी संकल्पित कामनानुसार सूत्र को चारों ओर से उठाकर न्यायोचित दिशा में डाल देना चाहिए।१२। शिखर समेत, दो पुटवाले एवं ६ कोण वाले, ये तीन प्रकार के कुण्डों के निर्माण जलाशय, बगीचे एवं कूप की प्रतिष्ठा कर्म में कराना चाहिए, जिस भाँति गृह निर्माण तथा ब्राह्मण के संस्कार कर्मों में चौकोर कुण्ड बनाये जाते हैं। देवों की प्रतिष्ठा-यज्ञ और गृह बनाने में चौथे, तथा वसुंधरा के यौगिक भेद वाले प्रपञ्च में गोलाकार, सोम में तथा नरमेध एवं अश्वमेध में आठ कमल वाले (कुंड) का होना बताया गया है।१३-१५। अंकुरोत्पादन, वैष्णवयज्ञ, शिव-पार्वती के जन्म और अष्टमी में अर्धचन्द्राकार का कुण्ड बनाना चाहिए।१६। मार्जार पौष्टिक कर्म बिल्ली के लोम आदि अंगों द्वारा उत्पादित घोर वैर कर्म) में, रमणीक शान्तिकर्म, शांति प्रतिष्ठा-यज्ञ, शाक्तकर्म, काम्य कर्म, किसी कामना वश किये गये पुरश्चरण कर्म, ज्वरों के दूर करने आदि, इस भाँति के कार्यों में योनिकुण्ड प्रशस्त बताया गया है।१७-१८। देवतीर्थ-यात्रा, बड़े युद्ध स्थल, सौर कर्म, शांतकर्म तथा पौष्टिक कर्मों में षट्कोण वाला कुण्ड बनाना चाहिए।१९। मारण, उच्चाटन कर्म, रोग की शान्ति, कोटि आहुति वाला विष्णु यज्ञ, राजाओं के शोकाकुल होने पर, अठकोण वाला तथा पद्मकुण्ड का निर्माण बताया गया है, निधि-प्राप्त करने में सातकोण वाले, राजा को सफल करने में पाँच कोण का और कन्या प्राप्ति के लिए त्रिकोण कुण्ड की रचना करनी चाहिए।२०-२१। कुण्ड की गहराई और चौड़ाई के अनुसार उसकी मेखला भी विद्वानों को बनानी चाहिए।२२। दशसहस्र आहुति वाले हवन-कुण्ड में मेखला का आयोजन अवश्य करना चाहिए।

अयुतादिषु होमेषु मेखलां योजयेत्सुधीः । निम्नप्रमाणे चात्राणि मूले सार्धांगुलं त्यजेत् ॥२३
कोणवेदरसैर्मानं यथायोग्यमनुक्रमात् । मुष्टिहस्ते समुत्सेधो सार्धाङ्गुलपरिष्कृतः ॥२४
अरत्निमात्रे कुण्डे तु त्रिश्चैकाङ्गुलतः क्रमात् । एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनांगुलाः ॥२५
सप्तमेखलकं युक्तं लक्षहोमे न शस्यते । पञ्चमे खलकं वाथ लक्षकोट्यां च योजयेत् ॥२६
एकाङ्गुलादिमानेन नेमिं संवर्धयेत्सुधीः । चतुर्हस्तमिते कुण्डे तावदेव गुणाङ्गुलाः ॥२७
वसुहस्ते भानुपङ्क्तिर्युग्महीनेऽपि ताः क्रमात् । सर्वाः समा ग्रहमखे मेखलाश्च सहस्रके ॥२८
पार्श्वतो योजयेत्तत्र मेखलास्ता यथाक्रमम् । सार्धांगुलादिमानेन नेमिं संवर्धयेत्सुधीः ॥२९
एकमेखलयागेन योजयेच्छक्तिभावतः । होमाधिक्ये बहुफलमन्यूनं नाधिकं भवेत् ॥३०
कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः । ततो होमे शतगुणं स्थण्डिले स्वल्पकं फलम् ॥३१
षट्चतुर्धा गुणायामविस्तारोन्नतिशालिनी । एकाङ्गुलं तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ॥३२
एकैकाङ्गुलतो योनिं कुण्डशून्येषु वर्धयेत् । सममध्ये मेखलायाः सपर्या या सुलक्षणा ॥३३
स्थापयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां द्विजसत्तमाः । कुण्डानां कल्पयेन्नाभिं स्फुटम्बुजसन्निभाम् ॥३४
तत्तु कुण्डानुरूपं वा सुव्यक्तं सुमनोहरम् । योनिकुण्डे योनिमब्जं कुण्डे नाभिं च वर्जयेत् ॥३५

इससे निम्नकोटि के कुण्डों के विषय में भी उनके मूलभाग में डेढ़ अङ्गुल त्याज्य बताया गया है ।२३। क्रमशः यथायोग्य कोण (तीन), चार, और मुट्ठी उसकी ऊँचाई और डेढ़ मुट्ठी उसके ऊपर की भूमि परिष्कृत होनी चाहिए ।२४। उसी भाँति अरणिमात्र वाले कुण्ड में क्रमशः चार अंगुल, एक हाथ के प्रमाण वाले कुण्ड की ऊपर परिष्कृत भूमि चार, एक या दो अंगुलि की बनानी चाहिए ।२५। लक्ष, आहुति वाले हवन-कुण्ड की सात मेखला न होनी चाहिए, प्रत्युत लक्ष तथा कोटि आहुति वाले कुण्ड की भी पाँच ही मेखला बनाये ।२६। विद्वानों को चाहिए कि एक अंगुल के मान से उसकी नेमि को बढ़ायें, तथा चार हाथ के कुण्डों में उतने अंगुल का गुण भी । २७। आठ हाथ वाले कुण्ड में बारह पंक्ति (मेखला) और दो हाथ न्यून (छः हाथ) वाले कुण्ड के भी उसी भाँति एवं सहस्र आहुति वाले ग्रह यज्ञ में समान मेखला बतायी गयी है ।२८। कुण्डों के पार्श्वभाग में क्रमशः मेखलाओं को आयोजित कर डेढ़ अंगुल के मान से उसकी नेमि को भी विद्वान् को बढ़ाना चाहिए ।२९। अपनी शक्ति के अनुसार अधिक संख्या की आहुति में भी एक मेखला के कुण्ड का निर्माण करने में उसे बहुत फलों की प्राप्ति होती है न्यून नहीं । कुण्ड के रूप को प्रकृति की सुन्दर शरीर जाननी चाहिए, इसलिए उसके निर्माण में अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है, पश्चात् हवन में सौ गुने एवं स्थंडिलों (वेदी) के निर्माण में स्वल्प फल की प्राप्ति होती है ।३०-३१। दश अंगुल की लम्बी-चौड़ी एवं ऊँची योनि के कुण्ड निर्माण के समय योनि का अग्र भाग एक अंगुल नीचा होना चाहिए ।३२। शून्य कुण्डों की योनि को क्रमशः एक-एक अंगुल के मान से बढ़ाना चाहिए वह केवल मेखला के मध्यभाग में ही होना चाहिए, जो पूज्य एवं सौन्दर्यपूर्ण लक्षणों से सुशोभित होती है ।३३। द्विजवृन्द ! कुण्ड के कोण के भागों में योनि स्थापन बताया गया है, कुण्ड का नाभि स्थल भी विकसित कमल की भाँति होना चाहिए ।३४। वह कमल कुण्ड के समान सौन्दर्यपूर्ण, पूर्ण अंग एवं अत्यन्त मनोरम होना चाहिए, योनिकुण्ड में योनि कमल और नाभि में न बनाना चाहिए ।३५। दोनों के प्रमाणानुसार क्रमशः

यावद्द्वयप्रमाणेन अर्धाङ्गुलक्रमाद्बहिः । नाभिं प्रवर्धयेदेकं कुण्डानां रूपतो यथा ।।३६
तत्र तत्र भवेत्कुण्डं बिम्बशून्यं न होमयेत् । शिवशक्तिसमायोगात्काम उत्पद्यते यतः ।।३७
अवटोऽपि उमादेवी बिम्बः ख्यातः सदाशिवः । न कुर्यादेकया हीनं मरणं च समुद्दिशेत् ।।३८
त्रयोदशाङ्गुलं हित्वा वह्निहस्तमथापि वा । महातीर्थे सिद्धक्षेत्रे यत्र शम्भुगृहे कुले ।।३९
तस्य दक्षिणदिग्भागे अग्रतो मण्डलं लिखेत् । तत्र पूजा प्रकर्तव्या पूर्वमानेन चाग्रेत् ।।४०
अर्कहस्तान्तरे कुर्याच्छतोर्ध्वांते शतेन वा ।।४१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे कुण्डनिर्माणविधिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

यज्ञमानविधानवर्णनम्

सूत उवाच

यस्य यज्ञस्य यन्मानं तत्तु तेनैव योजयेत् । अमानेन हतो यज्ञस्तस्मान्मानं न हापयेत् ।।१
शतार्धं प्रथमं मानं शतसाहस्रमेव च । अयुतं च तथा लक्षं कोटिहोमस्ततः परम् ।।२
अतः परं तु विभवे राजा वान्यो द्विजोत्तमाः । न स सिद्धिमवाप्नोति अयागफलभाग्भवेत् ।।३

आधा अंगुल बाह्यभाग, एवं कुण्डों के स्वरूपानुरूप एक अंगुल नाभि में वृद्धि करनी चाहिए।३६। सभी स्थान कुण्ड बनाकर ही हवन कार्य सुसम्पन्न करने चाहिए, विम्बशून्य में कभी नहीं, क्योंकि शिव और शक्ति के समान संयोग से ही काम की उत्पत्ति होती है।३७। कुण्डों का खात (गड्ढा) उमादेवी का स्वरूप और उसका बिम्ब सदाशिव का स्वरूप बताया गया है, इसलिए किसी एक के निर्माण न करने पर मरण फल कहा गया है।३८। महातीर्थ, या किसी सिद्ध क्षेत्र में जहाँ शिवालय स्थित हो, उसकी दक्षिण दिशा की ओर तेरह अंगुल या वह्नि हाथ छोड़कर सामने मण्डल निर्माण करके उसकी पूर्वोक्त रीति के अनुसार पूजा करनी चाहिए।३९-४०। उसका निर्माण बारह हाथ के भीतर, सौ अंगुल के अन्त अथवा मध्य में भी किया जा सकता है।४१

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में कुण्ड निर्माण-विधि नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।१३।

अध्याय १४

यज्ञ-मान-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—जिस प्रकार के यज्ञ विधान में जो मान बताया गया है, उस यज्ञ में उसी मान के अनुसार कुण्ड आदि की रचना आवश्यक है, क्योंकि मानहीन यज्ञ नष्ट बताया गया है, इसलिए उसके मान में विशेष ध्यान रखना चाहिए।१। शतार्ध, शत, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, कोटि संख्या की आहुति वाले हवन होते हैं।२। द्विजोत्तमवृन्द ! ऐश्वर्यादि होने के कारण यदि कोई राजा इसके अतिरिक्त किसी दूसरे दूसरे की रचना करता है, उसे सफलता तो मिलती नहीं प्रत्युत, वह यज्ञ फल का भागी भी नहीं

विपाकं कर्मणां सर्वं नरः प्राप्नोति सर्वदा । शुभाशुभं ततो नित्यं प्राप्नोति मनुजः किल ॥४
युक्ताश्चापि ग्रहास्तत्र नित्यं शान्तिकपौष्टिके । तस्मात्प्रयत्नतो भक्त्या नित्यं पूजा यथाविधि ॥५
अद्भुते च तथा शान्तिं कुर्याद्भक्तिसमन्वितः । तस्माद्ग्रहाभिजनितं शुभाशुभफलं खलु ॥६
अद्भुतेषु च सर्वेषु अयुतं कारयेन्नरः । होमं यथाभिरुचितं पौष्टिके काम्यकर्मणि ॥७
लक्षहोमं कोटिहोमं राजा कुर्याद्यथाविधि । अन्यः शतादिकं कुर्यादयुतं विभवे सति ॥८
ग्रहाणां लक्षहोमस्तु कोटिहोमस्तथा कलौ । निधिहोमं चाभिचारं तन्न कुर्याद्गृहाश्रमी ॥९
यत्र यत्र जपः कार्यो होमो वा यत्र कुत्रचित् । मानं नैव च कर्तव्यं मानादौ चाष्टकं न्यसेत् ॥१०
युग्मसाध्यं न कर्तव्यं युग्मतो भयमादिशेत् । लक्षे सप्ततालसंख्या कोटिहोमे च विंशतिः ॥११
एकत्रिंशद्दिनैर्वापि न कुर्याद्व्यत्ययं क्वचित् । आरम्भस्त्रिसाहस्रः स्याद्द्वितीयेऽष्टसहस्रकः ॥१२
तृतीये तु सहस्रं स्याद्ग्रहसाध्यः स्मृतो विधिः । पञ्चाहे च समारम्भे सहस्रं जुहुयाद्बुधः ॥१३
द्वितीयेऽह्नि द्विसाहस्रं तृतीये तु सहस्रकम् । गुणसाहस्रकं तुर्ये पञ्चाहे शेषमीरितम् ॥१४
नवाहे कल्पयेल्लक्षमेकैकाङ्गं दिने दिने । पञ्चमे च तथा षष्ठे कुले भागद्वयाधिकम् ॥१५

होता है।३। मनुष्य सर्वत्र सदैव कर्मों के परिणाम प्राप्त कर उनके अनुभव करता रहता है, इसीलिए नित्य प्रत्येक क्षणों में शुभ एवं अशुभ फल उसे प्राप्त होते रहते हैं। शांति एवं पौष्टिक कर्म करने से इसके अनिष्ट ग्रह भी अनुकूल होकर शुभ फल प्रदान करते हैं, इसलिए विधानपूर्वक भक्तिसमेत उनके नित्यपूजन के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।४-५। अनिष्ट ग्रहों के लिए भक्तिपूर्वक उनकी शांति करनी आवश्यक होती है, क्योंकि ग्रहों द्वारा ही शुभ-अशुभ फल का भागी मनुष्य होता है, यह निश्चित है।६। अधिक ग्रहों के अरिष्ट होने पर मनुष्य को दश सहस्र संख्या की आहुति करनी चाहिए और पौष्टिक तथा काम्य कर्मों में मन इच्छित हवन का विधान कहा गया है।७। राजा को इन सभी कर्मों में विधानपूर्वक लक्ष अथवा कोटि संख्या की आहुति के हवन करना चाहिए और अन्य लोगों को ऐश्वर्यादि रहने पर भी सौ अथवा दश सहस्र की संख्या की आहुति वाला हवन कहा गया है।८। गृहस्थों के लिए कलियुग ग्रहों के निमित्त लक्ष, अथवा कोटि संख्या की आहुति के हवन करने चाहिए, तथा निधि कर्म एवं अभिचार कर्म उनके लिए निषिद्ध किया गया है।९। जहाँ-जहाँ जप करना हो, अथवा जहाँ कहीं हवन करना हो, तो उसमें मान की आवश्यकता नहीं होती है, मान आदि में आठ का त्याग करना बताया गया है।१०। दो मिलकर इसे सिद्ध न करना चाहिए, क्योंकि युग्म द्वारा सिद्ध करने पर अन्य की उत्पत्ति होती है। लक्ष आहुति वाले हवन में सात ताल, कोटि आहुति वाले हवन में बीस ताल की संख्या बतायी गयी है।११। इकतीस दिन तक उसमें व्यत्यय (उलट फेर) न करना चाहिए, आरम्भ में तीन सहस्र, दूसरे दिन आठ सहस्र, तीसरे दिन एक सहस्र की आहुति देना गृहयज्ञों में विधान बताया गया है। पाँच दिन में समाप्त होने वाले यज्ञ में प्रथम दिन एक सहस्र, दूसरे दिन दो सहस्र, तीसरे दिन पुनः एक सहस्र की आहुति देनी चाहिए और चौथे दिन नव सौ एवं पाँचवें दिन शेष की समाप्ति करना चाहिए।१२-१४। एक लक्ष की आहुति में नव दिन का अनुष्ठान होना चाहिए। उसमें क्रमशः प्रत्येक दिन एक-एक अंग की पूर्ति करने के उपरान्त पाँचवें और छठें दिन दो भाग अधिक की आहुति प्रदान करना बताया गया है।१५। कोटि संख्या की आहुति वाले

कोटिहोमे च तिथ्यङ्गे शतभागेन कल्पयेत् । न न्यूनं नाधिकं कार्यमेतन्मानमुदाहृतम् ।।१६
नित्यमेकं दिने दद्यात्पृथङ्नित्यं न चाचरेत् । स समाजे जपेन्नित्यं पञ्चतारेण स्विष्टकृत् ।।१७
अयुते लक्षहोमे च कोटिहोमे च सर्वदा । प्रथमे दिवसे कुर्याद्देवतानां च स्थापनम् ।।१८
महोत्सवे द्वितीये तु बलिदानं तथैव च । त्र्यहसाध्ये त्रिरात्रे च पूर्णं कृत्वा विसर्जयेत् ।।१९
पञ्चाहे तु तृतीयेऽह्नि बलिदानं प्रशस्यते । सप्ताहे चाष्टदिवसे नवाहे पञ्चमेऽहनि ।।२०
पञ्चाहे द्वादशाहे तु द्वात्रिंशत्षोडशेऽहनि । इतोऽन्यथा न कुर्वीत नात्र यज्ञफलं लभेत् ।।२१
इति श्रीभविष्यमहापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे यज्ञमानविधानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कुण्डसंस्कारवर्णनम्

सूत उवाच

कुण्डानामथ संस्कारं वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा । असंस्कृते चार्थहानिस्तस्मात्संस्कृत्य होमयेत् ।।१
अष्टादश स्युः संस्काराः कुण्डानां तत्र दर्शिताः । तारेणावेक्षयेत्स्थानं कुशतोयैः प्रसेचयेत् ।।२
त्रिसूत्रीकरणं पश्चाद्वृत्तसूत्रं निपातयेत् । वारेण कीलकं दद्यान्नारसिंहेन कुड्मलम् ।।३

हवन में तिथ्यंग (पन्द्रह) दिन के अनुष्ठान के संकल्प करके सौ भागों में उसे विभाजित करे, इससे न्यून अथवा अधिक करने का विधान नहीं है, इसीलिए इन मानों को बताया गया है।१६। यज्ञ कर्ता को प्रत्येक दिन नित्य एक एक के प्रदान में प्रयत्नशील रहना चाहिए, और समाज में उसे उच्चस्वर से नित्य जप भी करना चाहिए।१७। दशसहस्र की हवन, लक्ष आहुति अथवा कोटि संख्या की आहुति वाले हवन के अनुष्ठान में प्रथम दिन देवताओं के स्थापन एवं दूसरे महोत्सव के दिन बलि प्रदान करना बताया गया है, तीन दिन की समाप्ति वाले (हवन) में तीसरी रात में पूर्णाहुति प्रदान कर विसर्जन कर देना चाहिए।१८-१९। पाँच दिन के अनुष्ठान वाले (हवन) में तीसरे दिन बलि प्रदान करना प्रशस्त बताया गया है। उसी भाँति सात, आठ, एवं नव दिन के अनुष्ठान में पाँचवें दिन बलि प्रदान करना चाहिए।२०। इस प्रकार पाँच, बारह, बत्तीस एवं सोलह के दिन में भी किया जा सकता है, इससे अतिरिक्त दिनों में नहीं, क्योंकि उसमें यज्ञ के फल प्राप्त नहीं होते हैं।२१।

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।१४।

अध्याय १५

कुण्डों का संस्कार-वर्णन

सूत जी ने कहा—कुण्डों के शास्त्रीय संस्कार तुम्हें इसलिए बता रहा हूँ कि संस्कारहीन कुण्डों में हवन करने से अर्थ हानि होती है, इसलिए संस्कार किये कुण्डों में हवन करना चाहिए।१। इसके विषय में यह बताया गया है कि कुण्डों के अट्ठारह प्रकार के संस्कार होते हैं, सर्वप्रथम तार द्वारा अच्छी तरह भूमि के निरीक्षणपूर्वक उसका कुश के जल से सेचन करे। त्रिसूत्री करने के पश्चात् वृत्त सूत्र रखकर नारसिंह रूपी

जिह्वां प्रकल्पयेत्पश्चात्तस्मादग्निं समाहरेत् । न च म्लेच्छगृहादग्निं न शूद्रनिलयात्क्वचित् ।।४
नदीपर्वतशालाभ्यः स्त्रीहस्तात्परिवर्जयेत् । संस्कृत्य परिगृह्णीयात्त्रिधा कृत्वा समुद्धरेत् ।।५
तमग्निं प्रतिगृह्णीयादात्मनोऽभिमुखं यथा । वह्निबीजेन नतिमाञ्छिवबीजेन प्रोक्षयेत् ।।६
वागीश्वरीमृतुस्नातां वागीश्वरसमागताम् । ध्यात्वा समीरणं दद्यात्काममुत्पद्यते ततः ।।७
कामबीजेन चैशान्यां योनावग्निं विनिक्षिपेत् । पश्चाद्देवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनीयकम् ।।८
चित्पिङ्गल दहदह पचयुग्ममुदीर्य च । सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं वह्निपूजने ।।९
वह्निर्बर्हिषि संयुक्ताः सादियान्ताः सबिन्दवः । वह्निमन्त्राः समुद्दिष्टा द्विजानां मन्त्र ईरितः ।।१०
जिह्वास्तास्त्रिविधाः प्रोक्ता यज्ञदत्तेन सत्तमाः । हिरण्यामाज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ।।११
त्रिमध्वक्तैर्यत्र होमं कर्णिकायां च होमयेत् । कनकास्यात्तु कृष्णास्याद्धिरण्या शुभ्रता तथा ।।१२
बहुरूपातिरूपा च सात्त्विका योगकर्मसु । विश्वमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ।।१३
लोहितास्यात्करालास्यात्कालीभासस्य इत्यपि । एताः सप्त नियुञ्जीत विज्ञेयाः क्रूरकर्मसु ।।१४
समिद्भेदेषु या जिह्वास्तास्तु तेनैव योजयेत् । हिरण्यमाज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ।।१५
त्रिमध्वक्तैर्यथा होमं कर्णिकायां च होमयेत् ।शुद्धक्षीरेण रक्तायां नैत्यिकेषु प्रभा स्मृता ।।१६

वार से कुड्मल रूपी कील प्रदान करना चाहिए ।३। पश्चात् उसमें जिह्वा बनानी चाहिए, जिससे कि अग्नि लाया जा सके । क्योंकि म्लेच्छ, शूद्र, नदी एवं पर्वत के घरों और स्त्री के हाथ से अग्नि न लेना चाहिए प्रत्युत संस्कारपूर्वक ग्रहणकर तीन भागों में विभाजित करके उसका आहरण करना बताया गया है ।४-५। उस अग्नि को अपने सम्मुख ग्रहण कर अनन्तर वह्निबीज (रं) और शिव बीज द्वारा उसका प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर ऋतुकाल के स्नान से शुद्ध होकर वागीश्वरी का जिनका आगमन वागीश्वर के साथ हुआ है, ध्यान करते हुए उसे वायु द्वारा प्रज्वलित करना चाहिए, इसलिए कि ऐसा करने से ही इष्टसिद्धि हो सकती है ।६-७। ईशानकोण में स्थित योनि में काल बीज द्वारा उस अग्नि का स्थापन करके उसके उपरान्त देवी और देव के मुखशुद्ध्यर्थ आचमन जल प्रदान करना चाहिए ।८। हे चित-पिङ्गल ! दह, दह, पंचयुग्म इत्यादि मंत्रों द्वारा अग्नि-पूजन करके कुशाओं के आदि अन्त भाग में घी लगाकर मन्त्रोचारणपूर्वक अग्नि में डाल देना चाहिए ।९-१०। सत्तमवृन्द ! यज्ञदत्त ने अग्नि के तीन प्रकार की जिह्वा का वर्णन किया है । इससे घी के हवन में हिरण्य वाली जिह्वा में संयमपूर्वक आहुति डालनी चाहिए ।११। त्रिमधु (घी, शहद, शक्कर) से जहाँ हवन करना हो, वहाँ प्रथम उसकी कर्णिका में हवन करना चाहिए । कनका, कृष्णा, हिरण्या, शुभ्रा, बहुरूपा एवं अतिरूपा, इन सात्त्विक जिह्वाओं का योग कर्मों में उपयोग किया जाता है, उसी भाँति विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गिनी (चिनगारी) धूम्रवर्णा (धुएँवाली), मनोजवा (मन की भाँति वेग वाली), लोहिता (रक्तवर्णा), कराला और काली की भाँति आभा वाली (काली), इन सात प्रकार की जिह्वाओं के उपयोग क्रूर-कर्मों में किये जाते हैं ।१२-१४। समिधाओं (लकड़ियों) के भेद से जो जिह्वाएँ बतायी गयी हैं, उन्हें भी उन्हीं के साथ नियुक्त कर देना चाहिए जैसे—संयमपूर्वक घी के हवन करने में हिरण्या नामक जिह्वा का उपयोग करना बताया गया है, त्रिमधु (घी, शहद एवं शक्कर) के हवन में जिस भाँति प्रथम कर्णिका में हवन किया जाता है । शुद्ध क्षीर

बहुरूपा पुष्पहोमे कृष्णा चान्नेन पायसैः । इक्षुहोमे पद्मरागा सुवर्णा पद्महोमके ।।१७
लोहिता पद्महोमे च श्वेता वै बिल्वपत्रके । धूमिनी तिलहोमे च काष्ठहोमे करालिका ।।१८
लोहिताख्या पितृहोमे ततो ज्ञेया मनोजवा । वैश्वानरं स्थितं होमे समिद्धोमेषु सत्तमाः ।।१९
समानमाज्यहोमे च निषण्णं शेषवस्तुषु । आस्यात्तु जुहुयाद्वह्नौ पिपर्त्ति सर्वकर्मसु ।।२०
कर्महोने तु वै व्याधिर्नेत्रे तद्द्वयमोरितम् । नासिकायां मनः पीडा मस्तकेऽध्वा न संशयः ।।२१
गुह्ये विपत्करं चैव तस्मात्तत्र न होमयेत् । साधारणनथो वक्ष्ये वह्नेर्जिह्वाश्च कीर्तिताः ।।२२
प्रवक्ष्यामि विधिं कृत्स्नं यद्विशेषं पुनः शृणु । घृताहुतौ हिरण्याख्या गगना पाणिहोमतः ।।२३
वक्रा ख्याता महाहोमे कृष्णाभा सा क्रतौ मता। सुप्रभा मोदकविधौ बहुरूपातिरूपिका: ।।२४
पुष्पपत्रविधौ होमे वह्नेर्जिह्वा प्रकीर्तिताः । न वा संकल्पयेत्कुण्डे शूद्राकारविभेदतः ।।२५
इन्द्रकोष्टं मस्तकं स्यादीशाग्नेये च मस्तके । तत्काष्ठपार्श्वे द्वे नेत्रे द्वौ करौ च पदक्रमात् ।।२६
अविशिष्टं भवेत्पुच्छं मध्ये चोदरसम्भवम् । उदरे होमयेत्पुष्टिमन्नं पायसकं च यत् ।।२७
हुत्वा व्रीहिगणं तत्र कर्णे पुष्पाहुतिं हुनेत् । वामकर्णे वामनेत्रे हुनेदब्जादिकं बुधः ।।२८
श्रवणे चैव नेत्रे च दक्षिणे चेक्षुखण्डकम् । वामपादे वामकरे अभिचारेषु शस्यते ।।२९

के हवन में रक्ता, निरूप कर्मों में प्रभा, फूलों के हवन में बहुरूपा, अन्न के खीर से हवन करने में कृष्णा, ऊख के हवन में पद्मरागवाली, कमल के हवन में सुवर्णा, तथा लोहिता (रक्तवर्ण वाली), वेलपत्र के हवन में श्वेतवर्णवाली, तिल के हवन में धूमिनी (धूम वाली), काष्ठ के हवन में कराली, पितृ हवन में लोहिता और सत्तमगण ! समिधाओं के हवन में, जबकि अग्नि उससे अपने रूप में स्थित हो, मनोजवा मन की भाँति वेगवाली) जिह्वा के आवाहन-ध्यान करना चाहिए।१५-१९। घी के हवन में अग्नि समान रूप से स्थित रहते हैं और शेष वस्तुओं के हवन में सोये से । अग्नि के मुख में आहुति डालने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं।२०। उनके कान में हवन करने से व्याधियाँ, नेत्र में वही दोनों, नाक में मन की पीड़ा, मस्तक में आहुति डालने से यात्रा करना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं।२१। उनके ग्रहण स्थान में आहुति डालने से आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। इसलिए इन स्थानों में कभी भी हवन न करें, इसके उपरान्त मैं अग्नि की साधारण जिह्वाओं को तुम्हें बता रहा हूँ, जो अन्यत्र बतायी गयी हैं।२२। उसी प्रकार उसके समस्त विधान एवं विशेषता को भी। घी की आहुतियों के प्रदान में हिरण्यनामक, हाथ से हवन करने में गगना, महान यज्ञ में वक्रा, यज्ञ में कृष्णा, मोदक के हवन में सुप्रभा, पुष्प के हवन विधान में बहुरूपा और पत्तों के हवन में अतिरूपा, अग्नि की जिह्वा बतायी गयी है, शूद्राकार के भेद होने के नाते कुण्ड में उसका संकल्प न करना चाहिए।२३-२५। इन्द्र कोष्ठ, ईशान एवं अग्निकोण भी (अग्नि के) मस्तक कहे जाते हैं, उनके काष्ठ के पार्श्व भाग में दोनों नेत्र, दोनों हाथ एवं चरण क्रमशः बताये गये हैं।२६। शेष भाग उनकी पूँछ एवं मध्यभाग उदर कहा गया है, इसलिए उदर में ही पुष्टि के लिए अन्न अथवा खीर के हवन करना चाहिए।२७। उदर में अन्न के विधानपूर्वक हवन के उपरान्त उनके कान में पुष्प की आहुति, बायें कान, एवं बायें नेत्र में कमल पुष्प के हवन विद्वानों को करना चाहिए।२८। कान एवं दाहिनी आँख में ऊख के टुकड़े और बायें हाथ एवं पैर में अभिचार कर्मों में आहुति डालनी चाहिए।२९। मारण कर्म तथा पुण्य के

मारगे पुष्पदेशे तु न चान्यं होमयेत्क्वचित् । विपत्करं विजानीयाद्ध्वनिः सर्वविनाशकृत् ।।३०
चन्दनागरुकर्पूरपाटलायूथिकानिभः । पाकस्य सुतो गन्धः समन्तात्सुमहोदयः ।।३१
प्रदक्षिणस्त्यक्तकल्पा छत्राका शिथिला शिखा । शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ।।३२
छिन्नवृत्ताः शिखाः कुर्यान्मृत्युर्धनपरिक्षयः । निर्दाप्यं मरणं विद्यान्महाधूमाकुलेऽपि च ।।३३
एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तं समाचरेत् । अष्टाविंशाहुतीस्त्यक्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।।३४
मूलेनाज्येन जुहुयाज्जुहुयात्पञ्चविंशतिम् । महास्नानं प्रकर्तव्यं त्रिकालं हरिपूजनम् ।।३५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे कुण्डसंस्कारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

यज्ञान्तपूजा-विधिवर्णनम्

सूत उवाच

नित्यं नैमित्तिकं चैव यागादौ च समाप्तके । होमावसाने प्रजपेदुपचारांश्च षोडश ।।१
दद्यात्समीरणं पश्चात्पीठपूजां समाचरेत् । गृहीत्वा रक्तपुष्पं च ध्यायेद्वह्नि यथा विधि ।।२
इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरान्तम् ।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ।।३

प्रदेश में किसी अन्य के हवन न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से इस भाँति की आपत्ति आती है, जिसमें समस्त के विनाश संभव हो जाते हैं ।३०। चन्दन, अगुरु, पाटला एवं जूही के समान गंधकों, जो महान् अभ्युदय कारक होता है, अग्नि पुत्र बताया गया है ।३१। प्रदक्षिणा की भाँति, असाधारण, छत्ते की भाँति और शिथिल अग्नि की शिखाएँ यजमान के लिए शुभ-दायक होती हैं, विशेषकर राजाओं के लिए ।३२। छिन्न वृत्त वाली शिखा मृत्यु एवं धन नाश करती है, और महान धूमों से व्याप्त होने पर मरण ही समझना चाहिए ।३३। इस प्रकार के दोषों के समुपस्थित होने पर प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है—अट्ठाइस आहुति छोड़कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए मूल भाग से पच्चीस आहुति घी की डालकर महा स्नान एवं तीनों समय में विष्णु-पूजन करना आवश्यक बताया गया है ।३४-३५!
श्रीभविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में कुण्डसंस्कार वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १८

यज्ञान्त में पूजा-विधि का वर्णन

सूत जी ने कहा—नित्य अथवा नैमित्तिक यज्ञ की समाप्ति में, जबकि हवन कार्य समाप्त हो जाय, तो सोलह उपचारों से पूजा करने का विधान बताया गया है ।१। वायु द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके पीठासन की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् रक्तपुष्प लेकर विधानपूर्वक अग्नि का ध्यान करना बताया गया है ।२। अभीष्ट प्रदान करने वाले अग्नि के उस स्वरूप का, जो अपनी लम्बी एवं विशाल भुजाओं में शक्ति तथा स्वस्तिका आदि अस्त्र धारण किये, श्रेष्ठ, सुवर्ण की भाँति कमलासन पर स्थित, शिर में

पूर्वादिद्वारदेशेषु कामदेवं शतक्रतुम् । वराहं षण्मुखं चैव गन्धाद्यैः साधु पूजयेत् ॥४
आवाह्य स्थापयेत्पश्चादष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् । दत्त्वासनं स्वागतं च दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ॥५
अतः पूर्वादिपात्रेषु यजता च हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥६
महोदरं महाजिह्वमाकाशत्वेन पूजयेत् । तारकादीन्समाप्ते च गन्धैः पुष्पैः पृथग्विधैः ॥७
तत्रैव जिह्वास्त्रिविधा ध्यायेन्मन्त्रपुरःसरः । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण उपचारैरनन्तरम् ॥८
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः । परमज्योतीरूपस्त्वमासनं सफलीं कुरु ॥९
दद्यादासनमेतेन पुष्पगुच्छत्रयेण तु । पुटाञ्जलिं ततो बद्ध्वा पृच्छेत्कुशलपूर्वकम् ॥१०
वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन । स्वागतं तु सुरश्रेष्ठ शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥११
नमस्ते भगवन्देव आपोनारायणात्मक । सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥१२
नारायण परं धाम ज्योतीरूप सनातन । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥१३
जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा । तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ॥१४
धनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन । स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ॥१५
हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन । शरणं ते प्रयच्छामि देहि मे परमं पदम् ॥१६

जटा-जूट से विभूषित एवं तीन नेत्र हों, ध्यान करना चाहिए।३। पूर्व आदि चारों दिशाओं के दरवाजों पर स्थित, कामदेव, शतक्रतु (इन्द्र), वाराह और षडानन की क्रमशः गंधादि द्वारा सविधि पूजा करनी चाहिए।४। देवताओं के आवाहन एवं स्थापन के उपरान्त आठों मुद्राओं को उन्हें दिखाना चाहिए। आसन पर उन्हें स्थित कर उनके स्वागत के लिए पाद्य आदि जल देना चाहिए।५। अनन्तर पूर्वादि पात्रों में अग्नि का, जिसका सुवर्ण की भाँति वर्ण, निर्मल, प्रदीप्त, चारों ओर मुख, महान् उदर एवं बहुत बड़ी जिह्वा है, आकाश की भाँति पूजन करना चाहिए; पश्चात् समाप्ति में तारकाओं की पृथक्-पृथक् विधानों द्वारा गन्ध एवं पुष्पों से पूजन करने के उपरान्त मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी तीन भाँति की जिह्वाओं का ध्यान करना चाहिए और मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी पूजा भी।६-८। तुम्हीं समस्त जीवों के आदि (जेठ) हो, और संसार-सागर को पार करने वाले भी। परमज्योति तुम्हारा रूप है, अतः इस आसन को ग्रहण कर सफलता प्रदान करो। इस भाँति कहते हुए पुष्प के तीन गुच्छों द्वारा उन्हें आसन प्रदान कर हाथ जोड़ कुशल पूँछने के उपरान्त कहे कि—हे वैश्वानर ! तुम्हें नमस्कार है, हे हव्य वाहन तुम्हें नमस्कार है, एवं हे सुरश्रेष्ठ ! यह आपका स्वागत, है इसे स्वीकार कर मुझे शांति प्रदान करें, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।९-११। हे भगवन्, देव ! नारायण ! समस्त लोगों के कल्याणार्थ इस जल को पाद्यार्थ (पैर धोने के लिए) ग्रहण कीजिए। नारायण रूप (आप ही) परमोत्तम स्थान रूप हैं, ज्योति रूप और सनातन भी। मेरे दिये हुए इस अर्घ्य को स्वीकार कीजिये, हे विश्वरूप ! तुम्हें नमस्कार है।१२-१३। सूर्य रूप होकर जो सदैव संसार को प्रकाशित करता है, उस प्रकाशमय, अग्निदेव को नमस्कार है।१४। हे धनंजय ! हे समस्त पापों के नाश करने वाले ! तुम्हें नमस्कार हैं, मैं अपनी समस्त कामनाओं की सफलता के लिए स्नानार्थ तुम्हें जल प्रदान कर रहा हूँ (स्वीकार कीजिये)।१५। हे हुताशन, महाबाहो, देवाधिदेव, एवं सनातन ! मैं आपकी शरण हूँ, मुझे परमपद प्रदान कीजिये।१६। (आप) प्रकाशकों के

ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत ! मया दत्तमलङ्कारमलङ्कुरु नमोऽस्तु ते ॥१७
देवीदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात् । सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८
त्वं विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर । गृहाण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद्भवेत् ॥१९
देवतानां पितॄणां च सुखमेकं सनातनम् । धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यतां मे धनञ्जय ॥२०
त्वमेकः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्यताम् ॥२१
नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे । सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२
हुताशन नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहन । लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥२३
इत्यनेन तु मन्त्रेण दद्याद्दिव्येऽप्यर्धातकम् । सर्वस्वं यज्ञसूत्रं च परमान्नं समाक्षिकम् ॥२४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे यज्ञान्तरपूजाविधिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अग्निवर्णनम्

सूत उवाच

यज्ञभेदं त्रिभेदं च वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा । यथावेदानुसारेण यथाग्रहणयोजनम् ॥१

प्रकाश रूप हैं, हे जन्म-मरणहीन एवं अच्युत ! मेरे दिये हुए अलंकारों को स्वीकार कीजिये । मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।१७। जिनके समागम होने से सभी देवी एवं देवता हर्ष निमग्न हो जाते हैं, उन्हें समस्त दोषों के शांत्यर्थ गन्ध प्रदान कर रहा हूँ, (इसे) स्वीकार कीजिए ।१८। तुम्हीं विष्णु एवं ब्रह्मा हो, तथा प्रकाशकों की गति भी । हे ईश्वर ! देवेश ! इस पुष्प को ग्रहण कीजिए, इसी से समस्त संसार अनुलिप्त हो जायगा ।१९। देव और पितरों के एक सनातन ही सुख की वस्तु हैं, देवाधिदेव, धनंजय । इस धूप को ग्रहण कीजिये ।२०। स्थावर एवं चरात्मक समस्त जीवों में तुम्हीं एक परमात्मा के रूप से स्थित हो, तुम्हारा आकार भी परमोत्तम है, इस प्रदीप को स्वीकार कीजिये ।२१। यज्ञादिदेव, प्रभु एवं अग्नि को नमस्कार है, समस्त लोकों की हितकामना पर दिये गये इस नैवेद्य को स्वीकार कीजिये ।२२। हुताशन, तुम्हें नमस्कार है, रुद्रवाहन को नमस्कार है, लोकनाथ को नमस्कार है, जातवेदस् (अग्नि) को नमस्कार है, इस मन्त्र द्वारा उस दिव्य देव (अग्नि) को सर्वस्व यज्ञसूत्र तथा शहद समेत परमोत्तम अन्न प्रदान करना चाहिए ।२३-२४

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम माग में यज्ञान्तपूजाविधिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

यज्ञों के भेद का निरूपण

सूत जी बोले—शास्त्र के कथनानुसार एवं वेद की रीति से जिस प्रकार ग्रहण किया जाता है ऐसे यज्ञ के भेद, जिसमें तीन भेद हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। शतार्ध में बन्दि और काश्यप (अग्नि के) नामक का

शतार्धे वह्निरुद्दिष्टः शतार्धे काश्यपः स्मृतः । घृतप्रदीपके विष्णुस्तिलयागे वनस्पतिः ॥२
सहस्रे ब्राह्मणो नाम अयुते हरिरुच्यते । लक्षहोमे तु वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ॥३
वरुणः शान्तिके ज्ञेयो मारणे ह्यरुणः स्मृतः । नित्यहोमेऽनलो नाम प्रायश्चित्ते हुताशनः ॥४
लोहितश्चान्नयज्ञे यो ग्रहाणां प्रत्यनुक्रमात् ।देवप्रतिष्ठायागे तु लोहितः परिकीर्तितः ॥५
प्रजापतिर्वास्तुयागे मण्डपे चापि पद्मके । प्रपायां चैव नागाख्यो महादाने हविर्भुजः ॥६
गोदाने च भवेद्रुद्रः कन्यादाने तु गोऽजकः । तुलापुरुषदाने च धाताग्निः परिकीर्तितः ॥७
वृषोत्सर्गे भवेत्सूर्योऽवसानान्ते रविः स्मृतः । पावको वैश्वदेवे च दीक्षापक्षे जनार्दनः ॥८
त्रासने च भवेत्कालः क्रव्यादः शरदाहने । पर्णदाहे यमो नाम ह्यस्थिदाहे शिखण्डिकः ॥९
गर्भाधाने च मरुतः सीमन्ते पिङ्गलः स्मृतः । पुंसवे त्विन्द्र आख्यातः प्रशस्तो यागकर्मणि ॥१०
नामसंस्थापने चैवमुपन्यस्ते च पार्थिव। निष्क्रमे हाटकश्चैव प्राशने च शुचिस्तथा ॥११
[1]षडाननश्च चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः। वीतिहोत्रश्चोपनये समावर्ते धनञ्जयः ॥१२
उदरे जठराग्निश्च समुद्रे वडवानलः । शिखायां च विभुर्ज्ञेयः स्वरस्याग्निः सरीसृपः ॥१३
अश्वाग्निर्मन्थरो नाम रथाग्निर्जातवेदसः । गजाग्निर्मन्दरश्चैव सूर्याग्निर्विध्यसंज्ञकः ॥१४
तोयाग्निर्वरुणोनाम ब्राह्मणाग्निर्हविर्भुजः । पर्वताग्निः क्रतुभुजो दावाग्निः सूर्य उच्यते ॥१५
दीपाग्निः पावको नाम गृह्याग्निर्धरणीपतिः । घृताग्निश्च नलो वायुः सूतिकाग्निश्च राक्षसः ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागेऽग्निनामवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

उच्चारण करना चाहिए, उसी भाँति, घी के याग में विष्णु, तिल के हवन में वनस्पति, सहस्र आहुति में ब्राह्मण का नाम, दश सहस्र में हरि, लक्षआहुति में वह्नि, कोटि वह्नि में हुताशन, शांति कर्म के हवन में वरुण, मारण में अरुण, नित्य हवन में अनल, प्रायश्चित कर्म में हुताशन का नाम बताया गया है । अन्न यज्ञ में जो क्रमशः ग्रहों के निमित्त किया जाता है, तथा देवों की प्रतिष्ठा में लोहित नामोच्चारण करना चाहिए । वास्तु (गृह) यज्ञ में जिसमें कमल मण्डल सुसज्जित होता है, प्रजापति, प्रपा (पौंसला) के निर्माण आदि में नाग, महादान में हविर्भुक्, गोदान में रुद्र, कन्यादान में गोजक, तुलापुरुष के दान में धाता, वृषोत्सर्ग में सूर्य, अवसान में रवि, वैश्वदेव कर्म में पावक, दीक्षा में जनार्दन, भयभीत करने में काल, शरदाह में क्रव्याद, पर्णदाह में यम, अस्थिदाह में शिखण्डिक, गर्भाधान कर्म में मरुत, सीमंत कर्म में पिंगल, पुंसवन में इन्द्र प्रशस्त नाम बताया गया है ।२-१०। नामकरण के समय पार्थिव, निष्क्रमण में हाटक, अन्नप्राशन में शुचि, चूर्णकर्म एवं व्रतादेश में षडानन, उपनयन में वीतिहोत्र, समावर्तन में धनंजय, उदर में जठराग्नि, समुद्र में वडवानल, शिखा में विष्णु, स्वर के अग्नि को सरीसृप कहते हैं ।११-१३। उसी प्रकार अश्व की अग्नि को मन्थर, रथ की अग्नि को जातवेदस्, गज की अग्नि को मंथर, सूर्य की अग्नि को विंध्य कहा जाता है ।१४। तोय (जल) की अग्नि को वरुण, ब्राह्मण की अग्नि को हविभुक्, पर्वत की अग्नि को क्रतुभुक्, दावाग्नि को सूर्य बताया गया है ।१५। दीपक की अग्नि को पावक, गृह की अग्नि को धरणीपति, घी की अग्नि को नल वायु और सूतिका की अग्नि को राक्षस कहा जाता है ।१६

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में अग्नि वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

---

१. चूडाकर्मणि सभ्यः स्याद्व्रतादेशे च माधवः ।

अथाष्टादशोऽध्यायः

होमद्रव्यकथनम्

सूत उवाच

अथातो होमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते । प्रमाणे चाप्रमाणे च निष्फलं भवति ध्रुवम् ॥१
कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् । तत्समं पञ्चगव्यं च दधि दुग्धं तथा मधु ॥२
मुष्टिमानेन पृथुका लाजाः स्युर्मुष्टिसंमिताः । शर्करा मुष्टिमात्रा च शर्करातोलकं विदुः ॥३
त्रितोलकं गुडं विद्यादिक्षुपर्वविधिर्भवेत् । एकैकं पत्रपुष्पाणि शालूकस्य त्रिमुष्टिकम् ॥४
एकलग्ने न जुहुयान्न पृथग्जुहुयात्क्वचित् । सवृंतकं जपापुष्पं केशरं तत्सवृन्तकम् ॥५
एकैकशश्च पद्मानां जलजानां तथैव च । जीवन्त्या फलमानेन पिष्टकानां प्रसङ्ख्यया ॥६
वसन्तकं धात्रिमाने मोदकस्य प्रमाणतः । एकैकशः फलानां च मातुलिङ्गत्रिखण्डकम् ॥७
अष्टधा नालिकेरस्य पनसं दशधा भवेत् । पद्मबीजप्रमाणेन कूष्माण्डं चाष्टधा भवेत् ॥८
उर्वारुकं चाष्टधा च गुडूची चतुरङ्गुलम् । पूगमानं च मांसस्य सगुडं तत्र दृश्यते ॥९
अन्यत्र बदरीमानं तिन्दुकं च त्रिधा कृतम् । काष्ठं प्रादेशमात्रं स्याद्दूर्वायाश्च त्रिपत्रकम् ॥१०
भूर्जपत्रं च गृह्णीयाच्छमीं प्रादेशमात्रिकाम् । व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युः शुक्तिमानेन सर्षपाः ॥११

अध्याय १८

हवन-द्रव्यों का कथन

सूत जी बोले—अब मैं तुम्हें हवन की वस्तुओं के माप बता रहा हूँ, क्योंकि (न्यूनाधिक) प्रमाण अथवा अप्रमाण की व्यवस्था रखने पर वह (हवन) निष्फल हो जाता है।१। हवन में एक तोला चार माशा घी, एक शुक्ति (सतुही, सीप) दूध उसी के समान भागों के तुल्य पञ्चगव्य (गोदुग्ध, दधि, घी, मूत्र गाय का) दही, दूध और मधु आदि मिलाना चाहिए।२। एक मुट्ठी धान का लावा, एवं जिस भाँति मुट्ठी बाँधी जाती है, उतना ही शक्कर डालना चाहिए, इस शक्कर की माप वेत्ताओं ने बताया है ३। उसमें तीन तोला गुड़ डालने से उसे इक्षुपर्व विधान कहा गया है। एक-एक पत्र, पुष्प तथा तीन मुट्ठी कन्द भी डालना चाहिए। एकसाथ अथवा पृथक्-पृथक् भी जया पुष्प के गुच्छे और केशर के गुच्छे का हवन कभी न करना चाहिए।४-५। एक-एक कमल एवं कसेर तथा जीवन्ती के फल के चूर्ण को एकत्र कर बसंत ऋतु के आंवले के समान अथवा मोदक के प्रमाणानुसार उसकी गोली बनाकर हवन करना चाहिए। फलों के एक-एक खण्ड, विजौरे नीबू के तीन, नारियल के आठ, कटहल के दश एवं कमल बीज के समान कुम्हड़े के आठ टुकड़े करने चाहिए।६-८। ककड़ी के आठ, गुरुचि के चार-चार अंगुल सोपाड़ी के समान मांस के टुकड़े कर उसमें गुड़ भी मिलाना चाहिए।९। दूसरे कामों के लिए वेर के समान उसका प्रमाण बताया गया है। और तिंदुक के तीन टुकड़े करने चाहिए। प्रादेशमात्र हवन की लकड़ी, दूर्वा के तीन पत्ते भोजपत्र और शमी की लकड़ी प्रादेशमात्र के माप की होनी चाहिए, तथा एक मुट्ठी व्रीहि, एक सीप भर के राई, मिर्च, मृणाल की

नरिचाः स्युर्विमानेन मृणालं चाथ मूलकम् । सप्तखण्डं च वार्ताकं त्रिपुष्टं च त्रिधोदितम् ।।१२
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च । तित्तिडीबीजमानेन समुद्दिष्टानि देशिकैः ।।१३
समिदाप्लवने त्र्यङ्गतिलानामपि मध्यतः । दशकं प्लावनेनैव सहस्राणां शतं विना ।।१४
एवं व्रीहिप्लावने च काष्ठवदिक्षुदण्डकम् । प्रोक्षणं मृदुपुष्पाणां लतादीनां तथैव च ।।१५
पायसान्ने तथान्ने च मोदके पिष्टकेऽपि च । शाल्यासक्तेन जुहुयाद्व्यत्यये व्यत्ययं फलम् ।।१६
बिल्वपत्रस्य प्लवनं दण्डं हित्वा च प्लावयेत् । वृन्तसम्प्लावनादेव फलं हरति राक्षसः ।।१७
बिल्वपत्रस्य पूर्वार्धप्राप्तमात्रेण योजयेत् । पत्रत्रयं तथा होमे छिन्नेभिन्नेऽतिदूषणम् ।१८
न द्वित्रिप्लवनं कुर्यात्कृत्वा याति रसातलम् । तस्माच्च पुत्रशिष्याद्यैर्ब्राह्मणैस्तत्त्वकोविदैः ।।१९
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पावयेच्च यथाक्रमात् । न न्यूनं नाधिकं कुर्याच्छांतिपक्ष उदङ्मुखः ।।२०
पायसान्यन्यदेवेषु यत्नेन परिवर्जयेत् । न चाग्नौ दापयेद्यत्नादेतेभ्यः प्रतिपादयेत् ।।२१
कनिष्ठाङ्गुलिमासाद्य प्रकुर्यात्पर्वभूषणम् । गुणदोरकमानेन तावद्धोमगतिर्बुधाः ।।२२
अङ्गुलैर्द्वित्रिचतुरैः पत्रहोमाकृतिक्रमात् ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे होमद्रव्यकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८

जड़, वैगन के सात टुकड़े तथा तीनों पौष्टिक पदार्थों को तीन भाग में विभाजित करके उसके साथ चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, कुंकुम के माप इमली के बीज के समान ग्रहण करना चाहिए ।१०-१३। समिदाप्लवन में तीनों अङ्ग एवं तिलों के मध्य से सौ सहस्र की आहुति न पड़ने वाले यज्ञ में, उसी भाँति व्रीहि के प्लावन में काष्ठ की भाँति ईख के दंडे का टुकड़े बनाकर कोमल पुष्पों एवं लतादिकों का प्रोक्षण करना चाहिए ।१४-१५। खीर, केवल अन्न, मोदक एवं शाठी चावल के चूर्ण का हवन करना चाहिए, इसके प्रतिकूल हवन करने से उसके अनिष्ट फल भी प्राप्त होते हैं ।१६। वेलपत्र के लेपन करने में दण्ड भाग को छोड़कर प्लावन करना चाहिए, वृंत (गुच्छों) के प्लावन करने में उसके फल का अपहरण राक्षस करते हैं ।१७। वे पत्र का पूर्वार्धभाग मात्र भी प्राप्त होने पर उसका ही ग्रहण करना चाहिए। हवन कार्य में तीन पत्ते बेल के होने चाहिए, पर उसके छिन्न-भिन्न होने से अत्यन्त दोष भी होते हैं ।१८। दो तीन प्लवन न करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से वह रसातल चला जाता है। इसलिए पुत्र अथवा शिष्य आदि उस तत्ववेत्ता ब्राह्मण को चाहिए कि पूर्वाभिमुख हो क्रमशः उसे पवित्र करने की चेष्टा करें। शांति कार्य में उत्तराभिमुख होकर न्यूनाधिक न करना चाहिए, क्योंकि वैसा क्रम नहीं बताया गया है ।१९-२०। अन्य देवों के उद्देश्य से किये जाने वाले हवन में खीर की आहुति एवं उन्हें भी न प्रदान करनी चाहिए ।२१। हे विद्वन्! कनिष्ठा अंगुली के द्वारा उत्सव को विभूषित करना चाहिये। गुणपरिमाण के मान से होम की स्थिति का विधान करना चाहिए, दो तीन चार अंगुलियों से पत्ते की हवनाकृति का क्रम बनाना चाहिये ।२२-२३

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में होमद्रव्य-कथन नामक अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

स्रुवदर्वीनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

श्रीपर्णी शिंशपा क्षीरी बिल्वः खदिर एव च । स्रुवे प्रशस्तास्तरवः सिद्धिदा यागकर्मणि ।१
प्रतिष्ठायां प्रशस्तास्तु धात्रीखदिरकेशराः । संस्कारे शशिभिन्नौ च धात्री धात्रा विनिर्मिता ।।२
सम्प्राशे यः स्रुवः प्रोक्तः संस्कारे यज्ञसाधने । प्रतिष्ठायां तु कथितास्तदन्ये शास्त्रवेदिभिः ।।३
स्रुवं स्रुचमथो वक्ष्ये यदधीनश्च जायते । यज्ञे न सर्वकं धार्यमक्षरेण च व्यत्ययः ।।४
तस्यादौ च स्रुवं वक्ष्ये यच्च मानं यदास्पदम् । काष्ठं गृहीत्वा बिल्वस्य रिक्तादितिथिवर्जिते ।।५
समुपोष्य च रचयेदामिषाणि न च स्मरेत् । वर्जयेद्ग्राम्यधर्मं च निर्माणे स्रुक्स्रुवस्य वै ।।६
काष्ठं गृहीत्वा विभजेद्भागांस्त्रिशत्तथा पुनः । विंशत्यङ्गुलमानं तु कुण्डवेदिसमोदरम् ।।७
कटाहाकारनिम्नं च स्रुवं कुर्याद्विचक्षणः । धात्रीफलसमाकारं स्वधानिम्नं सुशोभनम् ।।८
वेदीं शूर्पाकृतिं कुर्यात्कुण्डानि परिकल्पयेत् । हंसवत्त्रिगुणा वापि हस्तेनाऽनुमुखं लिखेत् ।।९

अध्याय १९

स्रुवदर्वी निर्णय-वर्णन

सूत जी बोले—श्रीपर्णी, शिंशपा, क्षीर वाला वृक्ष, बेल एवं खैर की लकड़ी से बना हुआ स्रुवा यज्ञ के लिए प्रशस्त बताया गया है, यही वृक्ष यज्ञों में सफलता प्रदान करते हैं ।१। प्रतिष्ठा कर्म में आँवले और खैर, तथा केशर के स्रुवा प्रशस्त बताये गये हैं । चन्द्रभिन्न संस्कार के लिए आँवले का ही स्रुवा प्रशस्त कहा गया है, क्योंकि ब्रह्मा ने उसे उसी के लिए ही उत्पन्न किया है ।२। संप्राशन संस्कार के यज्ञ-कर्म में जिस वृक्ष का स्रुवा बताया गया है, उसी को प्रतिष्ठा कर्म में भी शासक वेत्ताओं ने कहा है ।३। मैं स्रुवा और स्रुक् की व्याख्या कर रहा हूँ, तथा ये जिसके अधीन रहते हैं, उसे भी बता रहा हूँ ! इनके यज्ञाङ्ग होने के नाते यज्ञ ही इन्हें धारण करता है, यज्ञपात्र होने के कारण दोनों समान हैं, इनमें केवल अक्षर का ही अंतर व्यत्यय (उलट-फेर) है ।४। अतः प्रथम स्रुवा के माप और आस्पद (स्थान) आदि बता रहा हूँ । रिक्ता आदि हीन तिथियों में बेल का काष्ठ लेकर स्रुवा का निर्माण करना चाहिए, उसके निर्माण में उपवास रहकर आमिष का स्मरण तक न करना चाहिए और ग्राम्य धर्म (स्त्री प्रसंग) तो नितान्त वर्जित किया गया है । स्रुवा के निर्माण में भी ये नियम आवश्यक हैं । उस (स्रुवा) के काष्ठों में पहले तीस भाग करके बीस अंगुल के प्रमाण का स्रुवा बनाना चाहिए, जिसके उदर भाग कुण्डवेदी के समान होते हैं ।५-७। बुद्धिमान् को कड़ाहे के समान नीचा (गहरा) आँवले के समान आकार वाले, स्वधा की भाँति नीचा और सौन्दर्यपूर्ण स्रुवा का निर्माण करना चाहिए ।८। सूप की भाँति वेदी की रचना करके उसमें कुण्डों के निर्माण करना चाहिए । उसके सम्मुख ही अपने हाथ से हंस की भाँति अथवा त्रिकोण कुण्ड की रचना के उपरांत चौबीस अंगुल के

स्रुवं चतुर्विंशतिभिर्भागैश्च रचयेद्ध्रुवम् । द्वित्रिंशं स्यात्कुण्डमाननदैवे तस्य कीर्तितम् ।।१०
चतुर्भिरङ्गैरानाहं कर्षाद्यग्रं ततः स्रुवम् । अङ्गद्वयेन विलिखेत्पङ्के मृगमदाकृतिम् ।।११
दण्डमूलाश्रये दण्डी भवेत्कङ्कणभूषितः । सौवर्णस्य च ताम्रस्य कार्या दर्वी प्रमाणतः ।।१२
श्रैवर्णिकोद्भवं यच्च इन्दुवृक्षसमुद्भवम् । क्षीरवृक्षसमुद्भूतं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ।।१३
द्व्यङ्गुलं मण्डलं तस्य दर्वी सा यज्ञसाधने । चत्वारिंशत्तोलिकाभिरिति ताम्रमयस्य च ।।१४
पञ्चाङ्गुलं मण्डलं च अष्टहस्तं च दण्डकम् । अन्नादिपायसविधौ दर्वी यज्ञस्य साधने ।।१५
दशतोलकमानेन सा च दर्वी उदाहृता । आज्यसंशोधनार्थं तु सा तु ताम्रमयस्य च ।।१६
षोडशाङ्गुलमानेन सर्वाभावे च पैप्पलीम् । आज्यस्थालीं घृतमयीं मृण्मयीं च समाश्रयेत् ।।१७
अथ ताम्रमयी कार्या न च तां तत्र योजयेत् ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे स्रुवदर्वीनिर्णयो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

पूर्णविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अथ पूर्णविधिं वक्ष्ये यथा चन्द्रार्थवेदिनाम् । यस्य सम्यगनुष्ठानात्सम्पूर्णं स्यादिति स्थितिः ।।१

प्रमाणानुसार स्रुवा बनाये और उसी भाँति बत्तीस अंगुल प्रमाण के कुण्ड बनाने को बताया गया है ।९-१०। चार अंगुल की लम्बी-चौड़ी कोठरी की भाँति उस भाग की रचना करनी चाहिए, जिसमें घी भरकर आहुति दी जाती है, और शेष भाग से स्रुवा का निर्माण किया जाता है । दो अंगुल के आकार का जो कस्तूरी की भाँति रहता है, उस पंक में निर्माण करना चाहिए ।११। दंडी को उस दण्ड के मूल भाग को कंगन से भूषित करना चाहिए तथा प्रमाणानुसार सुवर्ण अथवा ताँबे की करछी बनानी चाहिए ।१२। सेमर, देवदारु एवं गूलर की बारह अंगुल की करछी बनायी जाती है, जिसमें (कटोरी की भाँति) उसका मंडल भाग दो अंगुल का रहता है । वही करछी यज्ञ के लिए प्रशस्त होती है । ताँबे की करछी बनाने में चालीस तोले, ताँबे की करछी बनाने को बताया गया है, जिसमें पाँच अंगुल का उसका मण्डल भाग (कटोरी) और आठ हाथ का दंड रहता है, यज्ञ में अन्न आदि के खीर बनाने के लिए ऐसी ही करछी को प्रशस्त बताया गया है ।१३-१५। घी के संशोधनार्थ दश तोले ताँबे की करछी होनी चाहिए, अथवा सभी के अभाव में सोलह अंगुल प्रमाण की पीपल की ही करछी तथा घी के पात्र बनाना चाहिए, घी का पात्र मिट्टी का भी हो सकता है । पर जहाँ तक हो सके ताँबे की करछी और घी के पात्र यज्ञ में न रखे ।१६-१८

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में स्रुवदर्वी निर्णय नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

पूर्णविधि-वर्णन

सूत बोले—मैं चंद्रार्थ वेदियों के पूर्ण विधान को यथोचित रीति से बता रहा हूँ, जिसके विधान

होमपूर्तौ मोक्षकल्पः पूजान्तेऽर्घ्यं विधीयते । अथ तस्यामपूर्णायां हतश्रीर्यज्ञभ्रंशता ॥२
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्रुवाधो विन्यसेच्चरुम् । पूर्णं दत्त्वा सवित्रेऽर्घ्यं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥३
गृहं प्रविश्य च ततः कुलपूजां समाचरेत् । सप्तते देहि मे पूर्णां पुनात्विति ऋचा क्रमात् ॥४
नियोजयेत्प्रतिष्ठायां नित्यनैमित्तिके शृणु । पुनात्विति ऋचा पूर्णा प्रथमा परिकीर्तिता ॥५
सप्तेति द्वितीया स्याद्देहिमेति तृतीयिका । पूर्णादर्वी चतुर्थी स्यात्कुलेवस्थाप्य देशिकः ॥६
उत्थाय दद्यात्पूर्णां तु नोपविश्य कदाचन । कनकायां च जिह्वायां रक्तायां ग्रहयागके ॥७
ग्रहहोमे शतान्ते च पूर्णा एका विधीयते । सहस्रान्ते युगं दद्यादयुतान्ते युगद्वयम् ॥८
सहस्रान्ते ददेदेकं पुष्पहोमे च सत्तमाः । पूर्णां त्वेकसहस्रं तु दद्याद्यज्ञफलेप्सया ॥९
मृदुपुष्पाकृतौ त्वेका केवले चेक्षुहोमके । शतं द्वे च शते चैव गर्भाधानान्नप्राशने ॥१०
सीमन्तोन्नयने चैव प्रायश्चित्ताकृतीषु च । वैश्वदेवे च नित्ये च पूर्णा त्वेका विधीयते ॥११
एवं स्रुचौ समौ कृत्वा उपर्युपरि विन्यसेत् । यथा न व्ययते कृत्वा न कल्पयति यावता ॥१२
ऋषिंछन्दादिकं श्रुत्वा प्रतिमन्त्रस्य सत्तमाः । अन्यथाल्पाल्पकफलं तस्मात्संन्यस्य होमयेत् ॥१३

पूर्वक अनुष्ठान करने से यज्ञ का सुसम्पन्न होना बताया जाता है, ऐसा शास्त्रकारों का कहना है ।१। हवन की सविधि समाप्ति के उपरांत मोक्ष की भाँति निवृत्ति प्राप्त होती है, इसीलिए पूजा के अंत में अर्घ्य विधान आवश्यक बताया गया है । उसके विधान में त्रुटि होने से यज्ञ अपूर्ण, उसकी श्री नष्ट एवं यज्ञ ध्वंस कहा जाता है ।२। अतः समस्त प्रयत्नों द्वारा स्रुवा के नीचे चरु को रखकर उसकी पूर्ति, सूर्य के लिए अर्घ्य और उसके अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।३। पश्चात् घर पहुँचकर अपनी कुल परम्परागत पूजा 'सप्तते देहि' इत्यादि ऋचाओं द्वारा क्रमशः सुसम्पन्न करना चाहिए ।४। नित्य एवं नैमित्तिक प्रतिष्ठाओं में जिन ऋचाओं के प्रयोग किये जाते हैं, उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! 'पुनात्वितिऋचापूर्णा' पहली, 'सप्ततेति' दूसरी, देहिमेति, तीसरी, तथा 'पूर्णा दर्वी' चौथी ऋचाओं द्वारा अपनी कुलरीति के अनुसार देवों के पूजन करना बताया गया है ।५-६। चौथी 'पूर्णा ऋचा का प्रदान नियमानुसार उठकर ही करना चाहिए, बैठकर कभी नहीं। यह प्रदान (अग्नि की) सुवर्ण जिह्वा में किया जाता है और ग्रहों के याग में उनकी रक्तजिह्वा में।७। ग्रहों के हवन में सौ आहुति के अंत में एक पूर्णा का विधान बताया गया है, उसी भाँति सहस्र आहुति के अंत में चार और दशसहस्र आहुति के अंत में आठ पूर्णा का प्रदान आवश्यक होता है।८। सत्तम ! पुष्प के हवन में सहस्र आहुति के अंत में एक और यज्ञ फलों की प्राप्ति के लिए एक सहस्र पूर्णा का विधान बताया गया है।९। कोमल पुष्पों की भाँति आकृति निर्माण में एक केवल ईख के हवन में सौ और गर्भाधान एवं अन्नप्राशन कर्म में दो सौ का विधान बताया गया है।१०। सीमन्तोन्नयन, प्रायश्चित्त कर्म, वैश्वदेव और नित्य कर्मों में एक पूर्णा कहा गया है।११। इसी प्रकार दोनों स्रुवों (यज्ञपात्रों) को ऊपर ही ऊपर रख देना चाहिए जिसे उनका संचालन अथवा जब तक उठाये न जाँये, स्थिर रहें।१२। सत्तम ! प्रत्येक मंत्रों के उच्चारण के पूर्व उनके ऋषि एवं छंदादिकों का उच्चारण आवश्यक होता है, ऐसा न करने से उस कर्मानुष्ठान द्वारा अल्प से अल्प फल की प्राप्ति होती है अतः उपरोक्त (यज्ञ पात्रों) के त्याग और ऋषि के उच्चारण पूर्वक ही हवन करना चाहिए ।१३। 'सप्ततेति ब्राह्मण (मंत्र) ऋचा के कोण्डिन्य ऋषि, जगती छन्द, और

सप्ततेति ब्राह्मणस्य ऋषिः कौण्डिन्य ईरितः । जगती च भवेच्छन्दो देवताग्निः प्रकीर्तितः ।।१४
देहि मेति च मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः स्मृतः । अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो देवतास्य प्रजापतिः ।।१५
पूर्णादर्वीति मन्त्रस्य शतक्रतुर्ऋषिः स्मृतः । छन्दोऽनुष्टुप्समाख्यातं वह्निश्चैवात्र देवता ।।१६
पुनात्विति च मन्त्रस्य ऋषिः स्यात्पवनः स्मृतः । छन्दोऽपि जगती ख्यातं देवताग्निश्च कीर्तितः ।।१७
तुर्यपूर्णा यज्ञमध्ये नकुले द्विजसत्तमाः । न चाशिषं यज्ञमध्ये अभिषेकं च तर्पणम् ।।१८
ऋत्विक्छन्दः स्पृशन्सम्यग्दक्षिणाङ्गमथापि वा । यजमानः सपत्नीको महोत्सवपुरः सरम् ।।१९
विश्वामित्रोऽयुतं तत्र होमं कुर्याद्विचक्षणः । लवली बदरी शस्तं पिचुमन्दकच्छत्रकम् ।।२०
नागरङ्गं धातकीं च पूर्णायां च विवर्जयेत् । जप्यहानिरसङ्ख्याते होमभ्रंशश्च जायते ।।२१
तस्मात्प्रागे सतिलान्गणित्वा स्थापयेत्पृथक् । युगपद्गणयेद्वाथ न चाङ्गेन कदाचन ।।२२
धातक्याश्च फलैः सङ्ख्या कर्तव्या फलमिच्छता । बदर्याश्च लवल्याश्च फलैः सर्वार्थसिद्धये ।।२३
नागरङ्गफलैरेव धातक्या बकुलैः फलैः । यज्ञहानिकरं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।।२४
कर्पूरचन्दनैः कुर्याद्धोलिकां यज्ञसिद्धये । गङ्गामृत्तिकया युक्तः शुक्तिकामथ वा द्विजाः ।।२५
रक्तगुञ्जाफलैः संख्यां पुष्टिकामेषु योजयेत् । वातार्धे च शते चैव सहस्रे च तथैव हि ।।२६
होता स्यादयुतेनापि एकाहे वेदसंख्यया । ऋणसाध्ये भवेद्धोता त्रय एव द्विजोत्तमाः ।।२७
लक्षहोने तु होतारः षडेव परिकीर्तिताः । कोटिहोमे तु विप्राः स्युः प्रशस्ताः पङ्क्तिसङ्ख्यया ।।२८

अग्नि देवता बताये गये हैं ।१४। 'देहि मेति' मंत्र के प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, प्रजापति देवता है ।१५। 'पूर्णादर्वी, मन्त्र के शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता, इसी भाँति 'पुनात्विति' मन्त्र के पवन ऋषि, जगती छन्द, और अग्नि देवता बताये गये हैं ।१६-१७। द्विजोत्तम ! चौथी पूर्णा के प्रयोग वाले यज्ञ के अनुष्ठान करने पर जब तक समाप्ति न हो जाये, अपने कुल में आशीर्वाद, अभिषेक, एवं तर्पण न करना चाहिए ।१८। पत्नी समेत यजमान उस महोत्सव में होता के स्पर्श, छन्दों के उच्चारण पूर्वक अपने दक्षिणांगों के स्पर्श करने के उपरांत विश्व-बन्धु की भाँति दश सहस्र आहुति का हवन करे । उस पूर्णा के आरम्भ में लवली वृक्ष के फल, बेर नीम के छत्र (डाली), नारंगी, एवं आँवले के फल निषिद्ध हैं । संख्याहीन जप की हानि निश्चित है एवं हवन भी नष्ट हो जाता है । इसलिए जपआदि के पूर्व ही तिल समेत गणना करके उन्हें पृथक् रख लेना चाहिए, अपना साथ ही-साथ (किसी वस्तु द्वारा) गणना भी करता जाये, केवल एकाङ्गी होकर उसे कभी न करे ।१९-२२। फल के इच्छुक को आँवले के फल द्वारा सदैव उसके संख्या की गणना करनी चाहिए । और समस्त कामनाओं की सफलता के लिए बेर तथा लवली के फल द्वारा पूजा होनी चाहिए ।२३। नारंगी, आँवला और मौलिश्री के फलों द्वारा संख्या गणना करने से यज्ञ की हानि होती है, अतः संख्या गणना करने में उनका त्याग श्रेयस्कर कहा गया है ।२४। कपूर, चन्दन, द्वारा यज्ञसिद्धि के लिए होली करनी चाहिए, अथवा द्विजवृन्द ! गंगा की मिट्टी समेत शुक्तिका बालू से भी होना चाहिए ।२५। पुष्टि की कामना वाले कार्यों मे रक्त गुञ्जा फल द्वारा संख्याओं की गणना होनी चाहिए । वातार्ध, सौ, और सहस्र तथा दशसहस्र की आहुति वाले यज्ञ को सुसम्पन्न कराने वाले 'होता' ही कहे जाते हैं, इस भाँति एक दिन में चार सहस्र की आहुति वाले एवं ऋणसाध्य यज्ञों में भी । द्विजोत्तम ! इस प्रकार तीन प्रकार के होता होते हैं ।२६-२७। लक्ष आहुति वाले हवन में छः होता होते हैं, और कोटि संख्या की आहुति वाले हवन में

नव पञ्च दशदशकं पञ्चविंशमथापि वा । कामक्रोधविहीनाः स्युर्ऋत्विजः शान्तचेतसः ॥२९
नवग्रहे मखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः । अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव परकीर्तितौ ॥३०
कार्यायुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे । तद्वत्सदशाधा चाष्टौ नवहोमे तु ऋत्विजः ॥३१
कर्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चत्वारोऽपि विमत्सराः । तमेव पूजयेद्ब्रह्मा द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि ॥३२
एकमप्यर्चयेद्ब्रह्मा सहस्रे त्वेकब्राह्मणम् । दक्षिणाभिः प्रयत्नेन निर्वहेदल्पवित्तवान् ॥३३
लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदा वित्तं भवेत्तदा । यतः सर्वमवाप्नोति कुर्यात्कामविधानतः ॥३४
पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः । यावत्कल्पशतान्यष्टावन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥३५
अकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि । शतकाममवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ॥३६
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । भार्यार्थी लभते भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् ॥३७
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् । यं यं कामयते कामं सर्वं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥३८
निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्माधिगच्छति । तस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ॥३९
आचार्य एव होता स्याद्ब्राह्मणानामसम्भवे । न योजयेदेकमेव चायुते होमकर्मणि ॥४०

पंक्ति-संख्या के समान वे ब्राह्मण प्रशस्त बताये गये हैं।२८। (यज्ञानुष्ठान में) चौदह, बीस, अथवा पच्चीस ब्राह्मण हवन के निमित्त, जो काम, क्रोध हीन एवं शांतिचित्त वाले हों वरण किये जाते हैं।२९। नवग्रह के यज्ञों में वेदविधानिष्णात चार ब्राह्मण अथवा शांतचित्त वाले को ही ऋत्विक् (हवन कराने वाले) होना चाहिए।३०। केवल दश सहस्र की आहुति वाले यज्ञ तक ही ऐसा कहा गया है न कि किसी विस्तृत संभार वाले यज्ञ में। हवन में अपनी शक्ति के अनुसार दश, आठ या नव अथवा शुद्धान्तः करण वाले वे ही चार वेदवेत्ता ऋषि को आसन पर बैठाना चाहिए। विधानानुसार ब्रह्मा उन्ही, अथवा दो तीन की पूजा सुसम्पन्न करे।३१-३२। यदि वह एक ही हो, फिर भी ब्रह्मा को उस एक ही की सविधि अर्चा करनी चाहिए, और थोड़ी पूँजी वाले मनुष्य को सहस्र संख्या की आहुति वाले हवन में केवल एक ही ब्राह्मण को प्रसन्न रखने की चेष्टा पूजा दक्षिणा द्वारा करनी चाहिए।३३। और प्रचुर धन के व्यय करने की सामर्थ्य वाले को ही लक्ष आहुति के हवन करना बताया गया है, अतः उसी द्वारा उस यज्ञ कर्ता की समस्त कामनाएँ सफल होती है, अतः उसे यथेच्छ विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए।३४। ऐसा करने से वह शिव लोक में वसु, आदित्य, एवं मरुद्गणों द्वारा आठ सौ कल्पों तक पूजित हो कर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है।३५। जो निष्काम होकर इस लक्ष आहुति वाले हवन की विधान पूर्वक समाप्ति करता है, उसकी सैकड़ों कामनाएँ पूर्ण होती है और उसे अनन्तर (अनन्त भगवान्) के स्थान की प्राप्ति होती है।३६। पुत्र की कामना वाले को पुत्र, धनेच्छुक को धन, स्त्री की चाह वाले को स्त्री, और कुमारी को उत्तम पति की प्राप्ति होती है।३७। नष्ट-भ्रष्ट राज्य वाले को राज्य, और श्री वाले को श्री की प्राप्ति, एवं जिस जिस की कामना होती है, वह निश्चित प्राप्त होती है। इसे निष्काम करने वाले को पर-ब्रह्म की प्राप्ति होती है, ब्रह्मा के कोटि आहुति की हवन को इससे सौगुने अधिक फलदायक बताया है।३८-३९। ब्राह्मणों के प्रभाव में आचार्य ही होता का भी कार्य कर सकता है, पर, दश सहस्र की आहुति वाले हवन कर्म में एक ब्राह्मण की नियुक्ति न करनी चाहिए।४०। पूजा आदि कार्य कुशासन (कुश की

दर्भासनेऽतो न कुशे तृणे पत्रे त्वचेऽपि च । पाषाणे मृत्तिकायां च न च वस्त्रासने क्वचित् ।।४१
तत्र दारुमयं कुर्यादागमं भजते द्विजः । दानं दद्याच्च होमान्ते पूर्णादौ च यथा भवेत् ।।४२
द्विजसंस्कारकार्येषु पूर्णादौ चापि दक्षिणा । मन्त्रोपासनकार्येषु सोमयागाश्वमेधके ।।४३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्णविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

अथैकविंशोऽध्यायः

मण्डलविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अथातो मण्डलं वक्ष्ये पुराणेषु यथोदितम् । यदधीना भवेत्सिद्धिस्तस्मात्कुर्यात्समाहितः ।।१
देवाः पद्मासनस्थाश्च भविष्यन्ति वसन्ति च । विनाब्जं नार्चयेद्देवमर्चिते यक्षिणी हरेत् ।।२
अतो मण्डलविच्छेदं यस्माद्दशगुणं भवेत् । रजःसाध्ये शतगुणं केवले द्विगुणं फलम् ।।३
त्रिशतं वन्दने साध्ये सहस्रं च रजोऽष्टकम् । रजोभिः षोडशैर्बिम्बं शतं शतमनन्तकम् ।।४
यन्त्रे मणौ शालग्रामे प्रतिमायां विशेषतः । महालये महायोनौ रक्तलिङ्गे च साधिकम् ।।५

चटाई) पर ही करना बताया गया है इससे एक कुश, तृण, पत्ते, पेड़ की छाल, पत्थर, भूमि, एवं वस्त्र के आसन पर कभी न होने चाहिए ।४१। उस (यज्ञ में) वेदपाठ के लिए काठ के आसन बनाये, पूर्णा के विधान में जिस प्रकार बताया गया है, वैसा ही हवन के अंत में दक्षिणादान करना चाहिए ।४२। ब्राह्मणों के संस्कार, पूर्णानुष्ठान, मंत्रों की उपासना का कार्य सोमयाग एवं अश्वमेध यज्ञ में उसी क्रम से दक्षिणा होनी चाहिए ।४३

श्रीभविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में पूर्णविधि वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

अध्याय २१

मण्डलविधि का वर्णन

सूत जी बोले—मैं मण्डल की व्याख्या पुराणों के अनुसार कर रहा हूँ, क्योंकि सफलता उसी के अधीन रहा करती है, इसलिए उसका आरम्भ सावधानी से करना चाहिए ।१। देवताओं को कमल के आसन पर ही स्थित करना चाहिए, क्योंकि वे उसी में निवास भी करते हैं, इसीलिए बिना कमल के देवों की अर्चा अनुपयुक्त बतायी गयी है, क्योंकि वैसा न करने से उस पूजा का अपहरण यक्षिणी कर लेती है ।२। अतः मण्डल की रचना और उसमें विभाजन होना आवश्यक होता है, (पुष्प) रज से उसकी रचना करने पर सौगुने और केवल से दुगुने फल की प्राप्ति होती है ।३। उसे वंदना द्वारा साध्य करने में तीन सौ रज आठ विम्ब की रचना में एक सहस्र और सोलह बिम्ब की रचना में सैकड़ों प्रत्युत अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।४। किसी, पन्ना, मणि, विशेषकर शालिग्राम की प्रतिमा, महालय, महायोनि, अथवा रक्तलिङ्ग पर उसके निर्माण करने से अधिकाधिक फल प्राप्त होते हैं ।५। पूजा के कामों में जो अपने

रजोयुक्तं लिखेद्यस्तु पूजाकार्ये विभूतये । करणादिफलं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।।६
चतुरस्त्रं नवं व्यूहं क्रौञ्चघ्राणं चतुर्विधम् । कामबीजं वज्रनाभं विघ्नराजं गजाह्वयम् ।।७
पारिजातं चन्द्रबिम्बं सूर्यकान्तं च शेखरम् । शतपत्रं सहस्रारं नवनाभं च मुष्टिकम् ।।८
पञ्चाब्जं चैव मैनाकं कामराजं च पुष्करम् । अष्टास्त्रं चैव श्रीबिम्बं षडस्त्रं त्र्यस्रमेव तु ।।९
चत्वारिंशत्तथा पञ्चस्वाधिकं परिसङ्ख्यया । चतुरस्त्रं नवव्यूढं वैष्णवे यागकर्मणि ।।१०
प्रशस्तं चापि गोमेधे क्रौञ्चं घ्राणं चतुर्विधम् । सुभद्रं चाश्वमेधे च नरमेधे नरासनम् ।।११
सर्वत्र सर्वतोभद्रं चतुरस्त्रं सुभद्रकम् । कामराजं तथा त्र्यस्रमष्टास्त्रं च षडस्त्रकम् ।।१२
शक्तानां कामपक्षे च पञ्चसिंहासनं महत् । ध्यानाचले मेरुपृष्ठं मणिमुक्ताचलेऽपि ।।१३
सहस्रं शतपत्रं च अन्नदाने तिलाचले । हरिवल्लभं राजसूये सोमयागेषु शस्यते ।।१४
प्रतिष्ठायां सुभद्रं च सर्वतोभद्रमेव च । जलाशयप्रतिष्ठायां विघ्नराजं प्रशस्यते ।।१५
घटप्रस्थापने चैव गजाह्वं तुरगासनम् । शतपत्रं लक्षहोमे अयुते चतुरस्त्रकम् ।।१६
यस्य यज्ञस्य यद्बिम्बं तत्तु तेनैव योजयेत् । इतोऽन्यथा भवेद्दोषो विपरीतेष्वधोगतिः ।।१७
द्विहस्ता चतुरस्रा च वेदिका परिकीर्तितता । चतुरङ्गुलोच्छ्रायमिता षडङ्गुला ह्यथापि वा ।।१८
षडङ्गुला नवव्यूहे वर्धयेद्यज्ञकोविदः । एकाङ्गुलसमुत्सेधः कर्तव्यस्सुसमाहितैः ।।१९

ऐश्वर्य के निमित्त रज से युक्त निर्माण करते हैं, उसका निर्माण करने से ही एक फल उन्हें प्राप्त होता है, अतः उसका त्याग ही उस समय श्रेयस्कर होता है।६। चौकोर, नवव्यूह, क्रौंचघ्राण क्रौंचपक्षी की नासिका के समान, जो चार प्रकार का होता है, काम बीज, वज्रनाभ, विघ्नराज, गज पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकांत, शेखर, शतयम, सहस्रार, नवनाभ, मुष्टिक, पञ्चाब्ज, मैनाक, कामराज, पुष्कर, अष्टकोण, श्री विम्ब, षट्कोण, त्रिकोण, इस प्रकार पैतालिस प्रकार के मण्डल निर्माण के भेद बताये गये हैं। विष्णु याग में चौकोर तथा नवव्यूह और गोमेध यज्ञ में क्रौंचघ्राण नामक मण्डल, जो चार प्रकार का होता है, प्रशस्त बताया गया है। उसी प्रकार अश्वमेध में समुद्र, और नरमेध में नरासन तथा सब स्थानों में सर्वतोभद्र, जो चौकोर तथा सुभद्र के नाम से ख्यात है, एवं कामराज, त्रिकोण, षट्कोण और अष्टकोण के मण्डल बनाने चाहिए।७-१२। समृद्धशाली पुरुषों के लिए कामराज की जिसमें महान् पाँच सिंहासनों की रचना होती है, रचना करनी चाहिए। ध्यानाचल में मेरुपृष्ट नामक मण्डल की रचना होती है, और मणिमोतियो के अचल निर्माण में भी।१३। अन्न दान एवं तिलाचल के दान में सहस्रार और शतपत्र, राजसूय तथा सोमयाग में हरि वल्लभ नामक मण्डल बनाया जाता है।१४। (देवों के) प्रतिष्ठा कर्म में सुभद्र, सर्वतोभद्र, जलाशयों की प्रतिष्ठा में विघ्नराज नामक मण्डल प्रशस्त बताया गया है।१५। कलश स्थापन में गज एवं तुरगासन, लक्ष संख्या की आहुति में शतपत्र, दशसहस्र की आहुति में चौकोर मण्डल का निर्माण होना चाहिए।१६। इस प्रकार जिस यज्ञ के जो बिम्ब हैं, उसे उन्ही से विभूषित करना चाहिए, इससे अतिरिक्त निर्माण में दोष और विपरीत करने में अधोगति प्राप्त होती है।१७। दो हाथ की चौकोर वेदी का निर्माण बताया गया है, जो चार या छः अङ्गुल की ऊँची होती है।१८। नवव्यूह नामक मण्डल में छः अंगुल ऊँची वेदी, जिसका उत्सेध एक अंगुल का होता है, यज्ञ कोविद को सावधान

क्रौञ्चप्राणे तुर्यहस्तं मुष्टिहस्तं समुच्छ्रितम् । मध्यद्वये हीनकरं कनिष्ठं त्र्यङ्गुलाधिकम् ॥२०
कुर्याद्द्वित्रिकमाद्धीनमुच्छ्राये द्विजसत्तमाः । पारिजातं चन्द्रबिम्बं सूर्यकान्तं च शेखरम् ॥२१
ग्रहाणां पौष्टिके पक्षे बाह्यग्रामादिसाधने । नियोजयेत्तत्र तत्र वेदिका चक्रकत्रयम् ॥२२
प्रथमे मुष्टिहस्तः स्यात्सम्पूर्णं शेषमानकैः । नवलाभे च पञ्चाब्जं करत्रयमुदाहृतम् ॥२३
शेषा चैव वरिष्ठा च लवली भित्तिवेदिका । विज्ञेया द्विजशार्दूला यथाकाम्येषु योजयेत् ॥२४
अयथाव्यत्यये दोषस्तस्माद्यत्नेन साधयेत् । दशहस्ते चाष्टहस्ते अष्टहस्ते च षोडशम् ॥२५
मुष्टिबाहुश्च प्रादेशं वर्धयेत्षोडशांशके । हस्तोत्सेधं च कर्तव्यं हीने हीनं च ह्रासयेत् ॥२६
दर्पणाकारकं कुर्याद्यागके शान्तिकर्मणि । हीनं कुर्यात्प्रयत्नेन वप्राकारं परिस्तवे ॥२७
निशारणैर्गोमयैश्च वेदिकां च प्रलेपयेत् । स्वर्णरत्नमयैस्तोयैरभिषिच्य कुशोदकैः ॥२८
हीनवीर्यगवानां च पुरीषं धैनुकं तथा । कपिलायाश्च यत्नेन कुण्डमण्डललेपने ॥२९
वर्जयेत्सर्वयागेषु स्थण्डिलेषु प्रयत्नतः । विना सूत्रैः कीलके न मण्डले नैव सूत्रयेत् ॥३०
तस्मात्प्रयत्नतः कार्यं यत्सूत्रं यच्च कीलकम् । अर्कहस्तमितं सूत्रं मृदुलाक्षामयं तथा ॥३१

होकर बनानी चाहिए ।१९। क्रौंच प्राण नामक मण्डल में चार हाथ की वेदी, जो मुट्ठी बँधे एक हांथ की ऊँची, और कनिष्ठा अंगुली तक पूरे हाथ एवं तीन अंगुल अधिक मध्य भाग रहता है, बनानी चाहिए ।२०। द्विजसत्तम ! उसकी ऊँचाई दो-तीन अंगुल कम भी हो सकती है । उसी प्रकार पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकांत, और शेखर नामक मण्डलों की रचना ग्रहों के पुष्टि कार्य में अथवा गाँवों के बाह्यसाधन के कार्यों में की जाती है, वहाँ सभी नापों की तीन चक्र की वेदियाँ बनानी चाहिए ।२१-२२। पहली वेदी मुट्ठी बँधे हाथ, एवं सम्पूर्ण कार्यों में अवशिष्ट मान तथा किसी नवीन नाम में पंचाब्ज नामक मण्डल जो तीन हाथ का होता है, बनानी चाहिए ।२३। द्विजशार्दूल ! शेष उत्तम वेदियों के निर्माण, जिससे लवली नामक भीति (दीवाल) लगी रहती है, काम्य कर्मों के अनुष्ठान में करनी चाहिए व्यत्यय (उलटफेर) होने पर वह दूषित हो जाता है, इसलिए उसके लिए प्रयत्नपूर्वक सतर्क रहना आवश्यक होता है । दशहाथ, आठ हांथ अथवा सोलह हाथ की वेदी में निर्माण में, जिसमें मुट्ठी बँधे तथा प्रादेश तक हाथ के माप होते हैं, सोलह हांथ की देदी में सोलहवें वेदियों में उतनी ही के उत्सेन्ध बनाये जाते हैं ।२४-२६। शांति कर्म के यज्ञानुष्ठान में दर्पणाकार और परिस्तव में वप्राकार की वेदी जो उसी क्रमानुसार हीन उत्सेध की होती है, बनायी जाती है ।२७। निशारण गोबरों से वेदी को लीपना बताया गया है, पश्चात् सुवर्ण, रज अथवा कुशों के जल से उसका सेवन करना चाहिए ।२८। वीर्यहीन, धेनु, अथवा कपिला गाय के गोबर से कुण्ड एवं मण्डपलेपन प्रशस्त कहा गया है ।२९। समस्त यागों की वेदियाँ सूत्र (उसके माप के लिए) और कील हीन होने पर त्याज्य होती है मण्डल में सूत्र की कोई आवश्यकता नहीं होती है ।३०। अतः प्रयत्नपूर्वक सूत्र रखना चाहिए जो बारह हाथ का लम्बा मृदु और लाक्षामय होता है, और कील भी वैसी होती है ।३१। विष्णु के भाग में पीत पुष्पों की माला, सुवर्ण की कील, अथवा

पीतकार्यस्त्रजं चैव कीलकं स्वर्णनिर्मितम् । रौप्यताम्रमयं कुर्याद्वैष्णवे यागकर्मणि ।।३२
गणनायके सुप्रशस्तं शैषेपामार्गमेव च । ग्रहपक्षे तथेशस्य कच्छपस्य द्विजोत्तमाः ।।३३
षोडशे चार्कहस्ते च तत्र नेमियुतं भवेत् ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे मण्डलनिर्माणविधिवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ।२१

।।इति मध्यमपर्वणि प्रथमभागः समाप्तः ।।

द्वितीयभागे प्रथमोऽध्यायः

मण्डलदेवरचनावर्णनम्

सूत उवाच

अथोद्धारं प्रवक्ष्यामि चतुरस्रादिकस्य च । अर्काङ्गुलमितं क्षेत्रं चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ।।१
गुणाङ्गुलं प्रतिदिशं वर्धयेत्सुविचक्षणः । चतुरस्रं समं कुर्यादिष्टेरष्टादशाङ्गुलम् ।।२
द्विहस्ते चैव सूत्राग्रे त्र्यङ्गुलानि समन्ततः । चतुरस्रीकृते पश्चाद्द्विहस्तमपि जायते ।।३
एवं षोडशहस्तान्तं वर्धयेत्क्रमतः स्वयम् । हस्ते विनिर्णयं विप्रा रचयेन्मण्डलं सुधीः ।।४
द्वादशाङ्गुलकल्पाभ्यां मधुहस्ते च मण्डले । द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद्द्विहस्तं तु चतुष्करे ।।५
पद्ममानं चतुर्द्धा तु वृत्तं कुर्यात्समन्ततः । प्रथमे कर्णिका कार्या केशराणि द्वितीयके ।।६

चाँदी या तांबें का भी बना लेना चाहिए ।३२। द्विजोत्तम वृन्द ! गणनायक, शेष, ग्रह, शिव, एवं कच्छप (कच्छप भगवान्) के यज्ञ में अपामार्ग (चिचिरा) की कील, वेदी सोलह अथवा बारह हाथ की लम्बी और नेमि समेत होती है ।३३-३४

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में मण्डल निर्माण विधि वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

अध्याय १

मण्डल देवरचना-वर्णन

सूत जी बोले—में चौकोर आदि मण्डलों का उद्धार बता रहा हूँ सुनो ! । बारह अंगुल के क्षेत्र में चौकार मण्डल की रचना की जाती है। उसके चारो ओर तीन अंगुल की वृद्धि बुद्धिमान् को करनी चाहिए, इसीलिए चौकोर की भाँति ही अट्ठारह अंगुल का मण्डल भी इष्टप्रद बताया गया है ।१-२। दो हांथ के सूत्र के अग्रभाग में (माप करते समय) चारो ओर तीन अंगुल की वृद्धि करनी चाहिए, इसी प्रकार चौकोर मण्डल की रचना में दो हाथ की वृद्धि संभव होती है । इसी भाँति क्रमशः वह सोलह हाथ तक बढ़ जाता है, विप्रवृन्द ! विद्वानों को चाहिए कि हस्तप्रमाण से निर्णय करके ही मण्डल की रचना करे ।३-४। बारह अंगुल के कल्पों द्वारा मधुहस्त वाले मण्डल की रचना होती है, उसी भाँति दो हाथ वाले एक हांथ और चतुष्कर (चौकोर) में दो हाथ की वृद्धि बतायी गयी है ।५। कमल की भाँति (मंडल की रचना में) चारों ओर से घिरा चार भाग का मण्डल बनाना बताया गया है । उसके पहले भाग में कर्णिका, दूसरे

तृतीये दलसन्धीश्च दलाग्राणि चतुर्थके । कर्णिकां पीतवर्णेन शुक्लेन पङ्कजं लिखेत् ।।७
केशरास्त्रिविधाः प्रोक्ता मूलमध्याग्रदेशतः । मूले शुक्लारुणा मध्ये पीताश्चाग्रे प्रतिष्ठिताः ।।८
पात्रसन्धिर्भवेच्छ्यामः कोणे रक्तेन रञ्जयेत् । देवास्त्राणि लिखेद्वाह्ये पुरमध्ये च कोणके ।।९
अष्टाङ्गुलप्रमाणं यद्यथावर्णं विनादितः । शम्भुर्गौरी तथा ब्रह्मा रामकृष्णेत्यनुक्रमात् ।।१०
सीमारेखाङ्गुलोच्छ्रायं तत्तदर्धेन योजयेत् । शिवविष्ण्वोर्महायागे शम्भुमारभ्य दापयेत् ।।११
प्रतिष्ठायां च रामान्तं कृष्णान्तं च जलाशये । दुर्गायागे च श्रीपक्षे ब्रह्मादीन्परिकल्पयेत् ।।१२
ग्रहयागे च पीतादीन्कुर्याच्च न तदन्यथा । नवव्यूहमथो वक्ष्ये पुराणमतसम्मतम् ।।१३
सर्वं च पूर्ववत्कार्यं पङ्कजं सुलिखेत्सुधीः । तावत्संख्याहरणयोर्वेष्टयेत्प्रक्रमादपि ।।१४
शुक्लारुणैस्तथा पीतैः पीतारुणसितैरपि । पीतारुणसितैरेवं स्वभावे प्रतिभागके ।।१५
कलायन्त्रं तदन्ते च गुह्यपत्राग्रकेण तु । षोडशैर्विंशमाने तु सलिङ्गं चाष्टपत्रके ।।१६
एवं मण्डलमन्त्राणां वर्जयेत्परमार्थतः । तद्वन्मूलेषु कोणेषु केशराणि प्रकल्पयेत् ।।१७
दशदण्डसमाकारं त्रिवर्णं प्रतिरञ्जितम् । अरं दद्याद्दशाग्रे तु सर्वाङ्गुलप्रमाणतः ।।१८

भाग में केशर, तीसरे भाग में दलों की संधियाँ, और चौथे भाग में दलों के अग्रभाग की रचना की जाती है । पीले रंग से कर्णिका शुक्र वर्ण से पंकज की रचना की जाती है ।६-७। मूल, मध्य, एवं अग्र भाग के भेद से केशर तीन प्रकार के बताये गये हैं । उसके मूल भाग श्वेत रक्त वर्ण से मध्य एवं अग्र भाग पीत वर्ण से समलंकृत करना चाहिए ।८। पत्तों की संधियों कें श्याम वर्ण तथा उसके कोने वाले भाग को रक्तवर्ण से विभूषित करना बताया गया है । उसके बाहरी भाग के मध्य एवं कोण के भाग में देवों के अस्त्र निर्माण को करना चाहिए ।९। शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम एवं कृष्ण के चित्र की रचना, जो जिस वर्ण का हो, उसी द्वारा आठ अंगुल के प्रमाण से करनी चाहिए ।१०। उसके यज्ञ की सीमा वाली रेखा को उसके आधे अंगुल प्रमाण की ऊँची बनानी चाहिए । शिव और विष्णु के महायज्ञ में शम्भु से आरम्भ करे ।११। (देवों की) प्रतिष्ठा में रामान्त और जलाशय में कृष्णान्त तक, दुर्गा यज्ञ एवं श्रीयज्ञ में भी ब्रह्मा आदि देवों की रचना आवश्यक होती है ।१२। ग्रहों के यज्ञ में पीत यदि सभी रंगों से उनकी रचना की जाती है । इसके उपरांत पुराण सम्मत नवव्यूह की रचना बता रहा हूँ, सुनो ! ।१३। विद्वान् को उसमें सब की रचना पूर्व की भाँति करके कमल का सौन्दर्य पूर्ण चित्र-चित्रण करना चाहिए । उसमें पूर्व की भाँति संख्या एवं उसी क्रम से आवेष्टित करना भी बताया गया है ।१४। कहीं शुक्ल और रक्त वर्ण, कहीं पीत वर्ण, तथा कहीं पीत, रक्त, एवं उज्ज्वल वर्ण से उसके प्रत्येक भाग को उसके स्वभावानुसार वर्णों से विभूषित करना बताया गया है ।१५। उसके अनन्त वाले भाग में कलायंत्र का निर्माण जो गुह्य पत्र के अग्रभाग में स्थित रहता है, करना चाहिए । उसी भाँति सोलह और बीस, प्रमाण वाले की रचना में, जो अष्टपत्रे से विभूषित रहता है । लिंङ्ग समेत निर्माण करना चाहिए ।१६। इस प्रकार मण्डल के विधान में मंत्रों का परमार्थतः प्रयोग करना निबद्ध किया गया है । उनके मूलभाग एवं कोणभाग में केशरों की रचना बतायी गयी है ।१७। दशदण्डों के आकार प्रकार के समान तीन रंगों से रञ्जित अर (आरागज की भाँति) की रचना की जाती है, और उसके अग्रभाग में भी समस्त अंगुलों के प्रमाण एवं उसी भाँति का अर बनाना

पीतेनारं च सर्वत्र तन्मध्ये शोणतुण्डकम् । नवव्यूहमिदं प्रोक्तं धर्मकामार्थदायकम् ।।१९
न शूद्रोमण्डलं कुर्यान्न कुर्याद्ब्राह्मणब्रुवः । कुर्याच्च सङ्गमे तीर्थे देवतायतनेषु च ।।२०
लिखित्वा नार्चयेद्यस्तुअग्निकार्यविहीनकः । अविद्धो जायते सोऽपि यतो जन्मनि जन्मनि ।।२१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मण्डलदेवरचनावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

क्रौञ्चमानवर्णनम्

सूत उवाच

क्रौञ्चमानं प्रवक्ष्यामि यथावेदार्थवादिनाम् । सम्मतं सर्वतन्त्रेषु गोपनीयं प्रयत्नतः ।।१
आत्मनोऽरत्निमानेन द्विगुणं परिकल्पयेत् । मध्ये वृद्धया तु तत्सूत्रं भ्रामयेत्कीलकोपरि ।।२
चतुष्टयं न्यसेद्वृत्तं मध्यमाधमभावतः । कर्णिका प्रथमे वृत्ते द्वितीये त्वथ केशरम् ।।३
तृतीये पद्मपत्राणि चतुर्थे षोडशच्छदाः । शोभोपशोभे कुर्याच्च चतुरस्रे समे शुभे ।।४
तद्दक्षिणाग्रं सुलिखेत्पार्श्वयोः पक्षकद्वयम् । तत्र पद्मयुगं कुर्यान्मध्ये चाङ्गुलमन्तरम् ।।५
शुक्लं पीतं तथा रक्तं कृष्णं लोहितसन्निभम् । सङ्ख्यातं ताम्रपर्णं च श्यामलं चाष्टकं रजः ।।६

चाहिए ।१८। उस अर के समस्त भाग को पीत वर्ण, मध्य और मुख को रक्त वर्ण से सुशोभित करना कहा गया है । इसी को धर्म, अर्थ एवं काम फल प्रदान करने वाला नवव्यूह कहते हैं ।१९। किसी शूद्र अथवा ब्राह्मण ब्रुव (नाम मात्र का ब्राह्मण) को मण्डल न करना चाहिए । मण्डल का निर्माण प्रायः संगमतीर्थ या देवमंदिरों में ही करना बताया गया है ।२०। मण्डल की रचना करके जो अग्नि कार्य (हवन) हीन पुरुष उसकी अर्चा सुसम्पादित नहीं करता है, वह प्रत्येक जन्मों में अविद्ध हो कर ही जन्म ग्रहण करता है।२१

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मण्डलदेव रचना वर्णन नामक
पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

क्रौञ्च के मान का वर्णन

सूत जी बोले—मैं तुम्हें क्रौंच का मान बता रहा हूँ, जो वेदार्थवेताओं की सर्वसम्मति से स्वीकृत और सभी तंत्रों में प्रयत्न पूर्वक गोपनीय है ।१। अपने अरत्नि के मान से उसे दुगुने परिमाण की रचना करके उसके मध्य भाग में वृद्धयर्थ उस सूत्र को उसके कील के ऊपर घुमा देना चाहिए ।२। इसकी भी रचना मध्यम और अधमादि भेद से चार भागों में होती हैं पहले में कर्णिका, दूसरे में केशर, तीसरे में कमल के पत्ते, और चौथे में सोलह दलों की रचना करते हुए उसे चौकोर, शुभ, सम एवं सौन्दर्यपूर्ण बनाना चाहिए उसके दक्षिण अग्रभाग में एवं दोनों पार्श्व भागों में दो पक्षों के निर्माण करके उसके मध्य भाग में एक अंगुल के व्यवधान में चार कमलों की रचना की जाती है ।३-५। शुक्ल, पीत, रक्त, कृष्ण, लोहित, संख्यात, ताम्रपर्ण, एवं श्याम के भेद से आठ प्रकार का रज (चूर्ण) होता है, जिससे उसकी रचना होती

शुक्लं तण्डुलचूर्णोत्थं पीतं तु निशया[1] स्मृतम्। रक्तं तु निशया योगाच्छङ्खचूर्णादिभावितम् ॥७
कृष्णं पुलकादिदग्धं रक्तं पीतास्ययोगतः। कुङ्कुमाभं पाण्डुरं च रक्तश्वेतैर्विनिर्मितम् ॥८
ताम्रवर्णं कुसुम्भेन श्यामलं बिल्वपत्रजम्। यवगोधूमचूर्णादियोगेन तु रजः स्मृतम् ॥९
सर्वरेखासु विभजेच्छुक्लं मध्ये तु पीतकम्। कर्णिकायां केशरेषु शुभ्रमेव निपातयेत् ॥१०
पूर्वादिक्रमयोगेन शुक्लादीनि प्रयोजयेत्। पत्रसन्धौ तु विभजेद्रजः सेकान्तरक्रमात् ॥११
ततः षोडशपत्रेषु पूर्वादिक्रमतो भवेत्। शुक्लं पीतं तथा ताम्रं ततः सङ्ख्यातमेव च ॥१२
श्यामलं कुङ्कुमाभं च रक्तं शुक्लं च कृष्णकम्। पीतं ताम्रं च सङ्ख्यातं श्यामं कुंकुमरक्तकम् ॥१३
एवं दद्याद्द्विजः पूर्वे ईशानान्तं विभावयेत्। क्रौञ्चमूर्ध्नि भवेद्रक्तं चतुरङ्गुलमानतः ॥१४
तुण्डभागे भवेत्पीतं ग्रीवायां शुक्लमेव च। पुच्छे विंशतिपत्राणि आदौ पञ्च रजः क्रमात् ॥१५
षडङ्गुलेष्वण्डभागे पीतेन परिकल्पयेत्। ग्रीवायां शुक्लरजसा भावितायां विशेषतः ॥१६
तत्र पीतादिकं लेख्यं पूर्वोक्तं च यथा भवेत्। शुक्लादिकं प्रदद्यात्तु पात्रेष्वेकैकशः पृथक् ॥१७
चतुरङ्गुलके पादे जानोरूर्ध्वे तु पीतकम्। अधस्तात्तु भवेद्रक्तं तदेव चतुरङ्गुलम् ॥१८
द्व्यङ्गुलेन भवेच्छ्याममङ्गुलीष्वपि विन्यसेत्। एवं पक्षद्वयेनापि लिखेच्छुक्लं विभावयेत् ॥१९
पदे शुक्लं चाङ्गुलीषु रक्तं श्यामेन भावयेत्। पूर्वपश्चिमदिग्भागे शुक्लं स्याद्द्वारदेशतः ॥२०

है।६। चावल के चूर्ण से शुक्ल वर्ण, हरदी से पीतवर्ण, हरदी मिश्रित शंख के चूर्ण से रक्त वर्ण, पुलकादिदग्ध श्यामवर्ण और उसी में पीतवर्ण (हरदी) मिला देने से रक्त वर्ण एवं रक्त तथा श्वेत मिश्रित से कुंकुम के समान पाण्डुर वर्ण, कुसुंभ से ताम्रवर्ण, बेल के पत्ते से श्यामल वर्ण बनाया जाता है। और जवा तथा, गेहूं के मिश्रित चूर्ण से रज बनता है।७-९। समस्त रेखाओं को शुक्लवर्ण मध्य भाग में पीत वर्ण, एवं कर्णिका और केशरों को शुभ्रवर्ण से सुशोभित करना चाहिए।१०। पूर्वादि दिशाओं के क्रम से शुक्ल आदि वर्णों (रंगों) का प्रयोग करना चाहिए तथा पत्रों के संधियों में एक-एक के व्यवधान में रज ही रखना बताया गया है।११। उपरांत सोलह पत्तों में पूर्वादि के क्रम से शुक्ल, पीत, ताम्र, संख्यात, श्यामल, कुंकुम की भाँति, रक्त, शुक्ल, कृष्ण, पीत ताम्र, संख्यात, श्याम, कुंकुम की भाँति रक्त वर्ण होने चाहिए।१२-१३। इस प्रकार ब्राह्मणों को चाहिए कि पूर्व से ईशान पर्यंत सौन्दर्य पूर्ण रचकर क्रौंच के मूर्धा (शिर) भाग में चार अंगुल के प्रमाण रक्त वर्ण से सुशोभित करके मुख भाग में पीत, ग्रीवा (गले) में शुक्ल वर्ण से सुसम्पन्न करे और उसके पूँछ में बीस पत्ते लगाये जिसमें आदि के पाँच क्रमशः रज (चूर्ण) द्वारा सौन्दर्य पूर्ण किये जाते हैं।१४-१५। उसके अंडभाग छः अंगुल प्रमाण में पीत वर्ण से तथा ग्रीवा शुक्ल रज (चूर्ण) से सुशोभित होते है।१६। उसमें पीत आदि वर्ण इस प्रकार रखने चाहिए जिससे वह पूर्वोक्त कथनानुसार दिखाई पड़े, पत्तों में पृथक्-पृथक् क्रमशः शुक्ल आदि वर्णों के भी प्रयोग होने चाहिए।१७। चार अंगुल के चरण तथा जानु (घुटने) के ऊर्ध्व भाग में पीत वर्ण और उसके नीचे चार अंगुल में रक्तवर्ण रखने चाहिए।१८। दो-दो अंगुल प्रमाण की श्यामल रंग की अंगुलियों तथा शुक्ल वर्ण से दोनों पक्षों की रचना बतायी गयी है।१९। दोनों चरणों में शुक्ल वर्ण, अंगुलियों में रक्त तथा श्याम वर्ण रखकर दरवाजे के पूर्व तथा पश्चिम

---

१. हरिद्रया।

दक्षिणोत्तरतश्चैव रक्तवर्णं विनिर्दिशेत् । महाक्रौञ्चमिदं ज्ञेयं मध्यक्रौञ्चमिदं शृणु ॥२१
कनिष्ठं सर्वयज्ञेषु विद्यानां सप्तमुत्तमम् । अथापरं प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रमतं क्रमात् ॥२२
रक्तपीतं रक्तपीतैः कुर्यात्पुच्छचतुष्टयम् । पूर्वादिक्रमयोगे तु पत्रान्ते धरणीतले ॥२३
सुलिखेन्मूलसंलग्नं बहिष्कोणचतुष्टयम् । कनिष्ठेऽष्टकुलं कुर्यात्पुच्छं कुर्याच्चतुर्विधम् ॥२४
त्रिवृत्तं वेष्टयेत्पश्चात्सितरक्तासितैः क्रमात् । दृष्टं जन्मशतोद्भूतं पापं नाशयते ध्रुवम् ॥२४
पीतं वा विलिखेद्विप्रा नश्यन्ति सकलापदः । अन्तश्चक्रं बहिश्चक्रं क्षेत्रे च प्रतिदर्शनम् ॥२६
तस्य कल्पशतोद्भूतं पापं नाशयते ध्रुवम् । मयूरं वृषभं चैव सिंहं क्रौञ्चं च वै कपिम् ॥२७
प्रमादाद्वा गृहे क्षेत्रे वृक्षाग्रे चापि भो द्विजाः । उत्थाय वदनं कुर्याद्ब्रह्महत्याशतं दहेत् ॥२८
पोषणात्कीर्तिमाप्नोति दर्शनात्पापविच्युतिः । दर्शनाद्वर्धते लक्ष्मीरायुर्वृद्धिश्च जायते ॥२९
मयूरो ब्रह्मणो मूर्तिर्वृषभश्च सदाशिवः । सिंहे च सम्भवेद्दुर्गा वैष्णवो विधिरुच्यते ॥३०
क्रौञ्चो नारायणो देवो व्याघ्रस्त्रिपुरसुन्दरी । कलिका कृष्णव्याघ्रश्चलक्ष्मीश्चित्रकपोतकः ।३१
स्नातः पश्यति प्रत्यह्नि ग्रहदोषो न जायते । तस्मात्प्रयत्नतो भूत्वा धारयेत्पोषयेद्गृहे ॥३२
अतः परं प्रवक्ष्यामि मण्डले मण्डलेष्वपि । रजोद्रव्यप्रमाणं च यथोक्तं यत्नवर्जनम् ॥३३
तण्डुलोत्थं यवोत्थं वा वर्ज्यं मकररोपणम् । यद्वाल्यश्रावणे जातं हैंगुलं गन्धकं तथा ॥३४

भाग में शुक्ल वर्ण रखना चाहिए ।२०। दक्षिण और उत्तर भाग में रक्तवर्ण से सुशोभित करने पर उसे महाक्रौंच के नाम से कहा जाता है । मध्य क्रौंच भी बता रहा हूँ सुनो ! जो समस्त यज्ञों कें कनिष्ठ विद्याओं में श्रेष्ठ सातवाँ और सभी तंत्रों में स्वीकृत एक या (दूसरे) के समान है (बता रहा हूँ) ।२१-२२। रक्त और पीत वर्ण से उसकी चार पूँछे लाल-पीली बनानी चाहिए । जो पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पृथिवी पर पत्रों के अंत में रहती है ।२३। मूलभाग से मिले हुए बाहर के चार कोने भी सौन्दर्य पूर्ण बनाने चाहिए । कनिष्ठ में आठ कुल (समूह) पंच में चार प्रकार की रचना होती है ।२४। पश्चात् क्रमशः श्वेत रक्त एवं कृष्ण इन तीनों रंगों से तीन वृत्तों को आवेष्टित करके उसकी सौन्दर्य पूर्ण रचना होती है, जिसके दर्शन मात्र से सैकड़ों जन्म के संचित पाप समूह निश्चित नष्ट हो जाते हैं ।२५। विप्रवृन्द ! उसकी पीत वर्ण से रचना करने से सम्पूर्ण आपत्तियाँ शान्त होती हैं । एवं भीतरी तथा बाहरी चक्र के निर्माण तथा क्षेत्र में उन प्रत्येक के दर्शन करने से सैकडों कल्पों के जन्मार्जित पाप निश्चित नष्ट होते हैं, द्विजगण ! मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौंच और कपि को प्रमादवश घर, क्षेत्र अथवा वृक्ष के अग्र भाग पर स्थित रखकर उन्हें उठकर वंदना करने से सैकडों ब्रह्म हत्या के पाप भस्म हो जाते हैं ।२६-२८। उनके भाषण करने से कीर्ति, दर्शन से पाप-नाश, तथा लक्ष्मी और आयु की वृद्धि होती है ।२९। मयूर, ब्रह्मा की मूर्ति, वृषभ (बैल) सदाशिव की मूर्ति, सिंह में दुर्गा की मूर्ति प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है, यह वैष्णव विधान कहा जाता है ।३०। क्रौंच, नारायण व, बाघ, त्रिपुर सुन्दरी, काले वर्ण के वाघ, कालिका, लक्ष्मी चित्र विचित्र वर्ण के कपोत (कबूतर) के दर्शन, स्नान के उपरांत प्रतिदिन करने से ग्रहदोष नहीं उत्पन्न होते हैं, इसलिए अपने घर में इन्हें रख कर प्रयत्न पूर्वक पोषण करना चाहिए ।३१-३२। इसके उपरांत मंडल तथा मण्डलों में रज (चूर्ण) बनाने के लिए कितनी मात्रा में द्रव्य (जवा आदि) का रहना आवश्यक होता है मैं बता रहा हूँ सुनो ! चावल, जवा के रज चूर्ण, इसके लिए प्रशस्त हैं, पर वे मकर की संक्राति में

हरितालं सुभद्रं च सदा विघ्नं विवर्जयेत् । हैमन्तिकोद्भवं यच्च सितपाषाणमेव च ।।३५
काञ्चन्याश्च प्रभेदं यच्छस्तं शुक्लगुणं द्विजाः । शेफालिवृत्तं निशया अतसीकुसुमानि च ।।३६
किंशुकस्य च पुष्पाणि शस्तं पीतं गुणं भवेत् । नागजं गैरिकं चैव कुसुम्भकुसुमानि च ।।३७
कुशीतं गुडकं चैव मञ्जिष्ठां पञ्चरङ्गकम् । विजयापत्रकं चैव बिल्वपत्रं तथैव च ।।३८
पुनर्नवायाः पत्रं च केशरस्य बकस्य च । कृष्णपाषाणकं चैव कृष्णाभ्रं समयूथकम् ।।३९
नागपाषाणकं चैव पुन्नागं दग्धपञ्चकम् । शङ्खचूर्णं लोहविष्ठां नागविष्ठां च वर्जयेत् ।।४०
कर्पूरं कुङ्कुमं चैव रोचनारोचनां श्रयेत् । यवशालीयकैर्भिन्नं शुक्लं च कारयेत्सुधीः ।।४१
लाक्षां च यदि गृह्णीयात्तद्भजित्वा[1] प्रदापयेत् । आकाशं पृथिवीं चैव भौमं रामं तथा शनी ।।४२
धरणीं सदनस्थाने पञ्चधा विभजेद्बहिः । पद्ममुल्लिख्य प्रथमं कर्णिकां तदनन्तरम् ।।४३
तर्जन्यमध्यपूर्वोत्थं विभजेद्वा समाहितः । तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्वा तृणमारभ्य यद्भवेत् ।।४४
तृणमारभ्य सामान्ये शस्तो वा मध्यमान्वितः । राक्षसादिप्रतिष्ठायां ग्रहपक्षेऽग्निमादितः ।।४५
अङ्गुल्यग्रे च विभजेत्सर्वकामार्थसिद्धये । प्रतिष्ठायां ग्रहमखे काम्येषु परिवर्जयेत् ।।४६
सुभद्रं मण्डलं वक्ष्ये शुभदं शुभमादिशेत् । अतः सुभद्रमुद्दिष्टं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।।४७
सार्धहस्तेन मानेन कुर्यान्मण्डलमुत्तमम् । चतुर्विंशाङ्गुलैः पूर्णं सर्वत्र हस्तमादिशेत् ।।४८

बोये न गये हों, बाल्य श्रावण में उत्पन्न हिंगुल (रक्त वर्ण के द्रव्य व पदार्थ) गंधक, हरताल, एवं सुभद्र विघ्नकारक होने के नाते सदैव इनके त्याग आवश्यक होते हैं। हेमन्तऋतु-कालीन उत्पन्न श्वेत पाषाण (पत्थर) काञ्चनमय पाषाण के भेद जो प्रशस्त एवं शुक्लवर्ण के हों तथा द्विजगण ! शरीफा, हल्दी, अतसी (अलसी) के पुष्प, पलाश पुष्प पीतगुण प्रशस्त बताये गये हैं पर्वतीय ऊँचाई सुवर्ण, कुसुम के पुष्प, कुशीत, गुडक, मजीठ, विजया, बेल, गदहपुन्ना, केशर, और वक के इन पाँचों के पत्ते, कालापत्थर, कालाभ्रक, समयूथक, नाग पाषाण, पुन्नाग, दग्धपंचक, शंख के चूर्ण, लोहे तथा शीशे के चूर्ण त्याज्य हैं।३३-४०। कपूर, कुंकुम, रोचना, जवा और चावल के चूर्ण से पृथक् किसी अन्य वस्तु से उसे शुक्ल वर्ण बनाना चाहिए, विद्वान् को यदि लाक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता हो, तो उसे भूनकर ग्रहण कर सकते हैं। आकाश, पृथिवी, भौम, राम, शनी, इन पाँच के निमित्त पृथिवी के बाहरी भाग में विभाग करना चाहिए। पहले कमल का निर्माण करके पश्चात् उसकी कर्णिका बनानी चाहिए।४१-४३। तर्जनी एवं मध्यमा के क्रम से सावधान होकर विभाजन करे, उसी भाँति तर्जनी और अंगूठे के द्वारा किसी तृण से उसके मध्यम भाग की प्रथम रचना करनी चाहिए, यह विधान राक्षसों आदि के प्रतिष्ठा में कहा गया है, और ग्रहों के हवन में प्रथम अग्नि से प्रारम्भ किया जाता है।४४-४५। ग्रह यज्ञों में समस्त कामनाओं के सिद्ध्यर्थ अंगुली के अग्रभाग से रचना की जाती है, काम्य कर्मों में नहीं।४६। शुभदायक सुभद्र नामक मण्डल विधान, बता रहा हूँ, जो स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करता है।४७। डेढ़ हाथ का उत्तम मण्डल बनाना चाहिए, सभी स्थान चौबीस अंगुल के ही हाथ (मान) के होते हैं।४८। सहस्रों के मध्य में भी कर्ता के ही

१. इडार्षः।

कर्तुर्मध्यसहस्रस्य मध्यमा मध्यपर्वणि । मध्यमा दीर्घमानेन मानाङ्गुलमिति स्मृतम् ।।४९
रेखाद्वयान्तरं यच्च मूलरेखां न चाश्रयेत् । वृद्धाङ्गुष्ठनखद्वन्द्वं मानाङ्गुलमथापि वा ।।५०
मध्ये निबध्य शंकुं च मुष्टिबाहुप्रमाणतः । त्रिवृत्तं कायरेन्मध्ये ज्येष्ठोत्तरकनीयसम् ।।५१
प्रकल्प्य कर्णिकादीनि मध्ये चाष्टदलं लिखेत् । बहिश्चार्कदलं कुर्याद्वर्णानां क्रमशेण तु ।।५२
पञ्चमं श्वेतवर्णेन बहिः कुर्यात्त्रिवेष्टनम् । सितपीतारुणं कुर्यात्पश्चाद्वेदाङ्गुलान्तरे ।।५३
वेष्टयेच्छुक्लवर्णेन मध्ये कल्पलतां लिखेत् । सुभद्रं मण्डलात्पूर्वं सर्वतोभद्रकं शृणु ।।५४
सर्वकार्येषु यज्ञेषु सर्वकल्याणमाप्नुयात् । मण्डलं सर्वतोभद्रं सर्वयज्ञेषु पुष्टिदम् ।।५५
साधकानां हितार्थाय ईश्वरेणैव भाषितम् । चतुर्विंशत्यङ्गुलेन हस्तः प्रथमतो भवेत् ।।५६
कोणे सूत्रद्वयं दद्यान्मध्ये सूत्रद्वयं पुनः । ततो मत्स्यान्विरचयेत्कर्णे सूत्राणि साधकः ।।५७
चतुः सूत्रं पातयेच्च पूर्वापरविभागतः । पुनर्दधायाच्चतुःसूत्रं कर्णसूत्रं पुनर्ददेत् ।।५८
शतद्वयपदं यावत्षट्पञ्चाशाधिकं तथा । पातयेच्च तथा सूत्रमेवं सप्तदशं भवेत् ।।५९
ऊर्ध्वपङ्क्त्यां पदयुगं चाद्ये पदचतुष्टम् । द्वारपार्श्वे भवेद्यावद्दन्तपङ्क्त्या पदत्रयम् ।।६०
रेखां सर्वत्र शुक्लेन रचयेद्यज्ञियोत्तमः । पङ्कजं शुक्लवर्णेन वैष्णवो यागकर्मणि ।।६१
शक्तियोगे भवेद्रक्तं शैवे पीतं विनिर्दिशेत् । प्रतिष्ठासु च सर्वासु शुक्लमेव प्रशस्यते ।।६२

अंगुल्यादिमान ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके मध्यमा अंगुली के मध्यपर्व (गाँठ) द्वारा उसके दीर्घमान को ही अंगुल मान बताया गया है ।४९। दोनों रेखाओं के मध्य भाग को मूल रेखा के आश्रित न रखना चाहिए । वृद्ध के अँगूठे के दोनों नख एवं अंगुल भी मान के रूप में ग्रहण किये जाते हैं ।५०। मुट्ठी बँधी हाथ के प्रमाण से मध्यभाग में एक शंकु (कील) स्थित कर तिवृत्त (तीन ऊँची नीची रेखा) बनाये, उस समय कनिष्ठा और उसकी बड़ी अंगुली भी वहीं स्थित रहनी चाहिए । कर्णिका आदि की रचना के उपरांत मध्य भाग में अष्टदल (कमल) की रचना करके बाहरी भाग में भी क्रमशः रंगों द्वारा अर्क दल का निर्माण करे ।५१-५२। पाँच की रचना श्वेत वर्ण द्वारा एवं बाहरी भाग में तीन प्रकार के वेष्टन श्वेत, पीत और रक्त वर्ण के द्वारा पश्चात् चार अंगुल व्यवधान में अधिष्ठित कर श्वेत वर्ण द्वारा कल्पलता की रचना करे । अब मैं (तुम्हें) सर्वतोभद्र मण्डल बता रहा हूँ, सुनो ।५३-५४। सर्वतोभद्र मण्डल समस्त कार्यों एवं यज्ञों में सम्पूर्ण कल्याण और पुष्टि प्रदान करता है ।५५। साधकों के हितार्थ इसे ईश्वर (शिव) ने स्वयं बताया है । इसमें सर्वप्रथम चौबीस अङ्गुल का हाथ ग्रहण करना चाहिए । साधक सर्वप्रथम कोने के भाग में दो सूत्र फिर मध्यभाग में दो सूत्र से अंकित कर कर्णभाग में मत्स्य और सूत्रों की रचना करनी चाहिए ।५६-५७। पूर्वापर विभाग करके चार सूत्र से दो बार अंकित कर पुनः कर्णसूत्र से अंकित करे ।५८। इस प्रकार उसमें दो सौ छप्पन कोष्ठ होते हैं । और सत्रह बार सूत्र से अंकित किया जाता है । ऊपरी भाग तथा आदि में चार स्थान और द्वार के पार्श्व भाग में बत्तीस कोष्ठ होते हैं जो तीन स्थानों में बनाये जाते हैं ।५९-६०। यज्ञ के कर्मों में वैष्णव को सर्वत्र श्वेत वर्ण की रेखा एवं कमल का निर्माण करना चाहिए ।६१। शक्ति की उपासना में रक्तवर्ण, शैवयाग में पीत वर्ण एवं सभी प्रतिष्ठा कर्मों में शुक्ल वर्ण प्रशस्त बताया गया है ।६२। चौथाई भाग में मतानुसार पीत वर्ण की कर्णिका का निर्माण,

पीतेन कर्णिका कार्या चतुर्भागेन मानतः । शुभं चकोरावस्थाने तापयित्वा विचक्षणः ।।६३
कर्णिकामूलमारभ्य रेखाः षोडश कल्पयेत् । रेखामूले भवेच्छुक्लं मध्ये रक्तं निपातयेत् ।।६४
अग्रे पीतं भवेदेवं कृत्वा पङ्कजवेष्टनम् । शुभ्रवर्णेन तद्दद्यात्पीतवर्णेन सर्वतः ।।६५
मध्ये रक्तं भवेत्तच्च एवं षोडशकल्पयेत् । कोणेषु रक्तं दद्याच्च पद्मं क्षेत्रेषु निर्दिशेत् ।।६६
शुक्लेन पीठगात्राणि पीठकोणे पदत्रये । पीतवर्णेन रचयेद्द्विधा पङ्क्तिद्वये तथा ।।६७
शुक्लेन रचयेत्पादौ पुनः पीतादिवर्णकैः । चित्रं सुशोभनं कार्यं तत्र कल्पलतां न्यसेत् ।।६८
मानं कल्पलतायास्तु द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम् । द्वे द्वे शस्तं च भ्रमणं शङ्खावर्तक्रमात्त्रयम् ।।६९
ग्रन्थौग्रन्थौ पुष्पफले नानावर्णेन भावयेत् । नानापशुगणैर्युक्तं नानापक्षिगणैर्युतम् ।।७०
वैष्णवे गारुडं शस्तं शैवे कीशवृषं लिखेत् । शाक्ते व्याघ्रं तथैशे च शरभं हरिमालिखेत् ।।७१
शोभां पीतेन रचयेदुपशोभां च पीतकैः । कोणेषु कृष्णवर्णेन बहिः स्याद्वेष्टनत्रयम् ।।७२
शुक्लपीतारुणैः कार्यं मण्डलं स्यान्मनोरमम् । सर्वतोभद्रमपरं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।७३
सर्वज्ञानमयं शुद्धं धर्मकामार्थदायकम् । चतुरस्रं समं कृत्वा दिग्भ्यो द्वादशधा द्विजाः ।।७४
पातयेत्तत्र सूत्राणि कोष्ठानां दृश्यते शतम् । चतुश्चत्वारिंशदाद्यं पश्चात्षट्त्रिंशदम्बुजम् ।।७५

जो शुभ एवं चकोरावस्थान में तप्त की गई हो, बुद्धिमान् को करना चाहिए ।६३। कर्णिका के मूल भाग से आरम्भ कर उस प्रकार की सोलह रेखाओं के निर्माण करने चाहिए जो उसके मूल भाग में शुक्ल वर्ण, मध्यमभाग में रक्तवर्ण, एवं अग्रभाग में पीतवर्ण से सुसज्जित हो । इसी भाँति कमल के आवेष्टन करना बताया गया है । सोलह की ही रचना भी बतायी गयी है जिनके मूल भाग में श्वेत वर्ण, मध्य में रक्त वर्ण और समस्त भाग में पीत वर्ण सुशोभित रहता है । कोण भाग में रक्त वर्ण से सुशोभित करे क्षेत्रों में इसी भाँति के मान के निर्माण बताये गये हैं ।६४-६६। पीठासन के समस्त भाग शुक्ल वर्ण द्वारा और उसके कोण के तीन स्थानों में पीतवर्ण से दो भाँति की रचना दो व्यक्तियों में करनी चाहिए ।६७। शुक्ल वर्ण से दोनों चरण तथा पीले आदि वर्णों से सौन्दर्य पूर्ण चित्र की रचना करके वहाँ कल्पलताओं को सुशोभित करना चाहिए ।६८। कल्पलता का मान दो अङ्गुल का बताया गया है, जिसमें शंखावर्त (शंख की भाँति) तीन-तीन रेखा दो बार की गयी हो ।६९। उसके प्रत्येक ग्रन्थियों (गाठों) में भाँति-भाँति के पुष्प-फल सुसज्जित करके अनेक भाँति के पशुगण और पक्षियों से उसे सुशोभित करना चाहिए ।७०। विष्णु भाग में गरुड़ की प्रतिमा शिव यज्ञ में कीश वृष, शक्ति (दुर्गा) यज्ञ में वाघ, एवं ईश के यज्ञ में शरभ हरि की मूर्ति प्रशस्त बतायी गयी है ।७१। उसके बाहरी भाग को पीतवर्ण प्रान्त भाग भी पीतवर्ण और कोण भागों को काले रंग से सौन्दर्य पूर्ण करके उसके तीन वेष्ठन बनाने चाहिए । इस प्रकार उस मण्डल को शुक्ल, पीत तथा रक्त वर्ण द्वारा अत्यन्त मनोरम बनाना बताया गया है।इसे ही समस्त सिद्धि प्रदान करने वाला दूसरा सर्वतोभद्र कहा गया है। जो सम्पूर्ण ज्ञानमय, शुद्ध और धर्म, अर्थ, एवं कामनाओं को सफल करता है। द्विजवृन्द ! प्रत्येक दिशाओं में क्रमशः चौकोर कोष्ठ बनाने के लिए बारह बार सूत्रों को उठाना और रखना पड़ता है, जिससे सौ कोष्ठों का निर्माण हो जाता है । चौवालिस आदि में तथा छत्तीस कोष्ठ पीछे भाग में रहते हैं ।७२-७५। पीठासन पर कोष्ठों के निर्माण करते समय पंक्तियों से वीथिका (गली की

कोष्ठं प्रकल्पयेत्पीठं पङ्क्त्या चैवात्र वीथिकाम् । द्वारशोभे यथापूर्वमुपशोभं च दृश्यते ॥७६
अवशिष्टैः पदैः कुर्यात्सद्भिस्तन्त्राणि मन्त्रवित् । विदध्यात्पूर्ववच्छेषमेवं वा मण्डलं भवेत् ॥७७
पूर्वोक्तमण्डले विद्वन्धरणीसदनं बहिः । मध्ये कल्पलता कार्या बहिष्कोणेषु सत्तमाः ॥७८
गुलालीतूर्यवर्णेन महामत्त इति स्मृतः । शोभोपशोभे शोभाग्रां कुर्यात्तै मण्डलं भवेत् ॥७९
एतद्धि सर्वतोभद्रं राशियुक्तमतः परम् । शतपत्रं वज्रनाभं बिम्बनाभं सहस्रकम् ॥८०
गजाह्वं च गजाकारं मध्ये सु समलङ्कृतम् । चतुश्चन्द्रे चन्द्रबिम्बचन्द्रकान्तमुदाहृतम् ॥८१
बहिर्द्वादशभिः सूर्यैः सूर्याक्रान्तं प्रकीर्तितम् । शेखरी त्रिपुटं चैव शतपत्रं च प्रक्रमात् ॥८२
सहस्रमेव विप्रेन्द्राः पद्मान्ते यस्य स्वस्तिकम् । स्वस्तिकं तद्भवेद्विप्राः पुष्करं वज्रसम्मतम् ॥८३
चिन्तामणिं कुङ्कुमांशं खातं च हरिवल्लभम् । पञ्चसिंहासनस्थं च पञ्चसिंहासनं विदुः ॥८४
तद्वद्वृषासनं ज्ञेयं शिखिरूपं शिखिध्वजम् । नारसिंहं पद्मगर्भं कपोतास्यं तथा भवेत् ॥८५
गारुडं मेरुगर्भं च नीलकण्ठं कराक्रांतम् । शतक्रतुगजारूढं श्रीबिम्बनवसूत्रकम् ॥८६
अष्टास्रमष्टकोणाद्यं बहिः पद्मवनं कृतम् । कामद्वयेन पुटितं सहस्रं पद्मवेष्टितम् ॥८७
त्र्यस्रगर्भं पङ्कजं च त्र्यस्रं तत्परिकीर्तितम् । अष्टपत्राणि वै मेरुं सुमेरुं तद्विपर्यये ॥८८

भाँति) की भी रचना हो जाती है। सौन्दर्यपूर्ण दरवाजे की प्रान्त भूमि भी मनोरम दिखायी पड़ती है।७६। मन्त्रवेत्ता को शेष स्थानों में तन्त्रों की रचना पूर्व की भाँति करनी चाहिए, इस प्रकार मण्डल की रचना बतायी गयी है।७७। विद्वन्! पूर्वोक्त मण्डल के बाहरी भाग में पृथ्वी गृह, मध्य में कल्पलता, और उसका बाहरी कोण भाग चौथे वर्ण गुलाली से सुसज्जित किया जाता है, उसे महामत्त कहते हैं। उसके भीतर, बाहर एवं प्रान्त भागों को मनमोहक सौन्दर्य प्रदान करने से वह मण्डल बन जाता है, इसे ही राशि युक्त सर्वतोभद्र कहते हैं, इसके अतिरिक्त शतयम, वज्रनाभ, बिम्बनाभ एवं सहस्र नामक मण्डल भी बताये गये हैं।७८-८०। गजनामक मण्डल की रचना हस्ती की भाँति ही होती है, उसके मध्य भाग पूर्ण समलंकृत रहते है, चन्द्रविम्ब नामक मण्डल में चार चन्द्र की रचना होती है, उसके मध्य भाग पूर्ण समलंकृत रहते है, चन्द्रबिम्ब नामक मण्डल में चार चन्द्र की रचना होती है, उसे चन्द्रकान्त भी कहते हैं।८१। बाहरी भाग में बारह सूर्यों की रचना करने से सूर्याक्रान्त मण्डल होता है। इसी भाँति क्रमशः शिखर वाले, त्रिपुट, और शतपत्रनामक मण्डल बताये गये हैं।८२। विप्रेन्द्रवृन्द! इसी प्रकार सहस्र नामक मण्डल, जिस कमल में प्रान्त भाग में स्वस्तिक का अंक सुशोभित हो वह स्वस्तिक और पुष्कर की भाँति वज्र नामक मण्डल भी बनाया जाता है।८३। चिन्तामणि, जिसमें विशेष कुंकुमांश रहता है, खात (गढ्ढे वाला), हरि वल्लभ, पाँच सिंहासन वाला, पंच सिंहासन, उसी भाँति का वृषासन, मोर की भाँति शिखिध्वज, नारसिंह, पद्मगर्भ, तथा कपोतास्य (कबूतर की भाँति मुख वाला) आसन बताया गया है। मेरुगर्भ गरुड़, मनुष्य की आकृति की भाँति नीलकण्ठ, एवं इन्द्र की ऐरावत हाथी पर स्थित नवसूत्र धारण किये भी बिम्ब नामक मण्डल बनाया जाता है, जिसमें आदि भाग में अष्टकोण और बाहरी भाग में कमल समूह की रचना कर दो कामनाओं से संतुष्टि रहता है। सहस्रनाभ कमण्डल, कमलों से घिरा रहता है। त्रिकोण गर्भित कमल को ही त्रिकोण कहा गया है। उसी भाँति आठ पत्ते वाले को मेरु और

महामहामेरुपृष्ठं शतत्रयच्छदैर्वृतम् । छिद्रव्यक्तिं प्रवक्ष्यामि यथा मानेन भो द्विजाः ॥८९
वसु दिग् विंशकैश्चैव चत्वारिंशत् शतार्धकम् । दण्डिश्रवणसम्पन्नमाकाशं वसुसम्मितम् ॥९०
शतविंशाधिकं चैव दलानि तदनन्तरम् । शुक्लरक्तं चाष्टवार्णैर्बिम्बोष्ठं परिपूरयेत् ॥९१
शुक्लेन पङ्कजे तत्र पश्चात्कुर्यात्त्रिवेष्टनम् । शतपत्रमथो वक्ष्ये बिम्बराजेति कथ्यते ॥९२
स्थण्डिले कुशहस्ते च पूर्ववद्वेष्टयेत्क्रमात् । वसु पञ्चकला पञ्चविंशकं तन्नयक्रकात् ॥९३
चत्वारिंशत्ततः पश्चादष्टोत्तरशतं भवेत् । शुक्लं शोणं तथा पीतं श्यामशुक्लैरनन्तरम् ॥९४
विलोमे दलसन्धीनि शाक्ते शैवे तु षट्पुरम् । वेष्टयेत्पञ्चवर्णेन शुक्लादीनि समन्ततः ॥९५
रक्तपीतैः समास्तीर्य कोणाञ्छुक्लेन पूरयेत् । स्थण्डिले तारहस्तेन अष्टहस्तं प्रकल्पयेत् ॥९६
मण्डलं बिम्बराजस्य अष्टोत्तरदलैर्वृतम् । वसुपञ्चशक्तिविंशच्चत्वारिंशच्छतार्द्धकम् ॥९७
ऋतुपत्रं सुवृतं स्याद्वृत्तयुक्तं सबिल्वकम् । चत्वारिंशद्द्वयं चैव गगनेन समावृतम् ॥९८
शतं विंशाधिकशतं द्विशतं विंशमुत्तमम् । वेष्टनांसे च त्रिशतं प्रक्रमादथ वर्धयेत् ॥९९
लवल्याभमथो वक्ष्ये सार्द्धहस्तप्रमाणतः । नवविंशं कल्पयेत्तु चतुःसूत्राणि पातयेत् ॥१००
दक्षिणोत्तरतश्चैव तद्वदेव विजानीहि । पीतेन रेतपुटिता मध्ये शुक्लं विभाव्यते ॥१०१

उससे मेरु वाले को सुमेरु एवं तीन सौ दल वाले को महामेरु रुष्ट बताया गया है। विप्रेन्द ! मैं उसके द्विज के मान को भी बता रहा हूँ।८४-८९। आठ, दश, बीस, चालीस, पचास, साठ, एवं एक सौ बीस, इतने दल शुक्ल वर्ण, रक्त वर्ण और आठ भाँति के वर्णों से सुसज्जित उसके बिम्बोष्ठ भाग की रचना की जाती है।९०-९१। पश्चात् शुक्ल वर्ण उस कमल का तीन बार आवेष्टित किया (घेर दिया) जाता है। अनन्तर शतमय नामक मण्डल बता रहा हूँ, जिसे बिम्ब राज भी कहा जाता है।९२। हाथ में कुश लेकर उसे पूर्व की भाँति क्रमशः आवेष्टित करना चाहिए। आठ, सोलह, पच्चीस, चालीस और एक सौ आठ, इतने उसमें दल होते हैं, शुक्लवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण एवं उसके अनन्तर श्याम और शुक्ल वर्णों से वह सुसज्जित किया जाता है।९३-९४। उसके दल की सन्धियाँ विलोम रीति से बनायी जाती है, शाक्त और शैव मण्डल में छः कोष्ठ बनाकर पाँच वर्णों से उसे सौन्दर्य पूर्ण आवेष्टित करके उसके चारों ओर शुक्ल आदि वर्णों से सुशोभित करना चाहिए।९५। रक्तवर्ण और पीत वर्ण को समान भाग से उस पर रखकर उसके कोण भाग को शुक्ल वर्ण से भूषित करना चाहिए, इस प्रकार स्थंडिल (भूमि) में विस्तृत आठ हाथ की उसकी रचना की जाती है।९६। यह बिम्बराज नामक मण्डल आठ, सोलह, बीस, चालीस, और पचास, इतने दलों से मण्डित रहता है।९७। तीन ऋतुपत्र, सौन्दर्यपूर्ण गोलाकार, वृत्त और विल्वक समेत एवं अस्सी मण्डलों से घिरा रहता है। सौ, एक सौ बीस, दो सौ बीस, एवं आवेष्टित करने के लिए तीन सौ दल, इस प्रकार क्रमशः इसकी वृद्धि की जाती है।९८-९९। इसके अनन्तर लवल्याभ (लवली वृक्ष की भाँति आकार वाले) मण्डल की व्याख्या बता रहा हूँ, जिसका आकार प्रकार डेढ़ हाथ का बताया गया है उसमें उन्तीस कोष्ठ होते हैं, उसकी रचना के लिए चार स्थान सूत्रों से अंकित करना पड़ता है।१००। दक्षिण उत्तर में उसके आकार प्रकार की पीतवर्ण द्वारा रचना करते हुए मध्य भाग में शुक्ल

ग्रहपक्षेऽन्नपीतेन मध्ये रक्तं प्रतिष्ठितम् । सर्वा रेखाश्च शुक्लेन पौष्टिके पीतमादिशेत् ।।१०२
सशान्तिके न योक्तव्यं कामे रक्तं विनिर्दिशेत् । मध्ये तु पङ्कजं रक्तं युग्मे सोमस्य पङ्कजम् ।।१०३
शुक्लवर्णेन तत्कुर्यात्पीतवर्णमुदग्य च । ऐशान्यां तूत्तरे भागे गुरो पीतं तु पङ्कजम् ।।१०४
पूर्वस्यां दिशि शुक्रस्य पङ्कजं शुभ्रवर्णकम् । वारुणे तु शनैः कृष्णं नैर्ऋत्यां धूम्रवर्णकम् ।।१०५
राहोः प्रकल्पयेत्तच्च केतोरपि नियोजयेत् । वायव्यां दिशि संयोज्य पङ्कजं विलिखेत्ततः ।।१०६
विलोमे दलसन्धीनि पूरयेत्सुविचक्षणः । बहिः पञ्चरजैः कार्यं युवदुर्गविभूषितम् ।।१०७
पूर्वपश्चिमदिग्भागे शुक्लं स्याद्द्वारदेशतः । दक्षिणोत्तरदिग्भागे रक्तमेव प्रशस्यते ।।१०८
त्रिस्थाने सममध्ये च द्वादशाङ्गुलप्रक्रमात् । द्विहस्तादावङ्गुलेन वर्द्धयेत्तद्विभागतः ।।१०९
पञ्चाब्जमण्डलं ज्ञेयं चतुःस्वस्तिकभूषितम् ।।११०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे क्रौञ्चमानवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

मूल्यकथनवर्णनम्

सूत उवाच

न कुर्याद्दक्षिणाहीनं मानहीनं न कारयेत् । अमानेन हतो यज्ञस्तस्मान्मानं प्रशस्यते ।।१

वर्ण से सुशोभित करना चाहिए।१०१। ग्रहों के उद्देश्य से मण्डल बनाने में पीत वर्ण का प्रयोग किया जाता है, केवल मध्य भाग रक्त वर्ण से सुशोभित होता है। किन्तु समस्त रेखाएँ शुक्ल वर्ण से सुसज्जित की जाती हैं, और पौष्टिक-कर्मों में पीत वर्ण से वह सुशोभित होता है।१०२। शांति-कर्म के अतिरिक्त काम्य-कर्मों में रक्त वर्ण से अलंकृत करना बताया गया है, मध्य में रक्तकमल और युग्म में चन्द्र कमल शुक्ल वर्ण से विभूषित करना चाहिए। उत्तर भाग के ईशान कोण में वृहस्पति के उद्देश्य से पीत कमल की रचना की जाती है।१०३-१०४। उसी प्रकार पूर्व दिशा में शुक्र के लिए धवल वर्ण के कमल पश्चिम दिशा में धूएँ के समान कृष्ण वर्ण के शनि, एवं वायु कोण में राहु और केतु की प्रतिमा के लिए कृष्ण वर्ण के कमल की रचना करनी चाहिए।१०५-१०६। उसके विलोम में दलसन्धियों को विद्वानों को मनमोहक बनाना चाहिए, उसी भाँति उसके बाहरी भाग में पाँच वर्णों (रंगों) द्वारा जवा के दुर्ग भी।१०७। दरवाजे के पूर्व पश्चिम भाग में शुक्ल वर्ण एवं दक्षिण उत्तर भाग में सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिए रक्त वर्ण प्रशस्त बताया गया है।१०८। तीन स्थानों में बारह अंगुल के क्रम से जिसका मध्य भाग समान रहता है, दो हाथ में एक अंगुल की वृद्धि विभागानुसार की जाती है, इस प्रकार चार स्वस्तिकाओं से विभूषित पाँच कमल मण्डल का निर्माण करना चाहिए।१०९-११०

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में क्रौञ्चमान वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त।२।

अध्याय ३

मूल्यकथन का वर्णन

सूत बोले—दक्षिणाहीन और मानहीन यज्ञ कभी न करना चाहिए, क्योंकि मानहीन यज्ञ नष्ट

यस्य यज्ञस्य यन्मानं तत्तु तेनैव योजयेत् । अमानेन कृते सर्वे व्रजेयुर्नरकं पुनः ॥२
आचार्यहोतृब्रह्माणो विधिज्ञः सहकर्तृकः । यस्य यज्ञे पापकश्च जातिहीनः प्रवेशयेत् ॥३
अशीतिभिर्वराटैश्च पण इत्यभिधीयते । तैस्तु षोडशभिर्ज्ञेयं पुराणं सप्तभिस्तु तैः ॥४
राजतैश्चाष्टभिः स्वर्णं यज्ञादौ दक्षिणा स्मृता । महारामे द्विसौवर्णं कूपे स्वर्णार्धमेव च ॥५
तुल्यस्यामलकीयागे सुवर्णैकं प्रचक्षते । यकृल्लोके च सौवर्णं लक्षे स्वर्णचतुष्टयम् ॥६
नवने कोटिहोमे च देवतानां च स्थापने । प्रासादस्य समुत्सर्गे अष्टादश सुवर्णकाः ॥७
तडागे पुष्करिण्यां च अर्धार्धं परिकीर्तितम् । महादाने च दीक्षायां वृषोत्सर्गे च सत्तमाः ॥८
जीवतश्च वृषोत्सर्गे गयाश्राद्धे तथैव च । अवित्तसाध्यमानेन यज्ञं कुर्यात्कलौ युगे ॥९
दम्पत्योश्च वृषोत्सर्गे मानमेकमुदाहृतम् । बहुभिः क्रियमाणोऽपि याग एको महोत्तमैः ॥१०
राज्ञः करग्रहे चैव दीक्षायां दानकर्मणि । अशीतिरत्तिकं स्वर्णं श्रवणे भारतस्य च ॥११
ग्रहयागे प्रतिष्ठायां सुवर्णशतरत्तिकः । लक्षहोमे चायुते च कोट्यामेवं विधीयते ॥१२
देवानां ब्राह्मणानां च दानं यस्य प्रकल्पितम् । तस्यैव देयं तद्दानं साङ्गोपाङ्गं सदक्षिणम् ॥१३
नानास्य किञ्चिद्दातव्यं सङ्गभङ्गो भवेद्यतः । गृही तु कृत्वा यद्दानं तदा तस्य ऋणी भवेत् ॥१४

भ्रष्ट कहलाता है, इसीलिए मान की अधिक प्रशंसा की जाती है ।१। जिस यज्ञ के जो मान बताये गये हैं, उन्हें उन्हीं मानों द्वारा समलंकृत करना चाहिए, अन्यथा उसके सभी मनुष्यों को नरक की प्राप्ति होती है ।२। आचार्य, होता, ब्रह्मा, विधान-वेत्ता और यजमान, इतने व्यक्ति यज्ञ के अंग माने जाते हैं ! जिस यज्ञ में किसी हीनजाति का पापी मनुष्य प्रविष्ट हो जाता है, उसे अस्सी कौड़ी वाले एक पण का दण्ड बताया गया है । उसीं भाँति के सोलह पण पुराण वाचक और सातपण सुवर्ण या चाँदी यज्ञ में सभी को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, उपवन की प्रतिष्ठा में दो पण; कूप के निर्माण प्रतिष्ठा में आधा पण तुलसी और आमलकी याग में एकपण सुवर्ण, गर्भाधान में एकपण सुवर्ण, लक्ष मंत्र जप में चार पण सुवर्ण, नवें, कोटि संख्या के हवन, देवताओं की प्रतिष्ठा , और आसाद (मण्डल) के निर्माण-प्रवेश में अठारह पण सुवर्ण दक्षिणा बतायी गयी है ।३-७। सरोवर और पुष्करिणी की प्रतिष्ठा में आधे का आधा तथा सत्तम! महादान, दीक्षा, वृषोत्सर्ग में भी उतनी दक्षिणा होनी चाहिए ।८। जीवित व्यक्ति के लिए वृषोत्सर्ग एवं गयाश्राद्ध में अवित्तसाध्य यज्ञ करना कलियुग में कहा गया है ।९। दम्पति के वृषोत्सर्ग यज्ञ में एकमान बताया गया है, उसी प्रकार अनेक उत्तम व्यक्ति मिलकर एक यज्ञ का अनुष्ठान भी करें ।१०। राजा को कर रूप में देने के लिए दीक्षा दान कार्य एवं महाभारत के श्रवण में अस्सी रत्ती सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए । ग्रहों के यज्ञ तथा प्रतिष्ठा में सौरत्ती, लक्षसंख्या, दश-सहस्र संख्या एवं कोटि संख्या की आहुति में भी उतनी ही दक्षिणा का विधान बताया गया है ।११-१२। देवताओं और ब्राह्मणों में जिसके लिए जो दान बताया गया है सांगोपाङ्ग दक्षिणा समेत वह दान उसी को समर्पित करना चाहिए ।१३। अनेकों की उपस्थिति में कुछ न कुछ देना ही चाहिए, अन्यथा उस माप द्वारा (दम्पति वियोग) जोड़ी बिछुड़ जाती है । गृहस्थ जिस दान को करके नहीं देता है वह उसका ऋणी होता है।१४।

यज्ञेषु होमे यद्द्रव्यं काष्ठमाज्यादिकं च यत् । तन्नायकस्य पूजायां द्रव्यमाहुर्विनिर्मितम् ॥१५
अनादिदेवतार्चायां पूजास्नानादिकर्मणि । यस्यार्हणादिकं द्रव्यं तस्य देवस्य तद्भवेत् ॥१६
प्रत्यक्षं दक्षिणां दद्याद्यज्ञदानव्रतादिके । अदक्षिणं नैव कार्यं प्रकुर्याद्भूरिदक्षिणम् ॥१७
अतो दत्तं पुरा दत्तं दातव्यं चैव सम्प्रति । परस्वोदाग्बुद्धीनां सा सा हि दक्षिणा भवेत् ॥१८
दत्तानि विधिवत्पुंसां देवदानानि यानि हि । दासीदासगवादीनि मनसा यानि कर्हिचित् ॥१९
दातव्यान्यपि तान्येव कारयेत्परिवर्त्तनम् । एकस्यानेकदानं च ददेत्कश्चित्पृथक्पृथक् ॥२०
वरणं च कदा कुर्यात्तन्त्रे कुर्याच्च दक्षिणाम् । रत्नस्य दक्षिणा देया काञ्चनं समुदाहृतम् ॥२१
काञ्चनस्य भवेद्रौप्यं रौप्ये काञ्चनमुद्दिशेत् । भूमेर्भूमिर्दक्षिणा स्याद्वस्त्रस्य वस्त्रदक्षिणा ॥२२
पानीयस्य तु पानीयं व्रीहीणां व्रीहिर्दक्षिणा । गजस्य दक्षिणा छागो ह्यश्वस्य मेष ईरितः ॥२३
पशूनां च चतुष्पादा देवस्य देवदक्षिणा । यज्ञो मानस्य षड्भागो द्विगुणः परिकीर्तितः ॥२४
आचार्यस्यैव भागैकं यजमानः प्रदास्यति । पापकैस्तु च कलत्राणां भागैकं तदनन्तरम् ॥२५
पात्रणाभृत्विगादीनां भागत्रयमुदाहृतम् । सर्वसत्त्वस्य भागैकं स्वल्पं चेच्छिष्टगौरवात् ॥२६
आचार्याद्यंशतः कश्चिच्क्षीणवित्तं समाहरेत् । अमूल्यं वर्गमूल्यं यद्भवेद्वै दक्षिणोत्तमा ॥२७

यज्ञों में हवन के लिए काष्ठ, एवं घी आदि जो वस्तु नियमित होती है, वे ही वस्तुएँ उसके अधिनायक देव के पूजा में भी बतायी गयी है।१५। अनादि देवता के पूजा विधान में पूजा, स्नान आदि कर्मों के लिए जो उत्तम वस्तु कही गयी है वही वस्तु उस देव की प्रधान वस्तु है।१६। यज्ञ, दान, व्रतादि कर्मों में प्रत्यक्ष दक्षिणा देने का विधान कहा गया है, बिना दक्षिणा के उसका प्रारम्भ कभी भी न करना चाहिए, अपितु अधिकाधिक दक्षिणा देने का प्रयत्न करना चाहिए।१७। इसलिए जो पहले (मानसिक) दे दिया गया अथवा इस समय जो देने के लिए प्रस्तुत है, या दिया जायगा, उदार बुद्धिमान् ब्राह्मणों की वही वहाँ दक्षिणा के रूप में होती है।१८। देवों के निमित्त विधान पूर्वक दान किये गये दासी, दास, गोआदि एवं उस वस्तु का मानसिक दान किया गया हो, वे सभी पुरुषों को प्रदान करने चाहिए। उसका परिवर्तन भी किया जा सकता है, जिस प्रकार किसी एक ही व्यक्ति को अनेक भांति के दान कोई प्रदान करता है।१९-२०। वरण किस समय करना चाहिए ? दक्षिणा तन्त्र विधान द्वारा प्रदान करना चाहिए। रत्न की दक्षिणा में सुवर्ण का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि सुवर्ण द्वारा चाँदी प्राप्त की जा सकती है, और सुवर्ण चाँदी में ही प्रविष्ट होकर सुशोभित होता है। इसी प्रकार भूमि के कार्य में भूमि की दक्षिणा वस्त्र की दक्षिणा पान करने योग्य कार्यों में किसी पेय की दक्षिणा और अन्न में अन्न की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। उसी भाँति गज के कार्य में बकरी की दक्षिणा, अश्व के निमित्त भेंड की दक्षिणा, पशुओं के उद्देश्य से चौपायों की दक्षिणा, एवं देव-कार्यों में देव दक्षिणा देना बताया गया है। (किसी) मान के छठें भाग के दुगुने को यज्ञ कहा जाता है।२१-२४। यजमान को चाहिए कि यज्ञ के संभार का एक भाग दक्षिणा रूप में आचार्य को प्रदान करे उसके अनन्तर अपने कलत्रों (स्त्री आदि परिवारों) के पाप के प्रायश्चित्त रूप में भी एक भाग।२५। ऋत्विक् (यज्ञ कराने वाले) आदि को तीन भाग की दक्षिणा एवं इतर सभी लोगों के लिए एक अल्प भाग प्रदान करना चाहिए।२६। आचार्य आदि के अंश में से एक अल्प मूल्य की वस्तु जो अमूल्य होती हुई वर्गों में श्रेष्ठ मूल्य रखती हो, ग्रहण करना चाहिए, वही सर्वश्रेष्ठ

मानाशक्तौ तु यज्ञानां यद्देयं यज्ञसिद्धये । देवता पुस्तकं रत्नं गावो धान्यं तिलास्तथा ।।२८
न मेरुफलपुष्पाणि देयान्येतानि सर्वतः । चतुश्चक्राङ्किततो यस्तु सान्द्रो वृत्तो जनार्दनः ।।२९
देवताप्रतिमाद्यं च शिरोनाभिस्तथैव च । श्वेतलिङ्गं रत्नलिङ्गमिन्द्रनीलादिकं च यत् ।।३०
दक्षिणावर्तशङ्खं च हरिवंशस्तथा खिलः । कपिलो नीलवृषभः सोमधान्यं तथैव च ।।३१
अमूल्यान्याहुरेतानि दत्त्वानन्तफलानि च । स्वर्णपादो भवेन्मूल्यं शालग्रामस्य दक्षिणा ।।३२
क्षुद्रलिङ्गे स्वर्णमूल्यं पादार्धं श्रीधरेऽपि च । अनन्तोऽनन्तमित्युक्तं पादार्धं बाणलिङ्गके ।।३३
यथा पुस्तकमात्रेण स्वर्णपादार्धमिष्यते । ज्योतिषार्धं सुवर्णस्य रजतार्धं वृषे तथा ।।३४
हरिवंशे श्लोकशते स्वर्णमेकं प्रकीर्तितम् । धर्मशास्त्रस्य साहस्रे रजतत्रयमीरितम् ।।३५
कपिलायां सुवर्णार्धं धेनुमात्रे पुराणकम् । प्रायश्चित्तविधो[१] ज्ञेयं धेनुमात्रं पुराणकम् ।।३६
पुराणत्रितयं चान्ये वीर्यहीने द्वयं भवेत् । कृष्णे वृषे षट्पुराणं श्वेते नवपुराणकम् ।।३७
द्वात्रिंशच्च पुराणं स्याद्वृषे नीले तथैव च । न मेरोः प्रतिचक्रे च द्वादश स्वर्णरत्तिकाः ।।३८
मूल्यं श्रीफलमात्रेऽपि पुराणत्रितयं भवेत् । पङ्क्त्यापि तुर्यकं विद्यात्कलौ पणव्यवस्थया ।।३९
धात्रीफलस्य प्रत्येकं भवेद्रजतमाषकम् । एतान्याहुः प्रशस्तानि मूलयोगे परं विदुः ।।४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मूल्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

दक्षिणा होती है ।२७। जिन यज्ञों में मानानुसार दक्षिणा प्रदान करने में असमर्थता प्रकट होती हो इसमें यज्ञ को सफल बनाने के हेतु देवता, पुस्तक, रत्न, गौ, धान्य, तिल, देव पुन्नाग वृक्ष के फल, पुष्प दक्षिणा के रूप में प्रदान करना चाहिए । चार चक्र से विभूषित एवं सन्दिग्ध रूप वाले जनार्दन देव का वरण जिसने किया (वही श्रेष्ठ है) ।२८-२९। देवता की प्रतिमा, शिर, नाभि, श्वेतलिंग, रत्नलिंग, इन्दनील दक्षिणावर्त शंख, सम्पूर्ण हरिवंश, कोयल, नीलवृक्ष, एवं सोभ धान्य, इन्हीं का नाम अमूल्य है, इन्हें प्रदान करने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है । शालग्राम देव के निमित्त एक सुवर्ण पाद की दक्षिणा होती है ।३०-३२। रुद्र लिंग के लिए स्वर्ण मूल्य, श्रीधर देव के लिए पादार्ध, अनन्त देव के लिए भी उतनी ही दक्षिणा बतायी गयी है । जिस प्रकार पुस्तक मात्र के लिए एक सुवर्ण पादार्ध भाग (दक्षिणा रूप में) प्रदान किया जाता है, उसी भाँति ज्योतिष्मान् (सूर्य आदि) देव के निमित्त सुवर्ण का आधा और वृष के निमित्त रजत (चाँदी) के आधे भाग बताये गये है ।३३-३४। हरिवंश के सौ श्लोक के पाठ करने की दक्षिणा एक सुवर्ण (पदक), धर्म शास्त्र के एक सहस्र के लिए तीन रजत (चाँदी) के टुकड़े दक्षिणा रूप में देने के लिए बताये गये हैं ।३५। कपिला (गौ) के निमित्त सुवर्ण के अर्धभाग (केवल) धेनुमात्र के लिए पुराण तथा प्रायश्चित्त के निमित्त भी धेनु मात्र के लिए पुराण ही बताया गया है । किन्हीं लोगों का सम्मत है कि तीन पुराणों को प्रदान करना चाहिए, वीर्य हीन वृष के निमित्त दो पुराण, कृष्ण वृष के लिए छः पुराण, श्वेत वृषभ के लिए नवपुराण, और नील वृषभ के निमित्त बत्तीस पुराणों को बताया गया है । रुद्राक्ष के प्रतिचक्र के लिए बारह रत्ती सुवर्ण केवल श्रीफल के निमित्त तीन पुराण बताये गये है, कलियुग में 'पण' व्यवस्था के लिए पंक्ति द्वारा भी चौथा ही बताया गया है ।३६-३९। उसी प्रकार प्रत्येक आँवले के लिए चाँदी के माशे प्रदान करने के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ।४०

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीयभाग में मूल्यकथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मूल्यदानवर्णनम्

सूत उवाच

पूर्णपात्रमथो वक्ष्ये यज्ञे साधारणेऽपि च । कामहोमे भवेन्मुष्टिर्मुष्टयोष्टौ तु कुञ्चिका ।।१
एकैककुञ्चिमानेन कुर्यात्पात्राणि वै सदा । पात्राणि च पृथक्कृत्वा स्थापयेद्द्वारदेशतः ।।२
सिद्धानां खड्गधाराणां प्रत्येकस्य दिनक्रमात् । तत्रैव दद्यान्नान्यत्र न कुर्याद्व्यत्ययं क्वचित् ।।३
कुण्डानां कुड्मलानां च वेदनं यादृशं शृणु । चतुरस्रपदस्यापि रौप्यार्धं च कलौ युगे ।।४
द्वे रौप्ये सर्वतोभद्रे कौञ्चघ्राणे चतुर्थकम् । महासिंहासने पञ्च दशपात्रे तदर्धकम् ।।५
सहस्रारे मेरुपृष्ठे तुर्यारौप्यवृषाधिकम् । वृषे गले च वृषभं शेषे रौप्यसहस्रकम् ।।६
चतुरस्रस्य निर्माणे स्वर्णपादः कलौ युगे । महाकुण्डे तु द्विगुणं वृत्ते रौप्यं निवेदयेत् ।।७
पद्मकुण्डे तु वृषभमर्धचन्द्रे तु रौप्यकम् । योनिकुण्डे ददेद्धेनुमष्टार्धस्वर्णमाषकम् ।।८
षडस्रे तु तदर्धं स्याद्यागे माषद्वयं भवेत् । शैवे चोद्यापने चैव प्रत्यह्ना स्वर्णमाषकम् ।।९
दारणे हस्तमात्रं स्यात्स्वर्णकृष्णकलं भवेत् । इष्टिकाकरणे चैव प्रत्यह्ना स्यात्पणद्वयम् ।।१०
खण्डे दशवराटं स्याद्वृहन्माने तु काकिणी । तडागे पुष्करिण्यां च खनने प्रथममाङ्गके ।।११

अध्याय ४

मूल्यदान का वर्णन

सूत बोले—साधारण यज्ञ में भी दिये जाने वाले पूर्ण पात्र को मैं बता रहा हूँ, काम्य हवन में मुट्ठी रखी जाती है, उसी आठ मुट्ठी की एक कुञ्चिका होती है । दरवाजे से पृथक् कुछ दूर पर एक कुञ्चिका के पात्र रखकर उसे ही क्रमशः प्रत्येक दिन (जब तक यज्ञ का अनुष्ठान हो) खड्गधारी सिद्धों को देना चाहिए । उसका कभी भी व्यतिक्रम न होने पाये ।१-३। कुण्डों, एवं कुण्डलों के ज्ञान, जिस प्रकार किये जाते हैं, मैं बता रहा हूँ, कलियुग में चौकोर स्थान के लिए चाँदी (रूपये का आधा), सर्वतोभद्र के लिए दो रूपये क्रौंचघ्राण के लिए चौथाई (चवन्नी), महासिंहासन के लिए पाँच रूपये, दश पात्र के लिए उसका अर्धभाग, एवं सहस्रार और मेरुपृष्ठ के लिए चार रूपये तथा एक बैल, वृष के कण्ठ के लिए वृषभ और शेष के लिए सहस्र रुपये देने चाहिए ।४-६। कलियुग में चौकोर कुण्ड के निर्माण में एक सुवर्ण-पाद, महाकुण्ड के निर्माण में उससे दुगुने, और गोलाकार (कुण्ड) की रचना में एक रूपये प्रदान करना चाहिए ।७। पद्मकुण्ड के निमित्त बैल, अर्धचन्द्र नामक कुण्ड के निर्माण में एक रूपये, योनि कुण्ड में धेनु (गौ), और अष्ट कोण वाले कुण्ड में एक माशा सुवर्ण, षट्कोण कुण्ड में उसका अर्धभाग, यज्ञ के लिए दो माशे, एवं शैव कार्य, अथवा किसी के उद्यापन कार्य में प्रतिदिन एक माशा सुवर्ण प्रदान करना बताया गया है ।८-९। (यज्ञ सम्बन्धी) एक हाथ भूमि खोदने के लिए उसका पारिश्रमिक सुवर्ण की एक कृष्ण कला बतायी गयी है, उसी प्रकार उसमें ईंटों की जोड़ाई के लिए प्रति दिन के पारिश्रमिक दो पण सुवर्ण देने चाहिए । खण्ड बनाने में दश कमलगट्टे, उसके मान को बढ़ाने में कौड़ी देनी चाहिए, उसी भाँति सरोवर या पुष्करिणी प्रथम

सप्तहस्तमिते कुण्डे निम्ने आबद्धमात्रकम् । पुराणस्य च एकांशं वेतनं परिकीर्तितम् ॥१२
वर्धयेत्पणमात्रेण निम्ने पन्ने च प्रक्रमात् । बृहत्कूपस्य निर्माणे प्रत्यहं च पणद्वयम् ॥१३
शैले ज्ञेयं काञ्चनस्य रत्तिका गृहकर्मणि । कोष्ठे ज्ञेयं सार्धपणं रङ्गादिरचिते पणम् ॥१४
वृक्षाणां रोपणे दद्यात्प्रत्यह्ना सार्धमाषकम् । सेतुबन्धे च पङ्किले च पणद्वयं च काकिणी ॥१५
पणे पणे तु ताम्रस्य दद्यात्पणचतुष्टयम् । घटने कांस्यसीसानां पणत्रयमुदाहृतम् ॥१६
अथ वा दिनसङ्ख्यानं पणैकं च सकाकिणी । सुवर्णस्य पणैके तु पुराणं रत्नकुट्टिमे ॥१७
रजते तु तदर्धं स्यात्स्फटिकस्य च दारणे । दिनसंख्यापणद्वन्द्वं रत्नानामथ कुड्मलम् ॥१८
मणिवेधे मणौ ज्ञेयं काकिणी परिकीर्तिता । चतुर्वराटमधिकं स्फाटिके मणिवेधने ॥१९
कांस्यतालस्य निर्माणे धमने तु पणत्रयम् । लाक्षानिर्माणके कार्ये तदर्धमपि कीर्तितम् ॥२०
गवां च दोहने चैव वराटे तुर्यवेतनम् । वेतने वस्त्रनिर्माणे पत्रे हस्तपणत्रयम् ॥२१
अविवस्त्रस्य निर्माणे स्यन्दनं दशकाकिणी । पिधानवस्त्रनिर्माणे त्रिपणं परिकीर्तितम् ॥२२
दशकाकिणी ऊर्ध्वाधस्तद्व्यये पण्यवेतनम् । वंशाजीवस्य प्रत्यह्ना पणस्यार्धं सकाकिणि ॥२३
लोहकारस्य च तथा नापितस्य च वेतनम् । शिरसा तस्य वपने विज्ञेया दशकाकिणी ॥२४
सश्मश्रुनखमाने तु प्रदद्यात्काकिणीद्वयम् । नारीणामथ संस्कारे नखचित्रादरञ्जने ॥२५
सकाकिणि पणं तच्च सवित्रे च पयोधरे । पणानां तुर्यकं दद्यात्सीमन्तस्यालके तथा ॥२६

की खोदाई में और सात हाथ के कुण्ड के निर्माण करने में जिसका नीचे का भाग (ईंट आदि से) बाँध दिया जाता है, पुराण का एक भाग वेतन रूप में देना चाहिए ।१०-१२। उसमें क्रमशः जब तक नीचे स्थल पर न पहुँच जाँय, एक एक पण की वृद्धि करते रहना चाहिए । महान् कूएँ के निर्माण में प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना कहा गया है ।१३। पत्थर के घर बनवाने में एक रत्ती प्रतिदिन पारिश्रमिक देना चाहिए, उसी भाँति कोठे के लिए डेढ़ पण, और घर की रंगाई की प्राप्ति करने लिए एक पण देना चाहिए ।१४। वृक्षों के रोपने (लगाने) के लिए प्रतिदिन डेढ़माशा, दलदल में पुलबाँधने के लिए दो पण और कौड़ी देना बताया गया है ।१५। ताँबे के प्रत्येक पण के निर्माण में चार पण तथा कांसों और शीशे के गलाने में तीन पण देना चाहिए ।१६। दिन की गणना करने के लिए कौड़ी समेत एक पण, सुवर्ण के लिए भी एक पण, एवं रत्न के कुट्टिम (भूमि का ऊपरी स्तर) बनाने में एक पुराण, चाँदी के कार्यों में उसका अर्धभाग, स्फटिक मणि के तोड़ने में दो पण देने चाहिए । उसी प्रकार रत्नों के कुण्डल में भी । मणियों के वेधन में कौड़ी देनी चाहिए, स्फटिक मणि के छिद्र करने में चार कौड़ी अधिक ।१७-१९। कांसे का ताल, एवं चौंकनी बनाने में तीन पण, लाख के निर्माण कार्य में उसका आधा तथा गौ के दुहने में चार कौड़ी, एवं वस्त्र बुनने में एक हाथ के तीन पण देना कहा गया है ।२०-२१। भेंड के (ऊनी) वस्त्र तथा रथ बनाने में दशकौड़ी, एवं पहिनने के वस्त्र बनाने में तीन पण देना चाहिए ।२२। ऊपर नीचे एवं उसके व्यय करने में दश कौड़ी दैनिक वेतन, तथा वंशाजीव के लिए प्रतिदिन कौड़ी समेत पण का आधा भाग देना चाहिए ।२३। लोहार एवं नाई को शिर मुण्डनार्थ दश कौड़ी, केवल दाढ़ी बनाने और नाखून काटने के लिए दो कौड़ी, और स्त्रियों के नाखून में तथा इतर स्थान में चित्रादिरञ्जन एवं उसके पयोधर के चित्रविचित्र बनाने में कौड़ी समेत एक पण देने चाहिए । शिर के केशों के संवारने के लिए चार पण देने

पदचित्रे तु सार्द्धं स्याद्ग्रीवाणां गुह्यधारणे । धान्यानां रोपणे चैव दिनैके पणवेतनम् ॥२७
लवणे तु तथा देयः गुवाकानां च रोपणे । दण्डपत्रस्य संस्कारे मरिचानां तथैव च ॥२८
पणद्वयं वराटानामधिकं दशमेव तु । हले हले पणैकं स्यात्काकिण्यधिकमेव च ॥२९
पणत्रयं चक्रपणे महिषाणां पणाधिकम् । नराणां वाहने चैव पणैकं दशकाकिणी ॥३०
दासीनां गर्दभानां च अधिकं काकिणीद्वयात् । क्षालने चापि वस्त्रस्य तैलक्षारविवर्जिते ॥३१
वस्त्रे प्रतिपणं दद्याद्दीर्घे प्रस्थेऽपि वर्धयेत् । सद्यः प्रक्षालनेऽप्यर्धं दिनादावधिकं भवेत् ॥३२
श्वेतवस्त्रे भवेन्न्यूनं पदे सूक्ष्मे च वर्द्धयेत् । मृत्तिकानां समुद्धारे कुद्दाले चेक्षुपीडने ॥३३
वेतनं पुष्पसंस्कारे सहस्रे दशकाकिणी । काकिणी स्रङ्निबद्धे च द्विगुणं कण्ठमालिका ॥३४
अबद्धे द्व्यङ्गुलं यावन्मुण्डमाला प्रकीर्तिता । हस्तत्रये कण्ठमाला आनाभि कमलावधि ॥३५
काकिणीकत्रयं चैव निर्माणे द्विजसत्तमाः । मालत्याश्च तुलस्याश्च जातियूथ्योश्च सत्तमाः ॥३६
तदर्धार्धं मारुतेन दमने बकुलस्य च । वेतनं दीपतैले च आज्यस्य परिवर्धयेत् ॥३७
यामे यामे रौप्यमाषं स्नेहे चैव तु काकिणी । सार्धाङ्गुलप्रमाणेन वस्त्रवर्ति विदुर्बुधाः ॥३८
षडङ्गुलेन दैर्घ्यं च न न्यूनं नाधिकं भवेत् । पञ्चविंशतिभिः संख्या तन्तुभिर्द्विजसत्तमाः ॥३९
पञ्चाङ्गुलेन मानेन कर्तव्यः सुसमाहितः । हस्तोच्छ्राये प्रदद्यात्तु मुष्टिहस्ते तु मध्यमम् ॥४०

चाहिए । पैर रंगने के लिए डेढ़ पण देना बताया गया है, बाल और गुह्य स्थान को सौन्दर्य पूर्ण बनाने में भी वही देना चाहिए । धान्यों के रोपण में एकदिन के एक पण वेतन होते हैं ।२४-२७। नमक, सुपारी के आरोपण, दण्डपत्र के संस्कार, एवं मरिच के आरोपण में दो पण कौड़ी अथवा अधिक से अधिक दश तथा प्रत्येक हरवाहे को एक दिन के वेतन कौड़ी समेत एक पण देने चाहिए ।२८-२९। चक्रपण के लिए तीन पण, महिषों के लिए चार पालकी आदि ढोने के लिए दश कौड़ी समेत एक पण देना कहा गया है ।३०। दासी, एवं गधे द्वारा काम करने वाले को उससे दो कौड़ी अधिक देना चाहिए । तेल व साबुन, खारी मिट्टी (रेह) को न छोड़ कर यों ही वस्त्र धोने में एक वस्त्र के लिए एक पण लम्बे चौड़े (जाजिम दरी) आदि वस्त्र के लिए एक प्रस्थ क्रमशः बढ़ा देना चाहिए । तुरन्त धुलवाने पर आधा अधिक देना कहा गया है ।३१-३२। श्वेत वस्त्र की धुलाई में कमी और सूक्ष्म वस्त्र (रेशमी) की धुलाई में वृद्धि बतायी गयी है । कुम्हार से मिट्टी खोदने, ऊख पेरने, सहस्र पुष्पों की सजावट में दश कौड़ी, माला बाँधने में एक कौड़ी, और पहनने की माला बनाने में उससे दुगुना देना चाहिए ।३३-३४। बिना बँधे ही दो अङ्गुल की कमी रहे तो उसे मुण्ड माला तीन हाथ की कण्ठ माला के जो नाभि कमल तक रहती है बनाने में तीन कौड़ी और द्विजश्रेष्ठ ! मालती, तुलसी, चमेली, एवं जूही की माला बनाने में भी उतना ही देना चाहिए ।३५-३६। वकुल पुष्प की माला के लिए जिसके पुष्प वायु द्वारा गिर रहे हों, उसका अर्धार्ध भाग दिया जाता है, तेल के दीपक जलाने में वेतन में घी की वृद्धि होनी चाहिए ।३७। एक-एक याम (प्रहर) जलाने के लिए चाँदी के एक माशा, उसके तेल के लिए एक कौड़ी देना चाहिए, जिसमें विद्वानों ने डेढ़ अंगुल की कपडे की बत्ती डालने को बताया है ।३८। द्विजसत्तम ! छ अंगुल की बत्ती जो न न्यून एवं न अधिक हो, पच्चीस सूत की बनायी जाती है ।३९। पाँच अंगुल के मान से सावधान होकर वह बनायी जाती है । एक हांथ की ऊँची, मुट्ठी बँधे हाथ

त्रिहस्ते चतुर्हस्ते वा उत्तमं मानमीरितम् । स्वर्णधारे हतो राजा रजते सर्वकामदः ।।४१
ताम्रे चायुःक्षयकरमायसे दुर्गतिप्रदः । शस्तस्य करमर्दस्य प्रशस्तोत्तर उच्यते ।।४२
दीपाधारं कांस्यमयं तथारीतिमयस्य च । अभावे मृण्मयस्यैव मृण्मये मानवर्जितम् ।।४३
दशाङ्गधूपके मूल्यं विंशके तु पणत्रयम् । द्वादशकांगुलेऽप्यर्धवर्ति धूपाय वर्तयेत् ।।४४
हस्ते पञ्चप्रमाणं त्र वस्त्रैः कुर्याच्च वर्तिकाम् । पञ्चविंशतिभिर्वा यः स महावर्तिरुच्यते ।।४५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मूल्यदानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलशनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कलशानां विनिर्णयम् । यस्यार्पिते च माङ्गल्ये यात्रासिद्धिश्च जायते ।।१
सप्ताङ्गं कलशे ज्ञेयं पञ्चाङ्गमथ वा पुनः । वारिमात्रेण सम्पूर्णे न सा सिद्धिः प्रजायते ।।२
अथ वाक्षतपुष्पेषु देवमावाह्य पूजयेत् । न चान्यत्र यजेद्देवान्विफलं परिकीर्तितम् ।।३
वटस्याश्वत्थवृक्षस्य धातकीबिल्वकस्य च । पञ्चपल्लवमुद्दिष्टं विन्यसेत्कलशोपरि ।।४
सौवर्णा राजता वापि ताम्राद्यामृण्मयास्तथा । कलशाः क्रमशः प्रोक्ता यथावित्तानुसारतः ।।५

की मध्यम, तीन हाथ और चार हाथ की उत्तम बतायी गयी है । सुवर्ण के पात्र में दीपक जलाने से राजा का विनाश, चाँदी में समस्त कामनाओं की सफलता, ताँबे में आयुक्षय, तथा लोहे के पात्र में जलाने से भाँति-भाँति की दुर्गति प्राप्त होती है करमर्द (करमन्या) वृक्ष, दीपक के लिए उत्तम माना गया है, कांसे तथा पीतल के पात्र दीपक के लिए श्रेष्ठ हैं तथा उनके अभाव में मिट्टी के ही पात्र रखने चाहिए ।४०-४३। दशांग धूप तथा बीस अंग वाले धूप के लिए तीन पण दिये जाते है । बारह अंगुल में भी धूप के लिए आधी बत्ती लगाई जाती है । पांच हाथ अथवा पच्चीस हांथ के वस्त्र की बत्ती को महाबत्ती बताया गया है ।४४-४५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मूल्यदान वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

कलशनिर्णय का वर्णन

सूत बोले—उसके उपरांत कलशों के निर्णय जिसकी मांगलिक पूजा करने से यात्रा सफल होती है, मैं बता रहा हूँ ।१। कलशों के सात अथवा पाँच अंग होते हैं, कलश में केवल जल मात्र से पूर्ति कर देने से सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती है ।२। कलश के अभाव में अक्षत, या पुष्पों पर देवों के आवाहन-पूजन कर लेने चाहिए, अन्यथा अन्यत्र देवों के पूजन करने से वही निष्फल हो जाता है, ऐसा बताया गया है ।३। बट (बरगद), पीपल, आँवला और बेल इन्हीं पाँच वृक्षों के पल्लव से कलश विभूषित करना चाहिए ।४। अपनी धन-शक्ति के अनुसार सुवर्ण, चाँदी, ताँबे आदि एवं मिट्टी के कलश स्थापित करना चाहिए ।५।

अभेद्याः सुषमाः प्लक्षाः सर्वे आद्या सुपूरिताः । निश्छिद्रा ऋजवश्चैव सेचनान्येककर्बकः ।।६
एकत्रिंशाङ्गुलं कुर्यात्कालाहे द्विगुणं शतम्। मुखं चाष्टाङ्गुलं तस्य द्व्यङ्गुले च दरार्थिते ।।७
तैजसैः कारयेन्मानं मृण्मये मानमुच्यते । कलशोदकनिर्माणे अमानं नैव योजयेत् ।।८
कलशस्थापनं वक्ष्ये यत्र सन्निहिताः सुराः । व्युत्क्रमेण प्रविन्यासे यातुधानो हरेत्किल ।।९
यज्ञे साधारणं वक्ष्ये यद्विधानं यथामतम् । स्वस्तिकोपरि विन्यासे सम्पूर्णस्यार्धमानके ।।१०
चतुरस्रोत्तरं भित्त्वा चोर्ध्वाधोमानतः समम् । तुर्यसूत्राणि मानिभान्पञ्च पूर्वायतनानि च ।।११
मार्जयेत्स्वस्तिकाकारं तुर्यमात्रं यथा भवेत् । स्वास्तिकं जायते तत्र कलशानां तथासनम् ।।१२
स्योना पृथिवीति मन्त्रेण कुर्याद् भूमिपरिग्रहम् । मध्यमानामिकाभ्यां च न्यस्येत्पातालसम्मुखम् ।।
ऋषिर्नारायणोऽस्य स्याद्गायत्री[1] देवता रविः ।।१३
विनियोगः स्थापने च तथा भूमिपरिग्रहः । धान्यमसीति मन्त्रेण धान्यसूक्तं परिस्तवेत् ।।१४
अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्गौतमः परिकीर्तितः । अनुष्टुप्च भवेच्छन्दो देवतास्य गुरुः स्मृतः ।।१५
आजिघ्रं कलशं मह्यां स्थापयेत्कलशं ततः । कनिष्ठांगुष्ठकं त्यक्त्वा कुम्भाग्रे उदरेऽपि च ।।१६
विन्यासश्चैव कर्तव्यस्त्र्यङ्गुले ब्रह्ममुद्रया । आजिघ्रस्य च मन्त्रस्य ऋषिर्भर्ग उदाहृतः ।।

अभेद्य (दृढ़) सौन्दर्य पूर्ण, छिद्र हीन, सीधे और एक मिट्टी के बने हुए कलश को पहले से ही उन्हें भरे रखना चाहिए इकतीस अंगुल के घट जो कालाह में उससे दुगुने और सौ अंगुल के होते है, आठ अंगुल के मुख और दो अंगुल के तैजस द्वारा उसका मान करना चाहिए । इसीलिए मिट्टी के घर के लिए मान कहा गया है और कलशोदक के निर्माण के लिए भी । मान शून्य होने पर वे पूजनीय नहीं होते हैं ।६-८। मैं घट स्थापन विधान बता रहा हूँ, जिसमें सम्पूर्ण देव-गण सन्निहित रहते हैं और जिससे क्रम की अपेक्षा न रखने पर उसके पूजा आदि का निश्चित अपहरण राक्षसगण कर लेते हैं ।९। उनके यज्ञीय साधारण विधान को भी, जो सर्व सम्मति से निश्चित है, बता रहा हूँ । सम्पूर्ण मान एवं अर्धमान वाले घट को स्वस्तिक के ऊपर स्थापित करना चाहिए ।१०। (किसी) चौकोर स्थान का भेदन कर जिसका ऊपरी एवं नीचे का भाग समान हो, चार सूत्र से अंकित कर पुनः पाँच सूत्रों से पूर्व पश्चिम में अंकित करना बताया गया है ।११। उस स्वस्तिकाकार का मार्जन करना चाहिए, जो केवल चौथाई मात्र रहता है, वही स्वास्तिक कलशों के आसन के रूप में रहता है ।१२। 'स्योना पृथिवी' ति मंत्र से भूमि के परिग्रह (माप आदि) किये जाते हैं, जिसमें मध्यमा और अनामिका अंगुली द्वारा पाताल संमुख उसका न्यास किया जाता है इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, सूर्य देवता हैं ।१३। यही विनियोग उस (घट) के स्थापन में उच्चारण किया जाता है । 'धान्यमसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक धान्य उसके नीचे रखा जाता है, इस मंत्र के गौतम ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वृहस्पति देवता विनियोग में कहे जाते हैं ।१४-१५। 'आजिघ्रं कलशमि' ति मंत्र से भूमि में कलश स्थापन करना चाहिए, जिसमें कनिष्ठा और अंगूठे को छोड़ कर शेष तीन अंगुलियों की ब्रह्म मुद्रा द्वारा घट के अग्रभाग एवं उदर में विन्यास किया जाता है, इस मंत्र के भर्ग ऋषि,

---

१. छन्दः इति शेषः ।

पङ्क्तिश्छन्दश्च उद्दिष्टो देवता विष्णुरव्ययः ॥१७
कलशस्थापने चैव सोमयागे च योजयेत् । पञ्चनद्येतिमन्त्रेण क्षिपेद्गङ्गाजलं ततः ॥१८
देवता परमा त्रिष्टुब्देवता सोमभावितः । विनियोगः पल्लवे च विन्यसेत्परिकीर्तितः ॥१९
याः फलिनीति मन्त्रेण प्रदद्यात्सफलाक्षतम् । याः फलिनीति मन्त्रस्य ऋषिः कमलसंज्ञकः ॥
त्रिष्टुप्छन्दो गणपतिर्देवता परिकीर्तिता ॥२०
बदरं नागरं चैव धात्री च पिचुमर्दकम् । जीवन्ती पीवरं चैव फलान्येतानि वर्जयेत् ॥२१
हिरण्यगर्भेति ऋचा पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् । ऋषिर्हिरण्यगर्भोऽस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ॥
सविता देवता चास्य रत्नन्यासेति योजयेत् ॥२२
अमृतीकरणं कुर्याद्दैवशुल्बनमेव च । वरुणस्य त्वेति ऋषिर्वरुणान्तरे योजयेत् ॥२३
श्रीश्च ते इति मन्त्रेण दद्यात्पुष्पं सचन्दनम् । गन्धद्वारेति मन्त्रेण दद्याद्गन्धं विलोडितम् ॥२४
काण्डादिति च मन्त्रेण दधाद्दूर्वाक्षतं पुनः । व्रीहयश्चेति मन्त्रेण पञ्च व्रीहींश्च निक्षिपेत् ॥२५
तिलाश्च माषा मुद्गाश्च श्यामाकाः शालयः स्मृताः । पञ्च धान्यगणः प्रोक्तः सर्वारिष्टनिषूदनः ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे कलशनिर्णयं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

पंक्ति छन्द, शाश्वत विष्णु देवता, विनियोग में कहे जाते हैं । इसका प्रयोग कलश स्थापन एवं सोम याग में अत्यधिक किया जाता है, पश्चात् 'पञ्च नद्ये' ति मंत्र को उच्चारण कर गंगा जल घट में छोड़े ।१६-१८। इसके परम देवता, त्रिष्टुप् छन्द, और सोम देवता, विनियोग में कहे जाते हैं ।१९। 'याः फलिनी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक फल समेत अक्षत प्रदान करना कहा गया है । इस मंत्र के कमल ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, गणपति देवता कहे गये हैं ।२०। बेर, नारङ्गी, नीबू आँवला नीम, हर्रे, एवं पीपर, इन फलों के त्याग इन कार्यों में करने चाहिए ।२१। 'हिरण्य गर्भा' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घर में पञ्च रत्न का निक्षेप (छोड़ना) बताया गया है, इस मंत्र के हिरण्यगर्भ ऋषि , त्रिष्टुप् छन्द, सविता (सूर्य) देवता कहे गये है, जो रत्नों के न्यास विनियोग में कहे जाते हैं ।२२। इसी भाँति अमृतीकरण और दैवावार भी करना चाहिए । 'वरुणस्यत्वे' ति मंत्र द्वारा वरुण का उस घट जल में प्रवेश कराया जाता है, इस मंत्र के वरुण ऋषि हैं ।२३। 'श्रीश्च ते' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक चन्दन समेत पुष्प प्रदान करना चाहिए, 'गन्धद्वारे' ति मंत्र से घिसा हुआ गन्ध, 'काण्डादि' ति मंत्र से दूर्वा और अक्षत मिश्रित अर्पित करना बताया गया है, एवं 'व्रीह्यश्चे' ति मंत्र द्वारा पाँच धान्य तिल, उरद, मोथी, काकुनी और साठी धान कलश पर स्थापित करना चाहिए ।२४-२६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में कलशनिर्णय नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मासवर्णनम्

सूत उवाच

अथ मासाश्रयं कर्म कर्तुं मासनिरूपणम् । क्रियते तद्विधं संख्ये भवेन्मासश्चतुर्विधः ॥१
चान्द्रः सौरः सावनश्च नाक्षत्रश्च तथापरः । शुक्लप्रतिप्रदं प्राप्य यावद्दर्शं च ऐन्दवः ॥२
एकराशौ रविर्यावत्स मासः सौर उच्यते । त्रिंशता दिवसैर्मासः सावनः परिकीर्तितः ॥३
नाक्षत्रमासोऽश्विन्यादिरेवत्यन्तो हि विश्रुतः । उदयादुदयं यस्तु सावनो दिवसो रवेः ।४
तन्त्रेणैकतिथेर्भोगकालो दिवस ऐन्दवः । राशेस्त्रिंशद्भागकालः कालस्त्वेकस्य भास्वतः ॥५
अहोरात्रं तु तज्ज्ञेयं सौरेऽपि भागमानतः । अहोरात्रं साधनस्य मुख्यवृत्त्यैव लभ्यते ॥६
सौरे चान्द्रे तूपगणौ त्रिंशद्भागे त्वदर्शनात् । सावना दिवसा ग्राह्या ऋषीणां समये गृहे ॥७
अतिभागव्यवस्थायां प्रायश्चित्तक्रियासु च । मन्त्रोपासनकार्ये च अन्नस्य प्राशने शिशोः ॥८
करस्य ग्रहणे राज्ञो व्यवहारेषु मासु च । यज्ञेषु दिनसंख्यायां ग्राह्यो मासस्तु सावनः ॥९
सौरमासो विवाहादौ यदाद्यैः सुप्रगृह्यते । यज्ञेष्वपि व्रते वापि विहिते स्नानकर्मणि ॥१०
चान्द्रस्तु पार्वणे ग्राह्यो वार्षिकेष्वष्टकासु च । श्राद्धेषु तिथिकार्येषु तिथ्युक्तेषु व्रतेषु च ॥११

अध्याय ६

मासों का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरांत मैं मासों की व्याख्या कर रहा हूँ, जिनके आश्रित किये जाने वाले कर्म रहा करते हैं, वे चार प्रकार के होते हैं—चान्द्र, सौर, सावन, और नाक्षत्र, यही इनके भेद हैं, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या तक के दिन चान्द्र मास में गणना किये जाते हैं ।१-२। एक राशि पर सूर्य जितने दिन स्थित रहता है, उसे सौर मास, एवं तीस दिन के सावन मास, और अश्विनी नक्षत्र से आरम्भ होकर रेवती नक्षत्र के दिन तक नाक्षत्र मास कहा जाता है। सूर्योदय से (दूसरे दिन) सूर्योदय तक सावन मास का एक दिन, तंत्र द्वारा एक विधि के भोग करने का समय चान्द्र मास का एक दिन, एक राशि के तीस भाग का समय (अंश) सौर मास का एक दिन होता है जो दिन-रात के मान भाग से बताया जाता है। साधक लोगों की साधना के लिए अहोरात्र वाला ही दिन ग्रहण किया जाता है ।३-६। सौर मास एवं चान्द्रमास के तीसवें भाग के अदृश्य होने के कारण सावन मास के ही दिन ऋषियों के कर्मानुष्ठान एवं गृह प्रवेश आदि में गृहीत होते हैं ।७। अतिभाग की व्यवस्था, प्रायश्चित्त की क्रियाओं, मन्त्र साधन, उपासना कार्य, वच्चों के अन्न प्राशन राजा के लिए प्रजाओं से कर लेने के व्यवहार कार्य, मासिक कार्य, और यज्ञों की दिन गणना में सावन मास ग्रहण करना चाहिए ।८-९। विवाह आदि कार्यों में, यज्ञ में, व्रतानुष्ठान, तथा स्नान कर्मों के विधान में सौर-मास का ही ग्रहण होता है ।१०। पार्वण, वार्षिक, एवं अष्टका श्राद्धों, तिथि कार्यों और तिथि में बताये गये व्रतानुष्ठानों में चान्द्र-मास गृहीत होता है ।११।

नाक्षत्रः सोमपादीनामार्यभागविचारणे । करग्रहविधौ राज्ञां नायं सर्वजनाकृतिः ।।१२
तद्वच्चैत्रादिमासोक्तं तिथ्युक्तं कर्म दृश्यते । तत्तु चान्द्रेण कर्तव्यं सा हि चैत्रादिनोच्यते ।।१३
राजोक्तौ सावनः प्रोक्तः तिथिसम्भागकर्मणि । तत्र सौरो भवेद्वाच्यः सौरशब्दप्रवर्तनात् ।।१४
चित्रानक्षत्रयोगेन चैत्री सा पूर्णिमा स्मृता । तयोपलक्षितो मासश्चैत्र इत्यभिधीयते ।।१५
स च तिथ्यात्मको मासश्चान्द्रः श्रवणभास्करः । चान्द्रश्चैत्रश्च न्तिको मासो मुख्यश्चैत्रादिसंज्ञकः ।।१६
गौणोऽप्यसौ युगाद्यादेरनुरोधेन दर्शनात् । मुख्यः शुक्लादिदर्शांतो मासो लाक्षणिको मतः ।।१७
चैत्राद्याश्चान्द्रमासा ये द्वादशापि तु योगतः । पौर्णमासीयुताभिस्तु न चर्क्षत्वं न लेभिरे ।।१८
विशाखयाद्येषु या वा तथा भाद्रपदेन वा । यत्र न पूर्णिमायोगो मासः स स्याद्विनाशकः ।।१९
योऽसौ यद्यपि चैत्रादौ नैष्ठिकोऽपि प्रलभ्यते । यथा सौरोऽपि यातोऽसौ योगोऽयमतिदुर्घटः ।।२०
तथा च माससामान्ये योगेनायं भवेत्क्वचित् । यदि वर्षसहस्रान्ते तदक्षेणैव पूर्णिमा ।।२१
संयुक्ता लभ्यते यत्र भवेद्राज्यविनाशनम् । सूर्याचन्द्रमसौ नित्यं कुर्वाते तिथिभोजनम् ।।२२
दण्डद्वये भुक्तशेषे न भुञ्जीत कदाचनम् । अतिक्रम्यापरां भोक्तुं तिथिं यत्र उभावपि ।।२३

देवादिका के लिए आर्यभाग संबंधी विचार, और राजाओं के कर (मालगुजारी) आदि में ग्रहण करने में ही नाक्षत्र मास के उपयोग किये जाते हैं, अतः यह मास सम्पूर्ण जनता के उपयोग में नहीं आता है।१२। उसी प्रकार चैत्र आदि मासों की तिथियों में बनाये गये कर्मों की समाप्ति चान्द्र मास के अनुसार ही होती है, क्योंकि वे चैत्रमास में करने के लिए ही कही गयी हैं। राजा के लिए सावन मास ही कहा गया है, किन्तु तिथियों के विभाग-व्यवस्था में सौर शब्द के नामोच्चारण करने के कारण सौर-मास ही गृहीत होता है।१३-१४। चित्रा नक्षत्र के योग से चैत्री (चैत्र की) पूर्णिमा होती है, इसीलिए उसकी अपेक्षा के कारण उसे चैत्र-मास कहते हैं।१५। तिथियों की गणना वाले मास को चान्द्र-मास कहा जाता है, जिसमें सूर्य दृष्टि गोचर होते या सुने जाते हैं, और उस चान्द्र मास का अंतिम मास चैत्र मास कहा गया है, एवं यही चैत्रादि संज्ञा वाले मास मुख्य भी हैं।१६। (सत्ययुग आदि) युगों के अनुरोध से यह गौण (अप्रधान) भी हो जाता है। उसमें शुक्ल की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या काल पर्यंत वाला मास, जो सर्व सम्मति से लाक्षणिक बताया गया है, मुख्य माना जाता है।१७। चैत्र आदि बारहों चान्द्र मास, पूर्णिमा संयुक्त होने के नाते वे नक्षत्रों के धर्मों से अत्यन्त पृथक् रहते हैं।१८। विशाखा नक्षत्र (वैशाख मास) से आरम्भ होकर भाद्रपद मास तक के मासों में, जिसमें पूर्णिमा के योग न प्राप्त हों, वे मास विनाश करने वाले मास बताये गये हैं।१९। यद्यपि सौर-मास की भाँति चैत्र आदि मासों में भी नैष्ठिकता प्राप्त होती है, तथापि वह योग ही अत्यन्त दुर्लभ होता है।२०। किन्तु, साधारण मासों में यह योग कभी-कभी प्राप्त हो ही जाता है। सहस्रों वर्ष के अन्त में यदि कभी पूर्णिमा के योग प्राप्त हो जाँयें तो उस मास के समय में राष्ट्र का महान् विनाश उपस्थित हो जाता है। सूर्य एवं चन्द्रमा तिथियों के उपभोग नित्य करते रहते हैं, उनके उपभोग काल के दो दण्ड शेष रहने पर भोजन कभी न करना चाहिए। तथा वे दोनों (सूर्य ओर चन्द्रमा) दूसरी तिथि के उपभोग करने के लिए अतिक्रमण न कर जाँये, उस समय भी। जिस मास में बीस ही तिथियाँ होती हैं, उसमें एक संचिता तिथि होती है। और तीस तो केवल चान्द्रमास में ही

यत्र विंशत्तिथिस्तस्मात्सञ्चितैका भवेदिति । त्रिशता चान्द्रमासौ दु चन्द्रेणैको हि वर्द्धते ।।२४
स चाधिको यतो मासस्ततः स्यादधिमासकः । समरात्रि दिवं कृत्वा वैवस्वतपुरीगतिम् ।।२५
राशे राश्यन्तरे सूर्यो यावद्गच्छति भानुमान् । गच्छन्वर्धयति पूर्वं तिथयस्तास्तु सञ्चिताः ।।२६
वर्धन्ते तिथयो यावत्तुलां याति दिवाकरः । तुलादिराशिषट्के तु न वर्द्धन्ते कदाचन ।।२७
स्वभावात्समगत्या तु यतः सङ्क्रमते रविः । सञ्चयमाना त्वेकैका प्रतिमासं विवर्द्धते ।।
निशास्वपि तु सौरे ता एकस्मिंस्तिस्र इत्यपि ।।२८
संपूर्णत्रिंशत्तिथिभिर्मास्येकस्मिन्यदा भवेत् । स चान्द्रो मलिनो मासः कोणपाद्यैः समीहितः ।।२९
भुक्तोच्छिष्टा तु तन्मासादसंस्पृष्टदिवाकरः । यदा सङ्क्रमते लङ्घ्य तदा ज्ञेयो मलिम्लुचः ।।३०
सार्धवर्षद्वये पूर्णे पतत्येवं निशाकरः । परित्यक्ताश्च यावन्त्यो व्युत्क्रमिण्यश्च याः पुनः ।।
तिथयस्ते नियोक्तव्या नरो न स्यात्स पूरणः ।।३१
नैर्ऋत्यान्तं हितार्थाय जलकेतुर्निगच्छति । निर्ममं मलिनं मासं प्रेतानां च हिताय च ।।३२
अतः प्रेतक्रियाः सर्वाः कार्या मलिम्लुचेऽपि च । यत्कर्तव्यं न कर्तव्यं मलमासे द्विजोत्तमाः ।।३३
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि कथितं च प्रसङ्गतः । यच्छ्राद्धं प्रेतसम्बन्धि सपिण्डीकरणावधि ।।
मलमासेऽपि तत्कार्यं विशिनष्टि सपिण्डनम् ।।३४

होती हैं, उसमें चन्द्रमा के द्वारा एक ही वृद्धि होती रहती है ।२१-२४। वही अधिक जिस माम में होता है, उसे अधिक मास कहते हैं, उसमें वैवस्वत (यम) की पुरी की भाँति रात-दिन समान होते है । सूर्य के एक राशि से दूसरे राशि पर प्रस्थान करते समय उनके रस में प्रविष्ट होते समय पूर्व की तिथियाँ वृद्धि प्राप्त करती रहती है, वे ही संचिता के नाम से कही जाती हैं ।२५-२६। जब तक सूर्य तुला राशि पर पहुँचते हैं, उसी समय तक तिथियाँ भी वृद्धि प्राप्त करती हैं और छठी (कन्या राशि) के अनन्तर तुला पर पहुँचने के पश्चात् कभी नहीं बढ़ सकती है ।२७। स्वभावानुसार अपनी समान गति से सूर्य एक राशि से दूसरी राशि पर पहुँचते हैं, उसमें प्रति मास में एक-एक संचित की जाने वाली तिथियाँ बढ़ती रहती हैं, रात्रि में भी उनकी वृद्धि होने के कारण एक सौर-मास होता है इस प्रकार तीन तिथियाँ वृद्धि प्राप्त करती हैं ।२८। जिस मास में सम्पूर्ण तीस तिथियाँ (मानानुसार) व्यतीत होती हैं, कोणपादिकों ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक उस चान्द्र मास को मलिन मास बताया है ।२९। (सूर्य द्वारा) उपभोग करके परित्यक्त तिथियों वाले उस मास को, जिसे सूर्य स्पर्श नहीं करते हैं (अर्थात् उसमें कोई संक्राति नहीं होती है), पार कर दूसरे मास में उनका संक्रमण (संक्रान्ति) होता है, उसे ही अधि (मल) मास कहा जाता है ।३०। ढाई वर्ष के उपरान्त निशाकर (चन्द्र) का इसी भाँति पतन हुआ करता है कितनी तिथियाँ परित्यक्ता रहती हैं और कितनी तिथियों के (व्युत्क्रम क्रम असंबद्ध) रहते हैं (किसी श्रम कर्म में) उस समय उन तिथियों के उपयोग नहीं होते हैं एवं करने वाला अधूरा ही कहलाता है ।३१। नैर्ऋत्य (राक्षस) गणों के हितार्थ जलकेतु का निष्क्रमण होता है, अतः यह निर्मम मलिन मास केवल प्रेतों के हित का साधक है अन्य का नहीं ।३२। इसीलिए समस्त प्रेत क्रियाएँ इस मलमास में भी होती रहती हैं, तथा द्विजोंत्तम वृन्द ! दैवादि शुभ कार्य इसमें नहीं होते हैं ।३३। प्रसङ्गवश मैं वही (मलमास में क्या करना चाहिए क्या नहीं) कह रहा हूँ, प्रेतसम्बन्धी सपिंडीकरणादि सभी श्राद्ध मलमास में किये जाते हैं विशेषकर सपिंडन

यदा तु द्वादशो मासो दैवान्मलिम्लुचो भवेत् । तत्रैव यत्नात्कर्तव्या क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥३५
मासान्तरे तु पतिते तस्मिन्नेव मलिम्लुचे । तदा त्रयोदशे मासि कर्तव्यं तत्सपिण्डनम् ॥३६
वर्ज्यं मासिकया श्राद्धमेकं तस्मिंस्त्रयोदशे । त्रिंशता घटिकैः श्राद्धं वर्धतेऽद्यापि सम्मितम् ॥३७
कुर्यात्पत्याब्दिकं कर्म प्रयत्नेन मलिम्लुचे । नैमित्तिकं च कुर्वीत नाधिकारस्तयोर्भवेत् ॥३८
तीर्थस्नानमलभ्यं तद्वदाद्यं देवदर्शनम् । उपवासादिकं कर्म सीमन्तोन्नयनं तथा ॥३९
आर्त्विजं पुंसवनं पुत्रादिमुखदर्शनम् । मलमासेऽपि कुर्वीत शुक्रे चास्तमुपागते ॥४०
मलमासेऽपि कुर्वीत नृपाणामभिषेचनम् । व्रतारम्भं प्रतिष्ठां च चूडाकर्म च मेखलाम् ॥४१
मन्त्रोपासां रहस्यं च महादानं सुमङ्गलम् । विवाहं च गृहारम्भं प्रवेशं नववेश्मनः ॥४२
उपग्रहं गवादीनामाश्रमान्तरसङ्क्रमम् । दीर्घमात्रासु नेज्यं वै तीर्थयात्रावसेचनम् ॥४३
वर्षवृद्धिवृषोत्सर्गकन्याद्विर्नयनादि च । यज्ञं च कामिकं विद्वान्मलमासे विवर्जयेत् ॥४४
एवमस्तं गते शुक्रे वृद्धबाल्ये च सन्त्यजेत् । पादास्तं च महास्तं च द्विविधं चास्तमस्य तु ॥४५
द्विसप्ततिर्दिनान्यस्य महास्तं पूर्वतो भवेत् । पृथिव्यामेव पादास्तं भवेद्द्वादशवत्सरान् ॥४६
ऊनपञ्चाशदधिकं दिवसानां शतद्वयम् । प्रतीच्यामुदितः काव्यो दृश्यो भवति सर्वदा ॥४७
एकर्क्षे गुरुणा युक्तो यावत्तिष्ठति भार्गवः । मलमासवत्कर्माणि प्राहुस्त्याज्यानि सर्वशः ॥४८

भी।३४। दैवयोगात् यदि बारहवें (वार्षिक) मास मलमास हो जाये, तो प्रेत का वार्षिक श्राद्ध उसी मास में करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। यदि मास के भीतर ही मलमास उपस्थित हो जाये तो तेरहवें मास में सपिंडन विधान समाप्त करना चाहिए।३५-३६। केवल मासिक श्राद्ध उसे तेरहवें मास में निषिद्ध है, (वृद्धि के लिए) तीस घटिका (घड़ी) के अनुसार आज भी श्राद्ध-वृद्धि सर्वसम्मत ही है।३७। (पति का) वार्षिक एवं नैमित्तिक कर्म मलमास में प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, किन्तु दोनों के अधिकार कर्म नहीं किये जा सकते हैं।३८। दुर्लभ तीर्थ स्नान, देवताओं के दर्शन, उपवास आदि कर्म, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, और मूल (गणना) संज्ञक नक्षत्रों की शान्ति समेत संतान मुखदर्शन मलमास एवं शुक्रास्त में भी किये जाते हैं।३९-४०। राजाओं के अभिषेक (राजतिलक), व्रतों के आरम्भ, देवों की प्रतिष्ठा, चूडाकर्म (मुण्डन), मेखलाबन्धन, मंत्र की सिद्धि, एवं रहस्य समेत उसका ज्ञान, महादान, अत्यन्त माङ्गलिक कर्म, विवाह, गृहारम्भ, गृहप्रवेश गौओं का क्रय तथा स्थान परिवर्तन, विशाल संभार का यज्ञ, तीर्थ यात्रा एवं उसमें अभिषेक, वार्षिक, वृद्धि-श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, कन्याओं के द्विरागमन, और काम्य-यज्ञ के परित्याग मलमास में विद्वानों को करना चाहिए।४१-४४। इसी भाँति शुक्र के अस्त तथा बाल्य वृद्ध होने के समय भी। पादास्त (चौथाई अंश से अस्त) और महास्त (सम्पूर्णतः) इस प्रकार शुक्र का अस्त दो भाँति का होता है।४५। पूर्व दिशा में बहत्तर दिन तक शुक्र का महास्त होता है, और इस भूतल में बारह दिन का उनका पादास्त होता है।४६। इस प्रकार शुक्र दो सौ उनचास दिन तक पश्चिम दिशा में सर्वदा दिखायी देते हैं।४७। एवं नक्षत्र पर बृहस्पति समेत शुक्र जितने दिन स्थित रहते है, मलमास की भाँति उस समय भी उपरोक्त कर्मों के परित्याग आवश्यक होते हैं।४८।

ऋक्षभेदे त्वेकराशौ सम्पर्के यदि वानयोः । गुरो राहोरपि तथा त्यजेद्विद्वान्न संशयः ।।४९
सिंहे राशौ स्थिते सूर्ये जीवे चास्तमुपागते । हेयानि यानि कर्माणि निषिद्धानि मलिम्लुचे ।।५०
मिथुनस्थे यदा भानौ मलमासः पतत्यसौ । द्विराषाढ इति ख्यातो गौणे शब्दविवर्तनात् ।।५१
फलं चात्र मृतस्यौर्ध्वदेहिकं कर्म कुर्वता । आषाढकीर्तनं कार्यमेवं वर्षान्तरेऽपि च ।।५२
आषाढद्वयसंयुक्तपूर्णमासीद्वयं तथा । युग्मकर्कटयो राश्योर्द्विराषाढस्तदा भवेत् ।।५३
भवेद्गौणो द्विराषाढो राशिस्तत्रैव संयुते । पूर्वत्रिके तु पतिते तदेव भगवान्हरिः ।।५४
कर्कटे शयनं कुर्यादागामिष्यं परत्रके । कांकण्यर्के सुप्तहरौ शक्रपूजाश्विने भवेत् ।।५५
दुर्गोत्थानं तुलायां तु विष्णुर्निद्रां जहात्यसौ ।।५६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मासवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

तिथिविधानवर्णनम्

सूत उवाच

दैवं वा पैतृकं कर्म कालमाश्रित्य वर्तते । काले तान्येव कर्माणि फलं यच्छन्ति कुर्वताम् ।।१

नक्षत्र भेद होने पर भी एक राशि में स्थित इन दोनों में किसी के साथ राहु का सम्पर्क स्थापित हो जाये तो उस समय भी विद्वानों को उन कर्मों के परित्याग करने चाहिए ।४९। सिंह राशि में स्थित सूर्य एवं वृहस्पति के अस्त समय में भी मलमास में निषिद्ध किये गये कर्मों के परित्याग आवश्यक होते हैं ।५०। सूर्य के मिथुन राशि पर स्थित रहते समय मलमास के उपस्थित होने पर दो आषाढ़ मास होते हैं , इस प्रकार गौणों में शब्द विवर्तन किया गया है ।५१। इसमें मृत प्राणी के अन्त्येष्टि कर्म करते हुए आषाढ़ कीर्तन करना चाहिए । वर्षान्तर में भी यही बताया गया है ।५२। दो आषाढ़ मास की प्राप्ति में पूर्णिमा भी दो होती है, तथा मिथुन और कर्क राशि में भी दो आषाढ़ का योग आ जाता है ।५३। दोनों आषाढ़ मासों के योग को संघटित करने वाली राशि गौण मानी जाती है, इस प्रकार पूर्व की तीनों राशियों को एक त्रिक में मलमास के उपस्थित हो जाने पर भगवान् विष्णु आने वाले त्रिक के कर्क राशि में शयन करते हैं । कर्क राशि स्थित सूर्य के समय भगवान् के शयन करने पर शक्रपूजा आश्विन मास में होती है और दुर्गा का उत्थान भी ।५४-५५। तुला राशि में सूर्य की उपस्थिति के काल में भगवान् विष्णु अपनी निद्रा का त्याग करते है ।५६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मास-वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

तिथि-विधान-वर्णन

सूत बोले—देव-कर्म और पितृ-कर्म काल (समय) के ही आश्रित रहते हैं, समय पाकर ही वे कर्म अपने करने वालों को फल प्रदान करते रहते हैं ।१। बाल्यावस्था के क्षण जिन कर्म-फलों को प्रदान करते

मुहुर्बाल्ये कर्मफलं त्रिकालेऽपि न विद्यते । व्ययो वा मुख्यभावेन फलदः कर्मशालिनाम् ॥२
कालस्तु गुणभावेन सर्वकालाश्रिता क्रिया । न कालेन विना किञ्चित्त्रिषु लोकेषु जायते ॥३
अतः कालं प्रवक्ष्यामि निमित्तं कर्मणामिह । काले ह्यमूर्तिर्भगवानेक एव तु यद्यपि ॥
तथाप्युपाधिभेदेन भिद्यते कालभेदिभिः ॥४
तिथिनक्षत्रवारादौ रात्रयोगादयोऽपि ये । तेऽपि कालाः पक्षमासराशिवर्षान्तरेऽपि च ॥
साधनानि भवन्त्येते स्वातन्त्र्येण न कस्यचित् ॥५
धर्मस्य चाप्यधर्मस्य मुख्यो व्यापार एव सः । तिथ्यादिकालभावेषु निषिद्धं निहितं हि तत् ॥६
पालयन्स्वर्गमाप्नोति हित्वा प्राप्नोत्यधोगतिम् । साधयन्त्यपि कर्माणि परस्परमवेक्ष्यते ॥७
कालभागो निःसहायो येऽपि स्युः कर्मसाधनाः । तिथौ पूर्वाह्णव्यापिन्यां कुर्वीत कर्म वैदिकम् ॥८
एकोद्दिष्टं तु मध्याह्नव्यापिन्यां हि समाचरेत् । पराह्णव्यापिनीं प्राप्य तिथिं कुर्यात्तु पार्वणम् ॥९
न तु पूर्वाह्णमध्याह्नपराह्णेषु यथोचितम् । अप्रधाने तु कुर्वीत कर्म दैवादिकं च यत् ॥१०
एको हि कालः प्रातस्तु वृद्धिश्राद्धादिसाधने । नापेक्षते साहाय्यं तत्तिथ्यादिविषुवादिषु ॥११
देवेभ्यो ब्रह्मणा दत्तः पूर्वाह्णस्तिथिभिः सह । पितृभ्यो ह्यपराह्णस्तु पार्वणं तु परं विना ॥१२
पूर्वाह्णमात्रसम्प्राप्तौ ततो देवान्प्रपूजयेत् । पूर्वाह्णस्पर्शमात्रेऽपि तिथिखण्डेन चार्पयेत् ॥१३

हैं, वे पुनः त्रिकाल में संभव नहीं होते हैं । इस प्रकार कर्मशील प्राणियों के लिए (सुख-दुःख) रूप फल मुख्य रूप से काल ही प्रदान करता रहता है ।२। समस्त क्रियाएँ गुणभाव से काल के ही आश्रित रहती हैं, विना काल के कोई भी वस्तु तीनों लोकों में संभव नहीं होती है ।३। इसलिए कर्मों के निमित्त कारण रूप काल की व्याख्या कर रहा हूँ, यद्यपि किसी समय अमूर्त (निराकार) भगवान् एक ही रहते हैं, पर, कालभेदी (कर्मों) एवं उपाधियों द्वारा वे साकार रूप में प्रकट होते हैं ।४। तिथि, नक्षत्र, दिवस आदि एवं रात्रि योग आदि सभी काल के रूप कहे जाते हैं, इस प्रकार पक्ष, मास, राशि, एवं वर्षान्तर में भी काल किसी के स्वतन्त्र साधन नहीं होते है ।५। धर्म और अधर्म मुख्य कालभाव से उसमें निषिद्ध और गृहीत होता है ।६। उसके पालन से स्वर्ग की प्राप्ति और त्याग से अधोगति होती है, इस प्रकार कर्म को सिद्ध करते हुए एक दूसरे को देखा करते हैं ।७। इस भाँति काल-भाग निःसहाय और कर्म साधक हैं, पूर्वाह्ण व्यापिनी तिथि में ही वैदिक कर्म करना चाहिए । मध्याह्न व्यापिनी तिथि में एकोद्दिष्ट श्राद्ध और पराह्ण व्यापिनी तिथि में पार्वण श्राद्ध करना बताया गया है ।८-९। दैवादिक कर्म के लिए कोई प्रधान समय नियत नहीं है, इसलिए सभी समय में उसकी यथोचित पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि उसमें पूर्वाह्ण, मध्याह्न और पराह्ण का संकेत नहीं है ।१०। एक ही काल प्रातः की सहायता (प्रातःकाल) से वृद्धि श्राद्धादिको की साधक होती है, और वही तिथ्यादि एवं विषुवादि में किसी प्रकार की सहायता न स्वीकार कर निरपेक्ष रहता है ।११। ब्रह्मा ने देवों को तिथियों के साथ पूर्वाह्ण (समय) भी प्रदान कर दिया उसी भाँति पितरों के लिए एक पार्वण (श्राद्ध) के अतिरिक्त (सभी श्राद्ध के लिए) अपराह्ण काल ।१२। इसलिए पूर्वाह्ण (काल) मात्र की प्राप्ति में देवताओं की अर्चा सुसम्पादन करनी चाहिए, तिथियों के खण्डित होने पर भी पूर्वाह्ण काल का केवल स्पर्शमात्र होने से उस समय उन्हें उनकी

खर्वा दर्पा तथा हिंस्रा तिथिश्च त्रिविधा भवेत् । खर्वादि लङ्घयेत्तुल्या दर्पा भवति वर्द्धिता ॥१४
हिंस्रा तु क्षयजा ज्ञेया कालभेदेन गृह्यते । खर्वा दर्पा परे ग्राह्या हिंस्रा ग्राह्या तु पूर्वतः ॥१५
शुक्लपक्षे परा ग्राह्या कृष्णे पूर्वा प्रशस्यते । स्नानदानव्रते चैव विषयोगो निदर्शितः ॥१६
तिथौ चोदेति सविता कालमात्रं च वा यदि । अन्यापि सैव विज्ञेया तिथिस्तस्मिन्नहर्निशम् ॥१७
यथावास्ते रविर्भाति घटिका दश वापि वा । सा तिथिस्तदहोरात्रं व्यपदेश्या न चेतरा ॥१८
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे खर्वा दर्पा तिथिश्च या । ययास्तं सविता याति पितृकार्ये च सा तिथिः ॥१९
दिनद्वयेऽपि कुतपे अस्तगां तिथिमाश्रयेत् । श्राद्धकालादिकं यत्र तत्र श्राद्धं विधीयते ॥
व्रते च वृद्धिगामिन्यां यत्रोदयो रवेर्भवेत् ॥२०
अमावस्यापार्वणे च सा तिथिः पितृपूजने । अमावस्यामृतस्यैव पार्वणं यत्र कुत्रचित् ॥२१
अस्तगामितिथिर्यत्र सा तिथिः पितृमन्दिरम् । एकोद्दिष्टं चरेत्तत्र नोदये च कदाचन ॥२२
शुक्लपक्षे च कृष्णे च यो योगः परपूर्वयोः । पूर्वेद्युर्वा परेद्युर्वा त्रिसन्ध्यव्यापिनी तिथिः ॥
सा पूज्या च स्वकृत्येषु पक्षयोरुभयोरपि ॥२३
पूज्या हि व्यस्तं सन्त्यज्य पूर्वं चैकादशीयुगम् । द्वितीया वह्नियुक्ता चतुर्थी पञ्चमीयुता ॥२४
एता उपोष्यास्तिथयः पुण्याः स्युर्धर्मवेदिभिः । एतद् व्यस्तास्तु पुण्यानि घ्नन्ति पूर्वकृतान्यपि ॥२५

वस्तुएँ समर्पित की जाती हैं ।१३। खर्वा, दर्पा, और हिंसा के भेद से तिथियाँ तीन भाँति की बतायी गयी है, क्षीण तिथि खर्वा, तिथियों की वृद्धि दर्पा, एवं लुप्त प्राय तिथियाँ हिंसा कही जाती हैं ।१४-१५। खर्वा तथा दर्पा नाम की तिथियों का पर उत्तर काल और हिंसा का पूर्व काल गृहीत होता है । स्नान, दान, व्रत एवं विष-योग के लिए शुक्ल पक्ष की परा और कृष्ण पक्ष की पूर्व (पूर्वकाल वाली) तिथियाँ प्रशस्त कही गयी हैं । जिस तिथि के क्षणमात्र समय में सूर्योदय होता है और उस क्षण के अनन्तर दूसरी तिथि का प्रवेश होता है, किन्तु, वह प्रविष्ट हुई तिथि अपने पूर्व तिथि के नाम से उस दिन रात तक व्यवहृत की जाती है ।१६-१८। जिस प्रकार सूर्य विद्यमान रहते है, उसी भाँति कोई भी तिथि दश घटिका (घड़ी, या दंड) तक विद्यमान रहे तो उस रात वही तिथि गृहीत होती है, दूसरी नहीं ।१९। शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की खर्वा एवं दर्पा नाम की कोई तिथि, जिसके समय में सूर्य अस्त हों, पितृकार्य में ग्रहण की जाती है ।२०। दोनों-दिनों में कुतप (श्राद्ध काल) के प्राप्त होने पर सूर्यास्त की ही तिथि ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि श्राद्धकाल आदि जिस तिथि में प्राप्त हो, उसी में श्राद्ध विधान बताया गया है, और व्रत के लिए वृद्धि तिथि, जिसमें सूर्योदय होता है, ग्रहण करना चाहिए ।२१। पार्वणश्राद्ध तथा पितरों के पूजन में अमावस्या तिथि गृहीत होती है, एवं अमावस्या तिथि में प्राणोत्सर्ग करने वाले ही प्राणी के लिए पार्वण श्राद्ध जहाँ कहीं किया जा सकता है ।२२, सूर्यास्त के समय वर्तमान रहने वाली ही तिथि पितरों के मंदिर के रूप में होती हैं, उसी में एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध करना चाहिए, उदया (तिथि) में कभी नहीं । शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में पूर्व-पर के दिनों में जब कभी वह योग प्राप्त हो, जिसमें तीनों संध्याओं में वही (एक) तिथि वर्तमान रहे, चाहे वह पहले दिन में हो या दूसरे दिन वहीं दोनों पक्षों में अपने कृत्यों (कार्यों) में पूजनीय मानी गयी है ।२३-२४। विपरीत तिथियों के त्याग पूर्वक एकादशी आदि एवं अग्नि

बाणेन विद्धा या षष्ठी मुनिविद्धा तथाष्टमी । दशम्येकादशीविद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी ।।२६
अमावास्या भूतविद्धा नोपोष्या मुनिनापि च । हन्ति पुत्रकलत्राणि धनानि समुपोषिता ।।२७
विद्धा ये नाभिनिन्द्याः स्युर्युक्तास्तेनाभिनन्दिताः । व्यस्तस्य सम्भवे युग्मं विद्धा भवति सर्वशः ।।२८
तामस्तां तु तिथिं प्राप्य युग्मान्यपूज्यतामियुः । युग्मानि च दिवायोगे ग्राह्याणि व्यस्तनिन्दनम् ।।२९
नक्तादिव्रतयोगे तु दिवासंवर्द्धमर्करान् । रात्रियोगश्चतुर्थ्योस्तु विशिष्य परिगृह्यते ।।३०
रात्रियोगं विनापि स्यादेकादश्यादिकं व्रतम् । नक्तं जागरणं चैव विनियोगेऽपि शस्यते ।।३१
एकादश्युपवासं तु द्वादशीयोगतश्चरेत् । दिवायोगे तु सम्पूर्णां त्यजेदुभयपूर्वतः ।।३२
रात्रियोगे तु सम्पूर्णा सोपास्यैकादशी सदा । सप्तमी शुक्लपक्षेऽपि पूज्या षष्ठ्या समन्विता ।।३३
निशि तु स्याद्यदा षष्ठी सप्तमी नवमी दिवा । उपोष्य केवलां षष्ठीं तोषयेद्भास्करं नरः ।।३४
एवं त्रयोदशीं कृष्णां विधिप्राप्तां विना द्विजाः । उपोष्य पार्वतीनाथं तोषयेद्यश्च केवलम् ।।३५
दिवा त्रयोदशीयुक्ता कृष्णोपोष्या चतुर्दशी । परेणापि चतुर्दश्या न तु कुर्यादमातिथौ ।।३६
त्रिसन्ध्यव्यापिनीं प्राप्य यदि कुर्यादुपोषणम् । पारणं तु सिनीवाल्यां चतुर्दश्यामुपोषयेत् ।।३७
चतुर्दशीमतिक्रम्य सिनीवाल्यां तु पारणात् । व्रतानि तस्य नश्यन्ति प्राक्कृतानि चतुर्दशीम् ।।३८

युक्त द्वितीया, चतुर्थी, और पंचमी इन्हीं पूजनीय तथा पुण्यस्वरूप तिथियों के उपवास धर्म-वेत्ताओं को करना चाहिए । इनके अनियमित व्यवहार से पूर्व संचित भी पुण्य नष्ट हो जाते है ।२५-२६। बाण विद्धा (युता) षष्ठी, मुनि विद्धा अष्टमी, दशमी विद्धा एकादशी, त्रयोदशी विद्धा चतुर्दशी, भूतविद्धा अमावस्या, तिथियों के उपवास मुनियों को भी न करना चाहिए । अन्यथा पुत्र, स्त्री, एवं धन का महान् विनाश उपस्थित होता है ।२७-२८। जो विद्ध तिथियाँ निन्दित नहीं हैं, उससे युक्त तिथियाँ प्रशस्त होती है, और विपरीत संभव होने पर युग्म ही तिथि विद्धा हो जाती हैं ।२९। अस्त समय में उन तिथियों के वर्तमान रहने पर युग्म तिथियाँ अपूज्य हो जाती हैं, दिन के योग में ही उनका ग्रहण करना बताया गया है और विपरीत तिथियों की निन्दा भी की जाती है ।३०। नक्तादि व्रत के योग में दिवस सम्बन्धी तिथियों का ग्रहण किया जाता है तथा रात्रि योग में विशेष कर चतुर्थी का ग्रहण होता है ।३१। एकादशी आदि व्रत रात्रि योग के संभव न होने पर भी किया जाता है क्योंकि रात्रि का जागरण विनियोग के लिए भी प्रशस्त होता है ।३२। द्वादशी के योग होने पर ही एकादशी का उपवास करना चाहिए, किन्तु दिन में ही यदि द्वादशी संभव हो तो पूर्व दिन की एकादशी त्याज्य बतायी गयी है ।३३। उसी भाँति रात्रि में द्वादशी संभव होने पर सदैव सम्पूर्ण एकादशी का ही व्रत करना चाहिए । शुक्ल-पक्ष की सप्तमी षष्ठी युक्त होने पर ही पूजित होती है ।३४। रात्रि में षष्ठी संभव हो और सप्तमी नवमी केवल दिन में, उस समय मनुष्य को केवल षष्ठी के उपवास द्वारा भास्कर को प्रसन्न करने की चेष्टा करनी चाहिए ।३५। इसी भाँति द्विजगण ! कृष्ण-पक्ष की विधि प्राप्त हीन त्रयोदशी के संभव होने पर केवल उसी के उपवास द्वारा भूतनाथ महादेव को प्रसन्न करना बताया गया है । दिन में त्रयोदशी के युक्त होने पर कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी का उपवास करना चाहिए, किन्तु, दूसरे दिन चतुर्दशी युक्त अमावस्या के उपवास का निषेध किया गया है ।३६-३७। तीनों संध्याओं में व्याप्त रहने वाली चतुर्दशी की प्राप्ति होने पर उपवास करके पारण अमावस्या में करना

सप्तमी ललिता भाद्रे शक्रोत्थानं च वारुणी । पूज्याश्चैताः पराः कुर्यात्त्रिसन्ध्यव्यापिनीष्वपि ॥३९
त्रिसन्ध्याव्यापिनी पूर्वे परतो वर्द्धते यदि । सऋक्षा ऋक्षयोगे तु ऋक्षाभावे परा युता ॥४०
ऋक्षाभावे परा ग्राह्या त्रिसन्ध्यव्यापिनीष्वपि । श्रावणे चाद्यपादे तु प्रशस्ता शक्रपूजने ॥४१
अभावे चोत्तराषाढा धनिष्ठा च विशिष्यते । दण्डार्धं दण्डमेकं वा तदर्धं पलमेव वा ॥४२
उदये संयुता ग्राह्या सा तिथिश्चोत्तमा भवेत् । त्रिसन्ध्यव्यापिनीं हित्वा पूज्या शुक्लाष्टमी परा ॥४३
रविचक्रवता ग्राह्या रथे तिथ्यादेरपि च । त्रिसन्ध्यव्यापिनी या तु पलमेकं परे दिने ॥४४
अपरेऽपि च सर्वत्र हलानां वाहनं त्यजेत् । शुक्लैकादश्यमावान्यासङ्क्रान्त्यां श्राद्धवासरे ॥४५
नराश्वगोगजादीनां वाहनात्पातकी भवेत् ॥४६
कर्तुर्गोमहिषादीनां गर्दभोष्ट्रखरस्य च । न वाहयेद्दासदासीं वाहनेनास्ति दूषणम् ॥४७
बहुकालिकयज्ञे च यज्ञश्राद्धे तथैव च । ग्रामान्तरे न दोषः स्याद्दिव नद्यन्तरेऽपि च ॥४८
नित्यश्राद्धेऽप्यम्बुघटे यच्छ्राद्धं मासिकं भवेत् । तत्र गोमहिषादीनां वाहने नास्ति दूषणम् ॥४९
कुर्यादम्बुघटश्राद्धं न कालनियमं क्वचित् । न चान्ननियमं कुर्यादश्मपात्रं च वर्जयेत् ॥५०

चाहिए, चतुर्दशी में केवल उपवासहीन चतुर्दशी का अतिक्रमण कर सिनी वाली अमावस्या में (जिस अमावस्या में चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं) पारण करने से पूर्व चतुर्दशी में किये गये व्रत नष्ट हो जाते हैं।३८। भाद्रपद शुक्ल की ललिता सप्तमी, शक्रोत्थान वारुणी तिथियाँ तीनो संध्याओं में वर्तमान रहने पर भी परा (दूसरे दिन) भी पूजनीय होती है।३९। पूर्वदिन तीनों संध्याओं में व्याप्त रहने एवं नक्षत्र योग के प्राप्त होने पर दूसरे दिन यदि उसकी वृद्धि संभव हो तो पूर्व दिन की तिथि का ही ग्रहण होता है, और श्रवणनक्षत्र के प्रथमचरण में उसकी प्राप्ति होने से वही शुक्र (इन्द्र) पूजन में भी प्रशस्त बतायी गयी है।४०-४१। उसके अभाव में उत्तराषाढ़ा में और विशेषकर धनिष्ठा का ग्रहण किया जाता है। सूर्योदय में एक दण्ड उसका अर्धभाग एक पल अथवा उसका अर्धभाग भी जिस तिथि का प्राप्त हो, वही उदया तिथि (कर्मों के लिए) उत्तम मानी गयी है। शुक्ल-पक्ष की त्रिसंध्य व्यापिनी तिथि का त्याग करके दूसरे दिन की अष्टमी भी ग्रहण करनी चाहिए।४२-४३। रथयात्रा आदि में तिथ्यादिकों के विषय में सूर्य चक्र (सूर्योदय) प्राप्त तिथि का, जो तीनों संध्याओं में व्याप्त रहती हुई दूसरे दिन भी (कम से कम) एक पल अवश्य वर्तमान रहे, ग्रहण करना बताया गया है।४४। दूसरे दिन भी सर्वत्र हल चलाना स्थगित रखना चाहिए। उसी प्रकार शुक्ल एकादशी, अमावस्या, संक्रान्ति के दिन, और श्राद्ध के दिनों में मनुष्य को वाहन पालकी आदि यान (सवारी) पर अश्व, बैलगाड़ी, और हाथी आदि की सवारी करने से पातक भागी होना पड़ता है।४५-४६। बैल, भैंस आदि एवं गधे, उँट, तथा खच्चर की सवारी पर गृहस्वामी को (उन दिनों) चलना चाहिए और दास दासी को (उससे) चलने फिरने में कोई दोष नहीं होता है।४७। अधिक समय के अनुष्ठान यज्ञ तथा यज्ञ श्राद्ध में दूसरे गाँवों में दिन के समय जाने में कोई दोष नहीं होता है, उसी भाँति नदी तट की भूमि तक जाने में भी।४८। नित्य श्राद्ध, (श्राद्ध के निमित्त) घड़े में जल लेने के लिए, एवं मासिक श्राद्ध के अवसर पर बैल, भैंस की गाड़ी द्वारा आने-जाने में दोष नहीं होता है।४९। कुम्भ श्राद्ध करने में समय का नियम नहीं है, किन्तु पत्थर पात्र का त्याग आवश्यक है।५०।

तैजसैर्निर्मितं कुम्भमथवा वृक्षपत्रजन् । न योजयेन्मृण्मयं च शूद्राणां मृण्मये विधिः ।।५१
निवेदयेच्च मासान्ते मृण्मयं वृक्षमूलके । आस्फालयेत्परेणैव न वस्त्रं तु कथञ्चन ।।
पर्वश्राद्धे दैवलकं तथा रण्डाश्रमं त्यजेत् ।।५२
मातृपितृपरित्यागी तैलहव्यादिविक्रयी । चत्वारिंशदुत्सवानां साष्टानां च चरेद्यदि ।।५३
स्त्रिया विमुच्यते कश्चित्स तु रण्डाश्रमी मतः । अष्टचत्वारिंशदब्दं वयो यावन्न पूर्य्यते ।।५४
पुत्रभार्यावियुक्तस्य नास्ति यज्ञाधिकारिता ।।५५
यां तिथिं समनुप्राप्य समुदेति दिवाकरः । स्नानाध्ययनदानेषु सा तिथिः सकला स्मृता ।।५६
यथास्तं सविता याति कृष्णपक्षे तु सा तिथिः । पितृणां सकला ज्ञेया स्नानदानादिकर्मसु ।।५७
सप्तमी शुक्लपक्षे या यावदिच्छेच्च खण्डिता । आद्यभागे रवेः षष्ठ्यां परादौ याष्टमीयुता ।।
यद्यखण्डा भवेत्सैव तदा ज्ञेया भवात्मिका ।।५८
माघमासेन साप्येवं पूर्वेण रवितोषिणी । मन्वन्तरा परेणैव स्नानपानादिकर्मसु ।।५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
तिथिविधानवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

कुम्भ श्राद्ध में सुवर्ण अथवा वे वृक्ष पात्र के घर होने चाहिए मिट्टी के नहीं, क्योंकि मिट्टी के घड़े शूद्रों के विधान में बताये गये है ।५१। मास के अन्त में केवल उस मिट्टी के घड़े को किसी वृक्ष के मूल भाग में रखकर किसी दूसरे पुरुष द्वारा हटवा दे, वस्त्रों को नहीं । पार्वण-श्राद्ध में दैवलक (मन्दिर के पुजारी) और वेश्याओं के आश्रम का त्याग करना चाहिए ।५२। माता-पिता का परित्याग करने वाला, तेल, हव्य आदि का विक्रेता, तथा अड़तालिस उत्सवों का कर्ता और स्त्री द्वारा परित्यक्त पुरुष वेश्याओं के यहां रहता हो और अड़तालीस वर्ष की आयु की समाप्ति तक उसका वहाँ रहना यद्यपि अभीष्ट भी हो, एवं स्त्री पुत्र के वियोगी इन उपरोक्त व्यक्तियों को यज्ञाधिकार नहीं प्राप्त है । जिस तिथि-काल में भगवान् भास्कर उदय होते हैं, स्नान, अध्ययन, तथा दान के लिए वही उदया तिथि ग्रहण की जाती है । कृष्ण पक्ष की (श्राद्ध मूलक) जिन तिथियों में भास्कर अस्ताचल पहुँच जाते हों, पितरों के निमित्त स्नान-दान आदि कर्मों में उसी का ग्रहण करना बताया गया है ।५३-५७। शुक्ल-पक्ष की सप्तमी अधिक खण्डित क्यों न हो, षष्ठी युक्त उसके प्रथम भाग में तथा दूसरे दिन अष्टमी संयुक्त होने पर उसके पूर्व भाग में सूर्य की अर्चा आदि करनी चाहिए यदि वह (सप्तमी) खण्डित न हो तो उसे अत्यन्त प्रशस्त और भवात्मिका जाननी चाहिए । माघ में भी इसी प्रकार की सप्तमी सूर्य को सन्तुष्ट करने वाली बतायी गयी है, और मन्वन्तरों के स्नान पान आदि कर्मों के लिए दूसरे दिन वाली प्रशस्त कही गयी है ।५८-५९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में तिथिविधान वर्णन नामक
सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अथाष्टमोऽध्यायः

उत्तमतिथिनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता । प्रतिपादिता परे पूर्वे प्रतिपाद्य नवोद्यते ।।१
कार्तिकाश्वयुजोश्चैत्रे माघे चापि विशेषतः । स्नानं दानं दशगुणं शिवविष्णोश्च पूजनम् ।।२
अग्निमिष्ट्वा च कृत्वा च प्रतिपद्यामिति स्मृतम् । हविषा सर्वधान्यानि प्राप्नुयादीप्सितं धनम् ।।३
बृहस्पतौ द्वितीयायां शुक्लायां विधिपूजनम् । कृत्वा नक्तं समश्नीयाल्लभते भूतिमीप्सिताम् ।।४
मिथुने कर्कटे चैव गोविप्रदमनान्तरम् । द्वितीया यातु विप्रेन्द्रास्तामुपोष्य हरिं यजेत् ।।
यामुपोष्य न वैधव्यं प्रयाति स्त्री न संशयः ।।५
अमूल्यशयनं मासं दम्पती प्रतिपूजयेत् । वासोभिर्गन्धपुष्पैश्च नानाभक्ष्यैः पृथग्विधैः ।।६
वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च । गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।७
स्वातियुक्ततृतीयायां वैशाखे तु विशेषतः । माघे तु रोहिणीयुक्ता वृषे चाश्वयुजे तथा ।।८
तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तदक्षयमुदाहृतम् । विशेषतो हविष्यान्नं मोदकादिसमायुतम् ।।९
तोयदानं विशेषेण प्रशंसन्तिमनीषिणः । गुडकर्पूरसंयुक्तं ब्रह्मलोके महीयते ।।१०

अध्याय ८

उत्तम तिथियों के निर्णय का वर्णन

सूत बोले—ब्रह्मा ने जिस कारण तिथियों को उत्तम बताया है, और उनके पूर्व पर के निर्णय को भी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कार्तिक, आश्विन, चैत्र, विशेषकर माघ-मास में स्नान-दान शिव और विष्णु के पूजन करने से दशगुने (अधिक) पुण्य की प्राप्ति होती है ।१-२। प्रतिपदा में अग्नि होत्र, हव्य द्वारा हवन आदि जिसका करना इसमें प्रशस्त बताया गया है, सभी प्रकार के धान्य और मनोनीत धन की प्राप्ति होती है ।३। शुक्ल-पक्ष में बृहस्पति के दिन प्राप्त द्वितीया तिथि में ब्रह्म-पूजन और नक्त व्रत करने से मनोवांछित ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।४। विप्रेन्द्र ! मिथुन और कर्क राशि में सूर्य की स्थिति के समय और गो ब्राह्मण के दमन के उपरांत जो द्वितीया तिथि प्राप्त होती है, उसमें उपवास रहकर विष्णु का पूजन करना चाहिए । और उसी में उपवास रहने पर स्त्री कभी विधवा नहीं होती है, इसमें संदेह नहीं ।५। भगवान् विष्णु का यह शयन मास चौमासा (चर्तुमास) अत्यन्त अमूल्य है, दम्पती (स्त्री पुरुष को एक साथ) चाहिए कि वस्त्र, गन्ध, पुष्प और भाँति-भाँति के अनेक भक्ष्य पदार्थ द्वारा उसकी पूजा करें ।६। उसी वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन गंगाजल में स्नान करने से मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ।७। विशेषकर स्वाती नक्षत्र युक्त होने पर उस तृतीया का अत्यन्त महत्व है । उसी प्रकार माघ, वृष (ज्येष्ठ) और आश्विन मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त तृतीया का भी महत्त्व बताया गया है, उसमें जो कुछ दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं, विशेषकर खीर और मगद (लड्डू) समेत देना चाहिए ।८-९। मनीषियों ने उसमें तपोदान की अधिक प्रशंसा की है, उसमें गुड़ और कपूर समेत प्रदान करने से वह ब्रह्म लोक में सम्मानित

बुधश्रवणसंयुक्ता तृतीया यदि लभ्यते । तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षयं परिकीर्तितम् ॥११
चतुर्थीभरणीयोगे भवेच्चरदिनं यदा । तदाभ्यर्च्य यमं देवं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥१२
शिवा शान्ता सुखा चैव चतुर्थी त्रिविधास्मृता । सापि भाद्रपदे शुक्ला शिवलोके सुपूजिता ॥१३
कार्तिके तु भवेच्छाया तथा माघे तु कीर्त्यते । तस्यां स्नानं तपो दानमुपवासो जपस्तथा ॥
भवेत्सहस्रगुणितं श्राद्धं भवति चाक्षयम् ॥१४
गणेशे कारयेत्पूजां मोदकादिभिरादरात् । चतुर्थ्यां विघ्ननाशाय सर्वकामप्रसिद्धये ॥१५
श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे विशेषतः । पूजयेद्दधिदुग्धाद्यैः सिन्दूरैरपि भक्तितः ॥१६
तेषां कुले प्रयच्छन्ति अभयं प्राणरक्षणम् ॥१७
द्वादश्योभयलेख्ये च गोमयेन विशेषतः । पूजयेद्दधिदुग्धाद्यैः सिन्दूरैरपि भक्तितः ॥१८
सुप्ते जनार्दने कृष्णपञ्चम्यां भवनाङ्गणे । पूजयेन्मनसा देवीं वामां स्नुहीति संश्रयाम् ॥१९
पिचुमन्दस्य पत्राणि स्थापयेद्भवनोदरे । पूजयित्वा नरो देवीं न सर्पभयमाप्नुयात् ॥२०
ये यं भाद्रपदे षष्ठी षष्ठी च द्विजसत्तम । स्नानदानादिकं तस्यां सर्वमक्षयमुच्यते ॥२१
षष्ट्यां फलाशनो विप्रा विशेषान् माघकार्तिके । इह चामुत्र मुख्यां च लभते ख्यातिमुत्तमाम् ॥२२
शुक्ले पक्षे च सप्तम्यां यदा सङ्क्रमते रविः । महाजया तदा स्याद्वै सप्तमी भास्करप्रिया ॥२३

होता है।१०। बुधवार के दिन श्रवण नक्षत्र युक्त तृतीया तिथि के प्राप्त होने पर उसमें स्नान और उपवास आदि करने से वह अक्षय होता है।११। भरणी नक्षत्र युक्त चतुर्थी शनिवार के दिन प्राप्त होने से उसमें यमदेव की पूजा करने वाला समस्त पातकों से मुक्त होता है।१२। शिवा, शांता और सुखा नामक भेद से चतुर्थी तीन प्रकार की बतायी गयी है, वह भी भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी होने से शिवलोक में सविधि पूजी जाती है।१३। कार्तिक तथा माघ मास की छाया नामक चतुर्थी के दिन स्नान, तप, दान, उपवास, एवं जप करने से सहस्र गुने (अधिक) फल की प्राप्ति होती है। तथा उसमें किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करता है।१४। अपनी सभी कामनाओं की निर्विघ्न पूर्ति के लिए (माया) चतुर्थी के दिन मोदक (लड्डू) आदि द्वारा गणेश देव की आराधना सादर सम्पन्न करनी चाहिए।१५। श्रावण मास में विशेषकर शुक्लपक्ष की चतुर्थी के दिन नवसंख्या के नागों का गंधमिश्रित जल से और सुगन्धित पदार्थों के संमिश्रण पूर्वक स्नान कराने से वे (नागगण) उस (व्यक्ति) के कुल में अभय दान एवं प्राण रक्षा प्रदान करते हैं।१६-१७। द्वादशी के दिन दोनों देवों की विशेषकर गोमय (गोबर) की प्रतिमा बनाकर दधि, दूध, आदि पदार्थों और भक्तिपूर्वक सिन्दूर से पूजा करनी चाहिए।१८। जनार्दन भगवान् के शयन काल में कृष्णपक्ष की पञ्चमी के दिन अपने गृहांगण में सौन्दर्यपूर्ण देवी का मनोनुकूल पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए।१९। अपने भवन के आंगन प्रदेश में नीम की पत्ती के आसन पर देवी की पूजा करने से सर्पों का भय नहीं रहता है।२०। द्विजसत्तम ! भाद्रपद (भादों) मास की षष्ठी के दिन केवल फलाहार करने से लोक एवं परलोक की उत्तम ख्याति प्राप्ति होती है।२२। शुक्लपक्ष के सप्तमी के दिन सूर्य की संक्रान्ति प्राप्त होने से उसकी 'महाजया' संज्ञा होती है, तथा भास्कर के लिए वही

अपराजिता तु भाद्रस्य महापातकनाशिनी । ललिता केवला ज्ञेया पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ।।२४
शुक्ला वा यदि वा कृष्णा षष्ठी वा सप्तमी तु वा । रविवारेण संयुक्ता तिथिः पुण्यतमा स्मृता ।।२५
आश्विनस्य सिताष्टम्यामष्टादशभुजां यजेत् । कार्त्तिके शुक्लपक्षे वा महाविभवविस्तरैः ।।२६
आषाढ़े श्रावणे मासि शुक्लाष्टम्यां च चंडिकाम् । प्रातः स्नात्वार्चयेद्भक्त्या रात्रौ संस्नापयेद्द्विजाः ।।२७
चैत्रमासि सिताष्टम्यामशोककुसुमैर्द्विजाः । अर्चयेन्मृण्मयीं देवीमशोकार्थं च सर्वदा ।।२८
सत्यष्टम्यमुहूर्ते वा रोहिणीसहिताष्टमी । श्रावणे मासि सिंहार्के क्वचित्सापि च शस्यते ।।२९
एकादशीनां कोटीनां व्रतैश्च लभते फलम् । अतो दशगुणं प्रोक्तं कृत्वैतत्फलमाप्नुयात् ।।३०
अशक्तोऽन्यक्रियां कर्तुमुपवासं तु केवलम् । कृत्वा विमुच्यते पापात्सप्तकृत्यकृतां वरः ।।३१
न कालनियमस्तत्र न वारनियमः क्वचित् । नापि नक्षत्रदोषोऽस्ति वारदोषो न गण्यते ।।३२
त्रिकालं पूजयेद्देवं दिवा रात्रौ विशेषतः । अर्धरात्रे विशेषेण पुष्पैर्नानाविधैरपि ।।३३
दिवातिथेरलाभे तु न कुर्याद्विधिवद्व्रतम् । रात्रिस्पर्शे यदि परं रजन्यामपि चाष्टमी ।।३४
सप्तमी सार्धयामं च रोहिणी वा न संस्पृशेत् । व्रती सङ्कल्पयेत्तत्र न च रात्रौ कदाचन ।।३५

अत्यन्त प्रिय भी है ।२३। भाद्रपद मास की अपराजिता नामक तिथि महान् पातकों का नाश करती है, और ललिता नामक तिथि केवल पुत्र पौत्र की वृद्धि ।२४। कृष्णपक्ष अथवा शुक्लपक्ष की षष्ठी या सप्तमी तिथि के दिन रविवार प्राप्त हो, तो वह अत्यन्त पुण्यस्वरूप कहलाती है ।२५। आश्विन मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी में महान् ऐश्वर्य के विस्तृत संभार से भगवती अष्टभुजा देवी की उपासना करनी चाहिए, उसी प्रकार कार्तिक मास के शुक्ल सप्तमी में भी ।२६। द्विजगण ! आषाढ और श्रावण मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन भगवती चन्द्रिका देवी की स्नान पूजा प्रात: काल स्नान करके भक्ति पूर्वक करनी चाहिए ।२७। द्विजवृन्द ! चैत्रमास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन देवी की मिट्टी की मूर्ति की आराधना अशोक पुष्पों द्वारा सदैव चिन्ताहीन होने के लिए करनी चाहिए । श्रावण मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी का आठवाँ मूहूर्त, जब कि सूर्य सिंह राशि पर स्थित हो, तथा अष्टमी भी प्राय: प्रशस्त बतायी गयी है ।२८-२९। कोटि एकादशी व्रतविधानों द्वारा जितने फल प्राप्त होते है, उससे दश गुने अधिक पुण्य फल इसके सविधान समाप्तिं द्वारा प्राप्त होते हैं ।३०। अन्य क्रियाओं के करने पर अशक्त होने पर भी केवल उपवास द्वारा ही उसे समस्त पापों से मुक्ति और सात कृत्यों के करने वालों में श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है ।३१। उस पूजन में समय का कोई नियम नहीं है, दिन का भी नियम कहीं बताया नहीं गया है, और नक्षत्र-दोष एवं वार-दोष भी उसमें अकिञ्चित् कर (नगण्य की भाँति) हैं ।३२। तीनों कालों में देव पूजा में विशेषकर दिन, रात और निशीथ (अर्धरात्र) का समय प्रशस्त बताया गया है, उसी में भाँति-भाँति के पुष्पों द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए ।३३। दिन में उस तिथि के अलाभ में विधान पूर्वक व्रत का पालन न करना चाहिए, सायंकाल से आरम्भ होकर रात्रि के पिछले भाग में भी अष्टमी वर्तमान रहे और उसके डेढ़ पहर में रोहिणी नक्षत्र का स्पर्श भी न हो, तो उसी सप्तमी के दिन में ही उस व्रती को संकल्प आदि करना चाहिए, उसकी रात में कभी नहीं ।३४-३५। उसकी कुछ मात्रा की

प्रागारम्भं प्रकुर्वीत अधिमात्राधिके व्रती । विश्वनाथादिदेवानां दर्शनं प्राग्विवर्जयेत् ।।३६
यत्र तत्रोपवासी स्याद्यामाष्टकव्रतं चरेत् । यामार्धं तत्परं यामे पारणं विचरेद्व्रती ।।३७
तत्परे चाऽन्नजन्यं वा न कुर्यात्पारणं गृही　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　।।३८
नक्षत्रयोगे ग्रहणे पूजयेत्परमेश्वरम् । जपहोमादिकं कुर्याद्गृही नोपवसेत्क्वचित् ।।३९
दिवाष्टम्यां मुहूर्ते वा प्राजापत्येन संयुतम् । तथापि च दिवाकृत्यं समाप्य च व्रतं चरेत् ।।४०
मुहूर्तांते च मासान्ते अष्टम्यामपि रोहिणी । उपवासे च यो दोषः पूजाहोमः प्रशस्यते ।।४१
नवम्यां च सदा पूज्याः प्रतिमासेऽयुतं द्विजाः । गृह्णीयान्नियमं चैव यथा कर्म फलप्रदम् ।।४२
कार्तिकस्य तु मासस्य दशमी शुक्लपक्षिका । तस्यां युक्ताशना विप्रा ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ।।४३
दशमी ज्येष्ठमासस्य सा देदृशहरा स्मृता । आश्विनस्य महापुण्या कार्तिके विजया स्मृता ।।४४
एकादशी व्रतपरा सर्वपापप्रणाशिनी । सर्वपापविनिर्मुक्ता यथा कुर्वन्ति मानवाः ।।४५
दशम्यामेकभक्तस्तु संयतः स्याज्जितेन्द्रियः । एकादश्यामुपोष्याथ द्वादश्यां पारणं चरेत् ।।४६
द्वादश द्वादशोर्हन्ति तस्मात्तथाचरेद्बुधः । पूर्वेद्युरेकादशी पूर्णा परेऽहनि च वर्धते ।।४७
न वर्धते द्वादशी तु तदा त्वेवं व्यवस्थितिः । वनवासी परां कुर्यात्पूर्वां कुर्याद्गृहाश्रमी ।।४८

अधिकता में व्रती को पहले ही आरम्भ कर देना चाहिए, किन्तु उसमें विश्वनाथ आदि देवों के दर्शन का निषेध किया गया है ।३६। उपवास तो जिस किसी समय किया जा सकता है पर, आठ प्रहर के समय में ही व्रतविधान करना बताया गया है, और उसके आधे प्रहर के व्यतीत होने पर उसके दूसरे प्रहर में उसे पारण करना कहा गया है ।३७। गृहस्थों को उसमें अन्नपारण करना निषेध किया गया है । नक्षत्र के योग के समय ग्रहण उपस्थित होने पर परमेश्वर की पूजा, तथा जप हवनादि कार्य करना चाहिए, किन्तु, गृहस्थों को उस समयउपवास करना नहीं कहा गया है ।३८-३९। दिवस के आठवें मुहूर्त में प्राजापत्य के संयुक्त होने पर भी दिन के कृत्य समाप्त करके ही व्रत-विधान करना चाहिए ।४०। मास के अन्त और मुहूर्त के अन्त में रोहिणी युक्त अष्टमी के प्राप्त होने पर उसमें उपवास से जो दोष उत्पन्न होता है, वह उस समय के पूजन, एवं हवन द्वारा शांत हो जाता है । द्विजवृन्द ! प्रत्येक मास की नवमी के दिन सदैव दश सहस्र संख्या के जप पूर्वक पूजा करनी चाहिए, उसमें नियम पालन परमावश्यक होता है, क्योंकि वे भी कर्मों की भाँति फल प्रदायक होते हैं ।४१-४२। विप्रगण ! कार्तिक मास के शुक्ल-पक्ष की दशमी में उससे युक्त होकर भोजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।४३। ज्येष्ठ मास की दशमी को दशहरा, आश्विन मास की दशमी महापुण्या, और कार्तिक मास में उसका विजया नाम बताया गया है ।४४। समस्त पापों के नाश करने वाली एकादशी होती है, उसके व्रत विधान द्वारा मनुष्य सभी पापों से किस प्रकार मुक्त होते हैं मैं बता रहा हूँ ! संयत रहकर इन्द्रिय संयम पूर्वक दशमी के दिन एक बार भोजन करके एकादशी के दिन व्रत पालन सुसम्पन्न करने के उपरांत द्वादशी में पारण करना चाहिए । क्योंकि द्वादशी बारह दोषों का नाश करती है, अतः बुद्धिमान् को वैसा करना आवश्यक होता है एकादशी पहले दिन पूर्ण रूप में रहती हुई भी दूसरे दिन (पला आदि के रूप में) कुछ बढ़ जाती है, उस समय यदि द्वादशी की वृद्धि न संभव दिखाई दे, तभी के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी है । और बनवासी (विरक्तों) को परा (दूसरे दिन वाली) तथा गृहस्थों को पहले दिन वाली एकादशी के व्रत-पालन करना बताया गया है ।४५-४८।

पूर्वैवैकादशी त्याज्या वर्धते चेत्तिथिद्वयम् । एकादशी द्वादशी तु तदोपोष्या परा तिथिः ॥४९
यदा तु पारणायोग्या द्वादशी नोपतिष्ठते । तदा पूर्वैव सङ्ग्राह्या त्याज्या वृद्धा परेऽहनि ॥५०
एकादशी कलायुक्ता सकला द्वादशी यदि । तत्र क्रतुसमं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥५१
एकादशी द्वादशी च परेऽहनि न लभ्यते । नोपोष्या सा महादोषा पुत्रपौत्रधनक्षयात् ॥५२
एकादशी दशाविद्धा द्वादश्यां लिप्तिका यदा । द्वादशी पारणायोग्या वर्धते चापरेऽहनि ॥
तदा दिनद्वये त्याज्या पारणं च नियोगतः ॥५३
षोडशीग्रहणं दृष्ट्वा द्वादशी लुप्तपारणा । चण्डातिथौ व्रतं चैव हन्ति पुण्यं पुरा कृतम् ॥५४
त्रयोदश्यां यद्विहितं पारणं न तु पुण्यदम् । गृहाश्रमी न कुर्याद्वा दशमीद्वादशीक्षयात् ॥५५
यदि रुद्रा दशमिश्रा परेऽह्निरविसङ्क्रमः । तथापि सम्परित्यज्य द्वादश्यां समुपावसेत् ॥५६
वज्रालोकनमात्रं तु दशमी संविशेद्यदि । एकादशी न भोक्तव्या परा ह्येकादशी तदा ॥५७
तदा चेद्दशमीविद्धा समुपोष्या न दूषणम् ॥५८
द्वादश्यामुपवासं तु यः करोति नरोत्तमः । स याति परमं स्थानं यत्र विष्णुरनामयः ॥५९
उपोष्य दशमीमिश्रां मोहादेकादशीं नरः । निरयं याति स प्रेत्य धर्मसन्ततिसंक्षयात् ॥६०

यदि दोनों (एकादशी और द्वादशी) तिथि की वृद्धि संभव है, तो पूर्व की एकादशी के त्यागपूर्वक दूसरे दिन द्वादशी में एकादशी का व्रतपालन करना चाहिए ।४९। पारण करने के लिए द्वादशी संभव न हो सके, तो उस समय पूर्व दिन की एकादशी में ही व्रत-पालन करना चाहिए, दूसरे दिन की वृद्धियुक्त में नहीं ।५०। जिस दिन एकादशी एक कला मात्र रहे और सम्पूर्ण समय द्वादशी उपस्थित हो, तो वह द्वादशी व्रत यज्ञ की भाँति फलदायक होती है , उसमें त्रयोदशी में पारण करना चाहिए ।५१। एकादशी तथा द्वादशी इन दोनों तिथियों की कुछ भी वृद्धि दूसरे दिन संभव न हो, तो उसमें व्रत न रहे, क्योंकि वह महान् दोष पूर्ण एवं पुत्र पौत्र तथा धन के नाश करने वाली होती है ।५२। एकादशी, दशमी विद्धा (युक्त) होकर भी द्वादशी में अन्तर्हित हो गयी हो, और पारण के योग्य होती हुई भी द्वादशी की वृद्धि दूसरे दिन संभव हो तो उन दोनों दिनों के त्याग करके नियोग द्वारा पारण कर लेना चाहिए ।५३। सोलह कलापूर्ण ग्रहण दर्शन, पारण लुप्त होने वाली द्वादशी, और चण्डा तिथि में व्रत पालन के पूर्व किये हुए पुण्यों का नाश करते हैं ।५४। त्रयोदशी में किया गया पारण, पुण्यदायक नहीं होता है, गृहस्थों को दशमी और द्वादशी के क्षय होने पर भी उसमें पारण न करना चाहिए ।५५। दशमी विद्धा (युक्त) एकादशी के दिन यदि सूर्य की संक्रान्ति भी उसी दिन हो तो भी उसका त्याग करके द्वादशी में ही उपवास रहना चाहिए ।५६। दशमी का उतना भी समय, जितने समय में विद्युत् दर्शन होता है, यदि एकादशी में सम्मिलित हो जाये, तो उस दिन की एकादशी के त्याग पूर्वक दूसरे दिन की (द्वादशी) की एकादशी में व्रत पालन करना चाहिए ।५७। किन्तु, दशमी विद्धा एकादशी का भी यदि उसी दिन (अर्थात् दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व ही) समाप्ति होती हो, तो उस समय दशमी विद्धा ही एकादशी के व्रतपालन में कोई दोष नहीं बताया गया है ।५८। द्वादशी में उपवास करने वाले व्यक्ति की उत्तम श्रेणी में गणना होती है, उन्हें विष्णु के शाश्वत (नित्य) स्थान की भी प्राप्ति होती है ।५९। मोहवश मनुष्य यदि दशमी युक्त एकादशी में व्रत पालन करता है तो उसे मरणानन्तर नरक की प्राप्ति और उससे धर्म परम्परा नष्ट हो जाती

रविवारे शुक्रवारे सङ्क्रान्त्यां तु दिनक्षये । उपवासं प्रकुर्वीत पारणं तु विवर्जयेत् ।।६१
शुक्लां वा यदि वा कृष्णां पूर्वसङ्कल्पितामपि । एकादशीं सदा कुर्यान्न वै कृष्णोत्तरां क्वचित् ।।६२
नक्तेन वर्तयेत्कृष्णामिति शास्त्रविनिश्चयः । मासे चैकादशी यत्र लभ्यते शुक्लपक्षके ।।
तत्र कुर्यात्कृष्णपक्षे परा तिथिर्न गृह्यते ।।६३
श्रावणी द्वादशी शुक्ला चान्द्रभद्रे यदा हरौ । तत्रोपोष्य हृषीकेशं पूजयेद्विधिवन्नरः ।।६४
श्रावणे चाश्विने चैव लभ्यते द्वादशीदिने । श्रवणेन समायुक्ता महती सा प्रकीर्तिता ।।६५
पुष्येण द्वादशीयुक्ता फाल्गुने विजया स्मृता । कार्तिके चेत्परित्याज्या माघे तु नारकी भवेत् ।।६६
या भाद्रे विजया प्रोक्ता श्रवणेन समायुता । विशेषः कथ्यते तत्र यथावद्व्रतमाचरेत् ।।६७
एकादश्यामुत्तरतो द्वादशी च दिवान्विता । निशि पूर्णा द्वादशी च श्रवणेनापि संयुता ।।६८
सफला द्वादशी ज्ञेया उपोष्यैषा महाफला ।।६९
द्वादश्यां विष्णुविद्धायां वासुदेवं प्रपूजयेत् । कृष्णायां तु व्रतं कुर्याद्बहुदुःखं समाचरेत् ।।७०
द्वादशी कामविद्धा चेन्मन्यते नाप्युपोषणम् । हन्यात्पुराकृतं पुण्यं त्रयोदश्यामुपोषणम् ।।७१
प्रहरे प्रहरे स्नानं शर्वर्यां च विधीयते । पूजनं चाग्निकार्यं च षट्सु कार्यं व्रती चरेत् ।।७२
एकादशीं द्वादशीं च प्राप्नोति श्रवणे यदि । एकादश्यामुपोष्याथ द्वादश्यामप्युपावसेत् ।।७३

हैं ।६०। रविवार, और शुक्रवार के दिन संक्रान्ति, और प्राप्त दिनक्षय में केवल उपवास करना बताया गया है, धारण नहीं ।६१। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की एकादशी अनुष्ठान के लिए यदि पहले संकल्प भी करा दिया गया हो, तो भी कृष्ण पक्ष की ही एकादशी में व्रत पालन करना चाहिए, शुक्ल की कभी नहीं ।६२। क्योंकि शास्त्र ने भी 'नक्तेन वर्तयेत्कृष्णामिति' (नक्त के समेत कृष्ण पक्ष की एकादशी का ही ग्रहण करना चाहिए) ऐसा निश्चय किया है । जिस किसी मास में शुक्ल की एकादशी की प्राप्ति में भी कृष्ण पक्ष वाली का ही ग्रहण करना चाहिए, उसमें परा (दूसरे दिन की) तिथि का ग्रहण नहीं किया जाता है ।६३। श्रावण मास की शुक्ल द्वादशी के दिन भद्रा समेत चंद्र दर्शन हो तो हरिशयन काल के होते हुए भी उस दिन 'हृषीकेश' नामक भगवान् की सविधान पूजा मनुष्य को करनी चाहिए ।६४। श्रावण अथवा आश्विन मास की द्वादशी के दिन यदि श्रवण नक्षत्र प्राप्त हो जाये, तो उसका अत्यधिक महत्त्व बताया गया है ।६५। फाल्गुन मास की द्वादशी के दिन पुष्य नक्षत्र के योग होने से उसको विजया नामक कहा गया है । तथा कार्तिक में वह त्याज्य हैं एवं माघ में भी उसके पालन से नारकी होना बताया गया है ।६६। भाद्रपद मास में श्रवण नक्षत्र संयुक्त होने पर जिसे विजया कहा गया है, उसी में व्रत विधान करना चाहिए उसकी महत्ता बता रहा हूँ ।६७। एकादशी के दिन द्वादशी समस्त दिन रात रहे और उससे श्रवण नक्षत्र का भी संयोग हो, तो उसे फल दायक जानना चाहिए, उसमें उपवास करने से महान् फलों की प्राप्ति होती है ।६८-६९। एकादशी संयुक्त द्वादशी में भगवान् वासुदेव की पूजा करनी चाहिए, व्रत नहीं, क्योंकि व्रत रहने से अत्यन्त दुःख के भागी होना पड़ता है, व्रत केवल कृष्ण पक्ष में ही करना बताया गया है ।७०। कामविद्धा होने पर द्वादशी में उपवास न रहना चाहिए, और त्रयोदशी में भी उपवास रहने से पूर्वकाल की संचित पुण्य प्रथा नष्ट हो जाती है ।७१। व्रत रहने वाले को रात के प्रत्येक प्रहर में स्नान पूजन और हवन इस प्रकार ये कार्य करना चाहिए ।७२। श्रवण नक्षत्र के दिन एकादशी तथा द्वादशी के प्राप्त होने पर प्रायः एकादशी में ही व्रत उपवास करना चाहिए, किन्तु कहीं द्वादशी में भी करना बताया गया है ।७३। द्वादशी के अभाव में

पारणं तु त्रयोदश्यां द्वादशी चेन्न लभ्यते । आमिषान्नं न भुञ्जीत हविष्यान्नेन पारणम् ।।७४
यदा तु पारणायोग्या लभ्यते द्वादशी तदा । तस्यां नातिक्रमो युक्तस्तदभावे त्रयोदशी ।।७५
एकादशी द्वादशी च श्रवणर्क्षेण संयुता । विष्णुशृङ्खलको नाम बुधवारे विशिष्यते ।।७६
दशम्यां संयतो भूत्वा प्रातरेकादशीदिने । कृत्वा तु सङ्गमे स्नानं प्रहरे प्रहरे द्विजाः ।।७७
अनेन विधिना कृत्वा विजयायां व्रतोत्तमम् । सर्वपापं क्षयं नीत्वा विष्णुलोके वसेन्नरः ।।७८
चतुर्युगानां दिव्यानां यावत्स्याद्विष्णुरूपधृक् । तावदेव हि सर्वत्र सार्वभौमो भवेन्नरः ।।७९
त्रेतायां दश जन्मानि मध्यदेशेषु भो द्विजाः । ततश्च भारते वर्षे वेदवेदान्तसारवित् ।।
पुत्रपौत्रधनैर्युक्तो लक्षदो नृपसन्निभः ।।८०
जायते दश जन्मानि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तमः । सपत्नीकश्च दीर्घायुर्धर्मकर्मसु पूजितः ।।८१
भाद्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां पृथिवीपतिम् । शत्रुमुत्थापयेत्प्राह्णे शुभलग्ने शुभक्षणे ।।८२
शल्यशाल्मलिकस्यापि सप्तपर्णीयकस्य च । एषामन्यतमं वृक्षं चम्पकस्यार्जुनस्य वा ।।८३
बृहत्कदम्बवृक्षस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः । द्वात्रिंशदङ्गुलैर्वापि मानद्वयमथापि वा ।।
त्रिव्यायामं च प्रथमं द्वाविंशहस्तमेव वा ।।८४
हस्तः षोडशवारस्य गृहस्थस्य विशिष्यते । हस्तत्रयेण विप्रस्य द्वादश क्षत्रियस्य तु ।।८५
अष्टहस्तं तु वैश्यस्य शूद्रस्य पञ्चहस्तकम् । अभ्रतः श्वेतच्छत्रं स्यात्पताका च पुरे पुरे ।।८६

त्रयोदशी में हविष्यान्न का पारण करना चाहिए, आमिषान्न का कभी नहीं ।७४। पारण के योग्य द्वादशी की प्राप्ति में उसका त्याग कभी न करना चाहिए, उसके अभाव काल में ही त्रयोदशी का ग्रहण करना कहा गया है ।७५। श्रवण नक्षत्र युक्त होने पर एकादशी अथवा द्वादशी बुधवार में प्राप्त हो, तो उसका विष्णु विशृङ्खला' नाम होता है, तथा उसकी महत्ता भी बढ़ जाती है ।७६। द्विजवृन्द ! उसमें व्रत पालन के लिए यह विधान दशमी में संयम पूर्वक रहकर एकादशी के दिन प्रत्येक प्रहर में नदी के संगम स्थान में स्नान करना बताया गया है ।७७। इस विधान द्वारा विजया (एकादशी) के उत्तम व्रत पालन द्वारा मनुष्य समस्त पापों के संक्षय पूर्वक विष्णु लोक की प्राप्ति करता है ।७८। पश्चात् चारों युगों के दिव्य वर्षपर्यन्त विष्णुरूप धारण कर वह मनुष्य सर्वत्र सार्वभौम होकर रहता है ।७९। द्विजगण ! त्रेतायुग में मध्य देशों में दश जन्म ग्रहण करने के उपरांत भारत वर्ष में वेद वेदान्त के तत्त्वनिष्णात होकर पुत्र-पौत्र एवं धन युक्त राजाओं की भाँति सम्मान पूर्वक लाखों का दानी होता है ।८०। त्रेता युग में दश जन्मों तक उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर पत्नी समेत दीर्घायु एवं धर्म कर्म में पूजनीय होता है ।८१। भाद्रपद की शुक्ल द्वादशी के दिन पूर्वाह्न के समय किसी शुभ लग्न में जिसमें शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो, पृथिवीपति शत्रु को उभाड़ देना चाहिए ।८२। शल्य, सेमर, सप्तपर्ण, चम्पा, अर्जुन एवं विशाल कदम्ब, इनमें किसी वृक्ष के बयालिस या बत्तीस अंगुल के दण्ड, अथवा तीन व्यायाम के तुल्य या बीस हाथ के दण्ड में शुभ बादलों की भाँति के छत्र लगाये, षोडशवार गृहस्थों के लिए विशेषकर हस्तमात्र, विप्र के लिए तीन हाथ, क्षत्रिय के लिए बारह, वैश्य के लिए आठ, और शूद्र के लिए पाँच हांथ के छत्र दंड होने चाहिए। प्रत्येक गाँवों में श्वेतच्छत्र के समेत पताका के आरोपण करके

अथ वक्ष्यामि चैत्रादिमासे तु पूर्णिमा यथा । चित्रानक्षत्रसंयुक्तो गुरुपूर्णो विधुर्यदि ।।
महाचैत्रीति सा ज्ञेया पूर्णिमाक्षयपुण्यदा ।।११६
विशाखादिषु भेदेषु पूर्णचन्द्रो गुरुश्चरेत् । महावैशाखिकाद्यास्तु पूर्णिमा द्वादश स्मृताः ।।११७
महाज्यैष्ठी विशेषोऽयं प्राजापत्ये यथा रविः । गुरुपूर्णचन्द्रो ज्येष्ठायां महाज्यैष्ठीति सा स्मृता ।।११८
विनापि गुरुणा चन्द्रः कृत्तिका पूर्णिमा तथा । तथा महाकार्त्तिकी सा तिथिः पुण्यतमा भवेत् ।।११९
रोहिण्यां तु स्थितश्चन्द्रः पौर्णमास्यां तु कार्तिके । महाकार्त्तिकी तथापि स्यात् स्वर्गलोकेऽपि दुर्लभा ।।१२०
चित्रा वा यदि वा पूर्णा यदा स्यात्पूर्णिमातिथिः । महाचैत्री तथापि स्यादश्वमेधफलप्रदा ।।१२१
रविणा कृत्तिकायोगाद्रविवारे च पूर्णिमा । महाचैत्री तथापि स्याद्दत्तस्याक्षयकारिका ।।१२२
एवं गुरौ गुरोर्योगे महाचैत्री प्रकीर्तिता । तत्र स्नानं च दानं च जपो नियम एव च ।।१२३
सर्वमक्षयतां याति फलं चैवाश्वमेधिकम् । पितरस्तर्पिता यान्ति वैष्णवं लोकमक्षयम् ।।१२४
भरण्यां कार्त्तिके मासि यदि स्यात्पूर्णिमा तिथिः । गङ्गाद्वारे तु महती वैशाखी पुण्यदा स्मृता ।।१२५
शालग्रामे महाचैत्री कृतपुण्या महातिथिः । गंगाद्वारे तु महती वैशाखी पुण्यदा स्मृता ।।१२६

शिव का स्नान, पूजन और विधान पूर्वक हवन की समाप्ति करनी चाहिए । इसके उपरान्त चैत्र आदि मासों की पूर्णिमा की व्याख्या बता रहा हूँ ! चित्रा नक्षत्र समेत पूर्ण बृहस्पति के साथ चन्द्रमा के योग उस दिन (पूर्णिमा में) प्राप्त हों, तो उस पूर्णिमा को महाचैत्री कहा गया है, और वह अक्षय पुण्य प्रदान करती है ।११५-११६। इसी भाँति (वैशाख) में विशाखा आदि नक्षत्र में भेदों समेत पूर्ण चन्द्र के साथ बृहस्पति का योग प्राप्त हो तो वह महावैशाखी पूर्णिमा कही जाती है । इसी प्रकार बारहों पूर्णिमाओं को जानना चाहिए ।११७। प्राजापत्य में सूर्य की भाँति महाज्यैष्ठी की भी यही विशेषता है कि, उस दिन गुरु युक्त पूर्ण चन्द्र उपस्थित हों, तो उसे महाज्यैष्ठी पूर्णिमा कही जाती है ।११८। (कार्तिक मास में) बृहस्पति के बिना ही पूर्ण चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र समेत उस दिन उपस्थित हो जाय, तो उस पुण्यतमा तिथि को महा-कार्तिकी कहा गया है ।११९। कार्तिक पूर्णिमा के दिन रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा स्थित हों तो भी उसे महाकार्तिकी कहा जाता है और उसकी प्राप्ति स्वर्गलोक में दुर्लभ बतायी जाती है ।१२०। चित्रा नक्षत्र समेत पूर्णिमा हो अथवा केवल पूर्णिमा हो, तथापि उसे महाचैत्री कहा जाता है और वह अश्वमेध फल प्रदान करती है ।१२१। रविवार के दिन सूर्य समेत कृत्तिका नक्षत्र के योग प्राप्त हो, तो उस पूर्णिमा को भी, जो अक्षय फल प्रदान करती है, महाचैत्री कहा जाता है ।१२२। इसी भाँति बृहस्पति के दिन भी बृहस्पति से संयुक्त होने पर उसे महाचैत्री कहा गया है उसमें स्नान, दान, जप, नियम सभी अश्वमेध का अक्षय फल प्रदान करते हैं, उसके पितर लोग तृप्त होते हैं, तथा उसे अक्षय वैष्णव लोक की प्राप्ति होती है ।१२३-१२४। कार्तिक मास में भरणी नक्षत्र के दिन प्राप्त पूर्णिमा और वैशाख की पूर्णिमा में गंगोत्री में महान् पुण्य प्रदान करती है ।१२५। शालग्राम (तीर्थ) में पुण्य स्वरूपा महाचैत्री पूर्णिमा और गंगोत्री में महावैशाखी पूर्णिमा (स्नान आदि करने से) पुण्य प्रदान करती है । पुरुषोत्तम क्षेत्र में महाज्येष्ठी,

पुरुषोत्तमे महाज्यैष्ठी महाषाढी तु शृंखले। महाश्रावणी केदारे महापुण्यतमा मता ॥१२७
महाभाद्री बदर्यां च कुजोऽपि स्यान्नरस्तथा। महाकार्त्तिकी पुष्करे च कान्यकुब्जे तथोत्तरे ॥१२८
महती मार्गशीर्षे स्यादयोध्यायां तथोत्तरे। महापौषी पुण्यतमा महामाघी प्रयागतः ॥१२९
महाफाल्गुनी नैमिषे च निर्दिष्टाः स्युर्महाफलाः ॥१३०
अत्र स्म विहितं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्। सर्वमक्षयतां याति वर्द्धते चाधिकं फलम् ॥१३१
आश्विने पौर्णमासी तु कौमुदीति प्रकीर्तिता। अस्यां चन्द्रोदये लक्ष्मीं पूजयेद्विधिवन्नरः ॥१३२
निर्वर्तयेन्न यः श्राद्धं प्रभाते पैतृकं द्विजः। इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥१३३
चन्द्राश्विने तु कृष्णायां पञ्चदश्यां यथाविधि। कृत्वा स्नानादिकं कर्म सोपवासो दिनं नयेत् ॥१३४
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाविधि। दीपवृक्षान्यथा वृक्षाँल्लक्ष्मीप्रीत्यै समुत्सृजेत् ॥१३५
नदीतीरे गिरौ गोष्ठे श्मशाने वृक्षमूलतः। चतुष्पथे निजागारे चत्वरे तान्निधापयेत् ॥१३६
द्विर्भोजनममावास्यां न कर्तव्यं कदाचन। शर्वर्यां च विशेषेण माघफाल्गुनयोर्नरैः ॥१३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
उत्तमतिथिनिर्णयो नामाष्टमोऽध्यायः ।८

शृङ्खला में महा आषाढी और केदार तीर्थ में महाश्रावणी पूर्णिमा महान् पुण्यस्वरूपा बतायी गयी है।१२६-१२७। महाभाद्री भादों मास की पूर्णिमा के दिन बदरिकाश्रम में स्नान करने से कुज (विकृत अंग वाले) भी सौन्दर्य पूर्ण मनुष्य हो जाते हैं, उसी भाँति महाकार्तिकी (पूर्णिमा) में पुष्कर, कान्यकुब्ज और उत्तर के प्रदेशों में अत्यन्त पुण्यस्वरूप की प्राप्ति कही गयी है, एवं मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा अयोध्या और उसके उत्तर प्रदेश तथा महापौषी (पौष की पूर्णिमा) एवं महामाघी भी प्रयाग के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है।१२८-१२९। उसी प्रकार महाफाल्गुनी नैमिषारण्य के लिए महान् फलदायक कही गयी है।१३०। इन दिनों में किये गये शुभ अशुभ सभी कर्म अक्षय फल प्रदान करते हैं, जिनकी निरन्तर वृद्धि हुआ करती है। आश्विन मास की पूर्णिमा का कौमुदी नाम बताया गया है, उसमे चन्द्रोदय के समय विधान पूर्वक लक्ष्मी की पूजा मनुष्य को करना कहा गया है।१३१-१३२। जो ब्राह्मण प्रत्येक मास के चन्द्रक्षय के दिन प्रातः काल में पितरों का श्राद्ध सुसम्पन्न नहीं करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है।१३३। आश्विन मास की कृष्णपक्ष की (पन्द्रहवी) अमावस्या के दिन उपवास और विधान पूर्वक स्नानादिक कर्म करते हुए उसे व्यतीत करना चाहिए।१३४। प्रदोष के समय विधान पूर्वक लक्ष्मी की पूजा सुसम्पन्न करके लक्ष्मी के प्रसन्नार्थ वृक्ष की भाँति दीप वृक्षों के प्रदान करने चाहिए।१३५। नदी तट, पर्वत, गोशाला, शमशान, वृक्ष के मूल भाग, चौराहा, निजी गृह अथवा चबूतरे पर उसे स्थापित करना चाहिए।१३६। अमावस्या के दिन और विशेषकर माघ फाल्गुन की रात्रि में मनुष्यों को दो बार भोजन करना चाहिए।१३७

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में उत्तमविधाननिर्णय
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अथ नवमोऽध्याय:

प्रवरविचारवर्णनम्

सूत उवाच

वक्ष्ये प्रवरसन्तानं यथाक्रममिति द्विजाः । यद्विना व्यत्ययो यस्मात्तस्माच्छास्त्रानुसारतः ॥१
प्रवरत्रयं काश्यपस्य काश्यपाशावनैर्ध्रुवम् । पश्चाश्वगौतमस्याद्य गौतमश्चोय एव च ॥२
च्यवनो जामदग्न्यश्च आप्लवायनमेव च । मोकुन्यांगिरसभास्याज्जामदग्न्याप्लवायनम् ॥३
शांडिल्यासितदैवलाः प्रवरत्रयमेव च । पराशरस्य च तथा स्वयं शाम्बवशिष्ठकम् ॥४
आत्रेयमावार्यणस्याबालप्रवरमेव हि । वात्स्यवात्स्यायनौ चैव उरुकण्टक एव च ॥५
अर्थक्षीरमित्रावरुणं पञ्चमं परिकीर्तितम् । औतथ्यस्य त्रयं विद्याद्वाल्मीकोऽवरमेव हि ॥६
औतथ्यस्य च वाशिष्ठमैन्द्रे चक्रं च क्रौश्चायनं तथा । औतथ्येति समाख्यातं माहिष्यं च्यवनं तथा ॥७
उरुकण्टत्रयं विद्यात्कौशिकस्य त्रयं तथा । यद्गालो देवराट् ख्यातः कुशिकाद्याश्च भो द्विजाः ॥८
विश्वामित्रो देवराट् च स्वयं चैव त्रयं मतम् । घृतकौशिकस्य कुशिका विश्वामित्राघमर्षणम् ॥९
चण्डकौशिकस्य च तथा देवराट् देवरातकम् । विश्वामित्रे तु विख्यातः सुमन्तोरेव एव हि ॥१०
तरुंकशाकटायनः स्वयमेव प्रवरत्रयम् । भ्रमद्वयं जैमिनेश्च स्वयं वाशिष्ठमेव च ॥११
शंखमांगिरसच्यवनं शंखभस्य त्रयं मतम् । वात्स्यस्य च्यवनो नाम आप्लवायनकस्तथा ॥१२
सावर्णस्य तु सावर्ण्यच्यवनजामदग्निभार्गवम् । आप्लवायनेति पाठीने एक एव तु सत्तमाः ॥१३
कृष्णाजिनस्य कृष्णाजिनं विश्वामित्रस्य जैमिनम् । कात्यायनस्य कात्यायनगार्ग्यायणत्रयं तथा ॥१४

अध्याय ९

प्रवर विचार का वर्णन

सूत बोले—द्विजवृन्द ! मैं शास्त्रों के अनुसार प्रवरों की चर्चा कर रहा हूँ, क्योंकि उसके ज्ञान के बिना अधिक व्यत्यय (उलटफेर) होने की संभावना रहती है ।१। काश्यप गोत्र के तीन प्रवर काश्यपा शावन बताये गये है, गौतम के पश्वाश्व गौतम, च्यवन, जामदग्न्य, आप्लवायन, मोकुन्य, आंगिरस, भास्य, जामदग्न्य, आप्लवायन, शाण्डिल, असित, देवल तीन प्रवर, पराशर के पाराशर, शांब, वशिष्ठ, आत्रेय के आत्रेय आचार्यण, स्याबाल, वात्स्य, वात्स्यायन, उरुकंटक ।२-५। अर्थक्षीर पाँचवा मित्रावरुण, औतथ्य, के औतथ्य, वाल्मीक, अवर औतथ्य के वशिष्ठ, ऐन्द्र, चक्र, क्रौञ्चायन, औतथ्य माहिष्य, च्यवन, उरुकटंक कौशिक के तीन द्विजवृन्द ! उसी प्रकार गाल, देवराट, कुशिकादि, विश्वामित्र, देवराट्, घृतकौशिक के कुशिका, विश्वामित्र, अघमर्षण।६-९। चण्ड कौशिक के देवराट्, देवरातक, यही विश्वामित्र और सुमन्तु के भी प्रवर हैं ।१०। तरुंक, शाकटायन, जैमिनि के दो जैमिनि, वशिष्ठ, शंखभ के शंख, आंगिरस और च्वयन, तीन, वात्स्य के च्यवन, आप्लवायनक ।११-१२। सावर्ण के सावर्ण्य, च्यवन, जामदग्नि, भार्गव, पाठीन के एक आप्लवायन।१३। कृष्णाजिन के कृष्णाजिन, विश्वामित्र के जैमिन, कात्यायन के कात्यायन,

वात्स्यायनेति विख्यातं कुशिकस्य च पञ्चमम्। अमुं च विश्वामित्रं च जामदग्न्याप्लवायनम् ॥१५
गार्ग्यस्य गार्ग्यसामुञ्च तथांगिरस एव च। बार्हस्पत्यभरद्वाज इति पञ्च प्रकीर्तितम् ॥१६
वशिष्ठस्य च वासिष्ठं च तथांगिरस एव च! मित्रावरुणसंयुक्तं तावत्तस्य प्रकीर्तितम् ।१७
जाह्नुकर्णभवकर्णौ प्रवरौ परिकीर्तितौ। उपमन्युरुपमन्योस्तथेन्द्रः सह एव च ॥१८
तदुत्तमेति त्रितयं मित्रावरुणस्य च त्रयम्। आत्रेयगौतमाङ्गिरसप्रवरत्रयमेव हि ॥१९
कमण्डलोत्पलमित्रासित्रावरुण एव च। कमण्डलुश्चेति त्रितयं प्रवरत्रयमेव च ॥२०
च्यवनस्य तथा ज्ञेयमूर्वच्यवनाप्लवायनम्। अथ स कस्यांगिरसबार्हस्पत्य एव त्रयम् ॥२१
आगस्त्यस्य अगिस्तश्च माहश्च च्यवनेति च। विश्वामित्रे देवरात औतथ्येति तथैव च ॥२२
ये नोक्ता येऽप्यविज्ञातास्ते प्रोक्ताः काश्यपाज्जगत् ॥२३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे प्रवरविचारवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

वास्तुयागवर्णनम्

सूत उवाच

वास्तुयागमथो वक्ष्ये बलिमण्डलपूर्वकम्। अङ्कुरार्पणकं कृत्वा मध्ये कुर्याच्च मण्डलम् ॥१
त्रिहस्ता पिंडिका कार्या चतुरस्रा उदक्प्लवा। प्रादेशमात्र उत्सेधो दर्पणान्तर्निभो भवेत् ॥२
मध्ये सम्मार्जयेद्विद्वान्पादान्नव यथाक्रमात्। कोणे चतुष्पदं ज्ञेयं दिक्षु त्रिपदकं क्रमात् ॥३

गार्ग्यायण, कुशिक के वात्स्यायन समेत पाँच, कुशिक, विश्वामित्र, जामदग्न्य आप्लवायन।१४-१५। गार्ग्य के गार्ग्यसा, मुंच, आंगिरस, बार्हस्पत्य, और भारद्वाज, ये पाँच प्रवर बताये गये हैं।१६। वशिष्ठ के वशिष्ठ, आंगिरस, मित्रावरुण, जाह्नुकर्ण, भवकर्ण, उपमन्यु के उपमन्यु, इन्द्र, तदुत्तम मित्रारुण के आत्रेय, गौतम, आंगिरस, कमंडलु उत्पलमित्र, मित्रावरुण, और कमण्डलु तीन, च्यवन के उर्व, च्यवन और आप्लवायन, आंगिरस, बार्हस्पत्य, तीन आगस्त्य के अगस्ति, माह, च्यवन, विश्वामित्र के देवरात, औतथ्य, प्रवर हैं, जिनके नाम नहीं कहे गये है और उनके सम्बन्ध में कुछ कहा भी नहीं जा सकता, उन्हें संसार में काश्यप के नाम से कहा जाता है।१७-२३
श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में प्रवर विचार वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त।९।

अध्याय १०

वास्तुयाग का वर्णन

सूत बोले—मैं बलि मण्डल पूर्वक वास्तु (गृह) याग की व्याख्या बता रहा हूँ। अंकुरारोपण करके मध्य भाग में उस प्रकार के मण्डल जिसमें तीन हाथ की चौकोर एवं जल से घिरी हुई पिंडिका (वेदी) जो प्रादेश मात्र उत्सेध और स्वयं दर्पण के मध्यभाग के समान बनायी जाती है, बनाने चाहिए।१-२। विद्वान् को चाहिए कि उसके मध्य भाग में क्रमशः नव पादों के संमार्जन करके कोण भाग में चतुष्पाद और

पञ्चकं युग्मपादेन चतुर्दिक्षु ततः परम् । कोणे चतुष्पदं स्थाप्यं चतुष्कोणे विभावयेत् ॥४
चतुष्कोणं बहिः कुर्यात्कोणे चापि चतुष्टयम् । द्वात्रिंशच्च भवेद्बाह्ये चातश्चापि त्रयोदश ॥५
चत्वारिंशत्पञ्चयुता मिलित्वा वास्तुदेवताः । शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः ॥६
सूर्यः सत्यो वृषश्चैव आकाशं वायुरेव च । पूषा च वितथश्चैव गुहान्यश्च यमस्तथा ॥७
गन्धर्वो मृगराजस्तु मृगाः पितृगणास्तथा । दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः ॥८
असुरः पशुपाशौ च रोगो हि मोक्ष एव च । भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा ॥९
बहिर्द्वादश इत्येतानीशानादीन्यथाक्रमम् । ईशानादिचतुष्कोणं संस्थितान्पूजयेद्बुधः ॥१०
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च । अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः ॥११
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च सप्तमः पृथिवीधरः । अष्टमस्त्वापवत्सस्तु परिधौ ब्रह्मणः स्मृतः ॥१२
पूर्वादिषु तथा पूज्या गन्धपुष्पैः पृथग्विधैः । पञ्चचत्वारिंशदेतच्चरक्या च चतुर्थकम् ॥१३
मिलित्वा ऊनपञ्चाशदुत्तमा वास्तुदेवताः । नान्यत्र योजयेद्विप्राः प्रसादे च विशेषतः ॥१४
बहिः कोणे चरक्यादि चरकं च विदारिकाम् । पूतनां च ततः पश्चाद्वायव्ये पापराक्षसीम् ॥१५
स्वैःस्वैर्मन्त्रैश्च गन्धाद्यैः पूज्येत्कुसुमादिना । यथोक्तेन बलिं दद्यात्पायसान्नेन वा पुनः ॥१६
रेखाः सर्वत्र शुक्लेन पद्मं रक्तेन भावयेत् । रञ्जयेदेव वर्णेन बहिष्पञ्चरजेन तु ॥१७
देववर्णानथो वक्ष्ये यथावदनुवर्णिताः । रक्तौ गौरस्तथा शोणः सितरक्तः सितस्तथा ॥१८

दिशाओं में क्रमशः त्रिपाद (तीन पैर वाले) को स्थापित करे ।३। पश्चात् ! चारों ओर (दिशाओं में) दो पाद वाले पाँच की स्थिति करके चारों कोण के भागों में चतुष्पदों की प्रतिष्ठा करायें ।४। चार कोना बाहरी भाग में बनाकर कोने में भी चार की स्थिति करें । बत्तीस देवता बाहरी भाग में और अन्तः स्थल में तेरह देवता प्रतिष्ठित किये जाते हैं, इस प्रकार वास्तु देवता की पैंतालिस संख्या बतायी गयी है । शिखी, पर्जन्य, जयंत, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, वृष, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गुह, यम ।५-७। गन्धर्व, मृगराज, मृगगण, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर पशु, पाश, रोग, मोक्ष, भल्लाट, सोम, सर्प, आदिति, एवं दिति, देवों की, जो बारह बारह और ईशान आदि कोण में क्रमशः स्थित हैं, विद्वान् को पूजा करनी चाहिए ।८-१०। जलदेव, सावित्र, जप, रुद्र, अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप (इन्द्र), मित्र, राजयक्ष्मा, सातवाँ पृथिवीधर, और आठवाँ आपवत्स, ये देवगण ब्रह्मा की परिधि में स्थापित होते हैं ।११-१२। पूर्वादि दिशाओं में स्थित उन देवताओं की पूजा पृथक्-पृथक् विधान पूर्वक गन्ध-पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । इस प्रकार पैंतालिस संख्या के बताये हुए पहल वाले और चार चरकी के मिलकर कुल उन्चास वास्तु देवता बताये जा चुके हैं । विप्रेन्द ! इनकी पूजा आदि अन्य किसी कर्मानुष्ठान में न कर विशेषकर महल प्रवेश में अवश्य करना चाहिए ।१३-१४। बाहरी कोण में चरकी-चरक पश्चात् वायव्यकोण में विदारिका एवं बालघ्नी पूतना राक्षसी के उनके मंत्रों के उच्चारणपूर्वक गंधादि पुष्पों द्वारा पूजा और पायस अन्नों द्वारा बलि प्रदान करना बताया गया है ।१५-१६। सर्वत्र की रेखाओं को शुक्ल वर्ण, कमल को रक्तवर्ण, और बाहरी भागों को पाँच प्रकार के चूर्णा (रंगों) द्वारा विभूषित करना चाहिए ।१७। देवताओं (देवों की प्रतिमाओं के निमित्त) वर्णों (रंगों) को बता रहा हूँ, रक्त, गौर, शोण (रक्त), उज्ज्वल-रक्त, शुभ्र, पीत, शुक्ल, धर्म, पूषा रक्त,

पीतः शुक्लश्च धर्मश्च पूषा रक्तः प्रकीर्तितः। श्यामः शुक्लश्च कृष्णश्च पीतः शुक्लो यथाक्रमम् ॥१९
पीतो भृङ्गः पुनः शुक्लः कृष्णः शुक्लस्तथैव च। रक्तः शुक्लश्च शोणश्च कृष्णरक्तस्तथैव च ॥२०
धूम्रपीतो रक्तपीतः शुक्लः कृष्णश्च श्यामकः। रक्तवर्णेन द्वात्रिंशद्दश वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥२१
शुक्लशोणं पुनः श्वेतं सिन्दूराभं प्रकीर्तितम्। पाण्डुरं कुङ्कुमाभं च रक्तं ज्ञेयं च पीतकम् ॥२२
शुक्लपीतं च श्वेतं च गौरं चेत्यष्टवर्णकम्। पीतं रक्तं च श्यामं च गौरं चेति चतुष्टयम् ॥२३
धरणीमदनं वाद्ये शम्भुवर्णादिप्रक्रमात्। शुक्लेन रञ्जयेद्द्वारान्पुरद्वारं च मध्यमे ॥२४
मध्येऽन्ते ऊनपञ्चाशत्सर्वं च वास्तुकर्मणि। चत्वारिंशद्द्वारयुतं गृहदेवकुलेऽपि च ॥२५
महाकूपे तथा श्वेतो अन्यत्रापि[1] प्रशस्यते। सुलिप्ते च शुचौ देशे सार्धहस्तप्रमाणतः ॥२६
दश पूर्वायता रेखा दश चैवोत्तरायताः। एकादशीपदं कुर्याद्रेखाभिः पदकेन तु ॥२७
सर्ववास्तुविभागेन विज्ञेया नवका नव। पदस्थान्पूजयेद्देवांस्त्रिंशत्पञ्चाशदेव तु ॥२८
द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्याः पूज्यागारे त्रयोदश। मध्ये नव पदे ब्रह्मा तस्याप्यष्टौ समीपगाः ॥२९
चतुर्दिक्षु षट्पदं तु त्रिपदं तु चतुष्पदम्। पदैकं तु चतुष्कोणे एष वास्तुविनिर्णयः॥
चरक्यादि ततो हित्वा चत्वारिंशच्च पञ्चकम् ॥३०

श्याम, शुक्ल, कृष्ण, पीत, एवं शुक्ल, इसी क्रम द्वारा उनकी प्रतिमाओं को रञ्जन करना (रंगना) बताया गया है।१८-१९। पीत, भंग (भ्रमर के समान), शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल, रक्त, शुक्ल, शोण, कृष्ण, रक्त, धूँए के समान पीत, रक्तपीत, शुक्ल, कृष्ण, श्याम और रक्त वर्ण, इसी क्रम से उन्हें अनुरञ्जित करने के लिए इन बत्तीस वर्णों (रङ्गों) की व्याख्या की गयी है।२०-२१। शुक्ल, शोण (रक्त) पुनः श्वेत, सिन्दूर सदृश, कुंकुम के समान पाण्डुर, रक्त, पीत, शुक्ल-पीत, श्वेत, और गौर ये आठवर्ण, तथा पीत, रक्त, श्याम, गौर इन चार वर्णों (रङ्गों) द्वारा अनुरञ्जित करना चाहिए। शम्भु वर्णादि के क्रम से वाद्य (बाजाओं) के लिए धरणी मदन रङ्ग बताया गया है। शुक्लवर्ण से दरवाजों और गाँव के मध्यम दरवाजे को तथा मध्य और अन्तभाग भी उन्हीं द्वारा विभूषित करना कहा गया है। इस प्रकार वास्तुकर्म में सब मिलाकर उनचास वर्ण बताये गये हैं, जिसमें दरवाजे समेत तक चालीस वर्ण होने चाहिए तथा उसी भाँति गृहदेवों के लिए भी। महाकूप के लिए श्वेतवर्ण, जो अन्यत्र भी प्रशस्त हैं, बताया गया है। सुन्दर लिपे-पुते पवित्र स्थान में डेढ़ हाथ की वेदी में दश पूर्व-पश्चिम और दश उत्तर-दक्षिण रेखाओं के निर्माण के उपरान्त उन्हीं रेखाङ्कित स्थानों द्वारा ग्यारह स्थानों की कल्पना करनी चाहिए।२२-२७। सभी वास्तु कर्मों में उनके विभाग द्वारा कुल इक्यासी स्थानों के निर्माण किये जाते हैं, उन स्थानों पर स्थित उन्हीं देवों की अर्चा करना चाहिए। बाहरी भागों में बत्तीस, पूजा स्थानों में तेरह मध्य के नवस्थानों में ब्रह्मा और उनके पार्श्ववर्ती आठ, चारों दिशाओं में षट्पदवाले, तीन स्थानों में चतुष्पद वाले, और चारों कोने के भागों में एक स्थान की कल्पना करना वास्तु निर्णय में कहा गया है। इस प्रकार चरकी आदि के त्याग कर देने से पैंतालिस देवों की पूजा शेष रह जाती है।२८-३०। शास्त्रानुसार वर्णन किये गये दूसरे मण्डल की

---

१. 'प्रकृत्य तः पादमव्यपरे' इति प्रकृतिभावः।

अपरं मण्डलं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । नवरेखाप्रयोगेण नवकोष्ठान्प्रकल्पयेत् ।।३१
द्विचतुष्कोष्ठकैर्दिक्षु यजेतार्यमणं ततः । विवस्वन्तं ततो मित्रं महीधरमतः परम् ।।३२
कोणेषु कोष्ठद्वन्द्वेषु बाह्यादिपरिकीर्तितम् । सावित्रं सवितारं च शक्रमिन्द्रं जयं पुनः ।।३३
रुद्रं रुद्रजयं चैव वायुं जृम्भकमेव च । पिलिपिच्छं च मेधावी विदारीं पूतनां तथा ।।३४
क्रमादीशानपर्यन्तां जयन्तः शक्रभास्करौ । सत्योवृषान्तरिक्षौ च दिशि प्राच्यामवस्थिताः ।।३५
अग्निः पूषा च वितधो यमश्च गृहरक्षकः । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणमाश्रिताः ।।३६
निर्ऋतिर्दौवारिकश्च सुग्रीववरुणौ ततः । पुष्पदन्तस्वरौ शोषरोगौ प्रत्यग्दिशि स्थिताः ।।३७
घ्राणवायुश्च नागश्च सोमो भल्लाट एव च । मुद्गलाख्यो दित्यदिती कुबेरस्य दिशि स्थिताः ।।३८
मिलित्वा च त्रिपञ्चाशत्तेभ्यः पूर्वं बलिं हरेत् । पिण्याकैः परमान्नैर्वा पूर्वोक्तैर्वा यथाक्रमात् ।।३९
रक्तमर्यमणं ध्यायेच्चतुर्भिर्बहुभिर्वृतम् । श्वेताश्ववाहनं दिव्यं किरीटैःस्वैर्विभूषितम् ।।४०
आकृष्णेनेति मन्त्रस्य स्वर्णऋषिर्जगतीछन्दः सवित्रऐमप्रीतये विनियोगः ।।४१
विवस्वन्तं पीतवर्णं पीताम्बरधरं शुभम् । मेषस्थं च महाकायं देवगन्धर्वसेवितम् ।।४२
एतातविषंतीति मन्त्रस्य कर्दम ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कमला देवता विवस्वत्प्रीतये विनियोगः ।।४३
मित्रं ध्यायेच्छुक्लवर्णं श्वेतहंसोपरिस्थितम् । त्रिनेत्रं त्रिभुजं चैव श्वेताम्बरधरं शुभम् ।।४४
कयानश्चीति मन्त्रस्य जयन्त ऋषिर्गायत्री छन्दः शङ्करो देवता मित्रप्रीतये विनियोगः ।।४५

व्याख्या बता रहा हूँ, नवरेखाओं द्वारा नव कोष्ठों की रचना करके दिशाओं के आठ कोष्ठों में अर्यमा (सूर्य) की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् बाहरी भाग के कोने के दो दो कोष्ठों में स्थित विवस्वान् मित्र, और महीधर की भी।३१-३२। सावित्र, सविता, शक्र, इन्द्र, जय, रुद्र, रुद्रजय, वायु, जृम्भक, पिलिपिच्छ, विदारी और पूतना, ईशान पर्वत स्थित इन देवों की पूजा क्रमशः विद्वान् को करनी चाहिए। जयन्त, शक्र, भास्कर, सत्य एवं वृषान्तरिक्ष को पूरब, अग्नि, पूजा वितध, यम, गृहरक्षक, गन्धर्व, भृङ्गराज और मृगदक्षिण, निर्ऋति, दौवारिक, सुग्रीव, वरुण, पुष्पदन्त, स्वर शोष, तथा रोग पश्चिम।३३-३७। घ्राण वायु, नाग, सोम, भल्लाट, मुद्गल, दिति एवं अदिति, उत्तर दिशा में स्थापित तथा पूजित होते हैं।३८। तिरपन देवों को और उसी संख्या में मिलाकर उन्हें पूर्व दिशा में स्थापित एवं पूजित होने के उपरान्त पिण्याक (तिल की ख़ली), अथवा पूर्वोक्त बताये गये उत्तमान्नों द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए।३९। चार अथवा बहुतों से आच्छन्न, दिव्य, श्वेत वर्ण के अश्ववाहन, अपने उत्तम किरीटों से विभूषित उस रक्त वर्ण के अर्यमा का ध्यान करना चाहिए।४०। 'आकृष्णेने' ति मन्त्र के स्वर्ण ऋषि, जगती छन्द, सविता और अर्यमा के प्रीत्यर्थ विनियोग है ऐसा करना चाहिए।४१। पीतवर्ण, पीताम्बरधारी, शुभ मेष (भेंड़) के वाहन पर स्थित, महाकाय, देवों तथा गन्धर्वों से सुसेवित उस विवस्वान् की पूजा 'एतातविषेती' ति मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए, इस मन्त्र के कर्दम ऋषि, पंक्ति छन्द, कमला देवता, विवस्वान् के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए।४२-४३। शुक्ल वर्ण, शुभ्र वर्ण के हंस पर स्थित, तीन नेत्र, तीन भुजा, श्वेताम्बरधारी एवं शुभ मूर्ति वाले उन मित्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए।४४। 'कयानश्ची' ति मन्त्र के जयन्त ऋषि, गायत्री छन्द, शंकर देवता, मित्र

प्रीतं महीधरं ध्यायेद्वृषभोपरि संस्थितम् । त्रिभुजं पद्महस्तं च व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।।४६
त्र्यम्बकमिति मंत्रस्य गर्गऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो हरो देवता महीधरप्रीतये विनयोगः ।।४७
सावित्रीं श्वेतवर्णां च सर्वलक्षणसंयुताम् । द्विभुजां पीतवस्त्रां च श्वेतसिंहासने स्थिताम् ।।४८
रक्ताम्बरधरां रक्तां रक्तमालोपशोभिताम् ।।४९
तद्वर्ष इति मन्त्रस्य गौतमऋषिर्विराट् छन्दः सूर्यो देवता सवितृप्रीतये विनियोगः ।।५०
शक्रं ध्यायेत्पीतवर्णं शुक्लकैरावतस्थितम् । सर्वदेवैः स्तूयमानं द्विभुजं पीतवाससम् ।।५१
त्रातारमिति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो नरसिंहो देवता इन्द्रजयप्रीतये विनियोगः ।।५२
रुद्रं ध्यायेच्छ्वेतवर्णं वृषभारूढविग्रहम् । नागयज्ञोपवीतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ।।५३
नमस्ते रुद्रेति मन्त्रस्य गायत्री छन्दस्त्र्यम्बको देवता रुद्रप्रीतये विनियोगः ।।५४
रक्तं रुद्रं जयं ध्यायेद्रक्तपद्मोपरि स्थितम् । रक्तश्यामाम्बरधरं द्विभुजं रक्तवाससम् ।।५५
त्र्यम्बकमिति मन्त्रस्य गायत्रीच्छन्दो महेशो देवता रुद्रजयप्रीतये विनियोगः ।।५६
अपि श्वेतं ततो ध्यायेद्वराभयकरं परम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ।।५७
ईशान इति मन्त्रस्य मरीचिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो वायुर्देवता अपां प्रीतये विनियोगः ।।
आपवत्सं पीतवर्णं मेषारूढं चतुर्भुजम् ।।५८

के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।४५। प्रसन्नमुख, वृष पर स्थित, तीन भुजा, कर कमल विभूषित, सर्प के यज्ञोपवीत धारण किये उन महीधर देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।४६। 'त्र्यम्बकमि' ति मंत्र के गर्ग ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, हर देवता, महीधर के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।४७। श्वेतवर्ण, सर्वभाँति के लक्षणों से अलङ्कृत, दो भुजा पीताम्बर धारण किये, श्वेत वर्ण के सिंहासन पर सुशोभित उस सावित्री देवी की जो रक्ताम्बर धारण किये और रक्तवर्ण के मालाओं से विभूषित एवं रक्त वर्ण वाली देवी हैं, ध्यान करना चाहिए ।४८-४९। 'तद्वर्ष' इस मन्त्र के गौतम ऋषि, विराट् छन्द, सूर्य देवता, सविता के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए ।५०। पीतवर्ण, शुक्लवर्ण के ऐरावत गजराज पर स्थित, समस्त देवों से पूजित, दो भुजा, एवं पीत वस्त्र वाले उस शक्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।५१। 'त्रातारमि' ति इस मंत्र के भार्गव ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, नरसिंह देवता इन्द्र जय के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।५२। श्वेत वर्ण, वृष पर स्थित, सापों के यज्ञोपवीत धारण किये एवं समस्त लक्षणों से युक्त उस रुद्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।५३। 'नमस्ते रुद्र' इति इस मन्त्र के गायत्री छन्द, त्र्यम्बक देवता रुद्र प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।५४। रक्त वर्ण, रक्त कमलासन पर विराजित, रक्त श्यामाम्बर धारण किये, हो भुजा और रक्त वस्त्र वाले उस रुद्र जय देव का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है ।५५। 'त्र्यम्बकमि' ति इस मन्त्र के गायत्री छन्द, महेशदेवता रुद्रजय के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।५६। सर्वलक्षणों से विभूषित, श्वेत कमलासन पर सुशोभित एवं अभय प्रदान करने वाले उस श्वेत देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए।५७। ईशान, इस मन्त्र के मरीचि ऋषि, पंक्तिछन्द, वायुदेवता, आप (वरुण) देव के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है। पीतवर्ण, मेष (भेंड़) के वाहन पर स्थित, चार भुजाएँ बायें

पद्मशङ्खधरं वामे वराभयकरं परम् ।।५९
वरुणस्योत्तम्भनमसीति मन्त्रस्य नरोत्तम ऋषिर्विराट् छन्दो वरुणो देवता आवयः प्रीतये विनियोगः।।६०
कोणसूत्रस्योभयतः श्वेतकोष्ठद्वये पुनः । शर्वं ध्यायेद्रक्तवर्णं वृषभोपरि संस्थितम् ।।६१
द्विभुजं च त्रिनेत्रं च जटाभारोपशोभितम् ।।६२
माला स्वाहेति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिर्गायत्री छन्दो महादेवो देवता शर्वप्रीतये विनियोगः ।।६३
गुहं ध्यायेत्पीतवर्णं पीतपद्मासनस्थितम् । नानाभरणशोभाढ्यं कुण्डलाद्यैरलङ्कृतम् ।।६४
स बोध इति मन्त्रस्य अगस्तिर्ऋषिर्गायत्री छन्दो हरो देवता गुहप्रीतये विनियोगः ।।६५
अर्यम्णं द्विभुजं रक्तं रक्तमाल्योपशोभितम् । रक्तपद्मासनस्थं च देवगन्धर्वसेवितम् ।।६६
वातो वारेति मन्त्रस्य काश्यप ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वायुर्देवता अर्यमप्रीतये विनियोगः ।।६७
ध्यायेच्च जम्भकं श्वेतं द्विभुजं कुटिलाननम् । करालवदनं घोरं वराहोपरि संस्थितम् ।।६८
कुविदोगवय इति मन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिर्जगती छन्दः सोमो देवता जम्भकप्रीतये विनियोगः।।६९
पिलपिच्छं रक्तवर्णं रक्तमाल्यैरलङ्कृतम् । रक्तपद्मासनस्थं च रक्ताभरणशोभितम् ।।७०
देवस्य हेति मन्त्रस्य पंक्तिश्छन्दः शची देवता पिलपिच्छप्रीतये विनियोगः ।।७१
पीतां च चरकीं ध्यायेद्रक्तमाल्यैरलङ्कृताम् । सुचारुवदनां भव्यां गुञ्जाहारोपशोभिताम् ।।७२

दोनों भुजाओं में कमल और शंख धारण किये, परमोत्तम वर एवं प्रणय प्रदान करने वाले उस वत्स देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।५८-५९। 'वरुणस्योत्तम्भनमसी' ति इस मन्त्र के नरोत्तम ऋषि, विराट् छन्द, वरुण देवता, आवयस्प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।६०। कोने के दोनों पार्श्व भाग के श्वेत कोष्ठों में रक्तवर्ण, वृषभ पर स्थित, दो भुजा, तीन नेत्र एवं जटा के भार से विभूषित उन शर्व देव का इस भाँति ध्यान करना कहा गया है ।६१-६२। 'माला स्वाहेति' इस मंत्र के भार्गव ऋषि, गायत्री छन्द, महादेव देवता, शर्व प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।६३। पीत वर्ण, पीत कमलों के आसन पर विराजमान, भाँति भाँति, के सौन्दर्य पूर्ण आभूषणों एवं कुण्डलों आदि से अलंकृत उस गुह्य देव का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है ।६४। 'स बोध' इस मन्त्र के अगस्त ऋषि, गायत्री छन्द हर देवता, गुह प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।६५। दो भुजा, रक्तवर्ण, रक्तवर्ण की मालाओं से सुशोभित, रक्त कमलों पर स्थित एवं देव गन्धर्वों से आच्छन्न उस अर्यमा देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।६६। 'वातोवार' इस मन्त्र के काश्यप ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वायु देवता, अर्यमा के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।६७। श्वेत वर्ण, दो भुजा, कुटिल मुख, भीषण काय, घोर स्वरूप, तथा वाराह पर स्थित उस जृम्भक देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।६८। 'कुविदोगवयः' इस मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, जगती छन्द, सोम देवता, जम्भक प्रीत्यर्थ यह विनियोग हैं ।६९। रक्त वर्ण, रक्त वर्ण की मालाओं से अलंकृत, रक्त कमलासन पर स्थित और रक्त वर्ण के आभूषणों से आभूषित उस पिलपिच्छदेव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।७०। 'देवस्य हेति' इस मन्त्र का पंक्तिछन्द, शची देवता, पिलपिच्छ प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।७१। पीत वर्ण रक्तमालाओं से सुशोभित, सौन्दर्यपूर्ण उत्तम वदन, भव्याकृत, एवं गुञ्जा के हार से विभूषित उस चरकी

तद्वर्ष इति मन्त्रस्य जटिल ऋषिर्बृहती छन्दो भवो देवता चरकी प्रीतये विनयोगः ॥७३
श्यामां विदारिकां ध्यायेत्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम् । नानागणयुतां देवीं पङ्कजद्वयधारिणीम् ॥७४
श्रीश्च ते इति मन्त्रस्य वरुणऋषिर्नृसिंहो देवता विदारिकाप्रीतये विनियोगः ॥७५
रक्तां च पूतनां ध्यायेत्पङ्कजस्थां सुशोभनाम् । सर्वाभरणसम्पन्नां सर्वालङ्कारशोभिताम् ॥७६
मयि गृह्णामीति मन्त्रस्य विवस्वानृषिर्नारायणो देवता पूतनाप्रीतये विनियोगः ॥७७
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु सार्धाद्यन्तपदेषु च । ईशानं जटिलं श्वेतं शूलहस्तं महाभुजम् ॥७८
त्रिनेत्रं वृषभारूढं नागहारोपशोभितम् ॥७९
आयुः शीर्षाणि इति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिर्बृहती छन्दो धरणीधरो देवता ईशानप्रीतये विनियोगः ॥८०
रक्तं ध्यायेच्च पर्जन्यं द्विभुजं पीतवाससम् । दक्षिणे परशुं ध्यायेदोङ्कारं च तथापरे ॥८१
कयानश्चेति मन्त्रस्य धर्मऋषिर्बृहती छन्दो भवो देवता पर्जन्य प्रीतये विनियोगः ॥८२
। जयन्तं श्वेतं श्वेतवृषभारूढं ध्यात्वा ।
मानस्तोकेति मन्त्रस्य शक्त्यृषिस्त्रिष्टुपछन्दः शङ्करो देवता जयन्तप्रीतये विनियोगः ॥८३
शुक्लं पीतं द्विभुजमैरावतस्थं वज्रधरं ध्यात्वा मूलबीजेन स्थापयेत् ॥८४
भास्करं रक्तं द्विभुजं रक्ताश्वस्थं ध्यात्वा मायाबीजेन पूजयेत् ॥८५
सत्यं च द्विभुजं श्वेतं त्रिनेत्रं पीतवाससं मन्दकुन्दबीजेन पूजयेत् । वृषं पीतं वृषभारूढमाकाशबीजेन पूजयेत्॥८६

देवी को इस भाँति का ध्यान करना कहा गया है । 'तद्वर्ष' इस मन्त्र के जटिल ऋषि, बृहती छन्द, भवदेवता, चरकी प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । श्यामाङ्गी, तीन नेत्र, चार भुजाएँ अनेक गणों से सेवित, तथा दो कमल पुष्प लिए इस विदारिका देवी को इस प्रकार ध्यान करना कहा गया है ।७२-७४। 'श्रीश्चते' इस मन्त्र के वरुण ऋषि, नरसिंह देवता विदारिका प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।७५। रक्तवर्ण, कमलासन पर स्थित, परम सुन्दरी, समस्त आभरणों एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत उस पूतना का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है ।७६। 'मयि गृह्णामि' इस मन्त्र के विवस्वान्, ऋषि, नारायण देवता, पूतना प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।७७। सभी पूर्वादि दिशाओं में अन्त के डेढ़ कोष्ठों के स्थानों में जटाधारी, श्वेत, हाथ में शूल लिए लम्बी भुजा, तीन नेत्र, वृष पर स्थित, और सर्पों के हार से विभूषित उन ईशान देव का ध्यान इस भाँति करना बताया गया है ।७८-७९। आयुः शीर्षाण' इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, बृहती छन्द, धरणीधर देवता, ईशान प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।८०। रक्तवर्ण, दो भुजा, एवं पीताम्बर धारण किये, इस भाँति उस पर्जन्य देव, दक्षिण में परशु एवं ओंकार देव का ध्यान करना चाहिए ।८१। 'कयानश्चे' ति इस मन्त्र के धर्म ऋषि, बृहती छन्द, भव देवता पर्जन्य प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।८२। श्वेत वर्ण, एवं श्वेत वृषभ पर स्थित उस जयंत देव का इस भाँति ध्यान करने 'मानस्तोके' ति इस मन्त्र के शक्ति ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शंकर देवता जयंत प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए ।८३। शुक्लवर्ण, पीताम्बर धारण किये, दो भुजा, ऐरावत पर स्थित, उस वज्रधारीदेव का इस भाँति ध्यान करके मूल बीज से स्थापित करना कहा गया है ।८४। रक्तवर्ण, दो भुजा, रक्तवर्णके अश्व पर स्थित, भास्कर देव के ध्यान पूर्वक माया बीज से उनकी पूजा करनी चाहिए ।८५। दो भुजा, श्वेत वर्ण, तीन नेत्र, पीतवस्त्र वाले उस सत्य देव की मंद कुन्द बीज द्वारा अर्चा करनी चाहिए । पीत वर्ण, और वृषभ पर स्थित वृषदेव

ऋक्षं नीलं चतुर्भुजं महिषारूढम् ॥
आच्छीम इति मन्त्रस्य होता यक्षऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शंकरो देवता ऋक्षप्रीतये विनियोगः ॥८७
अग्निमारभ्य पूजयेत् । अग्निं रक्तंसप्तजिह्वं रक्तवाससं पिङ्गाक्षं ध्यात्वा ।
अग्निं दूतमिति मन्त्रस्य भरद्वाजऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शङ्करो देवता अग्निप्रीतये विनियोगः ॥८८
वितथं रक्तमजवाहनं द्विभुजं ध्यात्वा गायत्र्या पूजयेत् ॥८९
गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता वितथप्रीतये विनियोगः ॥९०
यमं कृष्णमहिषारूढं दण्डहस्तं ध्यायेत् ॥
अच्छिय इतिमन्त्रस्य त्रिष्टुप्छन्दो भवानीदेवता यमप्रीतये विनियोगः ॥९१
गृहे क्षेत्रं रक्तमूर्ध्वकेशं महाभुजं रक्तवाससं ध्यात्वा वह्निबीजेन पूजयेत् ॥९२
गन्धर्वं श्वेतं द्विभुजं पद्मासनस्थं ध्यात्वा यमबीजेन पूजयेत् ॥९३
भृङ्गराजं रक्तसिंहासनारूढं दिव्ययज्ञोपवीतिनं ध्यायेत् ॥९४
होता यस्केति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिर्गायत्री छन्दो यशो देवता भृङ्गराजप्रीतये विनियोगः ॥९५
मृगं पीतं मृगारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ॥
कदाचनेति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिर्बृहती छन्दो वामदेवो देवता मृगप्रीतये विनियोगः ॥९६
नैर्ऋतार्द्धपदेषु च । निर्ऋतिं पीतं श्वेतं पद्मासनस्थं ध्यात्वा ॥

की पूजा आकाश बीज द्वारा करना बताया गया है ।८६। नील वर्ण, चार भुजाएँ और महिष पर स्थित उस ऋक्ष देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । 'आच्छीम' ति इस मन्त्र के होता यक्ष ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, शंकर देवता, ऋक्ष के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहें ।८७। पूजन विधान अग्नि देव से आरम्भ करना बताया गया है, सर्व प्रथम रक्तवर्ण, सात जिह्वाएँ, रक्तवस्त्र, तथा पिंगल नेत्र वाले उस अग्नि देव का इस भाँति ध्यानपूर्वक "अग्निं इतमिति" मंत्र के भरद्वाज ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शंकर देवता, अग्नि के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए ।८८। रक्तवर्ण अज (बकरा) वाहन, एवं दो भुजा वाले उस वितथ देव का ध्यान करके गायत्री द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।८९। गायत्री मंत्र के विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द, सविता देवता, वितथ के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है।९०। काले रंग के भैंस पर स्थित और दण्ड हाथ में लिए उस यमराज देव का इस भाँति से ध्यान करना बताया गया है । 'अच्छिय इति' इस मंत्र का त्रिष्टुप् छन्द, भवानी देवता यम के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।९१। रक्तवर्ण, ऊर्ध्वकेश, लम्बी भुजा एवं रक्त वस्त्र वाले उस क्षेत्र देव का ध्यान करके बह्निबीज द्वारा उनकी पूजा करना बतया गया है ।९२। श्वेत वर्ण, दो भुजा,एवं कमलासन पर स्थित उस गन्धर्व देव का ध्यान करके यम बीज द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।९३। रक्तवर्ण के सिंहासन पर स्थित और दिव्य यज्ञोपवीत धारण किये उस भृङ्गराज देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।९४। होतायस्केति' इस मन्त्रके भार्गव ऋषि गायत्री छन्द, यशोदेवता भृङ्गराज के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।९५। पीत वर्ण, मृग पर सुशोभित पीत वस्त्र धारण किये, उस मृग देव का ध्यान करके कदाचनेति' इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, बृहती छन्द, वामदेव देवता, मृगदेव के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए।९६। नैऋत के अर्ध स्थान भाग के स्थानों में पीत वर्ण; श्वेत वस्त्र,

कदाचनेतिमन्त्रस्य पङ्क्तिश्छन्दः सविता देवता निर्ऋतिप्रीतये विनियोगः ॥९७
नैर्ऋताद्धपदेषु च दौवारिकं श्वेतशरमारूढं त्रिनेत्रं सर्वाभरणभूषितं ध्यात्वा ॥
होतस्वेति मन्त्रस्य नरसिंहऋषिर्बृहती छन्दो गणेशो देवता दौवारिकप्रीतये विनियोगः ॥९८
श्यामं सुग्रीवं कृष्णमेषारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ।
स्वादित्येति मन्त्रस्य त्रिष्टुप्छन्दो वामनो देवता सुग्रीवप्रीतये विनियोगः ॥९९
सुमित्रिया न इति मन्त्रस्य कन्दर्पऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सूर्यो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः ॥१००
पुष्पदन्तं पीतं मेषारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ।
या ओषधीरिति मन्त्रस्य मन्मथऋषिर्जगती छन्दो वायुर्देवता पुष्पदन्तप्रीतये विनियोगः ॥१०१
असुरं कृष्णं कृष्णमाल्यैरलङ्कृतं कृत्वा ।
आकृष्णेति मन्त्रस्य हिरण्यवर्ण ऋषिर्जगती छन्दः सविता देवता असुरप्रीतये विनियोगः ॥१०२
असुरं कृष्णं नागहारान्वितं पद्मासनस्थं ध्यात्वा ।
आब्रह्मन्निति मन्त्रस्य नलिनऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो भवानी देवता सोमप्रीतये विनियोगः ॥१०३
रोगं कृष्णं नीलेन्दीवरधरं श्वेतवृषभारूढं ध्यात्वा ।
नमस्ते रुद्र इति मन्त्रस्य नारद ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्रीर्देवता रोगप्रीतये विनियोगः ॥१०४
वायुकोणादारभ्य पूजयेत् । वायुं धूम्रवर्णं ध्वजहस्तं मृगारूढं ध्यात्वा ॥

एवं पद्मासन पर स्थित, उस निऋति देव के ध्यान पूर्वक 'कदाचनेति' इस मन्त्र के पंक्ति छन्द, सविता देवता, निऋति के प्रीत्यर्थ इस विनियोग को कहना चाहिए ।९७। पुनः उन्ही स्थानों में श्वेत वर्ण के शरासन पर स्थित, तीन नेत्र, और सर्व भाँति के आभूषणों से सुसज्जित, उस दौवारिक देव का ध्यान करके 'होतस्वेति' इस मन्त्र के नरसिंह ऋषि, बृहती छन्द, गणेश देवता दौवारिक के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना बताया गया है । श्यामल वर्ण, कृष्ण वर्ण के मेष (भेंड़) पर स्थित, एवं पीताम्बर धारी उस सुग्रीवदेव का ध्यान करके 'स्वादित्येति' इस मंत्र के त्रिष्टुप् छन्द, वामन देवता, सुग्रीव देव के प्रसन्नार्थ इस विनियोग को कहना चाहिए ।९८-९९। 'सुमित्रियाने' ति इस मंत्र के कन्दर्प ऋषि, पंक्ति छन्द, सूर्य देवता, वरुण देव के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।१००। पीतवर्ण, मेष पर स्थित, एवं पीतवस्त्र धारण किये पुष्प दन्त देव का ध्यान करके 'या ओषधीरिति' इस मंत्र के मन्मथ ऋषि, जगती छन्द, वायु देवता, पुष्पदन्त के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।१०१। कृष्ण वर्ण के असुरों को कृष्ण वर्ण की मालाओं से अलंकृत करके 'आकृष्णेति' इस मंत्र के हिरण्य वर्ण ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता असुर के प्रसन्नार्थ इस विनियोग के उच्चारण करना चाहिए ।१०२। कृष्ण वर्ण सापों के हार से भूषित, एवं पद्मासन पर स्थित उस असुर के ध्यान करके 'आ ब्रह्मन्नि' ति इस मन्त्र के नलिन ऋषि, त्रिष्टुपछन्द, भवानी देवता, सोम के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ऐसा कहे ।१०३। कृष्ण वर्ण नीलकमल धारण किये तथा श्वेत वृषभ के आसन पर आसीन उस रोग के इस भाँति ध्यान करके 'नमस्ते रुद्र इति' इस मंत्र के नारद ऋषि, पंक्ति छन्द, श्री देवता रोग के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए।१०४। पूजा विधान वायुकोण से आरम्भ करना बताया गया है, धूएँ के समान वर्ण, हाथ में

देवा इति मन्त्रस्य बृहती छन्दो यमो देवता नागप्रीतये विनियोगः ॥१०५
श्वेतं सोमं श्वेतवर्णासनस्थं ध्यात्वा भद्रबीजेन पूजयेत् ॥१०६
रक्तं भल्लाटं पीतवाससं ध्यात्वा वह्निबीजेन पूजयेत् ।
पीतवाससमजवाहनं हारकेयूरान्वितं वायुबीजेन मन्दराद्यैः पूजयेत् ॥१०७
रक्तां दितिं नागहारान्वितां रक्तपद्मासनस्थां ध्यात्वा । मानार्य इति मन्त्रस्येति पूजयेत् ॥१०८
मानो त्वा इति मन्त्रस्य भार्गवऋषिः पंक्तिश्छन्दः पृथिवी देवता दितिप्रीतये विनियोगः ॥१०९
अदितिं पीतवर्णां सिंहारूढां पीताम्बरधरां ध्यात्वा ।
हिरण्यवर्ण इति मन्त्रस्य जनार्दनऋषिर्बृहतीछन्दः सोमो देवता अदितिप्रीतये विनियोगः ॥११०
एवं यथा विधायाथ होमं कुर्याद्यथाविधि । होमान्ते दक्षिणां दद्यात्काञ्चनं हेमसंयुतम् ॥१११
तडागयागपक्षे तु सुवर्णं चार्धमेव वा ॥११२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
वास्तुयागवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०

ध्वजा लिए, मृग वाहन पर स्थित उस वायु देव का इस प्रकार ध्यान करके 'देवा इति' इस मंत्र के बृहती छन्द, यम देवता, नाग के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।१०५। श्वेत वर्ण एवं श्वेत वर्ण के आसन पर विराजमान उस सोमदेव का इस भाँति से ध्यान करके भद्रबीज से पूजा करनी चाहिए ।१०६। रक्त वर्ण, एवं पीताम्बरधारी उस भल्लाट का ध्यान करके वन्हिबीज से अर्चा करनी चाहिए । पीतवस्त्र धारी, अज (बकरा) दाहन पर स्थित एवं हार केयूर आभूषणों से अलंकृत उस देव की पूजा वायु बीज द्वारा मन्दराओं से करना बताया गया है ।१०७। रक्त वर्ण, नाग हार से भूषित, एवं रक्तकमल्ल के आसन पर आसीनं उस दिति देवी का इस भाँति ध्यान करके 'मानार्य इति' इस मंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।१०८। 'मानो त्वा इति' इस मन्त्र के भार्गव ऋषि, पंक्ति छन्द, पृथिवी देवता, दिति देवी के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना बताया गया है ।१०९। पीतवर्ण, सिंह वाहन पर सुशोभित तथा पीताम्बर धारिणी उस अदिति, देवी का इस भाँति ध्यान करके 'हिरण्य वर्णा इति' इस मन्त्र के जर्नादन ऋषि , बृहती छन्द, सोम देवता अदिति के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।११०। इस प्रकार (सभी देवताओं के आवाहन पूजन के उपरांत) विधान पूर्वक हवन समाप्ति करके ब्राह्मणों को हेम संयुत काञ्चन की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, और सरोवर भाग में उसी भाँति सुवर्ण, अथवा उस के अर्धभाग के प्रदान भी करने चाहिए ।१११-११२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में वास्तुभागवर्णन
नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अथैकादशोऽध्यायः

पूजाक्रमवर्णनम्

सूत उवाच

अथ पूजाक्रमं वक्ष्ये पुराणस्मृतिचोदितम् । उत्तरे पश्चिमे वाथ पूर्वे चापि समाचरेत् ॥१
नदीतीरे नेमिप्रान्ते दशद्वादशसंख्यया । मण्डलं रचयेद्विप्राश्चरुकद्वयसंयुतम् ॥२
त्रिभागं विभजेत्क्षेत्रं मध्यभागद्वयेन तु । त्रिहस्तवेदिकां कुर्यात्तालोत्सेधामुदक्प्लवाम् ॥३
उत्तराशे दक्षिणे चारत्निहस्तान्तरेऽपि च । त्रिमेखलां हस्तमात्रां गुणवेदसमन्विताम् ॥४
मूले सार्धं च शुक्लां च मेखलां तु तथैव च । चतुरङ्गुलिकां वेदिं मध्योन्नतां प्रकल्पयेत् ॥५
षट्सप्ताङ्गुलिकां योनिं पश्चिमे मेखलोपरि । विन्यसेन्नाभिसंयुक्तमेवं कुण्डं प्रकल्पयेत् ॥६
श्राद्धं वृद्धयात्मकं कुर्यात्सङ्कल्पं मानसं चरेत् । श्राद्धार्थं नैव सङ्कल्पेत्तथा वै देवदर्शने ॥७
गयाश्राद्धार्थकं चाष्टतीर्थश्राद्धार्थमेव च । ऐशान्यां कलशे देवं पूजयेद्गणनायकम् ॥८
मध्ये कुण्डे महांश्चैव विष्णुदेवं दिगीश्वरान् । ब्रह्माणं चाग्निकुण्डे तु स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥९

अध्याय ११

पूजाक्रम का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरांत मैं पुराण एवं स्मृति के अनुसार पूजा के क्रम बता रहा हूँ, सुनो ! उसका क्रमिक आरम्भ उत्तर, पश्चिम, अथवा सूर्य की ओर से होना चाहिए ।१। विप्रवृन्द ! नदी के तट पर अथवा कूप के समीप में दश-बारह संख्या के मण्डल का जिसमें चरु (हवि) बनाने के लिए दो स्थानों की कल्पना की गयी हो, निर्माण करना चाहिए ।२। सर्वप्रथम उस क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित करके उसके मध्यम के दो भागों में तीन हाथ प्रमाण करके उसके मध्य के दो भागों में तीन हाथ प्रमाण की वेदी की रचना करनी चाहिए । जिसकी उचाई ताल विस्तृत (अंगूठे और मध्यमा के बीच भाग) के समान हो और (जल के निकालने के लिए) उत्तर की ओर ढालू हो ।३। उसी भाँति अरत्नि मात्र एक हाथ की दक्षिण उत्तर दिशा वाली भूमि भी होना चाहिए और गुण, वेद युक्त हस्त मात्र की तीन मेखला के निर्माण भी ।४। मूल भाग के सार्ध (डेढ़) भागमें शुक्ल वर्ण की उसी भाँति की मेखला होनी चाहिए और चार अङ्गुल की वेदी की जिसका मध्यभाग उन्नत हो, रचना होनी चाहिए ।५। पश्चिम भाग की मेखला के ऊपर छः सात अंगुल की योनि के निर्माण पूर्वक इस भाँति के नाभि संयुक्त कुण्ड की कल्पना की जाती है ।६। (वहाँ) वृद्धि-श्राद्ध और मानसिक संकल्प करना परमावश्यक बताया गया है, क्योंकि श्राद्धार्थ और देवता के दर्शन में संकल्प करने का विधान नहीं है ।७। गया श्राद्ध और अष्ट तीर्थ श्राद्ध के निमित्त ईशान कोण में स्थित कलश में गणनायक देव का आवाहन पूजन करना चाहिए ।८। कुण्ड के मध्य भाग में दिक्पालों एवं विष्णु देव और ब्रह्मा की अग्नि कुण्ड में उनके नाम मंत्रों द्वारा पूजा करना बताया गया है ।९।

ध्वजहस्तं महाबाहुं मरुद्भिश्चोपसेवितम् । द्विभुजं धूम्रवर्णं च वायुं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ।।३८
राजान इति मन्त्रेण पूजयेत्सिततण्डुलैः । ऋषिर्नारायणश्छन्दो गायत्री देवता द्विजाः ।।३९
देवता च भवेद्वायुः प्रीतये तस्य योजयेत् । पूषारक्तश्च द्विभुजो रक्तपद्मासनस्थितः ।।४०
राजान इति च ऋचा पूजयेद्गन्धचन्दनैः । गोभिलोऽस्यऋषिः पंक्तिश्छन्दोऽथ जगती स्मृतम् ।।
देवता च भवेद्वायुः प्रीतये विनियोजयेत् ।।४१
वितथं श्यामवर्णं च चतुर्भिर्बाहुभिर्वृतम् । मृगाक्षपाशखट्वाङ्गशूलं च दधतं करैः ।।
मेषारूढं विशालाक्षं राजानो मह्यमीरयन् ।।४२
गृहक्षतं तथा शुक्लं चतुर्भिर्गर्दभैर्वृतम् । शूलं दण्डं च खट्वांगं दधतं वृषवाहनम् ।।४३
पीतवस्त्रधरं देवं जटामुकुटसंयुतम् । आशुः शिशान इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।४४
पुष्पदन्त ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दश्च परिकीर्तितम् । ईश्वरस्य देवतायाः प्रीतये विनियोजयेत् ।।४५
यमं ध्यायेत्कृष्णवर्णं महिषस्थं द्विबाहुकम् । दण्डपाशधरं चैव केयूराद्यैर्विभूषितम् ।।४६
ईशानेति च मन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना । वामदेव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कालोऽस्य देवता ।।४७
षडाननं च गन्धर्वं पीतं ध्यायेच्चतुर्भुजम् । पीताम्बरधरं चैव नानाभरणभूषितम् ।।४८
यद्देव इतिमन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना । हारीतोऽस्य ऋषिःप्रोक्तो जगतीछन्द ईरितम् ।।
हिरण्यगर्भो देवताऽस्य प्रीतये विनियोजयेत् ।।४९

प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।३६-३७। हाथ में ध्वजा लिए, महावाहु, मरुद्गणों से सुसेवित, दो भुजा तथा धूएँ के समान वर्ण उस वायु देव का इस भाँति के ध्यान पूर्वक पूजन करना चाहिए ।३८। 'राजान इति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए श्वेत चावल द्वारा पूजा करना बताया गया है । द्विजगण इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, वायुदेवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, दो भुजा और रक्त कमल पर सुखासीन उस पूषा रक्त देव की 'राजन इति' इस ऋचा द्वारा गन्ध चन्दन समेत पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के गोभिल ऋषि, पंक्ति तथा जगती छन्द वायु देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।३९-४१। श्यामल वर्ण, चार भुजाएँ, मृग अक्षपाश, खट्वांग और शूल अस्त्रों को हाथों में लिए मेष (भेंड़) वाहन पर स्थित, एवं विशालाक्ष उस देव की पूजा 'राजानो मह्यमीरयन्निति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिए ।४२। शुक्ल वर्ण, चारों ओर गधों से घिरे, शूल, दण्ड और खट्वांग अस्त्रों को धारण किये, वृषभ पर स्थित ।४३। पीताम्बरधारी, जटामुकुट विभूषित उस गृहक्षत देव की 'आशुः शिशान इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्ध चन्दन द्वारा पूजा करनी चाहिए ।४४। इस मन्त्र के पुष्पदन्त ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, ईश्वर देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।४५। कृष्णवर्ण, महिष पर स्थित, दो भुजा, दण्ड-पाश धारण किये, एवं केयूर (बाहुभूषण) आदि आभूषणों से सुशोभित उस यम देव का इस भाँति ध्यान करके 'ईशानेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं कालदेवता, हैं।४६-४७। पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, पीताम्बरधारी, अनेक आभूषणों से विभूषित उस देव की पूजा 'यद्देव इति' इस मन्त्र द्वारा कुसमों से करनी चाहिए । इस मन्त्र के हारीत ऋषि, जगती छन्द, हिरण्यगर्भ देवता हैं, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।४८-४९। जटाजूटविभूषित, स्वच्छ पीताम्बर

भृङ्गराजं जटारूढं स्वच्छं पीताम्बरं शुभम् । चक्षुः पीतेति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।५०
ऋषिश्चागस्तिराख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम् । विश्वेदेवा देवता च भृङ्गराजस्य प्रीतये ।।५१
पीतं मृगं मृगारूढं जटामुकुटमंडितम् । परो देवा इति मन्त्रेण पूजयेद्बलिपायसैः ।।५२
कपिलश्च ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् । वरुणो देवता चास्य प्रीतये विनियोजयेत् ।।५३
ध्यायेत्पितृगणं शुक्लं चतुर्भिर्बाहुभिर्वृतम् । पितृभ्य इति मन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना ।।५४
शुनः शेष ऋषिश्चास्य त्रिष्टुप्छन्दश्च देवता । विश्वेदेवाः समाख्याताः पितृमेधेन पूजयेत् ।।५५
दौवारिकं चाष्टभुजं कृष्णवर्णं विचिन्तयेत् । रक्तवस्त्रं पिङ्गलाक्षं कृष्णव्याघ्रोपरि स्थितम् ।।५६
यो नः पिबतेति मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः ।।५७
वैश्वानर ऋषिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम् । देवता च भवेच्छक्तिर्विनियोगश्च पूजने ।।५८
शङ्खाभं चैव सुग्रीवं द्विभुजं चक्रधारिणम् । हंसारूढं महाकायं बलिविज्ञानकारणम् ।।५९
शङ्खपद्मधरं चैव महिषस्थं विचिन्तयेत् । स इषु हस्तेति मन्त्रेण पूजयेद्रक्तभूषणैः ।।६०
ऋषिः शङ्खस्तथाच्छन्दः पङ्क्तिः सोमोऽथ देवता । श्वेतं जलाधिपं ध्यायेद्गन्धर्वाद्यैश्च वेष्टितम् ।।६१
ऋष्यासनगतं ध्यायेच्छ्वेतगन्धेन चर्चयेत् । बृहस्पते परिदीया इति मन्त्रेण भक्तितः ।।६२
त्र्यंबकोऽस्य ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो देवो जलाधिपः । ध्यायेच्च असुरं रक्तं करालं नरवाहनम् ।।६३

धारी, एवं शुभ उस भृङ्गराज देव की 'चक्षुः पीतेति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए गन्ध चन्दनों द्वारा पूजा करनी चाहिए ।५०। इस मन्त्र के आगस्ति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वेदेवा देवता, भृङ्गराज के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।५१। पीत वर्ण, मृग परिस्थित तथा जटा मुकुटधारी उस मृगदेव की, 'परोदेवा इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक बलि और पायस (खीर) द्वारा पूजा करनी चाहिए ।५२। इस मन्त्र के कपिल ऋषि, गायत्री छन्द, एवं वरुण देवता, हैं उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।५३। शुक्ल वर्ण, और चार भुजाओं को धारण किये उन पितृगणों के ध्यान करके 'पितृभ्य इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए ।५४। इस मन्त्र के पुनः शेष ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वे देवा देवता हैं, पितृ मेध द्वारा उनकी पूजा होनी चाहिए । आठ भुजाएँ, कृष्ण वर्ण, रक्त वस्त्र, पिङ्गल नेत्र एवं काले वाघ पर स्थित उस दौवारिक देव का ध्यान करके 'योनः पितेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति तन्मय होकर उनकी पूजा करनी चाहिए ।५५-५७। इस मन्त्र के वैश्वानर ऋषि, गायत्री छन्द शक्ति देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ पूजन में यह विनियोग कहना चाहिए ।५८। शंख की भाँति आभा, सुन्दर गला दो भुजा, चक्रधारी, हंस पर स्थित, महाकाय, बलि-विज्ञान के कारण, शंख पद्म धारण किये तथा महिष पर स्थित, उस (शंख) देव का इस भाँति ध्यान करके 'स इषु हस्तेति' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए रक्त वर्ण के भूषणों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।५९-६०। इस मन्त्र के शंख ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं सोम देवता हैं । श्वेत वर्ण, और गन्धर्वों से सुसेवित, एवं ऋषि के आसनों पर सुशोभित उस जलाधिप (वरुण) देव की, भक्ति पूर्वक 'बृहस्पते परिदीया इति' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए श्वेत गन्ध से उनकी अर्चा करनी चाहिए ।६१-६२। इस मन्त्र के त्र्यम्बक ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और वरुण देवता हैं, रक्तवर्ण, भीषण काय, नरवाहन,

दशभिर्बाहुभिर्युक्तं कृष्णवस्त्रानुलेपनम् । शन्नो देवीति मन्त्रेण कृष्णपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥६४
ऋषिर्वैश्वानरश्छन्दो विराडित्यभिधीयते । वैश्वानरोत्तरो देवः प्रीतये तस्य योजयेत् ॥६५
शेषं षडाननं ध्यायेत्कृष्णं च मधुपिङ्गलम् । मेषस्थं कुण्डलोपेतं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
उद्वर्ष इति मन्त्रेण पूजयेद् भूतिमिच्छता ॥६६
पापं रक्तं त्रिनेत्रं च रक्तः पान्ते विचिन्तयेत् । रक्तश्मश्रुधरं चैव वरहस्तं विचिन्तयेत् ॥६७
सिद्धो वीरेति मन्त्रेण कृष्णपुष्पैरथार्चयेत् । यमं च कृकराक्षं च आकुञ्चन्मूर्धजे द्विजाः ॥६८
कपिलोऽस्य ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुप् चैव प्रकीर्तितम् । देवता च यशः स्यातं प्रीतये विनियोजयेत् ॥६९
यमं च कृकराक्षं च क्षमाकुञ्चितमूर्धजम् । खरस्थं द्विभुजं ध्यायेदिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥७०
वासुकिः स्यादृषिश्चास्य पङ्क्तिश्छन्दश्च देवता । हिरण्यगर्भ इत्युक्तः प्रीतयेऽस्य नियोजयेत् ॥७१
अर्धपीतं च द्विभुजं रक्ताक्षं धूम्रमेव वा । देवताभिश्च सम्पन्नं वातो वारेतिरेव च ॥७२
ऋषिर्वायुश्च गायत्री छन्दो वायुश्च देवता ॥७३
मुग्धरक्तं शङ्खचक्रगदापद्मधरं तथा । पीतवस्त्रं पल्लगस्थं हारकेयूरमण्डितम् ॥७४
अवसृष्टा परापत इति मन्त्रेण पूजयेत् । अग्निश्चास्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दः सोमश्च देवता ॥७५
पीतं भल्लाटकं ध्यायेत्पद्मस्थं रक्तभूषणम् । द्विभुजं पद्महस्तं च देवमेवं विचिन्तयेत् ॥
यन्मातुरिति मन्त्रेण पूजयेत्सिततण्डुलैः ॥७६

दशभुजाओं से युक्त, काले वस्त्र से आच्छन्न, उस अक्षर के इस इस भाँति ध्यान करके 'शन्नो देवीति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक कृष्णवर्ण के पुष्पों द्वारा उनकी पूजा बतायी गयी है ।६३-६४। इस मन्त्र के वैश्वानर ऋषि, विराड् छन्द, वैश्वानर देवता उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । षट्मुख, कृष्ण और मधु पिंगल वर्ण, मेष (भेंड़) पर स्थित कुण्डल मण्डित सर्पो के यज्ञोपवीत धारण किये, उसे शेष देव के इस भाँति ध्यान करके ऐश्यवर्येच्छुक को 'ऊद्वर्ष इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए ।६५-६६। रक्त वर्ण, तीन नेत्र, रक्तवर्ण के नेत्र आँत, दाढ़ी मूछें एवं वरदहस्त उस पाप की 'सिद्धो वीरेति' इस मन्त्र के उच्चारण करके कृष्ण वर्ण के पुष्पों से पूजा करनी चाहिए । द्विजगण ! उसी भाँति कृकर (वायु) के समान नेत्र, घुंघुराले बाल वाले यम की भी । इस मन्त्र के कपिल ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, यशोदेवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । 'यमं च कृकराक्षं च क्षमा कुञ्चितमूर्धजमिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उनका ध्यान करना बताया गया है । इस मन्त्र के वासुकि ऋषि, पंक्ति छन्द, हिरण्य गर्भ देवता हैं उनके प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।६७-७१। अर्ध पीत, दो भुजा, रक्तवर्ण की आँखे, धूएँ के समान वर्ण देवों से सुसेवित वायु और वारेति (देव) के वायु ऋषि, गायत्री छन्द, वायु देवता है ।७२-७३। मनमोहक रक्तवर्ण, शंख, चक्र गदा और पद्म धारण किये, पीत वस्त्र, पलंग पर स्थित एवं सब केयूराभूषणों से सुसज्जित देव की 'अवसृष्टा परापत इति- इस मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के अग्नि ऋषि, छन्द, सोम देवता हैं ।७४-७५। पीत वर्ण, कमलासन पर आसीन, रक्तवर्ण के भूषणों से सुशोभित, एवं दो भुजा और कर कमल विभूषित उस भल्लाटक देव का इस भाँति ध्यान करने के उपरान्त 'यन्मातुरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक श्वेत तण्डुल (चावल) द्वारा

जम्भकोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री समुदाहृता । देवता च भवेत्कुम्भः प्रीतये विनियोगतः ॥७७
सोमं ध्यायेच्छ्यामरूपं पद्मासनगतं परम् । नानाभरणसम्पन्नं किरीटवरधारिणम् ॥
मर्माणितेतिमन्त्रेण गन्धाद्यैरपि पूजयेत् ॥७८
ऋषिः स्वार्थो वेदश्छन्दो जगतीत्यभिधीयते । देवता च भवेत्सोमः प्रीयते विनियोजयेत् ॥७९
दर्पं ध्यायेत्कृष्णवर्णं कृष्णाम्बरधरं तथा । नागयज्ञोपवीतिं च शिखिस्तम्भं द्विजोत्तमाः ॥८०
पञ्चदीशेति मन्त्रेण गन्धाद्यैःपरिपूजयेत् ॥८१
मन्त्रस्यास्य ऋषिश्चास्य पञ्चायतनमीरितम् । पङ्क्तिश्छन्दस्तथा प्रोक्तं देवः पञ्चाननः स्मृतः ॥८२
श्यामवर्णां दितिं ध्यायेद्द्विभुजां पीतविग्रहाम् । सर्वलक्षणसम्पन्नां सर्वालङ्कारशोभिताम् ॥८३
सुपर्णोऽसीति मन्त्रेण पूजयेत्पीतचन्दनैः ॥८४
ऋषिर्नारायणश्छन्दो जगती परिकीर्त्यते । भवेद्देवो भार्गवश्च इष्टार्थे परिपूजयेत् ॥८५
रक्ताभामदितिं ध्यायेत्सर्वालङ्कारभूषिताम् । शुक्रांभारितिमन्त्रेण गन्धाद्यैरभिपूजयेत् ॥८६
वामदेव ऋषिश्चास्य गन्धाद्यैरभिपूजयेत् । देवः शुक्रः समाख्यातः स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥८७
ईशानादिकोणगतान्पूजयेत्सुसमाहितः । आपं ध्यायेच्छुक्लवर्णं कुण्डलाद्यैर्विभूषितम् ॥८८
इदं विष्णुरिति मन्त्रेण त्रिगन्धेन समर्चयेत् ॥८९
ऋषिः स्यात्कर्दमश्छन्दो विराडित्यभिधीयते ॥९०

उनकी पूजा करनी चाहिए ।७६। इस मन्त्र के जम्भक ऋषि, गायत्री छन्द, कुम्भ देवता हैं, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।७७। श्यामल वर्ण, पद्मासन स्थित, अनेक आभूषणों से सुसज्जित तथा उत्तम किरीट धारण किये उस सोम देव का इस भाँति ध्यान करके 'मर्माणि तेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।७८। इस मन्त्र के वेद ऋषि, जगती छन्द, सोम देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । द्विजोत्तम ! कृष्ण वर्ण, कृष्णाम्बरधारी, सर्पों के यज्ञोपवीत, एवं मयूर वाहन पर स्थित उस दर्प देव के ध्यान करके 'पञ्चदीशेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि द्वारा पूजन करना चाहिए ।७९-८१। इस मन्त्र के पञ्चायतन ऋषि, पंक्ति छन्द, पञ्चानन देवता हैं ।८२। श्यामवर्ण, दो भुजा, पीत काय, सर्वलक्षण सम्पन्न एवं समस्त अलंकारों से विभूषित, उस दिति देवी के ध्यान पूर्वक 'सुपर्णोऽसीति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए पीत चन्दन द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।८३-८४। इस मन्त्र के नारायण ऋषि, जगती छन्द, भार्गव देवता, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।८५। रक्तवर्ण, समस्त अलंकारों से अलंकृत, उस अदिति देवी का इस भाँति ध्यान करके 'शुक्राम्भारिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादिकों से उनकी पूजा करनी चाहिए ।८६। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि हैं, जिनकी गन्धादि पदार्थों द्वारा पूजा करनी चाहिए । शुक्र देवता भी उनकी स्तुति में नियुक्त करने के लिए बताये गये हैं ।८७। पश्चात् ईशानादि कोण में स्थित देवताओं की पूजा होनी चाहिए । सर्व प्रथम शुक्लवर्ण, एवं कुण्डलादि आभूषणों से सुशोभित उस जल देव का इस भाँति ध्यान करके 'इदं विष्णुरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक तीन गन्धों से उनकी पूजा करनी चाहिए ।८८-८९। इस मन्त्र के कर्दम ऋषि, विराड

देवः सोमःसमाख्यातः प्रीतये विनियोजयेत् । सरितं द्विभुजं रक्तं रक्तश्वेताम्बरान्वितम् ।।९१
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं वरदं तं विचिन्तयेत् । पयसा शुक्ल इति मन्त्रेण पूजयेत्कमलादिना ।।९२
नारायण ऋषिश्चास्य पङ्क्तिश्छन्दः प्रकीर्त्यते । नारायणः स्वयं देवः प्रीतये विनियोजयेत् ।।९३
जयं ध्यायेत्पीतवर्णं द्विभुजं वरहस्तकम् । देवं किरीटसम्पन्नं सर्वालङ्कारभूषितम् ।।९४
दृष्ट्वा परिश्रुत इति मन्त्रेणानेन पूजयेत् । ऋषिर्नारायणश्छन्दः पङ्क्तिः सोमोऽथ देवतः ।।९५
रुद्रं ध्यायेद्रक्तवर्णं शीतांशुकृतशेखरम् । द्विभुजं शूलहस्तं च डमरुं च धराभवेत् ।।९६
दिवो मूर्धन्निति मन्त्रेण ऋषयः समुदाहृताः । ऋषिः स्यात्काश्यपश्छन्दो विराडित्यभिधीयते ।।९७
स्वयं देवो विनियोगः स्तुतौ च विनियोजयेत् । द्विभुजं रक्तपद्मस्य पङ्कजद्वयधारिणम् ।।९८
अस्य किरीट इति मन्त्रेण रक्तस्रक्चन्दनादिभिः । पूजयेत्परया भक्त्या ऋषिर्नील उदाहृतः ।।
त्रिष्टुप्छन्दो देवता स्याद् ह्लदोपि परिकीर्तितः ।।९९
सवितारं तथाध्यायेत्पद्मस्थं द्विभुजं प्रभुम् । नानाभरणशोभाढ्यं सप्ताश्वरथमण्डितम् ।।१००
यद्देवा इति मन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् । ऋषिरौतथ्य आख्यातः प्रीतये विनियोजयेत् ।।१०१
ध्यायेद्रक्तं विवस्वन्तं द्विभुजं पद्मविग्रहम् । अविद्या इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।१०२
ऋषिर्गन्धः समाख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दश्च ईरितम् । देवता च भवेत्सोमः स्तुतौ च विनियोजयेत् ।।१०३

छन्द, सोम देवता हैं ।९०। उनकी प्रसन्नता के लिए यह विनियोग है : दो भुजा, रक्तवर्ण, रक्तवर्ण एवं श्वेतवर्ण के वस्त्रों से आवृत, हरिचन्दन से अनुलिप्त अंग, एवं वरदायक उस अन्तः सलिला देवी का ध्यान करके 'पयसाशुक्ल इति' इस मंत्र द्वारा कमलों आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए ।९१-९२। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, स्वयं नारायण देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।९३। पीत वर्ण, दो भुजा, वरदहस्त, किरीट से सुशोभित, समस्त अलंकार से अलंकृत जय देव का इस भाँति ध्यान करके 'दृष्ट्वा परिश्रुत इति' इस मंत्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं सोम देवता हैं।९४-९५। रक्तवर्ण, चन्द्रमा से सुशोभित शिर, दो भुजा, हाथ में शूल और डमरू लिए उस रुद्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'दिवो मूर्धन्निति' इस मंत्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के काश्यप ऋषि, विराड् छन्द, रुद्र देवता हैं, इस प्रकार के विनियोग को उनकी स्तुति में कहना चाहिए। दो भुजा, एवं दो रक्त कमल को धारण करने वाले।९६-९८। उस देव की पूजा 'अस्य किरीट इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति से ओत प्रोत होकर रक्त वर्ण की माला एवं चन्दनादि से करनी चाहिए। इस मंत्र के नील ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, ह्लद देवता हैं। कमल पर स्थित, दो भुजा, प्रभु, अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, सात घोड़े जुते रथ से मंडित, उस सविता (सूर्य) देव का इस भाँति ध्यान करके 'यद्देवा इति' इस मंत्र द्वारा गंधादिकों से उनकी पूजा करनी चाहिए इस मंत्र के औतथ्य ऋषि, उनके प्रसन्नार्थ विनियोग में कहे जाते हैं।९९-१०१। रक्तवर्ण, दो भुजा, कमल की शरीर उस विवस्वान् देव का इस भाँति ध्यान करके 'अविद्या इति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए गन्ध चन्दनों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।१०२। इस मंत्र के गन्ध ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सोम देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए।१०३। पीतवर्ण, वृषभ पर स्थित,

विबुधाधिपं ततो ध्यायेत्पीतं वृषभवाहनम् । चतुर्भुजं यष्टिहस्तमक्षमालैकहस्तकम् ।।
त्रिनेत्रं रक्तवस्त्रं च मुकुटाद्यैरलङ्कृतम् ।।१०४
ऋषिर्हारीत इत्युक्तो जगतीच्छन्द ईरितम् । देवता च भवेच्छक्तिः प्रीतये विनियोजयेत् ।।१०५
मित्रं ध्यायेच्छुक्लवर्णं वराभयकरं परम् । मेषस्थं च त्रिनेत्रं च किरीटवरमण्डितम् ।।१०६
धनाकरस्त्विति मन्त्रेण पूजयेद्दधिपायसैः ।।१०७
ऋषिरौतथ्य इत्युक्तो जगती छन्द ईरितम् । देवता च भवेद्यक्ष्मा प्रीतये विनियोजयेत् ।।१०८
पीतास्यं राजयक्ष्माणं करालं च विचिन्तयेत् । यशोरूपमिति मन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् ।।१०९
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिर्गायत्री छन्द ईरितम् । यक्ष्मा च देवता चैव स्तुतौ च विनियोजयेत् ।।११०
शुक्लाम्बरधरं ध्यायेद्द्विभुजं शिखिवाहनम् । यमं विनेति मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः ।।१११
ऋषिः स्यान्नारदः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम् । विवस्वान्देवता चैव क्रतौ च विनियोजयेत् ।।११२
एवं ध्यात्वा विवस्वन्तं महाकायं महोदरम् । अभिन्नरूपमन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् ।।११३
काश्यपोऽस्य ऋषिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवः शचीपतिः ।।११४
बहिरीशानकोणेषु देवादीन्परिपूजयेत् । कूष्माण्डैर्वरणापुष्पैः शौरकैर्वा समर्चयेत् ।।११५
पीतां करालिकां ध्यायेच्चरकीं वरवर्णिनीम् । स्वब्जस्थां द्विभुजां चैव गुञ्जाहारोपशोभिताम् ।।११६

चारभुजाएँ, हाथों में छड़ी और अक्षमाला लिए, तीन नेत्र, रक्तवर्ण के वस्त्र, एवं मुकुटादि आभूषणों से अलंकृत उस विक्रमाधिपति देव का इस भाँति ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए । उनके मन्त्र के हारीत ऋषि, जगती छन्द, शक्ति देवता हैं, इस विनियोग को उनके प्रसन्नार्थ उच्चारण करना चाहिए ।१०४-१०५। शुक्लवर्ण, वरदान और अभयदान प्रदायक, उत्तम, मेष (भेंड़) पर स्थित, तीन नेत्र उत्तम किरीट से सुसज्जित, उस मित्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'धनाकरस्त्विति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक दही, और खीर द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिएं ।१०६-१०७। इस मन्त्र के औतथ्य ऋषि, जगती छन्द, एवं यक्ष्मा देवता हैं उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।१०८। पीत मुख तथा भीषण स्वरूप उस राज यक्ष्मा देव का इस भाँति ध्यान करके 'यशोरूपमितिः' इस मन्त्र के द्वारा गन्धों आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि, गायत्री छन्द, यक्ष्मा देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है ।१०९-११०। शुक्लाम्बर धारण किये, दो भुजा, एवं मयूर वाहन वाले उस देव का इस भाँति ध्यान करके भक्ति किये, दो भुजा, एवं मयूर वाहन वाले उस देव का इस भाँति ध्यान करके भक्ति पूर्वक 'यमं विनेति' इस मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।१११। इस मन्त्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, विवस्वान् देवता हैं, यज्ञ में तदर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए।११२। इस भाँति महाकाय एवं महान् उदर वाले उस विवस्वान् का ध्यान करके 'अभिन्नरूपेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि से उनकी पूजा करनी चाहिए।११३। इस मन्त्र के काश्यप ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शची पति देवता हैं ।११४। बाहरी भाग के ईशान कोण में स्थित देवों की पूजा कूष्माण्ड (कुम्हड़े), वरणा पुष्प अथव शौरकों द्वारा करनी चाहिए।११५। पीतवर्ण, करालवदन, कमलासन पर स्थित, दो भुजा, गुञ्जे के हार से सुसज्जित, उस उत्तम नायिका चरकी देवी का इस भाँति ध्यान करके

पीतिन्यरूपमन्त्रेण पूजयेद्भूतिमिच्छुकः । बलदेवऋषिश्चास्य छन्दो गौरी च देवता ।।११७
ध्यायेद्विदारिकां रक्तां नवयौवनसंयुताम् । पवित्रेण पुनीहीति मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।।११८
ऋषिगर्गः समाख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दोऽस्य देवता । रुद्रोऽपि च समाख्यातः स्तुतौ च विनियोजयेत् ।।११९
पापादिराक्षसीं ध्यायेत्सौरभेयोपरिस्थिताम् । कया न इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।१२०
ऋषिः सुवर्ण आख्यातः पङ्क्तिश्छन्दः प्रकीर्तितम् । देवता च महादेव इष्टार्थे विनियोजयेत् ।।१२१
कुण्डवेद्या अन्तरे च स्थापयेद्विधिवद्बुधः । पर्वताग्रमृदं चैव गजदन्तमृदं तथा ।।१२२
वल्मीके सङ्गमे चैव राजद्वारचतुष्पथात् । कुशमूलमृदं चैव यज्ञियस्य वनस्पतेः ।।१२३
इन्द्रवल्ली तथाक्रान्त अमृती त्रपुषस्य च । मालती चम्पकं चैव तथा उर्वारुकस्य च ।।१२४
पारिभद्रस्य पत्रैश्च परितः परिवेष्टनम् । पञ्चतुङ्गस्य परितो मुखे कुर्यात्फणान्वितम् ।।१२५
श्रीफलं बीजपूरं च नालिकेरं च दाडिमम् । धात्री जम्बुफलं चैव अन्यथा दोषमादिशेत् ।।१२६
पञ्चरक्तं सुवर्णं च निक्षिपेद्वरुणं यजेत् । पञ्चोपचारैर्विधिवद्गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।।१२७
उद्वर्तन इति मन्त्रेण वरुणं च पुनर्यजेत् ।।१२८
अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्विष्णुश्छन्द उदाहृतम् । गायत्री देवता पाशी प्रीतये विनियोजयेत् ।।१२९
पञ्चगन्धान्विनिक्षिप्य हस्तं दत्त्वा पठेत्ततः ।।१३०
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च महाह्लदाः । आयान्तु सर्वपापघ्नाः सर्वलोकसुखावहाः ।।१३१

'पीतिन्य रूपेति' इस मन्त्र के उच्चारण करके अपने ऐश्वर्य के लिए उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के बलदेव ऋषि, गौरी छन्द एवं देवता हैं ।११६-११७। रक्त वर्ण एवं नव यौवन पूर्ण, उस विदारिका देवी का इस भाँति ध्यान करते हुए 'पवित्रेण पुनीहीति' इस मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के गर्ग ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, रुद्र देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।११८-११९। वृषभ पर स्थित पापादि राक्षसियों का पूजन 'कयानेति' इस मन्त्र द्वारा गंध चन्दनों से सुसम्पन्न करना चाहिए ।१२०। इस मन्त्र के सुवर्ण ऋषि, पंक्ति छन्द, महादेव देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।१२१। विद्वान् को कुण्ड की वेदी के अंतराल (मध्य) भाग में पर्वत के अग्रभाग एवं गजराज के दन्ताग्र भाग की मिट्टी, वल्मीकि संगम में राजद्वार, चौराहे, कुश के मूलभाग तथा यज्ञीय वृक्ष की मिट्टियों को डालना चाहिए ।१२२-१२३। इन्द्रवल्ली मालती, चम्पा, ककड़ी एवं नीम के पत्रों द्वारा उसे चारों ओर से आवेष्टित करके उस उत्तम पाँचों मुख पर श्रीफल, बीजपूर, नारियल, अनार, आँवला अथवा जामुन के फलों द्वारा पाँच फण बनाने चाहिए । अन्यथा दोषभागी होना पड़ता है ।१२४-१२६। रक्तवर्ण की पाँच वस्तुएँ और सुवर्ण उस (कलश) में प्रक्षेप करके वरुण की पूजा पंचोपचार गन्धपुष्पादि द्वारा करनी चाहिए, पश्चात् 'उद्वर्तन इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक वरुण देव की पुनः पूजा करनी आवश्यक होती है ।१२७-१२८। इस मन्त्र के विष्णु ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग कहना चाहिए ।१२९। उसमें पाँचों गन्धों का प्रक्षेप (डाल) करके हाथ से स्पर्श करते हुए इस भाँति पढ़ना चाहिए—समस्त समुद्र, नदियाँ, सरोवर, एवं महान तालाबगण, ये सभी समस्त पापों के हननार्थ तथा सभी लोगों को सुखप्रदान करने के लिए यहाँ उपस्थित होने की कृपा करें, गंगादिक सभी

गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदाः नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥१३२
अधोराज्यष्टककृता वास्तोष्पतय इत्यपि । शतं वा चाष्टसंयुक्तं सहस्रं वा विशेषतः ॥१३३
शतार्धं वा हुनेद्विप्रस्तिलैर्वा तण्डुलैः सह । पालाशैर्वा पिप्पलैर्वौदुम्बरैर्वा समाचरेत् ॥१३४
पयोदध्यादिभिर्वापि मध्वाज्यैर्वा विशिष्यते । अन्येषां च व्रतेनैव एकैकामथ वाहुतिम् ॥१३५
अष्टाविंशतिभिश्चान्यैरष्टाष्टौ पञ्चपञ्च वा ॥१३६
चरक्यादींश्चासनैश्च पिष्टकैर्वटकेन वा । रक्तपुष्पेण पत्रेण त्रिमध्वक्तेन यत्नतः ॥१३७
वास्तोष्पते दृढं जप्त्वा यजेद्वास्तुपतिं यदा । पञ्चोपचारैर्विधिवत्साङ्गोपाङ्गैरनन्तरम् ॥१३८
बलिमासादयेत्पश्चाद्द्यादेकैकशः क्रमात् । ब्राह्मणैश्चैव दद्याच्च सदा आज्यं समाक्षिकम् ॥१३९
शाल्यन्नं शिखिने दद्यात्तथा नीलोत्पलानि च । ओदनं सोत्पलं दद्यात्पर्जन्याय विचक्षणः ॥१४०
जयाय पिष्टकं कार्यमिन्द्राय घृतमोदकः । सूर्याय पिष्टकान्नं च सत्याय यवपूलिकाम् ॥१४१
भ्रमाय मत्स्यमांसान्नं शष्कुलीमथ पिष्टकम् । वायव्ये च तथा सक्तून्पूष्णे चापूपमेव हि ॥१४२
वितथाय कलायान्नं गृहक्षाय समाक्षिकम् । पूष्णेथ कृशरान्नं च शाल्यन्नं च निवेदयेत् ॥१४३
गन्धर्वाय कस्तूरिकान्नं कृशरं भृङ्गराजके । मृगाय यावकान्नं च पितृभ्यो मुद्गपायसम् ॥१४४
दौवारिकाय कृशरानन ढुंहे च पूपकम् । पायसं पुष्पदन्ताय वरुणाय च पिष्टकम् ॥१४५
असुराय मोदकांश्चैव दद्यादापिक्षये सुराम् । घृतोदनं च सोमाय कणान्नं यक्ष्मणे ददेत् ॥१४६

नदियाँ, समस्त तीर्थ एवं जल दान करने वाले नदगण यजमान के दुरित शमनार्थ यहाँ आने की कृपा करें तथा शिव के निमित्त आठ यज्ञों द्वारा किये गये वास्तोष्पतिगण भी । एक सौ आठ, विशेषकर सहस्र, अथवा पचास आहुतियाँ तण्डुल मिश्रित तिल की पलाश, पीपल, अथवा गूलर की लकड़ियों द्वारा प्रज्वलित अग्नि में डालनी चाहिए ।१३०-१३४। उस हवन की सामग्री में दूध-दही अथवा विशेष कर शहद और घी डालना चाहिए, अन्यलोगों को व्रत की भाँति एक-एक आहुति, अट्ठाईस, आठ-आठ, अथवा पाँच पाँच आहुति बतायी गयी है ।१३५-१३६। चरकी आदि देवियों के निमित्त आसन, पूर्ण वट (बरगद) के रक्त पुष्प, अथवा पत्तों द्वारा शहद, घी एवं शक्कर मिलाकर हवन करना चाहिए ।१३७। वास्तोष्पति के नाम का दृढ़ता पूर्वक जप करके पंचोपचार विधान द्वारा सांगोपाङ्ग समेत उनकी पूजा करनी चाहिए, पश्चात् क्रमशः एक-एक देवताओं के लिए बलि प्रदान भी उसी भाँति ! ब्राह्मण को शहद समेत घी प्रदान करना बताया गया है ।१३८-१३९। नील कमल समेत साठी चावल की खीर अग्नि को, कमल समेत भात पर्जन्य को, जप के लिए पीठी, इन्द्र के लिए घी के मोदक (लड्डू) सूर्य के लिए पीठी मिश्रित अन्न, सत्य के लिए जवा की पूलिका, भ्रम के लिए मत्स्य मांस मिश्रित अन्न दही अथवा पीठी, वायु कोण स्थायी (देवों) के लिए सत्तू, पूषा (सूर्य) के लिए मालपूआ, (बलिरूप में) प्रदान करना चाहिए ।१४०-१४२। वितथ के लिए अन्न, गृहेश के लिए शहद समेत अन्न और पूषा के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) साठी चावल की खीर, गन्धर्व के लिए कस्तूरी मिश्रित अन्न, भृंगराज के लिए कृशर, मृग के लिए लप्सी, पितरों के लिए मूंग के लड्डू, दौवारिक के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) वृषभ के लिए पूआ, पुष्पदन्त के लिए खीर, वरुण के लिए पीठी, असुर के लिए मोदक (लड्डू) अपिक्षय के लिए सुरा

रोगाय घृतलड्डूकं तपायसगुडौदनम् । अक्षाय विविधान्नं च भल्लाटाय तथैव च ।।१४७
सोमाय मधुशाल्यन्नं नागाय गुडपिष्टकम् । आदित्यै चापि गोधूमं घृतपक्वं निवेदयेत् ।।१४८
दित्यै दद्यात्तथा क्षीरं सितशर्करया सह । क्षीरान्नं चैव पूष्णे च आपवत्साय वै दधि ।।१४९
सावित्र्यै लड्डुकान्नं च सवित्रे च गुडौदनम् । जयाय घृतमन्नं च मिष्टान्नं च विवस्वते ।।१५०
विरूपाय च तद्दद्याद्धरिद्रान्नं तथैव च । घृतौदनं च चित्राय रुद्राय घृतपायसम् ।।१५१
मांसौदनं यक्ष्मणे च कृशरं वरुणाय च । अर्यम्णे शर्करापूपं बहिर्दद्याच्चतुष्टयम् ।।१५२
चित्रौदनं समांसं च मत्स्यान्नं गुडपिष्टकम् । प्रतिदेवोपरि क्षीरं[१] घृतक्षीरसमन्वितम् ।।
तीर्थतोयसमायुक्तं सुगन्धेन समन्वितम् ।।१५३
पताका देववर्णेन दद्याद्ब्रह्मादिषु क्रमात् । मन्त्रं जपेत्स्वसामर्थ्यात्स्वसामर्थ्यात्स्तुतिं पठेत् ।।१५४
पुरुषस्तवस्य सूर्य ऋषिर्जगती छन्दः । सविता देवता सोमपाके स्तुतौ विनियोगः ।।१५५

शङ्कर उवाच

विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञियो[१] यज्ञपालकः । नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो हुताशनः ।।१५६
यज्ञेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । आदिदेवो जगत्कर्ता मण्डलेशो महीधरः ।।१५७
पद्मनाभो हृषीकेशो दाता दामोदरो हरिः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्रीतिवर्द्धनः ।।१५८
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो ध्रुवः शुचिः । संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञस्त्रिपञ्चाशद्गुणात्मकः ।।१५९

(शराब), सोम के लिए मिश्रित भात, यक्ष्मा के लिए अन्नों के कण, रोग के लिए घी के लड्डू, और खीर समेत मीठा भात, अक्ष और भल्लाट के लिए भाँति-भाँति के अन्न बलि प्रदान करना चाहिए ।१४३-१४७। सोम के लिए शहद, साठी चावल के भात, नाग के लिए गुड़-पीठी अदिति के लिए गेहूँ के आटे के हलुआ, दिति के लिए चीनी मिश्रित दूध, पूषा के लिए दूध-भात, आपवत्स के लिए दही देना चाहिए ।१४८-१४९। सावित्री के लिए लड्डू, सविता के लिए मीठा भात, जय के लिए घी-भात, विवस्वान् के लिए (मिठाई) विरूप के लिए हरदी मिश्रित भात, चित्र के लिए घी भात, रुद्र के लिए घी मिश्रित खीर, यक्ष्मा के लिए मांस भात, वरुण के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) अर्यमा के लिए शक्कर पूआ आदि चार वस्तुओं को बाह्य भूमि में प्रदान करना चाहिए ।१५०-१५२। अनेक भाँति के भात, मांस, मत्स्य, गुड़, पीठी और घी दूध के समेत जल तथा सुगन्ध युक्त तीर्थ जल, प्रत्येक देवों के लिए समर्पित करना चाहिए ।१५३। ब्रह्मादि देवों को क्रमशः पताका दान पूर्वक यथाशक्ति उनके मंत्र के जप और स्तुति पाठ भी करना बताया गया है । पुरुषस्तव मन्त्र के सूर्य ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता हैं, सोम पाक की स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए।१५४-१५५

शंकर बोले—विष्णु, जिष्णु, विभु, यज्ञीय, यज्ञात्मक, नारायण, नर, हंस विष्वक्सेन, हुताशन, यज्ञेश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, आदि देव, जगत्कर्ता, मण्डलेश, महीधर, पद्मनाभ, हृषीकेश, दाता, दामोदर, हरि, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मा के प्रीति वर्द्धक, भक्तप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यवाक्य,

---

१. 'नीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमराभिधानात्क्षीरशब्दोत्र जलपर्यायः, तेन 'घृतक्षीरसमन्वितम्' इत्युक्तेर्न विरोधः ।

विदारी विनयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः। यज्ञस्त्वं हि वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्वमग्रयः ॥१६०
त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरुषोत्तमः। नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥
अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ॥१६१
ब्रह्मस्तवमिमं प्रोक्तं महादेवेन भाषितम्। प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥१६२
ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं हृत्पद्ममध्ये स्वयमाव्यवस्थितम्।
उपासकानां प्रभुमेकमीश्वरं ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥१६३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे पूजाक्रमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्घ्यदानविधिवर्णनम्

सूत उवाच

ततो भेर्यादिघोषेण यजमान उदङ्मुखः। कनकतोयेन गन्धेन मुद्गलाग्रेण लेपयेत् ॥१
ऐशान्यां मध्यभागे वा यजेद्वा सुसमाहितः। वर्तुलाकारयेद्यस्मान्मन इच्छति सञ्जपन् ॥२
ऋषिः कण्ठोऽथ गायत्री छन्द इत्यभिधीयते। देवता पृथिवी चैव स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥३
विवरे पूजयेत्कर्म ब्रह्माणं च धराधरम्। पृथिवीं गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥४

ध्रुव, शुचि, संन्यासी, शास्त्र तत्त्वज्ञ, तिरपनगुणात्मक, बिदारी, विनय, शांत, तपस्वी, एवं वैद्युत्प्रभनामक तुम्ही हो, तथा यज्ञ, वषट्कार, ओंकार, अग्नि, स्वधा, स्वाहा, और पुरुषोत्तम भी तुम्हीं हो, देवों के आदि देव, विष्णु, शाश्वत, अनंत एवं अप्रमेय को नमस्कार है, तथा हे गरुडध्वज ! तुम्हें नमस्कार है।१५६-१६१। महादेव द्वारा प्रकाशित इस ब्रह्मस्तव का पाठ करने के लिए जो प्रयत्नशील रहते है, उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो अपने हृदय कमल के मध्य में स्वयं भली भाँति स्थित नित्य अनन्त उपासकों के एक ईश्वर एवं प्रभु उस अच्युत का ध्यान करते हैं, उन्हें परमोत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त होती है।१६२-१६३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में पूजाक्रमवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।११।

अध्याय १२

अर्घ्यदानविधि का वर्णन

सूत बोले—उसके अनन्तर यजमानको नगाड़े आदि वाद्यों की ध्वनि कोलाहल में उत्तर मुख होकर मुद्गल के अग्रभाग से कनकतोय मिश्रित गन्ध का लेप करना चाहिए।१। ईशान कोण के मध्य भाग में गोलाकार (प्रतिमा) की स्थापना पूर्वक सावधान होकर उसका मंत्र जप करना चाहिए।२। उस मंत्र के कण्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, पृथिवी देवता हैं, उसकी स्तुति कार्य में इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है।३। विवर स्थित कर्म, ब्रह्मा, धराधर (शेष), और पृथिवी के पूजन गन्ध-पुष्प एवं अनेक प्रकार के

अग्रतोऽष्टदलं लेख्यं स्थापयेत्कलशं ततः । मुखे विधाय कनकं राजतेन विनिर्मितम् ॥५
शुक्तिशङ्खसमं वापि विश्वामित्रसमुद्भवम् । पूजयेत्तीर्थतोयेन गन्धपुष्पाक्षतादिना ॥६
विष्णुक्रान्तादचाकुष्ठचन्दनेन विलोडितम् । क्षीरं च मातुलिङ्गं च सावित्रं च सदूर्वया ॥७
दध्यक्षतं मधुयुतमेवमर्घ्यं च साधयेत् । सितचन्दनवस्त्राद्यैः शाल्यैश्च त्रिविधैरपि ॥८
अव्रणं कलशं कृत्वा पञ्चवर्णसमन्वितम् । आवाहयेत्तोयनिधिं मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥९
आयाहि भगवन्देव तोयमूर्ते जलेश्वर । हृद्वर्णार्घ्यं मया दत्तं परितोषाय ते नमः ॥१०
गृहेभ्यश्चैव सोमाय त्वष्ट्रे चैव च शूलिने । इमं मे वरुणेत्यादि प्रत्येकं स्याद्गतित्रयम् ॥११
ततोऽर्घ्यदानं विधिवत्क्षीरेण हविषा मधु[१] । यजमानः सपत्नीकः कुम्भं कुक्षौ निधाय च ॥१२
हिरण्यगर्भेति मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिः स्मृतः । छन्दश्च जगती ख्यातं देवता च जलाधिपः ॥१३
वरुणस्योत्तम्भनेति मन्त्रस्य जलकुम्भं निवेदयेत् । अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्नारदः परिकीर्तितः ॥
विराट्छन्दश्च ईशानो देवता समुदाहृता ॥१४
मोचयेन्मीनयुग्मं च मेषयुग्मं तथैव च । सम्भवे पक्षियुग्मं च आडीं वा चक्रवाककम् ॥१५
मोचयेन्नागयुग्मं च आयुवृद्धेश्च हेतवे । दिक्षु जीवन्तिकां दद्याद्राक्षसेभ्यो बलिं हरेत् ॥१६
निर्मितं माषभक्तेन रक्तपुष्पैरलङ्कृतम् । क्षात्रको लक्ष्मणश्चैव मणिभद्रो गणेश्वरः ॥
सबिन्दुकेन हस्तेन दिक्षु मध्ये यथा क्रमात् ॥१७

नैवेद्यों द्वारा करना चाहिए ।४। सामने अष्टदल कमल का निर्माण करके उसके ऊपर चाँदी के कलश में सुवर्ण, शुक्ति, शंख अथवा विश्वामित्र के समुद्र से उत्पन्न (वस्तु) डालकर स्थापित करके तीर्थ जल, गन्ध एवं पुष्पाक्षतादि से उसकी पूजा सुसम्पन्न करके अपराजिता, वच, आकुष्ट चन्दन, क्षीर, मातुलिङ्ग, सावित्र, दूर्वा के समेत दही, अक्षत, एवं शहद इन्हें एकत्र कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए, पश्चात् श्वेत चन्दन वस्त्र, एवं विविध भाँति के अन्न से उसकी पूजा करने के उपरांत व्रणहीन एवं पञ्चवर्ण युक्त उस घट में भक्ति पूर्वक तोयनिधि सागर का आवाहन निम्नलिखित वाक्यों द्वारा करना चाहिए । हे भगवान्, देव, तोयमूर्ति, एवं जलेश्वर, आप के प्रसन्नार्थ मैंने मोहक द्रव्यों के अर्घ्य प्रदान किया है, आप को नमस्कार है, इस भाँति गृहेश्वर, सोम, त्वष्टा, एवं शूली के लिए नमस्कार करके 'इमं मे वरुणेत्यादि' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करके पश्चात् पत्नी समेत यजमान विधान पूर्वक क्षीर, घी और शहद कलश में डालकर उसे अपनी कुक्षि में रखकर अर्घ्य प्रदान करे ।५-१२। 'हिरण्यगर्भेति' इस मंत्र के भारद्वाज ऋषि जगती छन्द, एवं वरुण देवता हैं, इस विनियोग के प्रयोग पूर्वक 'वरुणस्योत्तम्भनमिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए कलश में जल प्रक्षेप करना चाहिए । इस मंत्र के नारद ऋषि, विराट् छन्द, और ईशान देवता हैं ।१३-१४। पुनः दो मछलियाँ, दो भेंड, अथवा सम्भव हो तो दो पक्षियों, शरारि पक्ष या चकोर नाग के त्याग अपनी आयुवृद्धि के लिए करना चाहिए । और दिशाओं में राक्षसों के निमित्त जीवन्तिका (शमी, गुरुचि आदि) प्रदान करना बताया गया है ।१५-१६। पश्चात् उरद का रक्त पुष्पों से अलंकृत करके उसे बलिरूप में क्षात्रक, लक्ष्मण, मणिभद्र एवं गणेश्वर आदि देवों के लिए जो दिशाओं

---

१. 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' इति घः । २. मधुना ।

ये भवा भाविनो भूता ये च तेषु मयासिनः । आहरं तु बलिं तुष्टया प्रयच्छन्तु शुभं मम ॥१८
इत्युक्त्वा च बलिं दद्यान्नमस्कुर्यादनन्तरम् । दद्यात्पयस्विनीं गां च आचार्याय विशेषतः ॥१९
अन्येषां हि हिरण्यं च गां च दद्याद्द्विजन्मने । व्याहृतिद्वितयं चैव ततो वारुणपञ्चकम् ॥२०
प्राजापत्यं स्विष्टकृच्च जुहुयात्तदनन्तरम् । घृतैः स्विष्टकृतं नास्ति तथा रसविसारकैः ॥२१
पद्मोत्पलैर्मातुलिङ्गैः पनसैर्मातुलुङ्गकैः । मधूकैर्विल्वपुष्पैश्च तथाम्रातककाशकैः ॥२२
अभिषेकं ततः कुर्यात्सुवास्त्विति च वै जपन् । दद्यात्पूर्णां च विधिवत्सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥२३
पञ्चदोषं पुरस्कृत्य ब्राह्मणानुमतेन च । गृहं प्रविश्य च ततो ब्राह्मणानथ भोजयेत् ॥२४
दीनान्धकृपणे चैव दद्याद्वित्तानुसारतः । ज्ञातिभिः सह भुञ्जीत दधिक्षीरामिषं विना ॥२५
न क्षीरं च कषायं च भर्जितं शाकमेव च । न काण्डं च न पुष्पं च करीरं च कदाचन ॥२६
शाल्यन्नं मूलकं चैव पनसाम्रफलानि च । मस्तं मधुघृतगुडं मातुलिङ्गं ससैन्धवम् ॥२७
बदरं धातकिफलं कुन्दपुष्पं तथा तिलम् । एतत्प्रशस्तं जानीयान्मरीचानि विशेषतः ॥२८
त्रिरात्रमथ सप्ताहं परित्यज्य खले ततः । पञ्चाङ्गकं ततः कुर्यात्स्थापयेन्नेति युग्मकम् ॥२९
प्रथमा चार्कहस्तेन द्वितीया दशहस्तिका । वितस्ते तु भवेच्छतं द्विगुणं तदनन्तरम् ॥३०
शतार्धं ततः पश्चात्षष्टि हस्तमनन्तरम् ॥३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागेऽर्घ्यदानविधिवर्णनं
नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

के मध्य भाग में विन्दुक के रूप में स्थित हैं, क्रमशः प्रदान करना चाहिए । वर्तमान, भावि और अतीत काल के भूतों (जीवों) के लिए मैं बलि प्रदान कर रहा हूँ, इसे स्वीकार करके मुझे कल्याण प्रदान करें ।१७-१८। इस भाँति कहकर बलि प्रदान के उपरांत पंचवारुणी, प्राजापत्य, एवं स्विवटकृत् हवन के विधान सुसम्पन्न करना चाहिए । घी, रस विसारक, नील कमल, नीम, कटहल, महुवा, विश्वपुष्प, आम्रातक एवं काश की आहुति स्विवटकृत् हवन में नहीं दी जाती है ।१९-२२। पुनः अभिषेक के उपरांत 'सुवास्त्विति' के जप पूर्वक पूर्णाहुति और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना बताया गया है ।२३। ब्राह्मणों की आज्ञा से पञ्च दोषों के समेत घर में प्रवेश करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।२४। दीन, अंधे, एवं असहायों को अपने वित्तानुसार दान करके बन्धुगणों के साथ भोजन करना चाहिए । दही, क्षीर, मांस, कषाय, भूना पदार्थ, शाक, कोण्ड, पुष्प, एवं करीर के भोजन कभी न करना चाहिए ।२५-२६। साठी चावल, मूली, कटहल, आम के फल, मस्त, शहद, घी, गुड़ सेंधानमक समेत नीम, वेर, आवँला, कुन्द पुष्प और तिल तथा मिर्च इन वस्तुओं को प्रशस्त बताया गया है । तीन रात अथवा एक सप्ताह तक उसे खल (खरल) में डाल कर पञ्चाङ्ग की रचना करे, युग्म की नहीं ।२७-२९। पहली बारह हांथ, दूसरी दश हांथ, एवं सौ हाथ की विस्तृत अथवा उससे दुगुने, पचास, या साठ की भी बनाई जा सकती है ।३०-३१

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में अर्घ्यविधान दान नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अग्निहोत्रविधानवर्णनम्

सूत उवाच

स्वगृह्याग्निविधिं वक्ष्ये योगभेदेषु सत्तमाः । न परोक्तं विधानेन भयदं कीर्तिध्वंसनम् ।।१
पुत्रा एव च कन्याश्च जनिष्यन्तश्चापरे सुताः । गृह्या इति समाख्याता यजमानस्य दायदाः ।।२
तेषां संस्कारयागेषु शान्तिकर्मक्रियासु च । आचार्यविहितः कल्पस्तस्माच्चक्ष इति स्मृतः ।।३
त्रिकुशं परिगृह्णाति ततश्च कुरुते दृढम् । ऋषिर्दक्षश्च जगती छन्दो विष्णुश्च देवता ।।४
कश्यपस्तृप्यतामिति भूरसीति च शोधनम् । ऋषिः सुवर्ण गायत्री जगती छन्द इष्यते ।।
देवता च भवेत्सूर्यः पृथिवीशोधने न्यसेत् ।।५
ऐशान्यादिक्रमेणैव प्रादक्षिण्येन यत्नतः । यत्पवित्रेति मन्त्रेण तर्जन्यङ्गुष्ठयोरपि ।।६
कुशगर्भत्रयेणापि भ्रामयेद्वलयाकृति । परिसमूहनमित्युक्तं स्नपनं शृणु सत्तम ।।७
ईशानादेश्च संस्कारं कुर्यात्परिसमूहनम् । प्रतिष्ठायां चरेत्यादिनैर्ऋत्यादिग्रहं मखे ।।८
परिसमूहनमैन्द्रस्य पर्वतोऽस्य ऋषिः स्मृतः । पङ्क्तिश्छन्दः समुद्दिष्टमिन्द्राणी चास्य देवता ।।९
गोमयं च त्रिगन्धं च पञ्चमूर्तिकयापि च । कनिष्ठं गुह्यकं त्यक्त्वा देवतार्थे न लेपयेत् ।।१०

अध्याय १३

अग्निहोत्र विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सत्तमवृन्द ! योग के भेद वर्णन में अग्निहोत्र-विधान की चर्चा की गयी है, मैं उसे बता रहा हूँ । दूसरे के द्वारा कहे गये विधान के अनुसार उसे सुसम्पन्न करने से भय प्राप्ति एवं कीर्ति नष्ट हो जाती है ।१। पुनः कन्याएँ और उत्पन्न होने वाले अपने पुत्र गण 'गृह्य' (घर की वस्तु) कहते है, वही यजमान के दायाद भी हैं ।२। उनके संस्कार यज्ञों में और शान्ति कर्म के अनुष्ठानों में आचार्य द्वारा निर्धारित कल्पों को 'चक्ष' बताया गया है । त्रिकुशा के द्वारा उसे दृढ़ करना कहा गया है ! उस मन्त्र के दक्ष ऋषि, जगती छन्द, एवं विष्णु देवता हैं, 'कश्यपस्तृप्यतामिति' और 'भूरसीति' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए पृथिवी का संशोधन करना चाहिए । इस मन्त्र के सुवर्ण ऋषि, गायत्री और जगती छन्द, सूर्य देवता हैं, पृथिवी के संशोधन समय इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।३-५। ईशान कोण आदि के क्रम से प्रदक्षिणा पूर्वक तर्जनी और अंगुष्ठ से तीन कुशाओं को ग्रहण कर गोलाकार उसका भ्रमण कराना 'परिसमूहन' कहलाता है, तथा सत्तम ! अभिषेक बता रहा हूँ, सुनो ! प्रतिष्ठा एवं यज्ञ में ईशान कोण आदि के संस्कार, परिसमूह एवं नैर्ऋत्यादि ग्रहों की अर्चा आवश्यक होती है ।६-८। 'परिसमूहनमैन्द्रस्येति' इस मंत्र के पर्वत ऋषि, पंक्ति छन्द, इन्द्राणी देवता बतायी गयी हैं ।९। गोबर, तीनों गंध, पञ्च मूर्तिका द्वारा लघु गुह्य स्थानों का लेपन किसी देवता के उद्देश्य से न करना चाहिए ।१०।

मानस्तोकेनेति ऋचा विश्वेदेवश्च पूज्यताम्। ऋषिः स्यात्काश्यपश्छन्दो विश्वेदेवः प्रकीर्तितः॥११
योजयेल्लेपयेद्विद्वान्घटमाबद्धय सत्तमाः। मध्यमातर्जनीभ्यां च कुशमारभ्य दक्षिणम्॥१२
चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं हस्तमानं तथाननम्। यज्वभिरिति मन्त्रेण सूर्यः प्रीणाति सत्तमाः॥१३
दक्षे सार्धाङ्गुलं त्यक्त्वा पश्चिमेन परित्यजेत्। उत्तराग्रां लिखेद्रेखामन्यथाऽमङ्गलं भवेत्॥१४
आप्यायस्वेति मन्त्रस्य धन्वन्तरिऋषिः स्मृतः। त्रिष्टुप्छन्दः समाख्यातं सविता चात्र देवता॥१५
तल्लग्नं दक्षिणे चैकं पूर्वार्द्धद्वादशाङ्गुलम्। अन्याङ्गुलान्तरे चैकं ततः सप्ताङ्गुलं भवेत्॥१६
कुशमूलेन स्वर्णेन प्रतिष्ठायां च राजते। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च सञ्ज्योतीति च सञ्जपन्॥१७
संस्तरेन्मित्रा वरुणौ ऋषिरौतथ्यसंज्ञकः। पंक्तिश्छन्दः शिवो देवो रेखामथं च योजयेत्॥१८
तेनैवोद्धर्वकरौ कुर्याद्दक्षवामे सकृत्सकृत्। भास्वराय क्षिपेदग्नौ तत ऊर्ध्वं रणं स्मृतम्॥१९
सदसम्पदृषिः कर्णो विराडिति उदाहृतः। छन्द इन्द्रो देवता च पृथिव्या देवता भवेत्॥२०
कुशपुष्पोदकेनापि देवतीर्थेन सत्तमाः। पञ्चगव्येन मतिमान्पश्चरत्नोदकेन च॥
पश्चपल्लवतोयेन महायोगे विशेषतः ॥२१
अथोनस्य च मन्त्रस्य वशिष्ठःपरिकीर्तितः। छन्दोऽथ देवी गायत्री देवता गणनायकः॥२२
कीशादग्निं समादाय मे गृह्णामीति सम्पठन्। मे गृह्णामीति मन्त्रस्य ऋषिर्गौतम ईरितः॥
छन्दोऽनुष्टुप्समाख्यातं वामदेवोऽथ देवता ॥२३

'मानोस्तोकेनेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक विश्वदेव देवों की पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के काश्यप ऋषि, विश्वदेव छन्द एवं देवता बताये गये हैं।११। श्रेष्ठगण! घर को आबद्ध कर मध्यमा तर्जनी अंगुली से कुश ग्रहण कर के दक्षिण की ओर से लेपनयोजन करना चाहिए। चौकोर क्षेत्र में सूर्य की उस प्रतिमा का, जिसमें एक हांथ के विस्तार में केवल उनके मुख की कल्पना की जाती है। 'यज्वभिरिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजा करनी चाहिए।१२-१३। दक्षिण दिशा में डेढ़ अंगुल वेदी की भूमि के त्याग करके पश्चिम की ओर से उसका परित्याग करने पर उत्तराग्र भाग वाली रेखाओं के निर्माण करना चाहिए, अन्यथा अमंगल होने की आशंका उत्पन्न होती है।१४। 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के धन्वतरि ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, तथा सविता देवता है।१५। उसी से सम्मिलित दक्षिण भाग में पूर्वार्द्ध के बारह अंगुल और दूसरा सात अंगुल का भी होता है।१६। कुशमूल के स्वर्ण भाग द्वारा रेखा निर्माण के उपरांत अँगूठा और अनामिका से 'संज्योतीति' इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक रेखा मिट्टी का परित्याग करना बताया गया है। इस मंत्र के मित्रावरुण और औतथ्य ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं शिव देवता हैं, रेखा निर्माण के समय इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए।१७-१८। उसी से दक्ष के बायेंभाग में एक एक बार हाथों को ऊपर उठा उठा कर भास्कर अग्नि में उसका प्रक्षेप करना आवश्यक होता है। उसके ऊर्ध्व भाग को 'रण' बताया गया है।१९। 'सदसम्पत् इति' इस मंत्र के कर्ण विराट् ऋषि, इन्द्र छन्द और पृथिवी के भी देवता हैं।२०। सत्तमवृन्द! कुश पुष्पोदक से देवतीर्थ द्वारा तथा उस बुद्धिमान् को पञ्चगव्य, पञ्चरत्नोदक, एवं पञ्चपल्लव के जल से विशेषकर महायोग में स्नान करना बाताया गया है।२१। 'अथोनस्येति' इस मन्त्र के वशिष्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, एवं गणनायक देवता हैं।२२। पुनः 'कीशादग्निं समादाय मे गृह्णामि' इस मंत्र का पाठ करना चाहिए। इस मंत्र के गौतम ऋषि, अनुष्टुप्

क्रव्यादग्निं परित्यज्य क्रव्यादमग्निमीरयन् । मन्त्रेणानेन मतिमान्दक्षिणस्यां विनिक्षिपेत् ।।२४
अस्य मन्त्रस्य हारीत ऋषिः स्याच्छन्द इष्यते । देवता वामदेवोऽपि दाहेऽपि विनियोजयेत् ।।२५
आवाहनं ततः कुर्यात्संसरक्षेति सञ्जपन् । संसरक्षेति मन्त्रस्य ऋषिर्नील उदाहृतः ।।
विराट् छन्दोऽथ विज्ञेयो देवता च शतक्रतुः ।।२६
वैश्वानरइति ऋचा अग्निस्थापनमीरितम् । मन्त्रमाचाति प्रीणाति ऋषिः स्यात् काश्यपः स्मृतः ।।
अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो देवता हव्यवाहनः ।।२७
बध्नासीति च मन्त्रेण अग्निं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । ऋषिः स्वयम्भूराख्यातो विराट्छन्द उदाहृतम् ।।
देवता परमात्मा च नमस्कारेण योजयेत् ।।२८
ततोऽग्निदक्षिणे भागे प्रागग्रकुशकुब्जके । द्विहस्ते भवतश्चैव हस्तपानासने अथ ।।२९
ब्रह्मन्निहोपवेश्यतामिति ब्रह्माणं दिनिवेशयेत् । ब्रह्मयज्ञानृचा दोग्ध्री धेनुरिति त्वृचा ।।३०
द्वाभ्यामिति च मन्त्राभ्यामिति ब्रह्मप्रवेशनम् । शक्रोऽस्य त्रायतामेति शृणु ऋग्भ्यामृषीद्विजाः ।।३१
प्रजापतिर्ऋषिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवोऽथ शङ्करः । नारदश्च ऋषिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवः शचीपतिः ।।३२
अग्नेरुत्तरभागे च हस्तमानान्तरेऽपि च । प्रणीतास्थापनं कुर्याद्दिन एहीति सञ्जपन् ।।३३
मन्त्रस्य च ऋषिश्छन्दो वामदेवः प्रकीर्तितः । जगती च भवेच्छन्दो देवता च शतक्रतुः ।।३४
श्रीपर्णीसहकारोत्थं वरुणस्य विशेषतः । षडङ्गुलेन विस्तारं विंशत्यङ्गुलकेन च ।।३५
दैर्घ्येण च चतुःख्यातकाङ्गुलं च प्रमाणतः । द्वयङ्गुले चरकाकायामासासन्देवकर्मणि ।।३६
अभिचारे भवेत्कांस्यं ताम्रं स्याच्छान्तिकर्मणि । प्रतिष्ठायां मृण्मयं च अष्टाङ्गुलमथापि वा ।।३७

छन्द, और वामदेव देवता बताये गये हैं ।२३। शव दाहक अग्नि के अतिरिक्त अग्नि को ग्रहण कर 'क्रव्यादमग्निमीरयन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे दक्षिण की ओर डाल देना चाहिए ।२४। इस मंत्र के हारीत ऋषि, छन्द एवं वामदेव देवता हैं, दाह के समय इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है ।२५। पश्चात् ! 'संसरक्षेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए आवाहन करना चाहिए । इस मंत्र के नील ऋषि, विराट् छन्द, एवं शतक्रतु देवता है ।२६। 'वैश्वानर इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक अग्नि स्थापन करना बताया गया है । 'इस मंत्र के काश्यप ऋषि' अनुष्टुप् छन्द, और हव्य वाहन देवता हैं ।२७। 'बध्नासीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिए । इस मन्त्र के स्वयंभू ऋषि, विराट् छन्द, एवं परमात्मा देवता हैं, नमस्कारार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना कहा गया है ।२८। इसके उपरांत अग्नि के दक्षिण भाग में कुशा के प्रागग्रभाग को एक कुब्जासन बनाकर रखने के अनन्तर हे ब्रह्मन् ! इसे सुशोभित कीजिये इस प्रकार ब्रह्मा से प्रार्थी होना चाहिए । 'ब्रह्म यज्ञानृचा दोग्ध्री धेनुरिति त्वृचेति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण करते हुए ब्रह्मा का वहाँ प्रवेश कराना बताया गया है । शुक्र इसकी रक्षा करें और ऋचाओं द्वारा ऋषियों की रक्षा हो ।२९-३१। इस मंत्र के प्रजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, शंकर देव, एवं नारद ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और इन्द्र देवता हैं ।३२। 'दिन एहीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अग्नि के उत्तर भाग में एक हाथ प्रमाण की भूमि के मध्य प्रणीता पात्र का स्थापन करना कहा गया है ।३३। इस मंत्र के वामदेव ऋषि, जगती छन्द, एवं शतक्रतु (इन्द्र) देवता हैं ।३४। श्रीपर्णी, आम, एवं विशेषकर वरुण के छः अंगुल अथवा बीस अंगुल का विस्तृत, और चार अंगुल का चौड़ा प्रणीता पात्र तथा देवकर्म में दो अंगुल की चरकी बनायी जाती है ।३५-३६। अभिचार कर्म के

द्वादशाङ्गुलप्रस्तारं तैजसं मानवर्जितम् । इनं मे वरुणेनर्चा प्रणीतामथ पूरयेत् ।।३८
सागरा अथ प्रीयन्तामित्थमाध्यानमाचरेत् । सकृदच्छिन्नदर्भेण दिग्विदिक्षु परिस्तरेत् ।।३९
नैर्ऋते दिक्षु सीतः स्याद्वैश्वदेवे तथैव च । कया नश्चित्र इत्यृचा नागः प्रीणाति सत्तमाः ।।४०
अस्य मंत्रस्य च ऋषिर्भरद्वाज उदाहृतः । छन्दोऽनुष्टुब्देवता च ईशानः परिकीर्तितः ।।४१
प्रयोजनादिकं द्रव्यं तत आसादयेत्क्रमात् । दक्षिणादि उत्तरान्तं ध्रुवास इत्यृचापि च ।।४२
ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दोऽनुष्टुप्चैवाथ देवता । शतक्रतुश्च प्रीणाति योजयेदथ सादरात् ।।४३
काष्ठं च पश्चिमे कुर्यात्प्रयञ्छन्पश्चिमेन तु । पुरतोऽन्नं पञ्चव्रीहीस्तिलाश्च सहसर्षपान् ।।४४
दक्षिणे चैव आपूपं भृङ्गराजं तथैव च । फलपत्रे वामभागे पिष्टकं दधि दुग्धकम् ।।४५
पनसं नारिकेलं च मोदकं लड्डुकं तथा । प्रणीतां च दिग्विदिक्षु स्थापयेदविचारयन् ।।४६
प्रणीतां न स्पृशेज्जातु होमकाले कथञ्चन । स्नानकुम्भं च भो विप्रा यावद्यागः प्रवर्तते ।।४७
उच्चीरकं मातुलिङ्गं दूर्वां धात्रीफलानि च । तुलसीमालतीजाती जलजानि विशेषतः ।।४८
ऐशान्यां स्थापयेत्सर्वं यच्च वै कङ्कतीमयम् । नैर्ऋत्येति विशेषोऽयं यच्च वैकङ्कती शमी ।।४९
यथा योगेन तत्सर्वं ग्राह्यं तत्पत्रमेव च । क्षीरपाके तु क्षीरान्ते चरुस्थालीमथानयेत् ।।५०
पवित्रच्छेदनकुशैश्छिन्द्यात्प्रादेशिकं पुनः । छित्त्वा पवित्रं प्रोक्षण्यां स्थापयेद्बलभिदाम्रकम् ।।५१

काँसे, शांति कर्म में ताँबें, प्रतिष्ठा में मिट्टी के आठ अंगुल का अथवा बारह अंगुल के सुवर्ण का प्रणीता पात्र बनाना चाहिए। 'इमं में वरुणेनार्चा' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रणीतापात्र को जल से पूर्ण करना चाहिए।३७-३८। 'सागरा अथ प्रीयन्तामिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए ध्यान करना बताया गया है। जो एक बार भी न कटा हो, ऐसे कुशों का परिस्तरण अग्नि के चारों दिशाओं में करना चाहिए।३९। श्रेष्ठगण ! नैऋत्य (पश्चिम) दिशाओं एवं वैश्वदेव के लिए भी सीत कहा गया है। 'कयानश्चित्र इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक नाग को प्रसन्न किया जाता है।४०। इस मंत्र के भारद्वाज ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, एवं ईशान देवता बताये गयें हैं।४१। इसके अनन्तर प्रयोजन की वस्तुओं का आसादन क्रमशः करना चाहिए उस समय 'दक्षिणादि उत्तरान्तं ध्रुवास इति' इस ऋचा का पाठ भी करता रहे।४२। इस मंत्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, और शतक्रतु देवता हैं, उस समय सादर इस विनियोग का प्रयोग करना आवश्यक होता है।४३। पश्चिम की ओर काष्ठ, सामने अन्न, पाँच प्रकार के धान्य, और राई समेत तिल, दक्षिण की ओर पूआ, भृंगराज, फल एवं पत्ते, बाँये भाग में पीठी, दही, दूध नारियल एवं मोदक तथा प्रणीता को रखने में विचार की आवश्यकता नहीं होती है। विप्रवृन्द ! हवन काल में याग के वर्तमान समय तक प्रणीता और स्नान के कलश का स्पर्श किसी प्रकार न होना चाहिए।४४-४७। उच्चीरक, मातुलिंग, दूर्वा, आँवला, तुलसी, मालती, चमेली एवं विशेषकर कमल पुष्प कंकेती इन्हें ईशान कोण में रखना चाहिए। नैऋत्य कोण में विशेषकर कंकेती, शमी तथा यथावसर पत्ते आदि जो कुछ प्राप्त हो जाये, उन सब का ग्रहण करना चाहिए। क्षीरपाक विधान में क्षीर के समीप चरु बनाने के लिए स्थाली (बटलोई) पात्र रखना बताया गया है।४८-५०। पवित्री को काटने वाले कुशों के द्वारा किसी बलवान् द्वारा आमले की भाँति प्रादेशिक मात्र खराड बना कर पुनः उस पवित्री को प्रोक्षणी पात्र में रख देना चाहिए।५१। 'विष्णो रराडेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसके अग्रभाग से उसे काट

विष्णो रराटमन्त्रेण छेदयेदग्रभागतः । पायसेन काठिनेन प्रमथ्नीयात्कदाचन ॥५२
न रसेन न कार्ष्णेन न दृढेन कदाचन । ताम्रेण भस्मना वाथ शुक्तिशङ्खेन वाग्यतः ॥५३
छेदयेत्पिञ्जुलीं चापि पवित्रमथ देशिकः । विष्णो रराटमन्त्रस्य हारीतश्च ऋषिः स्मृतः ॥५४
पङ्क्तिश्छन्दो भवेद्देवः संस्कारे विनियोजयेत् । प्रणीताभाजनं गृह्य प्रोक्षणीं पूरयेत्त्रिभिः ॥५५
कायतीर्थेन तत्कुर्याद्देवतीर्थेन चेत्यपि । वामहस्ततले पश्चात्स्थापयेत्प्रोक्षणीयकम् ॥५६
मध्यमामध्यमाङ्गुष्ठ अपामार्गेण मन्त्रिभिः । उत्तानं तत्पवित्रं च पवित्रं तेति सञ्जपन् ॥५७
ऋषिः स्याद्गौतमश्छन्दो धर्मराजोऽथ देवता । अथ स्थापितद्रव्याणि प्रोक्षयेत्स्थापयेत्क्रमात् ॥५८
सकृद्द्रव्ये त्रिभिः काष्ठैस्त्रिवारं मन्त्रपुष्पकैः । स्थिरस्थाने तु सम्प्राप्तप्रणीतायाश्च दक्षिणे ॥५९
प्रादेशान्तरतश्चैव आज्यस्थालीमथार्पयेत् । अग्रतो मण्डलं कृत्वा वह्निं विप्रे तु स्थापयेत् ॥६०
घृतं निःसारयेत्तत्तु निरूप्याशु क्रमेण तु । ईशानेति च मन्त्रेण अधिश्रपणमीरितम् ॥६१
ऋषिर्नारायणश्छन्दः पङ्क्तिरीशोऽथ देवता । पर्यग्निकरणं कुर्यादादराद्द्वयमप्यथ ॥६२
अवेक्ष्य ईशमारभ्य दक्षिणावर्तकेन तु । कुलायनीति मन्त्रेण ऋषिच्छन्दादिकं स्मरन् ॥६३
परिवेष्याज्यस्थालीं च त्रिः सकृद्वा समाहितः । पितरस्तृप्यन्तामिति संस्कारे मातरः स्मृताः ॥६४
ऋषिः स्याज्जमदग्निश्च गायत्री छन्द ईरितम् । देवता च पिनाकी स्यादग्निष्टोमे च योजयेत् ॥६५

देना बताया गया है । (क्षीर पात्र के लिए) उस कठिन (जमे हुए) दूध को मथ देना चाहिए, रस, काली वस्तु, दृढ़ ताँबा, भस्म, सीप अथवा शंख द्वारा उसका मंथन दूध को फाडना कभी न करना चाहिए । 'विष्णोररराडेति' इस मंत्र के हारीत ऋषि, पंक्ति छंद, देवता हैं, संस्कार कर्मों में इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । पिञ्जुली (कुशसमूह) और पवित्र छेदन के पश्चात् प्रणीता पात्र के लिए हुए प्रोक्षणी पात्र को तीन कुशाओं द्वारा आच्छादित कर देना चाहिए ।५२-५५। कायतीर्थ, अथवा देवतीर्थ द्वारा उस आच्छादन के अनन्तर बायें हाथ की हथेली पर प्रोक्षणी पात्र रखकर 'मध्यमा मध्यांगुष्ठेति' और 'उत्तानं तत्पवित्रंचेति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक हवनीय सामग्रियों का क्रमशः आसेचन करके उन्हें पूर्व की भाँति स्थापित कर देना चाहिए। इस मंत्र के गौतम ऋषि, तथा छन्द, एवं धर्मराज देवता हैं ।५६-५८। विधान सामग्रियों पर एक बार, तीन कोष्ठों एवं मंत्र पुष्पों द्वारा तीन बार प्रोक्षण होना चाहिए, अपने स्थान पर प्रणीत पात्र के स्थिर होने के उपरांत उसके दक्षिण भाग में प्रादेश के भीतर ही आज्य स्थाली (घी गरम करने के पात्र) रखना चाहिए । पुनः ब्राह्मणों के सम्मुख मण्डलाकार बना कर अग्निस्थापन करना चाहिए ।५९-६०। 'ईशानेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस घी को अधिग्रहण करना (गरम करने के लिए अग्नि पर रखना) चाहिए । तथा उसमें से उस मट्ठा आदि इतर पदार्थ को बतलाते हुए शीघ्र निकाल देना चाहिए ।६१। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं ईश देवता हैं । पर्यानिकरण दौर निरीक्षण दोनों एक साथ ही करके उसके सिद्ध हो जाने पर उसे किसी अन्य पात्र में रख देना चाहिए । 'कुलायनीति' इस मंत्र का उच्चारण अन्य पात्र में रखते समय करना आवश्यक होता है । पुनः उसे एक बार या तीन बार 'पितरस्तृप्यतामिति' (पितरगण तृप्त हों) इस प्रकार कहते हुए उन्हें अर्पित करना चाहिए, इसी भाँति संस्कार कर्मों में माताओं के लिए कहा गया है ।६२-६४। इस मंत्र के जमदग्नि ऋषि, गायत्री छन्द, पिनाकी देवता हैं, 'अग्निष्टोम' नामक यज्ञ में इस विनियोग का प्रयोग करना

घृतस्य च तथा त्वं नो ब्रह्मा वै तृप्यतामिति । षडङ्गुलं स्रुवं पश्चाद्गृहीत्वाग्नौ प्रतप्य च ॥६६
त्रिरात्रं तु महायोगे सकृदन्यत्र सत्तमाः । सम्मार्जयेत्कुशेनापि मूलादग्रं तु सेचयेत् ॥६७
अग्रान्मूलं पुनः कुर्यात्सम्पूज्य च पुनः पुनः । त्रिभिस्त्रिभिः प्रणीतोदे प्रोक्षयेत्तदनन्तरम् ॥६८
स्रुवं पुनः प्रतप्याथ प्रोक्षण्युत्तरतो न्यसेत् । आज्यपात्रं पुरस्कृत्य पवित्रं च समाहरेत् ॥६९
अङ्गुष्ठे द्वे अनामे तु गृह्णीयात्तत्पवित्रकम् । अष्टाङ्गुलं मध्यकृत्वो घृतं त्रिः पवनं चरेत् ॥७०
पाताले त्रिस्तथाकाशे अवेक्ष्याज्यं ततस्त्रिभिः । प्रोक्षण्यां च तथा कुर्यादधः सम्प्रोक्ष्य देशिकः ॥७१
ततः पायसमादाय उत्थाय च समन्त्रकम् । तूष्णीं दद्यात्तथा चाग्नौ सन्निवेशेन तत्त्वतः ॥७२
सपवित्रं दक्षकरे गृहीत्वा प्रोक्षणीयकम् । अष्टाङ्गुले मूलभागे तज्जलेन ईशादितः ॥७३
अग्निं पर्युक्षयेत्पश्चाद्दक्षिणावर्तकेन च । पवित्रं च प्रणीतायां निधाय प्रोक्षणीयकम् ॥७४
संयावार्थं च भो विप्रा अग्निवत्तत्र देशिकः । ध्यायेदग्निं रक्तवर्णं स्रुवहस्तं त्रिबाहुकम् ॥७५
कमण्डलुं परे हस्ते ततो दक्षकरेण तु । स्रुवं गृहीत्वा जुहुयात्तूष्णीमेव समाहितः ॥७६
अन्ते च देवतोद्देशं प्राजापत्यं समीरयन् । प्रणवान्तेन जुहुयात्सर्वत्र द्विजसत्तमाः ॥७७
वायुकोणं समारभ्य वह्निकोणान्तकेन तु । अच्छिन्नेन घृतेनैव इन्द्राय तदनन्तरम् ॥७८
अग्नीषोमात्मकं चैव जुहुयाद्राक्षसादितः । ऐशानकोणपर्यन्तं ततो नैमित्तिकं चरेत् ॥७९

चाहिए ।६५। तथा ब्रह्मा के सम्मुख उस घी को रखकर 'ब्रह्मावैतृप्यताम्' 'ब्रह्मा तृप्त हों' इस प्रकार उन्हें अर्पित कर उनसे प्रार्थना करना कहा गया है । पश्चात् उसे छः अंगुल के स्रुवे को अग्नि में तपाकर उसके मूलभाग का कुश द्वारा सम्मार्जन करना चाहिए । द्विजसत्तम ! महायोग में तीन रात और अन्यत्र एक ही बार उसके करने का विधान बताया गया है ।६६-६७। पुनः उसके अग्रभाग के मूल की बार बार पूजा करने के उपरान्त प्रणीता के जल से तीन-तीन बार उसका प्रोक्षण करना चाहिए ।६८। पुनः उसे तपाकर प्रोक्षणी के उत्तर में रख कर उस खीर के पात्र के सामने रख इस विधान से दोनों हाथ के अंगूठे और अनामिका अंगुली से उस पवित्री द्वारा, जिसका मध्य भाग आठ अंगुल का हो, तीन बार उत्प्लवन (ऊपर उछालकर) पवित्र करना चाहिए ।६९-७०। उस घी का भली भाँति निरीक्षण एवं तीनबार पाताल (नीचे) और तीन बार आकाश (ऊपर की ओर) उछालने के उपरान्त अधो भाग के प्रोक्षण करने पर प्रोक्षणी में भी वैसा ही करना बताया गया है ।७१। उसके उपरान्त खीर का ग्रहण मन्त्र समेत कर मौन हो अग्नि में उसकी आहुति खड़े होकर डाल देनी चाहिए ।७२। पवित्री समेत दाहिने हाथ में प्रोक्षणी जल का ग्रहण कर पवित्र के आठ अंगुल वाले मूल भाग द्वारा उसके जल से ईशान कोण से आरम्भ कर अग्नि का पर्युक्षण (मंडल) करके पश्चात् दक्षिणावर्त से उस पवित्री तथा प्रोक्षणी जल को प्रणीता पात्र में डाल देना चाहिए ।७३-७४। विप्रवृन्द ! संयाव (लप्सी) बनाने के लिए रक्तवर्ण, हाथ में सुवा लिए, तीन भुजाएँ एवं दूसरे हाथ में कमण्डलु लिए अग्नि के इस प्रकार का ध्यान करके पश्चात् दाहिने हाथ से स्रुवा ग्रहण कर मौन होकर आहुति डालनी चाहिए ।७५-७६। द्विजसत्तम ! अन्त में देवता के उद्देश्य से प्राजापत्य से आरम्भ कर प्रणवान्त तक हवन करना बताया गया है । वायुकोण से आरम्भ कर वन्दिकोण के प्रान्त भाग तक घृत की अटूट धारा प्रदान करने के उपरान्त इन्द्र के लिए आहुति प्रदान करनी

पश्चात्स्विष्टं ततो दद्याद्द्याच्च मतिभिस्तथा ! वारुणं पञ्चकं चैव कृत्वा पूर्णां ततो लभेत् ॥८०
उद्वाह इति मन्त्रस्य अथर्वण ऋषिः स्मृतः । छन्दो देवी च गायत्री देवतं चापि वारुणम् ॥८१
प्रकृते योजयेन्मन्त्री स्तुतौ चापि नियोजयेत् ! त्वन्नोग्न इति मन्त्रस्य ऋषिर्वाशिष्ठसंज्ञकः ॥
छन्दश्च बृहती स्यातस्तदेवाग्निः प्रकीर्तितः ॥८२
इडो गतमिति मन्त्रस्य ऋषिः को गुह्यसंज्ञकः ! छन्दश्च जगती स्यातं देवो विष्णुः प्रकीर्तितः ॥८३
उद्वर्तन इति मन्त्रस्य ऋषिः को नु प्रकीर्तितः । छन्दो देवी च गायत्री वरुणश्चाधिदेवता ॥८४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागेऽग्निहोत्रविधानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

मखविधानवर्णनम्

सूत उवाच

मखे सर्वत्र ब्रह्माणमृत्विजं वरयेदथ । कुशकण्डीं स्वगृह्येन कृत्वाग्निं चार्चयेत्ततः ॥१
आघाराज्यभागौ तु महाव्याहृतयस्त्रयः । सर्वं प्रायश्चित्तसंज्ञकं प्राजापत्यं च स्विष्टकृत् ॥२
एतन्नित्यं हि सर्वत्र होमे कर्मणि निर्दिशेत् । प्राजापत्ये च इन्द्राय एतावाघारसंज्ञकौ ॥३
अग्नये चैव सोमाय आज्यभागौ प्रकीर्तितौ । भूर्भुवःस्वस्त्रयश्चैव महाव्याहृतयः स्मृताः ॥४

चाहिए ! अग्नीषोमात्मक हवन के उपरांत नैऋत्य कोण से आरम्भ कर ईशानकोण नैमित्तिक तर्क पूर्णाहुति विद्वानों को प्रदान करनी चाहिए ।७७-८०। 'उद्वाह इति' इस मंत्र के अथर्वण ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं ।८१। इस यज्ञ एवं स्तुति को करते समय इस विनियोग के प्रयोग करना बताया गया है । 'त्वन्नोऽग्नयइति' इस मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, बृहती छन्द, अग्नि देवता बताये गये है ।८२। 'रूद्रो गतमिति' इस मंत्र के गुह्य संज्ञक ब्रह्मा ऋषि, जगती छन्द, विष्णु देवता हैं ।८३। 'उद्वर्तन इति' इस मंत्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं ।८४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में अग्निहोत्रविधान वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

यज्ञ विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सभी भाँति के यज्ञों में ब्रह्मा, और ऋत्विक् (हवन कराने वाले) ब्राह्मणों का वरण एवं अपने गृह्य के अनुसार कुशकण्डिका के उपरांत अग्नि की पूजा करनी चाहिए ।१। आधाराज्य भाग, तीनों महाव्याहृतियाँ, प्रायश्चित संज्ञक, प्राजापत्य, एवं स्विष्टकृत आहुतियाँ सभी हवन कर्मों में दी जाती है । प्राजापत्य और इन्द्र के लिए दी जाने वाली आहुति आधार संज्ञक, अग्नि तथा सोम के लिए दी जाने वाली आहुति आज्य भाग संज्ञक, और भुर्भुव तथा स्वर के लिए दी जाने वाली आहुति तीनों महाव्याहृति के नाम से ख्यात हैं।२-४। 'अयाश्चाग्ने इति' और 'ये ते शतमनुत्तममिति' इन पाँचों मंत्रों द्वारा प्रदान की

अयाश्चाग्ने इति तथा ये ते शतमनुत्तमम् । सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञा एते वै पञ्चमन्त्रकाः ॥५
प्राजापत्याहुतिश्चैका स्विष्टकृच्चापरा स्मृता । चतुर्दशैताः कृतयो होतव्या नित्यसंज्ञकाः ॥६
कृत्वा सकृद्देवतोद्देशं होमं पश्चात्समाचरेत् । सोमपा ये च गोयागे नरमेधाश्वमेधयोः ॥७
अन्यत्र विपरीतेन स्वाहान्तेन हुनेद्बुधः । नैमित्तिकं विना नित्यं निष्फलं याति नान्यथा ॥८
नित्यं वर्ज्यं शतार्धेन वैश्वदेवे तथैव च । त्र्यहसाध्यादियागेषु यन्निदेशं शृणु द्विजाः ॥९
एकाहे वाधाराज्यौ कृत्वा नैमित्तिकीः कृतीः । समा स्विष्टकृतं विद्यादाकृत्याद्यास्ततः परम् ॥१०
विशेषतस्त्र्यहादौ तु अधाराद्याज्यपूर्वकम् । पश्चान्नैमित्तिकं कुर्यात्समाप्तिदिवसेऽप्यथ ॥११
आधाराराज्यपूर्वेण ततो नैमित्तिकं चरेत् । स्विष्टकृद्व्याहृतिश्चैव वारुणाद्यास्तथा हि षट् ॥१२
द्विजातिः पतितो यत्र द्वित्रिकं च चतुश्चतुः । एकस्मिन्दिवसे कुर्यात्सोमयागे च शैशवे ॥१३
द्विजातीनां विवाहे तु नैत्यिकं प्रथमं भवेत् । एकस्मिन्दिवसे कुर्यादग्निकार्यं पृथक्पृथक् ॥१४
दद्यादेकं च नित्यं च पृथङ् नित्यं न चाचरेत् । द्विजातिः पतितो यत्र द्वित्रिकं च चतुश्चतुः ॥१५
एकस्मिन्दिवसे कुर्यात्तत्रापि नैत्यिकं त्यजेत् । होमे ब्रह्मा स्तुते विष्णुः स्रुवे चैव महेश्वरः ॥१६
अजस्रानियमे चेन्द्रोऽधिश्रयणं विवस्वतः । पर्यग्निकरणे चैव उद्वाहे मातरः स्मृताः ॥१७

जाने वाली आहुतियाँ प्रायश्चित्त संज्ञक कही जाती हैं ।५। प्राजापत्य की एक आहुति तथा दूसरी स्विष्टकृत् की होती है, इस प्रकार इन चौदह आहुतियों का नित्य हवन करना चाहिए, इनकी 'नित्य' संज्ञा बतायी भी गयी है ।६। देवता के उद्देश्य से एक बार आहुति डालकर पश्चात् हवन प्रारम्भ करना बताया भी गया है, गोमेध, नरमेध एवं अश्वमेध यज्ञों में सोमपान करने वालों के उद्देश्य से आहुति प्रदान की जाती है, अन्यत्र इससे विपरीत अर्थात् अन्त में स्वाहा कर विद्वानों को आहुति प्रदान करनी चाहिए, पर ये सभी बातें नैमित्तिक के कार्यों में व्यवहृत होती हैं नित्य में नहीं अन्यथा उसके निष्फल हो जाने की आशंका रहती है ।७-८। नित्यकर्म एवं वैश्व देव में पचास संख्या की आहुति का निषेध किया गया है, द्विजवृन्द ! तीन दिन में सिद्ध होने वाले यज्ञ के निर्देशों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पहले दिन आधार, आज्य भाग, नैमित्तिक कर्म, एवं स्विष्टकृत् हवन करने के उपरांत शेष समस्त कृत्यों की समाप्ति करनी चाहिए ।९-१०। विशेषकर तीन दिन वाले यज्ञ-सिद्धि के विषय में आधार और आज्य भाग की समाप्ति पूर्वक पश्चात् समाप्ति दिन में भी नैमित्तिक कार्य करना बताया गया है ।११। पहले आधार, तथा आज्य भाग की समाप्ति के उपरांत नैमित्तिक कार्य की समाप्ति होनी चाहिए । इस भाँति स्विष्टकृत्, व्याहृति, एवं वारुणी मिलकर इन छहों की कृत्यसमाप्ति एक ही साथ आरम्भ में की जाती है ।१२। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), जिसमें पतित हो जाते है, उन दो तीन अथवा चार-चार कृत्यों की समाप्ति सोमयाग या शैशव (बचपन) के एक ही दिन में की जानी चाहिए ।१३। द्विजातियों के विवाह कार्य में पहले नित्य कार्य सम्पन्न किया जाता है, और उसी एक दिन में अग्निकार्य (हवन) भी पृथक्-पृथक् किया है ।१४। उसी एक नित्य कार्य के सुसम्पन्न करने की आवश्यकता रहती है, पृथक् नित्य की नहीं । द्विजाति के पतित होने वाले उन दो, तीन या चार-चार कृत्यों की समाप्ति के दिन भी नैमित्तिक कार्यों का त्याग करना बताया गया है । हवन कार्य में ब्रह्मा, स्तुति कार्य में विष्णु, स्रुवा मे महेश्वर, अनियमित कार्य में अजन्मा, अधिकभक्षण में इन्द्र, पर्याग्नि करण में विवस्वान् और विवाह कार्यों में मातृकाओं का स्थापन-पूजन आवश्यक बताया

चन्द्रादित्यौ चोत्पवने वीक्षणे च दिशस्तथा। प्रोक्षण्यां स्थापने दुर्गा इमे लक्ष्मी प्रतिष्ठिता ॥१८
होमं कुर्याद्द्विजश्रेष्ठः विधिं कुर्यात्समाहितः। एतेषु देवताः प्रोक्ता द्विजातीनां हिताय च ॥१९
यजेत्सुपशुबन्धेषु संस्कारे चैव पर्वणि। देवताः सर्वा ज्ञातव्या एता यज्ञे समाहितैः ॥२०
अधिदैवेन जानीयात्करवल्यां पञ्चफलं यतः। ततस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवतामथ विन्यसेत् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देवध्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अथ वक्ष्यामि सर्वेषां देवानां ध्यानमुत्तमम्। अस्य यज्ञे परिज्ञानाज्जिह्वा सम्यक्फलप्रदा ॥१
हिरण्यवर्णां प्रथमां वह्निजिह्वां महाद्युतिम्। कनकाढ्यकरां देवीं हिरण्याख्येष्टसिद्धये ॥२
कनकां[1] द्विभुजां शुक्लां हस्ताभ्यां दर्भसंयुताम्। कमण्डलुं च बिभ्राणां नुमः साधकसिद्धिदाम् ॥३
उद्यदिन्दुनिभां रक्तां चतुर्भिर्भुजपल्लवैः। शङ्खचक्राभयवरान्दधतीं प्रणमाम्यहम् ॥४

गया है।१५-१७। उसी भाँति उत्पवन कार्य में चन्द्र सूर्य, निरीक्षण में दिशाओं, प्रोक्षणी के स्थापन में दुर्गा तथा लक्ष्मी को प्रतिष्ठित करना कहा गया है।१८। द्विजश्रेष्ठ! विधान पूर्वक हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए, उनमें इन सभी देवताओं के स्थापन पूजन द्विजातियों के लिए हितकर बताया गया है।१९। पशु बन्धन, संस्कार, एवं पर्व के यज्ञ के दिनों में सावधान होकर इन्हीं देवताओं का पूजन करना चाहिए। इन देवों के अधिनायक होने के नाते करवेली में पाँच फलों की प्राप्ति होती है, अतः इन कर्मों में देवों के आवाहनादि करने के लिए सभी भाँति के प्रयत्न करना चाहिए।२०-२१

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।१४।

अध्याय १५

देवता के ध्यान का वर्णन

सूत बोले—मै देवताओं का उत्तम ध्यान बता रहा हूँ, जिसके भली भाँति पालन द्वारा, ज्ञान द्वारा यज्ञ में जिह्वा सम्यक् फलों को प्रदान करती है।१। हिरण्य (सुवर्ण) के समान वर्ण, एवं अत्यन्त प्रकाशपूर्ण वह अग्नि की पहली जिह्वा है, हिरण्य रूपी इष्ट सिद्धि के लिए कनकाढ्य करने वाली जिसके शुक्लवर्ण, एवं कुशपूर्ण दो हाथ हैं, कमण्डलु धारण किये, साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाली उस देवी को हम लोग नमस्कार करते हैं।२-३। उदयकालीन चन्द्र की भाँति (सौन्दर्यपूर्ण), रक्तवर्ण, चार भुजा रूपी ब्राह्मणों से युक्त तथा उनमें क्रमशः शंख, चक्र, अभय, एवं वर स्थित कर प्रदान करने वाली उस देवी को मैं प्रणाम

---

१. सुवर्णाभामित्यर्थः।

भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां स्वर्णकुम्भं तु वामतः । दक्षिणेन वरारक्तां धारयन्तीं नमाम्यहम् ।।५
सुप्रभामण्डलाभा च कराभ्यां तत्कृताञ्जलिः । पद्मासनस्था कौशेयवसना मे प्रसीदतु ।।६
जपाकुसुमसङ्काशा बहुरूपा सखे मम । शुभदा स्याद्भुजैः शुभ्रा सहस्रं दधती परान् ।।७
नीलोत्पलनिभे देवि वह्निवर्णपराभवे । जपापुष्पधरे नित्यं सतीरूपे प्रसीद मे ।।८
मूलेन वीक्षयेत्स्थानं मन्त्रेण खननं मतम् । त्रिसूत्रीकरणं कुर्याच्चतुः सूत्रं निपातयेत् ।।९
इति श्री भविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः
देवध्यानविधानवर्णनम्
सूत उवाच

प्रतिष्ठायाः पूर्वदिने कुर्याद्देवाधिवासनम् । धान्यप्रतिष्ठां तस्यैव यूपं चापि यथाविधि ।।१
रात्रौ मूलाग्रे च घटे स्थापयेद्गणनायकम् । सम्पूज्य च विधानेन दिगीशांश्च तथा ग्रहान् ।।२
ब्रह्माणं च तडागेषु वरुणं शान्तियागके । सोमं च मण्डले सूर्यं पादे विष्णुं तथैव च ।।३
शैवे शैवं तथा प्रोक्तं प्रपायामथ वारुणम् । आरामे चैव ब्रह्माणं पाद्याद्यैरपि चार्चयेत् ।।४

करता हूँ ।४। भिन्न काले अज्जन की भाँति उस रक्तमयी देवी को, जो बायें हाथ में सुवर्ण घट लिये और दाहिने हाथ से वर प्रदान कर रही है । नमस्कार कर रहा हूँ ।५। अत्यन्त प्रभा पूर्ण मण्डल की आभा समेत, दोनों हाथों से अञ्जली बाँधे (हाथ जोड़े) कमलासन पर सुशोभित और रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित वह देवी मुझ पर प्रसन्न रहे ।६। मित्र ! जया (गोड़हर) के पुष्प की भाँति, एवं अनेक रूप धारण करने वाली वह शुभ्र वर्णा देवी, जो अपनी भुजाओं द्वारा सहस्रों शत्रुओं को ग्रहण करती हैं, मेरे लिये शुभ (कल्याण) प्रदान करे।७। हे नील कमल के समान सौन्दर्य पूर्ण, अग्नि वर्ण का अनादर करने वाली नित्य जपा पुष्प धारिणी, एवं सती रूपवाली देवि ! मुझ पर प्रसन्न हो।८। इस प्रकार आराधना के उपरांत मूल से स्थान निरीक्षण, मंत्र द्वारा खनन, एवं त्रिसूत्रीकरण तथा चार सूत्रों का भी उपयोग करना चाहिए।९
श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में देवध्यान वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।१५।

अध्याय १६
देवध्यान का वर्णन

सूत जी बोले—प्रतिष्ठा करने के पूर्व दिन में उस देव का अधिवासन, धान्य प्रतिष्ठा, एवं उसका विधान पूर्वक यूप (यज्ञीय स्तम्भ), की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।१। रात के समय घर के मूलाग्र भाग में गणनायक देव को स्थापित करके उनकी तथा दिक्पाल एवं ग्रहों की विधान पूर्वक पूजा करनी चाहिए ।२। तालाबों के यज्ञ में ब्रह्मा, शान्ति यज्ञ में वरुण, मंडल में सोम, पाद में सूर्य, एवं विष्णु, शैव के कृत्यों में शैव, प्रमा (पियाऊ) में वरुण, उपवन में ब्रह्मा की पाद्य-अर्घ्य प्रदान पूर्वक पूजा करनी

द्रुपदादीति मन्त्रेण स्नापयेत्प्रथमं बुधः । गायत्र्या च ततः पश्चाद्गन्धद्वारेति तैलकम् ॥५
सुनाभेति च मन्त्रेण द्वाभ्यामेव विशिष्यते । श्रीश्च ते इति कुसुमं फलिनीति च वै फलम् ॥६
काण्डादिति च मन्त्रेण दद्याद्दूर्वाशतं ततः । सिन्दोरिवेति सिन्दूरं विश्वामिति च मार्जनम् ॥७
समिच्छेत्यञ्जनं दद्याद्दुःस्थं सुरासुरा जपन् । चन्दनं यज्वभिर्जप्त्वा मानस्तोकेति चन्दनम् ॥८
यूपे चैव विशेषोयमुत्तराग्रं प्रविन्यसेत् । अद्यैव तेन मन्त्रेण स्थापयेदथ वारिणा ॥९
गायत्र्या प्रथमं चैव आपो हिष्ठेति वै जपन् । शन्नो देवीति द्रुपदां स्नापयेत्तदनन्तरम् ॥१०
अभिमन्त्र्याथ ब्रह्मेति त्रिरात्रं मन्त्रमीरयन् । योगं योगदृढं जप्त्वा पवित्रं विन्यसेत्ततः ॥११
त्वं गन्धर्वेति मन्त्रेण तथा सुभाभ इत्यपि । द्वाभ्यां तैलगन्धयुतं श्रीसूक्तेनादि पुष्पकम् ॥१२
धूरसीति च तथा धूपमास्रज्योतिर्भिर्दीपकम् । अनुमीमहताति दद्याद्दूर्वाक्षतं ततः ॥१३
विश्वामीति च निम्न्यन्तकाण्डादिति तथाक्षतम् । सिन्दोरिवेति सिन्दूरं समिधेति तथाञ्जनम् ॥१४
पादोऽस्येत्यथ भुक्तं स्याद्याः फलिनीति पुनः फलम् । रूपं नेति दहेद्रूपं न सोचिति च पूजनम् ॥१५
युवा सुवासेति वस्त्रं नागगन्धेति चन्दनम् । ततो यमगृहाद्बाह्ये मण्डपान्तरमाश्रितः ॥१६
सुनातीति वचो दद्यात्ततश्चावाहयेत्प्रभुम् । तत्राधिवासनं कुर्याद्रक्षयेच्च सुरक्षिभिः ॥१७
आचार्यो यजमानश्च ऋत्विग्भोजनमाचरेत् । अक्षारलवणान्यासी दधि विश्वं तिलांस्त्यजेत् ॥१८

चाहिए ।३-४। विद्वानों को पहले 'द्रुपदादीति' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए स्नान 'गायत्री' एवं 'गन्धद्वारेति' तथा 'सुनाभेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक तेल, एवं 'श्रीश्च ते इति' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पुष्प 'फलिनीति' इस मंत्र से फल, 'काण्डादिति' इस मंत्र से सौ दूर्वा, 'सिन्दोरिवेति' इस मंत्र से सिंदूर 'विश्वामिति' इस मंत्र से मार्जन, 'दुः स्थं सुरासुरेति' इससे अञ्जन, तथा 'मानस्तोकेति' इस मंत्र से चन्दन प्रदान करना चाहिए ।५-८। तथा यूप (यज्ञीय स्तम्भ) को उत्तराग्र भाग में करके उसी दिन उसी मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे स्थापित करना चाहिए ।९। गायत्री मंत्र, 'आपोहिष्ठेति' एवं शन्नो देवीति' इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करने के उपरांत 'अथ ब्रह्मेति' इस मंत्र का तीन रात तक जप करके 'योग योग दृढं' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पवित्री का उसमें प्रक्षेप करना बताया गया है ।१०-११। 'त्वं गन्धर्वेति' और 'सुभाभ इति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तेल एवं गन्ध प्रदान करके श्री सूक्त द्वारा पुष्प, 'धूरसीति' इस मंत्र के उच्चारण से धूप' 'आस्रज्योतिर्भिरिति' इस मंत्र से दीपक, 'अनुमीमहताति, इससे दूर्वा और अक्षत, 'विश्वामिति, तथा 'निम्न्यन्तकाण्डादिति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अक्षत, 'सिन्दोरिवेति' इस मंत्र से सिन्दूर और 'समिधेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए अञ्जन एवं 'पादो ऽस्येति' इससे भोजन करना और याः फलिनीति' इससे पुनः फल अर्पित करने के उपरांत 'रुपं नेति दहेद्रूप न सोचिति चेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए ।१२-१५। 'युवा सुवासेति' से वस्त्र, 'नागगन्धेति' से चन्दन चर्चित करने के उपरांत यम गृह से बाहर मण्डप के भीतर 'सुनातीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रभु का आवाहन, एवं अधिवासन करके कुशल रक्षकों द्वारा सुरक्षित रखना चाहिए ।१६-१७। पुनः एक साथ आचार्य, यजमान और ऋत्विक् गण के क्षार नमक, दही, विश्व और तिल के त्याग पूर्वक भोजन कराना चाहिए ।१८। इसके उपरांत मैं (देवों का) असाधारण अधिवासन

आधारणं चाधिवासं वक्ष्ये तत्रानुसारतः । सुनातेति वचो दद्यात्तैलं चैव शिवे त्रिभिः ।।१९
पञ्चभिर्ब्राह्मणैः सार्धं गन्धर्वा इति विस्मरन् । दद्याद्गन्धं तैलयुतं गन्धद्वारेत्यृचा पुनः ।।२०
याः फलिनीति च फलं पूगतान्नामवर्जनम् । कौशिकीरुत्तमोसीति दद्यात्खड्गं सुतीक्ष्णकम् ।।२१
रूपेन वेति मन्त्रेण मुद्गरं च निवेदयेत् । श्रीश्च ते इति कुसुमं विश्वानीति च सम्पठन् ।।२२
निर्मन्थनं ततः कार्यमिति साधारणो विधिः । ततोऽधिवासकल्पे तु प्रदेशे तु समाचरेत् ।।२३
विनाधिवासनं विप्राः प्रतिष्ठानं समाचरेत् । न तत्फलमवाप्नोति विवाहे शरणं दिशेत् ।।२४
ततः प्रयत्नतः कार्यं पूर्वाह्णे रात्रियोगतः । नित्ये नैमित्तिके काम्ये कारयेत्कुण्डमण्डपम् ।।२५
स्थण्डिले हस्तमात्रेण वालुकानिर्मितेऽपि च । त्रयोदशाङ्गुले हस्ते द्विहस्ते चापि वर्द्धते ।।२६
एकैकाङ्गुलको विप्राः पीठे नास्ति विचारणा । नवपञ्चक कुण्डे च लक्षादावपि शङ्कया ।।२७
ततो दशाङ्गुले पक्षे दशाङ्गं शृणुत द्विजाः । काष्ठं पत्रं च पुष्पं च मोदकं पिष्टकं तथा ।।२८
अन्नं च परमान्नं च ह्यवेक्ष्यं तिलमेव च । एतद्वै गृहपक्षे च विष्णुपक्षे तिलादितः ।।२९
शैवे यवादितः कार्या शाक्ते पुष्पादितो भवेत् । सूर्ये पक्षे पिष्टकादि गोपाले कृशरादितः ।।३०
कृष्णे च करवीरादि श्रीफलानि च त्रैपुरे । सारस्वते च श्रीवृक्षे मोक्षकामे निगद्यते ।।३१
इति श्री भविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नामक षोडशोऽध्यायः ।१६

शास्त्रानुसार बता रहा हूँ, (सुनो) ! 'सुनातेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक तीन ब्राह्मणों द्वारा (शिव के लिए) तेल, पाँच ब्राह्मणों द्वारा 'गन्धर्वेति' मंत्र के उच्चारण करके तैल युत गन्ध और 'गन्धद्वारेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक पुनः गन्ध प्रदान करना चाहिए ।१९-२०। 'याः फलिनीति' मंत्र से पूंगीफल (सुपाड़ी) 'कौशिकीरुत्तमोऽसीति' मंत्र द्वारा तीक्ष्ण खड्ग, 'रूपेन वेति' इस मंत्र द्वारा मुद्गर, 'श्रीश्चते इति' और 'विश्वातीति' इस से पुष्प, प्रदान करने के उपरांत निर्मंथन करना चाहिए' यह साधारण विधान कहा गया है । पश्चात् उस प्रदेश में अधिवासन का कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए ।२१-२३। क्योंकि विप्रवृन्द ! बिना अधिवासन कार्य को सुसम्न्न किये प्रतिष्ठापन विधान निष्फल हो जाता है ।२४। इसलिए रात्रि के पूर्वाह्ण समय में उसे प्रयत्न पूर्वक सुसम्पन्न करना आवश्यक होता है । नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्य इनमें किसी अनुष्ठान के आरम्भ में सर्वप्रथम कुण्डमण्डप बनाना चाहिए ।२५। एक हाथ की वेदी चाहे वह बालू की ही बनायी जाये, पर, सौन्दर्य पूर्ण बनानी चाहिए । तेरह अंगुल, हाथ एवं दो हाथ की वेदी के निर्माण में विप्रवृन्द ! एक एक अंगुल की भी वृद्धि की जा सकती है, इसलिए पीठासन के विषय में विशेष विचारने की आवश्यकता नहीं बतायी गयी है । चौदह भाँति के कुण्डों के निर्माण में भी जिसमें लक्ष संख्या की आहुतियाँ डाली जाती हैं, वही बात है । द्विजवृन्द ! दश अंगुल के पक्ष में उन दश अंगों को बता रहा हूँ, सुनो ! काष्ठ, पत्र, पुष्प, मोदक, पीठा (चूर्ण), अन्न, परमान्न, और तिल ये गृहपक्ष की ओर से निश्चित है, विष्णु के भाग में तिल शिव के जवा, शाक्त कर्म में पुष्प, सूर्य के भाग में पीठा, गोपाल के लिए कृशरान्न (खिचड़ी), कृष्ण के लिए करवी (कनेर) के पुष्प, त्रिपुर सम्बन्धी कार्य में श्रीफल (बेल), तथा सारस्वत, श्री वृक्ष, एवं मोक्ष के कामों में भी उसी श्रीफल से ही आरम्भ किया जाता है ।२६-३१

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में देवध्यान वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

देवध्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अष्टौ होतारो द्वारपालास्तथाष्टौ अष्टौ कार्या ब्राह्मणा याजकाश्च।
सर्वे शुद्धा लक्षिता लक्षणाद्यैरेकः कार्यो जापकोऽस्मिन्महात्मा ॥१
दिव्यैर्गन्धैर्गन्धमाल्यैः सुवर्णैस्तैलं कार्यं ब्राह्मणाः पञ्चविंशाः।
आवाप्यैस्तु द्विगुणैर्वै बलीयो दिव्यैर्वस्त्रैरर्हणादक्षिणाभिः ॥२
नार्हयित्वा यथोक्तेन कश्चित्पत्रं निवेशयेत् । अनर्हितेषु विप्रेषु न सम्यक्फलमाप्नुयात् ॥३
प्रतिष्ठादिषु सर्वेषु सम्यग्विप्रानथार्हयेत् । कुशद्विजं तु सर्वत्र अर्घ्यं विष्टरमात्रकम् ॥४
प्रदद्यादर्हणं सम्यक्पश्चात्पात्रं निवेदयेत् । विनार्हणं कृते तस्मिन्नरके परिपच्यते ॥५
प्रत्येकं ब्राह्मणा यज्ञे वेदमन्त्रेषु पारगाः । आचार्यो यदि कार्येषु वरयेद्दश गोव्रजान् ॥६
विशिष्टानामभावेऽपि कुर्यात्कुशमयान्द्विजान् । कुशप्रतिकृतौ चापि स्वगोत्रं स्वं द्विजं विना ॥७
न कुर्याच्चरणोद्देशं तथा प्रहरसंहतिम् । गोत्रादिकीर्तनान्तेषु स्वनामोद्देशमीरयन् ॥८
तुलापुरुषदाने च तथा च हाटकाचले । कन्यादाने तथोत्सर्गे कीर्तयेत्प्रवरादिकम् ॥९

अध्याय १७

देवध्यान का वर्णन

सूत जी बोले—आठ होता, आठ द्वारपाल, एवं आठ यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण, जो शुद्ध तथा लक्षण सम्पन्न हों, होने चाहिए और उन्हीं विद्वानों में से किसी एक महात्मा को जापक नियुक्त करना चाहिए।१। दिव्य गन्ध, गन्ध माल्य और सुवर्णों द्वारा इन पच्चीस ब्राह्मणों का तैल कार्य तथा दिव्य वस्त्र एवं दक्षिणाओं से पूजा और उनकी प्राप्ति भी दुगुनी होनी चाहिए।२। उक्त विधान द्वारा पूजा किये बिना किसी भी (यज्ञीय) पात्र का यज्ञ में प्रवेश न करना चाहिए, क्योंकि अपूजनीय ब्राह्मणों द्वारा पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती है।३। सभी प्रतिष्ठा आदि कार्यो मे ब्राह्मणों की भली भाँति पूजा होनी चाहिए, क्योंकि कुश और ब्राह्मण सर्वत्र पूजनीय बताये गये हैं, अतः सर्वप्रथम उन्हें आसन प्रदान करके पश्चात् पात्रों की कल्पना और वर्गीकरण करना चाहिए, अन्यथा उन्हें नरक में परिपक्व होना पड़ता है।४-५। यज्ञ के प्रत्येक ब्राह्मण को वेदमंत्रो का निष्णात विद्वान् होना बताया गया है, इसलिए कार्यों में दश गोव्रज द्वारा आचार्य का वरण करना कहा गया है।६। इस प्रकार के विशिष्ट विद्वानों के अभाव में कुशमय ब्राह्मण की कल्पना करनी चाहिए ब्राह्मण की कुश प्रतिमा बनाने में अपने गोत्र और अपने ब्राह्मण का त्याग करना चाहिए।७। शाखा का अनुसन्धान और भाग समूह की कल्पना न करके केवल गोत्र आदि के कथन के उपरांत अपने नाम का उच्चारण करना चाहिए।८। तुला-पुरुष दान, हाटकाचल (मेरुपर्वत) के निर्माण, कन्यादन, एवं उत्सर्ग विधान में अपने प्रवर का भी उच्चारण करना बताया गया है।९।

न पात्रं प्रतिकृत्यर्थं न चालं सोदरं तथा । मृतभार्य्यो ह्ययभार्यश्च अपुत्रो मृतपुत्रकः ॥१०
शूद्रसंस्कारकश्चैव कृपणो गणयाजकः । प्रायश्चित्तगृहीतश्च राजयाजकपैशुनौ ॥११
शूद्रगेहनिवासी च शूद्रप्रेरक एव च । स्वल्पकण्ठो वामनश्च वृषलीपतिरेव च ॥१२
बन्धुद्वेषी गुरुद्वेषी भार्याद्वेषी तथैव च । हीनाङ्गश्चैव वृद्धाङ्गो भग्नदन्तश्च दाम्भिकः ॥१३
प्रतिग्राही च कुनखः पारदारिक एव च । श्वित्री कुष्ठी कुलोद्भूतो निद्रालुर्व्यसनार्थकः ॥१४
अदीक्षितः कदर्यश्च चण्डरोगी गलद्व्रणः । महाव्रणी च उदरी यज्ञगार्ं न कारयेत् ॥१५
वरणान्ते तु पात्राणां पूजामन्त्राञ्छृणु द्विज । प्रतिमन्त्रेण गन्धाद्यैरर्चयेन्मन्त्रवित्तमः ॥१६
ब्रह्ममूर्तिस्त्वदमाचार्यः संसारात्पाहि मां विभो । त्वत्प्रसादाद्गुरो यज्ञं प्राप्तोस्मि यन्मयेप्सितम् ॥१७
चिरं मे शाश्वती कीर्तिर्यावल्लोकाश्चराचराः । प्रसीद त्वं महेशान प्रतिष्ठाकर्मसिद्धये ॥१८
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः । ज्ञानामृतप्रदाचार्यो यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥१९
ब्रह्मणैव समुद्भूत प्रकाशितदिगन्तर । शुद्धजाम्बूनदप्रख्य यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२०
प्रतप्तकनकाभास भासितद्युतिभूतल । मन्त्रप्रख्यानसंस्थान यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२१
प्रफुल्लकनकाभास भास्वरासुरभूषित । प्रकीर्णमन्त्रसम्भारविधिज्ञ प्रणतोऽस्मि ते ॥२२

प्रतिमा के लिए पात्रों की कल्पना नहीं की जाती है, उसी भाँति चाल के लिए सोदर की, जिसकी स्त्री का देहावसान हो गया हो, स्त्री हीन, पुत्र विहीन, मृत पुत्र वाले, प्रायश्चित के द्वारा गृहीत होने वाले, राजाओं के यज्ञ कराने एवं चुगुली वाले, शूद्र के घर निवास करने वाले, शूद्र द्वारा प्रेरित किये जाने वाले, अस्पष्ट वाणी वाले, वामन, वृषली पति (शूद्रा स्त्री के पति कहलाने वाले), बान्धव, गुरु और स्त्री से द्वेष करने वाले, हीनांग, वृद्धांग, भग्नदाँत वाले पाखण्डी, प्रतिग्रह (दान) लेने वाले, कुनखी, परस्त्री गामी, श्वेत कुष्ठ के रोगी, कुल परम्परा प्राप्त कुष्ठ के रोगी, निद्रालु, व्यसनी, दीक्षाहीन, कायर, चण्डरोगी, मलित व्रण एवं महाव्रण वाले तथा उदररोग वालों को यज्ञ के पात्र निर्वाचित न करना चाहिए।१०-१५। द्विज ! पात्रों के वरण करने के उपरांत उनके पूजन के मंत्रों को मैं बता रहा हूँ, सुनो! मन्त्रवेत्ता का गन्ध आदि सामग्रियों द्वारा उनके प्रत्येक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पात्रों का पूजन करना चाहिए।१६। आप ब्रह्ममूर्ति एवं मेरे आचार्य हैं, हे विभो ! इस संसार से मेरी रक्षा कीजिए, हे गुरो ! आप की प्रसन्नता से ही मैंने अपने अभीष्ट यज्ञ की प्राप्ति की है।१७। चर-अचर लोक की जितने दिनों तक स्थिति रहेगी, उतने चिरकाल तक मेरी कीर्ति अविनाशिनी होकर रहे, हे महेशान ! इस प्रतिष्ठानुष्ठान की सफलता प्रदान करने के लिए आप प्रसन्न हो जायें।१८। आप समस्त प्राणियों के आदि एवं संसार सागर के तारने वाले हैं, और ज्ञान रूपी अमृत प्रदान करने के लिए आचार्य हैं, हे यजुर्वेद ! आप को नमस्कार है।१९। ब्रह्म के ही द्वारा उत्पन्न, दिगदिगन्त में व्याप्त एवं शुद्ध जाम्बूनद (सुवर्ण) की भाँति ख्याति प्राप्त उस यजुर्वेद रूप आपको नमस्कार है।२०। संतप्त सुवर्ण के समान प्रकाश आभास की किरणों द्वारा प्रकाशित भूतल, एवं मंत्रों के आख्यान और संस्थान रूप उस यजुर्वेद रूप आपको नमस्कार है।२१। प्रकाशित सुवर्ण की भाँति प्रभा, भास्वर रूप असुरों से विभूषित तथा मन्त्र के विस्तृत संभार विधान के ज्ञाता आपको

षडङ्गवेदवेदज्ञ ऋत्विङ्मोक्षप्रदो भव । प्रविश्य मण्डलं विप्राः स्वस्थाने स्थापयेत्क्रमात् ॥२३
वेद्याः पश्चिमभागे तु आचार्यं स्थापयेद्बुधः । कुण्डस्याग्रे तु ब्रह्माणं मण्डलस्यैव पश्चिमे ॥२४
होतारं स्थापयेत्तत्र विधिज्ञमथ चोत्तरे । द्वौ द्वौ कृत्वा ज्ञापकौ च खड्गधारकमेव च ॥२५
द्वारि द्वारि प्रयत्नेन द्वारपालाननुक्रमात् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण प्रत्येकमथ स्थापयेत् ॥२६
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्वाससो युगलेन तु । यज्ञे सवितते योऽसौ पूज्यते पुरुषः सदा ॥२७
नारायणस्वरूपेण यज्ञं मे सफलं कुरु । यज्ञेषु साक्षी सर्वेषु यजुर्वेदार्थतत्त्ववित् ॥२८
ऋग्वेदार्थस्य तत्त्वज्ञ इन्द्ररूप नमोऽस्तु ते । मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु येन मन्त्राः सुविस्तृताः ॥२९
यजुर्वेदार्थतत्त्वज्ञ ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते । मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु एष एव विधिः स्मृतः ॥३०
माङ्गल्यं कर्मणां नित्यं सर्वज्ञं ज्ञानरूपिणम् । सिद्धये मम यज्ञस्य नमामि शिवरूपिणम् ॥३१
पालय त्वं दिशः सर्वा विदिशश्च तथा इमम् । दिक्पालरूपिणं विप्रं यज्ञसिद्धौ नमाम्यहम् ॥
न सङ्कल्पं[1] चरेद्यागं व्रतं देवार्चनं तथा ॥३२
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः । सङ्कल्पेन विना विप्रा यत्किञ्चित्कुरुते नरः ॥३३
फलं चाल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यागं सङ्कल्पयेत्सुधीः ॥३४
कामात्परो नैव भवेन्निष्कामोऽपि न शोभनः । तस्मात्काममयं धर्मं विना मोक्षं न चाचरेत् ॥३५

नमस्कार है ।२२। षडङ्ग समेत वेद के मर्मज्ञ, एवं ऋत्विक् के मोक्ष प्रदायक हों, विप्रवृन्द ! इस भाँति कहते हुए मण्डल में प्रवेश करके क्रमशः उन्हें अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करना चाहिए ।२३। विद्वान् को चाहिए कि वेदी के पश्चिम भाग में आचार्य, कुण्ड के अग्रभाग में ब्रह्मा, मण्डल के पश्चिम भाग में होता, और उत्तर की ओर विधान ज्ञाता को आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहिए । प्रत्येक दरवाजे पर हाथ में खड्ग लिये द्वारपालों की भाँति दो दो ज्ञापक की नियुक्ति मंत्र पूर्वक करनी चाहिए, और गन्ध पुष्प आदि एवं दो-दो वस्त्रों द्वारा उनकी पूजा अवश्य होनी चाहिए । इस विस्तृत संभार के यज्ञ में जिस पुरुष की सदैव पूजा होती है, वही नारायण स्वरूप होकर इस मेरे यज्ञानुष्ठान को सफलता प्रदान करे, समस्त यज्ञों के साक्षी, यजुर्वेद के अर्थ वेत्ता, एवं ऋग्वेद के तत्त्वज्ञ उस इन्द्ररूप को नमस्कार है, समस्त श्रेष्ठ यज्ञों में जिसके द्वारा मंत्रों की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या की गयी है, उस यजुर्वेद के अर्थतत्त्वज्ञाता एवं ब्रह्म रूप को नमस्कार है । सभी श्रेष्ठ यज्ञों का यही विधान बताया गया है ।२४-३०। कर्मों के मांगलिक रूप, नित्य, सर्वज्ञ, ज्ञान रूपी, एवं उस शिव (कल्याण) रूप को मैं अपनी यज्ञ सफलता के लिए नमस्कार करता हूँ ।३१। आप इन दिशाओं, एवं विदिशाओं की रक्षा करें, तथा यज्ञ सिद्धि के लिए उस दिक्पाल रूपी ब्राह्मण की वन्दना करता हूँ । बिना संकल्प के याग, व्रत, एवं देवार्चन कभी न करना चाहिए, क्योंकि संकल्प मूलक ही कामनाओं की उत्पत्ति होती है, और उसी भाँति संकल्प से यज्ञों की । इसलिए विप्रवृन्द ! संकल्प हीन पुरुष जो कुछ कर्म करता है, उसका अत्यन्त फल जो प्राप्त होता है, उस का अर्धभाग क्षीण हो जाता है, अतः विद्वानों को समस्त प्रयत्नों द्वारा संकल्प पूर्वक ही याग का आरम्भ करना चाहिए ।३२-३४। कामनाओं में त्रिदान होने एवं उनका त्याग भी करना उचित नहीं है, इसलिए काम मय धर्म के बिना मोक्ष-उपाय करना श्रेयस्कर नहीं होता है । संकल्प किये बिना मनुष्य जिस नित्य, एवं

---

१. विनेति शेषः ।

सङ्कल्पेन विना यस्तु धर्मं चरति मानवः । न तस्य फलमाप्नोति नित्यनैमित्तिकस्य च ।।३६
न कुर्यात्स्थापने चैव कुर्याद्वै मण्डलान्तरे । गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णं गुणान्वितम् ।।३७
जलाशयारामकूपसङ्कल्पे पूर्वदिङ्मुखः । साधारणे चोत्तरास्यो ग्रहयज्ञे तु सम्मुखः ।।३८
महाव्रते प्रतिष्ठायां पात्रं ताम्रं हिरण्मयम् । राजताश्ममयं साङ्गं यज्ञेषु प्रशस्यते ।।३९
यज्ञीयपात्रपुटकं हस्तस्थाने प्रकीर्तितम् । ऐश्यान्यां निक्षिपेत्तोयं प्रतिष्ठायां च पूर्वतः ।।४०
आकाशे निक्षिपेद्यागे व्रते ईशेऽपि नित्यके । पितृमेधे च गोयागे नरमेधे च दक्षिणे ।।४१
शुक्तिकांस्यादिहस्तैश्च ताम्ररौप्यादिभिस्तथा । सङ्कल्पो नैव कर्तव्यो मृण्मये च कदाचन ।।४२
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य यज्ञेशं यज्ञेश्वरं स्मरेत् । गङ्गा चादित्यचन्द्रौ च द्यौर्भूमी रात्रिवासरौ ।।४३
सूर्यःसोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च । एते शुभाशुभास्येह कर्मणो नव साक्षिणः ।।४४
इत्युच्चार्य न्यसेद्धर्मं ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं सृजेत् । अमृतं कृत्यपात्रे च ॐ तत्सदिति निर्दिशेत् ।।४५
धर्मः शुभ्रवपुः सिताम्बरधरः कार्योर्ध्वदेशे वृषो हस्ताभ्यामभयं वरं च सततं रूपं परं यो दधत् ।।
सर्वप्राणिसुखावहः कृतधियां मोक्षैकहेतुः सदा । सोयं पातु जगन्ति चैव सततं भूयात्सतां भूतये ।।४६
यज्ञसम्बन्धिविप्रांश्च एकाहेनैव योजयेत् । हविर्द्रव्याणि यानि स्युरष्टयागांतरेऽपि च ।।४७
पुनः पुनर्नियोज्यानि ब्राह्मणा हविरग्नयः ।।४८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

नैमित्तिक धर्मों का पालन करता है, उसे उसके फल से वञ्चित रहना पड़ता है ।३५-३६। जलपूर्ण गूलर के पात्र को मण्डल मध्य में स्थापित न करना चाहिए ।३७। जलाशय, उपवन, एवं कूपों की प्रतिष्ठा में पूर्वाभिमुख होकर संकल्प किया जाता है, उसी भाँति साधारण कार्य में उत्तराभिमुख और गृह यज्ञों में सम्मुख होना बताया गया है ।३८। महाव्रत तथा प्रतिष्ठा के कार्यों में ताँबे, सुवर्ण, चाँदी, एवं पत्थर के साङ्गोपाङ्ग समेत पात्र प्रशस्त बताये गये हैं ।३९। हाथ के स्थान में यज्ञीय पात्रों के पुटक ग्रहण किये जाते हैं, उनके जल का त्याग ईशान कोण में किया जाता है, प्रतिष्ठा में पूर्व की ओर ।४०। नित्य व्रत एवं शिव याग में आकाश की ओर, पितृमेध, गोमेध और नरमेध नामक यज्ञों में दक्षिण की ओर वह त्याज्य बताया गया है ।४१। सीप, कांसा आदि तथा ताँबाँ और चाँदी के हाथों द्वारा संकल्प न करना चाहिए एवं मिट्टी के हाथों द्वारा तो कभी नहीं ।४२। सर्व प्रथम प्रणव के उच्चारण पूर्वक यज्ञेश्वर (भगवान्) और गंगा, सूर्य चन्द्र, आकाश, भूमि एवं दिन रात का स्मरण करना चाहिए ।४३। सूर्य, चन्द्र, यम काल तथा पञ्च महाभूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु, एवं आकाश) ये नव प्रत्येक (प्राणी) के शुभाशुभ कर्म के साक्षी होते हैं ।४४। इस भाँति कह कर धर्म को ध्यान पूर्वक पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिए। कृत्य पात्रों में अमृत हैं, 'ओं तत्सदिति' इस प्रकार निर्देश करके प्रार्थना आरम्भ करे शुभ्र वर्ण की शरीर, श्वेत वस्त्र धारण करने वाला वह धर्म जिसके ऊर्ध्व भाग में वृषभ हव्यों में अभय एवं वर निरन्तर धारण किया रहता है, तथा जो समस्त प्राणियों के लिए सुखप्रदायक और परिनिष्ठित बुद्धि वालों के मोक्ष के कारण रूप हैं, सदैव मेरे रक्षक रहे, तथा सज्जनों को निरन्तर ऐश्वर्य प्रदान करते रहें ।४५-४६। यज्ञ सम्बन्धी ब्राह्मणों एवं हवि की वस्तुओं को एक ही दिन के लिए नियुक्त करना चाहिए, वही क्रम अष्ट भाग में भी बताया गया है, क्योंकि ब्राह्मण, हवि, एवं अग्नि बार-बार नियुक्त किये जाते हैं ।४७-४८।

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के द्वितीयभाग में सत्रहवाँ देवध्यान वर्णन नामक अध्याय समाप्त।१७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

योगस्थापनदेवप्रतिष्ठापनवर्णनम्

सूत उवाच

माघादिमासेष्वपि षट्सु कार्या योगप्रतिष्ठा ऋषिभिः प्रणीता।
देवादिसंस्थापनमाहुरत्र यावन्न सुप्तो मधुसूदनश्च ।।१
वारे भृगोर्देवगुरोर्बुधस्य सोमस्य सर्वाः शुभदा भवन्ति।
लग्ने शुभस्थे शुभवीक्षिते वा कार्या प्रतिष्ठा च जलाशयानाम् ।।२
शुद्धा द्वितीया च तथा तृतीया त्रयोदशी चापि तथैव विप्राः।
तथापि सप्तम्यपि पौर्णमासी दशम्यसौ चाप्यथ पञ्चमी च ।।३
प्राणप्रतिष्ठा[1] च जलाशयादेरेताः प्रशस्तास्तिथयो भवन्ति।
अप्राप्य चैतानि शुभानि यानि कार्या प्रतिष्ठा विषुवद्वये च ।।४
षडशीतिलोकाप्ययनद्वयेन युगादिके पुण्यदिने शुभे च।
कार्या तडागादिजलाशयस्य प्राच्यां प्रतिष्ठा अथ चोत्तरे वा ।।५
सुचारु ईषत्प्रवणे च देशे सुवर्तुलः षोडशहस्तमण्डपः।
द्वारैश्चतुर्भिः प्रथितैरुपेतश्चतुर्मुखश्चापि भवेत्सुरेताः।।६

अध्याय १८

योगस्थापन एवं देव प्रतिष्ठापन का वर्णन

सूत जी बोले—माघ मास से आरम्भ कर जब तक मधुसूदन भगवान् विष्णु का शयन दिन न प्राप्त हो, उस छ मास के भीतर ऋषियों द्वारा कल्पित योग प्रतिष्ठा, एवं देवों आदि के स्थापन करना चाहिए।१। शुक्र, बृहस्पति, बुध, एवं सोमवार के दिन सभी शुभदायक होते हैं, उन दिनों शुभ अथवा शुभ ग्रहों द्वारा दृष्टलग्न में जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।२। विप्रवृन्द ! शुद्ध द्वितीया, तृतीया, त्रयोदशी, सप्तमी, पूर्णिमा, दशमी और पंचमी, तिथियाँ जलाशय की प्राण प्रतिष्ठा में प्रशस्त बतायी गयी हैं। इन शुभप्रदायक तिथियों के अभाव में दोनों विष्णुवों का प्रतिष्ठा कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए।३-४। छियासी लोकों के भी उसी दोनों अयनों मे जो युग का आदि काल होता है, पुण्य शुभ दिनों में पूरब अथवा उत्तर की ओर सरोवर आदि जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।५। सौन्दर्य पूर्ण एवं कुछ अवनत (ढालू) भूमि के प्रदेश में गोलाकार सोलह हाथ का मण्डप बनाना चाहिए, जिसमें चार दरवाजे सुन्दर ढंग से बनाये गये हों, और शक्तिशाली ब्रह्मा जिसमें सुशोभित किये गये हों पूरब आदि के चारों दरवाजों को

---

१. सप्तम्यर्थे प्रथमा।

पूर्वादिद्वारेषु चतुष्टयेषु प्लक्षादिभिस्तोरणकैः सुरेशः ।
प्लक्षस्तथोदुम्बरपिप्पलौ च न्यग्रोधकं चापि यथाक्रमेण ॥७
ऊर्ध्वे च हस्तानमितानि यानि विचित्रमाल्याम्बरभूषितानि ।
भूमौ यथार्प्रीति च हस्तकानि भवन्ति चैतान्यपि तोरणानि ॥८
सर्वत्र यागेऽपि हि मण्डपस्य कार्या ध्वजा दिक्षु विदिक्षु शुभ्राः ।
दिक्पालवर्णाभपताकयुक्ता मध्ये च वै नीलपताकयुक्ताः ॥९
ध्वजाश्च यस्मिन्दशहस्तसम्मितास्तस्मिन्पताका अपि पञ्चहस्ताः ।
अरत्निमात्रा यदि मूलभागे पञ्चाङ्गुलाग्रे विनिबद्धगूढाः ॥१०
द्वारे च तस्मिंश्च निरूपिता वा रम्भा सुपुष्पा सुखशाड्वलाश्च ।
वचाभिवृक्षोत्तरपञ्चहस्ताः सपञ्चशाखा अपि तोरणानि ॥११
मुञ्जोद्भवैर्बर्हिसमुद्भवैर्वा सुरञ्जितश्चैत्रितपद्मपल्लवैः ।
पुष्टद्वये सूत्रितं वेष्टयेच्च तथेक्षुकाण्डैरथ यागमण्डपम् ॥१२
वेदिस्तथा मण्डपमध्यभागे कार्या च कोणेस्थितुषादिहीना ।
हस्तोच्छ्रिता रेखवती सुरेखपरिष्कृता हस्तचतुष्टयेन ॥१३
वेद्यां परित्यज्य दशाङ्गुलानि ऐशान्यतस्त्रीणि तथा पराणि ।
कुण्डाय दद्याच्चतुरस्रमेकमवस्थितं त्र्यङ्गुलमेखलोज्ज्वलम् ॥१४

प्लक्षपाकड़ आदि के तोरणों से सुसम्पन्न करना चाहिए, पाकड़ि, गूलर, पीपल, और बरगद के तोरण से क्रमशः उन दरवाजों को विभूषित करना चाहिए ।६-७। उसके ऊपर के एक हाथ के परिमाण भाग में चित्र विचित्र मालाओं और वस्त्रों को कुछ लटकाकर उनसे सौन्दर्य वृद्धि करना बताया गया है, भूमि में जिस प्रकार प्रीति सम्पन्न हाथों का वर्णन किया गया है । यह भी तो रण के नाम से ही ख्याति प्राप्त है ।८। सभी भागों में मण्डप की चारों दिशाओं तथा विदिशाओं में श्वेत वर्ण की ध्वजा होनी चाहिए, जो दिक्पालों के लिए उनके वर्णों के अनुसार रंग पूर्ण, एवं अर्ध्य भाग में नील रंग की पताका से सुशोभित की जाती है ।९। दशहाथ के ध्वज दण्डों में पाँच हाथ के पताके लगाये जाते हैं, जिसमें मूल भाग के पाँच अंगुल के ऊपर अरणिमात्र एक हाथ के परिमाण में अत्यन्त दृढ़ता के साथ आबद्ध रहता है ।१०। उन दरवाजों के सामने केला के वृक्ष, सौन्दर्य पूर्ण पुष्पों से सुशोभित एवं सुख प्रदान करने वाली हरियाली भूमि होनी चाहिए । उन वृक्षों के समीप पाँच हाथ तक लगाये गये वृक्ष तोरण के नाम से ही ख्यात हैं ।११। मूँज, कुशाओं, एवं तीन प्रकार के कमल पंखुड़ियों और ऊख दंडों द्वारा उस याग मण्डप को आवेष्टित करना चाहिए जिसको अत्यन्त पुष्टि के लिये दो स्थानो सूत्रों से आबद्ध किया गया हो । उस मण्डप के मध्य भाग में एक हाथ की ऊँची, रेखा सम्पन्न, सौन्दर्य पूर्ण रेखाओं से परिष्कृत एवं चार हाथ के परिमाण में वेदी का निर्माण करना चाहिए और चारों कोने में किसी प्रकार की हड्डी या भूसी न हो ।१२-१३। वेदी में दश अंगुल छोड़कर ईशान आदि चारों ओर तीन-तीन अंगुल के त्याग पूर्वक एक चौकोर कुंड की रचना करनी चाहिए, जिसमें तीन अंगुल की श्वेत वर्ण की मेखला सुसम्पन्न रहती है ।१४। महल, सरोवर, एवं विशाल

प्रासादे च तडागे च महारामे तथैव च । मण्डलं सर्वतोभद्रं प्रयत्नेनैव कारयेत् ॥१५
कुण्डं चापि प्रकुर्वीत यथाभ्यन्तरमेखलम् । बहिर्योनिगतं श्वेतं निश्चित्रं समसूत्रकम् ॥१६
कुण्डानि कुर्यान्नवकुण्डपक्षे वेद्यास्तथोच्चैरविदिक्षु चैव ।
सर्वाणि सर्वत्र च मेखलानि षट्पञ्चाश्रसमेखलानि ॥१७
अष्टाब्जजान्यब्जत्रिकोणकानि तथार्द्धचन्द्रं चतुरस्रकं च ।
कुण्डस्य पूर्वोत्तरदिग्विभागे स्थाप्यो घटश्चन्दनचारुलिप्तः ॥१८
माल्याम्बराच्छादितपूर्णपाथाः सवृत्तपत्रश्च सुवर्णगर्भः ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे योगस्थापनदेवप्रतिष्ठापनवर्णन-
नामकं अष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवग्रहपूजनविधानवर्णनम्

सूत उवाच

गतो यागगृहादन्यन्मण्डलान्तरमाश्रितः । यजमानस्तथा नित्यं कर्म कृत्वा यथाविधि ॥१
पञ्च देवान्नमस्कृत्य तथा यज्ञेश्वरं हरिम् । सङ्कल्पं च ततः कृत्वा ब्राह्मणानामनुज्ञया ॥२
एतस्मिन्पुण्यदेशे तु फलं गोत्रश्च वै यमः । वेदव्यासादिप्रणीतं यथाशास्त्रनिदर्शनम् ॥३

उपवन में मण्डल तथा सर्वतोभद्र का निर्माण प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ।१५। इस प्रकार के कुण्ड का निर्माण करना बताया गया है, जिसके भीतर मेखला, और ऊपरी भाग में बनायी गयी योनि के भीतर श्वेतवर्ण, चित्र हीन, एवं सूत्रों द्वारा समान भाग किया गया हो ।१६। इस भाँति कुण्डों के निर्माण करना चाहिए, विशेषकर यह नवकुण्डों के पक्ष में बताया गया है । उन कुण्डों की ऐसी वेदियाँ, जिसके चारों ओर का भाग ऊँचा, और मेखला पूर्ण हो, चाहे वह षट्कोण अथवा पाँच कोण भी क्यों न हो, बनानी चाहिए ।१७। आठमाला की भाँति (अष्टकोण) त्रिकोण, अर्द्धचन्द्राकार, एवं चौकोर कुण्ड निर्माण में भी यही व्यवस्था है, कुण्ड के ईशान के कोण में घट-स्थापन करना चाहिए, जो चन्दन की सौन्दर्य पूर्ण रेखाओं से अलंकृत, मालाओं वस्त्रों से आच्छादित जलपूर्ण हो, और जिसका आधार गोलाकार एवं जिसके गर्भ में सुवर्ण हो ।१८-१९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के द्वितीय भाग में योगस्थापन एवं देवप्रतिष्ठा वर्णन
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

देवग्रह पूजन विधान का वर्णन

सूत बोले—यज्ञभवन से अन्यत्र दूसरे मण्डल में जाकर यजमान को विधान पूर्वक अपने नित्य कर्मों की समाप्ति करनी चाहिए ।१। पाँचों देवों एवं यज्ञाधिपति विष्णु के नमस्कार करने के उपरांत ब्राह्मणों के आदेश प्राप्त कर इस भांति संकल्प करना चाहिए—इस पुण्य प्रदेश में फल एवं गोत्र वर्द्धक यम हैं, वेदव्यास आदि महर्षियों द्वारा रचित शास्त्रों के आदेशानुसार अर्थात् उस पुण्यारण्य का विहरण करते

यथायथा स्वतन्त्रोक्तं पुण्यारण्याभिधायकम् । जलाशयप्रतिष्ठायां करिष्ये विधिवद्द्विजाः ॥४
यथायथा च कल्पोक्तं यथाकुण्डं विधानतः । साधिवासं यथैवैकः पुण्यारण्यविधायकः ॥५
जलाशयप्रतिष्ठां च करिष्ये विधिवद्द्विजाः । सङ्कल्पमेवं कृत्वा तु वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥६
मातृयागं पुरस्कृत्य वृद्धिश्राद्धं समापयेत् ॥७

भेर्यादिघोषेण सुमङ्गलेन पद्यं लिखेदत्र सषोडशाक्षरम् ।
इन्द्रादिदिक्पालवरायुधानि समुल्लिखेदेव दिशि स्थितानि ॥८

ब्रह्मेशान्वरयेत्सर्वानाचार्यं तु विशेषतः । स्वर्णकुण्डलयुग्मेन तथा ताम्रादिभाजनैः ॥९
नानारत्नैश्च वस्त्रैश्च आचार्यं वरेद्बुधः । हेमालङ्कारयुग्मैश्च वासोभिर्विविधैरपि ॥१०
यथानाम यथाशक्ति यथाभिवृणुयाद्बुधः । रचिता यजमानेन ध्रुवं स्वस्त्यस्तु ते इति ॥११
ततः सर्वौषधीभिश्च यजमानः सपत्निकः । आपोहिष्ठेतिमन्त्रेण स्नापयामासुरप्रजाः ॥१२
यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः । प्रियङ्गुव्रीहयश्चाष्टौ सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥१३
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । सर्वौषध्युदकस्नातः स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥१४
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः पुरोहितपुरःसरः । नानामङ्गलघोषेण भेरीपटहनिस्वनैः ॥१५
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः । पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१६

हुए उनकी जिस प्रकार स्वतन्त्र उक्तियां हैं, द्विजवृन्द ! इस जलाशय की प्रतिष्ठा कर्म में मैं विधान पूर्वक उन्हें सम्पन्न करूँगा । कल्पों में बताये गये विधानानुसार कुण्ड का निर्माण एवं अधिवास समेत उस पुण्यारण्य को द्विजवृन्द ! इस जलाशय की प्रतिष्ठा में विधान पूर्वक सुसम्पन्न करूँगा, इस भाँति संकल्प करके वृद्धि श्राद्धकोमातृयाग के अनन्तर सुसम्पन्न करना चाहिए ।२-७। भेरी (नगाड़े) आदि मांगलिक वाद्यों के निनादित होते समय सोलह अक्षर के पद्य लिखकर दिशाओं में स्थित इन्द्र आदि दिक्पालों के उत्तम अस्त्रों की रचना करनी चाहिए ।८। ब्रह्मतेज पूर्ण ब्राह्मणों के वरण करने के उपरांत विशेषकर आचार्य का वरण सुवर्ण के कुण्डल, ताँबें आदि के पात्र, अनेक रत्न एवं वस्त्रों से विद्वानों को करना चाहिए । सुवर्ण के दो आभूषण एवं भाँति-भाँति के वस्त्रों से यथाशक्ति मापदण्ड के अनुसार ब्राह्मणों का वरण करना बताया गया है, यजमान द्वारा पूजित ब्राह्मण वृन्द को वरण के अनन्तर 'ते स्वस्त्पस्तु' (तुम्हारा कल्याण हो) इस प्रकार यजमान को शुभाशीष प्रदान करना चाहिए ।९-११। उसके पश्चात् पत्नी समेत यजमान (बच्चों को साथ लेकर) समस्त औषधियों के जल से 'आपोहिष्ठेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक स्नान स्वयं करे और (पत्नी को) कराये।१२। जवा, गेहूँ, नीवार (तिनी का चावल), तिल, सावां, साठी धान, पिप्पली (पीपर), और धान्य, इन आठों को सर्वौषधि बताया गया है ।१३। उपरांत श्वेत वस्त्र धारण कर, श्वेतपुष्पों की माला और वैसे ही चन्दन का लेपन करके समस्त औषधियों के जल स्नान पूर्वक वेदतत्वज्ञ ब्राह्मण पण्डितों की आज्ञा शिरोधार्य कर पुरोहित का अनुगमन करते हुए भाँति-भाँति के मांगलिक नगाड़े एवं परह (डुग्गी) वाद्यों की ध्वनि कोलाहल में पत्नी एवं पुत्र-पौत्र के साथ पश्चिम दरवाजे से उस याग-मण्डप में प्रवेश करे।१४-१६।

चरके पूजयेद्विघ्नं गङ्गां च यमुनां तथा । पार्श्वयोश्चार्धतो लक्ष्मीं प्रतिहरमनुक्रमात् ॥१७
वेदिं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्याद्यथाविधि । उपविश्य ततस्तस्मिन्ब्राह्मणानुमते स्थितः ॥१८
स्वस्ति वाच्यं ततः कृत्वा पञ्च देवान्प्रपूजयेत् । भूतोत्सादं ततः कृत्वा विकिरान्विकिरेद्भुवि ॥१९
अपक्रामन्तु ये भूता ये चास्मिन्विघ्नकारकाः । यस्मान्नो नाश्नि वर्तन्ते यज्ञमात्रं प्रवर्तताम् ॥२०
पूजयेदासनं पश्चात्स्वकीयं पुष्पचन्दनैः । नमोनन्तासनायेति तथा पद्मासनाय च ॥२१
विमलासनाय च नमो नमः सारासनाय च । योगासनाय च नमः पृथिव्यै नम इत्यपि ॥२२
ततो भूमितले वामहस्तं दत्त्वा पठेन्नरः । पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥२३
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु । सूर्यायार्घ्यं ततो दत्त्वा गुरुं नत्वा कृताञ्जलिः ॥२४
देवं हृत्पद्मके नीत्वा प्राणायामत्रयं चरेत् । ततोऽर्चयेद्विघ्नराजमैशान्यां च घटोपरि ॥२५
गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि । गणानां त्वेति मन्त्रेण ब्रह्माणं तदनन्तरम् ॥२६
आब्रह्मन्निति ऋचा तद्विष्णोरिति संस्मरन् । वासुदेवं ततः पश्चाद्बलिभिर्गन्धचन्दनैः ॥२७
ततो देवशरीरं तु नवमासाद्य त्रिंशतम् । वेद्याश्च परितः सर्वान्स्वे स्वे स्थाने यथाक्रमम् ॥२८
ततो राजाधिराजेन भूतशुद्धिं समाचरेत् । ततो बुद्बुदमध्ये तु श्वेतपद्मासनस्थितम् ॥२९
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् । किरीटकुण्डलयुतं सितं पङ्कजधारिणम् ॥३०

चरक में विघ्न, गंगा, और यमुना, पार्श्व, के अर्ध भाग में लक्ष्मी की पूजा द्वारपाल के क्रम से करके वेदी की प्रदक्षिणा तथा विधान पूर्वक नमस्कार के उपरांत आसन-आसीन होकर ब्राह्मणों की सम्मति से स्वस्ति-वाचन एवं पाँचों देवों की पूजा करके पश्चात् भूत-शुद्धि और विकरों के लिए उसे दान करना चाहिए। 'इस यज्ञ में विघ्न करने के उद्देश्य से प्राप्त भूतगण यहाँ से दूर निकल जायें जिससे यज्ञानुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हो, इन भूतों का पलायन कराने के लिए पुष्पचन्दन द्वारा आसन का पूजन इस भाँति आरम्भ करना बताया गया है—अनंतासन, पद्मासन, विमलासन, सरासन, एवं योगासन को बार-बार नमस्कार है और पृथ्वी के लिए सभी प्रकार नमस्कार है।१७-२२। तदनन्तर भूतल पर बाँया हांथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करे—हे पृथिवी ! इस समस्त लोकमय ब्रह्माण्ड को आपने धारण किया है और आप को भगवान् विष्णु ने धारण किया, अतः आप मुझे नित्य धारण कर इस आसन को भी पवित्र कीजिये, पश्चात् सूर्य के लिए अर्घ्य-प्रदान कर और गुरु को करबद्ध नमस्कार करने के उपरांत (आराध्य) देव को अपने हृदय कमल में ध्यान द्वारा सुशोभित करके तीन प्राणायाम सुसम्पन्न करना चाहिए। तदनन्तर ईशान कोण में कलश के ऊपर स्थापित विघ्नराज (गणेश) देव की अर्चा गन्ध, पुष्प, वस्त्र, विविध भाँति के नैवेद्य (मोदक) द्वारा 'गणानां त्वेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए।२३-२६। 'आब्रहन्निति' और 'तद्विष्णोरिति' इन ऋचाओं द्वारा वासुदेव भगवान् की अर्चा बलि, गन्ध, चन्दन, आदि वस्तुओं से सुसम्पन्न करने के उपरांत देवों के नवीन शरीर की जिसकी संख्या तीस बतायी गयी है, और वेदी के चारों ओर अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं, क्रमशः पूजा सुसम्पन्न करना चाहिए।२७-२८। उसके अनन्तर 'राजाधिराजेति' मंत्र द्वारा भूत शुद्धि के उपरांत जल के बुल्ले के मध्य भाग में श्वेत कमलासन पर सुशोभित शुद्ध स्फटिक मणि के समान शंख, कुन्द, एवं चन्द्र की प्रभा पूर्ण किरीट-कुण्डल से अलंकृत श्वेत

शुक्लमाल्याम्बरं शुक्लं शुक्लगन्धानुलेपनम् । अहितुण्डासनस्थं च पाशहस्तं महाबलम् ॥३१
स्तूयमानं सुरगणैः सिद्धगन्धर्वसेवितम् । सुचारुवदनं देवं पद्ममालोपशोभितम् ॥३२
राजीवलोचनं नित्यं नागलोकोपशोभितम् । मकरग्राहकूर्माद्यैर्नानाजलचरैर्वृतम् ॥३३
जलाशयगतं देवं चिन्तयेज्जलशायिनम् । ततो न्यासं प्रकुर्वीत पञ्चाङ्गत्वावशोभितम् ॥३४
अर्घ्यपात्रं ततः कृत्वा त्रिभागजलपूरितम् । अष्टधा मूलमन्त्रं च जप्त्वा तेनोदकेन च ॥३५
आसनं यागवस्तूनि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा । अरुणाय विद्महे तमोघ्नाय च धीमहि ॥३६
तन्नो अरुणः प्रचोदयादिति स्नानं समाचरेत् । ततो गणेशमैशान्यामाग्नेय्यां गुरुपादुकाम् ॥३७
धर्माधर्मादिकान्सर्वान्सत्त्वाद्दीनथ चार्चयेत् । सूर्यसोमजलादीनां मण्डलानि यथाक्रमम् ॥३८
मध्ये शक्तिं च क्षीरोदमनन्तं पृथिवीं तथा । कूर्मं चाधारशक्तिं च सुमेरुं मन्दरं तथा ॥३९
पञ्चतत्त्वं समभ्यर्च्य साङ्गोपाङ्गमनन्तरम् । ततः श्वेतं च कुसुमं साक्षतं योगमायया ॥४०
गृहीत्वा पूर्वदद्देशे स्थापयेत्कलशोपरि । आवाहनं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥४१
एह्येहि भगवन्वरुण एष यज्ञः प्रवर्तते । यज्ञभागं गृहाणेदं त्वामेवावाहयाम्यहम् ॥४२
एवमावाह्य लोकेशमष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् । गायत्र्या स्नापयित्वा तु दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ॥४३
पुष्पाञ्जलिं ततो दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः । पूर्वादिपत्रमूलेषु धर्मादीन्पूजयेद्बुधः ॥४४

कमल धारण किये, शुक्ल वर्ण की माला एवं वस्त्र से सुसज्जित, शुक्लवर्ण, शुक्ल गन्ध का अनुलेपन किये, साँप के मुखासन पर विराजमान और हाथ में पाश (फांस) लिये, महाबली, सुरगणों द्वारा स्तुति सम्पन्न सिद्ध गन्धर्व से सुसेवित, सौन्दर्यपूर्ण बदन, कमल की माला से विभूषित उस देव का, जो कमल के समान नेत्र, नित्य नाग लोक में सम्मानित मकर, ग्राह, कछुवे आदि जलचरों से पूर्ण, और जलाशय में स्थित हैं, इस भाँति ध्यान करके उसका पञ्चांग न्यास करना बताया गया गया है ।२९-३४। पश्चात् अर्घ्यपात्र को जिसमें तीन भाग जल से पूर्ण किया गया है, आठ बार मूल मन्त्र का जप करके उसी जल से आसन एवं याग की वस्तुओं को सेचन द्वारा पवित्र करना चाहिए । अनन्तर 'अरुणाय विद्महे' इत्यादि, मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उन्हें स्नान कराकर ईशान कोण में स्थित गणेश, अग्निकोण में स्थित गुरु पादुका एवं सभी धर्माधर्म आचरण वाले प्राणियों की पूजा सविधान सुसम्पन्न करना कहा गया है । उसी भाँति सूर्य, चन्द्र, एवं जलेश के मण्डलों का भी क्रमशः पूजन करना चाहिए।३५-३८। मध्यभाग में स्थित शक्ति, क्षीर- सागर, अनंत, पृथिवी, आधारशक्ति, कच्छप, सुमेरु, मन्दर और पञ्चतत्व के साङ्गोपाङ्ग की पूजा के अनन्तर श्वेत पुष्प एवं अक्षत के द्वारा पूर्व प्रदेश में स्थापित कलश के ऊपर प्रतिष्ठित योगमाया युक्त (वरुण देव) का इस मंत्र द्वारा आवाहन मंत्रवेत्ता को करना चाहिए । भगवन् वरुण ! आइये, आइये ! यह यज्ञ आरम्भ हो रहा है, इसे सुशोभित कर अपने यज्ञ भाग को ग्रहण कर कृतार्थ कीजिये, इसीलिए मैं आपका आवाहन कर रहा हूँ ।३९-४२। इस भाँति आवाहन करने के पश्चात् उन लोकेश को आठ मुद्राओं के प्रदर्शन पूर्वक गायत्री मंत्र द्वारा स्नान एवं पाद्यादि के लिए जल प्रदान करना कहा गया है ।४३। पुनः पुष्पांजलि प्रदान करने के अनन्तर पूर्वादि पत्रों के मूल भाग में स्थित धर्म आदि देवों की आराधना उस देशिक विद्वान् को करनी चाहिए ।४४। वहाँ उन प्राणियों एवं उनकी सौन्दर्य पूर्ण पत्नियों की पूजा के पश्चात्

सत्त्वाद्याः पूजयेत्तत्र तेषामेव वराङ्गनाः । ज्ञानं धर्मं च सोमं च रजः सत्त्वं तमस्तथा ॥४५
पूर्वादिपत्रमध्ये तु ग्रहानष्टौ प्रपूजयेत् । पत्राग्रे लोकपालानामग्न्यादीनायुधांस्तथा ॥४६
कर्णिकादक्षिणे पूर्वं वामे चापि शचीपतिम् । पूर्वपत्रे तु ब्रह्माणं पूजयेत्सितपङ्कजैः ॥४७
नैर्ऋत्ये वरुणस्याथ मध्येऽनन्तं प्रपूजयेत् । पीठमन्त्रेषु पूर्वादिब्रह्माणं च शिवं तथा ॥४८
विष्णुं चापि गणेशं च पृथिवीं गन्धचन्दनैः । जपेन्मन्त्रं साष्टशतं सहस्रं विजयेद्बुधः ॥४९
जानुभ्यामवनीं गत्वा विजयाख्यस्तवं पठेत् । ईशानादिपीठकोणेषु कमलामम्बिकां तथा ॥५०
नैर्ऋत्यां विश्वकर्माणं वायव्ये तु सरस्वतीम् । पूर्वादिद्वारदेशे तु मरुतं चावहादिकम् ॥५१
आवहं प्रवहं चैव तथैवोद्वहसंवहौ । विन्यसेत्पश्चिमे द्वारि निवहं च परीवहम् ॥५२
विन्यसेदुत्तरद्वारि मरुतं च पराभवम् । आग्नेयादिषु कोणेषु बहिष्पीठं ततो जयेत् ॥५३
पिशाचान्राक्षसान्भूतान्वेतालांश्च तथा क्रमात् । क्षोभकः कामरूपश्च सौभद्रो मरुतस्तथा ॥५४
गोमुखो नन्दभद्रश्च द्विजिह्वो मलिनस्तथा । हस्तिकर्णो विशालाख्यः सप्तरक्षोगणः स्मृतः ॥५५
भूमिदो वरदश्चैव जयन्तः क्षोभकस्तथा । विवस्वन्तः सुदन्तश्च एते भूतगणाः स्मृताः ॥५६
अङ्गदो नीलकर्णोऽसौ वसन्तो यावकस्तथा । घोररूपा महाकाया वेतालाश्च प्रकीर्तिताः ॥५७
गन्धपुष्पाक्षतैर्भक्त्या सर्वे देवा ग्रहादयः । ध्यानवर्णानुरूपेण पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥५८
ध्यायेदादित्यमारक्तं रक्तपद्मासनस्थितम् । रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥५९
यवविद्रुमसङ्काशं सिन्दूरारुणसप्रभम् । आकृष्णेनेति मन्त्रेण स्थापयेत्कलशोपरि ॥६०

ज्ञान, धर्म, सोम, रज, सत्व, तम एवं पूर्वादि पत्रों के मध्य भाग में स्थित आठों ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। तथा पत्तों के अग्रभाग में लोकपालों के आग्नेयादि अस्त्रों की पूजा करने पर कर्णिका के दक्षिण भाग में सर्व प्रथम बाँये ओर स्थित शचीपति (इन्द्र) और पूर्व पत्ते पर स्थित ब्रह्मा की पूजा श्वेत कमल-पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए।४५-४७। नैऋत्यकोण में वरुण मध्य भाग में अनन्त, पीठ मन्त्रों में स्थित पूर्वादि क्रम से ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, एवं पृथिवी की पूजा गन्ध-चन्दनों द्वारा सम्पन्न करके एक सहस्र आठ सौ संख्या का जप उस विद्वान् को करना आवश्यक होता है।४८-४९। पृथिवी में दोनों घुटने टेक कर विजय नामक स्तोत्र का पाठ करके पीठासन के ईशान आदि कोण में सुशोभित कमला, अम्बिका, नैऋत्य कोण में विश्वकर्मा, वायव्य कोण में सरस्वती पूर्व आदि दरवाजों पर स्थित मरुत, अवहादिक—आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, पश्चिम दरवाजे पर निवह, परीवह, एवं उत्तर के दरवाजे पर स्थित, मरुत, तथा पराभव का स्थापन-पूजन के उपरांत आग्नेयादि कोण में पीठासन के बाहरी भाग में स्थित पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल की क्रमशः पूजा करनी चाहिए। क्षोभक, कामरूप, सौभद्र, मरुत, गोमुख, नन्दभद्र, द्विजिह्व, मलिन, हस्तिकर्ण, विशाल ये सात राक्षस गण बताये गये है।५०-५५। भूमिद, वरद, जयन्त, क्षोभक, विवस्वंत, और सुदन्त इन्हें भूत गण कहा गया है।५६। अंगद, नील कर्ण, वसंत, पावक, घोररूप, एवं महाकाय वाले इन्हें वेताल बताया गया है।५७। समस्त देवों और ग्रहों के स्वरूपानुरूप ध्यानपूर्वक गन्ध, पुष्प, एवं अक्षतों आदि वस्तुओं से प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए।५८। रक्त वर्ण, रक्त कमल के आसन पर सुशोभित, रक्ताम्बर धारण किये, रक्त, रक्तवर्ण की माला एवं लेप से भूषित, नवीन प्रवाल के समान एवं सिंदूर की भाँति अरुण (लाल) वर्ण की प्रभापूर्ण उस आदित्य देव का ध्यान करके 'आकृष्णेनेति' मंत्र के उच्चारण करते हुए उन्हें कलश के ऊपर प्रतिष्ठित

इहागच्छेति चावाह्य पाद्यार्घ्यैश्च पृथग्विधैः । गन्धपुष्पादिभिर्भक्त्या पूजयेत्तं यथाविधि ॥६१
बलिं च लोहितं दद्यात्पायसं दधिखण्डकम् । घृतलिप्तं च शाल्यन्नं पताकां रक्तवर्णिकाम् ॥६२
श्वेताम्बरधरं श्वेतं शुक्लगन्धानुलेपनम् । द्विभुजं वरदं देवं गदाहस्तं महाबलम् ॥६३
नानाभरणसम्पन्नं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । शुक्लपद्मासनस्थं चाश्वं दद्याच्छ्वेतभूषितम् ॥६४
इमं देवा इति मन्त्रेण स्थापयेत्पूर्वदिग्दले । सितवस्त्रैश्च पुष्पैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥६५
पायसैः श्वेतबलिभिर्दधिभक्तं निवेदयेत् । धूपैः श्वेतपताकाभिर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥६६
रक्तमाल्याम्बरं देवं रक्ताभरणभूषितम् । सुचारुनयनं रक्तं रक्तपद्मासनस्थितम् ॥६७
किरीटकुण्डलधरं मेषकण्ठं चतुर्भुजम् । वरदं यज्ञनाशं च शूलशक्तिगदाधरम् ॥६८
सर्वकामप्रदं देवं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । चिन्तयेत्परया भक्त्या मङ्गलं धरणीसुतम् ॥६९
अग्निमीळेति मन्त्रेण स्थापयेदग्निदिग्दले । पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च रक्तमाल्यानुलेपनैः ॥७०
धूपै रक्तपताकाभिर्गुडभक्तनिवेदनैः । अतसीपुष्पसङ्काशं कर्णिकारसमप्रभम् ॥७१
रौहिणेयं महाकायं नीलनीरजलोचनम् । प्रशान्तवदनं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥७२
खड्गचर्मधरं तद्वद्गदापरशुधारिणम् । पद्मासनगतं देवं पीतपद्मासनस्थितम् ॥७३
नानाभरणसम्पूर्णं मृगेन्द्रवरवाहनम् । उद्बुध्यस्वेति मन्त्रेण याम्यां तु स्थापयेद्बुधम् ॥७४

करने के उपरांत 'इहागच्छेति' (यहाँ आइये) ऐसा कहकर आवाहन और पाद्य-अर्घ्य के लिए जल तथा भाँति-भाँति के गन्ध-पुष्पों द्वारा भक्ति विधान पूर्वक पूजा करनी चाहिए।५९-६१। तदुपरांत रक्तवर्ण की बलि, खीर, दही, खांड, घी मिश्रित साठी (चावल) के भात और रक्तवर्ण की पताका प्रदान करनी चाहिए।६२। श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित शुक्ल गंध के लेप लगाये, दो भुजा वरदायक, देव गदा हाथ में लिये, महाबली, अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, सिद्ध गन्धर्व द्वारा सुसेवित, श्वेत कमल पर स्थित, एवं श्वेत वर्ण के आभूषणों से विभूषित अश्व प्रदान करना चाहिए, 'इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूर्व दिशा के दल में स्थापित करके श्वेत वस्त्र, पुष्प, श्वेत वर्ण की माला एवं लेप, खीर, दही मिश्रित श्वेत वर्ण की बलि, धूप, श्वेत पताका और भाँति-भाँति के पकवान समर्पित करना चाहिए।६३-६६। रक्तवर्ण की माला, वस्त्र, रक्तवर्ण और आभूषण, से विभूषित, सौन्दर्यपूर्ण नेत्र, रक्त कमल पर स्थित, किरीट-कुण्डल धारण किये, मेष (भेड़) के समान कंठ, चार भुजाएँ, वरदायक, यज्ञनाशक, शूल, शक्ति, एवं गदा अस्त्र लिये, समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले, सिद्ध, गन्धर्व सेवित, उस धरणी सुत मंगल देव का इस भाँति भक्ति पूर्वक ध्यान करना चाहिए।६७-६९। 'अग्नि मीळेति' इस मंत्र के उच्चारण करके आग्नेय दिशा के दल में उस देव की स्थापना करके रक्त पुष्प, रक्तवर्ण की माला, एवं अनुलेपन धूप, रक्तपताका और गुड प्रदान पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए, अलसी पुष्प के समान वर्ण, पुष्प की पंखुडियों की भाँति प्रभा महाकाय, नील कमल के समान नेत्र, अत्यन्त शांत मुख, पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, उनमें क्रमशः खड्ग, चर्म, गदा और फरसे को धारण किये, कमलासन लिये, पीत कमलासन पर सुशोभित, विविध प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित उत्तम मृगेन्द्र (सिंह) वाहन वाले रोहिणी पुत्र उस बुध देव को दक्षिणदिशा में 'उद्बुध्यस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापित करके

पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः पीतगन्धानुलेपनैः । वस्त्रैः पीतपताकाभिर्बलिभिः कृशरान्वितैः ॥७५
पीतवर्णं गुरुं ध्यायेत्पीतपद्मासनस्थितम् । पीताभरणसम्पन्नं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥७६
वरदं दण्डहस्तं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् । पूज्यमानं सुगन्धर्वैः सेन्द्रैर्देवगणैरपि ॥७७
बृहस्पतय इति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां दिशि संस्थितम् । पीतचन्दनगन्धैश्च पीतवस्त्रादिभूषणैः ॥७८
धूपैः पीतपताकाभिःपीतोदकनिवेदनैः । पूजयेत्परया भक्त्या पुरन्दरपुरोहितम् ॥७९
ध्यायेच्छुक्रं भृगुसुतं श्वेतपद्मासनस्थितम् । चतुर्भुजं महाकायं वरदं दण्डधारिणम् ॥८०
महाबाहुं विशालाक्षं साक्षसूत्रकमण्डलुम् । स्तूयमानं मुनिश्रेष्ठैः सेवितं दैत्यपुङ्गवैः ॥८१
सिंहासनगतं देवं नीलेन्दीवरलोचनम् । विलसत्पुण्डरीकस्य मालाभिरुपशोभितम् ॥८२
नानादैत्येन्द्रपुत्रांश्च पाठयन्तं मुहुर्मुहुः । नानाशस्त्रास्त्रचतुरं नानाशास्त्रविशारदम् ॥८३
एवं ध्यात्वा भृगुश्रेष्ठं जपन्नन्नात्परिस्रुतम् । मनसा भक्तियुक्तेन स्थापयेत्पश्चिमे दले ॥८४
सितचन्दनवस्त्रैश्च धूपमाल्यानुलेपनैः । धूपैः श्वेतपताकाभिः सक्तुभिः क्षीरसंयुतैः ॥८५
पूजयेत्परया भक्त्या पुण्डरीकाक्षतैरपि । ध्यायेत्सौरिं चतुर्बाहुं शूलहस्तं वरप्रदम् ॥८६
इन्द्रनीलनिभं श्यामं दिव्यबाणधनुर्धरम् । इन्दीवरासनस्थं च सरोजवरसप्रभम् ॥८७
नीलाम्बरधरं नीलपद्ममालोपशोभितम् । घोररूपं महाकायं छायाहृदयनन्दनम् ॥८८

गन्ध, पुष्प, पीत गंध के अनुलेपन, वस्त्र, पीत वर्ण की पताका बलि कृशरान्न समेत उसकी पूजा करनी चाहिए ।७०-७५। पीत कमल के आसन पर आसीन, पीतवर्ण के आभरणों से भूषित, पीताम्बर धारण किये, चार भुजाएँ, वरदायक, हाथों में दण्ड, अक्षसूत्र (रुद्राक्ष) की माला एवं कमण्डलु लिए, सौन्दर्य पूर्ण गन्धर्व, एवं इन्द्रादि देव गणों से पुजित पीत वर्ण वाले उस गुरु (बृहस्पति) का इस भाँति ध्यान करके 'बृहस्पतये इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक नैऋत्य दिशा में उन्हें प्रतिष्ठित और पीतचन्दन, गन्ध, पीतवस्त्र, एवं आभूषणों, धूप, पीत वर्ण की पताका, और पीतोदक निवेदन पूर्वक उत्तम भक्ति समेत उस पुरन्दर पुरोहित गुरूदेव की इस भाँति पूजा करनी चाहिए ।७६-७९। श्वेत कमलासन पर स्थित, चारभुजाएँ, महाकाय, वरदायक, दंडधारण किये, आजानु बाहु, विशाल नेत्र, रुद्राक्ष की माला और कमण्डलु लिये, श्रेष्ठ मुनिगणों से प्रशंसित एवं दैत्य कुल भूषणों से सुसेवित सिंहासन पर स्थित, नीलकमल के समान नेत्र, विकसित कमल पुष्पों की मालाओं से विभूषित, अनेक दैत्याधिपतियों के बच्चों को बार-बार अध्यापन कराने वाले, विविध प्रकार के शस्त्र तथा अस्त्रों में चतुर भाँति-भाँति के शास्त्रों में निष्णात, भृगुश्रेष्ठ, भृगुपुत्र, उस शुक्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'अन्नात्परिस्रुतमिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए तन्मय होकर भक्ति पूर्वक पश्चिम के दल में उन्हें स्थापित करके श्वेत चन्दन, वस्त्र, धूप, माला, लेपन, श्वेत पताका, क्षीर मिश्रित सत्तू, एवं कमल पुष्प, अक्षत के द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए । चार भुजाएँ, हाथ में शूल लिये, वरदायक, इन्द्रनील मणि की भाँति श्याम वर्ण, दिव्य वाण एवं धनुष धारण किये, नील कमल के आसन पर विराजमान्, नील कमल की भाँति कान्तिपूर्ण, नील वस्त्र, तथा माला से विभूषित् भयानक स्वरूप, भीषण काय, छाया देवी को आनन्द देने वाले, उस सूर्य पुत्र शनि की स्थापना 'शन्नो देवीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वायव्य दिशा में

शन्नो देवीति मन्त्रेण वायव्यां दिशि विन्यसेत् । कृष्णचन्दनवस्त्रैश्च कृष्णमाल्यानुलेपनैः ॥८९
धूपैर्नीलपताकाभिर्बलिभिर्माषमिश्रितैः । धूम्रवर्णं सदा केतुं गदाहस्तं वरप्रदम् ॥९०
द्विभुजं भीमकायं च धूम्राक्षं धूम्रवाससम् । केतुं कृण्वन्निति मन्त्रेण ऐशान्यां स्थापयेद्दिशि ॥९१
धूम्रवर्णैश्च माल्यैश्च धूम्रगन्धानुलेपनैः । धूम्रधूम्रपताकाभिर्बलिभिर्माषमिश्रितैः ॥९२
पूजयेत्परया भक्त्या केतुं सर्वार्थसिद्धिदम् । लोकपालानहं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकान् ॥९३
येषु पूजितमात्रेषु नालभ्यं विद्यते क्वचित् । देवराजं ततो ध्यायेत्पुष्पबाणनयप्रभम् ॥
द्विभुजं पीतसङ्काशं नीलेन्दीवरलोचनम् ॥९४
रक्तोत्पलधरं तद्वत्पीतवासःसमन्वितम् । चामरासक्तहस्तैश्च कन्यारत्नैश्च शोभितम् ॥९५
इन्द्राणीं चिन्तयेद्वामे उत्पलद्वयधारिणीम् । एवं सम्पूजयेद्भक्त्या सुरराजं जगत्प्रभुम् ॥
त्रातारमिति मन्त्रेण स्थापयेत्कर्णिकोत्तरे ॥९६
पूजयेत्परया भक्त्या धूपगन्धानुलेपनैः । नानाविधोपहारैश्च पताकाभिर्ध्वजैरपि ॥९७
बलिं क्षीरान्वितं दद्यान्मोदकं सितशर्कराम् । उत्तप्तस्वर्णसङ्काशं वीतिहोत्रं चतुर्भुजम् ॥९८
अर्धचन्द्रसमस्थं च अजवाहनमुत्तमम् । ज्वालावितानसंरक्तं मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ॥९९
वरदं विभयं मालां दक्षे सूत्रं कमण्डलुम् । त्रिनेत्रं रक्तनयनं जटामुकुटमण्डितम् ॥१००
नानाभरणसम्पन्नं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । अग्निजिह्वेति मन्त्रेण स्नापयेदग्निदिग्दले ॥१०१

सविधान करनी चाहिए, कृष्ण चन्दन, वस्त्र, कृष्ण वर्ण की माला, अनुलेपन धूप, नील वर्ण की पताका, उरद मिश्रित बलि प्रदान करना चाहिए। धूएँ के समान वर्ण, हाथ में गदा लिए, वर प्रदायक, दो भुजा, भीमकाय, धूएँ के समान नेत्र, और वस्त्र, वाले उस केतु देव की स्थापना सदैव ईशान कोण में 'केतुं कृण्वन्निति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिए।८०-९१। धूएँ के समान वर्ण की माला तथा गंध, एवं अनुलेपन, धूएँ वर्ण की पताका, उरद मिश्रित बलि द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक उस समस्त अर्थ की सिद्धि प्रदायक केतु की पूजा करनी चाहिए। सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदायक उन लोकपालों का पूजन विधान बता रहा हूँ।९२-९३। जिनके पूजन मात्र से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती है, काम सौन्दर्य की भाँति प्रभा, दो भुजा, पीत वर्ण, एवं नील कमल के समान नेत्र वाले देवराज इन्द्र के ध्यान के अनुसार रक्त कमल धारण किये, उन्हीं की भाँति पीताम्बर से सुसज्जित हाय में चामर लिये हुए कन्याओं से सुसेवित और दो कमलों को धारण किये वाम भागों में स्थित उस इन्द्राणी देवी का ध्यान पूजन करना चाहिए। इस प्रकार पंखुड़ियों के उत्तर भाग में स्थित उस जगत्प्रभु एवं देवेन्द्र इन्द्र की पूजा भक्ति पूर्वक 'त्रातारमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करने के उपरांत उत्तम भक्ति समेत धूप, गन्ध, लेप, विविध भाँति के उपहार पताका एवं ध्वजाओं द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए।९४-९७। क्षीर समेत बलि मोदक और श्वेत शक्कर (चीनी) आदि के प्रदान करने के उपरांत भली भाँति तपाये गये सुवर्ण की भाँति वर्ण, चार भुजाएँ अर्ध चन्द्र के समान स्थित, अज (बकरा) वाहन, विस्तृत ज्वालाओं से रक्तमय, शिर में सात शिखाओं से युक्त, वरदायक, भयरहित, माला, सूत्र, एवं कमण्डलु लिये, रक्तमय तीन नेत्र, जटा मुकुट विभूषित अेनक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, एवं सिद्ध गन्धर्वों से सुसेवित, उस अग्नि का दक्षिण दिशा के दल में 'अग्नि जिह्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापन एवं स्नान कराना चाहिए,

पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च रक्तमाल्यानुलेपनैः । धूपैः रक्तपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि ॥१०२
नीलाञ्जनचयप्रख्यं नीलसिंहासनस्थितम् । महामहिषमारूढं दण्डपाशधरं विभुम् ॥१०३
करालवदनं भीमं ज्वालाघूर्णितलोचनम् । घोरदंष्ट्राकरालैश्च किङ्कराणां गणैर्वृतम् ॥
महिषं चिन्तयेद्वामे चित्रगुप्तं च दक्षिणे ॥१०४
अच्छीयस इति मन्त्रेण स्थापयेद्दक्षदिग्दले । पूजयेत्परया भक्त्या धर्मराजं जगद्गुरुम् ॥
राक्षसेन्द्रं महाकायं कृष्णवर्णं द्विबाहुकम् ॥१०५
नानाभरणसम्पन्नं खड्गहस्तं महाबलम् । वरमुक्ताविमानस्थं घोररूपं जलेश्वरम् ॥१०६
एष ते इति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां स्थापयेद्दिशि । कृष्णचन्दनवस्त्रैश्च कृष्णमाल्यानुलेपनैः ॥१०७
धूपैः कृष्णपताकाभिर्बलिभिर्माषमिश्रितैः । शुद्धस्फटिकसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ॥१०८
द्विभुजं पाशहस्तं च सुन्दराङ्गं वरप्रदम् । वरुणस्येति मन्त्रेण स्थापयेत्पश्चिमे दले ॥१०९
सितचन्दनधूपैश्च पताकाभिर्ध्वजैरपि ॥११०

समीरणं कुञ्जरवर्णसन्निभं मृगाधिरूढं द्विभुजं द्विनेत्रम् ।
ध्वजाम्बरं चापि दधानमेकं नीलाम्बरं मेघगणैर्वृतं च ॥१११

नीलचन्दनवस्त्रैश्च नीलमाल्यानुलेपनैः । पूजयेत्परया भक्त्या पताकाभिर्ध्वजैरपि ॥११२
धूपैर्नीलपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि ॥११३

ध्यायेद्द्विनेत्रं द्विभुजं धनेशं पीताम्बरं वै नरवाहनं च ।
गदाधरं भक्तवरप्रदं च आवाहयेदुत्तरपद्मपत्रे ॥११४

पश्चात् रक्तवर्ण के पुष्प, माला, लेप, धूप, रक्तपताका, और खीर की बलि समेत उनका पूजन सुसम्पन्न करना बताया गया है ।९८-१०२। नीले अञ्जन-समूह की भाँति नील वर्ण के सिंहासन पर विराजमान, महान महिष (भैंसे) पर आसीन, दण्ड-पाश (फांस) धारण किये उस यम तथा भीषण मुख, भयंकर, त्यौरी चढ़ाने पर निकलती हुई ज्वालाओं से पूर्ण नेत्र, घोर एवं विकराल सींग और दाँत, सेवकों से आवृत्त, भाग में उस महिष तथा दक्षिण भाग में स्थित चित्रगुप्त का दक्षिण दिशा के दल में 'आच्छीपस इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उत्तम भक्तिसमेत जगद्गुरू धर्मराज का स्थापन-पूजन करना चाहिए । अनन्तर राक्षसेन्द्र, महाकाय, कृष्ण वर्ण, दो भुजा, अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, हाथ में खड्ग लिए महाबली, उत्तम मोतियों से अलंकृत विमान पर सुशोभित, एवं घोररूप, उस जलाधिपति का 'एष ते इति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए नैऋत्य दिशा में स्थापन तथा कृष्ण चन्दन, वस्त्र, कृष्ण वर्ण की माला और लेप, धूप, कृष्ण रंग की पताका, उरदमिश्रित बलि-प्रदान करने के उपरांत शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति, वर्ण, शंख, कुन्द पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, दो भुजा हाथ में फांस लिये, सौन्दर्य पूर्ण अंग, वरदायक उस वरुण देव का स्थापन-पूजन पश्चिम दल में 'वरुणस्येति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए ।१०३-१०९। श्वेत् चन्दन, धूप, पताका, ध्वजा द्वारा उनकी पूजा करने के उपरांत गज- राज के समान वर्ण, मृग पर स्थित, दो भुजा, दो नेत्र, ध्वज के वस्त्र एवं नीलाम्बर ग्रहण किये, मेघगणों से सेवित, उस वायु देव का नीलवर्ण के चन्दन, वस्त्र, माला, अनुलेपन, पताका, ध्वजा, धूप, नील पताका, एवं खीर बलि उपहार के समेत ध्यान-पूजन करना बताया गया है ।११०-११३। दो नेत्र, दो भुजा, पीत वस्त्र, एवं मनुष्य वाहन वाले गदाधारी भक्तों को वर प्रदान करने वाले उस धनेश

गन्धचन्दनवस्त्रैश्च पीतमाल्यानुलेपनैः ॥११५

धूपैः पीतपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि ॥११६

स्निग्धकर्पूरसङ्काशं तुषारकिरणप्रभम् । त्रिशूलतुम्बुरुधरं तथाभयवरप्रदम् ॥११७

उत्तुङ्गवृषभारूढं त्रिनेत्रं भस्मभूषितम् । कपालमालिनं तद्वत्खण्डेन्दुकृतशेखरम् ॥११८

एवं ध्यात्वा महेशानं स्थापयेदीशदिग्दले ॥११९

पूजयेत्परया भक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥१२०

सितध्वजपताकाभिर्बलिभिः पायसादिभिः। त्वमीशान इति मन्त्रेण ऋषिं छन्दः समीरयन् ॥१२१

ब्रह्माणं रक्तगौराङ्गं शोणपद्मसमप्रभम् । राजीवलोचनं तद्वत्पद्मगर्भसमप्रभम् ॥१२२

पद्मासनस्थितं तद्वच्छ्वेतवस्त्रं चतुर्भुजम् । चतुर्मुखं सुरश्रेष्ठं मेघगम्भीरनिस्वनम् ॥१२३

राजहंससमायुक्तं विमानवरसंस्थितम् । स्रुकस्रुवौ दक्षिणे हस्ते वामे दण्डं कमण्डलुम् ॥१२४

कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन्सिद्धगन्धर्वसेवितम् । आज्यस्थालीं तथैवाग्रे कुशांश्च समिधं तथा ॥१२५

वामपार्श्वे तु सावित्रीं दक्षिणे तु सरस्वतीम् । आब्रह्मन्निति मन्त्रेण स्थापयेत्पूर्वदिग्दले ॥१२६

नानाभक्ष्योपचारैश्च पूजयेद्गन्धचन्दनैः । धूपैः श्वेतपताकाभिर्बलिभिश्चाज्यपायसैः ॥१२७

अनन्तं शुक्लवर्णाभं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं जगदीश्वरम् ॥१२८

आधारभूतं जगतां स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् । नानाभरणसम्पन्नं फणाशतसमन्वितम् ॥१२९

(कुबेर) की स्थिति कमल पत्र के उत्तर की ओर करके गन्ध, चन्दन, वस्त्र, पीत वर्ण की माला, लेप, धूप, पीत पताका, खीर की बलि समेत पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। मनोरम कपूर के समान वर्ण, हिमकिरण की भाँति प्रभा, त्रिशूल और तुम्बरू (तुमड़ी), अभयवर प्रदायक, ऊँचे वृषभ पर स्थित, तीन नेत्र, भस्म से भूषित, कपाल (शिर) की माला एवं चन्द्रखण्ड मस्तक में धारण किये महेशान (शिव) का इस भाँति ध्यान करके ईशन कोण के दल में उन्हें स्थापित कर देना चाहिए।११४-११९। विविध भाँति के भक्ष्य पदार्थ, श्वेत वर्ण की ध्वजा, पताका और पायस (खीर) आदि बलि पुरस्सर 'त्वमीशान इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति से तन्मय होकर उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१२०-१२१। रक्त एवं गौर वर्ण, रक्त कमल के समान प्रभा, कमल की भाँति लोचन, उसी भाँति, पद्मगर्भित उसकी प्रभा कमलासन पर सुशोभित, श्वेत वस्त्र, चार भुजाएँ, चारमुख मेघ के समान गम्भीर वाणी, राजहंस समेत उक्त विमान पर स्थित दाहिने हाथों में स्रुक और स्रुवा, बाँयें हाथों में दण्ड हाथ में कमण्डलु धारण किये, लोकों की सृष्टि करते हुए की भाँति स्थित, सिद्ध एवं गन्धर्वों से सुसेवित, घृतपात्र, सम्मुख भाग में कुश तथा समिधाओं से युक्त, बायें पार्श्व में सावित्री और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती से अलंकृत उस देवश्रेष्ठ ब्रह्मा का इस भाँति ध्यान पूर्वक 'आब्रह्मन्निति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूर्व दिशा के दल में स्थापन करके अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ, गंध चंदन, धूप, श्वेत पताका, एवं घी मिश्रित खीर का बलि आदि उपचारों समेत उनकी पूजा करनी चाहिए।१२२-१२७। शुक्ल वर्ण की प्रभा, पीताम्बर धारण किये, चार भुजाएँ, शंख, चक्र, गदा तथा कमल हाथों में लिये विश्व के अधिनायक, जगदाधार, सुवर्ण की भाँति यज्ञोपवीत से भूषित, अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत सैकड़ों ब्रह्मों से युक्त उस अनन्त भगवान की

ॐ नमोस्त्विति मन्त्रेण स्थापयेद्वरुणान्तरे । पूजयेद्भक्ष्यभोज्यैश्च दीपगन्धानुलेपनैः ।।१३०
धूपैः श्वेतपताकाभिर्बलिभिश्चैव निर्मितैः । ततो मण्डलपूर्वे तु ब्रह्माणं पीतवाससम् ।।१३१
चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं स्रुवहस्तं वरप्रदम् । बिभ्रतं च श्रुतं तद्वत्तथा दण्डकमण्डलू ।।१३२
आब्रह्मन्निति मन्त्रेण पूजयेद्‌गन्धचन्दनैः । दक्षिणे त्र्यम्बकं ध्यायेच्छूलखट्वाङ्गधारिणम् ।।१३३
वरदं डमरुधरं नागयज्ञोपवीतिनम् । निबद्धजूटचन्द्रार्धं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।।१३४
कपालमालिनं देवं भुजङ्गाभरणान्वितम् । त्रिनेत्रं कुन्दसङ्काशं भूतप्रेतगणैर्वृतम् ।।१३५
त्र्यम्बकं चेति मन्त्रेण पूजयेन्मधुपायसैः । अतसीपुष्पसङ्काशं हारकेयूरभूषितम् ।।१३६
नानाभरणसम्पन्नं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । दक्षिणे च गदां चक्रं वामे शङ्खं सपद्मकम् ।।१३७
श्रिया दक्षिणतो वामे सरस्वत्या समन्वितम् । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्थापयेत्पश्चिमे ततः ।।१३८
पूजयेद्‌गन्धपुष्पाद्यैः पायसेन घृतेन च । गणेशं तु चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।।१३९
गजेन्द्रवदनं देवं श्वेतवस्त्रं चतुर्भुजम् । परशुं लगुडं वामे दक्षिणे दण्डमुत्पलम् ।।१४०
मूषकस्थं महाकायं शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् । युक्तं बुद्धिकुबुद्धिभ्यामेकदन्तं भयापहम् ।।१४१
नानाभरणसम्पन्नं सर्वापत्तिविनाशनम् । गणानां त्विति मन्त्रेण विन्यसेदुत्तरे ध्रुवम् ।।१४२

उत्तप्तजाम्बूनदहेमसन्निभां लक्ष्मीं सरोजासनसंस्थितां शुभाम्।
वामे सरोजं दधतीं तथैव हस्ते च दक्षे धृतचामरां च ।।१४३

प्रतिष्ठा, 'ओं नमोस्त्विति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वरुण को मध्य में करके भक्ष्य-भोज्य, दीप, गन्ध एवं लेप, धूप, श्वेत पताका तथा बलि समेत उनकी पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत मण्डल के पूर्व भाग में स्थित ब्रह्माण्ड का, जो चार भुजाएँ, चार मुख, स्रुवा हाथ में लिये, वरदायक, वेद तथा दण्ड-कमण्डलु ग्रहण किये है, 'आब्रह्मन्निति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूजन करना चाहिए। दक्षिण की ओर स्थित शूल खट्वांगधारी, वरदायक, डमरू लिये, साँप का यज्ञोपवीत धारण किये, जटा में अर्ध्य चन्द्र से बांये, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण, कपाल की माला, साँपों के आभरण से युक्त, तीन नेत्र कुन्द पुष्प की भाँति प्रभा, भूत प्रेत से घिरे उस देव की 'त्र्यम्बकमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक शहद पायस (खीर) पदार्थों द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करके अलसी पुष्प की भाँति वर्ण, हार, केयूर (बाँह का आभूषण), से विभूषित, अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत, पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, दाहिने में गदाचक्र और बाँये में शंख और कमल लिये दक्षिण में लक्ष्मी, तथा बाँये भाग में सरस्वती से सेवित उस विष्णु देव की स्थिति, 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र के द्वारा पश्चिम की ओर करके गन्ध पुष्प, खीर, एवं घी आदि वस्तुओं द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१२८-१३९। चार भुजाएँ, साँप का यज्ञोपवीत धारण किये, गजेन्द्र- वदन, श्वेत वस्त्र, बाँयें दोनों हाथों में फरसा और छड़ी दाहिने दोनों हाथों में दण्ड एवं कमल लिये, चूहे पर स्थित, महाकाय, शंख, कुन्द-पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, सुबुद्धि दुर्बुद्धि से युक्त, एक दाँत वाले, भयनाशक, अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, सम्पूर्ण आपत्तियों के विदारक, उस गणेश देव का स्थापन-पूजन उत्तर की ओर 'गणानां त्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए।१४०-१४२। संतप्त सुवर्ण के समान वर्ण, कमलासन पर सुशोभित शुभ, बाँयें हाथ में सरोज, दाहिने हाथ

श्रीश्च तेति च मन्त्रेण ऐशान्यां मण्डलाद्बहिः । स्थापयेत्पूजयेद्भक्त्या सितचन्दनपङ्कजैः ।।१४४
मोदकं परमान्नं च यवक्षीरं निवेदयेत् ।।१४५

ततो देवीमम्बिकां दिव्यरूपां ब्रह्मेन्द्राद्यैः स्तूयमानां त्रिनेत्राम् ।
सिंहेशस्थां तप्तजाम्बूनदाभां चन्द्रार्द्धेनाबद्धमौलिं जटाभिः ।।१४६
दिव्यैर्वस्त्रैर्जाहुभिः साग्रलम्बैर्दिव्यैर्माल्यैर्भूषणैः स्वैरुपेताम् ।
ब्रह्मेन्द्राद्यैर्दुर्जयां माहिषास्यं तीक्ष्णैरस्त्रैर्दानवं मर्दयन्तीम् ।।१४७
शूलं तीक्ष्णं बाणशक्ती च तीक्ष्णे खड्गं तीक्ष्णं बिभ्रतीं दक्षिणेन ।
चापं पाशं खेटकं चाङ्कुशं च घण्टां वामे बिभ्रतीं वै कुठारम् ।।१४८
शिरश्छेदादर्धजातं कबन्धं खड्गं तीक्ष्णं बिभ्रतीं दैत्यराजम् ।
नागैः पाशैर्वेष्टयित्वा समन्ताच्छूलेनैनं निघ्नतींदेहमध्ये ।।१४९
सेन्द्रैर्देवैः स्तूयमानां सुवेणीं गन्धर्वाद्यैः सिद्धसङ्घैश्च सेव्याम् ।
नानावस्त्रैर्भूषणैर्दीप्यमानां ध्यायेद्देवीमम्बिकामुज्ज्वलन्तीम् ।।१५०
वस्त्रैर्माल्यैर्यक्षधूपैर्वितानैर्भक्ष्यैर्भोज्यैर्मोदकैः[१] पायसैश्च ।
मांसैः पिष्टैश्छागलाद्यैरशेषः पूज्या देवी चण्डिकाऽभीष्टदा च ।।१५१

श्यामां च पृथिवीं ध्यायेत्पङ्कजद्वयधारिणीम् ।।१५२
मण्डूकस्थां द्विभुजां स्योना पृथिवीति चार्चयेत् । नैर्ऋत्यां विश्वकर्माणं द्विभुजं टङ्कधारिणम् ।।१५३

में चामर धारण किये, उस लक्ष्मी का मण्डल के बाहर ईशान कोण में 'श्रीश्च तेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापन करके श्वेत चन्दन, कमल पुष्प, मोदक, परमान्न, यवक्षीर पदार्थों को उन्हें अर्पित करते हुए उनका पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए।१४३-१४५। पश्चात् दिव्य रूप, ब्रह्मादि देवों द्वारा की गयी स्तुति सम्पन्न, तीन नेत्र, सिंहासनासीन, तपाये हुए सुवर्ण की भाँति प्रभा, चन्द्रखण्ड से आबद्ध शिर के बाल जटा- जूट की भाँति सुशोभित, दिव्य वस्त्र, आजानुबाहु, दिव्य मालाओं एवं भूषणों से विभूषित, ब्रह्मेन्द्र देवों का अजेय, अपने तीक्ष्ण अस्त्रों से महिषासुर का मर्दन करने वाली, दाहिने हाथ में तीक्ष्ण शूल, बाण, शक्ति, एवं तीक्ष्ण खड्ग तथा बाँयें हाथ में धनुष, फांस, खेटक, अंकुश घंटा, तथा कुठार धारण किये, खड्ग द्वारा काटे गये दैत्यराज का शिर तीक्ष्ण खड्ग, एवं नाग फांस से दैत्य को दृढ़ता पूर्वक बाँधकर उसके शरीर के मध्य भाग में शूल का प्रहार करने वाली, इन्द्रादि देवों द्वारा स्तुति सम्पन्न, सुन्दर वेणी से युक्त, गन्धर्व, तथा सिद्धों के समुदाय से सुसेवित, अनेक भाँति के वस्त्र और आभरणों से सुसज्जित उस भगवती अम्बिका देवी का इस भाँति ध्यान करके वस्त्र, माला, यक्ष धूप, वितान, भक्ष्य-भोज्य मोदक, खीर, बकरे का मांस आदि वस्तुओं द्वारा मन इच्छित फल प्रदान करने वाली उस चण्डिका देवी का पूजन करना चाहिए।१४६-१५१। दो कमल-पुष्पों को धारण किये, मेढक पर स्थित उस श्यामा पृथिवी का इस प्रकार ध्यान पूर्वक 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। तदुपरांत

---

१. यक्षकर्दमधूपैरित्यर्थः ।

उत्पलं दक्षिणे हस्ते पद्मस्थं पीतवाससम् । एवं ध्यात्वा ततो ब्रह्मन्निति मन्त्रेण पूजयेत् ।।१५४
स्वस्थां सरस्वतीं ध्यायेद्वरदाभयदायिनीम् । पीतवस्त्रां सुमुकुटां देवगन्धर्वसेविताम् ।।१५५
यामधा इति मन्त्रेण पूजयेत्सितचन्दनैः । बलिं श्वेतचरुं दद्यात्कृशरं यावकं तथा ।।१५६
स्थापयेद्वामदिग्भागे कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् । पूर्वादिद्वारदेशे तु पूजयेच्च मरुद्गणैः ।।१५७
अग्न्यादिषु च कोणेषु बहिर्भूतान्समाचरेत् । पिशाचा राक्षसा भूता वेतालकपिजातयः ।।१५८
निर्णासाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः । ततो मण्डलमध्ये तु वारुणं पूर्ववर्त्मना ।।१५९
पूरयेत्कलशे तत्र सुवर्णादिविनिर्मितम् । कूर्मं कूर्माकृतिं कुर्याच्छुद्धस्वर्णेन सत्तमाः ।।१६०
बृहत्पर्वप्रमाणेन राजतस्य च दुर्लभम् । पादं पादेन मानेन अङ्गुलं परिमण्डलम् ।।१६१
प्रौष्ठीमत्स्यं तथा कुर्यात्कुलीरं ताम्रनिर्मितम् । तेनैकस्य विनिर्माणं द्वयङ्गुलायामविस्तृतम् ।।१६२
तथा मानेन मण्डूकं तां भूमिं मुनिसत्तमाः । शिशुमारं च वै सम्यक्तोलकद्वयनिर्मितम् ।।१६३
अङ्गुलत्रयदीर्घं च तथा तस्याकृतिर्भवेत् । सितचन्दनवस्त्रैश्च पूजनीयाः समन्ततः ।।१६४
यावकैश्च विशेषेण बहुमन्त्रविशारदान् । बह्वृचौ पूर्वमत्स्यार्थे दक्षिणे तु यजुर्विदौ ।।१६५
सासनौ पश्चिमे चाथ उत्तरेऽथर्वणौ स्मृतौ । जयध्वमिति तान्ब्रूयाद्धोतृकान्पुनरेव हि ।।१६६
स्थापयित्वा पृथक्सूत्रे सर्पं च मातरुद्दीपमेव च । पश्चाङ्गं शिवसूक्तं च यथा विष्णोर्हरस्य च ।।१६७

नैऋत्य कोण में स्थित विश्वकर्मा का जो दो भुजा, टंक, दहिने हाथ में कमल पुष्प धारण किये, कमलासन पर सुशोभित, एवं पीत वस्त्र वाले उस विश्वकर्मा का इस भाँति ध्यान करके 'ब्रह्मान्निति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए। स्वस्थ, वर एवं अभय दान देने वाली पीताम्बर धारणी, मुकुट से सुशोभित एवं देव-गन्धर्व सेवित उस सरस्वती का इस भाँति ध्यान करके 'यामधा इति' इस मन्त्रके द्वारा श्वेत चन्दन, बलि, हवि, कृशरान्न (खिचड़ी), लप्सी आदि वस्तुओं के समर्पण पूर्वक वाम भाग में प्रतिष्ठित करके कुन्दन-पुष्प से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। पूर्वादि दरवाजों पर स्थित मरुद्गणों के समेत देवों एवं अग्नि आदि कोण के वाह्य भाग में स्थित पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल कपि, आदि जीवों की जो नासाहीन, रौद्र, तथा विकृत रूप वाले हैं, पूजा करने के उपरांत मण्डल के मध्यभाग में सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित घट को जल से पूर्णकर वरुण की पूजा करनी चाहिए तथा सत्तमवृन्द ! उस घट में शुद्ध सुवर्ण की बनायी गयी एक कछुवे के आकार की एक प्रतिमा भी होनी चाहिए।१५२-१६०। (अंगुली के) लम्बे पोर के परिणाम की चाँदी के अप्राप्त होने पर उसके चौथाई भाग के समान अर्थात् एक अंगुल परिमाण का उसका (घेरा) होना चाहिए, औष्ठी (सेहरी) मछली अथवा केकरहा की प्रतिमा का जिसकी लम्बाई-चौड़ाई दो अंगुल की हो, ताँबे के द्वारा निर्माण कराकर मुनि सत्तम वृन्द ! उसी मान से मेढ़क एवं उसके भूपृष्ठ की रचना करने के उपरांत शिशुमार (सूंस) जलचर की प्रतिमा दो तोले परिमाण की बनानी चाहिए, जो उसके आकार-प्राकार के समान तीन अंगुल की चौड़ी हो। श्वेत-चन्दन एवं वस्त्रों द्वारा उसे चारो ओर आच्छन्न कर उसकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। उस मत्स्य प्रतिमा के पूर्व की ओर बह्वृच वाले दक्षिण की ओर दो यजुर्वेत्ता।१६१-१६५। पश्चिम की ओर दो आसन और उत्तर की ओर दो अथर्वण वेत्ता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा होताओं के 'जयध्वम्' इस वाक्य के साथ करके पुनः पृथक् सूत्र पर अपनी माता को क्रुद्ध करने वाले साँप की स्थिति के

जयाग्रतः पुरुषसूक्तमद्भ्यः सम्भूतमेव च । आशुः शिशानमारभ्य वयं मोषाङ्गरुद्रके ।।१६८
यज्जाग्रतश्चाग्नेश्च विष्णोरराटमेव च । समस्ताध्यायरुद्रेण शतरुद्राख्यमीरितम् ।।१६९
(पञ्चाङ्गरुद्रस्य पुष्पदन्त ऋषिर्गायत्री छन्दो वेदाहमेतद्बीजं श्रीश्चते इति शक्तिर्नमस्ते रुद्र इति नायकः परमरुद्रो देवता परम स्तुतौ विनियोगः । सप्ताङ्गरुद्रस्य पुष्पदन्तऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः । त्र्यम्बकमिति अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । त्रिपादूर्ध्वमिति तर्जनीभ्यां स्वाहा । वेदाहमिति मध्यमाभ्यां वषट् । अमीषां चित्रमिति अनामिकाभ्यां हुम् । यवागूं सोम इति कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । परितो धेनुमिति करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् इति । यज्जाग्रत इति हृदयाय नमः । सहस्रशीर्षेति शिरसे स्वाहा । अद्भ्यः सम्भूत इति शिखायै वषट् । आशुः शिशान इति कवचाभ्यां हुं । नमस्ते रुद्र इति नेत्रत्रयाय वौषट् । रूढं ब्रह्मन्निति अस्त्राय फट् । चतुर्दिक्षु छोटिकादानम्[1] । इति सर्वाङ्गेषु ।।)
होमे प्रवर्तमाने तु सूक्तानन्यांश्च वै जपेत् । प्रजपेद्वारुणं सूक्तं तथा च पालसूक्तकम् ।।१७०
रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं समुज्ज्वलम् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं सर्वतोवरतं पृथक् ।।१७१
शाक्तं रौद्रं च सौम्यं च कूष्माण्डं जातवेदसम् । सौरसूक्तं च यजतो दक्षिणेन यजुर्विदः ।।१७२
वैराजं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिताम् । शैशवं पञ्चनिरयं गायत्र्यां ज्येष्ठसाम च ।।१७३

अनन्तर पञ्चाङ्ग समेत शिवसूक्त और पुरुषसूक्त का पाठ जिस प्रकार विष्णु एवं हर के लिए किया जाता है, करना चाहिए । 'यज्जाग्रत इति' पुरुष सूक्त के इस मंत्र के प्रारम्भ से 'अद्भ्यः सम्भृत इति' इस मंत्र पर्यंत 'आशुः शिशान' इति इस मंत्र से प्रारम्भ कर 'वयं मोषांग रुद्र के' 'यज्जाग्रतश्चाग्नेश्च' और 'विष्णोरराट इति' इस मंत्र के साथ समस्त रुद्राध्याय का पाठ जो शतरुद्री के नाम से ख्यात हैं, करना आवश्यक बताया गया है । 'पंचाङ्गरुद्र के पुष्पदन्त ऋषि' गायत्री छन्द, वेदाहंवीज, 'श्रीश्चते' 'शक्ति' नमस्ते रुद्र इति' नायक, परम रुद्र देवता, परम स्तुति में इस विनियोग का उपयोग किया जाता है । सप्ताङ्ग रुद्र के पुष्प-दन्त ऋषि, पंक्ति छन्द हैं, पश्चात् 'त्र्यम्बकमिति' अंगूठे, 'त्रिपादूर्ध्वमिति' से तर्जनी, 'वेदाऽहमिति' से मध्यमा, 'अमीषां चित्रमिति' से अनामिका 'यवागूं सोम इति' से कनिष्ठा, 'परितो धेनुमिति' से करतल करपृष्ट के विन्यास पूर्वक इसी करन्यास की भाँति हृदयन्यास भी करना कहा गया है—'यज्जाग्रत इति' से हृदय, 'सहस्र शीर्षेति' से शिर, 'अद्भ्यः संभूत इति' से शिखा, 'आशुः शिशान इति' से कवच (बाहुमूल) 'नमस्ते रुद्र इति' से नेत्र, और 'रूढं ब्रह्मन्निति' से अस्त्राय फट् करने के उपरांत चारों दिशाओं से छोटिका नामक मुद्रा प्रदर्शन करना चाहिए। इसी भाँति सर्वाङ्गीण कर्मो में भी यह आवश्यक बताया गया है । हवन के प्रारम्भ होने पर अन्य सूक्तों—वारुण, तथा पाताल सूक्त का भी पाठ करना आवश्यक कहा गया है । उसी भाँति रात्रिसूक्त, रौद्र, पवमान का समुज्ज्वल, एवं पुरुष सूक्त का पाठ करना चाहिए।१६६-१७१। शाक्त, रौद्र, सौम्य, कूष्माण्ड, जातवेदस, तथा सौरसूक्त का पाठ दक्षिण की ओर से यजुर्वेता को करने के उपरांत वैराज, पौरुष सूक्त, सौवर्ण रुद्र संहिता, शैशव पञ्च निरय, गायत्री, ज्येष्ठ-साम, वामदेव्य, बृहत्साम, रथंतर, गोव्रत, विकर्ण, इन सभी के पाठ राक्षसों के विनाशक और

---

१. इयं मुद्रा ताराकल्पे मेरुतन्त्रे चान्यत्रापि बहुषु तन्त्रेषूक्ता तत एवावधारणा कर्त्तव्या ।

वामदेव्यं बृहत्साम तथा चैव रथन्तरम् । गोवतं च विकर्णं च रक्षोघ्नं पावनं स्मृतम् ।।१७४
गायन्तं ब्राह्मणा ये च पूर्वादिद्वारदेशतः । अन्नात्परिस्रुत इति पञ्चपूर्वं सौरसूक्तकम् ।।१७५
रुद्राध्यायं च पञ्चाङ्गं रौद्र इत्यभिधीयते । आप्यायस्वेति च चतुः सौम्यं सूक्तं प्रचक्षते ।।१७६
ईशावेत्यादि स्वाङ्गं च कौष्माण्डं दशमं स्मृतम् । अग्ने बृहन्निति नवसूक्तं वै जातवेदसम् ।।१७७
षोडशं तु विभ्राड् बृहत्सौरं सूक्तं प्रकीर्तितम् । सौरसूक्तं ध्रुवोसीति इषवो मङ्गलं स्मृतम् ।।१७८
रात्रिसूक्तं हि यज्वाग्ने रक्षोघ्नं शैवसूक्तकम् । गणानान्त्वेति पञ्च आपोहिष्ठेति च त्रयम् ।।१७९
पवमानं तु तद्विद्धि पावमानं तु षोडश । समस्तं देवयागेषु तद्रात्रौ तु तदूर्ध्वकम् ।।
तदर्द्धार्द्धं च आरामे कूपे त्वेकमृचं जपेत् ।।१८०
स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिकुण्डेषु होमयेत् । संस्कुर्यादीक्षणाद्यैश्च सम्पूज्य च परस्परम् ।।१८१
प्रज्वाल्याग्निं च विधिवद्धोमं कुर्यादनन्तरम् । वागीश्वरं समभ्यर्च्य वागीश्वर्या समन्वितम् ।।१८२
यस्य देवस्य यो यागः प्रतिष्ठा यस्य कस्यचित् । प्रागेव तस्य जुहुयात्सहस्रं च शतं तथा ।।१८३
तिलाज्यैः पायसैर्वाथ पत्रपुष्पाक्षतेन च । ग्रहेभ्यो विधिवत्सर्वं तथेन्द्रायेश्वराय च ।।१८४
मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे । ऊर्जेन समिधा कुर्यादष्टाष्टौ स्वगृहेष्वपि ।।१८५
इन्द्रेश्वरमारुतानां तिलाज्येन घृतेन वा । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथाक्रमात् ।।१८६
दिगीशानां च प्रत्येकमष्टाष्टौ च विशेषतः । विश्वकर्मन्निति मन्त्रेण कृत्वा आज्याहुतित्रयम् ।।१८७
समित्त्रयं पलाशस्य अथवाश्वत्थसम्भवम् । एकैकामाहुतिं दद्यादाज्येन च विशेषतः ।।१८८

पावन बताये गये हैं। पूर्वादि दरवाजे से इनका गायन करते हुए ब्राह्मणों को 'अन्नात्परिस्रुत इति' इन मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक सौरसूक्त का पाठ करना चाहिए।१७२-१७५। रुद्राध्याय समेत पञ्चाङ्ग को रौद्र, 'आप्यायस्वेति' इन चारों को सौम्य सूक्त, 'ईशावेत्यादि समेत स्वांग को दशवाँ कौष्माण्ड, और 'अग्ने बृहन्निति' इन नव सूक्तों को जातवेदस् कहा जाता है। सोलहवाँ 'विभ्राड् बृहत् इति' को सौरसूक्त, 'ध्रुवोऽसीति' इस मांगलिक इषव, 'यज्वाग्ने' को रात्रिसूक्त, और शैव सूक्त को रक्षोघ्न बताया गया है। इसी भाँति 'गणानांत्वेति' इन पाँचों और 'आपोहिष्ठेति' इन तीनों को पवमान तथा सोलह ऋचाओं को पावमान कहा गया है। सभी देव यज्ञों में उस रात्रि के समय उसका ऊर्ध्वभाग, उपवन की प्रतिष्ठा में एक चौथाई और कूप की प्रतिष्ठा में एक ऋचा का जप करना चाहिए।१७६-१८०। अपने गृह्योक्त सूक्त के विधानानुसार प्रत्येक कुण्डों में हवन करना चाहिए—ईक्षणादिक संस्कार एवं परस्पर की अर्चा के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में विधान पूर्वक वागीश्वरी समेत वागीश्वर देव (पार्वती-शिव) की पूजा पूर्वक हवन करना चाहिए। जिस देव के उद्देश्य से याग अथवा उसकी प्रतिष्ठा की जाये, उसमें उस देव के निमित्त सहस्र अथवा शत आहुति सबसे पहले प्रदान करनी चाहिए। तिल, घी, खीर या पत्र, पुष्प, अक्षत द्वारा विधान पूर्वक ग्रहों, इन्द्रेश्वर, मरुद्गण और लोकपालों के लिए आहुति-प्रदान की जानी चाहिए, उसी भाँति सविधान विश्वकर्मा के लिए आठ-आठ समिधाएँ और इन्द्र, ईश्वर, एवं मरुद्गणों के लिए तिल तथा घी की एक-एक आहुति उनके मंत्रों द्वारा अर्पित करना बताया गया है। दिक्पालों के लिये आठ-आठ आहुतियाँ एवं 'विश्वकर्मन्निति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घी की तीन-तीन आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए। पलाश अथवा पीपल की तीन समिधा प्रज्वलित करके घी समेत एक-एक आहुति-प्रदान करना

शिवं प्रजापतिं विष्णुं दुर्गां च कमलामपि । सरस्वतीं च विधिवत्पृथिव्या इति पावकैः ।।१८९
भूतेभ्योऽप्याहुतिं दद्यादेवं मासद्वयं क्रमात् । अन्येषां मधुराक्तेन तिललाजैर्यथाक्रमम् ।।१९०
विष्णुं चैवं तु वायव्ये दुर्गायाश्च तथोत्तरे । कमलायाश्च ईशाने ईशानस्य सभूतकम् ।।१९१
एककुण्डे तु एकस्मिन्होमं कुर्याद्यथाविधि । पक्षे वै पञ्चकुण्डे तु पूर्वादीनां क्रमेण तु ।।१९२
एककुण्डे ग्रहान्कृत्वा कृत्वा बलभिदा सह । दक्षिणे क्रमतश्चैवं लोकेशं च तथैव च ।।१९३
पश्चिमे यस्य यागस्य दुर्गायाश्चोत्तरे दिशि । ईशाने भूतयक्ष्मा च जुहुयाद्देशिकोत्तमः ।।१९४
विष्ण्वादिदेवतानां च अग्रकुण्डे विधीयते । प्रथमे दिवसे कुर्याद्देवतानां च स्थापनम् ।।
द्वितीये पूजनं कुर्याद्धोमं कुर्याद्यथाविधि ।।१९५
बलिदानं तृतीये तु चतुर्थीकं चतुर्थके । नीराजनं पञ्चमे तु पञ्चाहसाध्यको विधिः ।।
त्र्यहसाध्ये तृतीये तु नवाहे त्वथ पञ्चमे ।।१९६
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वाप्यैशान्यादिक्रमेण तु । प्रादक्षिण्येन यज्ञं तु मन्त्रैः परिसमूहनम् ।।
मन्त्रपूर्वं साग्निकानां निरग्नेस्तुष्टिकेन तु ।।१९७
त्रिकुशेन महायागे विवाहादौ द्विपत्रकम् । वैश्वदेवे त्वेकपत्रमिति साधारणो विधिः ।।१९८
दिग्विदिक्षु परिस्तीर्य महायागेषु सर्वदा । दिक्षु मात्रं नित्यके च विश्वदेवे तथैव च ।।१९९

बताया गया है ।१८१-१८८। शिव, प्रजापति (ब्रह्मा), विष्णु, दुर्गा, कमला, सरस्वती, के निमित्त 'पृथिव्या इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सविधान आहुति-प्रदान करनी चाहिए । उसी प्रकार दो मास भूतों के लिए भी अन्य के लिए शहदमिश्रित तिल' लाजा (लावा), की आहुति-प्रदान करना बताया गया है । वायव्य कोण में विष्णु, उत्तर में दुर्गा, ईशान में कमला और भूतगण समेत शिव के लिये एक ही कुण्ड में एक साथ ही विधान पूर्वक हवन करना चाहिए तथा पाँच कुण्डों के निर्माण-विधान में पूर्वादि क्रम से आहुति-प्रदान करना कहा गया है ।१८९-१९२। एक कुण्ड में बलभिद् के समेत ग्रहों की, तथा दक्षिण की ओर से क्रमशः लोकपाल, पश्चिम में उस प्रधान देव के जिसके उद्देश्य से यज्ञ आरम्भ किया गया हो उत्तर में दुर्गा, और ईशान में भूतयक्ष्मा के लिए आहुति-प्रदान करना चाहिए ।१९३-१९४। उसी भाँति विष्णु आदि देवों के उद्देश्य से कुण्ड के अग्रभाग में आहुति-प्रदान करना बताया गया है । प्रथम दिन में देवों के स्थापन, दूसरे दिन पूजन एवं सविधान हवन, तीसरे दिन बलिप्रदान, चौथे दिन चतुर्थीक तथा पाँचवें दिन नीराजन प्रदान करना चाहिए, यह पाँच दिन के अनुष्ठान का विधान है उसी प्रकार तीन दिन के अनुष्ठान में तीसरे दिन, नव दिन वाले में नवें दिन और पाँच वाले में पाँचवें दिन नीराजन करना कहा गया है । उत्तरमुख अथवा पूर्वाभिमुख होकर ईशान आदि कोण के क्रम से प्रदक्षिणानुसार यज्ञ में मंत्रों द्वारा परिसमूहन (कुश) कर्म अग्निहोत्री के लिये मंत्रपूर्वक और निरग्नि के लिये मौन होकर करना चाहिए । महायाग में तीन कुशाओं द्वारा, विवाहादिकर्मों में दो पत्ते और वैश्वदेव विधान में एक पत्र रखकर उसे समाप्त किया जाता है, ऐसा साधारण विधानों में कहा गया है । महायागों में दिशाओं एवं विदिशाओं में नित्य एवं नैमित्तिक वैश्वदेव कर्मों में केवल दिशामात्र में कुश का स्तरण (विछाना) करना चाहिए नित्यकर्म बिना किये नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान न करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से वह

अकृत्वा कर्म नित्यं च वृथा नैमित्तिकं भवेत् । तस्मात्फलाद्यैरपि तत्कृत्वा नैमित्तिकं चरेत् ।।२००
प्रायश्चित्ते वैश्वदेवे सायंप्रातः व्रतीषु च ।।२०१
मारणोच्चाटहोमेषु तथा सङ्कल्पिताकृती । प्रत्यवायकुले क्वापि तत्र नित्याकृतिं विना ।।२०२
शतार्द्धं जुहुयाद्यत्र तत्र नित्यं विवर्जयेत् । तूर्यहोमं ततः कृत्वा तूष्णीमेव जितेन्द्रियः ।।२०३
प्रजपेदिन्द्रमग्निं च सोमाय च यथाक्रमम् । ततस्तु समिधाहोमं व्याहृतिस्तदनन्तरम् ।।२०४
भूर्भुवः स्वाहेति तथा त्वन्न इत्यादि पञ्चकम् । अन्ते स्विष्टकृतं दद्याद्विधानं तस्य भोः शृणु ।।२०५
घृताहुतिं स्विष्टकृच्च द्विजसंस्कार कर्मसु । घृतैः स्विष्टकृतं दद्याद्यागादौ परिवर्जयेत् ।।२०६
सर्वौषध्युदकस्नानं करिदन्तोत्थमुष्णया । रथ्यावल्मीकगोष्ठस्य तथाश्वस्य खुरस्य च ।।२०७
त्रिगन्धं च त्रिशीतं च कुशमूलस्य मृत्तिकाः । निक्षिपेत्स्नानकुम्भेषु आचार्यादींस्तु स्थापयेत् ।।२०८
यजमानः पुरः कृत्वा दन्तकाष्ठपुरः सरम् । रात्रौ च भक्ष्यभोज्याद्यैः परितोष्य यवाक्षतम् ।।२०९
कृत्वा यथोक्तकालेन पूजयेत्तैलधारया । ततः प्रभाते विमले स्नानं कुर्याद्यथाविधि ।।२१०
स्नानगब्दैवतैर्मन्त्रैः सूक्तेन पुरुषेण तु । वारुणेन च सूक्तेन सुरास्त्वादि यथाक्रमम् ।।२११
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः ।।२१२
आखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै निर्ऋतिस्तथा । वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।।२१३
ब्रह्मणां सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा । कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।।२१४

निष्फल हो जाता है। इसलिये फलादि द्वारा उसकी समाप्ति करके नैमित्तिक कर्म करना बताया गया है।१९५-२००। प्रायश्चित्त कर्म, वैश्वदेव, सायं-प्रातः के प्रति कर्म, मारण, उच्चाटन के हवन एवं विघ्न ध्वसं कार्यों में नित्य कर्म नहीं भी किया जाता है, तथा पचास संख्या की आहुति प्रधान कर्म में भी। पश्चात् उस संयमी को मौन होकर सूर्य हवन-समाप्ति के अनन्तर इन्द्र, अग्नि, एवं सोम के लिए जप और आहुति क्रमशः प्रदान करने पर समिधा हवन व्याहृति, 'भूर्भुवः स्वाहेति एवं त्वन्नइत्यदि' पाँच मंत्रों की आहुति देकर अन्त में स्विष्टकृत् हवन करना चाहिए। उसका विधान मैं बता रहा हूँ सुनो! द्विजों के संस्कार कर्मों में स्विष्टकृत् हवन के समय घी की आहुति दी जाती है। परन्तु यज्ञ आदि कर्मों के अनुष्ठान में घी की आहुति द्वारा स्विष्टकृत् हवन करने का निषेध किया गया है।२०१-२०६। समस्त औषधि मिश्रित उदक स्नान करना चाहिए, जिसके घर में गजदाँत द्वारा उभाडी गयी एवं गरम, गली की मिट्टी, वल्मीक (व्यमौर), गौओं के रहने की भूमि, अश्व के खुर के नीचे की मिट्टी, तीनों गन्ध, तीनों शीतकारक वस्तु, एवं कुश मूल की मिट्टी डाली गयी हो। तदुपरांत आचार्यादि व्यक्तियों के वरण एवं पूजन सुसम्पन्न करना बताया गया है। अपने समक्ष एकत्रित की हुई दातून आदि से लेकर राशि के भक्ष्य भोज्यादि सामग्रियों द्वारा भली भाँति उन्हें सन्तुष्ट करने के उपरांत यजमान जवा और अक्षत के ग्रहण पूर्वक नियमित समय में उस तेल की धारा का स्नान करके प्रातः काल के निर्मल समय में सविधान स्नान सुसम्पादित करे। स्नान के समय वरुण देव के मन्त्रों, पुरुषसूक्त, और वारुणसूक्त के पाठ पूर्वक अभिषेकार्थ देवों की इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर वासुदेव, जगन्नाथ, संकर्षण, प्रभु, इन्द्र, अग्नि, भगवान्, यम, निर्ऋति (राक्षस), वरुण, वायु, कुबेर, एवं शिव, देव तुम्हारा अभिषेक करें, ब्रह्मा समेत शेष और दिक्पाल सदैव तुम्हारी रक्षा करें, कीर्ति, लक्ष्मी, घृति, मेधा, पुष्टि,

बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समाहिताः ॥२१५
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः। ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥२१६
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो देवा देवमातर एव च ॥२१७
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः। अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥२१८
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥२१९
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये। स्नानं समाप्य विधिवत्स्वगणेनानुलेपयेत् ॥२२०
गवामष्टोत्तरशतं तदर्धं चाथ विंशतिम्। आचार्यायाभिरूपाय प्रदद्यादभिपूजयन् ॥२२१
ततः प्रभाते विमले जले समवतारयेत्। शुद्धां च कपिलां दोग्ध्रीं घण्टाचामरवर्जिताम् ॥२२२
सामगाय ततो दद्यात्सुवर्णदक्षिणान्विताम्। यूपमादाय संस्थाप्य स्नापयेद्वारुणं जपन् ॥२२३
अच्छेवतेन मन्त्रेण गायत्र्या तदनन्तरम्। रोचनाभिस्त्रिरत्नेन तथा कुम्भोदकेन च ॥२२४
पर्वताग्रमृदा तोयनागवल्मीकजातया। गजदन्तमृदा चैव कूलमूलतमृदा तथात ॥२२५
पुष्पोदकेन शङ्खेन तथा रत्नोदकेन च। दध्यक्षतेन दुग्धेन घटेन शतधारया ॥२२६
सुगन्धेन त्रिशीतेन विलिप्य च समाहितः। दापयेत्कांस्यमूलं च दद्याल्लोहमयं च वा ॥२२७
माल्यवस्त्रैरलङ्कृत्य पूजयेद्गन्धचन्दनैः। ईशावा इति मन्त्रेण दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥२२८

श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शांति, तुष्टि, कांति औ माताएँ ये सभी देवाङ्गनाएँ निश्चल मनोयोग द्वारा तुम्हारा अभिषेक करें।२०७-२१५। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ग्रहगण प्रसन्न चित्त से तुम्हारा अभिषेक करें तथा देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनुदेव, देवमाताएँ, देव पत्नियाँ, वृक्ष, पर्वत, दैत्य, अप्सराएँ, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र, राजा लोग सभी वाहन, औषधि, रत्न समय के अवयव, सरिताएँ, सागर, शैल, तीर्थ, जलद नद, ये सभी समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए तुम्हारा अभिषेक करें। इस प्रकार विधिवत् स्नान करने के उपरांत अपने अनुचरों द्वारा अनुलेपन कराना चहिए। तदनन्तर आचार्य के लिए उनकी अर्चा करते हुए एकसौआठ, चौवन, अथवा बीस गायें अर्पित करना चाहिए।२१६-२२१। पश्चात् प्रातःकाल के स्वच्छ समय में जलावतरण करके शुद्ध, दूध देने वाली, एवं घंटा चामर शून्य उस कपिला गाय को सुवर्ण की दक्षिणा समेत सामगायक विद्वान के लिए सुसमर्पित करना चाहिए। यज्ञीय यूप (स्तम्भ) को भूमि में स्थापित करके 'वारुण' मन्त्र 'अच्छेवत' एवं गायत्री मन्त्र के जप पूर्वक गोरोचन तथा तीन रत्नों से विभूषित उस कलश के जल द्वारा स्नान कराना चाहिए, जिसमें पर्वत के अग्रभाग, जल (संगम) गजस्थान, बल्मीक (व्यमौर), गजदाँत द्वारा खोदी हुए, एवं नदी तट की मिट्टी पड़ी हो, और पुष्पोदक, शंख, रत्नोदक, दही, अक्षत, एवं दुग्ध डाला गया हो। उस घट की अविरल धारा से स्नान कराने के उपरांत सुगन्धित तीनों शीत कारक वस्तुओं के लेपन करके उसके मूल भाग में कांसा या लोहा लगाकर माला, वस्त्र से उसे मनमोहक बनाये, पश्चात् गन्ध चन्दन से उसकी पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर 'ईशावा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करना चाहिए।२२२-२२८। तथा 'पुनस्त्वादिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पुष्प प्रदान

पुनस्त्वादिति मन्त्रेण पुनः पुष्पं समुत्सृजेत् । प्रादेशमात्रविस्तारं मध्ये वृत्तं षडङ्गुलम् ।।२२९
कांस्यचक्रस्य मानं तु ऊर्ध्वं यद्द्वादशाङ्गुलम् । तदूर्ध्वे विलिखेच्छूलं चतुरङ्गुलमानतः ।।२३०
अङ्गुष्ठहीने लोहस्य तत्र शूलं न कारयेत् । ततो मङ्गलपूर्वे तु द्विजातीनां मतेन च ।।२३१
समुत्सृजेच्च प्रासादं तडागं च विशेषतः । चतुर्दर्भं गृहीत्वा तु ईशानाभिमुखेन तु ।।
समुत्सृजेत्ततः पश्चाद्वाक्यमेतदुदीरयेत् ।।२३२
ओमित्यादिश्रीकृष्णद्वैपायनाभिधानवेदव्यासप्रणीतभविष्यपुराणोक्तफलप्राप्तिकामश्चतुष्कोणाद्यवच्छिन्नमत्कारितपुष्करिणीजलमेतदर्जितं गन्धपुष्पाद्यर्चितं वरुणदैवतं सर्वसत्त्वेभ्यः स्नानावगाहनार्थमहमुत्सृजे ।।२३३
ततो वरुणसूक्तेन वरुणं नागसंयुतम् । मकरं कच्छपं चैव तोयेषु परिनिक्षिपेत् ।।२३४
पूजयेद्वरुणं देवमर्घ्यं दद्याद्विशेषतः । तेनोदकेन संस्नाप्य गजदन्तोत्थमृत्स्नया ।।२३५
श्वेताश्वसुरसम्भूतं श्रीश्चतेति च सञ्जपन् । आप्यायस्वेति मन्त्रेण मृदं चतुष्पथोद्भवाम् ।।२३६
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण कुशमूलेन स्थापयेत् । तीर्थतोयेन गन्धेन तथा पञ्चामृतेन च ।।२३७
गायत्र्या स्नापद्देवं रत्नतोयेन साधकः । आप्यायस्वेति मन्त्रेग क्षीरेण तदनन्तरम् ।।२३८
दधिक्राव्णेति दध्ना च मधुवातेति वै मधु । सरस्वत्यान्तेति जातीपुष्पतोयेन स्नापयेत् ।।२३९

करना कहा गया है। उस यूप का विस्तार प्रादेशमात्र और उसके मध्य में छः अंगुल का वृत्त बना रहता है। कांस्य चक्र के ऊपरी भाग के जो बारह अंगुल के मान का होता है, ऊर्ध्व भाग में चार अंगुल के मान का एक शूल का निर्माण करना चाहिए। यदि वह अंगूठे से भी हीन हो, तो उसे लोहे का शूल न बनाना चाहिए। उसके पश्चात् मांगलिक सूक्ति पूर्वक द्विजातियों की सम्मति से महल विशेषकर तालाब में चार कुश लेकर ईशान कोण के सम्मुख उसे डाल कर इस भाँति कहे—ॐ श्रीकृष्ण द्वैपायन नामक वेदव्यास प्रणीत भविष्य पुराण में बताये गये फलप्राप्ति के लिए अविच्छिन्न चार कोण वाली मेरे द्वारा निर्माण करायी गयी इस बावली के जल को, जो गंध पुष्प द्वारा अर्पित, तथा जिसके वरुण देवता हैं, सभी प्राणियों के स्नानार्थ मैं उत्सर्जन कर रहा हूँ। उसके अनन्तर वरुण सूक्त के उच्चारण पूर्वक नागसमेत वरुण, मकर (मगर) एवं कछुवे को उस जल में डाल देना चाहिए।२२९-२३४। वरुण देव की पूजा के उपरांत उन्हें विशेषकर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। उनका स्नान उस कुम्भोदक से होना चाहिए जिसमें गजदाँत से खोदी हुई मिट्टी पड़ी हो। तथा श्वेत रंग के घोड़े के खुर की मिट्टी भी पड़ी हो, और 'भी श्रीश्चतेति' तथा 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक चौराहे की मिट्टी उसमें डालनी चाहिए। 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र द्वारा उस कुश के मूलभाग में स्थापित करके तीर्थ-जल, पञ्चामृत (गाय के दूध, दही, घी, शहद और शक्कर) से स्नान कराने के उपरान्त गायत्री के उच्चारणपूर्वक रत्न जल से स्नान कराना चाहिए, उसके पश्चात् 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र द्वारा क्षीर, 'दधिक्राव्णेति' इसके उच्चारण पूर्वक दही, 'मधुवातेति' इस मन्त्र का उच्चारण कर मधु, 'सरस्वत्यान्तेति' इसका उच्चारण करके जूही पुष्प के जल से क्रमशः स्नान कराना बताया गया है। 'वरुणोत्तममिति' इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता

(वरुणोत्तमिति मन्त्रस्य नारायण ऋषिः गायत्री छन्दो वरुणो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः । श्रीश्च ते इति मन्त्रस्य कर्दमऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सरिद्देवता अश्वखुरमृदा स्नाने विनियोगः । आप्यायस्वेति मन्त्रस्य पर्वत ऋषिः उष्णिक्छन्दः सरस्वती देवता वरुणप्रीतये चतुष्पथमृदः स्नाने विनियोगः । तद्विष्णोरिति मन्त्रस्य मैनाक ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सरस्वती देवता वरुणप्रीतये कुशमृदास्नाने विनियोगः । कया न इति मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सोमो देवता वरुणप्रीतये नागगन्धस्नाने विनियोगः । तेजोसीति मन्त्रस्य गर्ग ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वासवो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः । सरस्वत्यै भैषज्येनेति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो विष्णुर्देवता वरुणप्रीतये विनियोगः । पुष्पोदकस्नाने । अग्न आयाहीति मन्त्रस्य जनार्दन ऋषिः जगतीछन्द ऐन्द्री देवता वरुणप्रीतये विनियोगः ॥)

प्रक्षिपेत्पञ्च व्रीहींश्च इदञ्चेति च सम्पठन् । पश्चान्नीराजनं कुर्यात्पञ्चघोषपुरःसरम् ॥२४०
शिरीषपुष्पसम्भूतं दर्पणं कांस्यसम्भवम् । गोपीचन्दनसम्भूतं गङ्गामृत्तिकयाथवा ॥
कृष्णां गां गोमयं वापि स्वस्तिकं शङ्खमेव च ॥२४१
कारयेत्पदकं वापि यवगोधूमकस्य वा । उत्पन्नस्वर्गसम्भूतं कलशं माषसम्भवम् ॥
श्रीरसं पुष्पसम्भूतं दर्पणं कांस्यसम्भवम् ॥२४२
नन्द्यावर्ते मलयजे ततो निर्मलयेत्सुधीः । एकैकं प्रतिमन्त्रेण प्रत्येकं तु जलोपरि ॥२४३
ध्रुवप्रतिकृतैर्मन्त्रैरष्टभिश्च यथाक्रमम् । पूर्वाक्षतं माषभक्तबलिं दद्याद्विधानतः ॥२४४

हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उपयोग करना चाहिए । 'श्रीश्चतेति' इस मंत्र के कर्दम ऋषि, पंक्ति छन्द, सरित् देवता हैं, अश्व खुर से खोदी हुई मिट्टी के स्नान में इस विनियोग का उपयोग किया जाता है । 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के पर्वत ऋषि, उष्णिक् छन्द, सरस्वती देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ चौराहे की मिट्टी-स्नान में इस विनियोग का उच्चारण किया जाता है । 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र के मैनस्क ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सरस्वती देवता हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ कुश की मिट्टी के स्नान में यह विनियोग उपयुक्त होता है । 'कयान इति' इस मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द सोम देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ नाग-गन्ध के स्नान में इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । 'तेजोऽसीति' इस मंत्र के भर्ग ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, वासव देवता हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । 'सरस्वत्यै भैषज्येनेति' इस मंत्र के वाम देव ऋषि, पंक्ति छन्द, विष्णु देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । पुष्पोदक के स्नान में उच्चारित किये जाने वाले 'अग्नि आयाहीति' इस मंत्र के जनार्दन ऋषि, जगती छन्द, ऐन्द्री देवता हैं, वरुण की प्रसन्नता के लिए इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । ॐ पश्चात् 'इयञ्चेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पाँच धान्यों का प्रक्षेप करके अनन्तर पाँच वाद्यों के घोष समेत नीराजन करना चाहिए ।२३५-२४०। शिरीष पुष्प जनित, दर्पण, कांसे, गोपी चन्दन, गंगा मिट्टी, कृष्ण वर्ण की गौ, गोबर, स्वस्तिका, शंख, जवा अथवा गेहूँ के पदक (स्थान) बनाकर स्वर्ग सम्भव कलश, माघ सम्भव, पुष्प जनित श्रीरस, दर्पण, कांसे को मलयज नन्द्यार्वत में निर्मल करके विद्वान् को चाहिए कि जल के ऊपर मंत्रोच्चारण पूर्वक इन एक-एक को प्रदान करके अक्षत समेत पाक किये हुए उरद की बलि सविधान अर्पित करनी चाहिए। उपरांत 'नारायण सूक्त के उच्चारण करके नारायण देव

ततो नारायणसूक्तेन देवं नारायणं यजेत् । अन्येषां चैव देवानां प्रदद्यात्त्रिंशतं बलिम् ।।२४५
तत आचमनीयं च वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण क्रमेणापि विधानतः ।।२४६
पृथक्पृथक्ततो दद्यात्तावंत्येनापि भो द्विजाः । वेदसूक्तसमायुक्ते यज्ञसूत्रसमन्विते ।।
सर्ववर्णप्रदे देव वाससी ते विनिर्मिते ।।२४७
शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितान्गन्धान्प्रगृह्य च विलिप्यताम् ।।२४८
अष्टोत्तरशतान्दीपान्परितः स्थापयेत्क्रमात् । तदर्धं वा पञ्चविंशं मन्त्रेण प्रयजेत्सुधीः ।।२४९
त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विषादस्त्वं तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।२५०
प्रदक्षिणं ततः कुर्यात्पञ्चधा सप्तधाथवा । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दद्याद्धूपं दशाङ्गकम् ।।२५१
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिः शुचिः । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।२५२
अलङ्कारैश्च गन्धैश्च पीतवस्त्रैस्तथैव च । दूर्वाक्षतेन माल्येन युक्तं पुष्पेण पूजयेत् ।।
दद्यात्पञ्चाञ्जलिं पश्चाद्विष्णुसूक्तं पुनर्जपेत् ।।२५३
ततः सुशोभने स्थाने वेदीं निर्माय देशिकः । वरुणं विन्यसेत्तत्र तथा पुष्करिणीमपि ।।२५४
विवाहोक्तेन विधिना कुर्यान्निर्मञ्छनादिकम् । गन्धपुष्पं ततो दद्याद्गां च दद्यात्सदक्षिणाम् ।।२५५
चामरं व्यजनं छत्रं कांस्यं लोहं तथैव च । कुर्यात्पुष्करिणीं रम्यां राजतीं च त्रिपादिकाम् ।।२५६

की बलि अर्पितपूर्वक अन्य देवों के लिए भी तीस बलि प्रदान करनी चाहिए ।२४१-२४५। अनन्तर आचमनीय जल और दो वस्त्र मंत्रोच्चारण पूर्वक सविधान समर्पित करना चाहिए । द्विजगण ! प्रत्येक देवों के लिए पृथक्-पृथक् सभी वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिए । देव ! वेदसूक्त समन्वित, यज्ञसूक्त युक्त, एवं समस्त वर्ण प्रदायक इस वस्त्र को आप के लिए समर्पित कर रहा हूँ और मैं आपके शरीर को नहीं जानता, और चेष्टा तो नितान्त ही नहीं जानता हूँ, अतः मेरे द्वारा प्रदान किये गये गन्ध को स्वीकार कर उसका लेपन कीजिये । पश्चात् उसके चारों ओर एक सौ आठ दीपों को प्रज्वलित करना चाहिए । उसके अभाव में पचास अथवा पच्चीस ही दीपक का प्रदान विद्वान् को समन्त्रक करना बताया गया है । 'तुम्हीं सूर्य चन्द्रमा की निर्मल ज्योति हो, विषाद (निर्मल) एवं समस्त ज्योति हो, अतः इस दीपक को ग्रहण कीजिए ।२४६-२५०। सात अथवा पाँच प्रदक्षिणा करने के अनन्तर दशांग धूप मंत्रोच्चारण पूर्वक विधानानुसार प्रदान करना चाहिए । वनस्पति के इस दिव्य, गंधपूर्ण, सुगन्धित, पवित्र, इस धूप को मैं भक्ति पूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, इसे स्वीकार कीजिये । आभूषण, गन्ध, पीत वस्त्र, दूर्वा, अक्षत, माला और पुष्पों से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत पाँच अञ्जलि उन्हें प्रदान कर पश्चात् विष्णु सूक्त का पाठ करना चाहिए ।२५१-२५३। तदुपरांत सौन्दर्य पूर्ण वेदी का निर्माण करके उस पर वरुण और पुष्करिणी को स्थापित करके विवाह विधान द्वारा निर्मञ्छनादिक क्रिया के अनन्तर गन्ध, पुष्प, एवं दक्षिणा समेत गौ का दान करना चाहिए । द्विजवृन्द ! चामर, व्यजन (पंखा), छत्र, कांसा, या लोहे अथवा चाँदी की तीन चरण वाली एवं रम्य पुष्करिणी का निर्माण करना चाहिए जिसकी प्रतिमा चौकोर, परम मनोहर, दो अंगूठे के समान चारों ओर का मण्डल, एवं सौन्दर्य पूर्ण माला की रचना हुई

चतुष्कोणां च सुषमां द्व्यङ्गुष्ठपरिमण्डलाम् । सुवर्णप्रतिमां कुर्याद्धालेनैकेन भो द्विजाः ।।२५७
अथवा स्वर्णपत्रे च कुङ्कुमेन तले लिखेत् । बाणशक्तिप्रमाणेन स्वर्णपत्रं तु द्व्यङ्गुलम् ।।२५८
कारयेच्चतुरस्रं च पीठोपरि न्यसेद्बुधः । नीराजनान्ते विप्रेन्द्राः संस्मरेदमृतं नरेत् ।।२५९
अशक्तेन तथैवैककाष्ठे वा पिप्पलच्छदे । ताम्रपट्टे लिखेद्वापि अलक्तेन यथाविधि ।।२६०
प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्तु वरुणाय निवेदयेत् । अहं वत्सरं कुर्याद्वेदघोषपुरः सरम् ।।२६१
अशोकः खदिरः शालो ह्यश्वत्थो बिल्वकस्तथा । धात्री कुरबकश्चैव बकुलो नागकेशरः ।।२६२
एषामेव काष्ठयूपं यजमानप्रमाणकम् । समादाय च संस्थाप्य वस्त्राद्यैः प्रतिगृह्य च ।।२६३
यूपं रक्षेति मन्त्रेण खनित्वा च प्रवापयेत् । स्थिरो भवेति मन्त्रेण हस्तं दत्त्वा पठेत्ततः ।।२६४
तडागस्य तथैशान्यां तथा प्रासादकस्य च । प्रापयेद्दक्षिणे भागे आवासस्य च मध्यके ।।२६५
नौकां गत्वा ततः पश्चाद्यूपमादाय वाग्यतः । मध्यदेशे तडागस्य समुल्लङ्घ्य तथोत्तरम् ।।२६६
गन्तव्यं प्रकल्प्य तत्रैव आप्यायस्वेति वै ऋचा । शिलायां होमयेत्तत्र हुनेन्नौकाहुतित्रयम् ।।२६७
अङ्गदाय स्वाहेति भौमाय नम इत्यतः । लाजाशक्तौ दधिमधौ वासने प्रतिहोमयेत् ।।२६८
कूर्माय नम इत्युक्त्वा पृथिव्यै नम इत्युत । स्वाहेत्यनन्तमन्त्रेण दद्यादर्घ्यमनन्तरम् ।।२६९
पञ्चरत्नेन गन्धेन शङ्खेनार्घ्यं प्रदापयेत् । चतुरस्रं समाकीर्णं चतुर्दिक्ष्वघृतैर्जनैः ।।२७०
कल्पयेद्रोपयेत्तत्र हस्तं दत्त्वा पठेदिदम् । स्थिरो भवेति मन्त्रेण गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ।।२७१

हो। अथवा दो अंगुल के सुवर्ण पत्र में कुंकुम द्वारा बाण शक्ति के प्रमाणानुसार चौकोर उसकी प्रतिमा का निर्माण करके उस पीठासन पर विद्वान् को प्रतिष्ठित करना चाहिए। विप्रेन्द्र, ! नीराजन के अन्त में उसका ध्यान एवं जल स्मरण करना बताया गया है। यदि इन धातुओं की प्राप्ति में असमर्थता प्रकट हो, तो एक काष्ठ, पीपल के पत्ते, अथवा ताँबें के ऊपर महावर द्वारा विधान पूर्वक उसका निर्माण करना चाहिए।२५४-२६०। उस प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा करके उसे वरुण को सादर समर्पित करने के उपरांत वेद ध्वनि पूर्वक उसका वार्षिकोत्सव करना चाहिए। अशोक, खैर, साखू, पीपल, बेल, आँवला, कुरबक (रक्त पुष्प), बकुल (मौलिकसिरी), और नागकेशर इन्हीं काष्ठों का यूप (स्तम्भ) यज्ञ मान के प्रमाणानुरूप बनाकर वस्त्र से आवेष्टित करके 'धूपं रक्षेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भूमि के गढ्ढे में उसे प्रतिष्ठित करना चाहिए और पुनः उस पर 'स्थिरोभवेति' ऐसा कहते हुए हाथ में रखकर इस प्रकार कहे कि—तालाब के ईशान कोण में एवं महल के दक्षिण ओर निवास स्थान के मध्यभाग में सदैव स्थिर रहे। पश्चात् मौन होकर नौका द्वारा उस यूप (स्तम्भ) को लेकर (जलाशय के) उत्तर भाग को पार करके तालाब के मध्य प्रदेश में मार्ग (आसन) आदिकी कल्पना पूर्वक शिला के ऊपर 'आप्यायस्वेति' इस ऋचा के उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिए और तीन आहुति उस नौका के लिए भी 'अंगदाय स्वाहा' भौमाय नम इति' इस प्रकार कहकर आहुति प्रदान करे। लाजा (लावा) के अभाव में सुवासित दही, शहद का हवन करना चाहिए 'कूर्माय नमः, पृथिव्यैनमः स्वाहेति, कहकर आहुति प्रदान के उपरांत पञ्चरत्न, गन्ध, एवं शंख समेत उस अर्घ्य को इस भाँति अर्पित करना चाहिए, जो चौकोर के रूप में आकीर्ण और जिसका स्पर्श कोई मनुष्य न कर सके।२६१-२७०। इस भाँति उसकी कल्पना एवं आरोप करके

चक्रं सदर्पणं दद्यान्नागदण्डशिरो गतः । विद्युदत्र च कर्तारं प्रहदुःखहरिप्रियम् ॥२७२
एवं चक्रं पूजयित्वा शूलं नागांश्च पूजयेत् । उच्चैर्ध्वजं ततः कृत्वा न नागेति च सम्पठेत् ॥२७३
गायत्रम्स्वेति मन्त्रेण पठेद्वारद्वयं ततः । दिक्पालेभ्यो बलिं दद्यान्माषभक्तं गुडौदनम् ॥२७४
रक्तपुष्पान्वितं कृत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् । सहस्रं वा धनं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥२७५
ततो भोज्यं सर्पिश्च सहिरण्यं यथाविधि । इक्षुस्वस्तीतिकां दद्याज्जले मातृश्च पूजयेत् ॥२७६
मन्थरां वसुतां कान्तां राक्षसीं च पिशाचिकाम् । नागिनीर्नागपुत्रांश्च मध्ये सम्पूजयेत्ततः ॥२७७
पूर्णान्ते च पृथग्दद्याल्लाजाद्यैर्गुडमिश्रितैः । इन्दो बलवतीः स्वाहा यशो बलवतामपि ॥२७८
बृहत्पक्षाविशेषोऽयं मध्यमे च कनीयके । बृहस्पते च इन्द्राय तव देवलतामिति ॥२७९
स्वाहेति जुहुयात्पश्चात्प्रणीतां चालयेत्ततः । कनिष्ठपक्षे प्रासादे तथा चैव जलाशये ॥२८०
मन्दरे तोरणस्यैव विष्वक्सेनं प्रकल्पयेत् । आरामे च तथा सेतौ विशेषः पञ्चनो द्विजाः ॥२८१
पूजान्तरेण यः कस्य जपेन्मन्त्रसहस्रकम् । स्तुतिं समाप्य विधिवदिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥२८२
सर्वसत्त्वेम्य उच्छिष्टमपि तज्जलमुद्धृतम् । इति पठित्वा पुष्करिणीजलं हस्ते गृहीत्वा जले क्षिपेत्॥२८३
ततो जलमातृभ्यो नम इति जलामातृः प्रपूजयेत् । त्रैलोक्ये यानि स्थानानि स्थावराणि चराणि च॥२८४
तेषामाप्यायनायैतज्जलमुत्सृज्यते मया । मात्रे तु कृतमेतत्ते जगदानन्दकारकम् ॥२८५

उस पर हांथ रख 'स्थिरोभवेति' ऐसा कहकर पश्चात् गन्ध पुष्प द्वारा उसकी अर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए। उसके अनन्तर दर्पण समेत चक्र अर्पित करना चाहिए, जो नाग दण्ड के मूल भाग पर स्थित, विद्युत की भाँति प्रकाशक, कर्ता, के दुःख स्वरूप, और हरि को प्रिया हैं। इस भाँति चक्र अर्चा सादर सम्पन्न करके शूल और नागों की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् उस ध्वजा को ऊपर फहराकर 'न नागेति' एवं गायत्रस्वेति' इन मंत्रों के दोदार पाठ पूर्वक दिक्पालों के लिए पाक क्रिया उरद, गुडमिश्रित भात (मीठाभात) की बलि स्वर्ण के पुष्प समेत सादर प्रदान करना बताया गया है, पुनः सहस्र की संख्या में धन किसी कुटम्बी ब्राह्मण को अर्पित करके घी, एवं हिरण्य समेत भोज्य तथा विधानानुसार ऊख की स्वास्तिका के समर्पण पूर्वक जल में मातृपूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए।२७१-२७६। मंथरा, मध्यभाग में वसुता, कांता, राक्षसी, पिशाचिका, नागिनी और नागपुत्रों के दिन पृथक्-पृथक् गुडमिश्रित लावादि की आहुति 'इन्द्राय स्वाहा' कहते हुए प्रदान करनी चाहिए। यह बृहत्पक्ष का विशेष विधान बताया गया है, मध्यम और कनिष्ठ पक्ष में 'बृहस्पतये' इन्द्राय, तुभ्यं, और देवलतायै स्वाहेति' इस भाँति कहकर आहुति प्रदान के अनन्तर प्रणीता संचालन करना चाहिए। कनिष्ठ पक्ष, महल, जलाशय एवं मन्दर उपवन और सेतु निर्माण में विशेषकर तोरण की ही विष्णु प्रतिमा बनायी जाती है, पूजा के पश्चात् सहस्र मंत्रों के पाठ पूर्वक इस स्तुति क्रिया का विधिवत् सम्पादन कर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए सर्वसत्त्वेम्य उच्छिष्टमपि तज्जलमुद्धृतम् ऐसा कह कर पुष्करिणी जल कोहाथ में लेकर जल में डाल देना चाहिए। तदनन्तर 'जलमातृभ्यो नम इति' इस प्रकार कहते हुए जल मातृकाओं की पूजा करके इस भाँति विनम्र भाव प्रदर्शन करके कि तीनों लोक में जितने चर अचर स्थान कल्पित हैं, उनके वृद्ध्यर्थ इस जल का त्याग मैं कर रहा हूँ, इस प्रकार माता के लिए यह त्यक्त जल जगत् के लिए कल्याणप्रदायक हो।२७७-२८५। समस्त

शिवाय सर्वभूतानां सदा पाहि जलाशयम् । पिबन्तो ह्यवगाहन्तः सुखिनः सर्वजन्तवः ।।२८६
जलं विश्वोपकाराय कृतमेतन्मया सदा । कीर्तिस्तिष्ठतु मे देवाश्चिराय धरणीतले ।।२८७
त्वत्प्रसादान्महाभाग नागराज नमोऽस्तु ते । येऽत्र केचिद्विपद्यन्ते स्वकर्मफलभोजनाः ।।२८८
तेषां दोषैर्न लिप्येऽहं स्वं स्वं गममवाप्नुयात् । नारायणो जगत्प्राणः सर्वकामप्रदायकः ।।२८९
अपेया मातरः सन्तु जगतां वृक्षयोनयः । अपाम्पते रसाधात्र यादसामीश्वर प्रभो ।।२९०
वरुणास्यासने कीर्ति सनातन नमोस्तु ते । तत्तोयं निधिवद्द्याद्दक्षिणार्थं द्विजन्मने ।।२९१
सुवर्णं रजतं दद्यादनड्वाहं पयस्विनीम् । दद्याद्धनुद्वयं पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ।।२९२
वह्निपूजां पुरस्कृत्य मन्त्रेण प्राशयेत्ततः । पितॄणां दापयेदर्घ्यं ततो देवं प्रसादयेत् ।।२९३
बिम्बमुद्रां पद्ममुद्रां नागमुद्रां प्रदर्शयेत् । वैश्वानरा इति ऋचा पूजां कृत्वा विवर्जयेत् ।।२९४
यस्ते प्रागाञ्जपन्पश्चात्प्रकुर्यादथ चन्दनम् । प्रदक्षिणं ततः पश्चात्तडागस्य शृणु द्विजाः ।।२९५
ब्राह्मणान्पुरतः कृत्वा वेदघोषं समुच्चरन् । महामङ्गलपूर्वेण प्रविशेद्भवनं सुधीः ।।२९६
ततो गृहार्चनं कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् । दीनानां कृपणानां च सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।२९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवग्रहपूजनविधान-वर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

प्राणियों के कल्याणार्थ इस जलाशय की सदैव रक्षा कीजिए, जिससे इस जलाशय के जल का पान एवं स्नान करके सम्पूर्ण जीव सुखी हों। हे देववृन्द ! समस्त विश्व के उपकारार्थ मैंने इसका निर्माण कराया है, अतः इस भूतल पर मेरी कीर्ति चिरकाल तक स्थित रहे। हे महाभाग, नागराज ! आपकी ही अनुकम्पा वश मैं इस कार्य को सुसम्पन्न कराने में समर्थ हुआ, अतः (हे) नागराज तुम्हें नमस्कार है। अपने जन्मान्तरीय कर्मानुसार जिसका इस महारम्भ में निधन हो गया है, उनका दोषभागी मुझे न होना पड़े क्योंकि प्राणियों को अपने अपने कर्म फलों की प्राप्ति होती है नारायण जगत् के प्राण और समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं। संसार में वृक्ष योनि के जीव और माताओं के लिए यह तृप्तिकारक हो, हे जलपते, इस और चराचर के अधिनायक प्रभो, वरुण के आसन, मेरी कीर्ति स्वरूप, सनातन, तुम्हें नमस्कार है, उस जल को दक्षिणा की भाँति ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए।२८६-२९१। सुवर्ण, चाँदी, बैल, दूध देने वाली दो नौका दान करके पश्चात् ब्राह्मण को प्रसन्न करना चाहिए। अग्नि पूजन समाप्ति के उपरांत प्राशन कर्म, पितरों के लिए अर्घ्य, एवं देवों को प्रसन्न करना चाहिए। बिम्बमुद्रा, पद्ममुद्रा, और नागमुद्रा प्रदर्शन के अनन्तर 'वैश्वानरा इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक पूजन 'यस्ते प्राणान्' का जप, चन्दन लेप और प्रदक्षिणा करनी चाहिए। द्विजवृन्द ! सरोवर का (प्रतिष्ठा विधान) बता रहा हूँ, सुनो ! वेदपाठी ब्राह्मणों को, जिसकी वेदध्वनि द्वारा आकाश मंडल गूँज रहा हो, सम्मुख करके महामङ्गल कर्मानुष्ठान द्वारा विद्वान् को उस भवन मे प्रवेश करना बताया गया है। उसके उपरांत गृह अर्चन ब्राह्मण भोजन एवं दीन हीन, कायरों को प्रसन्न करते हुए सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।२९२-२९७

श्री भविष्यमहापुराण के मध्यम-पर्व के द्वितीय भाग में देवग्रह पूजन विधान वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

मध्यमविधानवर्णनम्

सूत उवाच

सप्ताग्निष्टोमको नाम ह्युत्तमः कथितो विधिः । मध्यमे मध्यमफलं कनिष्ठे तु कनिष्ठकम् ।।१
अधुना मध्यमं वक्ष्ये विधिं शास्त्रानुसारतः । यथाविभवयोगेन यत्कर्तव्यं नरेण वै ।।२
सद्योऽधिवासकल्पेन यूपादीनधिवास्य च । पूर्वस्मिन्नेव दिवसे दैवज्ञकथिते शुभे ।।३
मुहूर्ते कलशं स्थाप्य सङ्गृह्य गणनायकम् । स्थापयेत्प्रथमं यूपमापोहिष्ठेतिमन्त्रकैः ।।४
शन्नो देव्यास्ततः पश्चाद् गन्धद्वारेति गन्धकम् । श्रीसूक्तेन ततो दद्यात्पुष्पं दूर्वाक्षतं ततः ।।५
काण्डादिति च मन्त्रेण ततो धूपं निवेदयेत् । ये गृह्णामीति च ऋचा पूजायां स्थापयेत्ततः ।।६
विवाहविधिना सर्वं कार्यं नैवाधिवासनम् ।।७
सर्वमेव प्रयुञ्जीत तडागादिषु पण्डितः । अधिवास्य तडागादीनाचार्यादींश्च सर्वशः ।।८
सङ्गृह्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपैर्दीपैः सुशोभनैः । ततः प्रभातसमये नित्यं निर्वर्त्य शास्त्रतः ।।९
वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्यान्मातृपूजापुरः सरम् । अलङ्कृत्य यथाशक्ति आचार्यादींश्चरेद्बुधः ।।१०
शृणुयात्पश्चिमे भागे मण्डपस्य समीपतः । मध्यदेशे समुद्भूतं यज्ञपात्रं प्रशस्यते ।।११

अध्याय २०

मध्यमविधान का वर्णन

सूत जी बोले—सात भाँति के अग्निष्टोम नामक यज्ञ का विधान बता दिया गया है, जिसमें मध्यम विधान का मध्यम फल, और कनिष्ठ का कनिष्ठ फल होना बताया गया है । मैं इस समय शास्त्रोक्त रीति से मध्यमविधान का, जो अपनी अर्थशक्ति के अनुसार मनुष्यों का परम कर्तव्य है, व्याख्यान कर रहा हूँ, सुनो ! ज्योतिषियों द्वारा बताये हुए पूर्व दिन के किसी शुभ मुहूर्त में अधिवास कल्प और यूप आदि का अधिवासन कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए ।१-३। उस शुभ मूहूर्त में कलश स्थापन पूर्वक गणपति पूजन करके सर्वप्रथम उस स्तम्भ की प्रतिष्ठा एवं पूजन 'आपोहिष्ठेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए करना चाहिए, तदुपरांत 'शन्नो देवी' और 'गन्धद्वारेति' मन्त्रोच्चारण द्वारा गन्ध, श्री सूक्त से पुष्प एवं दूर्वा अक्षत, 'काण्डादिति' से धूप 'ये गृह्णामि' इस ऋचा के द्वारा पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए ।४-६। पुनः विवाहोक्त विधान द्वारा सभी अधिवासन कर्म की समाप्ति बतायी गयी है, अतः सर्वप्रथम पण्डित वृन्द को चाहिए कि सरोवर आदि की भी प्रतिष्ठा में सरोवर और आचार्य आदि का अधिवासन सुसम्पन्न करते हुए गन्ध, पुष्प, धूप, दीप सविधान प्रदान करना चाहिए । पुनः प्रातः समय में शास्त्र के आदेशानुसार नित्य कर्म की समाप्ति पूर्वक मातृपूजा पुरस्सर वृद्धि श्राद्ध सुसम्पन्न करना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि यथाशक्ति आचार्य आदि ब्राह्मणों को अलंकृत करके मण्डप के सन्निकट पश्चिम भाग में प्रतिष्ठित करना चाहिए, क्योंकि मध्य देश में उत्पन्न वह यज्ञ पात्र के लिए प्रशस्त बताया गया है ।७-११। अथवा उसी देश के

अथवा तत्र देशीयं गुरुं वा श्रोत्रियोद्भवम् । यज्ञे प्रधानद्वितीयमृत्विगाचार्यमेव हि ।।१२
वैतानकल्पे सम्पन्नं शक्तिकल्पपरायणम् । निगमज्ञानसम्पन्नं यज्ञे पात्रं प्रशस्यते ।।१३
पत्नीहीनमपुत्रं च श्यावदन्तमदन्तकम् । गणानां याजकं षण्ढं स्वगोत्रं परिवर्जयेत् ।।१४
अप्रधानेषु यज्ञेषु दानयज्ञेषु सत्तमाः । नियोजयेत्स्वगोत्रं च होमे नास्ति विचारणा ।।१५
कुशप्रतिकृतौ चापि ततः स्वर्गं स गच्छति । धनमादौ च संशोध्य ततो यज्ञं समाचरेत् ।।१६
अयाज्ययाजनोद्भूतं पल्लवं व्यवहारके । कूटसाक्ष्येण पल्लवे स्थाप्यहारकमेव च ।।१७
देवस्वं ब्राह्मणस्वं च लोहविक्रयणं धनम् । हविर्विक्रयणं कृत्वा पुत्रभार्यादिविक्रयी ।।१८
निन्दितानि पुराणेषु यत्कृतं तत्र तत्फलम् । यज्ञसद्मनि विप्रांश्च न श्राद्धान्भोजयेत्क्वचित् ।।
न दद्यात्तस्य दानं च यावन्नैव समापयेत् ।।१९
ब्रह्मन्नाचार्यमुख्योऽसि संसारात्त्राहि मां विभो । त्वत्प्रसादाद्गुरो यज्ञे प्राप्नुयां मानसेप्सितम् ।।२०
चिरं मे शाश्वती कीर्तिर्यावल्लोकाश्चराचराः । प्रसीद त्वं महेशान प्रतिष्ठाकर्मसिद्धये ।।२१
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारक । ज्ञानामृतप्रदाचार्य विष्णुरूप नमोऽस्तु ते ।।२२
ब्रह्मासनसमुद्भूतं प्रकाशितदिगन्तरम् । त्वं च जाम्बूनदप्रख्य यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ।।२३

निवासी जो श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हो गुरु या यज्ञ में प्रधान दूसरा ऋत्विजाचार्य प्रतिष्ठित करना चाहिए क्योंकि यज्ञ विधान का निष्णात विद्वान् शक्ति कल्प का पारायण करने वाला, तथा शास्त्र ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति यज्ञ का प्रशस्त पात्र बताया गया है ।१२-१३। पत्नीहीन, पुत्रहीन, काले दाँत, दाँतहीन, गणों का यज्ञ कराने वाला, नपुंसक, स्वगोत्री का उस कर्म में परित्याग करना चाहिए । उत्तमवृन्द ! छोटे-छोटे यज्ञ, दानयज्ञ, एवं हवन कर्मानुष्ठान में अपने गोत्र वालों की नियुक्ति में विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है ।१४-१५। यदि किसी की प्राप्ति न हो तो कुश की प्रतिमा स्थापित करने से उसी भाँति स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसलिए सर्वप्रथम धन के संशोधन पूर्वक यज्ञानुष्ठान आरम्भ करना चाहिए ।१६। अनुचित यज्ञानुष्ठान द्वारा उत्पन्न, व्यवहार में पल्लव ग्राही, क्रूर साक्षी (झूठी गवाही देने वाला), हठी और मिथ्याभाषी, देव, ब्राह्मण के धन का विक्रय करने वाला, लोहे का विक्रेता, हवि, पुत्र और स्त्री का विक्रय करने वाला पुराणों में निन्दित बताया गया है, अतः ये सभी यज्ञ पात्र के अयोग्य हैं क्योंकि जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है । यज्ञभवन में श्राद्ध सम्बन्धी ब्राह्मणों को भोजन न कराना चाहिए और जब तक यज्ञ की समाप्ति न हो जाये, उस ब्राह्मण को दक्षिणा दान भी न करना चाहिए ।१७-१९। हे ब्रह्मन् ! आप मेरे मुख्य आचार्य हैं, विभो ! इस संसार से मेरी रक्षा कीजिये हे गुरो ! आप के अनुग्रह से ही मेरी अभीष्ट सिद्धि हो सकेगी । चर अचर लोकों की जितने दिनों तक स्थिति निश्चित रहे, उतने दिन मेरी शाश्वती कीर्ति दृढ़ निश्चल बनी रहे । हे महेशान ! इस प्रतिष्ठा कर्म के सिद्धयर्थ आप का प्रसन्न चित्त होना आवश्यक है । समस्त प्राणियों के आप आदि (ज्येष्ठ) हैं, संसार सागर के तारने वाले, ज्ञान रूपी अमृत रूपी अमृत प्रदायक, आचार्य, आप विष्णु रूप हैं, अतः आप को नमस्कार है । ब्रह्मा के आसन से उत्पन्न दिग्दिगन्त को प्रकाशित करने वाले आप जाम्बूनद (सुवर्ण) की भाँति ख्याति प्राप्त हैं, यजुर्वेद तुम्हें नमस्कार है ।२०-२३। विकसित कमल की भाँति

प्रफुल्लकमलोद्भासि भास्वराम्बरभूषित । प्रकीर्णशास्त्रसम्भार विधिज्ञ प्रणतोऽस्मि ते ।।२४
ज्वलद्वैश्वानरप्रख्य धूम्रश्यामालितानन । षडङ्गवेदतत्त्वज्ञ ऋत्विङ् मोक्षं समाचर ।।२५
ततस्तूर्यादिघोषेण पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् । यजमानः सपत्नीकः प्रविशेद्यागमण्डपम् ।।२६
स्वस्थाने स्थापयेद्विप्रान्मखे धर्मैर्यथाक्रमम् । पूजयेद्गन्धमाल्याद्यैर्गन्धाद्यैः सुमनोहरैः ।।२७
यज्ञे सुवितते योऽसौ पूज्यते पुरुषः सदा । नारायणस्वरूपोऽसौ यज्ञं मे सफलं कुरु ।।२८
मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु येन मन्त्राः सुविस्तृताः । यजुर्वेदार्थतत्त्वज्ञ ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ।।२९
यज्ञेषु साक्षी सर्वेषु वेदवेदार्थतत्त्ववित् । ऋग्वेदज्ञ महाप्राज्ञ विश्वरूप नमोऽस्तु ते ।।३०
माङ्गल्यं कर्मणां नित्यं शाश्वतं ब्रह्मरूपिणम् । सिद्धये मम यज्ञस्य नमामि शिवरूपिणम् ।।३१
पालयन्ति दिशः सर्वा विदिशश्च तथा इमाः । दिक्पालरूपिणं विप्रं यज्ञसिद्ध्यै नमाम्यहम् ।।
पातयेद्दक्षिणं जानु दिकिरान्विकिरेत्ततः ।।३२
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्माविष्णुशिवाः सर्वे रक्षां कुर्वन्तु तानि वै ।।३३
वेद्यावेदीति मन्त्रेण पठेद्वेदिं प्रणम्य च । सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैरिमं मन्त्रमुदाहरेत् ।।३४
याजनं यजमानश्च श्रेयसा तत्र याजकः । इदमर्घ्यमिदं पाद्यं धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।३५
ऐशान्यां कलशे देवं सम्पूज्य गणनायकम् । ब्रह्माणं वासुदेवं च द्वितीयकलशे यजेत् ।।३६

प्रसन्न, कान्तियुक्त वस्त्र से भूषित, विस्तृत शास्त्र के संभार स्वरूप विधिवेत्ता, तुम्हें नमस्कार है। प्रदीप्त अग्नि की भाँति ख्यात, (यज्ञ के) धूम से श्याम मुख वाले छहों अंगों समेत वेद के मर्मज्ञ, ऋत्विक् को मोक्ष प्रदान कीजिये। इसके पश्चात् यजमान पत्नी सहित तुरुही आदि वाद्यों के घोष से ब्राह्मणों को सम्मुख करके उनके पीछे-पीछे यागमण्डप में प्रवेश करे।२४-२६। यज्ञ भवन में अपने अपने स्थान पर धर्मानुसार उन्हें आसीन कर सौन्दर्य पूर्ण गन्ध, माला आदि वस्तुओं से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए।२७। अत्यन्त विस्तृत इस यज्ञानुष्ठान में जिस पुरुष की सदैव पूजा होती रहती है, नारायण स्वरूप वह मेरे इस यज्ञ को सफलता प्रदान करने की कृपा करें। सभी श्रेष्ठ यज्ञों में जिसके द्वारा मंत्रों का विस्तार हुआ है, यजुर्वेद के अर्थ मर्मज्ञ, एवं उस ब्रह्मरूप को नमस्कार है। सम्पूर्ण यज्ञों के साक्ष्य स्वरूप, वेदों के अर्थ वेत्ता, ऋग्वेद के निष्णात विद्वान् महायज्ञ तथा हे विश्व रूप तुम्हें नमस्कार है। कर्मों के मांगलिक स्वरूप, नित्य, शाश्वत, मेरे यज्ञ की सिद्धि के लिए जो ब्रह्मरूप एवं शिव (कल्याण) रूप है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ। समस्त दिशाओं और विदिशाओं के पालन करने वाले दिक्पाल रूपी उस ब्राह्मण को अपनी यज्ञ सफलता के निमित्त मैं नमस्कार कर रहा हूँ।२८-३२। पश्चात् दाहिने घुटने के बल बैठकर विकास दान करके इस प्रकार रहे कि तीनों लोकों में स्थित समस्त चर, अचर, जीव, ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर, ये सभी रक्षा करने की कृपा करें। पुनः 'वेद्यावेदीति' इस मंत्र के द्वारा वेदी के प्रणाम पूर्वक गन्ध पुष्प आदि वस्तुओं से उसकी पूजा करने के अनन्तर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए— यजमान, भाजक, एवं भाजन कर्म, ये सभी भेद सम्पन्न हों, तथा इस अर्घ्य, पाद्य, और धूप को स्वीकार करने की करें। ईशान कोण में स्थित कलश में गणनायक देव की विधिवत् पूजा करके दूसरे कलश में ब्रह्मा और वासुदेव की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। भगवान् विष्णु समेत द्वारका पुरी रुप से यह

मण्डलं चैव विष्णुर्वै द्वारकारूपमास्थितः । तेन त्वां पूजयाम्यद्य स्वर्गप्राप्तिं कुरुष्व मे ॥३७
पूर्वादिदिक्षु कलशान्संस्थाप्य च त्रयं त्रयम् । अर्धपादसवर्णेन निर्मितं तारणं बुधः ॥३८
गङ्गामृत्तिकया युक्ते पल्लवे सन्निवेदयेत् । मन्दरं कल्पयित्वा तु गोपीनां च कुलेन वा ॥३९
कलशोपरि संस्थाप्य मन्दरं सम्प्रपूजयेत् । स्योना पृथिवीति मन्त्रेण गन्धपुष्पैः पृथग्विधैः ॥४०
(स्योना पृथिवीति मन्त्रस्य सुमन्त ऋषिर्जगती छन्दो हरो देवता मन्दरप्रीतये विनियोगः)
एवं दक्षिणादिग्भागे नवतोलकनिर्मितम् । प्रादेशमात्रलोहं तु रौप्येण गन्धमादनम् ॥
मृदा सङ्घटनैः पश्चात्कदाचन ऋचा यजेत् ॥४१
कदाचनेति मन्त्रस्य सूर्य ऋषिस्त्रिष्टुपृछन्दः सूर्यो देवता गन्धमादनप्रीतये विनियोगः ॥)
उत्तरे तोरणतोद्वेरङ्गुष्ठद्वयमानके । तोलकद्वयमानेन यवानां पिष्टकोपरि ॥४२
(आप्यायस्वेति मन्त्रस्य कर्दम ऋषिर्जगती छन्दः शची देवता सुपार्श्वप्रीतये विनियोगः ॥)
पूजयेत्पार्श्वकलशे धात्रादीन्पूर्वदिक्क्रमात् । श्रीसूक्तेनैव मन्त्रेण यजेद्विजयसप्तकम् ॥
पूजयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतादिना ॥४३
अम्बाअम्बिकेति मन्त्रस्य नलिन ऋषिर्गायत्री छन्दः शम्भुर्देवता जयप्रीतये विनियोगः ।
गायत्र्या पूजयेद्दक्षे पश्चिमं कलशद्वयम् ॥४४
(गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता विजयप्रीतये विनियोगः ॥)

मण्डल स्थित है, इसलिए मैं तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ, मुझे अवश्य स्वर्ग की प्राप्ति हो । तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में कलश स्थापन पूर्वक तीन-तीन कलशों का तोरण बनाना चाहिए, जिसका अर्धपाद एक वर्ण का हो क्योंकि विद्वानों ने ऐसा ही विधान बताया है । गंगा-मिट्टी समेत पल्लव उसमें प्रक्षिप्त करके गोपियों के कुल द्वारा मंदर की कल्पना (निर्माण) पूर्वक कलश पर स्थापन-पूजन करना चाहिए उनके पूजन में 'स्योनापृथिवीति' इस मंत्र द्वारा गंध पुष्प प्रदान करना बताया गया है ।३३-४०। 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र के सुमंत ऋषि, जगती छन्द, एवं हर देवता हैं, मन्दर के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । इसी भाँति दक्षिण दिशा की ओर आदेशमात्र परिमाण में नवतोले लोहे अथवा चाँदी द्वारा गंधमादन की प्रतिमा निर्माण करने के पश्चात् उसमें मिट्टी का लेप करने 'कदाचन' इस ऋचा से उसका पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । 'कदाचनेति' इस मंत्र के सूर्य ऋषि, त्रिष्टुपृछन्द, सूर्य देवता हैं, गंध मादन के प्रसन्नार्थ यह विनियोग प्रयुक्त होता है । तोरणादि के उत्तर भाग में दो अंगुष्ठ के परिमाण में दो तोले की निर्माण की हुई प्रतिमा को जवा के पीठी बने हुए आटे के ऊपर उसे स्थापित करके 'अप्यायस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पाश्र्व कलश पर धृत आदि की पूजा पूर्वादि क्रम से सुसम्पन्न करनी चाहिए । 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के कर्दम ऋषि, जगती छन्द, शची देवता हैं, सुपाश्र्व में प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उपयोग करना चाहिए । श्रीसूक्त के उच्चारण करते हुए उत्तमभक्ति पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षतादि से विजय सप्त की पूजा करनी चाहिए ।४१-४३। 'अम्बाअम्बिकेति' मंत्र के नलिन ऋषि, गायत्री छन्द, एवं शंभु देवता हैं, जप के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । दक्षिण और पश्चिम में स्थापित दोनों कलशों की अर्चा गायत्री मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । गायत्री मंत्र के विश्वामित्र ऋषि, तथा

भद्रं चैव सुभद्रं च प्रयतः संयजेद्बुधः ॥४५
(उत्तरे युग्मकलशे मनोन्ना इति मन्त्रस्य अन्तक ऋषिर्बृहती छन्दो निर्ऋतिर्देवता भूतप्रीतये विनियोगः ॥)
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासं कृत्वा विधानतः । विधायार्घ्यादिकं चैव धर्मादिमण्डले यजेत् ॥४६
मध्ये आधारशक्त्यादीन्वरुणं मध्यतो यजेत् । पूर्वादिक्रमतश्चैव इन्द्रादीन्कुलदेवताः ॥४७
पार्श्वद्वये कर्णिकायाः ब्रह्माणं चाप्यनन्तकम् । स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथोक्तैश्च बलिभिर्गन्धपुष्पकैः ॥४८
इन्द्राभिषेकमन्त्रस्य वाद्यं गान्धाररागकम् । अग्नेस्तेजोसीति वाद्यं रागं चैव वराटकम् ॥४९
घनकण्टकमस्यापि वाद्यं रागं तु गुर्जरम् । रक्षोधिपस्य सङ्ग्रामं वैतालं वाद्यमुच्यते ॥५०
नाटकाख्यं तथा रागं वरुणस्यापि मे शृणु । वाद्यं राज्याभिषेकाख्यं रागो वसन्तसंज्ञकः ॥५१
ईशस्य नन्दिघोषाख्यं वाद्यं रागोऽथ कामदः । सुवर्णं दुन्दुभिर्वाद्यं ब्रह्मणः कथितो बुधैः ॥५२
रागो देवी वसन्तश्च अनन्तस्य निबोध मे । वाद्यं गान्धारताराख्यं रागश्चाङ्गारवातकः ॥५३
सोमे घोषे भवेद्वाद्यं जलेशस्य महात्मनः । मालवाख्यो भवेद्रागः पत्राग्रेषु महानपि ॥५४
स्वैः स्वैर्धर्मैश्च सङ्गृह्य दक्षिणे पृथिवीं यजेत् । स्योना पृथिवीति मन्त्रेण उपचारैः पृथग्विधैः ॥५५
मण्डपस्योत्तरे भागे महादेवं प्रपूजयेत् । नमो वृक्षेभ्य इत्यादि नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥५६
(महादेवं द्विभुजं डमरुशूलधरमुमासहितं ध्यात्वा । नमो वृक्षेभ्य इति मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दश्चन्द्रो देवता चन्द्रप्रीतये विनियोगः ॥) गन्धपुष्पादिभिर्भक्त्या भूतानि परितो यजेत् ॥५७

सविता देवता हैं, विनय के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । विद्वान् को भद्र और सुभद्र की सप्रयत्न अर्चा करनी चाहिए । 'मनोन्ना' इस मंत्र के अंतक ऋषि, बृहती छन्द, और निर्ऋति देवता हैं, भूत के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । पश्चात् भूत शूद्धि तथा विधान पूर्वक न्यास करके पुनः अर्घ्य विधान के अनन्तर धर्मादिमण्डल सहित देवों की अर्चा करना बताया गया है ।४४-४६। मध्य भाग में आधार शक्ति आदि, और वरुण तथा पूर्व आदि क्रमशः इन्द्रादि कुल देवों की आराधना करना बताया गया है । कर्णिका के दोनों पार्श्व भाग में ब्रह्मा, और अनन्त की अर्चा उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक बलि एवं गन्ध पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । इन्द्राभिषेक मंत्र प्रयोग में गांधार राग का वाद्य, अग्नेस्तेजोऽसीति' इस मंत्र के प्रयोग में वराटक राग का वाद्य, 'घनकंटक के प्रयोग में गुर्जर राग का वाद्य, और राक्षस नायक के संग्राम में वैताल राग का वाद्य बताया गया है ।४७-५०। वरुण एवं राग का नाटक मैं बता रहा हूँ, सुनो, ! उनका राज्याभिषेक नामक वाद्य और वसंत राग है, उसी भाँति ईश (शिव) का नंदिघोष नामक वाद्य और कामद राग, एवं ब्रह्मा का दुंदुभि वाद्य तथा सुवर्ण राग विद्वानों ने बताया है । अनन्त का देवी राग, वसंत वाद्य, गांधार तारा वाद्य और अङ्गार वातक राग, जलेश (वरुण) का सोम घोष वाद्य, मालव राग है । अपने-अपने धर्मानुसार इनके संग्रह करके 'स्योना पृथिवीति' मंत्र के उच्चारण द्वारा पृथक्-पृथक् उपचारों से पृथिवी पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । मण्डप के उत्तरीय भाग में प्रतिष्ठित महादेव की सविधि पूजा करनी चाहिए 'नमो वृक्षेभ्य इति' इस मंत्र के द्वारा नैवेद्य अर्पित करना बताया गया है । दो भुजा, सुमेरु, शूल धारण किये, एवं उमा महादेव का ध्यान करके चारों ओर भूतों से घिरे हुए उन्हें भक्ति पूर्वक गन्ध पुष्पादि प्रदान करना चाहिए। 'नमो वृक्षेभ्य इति' इस मंत्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, और

वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः । अस्मात्प्रयान्तु मे स्थानाद्ये चान्ये विघ्नकारकाः ॥५८
मधुयुक्तं पायसान्नं वरुणाय निवेदयेत् । पीतं चालोहितं कृष्णं शुक्लं कृष्णं च धूम्रकम् ॥५९
पीतं शुक्लं तथा चित्रं श्वेतमन्नं यथाक्रमम् । बलयस्तु दिगीशानां ग्रहाणामपि ताञ्छृणु ॥६०
क्षीरौदनं ग्रहेशाय शुक्लान्नं शशिने स्मृतम् । लोहितान्नं च भौमाय बुधाय क्षीरषाष्टिकम् ॥६१
पीतमन्नं देवगुरोः शुक्रस्य सिततन्दुलम् । मांसौदनं शनेर्ज्ञेयं राहोश्च कृष्णभक्तकम् ॥६२
धूम्रवर्णं तु ताम्रं तु भौमस्य क्षीरषाष्टिकम् । पिष्टकान्नं शिवस्योक्तं भूतानां माषभक्तकम् ॥६३
एवं बलिं विधायाथ अग्रे कुम्भं निवेशयेत् । प्रदेशद्व्यङ्गुलं नाम अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥६४
बह्वङ्गुलकं विन्यस्य विन्यस्य कलशोपरि । निशावाञ्छितसूत्रैश्च संवेष्ट्य पिहितं तथा ॥६५
शरावं च पुनर्दद्याद्वर्धनीं प्रतिपूजयेत् । अस्त्राय फडिति मन्त्रेण ध्यात्वा देवं जलेश्वरम् ॥६६
सूक्तं यजेद्यथाशक्ति शतमष्टोत्तरं जपेत् । कुण्डेषु विन्यसेन्नागानष्टौ पूर्वादिषु क्रमात् ॥६७
अनन्तं पूजयेत्पूर्वं मानेनाङ्गुलमात्रकम् । निर्मितं काञ्चनेनैव सप्तवर्तिकया सुधीः ॥६८
राजतं वासुकिं नागं यजेत्पत्रान्तरे पुनः । पादमात्रेऽपि चाङ्गुष्ठमात्रं ताम्रस्य भक्ष्यकम् ॥६९
पञ्चाङ्गुलं तोलिकया लौहं कर्कोटकं पुनः । वर्तिकाभिः षोडभिर्बृहत्पर्वप्रमाणकम् ॥७०

चन्द्र देवता हैं, चन्द्रमा के प्रीत्यर्थ यह विनियोग बताया गया है । पुनः वेताल, पिशाच, राक्षस, सरीसृप, अथवा और जो कोई विघ्न करने वाले हैं, वे इस स्थान से अन्यत्र पधारने की कृपा करें । उपरांत शहद समेत खीर वरुण देव के लिए प्रदान कर पीत, रक्त वर्ण, कृष्ण, शुक्ल, पुनः कृष्ण, धूएँ के वर्ण के समान, पीत, शुक्ल, चित्र, एवं श्वेत अन्नों को क्रमशः दिक्पालों के लिए बलि बताया गया है, तदनन्तर ग्रहों के लिए बता रहा हूँ, सुनो ! ग्रहाधिपति (सूर्य) के क्षीर भात, चन्द्र के लिए श्वेत वर्ण के अन्न, भौम के लिए रक्तवर्ण, बुध के लिए क्षीर और साठी चावल, बृहस्पति के लिए पीत वर्ण के अन्न, शुक्र के लिए श्वेत चावल, शनि के लिए मांस भात, राहु के लिए कृष्ण वर्ण के अन्न बलि रूप में प्रदान करने चाहिए । भौम के लिए विशेषकर धूए, एवं ताँबें के वर्ण की भाँति अन्न और क्षीर-साठी चावल, शिव के लिए पीठी, और भूतों के लिए पका हुआ उरद बलि रूप में प्रदान करना चाहिए । इस भाँति विधान पूर्वक बलि प्रदान करने के उपरांत सम्मुख घर में प्रवेश करना बताया गया है, उसमें प्रदेश दो अंगुल का और वह एक सहस्र आठ अंगुल अथवा अनेक अंगुल का होता है, कलश के ऊपर उसे रखकर निशा वांछित सूत्र द्वारा उसके मुख को ढाँक कर और बाँध कर उसके ऊपर शराव (कसोरा) रखकर वर्धनी की भलीभाँति पूजा करनी चाहिए । 'अस्त्राय फट्' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक जलेश्वर देव का ध्यान पूजन करने के उपरांत यथा शक्ति सूक्त पाठ और एक सौ आठ बार जप करके पूर्वादि के क्रम से कलशों आठों नागों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।५९-६७। पूर्व की ओर एक अंगुलि प्रमाण की अनन्त की प्रतिमा का जिसका निर्माण विद्वद्वर द्वारा सुवर्ण की सात बत्तियों (शलाका) से किया गया हो, पूजन सुसम्पन्न करने के अनन्तर पत्रान्तर में स्थित वासुकी नाग की अर्चा सविधान समाप्त करनी चाहिए । चरण अथवा अंगूठे की भाँति ताँबे की मुख समेत दाढ़ (विवस्वान) का निर्माण करके पाँच अंगुल प्रमाण में लोहे की कर्कोटक (नाग) की प्रतिमा में जिसमें अंगुली के लम्बे पार की भाँति सोलह बत्तियाँ लगायी गयी हों, पूजन

शङ्खपालं कुशमयमर्धपादेन निर्मितम् । अङ्गुष्ठमात्रं रक्तेन नागं तालकमात्रकम् ॥७१
अङ्गुष्ठे तोलकं पश्चात्पद्मनागं पुनर्यजेत् । तोलकार्धप्रमाणेन अङ्गुलं परिमाणतः ॥७२
कुर्याच्छैलमयं सम्यग्यथावल्लक्षणान्वितम् । महापद्मस्य वै तस्य पूर्वमानेन निर्मितम्॥७३
ध्यात्वानन्तं चतुर्बाहुं शुक्लसप्तफणान्वितम् । दक्षिणोर्ध्वकरे शङ्खमधिचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥७४
वामोर्ध्वे तु गदापद्मं मध्यस्थाने व्यवस्थितम् । सर्वालङ्कारसंयुक्तमेवं ध्यात्वा यथाविधि ॥७५
सहस्रशीर्षेति मन्त्रेण पूजयित्वा बलिं हरेत् । लाजैश्चतिलसंमिश्रैः क्षीरयुक्तैः पृथग्विधैः ॥७६
चतुर्विधं तथा श्वेतं सर्वालङ्कारसंयुतम् । स्वकीयं प्रजपेत्तत्र आप्यायस्वेति वै ऋचा ॥७७
पिण्याकं नागजिह्वां च तथा सर्जरसं दधि । बलयस्तस्य निर्दिष्टास्तक्षकं लोहितं यजेत् ॥७८
पद्मं टङ्कं दधानं च भुजाभ्यां नागसत्तमम् । मनोन्ना इति मन्त्रेण आज्यं सोमो बलिं हरेत् ॥७९
कर्कोटकं च द्विभुजं पीतवस्त्रधरं यजेत् । पञ्च नद्य इति ऋचा विष्णुक्रान्ता बलिर्भवेत् ॥८०
पीतवस्त्रं च कुलिशं याजयेत्तु चतुर्भुजम् । भुजाभ्यामूर्ध्वभागे तु रक्तपद्मधरं हरिम् ॥८१
शर्करा कुष्ठकं चैव बलिस्तस्य प्रकीर्तितः । द्विभुजं शङ्खपालं च शङ्खाभं शङ्खधारिणम् ॥८२
पद्मासनस्थं पद्माभ्यां हस्ताभ्यां च वरं विभुम् । ध्रुवक्षिति ध्रुवोसीति मन्त्राभ्यां पूजयेत्पृथक् ॥८३
घटौदनं मृङ्गराजं पद्मं च वलयस्तयोः । स्वगृह्योक्तेन विधिना संस्थाप्याग्निं कुशकण्डिकाम् ॥८४
कृत्वा आज्यस्य संस्कारं वारुणं श्रपयेच्चरुम् । जुहुयादष्टबिल्वानि दिगीशानां घृतेन वै ॥८५

सुसम्पन्न करके अर्धपाद के समान कुशमय शंखपाल नाग, रक्तवर्ण एवं अंगूठे के समान नाग, जो तालमात्र के होते हैं, और पश्चात् तोले के प्रमाण से अंगूठे के समान पद्मनाग और एक अंगुल के परिमाण में आधे तोले की शैल की बलि सहायक प्रतिमा का जो उनके समस्त लक्षणों से युक्त हो, पूजन सुसम्पन्न करके चार भुजाएँ, शुक्लवर्ण के सात फणों से युक्त ऊपर के दोनों दाहिने हाँथों में शंख चक्र से विभूषित और बाँयें दोनों हाँथों में गदा पद्म धारण किये, मध्यस्थान के आसन पर प्रतिष्ठित समस्त अलंकारों से अलंकृत उस अनन्त भगवान् का विधान पूर्वक इस भाँति ध्यान करके उपरांत 'सहस्रशीर्षेति' मंत्रोच्चारण करते हुए पूजन एवं लाजा (लावा), तिल मिश्रित क्षीर की चार प्रकार की श्वेत तथा समसाधरण बलि पृथक् विधानों द्वारा प्रदान कर 'आप्यायस्वेति' इस ऋचा का जप करना चाहिए ।६८-७७। पिण्याक (अलसी की खली), नागजिह्वा, सर्जरस (साखू का रस) और दही, यही उन सब के लिए बलि बताया गया है । रक्त वर्ण के तक्षक की प्रतिमा का पूजन करने के उपरांत अपने दोनों हाथो में कमल और रंक लिये हुए उस नाग श्रेष्ठ के लिए 'मनोन्ना इति, इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घी की बलि प्रदान करनी चाहिए पश्चात् दो भुजा, पीत वस्त्र धारण किये उस कर्कोटक की पूजा और 'पञ्च नद्या इति' इस ऋचा द्वारा विष्णुक्रान्ता की बलि प्रदान करना चाहिए ।७८-८०। पीतवस्त्र, कुलिश, और ऊपर के दोनों हांथों में रक्त कमल धारण किये उस चार भुजा वाले हरि नारायण का पूजन सुसम्पन्न करके शक्कर और कुष्ठक की बलि उन्हें सादर समर्पित करना चाहिए । दो भुजा शंख की आभा, शंखधारी, हाँथों में कमल लिये कमलासन पर आसीन उस उत्तम विभु शंखपाल की अर्चा 'ध्रुवक्षिति ध्रुवोऽसीति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पृथक्-पृथक् सुसम्पन्न करके घट भात, भृंगराज और कमल की बलि उन्हें सादर प्रदान करने के अनंतर अपने गृह्योक्त विधान द्वारा अग्नि स्थापन एवं कुश कण्डिका करके घी और हवि की (पंच) वारुणी तथा

एकैकामाहुतिं दद्याद्ग्रहाणां च त्रयंत्रयम् । सुसमिद्भिर्घृतमधुपयोभिर्मिश्रितैः पृथक् ॥८६
पलाशसमिधं पश्चात्प्रतिष्ठामाहुतित्रयम् । शिवस्य परमान्नेन जुहुयादष्टसङ्ख्यया ॥८७
मध्वाज्यगुडमिश्राभिर्लाजाभिर्जुहुयात्पृथक् । लाजान्यथोक्तं वितरेदेकैकामाहुतिं क्रमात् ॥८८
स्थालीपाकस्य जुहुयादेकैकामाहुतिं पुनः । वरुणं च समुद्दिश्य रुद्रं सर्वं पृथक्पृथक् ॥८९
वास्तोष्पतय इति मन्त्रेण पञ्चगव्यो भवेत्ततः । स्योनापृथिवीतिमन्त्रेण व्रीहिमृत्तिकया पुनः ॥९०
वृषाग्न इति मन्त्रेण कया न इति वै पुनः । कुशमूलमृदा चैव चतुष्पथमृदा तथा ॥९१
इमा रुद्रेति मन्त्रेण श्रीश्चेति ऋचा पुनः । पद्मखण्डस्य च मृदा स्नापयेत्सुसमाहितः ॥९२
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण तथा पुष्पोदकेन च । तीर्थोदकेन कृष्णेन त्रिरक्तेन त्रिशीतकैः ॥९३
पञ्चरक्तेन रक्तानां मृदा कैश्च कुशोदकैः । स्वर्णतोयैश्च कलशैरष्टोत्तरशतेन तु ॥९४
तेजसैर्मार्त्तिकैश्चापि अष्टाविंशतिभिस्तथा । यथाशक्ति तु संस्थाप्य कुङ्कुमैश्चन्दनैरपि ॥९५
अन्नं लिप्य ततो मृद्भिर्दद्याच्चैव यथाक्रमम् । सुरासुरेति च ऋचा वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥९६
ध्वजं च धनुनागेति गन्धद्वारेति गोमयम् । धूरसीति ततो धूपं होत्रे चाहुतिदीपकम् ॥९७
सिन्धोरीति च सिन्दूरं स्वभावे रक्तकं तथा । मालतीकुसुमैः कृत्यैर्नागान्संस्थापयेत्ततः ॥९८
धाराभिः शतपुष्पाभिर्गन्धतोयादिभिस्तथा । अथवाश्वत्थपत्रेषु वटपत्रेषु वा सुधीः ॥९९
रोचनाकुङ्कुमैर्वापि संलिख्य तत्र पूजयेत् । प्रक्षिपेत्तत्र मुक्ता हि कलशेषु विनिक्षिपेत् ॥१००

आठ बेल की आहुति प्रदान करनी चाहिए इस भाँति दिक्पालों के लिए घी की एक एक और ग्रहों के लिए तीन-तीन आहुति समिधा की प्रज्वलित अग्नि में घी, शहद, एवं क्षीर मिश्रित पदार्थों को पृथक्-पृथक् प्रदान करने के उपरांत पलाश की समिधा में प्रतिष्ठा के निमित तीन आहुति प्रदान करनी चाहिए तथा शिव के लिए उत्तम अन्न की आठ आहुतियाँ। शहद, घी, एवं गुडमिश्रित लाजा (लावा) की पृथक्-पृथक् एक-एक आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए।८१-८८। पुनः वरुण और रुद्र के लिए बने हुए पाक में से एक-एक आहुति प्रदान कर वास्तोष्पतय इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पञ्चगव्य से, 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र से धान्य की मिट्टी, वृषाग्न इति' और 'कयान इति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक कुश के मूल भाग एवं चौराहे की मिट्टी, तथा 'इमारुद्रेति और 'श्रीश्चतेति' इस ऋचा का उच्चारण करते हुए पादखण्ड की मिट्टी से सावधान होकर स्नान करना चाहिए। पुनः 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र से पुष्पोदक तीर्थोदक कृष्ण, तीन रक्त और तीन शीतकारक, पांच रक्त वर्ण, रक्तवर्ण की मिट्टी, कुशोदक, सुवर्ण जल से, इस प्रकार एक सौ आठ कलश, एवं सुवर्ण और मिट्टी के अठ्ठाइस कलशों के जल से स्नान कराने के उपरांत यथाशक्ति कुंकुम और चन्दन का अनुलेपन करके अन्न और मिट्टी के भी क्रमशः लेप के पश्चात् 'सुरासुरेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक दो वस्त्रों से उसे आवेष्टित करना चाहिए। पुनः 'धनुनागेति' इस मंत्र से ध्वज, गंधद्वारेति' से गोमय 'धूरसीति' से धूप, और होता के लिए आहुति दीपक 'सिन्धोरीति' से सिंदूर' स्वभावानुसार रक्तक और मालती पुष्पों द्वारा नागों को स्थापित करके सात पुष्पों और गन्ध तोय से अथवा पीपल या बरगद के पत्ते पर रोचना कुंकुम से उनकी प्रतिमा बनाकर सविधान पूर्वक पूजन करना चाहिए, पश्चात् उसे कलश में डाल देना बताया गया है।८९-१००।

मण्डपस्योत्तरे देशे शय्यां निर्माय शोभनाम् । राजतं वारुणं तस्यां पादमात्रेण निर्मिताम् ॥१०१
अङ्गुष्ठमात्रं संस्थाप्य ततः पुष्करिणीमपि । स्वर्णपादेन घटितां चतुरस्रां सुशोभनाम् ॥१०२
अङ्गुष्ठमात्रं सम्पूज्य वरुणाय निवेदयेत् । यथाशक्ति ततो गां च सम्भवे पञ्चविंशतिः ॥१०३
सुवर्णं राजतं चैव धान्यं वासो वराटकम् ॥१०४
नागयष्टिं समादाय किञ्चिदुत्तरगां तथा ॥१०५
ततोक्षताय भौमाय कृत्वा चाज्याहुतित्रयम् । लाजान्दधिसमायुक्तं घृतं मधुगुडं तथा ॥१०६
क्षीरं च पिष्टकं चैव शष्कुलीगन्धपुष्पकम् । पञ्चामृतं पञ्चरत्नं गर्भे दद्यात्समाहितः ॥१०७
आचार्यो यजमानेन सुसन्नद्धैश्च भृत्यकैः । गङ्गाजलेशयोर्मध्ये पञ्चघोषपुरः सरम् ॥१०८
अवाप्य च ततो यष्टिं स्थिरो भवति वैरिणा । ध्रुवं ध्रुवेति मन्त्रेण यष्टिमामन्त्रयेत्ततः ॥१०९
यज्ञप्रियासि देवि त्वं सर्वविघ्नविनाशिनी । पाहि मां सर्वपापेभ्य आत्मना त्वं स्थिरीभव ॥११०
इत्यामन्त्र्य यजेच्चैव गायत्रीं च पठेत्ततः । वनस्पतेति विडवामिति मन्त्रं जपेत्पुनः ॥१११
पुनरागत्य तां वेदिं निर्मथ्य वरुणं प्रभुम् । तथा पुष्करिणीं चैव वर्धनीं कलशोदरैः ॥११२
अनिष्टं मार्जयेन्नागानुद्धृत्य कलशं तथा । पाषाणाभ्यन्तरं कृत्वा गोमयैः परिलिप्य च ॥११३
वरुणं पुष्करिण्यां च जलमध्ये विनिक्षिपेत् । नमोस्त्विति च मन्त्रेण बलिं दद्याच्च पायसम् ॥११४
निर्मन्थेत्तत्र यो नागः स्थापयेत्तु यथाविधि । श्रावयेत्तमिमं मंत्रमत्र सन्निहितो भव ॥११५

मण्डप के उत्तर प्रदेश में सौन्दर्य पूर्ण शय्या का निर्माण करके पादमात्र चाँदी की बनी हुई वरुण की प्रतिमा और अंगुष्ठ मात्र की पुष्करिणी की प्रतिमा, जिसके चौकोर निर्माण में सुवर्ण पाद से पूर्ति की गयी हो, उसे (शय्या) पर स्थापित करके पूजन के उपरांत उस पुष्करिणी की प्रतिमा को वरुण के लिए समर्पित करना चाहिए। पश्चात् यथाशक्ति सम्भव हो तो पच्चीस गाय अथवा एक ही गाय, सुवर्ण, चाँदी, धान्य, वस्त्र कौड़ी आदि प्रदान के उपरांत उस नागयष्टि और उत्तरगा को ग्रहण कर भौम के लिए तीन आहुति देने के उपरांत लाजा (लावा) दही समेत घी, शहद, रुद्र, क्षीर, पीठी, पूड़ी, गन्ध, पुष्प, पञ्चामृत, और पञ्चरत्न प्रदान करना चाहिए। आचार्य सन्नद्धभृत्यों के साथ यजमान समेत गंगा और जलेश के मध्य भाग में पाँच ध्वनियों से पूर्ण होकर उस यष्टि को स्थापित करके 'ध्रुवं ध्रुवेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे आमंत्रित करना चाहिए। पुनः हाथ जोड़कर 'देवी ! तुम यज्ञ की प्रिया हो, और समस्त विघ्नों का उन्मूलन करने वाली हो, अतः यहाँ अपनी दृढस्थिति कर सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा करो' इस प्रकार उसे आमंत्रित कर उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत गायत्री, 'वनस्पतेति विडवामिति' इन मंत्रों का जप करना चाहिए।१०१-१११। पश्चात् उस वेदी पर आकर कलश के भीतर वरुण और पुष्करिणी का मंथन करके अनिष्ट शमन और नागों के उद्धारपूर्वक कलश को पाषाण के अभ्यन्तर स्थापित कर गोमय (गोबर) से उसके चारों ओर लेप करके वरुण और पुष्करिणी को जल में डाल देना चाहिए, तदुपरांत 'नमोस्त्विति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक खीर की बलि उन्हें प्रदान कर उस निर्मन्थन किये गये नाग का सविधान स्थापन करके 'पुत्रसंन्निहितो भवेति' ऐसा कहकर हे नाग ! आप इसके स्वामी हैं, इसलिए इन जनों की रक्षा कीजिए, इस भाँति विनम्र प्रार्थना करके 'गायत्रेण त्वा

अत्र स्वामी भवान्नाग रक्षणीयस्त्वया जनः । गायत्रेण त्वा छन्दसामीमन्त्रं संश्रावयेत्पुनः ।।११६
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः पुरतो निक्षिपेद्दिशि । पिधाय नागराजानमृचाभ्यां परिसूत्रकैः ।।११७
सन्निरुद्धयाशु संस्थाप्य बलिं दद्याद्विधानतः । लाजौदनं मनस्तस्य यज्जाग्रत ऋचा जपेत् ।।११८
एवं भूरिति मन्त्रैः स्वैः स्वैरेव तु पृथग्विधैः । स्वासु दिक्षु च संस्थाप्य पूजयेच्च प्रयत्नतः ।।११९
पूर्वभागे पुष्करिण्यां हरिताभं सवज्रकम् । हलग्रहीत मन्त्रेण न्यस्य लाजाहुतिं कुले ।।१२०
प्रातारमिति मन्त्रेण अग्नौ विन्यस्य मौक्तिकम् । मनः शिलां प्रवालं च अग्निमीडेति सम्पठेत् ।।१२१
वैश्वानरेण मन्त्रेण पठेल्लाजाहुतिं पुनः । दद्याद्ये ते शतमन्त्रेण पश्चिमे कार्पटिकं न्यसेत् ।।१२२
शालिबीजेन सहितं कया न इति मन्त्रकम् । वरुणस्यो इति मन्त्रेण दद्यादष्टादशाहुतीः ।।१२३
उत्तरे रोचनां कन्यां तथैव गौरसर्षपम् । कुङ्कुमेन समायुक्तं कुविदण्डमृचा पठन् ।।१२४
विन्यस्य तेन मन्त्रेण प्रदद्यादाहुतिं पुनः । ऐशान्यां मन्द्रकं रङ्गमीशावा इति संपठन् ।।१२५
संस्थाप्याज्याहुतिं दद्यात्तमीशान ऋचा पुनः । आसद्यैर्मन्त्रसंयुक्तैर्देवं नारायणं यजेत् ।।१२६
वरुणात्मकं ततो ध्यात्वा ततो नीराजनं पठेत् । जानुभ्यामवनिं गत्वा पठेज्ज्ञानामृतं स्तवम् ।।१२७
धर्मो वंशं ततः कुर्यादुत्सर्गान्ते विधीयते । ततो देवीं पुनः कृत्वा दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।।१२८
सर्वसत्त्वोपकाराय समुत्सृजेत्तु वै जनम् । उत्सृष्टं सर्वसत्त्वेभ्यो दृश्यते जलमूर्जितम् ।।१२९
रमन्तीं सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः । वरुणं च ततो देवं पुष्करिण्यां च निक्षिपेत् ।।१३०
जले वरुणमन्त्रेण मत्स्यादीन्प्रक्षिपेत्ततः । पक्षिणश्च शुभांस्तत्र भेकं कूर्मं च कर्दमम् ।।१३१

छन्दसामी' इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। पुनः गन्ध पुष्प आदि से उसकी अर्चा सुसम्पन्न करके सम्मुख दिशा में उसका प्रक्षेप तथा ऋचाओं द्वारा नागराजाओं को ढँककर और सूत्रों से चारों ओर बाँधकर उन्हें विधान पूर्वक बलि रूप में लावा भात प्रदान करके 'यज्जाग्रत इति' इस ऋचा का पाठ करे। इस प्रकार पृथ्वी आदि का अपने अपने मंत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् अपनी अपनी दिशाओं में प्रयत्न पूर्वक स्थापन पूजन करना चाहिए।११२-११९। पुष्करिणी के पूर्वभाग में वज्रसमेत उस हरिद्वर्ण की 'हलग्रहीत' मन्त्र द्वारा कुल में स्थापित लावा की आहुति देनी चाहिए, पश्चात्, अग्नि में उस मुक्ता को रखकर मनः शिला और प्रवाल भी साथ में लेकर 'अग्नि मीलेति- मंत्र का उच्चारण करते हुए अग्नि के मंत्र से लावा की आहुति पुनः प्रदान करनी चाहिए। तदुपरांत 'ये ते शतं' मन्त्र द्वारा पश्चिम में कटिवस्त्र प्रदान के उपरांत शालिबीज समेत 'कयानेति' 'वरुणस्यो' इति इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अठ्ठारह आहुति प्रदान करके उत्तर भाग में स्थित गोरोचन, कन्या, श्वेत वर्ण की राई और कुंकुम समेत उन्हें 'कुविदंडमिति' इस ऋचा के पाठ पूर्वक स्थापित कर पुनः आहुति प्रदान करना चाहिए। ईशान कोण में स्थित मंडक की 'रंगमीशावा इति' ऐसा उच्चारण करते हुए स्थिति करके 'तमीशान इति' इस ऋचा को पढ़ते हुए घी की आहुति प्रदान करनी चाहिए। पश्चात् 'आसद्यैरिति' मंत्र के उच्चारण से नारायण देव की अर्चा सुसम्पन्न करके वरुण का ध्यान पूर्वक उन्हें नीराजन प्रदान करना चाहिए, अनन्तर स्तोत्र द्वारा आराधना करे—उत्सर्ग के अन्त में धर्म, वंश की अभिवृद्धि कामना करते हुए देवी के लिए तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिए—आप समस्त जीवों के उपकारार्थ इस मनुष्य की (मेरी) रचना की है, (इसीलिए उसने) सर्वप्राणियों के हितार्थ इस जल को अर्पित किया है, सम्पूर्ण प्राणियों को इस जल में स्नान एवं पान कराने वाली उस देवी को नमस्कार है, इस प्रकार प्रार्थना के उपरांत वरुण देव

शैवालं प्रक्षिपेच्चैव दक्षिणां तदनन्तरम् । सुवर्णं धान्यरत्नं च आचार्याय पृथग्ददेत् ॥१३२
ऋत्विग्भ्यश्च पृथग्दद्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्राह्मणेभ्यो गायनेभ्यो वसुभ्यश्च पृथक्पृथक् ॥१३३
नित्यं समाप्य विधिवद्दद्यात्पूर्णाहुतिं पुनः । दद्यादर्घ्यं च सूर्याय हस्तास इति सञ्जपन् ॥१३४
ततः प्रदक्षिणावर्तं संवेष्टय क्षीरधारया । प्रासादपक्षे प्रासादमारामे अथ मण्डपम् ॥१३५
शताधिधारया शक्त्या त्रिवारं ब्राह्मणैः सह । विकीर्य लाजकुसुमं व्रीहींश्चैव कपर्दकान् ॥१३६
तूर्यघोषेण महता ततो विप्रपुरःसरम् । यजमानः सपत्नीकः प्रविशेत्स्वगृहं पुनः ॥१३७
ततो गृहार्चनं कृत्वा ब्राह्मणानथ भोजयेत् । कुमारींश्च कुमारांश्च दीनान्धकृपणानपि ॥१३८
नारायणं ततो दद्याद्विप्रमुद्दिश्य भक्तितः ॥१३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे विंशोऽध्यायः ।२०

इति मध्यमपर्वणि द्वितीयभागः समाप्तः ।२

अथ तृतीयोभागः

प्रथमोऽध्यायः

उपवनादिप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

आरामादौ विशेषो यो वक्ष्यतेऽत्र मयाधुना । मण्डलं कारयित्वा तु चतुरस्रं समं शुभम् ॥१

को उस पुष्करिणी में डाल देना चाहिए, पुनः उस जल में वरुण मन्त्र द्वारा मछलियों आदि तथा कल्याण मूर्ति पक्षी, मण्डूक, कछुवे, कर्दम (कीचड़) और शैवाल (सेवार) छोड़ना चाहिए। उसके अनन्तर दक्षिणा का प्रक्षेप करके आचार्य के लिए सुवर्ण, धान्य, रत्न की दक्षिणा पृथक् से देनी चाहिए। ऋत्विग्गण को भी अपने धनानुसार पृथक्-पृथक् प्रदान कर ब्राह्मण, गायक और वसुओं के लिए पृथक्-पृथक् देकर नित्य कर्म की समाप्ति के अनन्तर पूर्णाहुति प्रदान करके 'हस्ता स इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए। उसके उपरांत प्रदक्षिणा के क्रम से क्षीर धारा से जिसमें सैकड़ों धारा निकलती हुई दिखाई दें महल के पक्ष में महल, उपवन पक्ष में मण्डप को ब्राह्मणों समेत तीन बार आवेष्टित (घेर) कर देना चाहिए, पुनः चारों ओर लावा, पुष्प, व्रीही, और कौड़ियों को बिखेरते हुए तुरुही वाद्य के घोष समेत ब्राह्मणों को आगे कर उस महारम्भ के साथ पत्नी समेत यजमान अपने भवन में प्रवेश करे। पश्चात् गृहपूजन करके ब्राह्मण भोजन के उपरांत कुमारी, कुमार, दीन, अन्धे, कृपण को भी सन्तुष्ट करके उस नारायण की प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित कर देमा चाहिए।१२०-१३९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में मध्यमविधान वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।२०।

तृतीय भाग

अध्याय १

उपवन आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—उपवन आदि की प्रतिष्ठा में जो विशेषता कही गयी है, मैं वही बताने जा रहा हूँ, शुभ

ऐशान्यां कलशे देवं तत्र नाथं प्रपूजयेत् । मध्यमे कलशे पूजा ग्रहाणां च ततः परम् ॥२
स्वदिक्षु द्वारदेशे तु पश्चिमद्वारदेशयोः । ब्रह्माणं चाप्यनन्तं च मध्यतो वरुणं यजेत् ॥३
वरुणं चोदकुम्भस्थं भूतशाखासु शोभनम् । तेन चावाहयामि त्वां विभो स्वर्गाय वै भव ॥४
पूर्वगं मन्दरं स्थाप्य तोरणोपरि सत्तमाः । विष्वक्सेनं समभ्यर्च्य अर्चनं स्वर्गसंयुतम् ॥५
कर्णिकायां वासुदेवं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापद्मविभूषितम् ।६
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुकुटाद्यैरलङ्कृतम् । दक्षिणे कमला तस्य वामे पुष्टिव्यवस्थितिः ॥७
सिद्धकिन्नरयक्षाद्यैः स्तूयमानं सुरासुरैः । सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या विष्णोरराट इत्यृचा ॥८
दले सङ्कर्षणादींश्च विमलाद्याश्च नायिकाः । सम्पूज्य धूपदीपाद्यैरुपहारैरनुत्तमैः ॥९
घृतप्रदीपो देवस्य गुग्गुलुः सरलस्तथा । धूपो देवबलिः क्षीरं परमान्नं घृतप्लुतम् ॥१०
ध्यायेत्सोमं कर्णिकायां दक्षिणे पद्मसंस्थितम् । शुक्लाभं द्विभुजं शान्तं केयूराद्युपशोभितम् ॥११
प्रशस्यं देवयक्षाणां वरदाभयहस्तकम् । इमं देवा इति ऋचा उपचारैः पृथग्विधैः ॥१२
पूजयेच्च निशानाथं घृतभक्तं निवेदयेत् । इन्द्रं जयन्तमाकाशं वरुणं चाग्निमेव च ॥१३
ईशानं तत्पुरुषं चैव वायुं पूर्वादिदिक्ष्वपि । कर्णिकाया वामभागे वरदाभयहस्तकम् ॥१४

एवं चौकोर मण्डल बनाकर उसके ईशान कोण में स्थित कलश में प्रधान देव और मध्य कलश में ग्रहों की उत्तम अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१-२। अपने अपने दिशाओं में, दरवाजे, एवं उसके पार्श्व भाग में पश्चिम द्वार और उस दिक्पाल के मध्य ब्रह्मा, अनन्त तथा मध्य में स्थित वरुण देव की पूजा करनी चाहिए।३। घटोदक में स्थित वरुण देव का, जो भूतशाखाओं में परमसुशोभित हैं, मैं स्वर्ग प्राप्त्यर्थ आवाहन कर रहा हूँ।४। उत्तमवृन्द ! पूर्व की ओर मन्दर का स्थापन करके तोरण के ऊपर विष्वक्सेन की अर्चा स्वर्ग लाभ के लिए करनी चाहिए। कर्णिका (पंखुडियों) में शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति, चार भुजाएँ, क्रमशः शंख, चक्र, गदा, तथा पद्म से विभूषित, श्रीवत्स एवं कौस्तुभ से अलंकृत हृदय स्थल, तथा मुकुट आदि से सुशोभित वासुदेव की पूजा भक्ति पूर्वक करनी चाहिए, जिसके दक्षिणभाग में कमला, बाँये पुष्टि व्यवस्था, तथा सिद्ध किन्नर यक्ष, सुर और असुर द्वारा स्तुति सम्पन्न है। विधान एवं भक्ति पूर्वक 'विष्णोरराट इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत दल में स्थित संकर्षणादि और विमला आदि नायिकाओं का पूजन करके धूप, दीप एवं उत्तम उपहार प्रदान करना चाहिए।५-९। घी का दीपक, गुग्गुल, धूप, देवबलि, क्षीर और घी में डूबे हुए उत्तमान्न, उस देव के लिए प्रदान करना चाहिए। उस कर्णिका (पंखुड़ी) के दक्षिण भाग में कमलासन पर स्थित उस सोमदेव का जो शुक्लवर्ण की प्रभा, दो भुजा, शान्त स्वरूप, और केयूर आदि आभूषणों से विभूषित हैं, एवं देव-यक्षों में श्रेष्ठ वरद तथा अभय दान देने वाले है, इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पृथक् विधान तथा उपचारों द्वारा ध्यान-पूजन करना चाहिए। इस भाँति निशानाथ चन्द्रमा की अर्चा सुसम्पन्न करके घृत तक्र उन्हें अर्पित करने के उपरान्त इन्द्र, जयन्त, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष और वायु देवता का पूर्वादि दिशाओं में स्थापन पूजन करते हुए कर्णिका के बाँये भाग में वर और अभय दायक हाथ, दो भुजा, एवं शुक्ल वर्ण वाले महादेव की सविधान अर्चा करके 'त्र्यम्बकमिति' इस मंत्र द्वारा

द्विभुजं शुक्लवर्णं च महादेवं प्रपूजयेत् । त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण दद्याच्च घृतपिष्टकम् ॥१५
वासुदेवाय देवाय जुहुयादष्ट आहुतीः । परमान्नेन सौम्यस्य जुहुयादष्टविंशतिम् ॥१६
शिवाय परमान्नेन जुहुयादाहुतिद्वयम् । गणेशस्य तथाज्येन दद्यादेकाहुतिं बुधः ॥१७
ब्रह्मणो वरुणस्याथ एकैकामाहुतिं तथा । ग्रहाणां स्वोक्तसमिधा दिगीशानां पृथक्पृथक् ॥१८
एकैकामाहुतिं दद्यादाज्येन च यथाक्रमम् । कराली धूमली श्वेता लोहिता कनकप्रभा ॥१९
अतिरिक्ता पद्मरागा वह्निजिह्वा प्रकीर्तिताः । तासां मन्त्राः क्रमेणैव सादिवासान्त बिन्दवः ॥२०
यकारस्थाश्च विज्ञेया अष्टस्वरविभूषिताः । घृतमध्वाज्यसिक्ताभिर्होमयेच्च पृथक्पृथक् ॥२१
एकैकामाहुतिं दद्याद्दत्वा चैव समाहितः । अग्नीषोमं तथेन्द्रं च पृथिवीमन्तरिक्षकम् ॥२२
स्थालीपाकेन जुहुयान्मधुक्षीरयवान्वितम् । एकैकामाहुतिं तेषां समुद्दिश्य पृथक्पृथक् ॥२३
यावकैर्गंधपुष्पाद्यैरर्चित्वा सपरावकम् । जपस्व त्वं महाभाग श्रद्धया चैव वाग्यतः ॥२४
जापको विधिनानेन प्रजपेत्तत्र रुद्रकम् । मङ्गलं परमान्नं च सौरसूक्तं तथा जपेत् ॥२५
ततः सम्मृज्य विधिना स्नापयित्वा यथाविधि । यूपं गर्भे विनिक्षिप्य तत्र कुर्याद्विचक्षणः ॥२६
ध्वजानारोप्य प्रान्तेषु दद्यात्सोमं वनस्पतिम् । कोऽदादिति पठित्वा च वृक्षाणां कर्णवेधनम् ॥२७
सूच्या सुतीक्ष्णया कार्यं द्विपात्रे वामदक्षिणे । नवग्रहाणां तृप्त्यर्थं यावकं लड्डुकं तथा ॥२८
पिष्टकं च पृथग्दद्यात्कुमारीबालकेषु च । निशारञ्जितसूत्रेण[1] संवेष्ट्य च सचूर्णकम् ॥२९

उन्हें घी में डूबी हुई पीठी सादर समर्पित करनी चाहिए।१०-१५। परमोत्तम देव वासुदेव के लिए उत्तमान्न की आठ आहुति, बुध के लिए अट्ठाइस, शिव के लिए दो और गणेश के लिए घी की एक आहुति प्रदान करनी चाहिए। उसी भाँति ब्रह्मा और वरुण के लिए एक एक तथा ग्रहों के लिए उपरोक्त समिधा की प्रज्वलित अग्नि में एक-एक एवं दिगीश्वरों के लिए भी उसी प्रकार पृथक्-पृथक् एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिए। कराली, धूमली, श्वेता, लोहिता, कनकप्रभा, अतिरिक्त और पद्मरागा ये अग्नि की जिह्वाएँ हैं, इनके मंत्र भी क्रमशः बता दिये गये हैं, ये यकारस्थ और आठों स्वरों से सुशोभित हैं, इन्हें पृथक्-पृथक् घी, शहद, और घी में भीगे हुए पदार्थों की आहुति प्रदान करनी चाहिए।१६-२१। इस प्रकार इन्हें एक-एक आहुति प्रदान करने के अनन्तर अग्निव्योम, इन्द्र, पृथिवी और अन्तरिक्ष के लिए बने हुए पाक द्वारा शहद, क्षीर मिश्रित जवा की एक एक आहुति पृथक्-पृथक् प्रदान करके हलुवा, गन्ध इत्यादि से अर्चा सुसम्पन्न करते हुए उस पुण्यात्मा व्रती को मौन होकर श्रद्धापूर्वक सपरावक का जप करना चाहिए। पुनः उस जप करने वाले को इसी विधान द्वारा मांगलिक परमान्न और सौर सूक्त का पाठ करना आवश्यक होता है। पश्चात् सविधान मार्जन एवं स्नान कराकर उस बुद्धिमान् को गर्भ में धूपस्तम्भ का स्थापन करना चाहिए।२२-२६। प्रान्तों में ध्वजाओं के आरोहण पूर्वक सोमवनस्पति को प्रदान करते हुए 'कोऽदादिति' ऐसा कहकर अत्यन्त तीक्ष्ण सूची (सूई) द्वारा दाहिने बाँयें दोनो पत्तों में वृक्षों का कर्णवेध संस्कार सुसम्पन्न करना चाहिए। उपरांत नवग्रहों के तृप्त्यर्थ हलुआ लड्डू और पीठी कुमारियों और बच्चों को पृथक्-पृथक् प्रदान करना बताया गया है। हरिद्रा के रंग में रंगे हुए सूत्रों से

---

१. हारिद्रसूत्रेण।

प्रदद्याद्दोहकं चैव वृक्षाणां विधिपूर्वकम् । प्राशयेच्चैव तान्वृक्षानिमं मन्त्रमुदाहरेत् ।।३०
वृक्षाग्रात्पतितस्यापि आरोहात्पतितस्य च । मरणे वास्थिभङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते ।।३१
धेनुं सुवर्णं धान्यं च आचार्याय प्रदक्षिणम् । दत्त्वा च ऋत्विजे दद्यात्सुवर्णं रजतं तथा ।।३२
धान्यं च ब्रह्मणे दद्याद्घृतभोज्यं सशर्करम् । इष्टां च दक्षिणां दद्यात्सदस्याय तथैव च ।।३३
अधिकलशं समानीय स्नानं कुर्याद्विधानतः । कृत्वा चैवानिशं कुर्याद्दद्यात्पूर्णाहुतिं तथा ।।३४
सर्वौषध्युदकं प्रोक्ष्य त्रिवारं क्षीरधारया । संवेष्ट्य त्रिश्चतुर्वारं ब्रह्मघोषपुरःसरम् ।।३५
गृहं व्रजेत्ततो विप्रैः कुर्याच्चैव गृहार्चनम् । ततो विशेषं वक्ष्यामि वरा एवेदमित्यृचा ।।३६
बलं कामं हयग्रीवं माधवं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं धनाध्यक्षं ततो नारायणं यजेत् ।।३७
दधिभक्तं बलिं दद्यात्पञ्चगव्यसमुद्भवम् । एवं सम्पूज्य विधिना दक्षिणे पृथिवीं यजेत् ।।३८
शुद्धकांञ्चनवर्णाभां वराभयकरां शुभाम् । मण्डूकस्थां च द्विभुजां सर्वालङ्कारसुन्दरीम् ।।३९
स्योना पृथिवीति मन्त्रेण पूजयित्वा यथाविधि । पायसं मधुसंयुक्तं बलिं दद्यात्सशर्करम् ।।४०
वामतो विश्वकर्माणं शुद्धस्फाटिकसन्निभम् । शूलटङ्कधरं शान्तं संयजेदुपचारकैः ।।४१
विश्वन्निति ऋचां तं च बलिं च मधु पिष्टकम् । दद्याज्जपेच्च कौष्माण्डं सूक्तं पौरुषमेव च ।।४२
मधुपायसयुक्तेन होमानष्टौ विधाय च । एकैकं होमयेत्पश्चात्पृथिवीहोमकर्मणि ।।४३
समुत्सृज्य ततः सेतुमिमं मन्त्रं पठेत्ततः । पिच्छिले पतितानां च उच्छ्रितेनाङ्गसङ्गतः ।।४४

उस चूर्ण समेत को बाँधकर उसी द्वारा वृक्षों का दोहक और प्राशन कर्म इसी विधान से सुसम्पन्न करते हुए इस भाँति मन्त्र प्रार्थना करनी चाहिए—वृक्ष के अग्रभाग एवं उस पर चढ़ते समय उस पर गिर कर हड्डी टूट जाये अथवा मृत्यु हो जाये, तो उसके निर्माण करने वाले को उस पाप का भागी न होना पड़े। इसके अनन्तर आचार्य के लिए दक्षिणा के रूप में धेनु, सुवर्ण, धान्य प्रदान कर ऋत्विक् के लिए सुवर्ण और चाँदी, ब्रह्मा के लिए धान्य, शक्कर समेत घी का भोजन तथा अन्य सदस्यों के लिए उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करके प्रधान कलश मंगाकर विधान पूर्वक स्नान और पूर्णाहुति करनी चाहिए।२७-३४। सम्पूर्ण औषधि समेत घटोदक से तीन बार प्रोक्षण एवं क्षीर धारा से तीन या चार बार मण्डल बनाकर ब्रह्मध्वनि के साथ ब्राह्मणों को आगे करके गृह प्रवेश करने के अनन्तर गृह-पूजा करनी चाहिए। इसमें कुछ विशेष बातों को बता रहा हूँ, बल, काय, हयग्रीव, माधव पुरुषोत्तम, वासुदेव, धनाधिप (कुबेर) और नारायण की अर्चा 'वरा एवेदमिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करके पञ्चगव्य एवं दही से बने हुए पदार्थ की बलि प्रदान करनी चाहिए। इस भाँति विधान पूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करने के अनन्तर शुद्ध सुवर्ण की भाँति प्रभा, वर एवं अभय प्रदान करने वाली, शुभ मूर्ति, मेढ़क पर स्थित, दो भुजा तथा समस्त अलंकारों से परम सौन्दर्यपूर्ण उस पृथिवी की अर्चा सविधान 'स्योनापृथिवीति' इसमंत्र से उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् दूध, शहद और शक्कर समेत उन्हें बलि प्रदान करके बाँयें भाग में स्थित शुद्ध स्फटिक की भाँति, शूल और टंकधारी तथा शांत उस विश्वकर्मा का पूजन उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। पुनः 'विश्वन्निति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक शहद और पीठी की बलि प्रदान कर कौष्माण्ड और पुरुष सूक्त का पाठ करना चाहिए। उपरांत शहदमिश्रित खीर की आठ आहुति प्रदान पूर्वक पश्चात् सभी के लिए एक एक आहुति उस पृथिवी हवन कर्म में प्रदान

प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् । तेतोऽस्य प्रबन्धस्य श्रद्धया परया तथा ।।४५
ये चात्र प्राणिनः सन्ति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः । वेदागमेन यत्पुण्यं यथैव हि समर्पितम् ।।४६
गर्तं कृत्वा पञ्चरत्नं संस्थाप्यं तदनन्तरम् । संस्थाप्य च ततो यूपं सम्पूज्य च यथाविधि ।।४७
आचार्याय ततो दद्यादिष्टां च वरदक्षिणाम् । पूजयेद्द्विजदाम्पत्यं लाजाभिः परिपूजितम् ।।४८
पोटिकां च ततः शय्यां दद्यादिष्टार्थसिद्धये । सेतौ वृक्षस्थिता ये स्यू रोपयेत्कदलीं शुभाम् ।।४९
तेषां पार्श्वद्वयेप्येवमारामे च पृथक्पृथक् ।।५०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे उपवनादिप्रतिष्ठावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः
गोप्रचारवैशिष्ट्यवर्णनम्
सूत उवाच

गोप्रचारं पुनर्वक्ष्ये विशेषं तत्र मे शृणु । यजेद्विष्णुं सलक्ष्मीकमुपचारैः पृथग्विधैः ।।१
उपचारैश्च ब्रह्माणं रुद्रं चैव करालिकाम् । वराहं सोमसूर्यं च महादेवं यथाक्रमम् ।।२
होमं चैव यथा विष्णोः कमलायास्त्रयंत्रयम् । आज्येन क्षेत्रपालानामन्येषां मधुमिश्रितैः ।।३
एकैकामाहुतिं दद्याल्लाजादिषु पृथक्पृथक् । समुत्सृज्य विधानेन यूपं संस्थाप्य पूजयेत् ।।४

करना चाहिए ! अनन्तर उस सेतु के त्याग पूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करे कि किसी के (कीचड़ से) फिसल कर या ऊँचाई से गिरने पर मुझे इस सेतु प्रतिष्ठा कर्म करने के नाते धर्म की ही प्राप्ति हो पातक की नहीं । क्योंकि श्रद्धा पूर्वक मैंने उस सेतु का प्रबन्ध किया है । जो कोई प्राणी सेतु रूप से यहाँ स्थित हैं, वे रक्षा एवं वेदागम द्वारा प्राप्त पुण्य प्रदान करें इसके उपरांत गड्ढा बनाकर उसमें पञ्चरत्न समेत यूप स्तम्भ को प्रतिष्ठित करके यथाविधान उसकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए, अनन्तर आचार्य के लिए उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान कर लावा द्वारा द्विज दम्पती की पूजा और अपनी इष्ट सिद्धि के लिए पोटली समेत शय्यादान करके उस सेतु पर स्थित वृक्षों एवं उपवन के दोनों पार्श्वों में पृथक्-पृथक् केला के वृक्ष लगाने चाहिए ।३५-५०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २
गो प्रचार के वैशिष्ट्य का वर्णन

सूत बोले—मैं उस गोप्रचार को पुनः बता रहा हूँ, उसकी विशेषता को भी सुनो ! लक्ष्मी समेत विष्णु की अर्चा पृथक्-पृथक् उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् उपचार द्वारा ब्रह्मा, रुद्र, करालिका, वराह, चन्द्र, सूर्य और महादेव का पूजन क्रमशः सुसम्पन्न करके यथाविधान विष्णु और कमला के लिए खीर की तीन-तीन आहुति प्रदानपूर्वक क्षेत्रपालों के लिए शहद मिश्रित लावादि की एक-एक पृथक्-पृथक् आहुति देने के अनन्तर विधानपूर्वक यूप का स्थापन और पूजन करना चाहिए

त्रिहस्तमात्रं रचितं कुर्यान्नागफणान्वितम् । रोपयेदेकहस्तेन गर्भे होमं प्रयोजयेत् ।।५
लाजासंयुक्तविधिना विश्वेषामिति सञ्जपन् । नागाधिपतये तद्वदच्युताय तृतीयकम् ।।६
भौमायेति चतुर्थं च ततो यूपं निवेदयेत् । मयि गृम्णामीति सम्पूज्य यूपं च रुद्रदैवतम् ।।७
सम्पूज्य रुद्रं पञ्चाङ्गं धान्यं वस्त्रं च दक्षिणान् । आचार्याय तथा होत्रे अन्येषामिष्टदक्षिणाम् ।।८
गोप्रचारे च शैलेयं यूपं हस्तद्वयान्वितम् । पञ्चशीर्षान्वितं कुर्याद्धस्तमात्रं प्ररोपयेत् ।।९
यूपं च चैत्रवृक्षं च कुण्डलीमठपीठिकाम् । संस्पृश्याचम्य वै विप्राः प्राणायामेन शुध्यति ।।१०
चतुर्हस्तप्रमाणेन शतकुण्डेन सम्मितम् । तदर्धं च कनिष्ठेन अष्टकाष्टाधिकं भवेत् ।।११
भूमौ रत्नं च संस्थाप्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् । शिवलोकस्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः ।।१२
गोभ्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना । एवं निदेदयेद्यस्तु गोप्रचारं समाहितः ।।१३
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते । यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च ।।१४
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । पूर्वे सीमां निबध्नीयात्कृत्वा वृक्षस्य रोपणम् ।।१५
सेतुं कृत्वा दक्षिणतः पश्चिमेऽङ्गाररोपणम् । उत्तरे खानयेत्कूपं तस्य सीमां न लङ्घयेत् ।।१६
ततः सहस्रधारां च शस्येन परिपूरिताम् । प्रदद्याद्वा ततो विप्राः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१७
नगरग्रामपूर्वे वा उत्तरे पश्चिमेऽपि वा । न कुर्यादग्निदिग्भागे दक्षिणां वा ततः शुभाम् ।।१८

।१-४। तीन हाथ की नाग के फल की भाँति उसकी रचना करके एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट करने के उपरांत हवन कर्म प्रारम्भ करना चाहिए, 'विश्वेषामिति' इसका उच्चारण करते हुए लावा मिश्रित की आहुति विधान पूर्वक नागाधिपति, अच्युत और भौम के लिए प्रदान करके 'मयि गृम्णामिति' इस मंत्र के द्वारा पूजन और आहुति उस रुद्र देवता वाले यूप के लिए समर्पित करनी चाहिए ।५-७। पञ्चांग समेत रुद्र की उपासना करके आचार्य के लिए धान्य वस्त्र समेत अभीष्ट दक्षिणा प्रदान पूर्वक होता के लिए भी उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । गो-प्रचार कर्म में शिलाखण्ड के बने हुए यूप-स्तम्भ के जिसका आकार प्रकार दो हाथ का एवं पाँच शिखर बने रहते हैं, एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट कर उसका स्थापन-पूजन करना चाहिए । विप्रवृन्द ! यूप, चैत्रवृक्ष, कुण्डली मठ-पीठिका के स्पर्श करने पर आचमन और प्राणायाम द्वारा शुद्धि होती है । शत कुण्डी में उसे चार हाथ के प्रमाण का बनाना चाहिए, भूमि में रत्न स्थापित करके इस मंत्र का उच्चारण करना बताया गया है । शिवलोक और गौएँ समस्त देवों की पूजनीया हैं, इसलिए कल्याणार्थ मैंने गौओं के लिए इस भूमि का दान किया है, इस भाँति जो मनुष्य गो प्रचार (चारागाह) का विधान सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है । तृण, गुल्मों की जितने दिनों तक पृथिवी तल पर स्थिति रहती है, उतने सहस्र वर्ष वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । पूर्व प्रदेश में सीमा-सीमित करके वृक्ष रोपना चाहिए । दक्षिण में सेतु-निर्माण पूर्वक पश्चिम में अग्निशाला और उत्तर की ओर कूप-निर्माण करके इसकी सीमा पार न करनी चाहिए ।८-१६। विप्रवृन्द ! पश्चात् सहस्रधारा का, जो शस्य श्यामल पूर्ण हो, जो दान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । नगर-गाँव के पूर्व, उत्तर, पश्चिम अथवा अग्निकोण और दक्षिण में सम्बद्ध गो-प्रचार न करना चाहिए । गो-प्रचार का खनन अथवा उद्वाहन करने वाले मनुष्य का कुल-

गोप्रचारं खनेद्यस्तु वाहयेद्वा कथञ्चन । कुलानि पातयत्याशु ब्रह्महत्याश्च विन्दति ।।१९
स्वर्गं नयति गोचर्म सम्यग्दत्तं सदक्षिणम् । यावत्तृणानि तद्भूमौ सप्तसंख्यानि संख्यया ।।२०
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे विष्णुलोकान्न तच्च्युतिः ।।२१
महायागावसाने च यो न तर्पयति द्विजान् । निरर्थकं तस्य कर्म प्रयासफलमात्रकम् ।।२२
वृषोत्सर्गावसाने तु प्रदद्याद्यो महीं द्विजाः । न याति विप्राः प्रेतत्वं तस्माद्विप्रादमत्सराः ।।२३
तत्र मानं पृथक्चैव भृगुतात्र समागताः । अमानेन ददेद्यस्तु नरकं याति रौरवम् ।।२४
गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः । तद्गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम् ।।२५
गोप्रचारस्य देवस्य ब्राह्मणस्य च भो द्विजाः । यावत्कालावधेः सीमा अतीते नास्ति पातकम् ।।२६
मण्डपं पूजयेत्सूर्यं वासुदेवसमन्वितम् । होमस्तिलगुडाभ्यां च अष्टावष्टौ पृथक्पृथक् ।।२७
देहि मेति च मन्त्रेण विन्यसेन्मण्डपोपरि । यत्नसिद्धं ततः कृत्वा शुक्लं घटचतुष्टयम् ।।२८
समुत्सृजेज्जपेत्पश्चात्सौरं सूक्तं च वैष्णवम् । वटपत्रे तु संलिख्य चित्रं निर्माय वा पुनः ।।२९
दिक्पालान्संन्यसेत्स्वासु स्वासु दिक्षु विचक्षणः । बद्धाञ्जलिः पठेन्मन्त्रानिन्द्रादीनां यथाक्रमम् ।।३०
धर्मसंस्थापनार्थाय आत्मनो विभवाय च । वज्रहस्तो महेन्द्र त्वं धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३१
भो वह्ने मेषवाहस्त्वं चतुःभृङ्गविराजित । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३२
यम त्वं दक्षिणाशेष महामहिषवाहन । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३३

नाश हो जाता है, और उसे ब्रह्म-हत्या का दोष भागी होना पड़ता है। दक्षिणा समेत गोचर्म के समान भूमि का दान करने से भी स्वर्ग प्राप्ति होती है, उस भूमि में जितने दिन हरियाली रहती है, उसके सात गुने पर्यंत समय तक स्वर्ग में निवास रहता है, पश्चात् विष्णुलोक से उसकी कभी च्युति नहीं होती है।१७-२१। महायाग की समाप्ति में जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट नहीं करता है, उसका किया हुआ कर्म निष्फल एवं केवल प्रवास करना मात्र फल होता है। विप्रवृन्द ! वृषोत्सर्ग के समाप्ति में जो मनुष्य पृथिवी दान करता है, उसको कभी प्रेत नहीं होना पड़ता है, उसमें मान का पृथक् विधान बताया गया है, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि मानहीन पूर्वक उस कर्म की समाप्ति करने से रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है। जिस प्रदेश में सौ गायों के साथ एक वृष (सांड) भी स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता है, उसे गोचर्म, कहते हैं और वही सम्पूर्ण पापों का नाशक होता है। द्विजवृन्द ! गो प्रचारक किसी भी ब्राह्मण देव को उसके समयावधि के भीतर उसकी सीमा पार करने में दोष भागी नहीं होना पड़ता है। वासुदेव समेत सूर्य की अर्चा मण्डप में करने के अनन्तर तिल, गुड़ की पृथक् पृथक् आठ-आठ आहुति प्रदान करनी चाहिए। 'देहिमेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक मण्डप के ऊपर उसका विन्यास करके शुक्ल वर्ण चार कलशों का उत्सर्जन और सौर सूक्त तथा वैष्णव सूक्त का पाठ करना चाहिए। पश्चात् बरगद के पत्ते पर चित्र निर्माण कर दिक्पालों को अपनी अपनी दिशाओं में प्रतिष्ठित करना चाहिए। और हाँथ जोड़कर क्रमशः इन्द्रादि देवों के निमित्त इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए। हे महेन्द्र ! धर्म का स्थापन और अपने ऐश्वर्य वृद्धि के लिए हाँथ में वज्र लिये आप धर्म रक्षक बनाये गये हैं, हे अग्नि देव ! आप भेड़ वाहन एवं चार शिखरों से विभूषित हैं, अतः इस अनाथ मण्डप की धर्मतः रक्षा कीजिये। हे यम ! आप दक्षिण दिशा के अधीश्वर हैं, हे महामहिष (भैंसें) वाहन वाले ! इस अनाथ मण्डप की धार्मिक रक्षा कीजिये

मञ्चस्थो राक्षसेन्द्रस्त्वं खड्गपाणिर्महाबलाः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३४
वारिराट् ध्वजहस्तोऽसि पवनो मृगवाहनः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३५
धनाध्यक्षो गदाहस्तः पिङ्गाक्षो नरवाहनः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३६
आदिदेवोऽसि देवानां कर्ता हर्ता महेश्वरः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३७
अनन्तो नागराजो यो धरामुद्धृत्य तिष्ठति । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३८
चतुर्णामेव वर्णानां स्थित्यर्थं मृगपक्षिणाम् । प्रीतये वासुदेवस्य एवं मण्डपमुत्सृजेत् ।।३९
भग्ने स्तम्भे तृणे जीर्णे पुनस्तृणप्रदापने । स्थापने च तथैवास्य प्रतिष्ठा स्याद्यथाक्षया ।।४०
घातापायादिदोषेण म्रियन्ते यदि जन्तवः । प्रतिष्ठायां कृतायां तु धर्मो मे स्यान्न पातकम् ।।४१
मानुषाः पशवो ये च निवसन्तीह मण्डपे । स्वस्ति चास्तु सदा तेषां त्वत्प्रसादात्किल प्रभो ।।४२
ततस्त्रिगुणसूत्रेण सुत्रामाणेति वै ऋचा । सप्तधा वेष्टयित्वा तु दक्षिणां सम्प्रकाश्य च ।।४३
उपानहौ तथा छत्रमाचार्याय निवेदयेत् । मण्डपे भोजयेद्विप्रांस्तेषां दद्याद्यथेप्सितान् ।।४४
दीनेभ्यश्च पृथग्दद्याद्गृहं विप्रपुरःसरम् । प्रविशेत्तूर्यघोषेण प्रकुर्याच्च गृहार्चनम् ।।४५
एवं प्रपायां विज्ञेयो विशेषो वरुणं यजेत् । वासुदेवेन सहितं साङ्गोपाङ्गं सदक्षिणम् ।।४६
स्थालीपाकविधानेन प्रकुर्याद्देशिकोत्तमः । आचार्याय गृहं दद्यात्परिच्छदसमन्वितम् ।।४७

मञ्च पर स्थित, हाँथ में खड्ग लिये महाबली राक्षसेन्द्र ! आप भी इस अनाथ मण्डप की धर्मतः रक्षा कीजिये, हाथ में ध्वजा लिए जलाधिनाथ और मृगवाहन वायु देव ! इस अनाथ मण्डप की आप रक्षा कीजिए । हाथ में गदा लिये, पिंगल नेत्र, एवं मनुष्य वाहन वाले धनाधीश्वर कुबेर ! आप इस अनाथ मण्डप की धर्म के नाते रक्षा कीजिए । देवों के आदि देव, एवं कर्ता हर्ता महेश्वर ! इस अनाथ मण्डप की धार्मिक रक्षा कीजिए । नागराज अनन्त ! जो इस पृथिवी का भार उठाये हुए हैं, इस अनाथ मण्डप की रक्षा करें ।२२-३८। चारों वर्णों और पशु पक्षियों के स्थित्यर्थ एवं वासुदेव के प्रसन्नार्थ मण्डप का उत्सर्जन करना चाहिए । किसी स्तम्भ के टूटने अथवा जीर्ण होने पर पुनः तृण से छवाने और स्तम्भ के लगाने से उसकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार अक्षीण ही रहती है, कहना चाहिए, किसी प्रकार के घात, अथवा उपाय (विघ्न) दोष दूषित जन्तुओं के निधन होने पर इस प्रतिष्ठा-कर्मानुष्ठान द्वारा मुझे धर्म की प्राप्ति हो पातक की नहीं । मनुष्य और पशुगण, जितने इस मण्डप में निवास करते हैं, हे प्रभो ! आप की प्रसन्नता वश उनका सदैव कल्याण होता रहे ।३९-४२। पश्चात् तिगुनें किये हुए सूत्र द्वारा 'सुत्रामाणेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक उसे आवेष्टित करके पादत्राण और छत्ते समेत दक्षिणा आचार्य के लिए अर्पित करने के उपरांत मण्डप में ब्राह्मणों को मनोनीत भोजन सुसम्पन्न करना चाहिए । पुनः दीनों आदि के लिए उनके संतोष की कुछ वस्तुओं के प्रदान पूर्वक ब्राह्मणों को आगे कर तुरुही आदि वाद्यों के ध्वनि कोलाहल में गृह-प्रवेश के अनन्तर गृह-पूजन करना चाहिए । इसी भाँति प्रपा (पियाऊ) के स्थापन प्रतिष्ठा में भी होना चाहिए, उसमें विशेषकर वरुण की पूजा की जाती है । वासुदेव समेत सांगोपांग एवं दक्षिणा सहित उनकी पूजा सुसंपन्न करके बने हुए पाक-विधान द्वारा उसकी समाप्ति के उपरांत आचार्य के लिए छाये हुए गृह का प्रदान और ऋत्विजों के लिए जल पूर्णता के पात्र तथा

ऋत्विजे ताम्रपात्रं च जलपूर्णं च धान्यकम् । दिक्पालान्द्वारदेशे तु कूपयागे विशेषतः ।।४८
ब्रह्माणं नागराजानं द्वारपालौ च पश्चिमे । यजेन्मन्त्रैः पृथग्देवान्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ।।४९
बलिदानं विधानेन कृत्वा दद्याद्यथाविधि । पताकानामतस्तत्त्वं प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।।५०
वज्री च धूमली कृष्णा पीता चैवाथ वारुणी । शीघ्रा गौरी उमा चैव पीता शुक्ला प्रकीर्तिता ।।५१
कुम्भेषु पूजयेद्देवान्महेशं प्रथमं बुधः । ग्रहांश्च मध्यकलशे ब्रह्माणं च ततः परम् ।।५२
वेदिकापूर्वभागे तु उत्तरे कलशे शिवम् । दक्षिणे कलशे विष्णुं कर्णिकायां जलेश्वरम् ।।५३
कलशे विधिवद्भक्त्या उपचारैः पृथग्विधैः । सम्पूज्य वटपत्रे च नागान्संलिख्य नागजैः ।।५४
ये नागास्तान्प्रवक्ष्यामि अनन्तो वासुकिस्तथा । तथा कर्कोटकश्चैव पद्मश्च कुलिकस्तथा ।।
पद्मश्चैव महापद्मो मन्त्रैरेभिः पृथक्पृथक् ।।५५
पुण्डरीकदलाभास शुभकर्णान्तलोचन । फणासहस्रसंयुक्त शङ्खाब्जकृतलोचन ।।५६
अनन्त नागराजेन्द्र इहागच्छ नमोऽस्तु ते । सित कुन्देन्दुवर्णाभ विस्फुरद्भोगमण्डल ।।५७
सर्वनागस्य शूरस्य कृतस्वस्तिकलाञ्छन । नागेन्द्र तक्षक श्रीमन्निहागच्छ नमोऽस्तु ते ।।५८
नवीनजलदश्याम श्रीमन्कमललोचन । विषदर्पबलोन्मत्त ग्रीवायामेकशेखर ।।५९
शङ्खपाल इति ख्यात जलाधारप्रतीक्षक । अध्यक्षे नागलोकानामिहागच्छ नमोऽस्तु ते ।।६०
अतिपीत सुवर्णाभ चन्द्रार्धाङ्कितमस्तक । दीप्तभोगकृताटोप शुभलक्षणलक्षित ।।६१

धान्य प्रदान करना बताया गया है । कूप-याग (कूएँ की प्रतिष्ठा) में विशेषकर दरवाजे पर दिक्पालों तथा पश्चिम की ओर स्थित ब्रह्मा और नागराज एवं देवताओं की अर्चा पृथक्-पृथक् मन्त्र विधानों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । यथा विधान उन्हें बलि प्रदान करने के अनन्तर पताकाएँ प्रदान करनी चाहिए, मैं उसे क्रमशः बता रहा हूँ जो बज्री, धूमली, तृणा, पीता, वारुणी, शीघ्रा, गौरी, उमा, पीता और शुक्ला के नाम से ख्यात हैं । घट-स्थापन पूर्वक देवों की पूजा होनी चाहिए । विद्वानों को सर्वप्रथम महेश की अर्चा के अनन्तर मध्य कलश में ग्रहों एवं ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए । वेदी के पूर्व भाग में उत्तर की ओर स्थित कलश में शिव दक्षिण कलश में विष्णु, और कर्णिका के घट में जलाधीश्वर की पूजा भक्ति पूर्वक पृथक्-पृथक् सविधान उपचारों से करके बरगद के पत्ते पर नागों की प्रतिमा निर्माण पूर्वक अनन्त, वासुकी, कर्कोटक, कुलिक पद्म तथा महापद्म की अर्चा इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए । कमल दल की प्रभा, शुभ कानों तक बढ़े हुए विशाल नेत्र, सहस्र फणों से संयुक्त शंख तथा कमल की भाँति आकार वाले नागराजेन्द्र अनन्त ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ आने की कृपा कीजिये । श्वेत वर्ण के कुन्द पुष्प और इन्दु की भाँति वर्ण, स्फुटित फणों के मण्डल, सम्पूर्ण नागों को 'स्वस्तिक' के अंक से अंकित करने वाले, नागाधिराज श्रीमन् तक्षक ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ आकर कृतार्थ कीजिये । नवीन घन की भाँति श्यामल, श्रीमन्, कमल लोचन, विष के दर्प बल से उन्मत्त, ग्रीवा (गला) रूपी एक शिखर एवं जलाधार (मेघ) की प्रतीक्षा करने वाले, और नागलोक के अध्यक्ष शंखपाल नामक नागाधीश्वर! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ दर्शन देने की कृपा कीजिये ।४३-६०। अत्यन्त पीत वर्ण, सुवर्ण, की भाँति प्रकाश, अर्धचन्द्र से अंकित मस्तक प्रदीप्त फणों के घटाटोप , शुभ लक्षणों से सुशोभित, एवं

कुलीर नागराजेन्द्र सर्वतत्त्वहिते रत । तिष्ठेह यज्ञसिद्ध्यर्थं कामरूप नमोऽस्तु ते ।।६२
यः सुवर्णेन वर्णेन पद्मपत्रायतेक्षणः । पञ्च बिन्दुकृताभोगो ग्रीवायामेकशेखरः ।।
तस्मै ते पद्मनागेन्द्र तीव्ररूप नमोऽस्तु ते ।।६३
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः । सर्वे ते प्रीतमनसः पूजां गृह्णन्तु मे सदा ।।६४
स्वगृह्योक्तेन विधिना कृत्वाग्निस्थापनं बुधः । आज्यं संस्कृत्य जुहुयाद्दिगीशानां यथाक्रमम् ।।६५
आदित्यादिग्रहांश्चैव ब्रह्माणं कृष्णमेव च । मधुपिष्टेन च शिवं वरुणं जुहुयात्ततः ।।६६
प्रादेशमात्रं सम्प्रोक्ष्य यूपं चास्य प्रमाणकम् । चतुरस्रं शूलयुक्तं गणानानीय पूजयेत् ।।६७
कूपे निक्षिप्य तान्नागान्पञ्चरत्नं क्षिपेत्ततः । सुत्रामाणेति मन्त्रेण त्रिधा संवेष्ट्य सूत्रकैः ।।६८
रञ्जितैः कदलीवृक्षं वरुणाय समुत्सृजेत् । त्रातारमिति मन्त्रेण वस्त्रमाल्येन भूषयेत् ।।
कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यमुच्चरन् ।।६९
(ॐ अद्येत्यादि सर्वभूतेभ्यः फलपुष्पपत्रच्छायावृतमुख्यनानातरुविरचितमारामं वनस्पतिदैवतं सुपूजितं वेदव्यासाद्युक्तफलावाप्तये अमुकऋषिसगोत्रः अमुकदेव शर्माहमुत्सृजे ।।)
महोत्सवं ततः कुर्यात्कृत्वा बद्धाञ्जलिः पठेत् । वृक्षाग्रात्पतितस्यापि आरोहात्पतितस्य वा ।।७०
मरणे चास्थि भङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते । वज्राघातादिदोषेण म्रियन्ते तरवो यदा ।।७१
तद्दोषशमनार्थाय तस्याप्येतत्प्रतिष्ठितम् । मध्ये यूपं समारोप्य चतुष्कोणेऽपि यत्नतः ।।७२

सम्पूर्ण प्राणियों के उपकारक नाग राजेन्द्र कुलीर ! काम (स्वेच्छा) रूपधारी, तुम्हें नमस्कार है, इस यज्ञ की सिद्धि के लिए इस स्थल को सुशोभित कीजिये । जो सुवर्ण के समान वर्ण से विभूषित, कमल पत्र की भाँति विशाल लोचन, पाँच बिन्दुओं से अंकित फण, ग्रीवा रूपी एक शिखर वाले तथा तीक्ष्ण स्वरूप वाले हैं उस पद्मनागेन्द्र को नमस्कार है । नागिनी, नाग कन्यायें और नाग कुमार लोग प्रसन्न मुख होकर सदैव मेरी की हुई पूजा स्वीकार करते रहें । पश्चात् अपने गृह्योक्त विधान द्वारा अग्नि-स्थापन करके घी के संस्कार पूर्वक दिक्पालों के लिए क्रमशः आहुति प्रदान करनी चाहिए । सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा, कृष्ण, तथा शहद समेत पीठी से वरुण और शिव के लिए आहुति प्रदान करने के उपरांत सप्रमाण बना हुआ आदेश मात्र को यूप-स्तम्भ की जो चौकोर एवं शूल युक्त रहता है, गणों के आवाहन पूर्वक पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । उपरांत कूप में उन नागों की प्रतिमा को डालकर पञ्चरत्न भी डाल देना चाहिए, पुनः 'सुत्रामाणेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए सूत्र से तीन बार उसे बाँध कर उस विभूषित केले के वृक्ष को वरुण के लिए समर्पित कर देना चाहिए । 'त्रातारमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वस्त्र और माला से उसे सुशोभित करने के अनन्तर कर्णवेध संस्कार करके उसके उत्सर्जन में इस भाँति कहना चाहिए ओं अद्येत्यादि संकल्प की भाँति कहते हुए 'समस्त प्राणियों के लिए फल, पुष्प, पत्ते और छाया से ढँके हुए भाँति-भाँति के अनेक वृक्षों वाले इस उपवन को जिसके वनस्पति देवता, सविधान पूजित हैं, वेदव्यास आदि ऋषियों के कथनानुसार फल प्राप्ति के लिए अमुक ऋषि का सगोत्री, एवं अमुक देव शर्मा मैं उत्सर्जन (त्याग) करता हूँ । तदुपरांत महोत्सव करके हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए । वृक्ष के अग्रभाग से अथवा चढ़ते समय गिर कर मरने या हड्डी टूटने पर उसका कर्ता पाप भागी न हो । वज्रादि आघातों द्वारा वृक्षों के निधन होने पर उस दोष के शान्त्यर्थ ऐसी ही प्रतिष्ठा करनी चाहिए । मध्य भाग में यूप-स्तम्भ की स्थापना-पूजन के अनन्तर चारों कोनों में शहद,

मधुलाजाक्षतं दद्यादञ्जनं माल्यमेव च । निशासूत्रेण संवेष्ट्य कदलीविटपं न्यसेत् ।।७३
वेष्टयेत्क्षीरधारां च पातयेद्घृतधारया । तोयान्वितं गुच्छयुक्तं वेष्टयेत्स्वगृहं व्रजेत् ।।७४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे गोप्रचारवैशिष्ट्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

क्षुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

क्षुद्रारामप्रतिष्ठां च वक्ष्ये वै द्विजसत्तमाः । अमण्डले शुभे स्थाने द्विहस्तेऽप्यथ स्थण्डिले ।।१
स्थापयेत्कलशं तत्र विष्णुं सोमं समर्चयेत् । आचार्यमात्रं वरयेन्निशासूत्रैः प्रवेष्टयेत् ।।२
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य भूषयेद्भूषणादिना । दोहदं च ततो दद्यात्स्थापयेच्छतधारया ।।३
भोजयेत्पञ्च विप्रान्हि पुरतस्तं विशेषयेत् । कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यपूर्वकम् ।।४
दद्यद्यूपं मध्यदेशे रोपयेत्कदलीं ततः । रम्भाश्च रोपयेद्दिक्षु स्थालीपाकविधानतः ।।५
अष्टावष्टौ च जुहुयादन्येषां च घृतेन तु । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्विष्टकृत्तदनन्तरम् ।।६
दक्षिणां च ततो दद्यात्पूर्णां दत्त्वाहुतिं व्रजेत् ।।७
एकादिवृक्षं वृक्षाणां विधिं वक्ष्ये द्विजोत्तमाः । समुत्सृज्य ततो यूपं कर्मणा सह धर्मवित् ।।८

लावा, अक्षत, अञ्जन, माला से विभूषित करते हुए हरदी रंग से रंगे हुए सूत्रों से सुशोभित केले का वृक्ष लगाना चाहिए, पुनः क्षीर धारा घी, धारा समेत जल की धारा से घेर कर गुच्छे से अलंकृत करके अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए ।६१-७४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में गोप्रचार वैशिष्ट्य वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

लघु उपवन की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तमवृन्द ! छोटे उपवन की प्रतिष्ठा संक्षेप में बता रहा हूँ किसी शुभ स्थान में बिना मण्डल निर्माण के दो हाथ की भूमि (वेदी) पर कलश स्थापन पूर्वक विष्णु और चन्द्रमा की अर्चा सुसम्पन्न करने के अनन्तर केवल आचार्य का वरण करके हरदी के रंग से रंगे हुए सूत्रों से वृक्षों को आवेष्टित करते हुए माला और आभूषणों से विभूषित करना चाहिए। पश्चात् दोहद प्रदान करके शत धारा समेत उन्हें स्थापित करने के अनन्तर पाँच ब्राह्मणों का अभीष्ट भोजन प्रदान करते हुए कर्ण-वेध संस्कार पूर्वक उनके उत्सर्जन के समय पूर्व की भाँति करबद्ध प्रार्थना करना चाहिए। १-४। तदुपरांत मध्य प्रदेश में यूप-स्तम्भ की प्रतिष्ठा पूर्वक दिशाओं में कदली वृक्ष से सुशोभित करके बने हुए पाक की आठ-आठ आहुति प्रदान पूर्वक और अन्य लोगों के लिए घी की एक-एक आहुति प्रदान करके पूर्णाहुति स्विष्टकृत् हवन होनी चाहिए, पुनः दक्षिणा प्रदान करके पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिए। द्विजोत्तमवृन्द ! एक अथवा उससे अधिक वृक्षों का

वृक्षमूले यजेद्धर्मं पृथिवीं च विशं तथा । दिगीशांश्च तथा यक्षानाचार्यं तोषयेत्ततः ।।९
धेनुं च दक्षिणां दद्याद्दोहदं वृक्षपूजनम् । कृत्वा सम्यग्विधानेन सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।१०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे क्षुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

क्षुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अथाश्वत्थप्रतिष्ठायां मूले बाहुप्रमाणके । स्थण्डिलं कारयेत्तत्र चन्दनेनोक्षितं तथा ।।१
पद्मं प्रकल्पयेत्तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च । पूर्वेद्यू रात्रिसमये तद्विष्णोरिति वै ऋचा ।।२
स्थापयेद्वारिणा पूर्णं कया नेति च गन्धकम् । गन्धद्वारेति तैलेन श्रीश्चतेति च चन्दनम् ।।३
दद्याद्दूर्वाक्षतं कल्पे ब्राह्मणत्रयभोजनम् । कारयेत्सितसूत्रैश्च वेष्टयेच्चन्दनोक्षितैः ।।४
कुम्भे विनायकं पूज्य ब्राह्मणं च परे घटम् । स्वदिक्षु दिक्पतींश्चैव वृक्षमूले नवग्रहान् ।।५
मण्डले शिवमभ्यर्च्य पीठपूजापुरःसरम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि श्वेतं वृषभमेव च ।।६
द्विभुजं शूलहस्तं च सर्वाभरणसंयुतम् । आरोपयेत्स्वसामर्थ्याद्भूतशुद्धिं समाचरेत् ।।७

विधान बता रहा हूँ। उस धर्म वेत्ता को चाहिए कि विधान पूर्वक यूप स्थापन पूजन करके वृक्ष के मूल भाग में धर्म, पृथिवी, विश, दिक्पाल, यक्षगण, और आचार्य को सन्तुष्ट करना चाहिए। दक्षिणा रूप में योगदान करके भली भाँति विधान पूर्वक दोहद वृक्ष के पूजनानन्तर सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।५-१०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तृतीय भाग में लघु उपवन प्रतिष्ठा वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त।३।

अध्याय ४

लघु उपवन प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की प्रतिष्ठानुष्ठान में बाहु प्रमाण वाले उसके मूलभाग में वेदी का नर्माण कर पुनः चन्दन से सींचने के उपरांत उस पर सौन्दर्य पूर्ण कमल की रचना करनी चाहिए। सामान्य अर्घ्य सविधान प्रदान करके प्रथम दिन रात्रि के समय 'तद्विष्णोरिति' इस ऋचा के उच्चारणपूर्वक जल से पूर्ण कर उसकी स्थापना के पश्चात् 'कयानेति' इस मंत्र से गन्ध, 'गन्धद्वारेति' से तैल, श्रीश्चतेति' से चन्दन और दूर्वा अक्षत प्रदान करते हुए प्रथम कल्प में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। पुनः चन्दन से लिप्त सूत्रों से उसे आवेष्टित करके उस कलश में विनायक और दूसरे घट में ब्रह्मा की अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत अपनी अपनी दिशाओं में दिशाधीश्वर, वृक्ष के मूल भाग में नवग्रह, और मण्डल में पीठासन की पूजा पूर्वक शिव की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। इसके अनन्तर ध्यान बता रहा हूँ। श्वेत वृषभ (बैल) के ऊपर दो भुजा, हाथ में शूल लिए, समस्त आभूषणों से विभूषित उस प्रतिमा को आसीन कर अपने सामर्थ्यानुसार भूत-शुद्धि सविधान करना चाहिए।१-७।

ततोर्घ्यपात्रं कृत्वा तु पीठपूजां समाचरेत् । गणेशं गुरुपादं च जयं भद्रं समाहितः ॥८
मध्ये आधारशक्तिं च कूर्मानन्तौ सपद्मकौ । चन्द्रसूर्याग्निकादीनां मण्डलानि क्रमाद्यजेत् ॥९
पुनः पात्रान्तरस्थं च गृहीत्वा कुसुमं बुधः । पाणिकच्छपिकां कृत्वा ध्यायेद्वै वरुणं तथा ॥१०
पूर्ववच्च विधानेन दद्यात्पात्रादिकं त्रयम् । मधुपर्कं चासनं च पृच्छेच्च स्वागतं पुनः ॥११
मुद्रां प्रदर्श्य विधिवदङ्गपूजां समाचरेत् । पूर्वादिपत्रे इन्द्रादीन्ब्रह्माणं मध्यतो यजेत् ॥१२
अनन्तं पुरतश्चैव तेषामस्त्राणि तद्बहिः । मध्ये तोयाधिपं रुद्रं शान्तं चैव प्रशान्तकम् ॥१३
भूस्तत्त्वं च भुवस्तत्त्वं स्वस्तत्त्वादि च तत्त्वकम् । कामं धर्ममधर्मं च दिक्षु नारायणं शिवम् ॥१४
नैर्ऋते च यजेद्दुर्गां पार्श्वयोश्च शतक्रतुम् । विनायकं च विष्णुं च गङ्गां पृथिवि षष्टिकम् ॥१५
षोडशेनोपचारेण पूजयेच्च विशेषतः । मण्डलस्योत्तरे भागे नागरूपमनन्तकम् ॥१६
पञ्चकृष्णालकैः कुर्याद्बृहत्पर्वप्रमाणकम् । आरोपयेच्चाक्षताद्यैः श्वेतचन्दनपुष्पकैः ॥१७
पूजयेत्परया भक्त्या अग्निकार्यमथाचरेत् । वरुणं जुहुयात्पूर्वं मधुना पायसेन वा ॥१८
तिलाक्षतैर्वा आज्यैर्वा त्रिमधवक्तैरथापि वा । अष्टोत्तरशतं कुर्याद्दिगीशानां घृतेन तु ॥१९
एकैकामाहुतिं दद्यात्पुष्पैस्तिलघृतेन च । नारायणं शिवं दुर्गां गणेशं च ग्रहान्निशि ॥२०
अष्टावष्टौ च जुहुयाद्घृतैरेकाहुतिर्भवेत् । ब्रह्मयुध्वानमितिमन्त्रेण ब्रह्माणं पायसेन तु ॥२१
एकाहुतिं ततो दद्यादापोहिष्ठेति वा त्रिभिः । ततो वरुणमुद्दिश्य दद्यादाज्याहुतित्रयम् ॥२२

पश्चात् अर्घ्यपात्र सुसज्जित करके पीठासन की पूजा करके गणेश गुरुपाद, जय, भद्र, मध्य में आधार शक्ति कमल समेत कच्छप, अनन्त, तथा चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि की अर्चा पूर्वक मण्डलस्थ सभी देवों की क्रमशः पूजा सुसम्पन्न करना चाहिए। पुनः अन्य किसी पात्र में स्थित पुष्प को ग्रहण कर अपने हाथ कच्छपाकार की मुद्रा बनाते हुए वरुण के ध्यान पूर्वक पूर्वोक्त विधानानुसार तीन पात्र प्रदान करके मधुपर्क, एवं आसन प्रदान के साथ स्वागत कहना चाहिए। मुद्रा-प्रदर्शन के उपरांत सविधान अंग पूजा, एवं पूर्वादि पत्रों पर इन्द्रादि मध्य में ब्रह्मा समेत सामने अनन्त तथा बहिर्भाग में उनके में उनके शस्त्र और मध्य भाग में जलाधिप रुद्र, शांत, प्रशान्त, भूस्तत्त्व, भुवस्तत्त्व, तथा स्वस्तत्त्वादि तत्त्व, काम, धर्माधर्म, दिशाओं में नारायण, शिव, नैऋत्य में दुर्गा, दोनों पार्श्वभागों में इन्द्र, विनायक, विष्णु, गङ्गा और पृथिवी के साठ देवों की अर्चा षोडशोपचार विधान से सुसम्पन्न करनी चाहिए। विशेषकर मण्डल के उत्तर प्रदेश में नागस्वरूप अनन्त की प्रतिमा का जिसमें काली पाँच चोटियाँ, लम्बी-लम्बी गाँठ वाली हों, निर्माण करके अक्षत आदि श्वेत-चन्दन पुष्पों द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक पूजा करके हवन-आरम्भ करना चाहिए। सर्वप्रथम शहद और खीर की आहुति वरुण के लिए समर्पित करने के पश्चात् तिल अक्षत, अथवा घी, या शहद शक्कर मिश्रित घी की एक सौ आठ आहुति प्रदान कर दिक्पालों के लिए घी की एक-एक आहुति तथा रात्रि में नारायण, शिव, दुर्गा, गणेश एवं ग्रहेशों के लिए पुष्प, तिल और घी की आठ-आठ तथा घी की एक आहुति प्रदान करनी चाहिए। पुनः 'ब्रह्मयुध्वानमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक ब्रह्मा के लिए खीर की एक आहुति और 'आपोहिष्ठेति' से तीन आहुति देने के अनन्तर वरुण के लिए घी की तीन आहुति अर्पित करनी चाहिए।८-२२। पुनः 'इमं वरुणं इति' 'तद्वरोमा इति'

इमं वरुण इति वा तद्वरोना ऋचा पुनः । वरुणस्योत्तम्भनमसीति येनापावक एव च ।।२३
वातस्ययमिति पुनः पञ्चवर्णं यथाक्रमात् । ततो वरुणमुद्दिश्य वृतेन च गुडैः सह ।।२४
ततः स्विष्टकृते दद्याद्बलिं दद्यादनुक्रमात् । मध्वाज्यपायसं दद्याद्वरुणाय विशेषतः ।।२५
यवक्षीरं दिगीशेभ्यो ह्यन्येभ्यः पायसेन तु । नागाय पिष्टकं दद्याल्लाजाहोमाष्टकं पुनः ।।२६
अनन्तस्योत्तरे तीरे पद्मपत्रं परिस्तरेत् । अष्टाष्टापदमानेन वरुणं राजतेन तु ।।२७
कुर्यात्पूर्वद्वयेनापि बाणरत्तिसुवर्णकैः । कुर्यात्पुष्करिणीं तत्र पूर्वार्धे चतुरस्रके ।।२८
वरुणं विन्यसेत्तत्र तथा पुष्करिणीमपि । विधिवद्वाक्यपूर्वेण उत्सृजेच्च जलेशयम् ।।२९
ॐ अद्येत्यादि विष्णुरूपाय वरुणाय श्रुतिस्मृत्याद्युक्तवेदव्यासप्रणीताग्निष्टोमफलप्राप्तये पुष्करिणीप्रतिष्ठाकर्मणि इमां पुष्करिणीं सुवर्णरजतां स्वगृह्योदितां सालंकारां सुपूजितामसुक-गोत्रः अमुकदेवशर्मा तुभ्यमहं सम्प्रददे । इत्युत्सर्गवाक्यम् । ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणमुख्येभ्यः ममाग्निष्टोमाद्यनेकफलप्राप्तये इमं जलाशयं वरुणदैवतं सुपूजितं चतुर्मुखसहितं चतुःसत्त्वावच्छिन्न-स्नानपानाद्युपभोगाय अनुकसगोत्रः अमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ।।) ततो नौकां समारुह्य मध्यात्किञ्चित्तथोत्तरे।
जलाशयस्यमध्यं तु ऋत्विग्घोमं चरेत्ततः ।।३०
पूर्वावस्थायिनीं यष्टिं समारोप्य विधानतः । ततो वरुण सूक्तेन वरुणं राजतोद्भवम् ।।
पुष्करिण्या समं तेन नागयष्ट्यन्तरे क्षिपेत् ।।३१

'वरुणस्योत्तम्भनमसीति' 'येनापावक इति' एवं 'वातस्ययमिति' इन पाँचों मंत्रों द्वारा क्रमशः आहुति प्रदान के उपरान्त घी, गुड़ की आहुति वरुण के लिए देकर स्विष्टकृत करते हुए क्रम से उन्हें बलि प्रदान करनी चाहिए । विशेषकर वरुण के लिए शहद, घी और खीर की आहुति प्रदान के अनन्तर दिगीश्वरों के लिए जवाक्षीर, अन्य के लिए खीर, नाग के लिए पीठी की आठ आहुति प्रदान करनी चाहिए । अनंत के उत्तर तटपर कमल के पत्ते का स्तरण (बिछौना) बनाकर उसके ऊपर वरुण की चाँदी की प्रतिमा, जिसमें अष्ट धातु के आभरण तथा इनमें पूर्व के दो चरण पाँच रत्ती सुवर्ण के बने हों, स्थापित करके पूर्वार्ध भाग में पुष्करिणी की चौकोर प्रतिमा बनाकर उस आसन पर वरुण और पुष्करिणी को आसीन करके स्थापन-पूजन के उपरान्त सविधान जलाशय में उत्सर्जन करते समय इस भाँति कहना चाहिए—ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर श्रुति स्मृति के कथनानुसार वेदव्यास प्रणीत अग्निष्टोम फल प्राप्ति के लिए इस पुष्करिणी प्रतिष्ठानुष्ठान कर्म में अपने गृहस्थ विधानानुसार सुवर्ण रचित, और अलंकारों से अंलकृत एवं पूजित इस पुष्करिणी को विष्णु रूप वरुण के लिए अमुक गोत्र, अमुकदेव शर्मा मैं सादर समर्पित कर रहा हूँ उसका उत्सर्जन करना चाहिए । पुनः 'ओं अद्येत्यादि' कहकर 'अपने अग्निष्टोमादि अनेक फल प्राप्त्यर्थ वरुण देवता एवं चतुर्मुखसहित इस जलाशय को श्रेष्ठ ब्राह्मणों और चारों वर्णों के प्राणियों के स्नान पानादि उपभोग के लिए अमुक गोत्र, एवं अमुक देव शर्मा मैं सादर समर्पित कर रहा हूँ । पश्चात् नौकर द्वारा मध्य से कुछ उत्तर प्रदेश में पहुँच कर उस जलाशय के मध्य भाग में ऋत्विक् द्वारा हवनारम्भ करें । पुनः पहले से वहाँ सुरक्षित उस यष्टिका (लकड़ी या दंड) को विधानपूर्वक स्थापित एवं पूजित करने के उपरान्त वरुण सूक्त का उच्चारण करते हुए उस चाँदी की वरुण प्रतिमा को पुष्करिणी के साथ नागयष्टि

तत्रैवानन्तनागं च मन्त्रमेतदुदीरयेत् । पुण्डरीकदलाभास शुभरक्तान्तलोचन ॥
फणासहस्रसंयुक्त सुप्रतिष्ठ नमोऽस्तु ते ॥३२
दक्षिणां च ततो दद्यात्ततः पूर्णां विधाय च । मोचयेन्मकरान्ग्राहान्मीनकूर्माञ्जलेचरान् ॥३३
पद्मोत्पलं च शैवालं मन्त्रमेव प्रयत्नतः । पुष्करिण्यां च त्रिः कुर्यात्खातं सर्वप्रदक्षिणाम् ॥३४
आदित्याध्यायकं जप्त्वा क्षिपेल्लाजकपर्दकान् । पातयेत्क्षीधारां च सहस्रेण शतेन च ॥३५
सूत्रेण वेष्टयेत्प्राज्ञो रक्तेन च चतुष्क्रमात् । पथि सन्तोषयेद्दीनान्सन्तोष्य च गृहं व्रजेत् ॥३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम तृतीयभागे चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः
सरोवरादिप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्
सूत उवाच

नलिन्याश्च तथा वाप्या ह्रदस्य द्विजसत्तमाः । विधिं वक्ष्ये सहाङ्गेन विधानं शृणुत द्विजाः ॥१
स्वर्णपादेन मानेन पूर्वेद्युरधिवासयेत् । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण तथा अब्जैः शतैरपि ॥२
स्वमण्डले शुभे स्थाने विशेत्पूर्वमुखेन तु । गणेशं वरुणं चैव घटे सम्पूजयेच्छिवम् ॥३
वागीशं च तथा विष्णुं सूर्ये कुम्भे समर्चयेत् । पायसेनाहुतिं दद्याद्वरुणाय घृतेन च ॥४

के भीतर डाल देना चाहिए ।२३-३१। उसी स्थान पर अनंत नाग के लिए इस भाँति प्रार्थी होना चाहिए—कमल दल की भाँति प्रभा, शुभ रक्त वर्ण के नेत्र, और सहस्र फणों से संयुक्त एवं सुप्रतिष्ठित अनंत नाग तुम्हें नमस्कार है । इसके उपरान्त दक्षिणा और पूर्णाहुति प्रदान कर मकर, ग्राह, मछलियाँ, कछुवे आदि जलचरों को उसमें प्रविष्ट कराना चाहिए । कमल, नीलकमल, और शैवाल (सेवार) का प्रक्षेप मन्त्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करके उस पुष्करिणी में तीन गड्ढे प्रदक्षिणा समेत बनाना चाहिए । आदित्याध्याय के उच्चारण पूर्वक लावा कौड़ी डालने के उपरान्त सहस्रों अथवा सैकड़ों क्षीरधारा से सुशोभित करके रक्त वर्ण के सूत्र द्वारा उसे चारों ओर से आवेष्टित करने के पश्चात् मार्ग में दीनों को प्रसन्न करते हुए अपने घर को प्रस्थान करना चाहिए ।३२-३६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग का लघुउपवनप्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५
सरोवरादिप्रतिष्ठा विधान का वर्णन

सूत बोले—हे श्रेष्ठद्विजवृन्द ! नलिनी, बावली तथा सरोवर का साङ्गोपाङ्ग प्रतिष्ठा विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। प्रथम दिन स्वर्णपाद से निर्मित प्रतिमा पर सैकड़ों कमल-पुष्पों तथा 'आपोहिष्ठेति' मन्त्र से अधिवासन कर्म-सम्पादित करें ।२। तदनन्तर अपने मण्डल में शुभ स्थान पर पूर्वाभिमुख होकर घट की स्थापना करके तथा उसमें ही गणेश, वरुण और शिव की सविधि पूजा करनी चाहिए ।३। (इसके अनन्तर) सूर्य-कुम्भ में वागीश्वर तथा विष्णु की पुनः अर्चना करनी

एकैकामाहुतिं दद्यादन्येषां च स्रुवेण च । बलिदानं पायसेन उत्सृजेत्तदनन्तरम् ॥५
यूपं निवेशयेत्पश्चाद्दद्याद्धेनुं च दक्षिणाम् । पूर्णं दद्यात्सवित्रेऽर्घ्यं दत्त्वा तु स्वगृहं व्रजेत् ॥६
आरामस्य विधिं वक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिविस्तरम् । हीनारामस्य च तथा एकवृक्षस्य च द्विजाः ॥७
अरण्यमध्ये पाश्चात्ये उत्तरे वा विशेषतः । मण्डपं वर्तुलं कुर्यादर्घ्यहस्तप्रमाणकम् ॥८
तद्दक्षिणे भवेत्कुण्डं चतुरस्रं समं शुभम् । चतुर्मुखं च कर्तव्यं तोरणाद्यैरलङ्कृतम् ॥९
मन्दरादिकमावाह्य ततः सम्पूजयेत्क्रमात् । विष्वक्सेनं च तत्रैव पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥१०
भृगुं कर्णसमारूढं सर्वभूषणभूषितम् । विष्वक्सेनस्य मन्त्रोयं पूजायां चैव सर्वतः ॥११
द्वारपालं च सम्पूर्णं गौर्यादीन्कलशेषु च । स्वासु दिक्षु दिगीशानां बलिपुष्पाक्षतादिना ॥१२
नैर्ऋत्यवरुणयोर्मध्ये अनन्तं प्रतिपूजयेत् । इन्द्रेशानयोश्च मध्ये ब्रह्माणं च प्रकल्पयेत् ॥१३
वेदिपार्श्वे ततो गत्वा वेदिमावाह्य पूजयेत् । आसनं कल्पयित्वा तु सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥१४
ऐशाने कलशे विद्युद्ब्रह्माणं च तथा ग्रहान् । स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्गन्धपुष्पैर्नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥१५
मण्डलेशं वासुदेवं त्वासनं च बृहस्पतिम् । पूजयेत्परया भक्त्या पायसान्नं बलिं हरेत् ॥१६
द्विभुजं वासुदेवं च शङ्ख चक्रधरं विभुम् । पद्मासनगतं ध्यायेत्पीतवस्त्रं सुशोभनम् ॥१७
नीलोत्पलदलाभासं हरिचन्दनचर्चितम् । देवर्षिसिद्धसहितं कलत्रद्वय संयुतम् ॥१८
ध्यात्वा आरोपयेदेवं बालादीनथ नायकान् । विमलाद्या नायिकाश्च दिगीशांश्च यथाविधि ॥१९

चाहिए। (इन देवों के निमित्त यज्ञ-कुण्ड में) तदनन्तर खीर की आहुति प्रदान करें तथा वरुण देव को (हव्य-स्वरूप) घी अर्पित करें।४। एक-एक आहुति स्रुव द्वारा प्रदान करते हुए पश्चात् उन्हें खीर की बलि प्रदान करनी चाहिए।५। यूप-स्तम्भ प्रवेश करने के अनन्तर धेनु समेत दक्षिणा पूर्णाहुति और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके अथ उपवन का सविस्तार प्रतिष्ठा-विधान जिससे एक वृक्ष का भी प्रतिष्ठानुष्ठान सुसम्पन्न किया जाता है, मैं बता रहा हूँ : अरण्य के मध्य भाग के पश्चात् भाग अथवा विशेष कर उत्तर प्रदेश में गोलाकार मण्डप की रचना करनी चाहिए, अर्घ्य हाथ के प्रमाण का हो उस मण्डप में चौकोर समभाग, एवं शुभ कुण्ड की रचना करके उस मण्डप के चारों दरवाजों को तोरणादि से विभूषित करना चाहिए। पश्चात् उसमें मंदरादि के आवाहन पूर्वक क्रमशः उनकी पूजा करनी चाहिए। उस स्थान पर विष्वक्सेन की अर्चा गन्ध-चन्दन द्वारा सुसम्पन्न करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। कर्ण पर आरूढ़, सर्वाभरण-भूषित भृगु को नमस्कार है। पश्चात् कलशों में द्वारपाल एवं गौर्यादि देवताओं तथा अपनी अपनी दिशाओं में दिगीश्वरों की अर्चा बलि, पुष्प, और अक्षतादि से सुसम्पन्न करके नैऋत्य में वरुण (पश्चिम) के मध्य भाग में अनन्त, इन्द्र और ईशान के मध्य में ब्रह्मा का स्थापन पूजन करते हुए वेदी के पार्श्व भाग में वेदी का आवाहन-पूजन करना चाहिए। आसन और अर्घ्य-प्रदान पूर्वक ईशान कोण के कलश में विद्युत्, ब्रह्मा, और ग्रहों की अर्चा उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक गन्ध-पुष्प, एवं नैवेद्यादि वस्तुओं द्वारा पृथक्-पृथक् सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए।६-१५। मण्डलेश वासुदेव भगवान् की आसन समेत अर्चा सुसम्पन्न करके बृहस्पति की भक्ति पूर्वक अर्चा के उपरान्त उन्हें खीर की बलि प्रदान करनी चाहिए। दो भुजा शंख-चक्रधारी-विभु, कमलासन पर सुशोभित पीताम्बर धारण किये सौन्दर्यपूर्ण उस वासुदेव भगवान् का, जो नीलकमल-दल की प्रभा सम्पन्न हरिचन्दन से चर्चित देव, ऋषि, सिद्धों समेत और दो स्त्रियों से सुसेवित हैं, इस भाँति के ध्यान पूर्वक बालों नायकों,

षोडशोच्चैः पृथग्रूपैः प्रतिपुष्पाञ्जलिक्रमात् । परितः पूजयेद्विष्णुं शिवं दुर्गां सरस्वतीम् ॥२०
शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यायेत्सोमं चतुर्मुखम् । अश्वारूढं दिव्यरूपं पद्माक्षं धृतपुष्पकम् ॥२१
वरदं देवगन्धर्वैः सेवितं मुनिभिः स्तुतम् । श्वेतं वनस्पतिं ध्यायेद्द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२
स्वरथस्थं महाबाहुं शङ्खाङ्कुशसखेटकम् । विद्यां च वामतो ध्यायेत्स्वमन्त्रेण च स्थापयेत् ॥२३
दशस्वरान्वितं तोयं स्वभावं तमसान्वितम् । मन्त्रोऽयं देवदेवस्य पूजायां विनियोजयेत् ॥२४
नीलं जयं भृङ्गिणं च परितश्च यथाक्रमात् । ततः कुशकण्डिकां कृत्वा स्थालीपाकं विधानतः ॥२५
अष्टोत्तरशतं चैव सोमाय द्वादशाहुतीः । वानस्पतेस्तथाष्टौ च आज्येऽन्येषां विधीयताम् ॥२६
एकैकामाहुतिं दद्यात्सप्तजिह्वामनन्तरम् । वास्तोष्पतय इति मन्त्रेण स्थालीपाकद्वयं नयेत् ॥२७
वनस्पतिं समुद्दिश्य ततोऽयमीरयेदृचम् । वृक्षादीन्स्थापयेत्पूर्वे गायत्र्या प्रथमं बुधः ॥२८
अब्जैरग्रं कांस्यवस्त्रं रत्नं दिक्षु यथाक्रमम् । व्रीहयश्चेति मन्त्रेण तथा च सरितश्च मे ॥२९
मित्रत्रयश्चेति तथा पूषा च मे ऋचा तथा । संस्थाप्य व्रीहीन्संवाप्य तत्रैव विधिपूर्वकम् ॥३०
क्षिपेद्गङ्गाजलं तोये सर्वौषध्युदकेन च । संस्थाप्य यजमानं च सुरास्त्वा मितिमन्त्रकैः ॥३१
आचार्यमात्मने तत्र संस्थितं द्विजपुङ्गवैः । समाप्य नित्यविधिनाचार्यायाथ च दक्षिणाम् ॥३२

विमलादि नायिकाओं और दिगीश्वरों की यथाविधान अर्चा षोडशोपचार द्वारा पुष्पाञ्जलि समेत पृथक्-पृथक् विधान से सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् चारों ओर स्थित, विष्णु, शिव, दुर्गा, सरस्वती एवं चतुर्मुख वाले सोम का ध्यान करना चाहिए, जो शुद्ध स्फटिक के समान, अश्व पर विराजित, दिव्य रूप कमल नेत्र, पुष्प धारण किये, वरदायक, देव-गन्धर्वों द्वारा सुसेवित और मुनियों से स्तुति सम्पन्न हैं। दो भुजा, पीत वस्त्र से सुशोभित, अपने रथ पर बैठे, महाबाहु, शंख, अंकुश एवं खेटक लिए उस श्वेत वर्ण के वनस्पति के ध्यान करते हुए बाँये भाग में विद्या का स्थापन-पूजन उनके मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। देवाधिदेव की अर्चा करते समय इसका उच्चारण आवश्यक होता है। दश स्वरों समेत, तमःपूर्ण जो जल स्वभाव वाला है। इस भाँति कहने के अनन्तर चारो ओर स्थित नील, जय, और भृङ्गी की क्रमशः पूजा करके कुशकण्डिका और पावन, निर्माण सविधान समाप्त कर एक सौ आठ आहुति देनी चाहिए। पुनः सोमदेव के लिए बारह, वनस्पति के लिए आठ और अन्य देवों के लिए घी की एक-एक आहुति प्रदान पूर्वक 'सप्तजिह्वामनन्तरमिति' 'वास्तोष्पतय इति' इस मंत्र के द्वारा दोनों पाकपात्रों को ले जाना चाहिए और वनस्पति के उद्देश्य से भी इस ऋचा का उच्चारण करना बताया गया है। विद्वान् को सर्वप्रथम पूर्व की ओर गायत्री मंत्र द्वारा वृक्षादिकों की स्थापना करके कमल पुष्पों से उसका अग्रभाग, काषाय वस्त्र, एवं रत्न का क्रमशः दिशाओं में स्थापन पूर्वक 'व्रीह्यश्चेति' 'सरितश्च मे इति' 'मित्रत्रयश्चेति' और 'पूषा च मेति' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए वहाँ व्रीहि का स्थापन और बीजवपन (रोपण) सविधान सुसम्पन्न करके गंगाजल एवं समस्त औषधियों समेत उस जल से बैठे हुए यजमान का अभिषेक 'सुरास्त्वामिति' मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। नित्यविधि समाप्ति के पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों समेत बैठे हुए आचार्य के लिए धेनु, लोहपात्र, सहित उनकी तथा अन्य ब्राह्मणों के लिए

धेनुं च लोहपात्रं च दत्त्वा इष्टां च दक्षिणाम् । ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दद्यात्पूर्णां गृहं व्रजेत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे सरोवरादीनां प्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

क्षुद्रारामप्रतिष्ठां च वक्ष्ये च द्विजसत्तम । अमण्डले शुभे स्थाने द्विहस्तमयस्थण्डिले ॥१
स्थापयेत्कलशं तत्र सोमं विष्णुं समर्चयेत् । आचार्यमात्रं वरयेन्निशासूत्रैः प्रवेष्टयेत् ॥२
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य भूषयेद्भूषणादिना । दोहदं च ततो दद्यात्स्थापयेच्छितधारया ॥३
भोजयेत्पञ्च विप्रांश्च पुरतोऽन्ते विशेषतः । कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यपूर्वकम् ॥४
दद्याद्यूपं मध्यदेशे रोपयेत्कदलीं ततः । रम्भां च रोपयेद्दिक्षु स्थालीपाकविधानतः ॥५
अष्टावष्टौ च जुहुयादन्येषां च घृतेन तु । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्विष्टकृत्तदनन्तरम् ॥६
दक्षिणां च ततो दद्यात्पूर्णां दद्याद्गृहं व्रजेत् ॥७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

यथाशक्ति अभीष्ट दक्षिणा प्रदान करके पूर्णाहुति के अनन्तर अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए।१६-३३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में सरोवरादिप्रतिष्ठा विधान वर्णन नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

लघुउपवन प्रतिष्ठा-विधान का वर्णनम्

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! मैं छोटे-छोटे उपवन की प्रतिष्ठा कर्म विधान बता रहा हूँ । किसी शुभ स्थान में बिना मण्डल के दो हाथ प्रमाण की वेदी के निर्माण पूर्वक उस पर कलश स्थापन करके विष्णु और सोम की अर्चा करनी चाहिए । केवल आचार्य मात्र का वरण करके हरदी से रंगे सूत्रों से उन्हें उन वृक्षों को आवेष्टित एवं मालाओं और भूषणों से विभूषित करने के उपरांत शतधारासमेत दोहद का स्थापन-प्रदान करना बताया गया है । इस प्रकार की प्रतिष्ठारम्भ के समय पाँच ब्राह्मणों के भोजन दान, एवं कर्णवेध संस्कार पूर्वक उनका पूर्वोक्त वाक्यों के अनुसार उत्सर्जन करना चाहिए । मध्यभाग में यूप-स्तम्भ का स्थापन-पूजन सुसम्पन्न करने के उपरांत चारों ओर कदली-वृक्षों को लगाकर उसे सुशोभित करना चाहिए । पुनः सविधान पाक-कर्म के अनन्तर आठ-आठ आहुति प्रदान पूर्वक अन्य के लिए घी की एक-एक आहुति देकर स्विष्टकृत और दक्षिणा एवं पूर्णाहुति क्रमशः सुसम्पन्न करके अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए ।१-७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में लघुउपवनप्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रेष्ठवृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

एकादिवरवृक्षाणां विधिं वक्ष्ये द्विजोत्तमाः । वृक्षस्य पश्चिमे भागे स्थापयेत्कलशं ततः ।।१
वृक्षं संस्थापयेत्पूर्वं सूत्रेण परिवेष्टयेत् । ब्रह्माणं कलशेभ्यश्च सोमं विष्णुं वनस्पतिम् ।।२
ततस्तिलयवैर्होमानष्टाष्टौ विधिवच्चरेत् । समुत्सृज्य ततो यूपं कदल्या सह धर्मवित् ।।३
वृक्षमूले यजेद्धर्मं पृथिवीं च विशं तथा । दिगीशांश्च तथा यक्षान्नाचार्यं तोषयेत्ततः ।।४
धेनुं च दक्षिणां दद्याद्दोहदं वृक्षपूजनम् । कृत्वा सम्यग्विधानेन सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे श्रेष्ठवृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

अश्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

अथाश्वत्थप्रतिष्ठायां मूले बाहुप्रमाणकम् । स्थण्डिलं कारयेत्तत्र चन्दनेनाङ्कितं यथा ।।१

अध्याय ७

श्रेष्ठ वृक्ष प्रतिष्ठाविधान वर्णन

सूत जी बोले—श्रेष्ठद्विज वृन्द ! एक ही श्रेष्ठ वृक्ष का भी प्रतिष्ठा विधान मैं बता रहा हूँ । वृक्ष के पश्चिम भाग में कलशस्थापन पूर्वक सूत्र से आबद्ध कर वृक्ष का भी पूर्व की ओर स्थापन-पूजन करना चाहिए । उस कलश द्वारा ब्रह्मा, सोम, विष्णु, एवं वनस्पति की आराधना करके तिल और जवा की आठ-आठ आहुति सविधान प्रदान करने के उपरांत कदली-वृक्ष के साथ यूप-स्तम्भ का उत्सर्जन करना चाहिए । पुनः वृक्ष के मूल भाग में धर्म, पृथिवी, विश, दिगीश्वर, यक्ष एवं आचार्य को सपूजन प्रसन्न करते हुए धेनु समेत दक्षिणा प्रदान कर दोहद वृक्ष के सविधान पूजन समेत विधान पूर्वक सूर्य के लिए अर्घ्य-प्रदान करना चाहिए ।१-५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में श्रेष्ठवृक्ष प्रतिष्ठा विधान वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

पिप्पल प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—इसके उपरांत मैं अश्वत्थ पीपल की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ । उसके मूल भाग में चन्दन चर्चित बाहुप्रमाण की वेदी का निर्माण करके उस पर कमल की रचना एवं सामान्य विधान द्वारा

पद्मं प्रकल्पयेत्तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च । पूर्वेद्यू रात्रिसमये तद्विष्णोरिरिति वै ऋचा ॥२
स्थापयेद्वारिणा पूर्णं कयानेति च गन्धकम् । गन्धद्वारेति तैलेन श्रीश्चतेति च चन्दनम् ॥३
दद्याद्दूर्वाक्षतं कल्ये ब्राह्मणत्रयभोजनम् । कारयेत्सितसूत्रैश्च वेष्टयेच्चन्दनस्य च ॥४
कुम्भे विनायकं पूज्यब्राह्मणं च परे घटे । स्वदिक्षु दिक्पतींश्चापि वृक्षमूले नवग्रहान् ॥५
मण्डले शिवसम्भ्यर्च्य पीठपूजापुरःसरम् । पूर्वे चण्डं प्रचण्डं च दक्षिणे नन्दिभृङ्गिणौ ॥६
अनन्तं पश्चिमे काममुत्तरे गणनायकम् । कार्तिकेयं मध्यदेश आधारशक्तिपूर्वकम् ॥७
अनन्तं पृथिवीं चैव त्रिवृत्तं च त्रिमण्डलम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि श्वेतं वृषभमेव च ॥८
द्विभुजं शूलहस्तं च सर्वाभरणसंयुतम् । आरोपयेत्स्वतन्त्रेण मूले विष्णुं समर्चयेत् ॥९
शङ्करं च तथा मध्ये अग्रे ब्रह्माणकं यजेत् । बलिं च पिष्टकान्नं च दत्त्वा च श्रपयेच्चरुम् ॥१०
जुहुयाद्रुद्रमुद्दिश्य रुद्रसङ्ख्याहुतिं क्रमात् । अन्येषां च स्रुवेणैव होमं दद्यात्प्रयत्नतः ॥११
रोपयेत्कदलीवृक्षमाचार्यं परितोषयेत् । कृत्वा पूर्णां पञ्चधारां कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् ॥१२
क्षीरधारां च सम्पाद्य अर्घ्यं दत्त्वा गृहं व्रजेत् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे अश्वत्थप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अर्घ्य-प्रदान करने के अनन्तर पहले दिन रात्रि के समय 'तद्विष्णोरिरिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक जलपूर्ण उसे स्थापित करके 'कयानेति' मंत्र से गंध, 'गन्धद्वारेति' मंत्र से तैल, 'श्रीश्चेति' मंत्र से चन्दन सादर समर्पित करना चाहिए । दूर्वा, अक्षत समेत उसकी सादर सेवा के अनन्तर प्रातः तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर उसे श्वेत सूत्रों से आवेष्टित एवं चन्दन-चर्चित करते हुए कुम्भ में विनायक, दूसरे घट में ब्रह्मा, अपनी-अपनी दिशाओं में दिगीश्वरों और वृक्ष के मूलभाग में नवग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करते हुए मण्डल में शिव की अर्चा, पीठासन, पूजा पूर्वक पूर्व की ओर चंड-प्रचण्ड, दक्षिण की ओर नंदी और भृंगी, पश्चिम की ओर अनन्त, काम, उत्तर की ओर गणनायक, कार्तिकेय, और मध्यप्रदेश में आधार शक्ति पूर्वक अनन्त, पृथिवी, तीन भाँति की गोलायी लिए तीन मण्डल का स्थापन-पूजन करना चाहिए । अब मैं उनका ध्यान बता रहा हूँ, दो भुजा, शूल हाथ में लिए, समस्ताभरण विभूषित, उस श्वेत वर्ण के वृषभ की स्वतंत्र स्थापना करके मूल भाग में विष्णु, मध्य में शंकर, अग्रभाग में ब्रह्मा की पूजा करके पीठी की बलि प्रदान पूर्वक खीर का पाक बनाकर रुद्र के लिए ग्यारह आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए । अन्य के लिए स्रुवा द्वारा हवन करना बताया गया है । कदली-वृक्ष के आरोपण पूर्वक आचार्य को सन्तुष्ट करके पूर्णाहुति एवं पाँच धारा प्रदान करते हुए प्रदक्षिणा समेत क्षीर-धार एवं अर्घ्य-प्रदान कर अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए ।१-१३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पिप्पल प्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

बटप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

वटस्थानमथो वक्ष्ये तस्य मूले तु दक्षिणे । त्रिहस्तवेदिमुपरि स्थापयेत्कलशत्रयम् ।।१
गणेशं च शिवं विष्णुं पूजयित्वा हुनेच्चरुन् । रक्तसूत्रैस्त्रिगुणितैः स्वर्णमेव पुरःसरम् ।।२
यवक्षीरबलिं दद्यादुत्सृजेद्वाक्यमुच्चरन् । यूपमारोपयेत्पश्चाद्वटमूलैः समर्पयेत् ।।३
यक्षान्नागांश्च गन्धर्वान्सिद्धांश्चैव मरुद्गणान् ।।४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे बटप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

विल्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

वक्ष्ये बिल्वप्रतिष्ठां च पूर्वेद्युरधिवासयेत् । त्र्यम्बकं चेति मन्त्रेण स्थापयेद्गन्धवारिणा ।।१
सुनाभेति च मन्त्रेण मे गृह्णामीति चाक्षतम् । कयानेति ततो धूपं वस्त्रं माल्यं निवेदयेत् ।।२

अध्याय ९

बट-प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—मैं वट (बरगद) का प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ, उसके मूलभाग के दक्षिण की ओर तीन हाथ की वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर तीन कलशों के स्थापन पूर्वक गणेश, शिव, और विष्णु का क्रमशः स्थापन-पूजन सुसम्पन्न करते हुए क्षीर का हवन करना चाहिए। पश्चात् रक्तवर्ण के तीन सूत वाले सूत्र से उसे आवेष्ठित करके सुवर्ण प्रदान पूर्वक जवाक्षीर की बलि समर्पित करने के उपरांत पूर्वोक्त वाक्यानुसार उत्सर्जन और वटमूल द्वारा यूपस्तम्भ का स्थापन तथा यक्ष, नाग, गन्धर्व सिद्ध, और मरुद्गणों को सन्तुष्ट करते हुए समाप्ति करना चाहिए।१-४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में बटप्रतिष्ठाविधान वर्णन
नामक नवाँ अध्याय समाप्त।९।

अध्याय १०

बिल्व-प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—वेलवृक्ष की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, इस अनुष्ठान में सर्वप्रथम दिन अधिवासन कर्म में 'त्र्यम्बकमिति' मन्त्र से सुगन्धित जल पूर्ण स्थापन, 'सुनामेति' 'गृह्णामिति' इन मंत्रों से अक्षत, 'कयानेति' से धूप, वस्त्र और मालाओं को अर्पित करने के उपरांत रुद्र देव, मध्य में दुर्गा, कुबेर

यजेद्रुद्रं ततो देवं मध्ये दुर्गां धनेश्वरम् । ततः कल्ये समुत्थाय नित्यं निर्वर्त्य शास्त्रतः ।।३
स्वगृहे सप्त विप्रांश्च भोजयेद्द्विजदम्पती । मूले हस्तद्वयं दत्त्वा वर्तुला वेदिका भवेत् ।।४
तत्र गैरिकयुक्तेन कुसुंभचूर्णके न वा । निशारक्तेन वा कुर्यादष्टपत्रं सुशोभनम् ।।५
निवेष्टनं ततः कुर्याद्वृक्षस्य द्विजसत्तमाः । रक्त सूत्रैर्वेष्टयेच्च पञ्चसप्तनवभिस्तु ।।६
व्रीहींश्च वापयेत्तत्र उत्तराभिमुखस्तथा । शिवं विष्णुं च ब्रह्माणं पूजयेद् भूतिमिच्छता ।।७
शिवं च नायकं कुर्यादादित्यान्पत्रमूलके । शेषं च तरुमूले तु मध्येऽनन्तं शतक्रतुम् ।।८
वनपालं च सोमं च सूर्यं पृथ्वीमनुक्रमात् । होमस्तिलाक्षतैः कार्यो बलिं दद्याद्घृतौदनैः ।।९
यक्षेभ्यो माषभक्तं च वायनानि च द्वादश । ग्रहाणां प्रीतये दद्यात्क्षीरेणावेष्टय दक्षिणाम् ।।१०
काञ्चनं कास्य पात्रं च ताम्बूलं ताम्रपात्रकम् । यूपारोपं कर्णवेधं सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।११
अथ रात्रिप्रतिष्ठां च वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । यक्षैकवृक्षसंस्कारे न पुनर्जायते भुविः ।।१२
पूर्वेद्युरुपवाहे तु वृक्षमूले घटं न्यसेत् । विष्णुं शिवं गणेशं च पूजयित्वा तु स्थापयेत् ।।१३
कलशान्पञ्च वा सप्त गन्धतैलैरलंकृतान् । दुग्धेन पञ्चगव्येन शङ्खतोयेन यत्नतः ।।१४
सूत्रैः संवेष्टनं कृत्वा वस्त्रमाल्यैरनन्तरम् । काण्डादिति च मन्त्रेण दद्याद्दूर्वा क्षतं ततः ।।१५
विष्णुसूक्तेन च पुनः सिन्दूराञ्जनचन्दनम् । दद्यात्फलं च दीपं च स्वयं तत्र स्वपेत्ततः ।।१६
ततः प्रभाते विमले ब्राह्मणान्सप्त भोजयेत् । पूर्ववत्कलशं कृत्वा शिवं विष्णुं गणाधिपम् ।।१७

की अर्चा की सुसम्पन्नता पूर्वक प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में शास्त्रानुसार नित्यकर्म की समाप्ति करके अपने घर में सात ब्राह्मण, और द्विजदम्पती को उनके मनोनीत-भोजन कराना चाहिए। पुनः उसके मूलभाग में दो हाथ की गोलायी में वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर सुवर्ण अथवा चाँदी युक्त कुसुम चूर्ण, और हरदी के चूर्ण द्वारा अष्ट दल कमल की सौन्दर्यपूर्ण रचना के अनन्तर द्विजसत्तम वृन्द ! वृक्ष का निवेष्टन पूर्वक रक्त वर्ण के पाँच, सात, या नव सूत्रों से उस (वृक्ष को) आवेष्टित करते हुए धान्य-वपन (बीज बोने) के पश्चात् उत्तराभिमुख होकर अपने ऐश्वर्यार्थ 'शिव, विष्णु, एवं ब्रह्मा की पूजा सविधान सुसम्पन्न करनी चाहिए।१-७। पत्ते के मूल भाग में शिव, नायक, एवं आदि देवों के पूजन करते हुए वृक्ष के मूल भाग में शेष, मध्य में अनन्त, इन्द्र, दनपाल, सोम, सूर्य, एवं पृथिवी की पूजा क्रमशः करके तिल अक्षत से हवन करके एवं घी-भात की बलिप्रदान पूर्वक यक्षों के लिए पाक किये गये उरद, बारह वायन ग्रहों के प्रीत्यर्थ प्रदान करते हुए क्षीर से उसे आवेष्ठित कर दक्षिणा समेत, सुवर्ण, कांसे का पात्र, ताम्बूल, ताँबे का पात्र प्रीतिपूर्वक अर्पित करके यूप का स्थापन, कर्णवेध संस्कार, और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके समाप्ति करना चाहिए।८-११। इसके उपरांत मैं शास्त्रविहित रात्रि-प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ। यक्ष रूपी एक वृक्ष के संस्कार-कर्म सुसम्पन्न करने से इस भूतल पर पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है। प्रथम दिन उपवाह कर्म में वृक्ष के मूल भाग में घट-स्थापन पूर्वक विष्णु, शिव, गणेश का स्थापन-पूजन के उपरान्त पाँच या सात कलशों के स्थापन करने चाहिए, जो गन्ध-तैल से अलंकृत, दूध, पंचगव्य, और शंख-जल से पूर्ण, सूत्रों से आवेष्टित, एवं वस्त्र और मालाओं से सुशोभित किये गये हों। 'काण्डादिति' मंत्र से दूर्वा और अक्षत तथा विष्णु सूक्त से सिंदूर, अंजन एवं चन्दन के अर्पण पूर्वक फल और दीपदान करके वहाँ एकाकी शयन करना चाहिए। उपरांत प्रातःकाल नित्यकर्म करने के अनन्तर सात-ब्राह्मणों के भोजन पूर्वक पूर्व की

सोमं वनस्पतिं चैव एककुम्भे समर्च्चयेत् । हुनेत्पञ्चाहुतीस्तत्र यूपं दद्यात्समुत्सृजेत् ।।१८
बलिं च पायसेनैव प्रकुर्यात्कर्णवेधनम् । वेष्टयेत्क्षीरतोयेन धान्यं धेनुं च दक्षिणाम् ।।१९
दद्यादर्घ्यं हुनेत्पूर्णं भोजयेद्द्विजदम्पती ।।२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे विल्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

शतहस्तमितां मुष्टिं नानातरुविभूषिताम् । पूगाम्रादिफलैर्युक्तं वास्तुं कृत्वा यजेत्तु यः ।।१
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके वसेच्चिरम् । तद्विधानं प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रानुसारतः ।।२
नित्यं निर्वर्त्य विधिवत्पञ्च विप्रान्समर्चयेत् । भोजयेत्पूजयेद्विष्णुं प्रजापतिसमन्वितम् ।।३
अग्निकार्यं ततः कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।।४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११

भाँति कलशों के अर्चन और शिव, विष्णु, गणाधिप, सोम एवं वनस्पति देव की अर्चा एक कलश पर सुसम्पन्न करके पाँच आहुति प्रदान करते हुए यूप-स्थापन और उत्सर्जन कर्म की समाप्ति पूर्वक खीर की बलि, कर्ण वेध संस्कार क्षीरमिश्रित जलधारा से आवेष्टित करके धान्य, एवं धेनु समेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। पुनः अर्घ्यप्रदान, पूर्ण हवन (पूर्णाहुति) करके द्विज दम्पति को भोजन कराना चाहिए।१२-२०

श्री भविष्यमहापुराण के मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में विल्वप्रतिष्ठा-विधान-वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त।१०।

अध्याय ११

सद्वृक्षप्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सौ हाँथ की विस्तृत भूमि में मुट्ठी के प्रमाण से नपी हुई भूमि में भाँति-भाँति के अनेक वृक्षों से सुशोभित सुपारी, आम्र आदि फल वाले वृक्षों से विभूषित गृह-निर्माण कर जो यज्ञानुष्ठान करता है, वह साठ सहस्र वर्ष के चिरकाल समय तक स्वर्ग का निवास प्राप्त करता है, मैं उसी के विधान को शास्त्रीय रीति से बता रहा हूँ नित्य कर्म की समाप्ति के उपरांत पाँच ब्राह्मणों को पूजन एवं भोजन कराते हुए प्रजापति समेत विष्णु की पूजा करके हवन और ब्राह्मण-दक्षिणा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१-४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में सद्वृक्ष प्रतिष्ठाविधान-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।११।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मण्डपप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिष्ठां मण्डपस्यैव शैलदारुमयस्य च । तृणकाष्ठस्य च विभो तृणस्तस्य च द्विजाः ।।१
अधिवासस्य पूर्वेद्युः शुभे लग्ने घटं न्यसेत् । सूर्यं सोमं तथा विष्णुं कलशे तु समर्चयेत् ।।२
प्रोक्षयेत्कुशतोयेन आपोहिष्ठेति वै ऋचाः । आप्यायस्वेति गन्धेन गन्धद्वारेति गन्धकम् ।।३
आकृष्णेनेति तैलेन श्रीश्च ते इति चन्दनम् । सिन्दूरालक्तकं दद्यादञ्जनं पूर्वया सह ।।४
ततः प्रभाते विमले श्राद्धं वृद्ध्यात्मकं चरेत् । दिक्पालांश्चैव विन्यस्य मण्डपे शुभलक्षणे ।।५
मध्ये वेद्यन्तरे चैव राजभिर्मण्डलं लिखेत् । सूर्यमावाहयेत्तत्र सोमं विष्णुं च पार्श्वयोः ।।६
गणेशं च ग्रहांश्चैव दिक्पालांश्च घटेऽर्चयेत् । पायसं जुहुयादग्नावष्टोत्तरशतं तथा ।।७
आदित्यस्य तथा विष्णोः सोमस्य द्वादशाहुतीः । बलिं च पायसं दद्यात्तैलं क्षीरमथापि वा ।।८
तत उत्सृज्य विधिवद्वाक्यमेतदुदीरयेत् । । जानुभ्यामवनिं गत्वा शनैरोष्ठं न चालयेत् ।।९
वास्तोष्पतिं च तत्रैव पूजयेद्गन्धचन्दनैः । अर्घ्यं दद्याच्च विधिवद्भूतेनैवाहुतिं हुनेत् ।।१०

अध्याय १२

मण्डप-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! पत्थर-काष्ठ, अथवा तृण काष्ठ के द्वारा निर्माण किये गये मण्डप की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ । प्रथम दिन अधिवासन कर्म के निमित्त किसी शुभ लग्न में घट-स्थापन पूर्वक सूर्य, सोम, एवं विष्णु की अर्चा घट में सुसम्पन्न करनी चाहिए ।१-२। पश्चात् कुश-जल से 'आपोहिष्ठेति' मन्त्र से प्रोक्षण, 'आप्यायस्वेति' और 'गंधद्वारेति' इस मंत्र से गन्ध, 'आकृष्णेनेति' मंत्र से तेल, 'श्रीश्चतेति' मंत्र से चन्दन, सिन्दूर, अलक्तक (महावर) और अञ्जन के प्रदान पूर्वक दूसरे दिन निर्मल प्रातः समय में वृद्धि-श्राद्ध करते हुए उन शुभ लक्षणों से अंकित मण्डप में दिगीश्वरों के स्थापन-पूजन करना चाहिए ।३-५। पुनः मध्य भाग में दूसरी वेदी के निर्माण पूर्वक किसी रंगीन वस्तु (द्रव्य) से मण्डल की रचना करके उसमें सूर्य के आवाहन-पूजन और दोनों पार्श्व भाग में सोम, विष्णु, और गणेश, ग्रहगण, एवं दिगीश्वरों की अर्चा उस घट में सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् खीर की एक सौ आठ आहुति प्रदान करते हुए सूर्य, विष्णु, एवं सोम के लिए बारह-बारह आहुति प्रदानकर, खीर, तेल, अथवा क्षीर की बलि देनी चाहिए । उपरांत उत्सर्जन-कर्म सविधान सुसम्पन्न करते हुए घुटने के बल बैठकर इस भाँति सविधान रहना चाहिए, जिसमें धीरे-धीरे भी ओष्ठ का प्रकम्पन न होने पाये । वहीं पर गन्ध-चन्दन द्वारा सविधान वास्तोष्पति की पूजा करके विधान पूर्वक अर्घ्य प्रदान और हवन करना चाहिए । 'ओं

(ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणादिसर्वसत्त्वेभ्यो विष्णुप्रीणनार्थमिमं मण्डपं सुपूजितं सूर्यदैवतं शैलेयेष्टकादिभिः सर्वसत्त्वेभ्यो रचितं श्रुतिस्मृत्युक्तफलप्राप्तिकामनया अमुकऋषिसगोत्रः श्यमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ॥)
ततः श्वेतघटं दद्यान्मण्डपोपरि सत्तमाः । त्रिगुणेन निशाक्तैर्वा वेष्टयेद्वारिधारया ॥११
दक्षिणां विधिवद्दद्यात्सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । तृणवेश्मनि वै सूर्यं वासुदेवसमन्वितम् ॥१२
घटे गणेशं वरदं वरं कृत्वा समुत्सृजेत् । ऐशान्यां दापयेद्धूपं ध्वजान्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥१३
मण्डपोपरि कलशं संस्थाप्य मन्त्रमुच्चरेत् । प्रपायां वरुणः पूज्यो विश्वकर्मा प्रयत्नतः ॥१४
पृथिवीं च गणेशं च पूजयित्वा हुनेद्घृतम् । सर्ववर्ज्यमिदं वाक्यं ध्वजमात्रं विधीयते ॥१५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे मण्डपप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

महायूपनिर्माणप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्हस्तं महायूपं हस्तषोडशनिर्मितम् । वक्ष्ये तं च प्रतिष्ठां च रात्रौ त्रैरात्रिकं यजेत् ॥१
वरुणं सितकुम्भे च प्रपाकूपस्य पश्चिमे । गायत्र्या स्नापयेत्पूर्वमापोहिष्ठेति वै क्रमात् ॥२

अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर ब्राह्मण आदि सभी प्राणियों के लिए विष्णु के प्रसन्नार्थ इस मण्डप का, जो सुपूजित, सूर्य प्रधान देव, पत्थर ईंट द्वारा सभी लोगों के सहयोग से सुरचित है, श्रुति, स्मृति में बताये गये फल प्राप्ति की कामना से अमुक ऋषि का सगोत्री, एवं अमुक देव शर्मा में उत्सर्जन कर रहा हूँ। सत्तमवृन्द ! तदनन्तर मण्डप के ऊपर श्वेत वर्ण के घट-स्थापित पुरस्सर तीन गुने हरदी के रंग से सूत्रों को केवल जल धारा से आवेष्टित करकें सविधान दक्षिणा और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान कर समाप्ति करनी चाहिए। तृण (छप्पर वाले) मण्डप की प्रतिमा में वासुदेव समेत सूर्य और घट में वरदायक गणेश की अर्चा करके उत्सर्जन करना चाहिए। ईशान कोण में धूप प्रदान पूर्वक दिशाओं में ध्वजाओं की स्थापना करके मण्डप के ऊपर कलश स्थापन मंत्रोच्चारण पूर्वक 'प्रपा' (पियाउ) में वरुण के पूज्य होने की भाँति यहाँ विश्वकर्मा पूजित हैं, ऐसा कहकर पृथिवी, गणेश, की पूजा और हवन कर्म घी द्वारा सुसम्पन्न करते हुए कदाचित् इन वाक्यों के त्याग भी हो जायें पर ध्वज-विधान अवश्य होने चाहिए।६-१५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में मण्डपप्रतिष्ठा-विधान वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अध्याय १३

महायूप के निर्माण एवं प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—चार हाथ अथवा सोलह हाथ के महायूप (यज्ञीय स्तम्भ) के निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा बता रहा हूँ, इसकी प्रतिष्ठा के विधान में रात्रि में तीन रात्रि तक उसका अनुष्ठान होना बताया

गन्धद्वारेति गन्धं च अंशुना चेति तैलकम् । मनोज्ञा इति कुसुमं धूरसीति च धूपकम् ॥३
कयानेति ददेद्वस्त्रं नैवेद्यं दीपचन्दनम् । आदौ श्राद्धं न कर्तव्यं प्रतिष्ठान्ते विधीयते ॥४
दम्पतीभोजनं कुर्याद्वरयेदेकब्राह्मणम् । मण्डपे चाष्टहस्ते च कलशं तत्र विन्यसेत् ॥५
पूजयेद्वरुणं देवं नारायणसमन्वितम् । शिवं च पृथिवीं चैव स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथाक्रमात् ॥६
ततः कुशकण्डिकां कृत्वा स्थालीपाकविधानतः । वरुणं च समभ्यर्च्य जुहुयादाहुतीर्दश ॥७
अन्येषां च स्रुवेणैव दद्यादेकाहुतिं क्रमात् । वरुणस्योक्तवरुणं तत्त्वायामि ततः परम् ॥८
वरुणस्योत्तम्भनमसीति च आभ्यां देवांस्तथैव च । येनापावकचक्षसा पञ्चमं समुदाहृतम् ॥९
रात्रस्य यूपमित्यादि परं च दशमस्तकम् । ततः स्विष्टकृतं कृत्वा सप्तजिह्वं चरुं नयेत् ॥१०
इह वेत्यादिकं पञ्च ततः पञ्चाहुतिं हुनेत् । शम्भवे च पृथिव्यै च महाराजाय च क्रमात् ॥११
चरुपाकेति नैवेद्यं बलिं चैवागुरूदनम् । शङ्कराय च रुद्राय शर्वाय पशुपतये इति च ।
उग्राय असनायेति भवाय तदनन्तरम् ॥१२
महादेवाय च पुनरीशानायेति च क्रमात् । चरुपाकेति नैवेद्यं बलिं चैवागुरूदनम् ॥१३
वाक्यपूर्वं सृजेत्तोयं तत्र वाक्करणं शृणु ॥१४
(ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणादिसर्वसत्त्वेभ्यः अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः श्रुतिस्मृत्याद्युक्तं कूप-प्रतिष्ठाजन्यफलप्राप्तये इमं सुपूजितं सच्छादितं वरुणदैवतममुकसगोत्रः अमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ॥)
दक्षिणां विधिवद्दद्याद्गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥१५

गया है। श्वेत कलश में वरुण का स्थापन प्रपा (पियाऊ) या कूप के निर्माण प्रतिष्ठा में करना बताया गया है, उसमें यह भी कहा गया है कि गायत्री, और 'आपोहिष्ठेति' से स्नान, 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुना चेति' से तेल, 'मनोज्ञा इति' से पुष्प, 'धूरसीति' से धूप, 'कयानेति' से वस्त्र, नैवेद्य, दीप एवं चन्दन, अर्पित करना चाहिए। प्रतिष्ठानुष्ठान के आरम्भ में श्राद्ध न करना चाहिए, प्रत्युत उसके अंत में करना बताया गया है। दम्पती भोजन और एक ब्राह्मण के वरण करने के उपरांत इस आठ हाथ के मण्डप में कलश-स्थापन पूर्वक वरुण, नारायण देव, शिव और पृथिवी की क्रमशः उनके मंत्री द्वारा अर्चा सुसम्पन्न करके कुश कण्डिका-विधान एवं पाक-विधान करते हुए वरुण की पूजा और उन्हें दश, आहुति समर्पित करनी चाहिए। पुनः अन्य देवों के लिए स्रुवा द्वारा क्रमशः एक एक आहुति प्रदान करते हुए वरुण की प्रार्थना 'वरुणस्योत्तम्भनमसीति' 'येनापावक चक्षसेति,' एवं 'रात्रस्य यूपमित्यादि' मंत्रों के उच्चारण पूर्वक करके स्विष्टकृत् के उपरांत सप्तजिह्वामय अग्नि की जिह्वा के तृप्त्यर्थ हवि की पाँच आहुति' इह वैत्यादिकमिति इन पाँचों मंत्रों द्वारा प्रदान कर शंभु, पृथिवी, और महाराज के लिए क्रमशः आहुति प्रदान करनी चाहिए।१-११। 'चरुपाकेति' नैवेद्य, बलि प्रदान के अनन्तर शंकर, रुद्र, शिव, पशुपति, उग्र, असन, भव, महादेव, तथा ईशान के लिए क्रमशः चतुर्थ्यन्त नामोच्चारण पूर्वक आहुति प्रदान करके 'चरुपाकेति' वाक्य द्वारा जलोत्सर्जन करने में इस भाँति वाक्य योजना की जाती है। 'ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर ब्राह्मण आदि सभी प्राणियों के लिए अमुक गोत्र अमुक देव शर्मा नामक मेरे पिता के श्रुति-स्मृति निहित कूप प्रतिष्ठाजनित फल प्राप्त्यर्थ सुपूजित, भली भाँति आच्छादित, वरुण देव प्रधान इसका उत्सर्जन अमुक गोत्र, अमुक देव शर्मा मैं कर रहा हूँ। पश्चात् विधान पूर्वक दक्षिणा प्रदान करते समय दूध देने वाली गौ का दान करना चाहिए।१२-१५। द्विजवृन्द ! अब मैं मण्डप अथवा छोटे

मण्डपे क्षुद्रकूपे च प्रतिष्ठां शृणुत द्विजाः । गणेशं वरुणं कुम्भे विधिवत्पूजयेत्सुधीः ॥१६
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च दद्याद्धूपं समुत्सृजेत् । दक्षिणां विधिवद्दद्याद्विप्रान्सम्पूजयेत्ततः ॥१७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे महायूपनिर्माणप्रतिष्ठावर्णनं
नाम त्रयोदशोऽध्यायः।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पुष्पवाटिकाप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

पुष्पारामप्रतिष्ठां तु वक्ष्ये शृण्वन्तु वै द्विजाः । मध्ये वेदिं त्रिहस्तां च कृत्वा संस्थापयेद्घटम् ॥१
अधिवासस्य पूर्वेद्युर्यथावद्विप्रभोजनम् । कृत्वा घटे गणेशं च सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥२
नारायणं स्थंडिले च जुहुयान्मधुपायसम् । विधिवद्यूपमारोप्य गोधूमान्सेचयेद्गुरौ ॥३
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च प्रदद्याच्चेति दक्षिणाम् । एतद्धाराजलेनैव यवान्नं सगुडं पयः ॥४
ऐशान्यां यूपमारोप्य विधिवद्द्विजसत्तमाः । कर्णवेधं समारोप्य स्नापयेत्कुशवारिणा ॥५
धान्यं यवं च गोधूमं दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । शतधारजलेनैव वेष्टयेत्परितो द्विजाः ॥६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे पुष्पवाटिकाप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः।१४

कूप का प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ, सुनो ! विद्वान् को चाहिए कि घट स्थापन पूर्वक गणेश वरुण की अर्चा सविधान सुसम्पन्न करके रक्तवर्ण के सूत्रों से आवेष्टित करने के उपरांत धूप का उत्सर्जन, सविधान दक्षिणा प्रदान और ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए ।१६-१७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में महायूप निर्माण प्रतिष्ठा-विधान वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

पुष्पवाटिका प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! पुष्पवाटिका के प्रतिष्ठा-विधान को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीन हाथ की सौन्दर्य पूर्ण वेदी के निर्माण पूर्वक उसके मध्य भाग में वटस्थापन करके पहले दिन अधिवासन कर्म और यथोचित ब्राह्मणों के भोजन सुसम्पादित करने के उपरांत घर में गणेश, सूर्य, सोम, अग्नि, एवं नारायण देव के पूजन करते हुए वेदी पर शहद मिश्रित खीर की आहुति प्रदान करनी चाहिए । विधान पूर्वक यूपस्तम्भ का स्थापन, बृहस्पतिवार में गेंहू का सेवन करके रक्तवर्ण के सूत्रों से उसे आवेष्टित करते हुए दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । पुनः जवा, गुड़, क्षीर मिश्रित जल धारा से आवेष्टित करके द्विजवृन्द ! ईशान कोण में सविधान यूप का स्थापन, कर्णवेध संस्कार, कुश-जल से स्नान करने के अनन्तर धान्य, जवा, गेहूँ समेत दक्षिणा ब्राह्मण के लिए अर्पित करके जल की शत धारा से उसे आवेष्टित करना चाहिए ।१-६।

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पुष्पवाटिका प्रतिष्ठा-विधान वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तुलसीप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

ज्येष्ठाषाढे तुलस्याश्च प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् । यजमानः शुद्धदिने एकादश्यामथापि वा ॥१
ततो रात्रौ घटं स्थाप्य पूजयेत्परमेश्वरम् । नारायणं शिवं सोमं ब्रह्माणं चन्द्रमेव च ॥२
गायत्र्या स्नपनं कुर्यात्तथोक्तैर्मन्त्रकैरपि । कयानेति च गन्धेन अंशुनेति च तैलकम् ॥३
त्वां गन्धर्वेति च पुनः पुष्पं मन्डंशनेति च । मानस्तोकेति कुसुमं श्रीश्चतेति च चन्दनम् ॥४
वैश्वदेवीति च पुनर्मन्त्रेणानेन चन्दनम् । दूर्वामन्त्रेण दूर्वाश्च रूपेणेति च दर्पणम् ॥५
फलमन्त्रेण च फलं समेधेति च अञ्जनम् । सकुशैः पीतसूत्राद्यैर्वेष्टयेत्क्षीरधारया ॥६
शतधाराजलेनैव वेष्टयेत्स्वगृहं व्रजेत् । वस्त्रेणावृत्य विधिवद्बुधः काले घटं न्यसेत् ॥७
सप्तपञ्चत्रिभिर्वाथ तद्विष्णोरिति वै ऋचा । स्नापयेदथ साध्वीभिः कृतमङ्गलपूर्वकम् ॥८
ततः श्राद्धं समाप्यैव मातृपूजापुरःसरम् । आचार्यं वरयेत्पूर्वं गन्धाद्यैः कुसुमैरपि ॥९
आचार्य एव होता स्याद्ब्रह्माणं च सदस्यकम् । मण्डपे दशहस्तेऽपि वर्तुले स्थण्डिलेषु च ॥१०
सहस्रं मण्डलं कुर्यात्तत्र नारायणं यजेत् । ग्रहाँल्लोकेश्वरान्मध्ये आदित्यांश्च मरुद्गणान् ॥११
रुद्रान्वसूंश्च कलशे परितश्च समर्चयेत् । ततः कुशकण्डिकां कृत्वा होमं तिलयवेन तु ॥१२

अध्याय १५

तुलसी-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—ज्येष्ठ या आषाढ़ के मास में तुलसी की सविधान प्रतिष्ठा करनी चाहिए। किसी शुद्ध दिन अथवा एकादशी तिथि में यजमान को चाहिए कि रात्रि के समय घट स्थापन पूर्वक परमेश्वर, नारायण, शिव, सोम, ब्रह्मा, एवं इन्द्र की अर्चा करते हुए गायत्री तथा पूर्वोक्त मन्त्रों से स्नान, 'कयानेति' से गंध, 'अंशुनेति' से तेल, 'त्वां गन्धर्वेति ' और 'मंडंशनेति' से पुष्प, 'मानस्तोकेति' से कुसुम 'श्रीश्चतेति' से और 'वैश्वदेवीति' से चन्दन, दूर्वामंत्र से दूर्वा, 'रूपेणेति' से दर्पण, फलमंत्र से फल, और 'समेधेति' से अञ्जन से सुसज्जित करके कुश समेत पीले वर्ण के सूत्रों से आवेष्टित करते हुए क्षीर धारा और जल की शतधारा से आवेष्टित करके अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए। पश्चात् विद्वान् को चाहिए कि समयानुसार वस्त्र से सुसज्जित घट का स्थापन सुसम्पन्न करे।१-७। पुनः 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक मांगलिक कृत्यों के अनन्तर सात, पाँच, या तीन पतिव्रता स्त्रियों द्वारा स्नान कराने के पश्चात् मातृपूजा पूर्वक श्राद्ध समाप्ति कर गंध कुसुमादि द्वारा आचार्य का वरण करना चाहिए। दश हाथ वाले मण्डप में गोलाकार वेदी के त्रिकोण में आचार्य ही होता और ब्रह्मा, सदस्य गण होते हैं। सहस्र मण्डलों की रचना करके वहाँ नारायण देव की अर्चा, ग्रहण लोक पाल, मध्यभाग में आदित्य, मरुद्गण, रुद्र एवं वसु की अर्चा चारों ओर कलश-स्थापन पूर्वक सादर सम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात्

अष्टोत्तरशतं कुर्यादन्येषां शक्तितो हुनेत् । नारायणं समुद्दिश्य दद्यादुत्सृज्य सत्तमाः ।।१३
मध्ये यूपं समुद्दिश्य चरुपाकं बलिं ददेत् । कदलीं दिक्षु संन्यस्य ध्वजान्दिक्षु प्ररोपयेत् ।।१४
दक्षिणां काञ्चनं दद्यात्तिलं धान्यं सपुष्पकम् । धेनुं पयस्विनीं दद्याद्वेष्टयेत्क्षीरधारया ।।१५
जयन्त्याः सोमवृक्षस्य तथा सोमवटस्य च । पनसस्य कदम्बस्य निम्बस्य द्विजसत्तमाः ।।१६
पाटलाकनकस्यैव शाल्मलीनिम्बकस्य च । बिम्बाशोकवटस्यैव प्रतिष्ठां नैव कारयेत् ।।१७
भद्रकस्य शमीकोणचण्डातकबकस्य च । खदिरस्यैव कर्तव्यं कर्णवेधं न कारयेत् ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे तुलसीप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रतिष्ठाविशेषनियमवर्णनम्

सूत उवाच

वृक्षादीनां प्रतिष्ठां च उत्तमेषूत्तमं चरेत् । मध्ये मध्ये कनिष्ठा तु कनिष्ठं परिकीर्तितम् ।।१
वर्तुलं मण्डलं कुर्यात्तत्तु शीर्षे तथान्त्यके । मध्ये वा वेदिकां कुर्यात्तन्मध्ये कुण्डमण्डलम् ।।२
पूर्वेद्यू रात्रिसमये घटं संस्थाप्य पूजयेत् । शेषं सम्पूज्य विधिवत्पृथिवीं च शिवं तथा ।।३
गन्धतोयेन गायत्र्या सेतुं सम्पूज्य मोक्षयेत् । कयानेति च मन्त्रेण आप्यायस्वेति वै ऋचा ।।४
दद्याद्गन्धादिकं श्रीश्च ते लक्ष्मीरिति चन्दनम् । दूर्वामन्त्रेण दूर्वाश्च फलमन्त्रेण वै फलम् ।।५

कुश कण्डिका विधान पूर्वक तिल-जवा की एक सौ आठ आहुति, और अन्य के लिए यथा शक्ति की आहुति प्रदान करके श्रेष्ठवृन्द ! नारायण के उद्देश्य से दान एवं उत्सर्जन करना चाहिए । मध्य भाग में यूप की प्रतिष्ठा करके पाक किये हुए हवि की बलि प्रदान कर दिशाओं में कदली वृक्ष और ध्वजाओं से सुशोभित करना चाहिए । तिल, धान्य एवं पुष्प समेत सुवर्ण की दक्षिणा और गोदान देकर क्षीर धारा से आवेष्टित करना बताया गया है । द्विजवृन्द ! जयंती, सोम वृक्ष, सोमवट, कटहल, कदम्ब, नीम, पाटल, कनक (धतूरा), सेमर, नीम, बिम्ब अशोकवटी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । भद्रक, शमी, कोण, चण्डातक, बकवृक्ष, खैर वृक्षों की प्रतिष्ठा की जाती है, पर कर्ण वेध संस्कार नहीं ।८-१८

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में तुलसीप्रतिष्ठा-विधान वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

प्रतिष्ठा-विशेष-विधाननियम का वर्णन

सूत जी बोले—वृक्षों की प्रतिष्ठा विधान में उत्तम वृक्षों की उत्तम, मध्यम की मध्यम और कनिष्ठ की कनिष्ठ प्रतिष्ठा करनी चाहिए । उसके शीर्ष (शिर) अथवा अन्तिम भाग में गोलाकार मण्डल की रचना पूर्वक मध्य भाग में वेदी और उसके मध्य में कुण्ड मण्डल का निर्माण करना चाहिए । पहले दिन रात्रि के समय घट-स्थापन पूर्वक शेष, पृथिवी, एवं शिव का सविधान पूजन करके गायत्री द्वारा गंध जल से सेतु की पूजा के उपरांत मुक्त करना चाहिए। 'श्रीश्चतेति' से चन्दन, दूर्वा मन्त्र से दूर्वा, और फल मन्त्र से

शन्नोदेवीति मन्त्रेण दद्यात्कुशपवित्रकम् । सुरासुरेति मन्त्रेण प्रदद्याद्वस्त्रयुग्मकम् ॥६
अञ्जनालक्तकं कुर्यान्मनोन्ना इति संपठन् । कुर्याच्छ्राद्धं परदिने वसुधारापुरः सरम् ॥७
वरयेदथ आचार्यं होतारं नृवरश्चरेत् । पात्रद्वयं विधातव्यं सदस्याचार्यमेव च ॥८
सेतुयागे विधातव्यं तथा धान्याचलेऽपि च । सहस्रहोमे वैकं तु विवाहे ब्रह्मऋत्विजौ ॥९
यजेदेनं कृते मौलियागार्थं यागमण्डपम् । वेदिमावाहयेत्पूर्वं मण्डपं प्रतिपूजयेत् ॥१०
विघ्नग्रहाँल्लोकपालान्सर्वसिद्धिप्रदायकान् । स्थण्डिले सर्वतोभद्रे शेषं विष्णुं प्रदर्शयेत् ॥११
तत्रैव तु वराहाख्यं प्रतीतमृत्विगुत्तमम् । स्थालीपाकेन जुहुयादष्टाविंशतिकत्रयम् ॥१२
आज्येन तु वराहस्य होमपञ्चकमीरितम् । ततस्तिलयवे नैव एकैकामाहुतिं क्रमात् ॥१३
बलिं दद्यात्पृथग्रूपं शेषयेद्विधिपूर्वकम् । पिष्टकान्नं घृतान्नं च विस्तरे वा गुडौदनम् ॥१४
माषभक्तं तु लोकाय पृथिव्यै परमान्नकम् । वाक्यपूर्वं सृजेद्धीरो वाक्यप्रकरणं शृणु ॥१५
(ॐ अद्येत्यादि एकविंशतिकुलस्य विशिष्टस्वर्गप्राप्तय इमं सेतुं सङ्क्रमसमेतं विष्णुदैवतं सुरपूजितं
विधिवद्वासुदेवस्य प्रीतयेऽहमुत्सृजे ॥)
बद्धाञ्जलिः पठेन्मन्त्रं कुर्याच्च विधिवत्ततः । पिच्छिले पतितानां च उद्गतेनाङ्गभङ्गतः ॥
प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् ॥१६
सेतोरस्य प्रबन्धस्य श्रद्धया परया युतः । ये चात्र प्राणिनः सन्ति सर्वेषां प्राणधारकाः ॥१७
वेदागमेन यत्पुण्यं कथितं सेतुबन्धने । तत्पुण्यं तु मया देव पाथेये हि समर्पितम् ॥१८

फल, 'शन्नोदेवीति' से कुश और पवित्री, 'सुरासुरेति' से दो वस्त्र, 'मनोन्ना इति' मंत्र से अंजन, अलक्तक (महावर) से सुसज्जित करना बताया गया है। पुनः दूसरे दिन वसुधारा पूर्वक श्राद्ध सम्पन्न करके आचार्य एवं होताओं के वरण और आचार्य, सदस्य के लिए दो पात्रों की कल्पना की जानी चाहिए।१-८। सेतु याग, धान्य-पर्वत-विधान, सहस्र संख्या की आहुति वाले हवन कर्म में एक (आचार्य मात्र) और विवाह में ब्रह्मा तथा ऋत्विक् की भी वरण पूजा होती है। मौलियागार्थ याग-मण्डप, वेदी के पूजन में प्रथम मण्डप पूजन बताया गया है। वेदी पर सर्वतोभद्र चक्र के सौन्दर्य पूर्ण निर्माण करके उस पर विधु ग्रहगण, सर्वसिद्धिप्रदायक लोकपालों के आवाहन-पूजा करके शेष समय में विष्णु का दर्शन-पूजन होना चाहिए। वहीं पर वराह नामक श्रेष्ठ ऋत्विक् की कल्पना कर पाक-विधान द्वारा बने पाक से अठ्ठाइस की तिगुनी आहुति, वराह के लिए घी की पाँच आहुति प्रदान पूर्वक पश्चात् एक-एक आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए। पुनः पृथक्-पृथक् बलि प्रदान करके पीठी के अन्न पर घी-मिश्रित अन्न अथवा विस्तृत की इच्छा हो तो गुड़-भात (मीठाभात) प्रदान पूर्वक लोक के लिए पाक किये हुए उरद पृथिवी के लिए परमान्न प्रदान करते हुए उत्सर्जन कर्म में इस भाँति कहना चाहिए—'ओं अधेत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर इक्कीस कुल के प्राणियों के एक साथ स्वर्गप्राप्त्यर्थ इस सेतु का जो संक्रम समेत, विष्णु प्रधान देव, सुरपूजित हैं, सविधान मैं वासुदेव के प्रीत्यर्थ उत्सर्जन कर रहा हूँ। पश्चात् अञ्जली बाँधकर इस विधान द्वारा प्रार्थना करना चाहिए। कीचड़ में फिसल कर गिरने अथवा अङ्गभंग होने से निधन होने पर इस धर्म सेतु की प्रतिष्ठानुष्ठान सुसम्पन्न करने से मुझे धर्म की ही प्राप्ति हो, पातक की नहीं। उत्तम श्रद्धा पूर्वक इस सेतु के प्रबन्धक गण जो सभी के प्राणाधाररूप में हैं, उनके पुण्य, वेदों और आगमों में से सेतुबन्धन के

यूपं दद्यादिति मन्त्रेण अन्ते चापि तथा ध्वजान् । विधिवद्दक्षिणां दद्यात्कुलानि नव पञ्च वा ।।१९
पूर्णां दत्त्वा सवित्रेऽर्घ्यं दत्त्वा च स्वगृहं व्रजेत् । अनातपे क्षुद्रसेतोः प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ।।२०
पूर्वं च दधिवासं च प्रभाते विप्रभोजनम् । सेतुमध्यं ततो गत्वा गन्धादीन्विधिवच्चरेत् ।।२१
विष्णुं शिवं हुताशं च एककुण्डे समर्चयेत् । वास्तोष्पतिं यजेत्तत्र होमं तिलयवेन तु ।।२२
कुर्यादेकैकशो विप्रा अष्टाविंशतिसंख्यया । उत्सृज्य दापयेद्यूपं ध्वजवर्ज्यं हि सत्तमाः ।।
ज्ञातिभिः सह भुञ्जीत कृतकृत्योऽभिधीयते ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे प्रतिष्ठाविशेषनियमवर्णनं
नाम षोडशोऽध्यायः ।१६

अथ सप्तदशोऽध्यायः

गोप्रचारविधिवर्णनम्

सूत उवाच

तत्र दण्डे च विप्रेन्द्राश्चतुरस्रे समन्ततः । षष्टिहस्तमितां भूमिं तस्य पूर्णां मनोरमाम् ।।१
प्रचारार्थं गवां चैव यो दद्यात्सुसमाहितः । षष्टिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।।२
तदर्धं च तदर्धं च तदर्धं वा समुत्सृजेत् । यो दद्यात्केवलां भूमिं कन्यां दासीं तथा वृषम् ।।३
अलङ्कारं विना धेनुं फलस्यार्धं प्रकीर्तितम् । अमण्डपे शुभे स्थाने शर्करादिविवर्जिते ।।४

लिए जो पुण्य बताया गया है, हे देव ! उन पुण्यों को मैं पाथेय के लिए आपको सौंप दिया है । पश्चात् मन्त्र पूर्वक यूप-स्थापन विधान ध्वजों की स्थापना, सविधान दक्षिणा चौदह कुलों की पूर्णाहुति सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए । आतपहीन समय में छोटे-छोटे सेतुओं की प्रतिष्ठा सविधान सुसम्पन्न करने में पहले दधिवासन, प्रातःकाल ब्राह्मण-भोजन के उपरांत सेतु के मध्यभाग में जाकर गन्धादि से अर्चन सुसम्पन्न करते हुए विष्णु, शिव, और अग्नि के लिए एक कुण्ड में पूजन आहुति प्रदान करके तिल-जवा से वास्तोष्पति के लिए आहुति और प्रत्येक देव के लिए अट्ठाइस आहुति प्रदान करते हुए सत्तमवृन्द ! उत्सर्जन एवं यूप-स्तम्भ विधान की समाप्ति करनी चाहिए, इसमें ध्वजा लगाना निषेध किया गया है । पश्चात् अपने बन्धुओं के साथ भोजन करने से कृतकृत्य होना बताया गया है ।९-२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में प्रतिष्ठा-विशेष-नियम वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

गोप्रचारविधि का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रेन्द्रवृन्द ! उस दण्ड में जो मन लगाकर चारों ओर से चौकोर साठ हाथ परिमाण की सुन्दर एवं पूर्ण भूमि का दान गौओं के प्रचारार्थ (चारागाह) के लिए करता है, वह साठ सहस्र वर्ष पर्यंत रुद्रलोक में सम्मानित होता रहता है। अथवा उसकी आधी, चौथाई या आठवें भाग की भूमि अथवा केवल भूमि, कन्या, दासी तथा वृषभ और अलंकारहीन धेनु का दान करता है, उसे आधे फल की प्राप्ति होती है। मण्डपहीन किसी शुभ स्थान में जो मनोरम एवं दोषहीन हो, दो हाथ की वेदी बनाकर मध्य में

द्विहस्तवेदिकामध्ये प्रकुर्यात्सेतुमण्डपम् । तत्र सम्पूजयेद्रुद्रं ब्रह्माणं च शचीपतिम् ॥५
गणेशं क्षेत्रपालं च शेषं चैव दिगीश्वरान् । पञ्चोपचारैर्विधिवत्पूजयेत्पायसादिना ॥६
स्थालीपाकेन जुहुयादन्ते वै विप्रभोजनम् । अत्र यागे श्राद्धवर्ज्यं पूर्वेद्युरधिवासयेत् ॥७
त्र्यम्बकेनैव मन्त्रेण भूमिं संस्थाप्य पूजयेत् । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गन्धतैलं सचन्दनम् ॥८
प्रदद्यादसुनीतेति पुनस्तु नैव स्थापयेत् ।पञ्चगव्येन च पुनः श्रीश्चतेति च पुष्पकम् ॥९
एवं धूपस्य च तथा अधिगृह्णाति मन्त्रकम् । गन्धद्वारेति गन्धेन अंशुनातेति तैलकम् ॥१०
सुरासुरेति कुसुमं दूर्वामन्त्रेण दूर्विकाम् । प्रभाते पूजयेद्देवान्रुद्रमुद्दिश्य होमयेत् ॥११
स्थालीपाकेन विधिना अन्येषां पूर्ववच्चरेत् । उत्सृज्यारोपयेद्दीपं स्थिरो भवेति वै ऋचा ॥१२
तन्त्रेण निर्मितं कुर्यात्सफलं च त्रिहस्तकम् । हस्तैकं प्रापयेन्मध्ये क्षेत्रे चैव विशेषतः ॥१३
स्थापयेत्तत्र मन्त्रेण पञ्चगव्येन यत्नतः । मधुवातेति मधुना आप्यायस्वेति वै दधि ॥१४
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण घटतोयैरनन्तरम् । पृथिवीं च वराहं च कूर्ममाधवशक्तिकान् ॥१५
वास्तोष्पतिं च विष्णुं च यूपे सम्पूजयेत्क्रमात् । दद्यादर्घ्यं च विवरे गर्ते होमं विवर्जयेत् ॥१६
अर्घ्यपाद्ये च दुष्टे च हस्तेनोत्सृज्य सत्तमाः ॥ (ॐ अद्येत्यादि गोब्राह्मणसर्वसत्त्वेभ्यः पर्यटनार्थाय इमां भूमिं सुपूजितां विष्णुदैवतां गोप्रचाररूपिणीं श्रुतिस्मृत्याद्युक्तफलप्राप्तयेऽहमुत्सृजे॥)
शिवलोकस्थिता गावः सर्वदेवैः सुपूजिताः । एवं निवेदयेद्विप्रो गोप्रचारं समाहितः ॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥१७

सेतु मण्डप के निर्माण करके उसमें भद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश, क्षेत्रपाल, शेष, और दिगीश्वरों की पञ्चोपचार समेत अर्चा करते हुए पाक-विधान द्वारा बनी हुई खीर से हवन और अन्त में ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करना चाहिए। इस याग विधान में श्राद्ध करना निषेध किया गया है। पर पहले दिन, अधिवासन कर्म अवश्य करना चाहिए। पुनः 'त्र्यम्बकमिति' से भूमि स्थापन पूजन, 'तद्विष्णोरिति' से गन्ध, तेल, चन्दन के प्रदान पूर्वक पंचगव्य 'श्रीश्चतेति' से पुष्प-प्रदान करना कहा गया है। इसी भाँति धूप के स्थापन पूजन में 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुनातेति' से तैल, 'सुरासुरेति' से कुसुम, दूर्वा के मन्त्र से दूर्वा प्रदान करके प्रभात काल में देवों की पूजा पूर्वक रुद्र के उद्देश्य से हवन करते हुए अन्य लोगों के लिए भी पाक द्वारा आहुति प्रदान करनी चाहिए। उत्सर्जन कर्म के अनन्तर 'स्थिरोभवेति' से दीप-स्थापन तीन हाथ के प्रमाण में जिसमें एक हाथ का प्रमाण उसका मध्य भाग रहता है, मंत्रोच्चारण पूर्वक एवं पंचगव्य समेत 'मधुवातेति' से शहद, 'आप्यायस्वेति' से दही और 'तद्विष्णोरिति' मन्त्र से घट-जल अर्पित करते हुए उस यूप (यज्ञीय स्तम्भ) में पृथिवी, वराह, कूर्म, माधव, शक्ति वास्तोष्पति, विष्णु की क्रमशः पूजा करके उस विवर में अर्घ्य-प्रदान पूर्वक गड्ढे में हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। श्रेष्ठवृन्द ! उस अर्घ्य, एवं पाद्य के दुष्ट होने पर उसे हाथ से हटा देने चाहिए। 'ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर जो ब्राह्मण समेत सभी प्राणियों के विचरण करने के उद्देश्य से मैं इस गोप्रचार रूपवाली, विष्णु प्रधान देवता, और सुपूजित भूमिका श्रुतिस्मृतिविहित फलप्राप्त्यर्थ उत्सर्जन कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए प्रार्थना करना चाहिए—गौएँ शिवलोक में स्थित होकर समस्त देवों द्वारा पूजित हों। जो ब्राह्मण गोप्रचार कर्म में मन लगाकर इस भाँति निवेदन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में सम्मानित होता है। और इस भूतल पर जितने

यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥१८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे गोप्रचारविधिवर्णनं
नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः
दिनैकसाध्यप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्
सूत उवाच

कलौ चैकाहसाध्येन प्रतिष्ठामल्पवित्तवान् । सद्योऽधिवासमाज्येन प्रकुर्यात्तान्त्रिकोत्तमः ॥१
उत्तरं तु गते हंसे अतीते चोत्तरायणे । शरत्काले व्यतीते तु वसन्ते यज्ञमारभेत् ॥२
नारायणादिमूर्तीनां द्वात्रिंशद्भेद एव तु । प्रतिष्ठां[1] प्रतिमानां च गदास्यादींश्च[2] सत्तमाः ॥३
नित्यं[3] निर्वर्त्य मतिमान्कुर्यादभ्युदयं ततः । विप्रान्सम्भोजयेत्राथ ततो यागगृहं व्रजेत् ॥४
गणेशग्रहदिक्पालान्प्रतिकुम्भेषु पूजयेत् । स्थण्डिले पूजयेद्विष्णुं परिवारगणं यजेत् ॥५
स्नापयेत्प्रथमं देवं तोयैः पञ्चविधैरपि । पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः पञ्चमृत्पिण्डकैरपि ॥६
तिलतैलैश्च स्नेहैश्च कषायैरपि सत्तमाः । पञ्चपुष्पोदकैर्वाथ त्रिपदैरपि सत्तमाः ॥७

दिन शुभ तृण-युग्मों की स्थिति सुरक्षित रहती है, उतने सहस्र वर्ष स्वर्ग लोक में वह सम्मान प्राप्त करता रहता है ।१-१८

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में गोप्रचारविधि वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८
एक दिन में साध्य-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—कलियुग के घोर संकटकालीन समय में अल्प धनिक वर्गों के लिए भी एकदिन में साध्य होने वाली प्रतिष्ठा का विधान बताया गया है, (मैं बता रहा हूँ) । उसे चाहिए कि उसी समय शीघ्रातिशीघ्र घी द्वारा अधिवासन कर्म की समाप्ति करे । सूर्य के उत्तरायण होने शरदकाल के व्यतीत होने पर वसन्त के समय इस यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करना बताया गया है । सत्तमवृन्द ! उस प्रतिष्ठानुष्ठान में नारायण आदि देवों की बत्तीस प्रतिमाओं एवं गणेश आदि देवों की अर्चा सुसम्पन्न करके नित्यक्रिया के उपरांत आभ्युदयिक श्राद्ध, एवं ब्राह्मण-भोजन कराकर यज्ञभवन में उस बुद्धिमान् को प्रवेश करना चाहिए । प्रत्येक गणेश और दिगीश्वरादि देवों की अर्चा घटस्थापन पूर्वक करते हुए उसके वेदी पर परिवार गण समेत विष्णु की अर्चा सविधि सुसम्पन्न करना चाहिए । सर्व प्रथम पाँच प्रकार के जल, पंचामृत, पञ्चगव्य, और पाँच स्थान की मिट्टियों द्वारा देवों को स्नान कराकर तिल के तेल, कषाय स्नेह, पाँच पुष्पोदक अथवा त्रिपद द्वारा उनकी आराधना करनी चाहिए। तुलसी, कुसुम, पुष्पपत्र को त्रिपत्र,

---

१. विदधातेति शेषः । २. संपूज्येति शेषः । ३. तदेव व्यासेनाह—नित्यं निर्वर्त्येत्यादि ।

तुलसीकुसुमापुष्पपत्राण्याहुस्त्रिपत्रकम् । पञ्चकाम्रशमीपद्मकरवीरं च पञ्चकम् ॥८
मृत्तिका करिदन्तस्य तथाश्वखुरमृत्तिका । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तु पञ्चमम् ॥९
कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां च होमं कुर्याद्यथाविधि । दक्षिणां विधिवद्दद्यात्पूर्णां तु तदनन्तरम् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे दिनैकसाध्यप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवादिप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं तु विप्रेन्द्राः काल्यादीनां तथैव च । अधिवास्य च पूर्वेद्युः श्राद्धमभ्युदयात्मकम् ॥१
प्रथमे जलजैः स्नानं पञ्चगव्यैरनन्तरम् । पूर्ववच्च विधानेन कुम्भे दुर्गां समर्चयेत् ॥२
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः करीषशतधारया । श्रीबिल्वे पूजयेद्देवीं दद्यात्प्राणमनन्तरम् ॥३
बिल्वपत्रैः फलैर्वापि दद्याच्चापि शताहुतीः । एकैकशस्तु सर्वेषां दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् ॥४
प्रतिमां कालिकायाश्च तारायाश्च पृथक्पृथक् । ग्राह्यं विनार्चयेद्विप्राः पञ्चपञ्चशतैरपि ॥५
भोजयेत्स्नापयेद्देवीं गन्धतोयैर्दिनत्रयम् । ताम्रकुम्भेऽर्चयेद्देवीं त्रिदिनं प्रातरेव हि ॥६
समीरणं ततो दद्यात्पेटिकायां निवेशयेत् । ततोऽपि गन्धतोयैश्च स्नापयेत्कन्यकादिभिः ॥७
ततो वै चाष्टमदिने रात्रावपि प्रपूजयेत् । पशुदानं प्रकर्तव्यमग्निकार्यं च पायसैः ॥८

पंचक, आम, शमी, कमल, कनेर को पञ्चक, गजदाँत, अश्वखुर की मिट्टी, गो-मूत्र, गोबर, दूध, दहीं एवं घी को पञ्चगव्य कहते हैं। इस भाँति सविधान प्राण-प्रतिष्ठा-विधान सुसम्पन्न करके विधान पूर्वक हवन, दक्षिणा प्रदान के अनन्तर पूर्णाहुति करनी चाहिए।१-१०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में दिनैकसाध्यप्रतिष्ठा विधान वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।१८।

अध्याय १९

देवी आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रेन्द्रवृन्द ! इसके उपरांत मैं काली आदि की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, वह प्रतिष्ठा विधान भी उसी भाँति का है उसमें भी पहले दिन अधिवासन, एवं आभ्युदयिक श्राद्ध सुसम्पन्न करके जल तथा पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराकर पूर्व की भाँति सविधान घटस्थापन पूर्वक दुर्गा की अर्चा करनी चाहिए। पञ्चामृत, पञ्चगव्य की शतधारा द्वारा बेलवृक्ष के द्वारा देवी की पूजा के उपरांत प्राण-प्रतिष्ठा-कर्म सुसम्पन्न करके बेल के पत्र अथवा फलों द्वारा सौ आहुति प्रत्येक के लिए प्रदान कर सुवर्ण की दक्षिणा समर्पित करनी चाहिए। विप्रवृन्द ! कालिका और तारा देवी की प्रतिमा के पृथक्-पृथक् पूजन पच्चीस सौ आहुति प्रदान पूर्वक तीन दिन तक गन्ध जल द्वारा देवी का स्नान सुसम्पन्न करते हुए ताँबे के कलश में तीन दिन तक प्रातः कालीन पूजा करने के उपरांत वायु का उनके कन्याओं द्वारा गन्ध एवं तेल से उन्हें स्नान कराते हुए आठवें दिन भी रात्रि में सविधान उनकी पूजा, पशुदान, एवं खीर की आहुति प्रदान

शिवलिङ्गप्रतिष्ठां च वक्ष्ये तन्त्रमतं यथा । त्रिविप्रं भोजयेद्विप्रा अधिवास्यं विशेषतः ॥९
नित्यं समाप्य च पुनः कुर्यादभ्युदयं ततः । आचार्यं वरयेत्प्रातः स्नापयेत्पूर्ववर्त्मना ॥१०
परिवारगणैः सार्द्धमर्चयेत्तदनन्तरम् । दद्यात्समीरणं पश्चादग्निकार्यं समाचरेत् ॥११
तिलहेममयीं गां च दद्याद्गां च विधानतः । न नाम न च गोत्रं च होमकर्मणि सर्वदा ॥१२
पूर्णिमायां विशेषेण नान्येषां च कथञ्चन । होमान्ते वसुधारां च कुम्भे दत्त्वा विधानतः ॥१३
त्रिहस्तचरकायं च हस्तैकं चतुर्हस्तके । शालग्रामशिलायाश्च प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ॥१४
सद्योऽधिवासयेद्देवं द्वादश्यां स्नापयेदथ । रत्नतोयैः परिमलैस्त्रिगन्धैः पञ्चपल्लवैः ॥१५
कुम्भे प्रजापतिं स्थाप्य श्वेताब्जं नवनाभके । नवदुर्गोक्तमार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥१६
चक्रस्वरूपतो ज्ञेयं प्रदद्याच्च समीरणम् । आनीय ताम्रभाण्डे च त्रिकालं प्रतिपूजयेत् ॥१७
पायसान्नैरुत्पलैर्वा पङ्कजैर्वापि होमयेत् । सकाञ्चनं वस्त्रयुग्मं प्रदद्याद्भूरिदक्षिणम् ॥१८
श्रीसूर्यस्य गणेशस्य विरिञ्चेश्चापि सत्तमाः । वटवृक्षान्तिकं गत्वा स्थापयेद्वरुणं ततः ॥१९
रक्ताब्जे पूजयेत्सूर्यं परिवारसमन्वितम् । अष्टाविंशतिभिर्दत्त्वा दद्यात्प्राणमनन्तरम् ॥२०
एकाहमथवाकाशे गुप्तं कृत्वा दिनत्रयम् । त्र्यहादेव पुनः पूजां पुनर्होमं समाचरेत् ॥२१
पुनश्च भोजयेद्विप्रान्दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् । वाराह्यास्त्रिपुरायाश्च नारिकेलोदकैरपि ॥२२

करनी चाहिए ।१-८। तंत्र मतानुसार मैं तुम्हें शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, इस अनुष्ठान में तीन ब्राह्मणों के भोजन सुसम्पन्न करने के अनन्तर विशेषकर अधिवासन कर्म की समाप्ति और नित्यकर्म करके आभ्युदयिक श्राद्ध एवं आचार्य का वरण करना चाहिए । पुनः प्रातः समय पूर्वोक्त रीति से स्नान कराकर परिवार गणों के साथ उनके अर्चन, वायुदान करते हुए हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए । पश्चात् तिल और सुवर्ण की गौ और विधान पूर्वक गोदान अर्पित करना बताया गया है । हवनकर्म में सदैव नाम गोत्र की अपेक्षा न रखनी चाहिए । विशेषकर पूर्णिमा में सभी के लिए यह बाते कही गयी है । तदनन्तर उस कलश में सविधान वसुधारा प्रदान करना चाहिए । शालिग्राम शिला के प्रतिष्ठा विधान, तीन, चार, अथवा एक हाथ की वेदी पर सुसम्पन्न करने के लिए पहले अधिवासन कर्म करके द्वादशी में प्रधान देव के स्नान और रत्न-जल, मकरन्द, तीनों गन्ध, एवं पाँचों पल्लवों से सुसज्जित कर उस कलश में प्रजापति, नवनाभक पर श्वेतकमल, एवं नवदुर्गा के प्रदर्शित पथ द्वारा परमेश्वर की पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् उन्हें चक्रांकित कर समीरणदान पूर्वक लाकर ताँबे के पात्र में उनकी त्रैकालिकी-पूजा करनी चाहिए । पुनः खीर, नील कमल या रक्तकमल की आहुति प्रदान पूर्वक सुवर्णसमेत युगलवस्त्र और अभीष्ट अधिक से अधिक की दक्षिणा प्रदान करना बताया गया है ।९-१८। श्रेष्ठ वृन्द ! सूर्य, गणेश और विरञ्चि देव के प्रतिष्ठा-विधान को मैं बता रहा हूँ । किसी वटवृक्ष के समीप कलशस्थापन पूर्वक वरुण-स्थापन पूजन के उपरांत रक्त कमल में परिवार समेत सूर्यकी पूजा करके अट्ठाइस आहुति प्रदान करते हुए प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए । पश्चात् एक-दिन अथवा तीन-दिन आकाश स्थल में उन्हें गुप्त रखकर पुनः तीन दिन के पूजनोपरांत हवन कर्म, ब्राह्मण, भोजन, एवं सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । वाराही अथवा त्रिपुर सुन्दरी देवी के प्रतिष्ठा-विधान में

स्थापयेद्वा विधानेन सिन्दूराद्यैः समर्चयेत् । दद्यात्समीरणं पश्चात् पुनः पूजां च होमयेत् ।।२३
पशुदानं च कर्तव्यं षण्मासैः पञ्चमोदकैः । कुमारीं भोजयेद्रात्रौ दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् ।।२४
प्रतिमां भुवनेशीं च महामायाम्बिकामपि । कामाक्षीं च ततो देवीमिन्द्राक्षीं चापराजिताम् ।।२५
पूर्वेद्यू रात्रिसमये पिष्टकाष्टौ निवेदयेत् । अष्टौ निर्माणयेत्पश्चाद्बलिं चाष्टौ विधानवित् ।।२६
परिवारगणैः सार्द्धं पूजयेत्प्रयतः सुधीः । समीरणं ततो दद्याच्छिवं सूर्यं यजेत्पुनः ।।२७
पायसान्नैश्च जुहुयात्त्रिदिनं लिपिपूजनम् । कुमारीपूजनं कुर्यादग्निकार्यं दिनत्रयम् ।।२८
पशुदानं च कर्तव्यं विभवे सति सत्तमाः । रात्रौ जागरणं कुर्यान्मठोत्सवपुरःसरम् ।।२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे देवादिप्रतिष्ठावर्णनं
नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

ग्रहोपद्रवोत्पातशान्तिवर्णनम्

सूत उवाच

दुर्निमित्तान्यथो वक्ष्ये शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । यस्य ये ग्रहदोषाः स्युस्तेषां शान्तिं यथाक्रमात् ।।१
दिव्यन्तरिक्षे भौमे चेत्येवं त्रिः परिकीर्तितम् । ग्रहर्क्षाद्यैः कृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे ।।२
उल्काहितो दिशो दाहः परिवेषस्तथैव च । जलाशयानां वै कृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम् ।।३

नारियल के जल द्वारा भी उनके स्थापन पूर्वक सविधान सिन्दूरादि से उन्हें विभूषित करना चाहिए। पुनः समीरण दान, पूजा और हवन करने के अनन्तर छह मास के पशु की बलि, पाँच प्रकार के जल से स्नान, रात्रि में कुमारी भोजन सुसम्पन्न करते हुए सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। भुवनेशी देवी की प्रतिमा, महामाया, अम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राणी देवी, एवं अपराजिता देवी के लिए पहले दिन रात्रि के समय पीठी के आठ भोज्य पदार्थ, सविधान आठ बलि और पश्चात् परिवार गणों समेत उनकी पूजा बुद्धिमानों को सुसम्पन्न करनी चाहिए। पुनः समीरण दान, शिव, सूर्य की पूजा, तीन दिन तक खीर की आहुति, विधिपूजन, कुमारी पूजन, तीन दिन तक हवन कार्य, तथा सत्तम वृन्द यथा शक्ति पशुदान और उस मठ के उत्सव पूर्वक रात्रि जागरण करना चाहिए।।१९-२९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में देवादिप्रतिष्ठावर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।१९।

अध्याय २०

ग्रहोपद्रवोत्पात शान्ति का वर्णन

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ वृन्द! मैं उत्पातसूचक दुर्निमित्तों को तथा ग्रह दोष जनित उपद्रव की क्रमशः शांति बता रहा हूँ, आप लोग सुनिये! स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी द्वारा ये अशुभ सूचक दुर्निमित्त उत्पन्न हैं, जिनका शांति-विधान सुसम्पन्न करना अत्यावश्यक होता है। यह नक्षत्र जनित उपद्रवों को दैवी, आकाश से गिरते हुए एक पतली रेखा के समान उस तेज पुञ्ज को, जिसके द्वारा दिशाओं में ज्वलन उत्पन्न होता है, परिवेष (किसी तेज राशि का मण्डलाकार दर्शन एवं जलाशय जनित कल्प को

भौमं चाल्पफलं ज्ञेयं दिव्यान्तरिक्षमेव च । सप्ताहमफलं दद्याद्दैवं चापि च तत्क्षणात् ॥४
देवानां हसनं चैव कल्कनं रुधिरस्रवः । अकस्माद्व्यसनं तत्र यत्र निर्घातनिर्दयः ॥
सर्पाद्यारोहणं चैव दैवं तदपि कीर्तितम् ॥५
ततो मेघात्समुत्पन्ना यदि वृष्टिः शिलातले । सप्ताहाभ्यन्तरे जीवमुत्पन्नं निष्फलं भवेत् ॥६
एकराशिस्थिताः पापाः शनिभौमदिवाकराः । पृथ्वी धूमाकुला तत्र रुदन्ति बहवो जनाः ॥७
अभिचारं गते जीवे शनौ च तत्र नागते । तत्र पश्यति राजेन्द्रः को धरां धारयिष्यति ॥८
सूर्यमपश्यनो द्वन्द्वं दिग्दाहश्च तथैव च । दर्शनं धूमकेतोश्च नक्षत्रे धूमदर्शनम् ॥९
भूकम्प एव मासे च एकमासे तथा दिने । राज्ञो जन्मदिने वाथ शक्रचापं दिनान्तरे ॥१०
दर्शनं खरवातस्य ग्रहयुद्धस्य दर्शनम् । मासत्रये तु ग्रहणमुल्कापातप्रपातनम् ॥११
आकाशेऽप्यथ भूमौ च तत्र मण्डूकमेव च । हरिद्रावृष्टिः पाषाणे सिंहबिल्वाकृतिर्यदि ॥
दर्शने राष्ट्रदुर्भिक्षमकरं नृपतिक्षयः ॥१२
चैत्रे कुम्भे नदीवेगदर्शने विप्लवो भवेत् । अर्कस्याद्भुतमेतद्धि स्रुग्युक्तं श्रपयेच्चरुम् ॥१३
आकृष्णेनेति मन्त्रेण अथवार्केण यत्नतः । प्रासादतोरणं तत्र द्वारं प्राकारवेश्म च ॥१४
धान्यसारं गवां सारं कूपेकुम्भप्रदर्शनम् । आदित्यस्याद्भुतं विद्यात्कमलं जुहुयात्ततः ॥१५

अन्तरिक्ष तथा भौम (भूमि में होने वाला) भी कहते हैं ।१-३। भौम का अल्प फल एवं दैवी अन्तरिक्ष के अन्तरिक्ष जनित अशुभ सूचक के परिणाम एक सप्ताह के उपरांत और देव का उसी समय दृष्टि गोचर होता है ।४। देवताओं का हँसना, कलह, रुधिर का स्राव, एवं निर्दयता पूर्ण आघात (वज्रादि जैसे गिरने) से वहाँ की जनता को भाँति-भाँति के अनेक दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं । उसी भाँति सर्पादि जीवों के आरोहण करने को भी दैवी ही बताया गया है ।५। उनके आरोहण करने के उपरांत यदि शिलातल पर घन वृष्टि होती है, तो एक सप्ताह तक के उत्पन्न जीव नष्ट हो जाते हैं ।६। एक राशि पर पाप ग्रह शनि, मंगल, एवं सूर्य के स्थित होने पर पृथिवी धूम संकुल से आच्छन्न हो जाती है और अनेक लोगों के आँसुओं की अविरल धारा बहती रहती है ।७। बृहस्पति के अभिचार स्थान पर प्राप्त होने और (उस समय) शनि के प्राप्त होने पर भूपेन्द्र कातर दृष्टि से देखते हुए चिंतातुर होता है कि यह पृथिवी अब किसके सहारे टिकेगी ।८। सूर्य को न देखने वाले को द्वन्द्व (शीतोष्ण दुःख) अनुभव करना पड़ता है उसी भाँति दिशाओं में धूमकेतु तारा के दर्शन तारा में धूम दिखायी पड़ने से एक मास अथवा उसी दिन में भूकम्प होता है । राजा के जन्म दिन या दूसरे दिन इन्द्र धनुष का दर्शन तीखी हवा और ग्रहों के युद्ध दिखायी देने से तथा तीन मास में ग्रहण पड़ने से उल्कापात जनित दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं ।९-११। आकाश और भूमि में उस समय मेढ़क, पत्थर की शिला पर हरदी रंग की वृष्टि, सिंह और बेल की आकृति दिखायी देने से राष्ट्र, दुर्भिक्ष तथा राजा का नाश होना बताया गया है । चैत्र मास में कुम्भ के सूर्य रहते हुए उस समय नदी-वेग दिखायी पड़ने से उपद्रव होता है । यह विप्लव सूर्य द्वारा उत्पन्न होता है पुनः उसकी शांति के लिए स्रुवा द्वारा हवि की आहुति, 'आकृष्णेनेति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रासादतोरण से सुसज्जित उस मण्डप में प्रदान करनी चाहिए ।१२-१४। धान्य तत्त्व, गोतत्त्व या कुम्भ के कूप में दिखायी देने से इसे आदित्य जनित बताया गया है, इसकी निश्चित शांति के लिए कमल पुष्प की

सहस्रं जुहुयाद्वाथ ततः शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् । विकृताः पक्षिणश्चैव पाण्डुकपोतकास्ततः ॥१६
श्वेतोलूको बृहंश्चैव द्रोणकाकश्च कोकिलः । क्रौञ्चश्च वर्द्धनी चैव निपतन्ति गृहे यदि ॥१७
गृहे तस्य महोत्पातो भविष्यति न संशयः । स्थूलभङ्गग्रहणं प्ररोहणमथापि वा ॥१८
हाराः कटकटायन्ते जातस्य दन्तसम्भवः । हसता देवतानां च गात्रे स्वेदश्च जायते ॥
सर्पमण्डूकप्रसवः कुम्भे वापि क्वचिद्भवेत् ॥१९
निमित्तान्येवमादीनि जायन्ते यस्य वेश्मनि । षड्भिर्मासैश्च म्रियते गृहिणी च शुभा च या ॥२०
अशनिः पतते यत्र गृहे वज्रं च पादपे । शुक्ला वह्निस्फुलिङ्गाश्च तस्य विद्धि महद्भयम् ॥२१
खर्जूर उदरावर्ते निकोचगरलेऽपि च । फलिवृक्षे तिन्दुके च यत्र निर्जायते क्वचित् ॥२२
उद्याने देवगेहे च स्वगृहे चैत्यवृक्षके । कुर्यादादित्यवारे वा अयुतं तिलपायसम् ॥
ततः शान्तिर्भवेदाशु धेनुं दद्याच्च दक्षिणाम् ॥२३
पायसं तिलमुद्गौ च पुष्पं वा तालवृन्तकम् । इक्षुमोदकपिण्याकाञ्जुहुयाद्रविमुद्दिशन् ॥२४
सिंहासनं रथश्छत्रं ध्वजश्चामरभूषिते । अकस्माद्दृश्यते यत्र राज्ञो वान्यत्र कुत्रचित् ॥२५
नश्यन्ति च सत्यस्योज्ज्वलनं स्त्रीपुरुषयोः । आगमस्य च दृष्ट्वैव भङ्गः कटकटायनम् ॥२६
उपरिष्टाद्भवेद्यस्य महोत्पातो भवेदयम् । चलत्वं चाधरस्यापि तथा कटकटायनम् ॥२७
रुदितं कोकिलस्यापि उलूकोऽप्यशुभं वदेत् । राजामात्यविनाशाय महीं च तत्सुतोऽपि वा ॥
हस्तिनो मदयुक्ताश्च म्रियन्ते नात्र संशयः ॥२८
ताडीपूगादयो यत्र यमौ स्यातां प्रमादतः । गेही तत्र विनश्येत सदारः पुत्रसंयुतः ॥२९

सहस्र आहुति प्रदान करनी चाहिए। गृह के ऊपर (उल्लू) द्रोण कौवा, कोकिल, क्रौंच एवं वर्द्धनी (बढ़नी झाड़ू) गिरे तो उसघर में महान् उत्पात हो, इसमें संशय नहीं। हँसते हुए देवों के भागों में स्वेद, कुम्भ में साँप और मेढक के प्रसव आदि दुर्निमित्त जिसके गृह में उत्पन्न हों, उसकी शुभ मूर्ति पत्नी का देहावसान छः मास के भीतर हो जाता है। जिसके गृह या वक्ष पर वज्रा-घात होते हुए अग्नि कण की भाँति शुक्ल वर्ण की चिनगारियाँ दिखायी दें, तो उसे महान्, भय-ग्रस्त होना समझना चाहिए।१५-२१। खजूर, जल-भँवर, अखरोट, तृण के मूलभाग, फल लगे हुए वृक्ष, तेंदू, बगीचे, देवालय, निजगेह, और चैत्य वृक्ष पर वज्रपात होने से सूर्य के दिन तिल मिश्रित खीर की दश सहस्र आहुति धेनु की दक्षिणा समेत प्रदान करनी चाहिए, उससे शीघ्र शांति प्राप्त होती है। यह खीर, तिल मूंग, पुष्प, ताड़-फल के गुच्छे, गुड के लड्डू, तिल की खली की आहुति सूर्य के उद्देश्य से प्रदान करनी चाहिए।२२-२४। राजा के सिंहासन, रथ, ध्वज, चामर समेत छत्र के आकस्मिक दर्शन अन्यत्र होने उनके प्रसन्न होने स्त्री पुरुष की कामनाओं के जलते हुए दिखाई देने, वेदादि के दर्शन से कटकटायन (दाँतों का बजना) के भङ्ग होने इस भाँति के दुर्निमित होने वाले गृह पर व्यक्ति के महान् उत्पात होते हैं और उसी प्रकार अधरोष्ठ के स्फुरण होने एवं दाँत के कटकटाने से भी कोकिल के रुदन, उलूक को अशुभ वाणी, राजा, मन्त्री अथवा उनके पुत्र पृथिवी के विनाश और मदमत्त हाथी का निधन होता है, इसमें संशय नहीं।२५-२८। जिसके गृह में प्रमादवश ताड़-वृक्ष और सुपारी के वृक्ष यमल (दो मिले हुए) उत्पन्न होकर रह जाते हैं, उस पुरुष की स्त्री-पुरुष समेत मृत्यु हो जाती है। किसी बद्ध पुष्प में दूसरे पुष्प अथवा फल के अक्षत दर्शन हों तो

बद्धपुष्पे यदा पुष्पं फलं वा यदि दृश्यते । अक्षतादर्शनात्तत्र सोमस्याद्भुतदर्शनम् ॥
दधि मधु घृतं चैव जुहुयादयुतं द्विजाः ॥३०
पालाशं सोममुद्दिश्य सोमस्य च भवेद्दिने । इमं देवा इति मन्त्रेण सोमाय श्रपयेच्चरुम् ॥३१
उत्पतन्ति गृहे यस्य यवा माषाश्च पुष्कलाः । दधिक्षीराज्यपाकेषु रुधिरं दृश्यते यदि ॥३२
अकस्माद्गृहदाहस्तु अनग्निज्वलनं यथा । मेघहीना भवेद्विद्युद्वृषस्योद्गमनं तथा ॥३३
व्याधिलीना विनश्यन्ति निखिलाः पशुमानुषाः । एवं सर्वाणि भूतानि भवन्त्यकारके ध्रुवम् ॥३४
राजामात्यविनाशाय गेहे गेही विनश्यति । प्राणनाशाय विप्राणामाहुत्या च प्रभवन्ति हि ॥३५
दृष्ट्वा धाभद्रभत्युग्रं जुहुयादयुतं क्रमात् । दधिमधुघृतैर्युक्तं खादिरोदुम्बरेऽपि च ॥३६
अग्निर्मूर्द्धेति मन्त्रेण श्रपितं लोहितं चरुम् । त्रिविप्रान्भोजयेद्दद्याद्दक्षिणां लोहितं ततः ॥
स्वर्णमङ्गारमुद्दिश्य ततः शान्तिः प्रजायते ॥३७
पुष्पं वा पातयेद्यत्र फलं वापि तथैव च । दध्यन्नं च घृतैर्मिश्रं रौप्यं हिरण्यमेव च ॥३८
हस्त्यश्वमहिषा गावो दारापत्यधनानि च । तुष्टेनाङ्गारकेणैव सर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥
आङ्गारकेण मन्त्रेण खादिरं चाक्षतैर्युतम् ॥३९
दक्षिणां च यथाशक्ति दद्याद्विप्राय वा पुनः । लोहितं च बलिं दद्यात्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥४०
धावन्ति चोर्ध्वपुच्छाश्च गृहे गावः स्वयं यदि । आरोहन्ति गृहं विप्राः सारमेयाश्च सूकराः ॥४१
गृहे यस्य भवन्त्येते तस्य भार्या विनश्यति । सर्वेषां वा भवेन्मृत्युर्वन्ध्या गौर्वा प्रजायते ॥४२

उसकी शान्त्यर्थ दही, शहद, घी की दश सहस्र आहुति पलाश की समिधा द्वारा प्रज्वलित अग्नि में सोम के दिन सोम के उद्देश्य से 'इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक खीर समेत प्रदान करनी चाहिए और इस उपद्रव को सोम द्वारा उत्पन्न होना बताया गया है ।२९-३१। जिसके गृह में जवा, उरद भूसी समेत ऊपर उड़ते हुए दिखायी दें और दही, क्षीर, एवं घी के पाक में रुधिर का दर्शन हो, तो उसके यहाँ अकस्मात् गृह-दाह होता है । मेघ हीन विद्युत-दर्शन, एवं वृष (बैलों) के ऊपर की ओर कूदना-दौड़ना हो, तो सभी पशु और मनुष्य व्याधि-पीड़ित होकर मर जाते हैं । बिना शांति किये हुए इसी भाँति सभी प्राणियों, राजा, और मंत्री के विनाश, गृह में प्रधान गृहपति के विनाश होते हैं । अतः प्राण-रक्षार्थ ब्राह्मण के भोजन-दान और अग्नि को आहुति-प्रदान अवश्य करना चाहिए । किसी अकल्याणकर या उग्रतम दुर्निमित्त के होने पर क्रमशः दही, शहद, घी की दशसहस्र आहुति खैर या गूलर की प्रज्वलित अग्नि में 'अग्निमूर्धेति' मंत्र द्वारा लोहित वर्ण की खीर समेत प्रदान करना चाहिए, तथा तीन ब्राह्मणों के भोजन लोहित (रक्त) वर्ण या सुवर्ण की दक्षिणा समेत भौम के उद्देश्य से देने चाहिए, इससे शीघ्र शांति प्राप्त होती है ।३२-३७। पुष्प, फल, दहीं एवं घी मिश्रित अन्न, चाँदी, सुवर्ण, हांथी, घोड़े महिष गौएँ स्त्री, पुत्र धन ये सभी पदार्थ भौम-ग्रह के प्रसन्नार्थ देना चाहिए एवं उनके प्रसन्न होने पर प्राप्त भी करना चाहिए। उस समय अंगारक (भौम) के मंत्रोच्चारण पूर्वक खैर की प्रज्वलित अग्नि में अक्षत समेत आहुति प्रदान कर ब्राह्मण के लिए यथा शक्ति दक्षिणा, और रक्त वर्ण की बलि प्रदान करने से शुभ की प्राप्ति होती है। विप्रवृन्द ! पूँछ ऊपर किये गायें गृह में दौड़ती हों, कुत्ते और सूकर गृह के ऊपर चढ़ते हों, तो उस घर में उसकी स्त्री का विनाश, अथवा सभी का विनाश या गायें वंध्या हो जाती हैं।३८-४२।

मिथ्यावादेन गेही च राज्ञा वादैश्च तिष्ठति । अथवा यद्गृहे गावो नर्दयन्ति हसन्ति च ।।४३
धरणीहननं यत्र द्वयोरास्कन्दनं तथा । निमित्तान्येवमादीनि गोभ्यजातानि सत्तमाः ।।४४
यस्य गेहे भवन्त्येते नाशस्तस्य भवेद्ध्रुवम् । मण्डूकसर्पकूष्माण्डाः प्रसुवन्ति यथा स्त्रियः ।।४५
अकस्माद्यदि चैतानि बुधस्योत्पातलक्षणम् । शान्तिं तत्र प्रवक्ष्यामि यथा सम्पद्यते सुखम् ।।४६
दधिमधुघृताक्तं च अपामार्गं तथा पुनः । अयुतं बुधवारे च जुहुयाच्छ्रद्धया युतः ।।४७
उद्बुधस्वेति च मन्त्रेण बुधाय श्रपयेच्चरुम् । सुवर्णं बुधमुद्दिश्य गां च दद्यात्पयस्विनीम् ।।४८
सुवर्णं पुष्पवृष्टिं च सुफलं चाक्षतं तथा । गृहे प्राङ्गणके यस्य निपतन्ति कदाचन ।।४९
अलङ्कारयुतां वापि सर्वाभरणभूषिताम् । गृहमध्ये तु यः पश्येत्क्षीणामन्तर्हितां स्त्रियम् ।।५०
अकस्मान्मालतीपुष्पं जातं स्यात्तस्य वा गृहे । सोमाय न च सन्तुष्टः सर्वमेतत्प्रदृश्यते ।।५१
धनं धान्यं तथा पुत्र ऐश्वर्यं च वरस्त्रियः । सभृत्याश्च महिष्यश्च मरिष्यन्ति न संशयः ।।५२
श्रीश्चतेति च मन्त्रेण अपामार्गं तथा बुधः । सहस्रं बुधवारे च जुहुयाद् घृतसंयुतम् ।।५३
पयस्विनीं तथा गां च वासोयुगसमन्वितम् । द्विजाय श्रद्धया दद्यात्ततः सम्पद्यते शुभम् ।।५४
रक्तस्रावो भवेद्यत्र तत्र ऋत्विक्प्रसूयते । सिंहव्याघ्रगवादीनां धनहानिविपत्करः ।।५५
एको वृषस्त्रयोगावः सप्ताष्ट नव दन्तिनः । संवत्सरेण तस्यैका प्रसूतिर्विहिता पुनः ।।५६
पुनःपुनर्व्रतं चाशु अकाले मैथुनं तथा । गावो यत्र प्रसूयन्ते यमौ दोषकराविमौ ।।५७

अथवा मिथ्या कलह करने वाले गेही और राजा हो जाते हैं। जिसके गृह में गायें चिल्लाती और हँसती हों, पृथिवी में आघात करती हों, या दो गायों के आक्रमणात्मक युद्ध हों, अथवा सत्तमवृन्द ! इसे अश्व भी करें, तो इस प्रकार के दुर्निमित्त वाले गृह का निश्चित विनाश हो जाता है। स्त्रियों की भाँति मेढ़क, साँप, या कुम्हड़े में आकस्मिक प्रसव हो, तो इस उपद्रव सूचक को बुध द्वारा किया गया बताया गया है। उसकी शांति एवं सुख होने के विधान मैं बता रहा हूँ। बुधवार के दिन श्रद्धा-समेत दही, शहद एवं घी में डुबाकर अपामार्ग (चिचिरा) की दशसहस्र की आहुति 'अम्बिकेति' मंत्र पूर्वक बुध के उद्देश्य से खीर सहित प्रदान करनी चाहिए, पश्चात् सुवर्ण की दक्षिणा दूध देने वाली गौ के दान समेत ब्राह्मण के लिए अर्पित करनी चाहिए।४३-४८। जिसके गृह के प्राङ्गण में सुवर्ण, पुष्पवृष्टि, सुन्दरफल, अक्षत के आकस्मिक पतन ऊपर से कभी हों, एवं गृह के मध्य भाग में अलंकार समेत समस्त आभूषणों से सुविभूषित किसी क्षीण स्त्री के दर्शन हों, जो उसी समय अन्तर्हित हो जाये, अथवा उस घर में मालती पुष्प आकस्मिक उत्पन्न हो जाय, तो धन, धान्य, पुत्र, ऐश्वर्य, उत्तम-स्त्री एवं सेवक समेत प्रधान रानी की निश्चित मृत्यु होती है।४९-५२। विद्वान् को चाहिए कि उसकी शान्ति के लिए बुधवार के दिन 'श्रीश्चतेति' मंत्र द्वारा अपामार्ग (चिचिरा) को घी में डुबाकर उसकी सहस्र आहुति प्रदान पूर्वक दूध देने वाली गौ तथा दो वस्त्र दक्षिणा रूप में ब्राह्मण के लिए अर्पित करें उससे पश्चात् शांति प्राप्त होती है।५३-५४। जहाँ कहीं रक्तस्राव होता है, उसे ऋत्विक् प्रसव कहते हैं, उससे सिंह, वाघ, गौ आदि की धन हानि-पूर्वक उसे विपत्ति में फँसना पड़ता है।५५। एक वृष (बैल), तीन गायें, और चौबीस हाँथियों के प्रसव, वर्ष में एक बार होना बताया गया है, किन्तु यदि ये शीघ्रता वश अल्प समय में गर्भ धारण और अकाल में मैथुन एवं

भञ्जीकृतानि धान्यानि व्रीहयो यवतण्डुलाः। ग्राविमार्जारमण्डूकाः स्थूणाभङ्गे च प्राङ्गणे ॥५८
विकिरन्ति नखैर्भूमिं प्ररोहन्ति ग्रहं तथा। गृहे यस्य प्रजायन्ते तस्य मृत्युर्न संशयः ॥५९
षण्मासाभ्यन्तरे यत्र श्मशानं यास्यति ध्रुवम्। कलहं ज्ञातिवैरं च व्याधिपीडा भविष्यति ॥६०
विप्रलापो मित्रनाश इष्टेष्वनिष्टदर्शनम्। भार्यापुत्रविनाशश्च भवेदेषु विनिश्चितम् ॥६१
क्रियावन्तं यदा कुर्वन्कुर्वीत गृध्रबिल्वके। तदा राज्ञां विभ्रमश्च तथागृहविनाशनम् ॥६२
अमात्यवर्गाश्च पुरे राज्ञां राज्यपराङ्मुखाः। बृहस्पतिं समुद्दिश्य गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥६३
वारिमण्डे च कूपे च वाप्यां च मधुकाञ्जिके। क्षीरं दधिघृतं चैव जातं यदि भविष्यति ॥६४
अकस्मात्तत्र वृक्षश्च फलेन सह संयुतः। गृहमध्ये प्रजायेत ततः सम्पद्यते शुभम् ॥६५
बृहस्पतेस्तु तुष्टस्य सर्वमेतन्निदर्शनम्। गौरं बृहस्पतेश्चैव पकुर्यात्प्रायदक्षिजाम् ॥६६
अशुभं हि शुभेनैव शान्तिं होमं च कारयेत्। तत्रैव राक्षसं यत्र घटकं परिशोषणम् ॥६७
केसरी शर्करा तैलं राजतं ताण्डवं स्थितम्। माषभक्तं तथा धान्यं सुवर्णं रजतानि च ॥६८
ताम्रं कांस्यं तथा लोहं सीसकं पित्तलं तथा। स्थापितानीव दृश्यन्ते गृहे चैतानि यस्य वै ॥६९
धननाशो भवेत्तस्य स्वर्गभङ्गो ह्यथापि वा। व्याधिपीडे तथा घोरे राजोपद्रवबन्धने ॥
गजाश्वपशुभृत्यानां विनाशो जायते ध्रुवम् ॥७०

इसी भाँति गौ के प्रसव भी, दोनों दोष कारक बताये गये हैं। धान्य, व्रीहि, जवा और चावल के कूट-छाँट कर रखने, उस समय टूटे खम्भे वाले प्राङ्गण में ग्रावि, बिल्ली, और मेंढक अपने नाखूनों से भूमि खोदते हों, और कूद-कूद कर ऊपर घर के चढ़ते हों, तो उस गृहपति की मृत्यु होती है इसमें संदेह नहीं। तथा छः मास के भीतर ही किसी की निश्चित श्मशानयात्रा (निधन), गृह में कलह, बन्धुओं से वैर एवं रोगजनित व्यथा उत्पन्न होती है। वियोग, मित्रनाश, इष्ट में अनिष्ट-कारक के दर्शन तथा पत्नी-पुत्र के विनाश भी अवश्यम्भावी होते हैं। किसी क्रियाशील की रचना करते हुए यदि गृद्ध और बिल्व (बेल) की रचना कर डाले उससे राजा को मोह तथा गृह विनाश होता है। और मंत्री वर्ग उस राजा के प्रतिकूल विरुद्ध-आचरण उस राजधानी में ही करने लगते हैं। अतः इसके शांत्यर्थ बृहस्पति के उद्देश्य से दूध देने वाली गौ के दान करना चाहिए।५६-६३। वारिमण्ड, कूप, बावली में शहद और कांजिका (सिरका ऊख से बनायी गयी खटायी) डालने से क्षीर का दही और घी बन जाये तो उस मनुष्य के घर में आकस्मिक फल समेत वृक्ष के उत्पन्न होने से शुभ होता है, अन्यथा नहीं। इन सभी उपद्रवों को वृहस्पति द्वारा उत्पन्न होना कहा गया है, अतः उनके प्रसन्नार्थ श्वेत वर्ण की राई, कमल और केसर का दान करना चाहिए। शुभ कार्य द्वारा अशुभ की शांति की जाती है, अतः इसके लिए हवन करना आवश्यक होता है, क्योंकि वहाँ परिशोषण करने वाला कोई घटक राक्षस ही रहता है।६४-६७। केसरी, शक्कर, तेल, शोभन नृत्य, पका उरद, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, काँसा, लोहा, सीसा, और पीतल पदार्थ जिसके घर में रखे हुए की भाँति आकस्मिक दिखायी दे, तो उसके धन का नाश, स्वर्ग की यात्राभङ्ग, घोर व्याधि-पीड़ित अथवा राजा की आज्ञा द्वारा बंधनों से बँधे (अर्थात् हथकड़ी बेड़ी) पहने हुए मृत्यु प्राप्त करना, एवं हांथी, घोड़े पशु और सेवकों की निश्चित मृत्यु होती है।६८-७०

यस्यैतानि प्रदृश्यन्ते पर्वतः कनकानि च । सम्पत्तस्य प्रजायेत निश्चला सुखदा सदा ॥७१
दन्तोत्तरेषु दन्ताश्च पङ्क्तिमाक्रम्य संस्थिताः । तेऽपि दोषकराः सर्वे शलाकाकृतिनस्तथा ॥
उपदन्ताश्च सर्वे ते न ते दोषकराः क्वचित् ॥७२
भाण्डे कुम्भे यदा चैव श्रूयते घनगर्जितम् । कञ्चुकानां गृहे चैव प्राकारः श्रूयते यदि ॥७३
मूषिकानां मुखे चैव ज्वलन्ती यस्य पश्यति । गेही तत्रैव नश्येत शुक्रस्याद्भुतदर्शनम् ॥७४
शांतिं तत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् । शमीपत्रं निर्मितं च यवैर्युक्तं गृहिण्यपि ॥
दधिमधुघृताक्तं च जुहुयाद्भार्गवे दिने ॥७५
शुक्लवासोयुगं चैव गां च शुक्लां पयस्विनीम् । सुवर्णं श्रद्धया चैव दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥७६
देवागारे यदा भूमिर्लोहिता यस्य दृश्यते । पुष्पिता दृश्यते लोके तत्र विद्धि महद्भयम् ॥७७
राजा वा राजपुत्रो वा राज्यं वापि विनश्यति । मन्त्रिणो मन्त्रिपुत्राश्च म्रियन्ते नात्र संशयः ॥७८
यत्र वा दृश्यते लोके गृहे यस्य सुपूजिताः । पुष्पिताश्च गृहस्तम्भाः शरीरं च घटस्तथा ॥७९
हस्त्यश्वमहिषाश्चैव अजागावस्तथैव च । नित्यं स्वामिवधार्थाय पुष्पितां प्रवहन्ति च ॥८०
गृहे हंसो गृहे सम्यङ्मण्डूका जलचारिणः । द्वारे प्रविश्य सर्पश्च प्रतिमायाः प्रकल्पनम् ॥८१
अकस्माद्घटशब्दोऽपि यत्र कुत्रापि जायते । स्रवन्ति प्रमदा यत्र भिन्नास्ते स्युर्नवांगिकाः ॥८२
गृही तत्र विनश्येत सपुत्रपशुबान्धवः । धनुःखड्गधरा रात्रौ मध्याह्ने चान्द्रके तथा ॥८३
उदितो दृश्यते व्योम्नि ज्वलितः पावकस्तथा । मनुष्याङ्गनानां मरणं तथा स्याद्राष्ट्रविप्लवः ॥८४

जिसे पर्वत और सुवर्ण के दर्शन होते हैं, उसे निश्चल एवं सदैव सुख-दायक सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। दाँतों के ऊपरी स्थान में पंक्ति में आबद्ध होकर निकले हुए एवं शलाका की भाँति निकले हुए दाँत अशुभ सूचक माने जाते हैं, किन्तु, कहीं, इन्हें निर्दोष भी बताया गया है। किसी पात्र या घट में घन-गर्जन, भृत्यों के गृह में खाईं, तथा चूहियों के मुख में प्रकाश दिखायी देने से उस गृहपति की मृत्यु होती है, इस दोष को शुक्र द्वारा उत्पन्न होना कहा गया है, मैं उसकी शांति बता रहा हूँ, जिससे कल्याण की प्राप्ति होती है। शुक्र के दिन गृहपति या गृहिणी, शमी पत्र और जवा को दही, शहद एवं घी में डुबाकर उसी की आहुति प्रदान पूर्वक दो श्वेत वस्त्र शुक्ल वर्ण की दूध देने वाली गौ और सुवर्ण की दक्षिणा श्रद्धा-समेत ब्राह्मण को समर्पित करनी चाहिए। जिस किसी के निर्माण कराये हुए देवालय की भूमि रक्तवर्ण, और घर की भूमि पुष्पित (फूली हुयी) दिखायी देती है, उसे महान् भय उपस्थित होता है और राजा अथवा राजपुत्र का निधन एवं राज्य-विनाश, मंत्री या उसके पुत्र का निधन होता है, इसमें संदेह नहीं। जिस किसी के यहाँ घर में भली भाँति से पूजित गृह के स्तम्भ, शरीर, घट, हाथी, घोड़े, महिष (भैंस), अजा (बकरी), और गायें पुष्पित दिखायी देती हैं, वहाँ अवश्य गृहपति का निधन होता है।७१-८०। गृह में हंस, मेढ़क, जलचर या सर्प दरवाजे पर पहुँच कर किसी कल्पित प्रतिमा की भाँति अवस्थित दिखायी दे जिस किसी स्थान में घट-शब्द सुनायी पड़े और किसी नवीन बधू के रक्तस्राव, या किसी अंग के विदीर्ण होने से उस गृहपति का पुत्र, पशु एवं बन्धुगण समेत विनाश होता है। रात्रि के समय धनुष और खड्ग लिये मध्याह्न में चन्द्र, एवं आकाश में प्रज्वलित अग्नि के उदय के दर्शन होने से स्त्री-पुरुषों के निधन और राष्ट्र विप्लव

रससिद्धानि वस्तूनि सुराद्याश्चापि वा पुनः । हस्तिनो मदयुक्ताश्च अश्वा धीरितहिंसकाः ।।
विनश्यन्ति सदा चैते शनैरद्भुतदर्शने ।।८५
नगरे वा तथा ग्रामे जायन्ते तस्य वैरिणः । दिवा वा यदि वा रात्रौ शनेरद्भुतदर्शनम् ।।८६
मृगव्याघ्रादिरक्षांसि तथा गोमहिषा अपि । उत्पतन्ति यदा चैते शनेरद्भुतमादिशेत् ।।८७
निधिमन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । जुहुयादयुतं सम्यक्सस्यांश्च समिधं द्विजाः ।।८८
शन्नो देवीति मन्त्रेण शुभार्थं शनिवासरे । चरुं च श्रपयेत्तत्र समुद्दिश्य शनैश्चरम् ।।८९
गां च नीलां ततो दद्याज्जीवद्वत्सां पयस्विनीम् । वासोयुगं च विप्राय सुवर्णं रजतं तथा ।।९०
दत्वा तु श्रद्धया सम्यग्दक्षिणां शिरसि स्थिताम् । विधिं होमावसाने तु ततः सम्पद्यते शुभम् ।।९१
यदा द्वारे गोधिका च शङ्खिनी प्रविशेद्गृहम् । तदाऽशुभं विजानीयाद्राजपीडा धनक्षयः ।।
अयुतं जुहुयात्सम्यक्ततः सम्पद्यते शुभम् ।।९२
विना गर्जितमेघेन शिलावृष्टिः प्रजायते । रक्तमिश्रा हि पांडुश्च पतन्ती यत्र दृश्यते ।।९३
तत्र सन्दृश्यते चाभ्रं वृक्षा वातविवर्जिताः । शक्रध्वजस्तथा चापं पतनं सुमनस्य च ।।९४
दिवा शिवा पुरा रौति उलूको वा निशाचरः । निशि निपत्य काकुत्स्थे प्रदेशे रौति वा वृषः ।।९५
अधर्मप्रबला देशा राजा धर्मपराङ्मुखः । अन्योन्यं च जिघांसन्ति गोब्राह्मणमथापि वा ।।९६
गृहे गृही विनश्येच्च सपुत्रपशुबान्धवः । उत्सानं द्वारदेशेऽस्य मरणं राष्ट्रविभ्रमः ।।९७
राज्यनाशो भवेद्राज्ञो मरणं वाहनस्य च । विपरीतानि देशानि क्रमतः सम्भवन्ति हि ।।९८

होता है ।८१-८४। रस द्वारा सिद्ध की गयी वस्तुओं, मद्य आदि, मतवाले हाथी, घी काटने वाले, अश्व के विनाश शनि-जनित उत्पात में सदैव हुआ करते हैं । दिन अथवा रात्रि में शनि द्वारा उत्पात होता है, तो उसके शत्रु सभी नगर या ग्राम वाले हो जाते हैं । मृग, वाघ, आदि, राक्षस, गौ-महिष की उत्पत्ति द्वारा शनि कृत उत्पात सूचित होता है ।८५-८७। द्विजवृन्द ! मैं शुभकारक निधि मंत्र बता रहा हूँ, समिधा समेत शस्यों की दश सहस्र आहुति शनि के उद्देश्य से 'शन्नो देवीति' मंत्र द्वारा हवि समेत प्रदान करनी चाहिए । पश्चात् नील वर्ण की गो, जीवित बछड़े समेत दूध देने वाली गाय और दो वस्त्र समेत सुवर्ण और चाँदी की दक्षिणा ब्राह्मण के लिए समर्पित करके हवन के उपरांत उसे कल्याण की प्राप्ति होती है । दरवाजे पर गोधा (गोह), और शंखिनी के गृह में प्रवेश करने से अशुभ होना बताया गया है—राजा की ओर से पीड़ा एवं धन-क्षय होता है—अतः उसकी शांति के लिए दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए, उसी से शुभ की प्राप्ति होती है विना गर्जन के शिला वृष्टि (पत्थर पड़ने), रक्त मिश्रित पांडु वर्ण की होती हुयी वर्षा के दर्शन हों तो वहां पर मेघ, वायु संचार-हीन वृक्ष, इन्द्र-धनुष, इन्द्र ध्वज, एवं पुष्प-वृष्टि दिखायी देती है । दिन में पहले स्यारनी के रुदन, रात्रि में उलूक (उल्लू) या निशाचर की अशुभ वाणी, और रात में बैलों के बीच में कूदकर किसी बैल के चिल्लाने से उस देश में अधर्म की प्रधानता, धर्मविहीन राजा, (प्रजाओं में) एक-दूसरे की हिंसा गो-ब्राह्मणों की भी हिंसा करते हैं । गृह में पुत्र, पशु और बान्धव समेत गृहपति के विनाश द्वारा प्रदेश में मरण, राष्ट्र-विप्लव, राज्य-नाश राजा एवं वाहनों के निधन और उस समस्त प्रदेश में प्रतिकूल आचरण होने लगता है ।८८-९८।

राहुणा ग्रस्तसूर्योऽपि निशि चाथ यदा दिवा । तारकागणवच्चैव राज्ञां निधनकारकः ॥९९
सहामात्या विनश्यन्ति स्वर्गे ये च सुदुर्जयाः । परचक्रेण पात्यन्ते राजानो नात्र संशयः ॥१००
छायाध्वजश्च गगने दृश्यते चेत्कदाचन । दर्शनादेव राज्ञस्तु विनाशः सहराष्ट्रकैः ॥१०१
ज्वलितो दृश्यते यत्र पावकश्च सकृज्जले । वज्रे शिरसि गात्रे वा जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥१०२
द्वारोपान्ते तथा स्तम्भे आग्निर्वा धूम एव वा । पुरुषस्य तु तत्रैव मरणं जायते ध्रुवम् ॥१०३
गगनेऽशनिघातश्च शक्तिहस्तेन वा पुनः । अब्दस्याभ्यन्तरे तस्य मरणं नात्र संशयः ॥१०४
शिखावलयमध्ये तु सधूमः पावकोद्गमः । दृश्यते नगरे मध्ये तत्रैवाद्भुतदर्शनम् ॥१०५
शवस्य नीयमानस्य उत्थानं वा प्रमादतः । स्थापितस्य च लिङ्गस्य अन्यत्र गमनं तथा ॥१०६
निर्घातश्चापि भूकम्पो निवातोल्काप्रदर्शनम् । अकाले पुष्पिता वृक्षाः फलं चाकालसम्भवम् ॥१०७
अनिमित्तानि सर्वाणि दूरमागत्य निर्भरम् । अनिमित्तस्य नाशो यः सैंहिकेयकृतस्य च ॥१०८
नराणामासनं चैव गवां वा मानुषीगिरा । पक्षमात्रान्तरे तस्य पुत्रस्य मरणं दिशेत् ॥१०९
अयुतं जुहुयात्तत्र राहुमुद्दिश्य यत्नतः । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् ॥११०
दधिमधुघृताक्तं च कुर्याद्दूर्वाक्षतं तथा । कलायु इति मन्त्रेण जुहुयाद्रविवासरे ॥१११
चरुं च श्रपयेत्तत्र राहुमुद्दिश्य संश्रयात् । होमं कुर्यात्ततो गां च कपिलां[१] च पयस्विनीम् ॥११२
अतसीं तिलशङ्खौ वा वासोयुगमथापि वा । श्रद्धया राहुमुद्दिश्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥११३

दिन की भाँति रात्रि में भी राहु द्वारा ग्रस्त हुए सूर्य (सूर्यग्रहण) दिन में तारागण की भाँति राजाओं की मृत्यु का सूचक होता है। स्वर्ग में भी दुर्जेय समझे जाने वाले राजा की मंत्री समेत मृत्यु राष्ट्र द्वारा शीघ्र हो जाती है, इसमें संदेह नहीं। आकाश मण्डल में कभी ध्वज की छाया का आकस्मिक दर्शन हो, तो राज्य समेत राजा का विनाश होता है। जल में एक बार भी प्रज्वलित अग्नि के दर्शन, वज्र, शिर, एवं शरीर में भी दिखायी देने से उस मनुष्य के जीवन की आशा का त्याग कर देना चाहिए। दरवाजे के समीप, या किसी स्तम्भ में अग्नि अथवा धूम दिखायी दे तो उस पुरुष की निश्चित मृत्यु हो जाती है। आकाश में वज्राघात, शक्ति समेत हाथ के आघात जिसे मालूम पड़े उस वर्ष के भीतर ही उसकी मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं। नगर के मध्य भाग में स्थित किसी शिखावलय के भीतर धूएँ समेत अग्नि के प्रादुर्भाव शव के वहन करते हुए प्रमादवश उसका उठाना, स्थापित शिवलिङ्ग का अन्यत्र ले जाना, वज्राघात, भूकम्प, वायुहीन उल्का के प्रदर्शन असमय में वृक्षों के फूलने-फलने, ये सभी अशुभ सूचक दुर्निमित्त उसके दूर चले जाने पर फलप्रदायक नहीं होते हैं। इस प्रकार राहु द्वारा किये गये उस दुर्निमित्त का नाश हो जाता है, अन्यथा मनुष्यों के आसन और गौओं की मनुष्य की भाँति वाणी ये सभी एक पक्ष के भीतर उसके पुत्र-निधन की सूचना प्रदान करते हैं। इसलिए राहु के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए। मैं उस शुभप्रदायक शांति का विधान बता रहा हूँ। रवि के दिन 'कलायुइति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक दही, शहद, एवं घी में भिगोयी हुयी दूर्वा और अक्षत की खीर समेत आहुति प्रदान करने के उपरांत दूध देने वाली कपिला गौ और अलसी, तिल, शंख, एवं दो वस्त्र समेत दक्षिणा श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मण के लिए समर्पित करनी चाहिए।९९-११३।

दुरितस्य विनाशाय तस्य सम्पद्यते शुभम् । दधिमधुघृतक्षीरेण वारुणेन च वारुणे ॥११४
दृश्यते चाद्भुतं तेषु विशिष्टैर्दोषदर्शिभिः । गृही तत्र विनष्टश्च भवेत्सपशुबान्धवः ॥११५
दृश्यन्ते तत्र क्रौञ्चाश्च जम्बुका गृध्रवायसाः । दारुणं भीषणं घोरं नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥११६
मैथुनानि च सर्वेषां यस्य वासे भवेद्यदि । मृत्युस्तस्य भवेदाशु ईश्वरस्य च शासनात् ॥११७
धूमकेतुर्यदा व्योम्नि ज्वलत्पावक सन्निभः । स्थानात्स्थानान्तरं याति भूमौ वा पतते भृशम् ॥
सबन्धुरस्यते राजा परचक्रैः स पीडितः ॥११८
दुर्भिक्षं मरणं चैव चिरं राष्ट्रे भविष्यति । गावो मर्कटकुम्भा च विशन्ते गृहवेश्मनि ॥११९
गावश्च तस्य नश्यन्ति दारापत्यधनानि च । अन्यस्य दोषो भवति गृहे यान्ति प्रमादतः ॥१२०
अब्दान्तरे भवेन्मृत्युर्विरजा हि भविष्यति । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् ॥१२१
सप्ताश्वरथसंयुक्तं हेमच्छत्रविभूषितम् । विप्राय मण्डपं दद्याद्बिल्वपत्रमथापि वा ॥१२२
ऐन्द्रेणैव तु मन्त्रेण होमः कार्यो द्विजातिभिः । अकस्माच्छालतालाक्षखदिरोत्पलकसेरुकाः ॥१२३
गृहमध्ये प्रजायेत केतोरद्भुतदर्शनम् । हंसो वा द्रोणकाको वा मयूरो वा गृहोपरि ॥१२४
गृहे तस्य महोत्पातः केतोरद्भुतदर्शनम् । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् ॥१२५
दधिमधुघृताक्तं च जुहुयादयुतं कुशम् । त्र्यम्बकं चेति मन्त्रेण केतवेभिवपेच्चरुम् ॥१२६
नीलां धेनुं सवत्सां च बहुक्षीरप्रदां तथा । मृत्तिकां हेमवासश्च नानालङ्कारमेव च ॥१२७

दुर्निमित्त के विनाशार्थ दही, शहद, घी एवं क्षीर की आहुति वारुण मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करने से शुभ की प्राप्ति होती है। अन्यथा जो विशिष्ट दोष द्रष्टाओं को वे अशुभ-सूचक दुर्निमित्त दिखायी देते हैं उनके फल भी जैसे कि बताये गये हैं—पशु, पुत्र, एवं बान्धव गण समेत उस गृहपति का विनाश हो जाता है ये निश्चित प्राप्त होते हैं। जिसके निवास स्थान में क्रौंच, गीदड़, गीध, और कौवे दारुण, भीषण एवं घोर नृत्य परिहास तथा मैथुन आदि किया करते हों तो ईश्वर के शासन विधानानुसार उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। जिस समय आकाश में धूमकेतु प्रज्वलित अग्नि की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, अथवा भूमि पर उसका पतन होता है, उसी समय वहाँ का राजा अपने बन्धु गणों के समेत दूसरे राजा से पीड़ित होता है, और राष्ट्र में दुर्भिक्ष, मरण, चिरकाल तक होता रहता है। जिसके गृह में गौओं एवं बानर एवं कुम्भ का प्रवेश होता है, उसके गौओं स्त्री, सन्तान, और धन का विनाश शीघ्र हो जाता है और अन्य के दोष से भी उसे दोष भागी बनना एवं वर्ष के भीतर ही शक्ति हीन होकर मत्यु शय्या पर शयन करना पड़ता है, अतः उसके लिए शांति-विधान मैं बता रहा हूँ, जिससे कल्याण की प्राप्ति होती है। सात घोड़े जुते हुए एवं सुवर्ण के छत्र से अलंकृत रथ के मण्डप अथवा बिल्व-पत्र ब्राह्मण को समर्पित करते हुए ब्राह्मणों द्वारा खाल (साखू) ताड़ वहेरा, खैर, नीलकमल, और कसेरु (कुइयाँ पुष्प की जड) की आहुति इन मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करानी चाहिए। ११४-१२३। गृहमध्य-भाग में केतु द्वारा उत्पात हंस, द्रोण कौवे या मयूर के पतन हों तो उस घर में महान् उत्पात होने की सम्भावना बतायी गयी है, अतः उस अशुभ की शांति एवं शुभ की प्राप्ति के लिए मेरे बताये हुए विधान को सुसम्पन्न करना चाहिए—दही, शहद, एवं घी में डुबाकर कुश की आहुति केतु के उद्देश्य से 'त्र्यम्बकमिति' मंत्र द्वारा खीर समेत प्रदान करके बछड़े समेत अधिक दूध देने वाली नील गाय, मिट्टी, सुवर्ण जड़ित, वस्त्र, भाँति-भाँति के अलंकार समेत दक्षिणा ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए,

दक्षिणां च प्रवक्ष्यामि यस्य नास्ति प्रतिक्रिया। देवमुद्दिश्य दानेन होमेन चरुणा तथा ।।१२८
दक्षिणस्यां दिशिच्छायां यः पश्येदात्मनः स्वयम्। स्वच्छायां पादुकस्यैव पश्येत्पञ्चशिरोद्वयम्।।१२९
एवमेवैव यच्छिन्नं शिनष्टि च ततो हितम्। शीघ्रं नाशमवाप्नोति सप्ताहान्नात्र संशयः ।।१३०
उच्चावचान्प्रवक्ष्यामि यथा शास्त्रेण चोदितम्। काकमार्जारशूकानां कपोतानां विशेषतः ।।
मैथुनं दृश्यते तत्र तच्च राहोर्महाद्भुतम् ।।१३१
शनिमुद्दिश्य जुहुयादयुतं शनिवासरे । पूजयेदर्कपुष्पेण शतेन जुहुयाच्चरुम् ।।१३२
कृत्वा तत्रैव पश्येतशनेरद्भुतदर्शनम् । अष्टाविंशं चरुं कृत्वा ततः शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।।१३३
भुजपदोस्तथा चक्षुःस्पन्दने मरणं दिशेत् । तत्तु सोमाद्भुतं विद्याद्वामदक्षिणतः क्रमात् ।।१३४
कृष्णपक्षे भवेद्वामे विपरीतेऽद्भुतं दिशेत् । अनिष्टसूचकं यस्मात्तस्माच्छान्ति प्रकल्पयेत् ।।१३५
शतार्द्धं रविमुद्दिश्य शान्त्यर्थे होममाचरेत् । चरुपाकविधानेन यवैस्तिलसुसर्पिषा ।।१३६
पुस्तके यज्ञसूत्रं च असत्पात्रे चरौ तु वा । शक्रवस्त्रप्रदग्धे च सूर्यस्याद्भुतदर्शनम् ।।१३७
हयमारं त्रिमध्वक्तं जुहुयादिष्टसिद्धये । देवपुस्तकरत्नानि मणिकाञ्चनमेव च ।।१३८
लोहितस्याद्भुतं विद्यात्सहस्रं च दिशोधनम्। देवागारे तथा गोधा शङ्खिनी प्रविशेत्क्वचित् ।।१३९

क्योंकि केतु के उद्देश्य से दान, हवन एवं खीर प्रदान की क्रियाओं द्वारा उसे इस भाँति शान्त कर दिया जाता है, जिससे पुनः कोई प्रतिक्रिया होने की संभावना नहीं रहती है। दक्षिण दिशा में जो अपनी छाया का स्वयं दर्शन करते हैं अथवा उसके साथ-साथ चरण पादुका के इस भाँति के दर्शन हों, जिसमें दश शिर की कल्पना-सी प्रतीत होती हो, और उस प्रकार छिन्न होकर मस्तक से चूर्ण हो जाये तो शुभ समझना चाहिए, अन्यथा सप्ताह के भीतर ही उसका शीघ्र नाश होता है, इसमें संदेह नहीं।१२४-१३०। मैं शास्त्र विहित उँच-नीच अशुभ कृत्यों को बता रहा हूँ! जैसे कौवे, बिल्ली, शूक और विशेष कर कबूतर के मैथुन दर्शन रूपी अशुभ कर्म को राहु द्वारा उत्पन्न होना बताया गया है। शनिवार के दिन शनि के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति एवं मदार के पुष्प-समेत खीर की सौ आहुति प्रदान करनी चाहिए, यदि उसी स्थान पर पुनः शनि द्वारा उत्पन्न अशुभ-सूचक दुर्निमित्त के दर्शन हो जायें, तो अट्ठाइस आहुति खीर की पुनः प्रदान करने से निश्चित शांति प्राप्त होती है। बाँये भाग में दक्षिण भाग के क्रम से भुजा, चरण, तथा नेत्र का स्फुरण, मृत्यु-सूचक होता है, इस दुर्निमित्तको सोम द्वारा उत्पन्न समझना चाहिए। विशेषकर कृष्ण पक्ष में (स्त्री-पुरुष के) क्रमशः दाहिने और बाँये उपरोक्त अंग के स्फुरण अनिष्ट-सूचक होते हैं, अतः उसकी शान्ति क्रिया के अनुष्ठान शीघ्र सुसम्पन्न करना चाहिए।१३१-१३५। सूर्य के उद्देश्य से शान्ति के लिए पाक-विधान द्वारा बनायी गयी खीर, जवा, तिल, और घी की शतार्द्ध (पचास) आहुति प्रदान करना बताया गया है।१३६। पुस्तक पर यज्ञसूत्र और असत्पात्र में खीर के रखने एवं शक्र वस्त्र के जलने से होने वाले अशुभ को सूर्य द्वारा उत्पन्न जानना चाहिए, इसके शान्त्यर्थ त्रिमधु (शहद, शक्कर, एवं घी में डुबाकर कनेर की आहुति अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए सुसम्पन्न करके देव पुस्तक, रत्न, मणि, और सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए।१३७-१३८। इसी भाँति लोहित (मङ्गल) जनित दुर्निमित में सहस्र आहुति प्रदान करना बताया गया है। देवालय में गोह, शंखिनी, द्रोण कौवे, बकुला, दो उलूक,

द्रोणकाको बकश्चैव उलूकद्वयमेव च । रक्तकण्ठः कपोतश्च व्याघ्र एणश्च वा विशेत् ॥१४०
यस्य देवगृहं पश्येत्तस्य तस्यायुतं हुनेत् । न चात्र गृहवैकृत्यं हसनं यदि दृश्यते ॥
सम्पत्तिसूचकं गेहे मरणं दुःखदर्शनम् ॥१४१
क्रन्दने हतराज्येन गजाश्ववाहने क्वचित् । सूर्यमुद्दिश्य जुहुयादयुतं सर्वसिद्धये ॥१४२
प्रमादात्कम्पने हानिः स्वेदे जाते विपद्भवेत् । क्षीरस्रावे च रुधिरे तत्र राज्ये महद्भयम् ॥१४३
गोच्छागौ वाथ गोमायुर्गृहोपरि प्रनृत्यति । यद्वा रौति दिवा फेरुस्तदा नाशो भवेद् ध्रुवम् ॥१४४
श्वजम्बुकावथ व्याघ्रो यथाशक्ति च धावति । ईशाने महिषस्तद्वत्तदा देशे च विप्लवः ॥१४५
राहोरद्भुतमुद्दिश्य सहस्रं जुहुयाच्चरुम् । वृक्षाद्भुतं यदा पश्येत्तत्र तस्यां परित्यजेत् ॥
यद्गृहेषु हुतं याति देशविप्लवमादिशेत् ॥१४६
देशे वा नगरे ग्रामे आरण्यपशुबन्धनम् । सर्पे वा विपरीतं च मांसपिण्डमथापि वा ॥
तद्गृहे मरणं चैव देशविप्लवमादिशेत् ॥१४७
दिवाद्भुतेऽयुतं रात्रौ द्विगुणं च भवेद् ध्रुवम् । द्विगुणं चापि सन्ध्यायामर्धरात्रे चतुर्गुणम् ॥१४८
अकाले तत्र मरणमकाले गृहिणीमृतिः । सौराद्भुतं विजानीयादशुभे वा विशोधनम् ॥१४९
एकैकस्यायुतं यत्र कुर्यात्तत्रैव होमयेत् । साङ्गोपाङ्गेन सहितमष्टावष्टौ हुतं च वा ॥१५०
अधिप्रत्यधिसहितं गृहपक्षेऽपि सत्तमाः । तन्मानेन हुतं विप्रा कुर्यात्तत्रैव भूषणम् ॥१५१

(रक्त कण्ठ, कबूतर, व्याघ्र, मृग के प्रवेश होने पर उसके शान्त्यर्थ दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए । इनके हसने (मुख की प्रसन्नता) देखने से गृहसम्बन्धी कोई क्षति नहीं होती है, प्रत्युत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार उनकी दुःखी अवस्था का दर्शन मरण सूचक बताया गया है ।१३९-१४१। हाथी और घोड़े के करुण क्रन्दन से राज्य-विनाश होता है, अतः सर्वार्थ सिद्धि के लिए सूर्य के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति-प्रदान करनी चाहिए । प्रमाद-वश उनमें कम्पन होने से हानि, पसीने के निकलने से विपत्ति, एवं क्षीर या रुधिर के निकलने से राज्य में भीषण भय उपस्थित होता है । गृह के ऊपर गौ, बकरी, गीदड़ के नृत्य हों, एवं दिन में गीदड़, (स्यार) का रुदन हो, तो निश्चित विनाश ईशान कोण में कुत्ते, स्यार, वाघ और भैंसे के यथा शक्ति दौड़ने से उस देश में महान् उपद्रव होता है । अतः इसकी शान्ति के लिए राहु के उद्देश्य से खीर की सहस्र आहुति-प्रदान करनी चाहिए । वृक्ष जनित दुर्निमित्त दर्शन से उसी स्थान पर आहुति-प्रदान करना बताया गया है, अन्यथा, गृह में आकर आहुति-प्रदान करने से देश में उपद्रव होना अटल ही रहेगा । किसी प्रदेश, नगर, गाँव में जङ्गली पशु का बाँधना, अथवा सर्प का बाँधना, एवं मांस के पिंड का दर्शन करने से उस घर में मरण और देश में उपद्रव होना निश्चित रहता है । दिन में अशुभ दर्शन से दशसहस्र की रात्रि में उससे दुगुने अथवा संध्या समय में दुगुने और आधी रात के समय चौगुने संख्या की आहुति होनी चाहिए । सूर्य द्वारा उत्पन्न अशुभ-दर्शन से अकाल में गृहपति एवं गृहणी की मृत्यु हो जाती है, इसलिए उस अशुभ की शान्ति करना आवश्यक होता है ।१४२-१४९। इस प्रकार एक एक अशुभ में दश सहस्र की आहुति तथा सांगोपाङ्ग उस उस अशुभ जनक देव के लिए आठ-आठ और अधिक आहुति प्रदान करना बताया गया है । सत्तमवृन्द ! इसी भाँति गृह निर्माण विषय में भी अधिदेव एवं प्रत्यधि

एकैकस्याहुतं विप्रा अष्टावष्टौ हुतं च वा । अधिप्रत्यधिदेवानां याश्चान्याश्चाङ्गदेवताः ।।१५२
मानान्तं च ददेत्पूर्णां दत्त्वा पूर्णां न होमयेत् । वक्ष्ये ग्रहमखे मानं येन मानेन सिध्यति ।।१५३
अमानकरणे दोषस्तस्मान्मानं न हापयेत् । पङ्क्तिचत्वारिंशदाद्यैश्चतुर्धा विभजेन्नरः ।।१५४
अनिष्टाय ततो दद्याच्चरुहोमं विभागशः । अधिप्रत्यधिदेवानामष्टावष्टौ ह्युदाहृतम् ।।१५५
त्र्यम्बकादिषु मन्त्रेषु होमत्रयमुदाहृतम् । धनञ्जये तथा दद्याच्चरुहोमं विभागतः ।।१५६
आदित्यायाष्टावष्टादधिकं कल्पयेत्सुधीः । शतहोमे तु सर्वत्र दशाङ्गं कल्पयेन्नरः ।।१५७
अनिष्टाय युगाङ्गं तु ग्रहेभ्यो ह्युङ्गनाय च । अधिप्रत्यधिदेवानां तथैवाङ्गं प्रकल्पयेत् ।।१५८
द्वौ तु दद्यात्त्र्यम्बकाय तथा धनञ्जयाय च । तत्र होमो नायकाय सर्वत्रेद विचक्षणः ।।१५९
सहस्रे चैव विंशाङ्गे अनिष्टाय दशांशकम् । पञ्चांशेन ग्रहाणां च पञ्चांशेन यवानपि ।।१६०
तत्रानिष्टे पञ्चशतं तस्यार्धं ग्रहवाग्यतः । एकत्रिंशद्ददेन्मानम् अन्येषां तु चतुर्दश ।।१६१
ग्रहाधिकं होमयुगं तत्र भागे प्रकल्पयेत् । अधातये च तिथ्यङ्गं पञ्चाङ्गं यस्य चाद्भुतम् ।।१६२
ग्रहेभ्यश्चैव पञ्चाङ्गं तत्र दाङ्गं परानपि । एकैकाङ्गे भवेन्मानं षट्शतं षष्टिरेव च ।।१६३
अधिकं च भवेत्षष्टिर्दशमं भागशेषतः । अनिष्टांशे त्रिसहस्रं त्रिशतं त्रिंशतं तथा ।।१६४

देव के लिए उसी मान से हवन करना उसकी शोभा वृद्धि करना है । विप्रवृन्द ! उन एक-एक अधिदेव, प्रत्यधि देव, और उसके अंग देवता के उद्देश्य से आठ-आठ आहुति जो माप दण्ड के अनुसार निश्चित है, प्रदान करना चाहिए । इसके उपरांत पूर्णाहुति प्रदान कर पुनः पूर्णाहुति के पश्चात् हवन के करने का विधान है । इसीलिए मैं गृह-यज्ञ में उस माप-दण्ड को बता रहा हूँ, जिसके उपयोग से उसकी सिद्धि प्राप्त होती है, और मान हीन उसके सुसम्पन्न करने से दोष भागी होना बताया गया है, अतः मान का त्याग कभी न करना चाहिए । मनुष्य को सर्वप्रथम उस के चार भाग करके जिसमें प्रत्येक भाग दश-दश की संख्या का रहता है, पश्चात् विभाग के क्रम से उस अनिष्ट के निवारणार्थ खीर की आहुति प्रदान करना श्रेयस्कर होता है—अधि, प्रत्यधि देवों के उद्देश्य से आठ-आठ आहुति त्र्यम्बकादि मंत्रों के प्रयोग में तीन हवन, इसी भाँति धनंजय के लिए विभागानुसार चरु (खीर) की आहुति-प्रदान पूर्वक सूर्य के लिए आठ आठ अधिक आहुति विद्वानों को प्रदान करनी चाहिए, तथा शत संख्या की आहुति में उनके दशांश की कल्पना सर्वत्र करनी चाहिए ।१५०-१५७। अनिष्ट-वारण के लिए ग्रहों उपग्रहों के लिए युगांग की भाँति अधिप्रत्याधि देवों के अंगों की कल्पना आवश्यक होती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् को त्र्यम्बक तथा धनंजय के दो-दो अंगों की कल्पना पूर्वक उस नायक के लिए सर्वत्र हवन विधान सुसम्पन्न करना बताया गया है ।१५८-१५९। सहस्र की आहुति में जब कि बीस अंगों की कल्पना की जाती है अनिष्ट के लिए दशांश, ग्रहों के लिए पाँच अंश की आहुति होती है, उसमें पाँच भाग जवा रहता है । यदि वहाँ पुनः अनिष्ट दर्शन हो, तो पाँच सौ ग्रहों के लिए ढाई सौ, जिसमें इकतीस का मान बताया गया है, अन्य के लिए चौदह आहुति-प्रदान की जाती है । ग्रहों से अधिक के लिए दो हवन किया जाता है, जिसमें तिथि को पाँच भाग की कल्पना की जाती है । ग्रहों के लिए पाँच और दूसरों के लिए केवल अंगमात्र की कल्पना की जाती है, जिसके एक-एक अंग के मान छः सौ साठ बताये गये हैं ।१६०-१६३। अधिक से अधिक इन साठ, या दशवें भाग की कल्पना पूर्वक अनिष्ट के लिए तीन सहस्र, तीन सौ तीस, ग्रहों के लिए चार सौ या सात सौ से भी अधिक एवं

चतुःशतं ग्रहाणां च तथा सप्तशताधिकम् । उपग्रहेभ्यो दद्याच्च पञ्चाशीत्यधिकं शतम् ॥१६५
तिर्य्यङ्गभागः शेषेण ग्रहे सप्तशताधिकम् । एकैकं तु ग्रहस्यैवमादित्याय युगं भवेत् ॥१६६
ग्रहाङ्गे यः स्थितो भागो युगलं भागशेषतः । त्र्यम्बकाय च तद्दद्यात्तथा धनञ्जयाय च ॥१६७
शान्तिके पौष्टिके काम्ये यदीच्छेत्सुखमात्मनः । ग्रहाणां चायुतं होमं त्र्यहसाध्येन होमयेत् ॥१६८
त्र्यहसाध्ये विधानं यत्पुरैवोदीरितं द्विजाः । इदानीं प्रक्रमेणैव यो भागः स निगद्यते ॥१६९
पूर्वस्मिन्दिवसेऽनिष्टे सहस्रं त्रिशतोत्तरम् । इतरेषां ग्रहाणां च प्रत्येकं तु शतं शतम् ॥१७०
अधिप्रत्यधिदेवानां पञ्चाशद्धोम उच्यते । प्रथमेऽह्नि प्रदद्याच्च मिलित्वा त्रिसहस्रकम् ॥१७१
द्वितीयदिवसेऽनिष्टे द्विसहस्रमुदाहृतम् । प्रतिग्रहेभ्यस्त्रिशतं दद्यादष्टशताधिकम् ॥१७२
उपग्रहेभ्यो दद्याच्च षोडशेभ्यो यथाक्रमम् । एकाशीतिं ददौ यत्नादशीतिं चान्त्ययोर्द्वयोः ॥१७३
एवं द्वितीयदिवसे मिलित्वा षट्सहस्रकम् । अनिष्टाय त्रिशतं तु तृतीयदिवसे मतम्॥१७४
तत्प्रत्येकं ग्रहाणां च द्वाचत्वारिंशदुच्यते । अधिप्रत्यधिदेवानां प्रत्येकं पञ्चत्रिंशकम् ॥१७५
तृतीयदिवसे दद्यान्मिलित्वैकसहस्रकम् । आदित्याय युगं दद्यादेकं तु त्र्यम्बकाय च॥१७६
धनञ्जयाय होमैकमेकं चायुतमुच्यते । तदर्धकं ग्रहेभ्यश्च इतरेभ्यस्तदर्धकम् ॥१७७

उपग्रहों के लिए एक सौ पचासी भाग की कल्पना की जाती है । शेष पन्दहवाँ भाग जो ग्रहों के लिए समस्त सात सौ से भी अधिक बताया गया है, ग्रहों के लिए एक-एक भाग और आदित्य के लिए चार भाग की कल्पना की जाती है । ग्रहांगों के लिए स्थित शेष दो भाग त्र्यम्बक और धनंजय के लिए अर्पित करना चाहिए ।१६४-१६७। शांति कर्म, पौष्टिक एवं काम्य कर्मों में अपने ऐच्छिक सुख के लिए ग्रहों के तीन दिन वाले अनुष्ठान कर्म दशसहस्र की आहुति-प्रदान करनी चाहिए । द्विजवृन्द ! तीन दिन में साध्य होने वाले उस अनुष्ठान विधान को पहले ही बता चुका हूँ, इस समय क्रमानुसार प्राप्त शेष भाग का वर्णन कर रहा हूँ । पहले दिन में अनिष्ट होने पर तेरह सौ, अन्य ग्रहों, के लिए सौ-सौ और अधिप्रत्यधि देवों के लिए पचास संख्या की आहुति इस प्रकार पहले दिन में सब मिलाकर तीन सहस्र की आहुति-प्रदान की जाती है । दूसरे दिन के अनिष्ट होने में दो सहस्र की आहुति दी जाती है, जिसमें प्रत्येक ग्रह के लिए तीन सौ आठ, सोलह उपग्रहों के लिए क्रमशः इक्यासी और अन्त के दोनों के लिए अस्सी, इस प्रकार दूसरे दिन में कुल मिलाकर छः सहस्र की आहुति प्रदान की जाती है । अनिष्ट-शान्ति के लिए तृतीय दिन तीन सौ आहुति-प्रदान करना चाहिए । ऐसा शास्त्रकारों का मत है । उसके बाद प्रत्येक ग्रहों के लिए बयालिस आहुतियाँ कही गयी हैं । अधि और प्रत्यधि देवताओं को (प्रधान देवता के बाद आवाहित देवताओं को अधिप्रत्यधि देवता कहा जाता है) प्रत्येक को ३५-३५ आहुतियाँ कही गयी हैं । अर्थात् प्रत्येक को ३५ आहुति देना चाहिए ।१६८-१७५। तीसरे दिन सम्मिलित रूप में १००० आहुतियाँ देना चाहिए। आदित्य के लिए २००० एवं त्र्यम्बक (शिव) के लिए १००० आहुतियाँ देना चाहिए ।१७६। धनञ्जय के लिए पाँच सौ तथा अन्यों के लिए ढाई सौ आहुति देनी चाहिए ।१७७।

ग्रहाणां त्रिसहस्रं तु पञ्चानां च सहस्रकम् । त्रिसहस्रं भागशेषमादित्याय सहस्रकम् ॥१७८
त्र्यम्बकाय तथादद्यात्तथा धनञ्जयाय च । षट्पादाधिकषटषट्कसहस्रपरिसङ्ख्यया ॥
नवश्लोकशतोद्भुतं सम्पूर्णं स्याद्भविष्यकम् ॥१७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे ग्रहोपद्रवोत्पातशान्तिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

ग्रहों के लिए तीन हजार तथा पंचदेव के लिए एक हजार तथा आदित्य के लिए पूर्वोक्त में तीन हजार से भाग देने पर शेष एक हजार आहुति देनी चाहिए । त्र्यम्बक के लिए एक हजार धनञ्जय के लिए भी एक हजार आहुति-प्रदान करनी चाहिए ।१७८-१७९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तृतीयभाग में ग्रहों के उपद्रव-उत्पात-शान्ति वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

भविष्यपुराणम्—प्रतिसर्गपर्व

अथ प्रतिसर्गपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः

कृतयुगभूपाख्यानम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं[1] ततो जयमुदीरयेत् ।।

शौनक उवाच

भविष्याख्ये महाकल्पे ब्रह्मायुषि परार्द्धके । प्रथमेऽब्देह्नि तृतीये प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ।।१
अष्टाविंशे सत्ययुगे के राजानोऽभवन्मुने । तेषां राज्यस्य वर्षाणि तन्मे वद विचक्षण ।।२

सूत उवाच

कल्पाख्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माब्दस्य दिनत्रये । प्राप्ते सप्तमुहूर्ते च मनुर्वैवस्वतोऽभवत् ।।३
स तप्त्वा सरयूतीरे तपो दिव्यं शतं समाः । तच्छिक्कातोऽभवत्पुत्र इक्ष्वाकुः स महीपतिः ।।४
ब्रह्मणो वरदानेन दिव्यं यानं स आप्तवान् । नारायणं पूजयित्वा हरौ राज्यं निवेद्य च ।।५
षट्त्रिंशच्च सहस्राणामब्दं राज्यं तदाऽकरोत् । तस्माज्जातो विकुक्षिश्च शतहीनं[2] तदब्दकम् ।।६
राज्यं कृत्वा दिवं यातस्तस्माज्जातो रिपुञ्जयः । शतहीनं कृतं राज्यं तत्ककुत्स्थसुतः स्मृतः ।।७

अध्याय १

सत्ययुग के राजाओं का वर्णन

नारायण, नरोत्तम, नर और देवी सरस्वती को (प्रारम्भ में) नमस्कार करके तब जय (महाभारत एवं पुराणादि) का उच्चारण करना चाहिए।

शौनक ने कहा—विचक्षण ! भविष्य महाकल्प के, जो ब्रह्मा का (आयु सम्बन्धी) उत्तरार्द्ध काल कहा जाता है, उस काल एवं अट्ठाईसवें सत्ययुग में, जिसमें पहले वर्ष के तीसरे दिन वैवस्वत नामक मनु उत्पन्न होते हैं, कौन-कौन राजा हुए हैं और उनके राज्य का काल मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१-२

सूत जी बोले—श्वेतवाराह नामक कल्प में ब्रह्मा के पहले वर्ष के तीसरे दिन के सातवें मुहूर्त में वैवस्वत नामक मनु का जन्म हुआ है। उन्होंने सरयू नदी के तट पर दिव्य सौ वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त (नाक से) छींकने के द्वारा इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न किया था। ब्रह्मा के वरदान से उन्हें एक दिव्य (तेजोमय) यान (सवारी) भी प्राप्त हुआ था। भगवान् विष्णु को राज्य का निवेदन करके नारायण की पूजा-ध्यान में अपने जीवन का समय व्यतीत करते हुए उन्होंने छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज्य-भार संभाला था। पश्चात् उनके विकुक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिनका राज्य-काल उनसे सौ वर्ष न्यून था। राज्यभार संभालते हुए विकुक्षि के स्वर्गीय होने के उपरान्त रिपुञ्जय का जन्म हुआ, उसका भी राज्यकाल उनसे (अपने पिता से) सौ वर्ष कम था। उनके ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ, ऐसा कहा गया है।

---

१. चैव । २. 'शतहीनम्, सहस्रहीनम्, इत्यनेन प्रतिस्थानतः 'षट्त्रिंशच्च सहस्राणाम्' इत्यारभ्यानुक्रमेण हीनत्वं ज्ञेयम् ।

शतहीनं कृतं राज्यं ततोऽनेनांस आत्मजः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो नृपः पृथुः ॥८
शतहीनं कृतं राज्यं विष्वगश्वश्च तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादार्द्रो नृपोऽभवत् ॥९
शतहीनं कृतं राज्यं भद्राश्वस्तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥१०
शतहीनं कृतं राज्यं श्रवस्थस्तत्सुतोऽभवत् । सत्यपादश्च सञ्जातः प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥११
उदयादस्तपर्यन्तं तैर्नृपैर्भूमिमण्डलम् । भुक्तं नीतिपरैर्देवैः श्रवस्थेन तु भूतले ॥
शतहीनं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततोऽभवत् ॥१२
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्कुवलयाश्वकः । शतहीनं कृतं राज्यं दृढाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१३
सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु निकुम्भकः । सहस्रहीनं राज्यं तत्सङ्कटाश्वस्तु तत्सुतः ॥१४
सहस्रहीनं राज्यं तत्तस्माज्जातः प्रसेनजित् । सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु तत्सुतः ॥१५
सहस्रहीनं राज्यं तन्मान्धाता तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं पुरुकुत्सस्तु तत्सुतः ॥१६
शतहीनं कृतं राज्यं त्रिशदश्वस्तु तत्सुतः । रथे यस्य स्मृता वाहा वाजिनस्त्रिशतो वराः ॥१७
अनरण्यस्ततो जातो ह्यष्टाविंशत्सहस्रकम् । राज्यं द्वितीयचरणे स्मृतं सत्ययुगस्य वै ॥१८
पृषदश्वस्ततो जातो राज्यं षष्ठसहस्रकम् । तदब्दं भूतले कृत्वा पितृलोकमुपाययौ ॥१९
हर्यश्वस्तु ततो जातो विष्णुभक्तकुले नृपः । सहस्रहीनं राज्यं तत्तत्सुतो वसुमांस्मृतः ॥२०
सहस्रहीनं राज्यं तत्त्रिधन्वा तनयस्ततः । सहस्रहीनं राज्यं तत्तेन राज्ञा च सत्कृतम् ॥२१

उसने भी उनसे सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया । पश्चात् उसके अंस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके भी (अपने पिता से) सौ वर्ष कम राज्य-काल के उपरांत पृथु नामक राजा उत्पन्न हुअ। । इस प्रकार पृथु के विष्वगश्व, विष्वगश्व के राजा आर्द्र, आर्द्र के भद्राश्व, भद्राश्व के युवनाश्व, युवनाश्व के श्रवस्थ नामक पुत्र हुआ, जो इस भरत-भूमि में सत्य का प्रथमपाद चरण, बताया गया है । इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर सौ-सौ वर्ष कम है तथा सूर्य के उदय होने वाले प्रदेश से लेकर उनके अस्त होने वाले प्रदेश तक के मध्यवर्ती इस भूमि मंडल का उपभोग इन राजाओं ने अत्यन्त नीति-निपुणता के साथ किया था । श्रवस्थ के बृहदश्व, उनके कुवलयाश्व और कुवलयाश्व को पुत्र दृढाश्व हुआ ।३-१३। इनका भी राज्य-काल उत्तरोत्तर सौ वर्ष कम बताया गया है । पुनः उनके निकुम्भक, निकुंभ के संकटाश्व, संकटाश्व के प्रसेनजित, प्रसेनजित के रवणाश्व, रवणाश्व के मांधाता नामक पुत्र हुआ । इन लोगों का राज्य-काल उत्तरोत्तर सहस्र वर्ष कम बताया गया है । मांधाता के पुरुकुत्स तथा उनके त्रिशदश्वा नामक पुत्र हुए। मांधाता के पुरुकुत्स तथा उनके त्रिशदश्व नामक पुत्र हुए । इनका भी राज्य-काल सौ वर्ष उत्तरोत्तर न्यून बताया गया है । इनके रथ में तीस घोड़े जोते जाते थे इसीलिए इनका त्रिशदश्व नामकरण हुआ था । इनका अनारण्य नामक पुत्र हुआ, जिसने सत्य युग के द्वितीय चरण में अट्ठाईस सहस्र वर्ष समय तक इस वसुंधरा का उपभोग किया था । उनके पृषदश्व नामक पुत्र हुआ, जिसने छः सहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत पितरलोक की प्राप्ति की थी । इस विष्णुभक्त के कुल में उनके हर्यश्व, हर्यश्व के वसुमान् और वसुमान् के त्रिधन्वा नामक पुत्र की उत्पत्ति बतायी गई। इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर सहस्र वर्ष कम बताया गया है। इस प्रकार भारत के इस अवान्तर प्रदेश में सत्य

सत्यपादः समाप्तोऽयं द्वितीयो भारतेऽन्तरे । त्रिधन्वनश्च नृपतेस्त्रपारण्यस्तु वै सुतः ।।२२
सहस्रहीनं राज्यं तत्कृत्वा स्वर्गमुपाययौ । तस्माज्जातस्त्रिशङ्कुश्च राज्यं वर्षसहस्रकम् ।।२३
छद्मना हीनतां जातो हरिश्चन्द्रस्तु तत्सुतः । राज्यं त्रिंशत्सहस्रं च रोहितो नाम तत्सुतः ।।२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हारीतस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चञ्चुभूपश्च तत्सुतः ।।२५
पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्विजयो नाम तत्सुतः । पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्रुरूकस्तनयस्ततः ।।२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सगरस्तनयोऽभवत् । भूपाश्च बाहुसेनान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ।।२७
राज्यमानं कृतं सम्यग्भूपैर्वैवस्वतादिभिः । मणिस्वर्णसमृद्धिश्च बह्वन्नं बहुदुग्धकम् ।।२८
पूर्णो धर्मस्तदा भूम्यां मुने सत्ययुगस्य वै । तृतीयचरणे मध्ये सगरो नाम भूपतिः ।।२९
शिवभक्तः सदाचारस्तत्पुत्राः सागराः स्मृताः । त्रिंशत्सहस्रवर्षं तद्राज्यं वै मुनिभिः स्मृतम् ।।३०
नष्टेषु सागरेष्वेवमसमञ्जस आत्मजः । शतहीनं कृतं राज्यमंशुमांस्तत्सुतोऽभवत् ।।३१
शतहीनं कृतं राज्यं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो भगीरथः ।।३२
शतहीनं कृतं राज्यं श्रुतसेनस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं नाभागस्तनयस्ततः ।।३३
शतहीनं कृतं राज्यमम्बरीषस्ततोऽभवत् । शैवाः षट् श्रुतसेनान्ता नाभागो वैष्णवो नृपः ।।३४
सत्यपादः समाप्तोऽयं तृतीयो भारतेऽन्तरे । अम्बरीषेण भूपेन शतहीनं कृतं पदम् ।।३५
चतुर्थे चरणे तस्य चाष्टादश सहस्रकम् । अब्दं राज्यं शुभं ज्ञातं कर्मभूम्यां च भारते ।।३६

का दूसरा चरण समाप्त हुआ, ऐसा कहा गया है ।१४-२१। राजा त्रिधन्वा के त्रपारण्य नामक पुत्र हुआ, जिसने उनसे सहस्र वर्ष कम समय तक राज्य का उपभोग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की । पुनः उनके (त्रपारण्य के) त्रिशंकु उत्पन्न हुए, जिसने सहस्र वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् त्रिशंकु के हरिश्चन्द्र नामक पुत्र हुआ, जो (विश्वामित्र को अपना सर्वस्वदान दे देने से) लक्ष्मीहीन (दरिद्र) हो गया था । उनका पुत्र रोहित नामक हुआ, जिसने तीस सहस्र वर्ष राज्य किया । रोहित के हारीत, चंचुभूप, चंचुभूप के विजय, विजय के रुरूक एवं रुरूक के सगर पुत्र हुए । वाहुसेन तक के राजाओं को वैष्णव होना बताया गया है । इन सभी राजाओं ने अपने पिता के समानकाल तक राज्य का उपभोग किया है । वैवस्वत मनु आदि राजाओं के समय में राज्य का मान विस्तृत मणियों तथा सुवर्णों से समृद्ध, अधिक अन्न की उपज और दूध की नदियाँ-सी बहती थीं । मुने ! इस प्रकार इस भूमण्डल में धर्म पूर्णरूप से विद्यमान था ।२२-२८। सत्ययुग के तीसरे चरण के मध्यकाल में सगर नामक राजा का जन्म हुआ था । वे परम शिवभक्त एवं सदाचारपरायण थे । उनके अनेक (साठ सहस्र) पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका राज्य-काल मुनियों ने तीस सहस्र वर्ष का बताया है । इन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर सगर-पुत्र असमञ्जस ने उनसे सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था । इस प्रकार असमञ्जस के अंशुमान्, अंशुमान् के दिलीप, दिलीप के भगीरथ, भगीरथ के श्रुतसेन, श्रुतसेन के नाभाग और नाभाग के अम्बरीश पुत्र हुए । इन राजाओं ने उत्तरोत्तर सौ-सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था । इनमें श्रुतसेन तक सभी राजा शैव (शिव के उपासक) और राजा नाभाग वैष्णव (विष्णु के उपासक) बताये जाते हैं । इस प्रकार भारत-भूमि में सत्ययुग के तीसरे चरण का समाप्त होना कहा गया है ।२९-३५। सत्ययुग के चौथे चरण में भारत की इस कर्मक्षेत्रभूमि में राजा अम्बरीष का अट्ठारह सहस्र वर्ष तक राज्य-भार का निभाना

एकोनत्रिंशद्वर्षाणि राज्यं तत्त्रिशतानि च । शतहीनं कृतं राज्यं सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषजः ।।३७
शतहीनं कृतं राज्यमयुताश्वस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यमृतुपर्णस्तु तत्सुतः ।।३८
शतहीनं कृतं राज्यं सर्वकामो नृपस्ततः । शतहीनं कृतं राज्यं नृपः कल्माषपादकः ।।३९
शतहीनं कृत राज्यं सुदासस्तनयोऽभवत् । तस्मादशमकश्चैव मदयन्त्या वशिष्ठजः ।।४०
शतहीनं कृत राज्यं हरिवर्मा ततोऽभवत् । सप्त भूपाः सुदासान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ।।४१
गुरुशापात्तु सौदासो राज्याङ्गं गुरवेऽर्पयत् । गोकर्णलिङ्गभक्तश्च शैवः समय उच्यते ।४२
हरिवर्मा शमकजो वैश्यवत्साधुपूजकः । ऊनत्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि वै ।।४३
हरिवर्माऽकरोद्राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्दिल्लीवयस्सुतः ।।४४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूपो विश्वासहस्ततः । राज्यं दशसहस्रं तन्नियज्ञः प्राकृतो नृपः ।।४५
तदधर्मप्रतापेन ह्यनावृष्टिस्तदाऽभवत् । शतवर्षमनावृष्टिस्सर्वराज्यं व्यनाशयत् ।।४६
यज्ञं कृत्वा वशिष्ठस्तु राज्ञीवचनतत्परः । यज्ञात्खट्वांग उत्पन्नः खट्वांगं शस्त्रमुद्वहन् ।।४७
इन्द्रसाहाय्यमगमद्राज्यं त्रिशतसहस्रकम् । कृत्वा तत्र वरं लब्ध्वा देवेभ्यो मुक्तितां गतः ।।४८
खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च राज्यं विंशत्सहस्रकम् । तस्मात्सुदर्शनो जातो देवीपूजनतत्परः ।।४९
वैष्णवा दाशरथ्यं तास्त्रयो विख्यातसद्बलाः । खट्वांगो दीर्घबाहुश्च वैष्णवौ परिकीर्तितौ ।।५०
सुदर्शनो महाप्राज्ञः काशीराजसुतां नृपः । उद्वह्य भूपतीञ्जित्वा भूपसेवाप्रसादतः ।५१

बहुत सुखदायक बताया जाता है । राजा अम्बरीश के सिन्धुद्वीप नामक पुत्र हुए, जिन्होंने उनसे उन्तीस, तीस एवं सौ वर्ष कम राज्य किया था। सिन्धुद्वीप के अयुताश्व, अयुताश्व के ऋतुपर्ण, ऋतुपर्ण के सर्वकाम, सर्वकाम के कल्मषपाद, कल्मषपाद के सौदास और सौदास की स्त्री मदयन्ती में वशिष्ठ द्वारा राजा अश्मक तथा इनके हरिवर्मा नामक पुत्र हुए । इन लोगों का भी अपने से उत्तरोत्तर क्रमशः राज्य-काल सौ-सौ वर्ष कम बताया गया है । इनके क्रमबद्ध राजा सुदास तक, जो गणना में सात राजा होते हैं, विष्णु के उपासक कहे गये हैं । सुदास के पुत्र राजा अश्मक ने अपने गुरु वशिष्ठ द्वारा प्राप्त शाप के कारण अपना राज्य उन्हें अर्पित कर दिया था । राजा अश्मक शिव के गोकर्ण नामक लिंग के परमभक्त थे । अतः उन्हें महान् शैव होना कहा गया है । उनके पुत्र हरिवर्मा भी वैश्यों की भाँति अत्यन्त साधु-सेवी थे । उन्नीस सहस्र सात सौ वर्ष तक उनके राज्य-भार निभाने के उपरान्त दशरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस राजा ने अपने पिता के समान काल तक राज्यभार का वहन किया है । पश्चात् उनके दिल्लीवय नामक पुत्र हुआ और उनके राजा विश्वासह हुए । यद्यपि इस राजा ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया, किन्तु अपनी मूर्खता एवं उद्दण्डता के कारण कभी किसी यज्ञ का अनुष्ठान न कर सका । इस घोर अधर्म के कारण सौ वर्ष तक जल-वृष्टि ही नहीं हुई, जिसके परिणाम स्वरूप समस्त राज्य का नाश हो गया।३६-४६। पश्चात् रानी के अनुनय-विनय करने पर वशिष्ठजी ने यज्ञ-द्वारा खट्वांग नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसने अपने खट्वाङ्ग अस्त्र धारण करके इन्द्र की सहायता से तीस सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया, तदुपरांत देवताओं द्वारा वरदान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। खट्वांग के दीर्घबाहु नामक पुत्र हुए, जिन्होंने बीस सहस्र वर्ष राज्य किया है। दीर्घबाहु के सुदर्शन नामक पुत्र हुए, जो देवी के परम उपासक थे। हरिवर्मा, दशरथ एवं दिलीप नामक ये तीनों बलशाली राजा परम विख्यात वैष्णव हो चुके हैं। राजा खट्वाग और दीर्घबाहु भी विष्णु के उपासक थे। महाबुद्धिमान् राजा सुदर्शन ने देवी जी की अनुकम्पावश काशीराज की कन्या के साथ पाणिग्रहण करके

राज्यं भरतखण्डान्तमदधद्धर्मतो नृपः । वर्षपञ्चसहस्राणि राज्यं चक्रे स भूपतिः ॥५२
स्वप्नमध्ये वचः प्रोक्तं महाकाल्या नृपाय वै । वत्स त्वं प्रियया सार्द्धं वशिष्ठादिभिरन्वितः ॥५३
हिमालयं गिरिं प्राप्य वासं कुरु महामते । महावायुप्रभावेन क्षयो भरतखण्डके ॥५४
रत्नाकरः पश्चिमोऽब्धिस्तस्य द्वीपाः क्षयं गताः । महोदधिः पूर्वतोऽब्धिस्तस्य द्वीपा क्षयं गताः ॥५५
वाडवोऽब्धिर्दक्षिणे च तस्य द्वीपाः क्षयं गताः । हिमाब्धिरुत्तरे तस्य सगरैः खनितो हि सः ॥५६
ये द्वीपास्तु सुविख्यातास्तेऽपि सर्वे लयं गताः । भारतो वर्ष एवासौ वत्सरे सप्तमेऽहनि ॥५७
सजीवः प्रलयं यायात्तस्मात्त्वं जीवितो भव । तथेति मत्वा स नृपः पर्वतं वै हिमालयम् ॥५८
प्राप्तवान्मुख्यभूपैश्च मुख्यवैश्यैर्द्विजैः सह । पञ्चवर्षप्रमाणेन वायुस्तेजः क्रमाज्जलम् ॥५९
शर्करा च मही प्राप्तस्ततो जीवाः क्षयं गताः । पञ्चवर्षमिते काले जलं जाता वसुन्धरा ॥६०
शान्ता भूत्वा पुनर्वायुर्जलं सर्वमशोषयत् । दशवर्षान्तरे भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कृतयुगभूपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

युद्धस्थल में राजाओं पर विजय प्राप्त किया, पश्चात् भरतखण्ड का यह समस्त राज्य अपने अधिकार में करके पाँच सहस्र वर्ष तक इसका उपभोग किया तदुपरांत भगवती महाकाली ने स्वप्न में उस राजा से कहा—वत्स ! महामते ! तू अपनी धर्म-पत्नी एवं वशिष्ठादि महर्षियों समेत हिमालय पर्वत पर जाकर निवास करो, क्योंकि महावायु के प्रभाव से इस भरतखण्ड (भारतवर्ष) का विनाश उपस्थित है क्योंकि पश्चिमीय रत्नाकर समुद्र के द्वीप, पूर्वीय महोदधि के मध्यवर्ती, दक्षिण दिशा में रहने वाले वडवानल वाले समुद्र द्वीप और हिमालय के उत्तरीय समुद्र के द्वीप, जिसे सगर के वंशजों ने खोदकर निरस्त किया था, विनष्ट हो चुके हैं । इस प्रकार सभी ख्यातिप्राप्त द्वीपों के समूल विलीन होने के उपरांत यह भारतवर्ष भी इस वर्ष के सातवें दिन इस प्रलय के समुद्री बाढ़ में सभी जीव समेत विलीन हो जायेगा । अतः तुम अपने जीवन की रक्षा करो ।' भगवती की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर उस राजा ने प्रमुख नृपगण, वैश्यों एवं ब्राह्मणों समेत हिमालय पर अपना आवासस्थान बनाया । पश्चात् पाँच-पाँच वर्ष तक क्रमशः वायु, तेज और जल द्वारा समस्त (पार्थिव) तत्त्व का नाश प्रारम्भ हुआ । उसमें समस्त पृथिवी का शक्कर की भाँति कण हो गया जिसमें सभी जीव नष्ट हो गये, पुनः पाँच वर्ष तक अनवरत इस पृथिवी पर जल वृष्टि होती रही, पश्चात् शांत होकर वायु ने सभी जल को सुखा दिया । इस भाँति दश वर्ष के अनन्तर यह भारतीय भूमि केवल स्थल की भाँति दिखायी देने लगी ।४७-६१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कृतयुग के राजाओं का
वर्णन नामक पहला अध्याय ।१।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

त्रेतायुगभूपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयागुरुवासरे । सुदर्शनो जनैः सार्द्धमयोध्यामगमत्पुनः ॥१
मायादेवीप्रभावेण पुरं सर्वं मनोहरम् । महावृद्धियुतं प्राप्तं बह्वन्नं सर्वरत्नकम् ॥२
दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा सुदर्शनः । प्राप्तवान्ब्राध्वतं लोकं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ॥३
नन्दिनीवरदानेन तत्पुत्रो रघुरुत्तमः । दशवर्षसहस्राणि दिलीपो राज्यसत्कृतः ॥४
राज्यं कृतं च रघुणा दिलीपान्ते पितुस्समम् । रघुवंशस्ततः ख्यातस्त्रेतायां भृगुनन्दन ॥५
विप्रस्य वरदानेन तत्पुत्रोऽज इति स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्रामो हरिः स्वयम् । एकादश सहस्राणि रामराज्यं प्रकीर्तितम् ॥७
तस्य पुत्रः कुशो नाम राज्यं दशसहस्रकम् । अतिथिर्नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुः समम् ॥८
निबन्धो नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् । तस्माज्जातो नलो नाम त्रेतायां शक्तिपूजकः ॥९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मान्नाभः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुण्डरीकः सुतोऽभवत् ॥१०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमधन्वा तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं द्वारको नाम तत्सुतः ॥११
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुरुर्नाम सुतस्ततः ॥१२

अध्याय २

त्रेतायुग के राजाओं का वर्णन

सूतजी बोले—वैशाखमास में शुक्लपक्ष की तृतीया वृहस्पति के दिन राजा सुदर्शन ने अपने परिजनों समेत अयोध्यापुरी में पुनः आगमन किया । माया देवी के अनुग्रहवश उस नगर में, जो सब भाँति मनोहर, सर्वसमृद्ध, अधिक अन्न एवं सभी प्रकार के रत्नों से पूर्ण था, दश सहस वर्ष तक राज्य का उपभोग करके वे ब्रह्मलोक पहुँच गये । सुदर्शन के पुत्र दिलीप हुए और दिलीप के पुत्र रघु हुए, जो नन्दिनी के वरदान से उत्पन्न थे । सम्मानपूर्वक दश सहस्र वर्ष तक राजा दिलीप के राज्य करने के उपरान्त रघु ने भी उनके समान काल तक राज्य का भारवहन किया था। भृगुनन्दन ! त्रेतायुग में उन्होंने अपने नाम का (रघु) वंश चलाना आरम्भ किया था, पश्चात् ब्राह्मण के वरदान द्वारा उनके अज नामक पुत्र हुआ ऐसा कहा गया है। उन्होंने भी अपने पिता के समान काल तक राज्य किया था। अज के दशरथ हुए और दशरथ के स्वयं विष्णु भगवान् ने रामरूप से अवतार लिया था। दशरथ ने अपने पिता के समान काल तक राज्य-भार संभाला था और राम ने ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। उनके पुत्र कुश हुए, जिन्होंने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । कुश के अतिथि, अतिथि के निबंध, निबंध के शक्ति, शक्ति के परम उपासक राजा नल, नल के नाभ, नाभ के पुण्डरीक, पुण्डरीक के क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा के द्वारक, द्वारक के अहीनज और अहीनज के कुरु हुए जिन्होंने त्रेतायुग में सौ योजन के विस्तृत कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था । इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर अपने पिता के समान ही बताया गया है । इस

कुरुक्षेत्रं कृतं तेन त्रेतायां शतयोजनम् । त्रेतापादस्समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥१३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारियात्रः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दलपालस्सुतस्ततः ॥१४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं छद्मकारी तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुक्थः सुतोऽभवत् ॥१५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वज्रनाभिस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शंखनाभिस्ततोऽभवत् ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं व्युत्थनाभिस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विश्वपालस्ततोऽभवत् ॥१७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं स्वर्णनाभिस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुष्पसेनस्तु तत्सुतः ॥१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ध्रुवसन्धिस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमपवर्मा तु तत्सुतः ॥१९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीघ्रगन्ता तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुपालस्तु तत्सुतः ॥२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रसूवश्रुत उच्यते । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुसन्धिस्तनयोऽभवत् ॥
त्रेतापादः समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥२१
उदयादुदयं यावद्राज्ञा तत्र सुसंधिना । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मामर्बस्तनयस्ततः ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महाऽश्वस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्वालः सुतस्ततः ॥२३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदैशान एव तत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुरुक्षेपस्ततोऽभवत् ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सपालस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सव्यूहस्ततोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतिव्योमा ततो नृपः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतो देवकरस्ततः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सहदेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततो नृपः ॥२७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भानुरत्नस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुप्रतीकस्ततोऽभवत् ॥२८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुदेवस्सुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनक्षत्रस्ततोऽभवत् ॥२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतः केशीनरस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमन्तरिक्षस्ततो नृपः ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुवर्णांगो नृपोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो ह्यमित्रजित् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्राजस्ततोऽभवत् ॥३२

प्रकार भारत के अवान्तर प्रदेश में त्रेतायुग का पहला चरण समाप्त हुआ।१-१३। राजा कुरु के पारियात्र, पारियात्र के दलपाल, दलपाल के छद्मकारी, छद्मकारी के उक्थ, उक्थ के वज्रनाभि, वज्रनाभि के शंखनाभि, शंखनाभि के व्युत्थिताभि व्युत्थिताभि के विश्वपाल, विश्वपाल के स्वर्णनाभि, स्वर्णनाभि के पुष्पसेन, पुष्पसेन के ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि के अपवर्मा, अपवर्मा के शीघ्रगंता, शीघ्रगंता के मरुपाल, मरुपाल के प्रसूवश्रुत एवं प्रसूवश्रुत के सुसंधि नामक पुत्र हुए, जिन्होंने सूर्योदय प्रदेश से आरम्भ कर उसके चारों ओर के समस्त भूमण्डल पर अपना आधिपत्य प्राप्त किया। इन राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक राज्य भार संभाला था, ऐसा कहा गया है।१४-२१। पुनः सुसंधि के मामर्ब, मामर्ब के महाश्व, महाश्व के बृहद्वाल, बृहद्वाल के बृहदैशान, बृहदैशान के ऊरुक्षेप, ऊरुक्षेप के वत्सपाल, वत्सपाल के वत्सव्यूह, वत्सव्यूह के प्रतिव्योमा, प्रतिव्योमा के देवकर। देवकर के सहदेव, सहदेव के बृहदश्व, बृहदश्व के भानुरत्न, भानुरत्न के सुप्रतीक, सुप्रतीक के मरुदेव, मरुदेव के सुनक्षत्र,

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मराजस्ततो नृपः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः कृतञ्जयः ।।३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो रणञ्जयः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सञ्जयस्तत्सुतः स्मृतः ।।३४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शाक्यवर्धनः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्रोधदानस्तु तत्सुतः ।।३५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादतुलविक्रमः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रसेनजित् ।।३६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शूद्रकः स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुरथस्तत्सुतोऽभवत् ।।३७
पितुरर्द्धं कृतं राज्यं सर्वे तु रघुवंशजाः । पञ्चषष्टिमिताः भूपा देवीपूजनतत्पराः ।।३८
हिंसायज्ञपराः सर्वे स्वर्गलोकमितो गताः । बुद्धा जाताश्च ये पुत्रास्ते सर्वे वर्णसङ्कराः ।।३९
त्रेतातृतीयचरणप्रारम्भेन नवतां गताः । इन्द्रेण प्रेषितो भूमौ चन्द्रमा रोहिणीपतिः ।।४०
प्रयागनगरे रम्ये भूमिराज्यमचीकरत् । विष्णुभक्तश्चन्द्रमाश्च शिवपूजनतत्परः ।।४१
मायादेवीप्रसन्नार्थे शतं यज्ञमचीकरत् । अष्टादशसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ।।४२
तस्य पुत्रो बुधो नाम मेरुदेवस्य वै सुतः । इलामुद्वाह्य धर्मेण तस्माज्जातः पुरूरवाः ।।४३
चतुर्दशसहस्राणि भूमिराज्यमचीकरत् । उर्वशीं सोऽपि स्ववेश्यां समये नैव भोग्यवान् ।।४४
आयुर्नाम सुतो जातो धर्मात्मा विष्णुतत्परः । षट्त्रिंशच्च सहस्राणि राज्यं कृत्वा पुरूरवाः ।।४५
गन्धर्वलोकं सम्प्राप्य मोदते दिवि देववत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमायुषो नहुषस्सुतः ।।४६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततः शक्रत्वमागतः । त्रिलोकीं स्ववशं चक्रे वर्षमेकसहस्रकम् ।।४७
मुनेर्दुर्वाससः शापान्नृपोऽजगरतां गतः । पञ्च पुत्रा ययातेश्च त्रयो म्लेच्छत्वमागताः ।।४८
द्वौ तथार्यत्वमापन्नौ यदुर्ज्येष्ठः पुरुर्लघुः । तपोबलप्रभावेण राज्यं लक्षाब्दसंमितम् ।।४९
कृत्वा विष्णुप्रसादेन ततो वैकुण्ठमागतः । यदोः पुत्रः स्मृतः क्रोष्टा राज्यं षष्टिसहस्रकम् ।।५०

सुनक्षत्र के केशीनर, केशीनर के अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष के सुवर्णांग, सुवर्णाङ्ग के अमित्रजित्, अमित्रजित् के बृहद्राज, बृहद्राज के धर्मराज, धर्मराज के कृतञ्जय, कृतञ्जय के रणञ्जय, रणञ्जय के सञ्जय, सञ्जय के शाक्यवर्धन, शाक्यवर्धन के क्रोधदान, क्रोधदान के अतुलविक्रम, अतुलविक्रम के प्रसेनजित्, प्रसेनजित् के शूद्रक, तथा शूद्रक के सुरथ नामक पुत्र हुए। इन राजाओं का राज्यकाल उत्तरोत्तर इनके पिता के समान ही बताया गया है। रघुवंशीय पैंसठ राजाओं ने अपने पिता के आधे समय तक राज्य का उपभोग किया है, जो देवी के परम उपासक और हिंसात्मक यज्ञ के अनुष्ठापक थे। उन सभी लोगों ने स्वर्ग की प्राप्ति की है। बुद्ध होने वाले सभी पुत्र वर्ण संकर कहे गये हैं। त्रेतायुग के तीसरे चरण के आरम्भिक काल में इनका नवोत्थान कहा जाता है।२२-४०। इन्द्र के भेजे हुए रोहिणी पति चन्द्रमा ने इस भूमण्डल पर आकर इस रमणीक प्रयाग नगर को अपनी राजधानी बनाया। चन्द्रमा विष्णु के परमभक्त एवं नित्य शिव की भी पूजा करते थे। माया देवी के प्रसन्नार्थ उन्होंने सौ यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था। अठारह सहस्र वर्ष राज्य करके उनके दिवंगत होने पर उनके पुत्र-बुध ने राज्यभार संभाला, जो मेरुदेव के पुत्र कहे जाते हैं। बुध ने इला का धार्मिक रीति से पाणिग्रहण करके पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसने चौदह सहस्र वर्ष राज्य किया था। उन्होंने प्रतिज्ञानुसार उर्वशी अप्सरा का भी उपभोग किया था। उनके आयु नामक पुत्र हुआ, जो धर्मात्मा एवं विष्णु का उपासक था। राजा पुरुरवा छत्तीस

वृजिनघ्नस्सुतस्तस्माद्राज्यं विंशत्सहस्रकम् । तस्मात्स्वाहार्चनः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् ।।५१
तस्माच्चित्ररथः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् । अरविन्दस्सुतस्तस्मात्कृतं राज्यं पितुः समम् ।।५२
अथ श्रवास्ततो जातस्तेजस्वी विष्णुतत्परः । पितुरर्द्धं कृतं राज्यं तत्पुत्रस्तामसः स्मृतः ।।५३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुशनस्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीतांशुकनृपोऽभवत् ।। ।।५४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कमलांशुस्ततोऽभवत् ।।५५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारावतसुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जामघस्तत्सुतोऽभवत् ।।५६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विदर्भस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्राथो नाम सुतस्ततः ।।५७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुन्तिभोजस्तु तत्सुतः । पुरुर्दैत्यसुतापुत्रः पाताले वृषपर्वणः ।।५८
उषित्वा नगरे तस्मिन्मायाविद्यस्ततोऽभवत् । प्रयागस्य प्रतिष्ठाने पुरे राज्यमथाकरोत् ।।५९
दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः । देवीभक्तः स नृपतिस्तत्पुत्रो जनमेजयः ।।६०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रचिन्वांस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रवीरस्तनयोऽभवत् ।।६१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नभस्यस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भवदस्तत्सुतस्स्मृतः ।।६२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुद्युम्नस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुत्रो बाहुगरः स्मृतः ।।६३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं संयातिस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धनयातिस्ततोऽभवत् ।।६४

सहस्र वर्ष राज्य का उपभोग करके गन्धर्वलोक में आज भी देवताओं की भाँति आनन्दानुभव कर रहे हैं। उनका पुत्र आयु भी अपने पिता के समान समय तक राज्यभार का वहन किया था। पुनः आयु के पुत्र नहुष हुए जो अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग कर पश्चात् इन्द्र बनाये गये थे। उन्होंने समस्त तीनों लोकों को अपने अधीन करके उस पर एक सहस्र वर्ष तक अपना आधिपत्य जमाया था। पुनः दुर्वासा मुनि के शापवश उन्हें अजगर होना पड़ा था। राजा ययाति के पाँच पुत्र थे, जिसमें तीन म्लेच्छ एवं दो आर्य हुए थे। ज्येष्ठ का नाम यदुस था छोटे का नाम पुरु था। अपने तपोबल के प्रभाव से उन्होंने एकलक्ष वर्ष तक राज्य का उपभोग करके पश्चात् भगवान् विष्णु की प्रसन्नता से स्वर्ग की प्राप्ति की। यदु का पुत्र-क्रोष्टा बताया गया है, जिसने साठ सहस्र वर्ष राज्य किया था। उनके वृजिनघ्न नामक पुत्र हुआ जिसने बीस सहस्र वर्ष राज्य किया था। वृजिनघ्न के स्वाहार्चन, स्वाहार्चन के चित्ररथ और चित्ररथ के अरविंद हुए। इन लोगों ने भी अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया है। इसके उपरांत, अरविंद के श्रवा नामक पुत्र हुआ जो तेजस्वी एवं विष्णु का परम उपासक था। उसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया है। श्रवा के पुत्र तामस, तामस के उशनस्, उशनस् के शीतांशु, शीतांशु के कमलांशु, कमलांशु के पारावत, पारावत के जामघ, जामघ के विदर्भ, विदर्भ के क्राथ, क्राथ के कुंती भोज, और पाताल निवासी वृषपर्वा द्वारा दैत्य की कन्या में पुरु नामक पुत्र हुआ।४१-५८। उस नगर में रहते हुए पुरु के माया विद्य नामक पुत्र हुआ, जिसने प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर में अपनी राजधानी स्थापित करके दशसहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत स्वर्ग की प्राप्ति की। उस देवी भक्त राजा के जनमेजय, जनमेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् के प्रवीर, प्रवीर के नभस्य, नभस्य के भवद, भवद के सुद्युम्न, सुद्युम्न के बाहुगर, बाहुगर के संयाति, संयाति के

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमैन्द्राश्वस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्रन्तिनरः सुतः ।।६५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः सुतपाः स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं संवरणस्तनयस्ततः ।।६६
हिमालयगिरौ प्राप्ते तपः कर्तुं मनो दधत् । शतवर्षं ततः सूर्यस्तपतीं नाम कन्यकाम् ।।६७
संवरणाय ददौ तुष्टो रविलोकं नृपो गतः । ततो मायाप्रभावेन युगं प्रलयमागतम् ।।६८
चत्वारः सागरा वृद्धा भारतं क्षयतां गतम् । द्विवर्षे सागरे भूमिरुषित्वा भूधरैस्सह ।।६९
महावायुप्रभावेन सागराः शुष्कतां गताः । अगस्त्यतेजसा भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ।।७०
पञ्चवर्षान्तरे भूमिर्वृक्षदूर्वादिसंयुता । सूर्याज्ञया च संवर्णस्तपस्य. मुनिना सह ।।७१
वशिष्ठेन त्रिवर्णैश्च मुख्यैः सार्धं समागतः ।।७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये त्रेतायुगभूपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

द्वापरनृपोपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

संवर्णश्च महीपालः कस्मिन्काले समागतः । लोमहर्षण मे ब्रूहि द्वापरस्य नृपांस्तथा ।।१

धनयाति, धनयाति के ऐन्द्राश्व, ऐन्द्राश्व के रंतिनर, रंतिनर के सुतपा, और सुतपा के संवरण हुए, जिसने हिमालय पर्वत पर जाकर सौ वर्ष तक तप किया। उनके तपश्चर्या से प्रसन्न होकर सूर्य ने उन्हें अपनी तपन्ती नाम की कन्या प्रदान की। पुनः राजा सूर्य लोक चले गये। तदुपरांत माया के प्रभाव से युगप्रलय उपस्थित हुआ। चारों ओर के समुद्र में जल की बाढ़ आ गई जिससे भारतवर्ष नष्ट हो गया। पर्वतों समेत पृथिवी दो वर्ष तक समुद्र के भीतर पड़ी रही। पश्चात् महावायु की प्रखरता से सागर सूख गये। अगस्त्य के तेजोबल के कारण पृथिवी केवल स्थल रूप में दिखायी देने लगी। पाँच वर्ष के भीतर वृक्षों एवं दूर्वादिकों से परिपूर्ण होकर यह पृथिवी पुनः हरी भरी हो गई। उपरांत सूर्य की आज्ञा प्राप्त कर राजा संवर्ण, तपस्वी वशिष्ठ मुनि एवं प्रमुख तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) समेत पुनः इस भूतल पर आये।५९-७२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में त्रेतायुग के राजाओं का वर्णन नामक दूसरा अध्याय।२।

अध्याय ३

द्वापर के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—लोमहर्षण ! राजासंवर्ण का यहाँ आगमन किस समय में हुआ और द्वापर युग के राजाओं को भी बताने की कृपा कीजिए।१

सूत उवाच

भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु त्रयोदश्यां भृगौ दिने । संवर्णे मुनिभिः सार्द्धं प्रतिष्ठाने समागतः ॥२
प्रतिष्ठानं कृतं रम्यं पञ्चयोजनमायतम् । अर्धकोशोन्नतं हर्म्यं रचितं विश्वकर्मणा ॥३
बुद्धिवंशे प्रसेनस्य सक्तया भूपतिः कृतः । यदुवंशे सात्वतश्च मधुराभूपतिः कृतः ॥४
म्लेच्छवंशे श्मश्रुपालो मरुदेशस्य भूपतिः । क्रमेण वर्द्धिता भूपाः प्रजाभिः सहिता भुवि ॥५
दशवर्षसहस्राणि संवर्णो भूपतिःस्मृतः । तस्यात्मजोऽयमर्चाज्ञः कृतं राज्यं पितुस्समम् ॥६
तस्य पुत्रः सूरिजापी पितुरर्द्धं च राज्यकृत् । सूर्ययज्ञस्तस्य पुत्रः सौरयज्ञपरायणः ॥७
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादातिथ्यवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं द्वादशात्मा तु तत्सुतः ॥८
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो दिवाकरः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रभाकरः ॥९
शतहीनं कृतं राज्यं भास्वदात्मा च तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं विवस्वज्ज्ञस्तदात्मजः ॥१०
शतहीनं कृतं राज्यं हरिदश्वार्चनस्ततः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैकर्तनः सुतः ॥११
शतहीनं कृतं राज्यं स्तस्मादर्केष्टिमान्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मार्तण्डवत्सलः ॥१२
शतहीनं कृतं राज्यं मिहिरार्थस्तु तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादरुणपोषणः ॥१३
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्द्युमणिवत्सलः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्तरणियज्ञकः ॥१४
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मैत्रेष्टिवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं चित्रभानुस्सुतस्ततः ॥१५
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैरोचनः स्मृतः । शतहीनं कृतं राज्यं हंसन्यायी तु तत्सुतः ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वेदप्रवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्सावित्र उच्यते ॥१७
शतहीनं कृतं राज्यं धनपालस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं म्लेच्छहन्तसुतः स्मृतः ॥१८

सूत जी बोले—भादों मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी शुक्रवार के दिन मुनियों के साथ राजा संवर्ण इस प्रतिष्ठानपुर में आये हैं। विश्वकर्मा ने इस प्रतिष्ठानपुर को पांच योजन में विस्तृत एवं रमणीक बनाया है, जिसमें एक-एक मील की ऊँचाई के सुन्दर महल बने थे। बुद्धिवंश में प्रसेन सक्ति का, यदुवंश में सात्वत मथुरा (मधुरा) का और म्लेच्छ वंश में श्मश्रुपाल मरुदेश का राजा हुआ। इन राजाओं ने इस भूतल पर अपनी-अपनी प्रजाओं समेत अधिकाधिक उन्नति की। राजा संवरण ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। संवर्ण के यमर्चाज्ञ, तथा यमर्चाज्ञ के सूरिजापी हुए। इनमें केवल सूरिजापी के सूर्ययज्ञ नामक पुत्र हुआ, जो सूर्य के यज्ञानुष्ठान का ही पारायण करने वाला था। इसने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य का उपभोग किया था। सूर्ययज्ञ के आतिथ्यवर्धन, आतिथ्यवर्धन के द्वादशात्मा, द्वादशात्मा के दिवाकर, दिवाकर के प्रभाकर, प्रभाकर के भास्वदात्मा, भास्वदात्मा के विवस्वज्ज्ञ, विवस्वज्ज्ञ के हरिदश्वार्चन, हरिदश्वार्चन के वैकर्तन, वैकर्तन के अर्केष्टिमान्, अर्केष्टिमान् के मार्तण्डवत्सल, मार्तण्डवत्सल के मिहिरार्थ, मिहिरार्थ के अरुणपोषण, अरुणपोषण के द्युमणिवत्सल, द्युमणिवत्सल के तरणियज्ञक, तरणियज्ञक के मैत्रेष्टिवर्धन, मैत्रेष्टिवर्धन के चित्रभानु, चित्रभानु के वैरोचन, वैरोचन के हंसन्यायी।२-१६। हंसन्यायी के वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धन के सावित्र, सावित्र के धन पाल, धनपाल के म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहंता के आनन्दवर्धन, आनन्दवर्धन के धर्मपाल, धर्मपाल के ब्रह्मभक्त,

शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादानन्दवर्द्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं धर्मपालसुतस्ततः ॥१९
शतहीनं कृतं राज्यं ब्रह्मभक्तसुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्‌ब्रह्मेष्टिवर्द्धनः ॥२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादात्मप्रपूजकः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परमेष्ठी सुतस्ततः ॥२१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्धैरण्यवर्द्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं धातृयाजी तु तत्सुतः ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तद्विधातृप्रपूजकः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैद्रुहिणः क्रतुः ॥२३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैरञ्च्य उच्यते । शतहीनं कृतं राज्यं तत्पुत्रः कमलासनः ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शमवर्ती तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं श्राद्धदेवस्तु तत्सुतः ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै पितृवर्द्धनः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमदत्तस्तु तत्सुतः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सौमदत्तिस्तदात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै सोमवर्द्धनः ॥२७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमवतंसः सुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतंसस्तनयस्ततः ॥२८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परातंसस्तदात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमयतंसस्ततोऽभवत् ॥२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समातंसस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनुतंसस्तदात्मजः ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमधितंसस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमभितंसस्तदात्मजः ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समुत्तंसस्ततोऽभवत् । पितुस्तल्यं कृतं राज्यं तंसोनाम सुतोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यन्तस्तनयस्ततः । शकुन्तलायां तस्माच्च भरतोनाम भूपतिः ॥३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यन्तः स्वर्गीत गतः । भरतोनाम तत्पुत्रो देवपूजनतत्परः ॥३४
महामायाप्रभावेन षट्त्रिंशद्वर्षजीवनम् । षट्त्रिंशब्दसहस्राणि नृपायुर्वर्द्धितं तथा ॥३५
तस्य नाम्ना स्मृतः खण्डो भारतो नाम विश्रुतः । तेन भूमेर्विभागश्च कृतं राज्यं पृथक् चिरम् ॥३६

और ब्रह्मभक्त के ब्रह्मेष्टिवर्द्धन, हुए, इनमें राजा वेद प्रवर्धन और ब्रह्मेष्टिवर्द्धन ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया है एवं शेष राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के राज्यकाल से सौ-सौ वर्ष कम समय तक ब्रह्मेष्टिवर्द्धन के आत्मप्रपूजक, आत्मप्रपूजक के परमेष्ठी, परमेष्ठी के हैरण्यवर्द्धन, और हैरण्यवर्द्धन के धातृयाजी हुए, जिन्होंने अपने पिता के राजकाल से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया है, एवं शेष राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक धातृयाजी के विधातृप्रपूजक, विधातृप्रपूजक के वैद्रुहिण, वैद्रुहिण के वैरोच्य, वैरोच्य के कमलासन, कमलासन के समवर्ती, समवर्ती के श्राद्धदेव, श्राद्धदेव के पितृवर्द्धन, पितृवर्द्धन के सोमदत्त, सोमदत्त के सौमदत्ति, सौमदत्ति के सोमवर्द्धन, सोमवर्द्धन के अवतंस, अवतंस के प्रतंस, प्रतंस के परातंस, परातंस के अयतंस, अयतंस के समातंस, समातंस के अनुतंस, अनुतंस के अधितंस, अधितंस के अभितंस, अभितंस के समुत्तंस, समुत्तंस के तंस, तंस के दुष्यंत, दुष्यंत के शकुंतला के गर्भ से भरत उत्पन्न हुए, पश्चात् स्वर्गारोहण हो गया। इन सभी राजाओं का राजकाल उत्तरोत्तर उनके पिता के समान ही बताया गया है, केवल राजा कमलासन को छोड़कर क्योंकि कमलासन ने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था। राजा भरत देवी जी के परम उपासक थे।१७-३४। महामाया के प्रभाव से छत्तीस वर्ष का जीवन छत्तीस सहस्रवर्ष का हो गया। उन्हीं के नाम से इस प्रदेश का भारतखण्ड (भारतवर्ष) नाम पड़ा। इन्होंने इस पृथिवी मंडल का विभाग करके अपना

दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माज्जातो महाबलः । दिव्यं वर्षशतं राज्यं भरद्वाजस्ततोऽभवत् ।।३७
दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माद्भवनमन्युमान् । अष्टादशसहस्राणि समा राज्यं प्रकीर्तितम् ।।३८
बृहत्क्षेत्रस्ततो ह्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुहोत्रस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३९
वीतिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् । यज्ञहोत्रस्ततोऽप्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।४०
शक्रहोत्रस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । प्रसन्नो भगवानिन्द्रस्तं नृपं स्वर्गमाप्तवान् ।।४१
तद्वायोध्यापतिः श्रीमान्प्रतापेन्द्रो महाबलः । भारतं वर्षमदधद्वर्षं दशसहस्रकम् ।।४२
मण्डलीकस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विजयेन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।४३
धनुर्दीप्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । इन्द्राज्ञया शक्रहोत्रो घृताच्या सह भूतले ।।४४
प्राप्तवान्सधनुर्दीप्तं जित्वा राज्यमचीकरत् । हस्तीनाम सुतो जात ऐरावतसुतं गजम् ।।४५
आरुह्य पश्चिमे देशे हस्तिनानगरी कृता । दशयोजनविस्तीर्णा स्वर्गंगायास्तटे शुभा ।।४६
राज्यं दशसहस्रं च तत्र वासं चकार सः । तत्पुत्रस्त्वजमीढाख्यः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।४७
तस्माज्जातो रक्षपालः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुशम्यर्णस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृत पदम् ।।४८
तस्य पुत्रः कुरुर्नाम पितुरर्द्धं कृतं पदम् । इन्द्रस्य वरदानेन सदेहः स्वर्गमागतः ।।४९
तदा सात्त्वतवंशेऽस्मिन्वृष्णिर्नाम महाबलः । मथुरायां स्थितो राज्यं सर्वं स्ववशमाप्तवान् ।।५०
भगवतो वरदानेन हरेरद्भुतकर्मणः । पञ्चवर्षसहस्रं च सर्वं राज्यं वशीकृतम् ।।५१

राज्य पृथक् स्थापित कर उसका उपभोग किया था । इनका राजकाल दिव्य वर्ष से सौ वर्ष का बताया जाता है । पुनः इनके भरद्वाज और भरद्वाज के भवन मन्युमान् हुए, इन सभी का राजकाल भरत के समान ही कहा गया है । अठारह सहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत इनके बृहत्क्षेत्र नामक पुत्र हुआ तथा बृहत्क्षेत्र के सुहोत्र, सुहोत्र के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के यज्ञहोत्र और यज्ञहोत्र के शक्रहोत्र हुए जिन्हें प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र ने स्वर्ग निवास प्रदान किया था । इनमें केवल वीतिहोत्र ने दशसहस्र वर्ष राज्य किया था । और शेष राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक । वे महाबली श्रीमान् राजा प्रतापेन्द्र अयोध्या अधीश्वर थे । उन्होंने दश सहस्र वर्ष तक इस भारत वर्ष का राज्यभार वहन किया था । पश्चात् उनके मण्डलीक, मण्डलीक के विजयेन्द्र और विजयेन्द्र के धनुर्दीप्त, हुए । इन राजाओं ने अपने पिता के समान काल राज्य किया है । (कुछ काल के अनन्तर) इन्द्र की आज्ञा से शक्रहोत्र घृताची अप्सरा के समेत इस भूमण्डल पर आकर राजा धनुर्दीप्त पर विजय प्राप्त कर वहाँ का राज्य करने लगे । उनके हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने ऐरावत-पुत्र गजेन्द्र पर आरूढ़ होकर पश्चिम के प्रदेश में हस्तिनापुर नामक नगर बसाया था जो स्वर्गंगा के तटपर दश योजन के विस्तार में सुशोभित हो रही थी । उस नगर में उन्होंने दशसहस्र वर्ष तक राज्य का भार निभाया था । पुनः उनके अजमीढ, अजमीढ़ के रक्षपाल, रक्षपाल के सुशम्यर्ण तथा सुशम्यर्ण के कुरु हुए, जिन्होंने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया था और शेष भूपगण अपने पिता के समान काल तक । इन्द्र से वरदान प्राप्त कर राजा कुरु ने इसी शरीर समेत स्वर्ग यात्रा की । उस समय सात्वत वंश के महाबली राजा वृष्णि ने मथुरा में रहकर समस्त राज्य को अपने अधीन कर लिया था । आश्चर्य जनक भगवान् विष्णु के वरदान द्वारा उन्होंने पाँच सहस्र

निरावृत्तिस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । दशारी तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५२
वियामुनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । जीमूतस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५३
विकृतिस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातो भीमरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५४
तस्माज्जातो नवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातो दशरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५५
तस्माज्जातश्च शकुनिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातः कुशुम्भश्च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५६
तस्माज्जातो देवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । देवक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५७
तस्य पुत्रो मधुर्नाम पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । ततो नवरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५८
कुरुवत्सस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्मादनुरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५९
पुरुहोत्रः सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विचित्राङ्गस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६०
तस्मात्सात्वतवान्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भजमानस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६१
विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुरभक्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६२
तस्माच्च सुमनाः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । ततिक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६३
स्वायम्भुवस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । हरिदीपक एवासौ तस्य राज्यं पितुस्समम् ।।६४
देवमेधास्सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुरपालस्तदा जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६५
शक्राज्ञया कुरुश्चैव द्वापरत्रितये पदे । व्यतीते च सुकेश्यास्स स्वर्वेश्यायाः पतिः प्रभुः ।।६६
आगतो भारते खण्डे कुरुक्षेत्रं तदा कृतम् । विंशद्योजनविस्तीर्णं पुण्यक्षेत्रं स्मृतं बुधैः ।।६७
द्वादशाब्दसहस्रं च कुरुणा राज्यसात्कृतम् । तस्माज्जह्नुस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६८
तस्माच्च सुरथो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६९
सार्वभौमस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । जयसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७०

वर्ष तक समस्त राज्य का उपभोग किया था ।३५-५१। अनन्तर उनके निरावृत्ति, निरावृत्ति के दशारी, दशारी के वियामुन, वियामुन के जीमूत, जीमूत के विकृति, विकृति के भीमरथ, भीमरथ के नवरथ, नवरथ के दशरथ, दशरथ के शकुनि, शकुनि के कुशुम्भ, कुशुम्भ के देवरथ, देवरथ के देवक्षेत्र, देवक्षेत्र के मधु, मधु के नवस्थ, नवस्थ के कुरुवत्स, कुरूवत्स के अनुरथ, अनुरथ के पुरुहोत्र, पुरुहोत्र के विचित्राङ्ग, विचित्राङ्ग के सात्वतवान्, सात्वत्वान के भजमान्, भजमान के विदूरथ, विदूरथ के सुरभक्त, सुरभक्त के सुमना, सुमना के ततिक्षेत्र, ततिक्षेत्र के स्वायंभुव, स्वायंभुव के हरिदीपक, हरिदीपक के देवमेधा और देवमेधा के सुरपाल नामक पुत्र हुए । इन सभी राजाओं का राजकाल उत्तरोत्तर उनके पिता के समान ही है । द्वापर युग के तीसरे चरण की समाप्ति समय में स्वर्गाधिनायक इन्द्र की आज्ञा से राजा कुरु ने अपनी पत्नी सुकेशी अप्सरा के साथ इस भारत वर्ष में आकर कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था, जिस पुण्यक्षेत्र का विस्तार विद्वानों ने बीसयोजन का बताया है । उस क्षेत्र में अधिनायक के पद पर रहकर उन्होंने उसे बारह सहस्र वर्ष तक सुशोभित किया था । पश्चात् उनके जह्नु, जह्नु के सुरथ, सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जपसेन जपसेन के अर्णव हुए, जो चारों समुद्रों को भी अपना कर अपने पिता के

तस्मादर्णद एवासौ पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । चतुस्सागरगामी च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७१
अयुतायुस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् । अक्रोधनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७२
तस्माद्दृक्षस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भीमसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७३
दिलीपस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । प्रतीपस्तस्य तनयो राज्यं पञ्चसहस्रकम् ।।७४
शन्तनुस्तस्य पुत्रश्च राज्यमेकसहस्रकम् । विचित्रवीर्यस्तत्पुत्रो राज्यं वै द्विशतं समाः ।।७५
पाण्डुश्च तनयो यस्मिन्राज्यं पञ्चशतं कृतम् । युधिष्ठिरस्तस्य सुतो राज्यं पञ्चाशदब्दकम् ।।७६
सुयोधनेन षष्टचब्दं कृतं राज्यं ततः परम् । युधिष्ठिरेण निधनं तस्य प्राप्तं कुरुस्थले ।।७७
पूर्वं देवासुरे युद्धे ये दैत्याश्च सुरैर्हताः । ते सर्वे शन्तनो राज्ये जन्मवन्तः प्रतस्थिरे ।।७८
लक्षमक्षौहिणी तेषां तद्भारेण वसुन्धरा । शक्रस्य शरणं प्राप्तावतारं च ततो हरेः ।।७९
स सौरेर्वसुदेवस्य देवक्यां जन्मनाविशत् । एवं कृष्णो महावीर्यो रोहिणीनिलयं गतः ।।८०
पञ्चत्रिंशदुत्तरं च शतं वर्षं च भूतले । उषित्वा कृष्णचन्द्रश्च ततो गोलोकमागतः ।।८१
चतुर्थचरणान्ते च हरेर्जन्म स्मृतं बुधैः । हस्तिनापुरमध्यस्थाभिमन्योस्तनयस्ततः ।।८२
राज्यमेकसहस्रं च ततोऽभूज्जनमेजयः । त्रिसहस्रं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् ।।८३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं यज्ञदत्तस्ततः सुतः । राज्यं पञ्चसहस्रं च निश्चक्रस्तनयोऽभवत् ।।८४

समान काल तक राज्य पर प्रतिष्ठित रहे । तथा अर्णव के अयुतायु पुत्र हुए, जिन्होंने दशसहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था । पुनः अयुतायु के अक्रोधन, अक्रोधन के ऋक्ष, ऋक्ष के भीमसेन, भीमसेन के दिलीप, और दिलीप के प्रतीप उत्पन्न हुए जिन्होंने पाँच सहस्र वर्ष तक राज्य किया था, तथा शेष राजा लोग उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक । प्रतीप के शंतनु हुए, जिन्होंने एक सहस्र वर्षतक राज्य किया, पश्चात् उनके पुत्र विचित्रवीर्य हुए उन्होंने दो सौ वर्ष तक राज्य किया था ।५२-७५। विचित्रवीर्य के पांडु हुए, जिन्होंने पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया । पांडु के युधिष्ठिर हुए, जिनका राजकाल पचास वर्ष का बताया जाता है । सुयोधन के साठ वर्ष राज्य करने के उपरांत कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर द्वारा उसका निधन हुआ था । पहले समय में देवासुर संग्राम में असुरों द्वारा जिन दैत्यों की मृत्यु हुई थी, वे दैत्यगण राजा शांतनु के राज्य में जन्म लिए । इस प्रकार उन लोगों की एक लक्ष अक्षौहिणी सेना के भार से पीड़ित होकर पृथिवी इन्द्र की शरण में गई थी । पश्चात् विष्णु भगवान् का अवतार सूरवंशी राजा वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी में जन्म ग्रहण के द्वारा हुआ था । अनन्तर महापराक्रमी भगवान् कृष्ण के अवतरित होने पर कालान्तर में रोहिणी का निधन हुआ था । इस भूतल पर भगवान् कृष्णचन्द्र ने एक सौ पैंतीस वर्ष तक प्राणियों को सुखी बनाकर पश्चात् गोलोक को प्रस्थान किया था। विद्वानों ने भगवान् का अवतार जन्म (द्वापर के) चौथे चरण के अन्त समय में बताया है। हस्तिनापुर में (युधिष्ठिर के) अभिमन्यु और अभिमन्यु के परीक्षित हुए, जिन्होने एक सहस्र वर्ष तक राज्य किया । पुनः परीक्षित के जनमेजय, जनमेजय के शतानीक, और शतानीक के यज्ञदत्त हुए। इन राजाओं ने तीन सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। पश्चात् यज्ञदत्त के निश्चक्र हुए जिन्होंने पाँच सहस्र वर्ष तक राज्य किया है निश्चक्र के

सहस्रमेकं राज्यं तदुष्ट्रपालस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माच्चित्ररथस्सुतः ॥८५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिमांस्तनयस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुषेणस्तनयोऽभवत् ॥८६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनीथस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मखपालः सुतोऽभवत् ॥८७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं न चक्षुस्तनयस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखवन्तस्ततोऽभवत् ॥८८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मात्पारिप्लवस्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनयस्तत्सुतोऽभवत् ॥८९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मेधावी तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो नृपञ्जयः ॥९०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मृदुस्तत्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तिग्मज्योतिस्तु तत्सुतः ॥९१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो बृहद्रथः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसुदानस्ततोऽभवत् ॥९२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुद्यान उच्यते ॥९३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनरः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं निर्मित्रस्तनयोऽभवत् ॥९४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमकस्तत्सुतोऽभवत् । राज्यं त्यक्त्वा स मेधावी कलापग्राममाश्रितः ॥९५
म्लेच्छैश्च मरणं प्राप्तो यमलोकमतो गतः । नारदस्योपदेशेन प्रद्योतस्तनयस्ततः ॥९६
म्लेच्छयज्ञः कृतस्तेन म्लेच्छा हननमागताः ॥९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये द्वापरनृपोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

उष्ट्रपाल हुए जिसने एक सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया है । उष्ट्रपाल के चित्ररथ, चित्ररथ के धृतिमान्, धृतिमान् के सुषेण, सुषेण के सुनीथ, सुनीथ के मखपाल, मखपाल के नचक्षु, नचक्षु के सुखवन्त, सुखवन्त के पारिप्लव, पारिप्लव के सुनय, सुनय के मेधावी, मेधावी के नृपञ्जय, नृपंजय के मृदु, मृदु के तिग्मज्योति, तिग्मज्योति के बृहद्रथ, बृहद्रथ के वसुदान, वसुदान के शतानीक, शतानीक के उद्यान, उद्यान के अहीनर, अहीनर के निर्मित्र और निर्मित्र के क्षेत्रक हुए, जिन्होंने उस राज्य का परित्याग कर कलाप गाँव में निवास स्थान बनाया था, पश्चात् वहाँ म्लेच्छों द्वारा उनका निधन हुआ जिससे उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा । अनन्तर नारद के उपदेश देने पर उनके पुत्र प्रद्योत ने म्लेच्छ यज्ञ आरम्भ किया जिससे उन्होंने म्लेच्छों का समूल नाश किया था ।७६-९७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में द्वापर के राजाओं का वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

चतुर्थोऽध्यायः

द्वापरयुगभूपाख्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

कथं यज्ञः कृतस्तेन प्रद्योतेन विचक्षण ! सर्वं कथय मे तात त्रिकालज्ञ महामुने ॥१

सूत उवाच

एकदा हस्तिनगरे प्रद्योतः क्षेमकात्मजः । आस्थितः स कथामध्ये नारदोऽभ्यागमत्तदा ॥२
तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा पूजयामास धर्मवित् । सुखोपविष्टः स मुनिः प्रद्योतं नृपमब्रवीत् ॥३
म्लेच्छैर्हतस्तव पिता यमलोकमतो गतः । म्लेच्छयज्ञप्रभावेण स्वर्गतिर्भविता हि सः ॥४
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षो ब्राह्मणान्वेदवित्तमान् । आहूय स कुरुक्षेत्रे म्लेच्छयज्ञं समारभत् ॥५
यज्ञकुण्डं चतुष्कोणं योजनान्येव षोडश । रचित्वा देवतां ध्यात्वा म्लेच्छांश्च जुहुयान्नृपः ॥६
हारहूणान्बर्बरांश्च गुरुण्डांश्च शकान्खसान् । यवनान्पल्लवांश्चैव रोमजान्खरसम्भवान् ॥७
द्वीपस्थितान्कामरूश्च चीनान्सागरमध्यगान् । प्राहूय भस्मसात्कुर्वन्वेदमन्त्रप्रभावतः ॥८
ब्राह्मणान्दक्षिणां दत्त्वा अभिषेकमकारयत् । क्षेमको नाम नृपतिः स्वर्गलोकं ततो गतः ॥९

अध्याय ४

द्वापर के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—हे विचक्षण ! तात ! त्रिकालज्ञ ! एवं महामुने ! राजा प्रद्योत ने उस (म्लेच्छ) यज्ञ को किस भाँति किया था मुझे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें ।

सूत जी बोले—एक समय क्षेमक के पुत्र प्रद्योत अपने हस्तिनगर की राजधानी में सिंहासनारूढ़ हो कुछ कथाओं की चर्चा कर रहे थे कि उसी समय वहाँ महर्षि नारद का आगमन हुआ । उन्हें देखकर परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस धार्मिक राजा ने उनका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया । सुखासीन होकर नारद मुनि ने राजा प्रद्योत से कहा—'म्लेच्छों द्वारा तुम्हारे पिता का निधन हुआ है, इसीलिए उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा, अब वे म्लेच्छ यज्ञ के प्रभाव से ही स्वर्ग निवासी हो सकते हैं, सुनते ही क्रुद्ध होने के कारण उसकी आँखे ताँबे की भाँति रक्त वर्ण की हो गईं । उसने शीघ्र वैदिक विद्वान् ब्राह्मणों को निमंत्रित करके कुरुक्षेत्र में म्लेच्छयज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया । उस अनुष्ठान में चौकोर एवं सोलह योजन के विस्तृत यज्ञ-कुण्ड की रचना करके देवता के ध्यान पूर्वक उस राजा ने उसमें म्लेच्छों की आहुति प्रदान करना आरम्भ किया । वेदमंत्र के प्रभाव से उसने हार, हूण, बर्बर, गुरुण्ड (अंग्रेज), शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव, द्वीपनिवासी कामरू, चीनी, एवं सागर के मध्यवर्ती प्रदेशों के म्लेच्छों को मंत्र द्वारा बुलाकर आहुति करके भस्म कर दिया । पुनः ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत अभिषेक भी सविधान समाप्त किया । तत्पश्चात् राजा क्षेमक को स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई । उसी

म्लेच्छहन्ता नाम तस्य विख्यातं भुवि सर्वतः । राज्यं दशसहस्राब्दं कृतं तेन महात्मना ।।१०
स्वर्गलोकं गतो राजा तत्पुत्रो वेदवान्स्मृतः । द्विसहस्रं कृतं राज्यं तदा म्लेच्छः कलिः स्वयम् ।।
नारायणं पूजयित्वा दिव्यस्तुतिमथाकरोत् ।।११

कलिरुवाच

नमोऽनन्ताय महते सर्वकालप्रवर्तिने ।।१२
चतुर्युगकृते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे । दशावताराय हरे नमस्तुभ्यं नमोनमः ।।१३
नमः शक्त्यावताराय रामकृष्णाय ते नमः । नमो मत्स्यावताराय महते गौरवासिने ।।१४
नमो भक्तावताराय कल्पक्षेत्रनिवासिने । राज्ञा वेदवता नाथ मम स्थानं विनाशितम् ।।
मम प्रियस्य म्लेच्छस्य तत्पित्रा वंशनाशनम् ।।१५

सूत उवाच

इति स्तुतस्तु कलिना म्लेच्छस्य सह भार्यया ।।१६
प्राप्तवान्स हरिः साक्षाद्भगवान्भक्तवत्सलः । कलिं प्रोवाच स हरिर्युष्मदर्थे युगोत्तमम् ।।१७
बहुरूपमहं कृत्वा तवेच्छां पूरयाम्यहम् । आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा ।।१८
विष्णुकर्दमतो जातौ म्लेच्छवंशप्रवर्धनौ । हरिस्त्वन्तर्दधे तत्र कलिरानन्दसङ्कुलः ।।१९
गिरिं नीलाचलं प्राप्य किञ्चित्कालमवासयत् । पुत्रो वेदवतो जातः सुनन्दो नाम भूपतिः ।।२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनपत्यो मृतिं गतः । आर्यदेशाः क्षीणवन्तो म्लेच्छवंशं बलान्विताः ।।२१

दिन से राजा प्रद्योत का नाम इस भूमण्डल में चारो ओर 'म्लेच्छहंता' विख्यात हुआ । दशसहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत उस महात्मा राजा ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया । तदनन्तर उनके पुत्र वेदवान् ने दो सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस समय म्लेच्छ कलियुग स्वयं नारायण की पूजा करके दिव्य स्तुति से उनकी प्रार्थना कर रहा था ।

कलि ने कहा—अनंत, महान्, सम्पूर्ण काल के प्रवर्तक, चारों युग के रचयिता, एवं साक्षी, तुम्हें वासुदेव को नमस्कार है । हे हरे ! तुम्हारे दश, अवतार को नमस्कार है, शक्त्या अवतार लेने वाले तुम्हें रामकृष्ण को नमस्कार है । मत्स्यावतार लेने वाले, महान्, एवं गौरवासी को नमस्कार है । भक्तों के लिए अवतार लेने वाले, तथा कल्पक्षेत्र के निवासी आपको नमस्कार है । नाथ ! राजा वेदवान् ने मेरे स्थानों को नष्ट कर दिया है और उसके पिता ने मेरे प्रिय म्लेच्छवंशों का समूल नाश कर दिया है । १-१५

सूत जी बोले—स्त्री समेत म्लेच्छ कलि के इस प्रकार स्तुति करने पर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु ने साक्षात् उसे दर्शन दिया । भगवान् ने कलि से कहा कि 'तुम लोगों के लिए यह युग अत्युत्तम है । इसमें मैं स्वयं अनेक रूप धारण कर तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए तैयार हूँ । आदम नाम का पुरुष और हव्यवती नाम की उसकी पत्नी म्लेच्छों के वंश के प्रवर्द्धक ये दोनों विष्णु कर्दम से उत्पन्न होंगे ।' यह कहकर विष्णु उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और कलि आनन्दातिरेक में निमग्न हुआ । पश्चात् उसने नीलगिरि पर पहुँच कर कुछ दिन के लिए अपना निवास स्थान बनाया उधर वेदवान् के सुनंद नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया, किन्तु सन्तानहीन होकर इस लोक से प्रस्थित

भविष्यन्ति भृगुश्रेष्ठ तस्माच्च तुहिनाचलम् । गत्वा विष्णुं समाराध्य गमिष्यामो हरेः पदम् ॥२२
इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । अष्टाशीतिसहस्राणि गतास्ते तुहिनाचलम् ॥२३
विशालायां समासाद्य विष्णुगाथां प्रचक्षिरे । इति व्यासेन कथितं वाक्यं कलिविशारदम् ॥
श्रोतारं स मनः कृत्वा भविष्यं समुदीरयत् ॥२४

व्यास उवाच

मनः शृणु ततो गाथां भावीं सूतेन वर्णिताम् । कलेर्युगस्य पूर्णां तां तच्छ्रुत्वा तृप्तिमाह्व ॥२५

सूत उवाच

षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तद्द्वापरे युगे । बहुकीर्तिमती भूमिरार्यदेशस्य कीर्तिता ॥२६
क्वचिद्विप्राः स्मृता भूपाः क्वचिद्राजन्यवंशजाः । क्वचिच्छूद्राः क्वचिद्विप्राः कुत्रचिद्वर्णसङ्कराः ॥२७
द्विशताष्टसहस्रे द्वे शेषे तु द्वापरे युगे । म्लेच्छदेशस्य या भूमिर्भविता कीर्तिमालिनी ॥२८
इन्द्रियाणि दमित्वा यो ह्यात्मध्यानपरायणः । तस्मादादमनामासौ पत्नी हव्यवती स्मृता ॥२९
प्रदाननगरस्यैव पूर्वभागे महावनम् । ईश्वरेण कृतं रम्यं चतुःक्रोशायतं स्मृतम् ॥३०
पापवृक्षतले गत्वा पत्नीदर्शनतत्परः । कलिस्तत्रागतस्तूर्णं सर्परूपं हि तत्कृतम् ॥३१
वञ्चिता तेन धूर्तेन विष्ण्वाज्ञा भङ्गतां गता । खादित्वा तत्फलं रम्यं लोकमार्गप्रदं पतिः ॥३२

हुआ। तत्पश्चात् नैमिषारण्य निवासी समस्त द्विज वृन्द 'भृगुश्रेष्ठ ! यह आर्य देश क्रमशः क्षीण होगा और म्लेच्छवंश के लोग सबल होंगे इसलिए हमलोग हिमालय पर्वत पर चलकर भगवान् विष्णु की आराधना करके उनके लोक की प्राप्ति करेंगे, इस प्रकार की बातें सुनकर अठ्ठासी सहस्र की संख्या में वे लोग हिमालय की यात्रा के लिए अग्रसर हुए। विशाला में पहुँच कर उन लोगों ने विष्णु-गाथा का प्रचार किया। इस प्रकार व्यास ने अपने मन को श्रोता बनाकर उसे सम्बोधित करते हुए कलि विषयक समस्त भविष्य की बातों की चर्चा की—

व्यास जी बोले—हे मन ! सूत द्वारा व्याख्या की गई उस पूरी गाथा को जो कलियुग में होने वाली है, सुनो, और उसे सुनकर शान्त हो जाओ।

सूत जी बोले—द्वापर युग के सोलह सहस्र वर्ष शेष रहते समय आर्यदेश की भूमि अनके भाँति की कीर्ति से व्याप्त होगी—कहीं ब्राह्मण लोग राजा होंगे, कहीं क्षत्रिय वंश के लोग, कहीं वैश्य वर्ग, कहीं शूद्र और कहीं वर्णसंकर वृन्द। आठ सहस्र दो सौ वर्ष द्वापर युग के शेष रहने पर म्लेच्छदेश की जो भूमि अनेक कीर्ति लताओं से गुम्फित बतायी गई है उसमें इन्द्रियों का दमन करते हुए जो आत्मध्यान परायण रहा उसी से उसका नाम आदम और उसकी पत्नी का नाम हव्यवती बताया गया है। प्रदान नगर के पूर्व भाग में ईश्वरकृत चार कोश में विस्तृत एवं सुरम्य एक विशाल जंगल है, उसमें पाप-वृक्ष के नीचे जाकर उसने अपनी पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट की। उस समय कलि साँप का रूप धारण कर वहाँ शीघ्रता से पहुँच गया तथा उस धूर्त ने उन्हें उससे वंचित कर विष्णु की आज्ञा भंगकर दी। पुनः लोक मार्ग के प्रदर्शक उस दम्पति ने उस मनोहर फल का भक्षण कर गूलर के पत्ते द्वारा वायुपान भी किया। तदुपरांत जितनी

उदुम्बरस्य पत्रैश्च ताभ्यां वाय्वशनं कृतम् । सुताः पुत्रास्ततो जाताः सर्वे म्लेच्छा बभूविरे ॥३३
त्रिंशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम् । फलानां हवनं कुर्वन्पत्न्या सहदिवं गतः ॥३४
तस्माज्जातः सुतः श्रेष्ठः श्वेतनामेति विश्रुतः । द्वादशोत्तरवर्षं च तस्यायुः परिकीर्तितम् ॥३५
अनुहस्तस्य तनयः शत हीनं कृतं पदम् । कीनाशस्तस्य तनयः पितामहसमं पदम् ॥३६
महल्ललस्तस्य सुतः पञ्चहीनं शतं नव । तेन राज्यं कृतं तत्र तस्मान्मानगरं स्मृतम् ॥३७
तस्माच्च विरदो जातो राज्यं षष्ट्युत्तरं समाः । ज्ञेयं नवशतं तस्य स्वनाम्ना नगरं कृतम् ॥३८
हनूकस्तस्य तनयो विष्णुभक्तिपरायणः । फलानां हवनं कुर्वन्तस्त्वं ह्यसि जयन्सदा ॥३९
त्रिशतं पञ्चषष्टिश्च राज्यं वर्षाणि तत्स्मृतम् । सन्देहः स्वर्गमायातो म्लेच्छधर्मपरायणः ॥४०
आचारश्च विवेकश्च द्विजता देवपूजनम् । कृतान्येतानि तेनैव तस्मान्म्लेच्छः स्मृतो बुधैः ॥४१
विष्णुभक्त्याग्निपूजा च ह्यहिंसा च तपो दमः । धर्माण्येतानि मुनिभिर्म्लेच्छानां हि स्मृतानि वै ॥४२
मतोच्छिलस्तस्य सुतो हनुकस्यैव भार्गव । राज्यं नवशतं तस्य सप्ततिश्च स्मृताः समाः ॥४३
लोमकस्तस्य तनयो राज्यं सप्तशतं समाः । सप्तसप्ततिरेवास्य तत्पश्चात्स्वर्गतिं गतः ॥४४
तस्माज्जातः सुतो न्यूहो निर्गतस्न्यूह एव सः । तस्मान्न्यूहः स्मृतः प्राज्ञै राज्यं पञ्चशतं कृतम् ॥४५
सीमः शमश्च भावश्च त्रयः पुत्राः बभूविरे । न्यूहः स्मृतो विष्णुभक्तस्सोऽहं ध्यानपरायणः ॥४६
एकदा भगवान्विष्णुस्तत्स्वप्ने तु समागतः ॥४७
वत्स न्यूह शृणुष्वेदं प्रलयः सप्तमेऽहनि । भविता त्वं जनैस्सार्धं नावमारुह्य सत्वरम् ॥४८

संतान उत्पन्न हुई सभी म्लेच्छ हुए । नव सौ तीस वर्ष उनकी आयु बतायी गयी है । फलों के हवन करते हुए पत्नी समेत उनके स्वर्गीय होने पर उनके श्वेत नामक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । जिसकी एक सौ बारह वर्ष की आयु कही गयी है । उनके अनुह नामक पुत्र हुआ जिसने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया ।१६-३६। पुनः अनुह के कीनाश हुआ, जिसने अपने पितामह (बाबा) के समान काल तक राज्य किया । उनका पुत्र महल्लल हुआ, जिसका राजकाल नव सौ पंचानबे वर्ष का बताया जाता है । महल्लल के मानगर और मानगर के विरद हुए, जिन्होंने नव सौ साठ वर्ष राज्य किया तथा अपने नाम से एक नगर का भी निर्माण किया । उनके हनूक हुए, जो विष्णु, भक्ति का पारायण और फलों के हवन सदैव करते हुए परमार्थतत्त्व के ज्ञाता हुए । तीन सौ पैंसठ वर्ष राज्य करके उस म्लेच्छ धर्मानुयायी ने सदेह स्वर्गकी प्राप्ति की । आचार, विवेक रखते हुए ब्राह्मण बनकर देव-पूजन करना विद्वानों ने यही म्लेच्छ होना बताया है, और यही वे भी करते थे । 'विष्णु-भक्ति, अग्नि-पूजा, अहिंसा, तप और दम' मुनियों ने म्लेच्छों का यही धर्म बताया है । भार्गव ! पुनः हनुक के मतोच्छिल हुए, जिन्होंने नव सौ सत्तर वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । मतोच्छिल के लोमक हुए जिसने सात सौ वर्ष राज्य किया, पश्चात् वे स्वर्गीय हो गये । लोमक के न्यूह हुए, जिन्होंने पाँच सौ वर्ष राज्य किया । उनके सीम, शम और भाव नामक तीन पुत्र हुए । न्यूह विष्णु भक्त थे, वे 'सोऽहं' (मैं वही हूँ) का सदैव ध्यान करते थे ।३७-४६। एक बार भगवान् विष्णु ने स्वप्न में उनसे कहा कि—वत्स ! न्यूह आज के सातवें दिन प्रलय होगा अतः अपने आत्मीय जनों

जीवनं कुरु भक्तेन्द्र सर्वश्रेष्ठो भविष्यसि । तथेति मत्वा स मुनिर्नावं कृत्वा सुपुष्टिताम् ।।४९
हस्तत्रिशतलम्बां च पञ्चाशद्धस्तविस्तृताम् । त्रिंशद्धस्तोच्छ्रितां रम्यां सर्वजीवसमन्विताम् ।।५०
आरुह्य स्वकुलैस्सार्द्धं विष्णुध्यानपरोऽभवत् । सांवर्तको मेघगणो महेन्द्रेण समन्वितः ।।५१
चत्वारिंशद्दिनान्येव महावृष्टिमकारयत् । सर्वं तु भारतं वर्षं जलैः प्लाव्य तु सिन्धवः ।।५२
चत्वारो मिलिताः सर्वे विशालायां न चागताः । अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ब्रह्मवादिनः ।।५३
न्यूहश्च स्वकुलैस्सार्धं शेषास्सर्वे विनाशिताः । तदा च मुनयस्सर्वे विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ।।५४

मुनय ऊचुः

नमो देव्यै महाकाल्यै देवक्यै च नमो नमः । महालक्ष्म्यै विष्णुमात्रे राधा देव्यै नमो नमः ।।५५
रेवत्यै पुष्पवत्यै च स्वर्णवत्यै नमो नमः । कामाक्षायै च मायायै नमो मात्रे नमो नमः ।।५६
महावातप्रभावेन महामेघरवेण च । जलधाराभिरुग्राभिर्भयं जातं हि दारुणम् ।।५७
तस्माद्भयाद्भैरवि त्वमस्मान्संरक्ष किङ्करान् । तदा प्रसन्ना सा देवी जलं शान्तं तया कृतम् ।।५८
अब्दान्तरे मही सर्वा स्थली भूत्वा प्रदृश्यते । आराच्च शिषिणा नाम हिमाद्रेस्तटभूमयः ।।५९
न्यूहस्तत्र स्थितो नावमारुह्य स्वकुलैस्सह । जलान्ते भूमिमागत्य तत्र वासं करोति सः ।।६०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चर्तुयुगखण्डापरपर्याये द्वापरनृपोपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

समेत शीघ्र नाव पर बैठकर अपने जीवन की रक्षा करना' भक्तेन्द्र ! इससे तुम सभी भक्तों में श्रेष्ठ कहलाओगे । भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर एक सुदृढ़ नाव पर जो तीन सौ हाथ की लम्बी, पचास हाथ की चौड़ी, और तीस हाथ की ऊँची थी, अपने कुल समेत समस्त जीवों को उस पर बैठाकर स्वयं विष्णु का ध्यान करने लगे । सांवर्तक नामक मेघ गण ने महेन्द्र के साथ चालीस दिन तक अत्यन्त घोर वृष्टि की जिससे चारों समुद्र का जल आपस में सम्मिलित होने के कारण विशाला के अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष जलमग्न हो गया । अट्ठासी सहस्र ब्रह्मवादी महर्षियों एवं अपने कुल के लोगों के साथ न्यूह के अतिरिक्त सभी कुछ नष्ट हो गया । पश्चात् मुनिगण विष्णु-माया की स्तुति करने लगे—

मुनियों ने कहा—देवी महाकाली तथा देवकी को नमस्कार है, महालक्ष्मी, विष्णु की माता, एवं राधा देवी को नमस्कार है । रेवती, पुष्पवती, स्वर्णवती, कामाक्षा, माया एवं उस माँ को नमस्कार है । महावायु के प्रभाव एवं महान् मेघों के गर्जन समेत इस भयानक जलधारा से हम लोगों के लिए अत्यन्त कठिन भय उपस्थित हुआ है, अतः हे भैरवि ! हम सेवकों की रक्षा तुम्हारे हाथ है । पश्चात् देवी ने प्रसन्न होकर उस जल को शान्त किया । एक वर्ष के अनन्तर (पृथिवी केवल स्थल के रूप में दिखायी देने लगी । हिमालय के समीप उसके तट की भूमि, जिसे शिषिणा कहा गया है, राजा न्यूह अपने परिवारों समेत नाव लेकर उसी स्थान पर ठहरे थे । पश्चात् भूमि में आकर वहाँ उन्होंने निवास किया ।४७-६०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में द्वापर के राजाओं का वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगभूपाख्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

साम्प्रतं वर्तते यो वै प्रलयान्ते मुनीश्वर । दिव्यदृष्टिप्रभावेन ज्ञातं ब्रूहि ततःपरम् ॥१

सूत उवाच

न्यूहो नाम स्मृतो म्लेच्छो विष्णुमोहं तदाकरोत् । तदा प्रसन्नो भगवांस्तस्य वंशः प्रवर्द्धितः ॥२
म्लेच्छभाषा कृता तेन वेदवाक्यपराङ्मुखा । कलेश्च वृद्धये ब्राह्मीं भाषां कृत्वाऽपशब्दगाम् ॥३
न्यूहाय दत्तवान्देवो बुद्धीशो बुद्धिगः स्वयम् । विलोमं च कृतं नाम न्यूहेन त्रिसुतस्य वै ॥४
सिमश्च हामश्च तथा याकूतो नाम विश्रुतः । याकूतः सप्तपुत्रश्च जुम्रो माजूज एव सः ॥५
मादी तथा च यूनानस्तूवलोमसकस्तथा । तीरासश्च तथा तेषां नामभिर्देश उच्यते ॥६
जुम्रा दश कनाब्जश्च रिफतश्च तजर्रुमः । तन्नाम्ना च स्मृता देशा यूनाद्या ये सुताः स्मृताः ॥७
इलीशस्तरलीशश्च कित्तीहूदानिरुच्यते । चतुर्भिर्नामभिर्देशास्तेषां तेषां प्रचक्रिरे ॥८
द्वितीयतनयाद्धामात्सुताश्चत्वार एव ते । कुशो मिश्रश्च कूजश्च कनआंस्तत्र नामभिः ॥९
देशाः प्रसिद्धा म्लेच्छानां कुशात्षट्तनयाः स्मृताः । स वा चैव हबीलश्च सर्वतोरगमस्तथा ॥१०
तथा सवतिका नाम निमरूहो महाबलः । तेषां पुत्राश्च कलनः सिनारोरक उच्यते ॥११

अध्याय ५

कलियुग के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—मुनीश्वर ! प्रलय के पश्चात् अर्थात् वर्तमान समय में जो राजा विद्यमान है, दिव्य-दृष्टि के प्रभाव से आप उसे जानते हैं, अतः आप उसे बताने की कृपा करें ।

सूत जी बोले—उस म्लेच्छ राजा न्यूह ने अपनी भक्ति से जब विष्णु को मुग्ध कर लिया उस समय प्रसन्न होकर भगवान् ने उसके वंश की वृद्धि की । उन्होंने वेद के विरुद्ध म्लेच्छ भाषा और कलि की वृद्धि के लिए ब्राह्मी भाषा का अपशब्द के रूप में निर्माण किया । १-३। बुद्धि पारगामी बुद्धीश देव ने स्वयं न्यूह के लिए (उपरोक्त रचनात्मक) बुद्धिमत्ता दी । पश्चात् न्यूह ने विलोम रीति से अपने तीनों पुत्रों का 'सिम' हाम और 'याकूत' नामकरण किया । पुनः याकूत के 'जुम्र' माजूज' मादी' 'यूनान' 'तूव' 'लोमसक' एवं 'तीरास' नामक ये सात पुत्र हुए । उन्ही के नामानुसार उनका देश भी बताया गया है— जुम्रा, दशकनाब्ज, रिफत, तजर्रुम आदि उन यूनान आदि पुत्रों के देश हैं । इलीश, तरलीश 'कित्ती' और 'हूदानि' इन्हीं चारों नामों के अनुसार उनका पृथक्-पृथक् देश भी बताया गया है। दूसरे पुत्र के 'कुश' 'मिश्र' 'कूज' और 'कनआन्' नामक चार पुत्र हुए, जिनके नामानुसार म्लेच्छ देशों की ख्याति हुई। कुश के 'सवा' 'वहबील' 'सर्वतोरगम्' सवतिका, और 'निमरूह ' नामक पुत्र हुए तथा इन लोगों के 'अक्दा' वो वुन,

अक्कदो बावुनश्चैव रसनादेशकाश्च ते । श्रावयित्वा मुनीन्सूतो योगनिद्रावशं गतः ॥१२
द्विसहस्रे शताब्दान्ते बुद्धा पुनरथाब्रवीत् । सिमवंशं प्रवक्ष्यामि सिमो ज्येष्ठः स भूपतिः ॥१३
राज्यं पञ्चशतं वर्षं तेन म्लेच्छेन सत्कृतम् । अर्कन्सदस्तस्य सुतश्चतुस्त्रिंशच्च राज्यकम् ॥१४
चतुश्शतं पुनर्ज्ञेयं सिह्लस्तत्तनयोऽभवत् । राज्यं तस्य स्मृत तत्र षष्ट्युत्तरचतुःशतम् ॥१५
इव्रतस्य सुतो ज्ञेयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । फलजस्तस्य तनयश्चत्वारिंशद्द्वयं शतम् ॥१६
राज्यं कृतं तु तस्माच्च रऊ नाम सुतः स्मृतः । सप्तत्रिंशच्च द्विशतं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१७
तस्माच्च जूज उत्पन्नः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । नहूरस्तस्य तनयो वयः षष्ट्युत्तरं शतम् ॥
राज्यं चकार नृपतिर्बहुशत्रून्विहिंसयन् ॥१८
ताहरस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्मात्पुत्रोऽविरामश्च नहूरो हारनस्त्रयः ॥१९
एवं तेषां स्मृता वंशा नाममात्रेण कीर्तिताः । सरस्वत्याश्च शापेन म्लेच्छभाषा महाधमाः ॥२०
तेषां वृद्धिः कलौ चासीत्संक्षेपेण प्रकीर्तिता । संस्कृतस्यैव वाणी तु भारतं वर्षमूह्यताम् ॥२१
अन्यखण्डे गता सैव म्लेच्छा ह्यानन्दिनोऽभवन् । एवं ते विप्र कथितं विष्णुभक्तद्विजैस्सह ॥२२

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा मुनयस्सर्वे विशालायां निवासिनः । नरं नारायणं देवं सम्पूज्य विनयान्विताः ॥२३

रसना देशक आदि पुत्र बताये गये हैं । इतनी बातों को मुनियों को सुनाकर सूत अपनी योगनिद्रा में निमग्न हो गये ।४-१२। दो सहस्र आठ सौ वर्ष के व्यतीत होने पर बुद्ध ने पुनः कहा कि मैं सिमवंश का वर्णन करूंगा, जिस कुल में सिम नामक सर्वप्रथम राजा हुआ था । उस म्लेच्छ राजा ने पाँच सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था, पश्चात् उसके 'अर्कन्सद' नामक पुत्र हुआ, जो चार सौ चौंतीस वर्ष तक राज्य सिंहासन पर सुशोभित था । उसके 'सिलह हुए, जिसका राज्यकाल चार सौ आठ वर्ष का बताया गया है । पुनः उसके 'इव्र' हुए, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया । उसका पुत्र 'फलज' नामक हुआ उसने दो सौ चालीस वर्ष तक राज्य किया । उसके 'रऊ' नामक पुत्र हुआ, जिसका राज-काल दो सौ सैंतीस वर्ष का बताया गया है । पुनः उसके 'जूज' हुए जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । उसके 'नहूर' हुआ, उसने एक सौ साठ वर्ष तक राज्य किया । नहूर के ताहर हुए, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया । पश्चात् उसके अविराम, नहूर और हारन, नामक तीन पुत्र हुए । इस प्रकार इन लोगों के वंश का वर्णन केवल नाममात्र से किया गया है । सरस्वती के शाप के कारण इन म्लेच्छों की महाअधम म्लेच्छ भाषा हुई, जिन म्लेच्छों की वृद्धि कलियुग में संक्षेपतः कही गई है । इस भारत वर्ष नामक प्रदेश का आधारभूत संस्कृत वाणी है, जो बाहर के अन्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के (म्लेच्छ) निवासियों को आनन्द देने वाली कही गई है । विप्र ! इस प्रकार विष्णुभक्त ब्राह्मणों द्वारा यह वृत्तान्त तुम्हें सुनाकर समाप्त किया गया ।१३-२२

व्यास जी बोले—इसे सुनकर विशाला निवासी समस्त मुनिवृन्द अनुनय-विनय समेत नरनारायण देव की पूजा करके दो सौ वर्ष तक उनके ध्यान में प्रसन्नता पूर्ण निमग्न रहे । तत्पश्चात् शौनकादि

ध्यानं चक्रुर्मुदा युक्ता द्विशतं परिवत्सरान् । तत्पश्चाद्बोधितास्सर्वे शौनकाद्या मुनीश्वराः ।।२४
सन्ध्यातर्पणदेवार्चाः कृत्वा ध्यात्वा जनार्दनम् । लोमहर्षणमासीनं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ।।२५
व्यासशिष्य महाभाग चिरं जीव महामते ! साम्प्रतं वर्तते यो वै राजा तन्मे वद प्रभो ।।२६

सूत उवाच

त्रिसहस्राब्दसम्प्राप्ते कलौ भार्गवनन्दन । आवन्ते शङ्खनामाऽसौ साम्प्रतं वर्तते नृपः ।।२७
म्लेच्छदेशे शकपतिरथ राज्यं करोति वै । शृणु तत्कारणं सर्वं यथा यस्य विवर्धनम् ।।२८
द्विसहस्रे कलौ प्राप्ते म्लेच्छवंशविवर्द्धिता । भूमिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानापथविवर्द्धिता ।।२९
ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं शुभम् । म्लेच्छाचार्यश्च मूशाख्यस्तन्मतैः पूरितं जगत् ।।३०
देवार्चनं वेदभाषा नष्टा प्राप्ते कलौ युगे । तल्लक्षणं शृणु मुने म्लेच्छभाषाश्चतुर्विधाः ।।३१
व्रजभाषा महाराष्ट्री यावनी च गुरुण्डिका । तासां चतुर्लक्षविधा भाषाश्चान्यास्तथैव च ।।३२
पानीयं च स्मृतं पानी बुभुक्षा भूख उच्यते । पानीयं पापड़ीभाषा भोजनं कक्कनं स्मृतम् ।।३३
इष्टिशुद्धरवः प्रोक्त इस्तिनी मसपावनी । आहुतिर्वै आजु इति ददाति च दधाति च ।।३४
पितृपैतरभ्राता च बादरः पतिरेव च । सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्पस्तथापुनः ।।३५
जानुस्थाने जैनुशब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च । सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका ।।३६
रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैव फर्वरी । षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहारमीदृशम् ।।३७

मुनीश्वरों ने ज्ञान प्राप्त कर संध्या, तर्पण एवं देवों की पूजा करने के उपरांत जनार्दन भगवान् का ध्यान करके आसनासीन लोमहर्षण से नम्रतापूर्वक प्रश्न किया । व्यासशिष्य, महाभाग एवं हे महामते ! आप दीर्घजीवी हों । हे प्रभो ! आधुनिक समय में जो राजा राज्य का उपभोग कर रहा है, उसका वर्णन करने की कृपा कीजिए ।२३-२६

सूत जी बोले—भार्गवनन्दन ! कलियुग के तीन सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर इस वर्तमान काल में अवन्तिपुरी में शंख नामक राजा राज्य कर रहा है, म्लेच्छ देश में शकपति जिस प्रकार जिसकी वृद्धि हुई है उसका कारण बता रहा हूँ, सुनो ! कलियुग के दो सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर म्लेच्छ वंश की वृद्धि होगी, जिसमें समस्त पृथिवी के म्लेच्छमय होने पर भाँति-भाँति के पंथों की भी अभिवृद्धि बतायी गयी है । ब्रह्मावर्त प्रदेश के अतिरिक्त किसी अन्य प्रदेश में सरस्वती के तट पर म्लेच्छाचार्य 'मूशा' ने समस्त संसार में म्लेच्छमत का प्रचार किया । देवों की पूजा और वेदभाषा का नष्टप्राय होना कलियुग में बताया गया है । मुने ! म्लेच्छ भाषा चार प्रकार की होती है, उसके लक्षण को बता रहा हूँ, सुनो ! व्रजभाषा, महाराष्ट्री, यावनी (यवनों की भाषा) और गुरुण्डिका (अंग्रेजी भाषा), यही म्लेच्छ भाषा के चार भेद हैं तथा इन भाषाओं के चार लक्ष अवान्तर भेद कहे गये हैं । इनके प्रचलित समय में पानीय (जल) को पानी, बुभुक्षा को भूख और कहीं पानीय को पापड़ी एवं भोजन को कक्कन, आहुति को आजु इति; जानु के स्थान पर जैनु, और सप्त सिन्धु के स्थान पर हप्त हिन्दु का प्रयोग यवनों की भाषा में किया जायेगा । उसी प्रकार गुरुण्डों (गोरों) की भाषा में रविवार को संडे, फाल्गुन मास को फर्वरी, और साठ को सिक्सटी कहा जायेगा, ऐसा

या पवित्रा सप्तपुरी तासु हिंसा प्रवर्तते । दस्यवः शबरा भिल्ला मूर्खा आर्ये स्थिता नराः ।।३८
म्लेच्छदेशे बुद्धिमन्तो नरा वै म्लेच्छधर्मिणः । म्लेच्छाधीना गुणाः सर्वेऽवगुणा आर्यदेशके ।।३९
म्लेच्छराज्यं भारते च तद्द्वीपेषु स्मृतं तथा । एवं ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ हरिं भज महामते ।।४०
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे रोदनं चक्रिरे बहु ।।४१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगभूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगभूपाख्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

ब्रह्मावर्ते कथं म्लेच्छा न प्राप्ताः कारण वद । सूतः प्राह शृणुष्वेदं सरस्वत्याः प्रभावतः ।।१
म्लेच्छाः प्राप्ता न तत्स्थाने काश्यपो नाम वै द्विजः । कलौ प्राप्ते सहस्राब्दे स्वर्गात्प्राप्तः सुराज्ञया ।।२
आर्यावती च तत्पत्नी दश पुत्रानकल्मषान् । काश्यपात्सा लब्धवती तेषां नामानि मे शृणु ।३
उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिश्रकौ । अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्डच एव च ।।४
चतुर्वेदीति कथिता नामतुल्यगुणाः स्मृताः । तेषां मध्ये काश्यपश्च सर्वज्ञानसमन्वितः ।।५

कहा गया है (भारत की) पवित्र सातों पुरी में हिंसा होती रहेगी, क्योंकि आर्य प्रदेश में दस्यु, शबर, भिल्ल और मूर्खों की स्थिति बनी रहेगी। म्लेच्छ देशों में बुद्धिमान् होते हुए मनुष्य म्लेच्छ धर्मी होगें क्योंकि सभी गुण म्लेच्छों के अधीन और समस्त अवगुण (दोष) आर्य प्रदेशों में बिखरे रहेंगे। भारतवर्ष एवं द्वीपान्तरों में म्लेच्छों का राज्य रहेगा, मुनिश्रेष्ठ ! तथा महामते ! ऐसा समझकर भगवान् का भजन कीजिये। ऐसी बातें सुनते ही सभी मुनियों ने बहुत रुदन किया।२७-४१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग के राजाओं का वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त।५।

अध्याय ६

कलियुग के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—ब्रह्मावर्त प्रदेश में म्लेच्छों की पहुँच न होने पायी, इसका कारण बताने की कृपा कीजिये। सूत जी बोले—सुनो ! सरस्वती के प्रभाव से म्लेच्छ उस स्थान में पहुँच नहीं पाये। कलियुग के एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर देवों की आज्ञा प्राप्त कर काश्यप नामक द्विज का उस प्रदेश में स्वर्ग से आगमन हुआ। आर्यावती उनकी पत्नी का नाम था। उन दोनों (पति-पत्नी) ने पवित्रता पूर्ण दशपुत्रों को उत्पन्न किया उनके नामों को बता रहा हूँ सुनो ! १-३। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय और चतुर्वेदी यही उनके नाम तथा नामानुसार उनमें गुण बताये गये

काश्मीरे प्राप्तवान्सोऽपि जगदम्बां सरस्वतीम् । तुष्टाव पूजनं कृत्वा रक्तपुष्पैस्तथाक्षतैः ॥६
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पाञ्जलिसमन्वितः ॥७

काश्यप उवाच

मातः शङ्करदयिते मयि ते करुणा कुतो नास्ति । भोऽसि[1] त्वं जगदम्बा जगतः किं मां बहिर्नयसि ॥८
देवि त्वं सुरहेतोर्धर्मद्रोहिणमाशु हंसि मातः । उत्तमसंस्कृतभाषां त्वं कुरु म्लेच्छांश्च मोहयेः शीघ्रम् ॥९
अम्ब त्वं बहुरूपा हुङ्काराद्धूम्रलोचनं हंसि । भीमं दुर्गा दैत्यं हत्वा जगतां सुखं नयसि ॥१०
दम्भं मोहं घोरं गर्वं हत्वा सदा सुखं शेषे । बोधय मातर्जगतो दुष्टान्नष्टान्कुरु त्वं वै ॥
तदा प्रसन्ना सा देवी भो मुनेस्तस्य मानसे ॥११
वासं कृत्वा ददौ ज्ञानं मिश्रदेशे मुनिर्गतः । सर्वान्म्लेच्छान्मोहयित्वा कृत्वाथ तान्द्विजन्मनः ॥१२
संख्यादशसहस्रं च नरवृन्दं द्विजन्मनाम् । द्विसहस्रं स्मृता वैश्याः शेषाः शूद्रमुताः स्मृताः ॥१३
तैः सार्द्धमार्यदेशे स सरस्वत्याः प्रसादतः । अवसद्वै मुनिश्रेष्ठो मुनिकार्यरतः सदा ॥१४
तेषामार्यसमूहानां देव्याश्च वरदानतः । वृद्धिर्भवति बहुला चतुष्कोटिनराः स्त्रियः ॥१५

हैं। उन लोकों में काश्यप सर्वज्ञानी थे। उन्होंने काश्मीर में जाकर रक्तवर्ण के पुष्पों और अक्षतों से जगदम्बा सरस्वती की पूजा की। धूप, दीप, तथा नैवेद्य अर्पित करने के उपरांत पुष्पाञ्जलि लेकर प्रार्थना करना आरम्भ किया।४-७

काश्यप बोले—मातः! शंकरप्रिये! मेरे लिये तुम्हें करुणा क्यों नहीं हो रही है? आप जगत् की माता हैं, तो मुझे जगत् के बाहर क्यों निकाल रही हैं। हे देवि, मातः! देवों के कार्य के लिए आप धर्मद्रोही का शीघ्र नाश करती हैं। उत्तम संस्कृत भाषा की ही प्रधानता रहे अतः म्लेच्छों को शीघ्र मोहित करो। अम्ब! तुम्हारे अनेकों रूप हैं, हुंकार से धूम्रलोचन तथा उस भीषण दुर्गादैत्य का वध करके आपने समस्त जगत् को सुखी बनाया है। दम्भ, मोह, घोर अभिमान का नाश करके आप सदैव सुख शयन करती हों। अतः मातः! मुझे ज्ञान प्रदान कर जगत् के दुष्टों का नाश करो! मुने उस समय देवी प्रसन्न होकर उनके मानस स्थल में निवास करके उन्हें ज्ञान प्रदान किया, जिसके कारण वे महर्षि मिश्र देश के लिए प्रस्थान किये। वहाँ उन्होंने सभी म्लेच्छों को मोह-मुग्ध (जडवत्) करके उनमें दशसहस्र को ब्राह्मण क्षत्रिय, दो सहस्र को वैश्य और शेष को शूद्र की कोटि में रखकर कुछ दिन के उपरांत उनके पुत्रों समेत इस आर्य प्रदेश में आकर सरस्वती की प्रसन्नता से निवास करते हुए उस मुनिश्रेष्ठ ने सदैव मुनि-कार्य में निरत रहकर अपना जीवन व्यतीत किया। देवी के वरदान द्वारा उन आर्य समूहों की अत्यन्त वृद्धि हुई, जिसमें चार करोड़ स्त्री पुरुष की संख्या कही गई है। उनके पुत्र एवं पौत्रों के वर्तमान

---

१. "भोऽसि" इत्यत्र "भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि" इत्यनेन यादेशे कृते "ओतो गार्ग्यस्य" इत्यनेन यलोपे कृते "भो असि" इत्ययमेवसंधिः समीचीनः। अयमुपरिनिर्दिष्टः संधिस्त्वार्षः। केषांचिन्मतेन भवसि इति योजनीयमित्येव सुवचमिति परास्वम्।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च तद्भूपः काश्यपो मुनिः । विंशोत्तरशतं वर्षं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१६
राज्यपुत्राख्यदेशे च शूद्राश्चाष्टसहस्रकाः । तेषां भूपश्चार्यपृथुस्तस्माज्जातस्स मागधः ॥१७
मागधं नाम तत्पुत्रमभिषिच्य ययौ मुनिः । इति श्रुत्वा भृगुश्रेष्ठः शौनको हर्षमागतः ॥१८
सूतं पौराणिकं नत्वा विष्णुध्यानपरोऽभवत् । पुनश्च श्रुतिवर्षान्ते बोधिता मुनयस्तथा ॥१९
नित्यनैमित्तिकं कृत्वा पप्रच्छुरिदमादरात् । लोमहर्षण मे ब्रूहि के राजानश्च मागधात् ॥
कलौ राज्यं कृतं यैस्तु व्यासशिष्य वदस्व नः ॥२०

सूत उवाच

मागधो मागधे देशे प्राप्तवान्काश्यपात्मजः ॥२१
पितृराज्यं स्मृतं तेन त्वार्यदेशः पृथक्कृतः । पाञ्चालात्पूर्वतो देशो मागधः परिकीर्तितः ॥२२
आग्नेय्यां च कलिङ्गश्च तथावन्तस्तु दक्षिणे । आनर्तदेशो नैर्ऋत्यां सिन्धुदेशस्तु पश्चिमे ॥२३
वायव्यां कैकयो देशो मद्रदेशस्तथोत्तरे । ईशाने चैव कोणिन्दश्चार्यदेशश्च तत्कृतः ॥२४
देशनाम्ना तस्य सुता मगधस्य महात्मनः । तेभ्योंऽशानि प्रदत्तानि तत्पश्चात्क्रतुमुद्वहन् ॥२५
बलभद्रस्तदा तुष्टो यज्ञभावेन भावितः । शिशुनागः क्रतोर्जातो बलभद्रांशसम्भवः ॥२६
शतवर्षं कृतं राज्यं काकवर्मा सुतोऽभवत् । तद्राज्यं नवतिवर्षं क्षेमधर्मा ततोऽभवत् ॥२७
अशीतिवर्षं राज्यं तत्क्षेत्रौजास्तत्सुतोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं वेदमिश्रस्ततोऽभवत् ॥२८

समय में भी काश्यप मुनि ही राजा थे। उन्होंने एक सौ बीस वर्ष राज्य किया। राजपुत्र के प्रदेश में आठ सहस्र शूद्र निवासी थे। उनका राजा आर्य पृथु था, जिसके मागध नामक पुत्र हुआ। उसी मागध राजकुमार का राज्याभिषेक करके मुनि ने प्रस्थान किया। इसे सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक अत्यन्त हर्षित हुए। पौराणिक सूत जी को नमस्कार करके पुनः विष्णु का ध्यान करना आरम्भ किया। चार वर्ष के उपरांत ज्ञान संपन्न होने पर मुनियों ने नित्य-नैमित्तिक कर्म करके नम्रता पूर्वक पूँछा—लोमहर्षण! मगध के पश्चात् कौन-कौन राजा हुए, तथा जिन्होंने कलि में राज्य का उपभोग किया है, हे व्यास शिष्य! उपरोक्त सभी बातें बताने की कृपा कीजिए।८-२०

सूत जी बोले—काश्यप के पुत्र उस मागध ने मागध देश में पहुँच कर उसे पिता का राज्य समझ कर आर्य प्रदेश को उससे पृथक् कर लिया। पांचाल देश से पूर्व का प्रदेश मागध बताया गया है। उसी प्रकार उसके आग्नेय में कलिंग, दक्षिण में अवन्त नैऋत्य में आनर्त, पश्चिम में सिंधुदेश, वायव्य में कैकयदेश उत्तर में मद्रदेश और ईशान में कोणिन्द देश हैं, उसी को आर्यदेश कहा गया है। उस महात्मा मागध के देश नामक पुत्र था। उन्हें उनका अंश प्रदानकर यज्ञानुष्ठान, आरम्भ किया। उस यज्ञानुष्ठान से प्रभावित होकर बलभद्र ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। पश्चात् बलभद्र के अंश से उस यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर शिशुनाग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने सौ वर्ष तक राज्य किया। शिशुनाग के काकवर्मा हुए, उन्होंने नब्बे वर्ष तक राज्य किया। काकवर्मा के क्षेमधर्मा हुए जिन्होंने अस्सी वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। क्षेमधर्मा के क्षेत्रौजा हुए जिन्होंने उनसे दश वर्ष कम समय तक राज्य किया। पुनः उनके वेदमिश्र हुए उसने भी अपने पिता से दश वर्ष कम समय तक राज्य किया। वेदमिश्र के अजात

दशहीनं कृतं राज्यं ततोऽजातरिपुस्सुतः । दशहीनं कृतं राज्यं दर्भकस्तनयोऽभवत् ।।२९
दशहीनं कृतं राज्यमुदयाश्वस्ततोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं नन्दवर्धन एव तत् ।।३०
दशहीनं कृतं राज्यं तस्मान्नन्दसुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शूद्रीगर्भसमुद्भवः ।।३१
नन्दाज्जातः प्रनन्दश्च दशवर्षं कृतं पदम् । तस्माज्जातः परानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३२
तस्माज्जातस्समा नन्दो विंशद्वर्षं कृतं पदम् । तस्माज्जातः प्रियानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३३
देवानन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । यज्ञभङ्गः सुतस्तस्मात्पितुरर्द्धं कृतं पदम् ।।३४
मौर्यानन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । महानन्दस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३५
एतस्मिन्नेव काले तु कलिना संस्मृतो हरिः । काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुतः ।।३६
बौद्धधर्मं च संस्कृत्य पट्टणे प्राप्तवान्हरिः । दशवर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छाक्यमुनिः स्मृतः ।।३७
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छुद्धोदनोऽभवत् । त्रिंशद्वर्षं कृतं राज्यं शाक्यसिंहस्ततोऽभवत् ।।३८
शताग्रौ द्विसहस्रेऽब्दे व्यतीते सोऽभवन्नृपः । कलेः प्रथमचरणे वेदमार्गो विनाशितः ।।३९
षष्टिवर्षं कृतं राज्यं सर्वबौद्धा नराः स्मृताः । नरेषु विष्णुर्नृपतिर्यथा राजा तथा प्रजाः ।।४०
विष्णोर्वीर्यानुसारेण जगद्धर्मः प्रवर्त्तते । तस्मिन्हरौ ये शरणं प्राप्ता मायापतौ नराः ।।४१
अपि पापसमाचारा मोक्षवन्तः प्रकीर्तिताः । शक्यासिंहाद्बुद्धसिंहः पितुरर्द्धं कृतं पदम् ।।४२

रिपु, अजातरिपु के दर्भक, दर्भक के उदयाश्व, उदयाश्व के नंदवर्धन, नंदवर्धन के नंद हुआ, जिसका जन्म ग्रहण करना किसी शूद्री के गर्भ से बताया जाता है, उसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। उपरोक्त सभी राजवृन्द ने अपने पिता से उत्तरोत्तर दश वर्ष न्यून समय तक राज्य किये है। पुनः नन्द के प्रनन्द हुआ जिसने दश वर्ष तक राज्य किया। उसके परानन्द हुआ जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। परानन्द के समानन्द हुआ उसने बीस वर्ष तक राज्य किया। समानन्द के प्रियानन्द, प्रियानन्द के देवानन्द, और देवानंद के यज्ञभंग नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। उपरोक्त सभी राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक राज्य किया यज्ञ भंग के मौर्यानन्द, मौर्यानन्द के महानन्द हुए जिन्होंने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया।२१-३५। उसी समय कलि ने प्रार्थना करके भगवान् को प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर हरि ने काश्यप द्वारा गौतम के नाम से जन्म ग्रहण किया ऐसा कहा गया है। उन्होंने बौद्धधर्म को अपनाकर पटना जाकर दशवर्ष तक राज्य किया। पश्चात् उनके शाक्य मुनि हुए, जिन्होंने बीस वर्ष तक राज्य किया। शाक्य मुनि के शुद्धोदन हुए, उन्होंने तीस वर्ष तक राज्य किया। पुनः उनके शाक्य सिंह हुआ। जिसका जन्म काल दो सहस्र सात सौ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर बताया गया है। कलि के इस प्रथम चरण के समय इसी राजा ने वेद मार्ग को नष्ट किया है। इसने साठ वर्ष तक राज्य किया है। इसके इतने समय में राजकाल में सभी मनुष्य बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गये। मनुष्यों में राजा विष्णु का रूप माना जाता है, और जैसा राजा वैसी प्रजा का होना नियमतः सिद्ध है। विष्णु के पराक्रम के अनुसार जगत् का धर्म प्रचलित होता है। उस समय उस मायापति भगवान् के शरण में जो मनुष्य पहुँच जाते हैं, वे कैसे भी पापी क्यों न हो मोक्ष के भागी हो ही जाते है। शाक्य सिंह के बुद्ध सिंह हुआ, जिसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। बुद्ध सिंह के

चन्द्रगुप्तस्तस्य सुतः पौरसाधिपतेःसुताम् । सुलूवस्य तथोद्वाह्य यावनीबौद्धतत्परः ।।४३
षष्टिवर्षं कृतं राज्यं बिन्दुसारस्ततोऽभवत् । पितृस्तुल्यं कृतं राज्यमशोकस्तनयोऽभवत् ।।४४
एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः । अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत् ।।४५
वेदमन्त्रप्रभावाच्च जाताश्चत्वारि क्षत्रियाः । प्रमरस्सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विदः ।।४६
त्रिवेदी च तथा शुक्लोथर्वा स परिहारकः । ऐरावतकुले जातान्गजानारुह्यते पृथक् ।।४७
अशोकं स्ववशं चक्रुस्सर्वे बौद्धा विनाशिताः । चतुर्लक्षाः स्मृता बौद्धाः दिव्यशस्त्रैः प्रहारिताः ।।४८
अवन्ते प्रमरो भूपश्चतुर्योजनविस्तृताम् । अम्बावतीं नाम पुरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ।।४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगभूपवर्णनोपाख्यानं नाम षष्ठोध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

शशिवंशभूपवर्णनम्

सूत उवाच

चित्रकूटगिरेर्देशे परिहारो महीपतिः । कलिञ्जरपुरं रम्यमक्रोशायतनं स्मृतम् ।।१
अध्यास्य बौद्धहन्ता स सुखितोभवदूर्जितः । राजपुत्राख्यदेशे च चपहानिर्महीपतिः ।।२

चन्द्र गुप्त हुए, जिसने पौरसाधिपति की सुलूवस्य की पुत्री उस यवनी के साथ पाणिग्रहण करके उस बौद्ध ने पत्नी समेत साठ वर्ष तक राज्य किया । चन्द्रगुप्त के बिंदुसार हुआ उसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । बिंदुसार के अशोक हुए । उसी समय में कोई ब्राह्मण श्रेष्ठ कान्यकुब्ज ने अर्बुद पर्वत के शिखर पर ब्रह्महवन आरम्भ किया था । वहाँ वेदमंत्र के प्रभाव से चार क्षत्रिय उत्पन्न हुए जिसमें प्रमर सामवेदी, चपहानि यजुर्वेदी एवं त्रिवेदी और शुक्ल अथर्ववेद के ज्ञाता थे । इन लोगों के चढ़ने के लिए ऐरावत कुल में उत्पन्न पृथक्-पृथक् हाथी नियुक्त थे । इन्होने अशोक को अपने अधीनकर उन समस्त बौद्धों का जिनकी संख्या चार लक्ष बतायी जाती है, दिव्य शस्त्रों द्वारा विनाश किया पश्चात् प्रमर नामक राजा ने अनन्त प्रदेश की चार योजन की विस्तृत अम्बावती नामक नगरी को अपनी राजधानी बनाकर सुख पूर्वक रहने लगा ।३६-४९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग के राजाओं का वर्णन
नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

शशिवंश के राजाओं का वर्णन

सूत जी बोले—परिहार नामक राजा ने चित्रकूट पर्वत के प्रदेश में रमणीक एवं एक कोश का विस्तृत कलिंजर नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया। उसमें अपना निवास स्थान बनाकर उस बौद्धहन्ता ने सुखी-जीवन व्यतीत किया। राजपुत्र नामक प्रदेश में राजा चपहानि अजमेर नामक नगर में, जो

अजमेरपुरं रम्यं विधिशोभासमन्वितम् । चातुर्वर्ण्ययुतं दिव्यमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३
शुक्लो नाम महीपालो गत आनर्तमण्डले । द्वारकां नाम नगरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४

शौनक उवाच

तेषामग्न्युद्भवानां च ये भूपा राज्यसत्कृताः । तान्मे ब्रूहि महाभाग सूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५
गच्छध्वं ब्राह्मणाः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् । तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विष्णोर्ध्यानं प्रचक्रिरे ॥६
पूर्णे द्वे च सहस्रान्ते सूतो वचनमब्रवीत् । सप्तत्रिंशशते वर्षे दशाब्दे चाधिके कलौ ॥७
प्रमरो नाम भूपालः कृतं राज्यं च षट्समाः । महामदस्ततो जातः पितुरर्धं कृतं पदम् ॥८
देवापिस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । देवदूतस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं स्मृतं पदम् ॥९
तस्माद्गन्धर्वसेनश्च पञ्चाशदब्दभूपदम् । कृत्वा च स्वसुतं शङ्खमभिषिच्य वनं गतः ॥१०
शङ्खेन तत्पदं प्राप्तं राज्यं त्रिंशत्समाः कृतम् । देवाङ्गना वीरमती शक्रेण प्रेषिता तदा ॥११
गन्धर्वसेनं सम्प्राप्य पुत्ररत्नमजोजनत् । सुतस्य जन्मकाले तु नभसः पुष्पवृष्टयः ॥१२
पेतुर्दुन्दुभयो नेदुर्वान्ति वाताः सुखप्रदाः । शिवदृष्टिर्द्विजो नाम शिष्यैस्सार्धं वनं गतः ॥१३
विंशद्भिः कर्मयोगं च समाराध्य शिवोऽभवत् । पूर्णे त्रिंशच्छते वर्षे कलौ प्राप्ते भयङ्करे ॥१४
शकानां च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये । जातश्शिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद्गुह्यकालयात् ॥१५

निर्माण कला के सौन्दर्य से पूर्ण और चारों वर्णों के मनुष्यों से युक्त था, अपना निवास स्थान बनाकर सुख का अनुभव करने लगा। और शुक्ल नामक भूपाल ने आनर्त प्रदेश के द्वारका नामक नगर में रहकर सुख का अनुभव किया।१-४

शौनक ने कहा—महाभाग ! अग्निद्वारा उत्पन्न राजाओं का, जिन्होंने सम्मानपूर्वक राज्य का उपभोग किया है, वर्णन करने की कृपा कीजिये। तत्पश्चात् सूत जी ने कहा—आप सभी ब्राह्मण वृन्द यहाँ से चले जाने की व्यवस्था करें तो अच्छा हो, क्योंकि मैं इस समय योगनिद्रा के वशीभूत होने के नाते कुछ भी बताने में असमर्थ हूँ इसे सुनकर सभी मुनिवृन्द भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे। दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर सूत जी ने पुनः उन महर्षियों से कहा—तीन सहस्र सात सौ दश वर्ष काल के व्यतीत होने पर प्रमर नामक राजा हुए, जिसने छह वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। प्रमर के महामह हुए, उन्होंने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। महामह के देव, देव के देवदूत, और देवदूत के गन्धर्वसेन हुए जिन्होंने पचास वर्ष तक राज्य किया, शेष और भूप लोगों ने अपने पिता के समान काल तक। पश्चात् गन्धर्वसेन ने अपने पुत्र राजा शंख का अभिषेक करके वन में निवास करने के लिए प्रस्थान किया। शंख के तीस वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत देवराज इन्द्र ने वीरमती नामक देवांगना को जंगल निवासी उनके पिता गंधर्वसेन के पास भेजा जिसे अपना कर उन्होंने पुत्ररत्न की प्राप्ति की। उस पुत्र रत्न के जन्म ग्रहण के समय आकाश से पुष्पों की वृष्टि, दुंदुभी की ध्वनि, और मनोहर वायु का संचार होने लगा। (उस पुत्र की) शिव दृष्टि (मांगलिक दृष्टि) होने के नाते वह द्विज अपने शिष्यों को साथ लेकर जंगल चला गया। वहाँ जाकर उसने कर्मयोग के अभ्यास से शिवस्वरूप की प्राप्ति की। कलि के तीन सहस्र वर्ष के व्यतीत होने पर उस भीषण समय में शकों के विनाशार्थ और आर्यधर्म की वृद्धि के लिए उसे

विक्रमादित्यनामानं पिता कृत्वा मुमोद ह । स बालोऽपि महाप्राज्ञः पितृमातृप्रियङ्करः ॥१६
पञ्चवर्षे वयः प्राप्ते तपसोऽर्थे वनं गतः । द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तपः ॥१७
पश्चादम्बावतीं दिव्यां पुरीं यातः श्रियान्वितः । दिव्यं सिंहासनं रम्यं द्वात्रिंशन्मूर्तिसंयुतम् ॥१८
शिवेन प्रेषितं सोऽपि तस्मै पदमग्रहीत् । वैतालस्तस्य रक्षार्थं पार्वत्या निर्मितो गतः ॥१९
एकदा स नृपो वीरो महाकालेश्वरस्थलम् । गत्वा सम्पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥२०
सभा धर्ममयी तत्र निर्मिता व्यूहविस्तरा । नानाधातुकृतस्तम्भा नानामणिविभूषिता ॥२१
नानाद्रुमलताकीर्णा पुष्पवल्लीभिरन्विता । तत्र सिंहासनं दिव्यं स्थापितं तेन शौनक ॥२२
आहूय ब्राह्मणान्मुख्यान्वेदवेदाङ्गपारगान् । पूजयित्वा विधानेन धर्मगाथामथाऽशृणोत् ॥२३
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वैतालो नाम देवता । स कृत्वा ब्राह्मणं रूपं जयाशीर्भिः प्रशस्य तम् ॥२४
उपविश्यासने विप्रो राजानमिदमब्रवीत् । यदि ते श्रवणे श्रद्धा विक्रमादित्यभूपते ॥२५
वर्णयामि महाख्यानमितिहाससमुच्चयम् ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगसम्भूतरविशशिवंशभूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७
॥ इति प्रथमखण्डं सम्पूर्णम् ॥ ।१

शिव की आज्ञा से गुह्यकों के यहाँ से पुनः प्रत्यक्ष होना पड़ा ।५-१५। पिता ने उस पुत्र का 'विक्रमादित्य' नामकरण करके अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की । वह बालक भी महाबुद्धिमान् एवं अपने पिता-माता का अत्यन्त प्रिय करने वाला हुआ । पाँच वर्ष की अवस्था में उसने तप करने के लिए वन-प्रस्थान किया । बारह वर्ष तक दृढ़ प्रयत्न एवं विक्रम पूर्वक तप करने के उपरांत श्री सम्पन्न होकर वह अम्बावती नामक दिव्य पुरी में गया । वहाँ एक रमणीक दिव्य सिंहासन, जिसमें बत्तीस मूर्तियाँ (कठपुतरी) बनी हुई थी, शिव ने उसके लिए भेजा । उसे उसने स्वीकार किया । पार्वती जी ने उसके रक्षार्थ एक वैताल को उत्पन्न कर वहाँ भेज दिया । एक बार उस वीर राजा ने महाकालेश्वर के यहाँ जाकर देवाधिदेव पिनाकी शिवजी की पूजा की वहाँ धर्म सभा का भी निर्माण किया गया, जिसमें विस्तृत व्यूह की रचना और भाँति-भाँति के धातुओं के खम्भे लगाये गये थे वह मणियों से विभूषित, अनेक भाँति के वृक्षों एवं लताओं से आच्छन्न और पुष्प वल्लियों से संयुक्त थी । शौनक ! उसी धर्म सभा में उन्होंने उस दिव्य सिंहासन की स्थापना की । पश्चात् मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों को जो वेद-वेदाङ्ग निष्णात थे, बुलाकर सविधान उनकी अभ्यागत सेवा करके उनके द्वारा धर्मगाथा का श्रवण किया । उसी बीच उस बैताल नामक देव ने भी ब्राह्मण का वेष धारण कर 'जय हो' इस प्रकार के आशीर्वाद प्रदान समेत उनकी प्रशंसा करते हुए आसनासीन होकर राजा से कहा । राजन्, विक्रमादित्य ! यदि आप को सुनने की इच्छा है, तो मैं इतिहासों से पूर्ण एक महा आख्यान का वर्णन कर रहा हूँ सुनो—१६-२६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग में उत्पन्न शशिवंश के भूपों का वर्णन
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

द्वितीयखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्तस्स तु वैतालो महाकालेश्वरस्थितः । शिवं मनसि संस्थाप्य राजानमिदमब्रवीत् ।।१
विक्रमादित्यभूपाल शृणु गाथां मनोरमाम् । वाराणसी पुरी रम्या महेशो यत्र तिष्ठति ।।२
चातुर्वर्ण्यप्रजा यत्र प्रतापमुकुटो नृपः । महादेवी च महिषी धर्मज्ञस्य महीपतेः ।।३
तत्पुत्रो वज्रमुकुटो मन्त्रिणः सुतवल्लभः । षोडशाब्देऽथ सम्प्राप्ते हयारूढो वनं गतः ।।४
अमात्यतनयश्चैव बुद्धिदक्ष इति श्रुतः । हयारूढो गतः सार्धं समानवयसा वने ।।५
स दृष्ट्वा विपिनं रम्यं मृगपक्षिसमन्वितम् । मुमोद वज्रमुकुटः कामाशयवशं गतः ।।६
तत्र दिव्यं सरो रम्यं नानापक्षिनिनादितम् । तस्य कूले शिवस्थानं मुनिवृन्दैः प्रपूजितम् ।।७
दृष्ट्वा तत्र गतौ वीरौ परमानन्दमापतुः। एतस्मिन्नन्तरे भूपे करणाटक भूपते ।।८
दन्तवक्रस्य तनया नाम्ना पद्मावती मता । कामदेवं नमस्कृत्य कामिनी कामरूपिणी ।।९
चिक्रीड सखिभिः क्रीडां सरोमध्ये मनोहरा । तदा तु वज्रमुकुटो मन्दिरादागतो बहिः ।।१०

दूसरा खण्ड

अध्याय १

कलियुग के इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—महाकालेश्वर में स्थित उस वैताल ने मन में शिवजी को स्थापित कर राजा से कहा—राजन्, विक्रमादित्य ! मैं एक मनोरम गाथा सुना रहा हूँ, सुनो—वाराणसी (वनारस) की उस रमणीक नगरी में जिसमें महेश्वर निवास करते हैं, और जहाँ चारों वर्णों की प्रजाएँ रहती हैं, प्रताप मुकुट नामक राजा राज कर रहा था । उस धर्मज्ञ राजा की प्रधान रानी का नाम महादेवी था। उसके पुत्र का नाम वज्रमुकुट था, जो मंत्री के पुत्रों का परमप्रेमी था। सोलह वर्ष की अवस्था में वह घोड़े पर सवार होकर किसी जंगल में गया। मंत्री का पुत्र बुद्धिदक्ष भी समान वय होने के नाते घोड़े पर बैठकर उसके साथ चला गया। वहाँ उस मनोहर जंगल को देखकर, जो पशुओं और पक्षियों से युक्त था, राजकुमार वज्रमुकुट आनन्द विभोर हो गया, किन्तु साथ-साथ कामविवश भी हुआ।१-६। वहाँ पर एक दिव्य एवं मनोरम तालाब दिखायी पड़ा, जो पक्षियों के कलरव ध्वनि से मुखरित हो रहा था । उसके तट पर एक शिवालय को देखकर, जो महर्षियों से अत्यन्त पूजनीय था, वे दोनों वीर परमहर्षित हुए । उसी समय करनाटक के राजा दंतवक्र की कन्या पद्मावती ने, जो कामिनी, काम की स्त्री रति के समान थी, कामदेव को नमस्कार करके सखियों समेत उस तालाब में क्रीड़ा करना आरम्भ

दृष्ट्वा पद्मावतीं बालां तुल्यरूपगुणान्विताम्। मूर्च्छितः पतितो भूमौ सा दृष्ट्वा सा तु मुमोह वै ।।११
प्रबुद्धो वज्रमुकुटो मां पाहि शिवशंकर । इत्युक्त्वा भूपतनयः पुनर्बालां ददर्श ह ।।१२
शिरसः पद्मकुसुमं सा गृहीत्वा तु कर्णयोः । कृत्वा चखान दशनैः पादयोर्दधती पुनः ।।१३
पुनर्गृहीत्वा तत्पुष्पं हृदये सम्प्रवेशितम् । इति भावं च सा कृत्वाऽऽलिभिः सार्धं ययौ गृहम् ।।१४
तीर्थार्थं च समं पित्रा सम्प्राप्ता गिरिजावने । तस्यां गतायां स नृपो मारबाणेन पीडितः ।।१५
महतीं मानसीं पीडां प्राप्तवान्मोहमागतः । उन्मादीव ततो भूत्वा खाद्यपानविवर्जितः ।।१६
ध्यात्वा पद्मावतीं बालां मौनव्रतमचीकरत् । तदा कोलाहलो जातः प्रतापमुकुटान्तिके ।।१७
कुमारः कां दशां प्राप्त इति हाहेति सर्वतः । त्रिदिनान्ते मन्त्रिसुतो बुद्धिदक्षो विशारदः ।।१८
अब्रवीद्वज्रमुकुटं सत्यं कथय भूपते । स आह कारणं सर्वं यथा जातं सरोवरे ।।१९
तच्छ्रुत्वा बुद्धिदक्षश्च विहस्याह महीपतिम् । महाकष्टेन सा देवी मित्रत्वं हि गमिष्यति ।।२०
करणाटकभूपस्य दन्तवक्रस्य सा सुता । पद्मावतीति विख्याता दधती त्वां स्वमानसे ।।२१
पुष्पभावेन ज्ञात्वाहं त्वां नयामि तदन्तिके । इत्युक्त्वा तस्य पितरं प्रतापमुकुटं प्रति ।।२२
आहाज्ञां देहि भूपाल यास्येहं कारणाटके । त्वत्सुतस्य चिकित्सार्थं स वज्रमुकुटोऽचिरम् ।।२३
आयामि नाऽत्र सन्देहो यदि जीवयसे सुतम् । तथेति मत्वा स नृपः प्रादात्पुत्रं च मन्त्रिणे ।।२४

किया । उस समय वज्रमुकुट मंदिर से बाहर निकलकर कुमारी पद्मावती को, जो रूप गुण में उसके अनुरूप थी, देखकर मूर्च्छित होकर भूमि में गिर गया, और वह कुमारी भी राजकुमार को देखकर मोहित हो गई। चैतन्य होने पर वज्रमुकुट ने कहा—शिव, शंकर ! मेरी रक्षा करो ! पश्चात् पुनः राजकुमार ने उस कामिनी की ओर देखा ।७-१२। उस समय राजकुमारी ने शिर से कमल पुष्प लेकर उसे कानों में लगाकर दाँतों से काटकर अपने दोनों चरणों के नीचे रख लिया, पुनः उसे उठाकर हृदय (चोली) के भीतर रख लिया । इस प्रकार का भाव प्रकट कर वह सखियों के साथ घर चली गई। वह इस पार्वती के जंगल में अपने पिता के साथ तीर्थ-यात्रा करने आई थी। उसके चले जाने पर वह राजकुमार अत्यन्त काम पीड़ित होने लगा। उसे इतनी अधिक मानसिक पीड़ा हुई कि वह मूर्च्छित हो गया । पश्चात् उन्मादी पुरुष की भाँति खान-पान का भी त्याग कर दिया। बोलना बन्द कर दिया। इस प्रकार उसके मौन-व्रत धारण करने से इतना महान् कोलाहल हुआ कि राजा प्रताप मुकुट से भी यह बात छिपी न रही। 'हा' कुमार की कैसी अवस्था प्राप्त हो गई, यही भावना चारों ओर फैल गई तीन दिन के उपरांत मंत्रि-पुत्र बुद्धिदक्ष ने, जो कुशल व्यक्ति था, वज्रमुकुट से कहा—भूपते ! सत्य बात क्या है ? उसने भी तालाब के तट पर जो कुछ जिस प्रकार से हुआ था, कह सुनाया। उसे सुनकर बुद्धिदक्ष ने हँसकर राजा से कहा—वह देवी बड़ी कठिनाई से मित्र बन सकेगी। १३-२०। उसने (उसके किये हुए भाव का अर्थ भी) बताया कि—करणाटक प्रदेश के राजा दंतवक्र की वह कन्या है, पद्मावती उसका नाम है । तुम्हें वह चाहती है । उसके द्वारा किये गये पुष्प के भाव से मैंने यह सब कुछ समझ लिया है और उसी द्वारा तुम्हें उसके समीप ले चल रहा हूँ । ऐसा कहकर उनके पिता प्रताप मुकुट से उसने कहा—हे राजन् ! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं आपके पुत्र की चिकित्सा के लिए करणाटक जा रहा हूँ । वज्रमुकुट समेत मैं शीघ्र ही वहाँ से वापस आऊँगा । यदि पुत्र को जीवनदान देना चाहते हैं तो अविलम्ब इसे

हयारूढौ गतौ शीघ्रं दन्तवक्रस्य पत्तने । काचिद् वृद्धा स्थिता तत्र तस्या गेहं च तौ गतौ ।।२५
बहुद्रव्यं ददौ तस्यै बुद्धिदक्षो विशारदः। ऊषतुर्मन्दिरे तस्मिन्रात्रिं घोरतमोवृताम् ।।२६
प्रातः काले तु सा वृद्धा गच्छन्ती राजमन्दिरम् । तामाह मन्त्रितनयः शृणु मातर्वचो मम ।।२७
पद्मावतीं च सम्प्राप्यैकान्ते मद्वचनं वद । ज्येष्ठशुक्लस्य पञ्चम्यामिन्दुवारे सरोवरे ।।२८
यो दृष्टः पुरुषो रम्यस्त्वदर्थे समुपागतः । इति श्रुत्वा ययौ वृद्धा पद्मं तस्यै न्यवेदयत् ।।२९
रुष्टा पद्मावती प्राह चन्दनार्द्राङ्गुलीयिका । गच्छ गच्छ महादुष्टे तलेनोरस्यताडयत् ।।३०
अङ्गुलीभिः कपोलौ च तस्याः स्पृष्ट्वा ययौ गृहम् । सा तु वृद्धा बुद्धिदक्षं सर्वं भावं न्यवेदयत् ।।३१
समित्रं दुःखितं प्राह शृणु मित्र शुचं त्यज । त्वामाह भूपतेः कन्या प्राणप्रिय वचः शृणु ।।३२
त्वदर्थे ताडितं वक्षः कदा मित्रं भविष्यसि । श्रुत्वा तन्मधुरं वाक्यं रजो देहे समागतम् ।।३३
रजस्वलान्ते भो मित्र तवास्यं चुम्बितास्म्यहम् । इति श्रुत्वा भूपसुतः परमानन्दमाययौ ।।३४
त्रिदिनान्ते तु सा वृद्धा पद्मावत्यै न्यवेदयेत् । त्वामुत्सुकः स भूपालस्तव दर्शनलालसः ।।३५
तं भजस्वाद्य सुश्रोणि सफलं जीवनं कुरु । इति श्रुत्वा महाहृष्टा सा मस्यार्द्राङ्गुलीयकम् ।।३६
गवाक्षद्वारि निष्कास्य तले पृष्ठे च ताडिता । तथैव वृद्धा तं प्राप्य मन्त्रिणं चाब्रवीद्वचः ।।३७

स्वीकार कीजिये । ऐसी बातें सुनकर राजा ने शीघ्रतया उसे स्वीकार कर अपने पुत्र को उसे सौंप दिया । वे दोनों युवक घोड़े पर सवार होकर राजा दन्तवक्र के नगर को चल पड़े । वहाँ पहुँचकर किसी वृद्धा स्त्री के घर ठहर गये । कार्य-निपुण बुद्धिदक्ष ने उस वृद्धा स्त्री को बहुत-सा द्रव्य देकर उसी के घर में उस घोर अंधकार की रात्रि को व्यतीत किया ।२१-२६। प्रातः काल जब वह वृद्धा राजा के यहाँ जाने को प्रस्तुत हुई तो मंत्रि-पुत्र (बुद्धिदक्ष) ने उससे कहा—माँ एक बात मेरी भी सुन लो ! पद्मावती के पास पहुँच कर एकान्त में उससे कहना कि—ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी चन्द्रवार को जिस सुन्दर पुरुष को देखा था, वह तुम्हारे लिए आ गया है । यह सुनकर कर वृद्धा ने राजा के यहाँ जाकर पद्मावती से उसकी सभी बातें बतायी । क्रुद्ध होकर पद्मावती ने उससे कहा—महादुष्टे ! जा, जा (यहाँ से) ऐसा कहकर चन्दन से गीली अंगुलियों समेत हाथ के तलवे से उस वृद्धा की छाती में आघात करके उसके दोनों कपोल में अंगुलियों के स्पर्श का चिह्न अंकित कर दिया । वृद्धा ने उस समस्त वृतान्त को बुद्धिदक्ष से निवेदन किया । उसे समझकर उसने अपने दुःखी मित्र से कहा—मित्र ! शोक का त्यागकर राजकन्या द्वारा कही हुई उसकी प्राणप्रिय बातों को सुनो ! वह तुम्हारे लिए इसके वक्षस्थल को ताड़ित कर यह बतायी कि 'हम दोनों' मित्र (अर्थात् दोनों हृदय) कब एक होंगे । मित्र ! तुम्हारी अमृतमयी वाणी सुनकर मेरे शरीर में रज उत्पन्न हो गया है । अतः रजस्वला से शुद्ध होकर मैं तुम्हारे मुख का चुम्बन मात्र करूँगी । उसकी कही हुई ये बातें सुनकर वह राजकुमार परमहर्षित हुआ । तीन दिन के पश्चात् वह वृद्धा पुनः पद्मावती के पास जाकर उससे कही—तुमसे मिलने के लिए वह राजा बहुत उत्सुक है, इसीलिए वह बार-बार तुम्हारे दर्शन की लालसा प्रकट कर रहा है । अतः सुश्रोणि ! आज उसकी सेवा करके अपने जीवन को सफ़ल करो । इसे सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और गवाक्ष (खिड़की) के मार्ग से उसे निकालकर उसकी पीठ में भीगी हुई अंगुलियों समेत (हाथ के) तलवे से अंकित कर दिया । पश्चात् उस वृद्धा ने मंत्रि-पुत्र (बुद्धिदक्ष) के पास जाकर उस वृत्तान्त

प्रसन्नो बुद्धिदक्षश्च मित्रं प्राह शृणुष्व भोः। पश्चिमे दिशि भोः स्वामिन्गवाक्षं तव निर्मितम् ॥३८
अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्य भज मां कामविह्वलाम्। श्रुत्वा तद्वज्रमुकुटः प्रियादर्शनलालसः ॥३९
ययौ शीघ्रं महाकामी रमणीं तामरामयत्। मासान्ते कामशिथिलो मित्रदर्शनलालसः ॥४०
पद्मावतीं प्रियां प्राह शृणु वाक्यं वरानने। येन प्राप्तवती मह्यं त्वं सुभ्रूः सुरदुर्लभा ॥४१
तन्मित्रं बुद्धिदक्षश्च किं नु तिष्ठति साम्प्रतम्। आज्ञां देहि प्रिये मह्यं दृष्ट्वा यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥४२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य निष्ठुरं कुलिशोपमम्। मिष्टान्नं सविषं कृत्वा मन्त्रिणे सा न्यवेदयत् ॥४३
तदा तु बुद्धिदक्षश्च चित्रगुप्तप्रपूजकः। ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं न तु भक्षितवान्स्वयम् ॥४४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भूपतिस्त्वरयान्वितः। विवेकवन्तं मित्रं तं दृष्ट्वा प्राह रुषान्वितः ॥४५
कस्मान्न खादितं मित्र भोजनं मत्प्रियाकृतम्। विहस्य बुद्धिदक्षस्तु सारमेये ददौ हि तत् ॥४६
भुक्त्वा स मरणं प्राप्तः स दृष्ट्वा विस्मितो नृपः। स्त्रीचरित्रं च विज्ञाय स्नेहं त्यक्त्वाऽब्रवीत्तु तम् ॥४७
मित्र गच्छ गृहं शीघ्रं मया त्यक्ता च पापिनी। स आह शृणु भूपाल गच्छ शीघ्रं प्रियान्तिकम् ॥४८
तदलङ्कारमाहृत्य त्रिशूलं कुरु जानुनि। प्रसुप्तां त्यज भो मित्र या हि त्वं मा विचारय ॥४९
इति श्रुत्वा ययौ भूपस्तथा कृत्वा समागतः। स्वमित्रेण ययौ सार्धं श्मशाने रुद्रमण्डपे ॥५०

को सुनाया।२७-३७। प्रसन्न होकर बुद्धिदक्ष ने मित्र से कहा—स्वामिन्! पश्चिम दिशा की खिड़की तुम्हारे मार्ग के लिए निश्चित है, उसने कहा है उसी मार्ग से आधी रात के समय आकर मेरी कामपीड़ा की शान्ति के लिए मेरा आलिङ्गन करो। इसे सुन कर (अपनी) प्रिया का दर्शनाभिलाषी एवं महाकामी उस वज्र- मुकुट ने शीघ्रतया वहां पहुंचकर उस रमणी के साथ रमण किया। एक मास के उपरांत काम से शिथिल होने पर उसने अपने मित्र के दर्शन के लिए अभिलाषा प्रकट करते हुए पद्मावती से कहा—वरानने! मेरी एक बात सुनो! जिस (व्यक्ति) के द्वारा मैंने तुम जैसी सुन्दर भौहों वाली स्त्री को प्राप्त किया, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ मानी जाती है।२८-४१। वह मेरा परममित्र बुद्धिदक्ष इस समय यहाँ वर्तमान है, अतः प्रिये! मुझे आज्ञा प्रदान करो, मैं उससे मिलकर पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा। वज्र के समान निष्ठुर इस बात को सुनकर उसने विष मिले मिष्ठान्न (मिठाई) उस मंत्रि-पुत्र के लिए उपहार दिया। बुद्धिदक्ष भी चित्रगुप्त की उपासना करता था, इसीलिए उसके कारण को समझ उसका भक्षण नहीं किया। उसी समय राजकुमार ने आकर विवेक करते हुए अपने मित्र से क्रुद्ध होकर कहा—मित्र! मेरी प्रिया द्वारा बनाये गये इस पकवान का भक्षण क्यों नहीं कर रहे हो! बुद्धिदक्ष ने हँसकर उसे किसी कुत्ते को दे दिया वह खाते ही मर गया। उसे देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ। उस समय स्त्रीचरित्र की ओर ध्यान देकर उसने उस (स्त्री) स्नेह के त्याग पूर्वक मित्र से कहा—मित्र! मैंने उस पापिनी का त्याग कर दिया! अब शीघ्र घर चलो। उसने कहा—राजन्, सुनो! तुम अपनी उस प्रिया के पास शीघ्र जाओ। वहाँ जाकर उसके आभूषण का अपहरण करते हुए उसकी जानु (घुटने) त्रिशूल से अंकित कर देना। मित्र! उसके इस सुलभ मिलाप का त्याग कर मेरी इस बात को बिना विचारे ही करो। इसे स्वीकार कर वह राजा उस कार्य को बताये हुए के अनुसार करके लौट आया और अपने मित्र के साथ श्मशान के समीप वाले शिवालय की ओर चल दिया।४२-५०। वहाँ (बुद्धिदक्ष ने) अपना योगी का वेष बनाकर

शिष्यं कृत्वा नृपं तं स योगरूपो हि भूषणम् । विक्रयार्थं ददौ तस्मै स्वमित्राय स बुद्धिमान् ।।५१
स वज्रमुकुटो मत्वा तदाज्ञां नगरं गतः । चोरोयमिति तं मत्वा बद्धा राज्ञो हि रक्षिणः ।५२
शीघ्रं निवेदयामासुर्दन्तवक्त्रस्तमब्रवीत् । क्व प्राप्तं भूषणं रम्यं सर्वं कथय पूरुष ।।५३
जटिलः प्राह भो राजन्श्मशाने मद्गुरुः स्थितः । तेन दत्तं विक्रयार्थं भूषणं स्वर्णगुण्ठितम् ।।५४
इति श्रुत्वा स नृपतिस्तूर्णमाहूय तद्गुरुम् । भूषणं पृष्टवान् राजा योगी प्राह शृणुष्व भोः ।।५५
श्मशाने सधितं मन्त्रं मया योगिस्वरूपिणा । पिशाची प्रापिता काचित्तस्याश्चिह्नं मया कृतम् ।।५६
वामजानुनि शूलेन तया दत्तं हि भूषणम् । ज्ञात्वा तत्कारणं राजा सुता निष्कासिता गृहात् ।।५७
स वज्रमुकुटस्तां तु गृहीत्वा गृहमाययौ । विहस्य प्राह वैतालः शृणु विक्रमभूपते ।।५८
कस्मै पापं महत्प्राप्तं चतुर्णां मे वदाधुना !!

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूपतिः ।।५९
विहस्य भार्गवं प्राह प्राप्तं पापं हि भूपतेः । मित्रकार्यममात्येन स्वामिकार्यं च रक्षिभिः ।।६०
भूपपुत्रेणार्थसिद्धं कृतं तस्माच्च भूपतेः । महत्पापं च सम्प्राप्तं तेनासौ नरकं गतः ।।६१
रजोवतीं सुतां दृष्ट्वा न विवाहेत यो नरः । स पापी नरकं याति षष्टिवर्षसहस्रकम् ।।६२
गान्धर्वं च विवाहं वै कामिन्या च कृतं यया । तस्या विघ्नकरो यो वै स पापी यमपीडितः ।।६३

उस राजा को शिष्य बनाया, पश्चात् उस बुद्धिमान् ने उस आभूषण को विक्रयार्थ अपने मित्र को सौंप दिया। बज्रमुकुट भी उस आज्ञा को शिरोधार्य कर नगर में पहुँच गया। उसी बीच राजा के रक्षक (सिपाही) उसे चोर समझ बाँधकर राजा के सामने उपस्थित किये। राजा दन्तवक्त्र उससे बोले—हे मनुष्य! यह सुन्दर आभूषण तुम्हें कहाँ कैसे प्राप्त हुआ, सब बातें मुझसे कहो! उस जटाधारी ने कहा—राजन्! श्मशान स्थान में मेरे गुरु रहते हैं, सुवर्ण से आच्छन्न इस आभूषण को विक्रयार्थ उन्होंने मुझे दिया है। इसे सुनकर राजा ने शीघ्र उस गुरु को बुलाकर उस भूषण प्राप्ति के विषय में पूँछा। अनन्तर योगी ने कहा—(मैं बता रहा हूँ) आप लोग सुनिये! मैं योगी का वेष धारण कर श्मशान में मंत्र सिद्धि कर रहा था, उसी बीच कोई पिशाचिनी वहाँ आई। मैंने अपने त्रिशूल से उसके घुटने में चिह्नकर दिया है, उसी ने यह आभूषण प्रदान किया। राजा उसके कारण को समझ कर अपनी पुत्री को घर से निकाल दिया। पश्चात् बुद्धिदक्ष वज्रमुकुट समेत उस राजकुमारी को साथ लेकर अपने घर आया। इतनी बातें कहने के उपरांत बैताल ने हँसकर विक्रमादित्य से कहा—राजन् सुनो! इन चारों में किसको अधिक पाप का भागी होना पड़ा! ५१-५८

सूतजी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रमादित्य ने हँसकर कहा कि पाप का भागी राजा हुआ क्योंकि मंत्री ने मित्रकार्य, सेवकों ने स्वामी का कार्य और राजकुमार ने अपना स्वार्थ सम्पन्न किया। अतः महापापी राजा ही हुआ जिसके नाते उसे नरक की प्राप्ति हुई। जो मनुष्य अपनी कन्या का विवाह उसके रजस्वला होने की जानकारी रखते हुए भी नहीं करता है, उस पापी को साठ सहस्र वर्ष तक नरक का अनुभव करना पड़ता है। अपने गान्धर्व विवाह के लिए कन्या के तैयार होने पर जो कोई उसमें बाधक

अदृष्टदोषां यः कन्यां विवेकेन विना त्यजेत् । स पापी नरकं याति लक्षवर्षप्रमाणकम् ॥६४
इति श्रुत्वा स वैतालो धर्मगाथां नृपेरिताम् । प्रसन्नहृदयः प्राह भूपतिं धर्मतत्परम् ॥६५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१

द्वितीयोऽध्यायः

कलियुगेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्रसन्नमनसं भूपं महासिंहासने स्थितम् । द्विजवर्यः स वैतालो वचः प्राह प्रसन्नधीः ॥१
एकदा यमुनातीरे धर्मस्थलपुरी शुभा । धनधान्यसमायुक्ता चतुर्वर्णसमन्विता ॥२
गुणाधिपो महीपालस्तत्र राज्यं चकार वै । हरिशर्मा पुरोधास्तु स्नानपूजनतत्परः ॥३
तस्य पत्नी सुशीला च पातिव्रतपरायणा । सत्यशीलः सुतो जातो विद्याध्ययनतत्परः ॥४
तस्यानुजा मधुमती शीलरूपगुणान्विता । द्वादशाब्दवयः प्राप्ते विवाहार्थं पिता यदा ॥५
भ्राता बभ्राम तौ सर्वं चिन्तुतश्च सुतावरम् । कदाचिद्राजपुत्रस्य विवाहे समतो द्विजः ॥६
पठनार्थे तु काश्यां वै सत्यशीलः स्वगं गतः । एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्विजः कश्चित्समागतः ॥७

होता है, वह पापी यमराज द्वारा दंडित होता है, विवेकहीन होकर उसके परित्याग करने पर उस पापी को एक लक्ष वर्ष तक नरक-यातना का अनुभव करना पड़ता है । इस मार्मिक गाथा को सुनकर, जिसे राजा ने विवेकपूर्ण बताया था, प्रसन्न होकर उस बैताल ने उस धार्मिक राजा से कहा—५९-६५

श्री भविष्यमहापुराण प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीयइतिहास
समुच्चय वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

कलियुग के इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! उस वैताल ने प्रसन्नतापूर्ण होकर प्रसन्नचित्त वाले उस राजा से कहा । जो उस समय महासिंहासन पर सुशोभित हो रहा था । एक बार यमुना जी के तट पर धर्मस्थल नामक एक सुन्दर पुरी में, जो धन-धान्य से परिपूर्ण, एवं चारों वर्णो के मनुष्यों से युक्त थी, गुणाधिप नामक राजा राज्य कर रहा था । स्नान पूजन के लिए नियत हरिशर्मा नामक उनके पुरोधा (पुरोहित) थे । सुशीला नामक पतिव्रतपरायणा उनकी पत्नी एवं सत्यशील नामक पुत्र था, जो विद्याध्ययन के लिए कटिबद्ध रहता था । शील, रूप, और गुणों से सम्पन्न मधुमती नामक उनकी एक पुत्री भी थी । बारह वर्ष की अवस्था होने पर उसके विवाहार्थ पिता और भ्राता दोनों कन्यां के अनुरूप वर की खोज करने लगे । उसी बीच पिता राजकुमार के विवाह में और भ्राता सप्तशील अपने अध्ययनार्थ काशी चला गया । राजन् ! उस

वामनो नाम विख्यातो रूपशीलवयोवृतः । सुता मधुमती तं च दृष्ट्वा कामातुराऽभवत् ॥८
भोजनं छादनं पानं स्वप्नं त्यक्त्वा च विह्वला । चकोरीव विना चन्द्रं कामबाणप्रपीडिता ॥९
दृष्ट्वा सुशीला तं बाला वामनं ब्राह्मणं तथा । वारयामास ताम्बूलैः स्वर्णद्रव्यसमन्वितैः ॥१०
हरिशर्मा प्रयोगे च द्विजं दृष्ट्वा त्रिविक्रमम् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं सुतार्थेऽवरयत्तदा ॥११
सत्यशीलस्तु काश्यां वै गुरुपुत्रं च केशवम् । वरित्वा तं भगिन्यर्थे ययौ गेहं मुदान्वितः ॥१२
माघकृष्णत्रयोदश्यां भृगौ लग्नं शुभं स्मृतम् । त्रयो विप्रास्तदा प्राप्ताः कन्यार्थं रूपमोहिताः ॥१३
तस्मिन्काले तु सा कन्या भुजङ्गेनैव दंशिता । मृता प्रेतत्वमापन्ना पूर्वकर्मप्रभावतः ॥१४
तदा ते ब्राह्मणः यत्नं कारयामासुरुत्तरम् । न जीवनवती बाला गरलेन विमोहिता ॥१५
हरिशर्मा तु तत्सर्वं कृत्वा वेदविधानतः । आययौ मन्दिरं राजन्सुतागुणविमोहितः ॥१६
त्रिविक्रमस्तु बहुधा दुःखं कृत्वा स्मरानुगः । कन्थाधारी यतिर्भूत्वा देशाद्देशान्तरं ययौ ॥१७
केशवस्तु महादुःखी प्रियास्थीनि गृहीतवान् । तीर्थात्तीर्थान्तरं प्राप्तः कामबाणेन पीडितः ॥१८
भस्मग्राही वामनस्तु विरहाग्निप्रपीडितः । तस्थौ चितायां कामार्तः पत्नीध्यानपरायणः ॥१९
एकदा सरयूतीरे लक्ष्मणाख्यपुरे शुभे । त्रिविक्रमस्तु भक्षार्थे सम्प्राप्तो द्विजमन्दिरे ॥२०
तस्मिन्दिने रामशर्मा शिवध्यानपरायणः । यतिनं वरयामास भोजनार्थं स्वमन्दिरे ॥२१

समय वामन नामक एक ब्राह्मण, जो रूप, शील एवं वयस्क था, हरिशर्मा के यहाँ आ पहुँचा । मधुमती कन्या उसे देखकर कामातुर हो गई उसने व्याकुल होकर भोजन, वस्त्र, पान और शयन का त्यागकर दिया केवल चन्द्र के वियोग में चकोरी की भाँति कामबाण की पीड़ा का अनुभव करने लगी ।१-९। सुशीला ने अपनी पुत्री की अवस्था और उस वामन ब्राह्मण को देखकर कुछ स्वर्ण द्रव्य के साथ ताम्बूल प्रदान द्वारा उसका वरण कर लिया । हरिशर्मा ने प्रयाग में किसी त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण को देखकर, जो वेद और वेदाङ्ग के तत्त्व का निष्णात ज्ञाता था, अपनी कन्या के निमित्त उसका वरण किया । उधर सत्यशील ने केशव नामक अपने गुरुपुत्र को अपनी बहिन के निमित्त वरण करके अत्यन्त आनन्द विभोर होता हुआ घर को प्रस्थान किया। माघकृष्ण त्रयोदशी शुक्रवार के दिन शुभ लग्न में कन्या का पाणिग्रहण करने के लिए वे तीनों ब्राह्मण उसके रूप पर मोहित होकर वहाँ पहुँच गये। उसी समय किसी सर्प ने उस कन्या को काट लिया, जिससे पूर्व कर्म के प्रभाव से उसे प्राण त्यागने पर प्रेत होना पड़ा। उस समय उन तीनों ब्राह्मणों ने उसकी प्राणरक्षा के लिए अनेक यत्न किया, पर विष की तीक्ष्णतावश वह स्त्री जीवित न रह सकी। पश्चात् हरिशर्मा ने वैदिक विधान द्वारा उसकी अन्येष्टि क्रिया समाप्त की। राजन् ! अपनी कन्या के गुणों के स्मरण द्वारा अत्यन्त मुग्ध होते हुए वे अपने घर लौट आये।१०-१६। आये हुए उन ब्राह्मणों में त्रिविक्रम काम पीड़ित होकर अनेक दुखों का अनुभव करता हुआ कंधा (गुदड़ी) धारण कर देश-देशान्तर भ्रमण के लिए चल पड़ा। केशव ने महादुःखी होकर अपनी प्रिया की अस्थियों का संचय करके कामबाण से पीड़ित होकर एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को प्रस्थान किया। और वामन उसके विरह से संतप्त होकर उसके भस्म को लेकर कामार्त एवं केवल पत्नी का ध्यान करता हुआ चिता पर बैठ गया।१७-१९। एक बार सरयू नदी के तट पर स्थित लक्ष्मण नामक नगर में किसी ब्राह्मण के दरवाजे पर भिक्षा के निमित्त त्रिविक्रम पहुँच गया। शिवध्यान का पारायण करने वाले रामशर्मा ने उस दिन भोजनार्थ अपने घर

तस्य पत्नी विशालाक्षी रचित्वा बहुभोजनम् । आहूय यतिनं राजन्पात्रमालभमाकरोत् ॥२२
तस्मिन्काले च तद्बालो मृतः पापवशं गतः । अरोदीतस्य सैरन्ध्री विशालाक्ष्यपि भर्त्सिता ॥२३
न रोदनं त्यक्तवती पुत्रशोकाग्नितापिता । रामशर्मा तदा प्राप्तो मन्त्रं सञ्जीवनं शुभम् ॥२४
जपित्वा मार्जनं कृत्वा जीवयामास बालकम् । विनयाननतो विप्रस्तं च संन्यासिनं तदा ॥२५
भोजनं कारयित्वा तु मन्त्रं सञ्जीवनं ददौ । त्रिविक्रमस्तु तं मन्त्रं पठित्वा यमुनातटे ॥२६
प्राप्तवान्यत्र ता नारी दाहिता हरिशर्मणा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजपुत्रो मृतिं गतः ॥२७
दाहितस्तनयः पित्रा शोककर्त्रा तदामुना । जीवनं प्राप्तवान्बालस्तस्य मन्त्रप्रभावतः ॥२८
गुणाधिपस्य तनयो राज्ञो धर्मस्थलीपतेः । त्रिविक्रमं वचः प्राह वीरबाहुर्महाबलः ॥२९
जीवनं दत्तवान्मह्यं वरयाद्य वरं मम । स विप्रः प्राह भो राजन्केशवो नाम यो द्विजः ॥३०
गृहीत्वास्थि गतस्तीर्थे तमन्वेजय मा चिरम् । वीरबाहुस्तथा मत्वा दूतमार्गेण तं प्रति ॥३१
प्राप्तस्तं कथयामास यथा प्राप्तं हि जीवनम् । इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवोऽस्थिसमन्वितः ॥३२
प्रगत्यास्थीनि सर्वाणि ददौ तस्मै द्विजातये । पुनः सञ्जीविता बाला केशवादीन्वचोऽब्रवीत् ॥३३
योग्या धर्मेण यस्याहं तस्मै प्रयामि धर्मिणे । इति श्रुत्वा वचस्तस्य मौनव्रतस्त्रयः स्थिताः ॥३४
अतस्त्वं विक्रमादित्य धर्मज्ञ कथयस्व मे । कस्मै योग्या च सा बाला नाम्ना मधुमती शुभा ॥३५

उस यती (संन्यासी) को बुलाया था। उनकी पत्नी विशालाक्षी अनेक भाँति के भोजन पात्र में आये हुए यति के सम्मुख रख रही थी, कि राजन् ! उसी समय उसका पुत्र अपने कर्म के प्रभाव से मृतक हो गया। पश्चात् उनकी सहचरी विशालाक्षी ने जब भर्त्सना करने पर भी पुत्रशोक से संतप्त होने के कारण रुदन करना बन्द नहीं किया। तब रामशर्मा ने संजीवनी मंत्र की प्राप्ति करके उसके जप और संमार्जन द्वारा पुत्र को जीवित किया। अनन्तर विनम्र होकर उस ब्राह्मण ने उस संन्यासी को भोजन कराकर उसे शुभसंजीवनीमंत्र भी प्रदान किया। त्रिविक्रम ने उस मंत्र की सिद्धि यमुना तट के उस स्थान पर प्राप्त की, जहाँ हरिशर्मा ने उस स्त्री (पुत्री) का दाह किया था। उसी समय वहाँ के राजपुत्र का निधन हो गया। उपरांत उसके पिता ने शोक-संतप्त होकर उसका दाहकर्म किया। उस बालक ने भी उस मंत्र के प्रभाव से जीवदान प्राप्त किया। तदुपरांत राजा गुणाधिप के उस महाबली पुत्र ने जिसे उस मंत्र के प्रभाव से जीवनदान प्राप्त हुआ था, त्रिविक्रम से कहा—आप ने मुझे जीवनदान दिया है, अतः मन इच्छित वरदान माँग लीजिये। ब्राह्मण ने कहा—राजन् ! केशव नाम का ब्राह्मण जो अस्थियों को लेकर तीर्थ चला गया है, शीघ्र उसका अन्वेषण होना चाहिए। राजकुमार वीरबाहु ने दूत द्वारा अपनी जीवनदान प्राप्ति की कथा उससे कहला दिया। ऐसी बातें सुनकर केशव ने अस्थियों समेत मार्ग से ही वापस आकर उस ब्राह्मण (त्रिविक्रम) को समस्त अस्थियाँ प्रदान की। अनन्तर जीवित होने पर वह स्त्री केशव आदि उन तीनों ब्राह्मणों से कहने लगी कि धर्मतः मैं जिसकी स्त्री होने के योग्य हूँ, उसी धार्मिक के साथ मैं चलने के लिये तैयार हूँ। इसे सुनकर वे तीनों ब्राह्मण मौन हो गये। अतः धर्मज्ञ, विक्रमादित्य तुम्हीं इसका निर्णय बताओ कि वह मधुमती नामक कन्या किसकी स्त्री होने के योग्य है।२०-३५

सूत उवाच

विहस्य विक्रमादित्यो वैतालं प्राह नम्रधीः । योग्या मधुमती नारी वामनाय द्विजन्मने ।।३६
प्राणदाता तु यो विप्रः पितेव गुणतत्परः । अस्थिदाता तु यो विप्रो भ्रातृतुल्यस्स वेदवित् ।।३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

कलियुगभूपाख्यानेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विप्रवर्य महाभाग शृणु गाथां मनोरमाम् । वैतालो भूपतिश्रेष्ठ पुनर्विक्रममब्रवीत् ।।१
वर्द्धवन्नगरे रम्ये नानाजननिषेविते । तत्राभवन्महीपालो रूपसेनो महाबलः ।।२
विद्वन्माला प्रिया तस्य पतिसेवापरायणा । एकदा क्षत्रियः कश्चिन्नाम्ना वीरवरः स्मृतः ।।३
पुत्रकन्यासपत्नीको वृत्त्यर्थं समुपागतः । विनयावनतो भूत्वा रूपसेनं महीपतिम् ।।४
किञ्चिच्छ्रुत्वा ददौ स्वर्णं सहस्रं प्रत्यहं नृप । वीरसेनस्तु तल्लब्ध्वा वह्नौ तीर्थे द्विजातिषु ।।५
व्ययं कृत्वा तु तच्छेषं स कुल्ये भुक्तवान्स्वयम् । एवं वर्षे गते राजन्राजलक्ष्मीः शिवाज्ञया ।।६

सूत जी बोले—नम्रता पूर्वक राजा विक्रमादित्य ने हँसकर वैताल से कहा—वह मधुमती कन्या उस वामन नामक ब्राह्मण की स्त्री होने के योग्य है । क्योंकि प्राण देने वाला पिता के समान और अस्थि देने वाला, भ्राता के समान होता है ।३६-३७

श्री भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

कलियुग के भूपाख्यानेतिहास समुच्चय का वर्णन

शौनक ने कहा—महाभाग, श्रेष्ठ विप्रवृन्द ! सुन्दर गाथा कह रहा हूँ सुनो ! वैताल ने उस श्रेष्ठ राजा विक्रमादित्य से कहा—वर्द्धमान नामक नगर में, जो रमणीक एवं अनेक भाँति के मनुष्यों से सुसेवित था, महाबली रूपसेन नामक राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम विद्युन्माला था, जो पति सेवा का ही पारायण करती थी । एक वार वीरवर नामक एक क्षत्री अपने पुत्र, कन्या और पत्नी समेत सेवावृत्ति (नौकरी) के लिए उस राजा के दरबार में उपस्थित हुआ और विनम्र होकर उसने राजा रूपसेन से कह कर नौकरी निश्चित करा लिया जिसमें राजा प्रतिदिन एक सहस्र सुवर्ण की मुद्रा उसे प्रतिदिन देने लगा । वीरसेन (वीरवर) उसे वेतन के रूप में ग्रहण कर अग्नि, तीर्थ, एवं द्विजातियों में व्यय करने से जो अवशिष्ट होता था, उसी से अपने परिवार समेत जीवन निर्वाह करता था । राजन् ! इस प्रकार एक वर्ष

परीक्षार्थं श्मशाने च रोदनं बहु कुर्वती । अर्धरात्रे तदा राजा बुद्ध्वा प्राह स्वसेवकम् ॥७
गच्छ वीरवर त्वं वै यतोऽसौ श्रूयते रवः । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं मह्यं शीघ्रं निवेदय ॥८
इति श्रुत्वा वीरवरः शस्त्रास्त्रकुशलो बली । स तत्र गत्वा यत्रास्ते राजलक्ष्मीः शुभानना ॥९
श्लक्ष्णं वचश्च तामाह किमर्थं रोदने स्थिता । महत्कष्टं च किं प्राप्तं कारणं देवि मे वद ॥१०
इति श्रुत्वा राजलक्ष्मीर्वीरसेनं तमब्रवीत् । राजलक्ष्मीं च मां विद्धि रूपसेनस्य भूपतेः ॥११
मासान्ते प्रलयं यास्ये तस्माच्छोचामि भो बलिन् । स आह शृणु भो देवि त्वदल्पायुस्समीरितम् ॥
केन पुण्येन दीर्घायुस्त्वं भवेः कारणं वद ॥१२

देव्युवाच

महाबाहो महाप्राज्ञ यदि ते तनयस्य वै ॥१३
कपालमर्पय त्वं च चण्डिकायै तदानघ । दीर्घायुर्भविता चाहं स्वामिकार्यं प्रसाधय ॥१४
इति श्रुत्वा वीरवरो मन्दिरे स्वयमागतः । पत्नीं प्राह प्रसन्नात्मा सुतं देव्यै निवेदय ॥१५
तथेत्युक्त्वा तु सा साध्वी तनयं प्राह निर्भया । राज्ञोऽर्थे तव देहं वै पुत्र पासि कुरुष्व तत् ॥१६
तथा मत्वा तु तत्पुत्रो भगिन्या मातृसंयुतः । चण्डिकाभवनं प्राप्याब्रवीत्स्वपितरं तदा ॥१७
भोस्तात मे कपालं च चण्डिकायै समर्पय । दीर्घायुर्येन यत्नेन राजलक्ष्मीश्च तत्कुरु ॥१८

के व्यतीत होने के उपरांत भगवान् शिव की आज्ञा शिरोधार्यकर राजलक्ष्मी उस (वीरवर) की परीक्षा के लिए श्मशान में जाकर अत्यन्त रुदन करने लगी । आधी रात के समय राजा जागकर अपने सेवक से कहा—वीरवर ! जाओ इस (रुदन की) ध्वनि का, जिसे तुम सुन रहे हो, कारण का भलीभाँति पता लगाकर शीघ्र मुझसे कहो । ऐसा सुनकर शस्त्रास्त्र के निपुण एवं बली उस वीरवर ने वहाँ जाकर जहाँ वह राजलक्ष्मी रुदन कर रही थी, उस शुभ मुखवाली से प्रियवाणी कहा—देवि ! क्यों रुदन कर रही हो, तुम्हें क्या महान् कष्ट है, मुझे बताओ ! इसे सुनकर राजलक्ष्मी ने उस वीरसेन से कहा—बलिन् ! मै राजा रूपसेन की राजलक्ष्मी हूँ, इस मास के अन्त समय में मेरा प्रलय (नाश) हो जायेगा, इसीलिए मैं शोक कर रही हूँ । पश्चात् उसने कहा—देवि ! सुनो इससे तो तुम्हारी अल्पायु मालूम हो रही है, किन्तु किसी पुण्य के द्वारा तुम्हारी दीर्घायु संभव हो सके, तो उसे बताने की कृपा करो ।१-१२

देवी जी बोली—महाबाहो, महाप्राज्ञ ! यदि तुम, अपने पुत्र का शिर चण्डिका देवी के लिए अर्पित कर सको तो हे अनघ ! मेरी दीर्घायु हो जाये । अतः अपने स्वामी के लिए इसकी सिद्धि अवश्य करो । इसे सुनकर वीरवर ने स्वयं अपने घर, आकर प्रसन्न हृदय से पत्नी से कहा—पुत्र, देवी जी के लिए समर्पित कर दो' उस पतिव्रता ने निर्भय होकर उसे स्वीकार किया, पश्चात् पुत्र से कहा—'पुत्र ! राजा के किसी कार्य के लिए ही तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण किया गया है, अतः उसे अवश्य पूरा करो ।' पुत्र ने उसे स्वीकार कर अपनी भगिनी और माता के साथ चण्डिका देवी के मंदिर में पहुँचकर अपने पिता से कहा—हे पिता ! मेरा शिर चण्डिका के लिए समर्पित कर दीजिये क्योंकि राजलक्ष्मी जिस प्रकार से दीर्घायु प्राप्त करें, वह

इति श्रुत्वा वीरसेनः शिरश्छित्त्वा समर्पयत् । तस्यानुजा मृता तत्र तथा माता तथा पिता ।।१९
दृष्ट्वा तद्रूपसेनस्तु कारणं सर्वमादितः । सेवकं सत्यसन्धं च मत्वा तु स्वशिरोऽर्पयत् ।।२०
तदा प्रसन्ना सा देवी नृपनुज्जीव्य साब्रवीत् । वरं वरय भूपाल यथेष्टं शीघ्रमाप्नुयाः ।।२१
स आह वीरसेनस्तु सकुलो जीवमाप्नुयात् । तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तर्हिताभवत् ।।२२
रूपसेनः प्रसन्नात्मा स्वसुतां कामरूपिणीम् । ददौ सुताय वैतालो नृपतिं प्राह विस्मितः ।।
मुख्यस्नेहं कृतं केन तेषां मध्ये वदस्व मे ।।२३

राजोवाच

मुख्यस्नेहं कृतं राज्ञा दासार्थे स्वतनुं ददौ । स्वर्णस्नेही वीरवरो धर्मप्रीतिः पतिव्रता ।।
बन्धुप्रीतिश्च भगिनी पितृस्नेही तु पुत्रकः ।।२४
महान्स्नेहः कृतो राज्ञा रूपसेनेन धीमता ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम तृतीयोऽध्यायः ।३

कार्य हम लोगों को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए । ऐसा सुनकर वीरसेन ने उसका शिर काटकर देवी को अर्पित कर दिया । तत्पश्चात् उसी प्रकार क्रमशः उसकी भगिनी, माता और पिता सभी लोग मृतक हो गये । आदि से अंत तक समस्त कारण को जानकर राजा रूपसेन ने अपने उस सेवक को सत्यवक्ता समझते हुए, अपना भी शिर अर्पित कर दिया । उस समय प्रसन्न होकर देवी ने राजा को प्राणदान देकर उससे कहा—राजन् ! यथेच्छ वरदान माँगो, मैं उसे शीघ्र देने को तैयार हूँ । राजा ने कहा—यह वीरसेन सपरिवार जीवित हो जायें । वैसा ही करके देवी उसी समय अन्तर्हित हो गईं । तदुपरांत रूपसेन ने प्रसन्न होकर सौन्दर्यपूर्ण अपनी पुत्री का पाणिग्रहण उस (वीरवर) के पुत्र के साथ सुसम्पन्न कर दिया । अनन्तर वैताल आश्चर्य करता हुआ (विक्रम) से कहा । उनमें मुख्य स्नेह किसका था ।१३-२३

राजा ने कहा—मुख्य स्नेह राजा का था, क्योंकि अपने सेवक के निमित्त उसने अपनी शरीर का परित्याग किया था । और वीरवर उस सुवर्ण की मुद्रा का स्नेही था, उसकी पतिव्रता धर्म से प्रेम करती थी, भगिनी अपने माता की प्रेमिका थी और उसका पुत्र अपने पिता का स्नेही था । इसलिए बुद्धिमान् राजा रूपसेन ने उन लोगों के साथ महान् स्नेह प्रकट किया ।२४-२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयभूपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । काचिद्भोगावती नाम्ना नगरी परमाद्भुता ।।१
रूपवर्मा च नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै । चूडामणिरिति ख्यातः शुको बुद्धिविशारदः ।।२
तस्य भूपस्य गेहे च निवसञ्छुभपञ्जरे । कदाचिद्रूपवर्मा च त्रिंशदब्द उरूर्जितः ।।३
पप्रच्छ मम योग्या वै शुक काचिद्वराङ्गना । चेदास्ते तर्हि मे ब्रूहि श्रुत्वा तं चाब्रवीच्छुकः ।।४
मगधेश्वरभूपस्य कन्या चन्द्रवती शुभा । तव योग्या हि भो राजन्साम्प्रतं तां गृहाण वै ।।५
इति श्रुत्वा स नृपतिर्गणेशं द्विजसत्तमम् । प्रेषयित्वा ददौ द्रव्यं यथोद्वाह्या तथा कुरु ।।६
गणेशोऽपि गतस्तूर्णं देशे मागधके शुभे । महादेवं च सम्पूज्य चकार स्तवनं मुदा ।।७
नमः शिवाय शान्ताय सर्वाभीष्टप्रदायिने । भवाय शङ्करायैव रुद्राय सततं नमः ।।८
मृडायानन्दरूपाय सर्वदुःखहराय च ।।९
इत्युक्तवति विप्रे च तदा चन्द्रवती शुभा । कामातुराब्रवीच्चैनां नाम्ना मदनमञ्जरीम् ।।१०
मम योग्यश्च पुरुषः कश्चिदस्ति महीतले । साऽह भो रूपवर्मा च योग्यो भोगापुरीपतिः ।।११

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत उवाच—इसे सुनकर वैताल ने राजा से पुनः कहा—परम अद्भुत एक भोगावती नामक नगरी है, जिसमें रूपवर्मा नामक राजा राज करता था। उसके बुद्धिविशारद एक शुक (तोता) था, जिसका नाम चूडामणि बताया गया है। वह उस राजा के यहाँ एक सुन्दर पिंजरे में रहता था। तीस वर्ष की अवस्था होने पर किसी समय उस रूपवर्मा ने उस शुक से पूँछा—शुक ! मेरे योग्य कोई सुन्दरी है ! यदि है, तो बताओ ! उसे सुनकर उस शुक ने कहा—राजन् ! मगध देश के राजा की पुत्री, जिसका नाम चन्द्रावती है, आप के योग्य है, इस समय उसी का ग्रहण कीजिये। ऐसा सुनकर उस राजा ने गणेश नामक किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को यथेच्छ धन देकर उससे कहा—जिस प्रकार उसके साथ विवाह हो सके, वही कीजियेगा। यह गणेश नामक ब्राह्मण भी शीघ्रतया मगध देश में पहुँचकर वहाँ महादेव जी की प्रार्थना करके प्रसन्नचित्त से उनकी स्तुति करने लगा। शिव, शान्त, एवं समस्त अभीष्ट के प्रदायक को नमस्कार है, भव, शंकर एवं रुद्र के लिए अनवरत नमस्कार है। मृड, आनन्दरूप, तथा सम्पूर्ण दुःख के अपहरण करने वाले को नमस्कार है। इस प्रकार उस ब्राह्मण के स्तुति करने के समय में चन्द्रावती कामातुर होकर मदनमंजरी नामक मैना से कहने लगी—इस भूतल में मेरे योग्य कोई पुरुष है ? उसने कहा—भोगावती पुरी का राजा रूपवर्मा तुम्हारे योग्य हैं। यह सुनकर उस राजपुत्री ने मनोरथ सिद्धि

इति श्रुत्वा तु सा देवी दुर्गां वाञ्छितदायिनीम् । तुष्टाव मनसा सुभ्रूर्यया जातमिदं जगत् ।।१२
नमो नमो जगन्मातर्मम कार्यप्रदायिनि । त्रिलिङ्गजननी त्वं वै वर्णमूर्तिः सनातनी ।।१३
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा सन्ध्या नमस्तस्यै नमो नमः । नृपतिं रूपवर्माणं मत्पतिं कुरु भोः शिवे ।।१४
इति स्तुत्या प्रसन्नाभूज्जगदम्बा जगन्मयी । पितरं मगधेशं च मोहयित्वा च मातरम् ।।१५
विवाहं कारयामास मासान्ते सिद्धरूपिणी । रूपवर्मा चन्द्रवती बुभुजाते परं सुखम् ।।१६
एकस्मिन्दिवसे राजन्मेनां मदनमञ्जरीम् । नृपः प्राह विवाहं त्वं शुशुकेन कुरुष्व भोः ।।१७
मेनका प्राह भो राजन्विवाहाश्चेदृशो मताः । उत्तमाधममध्याश्च पुरुषास्त्रिविधाः स्मृताः ।।१८
तथैव त्रिविधा नारी यथा योग्यो वरो भवेत् । उत्तमा या भवेन्नारी योग्याया चाधमाय वै ।।१९
शृणु तत्कारणं राजन्मया दृष्टं यथाऽभवत् । इलापुरे वसत्येको वैश्यो लक्षपतिर्धनी ।।२०
अनपत्यो देवयाजी तस्य पत्नी पतिव्रता । बहुयत्नेन तनयस्तस्य जातो महाधमः ।।२१
द्यूतक्रीडापरो नित्यं सुरापाने रतस्तदा । वेश्यागामी महाधूर्तो नित्यं मांसाशनः खलः ।।२२
तस्य धर्मं च पितरौ समालोक्य वनं गतौ । नरं नारायणं ध्यात्वा परमं पदमापतुः ।।२३
मदपालस्तु तनयः कृत्वा सर्वधनव्ययम् । अन्यदेशे च वृत्त्यर्थं जगाम धनवर्जितः ।।२४
प्राप्तश्चन्द्रपुरे रम्ये यत्र हेमपतिः स्थितः । वृत्तान्तं कथयामास वैश्यं हेमपतिं हि सः ।।२५
देवयाजी सुतोऽहं वै स्वल्पं वै धनमाहृतम् । देशान्तरे विक्रयार्थे सिन्धुमार्गेण प्राप्तवान् ।।२६

करने वाली उस दुर्गा देवी का, जिसने इस जगत् का निर्माण किया है, मानसिक आराधना आरम्भ की।१-१२। हे जगत् की माता! आप के लिए बार-बार नमस्कार है, आप मेरे कार्य की सिद्धि करने वाली हैं। आप त्रिलिङ्ग की जननी, सनातनी वर्णमूर्ति हैं, स्वाहा, स्वधा, एवं संध्या भी आप ही हैं अतः आपको बार-बार नमस्कार है। हे शिवे! राजा रूपवर्मा को मेरा पति कीजिये। इस प्रकार की स्तुति करने पर जगन्मयी जगदम्बा ने प्रसन्न होकर उसके पिता मगधेश, तथा माता को मोहित करके उसी मास के अन्त में उन दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न करा दिया। पश्चात् वे दोनों सुखोपभोग करने लगे।१३-१६। एक दिन राजा ने मदन मंजरी नामक उस मैना से कहा कि—तुम इस शुक के साथ अपना विवाह संस्कार सम्पन्न करा लो। मैना बोली—राजन्! विवाह इस प्रकार का अच्छा होता है, जिसमें यथायोग्य स्त्री- पुरुष हो क्योंकि उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के पुरुष होते हैं उसी प्रकार तीन भाँति की स्त्रियाँ भी होती है। अतः उत्तमा नारी अधमपुरुषों के योग्य नहीं होती हैं क्योंकि राजन्! इसका कारण जिस प्रकार मैंने देखा है, बता रही हूँ, सुनो! इलापुर नगर में एक लक्षपति वैश्य रहता था, जिसका नाम देवयाजी बताया जाता है। उसकी पत्नी पतिव्रता थी, किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं थी। बहुत प्रयत्न करने पर महादुष्ट एक पुत्र उत्पन्न हुआ। द्यूत की क्रीडा, मद्यपान, और वैश्याओं का साथ करता हुआ वह महाधूर्त प्रतिदिन मांस का भक्षण भी करता था। उसके इस कुकृत्य को देखकर उसके माता और पिता दोनों ने बन में जाकर नरनारायण का ध्यान करके परमपद की प्राप्ति की। उसके पुत्र मदनपाल ने घर के समस्त धन का अपव्यय करके निर्धन होने पर अपने वृत्यर्थ (व्यापार के लिए) किसी अन्य देश की यात्रा की। उस यात्रा में वह उस रमणीक चन्द्रपुर में पहुँचा, जिसमें हेमपति नामक वैश्य रहता था। उसने उस सेठ से अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया—मैं देवयाजी वैश्य का पुत्र हूँ, अपने पास थोड़ा-सा

**महावायुप्रभावेन द्रव्यं तन्मग्नमम्भसि । तल्लज्जया न यास्येऽहं पितरं प्रति मारिष ॥२७
इति श्रुत्वा हेमपतिः स्वपत्नीं काममञ्जरीम् । वचः प्राह प्रसन्नात्मा संयोगो विधिना कृतः ॥२८
चन्द्रकान्तिं सुतां दास्ये तद्वराय त्वदाज्ञया । सामन्त्र्य दम्पती राजन्ददौ कन्यायां विधानतः ॥२९
स्वगृहे वासयामास मदपालं सुतापतिम् । मासमेकमुषित्वा तं श्वशुरं प्राह नम्रधीः ॥३०
आज्ञां देहि धनाध्यक्ष स्वगेहं यामि मा चिरम् । इति श्रुत्वा हेमपतिः स्वसुतां स्वर्णभूषिताम् ॥३१
चन्द्रकान्तिं सदासीं च तस्मै दत्त्वा गृहं ययौ । नरान्विसृज्य दुष्टात्मा शिबिकावाहकान्नृप ॥३२
दासीं हत्वा तदा पत्नीं विसृज्य धनवर्जिताम् । एकाकी प्राप्तवान्गेहं मदपालो महाधमः ॥३३
वर्षान्तरे च तत्स्वर्णं व्ययं कृत्वा कुमार्गके । बुभुक्षितः पुनः शोकं चकार बहुधा नृप ॥३४
पुनश्च श्वशुरस्यैव गृहे सम्प्राप्तवान्खलः । चन्द्रकान्तिस्तु तं दृष्ट्वा स्वपतिं प्राह नम्रधीः ॥३५
मया निवेदितं पित्रे धनं चौरैश्च लुण्ठितम् । अतस्त्वं त्यज सन्तापं चिरं वस गृहे मम ॥३६
तथेत्युक्त्वा महाधूर्त उवास कतिचिद्दिनम् । ज्ञात्वा विमोहितां पत्नीमर्द्धरात्रे तमोवृते ॥३७
हत्वा तां स ययौ गेहं गृहीत्वा बहुभूषणम् । अयोग्योऽयमतो राजन्विवाहः शुकमेनयोः ॥३८
इति श्रुत्वा शुकः प्राह भूपतिं करुणानिधिम् । विवाहं न करिष्यामि नार्य्या नाधमया सह ॥३९**

धन लेकर समुद्री मार्ग से इस प्रदेश में विक्रयार्थ आया था। पर महावायु के झकोरे से मेरा सम्पूर्ण द्रव्य जल में डूब गया। आर्य ! अतः लज्जावश मैं अपने माता-पिता के पास नहीं जा रहा हूँ। ऐसा सुनकर हेमपति ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी काम मंजरी से कहा—ब्रह्मा ने यह उत्तम सुन्दर संयोग उपस्थित किया है, तुम्हारी सम्मति प्राप्त कर मैं पुत्री चन्द्रकांति का पाणिग्रहण इससे कराना चाहता हूँ। आपस में उन दोनों ने इस प्रकार मंत्रणा करके विधान पूर्वक उसे कन्यादान दे दिया।१९-२९। उपरांत अपने घर में ही उस जामाता मदनपाल को भी ठहराया। एक मास रहकर उसने विनम्र होकर अपने श्वसुर से कहा—हे धनाध्यक्ष ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं शीघ्र अपने गृह जाना चाहता हूँ। इसे सुनकर हेमपति ने अपनी कन्या चन्द्रकान्ति को सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित करके दासीसमेत उसके साथ भेज दिया। राजन् ! उस दुष्टात्मा ने (कुछ दूर जाकर) पालकी के वाहक कहारों और इतर मनुष्यों को लौटाकर दासी का प्राण ले लिया। पश्चात् समस्तधन ग्रहणकर अपनी पत्नी को अकेली छोड़कर महानीच मदनपाल एकाकी गृह पहुँच गया। एक वर्ष के भीतर उस धन का कुमार्ग में अपव्यय करने पर पुनः भूखे रहकर अत्यन्त शोक करने लगा। तदुपरांत वह दुष्ट पुनः अपने श्वसुर के यहाँ पहुँचा। चंद्रकांति अपने पति को देखकर नम्रता पूर्वक उससे बोली मैंने अपने पिता से कह दिया है कि चोरों ने मेरे धन का अपहरण किया है, अतः आप अपने संताप का त्याग कर इसी मेरे गृह में सदैव निवास करो। उसे स्वीकार कर उस महाधूर्त ने कुछ दिन वहाँ रहकर अपनी उस पत्नी को अत्यन्त मोहित समझकर एक दिन अंधेरी आधी रात के समय उसका प्राण का अपहरण करके उसके सम्पूर्ण आभूषणों को लेकर वहाँ से चल दिया। अतः कह रही हूँ कि राजन् ! तोता और मैना का विवाह संबंध करना अयोग्य होने के नाते अनुचित है। ऐसा सुनकर उस शुक (तोते) ने उस कारुणिक राजा से कहा—मैं इस प्रकार की अधम स्त्री से सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता हूँ। क्योंकि यह मैना नारी के समान अधम और श्यामांगी होने के

अधमा मेनका नारी श्यामाङ्गा च कुरूपिणी । उत्तमोऽहं शुको राजन्पुरुषश्च हरेत्तनुम् ।।४०
शृणु तत्कारणं भूप मया दृष्टं महोत्तमम् । नगरे काञ्चनपुरे वणिक्छङ्खपतिः श्रुतः ।।४१
तस्य पुत्रस्तु मेधावी सिन्धुगुप्तो गुणी धनी । प्रभावती प्रिया तस्य श्रीदत्तस्तत्सुतः स्मृतः ।।४२
विवाहमकरोत्तस्य जयश्रीपत्तने शुभे । सोमदत्तस्य सुतया जयलक्ष्म्या समन्वितम् ।।४३
श्रीदत्तस्तु गतो देशं वाणिज्यार्थं कुरुस्थलम् । आयाति द्वादशाब्दे तु सधनो गेहमागतः ।।४४
जयलक्ष्मीस्तु कामेन पीडिता पितृमन्दिरे । अमात्यतनयेनैव होमदत्तेन मोहिता ।।४५
दूती मार्गेण तं प्राप्य व्ययं कृत्वा धनं बहु । रमयामास सा नारी तेन सार्द्धं महाधमा ।।४६
त्रिमासान्ते च तत्स्वामी श्रीदत्तः श्वशुरालये । सम्प्राप्तः सा तु तं दृष्ट्वा महद्दुःखमुपाययौ ।।४७
अर्धरात्रे तु तन्मात्रा प्रेषिता स्वपतिं प्रति । जयलक्ष्मीश्च सम्प्राप्ता क्रोधेन स्फुरिताधरा ।।४८
बहुमानेन स्वपतिस्नेहं कृत्वालयं ययौ । तदा तु कुलटा सा च गता दूतीगृहं प्रति ।।४९
शून्यालये होमदत्तो दंशितो भुजगेन वै । सुष्वाप मरणं प्राप्य तदा बाला समागता ।।५०
वेगेन रमयामास तं जारं विषमोहितम् । पिप्पलस्थः पिशाचश्च दृष्ट्वा तां जारिणीं शुभाम् ।।५१
शवदेहं च सम्प्राप्य रमणीं तामरीरमत् । खनित्वा दशनैर्नासां पिप्पलोपरि सोऽगमत् ।।५२
कफल्लो नाम चौरस्तु दृष्ट्वा तत्कारणं तदा । कामिन्या अनुगो भूत्वा मन्दिरे तत्प्रविष्टवान् ।।५३

नाते कुरूपा है । राजन् ! मैं उत्तम शुक हूँ । राजन् ! मैं उस कारण को बता रहा हूँ, जिसे मैने स्वयं देखा है । कांचनपुर नामक नगर में शंखपति नामक एक बनिया रहता था ।३०-४१। उसके पुत्र का नाम सिंधुगुप्त था, जो गुणी एवं धनी व्यक्ति था । उसकी पत्नी का नाम प्रभावती और पुत्र का श्रीदत्त नाम था । उसने जयश्री नामक नगर के निवासी सोमदत्त की पुत्री जयलक्ष्मी का पाणिग्रहण अपने पुत्र (श्रीदत्त) के साथ सम्पन्न किया । पश्चात् श्रीदत्त ने अपने व्यापारार्थ कुरुदेश की यात्रा की । वहाँ से धन की राशि अर्जित करके बारहवें वर्ष अपने घर आया । इधर जयलक्ष्मी अपने पिता के गृह में रहती हुई एक दिन काम पीड़ित होने पर मंत्रीपुत्र सोमदत्त पर मोहित हो गई । उस महाअधम स्त्री ने दूती द्वारा उससे सम्पर्क स्थापित करके अधिक धन के अपव्यय समेत उसके साथ रमण कराना आरम्भ किया । तीन मास के उपरांत उसका पति श्रीदत्त अपनी ससुराल आया । उसे आया हुआ देखकर वह दुःख का अनुभव करने लगी । आधीरात के समय उसकी माता ने उसे उसके पति के पास भेजा । यद्यपि अत्यन्त क्रुद्ध होने के नाते जयलक्ष्मी का ओंठ स्फुरित हो रहा था, तथापि किसी प्रकार वहाँ गई ।४२-४८। अत्यन्त सम्मान समेत अपने पति के साथ स्नेह प्रकट कर अपने महल में लौट आई । पश्चात् वह व्यभिचारिणी उस दूती के घर गई तो देखा कि उस (संकेत वाले) शून्य घर में सोमदत्त किसी सर्प के काटने से निष्प्राण होकर पड़ा है । किन्तु वह स्त्री वहाँ पहुँच कर विषमुग्ध उस जारपुरुष के साथ वेग से रमण करने लगी । उसी स्थान के पीपल के वृक्ष पर रहने वाला कोई पिशाच उस सुन्दरी व्यभिचारिणी को देखकर उस शव की देह में प्रविष्ट होकर उस रमणी के साथ अत्यन्त रमण किया । पश्चात् दाँतों से उसकी नाक काट कर उसी पीपल पर पुनः चला गया। कोई कफल्ल नामक चोर उस घटना को देखकर उस कामिनी के पीछे-पीछे उसके महल में चला गया ।४९-५३।

तदा तु जयलक्ष्मीश्च स्वपतिं प्राप्य दुर्भगा । चक्रे सा रोदनं गाढं सर्वे लोकाः प्रतस्थिरे ।।५४
नासाहीनां सुतां दृष्ट्वा सोमदत्तो महाधनः । बद्ध्वा जामातरं शीघ्रं राजान्तिकमुपाययौ ।।५५
नृपाज्ञया राजदूतास्तमुद्बन्धनमादधुः । तदा कफल्लः सम्प्राप्य सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ।।५६
मत्वा तस्य वचः सत्यं जयलक्ष्मीं महाधमाम् । रासभोपरि संस्थाप्य कृत्वा दुर्गतिरूपिणीम् ।।५७
नगरात्प्रेषयामास वनं शार्दूलसेवितम् । अतस्त्वं शृणु भूपाल मेनामद्योग्यिका न हि ।।५८
इत्युक्त्वा स तु वैतालो विक्रमं प्राह नम्रधीः । नारी पापाधिका वाथ पुरुषस्तद्वदस्व मे ।।५९

विक्रम उवाच

ब्रह्मणोऽगुणरूपस्य मायावर्णस्वरूपिणी । तमो नपुंसकं ज्ञेयं त्रिलिङ्गैकं तदव्ययम् ।।६०
अव्ययं ब्रह्मणो धाम माया लिङ्गस्वरूपिणी । तया जातमिदं विश्वं तदम्बायै नमो नमः ।।६१
क्लीबा स्त्री सर्वदा श्रेष्ठा स्त्रियास्तु पुरुषस्तथा । अव्याधिकश्च पुरुषो नारी कर्माधिका मता ।।६२
क्लीबमज्ञानमधिकं कथितं पूर्वकोविदैः । कर्मैव बन्धनं पुंसां ज्ञानं निर्बन्धनं स्मृतम् ।।६३
अतः पापाधिका नारी पुरुषो हीनकिल्बिषः ।।६४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलयुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

उस समय वह अभागिनी जयलक्ष्मी अपने पति के समीप जाकर अत्यन्त रुदन करने लगी, जिससे कि सभी लोग वहाँ पहुँच आये । महाधनी सोमदत्त ने अपनी पुत्री को नाकविहीन देखकर अपने जामाता को बाँध कर शीघ्र राजा के यहाँ पहुँचाया । राजा के आदेश से राज कर्मचारीगण उसे फाँसी पर चढ़ाना चाहते थे कि उसी समय वही कफल्ल नामक चोर ने वहाँ पहुँच कर राजा से समस्त घटना का वर्णन किया । उसकी बातें सत्य मानकर राजा ने उस महानीच जयलक्ष्मी को, विरूप करके उसकी दुर्गति की गई, गधे पर बैठाकर अपने नगर से निकाल कर बाघ आदि जानवरों से युक्त किसी जगंल में भेज दिया। अतः नृप ! मेरी बात सुनो मैना मेरे योग्य नहीं है। इतना कहकर वैताल ने नम्रता पूर्वक विक्रमादित्य से कहा—अधिक पाप करने वाली स्त्रियाँ होती हैं या पुरुष यह मुझे बताने की कृपा कीजिये ।५४-५९

विक्रम बोले—उस निर्गुण ब्रह्म की माया वर्ण स्वरूप और तम नपुंसक बताया गया है, अतः वही एक अव्यय ब्रह्म तीनों लिंगों वाला कहा जाता है। ब्रह्म का तेज अक्षीण और उसकी माया लिंगों (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग) का स्वरूप बतायी गयी है । उसी के द्वारा यह निखिल विश्व उत्पन्न हुआ है, अतः उस अम्बिका को नमस्कार है। नपुंसक स्त्री सदैव श्रेष्ठ होती हैं और स्त्री से अधिक पुरुष । व्याधिहीन पुरुष और नारी, अधिक कर्म करने वाली बतायी गई है । उसी प्रकार पण्डितों ने क्लीब (नपुंसक) में अज्ञान अधिक बताया है । पुरुष के लिए कर्म ही एक बन्धन और बन्धनहीन होना ज्ञान बताया गया है। अतः अधिक पाप कर्म करने वाली नारी और पाप कर्महीन पुरुष कहा गया है।६०-६४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य महाभाग श्रुत्वा वैताल एव सः । प्रसन्नात्मा वचः प्राह भूपतिं ज्ञानसम्पदम् ।।१
उज्जयिन्यां महाराज महाबल इति श्रुतः । चन्द्रवंशी नृपः प्राज्ञो वेदशास्त्रविशारदः ।।२
तस्य दूतो हरिदासः स्वामिकार्यकरः सदा । भक्तिमाला प्रिया तस्य साधुसेवापरायणा ।।३
तस्यां जाता रूपवती कन्या कमललोचना । महादेवीति विख्याता सर्वविद्याविशारदा ।।४
हरिदासं च सा प्राह शृणु तात वचो मम । मत्ताऽधिको नरो यो वै तस्मै मां तु प्रदस्व भोः ।।५
तथेत्युक्त्वा पिता राजन्राज्ञाहूतो गतः सभाम् । नत्वा तं नृपतिः प्राह हरिदास शृणुष्व भोः ।।६
तैलङ्गाधिपतिं गच्छ हरिश्चन्द्रं महीपतिम् । तस्य क्षेमं तथा ज्ञात्वा मां निवेदय मा चिरम् ।।७
इति श्रुत्वा द्विजः प्रागाद्धरिश्चन्द्रं महामतिम् । कुशलं वर्णयामास महाबलनृपस्य वै ।।८
श्रुत्वा प्रसन्नहृदयो हरिश्चन्द्रो महीपतिः । श्वशुरस्तस्य नृपतेः स भूयो हर्षमागतः ।।९
हरिदासं स पप्रच्छ कलेरागमनं कदा । इत्युक्तः स तु तं प्राह न्यूहश्च भविताधिकम् ।।१०
यदा राज्यं कृतं तेन कलेरागमनं तदा । ब्रह्मणोऽस्य मुखाज्जात ॐकारः सत्यपूजितः ।।११

अध्याय ५

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुश्रेष्ठ, महाभाग ! प्रसन्न होकर उस वैताल ने ज्ञान-निधि उस राजा विक्रमादित्य से कहा—महाराज ! उज्जयिनी पुरी में चन्द्रवंश में उत्पन्न महाबल नामक एक राजा राज कर रहा था, जो वेद शास्त्रों में निष्णात था । हरिदास नामक उसका सेवक सदैद अपने स्वामी का कार्य करता था । भक्तिमाला उसकी पत्नी का नाम था, जो सदैव साधु-सेवा में निरत रहती थी । उस पत्नी से महादेवी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जो कमल की भाँति नेत्रवाली, रूपवती, समस्त विद्याओं में निपुण थी । उसने हरिदास के कहा—तात ! मेरी एक बात सुनो ! मुझसे अधिक गुण सम्पन्न जो पुरुष हो, उसे ही मुझे समर्पित करना । पिता ने स्वीकार किया, किन्तु उसी समय राजा ने उन्हें बुलवाया, वे राजसभा में चले गये। राजा ने उन्हें प्रणाम करके कहा—विप्र हरिदास ! तैलङ्गाधीश्वर राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ जाकर उनका कुशल क्षेम जानकर शीघ्र मुझे बताओ। १-७। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ पहुँच कर राजा महाबल का कुशल मंगल वर्णन किया, जिसे सुनकर राजा हरिश्चन्द्र, जो महाबल राजा के श्वसुर थे, बार-बार हर्ष में निमग्न होने लगे। तदुपरांत उन्होंने हरिदास से पूछा कि—कलि का आगमन कब होगा ? हरिदास ने कहा—न्यूह के समय में। जिस समय वे राजसिंहासन पर स्थित होंगे उस समय कलि का आगमन होगा कलि के समय में ब्रह्मा के मुख से निःसृत ओंकार ही सत्यपूजित

द्वितीयास्त्वान्च विदिधा भाषा लोकविमोहिनी । जाता कलेर्हितार्थाय यमलोकहितैषिणी ॥१२
यदा धर्मं च वेदोक्तं विपरीतं हि दृश्यते । कलिराज्यं तदा ज्ञेयं म्लेच्छा यस्य प्रियाः स्मृताः ॥१३
कलिनाऽधर्ममित्रेण सर्वे देवा निराकृताः । पापस्यैव मृषा भार्या दुःखं तत्तनयः स्मृतः ॥१४
दुर्गतिस्तस्य चार्धांगो गेहे गेहे तदा भवेत् । क्रोधवश्याः नृपाः सर्वे ब्राह्मणाः कामकिङ्कराः ॥१५
लोभवश्यास्तु धनिनो महत्त्वं शूद्रका गताः । नार्यो लज्जाविहीनाश्च किङ्कराः स्वामिघातकाः ॥१६
निष्फला तु मही जाता कलौ प्राप्ते हि दृश्यते । ये हरेः शरणं प्राप्तास्ते सर्वे मुदिताः कलौ ॥१७
इति श्रुत्वा हरिश्चन्द्रो दत्त्वा तस्मै मुदक्षिणाम् । स्वगेहं प्राप्तवान्राजा विप्रस्तु शिबिरं ययौ ॥१८
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो बुद्धिकोविदः । स्वविद्यां दर्शयामास हरिदासाय धीमते ॥१९
विमानं शीघ्रगं नाम देव्या दत्तं महोत्तमम् । मन्त्रजापात्समुद्भूतं कामजं विस्मयप्रदम् ॥२०
तस्मिन्ददर्श कन्यार्थे तदा विप्रो विमोहितः । वारित्वा तं स्वकन्यार्थं ततः स्वपुरमागतः ॥२१
हरिदासस्य तनयो मुकुन्दो नाम कोविदः । पठित्वा स्वगुरुं प्राह वृणीष्व गुरुदक्षिणाम् ॥२२
गुरुराह च शिष्यं तं शृणु वाचं मुकुन्द मे । दापय स्वस्य भगिनीं मत्पुत्राय च धीमते ॥२३
तथेत्युक्त्वा मुकुन्दस्तु स्वगेहं शीघ्रमाययौ । तस्मिन्काले महादेवी द्रौणिशिष्यं द्विजं शुभम् ॥२४
वामनं वरयामास तं विप्रं शब्दवेधिनम् । दक्षिणादिभिरभ्यर्च्य ताम्बूलेन विधानतः ॥२५

और (संस्कृत मिश्र) दूसरी भाषा प्रधान होगी, जो अपने अनेक रूपों से लोगों को मुग्ध करेगी । कलि का हित उसी से सम्पन्न होगा, क्योंकि वह यम-लोक का भी हित चाहेगी । जिस समय वेदोक्त धर्म विपरीत दिखायी दे, उसे कलिराज्य जानना चाहिए, क्योंकि म्लेच्छ ही उसके प्रिय होंगे, ऐसा कहा गया है । अधर्म मित्र की सहायता से कलि में समस्त देववृन्द न रहने के समान रहेंगे । पाप की मृषा (झूठ) नामक भार्या, दुःख नामक पुत्र, और दुर्गति नामक अर्द्धांगिनी प्रत्येक गृहों में निवास करेंगी । क्रोध के वशीभूत सभी राजा, काम के सेवक समस्त ब्राह्मण, लोभ के वशीभूत धनिकवर्ग और महत्त्व शूद्रों को प्राप्त होगा । स्त्रियाँ लज्जाहीन, सेवक स्वामी के घातक होंगे । कलि के समय में पृथिवी प्रायः फलहीन होगी । उस समय जो एक मात्र भगवान् की शरण में रहेगा वही प्रसन्न दिखायी देगा ।८-१७। इसे सुनकर राजा हरिश्चन्द्र उस ब्राह्मण को मन इच्छित दक्षिणा प्रदान करके अपने महल चले गये और ब्राह्मण अपने शिविर में आये । उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक ब्राह्मण ने उस विद्वान् हरिदास को अपनी विद्या (का चमत्कार) दिखाना आरम्भ किया—शीघ्रगामी नामक उत्तम विमान को जिसे देवी ने प्रदान किया था, मंत्रजप कर प्रकट किया । वह कामप्रद एवं आश्चर्यप्रद भी था । उस पर उस ब्राह्मण को बैठाकर इस भाँति दिखाया था, जिससे वह अपनी कन्या के निमित्त उस पर मुग्ध हो गया । पश्चात् अपनी कन्या के लिए उसका वरण करके वह अपनी पुरी को लौट आया । हरिदास का मुकुंद नामक पुत्र, अध्ययन के उपरांत अपने गुरुजी से गुरुदक्षिणा देने के लिए पूछा । गुरुजी ने अपने शिष्य से कहा—मुकुंद मेरी बात सुनो ! मेरे इस विद्वान् पुत्र के लिए अपनी भगिनी को दिला दो । इसे स्वीकार करके मुकुंद अपने घर आये । उसी समय महादेवी ने वामन नामक एक ब्राह्मण को, जो द्रोणाचार्य का शिष्य एवं शब्दवेधी वाण चलाने में निपुण था, दक्षिणा समेत उसकी पूजा करके ताम्बूल द्वारा उसका वरण कर

त्रयस्ते ब्राह्मणाः प्राप्ताः सुतार्थे गुणकोविदाः । एतस्मिन्नन्तरे कामी राक्षसो दैवमोहितः ।।२६
महादेवीं जहाराशु प्राप्तो विन्ध्याचले गिरौ । तदा ते दुःखिनो भूत्वा विलेपुः कामपीडिताः ।।२७
धीमान्नाम द्विजो विद्वांस्तान्प्राह गणकोत्तमः । विन्ध्याचले गिरौ बाला चास्ते क्रव्यादवश्यगा ।।२८
स्वविमाने समारोप्य तौ द्विजौ बुद्धिकोविदः । विन्ध्याचले गिरौ प्राप्तः शब्दवेधी तदा धनुः[1] ।।२९
समारोप्य शरेणैव जघानाशु स राक्षसम् । कन्यां गृहीत्वा ते जग्मुरुज्जयिन्यां विमानगाः ।।३०
मिथो विवादवन्तस्ते दृष्ट्वा कन्यां स्मरानुगाः । कस्मै योग्या भवेत्कन्या भूप मे कृपया वद ।।३१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूपतिः । प्रश्रयावनतः प्राह वैतालं रुद्रकिङ्करम् ।।३२
विदित्वा योऽददत्कन्यां पितृतुल्यो द्विजो हि सः । येन प्राप्ता विमानेन स तु तद्भ्रातृकः स्मृतः ।।३३
हत्वा यो राक्षसं वीरं कन्यायोग्यो हि सोऽभवत् ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

लिया ।१८-२५। जिस समय वे तीनों गुण-निपुण ब्राह्मण वहाँ विवाह के लिए उपस्थित हुए, उस समय दुर्भाग्य वश किसी राक्षस ने मोहित होकर उस कन्या का अपहरण करके विंध्याचल पर्वत को प्रस्थान किया । उपरांत वे विप्रवृन्द कामपीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होने के नाते विलाप करने लगे । उस समय धीमान् नामक एक विद्वान् ज्योतिषी ने उन लोगों से कहा—विंध्याचल पर्वत पर एक राक्षस के अधीन वह स्त्री वर्तमान है । इसे सुनकर बुद्धिकोविद ने उन दोनों ब्राह्मणों को भी अपने विमान पर बैठाकर विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचाया । वहाँ उस धनुर्धारी ने धनुष पर वाण चढ़ाकर उस राक्षस का निधन कर दिया । पश्चात् वे सब कन्या समेत विमान द्वारा उज्जयिनी पहुँच गये । वहाँ काम-पीड़ित होकर वे तीनों विप्र आपस में उस स्त्री के निमित्त विवाद करने लगे । राजन् ! कृपया आप यह बताइये कि वह कन्या किसकी स्त्री होने के योग्य है ।२६-३१

सूत जी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रम ने नम्रतापूर्वक उस रुद्रसेवक वैताल से कहा—समस्त वृतान्त जानकर जो उस कन्या से कहा वह उसके पिता के समान एवं जिसके विमान द्वारा वह प्राप्त हुई वह भ्राता के समान हुआ । अतः जो राक्षस का वध करके उसके लिए इच्छुक था वही कन्या के साथ संबंध स्थापित करने के योग्य हुआ ।३२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

---

१. श्लोकद्वयमेकान्वयि ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनराह स वैतालः श्रृणु राजन्कथामिमाम् । ग्रामे धर्मपुरे रम्ये नानाजननिषेविते ॥१
तत्राभवन्महीपालो धर्मशीलो महोत्तमः । लज्जादेवी च महिषी तस्य भूपस्य भूपते ॥२
अन्धको नाम तन्मन्त्री न्यायशास्त्रविशारदः । कियता चैव कालेन देवीमन्दिरमुत्तमम् ॥३
धर्मशीलेन रचितं तत्र दुर्गा प्रतिष्ठिता । अपत्यार्थे भूपतिना कृतस्तत्र महोत्सवः ॥४
अर्द्धरात्रे महागौरी नृपं प्राह वृणीष्व भोः । श्रुत्वामृतमयं वाक्यं धर्मशीलो नृपोत्तमः ॥५
स्तुतिं चकार नम्रात्मा येन दुर्गा प्रसीदति ॥

धर्मशील उवाच

एका तु प्रकृतिर्नित्या सर्ववर्णस्वरूपिणी ॥६
सा त्वं भगवती साक्षात्त्वया सर्वमिदं ततम् । त्वदाज्ञया सुरश्रेष्ठा रचित्वा लोकमुत्तमम् ॥७
महालक्ष्म्या त्वया सार्द्धं बुभुजे निर्मलं सुखम् । त्वद्भक्त्या भगवान्विष्णुस्त्रैलोक्यं ब्रह्मनिर्मितम् ॥८
पालयंश्च महालक्ष्म्या त्वया सार्द्धं सनातनि । त्वद्बलेन महादेवि त्रैलोक्यं विष्णुपालितम् ॥९

अध्याय ६

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—पुनः वैताल ने कहा—राजन् ! इस कथा को सुनो ! उस धर्मपुर गाँव में जो रमणीक और अनेक जाति के मनुष्यों से सुसेवित था, महान् एवं उत्तम धर्मशील नामक राजा राज कर रहा था। भूपते ! उसकी प्रधान रानी का नाम लज्जा देवी, एवं मंत्री का नाम अंधक था, न्याय शास्त्र का निष्णात विद्वान् था। कुछ दिन के उपरांत राजा धर्मशील ने अपने सन्तानार्थ एक उत्तम मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें भी दुर्गा जी की प्रतिष्ठा कराया। पश्चात् उस राजा ने वहाँ महान् उत्सव भी किया। उस दिन आधीरात के समय गौरी जी ने राजा से कहा कि—वरदान की याचना करो। इस अमृत वाणी को सुनकर राजा धर्मशील ने नम्रतापूर्वक इस प्रकार की स्तुति करना आरम्भ किया, जिससे दुर्गा जी प्रसन्न होती हैं। १-५

धर्मशील बोले—जो प्रकृति एक और नित्य है, समय पर सब वर्णों की स्वरूपिणी हो जाती है। साक्षात् भगवती वही आप हैं जिसने इस विश्व को विस्तृत किया। आप की ही आज्ञा शिरोधार्य कर श्रेष्ठ देवगण उत्तमलोक की रचना करके तुम्हारे महालक्ष्मी के साथ निर्मल सुख का उपभोग करते हैं। सनातनि ! तुम्हारी भक्ति द्वारा विष्णु ब्रह्मरचित तीनों लोकों का तुम महालक्ष्मी के साथ ही पालन करते हैं। महादेवि ! तुम्हारे बल से (शिव जी) विष्णु द्वारा पालन-पोषण किये गये इस त्रैलोक्य को तुम्ही

महाकाल्या त्वया सार्द्धं भस्म कृत्वा विराजते । सर्वे देवास्तथा दैत्याः पितरो मनुजाः खगाः ॥१०
त्वल्लीलया च ते जाता जगन्मातर्नमोऽस्तु ते । इत्युक्तवन्तं नृपतिं वागुवाचाशरीरिणी ॥११
महाबलो महावीर्यस्तनयस्ते भविष्यति । तव स्तुत्या प्रसन्नाऽहं दास्यामि विविधं फलम् ॥१२
इति श्रुत्वा स नृपतिः स्वगेहं प्राप्य निर्भयः । राज्ञ्यै निवेदयामास देवीवचनमुत्तमम् ॥१३
ततः प्रभृति राजेन्द्र मूर्तौ जाता स्वयं किल । एकस्मिन्दिवसे राजन्रजकः कलिभोजनः ॥१४
काशीदासेन सहितो ग्रामं धर्मपुरं गतः । तत्र दृष्ट्वा शुभां कन्यां कामाङ्गीं नाम विश्रुताम् ॥१५
पित्रान्वितां राजमार्गे गच्छन्तीं श्रमपीडिताम् । मुमोह कामवेगेन रजकः कलिभोजनः ॥१६
कामान्धश्चण्डिकां प्राह जगन्मातः सनातनि । यदि मे भविता सुभ्रूस्तर्हि दास्यामि ते शिरः ॥१७
जातियोग्या ममैवास्ति रजकस्य सुता शुभा । इति श्रुत्वा तु सा देवी वचनं रजकस्य दै ॥१८
मोहयित्वा च पितरं तस्याः पाणिग्रहः कृतः । स सुतां कामिनीं प्राप्य प्रसन्नात्मा गृहं ययौ ॥१९
भुक्त्वा स विविधं भोगं तया सार्द्धं सुखप्रदम् । वर्षान्तरे शिरो देव्यै गत्वा शीघ्रं समर्पयत् ॥२०
काशिदासस्तु तच्छ्रुत्वा स्नेहेन त्वरितोऽगमत् । स्वशिरो दत्तवान्देव्यै कामाङ्गी पतिशोकतः ॥२१
अर्पयित्वा शिरो देव्यै देवीरूपत्वमागता । तदा प्रसन्ना सा चण्डी त्रीनुज्जीव्याब्रवीच्च तान् ॥२२
वरं वरयतामद्य यो यः कामो ह्यभीप्सितः । काशिदासस्तु तां प्राह कामाङ्गीं मां समर्पय ॥२३

महाकाली के साथ भस्म करके सुशोभित होती हो । समस्त देव, दैत्य, पितृगण, मनुष्य एवं पक्षी तुम्हारी ही लीला द्वारा उत्पन्न हुए हैं, अतः जगन्मातः ! तुम्हें नमस्कार है । इस भाँति स्तुति करने वाले उस राजा से आकाशवाणी द्वारा उन्होंने कहा—।९-११। महाबलवान् एवं महापराक्रमी पुत्र तुम्हारे यहाँ उत्पन्न होगा । तथा तुम्हारी स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ अतः तुम्हें अनेक भाँति के फल प्रदान करूंगी । ऐसा सुनकर राजा ने अपने महल में पहुँचकर अपनी रानी से देवी की सभी बातें कह सुनाया । पश्चात् उसी दिन से उन्होंने उस राजेन्द्र के शरीर में निवास करना भी आरम्भ किया । राजन् ! एक दिन कलि भोजन नामक एक रजक (धोबी) काशीदास नामक एक व्यक्ति के साथ धर्मपुर नामक किसी गाँव में गया था । उस गाँव में कामाङ्गी नामक एक कन्या को देखकर, जो अपने पिता के साथ उसी राजमार्ग (सड़क) से भ्रान्त होकर जा रही थी, रजक कलि भोजन काम के वेग से उत्पन्न होने के नाते उस पर मोहित हो गया । पश्चात् कामांध होकर उसने चण्डिका देवी से कहा—हे सनातनि, जगन्मातः ! यदि यह सुन्दरी मेरी (स्त्री) होना स्वीकार कर लें तो मैं तुम्हें अपना शिर अर्पित कर दूँगा । और वह मेरी ही जाति के किसी रजक की पुत्री है (इसीलिए मैं याचना कर रहा हूँ) । उस रजक की ऐसी बातें सुनकर देवी जी ने उसके पिता को मोहित करके उसका पाणिग्रहण उसके साथ सुसम्पन्न करा दिया। पश्चात् वह रजक उस कामिनी स्त्री को साथ लेकर अपने घर चला गया। उसके साथ अनेक प्रकार के सुखप्रद सुखों का उपभोग करके उसने उसी वर्ष के अंत समय में देवी के लिए अपना शिर अर्पित कर दिया। काशीदास ने भी उसके स्नेह वश शीघ्र वहाँ जाकर देवी को अपना शिर प्रदान किया। अनन्तर वह कामाङ्गी भी पति के लिए शोक करती हुई वहाँ जाकर देवी को अपना शिर अर्पित करके देवी स्वरूप की प्राप्ति की। उस समय चंडी देवी ने प्रसन्न होकर तीनों को जीवित कर उन लोगों से कहा—जिसकी जो इच्छा हो, वर की याचना करे। काशीदास ने कहा मुझे कामाङ्गी को दे दीजिये।१२-२३। किन्तु उस कामाङ्गी ने

कामाङ्गी सा तु तां प्राह स्वपतिं मां समर्पय । कलिभोजन एवासौ देवीं प्राह प्रसन्नधीः ॥२४
मित्राङ्गं सुन्दरं मह्यं देहि मातर्नमो नमः । तेषां वाचस्तदा श्रुत्वा सा दुर्गा मौनमास्थिता ॥
यथाकामं दत्तवती वरं दारसुरूपिणी ॥२५

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपं प्राह विहस्य भोः ॥२६
किं कृतं च तया देव्या तेषामर्थे वदस्व मे । इत्युक्तः स तु भूपालो वैतालमिदमब्रवीत् ॥२७
कपालमुत्तमं देहे तया च्छिन्नं द्वयोस्तदा । विपरीतं कृतं मात्रा वरं स्वं स्वं समाप्नुयुः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

तस्मिन्काले स वैतालो भृगुवर्यः प्रसन्नधीः । राजानमुत्तमां गाथां वर्णयामास विश्रुताम् ॥१
चम्पापुरी च विख्याता चम्पकेशो महीपतिः । तत्रास्ते बलवान्धन्वी महिषी तत्सुलोचना ॥२

कहा कि मुझे मेरे पति को समर्पित कीजिये और कलिभोजन ने प्रसन्न होकर देवी से कहा—मातः मित्र के इस सुन्दर अंग को मुझे देने की कृपा कीजिये, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । उन लोगों की ऐसी बातें सुनकर दुर्गा देवी ने उस समय मौन धारण कर लिया । किन्तु पश्चात् वर भी प्रदान किया ।२४-२५

सूत जी बोले—इतना कहकर वैताल ने हँसकर राजा से कहा—देवी जी ने उनकी इच्छा कैसे पूरी की, उसे विवेचन पूर्वक मुझे बताने की कृपा कीजिये । इस प्रकार कहने पर राजा ने वैताल से कहा—देवी जी ने उन दोनों की शरीर से उनके उत्तम शिर को काट लिया । इस प्रकार देवी जी ने तो विपरीत किया, किन्तु उन्हें अपने वरदान की प्राप्ति हो गई ।२६-२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियगुीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस समय वह वैताल प्रसन्न होकर राजा से एक उत्तम गाथा का वर्णन करने लगा । चम्पापुरी में चम्प नामक राजा, जो बलवान एवं धनुर्धारी था, राज कर रहा था । उसकी प्रधान रानी का नाम सुलोचना था । उनके त्रिलोक सुन्दरी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, चन्द्र के समान

त्रिलोकसुन्दरी नाम कन्या तस्यामजायत । वदनं चन्द्रवद्यस्या भ्रुवौ चापसमे स्मृते ॥३
मृगाक्षी कोकिलरवा कोमलाङ्गी महोत्तमा । देवैर्मनोवृता बाला किमन्यैर्मानुषैर्नृप ॥४
तस्याः स्वयम्वरो जातो नृपा बहुविधास्तदा । तस्या योगेन सम्प्राप्ता ये भूपा भुवि विश्रुताः ॥५
इन्द्रो यमः कुबेरश्च वरुणो विबुधोत्तमः । कृत्वा नरमयं रूपं तदर्थे समुपागताः ॥६
चम्पकेशमिदं प्राह शृणु राजन्वचो मम । सर्वशास्त्रेषु निपुणं रूपवन्तं मनोरमम् ॥
इन्द्रदत्तं च मां विद्धि स्वसुतां मे समर्पय ॥७
द्वितीयस्तु तदा प्राह धर्मदत्तं मनोरमम् । धनुर्वेदेषु निपुणं स्वकन्यां दातुमर्हसि ॥८
तृतीयश्चाह भो राजन्धनपालाय शोभिने । सर्वजीवस्य भाषाणां ज्ञायिने गुणरूपिणे ॥
मह्यं च स्वसुतां शीघ्रं समर्पय सुखी भव ॥९
चतुर्थश्चाह भो राजन्सर्वकलासु कोविदः । पञ्चरत्नसमुद्योगी प्रत्यहं भूपते ह्यहम् ॥१०
पुण्यार्थमेकरत्नं च होमार्थं द्वितियं वसु । आत्मार्थं तृतीयं रत्नं[1] पत्न्यर्थे तुरियं वसु ॥११
शेषं सुभोजनार्थं च रत्नं नित्यं मयाहृतम् । ईदृग्विधं मां पुरुषं स्वसुतां दातुमर्हसि ॥१२
इति श्रुत्वा वचस्तेषां मोहितो नृपतिस्तदा । स्वसुतां प्राह धर्मात्मा कस्मै दास्यामि कन्यके ॥१३
सा देवी तु वचः श्रुत्वा व्रीडिता दैवमोहिता । नोत्तरं च ददौ तस्मै स्वपित्रे धर्मशालिनी ॥१४
इत्युक्त्वा स तु वैतालो विहस्योवाच भूपतिम् । कस्मै योग्या भवेत्कन्या रूपयौवनशालिनी ॥१५

जिसका मुख, धनुष की भाँति भौहें, मृग के समान नेत्र एवं कोकिल की भाँति वाणी थी। नृप उस परम सुन्दरी कोमलाङ्गी को प्राप्त करने के लिए जब देवगण इच्छुक थे, तो मनुष्यों को क्या कहा जा सकता है। उसका स्वयम्बर हुआ, जिसमें पृथिवी के ख्यातिप्राप्त अनेक राजवृन्द उसके लिए लालायित होकर आये थे। देवश्रेष्ठ इन्द्र, यम, कुबेर, और वरुणदेव भी मनुष्य वेष में उसकी प्राप्ति के लिए वहाँ उपस्थित थे। एक ने चम्पकेश से कहा—राजन्! मेरी बात सुनो! समस्त शास्त्रों में निपुण, रूपवान्, एवं सौन्दर्यपूर्ण मैं हूँ, मेरा नाम इन्द्रदत्त है। ऐसा जानकर मुझे अपनी कन्या प्रदान कीजिये। दूसरे ने कहा—मेरा नाम धर्मदत्त है, मैं मनोहर एवं धनुर्वेद में कुशल हूँ अतः मुझे अपनी कन्या देने की कृपा कीजिये। तीसरे ने कहा—राजन्! मुझ धनपाल के लिए जो समस्त जीवों की भाषा का ज्ञाता, और गुणी है, शीघ्र अपनी कन्या अर्पित करके सुख का अनुभव कीजिये।१-९। चौथे ने कहा—राजन्! मैं समस्त कला का विद्वान् हूँ, तथा प्रतिदिन पाँच रत्न की प्राप्ति के लिए उद्योग करता हूँ। उन्हें प्राप्तकर पहले रत्न को पुण्यार्थ दूसरे को हवन के निमित्त, तीसरा अपने लिए, चौथा पत्नी के लिए और पाँचवा क्लीब के भोजनार्थ प्रदान करता हूँ। अतः मुझ जैसे पुरुष को आप अपनी कन्या प्रदान करें। ऐसी बातें सुनकर राजा मोहित हो गया। उस समय उस धर्मात्मा ने अपनी कन्या से कहा—पुत्रि! मैं तुम्हें किसे अर्पित करूँ? वह देवी उस समय उनकी बात सुनकर दैवयोग से लज्जा के कारण अपने उस धार्मिक पिता को कुछ उत्तर न दे सकी। इतना कहकर उस वैताल ने हँसकर राजा से कहा—रूप, और यौवन सम्पन्न वह कन्या किसके योग्य हुई?

---

१. द्वितीयं तृतीयं तुरियं वसु' इत्यादावीकारह्रस्व आर्षः।

सूत उवाच

इत्युक्तः स तु भूपालो वचनं तं समब्रवीत् । धर्मदत्ताय सा कन्या योग्या भवति रूपिणी ।।१६
सर्वशास्त्रेषु निपुणः स द्विजो वर्णतः स्मृतः । भाषावेत्ता तु वणिजो धनधान्यप्रसारकः ।।१७
कलाज्ञः स तु शूद्रो हि धनुर्वेदी स भूपतिः । सवर्णाय च वैताल सदा योग्या हि कन्यका ।।
अतो विवाहिता बाला धर्मदत्ताय शीलिने ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । विदेहदेशे भूपाल नगरी मिथिलावती ।।१
गुणाधिपस्तत्र राजा धनधान्यसमन्वितः । चिरंदेव इति ख्यातो राजन्यः कश्चनागतः ।।२
वृत्त्यर्थं मिथिलादेशे तत्र वासं चकार सः । वर्षान्ते भूपतिः सोऽपि चतुरङ्गबलान्वितः ।।३
मृगयार्थे वनं प्राप्तस्तत्र शार्दूलमुत्तमम् । दृष्ट्वा तं चावधीद्राजा क्रोधताम्रेक्षणो वने ।।४
व्याघ्रमार्गेण भूपालो वनान्तरमुपाययौ । चिरन्देवस्तु तत्पश्चाद्गतः स गहने वने ।।५

सूत जी बोले—ऐसा कहने पर राजा ने वैताल से कहा—वह रूपवती कन्या धर्मदत्त के योग्य हुई क्योंकि वह सम्पूर्ण शास्त्र में निपुण और जन्मना ब्राह्मण जाति का था। वह भाषावेत्ता तथा अपने धन धान्य की वृद्धि करने वाला वैश्य, कला-निपुण वह शूद्र, और धनुर्वेदी वह राजा क्षत्रिय था। अतः वैताल ! कन्या सदैव अपनी जाति के योग्य होती है। इसीलिए शीलसम्पन्न उस धर्मदत्त के साथ उस कन्या का विवाह संस्कार किया गया।१०-१८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।७।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इसे सुनकर वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! विदेह प्रदेश में मिथिला नामक नगरी है, धन-धान्य सम्पन्न गुणाधिप नामक राजा वहाँ राज कर रहा था। सेवावृत्ति के लिए चिरंदेव नामक एक राजपुत्र मिथिला पुरी में आकर रहने लगा। एक वर्ष के पश्चात् राजा गुणाधिप ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना समेत आखेट के लिए जंगल में जाकर एक बाघ का शिकार किया। उसी क्रोध के आवेश में राजा उस बाघ के मार्ग से किसी जंगल में पहुँच गये। चिरंदेव भी उनके पश्चात् उसी गहन वन

क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापपीडितः । चिरन्देवमुवाचाशु भोजनं देहि मेऽद्य भोः ।।६
इति श्रुत्वा स राजन्यो हत्वा हरिणमुत्तमम् । संस्कृत्य प्रददौ राज्ञे तन्मांसं भूपतिप्रियम् ।।७
तुष्टो भूपस्तदा प्राह वरं वरय सत्तम । वाञ्छितं ते ददाम्याशु स होवाच महीपतिम् ।।८
त्वया सहस्रमुद्राश्च खादिता मम भूपते । गृहमानीय भूपाल ताः समर्पय मा चिरम् ।।९
शतमुद्रास्तु मासान्ते मह्यं देहि कटुम्बिने । तथेत्युक्त्वा स नृपतिः स्वगेहं शीघ्रमाययौ ।।१०
एकस्मिन्दिवसे राजन्स च राजा गुणाधिपः । चिरंदेवं स्वभृत्यं च प्रेषयामास सागरे ।।११
स गत्वा सागरतटे देवीमूर्तिं ददर्श ह । नाम्ना कुसुमदां देवीं मार्कण्डेयस्थलस्थिताम् ।।१२
गन्धर्वतनयां सुभ्रूं पूजयित्वा प्रसन्नधीः । प्राञ्जलिः पुरस्तस्थौ तदा देवी समागता ।।१३
वरं वरय तं प्राह चिरंदेवस्तु चाब्रवीत् । पाणिं गृहाण मे सुभ्रूस्त्वद्रूपेण विमोहितः ।।१४
इति श्रुत्वा तु सा देवी विहस्योवाच कामिनम् । अद्य स्नानं विधेहि त्वं मत्कुण्ठे देवनिर्मिते ।।१५
तथेत्युक्त्वा गतस्तोये प्लावितो मिथिलां ययौ । स स्थितो भूपतिं प्राह कारणंविस्मयप्रदम् ।।१६
गुणाधिपस्तु तच्छ्रुत्वा स्वभृत्येन समन्वितः । प्राप्तवान्मन्दिरे देव्याः सा भूयः प्राह पुष्पदा ।।१७
गान्धर्वेण विवाहेन मां गृहाण गुणाधिप । इति श्रुत्वा नृपः प्राह यदि देवि वचो मम ।।१८
पुण्यदे त्वं गृहणाद्य तर्हि त्वां सम्भजाम्यहम् । तथेति मत्वा तं प्राह सत्वं कार्यं निवेदय ।।१९
स होवाच शृणु त्वं भो मम भृत्यं चिरं सुरम् । भज त्वं चपलापाङ्गि देवि सत्यं वचः कुरु ।।२०

में पहुँच गये । क्षुधा के नाते राजा का कंठ सूख गया था, श्रम और संताप से पीडित होकर राजा ने चिरंदेव से कहा—आज मुझे शीघ्र भोजन दीजिये ।१-६। इसे सुनकर उस राजा के पुत्र ने उत्तम हरिण का शिकार करके उसका मांस पकाकर राजा को अर्पित किया । उस प्रियमांस के भोजन से संतुष्ट होकर राजा ने उससे कहा—श्रेष्ठ ! इच्छित वर की याचना करो । उसने राजा से कहा—तुम्हारे यहाँ अवैतनिक कार्य करते हुए मैं (एक सेठ की) सहस्र मुद्रा खा गया हूँ । अतः राजन् ! घर बुलवाकर उसे शीघ्र दे दीजिये और परिवार के पोषणार्थ मुझे सौ मुद्रा का मासिक वेतन प्रदान करने की कृपा करते रहें । राजा उसे स्वीकार करके सबके समेत अपने घर चले आये । राजन् ! एक दिन राजा गुणाधिप ने अपने सेवक चिरंदेव को सागर के समीप भेजा । उन्होंने सागर के तट पर पहुँचकर कुसुमदा नामक एक देवी की मूर्ति को देखा, जो मार्कंडेय के स्थल पर सुशोभित हो रही थी । वह प्रसन्न होकर उस सुन्दरी गन्धर्व पुत्री की पूजा करके अंजलि बाँध कर सामने खड़ा हुआ कि देवी जी ने आकर कहा—वर की याचना करो । चिरंदेव ने कहा—सुन्दरि ! मैं रूप पर मुग्ध हूँ, अतः मेरा हाथ ग्रहण करो । यह सुनकर उस देवी ने हँसकर उस कामीपुरुष से कहा—चिरंदेव ! देवों द्वारा निर्मित इस मेरे कुण्ड में आज स्नान करो ।७-१५। उसने स्वीकार कर जल के भीतर ज्यों डुबकी लगाया कि अपने को मिथिला में स्थित देखा । वहाँ रहकर उस विस्मयदायक वृतान्त को उसने राजा से कहा—राजा गुणाधिप जो उसे सुनकर उसके समेत उस देवी के मन्दिर में पहुँच गया । देवी ने राजा से कहा—गुणाधिप ! गांधर्व विवाह द्वारा मुझे स्वीकार करो ! उसे सुनकर राजा ने कहा—देवि ! पुण्यदे ! यदि तुम मेरी एक बात मानती हो तो मैं तुम्हें स्वीकार करने को तैयार हूँ । देवी ने उसे स्वीकार करके कहा—शीघ्र उस कार्य का निवेदन कीजिये । उन्होंने कहा—चपल नेत्रे ! चिरंदेव नामक मेरे सेवक को स्वीकार कर अपनाओ । देवि ! मेरी इस बात को

प्रीडिता तु कथां कृत्वा भूपतिं प्राह कामिनी । मां भजस्व दयासिन्धो कामिनीं शक्रचोदिताम् ।।२१
चिरंदेवं तु सम्प्राप्य कामान्धा त्वां समागता । पुष्पदन्तस्य तनया गन्धर्वस्य शुभानना ।।
शापिता देवदेवेन नरभोगकरी ह्यहम् ।।२२
इति श्रुत्वा स भूपालो धर्मात्मा शीलविग्रहः । कथं भजाम्यहं सुभ्रूः लुषामिव सुधर्मिणीम् ।।२३
चिरंदेवस्तु राजन्यो मत्पुत्र इव वर्तते । तस्य त्वं भोगिनी नारी शोभने भव साम्प्रतम् ।।२४
लज्जिता सा तदा देवी स्नुषेव च वदर्त वै ।।२५
इत्युक्त्वा भूपतिं प्राह वैतालो रुद्रकिङ्करः । सत्यं धर्मश्च कस्यैव जातस्तन्मे वदस्व भोः ।।२६

सूत उवाच

भूपतिस्तं विहस्याह चिरन्देवस्य जायते । सत्यं धर्मश्च वैताल शृणु तत्कारणं शुभम् ।।२७
नृपाणां परमो धर्मः सर्वोपकरणं स्मृतः । कृतोपकारभृत्यस्य तेन तत्किं हि सत्यता ।।२८
भृत्येन च कृतं कर्म तच्छृणुष्व वदाम्यहम् । विना वृत्तिं स्थितो गेहे भूपतेर्गुणशालिनः ।।
सेवावृत्तिः कृता सर्वा यथान्यैर्न नरैः कृता ।।२९
पश्चाद्भूपतिना ज्ञातः सङ्कटे बृहदागते । चिरन्देवस्तु तस्माच्च कारणादधिको मतः ।।३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाष्टमोऽध्यायः ।८

अवश्य सत्य करो । उस कामिनी ने लज्जित होकर राजा से कहा—दया सागर ! इन्द्र द्वारा प्रेषित मुझ कामिनी को अपना लो क्योंकि गन्धर्व पुष्पदन्त की मैं पुत्री हूँ । चिरंदेव के द्वारा मैं काम विह्वल होकर तुम्हारे पास आई हूँ । मुझ कल्याणमुखी को इन्द्र ने शाप प्रदान किया है कि 'तुम्हारा उपभोग मनुष्य करेंगे ।' इसे सुनकर शीलस्वरूप उस धर्मात्मा राजा ने कहा—सुभ्रू ! तुम ऐसी सुधर्मिणी को मैं कैसे अपना सकता हूँ, क्योंकि तुम मेरी स्नुषा (पुत्र-वधू) के समान हो और राजकुमार चिरंदेव मेरे पुत्र के समान । शोभने ! तुम उसी की उपभोग्य हो, तुम इसका विचार करो । पश्चात् वह लज्जित होती हुई उनकी पुत्र-वधू की भाँति स्थित हुई । इतना कहकर रुद्र-सेवक उस वैताल ने राजा (विक्रम) से कहा—सत्यतः एवं धर्मानुसार वह किसकी हुई मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१६-२६

सूत जी बोले—राजा ने हँसकर कहा—वैताल ! सत्यतः, धर्मतः वह चिरंदेव की हुई, क्योंकि मैं उस शुभ कारण को बता रहा हूँ, सुनो ! सभी लोगों का उपकार करना राजा का परमधर्म बताया गया है । अतः राजा ने अपने सेवक का उपकार किया है इससे उनकी कोई सत्यता नहीं कही जा सकती । किन्तु सेवक ने जो कुछ किया है, उसे भी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! उस गुणशाली राजा के गृह में वह सेवक विना किसी जीविका के स्थित रहा । और वहाँ रहकर अन्य सेवकों की भाँति उसने भी सेवा की । पश्चात् उस महासंकट के उपस्थित होने पर राजा को उसकी परिस्थिति का परिचय प्राप्त हुआ । इसी कारण उससे अधिक चिरंदेव का महत्त्व है ।२७-३०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भो शौनक महाबुद्धे वैतालेन महीपतिः । महाप्रवीणश्च मतस्तमाह स च भूपतिम् ॥१
राजन्कामपुरे रम्ये वीरसिंहो महीपतिः । न्यायतो धर्मतश्चैव तत्र राज्यमचीकरत् ॥२
हिरण्यदत्तस्तत्रैव वैश्यो धनमदान्वितः । कामालसा तस्य सुता रूपयौवनशालिनी ॥३
अवसत्सुखतो नित्यं वसन्ते कुसुमप्रिया । कदाचित्कुसुमार्थं वै वनं भ्रमरनादितम् ॥४
गच्छन्तीं तां समालोक्य धर्मदत्तात्मजो बली । सोमदत्त इति ख्यातः पस्पर्शमदनालसाम् ॥५
सा तु तं निर्जने स्थाने प्रोवाच विनयान्विता । कन्यकाहं महावीर त्यज मां धर्मतोऽद्य भोः ॥६
विवाहे सति पूर्वं त्वां भजामि दशमेऽहनि । अतो दशदिनस्यैवादेशं देहि दयानिधे ॥७
तथेति नत्वा तां त्यक्त्वा निजगेहं समागतः । कामालसा तु तद्ग्रामे पित्रा दत्ता वराय च ॥८
मदपालाय वैश्याय मणिग्रीवसुताय च । श्वशुरस्य गृहं गत्वा स्वमित्रं प्रत्यचिन्तयत् ॥९
नवमेऽहनि तत्स्वामी गृहीत्वा कामिनीं बलात् । कामातुरः स पत्नीं तामालिलिङ्ग मदान्वितः ॥१०
अरुदत्सा तु तत्पत्नी मित्रवाक्येन कर्षिता । तामुवाच तदा वैश्यः शान्तिपूर्वमिदं वचः ॥११

अध्याय ९

कलियुग के इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—महाबुद्धे, शौनक ! उस महाकुशल राजा का सम्मान करता हुआ वैताल ने उनसे कहा—राजन् ! रमणीक कामपुर नामक नगर में राजा वीरसिंह न्याय और धर्म के अनुसार राज करता था । उसी नगर में धनी, मानी हिरण्यदत्त नामक वैश्य भी रहता था । रूप-यौवन सम्पन्न कामालसा नामक उसकी पुत्री, जो सुखी जीवन व्यतीत कर रही थी, कुसुमप्रिय होने के नाते वसंत के समय नित्य पुष्पों के लिए लालायित रहती थी । एक बार वह पुष्प-संचय के लिए भ्रमर गुंजित किसी उपवन में जा रही थी, उस समय उसे धर्मदत्त के पुत्र सोमदत्त ने देखकर बल प्रयोग करना चाहा कि उस निर्जन स्थान में उसने नम्रता पूर्वक कहा—महावीर ! अभी कन्या हूँ, अतः धर्मतः मुझे छोड़ दीजिये ।१-६। विवाह हो जाने पर उसके दशवें दिन पहले आपकी ही सेवा करूँगी । अतः दयानिधे । दश दिन के लिए (मुझे मुक्त करने की) आज्ञा प्रदान कीजिए । वह उसे स्वीकार करके अपने घर आया । उस कन्या के पिता ने उसी गाँव में मणिग्रीव वैश्य के पुत्र मदपाल के साथ उसका पाणिग्रहण कार्य सम्पन्न कर दिया । वह स्त्री अपने श्वसुर के घर जाकर अपने मित्र के प्रति चिंतित होने लगी । नवमें दिन कामातुर एवं मदांध होने के नाते (उसके स्वामी ने) उस कामिनी को पकड़कर बलात् आलिंगन करना चाहा कि उसकी पत्नी उस पूर्व मित्र की बातों का स्मरण करके रुदन करने लगी । उस समय उसके पति ने शान्तिपूर्वक यह कहा—शोभने ! तुम्हारी आँखें तो मद से भरी दिखायी दे रही हैं, फिर क्यों रुदन कर रही हो, मुझसे

किं रोदिषि मदाघूर्णे सत्यं कथय शोभने । सा तु सत्यवती प्राह यथाजातं हि कानने ॥१२
यदि नायामि पार्श्वे त्वां सोमदत्त धनोत्तम । तदा वैधव्यतां प्राप्य भजामि वृजिनं हि तत् ॥१३
इति वाक्येन बद्धाहं यास्याम्यद्य तदन्तिके । इति श्रुत्वा च तत्स्वामी तामाज्ञाप्य मुदान्वितः ॥१४
सुष्वाप सा तु तत्पार्श्वे ह्यागमत्कामविह्वला । तदा चौरस्तु तां दृष्ट्वा सर्वाभरणभूषिताम् ॥१५
वचश्चोवाच लोभात्मा कुत्र यासि च सुन्दरि । केनैवापेक्षिता रात्रौ सत्यं कथय भामिनि ॥१६
कामालसा तु तं चौरमुवाच मदविह्वला । रक्षिता कामबाणेन स्वमित्रं प्रति यामि भोः ॥१७
चौरस्तामाह भोः सुभ्रूर्भूषणं देहि मेऽबले । चौरोऽहं ते धनग्राही सा श्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥१८
आलिंग्योपपतिं मित्रं तुभ्यं दास्यामि भूषणम् । तथेत्युक्त्वा तु तेनैव सोमदत्तं समागता ॥१९
दृष्ट्वा तामब्रवीद्वैश्यः कथं याता स्मरालसे । सत्यं कथय मे शीघ्रं तत्पश्चात्त्वां भजाम्यहम् ॥२०
कामालसा तु तच्छ्रुत्वा यथा जातं तथाऽब्रवीत् । श्रुत्वा स ज्ञानहृदयो विष्णुदेवेन बोधितः ॥२१
मत्वा पतिव्रतां नारीं परिक्रम्य व्यसर्जयत् । चौरस्तु कारणं श्रुत्वा विष्णुदेवेन बोधितः ॥२२
गेहे प्रवेशयामास तत्पतिर्यत्र तिष्ठति । सा तु कामालसा देवी स्वपातिव्रतधर्मिणी ॥२३
बुभुजे विषयान्दिव्यान्देवदेवेन चोदितान् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह कोविदम् ॥
कस्य सत्यं स्मृतं श्रेष्ठं तेषां मध्ये वदस्व मे ॥२४

सत्य कहो । उस सत्यवती ने उपवन में जो कुछ हुआ था उस को उसी ढंग से उससे कहकर यह भी कहा 'भीमसोमदत्त ! यदि मैं तुम्हारे समीप न आ सकी तो मैं अपना वैधव्य जीवन व्यतीत करती हुई उस पाप का प्रायश्चित करूँगी !' इस प्रकार वचन-बद्ध होने के नाते मैं उसके समीप अवश्य जाऊँगी । यह सुनकर उसके पति ने उसे जाने के लिए सहर्ष आज्ञा प्रदान किया ।७-१४। पश्चात् कुछ समय तक उसके पार्श्व भाग में शयन करने के उपरांत कामपीड़ित होकर वह कामिनी अपने मित्र के यहाँ गई । मार्ग में चोर ने उसे समस्त आभूषणों से सुसज्जित देखकर उसके लोभवश उससे कहा सुन्दरि ! कहाँ जा रही हो, इस रात्रि में तुम्हारा किसने सम्मान नहीं किया । भामिनि ! मुझसे सत्य कहो । मदांध होती हुई कामालसा ने उस चोर से कहा—काम-बाण से रक्षित होकर मैं अपने मित्र के यहाँ जा रही हूँ । चोर ने उससे कहा—सुभ्रु ! अबले ! अपना आभूषण मुझे दे दो, क्योंकि मैं चोर होने के नाते धन का ही ग्रहण करता हूँ । इसे सुनकर उसने कहा उस उपपति अपने मित्र के साथ आलिंगन करके तुम्हें आभूषण प्रदान करूँगी । इसे स्वीकार करके वह भी उसके साथ सोमदत्त के यहाँ गया । उस कामिनी को देखकर उस वैश्य ने कहा—कामालसे ! यहाँ किस प्रकार तुम्हारा आगमन हुआ शीघ्र सत्य बातें बताओ, पश्चात् तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा । कामालसा ने सभी बातों का यथावत् वर्णन किया । इसे सुनकर विष्णुदेव द्वारा अवबोधित होने पर उसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ । अनन्तर पतिव्रता मानकर उसकी परिक्रमा करके सम्मान पूर्वक लौटा दिया । विष्णुदेव द्वारा उसके कारण ज्ञान कराने पर वह चोर भी उसके पति के गृह में जाकर प्रवेश किया । अनन्तर वह कामालसा देवी अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से देवाधिदेव द्वारा प्राप्त दिव्य विषयों का उपभोग कर जीवन व्यतीत करने लगी । इतना कहकर वैताल ने उस कोविद राजा से कहा—उनमें किसका सत्य श्रेष्ठ कहना चाहिए, मुझे बताइये ।१५-२४

सूत उवाच

इत्युक्तः स तु भूपालो वैतालमिदमब्रवीत् ॥२५
चौरस्य सत्यता श्रेष्ठा यथा जाता तथा शृणु। नृपभीत्या स वैश्यस्तु तां नारीं न तु भुक्तवान् ॥२६
वैधव्यभीत्या सा देवी स्वमित्रं प्रति चागता। धर्मभीत्या च तत्स्वामी स्वपत्नी न तु भुक्तवान् ॥२७
चौरस्तु सत्यभीत्या वै त्यक्त्वा तां मुदमागतः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम नवमोऽध्यायः।९

अथ दशमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

वैतालस्तु महाभाग राजानमिदमब्रवीत्। गौडदेशे महाराज वर्धनं नाम वै पुरम् ॥१
गुणशेखर आख्यातो भूपालस्तत्र धर्मवान्। तन्मन्त्री निर्भयानन्दो जैनधर्मपरायणः ॥२
कदाचिद्भूपतिर्यातो मन्दिरे गिरिजापतेः। पूजयामास तं देवं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ॥३
वृश्चिकस्तत्र सम्प्राप्य ददंश नृपतिं रुषा। तत्कष्टेन स भूपालो मूर्छितः पतितो भुवि ॥४
तदा तु निर्भयानन्दो विषमुत्तार्य तस्य वै। भूपतिं वर्णयामास जैनधर्मपरायणः ॥५

सूत जी बोले—ऐसा कहने पर राजा ने वैताल से कहा—श्रेष्ठ सत्यता चोर की है, मैं उसका कारण भी बता रहा हूँ, सुनो! राजा के भय से उस वैश्य ने उस नारी का उपभोग नहीं किया, वैधव्य-भय के नाते वह देवी अपने मित्र के यहाँ गई। और उसके स्वामी ने धर्मभय के नाते अपनी पत्नी का उपभोग नहीं किया! किन्तु चोर ने केवल सत्य के भय से सहर्ष उसका त्याग किया।२५-२८

श्री भविष्यमहापुराण मे प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त।९।

अध्याय १०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग! वैताल ने राजा से यह कहा कि—महाराज! गौड़ देश में वर्धन नामक नगर है, उसमें ख्यातिप्राप्त एवं धार्मिक गुणशेखर नामक राजा राज करता था। जैन धर्मानुयायी निर्भयानन्द नामक उनका मंत्री था। किसी समय राजा ने शिव जी के मन्दिर में जाकर उस सर्वव्यापी एवं ईश्वर शंकर जी की अर्चना की। उसी समय एक बिच्छू ने क्रुद्ध होकर राजा को काट लिया। उस दुःख से दुःखी होकर राजा मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उस समय जैनधर्मी निर्भयानन्द ने उस विष का

शृणु राजन्महाभाग शत्रून्षण्मानसाधमान् । कामः क्रोधस्तथा लोभो रतिर्हिंसा च तृष्णिका ॥
रजोगुणाच्च ते जातास्तेषां भेदाः पृथक्पृथक् ॥६
मोहो दम्भो मदश्चैव ममताशा च गर्हणा । तमोगुणाच्च ते जातास्तैरिदं पूरितं जगत् ॥७
कामी विष्णुस्तथा रुद्रः क्रोधी लोभी विधिस्तथा । दम्भी शक्रो यमो मोही मदी यक्षपतिः स्वयम् ॥८
माया वश्याश्च ते सर्वे तर्हि तत्पूजनेन किम् । षट्शत्रुभिर्जितो यो वै स जिनो मुनिभिः स्मृतः ॥९
न जितः स जिनो ज्ञेयोऽद्वैतवादी निरञ्जनः । तस्य ध्यानेन भावेन मोक्षवन्तो नराः सदा ॥१०
तत्प्रसादाय यो धर्मः शृणु मे वसुधाधिप । गोपूजनेन ते देवास्तुष्टिं यान्ति सदैव हि ॥११
अतो गोपूजनं शुद्धं हिंसा सर्वत्र वर्जिता । मद्यपानेन सर्वात्मा जिनः क्लेशं समाप्नुयात् ॥१२
तस्मान्मांसं च पानं च वर्जितं सर्वदैव हि । न्यायेनोपार्जितं वित्तं भोजयेच्च बुभुक्षितान् ॥१३
रविरात्मा जिनस्यैव तत्प्रकाशे हि भोजयेत् । इत्येवं वर्णयित्वैनं मन्त्री गेहमुपाययौ ॥१४
तथैव मत्वा स नृपो जिनधर्मं गृहीतवान् । कियता चैव कालेन वेदमार्गो हि लङ्घितः ॥१५
तदा तु दुःखिता राज्ञी शिवस्य शरणं ययौ ॥१६
वरदानेन रुद्रस्य पुत्रो जातो महोत्तमः । धर्मराज इति ख्यातो वेदव्रतपरायणः ॥१७
गुणशेखर एवासौ पञ्चत्वे निरयं ययौ । धर्मराजस्तदा राज्यं कृतवान्धर्मतः स्वयम् ॥१८

अपहरण करके राजा से कहा—महाभाग, राजन् ! इन छहों शत्रुओं का, जो मान संस्थित एवं अधम हैं, मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! काम, क्रोध, लोभ, रति, हिंसा और तृष्णा ये छहों दोष रजोगुण से उत्पन्न होते है, इनका भेद पृथक्-पृथक् बताया गया है ।१-६। मोह, दंभ, मद, ममता, तथा निन्दित आशा की जो जगत् में व्याप्त हैं, तमोगुण से उत्पत्ति हुई है । विष्णु कामी है, शिव क्रोधी, ब्रह्मा लोभी, इन्द्र दम्भी, यम मोही, और कुबेर अभिमानी हैं । इस प्रकार ये सभी देवगण माया के अधीन हैं अतः इनके पूजन करने से क्या लाभ हो सकता है । उपरोक्त छहों शत्रुओं द्वारा जिसकी हार हो गयी है, उसे मुनियों ने अजिन बताया है, और जिसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लिया वह अद्वैतवादी रागादि हीन होने के नाते जिन कहा गया है । उसी के ध्यान एवं भाव रखने से मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति होती है । पृथिवीपति ! उनकी प्रसन्नता के लिए जो धर्म बताया गया है मैं कहा रहा हूँ, सुनो ! गो-पूजन से वे देवगण भी सदैव प्रसन्न रहते हैं इसलिए गो-पूजन ही शुद्ध धर्म है क्योंकि हिंसा सर्वत्र वर्जित की गई है । मदपान करने से सर्वात्मा भूत जिन को कष्ट होता है, अतः मांस भोजन और मद्यपान कराना सदैव निषिद्ध कहा गया है । न्यायतः धन का उपार्जन करके भूखे को भोजन करना चाहिए । सूर्य ही जिनकी आत्मा कहे गये हैं अतः जैनियों को उनके प्रकाशित रहने पर ही भोजन करना चाहिए । इस प्रकार (जैन धर्म का वर्णन करके वह मंत्री घर चला गया । तथा उसकी बातें स्वीकार करके राजा ने जिन धर्म को ग्रहण किया । कुछ समय व्यतीत होने पर उन्होंने वेद-मार्ग का उल्लंघन कर दिया । उस समय उनकी रानी ने अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् शिव की शरण प्राप्त की ।७-१६। रुद्र के वरप्रदान द्वारा रानी के महान् उत्तम पुत्र हुआ । उस वेद-व्रत के पारायण करने वाले का धर्मराज नामकरण हुआ । पश्चात् राजा गुणशेखर का निधन हुआ जिससे उन्हें नरक की प्राप्ति हुई । उस समय धर्मराज स्वयं धार्मिक राज्य करने लगा । अनन्तर उसके धर्म के

तस्य धर्मप्रभावेण तत्पिता स्वर्गमाप्तवान् । त्रयः पत्न्योभवंस्तस्य गुणरूपा महोत्तमाः ।।१९
वसन्तसमये राजा ताभिः सह वनान्तरे । संयातो रमयामास पुष्पभ्रमरनादिते ।।२०
श्रमितः स तु भूपालो राज्ञीभिः सह मोदितः । सरोदरे स्नापितवान्मदाघूर्णितलोचनः ।।२१
गृहीत्वा कुसुमं पाद्मं करे राज्ञै समर्पयत् । पदि हीनत्वमायाता पतता कुसुमेन वै ।।२२
दुःखितः स तु भूपालो राज्ञीं तामचिकित्सयत् । रात्रौ प्राप्ते द्वितीया तु चन्द्रशीलेन मोहिता ।।२३
अपतद्व्याकुलीभूत्वा शुद्धं पादमभूत्ततः । पतितायाश्च शब्देन तृतीया ज्वरिताऽभवत् ।।२४
तस्या मूर्च्छा तदा क्षीणा द्वितीयाया अजायत । नृस्पर्शेन सा सभ्रूर्ज्वरतां विहाय च ।।२५
प्रभाते सुंदरे जाते स ताभिर्गृहमाययौ । इत्युक्त्वा स तु वैतालो भूपतिं प्राह नम्रधीः ।।
आसां मध्ये महाराज का श्रेष्ठा सुकुमारिका ।।२६

राजोवाच

तृतीया सुकुमारी च तासां मध्ये महोत्तमा । वायुप्रकृतितश्चासौ पद्मपुष्पेण खञ्जिता ।।२७
शीतांशुना द्वितीया तु मूर्च्छिता कफभावतः । शब्दमात्रेण सन्तापो यस्यां जातो हि सोत्तमा ।।२८
विहस्याह पुनर्देवो भवभक्तं महीपतिम् । जैनधर्मः प्रधानो हि वेदधर्मोऽथवावद ।।२९
सहोवाच प्रधानोऽसौ वेदधर्मः सनातनः । अष्टौ श्रेण्यो हि तस्यैव ब्रह्मणोऽव्यक्तरूपिणः ।।३०
शूद्रो वैश्यस्तथा क्षत्री ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यकृत् । गेही वन्यो यतिश्चैव क्रमाच्छ्रेष्ठाः प्रकीर्तिताः ।।३१

प्रभाव से उसके पिता को स्वर्ग की प्राप्ति हुई । धर्मराज के गुणानुरूप और अत्यन्त उत्तम प्रकृति की तीन स्त्रियाँ हुई । वसंत ऋतु में किसी समय वह राजा अपनी रानियों समेत एक उपवन में जिसमें पुष्पों के ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे, जाकर रमण करने लगा । शान्त होने पर वह राजा स्त्रियों समेत मदमत्त होकर प्रसन्नता प्रकट करता हुआ किसी सरोवर में स्नान करने लगा ।१७-२१। वह एक कमल पुष्प लेकर रानी के हाथ में अर्पित किया, किन्तु उस पुष्प के पतन होने से उसका चरण लँगड़ा हो गया । दुःखी होकर राजा ने उस रानी की चिकित्सा की । पुनः रात्रि के समय चन्द्रप्रकाश होने पर चन्द्रकी किरणों से मुग्ध होकर घबड़ाकर गिर गई, किंतु, (पहली स्त्री का) चरण अच्छा हो गया । और उसके गिरने के शब्द सुनकर तीसरी स्त्री को ज्वर हो आया । उस समय दूसरी पत्नी की मूर्च्छा छूट गई । राजा के स्पर्श करने से उसका ज्वर भी दूर हो गया । सुन्दर प्रभात होने पर वह उन स्त्रियों को लेकर अपने घर आया । इतना कहकर नम्रता पूर्वक उस वैताल ने राजा से कहा महाराज ! इन स्त्रियों में कौन सुकुमारी श्रेष्ठ कही जायगी ।२२-२६

राजा ने कहा—उनमें तीसरी स्त्री परमोत्तम है क्योंकि वायु प्रकृति होने से पहली स्त्री का चरण कमल पुष्प (के स्पर्श) से लंगड़ा हो गया, कफ के अधिक कष्ट होने से चन्द्र किरण के कारण दूसरी स्त्री मूर्च्छित हो गई और शब्द मात्र सुनकर तीसरी को संताप हो गया अतः यही सर्वोत्तम उसकी स्त्री है। पश्चात् शिवभक्त उस राजा से वैताल ने पुनः कहा—प्रधान जैन धर्म है या वेद धर्म ? उन्होंने कहा सनातन (नित्य) होने के नाते वेदधर्म प्रधान है। उस व्यक्त रूपी ब्रह्म (वेद) के आठ श्रेणियाँ हैं—शूद्र, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बताये गये हैं।२७-३१।

यः कृत्वा दारसंसर्गं यतिवद्वर्तते गृही । स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।३२
गृहेषु यतिवद्धर्मो जैनशास्त्रे प्रकीर्तितः । पाखण्डः स स्मृतः प्राज्ञैर्वर्जनीयो हि सर्वदा ।।३३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाभाग स वैतालो हि देवता । राजानमब्रवीद्गाथां धर्मप्रश्नमयीं शुभाम् ।।१
राजन्पुण्यपुरे रम्ये नानाजननिषेविते । धर्मवल्लभभूपालस्तत्र राज्यं पुराकरोत् ।।२
सत्यप्रकाशस्तन्मन्त्रीलक्ष्मीश्चामात्यकामिनी । कदाचित्स तु भूपालो मन्त्रिणं प्राह धर्मवित् ।।३
आनन्दः कतिधा लोके तन्ममाचक्ष्व सत्तम । स होवाच महाराज सुखं चैव चतुर्विधम् ।।४
ब्रह्मचर्याश्रमे यो वै ब्रह्मानन्दो महोत्तमः । गार्हस्थ्ये विषयानन्दो मध्यमः कथितो बुधैः ।।५
वानप्रस्थे महाराज स धर्मानन्दकोऽधमः । कर्मकाण्डेन चानन्दः सत्यधर्मः स वै स्मृतः ।।६
संन्यस्ते तु शिवानन्दस्स हि सर्वोत्तमोत्तमः । विषयानन्दको राजन्स्त्रीप्रधानः प्रकीर्तितः ।।७

जो गृहस्थ पुरुष स्त्री का सम्पर्क रखते हुए संन्यासी की भाँति रहता है । वह पापी नरक में महाप्रलय काल तक रखा जाता है । घर में संन्यासियों की भाँति रहना जैनशास्त्र में बताया गया है । इसलिए वह पाखण्डधर्म कहा गया है, बुद्धिमानों को सदैव उसका परित्याग करना चाहिए ।३२-३३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग ! शौनक ! उस वैताल देव ने पुनः शुभ एवं धार्मिक प्रश्न वाली गाथा को राजा से कहा—राजन् ! रमणीक उस पुण्यपुर नामक नगर में धर्म वल्लभ नामक राजा पहले राज करता था । सत्य प्रकाश उसके मंत्री का नाम था, जिसकी सेवा लक्ष्मी कामिनी की भाँति करती थी । किसी समय धर्मवेत्ता उस राजा ने मंत्री से कहा—सत्तम ! लोक में कितने प्रकार का आनन्द है, मुझे बताइये । उसने कहा—महाराज ! चार प्रकार का सुख बताया गया है—ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मानन्द महान, उत्तम बताया गया है, गार्हस्थ्याश्रम में विषयानंद कहा गया है, जिसे विद्वानों ने मध्यम श्रेणी में रखा है।१-५। महाराज! वानप्रस्थ में धर्मानन्द को अधम बताया गया है, क्योंकि कर्मकाण्ड में कोई आनन्द नहीं है, पर, सत्यधर्म वही कहा गया है। और संन्यास में शिवानंद कहा गया है, वही सर्वोत्तम एवं परमोत्तम आनन्द है। राजन् ! विषयानन्द को स्त्री-प्रधान कहा गया है क्योंकि नृप ! गृहस्थाश्रम में

स्त्रियं विनासुखं नास्ति गृहस्थाश्रमके नृप । इति श्रुत्वा स भूपालो देशान्तरमुपाययौ ॥८
पत्नीमन्वेषयामास स्वयोग्यां धर्मतत्पराम् । प्राप्तवान्न तु वामाङ्गीं मनोवृत्त्यनुसारिणीम् ॥९
स भूपो मन्त्रिणं प्राह नारीमन्वेषयाद्य भोः । नो चेत्प्राणानहं त्यक्ष्ये सत्यं वाक्यं ब्रवीम्यहम् ॥१०
इति श्रुत्वा ययौ मन्त्री देशाद्देशान्तरं प्रति । सिन्धुदेशे च सम्प्राप्य समुद्रं प्रति सोऽगमत् ॥
तुष्टाव मनसा सिन्धुं सर्वतीर्थपतिं शुभम् ॥११

बुद्धिप्रकाश उवाच

सिन्धुदेव नमस्तुभ्यं सर्वरत्नालय प्रभो ॥१२
अहं ते शरणं प्राप्तः शरणागतवत्सल । त्वां नमामि जलाधीशं गङ्गादिसरितां पतिम् ॥१३
स्त्रीरत्नं देहि राज्ञोऽर्थे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सागरः सरितां पतिः ॥१४
जले वृक्षं सुवर्णांगं पत्रविद्रुमकं महत् । मुक्ताफलान्वितं दिव्यं मन्त्रिणे समदर्शयत् ॥१५
तस्योपरि स्थिता बाला सुकुमारी मनोरमा । तत्रैव सालये जाता वृक्षेण सह भूपते ॥१६
इति दृष्ट्वा महाश्चर्यं नृपान्तिकमुपाययौ । वर्णयित्वा तु तत्सर्वं राज्ञा सार्धं समाप्तवान् ॥१७
तथाविधं नृपो दृष्ट्वा सागरान्तमुपाययौ । बालया सह पातालं प्राप्तवान्भूपतिः स्वयम् ॥१८
तां नारीं प्राह नम्रात्मा त्वदर्थेऽहं समागतः । गान्धर्वेण विवाहेन मां प्रापय वरानने ॥१९
विहस्य साऽऽह तं भूपं कृष्णपक्षे चतुर्दशी । तद्दिनेऽहं समागत्य त्वां भजामि नृपोत्तम ॥२०

बिना स्त्री के सुख सम्भव नहीं होता है । ऐसा सुनकर वह राजा देशान्तर में जाकर अपने अनुरूप धार्मिक पत्नी की खोज करने लगा । किन्तु मनोनुकूल वामांगी उसे प्राप्त नहीं हुई । पश्चात् उसने अपने मंत्री से कहा—आज मेरे लिए स्त्री की खोज अवश्य करो नहीं तो मैं सत्य कह रहा हूँ, प्राण परित्याग कर दूँगा । ऐसा सुनकर उस मंत्री ने देश देशान्तर के लिए प्रस्थान किया । सिंधु देश में पहुँचकर उसने समुद्र के यहाँ जाकर उस सभी तीर्थों के स्वामी की मानसिक स्तुति करना आरम्भ किया—९-११

बुद्धिप्रकाश ने कहा—प्रभो ! सिंधुदेव, सम्पूर्ण रत्नों के आलय ! तुम्हें नमस्कार है । शरणागत वत्सल ! मैं तुम्हारी शरण आया हूँ, गंगा आदि नदियों के स्वामी, एवं जलाधीश को मैं नमस्कार करता हूँ । अतः मेरे राजा के निमित्त स्त्री रत्न प्रदान कीजिये, अन्यथा मैं प्राण परित्याग करने जा रहा हूँ । यह सुनकर सरित्पति सागर ने प्रसन्न होकर जल में एक इस भाँति का वृक्ष सुवर्ण की भाँति जिसके अंग, विद्रुम (मूंगा) के समान पत्र, और मुक्ताफल से युक्त था, उस मंत्री को दिखाया । नृप ! उसी वृक्ष पर एक सुकुमारी एवं मनोरमा स्त्री स्थित थी किन्तु उसी स्थान पर वृक्षसमेत वह डूब गई । इस प्रकार का आश्चर्य देखकर वह मंत्री राजा के समीप आकर उस घटना का वर्णन करके राजा के साथ उसी स्थान पर पुनः गया ।१२-१७। राजा भी उसी प्रकार की घटना देखकर समुद्र के भीतर प्रवेश करके उस स्त्री के साथ पाताल पहुँच गया । विनम्र होकर उसने उस स्त्री से कहा—मैं तुम्हारे लिए ही यहाँ आया हूँ अतः गांधर्व विवाह द्वारा मुझे अपनाओ । उसने हँसकर के राजा से कहा नृपश्रेष्ठ ! मैं कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन आकर आपकी सेवा करूँगी । इसे सुनकर वह राजा उस दिन कामपीड़ित होकर हाथ में खड्ग लेकर

इति श्रुत्वा स नृपतिस्तद्दिने स्मरविह्वलः । खड्गहस्तो ययौ तत्र यत्र देवीगृहोत्तमम् ॥२१
एतस्मिन्नन्तरे तत्र राक्षसो बकवाहनः । तां बालां स च पस्पर्श नृपः क्रोधातुरोऽभवत् ॥२२
कामान्धो राक्षसं हत्वा स्वपत्नीं प्राह निर्भयाम् । कोऽयं तेऽत्र समायातः कारणं वद भामिनि ॥२३
साह भोः शृणु भूपाल विद्याधरसुता ह्यहम् । पितृप्रिया मदवती कामार्ता वनमागता ॥२४
नागता भोजने काले पितृमात्रोश्च मन्दिरे । ज्ञात्वा ध्यानेन मत्पित्रा शापिता तच्छृणुष्व भोः ॥२५
अद्य कृष्णचतुर्दश्यां त्वां भजिष्यति राक्षसः । कृष्णपक्षचतुर्दश्यां भुंक्ष्व त्वमपराधकम् ॥२६
तदाहं रोदनं कृत्वा ब्रवीमि पितरं प्रति । कदा मुक्तिर्भवेद्देव तत्त्वं कथय सुव्रत ॥२७
स होवाच कुमारि त्वं वीरभुक्ता भविष्यसि । तदा शापस्य मुक्तिः स्यात्साहं तव विमोचिता ॥२८
त्वदाज्ञयाहं यास्यामि भो राजन्पितृमन्दिरे । इति श्रुत्वा नृपः प्राह मम गेहं समाव्रज ॥२९
त्वया सार्द्धं गमिष्यामि गृहं विद्याधरस्य तत् । तथेत्युक्त्वा तु सा देवी नृपगेहं समाययौ ॥३०
तदा तु नगरे तस्मिन्नृणां जातो महोत्सवः । मन्त्री दृष्ट्वा तु तं भूपं दिव्यपत्नीसमन्वितम् ॥
पञ्चत्वमगमत्तूर्णं कुतो हेतोर्हि तद्वद ॥३१

राजोवाच

मन्त्री बुद्धिप्रकाशस्तु दृष्ट्वा देवीं समागताम् ॥३२
नृपं स हृदि सन्ध्यात्वा राज्यभङ्गभयातुरः । त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्गं शृणु यत्कारणं शुभम् ॥३३

देवी के उस उत्तम मन्दिर में पहुँचा किन्तु उसी समय बक पक्षी की सवारी पर आकर राक्षस ने उस स्त्री का स्पर्श किया ! उसे देखकर वह क्रोधातुर हो गया । अनन्तर कामांध होकर राजा ने उस राक्षस का वधकर के उस निर्भय अपनी पत्नी से कहा—भामिनि ! तुम्हारा यह कौन है, और यहाँ क्यों आया । इसका कारण बताओ । उसने कहा—राजन् ! सुनो ! मैं विद्याधर की पुत्री हूँ । अपने पिता की लाडिली होने के नाते मैं मत्त एवं कामातुर होकर वन में चली आई, भोजन समय में भी अपने माता-पिता के गृह न जा सकी । पश्चात् मेरे पिता ने ध्यान द्वारा उसे समझकर मुझे शाप दिया कि—आज कृष्ण चतुर्दशी के दिन तुम्हें राक्षस की सेवा करनी पड़ेगी । अतः इस कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में तुम अपने अपराध परिणाम का भोग करो । उस समय मैं रुदन करती हुई अपने पितरों से कहने लगी—देव, सुव्रत ! मेरी मुक्ति कब होगी, इसे निश्चित बताने की कृपा कीजिये । उन्होंने कहा—कुमारि ! जिस समय में तू वीरोपभोग्या होगी । उस समय यह मेरा शाप छूट जायगा । राजन् ! मैं तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर अपने पिता के गृह जाना चाहती हूँ। ऐसा सुनकर उस राजा ने उससे कहा—मेरे घर चलो। पश्चात् मैं भी तुम्हारे साथ विद्याधर के यहाँ चलूँगा। उस देवी ने स्वीकार कर राजा के घर प्रस्थान किया। उस समय राजा के नगर में मनुष्यों ने महान् उत्सव किया। किन्तु, उस दिव्यपत्नी समेत राजा को देखकर उस मंत्री का निधन हो गया, वैताल ने पूछा—इसका कारण बताइये।१८-३१

राजा ने कहा—मंत्री बुद्धिप्रकाश उस दिव्य रमणी को देखकर अपने हृदय में राजा के विषय में सोचने लगा—कि स्त्री के वश होने के नाते राजभंग हो जायेगा। इसका कोई प्रतीकार न देखकर उस भय

विषयी यो हि भूपालस्तस्य राज्यविनाशनम् । स्त्रीमदं प्राप्तराज्यस्य सदा हानिमवाप्नुयात् ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विहस्य स तु वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । राजंश्चूडापुरे रम्ये भूपश्चूडामणिः स्मृतः ।।१
देवस्वामी गुरुस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः । तस्य पत्नी विशालाक्षी पतिधर्मपरायणा ।।२
शिवमाराधयामास पुत्रार्थे वरवर्णिनी । रुद्रस्य वरदानेन कामदेवसमः सुतः ।।३
हरिस्वामीति विख्यातो जातो देवांशवान्बली । सर्वसम्पत्समायुक्तो देवतुल्यसुखी क्षितौ ।।४
रूपलावण्यिका नाम्ना तत्पत्नी हि सुरांगना । जाता देवलशापेन तस्य नन्दनतो नृप ।।५
एकदा पतिना सार्द्धं वसन्ते कुसुमाकरे । हर्म्ये सुष्वाप सम्प्रीत्या शय्यामध्यास्य सुन्दरी ।।६
सुकलो नाम गन्धर्वस्तस्या रूपेण मोहितः । तां जहार विमाने स्वे संस्थाप्य स्वपुरं ययौ ।।७
प्रबुद्धः स तु तां नारीं मृगयामास विह्वलः । अलब्ध्वा व्याकुलो भूत्वा देशं त्यक्त्वा वनं गतः ।।८

से वह अपना प्राण परित्याग कर स्वर्ग चला गया। क्योंकि जो राजा विषयी होते हैं उनके राज्य का नाश हो जाता है और स्त्री रूपी मद (नशे) की प्राप्ति करने से राज्य की सदैव हानि होती रहती है।३२-३४

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक ग्यारहवाँ अध्याय।११।

अध्याय १२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

शौनक ने कहा—वैताल ने हँसकर राजा से कहा—राजन् ! चूड़ापुर में चूड़ामणि नामक राजा राज कर रहा था। वेद एवं वेदाङ्ग निष्णात देवस्वामी उसका गुरु था। विशाल नेत्र वाली उसकी पत्नी सदैव पतिधर्म का ही पारायण करती थी। उस सुन्दरी ने पुत्र कामनया शिव जी की उपासना की। भगवान् रुद्र जी के वरदान द्वारा उसके हरिस्वामी नामक ख्यातिप्राप्त पुत्र हुआ, जो कामदेव के समान सुन्दर बली एवं देवांश युक्त था। वह सम्पूर्ण सम्पत्ति से युक्त होकर देवता के समान पृथ्वी पर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा। रूपलावण्यिका नामक उसकी पत्नी थी। नृप ! वह देवाङ्गना थी, देवल के शाप से उसके लड़के से उत्पन्न हुई थी। उस हरे-भरे वसन्त के समय में एक दिन वह सुन्दरी अपने पति के साथ महल में मृदुशय्या पर शयन कर रही थी। उस समय सुकल नामक एक गन्धर्व उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका अपहरण करके अपने विमान पर बैठाकर उसे अपने नगर ले गया। उसके पति ने जागने पर घबड़ा कर अपनी पत्नी को खोजने का प्रयास किया। उसके न मिलने पर विह्वल होकर वह देश का परित्याग

संन्यस्य विषयान्सर्वान्हरिध्यानपरायणः । कदाचित्प्राप स स्नेही विप्रगेहमुपागतः ॥९
प्रपच्य पायसमपि वटवृक्षमुपाश्रितः । वृक्षोपरि निधायाशु नदीस्नानमथाकरोत् ॥
भोजनं च ततो राजन्सर्पेण गरलीकृतम् ॥१०
ततो यतिः समायातो भुक्त्वा मदमुपाययौ । विषेण पीडिततनुर्दृष्ट्वा ब्राह्मणमब्रवीत् ॥११
त्वया प्रदत्तं मूर्खेण पायसं विषमिश्रितम् । मरणं यामि भो दुष्ट ब्रह्महत्यामवाप्स्यसि ॥१२
इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य शिवलोकमुपाययौ । रूपतेजोयुतां देवीं गृहीत्वा सुखमाप्तवान् ॥१३
इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । कस्मै प्राप्ता ब्रह्महत्या तेषां मध्ये वदस्व मे ॥१४

राजोवाच

स्वाभाविकविषो नागो ह्यज्ञानेन विषं कृतम् । अतो दोषी हि भुजगो ब्रह्महत्यां न चाप्तवान् ॥१५
बुभुक्षिते ददौ भिक्षां स द्विजो दैवमोहितः । ब्रह्महत्यामतो नायात्कुलधर्मपरायणम् ॥१६
आत्मना च कृतं पापं भोक्तव्यं सर्वदा जनैः । आत्मत्यागो ब्रह्महत्या चातिथेश्चावमाननम् ॥१७
ब्रह्महत्या तदा ज्ञेया विषदत्तेन सा तथा । आत्मत्यागः स्मृतो दैवात्तस्मात्सोऽपि न पापवान् ॥१८
यैर्नरैः कथिता वार्ता ब्रह्महत्या त्वया कृता । तेषां ब्राह्मणहत्या सा न्यायभ्रष्टवतां नृणाम् ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

कर जंगल चला गया । वहाँ जाकर वह सभी विषयों के त्यागपूर्वक (संन्यास लेकर) भगवान् का ध्यान करने लगा । एक बार खीर खाने की इच्छा से वह किसी ब्राह्मण के घर क्षुधापीडित होकर पहुँचा । वहाँ से खीर लाकर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गया पश्चात् उस पायस को उसी वृक्ष पर रख कर नदी में स्नानार्थ चला गया । राजन् ! उसी बीच किसी सर्प ने उसे अपने विष से दूषित कर दिया । अनन्तर उस संन्यासी को उसका भक्षण करने से मद (नशा) होने लगा । विष की व्यथा से व्याकुल होकर उसने उस ब्राह्मण से कहा कि उसी ब्राह्मण ने खीर में विष मिला दिया है । अतः दुष्ट ! मैं प्राण त्याग कर रहा हूँ, तुम्हें ब्रह्म-हत्या का पाप भोगना पड़ेगा । इतना कहने के उपरांत वह प्राण परित्याग करके शिवलोक जाकर वहां रूप एवं तेज युक्त देवी की प्राप्ति कर सुख का अनुभव करने लगा । इतना कह कर वैताल ने राजा से कहा—उनमें ब्रह्महत्या का भागी कौन हुआ ? मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१-१४

राजा ने कहा—साँपों में विष का होना स्वाभाविक है और अज्ञान वश उसने उसे दूषित किया था, इसीलिए वह दोषी अवश्य है, पर, ब्रह्महत्या का भागी नहीं । तथा वह ब्राह्मण दुर्भाग्यवश उस भूखे ब्राह्मण संन्यासी को भिक्षा प्रदान किया है, ऐसा करके उसने अपने कुलधर्म की रक्षा ही की है अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं हो सकती । मनुष्यों को सर्वदा अपने किये हुए पाप-कर्म का फल भोगना ही पड़ता है । ब्राह्मण द्वारा अपमानित होकर उस ब्राह्मण के यहाँ विष मिश्रित भोजन प्राप्त कर उसके भक्षण करने से अह अतिथि आत्मत्याग किये होता तो वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी होता । उसने दैव (भाग्य) वश आत्मत्याग किया अतः वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी नहीं है । जो मनुष्य उस बात की चर्चा करते हुए यह कहेंगे कि ब्रह्महत्या तुमने की है, उन्हीं न्यायभ्रष्ट मनुष्यों को वह ब्रह्महत्या लगेगी ।१५-१९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृतकृत्यः प्रसन्नात्मा वैतालो नृपमब्रवीत् । नगरे चन्द्रहृदये रणधीरो नृपोऽभवत् ।।१
तत्र वैश्योऽवसद्धर्मी नाम्ना धर्मध्वजो धनी । तस्य पुत्री समायाता सुन्दरी सुखभाविनी ।।२
एकदा नगरे तस्मिन्यातुभक्तो नरोऽभवत् । द्यूतविद्यापरो नित्यं मद्यमांसपरायणः ।।३
वाशरो नाम तत्रासीद्राक्षसः पुरुषादनः । तस्मै मद्यं च मांसं च प्रत्यहं स च दत्तवान् ।।४
प्रसन्नो राक्षसो भूत्वा यातुभक्तं तमब्रवीत् । वरं वरय यो योग्यो मत्तः सर्वमवाप्स्यसि ।।५
स होवाच वरो मह्यं देयस्ते पुरुषादक । गुप्तगर्तं च भूमध्ये कुरु चौरनिरूपणम् ।।६
इति श्रुत्वाकरोद्गर्तं नरबुद्धिविमोहनम् । स्वयं तत्र स्थितो देवः स्वभक्तेन समन्वितः ।।७
तेन रात्रौ तु चौर्येण नृपदासी वराङ्गना । हृता संस्थापिता गर्ते बहुद्रव्यं तथा हृतम् ।।८
सप्तपत्न्योऽभवंस्तस्य चतुर्वर्णस्य योषितः । तासां मध्ये भूपदासी तस्य चौरस्य वल्लभा ।।९
नृपदुर्गसमं गेहं रचितं तेन रक्षसा । भूतले गुप्तरूपं च नरबुद्धिविमोहनम् ।।१०
चोरितं बहुधा द्रव्यं गर्ते संस्थापितं बलात् । तदा ते व्याकुला राजञ्जना राजानमब्रुवन् ।।११

अध्याय १३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—कृतकृत्य होकर उस वैताल ने प्रसन्नचित्त से राजा से कहा—चन्द्रहृदय नामक नगर में रणधीर नामक राजा राज कर रहा था। उसी नगर में धर्मध्वज नामक एक धार्मिक वैश्य रहता था। उसके सुखभाविनी नामक एक सौन्दर्य पूर्ण कन्या थी। एक बार उस नगर में एक मनुष्य राक्षस की उपासना करने लगा। द्यूत (जुए) खेलना और मद्य-मांस का भक्षण करना उसका नित्य दैनिक कार्य था। पुरुष का भक्षण करने वाला, वाशर नामक एक राक्षस वहाँ रहता था। उसी के लिए वह मद्य मांस प्रतिदिन अर्पित करता था। प्रसन्न होकर राक्षस ने उस भक्त से कहा। यथेच्छ वर की याचना करो, मैं सभी कुछ देने को तैयार हूँ। पुरुषभक्षक ! यदि मुझे आप वरदान प्रदान करना चाहते हैं, तो भूमि के भीतर एक गुप्त स्थान (चोरी का माल रखने के लिए) बनाइये। इसे सुनकर उस राक्षस ने एक इस प्रकार का गुप्त स्थान बनाया जिसमें मनुष्यों की बुद्धि चकित हो जाती थी। उस स्थान में उस राक्षस के साथ वह भक्त रहने लगा। एक बार रात्रि में उस चोर ने राजा की एक दासी का अपहरण करके उसी स्थान में रख दिया , उसने भी अधिक संख्या में द्रव्य का अपहरण किया। इस प्रकार उस चोर की चारों वर्णों वाली सात पत्नियाँ थी। किन्तु उनमें राजा की वह दासी ही उस चोर की हृदयेश्वरी थी। राक्षस ने उस स्थान का निर्माण राजा के दुर्ग के समान दृढ़ एवं इस भूतल में मनुष्यों की बुद्धि को चकित करने वाला किया था। उसने चोरी तथा बलपूर्वक अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण करके संचय किया। उस

त्यजाम नगरीं भूप चौरविघ्नकरीं तव । इति श्रुत्वाथ भूपेन रक्षिणः शस्त्रसंयुताः ॥
स्थापिता नगरे तस्मिश्चौरहिंसापरायणाः ॥१२
आज्ञाप्य स ययौ गेहं तैस्तु श्रुत्वा तथा कृतम् ॥१३
राक्षस्या मायया सर्वे मोहिता रक्षिणस्तदा । चौरेण बहुधा द्रव्यं हृतं च धनिनां बलात् ॥१४
पुनस्ते प्रययुर्भूपं रणधीरं समेरयन् । श्रुत्वा तु विस्मितो राजा स्वयं नगरमागतः ॥१५
अर्धरात्रे तमोभूते स चौरो नृपमागतम् । ज्ञात्वाब्रवीच्च राजानं को भवानत्र चाप्तवान् ॥१६
नृपोऽब्रवीदहं चौरश्चोदितार्थः समागतः । यास्यामि धनिनां गेहे भवान्मे वचनं कुरु ॥१७
मया सार्द्धं च बहुधा द्रव्यं हर सुखी भव । तथा मत्वा तु बहुधा चौरेण धनमाहृतम् ॥१८
गर्तमध्ये गतो रात्रौ स्थापयित्वा नृपं बहिः । एतस्मिन्नेव तत्पत्नी नृपदासी वराङ्गना ॥१९
भूपतिं प्राह भो राजन्गच्छ शीघ्रं स्वकं गृहम् । चौरोऽसौ हि त्वदर्थे च मृत्युं कुर्वन्गृहं गतः ॥२०
इत्युक्त्वा सा तु भूपाय मार्गभेदमदर्शयत् । नृपोऽपि स्वगृहं प्राप्य प्रभाते विमले रवौ ॥२१
आययौ सेनया सार्द्धं यत्र चौरः स्वयं स्थितः । चौरोऽपि भयमासाद्य वाशरं नाम राक्षसम् ॥२२
सम्पूज्य वर्णयामास यथा जातं तथाविधि । विहस्याह च रक्षस्तं त्वया मे भोजनं कृतम् ॥२३
अद्य भक्ष्याम्यहं सर्वान्मानुषान्दैवचोदितान् । इत्युक्त्वा स ययौ घोरो राक्षसो नृपतिं प्रति ॥२४

समय वहाँ की प्रजा अधीर होकर राजा से कहने लगी । राजन् ! चोरों के द्वारा इस नगर में अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो गई हैं, अतः हम लोग इसके परित्याग करने के लिए प्रस्तुत हैं । ऐसा सुनकर राजा ने अपने शस्त्रधारी रक्षकों को, जो चोरों की हिंसा करने में निपुण थे, उस नगर के चारों ओर नियुक्त कर दिया । किन्तु राक्षस की माया से मोहित होकर वे रक्षकगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, और उन चोरों ने बल प्रयोग करके धनवानों के भाँति-भाँति के धनों का अपहरण कर ही लिया । नगर के प्रजा वर्ग ने पुनः उस रणधीर राजा के पास जाकर उन घटनाओं का निवेदन किया । उसे सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर स्वयं नगर के रक्षार्थ वहाँ उपस्थित हुआ ।१-१५। उस अंधेरी रात में आधी रात के समय चोर ने आये हुए राजा से पूछा—आप कौन हैं, तथा यहाँ आने का प्रयोजन क्या है । राजा ने कहा—मैं भी चोर हूँ, चोरी के निमित्त यहाँ आया हूँ । मैं धनवानों के यहाँ चलने के लिए प्रस्तुत हूँ, आप भी मेरी बात स्वीकार करें—मेरे साथ चलकर अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण करके सुखी जीवन व्यतीत करें । चोर ने उसे स्वीकार करके अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण कर राजा को बाहर खड़ा करके स्वयं उस धन को रखने के लिए भीतर उस गुप्त स्थान में प्रविष्ट हुआ । उसी बीच वह दासी जो उस चोर की पत्नी के रूप में वहाँ रहती थी, राजा से कहने लगी—राजन् ! आप शीघ्र अपने घर को प्रस्थान कीजिये क्योंकि वह चोर भीतर जाकर आप के निधन के लिए उपाय कर रहा है । इतना कहकर उस दासी ने राजा को वहाँ का मार्ग भेद भी दिखा दिया । राजा अपने घर पहुँच कर निर्मल प्रभात के समय सूर्य के उदयकाल में अपनी सेना के साथ उस चोर के स्थान पर पहुँच गया । पश्चात् भयभीत होकर उस चोर ने वाशर नामक उस राक्षस से सभी वृत्तान्त जो कुछ रात में जिस प्रकार हुआ था कह सुनाया । राक्षस ने हँसकर उससे कहा । आज तुमने मुझे अच्छा भोजन प्रदान किया । दुर्भाग्यवश आये हुए उन सभी मनुष्यों का भक्षण करने के लिए मैं चल

चखाद बहुलां सेनां तेऽपि याता दिशो दश । आक्रान्तः स च भूपालो रक्षसा विकलीकृतः ॥२५
तदा चौरः स्वयं प्राप्य भूपतिं प्राह रोषतः । पलायनं न भूपस्य योग्यं धर्मजनस्य वै ॥२६
इति श्रुत्वा नृपश्चैव तूर्णमागत्य तत्र ह । ध्यात्वा देवीं महाकालीं लब्ध्वा मन्त्रं महोत्तमम् ॥२७
रक्षसा सह तद्गर्तं भस्मसादभवत्क्षणात् । निगडैस्तं बबन्धाशु चौरं नगरलुण्ठकम् ॥२८
तथा सर्वधनैः सार्धं स्त्रीभिस्ताभिः समाययौ । राज्यस्थानं समासाद्य दुर्गतिस्तस्य चाभवत् ॥२९
पटहाताडितेनैव शब्देन च गृहे गृहे । ज्ञापितं करणं सर्वं तच्चौरस्य वधस्य तैः ॥३०
तद्दिने नगरे तस्मिन्भ्रामितो गर्दभोपरि । धर्मध्वजगृहद्वारे स चौरो हि समागतः ॥३१
तस्य रूपं समालोक्य मुमोह सुखभाविनी । पितरं प्राह दुःखार्ता चौरं मोचय सत्वरम् ॥३२
स गत्वा नृपतिं प्राह पञ्चलक्षधनं मम । गृहाण चौरमोक्षार्थे म्रियते न हि मे सुता ॥३३
विहस्याह नृपस्तं वै चौरोऽयं धनलुण्ठकः । कर्हिचिन्न मया त्याज्यो भुवि वै पुरुषाधमः ॥३४
इति श्रुत्वा निराशोऽभूत्स चौरो मरणं गतः । शल्यारोपणकाले तु प्राक्प्रहस्य ततोऽरुदत् ॥३५
एतस्मिन्नेव तत्पुत्री देवमायाविमोहिता । गृहीत्वा चौरदेहं तु वह्निकुण्डे तु सागमत् ॥३६
तदा प्रसन्ना सा दुर्गा तावुजीव्य प्रसादतः । तस्यै दत्तो वरो दिव्यो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥३७
इत्युक्त्वा स तु भूपालं पुनः प्राह विहस्य तम् । किं कारणेन चौरोऽसौ प्राक्प्रहस्य ततोऽरुदत् ॥३८

रहा हूँ । इस प्रकार कहकर राक्षस राजा के पास पहुँचा । बहुधा सैनिकों का उसने भक्षण कर लिया और जो किसी प्रकार जीवित रहे इधर-उधर भाग गये । उस राक्षस ने राजा के अंगों को क्षत-विक्षत करके उन्हें भ्रान्त कर दिया । उस बीच वह चोर रुष्ट होकर राजा के पास पहुँच कर कहने लगा—धार्मिक राजा को (युद्ध से) भागना उचित नही है । इसे सुनकर राजा ने महाबली देवी के मन्दिर में शीघ्रता से पहुँचकर उनका ध्यान करके महान् एवं परमोत्तम मंत्र की प्राप्ति की । पश्चात् राक्षस समेत उस गुप्त भवन को उसी समय भस्म करके नगर में चोरी करने वाले उस चोर को हथकड़ियों से बाँधकर उसके समस्त धन एवं स्त्री समेत उसे राजस्थान (राजदरबार) में लाकर उसकी अत्यन्त दुर्दशा की । अनन्तर ढोल बजवाकर प्रत्येक घरों से उसके वध करने के निमित्त प्रमाण माँगने पर नागरिकगणों ने समस्त कारणों को उपस्थित किया । उस दिन उसे गधे पर बैठाकर नगर में घुमाते हुए उसे धर्मध्वज वैश्य के दरवाजे पर लाया गया कि सुखभाविनी नामक वैश्य की पुत्री उसे देखकर उसके रूप पर मुग्ध हो गई । पश्चात् दुःखी होकर उसने अपने पिता से कहा—इस चोर को शीघ्र छुड़ा लीजिये । उसने राजा के पास जाकर कहा—मेरे पास पाँच लाख मुद्रा है, उसे ग्रहणकर चोर को छोड़ दीजिये, नही तो मेरी पुत्री का निधन हो जायेगा। हँसकर राजा ने कहा—धन का अपहरण करने वाला यह चोर है अतः इस भूतल में इस नीच पुरुष का परित्याग मैं कभी नही कर सकता इसे सुनकर वह निराश हो गया और उस चोर का जीवनान्त कर दिया गया। शूली पर चढ़ने के समय पहले उसने हँसा, पश्चात् रुदन किया। उसी समय देवमाया से मुग्ध होकर उस वैश्य की पुत्री चोर-देह को लेकर अग्नि कुण्ड में पहुँच गई। उस समय भी दुर्गा जी प्रसन्न होकर कृपया उसे जीवितकर मुक्ति-भुक्ति फल प्रदानपूर्वक दिव्य वर भी प्रदान किया। इतना कहकर उस (वैताल) ने हँसकर राजा से कहा—चोर ने पहले हँसकर पश्चात् रुदन किया, इसका क्या कारण है।१६-३८।

राजोवाच

मदर्थे मुन्दरी नारी स्वप्राणान्दातुमुद्यता । तस्यै किं च प्रदातव्यं मया तत्स्नेहरूपिणा ॥३९
अतो रोदितवान्पश्चाद्धसने कारणं शृणु । धन्योऽयं भगवान्कृष्णो यस्य लीलेयमीदृशी ॥४०
अधर्मिणे च नाकस्य फलं दातुं समर्हति । धर्मिणो नरकस्यैव फलं तस्मै नमो नमः ॥४१
अतः स हसितः पूर्वं मोहितो हरिलीलया । इति श्रुत्वाह वैतालो हरेः शरणमुत्तमम् ॥४२
वाक्यं तेन कृतं शूल्यामतो जीवितवाञ्छुचिः ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य महाभाग वैतालो नृपमब्रवीत् । राजन्पुष्पावती रम्या नगरी तत्र भूपतिः ॥
सुविचार इति ख्यातः प्रजापालनतत्परः ॥१
चन्द्रप्रभा तस्य पत्नी रूपयौवनशालिनी । तस्यां जाता सुता देवी नाम्ना चन्द्रावली मता ॥२
कदाचित्स्वालिभिः सार्द्धं विपिनं कुसुमाकरम् । आययौ तत्र वै विप्रं सुदेवं सा ददर्श ह ॥३

राजा ने कहा—यह सुन्दरी स्त्री मेरे लिए प्राण परित्याग करने को तैयार है, यद्यपि मैं उसका प्रीतिभाजन हूँ, पर उसे क्या दे सकता हूँ, इसलिए उसने रुदन किया; अब हँसने का कारण बता रहा हूँ, सुनो ! भगवान् कृष्ण धन्य हैं, जिसकी ऐसी लीला है कि अधर्मी को स्वर्ग और धर्म को नरक वास प्रदान करते हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है । इसी भगवान् की लीला से मोहित होकर वह पहले हँसा था । इसे सुनकर वैताल ने कहा—भगवान् का शरण ही उत्तम है क्योंकि शूली होने पर उसे पवित्र जीवन प्राप्त हो गया ।३९-४३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य, महाभाग ! वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! पुष्पावती नामक रमणीक नगरी में सुविचार नामक राजा राज करता था । वह प्रजाओं के पालनपोषण में सदैव कटिबद्ध रहता था । रूप-यौवन सम्पन्न चन्द्रप्रभा नामक उसकी पत्नी थी । उस रानी से चन्द्रावती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई । एक बार वह अपनी सखियों समेत एक जंगल में गई, जहाँ भाँति-भाँति के पुष्प सुशोभित हो रहे थे । वहाँ सुदेव नामक ब्राह्मण को देखकर वह मुग्ध हो गई और वह ब्राह्मण भी मोहित होकर पृथिवी

मोहिता चाभवद्देवी विप्रोऽपि पतितः क्षितौ । कामबाणव्यथां प्राप्य गतप्राण इवाभवत् ।।४
तस्यां गतायां सदने द्वौ विप्रौ तत्र चागतौ । मूलदेवः शशी नाम्ना तत्र विद्याविशारदौ ।।५
तथागतं द्विजं दृष्ट्वा रूपयौवनशालिनम् । पप्रच्छ कारणं सर्वं येन मोहत्वमागतः ।।६
स श्रुत्वा रोदनं कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् । कृपालुर्मूलदेवस्तु तं स्वगेहमवाप्तवान् ।।७
गृहे जप्त्वा महामन्त्रं चामुण्डाबीजसंयुतम् । कृतवान्गुटिके चोभे सुदेवाय समार्पयत् ।।८
एकया सुन्दरी कन्या द्वादशाब्दमयी शुभा । द्वितीयया महावृद्धो मूलदेवस्तदाभवत् ।।९
द्वौ गतौ राजसदने नृपमाशीर्भिरर्च्य तम् । हेतुं निवेदयामास तच्छृणुष्व महामते ।।१०
नगरे तान्त्रिके राजन्मद्गेहं सुन्दरोपमम् । विलापध्वजनाम्ना वै राज्ञो संलुठितं बलात् ।।११
पलायितौ सुतः पत्नी तावन्वेष्टुं समाययौ । इयं वधूर्महाराज मम तत्पुत्रभाविनी ।।१२
यावदहं न गच्छामि स्वगेहे रक्ष धर्मतः । इति श्रुत्वा स नृपतिश्चाहूय स्वसुतां तदा ।।
तस्यै समर्प्य तां पश्चात्स द्विजो गेहमाययौ ।।१३
सुदेवस्तु निशीथे वै रमणीं प्राह निर्भयः । कुतस्ते मन उद्विग्नं सत्यं कथय मे सखि ।।१४
साह मे हृदये नित्यं सुदेवो ब्राह्मणोत्तमः । उषितस्तद्वियोगेन व्याकुलाहं सदा सखे ।।१५
सुदेवश्चाह भोः सुभ्रूर्यदि ते ब्राह्मणोत्तमम् । समर्पयामि तत्त्वं मे किं ददासि वदस्व भोः ।।
साह ते सर्वदा दासी भवामि द्विजभामिनि ।।१६
इति श्रुत्वा सुदेवस्तु मुखान्निष्कृष्य यन्त्रकम् । पूर्वदेहत्वमापन्नस्तया सार्द्धं समारमत् ।।१७

पर गिर पड़ा । काम के बाणों से पीड़ित होकर निर्जीव की भाँति वह दिखाई देता था । उस कुमारी के घर चले जाने पर मूलदेव और शशी नामक दो ब्राह्मण उस ब्राह्मण के दरवाजे पर आये । रूप-यौवन सम्पन्न उस ब्राह्मण को देखकर उसके मोहित होने का कारण उन्होंने पूँछा । उसने रुदन करके सभी वृत्तान्त कह सुनाया । वह दयालुमूलदेव अपने घर आकर चामुण्डा देवी के बीज समेत मंत्र का जप करके दो गुटिका बनाकर सुदेव को दे दिया । उसके द्वारा उनमें से एक बारह वर्ष की सुन्दरी कन्या और दूसरा मूलदेव अत्यन्त वृद्ध का रूप धारण करके राज दरबार में पहुँचे । वहाँ आशीर्वाद प्रदान कर राजा का सम्मान प्रकट किया । महामते ! उनके वहाँ प्रविष्ट होने का कारण भी सुनो ! उसने कहा—राजन् ! तांत्रिक नगर में मेरा एक सौन्दर्यपूर्ण गृह है । वहाँ के विलापध्वज नामक राजा बलात् मेरे घर को लुटवाना चाहता था, इससे मेरे घर के दोनों पुत्र और पत्नी घर से न जाने कहाँ चले गये । मैं उन दोनों पुत्र एवं पत्नी को ढूंढ़ने आया हूँ । महाराज ! यह मेरी पुत्रवधू है । जब तक मैं न आऊँ अपने गृह में इसकी धर्मपूर्वक रक्षा कीजिये । इसको सुनकर राजा ने अपनी पुत्री को बुलाकर उसे उस वधू को सौंप दिया और वह ब्राह्मण भी अपने घर चला गया । १-१३। आधी रात के समय उस रमणी ने राजकन्या से कहा—सखि ! तुम्हारा मुख म्लान क्यों है, मुझे सत्य बताओ ! उसने कहा—मेरे हृदय में सुदेव नामक ब्राह्मण नित्य निवास करता है, अतः सखे ! उसी के वियोग-व्यथा से पीड़ित रहती हूँ । उसने कहा सुभ्रु ! यदि मैं उस श्रेष्ठ ब्राह्मण सुदेव को तुम्हारे पास पहुँचा दूँ, तो मुझे क्या (पुरस्कार) दे सकोगी । उसने कहा द्विजभामिनी ! मैं तुम्हारी सर्वदा दासी रहूँगी । यह सुनकर उसने अपने मुख से उस यंत्र को निकालकर पूर्व शरीर की

चतुर्मास्यो भवद्गर्भस्तस्मिन्काले तु भो नृप ॥१८
अमात्यतनयो विप्रस्त्रीरूपं प्रति मोहितः । तदा मरणसम्पन्नं ज्ञात्वा तं मदनालसम् ॥१९
मन्त्री स्नेहाच्च बहुधा सञ्चित्य हृदि पण्डितैः । तस्मै समर्पयामास तां नारीं मन्त्रसम्भवाम् ॥२०
साह भोऽमात्यतनय त्रिमासं तीर्थमण्डले । संस्नाहि तर्हि मे योग्यो भविष्यसि तथा कुरु ॥२१
तथा मत्वा मन्त्रिसुतो नम्रात्मा मदनालसः । तीर्थान्तरं गतःसोऽपि सुदेवस्तस्य योषितम् ॥२२
भूपकान्तिं कामवशां चालिलिङ्ग स कामुकः । सा तु गर्भं दधाराशु द्विमासस्य द्विजेन वै ॥२३
सुदेवो मानुषो भूत्वा मूलदेवगृहं ययौ । सर्वं निवेदयामास यथाजातं नृपालये ॥२४
मूलदेवः प्रसन्नात्मा शशिनं नाम मित्रकम् । विंशद्वर्षतरं कृत्वा स्वयं वृद्धस्य रूपवान् ॥२५
राज्ञे निवेद्य तत्सर्वं वधूं मे देहि भूपते । तदा तु स नृपो भीत्या तं प्राह श्लक्ष्णया गिरा ॥२६
मन्त्री राजकरो नाम तत्पुत्रो मदनालसः । दृष्ट्वा तव वधूं रम्यां मुमोह मरणोन्मुखः ॥२७
स्वपुत्रस्य वियोगेन स मन्त्री च तथेदृशः । तथाहं ब्राह्मणान्वृद्धान्पृष्ट्वा तस्मै च तामदाम् ॥२८
यथा प्रसन्नो हि भवान्कुरु त्वं च तथाविधम् । मूलदेवस्तु नृपतिं प्रोवाच विषमुद्गरन् ॥२९
देहि भूप सुतां मह्यं तत्पुत्रस्य सुखाय वै । तथैव मत्वा स नृपः सुतां चन्द्रावलीं शुभाम् ॥३०
दत्त्वा च वेदविधिना बहुधा द्रव्यसंयुताम् । स्वयं चकार राज्यं वै ब्रह्मदोषविवर्जितः ॥३१
शशी तु भूपतेः कन्यां गृहीत्वा स्वगृहं ययौ । सुदेवस्तु तदा दुःखी मूलदेवमुवाच ह ॥३२

प्राप्ति की और उसके साथ रमण करना आरम्भ किया ।१-१७। नृप ! वह कुमारी चारमास की गर्भवती हो गई । उस समय मंत्री का पुत्र उस ब्राह्मण पत्नी को देखकर मोहित हो गया था । उस मंत्री पुत्र मदनालस को निष्प्राण होने की भाँति देखकर मंत्री के स्नेहवश राजा ने हृदय में विचारते हुए पण्डितों की सम्मति से उस मंत्र संभूत नारी को उसे समर्पित कर दिया । अनन्तर उस ब्राह्मण स्त्री ने उससे कहा—अमात्य पुत्र ! तीन मास तक आप तीर्थों में स्नान करते हुए मेरे अनुरूप योग्य होने का प्रयत्न कीजिये । उसे स्वीकार कर मंत्री पुत्र मदनलालस ने विनम्रतया तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया । पश्चात् उस कामुक ने उसकी पत्नी का जो रानी के समान सुन्दरी एवं कामपीड़ित थी, उपभोग करके उसे भी दो मास की गर्भवती बना दिया । पश्चात् मनुष्यरूप धारणकर उसने मूलदेव के घर पहुँचकर उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । प्रसन्न होकर मूल देव ने उस शशी नामक मित्र को बीस वर्ष का युवक और स्वयं वृद्ध का रूप धारणकर राजा के पास पहुँचा । उन्होंने कहा—भूपते ! मेरी पुत्रवधू प्रदान कीजिये । उस समय भयभीत होकर राजा ने नम्रता पूर्वक कहा—राजकर नामक मंत्री का पुत्र मदन लालस उस अधिक सुन्दरी वधू को देखकर मोहित हो गया था । उसके लिए उसे मरणासन्न देखकर मंत्री ने अपने पुत्र के वियोग का कारण मुझसे कहा मैंने वृद्ध ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्तकर उसे उसको सौंप दिया। अब आप जिस भाँति प्रसन्न हो सके मुझे आदेश दें । मूलदेव ने विषपूर्ण शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा—राजन् ! मेरे पुत्र के सुखार्थ आप अपनी कन्या प्रदान करें । उसे स्वीकार करके राजा ने चन्द्रावली नामक अपनी पुत्री को अनेक भाँति के द्रव्यों समेत वैदिक विधान द्वारा उन्हें प्रदानकर उपस्थित ब्रह्मदोष से मुक्त होकर राज्य का उपभोग किया । शशी राजकन्या को साथ लेकर अपने घर चला गया । उस समय

मदीयेयं नृपसुता भोगपत्नी महोत्तमा । तच्छ्रुत्वा मूलदेवस्तु विस्मितःस तथाकरोत् ।।३३
इत्युक्त्वा नृपतिं प्राह वैतालो रुद्रकिङ्करः । कस्मै प्राप्ता नृपसुता धर्मतस्तद्वदस्व मे ।।३४

राजोवाच

पितामात्राज्ञया पुत्री देवानां सन्मुखे स्थिता । यस्मै निवेदिता तस्मै स योग्या धर्मतः सदा ।।३५
शास्त्रेषु कथितं देव स्त्रीरत्नं सर्वदैव हि । यथाक्षेत्रं भुवि ख्यातं बीजमन्येन रोपितम् ।।३६
तत्क्षेत्रं कृषिकारस्य बीजदातुर्न चैव ह । तस्माद्वै राजतनया शशिनं वरयिष्यति ।।३७
सुदेवस्य वै तनयो योग्यत्वं हि गमिष्यति ।।३८
इति ते कथितं देव यथा शास्त्रेषु भाषितम् । किं कृतं मन्त्रिपुत्रेण तथैव कथयस्व मे ।।३९
इति श्रुत्वा स होवाच स पुत्रो मदनालसः । वृन्दावनं शुभं प्राप्य राधाकुण्डे समागतः ।।४०
स स्नात्वा बहुलाष्टम्यां तत्पुण्येन नृपोत्तम । भस्मसादभवत्पापं येन मोहत्वमागतः ।।४१
स्मृत्वा स हृदि गोविन्दं तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।४२

मदनालस उवाच

नमस्ते दयासिन्धवे कृष्णदेव त्वयेदं तत विश्वमम्भोधिरूपम् ।
त्वयैकेन लीलार्थतो देव देव प्रियाराधया सार्द्धमेतद्धि गुप्तम् ।।४३
जगत्यन्तकाले त्वया काममूर्त्या जगत्संहृतं वै नमस्ते नमस्ते ।
मदीया च बुद्धिर्हृषीकेश शुद्धा यथा स्यात्तथैवेश शीघ्रं कुरु त्वम् ।।४४

सुदेव ने दुःखी होकर मूलदेव से कहा—यह राजपुत्री मेरे उपभोगार्थ है । उसे सुनकर मूलदेव ने आश्चर्य प्रकट करते हुए वैसा ही किया । इतना कहकर रुद्रसेवक वैताल ने राजा से कहा—धर्मतः राजकन्या किसे प्राप्त होनी चाहिए मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१८-३४

राजा ने कहा—माता-पिता की आज्ञा प्राप्तकर कन्या देवों के सम्मुख उपस्थित होकर जिसके लिए निवेदित की जाती है, वह धर्मतः सदैव उसी के योग्य रहती है । देव ! शास्त्रों में स्त्रियों को सदैव रत्नरूप बताया गया है, जिस प्रकार पार्थिव क्षेत्रों (खेतों) में बीज का आरोपण किसी दूसरे के द्वारा होने पर वह क्षेत्र किसान का ही रह जाता है, बीज बोने वाले का नहीं । उसी प्रकार राजपुत्री शशी का ही वरण करेगी और उसका गर्भस्थित पुत्र सुदेव को प्राप्त होना चाहिए । देव ! इस प्रकार मैंने शास्त्र विहित नियमों की व्याख्या कर दी । उसने पुनः राजा से कहा—पश्चात् मंत्रिपुत्र ने क्या किया, मुझसे बताइये । ऐसा सुनकर उन्होंने कहा । मंत्रीपुत्र मदनलालस ने वृन्दावन में पहुँचकर बहुलाष्टमी के दिन राधा कुण्ड में स्नान किया । नृपसत्तम ! उसी पुण्य के प्रभाव से उसका वह पाप, जिसके द्वारा वह मोहित हुआ था, भस्म हो गया । उपरांत अपने हृदय में गोविन्द जी का स्मरण करते हुए श्लक्ष्णवाणी से उनकी स्तुति की ।३५-४२

मदनलालस ने कहा—हे कृष्णदेव ! सागर रूप इस विश्व का विस्तार आप ने ही किया है, अतः आप दयासिंधु को नमस्कार है, तथा देवदेव ! अपनी लीला के निमित्त आप एकाकी इसकी रचना करके अपनी प्रेयसी राधा जी के समेत इसकी रक्षा करते हैं, और अन्त समय में आप ही कालमूर्ति होकर इस विश्व का संहार करते हैं, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । हृषीकेश ! मेरी बुद्धि की शुद्धि जिस प्रकार

इति स्तोत्रप्रभावेन देवदेवेन नोचिताः । कामपाशात्तस्य बुद्धिः स क्षत्रीगृहमागयौ ॥४५
रमणीं स्वां समालिङ्ग्य ननन्द मुदितो नृप । विप्रदोषविनाशाय हृदि सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥
सुदेवं स समाहूय स्वां स्वसारं ददौ मुदा ॥४६
सुदेवस्तस्य भगिनीं क्षत्रियस्य मदातुराम् । धर्मेणोद्वाह्य स्वं गेहं प्राप्तवान्कामकिङ्करः ॥४७
इति ते कथितं भूप चरित्रं तस्य धीमतः । मूलदेवस्य विप्रस्य तथान्यत्कथयाम्यहम् ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्रशस्य भूपतिं शुद्धं वैतालो रुद्रकिङ्करः । पुनराख्यानकं विप्र वर्णयामास सुन्दरम् ॥१
कान्यकुब्जे महाराज ब्राह्मणो दानशीलकः । बभूव सत्यसन्धश्च देवीपूजनतत्परः ॥
प्रतिग्रहेण यद्द्रव्यं तेन दानमचीकरत् ॥२
कदाचित्तु शरत्काले नवदुर्गाव्रतं ह्यभूत् । न प्राप्तं दानतो द्रव्यं तदा चिन्तातुरोऽभवत् ॥३
किं कर्तव्यं मया चाद्य येन द्रव्ययुतो ह्यहम् । कन्या निमन्त्रिताश्चाद्य कथं ता भोजयाम्यहम् ॥४

हो सके शीघ्रतया वही आप करें । इस स्तोत्र के प्रभाव से देवाधिदेव द्वारा उसकी बुद्धि कामपाश से मुक्त हो गई। पश्चात् वह क्षत्री अपने घर आया। नृप ! अपनी पत्नी का आलिङ्गन करके वह अत्यन्त हर्षित हुआ। उस बुद्धिमान् ने अपने हृदय में विप्रदोष द्वारा विनाश की कल्पना करके उनके प्रसन्नार्थ सुदेव ब्राह्मण को बुलाकर प्रसन्न मुद्रा समेत अपनी भगिनी का पाणिग्रहण उनके साथ कर दिया। सुदेव ने कामकिंकर होने के नाते उसकी मदोन्मत्त भगिनो का पाणिग्रहण धर्मतः सुसम्पन्न करके अपने घर के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार राजा का चरित्र और उस बुद्धिमान् मूलदेव की कथा के बाद अन्य को कथा कहकर बात समाप्त किया।४३-४८

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अध्याय १५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—विप्र ! रुद्रगण उस वैताल ने राजा की प्रशंसा करते हुए पुनः एक सुन्दर आख्यान का वर्णन करना आरम्भ किया । महाराज ! कान्यकुब्ज प्रदेश में दानशील ब्राह्मण रहता था । वह सत्यवक्ता एवं देवी जी की पूजा के लिए कटिबद्ध रहता था । प्रतिग्रह (दान) रूप में उसे जो कुछ द्रव्य की प्राप्ति होती थी उसका दान करता था । एक बार शरद काल में उसने नवदुर्गा का व्रत करना आरम्भ किया । एक दिन स्वयं दान करने के लिए उसे दुर्गाव्रत में कहीं से द्रव्य की प्राप्ति न होने के नाते वह चिंतित होने लगा— आज मैं कौन-सा उपाय करूँ जिससे द्रव्य की प्राप्ति हो जाये क्योंकि भोजन के लिए कन्याओं को

इति शोकसमायुक्तस्तदा देवीप्रसादतः । मुद्राः पञ्च तदा प्राप्तास्ताभिर्व्रतमचीकरत् ॥५
निराहारव्रतं तेन कृतं तु नवमाह्निकम् । तेन व्रतप्रभावेन मृतो देवत्वमागतः ॥६
जीमूतकेतुरिति च सोभूद्विद्याधराधिपः । हिमाचलगिरौ रम्ये पुरे विद्याधरे शुभे ॥७
उवास कतिचिद्वर्षान्दिव्यभोगप्रभोगवान् । तत्र कल्पद्रुमं नित्यं पूजयामास भक्तितः ॥८
तेन वृक्षप्रभावेन जातः पुत्रो महोत्तमः । सर्वाकलासु निपुणो नाम्ना जीमूतवाहनः ॥९
स वै पूर्वभवे राजन्मध्यदेशे महोत्तमे । क्षत्रियः शूरसेनाख्यो बभूव वसुधाधिपः ॥१०
एकदा मृगयाकेलिलोलुपः स महीपतिः । आगतवानुत्पलारण्यं यत्र वाल्मीकिसंस्थितिः ॥११
चैत्रशुक्लनवम्यां तु न कृतं जीवघातनम् । उत्सवं रामदिवसे चकार विधिवन्नृपः ॥१२
वाल्मीकेश्च कुटीमध्ये रात्रौ जागरणं कृतम् ॥१३
श्रुता राममयी गाथा तस्य पुण्यप्रभावतः । विद्याधरत्वमापन्नो मुमुदे तत्र शक्रवत् ॥१४
कल्पवृक्षस्य वै पूजा कृता तेन महात्मना । वर्षान्तरे द्रुमः प्राह वरं वरय सत्तम ॥१५
स तमाह महावृक्ष मदीयं नगरं शुभम् । धनधान्यसमायुक्तं यथैव स्यात्तथा कुरु ॥१६
इत्युक्ते सति वृक्षेण नगरं भूपतेः समम् । कृतं तदा न कोऽप्यासीद्यो मन्येत्पार्थिवाश्रयम् ॥१७
सर्वे ते राजतुल्याश्च कल्पवृक्षप्रसादतः । तदा तौ तु पितापुत्रौ तपसोऽर्थे वनं गतौ ॥१८

निमंत्रित किया है आज उन्हें कैसे भोजन कराऊँगा । इस प्रकार शोक करते हुए उसे देवी जी की कृपावश पाँच रूपयें की प्राप्ति हो गई, जिससे उसका व्रत समाप्त हो सका ।१-५। उसने नव दिन तक निराहार रहकर उस व्रत को पूरा किया । उस व्रत के प्रभाव से वह प्राण परित्याग के अनन्तर देवयोनि में उत्पन्न होकर जीमूतकेतु नामक विद्याधरों का अधिनायक हुआ । हिमाचल पर्वत के उस रमणीक विद्याधर नगर में दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए उसने कुछ वर्षों का समय व्यतीत किया । वहाँ वह भक्तिपूर्वक नित्य कल्पवृक्ष की पूजा करता था । उस वृक्ष की कृपावश उसके उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सम्पूर्ण कलाओं में निपुण था एवं जीमूतवाहन उसका नाम था । राजन् ! पूर्वजन्म में वह उस परमोत्तम मध्यदेश में शूरसेन नामक क्षत्रिय राजा था । एकबार वह राजा मृगया की क्रीडा में मुग्ध होकर उस कमलवन में पहुँच गया जहाँ वाल्मीकि ऋषि रहा करते थे । चैत्र शुक्ल की नवमी में उसने कोई जीव हिंसा नहीं की । किन्तु उस राजा ने सविधान उत्सव करके उस रात दिन को व्यतीत किया । महर्षि बाल्मीकि की पर्णकुटी में उसने मध्य-रात्रि तक जागरण करके भगवान् रामचन्द्र की गाथाओं का श्रवण किया । जिसके पुण्य के प्रभाव से विद्याधर होकर वह इन्द्र की भाँति सुखी जीवन व्यतीत करने लगा । उस महात्मा ने एक वर्ष तक कल्पवृक्ष की पूजा की इसके उपरांत उसने कहा—सत्तम ! वर की याचना करो।६-१५। उसने कहा—महावृक्ष ! मेरे उस शुभ नगर को धन धान्य-पूर्ण जिस भाँति हो सके बनाइये । ऐसा कहने पर उस वृक्ष ने उस नगर को राजा के नगर की भाँति बना दिया । जो किसी राजा के आश्रित रह रहा था (उस वृक्ष के प्रभाव से) स्वयं राजा बन बैठा । उस नगर में कल्पवृक्ष के प्रभाव से सभी राजा की भाँति सुखी थे । उस समय वे पिता पुत्र दोनों तप करने के लिए बन चले गये । मलय पर्वत के उस रमणीक स्थान में

मलयाद्रौ महारम्ये तेपतुर्बहुलं तपः । एकस्मिन्दिवसे राजन्मलयध्वजभूपतेः ॥१९
कमलाक्षीति विख्याता कन्या च शिवमंदिरे । स्वसख्या सहिता प्राप्ता शिवपूजनतत्परा ॥२०
जीमूतवाहनश्चैव पूजार्थे मन्दिरं ययौ । बालां ददर्श दिव्याङ्गीं सर्वभूषासमन्विताम् ॥२१
तस्या दर्शनमात्रेण कामबाणेन पीडितः । मनसा कामदेवं तं तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥२२

जीमूतवाहन उवाच

मदनाय नमस्तुभ्यं कृष्णपुत्राय ते नमः । शम्बरप्राणहन्त्रे च चतुर्व्यूहाय ते नमः ॥२३
पंचबाणाय कामाय प्रद्युम्नाय नमो नमः । मद्योग्यां कुरु सुश्रोणीं कामिनीं कमलाननाम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्मकरध्वजदेवता । मोहयित्वा च पितरं तद्विवाहमकारयत् ॥२५
विश्वावसुरिति ख्यातस्तस्य भूपस्य वै सुतः । भगिनीपतिना सार्द्धं स ययौ गन्धमादनम् ॥२६
नरं नारायणं नत्वा गरुडोत्तुङ्गमाययौ । तदा नागस्य वै माता शङ्खचूडस्य भो नृप ॥२७
रुरोद बहुधा तत्र यत्र जीमूतवाहनः । दुःखितः स जगामाशु दयालुर्दीनवत्सलः ॥२८
वृद्धामाश्वास्य पप्रच्छ केनेदं दुःखमागतम् । साह मे तनयो देव गरुडास्ये गमिष्यति ॥२९
तद्वियोगेन दुःखार्ता विलपामि महाकुला । इति ज्ञात्वा स नृपतिर्गरुडोत्तुङ्गमाययौ ॥३०
गरुडोऽपि गृहीत्वा तं नभोमार्गमुपागमत् । तस्याङ्गदोऽसृजा लिप्तो न्यधात्तत्र भामिनी ॥३१
कमलाक्षी तु वियति स्थितं गरुडभक्षितम् । विलोक्य चारुदद्गाढं पतिदुःखेन दुःखिता ॥३२

पहुँचकर वे दोनों घोर जप करने लगे । राजन् ! एक दिन राजा मलयध्वज की कमलाक्षी नामक कन्या अपनी सहेलियों के साथ शिव जी की आराधना हेतु उनके मंदिर में आई। जीमूतवाहन भी पूजार्थ उसी मन्दिर मे पहुँचे। वहाँ उस दिव्य अंगवाली कन्या को देखा, जो सम्पूर्ण उपमाओं से युक्त थी।१६-२०। उसे देखते ही कामबाण से पीडित होकर उन्होंने कारुणिक स्वरों द्वारा कामदेव की मानसिक आराधना की।

जीमूतवाहन बोला—मदन को नमस्कार है, कृष्ण पुत्र को नमस्कार है। शंबर के प्राण का अपहरण करने वाले एवं चारों व्यूहरूप तुम्हें नमस्कार है । पाँचोबाण, काम, एवं प्रद्युम्न को बार-बार नमस्कार है, सुन्दर श्रोणी तटवाली, तथा उस कमलमुखी कामिनी को मेरे अधीन कीजिये । इसे सुनकर उस समय भगवान् मकरध्वज देव ने उसके पिता को मोहित करके उसका विवाह संस्कार सुसम्पन्न करा दिया। विश्वावसु नामक वहाँ का राजपुत्र अपने भगिनी पति (जीजा) के साथ गंधमादन पर्वत पर गया । वहाँ नर-नारायण को नमस्कार करके गरुडोतुङ्ग पर पहुँचा । राजन् उस समय शंखचूड नामक सर्प की माता जीमूतवाहन के सम्मुख अधीर होकर रुदन करने लगी । दयालु दीनवत्सल उस जीमूत वाहन ने उस वृद्धा को आश्वासन देकर उससे पूछा तुम्हें क्या कष्ट है ? उसने कहा—मेरा पुत्र गरुड का भक्ष्य हो जायगा । उसी के वियोग दुःख से अधीर होकर रुदन कर रही हूँ । राजन् यह जानकर वह भी उसी गरुडोतुङ्ग नामक स्थान पर आया ।२३-३०। गरुड उसे ग्रहण कर आकाश मार्ग में पहुँच गये । वहाँ उन्होंने उस स्त्री को जिसके शरीर में उसके पति का रक्त आदि लगा हुआ था, उतार दिया । उस आकाश में स्थित होकर वह स्त्री गरुड द्वारा भक्षित अपने पति को देखकर पति दुःख से दुःखी होती हुई

तदा तु गरुडस्त्रस्तस्तत्रागत्य त्वरान्वितः । जीमूतवाहनं प्राह कस्मात्त्वं मम भक्षितः ॥३३
स होवाच प्रभो मेऽद्य वचः शृणु महामते । शङ्खचूडस्य जननी महादुःखेन दुःखिता ॥३४
तस्याः पुत्रस्य रक्षार्थं सम्प्राप्तोऽहं तवान्तिकम् । इत्युक्ते सति भूपाल शङ्खचूडश्च पन्नगः ॥३५
तद्बालस्यैव दुःखेन दुःखितः शत्रुमाप्तवान् । मां प्रभक्ष कृपासिन्धो त्वदाहारार्थमागतम् ॥३६
सन्त्यज्य मानुषं दिव्यं कुर्वाहारं महामते । तदा प्रसन्नो गरुडो ददौ तस्मै वरत्रयम् ॥३७
जीमूतवाहनायैव विद्याधरसुताय च । शङ्खचूडकुलं नाहं भक्षयिष्ये कदाचन ॥३८
त्वं तु विद्याधरपुरे प्राप्य राज्यं महोत्तमम् । सुभोजयित्वा लक्षाब्दं ततो वैकुण्ठमेष्यसि ॥३९
इत्युक्त्वान्तर्दधौ देवः स पित्रा राज्यमाप्तवान् । स्वपत्न्या सह राज्याङ्गं भुक्त्वा वैकुण्ठमाययौ ॥४०
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह नम्रधीः । तेषां मध्ये महाराज कस्य प्राप्तं महाफलम् ॥४१

राजोवाच

शङ्खचूडस्य सम्प्राप्तं जीवदानमहाफलम् । नृपस्यैवोपकारं च स्वभावो विधिना कृतः ॥४२
पतिव्रताप्रभावेन जीवदानेन भूपतेः । सन्तुष्टो गरुडो जातस्तस्य किं तर्हि तत्फलम् ॥४३
निर्भयः शङ्खचूडस्तु स्वशत्रुं प्रति चागमत् । शरीरमर्पयित्वा तं ततः प्राप्तं महाफलम् ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

प्रगाढ़ रुदन करने लगी । उस समय भयभीत होकर गरुड भी वहाँ शीघ्र पहुँचकर जीमूतवाहन से बोले कि—तुम मेरे भक्ष्य कैसे हो गये । उन्होंने कहा—महामते, सुनो, मैं बता रहा हूँ । शंखचूड़ की माता अत्यन्त दुःख से दुखी थी । उसके पुत्र के रक्षार्थ मैं आप के पास पहुँचा हूँ । राजन् ! ऐसा कहने पर शंखचूड़ नामक नाग ने उस सर्प के दुःख से दुःखी होकर अपने शत्रु गरुड के पास जाकर कहा—कृपासिंधो ! मेरा भक्षण कीजिये, मैं आपके भोजनार्थ आया हूँ । महामते ! इस मनुष्य का परित्याग कर इस दिव्य आहार को अपनाइये । उस समय प्रसन्न होकर गरुड ने तीन वर प्रदान किया । उन जीमूतवाहन ने विद्याधर देव से कहा—मैं शंखचूड के कुल का भक्षण कभी नहीं करूँगा । तुम विद्याधर के नगर में उस महान् उत्तम राज्य की प्राप्ति करो । तथा एक लक्ष वर्ष तक उसका उपभोग करके ने उपरांत वैकुण्ठ की प्राप्ति करोगे । इतना कहकर गरुड अन्तर्हित हो गये । और वह अपने पिता के समेत उस राज्य की प्राप्ति किया । पश्चात् अपनी रानी के समेत उस राज्य का उपभोग करने के अनन्तर उन्होंने वैकुण्ठ की प्राप्ति की । इतना कहकर वैताल ने नम्रता पूर्वक राजा से कहा—महाराज ! उनमें किसे उस महान् फल की प्राप्ति हुई ।३१-४१

राजा बोले—उस जीवदान का महाफल शंखचूड को प्राप्त हुआ क्योंकि ब्रह्मा ने राजाओं को परार्थ करना स्वाभाविक बताया है । और पतिव्रता के प्रभाव से राजा को जीवदान प्राप्त हुआ तथा उसी से गरुड भी प्रसन्न हुए, किन्तु उसका कुछ फल नहीं है । अतः निर्भय होकर शंखचूड के अपने शत्रु के सम्मुख जाकर अपनी शरीर के समर्पण करने से उन्हें उस महाफल की प्राप्ति हुई ।४२-४४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अथ षोडशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्राह स वैतालो भूपतिं ज्ञानकोविदम् । चन्द्रशेखरभूपस्य नगरी दक्षिणे स्थिता ।।१
रत्नदत्तोऽवसद्वैश्यो धर्मज्ञो धनधान्यवान् । कामावरूथिनी तस्य सुता जाता महोत्तमा ।।२
तद्रूपमुत्तमं दृष्ट्वा स वैश्यो भूपतिं प्रति । उवाच भो महाराज सुता मम सुरेप्सिता ।।३
तां गृहाण कृपासिन्धो त्वद्योग्या विधिनिर्मिता । इति श्रुत्वा तु वचनं भूपतिश्चन्द्रशेखरः ।।४
मन्त्रिणं विदुरं प्राह त्वं च गच्छ महामते । यथायोग्यं हि तद्रूपं मां निवेदय सत्वरम् ।।५
इत्युक्त्वा स ययौ गेहं भूपतिश्चन्द्रशेखरः । श्यामला नाम तत्पत्नी ज्ञात्वा राजानमागतम् ।।६
धूपदीपादिभिः पुष्पैर्यथायोग्यैः समार्चयत् । एतस्मिन्नेव काले तु गौश्च शार्दूलपीडिता ।।७
हम्भाशब्देन महता विललाप भयातुरा । तच्छ्रुत्वा स तु भूपालः खड्गहस्तः समभ्यगात् ।।८
शीघ्रं हत्वा तु शार्दूलं मुमोद नृपतिस्तदा । मुकुलो दानवो नाम तद्देहाद्रूपमाप्तवान् ।।९
भूपतिं प्राह नम्रात्मा धर्मज्ञं चन्द्रशेखरम् । त्वया विमोचितो नाथ यास्यामि वरुणालयम् ।।१०
प्रह्लादस्यैव शापने व्याघ्रदेहत्वमागतः । परिक्रम्य ययौ दैत्यः प्रह्लादं प्रति सत्वरः ।।११

अध्याय १६

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस वैताल ने पुनः ज्ञाननिपुण उस राजा से कहा—दक्षिण प्रदेश में राजा चन्द्रशेखर की राजधानी है जिसमें रत्नदत्त नामक वैश्य जो धर्मज्ञ एवं धन धान्य से सम्पन्न था निवास करता था । कामावरूथिनी नामक परम सुन्दरी कन्या उसके उत्पन्न हुई । उसके उत्तम सौन्दर्य को देखकर उस वैश्य ने राजा से कहा—महाराज ! मेरी पुत्री परम सुन्दरी है, जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं । कृपासिन्धो ! आप उसे स्वीकार करे, क्योंकि ब्रह्मा ने आप के अनुरूप ही उसकी रचना की है । इसे सुनकर राजा चन्द्रशेखर ने अपने विदुर नामक मंत्री से कहा—महामते ! उसका सौन्दर्य देखकर आप मुझसे शीघ्र उसका यथायोग्य वर्णन करो । इतना कहकर राजा चन्द्रशेखर अपने निवास भवन चले गये। श्यामला नामक उनकी पत्नी ने राजा का आगमन जानकर धूप, दीप, एवं पुष्पादि से उनकी यथोचित पूजा सुसम्पन्न की । उसी समय वाघ से पीड़ित होकर किसी गौ ने अपने रंभने वाले शब्द के द्वारा ऊँचे स्वर से विलाप करना आरम्भ किया । उसे सुनकर राजा हाथ में खड्ग लेकर वहाँ पहुँच गया । शीघ्रता से उस वाघ का वध करके वह राजा प्रसन्नता प्रकट कर रहा था कि उसी बीच मुकुल नामक दानव उस बाघ के शरीर से अपने रूप की प्राप्ति करके नम्रतापूर्वक राजा चन्द्रशेखर से कहने लगा—नाथ ! तुम्हारे द्वारा मुक्ति प्राप्तकर मैं वरुण के गृह जा रहा हूँ ।१-१०। प्रह्लाद के शाप प्रदान करने से मुझे बाघ की देह प्राप्त हुई थी । उपरांत वह दैत्य परिक्रमा करके प्रह्लाद के समीप चला गया और राजा

नृपतिर्गृहमागत्य सुष्वाप परया मुदा । प्रभाते बोधितो राजा सभायां स्वयमागमत् ।।१२
नृपोक्तः स ययौ तत्र यत्र कामावरूथिनी । दिव्यमूर्तिमयीं दृष्ट्वाचिन्तयत्स स्वमानसे ।।१३
अस्या मूर्तिप्रभावेन राजाऽसौ मोहमाप्स्यति । इति ज्ञात्वा नृपं प्राह सैव त्वद्योग्यका न हि ।।१४
तथा मत्वा स नृपतिर्न विवाहमथाकरोत् । रत्नदत्तस्य भूपस्य सेनायाः पतये ददौ ।।१५
बलभद्रस्य सा पत्नी बभूव उत्तर्वर्णिनी । एकदा नृपतिस्तां वै दृष्ट्वा कामावरूथिनीम् ।।१६
मोहितः कामबाणेन मूर्च्छितः पतितो भुवि । तदा सेनापतिस्तूर्णं नृपमुत्थाप्य सत्वरम् ।।१७
शिबिकां चैव संस्थाप्य सभायां च समैरयत् । तदा प्रबुद्धो नृपतिः प्राह सेनापतिं मुदा ।।१८
कस्येयं सुन्दरी भार्या कुतो जाता महोत्तमा । बलभद्रस्तु तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह नम्रधीः ।।१९
ममेयं सुन्दरी नारी रत्नदत्तस्य सा सुता । राज्यभङ्गभयान्मन्त्री न रूपं त्वयि वर्णिवान् ।।२०
मम दासस्य या पत्नी त्वद्योग्या भूपते सदा । तदेच्छां पूरयिष्यामि तां गृहाण कृपानिधे ।।२१
इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षो भूपतिस्तमुवाच ह । तवेयं धर्मतो भार्या प्राप्ता सुन्दररूपिणी ।।२२
गृह्णामि यदि तां देवीं नरके यमकिंकराः । पातयित्वा महादुःखं भजयिष्यन्ति तर्हि भोः ।।२३
इत्युक्त्वा भूपतिस्तूर्णं विरहाग्निप्रपीडितः । मरणं प्राप्तवान्राजा गतो धर्मपुरान्तिके ।।२४
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपं प्राह शृणुष्व भोः । मृते राजनि तत्पत्नी सती भूत्वा प्रदृश्यते ।।२५
सेनापतिस्तु तत्रैव भस्मसादभवत्क्षणात् । कामावरूथिनी देवी भस्म कृत्वा कलेवरम् ।।२६

भी अपने महल में पहुँच कर परमानन्द में निमग्न होते हुए शयन किये । प्रातः काल प्रवोधित होने (जगाये जाने) पर राजा राजसभा में आये । उधर राजा के कहने पर वह मंत्री कामावरूथिनी नामक उस कन्या के पास जाकर उस दिव्य सौन्दर्य को देखकर अपने मन में विचार करने लगा कि—इस रूप को देखकर राजा अवश्य मोहित हो जायगा । अतः उसने राजा से कहा—वह कन्या आप के योग्य नहीं है । राजा उसकी बात स्वीकार करके उसके साथ विवाह नहीं किया । पश्चात् उस उत्तमाङ्गी कन्या का पाणिग्रहण राजा रत्नदत्त के बलभद्र नामक सेनापति के साथ सम्पन्न हुआ ।११-१५। एक बार राजा उस कामावरूथिनी को देखकर कामबाण से मुग्ध होकर पृथिवी पर गिर पड़े ! उस समय सेनापति ने शीघ्र राजा को पालकी में बैठाकर राजसभा में पहुँचाया । वहाँ चेतना आने पर राजा ने प्रसन्नतया सेनापति से कहा—यह सुन्दरी किसकी पत्नी एवं कहाँ उत्पन्न हुई है ? इसे सुनकर बलभद्र ने नम्रता प्रकट करते हुए कहा—यह सुन्दरी मेरी पत्नी एवं रत्नदत्त की पुत्री है, राज्य के भंग हो जाने के भय से मंत्री ने उसके रूप का वर्णन आप से नहीं किया । किन्तु राजन् ! मुझ सेवक की पत्नी सदैव आप के योग्य ही है अतः कृपानिधे ! उसका ग्रहण करें मैं आपकी इच्छापूर्ति करने को तैयार हूँ । इतना कहने पर राजा क्रोध के नाते रक्तनेत्र करके कहने लगा—यह सुन्दरी धर्मतः तुम्हारी ही पत्नी है, इसलिए यदि मैं इस देवी का ग्रहण करता हूँ तो यमदूत मुझे नरक में गिरा देंगे उस समय मुझे अत्यन्त दुःख का अनुभव करना पड़ेगा। ऐसा कह राजा उसकी वियोग अग्नि से पीड़ित होकर शीघ्र प्राण-परित्याग करके धर्मपुर पहुँच गया।१६-२४। इतना कहकर वैताल ने राजा से कहा राजा के निधन होने पर उनकी पत्नी रानी सती हो गई और सेनापति भी उसी समय वहाँ भस्म हो गया। पश्चात् कामावरूथिनी देवी ने भी अपनी देह को

स्वर्गं गतास्तु ते सर्वे कस्य पुण्याधिकं मतम् । स होवाच च वैतालं राजा धर्माधिको मतः ॥२७
मरणं किङ्करस्यैव योग्यं भूपतिहेतवे । पतिव्रताया मरणं पतिसङ्गेन योग्यकम् ॥२८
दत्ता यत्किङ्करेणैव सुन्दरी नृपहेतवे । धर्मभीत्या न नृपतिस्तामगृह्णात्स कामुकः ॥२९
जित्वा कामं तथा पाल्यं धर्मं तस्मान्नृपेऽधिकम् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम षोडशोऽध्यायः । १६

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्रोवाच वैतालस्तदा ब्राह्मणरूपवान् । शृणु भूप महाभाग कथां तव मनोरमाम् ॥१
उज्जयिन्यां महाभाग महासेनो नृपोऽभवत् । तस्य राज्येऽवसद्विप्रो देवशर्मेति विश्रुतः ॥२
गुणाकरस्तस्य सुतो मद्यमांसपरायणः । द्यूतेन संक्षयं वित्तं तस्य पापस्य चाभवत् ॥३
बान्धवैः स परित्यक्तो बभ्राम वसुधातले । कदाचिद्दैवयोगेन सिद्धाश्रममुपागमत् ॥४

भस्म करके उन सब के साथ में स्वर्गपुरी को प्रस्थान किया । किन्तु, इन सब में किसका पुण्य अधिक है ? राजा ने वैताल से कहा—राजा के लिए सेवक का मरण प्राप्त होना धर्मतः अधिक (श्रेष्ठ) है । और पतिव्रता का पति के साथ प्राण परित्याग करना उचित ही है एवं सेवक ने राजा को अपनी सुन्दरी स्त्री प्रदान किया, पर, धर्मभय के नाते राजा कामुक होने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत काम को जीतकर धर्म का पालन किया । अतः राजा का धर्म अधिक है ।२५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस ब्राह्मण रूपधारी वैताल ने पुनः राजा से कहा—राजन् महाभाग ! मैं तुम्हें मनोहर कथा सुना रहा हूँ सुनो ! महाभाग ! उज्जयिनी नगर में महासेन नामक राजा रहता था । उसी के राज्य में देव शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ऐसा बताया जाता है । गुणाकर नामक उसी का पुत्र था। नित्य मद्य-मांस का सेवन करता था। उस पापी ने द्यूत (जूआ) खेलकर अपना सम्पूर्ण धन नष्ट कर दिया । पश्चात् बन्धुओं द्वारा त्याग करने पर पृथ्वी में चारों ओर घूमने लगा । एक बार वह दैवयोग से

कपर्दी नाम तं योगी कपालान्नैरपूजयत् । ज्ञात्वा पैशाचमन्नं स बुभुक्षुर्न गृहीतवान् ॥५
तदातिथ्यं तदर्थं स यक्षिणीं समुपाह्वयत् । तया रात्रौ महानन्दं प्राप्तवान्स द्विजः शयी ॥६
प्रातः काले तु संप्राप्ते कैलासं यक्षिणी गता । स द्विजस्तद्वियोगेन योग्यन्तिकमुपाययौ ॥७
कपर्दी प्रददौ तस्मै विद्यां यक्षिणिकर्षिणीम् । चत्वारिंशद्दिनान्येव निशीथे जलमध्यगः ॥८
स जजाप शुभं मन्त्रं न प्राप्तां कामचारिणी । तदा योग्याज्ञया विप्रः स्वयं तु ममतां त्यजन् ॥९
प्रातर्मातापितरौ नत्वा स्वगेहे निवसन्निशि । प्रातः संन्यासिवद्भूत्वा कुलैश्च रुदितैर्द्विजः ॥१०
प्रतिबोधिवनं प्राप्तस्तच्छिष्यत्वमुपाययौ । पञ्चाग्निमध्ये स स्थित्वा तन्मन्त्रमजपच्छुचिः ॥११
न प्राप्ता योगिनी देवी तदा चिन्तातुरोऽभवत् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं ज्ञानकोविदम् ॥१२
पुनराह कथं देवी न प्राप्ता यक्षिणी प्रिया । श्रुत्वाह नृपतिर्विप्र वैतालं रुद्र किङ्करम् ॥१३
त्रिविधं कर्म भो विप्र सिद्ध्यर्थे साधकाय वै । मनोवाग्विहितं कर्म परलोके सुखप्रदम् ॥१४
सुन्दराङ्कृतं ज्ञेयं पुनर्वाक्कायसम्भवम् । किञ्चित्सिद्धिप्रदं ज्ञेयमिह जन्मनि वीक्षितम् ॥१५
परत्र च भुवर्लोके पिण्डदेहकृतं स्मृतम् । मनः कायेन सम्भूतं परजन्मनि राज्यदम् ॥१६
मनोवाक्कायसम्भूतमिह जन्मनि सिद्धिदम् । परत्र परमां सिद्धिं तत्कर्म प्रददाति हि ॥१७
तस्मात्कर्तव्यमेवेह त्रिविधं कर्म साधकैः । अन्यवित्तेन स द्विजः कृतवान्कर्म मन्त्रजम् ॥

सिद्धाश्रम में पहुँच गया ।१-५। वहाँ कपर्दी नामक योगी रहता था । उसने कपाल में अन्न रखकर उससे उस अतिथि की सेवा करनी चाही, किन्तु उसे पिशाच का पुत्र समझकर उसने भूखा रहने पर भी उसका ग्रहण नहीं किया । पश्चात् उसने उसकी आथित्य सेवा के निमित्त यक्षिणी का आह्वान किया । उस रात्रि ब्राह्मण ने उसके साथ शयनादि करके महान, आनन्द की प्राप्ति की । प्रातःकाल होने पर वह यक्षिणी कैलास पर्वत पर चली गई । उपरांत उसके वियोग से दुःखी होकर वह उस योगी के पास गया । कपर्दी ने उसे यक्षिणी का आकर्षण करने वाली विद्या प्रदान किया । मध्य रात्रि में वह जल के भीतर जाकर उस शुभ मंत्र का जप करने लगा । इस प्रकार चालीस दिन तक उस मंत्र का जप करने पर भी वह यक्षिणी की प्राप्ति न कर सका । उस समय योगी की आज्ञा प्राप्तकर वह ब्राह्मण माया-मोह के त्याग पूर्वक अपने माता पिता का अभिवादन करके प्रातःकाल संन्यासी का वेष धारण करके रोते कलपते अपने परिवारों को छोड़कर प्रतिबोधि वन में चला गया ।६-११। वहाँ उनके शिष्य होने के उपरांत पंचाग्नि के मध्य में स्थित होकर आचरण पूर्वक वह उस मंत्र का जप करने लगा वहां भी योगिनी की प्राप्ति न होने पर उसे चिंता होने लगी । इतना कहकर वैताल ने ज्ञाननिपुण राजा से कहा—उसे वह यक्षिणी देवी प्रेयसी के रूप में क्यों नहीं प्राप्त हुई ! इसे सुनकर राजा ने उस रुद्र सेवक वैताल से कहा—विप्र ! साधक को सिद्धि प्राप्ति करने के लिए तीन प्रकार का कर्म बताया गया है—मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, वाणी और शरीर द्वारा किये गये कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, मन और काय द्वारा किये गये कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में राज्य की प्राप्ति होती है । मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है।१२-१७। इसलिए साधकों को इस तीन प्रकार के कर्म को

अतोऽन्यजन्मनि प्राप्तो यक्षत्वं तत्परो द्विजः ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालः प्रसन्नवदनोऽभवत् ॥१९
साधु साध्विति तं प्रोच्य सद्वाक्यैः समपूजयत् । इतिहासं पुनः प्राह परीक्षार्थे नृपाय सः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाप्राज्ञ वैतालस्तं हि सोऽब्रवीत् । सुदक्षो नाम नृपतिर्वसन्कम्बलके पुरे ॥१
न्यायवान्धर्मवाञ्छूरो दाता शिवपरायणः । तस्य राज्येऽवसद्वैश्यो धनाध्यक्ष इति श्रुतः ॥२
तनया सुन्दरी तस्य नाम्ना धनवती शुभा । गौरीदत्ताय वैश्याय पित्रा दत्ता वराङ्गना ॥३
कियता चैव कालेन मोहिनी तत्सुताभवत् । द्वादशाब्दवयस्तस्याः पिता तु निधनं गतः ॥४
तदा धनवती रण्डा निधना पितुरन्तिके । कन्यया सह सम्प्राप्ता निशि मार्गे तमोनये ॥५

सुसम्पन्न करना चाहिए । उस ब्राह्मण ने दूसरे के धन का उपभोग करते हुए उस मंत्र का जप किया था अतः उसे दूसरे जन्म में यक्षत्व की प्राप्ति होगी ।१८

सूत जी बोले—इतना कहने पर वह वैताल हर्षित होकर साधु, साधु कहते हुए उत्तम वाणी द्वारा उसका अत्यन्त सम्मान किया । उपरांत राजा के परीक्षार्थ इतिहास कहना पुनः आरम्भ किया।१९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—शौनक, महाप्राज्ञ ! वैताल ने राजा से कहा—कम्बल नगर में सुदक्ष नामक राजा रहता था, जो न्यायी, धार्मिक, शूर, दानी एवं शिव जी का उपासक था । उसकी राजधानी में धनाध्यक्ष नामक वैश्य रहता था, उसकी धनवती नामक परमसुन्दरी कन्या थी । उस रमणीक कन्या को उसके पिता ने गौरीदत्त वैश्य को प्रदान कर दिया । कुछ समय के अनन्तर मोहिनी नामक कन्या उससे उत्पन्न हुई । उसकी बारहवर्ष की अवस्था होने पर उसके पिता का निधन हो गया । उस समय धनवती पति के निधन होने के नाते निर्धनावस्था में अपनी कन्या समेत अपने पिता के यहाँ जा रही थी । अंधेरी रात में

न्यायशर्मा द्विजः कश्चिद्ब्रह्मस्वस्यापहारकः । नामसत्यत्वभावेन शूल्यां न निधनं गतः ॥६
अकस्माद्वैश्यजा प्राप्ता तत्करं सा तदास्पृशत् । तेन दुःखेन महता रुरोदोच्चैर्द्विजश्च सः ॥७
हा राम कृष्णं प्रद्युम्नानिरूद्धेति पुनः पुनः । श्रुत्वा धनवती दीना को भवानिति साब्रवीत् ॥८
द्विज आह च विप्रोऽहं त्र्यहं शूल्यां निरूपितः । यदि दास्यसि मे कन्यां कोटिस्वर्णं ददामि ते ॥९
श्रुत्वा धनवती तस्मा उद्वाह्य मोहिनीं सुताम् । वटमूले स्थितं द्रव्यं खनित्वा गृहमाययौ ॥१०
मोहिन्यपि पतिं प्राह भवान्मृत्युवशं गतः । कुतो जायेत तनयस्तन्मे ब्रूहि दयानिधे ॥११
द्विजः प्राह शृणु व्यङ्गे यदा ते हृच्छयो भवेत् । तदा त्वं पण्डितं प्राप्य पुत्रमुत्पादयाशु वै ॥१२
इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य यमलोकं गतो द्विजः । नारकीं यातनां नित्यं बुभुजे निन्द्यकर्मजाम् ॥१३
मातुर्गृहे तु सा नारी मोहिनी यौवनान्विता । समयं हृदये कृत्वा तिष्ठन्ती च पुनः पुनः ॥१४
के भोगाश्च किमाश्चर्यं को जागर्ति शयीत कः । पापो व्याधिश्च दुःखं च कुतो जातं हृदि स्थितम् ॥१५
इति श्लोकं द्विजानाह नोत्तरं च ददुर्द्विजाः । मेधावी नाम काश्मीरे स्थितो विप्रः समागतः ॥१६
तामुवाच प्रसन्नात्मा शृणु मोहिनि सुन्दरि । सुगन्धि वनिता वस्त्रं गीतं पानं च भोजनम् ॥
शय्या च भूषणं ज्ञेयो भोगो ह्यष्टविधो बुधैः ॥१७

उसे मार्ग में न्याय शर्मा नामक एक ब्राह्मण मिला, जिसे किसी ब्राह्मण का सर्वस्व का अपहरण करने पर भी अपने नाम की सत्यता के नाते उसे शूली हुई और उसका निधन नहीं हुआ (अर्थात् उसके धन का हरण भी नहीं किया गया) ।१-६। अकस्मात् उसकी पुत्री उसके पास जाकर अपने हांथ से उसके चरण स्पर्श किया कि वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा राम कृष्ण' प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध ! इन्हीं नामों का बार-बार उच्चारण करते हुए रुदन करने लगा । उसे सुनकर वह दीन-कृपणा धनवती उसके समीप जाकर कहने लगी—आप कौन हैं ? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ किन्तु तीन दिन से मेरे मन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है, यदि इस कन्या को मुझे अर्पित कर दो तो मैं तुम्हें कोटि सुवर्ण प्रदान करूँगा । यह सुनकर धनवती ने अपनी मोहिनी नामक पुत्री का विवाह संस्कार उसके साथ सम्पन्न कर दिया । पश्चात् बरगद के नीचे पृथ्वी के भीतर सुरक्षित द्रव्य को खोदकर अपने घर चली आई। मोहिनी ने अपने पति से कहा—दयानिधे आप तो मरणासन्न हो रहे हैं, मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा । ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! जब तुम्हें काम उत्पन्न हो तो तुम किसी पण्डित के पास पहुँचकर उसी द्वारा पुत्र को उत्पन्न करना ।७-१२। इतना कहकर वह ब्राह्मण मरणोपरांत यमलोक में पहुँच गया । वहाँ वह अपने किये हुए निन्दित कर्मों के परिणाम स्वरूप नारकीय यातनाओं का अनुभव करने लगा । अपनी माता के घर में रहकर वह मोहिनी यौवनावस्था प्राप्त होने पर भी अपने पति की प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण करके (अनुचितपथ से) रुक जाती थी । कौन भोग हैं, क्या आश्चर्य है, कौन जागरण करताहै, कौन शयन कर रहा है, पाप, व्याधि एवं दुःख, हृदय में रहकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसी श्लोक का अर्थ वह ब्राह्मण से पूछती थी, पर किसी ने उसका उत्तर न दिया । पश्चात् मेधावी नामक एक काश्मीर निवासी ब्राह्मण वहाँ आया । उसने प्रसन्न होकर उस मोहिनी से कहा—सुन्दरि ! इसका अर्थ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सुगंध, स्त्री, वस्त्र, ज्ञान, पेयपदार्थ, भोजन, शय्या और भूषण इन्हीं आठ प्रकार के भोग को विद्वानों ने बताया है । नित्य प्रति

अहन्यहनि भूतानि म्रियन्ते जनयन्ति[1] च । ममतां यः करोत्येषां तदाश्चर्यं स्मृतं बुधैः ॥१८
यो विवेकं समासाद्य कुरुते कर्मसंग्रहम् । संसारे घोरतमसि स जागर्ति विवेकवान् ॥१९
संसाराजगरं ज्ञात्वा वैराग्यं योऽकरोद्भुवि । औदासीन्यं समाधिं च सुखं शेते हि मानवः ॥२०
सङ्कल्पाज्जायते कामस्ततो लोभः प्रजायते । लोभाज्जातश्च तृष्णायां स पापो निरयप्रदः ॥२१
जलप्रकृत्यां यो जातो रसो रसविकारवान् । रसाज्जातस्य देहेऽस्मिन्व्याधिः कर्मभयोऽशुभः ॥२२
रुद्रात्काल्यां समुद्भूतो मोहो हृदि च लोकहा । स तुष्टाव महादेवीं पत्न्यर्थे सुरपूजिताम् ॥२३
मिथ्यादृष्टिस्ततो जाता मोहस्य दयिताभवत् । तस्मात्स्नेहश्च तत्पत्न्यां जातश्च ममताप्रियः ॥२४
तयोः सकाशात्सञ्जातं दुःखं शोकसमन्वितम् । इति श्रुत्वा तु सा नारी मुमोह वरवर्णिनी ॥२५
मानी शूरश्च चतुरोऽधिकारी गुणवान्सखा । स्त्रीरक्षकश्च पुरुषो वशं नारीं सदा नयेत् ॥२६
तस्यै गर्भं च विप्रोऽसौ दत्त्वा स्वर्णं गृहीतवान् । सापि नारी सुखं लेभे तेन गर्भेण प्रत्यहम् ॥२७
कदाचिद्दशमासान्ते मोहिनीमब्रवीच्छिवः । स्वप्नान्तरे महाराज सापि ज्ञात्वा तथाकरोत् ॥२८
दोलामध्ये सहस्रं च स्वर्णं चैव स्वबालकम् । राजद्वारे स्थापयित्वा सुष्वाप जननी सुखम् ॥२९
शिवेन बोधितो राजा सुतार्थी रुद्रपूजकः । द्विजपुत्रं समालेभे मोहिन्यां जातमुत्तमम् ॥३०

जीव मरते और उत्पन्न होते हैं, इसके लिए जो मोहित होता है विद्वानों ने उसे ही आश्चर्य बताया है ।१३-१८। जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है । संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है । संकल्प से नाम, काम से लोभ और लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है, जो इन्हें अपनाता है, उसे पापी कहा गया है, जो नरकप्रद है । जलप्रकृति से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही रस विकारी होता है, इस देह में उसी रसद्वारा अशुभ कर्म भय की उत्पत्ति होती है, उसे ही व्याधि कहा गया है । रुद्र द्वारा काली में लोक का अपहरण करने वाला मोह हृदय में उत्पन्न हुआ । उन्होंने पत्नी के लिए महादेवी की आराधना की, उससे सुरपूजित मिथ्या दृष्टि उत्पन्न हुई, जो मोह की प्रेयसी कही जाती है । उसी पत्नी से स्नेह और ममता की उत्पत्ति हुई ।१९-२४। इन्हीं दोनों के संगम से शोकपूर्ण दुःख की उत्पत्ति हुई है । इसे सुनकर वह उत्तमांगी मोहिनी मुग्ध हो गई । क्योंकि मानी, शूर, चतुर, अधिकारी, गुणवान् सखा तथा स्त्रीरक्षक पुरुष के वश में स्त्रियाँ सदैव रहती हैं । उस ब्राह्मण ने उसे गर्भवती करने के उपरांत उसका धन ग्रहण करके प्रस्थान किया । पश्चात् वह स्त्री भी उस गर्भ के द्वारा प्रतिदिन सुख का अनुभव करने लगी । दशवें मास के आरम्भ में शिव जी ने उस मोहिनी से कहा—महाराज ! वह स्वप्न की बातें वैसी ही सुसम्पन्न की । पालकी के भीतर एक सहस्र सुवर्ण संपन्न उस बालक को शयन कराकर राजा के दरवाजे पर जाकर उस पुत्र को वहीं रखकर स्वयं भी निद्रित हो गई । उसी समय शिव जी ने उस राजा को जो सुतार्थी एवं रुद्र का उपासक था उस बालक को अपनाने के लिए आदेश दिया । मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न उस ब्राह्मण पुत्र को राजा ने अपना पुत्र

---

१. जायन्त इत्यर्थः ।

कारयित्वा जातकर्म विततार धनं बहु । हरदत्तश्च नाम्नासीत्सर्वविद्याविशारदः ।।३१
पितुरन्ते च तद्राज्यं प्राप्य धर्मं प्रकाशयन् । गयाश्राद्धं कृतं तेन फल्गूतीरे विधानतः ।।३२
त्रयो हस्तास्तदा जाताः स राजा विस्मितोऽभवत् ।।३३
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह भो नृप ! कस्मै योग्यो हि पिण्डोऽसौ श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ।।३४
द्रव्यार्थी पण्डितो ज्ञेयो गुरुतुल्यश्च भूपतिः । चौराय पिण्ड उचितो यस्य नारी च मोहिनी ।।३५

सूत उवाच

तेन पिण्डप्रभावेन स चौरो ब्रह्मद्रव्यहा । निरयान्निःसृतो विप्र स्वर्गलोकं समागतः ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

चित्रकूटे च नृपती रूपदत्त इति श्रुतः । वने मृगप्रसङ्गेन वनान्तरमुपाययौ ।।१
मध्याह्ने सरसस्तीरे मुनिपुत्रीं ददर्श सः । चिन्वतीं पद्मकुसुमं रूपयौवनशालिनीम् ।।२

बनाकर उसका जात संस्कार किया जिसमें अत्यन्त धन का व्यय किया गया । उसका नाम हरदत्त रखा गया । वह सम्पूर्ण विद्या का पारगामी हुआ । पिता के निधन होने पर उस राज्य का स्वामी होकर उसने धर्म का विस्तार किया । फल्गु नदी के तटपर उसने विधानपूर्वक गया का श्राद्ध आरम्भ किया । उस समय उस नदी में से तीन हाथ निकले जिसे देखकर उस राजा को महान्, आश्चर्य हुआ । इतना कहकर उस वैताल ने राजा से कहा—नृप ! उस पिंड का अधिकारी कौन हुआ । इसे सुनकर राजा ने कहा—पण्डित तो द्रव्यार्थी थे, और राजा गुरु के समान होता है, अतः वह पिण्ड उस चोर को प्राप्त होना चाहिए, जिसकी मोहिनी स्त्री थी ।२५-३५

सूत जी बोले—विप्र ! उस पिण्ड के प्रभाव से ब्राह्मण द्रव्य का अपहरण करने वाले उस चोर ब्राह्मण ने नरक से मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति की ।३६

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

चित्रकूट में रूपदत्त नामक राजा रहता था । वह मृगया (शिकार) के लिए एक वन से दूसरे वन में पहुँच गया । वहाँ मध्याह्न के समय सरोवर के तट पर कमल-पुष्प का संचय करने वाली किसी मुनि की पुत्री को देखा । जो रूपलावण्य पूर्ण और यौवन के मदसे उन्मत्त सी रहती थी ।१-२। वे दोनों आपस में एक दूसरे

तस्या नेत्रे स्वयं नेत्रे चैकीभूते समागते । एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तत्र प्राप्तो ददर्श तौ ॥३
तस्य दर्शनमात्रेण नृपतेर्ज्ञानमागतम् । विनयावनतो राजा धर्मं पप्रच्छ चोत्तमम् ॥४
तमुवाच मुनिर्धीमान्दयाधर्मप्रपोषणम् । निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥५
अनर्हान्दण्डमादद्यादर्हपूजाफलं भजेत् । मित्रता गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे ॥६
सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । मृदुता दानसमये सन्तुष्टिर्निन्द्यकर्मणि ॥७
इत्युक्त्वा स मुनिः पुत्रीं तस्मै दत्त्वा गृहं ययौ । राजापि च तया सार्द्धं वटमूलेऽशयिष्ट वै ॥८
तदा तु राक्षसः कश्चित्तत्पत्नीभक्षणोत्सुकः । बोधयामास नृपतिं बलिं तस्मै स भूपतिः ॥९
दानार्थं चैव क्रव्यादे सप्तवर्षात्मकं द्विजम् । समयं कृतवान्राजा सत्येन स्वगृहं ययौ ॥१०
अमात्यैः सम्मतं कृत्वा स्वर्णलक्षं ददौ द्विजे । मध्यं बालं पुरस्कृत्य राक्षसाय बलिं ददौ ॥११
मृत्युकाले द्विजसुतो विहस्योच्चै रुरोद ह । कथं हास्यं कृतं तेन तत्पश्चाद्रोदनं कथम् ॥१२
इति श्रुत्वा नृपः प्राह शृणु वैतालिक द्विज । ज्येष्ठपुत्रं पितुर्हृद्यं मातृहृद्यमवर्यकम् ॥१३
ज्ञात्वा स मध्यमः पुत्रो राजानं शरणं ययौ । निर्दयी रूपसेनश्च पत्नीकल्याणभिक्षुकः ॥१४
खड्गहस्तं नृपं ज्ञात्वा जहास शिवतत्परः । राक्षसाय शरीरं मे प्राप्तमस्माद्रुरोद ह ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

से आँख मिला रहे थे कि उसी समय वहाँ पहुँच कर महर्षि ने उन दोनों को देख लिया । उनके देखते ही राजा को ज्ञान उत्पन्न हो गया । विनय विनम्र होकर राजा ने उनसे उत्तम धर्म की जिज्ञासा की । ज्ञान- निपुण मुनि ने दया और धर्म का अत्यन्त पोषक वर्णन आरम्भ किया । अभयदान के समान कोई दान न कहीं है और न होगा । इसीलिए अपराधी को दण्ड प्रदान करने से पूजनीय की पूजा का फल प्राप्त होता है । गौ और ब्राह्मण से नित्य मित्रता, दंडविधान में समता, देवों की अर्चना में सत्यता, गुरु की सेवा में (इन्द्रिय) दमन, दान के समय कोमलता और निंदित कर्मों में संतोष करना चाहिए । इतना कहकर वे महर्षि उन्हें अपनी पुत्री प्रदान कर घर चले गये । उपरांत राजा उसके साथ किसी बरगद के मूल भाग पर शयन करने लगे । उस समय किसी राक्षस ने उनकी पत्नी को भक्षण करने के व्याज से राजा को जगाकर कहा—मुझे बलि चाहिए । 'तदनन्तर आज के सातवें दिन दान रूप में सात वर्ष का एक ब्राह्मण पुत्र मैं आपको दूँगा । इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा करके राजा अपने घर चले गये । वहाँ पहुँचकर अपने मंत्री से परामर्श करके एक ब्राह्मण को एक लक्ष का सुवर्ण प्रदानकर उसके मध्यम पुत्र का क्रय किया और राक्षस को उसी की बलि दी गई । निधन के समय उस बालक ने पहले हँसा और पश्चात् रुदन किया । उसने पहले हँसकर पीछे रुदन क्यों किया । इसे सुनकर राजा ने वैताल से कहा—द्विज ! ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए और कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता को प्रिय होता है, ऐसा जानकर वह मध्यम (मझला) पुत्र राजा की शरण में गया किन्तु निर्दयी उस राजा रूपसेन को हाथ में खड्ग लिए हुए देखकर उस बालक ने अपने कल्याणार्थ हँसा और राक्षस की उदरपूर्ति के लिए मेरी शरीर जा रही है, ऐसा जानकर उसने रुदन किया ।३-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो नृपं प्राह पुनः कथाम् । विशालनगरे रम्ये विपुलेशो महीपतिः ॥१
तस्य ग्रामे वसद्वैश्योऽर्थदत्तो विपणे रतः । अनङ्गमञ्जरी कन्या तस्य जाता मनोरमा ॥२
सुवर्णनाम्ने वैश्याय पिता वै दत्तवान्स्वयम् । कदाचित्कमलग्रामात्सुवर्णो द्वीपमागमत् ॥
द्रव्यलाभाय न्यवसच्चिरं कालं स लुब्धवान् ॥३
अनङ्गमञ्जरीगेहे दैवयोगाद्द्विजोत्तमः । कमलाकरनामासौ कृत्ययोगात्समागतः ॥४
होमान्ते सुन्दरी नारी मार्जनार्थे सुता गता । दृष्ट्वा तां कामकलिकां मुमोह द्विजसत्तमः ॥५
सुतापि मदघूर्णाक्षी विप्राय समयं ददौ । निशीथे तम उद्भूते त्वं मां प्राप्य सुखी भव ॥६
इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं तस्याः ध्यानं तदाकरोत् । कामाग्निना चिरं तप्तः सुष्वाप परमासने ॥७
अर्द्धरात्रे तु सा नारी द्विजागमनतत्परा । मार्गमन्वेषमाणा सा प्रियस्य स्मरपीडिता ॥८
नागतः स द्विजो दैवात्तदा सा मरणं गता । कमलाकर एवाशु समयान्ते समाययौ ॥९

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना सुनकर वैताल ने पुनः राजा से कथा कहना आरम्भ किया । उस रमणीक विशाल नामक नगर में विपुलेश नामक राजा राज्य करता था । उस नगर में अर्थदंत नामक एक व्यापार कुशल वैश्य रहता था । उसके अनंगमञ्जरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । उसके पिता ने सुवर्ण नामक वैश्य के साथ उसका पाणिग्रहण सुसम्पन्न करा दिया । एक बार वह सुवर्ण नामक वैश्य ने कमल नगर से किसी द्वीप के लिए प्रस्थान किया । उस लोभी ने द्रव्य के लोभवश वहाँ चिरकाल तक निवास किया । दैव योगात् एक दिन अनंगमञ्जरी के यहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका नाम कमलाकर था, किसी अनुष्ठान के निमित्त आया । हवन करने के उपरांत मार्जनार्थ वह सुन्दरी वहाँ आई । काम की कली की भाँति उसे देखकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने मुग्ध होकर अपनी मदभरी (नशीली) आँखों से ताकती हुई उससे मिलने के लिए समय प्रदान किया । 'इस अंधेरी रात में आधीरात के समय तुम मुझसे मिलकर अत्यन्त सुख का अनुभव करो' इसे सुनकर वह ब्राह्मण उसके ध्यान में निमग्न हो गया। काम की अग्नि द्वारा चिरकाल से संतप्त रहने के नाते वह परमोत्तम आसन पर निद्रा के अधीन हो गया।१-७। आधीरात के समय वह सुन्दरी काम पीडित होने के नाते उस ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर होकर उस अपने प्रिय का मार्ग देखने लगी। दैव संयोगवश वह ब्राह्मण उस समय न आ सका, इससे उसने अपने प्राण का परित्याग कर लिया । पश्चात् कमलाकर भी वहाँ पहुँचकर उस सुन्दरी का निधन

स्वर्गं गतास्तु ते सर्वे कस्य पुण्याधिकं मतम् । स होवाच च वैतालं राजा धर्माधिको मतः ॥२७
मरणं किङ्करस्यैव योग्यं भूपतिहेतवे । पतिव्रताया मरणं पतिसङ्गेन योग्यकम् ॥२८
दत्ता यत्किङ्करेणैव सुन्दरी नृपहेतवे । धर्मभीत्या न नृपतिस्तामगृह्णात्स कामुकः ॥२९
जित्वा कामं तथा पाल्यं धर्मं तस्मान्नृपेऽधिकम् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम षोडशोऽध्यायः ।१६

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्रोवाच वैतालस्तदा ब्राह्मणरूपवान् । शृणु भूप महाभाग कथां तव मनोरमाम् ॥१
उज्जयिन्यां महाभाग महासेनो नृपोऽभवत् । तस्य राज्येऽवसद्विप्रो देवशर्मेति विश्रुतः ॥२
गुणाकरस्तस्य सुतो मद्यमांसपरायणः । द्यूतेन संक्षयं वित्तं तस्य पापस्य चाभवत् ॥३
बान्धवैः स परित्यक्तो बभ्राम वसुधातले । कदाचिद्दैवयोगेन सिद्धाश्रममुपागमत् ॥४

भस्म करके उन सब के साथ में स्वर्गपुरी को प्रस्थान किया । किन्तु, इन सब में किसका पुण्य अधिक है ? राजा ने वैताल से कहा—राजा के लिए सेवक का मरण प्राप्त होना धर्मतः अधिक (श्रेष्ठ) है । और पतिव्रता का पति के साथ प्राण परित्याग करना उचित ही है एवं सेवक ने राजा को अपनी सुन्दरी स्त्री प्रदान किया, पर, धर्मभय के नाते राजा कामुक होने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत काम को जीतकर धर्म का पालन किया । अतः राजा का धर्म अधिक है ।२५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस ब्राह्मण रूपधारी वैताल ने पुनः राजा से कहा—राजन् महाभाग ! मैं तुम्हें मनोहर कथा सुना रहा हूँ सुनो ! महाभाग ! उज्जयिनी नगर में महासेन नामक राजा रहता था । उसी के राज्य में देव शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ऐसा बताया जाता है । गुणाकर नामक उसी का पुत्र था। नित्य मद्य-मांस का सेवन करता था। उस पापी ने द्यूत (जूआ) खेलकर अपना सम्पूर्ण धन नष्ट कर दिया । पश्चात् बन्धुओं द्वारा त्याग करने पर पृथ्वी में चारों ओर घूमने लगा । एक बार वह दैवयोग से

कपर्दी नाम तं योगी कपालान्नैरपूजयत् । ज्ञात्वा पैशाचमन्नं स बुभुक्षुर्न गृहीतवान् ।।५
तदातिथ्यं तदर्थं स यक्षिणीं समुपाह्वयत् । तया रात्रौ महानन्दं प्राप्तवान्स द्विजः शयी ।।६
प्रातः काले तु संप्राप्ते कैलासं यक्षिणी गता । स द्विजस्तद्वियोगेन योग्यन्तिकमुपाययौ ।।७
कपर्दी प्रददौ तस्मै विद्यां यक्षिणिकर्षिणीम् । चत्वारिंशद्दिनान्येव निशीथे जलमध्यगः ।।८
स जजाप शुभं मन्त्रं न प्राप्तां कामचारिणी । तदा योग्याज्ञया विप्रः स्वयं तु ममतां त्यजन् ।।९
प्राप्तवान्पितरौ नत्वा स्वगेहे निवसन्निशि । प्रातः संन्यासिवद्भूत्वा कुलैश्च रुदितैर्द्विजः ।।१०
प्रतिबोधिवनं प्राप्तस्तच्छिष्यत्वमुपाययौ । पञ्चाग्निमध्ये स स्थित्वा तन्मन्त्रमजपच्छुचिः ।।११
न प्राप्ता योगिनी देवी तदा चिन्तातुरोऽभवत् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं ज्ञानकोविदम् ।।१२
पुनराह कथं देवी न प्राप्ता यक्षिणी प्रिया । श्रुत्वाह नृपतिर्विप्र वैतालं रुद्र किङ्करम् ।।१३
त्रिविधं कर्म भो विप्र सिद्धयर्थे साधकाय वै । मनोवाग्विहितं कर्म परलोके सुखप्रदम् ।।१४
सुन्दराङ्कृतं ज्ञेयं पुनर्वाक्कायसम्भवम् । किञ्चित्सिद्धिप्रदं ज्ञेयमिह जन्मनि वीक्षितम् ।।१५
परत्र च भुवर्लोके पिण्डदेहकृतं स्मृतम् । मनः कायेन सम्भूतं परजन्मनि राज्यदम् ।।१६
मनोवाक्कायसम्भूतमिह जन्मनि सिद्धिदम् । परत्र परमां सिद्धिं तत्कर्म प्रददाति हि ।।१७
तस्मात्कर्तव्यमेवेह त्रिविधं कर्म साधकैः । अन्यवित्तेन स द्विजः कृतवान्कर्म मन्त्रजम् ।।

सिद्धाश्रम में पहुँच गया ।१-५। वहाँ कपर्दी नामक योगी रहता था । उसने कपाल में अन्न रखकर उससे उस अतिथि की सेवा करनी चाही, किन्तु उसे पिशाच का पुत्र समझकर उसने भूखा रहने पर भी उसका ग्रहण् नहीं किया । पश्चात् उसने उसकी आथित्य सेवा के निमित्त यक्षिणी का आह्वान किया । उस रात्रि ब्राह्मण ने उसके साथ शयनादि करके महान, आनन्द की प्राप्ति की । प्रातःकाल होने पर वह यक्षिणी कैलास पर्वत पर चली गई । उपरांत उसके वियोग से दुःखी होकर वह उस योगी के पास गया । कपर्दी ने उसे यक्षिणी का आकर्षण करने वाली विद्या प्रदान किया । मध्य रात्रि में वह जल के भीतर जाकर उस शुभ मंत्र का जप करने लगा । इस प्रकार चालीस दिन तक उस मंत्र का जप करने पर भी वह यक्षिणी की प्राप्ति न कर सका । उस समय योगी की आज्ञा प्राप्तकर वह ब्राह्मण माया-मोह के त्याग पूर्वक अपने माता पिता का अभिवादन करके प्रातःकाल संन्यासी का वेष धारण करके रोते कलपते अपने परिवारों को छोड़कर प्रतिबोधि वन में चला गया ।६-११। वहाँ उनके शिष्य होने के उपरांत पंचाग्नि के मध्य में स्थित होकर आचरण पूर्वक वह उस मंत्र का जप करने लगा वहां भी योगिनी की प्राप्ति न होने पर उसे चिंता होने लगी । इतना कहकर वैताल ने ज्ञाननिपुण राजा से कहा—उसे वह यक्षिणी देवी प्रेयसी के रूप में क्यों नहीं प्राप्त हुई ! इसे सुनकर राजा ने उस रुद्र सेवक वैताल से कहा—विप्र ! साधक को सिद्धि प्राप्ति करने के लिए तीन प्रकार का कर्म बताया गया है—मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, वाणी और शरीर द्वारा किये गये कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, मन और काय द्वारा किये गये कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में राज्य की प्राप्ति होती है । मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है।१२-१७। इसलिए साधकों को इस तीन प्रकार के कर्म को

अतोऽन्यजन्मनि प्राप्तो यक्षत्वं तत्परो द्विजः ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालः प्रसन्नवदनोऽभवत् ॥१९

साधु साध्विति तं प्रोच्य सद्वाक्यैः समपूजयत् । इतिहासं पुनः प्राह परीक्षार्थे नृपाय सः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाप्राज्ञ वैतालस्तं हि सोऽब्रवीत् । सुदक्षो नाम नृपतिर्वसन्कम्बलके पुरे ॥१

न्यायदान्धर्मवाञ्छूरो दाता शिवपरायणः । तस्य राज्येऽवसद्वैश्यो धनाध्यक्ष इति श्रुतः ॥२

तनया सुन्दरी तस्य नाम्ना धनवती शुभा । गौरीदत्ताय वैश्याय पित्रा दत्ता वराङ्गना ॥३

कियता चैव कालेन मोहिनी तत्सुताभवत् । द्वादशाब्दवयस्तस्याः पिता तु निधनं गतः ॥४

तदा धनवती रण्डा निधना पितुरन्तिके । कन्यया सह सम्प्राप्ता निशि मार्गे तमोमये ॥५

सुसम्पन्न करना चाहिए। उस ब्राह्मण ने दूसरे के धन का उपभोग करते हुए उस मंत्र का जप किया था अतः उसे दूसरे जन्म में यक्षत्व की प्राप्ति होगी।१८

सूत जी बोले—इतना कहने पर वह वैताल हर्षित होकर साधु, साधु कहते हुए उत्तम वाणी द्वारा उसका अत्यन्त सम्मान किया। उपरांत राजा के परीक्षार्थ इतिहास कहना पुनः आरम्भ किया।१९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—शौनक, महाप्राज्ञ ! वैताल ने राजा से कहा—कम्बल नगर में सुदक्ष नामक राजा रहता था, जो न्यायी, धार्मिक, शूर, दानी एवं शिव जी का उपासक था। उसकी राजधानी में धनाध्यक्ष नामक वैश्य रहता था, उसकी धनवती नामक परमसुन्दरी कन्या थी। उस रमणीक कन्या को उसके पिता ने गौरीदत्त वैश्य को प्रदान कर दिया। कुछ समय के अनन्तर मोहिनी नामक कन्या उससे उत्पन्न हुई। उसकी बारहवर्ष की अवस्था होने पर उसके पिता का निधन हो गया। उस समय धनवती पति के निधन होने के नाते निर्धनावस्था में अपनी कन्या समेत अपने पिता के यहाँ जा रही थी। अंधेरी रात में

न्यायशर्मा द्विजः कश्चिद्ब्रह्मस्वस्यापहारकः । नामसत्यत्वभावेन शूल्यां न निधनं गतः ॥६
अकस्माद्वैश्यजा प्राप्ता तत्करं सा तदास्पृशत् । तेन दुःखेन महता रुरोदोच्चैर्द्विजश्च सः ॥७
हा राम कृष्णं प्रद्युम्नानिरूद्धेति पुनः पुनः । श्रुत्वा धनवती दीना को भवानिति साब्रवीत् ॥८
द्विज आह च विप्रोऽहं त्र्यहं शूल्यां निरूपितः । यदि दास्यसि मे कन्यां कोटिस्वर्णं ददामि ते ॥९
श्रुत्वा धनवती तस्मै उद्वाह्य मोहिनीं सुताम् । वटमूले स्थितं द्रव्यं खनित्वा गृहमाययौ ॥१०
मोहिन्यपि पतिं प्राह भवान्मृत्युवशं गतः । कुतो जायेत तनयस्तन्मे ब्रूहि दयानिधे ॥११
द्विजः प्राह शृणु व्यङ्गे यदा ते हृच्छयो भवेत् । तदा त्वं पण्डितं प्राप्य पुत्रमुत्पादयाशु वै ॥१२
इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य यमलोकं गतो द्विजः । नारकीं यातनां नित्यं बुभुजे निन्द्यकर्मजाम् ॥१३
मातुर्गृहे तु सा नारी मोहिनी यौवनान्विता । स्मरन्तं हृदये कृत्वा तिष्ठन्ती च पुनः पुनः ॥१४
के भोगाश्च किमाश्चर्यं को जागर्ति शयीत कः । पापो व्याधिश्च दुःखं च कुतो जातं हृदि स्थितम् ॥१५
इति श्लोकं द्विजानाह नोत्तरं च ददुर्द्विजाः । मेधावी नाम काश्मीरे स्थितो विप्रः समागतः ॥१६
तामुवाच प्रसन्नात्मा शृणु मोहिनि सुन्दरि । सुगन्धि वनिता वस्त्रं गीतं पानं च भोजनम् ॥
शय्या च भूषणं ज्ञेयो भोगो ह्यष्टविधो बुधैः ॥१७

उसे मार्ग में न्याय शर्मा नामक एक ब्राह्मण मिला, जिसे किसी ब्राह्मण का सर्वस्व का अपहरण करने पर भी अपने नाम की सत्यता के नाते उसे शूली हुई और उसका निधन नहीं हुआ (अर्थात् उसके धन का हरण भी नहीं किया गया) ।१-६। अकस्मात् उसकी पुत्री उसके पास जाकर अपने हांथ से उसके चरण स्पर्श किया कि वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा राम कृष्ण' प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध ! इन्हीं नामों का बार-बार उच्चारण करते हुए रुदन करने लगा । उसे सुनकर वह दीन-कृपणा धनवती उसके समीप जाकर कहने लगी—आप कौन हैं ? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ किन्तु तीन दिन से मेरे मन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है, यदि इस कन्या को मुझे अर्पित कर दो तो मैं तुम्हें कोटि सुवर्ण प्रदान करूँगा । यह सुनकर धनवती ने अपनी मोहिनी नामक पुत्री का विवाह संस्कार उसके साथ सम्पन्न कर दिया । पश्चात् बरगद के नीचे पृथ्वी के भीतर सुरक्षित द्रव्य को खोदकर अपने घर चली आई। मोहिनी ने अपने पति से कहा—दयानिधे आप तो मरणासन्न हो रहे हैं, मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा । ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! जब तुम्हें काम उत्पन्न हो तो तुम किसी पण्डित के पास पहुँचकर उसी द्वारा पुत्र को उत्पन्न करना ।७-१२। इतना कहकर वह ब्राह्मण मरणोपरांत यमलोक में पहुँच गया । वहाँ वह अपने किये हुए निन्दित कर्मों के परिणाम स्वरूप नारकीय यातनाओं का अनुभव करने लगा । अपनी माता के घर में रहकर वह मोहिनी यौवनावस्था प्राप्त होने पर भी अपने पति की प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण करके (अनुचितपथ से) रुक जाती थी । कौन भोग हैं, क्या आश्चर्य है, कौन जागरण करताहै, कौन शयन कर रहा है, पाप, व्याधि एवं दुःख, हृदय में रहकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसी श्लोक का अर्थ वह ब्राह्मण से पूछती थी, पर किसी ने उसका उत्तर न दिया । पश्चात् मेधावी नामक एक काश्मीर निवासी ब्राह्मण वहाँ आया । उसने प्रसन्न होकर उस मोहिनी से कहा—सुन्दरि ! इसका अर्थ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सुगंध, स्त्री, वस्त्र, ज्ञान, पेयपदार्थ, भोजन, शय्या और भूषण इन्हीं आठ प्रकार के भोग को विद्वानों ने बताया है । नित्य प्रति

अहन्यहनि भूतानि म्रियन्ते जनयन्ति[1] च । ममतां यः करोत्येषां तदाश्चर्यं स्मृतं बुधैः ॥१८
यो विवेकं समासाद्य कुरुते कर्मसंग्रहम् । संसारे घोरतमसि स जागर्ति विवेकवान् ॥१९
संसाराजगरं ज्ञात्वा वैराग्यं योऽकरोद्भुवि । औदासीन्यं समाधिं च सुखं शेते हि मानवः ॥२०
सङ्कल्पाज्जायते कामस्ततो लोभः प्रजायते । लोभाज्जातश्च तृष्णायां स पापो निरयप्रदः ॥२१
जलप्रकृत्यां यो जातो रसो रसविकारवान् । रसाज्जातस्य देहेऽस्मिन्व्याधिः कर्ममयोऽशुभः ॥२२
रुद्रात्काल्यां समुद्भूतो मोहो हृदि च लोकहा । स तुष्टाव महादेवीं पत्न्यर्थे सुरपूजिताम् ॥२३
मिथ्यादृष्टिस्ततो जाता मोहस्य दयिताभवत् । तस्मात्स्नेहश्च तत्पत्न्यां जातश्च ममताप्रियः ॥२४
तयोः सकाशात्सञ्जातं दुःखं शोकसमन्वितम् । इति श्रुत्वा तु सा नारी मुमोह वरवर्णिनी ॥२५
मानी शूरश्च चतुरोऽधिकारी गुणवान्सखा । स्त्रीरक्षकश्च पुरुषो वशं नारीं सदा नयेत् ॥२६
तस्यै गर्भं च विप्रोऽसौ दत्त्वा स्वर्णं गृहीतवान् । सापि नारी सुखं लेभे तेन गर्भेण प्रत्यहम् ॥२७
कदाचिद्दशमासान्ते मोहिनीमब्रवीच्छिवः । स्वप्नान्तरे महाराज सापि ज्ञात्वा तथाकरोत् ॥२८
दोलामध्ये सहस्रं च स्वर्णं चैव स्वबालकम् । राजद्वारे स्थापयित्वा सुष्वाप जननी सुखम् ॥२९
शिवेन बोधितो राजा सुतार्थी रुद्रपूजकः । द्विजपुत्रं समालेभे मोहिन्यां जातमुत्तमम् ॥३०

जीव मरते और उत्पन्न होते हैं, इसके लिए जो मोहित होता है विद्वानों ने उसे ही आश्चर्य बताया है ।१३-१८। जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है । संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है । संकल्प से नाम, काम से लोभ और लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है, जो इन्हें अपनाता है, उसे पापी कहा गया है, जो नरकप्रद है । जलप्रकृति से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही रस विकारी होता है, इस देह में उसी रसद्वारा अशुभ कर्म भय की उत्पत्ति होती है, उसे ही व्याधि कहा गया है । रुद्र द्वारा काली में लोक का अपहरण करने वाला मोह हृदय में उत्पन्न हुआ । उन्होंने पत्नी के लिए महादेवी की आराधना की, उससे सुरपूजित मिथ्या दृष्टि उत्पन्न हुई, जो मोह की प्रेयसी कही जाती है । उसी पत्नी से स्नेह और ममता की उत्पत्ति हुई ।१९-२४। इन्हीं दोनों के संगम से शोकपूर्ण दुःख की उत्पत्ति हुई है । इसे सुनकर वह उत्तमांगी मोहिनी मुग्ध हो गई । क्योंकि मानी, शूर, चतुर, अधिकारी, गुणवान् सखा तथा स्त्रीरक्षक पुरुष के वश में स्त्रियाँ सदैव रहती हैं । उस ब्राह्मण ने उसे गर्भवती करने के उपरांत उसका धन ग्रहण करके प्रस्थान किया । पश्चात् वह स्त्री भी उस गर्भ के द्वारा प्रतिदिन सुख का अनुभव करने लगी । दशवें मास के आरम्भ में शिव जी ने उस मोहिनी से कहा—महाराज ! वह स्वप्न की बातें वैसी ही सुसम्पन्न की । पालकी के भीतर एक सहस्र सुवर्ण संपन्न उस बालक को शयन कराकर राजा के दरवाजे पर जाकर उस पुत्र को वहीं रखकर स्वयं भी निद्रित हो गई । उसी समय शिव जी ने उस राजा को जो सुतार्थी एवं रुद्र का उपासक था उस बालक को अपनाने के लिए आदेश दिया । मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न उस ब्राह्मण पुत्र को राजा ने अपना पुत्र

---

१. जायन्त इत्यर्थः ।

कारयित्वा जातकर्म विततार धनं बहु । हरदत्तश्च नाम्नासीत्सर्वविद्याविशारदः ।।३१
पितुरन्ते च तद्राज्यं प्राप्य धर्मं प्रकाशयन् । गयाश्राद्धं कृतं तेन फल्गूतीरे विधानतः ।।३२
त्रयो हस्तास्तदा जाताः स राजा विस्मितोऽभवत् ।।३३
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह भो नृप । कस्मै योग्यो हि पिण्डोऽसौ श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ।।३४
द्रव्यार्थी पण्डितो ज्ञेयो गुरुतुल्यश्च भूपतिः । चौराय पिण्ड उचितो यस्य नारी च मोहिनी ।।३५

सूत उवाच

तेन पिण्डप्रभावेन स चौरो ब्रह्मद्रव्यहृत् । निरयान्निःसृतो विप्र स्वर्गलोकं समागतः ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

चित्रकूटे च नृपती रूपदत्त इति श्रुतः । वने मृगप्रसङ्गेन वनान्तरमुपाययौ ।।१
मध्याह्ने सरसस्तीरे मुनिपुत्रीं ददर्श सः । चिन्वतीं पद्मकुसुमं रूपयौवनशालिनीम् ।।२

बनाकर उसका जात संस्कार किया जिसमें अत्यन्त धन का व्यय किया गया । उसका नाम हरदत्त रखा गया । वह सम्पूर्ण विद्या का पारगामी हुआ । पिता के निधन होने पर उस राज्य का स्वामी होकर उसने धर्म का विस्तार किया । फल्गु नदी के तटपर उसने विधानपूर्वक गया का श्राद्ध आरम्भ किया । उस समय उस नदी में से तीन हाथ निकले जिसे देखकर उस राजा को महान्, आश्चर्य हुआ । इतना कहकर उस वैताल ने राजा से कहा—नृप ! उस पिंड का अधिकारी कौन हुआ । इसे सुनकर राजा ने कहा—पण्डित तो द्रव्यार्थी थे, और राजा गुरु के समान होता है, अतः वह पिण्ड उस चोर को प्राप्त होना चाहिए, जिसकी मोहिनी स्त्री थी ।२५-३५

सूत जी बोले—विप्र ! उस पिण्ड के प्रभाव से ब्राह्मण द्रव्य का अपहरण करने वाले उस चोर ब्राह्मण ने नरक से मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति की ।३६

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

चित्रकूट में रूपदत्त नामक राजा रहता था । वह मृगया (शिकार) के लिए एक वन से दूसरे वन में पहुँच गया । वहाँ मध्याह्न के समय सरोवर के तट पर कमल-पुष्प का संचय करने वाली किसी मुनि की पुत्री को देखा । जो रूपलावण्य पूर्ण और यौवन के मदसे उन्मत्त सी रहती थी ।१-२। वे दोनों आपस में एक दूसरे

तस्या नेत्रे स्वयं नेत्रे चैकीभूते समागते । एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तत्र प्राप्तो ददर्श तौ ॥३
तस्य दर्शनमात्रेण नृपतेर्ज्ञानमागतम् । विनयावनतो राजा धर्मं पप्रच्छ चोत्तमम् ॥४
तमुवाच मुनिर्धीमान्दयाधर्मप्रपोषणम् । निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥५
अनर्हान्दण्डमादद्यादर्हपूजाफलं भजेत् । मित्रता गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे ॥६
सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । मृदुता दानसमये सन्तुष्टिर्निन्द्यकर्मणि ॥७
इत्युक्त्वा स मुनिः पुत्रीं तस्मै दत्त्वा गृहं ययौ । राजापि च तया सार्द्धं वटमूलेऽशयिष्ट वै ॥८
तदा तु राक्षसः कश्चित्तत्पत्नीभक्षणोत्सुकः । बोधयामास नृपतिं बलिं तस्मै स भूपतिः ॥९
दानार्थं चैव क्रव्यादे सप्तवर्षात्मकं द्विजम् । समयं कृतवान्राजा सत्येन स्वगृहं ययौ ॥१०
अमात्यैः सम्मतं कृत्वा स्वर्णलक्षं ददौ द्विजे । मध्यं बालं पुरस्कृत्य राक्षसाय बलिं ददौ ॥११
मृत्युकाले द्विजसुतो विहस्योच्चै रुरोद ह । कथं हास्यं कृतं तेन तत्पश्चाद्रोदनं कथम् ॥१२
इति श्रुत्वा नृपः प्राह शृणु वैतालिक द्विज । ज्येष्ठपुत्रं पितुर्हृद्यं मातृहृद्यमवर्यकम् ॥१३
ज्ञात्वा स मध्यमः पुत्रो राजानं शरणं ययौ । निर्दयी रूपसेनश्च पत्नीकल्याणभिक्षुकः ॥१४
खड्गहस्तं नृपं ज्ञात्वा जहास शिवतत्परः । राक्षसाय शरीरं मे प्राप्तमस्माद्रुरोद ह ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

से आँख मिला रहे थे कि उसी समय वहाँ पहुँच कर महर्षि ने उन दोनों को देख लिया । उनके देखते ही राजा को ज्ञान उत्पन्न हो गया । विनय विनम्र होकर राजा ने उनसे उत्तम धर्म की जिज्ञासा की । ज्ञान- निपुण मुनि ने दया और धर्म का अत्यन्त पोषक वर्णन आरम्भ किया । अभयदान के समान कोई दान न कहीं है और न होगा । इसीलिए अपराधी को दण्ड प्रदान करने से पूजनीय की पूजा का फल प्राप्त होता है । गौ और ब्राह्मण से नित्य मित्रता, दंडविधान में समता, देवों की अर्चना में सत्यता, गुरु की सेवा में (इन्द्रिय) दमन, दान के समय कोमलता और निंदित कर्मों में संतोष करना चाहिए । इतना कहकर वे महर्षि उन्हें अपनी पुत्री प्रदान कर घर चले गये । उपरांत राजा उसके साथ किसी बरगद के मूल भाग पर शयन करने लगे । उस समय किसी राक्षस ने उनकी पत्नी को भक्षण करने के व्याज से राजा को जगाकर कहा—मुझे बलि चाहिए । 'तदनन्तर आज के सातवें दिन दान रूप में सात वर्ष का एक ब्राह्मण पुत्र मैं आपको दूँगा । इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा करके राजा अपने घर चले गये । वहाँ पहुँचकर अपने मंत्री से परामर्श करके एक ब्राह्मण को एक लक्ष का सुवर्ण प्रदानकर उसके मध्यम पुत्र का क्रय किया और राक्षस को उसी की बलि दी गई । निधन के समय उस बालक ने पहले हँसा और पश्चात् रुदन किया । उसने पहले हँसकर पीछे रुदन क्यों किया । इसे सुनकर राजा ने वैताल से कहा—द्विज ! ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए और कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता को प्रिय होता है, ऐसा जानकर वह मध्यम (मझला) पुत्र राजा की शरण में गया किन्तु निर्दयी उस राजा रूपसेन को हाथ में खड्ग लिए हुए देखकर उस बालक ने अपने कल्याणार्थ हँसा और राक्षस की उदरपूर्ति के लिए मेरी शरीर जा रही है, ऐसा जानकर उसने रुदन किया ।३-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो नृपं प्राह पुनः कथाम् । विशालनगरे रम्ये विपुलेशो महीपतिः ।।१
तस्य ग्रामे दसद्वैश्योऽर्थदत्तो विपणे रतः । अनङ्गमञ्जरी कन्या तस्य जाता मनोरमा ।।२
सुवर्णनाम्ने वैश्याय पिता वै दत्तवान्स्वयम् । कदाचित्कमलग्रामात्सुवर्णो द्वीपमागमत् ।।
द्रव्यलाभाय न्यवसच्चिरं कालं स लुब्धवान् ।।३
अनङ्गमञ्जरीगेहे दैवयोगाद्द्विजोत्तमः । कमलाकरनामासौ कृत्ययोगात्समागतः ।।४
होमान्ते सुन्दरी नारी मार्जनार्थे सुता गता । दृष्ट्वा तां कामकलिकां मुमोह द्विजसत्तमः ।।५
सुतापि मदघूर्णाक्षी विप्राय समयं ददौ । निशीथे तम उद्भूते त्वं मां प्राप्य सुखी भव ।।६
इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं तस्या ध्यानं तदाकरोत् । कामाग्निना चिरं तप्तः सुष्वाप परमासने ।।७
अर्द्धरात्रे तु सा नारी द्विजागमनतत्परा । मार्गमन्वेषमाणा सा प्रियस्य स्मरपीडिता ।।८
नागतः स द्विजो दैवात्तदा सा मरणं गता । कमलाकर एवाशु समयान्ते समाययौ ।।९

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना सुनकर वैताल ने पुनः राजा से कथा कहना आरम्भ किया । उस रमणीक विशाल नामक नगर में विपुलेश नामक राजा राज्य करता था । उस नगर में अर्थदंत नामक एक व्यापार कुशल वैश्य रहता था । उसके अनंगमञ्जरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । उसके पिता ने सुवर्ण नामक वैश्य के साथ उसका पाणिग्रहण सुसम्पन्न करा दिया । एक बार वह सुवर्ण नामक वैश्य ने कमल नगर से किसी द्वीप के लिए प्रस्थान किया । उस लोभी ने द्रव्य के लोभवश वहाँ चिरकाल तक निवास किया । दैव योगात् एक दिन अनंगमञ्जरी के यहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका नाम कमलाकर था, किसी अनुष्ठान के निमित्त आया । हवन करने के उपरांत मार्जनार्थ वह सुन्दरी वहाँ आई । काम की कली की भाँति उसे देखकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने मुग्ध होकर अपनी मदभरी (नशीली) आँखों से ताकती हुई उससे मिलने के लिए समय प्रदान किया । 'इस अंधेरी रात में आधीरात के समय तुम मुझसे मिलकर अत्यन्त सुख का अनुभव करो' इसे सुनकर वह ब्राह्मण उसके ध्यान में निमग्न हो गया। काम की अग्नि द्वारा चिरकाल से संतप्त रहने के नाते वह परमोत्तम आसन पर निद्रा के अधीन हो गया। १-७। आधीरात के समय वह सुन्दरी काम पीडित होने के नाते उस ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर होकर उस अपने प्रिय का मार्ग देखने लगी। दैव संयोगवश वह ब्राह्मण उस समय न आ सका, इससे उसने अपने प्राण का परित्याग कर लिया । पश्चात् कमलाकर भी वहाँ पहुँचकर उस सुन्दरी का निधन

दृष्ट्वा मृत्युवशां सुभ्रूं स्वयं मरणमागतः । प्रभाते चार्थदत्तो वै दाहयामास तां शुचा ॥१०
सुवर्णश्च तदागत्य विललाप प्रियां प्रति । चितायां भस्मसाद्भूत्वा स्वर्गलोके तु सा ययौ ॥११
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह विक्रमम् । कस्य स्नेहोऽधिकस्तेषां कुतः स्वर्गपुरं ययौ ॥१२

राजोवाच

पतिः स्नेहोऽधिकस्तेषां मध्यमौ नारिविप्रकौ । द्विजस्नेहेन सा नारी मृता स्वर्गपुरं ययौ ॥१३
वैश्यवर्णैः सदा पूज्यो ब्राह्मणो ब्रह्ममूर्तिमान् ॥१४
द्विजोऽपि नाप्तवान्नारीं तदा स्वर्गगतिं हरिम् । हृदि कृत्वा च निधनं प्राप्तो ह्यस्मात्त्रिविष्टपम् ॥१५
सुवर्णो हृदि संज्ञाय मत्प्रिया ब्रह्मवत्सला । मां त्यक्त्वा तु दिवं याता वह्निदाहप्रभावतः ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहासमुच्चये विंशोऽध्यायः ।२०

अथैकविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानं प्राह नम्रधीः । जयस्थलपुरे रम्ये वर्धमानो नृपोऽभवत् ॥१

होना देखकर अपना प्राणान्त कर लिया । प्रातःकाल अर्थदत्त ने उस स्त्री का दाह संस्कार किया । सुवर्ण भी वहाँ आकर अपनी प्रेयसी के लिए रुदन करने लगा । किंतु वह चिता में भस्म होकर स्वर्गलोक पहुँच गई । इतना कहकर वह वैताल राजा विक्रम से कहने लगा उनमें किसका स्नेह अधिक था । और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हुई ।८-१०

राजा ने कहा—उसके पति का स्नेह अधिक है और उस स्त्री तथा ब्राह्मण का स्नेह मध्यम कोटि का है । ब्राह्मण के स्नेह से उस स्त्री का निधन होने के नाते उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई क्योंकि वैश्यों को सदैव ब्रह्मपूर्ति ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, एवं वह ब्राह्मण भी उस स्त्री की प्राप्ति नहीं कर सका उसने स्वर्गाधिनायक विष्णु का ध्यान करते हुए अपना निधन किया था अतः उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई । तथा सुवर्ण भी अपने हृदय में यही समझा कि मेरी प्रिया ब्राह्मण सेविका थी इसीलिए वह मेरा त्याग कर अग्नि दाह के प्रभाव से स्वर्ग चली गई ।११-१६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीयइतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

अध्याय २१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना कहने पर उस वैताल ने विनम्र होकर राजा से कहा—जयस्थल नगर में

तस्य ग्रामेऽवसद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः । विष्णुस्वामीति विख्यातो राधाकृष्णपरायणः ॥२
चत्वारश्चात्मजास्तस्य चतुर्भागपरायणाः । द्यूतकर्मा च कुलटो विषयी नास्तिकः श्रुतः ॥३
कदाचिद्दैवयोगेन निर्धनत्वं च ते गताः । पितरं विष्णुशर्माणं नेमुस्ते विनयान्विताः ॥४
ऊचू रमा कथं नष्टा तद्वदस्व पितः प्रिय । पितोवाच तु तच्छ्रुत्वा द्यूतकर्मन्निशामय ॥५
द्यूतो धनव्ययकरः पापमूलो महाखलः । व्यभिचारस्तथा चौर्यं निर्दयत्वमतो भवेत् ॥
द्यूतकर्मप्रभावेण त्वदीयद्रव्यसंक्षयः ॥६
धनोपायेन भोः पित्रोर्वाक्यं कुरु मतिं प्रति । तीर्थव्रतप्रभावेण त्वत्पापं संक्षयं व्रजेत् ॥७
हे पुत्र कुलट त्वं वै वेश्यासङ्गं महाशुभम् । त्यक्त्वा ब्रह्मपरो भूत्वा ब्रह्मचर्ये मतिं कुरु ॥८
विषयिन्मांसमदिरे नित्यपापविवर्धिके । अतः प्राप्स्यति चौर्यत्वमतो वै निरयस्तथा ॥९
तस्मात्त्वं प्रभुमीशानं विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् । निवेद्य सर्वथा द्रव्यं भुञ्जीथा वाग्यतः स्वयम् ॥१०
नास्तिकत्वं देवनिन्दां परित्यज्य मतिं कुरु । आत्मा सर्वाभयो नित्यमात्मशक्तिश्च चण्डिका ॥११
आत्मनोऽङ्गानि देवाश्च सर्वजीवगुहाशयाः । ताञ्ज्ञात्वा पूजनं तेषां कुरु त्वं पापशान्तये ॥१२
इति ते वचनं श्रुत्वा गतास्तीर्थान्तरं प्रति ।शिवमाराधयामासुर्विद्यार्थे सर्वरूपिणम् ॥१३
वर्षान्ते च महादेवो विद्यां सञ्जीवनीं ददौ । ते प्राप्य वनमागत्य परीक्षार्थे समुद्यताः ॥१४

वर्धमान नामक राजा हुआ । उसकी राजधानी में विष्णु स्वामी नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेदवेदाङ्ग निष्णात एवं राधाकृष्ण का उपासक था । उस ब्राह्मण के चार पुत्र चार प्रकार के कर्म करने वाले थे—जुआड़ी, कुलमर्यादानाशक, विषयी (व्यभिचारी) एवं नास्तिक थे । दैवात् वे सब निर्धन हो गये । पश्चात् अपने पिता विष्णु शर्मा के पास पहुँचकर विनयावनत होकर उन लोगों ने कहा—प्रियपिता ! हम लोगों की लक्ष्मी नष्ट कैसे हो गई । उनके पिता ने कहा—सुनो ! जुआ खेलने से धन नष्ट हो गया है । द्यूतक्रीडा धन का नाशक, पाप का मूल एवं महाखल बताया गया है । उसी से उसका कर्ता व्यभिचारी, चोर तथा निर्दयी होता है । जूआ खेलने के नाते तुम्हारा धन नष्ट हो गया है, अतः धनोपार्जन के लिए हमारी बातें स्वीकार करो । तीर्थयात्रा और व्रतानुष्ठान से तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे ।१-७। और पुत्र महाअशुभ वेश्या का साथ करके कुल की मर्यादा का नाश करना उचित नहीं । उसके त्याग पूर्वक ब्रह्म के ध्यान करने के लिए ब्रह्मचारी रहना स्वीकार करो । विषयी के लिए उन्होंने कहा । नित्य पापवर्द्धक उस मांस मदिरा का सेवन करने से वह चोर एवं नरकगामी होता है, अतः तुम्हें उस प्रभु को जो ईशान, विष्णु, जपनशील एवं जगत्पति हैं को अर्पित करके पश्चात् उस द्रव्य का उपभोग मौन होकर करना चाहिए । उस नास्तिक से उन्होंने कहा—तुम देवों की निन्दा का परित्याग करो, यह आत्मा निर्भय, एवं नित्य है, और आत्मा की शक्ति चण्डिका हैं एवं इस आत्मा के सम्पूर्ण जीवों के निवासभूत देवगण, अंग हैं, ऐसा जानकर अपनी पाप शान्ति के लिए उन लोगों की उपासना करो ।' इन बातों को सुनकर वे सब तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्तुत हो गये। वहाँ जाकर विद्याध्ययन के लिए सर्वरूपी शिव जी की आराधना करने लगे।८-१३। एक वर्ष के उपरांत महादेव जी ने उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान किया। पश्चात् उन लोगों ने उस विद्या की परीक्षा के निमित्त किसी मृतक वाघ की अस्थियों को एकत्र करके उस पर उस मंत्र से

मृतव्याघ्रास्थीनि श्रेष्ठं मन्त्रपूताम्बु चाक्षिपत् । तेन मन्त्रप्रभावेण पञ्जरत्वमुपागतम् ॥१५
तस्योपर्य्येव कुलटो मन्त्रपूतं पयोऽक्षिपत् । घनमांसं च रुधिरं तेन मन्त्रेण चाभवत् ॥१६
विषयी चाक्षिपच्चैव तस्योपरि जलं शुभम् । तेन मन्त्रप्रभावेण त्वक्प्राणत्वमुपागतम् ॥१७
सुप्तं व्याघ्रं च संज्ञाय नास्तिकस्तु जलं ददौ । मन्त्रेण बोधितो व्याघ्रस्तांश्च विप्रानखादयत् ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । राजन्मूर्खो हि कस्तेषां श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥१९
बोधितो येन स व्याघ्रः स मूर्खस्त्वधिको मतः । इति श्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वैतालः पुनरब्रवीत् ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चय एकविंशोऽध्यायः ।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

वैताल उवाच

भोराजन्बिल्वतीग्रामे गङ्गायामुनमध्यगे । अहं पूर्वभवे चासं क्षत्रसिंहो महीपतिः ॥१

अभिमंत्रित जल का प्रक्षेप किया। उस मंत्र के प्रभाव से उसका पांजर (जंघे) उत्पन्न होकर स्वस्थ्य हो गये! उसके ऊपर उस कुलटे ने पुनः अभिमंत्रित जल का प्रक्षेप किया जिससे उसमें दृढमांस और रक्त संचार होने लगा। पुनः उस विषयी ने उसके ऊपर जल का प्रक्षेप किया जिससे उसमें उस मंत्र के प्रभाव से ऊपरी चर्म और भीतरी प्राण वायु प्रविष्ट हो गया। उस शयन किये हुए बाघ को देखकर उस नास्तिक ने उसके ऊपर जल का प्रक्षेप किया। जिससे उसी समय मंत्र द्वारा चेतना प्राप्त कर उस बाघ ने उन्हें भक्षित कर लिया।१५-१८

सूत जी बोले—इतना कहकर वैताल ने राजा से कहा—राजन्! उनमें कौन मूर्ख था इसे सुनकर राजा ने कहा—जिसने उसे चेतना प्रदान की, वही सबसे अधिक मूर्ख था। यह सुनकर उस द्विजश्रेष्ठ वैताल ने पुनः कहा।१९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।२१।

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

वैताल बोले—राजन्! गंगा-यमुना के मध्य प्रदेश में बिल्वती नामक गाँव है। जन्मान्तर में मैं

तस्य ग्रामेऽवसद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः । शम्भुदत्त इति ख्यातो रुद्रभक्तिपरायणः ॥२
उभकौ तनयौ तस्य सर्वविद्याविशारदौ । विष्णुभक्तः स्मृतो ज्येष्ठो नाम्ना लीलाधरो बली ॥
शाक्तोऽभवत्तदनुजो मोहनो नाम विश्रुतः ॥३
कदाचित्क्षत्रसिंहस्तु यज्ञार्थी यज्ञहेतवे । शम्भुदत्तं समाहूय ससुतं धर्मकोविदम् ॥
स्वयं च कारयामास च्छागमेधं सुरप्रियम् ॥४
शम्भुदत्तस्तु वृद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः । चतुश्चक्रांश्च संस्थाप्य कलशं कार्यसिद्धिदम् ॥५
हव्यैः सुसंस्कृतै रम्यैश्चकार हवने मुदा । छागमाहूय विधिवत्पूजयामास भूपतिः ॥६
लीलाधरस्तु तं दृष्ट्वा छागं च मरणोन्मुखम् । दयालुर्वैष्णवो धीमानब्रवीद्वचनं रुषा ॥७
दारुणं नरकं योग्यमनया जीवहिंसया । सर्वेशो भगवान्विष्णुर्हिंसायज्ञेन दुष्यति ॥८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्येष्ठबन्धोश्च मोहनः । मृदुपूर्वं जहासोच्चैर्वचनं प्राह नम्रधीः ॥९
पुरा सत्ययुगे भ्रातर्ब्राह्मणा यज्ञतत्पराः । अजेनैव हि यष्टव्यमिति ज्ञात्वा परां श्रुतिम् ॥१०
तिलाधिकमजं मत्वा हव्ये ते तु मनो दधुः । तदा शक्रादयो देवा वह्निमध्ये समागताः ॥११
ऊचुस्ते मधुरं वाक्यं त्वन्मतं निष्फलप्रदम् । अजश्छागः स्मृतो वेदैस्तेन यष्टव्यमन्तरम् ॥१२
श्रुत्वेति वचनं तेषां विस्मिता मुनयोऽभवन् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पितृयोनिरमावसुः ॥१३
विमानं परमारुह्य मुनीन्प्रोवाच निर्भयः । छागमेधेन यष्टव्यं सुराणां तृप्तिहेतवे ॥१४

वहाँ का क्षत्रसिंह नामक राजा था। उसी गाँव में शम्भुदत्त नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेदवेदांगवेत्ता एवं रुद्र की उपासना करता था। उसके दो पुत्र थे, जो सभी विद्याओं में कुशल थे। ज्येष्ठ का नाम लीलाधर था, जो बली एवं विष्णु की उपासना करता था और कनिष्ठ का नाम मोहन था जिसे शक्ति का उपासक बताया गया है। एक बार राजा क्षत्रसिंह ने यज्ञार्थ उस धर्म निपुण शम्भुदत्त को उसके पुत्र के समेत बुलाया। और स्वयं देवप्रिय उस छागमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया।१-४। शिवभक्त एवं वृद्ध शम्भुदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक चार चक्र का निर्माण करके उसी पर कार्यसिद्धिप्रद कलशों के स्थापन करके उस रमणीक एवं सुसंस्कृत हव्य द्वारा हवन कार्य सुसम्पन्न किया। राजा ने उस छाग (बकरी) को मंगाकार सविधान उसकी पूजा थी। दयालु, लीलाधर ने जो विष्णु के उपासक एक एवं परम बुद्धिमान थे, उस छाग को मरणोन्मुख देखकर रोषपूर्ण वाणी से कहा—इस जीवहिंसा द्वारा भीषण नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि सर्वेश भगवान् विष्णु हिंसा यज्ञ से अप्रसन्न होते हैं। इस प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता की बात सुनकर मोहन ने पहले तो मन्दमुसुकान किया पश्चात् नम्रता पूर्वक ऊँचे स्वर से कहा—भ्राता ! पहले सत्ययुग में यज्ञानुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों ने 'छागमेध से ही यज्ञ सुसम्पन्न करना चाहिए' इस श्रुति को उत्तम समझकर और तिल से अधिक अज का महत्त्व स्वीकार करके उसी द्वारा हवन को आरम्भ करना निश्चय किया। उस समय अग्निकुण्ड में शक्रादि समस्त देवगण उपस्थित होकर मधुरवाणी से कहने लगे कि तुम्हारा सिद्धान्त निष्फल प्रद है क्योंकि अज छाग को वेद में बताया गया है।५-१२। अतः उसी छाग द्वारा ही यज्ञ करना श्रेयस्कर होगा। उनकी ऐसी बातें सुनकर महर्षियों को महान् आश्चर्य हुआ। उसी बीच पितृयोनि में उत्पन्न अमावसु ने उत्तम

इति श्रुत्वा वचस्तस्य तथा कृत्वा शिवं ययुः । तस्मात्त्वं च मया सार्द्धं यज्ञं कुरु महामते ॥१५
इति श्रुत्वा वचो घोरं लीलाधर उदारधीः । मोहनं प्राह धर्मात्मा यज्ञस्त्रेतायुगेऽभवत् ॥१६
रजोगुणमयो लोकस्त्रेतायां सम्बभूव ह । हिंसा सत्ययुगे नासीद्धर्मस्तत्र चतुष्पदः ॥१७
हव्येन तर्पिता देवा न मांसै रक्तसम्भवैः । इति श्रुत्वा क्षत्रसिंहस्त्यक्त्वा छागं भयातुरम् ॥१८
फलाद्यैः कारयामास तदा पूर्णाहुतीर्नृप । एतस्मिन्नन्तरे देवी तामसी क्रोधमूर्च्छिता ॥
नगरं दाहयामास नरनारीसमन्वितम् ॥१९
महामायाप्रभावेण शम्भुदत्तः शिवप्रियः । स भूत्वा च महोन्मादी त्यक्त्वा देहं दिवं ययौ ॥२०
तदा लीलाधरो विप्रो दशपुत्रोपजीवकः । बालानध्यापयामास ग्रामे पद्मपुरे शुभे ॥२१
क्षत्रसिंहस्तु नृपतिर्मोहनान्तिकमाययौ । प्रसादं कारयामास देवमातुरनुग्रहम् ॥२२

मोहन उवाच

बीजमन्त्रजपाद्ब्रह्मा ब्राह्मीं शक्तिमवाप्तवान् । तदम्बायै नमस्तुभ्यं महावीरायै नमो नमः ॥२३
जप्त्वा सप्तशतीं विष्णुर्वैष्णवीं शक्तिमाप्तवान् । तदम्बायै नमस्तुभ्यं महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥२४
प्रणवास्तनया यस्यास्तुरीयपुरुषप्रिया । तदम्बायै नमस्तुभ्यं प्रणवायै नमो नमः ॥२५
यया दृश्यमिदं जातं यया वै पाल्यते जगत् । यस्या देहे स्थितं विश्वं तदम्बायै नमो नमः ॥२६

विमान पर बैठकर उन मुनियों से कहा—देवताओं की तृप्ति के लिए छागमेध द्वारा ही यज्ञारम्भ करना चाहिए । इसे सुनकर उन्होंने वैसा ही उसे सुसम्पन्न करके कल्याण की प्राप्ति की अतः महामते ! मेरे साथ आप भी इस यज्ञ को सुसम्पन्न करें । इस घोरवाणी को सुनकर उदारचेता एवं धार्मिक लीलाधर ने मोहन से कहा—वह यज्ञ त्रेतायुग में हुआ है क्योंकि त्रेतायुग में रजोगुण प्रधान (जीव) होते हैं और सत्ययुग में धर्म के चार चरण वर्तमान रहने के नाते उसमें हिंसा नहीं होती है । देवगण द्रव्य द्वारा तृप्त होते हैं न कि मांस और रुधिर से । इसे सुनकर भयभीत होकर क्षत्रसिंह ने उस छाग के त्यागपूर्वक फलों आदि से पूर्णाहुति प्रदान की । नृप ! उस समय तामसी देवी ने क्रुद्ध होकर नर-नारी समेत उस नगर को भस्म कर दिया । महामाया के प्रभाव से शिवप्रिय शम्भुदत्त महा उन्मादी की अवस्था में देह का त्याग कर देवलोक चले गये । उस लीलाधर ब्राह्मण ने पद्मपुर नामक नगर में विद्यार्थियों के अध्यापन द्वारा दश पुत्रों की जीविका का निर्वाह करना आरम्भ किया । और राजा क्षत्र सिंह ने मोहन के समीप पहुँचकर देवमाता के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए उन्हें प्रसन्न किया ।१३-२२

मोहन ने कहा—ब्रह्मा ने बीज मन्त्र का जप करके ही अपनी वाहनी शक्ति की प्राप्ति की है अतः अम्बा को नमस्कार है उस महापराक्रमशालिनी को बार-बार नमस्कार है । विष्णु ने सप्तशती की आराधना करके वैष्णवी शक्ति की प्राप्ति की है । अतः माता को नमस्कार है, उस महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है।२३-२४। प्रणव जिसके पुत्र हैं और जो स्वयं तुरीय (चौथे) पुरुष की जो प्रेयसी है, उस माता को नमस्कार है, उस प्रणवरूपा को बार-बार नमस्कार है। जिसके द्वारा यह समस्त जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है और इसका पालन-पोषण हो रहा है तथा जिसकी देह में यह विश्व स्थित है, उस अम्बा को

शची सिद्धिस्तथा मृत्युः प्रभा गीर्वाणसैनिकाः। स्वाहा च निर्ऋती रात्रिर्ऋद्धिर्भुक्तिस्त्वदुद्भवा॥
लोकपालप्रिया त्वं हि लोकमातर्नमो नमः ॥२७
तृष्णा तृप्ती रतिर्नीतिर्हिंसा क्षांतिर्मतिर्गतिः। निन्दा स्तुतिस्तथेर्ष्या च लज्जा त्वं हि नमो नमः ॥२८
इत्यष्टकप्रभावेण क्षत्रसिंहो महीपतिः। शिवलोकं गतः साधुर्वैतालत्वमवाप्तवान् ॥२९
तस्मात्त्वं विक्रमादित्य भज दुर्गां सनातनीम्। शिवाज्ञया त्वहं प्राप्तस्त्वत्समीपे महीपते ॥३०
प्रश्नोत्तरेण भूपाल मया त्वं सम्परीक्षितः। भुजयोस्ते स्थितिर्मे स्याज्जहि सर्वरिपून्भुवि ॥३१
दस्युनष्टाः पुरीः सर्वाः क्षेत्राणि विविधानि च। शास्त्रमानेन संस्थाप्य समयं कुरु भो नृप ॥३२
यो नृपः सर्वतीर्थानि पुनरुद्धारयिष्यति। स हि मत्स्थापितं संवद्विपरीतं करिष्यति ॥३३
विक्रमाख्यानकालोऽयं पुनर्धर्मं करोति हि। द्वादशाब्दशतं वर्षं द्वापरो हि प्रवर्तते ॥३४
तदन्ते भुवि कृष्णांशो भविष्यति महाबली। कलेरुद्धरणार्थाय म्लेच्छवंशविवृद्धये ॥३५
सूताद्या मुनयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः। विशालायां समागत्य चक्रतीर्थनिवासिनः॥
भविष्यन्ति महाराज पुराणश्रवणे रताः ॥३६
इत्युक्त्वा स तु वैतालस्तत्रैवान्तरधीयत। नृपतिर्विक्रमादित्यः परमानन्दमाप्तवान् ॥३७
तस्माद्यूयं मुनिश्रेष्ठा ज्ञात्वा सन्ध्यां समागताम्। शिवं भजत सर्वेशं ध्याननिष्ठासमन्विताः ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वाविंशोऽध्यायः।२२

बार-बार नमस्कार है। इन्द्राणी, सिद्धि, मृत्यु, प्रभा, कार्तिकेय, स्वाहा, राक्षस, रात्रि, ऋद्धि, और भुक्ति तुम्हीं से उत्पन्न है, तुम्हीं लोकपाल की प्रिया हो, अतः लोकमाता को बार-बार नमस्कार है। तृष्णा, तृप्ति, रति, नीति, हिंसा, क्षांति (त्याग), मति, गति, निन्दास्तुति ईर्ष्या एवं लज्जा रूप तुम्हें बार-बार नमस्कार है। इस अष्टक (स्तुति) के प्रभाव से राजा क्षत्र सिंह ने शिव लोक की प्राप्ति की। वही मैं वैताल के रूप में आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ, इसलिए विक्रमादित्य ! सदैव वर्तमान रहने वाली श्री दुर्गा जी की आराधना करो। महीपते ! मैं भगवान् शंकर की आज्ञा से यहाँ आया हूँ ! राजन् ! इस प्रश्नोत्तर द्वारा मैंने आप की परीक्षा की है। तुम्हारी दोनों भुजाओं में मेरी स्थिति रहेगी। अतः इस भूतल पर स्थित अपने शत्रुओं का नाश करो। राजन् ! अब दस्यु गण नष्ट हो गये हैं, अतः समस्त पुरी, एवं भाँति-भाँति के क्षेत्रों का शास्त्र प्रमाण द्वारा संस्थापन करो। जो राजा सम्पूर्ण तीर्थों का पुनरुद्धार करेगा, वह मेरे द्वारा स्थापित संवत् के प्रतिकूल कार्य करेगा। विक्रम का ख्यातिप्राप्त काल द्वारा पुनः धर्म प्रचार प्रारम्भ होगा। बारह सौ वर्ष द्वापर का शेष समय है, इसके अन्त समय में महाबली कृष्ण का अंश उत्पन्न होगा जिससे कलि का उद्धार और म्लेच्छ वंशों की वृद्धि होगी। महाराज ! नैमिषारण्य निवासी सूत आदि महर्षि वृन्द विशालापुरी में पहुँचकर चक्रतीर्थ के निवासी होकर पुराणश्रवण में निमग्न रहेगें। इतना कहकर वह वैताल उसी स्थान से अन्तर्हित हो गया और राजा विक्रमादित्य को परमानंद की प्राप्ति हुई। इसलिए श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! संध्या समय की उपस्थिति जानकर आप लोग ध्याननिष्ठ होकर सर्वाधिक शिव जी की आराधना कीजिये।२५-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।२२।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तु मुनयो विशालानगरीस्थिताः । स्नात्वा केदारकुण्डे ते मनसा पूजयञ्छिवम् ॥१
समाधिनिष्ठास्ते सर्वे वर्षमेकं व्यतीतयन् ॥२
एतस्मिन्नन्तरे राजा विक्रमादित्यभूपतिः । नत्वा मुनीन्समाधिस्थांस्तुष्टाव परया गिरा ॥३
उषित्वा ते तु मुनयः सूतं गत्वाऽब्रुवन्निदम् । सोऽयं राजा समायातो यस्यैवं वर्णिता कथा ॥४
वाजिमेधं च नृपतेः कारयामस्त्वदाज्ञया । भवान्हि चक्रतीर्थे च स्थित्वा ध्यानपरो भवेत् ॥५
तथेत्युक्त्वा तु सूतस्तैः सार्धं च पुनरागमत् । विधिना कारयामास हयमेधं महामखम् ॥६
पूर्वे तु कपिलस्थानं दक्षिणे सेतुबन्धनम् । पश्चिमे सिन्धुनद्यन्तं चोत्तरे बदरीवनम् ॥७
हयो जगाम तरसा ततः क्षिप्रां नदीं गतः । त्यक्त्वा कलेवरं वह्नौ स्वर्गलोकमतो ययौ ॥८
नृपयज्ञे सुराः सर्वे सपत्नीकाः समागताः । चन्द्रमास्तत्र नायातो भूपतिर्विमना अभूत् ॥९
यज्ञान्ते विविधं दानं दत्त्वा वैतालसंयुतः । चन्द्रलोकं गतो राजा चन्द्रमाः सुखितोऽभवत् ॥१०
भोभो राजन्महाभाग कलौ प्राप्ते भयङ्करे । मद्गतिर्भूतले नास्ति तस्मान्नायामि तेऽन्तिकम् ॥११

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

व्यास जी बोले—विशाला नगरी में स्थित महर्षि वृन्द ने इसे सुनकर केदार कुण्ड में स्नान करके शिव जी की मानसिक अर्चना प्रारम्भ की । इसी प्रकार समाधिनिष्ठ होकर एक वर्ष का समय व्यतीत किया कि उसी समय राजा विक्रमादित्य वहाँ आकर उन समाधिस्थ महर्षियों की उत्तम वाणी द्वारा स्तुति करने लगे । पश्चात् वे मुनिगण सूत जी के पास जाकर कहने लगे कि आपने जिसकी कथा का वर्णन किया है, वही राजा यहाँ आया हुआ है । यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो हम लोग राजा के अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ करायें, किन्तु, आप चक्रतीर्थ में चलकर वहीं ध्यान करें । उसे स्वीकार कर सूत जी ने उनके साथ पुनः उसी स्थान पर आकर अश्वमेध नामक उस महायज्ञ का अनुष्ठान सविधान सुसम्पन्न कराया । १-६ । पूर्व में कपिला स्थान, दक्षिण में सेतुबन्धन, पश्चिम में सिन्धु नदी, और उत्तर में बदरिकाश्रम के जंगल तक शीघ्रता से जाकर वह अश्व क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँच गया । वहाँ अपने कलेवर (देह) को अग्नि में डालकर स्वयं स्वर्गलोक चला गया । राजा के उस यज्ञ समारोह में सभी देवगण अपनी पत्नियों के समेत आये थे। केवल चन्द्रमा का आगमन वहाँ नहीं हुआ था, अतः अन्य मनस्क होकर राजा भाँति-भाँति के दान देने के उपरांत वैताल के साथ चन्द्रलोक में गये। उससे चन्द्रमा का सुख प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा—राजन्! महाभाग! इस भीषण कलि के आगमन से पृथ्वी तल पर मेरी गति नहीं होती है, इसीलिए मैं तुम्हारे

दत्त्वा सुधामयं तोयं चन्द्रश्चान्तर्दधे पुनः । ज्ञात्वेन्द्रस्तत्र सम्प्राप्य द्विजरूपी ह्ययाचयत् ।।१२
दत्तं राज्ञा तदमृतं शक्रः स्वर्गमुपागतः । तेन तस्य फलं जातमायुर्लक्षसमं ह्यभूत् ।।१३
तस्मिन्काले द्विजः कश्चिज्जयन्तो नाम विश्रुतः । तत्फलं तपसा प्राप्तः शक्रतः स्वर्गृहं ययौ ।।१४
जयन्तौ भर्तृहरये लक्षस्वर्णेन वर्णयन् । भुक्त्वा भर्तृहरिस्तत्र योगारूढो वनं ययौ ।।१५
विक्रमादित्य एवास्य भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् । शतवर्षं मुदा युक्तो जगाम मरणे दिवम् ।।१६
शौनकाद्यास्तु ऋषयो ज्ञात्वा भूपस्य स्वर्गतिम् । गत्वा सूतं प्रणम्योचुर्धर्मं मुख्यं वदाधुना ।।१७
तेभ्यः सूतः पुराणानि श्रावयामास वै पुनः । शतवर्षं पञ्चलक्षश्लोकमध्यापयन्मुदा ।।
ते श्रुत्वा मुनयः सर्वे जग्मुर्हृष्टाः स्वमालयम् ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः । पृच्छन्ति विनयेनैव सूतं पौराणिकं खलु ।।१

समीप न आ सका । पश्चात् अमृतमय जल प्रदान कर चन्द्रमा वहां अर्न्ताहित हो गये । यह बात इन्द्र को विदित हुई । इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर उसकी याचना की । राजा ने उसे इन्द्र को दे दिया । अनन्तर इन्द्र स्वर्ग चले आये । उसे इन्द्र को प्रदान करने के नाते राजा की आयु लक्ष के समान हो गई । उस समय जयन्त नामक किसी ब्राह्मण ने तप द्वारा इन्द्र से उसी फल की प्राप्ति करके स्वर्ग को प्रस्थान किया । जयन्त ने राजा भर्तृहरि से एक लक्ष सुवर्ण की मुद्रा ग्रहणकर उनसे उसका वर्णन किया । भर्तृहरि उसका उपभोग करके योग की तैयारी कर वन वन चले गये । पश्चात् राजा विक्रमादित्य सौ वर्ष तक उस राज्य का निष्कटंक उपभोग करके स्वर्ग चले गये । शौनकादि ऋषिगण ने राजा को स्वर्गीय जानकर सूत के पास जाकर प्रणाम पूर्वक उनसे कहा—इस समय मुख्य धर्म की चर्चा कीजिये । सूत जी ने पुनः उन्हें पुराणों का श्रवण कराया । उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर सौ वर्ष तक पाँच लक्ष श्लोकों का उन्हें अध्ययन कराया । मुनिवृन्द उन्हें श्रवण करके हर्ष निमग्न होते हुए अपने-अपने गृह चले गये ।७-१८

श्री भविष्यमहापुराण में प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।२३।

अध्याय २४

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

व्यास जी बोले—एक बार शौनक आदि ऋषिगण ने नैमिषारण्य में एकत्र होकर नम्रता पूर्वक पुराणवेत्ता सूत जी से पूछा—भगवन् ! लोक के कल्याणार्थ चारों युगों में पूजनीय सेवा करने योग्य और

भगवन्ब्रूहि लोकानां हितार्थाय चतुर्युगे । कः पूज्यः सेवितव्यश्च वाञ्छितार्थप्रदायकः ॥२
विनायासेन वै कामं प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् । सत्यं ब्रह्मन्वदोपायं नराणां कीर्तिकारकम् ॥३

सूत उवाच

नवाम्भोजनेत्रं रमाकेलिपात्रं चतुर्बाहुचामीकराचारुगात्रम् ।
जगत्त्राणहेतुं रिपौ धूम्रकेतुं सदा सत्यनारायणं स्तौमि देवम् ॥४
श्रीरामं सहलक्ष्मणं सकरुणं सीतान्वितं सात्त्विकं । वैदेहीमुखपद्मलुब्धमधुपं पौलस्त्यसंहारकम् ।
वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्तानुकम्पाकरं । शत्रुघ्नेन हनूमता च भरतेनासेवितं राघवम् ॥५
कलिकलुषविनाशं कामसिद्धिप्रकाशं सुरवरमुखभासं भूसुरेण प्रकाशम् ।
विबुधबुधविलासं साधुचर्याविशेषं नृपतिवरचरित्रं भोः शृणुष्वेतिहासम् ॥६
एकदा नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया । पर्यटन्विविधाँल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागमत् ॥७
तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नानाक्लेशसमन्वितान् । आधिव्याधियुतानार्तान्पच्यमानान्स्वकर्मभिः ॥८
केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद्ध्रुवम् । इति सञ्चिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ॥९
तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् । शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥१०
प्रसन्नवदनं शान्तं सनकाद्यैरभिष्टुतम् । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥११

अभीष्ट फल प्रदान करने वाला कौन है, जिससे मनुष्यों की शुभ कामनाएँ अनायास सफल हो सकें । ब्रह्मन् ! मनुष्यों के कीर्तिप्रद उस सत्य उपाय को बतलाने की कृपा कीजिये ।१-३

सूत जी बोले—मैं उस सत्यनारायण देव की सदैव आराधना करता हूँ, जिसका नूतन कमल के समान नेत्र, स्वयं लक्ष्मी की क्रीड़ा का पात्र, चार भुजाएँ, सुवर्ण के समान सौन्दर्य पूर्ण शरीर, जगत् की रक्षा का मुख्य हेतु और शत्रुओं के लिए (विनाश सूचक) धूम्रकेतु, रूप है । लक्ष्मण समेत श्री रामचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ, जो कारुणिक, सीता सहित, सात्विक, जानकी के मुखकमल के लोभी भ्रमर, पुलस्त्यवंश रावणादि के संहारक, वंदनीय चरणकमल, देवश्रेष्ट, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, एवं शत्रुघ्न, हनुमान और भरत से सुसेवित तथा रघुकुल में उत्पन्न हैं । उस राजा का श्रेष्ठ चरित सुनो, जो कलिमलनाशक, कामनाओं की सिद्धि करने वाला, श्रेष्ठ देवों के मुख का प्रकाशक, ब्राह्मण द्वारा प्रकाशित, देवों एवं विद्वानों का विलास, साधुओं द्वारा विशेष महत्त्व प्राप्त एवं इतिहास रूप है ।४-६। एक बार नारद योगी ने दूसरों पर कृपा करने की इच्छा से सभी लोकों में विचरते हुए इस मनुष्यलोक में आगमन किया । यहाँ सभी जन-वर्ग को देखकर जो अनके भाँति के दुःखों से दुःखी, मानसिक, शारीरिक रोगों से ग्रस्त, दरिद्रता से पीड़ित, और अपने कर्मों से परिपक्व हो रहे थे, किस उपायं द्वारा इनके दुःख नष्ट होंगे इसका अपने मन में विचार करते हुए वे उस समय विष्णु के लोक चले गये । वहाँ नारायण देव को देखकर, जो शुक्लवर्ण, चार भुजाएँ क्रमशः शंख, चक्र, गदा, पद्म उनमें धारण किये, वनमाला से सुशोभित, प्रसन्नमुख, शांत, एवं सनकादि साधुओं से स्तुत हो रहे थे, ऐसे उन देवाधिदेव की स्तुति करना प्रारम्भ किया ।७-११

नारद उवाच

नमो वाङ्मनसातीतरूपायानन्तशक्तये । नादिमध्यान्तदेवाय निर्गुणाय महात्मने ॥१२
सर्वेषामादिभूताय लोकानामुपकारिणे । अपारपरिमाणाय तपोधाम्ने नमो नमः ॥१३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स्तुतिं विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत् । किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते ॥१४
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते । श्रुत्वा तु नारदो विष्णुमुक्तवान्सर्वकारणम् ॥१५
नारदस्य वचः श्रुत्वा साधुसाध्वित्यपूजयत् । शृणु नारद वक्ष्यामि व्रतमेकं सनातनम् ॥१६
कृते त्रेतायुगे विष्णुर्द्वापरेऽनेकरूपधृक् । कलौ प्रत्यक्षफलदः सत्यनारायणो विभुः ॥१७
चतुष्पादो हि धर्मश्च तस्य सत्यं प्रसाधनम् । सत्येन धार्यते लोकः सत्ये ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ॥१८
सत्यनारायणव्रतमतः श्रेष्ठतमं स्मृतम् । इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नारदः पुनरब्रवीत् ॥१९
किं फलं किं विधानं च सत्यनारायणार्चने । तत्सर्वं कृपया देव कथयस्व कृपानिधे ॥२०

भगवानुवाच

नारायणार्चने वक्तुं फलं नालं चतुर्मुखः । शृणु संक्षेपतो ह्येतत्कथयामि तवाग्रतः ॥२१
निर्धनोऽपि धनाढ्यः स्यादपुत्रः पुत्रवान्भवेत् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यमन्धोऽपि स्यात्सुलोचनः ॥२२
मुच्यते बन्धनाद्बद्धो निर्भयः स्याद्भयातुरः । मनसा कामयेद्यं यं लभते तं विधानतः ॥२३

नारद बोले—वाणी एवं मन से अगोचर रूप वाले उस अनंत शक्ति वाले देव को नमस्कार है, जो आदि, मध्य, एवं अन्तहीन, निर्गुण, तथा महात्मा है । और सभी के आदि काल में रहने वाला, लोक का उपकारक एवं अजेय परिमाण वाला है उस तपोनिधि को बार-बार नमस्कार है ।१२-१३

सूतजी बोले—इस प्रकार की स्तुति सुनकर विष्णु ने नारद से कहा—महाभाग ! आपका आगमन कैसे हुआ, और आप क्या चाहते है, सभी बातें बताइये । मैं उन्हें (उनकी प्राप्ति के कारण समेत) तुम्हें बताऊँगा । इसे सुनकर नारद ने विष्णु जी से उन समस्त कारणों को बताया । नारद की बातें सुनकर उन्होंने 'साधु-साधु' कहकर उनका अधिक सम्मान प्रकट किया और कहा—नारद ! मैं एक सनातन (अविनाशी) व्रत की व्याख्या तुम्हें बताऊँगा जो सत्य, त्रेतायुग तथा द्वापर में अनेक रूपधारी विष्णु और कलियुग में प्रत्यक्ष फलप्रदायक वही व्यापक सत्यनारायण रूप हैं । धर्म के चार चरण बताये गये हैं, किन्तु उसका मुख्य साधन सत्य है क्योंकि सत्य के द्वारा लोक का धारण होता है और उसी सत्य में ब्रह्मप्रतिष्ठित है, अतः उस सत्यनारायण का व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ है। भगवान् की ऐसी बातें सुनकर नारद पुनः बोले—देव, कृपानिधे ! सत्यनारायण देव की पूजा करने में उसका फल एवं विधान बताने की कृपा कीजिये।१४-२०

श्रीभगवान् बोले—नारायण की पूजा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में चार मुखवाले ब्रह्मा भी असमर्थ हैं। इसलिए मैं तुम्हारे सम्मुख संक्षेप में उसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! उसे सुसम्पन्न करने से निर्धन धनवान्, अपुत्री पुत्रवान्, अपहरण किये गये राज्य का लाभ, अंधे को सुन्दर नेत्र, बँधे हुए को बंधन-मोक्ष, भयभीत-निर्भय की प्राप्ति करता है, तथा मन में उत्पन्न सभी कामनाओं की

इह जन्मनि भो विप्र भक्त्या च विधिनार्चयेत् । लभेत्कामं हि तच्छीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ।।२४
प्रातःस्नायी शुचिर्भूत्वा दन्तधावनपूर्वकम् । तुलसीमञ्जरीं धृत्वा ध्यायेत्सत्यस्थितं हरिम् ।।२५

नारायणंसान्द्रघनावदातं चतुर्भुजं पीतमहार्हवाससम् ।
प्रसन्नवक्त्रं नवकञ्जलोचनं सनन्दनाद्यैरुपसेवितं भजे।।२६

करोति ते व्रतं देव सायङ्काले त्वदर्चनम् । श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ।।२७
इति सङ्कल्प्य मनसा सायंकाले प्रपूजयेत् । पञ्चभिः कलशैर्जुष्टं कदलीतोरणान्वितम् ।।२८
शालग्रामं स्वर्णयुक्तं पूजयेदात्मसूक्तकैः । पञ्चामृतेन संस्नाप्य चन्दनादिभिरर्चयेत् ।।२९
ॐ नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि । चतुःपदार्थदात्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः ।।३०
जप्त्वेत्यष्टोत्तरशतं जुहुयात्तद्दशांशकम् । तर्पणं मार्जनं कृत्वा कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ।।३१
षडध्यायीं सत्यमुख्यां तत्पश्चात्तत्प्रसादकम् । सम्यग्विभज्य तत्सर्वं दापयेच्छ्रोतृकाय च ।।३२
आचार्यायादिभागं च द्वितीयं स्वकुलाय सः । श्रोतृभ्यश्च तृतीयं च चतुर्थं चात्महेतवे ।।३३
विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । देवर्षेऽनेन विधिना सत्यनारायणार्चनम् ।।३४
कारयेद्यदि भक्त्या च श्रद्धया च समन्वितः । व्रती कामानवाप्नोति वाञ्छितानिह जन्मनि ।।३५
इह जन्मकृतं कर्म परजन्मनि पच्यते । परजन्मकृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वदा नरैः ।।३६

सफलता प्राप्त होती है । ब्राह्मण ! इस जन्म में भक्तिसमेत सविधान उसे सुसम्पन्न करने से उसको मनोरथ की पूर्ति शीघ्र होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं । प्रातः काल दातून समेत स्नान करने के उपरांत (संध्यादि कर्म से) पवित्र होकर तुलसी की मंजरी हाथ में लेकर सत्यस्थित भगवान् का ध्यान करना चाहिए—'मैं उस नारायण देव की आराधना कर रहा हूँ, जो सघन बादलों की भाँति स्वच्छ, चारभुजाएँ, अत्यन्त उत्तम पीताम्बर, प्रसन्नमुख, नवीन कमल की भाँति नेत्र एवं सनक आदि मुनियों से सुसेवित हैं ।२१-२६। देव ! मैं तुम्हारा व्रतानुष्ठान कर रहा हूँ, संध्या के समय में तुम्हारी पूजा करके कथा श्रवण करूँगा और पश्चात् अन्त में आप के प्रसाद का सेवन करूँगा।' इस प्रकार मानसिक संकल्प करके सायंकाल में उनकी विधिवत् पूजा करनी चाहिए। पाँच कलशों को सुसज्जित करके कदली (केले) के तोरण समेत आत्मसूक्त द्वारा सुवर्ण युक्त शालिग्राम की अर्चना करते हुए पंचामृत से स्नान कराकर चन्दन-चर्चित कर देना चाहिए । 'ओं' भगवान् सत्यदेव का ध्यान करता हुआ मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ और चारों पदार्थ के दाता को बार-बार नमस्कार है । एकसौ आठ बार इसका जप करके इसके दशांश से हवन, तर्पण और मार्जन सुसम्पन्न करते हुए भगवान् की इस छह अध्यायवाली सत्य प्रधान पवित्र कथा का श्रवण करना चाहिए। उपरांत उनके प्रसाद को विभक्त करके श्रोताओं आदि को देना चाहिए पहला भाग आचार्य को, दूसरे अपने बन्धु वर्ग को, तीसरा श्रोताओं को और चौथा भाग अपने लिए रखकर ब्राह्मणों को सप्रेम भोजन से सन्तुष्ट करके स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। देवर्षि ! इस विधान द्वारा यदि श्रद्धा भक्ति समेत सत्यनारायण की पूजा सुसम्पन्न हो तो व्रत करने वाले उस मनुष्य की सभी कामनाएँ इसी जन्म में सफल हो जाती हैं। इस जन्म में किये हुए कर्मों के फल दूसरे जन्म में और दूसरे जन्म में किये गये कर्मों के फल मनुष्यों को सदैव भोगने पड़ते हैं।२७-३६। किन्तु सत्यनारायण का व्रत इसी जन्म में सभी

सत्यनारायणव्रतमिह सर्वान्कामान्ददाति हि । अद्यैव जगतीमध्ये स्थापयामि त्वदाज्ञया ।।३७
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो नारदः स्वर्गतिं ययौ । स्वयं नारायणो देवः काश्यां पुर्यां समागतः ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

कृपया ब्राह्मणद्वारा प्रकटीकृतवान्स्वकम् । इतिहासमिमं वक्ष्ये संवादं हरिविप्रयोः ।।१
काशीपुरीति विख्याता तत्रासीद्ब्राह्मणो वरः । दीनो गृहाश्रमी नित्यं भिक्षुः पुत्रकलत्रवान् ।।२
शतानन्द इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः । एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतस्तस्य श्रीपतिः ।।३
विनीतस्यातिशान्तस्य स बभूवाक्षिगोचरः । वृद्धब्राह्मणवेषेण पप्रच्छ ब्राह्मणं हरिः ।।
क्व यासीति द्विजश्रेष्ठ वृत्तिः कामेन कथ्यताम् ।।४

शतानन्द उवाच

भिक्षावृत्तिरहं सौम्य कलत्रापत्यहेतवे । याचितुं धनिनां द्वारि व्रजामि धनमुत्तमम् ।।५

कामनाएँ सफल करता है । अतः मैं आज ही इसकी प्रतिष्ठा संसार के मध्यभाग में करने जा रहा हूँ, इतना कहकर विष्णुदेव अन्तर्हित हो गये और नारद ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया । पश्चात् सत्यनारायणदेव का काशीपुरी में आगमन हुआ ।२३-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—मैं विष्णु भगवान् और ब्राह्मण के संवाद विषयक इतिहास की चर्चा कर रहा हूँ, जिसमें भगवान् ने ब्राह्मण द्वारा अपने स्वयं को कृपया प्रकट किया है । ख्यातिप्राप्त काशीपुरी में शतानन्द नामक एक भिक्षुक ब्राह्मण रहता था, जो दीन-हीन, गृहस्थ, पुत्र-कलत्र समेत विष्णु के व्रत का पारायण करने वाला था । एक बार भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में विनयविनम्र एवं अतिशांत उस ब्राह्मण के सम्मुख लक्ष्मीपति भगवान् दिखायी पड़े । वृद्ध ब्राह्मण का वेष धारणकर भगवान् ने उस ब्राह्मण से पूँछा—द्विजश्रेष्ठ ! आप अपनी जीविका के लिए कहाँ जा रहे हैं ? १-४

शतानन्द ने कहा—सौम्य ! मेरी भिक्षावृत्ति है, इसलिए अपने परिवार के पोषणार्थ मैं धनवानों के यहाँ भिक्षा की याचना करने जा रहा हूँ ।५

नारायण उवाच

भिक्षावृत्तिस्त्वया दीर्घकालं द्विज सदा धृता । तद्वारक उपायोऽयं विशेषेण कलौ किल ॥६
ममोपदेशतो विप्र सत्यनारायणं भज । दारिद्र्यशोकशमनं सन्तापहरणं हरेः ॥
चरणं शरणं याहि मोक्षदं पद्मलोचनम्[1] ॥७
एवं सम्बोधितो विप्रो हरिणा करुणात्मना । पुनः पप्रच्छ विप्रोऽसौ सत्यनारायणो हि कः ॥८

वृद्धब्राह्मण उवाच

बहुरूपःसत्यसङ्गः सर्वव्यापी निरञ्जनः । इदानीं विप्ररूपेण तव प्रत्यक्षमागतः ॥९
दुःखोदधिनिमग्नानां तरणिश्चरणौ हरेः । कुशलाः शरणं यान्ति नेतरे विषयात्मिकाः ॥१०
आहृत्य पूजासम्भारान्हिताय जगतां द्विज । अर्चयंस्तमनुध्यायंस्त्वमेतत्प्रकटी कुरु ॥११
इति ब्रुवन्तं विप्रोऽसौ ददर्श पुरुषोत्तमम् । जलदश्यामलं चारुचतुर्बाहुं गदादिभिः[2] ॥१२
पीताम्बरं नवाम्भोजलोचनस्मितपूर्वकम् । वनमालामधुव्रातचुम्बितांघ्रिसरोरुहम् ॥१३
निशम्य पुलकाङ्गोऽसौ प्रेमपूर्णसुलोचनः । स्तुवन्गद्गदया वाचा दण्डवत्पतितो भुवि ॥१४
प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारकम् । अनाथनाथं शिवदं शरण्यमनघं शुचिम् ॥१५
अव्यक्तं व्यक्ततां यातं तापत्रयविमोचनम् ॥१६

नारायण बोले—ब्राह्मण ! (निर्धन होने के नाते) आप बहुत दिनों से भिक्षा की याचना ही सदैव करते आये हैं अतः इस कलियुग में इससे मुक्त होने के लिए मैं निश्चित उपाय बता रहा हूँ—विप्र ! मेरे उपदेश से आप सत्यनारायण देव की आराधना कीजिये । भगवान् का चरण दारिद्र्य एवं शोक का नाशक तथा संतापहारी है, अतः (उनकी सेवार्थ) उस मोक्षप्रद एवं कमलनेत्र वाले की शरण में अवश्य प्राप्त होना चाहिए । इस प्रकार करुणासागर भगवान् विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण बार-बार कहने लगा कि सत्यनारायण कौन है ।६-८

वृद्ध ब्राह्मण बोले—जो (सत्यनारायण) अनेक रूपवाले, सत्यप्रतिज्ञ, सभी में व्यापक तथा त्रिगुण रहित हैं, वे इस समय ब्राह्मणवेष धारणकर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं । भगवान् का चरण दुःखसागर में डूबने वाले प्राणियों के लिए नौका रूप है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष ही उनकी शरण में प्राप्त होते हैं न कि अन्य विषयाभिलाषी । विप्र ! संसार के कल्याणार्थ पूजनसामग्री एकत्र करके उसी द्वारा उनकी अर्चना एवं ध्यान करते हुए उसे विख्यात करो । इस प्रकार कहने वाले उन पुरुषोत्तम को ब्राह्मण ने इस भाँति देखा जिसको नवीन मेघ की भांति श्यामल वर्ण, चारो बाहुओं में क्रमशः गदा आदि से भूषित, पीताम्बर ओढ़े, नवीन कमल के समान नेत्र, मन्दमुसुकान, वनमाला पहने, भ्रमरों द्वारा चरणकमल चुम्बित हो रहा है । उन्हें देखकर हर्षातिरेक से गद्‌गद् होकर प्रेमपूर्ण नेत्रों वाला वह ब्राह्मण अपनी गद्‌गद्‌वाणी द्वारा स्तुति करता हुआ पृथिवी में गिरकर दण्डवत् करने लगा । मैं उस जगन्नाथ को प्रणाम करता हूँ, जो जगत् के कारण, अनाथ के नाथ, कल्याणप्रद, शरणदायक, अघहीन, पवित्र, अव्यक्त को व्यक्त करने वाले

---

१. पद्मं लोचयति बोधयतीति 'कर्मण्यण् । पद्माधिकसुन्दरमित्यर्थः । २. उपेतमित्यर्थः ।

नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्रे नमः शुद्धसत्त्वाय विश्वस्य भर्त्रे ॥
करालाय कालाय विश्वस्य हर्त्रे नमस्ते जगन्मङ्गलायात्ममूर्ते ॥१७
धन्योऽस्म्यद्य कृती धन्यो भवोऽद्य सफलो मम । वाङ्मनोगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः ॥१८
दिष्टं किं वर्णयाम्याहो न जाने कस्य वा फलम् । क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं फलवान्कृतः ॥१९
पूजनं च प्रकर्तव्यं लोकनाथ रमापते । विधिना केन कृपया तदाज्ञापय मां विभो ॥२०
हरिस्तमाह मधुरं सस्मितं विश्वमोहनः । पूजायां मम विप्रेन्द्र बहु नापेक्षितं धनम् ॥२१
अनायासेन लब्धेन श्रद्धामात्रेण मां यज । ग्राहग्रस्तोऽजामिलो वा यथाऽभून्मुक्तसङ्कटः ॥२२
विधानं शृण विप्रेन्द्र मनसा कामयेत्फलम् । पूजारम्भृतसम्भारः पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥२३
गोधूमचूर्णं पादार्द्धं सेटकादिप्रमाणतः । दुग्धेन तावता युक्तं मिश्रितं शर्करादिभिः ॥२४
तच्चूर्णं हरये दद्याद् घृतयुक्तं हरिप्रियम् । गोदुग्धेनैव दधिना गोघृतेन समन्वितम् ॥२५
गङ्गाजलेन मधुना युक्तं पञ्चामृतं प्रियम् । पञ्चामृतेन संस्नाप्य शालग्रामोद्भवां शिलाम् ॥२६
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्वेदवादैर्मनोहरैः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलादिभिरर्चयेत् ॥२७
मिष्टान्नपानसन्मानैर्भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैस्तथा । ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूजयेद्भक्तितत्परः ॥२८
ब्राह्मणैः स्वजनैश्चैव वेष्टितः श्रद्धयान्वितः । त्वया सार्द्धं मम कथां शृणुयात्परमादरात् ॥२९
इतिहासं तथा राज्ञो भिल्लानां वणिजोऽस्य च । कथांते प्रणमेद्भक्त्या प्रसादं विभजेत्ततः ॥३०

एवं तीनों तापों के शमन करने वाले हैं ।९-१६। सत्यनारायण को नमस्कार है, इसके कर्ता को नमस्कार है, जो शुद्ध सत्त्व, विश्व का पालन-पोषण करने वाला, करालकाल की मूर्ति धारणकर संसार का अपहरण करने वाला, एवं जगत् की मांगलिक मूर्ति है। आप वाणी एवं मन से अगोचर (अप्रत्यक्ष) होते हुए भी मुझे दर्शन दिया अतः आज मैं धन्य हूँ, कृतकार्य हो गया हूँ और मेरा जन्म सार्थक हो गया । आज मैं अपने भाग्य का क्या वर्णन करूँ क्योंकि मैं नहीं जानता कि किस वाणी का यह फल मुझे आज प्राप्त हुआ कि मेरे ऐसे मंदभागी एवं अकर्मण्य की भी देह सफल हो गई । लोकनाथ, रमापते ! किस विधान द्वारा आपका पूजन किया जायगा, विभो ! उसे बताने की कृपा करें। विश्व मोहन भगवान् विष्णु ने मन्द मुसुकान करते हुए उससे कहा । विप्रेन्द्र ! मेरी पूजा में अधिक धन की आवश्यकता नहीं पड़ती है । अनायास जो कुछ प्राप्त हो जाये, उस धन से तथा श्रद्धालु होकर मेरी पूजा करो और उसके द्वारा ग्राहग्रस्तगज एवं अजामिल की भाँति संकट मुक्त हो जाओ । विप्रेन्द्र ! मैं उस विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! जिसमें पूजा सामग्री एकत्रकर जिस विधान द्वारा पूजा सुसम्पन्न की जाती है । सेर के हिसाब से आधा या चौथाई भाग के गेहूँ का चूर्ण (आटा) में उतना ही दूध, घी एवं शक्कर आदि मिलाकर वह प्रिय प्रसाद भगवान् को समर्पित करना चाहिए । गौ का दूध, दही, घी, गंगाजल और शहद युक्त इस पंचामृत द्वारा उस शालग्राम मूर्तिका स्नान कराकर गंध, पुष्प, नैवेद्य, धूप, दीप, एवं ताम्बूलादि से वेदमंत्रों के उच्चारण समेत उनकी अर्चना करके मिठाई, तथा भक्ष्य भोज्य में ऋतुकालीन फलों एवं पुष्पों को समर्पित कर अपने बन्धुवर्ग एवं ब्राह्मणों समेत श्रद्धा सम्पन्न होकर मेरी उस कथा का श्रवण करना चाहिए जिसमें राजा, भिल्ल (लकड़ी का विक्रेता), और उस वैश्य का इतिहास वर्णित है । कथा की समाप्ति में भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणामकर प्रसाद का विभाग करना चाहिए ।१७-३०।

लब्धं प्रसादं भुञ्जीत मानयन्न विचारयेत् । द्रव्यादिभिर्न मे शान्तिर्भक्त्या केवलया यथा ॥३१
विधिनानेन विप्रेन्द्र पूजयन्ति च ये नराः । पुत्रपौत्रधनैर्युक्ता भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ॥३२
अन्ते सान्निध्यमासाद्य मोदन्ते ते मया सह । यं यं कामयते कामं सुव्रती तं तमाप्नुयात् ॥३३
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्विप्रोऽपि सुखप्राप्तवान् । प्रणम्यागाद्यथादिष्टं मनसा कौतुकाकुलः ॥३४
अद्य भैक्ष्येण लब्धेन पूज्यो नारायणो मया । इति निश्चित्य मनसा भिक्षार्थी नगरं गतः ॥३५
विना देहीति वचनं लब्ध्वा च विपुलं धनम् । कौतुकायासमनसा जगाम निजमालयम् ॥३६
वृत्तान्तं सर्वमाचख्यौ[1] ब्राह्मणी सान्वमोदत । सादरं द्रव्यसम्भारमाहृत्य भर्तुराज्ञया ॥३७
आहूय बन्धुमित्राणि तथा सान्निध्यवर्तिनः । सत्यनारायणं देवं यजाम स्वगणैर्वृतः ॥३८
भक्त्या तुतोष भगवान्सत्यनारायणः स्वयम् । कामं दित्सुः प्रादुरासीत्कथान्ते भक्तवत्सलः ॥३९
वव्रे विप्रोऽभिलषितमिहामुत्र सुखप्रदम् । भक्तिं परां भगवति तथा तत्सङ्गिनां व्रतम् ॥४०
रथं कुञ्जरं मञ्जुलं मन्दिरं च हयं चारु चामीकरालं कृतं च ।
धनं दासदासीगणं गां महीं च लुलायाः सदुग्धाः हरे देहि दास्यम् ॥४१
तथास्त्विति हरिः प्राह ततश्चान्तर्दधे प्रभुः । विप्रोऽपि कृतकृत्योऽभूत्सर्वे लोका विसिस्मिरे ॥४२

प्राप्त प्रसाद का सम्मान करते हुए बिना विचार किये ही उसका भक्षण कर लेना चाहिए। द्रव्यादि प्रदान द्वारा मैं उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ, जितना कि केवल भक्ति द्वारा। विप्रेन्द्र ! जो मनुष्य इस विधान द्वारा मेरी पूजा करते हैं वे पुत्र, पौत्र, तथा धनों से सम्पन्न होकर उत्तम भोगों का उपभोग करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, पश्चात् प्राण परित्याग करने पर मेरे साथ रहकर आनन्दानुभव भी करते हैं जिस प्रकार की कामनाएँ होती जाती हैं व्रत करने वाले उस मनुष्य की वे सभी कामनाएँ उत्पन्न क्रमानुसार सफल होती रहती हैं।३१-३३। इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये और उस ब्राह्मण को भी महान् सुख की प्राप्ति हुई। पश्चात् प्रणाम करके उस कौतुक में विभोर होता हुआ वह ब्राह्मण मनइच्छित दिशा की ओर चल दिया। 'आज भिक्षा में जो कुछ प्राप्त होगा उससे मैं नारायण की पूजा करूँगा।' अपने मन में ऐसा निश्चय करके वह भिक्षुक ब्राह्मण नगर की ओर प्रस्थित हुआ। बिना याचना किये ही उसे अत्यन्त धन की प्राप्ति हुई, यह देखकर वह कौतुक मग्न होकर अपने घर चला आया और अपनी पत्नी से समस्त वृतान्त कह सुनाया। वह ब्राह्मणी उसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पति की आज्ञा से उस द्रव्य के भार को ग्रहण कर अपने बांधव, मित्र, तथा पड़ोसी आदि को 'आज मैं सत्यनारायण देव की पूजा करूँगी' यह कहकर बुलवाया। उपरांत सभी के साथ भगवान् की पूजा सुसम्पन्न किया। उस भक्ति से भगवान् सत्यनारायण स्वयं प्रसन्न होकर कथा के अंत में उसकी कामनाओं की सफलता प्रदान करने के लिए वहाँ प्रादुर्भूत हुए। भगवान् भक्तवत्सल के कहने पर उस ब्राह्मण ने कहा—भगवन् ! पहले आप लोक परलोक के सुखों को प्रदान करने वाली अपनी उस पराभक्ति को प्रदान कीजिये और उसे प्राप्त करने वाला व्रत भी। पश्चात् रथ, हाथी, सुवर्ण खचित सुन्दर महल, धन, अनेक दास-दासी, गौ, पृथिवी, दूध देने वाली भैंस और अपनी सेवा प्रदान कीजिये।३४-४१। भगवान् नारायण उसे स्वीकार कर अन्तर्हित हो गये तथा ब्राह्मण

---

१. ब्राह्मणीमिति शेषः।

प्रणम्य भुवि कायेन प्रसादं प्रापुरादरात् । स्वं स्वं धाम समाजग्मुर्धन्यधन्येति वादिनः ।।४३
प्रचचार ततो लोके सत्यनारायणार्चनम् । कामसिद्धिप्रदं मुक्तिभुक्तिदं कलुषापहम् ।।४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

राजासीद्धार्मिकः कश्चित्केदारमणिपूरके । चन्द्रचूड इति ख्यातः प्रजापालनतत्परः ।।१
शान्तो मधुरवाग्धीरो नारायणपरायणः । बभूवुः शत्रवस्तस्य म्लेच्छा विन्ध्यनिवासिनः ।।२
तस्य तैरवभवद्युद्धमतिप्रबलदारुणैः । भुशुण्डीयुद्धनिपुणैः क्षेपणैः परिघायुधैः ।।३
चन्द्रचूडस्य महती सेना यमपुरे गता । शतं रथास्तथा नागा सहस्रं तु हयास्तथा ।।४
पत्तयः पञ्चसाहस्रा मृताः स्वर्गपुरं ययुः । दस्यवः पञ्चसाहस्रा मृताः कैतवयोधिनः ।।५
आक्रान्तः स महाभागस्तैर्म्लेच्छैर्दम्भयोधिभिः । त्यक्त्वा राष्ट्रं च नगरं सैकाकी वनमाययौ ।।६
तीर्थव्याजेन स नृपः पुरीं काशीं समागतः । तत्र नारायणं देवं वन्द्यं सर्वगृहे गृहे ।।७

कृतकृत्य हो गया । इसे देखकर सभी लोगों को महान् आश्चर्य हुआ । सभी लोगों ने दण्डवत् करके प्रसाद ग्रहण किया और (ब्राह्मण के लिए) धन्य-धन्य कहते हुए अपने अपने घर को प्रस्थान किया । उसी समय से भगवान् सत्यनारायण देव की अर्चना प्रचलित हुई जो कामनाओं की सफलता, भुक्ति-मुक्ति की प्रदायक और पाप का नाश करने वाली है ।४२-४४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५।

अध्याय २६

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

सूत जी बोले—केदारमणि नगर में चन्द्रचूड नामक राजा रहता था, जो परम धार्मिक, प्रजापालन में सदैव कटिबद्ध, शांत, मधुरभाषी, धीर, और नारायण का उपासक था । विंध्याचल निवासी म्लेच्छगण उसके शत्रु थे, जिन लोगों के साथ उस राजा का अत्यन्त भीषण युद्ध आरम्भ हुआ था । उस युद्ध में भुशुण्डी एवं परिघ आदि अस्त्रों के निपुण योद्धाओं द्वारा चन्द्रचूड की वह विशाल सेना नष्ट कर दी गई । उसमें सौ रथ, उतने हांथी, सहस्र घोड़े और पाँच सहस्र की पैदल सेना थी और पाँच सहस्र दस्युगण भी मृतक हुए, जो कूटनीति से युद्ध कर रहे थे । ये सभी प्राणपरित्याग कर स्वर्ग पहुँच गये । पश्चात् उन म्लेच्छ योद्धाओं द्वारा वह पुण्यात्मा राजा घिर गया, किसी भाँति वहाँ से निकलकर अकेले जंगल में पहुँचा । तीर्थयात्रा के व्याज से वह घूमता हुआ काशी नगर में पहुँचा । वहाँ प्रत्येक घरों में

दर्दश नगरीं चैव धनधान्यसमन्विताम् । यथा द्वारावती ज्ञेया तथा सा च पुरी शुभा ।।८
विस्मितश्चन्द्रचूडश्च दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् । सत्येन रोधितां लक्ष्मीं शीलधर्मसमन्विताम् ।।९
दृष्ट्वा श्रुत्वा सदानन्दं सत्यदेवप्रपूजकम् । पतित्वा तच्चरणयोः प्रणनाम मुदा युतः ।।१०
द्विजराज नमस्तुभ्यं सदानन्द महामते । भ्रष्टराज्यं च मां ज्ञात्वा कृपया मां समुद्धर ।।११
यथा प्रसन्नो भगवाँल्लक्ष्मीकान्तो जनार्दनः । तथा तद्वद यद्योग्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।।१२

सदानन्द उवाच

दुःखशोकादिशमनं धनधान्यप्रवर्धनम् । सौभाग्यसन्ततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम् ।।१३
सत्यनारायणव्रतं श्रीपतेस्तुष्टिकारकम् । यस्मिन्कस्मिन्दिने भूप यजेच्चैव निशामुखे ।।१४
तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् । पञ्चभिः कलशैर्युक्तं ध्वजपञ्चसमन्वितम् ।।१५
तन्मध्ये वेदिकां रम्यां कारयेत्स व्रती द्विजैः । तत्र स्थाप्य शिलारूपे कृष्णं स्वर्णसमन्वितम् ।।१६
कुर्याद्गन्धादिभिः पूजां प्रेमभक्तिसमन्वितः । भूमिशायी हरिं ध्यायन्सप्तरात्रं व्यतीतयेत् ।।१७
इति श्रुत्वा स नृपतिः काश्यां देवमपूजयत् । रात्रौ प्रसन्नो भगवान्ददौ राज्ञेऽसिमुत्तमम् ।।१८
शत्रुपक्षक्षयकरं प्राप्य खड्गं नृपोत्तमः । प्रणम्य च सदानन्दं केदारमणिमाययौ ।।१९
हत्वा दस्यूनषष्टिशतांस्तेषां लब्ध्वा महद्धनम् । हरिं प्रपूजयामास नर्मदायास्तटे शुभे ।।२०
पौर्णमास्यां विधानेन मासि मासि नृपोत्तमः । अपूजयत सत्यदेवं प्रेमभक्तिसमन्वितः ।।२१

वन्दनीय नारायण देव को प्रतिष्ठित देखा पश्चात् द्वारावती की भाँति धन-धान्य युक्त उस नगरी को भी। उसे देखकर राजा चन्द्रचूड अवाक् रह गये, अनन्तर सत्य द्वारा धर्मशील समेत लक्ष्मी का अवरुद्ध होना देखकर उन्हें और भी महान् आश्चर्य हुआ। तदुपरान्त सत्य देव के अनन्य भक्त श्री सदानन्द जी को देख सुन कर उनके चरण पर गिर कर पुलकित शरीर से उन्हें प्रणाम करने लगा—द्विजराज, महामते, सदानन्द! तुम्हें नमस्कार है, मेरे राज्य का अपहरण हो गया। है, अतएव मेरा उद्धार कीजिये। भगवान् लक्ष्मीकान्त जो जनार्दन कहे जाते हैं, को प्रसन्न करने के लिए किसी पापनाशक व्रत को बताइये।१-१२

सदानन्द ने कहा—एक सत्यनारायण देव का व्रत, जो दुःख, शोक आदि का नाशक, धन-धान्य का वर्द्धक, सौभाग्य, और संतान प्रदायक एवं सर्वत्र विजय प्रदान करने वाला है, भगवान् लक्ष्मी पति को प्रसन्न करता है। नृप! जिस किसी दिन संध्या के समय में उनकी पूजा करनी चाहिए। केले के खम्भे लगाकर उसे तोरण द्वारा सुसज्जित करते हुए उस व्रती को चाहिए कि पाँच पताकाओं समेत पाँच कलशों की प्रतिष्ठा के अनन्तर उसके मध्य भाग में ब्राह्मणों द्वारा रमणीक वेदी का निर्माण कराये। उस पर सुवर्ण समेत शिलारूप की कृष्ण (शालिग्राम) को स्थापित कर प्रेम भक्ति पूर्वक गंधादि द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। पश्चात् भूमिशायी होकर भगवान् का ध्यान करते हुए उस राजा ने वहाँ काशीपुरी में देव की पूजा की। उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने राजा को एक उत्तम खड्ग प्रदान किया। उस शत्रुदलों के विनाशक खड्ग को ग्रहण कर सदानन्द को प्रणाम पूर्वक वह राजा केदारमणि नगर चला गया। वहाँ के छह सहस्र शत्रुओं के संहार द्वारा राजा उनसे अत्यन्त धन की प्राप्ति कर नर्मदा के शुभ तट पर भगवान् की व्रत पूजा सुसम्पन्न किया।१३-२०। अनन्तर वह श्रेष्ठ राजा प्रत्येक मास की पूर्णिमा के दिन

तद्व्रतस्य प्रभावेण लक्षग्रामाधिपोऽभवत् । राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथेतिहासं शृणुत यथा भिल्लाः कृतार्थिनः । विचरन्तो वने नित्यं निषादाः काष्ठवाहिनः ॥१
वनात्काष्ठानि विक्रेतुं पुरीं काशीं ययुः क्वचित् । एकस्तृषाकुलो यातो विष्णुदासाश्रमं तदा ॥२
ददर्श विपुलैश्वर्यं सेवितं च द्विजैर्हरिम् । जलं पीत्वा विस्मितोऽभूद्भिक्षुकस्य कुतो धनम् ॥३
यो दृष्टोऽकिञ्चनो विप्रो दृश्यतेऽद्य महाधनः । इति सञ्चिन्त्य हृदये स पप्रच्छ द्विजोत्तमम् ॥४
ऐश्वर्यं ते कुतो ब्रह्मन्दुर्गतिस्ते कुतो गता । आज्ञापय महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥५

सदानन्द उवाच

सत्यनारायणस्याङ्गसेवया किं न लभ्यते । न किं किञ्चित्सुखमाप्नोति विना तस्यानुकम्पया ॥६

प्रेम भक्ति में निमग्न होकर सत्यदेव की पूजा करने लगा । उस व्रत के प्रभाव से वह एक लक्ष गाँवों का अधिपति हो गया । उसमें साठ वर्ष तक सुखोपभोग करके अन्त में विष्णु की पुरी में चला गया ।२१-२२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन
नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अध्याय २७

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

सूत जी बोले—इसके अनन्तर उस इतिहास को सुनो ! जिसमें भिन्न जातियों के निषादगणों का जो काष्ठवाहन (लकड़ी ढोने) का कार्य करते हुए उन जंगलों में नित्य घूमा करते थे, कृतार्थ होना बताया गया है । एकबार जंगल से लकड़ी लेकर वे उसके विक्रयार्थ काशीपुरी में पहुँचे । उनमें से एक पिपासा से आकुल होकर किसी भगवद्भक्त के आश्रम में गया । वहाँ अत्यन्त ऐश्वर्य सम्पन्न ब्राह्मणों को देखा, जो भगवान् की व्रत आराधना में लगे हुए थे । उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, जल पीकर वह सोचने लगा कि इन भिक्षुकों को धन की प्राप्ति कहाँ से हो गई । जो ब्राह्मण अत्यन्त अकिंचन दिखाई देता था, वही आज महा धनवान् दिखाई दे रहा है, (क्या कारण है) इस प्रकार अपने मन में विचार करके उसने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से पूँछा—ब्रह्मन् ! आप की दुर्गति का नाश एवं इस ऐश्वर्य की प्राप्ति कहाँ से हुई है । महाभाग ! इसे आप बताने की कृपा करें, मुझे सुनने की इच्छा हो रही है ।१-५

सदानन्द बोले—सत्यनारायण देव की सेवा करने पर किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है (अर्थात् सभी की प्राप्ति होती है), उनकी अनुकम्पा से विहीन होने पर सुख का लेश मात्र भी नहीं प्राप्त होता है ।६।

निषाद उवाच

अहो किमिति माहात्म्यं सत्यनारायणार्चने । विधानं सोपचारं च ह्युपदेष्टुं त्वमर्हसि ।।७
साधूनां समचित्तानामुपकारवतां सताम् । न गोप्यं विद्यते किञ्चिदार्तानामार्तिनाशनम् ।।८
इति पृष्टो विधिं वक्तुमितिहासमथाब्रवीत् । चन्द्रचूडो महीपालः केदारमणिपूरके ।।९
ममाश्रमं समायातः सत्यनारायणार्चने । विधानं श्रोतुकामोऽसौ मामाह सादरं वचः ।।१०
मया यत्कथितं तस्मै तन्निबोध निषादज । सङ्कल्प्य मनसा कामं निष्कामो वा जनः क्वचित् ।।११
गोधूमचूर्णं पादार्धं सेटकाद्यैः सुचूर्णकम् । संस्कृतं मधुगन्धाज्यैर्नैवेद्यं विभवेऽर्पयेत् ।।१२
पञ्चामृतेन संस्नाप्य चन्दनाद्यैश्च पूजयेत् । पायसापूपसंयावदधिक्षीरमथो हरेत् ।।१३
उच्चावचः फलैः पुष्पैर्धूपदीपैर्मनोरमैः । पूजयेत्परया भक्त्या विभवे सति विस्तरैः ।।१४
न तुष्येद्द्रव्यसम्भारैर्भक्त्या केवलया यथा । भगवान्परितः पूर्णो न मानं वृणुयात्क्वचित् ।।१५
दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा राजपूजां जनार्दनः । विदुरस्याश्रमे वासमातिथ्यं जगृहे विभुः ।।१६
सुदाम्नस्तण्डुलकणाञ्जग्ध्वा मानुष्यदुर्लभाः । सम्पदोऽदाद्धरिः प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्ष्यते ।।१७
गोपो गृध्रो वणिग्व्याधो हनुमान्सविभीषणः । येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकायाधवादयः ।।१८
नारायणान्तिकं प्राप्य मोदन्तेऽद्यापि यद्वशाः । इति श्रुत्वा नरपतिः पूजासम्भारमादरात् ।।१९

निषाद ने कहा—अहो, उनका इतना महत्त्व है, तो मुझे भी उन सत्यनारायण देव की अर्चना का विधान उपचार समेत बताने की कृपा कीजिये । क्योंकि उन साधुओं के लिए कष्टनाशक कोई वस्तु गोप्य नहीं होती है,जो समचित्त उपकारी एवं सज्जन होते हैं। उन्हें विधान बताने के व्याज से उसे एक इतिहास बताया—केदारमणिपुर में चन्द्रचूड नामक राजा रहता है, वह मेरे आश्रम में आकर सत्यनारायण की अर्चना का विधान जानने के लिए मुझसे सादर अनुनय विनय करने लगा । निषाद पुत्र ! मैंने उससे जो कुछ कहा, उसे बता रहा हूँ, सुनो ! मनुष्यों को चाहिए कि अपनी कामनाओं का मानसिक सङ्कल्प करके या यूँ ही, गेहूँ के पाव आधसेर आटे का शहद, गंध, घी एवं नैवेद्य द्वारा उत्तम प्रसाद (पंजीरी) बनाकर भगवान् को समर्पित करें। और पंचामृत से स्नान एवं चन्दनादि से पूजा सुसम्पन्न करके उन्हें खीर, मालपूआ, लपसी, दही और दूध अर्पित करे । इस प्रकार अपने धनानुसार विस्तृत या लघु उनकी पूजा छोटे बड़े फलों, पुष्पों, तथा उत्तम धूपदीपों द्वारा भक्ति विभोर हुए सुसम्पन्न करनी चाहिए ।७-१४। क्योंकि केवल भक्ति द्वारा जितना वे प्रसन्न होते हैं, उतना द्रव्यों के संभार द्वारा कभी नहीं । भगवान् सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं, अतः उनके विषय में कभी मान न करना चाहिए। इसीलिए विभु जनार्दन भगवान् ने दुर्योधन द्वारा की गई सेवा अस्वीकार करके विदुर के आश्रम में (शाक का) आतिथ्य सप्रेम स्वीकार किया । तथा सुदामा के उन चावल के कणों (किनकियों) का सप्रेम भक्षण करके भगवान् ने उन्हें मनुष्य-दुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया। अतः भगवान् केवल भक्ति मात्र की चाह करते हैं। गोपगण गीध (जटायु) वैश्य, व्याध, हनुमान, विभीषण और इस प्रकार अन्य पापात्मा वृत्रादि दैत्यगण, आज भी भगवान् के समीप रहकर आनन्द का अनुभव कर रहे हैं । इसे सुनकर राजा ने सादर सामग्री एकत्र करके उनकी पूजा की, जिससे उन्हें धन की प्राप्ति हुई और आज भी नर्मदा के तट पर सुखानुभव कर रहे हैं ।

कृतवान्स धनं लब्ध्वा मोदते नर्मदातटे । निषाद त्वमपि प्रीत्या सत्यनारायणं भज ।।२०
इह लोके सुखं प्राप्य चान्ते सान्निध्यमाप्नुयाः । कृतकृत्यो निषादोऽभूत्प्रणम्य द्विजपुङ्गवम् ।।२१
स गत्वा स्वगणानाह माहात्म्यं हरिसेवने । ते हृष्टमनसः सर्वे समयं चक्रुरादृताः ।।२२
सत्यनारायणे पूजां काष्ठलब्धेन यावता । वयं कुलैः करिष्यामः पुण्यवृक्षविधानतः ।।२३
इति निश्चित्य मनसा काष्ठं विक्रीय लेभिरे । चतुर्गुणं धनं हृष्टाः स्वं स्वं भवनमाययुः ।।२४
मुदा स्त्रीभ्यस्समाचख्युर्वृत्तान्तं सर्वमादितः । ताः श्रुत्वा हृष्टमनसः पूजनं चक्रुरादरात् ।।२५
कथान्ते प्रणमन्भक्त्या प्रसादं जगृहुस्ततः । स्वजातिभ्यः परेभ्यश्च ददुस्तच्चूर्णमुत्तमम् ।।२६
पूजाप्रभावतो भिल्लाः पुत्रदारादिभिर्युताः । लब्ध्वा भूमितले द्रव्यं ज्ञानचक्षुर्महोत्तमम् ।।२७
भुक्त्वा भोगान्यथेष्टन्ते दरिद्रान्धा द्विजोत्तम । जग्मुस्ते वैष्णवं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथ ते वर्णयिष्यामि कथां साधूपचारिताम् । नृपोपदेशतः साधुः कृतार्थोऽभूद्वणिग्यथा ।।१

इसलिए निषाद ! तुम भी प्रेम पूर्वक सत्यनारायण देव की आराधना करो जिससे इस लोक में सुखानुभव करने के उपरांत, अंत समय में उनके समीप निवास करो । पश्चात् कृतकृत्य होकर वह निषाद उस द्विज श्रेष्ठ को प्रणाम करके वहाँ जाकर अपने साथियों से भगवान् का माहात्म्य कहने लगा । उसे सुनकर उन लोगों ने हर्ष विभोर होते हुए सादर प्रतिज्ञा की कि इन लकड़ियों के विक्रय करने पर जितने द्रव्य की प्राप्ति होगी, उसके द्वारा हम लोग सपरिवार सविधान सत्यनारायण देव की पूजा करेंगे—ऐसा मन से निश्चय करके वे लोग लकड़ियों के विक्रय करके चौगुने धन की प्राप्ति पूर्वक प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर चले गये । घर में पहुँच कर सभी आमूल वृत्तान्त स्त्रियों से कह सुनाया इसे सुनकर उन लोगों ने हर्षित होकर सादर उस पूजन को सम्पन्न किया—कथाश्रवण के उपरांत भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रसाद ग्रहण किया—अपनी जाति तथा इतर जाति के लोगों में उसका वितरण किया । द्विजोत्तम ! उस पूजा के प्रभाव से पुत्र-स्त्री समेत वे भिल्लगण इस भूतल में द्रव्य एवं उत्तम ज्ञान-चक्षु की प्राप्ति करके यथेच्छ भोगों को प्राप्त करने के उपरांत वे दरिद्रान्ध योगी दुर्लभ उस वैष्णवधाम को चले गये ।१५-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—मैं अब तुम्हें उस साधु वैश्य का चरित सुनाऊँगा, जो राजा के उपदेश देने पर कृतार्थ

मणिपूरपतौ राजा चन्द्रचूडो महायशाः । सह प्रजाभिरानर्च सत्यनारायणं प्रभुम् ॥२
अथ रत्नपुरस्थायी साधुर्लक्षपतिर्वणिक् । धनैरापूर्य तरणीः सह गच्छन्नदीतटे ॥३
ददर्श बहुलं लोकं नानाग्रामनिवासिनम् । मणिमुक्ताविरचितैर्वितानैस्समलङ्कृतम् ॥४
वेदवादांश्च शुश्राव गीतवादित्रसङ्गतान् । रम्यं स्थानं समालोक्य कर्णधारं समादिशत् ॥५
विश्राम्यतात्र तरणीरिति पश्यामि कौतुकम् । भर्त्रादिष्टस्तथा चक्रे कर्णधारः सभृत्यकः ॥६
तटसीम्नः समुत्तीर्य मल्ललोला विलासिनः । कर्णधारा नगा वीरा युयुधुर्मल्ललीलया ॥७
स्वयमुत्तीर्य सामात्यो लोकान्पप्रच्छ सादरम् । यज्ञस्थानं समालोक्य प्रशस्तं समुदा ययौ ॥८
किमत्र क्रियते सभ्या भवद्भिर्लोकपूजितैः । सभ्या ऊचुश्च ते सर्वे सत्यनारायणो विभुः ॥९
पूज्यते बन्धुभिः सार्धं राज्ञा लोकानुकम्पिना । प्राप्तं निष्कण्टकं राज्यं सत्यनारायणार्चनात् ॥१०
धनार्थी लभते द्रव्यं पुत्रार्थी सुतमुत्तमम् । ज्ञानार्थी लभते चक्षुर्निर्भयः स्याद्भयातुरः ॥११
सर्वान्कामानवाप्नोति नरः सत्यसुरार्चनात् । विधानं तु ततः श्रुत्वा चैलं बद्ध्वा गलेऽसकृत् ॥१२
दण्डवत्प्रणिपत्याह कामं सभ्यानमोदयत् । अनपत्योऽस्मि भगवन्वृथैश्वर्यो वृथोद्यमः ॥१३
पुत्रं वा यदि वा कन्यां लभेयं त्वत्प्रसादतः । पताकां काञ्चनीं कृत्वा पूजयिष्ये कृपानिधिम् ॥१४
श्रुत्वा सभ्या अब्रुवंस्ते कामनासिद्धिरस्तु ते । हरिं प्रणम्य सभ्यांश्च प्रसादं भुक्तवांस्तदा ॥१५

हो गया था। मणिनगर का महायशस्वी राजा चन्द्रचूड अपनी प्रजाओं समेत सत्यनारायण प्रभु की अर्चना कर रहा था। उसी बीच रत्नपुर का लक्षपति एवं वैश्य जाति का साधु उस नाव पर बैठकर जिसमें अत्यन्त धन भरा हुआ था। जाते हुए अनेक ग्रामों एवं उसके निवासियों को देखते हुए एवं सुन्दर स्थान को देखा, जो मणि मोतियों द्वारा खचित वितानों से अलंकृत था। वहाँ वेदपाठ के श्रवण समेत गायन वाद्य भी सुना। उस रमणीक स्थान को देखकर उसने अपने सेवकों से कहा जो नाव चला रहे थे।१-५। नाव को यहाँ रोक दो, क्योंकि मैं इस कौतुक को देखना चाहता हूँ। उन्होंने स्वामी की आज्ञा प्रदान करने पर अपने सहायकों समेत वैसा ही किया। उस नदी के तट पर उतरकर मल्लयुद्ध निपुण वे नाव चलाने वाले वहाँ के मल्लाहों के साथ (अपने दाव-पेच द्वारा) युद्ध करते हुए मनोरञ्जन दिखाने लगे। उस साधु ने अपने मंत्री को साथ लेकर नाव से उतरकर सादर लोगों से पूछा। पश्चात् उस प्रशस्त यज्ञ-स्थान को देखकर हर्षित होते हुए वहाँ भी गया—सज्जन वृन्दों! आप महानुभाव यहाँ क्या कर रहे हैं? इस प्रकार पूँछने पर उन सज्जनों ने कहा—लोगों पर अनुग्रह रखने वाले यहाँ के राजा अपने बन्धुवर्गों के साथ में सत्यनारायण देव की पूजा कर रहे हैं। इसी के प्रभाव से उन्हें निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति हुई है। (इसके श्रवण करने पर) धनार्थी द्रव्य, पुत्रेच्छुक उत्तम पुत्र, ज्ञानार्थी ज्ञाननेत्र एवं भयभीत निर्वाण की प्राप्ति करते हैं। अर्थात् सत्यदेव की पूजा करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ सफल होती हैं। उसके उपरांत (पूजन के) विधान को सुनकर गलें में एक वस्त्र बाँधकर बार-बार दण्डवत् प्रणाम करके उन सभ्य सज्जनों को प्रसन्न किया और कहा भी, कि भगवन्! मैं सन्तान-हीन हूँ, इसलिए मेरा ऐश्वर्य एवं उसके उपार्जन का उद्यम करना व्यर्थ है। किन्तु अपनी प्रसन्नतावश यदि मुझे इस अवस्था में भी किसी सन्तान पुत्र अथवा कन्या की प्राप्ति हो जाये तो मैं सुवर्ण की पताका के समर्पण द्वारा कृपानिधि भगवान् की पूजा करूँगा।६-१४। इसे सुनकर उन सज्जनों ने कहा—तुम्हारी कामना सफल हो, उपरांत उन

जगाम स्वालयं साधुर्मनसा चिन्तयन्हरिम् । स्वगृहे ह्यागते तस्मिन्नार्यो मङ्गलपाणयः ।।१६
मङ्गलानि विचित्राणि यथोचितमकारयन् । विवेशान्तःपुरे साधुर्महाकौतुकमङ्गलः ।।१७
ऋतुस्नाता सती लीलावती पर्यचरत्पतिम् । गर्भं धृतवती साध्वी सनये सुषुवे तु सा ।।१८
कन्यां कमललोलाक्षीं बान्धवामोदकारिणीम् । साधुः परां मुदं लेभे वितताार धनं बहु ।।१९
विप्रानाहूय वेदज्ञान्कारयामास मङ्गलम् । लेखयित्वा जन्मपत्रीं नाम चक्रे कलावतीम् ।।२०
कलानिधिकले वासौ ववृधे सा कलावती । अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।।२१
दशवर्षा भवेत्कन्या ततः प्रौढा रजस्वला । प्रौढां कालेन तां दृष्ट्वा विवाहार्थमचिन्तयत् ।।२२
नगरे काञ्चनपुरे वणिक्छङ्खपतिः श्रुतः । कुलीनो रूपसम्पत्तिशीलौदार्यगुणान्वितः ।।२३
वरयामास तं साधुर्दुहितुः सदृशं वरम् । शुभे लग्ने बहुविधैर्मङ्गलैरग्निसन्निधौ ।।२४
वेदवादित्रनिनदैर्ददौ कन्यां यथाविधि । मणिमुक्ताप्रवालानि वसनं भूषणानि च ।।२५
महामोदमनाः साधुर्मङ्गलार्थं ददौ च ह । प्रेम्णा निवासयामास गृहे जामातरं ततः ।।२६
तं मेने पुत्रवत्साधुः स च तं पितृवत्सुधीः । अतीते भूयसः काले सत्यनारायणार्चनम् ।।
विस्मृत्य सह जामात्रा वाणिज्याय ययौ पुनः ।।२७

सभ्यों के प्रणाम पूर्वक प्रसाद भक्षण कर भगवान् का मानसिक चिन्तन करता हुआ वह वैश्य अपने घर को लौट आया ।१५-१६। उसके आने पर घर की स्त्रियाँ हाथों में मांगलिक वस्तुओं को लेकर विचित्र भाँति के मांगलिक कर्म करने लगीं । अनन्तर उस साधु वैश्य ने उस महान् मांगलिक कौतुक समेत अपने नगर में प्रवेश किया । कुछ समय के उपरांत लीलावती नामक उसकी पत्नी ने ऋतुकालीन स्नान करके पति की सेवा-शुश्रूषा द्वारा गर्भधारण किया और समय प्राप्त होने पर उस पति परायण ने एक कन्या रत्न उत्पन्न किया, जिसके कमल की भाँति विशाल, तथा चपल नेत्र और जो स्वयं बन्धु वर्गों को आनन्द प्रदान करने वाली थी । उसे देखकर वह वैश्य आनन्द विभोर होकर अत्यन्त धन का वितरण करने लगा । वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर कर मंगल कर्म सुसम्पन्न कराकर ज्योतिषी ब्राह्मण द्वारा जन्मपत्री बनवाया और स्वयं उसका नामकरण कलावती किया । वह कलावती भी कलानिधि चन्द्र की कला की भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगी । (कन्यायें) आठ वर्ष की अवस्था में गौरी, नव वर्ष की अवस्था में रोहिणी दश वर्ष की अवस्था में कन्या और उसके पश्चात् प्रौढा एवं रजस्वला कही गई हैं । उसने समय पाकर अपनी कन्या की प्रौढ़ावस्था देखकर उसके विवाहार्थ काञ्चनपुर नगर के निवासी उस शंखपति नामक वैश्य का, जो कुलीन, रूप सौन्दर्य युक्त, शील एवं उदार आदि गुण युक्त था, अपनी पुत्री के समान वर की उपलब्धि होने पर उसके लिए वरण किया । पश्चात् शुभ लगन में भाँति-भाँति के अनेक मांगलिक समारोह समेत यथा विधान जिसमें वैदिक ध्वनियों से वह स्थान गुंजित हो रहा था, उसके साथ अपनी कन्या का पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराया । उस साधु ने उसकी मांगलिक कामना के निमित्त मणि, मोती, मूंगे, वस्त्र, एवं आभूषणों को प्रसन्नता में विभोर होकर प्रदान किया । पश्चात् अत्यन्त प्रेम के नाते उसे (दामाद को) अपने ही घर में रख लिया । वह साधु उससे पुत्र की भाँति प्रेम करने लगा और वह उससे अपने पिता की भाँति । अधिक दिनों के बीत जाने पर सत्यनारायण की पूजा का स्मरण न रहा, और अपने दामाद के साथ अपने व्यापार के लिए पुनः प्रस्थान भी किया ।१७-२७

सूत उवाच

अथ साधुः समादाय रत्नानि विविधानि च ॥२८
नौकाः संस्थाप्य स ययौ देशाद्देशान्तरं प्रति । नगरं नर्मदातीरे तत्र वासं चकार सः ॥२९
कुर्वन्क्रयं विक्रयं च चिरं तस्थौ महामनाः । कर्मणा मनसा वाचा न कृतं सत्यसेवनम् ॥३०
ततः कर्मविपाकेन तापमापाचिराद्वणिक् । कस्मिंश्चिद्दिवसे रात्रौ राज्ञो गेहे तमोवृते ॥३१
ज्ञात्वा निद्रागतान्सर्वान्हृतं चौरैर्महाधनम् । प्रभाते वाचितो राजा सूतमागधवन्दिभिः ॥३२
प्रातः कृत्यं नृपः कृत्वा सदः सम्प्राविशच्च सः । ततस्तत्र समायातः किङ्करो राजवल्लभः ॥३३
उवाच स तदा वाक्यं शृणुष्व त्वं धरापते । मुक्तामालाश्च बहुधा रत्नानि विवधानि च ॥३४
मुमुषुश्चौरा गतास्सर्वे न जानीमो वयं नृप । इति विज्ञापितो राजा पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥३५
उवाच क्रोधताम्राक्षो यूयं संयात मा चिरम् । सचौरं द्रव्यमादाय मत्पार्श्वं त्वमुपानय ॥३६
नो चेद्धनिष्ये सगणानिति दूतान्समादिशत् । नृपवाक्यं समाकर्ण्य प्रजग्मुस्ते च किङ्कराः ॥३७
बहुयत्नैर्न संशोध्य द्रव्यं चौरसमन्वितम् । एकीभूत्वा निशि तदा महाचिन्तातुरोऽभवत् ॥३८
हन्ता मां सगणं राजा किं करोमि कुतः सुखम् । नृपदण्डाच्च मे मृत्युः प्रेतत्वाय भवेदिह ॥३९
नर्मदायां च मरणं शिवलोकप्रदायकम् । इत्येवं सम्मतं कृत्वा नर्मदायास्तटं ययुः ॥४०
विदेशिनोऽस्य वणिजो ददर्श विपुलं धनम् । मुक्ताहारं गले तस्य लुण्ठितं वणिजोऽस्य च ॥४१

सूत जी बोले—भाँति-भाँति के रत्नों को अपनी नौका में रखकर वह साधु उस नाव द्वारा देश-देशान्तर के लिए प्रस्थित हुआ। नर्मदा नदी के तट पर एक नगर में पहुँचकर नाव रोक कर ठहर गया। क्रय-विक्रय करता हुआ वह महात्मा वैश्य अधिक दिनों तक वहाँ रहने पर भी कर्म, मन, अथवा वाणी द्वारा सत्य-नारायण की सेवा का स्मरण न कर सका जिससे उस वैश्य को दैव दुर्विपाक (दुर्भाग्य) वश शीघ्र ही (उसके परिणाम-स्वरूप) संतप्त होना पड़ा। किसी दिन रात्रि के समय घने अंधकार में राजा के यहाँ सब को निद्रित समझकर चोरों ने वहाँ से अत्यन्त धन की चोरी की।२८-३२। प्रातः काल सूत, मागध एवं बंदियों द्वारा जागकर राजा प्रातः काल का कृत्य समाप्त करके सभा में प्रविष्ट हुआ कि—राजा के प्रिय सेवकों ने वहाँ आकर कहा—पृथिवी पते ! मेरी बातों को सुनने की कृपा करें। मोतियों की मालाएँ और अनेक भाँति के रत्नों को चुराकर चोर गण भाग गये, राजन् ! उनके विषय में हम लोग कुछ भी नहीं जानते हैं। इस प्रकार निवेदन करने पर पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ वह राजा क्रुद्ध होने के नाते रक्तनेत्र होकर कहने लगा—तुम लोग शीघ्र जाओ और धन समेत उन चोरों को मेरे सम्मुख उपस्थित करो। नहीं तो तुम्हें गणसमेत प्राण-दण्ड दिया जायगा। इस प्रकार उसने अपने सेवकों को आज्ञा प्रदान की। वे सेवक वर्ग राजा की बातें सुनकर वहाँ से चल दिये। अनेक प्रयत्न करने पर भी धन समेत चोर का पता न मिलने पर वे सब रात्रि में एकत्र होकर चिन्तित होने लगे। राजा, गणसमेत हमें प्राणदण्ड देगा, अतः क्या करूँ, सुख की प्राप्ति कैसे हो। राजदण्ड द्वारा होने वाली मृत्यु मुझे प्रेत बनायेगी ही अतः नर्मदा में डूबकर प्राण परित्याग करना कल्याणप्रद समझता हूँ, इस प्रकार निश्चय करके वे लोग नर्मदा के तट पर पहुँचे।३३-४०। वहाँ उस विदेशी वैश्य के विपुल धन तथा उस साधु के कण्ठ में सुशोभित उस मोती के हार को देखकर अपनी रक्षा के निमित्त उसे चोर निश्चय कर बाँध

चौरोऽयमिति निश्चित्य तौ बलन्धात्मरक्षणात् । सधनं सह जामात्रा नृपान्तिकमुपानयत् ।।४२
प्रतिकूले हरौ तस्मिन्राज्ञापि न विचारितम् । धनागारे धनं नीत्वा बध्नीत तौ सुदुर्मती ।।४३
कारागारे लोहमयैः शृङ्खलैरङ्घ्रिपादयोः । इति राजाज्ञया दूतास्तथा चक्रुर्निबन्धनम् ।।४४
जामात्रा सहितः साधुर्विललाप भृशं मुहुः । हा पुत्र तात तातेति जामातः क्व धनं गतम् ।।४५
क्व स्थिता च सुता भार्या पश्य धातुर्विपर्ययम् । निमग्नौ दुःखजलधौ को वां पास्यति सङ्कटात् ।।४६
मया बहुतरं धातुर्विप्रियं हि पुरः कृतम् । तत्कर्मणः प्रभावोऽयं न जाने कस्य वा फलम् ।।४७
सश्वशुरजामात्रौ द्वादशेषु विषादिनौ ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ।२८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

तापत्रयहरं विष्णोश्चरितं तस्य ते शिवम् । शृण्वन्ति सुधियो नित्यं ते वसन्ति हरेः पदम् ।।१
प्रतिकूले हरौ तस्मिन्यास्यन्ति निरयान्बहून् । तत्प्रिया कमला देवी चत्वारस्तस्य चात्मजाः ।।२

लिया । उसके धन एवं दामाद समेत उसे राजा के समीप उपस्थित किया । भगवान् के प्रतिकूल होने के नाते राजा भी उनके विषय में कुछ विचार न कर धनालय (खजाने) में धन रखकर इन दोनों दुष्टों को बाँधकर लोहे की शृंखला (जंजीर) से इनके दोनों चरण बाँधकर जेल में डाल दो, इस प्रकार राजा के आदेश होने पर उनके सेवकों ने वैसा ही उन्हें बन्धनों से जकड़ दिया । दामाद समेत साधु बार-बार विलाप करता था—हा, पुत्र, तात जामात ! मेरा धन कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और स्त्री कहाँ है । भाग्य का उलट-फेर देखो, इसी कारण हम लोग दुःख सागर में डूब रहे हैं, इस संकट से हमारी कौन रक्षा करेगा । मैंने पहले अनेक बार भगवान् को, अप्रसन्न किया है, उसी का यह दुर्विपाक परिणाम उपस्थित है, अथवा नहीं जानता यह किस कर्म का फल प्राप्त हो रहा है, इस प्रकार वे श्वसुर जामाता दोनों बारह दिनों तक चिन्तित रहकर दुःखों का अनुभव करते रहे हैं ।४१-४८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य वर्णन
नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अध्याय २९

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—भगवान् विष्णु का चरित तीनों तापों का विनाश करता है, वही उसे तथा तुम्हारे लिए कल्याणप्रद है । जो विद्वद्गण नित्य उसका श्रवण करते हैं, वे भगवान् के स्थान की प्राप्ति करते

धर्मो यज्ञो नृपश्चौरः सर्वे लक्ष्मीप्रियङ्कराः । विप्रेभ्यश्चातिथिभ्यश्च यद्दानं धर्म उच्यते ।।३
मातृभ्यो देवताभ्यश्च स्वधा स्वाहेति वै मखः । धर्मस्यैव मखस्यैव रक्षको नृपतिः स्मृतः ।।४
द्वयोर्हन्ता हि चोरः स ते सर्वे धर्मकिङ्कराः । यत्र सत्यं ततो धर्मस्तत्र लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ।।५
सत्यहीनस्य तत्साधोर्धनं यत्तद्गृहे स्थितम् । हृतवानवनीपालः चौरैर्भार्यातिदुःखिता ।।६
वासोऽलङ्करणादीनि विक्रीय बुभुजे किल । नास्ति तत्पच्यते किञ्चित्तदा कष्टमगाहत ।।७
अथैकस्मिन्दिने कन्या भोजनाच्छादनं विना । गता विप्रगृहेऽपश्यत्सत्यनारायणार्चनम् ।।८
प्रार्थयन्तं जगन्नाथं दृष्ट्वा सा प्रार्थयद्धरिम् । सत्यनारायण हरे पिता भर्ता च मे गृहम् ।।९
आगच्छत्वर्चयिष्यामि भवन्तमिति याचये । तथास्तु ब्राह्मणैरुक्ता ततः सा त्वाश्रमं ययौ ।।१०
मात्रा निर्भर्त्सिते यं तं कालं कुत्र स्थिता शुभे । वृत्तान्तं कथयामास सत्यनारायणार्चने ।।११
कलौ प्रत्यक्षफलदः सर्वदा क्रियते नरैः । कर्तुमिच्छाम्यहं मातरनुज्ञातुं त्वमर्हसि ।।१२
देशमायातु जनकः स्वामी च मम कामना । रात्रौ निश्चित्य मनसा प्रभाते सा कलावती ।।१३
शीलपालस्य गुप्तस्य गेहे प्राप्ता धनार्थिनी । बन्धो किञ्चिद्धनं देहि येन सत्यार्चनं भवेत् ।।१४

है । भगवान् के प्रतिकूल (अप्रसन्न) रहने पर अनेक भाँति के नरकों की प्राप्ति होती है । भगवान् की प्राणप्रिया कमला देवी हैं और धर्म, यज्ञ, राजा एवं चोर नामक ये चार पुत्र हैं, जो लक्ष्मी का प्रिय कार्य करते रहते हैं । ब्राह्मण तथा अतिथि के निमित्त दिये जाने वाले दान को धर्म बताया गया है, मातृकाओं और देवताओं के लिए स्वधा तथा स्वाहा के द्वारा अर्पित करने को मख (यज्ञ) कहा गया है । इन्हीं दोनों (धर्म और यज्ञ) के रक्षक को राजा, एवं इन्हीं दोनों के विनाशक को चोर कहा जाता है । इसीलिए सब धर्म सेवक हैं । जहाँ सत्य की स्थिति रहती है, उसी स्थान पर लक्ष्मी स्थिर रहती है । सत्य-हीन होने के नाते उस साधु के नौकास्थित धन को राजा और घर में स्थित धन को चोरों ने चुराकर उसकी पत्नी को इतना कष्ट प्रदान किया । जिससे उसने अपने आभूषणों वस्त्रों आदि को भी विक्रय करके प्राण-रक्षा की किन्तु कुछ दिन के अनन्तर भोजन बनाने की किसी सामग्री के न रहने पर वे दोनों माता-पुत्री लकड़ी ढोने लगी । इसके उपरांत एक दिन वह कन्या भोजन-वस्त्र विहीन होकर एक ब्राह्मण के घर गई जहाँ सत्यनारायण देव की पूजा हो रही थी ।१-८। वहाँ जगन्नियन्ता की प्रार्थना हो रही थी । उसे देखकर उसने भी भगवान् से प्रार्थना की—सत्यनारायण भगवान् ! हमारे पिता और पति दोनों सकुशल घर आ जाँये तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी, यही आप से प्रार्थना कर रही हूँ । वहाँ के ब्राह्मणों ने कहा—वैसा ही होगा । पश्चात् वह घर चली आई । पर घर आने पर उसे उसकी माता ने डाँटते हुए कहा—शुभे ! तुम इतने समय तक कहाँ रही ! उसने उस सत्यनारायण की अर्चना का सभी वृत्तान्त उसे सुना दिया । कलियुग में यह प्रत्यक्ष फल प्रदान करता है, अतः मनुष्य सदैव इसे किया करते हैं । इसलिए मातः ! तुम्हारी यदि आज्ञा हो जाये तो इसे मैं भी करना चाहती हूँ । क्योंकि मेरी एकान्त कामना है कि पिता और स्वामी शीघ्र घर आ जायँ । इस प्रकार रात्रि में निश्चय करके प्रातः काल वह कलावती कन्या शीलपाल नामक गुप्त के यहाँ जाकर कुछ धन की याचना करने लगी—भ्रातः ! 'कुछ थोड़ा-सा धन दीजिये जिससे सत्यनारायण की अर्चना सुसम्पन्न हो जाये।९-१४। इसे सुनकर शीलपाल ने उसे पाँच सुवर्ण की

इति श्रुत्वा शीलपालः पञ्चनिष्कं धनं ददौ । त्वत्पितुश्च ऋणं शेषं मयीत्येव कलावति ।।१५
इत्युक्त्वा सोऽनृणो भूत्वा गयाश्राद्धाय संययौ । सुताऽपि तेन द्रव्येण कृतं सत्यार्चनं शुभम् ।।१६
लीलावती सह तया भक्त्याकार्षीत्प्रपूजनम् । पूजनेन विशेषेण तुष्टो नारायणोऽभवत् ।।१७
नर्मदातीरनगरे नृपः सुष्वाप मन्दिरे । रात्रिशेषे सुपर्यङ्के निद्रां कुर्वति राजनि ।।
उवाच विप्ररूपेण बोधयञ्छ्लक्ष्णया गिरा ।।१८
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तौ साधू परिमोचय । अपराधं विना बद्धौ नो चेच्छं न भवेत्तव ।।१९
इत्येवं भूपतिश्चैव विप्ररूपेण बोधितः । तदा ह्यन्तर्दधे विष्णुर्विनिद्रो नृपतिस्तदा ।।२०
विस्मितः सहसोत्थाय दध्यौ ब्रह्म सनातनम् । सभायां मन्त्रिणे राजा स्वप्नहेतुं न्यवेदयत् ।।२१
महामन्त्री च भूपालं प्राह सत्येन भो द्विज । मयापि दर्शितं स्वप्नं वृद्धविप्रेण बोधितम् ।।
अतस्तौ हि समानीय सम्पृच्छ विधिवन्नृप ।।२२
आनीय साधुं पप्रच्छ सत्यमालम्ब्य भूपतिः । कुत्रत्यौ वां कुलं किं वा वसतिः कस्य वा पुरे ।।२३

साधुरुवाच

रम्ये रत्नपुरे वासो वणिग्जातौ जनिर्मम । वाणिज्यार्थं महाराज वाणिज्यं जीविकावयोः ।।२४
मणिमुक्तादिविक्रेतुं क्रेतुं वा तव पत्तने । प्राप्तौ दूतैश्च बद्धावां त्वत्समीपमुपागतौ ।।२५
प्रतिकूले विधौ को वा दशां नाप्नोति वै पुमान् । विनापराधं राजेन्द्र मणिचौरानवादयन् ।।२६

मुद्रा (गिन्नी) प्रदान किया । और कहा—कलावति ! यह तुम्हारे पिता का ऋण मेरे यहाँ रह गया था, इतना कहकर ऋण से मुक्त होने पर वह गया श्राद्ध के लिए चला गया । और उस कन्या ने उस धन द्वारा सत्यनारायण की शुभ पूजा अपनी माता लीलावती समेत भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न किया । उस पूजन द्वारा नारायण अत्यन्त प्रसन्न हुए । नर्मदा के तट पर राजा मन्दिर में शयन कर रहा था । थोड़ी सी रात्रि के शेष रहते समय जब कि राजन् अपनी शय्या पर निद्रामग्न शयन कर रहा था । ब्राह्मण का रूप धारण करके विष्णु ने विनम्र वाणी द्वारा उससे कहा—राजेन्द्र ! उठो, उठो ! उन दोनों साधुओं को शीघ्र मुक्त करो, तुमने बिना अपराध उन्हें बाँध रखा है, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा । इस प्रकार ब्राह्मण रूप द्वारा भगवान् के कहने पर राजा जाग उठे । उस समय भगवान् अन्तर्हित हो गये । आश्चर्य प्रकट करता हुआ राजा सहसा उठकर सनातन ब्रह्म के ध्यान पूर्वक सभा में पहुँचकर स्वप्न का कारण मंत्रियों से कहने लगा—द्विज ! प्रजागण और मंत्री सभी राजा से कहने लगे कि यह सत्य है, मैंने भी इसी भाँति का स्वप्न देखा है, जिसमें वृद्ध ब्राह्मण द्वारा ज्ञान कराया गया है । पश्चात् राजा ने उन दोनों वैश्यों को बुलाकर सादर पूँछा । उन दोनों के आने पर उनसे राजा ने कहा—आप लोग कहाँ रहते हैं, किस कुल में उत्पन्न हैं और किस नगर के निवासी हैं ।१५-२३

साधु ने कहा—रमणीक रत्नपुर का मैं निवासी हूँ, वैश्य कुल में मेरा जन्म हुआ है, महाराज ! हमारी जीविका व्यापार ही है, अतः व्यापार के लिए हम दोनों मणि-मोतियों के क्रय-विक्रयार्थ आप के नगर में आये थे । वहाँ आप के सेवकों ने आकर हमें बाँध कर आप के सम्मुख उपस्थित किया । भाग्य के पलट जाने पर मनुष्य को कौन-सी दशा प्राप्त नहीं है इसीलिए बिना अपराध भी कृष्ण को मणि का चोर

आवां न चौरौ राजेन्द्र तत्त्वतस्त्वं विचारय । श्रुत्वा तन्निश्चयं ज्ञात्वा तयोर्बन्धनकारणम् ॥२७
छेदयित्वा दृढं पाशं लोमशातिमकारयत् । कारयित्वा परिष्कारं भोजयामास तौ नृपः ॥२८
नगरे पूजयामास वस्त्राभूषणवाहनैः । अब्रवीत्पूजितः साधुर्भूपतिं विनयान्वितः ॥२९
कारागारे बहुविधं प्राप्तं दुःखमतः परम् । आज्ञापय महाराज देशं गन्तुं कृपानिधे ॥३०
श्रुत्वा साधुवचो राजा प्राह कोशाधिकारिणम् । मुद्राभिस्तरणीः सद्यः पूरयाशु मदाज्ञया ॥३१
जामात्रा सहितः साधुर्गीतवादित्रमङ्गलैः । स्वदेशं चलितोऽद्यापि न चक्रे हरिसेवनम् ॥३२
सत्यनारायणो देवः प्रत्यक्षफलदः कलौ । स एव तापसो भूत्वा चक्रे साधुविडम्बनम् ॥३३

तापस उवाच

धर्मः किं नौषु ते साधो मामनादृत्य यासि भोः । प्रत्युत्तरमदात्साधुः क्षिप नौकाश्च सत्वरम् ॥३४
भोः स्वामिन्मे धनं नास्ति लतापत्रादिपूरितम् । नौभिर्गच्छामि स्वस्थानं विरोधे नात्र किं फलम् ॥३५
इत्युक्तस्तापसः प्राह तथास्त्विति वचः क्षणात् । धनमन्तर्दधे साधोर्लतापत्रावशेषितम् ॥३६
धनं नौकासु नास्तीति साधुश्चिन्तातुरोऽभवत् । किमिदं कस्य वा हेतोर्धनं कुत्र गतं मम ॥३७
वज्रपाताहत इव भृशं दुःखितमानसः । क्व यास्यामि क्व तिष्ठामि किं करोमि धनं कुतः ॥३८
इति मूर्च्छागतः साधुर्विललाप पुनः पुनः । जामात्रा बोधितः पश्चात्तापसं तं जगाम ह ॥३९

कहा गया था । राजेन्द्र ! आप भली भाँति विचार कर सकते हैं—हम दोनों चोर नहीं है । उनके बन्धन के कारण को सुनकर तथा उसे निश्चित मानकर उनकी हथकड़ी बेड़ी काटकर, उनके क्षौर कराकर तथा उन्हें भूषणों से भूषित करके राजा ने उन्हें भोजन कराया ।२४-२८। पुनः अपने नगर में वस्त्र, आभूषण एवं वाहन (सवारियों) समेत उनकी पूजा सुसम्पन्न करने पर साधु ने विनय-विनम्र होकर राजा से कहा—महाराज ! जेल में तो बहुत दुःखों का अनुभव करना पड़ा, किन्तु अब तो दूसरी अवस्था में हूँ, अतः कृपानिधे ! आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं अपने देश जाना चाहता हूँ । साधु की बातें सुनकर राजा ने अपने कोषाध्यक्ष से कहा—मेरी आज्ञा है, इनकी नौका मुद्राओं से परिपूर्ण कर दीजिये । इसके उपरांत अपने जामाता समेत वह साधु मांगलिक गायन-वाद्य समेत स्वदेश के लिए प्रस्थित हुआ, किन्तु इतने पर भी उसने भगवान् की अर्चना न की । कलियुग में सत्यनारायण देव प्रत्यक्ष फल प्रदान करते हैं, अतः तपस्वी का वेष धारणकर भगवान् साधु की भाँति व्यवहार करने लगे—२९-३३

तापस ने कहा—साधो ! तुम्हारी नौका में क्या है, और मेरा अनादर करके चले जा रहे हो यह क्या धर्म है ? इसके उत्तर में साधु ने कहा—नाव छोड़ दीजिये । महाराज ! मेरी नौका में धन नहीं है केवल लता-पत्र से यह भरी पड़ी है । अतः इस नौका द्वारा मैं अपने घर जा रहा हूँ, इसमें विरोध करने से क्या लाभ हो सकता है । इतना कहने पर उस तापस ने कहा—इसी क्षण तुम्हारी बात सत्य हो । तदनन्तर साधु वैश्य का धन तो अन्तर्हित हो गया और नौका में केवल लतापत्र आदि शेष रह गये । अपनी नौका में धन न देखकर साधु व्याकुल हो गया और सोचने लगा—यह क्या हुआ, क्या कारण है, मेरा पात्र कहाँ चला गया । वज्राघात से आहत होने की भाँति अत्यन्त दुःखित होकर अब कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, और क्या करूँ, हा मेरा धन क्या हो गया ।३४-३९। इस प्रकार मूर्च्छित होकर वह वैश्य बार-बार विलाप करने लगा । पश्चात् जामाता के बताने पर वह तपस्वी के पास गया । गले में वस्त्र बाँधकर तपस्वी को प्रणाम

गले वसनमादाय प्रणनाम स तापसम् । को भवानिति पप्रच्छ देवो गन्धर्व ईश्वरः ॥४०
देवदेवोऽथ वा कोऽपि न जाने तव विक्रमम् । आज्ञापय महाभाग तद्विडम्बनकारणम् ॥४१

तापस उवाच

आत्मा चैवात्मनः शत्रुस्तथात्र च प्रियोऽप्रियः । त्यज मौढचमतिं साधो प्रवादं मा वृथा कृथाः ॥४२
इति विज्ञापितः साधुर्न बुबोध महाधनः । पुनः स तापसः प्राह कृपया पूर्वकर्मतः॥४३
चन्द्रचूडो यदानर्च सत्यनारायणं नृपः । अनपत्येन सुचिरं पुत्रकन्यार्थिना त्वया ॥४४
प्रार्थितं न स्मृतं ह्येव इदानीं तप्यसे वृथा । सत्यनारायणो देवो विश्वव्यापी फलप्रदः ॥४५
तमनादृत्य दुर्बुद्धे कुतः सम्यग्भवेत्तव । पुरा लब्धवरं स्मृत्वा सस्मार जगदीश्वरम् ॥४६
सत्यनारायणं देवं तापसं तं ददर्श ह । प्रणम्य भुवि कायेन परिक्रम्य पुनः पुनः ॥
तुष्टाव तापसं तत्र साधुर्गद्गदया गिरा ॥४७

साधुरुवाच

सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम् । यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम् ॥४८
त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यन्त्यात्मनः शुभम् । दुःखाम्भोधौ सदा मग्ना दुःखे च सुखमानिनः ॥४९
मूढोहं धनगर्वेण मदान्धीकृतलोचनः । न जाने स्वात्मनः क्षेमं कथं पश्यामि मूढधीः ॥५०

किया और कहने लगा—आप कौन हैं देव, गन्धर्व या ईश्वर ! अथवा देवाधिदेव हैं, मैं आप के पराक्रम जानने में असमर्थ हूँ । महाभाग ! इस भाँति के व्यवहार करने का कारण बताइये ।४०-४१

तापस बोले—साधो ! आत्मा ही आत्मा का शत्रु है तथा वही उसका प्रिय और अप्रिय भी । अतः व्यर्थ बाद करने की आवश्यकता नहीं है, अपनी मूढ़ता का त्याग करो । तापस के इस भाँति कहने पर भी उस धनाढ्य साधु को ज्ञान उत्पन्न न हुआ । इसलिए उसके पूर्व कर्मों के कारण कृपा करते हुए तापस ने कहा—राजा चन्द्रचूड़ जिस समय सत्यनारायण की पूजा कर रहे थे, सन्तानहीन होकर तुमने भी सन्तानार्थ उनकी प्रार्थना की थी, क्या तुमने उसका विस्मरण नहीं किया, फिर क्यों व्यर्थ संतप्त हो रहे हो । दुर्बुद्धे ! सत्यनारायण देव विश्वव्यापी हैं, और वही फल प्रदान करते हैं, उनका अनादर करने पर तुम्हें सुख प्राप्त कैसे हो सकता है । पश्चात् उस वैश्य ने पहले समय में प्राप्त हुए वरदान का स्मरण करते हुए ज़गदीश्वर का स्मरण किया, पुनः उस तपस्वी को सत्यनारायण देव के रूप में देखा । पृथिवी में गिरकर दण्डवत् करके उनकी बार-बार परिक्रमा करते हुए अपनी गद्गद वाणी द्वारा तापस को प्रसन्न करने लगा—४२-४७

साधु ने कहा—सत्यनारायण देव को नमस्कार है, जो सत्य रूप, सत्य प्रतिज्ञ और जगत् में सत्य रूप से वर्तमान हैं । तुम्हारी माया से मुग्ध होकर मनुष्य अपने आत्म कल्याण को नहीं देखता है, तथा दुःख सागर में निमग्न रहते हुए भी अपने को सुखी अनुभव करता है। मैं तो मूर्ख हूँ, धन के गर्व से मेरे दोनों नेत्र अन्धे से हो गये हैं। इसलिए अपने आत्म-कल्याण को नहीं जानता हूँ, एवं मूर्खबुद्धि होने के नाते देख भी कैसे सकता हूँ। अतः हरे ! मेरी दुष्टता को क्षमा कीजिये, आप तपोनिधि को नमस्कार है। मुझे अपना

क्षमस्व मम दौरात्म्यं तपोधाम्ने हरे नमः । आज्ञापयात्मदास्यं मे येन ते चरणौ स्मरे ।।५१
इति स्तुत्वा लक्षमुद्राः स्थापिताः स्वपुरोधसि । गत्वावासं पूजयिष्ये सत्यनारायणं प्रभुम् ।।५२
तुष्टो नारायणः प्राह वाञ्छा पूर्णा भवेत्तु ते । पुत्रपौत्रसमायुक्तो भुक्त्वा भोगांस्त्वनुत्तमान् ।।
अन्ते सानिध्यमासाद्य मोदसे त्वं मया सह ।।५३
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः साधुश्च स्वाश्रमं ययौ । सप्ताहेन गृहं प्राप्तः सत्यदेवेन रक्षितः ।।५४
आगत्य नगराभ्याशे प्राहिणोद्द्रुतमाश्रमम् । गृहमागत्य दूतोऽपि प्राह लीलावतीं प्रति ।।५५
जामात्रा सहितः साधुः कृतकृत्यः समागतः । सत्यनारायणार्चायां स्थिता साध्वी सकन्यका ।।५६
पूजाभारं सुतायै सा दत्त्वा नौकान्तिकं ययौ । सखीगणैः परिवृता कृतकौतुकमङ्गला ।।५७
कलावती त्ववज्ञाय प्रसादं सत्वरा ययौ । पातुं पतिमुखाम्भोजं चकोरीव दिनात्यये ।।५८
अवज्ञानात्प्रसादस्य नौकाशङ्खपतेरथ । निमग्ना जलमध्ये तु जामात्रा सह तत्क्षणात् ।।५९
मग्नं जामातरं पश्यन्विललाप स मूर्च्छितः । लीलावती तु तद्दृष्ट्वा मूर्च्छिता विललाप ह ।।६०
ततः कलावती दृष्ट्वा पपात भुवि मूर्च्छिता । रम्भेव वातविहता कान्तकान्तेतिवादिनी ।।६१
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणाकरकौशल । त्वया विरहिता पत्या निराशा विधिना कृता ।।
पत्युरर्द्धं गतं कस्मादर्द्धाङ्गं जीवनं कथम् ।।६२

दास बनाने की कृपा करें जिससे आपके चरणों का स्मरण करता रहूँ ।४८-५१। इस भाँति स्तुति करके एक लक्ष मुद्रा सामने रखा और कहा—घर पहुँचकर सत्यनारायण देव की अर्चना करूँगा । उपरांत नारायण ने प्रसन्न होकर कहा—'तुम्हारा मनोरथ सफल हो' तथा पुत्र-पौत्र समेत उत्तम भोगों के उपभोग करने के पश्चात् मेरे समीप रहकर आनन्दानुभव करना । इतना कहकर विष्णु अन्तर्हित हो गये और वह वैश्य अपने नगर की ओर चला । सत्यदेव से सुरक्षित होकर वह वैश्य सातवें दिन अपने घर पहुँचा । अपने नगर के समीप पहुँचकर उसने अपने घर एक सेवक भेजा । घर पहुँचकर वह सेवक लीलावती से कहने लगा कि—जामाता के साथ कृतकृत्य होकर साधु आ गये । उस समय वह अपनी कन्या समेत सत्यनारायण की अर्चना कर रही थी ।५२-५६। उसने पूजा का संभार कलावती पर रखकर स्वयं नौका के पास चली गई । कलावती भी, जो सखियों के साथ मैं वहाँ मांगलिक कौतुक कर रही थी, प्रसाद-परित्याग रूप अनादर करके शीघ्र वहाँ पहुँच गई । उस समय वह सायंकाल में चकोरी की भाँति पति के कमलमुख का पान करना चाहती थी, किन्तु, उस प्रसाद के अपमान करने के कारण शंखपति की नौका जामाता के समेत उसी क्षण जल में अन्तर्हित हो गई । अपने जामाता को उस जल में निमग्न होते देखकर वह वैश्य मूर्च्छित होकर विलाप करने लगा, लीलावती भी उसे सुनकर मूर्च्छित होकर विलाप करने लगी । पश्चात् इसे सुनकर कलावती भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिर पड़ी । चेतना प्राप्त होने पर विलाप करने लगी—वायु के झोंके से कम्पित केले की भाँति काँपती हुई—कान्त-कान्त कहकर पुकारने लगी तथा हा नाथ, प्रिय धर्म एवं करुणानिधि-कौशल ! मुझ वियोगिनी को देव ने पति से सर्वदा के लिए पृथक् कर दिया । पति का शरीरार्ध भाग तो चला गया, शेष यह अर्द्धांग भाग जीवित कैसे रहे ।५७-६२

सूत उवाच

कलावती चारुकलासु कौशला प्रवालरक्ताङ्घ्रितलातिकोमला ।
सरोजनेत्राम्बुकणान्विमुञ्चती मुक्तावलीभिस्तनकुड्मलाञ्चिता ।।६३
हा सत्यनारायण सत्यसिन्धो मग्नं हि मामुद्धर तद्वियोगे ।
श्रुत्वार्तशब्दं भगवानुवाच वचस्तदाकाशसमुद्भवं च ।।६४
साधो कलावती क्षिप्रं मत्प्रसादं हि भोजयेत् । तत्पश्चादिह सम्प्राप्य पतिं प्राप्स्यति मा शुचः ।।६५
इत्याकाशे वचः श्रुत्वा विस्मिता तच्चकार सा । नारायणस्य कृपया पतिं प्राप्ता कलावती ।।६६
तत्रैव साधुः साह्लादो भक्त्या परमया युतः । पूजनं लक्षमुद्राभिः सत्यदेवस्य चाकरोत् ।।६७
तेन व्रतप्रभावेन पुत्रपौत्रसमन्वितः । भुक्त्वा भोगान्मुदा युक्तो मृतः स्वर्गपुरं ययौ ।।६८
इतिहासमिमं भक्त्या शृणुयाद्यो हि मानवः । सोऽपि विष्णुप्रियतरः कामसिद्धिमवाप्नुयात् ।।६९
इति ते कथितं विप्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् । कलिकाले परं पुण्यं ब्राह्मणस्य मुखोद्भवम् ।।७०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९

सूत जी बोले—कलावती ने, जो सुन्दर कलाओं में निपुण, मूंगे की भाँति चरणतल रक्तवर्ण एवं अति कोमल तथा कमल की भाँति अपने विशाल नेत्रों से अश्रुविन्दुओं की पवित्र धारा बहाती थी, जो मुकुलित पुष्पों की भाँति उसके स्तनों पर मोती के हार की भाँति दिखाई देती थी, कहा—हा सत्य-नारायण सत्यसिंधो ! इस पति वियोग से मेरा उद्धार कीजिये, मैं इसमें डूब रही हूँ । इन कारुणिक वाक्यों को सुनकर भगवान् आकाशवाणी द्वारा बोले—साधो ! यह कलावती शीघ्र मेरे प्रसाद का भक्षण कर ले, पश्चात् यहाँ आने पर अपने पति की प्राप्ति कर सकेगी, अतः शोक मत करो । इस आकाशवाणी को सुनकर उसने विस्मित होती हुई वैसा ही किया नारायण की कृपा से कलावती ने पति दर्शन प्राप्त किया । उसी स्थान पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस साधु ने अनन्य भक्ति में विभोर होकर एक लक्ष मुद्रा द्वारा सत्यनारायण देव की अर्चना किया । उस व्रत के प्रभाव से पुत्र-पौत्र युक्त होकर उसने उत्तम भोगों के उपभोग करते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत किया और निधन होने के उपरांत स्वर्ग निवास प्राप्त किया । जो मानव भक्ति समेत इस इतिहास का श्रवण करेंगे वे विष्णु के अत्यन्त प्रिय होंगे और उनकी कामनाएँ सफल होंगी । विप्र ! इससे इस उत्तमव्रत को, जो कलिकाल में परमपुण्य स्वरूप और ब्राह्मण के मुख से निकला है, तुम्हें सुना दिया ।६३-७०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन
नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्गुह्यजं कर्म वृत्तं प्रोक्तं पुरातनैः । व्रतानां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं नारायणव्रतम् ।।१
त्वन्मुखेन श्रुतं सूत तापत्रयविनाशनम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि लिङ्गजं कर्मचोत्तमम् ।।२
सर्वेषां ब्रह्मचर्याणां ब्रह्मचर्ये हि किं परम् । तन्मे वद महाप्राज्ञ सर्वज्ञोऽसि मतौ मम ।।३

सूत उवाच

आसीत्पुरा कलियुगे पितृशर्मा द्विजोत्तमः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो यमलोकभयान्वितः ।।४
ज्ञात्वा घोरतमं कालं कलिकालमधर्मजम् । बाधनं यमराष्ट्रस्य तदा चिन्तातुरोऽभवत् ।।५
केनाश्रमेण वर्णेन मम श्रेयो भवेदिह । कलौ संन्यासमार्गो हि दम्भपाखण्डखण्डितः ।।६
वानप्रस्थः कलौ नास्ति ब्रह्मचर्यं क्वचित्क्वचित् । गार्हस्थ्यं कर्म सर्वेषां कर्मणां श्रेष्ठमुच्यते ।।७
अतः स्त्रीसङ्ग्रहो ग्राह्यो मया घोरे कलौ युगे । यदि मे च भवेन्नारी मनोवृत्त्यनुसारिणी ।।
तर्हि मे सफलं जन्म मम श्रेयो भवेदिह ।।८
इत्येवं सम्मतं कृत्वा शिवां मङ्गलदायिनीम् । चन्दनाद्यैश्च सम्पूज्य तुष्टाव मनसा पराम् ।।
विश्वेश्वरीं जगन्मूर्तिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।।९

अध्याय ३०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषि ने कहा—भगवन् ! जिस गुह्य कर्म-वृत्तान्त को प्राचीनों ने कहा था, जो सभी व्रतों में श्रेष्ठ एवं नारायणव्रतप्रधान है, उसे हम लोगों ने आपके मुखारबिन्द द्वारा श्रवण किया । सूत जी ! इस समय उस लिंगज कर्म को, जो उत्तम एवं तीनों तापों को नष्ट करता है, सुनने की इच्छा है । महाप्राज्ञ ! सभी के ब्रह्मचर्य में श्रेष्ठ क्या है ? हमें बताने की कृपा करें क्योंकि मेरी सम्मति से आप सर्वज्ञ हैं ।१-३

सूत जी बोले—कलियुग में पितृशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वेद एवं वेदाङ्ग के तत्त्वों का ज्ञाता और सदैव यमलोक से भयभीत था । इस कलिकाल के घोरतम काल (समय) को जानकर, जो अधर्म द्वारा उत्पन्न एवं यमराज के यहाँ जाने के लिए बंधन रूप था, अत्यन्त चिंतित हुआ 'किस आश्रम या वर्ण (जाति) द्वारा मेरा कल्याण होगा' क्योंकि कलियुग में संन्यास-मार्ग दम्भ तथा पाखंड से दूषित हो गया है । और वानप्रस्थ कलि में है ही नहीं, हाँ, ब्रह्मचर्य की प्रथा कहीं-कहीं पर प्रचलित हैं । किन्तु, गार्हस्थ्य-कर्म सभी कर्मों में श्रेष्ठ बताया गया है, इसलिए मुझे इस घोर कलियुग के समय स्त्री का संग्रह करना श्रेयस्कर होगा—यदि मुझे मनोनुकूल स्त्री की प्राप्ति हो जाये, तो मेरा जन्म सार्थक तथा मेरा कल्याण भी होगा इस प्रकार निश्चित करके मंगल प्रदान करने वाली शिवा पार्वती की जो विश्वेश्वरी, जगत्स्वरूप एवं सच्चिदानन्द रूप होकर प्रख्यात है, आराधना चन्दनादि द्वारा सुसम्पन्न करके मानसिक स्तुति करते हुए उन्हें प्रसन्न करने लगा—४-९

पितृशर्मोवाच

नमः प्रकृत्यै सर्वायै कैवल्यायै नमोनमः । त्रिगुणैक्यस्वरूपायै तुरीयायै नमोनमः ।।१०
महत्तत्त्वजनन्यै च द्वन्द्वकर्त्र्यै नमोनमः । ब्रह्ममातर्नमस्तुभ्यं साहङ्कारपितामहि ।।११
पृथग्गुणायै शुद्धायै नमो मातर्नमो नमः । विद्यायै शुद्धसत्त्वायै लक्ष्म्यै सत्त्वरजोमयि ।।१२
नमो मातरविद्यायै ततः शुद्ध्यै नमो नमः । काल्यै सत्त्वतमोभूत्यै नमो मातर्नमो नमः ।।१३
स्त्रियै शुद्धरजोमूर्त्यै नमस्त्रैलोक्यवासिनि । नमो रजस्तमोमूर्त्यै दुर्गायै च नमो नमः ।।१४
इति श्रुत्वा स्तवं देव्या प्रसादः स्थापितस्तया । सुतायां विष्णुयशसो ब्राह्मणस्य तदा स्वयम् ।।१५
तामुद्वाह्य द्विजो देवीं नाम्ना वै ब्रह्मचारिणीम् । न्यवसन्मथुरायां स कृत्वा धर्मं स्वयं हृदि ।।१६
प्रियायै स रजोवत्यै ऋतुदानं करोति हि । चत्वारश्चात्मजाश्चासंश्चतुर्वेदैक्यधारिणः ।।१७
ऋग्यजुश्च तथा साम तुर्यश्चासीदथर्वणः । ऋचश्च तनयो व्याडिर्न्यायशास्त्रविशारदः ।।१८
यजुषस्तु सुतो जातो मीमांसो लोकविश्रुतः । पाणिनिः सामनस्यैव सुतोऽभूच्छब्दपारगः ।।१९
पुत्रो वररुचिः श्रेष्ठोऽथर्वणस्य नृपप्रियः । ते गता मागधेशस्य चन्द्रगुप्तस्य वै सभाम् ।।२०
नृपस्तान्पूजयामास बहुमानपुरःसरम् । अब्रवीत्तांस्ततो राजा ब्रह्मचर्यं हि किं परम् ।।२१
व्याडिराह महाराज यः स्तुतौ तत्परः पुमान् । न्यायतोऽखिलदेवानां ब्रह्मचारी हि मे मतः ।।२२

पितृशर्मा बोले—सर्वरूपप्रकृति को नमस्कार है, उस केवल स्वरूप को नमस्कार है, तीनों गुणों की एक मूर्ति तथा तुरीय (चौथे) स्वरूप को बार-बार नमस्कार है, महत्तत्व को जन्म देने वाली को नमस्कार है, जो सुखदुःखादि को प्रदान करती रहती है, ब्रह्ममातः ! तथा अहंकार समेत पितामहि ! तुम्हें नमस्कार है, मातः ! तुम्हारे निर्गुण एवं शुद्धस्वरूप को नमस्कार है, सत्वरजोगुणात्मके ! विद्या, शुद्धसत्व, एवं पितामही को नमस्कार है, मातः ! अविद्या तथा उससे शुद्ध रूप को बार-बार नमस्कार है, मातः ! सत्व तथा तमोगुण वाली काली को बार-बार नमस्कार है, शुद्धरज वाली स्त्री स्वरूप और त्रैलोक्य निवासिनी को नमस्कार है, रज तथा तमोमूर्ति दुर्गा जी को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार की स्तुति सुनकर देवी जी ने उनपर कृपा की । विष्णुयशस्वी नामक ब्राह्मण की कन्या का पाणिग्रहण उस ब्राह्मण के साथ सुसम्पन्न हो गया। उस ब्राह्मण ने उस देवी का ब्रह्मचारिणी नामकरण करके मथुरा पुरी का निवासी होकर उसके साथ धर्माचरण आरम्भ किया। ऋतुकालीन (मासिक धर्म) स्नान के अनन्तर वह ब्राह्मण उसमें ऋतुदान करने लगा जिससे कुछ दिनों में उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए।१०-१७। जो चारों ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद के निष्णात् विद्वान् थे। उनमें ऋगवेद के व्याधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो न्यायशास्त्र में निपुण था। यजुर्वेदी के लोक प्रख्यात मीमांसा नामक पुत्र हुआ, सामवेदी के शब्द-शास्त्र (व्याकरण) का पारगामी विद्वान् पाणिनि नामक हुआ और अथर्ववेदी के वररुचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो राजप्रिय एवं श्रेष्ठ था । वे सभी मगधाधिनायक चन्द्रगुप्त की सभा में पहुँचे । राजा ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनकी सेवा की पश्चात् उसने सब से पूँछा—ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ वस्तु है क्या ? व्याधि ने कहा—महाराज ! जो पुरुष न्यायतः समस्त देवों की

मीमांसश्चाह भो राजन्यज्ञे यो हि पुमान्परः । कर्मणा यजते देवान्रोचनादिभिरर्चयेत् ॥२३
हवनं तर्पणं कृत्वा ब्रह्मादिकसुरान्प्रति । तत्प्रसादं हि गृह्णीयाद्ब्रह्मचारी च स स्मृतः ॥२४
श्रुत्वेदं पाणिनिश्चाह चन्द्रगुप्त शृणुष्व भोः । त्रिधास्वरैः परं ब्रह्म शुद्धशब्दमयैः परैः ॥२५
तथैव सूत्रपाठैश्च लिङ्गधातुगणावृतैः । यो यजेद्ब्रह्मचारी स परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२६
श्रुत्वा वररुचिश्चाह शृणु मागधभूपते । गृहीत्वा यज्ञसूत्रं यः प्राप्तो गुरुकुले वसन् ॥२७
दण्डलोमनखाधारी भिक्षार्थी वेदतत्परः । आज्ञया च गुरोर्वर्तेद्ब्रह्मचारी हि स स्मृतः ॥२८
इति तेषां वचः श्रुत्वा पितृशर्माब्रवीदिदम् । यो गृहस्थे वसन्विप्रः पितृदेवातिथिप्रियः ॥२९
गामी पाणिगृहीतायामृतुकालां यतेन्द्रियः । ब्रह्मचारी हि मुख्यस्तु श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥३०
स्वामिन्यद्भवता चोक्तं धर्मज्ञेन यशस्विना । कलौ भयङ्करे प्राप्ते स धर्मो हि मतो मम ॥३१
इत्युक्त्वा तस्य शिष्योऽभूद्गुरुवाक्यपरायणः । तथान्ते मरणं प्राप्य स्वर्गलोकं नृपो ययौ ॥३२
पितृशर्मापि मनसा ध्यात्वा दामोदरं हरिम् । हिमालयं गिरिं प्राप्य योगध्यानपरोऽभवत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०

स्तुति के लिए कटिबद्ध रहता है, उसका श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है । मीमांसा ने कहा—राजन् ! जो पुरुष यज्ञ में कर्मकाण्ड विधान से गोरोचन चन्दनादि से देवों की पूजा करते हुए ब्राह्मणों एवं देवों को हवन-तर्पण द्वारा प्रसन्न करता हुआ एवं उनके प्रसाद को ग्रहण करता है वही श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है । इसे सुनकर पाणिनि ने कहा—राजन् चन्द्रगुप्त ! जो परमशुद्ध शब्द (शास्त्र) मय तीनों स्वरों (उदात्त, अनुदात्त और स्वरित) एवं सूत्रों के पाठ द्वारा जिसमें लिंग, धातु तथा गणों के सन्निवेश हैं, परब्रह्म का यज्ञानुष्ठान सुसम्पन्न करता है, वही ब्रह्मचारी है, और उसे परब्रह्म की प्राप्ति होती है । यह सुनकर वररुचि ने कहा—मगधाधिनायक ! यज्ञोपवीत संस्कार होने पर जो गुरुकुल में रहते हुए दण्ड, लोम, नख को धारण कर भिक्षाटन करके वेदाध्ययन में अनुरक्त रहता है और सदैव गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करता है, वही ब्रह्मचारी है इन लोगों की बातें सुनकर पितृशर्मा ने कहा—जो ब्राह्मण गृहस्थी में रहते हुए पितृ, देव तथा अभ्यागत की सेवा में तत्पर रहकर ऋतुकाल के उपरांत अपनी धर्मपत्नी के साथ ही गमन करता है, वही संयमी मुख्य ब्रह्मचारी कहा गया है । इसे सुनकर राजा ने कहा—स्वामिन् ! इस भयंकर कलि के समय आपकी ही बात उत्तम एवं धार्मिक प्रतीत हो रही है, क्योंकि आप धर्मज्ञाता तथा परमयशस्वी हैं और मेरी भी यही सम्मति है । इतना कहकर गुरुवाक्य का अनन्य प्रेमी वह राजा उनका शिष्य हुआ एवं निधन होने पर स्वर्ग पहुँच गया । उपरांत पितृशर्मा भी भगवान् दामोदर का मानसिक ध्यान करते हुए हिमालय पर्वत पर पहुँचे और वहाँ योगियों की भाँति समाधिनिष्ठ हुए ।१८-३३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्सर्वतीर्थानां दानानां किं परं स्मृतम् । यत्कृत्वा च कलौ घोरे परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥१

सूत उवाच

सामनस्य सुतः श्रेष्ठः पाणिनिर्नाम विश्रुतः । कणभुग्वरशिष्यैश्च शास्त्रज्ञैः स पराजितः ॥२
लज्जितः पाणिनिस्तत्र गतस्तीर्थान्तरं प्रति । स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि संतर्प्य पितृदेवताः ॥३
केदारमुदकं पीत्वा शिवध्यानपरोऽभवत् । पर्णाशी सप्तदिवसान्जलभक्षस्ततोऽभवत् ॥४
ततो दशदिनान्ते स वायुभक्षो दशाहनि । अष्टाविंशद्दिने रुद्रो वरं ब्रूहि वचोऽब्रवीत् ॥५
श्रुत्वामृतमयं वाक्यमस्तौद्गद्गदया गिरा । सर्वेशं सर्वलिङ्गेशं गिरिजावल्लभं हरम् ॥६

पाणिनिरुवाच

नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे । नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च ॥७
पापान्तकाय भर्गाय नमोऽनन्ताय वेधसे । नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशङ्कर ॥८
यदि प्रसन्नो देवेश विद्यामूलप्रदो भव । परं तीर्थं हि मे देहि द्वैमातुरपितर्नमः ॥९

अध्याय ३१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! समस्त तीर्थों में कौन तीर्थ श्रेष्ठ है, जिसकी सेवा करने पर निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाती है ।१

सूत जी बोले—सामन (सामवेदी) के पुत्र पाणिनि जी शास्त्रार्थ में काणभुक् के प्रशिष्य (शिष्य के शिष्य) से पराजित हो गये थे । लज्जित होकर पाणिनि जी उसी समय तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थित हो गये । सभी तीर्थों में स्नान एवं पितृदेव तर्पण करते हुए केदार तीर्थ में पहुँचे और वहाँ जलपान करके शिव जी का ध्यान करना आरम्भ किया । सात दिन तक जीर्ण शीर्ण पत्तों का भक्षण करने के उपरांत दश दिन तक जलपान और दश दिन तक केवल वायुभक्षण किया । अनन्तर अट्ठाईसवें दिन रुद्र भगवान् ने कहा—वर की याचना कीजिये ! इस अमृतमयी वाणी को सुनकर उन्होंने शंकर भगवान् की जो सर्वेश सम्पूर्ण लिंगों के ईश एवं गिरिजा के हृदय वल्लभ हैं, अपनी गद्गद् वाणी द्वारा स्तुति करना आरम्भ किया ।२-६

पाणिनि बोले—महान्, सर्वेश, हितैषी, नन्दी पर बैठने वाले, देव, विद्या एवं अभयदान देने वाले रुद्र को नमस्कार है । पापनाशक, देव, अनन्त तथा ब्रह्मरूप को नमस्कार है, उमापति, हर ईश रूप और लोकशंकर को नमस्कार है । देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे विद्याओं का मूल कारण प्रदान करने की कृपा करें । हे द्वैमातुर के पिता ! आप को नमस्कार है, आप इन्हीं श्रेष्ठ तीर्थों को मुझे प्रदान करें ।७-९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महादेवः सूत्राणि प्रददौ मुदा । सर्ववर्णमयान्येव अइउणादिशुभानि वै ।।१०
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे । यः प्राप्तो मानसे तीर्थे सर्वतीर्थफलं भजेत् ।।११
मानसं हि महत्तीर्थं ब्रह्मदर्शनकारकम् । पाणिने ते ददौ विप्र कृतकृत्यो भवान्भव ।।१२
इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रः पाणिनिः स्वगृहं ययौ । सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च ।।१३
लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमाप्तवान् । तस्मात्त्वं भार्गवश्रेष्ठ मानसं तीर्थमाचर ।।१४
यतो याता स्वयं गङ्गा सर्वतीर्थमयी शिवा । गंगातीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।।१५

श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।३१

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

तोतादर्यां द्विजः कश्चिद्बोपदेव इति श्रुतः । बभूव कृष्णभक्तश्च वेदवेदाङ्गपारगः ।।१
गत्वा वृन्दावनं रम्यं गोपगोपीनिषेवितम् । मनसा पूजयामास देवदेवं जनार्दनम् ।।२

सूत जी बोले—यह सुनकर महादेव जी ने प्रसन्न होकर उन्हें सूत्रों को प्रदान किया, जो समस्त वर्ण (अक्षर) मय शुभ अइउण के रूप में हैं। इस ज्ञानसरोवर रूप मानसतीर्थ में जो सत्य रूप जल से परिपूर्ण एवं राग-द्वेष रूपी मल से हीन हैं, जो पहुँचकर स्नान करता है, उसे समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं। उन्होंने कहा—विप्र, पाणिनि ! यह मानस नामक महान् तीर्थ है, इसी से ब्रह्मदर्शन प्राप्त होता है, मैंने इसे तुम्हें दे दिया इससे आप कृतकृत्य हो जायेगें। इतना कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि जी भी अपने घर पहुँच गये। उन्होंने उनमें सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, और लिंगसूत्रों की सृष्टि कर निर्वाण प्राप्त किया। अतः भार्गवश्रेष्ठ आप भी मानसतीर्थ का सेवन कीजिये। क्योंकि उसी द्वारा सम्पूर्ण तीर्थमयी एवं कल्याणप्रदायिनी गंगा की उत्पत्ति हुई है। गंगातीर्थ से श्रेष्ठतीर्थ न कोई है और न होगा।१०-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।३१।

अध्याय ३२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—तोतादरी में बोपदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो कृष्ण जी का भक्त एवं वेद-वेदाङ्ग का निष्णात विद्वान् था, गोप-गोपियों द्वारा सुसेवित उस रमणीक वृन्दावन में जाकर उन्होंने देव-नायक जनार्दन भगवान् की आराधना आरम्भ की।१-२। एक वर्ष के उपरांत भगवान् कृष्ण ने उन्हें प्रत्यक्ष

वर्षान्ते च हरिः साक्षाद्ददौ ज्ञानमनुत्तमम् । तेन ज्ञानेन सम्प्राप्ता हृदि भागवती कथा ।।३
शुकेन वर्णिता या वै विष्णुरताय धीमते । तां कथां वर्णयामास मोक्षमूर्तिं सनातनीम् ।।४
कथान्ते भगवान्विष्णुः प्रादुरासीज्जनार्दनः । उवाच स्निग्धया वाचा वरं ब्रूहि महामते ।।५

बोपदेव उवाच

नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक । त्वया ततमिदं विश्वं देवतिर्यङ्नरादिकम् ।।६
त्वन्नाम्ना नरकार्ताश्च ते कृतार्थाः कलौ युगे । त्वया दत्तं भागवतं श्रीमद्व्यासेन निर्मितम् ।।
माहात्म्यं तस्य मे ब्रूहि यदि दत्तो वरस्त्वया ।।७

श्रीभगवानुवाच

एकदा भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्करः ।।८
बौद्धराज्ये जगत्प्राप्ते दम्भपाखण्डनिर्मिते । दृष्ट्वा काश्यां भूमितुङ्गं प्रणनाम मुदा युतः ।।
जय सच्चिदानन्द विभो जगदानन्द कारक ।।९
इति श्रुत्वा शिवा प्राह को देवोऽस्ति तवोत्तमः । स होवाच महादेवि यज्ञः सप्ताहमत्र वै ।।१०
तस्माद्भूमिपवित्रत्वमिह प्राप्तं वरानने । सर्वतीर्थाधिकत्वं च स्वयं ब्रह्म सनातनम् ।।११
इति श्रुत्वा शिवा देवी प्राप्तासीद्गुह्यकालयम् । रुद्रेण सहिता तत्र भूमिशुद्धिमकारयत् ।।१२
चण्डीशश्च गणेशश्च नन्दिनो गुह एव च । रक्षार्थे स्थापितास्तत्र देवदेवेन भो द्विज ।।१३

होकर उत्तम ज्ञान प्रदान किया । उसी ज्ञान द्वारा उनके हृदय में सम्पूर्ण भागवती कथा का ज्ञान हुआ, जिसे शुकदेव जी ने अनन्यविष्णु-भक्तों को सुनाया था । मोक्ष की साक्षात् मूर्ति एवं सनातनी (अविनाशिनी) उस कथा का वर्णन उन्होंने किया, जिससे कथा की समाप्ति के समय में भगवान् विष्णु ने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिया । पश्चात् जनार्दन देव ने कहा कि महामते ! वरदान की याचना करो ।३-५

बोपदेव ने कहा—लोकों के ऊपर अनुग्रह रखने वाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है, आपने ही इस निखिल विश्व की जो देव, पक्षी एवं मनुष्यों आदि से युक्त है, रचना करके उसे विस्तृत किया है । कलियुग में नरक भीरु प्राणी, तुम्हारे नामस्मरण के नाते कृतार्थ रहेंगे । जिस श्रीमद्भागवत की रचना श्रीमान् व्यास जी ने की है, उसे आपने मुझे प्रदान किया है, आपने यदि मुझे वरदान दिया है, तो उसका माहात्म्य मुझे बताने की कृपा कीजिये ।६-७

श्रीभगवान् बोले—एकबार भगवान् शंकर जी भवानी को साथ लेकर उस समय काशीपुरी में आये, जब कि सारा जगत् दंभ-पाखण्डपूर्ण उस बौद्ध राज्य से आक्रान्त था । वहाँ पहुँचकर भूमि-तुरंग (ढीले) को सहर्ष प्रणाम किया—विभो ! जगत् के आनन्दप्रदायक एवं सच्चिदानन्द रूप आप की जय हो। इसे सुनकर शिवा (पार्वती) ने कहा—तुम्हारा प्रधान देव यहाँ कौन है ! उन्होंने कहा—महादेवि ! यहाँ सप्ताहयज्ञ हुआ था, इसीलिए शोभनेमुखे ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र हो गई है । इसे सुनकर पार्वती जी ने शंकर के साथ उसी गुह्यस्थान में अपना वासस्थान बनाया और उस भूमि को पवित्र किया। द्विज ! देवाधिदेव ने चंडीश, गणेश, नन्दी और स्कन्द को वहाँ रक्षार्थ नियुक्त करके कहा—देवि ! मेरी उस

शृणु देवि कथां रम्यां मम मानससंस्थिताम् । इत्युक्त्वा ध्यानमास्थाय सप्ताहेन स्ववर्णयत् ॥१४
अष्टाहे नेत्र उन्मील्य दृष्ट्वा निद्रागतां शिवाम् । बोधयामास भगवान्कथान्ते लोकशङ्करः ॥१५
कियती ते श्रुता गाथा श्रुत्वाह जगदम्बिका ! सुधामन्थनपर्यन्तं चरित्रं शिवयेरितम् ॥१६
कोटरस्थः शुकः श्रुत्वा चिरञ्जीवत्वमागतः । पार्वत्या रक्षितोऽसौ वै शुकः परमसुन्दरः ॥१७
स्थित्वा शिवस्य सदने मम ध्यानपरोऽभवत् । ममाज्ञया शुकः साक्षात्त्वदीयहृदयस्थितः ॥१८
तेन प्राप्तं भागवतं माहात्म्यं चास्य दुर्लभम् । त्वं वै गन्धर्वसेनाय पित्रे विक्रमभूपतेः ॥१९
नर्मदाकूलमासाद्य श्रावयस्वं कथां शुभाम् । हरिमाहात्म्यदानं हि सर्वदानपरं स्मृतम् ॥२०
सत्पात्राय प्रदातव्यं विष्णुभक्ताय धीमते । बुभुक्षितान्नदानं च तद्दानस्य समं न हि ॥२१
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो बोपदेवः प्रसन्नधीः ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३२

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वाग्जं कर्म स्मृतं सूत वेदपाठः सनातनः । बहुत्वात्सर्ववेदानां श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१

रमणीक कथा को सुनो ! जो मेरे मानस स्थान में स्थित हैं । इस प्रकार कहकर ध्यान पूर्वक उसका वर्णन करना आरम्भ किया। आठवें दिन आँख खोलकर लोक के कल्याणरूप भगवान् शंकर ने पार्वती को निद्रामग्न देखकर जगाया और कहा—कहाँ तक की कथा का श्रवण किया है। जगदम्बा ने कहा क्षीरसागर का मन्थन पर्यन्त कथा मैंने सुनी है।८-१६। वहाँ वृक्ष के कोटर में एक शुक-शावक उस कथा को सुन रहा था जिससे उसे चिरजीवन प्राप्त हुआ। उस परम सुन्दर शुक की रक्षा पार्वती जी स्वयं कर रहीं थीं, वह भी उस शिव-मन्दिर में रहकर मेरा ध्यान कर रहा था। मेरी आज्ञा से वही शुक तुम्हारे हृदय में स्थित हुआ, इसी से तुम्हें भागवत का दुर्लभ माहात्म्य प्राप्त हुआ है। नर्मदा के तट पर स्थित राजा विक्रमादित्य के पिता गन्धर्व सेन को इस शुभ कथा का श्रवण कराओ। क्योंकि भगवान् का माहात्म्यदान सभी दानों से श्रेष्ठ बताया गया है । इसे उस सत्पात्र में रखना चाहिए, जो विष्णुभक्त और परम विद्वान् हो। बुभुक्षित (भूखे) के लिए अन्नदान भी उस दान के समान नहीं है। यह कहकर बोपदेव भी प्रसन्न हुए ।१७-२२

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

अध्याय ३३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—सूत ! वेद-पाठ करना सनातन से वाणी का प्रशस्तकर्म बताया गया है किन्तु,

केन स्तोत्रेण वेदानां पाठस्य फलमाप्नुयात् । पापानि विलयं यान्ति तन्मे वद विचक्षण ॥२

सूत उवाच

विक्रमादित्यराज्ये तु द्विजः कश्चिदभूद्भुवि । व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत् ॥३
त्रिपाठिनो द्विजस्यैव भार्या नाम्ना हि कामिनी । मैथुनेच्छावती नित्यं मदाघूर्णितलोचना ॥४
द्विजस्सप्तशतीपाठे वृत्त्यर्थी कर्हिचिद्गतः । ग्रामे देवलके रम्ये बहुवैश्यनिषेविते ॥५
तत्र मासो गतः कालो नाययौ स स्वमन्दिरम् । तदा तु कामिनी दुष्टा रूपयौवनसयुता ॥६
दृष्ट्वा निषाद सबलं काष्ठभारोपजीविनम् । तस्मै दत्वा पञ्च मुद्रा बुभुजे कामपीडिता ॥७
तदा गर्भं दधौ सा च व्याधिवीर्येण सञ्चितम् । पुत्रोऽभूद्दशमासान्ते जातकर्म पिताकरोत् ॥८
द्वादशाब्दे गते काले स धूर्तो वेदवर्जितः । व्याधकर्मकरो नित्यं व्याधिकर्मा ह्यतोभवत् ॥९
निष्कासितौ द्विजेनैव मातृपुत्रौ द्विजाधमौ । त्रिपाठी ब्रह्मचर्यं तु कृतवान्धर्मतत्परः ॥१०
प्रत्यहं चण्डिकापाठं कृत्वा विन्ध्यगिरौ वसन् । जीवन्मुक्तोऽभवच्छीघ्रं जगदम्बाप्रसादतः ॥११
निषादस्य गृहे चोभौ वने गत्वोषतुर्मुदा । प्रत्यहं जारभावेन बहुद्रव्यमुपार्जितम् ॥१२
व्याधकर्मा तु चौर्येण पितृमातृप्रियङ्करः । एकदा दैवयोगेन शिवामन्दिरमाययौ ॥१३
चौरवृत्तिपरो धूर्तः स्त्रिया भूषणमाहरत् । कैश्चिज्ज्ञातः स नो धूर्तो बहुमायाविशारदः ॥१४

चार वेद होने के नाते सब का पाठ असम्भव है। अतः मुझे यह सुनने की इच्छा है कि किस स्तोत्र द्वारा वेद-पाठ का फल प्राप्त होता है। विचक्षण ! अतः उस पापनाशक को बताने की कृपा करें।१-२

सूतजी बोले—राजा विक्रमादित्य के राज्य में कोई व्याधकर्मा (बहेलिये का कर्म करने वाला) ब्राह्मण रहता था, जिसका जन्म ग्रहण करना ब्राह्मणी में शूद्र द्वारा कहा गया है। एक त्रिपाठी ब्राह्मण की स्त्री का नाम कामिनी था, सदैव मैथुन के लिए उत्सुक रहने के नाते जिसकी आँखें मद से भरी रहती थीं। एक बार वह त्रिपाठी जी दुर्गा सप्तशती का पाठ करने के लिए किसी यजमान के यहाँ किसी गाँव में चले गये थे जिसमें देवलक एवं वैश्यों की संख्या अधिक थी। वहाँ एक मास तक रहने के नाते वे अपने घर न आ सके। उसी बीच उनकी दुष्टा पत्नी कामिनी ने अपने रूप एवं यौवन में मदांध होकर उस बलवान व्याध को बुलाकर जो काष्ठ (लकड़ी) द्वारा अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, उसे पाँच मुद्रा प्रदान कर अत्यन्त काम-पीड़ित होने के नाते उससे भली भाँति भोग कराया। पश्चात् उस व्याध के वीर्य द्वारा उसने गर्भवती होकर दशवें मास में पुत्र उत्पन्न किया उसके पिता ने उसका जात कर्म सुसम्पन्न किया। बारह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर वह धूर्त एवं विद्याध्ययन न करने के नाते नित्य व्याध-कर्म (शिकार) करने लगा उसी से उसका व्याधकर्मा नामकरण हुआ। त्रिपाठी ने उन दोनों माता-पुत्र अधमों को अपने घर से निकाल दिया। पश्चात् त्रिपाठी ब्रह्मचर्य पालन करते हुए विन्ध्यगिरि पर नित्य चण्डिका का पाठ करने लगे जिससे जगदम्बा के प्रसाद से वे शीघ्र जीवनमुक्त हो गये। वे दोनों घर से निकलकर वन में उसी व्याध के यहाँ प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे। वहाँ रहकर उस स्त्री ने कर्म (पर पुरुषों से भोग) द्वारा अत्यन्त द्रव्यों का उपार्जन किया।३-१२। वह व्याध-कर्मा चोरी करने के नाते अपने माता-पिता का प्रिय हुआ। एक बार दैवयोग से देवी जी के मन्दिर में आकर उस धूर्त चोर ने स्त्रियों के

कदाचित्प्राप्तवांस्तत्र द्विजवस्त्रसमुद्गतम् । श्रुतमादिचरित्रं हि तेन शब्दप्रियेण वै ॥१५
पाठपुण्यप्रभावेण धर्मबुद्धिस्ततोऽभवत् । दत्त्वा चौर्यधनं सर्वं तस्मै विप्राय पाठने ॥१६
शिष्यत्वमगमत्तत्राक्षरमैशं जजाप ह । बीजमन्त्रप्रभावेण तदङ्गात्पापमुल्बणम् ॥१७
निःसृतं कृमिरूपेण बहुवर्णेन तापितम् । त्रिवर्षान्ते च निष्पापो बभूव द्विजसत्तमः ॥१८
पठित्वाक्षर मालां च जजापादिचरित्रकम् । द्वादशाब्दमिते काले काश्यां गत्वा स तु द्विजः ॥१९
अन्नपूर्णां महादेवीं तुष्टाव परया मुदा । रोचनाद्यैश्च सम्पूज्यां मुनिदेवनिषेविताम् ॥२०
नित्यानन्दकरी पराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी निर्धूताखिलपापपावनकरी काशीपुराधीश्वरी ।
नानालोककरी महाभयहरी विश्वम्भरी सुन्दरी विद्यां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥२१
स इत्यष्टोत्तरं जप्त्वा ध्यानस्तिमितलोचनः । सुष्वाप तत्र मुदितः स्वप्ने प्रादुरभूच्छिवा ॥२२
दत्त्वा तस्मै हि ऋग्विद्यां पुनरन्तरधीयत । उत्थाय स द्विजो धीमाँल्लब्ध्वा विद्यामनुत्तमाम् ॥२३
विक्रमादित्यभूपस्य यज्ञाचार्यो बभूव ह । यज्ञान्ते योगमास्थाय जगाम तु हिमालयम् ॥२४
एतत्ते वर्णितं विप्र पुण्यमादिचरित्रकम् । ब्रह्मीभूय यथा विप्रो लेभे सिद्धिमनुत्तमाम् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रथमचरित्रवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।३३

आभूषणों का अपहरण किया । कुछ लोगों ने उस निपुण मायावी की धूर्तता को पहचान लिया । पश्चात् वह भी ब्राह्मण-वेष में वहाँ आकर देवी जी के आदि चरित्रों का श्रवण किया । उपरांत उस मधुरवाणी द्वारा किये गये पाठ के पुण्य-प्रभाव से उसकी धार्मिक बुद्धि हो गई । वह उसी पाठकरने वाले ब्राह्मण को सम्पूर्ण धन प्रदानकर उसी से दीक्षा प्राप्तकर शिव-मंत्र का जप करने लगा । उस बीज मंत्र के प्रभाव से उसके ज्वलन्त पाप कृमिरूप होकर उसके शरीर से निकलने लगे, जो (मुख निःसृत) पाठ के अक्षरों से संतप्त हो रहे थे । तीन वर्ष के उपरांत वह निष्पाप होकर श्रेष्ठ ब्राह्मण हो गया । पुनः अक्षर माला का पाठ करते हुए आदि चरित्र का जप करना प्रारम्भ किया । पश्चात् बारहवें वर्ष वह ब्राह्मण काशी में पहुँचकर प्रसन्नचित्त से महादेवी अन्नपूर्णा को प्रसन्न करने लगा जो रोचना आदि से सुपूजित एवं मुनि और देवों से सुसेवित हो रही थी । अन्नपूर्णेश्वरी मा ! मुझे विद्या प्रदान कीजिये । आप नित्य आनन्द करने वाली, दूसरे को निर्भय बनाने वाली, और सौन्दर्य की निधि हैं । आप उस काशी पुरी की अधिष्ठात्री देवी हैं, जो समस्त पापों के नाशपूर्वक उसे पवित्र करती हैं, अनेक लोकों के निर्माण करने वाली, महान् भय के अपहरण करने वाली और विश्व के पालन-पोषण करने वाली आप प्रधान सुन्दरी एवं कृपारूप अवलम्बन प्रदान करने वाली हैं ।१३-२१। इस प्रकार इसका एक सौ आठ बार जाप करके ध्यान करते हुए उसी स्थान पर आँखे मूंद कर शयन कर गया । उसके स्वप्न में देवी जी प्रत्यक्ष होकर उसे ऋग्विद्या प्रदानकर स्वयं अन्तर्हित हो गई । वह विद्वान् ब्राह्मण जागने पर उस अनुपम विद्या की प्राप्ति के अनन्तर राजा विक्रमादित्य के यज्ञ का आचार्य हुआ । पश्चात् यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर वह योग के अभ्यास के लिए हिमालय पर्वत पर चला गया। विप्र ! इस प्रकार इस आदि चरित्र प्रधान पवित्र कथा को तुम्हें सुना दिया, जिसमें उस ब्राह्मण को ब्राह्मणत्व प्राप्ति के साथ उत्तम सिद्धि की प्राप्ति हुई।२२-२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

उज्जयिन्यां पुरा विप्र राजन्यः सर्वहिंसकः । बभूव मद्यमांसाशी भीमवर्मेति विश्रुतः ।।१
मांसलोभेन स खलः सूकरान्ग्रामकुक्कुटान् । हत्वा चाभक्षयत्पापी वेश्यासङ्गपरायणः ।।२
नरमांसं स क्रव्यादस्त्यक्त्वान्यान्भक्षकोऽभवत् । एवं बहुगते काले भीमवर्मा महाधमः ।।
विसूच्याग्निवशं यातो ममार च युवापि सः ।।३
कारितश्चण्डिकापाठस्तेन दुष्टेन भीरुणा । तस्य पुण्यप्रभावेन नागतो नरकान्प्रति ।।४
पुनः क्षत्रत्वमगमन्मागधे स महीपतिः । महानन्दीति विख्यातो राजनीतिपरायणः ।।५
जातिस्मरो बभूवासौ वेदधर्मपरायणः । कात्यायनस्य शिष्योऽभून्महाशाक्तस्य धीमतः ।।६
तस्मै नृपाय स मुनिर्दत्त्वा मध्यचरित्रकम् । सबीजं पुनरागत्य विन्ध्ये शक्तिपरोऽभवत् ।।७
नृपोऽपि प्रत्यहं देवीं महालक्ष्मीं सनातनीम् । रोचनाद्यैश्च सम्पूज्य जपन्मध्यचरित्रकम् ।।८
पुण्यक्षेत्रत्वमगमन्महामायाप्रसादतः । शूद्रभावं परित्यज्य क्षत्रभावमुपागतः ।।९
द्वादशाब्दान्तरे प्राप्तस्तद्गुरुः शक्तितत्परः । लक्षचण्डीं नृपादेव कारयामास धर्मतः ।।१०

अध्याय ३४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—विप्र ! उज्जयिनी नगरी में भीमवर्मा नामक क्षत्रिय राजा रहता था, जो सभी की हिंसा करके मद्य-मांस का भक्षण करता था । वह दुष्ट मांस के लोभ से सूकरों एवं मुर्गों की भी हिंसा करके भक्षण कर लेता था तथा वह पापी वेश्या प्रसंग भी करता था । वह राक्षस केवल मनुष्य का मांस त्याग कर अन्य सभी के मांस का भक्षण करता था । वह अपनी युवावस्था में ही विसूचिका (हैजे) की बीमारी से आक्रान्त होकर इस लोक से चला गया ।१-३। उसने चण्डिका का पाठ कराया था जिस पुण्य के प्रभाव से दुष्ट नरकयातना से बचकर पुनः मगधाधिपति के यहाँ क्षत्रिय कुल में जन्म ग्रहण किया। महानंदी उसका नाम था। वह राजनीति का अत्यन्त प्रेमी था। वहाँ वह अपनी पूर्व जाति के स्मरण होने से वैदिक धर्म का अनुयायी होकर वह महाशाक्त एवं परम धीमान् कात्यायन जी का शिष्य हुआ । उस महर्षि ने राजा को (सप्तशती) का मध्यमचरित्र बीजसमेत प्रदान किया। पुनः कात्यायन ने विंध्य पर्वतपर आकर शक्ति की उपासना करना आरम्भ किया और राजा भी प्रतिदिन उस सनातनी महालक्ष्मी देवी की पूजा चन्दनादि से सुसम्पन्न करके मध्यमचरित्र का पाठ कर रहा था—जिससे महामाया के प्रसाद से पुण्य क्षत्रत्व प्राप्त किया। शूद्र भाव का परित्याग पूर्वक क्षत्रिय भाव प्राप्ति किया। बारह वर्ष के उपरांत शक्ति की उपासना करके उनके गुरुजी पुनः लौटकर घर आये और उस राजा के द्वारा लक्ष चण्डी का अनुष्ठान

तदा प्रादुरभूद्देवी जगदम्बा सनातनी । नृपाय धर्ममर्थं च कामं मोक्षं हि चाददात् ॥११
महानन्दी महाभागो भुक्त्वा भोगं सुरेप्सितम् । अन्ते जगाम परमं लोकं देवनमस्कृतम् ॥१२
इति ते कथिता विप्र यत्प्रोक्तं यजुषो गतिः । सा वै मध्यचरित्रेण प्राप्ता शूद्रनृपेण वै ॥१३
इत्येवं वर्णितं विप्र माहात्म्यं मुनिवर्णितम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहासमुच्चये मध्यमचरित्रवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चित्रकूटे गिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तत्रावसन्महाप्राज्ञ उपाध्यायः पतञ्जलिः ॥१
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो गीताशास्त्रपरायणः । विष्णुभक्तः सत्यसन्धो भाष्यशास्त्रविशारदः ॥२
कदाचित्स तु शुद्धात्मा गतस्तीर्थान्तरं प्रति । काश्यां कात्यायनेनैव तस्य वादो महानभूत् ॥३
वर्षान्ते च तदा विप्रो देवीभक्तेन निर्जितः । लज्जितः स तु धर्मात्मा सन्तुष्टाव सरस्वतीम् ॥४

आरम्भ करवाया ।४-१०। उस समय सनातनी एवं जगज्जननी देवी जी ने प्रत्यक्ष होकर उस राजा को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान किया । इस प्रकार वह महानन्दी नामक राजा देवों की भाँति भोगों का यथेच्छ उपभोग करके अन्त में उस देववन्दनीय परमलोक की प्राप्ति किया । विप्र ! इस भाँति मैंने वह कथा सुना दी जिसमें पूजा करने वालों की गति का वर्णन किया गया है—उस मध्यम चरित्र द्वारा उपासना करके उस राजा शूद्र ने उसी को प्राप्त किया है । अब इस मुनि वर्णित माहात्म्य को यही समाप्त करता हूँ ।११-१४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

अध्याय ३५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—चित्रकूट पर्वतपर, जो अनेक भाँति के धातुओं से विभूषित हैं, पतञ्जलि नामक महाविद्वान् अध्यापक रहते थे, जो वेद-वेदाङ्ग के तत्वों के ज्ञाता, गीता-शास्त्र में निष्णात विष्णु-भक्त, सत्य-प्रतिज्ञ एवं भाष्य शास्त्र के निपुण विद्वान् थे । एक बार उस शुद्धात्मा पुरुष ने तीर्थयात्रा के निमित्त काशीपुरी में पहुँचकर कात्यायन जी के साथ महान् शास्त्रार्थ आरम्भ किया । एक वर्ष के उपरान्त उस देवीभक्त के द्वारा पराजित होने पर उस धर्मात्मा पतञ्जलि ने लज्जित होकर सरस्वती जी की आराधना करना आरम्भ किया—१-४

पतञ्जलिरुवाच

नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः । शिवायै सर्वमाङ्गल्ये विष्णुमाये च ते नमः ।।५
त्वमेव श्रद्धा बुद्धिस्त्वं मेधा विद्या शिवङ्करी । शान्तिर्वाणि त्वमेवासि नारायणि नमो नमः ।।६
इत्युक्ते सति विप्रे तु वागुवाचाशरीरिणी । विप्रोत्तम चरित्रं मे जप चैकाग्रमानसः ।।७
तच्चरित्रप्रभावेण सत्यं ज्ञानमवाप्स्यसि । कात्यायनस्य विप्रस्य राजसंज्ञानमुद्धतम् ।।
मद्भक्त्या तेन सम्प्राप्तं पराजय पतञ्जले ।।८
इति श्रुत्वा वचो देव्या विन्ध्यवासिनिमन्दिरम् । गत्वा तां पूजयामास तुष्टाव स्तोत्रपाठतः ।।९
ज्ञानं प्रसादजं विप्रः प्राप्य विष्णुपरायणम् । कात्यायनं पराजित्य परां मुदमवाप ह ।।१०
ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तिलकं तुलसीकण्ठमालिकाम् । कृष्णमन्त्रं च शिवदं स्थापयित्वा गृहे गृहे ।।११
जने जने तथा कृत्वा महाभाष्यमुदैरयत् । चिरञ्जीवित्वमगमद्विष्णुमायाप्रसादतः ।।१२
इति ते कथितो विप्र जाप्यानामुत्तमो जपः । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छन्ति शौनकाद्या महर्षयः ।।१३
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ।।१४
मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः । मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ।।१५
शुचिर्यो हि नरो नित्यमितिहाससमुच्चयम् । शृणुयाद्धर्मकामार्थी स याति परमां गतिम् ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये उत्तमचरितमाहात्म्यं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।३५

पतञ्जलि ने कहा—देवी जी को नमस्कार है, महामूर्ति एवं उस सर्वमूर्तिमयी को बार-बार नमस्कार है। शिवा (कल्याणरूप), समस्त मंगल प्रदान करने वाली, उस विष्णुमाया को नमस्कार है। श्रद्धा, बुद्धि, मेधा, विद्या, कल्याणरूपा, शांति एवं वाणि तुम्हीं हो, अतः नारायणि ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। ब्राह्मण के इस भाँति आराधना करने पर आकाशवाणी हुई—ब्राह्मण ! एकाग्रचित्त से मेरे उत्तम चरित्र का जप करो उसी चरित्र के प्रभाव से सत्यज्ञान की प्राप्ति होगी। कात्यायन को यह राजस-ज्ञान भी उसी से प्राप्त हुआ है। मेरी भक्ति द्वारा ही उसने पतञ्जलि को पराजित किया है। देवी जी की ऐसी वाणी सुनकर विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर उन्होंने पूजा करने के उपरांत स्तोत्र-पाठ द्वारा देवी को प्रसन्न किया।५-९। उस ब्राह्मण ने देवी की प्रसन्नतावश विष्णु पारायण का उत्तम ज्ञान प्राप्त-कर कात्यायन को पराजित कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। पश्चात् ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, कण्ठ में तुलसी की माला, एवं कल्याणप्रद कृष्ण-मंत्र का प्रत्येक घरों के प्रत्येक प्राणियों में प्रचार करके महाभाष्य की रचना की। विष्णुमाया के प्रसाद से उन्होंने चिर जीवन प्राप्त किया है। विप्र ! इस प्रकार मैंने उत्तम जप की व्याख्या कर दी। आप शौनकादि महर्षिगण अब क्या सुनना चाहते हैं। सभी लोगों को कल्याण प्राप्त हो, कोई भी दुःखी न रहे। भगवान् विष्णु, तथा उनका गरुडध्वज, पुण्डरीकांक्ष रूप मंगलमय है और हरिस्वरूप तो मंगल के निधि ही हैं। पवित्रतापूर्ण होकर जो मनुष्य इस इतिहास समुच्चय का श्रवण करेगा, उसे धर्म, काम एवं अर्थ प्राप्ति समेत परमगति की प्राप्ति होगी।१०-१६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।३५।

।।(दूसरा खण्ड समाप्त)।।

तृतीयखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

विक्रमाख्यानकालवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्विक्रमाख्यानकालोऽयं भवतोदितः । शतद्वादशसमार्दादौ द्वापरस्य समो भुवि ।।१

अस्मिन्काले महाभाग लीला भगवता कृता । तामेतां कथयास्मान्त्वं सर्वज्ञोऽसि भवान्सदा ।।२

सूत उवाच

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।३

भविष्याख्ये महाकल्पे प्राप्ते वैवस्वतेन्तरे । अष्टाविंशद्द्वापरान्ते कुरुक्षेत्रे रणोऽभवत् ।।४

पाण्डवैर्निर्जिताः सर्वे कौरवाः युद्धदुर्मदाः । अष्टादशे च दिवसे पाण्डवानां जयोऽभवत् ।।५

दिनान्ते भगवान्कृष्णो ज्ञात्वा कालस्य दुर्गतिम् । शिवं तुष्टाव मनसा योगरूपं सनातनम् ।।६

कृष्ण उवाच

नमः शान्ताय रुद्राय भूतेशाय कपर्दिने । कालकर्त्रे जगद्भर्त्रे पापहर्त्रे नमो नमः ।।७

पाण्डवान्रक्ष भगवन्मद्भक्तान्भूतभीरुकान् । इति श्रुत्वा स्तवं रुद्रो नन्दियानोपरि स्थितः ।।

रक्षार्थं शिविराणां च प्राप्तवाञ्छूलहस्तधृक् ।।८

अध्याय १

विक्रमाख्यान काल का वर्णन

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! राजा विक्रमादित्य की सामयिक कथा आप ने सुना दी । द्वापर के बारह सौ वर्ष शेष रहने के समय भगवान् कृष्ण ने इस भूतल में अपनी लीला की है । आप सदैव सर्वज्ञ हैं, अतः उसी कथा को हमें सुनाने की कृपा करें । १-२

सूत जी बोले—भविष्य नामक महाकल्प में वैवस्वत मनु के समय जो अट्ठाईसवें द्वापर का अन्त समय बताया गया है, कुरुक्षेत्र में भीषण संग्राम हुआ था । उस युद्ध में मदांध कौरवगण पाण्डवों द्वारा पराजित हुए और पाण्डवों को अठारहवें दिन विजय भी प्राप्त हो गई थी । भगवान् कृष्ण ने दिन के अन्त समय में काल की दुर्गति समझकर उस सनातन योगी शिवजी की मानसिक, आराधना की । ३-६

कृष्ण ने कहा—शांत, रुद्र, भूतेश एवं कपर्दी को नमस्कार है, काल के कर्ता, जगत् के पालन-पोषण करने वाले, एवं पाप नाशक को बार-बार नमस्कार है । भगवन् ! पांडवों की रक्षा कीजिये, ये मेरे भक्त एवं भूत-भीरु हैं । इस स्तुति को सुनकर भगवान् रुद्र नन्दी पर बैठकर हाथ में शूल लिए उनके रक्षार्थ

तदा नृपाज्ञया कृष्णः स गतो गजसाह्वयम् । पाण्डवाः पञ्च निर्गत्य सरस्वत्यास्तटेऽवसन् ॥९
निशीथे द्रौणिभोजौ च कृपस्तत्र समाययुः । तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं तेभ्यो मार्गं शिवोऽददात् ॥१०
अश्वत्थामा तु बलवाञ्छिवदत्तमसिं तदा । गृहीत्वा स जघानाशु धृष्टद्युम्नपुरःसरान् ॥११
हत्वा यथेष्टमगमद्द्रौणिस्ताभ्यां समन्वितः ॥१२
पार्षतस्यैव सूतश्च हतशेषो भयातुरः । पाण्डवान्वर्णयामास यथा जातो जनक्षयः ॥१३
आगस्कृतं शिवं ज्ञात्वा भीमाद्याः क्रोधमूर्च्छिताः । स्वायुधैस्ताडयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥१४
अस्त्रशस्त्राणि तेषां तु शिवदेहे समाविशन् । दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे प्रजघ्नुस्तलमुष्टिभिः ॥१५
ताञ्छशाप तदा रुद्रो यूयं कृष्णप्रपूजकाः । अतोऽस्माभी रक्षिणीया वधयोग्याश्च वै भुवि ॥१६
पुनर्जन्म कलौ प्राप्य भोक्ष्यते चापराधकम् । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पाण्डवा दुःखितास्तदा ॥१७
हरिं शरणमाजग्मुरपराधनिवृत्तये । तदा कृष्णयुताः सर्वे पाण्डवाः शस्त्रवर्जिताः ॥१८
तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं तदा प्रादुरभूच्छिवः । वरं वरयत प्राह कृष्णः श्रुत्वाब्रवीदिदम् ॥१९
शस्त्राण्यस्त्राणि यान्येव त्वदङ्गे क्षपितानि वै । पाण्डवेभ्यश्च देहि त्वं शापस्यानुग्रहं कुरु ॥२०
इति श्रुत्वा शिवः प्राह कृष्णदेव नमोऽस्तु ते । अपराधो न मे स्वामिन्मोहितोऽहं तवाज्ञया ॥२१
तद्वशेन मया स्वामिन्दत्तः शापो भयङ्करः । नान्यथा वचनं मे स्यादंशावतरणं भवेत् ॥२२

शिविरों में पहुँच गये । उस समय राजा की आज्ञा से कृष्ण हस्तिनापुर चले गये । और पाँचों पाण्डवों ने वहाँ से निकल कर सरस्वती के तट पर अपना निवास स्थान बनाया था । आधीरात के समय द्रोणि (अश्वत्थामा), भोज और कृपाचार्य वहाँ पहुँच गये । इन लोगों ने भगवान् रुद्र की मानसिक स्तुति की । शिव ने उन्हें मार्ग प्रदान किया । उस समय बलवान् अश्वत्थामा शिवद्वारा प्राप्त तलवार से धृष्टद्युम्न आदि का शीघ्र बध करके उन दोनों के समेत वहाँ से अपने अभीष्ट स्थान चले गये । पार्षदों (सेवकों) में मरने से बचे हुए सूत ने पाण्डवों से उस नरसंहार का वर्णन किया । जिस प्रकार वह घटना हुई थी । उस समय शिव को अपराधी समझकर भीमादि पाण्डवों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने अस्त्रों द्वारा देवाधिदेव पिनाकी शंकर जी को क्षत-विक्षत किया—उनके अस्त्र शस्त्र शिव जी की शरीर में प्रविष्ट होकर वहीं रह गये । इसे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ । पश्चात् अपने हाथों की हथेली (झापड़) मुट्ठी (मुक्के) द्वारा उन पर प्रहार किया । उस समय भगवान् रुद्र ने उन्हें शाप दिया—तुमलोग कृष्ण के पुजारी हो, इसलिए मेरे द्वारा रक्षित रहने पर भी इसी पृथिवी में तुम्हारा वध होगा—कलियुग में पुनः जन्म ग्रहण करके इस प्रकार के अपने अपराध के फल का अनुभव करोगे ।' इतना कहकर शिव जी अन्तर्हित हो गये और पाण्डवगण दुःखी होकर अपने अपराध की क्षमा याचना के लिए भगवान् की शरण में गये । उस समय अस्त्र विहीन पाण्डव लोग कृष्ण समेत भगवान् रुद्र को मानसिक स्तुति द्वारा प्रसन्न करने लगे । वहाँ प्रत्यक्ष होकर शिव ने कहा—वर की याचना करो । इसे सुनकर कृष्ण ने कहा—आपके अंगों में प्रविष्ट उन अस्त्रों शस्त्रों को उन्हें लौटाकर उनके शाप के लिए कृपा कीजिये ।७-२०। इसे सुनकर शिव ने कहा—कृष्णदेव ! तुम्हें नमस्कार है । स्वामिन् ! इसमें मेरा अपराध नहीं है, मैं आप की माया से मोहित हो गया था । उसी से यह भयंकर शाप दे दिया । इसलिए मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती, इन

वत्सराजस्य पुत्रत्वं गमिऽष्यति युधिष्ठिरः । बलखानिरिति ख्यातः शिरोषाख्यपुराधिपः ॥२३
भीमो दुर्वचनाद्दुष्टो म्लेच्छयोनौ भविष्यति । वीरणो नाम विख्यातः स वै वनरसाधिपः ॥२४
अर्जुनांशश्च मद्भक्तो जनिष्यति महामतिः । पुत्रः परिमलस्यैव ब्रह्मानन्द इति स्मृतः ॥२५
कान्यकुब्जे हि नकुलो भविष्यति महाबलः । रत्नभानुसुतोसौ वै लक्ष्मणो नाम विश्रुतः ॥२६
सहदेवस्तु बलवाञ्जनिष्यति महामतिः । भीष्मसिंह सुतो जातो देवसिंह इति स्मृतः ॥२७
धृतराष्ट्रांश एवासौ जनिष्यत्यजमेरके । पृथिवीराज इति स द्रौपदी तत्सुता स्मृता ॥२८
वेला नाम्ना च विख्याता तारकः कर्ण एव हि । रक्तबीजस्तथा रुद्रो भविष्यति महीतले ॥२९
कौरवाश्च भविष्यन्ति मायायुद्धविशारदाः । पाण्डुपक्षाश्च ते सर्वे धर्मिणो बलशालिनः ॥३०

सूत उवाच

इति श्रुत्वा हरिः प्राह विहस्य परमेश्वरम् । मया शक्त्यवतारेण रक्षणीया हि पाण्डवाः ॥३१
महावती पुरी रम्या मायादेवीविनिर्मिता । देशराजसुतस्तत्र ममांशो हि जनिष्यते ॥३२
देवकीजठरे जन्मोदयसिंह इति स्मृतः । आल्हादो मम धामांशो जनिष्यति गुरुर्मम ॥३३
हत्वाग्निवंशजान्भूपान्स्थापयिष्यामि वै कलिम् । इति श्रुत्वा शिवो देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये विक्रमाख्यानकाले प्रथमोऽध्यायः ।१

लोगों का आंशिक जन्म होगा ही । युधिष्ठिर वत्सराज (वच्छराज) के बलखान (मलखान) नामक पुत्र और शिरीष (सिरसा) नगर के अधिनायक होंगे । दुष्टवचन कहने के नाते भी म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होकर वीरण नामक वनरस के अधिपति होंगे । महाबुद्धिमान् एवं मेरा भक्त अर्जुन अपने अंश से परिमल के यहाँ ब्रह्मानन्द नामक पुत्र उत्पन्न होंगे । कान्यकुब्ज प्रदेश में राजा रत्नभानु (रतीभान) के यहाँ महा बलवान् नकुल लक्ष्मण (लखन) नामक पुत्र होंगे । महाबुद्धिमान् एवं महाबली सहदेव भीष्म सिंह के देव सिंह नामक पुत्र होंगे । धृतराष्ट्र के अंश से पृथिवीराज नामक राजा अजमेर में उत्पन्न होगा, द्रौपदी जिसकी सुता होकर जन्म ग्रहण करेगी । उसका वहाँ वेला नाम होगा । कर्ण तारक (सादर) के नाम से उत्पन्न होंगे । रक्तबीज तथा रुद्र भी इस भूतल में जन्म ग्रहण करेंगे । ये कौरवगण मायावी होकर युद्ध निपुण होंगे किन्तु पाण्डव पक्ष के सभी धार्मिक एवं बलवान् होंगे ।२१-३०

सूत जी बोले—यह सुनकर कृष्ण ने हँसकर परमेश शिव जी से कहा—मैं शक्ति-अवतार द्वारा पाण्डवों की रक्षा करूँगा । माया देवी द्वारा विरचित महावती नामक पुरी में मेरे अंश से देशराज के द्वारा देवकी के उदर से पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका उदयसिंह नाम होगा । मेरे तेजपुञ्ज का अधिकांश रूप आल्हार (आल्हा) नाम से उत्पन्न होगा । जिसके द्वारा अग्निवंशीय राजाओं के नाशपूर्वक कलि की स्थापना करूँगा । यह सुनकर शिव जी उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।३१-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
विक्रमाख्यान काल नामक पहला अध्याय समाप्त ।१।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शालिवाह्नकालवर्णनम्

सूत उवाच

प्रातःकाले च सम्प्राप्ते पाण्डवाः पुत्रशोकिनः । प्रेतकार्याणि ते कृत्वा भीष्मान्तिकमुपाययुः ।।१
राजधर्मान्मोक्षधर्मान्दानधर्मान्विभागशः । श्रुत्वायजन्नश्वमेधैस्त्रिभिरुत्तमकर्मभिः ।।२
षट्त्रिंशदब्दराज्यं हि कृत्वा स्वर्गपुरं ययुः । जनिष्यन्ते तदंशा वै कलिधर्मविवृद्धये ।।३

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिः सर्वान्पुनः सूतो वदिष्यति । गच्छध्वं मुनयः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् ।।
चक्रतीर्थे समाधिस्थो ध्यायेऽहं त्रिगुणात्परम् ।।४
इति श्रुत्वा तु मुनयो नैमिषारण्यवासिनः । योगसिद्धिं समास्थाय गमिष्यन्त्यात्मनोऽन्तिके ।।५
द्वादशाब्दशते कालेऽतीते ते शौनकादयः ।।६
उत्थाय देवखाते च स्नानध्यानादिकाः क्रियाः । कृत्वा सूतान्तिकं गत्वा वदिष्यन्ति पुनर्वचः ।।७

ऋषय ऊचुः

विक्रमाख्यानकालोऽयं द्वापरे च शिवाज्ञया । विनीतान्भगवन्भूमौ तदा तान्नृपतीन्वद ।।८

अध्याय २

शालिवाह्नकाल का वर्णन

सूत जी बोले—शोकाकुल पाण्डवों ने प्रातः काल होने पर निधन हुए उन प्राणियों के प्रेतकार्य समाप्त कर भीष्म के यहाँ प्रस्थान किया । उनके समीप में पहुँचकर राजधर्म, मोक्षधर्म, और दानधर्म का सविभाग श्रवण किया । पश्चात् तीन अश्वमेध यज्ञों का सविधान अनुष्ठान सुसम्पन्न करते हुए के छत्तीस वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत स्वर्गपुरी चले गये । पुनः उन्हीं के अंश कलिधर्म के वृद्ध्यर्थ जन्म ग्रहण करेंगे ।१-३

व्यास जी बोले—इतना कहकर सूत जी पुनः उन महर्षियों से कहेंगे कि मैं अब योगनिद्रा के अधीन हो रहा हूँ । अतः आप लोग चले जाइये । मैं चक्रतीर्थ में समाधिस्थ होकर त्रिगुणातीत उस परब्रह्म का चिंतन करूँगा इसे सुनकर नैमिषारण्यवासी मुनिगण भी योग-सिद्धि द्वारा अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष प्राप्त करेंगे । पुनः बारह सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरात वे सौनकादि गण जागृत होकर उस देव सरोवर में स्नान ध्यानादि क्रिया सुसम्पन्न करने के उपरांत सूत जी के समीप पहुँच कर उनसे कहेंगे ।४-७

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! द्वापर में भगवान् शिव जी की जो आज्ञा हुई थी, उसके अनुसार विक्रम-काल (संवत्सर) का यह समय उपस्थित है, इसलिए इस भूतल के राजाओं का वर्णन कीजिये ।८

सूत उवाच

स्वर्गते विक्रमादित्ये राजानो बहुधाऽभवन् । तथाष्टादशराज्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥९
पश्चिमे सिन्धुनद्यन्ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे । उत्तरे बदरीस्थाने पूर्वे च कपिलान्तिके ॥१०
अष्टादशैव राष्ट्राणि तेषां मध्ये बभूविरे । इन्द्रप्रस्थं च पाञ्चालं कुरुक्षेत्रं च कापिलम् ॥११
अन्तर्वेदी व्रजथ्यैवाजमेरं मरुधन्व च । गौर्ज्जरं च महाराष्ट्रं द्राविडं च कलिङ्गकम् ॥१२
आवन्त्यं चोडुपं वङ्गं गौडं मागधमेव च । कौशल्यं च तथा ज्ञेयं तेषां राजा पृथक्पृथक् ॥१३
नानाभाषास्थितास्तत्र बहुधर्मप्रवर्तकाः । एवमब्दशतं जातं ततस्ते वै शकादयः ॥१४
श्रुत्वा धर्मविनाशं च बहुवृन्दैः समन्विताः । केचित्तीर्त्वा सिन्धुनदीमार्य्यदेशं समागताः ॥१५
हिमपर्वतमार्गेण सिन्धुमार्गेण चागमन् । जित्वार्य्याल्लाँठयित्वा तान्स्वदेशं पुनराययुः ॥१६
गृहीत्वा योषितस्तेषां परं हर्षमुपाययुः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः ॥१७
विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं गृहीतवान् । जित्वा शकान्दुराधर्षाश्चीनतैत्तिरिदेशजान् ॥१८
बाह्लीकान्कामरूपांश्च रोमजान्खुरजाञ्छठान् । तेषां कोशान्गृहीत्वा च दण्डयोग्यानकारयत् ॥१९
स्थापिता तेन मर्य्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक्पृथक् । सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्य्यस्य चोत्तमम् ॥२०
म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना । एकदा तु शकाधीशो हिमतुङ्गं समाययौ ॥२१
हूणदेशस्य मध्ये वै गिरिस्थं पुरुषं शुभम् । ददर्श बलवान्राजा गौराङ्गं श्वेतवस्त्रकम् ॥२२

सूत जी बोले—राजा विक्रमादित्य के स्वर्गीय होने के उपरांत उस वसुधातल पर अनेक राजा एवं अट्ठारह राज्य हुए हैं, मैं उनके नाम बता रहा हूँ सुनो ! पश्चिम में सिंधु नदी, दक्षिण में सेतुबन्ध, उत्तर में बदरीनाथ धाम और पूर्व में कपिलाश्रम, इन्ही के मध्य में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), पांचाल (पंजाब), कुरुक्षेत्र, कपिला, अन्तर्वेदी, व्रजथ्य, अजमेर, मरुधन्वा, गौर्ज्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, द्राविड, कलिंग, अवंती, उडुप,, बंग (बंगाल) गौड़, मागध और कोशल नामक ये अट्ठारह राज्य स्थापित हुए । इनके पृथक्-पृथक् राजा थे, जो अनेक भाँति के भाषा-भाषी, और अनेक धर्म के प्रवर्तक थे । सौ वर्ष के उपरांत शकादि गणों ने उनके धर्म का विनष्ट होना सुनकर अपने अनेक सहायक वृन्दों समेत, जो सिंधु नदी को पारकर इस आर्य प्रदेश में आये थे तथा कुछ हिमालय पर्वत और कुछ लोग समुद्र मार्ग से, आर्यों पर विजय प्राप्तकर उन्हें लूट-पाट कर अपने देश लौट गये ।९-१६। साथ में इनकी स्त्रियों का अपहरण भी करते गये, जिससे उन्हें वहाँ पहुँचने पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त होने लगा । उसी समय शालिवाहन नामक राजा ने जो विक्रमादित्य का पौत्र कहा जाता था, अपने पिता का राज्य पुनः अपने अधीन किया । उस विजय में उसने दुर्धर्ष शकों चीन और तैत्तिरि (तातार) देश में उत्पन्न बाह्लीक, कामरूप, रोम तथा खुर (खुरासन) के राजाओं को बाँधकर उनके कोश (खजानों) को दंड के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने ही म्लेच्छों और आर्यों की भिन्न-भिन्न मर्यादा स्थापित की। आर्यों के राष्ट्र का नाम करण सिन्धुस्थान हुआ। (जो आधुनिक समय में हिंदुस्तान के रूप में है)· उस महात्मा ने म्लेच्छों का स्थान सिन्धु के पार प्रदेश में स्थापित किया। एक बार शकाधिनायक ने हिमालय के एक टीले की यात्रा की।१७-२१। वहाँ हूण प्रदेश के मध्य में उस पर्वतपर एक शुभमूर्ति वाले पुरुष का दर्शन किया, जो गौरवर्ण और श्वेतवस्त्र से सुसज्जित

को भवानिति तं प्राह स होवाच मुदान्वितः । ईशपुत्रं च मां विद्धि कुमारीगर्भसंभवम् ।।२३
म्लेच्छधर्मस्य वक्तारं सत्यव्रतपरायणम् । इति श्रुत्वा नृपः प्राह धर्मः को भवतो मतः ।।२४
श्रुत्वोवाच महाराज प्राप्ते सत्यस्य संक्षये । निर्मर्यादे म्लेच्छदेशे मसीहोऽहं समागतः ।।२५
ईशामसी च दस्यूनां प्रादुर्भूता भयङ्करी । तामहं म्लेच्छतः प्राप्य मसीहत्वमुपागतः ।।२६
म्लेच्छेषु स्थापितो धर्मो मया तच्छृणु भूपते । मानसं निर्मलं कृत्वा मलं देहे शुभाशुभम् ।।२७
नैगमं जपमास्थाय जपेत् निर्मलं परम् । न्यायेन सत्यवचसा मनसैक्येन मानवः ।।२८
ध्यानेन पूजयेदीशं सूर्यमण्डलसंस्थितम् । अचलोऽयं प्रभुः साक्षात्तथा सूर्योऽचलः सदा ।।२९
तत्त्वानां चलभूतानां कर्षणः स समन्ततः । इति कृत्येन भूपाल मसीहा विलयं गता ।।३०
ईशमूर्तिर्हृदि प्राप्ता नित्यशुद्धा शिवङ्करी । ईशामसीह इति च मम नाम प्रतिष्ठितम् ।।३१
इति श्रुत्वा स भूपालो नत्वा तं म्लेच्छपूजकम् । स्थापयामास तं तत्र म्लेच्छस्थाने हि दारुणे ।।३२
स्वराज्यं प्राप्तवान्राजा हयमेधमचीकरत् । राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दं स्वर्गलोकमुपाययौ ।।३३
स्वर्गते नृपतौ तस्मिन्यथा चासीत्तथा शृणु ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये शालिवाहनकालो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

था । 'आप कौन हैं', ऐसा पूँछने पर उसने प्रसन्न होकर कहा—मैं ईश पुत्र हूँ, मेरा जन्म कुमारी के गर्भ से हुआ है । मैं म्लेच्छधर्म का प्रवक्ता और सत्यव्रत का पारायण करता हूँ । इसे सुनकर राजा ने कहा—धर्म के विषय में आप का क्या मत है ? उसने कहा—महाराज ! इस म्लेच्छ देश में जो सत्यहीन एवं मर्यादा विहीन है, मसीहा होकर आया हूँ । यह ईसामसी ही दस्युगणों के लिए भीषण रूप धारण करेगी । उसी को मैं म्लेच्छों से प्राप्त कर मसीहा हुआ हूँ । भूपते ! म्लेच्छों में मैं धर्म की स्थापना कर चुका हूँ । बता रहा हूँ, सुनिये ! देह में स्थित शुभाशुभ रूपी मलग्रस्त मन को निर्मल करके मनुष्य सत्य एवं न्याय को अपना कर सावधान होकर वैदिक मंत्र जपपूर्वक सूर्य मण्डल स्थित उस निर्मल परमेश की ध्यान पूजा करे । जिस प्रकार परमेश्वर अचल हैं उसी भाँति सदैव साक्षात् सूर्य भी । राजन् ! प्राणियों के नश्वर तत्त्वों (पंच तत्त्वों) का चारों ओर से कर्षण करने खींचने से ही, इस कर्म द्वारा मसीहा नष्ट हो गया और हृदय में ईश की मूर्ति जो नित्य शुद्ध तथा कल्याणप्रद है, स्थित हो गई । इसीलिए मेरा नाम 'ईसामसीह' है इसे सुनकर राजा ने उस म्लेच्छ पूजक को नमस्कार पूर्वक उस भीषण म्लेच्छ स्थान में प्रतिष्ठित कर दिया । पश्चात् अपने राज्य में लौटकर राजा ने अश्वेमधयज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न करके साठ वर्ष राज्योपभोग के उपरांत स्वर्ग को प्रस्थान किया । राजा के स्वर्ग चले जाने पर पुनः जो कुछ हुआ, कह रहा हूँ, सुनो ! ।२२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में शालिवाहन काल का वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।।२।

अथ तृतीयोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

शालिवाहनवंशे च राजानो दश चाभवन् । राज्यं पञ्चशताब्दं च कृत्वा लोकान्तरं ययुः ॥१
मर्य्यादा क्रमतो लीना जाता भूमण्डले तदा । भूपतिर्दशमो यो वै भोजराज इति स्मृतः ॥
दृष्ट्वा प्रक्षीणमर्य्यादां बली दिग्विजयं ययौ ॥२
सेनया दशसाहस्र्या कालिदासेन संयुतः । तथान्यैर्ब्राह्मणैः सार्द्धं सिन्धुपारमुपाययौ ॥३
जित्वा गान्धारजान्म्लेच्छान्काश्मीरान्नारवाञ्छठान् । तेषां प्राप्य महाकोशं दण्डयोग्यानकारयत् ॥४
एतस्मिन्नन्तरे म्लेच्छ आचार्य्येण समन्वितः । महामद इति ख्यातः शिष्यशाखासमन्वितः ॥५
नृपश्चैव महादेवं मरुस्थलनिवासिनम् । गङ्गाजलैश्च संस्नाप्य पञ्चगव्यसमन्वितैः ॥
चन्दनादिभिरभ्यर्च्य तुष्टाव मनसा हरम् ॥६

भोजराज उवाच

नमस्ते गिरिजानाथ मरुस्थलनिवासिने । त्रिपुरासुरनाशाय बहुमायाप्रवर्त्तिने ॥७
म्लेच्छैर्गुप्ताय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे । त्वं मां हि किङ्करं विद्धि शरणार्थमुपागतम् ॥८

अध्याय ३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—शालिवाहन के वंश में दश राजाओं ने क्रमशः जन्म ग्रहणकर पाँच सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया है । पश्चात् वे स्वर्गगामी हो गये । उन लोगों के राजकाल में मर्यादा क्रमशः विलीन होती गई, यहाँ तक कि दशवें राजा भोज के समय मर्यादा इस भूतल में नाममात्र रह गई थी उस बली राजा ने मर्यादा को नष्ट-भ्रष्ट देखकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया, जिसमें दश सहस्र सेना के साथ कालिदास भी थे । अन्य ब्राह्मणों को भी साथ रखकर वह राजा सर्वप्रथम सिंधु नदी के पार पहुँचकर गांधार प्रदेश के म्लेच्छों और काश्मीर के (नारव) दुष्टों पर विजय प्राप्ति पूर्वक उनके कोशों (खजानों) को दण्डरूप में अपनाते हुए आगे बढ़ा । उसी समय 'महामद' (मोहम्मद) नामक म्लेच्छों का आचार्य (गुरु) अपने शिष्यों समेत प्रचार कर रहा था । राजा भोज भी मरुस्थल प्रदेश में स्थित शिव जी की पूजा पंचगव्य समेत गंगाजल एवं चन्दनादि से सुसम्पन्न करके उनकी स्तुति करने लगे—।१-६

भोजराज बोले—मरुभूमि के निवासी गिरिजापति को नमस्कार है, जिन्होने अत्यन्त माया के प्रवर्तक त्रिपुरासुर का नाश किया है, म्लेच्छों द्वारा रक्षित शुद्ध एवं सच्चिदानंद रूप हैं । मैं आपका सेवक हूँ, आपकी शरण में उपस्थित हूँ ।७-८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स्तवं देवः शब्दमाह नृपाय तम्। गन्तव्यं भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले ।।९
म्लेच्छैस्सुदूषिता भूमिर्वाहीका नाम विश्रुता। आर्य्यधर्मो हि नैवात्र वाहीके देशदारुणे ।।१०
बभूवात्र महामायी योऽसौ दग्धो मया पुरा। त्रिपुरो बलिदैत्येन प्रेषितः पुनरागतः ।।११
अयोनिः स वरो मत्तः प्राप्तवान्दैत्यवर्द्धनः। महामद इति ख्यातः पैशाचकृतितत्परः ।।१२
नागन्तव्यं त्वया भूप पैशाचे देशधूर्तके। मत्प्रसादेन भूपाल तव शुद्धिः प्रजायते ।।१३
इति श्रुत्वा नृपश्चैव स्वदेशान्पुनरागमत्। महामदश्च तैः सार्द्धं सिन्धुतीरमुपाययौ ।।१४
उवाच भूपतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः। तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः ।।१५
ममोच्छिष्टं सभुञ्जीयाद्यथा तत्पश्य भो नृप। इति श्रुत्वा तथा दृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ।।१६
म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्तस्य भूपस्य दारुणे ।।१७
तच्छ्रुत्वा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम्। माया ते निर्मिता धूर्त नृपमोहनहेतवे ।।१८
हनिष्यामि दुराचारं वाहीकं पुरुषाधमम्। इत्युक्त्वा स द्विजः श्रीमान्नवार्णजपतत्परः ।।१९
जप्त्वा दशसहस्रं च तद्दशांशं जुहाव सः। भस्म भूत्वा स मायावी म्लेच्छदेवत्वमागतः ।।२०
भयभीतास्तु तच्छिष्या देशं वाहीकमाययुः। गृहीत्वा स्वगुरोर्भस्म मदहीनत्वमागतम् ।।२१
स्थापितं तैश्च भूमध्ये तत्रोषुर्मदतत्पराः। मदहीनं पुरं जातं तेषां तीर्थं समं स्मृतम् ।।२२
रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः। पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि सोऽब्रवीत् ।।२३

सूत जी बोले—इस स्तुति को सुनकर शिव जी ने राजा से कहा—भोजराज! आप महाकालेश्वर स्थान के वाहीक नामक भूमि प्रदेश में जाइये, वह भूमि म्लेच्छों द्वारा दूषित हो रही है। उस भीषण 'वाहीक प्रान्त में आर्यधर्म नहीं है। यहाँ बलि दैत्य से प्रेषित यही त्रिपुरासुर पुनः आ गया है, जिस महामायावी को मैंने भस्म कर दिया था। वह अयोनि से उत्पन्न, श्रेष्ठ, एवं दैत्यवंश का वर्द्धक है। 'महामद' (मुहम्मद) उसका नाम है, जो सदैव पिशाच कर्म ही करता रहता है। अतः राजन् तुम इस धूर्त एवं पिशाच के प्रदेश में मत ठहरो, मेरी कृपा से तुम्हारी शुद्धि हो जायगी। इसे सुनकर राजा अपने देश के लिए चल दिये। अपने शिष्यों समेत महामद भी सिंधु नदी के तटपर आया। उस कुशल मायावी ने प्रेम भाव से राजा से कहा—महाराज! आपके देव मेरे दास हैं, नृप! देखिये ये मेरा उच्छिष्ट भोजन करते हैं। इसें देख सुनकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ।९-१६। और वह भी उस भीषण म्लेच्छ-धर्म का अनुयायी होने के लिए सोचने लगा। उस समय कालिदास ने क्रुद्ध होकर महामद से कहा—धूर्त! राजा को मोहित करने के लिए यह तुम्हारी माया है, अतः तुम ऐसे दुराचारी एवं वाहीक के अधमाधम का मैं वध कर दूँगा। इतना कहकर वह ब्राह्मण नवार्ण मंत्र का दशसहस्त्र जप करने के उपरांत उसके दशांश से आहुति-प्रदान करने लगा। उसी में वह भस्म होकर म्लेच्छों का देवता हो गया। पश्चात् उसके सभी शिष्यगण भयभीत होकर वाहीक देश चले गये। वहाँ अपने गुरु (मुहम्मद) का भस्म ले जाकर भूमि के मध्य (नीचे) स्थापित करके वे लोग शान्त हो गये। उस स्थान को 'मदहीन पुर' (मदीना) के नाम से स्थापित किया। वही उन लोगों का तीर्थ स्थान है।१७-२२। रात्रि के समय वह मायावी देव पिशाच रूप से भोज

आर्य्यधर्म्मो हि ते राजन्सर्वधर्मोत्तमः स्मृतः । ईशाज्ञया करिष्यामि पैशाचं धर्मदारुणम् ॥२४
लिङ्गच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी स दूषकः । उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥२५
दिना कौलं च पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम । मुसलेनैव संस्कारः कुशैरिव भविष्यति ॥२६
तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्मदूषकाः । इति पैशाचधर्मश्च भविष्यति मया कृतः ॥२७
इत्युक्त्वा प्रययौ देवः स राजा गेहमाययौ । त्रिवर्णे स्थापिता वाणी सांस्कृती स्वर्गदायिनी ॥२८
शूद्रेषु प्राकृती भाषा स्थापिता तेन धीमता । पञ्चाशदब्दकालं तु राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२९
स्थापिता तेन मर्य्यादा सर्वदेवोपमानिनी । आर्य्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः ॥३०
आर्य्यवर्णाः स्थितास्तत्र विन्ध्यान्ते वर्णसङ्कराः । नरा मुसलवन्तश्च स्थापिताः सिन्धुपारजाः ॥३१
बर्बरे तुषदेशे च द्वीपे नानाविधे तथा । ईशामसीहधर्म्माश्च सुरै राज्ञैव संस्थिताः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

स्वर्गते भोजराजे तु सप्तभूपास्तदन्वये । जाताश्चाल्पायुषो मन्दास्त्रिशताब्दान्तरे मृताः ॥१

से कहने लगा—राजन् ! तुम्हारा आर्यधर्म सभी धर्मों से उत्तम है । मैं तो ईशा की आज्ञावश इस दारुण धर्म का प्रचार कर रहा हूँ—लिंग कटाना, शिखा (चोटी) हीन होकर केवल दाढ़ी रखना, बड़ी बड़ी बाते करना और सर्वभक्षी मेरे वर्ग के लोग होंगे । कौलतन्त्र के बिना ही वे पशुओं के भक्षण करेंगे, कुश के स्थान पर मूसल द्वारा अपने सभी संस्कार उनके होंगे इसीलिए यह मुसलमान जाति धर्मदूषक कही जायगी । इस प्रकार का पैशाच धर्म मैं विस्तृत करूँगा इतना कहकर वह चला गया और राजा भी अपने घर लौट आये । तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों) में इन्होंने स्वर्गप्रद संस्कृत वाणी और शूद्रों में प्राकृत भाषा स्थापित की । पश्चात् पचास वर्ष राज करने के उपरांत स्वर्गगामी हो गये । उन्होंने ही सर्व देवों की मर्यादा तथा विंध्य हिमालय के मध्य प्रदेश की पुण्य भूमि में आर्यावर्त नामक देश स्थापित किया । वहाँ आर्य जाति के लोग रहते हैं और विंध्य के अन्त में वर्णसंकर गण तथा सिंधुपार के मुसलमानों को भी स्थान दिया । ईसामसीह धर्म, वर्वर, तुष तथा सभी द्वीपों में देव एवं राजाओं की भाँति स्थापित हो गया ।२३-३२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—राजा भोज के स्वर्गीय होने के उपरांत उनके कुल के क्रमशः सात राजा और हुए थे,

बहुभूपवतो भूमिस्तेषां राज्ये बभूव ह । वीरसिंहश्च यो भूपः सप्तमः सम्प्रकीर्तितः ॥२
तदन्वये त्रिभूपाश्च द्विशताब्दान्तरे मृताः । गङ्गासिंहश्च यो भूपो दशमः स प्रकीर्तितः ॥३
कल्पक्षेत्रे च राज्यं स्वं कृतवान्धर्मतो नृपः । अन्तर्वेद्यां कान्यकुब्जे जयचन्द्रो महीपतिः ॥४
इन्द्रप्रस्थेनङ्गपालस्तोमरान्वयसम्भवः। अन्ये च बहवो भूपा बभूवुर्ग्रामराष्ट्रपाः ॥५
अग्निवंशस्य विस्तारो बभूव बलवत्तरः । पूर्वे तु कपिलस्थाने वाहीकान्ते तु पश्चिमे ॥६
उत्तरे चीनदेशान्ते सेतुबन्धे तु दक्षिणे । षष्टिलक्षाश्च भूपाला ग्रामपा बलवत्तराः ॥७
अग्निहोत्रस्य कर्तारो गोब्राह्मणहितैषिणः । बभूवुर्द्वापरसमा धर्मकृत्यविशारदाः ॥८
द्वापराख्यन्समः कालः सर्वत्र परिवर्तते । गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥९
ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो देशे देशे स्थितो मखः । आर्यधर्मकरा म्लेच्छा बभूवुः सर्वतोमुखाः ॥१०
इति दृष्ट्वा कलिर्घोरो म्लेच्छया सह भीरुकः । नीलाद्रौ प्राप्य मतिमान्हरिं शरणमाययौ ॥११
द्वादशाब्दमिते काले ध्यानयोगपरोऽभवत् । ध्यानेन सच्चिदानन्दं दृष्ट्वा कृष्णं सनातनम् ॥१२
तुष्टाव मनसा तत्र राधया सहितं हरिम् । पुराणमजरं नित्यं वृन्दावननिवासिनम् ॥१३

कलिरुवाच

साष्टाङ्गदण्डवत्स्वामिन्गृहाण मम चेश्वर । पाहि मां शरणं प्राप्तं चरणे ते कृपानिधे ॥१४

किंतु अल्पायु होने के नाते उन भाग्यहीनों का राजकाल तीन सौ वर्ष के भीतर ही समाप्त हो गया । और वे स्वर्गीय होते गये । उनके राज्य के अन्तर्गत छोटे-छोटे अनेक राजा हुए । उनके कुल के सातवें राजा का नाम वीरसिंह बताया जाता है । उनके कुल के तीन राजा दो सौ वर्ष के अन्तर्गत स्वर्गीय हो गये थे । दशवें राजा का नाम गंगा सिंह बताया जाता है, जिसने कल्पक्षेत्र में अपने राज्य का धर्मतः उपभोग किया है । अन्तर्वेदी नामक कान्यकुब्ज प्रदेश में जयचन्द्र नामक राजा हुआ तथा इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में तोमर कुलभूषण अनंगपाल नामक राजा हुआ । इसी भांति ग्राम-राष्ट्रपाल (जमीदार-तालुकेदार) के रूप में अनेक राजा हुए । अग्निवंश का बलवत्तर विस्तार हुआ है पूर्व में कपिलाश्रम, पश्चिम में वाहीकान्त उत्तर में चीन के अन्त तक और दक्षिण में सेतुबन्ध तक विस्तृत भूमि में साठ लाख बलवान ग्रामाधिप (जमीदार-तालुकेदार) हुए हैं, जो अग्निहोत्र करने वाले तथा गो-ब्राह्मण के हितैषी थे । उन धर्मकुशल राजाओं के समय में द्वापर के समान ही धर्म का प्रचार था, इसी से सभी स्थानों में द्वापर के समय का ही अनुभव हो रहा था । सभी घरों में धन था, प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक थे, गाँव-गाँव में देवता प्रतिष्ठित थे और देश-देश में यज्ञानुष्ठान का महारम्भ हुआ था । उस समय चारों ओर म्लेच्छ राजा आर्य-धर्म के ही अनुयायी थे । इसे देखकर घोर कलि म्लेच्छ समेत अत्यन्त भीरु होकर नीलांचल पर पहुँचकर उस बुद्धिमान् ने भगवान् की शरण ली । वहाँ उसने बारह वर्ष तक ध्यानयोग किया—अपने ध्यान में सच्चिदानन्द एवं सनातन भगवान् कृष्ण को देखकर उसने राधा समेत उन भगवान् को मानसिक स्तुति द्वारा प्रसन्न किया जो पुराण (प्राचीन) रूप, अजर और नित्य वृन्दावन में निवास करते हैं । १-१३

कलि ने कहा—स्वामिन् ! मेरे किये हुए साष्टांग दण्डवत् को आप स्वीकार करें । कृपानिधान ! मैं आपके चरण की शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये । आप समस्त पापों के नाशक तथा समस्त काल-

सर्वपापहरस्त्वं वै सर्वकालकरो हरिः । भवान्गौरः सत्ययुगे त्रेतायां रक्तरूपकः ।।१५
द्वापरे पीतरूपश्च कृष्णत्वं मम दिष्टके । मत्पुत्राश्च स्मृता म्लेच्छा आर्य्यधर्मत्वमागताः ।।१६
चतुर्गेहं च मे स्वामिन्द्यूतं मद्यं सुवर्णकम् । स्त्री हास्यं चाग्निवंश्यैश्च क्षत्रियैश्च विनाशितम् ।।१७
त्यक्तदेहस्त्यक्तकुलस्त्यक्तराष्ट्रो जनार्दन । त्वत्पादाम्बुजमाधाय स्थितोऽहं शरणं त्वयि ।।१८
इति श्रुत्वा स भगवान्कृष्णः प्राह विहस्य तम् । भो कले तव रक्षार्थं जनिष्येहं महावतीम् ।।१९
ममांशो भूमिमासाद्य क्षयिष्यति महाबलान् । म्लेच्छवंशस्य भूपालान्स्थापयिष्यति भूतले ।।२०
इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत । कलिस्तु म्लेच्छया सार्धं परमानन्दमाप्तवान् ।।२१
एतस्मिन्नन्तरे विप्र यथा जातं शृणु स्वयम् । आभीरी वाक्सरे ग्रामे व्रतपा नाम विश्रुता ।।२२
नवदुर्गाव्रतं श्रेष्ठं नववर्षं चकार ह । प्रसन्ना चण्डिका प्राह वरं वरय शोभने ।।२३
तां यदि मे मातर्वरो देयस्त्वयेश्वरि । रामकृष्णसमौ बालौ भवेयातां ममान्वये ।।२४
तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत । वसुमान्नाम नृपतिस्तस्या रूपेण मोहितः ।।२५
उद्वाह्य धर्मतो भूपः स्वगेहे तामवासयत् । तस्यां जातौ नृपात्पुत्रौ देशराजस्तु तद्वरः ।।२६
आवार्यो वत्सराजश्च शतहस्तिसमो बले । जित्वा तौ मागधान्देशान्राज्यवन्तौ बभूवतुः ।।२७
शतयत्तः स्मृतो म्लेच्छः शूरो वनरसाधिपः । तत्पुत्रो भीमसेनांशो वीरणोभूच्छिवाज्ञया ।।२८

रूप भगवान् हैं। आप का रूप सत्ययुग में गौर, त्रेता में रक्तवर्ण, द्वापर में पीतवर्ण और मेरे समय सौभाग्यवश आप कृष्णरूप है। मेरे पुत्र जिन्हें म्लेच्छ कहा जाता है, आर्यधर्म के अनुयायी हो गये हैं।१४-१६। स्वामिन् ! मेरे लिए चार घरों का निर्माण किया गया है—द्यूत (जूआ खेलने का स्थान) मद्य का स्थान, सुवर्ण-स्थान, और स्त्रियों के हास्य। इन्हें अग्निवंश के क्षत्रियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। जनार्दन ! मैं इस समय देह, कुल और राष्ट्र का त्यागकर आपके चरणकमल में स्थित हूँ। यह सुनकर भगवान् कृष्ण ने मन्दमुस्कान करते हुए कहा—कले ! तुम्हारी रक्षा के लिए महाबली मैं उत्पन्न हूँगा। वहाँ मेरा अंश भूतल में पहुँचकर उन बलशाली राजाओं का विनाश करके महीतल में म्लेच्छ वंश के राजाओं की प्रतिष्ठा करेंगे। इतना कहकर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और म्लेच्छ समेत कलि को परम आनन्द की प्राप्ति हुई। उस बीच विप्र ! जो घटना घटी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! बाक्सर (बक्सर) नामक गाँव में एक व्रतपा नामकी आभीरी (अहीरिन) रहती थी, जिसने नववर्ष तक अनवरत श्री दुर्गा जी की उपासना की थी। प्रसन्न होकर उससे चण्डिका देवी ने कहा—शोभने ! वर की याचना करो। उसने कहा—मातः ! यदि आपको वर प्रदान करना है, तो ईश्वरि (स्वामिनि) मेरे कुल में रामकृष्ण के समान दो बलशाली बालकों की उत्पत्ति हो।' इसे स्वीकार करके देवी उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गई। वसुमान् नामक एक राजा ने उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उसके साथ धार्मिक विवाह संस्कार सुसम्पन्न करके उसे अपने महल में रख लिया। उस राजा के उस रानी द्वारा 'देशराज और कनिष्ठ वत्सराज' नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो सौ हाथी के समान बलवान् थे। उन दोनों ने मगध के राजा पर विजय प्राप्तकर वहाँ के राजा हो गये। वनरस के अधिपति शतयत्त (सैयद) नामक म्लेच्छ अत्यन्त शूर था। उसके शिव की आज्ञावश भीमसेन के अंश से उत्पन्न, वीरन नामक पुत्र हुआ।१७-२८। एक म्लेच्छ ताड़ के

तालवृक्षप्रमाणेन चोर्ध्ववेगो हि तस्य वै । तालनो नाम विख्यातः शतयत्नेन वै कृतः ।।२९
ताभ्यां नृपाभ्यां तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् । युद्धेन हीनतां प्राप्तस्तालनो बलवत्तरः ।।३०
तदा मैत्री कृत्वा ताभ्यां तालनेन समन्विता । जयचन्द्रपरीक्षार्थे त्रयः शूराः समाययुः ।।३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहासमुच्चयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इन्द्रप्रस्थेऽनङ्गपालोऽनपत्यश्च महीपतिः । पुत्रार्थं कारयामास शैवं यज्ञं विधानतः ।।१
कन्यके च तदा जाते शिवभागप्रसादतः । चन्द्रकान्तिश्च ज्येष्ठा वै द्वितीया कीर्तिमालिनी ।।२
कान्यकुब्जाधिपायैव चन्द्रकान्तिं पितादददत् । देवपालाय शुद्धाय राष्ट्रपालान्वयाय च ।।३
सोमेश्वराय भूपाय चपहानिकुलाय तु । अजमेराधिपायैव तथा वै कीर्तिमालिनीम् ।।४
जयशर्मा द्विजः कश्चित्समाधिस्थो हिमालये । दृष्ट्वा भूपोत्सवं रम्यं राज्यार्थे स्वमनोऽदधत् ।।५
त्यक्त्वा देहं स शुद्धात्मा चन्द्रकान्त्याः सुतोऽभवत् । जयचन्द्र इति ख्यातो बाहुशाली जितेन्द्रियः ।।

बराबर ऊँचाई तक कूदता था इसीलिए उसका तालन नाम रखा गया था उस समय उससे सैयद का रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हुआ । उसमें बलवान् होने के नाते तालन की विजय हुई । पश्चात्, आपस में मित्रता करके वे तीनों शूर जयचंद्र की परीक्षा के लिए उनके यहाँ गये ।२९-३१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहास समुच्चय वर्णन
नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के राजा अनंगपाल ने पुत्रार्थ (पुत्रेष्टि नामक) यज्ञ का सविधान अनुष्ठान आरम्भ किया । भगवान् शिव की प्रसन्नता से 'चन्द्रकांति और कीर्तिमालिनी, नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं । पिता ने चन्द्रकान्ति का पाणिग्रहण कान्यकुब्ज (कन्नौज) के अधीश्वर राजा देवपाल द्वारा सुसम्पन्न कराया, जो शुद्ध एवं राष्ट्रपाल के कुल में उत्पन्न था । उसी प्रकार कीर्तिमालिनी का पाणिग्रहण राजा सोमेश्वर के साथ सुसम्पन्न हुआ, जो चपहानि कुल में उत्पन्न होकर अजमेर का अधीश्वर था । उस समय जय शर्मा नामक कोई ब्राह्मण हिमालय पर्वत पर समाधिस्थ होकर कठिन तप कर रहा था । राजा के यहाँ उस राज महोत्सव को देखकर उसे भी राजा होने की इच्छा हुई । पश्चात् उस शुद्धात्मा ने देह परित्याग कर पुनः चन्द्रकान्ति के गर्भ से जन्म ग्रहण किया, जो जयचन्द्र

रत्नभानुश्च सञ्जज्ञे शूरस्तस्यानुजो बली ॥६
स जित्वा गौडवङ्गादीन्मरुदेशान्मदोत्कटान्। दण्डयान्कृत्वा गृहं प्राप्य भ्रात्राज्ञातत्परोऽभवत् ॥७
गङ्गासिंहस्य भगिनी नाम्ना वीरवती शुभा। रत्नभानोश्च महिषी बभूव वरवर्णिनी ॥८
नकुलांशस्तदा भूमौ तस्यां जातः शिवाज्ञया। लक्षणो नाम बलवान्खड्गयुद्धविशारदः ॥
स सप्ताब्दान्तरे प्राप्ते पितुस्तुल्यो बभूव ह ॥९
त्रयश्च कीर्तिमालिन्यां पुत्रा जाता मदोत्कटाः। धुन्धुकारश्च प्रथमस्ततः कृष्णकुमारकः ॥
पृथिवीराज कनिष्ठात्मज इति स्मृतः ॥१०
द्वादशाब्दवयः प्राप्तः सिंहखेलस्ततोऽभवत्। श्रुत्वा चानङ्गपालश्च तस्मै राज्यं स्वयं ददौ ॥
गत्वा हिमगिरिं रम्यं योगध्यानपरोऽभवत् ॥११
मथुरायां धुन्धकारोऽजमेरे च ततोऽनुजः। राजा बभूव नीतिज्ञस्तौ सुतौ पितुराज्ञया ॥१२
प्रद्योतश्चैव विद्योतः क्षत्रियौ चन्द्रवंशजौ। मन्त्रिणौ तस्य भूपस्य बलवन्तौ मदोत्कटौ ॥१३
प्रद्योततनयो जातो नाम्ना परिमलो बली। लक्षसेनाधिपः सो हि तेन राज्ञैव संस्कृतः ॥१४
विद्योताद्भीष्मसिंहश्च गजसेनाधिपोऽभवत्। स्वर्गतेऽनङ्गपाले तु भूमिराजो महीपतिः ॥१५
दृष्ट्वा तान्विप्रियान्सर्वान्निजराज्यान्निराकरोत्। प्रद्योताद्याश्च चत्वारः स्वशूरैर्द्विशतैर्युताः ॥१६
कान्यकुब्जपुरं प्राप्य जयचन्द्रमवर्णयन्। जयचन्द्र महीपाल त्वन्मातृष्वसृजो नृपः ॥१७
मातामहस्य ते राज्यं प्राप्तवान्निर्भयो बली। न्यायेन कथितोऽस्माभिरर्द्धराज्यं हि ते स्मृतम् ॥१८
सर्वराज्यं कथं भुंक्षे श्रुत्वा तेन निराकृताः। भवन्तं शरणं प्राप्ता यथायोग्यं तथा कुरु ॥१९

के नाम से ख्यातिप्राप्त, बलशाली एवं संयमी था। उसके कनिष्ठ (छोटे) भ्राता का नाम रत्नभानु था, जो शूर और पराक्रमी था।१-६। उसने गौड, बंग आदि और मरुदेश के मदांध राजाओं पर विजय प्राप्ति समेत उनसे दंड-कर ग्रहण करते हुए अपने घर आकर अपने भाई की आज्ञा से सेवा शिरोधार्य की। गंगासिंह की वीरमती नामक भगिनी रत्नभानु की प्रधान स्त्री हुई, जिसके गर्भ से शिव की आज्ञा वश नकुल का अंश लक्ष्मण के नाम से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जो बलवान् एवं खड्ग युद्ध में अत्यन्त निपुण था। वह सात वर्ष की अवस्था में ही अपने पिता के समान दिखाई देने लगा। कीर्तिमालिनी के धुंधकार, कृष्णकुमार और पृथिवीराज नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पृथिवीराज सबसे छोटा था जो बारह वर्ष की और अधिक अवस्था हो जाने पर सिंह खेल नामक अपने पिता के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था। उसे सुनकर अनंगपाल ने अपना राज्य उसे समर्पित कर दिया और स्वयं हिमालय पर्वत पर जाकर योगाभ्यास करने लगा। मथुरा का राजा धुंधकार और अजमेर का राजा उसका छोटा भाई हुआ। ये दोनों अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर राजसिंहासन पर बैठ गये। चन्द्रवंश के प्रद्योत और विद्योत नामक दो क्षत्रिय कुमारों ने पृथिवीराज के राजमंत्री का पद-भार ग्रहण किया, जो बलवान् एवं मदोत्कट थे।७-१३। प्रद्योत के पुत्र का नाम परिमल था, जो स्वयं बली तथा उसी राजा द्वारा उसकी एक लक्ष सेना का अधिनायक हुआ था एवं विद्योत से उत्पन्न भीष्मसिंह गजराजो की सेनाओं का अधिपति हुआ। राजा अनंगपाल के स्वर्गीय होने पर राजा पृथिवीराज ने उन सबको अपने प्रतिकूल देखकर राज्य से निकाल दिया। प्रद्योत

इति श्रुत्वा महीपालो जयचन्द्र उवाच तान् । अश्वसैन्ये मदीये चाधिकारी ते सुतो भवेत् ॥२०
नाम्ना परिमलः शूरस्त्वं मन्मन्त्री भवाधुना । विद्योतश्च तथा मन्त्री गजसैन्ये हि भीष्मकः ॥२१
वृत्त्यर्थे च मया वो वै पुरी दत्ता महावती । महीपतेश्च भूपस्य नगरी सा प्रियङ्करी ॥२२
इति श्रुत्वा नु ते सर्वे तथा मत्वा मुमोदिरे । महीपतिस्तु बलवान्दुःखात्सन्त्यज्य तां पुरीम् ॥२३
कृत्वोर्वीयां पुरीमन्यां तत्र वासमकारयत् । अगमा मलना चैव भगिन्यौ तस्य चोत्तमे ॥२४
अगमा भूमिराजाय चान्या परिमलाय सा । दत्ता भ्रात्रा विधानेन परमानन्दमापतुः ॥२५
विवाहान्ते च भूराजा दुर्गमन्यमकारयत् । कृत्वा च नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिवासिनीम् ॥२६
देहली सुमुहूर्तेन दुर्गद्वारे सुरोपिता । गता सा योजनान्ते वै वृद्धिरूपा सुकालतः ॥२७
विस्मितः स नृपो भूत्वा देहली नाम चाकरोत् । देहलीग्राम इति च प्रसिद्धोऽभून्नृपाज्ञया ॥२८
त्रिवर्षान्ते च भो विप्रा जयचन्द्रो महीपतिः । लक्षषोडशसैन्याढ्यस्तत्र पत्रमचोदयत् ॥२९
किमर्थं पृथिवीराज मद्दायं मे न दत्तवान् । मातामहस्य वै दायं चार्द्धं मे च समर्पय ॥३०
नो चेन्मच्छस्त्रकठिनैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः । इति ज्ञात्वा महीराजो विंशल्लक्षाधिपो बली ॥३१

आदि वे चारों अपने दो सौ सूर-वीरों समेत कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) में राजा जयचन्द्र के पास पहुँचकर कहने लगे—राजा जयचन्द्र ! आपकी मातृ-भगिनी (मौसी) का पुत्र आपके मातामह (नाना) के राज्य का उपभोग निर्भय होकर कर रहा है । हम लोगों ने न्यायतः उस राजा से कहा—आप इस राज्य के आधे भाग के ही अधिकारी हैं अतः सम्पूर्ण राज्य का उपभोग आप कैसे कर रहे हैं ? इसे सुनकर उसने हमलोगों को निकाल दिया । हम लोग अब आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं, जैसा उचित हो, कीजिए । इसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने उन लोगों से कहा—मेरी अश्वसेना के अधिनायक तुम्हारे दोनों पुत्र बना दिये गये । और परिमल से कहा कि—आप इस समय विद्योत समेत मेरे मंत्रीपद का भार ग्रहण करें । भीष्मक गज सेना का अधिपति बनाया गया ।१४-२१। आप लोगों की जीविका के निमित्त वह महावती नामक पुरी प्रदान की गई है, जो राजा महीपति (माहिल) की अत्यन्त प्रिय नगरी है । यह सुनकर वे सब अत्यन्त हर्ष निमग्न हुए । राजा महीपति (माहिल) बलवान् होते हुए भी अत्यन्त दुःख के साथ उस पुरी का त्यागकर उर्वी (उरई) नामक नगर में आकर रहने लगे । उनकी अगमा और मलना (मल्हना) नाम की दो बहिनें थीं अगमा का पाणिग्रहण भूमिराज (पृथिवीराज) से, मलना का पणिग्रहण परिमल के साथ सुसम्पन्न हुआ । विवाह हो जाने के उपरान्त भूमिराज (पृथिवीराज) ने एक अन्य दुर्ग (किले) का निर्माण कराया और चारों वर्णों के मनुष्यों को निवासी बनाकर अपनी पुरी को सुसज्जित करा दिया। उस दुर्ग के द्वारपर शुभ मुहूर्त में उन्होने (देहली) (सुंरग) लगवाई, जो एक योजन (चार कोस) तक विस्तृत होती हुई अधिक दिनों में सुसम्पन्न की गई थी। उसे देखकर राजा स्वयं विस्मित हुए और उसका देहली नाम रखा । उस दिन से राजा की आज्ञा वश वह देहली (दिल्ली) ग्राम के नाम से ख्यात होने लगी। विप्र ! तीन वर्ष के उपरान्त राजा जयचन्द्र ने अपनी सोलह लाख सेनाओं को सुसज्जित करके वहाँ पत्र भेजा—पृथिवीराज ने मेरे दाय भाग का अपहरण क्यों किया, अब तक मुझे क्यों नहीं दे दिया ? अस्तु अब भी मेरे मातामह (नाना) के राज्य का अर्धभाग दाय रूप में मुझे शीघ्र प्रदान करें। अन्यथा मेरे कठिन अस्त्रों द्वारा उनका सैनिक बल नष्ट कर दिया जायगा । पत्र को देखकर मदांध महीराज

दूतं वै प्रेषयामास राजराजो मदोत्कटः । जयचन्द्र महीपाल सावधानं शृणुष्व तत् ॥३२
यदा निराकृता धूर्ता मया ते चन्द्रवंशिनः । ततः प्रभृति सेनाङ्गं विंशल्लक्षं समाहृतम् ॥३३
त्वया षोडशलक्षं च युद्धसैन्यं समाहृतम् । सर्वे वै भारते भूपा दण्डयोग्याश्च मे सदा ॥३४
भवान्न दण्ड्यो बलवान्करं मे दातुमर्हति । नो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥३५
इति ज्ञात्वा तयोर्घोरं वैरं चासीन्महीतले । भूमिराजश्च बलवाञ्जयचन्द्रभयार्दितः ॥३६
जयचन्द्रश्च बलवान्पृथिवीराजभीरुकः । जयचन्द्रश्चार्यदेशमर्द्धराष्ट्रमकल्पयत् ॥३७
पृथिवीराज एवासौ तथार्द्धं राष्ट्रमानयत् । एवं जातं तयोर्वैरमग्निवंशप्रणाशनम् ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

एकदा रत्नभानुर्हि महीराजेन पालिताम् । दिशं याम्यां स वै जित्वा तेषां कोशानुपाहरत् ॥१

(पृथिवीराज) ने भी जो बीस लाख की सेना सुसज्जित किया तथा दूत भेजकर कहा—राजा जयचन्द्र ! सावधान होकर मेरी बातें सुनो ! २२-३२। जिस समय मैंने उन चन्द्रवंशी क्षत्रियों को अपने यहाँ से निकाल दिया था उसी समय से मैंने बीस लाख सेना का सुसंगठन करना आरम्भ किया था, जो इस समय भली भाँति सुसज्जित है । तुमने तो केवल सोलह लाख ही सेना की सहायता से युद्ध करने की तैयारी की है । भारत के सभी राजा दंडित होने के नाते सदैव मुझे दंडकर देते हैं केवल एक तुम हीं अपने को बलवान समझने के नाते कर नहीं देते । किन्तु अब उसे शीघ्र प्रदान करो, नहीं तो मेरे कठिन बाणों द्वारा तुम्हारी सेना नष्ट हो जायगी । इसे जानकर इन दोनों में इस भूतल में अनुपम वैर उत्पन्न हुआ । भूमिराज (पृथिवीराज) बलवान् होकर भी जयचन्द्र के भय से दुःखी हो रहे थे । और जयचन्द्र भी बली होते हुए पृथिवीराज से भयभीत हो रहा था । जयचन्द्र ने आर्य देश (भारत) का आधा राज्य अपनाया था और पृथिवीराज ने शेष आधे भाग को । इसी विषय को लेकर दोनों में महान् वैर उत्पन्न हुआ जिससे अग्निवंश का समूल नाश हो गया ।३३-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार रत्नभानु (रतीमान) ने पृथिवीराज के राज्य के दक्षिणी प्रदेश पर विजय

महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः । रत्नभानोश्च तिलको बभूव बहुविस्तरः ।।२
तिलका नाम विख्याता या तु वीरवती शुभा । श्रेष्ठा द्वादशराज्ञीनां जननी लक्षणस्य वै ।।३
जयचन्द्रस्य भूपस्य योषितः षोडशाभवन् । तासां न तनयो ह्यासीत्पूर्वकर्मविपाकतः ।।४
गौडभूपस्य दुहिता नाम्ना दिव्यविभावरी । जयचन्द्रस्य महिषी तद्दासी सुरभानवी ।।५
रूपयौवनसंयुक्ता रतिकेलिविशारदा । दृष्ट्वा तां स नृपः कामी बुभुजे स्मरपीडितः ।।६
तस्यां जाता सुता देवी नाम्ना संयोगिनी शुभा । द्वादशाब्दवयः प्राप्ता सा बभूव वराङ्गना ।।७
तस्याः स्वयम्बरे राजाह्वयद्भूपान्महाशुभान् । भूमिराजस्तु बलवाञ्छ्रुत्वा तद्रूपमुत्तमम् ।।८
विवाहार्थे मनश्चासीच्चन्द्रभट्टमचोदयत् । मन्त्रिप्रवर भो मित्र चन्द्रभट्ट मम प्रिय ।।९
कान्यकुब्जपुरीं प्राप्य मन्मूर्तिं स्वर्णनिर्मिताम् । स्थापय त्वं सभामध्ये यद्वृत्तान्तं तु मे वद ।।१०
इति श्रुत्वा चन्द्रभट्टो भवानीभक्तितत्परः । गत्वा तत्र भृगुश्रेष्ठ यथ प्रोक्तस्तथाकरोत् ।।११
स्वयंवरे च भूपाश्च नानादेश्याः समागताः । त्यक्त्वा संयोगिनी तान्वै नृपमूर्तिविमोहिता ।।१२
पितरं प्राह कामाक्षी यस्य मूर्तिरियं नृप । भविष्यति स मे भर्ता सर्वलक्षणलक्षितः ।।१३
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा चन्द्रभट्टमुवाच तम् । यदि ते भूपतिश्चैव सर्वसैन्यसमन्वितः ।।१४
सञ्जयेद्योगिनीमेतां तर्हि मेऽतिप्रियो भवेत् । चन्द्रभट्टस्तु तच्छ्रुत्वा तत्तु सर्वमवर्णयत् ।।१५

प्राप्तकर उसके कोष (खजाने) का अपहरण कर लिया था। उसे सुनकर पृथिवीराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रत्नभानु का तिलक अत्यन्त विस्तृत रूप में था। इसीलिए उस कल्याणमूर्ति वीरमती को तिलका भी कहते थे, बारह रानियों में प्रधान एवं लक्षण (लषन) की जननी थी। राजा जयचन्द्र की सोलह रानियाँ थीं, किन्तु जन्मान्तरीय दुर्विपाक वश किसी के कोई सन्तान न थी। उनकी प्रधान रानी जिसका नाम दिव्य विभावरी था, गौड़ भूप की कन्या थी। उनकी साथ की आई हुई दासी का नाम सुरभानवी था, रूप-यौवन सम्पन्न एवं रतिक्रीड़ा में अत्यन्त निपुण थी। उसे देखकर राजा जयचन्द्र अपनी काम-पीड़ा को सहन न कर सकने के नाते उसके साथ खूब रमण किया। पश्चात् उसके संयोगिनी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। बारह वर्ष की अवस्था में ही वह कन्या अप्रतिम सर्वाङ्ग सुन्दरी दिखायी देने लगी। उस समय उसके स्वयम्वर के लिए राजा ने सभी देशों के राजाओं को निमंत्रित किया। बलदान् पृथिवीराज भी उसके उत्तम सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर स्थिर न रह सके। उससे विवाह संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से चन्द्रभट्ट (चन्दवरदाई भाँट) को बुलाकर कहा—मंत्रिश्रेष्ठ, चन्द्रभट्ट ! मेरे प्रिय ! कान्यकुब्ज (कन्नौज) पुरी में जाकर मेरी सुवर्ण की मूर्ति वहाँ सभा में स्थापित करना, उसके विषय में जैसा वहाँ का वृत्तान्त हो मुझसे कहना। भृगुश्रेष्ठ ! भगवती के अनन्य भक्त चन्द्रभट्ट ने जैसा कहा गया था, वैसा ही उस कार्य को पूरा किया। उस स्वयम्बर में अनेक देशों के राजागण उपस्थित थे, किन्तु संयोगिनी ने उन सबका त्यागकर केवल पृथिवीराज की उस प्रतिमा-सौन्दर्य पर मुग्धहोकर अपने पिता से कहा— 'नृप ! जिस राजा की यह मूर्ति है, सर्वलक्षण सम्पन्न वही राजा मेरा पति होगा।' इसे सुनकर जयचन्द्र ने चन्द्रभट्ट से कहा—यदि तुम्हारा राजा सभी सेनाओं के साथ यहाँ आकर युद्ध में इस पर विजय प्राप्तकर सके, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा। चन्द्रभट्ट ने उसे सुनकर पृथिवीराज से उसका आनुपूर्वी वर्णन किया। १-१५।

पृथिवीराज एवासौ श्रुत्वा सैन्यमचोदयत् । एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षास्तुरङ्गमाः ॥१६
रथाः पञ्चसहस्राश्च धनुर्बाणविशारदाः । लक्षाः पदातयो ज्ञेया द्वादशैव महाबलाः ॥१७
राजानस्त्रिशतान्येव महीराजपदानुगाः । सार्द्धं द्वाभ्यां च बन्धुभ्यां कान्यकुब्जे नृपोऽगमत् ॥१८
धुन्धुकारश्च तद्वन्धुर्गजानीकपतिस्सदा । हयानीकपतिः कृष्णकुमारो बलवत्तरः ॥१९
पदातीनां नृपतयः पतयस्तत्र चाभवन् । महान्कोलाहलो जातः स्थलीं शून्यामकारयत् ॥२०
विंशत्कोशप्रमाणेन स्थितं तस्य महाबलम् । जयचन्द्रस्तु संज्ञाय महीराजस्य चागमम् ॥२१
स्वसैन्यं कल्पयामास लक्षषोडशसम्मितम् । एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षाः पदातयः ॥२२
वाजिनश्चाष्टलक्षाश्च सर्वयुद्धविशारदाः । द्विशतान्येव राजानः प्राप्तास्तत्र समागमे ॥२३
आगस्कृतं महीराजं मत्वा ते शुक्लवंशिनः । युद्धार्थिनः स्थितास्तत्र पुरमागस्कृतं ह्यभूत् ॥२४
ईशनद्याः परे कूले तद्दोला स्थापिता तदा । नानावाद्यानि रम्याणि तत्र चक्रुर्महारवम् ॥२५
रत्नभानुर्गजानीके रूपानीके हि लक्षणः । ताभ्यां सेनापतिभ्यां तौ सङ्गुप्तौ बलवत्तरौ ॥२६
प्रद्योतश्चैव विद्योतो रत्नभानुं ररक्षतुः । भीष्मः परिमलश्चैव लक्षणं चन्द्रवंशजः ॥२७
भूपाः पदातिसैन्ये च संस्थिता मदविह्वलाः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं दारुणं सैन्यसंक्षयम् ॥२८
हया हयैर्मृता जाता गजाश्चैव गजैस्तथा । पदातयः पदातैश्च मृताश्चान्ये क्रमाद्रणे ॥२९
भूपैश्च रक्षिताः सर्वे निर्भया रणमाययुः । यावत्सूर्यः स्थितो व्योम्नि तावद्युद्धमवर्तत ॥३०

पृथिवीराज ने शीघ्र अपनी सेनाओं को सुसज्जित होने के लिए आज्ञा प्रदान किया । उस सेना में एक लाख गजराज के सैनिक, सात लाख अश्वारोही, पाँच सहस्र रथ वाले, जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे, बारह लाख पैदल सैनिक थे, और तीन सौ राजा पृथिवीराज के साथ चल रहे थे । अपने दोनों भाइयों को साथ लेकर राजा पृथिवीराज कान्यकुब्ज (कन्नौज) की पुरी में पहुँच गये । उस सेना में धुंधुकार गज सेनानायक और अश्वारोही सेना के अधिपति बलवान् कृष्णकुमार बनाये गये थे । तथा पैदल की सेनाओं के अधिनायक राजा लोग बनाये गये थे । उसमें इतना महान् कोलाहल हो रहा था, जिससे पृथिवी निःशब्द मालूम होती थी । बीस कोश की भूमि में वह सेना घेरा डाले पड़ी थी । पश्चात् राजा जयचन्द्र पृथिवीराज का आगमन सुनकर अपनी सोलह लाख की सेना को सुसज्जित होने का आदेश दिया । उस सेना में एक लाख गज सैनिक, सात लाख पैदल,.आठ लाख अश्वारोही जो सभी भाँति के युद्ध में कुशल थे, तथा दो सौ राजा उनकी सहायता के लिए उपस्थित थे । वे चन्द्रवंशी राजागण पृथिवीराज को अपराधी जानकर चारो ओर से युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गये । ईशनदी के दूसरे तटपर संयोगिनी का ढोला (डोला) रखा गया, जहाँ मधुरध्वनि वाले अनेक बाजे बज रहे थे ।१६-२५। गजसेना नायक रत्नभानु और रूपानीक लषन (लखन) नामक इन दोनों सेनापतियों द्वारा उस डोला की रक्षा हो रही थी । प्रद्योत और विद्योत रत्नभानु की रक्षा कर रहे थे, और चन्द्रवंशी भीष्म तथा परिमल लषन की । राजा की पैदल सेनाएँ मदांध होकर भीषणरूप धारणकर सेना का वध करने लगीं । उस युद्ध में घोड़े द्वारा घोड़े की, हाथी द्वारा हाथी की और पैदल द्वारा पैदल सेना के योधाओं की मृत्यु होने लगी । केवल राजा लोग उस युद्ध की रक्षा निर्भय होकर कर रहे थे । जब तक सूर्य आकाश मण्डल में स्थित रहते थे, तब तक युद्ध होता

एवं पञ्चदिनं जातं युद्धं वीरजनक्षयम् । गजा दशसहस्राणि हया लक्षाणि संक्षिताः ॥३१
पञ्चलक्षं महीभर्तुर्हतास्तत्र पदातयः । राजानो द्वे शते तत्र रथाश्च त्रिशतं तथा ॥३२
कान्यकुब्जाधिपस्यैव गजा नवसहस्रकाः । सहस्रैकं रथा ज्ञेयास्त्रिलक्षं च पदातयः ॥३३
एकलक्षं हयास्तत्र मृताः स्वर्गपुरं ययुः । षष्ठाहे समनुप्राप्ते पृथिवीराज एव सः ॥३४
दुःखितो मनसा देवं रुद्रं तुष्टाव भक्तिमान् । सन्तुष्टस्तु महादेवो मोहयामास तद्बलम् ॥३५
प्रसन्नस्तु महीराजो गतः संयोगिनीं प्रति । दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं मुमोह वसुधाधिपः ॥३६
संयोगिनी नृपं दृष्ट्वा मूर्च्छिता चाभवत्क्षणात् । एतस्मिन्नन्तरे राजा तद्दोलामनयद्बलात् ॥३७
जगाम देहलीं भूपः सर्वसैन्यसमन्वितः । योजनान्ते गते तस्मिन्बोधितास्ते मदोद्धटाः ॥३८
दृष्ट्वा नैव तदा दोलां प्रजग्मुर्वेगवत्तराः । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः ॥३९
अर्द्धसैन्यं च संस्थाप्य स्वयं गेहमुपागमत् । उभौ तद्भ्रातरौ वीरौ चार्द्धसैन्यसमन्वितौ ॥४०
सूकरक्षेत्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितौ । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे प्रद्योतादिमहाबलाः ॥४१
स्वसैन्यैः सह सम्प्राप्य महद्युद्धमकारयन् । हया हयैश्च सञ्जग्मुर्गजा अथ गजैः सह ॥४२
सङ्कुलश्च महानासीद्दारुणो लोमहर्षणः । दिनान्ते संक्षयं यातं तयोश्चैव महद्बलम् ॥४३
भयभीताः परे तत्र ज्ञात्वा रात्रिं तमोवृताम् । प्रदुद्रुवुर्भयाद्वीरा हतशेषास्तु देहलीम् ॥४४
प्रद्योताद्याश्च ते वीरा देहलीं प्रति संययुः । पुनस्तयोर्महद्युद्धं ह्यभवल्लोमहर्षणम् ॥४५
धुन्धुकारश्च प्रद्योतं हृदि बाणैरताडयत् । त्रिभिश्च विषनिर्धूतैर्मूर्च्छितः स ममार च ॥४६

था ।२६-३०। इस प्रकार वह वीर नाशक युद्ध पाँच दिन तक होता रहा जिसमें पृथिवीराज के दश सहस्र गजराज, एक लाख घोड़े, पाँच लाख पैदल की सेना, दो सौ राजा और तीन सो रथारोही का निधन हुआ और कन्नौज के राजा जयचन्द्र के नव सहस्र गजराज, एक सहस्र रथ, तीन लाख पैदल और एक लाख अश्वारोही सैनिकों का निधन हुआ । छठें दिन राजा पृथिवीराज ने अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् शंकर की मानसिक आराधना की । प्रसन्न होकर महादेव जी ने जयचन्द्र की सेना को मोहित कर दिया । उस समय प्रसन्न होकर पृथिवीराज संयोगिनी के पास जाकर उसके रूप-सौन्दर्य को देखते ही मुग्ध हो गया और संयोगिनी भी उसे देखकर उसी समय मोहमूर्च्छित हो गई । उसी बीच राजा ने बलपूर्वक उस डोले को साथ लेकर सेनाओं समेत देहली (दिल्ली) के लिए प्रस्थान कर दिया । एक योजन (चार कोस) तक उनके चले आने पर (जयचन्द्र) के मदांध सैनिकों की आँखें खुलीं । वहाँ डोला न देखकर वे सब अत्यन्त वेग से पीछा करने लगे । उनके कोलाहल (शोर) को सुनकर राजा पृथिवीराज अपनी आधी सेना वहाँ रखकर स्वयं अपने घर चले गये । उनकी आधी सेना समेत उनके दोनों भाइयों ने बाराह क्षेत्र में युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर सेना समेत आये हुए प्रद्योतादि महाबलवानों के साथ महान् युद्ध आरम्भ कर दिया । घोड़े का घोड़ों के साथ, हाथी का हाथियों के साथ भीषण एवं रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हुआ । संध्या होते-होते दोनों ओर की सेनाओं का अत्यन्त नाश हो गया । उस अंधेरी रात में शेष बचे हुए पृथिवीराज के सैनिक भयभीत होकर देहली (दिल्ली) भाग गये ।३१-४४। किन्तु प्रद्योत आदि योद्धाओं ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा । वहाँ पुनः भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । उस युद्ध में धुंधुकार ने प्रद्योत के हृदय में बाण-प्रहार किया । इस

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा विद्योतश्च महाबलः । आजगाम गजारूढो धुन्धुकारमताडयत् ।।४७
त्रिभिश्च तोमरैः सोऽपि मूर्च्छितो भूमिमागमत् । मूर्च्छितं भ्रातरं दृष्ट्वा धुन्धुकारं महाबलम् ।।४८
तदा कृष्णकुमारोऽसौ गजस्थस्त्वरितो ययौ । रूषाविष्टश्च तं वीरं भल्लेनैवसताडयत् ।।४९
भल्लेन तेन सम्भिन्नो मृतः स्वर्गपुरं ययौ । विद्योते निहते तस्मिन्सर्वसैन्यत्रमूपतौ ।।५०
रत्नाभानुर्महावीरोऽयुध्यत्तेन समन्वितः । एतस्मिन्नन्तरे राजा सहस्रगजसंयुतः ।।५१
लक्षणं सहितं ताभ्यां क्रुद्धं तं समयुध्यत । शिवदत्तवरो राजा भीष्मं परिमलं रुषा ।।५२
रुद्रास्त्रैर्मोहयामासलक्षणं बलवत्तरम् । मूर्छितांस्तान्समालोक्य रत्नभानुः शरैर्निजैः ।।५३
धुन्धुकारं महीराजं वैष्णवैः समनोहयन् । कृष्णको रत्नभानुश्च युयुधाते परस्परम् ।।५४
उभौ समबलौ वीरौ गजपृष्ठस्थितौ रणे । अन्योऽन्यनिहतौ नागौ खड्गहस्तौ महीतले ।।५५
युयुधाते बहून्मार्गान्कृतवन्तौ सुदुर्जयौ । प्रहरान्तं रणं कृत्वा मरणायोपजग्मतुः ।।५६
हते तस्मिन्महावीर्ये कान्यकुब्जा भयातुराः । मूर्छितांस्त्रीन्समादाय पञ्चलक्षबलैर्युताः ।।५७
रणं त्यक्त्वा गृहं जग्मुर्नृपशोकपरायणाः । रत्नभानौ च निहते हतोत्साहाश्च भूमिपाः ।।५८
स्वं स्वं निवेशनं जग्मुर्महीराजभयातुराः । देवानाराधयामासुर्यथेष्टं ते गृहे गृहे ।।५९
महीराजस्तु बलवान्सप्तलक्षबलान्वितः । धुन्धुकारेण सहितो बन्धुकृत्योर्ध्वमाचरत् ।।६०
तथा भीष्मः परिमलो लक्षणः पितरं स्वकम् । गङ्गाकूले समागम्य चोर्ध्वदैहिकमाचरन् ।।६१

प्रकार उनके विषाक्त तीन बाणों द्वारा क्षत-विक्षत (घायल) होकर प्रद्योत का प्राण विसर्जन हो गया। भ्राता का निधन देखकर महाबली विद्योत ने अपनी हाथी बढ़ाकार धुंधुकार पर प्रहार किया। उनके तीन बार तोमर नामक अस्त्र द्वारा प्रहार करने पर वे मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। अपने भाई धुंधुकार को मूर्च्छित देखकर कृष्णकुमार ने अपनी हाथी बढ़ाई। क्रुद्ध होकर उस वीर पर भाले का प्रहार किया जिससे वह मृतक होकर चला गया। सेनानायक विद्योत के निधन होने पर महापराक्रमी रत्नभानु ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसी समय धुंधुकार (धांधू) एक सहस्र गज सेना लेकर लषन से युद्ध करने लगा, जिसकी सहायता भीष्म और परिमल कर रहे थे। शिव का वरदान प्राप्त उस राजा ने उन तीनों—भीष्म, परिमल और लषन को अपने रुद्रास्त्र द्वारा मूर्च्छितकर दिया। रत्नभानु (रतीभान) ने उन्हें मूर्च्छित देखकर अपने वैष्णवास्त्र द्वारा धुंधुकार (धांधू) को मूर्च्छित कर कृष्णकुमार के साथ युद्धारम्भ किया। वे दोनों समान बली, वीर एवं गजराज पर स्थित थे। अपनी कला-कुशलता से उन्होंने एक दूसरे के गज का निधन कर दिया। पश्चात् भूतल में स्थित होकर हाथ में खड्ग लेकर उन दुर्मदान्धों ने युद्ध करते हुए अनेक मार्गों का निर्माण किया। और उसी रण-स्थल में एक दूसरे पर घात-प्रतिघात करते हुए प्राण विसर्जन किया। उन दोनों के निधन होने पर कान्यकुब्ज (कन्नौज) के सैनिक भयभीत होकर उन तीनों को तथा बची हुई पाँच लाख सेना को लेकर अपने घर चले आये। शोकग्रस्त होकर राजाओं ने रत्नभानु के स्वर्गीय होने पर और भी हतोत्साह का अनुभव किया। अनन्तर पृथिवीराज के भय से अपने अपने घर जाकर वे राजागण अपने इष्टदेवों की आराधना करने लगे। बलवान् पृथिवीराज ने अपनी शेष सात लाख की सेना और धुंधुकार को साथ लेकर घर जाकर अपने भाई की अन्त्येष्टि क्रिया प्रारम्भ की। और भीष्म, परिमल एवं लषन ने गंगा जी के तट पर पहुँचकर अपने पिता का अन्तिम संस्कार सुसम्पन्न किया।४५-६१। इस प्रकार रण-स्थल में

भूमिराजस्य विजयो जयचन्द्रयशो रणे । प्रसिद्धमभवद्भूमौ गेहे गेहे जने जने ।।६२
जयचन्द्रः कान्यकुब्जे देहल्यां पृथिवीपतिः । उत्सवं कारयित्वा तु परमानन्दमापयौ ।।६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भीष्मः सिंहस्थिते गङ्गाकूले शक्रप्रपूजकः । शक्रं सूर्यमयं ज्ञात्वा तपसा समतोषयत् ।।१
मासान्ते भगवानिन्द्रो ज्ञात्वा तद्भक्तिमुत्तमाम् । वरं वरय च प्राह श्रुत्वा शूरोऽब्रवीदिदम् ।।२
देहि मे वडवां दिव्यां यदि तुष्टो भवान्प्रभुः । इति श्रुत्वा तदा तस्मै वडवां हरिणीं शुभाम् ।।३
ददौ स भगवानिन्द्रस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।।४
तस्मिन्काले परिमलः पितृशोकपरायणः । पार्थिवैः पूजयामास महादेवमुमापतिम् ।।
परीक्षार्थे शिवः साक्षात्सर्परोगेण तं ग्रसत्[1] ।।५

पृथिवीराज का विजय और जयचन्द्र का यश इस भूतल में घर-घर के प्रत्येक मनुष्यों में व्याप्त हो गया । जयचन्द्र ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा पृथिवीराज ने देहली (दिल्ली) में अनुपम उत्सव को सुसम्पन्न करके परम आनन्द की प्राप्ति की ।६२-६३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भीष्मसिंह ने गंगा जी के तट पर इन्द्र की पूजा करना आरम्भ किया । पश्चात् इन्द्र को सूर्यमय जानकर तप द्वारा उन्हें प्रसन्न किया । एक मास के उपरान्त भगवान् इन्द्र ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उनसे कहा—वर की याचना कीजिये । उसे सुनकर उस शूरवीर ने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे एक दिव्य वडवा (घोड़ी) देने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर उन्होंने एक शुभ हरिणी नामक वडवा (घोड़ी) उन्हें प्रदान किया । भगवान् इन्द्र उसके पश्चात् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । उसी समय परिमल ने पिता के शोक से दुःखी होकर पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना करना आरम्भ किया था । उनकी परीक्षा करने के लिए शिव जी ने उन्हें सर्परोग से पीड़ित कर दिया ।१-५।

---

१. अडभाव आर्षः ।

व्यतीते पञ्चमे मासे नृपः शक्तिविवर्जितः । न तत्याज महापूजां महाक्लेशसमन्वितः ।।६
मरणाय ययौ काशीं स्वपत्न्या सहितो नृपः । उवास वटमूलान्ते रात्रौ रोगप्रपीडितः ।।७
एतस्मिन्नन्तरे कश्चित्पन्नगो मूलसंस्थितः । शब्दं चकार मधुरं श्रुत्वा रुद्राहिरायय‍ौ ।।८
रुद्राहिं पन्नगः प्राह भवान्निर्दय मन्दधीः । शिवभक्तं नृपमिमं पीडयेत्प्रत्यहं खलः ।।९
मूर्खोऽयं भूपतिः साक्षादारनालं पिबेन्नहि । इति श्रुत्वा स रुद्राहिराह रे पन्नगाधम ।।१०
राज्ञो देहे परं हर्षं प्रत्यहं प्राप्तवानहम् । स्वगेहं दुःखतस्त्याज्यं कथं त्याज्यं मया शठ ।।११
मूर्खोऽयं भूपतिर्यो वै तैलोष्णं यन्न दत्तवान् । इत्युक्त्वान्तर्गतो देहे श्रुत्वा सा मलना सती ।।१२
चकार पन्नगोक्तं तद् गतरोगो नृपोऽभवत् । तैलोष्णैर्बिलमापूर्य चखान च सती स्वयम् ।।१३
ततो जातं स्वयं लिङ्गमङ्गुष्ठाभं सनातनम् । ज्योतीरूपं चिदानन्दं सर्वलक्ष्मसमन्वितम् ।।१४
निशीथे तम उद्भूते दिक्षु सूर्यत्वमागतम् । दृष्ट्वा स विस्मितो राजा पूजयामास शङ्करम् ।।१५
महिम्नस्तवपाठैश्च तुष्टाव गिरिजापतिम् । तदा प्रसन्नो भगवान्वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ।।१६
श्रुत्वाह नृपतिर्देवं यदि तुष्टो महेश्वर । श्रीपतिर्मे गृहं प्राप्य वसेन्मत्प्रियकारकः ।।१७
तथेत्युक्त्वा महादेवो लिङ्गरूपत्वमागतः । प्रत्यहं भारमेकं च सुवर्णं सुषुवे तनोः ।।१८

पाँचवें मास की समाप्ति तक राजा एकदम शक्तिहीन हो गया, किन्तु उस महादुःख से दुःखी होने पर भी उन्होंने उस पूजन का त्याग नहीं किया । पश्चात् मरण के निमित्त उस राजा ने अपनी पत्नी समेत काशी को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस रात्रि उस रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी वटवृक्ष के नीचे ही शयन किया । उसी बीच उस वट के मूल भाग में रहने वाले एक सर्प ने मधुर ध्वनि किया । उसे सुनकर रुद्रसर्प (रोगी के अन्दर रहने वाला) वहाँ आया । उससे उसने कहा—तुम बड़े निर्दयी एवं मूर्ख हो, दुष्ट ! इस शिव भक्त राजा को तू नित्य पीड़ित करता है । यह राजा भी मूर्ख ही है, नहीं तो इसे अब तक कभी (इस रोग से मुक्ति पाने के लिए) आरनाल का पान कर लेना चाहिए । इसे सुनकर उस रुद्रपन्नग ने उससे कहा—रे नीच पन्नग ! राजा के इस देह में मुझे नित्य परमानन्द की प्राप्ति होती है । अतः शठ ! मैं इसका त्याग कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि अपने, घर का त्याग दुःख के कारण ही किया जाता है । राजा भी मूर्ख ही है, जो तुम्हारे बिल में तेल गरम करके नहीं डाल देता । इतना कहकर वह पुनः राजा की देह के भीतर चला गया । पश्चात् उस साध्वी मलना (मल्हना) रानी ने उस सर्प के बताये हुए उपाय को सुसम्पन्न किया उससे राजा का रोग विनष्ट हो गया और उसकी बिल को गरम तेल से भरकर वह रानी स्वयं उसे खोदने भी लगी ।६-१३। उससे एक अंगुष्ठमात्र का शिव लिंग उत्पन्न हुआ, जो सनातन, आकाश रूप, सच्चिदानन्द रूप एवं सर्वलक्षण सम्पन्न था । उस अंधेरी रात के आधी रात के समय भी उसके निकलने से दिशाओं में प्रकाश सूर्योदय के समान ही दिखाई देने लगा। उसे देखकर राजा आश्चर्य-चकित होकर शंकर जी की पूजा करने लगे। उन्होंने महिम्न पाठ द्वारा गिरिजापति की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वरयाचना के लिए कहा उसे सुनकर राजा ने कहा—देव, महेश्वर ! यदि आप मुझपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो मेरी इच्छापूर्ति के लिए 'श्रीपति' मेरे घर में निवास करें। इतना कहकर महादेव लिङ्गरूप धारणकर अपने शरीर से एक भार सुवर्ण प्रतिदिन राजा को देने लगे। और प्रसन्न

तदा मलस्तु सन्तुष्टः प्राप्तो गेहं महावतीम् । भीष्मसिंहेन सहितः परमानन्दमाययौ ॥१९
ततःप्रभृति वर्षान्ते जयचन्द्रपुरीं ययौ । दृष्ट्वा परिमलं राजा कृतकृत्यत्वमागतः ॥२०
दिष्ट्या ते संक्षितो रोगो दिष्ट्या ते दर्शितं मुखम् । भवान्निजपुरीं प्राप्य सुखी भवतु मा चिरम् ॥२१
यदा मे विघ्न आभूयात्तदा त्वं मां समाचर ! इति श्रुत्वा परिमलो गत्वा स्थानमवासयत् ॥२२
तदा तु लक्षणो वीरो भगवन्तमुपागतिम् । जगन्नाथमुपागम्य समभ्यर्च्चापरोऽभवत् ॥२३
पक्षमात्रान्तरे विष्णुर्जगन्नाथ उषापतिः । वरं ब्रूहि वचश्चेति लक्षणं प्राह हर्षतः ॥२४
इत्युक्तः स तु तं देवं नत्वोवाच विनम्रधीः । देहि मे वाहनं दिव्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥२५
इति श्रुत्वा जगन्नाथः शक्तिमैरावताद्गजात् । समुत्पाद्य ददौ तस्मै दिव्यामैरावतीं मुदा ॥२६
आरुह्यैरावतीं राजा लक्षणो गेहमाययौ । स वै परिमलो राजा जगाम च महावतीम् ॥२७
एतस्मिन्नन्तरे वीरास्तालनाद्या मदोत्कटाः । महावतीं पुरीं प्राप्य ददृशुस्तं महीपतिम् ॥२८
तेन सार्द्धं च महतीं प्रीतिं कृत्वा न्यवासयन् । मासान्ते च पुनस्ते वै राजानो विनयान्विताः ॥२९
ऊचुस्तं शृणु भूपालवयं गच्छामहेपुरीः । तदा राजाऽपि तान्प्राह सर्वान्क्षितिपतीनथ ॥
दत्त्वाधिकारं पुत्रेभ्यस्तदाऽऽयास्यामि वोऽन्तिकम् ॥३०
तथेत्युक्तास्तु ते राज्ञा स्वगेहं पुनराययुः । सानुजो देशराजस्तु द्विजेभ्यः स्वपुरं ददौ ॥३१
पुत्रेभ्यस्तालनो वीरो ददौ वाराणसीं पुरीम् । अलिकोल्लामतिः कालात्पत्रः पुष्पोदरीवरी ॥३२

होकर राजा परिमल भी अपने घर महावती पुरी आकर भीष्मसिंह समेत परम आनन्द से रहने लगे।१४-१९। एक वर्ष के उपरान्त वे राजा जयचन्द्र के यहाँ गये। राजा ने परिमल को देखकर अपने को कृतकृत्य समझ— परम सौभाग्य है कि आप स्वस्थ्य हो गये, और आज मुझे आपके प्रसन्न मुख का दर्शन मिला। अब आप, अपने नगर में जाकर सुखपूर्वक रहो, किसी विघ्न-बाधा के उपस्थित होने पर बुलाऊँगा, तब आइयेगा। इसे सुनकर परिमल अपने यहाँ जाकर सुख का अनुभव करने लगे। उस समय लक्षण (लषन) भी ऊषापति भगवान् विष्णु की उपासना कर रहे थे। एक पखवारे के व्यतीत होने पर ऊषापति जगन्नाथ विष्णु भगवान् ने उनसे कहा—वर की याचना करो! इस प्रकार कहने पर उन्होंने विनय-विनम्र होकर नमस्कारपूर्वक उन देव से कहा—'मुझे एक दिव्यवाहन प्रदान कीजिये, जो समस्त शत्रुओं के नाश करने में समर्थ हो। इसे सुनकर जगन्नाथ जी ने ऐरावतगज से शक्ति उत्पन्न कर एक-एक दिव्य ऐरावत नामक हाथी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रदान किया। उसी पर आसनासीन होकर राजा लषन अपने घर आये। राजा परिमल के महावती पहुँचने पर तालन आदि दुर्मदा वीरगण ने भी वहाँ पहुँचकर परिमल का दर्शन किया। वहाँ उनके साथ घनिष्ठ मैत्री स्थापित कर प्रेमपूर्वक रहने लगे। एक मास के उपरान्त उन लोगों ने राजा से विनयपूर्वक कहा—राजन्। अब हम लोग अपने नगर जाना चाहते हैं, आप आज्ञा प्रदान करें। राजा ने आज्ञा दी उन लोगों ने कहा—मै अपने सभी अधिकार लड़कों को सौंपकर पुनः यहीं आपके समीप आ जाऊँगा।२०-३०। इस प्रकार राजा से कहकर वे सब अपने घर चले गये। अपने छोटे भाई (वत्सराज) समेत देशराज ने अपना नगर ब्राह्मणों को अर्पित कर दिया। वीरतालन ने अपना वनारस नगर पुत्रों को सौंप दिया जिनके क्रमशः अलिकोल्लामति, काल, पत्र, पुष्पोदरी वरी, करी, नरी एवं

करीनरी सुललितस्तेषां नामानि वै क्रमात् । द्वौ द्वौ पुत्रौ स्मृतौ तेषां पितुस्तुल्यपराक्रमौ ।।३३
स वै पुत्राज्ञया शूरस्तालनो राक्षसप्रियः । यातुधानमयं देवं तुष्टाव म्लेच्छपूजनैः ।।३४
तथा वसुमतः पुत्रौ भूपती देशवत्सजौ । शक्रं सूर्य्यं समाराध्य कृतकृत्यौ बभूवतुः ।।३५
सिंहिनीं नाम वडवां यातु दत्ता भयानका । आरुह्य बलावाञ्छूरो गमनाय मनो दधौ ।।३६
पञ्चशब्दं महानागमिन्द्रदत्तं मनोरमम् । देशराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ।।३७
हयं पपीहकं नाम सूर्यदत्तं नरस्वरम् । वत्सराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ।।३८
त्रयः शूराः समागम्य नगरीं ते महावतीम् । ऊषुस्तत्र महात्मानो बहुमानेन सत्कृताः ।।३९
सेनाषष्टिसहस्रं तत्तेषां स्वामी स तालनः । मन्त्रिणौ भ्रातरौ तौ च नृपतेश्चन्द्रवंशिनः ।।४०
तैर्वीरै रक्षितो राजा कृतकृत्यत्वमागतः ।।४१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

जम्बूको नाम भूपालो महीराजो भयातुरः । कालियेन युतः प्राप्तो नर्मदायास्तटे शुभे ।।१

सुललित ये नाम बताये गये हैं । इनके प्रत्येक के दो-दो पुत्र थे, जो अपने पिता के समान पराक्रमशाली थे । राक्षसप्रिय तालन ने अपने पुत्रों के आदेश से म्लेच्छपूजन द्वारा राक्षसदेव को प्रसन्न किया । अनन्तर वसुमान के पुत्र देशराज और वत्सराज ने क्रमशः इन्द्र और सूर्य की आराधना की । यातुधान (राक्षस) ने सिंहनी नामक घोड़ी तालन को प्रदान किया, इन्द्र के दिये हुए पंचशब्द नामक गज देशराज को और पपीहा नामक घोड़ा सूर्य का दिया हुआ, जो मनुष्य की भाँति बोलता था, वत्सराज को मिला । ये तीनों शूर-वीर अपने वाहनों पर बैठकर महावती नगरी में पहुँचे और वहाँ सादर सम्मानपूर्वक रहने लगे । वहाँ उनकी साठ सहस्र सेना के अधिनायक तालन बनाये गये और उस चन्द्रवंशी राजा (परिमल) के मन्त्रिपद का भार उन दोनों भाइयों ने संभाला । इस भाँति उन तीनों वीरों द्वारा सुरक्षित होकर राजा परिमल अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करने लगे ।३१-४१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—जम्बूक नामक राजा ने भयभीत होकर अपने पुत्र कालिय (करिया) को साथ

पार्थिवैः पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् । षण्मासान्ते महादेवो जम्बूकं प्राह भूपतिम् ।।२
वरं वरय तेऽभीष्टं भूप आह कृताञ्जलिः । अजितत्वं नृपैः सर्वैर्देहि मे करुणानिधे ।।३
तथेत्युक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । कालियस्तत्सुतो लब्ध्वा वीरो माहेश्वरं वरम् ।।४
मोहनं सर्वसैन्यानां पितुरन्तिकमाययौ । पितरं प्राह नम्रात्मा देह्याज्ञां तात मत्प्रियाम् ।।५
गमिष्यामि बलैः सार्द्धं गङ्गां शुद्धजलां शुभाम् । तथेत्युक्त्वा पिता तस्मै ययौ तु स्वं निवेशनम् ।।६
भगिनीं प्राह बलवान्विजयैषिणि शोभने । किमिच्छसि शुभं वस्तु तदाज्ञां देहि मा चिरम् ।।७
साह ग्रैवेयकं हारं मणिमुक्ताविभूषितम् । मत्प्रियं देहि मे वीर तथेत्युक्त्वा ययौ गृहात् ।।८
कालियो लक्षतुरगैः संयुतस्त्वरितोऽगमत् । प्राप्य गङ्गासागरगां कृत्वास्नानं विधानतः ।।९
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो जयचन्द्रपुरीं ययौ । निर्धनः समभूद्राजा बाहुशाली महाबलः ।।१०
कान्यकुब्जे महाहारो न प्राप्तो बहुमूल्यकः । तदोर्वीयाधिपेनैव महीशेन प्रबोधितः ।।११
ययौ महावतीं रम्यां शिवदत्तवरो बली । रुरोध नगरीं सर्वां श्रुत्वा राजा भयातुरः ।।१२
रुद्रं कपर्दिनं शम्भुं शरण्यं शरणं ययौ । शिवाज्ञया नृपो धीमान्बलैः षष्टिसहस्रकैः ।।१३
सार्द्धं पुराद्बहिर्यातस्त्रिभिः शूरैः सुरक्षितः । तस्य नागाः सहस्रं च देशराजश्च तत्पतिः ।।१४
हयाः षोडशसाहस्रा वत्सराजस्तु तत्पतिः । शेषाः पदातयस्तस्य तालनेनैव रक्षिताः ।।१५

लेकर नर्मदा के तट पर देवाधिदेव पिनाकपाणि शिव की आराधना पार्थिव पूजन द्वारा करना आरम्भ किया। छठें मास की समाप्ति में महादेव ने राजा जम्बूक से कहा—यथेच्छ वर की याचना कीजिये। राजा ने हाथ जोडकर कहा—'करुणानिधे ! मुझे अजेय कर दीजिये, जिससे कोई राजा मुझे जीत न सके।' उसे स्वीकार कर महादेव उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये। उसके पुत्र कालिय ने शंकर के उस वरदान मोहनास्त्र की प्राप्ति कर अपने पिता से विनम्र होकर कहा—'तात ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं पवित्र जलपूर्ण गंगा का दर्शन करने के लिए सेना समेत जा रहा हूँ।' पिता आज्ञा प्रदान कर अपने महल चले गये और उसने अपनी भगिनी (बहिन) से कहा—शोभने, विजये ! तुम्हें कौन-सी उत्तम वस्तु चाहिये, मुझे शीघ्र बताओ। उसने कहा—वीर ! मणि-मोतियों से विभूषित (नौलखा) हार मुझे अत्यन्त प्रिय है। अतः इसे अवश्य ला देना। उसने स्वीकार कर घर से प्रस्थान कर दिया।१-८। कालिय एक लाख अश्वारोहियों की सेना लेकर गंगासागर पर पहुँचा वहाँ विधान समेत स्नान करने के उपरान्त ब्राह्मणों को दान देकर जयचन्द्र के नगर की ओर चला। वहाँ बाहुशाली एक महाबलवान् जयचन्द्र को निर्धन की भाँति समझकर छोड़ दिया। कान्यकुब्ज (कन्नौज) में उसे बहुमूल्य वाला वह महाहार जब न मिला, तब उस समय उर्वीय (उरई) के राजा ने उससे बताया। पश्चात् वह राजा शिव जी से प्राप्त वरदान के नाते मदान्ध होकर उस रमणीक महावतीपुरी में जाकर उसे चारों ओर से घेर लिया। उसे सुनकर राजा भयभीत होकर भगवान् शंकर की शरण पहुँचकर आराधना करने लगे। शिव की आज्ञा से राजा साठ सहस्र सेना लेकर तथा उन तीनों महाबलवानों से सुरक्षित होते हुए नगर के बाहर रणस्थल में पहुँच गये। इनकी सेना में एक सहस्र हाथी की सेना थी जिसके नायक देशराज बनाये गये थे।९-१४। सोलह सहस्र अश्वारोही की सेना थी, जिसका आधिपत्य वत्सराज को प्राप्त था, और शेष पैदल की सेना तालन के

**अभवत्तुमुलं युद्धं तेषां वीरवरक्षयम् । अहोरात्रप्रमाणेन महद्घोरमवर्तत ॥१६
ते हत्वा शात्रवीं सेनां चक्रुर्जयरवान्मुहुः । भयार्ता नार्मदेयाश्च माहिष्मति[1] निवासिनः ॥१७
दुद्रुवुः सर्वतो विप्र दृष्ट्वा तान्कालियो नृपः । आश्वास्य प्रययौ युद्धमर्द्धसैन्यसमन्वितः ॥१८
हृदि कृत्वा महादेवं मोहनं बाणमादधत् । सिद्धमन्त्रप्रभावेण मोहितास्ते बभूविरे ॥१९
शेषास्ते शत्रवः सर्वे रिपुघाताय संययुः । अलसांस्तान्कपालेषु जघ्नुस्ते भयवर्जिताः ॥२०
भीष्मसिंहस्तथा दृष्ट्वा बोधयामास सैनिकान् । सूर्यदत्तेन बाणेन संज्ञाख्यानेन तत्र वै ॥२१
भैरवाख्येन भल्लेन शत्रुदेहमताडयत् । मूर्च्छितः सोऽपतद्वीरो गजपृष्ठे शरार्दितः ॥२२
तदा माहिष्मती सेना निर्ययौ सा दिशो दश । मुहूर्तं कश्मलं प्राप्य पुनरुत्थाय कालियः ॥२३
भल्लेन तच्छिरः कायादपाहरत् भूमिपः । हते तस्मिन्महावीर्ये तालनाद्या महाबलाः ॥२४
कालियं ते पराजित्य तं शत्रुं प्रत्यषेधयन् । महाकष्टान्वितो भूपो ध्यात्वा मनसि शङ्करम् ॥२५
मोहयित्वा रिपून्सर्वान्स ययौ स्वं निवेशनम् । अर्द्धसैन्येन सहिता हतशेषास्त्रयस्तथा ॥२६
तदा परिमलो राजा दृष्ट्वा शत्रुपराजयम् । परिष्वज्य महावीरान्स्वगेहं पुनराययौ ॥२७
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः । तालनं च समाहूय सेनाधीशमकरायत् ॥२८**

अधिकार में थी। दोनों राजाओं का तुमुल संग्राम आरम्भ हुआ, वीरगण भूमिशायी होने लगे, वह घोर युद्ध दिन-रात में समान रूप से हो रहा था। (परिमल के) सैनिकों ने शत्रुसेना का नाश करके 'जय-जय' की ध्वनि से अपनी विजय की सूचना बार-बार देना आरम्भ किया और नर्मदा तट के माहिष्मती नगर के निवासी (करिया) की सेना भयभीत होकर चारों ओर भागने लगी। विप्र! राजा कालिय (करिया) ने भागते हुए उन्हें देखकर आश्वासन (धैर्य) दिया। पश्चात् शेष बची हुई अपनी आधी सेना समेत युद्ध के लिए पुनः वहाँ (रणस्थल में) पहुँचा। वहाँ उसने अपने हृदय में महादेव जी का ध्यान करके मोहनबाण का प्रयोग किया। उस सिद्धमंत्र के प्रभाव से वे सब मोहित हो गये। शेष शत्रुसेना अपने शत्रु (परिमल) के सैनिकों का संहार (शिरश्छेदन) करने लगी। इसे देखकर कर भीष्मसिंह ने सैनिकों को सूर्यप्रदत्त उस संज्ञा नामक बाण द्वारा चैतन्य किया। पश्चात् भैरव नामक भल्लास्त्र से शत्रु की देह में आघात किया, जिससे वह वीर (करिया) अपनी हाथी पर व्यथित एवं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।१५-२२। उस समय उसकी सेना सभी दिशाओं में तितर-वितर हो गई। एक घड़ी मूर्च्छित रहने के उपरान्त कालिय ने उठकर अपने भाला से भीष्म का शिरश्छेदन कर दिया। उस महाबली के स्वर्गीय होने पर तालन आदि बलवानों ने उस कालिय शत्रु को आगे बढ़ने से रोकना आरम्भ किया। पश्चात् अत्यन्त दुःखी होकर उस राजा ने शंकर जी का मानसिक ध्यान करते हुए शत्रुओं को मोहित कर अपने घर को प्रस्थान किया। इधर ये तीनों—तालन आदि वीरों ने अपनी बची हुई आधी सेना लेकर नगर में प्रवेश किया। उस समय राजा परिमल शत्रु का पराजय सुनकर उन आये हुए वीरों का गले मिलकर अत्यन्त सम्मान किया। इसे सुनकर जयचन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने तालन को बुलाकर अपने यहाँ सेनाधीश बनाया।२३-२८।

---

१. ङीपोह्रस्व आर्षः।

भीष्मसिंहे गते लोके पञ्चमासान्तरे नृपे । तत्पत्नी जनयामास पुत्ररत्नं शुभाननम् ।।२९
सा तु गुर्जरभूपस्य तनयाख्या मदालसा । दिव्यं पुत्रं समालोक्य मुमुदे सगणा भृशम् ।।३०
श्रुत्वा तज्जन्म नृपतिर्वितितार धनं बहु । आहूय गणकान्प्राज्ञाञ्जातकर्म ह्यकारयत् ।।३१
सहदेवांश एवासौ भुवि जातः शिवाज्ञया । देवसिंहः कृतो नाम गणकैः शास्त्रचिन्तकैः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अथ नवमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कालियं तौ पराजित्य भ्रातरौ नृपसेवकौ । गतौ गोपालके राष्ट्रे भूपतिर्दलवाहनः ।।१
सहस्रचण्डिकाहोमे नानाभूपसमागमे । गृहीतौ महिषौ ताभ्यां भूपैरन्यैश्च दुर्जयौ ।।२
पूर्वं हि नृपकन्याभ्यां प्रत्यहं बन्धनं गतौ । तौ सम्पूज्य विधानेन ददौ ताभ्यां च कन्यके ।।३
देवकीं देशराजाय ब्राह्मीं तस्यानुजाय वै । ददौ दुर्गाज्ञया राजा रूपयौवनशालिनीम् ।।४

भीष्म सिंह के स्वर्गीय होने पर पाँच मास के भीतर ही उनकी पत्नी ने एक शुभ पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जो गुर्जर (गुजरात) देश के राजा की पुत्री थी । मदालसा उसका नाम था । उसके दिव्य पुत्र का जन्म सुनकर सभी लोग प्रसन्न हुए । राजा ने उसके जातकर्म संस्कार तथा जन्म के उपलक्ष्य में अत्यन्त धन वितरण किया । ज्योतिषियों द्वारा जातकर्म सुसम्पन्न होने के उपरान्त उनके पूँछने पर उन्होंने बताया—सहदेव का शिव की आज्ञा से अंश इस बालक के रूप में पृथिवी तल को सुशोभित करने के लिए आया है ।' पश्चात् उन विद्वानों ने 'देवसिंह' उसका नामकरण किया ।२९-३२।

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अध्याय ९

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—राज-सेवक दोनों भाइयों ने कालिय (करिया) को पराजित करके गोपालक राज्य के अधीश्वर राजा दलवाहन के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ सहस्र चण्डी के अनुष्ठान में हवन का आरम्भ होने जा रहा था जिसमें अनेक राजागण उपस्थित थे । इन दोनों भाइयों ने (देवी के बलिदानार्थ) उपस्थित उन भैंसों को पकड़कर अपने अधीन कर रखा था जिन्हें अन्य कोई राजा नहीं पकड़ सकता था । राजा की दोनों कन्याओं ने उन्हें पहले ही बाँध रखा था । प्रसन्न होकर राजा ने अपनी दोनों कन्याएँ इन दोनों भाइयों को प्रदान किया । देवकी देशराज को और ब्राह्मी वत्सराज को देकर दुर्गा जी की आज्ञा से उन रूप यौवनशालिनी कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार सविधान सुसम्पन्न कराया ।१-४। उन कन्याओं के साथ

लक्षावृत्तिं तथा वेश्यां गीतनृत्यविशारदाम् । कन्ययोश्च सखीं रम्यां मेघमल्लाररागिणीम् ॥५
शतं राजान्रथान्पञ्च हयांश्चैव सहस्रकान् । चत्वारिंशच्च शिबिकाः प्रददौ दलवाहनः ॥६
बहुद्रव्ययुतां कन्यां दासदासीसमन्विताम् । उद्वाह्य वेदविधिना प्रापतुश्च महावतीम् ॥७
मलना तां वधूं दृष्ट्वा तस्यै ग्रैवेयकं ददौ । ब्राह्म्यै षोडशशृङ्गारं तथा द्वादशभूषणम् ॥८
राजा च परमानन्दी देशराजाय शूरिणे । ददौ दशपुरं रम्यं नानाजननिषेवितम् ॥९
ऊषतुस्तत्र तौ वीरौ राजमान्यौ महाबलौ । एतस्मिन्नन्तरे जातो देवसिंहो हराज्ञया ॥१०
जाते तस्मिन्कुमारे तु देवकी गर्भमादधौ । दासश्रुता यतेर्देवी सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ॥११
गौराङ्गं कमलाक्षं च दीप्यमानं स्वतेजसा । तदाऽऽनन्दमयो देवः शक्रः सुरगणैः सह ॥१२
शङ्खशब्दं चकारोच्चैर्जयशब्दं पुनःपुनः । दिशः प्रफुल्लिताश्चासन्ग्रहाः सर्वे तथा दिवि ॥१३
आयाता बहवो विप्रा वेदशास्त्रपरायणाः । चक्रुस्ते जातकर्मास्य नामकर्म तथाविधम् ॥१४
रामांशं तं शिशुं ज्ञात्वा प्रसन्नवदनं शुभम् । भाद्रकृष्णतिथौ षष्ठ्यां चन्द्रवारेऽरुणोदये ॥१५
सञ्जातः कृत्तिकाभे च पितृवंशयशस्करः । आह्लादनाम्नाह्यभवत्प्रश्रितश्च महीतले ॥१६
मासान्ते च सुते जाते ब्राह्मी पुत्रमजीजनत् । धर्मजांशं तथा गौरं महाबाहुं सुवक्षसम् ॥१७
तदा च ब्राह्मणाः सर्वे दृष्ट्वा बालं शुभाननम् । प्रसन्नवदनं चारुपद्मचिह्नपदस्थितम् ॥१८

लक्षावृत्ति नामक वेश्या, जो नृत्य एवं गान में अत्यन्त निपुण थी, और मेघ मलार राग गाने वाली उसकी सुन्दरी सखियाँ भेजी गईं तथा सौ हाथी, पाँच सहस्र घोड़े और चालीस पालकी भी राजा दलवाहन ने सप्रेम प्रदान किया। अत्यन्त धनराशि और अनेक दास दासी गणों समेत उन कन्याओं को लेकर सविधान विवाह हो जाने के उपरान्त अपनी महावती पुरी में वे दोनों भाई चले आये। मलना ने उस वधू को देखकर वह अमूल्य (नौलखा) हार, ब्राह्मी को सोलह शृंगार तथा बारह आभूषण प्रदान किया। परमानन्द मग्न होकर राजा परिमल ने दश गाँव जिसमें भाँति-भाँति की जाति के मनुष्य अधिक संख्या में रह रहे थे, वीर देशराज को प्रदान किया। उसी स्थान में ये दोनों पराक्रमी भाई रहने लगे। शिव की आज्ञावश जिस समय देवसिंह ने जन्म ग्रहण किया उसी समय देवकी ने गर्भ-धारण किया था, समय पाकर गौरवर्ण, कमलवत् नेत्र एवं अपनी आभा से देदीप्यमान सन्तान के उत्पन्न होते ही देवताओं के सहित इन्द्र आनन्दित हुए। शंखों की ध्वनि और बार-बार जय शब्द होने लगे। दिशाएँ हरी-भरी दिखाई देने लगी, उसी भाँति आकाश में ग्रहगण प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। वेद-शास्त्र के पारगामी अनेक ब्राह्मण विद्वानों ने वहाँ एकत्र होकर उस शिशु का जातकर्म एवं नामकरण सविधान सुसम्पन्न किया।५-१४। शुभ एवं प्रसन्नमुख वाले उस पुत्र को, जो भाद्र कृष्ण की षष्ठी चन्द्रवार के दिन अरुणोदय बेला तथा कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न एवं अपने पितृवंश को यशस्वी बनाने वाला था, राम का अंश जानकर उसका 'आह्लाद' (आल्हा) नामकरण किया। वह बालक इसी नाम से इस भूतल में ख्याति प्राप्त किया। इस बालक के जन्मग्रहण करने के एक मास पश्चात् ब्राह्मी ने भी पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जो गौरवर्ण, लम्बी भुजाएँ, विशालवक्षस्थल, तथा धर्म-पुत्र (युधिष्ठर) का अंश था।१५-१७। उस समय ब्राह्मणों ने उस बच्चे को देखकर, जिसका शुभ-प्रसन्नमुख और चरण-तल, सुन्दर कमल चिह्न से विभूपित था, महाबली होने के नाते उसका 'बलस्वामी (मलखान) नामकरण ब्राह्मणों ने

तृतीयाब्दे वयः प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । शक्रस्तद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो जगाम ह ।।४४
क्रीडन्तं चन्दनारण्ये कृष्णांशो भ्रातृभिः सह । नभस्थं पुरुषं दृष्ट्वा सहस्राक्षं जहास वै ।।४५
अश्विनी हरिणी दिव्या उच्चैः श्रवसमन्तिके । गत्वा गर्भमुपादाय स्वगेहं पुनराययौ ।।४६
वर्षान्तरे च सुषुवे कपोतं तनयं शुभम् । पञ्चाब्दे च समायाते विद्याध्ययनमास्थिताः ।।४७
ब्राह्मणं शिवशर्माणं सर्वविद्याविशारदम् । स्वभक्त्या सेवनं कृत्वा ते चक्रुर्वेदपाठिकाम् ।।४८
अष्टाब्दे चैव कृष्णांशो नामपत्रादिकां क्रियाम् । लिखतां बालकानां च कृष्णांशः श्रेष्ठतामगात् ।।४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णांशावतारो नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

नवमाब्दं वयः प्राप्ते कृष्णांशो बलवत्तरः । पठित्वान्वीक्षिकीं विद्यां चतुःषष्टिकलास्तथा ।।१
धर्मशास्त्रं तथैवापि सर्वश्रेष्ठो बभूव ह । तस्मिन्काले भृगुश्रेष्ठ महीराजो नृपोत्तमः ।।२

तीसरे वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर उस सबल एवं कृष्णांश (से उत्पन्न उदय) के दर्शनाभिलाषी इन्द्र घोड़े पर बैठकर वहाँ आये, जहाँ वह चन्दन के वन में अपने भाइयों के साथ बाल-क्रीडा में निमग्न हो रहा था ! उस समय आकाश में स्थित इन्द्र को देखकर उस बालक ने अट्टहास (ठठाकर हँसा) किया, इधर हरिणी नामक बड़वा (घोड़ी) भी इन्द्र के उस दिव्य उच्चैः श्रवा नामक घोड़े के पास पहुँचकर उसके द्वारा गर्भ धारणकर पुनः अपने घर लौट आई । पश्चात् वर्ष की समाप्ति में उसने कपोत (कबूतर) नामक एक पुत्र (अश्व) उत्पन्न किया । पाँचवें वर्ष के आरम्भ में इन बालकों ने विद्याध्ययन आरम्भ किया । शिवशर्मा नामक ब्राह्मण की, जो सम्पूर्ण विद्या में निपुण थे, भक्ति-श्रद्धा से सेवा कर रहे थे, जो इन्हें शिक्षा दे रहे थे । आठ वर्ष की अवस्था में वह उदयसिंह अध्ययन करने वाले सभी बालकों में कुशाग्र बुद्धि हुआ, पत्रादि-लेखन भली-भाँति कर लेता था ।४४-४९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—नवें वर्ष के आरम्भ में वह सबल कृष्णांश (उदयसिंह) राजनीति विद्या, चौंसठ कलाओं और धर्मशास्त्र में निपुणता प्राप्तकर सर्वश्रेष्ठ होने के नाते ख्याति प्राप्त हुआ । भृगुश्रेष्ठ ! उस समय राजा पृथिवीराज ने कर (माल-गुजारी) ग्रहण करने के लिए अपनी सेना को महावती (महोबा)

करार्थं प्रेषयामास स्वसैन्यं च महावतीम् । ते वै लक्षं महाशूराः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणः ।।३
ऊचुः परिमलं भूपं शृणु चन्द्रकुलोद्भव । सर्वे च भारते वर्षे ये राजानो महाबलाः ।।४
षडंशं करमादायास्मद्राजाय ददति वै । भवान्करे हि तस्यैव योग्यो भवति साम्प्रतम् ।।५
अद्यप्रभृति चेद्राज्ञे तस्मै दद्यात्करं न हि । महीराजस्य रौद्रास्त्रैः क्षयं यास्यति सैनिकैः ।।६
ये भूपा जयचन्द्रस्य पक्षगास्ते हि तद्भयात् । ददन्ते भूमिराजाय दण्डं तन्मानसत्कृताः ।।७
इति श्रुत्वा स नृपतिस्तस्मै राज्ञे महात्मने । करं षडंशमादाय ददौ प्रीतिसमन्वितः ।।८
दशलक्षमितं द्रव्यं गृहीत्वा ते समाययुः । महीराजः प्रसन्नात्मा पूर्ववैरमपाहरत् ।।९
तदा ते लक्षशूराश्च कान्यकुब्जमुपाययुः । जयचन्द्रं तु नत्वोचुः शृणु लक्षणकोविद ।।१०
पृथ्वीराजो महाराजो दण्डं त्वत्तः समिच्छति । इत्युक्तस्तैर्वैष्णवास्त्री लक्षणस्तानुवाच ह ।।११
मद्देशे मण्डलीकाश्च बहवः सन्ति साम्प्रतम् । भूमिराजो माण्डलिको मयि जीवति मा भवेत् ।।१२
इत्युक्त्वा वैष्णवास्त्रं तान्क्रुद्धः स च समादधत् । तदस्त्रज्वालतः सर्वे भयभीताः प्रदुद्रुवुः ।।१३
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महद्भयमुपागमत् । दशाब्दं च वयः प्राप्ते कृष्णांशे मल्लकोविदे ।।१४
नानामल्लाः समाजग्मुस्तेन राज्ञैव सत्कृताः । तेषां मध्ये स कृष्णांशो बाहुशाली बभूव ह ।।१५
उर्दीयाधिपतेः पुत्रः षोडशाब्दवया बली । शतमल्लैश्च सहितः कदाचित्स समागतः ।।१६

नगर में भेजा। महापराक्रमी एवं शस्त्रास्त्रधारी उन एक लाख सैनिकों ने राजा परिमल से कहा—चन्द्रकुलोत्पन्न , राजन् ! हम लोगों की बातें सुनने की कृपा करें । भारत वर्ष के जितने बलवान् राजा हैं, सभी (अपनी आय का) छठाँ भाग कररूप में हमारे महाराजा को समर्पित करते हैं । अब आप भी उन्हें कर देने की क्षमता प्राप्त करें, अतः आज से आपको यह राजकर अर्पित करना पड़ेगा, नहीं तो, कर न देने पर पृथिवीराज के सैनिकों के रुद्रास्त्रों द्वारा आप नष्ट कर दिये जायेंगे क्योंकि जयचन्द्र के पक्ष वाले सभी राजागण भयभीत होकर पृथिवीराज को वह राजकर सदैव मान-सत्कार के साथ प्रदान करते आ रहे हैं । इसे सुनकर राजा (परिमल) ने छठाँ भाग राजदण्ड रूप में महाराज पृथिवीराज को सप्रेम समर्पित किया ।१-८। दश लाख द्रव्य लेकर वे सैनिकगण वहाँ से चले आये और पृथिवीराज ने भी प्रसन्न होकर पुराने वैर का त्यागकर दिया । पश्चात् वे एक लाख के सैनिक शूरों ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) में पहुँचकर राजा जयचन्द्र से नमस्कारपूर्वक कहा—लक्षणकोविद ! महाराज पृथिवीराज ने आपसे राजकर माँगा है, इतना कहने पर वैष्णवास्त्र के लक्षणवेत्ता उस राजा ने उन लोगों से कहा—मेरे राज्य में इस समय अनेक मण्डलीक (छत्रधारी) राजा हैं, किन्तु मेरे जीवन-काल में पृथिवीराज मण्डलीक राजा न बने । पश्चात् क्रुद्ध होकर उसने अपने वैष्णवास्त्र का प्रयोग करना ही चाहा कि सैनिकगण उस अस्त्र की ज्वाला से भयभीत होकर भाग गये । इसे सुनकर पृथिवीराज भी अत्यन्त भयभीत हुए । दशवें वर्ष की अवस्था में कृष्णांश (उदयसिंह) मल्ल विद्या में भी निपुण हो गया। उस समय महावती नगरी में अनेक मल्लों (पहलवानों) का आगमन हुआ। राजा ने उन सबको आतिथ्य सत्कार प्रदान किया। मल्लों के वहाँ एकत्र होने पर सबसे अधिक बली उदयसिंह ही दिखाई देने लगा। उन मल्लों में पृथिवीराज का पुत्र, जो सोलह वर्ष का था, अपने सौ मल्लों समेत उपस्थित था।९-१६। उसने फूफा राजा परिमल से कहा राजन्! यह

पितृष्वसृपतिं भूपं नत्वा नाम्नाऽभयोबली । उवाच शृणु भूपाल कृष्णोऽयं मदमत्तरः ।।१७
तेन सार्द्धं भवेन्मल्लयुद्धं मम नृपोत्तम । इति वज्रसमं वाक्यं श्रुत्वा राजा भयातुरः ।।१८
उवाच श्यालजं प्रेम्णा भवान् युद्धविशारदः । अष्टाब्दोऽयं सुतः स्निग्धो मम प्राणसमो भुवि ।।१९
क्व भवान्वज्र सदृशः क्व सुतोऽयं सुकोमलः । अन्यैर्मल्लैर्मदीयैश्च सार्द्धं योग्यो भवान्रणे ।।२०
इति श्रुत्वा नृपः श्यालो महीपतिरिति स्मृतः । स तमाह रुषाविष्टो बालोऽयं बलवत्तरः ।।२१
शृणु तत्कारणं भूप यथा ज्ञातो मया शिशुः । आगस्कृतं महीराजं मत्वा सतिलकः सुतम् ।।२२
पण्डितांश्च समाहूय मुहूर्तं पृष्टवान्मुदा । गणेशो नाम मतिमाञ्ज्योतिश्शास्त्रविशारदः ।।२३
लक्षणं वचनं प्राह महीराजमनुत्तमम् । शिवदत्तवरो राजन्कुबेर इव साम्प्रतम् ।।२४
कृष्णांशस्तस्य योग्योऽयं देशराजसुतोऽवरः । नान्योऽस्ति भूतले राजन्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ।।२५
तच्छ्रुत्वा लक्षणो वीरः पूर्वे बर्हिष्मतीं प्रति । कल्पक्षेत्रं दक्षिणे च भूमिग्रामं तु पश्चिमे ।।२६
उत्तरे नैमिषारण्यं स्वकीयं राष्ट्रमादधत् । अतः श्रेष्ठः कुमारोऽयं कान्यकुब्जे मया श्रुतः ।।२७
नागोत्सवे च भूपाल पञ्चम्यां च नभस्सिते । दृश्यमात्रं कुमाराङ्गं तस्माद्योग्यो ह्ययं सुतः ।।२८
इति श्रुत्वा स कृष्णांशो वाक्छरेण प्रपीडितः । अभयं भुजयोः शीघ्रं गृहीत्वा सोऽयुधद्बली ।।२९
क्षणमात्रं रणं कृत्वा भूमिमध्ये तमक्षिपत् । अभयस्य भुजो भग्नस्तत्र जातो बलेन वै ।।३०
मूर्च्छितं स्वसुतं ज्ञात्वा खड्गहस्तो महीपतिः । प्रेषयामास तान्मल्लान्कृष्णांशस्य प्रहारणे ।।३१

कृष्ण अधिक मदमत्त दिखाई देता है, और मेरा भी नाम अभय है, अतः नृपोत्तम ! उससे मेरा मल्ल युद्ध होना चाहिए । वज्र के समान इस बात को सुनकर राजा ने कातर होकर अपने साले से कहा—आप युद्ध कुशल हैं, मेरा यह स्निग्धपुत्र, जो मेरा प्राणप्रिय है, अभी आठ ही वर्ष का है । कहाँ वज्र की भाँति कठोर आयु और कहाँ अत्यन्त सुकोमल यह बालक ।' मेरे यहाँ और अन्य मल्ल रहते हैं, आप उनके साथ रण-कुशलता दिखा सकते हैं ! इसको सुनकर उसने क्रुद्ध होकर कहा—'यह बालक अत्यन्त बलवान् है' राजन् ! इसका कारण तथा मैं जिस प्रकार इस बालक को जानता हूँ, कह रहा हूँ, सुनिये ! अपने पुत्र पृथिवीराज को अपराधी समझकर राजा तिलक ने पण्डितों को बुलवाकर उनसे मुहूर्त पूँछा । उस समय ज्योतिषशास्त्र के निपुण विद्वान् पण्डित गणेश जी ने लक्षण-फलों की व्याख्या करना आरम्भ किया—राजन् ! देशराज का वह सर्वश्रेष्ठ पुत्र इसके योग्य है, जो शिव जी से वरदान प्राप्तकर इस समय कुबेर की भाँति दिखाई पड़ता है तथा कृष्ण के अंश से उत्पन्न है । राजन् ! और दूसरा इस भूतल में कोई भी इसके योग्य नहीं है' यह मैं बार-बार सत्य ही कह रहा हूँ ।१७-२५। उसे सुनकर वीर लक्षण (लषन) ने पूर्व बर्हिष्मती नगरी, दक्षिण में कल्पक्षेत्र, पश्चिम में भूमिग्राम और उत्तर में नैमिषारण्य तक अपना राज्य स्थापित किया। अतः मैंने सुना कि कान्यकुब्ज (कन्नौज) का राजकुमार सर्वश्रेष्ठ है। राजन् ! श्रावणमास की इस नाग-पञ्चमी के दिन कुमारों के अंग दृश्य होते ही हैं इसलिए इस योग्य बालक का मेरे साथ मल्ल-युद्ध होना ही चाहिए । इसे सुनकर वह कृष्णांश (उदयसिंह) उनके वाक्शर से अत्यन्त पीड़ित होकर अभय के दोनों बाहुओं को शीघ्रता से पकड़कर युद्ध करने लगा—क्षण में उससे युद्ध करके उसे भूमि में फेंक दिया—उस युद्ध में उसने अभय की भुजा तोड़ दी ।२६-३०। राजा ने अपने पुत्र को संज्ञाहीन (मूर्छित

रुषाविष्टांश्च तान्ज्ञात्वा कृष्णांशो बलवत्तरः । तानेकैकं समाक्षिप्य विजयी स बभूव ह ।।३२
पराजिते मल्लबले खड्गहस्तो महीपतिः । मरणाय मतिं चक्रे कृष्णांशस्य प्रभावतः ।।३३
ज्ञात्वा तमीदृशं भूपं वारयामास भूपतिः । अभयं नीरुजं कृत्वा प्रेम्णा गेहमवासयत् ।।३४
नवाब्दाङ्गे च कृष्णांशे चाह्लादाद्याः कुमारकाः । मृगयार्थे दधुश्चितं तमूचुर्भूपतिं प्रियम् ।।३५
नमस्ते तात भूपाग्र्य सर्वानन्दप्रदायक । अस्मभ्यं त्वं हयान्देहि मत्प्रियान्करुणाकर ।।३६
इति श्रुत्वा वचस्तेषां तथेत्युक्त्वा महीपतिः । भूतले वासिनोऽश्वान्वै दिव्यान्राट् चतुरो वरान् ।।३७
ददौ तेभ्यो मुदा युक्तो हरिणीगर्भसम्भवान्

ऋषय ऊचुः

त्वन्मुखेन श्रुतं सूत हरिणी वडवा यथा ।।३८
भीष्म सिंहाय सम्प्राप्ता शक्राद्देवेशतो मुने । इदानीं श्रोतुमिच्छामः कुतो जातास्तुरङ्गमाः ।।३९
दिव्याङ्गा भूषणापन्ना नभस्सलिलगामिनः

सूत उवाच

देशराजेन भूपेन पुरा धर्मयुतेन वै ।।४०
सेवनं भास्करस्यैव कृतं च द्वादशाब्दिकम् । सेवान्ते भगवान्सूर्यो वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ।।४१

देखकर हाथ में तलवार लिए उन मल्लों को कृष्णांश के हननार्थ भेजा । उन मल्लों को क्रुद्ध एवं रोषपूर्ण जानकर उस बलवान् कृष्णांश ने उनमें से एक-एक को भूमि में गिराकर विजय की प्राप्ति की । मल्ल सैनिकों के पराजित हो जाने पर राजा ने हाथ में तलवार लेकर उस कृष्णांश द्वारा अपने जीवन को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध होने का निश्चय किया । राजा ने उन्हें इस प्रकार मरण के लिए निश्चित तैयार जानकर अभय को आरोग्य करके उसके समेत राजा को अपने यहाँ प्रेम-पूर्वक रखा । नवें वर्ष के आरम्भ में कृष्णांश (उदय सिंह) के आह्लाद (आल्हा) आदि कुमारों समेत मृगयार्थ जंगल के लिए प्रस्थान किया । उन्होंने प्रस्थान करते समय राजा से कहा—भूपश्रेष्ठ, तात ! सम्पूर्ण आनन्द को प्रदान करने वाले आप परमकारुणिक हैं अतः हमें उन प्रिय घोड़ों को दे दीजिये । उसे सुनकर राजा ने उसे स्वीकार करते हुए अत्यन्त हर्षमग्न होकर उन चारों कुमारों के लिए पृथिवी निवासी चार दिव्य घोड़े प्रदान किये, जो हरिणी नामक घोड़ी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।३१-३७

ऋषियों ने कहा—मुने ! सूत ! भीष्मसिंह को देवेश इन्द्र के द्वारा वह हरिणी घोड़ी जिस प्रकार से प्राप्त हुई थी, हम लोगों ने आपके द्वारा उसे सुन लिया । अब यह सुनने की इच्छा है कि ये घोड़े, जो कुमारों को राजा द्वारा प्राप्त हुए हैं और जो दिव्यभूषणों से सुसज्जित एवं नभ (सलिल) चारी हैं, किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं ? ३८-३९

सूत जी बोले——धार्मिक राजा देशराज ने पहले समय में लगातार बारह वर्ष तक सूर्य की सेवा की थी । तदुपरान्त प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने उनसे कहा—वर की याचना करो । उन्होंने कहा—देव !

प्राह देव नमस्तुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया । हयं दिव्यमयं देहि नभस्थलजलातिगम् ॥४२
तथेत्युक्त्वा रविः साक्षाद्ददौ तस्मै पपीहकम् । लोकान्पाति पपीर्ज्ञेयस्तस्येदं नाम चोत्तमम् ॥४३
अतः पपीहको नाम लोकपालनकर्मवान् । स हयो मदमत्तश्च हरिणीं दिव्यरूपिणीम् ॥४४
बुभुजे स्मरवेगेन तस्यां जातास्तुरङ्गमाः । मनोरथश्च पीताङ्गः करालः कृष्णरूपकः ॥४५
एकगर्भे समुद्भूतौ शैव्यसुग्रीवकांशकौ । यस्मिन्दिने समुद्भूतौ जिष्णुविष्णुकलांशतः ॥४६
तदा जातौ हरिण्याश्च मेघपुष्पबलाहकौ । बिन्दुलश्च सुवर्णाङ्गः श्वेताङ्गो हरिनागरः ॥४७
दिव्याङ्गास्ते हि चत्वारः पूर्वं जाता महाबलाः । पश्चादंशावताराश्च जातास्तेषां महात्मनाम् ॥४८
इति ते कथितं विप्र शृणु तत्र कथां शुभाम् । भूतले ते हयाः सर्वे प्राप्ताश्चोपरिभूमिगाः ॥४९
देवसिंहाय बलिने ददौ चाश्वं मनोरथम् । आह्लादाय करालं च कृष्णां शायैव बिन्दुलम् ॥५०
ब्रह्मानन्दाय पुत्राय प्रददौ हरिनागरम् । ते चत्वारो हयारूढा मृगयार्थं वनं ययुः ॥५१
हरिणीं वडवां शुभ्रां बलखानिः समारुहत् । तदनु प्रययौ वीरो वनं सिंहनिषेवितम् ॥५२
आह्लादेनैव शार्दूलो हतः प्राणिभयङ्करः । देवसिंहेन सिंहश्च सूकरो बलखानिना ॥५३
ब्रह्मानन्देन हरिणो हतस्तत्र महावने । मृगाः शतं हतास्तैश्च तान्गृहीत्वा गृहं ययुः ॥५४
एतस्मिन्नन्तरे देवी शारदा च शुभानना । मृगी स्वर्णमयी भूत्वा तेषामग्रे प्रधाविता ॥५५

तुम्हें नमस्कार है, यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो मुझे आकाश-गंगा के जल में चलने वाले उस घोड़े को प्रदान करने की कृपा कीजिये ।'४०-४२। इसे स्वीकार कर सूर्य ने उसे पपीहा (लोक की रक्षा करने वाला) नामक घोड़ा प्रदान किया । पश्चात् लोक पालन करने वाला यह पपीहा नामक अश्व मदोन्मत्त होने के नाते काम को रोकने में असमर्थ होकर उस दिव्य हरिणी नामक घोड़ी के साथ मैथुन किया, जिसके गर्भ से ये—पीले वर्ण का मनोरथ (मनोहर) और कृष्ण वर्ण का कराल (भीषणाकार) ये दोनों एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए, उन्हें शैव्य और सुग्रीव का कला अंश बताया जाता है । पश्चात् जिष्णु और विष्णु कला के अंश हरिणी के गर्भ से मेघपुष्प और बलाहक उत्पन्न हुए, जिन्हें सुवर्ण के समान अंगवाले को विन्दुल (वेंदुल) और श्वेतवर्ण वाले को हरिनागर कहा गया है । प्रथम दिव्य अंग वाले ये महावली चार घोड़े उत्पन्न हुए, अनन्तर इन्हीं अश्वों के अंश से अनेक की उत्पत्ति हुई है । विप्र ! इस प्रकार इनकी उत्पत्ति कथा तुम्हें बता दी गई । अब आगे समाचार बता रहा हूँ, सुनो ! इन चारों घोड़ों के भूमि पर प्राप्त होने पर मनोरथ नामक अश्व बलवान देवसिंह को दिया गया, आह्लाद (आल्हा) के लिए कराल, उदयसिंह को विन्दुल, और पुत्र ब्रह्मानन्द को हरिनागर नामक अश्व दिया गया । ये चारों राजकुमार अपने घोड़ों पर सवार होकर मृगया के लिए किसी जंगल की ओर चल पड़े ।४३-५१। उस समय उन सबके पीछे बलखान (मलखान) भी अपनी हरिणी घोड़ी पर बैठकर जा रहा था । वहाँ वे सब सिंह के जंगल में पहुँचकर, आह्लाद (आल्हा) ने एक बाघ का शिकार किया, जो प्राणियों के लिए भयंकर होता है । उसी प्रकार देवसिंह ने सिंह, बलखान ने शूकर और ब्रह्मानन्द ने हरिण का शिकार किया । इस प्रकार उन कुमारों ने उस जंगल में सैकड़ों जंगली जीवों का शिकार करके उन्हें साथ लेते हुए अपने घर को प्रस्थान किया । उसी बीच कल्याणमुखी देवी शारदा ने सुवर्ण की मृगी का रूप धारणकर उनके

दृष्ट्वा तां मोहिताः सर्वे स्वैः स्वैर्बाणैरताडयन् । शरास्तुः संक्षयं जग्मुर्मृग्यङ्गे बलवत्तरः ।।५६
आह्लादाद्याश्च ते शूरा विस्मिताश्च बभूविरे । तस्मिन्काले स कृष्णाङ्गो बाणेनैव ह्यताडयत् ।।५७
तदा च पीडिता देवी भयभीता ययौ वनम् । कृष्णांशः क्रोधताम्राक्षस्तत्पश्चात्प्रययौ बली ।।५८
वनान्तरं च सम्प्राप्य देवी धृत्वा स्वकं वपुः । तमुवाच प्रसन्नाक्षी परीक्षा ते मया कृता ।।५९
यदा ते च भयं भूयात्तदा त्वं मां सदा स्मर । साधयिष्यामि ते कार्यं कृष्णांशो हि भवान्विभुः ।।६०
इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शारदा सर्वमङ्गला । कृष्णांशस्तु ययौ गेहं तैश्च सार्द्धं मुदा युतः ।।६१
तदा पराक्रमं तेषां दृष्ट्वा राजा सुखोऽभवत् । गृहे गृहे च सर्वेषां लक्ष्मीर्देवी समाविशत् ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

दशाब्दे च वयः प्राप्ते विष्णोः शक्त्यवतारके । वसन्तसमये रम्ये ययुस्ते प्रमदावनम् ।।१

सम्मुख दौड़ना आरम्भ किया ।५२-५५। उसे देखकर मोहित होकर कुमारों ने अपने-अपने बाणों से उस पर प्रहार किया किन्तु, उनके वे भीषण बाण, उस मृगी के अंगों में प्रविष्ट होकर भी नष्ट हो जाया करते थे । उसे देखकर आह्लाद आदि कुमार अत्यन्त आश्चर्य-चकित होने लगे । उस समय उदयसिंह ने अपने बाण से उस पर आघात किया । उस बाण से पीड़ित एवं भयभीत होकर देवी दूसरे जंगल में चली गई । पश्चात् कृष्णांश (उदयसिंह) भी क्रुद्ध होने के नाते अपने नेत्र को ताँबे की भाँति रक्तवर्ण करते हुए उसके पीछे चल पड़ा । वहाँ दूसरे जंगल में पहुँचकर देवी ने अपने स्वरूप को धारण करके प्रसन्न मुख मुद्रा करती हुई उससे कहा—मैंने तुम्हारी परीक्षा ली है, अतः जब कभी तुम्हें कहीं किसी प्रकार का भय दिखाई पड़े, उस समय सदैव मेरा स्मरण करते रहना, मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगी, क्योंकि आप विभु (व्यापक) एवं कृष्ण के अंश से अवतरित हैं । इतना कहकर वह सर्वमंगला शारदा देवी अन्तर्हित हो गई और उदयसिंह उन कुमारों के साथ प्रसन्नतापूर्ण होते हुए घर पहुँचे । उस समय राजा उन कुमारों के पराक्रम को देखकर अत्यन्त सुखी हुए और वहाँ उसी समय से लक्ष्मी देवी ने भी प्रत्येक घरों में निवास करना आरम्भ किया ।५६-६२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस विष्णु की शक्ति के अवतार-उदयसिंह के दशवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ में

ऊषुस्तत्र व्रताचारे माधवे कृष्णवल्लभे । स्नात्वा च सागरे प्रातः पूजयामासुरम्बिकाम् ॥२
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विधानतः । जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं दध्युः सर्वकरीं शिवाम् ॥३
कन्दमूलफलाहारा जीवहिंसाविवर्जिताः । तेषां भक्तिं समालोक्य मासान्ते जगदम्बिका ॥४
ददौ तेभ्यो वरं रम्यं तच्छृणुध्वं समाहिताः । आह्लादाय सुरत्वं च बलत्वं बलखानये ॥५
कालज्ञत्वं च देवाय ब्रह्मज्ञत्वं नृपाय च । कृष्णांशायैव योगत्वं दत्त्वा चान्तर्दधे शिवा ॥६
कृतकृत्यास्तदा ते वै स्वगेहं पुनराययुः । तेषां प्राप्ते वरे रम्ये मलना पुत्रमूर्जितम् ॥७
श्यामाङ्गं सात्यकेरंशं सुषुवे शुभलक्षणम् । स ज्ञेयो रणजिच्छूरो राजन्यप्रियकारकः ॥८
आषाढे मासि सम्प्राप्ते कृष्णांशो हयवाहनः । उर्वीयां नगरीं प्राप्त एकाकी निर्भयो बली ॥९
दृष्ट्वा स नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिषेविताम् । द्विजशालां ययौ शूरो द्विजधेनुप्रपूजकः ॥१०
दत्त्वा स्वर्णं द्विजातिभ्यः सन्तर्प्य द्विजदेवताः । महीपतिगृहं रम्यं जगाम बलवत्तरः ॥११
नत्वा स मातुलं धीमांस्तथान्यांश्च सभासदः ॥१२
तदा नृपाज्ञया शूरा बन्धनाय समुद्यताः । खड्गहस्ताः समाजग्मुर्यथा सिंहं गजाः शशाः ॥१३
मोहितं तं नृपं कृत्वा दुष्टबुद्धिर्महीपतिः । कृत्वा लोहमयं जालं तस्योपरि समादधेः ॥१४

एक दिन राजकुमारों ने वसन्त ऋतु के रमणीक आगमन में आनन्द का अनुभव करते हुए प्रमदाओं के उपवन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर कृष्णप्रिय उस वसंत के समय उन लोगों ने व्रत करने का निश्चय किया—प्रातःकाल सागर में स्नान करके सामयिक पुष्प, फल, धूप एवं दीप द्वारा सविधान भगवती अम्बिका देवी की पूजा किया। पश्चात् कुमारगण सप्तशती (दुर्गाजी) का स्तोत्र पाठ करके जगज्जननी कल्याणी पार्वती जी का ध्यान करने लगे, और भोजन में केवल कन्दमूल का फलाहार करते थे। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए वहाँ के उनके एक मास के जीवन में अत्यन्त परिवर्तन हो गया था—जीव हिंसा से अत्यन्त विरत थे। उनकी इस प्रकार की भक्ति से प्रसन्न होकर जगदम्बा भगवती ने उन्हें जो सुन्दर वर प्रदान किया है, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! आह्लाद (आल्हा) को देवत्व, बलखान (मलखान) को बल, देव (डेबा) को काल-ज्ञान, राजा (ब्रह्मा) को ब्रह्म-ज्ञान और उदयसिंह को योग-प्रदान करके भगवती वहाँ अन्तर्हित हो गई और वे कुमारगण अपने को कृतकृत्य समझते हुए अपने घर आ गये। उन लोगों के उस प्रकार के रम्य वरदान प्राप्त करने के उपरान्त रानी मलना ने एक तेजस्वी पुत्र का जन्म दिया।१-७। जो श्यामवर्ण एवं सात्यकि का अंश था। वह शूर, रणकुशल और राजाओं का प्रियपात्र हुआ। आषाढ़मास में एक दिन उदयसिंह अपने घोड़े पर बैठकर अकेला ही उर्वी (उरई) नगरी पहुँच गये। वहाँ बली एवं निर्भय उस सुन्दर नगरी को देखते हुए जिसमें चारों जाति के लोग सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे, द्विज-शाला में ब्राह्मणों को देखा। वह ब्राह्मण और गाय का महान् भक्त था इसीलिए वहाँ द्विजातियों को सुवर्ण देकर द्विज-देवताओं को प्रसन्न करता हुआ वह बली राजा के उस रमणीक महल में पहुँच गया। वहाँ स्थित अपने मामा और अन्य सभासदों को नमस्कार करने के उपरान्त राजा की आज्ञा पाकर उस धीमान् को बाँधने के लिए उनके शूर-वीर तैयार हो गये। वे सब हाथ में खड्ग लेकर सिंह के ऊपर गज की भाँति एक साथ ही उसके ऊपर टूट पड़े। राजा ने उस बालक को मंत्रमोहित करके एक लोहे का जाल-सा बनाकर उसी पर स्वयं स्थित हो गया था।८-१४। उसी बीच देवमाया

एतस्मिन्नन्तरे वीरो बोधितो देवमायया । आगस्कृतान्रिपून्ज्ञात्वा खड्गहस्तः समावधीत् ॥१५
हत्वा पञ्चशतं शूरो हयारूढो महाबली । उर्वीया नगरीं प्राप्य जलपाने मनो दधौ ॥१६
कूपे दृष्ट्वा शुभा नार्यो घटपूर्तिकरीस्तदा । उवाच मधुरो वाक्यं देहि सुन्दरि मे जलम् ॥१७
दृष्ट्वा ताः सुन्दरं रूपं मोहनायोपचक्रिरे । भित्त्वा तासां तु वै कुम्भान्पाययित्वा हयं जलम् ॥१८
वनं गत्वा रिपुं जित्वा बद्ध्वा तमुभयं बली । चण्डिकापार्श्वमागम्य तद्वधाय मनो दधे ॥१९
श्रुत्वा स करुणं वाक्यं त्यक्त्वा स्वनगरं ययौ । नृपान्तिकमुपागम्य वर्णयामास कारणम् ॥२०
श्रुत्वा परिमलो राजा द्विजातिभ्यो ददौ धनम् । समाघ्राय स कृष्णांशं कृतकृत्योऽभवन्नृपः ॥२१
सम्प्राप्तैकादशाब्दे तु कृष्णांशे युद्धदुर्मदे । महीपतिर्निरुत्साहः प्रययौ देहलीं प्रति ॥२२
बलिं यथोचितं दत्त्वा भगिन्यै भयकातरः । रुरोद बहुधा दुःखं देशराजात्मजप्रजम् ॥२३
अगमा भगिनी तस्य दृष्ट्वा भ्रातरमातुरम् । स्वपतिं वर्णयामास श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥२४
अद्याहं स्वबलैः सार्द्धं गत्वा तत्र महावतीम् । हनिष्यामि महादुष्टं देशराजसुतं रिपुम् ॥२५
इत्युक्त्वा धुन्धुकारं च समाहूय महाबलम्। सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं तनुत्यजम् ॥२६
केचिच्छूरा हयारूढा उष्ट्रारूढा महाबलाः । गजारूढा रथारूढाः संययुश्च पदातयः ॥२७

(शारदा) ने उस कुमार को बोधित किया । पश्चात् वह खड्ग हाथ में लेकर उन अपराधी शत्रुओं का संहार करने लगा । थोड़ी देर में पाँच सौ शूरों का हनन किया । तदनन्तर वह महाबली अपने घोड़े पर बैठकर उर्वी (उरई) नगरी के भीतर प्रविष्ट हो गया । वहाँ पहुँचकर उसे जलपान करने की इच्छा हुई । उसने कूप पर जल-घट भरने वाली सुन्दरियों से कहा—सुन्दरि ! मुझे (थोड़ा) जल चाहिए ।' वे स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य को देखकर उसे मोहित करने का उपक्रम करने लगीं । उस समय उसने उनके घड़े फोड़कर अपने घोड़े को जलपान कराकर उसके उपरान्त वन में पहुँचकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की और उन्हें बाँधकर चण्डिका के सम्मुख उपस्थित किया एवं सोच रहा था कि देवी को इसकी भेंट (बलि रूप में) की जाय । इस होने वाली कारुणिक चर्चा को सुनकर राजा पृथिवीराज अपने नगर से वहाँ राजा परिमल के पास आये और उनसे सभी कारणों को कह सुनाया । इसे सुनकर राजा परिमल द्विजातियों को धन-दान करके उदयसिंह के शिर का स्पर्श एवं आघ्राण (सूँघना) किया । इससे अपने को कृतकृत्य समझने लगे । उस युद्ध-दुर्मद उदयसिंह के ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करने पर वह राजा पृथिवीराज हतोत्साहित होकर अपनी देहली (दिल्ली) को लौट गया । भय-कातर होकर अपनी-भगिनी को यथोचित बलि प्रदानपूर्वक वह देशराज-पुत्र (उदयसिंह) द्वारा जनित दुःख का अनुभव करके अत्यन्त रुदन किया । उसकी भगिनी का नाम अगमा था । उसने अपने भाई को आकुल देखकर उसका समाचार अपने पतिदेव से कहा । उसे सुनकर राजा ने यह कहा—मैं आज अपनी सेना लेकर महावती (महोबा) नगर जाकर उस दुष्ट देशराज-पुत्र (उदयसिंह) का हनन करूँगा । इतना कहकर महाबली धुंधुकार (धांधू) को बुलाकर आज्ञा दिया—मेरी सात लाख सेना को जो सदैव प्राण परित्याग के लिए कटिबद्ध रहती है, शीघ्र सुसज्जित करो । कुछ शूरवीर घोड़े पर बैठकर जा रहे हैं, कुछ ऊँट, हाथी और रथ पर तथा उनके साथ पदाति (पैदल) सेना भी जा रही है ।१५-२७। देवसिंह (डेबा) को समय-परिज्ञान का वर प्राप्त

देवसिंहस्तु कालज्ञः श्रुत्वा चागमनं रिपोः । नृपपार्श्वं समागम्य सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥२८
श्रुत्वा परिमलो राजा विह्वलोऽभूद्भयातुरः । बलखानिस्तमुत्थाय हर्षयुक्त इवाह च ॥२९
अद्याहं च महीराजं धुन्धुकारं ससैन्यकम् । जित्वा दण्डं च भवतः करिष्यामि तवाज्ञया ॥३०
इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य सेनापतिरभून्मुने । तदा तु निर्भया वीरा दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥३१
चतुर्लक्षबलैः सार्द्धं ते युद्धाय समाययुः । शिशपाख्यं वनं घोरं छेदयित्वा रिपोस्तदा ॥३२
ऊषुस्तत्र रणे मत्ताः सर्वशत्रुभयङ्कराः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र धुन्धुकारादयो [1]बलाः ॥३३
कृत्वा कोलाहलं शब्दं युद्धाय समुपाययुः । पूर्वाह्णे तु भृगुश्रेष्ठ सन्नद्धास्ते शतघ्निपाः ॥३४
शतघ्नीभिस्त्रिसाहस्रैः पञ्चसाहस्रका ययुः । द्विसहस्रशतघ्नीभिः सहिताश्चन्द्रवंशिनः ॥३५
सैन्यं षष्टिसहस्रं च स्वर्गलोकमुपाययौ । तदर्द्धं च तथा सैन्यं महीराजस्य संक्षितम् ॥३६
दुद्रुवुर्भीरुकाः शूरा बलखानेर्दिशो दश । रथा रथै रणे हन्युर्गजाश्चैव गजैस्तथा ॥३७
हया हयैस्तथा उष्ट्रा उष्ट्रपैश्च समाहनन् । एवं तुमुले जाते दारुणे रोमहर्षणे ॥३८
हाहाभूतान्स्वकीयांश्च सैन्यान्दृष्ट्वा महाबलान् । अपराह्णे भृगुश्रेष्ठ पञ्च शूराः समाययुः ॥३९
ब्रह्मानन्दः शरैः शत्रूननयद्यमसादनम् । देवसिंहस्तथा भल्लैराह्लादस्तत्र तोमरैः ॥४०
बलखानिः स्वखड्गेन कृष्णांशस्तु तथैव च । द्विलक्षान्क्षत्रियाञ्जघ्नुः सर्वसैन्यैः समन्ततः ॥४१

हो चुका है, अतः उन्होंने शत्रु का आगमन जानकर राजा के पास जाकर सभी कुछ कह सुनाया। इसे सुनकर राजा परिमल भयभीत होकर आकुल होने लगे। उन्हें कातर होते देखकर बलखानि (मलखान) ने उमङ्ग में आकर उन्हें उठा लिया और हर्षातिरेक से कहना आरम्भ किया—आज मैं राजा पृथिवीराज और सेना धुंधुकार (धांधू) को जीतकर आपके आदेश से राजकर उनसे ग्रहणकर सदैव के लिए उन्हें आपकी प्रजा (रियाया) बना दूँगा।२८-३०। मुने! इतना कहकर उसने नमस्कार पूर्वक सेनानायक होना स्वीकार किया। उस समय उसके निर्भय वीरगण अनुगामी हुए, किन्तु राजा फिर भी कातर ही बने रहे। वे वीर चार लाख की संख्या में होकर वहाँ युद्धस्थल में युद्ध के लिए पहुँच गये। वहाँ शत्रु के शिशपा नामक वन को काटकर वे शत्रु भयंकर एवं मदोन्मत्त सैनिक रहने लगे। उसी बीच धुंधुकार (धांधू) आदि महाबल कोलाहल करते हुए वहाँ पहुँचकर युद्धारम्भ कर दिये। भृगुश्रेष्ठ! पूर्वाह्ण के समय के सैनिक गण कटिवद्ध होकर तीन सहस्र की संख्या में तोप लेकर पाँच सहस्र की संख्या में स्वयं घोर युद्ध करने लगे। उसमें चन्द्रवंशी क्षत्रिय अपनी दो सहस्र तोप के साथ सेना समेत युद्ध कर रहे थे।३१-३५। उस भयानक संग्राम में चन्द्रवंशी राजा परिमल की साठ सहस्र की सेना धर्मपुरी पहुँच गई तथा उसकी आधी सेना पृथिवीराज की भी। बलखान (मलखान) के शूरवीर भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। रथी-रथी के साथ, हाथी-हाथी के साथ, घोड़े-घोड़े के साथ और ऊँट वाले ऊँटवाले के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे। भृगुश्रेष्ठ! उस रोमाञ्चकारी भीषणयुद्ध में अपनी सेना को पराजित होते देखकर दूसरे पहर दिन में पाँच शूरों ने एकत्र होकर सैनिकों के भीतर प्रवेश किया—ब्रह्मानंद अपने वाणों द्वारा शत्रुओं को यमपुरी भेजने लगे उसी प्रकार देवसिंह भाले, आह्लाद (आल्हा) तोमर, बलखानि (मलखान) अपने खड्ग और उदय सिंह भी उसी भाँति शत्रुओं को भूमिशायी कर रहे थे—इन शूरों ने अपने सैनिकों समेत शत्रु की दो लाख सेनाओं को समाप्त कर दिया।३६-४१। उस समय महाबली

---

१. बलिन इत्यर्थः।

दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं धुन्धुकारो महाबलः । आह्लादं च स्वभल्लेन गजारूढः समावधीत् ।।४२
आह्लादे मूर्च्छिते तत्र देवसिंहो महाबलः । भल्लेन भ्रातरं तस्य दंशयामास वेगतः ।।४३
स तीक्ष्णव्रणमासाद्य गजस्थः संमुमोह वै । आगताः शतराजानो नानादेश्या महाबलाः ।।४४
शस्त्राण्यस्त्राणि तेषां तु छित्त्वा खड्गेन वत्सजः । स्वखड्गेन शिरांस्येषां पातयामास भूतले ।।४५
हते शत्रुसमूहे तु तच्छेषास्तु प्रदुद्रुवुः । महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा भग्नं स्वसैन्यकम् ।।४६
आजगाम गजारूढः शिवदत्तवरो बली । रौद्रेणास्त्रेण हृदये चावधीद्वत्सजं रिपुम् ।।४७
आह्लादं च तथा वीरं देवं परिमलात्मजम् । मूर्च्छयित्वा महावीराञ्छत्रुसैन्यमुपागमत् ।।४८
पूजयित्वा शतघ्नीश्च महावधमकारयत् । रोपणस्त्वरितो गत्वा राज्ञे सर्वमवर्णयत् ।।४९
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखखानिर्महाबलः । कपोतं हयमारुह्य नभोमार्गेण चागमत् ।।५०
मूर्च्छयित्वा महीराजं स्वबन्धूंश्च सवाहनान् । कृत्वा नृपान्तमागम्य बन्धनाय समुद्यतः ।।५१
तदोत्थाय महीराजो महादेवेन बोधितः । पुनस्तांस्वशरै रौद्रैर्मूर्च्छयामास कोपवान् ।।५२
सुखखान्यादिकाञ्छूरान्सम्बध्य निगडैर्दृढैः । नृपं परिमलं प्राप्य पुनर्युद्धमचीकरत् ।।५३
हाहाभूतं स्वसैन्यं च दृष्ट्वा स उदयो हरिः । नभोमार्गे हयं कृत्वा ताः शतघ्नीरनाशयत् ।।५४
महीराजगजं प्राप्य बद्ध्वा तं निगडैर्बली । आह्लादपार्श्वमागम्य भ्रात्रे भूपं समर्पयत् ।।५५

धुंधुकार ने अपनी सेना को पराजित होते देखकर हाथी पर बैठे ही अपने भाले से आह्लाद पर आघात किया। आह्लाद के मूर्च्छित हो जाने पर महावली देवसिंह ने भाले से उसके भाई के ऊपर महान् वेग के साथ आघात किया, जिसके द्वारा तीक्ष्ण व्रण (घाव) होने से वह हाथी पर बैठा ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। उस समय बड़े-बड़े बलवान् सैकड़ों राजा अनेक देशों से आये थे, उनके शस्त्रास्त्रों को अपने खड्ग द्वारा बलखान (मलखान) ने शीघ्रता से काट दिया और उनके शिर भी काटकर भूतल में छिन्न-भिन्न कर दिया। उसमें जो कुछ थोड़े शेष रह गये वे भयभीत होकर भाग निकले इस प्रकार अपनी सेना का नाश देखकर बलवान् पृथिवीराज ने, जो शिव जी से वर प्राप्त कर चुका था अपने हाथी पर बैठकर उस रणभूमि में प्रस्थान किया—रौद्र अस्त्र से बलखान के हृदय में और उसी प्रकार आह्लाद तथा परिमल पुत्रगण—इन महावीरों को मूर्च्छित करके वे शत्रु की सेना में पहुँच गये। वहाँ शतघ्नी (तोपों) की पूजा करके उसके द्वारा सेनाओं का वध कराया। इस दृश्य को देखकर रोपण वीर ने राजा के पास पहुँचकर सम्पूर्ण वृतान्त का वर्णन किया ।४२-४९। इसी बीच वीर महाबली सुखखानि ने अपने कपोत नामक घोड़े पर बैठकर आकाश मार्ग से वहाँ रणस्थल में पहुँचकर पृथिवीराज को मूर्च्छित किया, और अपने बन्धुओं को वाहनों पर बैठाकर उनके समेत मूर्च्छित पृथिवीराज को बाँधने के लिए उनके पास वह पहुँचा ही था कि उसी समय पृथिवीराज ने महादेव द्वारा चेतना प्राप्तकर क्रुद्ध होकर पुनः अपने रौद्रास्त्र द्वारा उन सुखखानि आदि वीरों को मूर्च्छित करके और श्रृंखलाओं (जंजीरों) से उन्हें बाँधकर उनके समेत राजा परिमल के पास पहुँच पुनः युद्धारम्भ किया। उस समय हाहाकार करती हुई अपनी सेना को देखकर कृष्णांश (उदय सिंह) ने घोड़े पर बैठकर आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचकर उनकी तोपें और सेनाओं का समूल नाश कर दिया ।५०-५४। पश्चात् पृथिवीराज की हाथी के पास पहुँचकर उस बली ने पृथिवीराज को हथकड़ी-वेणी द्वारा दृढ़ बन्धन में डालकर आह्लाद (आल्हा) के

तदा तु पृथिवीराजो लज्जितस्तेन निर्जितः । पञ्चकोटिधनं दत्त्वा स्वगेहं पुनराययौ ॥५६
देवसिंहाज्ञया शूरो बलखानिर्हि वत्सजः । तैर्द्रव्यैर्नगरीं रम्यां कारयामास सुन्दरीम् ॥५७
शिरीषाख्यं पुरं नाम तेन वीरेण वै कृतम् । सर्ववर्णसमायुक्तं द्विक्रोशायामसंमितम् ॥५८
तत्रैव न्यवसद्वीरो वत्सजः स्वकुलैः सह । त्रिंशत्क्रोशे कृतं राष्ट्रं तत्रैव बलखानिना ॥५९
श्रुत्वा परिमलो राजा तत्रागत्य मुदान्वितः । आघ्राय वत्सजं शूरं देशराजसुतं तथा ॥६०
ब्रह्मानन्देन सहितः स्वगेहं पुनराययौ ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्
सूत उवाच

द्वादशाब्दे हि कृष्णांशे यथाजातं तथा शृणु । इषशुक्लदशम्यां च राज्ञां जातः समागमः ॥१
कान्यकुब्जे महारम्ये नानाभूपाः समाययुः । श्रुत्वा पराजयं राज्ञो महीराजस्य लक्षणः ॥२
कृष्णांशदर्शने वाञ्छा तस्य चासीत्तदा मुने । पितृव्यं भूपतिं प्राह द्रष्टुं यास्यामि तं शुभम् ॥३

पास आकर उन्हें पृथिवीराज को सौंप दिया । उस समय पृथिवीराज उससे पराजित होकर अत्यन्त लज्जित हुए और पाँच करोड़ का धन उन्हें (भेंट) प्रदानकर अपने घर चले गये । उस समय देवसिंह की आज्ञा प्राप्तकर वत्स पुत्र बलखानि ने उन द्रव्यों द्वारा एक सुन्दर नगरी का निर्माण कराया । उस वीर ने उस नगरी का शिरीस (शिरसा) नामकरण किया । उसमें सभी जाति के मनुष्य रह रहे थे जो दो कोश तक व्याप्त थी । उसी राजधानी में अपने परिवार समेत बलखानि रहकर अपना राष्ट्र तीस कोश में स्थापित किया । इसे सुनकर राजा परिमल अत्यन्त प्रसन्न होकर उदय सिंह समेत वहाँ आये और उनके शिर का आघ्राण करके ब्रह्मानन्द समेत पुनः अपनी राजधानी लौट गये ।५५-६१

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय-इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११।

अध्याय १२
कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदय सिंह के बारहवें वर्ष की अवस्था में जो कुछ हुआ मैं कह रहा हूँ, सुनो—कान्यकुब्ज (कन्नौज) नामक राजधानी में आश्विन शुक्ल दशमी के दिन राजाओं का महान् समागम हुआ। लक्षण (लषन) ने उस समय पृथिवीराज की पराजय सुनकर उदय सिंह के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। मुने ! उसने अपने पितृव्य (चाचा) राजा जयचन्द्र से कहा—मैं उस (उदयसिंह) को देखने के

जितो येन महीराजः सर्वलोकप्रपूजितः । इति श्रुत्वा वचस्तस्य जयचन्द्रो महीपतिः ॥
भ्रातृजं प्रणतं प्राह श्रुणु शुक्लयशस्कर ॥४
राजराजपदं ते हि कथं संहर्तुमिच्छसि । इत्युक्त्वा जयचन्द्रस्तु तदाज्ञां नैव दत्तवान् ॥५
राजानस्ते च सहिताः स्वसैन्यैः परिवारिताः । कृष्णांशं द्रष्टुमिच्छन्तः संययुश्च महीपतिम् ॥६
शिरीषाख्यपुरस्थं च ज्ञात्वा कृष्णांशमुत्तमम् । महीपतिं पुरस्कृत्य समाजग्मुर्नृपास्तदा ॥७
ददृशुस्तं महात्मानं पुण्डरीकनिभाननम् । प्रसन्नवदनाः सर्वे प्रशशंसुः समन्ततः ॥८
तदा महीपतिः क्रुद्धो वचनं प्राह भूपतीन् । यस्येयं च कृता श्लाघा युष्माभिर्दूरवासिभिः ॥
पितरौ तस्य बलिनौ माहिष्मत्यां मृतिं गतौ ॥९
जम्बुको नाम भूपालो नार्मदीयैः समन्वितः । बद्ध्वा तौ प्रययौ गेहं लुण्ठयित्वा धनं बहु ॥
शिलापत्रे समारोप्य तयोर्गात्रमचूर्णयत् । शिरसी च तयोश्छित्त्वा वटवृक्षे समारुहत् ॥१०
अद्यापि तौ स्थितौ वीरौ हा पुत्रेति प्रभाषिणौ । प्रेतदेहे च पितरौ यस्य प्राप्तौ महाबलौ ॥
तस्योदयो वृथा ज्ञेयो वृथाकीर्तिः प्रियङ्करी ॥११
इति श्रुत्वा स कृष्णांशो भूपतीन्प्राह नम्रधीः । गतौ मत्पितरौ सार्द्धं गुर्जरे यत्र वै रणः ॥१२
म्लेच्छैर्नराशनैः सार्द्धं तन्नृपेण रणोऽभवत् । देशराजो वत्सराजो युद्धं कृत्वा भयङ्करम् ॥
म्लेच्छैस्तैश्च हतौ तत्र श्रुतेयं विश्रुता कथा ॥१३

लिए जाना चाहता हूँ, जिसने पृथिवीराज को पराजित कर समस्त लोकों में प्रतिष्ठा प्राप्त की है । इसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने अपने विनय-विनम्र भतीजे लक्षण (लषन) से कहा—'तुम्हारा पद राजाधिराज (महाराज) का है, इस प्रकार उसे क्यों नष्ट करना चाहते हो ।' इतना कहकर उन्होंने उसे आज्ञा नहीं प्रदान किया ।१-५। पश्चात् आये हुए राजगण अपनी सेना समेत उदयसिंह के दर्शनाभिलाषी होकर महीपति के यहाँ पहुँचे । वहाँ शिरीषपुर में स्थित उदयसिंह को जानकर वे राजगण महीपति को प्रमुख बनाकर उनके पास पहुँच गये । उस समय उदयसिंह को जैसे कमल की भाँति मुख सौन्दर्यपूर्ण दिखाई देता था, देखकर वे राजगण प्रसन्नतापूर्ण होकर चारों ओर उनकी प्रशंसा करने लगे ।६-८। उसे सुनकर क्रुद्ध होकर महीपति ने उस सभा के भीतर ही राजाओं से कहा—आप दूर निवासीगण जिसकी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, उनके पिता की मृत्यु महिष्मती नगरी में हुई है—जम्बूक नामक वहाँ का राजा अपने नर्मदा निवासी सैनिकों समेत यहाँ आकर उन्हें बाँधकर एवं अत्यन्त धन को लूटकर अपने घर चला गया। वहाँ शिलापत्र (पत्थर के कोल्हू) में उनकी देह को पिसवा दिया है और उनके शिर आज भी वहाँ वटवृक्ष में लटक रहे हैं । इस प्रकार वे वहाँ पुत्र कहते हुए आज भी स्थित हैं, जिसके बलवान पिता इस भाँति प्रेत शरीर में दुःखानुभव कर रहे हों, उसका अभ्युदय होना व्यर्थ है और उसकी प्रिय कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। इसे सुनकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह ने उन राजाओं के समक्ष कहा—मेरे पिता गुर्जर (गुजरात) गये थे, जहाँ वह युद्ध हुआ था । नरभक्षी म्लेच्छों के साथ वहाँ उस (गुजरात के) राजा का युद्ध आरम्भ हो गया । देशराज और वत्सराज वहाँ रण-स्थल में भीषण संग्राम करते हुए म्लेच्छों द्वारा स्वर्गीय हुए ।' ऐसा मैंने सुना था,

मातुलेनाद्य कथितं नवीनं मरणं तयोः । चेत्सत्यं वचनं तस्य पौरुषं मम पश्यत ।।१४
इत्युक्त्वा तान्स कृष्णांशो मातरं प्राह सत्वरम् । हेतुं च वर्णयामास भाषितं च महीपतेः ।।१५
श्रुत्वा वज्रसमं वाक्यं रुरोद जननी तदा । नोत्तरं प्रददौ माता पतिदुःखेन दुःखिता ।।१६
ज्ञात्वा पितृवधं श्रुत्वा जम्बूकं शिवकिङ्करम् । मनसा स च कृष्णांशस्तुष्टाव परमेश्वरीम् ।।१७

जय जय जय जगदम्ब भवानि ह्यखिललोकसुरपितृमुनिखानि ।
त्वया ततं सचराचरमेव विश्वं पातमिदं हृतमेव ।।१८

इति ध्यात्वा स कृष्णांशः सुष्वाप निजसद्मनि । तदा भगवती तुष्टा तालनं बलवत्तरम् ।।
मोहयित्वाशु तत्पार्श्वे प्रेषयामास सर्वगा ।।१९
चतुर्लक्षबलैः सार्द्धं तालनः शीघ्रमागतः । स्वसैन्यं चोदयामास चैकलक्षं महाबलम् ।।२०
बलखानिस्तदा प्राप्तश्चैकलक्षबलान्वितः । अनुजं तत्र संस्थाप्य शिरीषाख्ये महाबलः ।।२१
सज्जीभूतान्समालोक्य तानुद्याने ससैन्यकान् । भीतः परिमलो राजा कृष्णांशं प्रति चाययौ ।।२२
विह्वलं नृपमालोक्य कृष्णांशोऽऽश्वासयन्मुदा ।।२३
लक्षसैन्यं तदीयं च गृहीत्वा चाधिपोऽभवत् । शतघ्नयः पञ्चसाहस्रा नानावर्णाः सुवाहनाः ।।२४
पताकाः पञ्चसाहस्राः साहस्रं काष्ठकारिणः । गजा दशसहस्राश्च रथाः पञ्चसहस्रकाः ।।२५
त्रिलक्षाश्च हयाः सर्वे उष्ट्रा दशसहस्रकाः । शेषाः पदातयो ज्ञेयास्तस्मिन्सैन्ये भयानके ।।२६
तालनश्च समायातः सर्वसेनाधिपोऽभवत् । देवसिंहो रथानां च सर्वेषामीश्वरोऽभवत् ।।२७

किन्तु मामा ने आज उन दोनों के मरण में नवीनता प्रकट की है। यदि यह कहना इनका सत्य है, तो मेरे पौरुष को आप लोग देखियेगा, देर नहीं है।९-१४। इतना सभा में कहकर उदयसिंह अपनी माता के पास पहुँचे, उनसे महीपति का कथन स्पष्ट कहकर उन्होंने पूँछा भी, किन्तु वज्र के समान इस वाणी को सुनकर उनकी माता ने पतिःदुःख से दुःखी होकर रुदन करने के अतिरिक्त कुछ उत्तर नहीं दिया। पश्चात् उदयसिंह ने अपने पिता का वध और राजा जम्बूक का शिवभक्त होना जानकर भगवती दुर्गा जी का मानसिक स्मरण करना आरम्भ किया—उस शिव की अर्द्धांगिनी जगज्जननी की बार-बार जय हो, जो निखिल लोक के सुर, पितृ और मुनियों की निधान रूप हैं। तू ही इस चर, अचरमय जगत् को उत्पन्न, पालन एवं संहार करती हो। इस प्रकार मानसिक ध्यान करते हुए उदयसिंह शय्यापर नींदमग्न हो गये। उस समय भगवती ने प्रसन्न होकर बली तालन को मोहित कर उसे उदयसिंह के पास भेजा। अपनी चार लाख सेना समेत तालन वहाँ शीघ्र आ गया। बलखानि (मलखान) भी एक लाख सेना समेत वहाँ आया। वह अपनी राजधानी की रक्षा में अपने छोटे भाई को रखकर आया था। इस प्रकार अपने उद्यान में सेनाओं का जमाव देखकर राजा परिमल भयकातर होकर उदयसिंह के समीप पहुँचे। उन्हें आतुर देखकर उदयसिंह ने उन्हें धैर्य प्रदान किया और उनकी एक लाख सेना के अधिनायक भी हो गये। वहाँ की एकत्र हुई सेना में पाँच सहस्र तोप, नाना भाँति के वाहन, पाँच सहस्र पताकाएँ, एक सहस्र बढ़ई (काष्ठ का कार्य करने वाले), दश सहस्र गजराज, पाँच सहस्र रथ, तीन लाख घोड़े, दश सहस्र ऊँट और शेष पैदल की सेना थी।१५-२६। सम्पूर्ण सेनाओं का आधिपत्य तालन को सौंपा गया। उसी प्रकार देवसिंह सभी

बलखानिर्हयानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् । आह्लादश्च गजानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् ॥
पत्तीनां चैव सर्वेषां कृष्णांशश्चाधिपोऽभवत् ॥२८
नत्वा ते मलनां भूपो दत्त्वा दानान्यनेकशः । समाययुश्च ते सर्वे दक्षिणाशां बलान्विताः ॥२९
पक्षमात्रगतः कालो मार्गे तस्मिन्रणैषिणाम् । छित्त्वा तत्र वनं घोरं नानाकण्टकसंयुतम् ॥
सेनां निदापयामासुर्निर्भयास्ते महाबलाः ॥३०
देवसिंहमतेनैव योगिनस्ते तदाभवन् । नर्तकश्चैव कृष्णांशश्चाह्लादो डमरुप्रियः ॥३१
मड्डुधारी तदा देवो वीणाधारी च तालनः । वत्सजः कांस्यधारी च बलखानिर्महाबलः ॥३२
मातुरग्रे स्थितास्ते वै ननृतुः प्रेमविह्वलाः । मोहिता देवकी चासीन्न ज्ञातं तत्र कारणम् ॥३३
मोहितां मातरं दृष्ट्वा परं हर्षमुपाययुः । तदा तां कथयामासुर्वयं ते तनया हि भोः ॥३४
नत्वा तां प्रययुः सर्वे पुरीं माहिष्मतीं शुभाम् । नगरं मोहयामासुर्वाद्यगानविशारदाः ॥३५
दूत्या सार्द्धं रिपोर्गेहं ययुस्ते कार्यतत्पराः । नृत्यगानसुवाद्यैश्च राज्ञस्ते मोहने रताः ॥३६
विसंज्ञां महिषीं कृत्वा कृष्णांशः सर्वमोहनः । प्राप्तवांस्तत्र यत्रासौ तत्सुता विजयैषिणी ॥३७
दृष्ट्वा सा सुन्दरं रूपं श्यामाङ्गं पुरुषोत्तमम् । मुमोह वशमापन्ना मैथुनार्थं समुद्यता ॥३८
दृष्ट्वा तथा गतां नारीं कृष्णांशः श्लक्ष्णया गिरा । शत्रोर्भेदं च पप्रच्छ कामिनीं मदविह्वलाम् ॥३९

रथ सेना के अधिनायक हुए, बलखानि सभी अश्वारोही सेना के गजराओं के आह्लाद और पदाति (पैदल) सेनाओं के अधिनायक उदयसिंह बनाये गये । यात्रा के समय सभी भाइयों ने रानी मलना का चरण-स्पर्श किया तथा अनेक भाँति का दान करके दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े । उन रणाभिलाषी वीरों का एक पक्ष (पन्द्रह दिन) का समय मार्ग में व्यतीत हो गया । उपरान्त वे अपने इष्ट स्थान पर पहुँचकर वहाँ के घोर वन को कटवाकर जो अनेक भाँति के कण्टकों से आकीर्ण था, अपनी सेना को ठहरा दिया । वह निर्भय महाबली भ्रातृगण देव सिंह की आज्ञा से योगी का रूप धारण किया । नर्तन (नाचना) को उदयसिंह, डमरू को आह्लाद, झाल को देवसिंह, वीणा को तालन और कांस्य (कांसे की बनी हुई टुन-टुनी) मजीरा को वत्स पुत्र महावलवान बलखानि (मलखान) ने ग्रहण किया और अपनी माता के सम्मुख प्रेममग्न होकर वे लोग नृत्य करने लगे । उसे देखकर देवकी मोहित हो गई, किन्तु उसका कारण उन्हें ज्ञात नहीं हुआ। २७-३३। अपनी माता को मोहित होते देखकर वे सब अत्यन्त हर्षित हुए और अपनी माता से कहा—माता ! हम सब आपके ही पुत्र हैं। पश्चात् उन्हें नमस्कार करके वे कुमारगण शुभ-माहिष्मती नगरी में पहुँचकर वहाँ के नागरिकों को अपने नृत्य-गान आदि से मुग्ध करने लगे क्योंकि वे अपनी कला में अत्यन्त निपुण थे। कार्य परायण वे कुमार दूती के साथ अपने शत्रु के महल में पहुँचकर अपनी-अपनी नृत्य आदि की कला-कुशलता से उस राजसभा को मुग्ध कर दिये । सबको मोहित करने वाले उदयसिंह ने तो राजा की प्रधान रानी को जड़ की भाँति चेतनाहीन (अत्यन्त मुग्ध) ही कर दिया। अनन्तर वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ राजकुमारी विजया रहती थी। उसने पुरुषश्रेष्ठ उदयसिंह को, जो कि श्यामवर्ण और सौन्दर्यपूर्ण रूप था, देखकर वह इतना मोह-मुग्ध हुई कि (लज्जाहीन होकर वह) उनसे उपभोग कराने के लिए तैयार हो गई। ३४-३८। उदयसिंह ने उसे उस प्रकार काम-पीड़ित देखकर उस मदमत्त कामिनी से शत्रु को

साह भो देवकीपुत्र यदि पाणिं ग्रहीष्यसि । तर्हि ते कथयिष्यामि पितुर्भेदं हि दारुणम् ॥४०
तथेत्युक्त्वा स बलवाँस्तस्याः पाणिं गृहीतवान् । ज्ञात्वा भेदं रिपोः सर्वं तामाश्वास्य ययौ मुदा ॥४१
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी बाधिता प्राह योगिनम् । देशराजप्रियाहारं नवलक्षस्य मूल्यकम् ॥
तुभ्यं दास्यामि सन्तुष्टा नृत्यगानविमोहिता ॥४२
इति श्रुत्वा वत्ससुतस्तां प्रशस्य गृहीतवान् । प्रययौ बन्धुभिः सार्द्धं जम्बुको यत्र तिष्ठति ॥४३
ननर्त तत्र कृष्णांशो बलखानिरगायत । आह्लादस्तालनो देवो दध्मुर्वाद्यगतीर्मुदा ॥४४
मोहितोऽभून्नृपस्तत्र कालियः स्वजनैः सह । कामं वस्त्रं कृष्णाङ्गं यच्च ते हृदये स्थितम् ॥४५
इति श्रुत्वा वचः शत्रोर्बलखानिर्महाबलः । तमाह भो महीपाल लक्षावर्तिर्वरांगना ॥
स्वविद्यां दर्शयेन्मह्यं तदा तृप्तिं व्रजाम्यहम् ॥४६
इति श्रुत्वा तथा मत्वा लक्षावर्तिं नृपोत्तमः । सभायां नर्तयामास देशराजप्रियां तथा ॥४७
सा वेश्या सुतमाह्लादं ज्ञात्वा योगित्वमागतम् । रुरोद तत्र दुःखार्ता नेत्रादश्रूणि मुञ्चती ॥४८
रुदितां तां समालोक्य रुदन्नाह्लाद एव सः । स्वभुजौ ताडयामास तत्प्रियार्थे महाबलः ॥४९
कृष्णांशस्तत्र तं हारं तस्याः कण्ठे प्रदत्तवान् । उवाच क्रोधताम्राक्षस्तामाश्वास्य पुनः पुनः ॥५०
अहं चोदर्यसिहोऽयं पितुर्वैरार्थमागतः । हनिष्यामि रिपुं भूपं सात्मजं सबलं तथा ॥५१

पराजित करने के लिए भेद पूछा । उसने कहा—देवकी पुत्र ! आप मेरा हाथ पकड़कर अपनी बनाने की प्रतिज्ञा करें तो मैं अपने पिता के कठिन भेदों को बता सकती हूँ । उन्होंने स्वीकार करते हुए उसका हाथ पकड़ा और शत्रु के भेद को जानकर उसे अश्वासन दिया, पश्चात् प्रसन्न होकर अपने निवास स्थान की ओर लौट पड़े । उसी बीच रानी ने प्रेममग्न होकर उस योगी से कहा—मैं तुम्हारे नृत्य से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें इस देशराज की रानी का नौलखाहार उपहार में दे रही हूँ' इसे सुनकर वत्स पुत्र (बलखान) ने रानी की विस्तृत प्रशंसा करते हुए उसे सादर ग्रहण किया । पश्चात् सबको साथ लेकर वे राजा जम्बूक के महल में पहुँचे ।३८-४३। वहाँ पहुँचकर उदयसिंह नृत्य और बलखानि गान करने लगे एवं शेष तालन आदि उसी भाँति अपने वाद्यों की ध्वनि में मग्न होने लगे । वहाँ अपने बन्धुओं समेत कालिय (करिया) भी उपस्थित था । उसने उदयसिंह से कहा—श्याम जी ! मनइच्छित वस्तु की याचना करो। शत्रु की इस वाणी को सुनकर बलखानि ने कहा—राजन् ! लक्षावर्ति नामक वेश्याङ्गना यदि अपनी कला-प्रवीणता का प्रदर्शन कराये तो हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी । इसे सुनकर राजा ने लक्षावर्ति नामक वेश्या को जो देशराज की परम प्रेयसी थी, उस सभा में नृत्य करने के लिए आदेश प्रदान किया । वह वेश्या पुत्र आह्लाद को योगी का वेष धारण किये देखकर अपनी आँखों से आँसुओं की धारा बहाती हुई रुदन करने लगी। उस समय उसे रुदन करते देखकर आह्लाद ने भी रुदन करते हुए अपनी दोनों भुजाओं पर ताल ठोकना आरम्भ किया, उधर उदयसिंह ने उसके कंठ को उसी हार से विभूषित कर दिया । क्रुद्ध होकर रक्तनेत्र करके आह्लाद ने कहा—मैं और यह उदयसिंह अपने पिता के वैर शोधनार्थ यहाँ आये हैं । अपने शत्रु राजा एवं उसके समस्त परिवार का हनन मैं निश्चित करूँगा।४४-५१। इसे सुनकर बलवान् कालिय ने

इति श्रुत्वा वचस्तस्य कालियो बलवत्तरः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य शतव्यूहसमन्वितः ।।५२
तेषां च बन्धनायैव कपाटं समरुद्ध सः । ताञ्छत्रून्समनुज्ञाय पाशहस्तान्सशस्त्रगान् ।।५३
स्वं स्वं खड्गं समाकृष्य क्षत्रियास्ते समाघ्नत । शतशूरे हते तैश्च कालियो भयकातरः ।।५४
त्यक्त्वा तातं प्रदुद्राव ते तु गेहाद्बहिर्ययुः । स्वसैन्यं शीघ्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ।।
शिबिराणि कृतान्येव नर्मदाकूलमास्थितैः ।।५५
कृत्वा तु नर्मदासेतुं नल्वमात्रं सुपुष्टिदम् । स्वसैन्यं तारयाभास चतुरङ्गसमन्वितम् ।।५६
रुरोध नगरीं सर्वां बलखानिर्बलैर्युतः । शतघ्नीरग्रतः कृत्वा महाशब्दकरीस्तदा ।।
माहिष्मत्याश्च हर्म्याणि पातयामास भूतले ।।५७
नराश्च स्वकुलैः सार्द्धं मुख्यद्रव्यसमन्विताः । विन्ध्याद्रेश्च गुहां प्राप्य तत्रोषुर्भयकातराः ।।५८
कालियस्तु गजानीके पञ्चशब्दगजे स्थितः । हस्तिपा दशसाहस्रा युद्धाय समुपाययुः ।।५९
तस्यानुजः सूर्यवर्मा त्रिलक्षैस्तुरगैर्युतः । तुण्डिलश्च रथैःसार्द्धं रथस्थश्च सहस्रकैः ।।६०
रङ्कणो वङ्कणश्चोभौ चतुर्लक्षपदातिभिः ।।
जग्मतुस्तौ महाम्लेच्छौ म्लेच्छभूपसहस्रकैः । दाक्षिणात्यग्रामपास्ते तौ पुरस्कृत्य संययुः ।।६१
उभे सेने समासाद्य युद्धाय समुपस्थिते । तयोश्च तुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।।६२
त्रियामे रुधिरैस्तेषां नदी प्रावर्तत द्रुतम् । दृष्ट्वास्रजां नदीं घोरां मांसकर्दमवाहिनीम् ।।

अपने पिता की आज्ञा से शतव्यूह सेनाओं को उन लोगों को बाँधने तथा प्रमुख दरवाजे के फाटक (किवाड़) को बन्द करने के लिए आदेश दिया । शत्रु की उस सशस्त्र सेना को सम्मुख उपस्थित होते देखकर वे क्षत्रिय वीर अपने-अपने खड्ग लेकर उसमें प्रविष्ट होकर उन्हें धराशायी करने लगे । उन सौ शूरों की सेना को नष्ट होते देखकर कालिय (करिया) भयभीत होकर अपने पिता को छोड़कर वहाँ से भाग गया और आह्लाद आदि ने क्षत्रिय वीर उस राजमहल से बाहर हो गये । पश्चात् शीघ्रता से अपनी सेना में पहुँचकर उसे सुसज्जित कर युद्ध के लिए तैयार हो गये । इन लोगों ने नर्मदा के तट पर अपने शिविरों को लगवाया था ।५२-५५। पुनः नल्वमात्र एक सुपुष्ट सेतु बनाकर उसी द्वारा अपनी सेनाओं को नर्मदा पार किया । और बलखानि (मलखान) आदि वीरों ने निश्चितकर चारों ओर से सेना द्वारा उस माहिष्मती नगरी को घेर लिया तथा भीषण गर्जना करने वाली तोपों के गोले से उस नगरी की गगन चुम्बी अट्टालिकाओं वाले महलों को भूमि पर गिरवाना आरम्भ कर दिया । वहाँ के निवासी भयभीत होकर अपने परिवार एवं प्रमुख द्रव्यों को लेकर विंध्य-पर्वत की गुफाओं में जाकर रहने लगे। उस कालिय (करिया) ने गजों की सेना के मध्य में पंचशब्द नामक गजराज पर स्वयं स्थित होकर दश सहस्र पीलवानों समेत रणस्थल की ओर प्रस्थान किया। उसी भाँति सूर्य वर्मा नामक उसका अनुज तीन लाख अश्वारोहियों की सेना को साथ लेकर, तुंदिल रथ पर बैठकर एक सहस्र रथियों के साथ, रंकण-वंकण नामक दोनों म्लेच्छों, चार लाख की सेना और एक सहस्र म्लेच्छ राजाओं एवं दक्षिण प्रदेश निवासी इन दोनों म्लेच्छों को अग्रसर करके युद्धस्थल की ओर प्रस्थित हुए। रणस्थल में दोनों सेनाएँ हृदय-विदारक तुमुल युद्ध करने लगीं।५६-६२। उस तीन प्रहर के युद्ध में रक्त की नदी प्रवाहित हो चली जिसमें मांस पंक की

बलखानिरमेयात्मा खड्गपाणिर्नरो ययौ ॥६३
भल्लहस्तस्तदा देवो मनोरथहये स्थितः । बिन्दुलस्थश्च कृष्णांशः खड्गेनैव रिपूनहन् ॥६४
आह्लादश्च गदाहस्तः पोथयामास वाहिनीम् । रूपणो नाम शूद्रश्च शक्तिहस्तोन्यहन्रिपून् ॥
तालनो हस्तनिस्त्रिंशो माहिष्मत्यां हनन्ययौ ॥६५
एवं महाभये जाते रणे तस्मिन्महाबले । दुद्रुवुः सर्वतो वीराः पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ॥६६
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा कालियो बलखानिकम् । गजस्थस्ताडयामास स्वबाणैस्तं महाबलः ॥६७
हरिणी वडवा तस्य ज्ञात्वा स्वामिनमातुरम् । गजोपरि समास्थाय स्वपादैस्तमपातयत् ॥६८
पतिते कालिये वीरे पञ्चशब्दो महागजः । शृंखलैस्ताडयामास शूरांस्तान्मदमत्तकान् ॥६९
मूर्च्छिते पञ्चशूरे तु रूपणो भयकातरः । देवकीं वर्णयामास यथाजातं गजेन वै ॥७०
तदा तु दुःखिता देवी दोलमारुह्य सत्वरा । तं गजं च समासाद्य वर्णयामास कारणम् ॥७१
गजराज नमस्तुभ्यं शक्रदत्त महाबल । एते पुत्रास्तु ते वीर पालनीया यथा पितुः ॥७२
इति श्रुत्वा दिव्यगजो देवमायाविशारदः । देवकीं शरणं प्राप्य क्षमस्वागस्कृतं मम ॥७३
इत्युक्ते गजराजे तु कृष्णांशो बलवत्तरः । त्यक्त्वा मूर्च्छां ययौ तत्र यत्राह्लादश्च मूर्च्छितः ॥७४
तमुत्थाप्य करस्पर्शैर्बलखानिसमन्वितः । पितुर्गजं महामत्तमाह्लादाय प्रदत्तवान् ॥
करालमश्वं दिव्याङ्गं रूपणाय तदा ददौ ॥७५
मूर्च्छितं कालियं शत्रुं बद्ध्वा स निगडैर्दृढैः । सेनान्तं प्रेषयामास बलखानिर्महाबलः ॥७६

भाँति बह रहा था, उसे देखकर बलखानि हाथ में खड्ग, देवसिंह मनोरथ धोड़े पर बैठे हुए हाथ में भाला लिए, विंदुल घोड़े पर बैठकर उदयसिंह खड्ग, आह्लाद गदा, रूपन शक्ति और तालन अपनी तलवार लिए शत्रु सेना को धराशायी करते हुए माहिष्मती में प्रविष्ट हो गये। वीरों के उस भीषण संग्राम में वीर सैनिक त्राहि-त्राहि करके भागने लगे।६३-६६। उस समय अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर कालिय ने हाथी पर स्थित रहकर ही अपने बाणों से बलखानि पर घात-प्रघात किया। पश्चात् उनकी हरिणी नामक घोड़ी ने अपने स्वामी को आतुर समझकर शत्रु की हाथी पर पहुँचकर अपने चरणों से उसे भूमि पर गिरा दिया। वीर कालिय (करिया) के गिर जाने पर पंचशब्द नामक गजराज ने लोहे की शृंखला (जंजीर) द्वारा इन मदोन्मत्त पाँचों भाइयों को मूर्च्छित कर दिया। पाँचों वीरों के मूर्च्छित होने पर रूपन ने शीघ्रता से देवकी के पास जाकर उस गजराज द्वारा किये गये कृत्य का यथावत् वर्णन किया। उसे सुनकर दुःख का अनुभव करती हुई देवकी ने डोला द्वारा वहाँ पहुँचकर उस गजराज से उन कारणों का विस्तृत वर्णन किया—शक प्रदत्त एवं महाबली गजराज तुम्हें नमस्कार है, वीर पुत्रों की रक्षा तुम्हें सदैव पिता की भाँति करनी चाहिए। इसे सुनकर देवमय निपुण वह गज देवकी की शरण में पहुँचकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगा।६७-७३। उसी बीच सबल उदयसिंह चेतना प्राप्तकर आह्लाद के समीप पहुँचकर उन्हें अपने करस्पर्श द्वारा चेतना प्रदान किये। पुनः बलखानि समेत अपने पिता के उस गजराज को आह्लाद को सौंपकर कराल नामक उस दिव्य अश्व को रूपन को दे दिया। अनन्तर मूर्च्छित उस कालिय नामक शत्रु को हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर महाबलशाली बलखानि ने उसे अपनी सेना में भेज

सूर्यवर्मा तदा ज्ञात्वा बद्धं बन्धुं च कालियम् । प्रययौ शत्रुसेनान्तं क्रोधेन स्फुरिताधरः ।।७७
तमायान्तं समालोक्य ते वीरा युद्धदुर्मदाः । रथस्थं मण्डलीकृत्य स्वं स्वमस्त्रं समाक्षिपन् ।।७८
कुण्ठितेऽस्त्रे तदा तेषां विस्मितास्तेऽभवन्मुने । चिन्तां च महतीं प्राप्ताः कथं वध्यो भवेदयम् ।।७९
तस्यास्त्रैस्ते महावीरा व्रणार्तिभयपीडिताः । त्यक्त्वा युद्धं पुनर्गत्वा रणं चक्रुः पुनः पुनः ।।८०
एवं कति दिनान्येव बभूव रण उत्तमः । आह्लादो वत्सजो देवस्तालनो भयसंयुतः ।।
कृष्णांशं शरणं जग्मुस्तेन वीरेण मोहिताः ।।८१
कृष्णांस्तु तं तथा दृष्ट्वा देवीं विश्वविमोहिनीम् । तुष्टाव मनसा वीरो रात्रिसूक्तं पठन्हृदि ।।८२
तदा तुष्टा जगद्धात्री दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी । मोहयित्वा तु तं वीरं तत्रैवान्तरधीयत ।।८३
निद्रया मोहितं दृष्ट्वा कृष्णांशस्तु महाबलः । बबन्ध निगडैस्तं च देवक्यन्ते समागमत् ।।८४
तुन्दिलश्च तथा ज्ञात्वा भ्रातृशोकपरिप्लुतः । आजगाम हयारूढः खड्गहस्तो महाबलः ।।
रिपुसैन्यस्य मध्ये तु बहुशूरानताडयत् ।।८५
माहिष्मात्याश्च ते शूरा रङ्कणेन समन्विताः । तत्सैन्यं भञ्जयामासुस्तालनेन प्रपालितम् ।।८६
प्रद्रुतं स्वं बलं दृष्ट्वा तालनः परिघायुधः । शिरांसि पोथयामास म्लेच्छानां च पृथक्पृथक् ।।८७
वङ्कणं च तथा हत्वा खड्गेनैव च रङ्कणम् । तुन्दिलं च तथा बद्ध्वा दिनान्ते शिबिरं ययौ ।।८८

दिया । सूर्यवर्मा को जिस समय यह मालूम हुआ कि मेरा भाई कालिय शत्रुओं द्वारा शृंखलाबद्ध है, क्रोध के वेग से अपने होठ फरफराते हुए उसी समय वह शत्रु की सेना में प्रविष्ट हो गया । उसे आते हुए देखकर वे युद्ध-दुर्मद वीर रथ पर बैठे हुए उसे चारों ओर से मंडलाकार घेरकर अपने-अपने अस्त्रों के प्रहार करने लगे । किन्तु मुने ! उसके ऊपर किसी अस्त्र का आघात नहीं हो पाता था । अतः अपने अस्त्रों को कुण्ठित देखकर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ और बहुत बड़ी चिन्ता हुई कि इसका बध कैसे किया जाय । पश्चात् उसके अस्त्रों से इन वीरों के देह में व्रण होने लगा । उससे पीडित होकर वे युद्ध से भाग जाते और पुनः आकर युद्ध करते । इस प्रकार कई दिन तक ऐसा ही उत्तम युद्ध होता रहा, अनन्तर आह्लाद, बलखानि, देवसिंह और तालन आदि उस वीर द्वारा भयकातर एवं मोहित होकर उदयसिंह की शरण में पहुँचे । उन्हें इस भाँति आकुल देखकर उदयसिंह ने विश्व को मोहित करने वाली देवी की मानसिक आराधना की वे अपने हृदय में रात्रिसूक्त का पाठकर रहे थे।७४-८२। उस समय जगत् को धारण करने वाली एवं दुर्ग (किले) के समान कष्टों के नाश करने वाली भगवती दुर्गा जी प्रसन्न होकर उस (सूर्यवर्मा) वीर को मोहितकर वहीं अन्तर्हित हो गईं। महाबली उदयसिंह ने उसे निद्रामग्न देखकर हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर देवकी के समीप उपस्थित किया। इस समाचार के प्राप्त होने पर तुंदिल ने भ्रातृ-शोक से व्याकुल होकर हाथ में खड्ग लिए शत्रु सेना की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर शत्रु के सैनिकों को धराशायी करने लगा और माहिष्मती का रंकण नामक शूर तालन की सेना को। अपनी सेना को भागते हुए देखकर तालन ने अपने परिघ, अस्त्र द्वारा म्लेच्छों के शिरश्छेदन करके उन्हें भूमि में गिरा दिया। पुनः रंकण और वंकण का खड्ग द्वारा बध करके तथा तुंदिल को बाँधकर वे सायंकाल के समय शिविर में पहुँच

कालिये च रिपौ बद्धे सुबद्धे सूर्यवर्मणि । तुन्दिले च तथा बद्धे रङ्कणे वङ्कणे हते ।।८९
सहस्रं म्लेच्छराजानो हतशेषा बलान्विताः । पक्षमात्रमहोरात्रं युद्धं चक्रुः समन्ततः ।।९०
प्रत्यहं तालनो वीरः सेनापतिरमर्षणः । षष्टिं भूपाञ्जघानाशु शत्रुसैन्यभयङ्करः ।।९१
भयभीता रिपोः शूरा हता भूपा हतौजसः । हतशेषा ययुर्गेहमर्द्धसैन्या भयातुराः ।।९२
जम्बुकस्तु तथा श्रुत्वा दुःखितो गेहमाययौ । गतं ह्यनशनं कृत्वा रात्रौ शोचन्नशेत सः ।।९३
निशीथे समनुप्राप्ते तत्सुता विजयैषिणी । पूर्णा तु सा कला ज्ञेया राधाया व्रजवासिनी ।।९४
आस्वास्य पितरं तं च ययौ मायाविशारदा । रक्षकान्छिबिराणां च मोहयित्वा समाययौ ।।९५
भ्रातरो तत्र गत्वासौ यत्र सर्वानबोधयत् । कृत्वा सा राक्षसीं मायां पञ्चवीरानमोहयत् ।।९६
निरस्त्रकवचान्बन्धून्प्रतिदोलां समारुहत् । पितुरन्तिकमासाद्य तस्मै भ्रातृन्ददौ मुदा ।।९७
प्रभाते बोधिताः सर्वे स्नानध्यानादिकाः क्रियाः । कृत्वा ययू रिपोः शालां दृष्टवन्तो न तांस्तदा ।।९८
बभूवुर्दुःखिताः सर्वे किमिदं कारणं कथम् । तानुवाच तदा देवः प्राप्ता ह्यत्र रिपोः सुता ।।९९
कृत्वा सा राक्षसीं मायां हृत्वा तान्गेहमाययौ । तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गत्वा यत्रैव तद्गुरुः ।।१००
विन्ध्योपरि महारण्ये नानासत्त्वनिषेविते । कुटीरं तस्य तत्रैव नाम्नैवैलविली हि सः ।।
योगसिद्धियुतः कामी राक्षसेभ्यो हि निर्भयः ।।१०१

गये । इस प्रकार कालिय, सूर्य वर्मा, और तुंदिल के बांधे जाने एवं रंकण तथा वंकण के निधन होने पर वे म्लेच्छ राजगण जो सहस्रों की संख्या में वहाँ स्थित थे, अपनी सेना समेत एक पक्ष (पखवारा) तक रात दिन युद्ध करते रहे ।८३-९०। वीर सेनापति तालन ने क्रुद्ध होकर साठ म्लेच्छ राजाओं का शीघ्र वध कर दिया । वे (तालन) शत्रु की सेना के लिए काल रूप दिखाई देने लगे—म्लेच्छ शत्रु के शूरवीर तथा राजगण जो शेष रह गये अपनी अवशिष्ट सेना समेत भयभीत होकर अपने-अपने घर भाग गये । इस समाचार के श्रवण करने पर राजा जम्बूक को अत्यन्त दुःख हुआ, वे अनशन व्रत करते हुए रात में बिना भोजन किये ही शय्या पर शयन कर गये । चिन्तित रहने के कारण उन्हें नींद नहीं आई । आधी रात के समय उनकी विजया नामक पुत्री ने जो पूर्णकला की ज्ञाता तथा व्रज निवासिनी राधा रूप थी, अपने पिता को आश्वासन प्रदानकर शत्रु के शिविर स्थान पर पहुँचकर वहाँ के रक्षकों को मोहित कर दिया । पश्चात् अपने भाइयों के समीप पहुँचकर उन पाँच (आह्लाद आदि) वीरों को भी अपनी राक्षसी माया द्वारा मोहितकर अपने भाइयों को डोला में बैठाकर अपने पिता को समर्पित कर दिया । प्रातःकाल जागने पर स्नान-ध्यान आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर सब लोग शत्रु-स्थान गये, जहाँ उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया था, वहाँ उन्हें न देखकर अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए लोग कहने लगे कि ऐसा होने का कारण क्या है ? उस समय देवसिंह (डेबा) ने कहा—यहाँ शत्रु की पुत्री (विजया), आई थी, वही अपनी राक्षसी माया द्वारा उन्हें यहाँ से भगा ले गई है, अतः तुम लोग मेरे साथ वहाँ चलो जहाँ उसके गुरु रहते हैं । उसके गुरु का नाम ऐलविली है, वे विंध्यपर्वत के ऊपर भाँति-भाँति के पशु आदि से निसेवित उस महावन में कुटी बनाकर रहते हैं । वह योग-सिद्धि प्राप्त है, इसीलिए उसे राक्षसों से कोई भय नहीं है ।९१-१०१। किन्तु, इतना होते

जम्बुकस्य सुता तत्र प्रत्यहं स्वजनैर्युता । एकाकिनी च सा रात्रौ स्वं गुरुं तमरीरमत् ॥१०२
कृतेयं चैल विलिना माया मनुजमोहिनी । कार्यसिद्धिं गमिष्यामो गत्वा तं पुरुषाधमम् ॥
इति श्रुत्वा तु चत्वारो विनाह्लादं ययुर्वनम् ॥१०३
गीतनृत्यप्रवाद्यैश्च मोहयित्वा च तं दिने । वासं चक्रुश्च तत्रैव धूर्तं मायाविशारदम् ॥१०४
स तु पूर्वभवे दैत्यश्चित्रो नाम महागुरुः । बाणकन्यामुषां नित्यमवोञ्छच्छिवपूजकः ॥
जात ऐलविली नाम्ना यक्षपूजो स वेगवान् ॥१०५
तयोर्मध्ये प्रमाणोऽयं विवाहो मे यदा भवेत् । तदाहं त्वां भजिष्यामि संत्यक्त्वोद्वाहितं पतिम् ॥१०६
हते तस्मिन्महाधूर्ते गत्वा संग्राममूर्द्धनि । जम्बुकस्य ययुर्दुर्गं दृष्ट्वा ते तं समारुहन् ॥
हत्वा तत्र स्थितान्वीराञ्छतघ्न्यः परिखाकृताः ॥१०७
तदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली । जित्वा पञ्च महावीरान्बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः ॥
शैवं यज्ञं च कृतवांस्तेषां नाम्नोपबृंहितम् ॥१०८
रूपणस्तु तथा ज्ञात्वा देवकीं प्रत्यवर्णयत् । तदा तु दुःखिता देवी भवानीं भयहारिणीम् ॥
मनसा च जगामाशु शरण्यां शरणं सती ॥१०९
तदा तुष्टा जगद्धात्री स्वप्नान्ते तामवर्णयत् । अहो देवकि कल्याणि पुत्रशोकं त्यजाधुना ॥११०
यदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली । होमं कर्ता स मन्दात्मा तेषां च बलिहेतवे ॥१११
मोहयित्वा तदाहं तं मोचयित्वा च ते सुतान् । विजयं ते प्रदास्यामि मा च शोके मनः कृथाः ॥११२
इति श्रुत्वा सती देवी नमस्कृत्य महेश्वरीम् । पूजयामास विधिवद्धूपदीपोपहारकैः ॥११३

हुए भी वह अत्यन्त कामी है । राजा जम्बूक की पुत्री प्रतिदिन स्वजनों समेत या अकेले ही जाकर उसके साथ रमण करती है । उसी ऐलविली ने मनुष्य मोहित करने वाली इस माया को उसे प्रदान किया है । उस नीच पुरुष के समीप पहुँचकर हम लोग अवश्य कार्य-सिद्ध कर लेंगे, इसे सुनकर आह्लाद के अतिरिक्त वे चारो भाई उस वन के लिए चल दिये । वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने उस धूर्त मायावी को अपने नृत्य-गान द्वारा मुग्ध करके उस दिन उसी के निवास स्थान पर निवास किया । वह नराधम पूर्वजन्म में चित्र नामक महाराक्षस था, जो बाणासुर की कन्या उषा को अपनाने के लिए नित्य शिव जी की आराधना कर रहा था । इस जन्म में इसका ऐलविली नाम हुआ है । वह अत्यन्त आवेग से यक्ष की पूजा कर रहा है, क्योंकि उन दोनों में यह निश्चय हुआ है कि जब मेरा विवाह संस्कार हो जायेगा तो उस विवाहित पति का त्याग करके मैं सदैव के लिए आपकी हो जाऊँगी । पश्चात् इन लोगों ने उसका वध करके पुनः उस रणस्थल में पहुँचकर जम्बूक के दुर्ग पर चढ़ाई कर दी । और चारो ओर से उसे घेरकर वहाँ के वीरों को धराशायी कर दिया । उस समय राजा जम्बूक ने जिन्हें शिवजी का वरदान प्राप्त था, उन पाँचों महावीरों को पराजित करके हथकड़ी बेड़ी द्वारा उन्हें बाँधकर उनकी बलि देने के निमित्त शैव-यज्ञ करना आरम्भ किया । तदुपरान्त इसका आनुपूर्वी वर्णन रूपन ने देवकी से किया । उसे सुनकर अत्यन्त अधीर होकर देवकी ने भयनाशिनी भगवती पार्वती की शरण में जाकर उनकी मानसिक आराधना की । १०२-१०९ । प्रसन्न होकर

एतस्मिन्नन्तरे राजा देवमायाविमोहितः । सुष्वाप तत्र होमान्ते ते च जाता ह्यबन्धनाः ।।११४
तैर्बद्धो जम्बुको राजा निगडैरायसैर्दृढैः । ते तं बद्ध्वा ययुः शीघ्रं देवकीं प्रति निर्भयाः ।।११५
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कालियाद्यास्त्रयः सुताः । त्रिलक्षं सैन्यमादाय युद्धाय समुपाययुः ।।११६
पुनर्युद्धमभूद्घोरं सेनयोरुभयोस्तदा । तालनाद्याश्च चत्वारो हत्वा तां रिपुवाहिनीम् ।।११७
त्रींश्छत्रून्कोष्ठकीकृत्य स्वशस्त्रैर्जघ्नुरूर्जिताः । एवं दिनानि कतिचित्तत्र जातो महारणः ।।११८
कालियो दुःखितो भूत्वा सस्मार मनसा हरम् । मोहनं मन्त्रमासाद्य मोहयामास तान्रिपून् ।।११९
एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकी पतिदेवता । पातिव्रत्यस्य पुण्येन सुतान्तिकमुपागता ।।१२०
बोधयित्वा तु कृष्णांशं पञ्चशब्दगजास्थितम् । पुनस्तुष्टाव जननीं सर्वविश्वविमोहिनीम् ।।
तदा तुष्टा स्वयं देवी बोधयामास तान्मुदा ।।१२१
आह्लादः सूर्यवर्माणं कालियं च ततोऽनुजः । जघान बलखानिस्तं तुन्दिलं जम्बुकात्मजम् ।।१२२
ते तु पूर्वभवे विप्र जरासन्धः सकालियः । द्विविदो वानरः शूरः सूर्य्यवर्मेह चाभवत् ।।१२३
त्रिशिरास्तुन्दिलो जातः शृगालः स च जम्बुकः । नित्यवैरकराः सर्वे भूपाश्चासन्महीतले ।।१२४
हतेषु शत्रुपुत्रेषु देवकी जम्बुकं रिपुम् । खड्गेन तर्जयामास पतिशोकपरायणा ।।१२५
कृष्णांशः शिरसी पित्रोर्गृहीत्वा स्नेहकातरः । जम्बुकस्यैव हृदये स्थापयामास विह्वलः ।।१२६

जगज्जननी देवी ने उनसे कहा—देवकि ! कल्याणि ! इस समय पुत्र-शोक क्यों कर रही हो । जिस समय जम्बूक हवन करते हुए उन लोगों की बलि देने के लिए प्रस्तुत होगा मैं उस समय उसे मोहित कर तुम्हारे पुत्रों को मुक्तकर उन्हें विजय प्रदान करूँगी, इसलिए मेरा कहना है कि तुम अपने मन में शोक के लिए स्थान मत दो । इसे सुनकर उस पतिव्रता ने नमस्कारपूर्वक धूप, दीप एवं उपहार द्वारा सविधि महेश्वरी देवी की पूजा सुसम्पन्न की । इसी समय राजा देव-माया द्वारा मोहित होकर निद्रित हो गये, और ये लोग बन्धनमुक्त होने पर दृढ़ शृंखला द्वारा उस राजा को बाँधकर निर्भय होकर अपनी माता देवकी के पास पहुँचे । इसे सुनकर कालिय आदि तीनों पुत्रों ने तीन लाख सैनिकों को साथ लेकर रणस्थल में जाते ही युद्ध की घोषणा की । उन दोनों सेनाओं का आपस में पुनः घोर संग्राम आरम्भ हुआ, जिसमें तालन आदि चारों वीरों ने उस सेना का हनन करके उन तीन भाइयों को जो प्रमुख शत्रु थे, घेर कर अपने-अपने अस्त्रों से कठिन आघात-प्रतिघात करना आरम्भ किया । इस प्रकार समान रूप से कई दिन तक वह युद्ध होता रहा । उस समय कालिय दुःखी होकर भगवान् शंकर का मानसिक स्मरण करने लगा । पश्चात् मोहन-मंत्र द्वारा शत्रुओं को मुग्ध कर रहा था ।११०-११९। उसी समय पतिपरायण देवकी देवी ने अपने पतिव्रत पुण्य के प्रभाव से अपने पुत्रों के पास पहुँचकर पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित उस पुत्र को बोधित करती हुई निखिल विश्व का विमोहन करने वाली माता को पुनः प्रसन्न किया, जिससे देवी द्वारा चेतना प्राप्तकर आह्लाद ने सूर्यवर्मा, उदयसिंह ने कालिय, और बलखानि ने जम्बु पुत्र तुन्दिल का निधन किया । विप्र ! पूर्व जन्म में कालिय जरासंध था, उसी भाँति सूर्य वर्मा द्विविद नामक बानर, तुन्दिल त्रिशिरा राक्षस और जम्बूक शृगाल था । इस भूतल पर ये नृपगण सदैव ईर्ष्या, वैर एवं कलह किया करते थे । इस प्रकार शत्रु के पुत्रों के निधन होने के उपरान्त पतिशोकपरायण देवकी ने शत्रु जम्बूक को खड्ग से छिन्न-भिन्न किया । अनन्तर उदयसिंह ने स्नेह से आर्द्र होकर अपने पिता के दोनों शिर अधीर होते हुए

विहस्य तौ तदा तत्र प्रोचतुर्वचनं प्रियम् । चिरं जीव हि कृष्णांश गयां कुरु महामते ॥
इति वाणी तयोर्जाता बलिनोः प्रेतदेहयोः ॥१२७
खड्गहस्ता च सा देवी शिलायन्त्रे तु तं रिपुम् । संस्थाप्य चोदयामास स्वपुत्रान्हर्षसंयुता ॥१२८
हे पुत्राः स्वपितुः शत्रुं जम्बुकं पुरुषाधमम् । खण्डं खण्डं च तिलशः कृत्वानन्दसमन्विता ॥१२९
सञ्चूर्णयत तद्गात्रं तत्तैलैर्मर्दनिमितैः । स्नास्याम्यहं तथेत्युक्त्वा रुरोद जननी भृशम् ॥१३०
तथा कृत्वा तु ते पुत्रा महिषीं ससुतां तदा । बलखानियुतास्तत्राहूय चक्रुश्च तत्क्रियाम् ॥१३१
तदा परिमलं राज्ञी दृष्ट्वा स्वामिनमातुरम् । मरणायोन्मुखं विप्रं पञ्चत्वमगमन्मुने ॥१३२
तत्सुता खड्गमानीय बलखानिभुजं प्रति । कृतित्दा मूर्च्छयित्वा तं तत्पक्षानन्वधावत ॥१३३
तालनं देवसिंहं च रामांशञ्च तथाविधम् । कृत्वान्यांश्च तथा शत्रूनगच्छत्कुलकातरा ॥१३४
कृष्णांशं मोहयित्वाशु मायया च समाहरत् । हते तत्र शते शूरे बलखानिरमर्षितः ॥
तच्छिरश्च समाहृत्य चितायां च समाक्षिपत् ॥१३५
तदा वाणी समुत्पन्ना बलखाने शृणुष्व भोः । अवध्या च सदा नारी त्वया वध्या ह्यधर्मिणः ॥१३६
फलमस्य विवाहे स्वे भोक्तव्यं पापकर्मणः । इति श्रुत्वा तदा दुःखं बलखानिर्ययौपुरम् ॥१३७
ततस्तु सैनिकाः सर्वे महाहर्षसमन्विताः । शतोष्ट्रभारवाह्यानि लुण्ठयित्वा धनानि च ॥१३८

जम्बूक के हृदय स्थान पर रखा । उस समय वे दोनों शिर हँसकर बोले—उदयसिंह, चिरजीवी रहो । महामते ! मेरे निमित्त गया में श्राद्ध अवश्य करो । उस प्रेत देह से निकली हुई ऐसी वाणी को सुनकर देवकी देवी ने शिला-यंत्र (पत्थर के कोल्हू) में शत्रु जम्बूक को स्थापित करती हुई हर्षातिरेक से पुत्रों से कही—पुत्रगण ! अपने पिता के परम शत्रु एवं इस नराधम जम्बूक का तिल की भाँति खण्ड-खण्ड कर इसे इसमें पिसवा डालो, क्योंकि मैं इसकी देह के तेल को लगाकर स्नान करूँगी, इतना कहकर वे अत्यन्त रुदन करने लगीं । वे पुत्र उनकी आज्ञा पालन करने के उपरान्त बलखानि (मलखान) आदि पुत्रों के साथ रानियों समेत एकत्र होकर अपने पिता की अन्येष्टिक्रिया किये । उसी समय रानी मलना ने अपने पति राजा परिमल को मरणासन्न देखा । विप्र ! उस समय उनके देहावसान हो जाने पर उनकी (जम्बूक की) पुत्री खड्ग लेकर बलखानि (मलखान) को मूर्च्छित करने के उपरान्त उनके पक्ष के तालन, देवसिंह एवं आह्लाद (आल्हा) को मूर्च्छित करती हुई शत्रु के अन्य शूर-सामन्तों को मूर्च्छित कर अपनी माया द्वारा उनका अपहरण कर ली । उसके द्वारा अपने सौ वीरों के निधन होने पर क्रुद्ध होकर बलखानि (मलखान) ने उसका शिर काटकर उसी चिता में डाल दिया ।१२०-१३५। उसी समय आकाशवाणी हुई—बलखाने (मलखान) ! मेरी बात सावधान होकर सुनो, स्त्री सदैव अवध्य मानी गई है, किन्तु , तुम्हारे जैसे अधर्मी ने इस (स्त्री-हत्या) काम को भी कर ही डाला, अतः इस पापकर्म का दुष्परिणाम अपने विवाह में तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा । इसे सुनकर वह बलखानि (मलखान) को अत्यन्त दुःख का अनुभव हुआ। अनन्तर उनके वीर सैनिकों ने हर्ष निमग्न होकर सैकड़ों ऊँट, धन लूटकर शेष बची हुई

महावतीं समाजग्मुः कृतकृत्यत्वमागताः । हतशेषैश्चार्द्धसैन्यैः सहिता गेहमाययुः ॥१३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कस्मिन्मास्यभवद्युद्धं तयोः कतिदिनानि च । तत्पश्चात्स्वपुरीं प्राप्य तदा किमभवन्मुने ॥१

सूत उवाच

पौषमास्यभवद्युद्धं तयोः शतदिनानि च । ज्येष्ठे मासि गृहं प्राप्ता दध्मुर्वाद्यान्यनेकशः॥२
श्रुत्वा परिमलो राजा स्वसुताञ्जयिनो बलीन् । ददौ दानानि विप्रेभ्यः सुखं जातं गृहे गृहे॥३
इति श्रुत्वा महीराजो बलखानिं महाबलम् । तत्रागत्य नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः॥४
अर्द्धकोटिमितं द्रव्यं मत्तः प्राप्य सुखीभव । माहिष्मत्यश्च राष्ट्रं मे देहि वीर नमोऽस्तु ते॥५
वर्षे वर्षे च तद्द्रव्यं गृहाण बलवन्प्रभो । इति श्रुत्वा तथा मत्वा बलखानिर्गृहं ययौ ॥६

आधी सेना समेत अपने को कृतकृत्य मानते हुए महावती (महोबा) के लिए प्रस्थान किया।१३६-१३९

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अध्याय १३

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—मुने ! इन दोनों माहिष्मती एवं महावती (महोबा) वालों का आपस में किस मास में कितने दिनों तक युद्ध होता रहा। पश्चात् अपनी राजधानी में पहुँचकर महावती (महोबा) वालों ने क्या किया ? १

सूत जी बोले—उन दोनों का भीषण संग्राम पौष मास से आरम्भ होकर समान रूप से सौ दिन तक होता रहा। इस प्रकार ज्येष्ठ में वे महावती के वीर अपने घर पहुँचकर अनेक प्रकार के वाद्यों की हर्ष ध्वनि करने लगे। बली एवं विनयी उन अपने पुत्रों की विजय ध्वनि को सुनकर राजा परिमल ने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें अनेक भाँति के दान प्रदान किये और वहाँ के प्रत्येक प्राणी सुख का अनुभव करने लगे। इस विजय-समाचार को सुनकर पृथिवीराज ने विनय-विनम्र पूर्वक नमस्कार के उपरान्त महाबलवान् बलखानि (मलखान) से कहा—वीर ! आधा कोटि द्रव्य मैं आपको दे रहा हूँ, इसे ग्रहणकर सुख का अनुभव करते हुए आप माहिष्मती का राज्य मुझे लौटा दें। आपको नमस्कार है, प्रभो ! मैं इतना ही द्रव्य प्रत्येक वर्ष समर्पित करता रहूँगा। इसे स्वीकार कर बलखानि (मलखान) ने उन्हें वह राज्य लौटा दिया

वयस्त्रयोदशाब्दे च कृष्णांशे बलवत्तरे । तथा जाता हरेर्लीला भृगुश्रेष्ठ तथा शृणु ।।७
भाद्रे शुक्ले त्रयोदश्यां चाह्लादः सानुजो ययौ । गयार्थे धनमादाय हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ।।८
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो वत्सजो हरिणीस्थितः । देवः पपीहकारूढः सुखखानिः करालके ।।९
चत्वारो द्विदिनान्ते च गयाक्षेत्रं समाययुः । पूर्णिमान्ते पुरस्कृत्य षोडशश्राद्धकारिणः ।।१०
शतं शतं गजांश्चैव भूषितांश्च रथांस्तथा । ददुर्हयान्सहस्रं च हेममालाविभूषितान् ।।११
धेनूर्हिरण्यरत्नानि वासांसि विविधानि च । दत्त्वा ते सुफलीभूय स्वगेहाय दधुर्मनः ।।१२
लक्षावर्तिस्तु या वेश्या ययौ बदरिकाश्रमम् । प्राणांस्तत्र परित्यज्य साप्सरस्त्वमुपागता ।।१३
राकां चन्द्रे तु सम्प्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये । काश्यां समागता भूपा नाना देश्या कुलैः सह ।।१४
हिमालयगिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तत्र शार्दूलवंशीयो नेत्रसिंहो महीपतिः ।।१५
रत्नभानौ हते शूरे नेत्रसिंहो भयातुरः । नवतुङ्गे समासाद्य तोषयामास वासवम् ।।१६
द्वादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्कामृतं मुदा । पार्वत्या निर्मितं यत्तु दासवाय स्वसेविने ।।१७
ददौ ढक्कामृतं राज्ञे पुनः प्राह शुभं वचः । अस्य शब्देन भूपाल त्वं सैन्यं जीवयिष्यसि ।।१८
क्षयं शीघ्रं गमिष्यन्ति शत्रवस्ते महाभटाः । प्राप्ते ढक्कामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ।।१९

पश्चात् अपने घर चले गये ।२-६। भृगुश्रेष्ठ ! उदयसिंह के तेरह वर्ष की अवस्था में भगवान् ने जिस प्रकार की लीला की है, मैं बता रहा हूँ, सुनो । भाद्रपद (भादों) मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन आल्हाद (आल्हा) ने उदयसिंह को साथ लेकर अनेक हाथी, घोड़े, रथ एवं द्रव्य समेत गया में पिण्डदानार्थ प्रस्थान किया । उस यात्रा में उदयसिंह बिन्दुल (बेंदुल) पर, मलखान हरिणी पर, देवसिंह पपीहा पर और सुखखानि कराल नामक घोड़े पर आसीन थे । ये चारों दो दिन की यात्रा कर गया क्षेत्र पहुँच गये । वहाँ पूर्णिमा से आरम्भ कर अगले (क्वार के प्रथम) पन्द्रह दिन (पूर्णपितृयज्ञ) तक उन्होंने सोलह श्राद्धों को सुसम्पन्न किया । जिसमें उन्होंने सौ गजराज, सौ रथ और सुवर्ण की मालाओं से विभूषित एक सहस्र घोड़े का दान करते हुए गौ, हिरण्य रत्न एवं अनेक भाँति के वस्त्रों को अर्पित किया पश्चात् सुफल होने पर घर चलने के लिए निश्चित किया । उनके यहाँ की रहने वाली लक्षावर्ति (लखपातुर) नामक वेश्या ने भी बदरिकाश्रम में जाकर अपने प्राण परित्यागकर अप्सरत्व की प्राप्ति की (अर्थात् पुनः अप्सरा हो गई) । गया जी से लौटकर वे सब काशी में आकर निवास करने लगे, क्योंकि पूर्णचन्द्र (पूर्णिमा) के दिन राहु द्वारा चन्द्रमा में ग्रहण होने के नाते चारों ओर अंधकार हो गया था । उसमें स्नानार्थ अनेक देश के राजा काशी में आकर रह रहे थे । उनमें शार्दूल (बघेल) वंशीय नेत्र सिंह नामक राजा भी उपस्थित था, जो भाँति-भाँति की धातुओं से विभूषित एवं रमणीक उस हिमालय के प्रदेश का निवासी था । वीर रत्नभानु के निधन होने के उपरान्त भयभीत होकर नेत्रसिंह राजा ने नेत्रतुंग नामक स्थान पर पहुँचकर इन्द्र की आराधना की ।७-१६। बारह वर्ष के उपरान्त आराधना से प्रसन्न होकर देवराज (इन्द्र) ने उन्हें ढक्का (डमरू) रूपी अमृत प्रदान किया, जिसे पार्वती जी ने, अपने परम सेवक इन्द्र के लिए बनाया था । उसे राजा को देकर यह शुभ वाक्य भी कहा—नृप ! इसकी ध्वनि द्वारा तुम्हारी सेना जीवित हुआ करेगी और शत्रु के वीरभट्ट योद्धा शीघ्र नष्ट हो जायेंगे । इस डमरू की

नगरं कारयामास तत्र सर्वजनैर्युतम् । योजनान्तं चतुर्द्वारं दुराधर्षं परैः सदा ।।२०
नेत्रसिंहगढं नाम्ना विख्यातं भारते भुवि । काश्मीरान्ते कृतं राज्ये तेन शृङ्गसमन्ततः ।।२१
पालितं नेत्रसिंहेन तत्पुरं पुत्रवन्मुने । नेत्रपाल इति ख्यातो ग्रामोऽसौ दुर्गमः परैः ।।२२
सोऽपि राजा समायातो नेत्रसिंहो महाबलः । कन्या स्वर्णवती तस्य रेवत्यंशसमन्विता ।।
कामाक्ष्या वरदानेन सर्वमायाविशारदा ।।२३
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं कन्यां बालेन्दुसदृशाननाम् । मूर्च्छिताश्चाभवन्भूपा रूपयौवनमोहिताः ।।२४
दृष्ट्वा तां च तथाह्लादः सर्वरत्नविभूषिताम् । षोडशाब्दवयोयुक्तां कामिनीं रतिरूपिणीम् ।।
मूर्च्छितश्चापतद्भूमौ सा तं दृष्ट्वा मुमोह वै ।।२५
दोलामारुह्य तत्सख्यौ नृपान्तिकमुपाययुः । आह्लादस्तु समुत्थाय महामोहत्वमागतः ।।२६
दृष्ट्वा तथाविधं बन्धुं कृष्णांशः प्राह दुःखितः । किमर्थं मोहमायातो भवाँस्तत्त्वविशारदः ।।२७
रजो रागात्मकं विद्धि प्रमादं मोहजं तथा । ज्ञानासिना शिरस्तस्य छिन्धित्वमजितः सदा ।।२८
इति श्रुत्वा वचो भ्रातुस्त्यक्त्वा मोहं ययौ गृहम् । भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्सहस्रं वेदतत्परान् ।।२९
दुर्गामाराधयामास जप्त्वा मध्यचरित्रकम् । मासान्ते च तदा देवी दत्त्वाभीष्टं हृदि स्थितम् ।।३०

प्राप्ति के उपरान्त महाबली नेत्रसिंह ने एक सार्वजनिक नगर का निर्माण कराया, जो एक योजन (चारकोश) का विस्तृत एवं जिसके चारों दरवाजे शत्रुओं के लिए अत्यन्त अजेय थे। इस भारत प्रदेश के पृथिवीतल में वह 'नेत्रसिंह गढ़ के नाम से ख्यात हुआ। काश्मीर के समीप वाला प्रदेश उसका राज्य था, जो उसकी पर्वतीय शिखरों के चारों ओर विस्तृत है। मुने ! उस नगर का पालन नेत्रसिंह ने अपने पुत्र की भाँति किया था, जिससे उस शत्रु द्वारा दुर्गम ग्राम का नाम 'नेत्रपाल' हुआ।१७-२२। (काशी की यात्रा में) उस बलवान् नेत्रसिंह नामक राजा के साथ स्वर्णवती (सोना) नामक उनकी पुत्री भी थी, जो रेवती के अंश से उत्पन्न होकर कामाक्षी देवी के वर प्रदान द्वारा सम्पूर्ण माया के कार्यों में निपुण हो गई थी। उस सौन्दर्यपूर्ण कन्या को जिसका मुख नवीन (द्वितीया के) चन्द्रमा के समान था, देखकर स्नान में आये हुए नृपतिगण उसके रूप-यौवन पर मुग्ध होकर अचेतन की भाँति अवाक् हो गये। उसी भाँति आह्लाद (आल्हा) भी समस्त रत्नों से अलंकृत उस सुन्दरी को देखकर जो सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के नाते काम-मद-विह्वल एवं रति-मूर्ति के समान थी, मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गये और वह कन्या भी उन्हें देखकर मोहित हो गई। उसे उसकी दोनों सखियों ने डोला में बैठाकर राजा के समीप पहुँचाया। उस महामोह से किसी भाँति चेतना प्राप्त करने पर आह्लाद (आल्हा) को पुनः चेतनाहीन होते देखकर अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए उदयसिंह ने कहा—आप तत्त्व के ज्ञाता हैं, अतः आप इतना मोह-मुग्ध क्यों हो रहे हैं ? जबकि आप यह जानते हैं कि—रजोगुण से अनुराग उत्पन्न होता है, उससे मोह तथा मोह से प्रमाद होता है। तुम सदैव अजेय हो, इसलिए ज्ञान रूपी तलवार से इसका समूल नाश कर दो। भाई की ऐसी बात सुनकर उन्होंने मोह का त्याग किया पश्चात् अपने घर के लिए प्रस्थान किया। घर पहुँचकर भगवती दुर्गाजी की मध्यम चरित्र द्वारा आराधना करके सहस्रों वैदिक एवं विद्वान् ब्राह्मणों को प्रिय भोजन से प्रसन्न किया। उसी मास के अन्त में देवी ने उन्हें अभीष्ट सिद्धि

मोहयामास तां कन्यां विवाहार्थमनन्दिता । स्वप्ने ददर्श सा बाला रामांशं देवकीसुतम् ।।३१
प्रातर्बुद्ध्वा तु सञ्चिन्त्य महामोहमुपाययौ । तदा ध्यात्वा च कामाक्षीं सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ।।३२
पौषमासे तु सम्प्राप्ते शुककण्ठे सुपत्रिकाम् । बद्ध्वा तं प्रेषयामास शुकं पत्रस्थितं प्रियम् ।।३३
स गत्वा पुष्पविपिनं महावतिपुरीस्थितम् । नरशब्देन वचनं कृष्णांशाय शुकोऽब्रवीत् ।।३४
वीर तेऽवरजो बन्धुर्नाम्नाल्हादो महाबलः । तस्मै हि प्रेषिता पत्री स्वर्णवत्या हितप्रदा ।।३५
तां ज्ञात्वा च पुनस्तस्या उत्तरं देहि मत्प्रियम् । अथवा पत्रमालिख्य तत्त्वं मे कुरु कण्टके ।।३६
इति श्रुत्वोदयो वीरो गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । ज्ञातवांस्तत्र वृत्तान्तमाल्हादाय पुनर्ददौ ।।३७
जम्बुकश्च नृपो वीरो रुद्रदत्तवरो बली । अजेयोऽन्यनृपैर्वीर त्वया युधि निपातितः ।।३८
तथाविधं मत्पितरमिन्द्रदत्तवरं रिपुन् । तमेवं जहि सङ्ग्रामे मम पाणिग्रहं कुरु ।।३९
इति ज्ञात्वा स आह्लादस्तामाश्वास्य हृदि स्थिताम् । शुककण्ठे बबन्धाशु लिखित्वा पत्रमुत्तमम् ।।४०
स शुकः पन्नगः पूर्वं पुण्डरीकेन शापितः । रेवत्यंशस्य कार्यं च कृत्वा मोक्षत्वमागतः ।।४१
मृते तस्मिञ्छुके रम्ये देवी स्वर्णवती तदा । दाहयित्वा ददौ दानं विप्रेभ्यस्तस्य तृप्तये ।।४२
माघमासि च सम्प्राप्ते पञ्चम्यां कृष्णपक्षके । आह्लादः सप्तलक्षैश्च सैन्यैः सार्द्धं ययौ मुदा ।।४३
तालनाद्याश्च ये शूराः स्वं स्वं वाहनमाश्रिताः । आह्लादं रक्षयन्तस्ते ययुः पञ्चदशाहकम् ।।४४

प्रदानकर विवाहार्थ उस कन्या को मोहित किया। उस कुमारी ने स्वप्न में देवकी पुत्र आल्हाद (आल्हा) का दर्शन प्राप्त किया।२३-३१। प्रातःकाल उठने पर वह उसी विषय में चिन्ता करती हुई अत्यन्त मोहित हुई। उस समय उसने समस्त मनोरथ प्रदान करने वाली कामाक्षी देवी को ध्यानपूर्वक पौषमास के आरम्भ में एक पत्र लिखकर शुक (तोते) के कंठ में बाँध दिया, पश्चात् प्रियपत्रवाहक उस शुक (तोते) को भेज दिया। वह शुक महावती नगर के पुष्पवाटिका में पहुँचकर वहाँ उदयसिंह से मनुष्य की वाणी में कहा—वीर! तुम्हारे भाई महाबलवान् आल्हाद (आल्हा) के लिए स्वर्णवती (सोना) राजकुमारी ने यह पत्र भेजा है। इसे जानकर मुझे उत्तर दें अथवा पत्र लिखकर मेरे कंठ में बाँधने की कृपा करें। इसे सुनकर वीर उदयसिंह ने उस पत्र को लेकर पढ़ा, समस्त वृत्तान्त जानकर पश्चात् आल्हाद (आल्हा) को दे दिया। उसमें लिखा था—वीर! शिव द्वारा वरदान प्राप्त करने वाले राजा जम्बूक ऐसे अनेक अजेय भूपों को तुमने जिस प्रकार रणाङ्गण में स्वर्गीय बताया है, उसी प्रकार इन्द्र द्वारा वरदान प्राप्त मेरे पिता रूप शत्रु को संग्राम में पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करो।' इसे पढ़कर आल्हाद (आल्हा) ने उसे आश्वासन प्रदानकर उत्तर में एक पत्र लिखकर उसके गले में बाँध दिया। वह शुक (तोता) जन्मान्तर में पन्नग था, पुण्डरीक द्वारा शाप प्राप्त होने के नाते शुक का रूप धारण किये था। रेवती के अंश से उत्पन्न उस स्वर्णवती (सोना) नामक राजकुमारी के कार्य को सुसम्पन्न करने के उपरान्त यह शुक परलोक पहुँच गया।३२-४१। उसके देहावसान होने पर कुमारी स्वर्णवती (सोना) ने उसका दाहसंस्कार करके ब्राह्मणों को उसके तृप्त्यर्थ दान प्रदान किया। माघ मास की कृष्णपञ्चमी के दिन आल्हाद (आल्हा) ने प्रसन्न होकर अपनी सात लाख सेनाओं के साथ वहाँ के लिए प्रस्थान किया। तालन आदि सबल शूरों ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर चारों ओर से आल्हाद (आल्हा) की रक्षा में

वङ्गदेशं समुल्लङ्घ्य शीघ्रं प्राप्ता हिमालयम् । रूपणं पत्रकर्त्तारं बलखानिरुवाच तम् ।।४५
गच्छ त्वं वीर कवची करालाश्वं समास्थितः । पञ्चशस्त्रसमायुक्तो राजानं शीघ्रमावह ।।४६
युद्धचिह्नं तनौ कृत्वा मामागच्छ त्वरान्वितः । तथा मत्वा शिखण्डयंशो ययौ शीघ्रं स रूपणः ।।४७
स ददर्श सभां राज्ञो बहुशूरसमन्विताम् । पार्वतीयैर्नृपैः सार्द्धं सहस्रैर्बलवत्तरैः ।।४८
स उवाच नृपश्रेष्ठं नेत्रसिंहं महाबलम् । त्वत्सुतायाः विवाहाय बलखानिर्महाबलः ।।
सप्तलक्षबलैर्गुप्तः सम्प्राप्तस्तव राष्ट्रके ।।४९
तस्मात्त्वं स्वसुतां शीघ्रमाह्लादाय समर्पय । शुल्कं मे देहि नृपते युद्धरूपं सुदारुणम् ।।५०
इति श्रुत्वा वचस्तस्य स राजा क्रोधमूर्च्छितः । पट्टनाधिपमाज्ञाय भूपं पूर्णबलं रुषा ।।
अरुधत्स कपाटं च तस्य बन्धनहेतवे ।।५१
पाशहस्ताञ्छूरशतं पट्टनाधिपरक्षितान् । दृष्ट्वा स रूपणो वीरः खड्गयुद्धमचीकरत् ।।५२
हत्वा तन्मुकुटं राज्ञो गृहीत्वाकाशगो बली । बलखानिं तु संप्राप्य चिह्नं तस्मै न्यवेदयत् ।।५३
इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सप्तलक्षदलैर्युतः । अरुधन्नगरीं सर्वां नेत्रसिंहेन रक्षिताम् ।।५४
नेत्रसिंहस्तु बलवान्पार्वतीयैर्नृपैः सह । हिमतुङ्गतलं प्राप्य युद्धार्थी तान्समाह्वयत् ।।५५
सहस्रं च गजास्तस्य हया लक्षं महाबलाः । सहस्रं च नृपाः शूराश्चतुर्लक्षपदातिभिः ।।५६

सन्नद्ध रहकर पन्द्रहवें दिन उस राजधानी में पदार्पण किया । बंग देश को पारकर ये लोग शीघ्र हिमालय के प्रदेश में पहुँचकर संदेशवाहक रूपण से बलखानि (मलखान) ने कहा—वीर ! कवच धारणपूर्वक कराल (करील) नामक घोड़े पर बैठकर पाँचों अस्त्र लिए हुए तू राजा के पास पहुँचकर उन्हें हमारे आगमन की सूचना देने के पश्चात् अपनी देह में कोई युद्धचिह्न अंकित कर शीघ्र लौट आवो । इसे स्वीकार करके वह शिखण्डी का अंश रूपण राजधानी में शीघ्र प्रविष्ट हुआ । उसने वहाँ जाकर राजा की राजसभा को देखा, जिसमें पर्वतीय अनेक शूरवीर नृपतिगण अपने शूर-सामन्तों समेत उपस्थित होकर वहाँ की श्रीवृद्धि कर रहे थे । महाबलवान् राजा नेत्रसिंह से उसने कहा—बलखानि (मलखान) नामक महाबली योद्धा अपनी सात लाख सेना लेकर अपनी कन्या के पाणिग्रहणार्थ इस राजधानी में उपस्थित हुए हैं—अतः आप अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार आल्हाद (आल्हा) के साथ शीघ्र सुसम्पन्न करने के लिए प्रस्तुत हो जाँय । और राजन् ! इसका पुरस्कार मुझे भीषण-युद्ध के रूप में मिलना चाहिए । उसकी ऐसी बात सुनकर राजा ने क्रोधान्ध होकर पूर्णबल नामक अपने सदनाध्यक्ष को आदेश दिया । उसने रूपण को बाँधने हेतु (रंगभूमि के) विशाल दरवाजे को बंद करा दिया । नगराध्यक्ष की अध्यक्षता में आये हुए उनके रक्षकवीरों को देखकर जो सौ की संख्या में उपस्थित होकर पाश (फांस) अस्त्र से सुसज्जित थे, रूपण हाथ में खड्ग लेकर युद्ध करने के लिए उनके सम्मुख खड़ा हो गया । पश्चात् युद्ध में उन्हें धराशायी कर और राजा के मुकुट को लेकर आकाशमार्ग से वह बलखानि (मलखान) के समीप पहुँचकर उन्हें वह राज-मुकुट सौंप दिया । यह साहस देखकर बलखानि (मलखान) ने प्रसन्न होकर सात लाख सैनिकों समेत उस नेत्रसिंह की सुरक्षित राजधानी को चारों ओर से घेर लिया । बलवान् नेत्रसिंह ने भी अपने पर्वतीय राजाओं को साथ लेकर हिमालय की ऊँची तलहटी में उन्हें युद्धार्थ निमन्त्रित किया । उनकी सेना में एक सहस्र गज, एक लाख घोड़े, एक सहस्र की संख्या में वीर नृपगण और चार लाख पदाति (पैदल) की सेना थी ।४२-५६। गज सेनानायक योगसिंह ने अपनी सेना समेत बलखानि

योगसिंहो गजैः सार्द्धं बलखानिं समाह्वयत् । भोगसिंहो हयैः सार्द्धं कृष्णांशं च समाह्वयत् ।।५७
विजयो नृपपुत्रश्च सर्वभूपतिभिः सह । देवसिंहस्तथा म्लेच्छै रूपणं च समाह्वयत् ।।५८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोस्तत्र दारुणम् । निर्भयाश्चैव ते शूराः पार्वतीयाः समन्ततः ।।
जघ्नुस्ते शात्रवीं सेनां द्विलक्षां वीरपालिताम् ।।५९
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा चत्वारो मदमत्तकाः । दिव्यान्वाहान्समारुह्य चक्रुः शत्रोर्महावधम् ।।
पुनरुज्जीवितं सर्वं ढक्कामृतरवाद्बलम् ।।६०
युद्धाय सम्मुखं प्राप भृगुश्रेष्ठ पुनः पुनः । अहोरात्रं रणश्चासीत्तेषां तत्रैव दारुणः ।।६१
एवं सप्ताह्नि सञ्जाते युद्धे भीरुभयङ्करे । उपायैर्बहुभिर्वीराश्चक्रुश्चैव रणं बहुम् ।।६२
पुनस्ते जीवमापन्ना जघ्नुस्तान्रिपुसैन्यपान् । तालनाद्यास्तु ते शूरा दुःखितास्तत्र चाभवन् ।।
निराशां विजये प्राप्य कृष्णांशं शरणं ययुः ।।६३
तानाश्वास्य स कृष्णांशस्तत्र दिव्यहये स्थितः । नभोमार्गेण बलवान्स्वर्णवत्यन्तिकं ययौ ।।६४
हर्म्योपरि स्थितां देवीं सर्वशोभासमन्विताम् । नत्वोवाच वचः श्लक्ष्णं किङ्करोहमिहोदयः ।।
शरण्यां त्वामुपागच्छं कामाक्षीमिव भामिनि ।।६५
वृत्तान्तं कथयामास यथासीच्च महारणः । श्रमेण कर्शिता वीरा निराशां जीवनेऽगमन् ।।६६
साह चोदयसिंह त्वं कामाक्ष्या मन्दिरं व्रज । अहं च स्वालिभिः सार्धं नवम्यां पूजने रता ।।६७

(मलखान) को, अश्व सेनाध्यक्ष भोगसिंह ने उदय सिंह को तथा राजपुत्र विनयकुमार ने राजाओं समेत उस रणस्थल में देवसिंह, तालन एवं रूपण को युद्ध के लिए ललकारा । दोनों के वीरभट सैनिकों ने एक दूसरे पर भीषण आघात-प्रतिघात करते हुए उस युद्ध को अत्यन्त भयानक बना दिया । पर्वतीय शूरों ने चारों ओर से घेरकर शत्रु की दो लाख सेनाओं का हनन कर दिया । उस समय अपनी सेना का विनाश होते उन चारों मत्तोन्मत्त वीरों ने अपने दिव्य अश्व वाहनों पर बैठकर शत्रुदल का महान् वध करना आरम्भ किया । किन्तु शत्रु के सैनिक वीर डमरू के ध्वनि रूप अमृतपान करने से शीघ्र जीवित हो जाते थे और बार-बार युद्धार्थ सम्मुख पहुँच जाते थे । भृगुश्रेष्ठ ! इस प्रकार बार-बार उनके जीवित होने के नाते वह युद्ध दिन-रात में समान रूप से चलते हुए सात दिन में भीषणाकार हो गया । उसमें वीरों ने अपनी अनेक भाँति की रण कुशलता प्रकट की, किन्तु शत्रुसैनिक पुनः जीवित होकर इनकी सेनाओं का बध करने लगे । इसे देखकर तालन आदि शूर वीरों ने अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए विजय के लिए सर्वथा निराश होकर उदयसिंह के पास पहुँचकर प्रार्थना की ।५७-६३। उन्होंने उन्हें धैर्य प्रदानकर अपने दिव्य वाहन पर बैठकर आकाश मार्ग से राजकुमारी स्वर्णवती (सोना) के महल में पहुँचकर उसे देखा, जो समस्त सौन्दर्य से अलंकृत होकर अपने प्रासाद पर देवी की भाँति स्थित थी । नमस्कारपूर्वक स्निग्ध वाणी द्वारा उससे कहा—मैं आपका सेवक उदय सिंह हूँ, भामिनि ! कामाक्षी देवी की भाँति आपकी शरण में मैं उपस्थित हुआ हूँ । पश्चात् उस युद्ध के समस्त वृत्तान्त को उससे निवेदन किया। और यह भी कहा कि—हमारे सैनिक वीर अत्यन्त क्लान्त होने के नाते विजय से निराश हो गये हैं। उसने कहा—उदयसिंह ! इस समय तुम कामाक्षी देवी के मन्दिर में चलो । मैं अपनी सखियों समेत नवमी के दिन देवी के

ढक्कामृतस्य वाद्येन पूजये सर्वकामदाम् । इति श्रुत्वा स बलवान्स्वसैन्यं प्रति चागमत् ।।६८
अर्धशेषां रणात्सेनां पराजाप्य च दुद्रुवुः । पट्टनाख्यपुरे प्राप्ता जयं प्राप्य महाबलाः ।।६९
पराजिते रिपौ तस्मिन्नेत्रसिंहसुतैः सह । गृहमागत्य बलवान्विप्रेभ्यो गोधनं ददौ ।।७०
नवम्यां पितरं प्राह देवी स्वर्णवती तदा । कामाक्षीसेवनेनाशु कुरु यागोत्सवं मम ।।
यत्प्रसादाच्च विजयी दुर्जयेभ्योऽभवद्भवान् ।।७१
इति श्रुत्वा पिता प्राह स्वप्नो दृष्टस्तथा मया । पूजनान्मङ्गलं राज्ञां नो चेद्विघ्नो हि शोभने ।।७२
पित्रोक्तैवं निशायां तु सा सुता पितुराज्ञया । ढक्कामृतस्य वाद्येन कामाक्षीमन्दिरं ययौ ।।७३
कृष्णांशो माल्यकारस्य वधूर्भूत्वा समागतः । ढक्कामृतं च नारीभ्यो गृहीत्वा त्वरितो ययौ ।।७४
एतस्मिन्नन्तरे वीराः षष्टिर्वाहनसंयुताः । ढक्कार्थं प्रययुः शीघ्रं सर्वशस्त्रैः समुद्यताः ।।७५
तानागतान्स बलवान्दृष्ट्वा खड्गं गृहीतवान् । पञ्चपञ्चाशतः शूराननयद्यमसादनम् ।।७६
कृष्णांशस्त्वरितो गत्वा रूपणो यत्र तिष्ठति । ढक्कामृतं च सम्प्राप्य हयारूढो ययौ सभाम् ।।७७
हृते ढक्कामृते दिव्ये नेत्रसिंहो भयातुरः । ऐन्द्रं यज्ञं तथा कृत्वा हवनाय परोऽभवत् ।।७८
प्रभाते समनुप्राप्ते ते वीराः स्वबलैः सह । तरसा प्रययुः सर्वे गजोष्ट्रहयसंस्थिताः ।।
दिनान्ते प्राप्तवन्तश्च यत्राभूत्स महारणः ।।७९
कृष्णांशः पूजयित्वा तं दध्मौ ढक्कामृतं बली । तच्छब्देन मृता वीराः पुनरुज्जीवितास्तदा ।।८०

पूजनार्थ वहाँ आऊँगी ।६४-६७। किसी स्त्री (दासी) के हाथ में वह डमरू वाद्य भी रहेगा। उससे उसका अपहरण कर लेना।' इतना सुनकर वह बलवान् अपनी सेना में चला आया। पश्चात् अपनी बंधी हुई आधी सेना समेत रण का त्यागकर पटना नगर में आकर रहने लगा।६८-७३। शत्रु के पराजित होने पर नेत्र सिंह ने अपने पुत्रों समेत घर आकर ब्राह्मणों को गो धनादि का दान दिया। पश्चात् नवमी के दिन राजकुमारी स्वर्णवती (सोना) ने अपने पिता से कहा—कामाक्षी देवी की आराधना के लिए मैं वहाँ जाना चाहती हूँ, अतः आप उस मेरे यज्ञोत्सव की तैयारी शीघ्र करा दें, क्योंकि उसी के प्रसाद से आपने अजेय शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। इसे सुनकर पिता ने कहा—मैंने भी इसी भाँति का स्वप्न आज देखा है—उनके पूजन से ही राजाओं का कल्याण होता है, अन्यथा शोभने! विघ्न का महान् भय होता है। पिता की ऐसी बात सुनकर उसने पिता की आज्ञा प्राप्तकर डमरू बजवाती हुई कामाक्षी देवी के मन्दिर में प्रवेश किया। उस समय उदसिंह वहाँ के माली की पुत्र-बहू (पतोहू) बनकर उपस्थित थे, वे स्त्री के हाथ से उस डमरू को छीनकर वहाँ से भाग निकले। उसी बीच साठ सैनिक वीरों ने वाहन पर बैठे हुए अस्त्रों से सुसज्जित होकर उस डमरू के निमित्त उदयसिंह के पीछे अनुगमन किया। उन सबल सैनिकों को देखकर उन दोनों वीरों ने उन साठ सैनिकों को यमपुरी भेज दिया। पश्चात् उदयसिंह रूपन को साथ लेकर अपने शिविर में पहुँच गये। उस अमृत रूपी डमरू के अपहरण हो जाने पर भयभीत होकर नेत्रसिंह ने पुनः 'ऐन्द्र' यज्ञ के समारम्भ की तैयारी के लिए आदेश प्रदान किया। प्रातःकाल होने पर अपने-अपने हाथी, घोड़े एवं ऊँटों आदि वाहनों पर बैठकर वेग से चलते हुए सायंकाल तक उस स्थान पर वे वीरगण पहुँच गये जहाँ वह घोर युद्ध नेत्र सिंह के साथ आरम्भ हुआ था। उदयसिंह ने पूजनपूर्वक उस डमरू की ध्वनि की जिससे उसकी अमृत ध्वनि सुनकर उनके मृतक सैनिकों ने पुनः जीवन प्राप्त किया।७४-८०। पुनः वे

सप्तलक्षबलं तस्य पुनः प्राप्तं मदातुरम् । रुरोध नगरीं सर्वां दध्मौ वाद्यान्यनेकशः ।।८१
रुद्धे तु नगरे तस्मिन्नेत्रसिंहो भयातुरः । स्वात्मानमर्पयामास वह्नौ शक्राय धीमते ।।८२
तदा प्रसन्नो भगवानुवाच नृपतिं प्रति । रामांशोऽयं च कृष्णांशो भुवि जातौ कलैकया ।।८३
तस्मै योग्याय सा कन्या रामांशाय यशस्विने । योगिनीयं स्वर्णवती रेवत्यंशादवतारिणी ।।८४
इत्युक्त्वा च स्वयं देवो ढक्कामृलमुमाप्रियम् । हृत्वा वह्नौ समाक्षिप्य दुर्गायै संन्यवेदयत् ।।८५
गते तस्मिन्सुरपतौ स राजा ब्राह्मणैः सह । महीपतिं प्रति ययौ मेलनार्थं समुद्यतः ।।८६
तथागतं नृपं दृष्ट्वा कृष्णांशश्च महीपतिः । आह्लादमातुलः प्राह मान्यः सर्वबलैः सदा ।।८७
राजन्नयं स बलवानाह्लादः सानुजैः सह । मत्पङ्क्तौ न स्थितो वीरः कुले हीनत्वमागतः ।।८८
आदिराभीरी स्मृता तेषां किं त्वया विदितं न हि । यदि देया त्वया कन्या तर्हि त्वं हीनतां व्रज ।।८९
अतस्त्वं वचनं चेदं कुलयोग्यं शृणुष्व भोः । चातुरो बालकान्नीचांस्तालनेन समन्वितान् ।।९०
वञ्चयित्वा विवाहार्थे शिरांस्येषां समाहर । मण्डपान्ते मखं कृत्वा चामुण्डायै समर्पय ।।९१
त्वत्कन्यया समाहूता वीरा वै रेवती हि सा । पश्चात्कन्यां स्वयं हत्वा कुलकल्याणमावह ।।९२
नो चेद्भवान्क्षयं यायात्सकुलो जम्बुको यथा । इत्युक्त्वा स ययौ सार्द्धं यत्राह्लादस्य बान्धवः ।।९३

अपने साथ मदोन्मत्त सैनिकों द्वारा चारों ओर से उस नगरी को घेरकर अनेक भाँति के वाद्यों की ध्वनि कराने लगे। उस ध्वनि के साथ अपने नगरी को अवरुद्ध होना सुनकर भयभीत होते हुए नेत्रसिंह उस यज्ञ के अग्निकुण्ड में इन्द्र के प्रसन्नार्थ अपने को अर्पित कर दिया। उससे प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र ने राजा से कहा—आह्लाद (आल्हा) और उदय सिंह के रूप में राम और कृष्ण अपनी एक कला द्वारा इस भूतल में अवतरित हुए हैं, इसलिए उस यशस्वी रामांश आह्लाद (आल्हा) के योग्य आपकी कन्या है। क्योंकि वह कन्या भी योगिनी और रेवती के अंश से उत्पन्न है। इतना कहकर स्वयं देवराज ने पार्वतीप्रिय डमरू का अपहरण करके उसे उसी अग्निकुण्ड में प्रक्षिप्त कर श्री दुर्गाजी से निवेदन करते हुए अपने लोक को प्रस्थान किया। सुरपति इन्द्र के चले जाने पर उस (उदयसिंह) से संधि करने की इच्छा से नेत्रसिंह ने उर्वी (उरई) निवासी महीपति (माहिल) के यहाँ प्रस्थान किया। राजा को देखकर आथिथ्य सेवा के उपरान्त आह्लाद (आल्हा) के मामा ने उनसे कहा—'राजन्! यद्यपि यह आह्लाद (आल्हा) अपने भाइयों के नाते अत्यन्त बलवान् है, तथापि हीन कुल में उत्पन्न होने के कारण मेरी पंक्ति (समाज) में इनका प्रवेश नहीं हो पाया है।८१-८८। क्योंकि ऐसा सुना भी गया है कि इनकी 'पूर्वजा' जाति की अहीरिनि थी। क्या यह तुम्हें विदित नहीं है! यदि इन्हें अपनी कन्या प्रदान करोगे तो तुम्हें भी समाज से बहिष्कृत होना पड़ेगा।' अतः अपने कुल के योग्य मेरी इस बात को सुनो! तालन समेत चौथे पुत्र (उदयसिंह) को कहीं किसी प्रवंचना द्वारा वंचित कर उस विवाह में उनके शिर काट लो और उसे मण्डप के अन्त में चामुण्डादेवी को अर्पित कर दो तथा तुम्हारी कन्या के आह्वान करने पर ही ये वीरगण आये हुए हैं। अतः इसके पश्चात् अपने हाथ से उस रेवती कन्या का भी शिरश्छेदन करना तुम्हें आवश्यक होगा, क्योंकि इसी में तुम्हारे कुल का कल्याण दिखाई दे रहा है।८९-९२। अन्यथा राजा जम्बूक की भाँति आप भी सकुटुम्ब नष्ट हो जाँयेंगे। सुयोधन के अंश से उत्पन्न उस महीपति (माहिल) की बातों को स्वीकार

इति श्रुत्वा स शल्यांशः सुयोधननुखेरितम् । तथेत्युक्त्वोत्सवं कृत्वा मण्डपान्ते विधानतः ॥
आह्लादस्य समीपं स गत्वैतद्वञ्चनाय हि । तमाह दण्डवत्पादौ गृहीत्वा नृपतिस्स्वयम् ॥९४
भवन्तोंऽशावताराश्च मया ज्ञाताः सुरोत्तमात् । निरस्त्रान्पञ्च युष्मांश्च पूजयित्वा यथाविधि ॥
रामांशाय स्वकन्यां च दास्यामि कुलरीतितः ॥९५
इत्याह्लादं समादिश्य स नृपश्छलमाश्रितः । दुर्गोत्सवे ययौ गेहं तद्वधाय समुद्यतः ॥९६
सहस्रं मण्डपे भूपान्संस्थाप्य स्वबलैः सह । तालनाद्यांश्च षट् शूरान्मण्डपान्ते समाह्वयत् ॥९७
विवाहप्रथमावर्ते योगसिंहोऽसिमुत्तमम् । वरमाहत्य शिरसि जगर्ज बलवान्रुषा ॥९८
तमाह तालनो धीमानयोग्यं भवता कृतम् । श्रुत्वाह नेत्रसिंहस्तं कुलरीतिरियं बलिन् ॥
निरायुधैः परैः सार्द्धं शस्त्रिणां सङ्गरो हि नः ॥९९
इति श्रुत्वा योगसिंहं कृष्णांशस्तं समारुधत् । भोगसिंहं तथाकृष्य बलखानिर्गृहीतवान् ॥१००
विजयं तृतीयावर्ते सुखखानिर्न्यरुन्द्ध वै । चतुर्थावर्तके शत्रुं नृपं पूर्णबलं शठम् ॥
रूपणस्तं गृहीत्वाशु युयुधे तद्बलैः सह ॥१०१
पञ्चमे बहुराजानं तालनश्च समारुधत् । षष्ठावर्ते नेत्रसिंहं तथाह्लादो गृहीतवान् ॥१०२
सम्प्राप्ते तुमुले युद्धे बहुशूराः क्षयं गताः । निरायुधाः षड् बलिनः संक्षम्य व्रणमुत्तमम् ॥

करके शल्यांश से उत्पन्न नेत्रसिंह ने उनसे कहा—मण्डप के अन्त में आपके समेत उन पाँचों व्यक्तियों को निरस्त्र वहाँ बुलाकर उस रात्रि में सबका पूजन करूँगा पश्चात् रामांश आह्लाद (आल्हा) को अपनी पुत्री प्रदान करूँगा । इतना कहकर वह आह्लाद के यहाँ गया जहाँ वे अपने बंधुओं आदि के साथ रह रहे थे । उनके चरण का साष्टाङ्ग दण्डवत् करके राजा ने उनसे कहा—आप लोग देवश्रेष्ठ के अंश से उत्पन्न हुए हैं, यह मुझे भी विदित हुआ है (अतः मैं आपकी बात अङ्गीकार कर रहा हूँ) इतना कहकर अपने घर चले आये और दुर्गाजी के महोत्सव में उन लोगों के वध करने की तैयारी करने लगे—अपनी सेना समेत एक सहस्र राजाओं को मण्डप के भीतर गुप्त रखकर पश्चात् तालन आदि उन छः शूरवीरों को विवाहार्थ उस मंडप में निमंत्रित किया ।९३-९७। वहाँ पहुँचने पर विवाह कार्य आरम्भ हुआ, उसकी पहली भाँवर में योगसिंह ने अपनी उस उत्तम तलवार से आह्लाद (आल्हा) के शिर पर आघात करके रोषपूर्ण गर्जना की । उसे देखकर तालन ने उनसे कहा—आपने महान् अनुचित कार्य किया है । उसे सुनकर नेत्रसिंह ने कहा—बलिन् ! यह मेरे कुल की रीति है अस्त्रहीन शत्रुओं से सशस्त्र हम लोग घोर युद्ध करते हैं । इसे सुनकर उदयसिंह ने योगसिंह को रोक लिया और भोगसिंह को बलखानि (मलखान) ने पकड़ लिया ।९८-१००। तीसरी भाँवर में प्रहार करने वाले विजय को सुखखानि ने रोक लिया, चौथी भाँवर में पूर्णबल नामक शठ राजा को रूपन ने पकड़कर उससे घोर युद्ध किया । पाँचवें भाँवर में बहु राजा को तालन ने रोका और छठें भाँवर में आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं नेत्रसिंह को पकड़ लिया । उस घोर युद्ध में अनेक शूरवीर आहत हुए । ये छहों व्यक्ति निरायुध रहने पर भी अपने-अपने शत्रुको अस्त्रहीन कर देते

निरायुधान्रिपून्स्वान्स्वांश्चक्रुः शक्तिप्रपूजकाः ॥१०३
एतस्मिन्नन्तरे देवः कालदर्शी समागतः । नभोमार्गेण तानश्वांस्तेभ्य आगत्य सन्ददौ ॥१०४
बिन्दुलं चैव कृष्णांशो देवस्तत्र मनोरथम् । रूपणश्च करालाश्वं चाह्लादस्तु पपीहकम् ॥१०५
हरिणीं बलखानिश्च तद्भ्राता हरिनागरम् । सिंहनीं तालनः शूरः समारुह्य रणोद्यतः ॥१०६
रात्रौ तन्नृपतेः सेनां हत्वा बद्ध्वा च तत्पतिम् । दोलां गेहाच्च निष्काश्य सप्तभ्रमरकारिताम् ॥१०७
स्वसैन्यं ते समाजग्मुर्निर्भया बलवत्तराः । तान्सर्वान्नेत्रसिंहादीन्दृष्ट्वा पाहीति जल्पितः ॥१०८
निगडैरेकतः कृत्वा पञ्च भूपान् हि वञ्चकान् । कारागारे महाघोरे तत्र तान्संन्यवारयत् ॥१०९
नेत्रसिंहो वरो भ्राता सुन्दरारण्यभूमिपः । हेतुं ज्ञात्वा ययौ शीघ्रं मायावी लक्षसैन्यकः ॥११०
तत्रागत्य हरानन्दो नाम्ना तानयुधद्बली । नेत्रसिंहस्य सैन्यं च चतुर्लक्षं तदागमत् ॥१११
पञ्चलक्षै रणो घोरः सप्तलक्षयुतैरभूत् । पञ्चाहोरात्रमात्रं च तयोश्चासीत्स संकुलः ॥
अर्द्धसैन्दं रिपोस्तत्र हतशेषमदुद्रुवत् ॥११२
विस्मितः स हरानन्दो रुद्रमायाविशारदः । बलाधिक्ययुताञ्ज्ञात्वा शिवध्यानपरोऽभवत् ॥११३
रचित्वा शाबरीं मायां नानारूपविधारिणीम् । पाषाणभूतान्सकलान्कृत्वा भूपान्समाययौ ॥११४
ससुतं भ्रातरं ज्येष्ठं नृपं पूर्णबलं ततः । मोचयित्वा ययौ गेहं कृतकृत्यो महाबली ॥११५
आह्लादं निगडैर्बद्ध्वा मायया जडतां गतम् । नेत्रसिंहः स बलवान्ययौ स्वं दुर्गमुद्यतः ॥

थे। उसी बीच काल-तत्त्व के ज्ञाता देवसिंह ने आकाश मार्ग से आकर उनके वाहनों को उन्हें प्रदान किया। पश्चात् विन्दुल (वेंदुल) पर उदयसिंह, मनोरथ (मनोहर) पर देवसिंह, कराल (करील) पर रूपन, पपीहा पर आह्लाद (आल्हा), हरिणी पर बलखानि (मलखान), हरिनागर पर सुखखानि, और सिंहनी पर तालन सवार होकर रण के लिए तैयार हो गये।१०१-१०६। उस रात्रि में उन्होंने राजा की सेना का विध्वंस करके उनके अध्यक्ष (सेनानायक) को बाँध लिया। पुनः डोला को घर से बाहर ले जाकर सहर्ष सातों भाँवर की समाप्ति की। पश्चात् वे वीर अपने सेनाओं के बीच शिविर में पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर त्राहि-त्राहि करने वाले नेत्रसिंह आदि को देखकर हथकड़ी-बेड़ी से आबद्धकर उन वंचकों को घोर कारागर में डाल दिया। तदुपरान्त नेत्रसिंह के छोटे भाई हरानन्द ने जो सुन्दर नामक जंगल का राजा था, अपने भाई की दशा सुनकर एक लाख सेना समेत वहाँ आकर युद्धारम्भ कर दिया उसी बीच नेत्रसिंह की भी चार लाख सेना आ गई। यह पाँच लाख सेना शत्रु के सात लाख की सेना से युद्ध करने लगी। उस तुमुल संग्राम में शत्रु की आधी सेना समाप्त हो गई और शेष सैनिक भागने लगे। उसे देखकर हरानन्द को महान् आश्चर्य हुआ। पश्चात् उस मायावी ने, जो रुद्र की माया में अत्यन्त निपुण था, शत्रु को सबल देखकर शिव का ध्यान करना आरम्भ किया। अनन्तर भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाली उस शाबरी माया द्वारा सेना समेत शत्रुओं को पाषाण-शिला बनाकर पुत्र समेत बड़े भाई और पूर्णबल को मुक्त कराकर वह अपने घर चला गया।१०७-११५। जाते समय नेत्रसिंह ने माया द्वारा अचेतन आह्लाद (आल्हा) को हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर साथ लेकर अपने दुर्ग को प्रस्थान किया। घर पहुँचने पर अपने भाई की

तं प्रशंस्यानुजं वीरो विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥११६
तदा स्वर्णवती दीना बद्धं ज्ञात्वा पतिं निजम्। कृष्णांशाद्यान्मोहितांश्च शम्भुमायावशानुगान्॥११७
रुरोदोच्चैस्तदा देवीं ध्यायन्ती कामरूपिणीम्। तदा तुष्टा जगद्धात्री मूर्च्छितांस्तानबोधयत्॥११८
ते सर्वे चेतनां प्राप्ताः प्राहुः स्वर्णवतीं मुदा। क्वास्थितो बन्धुराह्लादो देवि त्वं कारणं वद ॥११९
यथा बद्धः स्वयं स्वामी कथयामास सा तथा। अहं शुकी भवाम्यद्य भवान्बिदुलसंस्थितः ॥१२०
इत्युक्त्वा सा शुकी भूत्वा कृष्णांशेन समन्विता। यत्रास्ते तत्पतिर्बद्धस्तत्र सा कामिनी ययौ ॥१२१
कृष्णांशोऽपि हयारूढो नभोमार्गेण चाप्तवान्। अभीरीं मूर्तिमास्थाय स्वामिनं प्रति सा ययौ ॥१२२
आश्वास्य तं यथायोग्यं कृष्णांशं प्रत्यवर्णयत्। कृष्णांशस्तत्र बलवान्हत्वा दुर्गनिवासिनः ॥१२३
रक्षकाञ्छतसाहस्रान्हत्वा भ्रातरमाययौ। पौर्णिमां मधुयुक्तां च ज्ञात्वा सर्वे त्वरान्विताः ॥१२४
अयोध्यां शीघ्रमागम्य स्नात्वा वै सरयूं[1] नदीम्। होलिकादाहसमये शीघ्रं वेण्यां समागता ॥१२५
स्नानध्यानादिका निष्ठाः कृत्वा गेहमुपाययुः। सागरस्य तटं प्राप्य कृत्वा ते च महोत्सवम् ॥

प्रशंसापूर्वक ब्राह्मणों को दान प्रदान किया। उस समय स्वर्णवती (सोना) ने अपने पति को बँधा हुआ और उनके बंधुवर्ग एवं सैनिकों को शम्भु की माया से मोहित (अचेतन) देखकर अधीर होकर रुदन किया। पश्चात् कामरूपिणी देवी को ध्यानपूर्वक प्रसन्न करने लगी, प्रसन्न होकर जगज्जननी ने उन मूर्च्छितों को चेतना प्रदान की। ज्ञान होने पर उन लोगों ने स्वर्णवती (सोना) से पूँछा—देवि! भाई आह्लाद (आल्हा) कहाँ हैं, उसका कारण शीघ्र बताइये। जिस प्रकार उसके स्वामी आबद्ध होकर गये थे, उसने सब कुछ सविस्तृत कह सुनाया और उदयसिंह से यह भी कहा कि—मैं तोते का रूप धारणकर तुम्हारे साथ चल रही हूँ, तुम घोड़े पर बैठो। इतना कहकर वह तोते का रूप धारण कर उदयसिंह के साथ वहाँ गई, जहाँ उसके स्वामी बँधे हुए कारागार में पड़े थे। उदयसिंह भी आकाशमार्ग से वहाँ पहुँच गये। स्वर्णवती (सोना) ने अहीरिनि का रूप धारणकर अपने पति के पास पहुँचकर उन्हें आश्वासन प्रदान किया। पुनः उदयसिंह से वहाँ का सभी मार्मिक भेद वर्णन किया। बलवान् उदयसिंह ने समस्त दुर्ग रक्षकों का जो सहस्र की संख्या में वहाँ सदैव रह रहे थे, हनन करके अपने भाई को साथ ले उसी चैत्र की पूर्णिमा के दिन अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। स्वर्णवती ने प्रसन्न होकर वहाँ अत्यन्त स्नान-दर्शन किया। पश्चात् होली के अवसर पर वे सब वेणी तट पर पहुँचे।११६-१२५। वहाँ स्नान-ध्यान करके अपने घर पहुँच गये। कुछ दिन के उपरान्त सागर के तट पर जाकर एक विशाल महोत्सव का आयोजन किया, उसे सुसम्पन्न करने के उपरांत चैत्रकृष्ण पञ्चमी के दिन पुनः अपने घर आकर सानन्द रहने लगे। ऊँट (गाडियों) पर चलने वाले संदेश वाहक दूतगण फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी के दिन ही अपने घर पहुँच गये थे। उस समय मलना तथा राजा परिमल के आनन्द की सीमा नहीं रही, घर-घर महोत्सव मनाकर

---

१. सप्तम्यर्थे द्वितीया।

चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्यां स्वगेहं पुनराययुः ।।१२६
दूता उष्ट्रसमारूढास्तत्क्षेमकरणोत्सुकाः । वैशाखे शुक्लपञ्चम्यां स्वगेहं पुनराययुः ।।१२७
मलना भूपतिश्चैव गेहे गेहे महोत्सवम् । कारयित्वा विधानेन ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।।१२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्दशाब्दे कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु । जयन्तः शक्रपुत्रश्च जानकीशापमोहितः ।।
कलौ जन्मत्वमापन्नः स्वर्णवत्युदरेऽवसत् ।।१
चैत्रशुक्लनवम्यां च मध्याह्ने गुरुवासरे । स जातश्चन्द्रवदनो राजलक्षणलक्षितः ।।२
जाते तस्मिन्सुतश्रेष्ठे देवाः सर्षिगणास्तदा । इन्दुलोऽयं महीं जातो जयन्तो वासवात्मजः ।।
इत्यूचुर्वचनं तस्मादिन्दुलो नाम चाभवत् ।।३
आह्लादो जातकर्मादीन्कारयित्वा शिशोर्मुदा । ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वर्णधेनुवृन्दं हयान्गजान् ।।४
इन्दुले तनये जाते द्विमासान्ते महीतले । योगसिंहस्तदागत्य स्वर्णवत्यै ददौ धनम् ।।५
नेत्रसिंहसुतं दृष्ट्वा मलना स्नेहसंयुता । पप्रच्छ कुशलप्रश्नं भोजयित्वा विधानतः ।।६

उन्होंने ब्राह्मणों को अधिकाधिक दान प्रदान किया ।१२६-१२८
श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की चौदह वर्ष की अवस्था में जो कुछ हुआ है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इन्द्र-पुत्र जयन्त ने जानकी जी के शाप द्वारा कलि में जन्म ग्रहण करने के निमित्त रानी स्वर्णवती (सोना) के गर्भ में निवास किया । चैत्र शुक्ल नवमी में बृहस्पति के मध्याह्न समय उसने राजकुमार के रूप में जन्म ग्रहण किया, जिसका मुख चन्द्रमा की भाँति सौन्दर्यपूर्ण एवं वह स्वयं राजलक्षणों से सम्पन्न था । उस उत्तम बालक के जन्मग्रहण करने पर ऋषियों समेत देवों ने कहा—'यह वासवपुत्र जयन्त इन्दुल होकर भूतल में जन्म ग्रहण किया है ।' इसीलिए उस कुमार का 'इन्दुल' नामकरण हुआ । उस समय प्रसन्नतापूर्ण आह्लाद (आल्हा) ने उस कुमार का जातकर्म संस्कार सुसम्पन्न कराने के उपरान्त ब्राह्मणों को सुवर्ण, धेनु एवं अनेक हाथी-घोड़े दान रूप में समर्पित किया । इन्दुल के पृथ्वीतल पर जन्म ग्रहण करने के दो मास पश्चात् योगसिंह ने वहाँ जाकर स्वर्णवती (सोना) को अत्यधिक धन प्रदान किया । उस समय रानी मलना ने नेत्रसिंह के पुत्र योगसिंह को देखकर स्नेह-विभोर होने के नाते अत्यन्त गद्गद कंठ से उनसे कुशल प्रश्न पूछा, पश्चात् सविधान भोजन कराने के अनन्तर उनके महल में जहाँ वे ठहराये गये थे,

शतवृन्दाश्च नर्तक्यो नानारागेण संयुताः । तत्रागत्यैव ननृतुर्यत्र भूपसुतः स्थितः ॥७
सप्तरात्रमुषित्वा स योगसिंहो ययौ गृहम् । षण्मासे च सुते जाते देवेन्द्रः स्नेहकातरः ॥८
पुत्रस्नेहेन तं पुत्रं स जहार स्वमायया । संहृत्य बालकं श्रेष्ठमिन्द्राण्यै च समर्पयत् ॥९
स्नेहप्लुता शची देवी स्वस्तनौ तमपाययत् । देव्या दुग्धं स वै पीत्वा षोडशाब्दसमोऽभवत् ॥१०
इन्दुं पीयूषभवनं गृह्णाति वपुषा स्वयम् । अतः स इन्दुलो नाम जयन्तश्च प्रकीर्तितः ॥
स बालः स्वपितुर्विद्यां पठित्वा श्रेष्ठतामगात् ॥११
विनष्टे बालके तस्मिन्देवी स्वर्णवती तदा । रुरोदोच्चैस्तदा दीना हा पुत्र क्व गतोऽसि भोः ॥१२
ज्ञात्वाह्लादं तथा भूतं दशग्रामे तथाविधे । रौद्रः कोलाहलो जातो रुदतां च नृणां मुने ॥१३
आह्लादः स्वकुलैः सार्द्धं निराहारो यतेन्द्रियः । शारदां शरणं प्राप्तस्त्रिरात्रं तत्र चावसत् ॥१४
तदा तुष्टा स्वयं देवी वागुवाचाशरीरिणी । हे पुत्र स्वकुलैः सार्द्धं मा शुचस्त्वं सुतं प्रति ॥१५
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च स्वर्गलोकमुपागतः । दिव्यविद्यां पठित्वा स त्रिवर्षान्ते [1] गमिष्यति ॥१६
यावत्त्वं भूतलेऽवात्सीस्तावत्स [2] भूतले वसेत् । तत्पश्चात्स्वर्गतिं प्राप्य जयन्तो हि भविष्यति ॥१७

सैकड़ों नर्तकियाँ अपने भाँति-भाँति के राग एवं कला-कुशलता द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगीं । इस प्रकार आनन्द-सागर में सात रात्रि रुकने के उपरान्त वे अपने घर गये । उस कुमार की छह मास की अवस्था तक अपने दिनों को व्यतीत करने में इन्द्र अधीर हो गये, उनसे न रहा गया, अन्ततोगत्वा पुत्रस्नेहवश उन्होंने अपनी माया द्वारा उस अपने पुत्र का अपहरण कर लिया । उस श्रेष्ठ बालक का अपहरण करके उसे अपनी इन्द्राणी (स्त्री) को सौंप दिया ।१-९। स्नेह-कातर होकर शचीदेवी ने उसे शीघ्र अपने स्तनों का पान कराया । देवी का दुग्धपान करने से वह कुमार सोलहवर्ष की अवस्था वालों के समान दिखाई देने लगा । उसने अमृत राशि चन्द्रमा की समानता अपने असाधारण शरीर द्वारा प्राप्त की । इसलिए जयन्त को इन्दुल कहा गया है । उसने अपने पिता की विद्या का अध्ययन करके श्रेष्ठता प्राप्त की थी ।१०-११। बालक के अपहृत होने पर उसे कहीं न देखकर स्वर्णवती (सोना) दीन-हीन होकर 'हा पुत्र', तुम कहाँ चले गये, इस प्रकार कहती हुई उच्च स्वर से रुदन करने लगी । इस समाचार को सुनकर आह्लाद (आल्हा) एवं उस 'दशग्राम' के निवासी गण हाय-हाय करने लगे । मुने ! इस प्रकार वहाँ जनता के क्रन्दन से करुणा का सागर उमड़ आया । आह्लाद (आल्हा) ने अपने कुटुम्ब के साथ निराहार एवं संयमी रहकर भगवती शारदा की शरण में पहुँचकर तीन रात तक वहाँ निवास किया । उस समय प्रसन्न होकर देवी ने आकाशवाणी की—पुत्र ! तुम उस कुमार के विषय में कुटुम्ब समेत शोक क्यों कर रहे हो, चिन्ता छोड़ दो ! वह इन्द्र का पुत्र जयन्त है, अतः अपने पिता के यहाँ स्वर्गलोक चला गया है । वहाँ दिव्य विद्या का अध्ययन करके तीन वर्ष पश्चात् आ जायगा और जब तक तुम इस भूतल पर निवास करोगे वह तुम्हारे साथ रहेगा । पश्चात् स्वर्ग पहुँचकर जयन्त के रूप में हो जायगा ।१२-१७। देवी की इस बात को सुनकर वे

---

१. आगमिष्यतीत्यर्थः । २. वत्स्यसीत्यर्थः ।

इत्युक्ते वचने देव्या निश्शोकास्ते तदाभवन् । दशग्रामपुरं प्राप्य समूषुर्ज्ञानतत्पराः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इन्दुले स्वर्गसम्प्राप्ते ते वीराः शोककातराः । शारदां पूजयामासुः सर्वलोकनिवासिनीम् ॥१
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं त्रिसन्ध्यं प्रेमभक्तितः । ध्यानेनानन्दमापन्नास्तदा सप्तशतेऽहनि ॥२
सामन्तद्विजपुत्रश्च चामुण्डो नाम विश्रुतः । सोऽष्टवर्षवया भूत्वा पूजयामास चण्डिकाम् ॥३
द्वादशाब्दे ततो जाते त्रिचरित्रस्य पाठतः । परीक्षार्थं तु भक्तानां साक्षान्मूर्तित्वमागता ॥४
कुण्डिकेयं च भो भक्ताः पूरयामि च तामहम् । यूयं तु मनसोपायैः कुरुध्वं पूरणे मतिम् ॥५
सुखखानिस्तु बलवान्मधुपुष्पैस्तथा फलैः । कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ॥
बलखानिस्तथा मांसैर्मूलशर्मा तु रक्तकैः ॥६
देवकी च तदा हव्यैश्चन्दनादिभिरर्चनैः । कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ॥७

शोक-परित्यागपूर्वक अपने नगर 'दशग्राम' चले गये, वहाँ ज्ञानियों की भाँति दिन व्यतीत करने लगे ।१८

श्री भविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अध्याय १५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय-वर्णन

सूत जी बोले—इन्दुल के स्वर्ग चले जाने पर वीरगणों ने शोक से दुःखी होकर समस्त लोकों में निवास करने वाली श्री शारदा देवी जी की पूजा की । प्रेम में मग्न होकर भक्तिपूर्वक वे लोग तीनों काल सप्तशती स्तोत्र का पाठ करते हुए ध्यान द्वारा आनन्द प्राप्त करने लगे । सामन्त ब्राह्मण का पुत्र, जिसे लोग चामुण्ड कहते हैं, आठ वर्ष की अवस्था से चण्डिका देवी की उपासना तीनों चरित्रों के पाठ द्वारा कर रहा था ।१-३। उस समय उसकी बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । सातवें दिन भक्तजनों के परीक्षार्थ भगवती ने अपनी साक्षात् मूर्ति प्रकटकर उन लोगों से कहा—'भक्तवृन्द ! मैं इस अपने कुण्ड को पूर्ण करना चाहती हूँ, तुम लोग अपने मन से इसके पूर्ण होने का उपाय निश्चित कर इसे पूर्ण करो । इसे सुनकर बलवान् सुखखानि ने सर्वप्रथम धूप, पुष्प और फलों द्वारा उस कुण्ड की पूर्ति करना चाहा, किन्तु प्रयत्न करने पर असफल ही रहे—उसकी पूर्ति न कर सके । उसी प्रकार बलखानि (मलखान) ने मांस, मूल शर्मा ने रक्त-पुष्प और देवकी ने चन्दन-पुष्प सें पूर्ण करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी पूर्ति न हो

आह्लादश्चैव सर्वाङ्गैरुदयः शिरसा स्वयम् । कुण्डिकां पूरयामास तदा पूर्णत्वमागता ॥८
उवाच वचनं देवी स्वभक्तान्भक्तवत्सला । सुखखाने भवान्वीरो भविष्यति सुरप्रियः ॥९
बलखानिर्महावीरो दीर्घे काले च मृत्युभाक् । मूलशर्मा तु बलवान्रक्तबीजो भविष्यति ॥१०
देवकी च भवेद्देवी चिरकालं स्वलोकगा । आह्लादश्चैव कृष्णांशस्तयोर्मध्ये द्वयं वरम् ॥
एकस्तुदेववत्प्रोक्तो बलाधिक्यो द्वितीयकः ॥११
निष्कामोऽयं देवसिंहो मृतो मोक्षत्वमाप्नुयात् । इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ने सर्वे तृप्तिमागताः ॥१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्राप्ते सप्तदशाब्दे च कृष्णांशे तत्र चाभवत् । शृणु त्वं मुनिशार्दूल दृष्टं यद्योगदर्शनात् ॥१
रत्नभानौ मृते राज्ञि मरुधन्वमहीपतिः । गजसेनस्तदा विप्र पृथ्वीराजभयातुरः ॥२
आराध्य पावकं देवं यज्ञध्यानव्रतार्चनैः । द्वादशाब्दं समाचारः प्रेमभक्त्या ह्यतोषयत् ॥३

सकी । उस समय आह्लाद (आल्हा) ने अपने सर्वाङ्ग तथा उदयसिंह ने अपने शिर को समर्पित करके उस कुण्डिका की पूर्ति कर दी, इससे प्रसन्न होकर भक्त वत्सला भगवती ने भक्तों से कहा—'वीर, सुखखाने ! तुम देव-प्रिय होगे, महाबली बलखानि (मलखान) की मृत्यु दीर्घकाल में होगी बलवान् मूलशर्मा रक्तबीज होंगे, देवकी देवी अपने लोक में चिरकाल से प्रवेश करेंगी, आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह के प्रति दो वरदान दे रही हूँ, एक देवता की भाँति रहेगा एवं दूसरे में बलाधिक्य होगा और निष्काम कर्म करने वाले देवसिंह मृत्यु के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करेंगे । इतना कहकर माताजी अन्तर्हित हो गई और वे (भक्तवृन्द) अत्यन्त प्रसन्नता से रहने लगे ।४-१२

श्रीभविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय-वर्णन
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुनि शार्दूल ! उदयसिंह की सत्रहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर योगबल से मैंने जो कुछ देखा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! विप्र ! राजा रत्नभानु के स्वर्गीय होने पर मरुधन्व देश के राजा गजसेन ने पृथ्वीराज से भयभीत होकर यज्ञ, ध्यानव्रत एवं अर्चना द्वारा अग्निदेव की आराधना

तदा प्रसन्नो भगवान्पावकीयं हयं शुभम् । ददौ तस्मै सुतौ चोभौ कन्यां च गजमुक्तिकाम् ॥४
पावकास्ते हि चत्वारः समुद्भूता महीतले । अग्निवर्णा महावीराः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥५
अष्टादशवयोभूताः सर्वे ते मुनिपुङ्गव । जातमात्रा देवसमाः सर्वविद्याविशारदाः ॥६
अष्टादशाब्दवयसा सा कन्या वरवर्णिनी । दुर्गायाश्च वरं प्राप्ता धर्मांशस्त्वां वरिष्यति ॥७
शार्दूलवंशी स नृपः कृतवान्वै स्वयंवरम् । नानादेश्या नृपाः प्राप्ताः सुतायाः रूपमोहिताः ॥८
मार्गशीर्षे सिते पक्षे ह्यष्टम्यां चन्द्रवासरे । तस्याः स्वयंवरश्चासीत्सानृपान्प्रति चाययौ ॥९
विद्युद्वर्णं मुखं तस्याश्चञ्चलायास्तथागतम् । दृष्ट्वा मुमोह धर्मांशो बलखानिर्महीपतिः ॥१०
सापि दृष्ट्वा च तं वीरं मुमोह गजमुक्तिका । बुद्ध्वा तस्मै ददौ मालां वैजयन्तीं शुभानना ॥११
तारकाद्याश्च भूपालाः सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः । रुरुधुः सर्वतो वीरं ते बलात्कन्यकार्थिनः ॥१२
तथाविधान्नृपान्दृष्ट्वा भूपान्पञ्चशतान्बली । स शीघ्रं खड्गमुत्सृज्य शतभूपशिरांस्यहन् ॥१३
सर्वतो वध्यमानं तं बलखानिं स तारकः । तद्भुजाभ्यां ददौ खड्गं स तदङ्गे द्विधाभवत् ॥१४
महीराजसुतो ज्येष्ठो दृष्ट्वा खड्गं तथा गतम् । अपोवाह रणाच्छूरस्तत्पश्चात्ते नृपा ययुः ॥१५
पराजिते नृपबले बलखानिर्महाबलः । तां कन्यां शिबिकारूढां स्वगेहं सोऽनयद्बली ॥१६

की । १-३। प्रसन्न होकर भगवान् अग्निदेव ने एक सुन्दर अश्व, दो पुत्र और गजमुक्तिका (गज मोतिना) नाम की एक कन्या प्रदान की । पावकांश से उत्पन्न ये चारों अग्नि के समान वर्ण, स्वयं महाबली एवं सर्वलक्षणों से अलंकृत थे, इस धरातल पर जन्म ग्रहण किये । मुनिश्रेष्ठ ! अठारह वर्ष-की अवस्था में ये सभी देवों की भाँति सौन्दर्यपूर्ण तथा समस्त विद्याओं में निपुण हो गये । अठारह वर्ष की ही अवस्था में उस उत्तमाङ्गी कन्या को प्रसन्न होकर दुर्गाजी ने वर प्रदान किया था।—वत्स पुत्र (मखलान) तुम्हारा पति होगा । बघेलवंशी राजा गजसेन ने अपनी कन्या के विवाहार्थ स्वयंवर किया, जिसमें उनकी कन्या के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अनेक देश के राजवृन्दों का आगमन हुआ था । मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्लाष्टमी में चन्द्रवासर के दिन स्वयम्बर में आये हुए राजाओं के 'वरणार्थ वह कन्या आई, जो स्वयं चपल एवं उसका मुख विद्युत की भाँति कान्तिपूर्ण था । राजा बलखानि (मलखान) तो उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया और वह कुमारी गजमुक्तिका (गजमोतिका) भी उन्हें देखकर कामपीड़ित होने लगी । और उसी अवस्था में उस शुभ-वदना ने उनके गले में वैजयन्ती माला पहना कर दी । तारक आदि नृपगण, जो उस कन्या के वरणार्थ वहाँ उपस्थित थे, बलप्रयोग करते हुए चारों ओर से बलखानि (मलखान) को घेर लिये । उन पाँच सौ राजाओं को अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर बलखानि (मलखान) ने शीघ्रता से हाथ में खड्ग लेकर सौ राजाओं के शिर काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया । तारक ने उस समय बलखानि (मलखान) को चारों ओर से घिरा देखकर अपने खड्ग से उनके हाथों पर आघात किया, परन्तु उनकी देह में वह खड्ग आघात करते ही दो टुकड़ा हो गया । पृथ्वीराज के ज्येष्ठ पुत्र (तारक) इसे देखकर तथा अश्व के अपहरण हो जाने पर उनके समेत सभी राजगण भाग निकले । राजाओं के पराजित हो जाने पर बलखानि (मलखान) ने उस कन्या को शिविका (पालकी) में बैठाकर अपने घर को प्रस्थान किया ।४-१६। उस समय अपनी पुत्री को जाते हुए देखकर राजा गजसेन ने

तां गच्छन्तीं सुतां दृष्ट्वा गजसेनो महीपतिः । महीपत्याज्ञया प्राप्तो ज्ञात्वा तं क्षत्रियाधमम् ॥१७
जम्बुकघ्नं महावीरं मायया तत्समोहयत् । जाते निद्रातुरे वीरे दुर्गायाः शापमोहिते ॥१८
निगडैस्तं सुबन्धाशु दृढैर्लोहमयै रुषा । लोहदुर्गं च सम्प्राप्य ग्रामरूपं महीपतिः ॥१९
चाण्डालांश्च समाहूय कठिनांस्तत्रवासिनः । वधायाज्ञापयामास तस्य दण्डैरनेकशः ॥२०
ते रौद्रास्तं समाबाध्य ताडयामासुरूर्ज्जिताः । तत्ताडनात्तदा निद्रा तत्रैव विलयं गता ॥२१
दृष्ट्वा ततस्तु चाण्डालान्बलखानिरताडयत् । तलमुष्टिप्रहारेण चाण्डाला मरणं गताः ॥२२
मृते पञ्चशते रौद्रे तच्छेषा दुद्रुवुर्भयात् । कपाटं सुदृढं कृत्वा नृपान्तिकमुपाययुः ॥२३
स नृपः कारणं ज्ञात्वा हस्तबद्धो महाबली । उवाच तत्र गत्वासौ वचनं कार्यतत्परः ॥२४
भवान्महाबलो वीर चाण्डालैर्बन्धनं गतः । दस्युभिर्लुण्ठितस्तत्र निद्रावश्यो वनं गतः ॥२५
मत्सुता भवने प्राप्ता दिष्टचा त्वं जीवितं गतः । उद्वाह्य मत्सुतां शीघ्रं स्वगेहं यातुमर्हसि ॥
इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तं प्रशस्य तथाकरोत् ॥२६
मण्डपे वेदकर्माणि विवाहार्थं चकार सः । जातायां मण्डपार्चायां पत्रमाह्लादहेतवे ॥२७
तदाज्ञया लिखित्वासौ गजसेनोऽग्निसेवकः । उष्ट्रारूढं समाहूय शीघ्रं पत्रमचोदयत् ॥२८
बलखानेर्विवाहोऽत्र भवान्सैन्यसमन्वितः । सम्प्राप्य योग्यद्रव्याणि भुक्त्वा त्वं तृप्तिमावह ॥२९

उर्वी पति माहिल तथा पराजित राजाओं की सम्मति से बलखानि (मलखान) को, जो क्षत्रियाधम, जम्बूक का हन्ता एवं महावीर था, अपनी माया से मोहित किया। पश्चात् दुर्गा शाप के कारण मोहित एवं निद्रित उस वीर को हथकड़ी-बेड़ी से दृढ़ आबद्ध करके लोहदुर्ग वाले ग्रामरूप में पहुँचकर वहाँ के निवासी चाण्डालों को बुलाकर कहा—'अनेक भाँति के दण्ड देते हुए इसका वध करो।' इस प्रकार की आज्ञा पाकर भीषण चाण्डालगण उन्हें बेतों आदि के प्रहार से पीड़ित करने लगे। कुछ समय पश्चात् उनकी मूर्च्छा नष्ट हो गई। चाण्डालों को प्रहार करते हुए देखकर बलखानि (मलखान) ने हथेलियों (थप्पड़ों) और मुट्ठियों के प्रहार से उन्हें धराशायी कर दिया। पाँच सौ चाण्डालों के निधन होने से शेष बचे हुए वहाँ से भाग निकले। पश्चात् (उस दुर्ग का) कपाट (किवाड़) भलीभाँति दृढ़ता से बन्द करके बलखानि (मलखान) भीतर राजा के पास पहुँचे।१७-२३। सभी कारणों को जानकर राजा ने अञ्जलि बाँधकर कहा—'वीर ! खेद का विषय है कि चाण्डालों ने आपको बाँध लिया और चोरों ने धन का अपहरण कर लिया है, शायद, आप उस वन में पहुँचकर निद्रित हो गये थे। मेरी कन्या मेरे भवन में आ गई है, सौभाग्य से आपको जीवित देख रहा हूँ। अब उसके साथ विवाह करके आप शीघ्र अपने घर चले जाइये। इसे सुनकर बलखानि (मलखान) ने प्रसन्न होकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की। राजा ने भी विवाहार्थ मण्डप आदि की रचना के लिए आदेश प्रदान किया। विवाह की तैयारी हो जाने पर अग्नि सेवक गजसेन ने आह्लाद (आल्हा) के पास पत्र लिखकर एक संदेशवाहक को, जो सांडिया पर पत्र-वाहन का कार्य करता था, देकर कहा—इस पत्र को शीघ्र आह्लाद (आल्हा) के पास ले जाओ। पत्र में लिखा था कि—'बलखानि (मलखान) का विवाह यहाँ होना निश्चित हुआ है, आप सेना समेत यहाँ आकर मेरे द्वारा किये गये आतिथ्य सत्कार को स्वीकार करने की कृपा करें।'२४-२९। पश्चात् उसी रात्रि में राजा ने

इत्युक्ते निशि जातायां बलखानिर्महाबलः । भोजनं कृतवांस्तत्र विषजुष्टं नृपार्पितम् ॥३०
गरलं तेन सम्भुक्तं न ममार वराच्छुभात् । ततः काले च सम्प्राप्ते दृष्ट्वा मोहत्वमागतम् ॥
पुनर्बबन्ध निगडैस्ताडयामास वेतसैः ॥३१
विषदोषमसृक्द्वारान्निस्सृतं[1] सर्वदेहतः । तदा बुबोध बलवान्भूपतिं प्राह नम्रधीः ॥३२
राजन्किमीदृशं जातं त्वत्सैन्यं ताडने रतम् । स आह भो महावीर मत्कुले रीतिरीदृशी ॥
यातनां प्रथमं प्राप्य तदनूद्वाहितो भवेत् ॥३३
इत्युक्ते सति भूपाले गजमुक्ता समागता । पितरं प्राह वचनं कोऽयं तत्ताडने गतः ॥३४
नृपः प्राह सुते शीघ्रं याहि त्वं निजमन्दिरे । कृषिकरोऽयमायातो द्रव्यार्थं ताडने गतः ॥३५
इति श्रुत्वा वचो घोरं बलखानिर्महाबलः । छित्त्वा तद्बन्धनं घोरं खड्गहस्तः समाययौ ॥३६
शूरान्पञ्चशतं तं च रुद्ध्वा शस्त्रैः समन्ततः । प्रजघ्नतस्तु तान्सर्वान्बलखानिर्व्यनाशयत् ॥३७
गजसेनसुतो ज्येष्ठः सूर्यद्युतिरुपागतः । बद्ध्वा पुनस्तं बलिनं गर्तमध्ये समाक्षिपत् ॥३८
तथा गतं पतिं दृष्ट्वा गजमुक्ता सुदुःखिता । निशि तत्र गता देवी दत्त्वा द्रव्यं तु रक्षकान्[2] ॥३९
पतिं निष्काश्य रुदती व्यजनं पतये ददौ । रात्रौ रात्रौ तथा प्राप्ता व्यतीतं पक्षमात्रकम् ॥४०
एतस्मिन्नन्तरे वीरश्चाह्लादः सप्तलक्षकैः । सैन्यैः सहाययौ शीघ्रं श्रुत्वा तत्रैव कारणम् ॥४१

बलखानि (मलखान) को भोजन में विष भक्षण करा दिया। किन्तु भोजन भक्षण करने पर भी वरदान प्राप्त होने के कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई। मूर्च्छित होने पर राजा ने पुनः हथकड़ी-बेड़ी से दृढ़ बाँधकर उनके पैरों पर बेतों के प्रहार कराने लगा। उस समय सम्पूर्ण देह में व्याप्त विष के रक्त के द्वारा बाहर निकल जाने पर बलखानि (मलखान) को चेतना प्राप्त हुई। उन्होंने विनम्र होकर राजा से कहा—राजन्! क्या कारण है, आपकी सेना मुझ पर आघात कर रही है। राजा ने कहा—वीर! मेरे कुल की रीति ही इस प्रकार है कि—प्रथम यातनाओं के उपभोग प्रदानकर पश्चात् उसका विवाह किया जाता है। राजा के इस प्रकार कहने पर राजकुमारी गजमुक्ता (गजमोतिना) वहाँ आकर अपने पिता से कहने लगी। इस प्रहारों द्वारा किसे दण्डित किया जा रहा है।३०-३४। राजा ने कहा—पुत्रि! तू शीघ्र अपने महल चली जा, यह एक खेतिहर किसान है, राजकर के लिए दण्डित हो रहा है। इस घोर अपमानपूर्ण बात को सुनकर महाबली बलखानि (मलखान) ने अपने शृंखला-बन्धनों को तोड़कर हाथ में खड्ग ग्रहण कर उसके द्वारा उन घेरे हुए पाँच सौ सैनिकों को, जो शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर वहाँ युद्धार्थ उपस्थित थे, छिन्न-भिन्न करके धराशायी कर दिया। अनन्तर राजा गजसेन के सूर्यद्युति (सूर्यमणि) नामक ज्येष्ठ पुत्र ने वहाँ आकर उस बली बलखानि (मलखान) को पुनः बंधन समेत गर्त (गड्ढे-खाई) में डाल दिया। पति की उस अवस्था को देखकर गजमुक्ता (गजमोतिना) अत्यन्त दुःख का अनुभव करती हुई आधी रात के समय वहाँ पहुँचकर रक्षकों (सिपाहियों) को द्रव्य देकर भीतर कारागार में अपने पति के पास गई और उन्हें सविधि व्यञ्जन भोजन कराकर लौट आई। प्रत्येक रात्रि में इसी प्रकार का क्रम चलता हुआ एक पक्ष (पखवारा) का समय व्यतीत हो गया।३५-४०। पश्चात् अपनी सात लाख सेना समेत आह्लाद

---

१. सम्बन्धमनुवर्तिष्यत इतिवदिहापि नपुंसकत्वम्। २. रक्षकेभ्य इत्यर्थः।

बलखानिर्गतो गर्ते रुरोध नगरीं तदा । गजैः षोडशसाहस्रैर्गजसेनो रणं ययौ ॥४२
त्रिलक्षैश्च हयैः सार्द्धं सूर्यद्युतिरुपाययौ । कान्तामलस्तदा प्राप्तस्त्रिलक्षैश्च पदातिभिः ॥४३
तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं हि सैन्ययोः । रक्षिते तालनाद्ये च गजसेनाद्यके तदा ॥४४
द्वितीयेऽह्नि समायाते गजसेनो महाबलः । प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पावकीयं समारुहत् ॥
दाहयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैश्च पालितम् ॥४५
भस्मीभूतं बलं दृष्ट्वा तालनः शत्रुसम्मुखे । गत्वा भल्लेन भूपालं ताडयामास वेगतः ॥४६
मूर्छितं नृपमाज्ञाय सूर्यद्युतिरुपाययौ । पावकीयं समारुह्य दाहयामास तालनम् ॥४७
एतस्मिन्नन्तरे शूरौ देवौ चाह्लादकृष्णकौ । बबन्धतू रुषाविष्टौ सूर्यद्युतिमरिन्दमम् ॥४८
सुबद्धं भ्रातरं ज्ञात्वा हयं कान्तामलोऽरुहत् । देवसिंहं च सम्मोह्य कृष्णांशं प्रति सोऽगमत् ॥
गृहीत्वा तं स कृष्णांशं तस्य तेजः समाहरत् ॥४९
सप्तलक्षबलं सर्वं वह्निभूतमभूत्तदा । अमरत्वात्स आह्लादस्तदा तु समजीवयत् ॥५०
गजसेनस्यार्द्धसैन्यं तैश्च सर्वैर्विनाशितम् । विजयं नृपतिः प्राप्य हर्षितो गेहमाययौ ॥५१
वह्निभूतं च कृष्णांशं दृष्ट्वाह्लादः सुदुःखितः । दुर्गां देवीं स तुष्टाव मनसा रणमूर्द्धनि ॥५२
तदा देवी वचः प्राह वत्स ते पुत्र एव च । स्वर्गादागत्य सर्वाणि पुनरुज्जीवयिष्यति ॥५३
इत्युक्ते वचने देव्या इन्दुलो वासदाज्ञया । द्वादशाब्दसमं रूपं धृत्वा विद्याविशारदः ॥

(आल्हा) वहाँ शीघ्र पहुँच गये ।४१। उन्होंने पहले ही सुना था कि बलखानि (मलखान) किसी गर्त (खाईं) में पड़े हुए हैं, इसलिए उनकी नगरी को चारों ओर से घेरकर युद्धार्थ राजा को निमन्त्रित किया। सोलह सहस्र की गजसेना समेत गजसेन, तीन लाख घोड़े की सेना समेत सूर्यद्युति (सूर्यमणि) और तीन लाख पदाति (पैदल) की सेना लेकर छोटे भाई कांतामल ने उस रणस्थल में पहुँचकर दिन-रात्रि का अविराम घोर युद्ध आरम्भ किया। तालनादि और गजसेनादि की अध्यक्षता में दोनों सेनाओं ने भीषण संग्राम करते हुए प्रथम दिन व्यतीत किया। किन्तु, महाबली गजसेन ने दूसरे दिन अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर अग्नि का प्रयोग किया, जिससे तालन आदि की सेनायें भस्मीभूत हो गईं। इसे देखकर तालन ने अपने भाला के प्रहार से राजा गजसेन को मूर्च्छित कर दिया। तदुपरांत सूर्यद्युति ने उस अग्नि के घोड़े द्वारा तालन को भस्म कर दिया। उसी बीच आह्लाद (आल्हा), और उदयसिंह ने क्रुद्ध होकर सूर्यद्युति को बाँध लिया। अपने भाई को दृढ़बंधन में पड़ा देखकर कांतामल उस घोड़े पर बैठा। वह देवसिंह को मोहितकर उदयसिंह के पास गया, किन्तु उदयसिंह ने उसे पकड़कर उस (घोड़े) के तेज का अपहरण कर लिया, जिससे उनकी सात लाख की सेना तत्काल भस्मीभूत हो गई, केवल एक आह्लाद (आल्हा) ही अमर होने के नाते शेष रह गये ।४२-५०। उन्होंने गजसेन की अवशिष्ट सेना को थोड़े ही समय में नष्ट कर दिया। किन्तु विजय राजा गजसेन की ही रही, वे अपने घर लौट आये। उदयसिंह के भस्म हो जाने पर आह्लाद (आल्हा) ने भगवती दुर्गाजी की मानसिक आराधना की। उस समय देवी ने कहा—'वत्स! तुम्हारा पुत्र स्वर्ग से आकर इन सभी मृतकों को पुनः जीवन प्रदान करेगा।' देवी जी के इस प्रकार कहने पर उस समय इन्द्र के यहाँ से विद्याविशारद इन्दुल बारह वर्ष के समान अवस्था प्राप्तकर

[1]वडवामृतमारुह्य हयं तत्र समागतः ॥५४
तदङ्गादुद्धृता वाहा मेघा इव समन्ततः । पावकं शमयामासुस्त्रयस्ते देवतोपमाः ॥५५
शमीभूते तदा वह्नौ स्वमुखात्सहयो मुदा । लालामुद्वाहयामास तया ते जीवितास्ततः ॥५६
जीविते सप्तलक्षे तु शमीभूते हि पावके । गजसेनः सुताभ्यां च प्रयातः सर्वतोदिशम् ॥५७
लक्षं सैन्यं तु ये शिष्टास्ते सर्वेऽपि भयातुराः । दुद्रुवुर्भार्गवश्रेष्ठ दिव्यरूपत्वधारिणः ॥५८
केचित्संन्यासिनो भूत्वा केचिद्वै ब्रह्मचारिणः । जीवत्वं प्राप्तवन्तस्ते तथान्ये संक्षयं गताः ॥५९
बद्ध्वा तान्गजसेनादींस्त्रीञ्छूरान्स च तालनः । कृष्णांशेन समायुक्त इन्द्रदुर्गं समाययौ ॥६०
बलखानिं च निष्काश्य तालनस्तदनन्तरम् । पृष्टवान्कारणं सर्वं श्रुत्वा तन्मुखतो वचः ॥
तान्वीरांस्ताडयामास वेतसैः स्तम्भबन्धनैः ॥६१
गजमुक्ताज्ञया विप्र सेनापतिरुदारधीः । तालनस्तान्समुत्सृज्य विवाहार्थं समाययौ ॥
बलखानिर्हयारूढो गजमुक्ता च मण्डपे ॥६२
गजसेनस्तदा दिव्यैर्भोजनैस्तानभोजयत् । निवास्य लोहदुर्गे तान्कपाटः[2] सुदृढीकृतः ॥
लक्षशूरान्स संस्थाप्य स्वयं रुद्रपुरं ययौ ॥६३
ते रात्रौ लोहदुर्गेषु ह्युषित्वा यत्नतो बलात् । प्रभाते च कपाटेन द्वारं दृष्ट्वा तदाब्रवीत् ॥

अमृत-अश्व पर बैठकर वहाँ आया । उसके घोड़े के अंग से मेघ की भाँति तीन घोड़े प्रकट होकर जो तीनों देवों की भाँति दिखाई दे रहे थे, उस रणस्थल की अग्नि का शमन किये । पश्चात् उस प्रमुख घोड़े ने अग्नि को शान्त देखकर अपने मुख से लार टपकाया, जिससे वे सभी जीवित हो उठे । अग्नि के शांत होने एवं शत्रु की सात लाख सेना को पुनः जीवित होकर सुसज्जित देखकर राजा गजसेन अपने दोनों पुत्रों समेत चारों ओर भागने लगे । उनके पास जो एक लाख सैनिक शेष रह गये थे, वे भयभीत होकर अनेक भाँति के अपने वेष बनाकर इधर-उधर भाग निकले । कुछ संन्यासी के रूप में और कुछ ब्रह्मचारी के रूप में थे—इन्हीं लोगों का जीवन सुरक्षित रहा, किन्तु , जो सैनिकों के वेष में थे, धराशायी कर दिये गये । तदुपरान्त तालन ने दोनों पुत्रों समेत गजसेन को बाँधकर उदयसिंह के साथ इन्द्र दुर्ग के लिए प्रस्थान किया । वहाँ जाकर बलखानि (मलखान) को उस बंधन एवं खाई से मुक्तकर उनसे समस्त कारणों को पूँछने लगे । पश्चात् उन तीनों को स्तम्भ में बाँधकर बेंतों के प्रहार द्वारा दण्डित करने लगे । विप्र ! उसी समय गजमुक्ता (गजमोतिना) ने वहाँ आकर अपने पिता एवं भाइयों को मुक्त कराया । पश्चात् विवाह की तैयारी होने लगी । अश्वारूढ़ होकर बलखानि (मलखान) और गजमुक्ता (गजमोतिना) उस मण्डप स्थान में पहुँचकर सुशोभित होने लगे ।५१-६२। वहाँ राजा गजसेन ने दिव्य भोजनों द्वारा उन लोगों का आतिथ्य सत्कार किया । किन्तु, यह सत्कार छलपूर्ण था, उसी व्याज से उन्हें उस लोहदुर्ग में रखकर उसके दरवाजे को सुदृढ़ बन्द करा दिया गया और एक लाख शूर सैनिकों को वहाँ गुप्त रक्षक के रूप में नियत कर राजा स्वयं अपने पुत्री, पुत्रों समेत चले गये । प्रातःकाल दरवाजे को बन्द देखकर सेना

---

१. वडवामृत इति तदीयाश्वस्य नाम, तेन हयशब्देन न पौनरुक्त्यम् । २. गजसेनेनेतिभावः ।

द्वारमुद्घाटयाशु त्वं नो चेत्प्राणांस्त्यजिष्यसि ॥६४
इति सेनापतिः श्रुत्वा लक्षशूरान्समादिशत् । नानायत्नैश्च हन्तव्याः शत्रवो भयकारिणः ॥६५
इति श्रुत्वा तु ते शूराः शतघ्न्यस्त्रैः सुरोपिताः । एकैकं क्रमशो जघ्नुर्वृन्दं ते वैरतत्पराः ॥६६
हते दशसहस्रे तु कृष्णांशो बिन्दुलं हयम् । समारुह्य जघानाशु स्वखड्गेन महद्बलम् ॥६७
हतशेषा भयार्ताश्च सहस्राशीतिसम्मिताः । इन्द्रदुर्गं प्रति प्राहुर्यथा जातो बलक्षयः ॥६८
श्रुत्वा भयातुरो राजा स्वसुताभ्यां समन्वितः । गजमुक्तां पुरस्कृत्य बहुद्रव्यसमन्विताम् ॥
स्वपापं क्षालयामास दत्त्वा कन्यां विधानतः ॥६९
षोडशोष्ट्राणि स्वर्णानि गृहीत्वाह्लाद एव सः । ययौ स्वगेहं महितः पुत्रभ्रातृसमन्वितः ॥७०
सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे देवी स्वर्णवती स्वयम् । इन्दुलं स्वाङ्कमारोप्य ललाप[1] करुणं बहु ॥७१
मृताहं च त्वया पुत्रपुनरुज्जीविता खलु । धन्याहं कृतकृत्यास्मि जयन्त तव दर्शनात् ॥७२
इति श्रुत्वेन्दुलो वीरो नत्वाह जननीं मुदा । अनृणं नाधिगच्छामि त्वत्तो मातः कदाचन ॥७३
सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे राजा परिमलः सुधीः । वाद्यानि वादयामास विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥७४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६

नायक से कहा गया कि—दरवाजे (के किंवाड़) को शीघ्र खोलवा दो, अन्यथा तुम्हें प्राण परित्याग करना पड़ेगा ।६३-६४। सेनानायक ने इसे सुनकर अपने सैनिकों को आदेश दिया कि—'इन भीषण शत्रुओं का सभी प्रकार से हनन करना आरम्भ हो। इतना सुनकर वे शूर वीरगण अपने शस्त्र तथा तोप आदि चलाने लगे। इन सबने भी सैनिक वृन्दों को छिन्न-भिन्न करके धराशायी करना आरम्भ किया। दशसहस्र सैनिक के निधन होने के उपरान्त उदयसिंह ने अपने विन्दुल (वेंदुल) नामक अश्व पर आसीन होकर अपने खड्ग द्वारा उन सैनिकों का वध करना आरम्भ किया। शेष अस्सी सहस्र सेना भयभीत होकर इन्द्र दुर्ग पहुँच गई, वहाँ उसने जिस प्रकार सैनिकों का हनन हुआ था, इसे राजा से कहा—इसे सुनकर राजा गजसेन ने अत्यन्त भयभीत होकर अपने दोनों पुत्रों समेत आह्लाद (आल्हा), के पास आकर कुमारी गजमुक्ता (गजमोतिना) को अनेक द्रव्यों समेत उन्हें समर्पित कर उर्वी (उरई) पति (माहिल) द्वारा किये गये अपने पाप का प्रक्षालन किया। प्रसन्न होकर आह्लाद (आल्हा) ने सोलह ऊँट पर सुवर्ण लेकर अपने पुत्र एवं बंधुओं समेत अपने घर को प्रस्थान किया। आह्लाद (आल्हा) के घर पहुँचने पर देवी स्वर्णवती (सोना) ने इन्दुल (इन्दल) को अपने अंक (गोद) में बैठाकर बहुत करुण रुदन किया—पुत्र ! मेरे जैसे मृतक को आज तुमने पुनः जीवित कर दिया, जयन्त ! तुम्हारे दर्शन से मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गई।' इसे सुनकर वीर इन्दुल ने भी प्रसन्नतापूर्ण होकर अपनी माता से नमस्कार पूर्वक कहा—माता ! मैं तुम्हारे ऋण से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता हूँ। इस समाचार को सुनकर राजा परिमल ने वाद्यों की ध्वनिपूर्वक ब्राह्मणों को धन दान करना आरम्भ किया।६५-७४

श्री भविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।१६।

---

१. विलापमकरोदित्यर्थः ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृष्णांशेऽष्टादशाब्दे तु यथाजातं तथा शृणु । मृते कृष्णकुमारे तु भूपतौ रत्नभानुना ।।१
महीराजः सुदुःखार्तो लक्षचण्डीमकारयत् । होमान्ते तु तदा देवी वागुवाच नृपं प्रति ।।२
वर्षे वर्षे तु ते सप्त भविष्यन्त्यगमसम्भवाः । कुमाराः कौरवांशाच्च द्रौपद्यंशाः सुता नृप ।।३
इत्युक्ते वचने तस्मिन्राज्ञी गर्भमथो दधौ । कर्णांशश्च सुतो जातस्तारको बलवत्तरः ।।४
द्वितीयाब्दे तथा जाते दुश्शासनशुभांशतः । नृहरिरिति विख्यातस्तृतीयाब्दे तु चाभवत् ।।५
उद्धर्षांशः सरदनो दुर्मुखांशस्तु मर्दनः । विकर्णांशः सूर्य्यकर्मा भीमश्चांशो विविंशतेः ।।६
वर्द्धनश्चित्रबाणांशो वेला तदनु चाभवत् । यथा कृष्णा तथा सैव रूपचेष्टागुणैर्मुने ।।७
भुवि तस्यां च जातायां भूकम्पो दारुणोऽभवत् । अट्टाट्टहासमशिवं चामुण्डा खे चकार ह ।।
रक्तवृष्टिः पुरे चासीदस्थिशर्करया युता ।।८
ब्राह्मणाश्च समागत्य जातकर्मादिकां क्रियाम् । कृत्वा नाम तथा चक्रे शृणु भूमिप साक्षरम् ।।९
इला च शशिनो माता विकल्पेनाऽभवद्भुवि । तस्माद्वेलेति विख्याता कन्येयं रूपशालिनी ।।१०

अध्याय १७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की अठ्ठारहवें वर्ष की अवस्था में जो कुछ मैंने देखा, सुना, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! रत्नभानु द्वारा राजा कृष्ण कुमार के निधन हो जाने पर पृथ्वीराज ने अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए लक्षचण्डी यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया । हवन हो जाने पर देवी ने राजा से आकाशवाणी द्वारा कहा—तुम्हारी अगमा नामक रानी के गर्भ द्वारा सात वर्षों तक प्रत्येक वर्ष कौरवांश एवं द्रौपदी के अंश से कुमार जन्म ग्रहण करते रहेंगे । अनन्तर रानी ने गर्भ धारण किया, जिससे कर्ण के अंश से तारक नामक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ । दूसरे वर्ष दुःशासन के अंश से 'नृहरि' नामक पुत्र, तीसरे वर्ष उद्धर्षांश से 'सरदन' नामक, (चौथे वर्ष) दुर्मुखांश से 'मर्दन' नामक, (पाँचवें वर्ष) विकर्णांश से 'सूर्यकर्मा' नामक, छठें भीम, सातवें वर्धन के पश्चात् एक कन्या का भी जन्म हुआ । मुने ! जिस प्रकार कृष्णा (द्रौपदी) के रूप-सौन्दर्य, चेष्टा एवं गुण थे, वैसे ही इस कन्या के भी हैं, इस कन्या के जन्म ग्रहण समय में भयंकर भूकम्प हुआ और चामुण्डा देवी ने आकाश में अमांगलिक (विश्व विनाशक) अट्टहास किया । नगर में अस्थि के चूर्ण मिश्रित रक्त की वृष्टि हुई । १-८। ब्राह्मणों ने वहाँ जाकर उसका जातकर्म संस्कार सुसम्पन्न कराने के अनन्तर उस कन्या का जो नामकरण किया, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! शशी की माता का नाम इला, उसी ने अपने वैकल्पिक रूप से इस भूतल में जन्म ग्रहण किया, इसलिए उस रूप-सुन्दरी कन्या

जातायां च सुतायां स पिता विप्रेभ्य उत्तमम् । ददौ दानं मुदा युक्तो वासांसि विविधानि च ।।११
द्वादशाब्दवयः प्राप्ते सा सुता वरवर्णिनी । उवाच पितरं नम्रा शृणु त्वं पृथिवीपते ।।१२
मण्डपे रक्तधाराभिर्यो मां संस्नापयिष्यति । द्रौपद्या भूषणं दाता स मे भर्ता भविष्यति ।।१३
स्वर्णपत्रे तदा राजा पद्यं वेलामखोद्भवम् । लिखित्वा तारकं प्राह त्वमन्वेषय तत्पतिम् ।।१४
सार्द्धं लक्षत्रयं द्रव्यं गृहीत्वा लक्षसैन्यकः । नृपान्तरं ययौ शीघ्रं तारकः पितुराज्ञया ।।१५
सिन्धुस्थाने चार्यदेशे भूपं भूपं ययौ बली । न गृहीतं नृपैः कैश्चित्तद्वाक्यं घोरमुल्बणम् ।।
महीपतिं स सम्प्राप्य मातुलं तद्वचोऽब्रवीत् ।।१६
श्रुत्वा स आह भो वीर ब्रह्मानन्दो महाबलः । स च वाक्यं प्रगृह्णीयादाह्लादाद्यैः सुरक्षितः ।।१७
किं त्वया विदितं नैव चरितं तस्य विश्रुतम् । भवान्षड्बन्धुसहितः कृष्णांशाद्यैर्विवाहितः ।।१८
ते सर्वे वशगास्तस्य ब्रह्मानन्दस्य धीमतः । नास्ति भूमण्डले कश्चित्तद्बलेन समो नृपः ।।१९
इति श्रुत्वा ययौ तूर्णं तारकः स्वबलैः सह । तत्पद्यं कथयित्वाग्रे हस्तबद्धस्तदाभवत् ।।२०
कृष्णांशस्तु गृहीत्वाशु पद्यं वाक्यमुवाच ह । अहं विवाहयिष्यामि ब्रह्मानन्दं नृपोत्तमम् ।।२१
तूष्णीं भूतास्तदा सर्वे तारकः स द्विजैः सह । अभिषेकं तदा कृत्वा स्वगेहं पुनराययौ ।।२२
माघमासे सिते पक्षे त्रयोदश्यां सुवासरे । विवाहलग्नं शुभदं वरकन्यार्थयोस्तदा ।।२३

का 'वेला' (अर्थात् वह इला का ही रूपान्तर है) नामकरण हुआ । उसके उत्पन्न होने पर उसके पिता ने अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए ब्राह्मणों को उत्तम अनेक भाँति के वस्त्रों समेत दान प्रदान किया । बारह वर्ष की अवस्था में उस उत्तम कन्या ने अपने पिता से कहा—'आप मेरी बात सुनें, पृथिवीपते ! 'मण्डप में रक्त की धारा पर जो मुझे शयन करायेंगे, वही मुझ द्रौपदी को भूषण प्रदान करने वाला पुरुष मेरा पति हो सकेगा ।' बेला के मुख से निकले हुए इस पद्यांश को सुवर्ण के पत्र में अंकित कराकर राजा ने तारक को देते हुए कहा—'कन्या के लिए इस भाँति के पति का अन्वेषण करो ।' पश्चात् तारक ने अपने पिता की आज्ञा से एक लाखसैनिक और साढ़े तीन लाख द्रव्य समेत राजाओं के यहाँ प्रस्थान किया । सिन्धु नदी के तट से आरम्भकर आर्य देशों के सभी राजाओं के पास उनकी यात्रा हुई, किन्तु घोर विष की भाँति उस वाक्य को किसी राजा ने स्वीकार नहीं किया । तदुपरांत उन्होंने इधर-उधर भ्रमण करते हुए अपने मामा (माहिल) के यहाँ पहुँचकर उनसे सब वृत्तान्त कहा ।९-१६। उसे सुनकर उनके मामा ने कहा—'वीर ! राजकुमार ब्रह्मानन्द के यहाँ जाओ, जो स्वयं महाबली एवं आह्लाद (आल्हा) आदि से सुरक्षित है, तुम्हारी इन बातों को वह अवश्य स्वीकार करेगा ।' और क्या उसके चरित्र को तुम नहीं जानते ! छः भाइयों समेत आप के विवाह को उदयसिंह आदि ही सुसम्पन्न कराये थे, उस बुद्धिमान् ब्रह्मानन्द के अधीन वे सभी लोग हैं । उनके समान बली कौन राजा इस भूमण्डल मे है ? इसे सुनकर तारक (ताहर) ने अपने सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर अञ्जली बांधकर उस पद्य को सुनाया । उदयसिंह ने शीघ्र उस पत्र को लेकर कहा—'मैं नृपश्रेष्ठ ब्रह्मानन्द के द्वारा उस कन्या का पाणिग्रहण कराऊँगा।' उस समय सभा एकदम निस्तब्ध थी, तारक ने ब्रह्मानन्द का अभिषेक (तिलक) करके अपने घर को प्रस्थान किया।१७-२२। माघमास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन वर-कन्या का विवाह शुभ लग्न में होना निश्चित

सप्तलक्षबलैः सार्द्धं लक्षणश्च सतालनः । महावतीं पुरीं प्राप्तो बली परिमलादिभिः ॥२४
आह्लादो लक्षसैन्याढ्यः कृष्णांशेन समन्वितः । बलखानिर्लक्षसैन्यः संयुतः सुखखानिना ॥२५
नेत्रसिंहो लक्षसैन्यो योगभोगसमन्वितः । रणजिच्च बली बालो द्विलक्षबलसंयुतः ॥२६
एवं द्वादशलक्षाणां सैन्यानामधिपो बली । तालनः सिंहिनीसंस्थो बडवां प्रययौ सह ॥२७
सैन्यैर्द्वादशलक्षैश्च सहितस्तालनो बली । आययौ देहलीग्रामे महीराजानुपालिते ॥२८
देवो मनोरथारूढौ बिन्दुलस्थः स कृष्णकः । बडवामृतमासाद्य स्वर्णवत्याः सुतो गतः ॥२९
रूपणश्च करालस्थ आह्लादश्च पपीहके । बलखानिः कपोतस्थो हरिणस्थोऽनुजस्ततः ॥३०
रणजिन्मलनापुत्रः संस्थितो हरिनागरे । पञ्चशब्दगजारूढो महावत्यधिपो गतः ॥३१
विमानवरमारुह्य धीवरैः शतवाहिकैः । मणिमुक्तास्वर्णमयं सहस्रैर्वाद्यकैर्युतम् ॥३२
अयुतैश्च पताकैश्च[1] वेत्रपाणिसहस्रकैः । सहस्रैः शिबिकाभिश्च पञ्चसाहस्रकै रथैः ॥३३
शकटैर्माहिषोढैस्तु तथा पञ्चसहस्रकैः । सर्वतोपस्कृतं[2] रम्यं ब्रह्मानन्दं समागत ॥३४
श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः । विस्मितः स बभूवाशु शिबिराणि मुदा ददौ ॥३५

हुआ ।२३। उस बारात में प्रस्थान करने के लिए सात लाख सैनिक समेत तालन महावती (महोबा) नगर में पहुँचे, लाख सैनिक समेत आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह, सुखखानि के साथ, लाख सैनिक लेकर बलखानि (मलखान), योग-भोग (योगा-भोगा) समेत लाख सैनिक लेकर नेत्र सिंह, और दो लाख सेना समेत रणविजयी बाल बली वहाँ पहुँचे । इस प्रकार बारह लाख सेना समेत उसके अध्यक्ष तालन ने अपनी सिंहिनी घोड़ी पर बैठकर उन बारह लाख सेनाओं का संचालन करते हुए पृथिवीराज के दिल्ली नगर में आकर सैनिकों को विश्राम के लिए आज्ञा प्रदान की । उस यात्रा में देवसिंह मनोरथ (मनोहर) नामक घोड़े पर, उदयसिंह बिन्दुल (वेंदुल) पर, स्वर्णवती (सोना) का पुत्र इन्दुल (इंदल) अपनी अमृत घोड़ी पर, रूपन कराल पर, आह्लाद (आल्हा) पपीहा पर, बलखानि (मलखान) कपोत (कबूतर) नामक घोड़े पर, सुखखानि हरिण नामक घोड़े पर, और रण-विजयी एवं मलना के पुत्र ब्रह्मानन्द स्वयं हरिनागर नामक घोड़े पर सुशोभित हो रहे थे । उसी प्रकार पञ्चशब्द नामक गजराज पर महावती (महोबा) का अधिनायक राजा परिमल स्वयं विराजमान था । उनके साथ उत्तम विमान था, जो मणि, मुक्ता एवं सुवर्णों से खचित तथा सैकड़ों धीमर (कहार जाति के) लोग जिसका संवाहन कर रहे थे, उसके साथ अनेक भाँति की वाद्य ध्वनियाँ, दशसहस्र पताकाएँ, हाथ में वेत (की छड़ी) लिए हुए सहस्र सभा स्थान के भृत्यगण, सहस्र शिविकाएँ (पालकियाँ), पाँच सहस्र रथ, और पाँच सहस्र भैंसा गाड़ियाँ ब्रह्मानन्द को घेरे हुए चल रही थीं । उस बारात के कोलाहल (शोर) सुनकर राजा पृथ्वीराज को महान् आश्चर्य हुआ, पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके रहने के लिए शिबिर (तम्बू) आदि प्रदान किया ।२४-३५। अपने दुर्ग के दरवाजे की (द्वारपूजा आदि) क्रिया को विधानपूर्वक सुसम्पन्न करने के उपरान्त उन्होंने कहा—बेला

---

१. पताकावद्भिः —इत्यर्थः । 'कुन्ता विशन्ति' इतिवन्मत्वर्थीयोऽच्, तद्वत्सु लक्षणा वा, परन्तु—लक्षणापक्षेऽजहल्लिङ्गत्वात्पताकाभिरित्येव सुसाधु स्यात् । २. सन्धिरार्षः ।

दुर्गद्वारिक्रियां रम्यां कृत्वा विधिविधानतः । द्रौपद्या भूषणं देहि वेलायै स तमब्रवीत् ॥३६
इन्दुलस्तु ययौ स्वर्गं वासवं प्रति चाब्रवीत् । द्रौपद्याभूषणं सर्वं देहि मह्यं सुरोत्तम ॥३७
कुबेरात्स समानीय दिव्यमाभूषणं ददौ । इन्दुलः प्रहरान्ते च प्राप्तः पित्रे न्यवेदयत् ॥३८
आह्लादस्तु स्वयं गत्वा वेलायै भूषणं ददौ । प्राप्ते ब्राह्मे मुहूर्ते तु विवाहस्तत्र चाभवत् ॥३९
सम्प्राप्ते प्रथमावर्ते तारकः खड्गमाददौ । आह्लादस्तं समासाद्य युयुधे बहुलीलया ॥४०
नृहरिस्तु द्वितीये च कृष्णांशं प्रति चारुधत् । तथा सरदनं वीरं बलखानिरुपाधया ॥४१
मर्दनं सुखखानिस्तु चतुर्थावर्तकेऽरुधत् । रणजित्सूर्यवर्माणं स भीमं रूपणो बली ॥
देवस्तु वर्धनं वीरं सप्तावर्ते क्रमाद्ययौ ॥४२
शतभूपान्खड्गधरान्गजसेनादिकांस्तदा । लक्षणाद्याः समाजग्मुर्मण्डपे बहुविस्तृते ॥४३
भग्नभूतं नृपबलं दृष्ट्वा राजा रुषान्वितः । महीराजो ययौ रुष्टो गजं चारिभयङ्करम् ॥४४
जित्वा तान्नेत्रसिंहादीञ्छब्दवेधी नृपोत्तमः । लक्षणं प्रययौ शीघ्रं बौद्धिनीं हस्तिनीं[1] स्थितम् ॥४५
शिवं मनसि संस्थाप्य जित्वा बद्ध्वा रुषान्वितः । अगमत्तमुपगृह्य दर्शयामास तं नृपम् ॥४६

(कन्या) के लिए द्रौपदी के सभी आभूषण भेजने की कृपा करें।' इसे सुनकर इन्दुल (इंदल) ने स्वर्ग में इन्द्र के पास पहुँचकर उनसे कहा—सुरश्रेष्ठ ! द्रौपदी के सभी आभूषण मुझे दिलवाने की कृपा करें।" इन्दुल ने उसी समय कुबेर के यहाँ से द्रौपदी के सभी आभूषणों को मंगाकर इन्हें सौंप दिया। उसे लेकर इन्दुल ने पुनः एक प्रहर के भीतर ही अपने पिता के पास पहुँचकर निवेदनपूर्वक उसे सौंप दिया। आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं वहाँ जाकर उन आभूषणों को सानुराग बेला के लिए भिजवाया। पश्चात् ब्राह्म मुहूर्त में विवाह-संस्कार भी आरम्भ हुआ। प्रथम भाँवरि के समय तारक (ताहर) ने खड्ग से वर (ब्रह्मानन्द) के ऊपर आघात किया, किन्तु आह्लाद (आल्हा) ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर उस प्रहार को रोककर अपनी कई लीलाओं द्वारा उनसे युद्ध किया। दूसरी भाँवरि में नृहरि के प्रहार को उदयसिंह तथा तीसरी भाँवरि में सरदन के प्रहार को बलखानि (मलखान) ने रोक लिया। उसी भाँति चौथी भाँवरि में मर्दन द्वारा किये गये आघात को सुखखानि, पाँचवीं में ब्रह्मानन्द ने स्वयं सूर्यवर्मा को, रूपन ने भीम को और सातवीं भाँवरि में देवसिंह (डेबा) ने वीरवर्धन को रोक लिया था। उस समय उस विस्तृत मण्डप (रंगभूमि) के मैदान में गजसेन आदि सौ राजाओं समेत लक्षण (लखन) आदि वीर भी वहाँ उपस्थित होकर राजा की सेनाओं को धराशायी करने लगे। अपनी सेनाओं को तितर-बितर होते देखकर राजा पृथ्वीराज ने क्रुद्ध होकर अपने अरिभयंकर नामक गजराज पर बैठकर वहाँ रणस्थल में घोर युद्ध करना आरम्भ किया। ३६-४४। उस शब्दवेधी नृपश्रेष्ठ ने नेत्रसिंह आदि वीरों को पराजित करते हुए उस लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर जो बौद्धिनी नामक हस्तिनी पर सुशोभित हो रहे थे, घोर संग्राम आरम्भ किया। मन में शिव का ध्यान करते हुए अत्यन्त रोषपूर्ण होकर पृथ्वीराज ने उन पर विजय प्राप्त-कर उन्हें बाँध भी लिया, पश्चात् ले जाकर राजा को दिखाया। उसे सुनकर राजा परिमल ने अत्यन्त

---

१. सकर्मताषीं।

श्रुत्वा परिमलो राजा कृष्णांशं भीरुको ययौ । वृत्तान्तं कथयामास चाह्लादादिपराजयम् ।।४७
अजितः स च कृष्णांशो नभोमार्गेण मन्दिरम् । गत्वा जगर्ज बलवान्योगिन्यानन्ददायकः ।।४८
तदा स लक्षणो वीरस्त्यक्त्वा बन्धनमुत्तमम् । विष्णुं मनसि संस्थाप्य महीराजं समाययौ ।।४९
गृहीत्वा चागमां डोलां स्वयं शिबिरमाप्तवान् ।।५०
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे त्यक्त्वा मूर्च्छां समन्ततः । खड्गयुद्धेन ताञ्जित्वा बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः ।।५१
सान्वयाञ्छतभूपांश्च हत्वा तद्रुधिरावहैः । द्रौपदीं स्नापयामासुर्वेलारूपां कलोत्तमाम् ।।५२
विवाहान्ते च ते सर्वे शिबिराणि समाययुः । समुत्सृज्य सुतान्सप्त सुभोज्यैस्ते ह्यभोजयन् ।।५३
भुक्तवत्सु सुवीरेषु साहस्रास्तैः सुतैः सह । रुरुधुः सर्वतो जघ्नुरस्त्रशस्त्रैः समन्ततः ।।५४
सहस्रशूरांस्तान्हत्वा पुनर्बद्धा महाबलान् । शिबिराणि समाजग्मुस्तेषां हास्यविशारदाः ।।५५
दशलक्षसुवर्णानि गृहीत्वा नृपतिर्बली । वेलां नवोढामादाय गत्वा नत्वा तमब्रवीत् ।।५६
प्रद्योतसुत हे राजँल्लक्षणोऽसौ महाबलः । मम पत्नीं समादाय दासीं कर्त्तुं समिच्छति ।।५७
इति श्रुत्वा परिमलः सर्वभूपसमन्वितः । बहुधा बोधितश्चैव न बुबोध तदा नृपः ।।५८
तदा महासती वेला विललाप भृशं मुहुः । तच्छ्रुत्वा स च कृष्णांशः सहितो बलखानिना ।।

भयभीत होकर उदयसिंह से कहा—आह्लाद (आल्हा) आदि सभी राजा पृथ्वीराज के युद्ध में पराजित हो गये हैं, अजेय उदयसिंह ने शीघ्र आकाशमार्ग से राजा के महल में पहुँचकर अत्यन्त गर्जना की । योगिनी के आनन्द प्रदाता उदयसिंह के उस भीषण गर्जना से वीर लक्षण (लाखन) ने रोष में आकर अपने बंधनों को तोड़ दिया और मन में विष्णु का ध्यान करके पृथ्वीराज के महल में शीघ्र पहुँचकर रानी अगमा को डोला के साथ में लेकर अपने शिविर में लौट आये । उसी बीच सभी लोगों में मूर्च्छानिष्ट होकर चेतना आ गई थी, वे अपने-अपने खड्ग आदि अस्त्रों को लेकर शत्रु की सेना को धराशायी करने लगे । विजय प्राप्त करते हुए उन्हें हथकड़ी-बेड़ियाँ बाँधकर उनके कुल के केवल सौ राजाओं का बध किया, जिसके रुधिर की धारा में द्रौपदी रूप सर्वाङ्ग सुन्दरी बेला ने स्नान किया । अनन्तर विवाह के वे योद्धागण अपने-अपने शिबिर में चले गये । वहाँ पहुँचकर राजा के सातों पुत्रों को मुक्तबंधन कर दिया । वे सब घर पहुँचकर बारात के भोजन का प्रबन्धकर सभी लोगों को निमन्त्रित किये । वहाँ दुर्ग के गुप्त स्थानों में सेना सुसज्जित होकर प्रतीक्षा कर रही थीं । उसी समय महावती (महोबा) वाले बाराती भोजनार्थ अस्त्रों से सुसज्जित होकर पहुँचे । राजा के सातों पुत्रों ने आतिथ्य सत्कार में भाग लिया, उसी बीच उन गुप्त सैनिकों ने युद्धारम्भ कर दिया । भोजन त्यागकर वीरों ने उन सहस्र सैनिकों के निधनपूर्वक सातों पुत्रों को पुनः बाँध लिया और साथ रखकर उनकी हँसी करते हुए अपने शिविरों के लिए प्रस्थान किये ।४५-५५। पश्चात् पृथ्वीराज ने दशलक्षसुवर्ण समेत वेला कन्या को साथ में लेकर राजा परिमल के पास जाकर उनसे करबद्ध प्रार्थना की—'प्रद्योतसुत, राजन् ! इस महावली लक्षण (लाखन) ने मेरी अगमा नामक स्त्री का अपहरण कर उसे दासी बनाना चाहा है । इसे सुनकर राजा परिमल ने अन्य सभी राजाओं समेत लक्षण (लाखन) को बहुत समझाया, किन्तु उस राजा की समझ में कुछ नहीं आया। पश्चात् उसी स्थान पर महासती बेला अत्यन्त विलाप करने लगी। उस करुणक्रन्दन को सुनकर

तामाश्वास्य तदा वेलां नभोमार्गेण चाययौ ।।५९
लक्षणं तर्जयित्वासौ गृहीत्वा चागमन्मुदा । नभो मार्गेण गेहे तं कृष्णांशः समपेषयत् ।।६०
पुनस्त्यक्त्वा सप्त सुतान्सहितान्नृपतेस्तु ते । शपथं कारयामासुर्दम्भं प्रति महाबलाः ।।
उषित्वा दशरात्रान्ते ह्यध्युर्गंतुमनो मुने ।।६१
महीराजस्तु बलवान्गृहीत्वा भूपतेः पदौ । स उवाचाश्रुपूर्णाक्षस्तदा परिमलं नृपम् ।।६२
महाराज वधूस्ते च वेलेयं द्वादशाब्दिका । पितृमातृवियोगं च न क्षमन्ती तु बालिका ।।६३
तस्मात्तां त्वं परित्यज्य गच्छ गेहं सुखी भव । पतियोग्या यदा भूयात्तदा त्वां पुनरेष्यति ।।६४
इत्युक्त्वा च वचो राजा स स्नेहादङ्कमस्पृशत् । चूर्णीभूते परिमले चाह्लादस्तत्र दुःखितः ।।
महीराजं स पस्पर्श स राजा चूर्णतां गतः ।।६५
भग्नास्थी भूपती चोभौ पावकीयैश्चिकित्सकैः । सुखवन्तौ गृहं प्राप्य कृतकृत्यत्वमागतौ ।।६६
मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमुद्वाहितं गृहे । कृत्वोत्सवं बहुविधं विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ।।
होमं वै कारयामास चण्डिकायाः प्रसादतः ।।६७
सभायां लक्षणो वीरो यात्राकाले तमब्रवीत् । अगमां जयचन्द्राय मत्वा जित्वा हृतां तु ताम् ।।
नभोमार्गेण सम्प्राप्तौ योगिनौ च शिवाज्ञया ।।६८

उदयसिंह और बलखानि (मलखान) ने बेला को आश्वासन प्रदानपूर्वक आकाशमार्ग से लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उनकी भर्त्सजना की । अनन्तर अगमा को लेकर आकाशमार्ग द्वारा उदयसिंह ने उन्हें उनके महल पहुँचा दिया और शिविर में आकर पृथ्वीराज के सातों पुत्रों को भी मुक्तबंधन कर दिया । उन पुत्रों ने बंधन-मुक्त होने पर पुनः दम्भ न करने की शपथ की । मुने ! इस भाँति राजा परिमल वहाँ दशरात्रि तक रहने के उपरान्त अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान करने लगे ।५६-६१। उस समय राजा पृथ्वीराज ने आँखों में आसू भरकर उनके चरणों को पकड़कर कहा—महाराज ! यह आपकी बहू बेला अभी बारह ही वर्ष की है, बालिका होने के नाते यह माता-पिता के वियोग को सहन न कर सकेगी । इसलिए इसे यहाँ छोड़कर आप अपने घर जाने की कृपा करें, पुनः इसे पति-योग्य हो जाने पर आपकी सेना में उपस्थित करूँगा ।' इतना कहकर राजा पृथ्वीराज सस्नेह राजा परिमल से मिले । किन्तु, उन दोनों के मिलने में राजा परिमल को अंग-भंग देखकर आह्लाद (आल्हा) को अत्यन्त दुःख हुआ । उन्होंने पृथिवीराज को पकड़कर चूर्ण कर दिया । दोनों राजाओं की अस्थियों के टूट जाने पर अग्नि चिकित्सक राजा नेत्रसिंह ने उन्हें आरोग्य किया, जिससे वे दोनों सुखी होकर अपने-अपने घर चल पड़े । रानी मलना ने अपने पुत्र को विवाहित देखकर हर्षातिरेक से ब्राह्मणों को भाँति-भाँति का दान दिया और चण्डिका के प्रसन्नार्थ सविधान हवन सुसम्पन्न कराया । राजा लक्षण (लाखन) अपनी यात्रा के अवसर पर उसी सभा में रानी मलना से उस वृत्तान्त को बताये—जयचन्द्र की स्त्री बनाने के लिए अगमा का मैंने विजय-पूर्वक अपहरण किया था, किन्तु, शिव की आज्ञा से इन दोनों योगियों ने मेरे पास पहुँचकर उसे छीन लिया और उसे (उसके) अपने भवन पहुँचा दिया।६२-६८। (अन्यथा वैसा करने का मेरा विचार निश्चित हो

जहतुस्तौ च मां जित्वा तत्तीक्ष्णभयमोहितम् । अद्याहं धाम गच्छामि चिरं जीव नृपोत्तम ।।
इत्युक्तवन्तं तं नत्वा ययुर्भूपाः स्वमालयम् ।।६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विंशाब्दे चैव कृष्णांशे यथा जातं यथा शृणु । सागराख्यसरस्तीरे कदाचिदिन्दुलो बली ।।
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं तत्र ध्यानान्वितोऽभवत् ।।१
एतस्मिन्नन्तरे हंसा आकाशाद्भूमिमागताः । तेषां च रुतशब्दैश्च स ध्यानादुत्थितोऽभवत् ।।२
वक्ष्यमाणं वचः प्राहुर्धन्योऽयं दिव्यविग्रहः । पर्वतानां हिमगिरिर्वनं वृन्दावनं तथा ।।३
महावती पुरीणां च सागरः सरसामपि । नारीणां पद्मिनी नारी नृणां श्रेष्ठस्त्वमिन्दुलः ।।४
भो इन्दुल महाप्राज्ञ मानसे सरसि स्थिताः । वयं श्रुत्वा श्रियो वाक्यं नलिनी सागरं गताः ।।५
दृष्ट्वा तत्र शुभां नारीं सर्वाभरणभूषिताम् । सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतनाट्यविशारदाम् ।।६

चुका था) पश्चात् प्रसन्नतापूर्ण होकर राजा ने विदा माँगी—नृपश्रेष्ठ ! आप चिरंजीवी हों, मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं आज घर जाना चाहता हूँ । उनके जाने के पश्चात् सभी नृपगण राजा परिमल से सप्रेम नमस्कार पूर्वक विदा होकर अपने-अपने घर गये ।६९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की बीस वर्ष की अवस्था में उनके जो कुछ चरित्र हुए हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार सागर नामक किसी सर (तालाब) के तट पर पहुँचकर उदयसिंह ने सप्तशती स्तोत्र के जप (पाठ) पूर्वक भगवती का ध्यान करना आरम्भ किया । उसी समय आकाश से हंसगण वहाँ उतरे । उनके शब्दों के सुनने से इनका ध्यान भंग हो गया । पश्चात् उठकर वे उन हंसों की ध्वनि सुनने लगे, वे कह रहे थे—दिव्य शरीर धारण करने वाला यह धन्य है, जिस प्रकार पर्वतों में हिमालय, बनों में वृन्दावन, नगरियों में महावती (महोबा), सरों में सागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार स्त्रियों में पद्मिनी, और पुरुषों में इन्दुल सर्वश्रेष्ठ हैं। पश्चात् हंसों ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—महाप्राज्ञ, इन्दुल ! हम लोग मानसरोवर के निवासी हंस हैं, लक्ष्मी की बात को स्वीकार कर नलिनीसागर गये थे ।१-५। वहाँ समस्त आभूषणों से सुसज्जित एक परम सुन्दरी स्त्री को देखा था, जो अपनी सात सुन्दरी सखियों समेत वहाँ

दृष्ट्वा मोहत्वमापन्ना वयं देशान्तरं गताः । विलोकिता नराः सर्वेऽत्रास्माभिर्जगतीतले ।।
त्वत्समो न हि कोऽप्यत्र पद्मिनी सदृशो वरः ।।७
तस्मात्त्वं नः समारुह्य तां देवीं द्रष्टुमर्हसि । तथेत्युक्त्वा शक्रसुतो हंसराजं समारुहत् ।।८
सिंहलद्वीपके रम्ये ह्यार्यसिंहो नृपः स्थितः । तत्सुता पद्मिनी नाम्ना रूपयौवनशालिनी ।।
रागिण्यः सप्त विख्यातास्तत्सख्यः प्रमदोत्तमाः ।।९
नलिनीसागरे रम्ये गिरिजामन्दिरं शुभम् । तत्र स्थितां च तां देवीमिन्दुलः स ददर्श ह ।।१०
सापि तं सुन्दरं दृष्ट्वा हंसदेहे समास्थितम् । सम्मोह्याहूय तं देवं तेन सार्द्धमरीरमत् ।।११
वर्षमेकं ययौ तत्र नानालीलासु मोहितः । नक्तं दिवं न बुबुधे रममाणस्तया सह ।।१२
भक्तिगर्वत्वमापन्ने चाह्लादे जगदम्बिका । दृष्ट्वा चान्तर्दधे देवी गर्वाच्चरणकुण्ठिता ।।१३
तस्य प्राप्तं महद्दुःखमाह्लादस्य जयैषिणः । स कैश्चित्पुरुषैर्वीरः कथितोऽभूत्स्वमन्दिरे ।।१४
इन्दुलं रूपसम्पन्नं लङ्कापुरनिवासिनः । राक्षसास्तं समाहृत्य स्वगेहं शीघ्रमाययुः ।।१५
इति श्रुत्वा वचो घोरं सकुलो विललाप ह । हा हा शब्दो महांश्चासीत्तेषां तु रुदतां मुने ।।१६
कृष्णांशो रुदितं प्राहाह्लाद ज्येष्ठं शृणुष्व भोः । जित्वाहं राक्षसान्सर्वांस्तालनाद्यैः समन्वितः ।।
इन्दुलं त्वां समेष्यामि भवान्धैर्यपरो भवेत् ।।१७
बलखानिश्च कृष्णांशो देवसिंहश्च तालनः । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं लङ्कां प्रतिययुर्मुदा ।।१८

उपस्थित थी, गायन एवं नाट्य-निपुणा उस स्त्री को देखकर मोहित होकर हम लोग देश-देशान्तरों में भ्रमण किये, इस धरातल के सभी मनुष्यों को देखा, किन्तु तुम्हारे समान पुरुष पद्मिनी के समान कोई स्त्री नहीं है, अतः हमारे ऊपर बैठकर आप वहाँ चलने की कृपा करें तो बड़ी प्रसन्नता होगी । इन्दुल भी स्वीकार कर हंसराज की पीठ पर बैठा ।६-८। रमणीक सिंहलदीप में आर्य सिंह नामक राजा राज करता था । पद्मिनी नामक उसकी पुत्री थी, जो रूप-यौवन सम्पन्न अनुपम ललना थी । सातों रागिणियाँ सुन्दरी स्त्रियों के वेष में उसकी सहेलियाँ हुई थीं । नलिनी सागर के तट पर स्थित पार्वती जी के उस रम्य भवन में स्थित होकर वह मनोविनोद कर रही थी । उसी अवसर में इन्दुल वहाँ पहुँचकर उसे देखा । उस सुन्दरी ने हंस की पीठ पर स्थित परम सुन्दर उस पुरुष को देखकर मुग्ध होकर उस पुरुष श्रेष्ठ को अपने पास बुलाया और उसके साथ रमण किया । उसकी अनेक भाँति की लीलाओं से मोहित होकर इन्दुल एक वर्ष तक वहाँ रह गये । उसी बीच आह्लाद (आल्हा) को देवी की भक्ति का गर्व हो गया था, भगवती जगदम्बिका उस गर्व का सर्वनाश करने के लिए अन्तर्हित हो गईं । पश्चात् आह्लाद (आल्हा) को अत्यन्त दुःख का अनुभव करना पड़ा, क्योंकि उस समय कुछ लोगों ने उनसे उसी मन्दिर में कहा—इन्दुल के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लंका निवासी राक्षसों ने उसका अपहरण कर अपने घर को प्रस्थान कर दिया है ।९-१५। इसे सुनते ही सकुटुम्ब आह्लाद (आल्हा) विलाप करने लगे । मुने ! रुदन करते हुए उन लोगों के मुख से हा-हा शब्द हो रहे थे । उस समय उदयसिंह ने अपने भाई से, जो अधीर होकर रुदन कर रहे थे, कहा—तालन आदि के साथ मैं उन राक्षसों को पराजित कर इन्दुल को लाकर सौंप दूँगा, किन्तु आप धीरज को अपनाते रहें । अनन्तर बलखानि (मलखान), उदयसिंह, देवसिंह (डेबा) और

मार्गप्राप्ताश्च ये भूपा ग्रामपा राष्ट्रपास्तथा । यथायोग्यं बलिं रम्यं प्राप्य तस्मै न्यवेदयन् ।।१९
ये भूपा मदमत्ताश्च जित्वा तांरतालनो बली । बद्ध्वा तैश्च समागच्छत्सेतुबन्धं शिवस्थलम् ।।२०
पूजयित्वा च रामेशं रामेण स्थापितं शिवम् । सिंहलद्वीपमगमन्षण्मासाभ्यन्तरे तदा ।।२१
नलिनीसागरं प्राप्य तत्र वासमकारयन् । पत्रं सम्प्रेषयामास बलखानिर्नृपाय च ।।२२
आर्य्यसिंह महाभाग स्वपोतान् देहितीर्णकान् । भवाँश्च स्वबलैः सार्द्धं लङ्कां प्रति व्रजाधुना ।।
नो चेत्त्वां सबलं जित्वा राष्ट्रभङ्गं करोम्यहम् ।।२३
इति श्रुत्वा पत्रवचो भूपतिर्बलवत्तरः । रक्षितः शक्रपुत्रेण युद्धाय समुपाययौ ।।२४
इन्दुलः स्तम्भनं मन्त्रं संस्थाप्य शर उत्तमे । स्तम्भयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैः सुरक्षितम् ।।२५
दिवसे सुखशर्मा च त्रिलक्षैः स्वदलैः सह । आर्य्यसिंहस्य तनयो महद्युद्धमचीकरत् ।।२६
निशामुखे च सम्प्राप्ते शक्रपुत्रो महाबलः । शतपुत्रैः क्षत्रियाणां सार्द्धं युद्धाय चाययौ ।।२७
तेषां हया हरिद्वर्णा योगिवेषधरा बलात् । महतीं ते सहस्रं च रिपोः सेनां व्यनाशयन् ।।
तत्पश्चाद्गेहमासाद्य तदा तैः सुखितोऽवसत् ।।२८
एवं जाताश्च षण्मासास्तयोर्युद्धं हि सेनयोः । क्रमेण संक्षयं प्राप्तं बलखानेर्महद्बलम् ।।२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८

तालन ने अपनी सात लाख सेना समेत लंका के लिए प्रस्थान किया । मार्ग में जो राजा मिल जाते थे, वे उचित भेंट प्रदानपूर्वक इन लोगों की प्रार्थना करते थे, और जो अपने मद में मुग्ध रहते थे, बली तालन उन्हें पराजित करके हथकड़ी-बेड़ी से आबद्ध उन्हें साथ लिए चल रहे थे । इस प्रकार वे सेतुबंध के शिवालय के समीप पहुँच गये । वहाँ भगवान् राम द्वारा स्थापित रामेश्वर जी की पूजा करने के पश्चात् सिंहलद्वीप की यात्रा किये । छः मास की यात्रा में वहाँ पहुँचकर नलिनी सागर पर उन लोगों ने अपना निवास-स्थान बनाया । बलखानि (मलखान) ने पत्र लिखकर राजा के पास भेजा—'पुण्यात्मन् ! आर्य सिंह ! अपनी नौकाएँ भेज दीजिए, हम लोग आप के नगर में आना चाहते हैं, अथवा अपनी सेना समेत आप इस समय इसी लंका में आ जाँय ।' अन्यथा सेना समेत विजय प्राप्तकर आपका राष्ट्र भंगकर दूँगा ।'१६-२३। पत्र को पढ़कर बली राजा ने इन्द्र पुत्र (इन्दुल) द्वारा सुरक्षित होने के नाते युद्ध के लिए शीघ्र प्रस्थान कर दिया । इन्दुल ने स्तम्भन मंत्र द्वारा अभिमंत्रित बाण से तालन आदि की सेनाओं को स्तम्भित कर दिया । दिन में सुख शर्मा अपने तीन लाख सैनिकों द्वारा युद्ध किया, और रात्रि हो जाने पर इन्दुल जी सौ राज कुमारों को साथ लेकर युद्धार्थ उस रण-स्थल में गया । उनके घोड़े हरित् (हरे) वर्ण (रंग) के थे, और कुमार गण योगी के वेष बनाये थे । शत्रु की सहस्रों संख्या की उस बड़ी सेना को नष्ट कर घर में सुखपूर्वक रहते थे । इस प्रकार दोनों सेनाओं का अविराम गति से छः मास तक युद्ध हुआ, जिसमें क्रमशः बलखानि (मलखान) की वह विशाल सेना नष्ट होने लगी ।२४-२९

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च बलखानिर्महाबलः । सम्प्राप्य मानसीं पीडां युद्धार्थं विमुखोऽभवत् ।।१
देवसिंहं समाहूय त्रिकालज्ञं महामतिम् । तं मन्त्रं मन्त्रयामास कार्यसिद्धिर्यथा भवेत् ।।
श्रुत्वोवाच महायोगी देवसिंहो महाबलः ।।२
महेन्द्रतनयः कश्चित्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः । त्वत्सैन्यं रोधयित्वा वै दिव्यास्त्रेण दिवामुखे ।।
रात्रौ स्वयं समागम्य करोति बलसंक्षयम् ।।३
अतस्त्वं मत्सहायेन तालनेन समन्वितः । कृष्णांशेन समागम्य शक्रपुत्रं शुभाननम् ।।
विजयी भव शीघ्रं हि नो चेद्यायां यमक्षयम् ।।४
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवसिंहस्य भाषितम् । यत्नं चकार बलवान्भ्रातृमित्रसमन्वितः ।।५
एकविंशाब्दकृष्णांशे सम्प्राप्ते युद्धकोविदे । सेनां निवेशयामास पोतेषु हयवाहनः ।।६
अर्द्धसैन्यं च तत्रैव स्थापयित्वा महाबलः । अर्द्धसैन्येन कृष्णांशो दक्षिणां दिशमागमत् ।।७
हयारूढाश्च ते शूराः सर्वे युद्धसमन्विताः । कपाटं दृढमुद्धाट्य नगरान्तमुपाययुः ।।८
हत्वा ते रक्षिणः सर्वांल्लुण्ठयित्वा पुरं शुभम् । रिपोर्दुर्गं समासाद्य चक्रुः शत्रोर्महाक्षयम् ।।९

अध्याय १९

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाबली बलखानि (मलखान) ने अपनी सेना का ह्रास देखकर मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हुए युद्ध बन्द करने का आदेश प्रदान किया, पश्चात् तीनों काल के ज्ञाता एवं बुद्धिमान् देवसिंह (डेबा) को बुलाकर कार्य की सफलता के हेतु उनसे मंत्रणा करना आरम्भ किया। उनकी बातों को सुनकर महाबली एवं महायोगी देवसिंह ने कहा—इन्द्र के किसी पुत्र ने, जो सभी शस्त्र एवं अस्त्रों के प्रयोग में अत्यन्त निपुण है, प्रातःकाल ही अपने दिव्यास्त्र द्वारा तुम्हारी सेना को अवरुद्ध (रोक) कर देता है। पश्चात् रात्रि में स्वयं आकर उनके निधन करता है, इसलिए मेरी सहायता से तुम तालन और उदयसिंह को साथ लेकर उस सुन्दर इन्द्र पुत्र पर शीघ्र विजय प्राप्त करो, अन्यथा शीघ्र नष्ट होकर यमपुरी पहुँच जावोगे। देवसिंह की ऐसी बात सुनकर बलवान् बलखानि (मलखान) ने अपने भाइयों तथा मित्रों के सहयोग से प्रयत्न करना आरम्भ किया। उस समय उदयसिंह की इक्कीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस युद्ध के पण्डित उदयसिंह ने अपनी सेना को पोत (जहाजों) में छिपा दिया, आधी सेना को उसी स्थान (जहाज में) पर रखकर शेष आधी सेना समेत दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया, उनके सैनिक अत्यन्त युद्ध-कुशल एवं अश्वारोही थे। १-८½। नगर के दरवाजे पर पहुँचकर अत्यन्त दृढ़बद्ध उस दरवाजे (किवाड़) को खोलकर वहाँ के रक्षकों का हनन करते हुए भीतर नगर को लूटना आरम्भ कर दिया। पश्चात् शत्रु के दुर्ग पर पहुँचकर वहाँ के शत्रु-सैनिकों के संहार करने के अनन्तर राजा के

राज्ञोऽन्तः पुरमागत्य कृष्णांशो बलवत्तरः । ददर्श सुन्दरीं बालां पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ॥
सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतनृत्यविशारदाम् ॥१०
बलाद्दोलां समारोप्य लुण्ठयित्वा रिपोर्गृहम् । जगाम शिबिरे तस्मिन्यत्र जातो महारणः ॥११
बलखानिस्तु बलवान्देवतालनसंयुतः । जघान शात्रवीं सेनामिन्दुलास्त्रेण पालिताम् ॥१२
सुखवर्माणमागत्य सेनाध्यक्षं रिपोः सुतम् । सर्वतस्तं स्वकीयास्त्रैर्जघ्नुस्ते मदविह्वलाः ॥१३
हते तस्मिन्महावीर्ये जयन्तः क्रोधमूर्च्छितः । सेनामुज्जीवयांचक्रे शक्रपुत्रः प्रतापवान् ॥१४
श्यालं च सुखवर्माणं सञ्जीव्य स्वगृहं ययौ । तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्बहुरोदनतत्परान् ॥१५
विस्मितः स ययौ गेहं यथा पूर्वं तथाविधः । न ददर्श प्रियां तत्र सखीभिः सहितां मुने ॥१६
आर्य्यसिंहगृहं गत्वा पृष्टवान्सर्वकारणम् । ज्ञात्वा संलुण्ठितं गेहं शत्रुभिः शस्त्रकोविदैः ॥१७
रुरोद सुभृशं वीरो हा प्रिये मदविह्वले । दर्शयाद्य मुखं रम्यं त्वत्पतिस्त्वदां समुत्सुकः ॥१८
इत्येवं रोदनं कृत्वा वडवोपरि संस्थितः । धनुस्तूणीरमादाय खड्गं शत्रुविमोहनम् ॥
एकाकी स ययौ क्रुद्धो निशि यत्र स्थितो रिपुः ॥१९
एतस्मिन्समये वीरो बलखानिर्महाबलः । दृष्ट्वा तां सुन्दरीं बालां विललाप भृशं मुहुः ॥२०
हा इन्दुल महावीर हा मद्बन्धो प्रियङ्कर । त्वद्योग्येयं शुभा नारी रूपयौवनशालिनी ॥२१
दर्शनं देहि मे शीघ्रं गृहाणाद्य शुभाननाम् । इत्युक्त्वा मूर्च्छितो भूत्वा मानसे पूजयञ्छिवाम् ॥२२

अन्तःपुर में उदयसिंह पहुँच गये । वहाँ कमल के समान विशाल नेत्रवाली उस सुन्दरी पद्मिनी नारी को देखकर, जो अपनी सातों सखियों समेत नृत्य-गायन में ही समय व्यतीत किया करती थी, सखियों समेत उसके डोले को साथ ले अपने शिविर में चले आये, जहाँ वह भीषण युद्ध हुआ था । इधर बलवान् बलखानि (मलखान) ने देव और तालन की सहायता से इन्दुल की अध्यक्षता में संग्राम करने वाली उस शत्रु-सेना का विध्वंस करके सेनाध्यक्ष शत्रु-पुत्र सत्यवर्मा को चारों ओर से घेरकर उसे धराशायी कर दिया । उन मदोन्मत्तों द्वारा सत्यवर्मा के हनन होने पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रतापी शक्र-पुत्र जयन्त (इन्दुल) ने सेना समेत अपने साले को जीवितकर अपने भवन को प्रस्थान किया । वहाँ सभी लोगों को रुदन करते देखकर सदैव की भाँति अपनी प्रेयसी के महल में गये, किन्तु मुने ! सखियों समेत अपनी प्रिया को वहाँ न देखने पर आर्यसिंह के महल में जाकर उन्होंने सभी कारणों का पता लगाया । विदित हुआ कि—शस्त्र निपुण शत्रुओं ने घर को लूटकर उसका अपहरण कर लिया है ।९-१७। वह वीर अत्यन्त रुदन करने लगा—हा, प्रिये, मदविह्वले ! शीघ्र अपने सुन्दर मुख को दिखाओ, तुम्हारा पति तुम्हें देखने के लिए अधीर हो रहा है । इस प्रकार विलाप समेत रुदन करके धनुष-बाण और शत्रुओं को मोहित करने वाले खड्ग को लेकर घोड़ी पर बैठकर क्रुद्ध होकर अकेला ही रणस्थल में पहुँच गया । उसी समय बलशाली बलखानि (मलखान) उस परम सुन्दरी कामिनी को देखकर अत्यन्त विलाप करने लगा । हा, इन्दुल, महावीर, हा मेरे बन्धु प्रियकारक ! यह रूप-यौवन सम्पन्न एवं परम सुन्दरी तुम्हारी ही प्रिया होने के योग्य है, कहाँ छिपे हो, शीघ्र दर्शन देकर इस कल्याणमुखी को अपनाओ । इस प्रकार विलाप करके शिव की मानसिक आराधना करते हुए बलखानि (मलखान) मूर्च्छित हो गये । उसी बीच महाबली इन्द्रपुत्र

तस्मिन्काले च सम्प्राप्तः शक्रपुत्रो महाबलः । जघान शात्रवीं सेनां कृष्णांशेनैव पालिताम् ।।२३
दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च तालनो वाहिनीपतिः । सिंहनादं ननादोच्चैः सिंहिन्युपरि संस्थितः ।।२४
न जयः सैन्यनाशेन तव वीर भविष्यति । मां हत्वा जहि मत्सैन्यं योगिन्बालस्वरूपक ।।२५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शक्रपुत्रो भयङ्करः । जघान हृदये बाणान्स तु खड्गेन चाच्छिनत् ।।
स्वभल्लेन पुनर्वीरो दंशयामास वक्षसि ।।२६
इन्दुले मूर्च्छिते तस्मिन्वडवा दिव्यरूपिणी । आकाशोपरि सम्प्राप्य जयन्तं समबोधयत् ।।२७
तदा स बालकस्त्वरितः कालास्त्रं चाप आदधे । तेन जातो महाञ्छब्दस्तालनः स ममार ह ।।२८
मृते सेनापतौ तस्मिन्कृष्णांशो मदविह्वलः । नभोमार्गेण सम्प्राप्य जगर्ज च मुहुर्मुहुः ।।२९
इन्दुलः क्रोधताम्राक्षस्त्वाग्नेयं शरमाददे । वह्निभूतं नभस्तत्र स्वयोगेन महाबलः ।।
कृत्वा शीघ्रं ययौ शत्रुं स तु वायव्यमादधे ।।३०
स्वयोगेनैव कृष्णांशः पीत्वा वायव्यमुत्तमम् । पुनर्जगाम तत्पार्श्वं कलैकः[1] स हरेः स्वयम् ।।३१
तथाविधं रिपुं दृष्ट्वा शक्रपुत्रो महाबलः । गन्धर्वास्त्रं समादाय मोहनायोपचक्रमे ।।३२
पुनर्योगबलेनैव तदस्त्रं संक्षयं गतम् । वारुणं शरमादाय तस्योपरि समाक्षिपत् ।।३३
स्वयोगेनैव कृष्णांशो जलं सर्वं मुखेऽकरोत् । एवं सर्वाणि चास्त्राणि पीत्वा पीत्वा पुनःपुनः ।।३४

(इन्दुल) ने उदयसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करने वाली सेना का विध्वंस कर दिया । उपरान्त नायक तालन ने उस सेना को नष्ट होते देखकर सिंहिनी घोड़ी पर बैठकर सिंहनाद किया—वीर ! केवल सेनाओं के विध्वंस करने से तुम्हारी विजय नहीं होगी । बालस्वरूप योगिन् ! पहले मुझे धराशायी करो । पश्चात् मेरी सेनाओं का हनन करो । उस भीषण इन्दुल ने इतना सुनकर तालन के हृदय पर बाण का प्रहार किया । उसे उन्होंने खड्ग से काट दिया । पश्चात् अपने भाले से वक्षस्थल में आघात कर उन्हें मूर्च्छित भी कर दिया । इन्दुल के मूर्च्छित होने पर दिव्य रूप धारण करने वाली घोड़ी आकाश में पहुँच गई, वहाँ उन्हें चेतना प्राप्त हुई ।, उस समय उस बालक ने कालास्त्र को अपने धनुष पर रखा । जिससे महान् शब्द और तालन की मृत्यु हो गई । सेनापति के निधन हो जाने पर आकाशमार्ग से पहुँचकर उदयसिंह बार-बार गर्जना करने लगे । उस सयम इन्दुल ने क्रुद्ध होकर अग्नि-बाण का प्रहार किया, जिससे पूर्ण आकाश अग्निमय दिखाई देने लगा । पश्चात् उसने वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया ।१८-३०। उदयसिंह अपने योगबल द्वारा उसका पान करके एकदम उनके पार्श्व में पहुँच गये । महाबली इन्द्र-पुत्र ने शत्रु की धृष्टता को देखकर उनके मोहनार्थ गन्धर्वास्त्र का प्रयोग किया, किन्तु, योगबल द्वारा पुनः वह अस्त्र नष्ट हो गया । उसके ऊपर उन्होंने वारुणास्त्र का प्रयोग किया, उदयसिंह ने अपने योगबल द्वारा उसका पान कर लिया । इस प्रकार बाहुशाली एवं संयमी उस उदयसिंह ने प्रसन्नचित्त होकर उनके सभी-अस्त्रों का बार-बार पान करके उनके प्रयत्न को निष्फल कर दिया । उस समय क्रुद्ध होकर इन्दुल

---

१. एका कला यस्मिन्स इति विग्रहः ।

ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा बाहुशाली यतेन्द्रियः। इन्दुलस्तु तदा क्रुद्धोऽश्विनीं त्यक्त्वा भुवि स्थितः ॥
चर्म खड्गं गृहीत्वाशु खड्गयुद्धमचीकरत् ॥३५
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता देवाद्याः सर्वभूमिपाः । ददृशुस्तन्महद्युद्धं सर्वविस्मयकारणम् ॥३६
प्रातःकाले च सम्प्राप्ते बलखानिर्महाबलः । ददर्श बालकं रम्यं जटाजिनसमन्वितम् ॥३७
श्रमेण कर्शितो वीरः शक्रपुत्रः प्रतापवान् । बलखानेः पितुर्बन्धोः शपथं कृतवान्स्वयम् ॥३८
स्वखड्गेनैव कृष्णांश शिरस्तव हराम्यहम् । नो चेन्मे दूषिता माता नाम्ना स्वर्णवती सती ॥
इत्युक्त्वा खड्गमादाय ययौ शीघ्रं रुषान्वितः ॥३९
बलखानिस्तु तं ज्ञात्वा त्यक्त्वास्त्रं प्रेमकातरः । पुत्रान्तिकमुपागम्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥४०
हे इन्दुल महाभाग पितृमातृयशस्कर । आह्लादप्राणसदृश स्वर्णवत्यङ्गमानस ॥४१
पूर्वं हत्वा च मां वीर स्वपितृव्यं ततः पुनः । तथैवोदयसिंहं च देवसिंहं तथा कुलम् ॥
सुखी भव महावीर गेहे वै सुखवर्मणः ॥४२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञात्वा च स्वकुलं शिशुः। त्यक्त्वा खड्गं पतित्वा च स्वपितृव्यस्य पादयोः ॥
कृतवान्रोदनं गाढमपराधनिवृत्तये ॥४३
उवाच मधुरं वाक्यं शृणु तात मम प्रिय । नारीयं दूषिता वेदैर्नृणां मोहप्रदायिनी ॥४४
देवो वा मानुषो वापि पन्नगो वापि दानवः । आर्य्य नारीमयैर्जालैर्बन्धनाय समुद्यतः ॥४५

ने घोड़ी से उतर पृथिवी पर स्थित होकर खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। उसी बीच देवसिंह आदि राजाओं ने उस भीषण युद्ध की ओर दृष्टिपात किया, जिसे देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य हुआ।३१-३६। प्रातःकाल होने पर महाबली बलखानि (मलखान) ने उस सुन्दर बालक (इन्दुल) को देखा, जो जटा एवं मृगचर्म धारणकर सुशोभित हो रहे थे। प्रतापी इन्द्रपुत्र वह उस समय अत्यन्त श्रमित दिखाई देता था। उसने अपने पिता की, जो बलखानि (मलखान) के भाई होते थे, शपथ की—'कृष्णांश (उदयसिंह)! इसी अपने खड्ग द्वारा तुम्हारा शिरश्छेदन करूँगा।' यदि ऐसा न किया तो मेरी माता स्वर्णवती (सोना) को दूषित (असती) समझना। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा करके वह दोषपूर्ण होकर हाथ में खड्ग लेकर शीघ्र वहाँ पहुँच गया। बलखानि (मलखान) ने उसे देखकर प्रेम गद्गद होने के नाते अपने अस्त्र के त्यागपूर्वक पुत्र के समीप पहुँचकर कहा—इन्दुल! महाभाग एवं माता-पिता को यश प्रदान करने वाले तुम आह्लाद (आल्हा) के प्राण समान तथा स्वर्णवती (सोना) के मानस अंग हो, इसलिए वीर! पहले मेरा वध करो, पश्चात् अपने अन्य पितृ (चाचा) उदयसिंह, देवसिंह और समस्त कुल-कुटुम्ब का निधन करके सुखवर्मा के घर रहकर सुख का अनुभव करो। उनकी ऐसी बातें सुनकर उस बालक ने उन्हें अपने ही कुल में उत्पन्न जानकर खड्ग दूर रखकर शीघ्र अपने पितृव्य (चाचा) के चरण पर शिर रखा, और अपने अपराध की क्षमा के लिए अत्यन्त रुदन करते हुए कहा—मेरे प्रिय तात! वेदों में बताया गया है—स्त्रियाँ पुरुषों को मोहित करती हैं, वह देव, मनुष्य, पन्नग अथवा दानव कोई भी हो, अतः ये दूषित हैं, आर्य! यह नारीमय जाल आबद्ध करने के लिए ही सदैव उद्यत रहता है।३७-४५। आज मुझे

सोऽहमाजन्मशुद्धस्य पितुराह्लादकस्य च । गेहे जातो जयन्तश्च शक्रपुत्रः स्वयं विभो ।।४६
पद्मिन्या जनितं मोहं गृहीत्वा ज्ञातवान्न हि । क्षमस्व मम मन्दस्य शेषमज्ञानजं पितुः ।।४७
इत्युक्त्वा स पुनर्बालो रुरोद स्नेहकातरः । सेनामुज्जीवयामास तालनं च महाबलम् ।।४८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णांशो वचनं शिशोः । परमानन्दमागम्य हृदये तमरोपयत् ।।
उत्सवं कारयामास तत्र देशे जने जने ।।४९
आर्य्यसिंहस्तु तच्छ्रुत्वा नानाद्रव्यसमन्वितः । ददौ कन्यां विधानेन पद्मिनीमिन्दुलाय वै ।।५०
शतं हयांस्तथा नागान्मुक्तामणिविभूषितान् । कन्यार्थे तान्ददौ राजा जामात्रे बहुभूषणम् ।।५१
प्रस्थानमकरोत्तेषां स प्रेम्णा वाक्यगद्गदः । ते तु सर्वे मुदा युक्ताः स्वगेहं शीघ्रमाययुः ।।५२
उषित्वा मासनेकं तु तस्मिन्मार्गे भयानके । कीर्तिसागरमासाद्य चक्रुस्ते बहुधोत्सवम् ।।५३
आह्लादस्तु प्रसन्नात्मा सुतं पत्नीसमन्वितम् । दृष्ट्वा विप्रान्समाहूय ददौ दानान्यनेकशः ।।५४
दशहाराख्यनगरं सम्प्राप्तः स्वकुलैस्सह । कृष्णांशस्य महाकीर्तिर्जाता लोके जने जने ।।५५
पृथ्वीराजस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ । सा तु वै पद्मिनी नारी दुर्वासः शापमोहिता ।।५६
अप्सरस्त्वं स्वयं त्यक्त्वा भूमौ नारीत्वमागता । द्वादशाब्दप्रमाणेन सोषित्वा जगतीतले ।।५७

इसका पूर्ण अनुभव हो रहा है—यद्यपि मैं इन्द्र का पुत्र जयन्त हूँ, और पिता आह्लाद (आल्हा) के जो आजन्म विशुद्ध हैं, कुल में जन्म ग्रहण किया तथापि इस पद्मिनी के मोह में विभोर होकर मैंने इस पर ध्यान कभी नहीं दिया। अतः मुझ मन्दभागी एवं अज्ञानी का अपराध क्षमा करने की कृपा करें। इतना कहकर वह बालक स्नेह से अधीर होकर पुनः रुदन करने लगा। मैंने सेना समेत महाबली तालन को जीवित कर दिया है, उस बालक की इस बात को सुनकर उदयसिंह ने परमानन्द निमग्न होकर उसे अपने अङ्क (गोद) में बैठा लिया। पश्चात् उसी प्रदेश में प्रत्येक मनुष्यों में महान् उत्सव सुसम्पन्न कराया। आर्य सिंह ने भी इस समाचार को सुनकर अनेक भाँति के द्रव्य समेत उस पद्मिनी कन्या का पाणि-ग्रहण इन्दुल के द्वारा सविधान सुसम्पन्न कराया तथा मुक्ता (मोती) और मणियों से विभूषित अनेक गजराज एवं अत्यन्त आभूषण अपने जामाता (जामाई) को प्रदान किया। अनन्तर उन लोगों के प्रेम वाक्य से गद्गद होकर अपने घर लौट आये और उन सबने भी आनन्दानुभव करते हुए अपने देश के लिए प्रस्थान किया।४६-५२। एक मास की यात्रा में उस भीषण मार्ग की समाप्ति करके कीर्तिसागर पर पहुँचकर उन लोगों ने अनेक भाँति के उत्सव की आयोजना की। आह्लाद (आल्हा) ने अत्यन्त प्रसन्न होकर पत्नी (पुत्र-वधू) समेत पुत्र को देखकर ब्राह्मणों को निमंत्रित कर अनेक भाँति के दान प्रदानकर उन्हें तृप्त किया। पश्चात् दशहार नगर के प्रत्येक प्राणी अपने कुटुम्ब समेत वहाँ एकत्र होकर उदयसिंह की विशाल कीर्ति का यशोगान करने लगे, जो प्रत्येक प्राणियों में व्याप्त होने ने नाते अत्यन्त दूर तक विस्तृत हो गई। पृथिवीराज ने भी इसे सुनकर महान् विस्मय प्रकट किया। दुर्वासा के शाप के कारण उस पद्मिनी स्त्री ने अप्सरा पद का त्यागकर इस भूतल में मनुष्य (नारी) रूप में जन्म ग्रहण किया था। बारह वर्ष की आयु

यक्ष्मणा मरणं प्राप्य स्वर्गलोकमुपाययौ । नवमासान्कृतो वासस्तया चाह्लादमन्दिरे ।।५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

मुने पाञ्चालदेशे तु राजासीद्बलवर्द्धनः । तस्य पत्नी विशालाक्षी जलदेवीति विश्रुता ।।१
बिसेनवंशभूपालो वेदतत्त्वविशारदः । सस्त्रीकः पूजयामास वरुणं यादसां पतिम् ।।२
तस्य पुत्रावुभौ जातौ क्षत्रधर्मपरायणौ । लहरो ज्येष्ठतनयो मयूरध्वज एव हि ।।३
द्वादशाब्दवया भूत्वा मयूरध्वज एव सः । आज्ञया ज्येष्ठबन्धोश्च स्कन्ददेवमतोषयत् ।।४
यतेन्द्रियस्तथा मौनी वानप्रस्थपरायणः । पञ्चाब्दं तद्व्रती भूत्वा जपध्यानपरोऽभवत् ।।५
तदा प्रसन्नो भगवान्सेनानीरग्निभूः स्वयम् । स्वरूपं दर्शयामास सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ।।६
मयूरध्वज एवापि दृष्ट्वा सर्वमयं शिशुम् । देवसेनासहायं च तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।७

तक वह इस जगत् में सुशोभित रही । तदुपरान्त यक्ष्मा रोग से पीड़ित होकर पुनः स्वर्ग चली गई । उसने आह्लाद (आल्हा) के महल में केवल नव मास ही निवास किया था ।५३-५८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! पाञ्चाल (पंजाब) देश में बलवर्द्धन नामक राजा राज्य करता था । उसकी विशालाक्षी पत्नी का नाम 'जलदेवी' था । वेदतत्त्व निपुण एवं विसेन वंशावतंस उस राजा ने जलाधिनायक दम्पती (स्त्री-पुरुष) वरुण की आराधना की, जिससे उनके दो पुत्ररत्न उत्पन्न हुए, जो नितान्त क्षत्रिय धर्म के ही पारायण करने वाले थे । ज्येष्ठ का नाम लहर और कनिष्ठ (छोटे) का नाम मयूरध्वज रखा गया । बारह वर्ष की अवस्था में मयूरध्वज ने अपने ज्येष्ठ भाई की आज्ञा प्राप्तकर स्कन्द देव की आराधना आरम्भ की । उसने संयम और मौन धारणकर पाँच वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम की भाँति रहकर जप ध्यान को सविधि सम्पन्न किया । पश्चात् अग्निपुत्र एवं सेनानायक भगवान् स्कन्द ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने आश्चर्यजनक स्वरूप के दर्शन देने की कृपा की । मयूरध्वज ने उस सर्वमय देव को देखकर जो उनके इष्टदेव थे, स्निग्ध वाणी द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की ।१-७

मयूरध्वज उवाच

जयति ते वपुर्दिव्यविग्रहं नयति सर्वदा देवतागणान् ।
पिबति मातृयं दुग्धमुत्तमं वर्धति सर्वदा दैत्यदानवान् ॥८

नमस्ते देवसेनेश महिषासुरमर्दन । षडानन महाबाहो तारकप्राणनाशक ॥९
प्रसन्नो भव सर्वात्मन्गुहशक्तिधराऽव्यय । किङ्करं पाहि मां नित्यं शरणागतवत्सल ॥१०
इति श्रुत्वा स्तुतिं तस्य सेनानीस्तमुवाच वै । किं तेऽभीष्टं नृपश्रेष्ठ अतः सर्वमवाप्स्यसि ॥११
इत्युक्तस्तेन देवेन भूपतिः प्राह नम्रधीः । बलं मे देहि भगवन्सहायं कुरु सर्वदा ॥१२
तथेत्युक्त्वा तु तं स्कन्दस्तत्रैवान्तर्दधे पुनः । स नृपस्तु प्रसन्नात्मा कारयामास वै पुरम् ॥१३
नाम्ना मयूरनगरं नरवृन्दसमन्वितम् । द्वियोजनायामयुतं स्कन्ददेवेन रक्षितम् ॥१४
लहरो नाम तद्बन्धुर्द्विदशाब्दप्रयत्नतः । वरुणं पूजयामास नदीनदसमन्वितम् ॥१५
तदा प्रसन्नो भगवान्वरुणो यादसां पतिः । वरं ब्रूहीति वचनं प्रेम्णेवाच महीपतिम् ॥१६
इति श्रुत्वाऽमृतमयं वचनं लहरो नृपः । तुष्टाव श्लक्ष्णया वाचा पाशिनं पयसां पतिम् ॥१७

लहर उवाच

यस्य चित्तं महज्ज्ञेयं तपो बलसमन्वितम् । अतः प्रचेतास्ते नाम नमस्तुभ्यं प्रचेतसे ॥१८
रुणद्धि पयसां वेगं न केनाप्यवरोधितः । अतस्त्वं वरुणो नाम नमस्ते वरुणाय वै ॥१९
दैत्यानां बन्धनार्थाय देवानां जयहेतवे । दिव्यः पाशस्त्वयानीतः पाशिने ते नमोनमः ॥२०

मयूरध्वज ने कहा—तुम्हारी इस दिव्य शरीर की जय हो, जो देवगणों का (सेनानी) रूप में संचालन करती हुई केवल अपनी माता के दुग्ध का ही पान करके समस्त दैत्य-दानवों का वध करती है। देवसेना के अधीश्वर, महिषासुर के विध्वंसक, छः मुख वाले, महाबाहो एवं तारकासुर के हन्ता आपको नमस्कार है। सर्वात्म भू ! गुहशक्तिधारी मुझपर आप सदैव प्रसन्न हों, तथा शरणागत वत्सल ! मुझ सेवक की रक्षा कीजिये। इसे सुनकर स्कन्द ने कहा—नृपश्रेष्ठ ! तुम क्या चाहते हो, कहो ! मुझसे सभी कुछ प्राप्तकर सकोगे। देव स्कन्द के इस प्रकार कहने पर नम्रता पूर्वक राजा ने कहा—'भगवन् ! मुझे बल प्रदान करके सर्वदा मेरी सहायता करने की कृपा करें।' इसे स्वीकार कर भगवान् स्कन्द उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये, और उस राजा ने प्रसन्न होकर एक नगर का निर्माण कराया जिसका नामकरण 'मयूरनगर' हुआ, उसमें अनेक जाति के मनुष्य निवास करते थे, तथा वह दो योजन में विस्तृत और स्कन्ददेव से सुरक्षित था। उनके भाई लहर ने भी बीस वर्ष तक अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक नदी-तट समेत वरुण की उपासना की। उस समय प्रसन्न होकर वरुण भगवान् ने प्रेमवाणी द्वारा राजा से कहा—नृप ! वर की याचना करो ! इस अमृतमयीवाणी को सुनकर राजा लहर ने अपनी स्निग्धवाणी द्वारा जलाधिपति एवं पाश (कांस) वस्त्रधारी उन वरुण को प्रसन्न किया।८-१७

लहर ने कहा—तपोबल युक्त होने के नाते आपका चित्त महत्तापूर्ण है, इसीलिए 'प्रचेता' आपका नामकरण हुआ है, मैं उस प्रचेता को नमस्कार कर रहा हूँ। जल के उस वेग को, जो किसी के द्वारा रोका न जा सके, आप अनायास रोक लेते हैं, अतः आपका 'वरुण' नाम हुआ, मैं उस वरुण को नमस्कार करता हूँ। दैत्यों को आबद्ध करने एवं देवों के विजयार्थ आपने दिव्यपाश अस्त्र को अपनाया,

इति स्तुतस्तदा देवो राज्ञा तेनैव धीमता । नगरीं कारयामास लाहरीमथ चोत्तमाम् ॥२१
त्रियोजनायामयुतां चतुर्वर्णसमन्विताम् । स्वयं च ग्रामरक्षार्थं तत्रोवास जलाधिपः ॥२२
भूपस्तु तत्प्रसादेन प्राप राज्ञीं शुभाननाम् । रावी नाम महाश्रेष्ठा ज्ञेया देवाङ्गनोपमा ॥२३
तस्यां स जनयामास सुतान्षोडशसम्मितान् । धार्तराष्ट्रांशजान्मुख्यान्गजतुल्यबलान्वितान् ॥२४
तत्पश्चात्कन्यका जाता नाम्ना मदनमञ्जरी । द्वादशाब्दवयःप्राप्ते सुतायाः स तु भूपतिः ॥२५
देवसिंहं वरं मत्वा चन्द्रवंशिनमुत्तमम् । आहूय ज्येष्ठतनयं प्रेषयामास भूपतिः ॥२६
रणधीरस्तु तनयो लक्षमुद्रान्वितो बली । सहस्रशूरसहितः प्राप्तवान्स महावतीम् ॥२७
नत्वा परिमलं भूपं तदीयान्कुलशालिनः । स्वहेतुं वर्णयामास विवाहार्थे स्वसुः स्वयम् ॥२८
श्रुत्वा परिमलो भूपो देवसिंहं महामतिम् । आहूय वचनं प्राह विवाहार्थे मनः कुरु ॥२९
देवसिंहस्तु बलवान्पितृव्यं प्राह नम्रधीः । विवाहं न करिष्यामि ब्रह्मचर्यं व्रतं मम ॥३०
बहुधा प्रार्थितस्सर्वैर्द्विजवृन्दसमन्वितैः । न तत्याज व्रतं श्रेष्ठं देवसिंहो महामतिः ॥३१
तदा परिमलो भूपो रणधीरं वचोऽब्रवीत् । सुखखानिरयं बालो विवाहार्थे ददाम्यहम् ॥३२
तथेति मत्वा स नृपो रणधीरो गृहं ययौ । पितरं कथयामास सुखखानिर्महाव्रतः ॥३३

इसलिए पाश अस्त्रधारी को बार-बार नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार वरुणदेव की आराधना करके उस बुद्धिमान् राजा ने लहरी नामक नगरी का निर्माण करवाया जो तीन योजन में विस्तृत तथा चारों वर्णों के मनुष्यों से सुशोभित हो रही थी । उस नगरी के रक्षार्थ स्वयं वरुणदेव वहाँ निवास करते थे । तदुपरान्त राजा को वरुण देव की अनुकम्पावश कल्याणमुखी रानी की प्राप्ति हुई, जिसका नाम रावी था, तथा जो अत्यन्त श्रेष्ठ देवांगना के समान रूप-यौवन सम्पन्न थी । राजा द्वारा उस रानी के गर्भ से सोलह पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई, जो धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों के अंश से उत्पन्न एवं गजराज के समान बली थे । पश्चात् मदन मंजरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या का जन्म हुआ । उसकी बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर राजा ने चन्द्रवंशी देव सिंह के साथ उस कन्या का विवाह करने के विचार से अपने ज्येष्ठ पुत्र को उनके पास भेजा । पुत्र रणधीर ने भी एक लाख मुद्रा एवं सहस्र शूर सामन्तो समेत महावती को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा परिमल तथा उनके वंशजों को नमस्कार करके अपने आगमन का कारण बताया कि—'मैं अपनी भगिनी के विवाहार्थ ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ।'१८-२८। इसे सुनकर राजा ने उस कुशाग्रबुद्धि वाले देवसिंह को बुलाकर कहा—मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम इस विवाह को स्वीकार कर लो । इसे सुनकर बली देवसिंह ने नम्रतापूर्वक अपने पितृव्य (चाचा) से कहा—'मैंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का नियम किया है, अतः विवाह करने में असमर्थ हूँ ।' इसे सुनकर विप्रगणों ने भी वहाँ एकत्र होकर उन्हें अनेक भाँति से समझाया, किन्तु उस वीर व्रतधारी देवसिंह ने अपने व्रत का त्याग करना उचित नहीं समझा । अतः उसी पर दृढ़ रहे । अनन्तर राजा परिमल ने रणवीर से कहा— 'मैं इस सम्बन्ध के लिए सुखखानि नामक बालक को आपको सौंपता हूँ, आप उसी का विवाह स्थिर कीजिये ।' राजा रणधीर ने उसे सहर्ष स्वीकार कर अपने गृह को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर अपने पिता से सुखखानि के व्रत एवं रूपगुण की प्रशंसा की।२९-३३। बीच में महीपति (माहिल) बोल उठे—राजन्! इस

एतस्मिन्नन्तरे धूर्तो महीपतिरुवाच तम् । अयोग्योऽयं दिवाहोऽत्र पावकीये कुलोत्तमे ।।३४
शूद्रीयोऽत्र वरो राजन्वर्णसङ्करकारकः । तस्मात्त्वं सैन्यसहितो जेतुं तान्गन्तुमर्हसि ।।३५
कारागारे लोहमये बन्धनं कुरु भूपतेः । मत्कीर्तिः स्वर्गगा नित्यं जगत्यन्ते भविष्यति ।।३६
जितस्तैर्जम्बुको राजा नेत्रसिंहस्तु यो नृपः । तथा गजपतिर्भूपः पृथ्वीराजो महाबलः ।।३७
आर्यसिंहस्तथान्ये च जितास्ते बलवत्तराः । इति श्रुत्वा वचो रम्यं लहरो नृपसत्तमः ।।३८
सेनां संस्थापयामास चतुरङ्गबलान्विताम् । चतुर्लक्षमितां श्रेष्ठां पालितां षोडशात्मजैः ।।३९
माघशुक्लदशम्यां च बलखानिं महाबलः । सम्प्राप्तः स्वकुलैस्सार्द्धं चतुर्लक्षबलान्वितम् ।।४०
देशे पाञ्चालके रम्ये लहरीनगरे स्थितः । द्वादशाब्दे च कृष्णांशे तत्र वासमकारयत् ।।४१
नृपतेराज्ञया शूरा युद्धाय समुपाययुः। बलखानिस्तु धर्मात्मा दृष्ट्वा शूरांस्तथागतान् ।।
वीरानाज्ञापयामास स्वकीयान्सङ्गरे पुनः ।।४२
तयोर्युद्धमभूद्धोरं सेनयोर्लोमहर्षणम् । पञ्चमेऽह्नि दिवा प्राप्ते बलखानिर्महाबलः ।।
कृष्णांशेनैव सहितो रिपोर्वधमकारयत् ।।४३
पराजिताश्च ते शूरा हतशेषा भयातुराः । तान्दृष्ट्वा षोडशसुता रथं स्वंस्वं समास्थिताः ।।
युद्धायाभिमुखं जग्मुर्धनुर्बाणविशारदाः ।।४४
कृष्णांशस्तांस्तथा दृष्ट्वा शरवर्षसमन्वितान् । एकाकी प्रययौ शीघ्रं खड्गचर्मधरो बली ।।४५

पावकीय उत्तम कुल के योग्य वह विवाह नहीं है, क्योंकि वर शूद्र से उत्पन्न होने के नाते वर्णसंकर है, अतः उन पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना समेत वहाँ अवश्य गमन करो । भूपते ! उन्हें हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर इस लोहे के जेल में अवश्य करो, जिससे आपकी इस अन्तिम अवस्था में आपकी कीर्ति संसार में विचरण करती हुई स्वर्ग तक पहुँच जाये क्योंकि उन लोगों में राजा जम्बूक, राजा नेत्रसिंह, राजा गजपति, महाबली पृथ्वीराज तथा आर्यसिंह और ये अन्य बलवान् नृप हैं, सभी को पराजित कर विजय प्राप्ति की है । इस बात को सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा लहर ने अपनी चार लाख की चतुरंगिणी सेना को जिसकी अध्यक्षता उनके सोलह पुत्र कर रहे थे, नित्य प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया । माघ शुक्ल दशमी के दिन महाबली बलखानि (मलखान) चार लाख सैनिकों समेत अपने कुल कुटुम्ब के साथ पंजाब प्रान्त के लहरी नामक नगरी में पहुँच गये । उनके साथ बारह वर्ष की अवस्था वाले उदयसिंह भी वहाँ रह रहे थे ।३४-४१। राजा की आज्ञा से उनके सैनिकगण ने युद्ध की घोषणा कर दी । धर्मात्मा बलखानि (मलखान) ने आये हुए उन शूरों को देखकर संग्राम में विजयी होने के लिए अपने सैनिक वीरों को आदेश प्रदान किया । दोनों सैनिकों का भीषण एवं रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया । पाँचवें दिन महाबली बलखानि (मलखान) ने उदयसिंह को साथ लेकर स्वयं शत्रुओं का वध किया । उस रणस्थल में शत्रु के अनेक सैनिकों ने वीरगति प्राप्त की, और शेष भयभीत होकर भाग निकले । अपनी सेना को तितर-वितर एवं सामने उपस्थित शत्रुओं को देखकर उन सोलह राजकुमारों ने भी जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे, अपने-अपने रथ पर बैठकर रणस्थल में पहुँचकर युद्ध आरम्भ कर दिया । बाणों की वर्षा करने वाले उन कुमारों को रणस्थल में उपस्थित देखकर उदयसिंह ने खड्ग और (ढाल) लेकर स्वयं अकेले ही वहाँ

तेषां धनूंषि सञ्छिद्य बद्ध्वा तान्युद्धदुर्मदान् । आह्लादाय ददौ वीरः कृष्णांशो रणकोविदः ।।४६
पुत्राणां बन्धनं श्रुत्वा लहरो नृपसत्तमः । प्लावयामास तत्सैन्यं बलखानेर्महात्मनः ।।४७
जलीभूते तथा सैन्ये जयन्तो बलवत्तरः । वायव्यास्त्रेण समरे शुशोष सकलं जलम् ।।
लहरस्य ततः सेनामुवाह बहुयोजनम् ।।४८
तदा तु भगवान्देवो वरुणो यादसां पतिः । सुतामुद्वाहयामास लहरस्य महीपतेः ।।४९
लहरोऽपि प्रसन्नात्मा ज्ञात्वांशं जगतीतले । भक्तिं चकार शुद्धानामंशानां परया मुदा ।।५०
दत्त्वा च बहुधा द्रव्यं परिक्रम्य पुनःपुनः । स्वान्ते[1] निवेशयामास मासमात्रं प्रसन्नधीः ।।५१
अंशास्तेऽपि महापूजां गृहीत्वा लहरप्रदाम् ।दोलामारोप्य तां देवीं स्वगेहाय ययुर्मुदा ।।५२
इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । सुखखानेर्विवाहं च श्रुत्वानन्दमवाप्नुयात् ।।५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम विंशोऽध्यायः ।२०

पहुँचकर उनके धनुष को नष्ट कर उन मदान्धों को बाँध लिया । पश्चात् रणपण्डित उदयसिंह ने उन्हें लाकर आह्लाद (आल्हा) को सौंप दिया ।४२-४६। अपने पुत्रों को आबद्ध सुनकर राजा लहर ने महात्मा बलखानि (मलखान) की सेना को जल के प्रवाह में प्रवाहित किया । बलवान् जयन्त ने सेना को जलरूप देखकर अपने वायव्य अस्त्र से शत्रु के सभी जल का शोषण कर दिया और उनकी सेना को अनेक योजन की दूरी पर पहुँचा दिया । उस समय जलाधिनायक भगवान् वरुण देव ने स्वयं राजा लहर की कन्या का विवाह संस्कार सुखखानि के साथ सुसम्पन्न कराया । इसे जानकर राजा लहर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस भूतल में वे वरुणदेव के सदैव के लिए अनुपम एवं अटलभक्त हो गये । तदनंतर अनेक द्रव्य उन वीरों के मरण पर रखकर उनकी बार-बार परिक्रमा की और प्रसन्नतया उन्हें अपने महल में एक मास तक अतिथि बनाया । वे वीर भी उनकी उस महती पूजा का सादर ग्रहणपूर्वक उस वधू (बहू) को डोला में बैठाकर प्रसन्न होते हुए अपने घर लौट आये । विप्र ! इस प्रकार इस उदयसिंह के चरित को तुमसे वर्णन किया, जिसमें सुखखानि के विवाह को सुनकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा ।४७-५३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

---

१. स्वसमीप इत्यर्थः ।

अथैकविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषि उवाच

गृहं गत्वा च ते वीराः किं चक्रुश्चरितं शुभम् । तत्त्वं कथय विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।।१

सूत उवाच

गृहमागत्य ते सर्वे परितो भूपतेः सभाम् । गत्वा वार्तां तथा चक्रुर्यथा जातो महारणः ।।२
श्रुत्वा परिमलो भूपो वाजिवृन्दं क्षयं गतम् । आहूय स च कृष्णांशं वचनं प्राह नम्रधीः ।।३
सिन्धुदेशे च गन्तव्यं त्वया च बलशालिना । पञ्चलक्षान्हयान्कृत्वा पुनरागच्छ वै गृहम् ।।४
इति श्रुत्वा तु कृष्णांशो देवसिंहेन संयुतः । स्वर्णभारसहस्रोष्ट्रान्गृहीत्वा तरसा ययौ ।।५
शूरैश्च दशसाहस्रैस्सार्द्धं तत्र समागतः । मयूरनगरी यत्र चतुर्वर्णसमन्विता ।।६
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते मालाकारस्य वै सुता । पुष्पानाम समासन्ना चारम्भे कुसुमार्थिनी ।।७
कृष्णांशस्तु तदा पूजां कृत्वा देवमयो मुदा । जगाम विपिनं रम्यं वसन्ते पुष्पनालिके ।।८
बह्वाश्चर्ययुतं पुष्पं मत्तभ्रमरनादितम् । दृष्ट्वा मुमोह कृष्णांशस्तदर्थे स्वयमुद्यतः ।।९
एतस्मिन्नन्तरे पुष्पा पुष्पार्थे समुपागता । ददर्श देवसदृशं षोडशाब्दमयं नरम् ।।

अध्याय २१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषि बोले—विप्रेन्द्र ! घर पहुँचकर उन वीरों ने जो कुछ चरित किया है, उसे सुनाने की कृपा करें, हमलोगों के समक्ष आप सर्वज्ञ हैं ।१

सूत जी बोले—उन वीरों ने घर पहुँचने पर राजा (परिमल) की सभा को चारों ओर से अलंकृत करते हुए जिस प्रकार वहाँ युद्ध आदि हुआ था । सभी का वर्णन करके राजा को सुनाया । उन बातों को राजा परिमल ने सुना कि वहाँ की रणस्थली में घोड़ों का अधिक ध्वंस हुआ है, उन्होंने उदयसिंह को बुलाकर नम्रतापूर्वक कहा—सिन्धु प्रदेश में जाकर तुम पाँच लाख घोड़ों का क्रय करके शीघ्र चले आओ। इसे सुनकर उदयसिंह ने देवसिंह को साथ लेकर एक सहस्र भार सुवर्ण ऊँटों पर रखकर और दश सहस्र सेना समेत वहाँ के लिए प्रस्थान किया । वहाँ की मयूर नामक नगरी में पहुँचकर, जो चारो वर्णों के मनुष्यों से सुशोभित हो रही थी, प्रातःकाल के समय देखा, एक माली की कन्या, जिसका नाम पुष्पा था, पुष्प के लिए जा रही है । देवांश उदयसिंह भी पूजा के उपरान्त प्रसन्न मुखमुद्रा में उसी उपवन में पहुँचे, जहाँ ऋतुराज बसंत की छत्रछाया में विकसित कलियाँ आश्चर्य प्रकट कर रही थीं और मतवाले होकर भौरें उन पर गूँज रहे थे। उस उपवन की छटा देखकर उदयसिंह मोहित हो गये ।२-९। उसी बीच वह पुष्पा भी पुष्प संचय के लिए वहाँ आ गई। उसने देखा—यह पुरुष देवता की भाँति सर्वाङ्ग सुन्दर सोलह वर्ष की अवस्था

प्रसन्नवदनं शान्तमिन्द्रनीलमणिद्युतिम् ॥१०
कृष्णांशस्तु शुभां नारीं दृष्ट्वाश्चर्यमुपागतः । पप्रच्छ वचसा तां वै कस्येयं परसुन्दरी ॥
स्वर्गलोकाद्विहायाता यदि वा पन्नगी स्वयम् ॥११
इति श्रुत्वा च सा प्राह मालाकारस्य वै सुता । अहं शूद्री महाबाहो पुष्पार्थे समुपागता ॥१२
पुष्पेणानेन भूपाल तुलिता भूपतेः सुता । नाम्ना पुष्पवती देवी राधेव सगुणावली ॥१३
देवैश्च प्रार्थिता बाला रूपयौवनशालिनी । मकरन्दभयाद्देवास्तस्या योग्या न वै बलात् ॥१४
शृणु तत्कारणं भूप मकरन्दो यथा भवेत् । मयूरध्वजभूपेन सम्प्राप्तो गुहतो वरः ॥१५
अजेयोऽन्यैश्च कृष्णांशादृते त्वं जगतीतले । तन्मित्रं पृथिवीराजो राजराजः शिवप्रियः ॥१६
स राज्यं कारयामास धर्ममेधं हरिप्रियम् । तदा प्रसन्नो भगवान्यज्ञेशो यज्ञमूर्तिमान् ॥१७
मिथुनं जनयामास पावकात्सुन्दराननम् । मकरन्दः सुतो ज्ञेयः कन्या पुष्पवती मता ॥१८
पञ्चमाब्दवया भूत्वा मकरन्दो महाबलः । तुष्टाव तपसा धर्मं वेदधर्मपरायणः ॥१९
द्वादशाब्दवयः प्राप्ते मकरन्दे नृपप्रिये । प्रसन्नो भगवान्धर्मो ददौ तस्मै महाहयम् ॥२०
शिलामयं महावेगं शत्रुसेनाक्षयङ्करम् । तमश्वं स्वयमारुह्य सर्वपूज्यो ह्यभूत्सुखी ॥२१
तस्येदं सुन्दरं दिव्यं विपिनं सुरपूजितम् । भवानर्हति वै श्रेष्ठः पुष्पवत्याः कलेवरम् ॥२२

सम्पन्न, प्रसन्नमुख, शान्त और इन्द्रनील मणि की भाँति इसके देह की आभा है। उदयसिंह ने भी उस कल्याणमुखी को देखकर विस्मित हो उठे। उन्होंने उससे पूँछा कि—सुर सुन्दरी की भाँति यह स्त्री किसकी प्रिया है, जो स्वर्गलोक से यहाँ आई है, अथवा स्वयं पन्नगी ही है ? इसे सुनकर उस माली की कन्या ने कहा—महाबाहो ! मैं शूद्र कुल में उत्पन्न हूँ, यहाँ पुष्प संचय करने आई हूँ। नृप ! इसी पुष्प द्वारा वह राजकुमारी तुलित (तौली) की जायगी, जिसका नाम पुष्पावती देवी है, और जो गुण समूहों से सुशोभित राधा की भाँति ख्याति प्राप्तकर चुकी है। उस रूप-यौवन सम्पन्न कुमारी के लिए लालायित होकर देवगण प्रार्थी रहते हैं। मकरन्द के भय से देवगण कोई बल प्रयोग नहीं करते हैं, राजन् ! मैं उस कारण को बता रही हूँ, सुनो ! राजा मयूरध्वज ने स्कन्द से वरदान प्राप्त किया है कि—उदयसिंह के अतिरिक्त और सभी के लिए तुम इस भूतल में अजेय हो।' तथा उनके मित्र राजा पृथिवीराज हैं, जो राजाधिराज और शिव के अनन्य भक्त हैं। एक बार राजा ने भगवान् विष्णु के प्रसन्नार्थ धर्ममेध नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस समय प्रसन्न होकर भगवान् यज्ञेश ने अग्नि द्वारा सुन्दर मुख वाले मिथुन (जुड़वाँ) सन्तान की उत्पत्ति की जिसमें एक मकरन्द नामक पुत्र और दूसरी पुष्पवती नाम की कन्या हुई।१०-१८। पाँच वर्ष की अवस्था में महाबलवान् मकरन्द ने, जो वेद धर्म का परायण करने वाले थे, अपने तप द्वारा धर्म को प्रसन्न करना आरम्भ किया। पुनः मकरन्द की बारहवर्ष की अवस्था में भगवान् धर्मदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें एक महान् अश्व प्रदान किया, जो पाषाणमय, महावेगवान् एवं शत्रु की सेना का विध्वंस करने वाला था। उस घोड़े को अपनाने के कारण वे सभी के पूज्य तथा सब भाँति से सुखी हुए। यह सुन्दर उपवन उन्हीं का है, जो दिव्य और देवपूजित हैं। पश्चात् उसने यह भी कहा कि—'पुष्पवती (फुलवा) का रूप सौन्दर्य आपके ही योग्य है। इस बात को सुनकर उदयसिंह अत्यन्त मोहित होकर

इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशः स्मरपीडितः । ददौ बहुधनं तस्यै मालिन्या गेहमागतः ॥२३
देवसिंहस्तु कालज्ञो ज्ञात्वा मोहत्वमागतम् । कृष्णांशं बोधयामास पद्यैः साङ्ख्यसमुद्भवैः ॥२४
कृष्णांशस्तु ततस्सार्द्धं देवसिंहेन तन्मयः । सिन्धुदेशं समागत्य क्रीत्वा सर्वहयांस्तदा ॥२५
मासान्ते गृहमागत्य राज्ञे सर्वान्न्यवेदयत् । पुष्पवत्याः शुभं रूपं ध्यात्वा पुष्पेरितं बली ॥
कृष्णांशो मोहमागत्य तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥२६

कृष्णांश उवाच

देवमाये महामाये नित्यशुद्धस्वरूपिणि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२७
मधुकैटभसम्मोहे महिषासुरघातिनि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२८
धूम्रलोचनसन्दाहे चण्डमुण्डविनाशिनि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२९
रक्तबीजासृक्कपीते सर्वदैत्यभयङ्करे । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥३०
निशुम्भदैत्यसंहारे शुम्भदैत्यविनाशिनि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥३१
इति स्तुत्वा च सुष्वाप स वीरः परमासने । तदा तु शारदा देवी तस्याः स्वप्नप्रदर्शनम् ॥
चकार प्रत्यहं देवी वरदाभयकारिणी ॥३२
एवं गते चतुर्मासे जलवृष्टिकरे मुने । त्रिविंशाब्दवयश्चासीत्कृष्णांशस्य यशस्करम् ॥३३
कार्तिके कृष्णपक्षे तु गतोऽसौ देवसंयुतः । मयूरनगरे रम्ये मकरन्देन रक्षिते ॥३४
पुष्पागृहमुपागम्य तत्र वासमचीकरत् ॥३५

कामपीड़ित हुए, अनन्तर उसे बहुत-सा धन देकर उसके घर आये । कालदर्शी देवसिंह ने उदयसिंह को उस कुमारी के प्रति मोहित जानकर सांख्यमत के उपदेश द्वारा उन्हें ज्ञान प्रदान किया । तदुपरान्त देवसिंह के साथ उदयसिंह ने सिन्धु देश में पहुँचकर घोड़ों का क्रय करके मास की समाप्ति तक घर पहुँच-कर राजा को निवेदनपूर्वक सौंप दिया । एक दिन पुष्पा द्वारा वर्णन किये गये पुष्पवती के शुभरूप का ध्यान करके मोहित हो जाने पर उदयसिंह ने जगदम्बिका की आराधना की ।१९-२६

उदयसिंह ने कहा—हे देवमाये, महामाये एवं नित्यशुद्ध स्वरूप धारण करने वाली देवि ! कामदेव द्वारा मैं अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिये और पुष्पवती को मेरे प्रति सचेष्ट करने की कृपा कीजिये । मधु कैटभ को संमोहित करने वाली तथा महिषासुर का उन्मूलन करने वाली देवि ! मुझ कामपीड़ित की रक्षा करते हुए पुष्पवती को प्रबोधित कीजिये । धूम्रलोचन को भस्म करनेवाली एवं चण्ड-मुण्ड की विनाशिनी देवि ! आपने रक्तबीज के रक्त का पान करके समस्त दैत्यों को भयभीत किया है । निशुंभ और शुंभ दैत्य का वध करने वाली देवि ! मुझ कामपीड़ित की रक्षा करते हुए आप उस पुष्पवती को मेरे प्रति अनुरागपूर्ण कीजिये । इस प्रकार देवी की आराधना करते हुए वे अपने उत्तमासन पर निद्रित हो गये । उस समय स्वप्न में शारदा देवी ने दर्शन दिया । इसी प्रकार वरदहस्ता भगवती ने प्रतिदिन उन्हें दर्शन देकर वर्षाकाल के चार मास व्यतीत करा दिया । मुने ! उस समय उदयसिंह की तेइस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी ।२७-३३। कार्तिकमास के आरम्भ में देवसिंह को साथ लेकर उदयसिंह ने मकरन्द रक्षित उस मयूर नगर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उसी पुष्पा मालिनी के घर

एकदा सुन्दरं हारं कृष्णांशेनैव गुण्ठितम् । मणिमुक्तायुतं रम्यं नानापुष्पसमन्वितम् ॥
गृहीत्वा प्रययौ पुष्पा पुष्पवत्याश्रमन्दिरे ॥३६
सा तु ग्रैवेयकं दृष्ट्वा त्वष्ट्रेव रचितं प्रियम् । हृदि कृत्वा मुमोहाशु कामिनी रतिरूपिणी ॥३७
अये सखि महामाये सत्यं कथय मेऽग्रतः । ग्रैवेयकमिदं रम्यं कुतः प्राप्तं मम प्रियम् ॥३८
इति श्रुत्वा वचस्तस्या मकरन्दभयातुरा । पुष्पा पुष्पाञ्जलिं कृत्वा वचनं प्राह तां प्रति ॥३९
जीवदानं च मे देहि तर्हि ते कथयाम्यहम् । तथेत्युक्तवतीं कन्यां साह मे भगिनी शुभे ॥४०
कृष्णा नाम महारम्या सर्वलोकविमोहिनी । महावत्यां गृहं तस्या मद्गृहे सा समागता ॥
तया विरचितं सुभ्रूर्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥४१
इति श्रुत्वा तु वचनं देवी पुष्पवती स्वयम् । उवाच मालिनीं वाक्यं शीघ्रं दर्शय तां मम ॥४२
मकरन्दभयाद्देवास्तथान्ये पुरुषा भुवि । मत्समीपे गतिर्नास्ति तेषां सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥४३
इति श्रुत्वा वचो घोरं पुष्पा तु भयकातरा । नोवाच वचनं किञ्चित्पृच्छ्यमाना पुनः पुनः ॥४४
तदा पुष्पवती प्राह किं ते भयमुपागतम् । साह मे भगिनी रम्या यदि त्वद्गेहमागता ॥४५
मोहितः पुरुषः कश्चिद्बलात्तां हि भजिष्यति । तर्हि मे मरणं ज्ञेयं कुलधर्मपरायणे ॥४६

में रहने लगे । एक बार उदयसिंह द्वारा गूंथे गये एक सुन्दर हार को लेकर जिसमें पुष्पों के बीच-बीच में मोतियों और मणियों को लगाकर उसे अत्यन्त मनमोहक बनाया गया था, पुष्पा ने पुष्पवती के भवन में जाकर उसे प्रदान किया । उस अनुमप हार को देखकर, जो त्वष्ट्रा की भाँति रचित एवं अत्यन्त प्रिय था, रति के समान सुन्दरी उस कामिनी ने मोहित होकर उसे हृदय में धारण कर लिया (पहन लिया) । पश्चात् उससे कहा—अये सखि ! महामाये । मेरे समक्ष सत्य कहना, मेरे मन को हरण करने वाले इस सुन्दर हार को तूने कहाँ से प्राप्त किया है । इस बात को सुनकर मकरन्द के भय से भयभीत होकर पुष्पा ने अपनी अञ्जलि में पुष्प रखकर उससे कहा—आप मुझे जीवन-दान प्रदान करने की कृपा करें तो मैं सभी कुछ बता सकती हूँ । कुमारी के अभय दान देने पर उसने कहना आरम्भ किया—शुभे ! कृष्णा नाम की मेरी एक भगिनी है, जो अत्यन्त सुन्दरी एवं समस्त लोक को मोहित करने वाली है, उसका घर महावती (महोबा) राजधानी में है, इस समय मेरे यहाँ आई हुई है । शुभ्रे ! उसी ने इस मनोहर हार को गूँथा है ।३४-४१। इसे सुनकर देवी पुष्पवती ने मालिनी से कहा—मुझे उसे शीघ्र दिखाओ । तुम जानती हो कि इस भूतल में मकरन्द के भय से देव अथवा कोई भी मनुष्य मेरे पास तक पहुँच नहीं सकता है, मैं यह सत्य कह रही हूँ । इस दारुण वाणी को सुनकर भयभीत होकर पुष्पा उस समय कुछ भी न कह सकी, यद्यपि उसने बार-बार पूछा भी । पुष्पवती ने उसकी ओर देखकर कहा—तुझे किसी बात का भय हो रहा है क्या ? उसने कहा—वह मेरी भगिनी परम सुन्दरी है, उसके यहाँ आने पर मोहित होकर किसी पुरुष ने बल प्रयोग द्वारा उसके साथ उपभोग कर लिया तो उस समय निश्चित मेरा मरण हो जायगा । आपसे इसलिए कहा कि आप कुल धर्म का सतत पालन करती हैं । इसे सुनकर धर्ममूर्ति पुष्पवती ने फिर

इति श्रुत्वा पुष्पवती पुनः प्रोवाच धर्मिणी । मयूरध्वज एवापि मत्पिता नीतितत्परः ।।
अयोग्यं ये करिष्यन्ति ते यास्यन्ति यमालयम् ।।४७
अतस्त्वं शीघ्रमादाय तद्दोलां च मदन्तिके । दर्शयित्वा च तां रम्यां पुनर्गच्छ गृहं स्वकम् ।।४८
तथेति मत्वा सा शूद्री गृहमागत्य भामिनी । कृष्णांशं वर्णयामास यथा प्रोक्तं तया मुने ।।४९
इति श्रुत्वा वचो रम्यं कृष्णांशो बलवत्तरः । नासा वेधं स्वयं कृत्वा पुनर्नारीमयं वपुः ।।
जगाम पुष्पया सार्द्धं दोलामारुह्य वीर्यवान् ।।५०
तदा पुष्पवती देवी दृष्ट्वा कृष्णां मनोरमाम् । उवाच वचनं पुष्पां शृणु मे वचनं सखि ।।५१
यादृशीयं शुभा नारी तादृशः पुरुषो मया । स्वप्नान्ते प्रत्यहं दृष्टो रमणो मया सह ।।५२
कृष्णांशश्च स तामाह देशराजसुतो वरः । उदयो नाम विख्यातस्तस्याहं ललिता सखी ।।५३
प्रत्यहं रचितं हारमस्य पूजनहेतवे । स वीरस्तु गृहीत्वा तं देवीं पूज्य[1] न्यवेदयत् ।।५४
एकदा प्रस्थितं वीरं पुष्पमध्ये शनैःशनैः । उदासीनं च तं दृष्ट्वा प्रोवाचाहं समागता ।।५५
मोहोऽयं ते कुतः प्राप्तः स त्वं कथय मा चिरम् । इत्युक्तः स तु मामाह स्वप्नांते प्रत्यहं सखि ।।५६
मया दृष्टा शुभा नारी रूपयौवनशालिनी । तद्वियोगेन दुःखार्तं मुखं म्लानत्वमागतम् ।।५७
इति श्रुत्वा पुष्पवती तामाह रुचिराननाम् । विवाहो मे यदा तेन सार्द्धं रम्यो भविष्यति ।।५८
तदा त्वां तर्पयिष्यामि बहुद्रव्यैः शुभानने । अतस्त्वं गच्छ तत्पार्श्वं शीघ्रं तस्मै निवेदय ।।५९

कहा—तुम भली भाँति जानती हो कि मेरे पिता मयूरध्वज अत्यन्त नीतिज्ञ पुरुष हैं इस प्रकार का अयोग्य कार्य जो पुरुष करेगा, उसे यमराज के यहाँ प्रस्थान करना पड़ेगा । इसलिए तू उसके डोले को शीघ्र मेरे पास लाकर उस सुन्दरी को मुझे दिखाने के पश्चात् पुनः अपने घर चली जाना । उसे स्वीकार कर उस शूद्र जाति की स्त्री ने घर आकर उदयसिंह से उन सभी बातों को बताया । मुने ! इस सुन्दर वाणी को सुनकर बलवान् उदयसिंह ने अपने नासिका को स्वयं छेदकर आभूषण धारण किया । अपना परमसुन्दरी स्त्री का वेष बनाकर वह पराक्रमी डोले में बैठकर पुष्पा के साथ चल दिया । उस परम सुन्दरी कृष्णा को देखकर पुष्पवती ने पुष्पा से कहा—सखे ! मेरी एक बात सुनो ! जिस प्रकार इस सुन्दरी का रूप रङ्ग है, इसी भाँति के पुरुष को मैं नित्य स्वप्न में देखती हूँ, जो आकर मेरे साथ रमण करता है । उसे सुनकर उदयसिंह ने कहा—देशराज के श्रेष्ठपुत्र, जिनका उदयसिंह नाम है, मैं उनकी ललिता (प्रिय) सखी हूँ । मैं उनके पूजन के लिए नित्य हार गूँथती हूँ, जिसे ग्रहणकर वे पूजन के उपरान्त देवी को समर्पित करते हैं ।४२-५४। एक बार उपवन के पुष्पों के बीच धीरे-धीरे जा रहे थे, उस समय उनका मुख कुछ मलीन था, मैंने वहाँ पहुँचकर उनकी उदासीनता को देखकर कहा—आज आप चिन्तित क्यों हैं, मुझसे शीघ्र बताइये । इसे सुनकर मुझसे उन्होंने कहा—'सखि ! मैं एक रूप यौवन सम्पन्न परम सुन्दरी स्त्री को नित्य स्वप्न में देखता हूँ, उसके वियोग दुःख से मेरा चित्त बहुत म्लान हो रहा है । इसे सुनकर पुष्पवती ने उस सुन्दरी से कहा—शुभानने ! जिस समय मेरा शुभ विवाह उनके साथ सुसम्पन्न होगा, उस समय मैं तुम्हें अनेक भाँति के द्रव्यों से तृप्त कर दूँगी । इसलिए तुम उनके पास शीघ्र जाकर मेरा उनसे निवेदन करना । इसे

---

१. ल्यवार्षः ।

इति श्रुत्वा तु तद्वाचं पुष्पा प्रेमसमन्विता । दोलामारोप्य तां कृष्णां स्वगेहं गन्तुमुद्यता ॥६०
दुर्गद्वारे तु प्राप्तायां तद्दोलायां च भार्गव । मकरन्दो महावीर्य्यो द्वादशाब्दवया बली ॥६१
दोलासमीपमागत्य ददर्श रुचिराननाम् । कृष्णामिन्दीवरश्यामां चारुनेत्रां मनोहराम् ॥६२
मुमोह बलवान्वीरो गोवर्धन कलांशकः । प्रेम्णोवाच स चार्वाङ्गि शृणु मे वचनं प्रिये ॥६३
मद्गृहं शीघ्रमागच्छ पत्नी मम भवाधुना । इति श्रुत्वा तु सा कृष्णा विहस्योवाच भूपतिम् ॥६४
कुलीनस्त्वं महावीर वह्निकुण्डात्समुद्भवः । षोडशाब्दवयास्तूणी [1]शनिभल्लसमन्वितः ॥६५
त्वद्योग्या भूपतेः कन्या चन्द्रसूर्य्यान्वयस्य वै । अहं शूद्री हीनतमा कथं योग्या तवेह वै ॥६६
कन्याहं शूद्रजातेश्च ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थिता । इति श्रुत्वा तु वचनं मकरन्दो नृपात्मजः ॥६७
बलाद्गृहीत्वा तां नारीं पस्पर्श हृदये स्वयम् । कृष्णांशस्तु तदा तस्मै दत्त्वा हृदयवेदनाम् ॥
मोहयित्वा नृपसुतं सदेवः स्वगृहं ययौ ॥६८
मकरन्दस्तु सम्बुद्धो मदनाग्निप्रपीडितः । गेहमागत्य पुष्पायाः सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥६९
तत्स्नेहकातरं भूपं मकरन्दं महाबलम् । पुष्पाह श्लक्ष्णया वाचा शृणु पार्थिवसत्तम ॥७०
महावती पुरी रम्या तत्र कृष्णागृहं शुभम् । त्वद्भयाच्च गता गेहं कृष्णांशस्य च सा सखी ॥७१
रोदनं कुर्वती गाढं तव निन्दनतत्परा ॥७२

सुनकर प्रेम गद्‌गद होकर पुष्पा कृष्णा को डोला में बैठाकर अपने घर चल दी । भार्गव ! दुर्ग के दरवाजे पर उस डोला के आने पर महापराक्रमी मकरन्द ने, जिसकी आयु उस समय बारह वर्ष की थी, उस डोले के समीप आकर उस सुन्दरमुखी कृष्णा को देखा, जो नील कमल की भाँति श्यामल वर्ण, विशाल सुन्दर नेत्र एवं मन को हरण करने वाली थी । गोवर्द्धन की कला से उत्पन्न वह वीर उसी समय मुग्ध हो गया । प्रेम से गद्‌गद होकर उसने कहा—'प्रिये ! मेरी एक बात स्वीकार करो ! मैं चाहता हूँ कि इसी समय मेरे भवन में चलकर मेरी पत्नी होना शीघ्र स्वीकार करो । इसे सुनकर कृष्णा ने मन्द मुसुकान करते हुए राजकुमार से कहा—महावीर ! आप कुलीन एवं अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए हैं, आपकी सोलह वर्ष की अवस्था दिखाई देती है (अर्थात् विवाह के योग्य हैं) और तरकस, तलवार एवं भाले आदि अस्त्र से युक्त भी हैं ।५५-६५। आपके इस रूप के अनुरूप सोमवंशी या सूर्यवंशी राजा की कोई कन्या ही हो सकती है । मैं शूद्र कुल में उत्पन्न हूँ, जो छोटी जाति की कही जाती है, इसलिए आपके योग्य मैं कैसे हो सकती हूँ । मैं शूद्रकुल में उत्पन्न होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रही हूँ । इसे सुनकर राजकुमार मकरन्द ने बलात् उसे पकड़कर अपने हृदय (छाती) से लगा लिया । उस समय उदयसिंह उसके हृदय में एक पीड़ा उत्पन्न करते हुए उसे मोहित कर चले गये, पश्चात् देवसिंह के साथ अपने घर पहुँचे । उधर मकरन्द चेतना प्राप्त करने पर काम की अग्नि से संतप्त होने लगा । और उसी समय पुष्पा के घर जाकर उससे सभी वृतान्त कहा । कृष्णा के स्नेह में निमग्न उस महाबली मकरन्द को देखकर पुष्पा ने नम्रतापूर्वक कहा—श्रेष्ठराजन् ! आप मेरी बातें सुनें ! महावती (महोबा) राजधानी में कृष्णा का घर है, आपसे भयभीत होकर वह मेरी सखी उदयसिंह के घर चली गई वह अत्यन्त रुदन करती हुई आपकी निन्दा कर

---

१. शनिदत्तभल्लसमन्वित इत्यर्थः । अत एव—एकोननवतितमेपद्ये 'शनिभल्लूकरं ग्राही'—इत्युक्तं संगच्छते ।

आगमिष्यति वै वीरो बलैस्सार्धं महाबलः । अतस्त्वं सर्वसैन्यानि सज्जीभूतानि वै कुरु ।।७३
जितो येन महावीरः पितृव्यो लहरस्तव । विवाहं कारयामास तद्बन्धोः सुतया सह ।।७४
इति श्रुत्वा वचो घोरं मकरन्दो महीपतिः । शतघ्नीः स्थापयामास दुर्गकूटेषु दारुणाः ।।७५
स्वसैन्यं च समाहूय त्रिलक्षं खड्गसंयुतम् । तत्रैव स्थापयामास राष्ट्ररक्षार्थमुद्यतः ।।७६
कृष्णांशस्तु गृहं प्राप्य बलखानिमुवाच तत् । श्रुत्वा स च महावीरो भ्रातृमित्रसमन्वितः ।।
पञ्चलक्षबलैस्सार्द्धं मयूरनगरं ययौ ।।७७
शतघ्न्यः पञ्चसाहस्रा गजा दशसहस्रकाः । एकलक्षं हयाः सर्वे शेषा ज्ञेयाः पदातयः ।।
उषित्वा पक्षमात्रं तु मार्गे पाञ्चालके तदा ।।७८
मकरन्दस्तु तच्छ्रुत्वा शनिभल्लकरः स्थितः । सेनामाज्ञापयामास जहि शत्रून्महाबलान् ।।७९
श्रुत्वा पदातयो लक्षं शतघ्नीर्वह्निमाददन् । ते तु वै सप्तसाहस्राश्चक्रुः शत्रुबलक्षयम् ।।८०
ग्रामस्य दक्षिणद्वारे हयारूढास्तदा ययुः । भुशुण्डीक्षेपणीशक्तिखड्गयुद्धविशारदाः ।।८१
एकलक्षं हयास्सर्वे मकरन्दस्य भूपतेः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं हयसेनयोः ।।८२
तदा तु पश्चिमद्वारे गजा विंशत्सहस्रकाः[१] । तथा दशसहस्रैश्च शत्रुभिः सह संययुः ।।८३
उष्ट्ररक्षा महावीराश्चत्वारिंशत्सहस्रकाः । बलखान्यादिभिः सार्द्धं युयुधुर्दिशि चोत्तरे[२] ।।८४

रही थी। जिस महाबली ने आपके पितृव्य (चाचा) लहर को पराजित कर उनकी पुत्री का विवाह अपने भाई के साथ कर लिया, वे वीर उदयसिंह अवश्य आयेंगे अतः आप भी अपनी सेना को सुसज्जित करें। इस भीषण बात को सुनकर राजा मकरन्द ने अपने दुर्ग के दरवाजों पर तोपों को रखाकर खड्गधारी अपने तीन लाख सैनिकों को भी राष्ट्र के रक्षार्थ उसी स्थान में नियुक्त किया।६६-७६। उदयसिंह ने अपने गृह पहुँचने पर बलखानि (मलखान) से सभी वृतान्त कहा। उस बलशाली ने उसे सुनकर अपने भाई एवं मित्रों समेत पाँच लाख सैनिकों को साथ लेकर मयूर नगर के लिए प्रस्थान किया। उनकी सेना में पाँच सहस्र तोपें, दश सहस्र हाथी, एक लाख घोड़े और शेष पदाति (पैदल) सेना थी। उसके साथ वे पन्द्रह दिन की यात्रा करके पंजाब प्रान्त के उस मयूर नगर में पहुँच गये। यह आगमन सुनकर मकरन्द ने स्वयं तलवार और भाले को हाथ में लेकर रणाङ्गण में पहुँचकर सेनाओं को आदेश दिया कि—इन महाबली सैनिकों का विध्वंस करो। इसे सुनकर उसके एक लाख के पैदल सैनिकों ने तोपों में अग्नि (पलीता) लगाना आरम्भ किया जिससे उस सात सहस्र सैनिकों द्वारा शत्रु-सेना का विध्वंस होने लगा। दुर्ग के दक्षिण द्वार पर बलखानि (मलखान) के एक लाख अश्वारोहियों के साथ, जो भुशुंडी शक्ति और खड्ग द्वारा युद्ध करने में अत्यन्त कुशल थे, मकरन्द के एक लाख अश्वारोही सैनिकों ने घोर युद्ध आरम्भ किया। वहाँ पर दोनों अश्वारोही दलों का आपस में भीषण एवं रोमाञ्चकारी महान् युद्ध हो रहा था।७७-८२। पश्चिम दरवाजे पर बीस सहस्र की सेना दश सहस्र शत्रु-सैनिकों से युद्ध कर रही थी, उसी प्रकार चालीस सहस्र ऊँट की सेना बलखानि (मलखान) आदि वीरों के साथ उत्तर दरवाजे पर घोर युद्ध

---

१. इकारलोपश्छान्दसः। २. अनुदात्तेल्लक्षणस्यानित्यत्वाच्छान्दसत्वाद्वा परस्मैपदम्।

अहोरात्रमभूद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । ततः पराजितास्सर्वे बलखानेर्महाबलाः ॥८५
त्यक्त्वा युद्धं तु ते सर्वे दुद्रुवुश्च दिशो दश । कृष्णांशो बिन्दुलारूढो बलखानिः कपोतगः ॥८६
मनोरथस्थितो देवश्चाह्लादस्तु गजस्थितः । पूर्वादिक्रमतो द्वारि गतास्ते रणदुर्मदाः ॥८७
सत्सरुं खड्गमुत्सृज्य चक्रुः शत्रुमहावधम् । पराजिताश्च ते शूरा मकरन्दमुपाययुः ॥८८
वह्निपुत्रस्तुबलवान्वाजिनं च शिलामयम् । शनिभल्लकरग्राही तमारुह्य रणं ययौ ॥८९
कृष्णांशाद्याश्च ते शूरा रुरुधुस्सर्वतोदिशम् । तं च कण्ठे ददौ खड्गं बलखानिर्महाबलः ॥९०
स्वभल्लं देवसिंहश्च तमङ्के च समाहनत् । आह्लादो वक्षसि शरं कृष्णांशः खड्गमुत्तमम् ॥९१
शिलावाजिप्रभावेण कश्मलं न जगाम ह । स दृष्ट्वा निष्फलान्वीराञ्जगर्ज भैरवं ध्वनिम् ॥९२
शनिभल्लेन ते सर्वे बभूवुर्मूर्च्छिता रणे । तेऽश्वाः शिलाश्ववेगेन मूर्छिताश्चाभवन्क्षणात् ॥९३
मकरन्दस्तु बलवान्बद्ध्वा तान्युद्धदुर्मदान् । प्रसन्नात्मा ययौ गेहं स्वपित्रे तान्न्यवेदयत् ॥९४
दृष्ट्वा पराजितान्वीरान्रूपणो भयकातरः । महावतीं पुरीं प्राप्य भूपतिं समवर्णयत् ॥९५
ब्रह्मानन्दस्तु तच्छ्रुत्वा लक्षसैन्यसमन्वितः । इन्दुलेन सहायेन मयूरनगरं ययौ ॥९६
लिखित्वा निर्ममं पत्रं तद्राज्ञे त्वरितो ददौ । भूमिराजसुताकान्तं विद्धि मां मनुजर्षभ ॥९७
कृष्णांशाय सुतां देहि नाम्ना पुष्पवतीं शुभाम् । नो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥९८

कर रही थी। यह रोमाञ्चकारी युद्ध अविरल गति से दिन-रात चल रहा था। पश्चात् बलखानि (मलखान) के सैनिक पराजित होकर रणस्थल छोड़कर चारों ओर भागने लगे। उस समय विन्दुल (बेन्दुल) पर बैठकर उदयसिंह, कपोत (कबूतर) पर बलखानि (मलखान), मनोरथ (मनोहर) पर देवसिंह (डेबा) और गज पर आह्लाद (आल्हा) सवार होकर क्रमशः पूर्व आदि दरवाजों पर पहुँचकर अपने तीक्ष्ण खड्ग द्वारा शत्रुओं का वध करने लगे। उनके, अस्त्रों के आघात को सहन न कर सकने के कारण वे शूरवीर रणस्थल से भागकर मकरन्द के पास पहुँचे। अग्नि-पुत्र मकरन्द ने अपने सैनिकों को पलायन करते हुए देखकर अपने शिलामय अश्व पर बैठकर तलवार और भाले को सँभालकर रण के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचते ही उदयसिंह आदि वीरों ने उसे चारों ओर से घेर लिया, उपरान्त महावली बलखानि (मलखान) ने खड्ग द्वारा कण्ठ में प्रहार किया, उसी भाँति देवसिंह ने भाले, आह्लाद ने बाण द्वारा वक्षस्थल में और उदयसिंह ने खड्ग का प्रहार किया। किन्तु उस पाषण के घोड़े पर बैठने के नाते उन वीरों के सभी प्रहार निष्फल हो गये। पश्चात् उन्हें निष्फल देखकर उस वीर ने भीषण गर्जना की। और उस भाले द्वारा सभी वीरों को मूर्च्छित किया। उस पत्थर घोड़े के वेग से उनके घोड़े भी मूर्च्छित हो गये थे।८३-९३। बलवान मकरन्द ने उन दुःसहवीरों को उसी अवस्था में बांधकर अपने पिता के सामने लाकर उनसे निवेदन किया। वीरों को पराजित देखकर भयभीत होकर रूपन ने शीघ्र महावती (महोबा) आकर राजा से सब वृत्तान्त कहा। उसे सुनकर ब्रह्मानन्द ने इन्दुल को साथ लेकर एक लाख सैनिक समेत मयूर नगर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर एक दिन निर्मम पत्र लिखकर राजा के पास भेजा। नृपवर ! मैं पृथ्वीराज की पुत्री का पति (जमाई) हूँ, मेरा नाम ब्रह्मानन्द है। आप अपनी पुष्पवती नामक कन्या उदयसिंह के लिए सौंप दीजिये, अन्यथा मेरे कठिन बाण प्रहारों द्वारा आपकी सेना

निशम्येति नृपश्रेष्ठो मयूरध्वज एव सः । मकरन्देन सहितो द्विलक्षबलसंयुतः ।।
अहोरात्रं कृतं[1] युद्धं तेन सार्द्धं भयप्रदम् ।।९९
ब्रह्मानन्दस्तु बलवान्बाणयुद्धमचीकरत् । मकरन्दस्य भल्लेन मूर्छितः सोऽपतद्भुवि ।।१००
तदा स्वर्णवतीपुत्रो जयन्तः शक्रसम्भवः । स्वविद्यां दर्शयामास मकरन्दाय धीमते ।।१०१
वैष्णवास्त्रप्रभावेन शिलाश्वो भस्म चाभवत् । ब्रह्मास्त्रेण भृगुश्रेष्ठ शनिभल्लोऽपतद्भुवि ।।१०२
नागपाशेन तं बद्ध्वा मकरन्दं महाबलम् । विवाहं कारयामास कृष्णांशस्य महात्मनः ।।१०३
सेनामुज्जीवयामास स्वकीयामिन्दुलो बली । मङ्गलं कारयामास मकरन्दो गृहे गृहे ।।
ददौ कन्यां विधानेन बहुद्रव्यसमन्विताम् ।।१०४
मयूरध्वजभूपालो महास्नेहमचीकरत् । नृपाज्ञां ते पुरस्कृत्य ययुः सार्द्धं महावतीम् ।।१०५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकविंशोऽध्यायः ।२१

नष्ट हो जायगी । नृपश्रेष्ठ राजा मयूरध्वज ने उसे सुनकर मकरन्द को साथ लेकर दो लाख सैनिकों समेत रणस्थल में पहुँचकर शत्रुओं से दिन-रात का भीषण युद्ध आरम्भ कर दिया । बलवान् ब्रह्मानन्द बाण युद्ध कर रहे थे। उसी समय मकरन्द के भाले से मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गये । स्वर्णवती (सोना) के पुत्र शक्रसम्भव जयन्त ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर बुद्धिमान् मकरन्द को अपनी विद्या की चमत्कृति दिखाई—अपने वैष्णवास्त्र द्वारा उसके शिला अश्व को भस्म करके ब्रह्मास्त्र द्वारा शनि-भाला से उनके हाथ भूमि पर गिरा दिया। भृगुश्रेष्ठ ! उस महाबली मकरन्द को नागपाश में बांधकर उदयसिंह के साथ उसकी भगिनी का विवाह सुसम्पन्न कराते हुए उस बली ने अपनी ओर की सभी सेनाओ को जीवित किया । तदुपरान्त मकरन्द ने अपनी राजधानी के प्रत्येक घरों में महान् माङ्गलिक उत्सव बड़े समारोह के साथ सुसम्पन्न कराया । उस असवर पर राजा मयूरध्वज ने अनेक भाँति के द्रव्यों समेत अपनी पुत्री का दान किया । कई दिन के पश्चात् स्नेह विभोर उस राजा की आज्ञा प्राप्तकर ये वीरगण अपनी महावती (महोबा) राजधानी लौट आये ।९४-१०५

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

---

१. मयूरध्वजेनेति शेषः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

महावत्यां तु सम्प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । मङ्गलं कृतवान्राजा तदा परिमलो बली ।।१
पुष्पवत्या तया सार्द्धं गीतनृत्यविशारदः । कृष्णांशः प्रत्यहं गेहे नुमोह सखिभिः सह ।।२
हेमन्तशिशिरे वीरो रहः क्रीडां करोति वै । यथा शक्रोऽप्सरोभिश्च तथैव ह्युदयो बली ।।३
ग्राम्यधर्मं न कृतवान्सर्वस्पर्शविशारदः । एकदा नृत्यक्रीडायां देवी पुष्पवती स्वयम् ।।४
कृष्णांशं वचनं प्राह पूर्वजन्मनि को भवान् । इति श्रुत्वोदयो वीरो विहस्योवाच वै वचः ।।५
नृपोऽहं चन्द्रदासश्च पूर्वजन्मनि हे प्रिये । बाल्यात्प्रभृति मे दुःखं प्राप्तं दैवविनिर्मितम् ।।६
शालग्रामशिलापूजा प्रत्यहं वै मया कृता । तेन पुण्यप्रभावेन सार्वभौमो बभूव ह ।।७
मृतेऽहनि तु सम्प्राप्ते शालग्रामे मनो दधौ । सायुज्यं मे हरेश्चासीत्स्वयं ब्रह्मप्रसादतः ।।८
कलिना प्रार्थितो विष्णुः कालात्मा परमेश्वरः । स्वदेहान्मां तु निष्काश्य भूमौ जनिमचीकरत् ।।९
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति वै प्रिये । युगधर्मस्य मर्यादास्थापनाय भवाम्यहम् ।।१०
सत्ये तु मानसी पूजा देवानां तृप्तिहेतवे । त्रेतायां वह्निपूजा च यज्ञदानादिका क्रिया ।।११

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—बलवान् उदयसिंह के महावती (महोबा) नगरी में पहुँचने पर राजा परिमल ने मांगलिक उत्सव कराया । उदयसिंह प्रतिदिन सखियों समेत पुष्पवती के साथ नृत्य-गान करते हुए उसके साथ मनोरञ्जन में ही सम्पूर्ण समय व्यतीत करने लगे । जिस प्रकार इन्द्र हेमन्त शिशिर के दिनों में अप्सराओं के साथ क्रीडा में अनुरक्त रहते हैं, उसी भाँति उदयसिंह भी उसके साथ क्रीडा करने लगे । उन्होंने अपनी निपुणता से उसका सर्वस्पर्श करने पर भी उसके साथ उपभोग नहीं किया । एक बार नृत्य करते समय पुष्पवती देवी ने स्वयं उदयसिंह से पूँछा—आप पूर्व जन्म में कौन थे । इस बात को सुनकर उदयसिंह ने हँसकर कहा—प्रिये ! पूर्वजन्म में चन्द्रहास नामक राजा था । बाल्यकाल से ही मैं दैवयोग से दुःखी था । भगवान् शालग्राम की मूर्तिपूजा प्रतिदिन करता था जिसके पुण्यप्रभाव से मैं राजा हुआ । १-७। प्राणवियोग के समय मेरा मन शालिग्राम की मूर्ति में आसक्त हो गया था, इसलिए स्वयं ब्रह्मा की प्रसन्नतावश भगवान् में मेरी सायुज्य मुक्ति हो गई थी । अनन्तर कलि ने कालात्मा परमेश्वर विष्णु की प्रार्थना की । उन्होंने अपनी देह से मुझे पृथक् कर इस भूतल में जन्म ग्रहण कराया । प्रिये ! जिस-जिस समय धर्म का नाश सम्भव होता है, युगधर्म की मर्यादा के स्थापनार्थ मैं उन दिनों जन्म ग्रहण करता हूँ । सत्ययुग में देवताओं के प्रसन्नार्थ मानसी पूजा की जाती है, उसी भाँति त्रेता में यज्ञदान आदि क्रिया रूप अग्नि पूजा, द्वापर में देवों के

द्वापरे मूर्तिपूजा च देवानां वै प्रियङ्करी । कलौ तु दारुणे प्राप्ते ब्रह्मपूजनमुत्तमम् ।।१२
अहं हंसः सत्ययुगे त्रेतायां यज्ञपूरुषः । हिरण्यगर्भश्च प्रिये द्वापरेऽहं सुखप्रदः ।।
शालग्रामः कलौ प्राप्ते देवानां तृप्तये ह्यहम् ।।१३
मुनयो देवतास्सर्वास्तथा पितृगणाः प्रिये । सर्वे ते तृप्तिमायान्ति शालग्रामस्य पूजनात् ।।१४
द्विजातिभिस्त्रिवर्णैश्च पूजनं चन्दनादिकैः । शूद्रैश्च स्नानमात्रेण भक्तिभावेन पूजनम् ।।१५
म्लेच्छैश्च दर्शनं पुण्यं विनयाद्भक्तिभावतः । शालग्रामः स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।।
तस्य दर्शनमात्रेण क्षयं यास्यन्ति वै मलाः ।।१६
इति ते कथितं देवि युगमर्यादमुत्तमम्[1] । पुरा त्वं कस्य तनया सत्यं कथय मेऽचिरम् ।।१७

पुष्पवत्युवाच

पूर्वजन्मनि वेश्याहं चन्द्रकान्तिरिति श्रुता । गाननृत्यादिकं वाद्यं देवस्याग्रे मया कृतम् ।।१८
तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गलोकमुपागता । देवैश्च प्रार्थिता तत्र रूपयौवनशालिनी ।।१९
ब्रह्मचर्यं न तत्याज स्वर्गलोकेऽपि वै ह्यहम् । तेन पुण्यप्रभावेण चोषा बाणसुताऽभवम् ।।
अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्म मम पाणिं गृहीतवान् ।।२०
कलिना प्रार्थितो देवो मम स्वामी स्वहेतवे । अर्चावतारमासाद्य मार्कण्डेयस्थलं गतः ।।२१

प्रियार्थ मूर्तिपूजा और भीषण कलियुग के समय ब्रह्मपूजन उत्तम बताया गया है । प्रिये ! सत्ययुग में हंस, त्रेता में यज्ञपुरुष और द्वापर में हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ, तथा कलियुग में देवों की तृप्ति के लिए सुखदायक शालिग्राम मैं ही होता हूँ । प्रिये ! शालिग्राम के पूजन करने से महर्षि, देवता और पितृगण ये सभी प्रसन्न होते हैं । द्विजाति (उपनयनधारी) तीनों वर्णों को चन्दनादि द्वारा शालिग्राम की सप्रेम पूजा करनी चाहिए । शूद्रों को केवल स्नानमात्र करके भक्ति-भाव द्वारा ही उनका पूजन करना बताया गया है, और म्लेच्छों को भक्तिभाव से नम्र होकर उनके दर्शन करने से पुण्य प्राप्त होती है । क्योंकि शालिग्राम सत्-चित् और आनन्द रूपी शरीर धारण करने वाले स्वयं ब्रह्म है । उनके दर्शनमात्र से मल (पाप) नष्ट हो जाते हैं । देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें युग-मर्यादा की उत्तम व्याख्या बता दी । अब तुम मुझसे सत्य कहो कि—पूर्वजन्म में तुम किसकी पुत्री थी ।८-१७

पुष्पवती बोली—पूर्वजन्म में मैं चन्द्रकान्ति नामक वेश्या थी । मैंने देवता के सामने नृत्य-गायन वाद्य किये थे, जिस पुण्य के प्रभाव से मुझे स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी । वहाँ मेरे रूप-यौवन पर मुग्ध होकर देवों ने मेरी प्रार्थना की, किन्तु उस स्वर्गलोक में रहकर भी मैंने अपने ब्रह्मचर्य को भली-भाँति सुरक्षित रखा था । उसी पुण्य के प्रभाव से मैंने बाणासुर के यहाँ उसकी ऊषा नाम की पुत्री होकर जन्म ग्रहण किया, उसमें ब्रह्मरूप अनिरुद्ध ने तब मेरा पाणिग्रहण किया था ।१८-२०। पश्चात् कलि ने अपने स्वार्थ के लिए मेरे स्वामी की प्रार्थना की, इसीलिए वे अर्चावतार द्वारा उत्पन्न होकर मार्कण्डेय के यहाँ चले गये वहाँ

---

१. नपुंसकत्वमार्षम् ।

स्वप्रसादस्य महिमा दर्शितस्तेन तत्र वै । अत्रैव स्थितिमर्यादो दारुरूपस्य मे [1]पतेः ॥२२
अहं तस्याज्ञया स्वामिञ्जम्बूकस्य सुताऽभवम् । दिव्यरूपसमायुक्ता नाम्नाहं विजयैषिणी ॥२३
कृतं ममैव मरणं त्वद्भ्रात्रा बलखानिना । मकरन्दस्य भगिनी भूत्वा त्वां पतिमागता ॥२४
तेन दोषेण त्वद्भ्राता यातनां तीव्रमागतः[2] । राज्ञ इन्नगठस्यैव गेहे गजपतेः स्वयम् ॥
इत्युक्त्वा मौनमास्थाय रेमे पत्या सभं मुदा ॥२५
होलिकासमये प्राप्ते मलना स्नेहदुःखिता । सुतां चन्द्रावलीं रम्यां स्वप्नान्ते सा ददर्श ह ॥
रुरोद निशि दुःखेन स्वसुतास्नेहकातरा ॥२६
तदोदयो महावीरो ज्ञात्वा रोदनकारणम् । शूरैश्च दशसाहस्रैस्सार्द्धं बहुधनैर्युतः ॥
एकाकी प्रययौ वीरो यत्र चन्द्रावलीगृहम् ॥२७
महीपतिस्तु तच्छत्रुर्ज्ञात्वा कारणमुत्तमम् । पश्चाज्जगाम कार्यार्थी स तु दुर्योधनांशकः ॥
ठलीठाठमिति ख्यातं ग्रामं यादवपालितम् ॥२८
वीरसेनो नपस्तत्र त्रिलक्षबलसंयुतः । अष्टौ सुताश्च तस्यासन्रूपयौवनशालिनः ॥२९
कामसेनः प्रसेनश्च महासेनस्तथैव च । सुखसेनो रूपसेनो विष्वक्सेनो मधुव्रतः ॥
मधुपश्च क्रमाज्जाता यादवांशाश्च यादवाः ॥३०

उन्होंने अपने प्रसाद की महिमा उन्हें दिखाई । काष्ठरूप मेरे पति की वह मर्यादा आज यहाँ भी स्थित है । स्वामिन् ! मैं उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य कर पुनः राजा जम्बूक के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई थी । उस समय मुझे दिव्य रूप की प्राप्ति थी, और मेरा नाम विजयैषिणी (विजया) था । वहाँ तुम्हारे भाई बलखानि (मलखान) द्वारा मेरा निधन हुआ था । (इस समय आप जानते ही हैं कि) मकरन्द की भगिनी होकर मैंने आपको पति रूप में प्राप्त किया है और उसी दोष से आपके भाई ने राजा गजपति के यहाँ स्वयं जाकर अत्यन्त तीव्र यातना का अनुभव किया था । इतना कहकर पति के साथ स्थित मैना की भाँति वह मौन हो गई । होली के अवसर आने पर एक दिन रानी मलना ने अत्यन्त स्नेह के नाते दुःखी होकर अपनी सुन्दरी पुत्री चन्द्रावली को स्वप्न में देखा । उस रात वे अपनी पुत्री के स्नेह से अत्यन्त अधीर होकर सम्पूर्णरात रुदन करती हुई दुःखों का ही अनुभव करती रह गई थीं । उस समय उनके रुदन के कारण को जानकर उदयसिंह के दश सहस्र शूर सामन्तों समेत अनेक भाँति के द्रव्यों को लेकर अकेले ही चन्द्रावली के घर को प्रस्थान किया ।२१-२७। उनके प्रबल शत्रु महीपति (पृथ्वीराज) ने भी कारण जानकर उनके पश्चात् ही वहाँ के लिए प्रस्थान किया था । क्योंकि दुर्योधन के अंश से उत्पन्न होने के नाते उसमें स्वार्थ की तत्परता अधिक मात्रा में थी । यदुवंशियों से सुरक्षित एक 'ठाठ' नामक गाँव था, जिसमें वीरसेन नामक राजा अपने तीन लाख सैनिकों समेत रहता था। उसके रूप यौवन सम्पन्न आठ पुत्र थे—कामसेन, प्रसेन, महासेन, सुखसेन, रूपसेन, विष्वक्सेन, मधुव्रत और मधुप यही क्रमशः उनके नाम थे, जो यादव के अंश से उत्पन्न यादवों की मर्यादा-वृद्धि कर रहे थे। वहाँ की सभा में पहुँचकर नर केसरी

---

१. पत्युः । २. क्रियाविशेषणम् ।

तत्र गत्वा च कृष्णांशस्सभायां नरकेसरी । दण्डवत्प्रणतो भूत्वा वीरसेनं महीपतिम् ।।३१
मलनालिखितं पत्रं दत्त्वा राज्ञे महामनाः । दशभारं सुवर्णस्य पुनर्वासमचीकरत् ।।३२
व्यञ्जनानि विचित्राणि भुक्त्वा यादवसंयुतः । चन्द्रावलीं समागत्य कुशलं च न्यवेदयत् ।।३३
प्रेमोत्सुका च भगिनी कृष्णांशं प्राह दुःखिता । भवान्द्व्यब्दवया वीर तदाहं च विवाहिता ।।३४
विंशदब्दस्ततो जातो विस्मृता पितृमातृभिः । समर्थेन त्वया वीर संस्मृता भगिनी स्वयम् ।।३५
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं च मे । बन्धुदर्शनमात्रेण सर्वं च सफलं मम ।।३६
प्रसन्नात्मोदयस्तत्र भगिनीं प्राह नम्रधीः । जम्बुकेन गृहं सर्वं लुण्ठितं बलशालिना ।।३७
तस्य दुःखेन भूपालो भयभीतो दिने दिने । महाकष्टेन विजयो जम्बुकाच्चाभयोऽभवत् ।।३८
महीराजस्तु बलवान्रुरोध नगरीं मम । मया विवाहितो भ्राता ब्रह्मा तत्सुतया सह ।।३९
पुनश्च सिंहलद्वीपे जयन्तार्थे वयं गताः । एवं विधानि दुःखानि बहूनि ह्यभवन्पितुः ।।४०
अतस्त्वां प्रति सुप्रीता वयं भगिनिकिङ्कराः । मृदुवाक्यमिति श्रुत्वा तदा चन्द्रावली मुदा ।।४१
गेहं निवासयामास स्वकीयं प्रेमविह्वला । एतस्मिन्नन्तरे धूर्तो महीपतिरुपाययौ ।।४२
सभायां वीरसेनस्य राज्ञा तेनैव सत्कृतः । वार्तान्तरं समासाद्य तमुवाच महीपतिः ।।४३
निष्कासिताश्च ते सर्वे राज्ञाह्लादादयः खलाः । चोरितो नृपतेः कोशो हीनजात्यैर्महाबलैः ।।४४

उदयसिंह ने राजा वीरसेन को दण्डवत्प्रणाम करने के उपरान्त उन्हें दश भार सुवर्ण समेत मलना का लिखा पत्र प्रदान किया। पश्चात् उन यादवों के साथ उत्तम विचित्र भाँति के व्यंजनों का आस्वादन करके चन्द्रावली के महल में जाकर उनसे सब कुशल क्षेम सुनाया। प्रेम से अधीर होकर उसने अपना दुःख प्रकट किया—वीर ! जिस समय मेरा विवाह हुआ था, आप दो वर्ष के थे। आज बीस वर्ष का दिन पूरा हो रहा है, पिता-माता ने कभी मेरा स्मरण ही नहीं किया। मुझे एकदम भूल गये। वीर ! तुम्हीं इस योग्य हुए कि मेरा स्मरण तो किया। आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल हो गया, कहाँ तक कहूँ भाई के दर्शन से मेरा सभी कुछ सफल हो गया।२८-३६। उस समय प्रसन्न होकर उदयसिंह ने नम्रतापूर्वक अपनी भगिनी से कहा—सबल जम्बूक ने आकर घर को लुटवा लिया था, उसी दुःख मे दुःखी एवं भयभीत होकर राजा अपना दिन व्यतीत कर रहे थे, पश्चात् हमलोगों ने (समाने होने पर) अत्यन्त कष्ट से जम्बूक पर विजय प्राप्त की। इधर पृथ्वीराज ने भी हमारी राजधानी को चारों ओर से घेर लिया था, फिर उन्हें पराजित कर मैंने अपने भाई ब्रह्मा का विवाह उनकी पुत्री बेला से सुसम्पन्न कराया। अनन्तर इन्दुल के लिए हमें सिंहलद्वीप जाकर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस प्रकार के अनेक दुःखों के अनुभव पिता जी को करने पड़े। इसलिए इधर आने-जाने का अवसर नहीं मिल सका, किन्तु, भगिनी ! अब हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं, इसीलिए (वहाँ ले चलकर) हम लोग तुम्हारी सेवा करना चाहते हैं क्योंकि हम सब तुम्हारे सेवक ही तो हैं। इस प्रकार की कोमल वाणी को सुनकर प्रेम व्याकुल होती हुई चन्द्रावली ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें अपने निजी महल में ठहराया। उसी बीच उस धूर्त महीपति ने वीरसेन की सभा में पहुँचकर आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के उपरान्त बीच में बात काटकर उनसे कहा।३७-४३। राजा ने आह्लाद (आल्हा) आदि सभी दुष्टों को अपने यहाँ से निर्वासित कर (निकाल) दिया है। कारण कि

तदा तु कुण्ठिताः सर्वे शिरीषाख्यपुरेऽवसन् । छिद्रदर्शी तु कृष्णांशो गेहं तव समागतः ॥४५
चन्द्रावल्याश्च वै दोलां गृहीत्वा स गमिष्यति । सत्यं ब्रवीमि भूपाल नान्यथा वचनं मम ॥४६
इति श्रुत्वा वीरसेनो ज्ञात्वा तत्सत्यकारणम् । कामसेनं समाहूय चन्द्रावल्याः पतिं सुतम् ॥४७
वचनं प्राह भोः पुत्र बन्धनं कुरु तस्य वै । इति श्रुत्वा कामसेनो विषमादाय दारुणम् ॥४८
भोजनाय ददौ तस्मै ज्ञात्वा चन्द्रावली तदा । भ्रातुरन्तिकमासाद्य पात्रमादाय सा ययौ ॥४९
कामसेनश्च कुपितो गृहीत्वा दण्डवेतसम् । स्वप्रियां ताडयामास स दृष्ट्वा तं तदाकुपत् ॥५०
गृहीत्वा भुजयोस्तं वै बन्धनाय समुद्यतः । बन्धनत्वं गते पुत्रे वीरसेनो महाबलः ॥५१
पुत्रानाज्ञापयामास तस्य बन्धनहेतवे । एतस्मिन्नन्तरे वीरो दोलामादाय सत्वरम् ॥५२
सेनामध्ये समागम्य महद्युद्धमचीकरत् । एकतो दशसाहस्रास्त्रिलक्षास्तु तथैकतः ॥
अहोरात्रमभूद्युद्धं दारुणं रोमहर्षणम् ॥५३
हता लक्षं महाशूरा उदयेन महाबलाः । शेषाः प्रदुद्रुवुस्सर्वे यादवा भयकातराः ॥५४
दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं सप्तपुत्रा महाबलाः । स्वान्गजांश्च समारुह्य कृष्णांशं रुरुधू रुषा ॥५५
स वीरो बिन्दुलारुढो भूमौ कृत्वा गजासनान् । तेषामस्त्राणि संच्छिद्य बध्नाति बलदर्पितः ॥५६
इति श्रुत्वा वीरसेनः सूर्यभक्तिपरायणः । सौरमस्त्रं समादाय तस्य सैन्यमदाहयत् ॥
तेनास्त्रेणैव कृष्णांशः सहयो मूर्च्छितो भुवि ॥५७

इन नीचों ने उनके कोष (खजाने) में चोरी की थी। उसी समय से ये लोग शिरीष (सिरसा) नामक गाँव में रह रहे हैं। अवसरवादी उदयसिंह इस समय आपके घर आया हुआ है, वह चन्द्रावली का डोला लेकर चला जायगा। भूप! मैं यह सब सत्य कह रहा हूँ, मेरी बात अन्यथा नहीं होती है। इसे सुनकर राजा वीरसेन ने इसे सत्य समझकर अपने पुत्र कामसेन को, जो चन्द्रावली का पति था, बुलवाया और कहा—पुत्र! उदयसिंह को बाँध लो! यह सुनकर कामसेन ने तीक्ष्ण विष भोजन में डालकर उदयसिंह को दिया। यह समाचार पाकर चन्द्रावली शीघ्र भाई के पास जाकर उस पात्र को लेकर वहाँ से चली गई! क्रुद्ध होकर कामसेन ने अपनी पत्नी चन्द्रावली को बेंत की छड़ी से अत्यन्त पीड़ित किया। उस समय क्रुद्ध होकर उदयसिंह ने उसके दोनों हाथ-पाँव बाँध दिये। महाबली वीरसेन ने अपने पुत्र के बाँधे जाने पर उदयसिंह को बाँधने के लिए अन्य पुत्रों को आदेश दिया। उसी अवसर में उदयसिंह ने डोला लेकर अपने सैनिक शिविर में आकर शत्रुओं से घोर युद्ध किया। एक ओर दशसहस्र की सेना और दूसरी ओर तीन लाख सैनिक उस भीषण युद्ध में भाग ले रहे थे। वह रोमाञ्चकारी युद्ध अविराम गति से दिन-रात चल रहा था।४४-५३। शत्रु के एक लाख सैनिकों का निधन हुआ और एक सहस्र सैनिकों का उदयसिंह के भी निधन हुआ। जो अवशिष्ट रहे वे यादवों से भयभीत होकर भाग गये। अपने सैनिकों के पराजित हो जाने पर उन सातों पुत्रों ने अपने-अपने गजों पर बैठकर उदयसिंह को चारों ओर से घेर लिया। वीर उदयसिंह ने भी बिन्दुल पर बैठे हुए हाथियों के सिंहासन समेत उन्हें पृथ्वी पर धूल-धूसरित करते हुए उनके अस्त्रों को काटकर उन सबको बाँध लिया। इसे सुनकर सूर्य के अनन्य भक्त वीरसेन ने सौर (सूर्य द्वारा प्राप्त) अस्त्र से इनकी सेना को भस्म कर दिया और उसी अस्त्र के प्रयोग से घोड़े समेत उदयसिंह भी मूर्च्छित हो गये।५४-५७।

वीरसेनस्तु तं बद्ध्वा मोचयित्वा सुतान्वधूम् । स्वगेहमागतस्तूर्णं नानावाद्यान्यवादयत् ।।५८
हतशेषास्तदा वीराः कृष्णांशस्य ययुर्दिशः । हेतुं परिमलस्याग्रे सर्वमूचुस्तदादितः ।।५९
महीपतिं महाधूर्तं मत्वा राजाब्रवीदिदम् । गच्छ त्वं मलनापुत्र लक्षसैन्यसमन्वितः ।।६०
बद्ध्वा स्वभगिनीकान्तं स्वबन्धुं मोचयाशु वै । इति श्रुत्वा च स सुतो लक्षसेनासमन्वितः ।।६१
शीघ्रं गत्वा च नगरीं रुरोध बलवान्रुजा । युद्धी भूते बले तस्मिन्वीरसेनो नृपोत्तमः ।।
सौरमस्त्रमुपादाय दाहनार्थं समुद्यतः ।।६२
सज्जीभूते तदस्त्रे तु ब्रह्मानन्दो महाबलः । ब्रह्मास्त्रेणैव स शरं वारयामास वै रुषा ।।६३
दृष्ट्वा भयान्वितो भूपस्तमेव शरणं ययौ । ब्रह्मानन्दस्तु तं भूपं वचनं प्राह निर्भयः ।।६४
धूर्तवाक्येन हे भूपमद्बन्धुर्बाधितस्त्वया । अवध्या च सदा नारी त्वत्सुतस्तामताडयत् ।।
अतस्त्वं भगिनीयुक्तं स्वसुतं देहि मे नृप ।।६५
इति श्रुत्वा च नृपतिर्वचनं प्राह नम्रधीः । मत्सुता च गृहे नास्ति कामसेनं गृहाण भोः ।।६६
इत्युक्त्वा वीरसेनश्च सुतं चन्द्रावलीं तथा । दत्त्वा तस्मै प्रसन्नात्मा तत्प्रस्थानमकारयत् ।।६७
ब्रह्मानन्दोऽपि बलवान्कृष्णांशेन समन्वितः । सेनयाशीतिसाहस्त्र्या ययौ सार्द्धं महावतीम् ।।६८
मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्रेमविह्वलकम्पिता । स्नापयित्वाश्रुधाराभिर्द्विजातिभ्यो ददौ धनम् ।।६९

उस समय वीरसेन ने उन्हें बाँधकर अपने पुत्रों समेत वधू (बहू) को भी मुक्त कराकर अपने घर में अनेक भाँति के वाद्यों द्वारा महोत्सव मनाया। उदयसिंह के शेष वीर सामन्त इधर-उधर भाग गये। उनमें से कुछ लोगों ने परिमल के पास पहुँचकर आदि से अन्त तक सभी वृत्तान्त कहा—महीपति (पृथिवीराज) को महाधूर्त जानकर राजा ने ब्रह्मानन्द से कहा—एक लाख सेना समेत तुम शीघ्र वहाँ जाओ। अपनी भगिनी के पति को बाँधकर अपने भाई को मुक्त कराओ। इसे सुनकर एक लाख सैनिकों को लेकर ब्रह्मानन्द ने वहाँ पहुँचकर अत्यन्त क्रोधादेश में उस नगरी को चारों ओर से घेर लिया। पश्चात् युद्धस्थल में आये हुए उनके सैनिकों को बाँध लिया। सेना के आबद्ध हो जाने पर राजा वीरसेन ने अपने सौर अस्त्र के प्रयोग से उन्हें भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके उस अस्त्र द्वारा प्रयोग करते समय ब्रह्मानन्द ने अपने ब्रह्मास्त्र से उसे शांत करते हुए अपना क्रुद्ध स्वरूप प्रकट किया। उसे देखकर राजा वीरसेन ने अत्यन्त भयभीत होकर उन्हीं की शरण प्राप्त की। निर्भय होकर ब्रह्मानन्द ने उनसे कहा।५८-६४। नृप ! एक धूर्त के कहने से मेरे भाई को बाँध लिया, और स्त्रियाँ सदैव अवध्य होती हैं, किन्तु तुम्हारे पुत्र ने इसका उल्लघंन कर उसे (भगिनी को) अत्यन्त ताड़ना दी। इसलिए आप अपनी पुत्री समेत उस कामसेन पुत्र को मेरे अधीन कीजिये। इसे सुनकर राजा ने नम्रतापूर्वक कहा—मेरी कन्या इस समय घर में नहीं है, किन्तु कामसेन उपस्थित है। इतना कहकर वीरसेन ने कामसेन समेत चन्द्रावली को उन्हें सौंप दिया, पश्चात् प्रसन्नतापूर्ण होकर उनका प्रस्थान भी कराया। बलवान् ब्रह्मानन्द ने उदयसिंह और अस्सी सहस्र सेना साथ लेकर महावती (महोबा) को प्रस्थान किया।६५-६८। घर पहुँचने पर रानी मलना ने अपने पुत्र को देखकर प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गई कि अपने आँसुओं से उन्हें स्नान कराकर

इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । शृण्वतां कलिपापघ्नं कथयिष्यामि वै पुनः ।।७०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्विंशाब्दकं प्राप्ते कृष्णांशे बलशालिनि । इषशुक्लदशम्यां च कृतो राज्ञा महोत्सवः ।।१
भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्दत्त्वा तेभ्यो हि दक्षिणाः । स्वभृत्येभ्यस्तथा दित्तं यथायोग्यं क्रमाद्ददौ ।।२
कार्तिक्यां शुभयुक्तायां कृष्णांशो बलसंयुतः । इन्दुलेन च संयुक्तो देवसिंहेन संयुतः ।।३
अयुतैः स्वर्णद्रव्यैश्च शूरैर्दशसहस्रकैः । ययौ बर्हिष्मतीस्थाने नानाभूपसमन्विते ।।४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चित्ररेखा समागता । वृता सप्तालिभिर्देवी चित्रगुप्तप्रपूजिनी ।।५
गङ्गामध्ये महारम्यं यानं मायामयं तया । कृतं कौतूहलयुतं बहुसम्पत्समन्वितम् ।।६
आगतास्तत्र राजानो नाना तद्दर्शनोत्सुकाः । तदोदयो देवयुतो जयन्तेन समन्वितः ।।
शतशूरैश्च सहितो दर्शनार्थमुपाययौ ।।७

ब्राह्मणों को धन वितरण किया। विप्र ! इस प्रकार तुम्हें कृष्णांश (उदयसिंह) का शुभचरित सुना दिया गया, और मैं उस पापहारी चरित को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ६९-७०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२२।

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—बलशाली उदयसिंह की चौबीसवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ होने पर राजा ने आश्विन शुक्ल दशमी (विजया दशमी) के दिन महान् उत्सव किया । उस उत्सव में ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा प्रदानकर अत्यन्त तृप्त करने के उपरांत अपने राज्य के सेवकों को भी यथायोग्य पुरस्कार रूप धन प्रदान किया ।कार्तिक मास के शुभ योग के दिन वीर उदयसिंह ने इन्दुल (इंदल) और देवसिंह (डेवा) को साथ लेकर दश सहस्र सुवर्ण एवं दशसहस्र सेना समेत बर्हिष्मती नामक नगरी के लिए प्रस्थान किया, जहाँ अनेक राजागण आकर पहले से ही निवास कर रहे थे। उसी बीच वहाँ चित्रलेखा आयी जो सात सखियों के साथ चित्रगुप्त की पूजा करती थी। उसने गंगा के मध्य में एक अत्यन्त सुन्दर यान अपनी माया द्वारा निर्मित कर कौतूहल प्रदर्शनार्थ रखा था, जिसमें सम्पत् भी लगा दिया गया था। उस कौतूहल को देखने के लिए अनेक देश के भूपवृन्द वहाँ आकर रह रहे थे। उस समय उदयसिंह भी देवसिंह और इन्दुल समेत अपने सौ शूर वीरों के साथ उसे देखने के लिए वहाँ आये थे। १-७। उस जल समूह में राजा बाह्लीक की परम सुन्दरी चित्ररेखा

चित्ररेखा महारम्या वाह्लीकनृपतेः सुता । ददर्श सुन्दरं कान्तमिन्दुलं शशिवन्मुखम् ॥
येन स्वप्नान्तरे रम्यं सार्द्धं भुक्तं तया सुखम् ॥८
तमाह्लादसुतं ज्ञात्वा साभिनन्दनदेहजा । कृत्वा मोहमयं जालं शुकभूतं तदेन्दुलम् ॥९
हृत्वा स्वयम्बरे रम्ये परमानन्दमाययौ । पुनराहृत्य तां मायां स्वगेहाय ययौ मुदा ॥१०
कृष्णांशस्तु तदा बुद्ध्वा न ददर्श स्वकं शिशुम् । देवसिंहं बोधयित्वा पप्रच्छ क्व गतः शिशुः ॥११
कालज्ञो देवसिंहोऽपि मोहितश्चित्रमायया । न ज्ञातस्तेन वै बालः क्व गतः केन वा हृतः ॥१२
विस्मितं देवसिंहं च दृष्ट्वा कृष्णांशको बली । रुरोदोच्चैस्तदा गाढं चित्रमायाविमोहितः ॥१३
श्रुत्वा तु रोदनं तस्य खलस्तत्र महीपतिः । ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा यत्राह्लादः स्वयं स्थितः ॥
रुदित्वा तत्र वै गाढं वचनं प्राह नम्रधीः ॥१४
उदयो नाम ते भ्राता मोहयित्वा मदेन[1] तौ । देवमिन्दुलमेवासौ हत्वा धारास्वरोपयत् ॥१५
प्रत्यक्षं न मया दृष्टं तेन वीरेण वै कृतम् । शतं स्वर्णं च मे दत्त्वा विनयेनावरोधितः ॥१६
देवसिंहस्ततो[2] बुद्ध्या न ज्ञातं तेन यत्कृतम् । इति श्रुत्वा तु वचनं निश्चयं नाधिगच्छति ॥१७
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तौ तौ वीरौ रोदने रतौ । तद्वियोगेन कृष्णांशः स्वदेहं त्यक्तुमुद्यतः ॥१८
आह्लादौ निश्चयं ज्ञात्वा भाषितं च महीपतेः । कृष्णांशं ताडयामास वैतसैश्चर्मकर्तनैः ॥१९

नामक पुत्री ने उस अत्यन्त सुन्दर इन्दुल को देखा, जिसके मुख की कान्ति चन्द्रमा की भाँति निर्मल एवं सुखप्रद दिखाई देती थी तथा स्वप्न में जिसने उसके साथ रमण का सुख प्रदान किया था। अभिनंदन की पुत्री ने उन्हें आल्हाद (आल्हा) का पुत्र जानकर उन्हें शुक (तोता) बनाकर एक माया जाल (माया द्वारा रचित पींजड़े) में रख लिया। उस स्वयम्बर में उनका अपहरण करने से उसे परमानन्द की प्राप्ति हुई। पश्चात् अपने माया दृश्य को समाप्तकर वह प्रसन्नता पूर्ण होती हुई अपने घर चली गई। जागने पर उदयसिंह ने अपने बच्चे को न देखकर देवसिंह को जगाकर पूँछा—लड़का कहाँ चला गया। यद्यपि देवसिंह प्रत्येक समय की बात जानते थे, किन्तु उस समय चित्ररेखा की माया से मोहित होने के कारण वे स्वयं न जान सके कि लड़का कहाँ गया है और उसने उसका अपहरण किया है। उनके कुछ उत्तर न देने तथा उन्हें स्वयं विस्मय प्रकट करते देखकर उदयसिंह उस चित्रमाया से मुग्ध होने के नाते उच्च स्वर से अत्यन्त गाढ़रुदन करने लगे। उन्हें रुदन करते हुए सुनकर दुष्ट महीपति (माहिल) ने प्रसन्न होकर आह्लाद (आल्हा) के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उनके सामने गाढ़रुदन करते हुए नम्रता पूर्वक कहा।८-१४। तुम्हारे भाई उदयसिंह ने देवसिंह तथा इन्दुल को अत्यन्त मद प्रद (नशीली) वस्तु खिलाकर मूर्च्छित कर दिया था। पश्चात् (उसी नशे में) इन्दुल को मृतक करके गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। उस वीर ने जो कुछ किया, मैंने वहाँ अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है। उसने मुझे नम्रता पूर्वक सौ सुवर्ण मुद्रा प्रदानकर कहीं भी कहने से रोक दिया है, और पश्चात् चैतन्य होने पर देवसिंह भी अपनी बुद्धि कौशल से, उसने जो कुछ किया है, नहीं जान सके। उनके इतना कहने पर भी आल्हा (आह्लाद) को निश्चय नहीं हो रहा था, परन्तु, उसी समय रुदन करते हुए वे दोनों वीर भी वहाँ पहुँच

---

१. मादकद्रव्येणेत्यर्थः। २. अहमिति शेषः।

तस्य माता तथा पत्नी भगिनी प्रेमदुःखिताः । आह्लादं बोधयामासुर्धूर्तमायाविमोहितम् ॥
न बोधितस्तदा वीरश्चित्रमायाविमोहितः ॥२०
तदा पुष्पवती देवी स्वपतिं भ्रातृपीडितम् । दृष्ट्वा तत्र गता शीघ्रं पतिदुःखेन दुःखिता ॥२१
विनापराधं कृष्णांशो महानिन्दामवाप्तवान् । तदा वेदविदो विप्रा आह्लादं प्राहुरूर्जितम् ॥२२
वधस्त्यागः समो ज्ञेयो योग्यं बुद्ध्या विचारय । इत्युक्तः स तुरीयात्मा पुत्रशोकेन दुःखितः ॥२३
चाण्डालांश्च समाहूय बद्ध्वा तं पुत्रघातिनम् । दत्त्वा तेभ्यः सपत्नीकं वधं कुरुत मा चिरम् ॥२४
अस्य नेत्रे समुत्पाट्य मां दर्शयत संयुताः । इति श्रुत्वा गतास्ते वै गहनं व्याघ्रसेवितम् ॥२५
देवसिंहस्ततो गत्वा दत्त्वा तेभ्यो महद्धनम् । सम्प्राप्य दम्पती वीरश्चाण्डालेभ्यो वनं ययौ ॥२६
बलखानेस्तु या पत्नी गजमुक्ता पतिव्रता । दम्पती पालयामास गुहागेहे मुदा युता ॥२७
चाण्डालास्ते तु सङ्गत्य मृगनेत्रे च तं[1] ददुः । देवसिंहस्तदागत्य क्रोधात्मा च तमब्रवीत् ॥
धिक्त्वां पापं दुराचारं त्वया मे हिंसितः सखा ॥२८
जीवितस्त्वत्सुतो भूमौ तदन्वेषणहेतवे । यास्यामि विविधान्राष्ट्रान्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

गये । भ्रातृपुत्र (भतीजे) के वियोग से उदयसिंह उस समय अपनी शरीर का त्याग करने को तत्पर हो गये । उनकी उस अवस्था को देखकर आह्लाद (आल्हा) को महीपति (माहिल) की बातों का विश्वास हो गया । क्रुद्ध होकर उन्होंने वेत के दंडे से, जिसमें चर्म लगा रहता है, उदयसिंह को अत्यन्त पीटना आरम्भ किया । उनकी माता, पत्नी, एवं भगिनी ये सभी लोग प्रेम के कारण अत्यन्त दुःखी होकर उस धूर्त की माया से मुग्ध हुए आह्लाद (आल्हा) को समझाने लगे, किन्तु चित्ररेखा की माया से मोहित होने के नाते कुछ भी ज्ञान न हो सका । उस समय पुष्पवती देवी अपने पति को भाई द्वारा पीड़ित देखकर वहाँ शीघ्र पहुँचकर पति के दुःख से दुखी होने लगी । बिना अपराध के उदयसिंह की बड़ी निन्दा हुई । उसी समय वैदिक विद्वानों ने आह्लाद (आल्हा) से कहा—वध और त्याग दोनों समान बताये गये हैं, जो योग्य हो, आप स्वयं विचार कर लें । इतना कहने पर उन शुद्धात्मा आह्लाद (आल्हा) ने पुत्र शोक से दुःखी होकर चांडालों को बुलाकर उन्हें पुत्रहन्ता उदयसिंह को बाँधकर सौंप दिया पश्चात् उन लोगों से कहा—पत्नी समेत इन दोनों (स्त्री-पुरुष) का शीघ्र वध करो और इन दोनों के नेत्र लाकर मुझे अवश्य दिखाना इसे सुनकर वे चाण्डाल (खलासी) उन्हें लेकर अत्यन्त घोर जंगल प्रदेश में चले गये, जहाँ वाघ आदि भीषण हिंसक पशुगण रहते थे । उस समय देवसिंह वहाँ जाकर उन चाण्डालों को अधिक धन प्रदान कर पत्नी समेत उदयसिंह को साथ लेकर बल-खानि के घर चले गये। पतिव्रता गजमुक्ता (गजमोतिना) ने उन दोनों को अपने घर में छिपा कर रख लिया, और यथावत् पालन-पोषण करना आरम्भ किया। चाण्डालों ने मृग के नेत्र लाकर आह्लाद (आल्हा) को प्रदान किया। उस समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर देवसिंह ने उस से कहा—'तुम्हारे जैसे दुराचारी पापी को धिक्कार है, तुमने मेरे सखा का वध कराया है।१५-२८। मैं सत्य और अत्यन्त सत्य कह रहा हूँ तुम्हारा पुत्र जीवित है, उसके अन्वेषण के लिए मैं अनेक राजाओं के

---

१. तस्मा इत्यर्थः ।

इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः शिरीषाख्यपुरं शुभम् ॥२९
गजमुक्तामनुज्ञाप्य दम्पती प्राप्य निर्भयः । मयूरनगरं रम्यं निशि घोरं समाययौ ॥३०
मकरन्दस्तु बलवाञ्ज्ञात्वा तत्सर्वकारणम् । स्वसुः पतिं च भगिनीं स्वान्ते प्रेम्णा न्यवासयत् ॥३१
धर्ममाराधयामास यज्ञैर्नानाविधैः स्तवैः । प्रसन्नो धर्मराजश्च मकरन्दमुवाच ह ॥३२
अभिनन्दनभूपस्य सुता चित्रप्रपूजिनी । नाट्यात्मजा केसरिणी तत्सखी दम्भकोविदा ॥३३
केसरिण्या गुरुर्ज्ञेयः कुतुको योगरूपधृक् । तेन प्रसारिता माया शतयोजनमन्तरा ॥३४
शत्रुभिर्दुर्गमा भूमिः शत्रुपाषाणकारिणी । चित्रगुप्तप्रभावेण निर्भयो भूपतिः स्वयम् ॥३५
चित्ररेखा भूपसुता जयन्तस्तु तया हृतः । नररूपधरो रात्रौ शुकरूपधरो दिने ॥
इन्दुलश्च स्थितो दुःखी चित्रमायाविमोहितः ॥३६
कृष्णांशश्च भवान्देवः सहितः सूर्यवर्मणा । मया दत्तानि यन्त्राणि गृहीत्वा ते मुदा युताः ॥
चित्ररेखां समागत्य नृत्यादींस्तैः समं कुरु ॥३७
मोहयित्वा च तां देवीं पठित्वा तन्मतं शुभम् । पुनरागच्छ वै शीघ्रं सैन्ययोगं पुनः कुरु ॥३८
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्स राजा विस्मयान्वितः । कृष्णांशं वर्णयामास यथा धर्मेण भाषितम् ॥३९
फाल्गुने मासि संप्राप्ते त्रयस्ते योगिरूपिणः । ययुरिन्द्रनगरं रम्यं नृत्यगीतविशारदाः ॥४०
मृदङ्गाङ्कस्तदा देवो मकरन्दो विपञ्चिमान् । नृत्यगानकरो वीरः कृष्णांशः सर्वमोहनः ॥४१

यहाँ जा रहा हूँ। इतना कहकर उस वीर ने शिरीष (सिरसा) नगरी के लिए प्रस्थान किया। गजमुक्ता (गजमोतिना) से आज्ञा प्राप्तकर उन (स्त्री-पुरुष) को साथ लेकर उसे अंधेरी रात के आधीरात के समय मयूर नगर पहुँच गये। वहाँ बलवान् मकरन्द ने समस्त कारणों को भली भाँति समझकर अपनी भगिनी तथा उदयसिंह को सप्रेम अन्तःपुर में निवास कराया। पश्चात् मकरन्द ने नाना भाँति के यज्ञ द्वारा धर्म की आराधना की। प्रसन्न होकर धर्मराज ने मकरन्द से कहा—राजा अभिनन्दन की पुत्री चित्ररेखा जो चित्रगुप्त की उपासना करती है, केशरिणी नामक उसकी सखी है जो नाट्य की पुत्री एवं दम्भ की विदुषी है उसी केशरिणी का एक कुतुक नामक गुरु है, जो योगरूप धारण करता रहता है, उसी ने सौ योजन तक अपनी माया का विस्तार किया, जिसकी भूमि शत्रुओं के लिए एक अत्यन्त दुर्गम है और वह माया भूमि शत्रु को पाषाण बना देती है। चित्रगुप्त के प्रभाव से वह राजा अत्यन्त निर्भीक रहता है।२९-३५। उसी राजा की चित्ररेखा नामक पुत्री ने (इन्दुल) का अपहरण किया है, वह उसे रात्रि में पुरुष के रूप में और दिन में शुक तोते के रूप में रखती है। उस चित्रमाया से मोहित होकर इन्दुल वहाँ अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रहा है, इसलिए उदयसिंह आप देवसिंह और सूर्यवर्मा सब लोग मिलकर मेरे दिये हुए मन्त्र को लेकर चित्ररेखा के पास जाओ। वहाँ नृत्य आदि द्वारा उसे मोहितकर उस कुमारी से उसकी विद्या का अध्ययन कर चले आवो। उपरांत सेनाओं समेत वहाँ पर युद्ध करो। इतना कहकर देव धर्मराज अन्तर्हित हो गये और जागकर राजा अत्यन्त विस्मित होने लगे। पश्चात् उन्होंने धर्मराज के बताये हुए सभी उपायों समेत उनकी आदि से अन्त तक सभी बातें उदयसिंह से बतायी। फाल्गुन मास के आरम्भ में नृत्य-गान निपुण वे तीनों योगी का वेष धारणकर रमणीक इन्द्रगृह नगर में राजा गजपति की राजसभा में पहुँचकर देवसिंह ने मृदङ्ग, मकरन्द ने सारङ्गी बजाना आरम्भ किया और उदयसिंह

मोहयित्वा च नगरं तथा गजपतिं नृपम् । सकुलं च ससैन्यं च तुष्टो राजाब्रवीदिदम् ॥४२
वाञ्छितं ब्रूहि मे योगिन्स श्रुत्वा प्राह नम्रधीः । देहि मे सूर्यवर्माणं स्वसुतं कार्यहेतवे ॥४३
कृत्वा कार्यमहं शीघ्रं पुनर्दास्यामि ते सुतम् । विधिना निर्मितो धर्मो राजभिर्विश्वरक्षणम् ॥४४
इति श्रुत्वा गजपतिर्दत्त्वा तेभ्यः स्वकं सुतम् । स्वराज्ञीमाययौ राजा गतास्ते कार्यतत्पराः ॥४५
पक्षमात्रेण बाह्लीकं नगरं प्रययुर्मुदा । धर्मदत्तानि यन्त्राणि गृहीत्वा शत्रुमन्दिरम् ॥४६
आययुर्लास्यतत्त्वज्ञा नृपमोहनतत्पराः । सर्वे च नागराः प्राप्तास्तत्र क्षत्रगणा मुदा ॥४७
मोहितास्तैश्च ते सर्वे गीतनृत्यविशारदैः । महद्धनं ददौ तेभ्यस्तोमरान्वयसम्भवाः ॥४८
तानादाय पुनर्भूपः स्वगेहमभिनन्दनः । आययौ गेहनृत्यार्थी कारयामास वै पुनः ॥४९
मकरन्दस्तदा वीणां मृदङ्गं भीष्मजो दली । मञ्जीरं सूर्यवर्मा च कृष्णांशो गाननृत्यकम् ॥५०
गृहीत्वा मोदयामासुर्नारीवृन्दा महोत्तमम् । चित्ररेखा स्वयं दृष्ट्वा तेषां मोहनहेतवे ॥५१
मायां निर्वापयामास निष्फला साऽभवत्क्षणात् । मोहितातैश्च सा देवी तानुवाच मुदान्विता ॥५२
वाञ्छितं ब्रूहि मे वीर कृष्णांशश्चाह तां वधूम् । शुकं देहि च मे देहि नो चेच्छापं ददाम्यहम् ॥५३
इति श्रुत्वा चित्ररेखा शोकव्याकुलचेतना । कृष्णांशं योगिनं प्राह सत्यं कथय को भवान् ॥५४

सर्वमोहक नृत्य-गान करने लगे । अपनी कला कुशलता से उन लोगों ने वहाँ के नागरिकों एवं राजा को एकदम मोहित कर दिया । अपने कुल कुटुम्ब एवं सेना समेत प्रसन्न होकर राजा से कहा—योगिन् ! आप मनइच्छित वस्तु बताइये, क्या चाहते हैं । इसे सुनकर उन लोगों ने नम्रता पूर्वक कहा—आप अपने पुत्र सूर्यवर्मा को (कुछ दिन के लिए) मुझे दे दीजिये, मुझे कुछ विशेष कार्य करना है ।३६-४३। कार्य हो जाने पर मैं आपके पुत्र को शीघ्र लौटा दूँगा । क्योंकि ब्रह्मा ने विश्व की रक्षा के लिए ही राजाओं का धर्म बनाया है ऐसा सुनकर राजा ने उन्हें अपना पुत्र सौंप दिया, पश्चात् वे अपने अन्तः पुर में चले गये और इन लोगों ने अपना कार्यारम्भ किया । पन्द्रह दिन की यात्रा करके ये लोग बाह्लीक नगर पहुँचे, वहाँ धर्मराज द्वारा प्रदत्त यंत्र को लेकर प्रसन्नता मग्न होते हुए शत्रु के महल में प्रविष्ट हो गये, जहाँ सभी नागरिक क्षत्रीगण उपस्थित थे । इन लोगों ने अपनी नृत्य-गायन एवं वाद्य की कलाओं द्वारा वहाँ की उपस्थित जनता समेत सभी क्षत्रियगण को अत्यन्त मोहित किया । उससे तोमर कुलभूषण क्षत्रीगण ने प्रसन्नता विभोर होकर इन्हें अत्यन्त धन प्रदान किया। पश्चात् वे राजा अभिनन्दन के महल में नृत्य करने के लिए गये। वहाँ मकरन्द ने वीणा और देवसिंह ने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया तथा सूर्यवर्मा मजीरा बजा रहे थे एवं उदयसिंह अपने नृत्य-गान द्वारा वहाँ स्थित राजा और रानियों को मोहितकर रहे थे। इनकी कलाओं से वहाँ का नारीवृन्द अत्यन्त मुग्ध हो गया । उसी समूह में चित्ररेखा भी उपस्थित थी जिसने इन लोगों के मोहनार्थ अनेक भाँति की माया का निर्माण अनेक बार भी किया, किन्तु वह उसी समय निष्फल हो गयी । मोहित होकर उसने उन लोगों से कहा वीर ! आप क्या जानते हैं, कहिये ! उदयसिंह ने उस स्त्री से कहा—देवि ! उस शुक (तोते) को मुझे दे दीजिये नहीं तो मैं शाप प्रदान करूँगा। इसे सुनकर चिंतित होती हुई चित्ररेखा ने योगियों से कहा—सत्य कहिये, आप कौन

इन्द्राद्या देवतास्सर्वे मया निर्मितया यया । मोहितः क्षणमात्रेण न भवान्मोहितो मया ।।५५
देवो नारायणो वापि धर्मो वापि शिवः स्वयम् । इत्युक्तस्स तु कृष्णांशो वचनं प्राह निर्भयः ।।५६
उदयो नाम मे राज्ञि देवसिंहोऽयमुत्तमः । मच्छ्यालो मकरन्दोऽयं सूर्यवर्मा तथाविधः ।।५७
इन्दुलस्य वियोगेन वयं योगित्वमागताः । मद्गुरुश्च तथोन्मादी सङ्कुलस्तद्वियोगतः ।।५८
शुकं देहि महामाये इन्दुलं देहि वा यदि । इत्युक्त्वाशु रुरोदोच्चैर्हा इन्दुल महाबल ।।५९
दर्शनं देहि मे शीघ्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । इत्येवं वादिनं वीरं चित्ररेखा महोत्तमा ।।६०
कृत्वा लज्जां पुनः प्राह मां च पुत्रं गृहाण भोः । कृत्वा नरमयं रूपं स्वकान्तं सर्वसुन्दरम् ।।६१
पतित्वा तच्चरणयो रुरोदोच्चैश्च दम्पती । तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा कृष्णांशो हर्षसंयुतः ।।६२
इन्दुलेनैव लिखितं गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । धर्मयन्त्रप्रभावेण मयूरनगरं ययौ ।।६३
सूर्यवर्मा गतो गेहं मकरन्देन मानितः । देवसिंहस्तु बलवान्गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् ।।६४
ययौ मनोरथारूढो यत्राह्लादः शुचान्वितः । को भवानिति तं प्राह महोन्मादीव दृश्यते ।।६५
देवसिंहं च मां विद्धि त्वपुत्रान्वेषणे रतम् । पत्रं गृहाण भो वीर लिखितं त्वत्सुतेन वै ।।६६
इति श्रुत्वा स आह्लादश्चाह्लादं परमाप्तवान् । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं यथाविधि सुतो हृतः ।।६७
महीपतिं समाहूय वचनं प्राह नम्रधीः । सत्यं कथय मे भूप कृष्णांशेन हृतस्सुतः ।।६८

हैं ।४४-५४। क्योंकि मेरी जिस माया द्वारा इन्द्रादि देवगण क्षणमात्र में मुग्ध हो जाते हैं, वह आप में निष्फल हो गई, आप मोहित न हो सके, अतः आप नारायण देव, धर्मराज, अथवा स्वयं शिव देव हैं। उसके इतना कहने पर उदयसिंह ने कहा। देवि ! मेरा नाम उदयसिंह है, मेरे साथ में देवसिंह, मेरा साला मकरन्द और सूर्यवर्मा हैं। इन्दुल के वियोग में हम लोगों ने योगी का वेष धारण किया था। मेरे बड़े भाई आह्लाद (आल्हा) को उसके वियोग में उन्माद हो गया है, अतः देवि ! शुक (तोते) अथवा इन्दुल को शीघ्र मुझे सौंप दो। इतना कहकर वे मुक्त कंठ से रुदन करने लगे—हा महाबल, इन्दुल ! मुझे शीघ्र दर्शन प्रदान करो, अन्यथा मैं प्राण त्यागकर रहा हूँ। इसे सुनकर सुन्दरी चित्ररेखा लज्जा का भाव प्रदर्शित करती हुई उनसे कही—पुत्र समेत मुझे भी ग्रहण करने की कृपा कीजिये। इतना कहकर उसने इन्दुल का सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष रूप बनाया। पश्चात् वे दम्पती उनके चरण पर गिरकर उच्च स्वर से रुदन करने लगे। हर्षमग्न होकर उदयसिंह ने उन्हें आश्वासन पूर्वक इन्दुल से एक पत्र लिखवाया। उसे लेकर वे उसी यंत्र के प्रभाव द्वारा मयूर नगर पहुँच गये ।५५-६३। पश्चात् मकरन्द से सम्मानित होकर सूर्यवर्मा अपने घर चले गये। बलवान् देवसिंह ने उस पत्र को लेकर मनोरथ नामक घोड़े पर बैठकर महाबली (महोवा) के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे आल्हाद (आल्हा) के पास गये। वहाँ पुत्र शोक से व्यथित होकर उन्मादी की भाँति बैठे हुए आल्हाद (आल्हा) ने उन्हें देखकर कहा—आप कौन हैं, उन्मादी की भाँति घूम रहे हैं। उन्होंने कहा—मैं आप के पुत्र का अन्वेषण करने वाला देवसिंह हूँ। वीर ! इस पत्र को ग्रहण कीजिये, जिसे स्वयं आप के पुत्र ने लिखा है। इसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) को परम आनन्द की प्राप्ति हुई। जिस प्रकार उनके पुत्र का अपहरण हुआ था, उन्होंने सभी कारणों के जानने की चेष्टा की ।६४-६८। पश्चात् महीपति ! (माहिल) को बुलवाकर नम्रता पूर्वक उन्होंने उनसे कहा—

सहोवाच श्रुतं वीर कृष्णांशेन यथा हतः । इत्युक्त्वा तु विहस्याशु कार्यसिद्धिमुपागतः ॥६९
आह्लादः क्रोधताम्राक्षः केशानाकृष्य तं मुदा । वेतसैस्ताडयामास स्वहस्तेन पुनः पुनः ॥७०
श्रुत्वा परिमलो राजा सपत्नीकस्समागतः । बहुधा मोदयामास रामांशं बहुरूपिणम् ॥७१
अरे धूर्त महापापिन्मद्बन्धुर्घातितस्त्वया । गतो यत्र मम प्राणस्सकुलं त्वां नयाम्यहम् ॥७२
तदा महीपतिर्दुःखी निःश्वासो मौनमास्थितः । तदघं हृदि संस्थाप्य महापीडामवाप्तवान् ॥७३
एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलखानिः समागतः । विमुच्य मातुलं धूर्तं ज्येष्ठबन्धुमसान्त्वयत् ॥७४
स चकार विवाहार्थमुद्योगं भ्रातृजस्य वै । नेत्रसिंहो नृपः प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७५
तारकश्च तमायातस्सार्द्धं शूरसहस्रकैः । वीरसेनः स्वयं प्राप्तः शूरैः सार्द्धं नवाऽयुतैः ॥७६
तालनश्च ततः प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः । सूर्यवर्मा तथा प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७७
ब्रह्मानन्दः स्वयं प्राप्तस्त्रिलक्षबलसंयुतः । आह्लादश्च शुचाविष्टो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७८
हा बन्धो क्व गतस्त्वं वै मां त्यक्त्वा पुरुषाधमम् । इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः शोकव्याकुलचेतनः ॥७९
बलखानिस्तु बलवाल्लँक्षसैन्यसमन्वितः । देवसिंहेन सहितो बाह्लीकं प्रति सोऽगमत् ॥८०
अहोरात्रप्रमाणेन मासैकः पथि वै गतः। ज्येष्ठकृष्णस्य पञ्चम्यां बाह्लीकग्राममाप्तवान् ॥
व्यूहः स्वकीयसैन्यानां रचितो बलखानिना ॥८१

राजन् ! जिस प्रकार उदयसिंह द्वारा मेरे पुत्र का अपहरण हुआ है, आप सत्य बताने की कृपा करें। उन्होंने कहा—वीर ! उदयसिंह ने जिस प्रकार उसका वध किया मैंने सुना था और आप को बताया भी था। इतना कहकर उन्होंने हँसते हुए कहा--'मेरा कार्य तो सिद्ध हो गया।' इतना सुनते ही आह्लाद (आल्हा) के दोनों नेत्र क्रुद्ध होने के नाते ताँबे की भाँति रक्त वर्ण के हो गये। उन्होंने बेत की छड़ी लेकर स्वयं अपने हाथ से उन पर आघात करना आरम्भ किया। उसे सुनकर पत्नी समेत राजा परिमल ने वहाँ आकर रामांश एवं अनेकरूप धारी आह्लाद (आल्हा) को प्रबोधित (समझाने) करने लगे। क्रुद्ध होकर दण्डित करते समय आह्लाद (आल्हा) उससे कह रहे थे—अरे धूर्त महापापिन् ! तुमने मेरे भाई का निधन कराया है, इसलिए वह मेरा प्राण जहाँ गया है, उसी स्थान में मैं तुम्हें सकुटुम्ब भेज रहा हूँ। उस समय महीपति (माहिल) भी मौन होकर दीर्घ निश्वास लेते हुए अपने हृदय में किये हुए अपराध के स्मरण पूर्वक उस महापीडा का अनुभव कर रहे थे। उसी बलखानि (मलखान) ने आकर उन मातुल (मामा) को अपने बड़े भाई द्वारा वध किये जाने से मुक्त कराया। पश्चात् अपने भतीजे के विवाह की तैयारी करने लगे। उस आयोजन में एक लाख सैनिक समेत नेत्रसिंह डेढ़ सहस्र शूरवीरों समेत तारक (ताहर), साढ़े नब्बे सहस्र सेना लेकर वीरसेन एक लाख सेना लेकर तालन, एक लाख सैनिक समेत सूर्य वर्मा तीन लाख सैनिक समेत ब्रह्मानन्द और अत्यन्त चिंतित अवस्था में आह्लाद (आल्हा) भी एक लाख सैनिकों समेत विलाप करते हुए चल रहे थे—हा बंधो ! मुझ नीच पुरुष को छोड़कर तुम कहाँ चले गये। उनकी चेतना भी कभी-कभी लुप्त हो जाती थी। बलवान् बलखानि (मलखान) ने भी देवसिंह के साथ में अपने एक लाख सैनिकों समेत बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया। दिन-रात की यात्रा करते हुए वे सब वीरगण एक मास में वाह्लीक नगर पहुँचे। उस दिन ज्येष्ठ कृष्ण की पञ्चमी थी।६९-८१। वहाँ पहुँचने पर

एको रथः स्थितो युद्धे तत्पश्चात्संस्थिता गजाः । पञ्चाश्च क्रमात्तेषां वाजिनश्च शतंशतम् ॥८२
तेषां पश्चात्क्रमाज्ज्ञेयाः पत्तयो दश संस्थिताः । एका सेना च सा ज्ञेया तत्प्रमाणं ब्रवीम्यहम् ॥८३
एको रथो गजास्सर्वे शतार्द्धं तु हयास्तु ये । सेनायां पञ्चसाहस्राः शतघ्न्यस्तु तथा स्मृताः ॥८४
पञ्चायुतानि सेनायां सर्वे पदचराः स्मृताः । एवंविधाश्च ताः सेना बलखानेश्च षोडश ॥८५
गजास्तु दशसाहस्रा मदमत्ताः पृथग्ययुः । युद्धेऽस्मिन्गणितं ह्येवं शूराः शत्रुप्रहारिणः ॥८६
अभिनन्दनभूपस्य म्लेच्छाः पैशाचधर्मिणः । त्रिलक्षाश्च हयारूढा एकलक्षाः शतघ्निपाः ॥८७
एकलक्षः पदचरा भुशुण्डीपरिघायुधाः । तोमरान्वयसंयुक्ताः क्षत्रियाः प्रयुतानि वै ॥
गजस्थास्तत्र सम्प्राप्ता यत्राह्लादमहाचमूः ॥८८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् । मदमत्ताश्च ते सर्वे निर्भया रणमाययुः ॥८९
सप्ताहोरात्रमभवद्युद्धं समरशालिनाम् । बाह्लीकस्यार्द्धसेना च क्षयं नीता च तैर्नृपैः ॥९०
एकलक्षं हताः सर्वे बलखानेश्च सैन्यपैः । हाहाभूते शत्रुसैन्ये भयभीते दिशो गते ॥
हर्षिता बलखान्याद्या जय दुर्गे वचोऽब्रुवन् ॥९१
दृष्ट्वा सैन्यविनाशं च राज्ञः सप्तकुमार । कौरवांशाश्च ते मुर्यत्र जातो महारणः ॥९२
महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकौ । सुनन्दश्च सुरानन्दः प्रनन्दः क्रमतो भवाः[1] ॥९३
गजस्थास्ते महावीरास्तोमरान्वयसम्भवाः । सेनां जघ्नुः शरैस्तीक्ष्णैर्बलखानेर्महात्मनः ॥९४

बलखानि (मलखान) ने व्यूह रचना आरम्भ किया । पहले रथ के सैनिक, गज, पचास घोड़े पश्चात् उनके पीछे दश-दश पदाति (पैदल) की सेना स्थित की गई । उस एक सेना का प्रमाण मैं बता रहा हूँ जिसमें रथ, गज, और पचास-पचास घोड़े थे—सेना में पाँच सहस्र तोपें, और पचास सहस्र पदाति (पैदल) सैनिक थे । इस प्रकार बलखानि (मलखान) की सोलह सेना थी, जिसमें दश सहस्र मदोन्मत्त गजराज पृथक्-स्थित किये गये थे । शत्रुओं पर आघात करने वाली उनकी सेना की इस प्रकार गणना कर दी गई । राजा अभिनन्दन की सेना की गणना इस प्रकार बतायी गयी है—पिशाचधर्मी म्लेच्छ तीन लाख की संख्या में अश्वारोही थे, एक लाख तोपें और एक लाख पदाति (पैदल) सैनिक, जो भुशुण्डी एवं परिघ अस्त्र से सुसज्जित थे । तोमर कुल के वीर क्षत्रीगण दश लाख की संख्या में गजों पर आसीन होकर रणस्थल में आह्लाद (आल्हा) की सेना के समीप पहुँच गये । दोनों सेनाओं का रोमाञ्चकारी एवं भीषण तुमुल युद्ध होने लगा । उन मदमत्त वीरों ने निर्भय होकर रणभेरी बजाना आरम्भ कर दिया, अविराम गति से दिन-रात होते हुए वह युद्ध सात दिन तक हुआ । वाह्लीक की आधी सेना और बलखानि (मलखान) की एक लाख सेना उस युद्ध में काम आई । शत्रु की सेना में हाय-हाय मच गया, भयभीत होकर वे लोग इधर-उधर भागने लगे और बलखानि (मलखान) आदि के सैनिक 'जयदुर्गे' के नारे लगाते हुए हर्षित हो रहे थे।८२-९१। अपनी सेनाओं को विनष्ट होते देखकर वे सातों राजकुमार, जो कौरवों के अंश से उत्पन्न थे, रण-क्षेत्र में पहुँच गये। महानन्द, नन्द, परानन्द, उपनन्द, सुनन्द, सुरानन्द और प्रनन्द उनके नाम थे, और तोमर कुल के वे भूषण गजराजों पर स्थित थे। अपने तीक्ष्ण वाणों के प्रहारों से बलखानि (मलखान) के

---

१. क्रमतो भवां येषां त ।

भयभीताश्च ते सर्वे बलखानिमुपाययुः । दृष्ट्वा सैन्यं पराभूतं बलखानिस्तदा रुषा ।।९५
अन्वधावत[1] वेगेन कपोतस्थो महाबलः । नन्दं प्रति तथा देवः परानन्दं च तालनः ।।९६
उपनन्दं सूर्यवर्मा सुनन्दं प्रति तारकः । नेत्रसिंहः सुरानन्दं प्रनन्दं प्रति यादवः ।।९७
युध्यमानास्तु ते सर्वे परस्परवधैषिणः । दिनार्द्धमभवद्युद्धं बहुवीरप्रणाशनम् ।।९८
पराजितास्तु ते पुत्रा बाह्लीकस्य महाबलाः । त्यक्त्वा युद्धं ययुर्गेहं भीरुका बलखानिना ।।९९
दृष्ट्वा तेषां बलं घोरमभिनन्दनभूमिपः । कुतुकं च समाहूय नाटचां केसरिणीं तथा ।।
कथितं कारणं राज्ञा यथा जातः पराजयः ।।१००
इति श्रुत्वा तु कुतुकस्तमाश्वास्य महीपतिम् । स ध्यात्वा शाम्बरीं मायां महादेवेन निर्मिताम् ।।
तत्सैन्यं मोहयामास शिलाभूतमचेतनम् ।।१०१
तदा केसरिणी नाटचा अष्टौ बद्ध्वा महाबलान् । राज्ञः पार्श्वमुपागम्य दत्त्वा तान्गेहमाययौ ।।१०२
बाह्लीकश्च प्रसन्नात्मा बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः । लुण्ठित्वा द्रविणं तेषां कोशमध्ये समाक्षिपत् ।।१०३
देव्याश्च वरदानेन देवसिंहो भयातुरः । महावतीं समागम्य स्वर्णवत्यै न्यवेदयत् ।।१०४
ज्ञात्वा स्वर्णवती देवी सर्वविद्याविशारदा । श्येनीं मूर्तिं समास्थाय ययौ पुष्पवतीं प्रति ।।१०५
दृष्ट्वा तु दम्पती तत्र मकरन्दं गृहे स्थितौ । रुदित्वा कथयामास यथा प्राप्तः पराजयः ।।१०६

सैनिकों को धराशायी करने लगे । पश्चात् भयभीत होकर वे सैनिक बलखानि (मलखान) की शरण में पहुँच गये । अपनी सेना को पराजित होते देखकर बलखानि (मलखान) ने क्रुद्ध होकर कपोत (कबूतर) नामक घोड़े पर बैठकर उस रण क्षेत्र को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर नन्द के साथ देवसिंह, परानन्द के साथ तालन, उपनन्द से सूर्यवर्मा, सुनन्द से तारक (ताहर), सुरानन्द के साथ नेत्रसिंह, एवं प्रनन्द के साथ यादव (मकरन्द) का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । उन वीरों ने परस्पर एक दूसरे के वध की इच्छा करते हुए दोपहर तक घोर युद्ध किया । जिसमें अनेक वीरगण हताहत हुए । पश्चात् बाह्लीक के वे राजकुमार बलखानि (मलखान) के भय से भयभीत होकर युद्ध छोड़कर भाग निकले । राजा अभिनन्दन ने शत्रु की सेना को भीषण देखकर कुतुक तथा नाट्या केशरिणी को बुलवाकर उनसे अपने पराजय का सभी कारण यथावत् बताया । इसे सुनकर कुतुक ने राजा को आश्वासन देते हुए महादेव द्वारा निर्मित उस शांबरी माया के ध्यान पूर्वक शत्रुओं की सेनाओं को पाषाण बनाकर चेतनाहीन कर दिया । उस समय नाट्या केशरिणी ने महाबलवान् उन आठों वीरों को बाँधकर राजा को ले जाकर सौंप दिया और स्वयं अपने घर चली गई । बाह्लीक राज्याधिपति (अभिनन्दन) ने उन्हें हथकड़ी बेड़ी से दृढ़ आबद्धकर उनके कोष को लुटवाकर अपने कोष में संचित करा लिया । देवी द्वारा प्राप्त किये हुए वरदान के नाते देवसिंह शेष रह गये, जो उसकी माया से प्रभावित न हो सके थे, उन्होंने भयातुर होकर महावती (महोवा) में पहुँचकर स्वर्णवती (सोना) से सभी वृत्तान्त कहा। सम्पूर्ण विद्याओं की विदुषी स्वर्णवती (सोना) उसी समय वाज पक्षी का रूप धारणकर पुष्पवती के पास चली गई।९२-१०५। वहाँ मकरन्द के घर दम्पती (स्त्री-पुरुष) को देखकर रुदन करती हुई उनसे अपने पक्ष के पराजय का कारण बताया। उस समय

---

१. धावु गतिशुद्धचोरित्यात्मनेपदिनो रूपमेतत् ।

कृष्णांशस्तु तदा दुःखी मकरन्दं वचोऽब्रवीत् । गच्छ वीर मया सार्द्धं मद्गुरुर्बन्धनं गतः ।।१०७
कुलक्षये महत्पापं सुप्रोक्तं पूर्वसूरिभिः । निमग्नान्दुःखजलधौ समुद्धर मम प्रिय ।।१०८
इति श्रुत्वा तु तच्छ्यालः शूरायुतसमन्वितः । संन्यस्तवेषमास्थाय खड्गचर्मसमन्वितः ।।
कृष्णांशेन हयारूढो बाह्लीके त्वरितो ययौ ।।१०९
तदा स्वर्णवती देवी पुष्पवत्या समन्विता । श्येनीरूपमुपास्थाय ययौ यत्र महारणः ।।११०
स छित्त्वा शाम्बरीं मायां बोधयित्वा स्वसैनिकान् । रुरोध नगरीं तस्य बाह्लीकस्य महात्मनः ।।१११
दृष्ट्वा ताञ्छत्रुसंयुक्तान्कुतुकस्तु तया सह । पुनश्च शाम्बरीं मायां प्रेषयामास तान्प्रति ।।११२
छित्त्वा सा सकलां मायां बद्ध्वा तौ दैत्यसन्निभौ । नगरं दाहयामास तस्य भूपस्य मायया ।।११३
न दाहो दाहमापन्नो न भस्मी भस्मवान्खलु । स्वर्णवत्या कृतं चित्रं स्वयं देव्या न मायया ।।११४
तदा पुष्पवती देवी हत्वा केसरिणीं रुषा । तन्मांसैस्तर्पयामास गृध्रगोमायुवायसान् ।।११५
कुतुकं च तथाभूतं हत्वा स्वर्णवती स्वयम् । कारागारे लोहमये स्थितान्वीरानमोचयत् ।।११६
पुनरागम्य सा देवी तया सार्द्धं शुभानना । मकरन्दः स्थितो यत्र कृष्णांशेन समन्वितः ।।११७
ते सर्वे विस्मिताश्चासञ्ज्ञात्वा देव्या विमोहिताः । क्रोधवन्तो महावीरा युद्धाय समुपाययुः ।।११८
पुनश्चासीत्तयोर्युद्धं सेनयोरुभयोर्मृधे । बलखानिं महानन्दो नन्दश्चाह्लादमाययौ ।।११९

दुःखी होकर उदयसिंह ने मकरन्द से कहा—मेरे साथ चलने के लिए शीघ्र तैयारी करो, क्योंकि मेरे गुरु (आह्लाद) भी बंधन में फँस गये हैं। पूर्व के विद्वानों ने बताया है कि—कुलक्षय होने पर महापातक की प्राप्ति होती है ! अतः मेरे प्रिय ! दुःख सागर में डूबते हुए मेरा उद्धार करो । इतना सुनकर उनके साले ने दश सहस्र सैनिकों समेत संन्यासी का वेष धारणकर हाथ में खड्ग और चर्म (ढाल) लिए बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया । घोड़े पर बैठे हुए उदयसिंह उस सैन्य का संचालन शीघ्रता से कर रहे थे । उस समय स्वर्णवती (सोना) भी पुष्पवती समेत उसी बाज पक्षी के वेष में वहाँ के रणस्थल में पहुँच गई । उसने शाम्बरी माया के विध्वंस पूर्वक अपने सैनिकों को चेतना प्रदान की जो चैतन्य होने पर पुनः अभिनन्दन की राजधानी को चारों ओर से घेर लिये । शत्रु सेना को चैतन्य देखकर उनसे ऊपर कुतुक ने केशरिणी के साथ रहकर पुनः शाम्बरी माया (जादू) का जाल रचा । इन दोनों (युवतियों) ने पुनः उनकी माया के नाशपूर्वक उन दोनों दुष्टों को बाँध लिया पश्चात् उस राजधानी को भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु राजा की माया द्वारा सुरक्षित होने के नाते दाह में ज्वलन शक्ति रह न गई, अतः भस्म किये जाने पर वह भस्म न हो सका । क्योंकि उस माया का निर्माण स्वयं चित्ररेखा ने किया था । स्वर्णवती (सोना) के उस प्रयास को विफल होते देखकर पुष्पवती देवी ने क्रुद्ध होकर केशरिणी का निधन कर उसके मांसों से गीधों और स्यारों को तृप्त किया । उधर स्वर्णवती (सोना) ने भी कुतुक का हनन करके जेल में लोहे की शृंखलाओं से दृढ़ आबद्ध उन अपने वीरों को मुक्त किया ।१०६-११६। पश्चात् वह (स्वर्णवती) देवी पुष्पवती के साथ मकरन्द के पास आई, जहाँ वे उदयसिंह समेत स्थित थे । शत्रु के सैनिकों ने अपने को देवी द्वारा अत्यन्त मुग्ध जानकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुनः युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया । उन दोनों सैनिकों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें बलखानि (मलखान) के साथ महानन्द, आह्लाद से नंद,

परानन्दस्तथा देवं तारकं चोपनन्दनः । सुनन्दो नेत्रसिंहं च सुरानन्दश्च तालनम् ।।१२०
प्रनन्दो वीरसेनं च ब्रह्मानन्दं स भूपतिः । गजस्थिताश्च ते सर्वे धनुर्युद्धपरायणाः ।।
अहोरात्रमभूद्युद्धं तेषां च तुमुलं क्रमात् ।।१२१
एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ चित्ररेखा समागता । स्वकीयान्व्याकुलीभूतांस्तादृशांश्च विलोक्य वै ।।१२२
चित्रगुप्तं तदा ध्यात्वा चित्रमायामचीकरत् । तदा तद्बान्धवाश्चासन्बहुधा चाभिनन्दनाः ।।१२३
तान् दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे भयभीताश्च दुद्रुवुः । त्यक्त्वा युद्धमयीं भूमिं शोकव्याकुलचेतनाः ।।१२४
पञ्चयोजनमागत्य ततो वासमकारयन् । सन्ध्याकाले तमोभूते निरुत्साहा महाबलाः ।।१२५
हा कृष्णांश महाबाहो शरणागतवत्सल । इन्दुलस्ते कुमारोऽयं संहृतश्चित्ररेखया ।।१२६
तया विमोहिता वीरा वयं ते शरणं गताः । इत्युक्त्वा रोदनं चक्रुः क्व गतोऽसि महामते ।।१२७
तदा कोलाहलश्चासीद्रुदतां बलशालिनाम् । आह्लादं गर्हयित्वा ते मूर्छिता भुवि विह्वलाः ।।१२८
आह्लादस्तु तथा श्रुत्वा वज्रपाताहतः स्वयम् । उन्मादिवत्तदा भूत्वा ताडयामास वक्षसि ।।१२९
एतस्मिन्नन्तरे योगी कृष्णांशो भगवत्कला । चन्द्रोदये स्वयं प्राप्तश्चाष्टम्यां भृगुवासरे ।।१३०
शूरश्च दशसाहस्रैर्मकरन्देन संयुतः । तत्सेनां बोधयामास पालितां बलखानिना ।।१३१
जित्वा तान्सर्वभूपालान्गृहीत्वा विपुलं धनम् । पञ्चशब्दस्थितं बन्धुं प्रत्यागत्य जगर्ज वै ।।१३२

देवसिंह से परानन्द, तारक से उपनंद, नेत्रसिंह से सुनन्द और तालन से सुरानन्द, वीरसेन से प्रनन्द, और ब्रह्मा से स्वयं राजा युद्ध कर रहे थे । राजकुमार गण गजराज पर स्थित होकर धनुर्युद्ध अविराम गति से कर रहे थे । वह युद्ध दिन-रात चलता रहा पश्चात् उसी बीच रात्रि में चित्ररेखा ने वहाँ रणस्थल में आकर अपने पक्ष के सैनिकों को व्याकुल देखकर चित्रगुप्त के ध्यान पूर्वक चित्रमाया का निर्माण किया । उसने उस माया में अनेक सहायक बन्धुगण का निर्माण किया था, जो अधिकांश अभिनंदन वंश के दिखाई दे रहे थे । उन्हें देखकर महावती के सैनिक अत्यन्त भयभीत एवं आश्चर्य चकित होकर पलायन करने लगे । शोकग्रस्त तथा व्याकुल होकर उन सैनिकों ने वहाँ से भागकर पाँच योजन (बीस कोश) की दूरी पर अपना निवास स्थान बनाया । संध्या समय अँधेरे में वे बलवान् सैनिकगण हतोत्साहित होकर रुदन करते हुए विलाप कर रहे थे—महा महाबाहो, उदयसिंह ! शरणागत को अपनाने वाले चित्ररेखा ने तुम्हारे इन्दुल कुमार का अपहरण कर लिया है । उसी द्वारा विमोहित होकर हमलोग तुम्हारी शरण में प्राप्त हैं । इस भाँति विलाप करके उच्चस्वर से रुदन किया । हा महामते ! तुम कहाँ हो । सैनिकों के रुदन करने पर महान् कोलाहल (शोर) हुआ । वे सब आह्लाद (आल्हा) की निन्दा करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये ।११७-१२८। इसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) भी वज्रपात हो जाने की भाँति स्वयं आहत होकर उन्मादी की भाँति अपने वक्षःस्थल को ताडित करने लगे । उसी बीच भगवान् की कला एवं कृष्ण के अंश से उत्पन्न उदयसिंह योगी के वेष में मकरन्द तथा दशसहस्र सैनिकों समेत अष्टमी शुक्रवार के दिन चन्द्रोदय होने पर वहाँ पहुँच गये। तदुपरान्त बलखानि (मलखान) की सेनाओं में लूट करना आरम्भ किया सभी राजाओं को जीतकर विपुल धन की प्राप्ति की। पुनः पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित अपने

तस्य शब्देन शेषांशो बोधितो बलशालिना । शकुनं शुभमालोक्य भुजावुत्थाप्य वीर्यवान् ।।
स्वांके निवेशयामास कृष्णांशं योगिरूपिणम् ।।१३३
स्नापयित्वाश्रुधाराभिः कृष्णांशं प्रेमविह्वलः । दत्त्वा द्विजातिमुख्येभ्यो वर्णयामास कारणम् ।।१३४
कृष्णांशोऽपि प्रसन्नात्मा स्वकीयां सकलां कथाम् । वर्णयित्वा यथाभूतां पुनर्बाह्लीकमाययौ ।।१३५
चित्रांविद्यां स्वयं कृत्वा पाठितां चित्ररेखया । बद्ध्वाभिनन्दनं नृपं ससुतं च समन्त्रिणम् ।।
विवाहं कारयामास जयन्तस्य तया सह ।।१३६
बाह्लीकस्तु प्रसन्नात्मा दत्त्वा च विपुलं धनम् । स्वसुतां चित्ररेखां च जयन्ताय मुदा ददौ ।।१३७
शतं गजान्हयांस्तत्र सहस्राणि धनैर्युतान् । शतं दासांस्तथा दासीर्जयन्ताय स्वयं ददौ ।।१३८
प्रस्थानं कारयामास बलखानेर्महात्मनः । श्रावणे मासि सम्प्राप्तास्ते सर्वे च महावतीम् ।।१३९
स्वं स्वं गेहं ययुस्सर्वे भूपाश्चाह्लादमानिताः । इति ते कथितं विप्र चरित्रं कलिनाशनम् ।।
शृण्वतां सर्वपापघ्नं कथयिष्यामि वै पुनः ।।१४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

भाई के सामने आकर सिंहनाद किया । उनके शब्द को सुनकर बलशाली (मलखान) ने उन्हें पहचान लिया । उस समय उस पराक्रमी को शुभ शकुन भी हो रहा था, अतः उसने अटल भाव से अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर योगी वेषधारी उदयसिंह को अपने अंक (गोद) में बैठा लिया, पश्चात् उनके प्रेम में अधीर होकर आँसुओं की धारा से उन्हें स्नान कराया, और ब्राह्मणों को दान द्वारा तृप्त करते हुए सभी कारणों का आद्योपान्त वर्णन किया । प्रसन्न होकर उदयसिंह ने भी अपनी सकल कथा सुनाई । अनन्तर पुनः सैन्यों का संचालन करते हुए बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने चित्ररेखा द्वारा अधीत उस विद्या का प्रबल प्रयोग करके चित्ररेखा की माया का ध्वंस-कर दिया । राजा अभिनन्दन को उनके पुत्रों एवं मंत्रियों समेत बाँधकर इन्दुल द्वारा उनकी पुत्री चित्ररेखा का पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराया । उस समय राजा अभिनन्दन ने भी अत्यन्त हर्षमग्न होकर अत्यन्त धन समेत अपनी पुत्री इन्दुल को समर्पित की जिसमें सौ हाथी, सौ, घोड़े, सहस्र गायें, सौ दास और उतनी ही दासियाँ थीं । इन्हें सादर ग्रहण करते हुए बलखानि (मलखान) ने महावती (महोबा) को प्रस्थान किया । और श्रावणमास में सभी दल-बल समेत महावती (महोबा) पहुँचने पर आह्लाद (आल्हा) ने सभी सैनिकों एवं राजाओं का यथोचित्त पुरस्कार पुरस्सर सम्मान किया, पश्चात् वे सब आतिथ्य ग्रहण करते हुए अपने-अपने घर चले गये । विप्र ! इस प्रकार कलिनाशक चरित्र तुम्हें मैंने सुना दिया । समस्त पापों के नाशक इस चरित्र को मैं पुनः कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! ।१२९-१४०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

कलियुगेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृष्णांशे च गृहं प्राप्ते चेन्दुले च विवाहिते । महीपतिस्सदा दुःखी देहलीं प्रति चागमत् ।।१
वृत्तान्तं च नृपस्याग्रे कथयित्वा स तारकः । परं दिस्मयमापन्नः कृष्णांशचरितं प्रति ।।२
एतस्मिन्नन्तरे मन्त्री चन्द्रभट्ट उदारधीः । भूमिराजं वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ।।३
मया चाराधिता देवी वैष्णवी विश्वकारिणी । त्रिवर्षान्ते च तुष्टाभूद्वरदा भयहारिणी ।।४
तया दत्तं शुभं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम् । ततोऽहं ज्ञानवान्भूत्वा कृष्णांशं प्रति भूपते ।।
चरित्रं वर्णयामास तस्य कल्मषनाशनम् ।।५
इत्युक्त्वा स च शुद्धात्मा ग्रन्थं भाषामयं शुभम् । माहात्म्यं देविभक्तानां श्रावयामास वै सभाम् ।।६
तच्छ्रुत्वा भूमिराजस्तु विस्मितश्चाभवत्क्षणात् । महीपतिस्तदा प्राह दिव्याश्वबलदर्पितः ।।
उदयो नाम बलवान्यस्यैवं वर्णिता कथा ।।७
चत्वारो वाजिनो दिव्या जलस्थलखगाश्च ते । शीघ्रं तांश्च समाहृत्य स्वयं भूप बली भव ।।८
इति श्रुत्वा स नृपतिः श्रुतवाक्यविशारदम् । आहूय कुन्दनमलं प्रेषयामास सत्वरम् ।।९

अध्याय २४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इन्दुल के विवाह संस्कार को सुसम्पन्न कराकर उदयसिंह के घर पहुँचने पर महीपति (माहिल) सदा दुःखी रहने लगे। पश्चात् तारक (ताहर) समेत दिल्ली जाकर उन्होंने राजा के समक्ष सभी वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर उदयसिंह के चरित्र में राजा को महान् आश्चर्य हुआ। उसी बीच उदार एवं बुद्धिमान मंत्री चन्द्रभट्ट ने राजा से कहा—राजन्! मैंने जगज्जननी वैष्णवी देवी की आराधना की है। उस वरदहस्ता एवं अभयदान देने वाली देवी ने, जो मेरी आराधना द्वारा तीसरे वर्ष की समाप्ति में प्रसन्न हुई थी, कुमति का नाशक शुभज्ञान मुझे प्रदान किया है। नृप! पश्चात् उसी ज्ञान द्वारा मुझे उदयसिंह चरित्र विषयक जानकारी हुई है। इसीलिए मैंने उनके पापापहारी चरित्र का वर्णन करते हुए एक ग्रन्थ का निर्माण किया है। इतना कहकर उन्होंने उस भाषा ग्रन्थ को जिसमें शुद्ध भाषा द्वारा देवी के भक्तों का माहात्म्य वर्णन किया गया था, सभा में स्थित लोगों को सुनाया। उसे सुनकर पृथ्वीराज उसी समय अत्यन्त आश्चर्य चकित होने लगे। उस समय महीपति (माहिल) ने कहा—जिस बलवान् उदयसिंह का यह चरित्र कथारूप में वर्णित है उन्हें दिव्य घोड़ों का अभिमान अधिक है, क्योंकि उसके दिव्य शरीरधारी चार घोड़े हैं, जो जल, स्थल एवं आकाश में समान रूप से चलते हैं उनका शीघ्र अपहरण करके आप स्वयं सबसे बली हो सकते हैं।१-८। इसे सुनकर राजा ने कुन्दनमल नामक एक सेवक को बुलाया जो व्यावहारिक वार्तालाप में अत्यन्त निपुण था

महावतीं समागत्य स दूतो भूपतिं प्रति । उवाच वचनं प्रेम्णा महीराजस्य भूपतेः ॥१०
वाजिनस्ते हि चत्वारो दिव्यरूपाः शुभप्रभाः । दर्शनार्थे तव वधूर्वेला नाम ममात्मजा ॥११
तयाहूतान्हयान्भूप देहि मे विस्मयं त्यज । नो चेद्वेलाग्निना सर्वे क्षयं यास्यन्ति सैन्यपाः ॥१२
इति श्रुत्वा वचो घोरं स भूपो भयकातरः । आह्लादादीन्समाहूय वचनं प्राह नम्रधीः ॥
हयान्स्वान्स्वान्मुदा देहि मदीयं वचनं कुरु ॥१३
इति श्रुत्वा स आह्लादो ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । उवाच मधुरं वाक्यं शृणु भूप शिवप्रिय ॥१४
यत्र नः संस्थिताः प्राणास्तत्र ते वाजिनः स्थिताः । न दास्यामो वयं राजन्सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥१५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजा परिमलो बली ॥१६
शपथं कृतवान्घोरं शृण्वतां बलशालिनाम् । भोजनं ब्रह्ममांसस्य पानीयं गोऽसृजोपमम् ॥१७
शय्या स्वमातृसदृशी ब्रह्महत्योपमा सभा । मम राष्ट्रे च युष्माभिर्वासः पापमयो महान् ॥१८
इति श्रुत्वा तु शपथं देवकी शोकतत्परा । चकार रोदनं गाढं सगेहजनविग्रहा ॥१९
पञ्चविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे योगतत्परे । भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां तद्गेहाद्धर्मतत्पराः ॥२०
निर्ययुः कान्यकुब्जं ते जयचन्द्रेण पालितम् । स्वर्णवत्या पुष्पवत्या सहिताश्चित्ररेखया ॥२१
इन्दुलः प्रययौ शीघ्रमयुताश्वबलैस्सह । करालं हयमारुह्य पञ्चशब्दं च तत्पिता ॥

और उसे सभी बातें बताकर शीघ्र भेज दिया। वह दूत महावती (महोबा) राजधानी में पहुँचकर नम्रता पूर्वक पृथ्वीराज के सन्देश को कहने लगा—राजन् ! दिव्य एवं शुभ शरीरधारी चार घोड़े आप के हैं, उन्हें देखने के लिए मेरी पुत्री वेला, जो आप की पुत्रवधू है, अपनी इच्छा प्रकट कर रही है। अतः भूप ! उसकी इच्छा के अनुसार आप आश्चर्य का परित्याग करते हुए घोड़ों को शीघ्र भेजने की व्यवस्था करें, अन्यथा (नहीं तो) इस भीषण सन्देश को सुनकर अत्यन्त भयभीत होते हुए राजा परिमल ने आह्लाद (आल्हा) आदि को बुलाकर उनसे नम्रतापूर्वक कहा—मेरी बात स्वीकार करो—अपने-अपने घोड़े प्रसन्नता पूर्वक उन्हें समर्पित कर दो। उसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) ने उन जगन्मयी कल्याणी पार्वती देवी का ध्यान करके मधुर वाणी द्वारा राजा से कहा—शिवप्रिय राजन् ! शरीर स्थित प्राण के समान ये घोड़े मुझे प्रिय हैं, और उन्हीं के स्थान में वे स्थित भी हैं, अतः राजन् ! घोड़े देने में हम लोग विवश हैं, यह मैं सत्य एवं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ, यह बात अन्यथा नहीं हो सकती है, इसे सुनकर बलशाली राजा परिमल ने उन बलवीरों के समक्ष घोर शपथ किया— । ब्राह्मण मांस के समान यहाँ का भोजन, गौ के रक्त के समान जल, माता के समान शय्या, ब्रह्महत्या के समान यहाँ की सभा और मेरे राज्य में निवास करना तुम्हारे लिए महान् पाप है।९-१८। इस भीषण शपथ को सुनकर देवी देवकी अत्यन्त चिंतित होकर गाढ़ रुदन करने लगी, उन्हें देखकर उनके जन परिजन सभी रुदन करने लगे। उस समय उदयसिंह की पच्चीस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। भाद्रपद शुक्ल की चतुर्दशी के दिन उन धार्मिक वीरों ने उनके घर से निकल कर राजा जयचन्द्र की कान्यकुब्ज (कन्नौज) नामक राजधानी को प्रस्थान किया। उस यात्रा से स्वर्णवती (सोना) पुण्यवती एवं चित्ररेखा समेत इन्दुल दश सहस्र अश्वारोहियों के साथ चल रहे थे। वे स्वयं कराल नामक घोड़े पर बैठे थे और उनके पिता पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित थे। उसी प्रकार

कृष्णांशो बिन्दुलारूढो देदकीमनुसंययौ ॥२२
त्यक्त्वा ते भूपतेर्ग्रामं सर्वसम्पत्समन्वितम् । पथि त्र्यहमुषित्वा ते जयचन्द्रमुपाययुः ॥२३
नत्वा तं भूपतिं प्रेम्णा गदित्वा सर्वकारणम् । उषित्वा शीतलास्थाने पूजयामासुरम्बिकाम् ॥२४
जयचन्द्रस्तु भूपालो देवसिंहेन वर्णितः । तेभ्यश्च न ददौ वृत्तिं भूमा परिमलाज्ञया ॥२५
कुण्ठितो देवसिंहस्तु गत्वा कृष्णांशमुत्तमम् । उदित्वा कारणं सर्वं स श्रुत्वा रोषमादधौ ॥२६
त्वरितं बिन्दुलारूढो हयपञ्चशतावृतः । लुण्ठयामास नगरं पालितं लक्ष्णेन तत् ॥२७
दृष्ट्वा तं लक्षणो वीरो हस्तिनः पृष्ठमास्थितः । शरेण ताडयामास कृष्णांशं हृदयं दृढम् ॥२८
निष्फलत्वं गतो बाणो विष्णुमन्त्रेण प्रेरितः । विस्मितः स तु भूपालो वाहनाद्भूमिमागतः ॥२९
नत्वा तच्चरणौ दिव्यौ कुलिशादिभिरन्वितौ । तुष्टाव दण्डवद्भूत्वा लक्षणो गद्गदं[1] गिरा ॥३०

लक्षण उवाच

वैष्णवं विद्धि मां स्वामिन्विष्णुपूजनतत्परम् । जानेऽहं त्वां महाबाहो कृष्णशक्त्यवतारकम् ॥३१
त्वदृते को हि मे बाणं निष्फलं कुरुते भुवि । क्षमस्व मम दौरात्म्यं नाथ ते मायया कृतम् ॥३२
इत्युक्त्वा तेन सहितो जयचन्द्रं महीपतिम् । गत्वा तं कथयामास यथा प्राप्तः पराजयम् ॥३३

विन्दुल (वेंदल) पर बैठकर उदयसिंह देवकी देवी के अनुगामी होकर चल रहे थे ।१९-२२। उन वीरों ने राजा के उस सुसम्पन्न गाँव के परित्याग पूर्वक तीन दिन की यात्रा करके जयचन्द्र की राजधानी को देखा । वहाँ पहुँचकर नमस्कार पूर्वक राजा से समस्त वृत्तान्त बताकर शीतला स्थान में रहकर चण्डिका देवी की पूजा की । अपने निष्कासन के सभी कारणों का देवसिंह द्वारा वर्णन करने पर राजा जयचन्द्र ने उन्हें कोई वृत्ति देने से इसलिए अस्वीकार किया कि परिमल की सम्मति नहीं थी पश्चात् देवसिंह ने निराश होकर उदयसिंह के पास जाकर उनसे उस वृत्तान्त का वर्णन किया जिसे सुनकर उदयसिंह ने अत्यन्त उत्तेजित होकर शीघ्र बिन्दुल पर बैठकर पाँच सौ सैनिकों समेत लक्षण (लाखन) द्वारा सुरक्षित नगर का लूट करना आरम्भ कर दिया । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) ने अपने हाथी पर बैठकर उनके सामने पहुँचकर उदयसिंह के हृदय में बाण प्रहार किया । किन्तु, विष्णु मंत्र द्वारा प्रेरित होने पर भी वह बाण निष्फल हो गया । आश्चर्य चकित होकर राजा लक्षण (लाखन) हाथी से उतरकर पृथिवी में खड़े होकर उनके चरण की, जो वज्र आदि सेवकों से विभूषित थे, नमस्कार पूर्वक अपनी गद्गद् वाणी द्वारा उनकी स्तुति की ।२३-३०

लक्षण (लाखन) ने कहा—स्वामिन् विष्णु का पूजन करने वाला मैं वैष्णव (विष्णु का भक्त) हूँ। महाबाहो ! मैं आपको भली भाँति जानता हूँ, आप कृष्ण भगवान् की शक्ति द्वारा अवतरित हुए हैं। क्योंकि आप के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष मेरे बाण को असफल करने वाला इस भूतल में नहीं है। अतः नाथ ! मेरी इस धृष्टता को आप क्षमा करें, क्योंकि आप की माया से प्रेरित होकर मैंने ऐसा किया है।३१-३२। इतना कहकर उनको साथ लेकर लक्षण (लाखन) जयचन्द्र के पास पहुँचकर उनसे अपने पराजय का क्रमशः

---

१. गद्गदं यथा स्यात्तथा गिरा तुष्टावेत्यन्वयः ।

नृपस्तयोः परीक्षार्थं यौ तु छायाविमोहितौ । गजौ कुवलयापीडौ त्यक्तवाञ्छीतलास्थले ।।३४
तदाह्लादोदयौ वीरौ गृहीत्वा तौ स्वलीलया । चक्रषतुर्बलात्पुच्छे क्रोशमात्रं पुनः पुनः ।।३५
मृतौ कुवलयापीडौ दृष्ट्वा राजा भयातुरः । ददौ राजगृहं ग्रामं तयोरर्थे प्रसन्नधीः ।।३६
इषशुक्ले तु सम्प्राप्ते लक्षणो नाम वै बली । नृपाज्ञया ययौ शीघ्रं तैश्च[1] दिग्विजयं प्रति ।।३७
सप्तलक्षबलैस्सार्द्धं तालनाद्यैश्च संयुतः । वाराणसीं पुरीं प्राप्य रुरोध नगरीं तदा ।।३८
रुद्रवर्मा च भूपालो गौडवंशयशस्करः । पञ्चायुतैः स्वसैन्यैश्च सार्द्धं युद्धार्थमाप्तवान् ।।३९
यामभात्रेण तं जित्वा षोडशाब्दस्य वै करम् । कोटिमुद्रामयं प्राप्य जयचन्द्राय चार्पयत् ।।४०
मागधेशं पुनर्जित्वा नाम्ना विजयकारिणम् । विंशत्यब्दकरं प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ।।४१
पञ्चकोटीश्च वै मुद्रा राजतस्य पुनर्ययौ । अङ्गदेशपतिं भूपं मायावर्माणमुत्तमम् ।।४२
सैन्यायुतयुतं जित्वा विंशत्यब्दस्य वै करम् । कोटिमुद्राश्च सम्प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ।।४३
वङ्गदेशपतिं वीरो लक्षणो वै युतश्च तैः । लक्षसैन्ययुतं भूपं कालीवर्माणमुत्तमम् ।।
अहोरात्रेण तं जित्वा महायुद्धेन लक्षणः , ।।४४
विंशत्यब्दकरं प्राप्य कोटिं स्वर्णमयं तदा । प्रेषयामास भूपाय जयचन्द्राय वै मुदा ।।४५

यथोचित वर्णन किये । तदुपरान्त राजा ने उनके परीक्षार्थ कुबलयापीड नामक हाथियों को जो छाया से मोहित किये थे, शीतला-स्थान के विशाल प्राङ्गण में भेजा । उस समय आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह ने लीलापूर्वक उसे पूँछ की ओर पकड़कर एक कोश तक खींचा-खींची की, जिससे उस कुवलयापीड़ नामक गजराज की मृत्यु हो गई । उसका निधन देखकर भयभीत होते हुए राजा ने उन्हें राजग्रह नामक गाँव सौंप दिया । पश्चात् आश्विन शुक्ल के आरम्भ होने पर बलवान् लक्षण (लाखन) ने राजा की आज्ञा प्राप्तकर उन वीरों के साथ दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया । उस यात्रा में अपने सात लाख सैनिकों समेत तालन आदि भी चल रहे थे । वाराणसी (बनारस) पहुँचकर उसे जो गौड वंश में उत्पन्न एवं यशस्वी राजा रुद्रवर्मा की राजधानी थी, उन लोगों ने चारों ओर से घेर लिया । राजा रुद्रवर्मा ने अपने पचास सहस्र सैनिकों समेत रणस्थल में आकर युद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु, एक प्रहर के भीतर ही उनपर विजय प्राप्तकर सोलह वर्ष का कर उनसे प्राप्त किया, जो एक कोटि (करोड़) की संख्या में था । उसे जयचन्द्र के पास प्रेषितकर उन लोगों ने मगधाधिप विजय के राजा पर आक्रमण किया । विजय प्राप्ति पूर्वक बीस वर्ष का कर उनसे प्राप्तकर जो एक कोटि की संख्या में था, अपने राजा के पास पहुँचा दिया । पुनः वहाँ से वंग (बंगाल) देश के अधिनायक राजा कलिवर्मा के यहाँ पहुँचकर उनके एक लाख सैनिकों के साथ लक्षण (लाखन) ने घोर युद्ध आरम्भ किया । दिन-रात (चौबीस घंटा) अनवरत युद्ध करके विजय समेत उनसे बीस वर्ष का कर प्राप्तकर जो एक कोटि (करोड़) सुवर्ण मुद्राके रूप में था, प्रसन्नतापूर्वक राजा जयचन्द्र को अर्पित कर दिया ।३३-४५

---

१. विनापि सहशब्दयोगयं सहार्थे गम्यमाने तृतीया, 'वृद्धो यूना' इत्यादिनिर्द्देशात् ।

उष्ट्रदेशं[1] ययौ वीरः पालितं तैर्महाबलैः । धोयीकविस्तत्रनृगो लक्षसैन्यसमन्वितः ।।४६
जगन्नाथाज्ञया प्राप्तस्तैश्च सार्द्धं रणोन्मुखे । तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।।
अहोरात्रप्रमाणेन कृष्णांशेन जितो नृपः ।।४७
विंशत्यब्दकरं सर्वं कोटिस्वर्गसमन्वितम् । सम्प्राप्य प्रेषयामास कान्यकुब्जाधिपाय वै ।।४८
पुण्ड्रदेशं ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः । नृपं नागपतिं नाम पञ्चायुतबलैर्युतम् ।।
दिनमात्रेण तं जित्वा कोटिमुद्रां गृहीतवान् ।।४९
महेन्द्रगिरिमागत्य नत्वा तं भार्गवं मुनिम् । ततो निवृत्य ते सर्वे नेत्रपालपुरं ययुः ।।५०
योगसिंहस्तदागत्य कृष्णांशं प्रति भार्गव[2] । कोटिमुद्रां ददौ तस्मै सप्तरात्रमवासयत् ।।५१
वीरसिंहपुरं जग्मुस्ते वीरा मदवत्तराः । रुरुधुर्नगरीं सर्वां हिमतुङ्गोपरिस्थिताम् ।।
पालितं गोरखाख्येन योगिना भक्तकारणात् ।।५२
भूपानुजः प्रवीरश्च सैन्यायुतसमन्वितः । कृतवान्दारुणं युद्धं लक्षणस्यैव सेनया ।।५३
प्रत्यहं बलवाञ्छूरो हत्वा शूरसहस्रकम् । सायंकाले गृहं प्राप्य योगिनं तमपूजयत् ।।५४
पूजनात्स प्रसन्नात्मा सैन्यमुज्जीव्य भूपतेः । दत्त्वा गजबलं तेभ्यः पुनर्योगं करोति वै ।।५५
सार्द्धमासो गतस्तत्र युद्धयतां बलशालिनाम् । तदा ते तु निरुत्साहं देवसिंहं तमब्रुवन् ।।५६

वहाँ से आगे बढ़कर उष्ट्रदेशाधिपति राजा धोयी कवि की एक लाख सेना से मुठभेड़ किया । उनके भी एक लाख सैनिक थे जो जगन्नाथ की आज्ञा प्राप्तकर रणभेरी बजाते हुए युद्ध के लिए सन्नद्ध थे । दोनों सेनाओं का रोमाञ्चकारी एवं भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । उदयसिंह ने दिन-रात के भीतर ही उस राजा को भी जीत लिया । एक करोड़ की संख्या में उन सुवर्ण मुद्राओं को, जो बीस वर्ष के कर के रूप में था उस राजा से प्राप्तकर कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्र के पास भेज दिया । पुनः लक्षण (लाखन) वीर ने पुण्ड्र देश की यात्रा की । वहाँ नागपति नामक राजा के साथ जिनके यहाँ पचास सहस्र सैनिक सदैव सुसज्जित रहा करते थे, युद्ध कर सूर्यास्त के पहले उनसे विजय प्राप्ति पूर्वक एक कोटि मुद्रा ग्रहण किया । पश्चात् महेन्द्र पर्वत पर जाकर भार्गव मुनि के नमस्कार पूर्वक राजा योगसिंह नेत्रपाल के पुर में पहुँचे । उन्होंने उदयसिंह को एक कोटि मुद्रा प्रदान पूर्वक सात दिन तक अपने यहाँ निवास कराया । पुनः उन मदोन्मत्त वीरों ने वीरसिंह की नगरी में पहुँचकर उसे जो हिमालय की चोटी पर स्थित थी, चारों ओर से घेर लिया, जिसे योगी गोरखनाथ ने राजा के भक्त होने के नाते अत्यन्त सुरक्षित रखा था । राजा के छोटे भाई प्रवीर ने अपने दश सहस्र सैनिकों समेत लक्षण (लाखन) की सेना से घोर युद्ध आरम्भ किया । वह बलवान् वीर प्रतिदिन एक सहस्र सैनिकों को धराशायी कर सायंकाल में घर पहुँचने पर उस योगी की पूजा करता था । उसके पूजन से प्रसन्न होकर वह योगी राजा के सैनिकों को जीवित कर दिया करता था । और उन्हें हाथी के समान बल प्रदानकर वे पुनः योगनिष्ठ हो जाते । इस प्रकार उन बलशालियों का डेढ़ मास तक युद्ध होता रहा । उस समय हताश होकर सैनिकों समेत उदयसिंह ने देवसिंह से कहा—

---

१. आन्ध्रामिति केचिद्वदंति, औण्ड्रमित्यन्ये, उत्कलमित्यपरे । २. शौनकसंबोधनम् ।

विजयो नः कथं भूप ब्रूहि नस्तत्त्वमग्रतः । इति श्रुत्वा स होवाच शृणु कृष्णांश मे वचः ॥५७
योगिनं गोरखं नाम पराजित्य स्वनृत्यतः । पुनर्युद्धं कुरु त्वं वै ततो जयमवाप्स्यसि ॥५८
इत्युक्तास्ते हि कृष्णाद्याः कृत्वा योगमयं वपुः । स्थापयित्वा रणे सेनां पालितां लक्षणेन वै ॥५९
प्रातःकाले ययुस्ते वै मन्दिरं तस्य योगिनः । कृष्णांशो नर्तकश्चासीद्वेणुवाद्यविशारदः ॥६०
देवसिंहो मृदङ्गाढ्यो वीणाधारी च तालनः । कांस्यधारी तदाह्लादो जगौ गीतां सनातनीम् ॥६१
तदर्थं हृदये कृत्वा गोरखस्सर्वयोगवान् । वरं वृणुत तानाह ते तच्छ्रुत्वाऽब्रुवन्वचः ॥६२
नमस्यामो वयं तुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया । देहि संजीविनीं विद्यामाह्लादाय महात्मने ॥६३
इति श्रुत्वा हृदि ध्यात्वा तानुवाच प्रसन्नधीः । विद्या सञ्जीविनी तुभ्यं वर्षमात्रं भविष्यति ॥
तत्पश्चान्निष्फलीभूयागमिष्यति मदन्तिकम् ॥६४
अद्य प्रभृति भो वीर मया त्यक्तमिदं जगत् । यत्र भर्तृहरिः शिष्यस्तत्र गत्वा शये ह्यहम् ॥६५
इत्युक्त्वान्तर्हितो योगी जग्मुस्ते रणमूर्द्धनि । जित्वा प्रवीरसिंहं च वीरसिंहं तथैव च ॥६६
हत्वा तस्यायुतं सैन्यं लुण्ठयित्वा च तद्गृहम् । कृत्वा दासमयं भूपं लक्षणः प्रययौ मुदा ॥६७
कोशलं देशमागत्य जित्वा तस्य महीपतिम् । सैन्यायुतं सूर्यधरं करयोग्यमचीकरत् ॥६८
षोडशाब्दकरं प्राप्य मुद्राकोट्ययुतं मुदा । नैमिषारण्यमागम्य तत्रोषुः स्नानतत्पराः ॥६९
होलिकाया दिने रम्ये लक्षणो बलवत्तरः । दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥७०

राजन् ! हम लोगों की विजय क्यों नहीं हो रही है, इसका कारण हमें बताने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर उन्होंने कहा उदयसिंह ! मेरी बातें सुनो ! योगी गोरखनाथ को अपने नृत्य द्वारा पराजित करके पुनः युद्ध करने से तुम्हें निश्चय विजय प्राप्ति होगी । इतना कहने पर उदयसिंह आदि वीरों ने योगी के वेष धारणकर प्रातः काल उस योगी के मन्दिर के लिए प्रस्थान किया ।४६-६०। इधर रणस्थल में सेना की रक्षा लक्षण (लाखन) कर रहे थे । वहाँ मन्दिर में पहुँचकर वंशी वाद्य में निपुण उदयसिंह नृत्य कर रहे थे, जिसमें देवसिंह मृदङ्ग, तालन वीणा और मजीरा आह्लाद (आल्हा) बजा रहे थे । तथा सनातनी गीता का गान आरम्भ था । योगनिपुण गोरखनाथ ने उसके अर्थ को हृदयङ्गम करके उन लोगों से कहा—वर की याचना करो ! इसे सुनकर उन लोगों ने कहा—हम लोग आपको नमस्कार कर रहे हैं, यदि आप प्रसन्नता पूर्ण होकर वरप्रदान करना चाहते हैं, तो श्रेष्ठ आह्लाद (आल्हा) को संजीवनी विद्या प्रदान करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर कुछ समय तक ध्यान करने के उपरांत प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—यह संजीवनी विद्या एक वर्ष तक तुम्हें फल प्रदानकर सकेगी, पश्चात् निष्फल होने पर मेरे पास लौट आयेगी । अतः वीर ! आज से मैं इस जगत का परित्याग करके शिष्य भर्तृहरि के यहाँ जाकर शयन करूँगा । इतना कहकर योगी गोरखनाथ अन्तर्हित हो गये उन वीरों ने रणस्थल में पहुँचकर प्रवीर समेत वीरसिंह पर विजय प्राप्ति पूर्वक उनकी दश सहस्र सेना और गृह में लूट कराकर राजा को अपना सेवक बनाया । तदनन्तर प्रसन्न होकर लक्षण (लाखन) ने कौशल प्रदेश में पहुँचकर वहाँ के राजा सूर्यधर को जो अपनी दश सहस्र की सेना के साथ युद्ध कर रहे थे, पराजित कर उनसे सोलह वर्ष का कर, जो एक कोटि की संख्या में था, प्राप्त करके नैमिषारण्य में स्नानार्थ प्रस्थान किया । उस समय वहाँ होली के अवसर पर बली लक्षण (लाखन) ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान-प्रदान पूर्वक महोत्सव

तदा वयं च मुनयः समाधिस्थाश्च भूपतिः । यदा स लक्षणः प्राप्तो नैमिषारण्यमुत्तमम् ।।७१
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि सन्तर्प्य द्विजदेवताः । कान्यकुब्जपुरं जग्मुश्चैत्रकृष्णाष्टमीदिने ।।७२
इति ते कथितं विप्र यथा दिग्विजयोऽभवत् । शृणु विप्र कथां रम्यां बलखानिर्यथा मृतः ।।७३
मार्गकृष्णस्य सप्तम्यां भूमिराजो महाबलः । महीपतेश्च वाक्येन सामन्तं प्राह निर्भयः ।।७४
मया श्रुतस्ते तनयः शारदावरदर्पितः । रक्तबीजत्वमापन्नस्तं मे देहि कृपां कुरु ।।७५
इत्युक्तस्स तु सामन्तस्तेन राज्ञेन सत्कृतः । चामुण्डं नाम तनयं समाहूयाब्रवीदिदम् ।।७६
पुत्र त्वं नृपतेः कार्यं सदा कुरु रणप्रिय । इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं स वै राजानमब्रवीत् ।।७७
देह्याज्ञां भूपते मह्यं शीघ्रं जयमवाप्स्यसि । इति श्रुत्वा स होवाच बलखानिर्महाबलः ।।७८
मच्छिरीषवनं छित्वा गृहीत्वा राष्ट्रमुत्तमम् । सुस्थितो निर्भयो गेहे बाहुशाली यतेन्द्रियः ।।७९
यदि त्वं बलखानिं च जित्वा मे ह्यर्पयिष्यसि । हत्वा वा तस्य सकलं राष्ट्रं त्वयि भविष्यति ।।८०
इत्युक्त्वा रक्तबीजं तं समाहूय स्वकं बलम् । सप्तलक्षं ददौ तस्मै स तत्प्राप्य मुदा ययौ ।।८१
उषित्वा त्रिदिनं मार्गे शिरीषाख्यमुपागतः । रुरोध नगरीं सर्वां बलखानेर्महात्मनः ।।८२
चामुण्डागमनं श्रुत्वा बलखानिर्महाबलः । पूजयित्वा महामायां दत्त्वा दानान्यनेकशः ।।
लक्षसैन्येन सहितः प्रययौ नगराद्बहिः ।।८३

कराया। उस समय हमलोग तथा मुनिगण समाधिस्थ थे। राजा लक्षण (लाखन) नैमिषारण्य में पहुँचकर समस्त तीर्थों के स्नान पूर्वक ब्राह्मणों एवं देवताओं को प्रसन्न किये। उपरांत चैत्र कृष्ण की अष्टमी के दिन कान्यकुब्ज (कन्नौज) के लिए प्रस्थान किया। विप्र ! इस प्रकार मैंने तुम्हें उनके दिग्विजय का वर्णन सुना दिया। विप्र ! अब उस कथा को सुना रहा हूँ, जिसमें बलखानि (मलखान) के स्वर्गवासी होने का वर्णन किया गया है, सुनो ! ६१-७३ ।।बलवान् निर्भीक पृथ्वीराज ने मार्गशीर्ष (अगहन) मास के कृष्ण सप्तमी के दिन महीपति (माहिल) द्वारा भेजे सामन्त से कहा—मैंने सुना है कि आपका पुत्र शारदा के वरदान से अत्यन्त मदोन्मत होकर रक्तबीज हो गया है। अतः उसे मुझे सौंप देने की कृपा करें। इस प्रकार कहने एवं राजा द्वारा सत्कृत होने पर उस सामन्त ने चामुण्ड नामक अपने पुत्र को बुलाकर यह कहा—'रणप्रिय ! पुत्र राजा का कार्य करने के लिए तुम सदैव तैयार रहो' पिता की ऐसी बातें सुनकर उसने राजा से कहा—'राजन् ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, आपकी शीघ्र विजय होगी। इसे सुनकर राजा ने कहा—महाबली बलखानि (मलखान) ने शिरीष नामक बन को काटकर उस मेरे उत्तम राष्ट्र को अपना लिया है। उस गृह में वह बाहुशाली एवं संयमी वीर निर्भय होकर रह रहा है। यदि तुम बलखानि (मलखान) पर विजय प्राप्तकर उसे मुझे समर्पित कर दो, अथवा उसकी हत्या कर दो, तो वह सम्पूर्ण राष्ट्र तुम्हारा हो जायेगा। इतना कहकर उन्होंने अपनी सात लाख सेना उसे प्रदान किया और उसने भी प्रसन्नता पूर्वक सैन्य समेत प्रस्थान किया। मार्ग में तीन दिन व्यतीत कर शिरीष बन में पहुँचकर उस यशस्वी बलखानि (मलखान) की नगरी को चारों ओर से घेर लिया। बलशाली बलखानि (मलखान) ने चामुण्ड का आगमन सुनकर महामाया की पूजा समेत अनेक प्रकार के दान करके अपने एक लाख सैनिकों को लेकर नगर से

तस्यानुजो महावीरस्सुखखानिर्बलैः सह । हरिणीं तां समारुह्य शत्रुसैन्यमचिक्षपत् ॥८४
बलखानिः कपोतस्थो नाशयित्वा रिपोर्बलम् । लक्षसैन्यं मुदा युक्तश्चामुण्डं प्रति चागमत् ॥८५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं रत्र स्वसैन्यक्षयङ्करम् । अहोरात्रप्रमाणेन निहताः क्षत्रिया रणे ॥८६
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते कृत्वा स्नानादिकाःक्रियाः । जग्मतुस्तौ रणे वीरौ धनुर्बाणविशारदौ ॥८७
रथस्थो बलखानिश्च चामुण्डो गजपृष्ठगः । चक्रतुस्तुमुलं घोरं नरविस्मयकारकम् ॥८८
बाणैर्बाणांश्च सञ्छिद्य देवीभक्तौ च तौ मुदा । अन्योऽन्यं वाहने हत्वा भूतलत्वमुपागतौ ॥
खड्गचर्मधरौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥८९
यावन्तो रक्तबीजाङ्गात्सञ्जाता रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषा जाता रक्तबीजपराक्रमाः ॥९०
तैश्च वीरैर्मदोन्मत्तैर्बलखानिस्समन्ततः । संरुद्धोऽभूद् भृगुश्रेष्ठ शारदां शरणं ययौ ॥९१
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखखानिस्ततोऽनुजः । आग्नेयं शरमादाय रक्तबीजानदाहयत् ॥९२
पुरा तु सुखखानिश्च हव्यैर्देवं च पावकम् । पञ्चाब्दान्पूजयामास तदा तुष्टस्स्वयं प्रभुः ॥९३
पावकीयं शरं रम्यं शत्रुसंहारकारकम् । ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा तेनासावभवज्जयी ॥९४
बलखानिस्तु बलवान्दृष्ट्वा शत्रुविनाशनम् । पराजितं च चामुण्डं बद्ध्वा गेहमुपागतम् ॥९५
कृत्वा नारीमयं वेषं स भीतो ब्रह्महत्यया । दोलामारोप्य बलवान्प्रेषयामास शत्रवे ॥९६
हतशेषं पञ्चलक्षं सैन्यं गत्वा च देहलीम् । वृत्तान्तं कथयामास यथा जातो महारणः ॥९७

बाहर रणस्थल की ओर यात्रा की। उसके छोटे भाई महाबली सुखखानि भी साथ में चल रहे थे। हरिणी नामक अश्व पर बैठकर उसने शत्रु-सैनिकों को धराशायी करना आरम्भ किया और कपोत (कबूतर) नामक अश्व पर बैठे बलखानि (मलखान) भी शत्रु की सेना का संहार कर रहे थे। पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक वे चामुण्ड (चौंढ़ा) के पास पहुँचे। उन दोनों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें दोनों दल के सैनिक शीघ्रता से नष्ट हो रहे थे। अविराम गति से दिन-रात होने वाले उस युद्ध में अनेक शूरवीर क्षत्रिय काम आये। प्रातः काल स्नान आदि क्रिया सुसम्पन्न करने के उपरांत वे दोनों धनुर्विद्या के निपुण वीर रण में पहुँच गये। बलखानि (मलखान) रथ पर और चामुण्ड (चौंढा) गजपृष्ठ पर स्थित होकर दोनों आपस में विस्मय जनक घोरयुद्ध करने लगे। दोनों देवी भक्तों ने बाण से बाण को काटकर पश्चात् एक दुसरे के वाहनों को धराशायी कर स्वयं पृथिवी पर स्थित होकर खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। रक्तबीज के अंग से रक्त के जितनी बूँदे गिरती थी, उतने रक्तबीज के समान पराक्रमी पुरुष उत्पन्न हो जाते थे।७४-९०। भृगुश्रेष्ठ ! इस प्रकार उन मदोन्मत्त वीरों के चारों ओर से घेर लेने पर बलखानि (मलखान) ने शारदा की शरण प्राप्ति की। उनके छोटे भाई वीर सुखखानि ने वहाँ पहुँचकर अपने आग्नेय बाण द्वारा रक्तबीज को दग्ध कर दिया। पहले समय में सुखखानि ने हव्य (खीर) द्वारा पाँच वर्ष तक अग्निदेव की आराधना की थी। उससे प्रसन्न होकर स्वयं पावक देव ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें अपना आग्नेय बाण प्रदान किया, जिससे शत्रु का संहार हो जाता है। उसी बाण के प्रयोग द्वारा उन्हें विजय प्राप्त हुई, इसे देखकर बलवान् बलखानि (मलखान) उस शत्रुहन्ता एवं पराजित चामुण्ड को बाँधकर अपने घर लाये और ब्रह्महत्या के भय से उनका वध न कर केवल स्त्री का वेष धारण कराकर डोला में बैठा उन्हें शत्रु (पृथ्वीराज) के पास भेज दिया। पश्चात् शेष पाँच लाख सैनिकों ने दिल्ली जाकर युद्ध का यथावत् वर्णन किया। उस समय स्त्री-वेष में चामुण्ड को देख-

नारीवेषं च चामुण्डं स दृष्ट्वा पृथिवीपतिः । क्रोधाविष्टश्च बलवान्महीपतिमुवाच ह ॥९८
कथं जयो मे भविता सुखखानौ च जीविते ? श्रुत्वा महीपतिः प्राह च्छद्मना कार्यमाकुरु ॥९९
ब्राह्मी माता तयोर्ज्ञेया शुद्धा सैव पतिव्रता । दूतीभिः कारणं ज्ञात्वा पुनर्युद्धं कुरुष्व भोः ॥१००
इति श्रुत्वा महीराजो दूतीस्ताश्छलकोविदाः । आहूय प्रेषयामास बलखानिगृहं प्रति ॥१०१
ब्राह्मण्यस्तास्तदा भूत्वा बलखानिगृहं ययुः । ससुतां तां प्रशस्याशु पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥१०२
तव पुत्रौ महावीरौ दिष्ट्या शत्रुक्षयङ्करौ । तयोर्मृत्युः कथं भूयाज्जीवतां शरदां शतम् ॥१०३
तदा ब्राह्मी वचः प्राह पावकीयः शरः शुभः । सुखखानेर्जीवकरो बलखानेः पदाह्वकः ॥१०४
इति ज्ञात्वा तु ता दूत्यः प्रययुर्देहलीं प्रति । कथयित्वा नृपस्याग्रे धनं प्राप्य गृहं ययुः ॥१०५
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महादेवमुमापतिम् । पार्थिवैः पूजनं चक्रे सहस्रदिवसान्मुदा ॥१०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

षड्विंशाब्दे च कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु । मुने बिन्दुसरो नाम दक्षिणस्यां दिशि स्थितम् ॥१

कर पृथ्वीराज ने क्रुद्ध होकर महीपति (माहिल) से कहा—'जब तक सुखखानि जीवित रहेगा, मेरी विजय कैसे हो सकेगी।' इसे सुनकर महीपति (माहिल) ने कहा—'छल छद्म से कार्य कीजिये।' उन दोनों वीरों की माता ब्राह्मी हैं, जिन्हें युद्ध पतिव्रता कहा गया है। उन्हीं से दूती द्वारा उनके मरण के कारण का पता लगाकर पुनः युद्धारम्भ कीजिये। इसे सुनकर पृथ्वीराज ने एक छल-कपट निपुण दूती-वृन्द को बलखानि (मलखान) के घर भेजा। उन दूतियों ने अपना ब्राह्मणी वेष बनाकर बलखानि (मलखान) के घर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर पुत्री समेत उनकी प्रशंसा करके अत्यन्त विनम्र वाणी द्वारा कहा—सौभाग्य है कि आप के दोनों पुत्र इतने बड़े वीर हैं कि पहुँचते ही शत्रु का नाश कर देते हैं, ईश्वर करें, इनकी सौ वर्ष की आयु होगी, भला, इनकी मृत्यु भी कभी हो सकती है! उसे सुनकर उस समय ब्राह्मी ने कहा—सुखखानि को प्राणदान देने वाला यह आग्नेय बाण है और बलखानि (मलखान) को प्राणदान देने वाला उनका चरण। इस मर्म को जानकर उन दूतियों ने दिल्ली पहुँचकर राजा के समक्ष सभी बातों को कहा। पश्चात् राजा से पुरस्कार रूप में धन प्राप्तकर अपने घर को प्रस्थान किया। दूती की बातों को सुनकर राजा ने उसी समय से आरम्भ कर एक सहस्र दिनों तक प्रसन्नतापूर्ण रहकर अविरत पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना की।९१-१०६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।२४।

अध्याय २५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! उदयसिंह के छब्बीस वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर उनके द्वारा किये

तस्य तीरेऽवसद्ग्रामो योजनायामसंयुतः । नाम्ना बिन्दुगढो दुर्गो वर्णधर्मप्रवर्तकः ॥२
तस्मिन्ग्रामेऽवसद्भूपो विष्वक्सेनान्वयोद्भवः । शारदानन्दनो नाम ब्रह्मध्यानपरायणः ॥३
ब्रह्मचर्यप्रभावेण तद्वीर्यं शिरसि स्थितम् । अतस्स कामपालाख्यः प्रथितोऽभून्महीतले ॥४
यज्ञैः सम्पूजयामास सुरज्येष्ठं प्रजापतिम् । यज्ञांशभुक्तमात्रेण राज्ञी गर्भमुपादधौ ॥५
दशमासान्तरे जाता कन्या सर्वगुणालया । पद्मिनी नाम विख्याता सर्वशोभासमन्विता ॥६
द्वादशाब्दवयः प्राप्तौ बभूव वरवर्णिनी । पद्माकरो भूपसुतो महीराजपदानुगः ॥७
पितुराज्ञानुसारेण भूपानाहूय सत्वरम् । स्वयम्वरं भगिन्याश्च कारयामास वै मुदा ॥८
नानादेश्य ययुर्भूपा मुख्यशूरसमन्विताः । सहाह्लादैश्चतुर्वीरैर्लक्षणः पितुराज्ञया ॥९
ययौ बिन्दुगढं ग्रामं स्थितो यत्र महोत्सवः । महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा लक्षणमागतम् ॥१०
स्वसेनां स्थापयामास रक्षार्थे सर्वभूभुजाम् । एतस्मिन्नन्तरे देवी सखीभिः सह पद्मिनी ॥११
सर्वभूपान्विलोक्याशु लक्षणान्तमुपाययौ । श्यामाङ्गं च युवानं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१२
चत्वारिंशत्तथा पञ्चाशन्मानाब्दवयोवृतम् । व्यूढोरस्कं दृढस्कन्धं निर्जरं रोगवर्जितम् ॥१३
दृष्ट्वा तमात्मसदृशमाह्लादाद्यैश्च रक्षितम् । जयमालां ददौ तस्मै पद्मिनी लक्षणाय च ॥१४

चरित्रों को बता रहा हूँ, सुनो ! दक्षिण दिशा में बिन्दुसर नामक एक जलाशय (सरोवर) है, उसी के तट पर 'बिन्दुगढ़' नामक एक दुर्ग-नगर स्थित है, जो योजन भर में विस्तृत एवं वर्ण-धर्म के प्रवर्तक व्यक्तियों से सुशोभित है । उस राजधानी का अधीश्वर शारदानन्दन जो विष्वक्सेन वंश के भूषण है, ब्रह्म-ध्यान का पारायण करते हुए भी, अपनी प्रजाओं के पालन-पोषण में तत्पर रहते है । उन्होंने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से वीर्य को शिर में स्थित कर लिया था, इसीलिए इस भूतल में वे 'कामपाल' के नाम से प्रख्यात थे । एक बार उन्होंने यज्ञानुष्ठान द्वारा देवश्रेष्ठ प्रजापति (ब्रह्मा) की आराधना किया । उसमें यज्ञ का एक अंश (प्रसाद रूप में) रानी को दिया गया जिसके भक्षण करने से उनका गर्भ स्थिर रह गया । दशवें मास में 'पद्मिनी' नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जो समस्त गुणों की खानि (निधि) एवं सम्पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा थी । बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर वह उत्तम वर्ण वाली कन्या स्वयम्बर के उपयुक्त हो गई, उसे देखकर उसका भाई पद्माकर नामक राजकुमार जो पृथ्वीराज का पदानुगामी था, अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर सभी राजाओं को निमंत्रित कर अपनी भागिनी का स्वयम्बर किया । उसमें अनेक देश के भूप-वृन्द उपस्थित थे । राजा लक्षण (लाखन) भी आह्लाद (आल्हा) आदि चार वीरों समेत पिता की आज्ञा प्राप्ति पूर्वक यात्रा करके उस बिन्दुगढ़ के महोत्सव में सम्मिलित थे। बलवान् पृथ्वीराज ने वहाँ लक्षण (लाखन) को भी उपस्थित देखकर समस्त राजाओं के रक्षार्थ अपनी सेना वहाँ स्थापित कर दिया । उसी बीच राजकुमारी पद्मिनी अपनी सखियों समेत स्वयम्बर में आकर समस्त राजाओं को देखती हुई लक्षण (लाखन) के पास पहुँची, जो श्यामल वर्ण, युवा सम्पूर्ण लक्षणों से विभूषित, चालीस पचास वर्ष की अवस्था सम्पन्न, विशाल वक्षःस्थल, दृढ कन्धे, देव के समान एवं पूर्ण स्वस्थ थे। उस कन्या ने अपने अनुरूप तथा आह्लाद (आल्हा) आदि से सुरक्षित उन्हें देखकर जयमाल लक्षण (लाखन) के गले में डाल दिया। उसी समय वीर लक्षण (लाखन) ने भी उसके कोमल हाथों को पकड़-

तदा स लक्षणो वीरो गृहीत्वा पाणिमुत्तमम् । स्वरथं च समारुह्य राज्ञां मध्ये ययौ मुदा ।।१५
पृथ्वीराजस्तथा सर्वे भूमिपा बलसंयुताः । रुरुधुः सर्वतो वीरं लक्षणं बलवत्तरम् ।।१६
तालनः सिंहिनीसंस्थो गृहीत्वा परिघं मुदा । सैन्यानि योधयामास भीमसेनांशसम्भवः ।।१७
पञ्चशब्दगजारूढश्चाह्लादस्तोमरायुधः । रिपून्विदारयामास बलभद्रांशसम्भवः ।।१८
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् । भूपतीन्बहुधा छित्त्वा महात्कर्म्मकारयत् ।।१९
देवो मनोरथारूढो भैरवं भल्लमादधौ । हत्वा च बहुधा सैन्यं ननर्द च पुनः पुनः ।।२०
लक्षणो धनुरादाय वैष्णवास्त्राणि वै पुनः । सन्धाय च जघानाशु महीराजस्य सैन्यपान् ।।२१
यामभात्रमभूद्युद्धं तेषां तैश्च समन्वितम् । त्यक्त्वा युद्धं महीराजः सर्वभूपसमन्वितः ।।२२
ययौ स देहलीग्रामे शारदानन्दनस्तदा । संस्थाप्य मण्डपशुभं कृत्वा वैवाहिकीः क्रिया ।।
ददौ कन्यां विधानेन धनधान्यादिसंवृताम् ।।२३
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो महीपतिरुवाच तम् । पद्माकरं भूपसुतं लक्षसैन्यसमन्वितम् ।।२४
अहो मित्र महावीर कीदृशी ते मतिः स्थिता । विष्वक्सेनान्वये त्वं वै सञ्जातः क्षत्रियोत्तमः ।।२५
लक्षणो धर्मरहितो वर्णसङ्करसंयुतः । आह्लादाद्याश्च ते शूरा आभीरमातृसम्भवाः ।।
तैर्युतश्च निवासो वै सन्त्याज्यो धर्मकोविदैः ।।२६
इति पद्माकरः श्रुत्वा सर्वमायाविशारदः । स कृत्वा शाम्बरीं मायां बद्ध्वा तानेव दुर्जयान् ।।
स्वगेहे स्थापयामास कारागारे शिलामये ।।२७

कर अपने रथ पर बैठा लिया और प्रसन्न होकर राजाओं के मध्य से उसे लेकर प्रस्थान किया।१-१५। पृथ्वीराज ने समस्त अन्य राजाओं को साथ लेकर जाते हुए बलवान् लक्षण (लाखन) को चारों ओर से घेर लिया। पश्चात् सिंहिनी पर बैठे हुए तालन ने अपने परिध अस्त्र द्वारा जो भीमसेन के अंश से उत्पन्न थे, सैनिकों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित आह्लाद (आल्हा) भी जो बलभद्र के अंश से उत्पन्न थे, अपने तोमर अस्त्र से शत्रु सैनिकों को धराशायी करने लगे। उस समय बिन्दुल पर बैठे हुए उदयसिंह तो अपने खड्ग द्वारा बहुधा राजाओं के ही शिर छिन्न-भिन्न कर रहे थे। देवसिंह मनोरथ पर बैठे हुए अपने उस भीषण भाले से शत्रुओं का वध करते हुए बार-बार सिंह गर्जना कर रहे थे और लक्षण (लाखन) अपने धनुष पर वैष्णव शरों को रखकर पृथ्वीराज के सेना नायकों को धराशायी कर रहे थे। एक प्रहर तक दोनों दलों का भीषण संग्राम हुआ। पश्चात् पृथ्वीराज समस्त राजाओं समेत युद्द का त्यागकर दिल्ली चले गये और शारदानन्दन ने शुभ मण्डप की स्थापना समेत विवाह की सभी क्रियाओं को धनधान्य के प्रदान समेत सुसम्पन्न करके कन्यादान लक्षण (लाखन) को सौंप दिया। उसी बीच महीपति (माहिल) ने आकर राजपुत्र पद्माकर से कहा, जो अपनी एक लाख सेना समेत स्थित थे—मित्र! महावीर! आपकी बुद्धि कैसी हो गई है। आश्चर्य है कि आप विष्वक्सेन वंश के क्षत्रिय कुल में जन्मग्रहणकर वर्णसंकर एवं धर्मच्युत लक्षण (लाखन) के साथ संबंध स्थापित किया। आह्लाद (आल्हा) आदि अहीरिन के गर्भ से उत्पन्न हैं, इसलिए इनके साथ रहने से धर्ममर्मज्ञों ने इनका परित्याग कर दिया है। इसे सुनकर पद्माकर ने जो समस्त माया करने में निपुण था, अपनी शाम्बरी माया द्वारा अजेय वीरों को बाँधकर घर में पत्थर के कारागार में डाल दिया। देवी के वरदान द्वारा

देव्याश्च वरदानेन देवसिंहस्तदा निशि । त्यक्त्वा मायां मोहमयीं कान्यकुब्जमुपाययौ ॥२८
इन्दुलाग्रे च तत्सर्वं गदित्वा तेन संयुतः । प्राप्तो विन्दुगढं शीघ्रं दिव्यमायाविशारदः ॥२९
पद्माकरस्तु तच्छ्रुत्वा कृत्वा मायां च शाम्बरीम् । मोहनायोद्यतस्तत्र यथा मेघो रविं दिवि ॥३०
इन्दुलश्च तदा चापे सन्धाय शरमुत्तमम् । कामास्त्रेण तु तन्मायाभस्मीभूताभवत्क्षणात् ॥३१
तदा ते बोधिताः सर्वे कामास्त्रेण महाबलाः । भित्त्वा लोहमयं जालं कपाटं च तथा दृढम् ॥३२
बहिर्भूताः समाजग्मुः शत्रुसैन्यान्यनाशयन् । क्षत्रियाः पञ्चसाहस्रा मृता यमपुरं ययुः ॥३३
शारदानन्दनो भूपस्तत्रागत्य विनम्य तान् । स्वसुतां च ददौ तस्मै लक्षणाय महात्मने ॥३४
नानाविधानि भोज्यानि प्रशस्याभरणानि च । सर्वेभ्यश्च ददौ राजा सहस्रेभ्यस्तदा मुदा ॥३५
कुमारिकां स्वकीयां च बहुरोदनतत्पराम् । स मत्वा कामपालो वै स्वगेहात्तं[१] न्यवासयत् ॥
आगतो लक्षणो गेहं माघकृष्णाष्टमीदिने ॥३६
जयचन्द्रस्तु तं दृष्ट्वा लक्षणं प्रेमविह्वलः । शतग्रामान्ददौ तेभ्यस्तालनादिभ्य एव च ॥३७
दत्त्वा ततोऽन्यदानानि गोवस्त्राभरणानि च । प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च स चकार महोत्सवम् ॥३८

सूत उवाच

महीराजो वरं प्राप्तः शङ्करात्पार्थिवार्चनात् । संयोज्य फाल्गुने मासि सेनां शत्रुभयङ्कराम् ॥३९
सप्तलक्षैश्च सहितः शिरीषाख्यपुरं ययौ । नृपाज्ञया च चामुण्डो रुरोध नगरं पुनः ॥४०

देवसिंह उसी आधी रात के समय चेतना प्राप्तकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) चले गये । वहाँ पहुँचकर इन्दुल से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । उसे सुनकर इन्दुल ने देवसिंह के समेत उसी समय बिन्दुगढ़ को प्रस्थान किया । पद्माकर ने उनका आगमन सुनकर उन्हें मोहित करने के लिए दिन में सूर्य को मेघ द्वारा आवृतकर लेने की भाँति अपनी शाम्बरी माया का प्रयोग किया ।१६-३०। किन्तु इन्दुल ने उसी समय अपने धनुष पर कामबाण का संधानकर उसी द्वारा उनकी समस्त माया को भस्मकर दिया । पश्चात् कामास्त्र द्वारा चेतना प्राप्त कर उन वीरों ने अपने लोहे के बंधनों तथा किवांड़ों को तोड़कर बाहर जाकर शत्रुओं का नाश करना आरम्भ किया । पाँच सहस्र क्षत्रियों को यमपुरी भेज दिया । उपरान्त राजा शारदानन्द ने नम्रतापूर्वक वहाँ आकर यशस्वी लक्षण (लाखन) को सादर अपनी कन्या सौंप दी और भाँति-भाँति के भोजन-वस्त्र एवं आभूषणों को अन्य लोगों में सप्रेम वितरण किया । उपरांत राजा ने रुदन करती हुई उस अपनी पुत्री को लक्षण (लाखन) के साथ स्नेहपूर्ण होकर बिदा किया । माघ कृष्ण अष्टमी के दिन लक्षण (लाखन) अपने घर संकुल पहुँच गये । उनके आने पर प्रेमव्याकुल होकर राजा-जयचन्द्र ने तालनादि को सौ गाँव पुरस्कार रूप में प्रदान किया और ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, आभूषणों को प्रदानकर महान् उत्सव करने का आयोजन किया ।३१-३८

सूत जी बोले—पार्थिवपूजन द्वारा शिव जी से वरदान प्राप्तकर राजा पृथ्वीराज ने फाल्गुन मास में सात लाख सैनिकों की एक विशाल सेना लेकर शिरीष नगर को प्रस्थान किया । राजा की आज्ञा प्राप्त-

---

१. बहिरिति शेषः ।

सुखखानिस्तदा क्रुद्धो लक्षसैन्यसमन्वितः । नगराद्बहिरागत्य महावधमकारयत् ॥४१
पावकास्त्रेण बलवान्हत्वा दशसहस्रकम् । महीराजमुपागम्य वचनं प्राह निर्भयः ॥४२
अद्य त्वां च हनिष्यामि त्वं वा हन्ता रणे मम । स्वविद्यां कुरु भूप त्वं नो चेद्यास्यसि वैशसम् ॥४३
इति श्रुत्वा महीराजो रौद्रास्त्रं चाप आदधे । तदस्त्राच्च महावह्निः प्रादुर्भूतो भयङ्करः ॥४४
सुखखानिस्तदाग्नेयं सन्दधौ तस्य शान्तये । रौद्राग्निना च सशरः सुखखानिर्लयं गतः ॥४५
तदस्त्रं शिवतूणीरे गतं कार्यं विधाय तत् । बलखानिस्तु तच्छ्रुत्वा भयभीतः समागतः ॥४६
भ्रातुर्वैरमुपादाय जघान च रिपोर्बलम् । ध्यात्वा च शारदां देवीं भूमिराजमुपागमत् ॥४७
भूमिराजस्तु तं दृष्ट्वा तद्बलाधिक्यमोहितः । उवाच वचनं प्रेम्णा बलखाने शृणुष्व भोः ॥४८
क्रोशमात्रान्तरे गर्ता द्वादशैव मया कृताः । रक्षिता द्वादशशतैः शूरैर्युद्धविशारदैः ॥४९
शूराञ्जित्वा समुल्लङ्घ्य गर्तान्द्वादशसम्मितान् । ममार्द्धं सकलं राष्ट्रं गृहाण बलिसत्तम ॥५०
इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तद्राज्ञा सत्यभाषितम् । कपोतं हयमारुह्य खड्गहस्तो वनं ययौ ॥५१
दृष्ट्वा गर्तान्महावीरो हत्वा शूराञ्छतञ्छतम् । ययौ स द्वादशान्गर्तान्बाहुशाली जितेन्द्रियः ॥५२
चामुण्डस्तु तदागत्य शूरायुतसमन्वितः । रुरोध सर्वतो वीरं छद्मकारी द्विजाधमः ॥५३
बलखानिश्च महतीं सेनां तस्य जघान ह । चामुण्डं तमुपागम्य ननर्द च पुनःपुनः ॥५४

कर चामुण्ड ने पुनः क्रुद्ध होकर सुखखानि से अपनी एक लाख की सेना लेकर नगर के बाहर रणस्थल में आकर भीषण युद्ध करना आरम्भ किया। उन्होंने अपने आग्नेय अस्त्र से दशसहस्र सैनिकों के वध करने के उपरांत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे निर्भय होकर कहा—आज मैं तुम्हरा हनन करूँगा। अथवा इस रणक्षेत्र में मेरे हन्ता तुम्हीं होंगे। अतः भूप ! अपनी विद्या का प्रयोग पहले कर लो, नहीं तो तुम्हें नरक की तैयारी करनी होगी। इसे सुनकर पृथ्वीराज ने अपने धनुषपर रौद्रबाण का संधान किया जिससे भीषण एवं महाअग्नि का उत्थान हुआ। उसकी शांति के लिए सुखखानि ने अपने पावक, अस्त्र का प्रयोग किया, किन्तु उस रौद्र-अग्नि द्वारा अपने अस्त्र समेत सुखखानि भस्म हो गये।३९-४५। अपना कार्य करके वह अस्त्र शिव जी के तरकस में प्रविष्ट हो गया। इस घटना को सुनकर बलखानि (मलखान) भयभीत होकर वहाँ रणस्थल में पहुँचकर भ्रातृबैर स्मरणपूर्वक शत्रुओं का नाश करने लगे। उसी अवसर पर शारदा के ध्यान पूर्वक पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँचकर उन्हें देखते हुए उनके बलाधिक्य पर मोहित हो गये। पश्चात् उन्होंने प्रेम पूर्वक बलखानि (मलखान) से कहा—मेरी एक बात सुनो ! मैंने एक कोश के भीतर बाहर गढ्ढे बनाये हैं, युद्ध निपुण बारह सौ शूर जिसकी रक्षा में नियुक्त किये गये हैं। वीरों पर विजय प्राप्त करते हुए उन बारहों गड्ढों को पारकर लेने पर तुम्हें मैं अपना आधाराज्य सौंप दूंगा। उस बलवान् ने राजा के कहे हुए उस प्रिय वाक्य को सत्य मानकर कपोत तथा घोड़े पर बैठ हाथ में खड्ग लिए वहाँ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ के गड्ढों को देखकर उस बलवान् ने सौ-सौ वीरों को धराशायी करते हुए उस संयमी एवं बाहुशाली महाबली ने बारहवें गड्ढे पर पहुँचकर उस चामुण्ड से जो दश सहस्र की सेना लेकर उसे घेर लिया था, युद्ध करना आरम्भ किया। बलखानि (मलखान) ने उस कपटी एवं ब्राह्मणाधम की सेना का हनन करके चामुण्ड के समीप पहुँचकर बार-बार गर्जना की। वहाँ

त्रयोदशं गुप्तगर्तं तृणैराच्छादितं मृदा । विषधौतैर्महाभल्लैस्संरुद्धं दिवरप्रभम् ॥५५
पतितः सकपोतश्च स वीरो दैवमोहितः । अन्धकारे महाघोरं गम्भीरं क्रोशमात्रकम् ॥५६
विदीर्णस्तत्र चरणस्सपद्मो वत्सजस्य वै । महाकष्टेन तद्वाजी गर्तादागत्य वै बहिः ॥
स्वपदैस्ताडयामास महीराजस्य तद्बलम् ॥५७
चामुण्डस्तु तदागत्य बलखानेश्च वै शिरः । छित्त्वा जघान तत्सैन्यं हाहाभूतं विनेश्वरम् ॥५८
गजमुक्ता च तच्छ्रुत्वा चितामारोप्य वै पतिम् । दाहयामास चाङ्गानि सा पत्या सह वै सती ॥५९
तदा ब्रह्मा स्ववध्वा च सार्द्धमागत्य तत्र वै । सुखखानिं च संहृय ददाह तत्कलेवरम्[१] ॥६०
शून्यभूतं च नगरं भस्म कृत्वा स वै नृपः । जगाम देहलीं शीघ्रं महोत्साहसमन्वितः ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम विक्रमाख्यानकाले पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

श्रावणे मासि सम्प्राप्ते देहलीं च महीपतिः । नागोत्सवाय प्रययौ सदैव कलहप्रियः ॥१

तेरहवाँ गड्ढा भी बनाया गया था, जो केवल तृण (फूसों) और मिट्टी से नाम मात्र को आवृत कर दिया गया था। उसके नीचे विषयुक्त भाले भी गड़े थे। दैवसंयोग से घोड़ा समेत (मलखान) उसी गढढे में गिर पड़ा, जो अंधकार पूर्ण, महाघोर, गंभीर एवं एक कोश में विस्तृत था! वत्सपुत्र (मलखान) के चरण भाले द्वारा विदीर्ण हो गये। उस समय उनका घोड़ा अत्यन्त कष्ट से बाहर निकलकर अपने चरणों द्वारा शत्रुओं का हनन करने लगा। उसी अवसर पर चामुण्ड ने वहाँ पहुँचकर बलखानि (मलखान) के शिर के छेदन पूर्वक उनकी सेनाओं का नाश किया। उसे सुनकर गजमुक्ता (गजमोतिना) चिता लगवाकर पति के साथ सती हो गई। इस घटना को सुनकर अपनी स्त्री समेत ब्रह्मानन्द वहाँ आकर सुखखानि का दाह संस्कार किया। उपरांत पृथ्वीराज ने उस वीरशून्य राजधानी का नाशकर अपने दिल्ली में उसका महोत्सव मनाया।४६-६१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।२५।

अध्याय २६

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार श्रावणमास की नागपञ्चमी के अवसर पर कलह-प्रिय महीपति

---

१. स्वं कलेवरमिति पाठस्तूत्तरग्रंथविरोधादुपेक्ष्य एव ।

दृष्ट्वा नागोत्सवं तत्र गीतनृत्यसमन्वितम् । महीराजं नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ॥२
राजन्महावतीग्रामे कीर्तिसागरमध्यगे । वामनोत्सवमत्यन्तं तं यवव्रीहिसमन्वितः ॥
पश्य त्वं तत्र गत्वा च ममैव वचनं कुरु ॥३
इति श्रुत्वा महीराजो धुन्धकारेण संयुतः । सप्तलक्षबलैर्युक्तश्चामुण्डेन समन्वितः ॥
प्राप्तः शिरीषविपिने तत्र वासमकारयत् ॥४
महीपतिस्तु नृपतिं नत्वा वै चन्द्रवंशिनम् । उवाच वचनं दुःखी धूर्तो मायाविशारदः ॥५
राजन्प्राप्तो महीराजो युद्धार्थी त्वामुपस्थितः । चन्द्रावलीं च तनयां ब्रह्मानन्दं तवात्मजम् ॥
दिव्यलिङ्गं स सम्पूज्य बलात्काराद् ग्रहीष्यति ॥६
तस्मात्त्वं स्वबलैः सार्द्धं मया सह महामते । छद्मना तं पराजित्य नगरेऽस्मिन्सुखी भव ॥७
इति श्रुत्वा दैववशो राजा परिमलो बली । चतुर्लक्षबलैस्सार्द्धं निशीथे च समागतः ॥८
शयितान्क्षत्रियाञ्छूरान्हत्वा पञ्चसहस्रकान् । शतघ्नीं रोषणीं चक्रे बहुशूरविनाशिनीम् ॥९
तदोत्थाय महीराजः कटिमाबध्य सम्भ्रमात् । वैरिणं परमं नत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥१०
युद्धचन्त्योः सेनयोस्तत्र मलना पुत्रगृद्धिनी । शारदामादराद्गत्वा पूजयामास भक्तितः ॥११
देविदेवि महादेवि सर्वदुःखविनाशिनि । हर मे सकलां बाधां कृष्णांशं बोधयाशु च ॥१२

(माहिल) ने दिल्ली को प्रस्थान किया। वहाँ के पञ्चमी उत्सव को जिसमें नृत्य-गान का महान समारोह होता है, देखते हुए पृथिवीराज के पास पहुँचकर नमस्कार के उपरांत विनम्र निवेदन किया — राजन् ! महावती (महोबा) नगर के कीर्तिसागर के मध्य में यवव्रीहि युक्त वामन-महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ सुसम्पन्न होता है। अतः मेरी नितान्त कामना है कि अबकी बार आप उस महोत्सव को देखने की अवश्य कृपा करें। इसे सुनकर पृथ्वीराज ने धुंधकार (धांधू) और चामुण्ड (चौंढ़ा) समेत लाख सैनिकों को लेकर उस शृंशिप नामक वन में पहुंचकर वहाँ अपना सैनिक-निवास बनाया। उसी बीच महीपति (माहिल) शीघ्र चन्द्रवंशी राजा परिमल के यहाँ आकर नमस्कार के उपरांत उस मायावी धूर्त ने अपने मुख को गम्भीर बनाकर उनसे कहा—राजन् ! तुमसे युद्ध करने के लिए पृथ्वीराज यहां आये हुए हैं। दिव्यलिंग की पूजा के उपरांत ये तुम्हारी पुत्री चन्द्रावली का अपहरण बलप्रयोग द्वारा करेंगे। इसलिए महामते ! अपनी सेना के साथ तुम मेरे साथ चलकर छल-छद्म द्वारा उन्हें पराजित कर अपनी राजधानी में सुख का अनुभव करो। इसे सुनकर दैववंश राजा परिमल ने अपनी चार लाख सेना लेकर आधीरात के समय वहां जाकर शत्रु के पाँच सहस्र सैनिक के वध करने के उपरांत उन तोपों का प्रयोग करना आरम्भ किया, जिसके द्वारा एक बार में ही अनेक सैनिक धराशायी हो जाते हैं। उस समय राजा पृथ्वीराज ने सहसा उठकर कमर कसते हुए उन्हें महान् शत्रु समझकर उनसे भीषण युद्ध किया। दोनों सैनिकों के युद्ध करते समय रानी मलना ने अपने पुत्र की हित कामना से मंदिर में जाकर देवी शारदा की भक्ति समेत सादर पूजा की। और पश्चात् प्रार्थना की—महादेवि ! आप समस्त दुःख की हरण करने वाली देवी है। अतः देवि ! मेरी समस्त बाधा का अपहरण करो उदयसिंह को शीघ्र इसका ज्ञान

जप्त्वायुतमिमं मन्त्रं हुत्वा तर्पणमार्जने । कृत्वा सुष्वाप तद्वेश्मंस्तदा[1] तुष्टा स्वयं शिवा ।।१३
मलने महती बाधा क्षयं यास्यति मा शुचः ।।१४
इत्युक्त्वा शारदा देवी कृष्णांशं प्रति चागमत् । पुत्र ते जननी भूमिर्महीराजेन पीडिता ।।
क्षयं यास्यति शीघ्रं च तस्मात्त्वं तां समुद्धर ।।१५
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्स वीरो विस्मयान्वितः । देवकीं प्रति सम्प्राप्तः कथयामास कारणम् ।।१६
सा तु श्रुत्वा वचो घोरं स्वर्णवत्या समन्विता । रुरोद भृशमुद्विग्ना विलप्य बहुधा सती ।।१७
कृष्णांशस्तु तदा दुःखी देवसिंहमुवाच ह । किं कर्तव्यं मया वीर देह्याज्ञां दारुणे भये ।।१८
तच्छ्रुत्वा तेन सहितो लक्षणेन समन्वितः । ययौ दिग्विजयार्थेन व्याजेन च महावतीम् ।।१९
तालनो भीमसेनांशः सेनापतिरुदारधीः । सप्तलक्षबलैस्सार्द्धं विनाह्लादेन सञ्ययौ ।।२०
कल्पक्षेत्रमुपागम्य योगिनस्ते तदाभवन् । सेनां निवेशयामास विपिने तत्र दारुणे ।।२१
कृष्णांशस्तालनो देवो लक्षणो बलवत्तरः । गृहीत्वा लास्यवस्तूनि युद्धभूमिमुपागमन् ।।२२
सप्ताहं च तयोर्युद्धं जातं मृत्युविवर्द्धनम् । सप्तमेऽहनि ते वीरास्सम्प्राप्ता रणमूर्द्धनि ।।२३
तस्मिन्दिने महाभाग महद्युद्धमवर्तत ।।२४
दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं राजा परिम्लो बली । रथस्थश्चापमादाय महीराजमुपाययौ ।।२५
यादवश्च गजारूढस्तदा चन्द्रावलीपतिः । धुन्धुकारं समाहूय धनुर्युद्धमचीकरत् ।।२६

कराओ। देवी के मंत्र की दश सहस्र आवृति जप, हवन, तर्पण और मार्जन करने के उपरांत उसी मन्दिर में उन्होंने शयन किया। स्वप्न में देवी शारदा ने उनसे यह कहकर कि 'मलने देवि ! शोक मत करो, तुम्हारी यह बड़ी बाधा शीघ्र नष्ट हो जायेगी तथा उदयसिंह के पास जाकर स्वप्न में उनसे कहा—पुत्र ! तुम्हारी जन्म-भूमि राजा के द्वारा कष्टयुक्त है इसलिए उसका उद्धार करो अन्यथा वह शीघ्र विनष्ट हो जायेगी।१-१५। देवी की इन बातों को सुनकर चकित होकर उन्होंने जाकर देव की सभी बातें कहा। उसे सुनकर घोर तप करती हुई पतिव्रता देवकी ने स्वर्णवती (सोना) समेत मानसिक पीडा से व्यथित होती हुई अत्यन्त रुदन किया। उस समय उदयसिंह ने दुःखी होकर देवसिंह से कहा—वीर! इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये। उसे सुनकर देवसिंह ने उन्हें तथा लक्षण (लाखन) को साथ लेकर दिग्विजय के व्याज से महावती (महोबा) को प्रस्थान किया। भीम सेनांश तालन अपनी सात लाख सेनाओं का संचालन करते हुए जा रहे थे। केवल आह्लाद (आल्हा) ही उस यात्रा से वंचित थे। कल्पक्षेत्र में पहुँचकर उन लोगों ने अपना योगी का वेष बनाकर उसी घोर जंगल में सेना रखकर उदयसिंह, तालन, देवसिंह और सबल लक्षण (लाखन) ने अपने नृत्य-गान की सामग्रियाँ लेकर उस रणक्षेत्र को प्रस्थान किया। वहाँ उन दोनों सैनिकों में सात दिन तक घोर युद्ध होता रहा। उसी सातवें दिन वे वीरगण भी वहाँ पहुँच गये थे। महाभाग ! उस दिन घोर युद्ध हुआ था। राजा परिमल ने अपने सैनिकों को पराजित देखकर विपत्तियों के जाल में फँसकर रथ पर बैठे हुए पृथ्वीराज के समीप गमन किया। उस समय चन्द्रावली के पति यादव ने हाथी पर बैठे धुंधकार (धांधू) को उत्तेजित करते हुए उनसे धनुष युद्ध आरम्भ किया।१६-२६।

---

१. वेश्मनीत्यर्थः। 'ङाबुत्तरपदे'—इति लोपाभावः 'नश्छवि'—इति रुत्वम्।

हरिनागरमारुह्य ब्रह्मानन्दो महाबलः । तारकं शत्रुमाहूय धनुर्युद्धं चकार ह ॥२७
मर्दनं राजपुत्रं च रणजिद्गजसंस्थितः । स्वशरैस्ताडयामास तत्सुतं च जघान ह ॥२८
रूपणो वै सरदनं हयारूढो जगाम ह । आभीरीतनयो जातो मदनो नाम वै बली ॥
नृहरं राजपुत्रं च शङ्खांशश्च जगाम ह ॥२९
तेषु सङ्ग्राममेतेषु[1] चामुण्डोऽयुतसैन्यपः । महीपतेश्च वचनं मत्वा नगरमाययौ ॥३०
ददर्श नगरीं रम्यां चतुर्वर्णसमन्विताम् । धनधान्ययुतां वीरो देवीभक्तिपरायणः ॥३१
महीपतिस्तु वै धूर्तो दुर्गद्वारि समागतः । चामुण्डेन युतः पापी राजगेहमुपाययौ ॥३२
मलना भ्रातरं दृष्ट्वा वचनं प्राह दुःखिता । भाद्रकृष्णाष्टमी चाद्य यवव्रीहि[2] गृहे स्थितम् ॥३३
न प्राप्त जल संस्थाने सुपुण्ये कीर्तिसागरे । महीराजो महापापी वामनोत्सवमागतः ॥३४
विनाह्लादं च कृष्णांशं महद्दुःखमुपागतम् । इत्युक्तस्स विहस्याह ब्राह्मणोऽयं महाबली ॥
कान्यकुब्जात्समायातः कृष्णांशेन प्रयोजितः ॥३५
देवीदत्तश्च नाम्नाऽयं स ते कार्यं करिष्यति । श्रुत्वा चन्द्रावली देवी सर्वभूषणसंयुता ॥३६
कामाग्निपीडितं विप्रं चामुण्डं च ददर्श ह । मातरं प्रति चागम्य वचनं प्राह निर्भरम् ॥३७
धूर्तोऽयं ब्राह्मणो मातर्निश्चयं मां हरिष्यति । कोऽयं वीरो न जानामि कथं यामि पतिव्रता ॥३८

एवं हरिनागर पर बैठे हुए ब्रह्मानन्द अपने शत्रु तारक (ताहर) को ललकारकर उनसे धनुर्युद्ध करने लगे। उसी प्रकार रणजित् ने अपने शत्रु राजपुत्र मर्दन को अपने बाण प्रहारों से व्याकुल करते हुए उनके पुत्र का निधन कर दिया। रूपण अश्वारूढ़ होकर युद्ध कर रहा था, अहीरिन के गर्भ से उत्पन्न मदन जो शंख के अंश से उत्पन्न था, राजपुत्र नृहरि के साथ घोर युद्ध में लीन था। इस प्रकार उन वीरों के युद्ध करते समय चामुण्ड ने महीपति (माहिल) के कथनानुसार दश सहस्र सैनिकों समेत महावती (महोवा) नगर को, जो परमरम्य, चारों वर्णों के नागरिकों से सुशोभित एवं धन-धान्य से परिपूर्ण था, देखते हुए धूर्त महीपति (माहिल) के साथ दुर्ग के अन्दर प्रवेश किया। दरवाजे पर पहुँचकर वह पापी माहिल केवल चामुण्ड को लेकर भीतर राजमहल में चला गया। उस समय भाई को देखकर मलना ने दुःखी होकर कहा—आज भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी का दिन है, इसीदिन यह यवव्रीहि जो घर में स्थित है उसे कीर्तिसागर के पुण्यजल में जाना चाहिए किन्तु न जा सका, यह पापी पृथ्वीराज भी इसी वामनोत्सव के समय आ गया है। आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह के बिना इस समय मैं अत्यन्त कष्ट का अनुभव कर रही हूँ। उनके इतना कहने पर हंसते हुए उस महाबली (माहिल) ने कहा—उदयसिंह का भेजा हुआ एक देवीदत्त नामक ब्राह्मण कन्नौज से आया है, वही तुम्हारा सभी कार्य सुसम्पन्न करायेगा।२७-३६। उसे सुनकर समस्त आभूषणों से सुसज्जित देवी चन्द्रावली ने कामपीडित उस चामुण्ड नामक ब्राह्मण को देखकर माता से आकर निर्भीक होकर कहना आरम्भ किया—मातः! यह ब्राह्मण धूर्त है, निश्चय यह मेरा अपहरण करेगा। मैं यह भी नहीं जानती हूँ कि यह कौन वीर है। इसलिए पतिव्रता होकर मैं इसके साथ कैसे

---

१. आगतेषु। २. यवाश्च व्रीहयश्चेति समाहारद्वन्द्वः।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितस्स महीपतिः । चामुण्डेन युतः प्राप्तो यत्राभूत्स महारणः ॥३९
एतस्मिन्नन्तरे ते वै ब्रह्माद्यास्तैः पराजिताः । त्यक्त्वा युद्धं गृहं प्राप्तास्त्रिलक्षबलसंयुताः ॥४०
कपाटं सुदृढं कृत्वा महाचिन्तामुपाययुः । महीराजस्तु बलवान्महीपत्यनुमोदितः ॥४१
प्रमदावनमागत्य षष्टिलक्षबलान्वितः । रुरोध तत्र बलवान्माननोत्सवहेतवे ॥४२
तालनाद्याश्च चत्वारः शिरीषाख्यपुरं ययुः । स्थलीभूतं च तं ग्रामं दृष्ट्वा ते विस्मयान्विताः ॥
प्रययुस्ते मुखभ्रष्टा ददृशुर्हि मदं मुनिम् ॥४३
प्रणम्योचुः शुचाविष्टा बलखानिर्मुने बली । क्व गतः समरश्लाघी स च कुनागरैर्युतः ॥४४
श्रुत्वाह हिमदो योगी महीराजेन नाशितः । छद्मना बलखानिश्च तस्येयं सुन्दरी चिता ॥४५
इति श्रुत्वा वचो घोरं कृष्णांशः शोकतत्परः ॥४६
विललाप भृशं तत्र हा बन्धो धर्मजांशक । त्वदृते भूतले वासो ममातीव भयङ्करः ॥४७
दर्शनं देहि मे क्षिप्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥४८
इत्युक्तः स तु तद्भ्राता बलखानिः पिशाचगः । सपत्नीकस्समायातो रोदनं कृतवान्बहु ॥
कथित्वा[1] सर्ववृत्तान्तं यथाजातं स्ववैशसम् ॥४९
दिव्यं विमानमारुह्य गतो नाकं मनोरमम् । युधिष्ठिरे तस्य कला बलखानेर्लयं गता ॥५०
तदा दुःखी स कृष्णांशः कृत्वा भ्रातुस्तिलाञ्जलिम् । महावतीं समागत्य राजगेहमुपाययौ ॥५१

(कीर्तिसागर) जा सकती हूँ। इसे सुनकर महीपति (माहिल) अत्यन्त लज्जित होकर चामुण्ड समेत उस रणस्थल में चला गया। उसी बीच पराजित होकर ब्रह्मादि अपने शेष तीन लाख सैनिकों को लेकर दुर्ग के द्वार को दृढतर बन्दकर भीतर अत्यन्त चिंतित हो रहे थे। उधर माहिल के कथनानुसार पृथ्वी राज ने छः लाख सैनिकों समेत बामनोत्सव के कारण वहाँ के प्रमोदवन को घेर लिया था। तालन आदि चारों वीरों ने शृंशिपपुर पहुँचकर वहाँ के नगर को केवल स्थंडिल (डीह) मात्र देखकर अत्यन्त आश्चर्य किया। वहाँ इधर-उधर घूमते उन लोगों ने मद नामक मुनि को देखकर नमस्कार पूर्वक चिंतित होकर पूछा—मुने! रणप्रेमी बलखानि (मलखान) वीर कहाँ चला गया और नगर निवासी कहाँ गये। इसे सुनकर योगी मद ने कहा—पृथ्वीराज ने सब नष्ट कर दिया है, उसी ने छल-छद्म द्वारा बलखानि (मलखान) की हत्या की है, उसी की यह सुंदरी चिता दिखाई दे रही है। इस घोर वाणी को सुनकर उदयसिंह ने शोक-सागर में निमग्न होकर विलाप करना आरम्भ किया—हा बंधो! धर्म पुत्र के अंश, तुम कहाँ चले गये। तुम्हारे विना इस भूतल में मेरा निवास करना अत्यन्त दुस्सह है, मुझे शीघ्र दर्शन प्रदान करो नहीं तो मैं प्राणत्याग के लिए तैयार हूँ। इस प्रकार उनके विलाप करने पर पिशाचयोनिप्राप्त बलखानि (मलखान) ने पत्नी समेत वहाँ प्रत्यक्ष होकर अत्यन्न रुदन करते हुए जिस प्रकार दुर्मृत्यु हुई थी, सभी वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् दिव्य विमान पर सुशोभित होकर उस रमणीक स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया और उसकी कला युधिष्ठिर में विलीन हो गई। उपरांत उदयसिंह दुःखी होते हुए भाई को

---

१. णिलोप आर्षः।

वेणुशब्देन कृष्णांशो ननर्त जनमोहनः । वीणाप्रवाद्यं च जगौ तालनो योगिरूपधृक् ।।५२
मृदङ्गध्वनिना देवो लक्षणः कांस्यवाद्यकः । सुस्वरं च जगौ तत्र श्रुत्वा राजा विमोहितः ।।५३
तदा तु मलना राज्ञी दृष्ट्वा तद्वामनोत्सवम् । रुदित्वा वचनं प्राह क्व गतो मे प्रियङ्करः ।।५४
कृष्णांशो बन्धुसहितस्त्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् । त्वया विरहितो देशो महीराजेन लुण्ठितः ।।५५
इत्युक्त्वा मलनां दृष्ट्वा कृष्णांशः स्नेहकातरः । वचनं प्राह नम्रात्मा देवि त्वं वचनं कुरु ।।५६
योगिनश्च वयं राज्ञि सर्वयुद्धविशारदः । तवेदं सकलं कार्यं कृत्वा यामो हि नैमिषम् ।।५७
ये यवव्रीहयश्चैव तव सद्मनि संस्थिताः । गृहीत्वा योषितस्सर्वा गच्छन्तु सागरान्तिकम् ।।
वयं तु योगसैन्येन तव रक्षां च कुर्महे ।।५८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य तत्सुता च पतिव्रता । मातरं वचनं प्राह कृष्णांशोऽयं न नर्तकः ।।५९
पुण्डरीकनिभे नेत्रे श्यामाङ्गं तस्य सुन्दरम् । कृष्णांशेन विना मातः को रक्षार्थं क्षमो भुवि ।।
दुर्जयश्च महीराजः कृष्णांशेन विनिर्जितः ।।६०
इति तद्वचनं श्रुत्वा मलना प्रेमविह्वला । यवव्रीहयो निष्कास्य योषितां स्थापिता करे ।।६१
जगुस्ता योषितस्सर्वाः कृष्णांशचरितं शुभम् । लक्षणः शीघ्रमागम्य योगिवेषान्स्वसैनिकान् ।।
सज्जीकृत्य स्थितस्तत्र तालनाद्यैः सुरक्षितः ।।६२
कीर्तिसागरमागम्य ते वीरा बलदर्पिताः । रुरुधुः सर्वतो नारीर्दोलायुतमितस्थिताः ।।६३

तिलाञ्जलि प्रदानकर महावती (महोवा) के राजमहल में पहुँच गये। वहाँ उदयसिंह ने वंशी बजाते हुए अपने नृत्य द्वारा देखने वालों को मोहित कर दिया! उस नृत्य में योगीरूप धारणकर तालन वीणा, देवसिंह मृदङ्ग और लक्षण (लाखन) मजीरा बजा रहे थे। उस सुरीली तान को सुनकर राजा (परिमल) मोहित हो गये। उस समय रानी मलना उस वामनोत्सव को देखकर रुदन करती हुई कहने लगी—मेरा प्यारा कहाँ चला गया, भाई समेत उदयसिंह ने मुझ मन्द भागिनी को त्याग दिया है। मैं तुम्हें कहाँ पाऊँ। तुमसे शून्य जानकर इस प्रदेश को पृथ्वीराज ने लूट लिया है।३७-५५। इस प्रकार कहती हुई मलना को देख स्नेह से अधीर होकर उदयसिंह ने नम्रतापूर्वक उनसे कहा—देवि! तुम मेरी बात स्वीकार करो! रानी! हम सभी योगी युद्ध करने में निपुण हैं, अतः तुम्हारे इन सभी कार्यों को सुसम्पन्न कराने के उपरांत नैमिषारण्य जाँयेगे। इसलिए तुम्हारे घर में जितने यवव्रीहि स्थित हैं, उन्हें लेकर स्त्रियाँ कीर्तिसागर के समीप चलने की तैयारी करें। हमलोग इस योगी के सेना द्वारा तुम्हारी रक्षा करेंगे। इसे सुनकर उनकी पतिव्रता पुत्री (चन्द्रावली) ने अपनी माता से कहा—यह नृत्य करने वाला उदयसिंह ही है, क्योंकि इसके दोनों नेत्र कमल के समान और अंग अत्यन्त मनोरम हैं। अतः माता! विना उदयसिंह के इस भूतल में (हम लोगों की) रक्षा के लिए कौन समर्थ हो सकता है। क्योंकि पृथ्वीराज सबके लिए दुर्जेय है, वह केवल उदयसिंह से ही पराजित हुआ है। इसे सुनकर प्रेम विभोर होकर रानी मलना ने उन यवव्रीहियों को उन सुसज्जित सुन्दरियों के हाथ में देकर डोला समेत प्रस्थान किया। चलती हुई सभी स्त्रियाँ उदयसिंह के चरित्र का वर्णन कर रही थी। उस लक्षण (लाखन) ने शीघ्रतापूर्वक अपने योगी वेषधारी सैनिकों को जो तालन आदि की अध्यक्षता में सुरक्षित होकर चल रहे थे, संचालित करते हुए कीर्तिसागर पर पहुँचकर उस दश सहस्र डोले के रक्षार्थ उसको चारों ओर से घेर

महीपतिस्तु कुलहा ज्ञात्वा कृष्णांशमागतम् । चन्द्रवंशिनमागम्य सपुत्रश्च रुरोद ह ।।६४
योगिभिस्तैर्महाराज लुण्ठिताः सर्वयोषितः । मलना संहृता तत्र तथा चन्द्रावली सुता ।।६५
महीराजस्य ते सैन्याः[1] योगिवेषास्समागताः । तारकाय सुतां प्रादान्महीराजाय मत्स्वसाम्[2] ।।६६
इति श्रुत्वा वचो घोरं ब्रह्मानन्दो महाबलः । लक्षसैन्यान्वितस्तत्र ययौ रोषसमन्वितः ।।६७
महीराजस्तु कलही सैन्यायुतमहात्मजः । रक्षितः कामसेनेन तथा रणजिता ययौ ।।६८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोर्भुवि । तालनो योगिवेषश्च ब्रह्मानन्दमुपाययौ ।।६९
लक्षणश्चाभयं शूरं देवसिंहो महीपतिम् । जित्वा बद्ध्वा च मुदितौ कामसेनस्समागतः ।।७०
लक्षणः कामसेनं च देवो रणजितं तदा । बद्ध्वा तत्र स्थितौ वीरौ शत्रुसैन्यक्षयङ्करौ ।।७१
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बद्ध्वा वै तालनं बली । लक्षणान्तमुपागम्य धनुर्युद्धमचीकरत् ।।७२
लक्षणं छिन्नधन्वानं पुनर्बद्ध्वा महाबलः । देवसिंहमुपागम्य मूर्छितं तं चकार ह ।।७३
हाहाभूते योगिसैन्ये प्रद्रुते सर्वतो दिशम् । कृष्णांशो योषितस्सर्वा वचनं प्राह नम्रधीः ।।७४
ब्रह्मानन्दोऽयमायातो मम सैन्यक्षयङ्करः । तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गच्छताशु च तं प्रति ।।७५
इत्युक्त्वा तास्समादाय ब्रह्मानन्दमुपाययौ । तयोश्चासीन्महद्युद्धं नरनारायणांशयोः ।।७६

कर स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। उस समय कलहप्रिय महीपति (माहिल) ने उदयसिंह का आगमन जानकर पुत्र समेत चन्द्रवंशी परिमल के पास पहुँचकर रुदन करते हुए उनसे कहा—महाराज ! उन योगियों ने सब स्त्रियों को लूट लिया, जिसमें मलना और चन्द्रावली का भी अपहरण हुआ है। योगी के वेष में आये हुए वे सभी सैनिक पृथ्वीराज के ही थे जिन्होंने पुत्री (चन्द्रावली) तारक (ताहर) को और मेरी भगिनी (मलना) को पृथ्वीराज को सौंप दिया है। इस घोर वाणी को सुनकर महाबली ब्रह्मानन्द ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने एक लक्ष सैनिकों समेत उस स्थान को प्रस्थान किया जहाँ पृथ्वीराज अपने एक सहस्र सैनिकों के सहित उपस्थित थे। उनकी सेनाओं की रक्षा कामसेन तथा रणजित विशेष सावधानी से कर रहे थे। वहाँ की रणस्थली में दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हो रहा था, उस समय योगी के वेषधारी तालन ब्रह्मानन्द के लक्षण (लाखन) शूर प्रवर, अभयसिंह के और देवसिंह स्वयं महीपति के पास पहुँचकर सहायता करने लगे। उस बीच अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक उन्हें बाँध लेने एवं उन दोनों के प्रसन्न होने पर वहाँ कामसेन सहसा आ पहुँचा।५६-७०। उसे देखकर लक्षण (लाखन) ने कामसेन को और देवसिंह ने रणजित को पराजित कर बाँध लिया तथा वहीं अवस्थित भी रहे। उस समय बलवान् ब्रह्मा ने तालन को बाँधकर लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उनसे धनुर्युद्ध आरम्भ किया। धनुष के विनष्ट हो जाने पर लक्षण (लाखन) को भी उन्होंने बाँध लिया और देवसिंह को मूर्च्छित कर दिया। इससे योगियों की सेना में हाय-हाय मच गया और वे (सैनिक) इधर-उधर भागने लगे। ऐसा अनर्थ देखकर उदयसिंह ने नम्रता पूर्वक उन सभी स्त्रियों से कहा—'ब्रह्मानन्द यहाँ आकर मेरी सेनाओं को विनष्ट कर रहे हैं, इसलिए मेरे साथ में तुम सभी शीघ्र चलो। इतना कहकर उन्हें साथ लिए उदयसिंह ब्रह्मानन्द के पास ज्योंही पहुँचे कि दोनों (नर और नारायण) में घोर युद्ध आरम्भ हो गया। बलवान् उदयसिंह ने आकाश मार्ग से उनके रथ पर

---

१. पुंस्त्वमार्षम् । २. स्वसारमित्यर्थः ।

कृष्णांशस्तु बलवान्नभोमार्गेण तं प्रति । रथस्थं च समागम्य मोहयामास सोऽसिना ॥७७
तदा तु मूर्च्छिते तस्मिन्मोचयित्वा च ता मुदा । योगी सैन्यान्वितो युद्धात्पलायनपरोऽभवत् ॥७८
पराजिते योगिसैन्ये ब्रह्मानन्दो महाबलः । योषितस्ताः समादाय स्वगेहाय दधौ मनः ॥७९
महीराजस्तु सम्प्राप्तो महीपत्यनुमोदितः । रुरोध सर्वतो नारी शिवदत्तवरो बली ॥८०
नृहरश्चाभयं शूरं मर्दनश्चैव रूपणम् । मदनं वै सरदनो ब्रह्मानन्दं च तारकः ॥८१
चामुण्डः कामसेनं च धनुर्युद्धमचीकरत् । तदाभयो महावीरो धन्वन्तं नृहरं रिपुम् ॥८२
छित्त्वा धनुस्तमागत्य खड्गयुद्धमचीकरत् । नृहरः खड्गरहितोऽभवद्युद्धपराङ्मुखः ॥
तमाह वचनं क्रुद्धोऽभयो युद्धार्थमुद्यतः ॥८३
भवान्वै मातृष्वस्रीयो महीराजस्य चात्मजः ॥८४
क्षत्रियाणां परं धर्मं कथं संहर्तुमिच्छति । इति श्रुत्वा तु नृहरो गृहीत्वा परिघं रुषा ॥८५
जघान तं च शिरसि स हतः स्वर्गमाययौ । स च वै कृतवर्मांशो विलीनः कृतवर्मणि ॥८६
मदनं गोपजातं च हत्वा सरदनो बली । जयशब्दं चकारोच्चैर्पुनर्हत्वा रिपोर्बलम् ॥
उत्तरांशश्च स ज्ञेयो मदनश्चोत्तरे लयः ॥८७
रूपणश्च समागत्य मूर्छयित्वा च मर्दनम् । पुनस्सरदनं प्राप्य खड्गयुद्धं चकार ह ॥८८
ब्रह्मानन्दश्च बलवान्स बद्ध्वा तारकं रुषा । महीराजान्तमागम्य धनुर्युद्धं चकार ह ॥८९
नृहरं रणजित्प्राप्य स्वभल्लेन तदा रुषा । जघान समरश्लाघी महीराजसुतं शुभम् ॥९०

पहुँचकर तलवार द्वारा उन्हें मूर्च्छित कर दिया। पश्चात् उनके मूर्च्छित हो जाने पर उन्होंने तालन आदि को मुक्त बंधन किया। उपरांत अपनी योगी वेदधारी सेना समेत रणस्थल से प्रस्थान कर दिया। योगी सैनिकों के पराजित होने पर महाबली ब्रह्मानन्द ने उन समस्त स्त्रियों को साथ लेकर घर के लिए प्रस्थान किया। उसी बीच महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर बलवान् पृथ्वीराज ने जिन्हें शिव जी द्वारा वरदान प्राप्त था, उन स्त्रियों को चारों ओर से घेर लिया। पश्चात् युद्ध होते समय नृहर अभय के साथ, मर्दन रूपण के साथ सरदन मदन के साथ, तारक (ताहर) ब्रह्मानन्द के साथ और चामुण्ड (चौढ़ा) कामसेन के साथ धनुर्युद्ध करने लगे। अनन्तर महावीर अभय ने धनुष के टंकार करने वाले शत्रु नृहर के धनुष को भग्नकर उनसे खड्गयुद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु खड्ग के भग्न हो जाने पर युद्ध से विमुख होते नृहर को देखकर अभय ने अत्यन्त रुष्ट होकर उनसे कहा—आप पृथ्वीराज के पुत्र एवं मेरे मौसेरे भाई होकर क्षत्रिय धर्म का संहार (युद्ध से भागना, क्यों कर रहें हैं?) इसे सुनकर नृहर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर परिध अस्त्र का घातक प्रहार अभय के शिर में किया जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई, वे स्वर्ग पहुँच गये। उनका जन्म कृतवर्मा के अंश से हुआ था, इसलिए वे उन्हीं कृतवर्मा में विलीन हो गये। उसी प्रकार वली सरदन ने गोपपुत्र मदन के निधन करने के उपरांत शत्रु सेना विध्वंस करके उच्चस्वर से 'जय' शब्द की ध्वनि की। मदन का जन्म उत्तर के अंश से हुआ था, इसलिए ये उत्तर के अंश मे विलीन हो गये। उस समय रूपण ने मूर्च्छित मदन के पास पहुँचकर सरदन से खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। उधर ब्रह्मानन्द ने क्रुद्ध होकर तारक (ताहर) को बाँध लिया पश्चात् पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे धनुर्युद्ध आरम्भ किया। विजयाभिलाषी रणजित् ने अत्यन्त रुष्ट होकर अपने भल्ल अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज पुत्र उस नृहर का शिरच्छेदन कर दिया। ७१-९०।

स वै दुश्शासनांशश्च मृतस्तस्मिन्समागतः ॥९१
निहते नृहरे बन्धौ मर्दनः क्रोधतत्परः । स्वशरैस्ताडयामास सात्यकेरंशमुत्तमम् ॥९२
छित्त्वा तान्रणजिच्छूरस्स वै परिमलोद्भवः । स्वभल्लेन शिरः कायान्मर्दनस्य स चाहरत् ॥९३
मृतेऽस्मिन्मर्दने वीरे तदा सरदनो बली । ताडयामास तं वीरं स्वभल्लेनैव वक्षसि ॥९४
महत्कष्टमुपागम्य रणजिन्मलनोद्भवः । स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत वैरिणः ॥९५
त्रिबन्धो[१] निहते युद्धे तारकः क्रोधमूर्छितः । रथस्थश्च रथस्थं च ताडयामास वै शरैः ॥९६
छित्त्वा बाणं च रणजित्तथैव च रिपोर्द्धनुः । त्रिशरैस्ताडयामास कर्णांशं तारकं हृदि ॥९७
अमर्षवशमापन्नो यथा दण्डैर्भुजङ्गमः । ध्यात्वा च शङ्करं देवं विषधौतं शरं पुनः ॥९८
सन्धाय तर्जयित्वा च शत्रुकण्ठमताडयत् । तेन बाणेन रणजित्त्यक्त्वा देहं दिवं गतः ॥९९
हते तस्मिन्महावीर्ये ब्रह्मानन्दश्च दुःखितः । महीराजभयाद्ब्रह्मा पुरस्कृत्य च योषितः ॥
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते भाद्रकृष्णाष्टमीदिने ॥१००
कपाटं सुदृढं कृत्वा सैन्यैः षष्टिसहस्रकैः । सार्द्धं गेहमुपागम्य शारदां शरणं ययौ ॥१०१
महीराजस्तु बलवान्पुत्रशोकेन दुःखितः । सङ्कल्पं कृतवान्घोरं शृण्वतां सर्वभूभृताम् ॥१०२
शिरीषाख्यपुरं रम्यं यथा शून्यं मया कृतम् । तथा महावती सर्वा ब्रह्मानन्दादिभिस्सह ॥
क्षयं यास्यन्ति मद्बाणैः सर्वे ते चन्द्रवंशिनः ॥१०३

नृहर का जन्म दुःशासन के अंश से हुआ था, इसीलिए निधन होने पर उसी के अंश में विलीन हो गया। नृहर के मरणोपरांत क्रुद्ध होकर मर्दन अपने वाणों द्वारा उस सात्विक अंश (रणजित्) पर घात-प्रतिघात करना आरम्भ किया। परिमल पुत्र रणजित् ने उनके वाणों को छिन्न-भिन्नकर अपने भल्लास्त्र द्वारा मर्दन के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया। वीर मर्दन के निधन होने पर वली सरदन ने अपने भल्लास्त्र द्वारा वीर रणजित् के वक्षस्थल में प्रहार किया। मलना-पुत्र रणजित् ने उस अस्त्र द्वारा ताडित होने पर अत्यन्त कष्ट का अनुभव करते हुए अपने खड्ग द्वारा उस वैरी के शिर को छिन्न-भिन्न कर दिया। तीनों भाइयों के निधन हो जाने पर रथ-स्थायी तारक (ताहर) ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथ स्थित रणजित् पर वाणों का प्रहार किया। उसी प्रकार रणजित् ने भी शत्रु के धनुष-बाण को विनष्टकर अपने तीन बाणों द्वारा शत्रु के हृदय में भीषण प्रहार किया। पश्चात् दण्ड से आहत सर्प की भाँति अत्यन्त क्रुद्ध होकर तारक (ताहर) ने शिवजी का ध्यान करते हुए अपने विषाक्त वाण द्वारा शत्रु रणजित् का कण्ठच्छेदन कर दिया और उसी अस्त्र से आहत होकर रणजित् अपनी शरीर का त्यागकर स्वर्ग पहुँच गये। उस महापराक्रमी के निधन होने पर ब्रह्मानन्द अत्यन्त दुःखी हुए। पश्चात् उस भाद्रकृष्ण अष्टमी के दिन ब्रह्मानन्द ने शेष साठ सहस्र अपने सैनिकों से सुरक्षित उन स्त्रियों समेत अपने घर आकर पृथ्वीराज के भय से (सदर दरवाजे के) किवाड़ को दृढ़तापूर्वक बन्द कराकर शारदा की शरण प्राप्त की। बलवान् पृथ्वीराज ने भी पुत्र शोक से दुःखी होकर सभी राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार शृंगिपपुर को मैंने शून्यस्थल बना दिया, उसी भाँति ब्रह्मानन्दादि चन्द्रवंशियों समेत महावती (महोवा) नगर भी मेरे वाणों द्वारा विध्वंस कर दिया जायेगा। इतना कहकर राजा ने धुंधुकार (धांधू) को बुलाकर

---

१. समाहारे पुंस्त्वमार्षम्।

इत्युक्त्वा धुन्धुकारं वै चाह्वयामास भूपतिः । पञ्चलक्षबलैस्सार्द्धं शीघ्रमागम्यतां प्रिय ॥१०४
इति श्रुत्वा धुन्धुकारो गत्वा शीघ्रं च देहलीम् । उषित्वा सप्त दिवसान्युद्धभूमिमुपागमत् ॥१०५
तदाष्टलक्षसहितो महीराजो महाबलः । तारकेण च संयुक्तो युद्धाय समुपाययौ ॥१०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे सर्वमङ्गले । भाद्रकृष्णदशम्यां च मलना शोककातरा ॥
जननाथकमाहूय वचनं प्राह दुःखिता ॥१
अये कच्छपदेशीय गोतमान्वयसम्भव । हरिनागरमारुह्य कान्यकुब्जं व्रजाधुना ॥२
पुत्रमाह्लादमाहूय सानुजं मत्प्रियङ्करम् । इति श्रुत्वा तु वचनं हृदि सञ्चिन्त्य वै पुनः ॥३
मलनां दुःखितां प्राह न त्वायास्यति स प्रभुः । राज्ञः परिमलस्यैव वाक्यं मत्वा सुदुःखदम् ॥४
इति श्रुत्वा तु वचनं रुरोद मलना सती । पुनर्मूर्च्छां गता भूमौ जीवनं त्यक्तुमुद्यता ॥५

कहा—प्रिय ! पाँच लाख सैनिकों को लेकर तुम भी शीघ्र यहाँ आ जाओ । इसे सुनकर धुंधुकार (धांधू) दिल्ली जाकर सात दिन के भीतर पुनः उस रणभूमि में आ गये । पश्चात् तारक (ताहर) समेत महाबली पृथ्वीराज ने अपने आठ लाख सैनिकों को साथ ले पुनः युद्ध की तैयारी की ।९१-१०६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अध्याय २७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मंगलमूर्ति उदयसिंह की सत्ताईसवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ में भादों मास के कृष्णपक्ष की दशमी के दिन रानी मलना अधिक चिंतित होने के कारण जननायक को बुलाकर दुःखी होकर उनसे कहने लगी—कच्छप देश के निवासी एवं गौतम कुलभूषण ! प्रिय, तुम इसी समय हरिनागर पर बैठकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) से छोटे भाई समेत पुत्र आह्लाद (आल्हा) को जो मेरे अत्यन्त प्यारे बच्चे हैं, शीघ्र बुलालाओ ! इसे सुनकर उन्होंने इनकी बातों पर विशेष ध्यान देकर उस दुःखी रानी मलना को नमस्कार कर वहाँ से प्रस्थान किया । किन्तु राजा परिमल की उन दुःखद बातों का स्मरण कर रानी मलना रुदन करने लगी । चेतना प्राप्त होने पर प्राण विसर्जन के लिए तैयार होकर कहने लगी—हा रामांश आह्लाद (आल्हा) और कृष्णांश सुन्दर

हा रामांश महाबाहो वत्स कृष्णांश सुन्दर। क्व गतौ सह देवक्या त्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् ॥६
तदा परिमलापुत्रो दृष्ट्वा राज्ञीं तथा गताम्। बहुधाश्वास्य बलवान्कान्यकुब्जपुरं ययौ ॥७

ऋषय ऊचुः

त्वया परिमलापुत्रस्सम्प्रोक्तो जननायकः। रोमहर्षण नो ब्रूहि सोऽयं कस्तेन किं कृतम् ॥८

सूत उवाच

इन्द्रप्रस्थपुरेवात्सीत्प्रद्योतः कथितो मया। पिता परिमलस्यैवानात्योऽनङ्गमहीपतेः ॥९
तस्य कन्या समाजाता नाम्ना परिमला मुने। दुःशलांशसमुद्भूता रम्भेव सुकुमारिका ॥१०
तद्विवाहार्थमुद्योगः कृतः पित्रा स्वयम्वरः। पुत्रः कच्छपभूपस्य स नाम्ना कमलापतिः॥
तामुद्वाह्य विधानेन स्वगेहाय ययौ मुदा ॥११
तयोस्समागमो जातः पुत्रोऽयं जननायकः। शत्रुविद्यापरः शूरः खड्गयुद्धविशारदः ॥१२
जित्वा भूपान्बलाद्वीरः सिन्धुतीरनिवासिनः। षडशङ्करमादाय पितृराज्यमुपस्थितः ॥१३
एकदा तु महीराजः स्वसैन्यपरिवारितः। कच्छदेशमुपागम्य करार्थं समुपस्थितः ॥१४
तयोश्चासीन्महद्युद्धं जननायकभूपयोः। मासान्ते सूर्यवंशीयो महीराजेन निर्जितः ॥१५
त्यक्त्वा राष्ट्रं च सकुलः सम्प्राप्तश्च महावतीम्। परिमलस्तु तदा राजा तस्मै ग्रामं शुभं ददौ ॥१६
निवासं कृतवांस्तत्र स्वनाम्ना प्रथितं भुवि। स वै कच्छपदेशीयो ययौ परिमलाज्ञया ॥१७

प्यारे उदयसिंह ! मुझ हत भागिनी को छोड़कर देवकी को साथ लेकर तुम लोग कहाँ चले गये। उस समय परिमल पुत्र (जननायक) ने रानी को अनेक प्रकार के आश्वासन प्रदान किया और पश्चात् कन्नौज की यात्रा की।१-७

ऋषियों ने कहा—रोमहर्षण ! आपने जननायक को परिमल का पुत्र बताया है, अतः हमें यह जानने की इच्छा है कि ये कौन है, और क्या किया है? बताने की कृपा करें।८

सूत जी बोले—परिमल के पिता का नाम प्रद्योत था, जो दिल्ली के निवासी एवं राजा अनंग के मंत्री थे, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ। मुने ! उन्हीं की परिमला नामक पुत्री थी, जो दुःशला के अंश से उत्पन्न तथा रम्भा की भाँति कोमल वदना थी। उसके विवाहार्थ उसके पिता ने स्वयम्बर किया। उस स्वयम्बर में कच्छप प्रदेश के अधीश्वर के पुत्र कमलापति ने उसका सविधान पाणिग्रहण कर उसे लेकर सप्रेम अपने घर को प्रस्थान किया। उन्हीं दोनों के समागम से यह जननायक नामक पुत्र हुआ, जो रणकुशल शूर एवं खड्ग युद्ध में अत्यन्त निपुण है। सिन्धुतीर निवासी राजाओं पर विजय प्राप्त कर उनसे छठा अंश कर प्राप्त किया।९-१४। एक बार राजा पृथ्वीराज ने कर ग्रहण करने के निमित्त अपनी सेनाओं समेत कच्छप देश को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उन दोनों (जननायक) और पृथ्वीराज में घोर संग्राम आरम्भ हुआ। वह सूर्यवंशीय एक मास के अन्त में पृथ्वीराज से पराजित हुआ। पश्चात् उस राष्ट्र का त्यागकर वे सपरिवार महावती (महोबा) चले आये। उस समय राजा परिमल ने उन्हें ग्राम प्रदान किया। जिसमें निवास करते हुए वे भूतल में अपने इस नाम से ख्याति प्राप्त हैं। वही कच्छप देशीय (जननायक) परिमल की आज्ञा से कन्नौज जा रहे हैं। उनके यात्रा करने के उपरांत

तदासौ च महीराजो महीपत्यनुमोदितः । चामुण्डं शीघ्रमाहूय लक्षसैन्यसमन्वितम् ॥
आदेशं कृतवान्राजा तस्य बन्धनहेतवे ॥१८
स च नेत्रवतीकूले सम्प्राप्ते लक्षसैन्यपः । रुरोध सूर्यवंशीयं जननायकमुत्तमम् ॥१९
स तदा खड्गमादाय बाहुशाली यतेन्द्रियः । तत्र शूरशतं हत्वा नभोमार्गमुपाययौ ॥२०
सेनापतेश्च मुकुटं गजस्थस्य गृहीतवान् । लज्जितः स तु चामुण्डो वचनं प्राह नम्रधीः ॥२१
भवान्वृत्तिकरो मह्यं क्षत्रियो ब्राह्मणस्य वै । देहि मे मुकुटं वीर चिरञ्जीवसुखीभव ॥२२
इति श्रुत्वा स विनयं दत्त्वा तस्मै शुभं वसु । कुठारनगरे प्राप्तो वामनेन सुरक्षितः ॥२३
दृष्ट्वा तत्र वटच्छायां श्रमेणातीव कर्षितः । सुष्वाप निर्भयो वीरस्तत्र स्थाने सुखप्रदे ॥२४
तदा तु वामनो ज्ञात्वा स्वदूतैस्तत्र कारणम् । वस्त्राण्याच्छाद्य चागम्य चाहरद्धरिनागरम् ॥२५
हृते तस्मिंश्च दिव्याश्वे प्रबुद्धो जननायकः । चिन्तामवाप्य महतीं रोदनं कृतवान्बहु ॥२६
अश्वाङ्घ्रिचिह्नमालोक्य वामनं प्राप्य निर्भयः । वचनं प्राह नम्रात्मा नृपं गौरान्वयोद्भवम् ॥२७
क्षत्रियाणां हि संहास्यो भयदो भुवि सर्वदा । स भवान्राजनीतिज्ञो देहि मेऽश्वं सुखीभव ॥२८
नो चेत्त्वां वै सनगरं कृष्णांशः क्षपयिष्यति । इति श्रुत्वा तु वचनं वामनो गौरवंशजः ॥२९
भयभीतो विनिश्चित्य प्रददौ हरिनागरम् ॥३०
प्रतोदं स्वर्णरचितं नानारत्नसमन्वितम् । लोभाच्च न ददौ राजा मृषा शपथकारकः ॥३१
तदा परिमलापुत्रः कुण्ठितः प्राह भूपतिम् । प्रतोदलोभात्ते राजन्क्षयं दुर्गो गमिष्यति ॥३२

महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर पृथ्वीराज ने चामुण्ड (चौढ़ा) को आज्ञा प्रदान की कि एक लाख सैनिकों समेत तुम जननायक को बाँध लो इसे शिरोधार्य कर सेनानायक चामुण्ड (चौढ़ा) ने वेत्रवती (बेतवा) नामक नदी के तटपर पहुँचकर सूर्यवंशीय जननायक को रोक लिया । उपरांत उस बाहुशाली एवं संयमी वीर ने अपने खड्ग द्वारा सौ वीरों के शिरच्छेदन करने के पश्चात् आकाश मार्ग से जाकर गजराज पर बैठे हुए सेनापति (चौढ़ा) के मुकुट को अपने हाथ में ले लिया । उस समय लज्जित होकर नम्रतापूर्वक चामुण्ड (चौढ़ा) ने उनसे कहा—आप क्षत्रिय जाति के हैं मेरे तथा अन्य ब्राह्मणों के वृत्तिदाता हैं। अतः वीर ! मुझे मुकुट देने की कृपा करके चिरजीवी एवं सुखी रहें । इसे सुनकर सनम्र होकर उन्होंने उस शुभमुकुट को लौटा दिया । अनन्तर राजा वामन द्वारा सुरक्षित उनके कुठार नगर में पहुँचकर वहाँ एक वटवृक्ष की छाया में अतिश्रान्त होने के नाते निर्भय शयन किया । उस सुखप्रद स्थान में उस वीर के शयन करने पर वामन के अपने दूत द्वारा उनके वहाँ आगमन के कारण को जानकर अपने को छिपाते हुए साधारण वेष में आकर हरिनागर घोड़े का अपहरण कर लिया । उस दिव्य अश्व के अपहरण हो जाने पर घोड़े को न देखकर चिंतित होते हुए जननायक ने बहुत रुदन किया । पश्चात् घोड़े के चरण चिह्न देखते हुए वामन के पास पहुँचकर उनसे निर्भय होकर कहा—आप गौरवंश के भूषण हैं । किन्तु क्षत्रियों के हास्यास्पद होने की बात सदैव के लिए आपने इस भूतल में उत्पन्न कर दी है । मेरी प्रार्थना है कि आप राजनीतिज्ञ हैं, अतः अश्व मुझे लौटाकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें अन्यथा उदयसिंह इस नगर समेत तुम्हारा विनाश कर देंगे । इसे सुनकर गौरवंशीय वामन ने भयभीत होकर अपने हृदय में भली भाँति निश्चित कर हरिनागर उन्हें लौटा दिया ।१५-३०। परन्तु स्वर्ण, भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित उस प्रतोद (कोड़े) को लोभवश न लौटा सके,

इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः कान्यकुब्जं महोत्तमम् । लक्षणो हस्तिनीसंस्थो वचनं प्राह गर्वितः ॥
कस्त्वं प्राप्तो हयारूढो निर्भयः क्षत्रियोत्तमः ॥३३
स होवाच महाराज प्रेषितश्चन्द्रवंशिना । तवान्तिकं समायातः शरणागतवत्सल ॥३४
महीराजश्च बलवान्सकुलं चन्द्रवंशिनम् । हनिष्यति च रौद्रास्त्रैर्महीपत्यनुमोदितः ॥३५
अतस्त्वं स्वबलैस्सार्द्धं सहाह्लादादिभिर्युतः । गच्छ गच्छ महाराज मृतानुज्जीवयाधुना ॥३६
इत्युक्तो लक्षणस्तेन जयचन्द्रं प्रणम्य सः । सर्वं वै कथयामास महीराजो यथागतः ॥३७
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा चाहूय जननायकम् । वचनं प्राह क्रुद्धात्मा शृणु गौतमवंशज ॥३८
राजा परिमलः क्रूरस्त्यक्त्वा मां निजभूपतिम् । प्रीतिं च कृतवांस्तेन मच्छत्रोर्देहलीपतेः ॥३९
प्रियं सम्बन्धिनं मत्वा संत्यक्तास्तेन रक्षकाः । यथा कृतं फलं तेन भोक्तव्यं च तथा भुवि ॥४०
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशः प्राह नम्रधीः । राजञ्छुद्धः परिमलो महीपत्यनुवाचकः ॥
अतो वै त्वां समुत्सृज्य भूमिराजवशं गतः ॥४१
भवान्वै सर्वधर्मज्ञस्तत्क्षमस्वापराधकम् । आज्ञां देहि महाराज निवत्स्यामस्तदन्तिकम् ॥४२
इति श्रुत्वा तु वचनं जयचन्द्रो महीमतिः । कृष्णांशः प्राह भो वीर देहि मे भुक्तिमूल्यकम् ॥
शीघ्रं व्रज त्वं सकुलो नो चेन्नो गन्तुमर्हसि ॥४३
इति श्रुत्वा विहस्याह कृष्णांशस्सर्वमोहनः । मया दिग्विजयः सर्वः कृतो भीरुभयङ्करः ॥
तद्देयं देहि मे राजन्गृहाण भुक्तिमूल्यकम् ॥४४

प्रत्युत झूठी शपथ करने लगे। उनके शपथ से कुंठित होकर परिमल पुत्र (जननायक) ने कहा—राजन्! यह प्रतोद (कोड़े) का लोभ आपके दुर्ग का विनाश कर देगा। इतना कहकर वह वीर उत्तम कन्नौजपुरी में पहुँचा कि हस्तिनी पर बैठे हुए लक्षण (लाखन) ने अभिमान वश कहा—घोड़े पर बैठकर निर्भीक तथा उत्तम क्षत्रिय की भाँति तुम कौ हो। उन्होंने कहा—महाराज—चन्द्रवंशी (परिमल) ने मुझे भेजा है, शरणागत वत्सल! मैं आपके ही समीप आया हूँ। महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर पृथवीराज ने रौद्र अस्त्रों द्वारा चन्द्रवंशीय कुल का विध्वंश करना निश्चिय किया है। अतः आप अपनी सेना समेत आह्लाद (आल्हा) आदि के साथ चलने की कृपा करें। महाराज! इस मय चलकर आप उन मृतकों को प्राणदान दीजिये। एसा कहने पर लक्षण (लाखन) ने जयचन्द्र से प्रणाम पूर्वक पृथ्वीराज के महावती (महोवा) में चढ़ाई करने आदि सभी बातें कह सुनाया। इसे सुनकर जयचन्द्र ने जननायक को बुलाकर कहा—राजा परिमल अत्यन्त क्रूर है, क्योंकि मुझ अपने स्वामी का संबंध स्थगितकर उन्होंने मेरे शत्रु दिल्लीपति पृथ्वीराज से प्रेम संबंध स्थापित किया है। उन्हें ही अपना प्रिय संबंध समझकर इन रक्षकों का भी परित्याग कर दिया। इसलिए इस भूतल में जैसा करे वैसा फल भोगना पड़ता है। (इसमें मैं क्या कर सकता हूँ) इसे सुनकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह ने कहा—राजन्! परिमल तो अतिशुद्ध है किन्तु महीपति (माहिल) की बात मानकर वे आपसे पृथक् होकर पृथ्वीराज के वश में हुए हैं। इसलिए प्रार्थना है कि आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता है, उस अपराध को क्षमा करें। महाराज की आज्ञा हो। हम लोग उन्हीं के यहाँ निवास करना चाहते हैं। इसे सुन राजा जयचन्द्र ने कहा—उदयसिंह! मेरे यहाँ के रहने का मूल्य प्रदानकर परिवार समेत शीघ्र जा सकते हो, अन्यथा असम्भव है। इसे सुनकर हँसते हुए सर्वमोहन उदयसिंह ने कहा—मैंने जो चारों ओर भीषण दिग्विजय किया है, उसका कर देने की कृपा करें। पश्चात् आप अपना निवासकर (गृह-किराया) चुका

इत्युक्तस्स तु भूपालः कृष्णांशेन विलज्जितः । सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं महाबलम् ।।४५
तदा वै सकुलो वीरश्चाह्लादो लक्षणान्वितः । नृपस्याग्रे समास्थाय नमस्कृत्य ययौ मुदा ।।४६
कुठारनगरं प्राप्य नृपदुर्गं रुरोध ह । ज्ञात्वा स वामनो भूपः प्रतोदं च ददौ मुदा ।।४७
सैन्यायुतयुतं भूपं वामनं लक्षणो बली । पश्चात्कृत्य ययौ शीघ्रं यमुनातटमुत्तमम् ।।४८
यमुनाजलमुत्तीर्य कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् । गङ्गासिहं च नृपतिं षष्टिसाहस्रसंयुतम् ।।
पुरस्कृत्य ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः ।।४९
नदीं वेत्रवतीं रम्यां समागम्य बलैस्सह । तत्रोषुः क्षत्रियाः शूरास्सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः ।।५०
एतस्मिन्नन्तरे वीरश्चामुण्डो लक्षसैन्यपः । शतघ्नीः स्थापयामास भैरवीः शत्रुनाशिनीः ।।५१
तयोश्चासीन्महद्युद्धं शतघ्नीरणसंस्थयोः । प्रहरान्ते च तत्सैन्यं दृष्ट्वा शूरः पराजितम् ।।५२
रक्तबीजः समागम्य गजस्थस्त्वरितो बली । स्वबाणैस्ताडयामास सैन्यं तालनपालितम् ।।५३
केचिच्छूरा हता युद्धे केचित्तत्र पराजिताः । दुद्रुवुर्भयभीताश्च चामुण्डेन च पीडिताः ।।५४
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा तालनः परिघायुधः । जघान तेन स गजं चामुण्डो भूमिमागतः ।।५५
खड्गयुद्धपरो वीरस्तालनं परिघायुधम् । पराजित्य ययौ पश्चाच्छत्रुसैन्यक्षयङ्करः ।।५६
लक्षणस्त्वरितो गत्वा स्वभल्लेन च तं रिपुम् । भुजयोस्ताडयामास तदा ते बहुधाऽभवन् ।।५७

लें । उदयसिंह के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त लज्जित होते हुए राजा ने अपेन सात लाख सैनिकों को उनके साथ जाने का आदेश दिया । वीर उदयसिंह ने अपने सभी परिवार एवं लक्षण (लाखन) को भी साथ ले राजा के सामने जाकर उन्हें प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थान किया । मार्ग में चलते हुए सर्वप्रथम कुठार नगर के दुर्ग को घेर लिया । उनका आगमन जानकर राजा वामन ने सहर्ष उस प्रतोद (कोड़े) को उन्हें प्रदान किया । बलवान् लक्षण (लाखन) ने दश सहस्र सेना समेत आये हुए उन वामन को पीछे आने के लिए आदेश प्रदान कर स्वयं यमुना नदी के उत्तम तटपर पहुँचने के लिए शीघ्र प्रस्थान किया । वहाँ यमुना जल को पारकर वीर लक्षण (लाखन) ने साठ सहस्र सैनिक समेत उपस्थित राजा गंगासिंह को आगे चलने के लिए आदेश देते हुए स्वयं वेत्रवती (वेतवा) नदी के सुरम्य तट पर पहुँचने के लिए प्रस्थान किया । सेनाओं समेत वहाँ पहुँचने पर समस्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित वे वीर क्षत्रियगण वहाँ निवास करने लगे । उसी बीच एक लक्ष सैनिकों समेत वीर चामुण्ड (चौढ़ा) ने भीषण गर्जना करने एवं शत्रुध्वंस करने वाली तोपों को वहाँ रखकर युद्ध आरम्भ कर दिया था । एक पहर तक दोनों ओर की भीषण तोपों की गोलाबारी, युद्ध होने के उपरांत, अपने शूरवीरों को पराजित होते देखकर बली रक्तबीज ने हाथी पर बैठे शीघ्र वहाँ पहुँचकर अपने बाणों द्वारा तालन के सैनिकों को आघात करना आरम्भ किया । उस आघात से आहत होने पर कुछ सैनिक स्वर्गीय हुए और कुछ इधर उधर भागने लगे, क्योंकि वे सब चामुण्ड (चौढ़ा) द्वारा अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे । अपनी सेना को भग्न होते देखकर तालन ने अपने परिध अस्त्र के प्रहार द्वारा गजसमेत चामुण्ड को भूमिपर गिरा दिया । उस समय वीर चामुण्ड (चौढ़ा) ने खड्ग युद्ध द्वारा परिध अस्त्र वाले तालन को पराजित कर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहा कि उसी समय उस शत्रु सेना (लाखन) के निहन्ता के दोनों भुजाओं में वीर लक्षण (लाखन) ने वहाँ आकर शीघ्र अपने

सहस्रं रक्तबीजाश्च खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः । तिष्ठतिष्ठेति भाषन्तः क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ।।५८
आह्लादाद्याश्च ते शूरा रक्तबीजभयातुराः । त्यक्त्वा युद्धं ययुस्सर्वे ब्रह्मानन्दं महाबलम् ।।५९
ब्रह्मानन्दस्तु तान्दृष्ट्वा गत्वा स्वपितरं प्रति । वृत्तान्तं कथयामास लक्षणागमनं मुनेः ।।६०
श्रुत्वा परिमलो राजा प्रेमविह्वलगद्गदः । आह्लादपार्श्वमागम्य रुरोद भृशमातुरः ।।६१
तदा तु देवकी देवी नृपतिं प्रेमतत्परम् । उवाच सुमुखी दीना वयं ते भक्तितत्पराः ।।६२
भवता सम्परित्यक्ता विचरामोऽन्यभूपतिम् । क्षमस्व मम दौरात्म्यं पूर्वजन्मविपाकजम् ।।६३
इति श्रुत्वा च नृपतिः परमानन्दनिर्भरः । मन्त्रिणश्चाधिकारं च रामांशाय ददौ मुदा ।।
स्वकीयं लक्षसैन्यं च तत्पतिश्चोदयः कृतः ।।६४
ततः पञ्चदिनान्ते तु महीराजस्समागतः । रुरोध नगरीं सर्वां चामुण्डबलदर्पितः ।।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं मासमात्रं भयानकम् ।।६५
प्रभाते विमले जाते कृष्णांशो लक्षसैन्यपः । चामुण्डान्तमुपागम्य सहस्रं स्वाङ्गसम्भवम् ।।
चिच्छेद च शिरस्तेषां चामुण्डानां पृथक्पृथक् ।।६६
छिन्ने शिरसि ते सर्वे लक्षवीरा बभूविरे । तदा तद्व्याकुलं सैन्यं चामुण्डैस्तैः प्रपीडितम् ।।६७
विस्मितश्चैव कृष्णांशो भयभीतस्तदा मुने । तुष्टाव शारदां देवीं सर्वमङ्गलकारिणीम् ।।६८

भल्लास्त्र द्वारा प्रहार किया । उस समय वह रक्तबीज सहस्र की संख्या में दिखाई देने लगा, जो खड्ग एवं शक्ति आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध में दुर्मदान्ध क्षत्रियों को ठहरो-ठहरो कहकर ललकार रहे थे । रक्तबीज के उन अनेक रूपों को देखकर आह्लाद (आल्हा) आदि वीरगण भयभीत होकर महाबली ब्रह्मानन्द के पास पहुँच गये । ब्रह्मानन्द ने उन्हें देखकर अपने पिता के पास जाकर उनसे लक्ष्मण (लाखन) के आगमन का वृत्तान्त कहा मुने ! उसे सुनकर राजा परिमल प्रेम—व्याकुल होकर आह्लाद (आल्हा) के पास पहुँचकर आतुरतावश गद्गद वाणी द्वारा रुदन करने लगे । उस समय कल्याणमुखी देवी देवकी ने प्रेम विभोर राजा से कहा— हम लोग आपके सम्मुख दीन एवं आपकी सेवा पूर्व की भाँति सदैव करने के लिए तैयार हैं । श्रीमान ने ही हमारा त्याग किया था अतः हमलोग अन्य राजा के आश्रित होने के लिए (इधर-उधर) विचर रहे थे । किन्तु यह सब पूर्वजन्म के पापों का दुष्परिणाम था उसे क्षमा करने की कृपा करें । उसे सुनकर राजा परमानन्द मग्न होकर आह्लाद (आल्हा) को मंत्रिपद और समस्त सेनाओं का आधिपत्य उदयसिंह को प्रदान किया ।३१-६४। उसके पाँचवें दिन पृथिवीराज ने जिन्हें चामुण्ड (चौढ़े) के बल का अधिक गर्व था, वहाँ पहुँचकर उनकी नगरी को चारों ओर से घेर लिया । उन दोनों में एक मास तक भयानक युद्ध होने के उपरांत प्रातः काल के निर्मल समय में लक्ष सेनाध्यक्ष उदयसिंह ने चामुण्ड के पास पहुँचकर उनके पृथक्-पृथक् रूपों का शिरच्छेदन कर दिया, जो सहस्र की संख्या में विद्यमान थे । उनके शिरच्छेदन करने पर वे वीरगण लक्ष की संख्या में दिखाई देने लगे । उस समय उन चामुण्डों से पीड़ित होकर इनकी सेना व्याकुल हो उठी । मुने ! उस समय भयभीत होकर उदयसिंह भी मंगलकारिणी देवी शारदा जी की स्तुति करने लगे—६५-६८

कृष्णांश उवाच

नमस्ते शारदे मातर्ब्रह्मलोकनिवासिनि । त्वया ततमिदं विश्वं शब्दमात्रनिरन्तरम् ॥६९
रक्तबीजविनाशाय चामुण्डारूपधारिणी । नमस्ते दिव्यचामुण्डे पाहि मां शरणागतम् ॥७०
इति श्रुत्वा स्तवं देवी वरदा सर्वकारिणी । तस्य खड्गमुपागम्य रक्तबीजं ददाह वै ॥७१
भस्मीभूते लक्षरिपौ चामुण्डो भूमिमागतः । बबन्ध तं स कृष्णांशो ब्रह्मानन्दान्तिकं ययौ ॥७२
भूमिराजस्तु तच्छ्रुत्वा भयभीतः समागतः । तदा परिमलं भूपं दयालुं प्रेमविह्वलम् ॥
उवाच वचनं राजा क्षमस्व मम दुष्कृतम् ॥७३
महीपतेश्च वचनान्महद्भयमुपागतम् । अद्य प्रभृति भो वीर संत्यक्तः कलहः प्रियः ॥
भवांश्च मम सम्बन्धी वयं वै तव किङ्कराः ॥७४
इति श्रुत्वा परिमलो राजानमिदमब्रवीत् । रत्नभानोश्च तनयं लक्षणं नाम विश्रुतम् ॥
शरण्यं शरणं याहि विष्णुभक्तं दयापरम् ॥७५
इति श्रुत्वा भूमिराजो द्विजरूपधरो बली । साष्टाङ्गं दण्डवद् भूमौ लक्षणस्य चकार ह ॥७६
तदा तु लक्षणो वीरः कृत्वा स्नेहं नृपोपरि । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं कान्यकुब्जमुपाययौ ॥७७
फाल्गुने मासि सम्प्राप्ते सर्वे स्वं स्वं गृहं ययुः ॥७८

उदयसिंह बोले—ब्रह्मलोक की निवासिनी उस मातृ शारदा को नमस्कार है, जिसने शब्द मात्र से निर्मित इस सम्पूर्ण विश्व को विस्तृत किया है। उस चामुण्डा देवी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, जिसने रक्तबीज के हननार्थ चामुण्डा का रूप धारण किया है। (देवी) मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। इस स्तुति को सुनकर सभी कुछ करनेवाली एवं वरदहस्ता भगवती ने उदयसिंह के खड्ग में निवासकर रक्तबीज के सभी रूपों को भस्म कर दिया। उस शत्रु के लक्षरूपों के भस्म हो जाने पर केवल चामुण्ड (चौढ़ा) भूमि पर स्थित रह गया। उस समय उदयसिंह ने उसे बाँधकर ब्रह्मानन्द के पास भेज दिया। उसे सुनकर राजा पृथ्वीराज ने अत्यन्त भयभीत होकर राजा परिमल के पास जो प्रेम विभोर एवं दया की मूर्ति थे, पहुँचकर उनसे कहा—आप मेरे अपराध को क्षमा करने की कृपा करें। महीपति (माहिल) की बातों में आकर मैनें ऐसा किया था, जिसके कारण मुझे महान् भय उपस्थित हो गया है। वीर ! आज से आपका हमारा कलह समाप्त होकर प्रेम के रूप में परिणत हो गया, आप हमारे सम्बन्धी हैं और हम आपके सेवक। इसे सुनकर राजा परिमल ने उनसे कहा—रत्नभानु के पुत्र, जिनकी लक्षण (लाखन) नाम से ख्याति है, और जो शरणप्रद हैं, शरण में जाइये। वे विष्णु जी के भक्त एवं अत्यन्त दयालु हैं। इसे सुनकर वली पृथ्वीराज ने ब्राह्मण वेष धारणकर लक्षण (लाखन) के सम्मुख भूमि में उनको साष्टांग दण्डवत् किया। उस समय वीर लक्षण (लाखन) ने भी उनके ऊपर अपार स्नेह प्रकट किया, पश्चात् अपनी सात लाख सेना समेत कान्यकुब्ज (कन्नौज) के लिए प्रस्थान भी किया। अनन्तर उस फाल्गुनमास के अवसर पर सभी लोग अपने-अपने

बलखानेर्गयाश्राद्धमचीकरदविप्लुतः । चैत्रमासि सिते पक्षे सम्प्राप्य निजमन्दिरे ॥
ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

अष्टाविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । कार्तिक्यामिन्दुवारे च कृत्तिकाव्यतिपातभे ॥१
कृष्णांशोऽयुतसेनाढ्यः स्वर्णवत्या समन्वितः । विवाहमुकुटस्यैव सन्त्यागाय ययौ मुदा ॥२
पवित्रमुत्पलारण्यं वाल्मीकिमुनिसेवितम् । गङ्गाकूले ब्रह्ममयं लोहकीलकमुत्तमम् ॥३
तत्र गत्वा स शुद्धात्मा पुष्पवत्या समन्वितः । गोसहस्रं च विप्रेभ्यो ददौ स्नाने प्रसन्नधीः ॥४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता म्लेच्छजातिसमुद्भवा । शोभा नाम महारम्या वेश्या परमसुन्दरी ॥५
सा ददर्श परं रम्यं कृष्णांशं पुरुषोत्तमम् । तद्दृष्टिमोहमापन्ना व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥६
मूर्च्छितां तां समालोक्य कृष्णांशः सर्वमोहनः । स्वनिवासमुपागम्य विप्रानाहूय पृष्टवान् ॥७

घर चले गये । इन लोगों ने चैत्रमास के आरम्भ में बलखानि (मलखान) के निमित्त गयाश्राद्ध करके उसके शुक्लपक्ष में अपने घर पहुँचकर सहस्र वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराया ।६९-७९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्वपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—अपने अट्ठाईसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर उदयसिंह ने कार्तिकमास के चन्द्र दिन जिसमें कृत्तिका नक्षत्र एवं व्यतीपात योग सन्निहित थे, अपनी दश सहस्र सेना लेकर स्वर्णवती (सोना) देवी समेत विवाह-मुकुट के त्यागार्थ गंगा के तट के उस स्थान पर प्रस्थान किया जहाँ कमल का अरण्य सा दिखाई देता था । उसी पवित्र उत्पलारण्य में महर्षि बाल्मीक जी निवास करते थे। गंगा के तट पर वह स्थान ब्रह्ममय होने के नाते लोहे की भाँति कीलित कहा जाता है । वहाँ पहुँचकर शुद्धात्मा उदयसिंह ने पुष्पवती के साथ स्नान के उपरांत प्रसन्न होकर सहस्र गोदान ब्राह्मणों को प्रदान किया । उसी बीच शोभा नाम की एक परम सुन्दरी वेश्या आई, जो अत्यन्त सुरम्य और म्लेच्छ कुल में उत्पन्न थी । वह परमसुन्दर एवं पुरुषश्रेष्ठ उदयसिंह को देखते ही उनकी तीसरी आँखों के आघात से व्याकुल होकर उसी समय मूर्च्छित हो गई। उसे मूर्च्छित देखकर सर्वमोहन उदयसिंह ने अपने

अष्टादशपुराणानि केन प्रोक्तानि किं फलम् । ब्रूत मे विदुषां श्रेष्ठा वेदशास्त्रपरायणाः ॥८
इति श्रुत्वा वचो रम्यं विद्वांसः शास्त्रकोविदाः । अब्रुवन्वचनं रम्यं कृष्णांशं सर्वधर्मगम् ॥९
पराशरेण रचितं पुराणं विष्णुदैवतम् । शिवेन रचितं स्कान्दं पाद्मं ब्रह्ममुखोद्भवम् ॥१०
शुकप्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वै ब्रह्मणा कृतम् । गारुडं हरिणा प्रोक्तं षड् वै सात्त्विकसम्भवाः ॥११
मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च । वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै ॥१२
राजसाः षट् स्मृता वीर कर्मकाण्डमया भुवि । मार्कण्डेयं च वाराहं मार्कण्डेयेन निर्मितम् ॥१३
आग्नेयमङ्गिराश्चैव जनयामास चोत्तमम् । लिङ्गब्रह्माण्डके चापि तण्डिना रचिते शुभे ॥
महादेवेन लोकार्थे भविष्यं रचितं शुभम् ॥१४
तामसाः षट् स्मृताः प्राज्ञैः शक्तिधर्मपरायणाः । सर्वेषां च पुराणानां श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम् ॥१५
घोरे भुवि कलौ प्राप्ते विक्रमो नाम भूपतिः । कैलासाद्भुवमागत्य मुनीन्सर्वान्समाह्वयत् ॥१६
तदा ते मुनयस्सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । सूतं सञ्चोदयामासुस्तेषां तच्छ्रवणाय च ॥
प्रोक्तान्युपपुराणानि सूतेनाष्टादशैव च ॥१७
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशो धर्मतत्परः । श्रुत्वा भागवतं शास्त्रं सप्तेऽह्नि महोत्तमम् ॥१८
ददौ दानानि विप्रेभ्यो गोसुवर्णमयानि च । ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥१९
तदा तु भिक्षुकी भूत्वा शोभा नाम मदातुरा । मायां कृतवती प्राप्य कृष्णांशो यत्र वै स्थितः ॥२०
ध्यात्वा महामदं वीरं पैशाचं रुद्रकिङ्करम् । मायां सा जनयामास सर्वपाषाणकारिणीम् ॥२१

निवासस्थान पर पहुँचकर ब्राह्मणों को बुलवाकर उनसे प्रश्न किया—वेदशास्त्र पारायण करने वाले विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अष्टादश पुराणों के रचयिता कौन हैं, और उसके श्रवण करने से किम फल की प्राप्ति होती है । इस उत्तमवाणी को सुनकर शास्त्र निपुण विद्वानों ने समस्त धर्म के ज्ञानी उन उदयसिंह से सुन्दर वाणी द्वारा कहा—पराशर जी ने विष्णुपुराण शिवजी ने स्कन्दपुराण, ब्राह्म ने पद्मपुराण, शुकदेव ने भागवत पुराण, ब्रह्मा ने ब्रह्मपुराण, तथा विष्णु ने गरुडपुराण की रचना की है । यही छहो पुराण सात्विक कहे जाते हैं । मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, नृसिंहपुराण, वामनपुराण, शिवपुराण और वायु पुराण के रचयिता भी व्यास जी हैं । उस भूतल में ये छहोपुराण राजस् एवं कर्मकाण्डमय कहे गये हैं मार्कण्डेय और बराहपुराण की रचना मार्कण्डेय ऋषि ने की है ।१-१३। उत्तम अग्नि पुराण के रचयिता अंगिरा हैं । लिंग पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण की रचना तंडी तथा शुभ भविष्यपुराण की रचना महादेव जी ने की है । शक्तिधर्मपरायण इन छहों पुराणों को तामस् बताया गया है । समस्त पुराणों में भागवत पुराण श्रेष्ठ बताया गया है । पृथ्वी पर घोर कलि के वर्तमान होने पर राजा विक्रमादित्य ने कैलास से पृथ्वी में आगमन करके सभी मुनियो को बुलाया । उस समय नैमिषारण्य निवासी उन महर्षिगणों ने अठ्ठारह उपपुराणों की कल्पना की है । धर्मारूढ़ उदयसिंह ने इसे सुनकर भागवतपुराण का पारायण श्रवण करने के उपरांत सातवें दिन ब्राह्मणों को गो सुवर्ण के दान प्रदान करके सहस्र वैदिक ब्राह्मणों को भी भोजन कराया । उस समय मदविह्वल शोभा ने भी भिक्षुकी का रूप धारणकर उदयसिंह के पास पहुँचकर माया करना आरम्भ किया—उसने रुद्रकिंकर एवं वीर महामद पिशाच के ध्यानपूर्वक सबको पत्थर कर देने

दृष्ट्वा स्वर्णवती देवी तां मायांशोभयोद्भवाम् । छित्त्वा चाह्लाद्य वामाङ्गीं स्वगेहं गन्तुमुद्यता ।।२२
सा वेश्या तु शुचाविष्टा तस्याः शृङ्गारमुत्तमम् । स्वर्णयन्त्रस्थितं रम्यं लक्षद्रव्योपमूल्यकम् ।।
संहृत्य मायया धूर्ता देशं बाह्लीकमाययौ ।।२३
कल्पक्षेत्रमुपागम्य नेत्रसिंहसमुद्भवा । वेश्यया मम शृङ्गारं हृतं ज्ञात्वा सुदुःखिता ।।२४
कृष्णांशं वचनं प्राह गच्छ गच्छ महाबल । गृहीत्वा मम शृङ्गारं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ।।२५
गुटिकेयं मया वीर रचिता तां मुखेन च । धूर्तमायाविनाशाय तव मङ्गलहेतवे ।।२६
इति श्रुत्वा तथा कृत्वा कृष्णांशस्सर्वमोहनः । शूकरक्षेत्रमागम्य तत्र वेश्यां ददर्श ह ।।२७
सा तु वेश्या च तं वीरं दृष्ट्वा कन्दर्पकारिणम् । रचयित्वा पुनर्मायां तदन्तिकमुपागता ।।२८
तदा सा निष्फलीभूय रुरोद करुणं बहु । रुदतीं तां समालोक्य दयालुस्स प्रसन्नधीः ।।२९
गृहीत्वा सर्वशृङ्गारं वचनं प्राह निर्भयः । किं रोदिषि महाभागे सत्यं कथय मा चिरम् ।।३०
साह मे सहरो नाम भ्राता प्राणसमप्रियः । नाट्यैश्च पञ्चसाहस्रैः सहितो मरणं गतः ।।३१
अतो रौमि महाभाग सम्प्राप्ता शरणं त्वयि । इत्युक्त्वा मायया धूर्ता कृत्वा शवमयान्त्यजान् ।।३२
तस्मै प्रदर्शयामास निजकार्यपरायणा । रुदित्वा च पुनस्तत्र प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता ।।३३
दयालुस्स च कृष्णांशस्तामाह करुणं वचः । कथं ते जीवयिष्यन्ति[1] शोभने कथयाशु मे ।।३४

वाली माया की रचना की। उसे देखकर देवी स्वर्णवती (सोना) ने जो आह्लाद की वामाङ्गी हैं, उसकी माया का विध्वंस करके घर के लिए प्रस्थान किया। उसी समय क्रुद्ध होकर उस वेश्या ने अपनी धूर्तमाया द्वारा स्वर्णवती (सोना) के उत्तम शृंगार का, जो स्वर्ण के सुरम्य यंत्र में स्थापित एवं एक लक्ष के मूल्य का था, अपहरण करके बाह्लीक देश को प्रस्थान कर दिया। कल्पक्षेत्र में पहुँचकर नेत्रसिंह की आत्मजा (सोना) ने यह जानकर कि 'उस वेश्या ने मेरे शृंगार का अपहरण कर लिया है, अत्यन्त दुःख प्रकट करती हुई उदयसिंह से कहा—महाबल ! जाओ-जाओ ! मेरे शृंगार लेकर मुझे शीघ्र मिलो वीर ! इस मेरे द्वारा रचित गुटिका को मुख में धारण करने से उसकी धूर्त माया विनष्ट हो जायेगी। आपकी मांगलिक कामना के लिए मैंने उसका निर्माण किया है।१४-२६। इसे सुनकर सर्वमोहन उदयसिंह ने उसी भाँति गुटिका धारणकर वाराहक्षेत्र में उस वेश्या को देखा। वह वेश्या भी काम के समान सुन्दर इन्हें देखकर माया की रचना पूर्वक इनके समीप पहुँच गई। किन्तु उसकी माया के निष्फल हो जाने से वह कारुणिक रुदन करने लगी। दयामूर्ति उदयसिंह ने प्रसन्न होकर रुदन करती हुई उसे देखकर शृंगारवस्तु ग्रहण करने के उपरान्त उससे कहा—महाभागे ! क्यों रुदन कर रही है, सत्य कहो, विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। उसने कहा—सहर नामक मेरे भाई का जो मेरे प्राण के समान प्रिय था, पाँच सहस्र नाट्यों के साथ निधन हो गया है। महाभाग ! इसीलिए आपकी शरण में आकर रुदन कर रही हूँ। इतना कहकर उस धूर्ता ने माया द्वारा अन्त्यजो (नीचों) के शवों का उन्हें प्रदर्शन कराया। और पश्चात् अपने कार्य को सफल करने वाली उस वेश्या ने उनके सम्मुख रुदन करती हुई अपने प्राण विसर्जन की तैयारी कर दी। दयालु उदयसिंह ने उसकी अवस्था देखकर उससे करुण वचनों द्वारा कहा—शोभने ! तुम्हारे वे भ्रातृगण किस प्रकार जीवित हो सकेंगे' मुझसे शीघ्र कहो। उसने कहा—वीर ! तुम्हारे मुख

---

१. दशगणीपाठो बहुलमिति णिच् ।

साह वीर तवास्ये तु संस्थिता गुटिका शुभा । देहि मे कृपया वीर जीवयिष्यन्ति ते तया ।।३५
इत्युक्तस्तु तया वीरो ददौ तस्यै च तद्वगु । तदा प्रसन्ना सा धूर्ता कृत्वा शुकमयं वपुः ।।
पञ्जरस्थमुपादाय कृष्णांशं कामविह्वला ।।३६
वाह्लीकदेशमागम्य सारठ्ठनगरं शुभम् । उवास च स्वयं गेहे कृत्वा दिव्यमयं वपुः ।।३७
निशीथे समनुप्राप्ते कृत्वा तं नररूपिणम् । आलिलिङ्ग हि कामार्ता कृष्णांशं धर्मकोविदम् ।।३८
दृष्ट्वा तां स तथाभूतां कृष्णांशो जगदम्बिकाम् । तुष्टाव मनसा धीरो रात्रिसूक्तेन नम्रधीः ।।३९
तदा सा स्वेडिनी भूत्वा त्यक्त्वा कृष्णांशमुत्तमम् । पुनः शुकमयं कृत्वा चिञ्चिणीवृक्षमारुहत् ।।४०
तदा स्वर्णवती देवी बोधिता विष्णुमायया । कृत्वा श्येनीमयं रूपं तत्र गत्वा मुदान्विता ।।४१
ददर्श शुकभूतं च कृष्णांशं योगतत्परम् । एतस्मिन्नन्तरे वेश्या पुनः कृत्वा शुभं वपुः ।।
नरभूतं च कृष्णांशं वचनं प्राह नम्रधीः ।।४२
अये प्राणप्रिय स्वामिन्भज मां कामविह्वलाम् । पाहि मां रतिदानेन धर्मज्ञोऽसि भवान्सदा ।।४३
इत्युक्तस्स तु तामाह वचनं शृणु शोभने । ते आर्यवर्त्मेस्थितोऽहं वै वेदमार्गपरायणः ।।४४
विवाहितां शुभां नारीं यो भजेद् ऋतौ न हि । स पापी नरकं याति तिर्य्यग्योनिमयं स्मृतम् ।।
अतः परस्त्रिया भोगो ज्ञेयो वै निरयप्रदः ।।४५
इति श्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता । शृङ्गिणा च महाप्राज्ञ वेश्यासङ्गः कृतः पुरा ।।

में स्थित गुटिका द्वारा ही वे सब जीवनदान प्राप्त कर सकेंगे । अतः उसे मुझे देने की कृपा कीजिये । उसके इस प्रकार कहने पर उन्होंने वह गुटिका उसे दे दी । पश्चात् उस धूर्ता ने जो कामपीड़ित हो रही थी प्रसन्न होकर उन्हें शुक (तोता) बनाकर पिंजरे में रखकर अपने वाह्लीक देश के नगर को प्रस्थान किया । वहाँ अपने घर पहुँचने पर आधीरात के समय मनुष्य रूप में उनके दिव्य शरीर को पूर्ववत् बनाकर उस वेश्या ने काम-पीडित होकर उन धर्म धुरन्धर उदयसिंह का आलिंगन किया, किन्तु उसकी वैसी अवस्था देखकर धीरवीर उदयसिंह ने नम्रता पूर्वक रात्रि सूक्त द्वारा देवी जगदम्बिका की मानसिक आराधना की । उस समय वह स्वेडिनी का रूप धारणकर इमली के वृक्षपर बैठ गई और उन्हें शुक (तोते) के रूप में परिणत कर दिया । उसी बीच विष्णु माया द्वारा स्वर्णवती (सोना) को इस रहस्य का पता लगने पर उसने बाज पक्षी का रूप धारणकर वहाँ पहुँचकर योगी उदयसिंह को शुक के रूप में देखा । उस समय उस वेश्या ने उनके मनुष्य रूप को पुनः उन्हें प्रदानकर उनसे नम्रता पूर्वक कहा—।२७-४२। अये प्राणप्रिय स्वामिन् ! मैं मदन से अत्यन्त व्यथित हो रही हूँ, अतः शीघ्र मेरा आलिंगन कीजिये । आप निपुण धर्मज्ञाता हैं, इसलिए रतिदान द्वारा मेरी रक्षा कीजिये । इस प्रकार कहने पर उन्होंने उससे कहा—शोभने ! मेरी बात सुनो ! मैं आर्य धर्म में स्थित होकर वेदमार्ग का यात्री हूँ । जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री के ऋतुकाल में उसे ऋतुदान नहीं प्रदान करता है, वह पापी नरकयातना के अनुभव करने के उपरांत तिर्यक् (पक्षी) योनि में जाता है । अतः परस्त्री का उपभोग नितान्त नरकप्रद है, इसमें संदेह नहीं है । इसे सुनकर उसने कहा—महाप्राज्ञ ! ज्ञानी विश्वामित्र और शृङ्गी ऋषि ने पहले समय में वेश्या-प्रसङ्ग किया था, किन्तु किसी को नरक नहीं जाना पड़ा । अतः मुझ कामातुर का

न कोऽपि नरकं प्राप्तस्तस्मान्मां भज कामिनीम् ॥४६
पुनश्चाह स कृष्णांशः कृतं पापं तपोबलात् । ताभ्यां च मुनियुग्माभ्यामसमर्थो हि साम्प्रतम् ॥४७
अर्द्धाङ्गं पुरुषस्य स्त्री मैथुने च विशेषतः । अहमार्यश्च भवती वेश्या च बहुभोगिनी ॥४८
ऋषिशब्दश्च पूर्वास्याज्जात ऋग्जस्सनातनः । योगजश्चैव यः शब्दो दक्षिणास्याद्यजुर्भवः ॥४९
तद्धितान्तश्च यश्शब्दः पश्चिमास्याच्च सामजः । छन्दोभूताश्च ये शब्दास्सर्वे ब्राह्मणप्रियाः ॥
केवलो वर्णमात्रश्च स शब्दोऽथर्वजःस्मृतः ॥५०
पञ्चमास्याच्च ये जाताः शब्दाः संसारकारिणः । ते सर्वे प्राकृता ज्ञेयाश्चतुर्लक्षविभेदिनः ॥५१
हित्वा तान्यो हि शुद्धात्मा चतुर्वेदपरायणः । स वै भवाटवीं त्यक्त्वा पदं गच्छत्यनामयम् ॥५२
न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि । गजैरापीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ॥५३
इत्येवं स्मृतिवाक्यानि मुनिना पठितानि वै । कथं त्याज्यो मया धर्मस्स्वर्गलोकसुखप्रदः ॥५४
इति श्रुत्वा तु सा वेश्या म्लेच्छायाश्चांशसम्भवा । शोभना नाग रम्भोरूर्महाक्रोधमुपाययौ ॥५५
वेतसैस्ताडयित्वा तां पुनः कृत्वा शुकं स्वयम् । न ददौ भोजनं तस्मै फलाहारं शुकाय वै ॥५६
तदा स्वर्णवती देवी कृत्वा नारीमयं वपुः । मशकीकृत्य तं वीरं तत्रैवान्तर्दधे तु सा ॥५७
पुनः श्येनीवपुः कृत्वा तद्देशाद्यातुमुद्यता । पृष्ठमारोप्य मशकं मयूरनगरं ययौ ॥५८

आलिङ्गन करना स्वीकार कीजिये । इसे सुनकर उदयसिंह ने पुनः प्रत्युत्तर दिया—वे दोनों महर्षि प्रवर महान् तपस्वी थे, अपने तपोबल द्वारा उन्होंने वैसा किया था । परन्तु इस समय मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ । पुरुष का अर्द्धांग उसकी स्त्री है, विशेषकर मैथुनकर्म के लिए । इसलिए मैं आर्यपुरुष हूँ और तुम अनेकों के उपभोग करने वाली वेश्या हो, दोनों का साथ होना सर्वथा असम्भव है । क्योंकि पूर्व मुख से सर्वप्रथम ऋषि शब्द का अविर्भाव हुआ, जिससे सनातन की ख्याति हुई, उसी प्रकार दक्षिण मुख से योग यजु शब्द और पश्चिम मुख से तद्धितान्त सामज शब्द आविर्भूत हुए, इसलिए छंद भूत (वैदिक) जितने शब्द हैं, वे ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय हैं । अथर्व से केवल वर्णमात्र की उत्पत्ति हुई है एवं पंचम मुख से निकले हुए शब्द सांसारिक कहे जाते हैं, जो प्राकृत तथा चार लाख भेद पूर्ण हैं । अतः जो शुद्धात्मा एवं चतुर्वेद का पारायण करने वाला पुरुष उनके त्याग करता है, वही संसार (जन्ममरण) रूप घने जंगल को पारकर अनामय (ब्रह्म) पद-मोक्ष की प्राप्ति करता है । प्राण के कंठ तक चले आने पर भी यावनी (मुसलमानी) भाषा के उच्चारण और हाथी द्वारा कुचल जाने पर भी जैन मन्दिर में जाना नहीं चाहिए। मुनियों के कहे हुए इन स्मृति वाक्यों को भी मैंने बता दिया । इसलिए उस धर्म का त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ, जो सभी लोगों को सुख प्रदान करता है। इसे सुनकर उस म्लेच्छ वंश की वेश्या ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेतों द्वारा उन्हें अत्यन्त ताडित किया, पश्चात् शुक बनाकर भोजन भी नहीं दिया । इस दृश्य को देखने के उपरांत स्वर्णवती (सोना) देवी ने अपना स्त्री रूप धारणकर उदयसिंह को 'मसक' बनाकर वहाँ से तिरोहित होकर पुनः वाज पक्षी का रूप धारणकर अपने देश को प्रस्थान किया। मशक रूप में उदयसिंह को अपनी पीठ पर बैठाये हुए वह मयूर नगर में पहुँच गई।४३-५८। उसे देखकर मकरन्द ने पहचान

मकरन्दस्तु तां दृष्ट्वा कृष्णांशेन समन्वितम् । नेत्रपालस्य तनयां नाम्ना स्वर्णवतीं बली ।।
चरणावुपसङ्गृह्य स्वगेहे तामवासयत् ।।५९
शोभनापि च सम्बुध्य पञ्जरान्तमुपस्थिता । न ददर्श शुकं रम्यं मूर्छिता चापतद्भुवि ।।६०
किं करोमि क्व गच्छामि विना तं रमणं परम् । इत्येव बहुधालप्य मदहीनपुरं ययौ ।।६१
तत्र स्थितं च पैशाचं मायामदविशारदम् । महामदं च सम्पूज्य स्वदेहं त्यक्तुमुद्यता ।।६२
महामदस्तु सन्तुष्टो गत्वा वै शिवमन्दिरम् । मरुस्थलेश्वरं लिङ्गं तुष्टावार्षभभाषया ।।६३
तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं प्राह सेवकम् । स्वर्णवत्या हृतो वीरः कृष्णांशश्चार्यधर्मगः ।।
मया सह समागच्छ मयूरनगरं प्रति ।।६४
इत्युक्तस्तेन पैशाचो नटैः पञ्चसहस्रकैः । तया सह ययौ तूर्णं सहुरेणं समन्वितः ।।६५
इन्दुलश्च तथाह्लादो बोधितो विष्णुमायया । त्रिलक्षबलसंयुक्तो देवसिंहेन संयुतः ।।
मयूरनगरं प्राप्य मकरन्दमुपाययौ ।।६६
तदा तु शोभना वेश्या सहुरेण बलैस्सह । चकार भैरवीं मायां सर्वशत्रुभयङ्करीम् ।।६७
सर्वतश्चोत्थितो वातो महामेघसमन्वितः । पतन्ति बहुधा चोल्काः शर्करावर्षणे रताः ।।६८
दृष्ट्वा तां भैरवीं मायां तमोभूतां समन्ततः । मकरन्दश्च बलवान्रथस्थः स्वयमाययौ ।।६९

लिया कि उदयसिंह के समेत यह नेत्रसिंह की स्वर्णवती (सोना) नामक कन्या हैं, सादर उसके चरण का स्पर्श किया और अपने महल में निवास कराया । पिंजडे के पास जाकर उसे शून्य देखकर शोभना मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर रुदन करने लगी—'मैं उस रमण उदयसिंह के बिना अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ । इस प्रकार अनेक भाँति से विलाप करने के उपरांत वह मदहीनपुर चली गई । वहाँ के रहने वाले महामदनामक पिशाचकर्मी की जो अत्यन्त मायावी था, पूजा करने के उपरांत उसके सामने वह अपने प्राण विसर्जन के लिए तैयार हो गई । उसे देखकर प्रसन्न होकर वह महामद भगवान् मरुस्थल महादेव के मंदिर में पहुँचकर संस्कृत वाणी द्वारा उनकी आराधना करने लगा । उससे प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने अपने इस सेवक से कहा— आर्य धर्मावलम्बी एवं वीर उदयसिंह का अपहरण स्वर्णवती ने किया है अतः दर्शनार्थ मेरे साथ मयूर नगर चलने की तैयारी करो । उनके इस प्रकार कहने पर वह मायावी अपने पाँच सहस्र नटों समेत शोभा वेश्या, और सहुर को साथ लेकर वहाँ से चल पड़ा । विष्णु माया (देवी) जी द्वारा इस रहस्य का पता चलने पर इन्दुल (इंदल) आह्लाद (आल्हा) और देवसिंह (डेबा) ने अपने तीन लाख सैनिकों समेत मयूर नगर में पहुँचकर मकरन्द से भेंट किया । उस समय सहर समेत शोभना ने अपने दल-बल के साथ वहाँ पहुँचकर अपनी भीषण माया की, जो समस्त शत्रुओं के लिये भयावह थी । रचना करना आरम्भ किया—वहाँ उस पर बड़े-बड़े मेघों के समान चारों ओर से वायुमंडल उठने लगा, उल्का (लूक) गिरने लगे, और धूल की वर्षा होने लगी । उस भीषण माया को जिसमें चारों ओर से घना अंधेरा छाया हुआ था, देखकर बलवान् मकरन्द रथ पर बैठकर स्वयं वहाँ पहुँचे, जहां से उस माया का संचालन हो रहा था । उस महाबली ने अपने शनिभल्ल

शनिभल्लेन तां मायां भस्म कृत्वा महाबलः । गृहीत्वा सहुरं धूर्तं सबलं गेहमाप्तवान् ।।७०
तदा तु शोभना नारी काममायां चकार ह । बहुलास्संस्थिता वेश्या गीतनृत्यविशारदाः ।।७१
मोहिताः क्षत्रियाः सर्वे मुमुहुर्लास्यदर्शनात् । देवसिंहाच्च कृष्णांशादृते ते जडतां गताः ।।७२
तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा । पुनरुत्थाप्यतान्सर्वान्गृहीत्वा शोभनां पुनः ।।
मयूरध्वजमागम्य निगडैस्तान्बबन्ध ह ।।७३
महामदस्तु तज्ज्ञात्वा रुद्रध्यानपरायणः । चकार शाम्बरीं मायां नानासत्त्वविधायिनीम् ।।७४
व्याघ्राः सिंहा वराहाश्च वानरा दंशकाः नराः । सर्पा गृध्रास्तथा काका भक्षयन्ति समन्ततः ।।७५
तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा । ससर्ज स्मरजां मायां तन्मायाध्वंसिनीं रणे ।।७६
तया ताक्ष्यास्समुत्पन्नाः शरभाश्च महाबलाः । सिंहादीन्भक्षयामासुर्जघ्नुश्चैव सहस्रशः ।।७७
हाहाभूते च तत्सैन्ये दिक्षु विद्राविते सति । शोभना चाभवद्दासी स्वर्णवत्याश्च मायिनी ।।७८
सहुरस्तैर्नटैस्सार्द्धं चाह्लादेनैव चूर्णितः । तेषां रुधिरकुंभाश्च भूमिमध्ये समारुहन् ।।७९
एवं च मुनिशार्दूल चतुर्मास्स्वभवद्रणः । वैशाखे मासि संप्राप्ते ते वीरा गेहमाययुः ।।
इति ते कथितं विप्र चान्यत्किं श्रोतुमिच्छसि ।।८०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयेऽष्टाविंशोऽध्यायः ।२८

नामक अस्त्र द्वारा उस माया को नष्ट करके उस सबल एवं धूर्त सहुर को पकड़कर अपने गृह को आगमन किया। उस समय शोभना वेश्या ने अपनी काम-माया की रचना की उसमें नृत्य-गान में अत्यन्त निपुण अनेक वेश्याओं का जमाव था, सबको लुभाने के लिए वे नृत्य-गान कर रही थीं। उस नृत्य को देखकर देवसिंह और उदयसिंह के अतिरिक्त सभी क्षत्रियगण जड़ की भाँति मोहित हो गये। उस समय स्वर्णवती (सोना) देवी ने कामाक्षी देवी का ध्यान करके उन्हें चेतना प्रदान कर खड़ा किया, पश्चात् उस शोभना को पकड़कर मयूरध्वज के पास लाकर लोहे की जंजीरों से उसे बाँध दिया। इस बात का पता लगने पर महामद ने भगवान रूद्र के ध्यान पूर्वक अपनी शाम्बरी माया का प्रसार किया—उनमें अनेक भाँति के जीव दिखाई देते थे, वाघ, सिंह सूकर, वानर, मसक, दंशक, सर्प, गीध तथा कौवे के झुण्ड चारों ओर से सिंह का भक्षण कर रहे थे। सैनिकों में हाहाकार मच गया वे इधर-उधर भागने लगे। किन्तु उस माया करने वाली शोभना को स्वर्णवती (सोना) का दासीपद स्वीकार करना पड़ा। और उन नटों समेत सहुर को आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं चूर्ण कर दिया। पश्चात् उनके रुधिर भरे घड़ों को भूमि के भीतर गड़वा दिया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वहाँ चौमासे भर युद्ध का क्रम चलता रहा, पश्चात् वैशाख मास के आरम्भ में वे वीरगण अपने अपने घर चले गये। विप्रवृन्द! इस वृत्तान्त को मैंने तुम्हें सुना दिया- अब और क्या सुनने की इच्छा है।६५-८०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।२८।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

किन्नरी नाम या कन्या त्वया प्रोक्ता महामुने । कुत्र स्थाने कथं जाता तत्सर्वं कृपया वद ।।१

सूत उवाच

पुरा चैत्ररथे देशे नानाजननिषेविते । वसन्तसमये प्राप्ते क्रीडन्त्यत्र दिवौकसः ।।२
मञ्जुघोषा च स्वर्वेश्या शुकस्थाने समागता । दृष्ट्वा तं सुन्दरं बालं मोहनाय समुद्यता ।।३
गीतनृत्यादिरागांश्च कृत्वा सा कामविह्वला ! प्राञ्जलिं प्रणता बद्ध्वा पुनस्तुष्टाव तं मुनिम् ।।४
तदा शुकस्तु भगवान्पद्यं स्तुतिमयं शुभम् । श्रुत्वा प्रसन्नहृदयो वरं ब्रूहीति सोऽब्रवीत् ।।५
सा तु श्रुत्वा शुभं वाक्यं प्रोवाच श्लक्ष्णया गिरा । पतिर्मे भव हे नाथ शरणागतवत्सल ।।६
इति श्रुत्वा तु वचनं तथा कृत्वा तया सह । स रेमे मुनिशार्दूलः शुको विज्ञानकोविदः ।।७
तयोस्सकाशात्सञ्जज्ञे मुनिर्नाम सुतोऽनयोः । तपश्चकार बलवान्द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ।।८
तस्मै ददौ तदा पत्नीं स्वर्णदेवस्य वै सुताम् । कुबेरो रुद्रसहितः स मुनिस्तु मुदान्वितः ।।९
तया रेमे प्रसन्नात्मा तयोर्जाता सुतोत्तमा । किन्नरी नाम विख्याता हिमतुङ्गे समुद्भवा ।।

अध्याय २९

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—महामुने ! आपने जिस किन्नरी नामक कन्या का नाम लिया था, वह किस स्थान में किस प्रकार उत्पन्न हुई है । कृपया विस्तार पूर्वक इसका वर्णन कीजिये ।१

सूत जी बोले—पहले समय की बात है चैत्ररथ नामक प्रदेश में जहाँ अनेक भाँति के लोग निवास करते हैं, वसंत ऋतु के आने पर देवगण क्रीड़ा करते हैं । एक बार उसी समय में स्वर्ग निवासिनी मंजुघोषा नामक वेश्या ने मुनिश्रेष्ठ शुक के स्थान में जाकर अत्यन्त सुन्दर बालक के रूप में उन्हें देखकर मोहित करने का प्रयत्न किया । मदनपीडिता उस वेश्या ने नृत्य-गान एवं अनेक प्रकार के अनुराग पूर्ण भावों के प्रदर्शित करने के उपरांत हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक सप्रेम उनकी स्तुति की । उस समय मुनि शुकदेव ने पद्यमय उसकी स्तुति सुनकर प्रसन्नचित्त से उसे वर की याचना करने के लिए कहा । उसने उस स्नेहवाणी को सुनकर प्रार्थना की कि हे नाथ, शरणागत वत्सल ! आप मेरा पति होना स्वीकार करें । उसकी प्रार्थना स्वीकार करने के उपरांत मुनिश्रेष्ठ एवं विज्ञान विशारद शुक ने उसके साथ रमण किया । उन दोनों के समागम के फलस्वरूप मुनि नामक एक पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई । उस बलवान् पुत्र ने बारह वर्ष तक अनवरत तप का अनुष्ठान किया, जिससे संतुष्ट होकर रूद्र समेत कुबेर ने स्वर्णदेव की पुत्री को उसे स्त्री रूप में प्रदान किया । हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर पर उन दोनों के समागम से किन्नरी

तपश्चकार सा देवी रूपयौवनशालिनी ॥१०

तदा प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो लोकशङ्करः । मकरन्दाय धीराय ददौ तां रुचिराननाम् ॥११

मुनिस्तु शङ्करं प्राह देवदेव नमोऽस्तु ते । मत्सुतायै वरं देहि राष्ट्रवर्धनमुत्तमम् ॥१२

इति श्रुत्वा शिवः प्राह गुरुण्डान्ते च भूतले । मध्यदेशे च ते राष्ट्रं भविष्यति सुखप्रदम् ॥

त्रिंशदब्दप्रमाणेन तत्पश्चात्क्षयमेष्यति ॥१३

इति श्रुत्वा तु स मुनिर्हिमतुङ्गनिवासकः । मकरन्देन सहितस्तत्र वासमकारयत् ॥१४

इति ते कथितं विप्र पुनः शृणु कथां शुभाम् । ऊनत्रिंशाब्दकं प्राप्ते कृष्णांशे रणकारणम् ॥१५

नेत्रपालस्य नगरं नानाधातुविचित्रितम् । मत्वा न्यूनपतिर्बौद्धो रुरोध नगरं शुभम् ॥१६

सप्तलक्षयुतो राजा बौद्धसिंहो महाबलः । त्रिलक्षबलसंयुक्तैस्तैस्सार्द्धं युद्धमचीकरत् ॥१७

सप्ताहोरात्रमभवत्सेनायुद्धं भयानकम् । योगसिंहो भोगसिंहो विजयश्च महाबलः ॥१८

जघान शात्रवीं सेनां बौद्धसिंहेन पालिताम् । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः श्यामजापकदेशगाः ॥१९

बौद्धा मायाविनस्सर्वे लोकमान्यप्रपूजकाः । पुनर्जातं महद्युद्धं मासमेकं तयोस्तदा ॥२०

नेत्रपालाज्ञया सर्वे कृष्णांशाद्याः समागताः । कृष्णांशो बिन्दुलारूढो देवः स्वहयसंस्थितः ॥२१

इन्दुलश्च करालाश्वे मण्डलीको गजे स्थितः । गौतमश्च समायातो हरिनागरसंस्थितः ॥२२

तालनश्च समायातः सिंहिन्युपरि संस्थितः । धान्यपालस्तैल्यकारो युयुत्सोरंशसम्भवः ॥२३

नाम से ख्यातिप्राप्त एक कन्या रत्न की उत्पत्ति हुई । रूप-यौवन सम्पन्न होने पर वह बाला तप करने लगी । जिससे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शिव ने उस सौन्दर्य पूर्ण एवं कल्याणमुखी कन्या को धीर-गम्भीर राजा मकरन्द को सौंप दिया । उसी बीच मुनि ने शंकर जी से प्रार्थना की—देवाधिदेव आपको नमस्कार है । आप मेरी कन्या के लिए वर और मुझे एक समृद्ध राष्ट्र प्रदान करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर शिव जी ने कहा—पृथ्वीतल में गुरुण्डों (गोरों) के (राज्य) समाप्ति के अनन्तर मध्यप्रदेश में तुम्हारा सुखप्रद राष्ट्र होगा । किन्तु तीन सौ वर्ष के उपरांत उसका ह्रास हो जायगा । इसे सुनकर उस हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर के निवासी ने मकरन्द के साथ वहाँ निवास करना आरम्भ किया ।२-१४। विप्र ! इतना कहकर मैं पुनः तुम्हें एक अन्य शुभ कथा सुना रहा हूँ— उदयसिंह की उन्तीस वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर राजा नेत्रपाल के उस अनेक धातुओं द्वारा रचित चित्र-विचित्र नगर को बौद्ध ने चारों ओर से घेर लिया । कारण कि वहाँ के राजा को वह कमजोर समझता था । राजा की सात लाख सेना के साथ महाबली बौद्धसिंह ने अपनी तीन लाख सेनाओं द्वारा घोर संग्राम आरम्भ कर दिया । सात दिन तक दोनों सैनिकों का अनवरत भीषण युद्ध हुआ जिसमें योगसिंह भोगसिंह, और महाबलवान् विजय ने शत्रु बौद्धसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करते हुए उनकी सेना का विनाश कर दिया । उसी बीच श्याम और जापक आदि प्रदेशों के मायावी बौद्धगण भी आ गये, जो समस्त लोकों में मानपूर्वक पूज्य थे । उनके आगमन करने से वहाँ पुनः एक मास तक उन दोनों में भीषण युद्ध हुआ । राजा नेत्रपाल की प्रेरणा से उदयसिंह आदि वीरगण भी वहाँ पहुँच गये जिसमें उदयसिंह विन्दुल (बेंदुल) पर देवसिंह अपने घोड़े पर इन्दुल (इंदल) कराल नामक घोड़े पर मंडलीक (आल्हा) गजराज पर, गोतम हरिनागर पर और तालन अपनी सिंहिनी नामक घोड़ी पर सवार होकर वहाँ उपस्थित हुए । धान्यपाल तेली युयुतनु

लल्लसिंहश्च बलवान्कुन्तिभोजांशसंभवः । ताम्बूलपकजातीयो लक्षणानुज्ञया ययौ ॥२४
तदा तु नेत्रसिंहश्च सप्तलक्षबलैर्वृतः । पालितश्चाष्टभिर्वीरैस्तेषां नाशाय चाययौ ॥२५
भयभीताश्च ते बौद्धास्त्यक्त्वा देशं समन्ततः । चीनदेशमुपागम्य युद्धभूमिमकारयन् ॥२६
तदनुप्रययुस्ते वै हूहानदमुपस्थिताः । माघमासे तु सम्प्राप्ते पुनर्युद्धमवर्तत ॥२७
श्यामदेशोद्भवा लक्षं तथा लक्षं च जापकाः । दश लक्षाश्चीनदेश्या युद्धाय समुपस्थिताः ॥२८
कृष्णांशो लक्षसेनाढ्यो देवो लक्षसमन्वितः । नेत्रपालश्च लक्षाढ्यो योगभोगसमन्वितः ॥२९
मण्डलीकश्चेन्दुलेन लक्षसैन्यसमन्वितः । ध्यानपालो लल्लसिंहो लक्षसैन्यान्वितः स्थितः ॥३०
जननायक एवापि लक्षसैन्ययुतः स्थितः । तालनो लक्षसेनाढ्यो युद्धाय समुपागतः ॥३१
तत्र युद्धमभूद्घोरं बौद्धानामार्यकैस्सह । पक्षमात्रं मुनिश्रेष्ठ यमलोकविवर्द्धनम् ॥३२
सप्तलक्षं हता बौद्धा द्विलक्षं चार्यदेशजाः । ततस्ते भयभीताश्च त्यक्त्वा युद्धं गृहं ययुः ॥३३
कृत्वा दारुमयीं सेनां कलयन्त्रप्रभावतः । गजाश्च दशसाहस्रा सशूराः काष्ठनिर्मिताः ॥३४
एकलक्षं हयारूढा दारुपाश्च रणोन्मुखाः । सहस्रं महिषारूढास्सहस्रं कोलपृष्ठगाः ॥३५
सिंहारूढास्सहस्रं च सहस्रं हंसवाहनाः । कङ्कगोमायुगृध्राणां श्यामारूढाः पृथक्तथा ॥३६
उष्ट्राः सप्तसहस्राणि सशूराश्च रणोन्मुखाः । एवं सपादलक्षैश्च काष्ठसैन्यैश्च मानुषाः ॥३७
द्विलक्षाणि क्षयं जग्मुः कृष्णांशाद्यैः सुरक्षिताः । ततो हाहाकृतं सैन्यं चार्य्याणां च ननाश तत् ॥३८
दृष्ट्वा तत्कौतुकं रम्यं जयन्तो युद्धकोविदः । आग्नेयं शरमादाय काष्ठसैन्येषु चाक्षिपत् ॥३९

के अंश से उत्पन्न लल्लसिंह तथा लक्षण (लाखन) की आज्ञा से वह तमोली भी साथ आया था । उस समय राजा नेत्रसिंह ने अपने सात लाख सैनिकों द्वारा जो उनके आत्मीय आठ वीरों की अध्यक्षता में सुरक्षित थे, बौद्धों के विनाशार्थ प्रस्थान कर दिया किन्तु उनसे भयभीत होकर उन बौद्धों ने इस देश का त्यागकर चीन देश को प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर रणभूमि की घोषणा की । इन लोगों ने भी बौद्धों के पीछे हूला नदी के तटपर पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ माघ मास के आरम्भ में दोनों सैनिकों का पुनः युद्ध आरम्भ हुआ ।१५-२७। बौद्धसिंह के पास श्याम एवं जावा के एक लाख और चीन के दशलाख चीनी बौद्ध सैनिक आये थे । उसी प्रकार राजा नेत्रपाल के पास उदयसिंह देवसिंह, योगसिंह भोगसिंह समेत नेत्र पाल सिंह, इन्दुल (इंदल) समेत मंडलीक (आल्हा) धनपाल, लल्लसिंह, जगनायक और तालन के साथ पृथक्-पृथक एक लाख सैनिक आये थे । मुनिश्रेष्ठ ! उस स्थानपर बौद्धों और आर्यों का घोर संग्राम आरम्भ हुआ, जो निरन्तर एक पक्ष तक चलते हुए यमलोक की वृद्धि कर रहा था । उस रण भूमि में बौद्धों के सातलाख और आर्यों के दोलाख सैनिक काम आये । पश्चात् भयभीत होकर बौद्धगण अपने घर भाग गये किन्तु कलयंत्र के द्वारा उन्होंने काष्ठसेना का निर्माण कर पुनः युद्धारम्भ किया, जिसमें काष्ठ के शूरसमेत दशसहस्र गज, एक लाख अश्व, सहस्र भैंसे, सहस्र कोल, सहस्र सिंह, सहस्र हंस, कंक स्यार, गीध, और सातसहस्र ऊँट सवार समेत उस रणस्थल में युद्धोन्मुख हो रहे थे। उस प्रकार उस युद्ध में बौद्धों के सवा लाख काष्ठ सैनिकों द्वारा उदयसिंह आदि के दो लाख मनुष्य सैनिकों का संहार होते देखकर आर्यों की सेनाओं में हाहाकर मच गया ।२८-३८। इस दृश्य को देखकर युद्ध निपुण इंदुल ने अपने आग्नेय वाणों द्वारा उन काष्ठ सैनिकों को उनके वाहन समेत भस्मकर उन्हें विलीन

भस्मीभूताश्च ते सर्वे तत्रैव विलयं गताः । त्रिलक्षं क्षत्रियाः शेषा जयन्तं रणकोविदम् ॥
चक्रुर्जयरवं तत्र तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥४०
तदा तु चीनजा बौद्धाः कृत्वा विंशत्सहस्रकान् । हयारूढाँल्लोहमयान्प्रेषयामासुरूर्जितान् ॥४१
योगसिंहो गजारूढो धनुर्बाणधरो बली । कण्ठेषु लोहजान्वीरांस्ताडयामास वै तदा ॥४२
मृतास्ते पञ्चसाहस्रा योगसिंहशरार्दिताः । बौद्धसिंहस्तदा शूरो दृष्ट्वा तस्य पराक्रमम् ॥
कृत्वा लोहमयं सिंहं योगसिंहमपेषयत् ॥४३
पातेन तस्य सिंहस्य स वीरो मरणं गतः । तदा तु भोगसिंहश्च हयारूढो जगाम ह ॥
स्वभल्लेन च तं सिंहं हत्वा तत्र जगर्ज वै ॥४४
तदा तु बौद्धसिंहेन शार्दूलस्तत्र चोदितः । सहयो भोगसिंहश्च तेनैव मरणं गतः ॥४५
मातुलौ मृत्युवशगौ दृष्ट्वा स्वर्णवतीसुतः । करालं हयमारुह्य बौद्धसिंहमुपाययौ ॥४६
शरमादाय वै शीघ्रं नाम्ना सम्मोहनं शुभम् । मोहयित्वा रिपुबलं बौद्धसिंहसमन्वितम् ॥४७
बद्ध्वा तान्बौद्धसिंहादीन्नृपान्दशसहस्रकम् । कलयन्त्रं च सञ्चूर्ण्य कृष्णांशांतिकमाययौ ॥४८
तदा ते हर्षितास्सर्वे प्रपेष्य नगरं ययुः । तद्वेश्म योजनायामं सर्वसम्पत्समन्वितम् ॥
लुण्ठयित्वा बलात्सर्वे नृपदुर्गमुपाययुः ॥४९
बौद्धसिंहस्तदागत्य जयन्तेन विमोचितः । सुतां स्वां पद्मजां नाम्ना जयन्ताय ददौ मुदा ॥५०
दशकोटीः सुवर्णस्य चाह्लादाय तदा धनम् । सर्वैश्च बौद्धवृन्दैश्च तत्रैव शपथः कृतः ॥५१

कर दिया। पश्चात् शेष तीन लाख क्षत्रिय सैनिकों ने रण पंडित इंदुल को अपने जय जयकार के सिंहनाद द्वारा संतुष्ट किया। उस समय चीन निवासी बौद्धों ने लोहनिर्मित बीस सहस्र वाहन समेत सैनिकों को पुनः उस युद्धस्थल में भेजा। उन्हें देखकर हाथीपर बैठे हुए योगसिंह ने अपने वाणों द्वारा उन वीरों को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया। जिसके फलस्वरूप योगसिंह के वाणों से पीड़ित होकर लोहे के उन पाँच सहस्र सैनिकों का निधन हुआ। बौद्धसिंह ने उनके इस पराक्रम को देखकर एक लोहे का सिंह बनाकर उनके पास भेजा। उस सिंह के आक्रमण करने से योगसिंह का निधन हो गया। उसे देखकर घोड़े पर बैठे हुए भोगसिंह ने अपने भल्लास्त्र द्वारा उस सिंह का वध करके भीषण गर्जना की। उसी समय बौद्ध सिंह द्वारा प्रेषित एक लोहे के वाद्य द्वारा घोड़े समेत भोगसिंह का निधन हो गया। उस समय अपने दोनो मामा को मृत्यु की गोद में शयन किये देखकर स्वर्णवती (सोना) पुत्र इन्दुल ने कराल नामक घोड़े पर बैठकर बौद्धसिंह के पास पहुँचते ही अपने संमोहन नामक वाण द्वारा सेना समेत बौद्धसिंह को एवं उनके अनुयायी दश सहस्र राजाओं को मोहित करने के उपरांत बाँधकर तथा उनके कलयंत्र को समूल नष्ट करते हुए उदयसिंह के पास पहुँचने का प्रयत्न किया। उनके पहुँचने पर हर्षित होकर उन लोगों ने प्रपेष्य नगर की यात्रा की। सम्पूर्ण सम्पत्तियों से भरे उस नगर के घरों को जिसमें वहाँ के निवासी अत्यन्त सुख का अनुभव कर रहे थे, विध्वंस एवं लूट मचाते हुए वे लोग राजा के दुर्ग पर पहुँच गये। ३९-४९। वहाँ इन्दुल द्वारा मुक्त होने पर बौद्धसिंह ने पद्मना नामक अपनी पुत्री का पाणिग्रहण इंदुल के साथ सुसम्पन्न किया। तथा आह्लाद (आल्हा) को दशकोटि सुवर्ण धन प्रदान करने के उपरांत बौद्धों ने उनके समक्ष

आर्यदेशं न यास्यामः कदाचिद्राष्ट्रहेतवे । इत्युक्त्वा तान्प्रणम्याशु सम्प्रस्थानमकारयन् ॥
त्रिलक्षैश्च युतास्ते वै नेत्रपालगृहं गताः ॥५२

ऋषय ऊचुः

इन्दुलेन कथं सूत तत्र प्राणीकृता न हि । सुप्रिया योगसिंहाद्यास्तन्नो वद विचक्षण ॥५३

सूत उवाच

आगता यमलोकाद्वै कतिचित्प्राणिनो भुवि । तदा तु दुःखितो देवो महेन्द्रान्तमुपाययौ ॥५४
देवराज नमस्तुभ्यं सर्वदेवप्रियङ्कर । जयन्तो जगतीं प्राप्य मृताञ्जीवयति स्वयम् ॥
अतो वै लोकमर्यादा विरुद्धा दृश्यते भुवि ॥५५
इति श्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रो देवमायया । वडवामृतमाहृत्य तथा वै स्वर्गगां गतिम् ॥
जयन्तस्य स्वपुत्रस्य मुमोद स सुरैः सह ॥५६
इन्दुलश्च तदा दुःखी शारदां सर्वमङ्गलाम् । पूजयित्वा विधानेन योगध्यानपरोऽभवत् ॥५७
इति ते कथितं विप्र पुनः शृणु कथां शुभाम् । नेत्रपालश्च बलवान्बहुपुत्रः शुचान्वितः ॥
दशकोटिमितं स्वर्णं तेभ्यो दत्त्वा समं समम् ॥५८
प्रस्थानं कारयामास चाष्टानां बलशालिनाम् । ते वै द्विलक्षसैन्याढ्याः स्वगेहाय ययुर्मुदा ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९

शपथ भी की— 'कि राज्य की लिप्सा से हम लोग आर्य प्रदेश में कभी भी यात्रा नहीं करेंगे।' इसके उपरांत उन्हें प्रणामकर वहाँ से प्रस्थान किया। और नेत्रपाल भी अपने तीन लाख सैनिकों समेत घर आये।५०-५२

ऋषियों ने कहा—सूत ! इन्दुल ने अत्यन्त प्रिय अपने योगसिंह आदि वीरों को क्यों जीवित नहीं किया । इसे बताने की कृपा कीजिये ।५३

सूत जी बोले—यमराज के लोक से कुछ प्राणियों ने इस पृथ्वी पर आकर (यहाँ का दृश्य देखते हुए) पुनः देवराज इन्द्र के पास पहुँचकर उनसे प्रार्थना की कि समस्त देवों के प्रिय नेता देवराज तुम्हें नमस्कार है । भगवान् ! जयंत (इंदुल) पृथ्वीपर जाकर मृतकों को स्वयं जीवनदान प्रदान कर रहा है, इसलिए लोक की मर्यादा भूतल पर उसके विरुद्ध दिखाई दे रही है । इसे सुनकर देवसम्राट इन्द्र ने अपनी देवमाया द्वारा अपने पुत्र जयन्त की स्वर्गगामिनीगति समेत उस अमृत वडवा का अपहरण कर लिया । उस समय अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए इंदुल अपने सर्वमंगला शारदा जी की सविधि पूजा करने के उपरांत ध्यान-योग करना आरम्भ किया । विप्र ! इतना कहकर मैं पुनः अन्य कथा सुना रहा हूँ । बलवान् नेत्रपाल ने पुत्र-शोक करते हुए शेष पुत्रों को दश कोटि का सुवर्ण समभाग कर विभाजित करने के उपरांत आठों बलशाली पुत्रों की शेष दो लाख सेनासमेत अपने घर को प्रस्थान किया ।५४-५९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

यदा ते चीनदेशस्थास्तदाहूतो नृपेण वै । कामपालेन भो विप्र लक्षणो नकुलांशकः ॥१
जयचन्द्र महाभाग सावधानं वचः शृणु । वैशाखशुक्लसप्तम्यां मुहूर्तोऽयं दिनागमे ॥२
अतो वै लक्षणो वीरश्चैकाकी मां समाप्नुयात् । गृहीत्वा मत्सुतां दोलां गमिष्यति तवान्तिकम् ॥३
सेनान्वितं च तं ज्ञात्वा महीराजो महाबलः । ग्रहीष्यति पराजित्य तस्माद्योग्यं वचो मम ॥४
इति तत्रत्यवचनं मत्वा राजा प्रसन्नधीः । लक्षणं हस्तिनीसंस्थं शतशूरसमन्वितम् ॥५
आहूय प्रेषयामास कामपालाय धीमते । मार्गे पञ्चदिनं वीर उषित्वा तद्गृहं ययौ ॥६
तदा पद्माकरः स्यालो ज्ञात्वा लक्षणमागतम् । भूमिराजं समाहूय तेन युद्धमचीकरत् ॥७
लक्षणो नकुलांशश्च दृष्ट्वा शत्रुमुपस्थितम् । स्वशरैस्तर्पयामास राजराजं महाबलम् ॥८
मूर्च्छयित्वा महीराजं हत्वा पञ्चशतं बली । कामपालं समागम्य नत्वा वासमकारयत् ॥९
उत्थितश्च महीराजो गत्वा पद्माकरं प्रति । वचनं प्राह कार्यार्थी शृणु मित्र वचो मम ॥१०

अध्याय ३०

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—विप्र ! जिस समय उदयसिंह आदि वीरगण चीन देश गये हुए थे, उस समय राजा कामपाल ने नकुल के अंश से उत्पन्न लक्षण (लाखन) को अपने यहाँ बुलवाया । पत्र में उसने लिखा कि—महाभाग, जयचन्द्र ! सावधान होकर मेरी बातें सुनने की कृपा कीजिये । 'वैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन द्विरागमन (गौने) का शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ है, इसलिए वीर लक्षण (लाखन) अकेले ही मेरे यहाँ आने की कृपा करें । पश्चात् मेरी कन्या के डोला को साथ लेकर सादर अपने घर चले जायें । क्योंकि सैनिकों समेत आने से बलवान् पृथ्वीराज को उनके आगमन का पता लग जाने पर वे उन्हें पराजित कर डोला ले लेंगे। अतः मेरा ही कहना सर्वोत्तम प्रतीत हो रहा है'। इसे सुनकर प्रसन्नचित्त होकर राजा जयचन्द्र ने हस्तिनी पर सुशोभित लक्षण (लाखन) को बुलाकर सौ शूरों समेत उन्हें राजा कामपाल के यहाँ भेज दिया । मार्ग में चलते हुए पाँच दिन की यात्रा समाप्तकर वे जिस दिन वहाँ उनके घर पहुँचे, उसी दिन उनके साले पद्माकर को उनके आने का पता लग गया । उसने शीघ्र पृथ्वीराज को बुलवाकर युद्धारम्भ कर दिया । नकुलांश लक्षण (लाखन) महाबली अपने शत्रु राजाधिराज पृथ्वीराज को वहाँ उपस्थित देखकर उनपर अपनी बाण वर्षा करने लगे । पश्चात् पृथ्वीराज को मूर्च्छित और पाँच सौ उनके वीरों का निधन करने के उपरांत राजा कामपाल के पास पहुँचकर उन्हें नमस्कार किया। अनन्तर राजा ने सादर उन्हें अपने भवन में ठहराया।१-९। चेतना प्राप्त होने पर कार्यशील राजा पृथ्वीराज ने पद्माकर के भवन में जाकर उनसे कहा—प्रिय मेरी एक बात सुनो ! लक्षण (लाखन) मेरा परम शत्रु है,

लक्षणो मे महान्छत्रुस्स च त्वद्गेहमागतः। यदि दास्यसि तं बद्ध्वा त्वां मदङ्कं करोम्यहम् ॥११
इति श्रुत्वा स लोभात्मा दत्त्वा हालाहलं विषम्। बद्ध्वा तं लक्षणं वीरं महीराजाय चार्पयत् ॥
हत्वा ताञ्छतशूरांश्च गुप्तवार्तामकारयत् ॥१२
ज्ञात्वा तत्पद्मिनी नारी दुःखितालप्य वै भृशम्। चण्डिकां पूजयामास पतिमङ्गलहेतवे ॥१३
तदा प्रसन्ना सा देवी वरदा सर्वमङ्गला। आश्वास्य पद्मिनीं नारीं लक्षणान्तमुपाययौ ॥१४
स्वप्ने तमाह सा देवी ह्रीं फट् घेघे जपं कुरु। अस्य मन्त्रप्रभावाच्च सर्वविघ्नाः प्रणश्यति ॥१५
स बुद्ध्वा लक्षणो वीरस्तं मन्त्रं च जजाप ह। आषाढे मासि सम्प्राप्ते कृष्णांशाद्या गृहं ययुः ॥१६
तालनश्च युतस्ताभ्यां[1] कान्यकुब्जमुपाययौ। न दृष्टो लक्षणो वीरो जयचन्द्रप्रियङ्करः ॥
ज्ञात्वा तत्कारणं तैश्च कृतं योगमयं वपुः ॥१७
धान्यपालः कांस्यधारी वीणाधारी च तालनः। लल्लसिंहो मृदङ्गाङ्को ययुस्ते वै महावतीम् ॥१८
सभां परिमलस्यैव गत्वा ते योगरूपिणः। चक्रुर्गानं मुदा युक्ताः सर्वे ते मोहमागताः ॥१९
प्रसन्नश्च तदा राजा मुक्तामालां स्वकण्ठगाम्। तालनाय ददौ प्रीत्या ताभ्यां स्वर्णाङ्गुलीयके ॥२०
तदा ते हर्षिताः सर्वे कृष्णांशं प्रति चाययुः। ज्ञात्वा कृष्णांश एवापि धृत्वा योगमयं वपुः ॥
ययौ बिन्दुगढं वीरस्तालनाद्यैस्समन्वितः ॥२१
हट्टमध्ये समागम्य कृत्वा रासोत्सवं शुभम्। गेहं पद्माकरस्यैव गत्वा ते ननृतुर्मुदा ॥२२
एतस्मिन्नन्तरे सर्वा योषितस्तत्र चागताः। वेणुवाद्यवृतं वीरं कृष्णांशं ददृशुर्मुहुः ॥
मोहितास्तस्य गानेन जडीभूता धनं ददुः ॥२३

और वह इस समय तुम्हारे घर में उपस्थित है। यदि उसे बाँधकर मुझे सौंप दो तो मैं तुम्हें अपना पद (प्रतिनिधि) प्रदान कर दूँगा। इस लोभ में आकर पद्माकर ने लक्षण (लाखन) को हलाहल विष देकर मूर्च्छित होने पर उन्हें बांध लिया, और पृथ्वीराज को सौंप दिया। पृथ्वीराज ने उनके साथ के सौ शूरों का निधन करके लक्षण (लाखन) को गुप्त-गृह में छिपा दिया। इस रहस्य का पता लगने पर रानी पद्मिनी दुःख का अनुभव करती हुई अत्यन्त विलाप करने के उपरांत पति की मांगलिक कामनावश चण्डिका देवी की पूजा की। उस समय वरदायिनी सर्वमंगलादेवी ने प्रसन्न होकर रानी पद्मिनी को आश्वासन प्रदान कर पुनः लक्षण (लाखन) के पास प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर स्वप्न में देवी ने उनसे कहा—'ह्रीं फट् घे घे' इस मंत्र का जप करो'। इसी मंत्र के प्रभाव से तुम्हारे सभी विघ्न नष्ट हो जायेगें।१०-१५। चेतना जागने पर लक्षण (लाखन) ने उपरोक्त मंत्र का जप किया। आषाढ मास के आरम्भ में उदयसिंह आदि वीरगण अपने-अपने घर चले आये! तालन समेत उदयसिंह ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) को प्रस्थान किया। वहाँ जयचन्द्र के प्रिय भतीजे लक्षण (लाखन) को न देखकर उसके कारण का पता लगाया। पश्चात् योगी के वेष धारणकर उन लोगों ने जिसमें धान्यपाल मजीरा, तालन वीणा, और लल्लसिंह मृदङ्ग को अपनाये हुए थे, महावती (महोबा) में पहुँचकर राजा परिमल के सभा भवन में नृत्य-गान आरम्भ किया उसे देखकर वहाँ के सभी सभासद अत्यन्त मोहित हो गये। प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं अपने गले की मोती की माला तालन को प्रदानकर पश्चात् उन दोनों को

तदा तु पद्मिनी नारी सर्वलक्षणसंयुता । ज्ञात्वा कृष्णांशमेवापि रुरोद चिरमातुरा ॥२४
उवाच च विलप्याशु मत्पतिर्लक्षणो बली । महीराजेन शूरेण कारागारे बलात्कृतः ॥
अहं योषा भवान्योगी कथं कार्यं भविष्यति ॥२५
इति श्रुत्वा तु स नृपो भुजमुत्थाप्य सत्वरम् । आश्वास्य पद्मिनीं नारीं ययुस्ते देहलीं प्रति ॥
राजद्वारमुपागम्य कृष्णांशस्स ननर्त ह ॥२६
महीराजस्तु बलवान्प्रसन्नस्तस्य लीलया। वाञ्छितं ब्रूहि कृष्णांश सर्वं योगिन्ददाम्यहम् ॥२७
इति श्रुत्वा भूपवचो विहस्योवाच तं प्रति । कारागारं लोहमयं नृपयोग्यं च मे नृप ॥
दर्शयाशु स्वकीयं वै भवान्भूपशिरोमणिः ॥२८
इति श्रुत्वा स नृपतिर्मोहितः कृष्णलीलया । दर्शयित्वा च वै शीघ्रं पुनस्तेभ्यो ददौ धनम् ॥२९
ततस्ते योगिनस्सर्वे सम्प्राप्य च महावतीम् । नत्वा परिमलं भूपं गदित्वा सर्वकारणम् ॥३०
स्वसेनां सज्जयामास चाह्लादश्च नृपाज्ञया । पञ्चलक्षं महावत्यां हयारूढास्समास्थिताः ॥३१
तालनस्सप्तलक्षाणि सैन्यान्याहूय चागतः । एवं द्वादशलक्षाणि क्षत्रिया रणदुर्मदाः ॥

सुवर्ण की अंगूठी प्रदान किया । उस सम्मान से वे हर्षित होकर उदयसिंह के पास पहुँचे । वीर उदयसिंह ने अपने समाज वालों को अत्यन्त निपुण जानकर अपना योगमय वेष धारण किये तालन आदि के साथ बिंदुगढ़ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस नगर के बाजार में इन्होंने सर्वप्रथम सुन्दर रास लीला दिखाई । तदुपरांत पद्माकर के भवन में जाकर अत्यन्त प्रसन्न होकर नृत्य किया । उसी बीच वहाँ सभी स्त्रियाँ भी आ गई थी जो वंशी बजाने वाले उदयसिंह को ही बार-बार देख रही थी । उनके नृत्य-गान को सुनकर उन स्त्रियों के मोहित होकर जड़ की भाँति हो जाने पर सर्वलक्षण सम्पन्न रानी पद्मिनी ने 'उदयसिंह यही हैं, ऐसा निश्चित कर उनके सामने रुदन करती हुई करुण वचनों द्वारा उनसे कहा—'बली लक्षण (लाखन) मेरे पति हैं, जिन्हें शूर पृथिवीराज ने अपने बल प्रयोग द्वारा जेल में बन्द कर दिया है । किन्तु, मैं स्त्री हूँ, और आप योगी हैं, अतः मुझे चिन्ता हो रही है कि (उनके मुक्त होने का) कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा' । इसे सुनकर उदयसिंह ने अपने दोनों हाँथों को उठाकर रानी पद्मिनी को आश्वासन प्रदान किया, पश्चात् दिल्ली को प्रस्थान भी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजदरबार में नृत्य किया । उस नृत्य की लीला से मुग्ध होकर बलवान् पृथ्वीराज ने उनसे कहा—योगिन् ! अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिये, आप क्या चाहते हैं मैं सभी कुछ देने को तैयार हूँ। राजा की ऐसी बात सुनकर हँसते हुए उदयसिंह ने कहा—नृप ! आप के यहाँ (शत्रु) राजाओं के लिए लोहे का जेल बना हुआ है, क्योंकि आप राजाधिराज हैं, ऐसा मैंने सुना है । मेरी इच्छा है आप वही मुझे दिखा देने की कृपा करें । इसे सुनकर कृष्णांश उदयसिंह की लीला से मुग्ध उस राजा ने उन्हें उसे शीघ्र दिखाया और धन भी प्रदान किया । उपरांत वे सभी योगी महावती (महोबा) चले गये। वहाँ पहुँचकर नमस्कार पूर्वक राजा परिमल से उन्होंने समस्त वृतान्त कह सुनाया।१६-३०। राजा की आज्ञा प्राप्तकर आह्लाद (आल्हा) ने अपनी महावती स्थित सेना को वहाँ चलने के लिए आदेश प्रदान किया, जो पाँच लाख की संख्या में वहाँ सदैव उपस्थित रहती थी। इस प्रकार तालन भी अपनी सात लाख सेना समेत उनके पास पहुँचे इस प्रकार बारह लाख

देहलीं च सभाजग्मुस्सर्वशस्त्रसमन्विताः ॥३२
एतस्मिन्नन्तरे मन्त्री चन्द्रभट्टो विशारदः । सर्वशास्त्रार्थकुशलो वैष्णवीशक्तिपूजकः ॥३३
महीराजं समागम्य वचः प्राह शृणुष्व भोः । मया वै च रहः क्रीडा दृष्टा देवीप्रसादतः ॥३४
तत्रोदयश्च कृष्णांशः पूर्णब्रह्माणमागमत् । वचः प्राह प्रसन्नात्मा शृणु त्वं सत्त्वविग्रह ॥३५
अग्निवंशविनाशाय चाद्य यास्यामि देहलीम् । हत्वाहं कौरवांशांश्च स्थापयित्वा कलिं भुवि ॥३६
पुनस्तवान्तिकं प्राप्य रहः क्रीडां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा बिन्दुलारूढः स वीरस्त्वामुपस्थितः ॥
इत्यहं दृष्टवान्भूप कृष्णांशं योगनिद्रया ॥३७
इति तस्य वचः श्रुत्वा स भूपो विस्मयान्वितः । भयभीतः सहस्राणि शूरानाहूय सत्वरम् ॥
तेभ्यश्च लक्षणं दत्त्वा वचनं प्राह तान्प्रति ॥३८
पद्माकराय भूपाय गत्वा दत्त्वाशु लक्षणम् । ममान्तिकमुपागम्य कारणं वदताशु तत् ॥३९
इति श्रुत्वा तु ते सर्वे वह्निवंश्या महाबलाः । गत्वा तत्र तथा कृत्वा महीराजमुपागमन् ॥४०
भगदन्तश्च तेषां तु सहस्राणां च नायकः । महीराजं वचः प्राह शृणु तन्नृपभाषितम् ॥४१
पद्मिनी मे स्वसा राजन् गुप्तविद्याविशारदा । तया यज्ञपतिर्देवः सम्यगाराधितः पुरा ॥४२
दत्तस्तेन वरो रम्यो ह्यन्तर्धानमयः परः । सा तु तं लक्षणं कान्तमन्तर्धानं करिष्यति ॥
इति श्रुत्वा स नृपतिः परमानन्दमाप्तवान् ॥४३

सेना समेत जिसमें रण-दुर्धर्ष क्षत्रियगण सैनिक थे, अपने शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उन लोगों ने दिल्ली को प्रस्थान किया । उसी बीच निपुण मंत्री चन्द्रभट्ट ने जो सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं वैष्णवी शक्ति के उपासक थे, पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे कहा—'देवी जी की प्रसन्नतावश मैंने 'एकान्त क्रीडा, का दर्शन किया है, जिसमें कृष्णांश उदयसिंह पूर्ण ब्रह्म के रूप में दिखाई दे रहे थे । उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—शरीरधारी जीव ! मैं अग्निवंश के क्षत्रियों के समूल विनाशार्थ दिल्ली को प्रस्थान कर रहा हूँ । वहाँ कौरवाँश से उत्पन्न उन क्षत्रियों का विनाश करने के उपरान्त इस भुतल में कलि की स्थापना करके मैं पुनः तुम्हारे पास पहुँचकर एकान्त क्रीड़ा करूँगा । इतना कहकर उस वीर ने बिंदुल (बेंदुल) नामक अश्वपर बैठकर यहाँ आने का प्रस्थान कर दिया है । भूप ! इन बातों को मैंने योगनिद्रा देवी द्वारा उन कृष्णांश (उदयसिंह) से पूछा था । इसे सुनकर राजा पृथ्वीराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । भयभीत होकर उन्होंने एक सहस्र शूरों को बुलाकर उन्हें लक्षण (लाखन) को सौंप दिया और कहा कि—इन्हें ले जाकर राजा पद्माकर को सौंप देने के उपरांत वहाँ की सभी बातें मुझसे शीघ्र आकर कहो ! इसे सुनकर अग्निवंशीय महावली उन क्षत्रियों ने वहाँ जाकर कार्य सम्पन्न करने के उपरांत पृथ्वीराज के पास आकर निवेदन किया ।३१-४०। उन सहस्र क्षत्रिय शूरों के अधिनायक भगदन्त ने पृथिवीराज से कहा—कि वहाँ के राजा ने जो कुछ कहा है, मैं बता रहा हूँ, कृपया सावधान होकर श्रवण कीजिये । उन्होंने कहा— 'राजन् ! मेरी भगिनी पद्मिनी जो गुप्तविद्या में अत्यन्त निपुण है, पहले समय में यज्ञाधीश देव की भली-भाँति आराधना की है । उसी से उन्होंने उसे अन्तर्धान होने का सुन्दर वरदान प्रदान किया है । इससे वह अपने पति लक्षण (लाखन) को अन्तर्हित कर देगी । इसे सुनकर पृथ्वीराज को परमानन्द की प्राप्ति हुई' । उसी बीच महाबलवान् उदयसिंह आदि

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या महाबलाः । रुरुधुर्देहलीं सर्वां महीराजेन पालिताम् ॥४४
स तदा पृथिवीराजो गृहीत्वा बहुभूषणम् । सर्वेभ्यश्च ददौ प्रेम्णा वचनं प्राह नम्रधीः ॥४५
लक्षणो नाम ते राजा कारागारे न वै मम । यदि मन्नगरे चास्ति तर्हि ते रोष ईदृशः ॥४६
इत्युक्त्वा तं च कृष्णांशं दर्शयामास वै गृहम् । महादेवस्य शपथं कृतवान्भूपतिर्भयात् ॥४७
तदोदयो भूपवचः सत्यं मत्वा सुदुःखितः । स्वकीयैः सह सम्प्राप्तो ग्रामं बिन्दुगढं शुभम् ॥४८
कामपालस्तु तच्छ्रुत्वा कृष्णांशागमनं बली । बलिं बहु गृहीत्वाशु कृष्णांशं शरणं ययौ ॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा वचनं प्राह भीरुकः ॥४९
सुता मे पद्मिनी नारी लक्षणेन समन्विता । न ज्ञात्वा क्व गताऽस्माभिस्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥५०
इति तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णांशः स्वबलैस्सह । कान्यकुब्जं समागत्य जयचन्द्रमुवाच ह ॥५१
भ्रातृजस्तव भूपाल पद्मिन्या लक्षणोऽन्वितः । कामपालगृहे नास्ति निश्चितो बहुधा मया ॥५२
न जाने क्व गतो राजा मम प्राणसमो भुवि । यदि भूप न पश्यामि सत्यं प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥५३
हा रत्नभानुतनय विष्णुभक्त शुभंकर । स्वमित्रं मां परित्यज्य कां दिशं गतवान्भवान् ॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छितश्चासीत्कृष्णांशो वैष्णवप्रियः ॥५४
तदा स्वर्णवती देवी स्वदास्या शोभया सह । धृत्वा शुकमयं रूपं तत्रागत्य स्वमूर्तिगा ॥५५
तया सम्प्रेषिता शोभा म्लेच्छमायाविशारदा । जयचन्द्रमुपागम्य धृत्वा दिव्यमयं वपुः ॥५६
उवाच वचनं तत्र शृणु भूपशिरोमणे । मायाविनीं च मां विद्धि शोभनां नाम विश्रुताम् ॥५७

वीरों ने वहाँ पहुँचकर पृथिवीराज की राजधानी दिल्ली को चारों ओर से घेर लिया । उस समय पृथ्वीराज ने उन लोगों के पास पहुँचकर उन्हें अनेक भाँति के भूषण उपहार प्रदान करके नम्रता पूर्वक सप्रेम उनसे कहा—तुम्हारे राजा लक्षण (लाखन) मेरे जेल में नहीं हैं, यदि हमारे नगर में भी वे होते, तब आप को इस प्रकार का क्रोध करना उचित था । इतना कहकर उन्होंने उदयसिंह को वह (जेल) स्थान दिखा दिया । पश्चात् भयभीत होकर राजा ने महादेव की शपथ भी की । उस समय राजा की बात सत्यमान कर उदयसिंह ने दुःख का अनुभव करते हुए सैनिकों समेत बिन्दुगढ़ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर राजा कामपाल ने उनके आगमन को सुनकर भाँति-भाँति के उपहार समेत उदयसिंह की शरण में जाकर सादर सप्रेम हाथ जोड़ते हुए करुण वाणी द्वारा उनसे कहा—मेरी पुत्री पद्मिनी लक्षण (लाखन) के साथ कहाँ चली गई, इसे हम लोग कुछ भी नहीं जानते हैं । यह मैं सत्य एवं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ । इसे सुनकर उदयसिंह ने अपने सैनिकों समेत कान्यकुब्ज (कन्नौज) आकर जयचन्द्र से कहा—आपके भतीजे लक्षण (लाखन) पद्मिनी समेत कामपाल के घर में नहीं है, यह मैंने अनेक प्रकार से वहाँ देखकर निश्चित किया है । प्राण के समान वह मेरा राजा इस पृथ्वी में न जाने कहाँ चला गया । राजन् ! यदि मैं उन्हें न देखूँगा, तो मैं अवश्य प्राण-परित्याग कर दूंगा, हा रत्न भानु के पुत्र ! विष्णु के कल्याणकर भक्त ! मुझ अपने मित्र को छोड़कर आप कहाँ चले गये । इतना कहकर वैष्णवप्रिय उदयसिंह मूर्च्छित हो गये । उस समय देवी स्वर्णवती (सोना) ने अपनी दासी शोभा समेत शुकरूप धारण करके वहाँ पहुँचकर म्लेच्छ माया की विदुषी उस शोभना को जयचन्द्र के पास भेजा ।४१-५६। उसने दिव्य रूप धारण कर जयचन्द्र के पास पहुँचकर कहा—भूपशिरोमणे ! मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । मैं शोभना नामक प्रख्यात

दम्पती तव भूपाल संहृतौ येन यत्र वै । तत्राहं च गमिष्यामि महामदसमन्विता ।।५८
आह्लादश्चेन्दुलो वीरो देवो वै तालनो बली । कृष्णांशपालितास्सर्वे यास्यामो भूपते वयम् ।।५९
इत्युक्त्वा शोभना वेश्या कृत्वा योगमयं वपुः । महामदं समारुह्य पैशाचं रुद्रकिङ्करम् ।।
प्रययौ तान्पुरस्कृत्य योगिवेषान्महाबलान् ।।६०
आह्लादो गजसंस्थो वै करालस्थ इन्दुलः । तालनः सिंहिनीसंस्थो देवसिंहो मनोरथे ।।
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो नर्तयामास तं हयम् ।।६१
कामरूपमयं देशं शतयोजनगामिनः । बलवन्तश्च सम्प्राप्ता गेहे गेहे जने जने ।।
लक्षणं शोधयामासुर्न प्राप्तास्तत्र तं नृपम् ।।६२
पुनर्मयूरनगरं शोभना तैः समन्विता । चिन्वती तं मनुष्येषु न प्राप्ता तत्र वै नृपम् ।।६३
पुनरिन्द्रगढग्रामं शोभना च जने जने । लक्षणं मृगयामास न प्राप तत्र लक्षणम् ।।६४
गत्वा बाह्लीकनगरं शोभना तैस्समन्विता । लक्षणं च नृपश्रेष्ठं नापश्यत्तत्र दुःखिता ।।६५
पुनः स्वदेशमागम्य बाह्लीकं म्लेच्छवासिनम् । मर्कटेश्वरमीशानं तत्राह वनवासिनम् ।।
पूजयित्वा च सा वेश्या गाननृत्यपराभवत् ।।६६
स देवो भूमिमध्यात्तु समागम्यमुदान्वितः । कृष्णांशं प्रणतो भूत्वाऽब्रवीन्म्लेच्छप्रपूजितः ।।६७
अहं कालाग्निरुद्रेण भूमिगर्तेसुरोपितः। असमर्थं च मां विद्धि गच्छ वीर यथासुखम् ।६८
इति श्रुत्वा च सा शोभा निराशाभूत्तदा स्वयम् ।।६९
पुनः स्वर्णवतीं प्राप्य सर्वमेवादितोऽब्रवीत् । त्रिंशदब्दैश्च कृष्णांशे चैत्रशुक्ले समागते ।।७०

मायाविनी हूँ । आपके पुत्रवधू समेत पुत्र का अपहरण जिसने किया है, वहाँ महामद समेत मैं जा रही हूँ । मेरे साथ आह्लाद (आल्हा) इंदुल देवसिंह, एवं बली तालन आदि उदयसिंह की अध्यक्षता में चलेंगे । इतना कहकर योगमय शरीर धारण करके उस रुद्र किंकर महामद नामक पिशाच के ऊपर आसीन होकर उस शोभना ने योगी वेषधारी उन महाबलवानों को आगे करती हुई वहाँ को प्रस्थान किया । उस यात्रा में आह्लाद (आल्हा) गज पर, इन्दुल कराल नामक अश्व पर, तालन सिंहनी नामक घोड़ी, देवसिंह मनोरथ पर और उदयसिंह अपने बेंन्दुल घोड़े पर बैठे हुए उसको नचाते हुए चल रहे थे । वहाँ से कामरूप देश की सौ योजन की यात्रा करके उन बलवानों ने वहाँ के प्रत्येक घरों एवं मनुष्यों से लक्षण (लाखन) का अनुसंधान किया किन्तु कहीं उसका पता न चल सका । पुनः वह शोभना प्रत्येक मनुष्यों में ढूँढती हुई वह मयूर नगर आई किन्तु वहाँ पर भी उनका पता नहीं चला । इसी प्रकार उस शोभना नामक मायाविन ने इन्द्रगढ़ और बाह्लीक नगर में जाकर वहाँ के प्रत्येक नागरिकों एवं उनके घरों में ढूँढ़ने पर भी लक्षण (लाखन) का पता न चलने से पुनः अपने वाह्लीक प्रदेश में पहुँचकर मरुस्थल निवासी मर्कटेश्वर महादेव की सविधान पूजा करके उनके सम्मुख नृत्य गान आरम्भ किया ।५७-६६। पश्चात् उस देव ने जो म्लेच्छों के पूज्य थे, भूमि के भीतर से बाहर निकलकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह से कहा—वीर ! कालाग्नि रुद्रदेव ने मुझे इसी भूमि के गड्ढे के (भीतर) बैठा दिया है, अतः आपके मनोरथ सफल करने में मै असमर्थ हूँ। कृपया यहाँ व्यर्थ कष्ट न कीजिये। इसे सुनकर वहाँ से निराश होकर शोभना ने पुनः स्वर्णवती (सोना) के पास पहुँचकर उससे समस्त वृत्तान्त कहा। उदयसिंह की तीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर चैत्र शुक्ल के नवरात्र के दिन में उस सुवर्ण वदना

तानाश्वास्य सुवर्णाङ्गि पूजयामास चण्डिकाम् । नवरात्रं गतं तस्या भोजनाच्छादनं विना ।।
निशीथान्ते तमः प्राप्ते गत्वाह जगदम्बिका ।।७१
पद्मिनी नाम या नारी मणिदेवस्य वै प्रिया । जाता सा कामपालस्य गृहे यज्ञावमानिता ।।७२
सेनापतिः कुबेरस्य मणिदेवो हि स स्मृतः । पूर्वं हि भीमसेनेन यक्षयुद्धेषु घातितः ।।७३
तदा तत्पद्मिनी नारी देवदेवमुमापतिम् । तुष्टाव च निराहारा मत्पतिं देहि शङ्कर ।।७४
शतवर्षान्ततरे देवो महादेव उवाच ताम् । कलौ विक्रमकाले हि शतद्वादशकेऽन्तिके ।।७५
नकुलांशं च सम्प्राप्य भुक्त्वा तेन महत्सुखम् । तद्वियोगेन सन्त्यज्य देहं पद्मानुवासितम् ।।
स्वपतिं च तदा प्राप्य कैलासं पुनरेष्यसि ।।७६
महावतीं पुरीं रम्यां राष्ट्रपालाय शारदा । करिष्यति तदा देवी मणिदेवस्तु त्वत्पतिः ।।७७
तया विरचितो भूमौ ग्रामरक्षार्थमुद्यतः । प्राप्तस्त्वां पद्मिनीं नारीं कैलासं पुनरेष्यति ।।७८
अतः स्वर्णवति त्वं वै कैलासं गुह्यकालयम् । गत्वाशु पद्मिनीं तत्र बोधयाशु वचः कुरु ।।७९
इति श्रुत्वा स्वर्णवती पद्मिनीं प्रति चागमत् । वृत्तान्तं कथयित्वाग्रे पद्मिनी तु दयातुरा ।।८०
कामपालं गृहं प्राप्य तत्र वासमकारयत् । स्वर्णवत्यपि सम्प्राप्ता तदा शीघ्रं महावतीम् ।।८१
तस्यां गतायां गेहे वै पद्मिन्या लिखितं शुभम् । पत्रं परिमलो राजा वर्तयामास हर्षितः ।।८२

(सोना) ने अपने अनुयायियों को आश्वासन प्रदानकर भगवती देवी चण्डिका की सविधान पूजा करना आरम्भ किया तथा नवरात्र के दिनों में भोजन और शय्या-शयन के त्याग भी । पश्चात् अन्त की रात्रि में उस घोर अँधेरी आधीरात के समय भगवती जगदम्बिका ने स्वर्णवती (सोना) से कहा—जिस पद्मिनी स्त्री को (लाखन समेत) तुम खोज रही हो, वह मणिदेव यक्ष की प्रिया है । यज्ञ में अपमानित होने पर उसने कामपाल के यहाँ जन्म ग्रहण किया है । वह मणिदेव कुबेर का सेनानायक है, युद्ध में जिसे पराजित कर भीमसेन ने हनन कर दिया था । उस समय पद्मिनी ने निराहार रहकर देवाधिदेव एवं उमापति शिव से बार-बार यही प्रार्थना किया है—हे शंकर ! मेरा पति मुझे प्रदान करो ! सौ वर्ष की आराधना करने के उपरांत महादेव ने उससे कहा—कलियुग में विक्रम काल (संवत्सर) के बारहवीं शताब्दी के अन्तिम समय के लगभग नकुलांश (लाखन) को (पति रूप में) प्राप्तकर अत्यन्त सुख का उपभोग करती हुई उससे वियोग होने पर इस सौरभ से सुवासित देह के त्यागपूर्वक अपने पति समेत पुनः तुम्हें कैलास की प्राप्ति होगी । राष्ट्रपाल के लिए उस रमणीक महावती (महोबा) नामक राजधानी के निर्माण करती हुई देवी शारदा के ही द्वारा तुम्हें पति रूप में मणिदेव की प्राप्ति होगी । इस भूतल में देवी द्वारा उत्पन्न होकर वह ग्राम रक्षार्थ नियुक्त (राजा) होगा । पश्चात् पद्मिनी नामक तुम्हें स्त्रीरूप में प्राप्तकर पुनः कैलास चला आयेगा । इसलिए स्वर्णवती (सोना) देवि ! मेरी बात स्वीकार कर यक्षों के निवासरूप उस कैलास की शीघ्र यात्रा करके वहाँ पद्मिनी को इन बातों की जानकारी कराओ । इसे सुनकर उस सुवर्णाङ्गी (सोना) ने वहाँ पहुँचकर पद्मिनी से सभी वृत्तान्त का वर्णन किया । उससे प्रभावित होकर दयावती पद्मिनी ने कामपाल के घर निवास करना स्वीकार किया । उस समय रानी (सोना) ने महावती (महोबा) में शीघ्र पहुँचकर राजा परिमल को पद्मिनी का लिखा हुआ वह पत्र दिया जिसमें उसने अपने (पिता के) घर में निवास करना आदि सभी बातें लिखी थी ।६७-८२। तथा यह भी

आगच्छ सेनया सार्द्धं कृष्णांश बलवत्तर । जित्वा पद्माकरं बन्धुं मत्पतिं मोचयाशु वै ॥
भूतले लक्षणो राजा स्थितः पद्माकरार्तिगः ॥८३
इति ज्ञात्वा च कृष्णांशो लक्षद्वादशसेनया । रुरोध नगरीं सर्वां कामपालेन रक्षिताम् ॥८४
कामपालस्तु बलवांस्त्रिलक्षबलसंयुतः । सुताज्ञया ययौ युद्धं सार्द्धं पद्माकरेण वै ॥८५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोस्तदा । अहोरात्रप्रमाणेन भूपसेना पराजिता ॥८६
पद्मिनीं शरणं प्राप्य तदा भ्राता पिता स्थितः । तयोर्विजयमेवाशु यथाप्राप्तं चकार सा ॥
अन्तर्द्धानमयं पत्रं तयोरर्थे च सा ददौ ॥८७
तौ तत्रान्तर्हितौ भूत्वा स्वखड्गेन रिपोर्बलम् । अयुतं जघ्नतुर्मत्तौ तदा ते विस्मयं गताः ॥८८
तालनाद्या रणं त्यक्त्वा कृष्णांशं शरणं ययुः । कृष्णांशोऽपि तदा दुःखी ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् ॥८९
दिव्यदृष्टिस्ततो जातः संप्राप्य तमयुध्यत । नभोगतं कामपालं तथा पद्माकरं नृपम् ॥९०
बद्ध्वा तत्र मुदाविष्टो लक्षणं प्राप्य निर्भयः । दोलामारोप्य तां देवीं स्वगेहाय मुदा ययौ ॥९१
जयचन्द्राय भूपाय दत्त्वा वै तौ च दम्पती । लक्षणं पद्मिनीं चैव कृतकृत्यस्तदाभवत् ॥९२
जयचन्द्रोऽपि बलवान्दृष्ट्वा गेहे स्वदम्पती । ददौ दानं द्विजातिभ्यो भूपतिं सममोचयत् ॥
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे कृष्णांशो गेहमागतः ॥९३

लिखा था कि सेना समेत बलवान् उदयसिंह शीघ्र आकर भाई पद्माकर को पराजित करके मेरे पति को शीघ्र मुक्त कराइये । 'राजा लक्षण (लाखन) इस पृथ्वी पर जीवित तथा पद्माकर द्वारा पीड़ित हैं, ऐसा जानकर उदयसिंह ने अपने बारह लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर कामपाल की उस राजधानी को चारों ओर से घेर लिया । राजा कामपाल ने भी अन्य पुत्रों की आज्ञावश पद्माकर पुत्र तथा अपने तीन लाख सैनिकों समेत युद्धस्थल में पहुँचकर युद्धारम्भ कर दिया । दोनों सेनाओं में महान् एवं घोर संग्राम हुआ जो अविराम गति से दिन-रात चलता रहा । सेना के पराजित होने पर कामपाल ने पुत्र समेत पद्मिनी की शरण में पहुँचकर अपनी विजय की प्रार्थना की । उन दोनों की विजयकामना वश उसने उस अन्तर्हित करनेवाले पत्र को उन्हें अर्पित कर दिया । उस समय उन दोनों ने अन्तर्हित होकर शत्रु के दश सहस्र सैनिकों के हनन किये । इसे देखकर तालन आदि सेनाध्यक्षों को महान् आश्चर्य हुआ ! फलतः रणभूमि छोड़कर वे सभी उदयसिंह की शरण पहुँचे । उसे सुनकर दुःख का अनुभव करते हुए उदयसिंह ने सर्वमयी भगवती पार्वती की आराधना करके दिव्यदृष्टि प्राप्त की, जिससे आकाश स्थित होकर युद्ध करते हुए उन दोनों को देखा । पश्चात् निर्भय होकर उन दोनों को बाँधकर लक्षण (लाखन) के पास पहुँचे और उनके समेत पद्मिनी का डोला साथ लेकर अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा जयचन्द्र को दम्पती राजा लक्षण (लाखन) और उनकी रानी पद्मिनी सौंपकर अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करने लगे । बलवान् जयचन्द्र ने भी अपने घर में पुत्र तथा पुत्र-वधु को उपस्थित देखकर हर्ष निमग्न होते हुए ब्राह्मणों को दान तथा बंधन समेत जेल में पड़े हुए राजाओं को साथ ही बंधन मुक्त किया । इस प्रकार ज्येष्ठमास के आरम्भ में उदयसिंह अपने घर पहुँच गये ।८३-९३। विप्र ! कृष्णांश

इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । पुनस्ते कथयिष्यामि दृष्टं योगबलेन वै ।।९४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

शृणु विप्र महाभाग चन्द्रभट्टस्तदा स्वयम् । महीराजं सदःस्थं तं चन्द्रतुल्यस्समागतः ।।१
तमागतं समालोक्य स राजा शोकतत्परः । उवाच वचनं रम्यं शृणु मन्त्रिवर प्रभो ।।२
कृष्णांशाद्यैर्महाशूरैर्मद्ग्रामे भयमागतम् । कदा ते च मरिष्यन्ति कण्टका मम दारुणाः ।।३
इत्युक्तस्स तु शुद्धात्मा ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । वचनं प्राह राजानं शृणु भूपशिरोमणे ।।४
जिष्णोरंशात्समुद्भूतो ब्रह्मानन्दो महावतीम् । स कृष्णांशसखः श्रेष्ठः सर्वदा तत्प्रिये रतः ।।५
यदा च मलनापुत्रो देहं त्यक्त्वा गमिष्यति । तदा ते सर्वदेवांशा गमिष्यन्ति यतो गताः ।।६
इत्येवं वादिनं धीरममात्यं च महीपतिः । वचनं प्राह नम्रात्मा कोऽप्यर्थश्चिन्तितो मया ।।७

(उदयसिंह) के इतने चरित्र को मैंने तुम्हें सुना दिया, किन्तु योगबल द्वारा जो कुछ उनके चरित को देखा है, मैं पुनः कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।९४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अध्याय ३१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग, विप्र ! मैं कह रहा हूँ, सुनो ! एक बार जिस समय राजा पृथ्वीराज सिंहासन पर बैठे हुए थे, उसी समय वहाँ चन्द्रभट्ट का आगमन हुआ । आये हुए उन्हें देखकर चिन्तित होकर राजा ने उनसे कहा—मंत्रिप्रवर ! मेरी एक बात सुनो ! उदयसिंह आदि महाशूरों द्वारा मेरा समस्त नगर भयभीत है, अतः इन मेरे भीषण शत्रुओं की मृत्यु कब होगी? । उनके इस प्रकार कहने पर उस शुद्धात्मा भट्ट ने सर्वमयी भगवती शिवा के ध्यानपूर्वक राजा से कहा—भूप शिरोमणि ! मैं कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनने की कृपा कीजिये । महावती (महोबा) नगर के निवासी ब्रह्मानन्द विजयशील विष्णु के अंश से उत्पन्न हैं । कृष्णांश (उदयसिंह) उनके परम मित्र हैं, जो सदैव उनके प्रिय कार्य करते रहते हैं । इसलिए वह मलना-पुत्र (ब्रह्मानन्द) अपनी शरीर के त्यागपूर्वक जिस समय यहाँ से प्रस्थान करेगा, उसी समय देवांश से उत्पन्न वे सभी लोग यहाँ से चले जायँगे ।१-६। ऐसा कहने वाले उस धीर गम्भीर मंत्री और राजा से महीपति (माहिल) ने विनम्र होकर कहा—मैंने एक उपाय सोच-विचारकर निश्चित

एकाकिनं महाशूरं ब्रह्मानन्दं नृपोत्तमम् । समाहूय महीराजो द्विरागमनहेतवे ॥
छद्मना घातयित्वा तं कृतकृत्यो भविष्यति ॥८
इत्युक्तं नृपतिं प्राह महीराजः प्रसन्नधीः । वचनं शृणु भो मित्र गच्छ शीघ्रं महावतीम् ॥९
मलनां च समागत्य बोधयित्वा तु तां स्वयम् । ममान्तिकमुपागम्य चिरं जीव सुखी भव ॥१०
इति श्रुत्वा तु वचनं नत्वा तं च महीपतिः । रात्रौ घोरे मुनिश्रेष्ठ मलनां प्राह निर्भयः ॥११
वधूस्तव महाराज्ञि वेला नाम सुरूपिणी । संप्राप्ता यौवनवती पतियोग्या शुभानना ॥१२
कुजातिश्चैव कृष्णांशः श्रुतो राज्ञा महात्मना । अतो न प्रेषिता पुत्री तव पुत्राय धीमते ॥
अतो मद्वचनं मत्वा कुरु कार्यं तव प्रियम् ॥१३
मया सार्द्धं तव सुतो ब्रह्मानन्दो महाबलः । उर्वीयां नगरीं प्राप्य तदा मत्सैन्यसंयुतः ॥१४
महीराजमुपागम्य पत्नीं शीघ्रमवाप्स्यति । नो चेन्ममाज्ञया वेला त्यक्त्वा कान्तं मरिष्यति ॥१५
इति श्रुत्वा तु सा राज्ञी मोहिता दैवमायया । राजानं समुपागम्य भ्रातुर्वचनमुत्तमम् ॥
कथयामास वै सर्वं श्रुत्वा भूपोऽब्रवीदिदम् ॥१६
महीपतिर्महाधूर्तो मद्विनाशाय चोद्यतः । तस्य वार्ता न मे रम्या कपटस्तेन निर्मितः ॥१७
इति श्रुत्वा च मलना राजानं कोपसंयुतम् । वचनं प्राह भो राजन्यथा बन्धुस्तथा ह्यहम् ॥
वचनं कुरु मे राजन्नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥१८

कर लिया है—वह यह है कि उस नृपश्रेष्ठ एवं महावली ब्रह्मानन्द को गौने के बहाने से अकेले बुलाकर छल-कपट द्वारा उनका निधन करके आप कृतकृत्य हो जाँयेगे । इस प्रकार कहते हुए उस राजा से प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने कहा—मित्र ! मेरी बात सुनो ! तुम शीघ्र महावती (महोबा) जाकर वहाँ मलना के पास पहुँचकर स्वयं उनसे भली भाँति समझाकर कहो । पश्चात् मेरे पास आकर सूचित करो जिससे तुम चिरजीवन प्राप्तकर सुख का अनुभव करो। मुनिश्रेष्ठ ! इसे सुनकर उस महीपति (माहिल) ने नमस्कार पूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया । रात्रि के समय घोर अंधेरे में वह मलना के पास पहुँचकर निर्भीक होकर कहने लगा तुम्हारी वेला नाम की महारानी बहू ने इस समय यौवन सौन्दर्य प्राप्त किया है जिससे वह कल्याणमुखी पति के योग्य हो गई है । किन्तु महाराज पृथ्वीराज ने यह सुना है कि उदयसिंह का जन्म नीच जाति में हुआ है । इसीलिए उन्होंने अपनी पुत्री तुम्हारे पुत्र के पास भेजना उचित नहीं समझा । अतः मेरी बात मानकर जैसा मैं कहूँ, करने को तैयार हो जाओ, क्योंकि उसी में तुम्हारा हित है । तुम्हारा पुत्र महाबली ब्रह्मानन्द अकेले मेरे साथ मेरी उर्वी (ऊरई) राजधानी में चलकर वहाँ मेरी सेना समेत पृथ्वीराज के पास पहुँच जायेगा ।७-१५। तो अवश्य अपनी पत्नी ले आयेगा, इसमें संदेह नहीं है । नहीं तो मेरी बात सुनकर वेला अपने पति का त्यागकर अपना प्राण विसर्जन कर देगी। इसे सुनकर दैवमाया से मोहित होकर उस रानी ने अपने पति के पास पहुँचकर अपने भाई की समस्त बातें उनसे कहा। उसे सुनकर राजा ने कहा—महीपति (माहिल) महाधूर्त है, वह सदैव हमारे विनाश करने के लिए ही प्रयत्नशील रहता है । इसलिए उसकी बात मुझे रुचती नहीं है, क्योंकि वह कपट कर रहा है । इसे सुनकर रानी मलना ने उस क्रोधित राजा से कहा—'राजन् ! जैसे भाई हैं वैसे मैं भी हूँ, आप इस कहने को मेरा ही कहना समझ-

इत्युक्तवादिनीं रात्रौ तदा परिमलो नृपः । ब्रह्मानन्दं ददौ तस्मै स सुतः मातृवत्सलः ।।१९
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य मातुलेन समन्वितः । रात्रौ च मातुलग्रामं सम्प्राप्य मुदितोऽभवत् ।।२०
प्रातःकाले च सम्प्राप्ते हरिनागरमास्थितः । एकाकी देहलीं रम्यां प्रययौ दैवमोहितः ।।२१
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते महीराजस्य मन्दिरे । अगमां दर्शयामास सुरूपां दिव्यविग्रहाम् ।।२२
अगमा च समालोक्य परं हर्षमुपाययौ । माघशुक्लस्य चाष्टम्यां ब्रह्मानन्दश्च निर्भयः ।।
श्यालानां योषितः सप्त ददर्श रुचिराननाः ।।२३
तिस्रो नार्यश्च विधवाश्चतस्रो धवसंयुताः । ब्रह्मानन्दं शब्दमयं वाक्यमूचुर्मुदान्विताः ।।२४
ब्रह्मानन्द महाभाग सावधान वचः शृणु । तव पत्नी स्वयं काली वेला कलहरूपिणी ।।
सञ्जहार धवानेव नो वयं तु सुदुःखिताः ।।२५
सापत्न्यमस्तु तत्तस्या गृहाणास्मान्मनोहर । धवान्विदेहि नो वीर पतिर्भवमुदान्वितः ।।२६
इति श्रुत्वा वचस्तासां ब्रह्मानन्दो महाबलः । उवाच मधुरं वाक्यं श्रुतिस्मृतिसमन्वितम् ।।२७
पुरा सत्ययुगे नारी चोत्तमा च पतिव्रता । त्रेतायां मध्यमा जाता निकृष्टा द्वापरे पुनः ।।२८
अधमा हि कलौ नारी परपुंसोपभोगिनी । अतस्तु कलिकाले वै विवाहो विधवास्त्रियाः ।।
देवलेन शुभः प्रोक्तश्चासितेन स्वयं स्मृतौ ।।२९
सती सत्ये तु सा प्रोक्ता त्रेतायां पतिभस्मगा ।।३०

कर उसे स्वीकार करने की कृपा करें, अन्यथा मैं प्राण त्याग दूंगी । इस प्रकार रानी के कहने पर विवश होकर उसी समय राजा ने अपना प्रिय पुत्र ब्रह्मानन्द माहिल को सौंप दिया । ब्रह्मानन्द भी माता की आज्ञा शिरोधार्यकर अपनी मामा के साथ में सानन्द उनके नगर उर्वी (उरई) में पहुँच गये । पश्चात् प्रातःकाल होने पर हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर ब्रह्मानन्द ने दैवमाया से मोहित होने के कारण अकेले ही दिल्ली को प्रस्थान किया । सायंकाल होने के समय पृथ्वीराज के भवन में पहुँचकर उन्होंने दिव्य शरीर धारिणी रानी अगमा का दर्शन किया । अगमा को भी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई । तदुपरांत उस माघ शुक्ल की अष्टमी के दिन निर्भीक ब्रह्मानन्द ने अपने सातों सालों की उन सौन्दर्यपुर्णमुखवाली रानियों का दर्शन किया, जिसमें तीन विधवाएँ और चार सधवाएँ थी । उन विधवा स्त्रियों ने उनके आगमन से प्रसन्न होकर अपने दुःख के उद्‌गार प्रकट करना आरम्भ कर दिया, उन्होंने कहा—महाभाग ! ब्रह्मानन्द ! निश्चल मन से मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । आप की वेला पत्नी ने जो स्वयं काली एवं कलह की साक्षात् प्रतिमा है, हमारे पतियों के निधन कराकर हमें अत्यन्त दुःखी बना दिया है । अतः मन के हरण करने वाले ! आपसे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि 'वीर ! हम पतिविहीन स्त्रियों के पति होने की कृपा करो । क्योंकि तुम्हीं हमारे अनुरूप हो ।' इसे सुनकर कर महाबली ब्रह्मानन्द ने उनसे मधुर एवं श्रुति स्मृति सारगर्भित वाणी द्वारा कहना आरम्भ किया—पहले सत्ययुग के समय स्त्रियाँ उत्तम पतिव्रता होती थीं । उसी प्रकार त्रेता में मध्यम, द्वापर में निकृष्ट और कलियुग में अधम स्त्रियाँ होती हैं, जो पर-पुरुष के साथ उपभोग कराती हैं । इसलिए देवल तथा असित महर्षियों ने अपनी स्मृतियों में कलि के समय विधवा-विवाह का समर्थन किया है ।१६-२९। उन्हीं लोगों का यह कहना है कि—सत्ययुग में स्त्रियाँ सती की भाँति आचरण करती थीं त्रेता में पति के साथ

सती सा मध्यमा प्रोक्ता द्वापरे विधवा सती । ब्रह्मचर्यपरा ज्ञेया कलौ नास्ति सतीव्रतम् ॥३१
अतो यूयं मया सार्द्धं भुंक्षध्वममलं सुखम् । इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तिस्रस्ता विधवाः स्त्रियः ॥३२
कृत्वा शृङ्गाररूपाणि भूषणानि च सर्वशः । ब्रह्मानन्दमुपागम्य समालिङ्गनतत्पराः ॥३३
ता दृष्ट्वा मलनापुत्रो वचनं प्राह निर्भयः ॥३४
युष्माभिः पतयो मुक्ता ये च मद्बन्धुना हताः ॥३५
युष्मानतो न गृह्णीयां सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं हास्ययुक्तं च योषितः ॥३६
महीराजान्तमागम्य रुरुदुर्भृशदुःखिताः । राजन्वेलापतिर्धूर्तो मम धर्मं जहाति वै ॥
दण्डं देहि च धूर्ताय नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥३७
इति श्रुत्वा महीराजो ब्रह्मानन्दं महाबलम् । समाहूय वचः प्राह भवान्भूपकुलाधमः ॥३८
परस्त्रियं च यो भुङ्क्ते स याति यममन्दिरम् । अद्यैव त्वं सुताकान्त कारागृहमवाप्नुयाः ॥३९
इति श्रुत्वा वचो घोरं ब्रह्मानन्दो महाबलः । सत्वरो: खड्गमुत्सृज्य महीराजमधावत ॥४०
दृष्ट्वा भयातुरो राजा चामुण्डान्तमुपाययौ । कपाटं दृढमाच्छाद्य तत्र वासमकारयत् ॥४१

ऋषय ऊचुः

तासां कथं विवाहाः स्युस्तत्त्वं नो ब्रूहि विस्तरात् । कुत्रत्यास्ताः किमंशाश्च दृष्टा योगेन वै त्वया ॥४२

भस्म हो जाती थीं । और द्वापर में विधवा रहकर सती आचरण करती हुई ब्रह्मचर्य की अन्तिम रेखा का पालन करती थीं । किन्तु कलियुग में सती-व्रत का विधान ही नहीं है । इसलिए तुम लोग मेरे सम्पर्क में रहकर सुखसागर की चरम सीमा का अनुभव अवश्य प्राप्त करो । उनकी इस श्रवण सुखद वाणी को सुनकर उन तीनों स्त्रियों ने भूषण-भूषित होती हुई अपने सौन्दर्यमय शृङ्गार की रचना करके ब्रह्मानंद के पास पहुँचकर उनसे आलिंङ्गन करने की इच्छा प्रकट की । उन्हें देखकर मलना-पुत्र ब्रह्मानन्द ने निर्भीक होकर कहा—तुम्हारे उन पतियों ने तुम लोगों का उपभोग किया है, जिन्हें रण-भूमि में हमारे भाइयों ने धराशायी कर दिया है । इसलिए तुम लोगों का ग्रहण मैं कभी नहीं कर सकता हूँ । यह सत्य ही नहीं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ । इस हास्य-युक्त एवं घोरवाणी को सुनकर वे स्त्रियाँ पृथ्वीराज के पास जाकर रुदन करती हुई कहने लगी—राजन् ! वेला का धूर्त पति हमें धर्मच्युत कर रहा है । इसलिए उस धूर्त को दण्ड दीजिये, नहीं तो हम प्राण देने के लिए तैयार हैं । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने महाबली ब्रह्मानन्द को बुलाकर कहा—आप अधम राजाओं के वंशज मालूम होते हैं, क्योंकि जो पर स्त्री का उपभोग करता है, उसे यमपुरी जाना पड़ता है । अतः पुत्रि कान्त ! मैं तुम्हें अभी जेल भेजता हूँ । इस कठोर वाणी को सुनकर महाबली ब्रह्मानन्द म्यान से खड्ग निकालकर पृथ्वीराज की ओर दौड़े, किन्तु उन्हें देखते ही भयभीत होकर राजा चामुण्ड (चौंढ़ा) के पास चले गये । और उन्हें किंवाड़ को अति दृढ़ता से बन्द कराकर उसी जेल के भीतर ही रखा ।३०-४१।

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! उन स्त्रियों के विवाह किस प्रकार हुए हैं, तथा वे कहां की रहने वाली एवं किस के अंश से उत्पन्न हुई हैं । इसे योगबल द्वारा जिस प्रकार आपने देखा है, उसके रहस्य का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की कृपा कीजिये ।४२

सूत उवाच

अङ्गदेशे मुनिश्रेष्ठ मायावर्मनृपोऽभवत् । तामसीं पूजयित्वा वै शक्तिं सर्वविमोहिनीम् ।।४३
वर्मोत्तमं तया दत्तं सर्वसत्त्वभयङ्करम् । गृहीत्वा स तु भूपालः प्रथितोऽभून्महीतले ।।४४
प्रमदा नाम तत्पत्नी दश पुत्रानसूषुवत् । कौरवांशान्महाभाग वर्षान्ते नाम मे शृणु ।।४५
मत्तः प्रमत्त उन्मत्त सुमत्तो दुर्मदस्तथा । दुर्मुखो दुर्धरो बाहुः सुरथो विरथः क्रमात् ।।
तेषां स्वसानुजा चासीत्तु नाम्ना मदिरेक्षणा ।।४६
तस्या वै सुन्दरं रूपं मदाघूर्णितलोचनम् । कितवो नाम वै दैत्यो दृष्ट्वा मोहमुपागतः ।।४७
मायावर्माणमागत्य वचनं प्राह नम्रधीः । यदि त्वं मे स्वतनयां देहि कामातुराय च ।।४८
तर्हि ते सकलं कार्यं करिष्यामि न संशयः । इति श्रुत्वा तदा भूपो ददौ तस्मै स्वकन्यकाम् ।।४९
कितवो गह्वरावासी रात्रौ घोरे तमोवृते । नृपगेहमुपागम्य बुभुजे स्मरविह्वलः ।।
प्रातःकाले तु तां त्यक्त्वा कन्दरान्तमुपाययौ ।।५०
वर्षदेवमते जाते ततो राजा मदातुरः । पुरोहितं समाहूय लक्षद्रव्यसमन्वितम् ।।
महीराजाय सम्प्रेष्य तारकं स समावृणोत् ।।५१
महीराजस्तु बलवाँल्लक्षषोडशसैन्यपः । संयुतः शतभूपालैर्मासान्ते समुपागमत् ।।५२
कृष्णांशे पञ्चदशके सम्प्राप्ते व्रततत्परे । तारकश्च विवाहाय बहुभूपाऽगमानयत् ।।५३

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! अङ्गदेश का मायावर्मा नामक राजा था । उसने सबको मोहित करने वाली तामसी शक्ति की उपासना की । उससे उसे एक उत्तम वर्म (कवच) की प्राप्ति हुई, जो समस्त प्राणियों के लिए भयप्रद था । उसे अपनाकर उस राजा ने इस पृथ्वी पर पर्यटन किया । पश्चात् प्रमदा नाम की उनकी पत्नी ने दश पुत्रों को जन्म दिया, जो एक-एक वर्ष के उपरांत कौरवों के अंश से उत्पन्न थे । महाभाग ! मैं उनके नाम भी बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये । मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, सुमत्त, दुर्मद, दुर्मुख, दुर्धर, बाहु, सुरथ, और विरथ और एक छोटी बहिन भी उत्पन्न हुई जिसका नाम मदिरेक्षणा था । उस कन्या के सौन्दर्यपूर्ण रूप एवं मदभरे नेत्रों को देखकर कितव नामक दैत्य अत्यन्त मोहित हो गया । पश्चात् उसने मायावर्मा के पास जाकर उनसे विनम्र प्रार्थना की—यदि तुम अपनी पुत्री मुझ कामपीड़ित को सौंप दो, तो मैं तुम्हारे सभी कार्य सुसम्पन्न कर दिया करूँगा, इसमें संदेह नहीं । इसे सुनकर राजा ने अपनी कन्या उसे सौंप दी । तदुपरांत गुफा निवासी कितव दैत्य कामपीड़ित होकर रात्रि के घोर अंधेरे के समय राजा के घर आकर नित्य उस कन्या का उपभोग करने लगा । प्रातः काल होने पर वह अपनी कन्दरा में चला जाता था । इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर राजा ने अपने पुरोहित द्वारा एक लक्ष द्रव्य प्रदानकर पृथ्वीराज के पुत्र तारक (ताहर) का वरण करा दिया। बलवान् पृथ्वीराज के पुत्र ने भी अपनी सोलह लाख सेना समेत सौ राजाओं को साथ लिए हुए एक मास की यात्रा कर वहाँ अपने पहुँच जाने की सूचना दी । उस समय उदयसिंह की पन्द्रहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस तारक (ताहर) के विवाह के उपलक्ष में वहाँ अनेक राजाओं का समाज एकत्रित हुआ था।४२-५३।

मायावर्मा च तं दृष्ट्वा तारकं भूपसंयुतम् । वचनं प्राह बलवान्राजराज वचः शृणु ।।५४
कितवो नाम मेधावी दैत्यवंशयशस्करः । तेन मे पीडिता बाला रात्रौ घोरतमोवृते ।।५५
हता भूपकुमाराश्च मत्सुतार्थं समागताः । भक्षितास्तेन दैत्येन संयुक्ते यमालयम् ।।५६
तेषां च बहुधा द्रव्यं लुण्ठयित्वा मदातुरः । मत्सुतायै ददौ सर्वं तस्मात्त्वं दितिजं जहि ।।५७
इति श्रुत्वा महीराजस्सर्वसैन्यसमन्वितः । कितवं च समाहूय महद्युद्धमचीकरत् ।।५८
कितवस्तु मायावी जित्वा सर्वान्महाबलान् । तारकं च समाहृत्य गुहायां समुपागमत् ।।५९
तारकश्च तदा दुःखी ध्यात्वा शङ्करमुत्तमम् । पाषाणभूतो ह्यगमन्महादेवप्रसादतः ।।६०
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता महावतीनिवासिनः । क्षत्रिया दशसाहस्राः कृष्णांशाद्यैश्च पालिताः ।।६१
महीराजस्तु तान्दृष्ट्वा बलखानिं महाबलम् । उवाच वचनं प्रेम्णा पुत्रशोकेन दुःखितः ।।६२
तारकः कितवेनैव संहृतो दितिजेन वै । यदि त्वं मे सुतं देहि कोटिस्वर्णं ददामि तत् ।।६३
इति श्रुत्वा तु ते धीराः कृष्णांशो देवसिंहकः । वत्सजौ च तथागम्य कितवं रुरुधुर्बलात् ।।६४
अहोरात्रमभूद्युद्धं तेषां तेन समन्वितम् । कितवस्तु रुषाविष्टः कृष्णांशं देवसिंहकम् ।।
बलखानिं मोहयित्वा जगर्ज च पुनः पुनः ।।६५
सुखखानिस्तदा शूरः कितवं बलवत्तरम् । स्वखड्गेन शिरस्तस्य छित्वा राजानमागमत् ।।६६

उस समय मायावर्मा ने तारक (ताहर) समेत बैठे हुए राजा पृथ्वीराज से कहा—बलवान् राजाधिराज! मेरी विनम्र प्रार्थना सुनने की कृपा करें। दैत्यवंश का ख्यातिप्राप्त एवं मेधावी एक कितव नामक दैत्य है, जो घोर अंधेरी रात्रि में मेरी पुत्री को पीड़ित करता रहता है। उस मेरी पुत्री के पाणिग्रहण करने के लिए अनेक राजकुमार आये थे किन्तु इस दैत्य ने उन्हें भक्षण करके यमपुरी भेज दिया और उनके अनेक प्रकार के धनों को लूटकर मेरी पुत्री को अर्पित किया है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप उस दिति-पुत्र (दैत्य) का हनन अवश्य करें। इसे सुनकर पृथ्वीराज ने सेनासमेत रणस्थल में पहुँचकर वहाँ कितव को बुलाकर उससे घोर युद्ध किया। उपरांत वह मायावी कितव दैत्य सभी बलवानों को पराजित कर तारक (ताहर) का अपहरण करते हुए अपनी गुफा में चला गया। उस समय दुःखी होकर तारक (ताहर) ने शंकर का ध्यान किया जिससे प्रसन्न होकर महादेव ने उसको पाषाण की मूर्ति बना दिया।५४-६०। उसी समय महावती (महोबा) निवासी क्षत्रियगण वहाँ पहुँच गये, जो दशसहस्र की संख्या एवं उदयसिंह आदि की अध्यक्षता में चल रहे थे। पृथ्वीराज ने उन्हें देखकर पुत्रशोक से संतप्त होते हुए महाबली उस बलखानि (मलखान) से कहा—उस दिति पुत्र कितव ने तारक (ताहर) का अपहरण कर लिया है, यदि तुम मेरे उस पुत्र को ला दो, तो मैं तुम्हें एक कोटि सुवर्णमुद्रा प्रदान करूँगा। इसे सुनकर उदयसिंह ने देवसिंह, तथा दोनों वत्सपुत्र (मलखान और सुखखानि) इन सबने मिलाकर उस कितव को बलात् चारों ओर से घेर लिया। उन लोगों का उस दैत्य के साथ दिन-रात अनवरत युद्ध हुआ। पश्चात् अत्यन्त क्रुद्ध होकर कितव ने उदयसिंह, देवसिंह, और मलखान को मोहितकर सिंहनाद करना आरम्भ किया। उसी बीच बलवान् सुखखानि ने अपने खड्ग द्वारा उस राक्षस के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया और उसे पृथ्वीराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उस समय वे तीनों भी

अयस्ते सुखिनो भूत्वा सुखखानिं प्रशस्य च । महीराजाय च ददौ तारकं कैतवं शिरः ॥६७
तदा भूपसुता देवी सुखखानिं समावृणोत् । महीपतिस्तदागत्य तत्सुतां मदिरेक्षणाम् ॥६८
सम्बोध्य विविधैर्वाक्यैर्भूमिराजान्तमागमत् । तारकस्य तया सार्द्धं विवाहो मुदितोऽभवत् ॥६९
कोटिस्वर्णं नृपात्प्राप्य बलखानिर्मदाबलः । प्रययौ बन्धुभिस्सार्द्धं शिरीषाख्यपुरं शुभम् ॥७०

सूत उवाच

गुर्जरे नृपतिश्चासीन्मूलवर्मा महाबलः । प्रभावती तस्य सुता दशपुत्रानुजाभवत् ॥७१
बलश्च प्रबलश्चैव सुबलः बलवान्बली । सुमूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयङ्करः ॥७२
करभो नाम वै यक्षो लल्लराजस्य सेवकः । प्रभावतीं समालोक्य मुमोह मदविह्वलः ॥
पञ्चवर्षान्तरे जाते तेन भुक्ता कुमारिका ॥७३
मूलवर्मा महीराजं समाहूय ससैन्यकम् । वचनं प्राह नम्रात्मा राजराजवचः कुरु ॥७४
प्रभावतीं शुभां कन्यां नृहराय ददाम्यहम् । इत्युक्त्वा नृहरं पुत्र समाहूय स्वमन्दिरे ॥
ददौ वेदविधानेन सुतां च नृहराय वै ॥७५
पक्षमात्रान्तरे यक्षः करभस्तत्र चागतः । दम्पती पीडयामास जित्वा सर्वमहीपतीन् ॥७६
महीराजस्तदा दुःखी वत्सजौ बलवत्तरौ । समाहूय कथित्वाग्रे रुरोद बलवान्बली[2] ॥७७

आनन्दमग्न होते हुए सुखखानि की प्रशंसा कर रहे थे । जिस समय उन्होंने तारक (ताहर) समेत कितव के शिर को पृथ्वीराज के सम्मुख उपस्थित किया, उस समय वह राजपुत्री सुखखानि के साथ अपना वरण करना चाहती थी, किन्तु महीपति (माहिल) ने वहाँ आकर उस मदिरेक्षणा को अनेक भाँति से समझा बुझाकर पृथ्वीराज के पास उपस्थित किया । अनन्तर तारक (ताहर) के साथ उसका विवाह संस्कार सम्पन्न कराया और मलखान को एक कोटि सुवर्ण की प्राप्ति हुई । जिससे वे अपने भाइयों समेत अपनी शिरीष नगरी को लौट आये ।६१-७०

सूत जी बोले—गुजरात प्रदेश में मूलवर्मा नामक महाबली राजा रहता था । उसकी प्रभावती नामक छोटी कन्या एवं दश पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके क्रमशः बल, प्रबल, सुबल, बलवान्, बली, सुमूल, महामूल, दुर्ग, शीम, एवं भयंकर नाम बताये गये हैं । करभ नामक एक यक्ष ने जो लल्लराज का सेवक था । उस प्रभावती कुमारी को देखकर अत्यन्त मोहित हो गया । उस मदन-पीडित यक्ष ने पाँच वर्ष के भीतर ही उस कुमारी के साथ उपभोग करना आरम्भ कर दिया । मूलवर्मा को इसका पता लगने पर उन्होंने पृथ्वीराज को बुलाकर उनसे विनम्र प्रार्थना की । राजाधिराज ! मैं आपके पुत्र नृहर के साथ अपनी प्रभावती नामक पुत्री का पाणिग्रहण करना चाहता हूँ । इतना कहकर उन्होंने पुत्र नृहर को अपने महल में बुलाकर अपनी पुत्री का सविधान पाणिग्रहण उनके साथ सुसम्पन्न कराया । एक पक्ष दिन व्यतीत होने के उपरांत उस दैत्य ने वहाँ आकर राजाओं को पराजित करके उन दम्पत्ति (स्त्री-पुरुष) को पीड़ित करना आरम्भ किया । उस समय अत्यन्त दुःखी होकर पृथ्वीराज ने वत्सराज के उन दोनों पुत्रों बलखानि और सुखखानि को बुलवाकर रुदन करते हुए उनके सम्मुख अपना करुण दुःख प्रकट किया।७१-७७।

---

१. सेनावान् । २. दैहिकसामर्थ्यवान् ।

दयालू वत्सजौ वीरौ करभान्तमुपेयतुः । करभस्तौ समालोक्य तत्रैवान्तर्धिमागतम् ॥
नागपाशेन तौ बद्ध्वा पीडयामास दम्पती ॥७८
इति श्रुत्वा स कृष्णांशः करभं यक्षकिङ्करम् । बद्ध्वा योगबलेनैव मोचयामास दम्पती ॥७९
भ्रातरौ तौ समागम्य नागपाशं तु चासिना । छित्वा मुमोद बलवान्कोटिस्वर्णं गृहीतवान् ॥
भूमिराजः प्रसन्नात्मा देहलीं मुदितोऽगमत् ॥८०

सूत उवाच

काश्मीरे च नृपश्चासीत्कैकयो नाम विश्रुतः । दश पुत्राश्च तस्यैव कन्या च मदनावली ॥८१
कामः प्रकामः सङ्कामो निष्कामो निरपत्रपः । जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाञ्जयः ॥८२
स भूपो भूमिराजं च समाहूय वचोऽब्रवीत् । पुत्रस्ते वै सरदनो मत्कन्यां प्राप्तुमर्हति ॥८३
गन्धर्वस्सुकलो नाम मत्कन्यां च शुभाननाम् । ज्योत्स्नायां[1] निशि संहृत्य तया सार्द्धं हि दीव्यति ॥८४
पूर्णिमायां च सम्प्राप्तः स वै चित्ररथप्रियः । वैशाखस्यासिते पक्षे चाष्टमी चाद्य मङ्गला ॥
वधं कुरु नृपश्रेष्ठ देहलीं गन्तुमर्हसि ॥८५
इति श्रुत्वा महीराजो लक्षसैन्यसमन्वितः । गृहीत्वा दम्पती शीघ्रं देहलीनगरं ययौ ॥८६
वैशाख्यां सुखजातायां सुकलो नाम वीर्यवान् । गन्धर्वो दश साहस्रै रुरोध नगरं रुषा ॥८७

दयानिधान ये दोनों पुत्र करभ के पास पहुँच गये । किन्तु उस यक्ष ने उन्हें देखते ही अन्तर्हित होकर नाग-पाश से इन दोनों को बांधकर पुनः उन स्त्री-पुरुष को पीड़ित करना आरम्भ किया । इसे सुनकर उदयसिंह उस करभ के पास पहुँचे और अपने योगबल द्वारा उसे बाँधकर उस दम्पती को दुःख से मुक्त किया । पश्चात् भाई के पास पहुँचकर अपनी तलवार से उनके नागपाश को काट दिया । तदुपरांत पृथ्वीराज से कोटि सुवर्ण की मुद्रा का ग्रहण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक वे लोग अपने घर चले गये और पृथ्वीराज ने भी हर्षित होकर पुत्र ,पुत्र-वधू और सेना समेत दिल्ली को प्रस्थान किया ।७८-८०।

सूत जी बोले—काश्मीर प्रदेश का कैकय नामक राजा था । उसके दश पुत्र तथा मदनावती नामक एक छोटी कन्या थी । काम, प्रकाम, संकाम, निष्काम, निरपत्रप, जय, विजय, जयन्त, जयवान् और जय क्रमशः यही नाम उन पुत्रों के बताये गये हैं । उस राजा ने पृथ्वीराज को बुलवाकर उनसे प्रार्थना की—कि आपके सरदन नामक पुत्र को मैं अपनी कन्या सौंप देना चाहता हूँ । किन्तु सुकल नामक गन्धर्व रात्रि के समय चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाशित होने पर उस कल्याणमुखी मेरी कन्या का अपहरण करके उसके साथ क्रीड़ा करता है । चैत्र की पूर्णिमा के दिन वह गन्धर्व यहाँ आया था नृपश्रेष्ठ ! आज वैशाख कृष्ण पक्ष की मंगला अष्टमी है, मैं चाहता हूँ कि आप उसका वध करके ही दिल्ली प्रस्थान करने का विचार करें । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने एक लाख सैनिकों द्वारा पुत्र तथा पुत्र-वधू को सुरक्षित रखते हुए दिल्ली की यात्रा की । वैशाख मास की पूर्णिमा के व्यतीत हो जाने पर उस सुकल नामक गन्धर्व ने क्रुद्ध होकर अपने दश सहस्र गन्धर्वों द्वारा दिल्ली नगर को चारों ओर से घेर लिया । उस समय नगर से किसी

---

१. मत्वर्थीयोच् । तद्वत्यां लक्षणा वा ।

नगराच्च बहिर्जाता ये शूरा मदविह्वलाः । हत्वा तान्सुकलः शीघ्रं राज्ञे दुःखं चकार ह ।।८८
भयभीतो महीराजो ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । सुष्वाप निशि शुद्धात्मा तुष्टाभूज्जगदम्बिका ।।८९
कृष्णांशादीन्बोधयित्वा तैश्च सार्धं समागमत् । तेषां चासीन्महद्युद्धं गन्धर्वेण तदाह्निकम् ।।९०
बलखानिश्च बलवाञ्छतगन्धर्वमुत्तमम् । त्रिदिनान्ते च संहृत्य सुखखानिस्तथैव च ।।९१
सुकलश्च तदा क्रुद्धो गान्धर्वीं च ससर्ज ह । बहुधा ते हि गन्धर्वास्तैश्च सार्द्धं समारुधन् ।।९२
भयभीतास्तदा सर्वे रामांशं शरणं ययुः । आह्लादश्च प्रसन्नात्मा शारदां सर्वमङ्गलाम् ।।९३
दिवासूक्तेन तुष्टाव तदा प्रादुरभूच्छिवा । गन्धर्वान्मोहयित्वाशु द्रावयामास शारदा ।।९४
पराजिते च गन्धर्वे कृष्णांशो जनमोहनः । महीराजमुपागम्य कोटिस्वर्णं गृहीतवान् ।।९५
षोडशाब्दे च कृष्णांशे सम्प्राप्ते देविपूजके । मार्गमासं तु सम्प्राप्ते मर्दनश्च विवाहितः ।।९६

सूत उवाच

पुण्ड्रदेशे महाराजो नागवर्मा महाबलः । बभूव तक्षकपरो धर्मवाञ्जगतीतले ।।९७
पत्नी नागवती तस्य तक्षकस्य सुता शुभा । पितुः शापेन सञ्जाता कलिङ्गाधिपतेः सुता ।।९८
दशैव तनयाश्चासन्कन्या तस्य शुभानना । सुवेला नाम विख्याता रूपयौवनशालिनी ।।९९

भी मदान्ध योद्धा के बाहर होने पर उसे वह सुकल गन्धर्व भक्षण कर लेता था । इस प्रकार उसने अल्प-काल में ही पृथ्वीराज को अत्यन्त कष्ट प्रदान किया । शुद्धात्मा पृथ्वीराज ने भी उससे भयभीत होकर सर्वमयी भगवती शिवा के ध्यान पूर्वक ही शयन किया । उनके ध्यान करने से अत्यन्त प्रसन्न होकर जगदम्बिका ने उदयसिंह आदि को इसका ज्ञान कराती हुई उन्हें साथ ले वहाँ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उन लोगों का उस गन्धर्व के साथ दिन भर घोर संग्राम होता रहा ।८१-९०। उस युद्ध में बलवान् बलखानि (मलखान) ने तीन दिन के भीतर सौ गन्धर्वों का हनन किया और सुखखानि ने भी वैसा ही किया । पश्चात् सुकल गन्धर्व ने अपनी गान्धर्वी माया की रचना की, जिसमें उस माया-जाल के सैनिकों द्वारा उन गन्धर्वों ने महोबा के वीरों को घेर लिया । उस समय वे वीरगण उससे भयभीत होकर आल्हा की शरण में पहुँचे ! प्रसन्नचित्त आह्लाद (आल्हा) ने उसी समय देवी सूक्त द्वारा सर्वमंगला शारदा जी की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर भगवती ने उन्हें दर्शन दिया और गन्धर्वों को मोहितकर शारदा जी ने उन्हें वहाँ से भागने के लिए विवश किया । गन्धर्वों के पराजित होने पर सर्वमोहन उदयसिंह ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे एक कोटि सुवर्ण मुद्रा की प्राप्ति की । देवी जी के उपासक उन उदयसिंह की सोलहवें वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष (अगहन) के मास में पृथ्वीराज के पुत्र मर्दन का पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न हुआ, जिसकी कथा इस प्रकार है—९१-९६

सूत जी बोले—पुंड्रदेश के अधीश्वर महाबली नागवर्मा महाराज इस जगतीतल में परम धार्मिक एवं तक्षक की उपासना में सदैव संलग्न रहते थे । उनकी पत्नी का नाम नागवती था, जो तक्षक की पुत्री थी, जिसने पिता के शाप द्वारा कलिंगाधीश्वर के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया था । उनके दशपुत्र तथा सुवेला नाम की एक कल्याणमुखी एवं रूपयौवन सम्पन्न एक कन्या थी । उस राजा ने-

पुरोहितं समाहूय महीराजाय प्रैषयत् । स गत्वा कथयित्वाग्रे मर्दनो वरितो मया ॥१००
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा त्रिलक्षबलसंयुतः । मङ्गलं कारयामास गत्वा नागपुरे शुभे ॥१०१
सुवेला पितरं प्राह देहि मे नागभूषणम् । विवाहं हि करिष्यामि नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥१०२
इति श्रुत्वा नागवर्मा महीराजान्तमाययौ । सुवेलाया अभिप्रायं वर्णयामास विस्तरात् ॥१०३
इत्युक्तः स महीराजो विस्मितोभूत्सुदुःखितः । प्रेषयामास वै पत्रं यत्राह्लादादयः स्थिताः ॥१०४
इति ज्ञात्वा तदाऽऽह्लादः शूरपञ्चशतावृतः । कृष्णांशवत्सजैस्सार्द्धं दिनान्ते च समागतम् ॥१०५
शतयोजनगामिन्यो वाजिन्यश्च द्वियामके । सहस्रयोजनं वीर्यं तासां चैव दिने निशि ॥१०६
कलांशादुद्भवा अश्वा वाजिनां च हरेः स्वयम् । रत्नाश्वस्य कलांशश्च कपोतो हरिणीभवः ॥१०७
गायत्रो योभवद्वाजी कालचक्रप्रवर्तकः । तत्कलांशात्समुद्भूतो रविदत्तः पपीहकः ॥
हरिणी नाम तच्छक्तिः कलांशाद्भूमिमागता ॥१०८
सुखखानिः पपीहस्थो बलखानिः कपोतगः । आह्लादश्च करालस्थो बिन्दुलस्थो हरेः कला ॥१०९
गत्वा ते तु महीराजं नत्वा तुङ्गासनं ययुः । प्रसन्नः स महीराजो वचनं प्राह नम्रधीः ॥११०
मम पुत्राश्च युष्माभिस्त्रयः शूरा विवाहिताः । तथैव मर्दनं वीरं समुद्वाह्य सुखी भव ॥१११
इति श्रुत्वा स आह्लादो गत्वा भूतलमुत्तमम् । रसातलं च विख्यातं नागिनीं प्राह निर्भयः ॥११२

अपने पुरोहित द्वारा पृथ्वीराज से कहला दिया कि मैंने मर्दन नामक आपके पुत्र का वरण कर लिया है। उसे सुनकर पृथ्वीराज ने अपने तीन लाख सैनिकों समेत उस नागपुर में जाकर मांगलिक विधान सुसम्पन्न किया। उस समय सुवेला ने अपने पिता से कहा—आप नागभूषण मुझे प्रदान करने की कृपा कीजिये, उसके मिलने पर ही मैं विवाह करूँगी, अन्यथा प्राणपरित्याग कर दूंगी। इसे सुनकर नागवर्मा ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे सुवेला के समस्त अभिप्राय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इसे सुनकर पृथ्वीराज को महान् आश्चर्य एवं उसके साथ अत्यन्त दुःख का भी अनुभव हुआ। पश्चात् उन्होंने आह्लाद (आल्हा) आदि के पास पत्र भेजकर प्रार्थना की। उसे स्वीकार कर आह्लाद (आल्हा) ने उदयसिंह तथा बलखानि (मलखान) और सुखखानि समेत एक दिन के भीतर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया। उन लोगों ने उन घोड़ों पर बैठकर यात्रा की, जो दोपहर में सौ योजन का मार्ग समाप्त करते थे। इस प्रकार उनके पराक्रमी घोड़ों ने सहस्र योजन के उस मार्ग को उस दिन-रात में समाप्तकर वहाँ पहुँचने की सूचना दी। उन घोड़ों का जन्म इन्द्र के घोड़ों द्वारा हुआ है—इलाश्व की अंशकला से हरिणी द्वारा कपोत, कालचक्र के आवर्तक उस गायत्र नामक अश्व के अंश से उत्पन्न एवं सूर्यप्रदत्त पपीहा, तथा हरिणी की शक्ति-अंश से उस हरिणी का जन्म होना बताया गया है। इस प्रकार पपीहा नामक अश्व पर सुखखानि, कपोत पर बलखानि (मलखान), कराल पर आह्लाद (आल्हा) और बेंदुल पर उदयसिंह सवार होकर जा रहे थे। वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उन्हें सादर नमस्कार किया। उन्हें देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए पृथ्वीराज ने सादर विनम्र होकर कहा—जिस प्रकार आप लोगों ने मेरे तीन पुत्रों के विवाह संस्कार सुसम्पन्न कराये हैं, उसी भाँति वीर मर्दन को भी विवाहित करके सुख का अनुभव करें।९७-१११। इसे सुनकर आल्हा (आह्लाद) ने उस प्रख्यात रसातललोक में जाकर

सुप्तो हि तव भर्ता च पुण्डरीकः शुभाननः । बोधयाशु महाराज्ञि नागानां नो दयां कुरु ।।११३
इत्युक्ता साह तं वीरं पुण्डरीकश्च मत्पतिः । रुषाविष्टश्च बलवान्दाहयेच्च वपुस्तव ।।११४
इति श्रुत्वा विहस्याह तव भर्तुर्न नो भयम् । इत्येवं वचनं कृत्वा पद्भ्यां पुच्छमताडयत् ।।११५
प्रबुद्धश्च तदा राजा नागानां च महाबलः । ज्वालामालां स्वदेहाच्च जनयामास वीर्यवान् ।।११६
दृष्ट्वा तद्विषमुज्ज्वालं स ध्यात्वा सर्वमङ्गलाम् । शमयामास बलवान्देवीपूजनतत्परः ।।११७
पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा नागभूषणमुत्तमम् । आह्लादाय ददौ शीघ्रं सर्वशृङ्गारसंयुतम् ।।११८
आह्लादस्तु हयारूढो महीराजाय दत्तवान् । विवाहं कारयामास वैवाहिकविधानतः ।।
कोटिस्वर्णं नृपात्प्राप्तं गृहीत्वा शीघ्रमाययौ ।।११९
हयविद्यासनारूढास्ते हया गेहमागताः । ज्ञेयाः पञ्चशतं सर्वे सशूरा गृहमाययुः ।।१२०

सूत उवाच

मद्रदेशेषु यश्चासीन्मद्रकेशो महाबलः । पञ्चाब्दं पूजयामास स्वर्गवैद्यौ सुरोत्तमौ ।।१२१
तयोश्च वरदानेन दश पुत्रा बभूविरे । सुता कान्तिमती जाता रूपयौवनशालिनी ।।१२२
स महीराजमाहूय त्रिलक्षबलसंयुतम् । ददौ कन्यां विधानेन मद्रेशः सूर्यवर्मणे ।।१२३
नवोढां तु तदा पत्नीं सूयवर्मा गृहीतवान् । स्वगेहाय ययौ शीघ्रं महीराजो बलैस्सह ।।१२४

निर्भय होकर नागिनी से कहा—महारानी ! तुम्हारे पति महोदय पुण्डरीक जी शयन कर रहे हैं, मेरे आगमन की उन्हें शीघ्र सूचना दो, इस समय नागों पर दया मत करो । इसे सुनकर उसने कहा—मेरे पति पुण्डरीक जागने पर अपने वीरों समेत क्रुद्ध होकर तुम्हारे शरीर को दग्ध कर देंगे । उन्होंने हँसते हुए कहा—मुझे तुम्हारे पति का भय नहीं है । ऐसा कहते हुए उन्होंने स्वयं अपने चरणों द्वारा उनकी पूंछ में प्रहार किया । नागों के महाबली राजा उसी समय नाग बनकर अपनी शरीर से विष-ज्वालाओं की मालाएँ उत्पन्न करने लगे । उनके विष की उस ज्वाला को देखकर भगवती सर्वमंगला के ध्यान पूर्वक उस बलवान् एवं देवी उपासक ने उसे शान्त कर दिया । उस समय पुण्डरीक ने प्रसन्न होकर समस्त शृङ्गार समेत वह नागभूषण आल्हा को अर्पित किया । पश्चात् घोड़े पर बैठकर आल्हा ने पृथ्वीराज के पास पहुँच- कर वह शृंगार-भूषण उन्हें सौंप दिया । तदुपरांत सविधान उनके विवाह संस्कार को सुसम्पन्न कराकर पृथ्वीराज से कोटिसुवर्ण की प्राप्तिपूर्वक अपने घर चले आये । अश्व विद्या में निपुण वे घोड़े भी शीघ्रातिशीघ्र उन्हें घर पहुँचा दिया और उनके साथ के पाँच सौ शूरवीर भी अपने घर आ गये ।११२-१२०

सूत जी बोले—मद्रदेश में महाबली मद्रकेश नामक राजा राज्य करता था । उसने पाँच वर्ष तक देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमार की उपासना की । उन्होंने उनकी आराधना से प्रसन्न होकर राजा को दशपुत्र और एक कन्या प्रदान की जिसका नाम कान्तिमती था उस कन्या के रूप यौवन सम्पन्न होने पर मुद्राधीश्वर ने तीन लाख सैनिक समेत राजा पृथ्वीराज को बुलाकर उनके पुत्र सूर्यवर्मा के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण सुसम्पन्न किया । अपनी नवोढा नवविवाहिता पत्नी समेत सूर्यवर्मा ने पृथ्वीराज के

कर्बुरो नाम मायावी विभीषणसुतो बली। राक्षसस्तत्र सम्प्राप्तो दृष्ट्वा कान्तिमतीं शुभाम् ।।१२५
मद्रकेशस्य तनयां दिव्यशोभासमन्विताम् । जहारपश्यतां तेषां सह्याद्रिगिरिमाययौ ।।१२६
महीराजस्तदा दुःखी दिललाप भृशं मुहुः । देहलीगेहमागम्य दूतमाहूय सत्वरम् ।।१२७
कृष्णांशं प्रेषयामास स गत्वा समवर्णयत् । ज्ञात्वा ते तु हयारूढाः शूराः पञ्चशतावृताः ।।१२८
सह्याद्रिगिरिमागम्य कृष्णांशः कर्बुरं प्रति । निर्भयो वचनं प्राह शृणु राक्षससत्तम ।।१२९
विभीषणो भक्तराजस्तस्य त्वं दयितः सुतः । तस्मात्त्वया न कर्तव्यं पापं वंश विनाशनम् ।।
रावणेन पुरा सीता संहृता विदितं तव ।।१३०
इति श्रुत्वा स होवाच पुरेयं दयिता प्रिया । मम गन्धर्वतनया मुनिशापान्महीं गता ।।१३१
अतोऽहं तद्वियोगेन त्यक्त्वा लङ्कां महापुरीम् । मद्रकेशमहं प्राप्य मद्रकेशभयादहम् ।।
न जहार प्रियां रम्यां तत्रोषित्वा दिनं बहु ।।१३२
अद्य मे वशगा साभून्नाम्ना कान्तिमती शुभा । जित्वा मां च गृहाणाशु समर्थाश्च वयं सदा ।।१३३
इति श्रुत्वा स कृष्णांशः खड्गयुद्धमचीकरत् । सप्तरात्रेण तं जित्वा लब्ध्वा कान्तिमतीं शुभाम् ।।
तदा च देहलीं प्राप्य महीराजान्तमाययौ ।।१३४
कोटिस्वर्णं ददौ राजा कृष्णांशाय महात्मने । स वीरो बन्धुभिः सार्धं प्रमदावनमाययौ ।।१३५

साथ अपने नगर को प्रस्थान किया । उसी बीच कर्बुर नामक मायावी राक्षस ने जिसे वली एवं विभीषण का पुत्र बताया गया है, वहाँ आकर उस कल्याणमुखी कान्तिमती को देखा । पश्चात् उसने उन लोगों के देखते ही दिव्य सौन्दर्य पूर्ण उस मद्रकेश की पुत्री का अपहरणकर सह्याद्रि नामक पर्वत को प्रस्थान किया । उस समय दुःखी होकर पृथ्वीराज बार-बार विलाप कर रहे थे । किसी प्रकार से दिल्ली आकर उन्होंने अपने एक दूत को उदयसिंह के पास भेजा । दूत ने वहाँ जाकर उदयसिंह आदि लोगों से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । पश्चात् उन लोगों ने अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर पाँच सौ शूर सामन्तों समेत सहस्राद्रिगिरि की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उदयसिंह ने निर्भीक होकर उस कर्वुर नामक राक्षस से कहा—श्रेष्ठ राक्षस ! मेरी एक बात सुनो ! भक्तराज विभीषण के तुम प्रिय पुत्र हो । इसीलिए तुम्हें इस प्रकार के वंश-विनाशी पाप न करना चाहिए, क्योंकि पहले समय में रावण ने जानकी जी का अपहरण किया था, जो तुमसे छिपा नहीं है । इसे सुनकर उसने कहा—यह मेरी पहले की प्रेयसी पत्नी है, जो गन्धर्व कुल में उत्पन्न हुई थी । इस समय मुनि के शापवश इस भूतल में इसने जन्म ग्रहण किया है । इसीलिए मैं इसके वियोग व्यथा से पीड़ित होने पर लंका त्यागकर मद्रदेश में ही रह रहा था किन्तु वहाँ बहुत दिन से रहते हुए भी मैं राजा मद्रकेश के भयवश इस अपनी प्रेयसी का अपहरण नहीं कर सका । आज बहुत दिनों पर यह कान्तिमती मुझे मिली है । यदि इसे प्राप्त करने की आपकी इच्छा ही है, तो मुझे जीतकर ले सकते हैं, और हम लोग तो सदैव समर्थ हैं ही । इतना सुनकर उदयसिंह ने उसके साथ खड्ग युद्ध आरम्भ किया । सात दिन के पश्चात् उन्होंने उसे पराजितकर उस शुभ कान्तिमती की प्राप्ति पूर्वक दिल्ली आकर पृथ्वीराज को उसे सौंप दिया । उस समय प्रसन्न होकर राजा ने एक कोटि सुवर्ण उस वीर उदयसिंह को अर्पित किया। अनन्तर उस वीर ने अपने भाइयों समेत प्रमदावन को प्रस्थान किया।१२१-१३५

सूत उवाच

पट्टनाख्यपुरे राजा नाम्ना पूर्णामलो बली । वसूनाराधयामास पञ्चवर्षान्तरे मुदा ॥
तदा प्रसन्नास्ते देवा ददुस्तस्मै वरं शुभम् ॥१३६
वरदानाच्च सञ्जाता दश पुत्रा महीपतेः । विद्युन्माला सुता जाता रूपयौवनशालिनी ॥१३७
तद्विवाहार्थमाहूय महीराजं महाबलम् । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं तत्पुत्राय सुतां ददौ ॥१३८
महीराजसुतो भीमः पत्नीं प्राप्य मनोरमाम् । गेहमागम्य तैः सार्धं देहलीं हर्षमाप्तवान् ॥१३९
तदा पैशाचदेशस्थः सहोदश्च महीपतिः । म्लेच्छैश्च दशसाहस्रैर्विद्युन्मालार्थमुद्यतः ॥१४०
बलिदैत्याज्ञया प्राप्तः कुरुक्षेत्रं शुभस्थलम् । भित्त्वा मूर्तीः सुराणां गोरक्तैस्तीर्थजलं कृतम् ॥१४१
पत्रमालिख्य बलवान्महीराजाय धर्मिणे । स्वदूतः प्रेषितस्तेन श्रुत्वा भूपोऽब्रवीदिदम् ॥१४२
भवान्म्लेच्छपती राजा विद्युन्मालार्थमुद्यतः । मां शब्दवेधिनं विद्धि चौर्यदेशधुरन्धरम् ॥१४३
इत्युक्त्वा स त्रिलक्षैश्च कुरुक्षेत्रमुपागतः । तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं भयानकम् ॥१४४
निशीथे समनुप्राप्ते ज्येष्ठे मासि तमोमये । पातालाद्बलिरागत्य दैत्यायुतसमन्वितः ॥१४५
नृपसैन्यं जघानाशु भक्षयित्वा पुनः पुनः । भयभीतस्तदा राजा शारदां शरणं ययौ ॥१४६
एतस्मिन्नन्तरे देवाः कृष्णांशाद्या महाबलाः । क्षणमात्रेण सम्प्राप्तास्तदा पदचरा मुने ॥१४७

सूत जी बोले—पटना नगर का अधीश्वर वली पूर्णामल था, जिसने प्रसन्नतापूर्ण रहकर पाँच वर्ष तक अनवरत वसुओं की आराधना की । उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन देवों ने उन्हें शुभ वरदान प्रदान किया, जिसके द्वारा राजा के दश पुत्र और विद्वन्माला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । कन्या के रूप- यौवन सम्पन्न होने पर राजा ने पृथ्वीराज को अपने यहाँ सादर निमंत्रित किया । सात लाख सैनिकों समेत उस पुत्र के साथ पृथ्वीराज के वहाँ आने पर उन्होंने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार उनके पुत्र के साथ सुसम्पन्न किया । तत्पश्चात् पृथ्वीराज के पुत्र भीमसेन ने उस मनोरम पत्नी की प्राप्ति पूर्वक उन लोगों समेत दिल्ली आकर अपने रंगमहल में हर्षपूर्ण दिनों को व्यतीत करना आरम्भ किया । उसी बीच पिशाच देश का निवासी राजा सहोद अपने दश सहस्र म्लेच्छ सैनिकों द्वारा विद्वन्माला की प्राप्ति के लिए तैयारी करने लगा । उसने बलि दैत्य की आज्ञा प्राप्तकर उस शुभस्थल कुरुक्षेत्र में पहुँचकर डेरा डाल दिया, जहाँ उसने सर्वप्रथम देवताओं की मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर गौओं के रक्तों से तीर्थजल की अभिवृद्धि की थी । उस बलवान् ने पत्र लिखकर अपने दूत द्वारा उसे धार्मिक राजा पृथ्वीराज के पास भेज दिया । उसे सुनकर उसके प्रत्युत्तर में राजा ने यह कहा—आप म्लेच्छाधीश्वर होकर विद्वन्मालार्थ यहाँ आये हुए हैं, तो मुझे भी चौर्यदेश का धुरन्धर शब्दवेधी जान लेना । इतना कहकर वे अपनी तीन लाख सेना समेत उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँच गये । वहाँ उन दोनों का भीषण संग्राम आरम्भ हुआ जो दिन-रात चलता रहा । ज्येष्ठ मास की उस अँधेरी रात्रि की आधीरात के समय बलि दैत्य ने पाताल से आकर अपने दशसहस्र सैनिकों समेत पृथ्वीराज के सैनिकों को मार-मार कर भक्षण करना आरम्भ किया । उस समय भयभीत होकर राजा शारदा की शरण में पहुँचे । उसी बीच उदयसिंह आदि वीरगण भी वहाँ पहुँच गये । मुने ! भगवती की कृपावश वे सब वहाँ क्षणमात्र में पहुँच गये थे । एक सहस्र

हत्वा दैत्यसहस्राणि बलिदैत्यमुपाययुः । देशजौ वत्सजौ वीरौ देवसिंहस्तथैव च ।।
स्वखड्गैस्तर्पयामास दैत्यराजं महाबलम् ।।१४८
तदा प्रसन्नो बलवान्दैत्यराजो बलिः स्वयम् । वरं वृणुत तानाह ते तु श्रुत्वाब्रुवन्वचः ।।१४९
आर्यदेशं च ते दैत्या नागच्छन्तु त्वया सह । म्लेच्छदेशं सदा प्राप्य भक्षध्वं म्लेच्छधर्मगान् ।।१५०
इति श्रुत्वा वचो घोरं विप्रियं च बलिः स्वयम् । कृष्णांशमुदयं गत्वा तुष्टाव परया गिरा ।।१५१
तदा प्रसन्नः कृष्णांशो वचनं प्राह निर्भयः । यावदहं भूमिवासी तावत्त्वं गेहमावस ।।
तत्पश्चाद्भूमिनागत्य यथायोग्यं कुरुष्व भोः ।।१५२
इति तद्वचनं श्रुत्वा सहोदो नीलसंयुतः । पैशाचं देशनगमत्पुनः प्राप्तो रसातलम् ।।१५३
भूमिराजः प्रसन्नात्मा कोटिस्वर्णं ददौ तदा । गजारूढाश्च ते पञ्च संययुश्च महावतीम् ।।१५४

सूत उवाच

वर्द्धनो भूमिराजस्य सुतः सर्वेभ्य उत्तमः । पञ्चमाब्दवया भूत्वा श्रीदं तुष्टाव भक्तितः ।।
वर्षान्तरे च भगवान्ददौ सर्वं शुभं निधिम् ।।१५५
तत्सर्वनिधिभावेन नृपकोशः समन्ततः । पूर्णो बभूव कनकैः राजराजप्रभावतः ।।१५६
किन्नरी नाम या कन्या मङ्कणस्य प्रकीर्तिता । कुबेरश्च ददौ तस्मै वर्द्धनाय प्रियाय च ।।
इति ते कथितं सर्वं विवाहचरितं मुने ।।१५७

दैत्यों के निधन करने के उपरांत ये वलि के सम्मुख पहुँचकर उनके ऊपर वत्सराज के दोनों पुत्रों और देव-सिंह ने अपने-अपने खड्ग द्वारा प्रहार करना आरम्भ किया। उनके युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर दैत्य- राज बलि ने इन लोगों से अभिलषित वर की याचना करने के लिए कहा। उसे सुनकर इन लोगों ने कहा—आप प्रसन्न हैं, तो अपने दैत्यों समेत आप इस आर्यप्रदेश में कभी भी न आने का वचन दें किन्तु म्लेच्छ देश में ही जाकर उन्हीं म्लेच्छों का ही भक्षण करते रहें। इस घोर एवं अप्रिय वाणी को सुनकर राजा बलि ने स्वयं उदयसिंह के पास जाकर उनके महत्त्व का स्मरण करते हुए विनम्र प्रार्थना की। पश्चात् प्रसन्न होकर उदयसिंह ने कहा—जब तक मैं इस लोक में रह रहा हूँ, तब तक तुम अपने घर में ही निवास करो। अनन्तर इस लोक में आकर यथायोग्य व्यवहार करने की चेष्टा करना। इसे सुनकर सहोदधी नील समेत पिशाच देश जाकर रसातल चला गया और पृथ्वीराज ने भी प्रसन्नतापूर्ण होकर इन लोगों को एक कोटि सुवर्ण मुद्रा प्रदान किया। पश्चात् गजराज पर बैठकर वे पाँचों अपनी महावती (महोबा) नगरी पहुँच गये।१३६-१५४

सूत जी बोले—पृथ्वीराज के वर्द्धन नामक पुत्र ने जो सभी पुत्रों में श्रेष्ठ थे, पाँच वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मीपति की आराधना आरम्भ की थी। उनकी उस निश्चल भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने वर्ष के भीतर ही सम्पूर्ण निधि उन्हें सौंप दी, जिससे गन्धर्वराज के प्रभाव से पृथ्वीराज का कोष सम्पूर्ण निधि से परिपूर्ण हो गया। पश्चात् हर्षमग्न होकर कुबेर ने मंकण की किन्नरी नामक कन्या भी उस पुत्र को सौंप दी। इस प्रकार मुने ! पृथ्वीराज के पुत्रों के विवाह चरित का वर्णन कर दिया गया। तदुपरांत

धुन्धुकारो महाशूरो लक्षसैन्यसमन्वितः । ब्रह्मानन्दमुपागम्य युद्धार्थाय तमाह्वयत् ॥१५८
एकत्रिंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । एकाकी मलनापुत्रो दृष्ट्वा सैन्यमुपस्थितम् ॥
ब्रह्मास्त्रं चापआधाय चार्धसैन्यमदाहयत् ॥१५९
पञ्चायुताश्च ते शूरा भयभीता दिशो गताः । धुन्धुकारो रणं त्यक्त्वा भूमिराजमुपागमत् ॥१६०
महीराजस्तदा दुःखी भयभीतः समन्ततः । महीपतिं समाहूय चन्द्रभट्टं च सोऽब्रवीत् ॥१६१
कथं जयो मे भविता तत्सर्वं मन्त्रयाशु वै । महीपतिस्तदा प्राह शृणु भूपशिरोमणे ॥१६२
कृत्वा नारीमयं वेषं चामुण्डं बलशालिनम् । वेलां मत्वा च तद्दोलां ब्रह्मानन्दाय चार्पय ॥१६३
चत्वारस्ते सुताः शूरा धुन्धुकारेण संयुताः । छद्मना च स्वशस्त्रैश्च घातयेयुस्तमूर्जिताः ॥१६४
इति श्रुत्वा महीराजो ब्रह्मानन्दाद् हर्षितः । तथा कृत्वा ददौ दोलां पञ्चशूरैश्च पालिताम् ॥१६५
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते माघशुक्लाष्टमीदिने । वेलावेशश्च चामुण्डो ब्रह्मानन्दमुपाययौ ॥१६६
छद्मना च त्रिशूलं च बलात्कृत्वा रिपूदरे । रुरोद बलवाञ्छूरस्ते तु शूराः समागताः ॥१६७
तारको हृदि तं बाणैः सूर्यवर्मा च तोमरैः । भीमश्च गदया चात्र वर्द्धनश्च तदासिना ॥
धुन्धुकारश्च भल्लेन जघान रिपुमूर्द्धनि ॥१६८
मूर्छितः पतितो भूमौ ब्रह्मानन्दो महाबलः । महद्व्रणयुतस्तत्र स्वखड्गं च समाददत् ॥१६९
भीमस्य च शिरः कायाद्वर्द्धनस्य तथैव च । छित्त्वा तथैव भूमध्ये सूर्यवर्माणमागतः ॥१७०

महावली धुंधुकार (धांधु) ने अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ आकर युद्ध के लिए ब्रह्मानन्द को ललकारा। उस समय बलवान् उदयसिंह की इकतीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस सेना को देखकर मलनापुत्र ब्रह्मानन्द ने अकेले ही अपने ब्रह्मास्त्र वाण द्वारा उनकी आधी सेना दग्ध कर दिया। शेष पचास सहस्र सैनिक भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये। अनन्तर धुंधुकार (धांधू) भी रणस्थल छोड़कर पृथ्वीराज के पास चला गया। उसे सुनकर राजा पृथ्वीराज ने दुःखी एवं भयभीत होकर महीपति (माहिल) और चन्द्रभट्ट को बुलाकर उनसे कहा—'किस प्रकार मेरी विजय होगी' इसका शीघ्रातिशीघ्र विचार कर निश्चय कीजिये। उस समय महीपति (माहिल) ने कहा—भूप शिरोमणे! मैं अपनी सम्मति प्रदान कर रहा हूँ, सुनने की कृपा कीजिये। बलशाली चामुण्ड (चौढ़ा) को स्त्री का वेष बनाकर उसे वेला मानकर उसका डोला ब्रह्मानन्द को सौंप दिया जाय और धुंधुकार (धांधु) के साथ आपके चारों पुत्र भी वहाँ उपस्थित रहकर कपट करते हुए अपने-अपने अस्त्रों द्वारा उन पर आघात करें। इसे सुनकर हर्षित होकर पृथ्वीराज ने माघशुक्लाष्टमी के सायंकाल के समय उसी भाँति बनाकर पाँचों शूरों से सुरक्षित उस डोले को ब्रह्मानन्द के पास भेजवा दिया। वेलारूपधारी चामुण्ड (चौढ़ा) ने ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर कपट करके बलात् उनकी छाती में त्रिशूल का प्रहार किया, जिससे व्यथित होकर उस बलवान् ने रुदन करना आरम्भ किया। उसी बीच उन पाँचों शूरों ने भी वहाँ पहुँचकर तारक (ताहर) ने उनके हृदय में वाण, सूर्यवर्मा ने तोमर, भीम ने गदा, बर्द्धन ने तलवार और धुंधुकार (धांधु) ने भाले का प्रहार शत्रु के शिर पर साथ ही साथ किया।१५५-१६८। उन आघातों से मूर्च्छित होकर महाबली ब्रह्मानन्द पृथ्वी पर गिर पड़े, किन्तु उनकी शरीर में उतने बड़े ब्रण के हो जाने पर भी वहाँ उन्होंने अपने खड्ग ग्रहणकर भीम और वर्द्धन के शिर को उनके धड़ से छिन्न-भिन्न करते हुए सूर्यवर्मा के पास पहुँचकर

तारको धुन्धुकारश्च चामुण्डश्च तथैव च । ब्रह्मानन्दं तदा त्यक्त्वा महीराजान्तमाययौ ॥१७१
हतेषु तेषु पुत्रेषु महीराजो भयातुरः । वेलापार्श्वमुपागम्य रुरोद बहुदुःखितः ॥१७२
इति श्रुत्वा तदा वेला दोलामारुह्य सत्वरम् । ब्रह्मानन्दं ययौ शीघ्रं मूर्च्छितं तं ददर्श ह ॥१७३
कनिष्ठामृतभावेन वेलाया बलवांस्तदा । उत्थाय रुदतीं नारीं ददर्श रुचिरान्विताम् ॥१७४
का त्वं कस्य सुता रम्या सङ्ग्रामे मामुपस्थिता । जलं देहि महासुभ्रूर्वचनं कुरु सुप्रियम् ॥१७५
इति श्रुत्वा तदा वेला जलं दत्त्वा शुचान्विता । वचनं प्राह वै रात्रौ शृणु त्वं मलनासुत ॥१७६
वेला नाम महीभर्तुः सुताहं त्वामुपस्थिता । मत्पतिश्च भवान्धीरश्छद्मना वञ्चकैर्हतः ॥
जीवनं कुरु राजेन्द्र भुङ्क्ष्व भोगान्मया सह ॥१७७
इत्युक्तः स तु तामाह कलिकाले समागते । जीवनान्मरणं श्रेष्ठं तस्मान्मद्वचनं कुरु ॥१७८
हरिनागरमारुह्य मया सार्द्धं शुभानने । गत्वा तीर्थानि रम्याणि सन्त्यजामि कलेवरम् ॥१७९
इत्युक्त्वा तौ समारुह्य पूर्वं च कपिलान्तिकम् । गत्वा स्नात्वा च विधिवत्ततोऽग्रे जग्मतुर्मुदा ॥१८०
पृथक्पृथक्स्थितार्थानि स्नात्वा दत्त्वा च जग्मतुः । दक्षिणे सेतुबन्धान्ते पश्चिमे द्वारिकामनु ॥१८१
उत्तरे बदरीस्थाने स्नात्वा तीर्थानि जग्मतुः । गन्धमादनमागत्य ब्रह्मानन्दो महाबलः ॥१८२

उन्हें भी धराशायी कर दिया। उस समय तारक (ताहर) धुंधुकार (धांधु) और चामुण्ड (चौंढ़ा) ब्रह्मानन्द को छोड़कर पृथ्वीराज के पास चले गये। तीनों पुत्रों के हनन होने पर भयभीत होकर पृथ्वीराज ने वेला के पास पहुँच अत्यन्त कारुणिक रुदन किया। इसे सुनकर उसी समय वेला ने डोला पर बैठकर अतिशीघ्र ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर उन्हें उसी मूर्च्छित अवस्था में देखा। पश्चात् वह मृतक अपने छोटे भाइयों को उठाकर रुदन करने लगी। उस समय ब्रह्मानन्द की आँख खुल गई, रुदन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर उससे उन्होंने पूँछा इस युद्ध में तुम मेरे पास आई हो, तो बताओ तुम किसकी पुत्री एवं किसकी प्रिया हो! महासुभ्रु! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो, तो मुझे जलपिलाने की कृपा करो। उस सदाचारिणी वेला ने उन्हें उसी समय जलपान कराकर उसी रात्रि उनसे कहा—मलना-पुत्र! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, उसे सुनने की कृपा कीजिये। मैं पृथ्वीराज की वेला नाम की कन्या हूँ, आप मेरे वीर पति हैं, इसीलिए मैं आपके पास आई हूँ। राजेन्द्र! यद्यपि उन वंचकों ने कपटपूर्ण आघात करके आपका हनन कर दिया है, तथापि मेरी प्रार्थना है कि आप अपना जीवन सुरक्षित कर मेरे साथ अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने की कृपा करें। इसे सुनकर उन्होंने उससे कहा—इस कलि काल के समय में जीवित रहने से मरना ही श्रेष्ठ है, इसलिए मेरी बात स्वीकार करो—शुभानने! मेरे साथ हरिनागर पर बैठकर चलो मैं तीर्थों में पहुँच अपने शरीर का त्याग करना चाहता हूँ।१६९-१७९। इतना कहकर उन दोनों ने उसी घोड़े पर बैठकर सर्वप्रथम पूर्व दिशा में स्थित कपिलमुनि के आश्रम (गंगा सागर) में पहुँचकर सविधान स्नान-दान दिया। पश्चात् प्रसन्न होकर वे लोग उसके आगे भी पहुँचे। सभी तीर्थों में पहुँचकर पृथक्-पृथक् स्नान-दान सविधान सुसम्पन्न करके वे परम सन्तुष्ट होते थे। इस प्रकार पूर्व में कपिलाश्रम दक्षिण में सेतुबन्ध, पश्चिम में द्वारिका, और उत्तर में बदरिकाश्रम में स्नान-दान सुसम्पन्न करने के उपरांत गंधमादन पर्वतपर पहुँचकर महाबली ब्रह्मानन्द ने वेला से कहा—

बेलामुवाच वचनं भाद्रशुक्लाष्टमीदिने । देहं त्यजामि भो राज्ञि तारकं जहि भूतले ।।१८३
इति श्रुत्वा तु सा प्राह स्वामिन्मद्वचनं कुरु । कुरुक्षेत्रं मया सार्द्धं भवान्वै गन्तुमर्हति ।।१८४
स्थित्वा तत्र समस्वान्तो भजत्वं सर्वमङ्गलम् । अहं महावतीं प्राप्य पुनर्वै देहलीं प्रति ।।१८५
तारकं च तथा हत्वा त्वत्समीपं व्रजाम्यहम् । इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ।।१८६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।३१

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

द्वात्रिंशाब्दे च कृष्णांशे सम्प्राप्ते योगरूपिणी । वेला नाम शुभा नारी हरिनागरसंस्थिता ।।
महावतीं समागम्य सभायां तत्र चाविशत् ।।१
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या महाबलाः । नत्वा परिमलं भूपं वेला वचनमब्रवीत् ।।२
महीपतिं प्रियं मत्वा कृष्णांशं नृपदुष्प्रियम् । त्वया मे घातितो भर्ता ब्रह्मानन्दो महाबलः ।।३

'रानी ! आज भाद्रशुक्ल की अष्टमी के इस शुभ अवसर पर मैं अपने शरीर का त्याग करना चाहता हूँ, तुम पृथ्वी में रहकर तारक (ताहर) का वध अवश्य करना'। इसे सुनकर उसने विनम्र प्रार्थना की—स्वामिन् ! मेरी एक बात स्वीकार करने की कृपा करें। आप मेरे साथ कुरुक्षेत्र चलकर वहाँ रहकर ही अपने मंगल की कामना करते रहें और मैं वहाँ से महावती (महोवा) जाकर वहाँ से पुनः दिल्ली लौटने पर तारक (ताहर) का वध करके आपके पास आ जाऊँगी। इसे सुनकर उन्होंने वेला की बात स्वीकार कर कुरुक्षेत्र पहुँचकर ब्रह्मा का ध्यान करना आरम्भ किया।१८०-१८६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।३१।

अध्याय ३२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—(उपरोक्त घटना के समय) उदयसिंह की बत्तीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस समय रानी बेला ने योगरूप धारणकर हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर महावती (महोबा) नगर को प्रस्थान किया। वहाँ राजा परिमल के राजदरबार में पहुँचकर जिस समय उसने नमस्कार पूर्वक कहना आरम्भ किया। उसी समय उदयसिंह आदि वीरगण भी उस सभा में उपस्थित हुए थे। उसने कहा—आपने महीपति (माहिल) को अपना प्रिय हितैषी, और उदयसिंह को राजद्रोही समझ लिया है। उसी के परिणामस्वरूप आपने पृथ्वीराज के उन धूर्त एवं महाबली तारक आदि पुत्रों द्वारा मेरे पति देव महाबलवान ब्रह्मानंद का हनन कराया है—धुंधुकार (धांधू) चामुण्ड (चौढ़ा) को

महीराजसुतैर्धूर्तैस्तारकाद्यैर्महाबलैः । नारीवेषं च चामुण्डो धुन्धुकारेण कारितः ॥४
स्वामिनं प्रति चागम्य ते जग्मुश्छद्मना प्रियम् । कुरुक्षेत्रं स्थितः स्वामी महत्या मूर्छयान्वितः ॥
तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गन्तुमर्हथ तं प्रति ॥५
इति घोरतमं वाक्यं श्रुत्वा सर्वे शुचान्विताः । धिग्भूपतिं च मलनां ताभ्यां नो घातितः सखा ॥६
इत्युक्त्वोच्चैश्च रुरुदुः कृष्णांशाद्या महाबलाः । पत्राणि प्रेषयामासुः स्वकीयान्भूपतीन्प्रति ॥७
क्रोधयुक्ता तदा वेला लिखित्वा पत्रमुल्बणम् । महीराजाय सम्प्रेष्य मलनागेहमागमत् ॥८
तत्पत्रं च महीराजो वाचयित्वा विधानतः । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं तन्निशम्य विशाम्पतिः ॥९
चिन्ताकलेवरं प्राप्य सुखनिद्रां व्यनाशयत् । आहूय भूपतीन्सर्वान्घोरयुद्धोन्मुखोऽभवत् ॥१०
चतुर्विंशतिलक्षैश्च शूरैर्भूपसमन्वितैः । कुरुक्षेत्रं ययौ शीघ्रं धृतराष्ट्रांशसम्भवः ॥११
तथा परिमलो भूपो लक्षषोडशसैन्यपः । द्रुपदांशो ययौ शीघ्रं वेलया स्वकुलैः सह ॥१२
स्यमन्तपञ्चके तीर्थे शिबिराणि चकार ह । ब्रह्मानन्दः स्थितो यत्र समाधिध्यानतत्परः ॥१३
गङ्गाकूले च ते सर्वे कौरवांशा महाबलाः । शिबिराणि विचित्राणि चक्रुस्तेविजयैषिणः ॥१४
कृत्वा ते कार्तिकीस्नानं दत्त्वा दानान्यनेकशः । मार्गकृष्णद्वितीयायां युद्धभूमिमुपाययुः ॥१५
विष्वक्सेनीयभूपालो लहरस्तत्र चागतः । कौरवांशाश्च तत्पुत्राः षोडशैव महाबलाः ॥
पूर्वजन्मनि यन्नाम तन्नाम्ना प्रथिता इह ॥१६

स्त्री का वेष बनाकर मेरे स्वामी के पास ले गया । वहीं सब लोगों ने मिलकर कपट द्वारा मेरे सौभाग्य का नाश किया है । इस समय मूर्च्छित अवस्था में पतिदेव कुरुक्षेत्र के स्थल में पड़े हुए हैं, अतः तुम लोग मेरे साथ शीघ्रातिशीघ्र वहाँ चलने की तैयारी करो ।' इस अत्यन्त कठोरवाणी को सुनकर उदयसिंह आदि महावली वीरगण राजा परिमल और उनकी रानी मलना को धिक्कारते हुए 'तुम्ही दोनों ने मेरे मित्र का अपघात कराया है' ऐसा कहकर उच्चस्वर से रुदन करने लगे । पश्चात् पुत्रों को चारों ओर भेजकर ससैन्य राजाओं को दिल्ली चलने के लिए बुलवाना आरम्भ किया । उसी समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेला भी उल्वण (विष) की भाँति तीक्ष्ण एक पत्र पृथ्वीराज के यहाँ भेजकर स्वयं मलना रानी के महल में चली गई । विशांपते ! राजा पृथ्वीराज उस पत्र को अत्यन्त सावधानी से सुनकर उसके कारण को जानकर अत्यन्त चिंतित रहने लगे उनकी सुख की नींद एकदम नष्ट हो गई । वे भी अपने आश्रित राजाओं को बुलाकर युद्ध की तैयारी करने लगे ।१-१०। दुर्योधनांश पृथ्वीराज ने राजाओं समेत अपनी चौबीस लाख सेना लेकर कुरुक्षेत्र के लिए शीघ्र प्रस्थान कर दिया । राजा परिमल भी उदयसिंह आदि सेनाध्यक्ष समेत सोलह लाख सैनिक और वेला आदि सभी परिवार को लेकर वहाँ पहुँच गये । वहाँ पहुँचकर सामन्त पञ्चक नामक तीर्थ में, जहाँ स्थित होकर ब्रह्मानन्द समाधि लगाये हुए थे, अपने शिविरों को बनवाया और गंगा के तट पर विजयाभिलाषी एवं महाबली उन कौरवांश दिल्ली वालों ने अपना शिविर बनाना आरम्भ किया । कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा में स्नान एवं भाँति-भाँति के दान समर्पितकर मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्ण द्वितीया के दिन वह भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ जिसमें विष्वक्सेन वंश के राजा लहर अपने सोलह पुत्रों समेत आये थे, जो कौरवों के अंश से उत्पन्न एवं महाबली थे। उनके पूर्व जन्म के ही नाम

दुस्सहो दुश्शलश्चैव जलसन्धः समः सहः । विन्दस्तथानुविन्दश्च सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ॥१७
दुर्मर्षणश्च दुष्कर्णः सोमकीर्तिरनूदरः । शलः सत्वो विवित्सुश्च क्रमाज्ज्ञेया महाबलाः ॥१८
तोमरान्वयभूपालो बाह्लीकपतिरागतः । त्रिलक्षैश्च तथा सैन्यैः सप्तपुत्रैश्च भूपतिः ॥१९
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुश्चित्रः शरासनः । सुलोचनः सवर्णश्च पूर्वजन्मनि कौरवाः ॥२०
तेषामंशाः क्रमाज्जाता अभिनन्दनदेहजाः । महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकौ ॥
सुनन्दश्च सुरानन्दः प्रनन्दः कौरवांशकः ॥२१
नृपः परिहरवंशीयो मायावर्मा महाबली । लक्षसैन्ययुतः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥२२
दुर्मदो दुर्विगाहश्च नन्दश्च विकटाननः । चित्रवर्मा सुवर्मा च सुदुर्मोचन एव च ॥२३
ऊर्णनाभः सुनाभश्च चोपनन्दश्च कौरवाः । तेषामंशः क्रमाज्जाताः सुता अङ्गपतेः स्मृताः ॥२४
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः सुमत्तो दुर्मदस्तथा । दुर्मुखो दुर्द्धरो वायुः सुरथो विरथः क्रमात् ॥२५
शुक्लवंशीयभूपालो मूलवर्मा समागतः । लक्षसैन्यैश्च बलवान्दशपुत्रसमन्वितः ॥२६
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः । चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा ॥२७
दृढवर्मा दृढक्षत्रः पूर्वजन्मनि कौरवाः । तेषामंशा महीं जाता गृहे ते मूलवर्मणः ॥२८
बलश्च प्रबलश्चैव सुबलो बलवान्बली । सुमूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयङ्करः ॥२९
कैकयश्चन्द्रवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः । दशपुत्रान्वितः प्राप्तः कुरुक्षेत्रे महारणे ॥३०
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्द्धनः । उग्रायुधो दण्डधरो दृढसन्धो महीधरः ॥३१
जरासन्धः सत्यसन्धः पूर्वजन्मनि कौरवाः । तेषामंशाः समुद्भूताः कैकयस्य गृहे शुभे ॥३२
कामः प्रकामः सङ्कामो निष्कामो निरपत्रपः । जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाञ्जयः ॥३३

इसी जन्म में भी पड़े हुए थे—दुस्सह, दुश्शल, जलसंध, सम:सह, विंद, अनुविंद, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुष्कर्ण, सोमकीर्ति, अनूदर, शल, सत्व, और विवित्सु क्रमशः उन महाबलवानों के नाम थे। बाह्लीक-पति तोमर वंश का कुलभूषण राजा था, अपनी तीन लाख सेना और महानन्द,नन्द, परानन्द, उपनन्द, सुनंद, सुरानंद तथा प्रनन्द नामक सात पुत्रों को साथ लेकर आये थे, जो पूर्वजन्म में चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, सुलोचन एवं सुवर्ण नामक कौरवों के अंश से क्रमशः उत्पन्न हुए थे। ११-२१। अंगदेश का परिहरवंशीय महाबली राजा मायावर्मा दस लाख सेना और दुर्मद, दुर्विगाह, नंद, विकटानन, चित्रवर्मा, सुवर्मा, सुदुर्मोचन, उर्णनाभ, सुनाभ, तथा उपनंद नामक कौरवांशों से क्रमशः उत्पन्न मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, सुमत्त, दुर्मद, दुर्मुख, दुर्द्धर, वायु, सुरथ, एवं विरथ नामक दशपुत्रों समेत आये थे। शुक्लवंशीय राजा मूल-वर्मा अपने एक लाख सैनिक तथा बल, प्रबल, सुबल, बलवान्, बली, सुमूल, महामूल, दुर्ग, भीम, और भयंकर नामक दशपुत्रों को साथ लेकर आये थे, जो पूर्वजन्म में अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांग, चित्रकुण्डल, चित्रायुध, निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढवर्मा और दृढक्षत्र नामक कौरवों के अंश से क्रमशः उत्पन्न थे। चंद्रवंशी राजा कैकय एक लाख सेना और अपने दशपुत्रों समेत उस कुरुक्षेत्र के भीषण रणस्थल में पहुँचे थे। काम, प्रकाम, सकाम, निष्काम, निरपत्रप, जय, विजय, जयन्त, जयवान् और जय यही क्रम से उन पुत्रों के नाम थे, जो पूर्व जन्म के भीम वेग, भीमबल, बलाकी बलवर्द्धन, उग्रायुध, दंडधर, दृढसंग, महीधर, जरासंध तथा सत्यसंघ नामक कौरवों के अंश से क्रमशः उत्पन्न थे। उसी प्रकार पुंड्र देश का

नागवंशीयभूपालो नागवर्मा समागतः । लक्षसेनान्वितः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥३४
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना कौरवा भुवि । पुण्ड्रदेशपतेः पुत्रा जाता दश शिवाज्ञया ॥३५
उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्परायणः । अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ॥३६
दृढहस्तः सुहस्तश्च सुतास्ते नागवर्मणः ॥३७
मद्रकेशः समायातस्तोमरान्वयसम्भवः । लक्षसैन्यैर्युतो राजा दशपुत्रसमन्वितः ॥३८
वातवेगः सुवर्चाश्च नागदन्तोग्रयाजकः । आदिकेतुश्च वक्शी च कवची क्राथ एव च ॥३९
कुण्डश्च कुण्डधारश्च कौरवाः पूर्वजन्मनि । तन्नाम्ना भुवि वै जाता मद्रकेशस्य मन्दिरे ॥४०
नृपः शार्दूलवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः । पूर्णामलो मागधेशो दशपुत्रान्वितो ययौ ॥४१
वीरबाहुर्भीरथश्चोग्रश्चैव धनुर्धरः । रौद्रकर्मा दृढरथोऽलोलुपश्चाभयस्तथा ॥४२
अनाधृष्टः कुण्डभेदी कौरवाः पूर्वजन्मनि । पूर्णामलस्य वै गेहे तन्नाम्ना भुवि सम्भवः[1] ॥४३
मङ्कणः किन्नरो नाम रूपदेशे महीपतिः । चीनदेशात्परे पारे रूपदेशः स्मृतो बुधैः ॥
नरः किन्नरजातीयो वसति प्रियदर्शनः ॥४४
मङ्कणश्च तदा प्राप्तः किन्नरायुतसंयुतः । अष्टपुत्रान्वितः प्राप्तो यत्र सर्वनृपाः स्थिताः ॥४५
विरावी प्रथमश्चैव प्रमाथी दीर्घरोमकः । दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोराः कनकध्वजः ॥४६
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना[2] तन्नाम्ना किन्नरा भुवि । विरजोंशश्च यो जातो मङ्कणो नाम किन्नरः ॥४७
नेत्रसिंहः समायातो लक्षसैन्यसमन्वितः । शल्यांशः स तु विज्ञेयः शार्दूलान्वयसम्भवः ॥४८

नागवंशीय राजा नागपाल अपनी एक लाख सेना और दश पुत्रों समेत आये थे, जो पूर्व जन्म के उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्परायण, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त तथा सुहस्त नामक कौरवों के अंश से उत्पन्न तथा इस जन्म में भी इसी नाम से ख्यात थे। तोमर कुलावतंस राजा मद्रकेश अपने एक लाख सैनिकों एवं दशपुत्रों समेत वहाँ आये थे जो पूर्व जन्म के वातवेग, सुवर्चा, नागदंत, अग्रयाजक, आदि केतु, वक्शी, कवची, क्राथ, कुण्डल और कुंडधीर नामक कौरवों से क्रमशः उत्पन्न होकर इसी ग्राम से पुनः इस भूतल पर प्रख्यात थे। मगधाधीश्वर शार्दूल वंशीय पूर्णमल अपने एक लाख सैनिकों और अपने दश पुत्रों समेत वहाँ उपस्थित थे जो वीरबाहु, भीमस्थ, उग्र, धनुर्धर, रौद्रकर्मा, दृढरथ, अलोलुप, अभय, अनाधृष्ट और कुण्डभेदी नामक कौरवों के अंश से उत्पन्न तथा इसी नाम से पुनः प्रख्यात थे। रूपदेश का अधीश्वर मंकण नामक किन्नर वहाँ आये थे। चीन देश के उस पार रुपदेश का निर्देश विद्वानों ने किया है, जहाँ अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण किन्नर जाति के लोग निवास करते हैं।२२-४४। उस रणभूमि के राज समाजमें मंकण भी उस समय दश किन्नर और अपने आठ पुत्रों समेत पहुँचे हुए थे, जो विरावी प्रथम, प्रमाथी, दीर्घरोमक, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरा तथा कनकध्वज नामक किन्नरों द्वारा उत्पन्न होकर भूतल में भी इसी नाम से ख्यातिप्राप्त कर चुके थे। विरज के अंश से मंकण नामक किंन्नर की उत्पत्ति कही गई है। अपने एक लाख सैनिकों समेत राजा नेत्रसिंह वहाँ आये थे, जो शल्य के अंश से

---

१. तेषामिति शेषः। २. यन्नाम्ना पूर्वजन्मनि ख्यातास्तन्नाम्नैहिकजन्मन्यपीत्यर्थः।

तदा गजपती राजा लक्षसैन्यसमन्वितः । सम्प्राप्तः शकुनेरंशस्त्यक्त्वा गेहे स्वपुत्रकान् ।।४९
मयूरध्वज एवापि लक्षसैन्यसमन्वितः । मकरन्दं गृहे त्यक्त्वा विराटांशः समागतः ।।५०
वीरसेनः समायातः कामसेनसमन्वितः । लक्षसेनान्वितस्तत्र चोग्रसेनांशसम्भवः ।।५१
लक्षणश्च समायातः सप्तलक्षबलैर्युतः । सन्त्यज्य पद्मिनीं नारीं महाकष्टेन भूपतिः ।।५२
तालनो धान्यपालश्च लल्लसिंहस्तथैव च । भीमस्यांशो युयुत्सोश्च कुन्तिभोजस्य वै क्रमात् ।।५३
आह्लादश्च[1] समायातः कृष्णांशेन समन्वितः । जयन्तेन च वै वीरो लक्षसैन्यान्वितो बली ।।५४
जगन्नायक एवापि शूरायुतसमन्वितः । सम्प्राप्तो भगदत्तांशो गौतमान्वयसम्भवः ।।५५
अन्ये च क्षुद्रभूपाश्च सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् । कुरुक्षेत्रं परं स्थानं संययुर्मदविह्वलाः ।।५६
मूलवर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः । नृपं परिमलं प्राप्य संयुक्तो[2] देहलीपतेः ।।५७
कैकयो लक्षसेनाढ्यः सपुत्रो नृपतिः स्वयम् । नृपं परिमलं प्राप्य स युद्धार्थमुपस्थितः ।।५८
नेत्रसिंहश्च नृपतिः स वीरो लक्षसैन्यपः । मयूरध्वज एवापि लक्षपः शशिवंशिनम् ।।५९
वीरसेनश्च लक्षाढ्यः सपुत्रश्चान्द्रिपक्षगः । लक्षणः सप्तलक्षाढ्यो युद्धार्थं समुपस्थितः ।।६०
आह्लादो[3] लक्षसैन्याढ्यः पक्षगश्चन्द्रवंशिनः । द्विलक्षसंयुतो राजा चन्द्र[4]वंशो रणोन्मुखः ।।
एवं षोडशलक्षाढ्यः स्थितः परिमलो[5] रणे ।।६१

शार्दूल वंश में उत्पन्न हुए थे । शकुनि वंश राजा गजपति भी घर में पुत्रों को सौंपकर एक लाख सेना समेत वहाँ आये थे । विराटांश मयूरध्वज मकरंद को घर सौंपकर एक लाख सैनिक लिए वहाँ आये थे । उसी प्रकार उग्रसेनांश से उत्पन्न वीरसेन कामसेन समेत एक लाख सेना लेकर वहाँ पहुँचे थे । अत्यन्त कष्ट से पद्मिनी को छोड़कर राजा लक्षण (लाखन) सात लाख सेना समेत वहाँ आये थे । भीम, युयुत्स, और कुन्तिभोज के अंश से क्रमशः उत्पन्न तालन धान्यपाल, एवं लल्लसिंह, उदयसिंह और इन्दुल समेत एक लाख सेना लेकर आह्लाद (आल्हा) भगदत्त के अंश से उत्पन्न एवं गौतम कुलभूषण जगनायक अपनी दश सहस्र सेना लेकर वहाँ आ गये थे ।४५-५५। इसी प्रकार छोटे-छोटे अन्य सहस्रों राजगण मदान्ध होकर पृथक्-पृथक् सेनाओं समेत उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचे थे । पुत्र तथा अपनी एक लाख सेना लेकर मूलवर्मा ने राजा परिमल के पास पहुँचकर अपने आगमन की सूचना दी । उसी प्रकार राजा कैकय पुत्र तथा एक लाख सेना लेकर आये थे । वीर राजा नेत्रसिंह, मयूरध्वज, और वीरसेन पुत्रों समेत अपने एक-एक लाख सैनिकों समेत तथा सात लाख सेना लेकर लक्षण (लाखन) एक लाख सेना समेत आह्लाद (आल्हा) चन्द्रवंशी राजा परिमल की सहायतार्थ वहाँ उपस्थित थे । राजा परिमल की भी स्वयं तीन लाख सेना थी । इस प्रकार राजा परिमल ने अपनी कुल सोलह लाख सेना से उस युद्धभूमि में संग्राम की

---

१. महीराजपक्षपातिराजागमनवृत्तान्तमुक्त्वेदानीं परिमलपक्षपातिभूपागमनवृत्तान्तं वर्णयन्नाह —आह्लादश्चेति । २. युद्धायेति शेषः । ३. 'आह्लादश्च समायातः' इति चतुष्पञ्चाशत्सङ्ख्यापूरकपद्ये वर्णयित्वापि पुनरिह तद्वर्णनं तत्पक्षपातिषु तस्य प्राधान्यद्योतनायेतिबोध्यम् । ४. अर्द्धेन परिमलं वर्णयति, तस्यैव चन्द्रवंश इति विशेषणम्—नोह्लादस्य, तस्यान्यवंशजातत्वात् । ५. 'द्विलक्षसंयुतत्वमुक्त्वापि पुनः 'षोडशलक्षाढ्यः' इति कथनं स्वीयपूर्वोक्तपरकीयसैन्यभयवर्णनद्योतनाय ।

लहरो[1] भूपतिश्रेष्ठो लक्षपः पुत्रसंयुतः । महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६२
अभिनन्दन एवापि सपुत्रो लक्षसैन्यपः । मायावर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ॥६३
नागवर्मा समायातः सपुत्रो लक्षसैन्यपः । मद्रकेशः सपुत्रश्च लक्षसैन्यो रणोन्मुखः ॥६४
पूर्णामलः सपुत्रश्च लक्षपश्चैव पक्षगः । मङ्कणः किन्नरो नाम सपुत्रस्तत्र संस्थितः ॥६५
गजराजः समायातो महीराजं हि लक्षपः । धुन्धुकारः समायातः पञ्चलक्षपतिः स्वयम् ॥६६
पुत्रः कृष्णकुमारस्य भगदत्तः समागतः । त्रिलक्षदलसंयुक्तो महीराजं महीपतिम् ॥६७
दलवाहनपुत्रश्च देशगोपालसंस्थितः । अङ्गदस्तत्र सम्प्राप्तः सायुतो देवकीप्रियः ॥
महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६८
कलिङ्गश्च नृपः प्राप्तस्त्रिकोणश्च तथैव च । श्रीपतिश्च तथा राजा श्रीतारश्च तथा गतः ॥६९
मुकुन्दश्च सुकेतुश्च रुहिलो गुहिलस्तथा । इन्दुवारश्च बलवाञ्जयन्तश्च तथाविधः ॥
सर्वे दशसहस्राढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७०
महीराजस्य पक्षे तु सहस्रं क्षुद्रभूमिपाः । ते तु साहससेनाढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७१
तेषां मध्ये च वै भूपान्द्विशतान्देहलीं प्रति । ससैन्यान्प्रेषयामास राज्यरक्षणहेतवे ॥
एवं स देहलीराजश्चतुर्विंशतिलक्षपः ॥७२
युद्धमष्टादशाहानि सञ्जातं सर्वसंक्षयम् । शृणु युद्धकथां रम्यां भृगवर्य सुविस्तरात् ॥७३
मार्गकृष्णद्वितीयायां महीराजो महाबलः । आहूय लहरं भूपं वचनं प्राह निर्भयः ॥७४
भवान्सपुत्रः सेनाढ्यो धुन्धुकारेण रक्षितः । चामुण्डेन युतो युद्धे गन्तुमर्हति सत्तम ॥

तैयारी किया था । उसी प्रकार राजा पृथ्वीराज के समीप उनकी सहायतार्थ नृपश्रेष्ठ, लहर, मायावर्मा, नागवर्मा, मद्रकेश, पूर्णामल अपने अपने पुत्रों और एक-एक लाख सैनिकों समेत वहाँ आये थे । पुत्र तथा दशसहस्र सेना समेत मंकण नामक किन्नर, एकलाख सेना समेत गजराज, पाँच लाख सेना समेत धुंधुकार (धांधू) और कृष्ण कुमार का पुत्र भगदत्त, अपनी तीन लाख सेना लेकर पृथ्वीराज के पास आया था । दलवाहन पुत्र एवं देशगोपाल देश निवासी अंगद, जो देवकी का अत्यन्त प्रिय था, तथा कलिंग, त्रिकोण, श्रीपति, श्रीतार, मुकुंद, सुकेतु, सहिल, गुहिल, इन्दुवार, और बलवान् जयन्त वहाँ उपस्थित थे जिनकी दशदश सहस्र की सेना थी, पृथ्वीराज के सहायक छोटे-छोटे एक सहस्र राजगण, अपनी एक एक सहस्र सेना समेत वहाँ उपस्थित थे । इन्हीं सैनिकों से दो सौ राजाओं को उनके सेना समेत उन्होंने अपने राष्ट्र के रक्षार्थ दिल्ली में भेज दिया था । इस प्रकार दिल्लीश्वर राजा पृथ्वीराज अपनी चौबीस लाख सेना लेकर उस रणस्थल में युद्धार्थ उपस्थित हुए थे, जो भीषण युद्ध अट्ठारह दिन में समस्त क्षत्रियों के नाश-पूर्वक समाप्त हुआ था । भृगुवर्य ! मैं तुम्हें अब विस्तारपूर्वक उस युद्ध-कथा को सुना रहा हूँ, मन लगाकर सुनो ! मार्ग कृष्ण द्वितीया के दिन महाबली पृथ्वीराज ने निर्भीक होकर राजा लहर को बुलाकर उनसे कहा—सत्तम ! पुत्र समेत आप चामुण्ड (चौंढ़ा) के साथ धुंधुकार (धांधू) से सुरक्षित होकर रणभूमि में

१. इदानीं लहरादीनां महीराजपक्षपातिनां भूपानां सैन्यपरिमाणं कथयति। तेषामागमनं तु पूर्वं वर्णितमेव।

इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं कुरुक्षेत्रे महारणे ॥७५
तदा परिमलो राजा मयूरध्वजमेव हि । समाहूय वचः प्राह श्रृणु पार्थिवसत्तम ॥७६
कृष्णांशेन जयन्तेन देवसिंहेन रक्षितः । स भवाल्लँक्षसैन्याढचो गन्तुमर्हति वै रणे ॥७७
इति श्रुत्वा तु वचनं मयूरध्वज एव हि । लक्षसैन्यान्वितः प्राप्तो लहरं नृपतिं प्रति ॥७८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयो रणे । सेना तु लक्षवीरस्य तत्र युद्धे प्रकीर्तिता ॥७९
एको रथो गजास्तत्र ज्ञेयाः पञ्चशतं रणे । हयाश्च पञ्चसाहस्रा पत्तयस्तद्गुणा दश ॥
एते सैन्यनरा ज्ञेया सैन्यपांश्च श्रृणुष्व भोः ॥८०
दशानां पञ्चराणां च पतिर्नाम्ना स पत्तिपः । पञ्चानां च हयानां च पतिर्नाम्ना स गुल्मपः ॥८१
पञ्चानां च गजानां च पतिर्नाम्ना गजाधिपः । एतैः सार्द्धं रथी ज्ञेयो रणेऽस्मिन्दारुणे कलौ ॥८२
उष्ट्रारूढाः स्मृता दूताश्चत्वारिंशच्च तद्बले । शतघ्न्यस्तत्र साहस्रास्तेषां मध्ये पृथक्पृथक् ॥
षट्त्रिंशद्वै पदचरास्तेषां कर्माणि मे श्रृणु ॥८३
दशगोलकदातारो दशतत्पुष्टिकारकाः । दश चार्द्रकरास्ता वै त्रयस्ते वह्निदायिनः[1] ॥
त्रयो दृष्टिकरा ज्ञेयास्त्रियामेषु पृथक्पृथक् ॥८४
शेषाः शूद्रास्तु सेनानां शूरकृत्यपरायणाः । एवं च लक्षवीराणां सेना तत्र प्रकीर्तिता ॥८५

जाने की तैयारी कीजिये । इसे सुनकर ही उन लोगों के साथ शीघ्र उस रणस्थल में पहुँच गये ।५६-७५। उस समय राजा परिमल ने मयूरध्वज को बुलाकर कहा—नृपश्रेष्ठ ! उदयसिंह, जयन्त (इन्दुल), और देवसिंह द्वारा सुरक्षित होकर आप अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ युद्ध भूमि मे पहुँच जाँय । इसे सुनकर मयूरध्वज ने एक लाख सेना लेकर वहाँ रणभूमि में पहुँचकर राजा लहर के साथ घोर संग्राम आरम्भ किया । उस रणभूमि में दोनों सेनाओं का अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ । उस युद्ध में उपस्थित एक लाख सेना का विवरण इस भाँति कहा गया है—एक रथ, पाँच सौ हाथी, पाँच सहस्र घोड़े, और उसके दश गुने पैदल की सेना थी । अब उस सेना में सैनिकों के विवरण के उपरांत मैं तुम्हें उनके सेनाध्यक्षों का विवरण बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! । दश पैदल सैनिकों का एक स्वामी था, जिसे पत्तिप कहा गया है । उसी प्रकार पाँच अश्वारोही सैनिकों के स्वामी को 'गुल्मप' और पाँच गजराजों के अधिनायक को 'गजाधिप' बताया गया है । कलि के उस भीषण युद्ध में इन्हीं लोगों से युक्त एक रथी रहता था । उन सेनाओं में ऊँट (सांडियों) पर बैठे हुए चालीस सैनिक दूत का काम कर रहे थे । उन सेनाओं में पृथक्-पथक् एक सहस्र तोपें थीं, जिनमें छत्तीस पैदल सैनिक काम कर रहे थे । उनके विवरण बता रहा हूँ, सुनो ! दश सैनिक गोला देने के लिए नियुक्त थे । उसी प्रकार दश सैनिक उन गोलों के मारने के लिए, दश आर्द्र (गीला) करने के लिए और तीन उसमें अग्नि (पलीता) जलाने वाले एवं वहाँ निरीक्षण के लिए नियुक्त थे । इस प्रकार उस तीन प्रहर के युद्ध में उनका विवरण बता दिया गया। जिनमें शेष शूद्रगण उन सैनिकों के साथ रहकर युद्ध में शूरों की सहायता कर रहे थे। इस प्रकार वहाँ की एक लाख सैनिकों की सेना का

---

१. शतघ्नीरित्यर्थः, प्रतीति शेषः ।

तत्रासीत्तुमुलं युद्धं धर्मेण च समन्ततः । प्रातःकालात्समारभ्य मध्याह्नं सैन्ययोर्द्वयोः ॥८६
तत्पश्चाद्याममात्रेण सैन्यपा युद्धमागताः । तत्पश्चाच्च महाशूरा धुन्धुकारादयो बलाः[1] ॥८७
याममात्रं च युद्धाय संस्थिता रणमूर्धनि । चामुण्डेन च कृष्णांशो धुन्धुकारेण चेन्दुलः ॥८८
भगदत्तेन वै देवः कृतवान्युद्धमुत्तमम् । सायङ्काले तु सम्प्राप्ते सर्वे शूराः क्षयं[2] गताः ॥८९
कृष्णांशस्तत्र चामुण्डं जित्वा तु लहरात्मजान् । षोडशैव जघानाशु घटीमात्रेण वीर्यवान् ॥
दध्मौ शङ्खं प्रसन्नात्मा लक्षणान्तमुपाययौ ॥९०
चामुण्डो धुन्धुकारश्च भगदत्तो युतः शतैः । महीराजमुपागम्य सुषुपुर्निशि निर्भयाः ॥९१
इन्दुलो देवसिंहश्च सहस्रैः संयुतौ मुदा । गत्वा परिमलं भूपं रात्रौ सुषुपतुस्तदा ॥९२
प्रातःकाले तु संप्राप्ते तृतीयायां भयङ्करे । महीराजस्तदाहूय नृपं गजपतिं बली ॥९३
वचनं प्राह भो राजँस्त्वं त्रिवीरैः सुरक्षितः । स्वकीयैर्लक्षसैन्यैश्च गन्तुमर्हसि वै रणे ॥९४
तदा परिमलो भूपो नेत्रसिंहं महीपतिम् । युद्धायाज्ञापयामास कृष्णांशाद्यैः सुरक्षितम् ॥९५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोः क्रमात् । हया हयैः क्षयं जग्मुर्गजाश्चैव तथा गजैः ॥
पच्चराः पच्चरैः सार्द्धं शतघ्न्यश्च शतघ्निभिः ॥९६
अपराह्णे मुनिश्रेष्ठ नेत्रसिंहो महाबलः । महागजं गजपतिं गत्वा युद्धमचीकरत् ॥९७

विशेष विवरण बताया गया है, जो उस रणक्षेत्र में धार्मिक युद्ध कर रहे थे । प्रातः काल से आरम्भ कर मध्याह्न तक दोनों सैनिकों का भीषणयुद्ध होकर बन्द सा हो जाता था । तत्पश्चात् एक प्रहर के लिए सैन्यपति लोग वहाँ युद्धार्थ उपस्थित होते थे ! इस प्रकार मयूरध्वज और लहर के उस रणभूमि में सैनिकों से युद्ध करने के उपरांत वली एवं महाशूर धुंधुकार (धांधू) आदि वीरगण वहाँ एक प्रहर के युद्धार्थ उपस्थित हुए । चामुण्ड (चौंढ़ा) के साथ उदयसिंह, धुन्धुकार (धांधु) के साथ इन्दुल, और भगदत्त के साथ देवसिंह ने भीषण युद्ध किया, जिसमें सायंकाल होने पर इतर सैनिकों का निधन हो गया । इस युद्ध में उदयसिंह ने एक घड़ी समय के भीतर राजा लहर के उन सोलहों पुत्रों को धराशायी कर अपने विजय शंख को बजाते हुए राजा लक्षण (लाखन) के पास प्रस्थान किया । चामुण्ड (चौंढ़ा) धुंधुकार (धांधू) और भगदत्त ने शेष अपने सौ सैनिकों समेत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर रात्रि में निर्भय होकर शयन किया । इधर इन्दुल और देवसिंह ने भी अपने शेष सहस्रों सैनिकों को लेकर राजा परिमल के पास पहुँचकर वहाँ आनन्द की नींद में रात्रि व्यतीत किया । तृतीया के दिन प्रातः काल के समय राजा पृथ्वीराज ने वली राजा गजपति को बुलाकर कहा—तीनों वीरों से सुरक्षित होकर आप अपने लक्ष सैनिकों समेत उस रणस्थल में पहुँचने की तैयारी करें। उस समय राजा परिमल ने भी नेत्रसिंह को बुलाकर कहा—उदयसिंह आदिवीरों की अध्यक्षता में आप युद्धार्थ शीघ्र प्रस्थान कीजिये।७६-९५। उस दिन वहाँ रणस्थल में उन दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हुआ, जिसमें क्रमशः घोड़े, घोड़े के साथ हाथी, हाथी के साथ पैदल, पैदल के साथ और बन्दूकधारी, बन्दूक वालों से एवं तोप वाले तोपों के साथ तन्मयता से युद्ध कर उन्हें धराशायी कर रहे थे। मुनिश्रेष्ठ ! उस युद्ध में अपराह्ण के समय राजा नेत्रसिंह ने उस भीषण-

---

१. बलिन् इत्यर्थः । २. निवासम् ।

परस्परं च विरथौ सञ्छिन्नधनुषौ तदा । खड्गहस्तौ महीं प्राप्य चक्रतू रणमुल्बणम् ॥
अन्योन्येन वधं कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥९८
इन्दुलस्तं तु चामुण्डं देवो वै धुन्धुकं तथा । कृष्णांशो भगदत्तं च जित्वा राजानमाययुः ॥९९
शेषैः पञ्चशतैः शूरैस्तैः सार्द्धं लक्षणं प्रति। पराजिताश्च ते सर्वे सहस्रैः सहिता ययुः ॥१००
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते महीराजो महाबलः । मायावर्माणमाहूय वचनं प्राह निर्भयः ॥१०१
भवान्दशसुतैर्वीरैर्लक्षसैन्यैश्च संयुतः । सर्वशत्रुविनाशाय गन्तुमर्हति सत्तम ॥
इति श्रुत्वा स नृपतिर्वाद्यान्संवाद्य चाययौ ॥१०२
दृष्ट्वा परिमलो भूपो मायावर्माणमागतम् । जगन्नायकमाहूय वचनं प्राह निर्भयः ॥१०३
भवान्दशसहस्रैश्च सार्द्धं तैस्त्रिभिरन्वितः । गन्तुमर्हति युद्धाय शीघ्रं मद्विजयं कुरु ॥१०४
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं सेनयोरुभयोर्महत् । युद्धं चासीन्मुनिश्रेष्ठ याममात्रं भयानकम् ॥१०५
हतास्ते दशसाहस्राः कृष्णांशाद्यैः सुरक्षिताः । शङ्खान्दध्मुश्च ते सर्वे चाङ्गदेशनिवासिनः ॥१०६
एतस्मिन्नन्तरे धीराः कृष्णांशाद्यास्तुरीयकाः[1] । याममात्रेण सञ्जघ्नुर्लक्षसैन्यं रिपोस्तदा ॥१०७
अपराह्णे महाराजो मायावर्मा सुतैः सह । कृष्णांशं देवसिंहं च सम्प्राप्तो जगनायकम् ॥१०८
अथाङ्गभूपं दशपुत्रयुक्तं कृष्णांश एवाशु जगाम शीघ्रम् ।
हयस्थितो वीरवरः प्रमाथी कलैकजातो मधुसूदनस्य ॥१०९

काय गजपति के साथ युद्धारम्भ किया । युद्ध में उन दोनों ने पहले विरथ होकर एक दूसरे के धनुष -वाण काटते हुए अपने-अपने खड्ग द्वारा महाविषम युद्ध किया । पश्चात् अपने रण-कौशल से एक दूसरे के वध करके वे दोनों स्वर्गीय हो गये । इधर इन्दल ने चामुण्ड (चौंढा) देवसिंह ने धुंधुकार (धांधु) और उदयसिंह ने भगदत्त को पराजित कर राजा के पास प्रस्थान किया, जिसमें उनलोगों के साथ शेष पाँच सौ शूर सैनिक जा रहे थे । पराजित होने पर भगदत्त आदि के पास भी सहस्रों सैनिक थे । तीसरे दिन प्रातः काल में राजा पृथ्वीराज ने मायावर्मा को बुलाकर कहा—सत्तम ! अपने वीर दश पुत्रों समेत एक लाख सैनिकों को साथ लेकर शत्रुओं के विनाशार्थ रणस्थल में शीघ्र पहुँच जाइये । इसे सुनकर उस राजा ने बाजे गाजे के साथ वहाँ पहुँचकर अपने आगमन की सूचना दी । उसे देखकर राजा परिमल ने भी निर्भीक होकर जगन्नायक से कहा—आप अपनी दश सहस्र सेना लेकर इन तीनों वीरों के साथ रणभूमि की तैयारी कीजिये । वहाँ जाकर शीघ्र मेरी विजय करना । इसे सुनकर वे ससैन्य वहाँ पहुँच गये । मुनिश्रेष्ठ ! उन दोनों सेनाओं में एक प्रहर तक भीषण युद्ध हुआ । किन्तु उदयसिंह आदि से सुरक्षित होने पर भी वे दशसहस्र सैनिक वहाँ रणस्थल में धराशायी हो गये । पश्चात् उन पुंग देश के सैनिकों ने अपनी-अपनी शंखध्वनि करते हुए विजय की सूचना दी । उसी समय उदयसिंह आदिवीरों ने वहाँ पहुँचकर एक प्रहर के भीतर शत्रु के उन लक्ष सैनिकों के निधन कर दिये । अपराह्ण में अपने पुत्रों समेत मायावर्मा तथा उदयसिंह और देवसिंह समेत जगनायक वहाँ रणस्थल में पहुँच गये पुत्रों समेत अङ्गाधीश्वर मायावर्मा के साथ उदयसिंह का युद्ध आरम्भ हुआ, जो वीरवर घोड़े पर बैठा हुआ, शत्रु सेनाओं का मंथन करने वाला एवं भगवान् मधुसूदन की कला से उत्पन्न था । पश्चात् अङ्गाधीश्वर ने अपने तीन वाणों द्वारा उदयसिंह

---

१. चत्वार इत्यर्थः ।

ततोऽङ्गभूपस्त्रिभिरेव बाणैरताडयन्मूर्ध्नि च पार्श्वयोर्वै ।
अमर्षमाणो बलवान्महीपतिदण्डैर्हतः काल इवाशु सर्पः ।।११०
हयं समुड्डीय स पुष्करान्तं ततोभ्यगात्तं नृपतिं रथस्थम् ।
हयस्य पातैर्विरथीचकार स एव भूपोऽसिमुपाददानः ।।१११
स्वेनासिना बिन्दुलमङ्गशल्यं कृत्वा स कृष्णांशमुवाच वाक्यम् ।
कल्लोलमायातव नाशनाय त्वयाजिता भूपतयःप्रधानाः ।।११२
तदैव कीर्तिर्भविता ममाशु हत्वा भवन्तं च सुखी भवानि ।
इत्युक्तवन्तं नृपतिं महान्तं स्वेनासिना तस्य शिरो जहार ।।११३
हतेऽङ्गभूपे दश तस्य पुत्रास्तमेव जग्मुर्युधि कौरवांशाः ।
तानागतानिन्दुल एव पञ्च जघान बाणैस्तु तदा समन्युः ।।११४
उभौ च देवस्तु जघान तत्र भल्लेन सिद्धेन नृपात्मजौ च ।
ज्येष्ठं सुतं गौतम एव हत्वा द्वौ यौ स कृष्णांश उपाजघान ।।११५
शङ्खान्प्रदध्मूरुचिराननास्ते प्रदोषकाले शिबिराणि जग्मुः ।
श्रमान्वितास्ते सुषुपुर्निशायां प्रातः समुत्थाय स्वकर्म कृत्वा ।।११६
गत्वा सभायां नृपतिं प्रणम्य वाक्यं समूचुः शृणु चन्द्रवंशिन् ।
अद्यैव सेनापतिरस्ति को वै चाज्ञापयास्मान्नृप तस्य गुप्त्यै ।।११७
श्रुत्वाह भूपोऽद्य तु वीरसेनः सकामसेनः स्वबलैः समेतः ।
रणं करिष्यत्यचिरेण वीरास्तस्मात्सुरक्षध्वमरिभ्य एव ।।११८

के शिर एवं दोनों पार्श्वभाग में आघात किया । उस समय दण्ड से आहत काल साँप की भाँति अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस बलवान् ने अपने घोड़े को आकाश में उड़ाकर उनके रथ के ऊपर पहुँचते ही अपने घोड़े के चरणपात द्वारा उन्हें विरथ कर दिया । अनन्तर उस राजा ने अपनी तलवार द्वारा उस बेंदुल घोड़े के ऊपर अंगों में प्रहार करके उदयसिंह से कहा—तुमने अनेक बड़े-बड़े राजाओं पर विजय अवश्य प्राप्त की है, किन्तु तुम्हारी इस चञ्चल माया का नाश करके ही मैं सुखी हो सकूँगा और मेरी कीर्ति भी तभी दिग्दिगन्तों में विस्तृत हो सकेगी । ऐसा कहते हुए उस राजा के मस्तक को उदयसिंह ने अपनी तलवार से छिन्न-भिन्न कर दिया । अंगाधीश्वर के निधन होने पर उनके दश-पुत्रों ने उन्हें घेरकर आघात करना चाहा, पर बीच में इन्दुल ने अपने बाणों द्वारा उनके पाँच पुत्रों को धराशायी कर दिया । दो पुत्रों को देवसिंह ने अपने भाले द्वारा हनन किया और बड़े पुत्र को जगनायक एवं शेष दो पुत्रों को स्वयं उदयसिंह ने स्वर्गीय बनाया । पश्चात् उस प्रदोष के समय शंखों की रुचिरध्वनि करते हुए उन लोगों ने अपने शिविरों को प्रस्थान किया । श्रान्त होने के नाते रात में सुखनींद शयन करने के उपरांत प्रातः काल अपने नित्य-कर्म करके राजा के पास सभा में पहुँचकर उन लोगों ने कहा—चन्द्रवंशिन् ! आज सेनापति कौन बनाया जायगा । यह हमें बताने की कृपा करें ।९६-११७। उसे सुनकर राजा ने कहा—कामसेन समेत अपने सैनिकों को साथ लेकर वीरसेन आज रणस्थल में पहुँचेंगे । इसलिए तुम लोग उनकी रक्षा करने में

स वीरसेनो नृपतिं प्रणम्य लक्षैः स्वसैन्यैर्युधि सञ्जगाम।
तदा महीराजनृपः प्रतापी स नागवर्माणमुवाच तापी ॥ ११९
रणाय गच्छाशु सुतैः समेतो लक्षैः स्वसैन्यैरुत भूपवर्य।
हत्वा रिपुं घोरतमं हि वीरं पतिं महान्तं युधि वीरसेनम् ॥ १२०
इत्युक्तवन्तं नृपतिं प्रणम्य मुवादयामास तदा हि वीरः।
तयोर्बभूवाशु रणो महान्वै सुसेनयोः सङ्कुलयुद्धकर्त्रोः ॥ १२१
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे विमानमारुह्य ययुश्च नाकम्।
हतेषु सर्वेषु च नागवर्मा सुतेषु वै यादवभूपमाह ॥ १२२
भवान्विसैन्यश्च तथैव चाहं भवान्सपुत्रश्च तथाहमेव।
संस्मृत्य धर्मं कुरु युद्धमाशु ततो रथस्थः सुधनुर्गृहीत्वा ॥ १२३
बाणैश्च बाणान्भुवि तौ च छित्त्वा बभूवतुस्तौ विरथौ नृपाग्र्यौ।
खड्गेन खड्गं च तथैव छित्त्वा विमानमारुह्य गतौ हि नाकम् ॥ १२४
स कामसेनः स्वरिपोश्च पुत्राञ्जघान बाणैश्च तदाष्टसङ्ख्यान्।
ज्येष्ठौ तदा कोपसमन्वितौ तं गृहीतखड्गौ च समीयतुश्च ॥ १२५
रिपोः शिरो जह्रतुरुग्रवेगौ सकामसेनश्च कबन्ध एव।
हत्वा रिपू तौ च तदा मिलित्वा स्वर्गं ययुस्ते च विमानरूढाः ॥ १२६
हतेषु सर्वेषु तदा त्रयस्ते चामुण्डकाद्या जगनायकं ते।
रुद्ध्वः समेताः स्वशरैः कठोरैर्जघ्नुस्तमश्वं हरिनागरं च ॥ १२७

सावधान रहना। जिस समय वीरसेन ने राजा परिमल के नमस्कार पूर्वक अपने सैनिकों समेत उस रणस्थल में प्रस्थान किया, उस प्रतापी राजा पृथ्वीराज ने नागवर्मा को बुलाकर कहा—नृपश्रेष्ठ ! अपने पुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत आप उस रणभूमि में शीघ्र पहुँचकर अत्यन्त घोर शत्रु उस वीरसेन को पराजित कर विजय प्राप्त कीजिये। इसे सुनकर उस राजा ने उन्हें प्रणामपूर्वक रणभूमि की तैयारी किया। वहाँ पहुँच दोनों सैनिकों का घोर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें तीन पहर के भीतर सभी सैनिक धराशायी होने के नाते सुन्दर विमान द्वारा स्वर्ग पहुँच गये। सभी सैनिकों के निधन हो जाने पर नागवर्मा ने यादववंशी वीरसेन से कहा—आपके समान मैं भी विरथ होकर इस रणभूमि में पुत्रों समेत उपस्थित हूँ, अतः समानता के नाते धर्म के स्मरण पूर्वक युद्ध करने की कृपा कीजिये। इसके पश्चात् दोनों वीरों ने धनुष-बाण लेकर एक दूसरे के ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया। धनुष बाण को छिन्न-भिन्न करने के उपरांत खड्ग युद्ध द्वारा उन दोनो राजाओं ने एक दूसरे को धराशायी करते हुए सुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्ग की यात्रा की। ११८-१२६। पश्चात् कामसेन ने शत्रु के उन आठ पुत्रों का अपने बाणों द्वारा निधन किया। तदनन्तर उन पुत्रों के बड़े एवं मध्यम भाइयों ने वहाँ पहुँचकर अपने खड्ग द्वारा कामसेन के शिर को उनके शरीर से पृथक् कर दिया। शिर के भूमि में गिर जाने पर कामसेन के कबंध ने उन दोनों अपने शत्रुओं का हनन किया। इस प्रकार वे सब आपस में मिलकर सुन्दर विमान पर सुखासीन होते हुए स्वर्ग चले गये। उन सभी लोगों के निधन हो जाने पर चामुण्ड (चौढ़ा) आदि उन तीनों वीरों ने जगनायक को चारों ओर से घेर अपने कठोर बाणों द्वारा उन्हें तथा उनके घोड़े हरिनागर को पीड़ित करना आरम्भ किया।

स दिव्यवाजी च तदा स्वपक्षौ प्रसार्य्य खेनाशुरिपुं जगाम ।
स धुन्धुकारस्य गजं विहत्य चामुण्डकस्यैव गजं विमर्द्य ।।१२८
रथं च भूमौ भगदत्तकस्य विचूर्ण्य शीघ्रं च नभो जगाम ।
प्रवाद्य शङ्खं जगनायकश्च कृष्णांशमागम्य कथां चकार ।।१२९
निशामुषित्वा जगनायकाद्याः प्रातः समुत्थाय रणं प्रजग्मुः ।
तदा महीराज उताशुकारी स किन्नरेशं कण्कं सपुत्रम् ।।१३०
उवाच राजञ्छृणु किन्नराणां महाबलास्ते रिपवो ममैते ।
विनाशयाशु प्रबलारिघातान्देवैर्न सार्द्धं युधि वै मनुष्याः[१] ।।१३१
इत्युक्तवान्मङ्कणभूपतिस्तु ययौ सपुत्रोऽयुतसैन्यपश्च ।
तमागतं तत्र विलोक्य राजा वीरान्स्वकीयांश्च समादिदेश ।।१३२
मनोरथस्थो जगनायकश्च स तालनो वै वडवां विगृह्य ।
करालसंस्थश्च तदा जयन्तो विगृह्य चापं तरसा जगाम ।।१३३
पपीहकस्थश्च स रूपणो वै जगाम कृष्णांशसमन्वितश्च ।
स लल्लसिंहो गजमत्तसंस्थः स धान्यपालो हयमारुरोह ।।१३४
समन्ततः किन्नरसैन्यघोरं विनाशयामासुरुपांशुखड्गैः ।
विनश्यमाने त्रिसहस्रसैन्ये स किन्नरेशस्तरसा जगाम ।।१३५
ध्यात्वा कुबेरं च गृहीतचापो नभोगतस्तत्र बभूव सूक्ष्मः ।।१३६

तदुपरांत उस दिव्य अश्व ने अपने पंख फैलाकर ऊपर नभ में जाकर पुनः लौटकर धुंधुकार (धांधू) और चामुण्ड (चौंढ़ा) के गज का मर्दन करते हुए भगदत्त के रथ को चकनाचूर कर दिया और स्वयं आकाश में उड़ गया। उस समय जगनायक ने अपने विजय शंख की ध्वनि करते हुए उदयसिंह के पास आकर उनसे समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया। रात्रि के व्यतीत हो जाने पर प्रातः काल नित्यकर्म करने के उपरांत जगनायक आदि वीरों ने रणस्थल में प्रस्थान किया। उस समय पृथ्वीराज ने किन्नरेश मंकण को बुलाकर कहा—राजन् ! मेरे उन प्रबल शत्रुओं के विनाशार्थ आप रणक्षेत्र में पहुँचने की शीघ्रता करें। आज देवताओं के साथ मनुष्यों का युद्ध होगा यद्यपि ऐसा कभी हुआ नहीं है। उनके इतना कहने पर अपने पुत्रों एवं किन्नर सैनिकों समेत राजा मंकण युद्धस्थल में पहुँच गये। वहाँ उन्हें आये हुए देखकर राजा परिमल ने अपने वीरों को आदेश दिया। मनोरथ पर बैठकर जगनायक, सिंहनी घोड़ी पर तालन, कराल अश्व पर जयन्त (इन्दुल) जो धनुष लेकर शीघ्रता से गमन कर रहे थे, पपीहा पर रूपन, उदयसिंह, हाँथी पर लल्लसिंह और घोड़े पर बैठे हुए धान्यपाल रणोन्मुख होकर अपने सैनिकों समेत धावा बोलते हुए जा रहे थे। इन लोगों ने वहाँ पहुँचकर उन किन्नर सैनिकों को चारों ओर से घेरकर उन्हें आहत करना आरम्भ किया। अपने तीन सहस्र सैनिकों के विनष्ट हो जाने पर किन्नरेश मंकण ने आकाश में अन्तर्हित होकर कुबेर के ध्यानपूर्वक अपने कठोर वाणों द्वारा शत्रु सैनिकों को मर्माहत

---

१. समर्था इति शेषः ।

अदृश्यमानः स्वशरैः कठोरैर्विनद्य सर्वान्हि ननर्द घोरम् ।
विलप्यमाने च समस्तशूरे जयन्त एवाशु जगाम शत्रुम् ॥१३७
ध्यात्वा महेन्द्रं कणकं च बद्ध्वा कृष्णांशमागम्य पदौ ननाम ।
तदा तु ते शत्रुसहस्रसैन्ये निशम्य बद्धं कणकं निजेन्द्रम् ॥१३८
विनर्घ घोरं रुरुधुश्च सर्वान्मायाविनो गुह्यकमस्त्रमूहुः ।
दिनेषु सप्तेषु[1] तथा निशासु बभूव युद्धं च समन्ततस्तैः ॥१३९
श्रमान्विताः सप्त महाप्रवीरा हतेषु सर्वेषु सुषुपुश्च वै यदा[2]।
तदा कुबेरं कणकश्च ध्यात्वा लब्ध्वा वरं बन्धनमाशु छित्त्वा ॥१४०
सुप्तान्समुत्थाय च सप्त शूरान्निशीथकाले स चकार युद्धम् ।
जित्वा च तान्षट् स वरप्रभावात्तदेन्दुलेनैव रणं चकार ॥१४१
गृहीतखड्गौ रणघोरमत्तौ हत्वा ततो वै भुवि चेयतुश्च ।
प्रजग्मतुर्नाकमुपान्तदेवौ संस्तूयमानौ सुरसत्तमैश्च ॥१४२
ततः प्रभाते विमले विजाते रुरोद रामांश उताललाप ।
पादैः कलापैः परिपीड्यमानः कुलान्वितः सर्वयुतो मुनीन्द्र ॥१४३
स पञ्चशब्दं गजमारुरोह त्रिलक्षसैन्यैस्तरसा जगाम ।
तदा महीराज उताह शृण्वन्गच्छध्वमद्यैव मया समेताः ॥१४४

करना आरम्भ किया उसकी घोर गर्जना एवं कठोर प्रहार से त्रस्त होकर वे सब विलाप करने लगे । उसी समय शूरप्रवर इंदुल वहाँ शत्रु के सम्मुख पहुँच गया ।१२७-१३६। उसने महेन्द्र के ध्यानपूर्वक मंकण को बाँध लिया और उदयसिंह के पास पहुँचकर उनकी चरणवन्दना की । उस समय उन किन्नर सैनिकों ने अपने स्वामी मंकण को बँधा हुआ जानकर अपने गुह्यक अस्त्रों का प्रयोग किया, जिससे सात दिन तक लगातार रात-दिन युद्ध होता रहा । उस युद्ध में सैनिकों के निधन होने के उपरांत श्रान्त होकर उन सातों वीरों के शयन करने पर मंकण ने कुबेर का ध्यान करके उनके द्वारा वरदान की प्राप्तिपूर्वक अपने बंधनों को काट दिया । और उसी आधीरात के समय उन शयन किये हुए वीरों को जगाकर उनसे युद्ध करना आरम्भ किया । उन प्रभावशाली छे वीरो को पराजित करने के उपरांत मंकण ने इन्दुल के साथ खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। मदोन्मत्त होकर उन दोनों ने एक दूसरे के ऊपर अचूक खड्ग प्रहार किया, जिससे निधन होने पर वे दोनों श्रेष्ठ देवों से स्तुत होते हुए स्वर्ग चले गये । मुनीन्द्र ! प्रातः काल के समय इन्दुल के मृत्यु समाचार मिलने पर सपरिवार आल्हा ने रुदन किया पश्चात् तीन लाख सैनिकों समेत अपने पंचशब्द नामक गजराज पर बैठकर रण की ओर वेग से प्रस्थान किया । उधर पृथ्वीराज ने भी अपने शूर-सामन्तों को 'मेरे साथ रण में चलने की तैयारी करो' यह आदेश देकर अपने पाँच लाख शूरवीरों

---

१. अदन्तत्वमार्षम् । २. छन्दोवैषम्यमार्षम् ।

स्वपञ्चलक्षैः प्रबलैश्च शूरैः सार्द्धं रुरोधाशु रिपोश्च सेनाम् ।
तयोर्बभूवाशु रणः प्रघोरो विनर्दतोर्युद्धनिमित्तनाशु ॥१४५
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे द्वयोश्च पक्षा बलशालिनश्च ।
तदा महीराज उताद्ययौ वै समण्डलीकश्च धनुर्विगृह्य ॥१४६
स धुन्धुकारश्च तदा जगाम रथस्थितं लक्षणमुग्रवीरम् ।
तदोदयो वै भगदत्तमेव चामुण्डकं भीष्मकराजसूनुः ॥१४७
स पञ्चशब्दं गजमास्थितो दै गतः स एवाशु जगाम भूपम् ।
धनुर्विगृह्याशुगमुल्बणं च नृपस्थितश्चाथ भयङ्करं च ॥१४८
गजं प्रमत्तं शिवदत्तमुग्रमाह्लादहन्तारमुवाच वाक्यम् ।
अये प्रमत्ताग्रगजेन्द्रशूर जयं च मे देहि शिवप्रदत्त ॥१४९
स मण्डलीको रणदुर्मदश्च रामांश आह्लाद इति प्रसिद्धः ।
तस्माच्च मां रक्ष जवेन हस्तिन्महाबलात्काल रसात्त्व वीरात् ॥१५०
इत्येवमुक्तो नृपति स हस्ती वचस्तमाहाशु शृणुष्व राजन् ।
यावदहं वै तनु जीवधारो तावद्भवाञ्छत्रुभयङ्करश्च ॥१५१
इत्युक्तवन्तं च गजं प्रमत्तं स पञ्चशब्दश्च तदा स्वदन्तैः ।
मुखं चतुर्भिश्च विदार्य शत्रोर्ननर्द घोरं स महेन्द्रदत्तः ॥१५२
स रुद्रदत्तश्च गजः प्रमत्तो रुषान्वधावत्तरसा गजेन्द्रम् ।
रिपुं स्वपद्भ्यां च चखान कुम्भैः स्वतुण्डदण्डेन तुदं[1] प्रकुर्वन् ॥१५३

समेत वहाँ पहुँचकर शत्रु की सेना को चारों ओर से घेर लिया । वे दोनों सैनिक उस रणस्थल में सिंहनाद की गर्जना करके आपस में युद्ध कर रहे थे जिसमें तीन प्रहर के भीतर उस युद्ध में दोनों ओर के शूर वीरगण आहत हो गये । उस समय पृथ्वीराज और मण्डलीक आह्लाद (आल्हा) का अपने-अपने धनुष बाण समेत उस युद्धभूमि में आगमन हुआ । उस युद्ध में उग्रवीर राजा लक्षण (लाखन) से धुंधुकार (धांधू) का, उदयसिंह से भगदत्त का और देवसिंह से चामुण्ड (चौंढ़ा) का युद्धारम्भ हुआ । पञ्चशब्द नामक गजराज पर बैठकर भयंकर नामक गजपर बैठकर पृथ्वीराज ने उसी बीच शिवप्रदत्त उस मत्त गजेन्द्र से कहा—शिवप्रदत्त मत्तगजेन्द्र ! रणविजय मेरी ही हो और रण दुर्मदान्ध एवं मण्डलीक नामक उस प्रख्यात आह्लाद (आल्हा) शत्रु से मेरी रक्षा करो । हस्तिन् ! वह महाबली मेरा कालरूप है । इस प्रकार उनके कहने पर उस हाथी ने उनसे कहा—राजन् ! मेरी एक बात अवश्य स्वीकार करो—जब तक मैं इस शरीर को धारण किये रहूँगा, तब तक आप शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष रहेंगे । इस प्रकार कहने वाले उस शत्रु के हाथी के मुख को महेन्द्रप्रदत्त उस पंचशब्द नामक गजराज ने अपने चारों दाँतों द्वारा विदीर्ण कर दिया । पश्चात् मदोन्मत्त उस रुद्रप्रदत्त गजराज ने वेग से दौड़कर अपने शत्रु गजेन्द्र के ऊपर अपने सुण्ड-दण्ड से प्रहार करते हुए कुम्भस्थल एवं चरणों में पीड़ितकर उसे मूर्च्छित कर

---

१. घवर्थे कः ।

अवाप मूर्च्छां च स पञ्चशब्दस्तदाशु भूपं प्रति मण्डलीकः।
स्वतोमरेणाङ्गव्रणं प्रदाय खड्गेन हत्वा गजराजमुग्रम् ॥
जगामपद्भ्यां स रिपुप्रमाथी यत्र स्थितश्चेन्दुल उग्रधन्वा ॥१५४
उत्थाप्य पुत्रं च विलप्यमानः पत्नीं स्वकीयां प्रति चाजगाम।
तदा प्रमत्तौ च गजौ सुमूर्च्छां त्यक्त्वा पुनश्चक्रतुरेव युद्धम् ॥१५५
स लक्षणः खड्गवरेण बाणान्रिपोश्च छित्त्वा निजवैष्णवास्त्रम्।
दधार चापे च सुमन्त्रयित्वा सधुन्धुकारं च गजं ददाह ॥१५६
हते च तस्मिन्निजमुख्यबन्धौ सभूमिराजश्च गृहीतचापः।
शरेण रौद्रेण च लक्षणं तं जघान तत्रादिभयङ्करस्थः ॥१५७
स मूर्छितः शुक्लकुलेषु सूर्यस्तदोदयो वै भगदत्तमेव।
सुमूर्च्छयित्वा च जगाम शीघ्रं यत्र स्थितो लक्षण एकवीरः १५८
भयान्वितस्तं च विलोक्य राजा जवेन दुद्राव च रक्तबीजम्।
तदा सुदेवं च स रक्तबीजो जित्वा तु कृष्णांशयुतं जगाम ॥१५९
बाणेन शीघ्रं स च मूर्च्छयित्वा पुनश्च देवं च स मूर्च्छयित्वा।
तद्बन्धनायोद्यत आशुकारी स लक्षणस्तत्र तदा जगाम ॥१६०
प्रधाय चापे च स वैष्णवास्त्रं प्रचोदयामास च रक्तबीजे।
तदा स सामन्तसुतो बलीयान्रणं विहायाशु विलोक्य सन्ध्याम् ॥
भयान्वितः स्वैश्च युतो ययौ वै यत्र स्थिता भूपतयः सकोपाः ।१६१

दिया। पंचशब्द नामक अपने गजेन्द्र के मूर्च्छित हो जाने पर आह्लाद (आल्हा) ने अपने तोमर अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज के शरीर में महान् व्रण (घाव) करने के अनन्तर उनके गजराज पर खड्ग का आघात किया। पश्चात् शत्रुहन्ता आल्हा पैदल ही वहाँ चले गये, जहाँ रणस्थल में इन्दुल नामक उनका उग्र धनुर्धर पुत्र पड़ा हुआ था।१३७-१५४। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसे उठाकर विलाप किया। तदन्तर उसे लेकर वे अपनी रोती कलपती स्त्री के पास पहुँचे। इधर उन मतवाले गजराजों ने चेतना प्राप्त होने पर पुनः युद्ध करना आरम्भ किया। उस समय वीर लक्षण (लाखन) उत्तम खड्ग द्वारा शत्रु के वाणों को काटकर पुनः धनुष पर वैष्णवास्त्र बाण के समंत्रक प्रयोग द्वारा धुंधुकार (धांधू) समेत उसके गज को भी दग्ध कर दिया। अपने निजी एवं मुख्य बंधु के निधन हो जाने पर पृथ्वीराज ने अपने आदि भयंकर नामक गज पर बैठकर अपने रौद्र बाण द्वारा लक्षण (लाखन) पर प्रहार किया। उस चन्द्रवंशी सूर्य के मूर्च्छित हो जाने पर उदयसिंह ने भगदत्त को मूर्च्छित कर अकेले पड़े हुए लक्षण (लाखन) के पास शीघ्र पहुँचने का प्रयत्न किया। राज पृथ्वीराज उन्हें वहाँ आते हुए देखकर भयभीत होकर तेजी से भागते हुए रक्तबीज के पास चले गये। उस समय रक्तबीज ने देवसिंह को पराजित कर उदयसिंह के पास पहुँचकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। और चेतना प्राप्तकर देवसिंह के वहाँ पहुँचने पर उन्हें भी। उसे देखकर रणकुशल लक्षण (लाखन) ने उसके बंधन में वहाँ पहुँचकर धनुष पर अपने वैष्णवास्त्र का अनुंसधान कर रक्तबीज को ललकारा। उस समय सामन्त पुत्र रक्तबीज (भयभीत होकर) संध्या समय देखते हुए रण से पलायन कर राजाओं के बीच में छिप गया। जो अत्यन्त क्रुद्ध होकर वहाँ स्थित थे। शत्रु को भागते हुए

विलोक्य शत्रुं च स रत्नभानोः सुतो ययौ वै शिबिराणि युक्तः ।
निशम्य भूपः स च चन्द्रवंशी जयं स्वकीयं सुषुपुस्तु ते वै ॥
प्रातश्च काले स च चन्द्रवंशी विलोक्य शुक्लान्वयमाह भूपम् ॥१६२
अये गुर्जरदेशीय मूलवर्मन्सुतैः सह । लक्षसैन्यान्वितो भूत्वा गन्तुमर्हतु वै भवान् ॥१६३
इत्युक्तः स तु भूपालो युद्धभूमिमुपाययौ । महीराजाज्ञया प्राप्तो नाम्ना पूर्णमलो बली ॥१६४
दशपुत्रान्वितो युद्धे सैन्यलक्षेण संयुतः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं यामद्वयमुपस्थितम् ॥१६५
हतेषु तेषु सर्वेषु तौ नृपौ ससुतैर्बलौ । अन्योऽन्येन रणं कृत्वा यमलोकमुपागतौ ॥१६६
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते विमले रवौ । कैकयो लक्षसेनाढ्यो दयापुत्रसमन्वितः ॥
लक्षणानुज्ञया प्राप्तस्तस्मिन्युधि भयानके ॥१६७
मद्रकेशस्तदा राजा दशपुत्रसमन्वितः । लक्षसैन्यान्वितस्तत्र यत्र युद्धं समन्वभूत् ॥
परस्परं हताः सर्वे दिनान्ते क्षत्रियारणे ॥१६८
पुनः प्रभाते विमले भगदत्तो महाबली । त्रिलक्षबलसंयुक्तो जगर्ज रणमूर्द्धनि ॥१६९
दृष्ट्वा तं लक्षणो वीरस्त्रिलक्षबलसंयुतः । चकार तुमुलं घोरसेनया च स्वकीयया ॥१७०
अपराह्ले हताः सर्वे सैनिका नृपयोस्तदा । भगदत्तः स्वयं क्रुद्धो रथस्थो लक्षणं ययौ ॥१७१
लक्षणो रथमारुह्य स्वपितुः शत्रुजं नृपम् । त्रिभिर्बाणैश्च सन्तोद्य भल्लेन समताडयत् ॥१७२

देखकर रत्न भानु पुत्र लक्षण (लाखन) भी अपने शिविर में चले गये उस समय चन्द्रवंशी राजा परिमल ने अपनी विजय सुनकर हर्षित होते हुए उन लोगों के साथ शयन किया । प्रातःकाल नित्यकर्म समाप्ति के अनन्तर चन्द्रवंशी राजा परिमल ने चन्द्रवंशी एक राजा से कहा- अये गुजरात देश के अधीश्वर मूलवर्मन् ! अपने पुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत आप रणभूमि के लिए प्रस्थान कीजिये । इस प्रकार कहने पर उस राजा ने रणक्षेत्र के लिए शीघ्र प्रस्थान किया । इधर राजा पृथ्वीराज की आज्ञा पाकर बलवान् राजा पूर्णामल भी अपने दशपुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँच गये । दोपहर तक उन दोनों सैनिकों का घोर युद्ध हुआ, जिसमें उन दोनों के सैनिक धराशायी हो गये । सैनिकों के निधन हो जाने पर पुत्रों समेत उन दोनों नरेशों ने एक दूसरे के प्रहार द्वारा प्राण परित्याग कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया । मार्गशीर्ष (अगहन) मास में कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातः काल निर्मल सूर्य के उदय होने पर पुत्रों समेत एवं एक लाख सैनिकों को लेकर राजा कैकय रण में उपस्थित हो गये । उस समय राजा मद्रकेश ने भी दश पुत्रों और एक लाख की सेना लेकर युद्धार्थ वहाँ प्रस्थान किया । उस रणस्थल में दोनों सैनिकों तथा राजाओं का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । संध्या समय तक वे क्षत्रीगण एक दूसरे को आहतकर स्वर्गीय हो गये । उसके दूसरे दिन प्रातः काल के समय महाबली राजा भगदत्त अपनी तीन लाख सेना लेकर रणभूमि में पहुँचे । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) भी अपने तीन लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर घोर संग्राम करने लगे ।१५५-१७०। अपराह्न समय तक दोनों राजाओं की सेना आपस में लड़कर समाप्त हो गई। पश्चात् रथपर बैठे भगदत्त लक्षण (लाखन) के सम्मुख पहुँचे। लक्षण (लाखन) ने भी अपने पैतृक शत्रुपुत्र को देखकर तीनों वाणों एवं भाले का साथ ही प्रहार किया । उस

भगदत्तस्तदा क्रुद्धो विरथं तं चकार ह । क्रुद्धवन्तं रिपुं घोरं लक्षणः खड्गपाणिकः ॥
हत्वा हयांस्तथा सूतं भगदत्तमुपाययौ ॥१७३
मर्दयित्वा च तच्चर्म च्छित्त्वा वर्म तदुद्भवम् । त्रिधा चकार बलवान्भगदत्तं रिपोस्सुतम् ॥१७४
सन्ध्याकाले हते तस्मिल्लँक्षणस्त्वरयान्वितः । एकाकी शिबिरं प्राप्तो हस्तिन्युपरि संस्थितः ॥१७५
भगदत्ते हते तस्मिन्स राजा क्रोधमूर्छितः । स्वकीयान्सर्वभूपांश्च चामुण्डेन समन्वितान् ॥
प्रेषयामास युद्धाय मार्गे च प्रतिपद्दिने ॥१७६
अङ्गदश्च कलिङ्गश्च त्रिकोणः श्रीपतिस्तथा । श्रीतारश्च मुकुन्दश्च स्हिलो गुहिलस्तथा ॥१७७
सुकेतुर्नव भूपास्ते नवायुतबलैर्युताः । वाद्यानि वादयामासुस्तस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥१७८
दृष्ट्वा ताँल्लक्षणो वीरो राजभिश्च स्वकीयकैः । सार्द्धं जगाम युद्धाय तथा व्यूह्यायुधरिपून् ॥१७९
रुद्रवर्मा च नृपतिः शूरैर्दशसहस्रकैः । अङ्गदं वैरिणं मत्वा तेन सार्द्धमयुध्यत् ॥१८०
कालीवर्माऽयुतैस्सार्धं कलिङ्गं प्रत्ययुध्यत । वीरसिंहोऽयुतैस्सार्द्धं त्रिकोणं प्रत्ययुध्यत ॥१८१
ततोऽनुजः प्रवीरश्च श्रीपतिं सोऽयुतैस्सह । नृपः सूर्यो धरो वीरोऽयुताढ्यो बलवान्रणे ।
श्रीतारं नृपमासाद्य महद्युद्धमचीकरत् ॥१८२
वामनोऽयुतसंयुक्तो मुकुन्दं प्रति सोऽगमत् । गङ्गासिंहश्च बलवान्महिलं प्रति सायुतः ॥१८३
लल्लसिंहोऽयुतैस्सार्द्धं गुहिलं प्रति सोऽगमत् । त्रिशतानि ततो भूपाः सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् ॥१८४
क्षुद्रभूपाः क्षुद्रभूपांस्त्रिशतानि समाययुः । अन्योऽन्येन हताः सर्वे कृत्वा युद्धं भयानकम् ॥१८५

समय क्रुद्ध होकर भगदत्त ने उन्हें रथहीन कर दिया । उस क्रुद्ध एवं घोर शत्रु को देखकर लक्षण (लाखन) ने अपने खड्ग द्वारा उनके घोड़े और सारथी के निधन करने के उपरांत उन भगदत्त का सामना किया । उस बलवान् ने उसी खड्ग द्वारा शत्रुपुत्र भगदत्त के कवच और चर्म (ढाल) को छिन्न-भिन्न करते हुए उनकी शरीर में तीन खंड कर दिया । संध्या समय उस शत्रु के हनन हो जाने पर लक्षण (लाखन) हाथी पर बैठे हुए अपने शिविर में अकेले ही पहुँचे । भगदत्त के स्वर्गीय होने पर राजा पृथ्वीराज ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर चामुण्ड के साथ सभी राजाओं को रणस्थल में भेजा । मार्गशीर्ष के शुक्ल प्रतिपदा के दिन उस रणस्थल में उपस्थित राजवृन्दों का घोर युद्धारम्भ हुआ, जिसमें पृथ्वीराज की ओर से राजा अंगद कलिंग, त्रिकोण, श्रीपति, श्रीतार, मुंकुद, सहिल गुहिल, सुकेतु, और नब्बे सहस्र सैनिकों समेत वे नव राज गण वहाँ उपस्थित होकर उस युद्ध महोत्सव के उपलक्ष में अनेक भाँति के वाद्य बजवा रहे थे । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) ने भी अपने राजाओं समेत वहाँ रणभूमि में पहुँचकर व्यूह रचना द्वारा शत्रुओं को घेर लिया । उस युद्ध में राजा रुद्रवर्मा अपने दशसहस्र शूरवीरों समेत एवं शत्रु अंगद राजा के साथ युद्ध कर रहे थे । उसी प्रकार दशसहस्र सैनिकों समेत कालीवर्मा कलिंग के साथ, दशसहस्र सेना समेत वीरसिंह त्रिकोण के साथ, उतने ही सैनिक लेकर उनके छोटे भाई प्रवीर श्रीपति के साथ और वीर एवं बली राजा सूर्यधर दश सहस्र सेना लेकर राजा श्रीतार के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे । मुकुंद के साथ वामन, माहिल के साथ बलवान् गंगासिंह, और गुहिल के साथ लल्लसिंह अपने-अपने दश सहस्र सैनिकों समेत वहाँ युद्ध में मग्न थे । उनमें अन्य तीन सौ छोटे राजगण थे, जो वहाँ एक दूसरे से भयानक युद्ध करके सर्वप्रथम विनष्ट हो गये ।१७१-१८५। उन नृपों के निधन देखकर चामुण्ड (चौंढ़ा) ने लक्षण (लाखन) के

चामुण्डस्तु तदा दृष्ट्वा का मृतकान्सर्वभूपतीन् । लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ।।१८६
लक्षणो रक्तबीजं तं ज्ञात्वा ब्राह्मणसंमतम् । वैष्णवास्त्रं तदा तस्मै न ददौ तेन पीडितः ।।१८७
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते लक्षणो हस्तिनीस्थितः । एकाकी शिबिरं प्राप्तश्चामुण्डं नृपमाययौ ।।१८८
द्वितीयायां प्रभाते च कृष्णांशो देवसंयुतः । शूरैर्दशसहस्रैश्च युद्धभूमिमुपाययौ ।।१८९
तारकश्च स चामुण्डो द्विलक्षबलसंयुतः । द्विशतैश्च तथा भूपैः सार्द्धं युद्धमुपस्थितौ ।।१९०
पुरस्कृत्य नृपान्सर्वान्ससैन्यौ बलवत्तरौ । तेषामनुस्थितौ युद्धे तत्र जातो महारणः ।।१९१
याममात्रेण तौ वीरौ हत्वा सर्वमहीपतीन् । लक्षसैन्यांस्तथा हत्वा संस्थितौ श्रमकर्षितौ ।।१९२
चामुण्डस्तारको धूर्तः सम्प्राप्तौ छिद्रदर्शिनौ । ताभ्यां श्रमान्विताभ्यां च चक्रतुस्तौ समं रणम् ।।१९३
तेषां त्रियाममात्रेण सम्बभूव महान्रणः । सायङ्काले तु सम्प्राप्ते कृष्णांशश्च निरायुधः ।।
तलप्रहारेण रिपुं मूर्च्छयामास वीर्यवान् ।।१९४
एतस्मिन्नन्तरे वीरस्तारको देवसिंहकम् । हयं मनोरथं हत्वाशङ्खशब्दमथाकरोत् ।।१९५
तच्छब्दात्स च चामुण्डस्त्यक्त्वा मूर्च्छां महाबलः । कृष्णांशस्य शिरः कायादपहृत्य च वेगवान् ।।
तयोर्गृहीत्वा शिरसी महीराजमुपाययौ ।।१९६
महीराजस्तु ते दृष्ट्वा परमानन्दनिर्भरः । दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो महोत्सवमकारयत् ।।१९७
लक्षणस्य तदा सैन्ये हाहाशब्दो महानभूत् । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां ज्ञात्वा तौ च हतौ नृपः ।।

पास पहुँचकर उनसे महान् युद्ध किया। उसके द्वारा पीडित होने पर भी लक्षण (लाखन) ने उसे ब्राह्मण समझकर उसके ऊपर अपने वैष्णवास्त्र का प्रयोग नहीं किया। संध्या समय लक्षण (लाखन) हथिनी पर बैठे अकेले ही शिविर में पहुँचे और चामुण्ड (चौंढ़ा) राजा पृथ्वीराज के पास । द्वितीया के दिन प्रातःकाल देवसिंह समेत उदयसिंह दशसहस्र सेना लेकर उस रण में पहुँचे। उस तारक (ताहर) और चामुण्ड (चौंढ़ा) भी अपने दो लाख सैनिकों तथा दो सौ राजाओं को लेकर वहाँ पहुँच गये। अन्य राजाओं को आगे कर सेना समेत दोनों ओर के प्रधान वीरों ने उनके पीछे रहकर उस दिन भीषण संग्राम किया, जिसमें उदयसिंह और देवसिंह ने एक प्रहर के भीतर उन समस्त राजाओं के विनाश पूर्वक उनके एक लाख सैनिकों का भी निधन कर दिया, पश्चात् श्रान्त होने के नाते वे वहाँ विश्राम करने लगे। छिद्रान्वेषी एवं धूर्त तारक (ताहर) ने चामुण्ड (चौंढ़ा) को साथ लेकर उन श्रान्त (थके हुए) वीरों से युद्ध ठान दिया। तीन प्रहर तक दोनों दलों का घमासान युद्ध हुआ। संध्या होने पर उदयसिंह के पास कोई अस्त्र न रह गया, किन्तु उस अवस्था में भी उस पराक्रमशाली ने अपने हाथ के चपेट से शत्रु को मूर्च्छित कर दिया। उसी बीच तारक (ताहर) ने देवसिंह समेत उनके घोड़े मनोरथ के भी निधन करके अपनी शंख-ध्वनि किया। उसे सुनकर महाबली चामुण्ड (चौंढ़ा) की मूर्च्छा नष्ट हो गई। उसने अत्यन्त वेग से उदयसिंह का शिर उनकी शरीर से पृथक् कर दिया। पश्चात् उन दोनों वीरों के शिर लेकर वे दोनों पृथ्वीराज के पास पहुँच गये, जिसे देखकर उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हुई। अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों को यथेच्छ दान देकर महान् उत्सव कराया। उन दोनों वीरों के निधन को सुनकर लक्षण (लाखन) की

ब्रह्मानन्दस्तदा मूर्च्छां त्यक्त्वा वेलामुवाच ह ॥१९८
प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता । मम वेषं शुभं कृत्वा तारकं जहि मा चिरम् ॥१९९
इति श्रुत्वा तु सा वेला रामांशेन समन्विता । सहस्रशूरसहिता युद्धभूमिमुपाययौ ॥२००
श्रुत्वा स लक्षणो वीरस्तालनेन समन्वितः । सैन्यैश्च दशसाहस्रैर्महीराजमुपाययौ ॥२०१
तृतीयायां प्रभाते च तारको बलवत्तरः । ब्रह्मानन्दं च तं मत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥२०२
रक्तबीजश्च चामुण्डो रामांशो बलवत्तरः । चकार दारुणं युद्धं तस्मिन्घोरसमागमे ॥२०३
यामसात्रेण रामांशो हत्वा तस्य महागजम् । तच्छस्त्राणि तथा च्छित्त्वा मल्लयुद्धमचीकरत् ॥२०४
त्रियाममात्रेण तदा सायङ्काले समागते । मन्मथ भ्रातृहन्तारं स च वीरो ममार ह ॥२०५
तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम् । छित्त्वास्त्राणि स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत् ॥२०६
चितां कृत्वा विधानेन सा देवी द्रुपदात्मजा । ब्रह्मानन्दं नमस्कृत्य तच्चितायां समारुहत् ॥२०७
तेन सार्द्धं च सा शुद्धा श्वशुरस्याज्ञया मुदा । सप्तजन्मकथां कृत्वा स्वपतेस्तु ददाह वै ॥२०८
तच्चितायां च भर्तारमिन्दुलं बलवत्तरम् । संस्थाप्य दाहयामास तेन सार्द्धं कलेवरम् ॥२०९
रात्रौ परिमलो राजा लक्षणेन समन्वितः । महीराजमुपागम्य महद्युद्धमकारयत् ॥२१०
सपादलक्षाश्च तदा हतशेषा महाबलाः । त्रिलक्षैर्हतशेषैश्च सार्द्धं योद्धुमुपस्थिताः ॥२११
धान्यपालः शतं भूपाँल्लक्षणश्च तथा शतम् । तालनश्च शतं भूपान्हत्वा राजानमाययौ ॥२१२
महीराजस्तदा दुःखी ध्यात्वा रुद्रं महेश्वरम् । निशीथे समनुप्राप्ते हतशेषैस्समागतः ॥

सेना में हाहाकार मच गया । उस कोलाहल को सुनकर ब्रह्मानन्द की मूर्च्छा नष्ट हो गई । उन्होंने वेला से कहा—प्रिये ! हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर तुम शीघ्र रण में पहुँचो । मेरा ही वेष धारणकर तुम तारक (ताहर) का शीघ्र हनन करो विलम्ब मत करो । इसे सुनकर आह्लाद के साथ वेला सहस्र वीरों समेत रणस्थल में पहुँच गई । उसे सुनकर वीर लक्षण (लाखन) भी तालन एवं दश सहस्र सैनिकों समेत पृथ्वीराज के पास पहुँच गये । तृतीया के दिन प्रातः काल बलवान् तारक (ताहर) ने उस (वेला) को ब्रह्मानन्द मानकर उसके साथ घोर युद्ध किया । रक्तबीज चामुण्ड (चौंढ़ा) का भी रामांश आल्हा के साथ भीषण युद्ध हुआ । एक प्रहर के भीतर आल्हा ने उसके गज को मार उनके समस्त अस्त्रों को नष्टकर दिया पश्चात् दोनों का मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ । तीन प्रहर तक उस युद्ध के होने पर संध्या समय वीर आल्हा ने अपने भ्रातृहन्ता चौंढ़ा का मंथन करते हुए निधन किया ।१८६-२०५। उस समय वेला ने भी महाबलवान् उस तारक (ताहर) शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करने के उपरांत अपने खड्ग द्वारा उनके शिर को धड़ से पृथक् कर दिया । पश्चात् उस द्रुपदात्मजा देवी ने अपने श्वसुर की आज्ञा प्राप्तकर सविधान चिता लगाकर ब्रह्मानन्द के नमस्कार पूर्वक उनके साथ चिता पर बैठ गई, और पतिसमेत अपने सात जन्म की कथा कहकर पति के साथ भस्म हो गई । उसी चिता में इन्दुल की स्त्री ने भी अपने पति के शव को देखकर उनके साथ अपने कलेवर को भस्म कर दिया । उसी रात्रि के समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा परिमल ने लक्षण (लाखन) समेत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे घोर युद्ध किया । उस समय उनके पास सवालाख सैनिक शेष थे और परिमल राजा की ओर तीन लाख धान्यपाल लक्षण (लाखन) और तालन ने सौ-सौ राजाओं के निधन करके पृथ्वीराज ने पास प्रस्थान किया । उसी समय राजा पृथ्वीराज दुःखी होकर

एकाकी गजमारुह्य ययौ चादिभयङ्करम् ॥२१३
रुद्रदत्तेन बाणेन हत्वा परिमलं नृपम् । धान्यपालं तथा हत्वा तालनं बलवत्तरम् ॥
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धमचीकरत् ॥२१४
महीराजस्य रौद्रास्त्रैस्सैन्यास्सर्वे क्षयं गताः । लक्षणं प्रति रौद्रास्त्रं महीराजः समादधे ॥२१५
तदा तु लक्षणो वीरो वैष्णवास्त्रं समादधे । तेनास्त्रेण क्षयं जातो महीराजस्य सायकः ॥
तेनास्त्रतेजसा राजा महासन्तापमाप्तवान् ॥२१६
ध्यात्वा रुद्रं महादेवं त्यक्त्वा विद्यां च वैष्णवीम् । स्वभल्लेन शिरः कायादपाहरत भूमिपः ॥२१७
हस्तिनी च तदा रुष्टा गजमादिभयङ्करम् । गत्वा युद्धं मुहूर्तेन कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥२१८
उषःकाले च सम्प्राप्ते मलना पतिमुत्तमम् । तच्चितायां समारोप्य ददाह स्वं कलेवरम् ॥२१९
तदा तु देवकी शुद्धं लक्षणं बलवत्तरम् । तालनादींस्तथा हुत्वा ददाह स्वं कलेवरम् ॥२२०
प्रभाते विमले जाते चतुर्थे भौमवासरे । तथा हुत्वा स्वर्णवतीं कृत्वा तेषां तिलाञ्जलिम् ॥
ध्यात्वा सर्वमयीं देवीं स्थिरीभूय स्वयं स्थितः ॥२२१
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कलिर्भार्यासमन्वितः । वाञ्छितं फलमागम्य तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥२२२

कलिरुवाच

नम आह्लाद महते सर्वानन्दप्रदायिने । योगेश्वराय शुद्धाय महावतीनिवासिने ॥२२३
रामांशस्त्वं महाबाहो मम पालनतत्परः । कलैकया समागम्य भुवो भारस्त्वयाहृतः ॥२२४

उस आधीरात के समय महेश्वर भगवान् शंकर के ध्यानपूर्वक शेष सैनिकों के साथ अकेले हाँथी पर बैठकर युद्ध करने लगे । उन्होंने रुद्रप्रदत्त बाण द्वारा परिमल धान्यपाल एवं तालन के निधन करने के उपरांत लक्षण (लाखन) के समीप प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने घोर युद्ध किया, जिससे उनके रौद्रास्त्र द्वारा सभी राजवृन्द नष्ट हो गये । पश्चात् पृथ्वीराज ने लक्षण (लाखन) पर प्रहार करने के लिए रौद्रसर का अनुसंधान किया और लक्षण (लाखन) ने अपने वैष्णवास्त्र का । उन अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज का वह अस्त्र नष्ट हो गया । तथा उसके तेज से राजा अत्यन्त सन्तप्त हुए । तदुपरांत पृथ्वीराज ने महादेव रुद्र के ध्यानपूर्वक अपने भल्लास्त्र द्वारा उनके शिर धड़ से पृथक् कर दिया । उस समय लाखन की हथिनी क्रुद्ध होकर गज आदि भयंकर को एक मुहूर्त में पराजित करती हुई स्वयं स्वर्ग चली गई । तदनन्तर उषा काल में रानी मलना ने अपने पति के साथ चिता पर अपनी शरीर भस्म कर दिया । उसी समय देवकी ने भी शुद्ध एवं लक्षण (लाखन) तथा तालन आदि के कलेवर को उसी चिता में डालकर स्वयं अपनी शरीर को भस्म कर दिया । चौथे दिन मंगलवार में प्रातः काल आल्हा मृतक अपनी पत्नी स्वर्णवती (सोना) के शव को उसी चिता में डालकर तथा उन लोगों के लिए तिलाञ्जलि देने के उपरांत सर्वमयी देवी के ध्यानपूर्वक उसी स्थान स्थिर होकर बैठ गये । उसी बीच अपनी भार्या समेत कलि ने वहाँ आकर अपने मनोरथ के सिद्ध्यर्थ नम्रवाणी द्वारा उनकी स्तुति करना आरम्भ किया ।२०६-२२२

कलि ने कहा—सम्पूर्ण आनन्द को देने वाले एवं महान् उस आह्लाद (आल्हा) को नमस्कार है, जो योगेश्वर तथा विशुद्ध होकर महावती (महोवा) में निवास कर रहा है । महाबाहो ! आप राम के

राजानः पावकीयाश्च तपोबलसमन्विताः । हत्वा तान्पञ्चसाहस्रान्क्षुद्रभूपाननेकशः ॥
योगमध्ये समासीनो नमस्तस्मै महात्मने ॥२२५
तेषां सैन्याः षष्टिलक्षाः क्रमाद्वीर त्वया हताः । वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥२२६
इति श्रुत्वा स आह्लादो वचनं प्राह निर्भयः । मम कीर्तिस्त्वया देव कर्तव्या च जने जने ॥२२७
पुनस्ते कार्यमतुलं करिष्यामि शृणुष्व भोः । महीराजश्च धर्मात्मा शिवभक्तिपरायणः ॥
तस्य नेत्रे मया शुद्धे कर्तव्ये नीलरूपके ॥२२८
तद प्रियः सदा नीलस्तथैव च मम प्रियः । देवानां दुःखदो देव दैत्यानां हर्षवर्द्धनः ॥२२९
इत्युक्त्वा स तु रामांशो गजमारुह्य वेगतः । महीराजमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥२३०
रुद्रदत्ता गजस्तूर्णं पञ्चशब्दमुपस्थितः । पद्मदन्तान्समारुह्य युयुधाते परस्परम् ॥२३१
अन्योऽन्येन तथा हत्वा गजौ स्वर्गमुपेयतुः ॥२३२
तदा भयातुरो राजा त्यक्त्वा युद्धं भयङ्करम् । स तु दुद्राव वेगेन रामांशोऽनुययौ ततः ॥२३३
केशेषु च महीराजं गृहीत्वा तरसा बली । कलिदत्तं महानीलं नेत्रयोस्तेन तत्कृतम् ॥२३४
तदाप्रभृति वै शम्भुरशुद्धं नृपतिं प्रियम् । मत्वा त्यक्त्वा ययौ स्थाने कैलासे गुह्यकालये ॥२३५
आह्लादः कलिना सार्द्धं कदलीवनमुत्तमम् । गत्वा योगं चकाराशु पर्वते गन्धमादने ॥२३६

अंश से अवतरित और मेरे पालन करने में कटिबद्ध हैं। तपोबल प्रधान उन पाँच सहस्र अग्निवंशीय तथा अनेक क्षुद्र राजाओं के हनन द्वारा आपने इस भूतल के भार का अपहरण किया है और अनन्तर आसानासीन होकर योगध्यान में तन्मय हो रहें हैं, अतः आप ऐसे महानुभाव को सादर नमस्कार कर रहा हूँ। महाभाग ! आपने अपनी अद्भुत वीरता प्रकट कर उनकी साठ लाख सेना का भी विध्वंस किया है, इसलिए मनइच्छित वर की याचना कीजिये। इसे सुनकर आह्लाद ने निर्भय होकर कहा—देव ! आप मेरी कीर्ति प्रत्येक व्यक्तियों में ख्यात करने की कृपा करें। आपके समस्त कार्यों को मैं पुनः सुसम्पन्न करने की चेष्ट करूँगा। मेरी और एक बात सुनने की कृपा कीजिये। देव ! राजा पृथ्वीराज धर्मात्मा एवं शिव शक्ति का उपासक है, इसलिए उसके दोनों नेत्र शुद्ध नीलवर्णका बना देना चाहता हूँ, क्योंकि वह आपको प्रिय है और मुझे जो देवों को दुःख तथा दैत्यों की हर्ष-वृद्धि करता है। इतना कहकर रामांश आह्लाद ने अपने गजेन्द्र पर बैठकर पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए अत्यन्त वेग से प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर पृथ्वीराज से संग्राम आरम्भ किया उसी समय रुद्रप्रदत्त गज ने पंचशब्द गजेन्द्र के पद्म दाँतों पर अपने दोनों चरणों के भार रखते हुए उससे महान युद्ध किया। पश्चात् आह्लाद द्वारा एक दूसरे का निधन करते हुए वे दोनों स्वर्ग चले गये। उस समय भयभीत होकर राजा पृथ्वीराज रण छोड़कर अत्यन्त वेग से भाग निकले, किन्तु आल्हा ने भी उनके पीछे तेजी से दौड़कर उन्हें पकड़ लिया और कलिप्रदत्त उस नील द्वारा उनके दोनों नेत्रों को बलात् नीलवर्ण के समान काला कर दिया। उसी समय शिवजी ने अशुद्ध समझकर उन्हें छोड़ दिया और गुह्यकों के निवास-स्थान उस कैलास पर निवासार्थ प्रस्थान किया। आह्लाद ने भी कलि के साथ गन्धमादन पर्वत के उस कदली वन में जाकर अपनी योग समाधि लगाई। उन्हें योगाभ्यास में मग्न देखकर हर्ष विभोर होकर कलि ने बलि के यहाँ

तथा भूतं च रामांशं कलिर्दृष्ट्वा मुदान्वितः । बलिपार्श्वमुपागम्य वर्णयामास सर्वशः ।।२३७
स वै बलिर्दैत्यराजोऽयुतैः सह विनिर्गतः । गौरदेशमुपागम्य सहोड्डीनमुवाच ह ।।२३८
गच्छ वीर बलैस्सार्द्धं निशायां रक्षितो मया । हत्वा भूपं महीराजं विद्युन्मालां गृहाण भोः ।।२३९
इति श्रुत्वा वचस्तस्य षोडशाब्दान्तरे गते । सपादलक्षैश्च बलैः कुरुक्षेत्रमुपाययौ ।।२४०
महीराजसुताञ्जित्वा समाहूय महावतीम् । महीपतिं प्रेषयित्वा लुण्ठयित्वा च तद्वसु ।।२४१
लिङ्गार्थं कृतवान्यत्नं स नृपः कीर्तिसागरे । न प्राप्तस्सनृपस्तं वै स्वगेहाय तदा ययौ ।।२४२
लक्षचण्डीं कारयित्वा परमानन्दमाप्तवान् । जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा पुत्रशोकसमन्वितः ।।२४३
निराहारो यतिर्भूत्वा मृतः स्वर्गपुरं ययौ । सहोड्डीनेन स नृपः कृत्वा युद्धं भयङ्करम् ।।२४४
सप्ताहोरात्रमात्रेण म्लेच्छराजवशं गतः । मारितो बहुयत्नेन महीराजो न वै मृतः ।।२४५
तदा म्लेच्छस्सहोड्डीनो निर्बन्धनमथाकरोत् । ज्योतिरूपस्थितं तत्र चन्द्रभट्टो नृपाज्ञया ।।
क्षुरप्रेण च बाणेन हत्वा वह्नौ ददाह वै ।।२४६
विद्युन्माला स च म्लेच्छो गृहीत्वा च धनं बहु । तत्रास्थाप्य स्वदासं च कुतुकोड्डीनमागतः ।।२४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२
।। इति तृतीयखण्डं समाप्तम् ।।

जाकर उनसे समस्त वृतान्त का वर्णन किया । उस समय दैत्यराज बलि ने अपने दश सहस्र सैनिकों समेत और देश में जाकर सहोड्डीन (सहाबुद्दीन) से कहा—वीर ! मैं तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा, इसी रात में अपनी सेना समेत चलो और पृथ्वीराज को पराजित कर विद्वन्माला का ग्रहण करो ! इसे सुनकर उसने अपने सवा लाख सैनिकों समेत कुरुक्षेत्र को प्रस्थान किया । सोलह दिन की यात्रा करके वहाँ पहुँचने पर युद्ध में पृथ्वीराज के अन्य पुत्रो पर विजय प्राप्ति पूर्वक महावती (महोबा) चला गया । वहाँ महीपति (माहिल) के द्वारा वहाँ के धन-रत्नों को लूट लिया । कीर्तिसागर में लिङ्गार्थ राजा ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हो सके विवश होकर अपने घर लौटने पर उन्होंने लक्षचण्डी के अनुष्टान को सुसम्पन्न करके परम आनन्द की प्राप्ति की । उसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने पुत्रशोक से आहत होकर यती के वेश में निराहार रहना आरम्भ किया, जिससे अल्पकाल में ही उन्हें स्वर्ग को प्रस्थान करना पड़ा । राजा पृथ्वीराज सहोड्डीन (सहाबुद्दीन) के साथ भयंकर युद्ध करते हुए सातवें दिन पकड़ लिये गये । उस म्लेच्छराज ने उनके मारने के लिए अनेक यत्न किया, किन्तु वे मर न सके । उस समय विवश होकर सहोड्डीन (सहाबुद्दीन) ने उन्हें बन्धन मुक्त कर दिया । उसी बीच राजा पृथ्वीराज की आज्ञा से चन्द्रभट्ट ने जिस समय वहाँ एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न हुई, अपने तीक्ष्ण वाण द्वारा उनका निधन कर उनका अग्नि संस्कार कर दिया । पश्चात् उस म्लेच्छराज ने असंख्य धनराशि समेत विद्वन्माला का अपहरण करके कुतुकोड्डीन (कुतुबुद्दीन) नामक अपने एक सेवक को वहाँ नियुक्तकर स्वयं अपने प्रदेश को प्रस्थान किया ।२२३-२४७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

चतुर्थखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

वेदव्यास उवाच

एवं द्वापरसन्ध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम्। सूर्यचन्द्रान्वयाख्यानं तन्मया कथितं तव ॥१
विशालायां पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम्। कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ॥२
तन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम्। पुनर्विक्रमभूपेन भविष्यति समाह्वयः ॥३
नैमिषारण्यमासाद्य श्रावयिष्यति वै कथाम्। पुनरुक्तानि यान्येव पुराणाष्टादशानि वै ॥४
तानि चोपपुराणानि भविष्यन्ति कलौ युगे। तेषां चोपपुराणानां द्वादशाध्यायमुत्तमम् ॥५
सारभूतश्च कथित इतिहाससमुच्चयः। यस्ते मया च कथितो हृषीकोत्तम ते मुदा ॥६
विक्रमाख्यानकालान्तेऽवतारः कलया हरेः। स च शक्त्यावतारो हि राधाकृष्णस्य भूतले ॥७
तत्कथां भगवान्सूतो नैमिषारण्यमास्थितः। अष्टाशीतिसहस्राणि श्रावयिष्यति वै मुनीन् ॥८
यत्तन्मया च कथितं हृषीकोत्तम ते मुदा। पुनस्ते शौनकाद्याश्च कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥९
सूतपार्श्वं गमिष्यन्ति नैमिषारण्यवासिनः। तत्पृष्टेनैव सूतेन यदुक्तं तच्छृणुष्व भोः ॥१०

चतुर्थ खण्ड

अध्याय १

प्रमरवंश का वर्णन

वेद व्यास जी बोले—द्वापर के अन्तिम सन्धिकाल में सूतजी ने सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं के वंश वृत्तान्त का जिस प्रकार वर्णन किया था, मैंने तुम्हें सुना दिया। विशाला नगरी में जाकर वैताल निर्मित जिस इतिहाससमुच्चय का वर्णन पुनः सूतजी जिस प्रकार करेंगे पुण्यप्रद उस इतिहास को भी मैंने सुना दिया है। राजा विक्रमाजीत द्वारा पुनः निमंत्रित होने पर नैमिषारण्य क्षेत्र में सूतजी जिन अष्टादश पुराणों एवं उपपुराणों की कथा सुनायेंगे वही कलियुग में भी प्रचलित होंगे। उन उपपुराणों के सारभूत इतिहासों का वर्णन बारह अध्याय में किया गया है, उसे तथा विक्रमकाल के अन्त में इस पृथ्वी पर भगवान् का जो आंशिक अवतार होगा, वह राधाकृष्ण का शक्त्यावतार कहा जायेगा। भगवान् सूत नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचकर अट्ठासी सहस्र महर्षियों को उनकी कथा का वर्णन करेंगे, उस पुण्यप्रद कथा को मैंने सुना दिया। नैमिषारण्य निवासी वे शौनकादि ऋषिगण स्नान आदि क्रियाओं से निवृत्त होने के उपरांत सूत के पास जायेंगे और वहाँ जाकर उन सबके पूछने पर सूत जी जो कुछ उत्तर देंगे, उसे कह रहा हूँ, सुनो ! ।१-१०

ऋषय ऊचुः

श्रुतं कृष्णस्य चरितं भगवन्भवतोदितम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि राज्ञां तेषां क्रमात्कुलम् ।।११
चतुर्णां वह्निजातानां परं कौतूहलं हि नः । स हरिस्त्रियुगी प्रोक्तः कथं जातः कलौ युगे ।।१२

सूत उवाच

कथयामि मुनिश्रेष्ठा युष्माकं प्रश्नमुत्तमम् । अग्निवंशनृपाणां च चरित्रं शृणु विस्तरात् ।।१३
प्रमरश्च महीपालो दक्षिणां दिशमास्थितः । अम्बया रचितां दिव्यां प्रमराय पुरीं शुभाम् ।।१४
निवासं कृतवान्राजा सामवेदपरो बली । षड्वर्षाणि कृतं राज्यं तस्माज्जातो महामरः ।।१५
त्रिवर्षं च कृतं राज्यं देवापिस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं देवदूतस्ततोऽभवत् ।।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शृणु तत्कारणं मुने ।।१६
अशोके निहते तस्मिन्बौद्धभूपे महाबले । कलिर्भास्करमाराध्य तपसा ध्यानतत्परः ।।१७
पञ्चवर्षान्तरे सूर्यस्तस्मै च कलये मुदा ।। शकाख्यं नाम पुरुषं ददौ तद्भक्तितोषितः ।।१८
तदा प्रसन्नः स कलिः शकाय च महात्मने । तैत्तिरं नगरं प्रेम्णा ददौ हर्षितमानसः ।।१९
तत्र गोपान्दस्युगणान्वशीकृत्य महाबली । आर्यदेशविनाशाय कृत्वोद्योगं पुनः पुनः ।।
हतवान्भूपतीन्बाणैस्तस्मात्ते स्वल्पजीविनः ।।२०

ऋषियों ने कहा—आपके मुख से उदीयमान उस भगवान् कृष्ण के चरित्रों को हम लोगों ने भली-भाँति सुन लिया है । अब इस समय उन अग्निवंशीय चारों राजाओं के वंश-वृत्तान्त, हम लोग सुनना चाहतें हैं तथा भगवान त्रियुगी बताये जाते है अर्थात् (तीनों ही युगों में अवतरित होते हैं) पुनः कलियुग में उनका अवतरित होना कैसे बताया गया है ? ११-१२

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आपका प्रश्न अत्यन्त उत्तम है, मैं इसका उत्तर अवश्य दूंगा और अग्निवंशीय राजाओं के चरित्र का सविस्तार वर्णन भी करूँगा ।राजा अमर एक दिव्य एवं शुभ नगरी में निवास करता था, जिसका निर्माण भगवती अम्बिका द्वारा हुआ था। उस सामवेदी एवं बली राजा के ६ वर्ष राज्य करने पर उनके महामर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके तीन वर्ष राज्य करने पर देवापि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया है। मुने ! उनके देवदूत नामक पुत्र हुआ। उसने भी अपने पिता के समान समय तक राज्य किया है, इसके कारण को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! महाबली एवं बौद्ध धर्मावलम्बी राजा अशोक के स्वर्गीय होने के उपरांत कलि ने तप द्वारा भगवान् भास्कर की उपासना की । पाँचवे वर्ष सूर्य ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर शक नामक एक पुरुष कलि को प्रदान किया। उस समय हर्षमग्न होकर कलि ने महात्मा शक के लिए तैत्तिर नामक नगर प्रदान किया। उस महाबली ने वहाँ रहकर गोप एवं दस्युगणों को अपने अधीन करके आर्यदेश के विनाशार्थ बार-बार प्रयत्न किया, जिससे उसके वाणों द्वारा राजाओं का घोर विनाश हो गया। इसीलिए वे अल्पायु कहे जाते हैं। १३-२०। देवदूत के पुत्र बलीराजा गन्धर्वसेन पचास वर्ष तक सिंहासनासीन रहने के पश्चात् तप करने चले गये। भगवान् शिवजी के प्रसन्न

गन्धर्वसेनश्च नृपो देवदूतात्मजो बली । शताद्धाब्दं पदं कृत्वा तपसे पुनरागतः ॥२१
शिवाज्ञया च नृपतिर्विक्रमस्तनयस्ततः । शतवर्षं कृतं राज्यं देवभक्तस्ततोऽभवत् ॥
दशवर्षं कृतं राज्यं शकैर्दुष्टैर्लयं गतः ॥२२
शालिवाहन एवापि देवभक्तस्य चात्मजः । जित्वा शकान्स षष्टचब्दं राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२३
शालिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं कृत्वा शताद्धकम् । स्वर्गलोकं ततः प्राप्तस्तत्सुतः शालिवर्द्धनः ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शकहन्ता ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुहोत्रस्तनयोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हविर्होत्रस्ततोऽभवत् पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमिन्द्रपालस्ततोऽभवत् ॥२६
पुरीमिन्द्रावतीं कृत्वा तत्र राज्यमकारयत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माल्यवान्नाम तत्सुतः॥
पुरीं माल्यवतीं कृत्वा पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७
अनावृष्टिस्ततश्चासीन्महती चतुरब्दिका । ततः क्षुधातुरो राजाश्वविष्ठाधान्यगर्हितम् ॥२८
संस्कृत्य मन्दिरे राजा शालग्रामाय चार्पयत् । तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं नभसेरितम् ॥२९
कृत्वा ददौ वरं तस्मै शृणु तन्मुनिसत्तम । कुले यावन्नृपा भाव्यास्तव भूपतिसत्तम ॥
अनावृष्टिर्न भविता तावत्ते राष्ट्र उत्तमे ॥३०
सुतो माल्यवतश्चासीच्छम्भुदत्तो हरप्रियः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भौमराजस्ततोऽभवत् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सराजस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भोजराजस्ततोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शम्भुदत्तस्ततोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं भोजराजपितुस्समम् ॥३३
शम्भुदत्तस्य तनयो बिन्दुपालस्ततोऽभवत् । बिन्दुखण्डं च राष्ट्रं वै कृत्वा स सुखितोऽभवत् ॥
तेन राज्यं पितुस्तुल्यं कृतं वेदविदा मुने ॥३४

होने पर विक्रम नामक पुत्र उनके उत्पन्न हुआ। उनके सौ वर्ष राज्योपभोग करने पर देवभक्त नामक पुत्र हुआ। जो दश वर्ष तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित रहकर पश्चात् शकों द्वारा विनष्ट हो गया। उस देवभक्त के शालिवाहन नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसने शकों पर विजयप्राप्ति पूर्वक साठ वर्ष तक राज्य करने के उपरांत स्वर्ग को प्रस्थान किया। उनके शालिहोत्र नामक पुत्र हुआ जो पचास वर्ष तक राज्य कर स्वर्गीय हो गया। उनके शालिवर्द्धन, शालिवर्द्धन के शकहन्ता, शकहन्ता के सुहोत्र, सुहोत्र के हविर्होत्र, हविर्होत्र के इन्द्रपाल हुए, जिसने इन्द्रावती नामक नगरी का निर्माण कराकर राज्य किया। उनके माल्यवान् नामक पुत्र हुए, जिसने माल्यवती नामक पुरी का निर्माण कराया था। इस राजा के राजकाल में चार वर्ष तक लगातार अनावृष्टि हो रही थी। उस समय क्षुधा से व्यथित होकर इस राजा ने विष्टा (मल) में उत्पन्न धान्य से बनाये गये भोजन पदार्थ मन्दिर में ले जाकर भगवान् शालग्राम को अर्पित किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा वरप्रदान किया। मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! भूपश्रेष्ठ ! इस भूतल में तुम्हारे वंश के राजा जब तक सिंहासनासीन होकर प्रतिष्ठित रहेंगे, तब तक तुम्हारे इस उत्तमराष्ट्र में अनावृष्टि कभी नहीं होगी। पुनः उनके भगवान् शिव का प्रिय शभुंदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।२१-३३। उसके भौमराज, भौमराज के वत्सराज, वत्सराज के भोजराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उपरोक्त इन सभी राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक ही राज्य का उपभोग किया है। भोजराज

बिन्दुपालस्य तनयो राजापालस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो महीनरः ॥३५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमवर्मा नृपोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कामवर्मा सुतोऽभवत् ॥३६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूमिपालस्ततोऽभवत् । भूसरस्तेन खनितं पुरं तत्र शुभं कृतम् ॥३७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रङ्गपालस्ततोऽभवत् । भूमिपालस्तु नृपतिर्जित्वा भूपाननेकशः ॥३८
वीरसिंहस्ततो नाम्ना विख्यातोऽभून्महीतले । स्वराज्ये रङ्गपालं स चाभिषिच्य वनं ययौ ॥
तपः कृत्वा दिवं यातो देवदेवप्रसादतः ॥३९
कल्पसिंहस्ततो जातो रङ्गपालान्नृपोत्तमात् । अनपत्यो हि नृपतिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४०
एकदा जाह्नवीतोये स्नानार्थं मुदितो ययौ । दानं दत्त्वा द्विजातिभ्यः कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् ॥४१
पुण्यभूमिं समालोक्य शून्यभूतां स्थलीमपि । नगरं कारयामास तत्र स्थाने मुदान्वितः ॥४२
कलापनगरं नाम्ना प्रसिद्धमभवद्भुवि । तत्र राज्यं कृतं तेन गङ्गासिंहस्ततोऽभवत् ॥४३
नवत्यब्दवपुर्भूत्वा सोऽनपत्यो रणं गतः । त्यक्त्वा प्राणान्कुरुक्षेत्रे स्वर्गलोकमवाप्तवान् ॥
समाप्तिमगमद्विप्र प्रमरस्य कुलं शुभम् ॥४४
तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनन्तरम् । तन्नारीष्वमितो विप्र बभूव वर्णसङ्करः ॥४५

के शम्भुदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता से दश वर्ष कम समय तक राज्य किया । शम्भुदत्त के पुत्र विन्दुपाल हुए, जिसने विंदुखण्ड नामक राष्ट्र का निर्माण कर अपने पिता के समानकाल तक सुखी जीवन व्यतीत किया । मुने ! विन्दुपाल के राजपाल, राजपाल के महीनर, महीनर के सोमवर्मा, सोमवर्मा के कामवर्मा, कामवर्मा के भूमिपाल नामक पुत्र हुआ, जिसने पृथ्वी में एक सरोवर खनकर उसमें एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया । उसके रंगपाल नामक पुत्र हुआ । भूमिपाल ने अनेक राजाओं पर विजय प्राप्ति की । इससे इस महीतल में वीरसिंह के नाम से उनकी ख्याति हुई । उसने अपने पदपर अपने पुत्र रंगपाल का अभिषेककर स्वयं वन को प्रस्थान किया । वहाँ भगवान् देवाधिदेव की प्रसन्नता से स्वर्ग लोक की प्राप्ति की । उस नृपश्रेष्ठ रंगपाल के कल्पसिंह नामक पुत्र हुआ । इन सभी राजाओं का राजकाल उनके पिता के समान ही बताया गया है । कल्पसिंह ने संतानहीन ही रहकर अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया है । एक बार प्रसन्न होकर उस राजा ने गंगा स्नानार्थ प्रस्थान किया । वहाँ स्नान एवं ब्राह्मणों को दान प्रदान करके वह कल्पक्षेत्र चला गया । उस पवित्रभूमि को शून्य देखकर वहाँ एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया, इस पृथ्वी में जो कलाप नगर से प्रख्यात हुआ । वहाँ राज्य करते समय उसके गंगासिंह नामक पुत्र हुआ, जो सन्तानहीन रहकर नब्बे वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् कुरुक्षेत्र में जाकर उसने घोर संग्राम करके प्राणविसर्जनकर स्वर्ग की प्राप्ति की। विप्र ! इस प्रकार प्रमर का शुभ कुल समाप्त हो गया।३४-४४। उसके अनन्तर उनके कुल में शेष क्षत्रियों ने उनकी स्त्रियों से सम्पर्क स्थापित किया, जिससे वर्णसंकरों की उत्पत्ति हुई। विप्र ! वे वर्णसंकर इस पृथ्वी पर वैश्यों की वृत्ति का

वैश्यवृत्तिकराः सर्वे म्लेच्छतुल्या महीतले । इति ते कथितं विप्र कुलं दक्षिणभूपतेः ॥४६

इति श्रीभविष्य महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

सूत उवाच

वयहानिर्महीपालो मध्यदेशे स्वकं पदम् । गृहीत्वा ब्रह्मरचितमजमेरमवासयत् ॥१
अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता । तया च नगरं रम्यमजमेरमजं स्मृतम् ॥२
दशवर्षं कृतं राज्यं तोमरस्तत्सुतोऽभवत् ।पार्थिवैः पूजयामास वर्षमात्रं महेश्वरम् ॥३
इन्द्रप्रस्थं ददौ तस्मै प्रसन्नो नगरं शिवः । तदन्वये च ये जातास्तोमराः क्षत्रियाः स्मृताः ॥४
तोमरावरजश्चैव चयहानिसुतः शुभः । नाम्ना सामलदेवश्च प्रथितोऽभून्महीतले ॥५
सप्तवर्षं कृतं राज्यं महादेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमजयश्च ततोभवत् ॥६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं ततोबिन्दुसुरोऽभवत् ॥७

अनुसरण करते हुए म्लेच्छों के साथ रहकर अपने जीवन व्यतीत किये । विप्र ! इस प्रकार दक्षिणी राजाओं की वंश परम्परा बता दी गई ।४५-४६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
प्रमरवंश वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

प्रमरवंश का वर्णन

सूतजी बोले—मध्यप्रदेश का निवासी राजा वयहानि ने अपने सिंहासनारूढ़ होने पर ब्रह्म निर्मित उस अजमेर को अपनी राजधानी बनाया । अजन्मा और उस ब्रह्म निर्मित उस अजमेर को अपनी राजधानी बनाया । अजन्मा और उसकी माँ (लक्ष्मी) ने, जिन्हें रमा का भी सहयोग प्राप्त था वहाँ आकर उस नगर का निर्माण कराया था । इसीलिए उसका नाम 'अजमेर' हुआ है । दशवर्ष राज्य-भार संभालने के उपरांत उनके तोमर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने एक वर्ष तक पार्थिव-पूजन द्वारा भगवान् महेश्वर की आराधना की । उस आराधना से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) नामक नगर प्रदान किया । उसी समय से उनके कुल में उत्पन्न होने वाले क्षत्री तोमरवंशी कहे जाने लगे। चयहानि के पुत्र जो तोमर के छोटे भाई का पुत्र था, इस भूतल में उसकी सामलदेव नाम से ख्याति हुई। सात वर्ष राज्य के उपभोग करने पर उनके महादेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। महादेव के अजय और अजय के वीरसिंह नामक पुत्र हुआ, जिसने शताब्दी के आधे समय (पचास वर्ष) तक राज्य किया

पितुरर्द्धं कृतं राज्यं मध्यदेशे महात्मना । तस्माच्च मिथुनं जातं वीरा वीरविहात्तकः ॥८
विक्रमाय ददौ वीरां पिता वेदविधानतः । स्वपुत्राय स्वकं राज्यं मध्यदेशान्तरं मुदा ॥९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माणिक्यस्तत्सुतोऽभवत् । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं महासिंहस्ततोऽभवत् ॥१०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चन्द्रगुप्तस्ततोऽभवत् । पितुरर्द्धं कृतं राज्यं तत्सुतश्च प्रतापवान् ॥११
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मोहनस्तत्सुतोऽभवत् । त्रिंशदब्दं कृतं राज्यं श्वेतरायस्ततोऽभवत् ॥१२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नागवाहस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं लोहधारऽस्ततोऽभवत् ॥१३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विबुधस्तत्सुतोऽभवत् ॥१४
शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं चन्द्ररायस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो हरिहरोऽभवत् ॥१५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसन्तस्तस्य चात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाङ्गस्तनयोऽभवत् ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रमथस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमङ्गरायस्ततोऽभवत् ॥१७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विशालस्तस्य चात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शार्ङ्गदेवस्ततोऽभवत् ॥१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मन्त्रदेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जयसिंहस्ततोऽभवत् ॥१९
आर्यदेशाश्च सकला जितास्तेन महात्मना । तद्धनैः कारयामास यज्ञं बहुफलप्रदम् ॥२०
ततश्चानन्द देवो हि जातःपुत्रः शुभाननः । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं जयसिंहेन धीमता ॥२१
तत्सुतेन पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महीतले । सोमेश्वरस्तस्य सुतो महाशूरो बभूव ह ॥२२
अनङ्गपालस्य सुतो ज्येष्ठां वै कीर्तिमालिनीम् । तामुद्वाह्य विधानेन तस्यां पुत्रानजीजनत् ॥२३

और शेष राजगण अपने पिता के समान काल तक । उस महात्मा राजा विंदुसुर ने, जो वीर- सिंह का पुत्र था, मध्य प्रदेश में अपने पिता के राजकाल के आधे समय तक सिंहासनासीन रहकर 'वीरा और वीर' नामक एक कन्या एवं पुत्र को जुड़वा उत्पन्न किया । कन्या के पिता ने वेदविधान द्वारा उसका पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराया । पश्चात् हर्षमग्न होकर अपने पदपर अपने पुत्र को प्रतिष्ठित किया । पुनः राजा वीर के माणिक्य पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया तनन्तर उसके महासिंह तथा महासिंह के चन्द्रगुप्त हुए, जिसने पिता के आधे समय तक राज्य किया और शेष उपरोक्त सभी राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक । चन्द्रगुप्त के प्रताप, एवं प्रताप के मोहन हुए जिसने तीस वर्ष तक राज्य किया तथा शेष राजाओं ने अपने पैत्रिक राजकाल के समान काल तक । अनन्तर उसके श्वेतराय हुए । श्वेतराय के नागवाहन, नागवाहन के लोहधार, लोहधार के वीरसिंह और वीरसिंह के विवुध नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया और शेष लोगों ने अपने पिता के समान काल तक । पुनः विबुध के चन्द्रराय, चन्द्रराय के हरिहर, हरिहर के वसंत; वसंत के बलांग, बलांग के प्रमथ, प्रमथ के अंगराय, अंगराय के विशाल, विशाल के शार्ङ्गदेव, शार्ङ्गदेव के मंत्रदेव और मंत्रदेव के जयसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने पचास वर्ष तक सिंहासनासीन रहकर सम्पूर्ण आर्य प्रदेशों पर विजय प्राप्तकर उसके धनों द्वारा अत्यन्त फलयुद्ध एक महान् यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न कराया ।१-२० पश्चात् उनके आनन्ददेव नामक पुत्र रत्न हुआ, और आनन्ददेव के महापराक्रमी सोमेश्वर नामक पुत्र हुआ जिसने अनंगपाल की ज्येष्ठपुत्री कीर्ति- मालिनी के साथ पाणिग्रहण करके तीन पुत्रों को उत्पन्न किया । ज्येष्ठ पुत्र का धुंधुकार (धांधू) नाम था,

धुन्धुकारश्च वै ज्येष्ठो मथुराराष्ट्रसंस्थितः । मध्यः कुमाराख्यसुतः पितुः पदसमास्थितः ।।२४
महीराजस्तु बलवांस्तृतीयो देहलीपतिः । सहोद्दीनस्य नृपतेर्वशमाप्य मृतिं गतः ।।२५
चपहानेश्च स कुलं छाययित्वा दिवं ययौ । तस्य वंशे तु राजन्यास्तेषां पत्न्यः पिशाचकैः ।।२६
म्लेच्छैश्च भुक्तवत्यस्ता बभूवुर्वर्णसङ्कराः । न वै आर्या न वै म्लेच्छा जट्टा जात्या च मेहनाः ।।२७
मेहना म्लेच्छजातीया जट्टा आर्यनयाः स्मृताः । क्वाचित्क्वाचिच्च ये शेषाः क्षत्रियाश्चपहानिजाः ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

सूत उवाच

शुक्लवंशं प्रवक्ष्यामि शृणु विप्रवरादितः । यदा कृष्णः स्वयं ब्रह्म त्यक्त्वा भूमिं स्वकं पदम् ।।१
दिव्यं वृन्दावनं रम्यं प्रययौ भूतले तदा । कलेरागमनं ज्ञात्वा म्लेच्छपा द्वीपमध्यगे ।।२
स्थिता द्वीपेषु वै नाना मनुजा वेदतत्पराः । कलिनामित्रधर्मेण दूषितास्ते बभूविरे ।।३
अष्टषष्टिसहस्राणां वर्षाणां मुनिसत्तम । अद्य प्रभृति वै जातः कालः कलिसमागमे ।।४

जो मथुराराज्य का अधीश्वर था । मध्यम पुत्र का नाम कुमार था, अपने पिता के पदपर ही प्रतिष्ठित था और कनिष्ट पुत्र का नाम पृथ्वीराज था, जिसने दिल्ली सिंहासन पर प्रतिष्ठित होकर राजा सहोद्दीन (सहाबुद्दीन) के अधीन होने पर अपना प्राणविसर्जन किया । उसी ने चयहानि वंश का समूलनाश कराया था । उनके वंश में शेष राजाओं की पत्नियों के उपभोग उन म्लेच्छों ने किया, जिससे वर्णसंकरों की उत्पत्ति हुई । चयहानि वंश के कुछ क्षत्रिय गणों की, जो इधर-उधर रह रहे थे उस समय की प्रचलित म्लेच्छ, जट्टा (जाट) और मेहन जातियों में गणना नहीं की जा सकती थी, क्योंकि वे सभी में सम्मिलित थे । उस समय मेहन को म्लेच्छ और जट्ट (जाट) को आर्य कहा जाता था ।२१-२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
प्रमर वंश वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

प्रमरवंश का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रवर ! मैं शुक्लवंश का आरम्भ से वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! जिस समय भगवान् कृष्ण ने वृन्दावन नामक अपने दिव्यस्थान को त्यागकर दिव्यलोक की यात्रा की, उस समय कलि के आगमन एवं म्लेच्छ राजाओं की अधीनता न स्वीकारकर जो वैदिकधर्म के अनुयायी मनुष्यगण द्वीपों में जा-जाकर निवास कर रहे थे, उन्हें भी म्लेच्छ धर्मानुयायी कलि ने उनके धर्मों से वंचित कर दूषित कर दिया। मुनिसत्तम ! अड़सठ सहस्रवर्ष आज कलि के आगमन में बीत चुका।१-४।

षष्टिवर्षसहस्राणि द्वीपराज्यमचीकरत् । स कलिर्म्लेच्छया सार्धं सूर्यपूजनतत्परः ।।५
तत्पश्चाद्भारते वर्षे म्लेच्छया कलिरायर्यौ । दृष्ट्वा तद्भारतं वर्षं लोकपालैश्च पालितम् ।।६
भयभीतस्त्वराविष्टो गन्धर्वाणां यशस्करः । स कलिः सूर्यमाराध्य समाधिस्थो बभूव ह ।।७
ततो वर्षशताब्दान्ते सन्तुष्टो रविरागतः । सोंऽशुभिर्लोकमातप्य महावृष्टिमकारयत् ।।८
चतुर्वर्षसहस्राणि चतुर्दशशतानि च । व्यतीतानि मुनिश्रेष्ठ चाद्य प्रभृति संलपे ।।९
सम्पन्नं भारतं वर्षं तदा जातं समन्ततः । न्यूहाख्यो यवनो नाम तेन वै पूरितं जगत् ।।१०
सहस्राब्दकलौ प्राप्ते महेन्द्रो देवराट् स्वयम् । काश्यपं प्रेषयामास ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ।।११
आर्यावती देवशक्तिस्तत्करं चाग्रहीन्मुदा । दशपुत्रान्समुत्पाद्य स द्विजो मिश्रमागमत् ।।१२
मिश्रदेशोद्भवान्म्लेच्छान्वशीकृत्यायुतं मुदा । स्वदेशं पुनरागत्य शिष्यांस्तान्स चकार ह ।।१३
नष्टाद्यां सप्तपुर्यां च ब्रह्मावर्ते महोत्तमम् । सरस्वतीदृषद्वत्योर्मध्यगं तत्र चावसत् ।।१४
स्वपुत्रं शुक्लमाहूय द्विजश्रेष्ठं तपोधनम् । आज्ञाप्य रैवतं शृङ्गं तपसे तु पुनः स्वयम् ।।१५
नवपुत्रांस्तथा शिष्यान्मनुधर्मं सनातनम् । श्रावयामास धर्मात्मा स राजा मनुधर्मगः ।।१६
शुक्लोऽपि रैवतं प्राप्य सच्चिदानन्दविग्रहम् । वासुदेवं जगन्नाथं तपसा समतोषयत् ।।१७
तदा प्रसन्नोभगवान्द्वारकानायको बली । करे गृहीत्वा तं विप्रं समुद्रान्तमुपाययौ ।।१८
द्वारकां दर्शयामास दिव्यशोभासमन्विताम् । व्यतीते द्विसहस्राब्दे किञ्चिज्जाते भृगूत्तम ।१९
अग्निद्वारेण प्रययौ स शुक्लोऽर्वुदपर्वते । जित्वा बौद्धान्द्विजैः सार्धं त्रिभिरन्यैश्च बन्धुभिः ।।२०

साठ सहस्र वर्ष तक उसने द्वीपों में राज्य किया । पश्चात् म्लेच्छ के साथ सूर्य की आराधना की । तदुपरांत भारत वर्ष में म्लेच्छ समेत उसका आगमन हुआ । लोकपालों द्वारा सुरक्षित इस भारत वर्ष को देखकर वह अत्यन्त भयभीत हुआ, किन्तु गंधर्वों के यशस्वी उस कलि ने सूर्य की आराधना पूर्वक शीघ्र ही समाधि लगाना आरम्भ किया सौ वर्ष के उपरांत उसकी आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य ने अपनी किरणों द्वारा इस लोक को संतप्त करके महावृष्टि की । मुनिश्रेष्ठ ! इस घटना को हुए आज चार सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके । पश्चात् भारतवर्ष सभी प्रकार से सम्पन्न हुआ, क्योंकि उस समय संसार की पूर्ति न्यूह नामक यवन ने किया था । कलि के एक सहस्त्र वर्ष व्यतीत होने पर देवसम्राट महेन्द्र ने स्वयं इस महोत्तम ब्रह्मावर्त प्रदेश में काश्यप को भेजा । उन्होंने आर्यवर्ती नामक देवशक्ति का पाणिग्रहण करके उससे दश पुत्रों की उत्पत्ति के उपरांत मिस्र देश को प्रस्थान किया ।५-१२। वहाँ के दश सहस्र म्लेच्छों को अपने अधीनकर अपने देश लौटने पर उन्हें शिष्य बनाया । पश्चात् सातों पुजारियों के नष्ट हो जाने पर पवित्र ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में, जो सरस्वती और हयद्वती के मध्य में स्थित है, उन्हें निवास करने के लिए आज्ञाप्रदान किया । अनन्तर अपने पुत्र शुक्ल को जो ब्राह्मणश्रेष्ठ एवं महान् तपस्वी था, रैवत पर्वत के शिखरपर तप करने के लिए आदेश देकर शेष नव पुत्रों और शिष्यों को मनुधर्म का अनुयायी बनाकर उस धर्मात्मा राजा ने सनातन मनुधर्म का उपदेश दिया । शुक्ल ने भी रैवतपर्वत पर पहुँचकर सत्, चित् और आनन्द रूप वाले उस जननाथ वासुदेव को अपने तप द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट किया, जिससे प्रसन्न होकर बली एवं द्वारकाधीश्वर भगवान् ने उस ब्राह्मण का हाथ पकड़कर समुद्र के भीतर प्रस्थान किया । वहाँ दिव्य शोभा सम्पन्न उस द्वारका का दर्शन कराया । भृगूत्तम ! दो सहस्र वर्ष बीतने पर वह शुक्ल अग्निमार्ग से अर्वुद पर्वतपर पहुँच गया । वहाँ अपने तीन

द्वारकां कारयामास हरेश्च कृपया हि सः । तत्रोष्य मुदितो राजा कृष्णध्यानपरोऽभवत् ।।२१
पश्चिमे भारते वर्षे दशाब्दं कृतवान्पदम् । नारायणस्य कृपया विष्वक्सेनः सुतोऽभवत् ।।२२
विंशदब्दं कृतं राज्यं जयसेनस्ततोऽभवत् । त्रिंशदब्दं कृतं राज्यं विसेनस्तस्य चात्मजः ।।२३
शतार्धाब्दकृतं राज्यं मिथुनं तस्य चाभवत् । प्रमोदो मोदसिंहश्च विक्रमाय निजां सुताम् ।।२४
विसेनश्च ददौ प्रीत्या राष्ट्रं पुत्राय चोत्तमम् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सिन्धुवर्मा सुतोऽभवत् ।।२५
सिन्धुकूले कृतं राज्यं त्यक्त्वा तत्पैतृकं पदम् । सिन्धुदेशस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोभून्महीतले ।।२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राज्ञा वै सिन्धुवर्मणा । सिन्धुद्वीपस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।२७
श्रीपतिस्तस्य तनयो गौतमान्वयसम्भवाम् । काच्छपीं महिषीं प्राप्य कच्छदेशमुपाययौ ।।२८
पुलिन्दान्यवनाञ्जित्वा तत्र देशमकारयत् । देशो वै श्रीपतिर्नाम्ना सिन्धुकूले बभूव ह ।।२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भुजवर्मा ततोऽभवत् । जित्वा स शबरान्भिल्लांस्तत्र राष्ट्रमकारयत् ।।३०
भुजदेशस्ततो जातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रणवर्मा सुतोऽभवत् ।।३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चित्रवर्मा सुतोऽभवत् । कृत्वा स चित्रनगरीं वनमध्ये नृपोत्तमः ।।३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मवर्मा सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कृष्णवर्मा सुतोऽभवत् ।।३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुदयस्तत्सुतोऽभवत् । कृत्वोदयपुरं रम्यं वनमध्ये नृपोत्तमः।।३४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वाप्यकर्मा सुतोऽभवत् । वापीकूपतडागानि नानाहर्म्याणि तेन वै ।।३५

भाइयों और ब्राह्मणों के साथ बौद्धों को जीतकर भगवान् की कृपावश द्वारका नगर स्थापित किया। पश्चात् वहाँ रहते हुए उन्होंने भगवान् कृष्ण का ध्यान करना प्रारम्भ किया। १३-२१। पश्चिमीय भारत में अधीश्वर के पदपर दश वर्ष तक प्रतिष्ठित रहने के उपरांत भगवान् की कृपा से उनके विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बीस वर्ष राज्य करने पर उसके जयसेन हुए जिसके तीस वर्ष तक राज्य करने के उपरांत विसेन नामक पुत्र हुआ। पचास वर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न हुए। जिनका प्रमोद और मोदसिंह नाम था। राजा विसेन ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराकर अपना उत्तमराज्य अपने पुत्र को सौंप दिया। अपने पिता के समानकाल तक राज्य करने पर सिंधुवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अपने पिता के राज्य का त्यागकर सिंधुतट पर अपना दूसरा राष्ट्र स्थापित किया। उसी समय से इस भूतल में वह सिंधुदेश के नाम से प्रख्यात हुआ। पुनः उस सिंधुधर्मी राजा के सिंधुद्वीप और सिंधुद्वीप के पति हुए, जिसने गौतमकुल में उत्पन्न उस काच्छपी नामक कन्या को रानी बनाकर उसी द्वारा कच्छदेश की प्राप्ति की। वहाँ पुलिन्दों और यवनों पर विजय प्राप्ति पूर्वक देश का निर्माण किया, जो सिंधुतट पर पति के नाम से ख्यातिप्राप्त है। पश्चात् उनके भुजवर्मा हुए, जिन्होंने शवर-भिल्लों को पराजित कर वहाँ राष्ट्र स्थापित किया। इसी से पृथ्वी में भुजदेश के नाम से उनकी ख्याति हुई है। भुजवर्मा के रणवर्मा, रणवर्मा के चित्रवर्मा हुए। इन्होंने वन के भीतर चित्रनगरी का निर्माण कराया है। चित्रवर्मा के धर्मवर्मा, धर्मवर्मा के कृष्णवर्मा, कृष्णवर्मा के उदय हुए, जिन्होंने वन के मध्य में उदयपुर नामक नगर को स्थापित किया। पुनः उदय के वाप्यवर्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने वावली, कूप एवं सरोवर आदि और अनेक महलों के निर्माण पूर्वक

धर्मार्थे कारयामास धर्मात्मा स च वै पुरम् । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो बलदो नाम भूपतिः ।।३६
लक्षसैन्ययुतो वीरो महामदमते स्थितः । तेन सार्धमभूद्युद्धं राज्ञो वै वाप्यकर्मणः ।।३७
जित्वा पैशाचकान्म्लेच्छान्कृष्णोत्सवमकारयत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गुहिलस्तत्सुतोऽभवत् ।।३८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालभोजः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राष्ट्रपालस्ततोऽभवत् ।।३९
स त्यक्त्वा पैतृकं स्थानं वैष्णवीं शक्तिमागमत् । तपसाराधयामास शारदां सर्वमङ्गलाम् ।।४०
प्रसन्ना सा तदा देवी कारयामास वै पुरीम् । महावतीं महारम्यां मणिदेवेन रक्षिताम् ।।४१
तत्रोष्य नृपतिर्धीमान्दशाब्दं राज्यमाप्तवान्। तस्योभौ तनयौ जातौ विजयः प्रजयस्तथा ।।४२।
प्रजयः पितरौ त्यक्त्वा गङ्गाकूलमुपाययौ । द्वादशाब्दं च तपसा पूजयामास शारदाम् ।।४३
कन्यामूर्तिमयी देवी वेणुवादनतत्परा । हयमारुह्य संप्राप्ता विहस्याह महीपतिम् ।।४४
किन्निमित्तं भूपसुतं त्वया चाराधिता शिवा । तत्फलं त्वं हि तपसा मत्तः शीघ्रमवाप्स्यसि ।।४५
इति श्रुत्वा स होवाच कुमारि मधुरस्वरे । नवीनं नगरं मह्यं कुरु देवि नमोस्तु ते ।।४६
इति श्रुत्वा तु सा देवी ददौ तस्मै हयं शुभम् । पुरो भूत्वा वाद्यकारी दक्षिणां दिशमागता ।।४७
स भूपो हयमारुह्य नेत्र आच्छाद्य चाययौ । पुनः स भूपतिः पश्चात्पश्चिमां दिशमागता ।।४८
ततोऽनुप्रययौ पूर्वमर्कणो यत्र पक्षिराट् । भयभीतो नृपस्तेन समुन्मील्य स चक्षुषी ।।४९

धर्मार्थ एक नगर का निर्माण कराया ।२२-३५। उसी बीच वलद नामक राजा ने मदान्ध होकर अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ से आकर इस राजा से युद्ध आरम्भ किया । राजा वाप्यवर्मा ने उस म्लेच्छ राजा को पराजित कर भगवान् कृष्ण का महान् उत्सव कराया । पश्चात् उनके गुहिल नामक पुत्र हुआ । गुहिल के कालभोज, कालभोज के राष्ट्रपाल उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने पिता के पद का त्यागकर वैष्णवी शक्ति उस सर्वमङ्गला शारदा की तप द्वारा आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर देवी जी ने महावती नामक अत्यन्त सुंदर पुरी का निर्माण किया, जो सदैव मणिदेव से सुरक्षित रहती थी । उपरोक्त ये सभी राजगण ने अपने-अपने पिता के समानकाल तक ही राज्य किये थे । उस बुद्धिमान् राजा राष्ट्रपाल के उस पुरी में दश वर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके विजय और अजय नामक दो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए, जिसमें अजय ने अपने पिता के पद का त्यागकर बारह वर्ष तक शारदा देवी की उपासना की । देवी ने कन्यारूप धारणकर वेणुवादन करती हुई घोड़े पर बैठकर उस राजा के सम्मुख जाकर कहा—राजपुत्र ! किसलिए तुमने पार्वती की आराधना की है ? कहो ! मैं वह फल प्रदान करने के लिए तैयार हूँ । इसे सुनकर उसने कहा—मधुर भाषण करने वाली कुमारी देवि! मेरे लिए एक नवीन नगर का निर्माण करो मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इसे सुनकर देवी जी ने उस शुभ घोड़े को उन्हें प्रदानकर आगे-आगे दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया । राजा भी उस घोड़े पर बैठकर अपने दोनों नेत्र को ढाँपे हुए उनके पीछे-पीछे जा रहा था । पश्चात् वह राजा पश्चिम दिशा की ओर आया ।३६-४८। वहाँ से पुनः पूर्व दिशा की ओर गया, जहाँ मर्कण नामक पक्षी रहता था । वहाँ पहुँचने पर भयभीत होकर

दद‍र्श नगरं रम्यं कन्यायां रचितं शुभम् । उत्तरे तस्य वै गङ्गा दक्षिणेनास पाण्डुरा ॥५०
पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कणः । कुब्जभूतमभूद्ग्रामं कान्यकुब्ज इति स्मृतः ॥५१
दशवर्षं च तेनैव जयपालेन वै पदम् । कृतं तस्य सुतो जातो वेणुवाद्याच्च वेणुकः ॥५२
स वेणुश्च महीपालो देवीदत्तां मनोहराम् । पत्नीं कन्यावतीं नाम्ना समुद्वाह्य रराज ह ॥५३
तस्यां सप्त सुता जाता मातृणां मङ्गलाः कलाः । शीतला पार्वती कन्या तथा पुष्पवती स्मृता ॥५४
गोवर्धनी च सिन्दूरा काली नाम्ना प्रकीर्तिता । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥५५
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डाः क्रमतोऽभवन् । एकदा भूपतेः पत्नी तंतुना मृत्तिकाघटन् ॥५६
कूपे कृतवती प्रेम्णा यथा पूर्वं तथाद्य सा । ददर्श बहुला नारीर्नानाभूषणभूषिताः ॥५७
स्वयमेकैव वसना मनोग्लानिमुपाययौ । तदैव स घटो भूमौ न प्राप्तः सप्रवृत्तिकाम् ॥५८
दृष्ट्वा कन्यावती देवी घटहीना गृहं ययौ । तदा तु सप्त कन्याश्च शिलाभूता गृहे स्थिताः ॥५९
श्रुत्वा वेणुस्तदागत्य भर्त्सयित्वा स्वकां प्रियाम् । ब्रह्मचर्यव्रतं त्यक्त्वा रमयामास योषितम् ॥६०
नृपाद्वै वीरवत्यां च यशोविग्रह आत्मजः । बभूव बलवान्धर्मी चार्यदेशपतिः स्वयम् ॥६१
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले । महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६२
चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् । कृतं तस्मात्सुतो जातो मन्दपालो महीपतिः ॥६३

राजा ने अपने नेत्रों को खोला, तो उस स्थान पर उस कन्या द्वारा रचित एक रमणीक नगर सामने दिखाई दिया, जिसके उत्तर की ओर गंगा, दक्षिण की ओर पाण्डुरा, पश्चिम की ओर ईश और पूर्व की ओर वही मर्कण नामक पक्षी रहता था । वह नगर कुब्ज (ऊँची-नीची भूमि होने के नाते कुब्ज) था, इसीलिए उसका नाम 'कान्यकुब्ज' हुआ । उस नगर के राजसिंहासन पर दश वर्ष तक आसीन रहने पर उनके वेणु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो वेणुवादन में अधिक रुचि रखता था । राजा वेणु ने देविप्रदत्त एक अत्यन्त मनोरम कन्यावती नामक कन्या के साथ पाणिग्रहण करके उसे अपनी सहधर्मिणी बनाया । उनकी उस स्त्री से सात कन्यायें उत्पन्न हुईं, जो माताओं की मांगलिक कला के रूप में थीं । शीतला, पार्वती, कन्या, पुष्पवती, गोवर्धनी, सिंदूरा और काली उन कन्याओं के नाम थे, जो क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा के नाम से प्रख्यात हुईं । एक बार उस राजा की पत्नी ने नित्य की भाँति उस दिन भी सूत की रस्सी से मिट्टी के घड़े को फाँसकर जल लेने के लिए कूएँ में लटकाया । उसी समय वहाँ और भी स्त्रियों का आगमन हुआ, जो सुन्दर वस्त्र एवं अनेक प्रकार के भूषणों से विभूषित थीं । उन्हें उस प्रकार सुसज्जित और अपने केवल एक ही वस्त्र को देखकर उसके मन में इतनी अधिक ग्लानि उत्पन्न हुई कि वह घड़े को कूएँ से बाहर न निकाल सकी । उन स्त्रियों को आपस में आलाप-संलाप में तन्मय देखकर देवी कन्यावती बिना घड़े के अपने घर चली आई । घर पहुँचने पर उसने अपनी कन्याओं को शिला के रूप में स्थित देखा ।४९-५९। उसे सुनकर राजा वेणु अपने घर आये और अपनी पत्नी की अत्यन्त भर्त्सना की । पश्चात् ब्रह्मचर्य का त्यागकर अपनी पत्नी के साथ रमण किया, जिससे उस वीर रानी के गर्भ से मूर्तिमान यश के रूप में एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो बलवान, धर्मी एवं आर्यदेश का अधीश्वर हुआ । उस राजा ने इस भूतल पर बीस वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। पश्चात् उसके महीचन्द्र नामक पुत्र हुए। पुनः महीचन्द्र के चन्द्रदेव और चन्द्रदेव के

तस्य भूपस्य समये सर्वे भूपाः समन्ततः । त्यक्त्वा तं मन्दपालं च तद्दत्ते संस्थिता गृहे ।।६४
पितुरर्द्धं कृतं राज्यं कुम्भपालस्ततोऽभवत् । राजनीया च नगरी पिशाचविषये स्थिता ।।६५
तत्पतिश्च महामोदो म्लेच्छपैशाचधर्मगः । स जित्वा बहुधा देशाँल्लुण्ठयित्वा धनं बहु ।।६६
म्लेच्छधर्मकरः प्राप्तः कुम्भपालो यतः स्थितः । कुम्भपालस्तु तं दृष्ट्वा कलिना निर्मिता नृप ।।६७
महामोदं समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् । तदा म्लेच्छपतिः शूरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ।।६८
राजनीयां च नगरीं प्राप्तवान्मूर्तिखण्डकम् । विंशदब्दकृतं राज्यं कुम्भपालेन धीमता ।।६९
तत्पुत्रो देवपालश्चानङ्गभूपस्य कन्यकाम् । समुद्वाह्य विधानेन चन्द्रकान्ति तया सह ।।७०
कान्यकुब्जगृहं प्राप्य जित्वा भूपाननेकशः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्योभौ तनयौ स्मृतौ ।।७१
जयचन्द्रोरत्नभानुर्दिशं पूर्वां तथोत्तराम् । आर्यदेशस्य वै जित्वा वैष्णवो राज्यमाप्तवान् ।।७२
रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः । कुरुक्षेत्रे रणं प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिवं गतः ।।७३
समाप्तिमगमद्वंशो वैश्यपालस्य धीमतः । कुम्भपालस्य शौक्लस्य वैश्यानां रक्षकस्य च ।।७४
विष्वक्सेनान्वयेजाता विष्वक्सेना नृपाः स्मृताः । विसेनस्य कुले जाता विसेनाः क्षत्रियाः स्मृता ।।७५
गुहिलस्य कुले जाता गौहिलाः क्षत्रिया हि ते । राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपाः स्मृताः ।।७६
वैश्यपालस्य वै वंशे कुम्भपालस्य धीमतः । वैश्यपालाश्च राजन्यो बभूवुर्बहुधा हि ते ।।७७

मन्दपाल उत्पन्न हुए, जिसके राजकाल में सभी राजाओं ने मन्दपाल के त्यागपूर्वक उसके दिये हुए गृहों में निवास किया था । इसने अपने पिता के आधे समय तक राज्यभार को संभाला था और उपरोक्त अन्य राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक । राजा मन्दपाल के कुम्भपाल हुआ, जिसने महामोद को अपनी बुद्धिमानी से लौटा दिया । एकबार पिशाचों के बीच में स्थित राजनीय नगरी के अधीश्वर महामोद नामक म्लेच्छ ने अनेक देशों को पराजितकर उसके धनों को लूटते हुए राजा कुम्भपाल की राजधानी के समीप आगमन किया । नृप! राजा कुम्भपाल ने कलिमूर्ति उस महामोद नामक म्लेच्छ को देखकर विचार किया, पश्चात् उस बुद्धि-कुशल राजा ने वहाँ जाकर उसे सहर्ष प्रणाम किया, जिससे प्रसन्न होकर उस वीर एवं मूर्तिध्वंसी म्लेच्छराज ने इन्हें बहुत-सा धन देकर अपनी राजनीया नामक नगरी को प्रस्थान किया । बीस वर्ष तक राज्य करने पर राजा कुम्भपाल के देवपाल नामक पुत्र हुआ, जिसने अनंगराज की चन्द्रकीर्ति नामक कन्या के साथ सविधान पाणिग्रहण करके उसके समेत कान्यकुब्ज (कन्नौज) आकर अत्यन्त सुखीजीवन व्यतीत किया । वहाँ रहकर अनेक राजाओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक उन्होंने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया ।६०-७१। पश्चात् उनके जयचन्द्र और रत्नभानु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने उत्तर और पूर्व के आर्य प्रदेशों को जीतकर वैष्णव राज्य की प्राप्ति की । रत्नभानु के पुत्र ख्यातिप्राप्त लक्षण (लाखन) हुए, जिन्होंने कुरुक्षेत्र के रणस्थल में घोर संग्राम करते हुए प्राण विसर्जनकर स्वर्ग की प्राप्ति की । इस प्रकार बुद्धिमान वैश्यपाल और वैश्यों के रक्षक शुक्लवंशीय कुम्भपाल के राष्ट्र-वंश का वृत्तान्त समाप्त हुआ । विष्वक्सेन के वंशज राजालोग विष्वक्सेन विसेन कुल में उत्पन्न क्षत्रिय विसेन, गुहिल कुल में उत्पन्न क्षत्रियगण गौहिल और राष्ट्रपाल वंश के क्षत्रिय राजगण राष्ट्रपाल कहे गये हैं । वैश्यपाल एवं बुद्धिमान् कुम्भपाल के वंशज नृपगण अनेक भाँति के भेद उत्पन्न करने के नाते

लक्षणे मरणं प्राप्ते शुक्लवंशधुरन्धुरे । सर्वे ते क्षत्रिया मुख्याः कुरुक्षेत्रे लयं गताः ॥७८
शेषास्तु क्षुद्रभूपाला वर्णसङ्करसम्भवाः । म्लेच्छैश्च दूषिता जाता म्लेच्छराज्ये भयानके ॥७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य शृणु त्वं वै वंशं परिहरस्य च । जित्वा बौद्धान्परिहरोऽथर्ववेदापरायणः ॥१
शक्तिं सर्वमयीं नित्यां ध्यात्वा प्रेमपरोऽभवत् । प्रसन्ना सा तदा देवी सार्धयोजनमायतम् ॥२
नगरं चित्रकूटाद्रौ चकार कलिनिर्जरम् । कलिर्यत्र भवेद्बद्धो नगरेऽस्मिन्सुरप्रिये ॥३
अतः कलिञ्जरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले । द्वादशाब्दं कृतं राज्यं तेन पूर्वप्रदेशके ॥४
गौरवर्मा तस्य सुतः कृतं राज्यं पितुः समम् । स्वानुजं घोरवर्माणं तत्रास्थाप्य मुदान्वितः ॥५
गौडदेशं समागम्य तत्र राज्यमकारयत् । सुपर्णो नाम नृपतिस्ततोऽभूद्गौरवर्मणः ॥६

अनेक भाँति के बताये गये हैं । चन्द्रवंश के धुरंधर राजा लक्षण (लाखन) के स्वर्गीय होने पर उस कुरुक्षेत्र के स्थल में अधिकांश मुख्य क्षत्रियों का नाश हो गया था । उस समय छोटे ही राजागण शेष थे, जिनकी स्त्रियों से बलात् रमण करके उन म्लेच्छों ने उस भीषण म्लेच्छराज के समय में वर्णसंकरों की उत्पत्ति की ।७२-७९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन में
प्रमरवंश वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य ! मैं परिहार वंश का वर्णन करता हूँ, सुनो ! अथर्ववेद के पारायण करने वाले उस राजा परिहर ने बौद्धों पर विजय प्राप्ति करने के उपरांत सर्वशक्तिमयी भगवती की आराधना सप्रेम प्रारम्भ की । उससे प्रसन्न होकर देवी जी ने चित्रकूट पर्वत के समीप डेढ़ योजन का विस्तृत कलिनिर्जर (कलींजर) नामक एक नगर का निर्माण किया । उस देवप्रिय नगर में कलि बाँध दिया गया है । इससे वहाँ इसके अस्तित्व न रहने पर पृथ्वी में उसकी ख्याति 'कलिंजर' के नाम से हुई । वह सुरम्य नगर,जो पूर्वी प्रदेश में बसा हुआ है, बारह वर्ष तक उसके राजा के राज करने पर गौरवर्मा नाम पुत्र उनके उत्पन्न हुआ । उसने अपने छोटे भाई घोरवर्मा को अपने पिता के सिंहासनपर प्रतिष्ठित कर स्वयं गौड़देश में जाकर वहां राज्य स्थापन किया। वहाँ राजा गौरवर्मा

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रूपणस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कारवर्मा सुतोऽभवत् ।।७
शको नाम ततो राजा महालक्ष्मीं[१] सनातनीम् । त्रिवर्षान्ते च सा देवी कामाक्षीरूपधारिणी ।।८
स्वभक्तपालना चैव तत्र वासमकारयत् । शताद्धाब्दं कृतं राज्यं तेन वै कामवर्मणा ।।९
मिथुनं जनयामास भोगो भोगवती हि सा । विक्रमायैव नृपतिः सुतां भोगवतीं ददौ ।।१०
स्वराज्यं च स्वपुत्राय प्रददौ भोगवर्मणे । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालिवर्मा सुतोऽभवत् ।।११
महोत्सवं महाकाल्याः कृतवान्स च भूपतिः । तस्मै प्रसन्ना वरदा काली भूत्वा स्वयं स्थिता ।।१२
कलिका बहुपुष्पाणां सा चकार स्वहर्षतः । ताभिर्भवं च नगरं सञ्जातं च मनोहरम् ।।१३
कलिकाता पुरी नाम्ना प्रसिद्धाभून्महीतले । कौशिकस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।१४
कात्यायनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्य पुत्रो हेमवतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।१५
शिववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।१६
रुद्रवर्मा च तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुः समम् । भोजवर्मा च तत्पुत्रस्त्यक्त्वा वै पैतृकं पदम् ।।१७
भोजराष्ट्रं वनोद्देशे कारयामास वीर्यवान् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गववर्मा नृपोऽभवत् ।।१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विन्ध्यवर्मा नृपोऽभवत् । स्वानुजाय स्वकं राज्यं दत्त्वा वङ्गमुपाययौ ।।१९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखसेनस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाकस्तस्य चात्मजः ।।२०
दशवर्षं कृतं राज्यं लक्ष्मणस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माधवस्तत्सुतोऽभवत् ।।२१

ने सुपर्ण नाम के पुत्र को उत्पन्न किया ।१-६। पश्चात् सुपर्ण के रूपण और रूपण के कारवर्मा हुए, जिन्होंने अपना शक नाम परिवर्तन करके सनातनी महालक्ष्मी की उपासना की । तीन वर्ष तक आराधना करने के उपरांत कामाक्षी रूपधारिणी देवी ने अपने भक्त के पालनार्थ वहीं निवास किया । पचास वर्ष तक राज्योपभोग करने पर कामवर्मा के भोगवती एवं भोग नामक कन्या और पुत्र का एक जुड़वाँ उत्पन्न हुआ । राजा ने अपनी भोगवती पुत्री का पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराकर अपना राज्य अपने उस पुत्र भोगवर्मा को प्रदान किया । अनन्तर उस भोगवर्मा के कलिवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने महाकाली का महान् उत्सव किया। वरदायिनी भगवती ने उसके ऊपर प्रसन्न होकर कालीरूप में वहाँ अपनी स्थिति की तथा हर्षातिरेक होने से वहाँ असंख्य पुष्पों में कलियाँ निकल आईं। पुनः उन्हीं द्वारा एक मनोहर नगर का निर्माण हुआ, जो कलिकाता (कलकत्ता) नाम से इस भूतल पर प्रख्यात हुआ। पश्चात् उस राजा के कौशिक नामक पुत्र हुआ और कौशिक के कात्यायन, कात्यायन के हैमवत, हैमवत के शिववर्मा, शिववर्मा के भववर्मा, भववर्मा के रुद्रवर्मा, रुद्रवर्मा के भोजवर्मा हुए, जिस पराक्रमी ने वन के भीतर भोजराष्ट्र स्थापित किया। भोजवर्मा के गववर्मा, गववर्मा के विंध्यवर्मा हुए, जो अपना राज्य अपने छोटे भाई को सौंपकर स्वयं वंगदेश चले गये थे।७-१९। पुनः उनके सुखसेन तथा सुखसेन के बलाक नामक पुत्र हुआ, जिसने केवल दश वर्ष तक राज्य किया और शेष उपरोक्त राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक।

---

१. सिषेवे इति शेषः ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं केशवस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सूरसेनस्ततोऽभवत् ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो नारायणोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शान्तिवर्मा सुतोऽभवत् ॥२३
गङ्गाकूले शान्तिपुरं रचितं तेन धीमता । निवासं कृतवान्भूपः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२४
नदीवर्मा तस्य सुतो गङ्गादत्तवरो बली । चकार नगरीं रम्यां नदीहां गौडराष्ट्रगाम् ॥२५
गङ्गया च तदाहूतोऽभिज्ञो विद्याधरः स्वयम् । तेनैव रक्षिता चासीत्पुरी वेदपरायणा ॥२६
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महात्मना । गङ्गावंशस्ततो जातो विश्रुतोऽभून्महीतले ॥२७
शार्ङ्गदेवस्तस्य सुतो बलवान्हरिपूजकः । गौडदेशमुपागम्य हरिध्यानपरोऽभवत् ॥२८
दशवर्षं कृतं राज्यं गङ्गादेवस्तु तत्सुतः । विंशद्वर्षं कृतं राज्यं चानङ्गस्तस्य भूपतिः ॥२९
तनयो बलवांश्चासीद्गौडदेशमहीपतिः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो राजेश्वरोऽभवत् ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नृसिंहस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभवत् ॥३१
राष्ट्रदेशमुपागम्य जित्वा तस्य नृपं बली । महीवतीं पुरीं रम्यामध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो महीपतिः ॥३३
जयचन्द्राज्ञया भूप उर्वीमायामिति स्मृताम् । नगरीं कारयामास तत्र वासमकारयत् ॥३४
कुरुक्षेत्रे हताः सर्वे क्षत्रियाश्चन्द्रवंशिनः । तदा महीपती राजा महावत्यधिपोऽभवत् ॥३५
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं सहोद्दीनेन वै ततः । कुरुक्षेत्रे मृतिं प्राप्ताः सुयोधनकलांशकाः ॥३६
घोरवर्मा तु नृपतिः सुतः परिहरस्य वै । कलिञ्जरे कृतं राज्यं शार्दूलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७

बलाक के लक्ष्मण, लक्ष्मण के माधव, माधव के केशव, केशव के सुरसेन, सुरसेन के नारायण, नारायण के शांतिवर्मा हुए, जिसने गंगातट पर शांतिपुर का निर्माण किया । शांतिवर्मा के नदीवर्मा और नदीवर्मा के गंगादत्त हुए, जिस बली ने गौडराष्ट्र में 'नदीहा' नामक नगरी का निर्माण किया । राजा गंगादत्त ने विद्याधर की आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्नकर उसके द्वारा अपनी उस धार्मिक नगरी की सुरक्षा की । उस महात्मा राजा के बीस वर्ष तक उस राज्यपद को प्रतिष्ठित करने के उपरांत उसी से गगावंश की ख्याति इस भूतल में हुई । उपरोक्त शेष राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । २०-२७ गंगादत्त के बलवान् एवं विष्णुभक्त शार्ङ्गदेव नामक पुत्र हुआ, जो गौडदेश में आकर सदैव भगवान् का ध्यान ही करता था । दशवर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके गंगादेव नामक पुत्र हुआ, जिसने बीस वर्ष तक उस पद को सुशोभित किया । पश्चात् उनके अनंग नामक पुत्र हुआ, जो बली एवं गौडदेश का अधीश्वर था । राजा अनंग के राजेश्वर, राजेश्वर के नृसिंह, और नृसिंह के कलिवर्मा नामक पुत्र हुआ, जिसने राष्ट्रदेश के अधीश्वर को पराजित कर रमणीक महावती (महोवा) नगरी में अपना सुखी-जीवन व्यतीत किया । तदनन्तर उनके घृतिवर्मा तथा घृतिवर्मा के महीपति (माहिल) नामक पुत्र हुआ, जिसने राजा जयचन्द्र की आज्ञा से 'उर्वी' 'माया' (उरइ) नामक नगरी का निर्माण कराकर वहाँ निवास किया । कुरुक्षेत्र के रणस्थल में चन्द्रवंशी आदि सभी राजाओं के विनष्ट हो जाने पर माहिल महोवा का राजा हुआ । बीस वर्ष राज्य करने के उपरांत उसी कुरुक्षेत्र में सहोद्दीन (सहाबुद्दीन) द्वारा उस सुयोधनांश की अब मृत्यु हो गई । शेष अन्य राजगणों ने उत्तरोत्तर अपने-अपने पिता के समान काल तक राज्य किया था । परिहर पुत्र घोरवर्मा के कलिंजर में राज्य करते हुए शार्दूल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके वंश में उत्पन्न क्षत्रियगण शार्दूलीय (वघेल) वंशीय कहे जाते

तदन्वये च ये भूपाः शार्दूलीयाः प्रकीर्तिताः । भूपानां बहुधा राष्ट्रं शार्दूलान्वयसम्भवम् ॥३८
बभूव सर्वतो भूमौ महामायाप्रसादतः । इति ते कथितं विप्र पावकीयमहीभुजाम् ॥३९
कुलं सकलपापघ्नं यथैव शशिसूर्ययोः । पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा जातः हरिः स्वयम् ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

मध्याह्नकाले सम्प्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । चाक्षुषान्तरमेवापि महावायुर्बभूव ह ॥१
तत्प्रभावेन हेमाद्रिः कम्पमानः पुनः पुनः । यथा वृक्षस्तथैवासौ तत्कम्पादेव मण्डलः ॥२
नभसो भूतले प्राप्तस्तदा भूमिः प्रकम्पिता । बभूव मुनिशार्दूल सर्वलोकविनाशिनी ॥३
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च जलभूता बभूविरे । लोकालोकस्तदा शेषोऽभवत्सोत्तरपर्वतः ॥४
शेषा भूमिर्लयं प्राप्ता मुने मन्वन्तरे लये । सहस्राब्दान्तरे भूमिर्बभूव जलमध्यगा ॥५
तदा स भगवान्विष्णुर्भवेन विधिना सह । शैशुमारं शुभं चक्रं चकार नभसि स्थितम् ॥६
गृहीत्वा सकलास्तारा ग्रहान्सर्वान्यथाविधि । स्थापयामास भगवान्यथायोग्यं पितामहः ॥७

हैं। उस शार्दूल (बघेल) वंश राजाओं का पृथ्वी में चारों ओर महामाया के प्रसाद से विस्तृत अनेक प्रकार का राष्ट्र हुआ। विप्र ! इस प्रकार अग्निवंशीय राजाओं के सूर्य-चन्द्रवंश के समान पवित्रकुल का वर्णन कर दिया गया। पुनः अब मैं जिस प्रकार भगवान् अवतरित हुए वह कथा सुनाऊंगा।३८-४०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त।४।

अध्याय ५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के मध्यान्ह काल के समय महावायु का प्रकोप प्रारम्भ हुआ जिससे प्रभावित होकर हिमालय वृक्ष की भाँति बार-बार काँपने लगा। उसके कम्पित होने पर वह वायुमंडल आकाश से पृथ्वी पर आया, जिससे पृथ्वी में भूचाल होने लगा। मुनिशार्दूल ! उस भूचाल से समस्त लोकों का विनाश हो गया सातों द्वीप और समुद्र सभी जलमय हो गये। उस समय केवल उत्तर की ओर स्थित लोकालोक पर्वत ही शेष रहा। मुने ! शेष भूमि के लय होने पर, जबकि मन्वन्तर काल का भी विलयन हो गया, उसके सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त पृथ्वी भी जलमध्य में विलीन हो गई।१-६। उस समय शिव और ब्रह्मा समेत भगवान विष्णु ने उस शैमुमार शुभ चक्र को आकाश में स्थापित किया। पुनः उन्होंने उन ज्योतिष्चक्रों (ज्योतिर्गणो) द्वारा पृथ्वी का शोषण करना आरम्भ किया, जिससे वह पृथ्वी दश सहस्र

पुनर्वै ज्योतिषां चक्रैः शोषिता सकला मही । स्थलीभूयायुताब्दान्ते दृश्यमाना बभूव ह ।।८
तदा स भगवान्ब्रह्मा मुखात्सोमं चकार ह । द्विजराजं महाप्राज्ञं सर्ववेदविशारदम् ।।९
भुजाभ्यां भगवान्ब्रह्मा क्षत्रराजं महाबलम् । सूर्यं च जनयामास राजनीतिपरायणम् ।।१०
ऊरुभ्यां वैश्यराजं च समुद्रं सरितां पतिम् । रत्नाकरं च कृतवान्परमेष्ठी पितामहः ।।११
पद्भ्यां च जनयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् । दक्षं नाम कलाभिज्ञं शूद्रराजं सुकृत्यकम् ।।१२
सोमाद्वै ब्राह्मणा जाताः सूर्याद्राजन्यवंशजाः । समुद्रात्सकला वैश्या दक्षाच्छूद्रा बभूविरे ।।१३
सूर्यमण्डलतो जातो मनुर्वैवस्वतः स्वयम् । तस्य राज्यमभूत्सर्वं प्राणिनां लोकवासिनाम् ।।१४
दिव्यानां च युगानां च तज्ज्ञेयं चैकसप्ततिः । तदा स भगवान्विष्णुर्विश्वरूपाऽवतारकः ।।१५
विष्णुः पूर्वार्द्धतो जातः परार्द्धाद्वामनः स्वयम् । बालः सत्ययुगे देवो विश्वरूपः सनातनः ।।१६
चतुश्शतानि वर्षाणि परमायुर्नृणां तदा । त्रेतायां यौवनं प्राप्तः पूर्वार्द्धात्सम्भवो हरेः ।।१७
वर्षाणां त्रिशतानां च नृणामायुः प्रकीर्तितम् । द्वापरे वार्द्धिको देवो नृणामायुः शतद्वयम् ।।१८
कलौ तु मरणं प्राप्तो विश्वरूपो हरिः नरो । नृणामायुः शताब्दं च केषाञ्चिद्धर्मशालिनाम् ।।१९
परार्द्धाद्वामनो देवो महेन्द्रावरजो हरिः । चतुर्भुजो महाश्यामो गरुडोपरि संस्थितः ।।२०
विश्वरूपहितार्थाय त्रियुगी सम्बभूव ह । वामनार्द्धाच्च त्रियुगी जातो नारायणः स्वयम् ।।२१
श्वेतरूपो हरिः सत्ये हंसाख्यो भगवान्स्वयम् । त्रेतायां रक्तरूपश्च यज्ञाख्यो भगवान्स्वयम् ।।

वर्ष के निरन्तर प्रयत्न करने पर स्थल के रूप में दिखाई देने लगी । उस समय भगवान् ब्रह्मा ने अपने मुख द्वारा सोम को उत्पन्न किया, जिन्हें द्विजराज, महाबुद्धिमान एवं सर्ववेद विशारद कहा जाता है । पुनः भगवान् ब्रह्मा ने अपनी भुजाओं द्वारा क्षत्रराज सूर्य को उत्पन्न किया, जो महाबली एवं राजनीति के विशेषज्ञ हैं । उसी प्रकार ऊरू ने वैश्यराजसमुद्र को उत्पन्न किया, जिन्हें सरिताओं का पति और रत्नाकर कहा गया है तथा परम बुद्धिमान-पितामह जी ने चरणों से विश्वकर्मा दक्ष को उत्पन्न किया, जो कलाओं के विशेषज्ञ, शूद्रराज एवं सुकृत्यकर्मा कहे जाते हैं । पश्चात् द्विजराज सोम द्वारा ब्राह्मण, सूर्य द्वारा क्षत्रियगण, समुद्र द्वारा समस्त वैश्य और सूर्यमण्डल द्वारा वैवस्वतमनु उत्पन्न हुए, जिनका समस्त जीवलोक में एकच्छत्र राज्य स्थित है । दिव्य युगों के एकहत्तर बार व्यतीत होने पर भगवान् विष्णु विश्वरूप से अवतरित होते हैं । समस्त युगकाल के पूर्वार्द्ध में विष्णु और उत्तरार्द्ध में स्वयं वामन अवतरित होते हैं । सत्ययुग में विश्वरूप सनातन भगवान् का बाल्यरूप प्रकट होता है । उस समय मनुष्यों की आयु चार सौ वर्ष की होती हैं, पूर्वार्द्ध में उत्पन्न भगवान् विष्णु त्रेतायुग में युवा होते हैं, उस समय मनुष्यों की आयु तीन सौ वर्ष की कही गई है और द्वापर में उस (विष्णु) देव की वृद्धावस्था होती है उस समय मनुष्यों की आयु दो सौ वर्ष की होती है तथा कलियुग में विश्वरूप और सनातन विष्णु का स्वयं मरण हो जाता हैं । इस युग में कुछ धार्मिक मनुष्यों की आयु सौ वर्ष की होती है ।७-१९। परार्द्धकाल में अवतरित होकर वामन के रूप में भगवान् जो इन्द्र के अनुज कहे जाते हैं, चार भुजाएँ, श्यामल वर्ण, धारणकर गरुड़पर स्थित होकर विश्वरूप के हितार्थ त्रियुगी होते हैं । उन त्रियुगी वामनार्द्ध के द्वारा स्वयं नारायण उत्पन्न होते है, सत्ययुग में स्वयं भगवान् श्वेतरूप धारणकर हंसनाम से प्रख्यात होते हैं । उसी प्रकार त्रेता में

द्वापरे पीतरूपश्च स्वर्णगर्भो हरिः स्वयम् ॥२२
कलिकाले तु सम्प्राप्ते सन्ध्यायां द्वापरे युगे । कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला ॥
एकभूता च देवक्यां जातो विष्णुस्तदा स्वयम् ॥२३
वसुदेवगृहे रम्ये मथुरायां च देवताः । ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुर्देवं परं ब्रह्म सनातनम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभं वचः । देवानां च हितार्थाय दैत्यानां निधनाय च ॥
अहं कलौ च बहुधा भवामि सुरसत्तमाः ॥२५
दिव्यं वृन्दावनं रम्यं सूक्ष्मं भूतलसंस्थितम् । तत्राहं च रहः क्रीडां करिष्यामि कलौ युगे ॥२६
सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीभूताः समन्ततः । रंस्यन्ते हि मया सार्द्धं त्यक्त्वा भूमण्डलं तदा ॥२७
राधया प्रार्थितोऽहं वै यदा कलियुगान्तके । समाप्य च रहः क्रीडां कल्की च भवितास्म्यहम् ॥२८
युगान्तप्रलयं कृत्वा पुनर्भूत्वा द्विधातनुः । सत्यधर्मं करिष्यामि सत्ये प्राप्ते सुरोत्तमाः ॥२९
इति श्रुत्वा तु ते देवास्तत्रैवान्तर्लयं गताः । एवं युगे युगे क्रीडा हरेरद्भुतकर्मणः ॥३०
ये तु वै विष्णुभक्ताश्च ते हि जानन्ति विश्वगम् । यथैव नृपतेर्दासाः स्वराज्ञः कार्यगौरवम् ॥
जानन्ति नापरे विप्र तथा दासा हरेः स्वयम् ॥३१
विष्णुवाञ्छानुसारेण विष्णुमाया सनातनी । रचित्वा विविधाँल्लोकान्महाकाली बभूव ह ॥३२
कृत्वा कालमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । पश्चात्तु भक्षयित्वा तान्महागौरी भविष्यति ॥३३

यज्ञ नामक रक्तवर्ण एवं द्वापर में हिरण्यगर्भ नामक पीत वर्ण के अवतरित होते हैं । द्वापर के संध्या समय में कलिकाल के आगमन होने पर विष्णु की समस्तकला और वामन की एक कला एक होकर मथुरा निवासी वसुदेव के घर देवकी के गर्भ से भगवान् विष्णु के रूप में आविर्भूत हुई । उस समय समस्त ब्रह्मा आदि देवगणों ने उस सनातन ब्रह्म की स्तुति की । अनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् ने देवों के हितार्थ और दैत्यों के विनाशार्थ अनेक रूप में प्रकट होऊँगा और इस पृथ्वी में सूक्ष्मरूप में स्थित उस दिव्य वृन्दावन में एकान्त क्रीडा भी करूँगा यह कहा । उस समय घोर कलि जानकर भूमण्डल के त्यागपूर्वक समस्त वेद गोपी के रूप में वहाँ प्रकट होकर मेरे साथ रमण करेंगे । पुनः कलि के अंत में राधिका जी के प्रार्थना करने पर मैं उस एकान्त क्रीडा को समाप्त करके कल्की अवतार लूँगा । सुरसत्तम वृन्द । पुनः युगान्त प्रलय करने के उपरांत मैं उस समय युग के आरम्भ में अपनी शरीर को दो रूप में विभक्तकर सत्यधर्म करूँगा । इसे सुनकर वे देवगण भी उसी में विलीन हो गये ।२०-३१ इसी प्रकार उस अद्भुत कर्मा भगवान् की प्रत्येक युगों में क्रीडा होती रहती है, किन्तु विष्णुभक्त ही उस ब्रह्माण्डनायक को जानता है अन्य नहीं। विप्र ! जिस प्रकार राजा के कार्यगौरव को उसका सेवक ही जान सकता है अन्य नहीं। उसी प्रकार भगवान् के चरित्रों को उनके दास के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता है। विष्णु की सनातनी माया उनकी इच्छानुसार अनेक भाँति के लोकों की रचना करके महाकाली का स्वरूप धारणकर लेती है, जिससे कालमय एवं चराचर इस सम्पूर्ण जगत् का भक्षणकर लेती है और तदनन्तर वही महागौरी के रूप में

नमस्तस्यै महाकाल्यै विष्णुमाये नमोनमः । महागौरि नमस्तुभ्यमस्मान्पाहि भयान्वितान् ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

ऋषिरुवाच

महीराजान्मुनिश्रेष्ठ के राजानो बभूविरे । तन्नो वद महाभाग सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ।।१

सूत उवाच

पैशाचः कुतुकोद्दीनो देहलीराज्यमास्थितः । वलीगढं महारम्यं यादवै रक्षितं पुरम् ।।
ययौ तत्र स पैशाचः शूरायुतसमन्वितः ।।२
वीरसेनस्य वै पौत्रं भूपसेनं नृपोत्तमम् । स जित्वा कुतुकोद्दीनो देहलीग्राममसंस्थितः ।।३
एतस्मिन्नन्तरे भूपा नानादेश्याः समागताः । जित्वा स कुतुकोद्दीनः स्वदेशात्तैर्निराकृतः ।।४
सहोद्दीनस्तु तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य देहलीम् । जित्वा भूपान्दैत्यवरो मूर्तिखण्डमथाकरोत् ।।५
तत्पश्चाद्बहुधा म्लेच्छा इहागत्य समन्ततः । पञ्चषट्सप्तवर्षाणि कृत्वा राज्यं लयं गताः ।।६
अद्यप्रभृति देशेऽस्मिञ्छतवर्षान्तरे हि ते । भूत्वा चाल्पायुषो मन्दा देवतीर्थविनाशकाः ।।७

परिवर्तित हो जाती है। अतः विष्णु की उस माया को नमस्कार है और महाकाली को बार-बार नमस्कार है, तथा महागौरी को नमस्कार है, वे हम भयभीतों की रक्षा करें।३२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय
इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक पाँचवां अध्याय समाप्त।५।

अध्याय ६

प्रमरवंश का वर्णन

ऋषि बोले—मुनिश्रेष्ठ ! (पृथ्वीराज) के पश्चात् कौन-कौन राजा हुए ! महाभाग ! इसे हमें बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।१

सूत बोले—दश सहस्र यवन सेनाओं को लेकर वहाँ पहुँचने पर उसने राजा वीरसेन के पौत्र नृपश्रेष्ठ भूपसेन को पराजित कर पुनः दिल्ली लौटकर सुखीजीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। किन्तु उसी बीच अनेक प्रान्तों के राजाओं ने वहाँ पहुँचकर उससे घोर संग्राम करके उस कुतुकोद्दीन (कुतुबुद्दीन) को अपने इस भारत प्रदेश से बाहर किया। उसे सुनकर सहोद्दीन (सहाबुद्दीन) पुनः दिल्ली आकर उन राजाओं पर विजय प्राप्तिपूर्वक मूर्तियों के तोड़ने-फोड़ने का कार्य करता रहा। उसके अनन्तर अनेक म्लेच्छ वंश के लोगों ने यहाँ भारत में आकर पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया। पश्चात् उनका विलय हो गया। मुनिश्रेष्ठ ! इसीलिए आज से सौ वर्ष के भीतर ही देवमूर्तियों तथा तीर्थों के

म्लेच्छभूपा मुनिश्रेष्ठास्तस्माद्यूयं मया सह । गन्तुमर्हथ वै शीघ्रं विशालां नगरीं शुभाम् ॥८
इति श्रुत्वा तु वचनं दुःखात्सन्त्यज्य नैमिषम् । ययुः सर्वे विशालायां हिमाद्रौ गिरिसत्तमे ॥९
तत्र सर्वे समाधिस्था ध्यात्वा सर्वमयं हरिम् । शतवर्षान्तरे सर्वे ध्यानाद्ब्रह्मगृहं ययुः ॥१०

व्यास उवाच

इत्येवं सकलं भाव्यं योगाभ्यासवशाद्द्रुतम् । वर्णितं च मया तुभ्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥११

मनुरुवाच

भगवन्वेदतत्त्वज्ञ सर्वलोकशिवङ्कर । अहं मायाभवो जातो भवान्वेदभवो भुवि ॥१२
अविद्यया च सकलं मम ज्ञानं समाहृतम् । अतोऽहं विविधा योनीर्गृहीत्वा लोकमागतः ॥१३
परं ब्रह्मैव कृपया दृष्ट्वा मां मन्दभागिनम् । व्यासरूपं स्वयं कृत्वा समुद्धर्तुमुपागतः ॥१४
नमस्तस्मै मुनीन्द्राय वेदव्यासाय साक्षिणे । अविद्यामोहभावेभ्यो रक्षणाय नमोनमः ॥१५
पुनरन्यच्च मे ब्रूहि सूताद्यैः किं कृतं मुने । तत्सर्वं कृपया स्वामिन्वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥१६

व्यास उवाच

ब्रह्माण्डे ये स्थिता लोकास्ते सर्वेऽस्मिन्कलेवरे । अहङ्कारो हि जीवात्मा सर्वः स्यात्कोटिहीनकः ॥१७
पुराणोऽणोरणीयांश्च षोडशात्मा सनातनः । इन्द्रियाणि मनश्चैव पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥१८

विनाशक वे प्रथम यवन भूपगण अल्पायु होकर विनष्ट होते रहेंगे । अतः तुम लोग मेरे साथ उस विशाला नामक श्रेष्ठपुरी चलने के लिए तैयारी करो । इसे सुनकर दुःख प्रकट करते हुए किसी प्रकार नैमिषारण्य तीर्थ का त्यागकर वे मुनिवृन्द पर्वतश्रेष्ट उस हिमालय पर स्थित विशाला पुरी के लिए प्रस्थित हो गये । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने समाधिस्थ होकर भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया ।पश्चात् वैसे ही ध्यान करते हुए वे ऋषि ब्रह्मलोक पहुँच गये ।२-१०

व्यासजी बोले—योग के अभ्यास वश जानी गई इन बातों को मैंने सुना दिया । अब इसके अतिरिक्त क्या सुनना चाहते हो ! ११

मनु ने कहा—भगवन् ! आप वेद के मर्मज्ञ और समस्त लोकों के कल्याणप्रद हैं तथा इस भूतल में माया द्वारा उत्पन्न और आप वेद द्वारा । इसीलिए अविद्या द्वारा मेरा समस्तज्ञान, अपहृत हो जाने के नाते मैं अनेकों योनियों में भ्रमण करता हुआ इस लोक में आया हूँ । उस परब्रह्म की यह असीम कृपा थी, जो मुझ ऐसे मन्दभागी को देखकर मेरे उद्धारार्थ व्यासरूप धारण कर यहाँ दर्शन दिया । अतः उस मुनीन्द्र वेदव्यास को नमस्कार है, जो कर्म का साक्षी रूप है और अविद्याजनित भाव-बन्धनों से मुक्त करने वाले उस ब्रह्मरूप को बार-बार नमस्कार है । मुने । तदुपरांत सूतादिक मुनियों ने क्या किया । स्वामिन् ! मुझे उन सभी को पुनः बताने की कृपा कीजिये ।१२-१६।

व्यासजी बोले—ब्रह्माण्ड में स्थित सभी लोकों के और इस शरीर में अहंकार ही जीवात्मा कहलाता है, जो अत्यन्त हीन होता है। पुराण (प्राचीन), अणु (सूक्ष्म) और सूक्ष्मतर आदि भेद से वह सनातन परात्मा ही आत्मा कहलाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रवण, नेत्र, नासिका, जिह्वा, एवं त्वक्), पाँच

ज्ञेयो जीवः शरीरेऽस्मिन्स ईशगुणबन्धितः । ईशो ह्यष्टादशात्मा वै शङ्करो जीवशङ्करः ॥१९
बुद्धिर्मनश्च विषया इन्द्रियाणि तथैव च । अहंकारस्सचेशो वै महादेवः सनातनः ॥२०
जीवो नारायणस्साक्षाच्छङ्करेण विमोहितः । स बद्धस्त्रिगुणैः पाशैरेकश्च बहुधाऽभवत् ॥२१
कालात्मा भगवानीशो महाकल्पस्वरूपकः । शिवकल्पो ब्रह्मकल्पो विष्णुकल्पस्तृतीयकः ॥
ईशनेत्राणि तान्येव बन्धकल्पश्चतुर्थकः ॥२२
वायुकल्पो वह्निकल्पो ब्रह्माण्डो लिङ्गकल्पकः । ईशवक्त्राणि पञ्चैव तत्त्वज्ञैः कथितानि वै ॥२३
भविष्यकल्पश्च तथा तथा गरुडकल्पकः । कल्पो भागवतश्चैव मार्कण्डेयश्च कल्पकः ॥२४
वामनश्च नृसिंहश्च वराहो मत्स्यकूर्मकौ । ज्ञानात्मनो महेशस्य ज्ञेया दश भुजा बुधैः ॥२५
अष्टादशदिनेष्वेव ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कल्पाश्चाष्टादशास्सर्वे बुधैर्ज्ञेया विलोमतः ॥२६
कूर्मकल्पश्च तत्राद्यो मत्स्यकल्पो द्वितीयकः । तृतीयः श्वेतवाराहः कल्पो ज्ञेयः पुरातनैः ॥२७
द्विधा च भगवान्ब्रह्मा सूक्ष्मः स्थूलोऽगुणो गुणी । सगुणः स विराण्नाम्ना विष्णुनाभिसमुद्भवः ॥२८
निर्गुणोऽव्ययरूपश्चाव्यक्तजन्मा स्वभूः स्वयम् । ब्रह्मणः सगुणस्यैव शतायुः कालनिर्मितम् ॥२९
ऊनविंशत्सहस्राणि लक्षैको मानुषाब्दकैः । एभिर्वर्षैर्दिनं ज्ञेयं विराजो ब्रह्मणः स्वयम् ॥३०
निर्गुणोऽव्यक्तजन्मा च कालात्सर्वेश्वरः परः । अव्यक्तं प्रकृतिर्ज्ञेया द्वादशाङ्गानि वै ततः ॥३१
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरव्यक्तस्य स्मृतानि वै । अव्यक्ताच्च परं ब्रह्म सूक्ष्मज्योतिस्तदव्ययम् ॥३२

कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ) और मन संयुक्त इस शरीर में रहने वाला जीव ही ज्ञेय (जानने के योग्य) है, जो इस शरीर का अधिष्ठाता होकर (तीनों) गुणों (सत्व, रज्, और तम्) द्वारा बँधा हुआ है। वह परात्मा अष्टादशात्मा और जीव का कल्याणकर्त्ता शंकर कहा जाता है। बुद्धि मन और इन्द्रियाँ यही इसके विषय हैं। जीवात्मा अहंकार ही ईश महादेव एवं सनातन कहा जाता है। किन्तु वही जीवात्मा होने पर, जो साक्षात् ब्रह्म रूप है, शंकर द्वारा विमोहित होने पर तीनों गुणरूपी पाश से आवद्ध होता है और वही एक से अनेक भी, जो काल, भगवान्, ईश एवं महाकल्प रूपधारी कहा जाता है। १७-२२। शिवकल्प, ब्रह्मकल्प और विष्णुकल्प, यही तीनों कल्प उस ईश के नेत्र हैं और वही ईश का नेत्र चौथा बन्धकल्प कहा गया है। वायुकल्प, वह्निकल्प, ब्रह्माण्ड और लिंगकल्प को ईश का पाँचों मुख उन तत्वज्ञों ने बताया है। भविष्य कल्प, गरुडकल्प, भागवतकल्प और मार्कण्डेयकल्प तथा वामन, नृसिंह, वाराह, मत्स्य और कूर्म (कच्छप) उस ज्ञानात्मा महेश्वर की दस भुजाएँ हैं। उस अव्यक्त ब्रह्म के ये अट्ठारहकल्प अट्ठारह दिन में निर्मित होते हैं, जिनकी गणना के लिए विद्वानों ने विलोमतः बताया है। पहला कूर्मकल्प, दूसरा मत्स्य कल्प और तीसरे श्वेत वाराहकल्प को जानने के लिए पुरातन महर्षियों ने सर्वप्रथम प्रयत्न किया है। भगवान् ब्रह्मा ने अपने को दो रूपों में निभक्तकर सूक्ष्म, स्थूल, निर्गुण, गुणी, सगुण और विराट रूप में अपनी ख्याति की है, जिनका भगवान् विष्णु की नाभि से प्रकट होना बताया जाता है। उन्हीं निर्गुण, व्ययरूप, अव्यक्तजन्मा एवं स्वयंभू (अपने द्वारा उत्पन्न होने वाले) कहे जाने वाले सगुण ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु होती है। मनुष्यों के अस्सी सहस्र वर्षों का उस विराट् ब्रह्मा का एक दिन होता है। निर्गुण एवं अव्यक्त जन्मा वह सर्वेश्वर काल से भी महान् है। उस परमेश्वर की अव्यक्त प्रकृति और बारह अंग बताये गये हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय मन एवं बुद्धि यही उस अव्यक्त के अंग हैं। अव्यक्त से वह

यदा व्यक्ते स्वयं प्राप्तोऽव्यक्तजन्मा हि संस्मृतः। शतवर्षसमाधिस्थो यस्तिष्ठेच्च निरन्तरम् ॥३३
सूक्ष्मो मनोऽनिलो भूत्वा गच्छेद्वै ब्रह्मणः पदम्। सत्यलोकमिति ज्ञेयं योगगम्यं सनातनम् ॥३४
तत्र स्थाने तु मुनयो गताः सर्वे समाधिना। तत्रोषित्वा च लक्षाब्दं भूर्लोकात्क्षणमात्रकम् ॥३५
सच्चिदानन्दघनकं ततः प्राप्ताः कलेवरे। नेत्राणि च समुन्मील्य सम्प्राप्ते द्वितयाह्निके ॥३६
ददृशुर्मनुजान्सर्वान्पशुतुल्यान्हि सूक्ष्मकान्। षष्टब्दायुर्युतान्घोरान्सार्द्धकिष्कुद्वयोन्नतान् ॥३७
क्वचित्क्वचित्स्थिता वर्णा वर्णसङ्करसन्निभाः। सर्वे म्लेच्छाश्च पाषण्डा बहुरूपमतो स्थिताः ॥३८
तीर्थानि सकला वेदास्त्यक्त्वा भूमण्डलम् तदा। गोप्यो भूत्वा च हरिणा सार्द्धं चक्रुर्महोत्सवम् ॥३९
पाषण्डा बहुजातीया नानामार्गप्रदर्शकाः। कलिना निर्मितान्वर्णान्वञ्चयित्वा स्थिता भुवि ॥४०
इति दृष्ट्वा तु मुनयो रोमहर्षणमन्तिके। गत्वा तत्र भविष्यन्ति ततः प्राञ्जलयो हि ते ॥४१
तैश्च तत्र स्तुतः सूतो योगनिद्रां सनातनीम्। कथयिष्यति सन्त्यज्य कल्पाख्यानं मुनीन्प्रति ॥
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथा सूतेन वर्णितम् ॥४२

सूत उवाच

कल्पाख्यानं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं योगनिद्रया। तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा लक्षाब्दान्ते यथाभवत् ॥४३
मुकुलान्वयसम्भूतो म्लेच्छभूपः पिशाचकः। नाम्ना तिमिरलिङ्गश्च मध्यदेशमुपाययौ ॥४४

परब्रह्म आविर्भूत होता है, जिसकी सूक्ष्म ज्योति अव्यय कही जाती है। उसके अव्यक्त अवस्था में स्वयं प्राप्त होने पर उसे अव्यक्तजन्मा कहा जाता है, जो सगुण अवस्था में प्राप्त होकर निरन्तर सौ वर्ष तक समाधिस्थ रहता है। यह सूक्ष्ममन वायु के रूप में सतत प्रयत्न करते हुए ब्रह्मा के जिस स्थान की प्राप्ति करता है, वही सनातन एवं योग द्वारा जानने योग्य सत्यलोक बताया गया है। २३-३५। उस स्थान पर पहुँचकर महर्षिगण समाधिस्थ होकर एक लक्ष वर्ष तक रहने के उपरान्त क्षणमात्र में भूलोक से सच्चिदानन्द धन की उस शरीर में प्रविष्ट हो गये। पश्चात् दूसरे दिन के आरम्भ में आँखें खोलने पर उन लोगों ने सभी मनुष्यों को पशुतुल्य सूक्ष्म रूप में देखा, जो साठ वर्ष की आयु, घोर एवं दो बित्ते के ऊँचे थे। कहीं-कहीं पर तो वर्णशंकर के अनुसार जातियाँ दिखायी देती थीं, किन्तु वे सभी लोग पाखंडी, म्लेच्छ तथा अनेक रूपधारी थे। उस समय सभी तीर्थ और चारों वेद पृथ्वी परित्यागकर गोपी के रूप में भगवान् के साथ उस महोत्सव में सम्मिलित हो गये थे। इस भूतल में कलि ने सभी मनुष्यों को पाखण्डी, अनेक जातियाँ, एवं अनेक पंथ के प्रदर्शक बनाकर उन्हें अपने धर्मकर्म से वंचितकर स्वयं दृढ़ स्थिति कर लिया, ऐसा देखकर महर्षिवृन्द रोमहर्षण (सूतजी) के पास पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। तथा वहाँ पहुँचकर मन ही मन हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम भी। इस प्रकार उन महर्षियों द्वारा स्तुत होने पर सूतजी अपनी उस सनातनी योगनिद्रा का त्यागकर उन्हें कल्प के आख्यान सुनायेंगे। इन्द्रियश्रेष्ठ ! सूत द्वारा वर्णित किये जाने वाले आख्यान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ३६-४२

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! उस एक लाख वर्ष के उपरान्त जो कुछ हुआ है, मैंने अपनी योगनिद्रा द्वारा उसका पूर्णज्ञान कर लिया है, अतः उस कल्प के आख्यान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। म्लेच्छों में तिमिर लिङ्ग (तैमूर) नामक राजा हुआ, जो मुकुल (मुगल) वंश में उत्पन्न एवं

आर्यान्म्लेच्छांस्तदा भूपाञ्जित्वा कालस्यरूपकः । देहलीनगरीमध्ये महावधमकारयत् ॥४५
आहूय सकलान्विप्रानार्यदेशनिवासिनः । उवाच वचनं धीमान्यूयं मूर्तिप्रपूजकाः ॥४६
निर्मिता येन या मूर्तिस्तस्य पुत्रीसमा स्मृता । तस्याः किं पूजनं शुद्धं शालग्रामशिलामयम् ॥
विष्णुदेवश्च युष्माभिः प्रोक्तः स तु न वै हरिः ॥४७
अतो वः सकला वेदाः शास्त्राणि विविधानि च । वृथाकृतानि मुनिभिर्लोकवञ्चनहेतवे ॥
इत्युक्त्वा तान्बलाद्गृह्य ज्वलदग्नौ समाक्षिपत् ॥४८
शालग्रामशिलाः सर्वा बलात्तेषां सुपूज्यकाः । गृहीत्वा चोष्ट्रपृष्ठेषु समारोप्य गृहं ययौ ॥४९
तैत्तिरं देशमागम्य दुर्गं तत्र चकार सः । शालग्रामशिलानां च स्वासनारोहणं कृतम् ॥५०
तदा तु सकलाः देवा दुःखिता वासवं प्रभुम् । समूचुर्बहुधालप्य देवदेवं शचीपतिम् ॥५१
वयं तु भगवन्सर्वे शालग्रामशिलास्थिताः । त्यक्त्वा मूर्तीश्च सकलाः कृष्णांशेन प्रबोधिताः ॥
शालग्रामशिलामध्ये वसामो मुदिता वयम् ॥५२
शिलास्सर्वाश्च नो देव शालदेशसमुद्भवाः । ताश्च वै म्लेच्छराजेन स्वपदारोहणीकृताः ॥५३
इति श्रुत्वा तु वचनं देवानां भगवान्स्वराट् । ज्ञात्वा वलिकृतं सर्वं देवपूजानिराकृतम् ॥५४
चुकोप भगवानिन्द्रो दैत्यान्प्रत्यभ्रवाहनः । गृहीत्वा वज्रमतुलं स्वायुधं दैत्यनाशनम् ॥
तैत्तिरे प्रेषयामास देशे म्लेच्छनिवासके ॥५५

पिशाच धर्मी था । उस कालरूपी तिमिरलिंग (तैमूर) ने मध्यदेश में जाकर आर्यों तथा म्लेच्छराजों पर विजय प्राप्त करते हुए दिल्ली नगर में पहुँचकर भीषण वध करना आरम्भ किया । आर्य देश निवासी सभी ब्राह्मणों को बुलाकर उसने लोगों से कहा—आप लोग मूर्ति के पुजारी हैं तथा जिस व्यक्ति द्वारा उस मूर्ति का निर्माण हुआ वह उसके पुत्र के समान है । इसलिए उस मूर्ति का पूजन करना उचित हो सकता है ? क्योंकि शिलामय शालिग्राम को तुम लोगों ने विष्णुदेव बताया है, अतः वे शालिग्राम निर्मित होने के नाते विष्णु नहीं हो सकते हैं । इसलिए मेरा कहना है कि तुम्हारे मुनियों ने तुम्हारे वेदों एवं शास्त्रों को लोगों को ठगने के लिए व्यर्थ बनाया है ।४३-५०। इतना कहकर उन ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रज्जलित अग्नि में डलवा दिया । अनन्तर शालग्राम शिला और उसके पुजारियों को बलात् पकड़कर ऊँटों पर उन्हें बैठाकर साथ में लिए अपने घर गया । वहाँ पहुँचकर उस तैत्तिर देश में एक दुर्ग (किले) का निर्माण कराकर रहने लगा और शालिग्राम को अपनी शय्या का आरोहण (पावदान) बनाया । उस समय समस्त देवों ने दुःखी होकर अपने स्वामी इन्द्र के पास पहुँचकर उन देवनायक एवं शचीपति से सभी वृत्तान्त का वर्णन किया । भगवन् ! भगवान् कृष्णांश के द्वारा प्रबोधित होने पर हमलोग सभी मूर्तियों को त्यागकर शालिग्राम शिलाओं के मध्य में सहर्ष निवास करते हैं तथा देव ! वे शिलाएँ शालदेश में उत्पन्न होती हैं । किन्तु उस म्लेच्छराज ने उन शिलाओं को अपने पैर का आरोहण (पावदान) बना लिया है । इसे सुनकर देवसम्राट् भगवान् इन्द्र के समस्त देव-पूजन को बलि द्वारा तिरस्कृत करना जानकर दैत्यों के ऊपर महान् क्रोध किया । मेघवाहन इन्द्र ने अपने उस दैत्यनाशक एवं अतुल वज्रायुध को ग्रहणकर उन्हें म्लेच्छों के निवासभूत तैत्तिर प्रदेश में भेजा । वहाँ उनके शब्दों से वह सम्पूर्ण देश कई

तस्य शब्देन सकला देशाश्च बहुभिन्नकाः । स म्लेच्छो मरणं प्राप्तस्तदा सर्वसभाजनैः ।।५६
शालग्रामशिलाः सर्वा गृहीत्वा विबुधास्तदा । गण्डक्यां च समाक्षिप्य स्वर्गलोकमुपाययुः ।।५७
महेन्द्रस्तु सुरैः सार्द्धं देवपूज्यमुवाच ह । महीतले कलौ प्राप्ते भगवन्दानवोत्तमाः ।।५८
वेदधर्मं समुल्लङ्घ्य मम नाशनतत्पराः । अतो मां रक्ष भगवन्देवैः सार्द्धं कलौयुगे ।।५९

जीव उवाच

महेन्द्र तव या पत्नी शची नाम्ना महोत्तमा । ददौ तस्यै वरं विष्णुर्भवितास्मि सुतः कलौ ।।६०
त्वदाज्ञया च सा देवी पुरीं शान्तिमयीं शुभाम् । गौडदेशे च गङ्गायाः कूले लोकनिवासिनीम् ।।६१
प्रत्यागत्य द्विजो भूत्वा कार्यसिद्धिं करिष्यति । भवान्वै ब्राह्मणो भूत्वा देवकार्यं प्रसाधय ।।६२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं रुद्रैरेकादशैः सह । अष्टभिर्वसुभिः सार्धमश्विभ्यां स च वासवः ।।६३
तीर्थराजमुपागम्य प्रयागं च रविप्रियम् । माघे तु मकरे सूर्ये सूर्यदेवमतोषयत् ।।६४
बृहस्पतिस्तदागत्य सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । इन्द्रादीन्कथयामास द्वादशाध्यायमापठन् ।।६५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

भागों में छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया और वह म्लेच्छराज अपने कुल समेत विनष्ट हो गया। पश्चात् देवों ने उस शालग्राम शिला को लेकर उस गंडकी में डालकर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर महेन्द्र देव ने देवों समेत गुरु वृहस्पति के पास पहुँचकर उनसे कहा—भगवन्! पृथ्वी पर कलि के आने पर दानवगण वेदधर्म का उल्लंघन करके मेरे नाश के लिए तुल जायेंगे। अतः भगवन्! कलियुग में देवों समेत मेरी रक्षा करना।५१-५९

वृहस्पति ने कहा—महेन्द्र! विष्णु ने तुम्हारी शची नाम की श्रेष्ठ पत्नी को वरदान दिया है कि 'कलि के समय मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा।' तुम्हारी आज्ञा प्राप्तकर वह देवी उस शान्तिमयी एवं शुभपुरी में, जो गौड़देश में गङ्गा के तट पर स्थित है, ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होकर कार्यसिद्धि करेगी अतः आप भी ब्राह्मण होकर देवकार्य के सफल होने की चेष्टा कीजिये। इस प्रकार गुरु की बात सुनकर इन्द्र ने एकादश रुद्र, आठ वसु और अश्विनी कुमार के साथ माघ में मकर के अवसर पर सूर्यप्रिय तीर्थराज प्रयाग में जाकर सूर्यदेव की उपासना की। उस समय वृहस्पति ने भी वहाँ पहुँचकर बारह अध्याय में निर्मित सूर्य माहात्म्य उन इन्द्रादि देवों को सुनाया।६०-६५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय
इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

रामानन्दनिम्बार्कसमुत्पत्तिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

बृहस्पतिस्तु भगवान्मुनिर्देवान्समास्थितान् । किं प्रोवाच च माहात्म्यं मण्डलस्थस्य वै रवेः ।।१
तत्सर्वं कृपया ब्रह्मन्ब्रूहि नस्तत्समुत्सुकान् । इति श्रुत्वा वचस्तेषां सूतो वचनमब्रवीत् ।।२
बृहस्पतिं समासीनं जीवरूपं गुणालयम् । प्रयागस्थो महेन्द्रश्च सुरैः सार्द्धमुवाच ह ।।३
कथयस्व महाभाग सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुतेन रविः साक्षात्प्रसन्नोऽद्य भवेत्प्रभुः ।।४

बृहस्पतिरुवाच

धातृशर्मा द्विजः कश्चिदपत्यार्थे प्रजापतिम् । तपसा तोषयामास बर्हिष्मतिपुरे स्थितः ।।५
पञ्चमाब्दे तु भगवान्सन्तुष्टश्च प्रजापतिः । सुतं कन्यां पुनः पुत्रं त्रीण्यपत्यानि सन्ददौ ।।६
वर्षान्तरे जनयित्वा ह्यपत्यं स द्विजोत्तमः । धातृशर्मा परं हर्षमाप्तवान्पुत्रलालनैः ।।७
विवाहाश्च कथं तेषां भवितव्या महोत्तमाः । इति चिन्तान्वितो विप्रो गन्धर्वेशं तु तुम्बुरुम् ।।८
हवनैस्तोषयामास वर्षमात्रविधानतः । तुम्बुरुश्च तदागत्य तं चकार मनोरथम् ।।९
प्रसन्नस्तु तदा विप्रो वधूर्जामातरं मुदा । दृष्ट्वा तेषां विहारं च पुनश्चिन्तां चकार ह ।।१०

अध्याय ७

रामानन्द तथा निम्बार्क के उत्पत्ति का वर्णन

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! भगवान् बृहस्पति ने वहाँ एकत्र स्थित देववृन्दों से मण्डलस्थ सूर्यदेव के किस माहात्म्य का वर्णन किया है । उसे जानने के लिए हमलोग अत्यन्त समुत्सुक हैं अतः उसे सुनाने की कृपा कीजिये । उन लोगों की ऐसी बात सुनकर सूतजी बोले कि—जीवरूप एवं गुणनिधि बृहस्पति को वहाँ प्रयाग में शोभन आसन पर आसीन देखकर देवों समेत महेन्द्र ने उनसे कहा—महाभाग ! सूर्य के उस माहात्म्य का वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर साक्षात् सूर्य भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हों । १-४

बृहस्पति बोले—बर्हिष्मती नामक पुरी के रहने वाले किसी धातृशर्मा नामक ब्राह्मण ने संतानार्थ प्रजापति की तप द्वारा आराधना की । पाँचवें वर्ष प्रसन्न होकर भगवान् प्रजापति ने दो पुत्र और एक कन्या उस ब्राह्मण को प्रदान किया । वह ब्राह्मण श्रेष्ठ को वर्ष के भीतर ही उन तीनों संतान की प्राप्ति हो गई, जिससे वह धातृशर्मा अत्यन्त हर्षित होकर उन संतानों का लालन-पालन करने लगा । पश्चात् इनका उत्तम विवाह सम्बन्ध किस प्रकार सुसम्पन्न हो, ऐसी चिन्ता करते हुए उस ब्राह्मण ने एक वर्ष हवन द्वारा तुम्बुरु नामक गन्धर्व नायक की उपासना की । उपरान्त प्रसन्न होकर उस गंधर्व ने उनके उस मनोरथ को सफल किया। अपने पुत्र तथा उनकी बहुओं को देखकर उस ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। किन्तु उनके उपभोग साधनों के लिए पुनः चिन्तित होने लगा—मैं निर्धन हूँ तथा साठ वर्ष की मेरी आयु

भूषणानि च वासांसि धनानि विविधानि च । तेषां कथं भविष्यन्ति निर्धनानां ममाशुच ॥११
षष्टिवर्षमयो भूत्वा चन्दनाद्यैर्धनाधिपम् । विधिवत्पूजयामास वर्षमात्रं तु तत्परः ॥१२
तदा प्रसन्नो भगवान्ददौ तस्मै धनं बहु । विद्यां यक्षमयीं रम्यां पञ्चस्वर्णप्रदां मुदा ॥१३
सहस्रजापी सम्पूज्य हवनं तद्दशांशकम् । तर्पणं मार्जनं चैव कृत्वा वाञ्छामवाप्तवान् ॥१४
इत्येवं वर्तमानस्य गतः कालो महान्स्वयम् । मृत्योरागमनं तस्य जातं रोगसमन्वितम् ॥१५
पीडितस्तु रुजा विप्रः शङ्करं लोकशङ्करम् । स्तुतिभिः श्रुतिरूपाभिस्तुष्टाव बलवर्जितः ॥
माससमात्रेण भगवान्ददौ ज्ञानं स्वयं हरः ॥१६
धातृशर्मा तु तत्प्राप्य भास्करं मोहनाशनम् । सूर्यवारव्रतैस्तत्र तोषयामास नम्रधीः ॥१७
पञ्चाब्दे भगवान्सूर्यो भक्तिभावेन वत्सलः । चैत्र्यां तमाह वचनं वरं ब्रूहि पुनः पुनः ॥१८
धातृशर्मा तु तच्छ्रुत्वा भास्करं मोहनाशनम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा तुष्टाव परया गिरा ॥१९

धातृशर्मोवाच

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च मनसोऽस्य तनौ प्रिया । रात्रिरूपा प्रवृत्तिश्च निवृत्तिर्दिनरूपिणी ॥
भवतस्तेजसा जाते लोकबन्धनहेतवे ॥२०
अव्यक्ते तु स्थितं तेजो भवतो दिव्यसूक्ष्मकम् । त्रिधाभूतं तु विश्वाय तस्मै तेजात्मने नमः ॥२१
राजसी या स्मृता बुद्धिस्तत्पतिर्भगवान्विधिः । भवतस्तेजसा जातस्तस्मै ते विधये नमः ॥२२

भी हो चुकी है, इसलिए इनके लिए भाँति-भाँति के भूषण और वस्त्रों की प्राप्ति कैसे हो सकेगी । इस प्रकार चिन्तित होकर उसने एक वर्ष तक चन्दनादि सामग्री द्वारा कुबेर की विधिवत् अर्चना की ।११-१२। उस समय प्रसन्न होकर कुबेर ने उन्हें अत्यन्त धन समेत पाँच सुवर्ण मुद्रा प्रदान करने वाली यक्ष विद्या प्रदान की । (मंत्र की) सहस्र संख्या के जप करने वाले उस ब्राह्मण ने उनकी पूजापूर्वक उसका दशांश हवन, तर्पण और मार्जन करके अपना मनोरथ सफल किया । इस प्रकार उसके सुखी-जीवन का एक महान् समय व्यतीत हुआ । पश्चात् मरण के दिन सन्निकट होने पर वह रोगी हो गया । रोग से पीड़ित होने पर उस ब्राह्मण ने वैदिक स्तुति द्वारा लोक के कल्याणमूर्ति श्रीशंकर की उपासना की । एक मास के उपरान्त भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उसे ज्ञान प्रदान किया, जिससे उस विनम्र धातृशर्मा ने रविवार-व्रतों द्वारा मोहनाशक भगवान् भास्कर को प्रसन्न करना आरम्भ किया । पाँच वर्ष के उपरान्त भक्तवत्सल भगवान् सूर्य ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर चैत्र पूर्णिमा के दिन मन इच्छित वरदान के लिए उसे प्रेरित किया । उसे सुनकर धातृशर्मा ने मोहनाशक भगवान् भास्कर जी की विनम्र एवं उत्तम वाणी द्वारा स्तुति करना प्रारम्भ किया ।५-१९

धातृशर्मा ने कहा—इस शरीर में रहने वाले मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो प्रियायें हैं, जिसमें प्रवृत्ति रात्रिरूप एवं निवृत्ति दिनरूप वाली कही जाती है । सांसारिक बंधनों की कारण भूत ये प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप परिस्थितियाँ आपके उस तेज द्वारा ही उत्पन्न होती हैं जो आपका तेज दिव्य एवं सूक्ष्म रूप से अव्यक्त में स्थित हैं और विश्व के लिए वही तीन भागों में विभक्त होता है, अतः उस तेजरूप वाले आत्मा को बार-बार नमस्कार है ।२०-२२। राजस् बुद्धि, जिसके पति भगवान् ब्रह्मा हैं, आपके तेज द्वारा

सात्त्विकी या तनौ बुद्धिस्तत्पतिर्भगवान्हरिः। भवता निर्मितस्सत्वात्तस्मै ते हरये नमः ॥२३
तामसी मोहना बुद्धिस्तत्पतिश्च स्वयं शिवः। तमोभूतेन भवता जातस्तस्मै नमो नमः ॥
देहि मे भगवन्मोक्षं संज्ञाकान्त नमोनमः ॥२४

बृहस्पतिरुवाच

इत्येवं संस्तुतस्तेन भगवान्धातृशर्मणा। महेन्द्रवचनं प्राह तं द्विजं ज्ञानकोविदम् ॥२५
मोक्षश्चतुर्विधो विप्र सालोक्यं तपसोद्भवम्। सामीप्यं भक्तितो जातं सारूप्यं ध्यानसम्भवम् ॥२६
सायुज्यं ज्ञानतो ज्ञेयं तेषां स्वामी परः पुमान्। सगुणो विगुणो ज्ञेय आनन्दो मोक्षिणां क्रमात् ॥२७
देवानां चैव देहेषु ये मोक्षाः पुनरागताः। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२८
यत्प्रसन्नेन विप्रेन्द्र सायुज्यं मे भवेत्तव। मनुमात्रश्च यः कालस्तावत्ते मोक्ष आस्थितः ॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तेन मोक्षीकृतो द्विजः ॥२९

सूत उवाच

इत्युक्तवन्तं वागीशं चैत्रमासे दिवाकरः। स्वरूपं दर्शयामास देवदेवः सनातनः ॥३०
शृणुध्वं सकला देवा यन्निमिताः समागताः। वह्नीये स्वांशमुत्पाद्य देवकार्यं करोम्यहम् ॥३१
इत्युक्त्वा स्वमुखात्तेजः समुत्पाद्य दिवाकरः। स्वभक्तायै सुकन्यायै द्विजपत्न्यै ददौ हि तत् ॥३२

ही उत्पन्न हैं, अतः उस विधिरूप ब्रह्मा को बार-बार नमस्कार है। शरीर में स्थिति उस सात्त्विकी बुद्धि का जन्म जिसके अधीश्वर भगवान् विष्णु कहे गये हैं, आपके द्वारा ही हुआ है, इसलिए उस हरिरूप आपको नमस्कार है। इसी प्रकार मोहात्मक तामसी बुद्धि भी, जिसके अध्यक्ष स्वयं शिवजी हैं, तमोरूप आपसे ही उत्पन्न हुई है, अतः उस रूपधारी आपको नमस्कार है। भगवन्, संज्ञाकान्त ! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ, आप मुझे मोक्ष-प्रदान करने की कृपा करें।२३-२४

बृहस्पति जी बोले—महेन्द्र ! धातृशर्मा ब्राह्मण के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् सूर्य ने उस ज्ञान-निपुण द्विजश्रेष्ठ से कहा—विप्र ! मोक्ष चार प्रकार का होता है सालोक्य की प्राप्ति तप द्वारा सामीप्य भक्ति द्वारा, सारूप्य ध्यान द्वारा और सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान द्वारा होती है तथा इन सभी प्रकार के मोक्ष के अधिपति वही परमात्मा है और क्रमशः उत्तरोत्तर मोक्षों के आनन्द दुगुने बताये गये हैं। देवों की शरीर में वही मोक्ष आकर पुनः स्थित हैं इसलिए जहाँ पहुँचने पर पुनः वहाँ से निवृत्ति (लौटना) नहीं होता है वही विष्णु का परमपद कहा गया है विप्रेन्द्र ! जिसकी प्रसन्नतावश मेरे सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति तुम्हें हुई है। यह तुम्हारा मोक्ष इस मनु की स्थिति काल तक स्थित रहेगा। इतना कहकर सूर्यदेव अन्तर्हित हो गये और उस ब्राह्मण को मोक्ष की प्राप्ति हुई।२५-२९

सूत जी बोले—इस प्रकार (उनके माहात्म्य) वर्णन करने पर चैत्रमास की उस पूर्णिमा के समय सूर्य ने उन बृहस्पति को अपने स्वरूप का दर्शन प्रदान किया। पश्चात् उन सनातन एवं देवाधिदेव सूर्य ने कहा—देववृन्द ! जिस कार्य के लिए आपलोग यहाँ एकत्रित हुए हैं, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनिये। काश्मीर नगर में मैं अपने अंश से उत्पन्न देव-कार्य को सफल करूँगा। इतना कहकर सूर्य ने अपने मुख द्वारा तेज निकालकर अपने भक्त उन दोनों ब्राह्मण-पत्नियों को समर्पित कर दिया। उस धातृशर्मा ब्राह्मण का जो

धातृशर्मा द्विजो यो वै सूर्ये मोक्षमुपागतः । स वै तत्तेजसा जातः काव्यकारस्य मन्दिरे ।।३३
ईश्वरो नाम विख्यातः पुरीशद्दान्त आत्मवान् । जित्वा विप्रान्वेदपरान्महतीं कीर्तिमाप्तवान् ।।३४
इति ते कथितं विप्र यथा जीवनभाषितम् । पुनः शृणु कथां रम्यां देवेभ्यो जीवनिर्मिताम् ।।३५

बृहस्पतिरुवाच

मायावत्यां द्विजः कश्चिन्मित्रशर्मेति विश्रुतः । काव्यविद्यापरो नित्यं रसिकः कामिनीप्रियः ।।३६
कुम्भराशिं मयि प्राप्ते गङ्गाद्वारे महोत्सवः । बभूव बहुलैर्भूपैः कारितस्तीर्थतत्परैः ।।३७
तत्रोत्सवे नरा नार्यो बहुभूषणभूषिताः । समाययुर्दर्शनार्थे परमानन्दनिर्भराः ।।३८
मित्रशर्मा तु सम्प्राप्य कामसेनस्य वै सुताम् । काव्यकेलिकलायुक्तां द्वादशाब्दमयीं शुभाम् ।।३९
दाक्षिणात्यस्य भूपस्य तनयां मधुराननाम् । दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं तद्वशित्वमुपागतः ।।४०
सा तु तं चित्रिणी नाम्ना मित्रशर्माणमुत्तमम् । दृष्ट्वा तु मूर्च्छिता चासीद्विप्रमूर्तिर्हृदि स्थिता ।।४१
स्वगेहं पुनरागत्य चित्रिणी भास्करं प्रभुम् । प्रत्यहं पूजयामास बहुमानपुरस्सरा ।।४२
मित्रशर्मा तु तत्स्थाने गङ्गाकूले मनोहरे । प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा वैशाखे जलमध्यगः ।।४३
स्तोत्रमादित्यहृदयमजपत्सूर्यतत्परः । प्रत्यहं द्वादशावर्तैस्तोषयामास भास्करम् ।।४४
मासान्ते भगवान्सूर्यो ददौ तस्मै हि तं वरम् । स तु लब्धवरो विप्रः स्वगेहं पुनरागतः ।।४५

सूर्य में सायुज्य मोक्ष की प्राप्तिकर सुखानुभव कर रहा था, सूर्य के तेज द्वारा काव्यकार के घर पुनः जन्म हुआ जो केशव नाम से प्रख्यात एवं समस्त शास्त्रों में निपुण था । उसने वेद के पारगामी ब्राह्मणों पर विजय प्राप्तिपूर्वक अत्यन्त महान् यश की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार मैंने वृहस्पति के कहे हुए उस समस्त माहात्म्य को सुना दिया, किन्तु देवों के लिए बृहस्पति द्वारा कही हुई उस कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ३०-३५

बृहस्पति जी बोले—मायावती पुरी में मित्रशर्मा नामक कोई ब्राह्मण रहता था, जो नित्य काव्य रचना में तन्मय, रसिक एवं कामिनी प्रेमी था । कुम्भ राशि पर मेरे स्थित होने पर उस समय हरिद्वार में एक महान् उत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें अनेक देशों के आये हुए उस तीर्थ के निवासी अनेक राजगण सम्मिलित थे । उस उत्सव के दर्शनार्थ वहाँ परमानन्द प्रेमी एवं भूषणों से सुसज्जित पुरुष तथा स्त्रियों का एक महान् समाज उपस्थित हुआ । मित्रशर्मा भी उस उत्सव में पहुँचकर दक्षिण प्रदेश के निवासी राजा कामसेन की पुत्री को, जो काव्यक्रीड़ा में निपुण बारह वर्ष की आयु, शुभमूर्ति, सौन्दर्यपूर्णमुख तथा मृग-बच्चों के समान विशाल नेत्रवाली थी, देखकर अत्यन्त अधीर हो गया । वह चित्रिणी नामक कन्या भी मित्रशर्मा को देखते ही उस ब्राह्मण-मूर्ति को हृदय में स्थापित करती हुई मूर्च्छित हो गई । पश्चात् अपने घर आकर वह चित्रिणी कन्या सादर सम्मानपूर्वक भगवान् भास्कर की आराधना करने लगी । मित्रशर्मा ने भी वही रमणीक गंगा-तट पर रहकर वैशाखमास के प्रारम्भ से प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर आदित्यहृदय स्तोत्र का पाठ करना आरम्भ किया । प्रतिदिन उस स्तोत्र के बारह बार पाठ करके वह ब्राह्मण भगवान् भास्करदेव को प्रसन्न कर रहा था । मास के अन्त में भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान किया । पश्चात् वर प्राप्तकर वह ब्राह्मण अपने घर आया । चित्रिणी को भी

चित्रिणी तु वरं प्राप्ता वाञ्छितं लोकभास्करात् । पुनस्तौ पितरौ स्वप्ने भास्करेण प्रबोधितौ ॥४६
मित्रशर्माणमाहूय वरयामासतुः सुताम् । स्वान्ते निवासयामास कामसेनश्च दम्पती ॥४७
तौ तु चक्रं मुदाविष्टौ प्रत्यहं सूर्यदैवतम् । ताम्रपात्रे च तद्यन्त्रं लेखयित्वा विधानतः ॥४८
ईजतू रक्तकुसुमैर्व्रतं कृत्वा रविप्रियम् ॥४९
शताब्दवपुषौ चोभौ निर्जरौ श्रमवर्जितौ । आरोग्यौ मरणं प्राप्य सामीप्यं च रवेर्गतौ ॥५०
इति श्रुत्वा रवेर्गाथां वैशाख्यां देवराट् स्वयम् । प्रत्यक्षं भास्करं देवं ददर्श सहितं सुरैः ॥५१
भक्तिनम्रान्सुरान्दृष्ट्वा भगवांस्तिमिरापहः । उवाच वचनं रम्यं देवकार्यपरं शुभम् ।
ममांशात्तनयो भूमौ भविष्यति सुरोत्तम ॥५२

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स्वस्य बिम्बस्य तेजोराशिं समन्ततः । समुत्पाद्य कृतः काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत् ॥५३
देवलस्य च विप्रस्य कान्यकुब्जस्य वै सुतः । बाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनामपरायणः ॥
पित्रा मात्रा परित्यक्तो राघवं शरणं गतः ॥५४
तदा तु भगवान्साक्षाच्चतुर्दशकलो हरिः । सीतापतिस्तद्धृदये निवासं कृतवान्मुदा ॥५५
इति ते कथितं विप्रमित्रदेवांशतो यथा । रामानन्दस्तु बलवान्हरिभक्तेश्च सम्भवः ॥५६

भगवान् भास्कर द्वारा उसके मनोऽनुरूप वर की प्राप्ति हुई । सूर्यदेव ने दोनों के माता-पिता को स्वप्न द्वारा एक दूसरे का ज्ञान कराया । अनन्तर राजा कामसेन ने मित्रशर्मा को बुलाकर उसके साथ चित्रिणी का विवाह संस्कार सुसम्पन्न कराकर उन दोनों को अपने यहाँ रख लिया । वहाँ आनन्दमग्न रहकर उन दोनों ने सूर्यदेव की आराधना आरम्भ की—ताँबे के पत्रपर उनका मंत्र लिखवाकर प्रतिदिन रक्तपुष्पों द्वारा उसकी पूजा और सूर्यप्रिय उस रविवार व्रत द्वारा उन्हें प्रसन्न करना प्रारम्भ किया । इससे वे दोनों देवों की भाँति सदैव युवा ही रहकर आरोग्य एवं सुखी-जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में मरण के अवसर पर शरीर परित्यागकर सामीप्य मोक्ष द्वारा सूर्य के यहाँ पहुँच गये । वैशाख मास के सूर्य के इस माहात्म्य को सुनकर महेन्द्र देव ने देवों समेत भास्कर देव का प्रत्यक्ष दर्शन किया । अत्यन्त भक्ति से विनम्र उन देवों को देखकर अन्धकारनाशक भगवान् सूर्य ने उन लोगों से कहा—सुरोत्तम ! देवकार्य के सिद्ध्यर्थ भूतल में मेरा अंश उत्पन्न होगा ।३६-५२

सूतजी बोले—इतना कह सूर्य ने अपने विम्ब मण्डल से तेजराशि निकालकर काशी में डाल दिया, जिससे रामानन्द की उत्पत्ति हुई । किसी कान्यकुब्ज ब्राह्मण एवं मन्दिर के पुजारी के घर रामानन्द का जन्म हुआ, जो बाल्यकाल से ही ज्ञानी तथा रामनाम के अत्यन्त प्रेमी थे । पिता-माता के त्याग करने पर वे भगवान् की शरण में चले गये । सीतापति भगवान् ने, जो चौदह कलाओं से युक्त एवं विष्णु के रूप में स्थित हैं, प्रसन्न होकर साक्षात् उनके हृदय में निवास किया । विप्र ! इस प्रकार मैंने सूर्यदेव के अंश की, जो रामानन्द के रूप में परिणत होकर भगवान् का महान् भक्त हुआ, कथा तुम्हें सुना दिया ।५३-५६

बृहस्पतिरुवाच

शृणु शक्र कथां रम्यां ज्येष्ठमासस्य वै रवेः। अर्यमा नाम वै विप्रः पुरा सत्ययुगे ह्यभूत् ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मशास्त्रपरायणः ॥५७
तस्य पत्नी पितृमती श्राद्धयज्ञस्य भूपतेः। तनया च महासाध्वी सप्त पुत्रानकल्मषान् ॥
अर्यम्णो जनयामास धर्मशास्त्रपरायणान् ॥५८
एकदा स द्विजो धीमान्विचार्य्य बहुधा हृदि। धनार्थी भास्करं देवं तुष्टाव बहुपूजनैः ॥५९
प्रभाते श्वेतकुसुमैश्चन्दनादिभिरर्चनैः। मध्याह्ने रक्तकुसुमैः पीतपुष्पैः पितृप्रसौ[1] ॥६०
मासमात्रं तु विधिना पूजयामास भास्करम्। ज्येष्ठे वै भगवान्सूर्यो ददौ तस्मै मणिं शुभम् ॥६१
तन्मणेश्च प्रभावेण प्रस्थमात्रं च काञ्चनम्। प्रत्यहं जनयामास तेन धर्मः समर्जितः ॥६२
वापीकूपतडागान्हि तथा हर्म्याणि भूतले। कारयामास धर्मार्थी सूर्यदेवप्रसादतः ॥६३
सहस्राब्दवपुर्भूत्वा निर्जरो निरुपद्रवः। त्यक्त्वा कलेवरं रम्यं सूर्यलोकमुपाययौ ॥
उषित्वा तत्र लक्षाब्दं सूर्यरूपो बभूव ह ॥६४
इत्येवं भास्करस्यैव माहात्म्यं कथितं मया। तस्माच्छक्र सुरैः सार्द्धं भज मण्डलगं रविम् ॥६५
इति श्रुत्वा तु ते देवाः पद्यैः सूर्यकथामयैः। तोषयाञ्चक्रिरे प्रेम्णा ज्येष्ठमासि रविस्त्वसौ ॥
प्रत्यक्षमभवत्तत्र देवानाह प्रसन्नधीः ॥६६
सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्जप्तो जनिष्यति ।६७

बृहस्पति ने कहा—इन्द्र ! सूर्य की ज्येष्ठ मास की एक रम्य कथा तुम्हें सुना रहा हूँ। पहले सत्ययुग में अर्यमा नामक एक ब्राह्मण हुआ, जो वेद, वेदाङ्ग का मर्मज्ञ और धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् था। श्राद्धयज्ञ नामक राजा की पितृमती नामक कन्या उसकी पत्नी थी। उस अर्यमा ब्राह्मण ने उस पत्नी द्वारा सात पुत्र और एक पतिप्राणा पुत्री उत्पन्न किया। उसके वे पुत्र धर्मशास्त्र के निपुण विद्वान् थे। एक बार उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने हृदय में भलीभाँति विचारकर धन के लिए अनेक पूजनों द्वारा भास्कर देव की उपासना की। प्रातःकाल में श्वेतपुष्प एवं चन्दनादि, मध्याह्न में रक्तपुष्प और सायंकाल में पीतपुष्पों द्वारा उनकी आराधना प्रारम्भ की। विधानपूर्वक एक मास तक उनकी पूजा करने के उपरान्त ज्येष्ठमास के अन्त में भगवान् सूर्य ने उसे एक शुभमणि प्रदान किया, जिससे उस मणि के प्रभाव से एक सेर सुवर्ण प्रतिदिन उन्हें मिलने लगा। उसके द्वारा उन्होंने अत्यन्त धर्म किया—पृथ्वी में अनेक स्थानों पर बावली, कुएँ, तालाब और सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कराया। पश्चात् सूर्यदेव के प्रसन्नतावश इन कार्यों के सुसम्पन्न होने के उपरान्त उस धार्मिक ने एक सहस्र वर्ष तक तरुण एवं आरोग्य जीवन व्यतीत किया। अनन्तर अपनी शरीर को त्यागकर रमणीक सूर्यलोक की प्राप्ति पूर्वक वहाँ एक लाख वर्ष तक रह पुनः सूर्यरूप की प्राप्ति की। इस प्रकार सूर्य का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुना दिया।

---

१. ह्रस्व आर्षः।

निम्बादित्य इति ख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यति ।

सूत उवाच

शृणुष्व चरितं तस्य निम्बार्कस्य महात्मनः ॥६८
यमाह भगवान्कृष्णः कुरु कार्यं ममाज्ञया । मेरोश्च दक्षिणे पार्श्वे नर्मदायास्तटे शुभे ॥६९
देशे तैलङ्गके रम्ये देवर्षिवरसेविते । तत्रावतीर्य सद्धर्मान्नारदाद्देवदर्शनात् ॥७०
लब्ध्वा भूमौ वर्तयस्व नष्टप्रायान्ममाज्ञया । माथुरे नैमिषारण्ये द्वारवत्यां ममाश्रमे ॥७१
सुदर्शनाश्रमादौ च स्थितिः कार्या त्वयानघ । ओमित्यादेशमादाय भगवाञ्श्रीसुदर्शनः ॥७२
भक्ताभीष्टप्रदः साक्षादवतीर्णो महीतले । देशे तैलङ्गके पुण्ये द्विजवर्यो महामनाः ॥७३
सुदर्शनाश्रमे पुण्ये भृगुवंशसमुद्भवः । नाम्नाऽऽरुण इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥७४
ऋषिरूपधरश्चासीज्जयन्त्या भार्यया सह । समाहितं तेन तेजो विष्णुचक्रसमुद्भवम् ॥७५
दधार मनसा देवी जयन्ती पतिदेवता । तेजसा शुशुभे तेन चन्द्रेणेव दिशामला ॥७६
अथ सर्वगुणोपेते काले परमशोभने । कार्त्तिकस्य सिते पक्षे पूर्णिमायां वृषे विधौ ॥७७
कृत्तिकाभे महारम्ये उच्चस्थे ग्रहपञ्चके । सूर्यावसानसमये मेषलग्ने निशामुखे ॥७८
जयन्त्यां जयरूपिण्यां जजान जगदीश्वरः । येन सर्वमिदं विश्वं वेदधर्मे नियोजितम् ॥७९
विरिञ्चिरेकदा तस्मिन्निम्बार्कस्याश्रमे शुभे । समागत्याह भो ब्रह्मन्प्राप्तोऽहं क्षुधयान्वितः ॥८०
यावत्सूर्यः स्थितो व्योम्नि तावन्मां भोजय द्विज । इति श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा ददौ तस्मै च भोजनम् ॥८१
तदा तु भगवान्सूर्यो ह्यस्ताचलमुपागतः । मुनिना ऋषिणा तेन निम्बवृक्षे तदा शुभे ॥८२
स्थापितं तेजसा स्वेन तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् । तत्तेजः सूर्यसङ्काशं दृष्ट्वा वेधाः स्मयान्वितः ॥८३
भिक्षुवेषधरं बालं मुनिं सूर्यमिवापरम् । ननाम दण्डवद्भूमौ तपसा तस्य तोषितः ॥८४

इसलिए इन्द्र ! देवों समेत तुम मण्डलस्थ सूर्य की उपासना करो । इसे सुनकर देवों ने सूर्यदेव की पद्यात्मक कथाओं द्वारा उनकी आराधना आरम्भ की । उससे प्रसन्न होकर ज्येष्ठ मास में सूर्य ने वहाँ प्रकट होकर देवों से कहा—देवगण ! भयानक कलि के समय में कृष्णसप्तसुदर्शन निम्बादित्य के रूप में उत्पन्न होकर ख्यातिपूर्वक देवों का कार्य सफल करेगा, तथा धर्म की ग्लानि को हरेगा ।५७-६८

सूत जी बोले—उस महात्मा निम्बार्क के चरित्र को सुनिये । जिसको भगवान् विष्णु ने कहा था कि मेरी आज्ञा से कार्य करोगे । मेरु के दक्षिण तरफ नर्मदा के शुभ तट पर, देवर्षियों द्वारा सेवित तेलंगक देश में अवतार लेकर देवताओं के दर्शन एवं नारद से सद्धर्मों को लेकर निर्लिप्तभाव से मेरी आज्ञा से भूमि पर निवास करो । नैमिषारण्य, हरिद्वार आदि मेरे आश्रम एवं सुदर्शनाश्रम में आवास बनाओ । सूर्य जब तक आकाश में ठहरे हुए हैं, उसी के भीतर ही हमें भोजन करा दो, इसे सुनकर उसने स्वीकार किया और भोजन तैयार कराकर उन्हें भोजन के लिए बैठाया तो सूर्यास्त हो गया किन्तु उसने सूर्य को पुनः आवाहित किया, जिससे निम्बवृक्ष के समान सूर्य का दर्शन उन वैष्णवों को हो गया । उस

उवाच वचनं रम्यं साधु साध्विति पूजयन् । निम्बादित्य इति ख्यातो वसुधायां भविष्यसि ।।८५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये रामानन्दनिम्बार्कसमुत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजि-दीक्षितवराहमिहिराचार्योत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

पुरा त्रेतायुगे शक्र शक्रशर्मा द्विजो ह्यभूत् । अयोध्यायां महाभागो देवपूजनतत्परः ।।१

अश्विनौ च तथा रुद्रान्वसून्सूर्यान्पृथक्पृथक् । यजुर्वेदमयैर्मन्त्रैरर्चयित्वा प्रसन्नधीः ।।

हव्यैश्च तर्पयामास देवाँस्तान्प्रत्यहं द्विजः ।।२

तद्भावतस्त्रयस्त्रिंशद्देवाः क्षुद्रगणैर्युताः । ददुर्मनोरथं तस्मै दुर्लभं सुलभीकृतम् ।।३

दशवर्षसहस्राणि निर्जरो निरुपद्रवः । पश्चात्कलेवरं त्यक्त्वा पश्चात्सूर्यो बभूव सः ।।४

लक्षाब्दं मण्डले तस्मिन्नधिकारः कृतस्ततः । ब्रह्मलोकं ययौ विप्रः सर्वदेवप्रसादतः ।।५

अष्टवर्षसहस्राणि दिव्यानि पदमुत्तमम् । विलोक्य मण्डले प्राप्तं तं सूर्यं जपपूजनैः ।।६

समय उन वैष्णवों ने साधु-साधु कहकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की । उसी दिन से वह बालक निम्बादित्य के नाम से इस भूतल में प्रख्यात हुआ ।६९-८५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रामानन्द और निम्बार्क का उत्पत्ति वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजिदीक्षित वराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—इन्द्र ! पहले त्रेतायुग में आयोध्यापुरी में शक्र शर्मा नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त पुण्य एवं देवोपासना में तत्पर रहता था । प्रसन्नचित्त होकर वह ब्राह्मण अश्विनीकुमार, एकादश रुद्र, आठ वसु और सूर्यदेव की यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् अर्चना करने के उपरान्त हव्य (घी और दुग्ध के बने) पदार्थों द्वारा उन्हें नित्य तृप्त करता रहता था । उसके उस प्रेम से प्रसन्न होकर क्षुद्र देवों समेत उन तैंतीस देवों ने उसके दुर्लभ मनोरथ को सुलभ बनाया—दश सहस्र वर्ष तक तरुण एवं आरोग्य रहकर सुखी-जीवन व्यतीत किया । पश्चात् शरीर परित्यागकर सूर्य में लीन हो गया । वहाँ उनके मण्डल में एक लाख वर्ष तक रहकर सभी देवों के प्रसाद से वह ब्रह्मलोक पहुँच गया । वहाँ दिव्य आठ सहस्र वर्ष तक स्थित रहा, जहाँ उसके मण्डल में स्वयं सूर्यदेव रहते थे । इसे सुनकर देवों

इति श्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रः सुरसं युतः । आषाढे भास्करं देवं पूजयामास नम्रधीः ।।७
आषाढपूर्णिमायां च स देवो जगतीतले । प्रत्यक्षमगमत्तत्र सुरानाह शृणुष्व तत् ।।८
वृन्दावने महारम्ये जनयिष्ये कलौ भये । स द्विजः सूर्यरूपश्च देवकार्यं करिष्यति ।।९
माधवस्य द्विजस्यैव तनयः स भविष्यति । मधुर्नाम महाभागो वेदमार्गपरायणः ।।१०

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो देवकार्यार्थमुद्यतः । स्वाङ्गात्तु तेज उत्पाद्य वृन्दावनमपेषयत् ।।११
विमुखान्मधुरालापैर्वशीकृत्य समन्ततः । तेभ्यश्च वैष्णवीं शक्तिं प्रददौ भुक्तिमुक्तिदाम् ।।
मध्वाचार्य इति ख्यातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।१२

जीव उवाच

द्वापरे च द्विजश्रेष्ठो मेघशर्मा बभूव ह । ज्ञानवान्मतिमान्धर्मी वेदमार्गपरायणः ।।१३
कृषिकृत्यपरो नित्यं तद्धनैश्च दशांशकैः । प्रत्यहं सकलान्देवानर्चयामास भक्तिमान् ।।१४
एकदा पञ्चवर्षाब्धे शान्तनौ च महीपतौ । सम्प्राप्ते तस्य वै देशे ह्यनावृष्टिर्बभूव ह ।।१५
क्रोशमात्रं हि तत्क्षेत्रं पर्जन्येनैव सेचितम् । धान्यानां द्रोणमानश्च भावोऽभूदेकमुद्रया ।।१६
मेघशर्मा तदा तत्र धनधान्ययुतोऽभवत् । अन्ये तु पीडिता लोका राजानं शरणं ययुः ।।१७
तदा तु दुःखितो राजा मेघशर्माणमाह्वयत् । द्विजश्रेष्ठ नमस्तुभ्यं गुरुर्भव मम प्रियः ।।१८

समेत सुरेश ने विनम्र होकर आषाढ़ मास में भास्कर की उपासना की । उस आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन इस भूतल पर प्रकट होकर सूर्य ने उन देवों से कहा—भीषण कलि के समय में अत्यन्त रमणीक उस वृन्दावन में उत्पन्न होकर वह सूर्यरूप ब्राह्मण देवकार्य की सिद्धि करेगा । माधव नामक ब्राह्मण के घर उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होकर वह बालक मधु नाम से प्रख्यात, महायोग्य एवं वैदिक धर्म का प्रचारक होगा ।१-१०

सूत जी बोले—इतना कहकर सूर्यदेव ने देव-कार्य के लिए तैयार होकर अपने शरीर से तेज निकालकर वृन्दावन में भेज दिया । वहाँ उत्पन्न होकर उस बालक ने अपने विरोधियों को अपने वशीभूत कर उन्हें भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी वैष्णवी शक्ति (मंत्र) प्रदान किया (अपना शिष्य बनाया) । उसी दिन से इस भूमण्डल में उनकी 'मध्याचार्य' के नाम से प्रख्याति हुई ।११-१२

बृहस्पति ने कहा——द्वापर युग में मेघशर्मा नामक एक ब्राह्मण हुआ, जो ज्ञानवान्, मतिमान्, धार्मिक एवं वेद-धर्म का प्रचारक था । वह भक्तिमान् कृषि (खेती) के द्वारा जो कुछ उपार्जित करता था, उसके दशांश आय से नित्य देवों की अर्चना करता रहा । एक बार राजा शान्तनु के राजकाल में उनके राज्य में अनावृष्टि हुई । केवल मेघशर्मा के क्षेत्रों (खेतों) में, जो एक कोश का विस्तृत था, मेघवृष्टि करते थे । उस समय (दूकानों पर) एक मुद्रा प्रदान करने पर एकद्रोण अन्न मिलता था । मेघशर्मा ही धनधान्यपूर्ण थे, और अन्य प्रजागण उस अनावृष्टि से अत्यन्त पीड़ित होकर राजा शान्तनु की शरण में पहुँचे । उनके दुःख से दुःखी होकर राजा ने मेघशर्मा को बुलवाकर कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आपको नमस्कार

अनावृष्टिर्यथा न स्यात्तथा विप्र समादिश ॥१९

इत्येवं वादिनं भूपं मेघशर्मा वचोऽब्रवीत् । श्रावणे मासि सम्प्राप्ते विप्रान्वेदपरायणान् ॥२०

द्वादशैव समाहूय लक्षमात्रं रवेः स्वयम् । जापयित्वा सुमनसा पूर्णिमायां तु तद्व्रती ॥

सूर्यमन्त्राहुतीर्वह्नौ तद्दशांशं हि तद्द्विजैः ॥२१

कारयित्वा विधानेन कृतकृत्यः सुखीभव । इति श्रुत्वा तथा कृत्वा भोजयामास वेदगान् ॥२२

प्रसन्नस्तु तदा सूर्यः पर्जन्यात्मा समन्ततः । भूमिमाच्छाद्य स दिशं प्रभुर्वृष्टिमकारयत् ॥२३

शान्तनुस्तु तदा राजा सूर्यव्रतपरायणः । तद्व्रतेन महापुण्यो बभूव नृपसत्तमः ॥२४

यं यं करेण स्पृशति वृद्धो भवति वै युवा । सूर्यदेवप्रभावेन मेघशर्मा तथा ह्यभूत् ॥२५

स वै पञ्चशतायुश्च निर्जरो निरुपद्रवः । त्यक्त्वा प्राणान्रविर्भूत्वा सूर्यलोकमुपागमत् ॥

लक्षाब्दं भुवमासाद्य ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥२६

इत्येवं वादिनं जीवं पर्जन्यो भगवान्रविः । स्वरूपं दर्शयामास प्रयागं प्रति चागतः ॥२७

सुरानाह प्रसन्नात्मा म्लेच्छराज्ये कलौ युगे । वृन्दावने समागम्य देवकार्यं करोम्यहम् ॥२८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो गत्वा वृन्दावनं शुभम् । श्रीधरो नाम विख्यातः पुत्रोभूद्वेदशर्मणः ॥२९

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं समालोक्य विशारदः । चकार विदुषामर्थे प्रदीप्तं श्रीधरः शुभम् ॥

है । आप मेरे गुरु होने की कृपा करें । तथा विप्र ! जिससे राज्य में अनावृष्टि न हो, उसके लिए आज्ञा प्रदान करें । राजा के इस प्रकार कहने पर मेघशर्मा ने उनसे कहा—श्रावण मास के आरम्भ होने पर बारह वेद के निष्णात विद्वानों को बुलाकर सूर्य के मंत्र का एक लक्ष जप कराइये । पश्चात् पूर्णिमा के दिन व्रती रहकर ब्राह्मणों द्वारा उस मंत्र की दशांश आहुति प्रज्वलितकर अग्नि में डलवाकर तथा सविधान तर्पण-मार्जन सुसम्पन्न होने पर कृतकृत्य होते हुए सुख का अनुभव कीजिये । इसे स्वीकार कर राजा ने जप के उपरान्त वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराया । उसी समय प्रसन्न होकर सूर्य ने मेघ रूप से पृथिवी को चारो ओर से आच्छादितकर अत्यन्त वृष्टि की । उसी समय में राजा शान्तनु सूर्यव्रत का पारायण करते हुए उस व्रत के प्रभाव से नृपश्रेष्ठ एवं अत्यन्त पुण्यात्मा प्रख्यात हुए । वे अपने हाथों से जिसका स्पर्श कर लेते थे वृद्ध होने पर भी युवा हो जाता था । सूर्यदेव के प्रभाव से मेघशर्मा भी इसी भाँति के थे । इस प्रकार मेघशर्मा ने पाँच सौ वर्ष का तरुण और आरोग्य जीवन व्यतीत कर अन्त में देहावसान के समय सूर्य रूप होकर सूर्यलोक की प्राप्ति की । एक लाख वर्ष वहाँ रहकर वह पश्चात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति करेगा । इस प्रकार उपदेश देने वाले बृहस्पति को प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने प्रयाग में प्रकट होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया और उन देवों से कहा भी—म्लेच्छराज कलियुग के समय मैं वृन्दावन में अवतरित होकर देवकार्य करने का निश्चय कर रहा हूँ । १३-२८

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् सूर्य ने उस वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर वेदशर्मा के घर उत्पन्न होकर 'श्रीधर' नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । उस निपुण विद्वान् ने श्रीमद्भगवत्पुराण को अत्यन्त रहस्यमय समझकर विद्वानों के हितार्थ उसकी एक अत्यन्त सुन्दर टीका

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं पुराणोपरि तत्कृतम् ॥३०

जीव उवाच

पुरा कलौ युगे प्राप्ते प्रांशुशर्मा द्विजोऽभवत् । वेदशास्त्रपरो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥३१
सत्यवादी महासाधुः स्तेयहिंसादिवर्जितः । भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पुत्रदारप्रपोषकः ॥३२
एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतस्तस्य भूपते । मायाकृत्यकरो धूर्तः कलिस्तत्राक्षिगोचरः ॥३३
बभूव वाटिकां कृत्वा कलिर्दानमनोहराम् । तमुवाच द्विजो भूत्वा प्रांशुशर्मन्वचः शृणु ॥३४
ममेयं वाटिका रम्या तत्र गच्छ सुखी भव । इति विप्रवचः श्रुत्वा वाटिकां तां समागतः ॥३५
कलिस्तु वाटिकामध्ये गत्वा रम्यफलानि च । त्रोटयित्वा ददौ तस्मै भोजनार्थं महाखलः ॥३६
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रांशुशर्माणमब्रवीत् । भुंक्ष्व विप्र मया सार्द्धं कलिन्दस्य फलं शुभम् ॥३७
इत्युक्तः स तु तं प्राह विहस्य मधुरस्वरम् । वृक्षे विभीतके चैव कलिन्दस्य फले तथा ॥
कलिः प्राप्तः स्मृतः प्राज्ञैस्तस्माद्गृह्णाम्यहं न हि ॥३८
यदि दत्तं फलं भक्त्या त्वयाद्य द्विजसेविना । शालग्रामाय वै दत्त्वा प्रसादं तद्भजाम्यहम् ॥
शालग्रामः स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ॥३९
दर्शनात्तस्य चाभक्ष्यो भक्ष्यो भवति निश्चितः । इति श्रुत्वा कलिस्तत्र लज्जितोऽभून्निराशकः ॥
द्विजस्तु तत्फलं गृह्य भूमिग्राममुपाययौ ॥४०
नृपतिस्तत्र चागत्य द्विजमाह प्रसन्नधीः । किं गृहीतं त्वया विप्र दर्शयाशु प्रियं कुरु ॥४१

की, जो श्रीमद्भागवत पुराण पर 'श्रीधरी' के नाम से विद्वानों द्वारा अत्यन्त सम्मानित हे ।२९-३०

बृहस्पति बोले—पहले कलियुग के आरम्भ समय में प्रांशु शर्मा नामक एक ब्राह्मण था, जो नित्य वेद एवं शास्त्रों का अध्ययन करने वाला, देवता तथा अतिथि के पूजक, सत्यवक्ता, महासाधु और चोरी, हिंसादि दोषों से रहित थे । वह सदैव भिक्षाटन द्वारा अपने पुत्र तथा पत्नी का पालन करता था । भूपते ! एक बार भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में उसे मायावी एवं धूर्त कलि दिखाई दिया । उसने एक सौन्दर्यपूर्ण वाटिका का निर्माणकर ब्राह्मण के वेष में उससे कहा—प्रांशुशर्मन् ! मेरी एक बात सुनो ! यह मेरी सुन्दर वाटिका है, आप इसमें चलने की कृपा करें । ब्राह्मण की यह बात सुनकर प्रांशुशर्मा उस वाटिका में जाकर विश्राम करने लगे । पश्चात् उस दुष्ट कलि ने उस वाटिका के सुन्दर एवं मधुर फल तोड़कर भोजनार्थ उन्हें अर्पित किया और हाथ जोड़कर प्रांशुशर्मा से कहा—विप्र ! मेरे साथ इस कलिंदफल के भक्षण करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर ब्राह्मण ने हँसकर मधुरवाणी से कहा—विद्वानों ने बहेड़ा नामक वृक्ष और कलिंदफल में कलि की स्थिति रहती है, इसलिए मैं इसका ग्रहण नहीं कर सकता । अथवा यदि आपने ब्राह्मण सेवा के निमित्त इसे अर्पित किया है, तो मैं इसे शालग्राम भगवान् को समर्पितकर उनके प्रसादरूप में इसका भक्षण करूँगा, क्योंकि शालग्राम स्वयं ब्रह्मरूप हैं, जो सच्चिदानन्द रूप कहते जाते हैं । तथा उनके दर्शन से अभक्ष्य भी भक्ष्य हो जाता है । इसे सुनकर कलि अत्यन्त लज्जित और निराश हो गया ।३१-३९। ब्राह्मण ने उस फल को लेकर भूमिग्राम को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर राजा ने वहाँ आकर ब्राह्मण से पूँछा विप्र ! आप क्या लिए हैं, मेरी उसे देखने की इच्छा है । इसे

इति श्रुत्वा प्रांशुशर्मा तत्फलं वत्समुण्डवत् । गृहीत्वा प्रददौ राज्ञे विस्मितो द्विजसत्तमः ॥४२
तदा तु स कलिर्भूपस्तं विप्रं ताड्य वेतसैः । कारागारे लोहमये कृतवान्त्यःयमित्रकः ॥४३
प्रातःकाले रवौ प्राप्ते प्रांशुशर्मा सुदुःखितः । तुष्टाव भास्करं देवं स्तोत्रैर्ऋग्वेदसम्भवैः ॥४४
तदा प्रसन्नो भगवान्रविः साक्षात्सनातनः । विप्रस्य कर्णयोर्वाक्यमुवाच नभसेरितम् ॥४५
शृणु विप्र महाभाग कालरूपो हरिः स्वयम् । चतुर्युगं तेन कृतं विश्वपालादिहेतवे ॥४६
कलिर्विश्वसमूहानां मृत्यवे रचितस्तथा । अतो घोरे कलौ प्राप्ते विष्णुमायाविनिर्मितम् ।
कलिञ्जरं च नगरं त्वचोष्य मुदितो भव ॥४७
इत्युक्त्वा रक्षणं कृत्वा तस्य विप्रस्य भास्करः । कलिञ्जरे च नगरे प्रेषयामास तं द्विजम् ॥४८
सपादशतवर्षं च द्विजस्तत्र वसन्रविम् । आराध्य पुत्रपत्नीको रविलोकमुपाययौ ॥४९
स वै भाद्रपदे मासि सूर्यो भूत्वायुताब्दकम् । पश्चाद्ब्रह्मपुरं प्राप्य परमानन्दमाप्तवान् ॥
इति ते कथितं विप्र यथा जीवस्तमब्रवीत् ॥५०
आगत्य भास्करो देवः पूर्णिमायां तु भाद्रके । अष्टाविंशे कलौ प्राप्ते स्वयं जातः कलिञ्जरे ॥५१
शिवदत्तस्य तनयो विष्णुशर्मेति विश्रुतः । वेदशास्त्रकलाभिज्ञो वैष्णवो देवपूजकः ॥५२
चतुर्वर्णान्नरान्विप्र समाहूय हरेर्गृहे । वचनं प्राह धर्मात्मा विष्णुः सर्वेश्वरो हरिः ॥५३
शृणु तत्कारणं शिष्य विश्वकारण कारकः । भगवान्सच्चिदानन्दश्चतुर्विंशतितत्त्ववान् ॥
देवान्ससर्ज लोकार्थे तस्मात्सर्वेश्वरोऽभवत् ॥५४

सुनकर प्रांशुशर्मा ने वत्स-मुण्ड की भाँति उस फल को लेकर राजा को अर्पित किया । उस समय उसे देखकर ब्राह्मण को अत्यन्त आश्चर्य भी हुआ । उस समय उस कलि राजा ने वेत की छड़ी से ब्राह्मण को ताड़ित कर लोहे की शृंखला से हाथ-पैर बाँधकर जेल में डाल दिया । प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर दुःखी प्रांशुशर्मा ने ऋग्वेद के मंत्रों द्वारा भगवान् सूर्य की आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर सनातन एवं भगवान् सूर्य ने साक्षात् उस ब्राह्मण के कानों में आकाशवाणी की—विप्र ! महाभाग ! भगवान् विष्णु स्वयं काल (समय) रूप हैं । उन्होंने इस विश्व के पालनार्थ चार युगों का निर्माण किया है, जिनमें कलि समस्त विश्व के विनाशार्थ उत्पन्न किया गया है । अतः इस घोर कलि के समय तुम विष्णु की माया द्वारा रचित कलिंजर नामक पुरी में रहकर अपना सुखी-जीवन व्यतीत करो। भास्कर ने इस प्रकार कहकर उस ब्राह्मण को सुरक्षित रखते हुए कलिंजर नगर भेज दिया। उस ब्राह्मण ने वहाँ रहकर सवा सौ वर्ष अपनी पत्नी एवं पुत्र समेत सुखी जीवन व्यतीत कर सूर्यलोक की प्राप्ति की । उस भादों के मास में सूर्य होकर दश सहस्र वर्ष तक स्थित रहकर पश्चात् ब्रह्मलोक पहुँचकर परमानन्द की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार बृहस्पति की कही हुई समस्त कथा मैंने तुम्हें सुना दी है । उस भादों मास की पूर्णिमा के दिन अट्ठाइसवें कलियुग के समय कलिंजर नगर में आकर स्वयं भास्कर देव ने शिवदत्त के घर जन्म ग्रहण किया । 'विष्णु शर्मा' के नाम से उनकी ख्याति हुई । वे वेद एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा विष्णुदेव के उपासक थे ।४०-५२। उन्होंने भगवान् के मन्दिर में चारों वर्णों के मनुष्यों को बुलाकर कहा—धर्मात्मा विष्णु ही सबके ईश्वर हैं । शिष्य ! मैं उस कारण को बता रहा हूँ, जिससे वे विश्व-निर्माण के कारण के भी कर्त्ता हो गये हैं । सुनो ! भगवान् सच्चिदानन्द घन चौबीस तत्वों में परिणत होकर लोकों के हितार्थ देवों की उत्पत्ति करते हैं । अतः

पूर्वं हि सकलान्देवान्पूजयित्वा नरः शुचिः । पश्चाच्च पूजयेद्विष्णुं यथा भृत्या नृपं पुनः ।।५५
इति श्रुत्वा ते सर्वे प्रशस्य बहुधा हि तम् । विष्णुस्वामीति तं नाम्ना कथां चक्रुश्च हर्षिताः ।।५६
इति ते कथितं विप्र विष्णुस्वामी यथाभवत् । पुनः शृणु कथां रम्यां बृहस्पतिमुखेरिताम् ।।५७

जीव उवाच

पुरा चैत्ररथे देशे भगशर्मा द्विजोऽभवत् । स्वर्वेश्यामञ्जुघोषायां मुनिमेधाविना भुवि ।।५८
पितृमातृपरित्यक्तः स बालः श्रद्धयान्वितः । सूर्यमाराधयामास तपसा शतवार्षिकम् ।।५९
सूर्यमण्डलमध्यस्था सावित्री नाम देवता । सर्वसूर्यस्य जननी कन्या तन्मण्डलस्य वै ।।६०
प्रसन्ना तपसा तस्य प्रादुर्भूता सनातनी । आश्विने मासि राजानं द्विजं चक्रे च मण्डले ।।६१
लक्षवर्षसहस्राणि मासि मासि तथाश्विने । प्रकाशं कृतान्विप्रः पूजितो लोकवासिभिः ।।६२
त्वं सूर्यं भज देवेन्द्र स ते कार्यं करिष्यति । इति श्रुत्वाश्विने मासि स रविर्देवपूजनात् ।।६३
प्रत्यक्षमगमत्तत्र वचः प्राह सुरान्प्रति । कान्यकुब्जे शुभे देशे वाणीभूषण इत्यहम् ।।
भवामि सत्यदेवस्य विप्रस्य तनयः शुभः ।।६४

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो जातः कान्यपुरे शुभे । जित्वा पाखण्डिनो विप्रान्मांसभक्षणतत्परान् ।।
छन्दोग्रन्थं स्वनाम्ना वै कृतवान्देवतप्रियः ।।६५

वे सबके अधीश्वर कहे जाते हैं और इसीलिए जिस प्रकार सेवक की प्रथम पूजा होकर फिर राजा की पूजा होती है, उसी प्रकार समस्त देवों की पहले पूजा करके पश्चात् विष्णु की पूजा सबको करनी चाहिए। इसे सुनकर वहाँ के लोगों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और 'विष्णुस्वामी' के नाम से उनकी ख्याति करते हुए अत्यन्त हर्ष की प्राप्ति की। विप्र ! इस प्रकार मैंने विष्णुस्वामी की उत्पत्ति की कथा तुम्हें सुना दिया। किन्तु बृहस्पति द्वारा कही गई एक सुन्दर कथा का वर्णन पुनः कर रहा हूँ, सुनो ! ।५३-५७

बृहस्पति बोले—पहले समय में चैत्ररथ नामक प्रदेश में मेधावी मुनि द्वारा मंजु घोषा नामक अप्सरा के गर्भ से 'भगशर्मा' नामक एक ब्राह्मण बालक उत्पन्न हुआ। माता-पिता के परित्याग कर देने पर वह बालक श्रद्धालु होकर तप द्वारा सूर्य की उपासना करने लगा। सौ वर्ष तक आराधना करने के उपरान्त सूर्यमण्डल के मध्यभाग में रहने वाली सावित्री नामक देवी ने, जो सम्पूर्ण सूर्य की जननी एवं उनके मण्डल की कन्या हैं, प्रसन्न पूर्ण प्रकट होकर उस ब्राह्मण को कुआर मास के मण्डल का राजा बनाया। उस लोक के निवासियों द्वारा पूजित होकर उस ब्राह्मण ने प्रत्येक आश्विन (कुआर) मास में एक लाख सहस्र वर्ष तक सूर्य रूप में लोक को आकाश प्रदान किया। अतः देवेन्द्र ! उन्हीं सूर्य की आराधना करो वे तुम्हारे कार्य सफल करेंगे। इसे सुनकर उन्होंने आश्विनमास के सूर्य की आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर सूर्य ने वहाँ आविर्भूत होकर देवों से कहा—मैं कान्यकुब्ज प्रदेश में सत्यदेव नामक ब्राह्मण के घर 'वाणीभूषण' के नाम से उनके पुत्र रूप में अवतरित हूँगा।५८-६४

सूत जी बोले——इतना कहकर भगवान् सूर्य ने उस कान्यकुब्ज प्रदेश में उत्पन्न होकर उन पाखण्डी ब्राह्मणों पर विजय प्राप्ति की, जो अत्यन्त मांसभक्षी थे। देवप्रिय सूर्य ने अपने नाम के आधार पर छन्द

मत्स्यमांसाशना विप्रा मृगमेषाजकाशनाः । एकीभूय समागम्य चक्रुः शास्त्रार्थमुल्बणम् ॥६६
कलिनाऽधर्ममित्रेण रक्षितास्ते द्विजातयः । तं द्विजं च पराजित्य मत्स्यकेतुं च तद्गृहे ॥६७
बलाच्च स्तम्भनं चक्रुस्तदा विष्णुप्रियो द्विजः । वैष्णवीं शक्तिमागम्य स्वमुखान्मीनखादितान् ॥६८
सञ्जीव्य दर्शयामास ते दृष्ट्वा विस्मितास्तदा । शिष्यभूताश्च ते तस्य वैष्णवं मतमागमन् ॥६९

जीव उवाच

कदाचित्सरयूतीरे देवयाजी द्विजोऽभवत् । सर्वदेवपरो नित्यं वेदपाठपरायणः ॥७०
तत्सुतस्तु मृतिं प्राप्तो जन्ममात्रे हि दारुणे । तदा तु स द्विजः श्रुत्वा सूर्यदेवमतोषयत् ॥७१
जिजीव तत्प्रसादेन विवस्वान्नाम चाभवत् । षोडशाब्दवपुर्भूत्वा सर्वविद्याविशारदः ॥७२
अपत्यवान्धर्मपरः सूर्यव्रतपरायणः । शिवरात्रिदिने प्राप्ते तत्पत्नी भूषणप्रिया ॥७३
सुशीला नाम विख्याता पतिसेवार्थमागता । स व्रती रुद्रदेवस्य दृष्ट्वा तां मधुराननाम् ॥७४
बलाद्गृहीत्वा तु निशि बुभुजे स्मरविह्वलः । मैथुनस्यैव दोषेण तस्य कुष्ठो महानभूत् ॥७५
लिङ्गेन्द्रियं च पतितं गुदभ्रष्टो महाङ्गरुक् । केनचिदुपदेशेन रविवारस्य वै व्रतम् ॥७६
स चक्रे द्वादशं प्रेम्णा निराहारो यतेन्द्रियः । तेन व्रतप्रभावेण सर्वपीडा लयं गताः ॥७७
तदा श्रद्धा रवौ प्राप्ता प्रत्यहं स द्विजोत्तमः । आदित्यहृदयं जप्त्वा कामरूपो द्विजोऽभवत् ॥७८

ग्रंथ की रचना की । उस समय मत्स्य, मांस, मृग, भेंड़ और बकरी आदि के मांस भोजी उन ब्राह्मणों ने एकत्रित होकर उनसे घोर शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया । और अधर्ममित्र कलि द्वारा सुरक्षित रहकर उन ब्राह्मणों ने इन्हें पराजित कर उनके घर में बलात् मत्स्यकेतु (मछली का झंडा) स्थापित कराया । उस समय विष्णुप्रिय उस ब्राह्मण ने वैष्णवी शक्ति का आवाहन कर भक्षण की गई मछली को अपने मुख से जीवित निकालकर उन लोगों को दिखाया, जिससे वे सब आश्चर्य चकित हो गये । पश्चात् वैष्णवमत को प्रधान मानकर वे सब उनके शिष्य हो गये ।६५-६९

बृहस्पति बोले——सरयू नदी के तट पर देवयाजी नामक कोई ब्राह्मण रहता था, जो समस्त देवों का भक्त एवं वेदपाठी था । उसका पुत्र दारुण जन्मग्रहण के समय ही मृतक हो गया । उसे सुनकर उस ब्राह्मण ने उसी समय सूर्यदेव को प्रसन्न किया, जिससे उनके प्रसाद से वह जीवित होकर विवस्वान् नाम से प्रख्यात हुआ । सोलह वर्ष की अवस्था तक उसने समस्त विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, जो पुत्रवान्, धार्मिक एवं सूर्यव्रत परायण था । एक बार शिवरात्रि के दिन आभूषणों से सुसज्जित सुशीला नामक उसकी पत्नी पतिसेवार्थ उनके समीप आई । शिव के व्रत रहने वाले उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी के मुख सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कामपीड़ित होने पर उस रात्रि के समय बलात् उसे पकड़कर उसका उपभोग किया जिससे उस मैथुन करने के दोष से उसे महान कुष्ठ हो गया—उसका लिंगेन्द्रिय गिर गया, गुदा भ्रष्ट हो गई और समस्त शरीर उस असाध्य रोग से अत्यन्त पीड़ित हो गई । किसी के उपदेश देने पर उसने निराहार एवं संयमपूर्वक बारह रविवार व्रत का अनुष्ठान किया, जिससे उस व्रत के प्रभाव से उसकी समस्त पीड़ा नष्ट हो गई ।७०-७७। उस समय से सूर्य में उसकी अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई जिससे उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने आदित्य हृदय स्तोत्र का प्रतिदिन जप-पाठ करके सौन्दर्यपूर्ण रूप की प्राप्ति की । जो पहले

नारीभिर्भर्त्सितः पूर्वं सोऽथ कामिनीयाचितः । ब्रह्मचर्यव्रतं कृत्वा ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥७९
शतायुर्ब्राह्मणो भूत्वा ज्ञानवान्रोगवर्जितः । त्यक्त्वा प्राणान्रविर्भूत्वा सूर्यमण्डलमध्यगात् ॥८०
कार्तिके मासि लक्षाब्दं प्रकाशं कृतवान्नभः । तं च सूर्यं महेन्द्रस्त्वं पूजयाशु सुरैः सह ॥८१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महेन्द्रस्तु मासमात्रं हि भास्करम् । पूजयित्वा विधानेन पूर्णिमायां ददर्श ह ॥८२
उवाच शक्रं स रविर्देवकार्यं करोम्यहम् । भट्टैर्विद्यामयैर्धूर्तैः सूत्रपाठश्च खण्डितः ॥८३
धातुपाठोन्यपठितो भ्रंशार्थः स्वरवर्णकः । जित्वा तान्भट्टपाषण्डान्वेदमुद्धारयामि भोः ॥८४
इत्युक्त्वा स गतः काश्यां गेहे वै वेदशर्मणः । दीक्षितान्वयभूतस्य नाम्ना कार्यगुणोऽभवत् ॥८५
द्वादशाब्दवपुर्भूत्वा सर्वशास्त्रविशारदः । शिवमाराधयामास विश्वनाथं शिवाप्रियम् ॥८६
त्रिवर्षान्ते च भगवांस्तस्मै ज्ञानं महद्ददौ । तस्य ज्ञानप्रभावेण व्यक्तमव्यक्तमुत्तमम् ॥८७
ज्ञातं कार्यगुणेनैव दीक्षितेन तदा हृदि । अव्यक्ते तु यदा बुद्धिः सा विद्या द्वादशाङ्गिनी ॥८८
व्यक्तेऽहंकारभूते च बुद्धिर्ज्ञेया बुधैरजा । अविद्या नाम विख्याता षोडशाङ्गस्वरूपिणी ॥८९
अव्यक्तं तु परं ब्रह्म व्यक्तं शब्दमयं स्मृतम् । अहङ्कारो लोककरो हि व्यक्तोऽष्टदशाङ्गकः ॥९०
वृषरूपधरो मुख्यो नन्दियानः स्मृतो बुधैः । शृङ्गाणि तस्य चत्वारि त्रिपादो द्विशिरा वृषः ॥९१

स्त्रियों द्वारा निन्दित एवं त्याज्य था स्त्रियाँ अब इस रूप में उससे याचना करने लगी । किन्तु उसने अपने ब्रह्मचर्य व्रत को अखण्डित रखकर अनवरत ब्रह्मा का ध्यान एवं उपासना किया । इस प्रकार उस ब्राह्मण ने सौ वर्ष की आयु तक ज्ञानवान् एवं रोगहीन रहकर अपने सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरान्त शरीर त्यागकर सूर्य मण्डल के मध्य में सूर्यरूप से स्थित रहकर प्रत्येक कार्तिक मास में एक लाख वर्ष तक आकाश को प्रकाशित किया । अतः महेन्द्र ! देवों समेत तुम उसी सूर्य की आराधना करो ।७८-८१

सूतजी बोले——इसे सुनकर महेन्द्रदेव ने एक मास तक सविधान भास्कर देव की उपासना की । पूर्णिमा के दिन सूर्य ने प्रसन्न होकर स्वयं दर्शन देकर उनसे कहा—तुम्हारा कार्य करने के लिए मैं तैयार हूँ । उन धूर्त एवं पाखण्डी भट्ट पण्डितों को, जिन्होंने सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अन्य पाठ को खण्डितकर स्वरवर्ण के अर्थों को भी नष्ट कर दिया है, पराजित कर मैं वेदों का उद्धार करने जा रहा हूँ । इतना कहकर सूर्य ने काशी में जाकर वेदशर्मा दीक्षित के घर अवतरित होकर 'दीक्षित' के नाम से ख्याति प्राप्त की । बारह वर्ष की आयु तक उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुणता प्राप्तकर पार्वतीप्रिय भगवान् विश्वनाथ देव की आराधना आरम्भ की । तीन वर्ष के अनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् विश्वनाथ ने उन्हें महाज्ञानी बनाया, जिससे उनके हृदय में व्यक्त और अव्यक्त का पूर्ण ज्ञान उदय हो गया । अव्यक्त में बुद्धि के स्थिर होने पर उसे द्वादशाङ्ग कहा गया है, और अहंकारभूत व्यक्त में स्थिरबुद्धि को विद्वानों ने अजन्मा कहा है । उसी प्रकार अविद्या को भी षोडशाङ्ग रूप वाली बताया गया है। अव्यक्त परब्रह्म का नाम है तथा व्यक्त, शब्द (नाद) मय का। वह व्यक्त, जो अहंकार रूप एवं लोकस्रष्टा है, अट्ठारह प्रकार का होता है। विद्वानों ने वृष रूपधारी उस मुख्य नन्दी यान (वाहन) के विषय में बताया है कि उसकी चार सींगें तीन

स तहस्तास्त्रिधा बद्धो नित्यशुद्धो मुखे स्थितः । सुबन्तश्च तिङन्तश्च कृदन्तश्चाव्ययस्तथा ॥९२
द्वौ द्वौ शृङ्गौ च शिरसोर्नन्दियानस्य वै स्मृतौ । भूतं भव्यं भवच्चैव त्रयः पादा हि तस्य वै ॥९३
रूढिश्च योगरूढिश्च शब्दौ तस्य शिरोद्वयम् । कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं विभागतः ॥९४
सम्बन्धश्चाधिकारश्च भुजास्तस्य वृषस्य वै । वाक्यं स्वरान्वितं ज्ञेयं विभक्त्यन्तं पदं स्मृतम् ॥९५
ताभ्यां बद्धश्च स वृषो नन्दियानाय ते नमः । तस्योपरि स्थितं नित्यमव्यक्तं लिङ्गरूपि यत् ॥९६
जातश्च वृषलिङ्गाभ्यां सोऽहङ्कारो हरिः स्वयम् । नारायणः षोडशात्मा बहुमूर्तिरमूर्तिकः ॥९७
इति ज्ञानं हृदि प्राप्य तदा सिद्धान्तकौमुदीम् । जित्वा भट्टांश्च कारागु भट्टोजिः प्रश्रुतोऽभवत् ॥९८

जीव उवाच

पुरा काञ्चीपुरे रम्ये गणको ब्राह्मणोत्तमः । पुरोधाः सत्यदत्तस्य राज्ञो वेदपरस्य वै ॥९९
एकदा गणको धीमान्सत्यदत्तमुवाच ह । मुहूर्तोऽभिजिदाख्योयं पुष्यनक्षत्रसंयुतः ॥
हाटं कुरु महाराज साम्प्रतं बहुवृत्तिदम् ॥१००
इति श्रुत्वा तथा कृत्वा डिण्डिमध्वनिना पुरे । नरानाज्ञापयामास तच्छृणुष्व सुरोत्तम ॥१०१
अक्रीतं यस्य वै वस्तु हाटेऽस्मिन्वैश्यकोविदैः । मया क्रीतं च तज्ज्ञेयं सत्यमेतद्वचो मम ॥१०२
इति श्रुत्वा शूद्रजनाश्चक्रुर्नानाविधं वसु । वैश्यैस्सर्वं तदा क्रीतं महान्हाटो हि सोऽभवत् ॥१०३

चरण, दो शिर, सात हाथ हैं तथा दो प्रकार से आबद्ध होकर वह नित्य शुद्धात्मा मुख में स्थित है। उस वृष के शिर में 'सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त और अव्यय रूप चार सींगें, भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् रूप तीनों चरण, रूढ़ि-योगरूढ़ि दो शिर, कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण रूप सात भुजाएँ एवं स्वरयुक्त वाक्य तथा विभक्त्यन्त पद, इन दोनों से आबद्ध है अतः नन्दियान रूपप्राय को नमस्कार है। उस वृष के ऊपर अव्यक्त लिङ्गधारी वह ब्रह्म नित्य स्थित रहता है। इस प्रकार उस वृष और लिङ्ग द्वारा अहंकार उत्पन्न होता है, जो स्वयं हरि, षोडशात्मा नारायण, अनेक रूप एवं एक रूप रहता है। इस प्रकार इस विशाल ज्ञान को अपने हृदय में स्थितकर दीक्षित ने धूर्त भट्टों को पराजित कर सिद्धान्त कौमुदी का निर्माण किया, जिससे 'भट्टोजिः (भट्टोजिदीक्षित) के नाम से उनकी अत्यन्त ख्याति हुई।८२-१०४

बृहस्पति बोले——पहले कांचीपुरी में 'गणक' नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वैदिक धर्मानुयायी राजा सत्यदेव का पुरोहित था। एक बार उस धीमान् गणक ब्राह्मण ने राजा सत्यदेव से कहा—महाराज ! पुष्यनक्षत्र युक्त यह अभिजित नामक मुहूर्त उपस्थित हो रहा है। आप इसमें बाजार लगवाना आरम्भ करें तो, इससे अधिक धन का लाभ होगा ! इसे सुनकर राजा ने अपने नगर में डिंडिम (डुग्गी) की ध्वनि द्वारा सभी लोगों को एकत्र किया। सुरोत्तम ! उपस्थित लोगों से राजा ने जो कुछ कहा, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! उसने उन्हें आज्ञा प्रदान किया कि इस बाजार में जिस वस्तु का क्रेता (खरीददार) कोई निपुण वैश्य न हो सकेगा, उसे मैं अवश्य क्रय (खरीद) कर लूँगा। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। इसे सुनकर शूद्रों ने भी भाँति-भाँति की वस्तुएँ बनाकर उस विशाल बाजार में बिक्रयार्थ

एकदा लोहकारश्च दारिद्र्यं लोहरूपिणम् । कृत्वा हाटमुपागम्य शतमुद्रामयाचत ।।१०४
अक्रीतं पुरुषं राजा ज्ञात्वा लोहदरिद्रकम् । क्रीतं तं शतमुद्राभिर्गृहीत्वा गेहमागमत् ।।
कोशागारे तदा राज्ञा स्थापितोभूद्दरिद्रकः ।।१०५
निशीथे तम उद्भूते कर्म धर्मश्च ना तथा । भूपगेहात्समागत्य पश्यतस्तस्य निर्गताः ।।१०६
तत्पश्चात्सत्यपुरुषो राजानमिदमब्रवीत् । दरिद्रो यत्र भूपाल तत्र कर्मपरो न हि ।।
कर्मणा रहितो धर्मो भूतले न स्थिरो भवेत् ।।१०७
धर्मेण रहिता लक्ष्मीर्न शोभेत कदाचन । अहं लक्ष्म्या विहीनश्च न तिष्ठामि कदाचन ।।१०८
इत्युक्त्वा गन्तुमिच्छन्तं गृहीत्वा करयोर्नृपः । नम्रीभूतो वचः प्राह शृणु सत्यं मम प्रियम् ।।१०९
न त्याज्यो हि मया देव भवान्किङ्गन्तुमर्हति । इति श्रुत्वा तु वचनं सत्यदेवो गृहेऽगमत् ।।११०
तत्पश्चाच्च स्वयं लक्ष्मीस्तद्गेहे गन्तुमुद्यता । तामाह भूपतिर्धीरो देवि त्वं चञ्चला सदा ।।१११
अचला भव भो मातस्तर्हि मन्मन्दिरं व्रज । इति श्रुत्वा वरं दत्त्वा नृपगेहं ययौ तदा ।।११२
पुरोधसं तं गणकं समाहूय नृपोत्तमः । लक्षस्वर्णं ददौ तस्मै कथित्वा सर्वकारणम् ।।११३
पुत्रजन्मनि काले तु सम्प्राप्तं तेन वै धनम् । व्ययं कृत्वा धनं सर्वं पोषयामास बालकम् ।।११४
पूषा नाम ततो जातो मार्गशीर्षे शुभे दिने । स तु सूर्यं समाराध्य ज्योतिःशास्त्रपरः सुतः ।।११५

लाना आरम्भ किया । एक बार एक लोहार ने लोहे की दरिद्र की मूर्ति बनाकर उस बाजार में विक्रयार्थ उपस्थित किया और सौ रुपया उसका निर्धारित मूल्य बताया । राजा ने देखा कि उस दरिद्र की मूर्ति को कोई क्रय (खरीद) नहीं कर रहा है, तो सौ रूपया देकर स्वयं सबका क्रय कर अपने घर के कोशागार में उसे स्थापित की । उसी दिन आधी रात के अंधेरे समय में राजा के भवन से कर्म, धर्म, और लक्ष्मी उनके देखते-देखते सामने से होकर निकल गये । पश्चात् सत्यपुरुष ने भी राजा से कहा—राजन् ! जिसके गृह में दरिद्र निवास करता है, वह मनुष्य कर्तव्य-पालन नहीं कर सकता । कर्त्तव्यहीन होने पर उसका धर्म भी इस पृथ्वी पर स्थित नहीं रह सकता । धर्मरहित होने पर उसके घर लक्ष्मी भी कभी सुशोभित नहीं हो सकती हैं और लक्ष्मीविहीन होकर मैं कभी नहीं रहता हूँ । इतना कहकर सत्य वहाँ से चलना चाहता था कि राजा ने उन्हें रोककर विनम्र वाणी द्वारा उनसे कहा—सत्य ! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें। देव ! आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, अतः आपका त्याग मैं कभी नहीं कर सकता । क्या अब भी आप जाना चाहेंगे । इसे सुनकर सत्यदेव उनके घर लौट गये, पश्चात् लक्ष्मी भी राजा के यहाँ लौटने के लिए उत्सुक हुईं । उन्हें उद्यत देखकर राजा ने कहा—देवि ! तुम सदैव चंचल रही हो, किन्तु मातः । अब मेरे महल में चलकर अपनी अचल स्थिति करें । इसे सुनकर लक्ष्मी ने उन्हें वरदान प्रदान किया और उनके घर अचल निवास भी । अनन्तर उस नृपश्रेष्ठ ने अपने गणक पुरोहित को बुलाकर समस्त वृत्तान्त निवेदनपूर्वक उन्हें एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रदान किया । उस समय पुरोहित के घर पुत्र-जन्म हुआ था । गणक ने उस धन से उसी बालक का सुचारु रूप से पोषण किया । मार्गशीर्ष के शुभ दिन में जन्म ग्रहण करने के नाते उसका नाम पूषा हुआ जिसने सूर्य की आराधना द्वारा ज्योतिष्शास्त्र में अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की । तदुपरान्त

सूर्ये तु मोक्षमगमद्देवदेवप्रसादतः । तस्मात्त्वं मार्गमासे वै रविं देवेन्द्र पूजय ।।११६

सूत उवाच

देवेन्द्रपूजनात्सूर्यस्समागम्य तदा स्वयम् । पूषा नाम वचो देवानुवाच मधुरस्वरम् ।।११७
उज्जयिन्यामहं देवा याम्ये रुद्रपशोर्गृहे । नाम्ना च मिहिराचार्यो ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तकः ।।११८
इत्युक्त्वा भगवान्पूषा पुत्रो जातो द्विजस्य वै । मूलगण्डान्तविषयेऽभिजिद्योगे शुभङ्करे ।।११९
जातमात्रं च तं पुत्रं पिता काष्ठकटाहके । धृत्वा क्षिप्त्वा नदीमध्ये निशीथे समवाहयत् ।।१२०
समुद्रमगमत्पुत्रो राक्षसीभिश्च रक्षितः । लङ्कामागम्य तत्रैव ज्योतिःशास्त्रमधीतवान् ।।१२१
जातकं फलितं चैव मूकप्रश्नं तथादितः । पठित्वा राक्षसेन्द्रं च विभीषणमुपागतम् ।।१२२
भक्तराज नमस्तुभ्यं बिभीषण हरिप्रिय । आहृतो राक्षसीभिश्च त्वामहं शरणं गतः ।।१२३
इति श्रुत्वा च स नृपो वैष्णवं द्विजमुत्तमम् । मत्वा सम्प्रेषयामास यत्र तज्जन्मभूमिका ।।१२४
म्लेच्छैर्विनाशितं यत्तु वेदाङ्गं ज्योतिषां गतिः । पुनरुद्धारितं तेन त्रिधाभूतं सनातनम् ।।१२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजिदीक्षितवराहमिहिराचार्योत्पत्तिवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ।८

शरीर त्यागने पर वह देवाधिदेव सूर्य के प्रसाद से उन्हीं में लीन हो गया । अतः देवेन्द्र ! तुम उसी मार्ग (अगहन) मास के सूर्य की अर्चना करो ।।१०५-११६

सूतजी बोले——इन्द्र के पूजन करने पर उस समय पूषा नामक सूर्य ने वहाँ उपस्थित होकर देवों से मधुर वाणी द्वारा कहा—उज्जयिनी पुरी में रुद्रपशु के गृह में उत्पन्न होकर मैं ज्योतिष्शास्त्र प्रवर्तक एवं मिहिराचार्य के नाम से ख्याति प्राप्त करूँगा । इतना कहकर भगवान् पूषा ने उस ब्राह्मण के घर बालक रूप में जन्म ग्रहण किया । मूल गण्डान्त नक्षत्र तथा शुभदायक, अभिजित योग में उत्पन्न होने के नाते उस बालक को उसके माता-पिता ने काष्ठ की सन्दूक में उसे बन्दकर आधी रात के समय नदी में डाल दिया । नदी द्वारा वह बालक समुद्र में पहुँच गया, वहाँ राक्षसियों द्वारा सुरक्षित रहकर समुद्र से लंका में पहुँचा । वहाँ रहकर उसने ज्योतिष्शास्त्र का विशेषाध्ययन किया, जिससे जातकफलित और मूकप्रश्न आदि की विशेष निपुणता उन्हें प्राप्त हुई । पश्चात् राक्षसेन्द्र विभीषण के पास पहुँचकर उन्होंने कहा—भक्तराज, एवं हरिप्रिय विभीषण ! तुम्हें नमस्कार है । राक्षसियों द्वारा मेरा अपहरण हुआ है अतः मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ । इसे सुनकर उस राजा ने उस वैष्णव ब्राह्मणश्रेष्ठ को उनकी जन्मभूमि में पहुँचा दिया । वहाँ पहुँचकर उसने म्लेच्छों द्वारा विनष्ट उस वेदाङ्ग ज्योतिष्शास्त्र का, जो सनातन एवं तीन भागों में विभक्त है, पुनः उद्धार किया ।११७-१२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, भट्टोजीदीक्षित और वाराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

धन्वन्तरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवस्सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । प्रयागे तु पुनर्देवानुवाच वचसां पतिः ॥१
प्रतिष्ठानपुरे रम्ये सूर्यो जातो हराज्ञया । पुरा त्रेतायुगान्ते च तच्छृणुष्व सुरोत्तम ॥२
त्रेतान्ते सिंहलद्वीपे परीक्षितनृपोऽभवत् । वेदधर्मपरो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥३
कन्या भानुमती तस्य सूर्यव्रतपरायणा । भक्तिभावेन सविता प्रत्यहं तद्गृहे स्वयम् ॥४
तया कृतं शुभं भक्ष्यं मध्याह्ने भुक्तवान्प्रभुः । रविवारे कदाचित्सा नलिनी सागरं प्रति ॥५
स्नानार्थमागता कन्या तदा नारद आगतः । दृष्ट्वा मनोरमां बालामेकाकीं जलमध्यगाम् ॥६
गृहीत्वा वसनं तस्या वचनं प्राह निर्भयः । पाणिं गृहाण मे सुभ्रूस्त्वद्दृष्ट्या वशमागतः ॥७
इत्युक्तवन्तं तु मुनिं कुमारी नम्रकन्धरा । उवाच शृणु देवर्षे कन्याहं त्वं सुतप्रदः ॥८
भवान्देवाङ्गनाभिश्च प्रार्थितः स्वर्गमण्डले । दव च वै मेनका रम्भा क्वाहं मनुजयोनिजा ॥९
नवद्वारेषु देहेस्मिन्दुर्गन्धाः संस्थिताः सदा । नैव देवाङ्गनाङ्गे वै तस्मात्तुभ्यं नमोनमः ॥१०
इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितो नारदस्तदा । महादेवमुपागम्य चोक्तवान्सर्वकारणम् ॥११

अध्याय ९

धन्वंतरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पति का वर्णन

सूतजी बोले—प्रयागतीर्थ में भगवान् बृहस्पति ने देवों को सूर्य का उत्तम माहात्म्य सुनाकर पुनः कहना आरम्भ किया। सुरोत्तम ! पहले त्रेतायुग के अन्त समय में भगवान् शंकर की आज्ञा से सूर्य ने प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) में जन्म ग्रहण किया था। मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! त्रेतायुग के अन्त समय में सिंहलद्वीप का राजा परीक्षित था, जो वेद-धर्म का अनुयायी और देवों तथा अतिथियों की नित्य पूजा करता था। उसकी भानुमती नामक कन्या सूर्यव्रत का परायण करती थी। उसके भक्तिभाव से प्रसन्न होकर सूर्यदेव प्रतिदिन उसके घर स्वयं आकर मध्याह्न समय उसके द्वारा समर्पित भक्ष्य पदार्थ का भोजन करते थे। एक बार रविवार के दिन उस कमलाङ्गी कुमारी ने सागर में स्नानार्थ प्रस्थान किया। उसके वहाँ पहुँचने पर नारद जी वहाँ आये। जल के मध्य स्नान करती हुई उस मनोरमा कुमारी को अकेली देखकर नारद ने उसके वस्त्र पकड़कर निर्भीक होकर कहा—शुभ्रे ! मैं तुम्हारे कटाक्ष-पात से अधीर हो गया हूँ, अतः मेरा हाथ ग्रहण करो ! ऐसा कहने पर उस कुमारी ने शिर झुकाकर उस मुनि से कहा—देवर्षे ! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें—मैं कुमारी हूँ और आप पुत्र प्रदाता हैं तथा आकाश मण्डल में स्थित होकर देवाङ्गनाएँ आपकी प्रार्थना करती हैं। इसलिए कहाँ वह मेनका और कहाँ मानुषी मैं। क्योंकि मनुष्यों के नवद्वारों वाली इस देह में सदैव दुर्गन्ध ही स्थित रहती है और देवस्त्रियों के अंगों में नहीं। इसलिए मेरी उनकी समता अत्यन्त दुर्लभ है।१-१०। इतना सुनकर नारद अत्यन्त लज्जित हुए। पश्चात्

कुष्ठीभूतं मुनिं दृष्ट्वा शङ्करो लोकशङ्करः । तुष्टाव भास्करं देवं तदा प्रादुरभूत्प्रभुः ॥१२
नारदस्य शुभं देहं कृत्वा शिवमुवाच ह । आज्ञां देहि महादेव तवाशां पूरयाम्यहम् ॥१३
इत्युक्तं तं शिवः प्राह द्विजो भूत्वा भवान्भुवि । गृहाण नृपतेः कन्यां रविणा तु तथा कृतम् ॥१४
सविता भानुमत्या च सार्द्धं कृत्वा तपोन्वहम् । सूर्यलोकं पुनः प्रा तस्स पौषे च प्रकाशकृत् ॥
तं भजाशु महेन्द त्वं देवकार्यं प्रसाधय ॥१५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं महेन्द्रश्च सुरैस्सह । सवितारं पौषमासे तुष्टाव शुभपूजनैः ॥१६
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभं वचः । अहं काश्यां भवाम्यद्य नाम्ना धन्वन्तरिः स्वयम् ॥१७
रोगैश्च पीडिताँल्लोकान्कलिना निर्मितैर्भुवि । शमयिष्यामि तत्रोष्य देवकार्यं भविष्यति ॥१८
इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यः काशीनगरमागतः । कल्पदत्तस्य विप्रस्य पुत्रो भूत्वा महीतले ॥१९
सुश्रुतं राजपुत्रं च विप्रवृद्धसमन्वितम् । शिष्यं कृत्वा प्रसन्नात्मा कल्पवेदमचीकरत् ॥२०
रोगैश्च क्षयितं देहं कल्पमेतत्स्मृतं बुधैः । तस्य ज्ञानं च तन्त्रेऽस्मिन्कल्पवेदोद्धृतः स्मृतः ॥२१
धन्वन्तरिस्स भगवान्प्रसिद्धोऽभूत्कलौ युगे । यस्य दर्शनमात्रेण रोगा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥२२
सुश्रुतः कल्पवेदं तं धन्वन्तरिविनिर्मितम् । पठित्वा च शताध्यायं सौऽश्रुतं तन्त्रमाकरोत् ॥२३

महादेव जी के पास जाकर समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । लोक-कल्याणकर्त्ता शिवजी ने उन्हें कुष्ठरोग से ग्रस्त देखकर भास्करदेव की आराधना की । उस समय सूर्यदेव ने साक्षात् प्रकट होकर नारद के शरीर को नीरोग करते हुए शिवजी से कहा—महादेव ! आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं आपकी आशा पूरी कर दूँ ।१-१३। उनके इस प्रकार कहने पर शिव जी ने कहा—आप ब्राह्मण के वेष धारणकर उस कन्या का ग्रहण करें । पश्चात् सूर्य ने वैसा ही किया । सविता (सूर्य) ने उस भानुमती के साथ पाणिग्रहण करने के उपरान्त तप करना आरम्भ किया, जिससे सूर्यलोक की पुनः प्राप्ति की । वही प्रत्येक पौष में प्रकाश प्रदान करते हैं । अतः महेन्द्र ! उन्हीं सूर्य की आराधना द्वारा देवकार्य शीघ्र सफल करो ।१४-१५

सूत जी बोले—गुरु की ऐसी बात सुनकर सुरेश ने देवों के साथ शुभपूजन द्वारा पौष मास के उस सूर्य की आराधना आरम्भ की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने शुभ वाणी द्वारा देवों से कहा—मैं काशीपुरी में धन्वन्तरि के नाम से उत्पन्न हूँगा । वहाँ रहकर कलि द्वारा उत्पन्न रोगों से पीड़ित प्राणियों को नीरोग करूँगा, जिससे देवकार्य स्वयं सिद्ध हो जायेगा । इतना कहकर भगवान् सूर्य काशीपुरी में आकर कल्पदत्त ब्राह्मण के घर पुत्ररूप में उत्पन्न हुए और प्रसन्न होकर उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण समेत उस सुश्रुत राजपुत्र को शिष्य बनाकर कल्पवेद की रचना की, जिससे रोगद्वारा नष्ट देह (कायाकल्प) नवीन हो जाती है । उस कल्पवेद का समस्त ज्ञान इस तंत्र में निहित हैं । उस समय वे सूर्य उस रूप में धन्वन्तरि के नाम से इस भूतल में प्रख्यात हुए, जिसके दर्शनमात्र से उसी समय रोग नष्ट हो जाते हैं । सुश्रुत ने धन्वन्तरि द्वारा रचित उस कल्पवेद के सौ अध्याय का अध्ययन करके 'अश्रुततंत्र' की रचना की ।१६-२३

बृहस्पतिरुवाच

पुरा पम्पापुरे रम्ये हेली नाम्ना द्विजोऽभवत् । चतुष्षष्टिकलाभिज्ञो रविपूजनतत्परः ।।२४
त्यक्त्वा प्रतिग्रहं वृत्तिं कारुवृत्तिं गृहीतवान् । कृत्वा वस्त्रकलं लौहं तथा चित्रकलं पुनः ।।२५
धातुमूर्तिकलं चैव सर्वकारुकलं तथा । पञ्चसहस्रमुद्राभिराक्रीणत्कारुकोऽभवत् ।।२६
कलएको मासमात्रे काले तेनैव निर्मितः । तद्धनेन रविं देवं यज्ञैर्माघे हि सोऽर्चयत् ।।
विश्वकर्मा रविः साक्षान्माघमासे प्रकाशकः ।।२७
हेलिनो बहुलैर्यज्ञैस्सन्तुष्टः प्रत्यहं प्रभुः । पम्पासरोवरे रम्ये निर्मितः स्तम्भ उत्तमः ।।२८
ज्योतीरूपो महारम्यस्तत्र प्राप्तो रविः स्वयम् । मध्याह्ने हेलिना दत्तं भोजनं दैवतप्रियम् ।।२९
भुक्त्वा स प्रत्यहं स्वामी मासिमासि दिवाकरः । त्रैलोक्यं भावयाञ्चक्रे सर्वदेवमयो हरिः ।।३०
सहस्रायुर्द्विजो भूत्वा त्यक्त्वा प्राणान्रविः स्वयम् । भूत्वा मण्डलमध्यास्य माघमासमतोषयत् ।।
तं सूर्यं भज देवेन्द्र स ते कार्यं करिष्यति ।।३१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वासवो दैवतैस्सह । सूर्यमाराधयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् ।।३२
तदा प्रसन्नो भगवांस्त्वष्टा तुष्टिकरो जनान्[1] । सुरानाह वचो रम्यं शृणुध्वं सुरसत्तमाः ।।३३

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में रम्य पम्पापुर में एक हली नामक ब्राह्मण रहता था, जो चौंसठ कलाओं में निपुण और नित्यसूर्य का उपासक था। प्रतिग्रह (दान) वृत्ति का त्यागकर उसने कलावृत्ति स्वीकार की। वस्त्रकला, लोह-कला, चित्रकला एवं धातुओं की मूर्तिकला को अपनाकर वह समस्त कलाओं का कार्य करता था, जिससे उसे पाँच सहस्र मुद्रा की प्राप्ति हुई। एक मास के भीतर ही उसने एक फल का निर्माण किया। उस धन से उसने माघ मास में यज्ञानुष्ठान द्वारा सूर्यदेव को प्रसन्न किया, जिससे विश्वकर्मा के नाम से सूर्यदेव प्रत्येक माघमास में प्रकाश करते रहते हैं। उस हली ब्राह्मण ने अनेक यज्ञों द्वारा सूर्य को अत्यन्त प्रसन्न किया, जिससे पम्पासरोवर में उसके द्वारा निर्मित स्तम्भ के स्थापित होने पर सूर्य वहाँ अन्यन्त सुरम्य ज्योतिरूप में स्वयं उस स्तम्भ पर मध्याह्न समय पहुँचकर उसके दिये हुए भक्ष्य का ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मास के उस देवप्रिय भक्ष्यपदार्थ को ग्रहणकर सूर्यदेव सर्वदेवमय होकर वहाँ त्रैलोक्य की कल्याण भावना करते रहते हैं। पश्चात् सहस्र वर्ष की आयु के उपरान्त उस ब्राह्मण ने प्राण परित्यागकर सूर्य के रूप में मण्डल के मध्य पहुँचकर माघ मास में सूर्य को सन्तुष्ट किया। अतः देवेन्द्र ! तुम उसी सूर्य की आराधना करो, वही तुम्हारा कार्य सिद्ध करेंगे।२४-३१

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर देवों समेत इन्द्र ने उस विश्वकर्मा सूर्य की आराधना की। उस समय प्रसन्न होकर त्वष्टा रूप सूर्य ने भी उन देवों को प्रसन्न किया। उन्होंने देवताओं से मधुर वाणीद्वारा कहा—सुरोत्तमवृन्द ! मेरी बात सुनो ! वंगदेश के विल्व नामक

---

१. जनानामित्यर्थः ।

बिल्वग्रामे वङ्गदेशे सम्भवामि निरुक्तकृत् । जयदेव इति ख्यातः कवीनां हि शिरोमणिः ॥३४
इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो वङ्गदेशमुपाययौ । गेहे कन्दुकिनो जातो ब्राह्मणस्य महीतले ॥३५
स पञ्चाब्दवपुर्भूत्वा पितृमातृपरायणः । द्वादशाब्दं महासेवा तत्र तेन तयोः कृता ॥३६
मृतिमन्तौ च पितरौ प्रेतकृत्येन तर्पितौ । जयदेवेन तौ नाकं गयाश्राद्धे हि जग्मतुः ॥३७
जयदेवस्तदा विप्रो भूत्वा वैराग्यवान्भुवि । तत्रस्थाने महारण्ये वने वासमकारयत् ॥३८
त्रिविंशाब्दे ततः प्राप्ते केनचिन्मधुराननाः । ब्राह्मणेन शुभा कन्या जगन्नाथाय चार्पिता ॥३९
अर्चावसाने भगवाननिरुद्धस्सनातनः । दारुब्रह्ममयः साक्षादाह तं स्वेन वै वचः ॥४०
शृणु त्वं भोः सत्यव्रत जयदेवो वपुर्मम । पद्मावतीं सुतां तस्मै निवेदय ममाज्ञया ॥४१
इत्युक्तस्स द्विजस्तूर्णं दृष्ट्वा वैरागरूपिणम् । तत्र स्थाप्य निजां कन्यां स्वगेहाय मुदा ययौ ॥४२
सा तु पद्मावती कन्या मत्वा तं सुन्दरं पतिम् । तत्सेवां सा मुदा युक्ता चकार बहुवार्षिकम् ॥४३
निरुक्तं वैदिकं चाङ्गं कृतवान्स समाधिना । वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ॥
षोडशादौ विकारश्च वर्णनाशः पृषोदरे ॥४४
वर्णविकारनाशाभ्यां धातोरतिशयेन यः । योगस्तदुच्यते प्राज्ञैर्मयूरभ्रमरादिषु ॥४५
एवं पञ्चविधान्येवं निरुक्तानि स्मृतानि वै । शूद्रैश्च नागवंशीयैर्भ्रंशितानि कलौ युगे ॥४६

ग्राम में मैं निरुक्तकार के रूप में उत्पन्न होकर जयदेव नामक कवि शिरोमणि हूँगा । इतना कहकर भगवान् सूर्य ने वंग प्रदेश में पहुँचकर कन्दुकी ब्राह्मण के घर जन्म ग्रहण किया । पाँच वर्ष की अवस्था से उन्होंने अपने माता-पिता की अनवरत सेवा बारह वर्ष तक की । पश्चात् उन दोनों के निधन हो जाने पर उन्होंने उनकी अन्त्येष्टिक्रिया द्वारा भी उन्हें सन्तुष्ट किया और गया जी में श्राद्ध करके स्वर्ग का निवासी बनाया । तदनन्तर यज्ञोपवीत होने पर जयदेव ने वैराग्य धारणकर उसी स्थान के एक महारण्य में निवास करना आरम्भ किया । उस समय उनकी तेईस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । किसी ब्राह्मण ने अपनी शुभ-कन्या जगन्नाथ जी को अर्पित किया, पश्चात् पूजा करने के उपरान्त सनातन अनिरुद्ध भगवान् ने, जो ब्रह्मय काष्ठरूप में स्थित थे, साक्षात् अपनी बाणी द्वारा उस ब्राह्मण से कहा—सत्यदेव ! मेरी बात सुनो ! जयदेव की शरीर मेरी ही शरीर है, अतः मेरी आज्ञा से तुम अपनी इस पद्मावती को उन्हें समर्पित करो । इतना कहने पर उस ब्राह्मण ने शीघ्र वहाँ जाकर उन वैरागी जयदेव के पास अपनी पुत्री को छोड़कर हर्षमग्न होकर अपने घर को प्रस्थान किया । उस पद्मावती कन्या ने भी उन्हें अपना सुन्दर पति समझकर उनकी बहुत वर्षों तक सेवा की । जयदेव जी ने समाधिस्थ होकर वैदिक अंगभूत निरुक्त की कल्पना की, जो गवेन्द्र पद की सिद्धि में गो + इन्द्र अवस्था में ओ के प्रस्थान पर 'अव' आदेश रूप वर्णागम 'सिंह' में हसिं की अवस्था में सिं का प्रथम आना, वर्ण विपर्यय (उलटफेर) षोडश में षष + दश अवस्था में ष के स्थान पर उकार और द के स्थान पर ड् रूप वर्ण विकार, एवं पृषतोदर में पृष उदर में त का लोप रूप वर्णनाश के क्रम से वर्ण विकार वर्णनाश और मयूर तथा भ्रमर पदों की सिद्धि में धातु के अतिशयित्व रूप योग विद्वानों द्वारा बताया गया है । इस प्रकार पाँच प्रकार के निरुक्त की रचना उनके द्वारा की गई है ।३२-४६। कलियुग में नागवंशीय शूद्रों द्वारा भ्रष्ट की गई उस प्राकृत भाषा के उन कलिप्रिय एवं मूर्खों

जित्वा प्राकृतभाषायाः कर्तृमूढान्कलिप्रियान् । शुद्धं हि पाणिनिः शास्त्रं चकार सुरहेतवे ।।४७
एकदा तु कलिर्धूर्तो हृदिस्थश्चौरकर्मणाम् । नृपदत्तं द्विजस्यैव लुण्ठयित्वा धनं बहु ।।४८
पद्मावतीं सतीं मत्वा त्यक्त्वा तद्वै गतो गृहम् । हस्तौ पादौ द्विजस्यैव कलिश्चौरैः समाच्छिनत् ।।४९
तदा तु दुःखिता देवी गर्तमध्ये स्थितं पतिम् । निष्कास्य बहुधालप्यापीड्य हस्तेन चाहरत् ।।५०
एकस्मिन्दिवसे राजा मृगयार्थमुपागतः । अहस्तपादं च मुनिं जयदेवं ददर्श ह ।।
स पृष्टस्तेन तत्रैव कृतं केन तवेदृशम् ।।५१
स होवाच महाराज हस्तपादविहीनकः । कर्मणाहमिह प्राप्तो न केनापि कृतं खलु ।।५२
इति श्रुत्वा धर्मपालो नृपतिस्तं द्विजोत्तमम् । सपत्नीकं च शिबिकामारोप्य स्वगृहं ययौ ।।५३
तस्य दीक्षां नृपः प्राप्य धर्मशालामकारयत् । कदाचिद्वैष्णवा भूता ते चौराः कलिनिर्मिताः ।।
धर्मपालगृहं प्राप्य राजानमिदमब्रुवन् ।।५४
वयं हि शास्त्रनिपुणास्तव गेहमुपागताः । अस्माभिर्निर्मितं भोज्यं स्वयं विष्णुः शिलामयः ।।
सम्भुक्ते प्रत्यहं प्रीत्या तत्पश्य नृपसत्तम ।।५५
इत्युक्त्वा कलिभक्तास्ते विष्णुरूपं चतुर्भुजम् । नृपाय दर्शयामासुर्भुक्तवन्तं स्वमायया ।।५६
विस्मितो धर्मपालश्च जयदेवमुवाच ह । गुरो मद्भवने प्राप्ता वैष्णवा विष्णुतत्पराः ।।
अदीदृशन्हरिं साक्षात्तस्मात्त्वं शीघ्रमाव्रज ।।५७

को पराजित कर इन्होंने देवों के निमित्त पाणिनि शास्त्र की रचना की । एक बार धूर्त कलि ने चोरों के हृदय में स्थित होकर उन चोरों द्वारा इन जयदेव ब्राह्मण के धनों को, जिसे राजा ने प्रदान किया था, लुटवाकर पद्मावती को सती समझकर छोड़ दिया किन्तु इनके हाथ-पाँव भी कटा लिए । उससे दुःखी होकर उनकी पत्नी ने गड्ढे में गिरे हुए अपने पति को करुण क्रन्दन करती हुई किसी भाँति हाथ के सहारे उस गड्ढे से निकाला । उसी समय राजा शिकार के लिए जा रहे थे, मार्ग में जयदेव को कर-चरणहीन देखकर उन्होंने उनसे पूछा—किसने आपकी यह दशा की है । उन्होंने कहा—महाराज ! मैं अपने कर्म द्वारा ही इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ, इसमें किसी अन्य का अपराध नहीं है । इसे सुनकर राजा धर्मपाल ने पत्नी समेत उन्हें पालकी पर बैठाकर अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा ने उनसे दीक्षा ग्रहण की, पश्चात् एक धर्मशाला का निर्माण कराया । एक बार कलिनिर्मित उन चोरों ने वैष्णव के रूप में राजा धर्मपाल के गृह आकर उनसे कहा—हम लोग शास्त्र के निपुण विद्वान् हैं, किन्तु इस समय तुम्हारे यहाँ आये हैं । नृपसत्तम ! हम लोगों के बनाये हुए भोज्य पदार्थ को शालग्राम शिलामय विष्णु भगवान् स्वयं सप्रेम भक्षण करते हैं, उसे आज आप भी देखिये मैं दिखाऊँगा । इतना कहकर उन कलिभक्त वैष्णवों ने अपनी माया द्वारा भोजन करते हुए भगवान विष्णु का दर्शन राजा को करा दिया, जिससे आश्चर्य चकित होकर धर्मपाल ने जयदेव से कहा—गुरो ! मेरे घर में विष्णुभक्त वैष्णव लोग आये हुए हैं, जो भगवान् का साक्षात् दर्शन करा रहे हैं, अतः आप भी वहाँ शीघ्र चलने की कृपा करें।४७-५७। इसे सुनकर जयदेव वहाँ पहुँचे किन्तु राजा को उस समय महान् आश्चर्य हुआ, जब उन

इति श्रुत्वा द्विजः प्राप्तो विस्मितोऽभूत्तथा नृपः । तदा तु तं हि पाखण्डा भूपमूचुर्विहस्य ते ।।५८
असौ विप्रश्च नृपते गौडदेशे निवासिनः । सूदो भक्ष्यकरस्तस्मै कदाचिद्धनलोभतः ।।५९
गरलं मिश्रितं भक्ष्ये तेन[1] पाखण्टरूपिणा । ज्ञात्वा राजा तु तं विप्रं शूलमध्ये ह्यरोपयत् ।।६०
एतस्मिन्नन्तरे राजन्वयं तत्र समागताः । आगस्कृतं द्विजं मत्वा दत्त्वा ज्ञानान्यनेकशः ।।
शूलात्तं हि समुतार्य हस्तौ पादौ नृपोऽच्छिनत् ।।६१
अस्माकं शिष्यभूतो हि राजास्माभिः प्रबोधितः । इत्युक्तमात्रे वचने दुःखिताभूच्च दारिता ।।६२
चौराँस्तान्सा हि पाताले चकार सुररक्षितान् । जयदेवस्तथा भूतान्दृष्ट्वा चोरान्रुरोद ह ।।६३
क्रन्दमाने द्विजे तस्मिन्हस्ताङ्घ्री[2] प्रकृतिं गतौ । विस्मितं नृपतिं तत्र सर्वं हेतुमवर्णयत् ।।६४
श्रुत्वा राजा प्रसन्नात्मा जयदेवमुखोद्भवम् । गीतगोविन्दमेवाशु पठित्वा मोक्षमागमत् ।।६५
इति ते कथितं विप्र जयदेवो यथाभवत् । कृष्णचैतन्यचरितं यथा जातं शृणुष्व तत् ।।६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये धन्वन्तरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

पाखण्डियों ने हँसते हुए जयदेव को देखकर राजा से कहना आरम्भ किया—यह ब्राह्मण गौड़ देश निवासी राजा के यहाँ पाचक (रसोइया) था । एक बार इस पाखण्डी ने धन के लोभ से मुझे विषमिश्रित भोजन कराया, जिसके विदित हो जाने पर राजा ने इसे शूली पर चढ़ाना चाहा, उसी समय हम लोगों ने वहाँ पहुँचकर इस ब्राह्मण को अपराधी समझते हुए भी राजा को अनेक भाँति से ज्ञान प्रदान किया, तथापि राजा ने शूली से हटाकर इसके हाथ-पैर कटवा लिये, क्योंकि राजा हम लोगों का शिष्य था, इसलिए हम लोगों ने ऐसा ही बताया था । इतना कहने पर उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ हृदयविदीर्ण-सा प्रतीत होने लगा । पश्चात् राजा ने उस चोरों को पाताल में ठहराया, जो सुरनायक की रक्षा कर रहे थे । उसे देखकर जयदेव ने रुदन किया । उनके करुणक्रन्दन करने पर उनके हाथ-पैर पूर्व की भाँति स्वस्थ हो गये । इसे देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ, उस समय जयदेव ने उनसे सभी कारणों का वर्णन किया । उसे सुनकर राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । पश्चात् उस राजा ने जयदेव के मुख से निकले उस गीत गोविन्द के गायन-भजन द्वारा मोक्ष प्राप्त की ।, विप्र ! इस प्रकार मैंने जयदेव की उत्पत्ति कथा सुना दी । अब कृष्ण चैतन्य की कथा कह रहा हूँ, सुनो ।५८-६६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में धन्वन्तरि, सुश्रुत और जयदेव की उत्पत्ति वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

---

१. दत्तमिति शेषः । २. जातित्वादेकवचनान्तहस्तपादयोर्द्वन्द्वः ।

अथ दशमोऽध्यायः

कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्तिवर्णनम्

जीव उवाच

विष्णुशर्मा पुरा कश्चिद्विप्रोभूद्वेदपारगः । सर्वदेवमयं विष्णुं पूजयित्वा प्रसन्नधीः ॥१
अन्यैस्सुरैश्च सम्पूज्यो बभूव हरिपूजनात् । भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पत्नीमान्पुत्रवर्जितः ॥२
कदाचित्तस्य गेहे वै यती कश्चित्समागतः । द्विजपत्नीं तदैकाकीं[1] भक्तिनम्रां दरिद्रिणीम् ॥
दृष्ट्वोवाच महाभागः स स्पर्शादयो[2] दयापरः ॥३
अनेन स्पर्शमणिना लोहधातुश्च काञ्चनम् । भवेत्तस्मान्महासाध्वि त्रिदिनान्तं गृहाण तम् ॥४
स्नात्वा तावत्सरय्वां चायास्यामि तेन्तिकं मुदा । इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो ब्राह्मणी बहु काञ्चनम् ॥
कृत्वा लक्ष्मीं समाप्यासोद्विष्णुशर्मा तदागमत् ॥५
बहुस्वर्णयुतां पत्नीं दृष्ट्वोवाच हरिप्रियः । गच्छ नारि मदाघूर्णे यत्र वै रसिको जनः ॥६
अहं विष्णुपरो दीनश्चौरभीतः सदैव हि । मधुमत्तां कथं त्वां वै गृहीतुं भुवि च क्षमः ॥७
इति श्रुत्वा वचो घोरं पतिभीता पतिव्रता । सस्वर्णं स्पर्शकं तस्मै दत्त्वा सेवापराऽभवत् ॥८

अध्याय १०

कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—पहले कोई विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण था, जो वेद का मर्मज्ञ तथा प्रसन्नचित्त होकर नित्य सर्वदेवमय विष्णु की आराधना करता था । भगवान् की उपासना करने के कारण समस्त देवों के पूज्य होने पर भी वह ब्राह्मण भिक्षा याचन द्वारा ही अपनी जीविका निर्वाह करता था । घर में केवल पत्नी ही थी पुत्र आदि अन्य कोई नहीं । एक बार उस ब्राह्मण के घर एक कोई संन्यासी आया । उसने उस ब्राह्मण-पत्नी को भक्ति विनम्र एवं अत्यन्त दरिद्र-पीड़ित देखकर कहा—यह पारस पत्थर अत्यन्त पुण्यात्मा एवं अत्यन्त दयालु है क्योंकि इसके स्पर्शमात्र से लोहा भी सुवर्ण हो जाता है अतः साध्वि ! इसे तुम तीन दिन तक अपने पास रखकर मन इच्छित सुवर्ण बना लो । तब तक मैं सरयू-स्नान करके आ जाऊँगा । इतना कहकर वह ब्राह्मण स्नानार्थ चला गया और वह ब्राह्मणी मनोनुरूप मात्रा में सुवर्ण बनाकर लक्ष्मी की भलीभाँति प्राप्ति की । उसी समय विष्णुशर्मा भी भिक्षा लेकर घर आये । उन्होंने अत्यन्त सुवर्णयुक्त अपनी पत्नी को देखकर कहा—मतवाली कामिनि ! तुम अब किसी रसिक प्रेमी के यहाँ जाकर रहो, क्योंकि मैं विष्णु का उपासक, दीन एवं चोरों आदि से भयभीत होने वाला ब्राह्मण हूँ, तुम सौन्दर्यपूर्ण मदोन्मत्त हो रही हो इसलिए मैं तुम्हारा ग्रहण कैसे कर सकता हूँ । इस दारुण वचन को सुनकर पति से भयभीत होकर उस पतिव्रता ने समस्त सुवर्ण समेत उस पारस को पति के समक्ष रख दिया

---

१. आर्षोयम् । २. पारस इति भाषायाम् ।

द्विजोऽपि घर्घरामध्ये तद्द्रव्यं बलतोऽक्षिपत् । त्रिदिनान्ते च स यतिस्तत्रागत्य मुदान्वितः ।।
उवाच ब्राह्मणीं दीनां स्वर्णं किं न कृतं त्वया ।।९
साह भो मत्पतिश्शुद्धो गृहीत्वा स्पर्शकं रुषा । घर्घरे च निचिक्षेप ततोहं वह्निपाकिनी ।।
निर्लोहो वर्तते विप्रस्ततः प्रभृति हे गुरो ।।१०
इति श्रुत्वा तु वचनं तस्य यतिर्विस्मयान्वितः । स्थित्वा दिनान्ते तं विप्रनुवाच बहु भर्त्सयन् ।।११
दरिद्रो भिक्षुकश्चास्ति भवान्दैवेन मोहितः । देहि मे स्पर्शकं शीघ्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।१२
इत्युक्तवन्तं यतिनं विष्णुशर्मा तदाब्रवीत् । गच्छ त्वं घर्घराकूले तत्र वै स्पर्शकस्तव ।।१३
इत्युक्त्वा यतिना सार्द्धं गृहीत्वा कण्टकान्बहून् । यतिने दर्शयामास स्पर्शकानिव कण्टकान् ।।१४
तदा तु स यती विप्रं नत्वा प्रोवाच नम्रधीः । मया वै द्वादशाब्दान्तं सम्यगाराधितः शिवः ।।
ततः प्राप्तं शुभं रत्नं तत्तुत्वद्दर्शनेन वै ।।१५
स्पर्शको बहुधा प्राप्तो मया लोभात्मना द्विजः । इत्याभाष्य शुभं ज्ञानं प्राप्तो मोक्षमवाप्तवान् ।।१६
विष्णुशर्मा सहस्राब्धमुषित्वा जगतीतले । सूर्यमाराध्य विधिवद्विष्णोर्मोक्षमवाप्तवान् ।।१७
स द्विजो वैष्णवं तेजो धृत्वा वै मासि फाल्गुने । त्रैलोक्यमतपत्स्वामी देवकार्यपरायणः ।।१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवः पुनः प्राह शचीपतिम् । फाल्गुने मासि तं सूर्यं समाराध्य सुखी भव ।।१९

और उनकी सेवा करने लगी ।१-८। वह ब्राह्मण भी उस सुवर्ण और पारस को ले जाकर घाघरा नदी में डाल दिया । पश्चात् तीन दिन के अन्त में उस संन्यासी ने वहाँ आकर उस दीन ब्राह्मणी से कहा—क्या तुमने उस पारस से सुवर्ण नहीं बनाया । उसने कहा—मेरे पतिदेव अत्यन्त विशुद्धात्मा हैं, उन्होंने सुवर्ण समेत पारस को घाघरा नदी में डाल दिया । क्योंकि जब तक पारस घर में था मुझे भोजन बनाने की वे आज्ञा नहीं दे रहे थे । गुरो ! इस समय हम लोगों के पास वह पारस नहीं है । इसे सुनकर उस संन्यासी को महान् आश्चर्य हुआ । पश्चात् उस ब्राह्मण के आने पर उसे भर्त्सित करने लगा—आप दैवमोहित होकर ही दरिद्र एवं भिक्षुक बने हुए हैं । यदि आपको उसकी आवश्यकता नहीं है तो मुझे मेरा पारस लौटाने की कृपा कीजिये अन्यथा मैं प्राण परित्याग कर रहा हूँ । ऐसा कहने पर उस यति से विष्णुशर्मा ने कहा—घाघरा के तट पर चले जाओ तुम्हारा पारस उसी स्थान रखा हुआ है । इतना कहकर उस यति के साथ वहाँ जाकर अनेक कटंकों को लेकर पारस की भाँति उसे ही दिखा दिया । उस समय उस यति ने नमस्कार पूर्वक विनम्र होकर उस ब्राह्मण से कहा—मैंने बारह वर्ष तक शिव की आराधना करके उस शुभ-रत्न पारस की प्राप्ति की थी किन्तु आपके दर्शन मात्र से ही यहाँ मुझ लोभी को अनेक पारस की प्राप्ति हो गई । इतना कहकर उस यति ने शुभ ज्ञान प्राप्तिपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति की और विष्णुशर्मा ने इस पृथिवी तल पर एक सहस्र वर्ष रहकर सूर्य की विविध आराधना द्वारा विष्णु में मोक्ष प्राप्त किया । वही ब्राह्मण वैष्णव तेज धारणकर प्रत्येक फाल्गुन मास में तीनों लोकों को प्रकाशित किया जिससे देवकार्य की सिद्धि हुई ।९-१८

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् बृहस्पति ने पुनः शचीपति इन्द्र से कहा—फाल्गुन मास के

इत्युक्तो गुरुणा देवो ध्यात्वा सर्वमयं हरिम् । पूजनैर्बहुधाकारैर्देवदेवमपूजयत् ॥२०
तदा प्रसन्नो भगवान्सम्भूत्सूर्यमण्डलात् । चतुर्भुजो हि रक्ताङ्गो यथा यक्षस्तथैव सः ॥
पश्यतां सर्वदेवानां शक्रदेहमुपागमत् ॥२१
तत्तेजसा तदा शक्रः स्वान्तर्लीय स्वकं वपुः । अयोनिस्स द्विजो भूत्वा शची देवी तथैव सा ॥२२
तदा तौ मिथुनीभूतौ वैष्णवाग्निप्रपीडितौ । रमेते वर्षपर्यन्तं गङ्गाकूले महावने ॥२३
अधाद्गर्भं तदा देवी शची तु द्विजरूपिणी । भाद्रशुक्ले गुरौ वारे द्वादश्यां ब्राह्ममण्डले ॥२४
प्रादुरासीत्स्वयं विष्णुर्धृत्वा सर्वकलां हरिः । चतुर्भुजश्च रक्ताङ्गो रविकुम्भसमप्रभः ॥२५
तदा रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवा मरुद्गणाः । साध्याश्च भास्कराः सिद्धास्तुष्टुवुस्तं सनातनम् ॥२६

देवा ऊचुः

कुलिशध्वजपद्मगदाङ्कुशाभं चरणं तव नाथ महाभरणम् ।
रमणं मुनिभिर्विधिशंभुयुतं प्रणमाम वयं भवभीतिहरम् ॥२७
दरचक्रगदाम्बुजमानधरः सुरशत्रुकठोरशरीरहरः ।
सचराचरलोकभरश्चपलः खलनाशकरस्सुरकार्यकरः ॥२८
नमस्ते शचीनन्दनानन्दकारिन्महापापसन्तापदुर्लापहारिन् ।
सुरारीन्निहत्याशु लोकाधिधारिन्स्वभक्त्याघजाताङ्गकोटिप्रहारिन् ॥२९

उस सूर्य की आराधना करके सुख का अनुभव करो । गुरु बृहस्पति के ऐसा कहने पर इन्द्र ने सर्व देवमय विष्णु के ध्यानपूर्वक उन देवाधिदेव की अनेक भाँति अर्चना की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् ने सूर्य मण्डल से प्रकट होकर चार भुजाएँ एवं रक्तवर्ण यज्ञेश की भाँति प्रकट होकर सभी देवों के समक्ष शक्र (इन्द्र) के शरीर में प्रवेश किया । उस समय इन्द्र ने अपनी पूर्व शरीर को अपने में ही विलीनकर अयोनिज ब्राह्मण का वेश धारण किया और उसी भाँति उनकी पत्नी इन्द्राणी भी । पश्चात् उन दोनों ने वैष्णव अग्नि से पीड़ित होकर उस गंगातट के महारण्य में एक वर्ष तक रमण किया । ब्राह्मणी रूप धारिणी इन्द्राणी ने उस गर्भ को धारण किया । भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी बृहस्पति के दिन उस ब्रह्म मण्डल समय में स्वयं विष्णु भगवान् उस गर्भ द्वारा अवतरित हुए, जो सम्पूर्ण कलाओं को धारण किये, चार भुजाओं वाले, रक्तवर्ण, और कुम्भराशि स्थित (फाल्गुन मास के) सूर्य के समान प्रभापूर्ण थे। उस समय रुद्रगण, वसुगण, विश्वदेव, मरुद्गण, साध्य, भास्कर एवं सिद्धगण वहाँ उपस्थित होकर उन सनातन देव की स्तुति करने लगे ।१९-२६

देवों ने कहा—नाथ ! शिव समेत आपको हम लोग प्रणाम कर रहे हैं, वज्र, ध्वजा, पद्म, गदा एवं अंकुश लक्षणों से विभूषित चरण ही आपका आभूषण है । आप, मुनियों के साथ रमण करने वाले एवं संसार भय का नाश करने वाले हैं । आप दर (शंख) चक्र, गदा और कमल धारण करने वाले, देव-शत्रुओं की कठोर शरीर के नाशक, तथा चर-अचर रूप ब्रह्माण्ड लोक के पोषक हैं, एवं आपकी चपलता शत्रु के विनाशपूर्वक देव-कार्य को सिद्ध करती है । मैं शची नन्दन को नमस्कार करता हूँ, जो आनन्द प्रदाता, और महान् पाप, सन्ताप एवं कठोर भाषण के अपहर्त्ता हैं । आप देव-शत्रुओं को शीघ्र विनष्ट

त्वया हंसरूपेण सत्यं प्रपाल्यं त्वया यज्ञरूपेण वेदः प्ररक्ष्यः ।
स वै यज्ञरूपो भवाँल्लोकधारी शचीनन्दनः शक्रशर्मप्रसक्तः ॥३०
अनर्पितचरोऽचिरात्करुणयावतीर्णः कलौ समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ।
हरेः पुनरसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः सदा स्फुरतु नो हृदयकन्दरे शचीनन्दनः ॥३१
विसर्जति नरान्भवान्करुणया प्रपाल्य क्षितौ निदेवयितुमुद्भवः परात्परं स्वकीयं पदम् ।
कलौ दितिजसम्भवाधिव्यथाब्धिसुरमग्नान्समुद्धर महाप्रभो कृष्णचैतन्य शचीसुत ॥३२
माधुर्य्यैर्मधुभिस्सुगन्धवदनः स्वर्णाम्बुजानां वनं कारुण्यामृतनिर्झरैरुपचितः सत्प्रेमहेमाचलः ।
भक्ताम्भोधरधारिणी विजयिनी निष्कम्पसप्तावली देवो नः कुलदैवतं विजयते चैतन्यकृष्णो हरिः ॥३३
देवारातिजनैरधर्मजनितैस्सम्पीडितेयं मही सङ्कुच्याशु कलौ कलेवरभिदं बीजाय हा वर्तते ।
त्वन्नाम्नैव सुरारयो विदलिताः पातालगाः पीडिता म्लेच्छा धर्मपराः सुरेशनमनास्तस्मै नमो व्यापिने ॥३४

सूत उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यज्ञेशं च शचीपतिम् । बृहस्पतिमुपागम्य देवा वचनमब्रुवन् ॥३५
वयं रुद्रा महाभाग इमे च वसवोऽश्विनौ । केन केनांशकेनैव जनिष्यामो महीतले ॥
तत्सर्वं कृपया देव वक्तुमर्हति नो भवान् ॥३६

कर लोक की शान्ति स्थापना पूर्वक लोक के सेवक और कोटि पापियों के उद्धारक हैं । आपने हंसरूप धारणकर सत्य के पालन-पूर्वक यज्ञरूप धारणकर वेद की रक्षा की है । उसी यज्ञरूप से लोक-पालक आप इन्द्र द्वारा इस समय शची नन्दन (पुत्र) होकर अवतरित हुए हैं । हम लोगों की हृदयरूपी गुफाओं में शचीनन्दन की स्फूर्ति सदैव होती रहे, जो प्राणी द्वारा अनर्पित करुणावश अवतरित, समुन्नत एवं पूर्ण प्रकाशित इस महिमण्डल में कलि के समय अपनी भक्ति प्रदान करते हुए शंकर की असुन्दर प्रभा पटल से विभूषित है । महाप्रभो, कृष्णचैतन्य एवं शची सुत ! आप ही इस भूमण्डल में मनुष्यों को उत्पन्नकर करुणावश उनका पालन-पोषण करते हैं, तथा सर्वोत्तम अपने उस परमपद को उन्हें प्रदान करने के लिए अवतरित भी हुए हैं ।, इसलिए इस घोर कलि के समय दिति-पुत्र (दैत्यों) से पीड़ित हम देवों की रक्षा कीजिये । हमारे कुलदेव भगवान् चैतन्य कृष्ण की सदैव विजय होती रहे, जो सुगंधित सुन्दर पदार्थों की सुरभि से सुरभित अंग, सुवर्ण कमल के वन, तथा प्रेम के इस प्रकार के हिमालय हैं, जो करुणामृत के झरनों से विभूषित और भक्त रूपी मेघों को धारण करने वाली विजयिनी एवं निष्कम्प सप्तावली देवी से युक्त है । हम लोग सुरेश वन्दित एवं (समस्त) व्यापक (उस देव) को नमस्कार कर रहे हैं, जो इस घोर कलि के समय अधार्मिक देवशत्रुओं से पीड़ित पृथिवी को पल्लवित करने के लिए अपने शरीर को संकुचित कर बीज रूप में पुनः अवतरित हैं, और जिसके नाम ही सुनकर सुरारिगण पददलित होकर पाताल पहुँच जाते हैं एवं अधर्मपरायण म्लेच्छगण सदैव पीड़ित होते हैं ।२७-३४

सूत जी बोले—इस प्रकार उस शचीपति यज्ञेश पुरुष की आराधना करने के उपरान्त देवों ने बृहस्पति के पास जाकर उनसे कहा—महाभाग ! हम लोग रुद्रगण, वसुगण और अश्विनी कुमार भूतल में जाकर किन-किन अंशों द्वारा जन्म ग्रहण करें । देव ! कृपाकर हमें यह सब बतायें ।३५-३६

बृहस्पतिरुवाच

अहं वः कथयिष्यामि शृणुध्वं सुरसत्तमाः । पुरा पूर्वभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधमः ॥
धनुर्वाणधरो नित्यं मार्गे विप्रविहिंसकः ॥३७
हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषां यज्ञोपवीतकम् । गृहीत्वा हेलया दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृतः ॥३८
ब्राह्मणस्य च यद्द्रव्यं सुधोपममनुत्तमम् । मधुरं क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं स्मृतम् ॥३९
शूद्रस्य वस्तु रुधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधमः । स जघान त्रिवर्णांश्च ब्राह्मणान्बहुलान्खलः ॥४०
द्विजनाशात्सुरास्सर्वे भयभीतास्सनन्ततः । परमेष्ठिनमागम्य कथांश्चक्रुश्च कारणम् ॥४१
श्रुत्वा च दुःखितो ब्रह्मा सप्तर्षीन्प्राह लोकगान् । उद्देशं कुरु तत्रैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम ॥४२
इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वशिष्ठादिभिरन्वितः । तत्र गत्वा स्थितास्सर्वे मृगव्याधस्य वै वने ॥४३
मृगव्याधस्तु तान्दृष्ट्वा धनुर्बाणधरो बली । उवाच वचनं घोरं हनिष्येऽहं च वोऽद्य वै ॥४४
मरीचाद्या विहस्याहुः किमर्थं हन्तुमुद्यतः । कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महाबल ॥४५
इत्युक्तस्तान्द्विजः प्राह कुलार्थं चात्मनो हिते । हन्मि युष्मान्धनैर्युक्तान्ब्राह्मणाँश्च विशेषतः ॥४६
श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं धनुर्धर । विप्रहत्याकृतं पापं भुञ्जीयात्को विचारय ॥४७
इति श्रुत्वा तु घोरात्मा तेषां दृष्ट्या सुनिर्मलः । गत्वा वंशजनानाह भूरि पापं मयार्जितम् ॥४८
तत्पापकं भवद्भिश्च ग्रहणीयं धनं यथा । ते तु श्रुत्वा द्विजं प्राहुर्न वयं पापभोगिनः ॥४९

बृहस्पति बोले—देवसत्तमवृन्द ! मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो, पहले समय में मृगों का शिकार करने वाला मृगव्याध नामक एक प्रथम ब्राह्मण था । वह सदैव धनुषबाण लिए मार्ग में आने-जाने वाले ब्राह्मण यात्रियों की हिंसा करता था । उस महामूर्ख ब्राह्मण ने ब्राह्मणों का वध करके कौतुकवश उनके यज्ञोपवीत का भी संचय किया। इस प्रकार वह दुष्ट अत्यन्त निन्दनीय कर्म करता था और यह भी जानता था कि ब्राह्मण के द्रव्य उत्तम अमृत, क्षत्रिय के द्रव्य मधुर, वैश्य के द्रव्य अन्न एवं शूद्र के (द्रव्य) रुधिर के समान है, इसीलिए उस प्रथम ने तीनों वर्णों तथा विशेषकर अधिक ब्राह्मणों की ही हिंसा की थी। उस खल द्वारा ब्राह्मणों के नाश होने पर भयभीत होकर देवों ने ब्रह्मा के पास पहुँचकर समस्त कारणों को सुनाया, जिसे सुनकर ब्रह्मा को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने लोकगामी सातों ऋषियों से कहा—द्विजोत्तम ! आप लोग उसी के उद्देश्य से वहाँ जाकर उसका उद्धार करें । इसे सुनकर वशिष्ठादि ऋषियों समेत मरीचि वहाँ जाकर उसी मृगव्याध के वन में उसके मार्ग पर खड़े हो गये। उन्हें वहाँ उपस्थित देखकर धनुषबाणधारी उस बलवान् मृगव्याध ने कड़ककर कहा—आज मैं तुम लोगों का वध करूँगा । मरीचि आदि ऋषियों ने हँसते हुए उससे कहा—महाबल ! हम लोगों के बध करने का यह प्रयत्न तुम अपने व्यक्तिगतस्वार्थ अथवा कुटुम्ब के लिए कर रहे हो । इतना कहने पर उस ब्राह्मण ने कहा—अपने और कुटुम्ब के लिए भी मैं तुम लोगों का वध अवश्य करूँगा, इसलिए कि विशेषकर मैं धनी ब्राह्मणों का ही वध करता हूँ । उसे सुनकर महर्षियों ने कहा—धनुर्धर ! आवो, हम लोग तैयार हैं, किन्तु एक बात यह बताओ कि इस ब्रह्महत्या का पापभागी कौन होगा ! यह सुनकर वह भीषणमूर्ति ब्राह्मण, जो उन लोगों की दृष्टि से निर्मल हो रहा था, घर जाकर अपने परिवारों से कहने लगा कि—मैंने अत्यन्त पापकर्म

साक्षीयं भूमिरचला साक्षी सूर्योऽयमुत्तमः । इति श्रुत्वा मृगव्याधो मुनीनाह कृताञ्जलिः ।।५०
यथा पापं क्षयं याति तथा माज्ञातुमर्हथ[1] । इत्युक्तास्तेन ते प्राहुः शृणु त्वं मन्त्रमुत्तमम् ।।५१
राम नाम हि तज्ज्ञेयं सर्वाघौघविनाशनम् । यावत्त्वत्पार्श्वमायामस्तावत्त्वं जप चोत्तमम् ।।५२
इत्युक्त्वा ते गता विप्रास्तीर्थात्तीर्थान्तरं प्रति । मरामरामरेत्येवं सहस्राब्धं जजाप ह ।।५३
जपप्रभावादभवद्वनमुत्पलसङ्कुलम् । तत्स्थानमुत्पलारण्यं प्रसिद्धमभवद्भुवि ।।५४
ततः सप्तर्षयः प्राप्ता वल्मीकात्तं निराकृतम् । दृष्ट्वा शुद्धं तदा विप्रमूचुस्ते विस्मयान्विताः ।।५५
वल्मीकान्निस्सृतो यस्मात्तस्माद्वल्मीकिरुत्तमम् । तव नाम भवेद्विप्र त्रिकालज्ञ महामते ।।५६
एवमुक्त्वा ययुर्लोकं स तु रामायणं मुनिः । कल्पाष्टादशयुक्तं हि शतकोटिप्रविस्तरम् ।।५७
चकार निर्मलं पद्यैः सर्वाघौघविनाशनम् । तत्पश्चात्स शिवो भूत्वा तत्र वासमकारयत् ।।५८
अद्यापि संस्थितः स्वामी मृगव्याधः सनातनः । शृणुध्वं च सुराः सर्वे तच्चरित्रं हरप्रियम् ।।५९
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे । ब्रह्मागत्योत्पलारण्य तत्र यज्ञं चकार ह ।।६०
तदा सरस्वती देवी नदी भूत्वा समागता । तद्दर्शनात्स्वयं ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं शुभम् ।।६१

किया है ।३७-४९। अतः आप लोग धन की भाँति इसके भी भाग (हिस्से) ग्रहण कीजिये । उसे सुनकर घर वालों ने कहा—हमलोग पाप के भागी नहीं होंगे । यह अचला भूमि और देवश्रेष्ठ सूर्य इसके साक्षी हैं । यह सुनकर उस मृगव्याध ने हाथ जोड़कर उन महर्षियों से कहा—मेरे पापों को नष्ट करने के लिए आप लोग कोई उपाय बताने की कृपा करें । इस प्रकार नम्रतापूर्वक उसके कहने पर महर्षियों ने कहा—मैं तुम्हें एक उत्तम मंत्र बता रहा हूँ, सुनो ! सम्पूर्ण पापों के विनाशक एवं परमोत्तम इस 'रामनाम' का जप तब तक तुम करो, जब तक हमलोग तुम्हारे पास पुनः लौटकर न आयें । ऐसा कहकर उन ऋषियों ने एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की यात्रा करना आरम्भ किया और इधर उस मृगव्याध ने 'मरा, मरा, मरा' मंत्र का जो तीसरे शब्द के उच्चारण में शुद्ध राम रूप हो जाता है, एक सहस्र वर्ष तक जप किया । उस मंत्र-जप के प्रभाव से वहाँ उत्पल (कमल) वृन्द का एक वन उत्पन्न हुआ, जिससे वह स्थान इस भूतल में 'उत्पलारण्य' के नाम से प्रख्यात हुआ । तदनन्तर सातों ऋषियों ने जप करने वाले उस ब्राह्मण को वहाँ आकर बल्मीक से पृथक् कर उन्हें शुद्ध रूप में देखकर कहा—विप्र, त्रिकालज्ञ एवं महामते ! बल्मीक से निकलने के नाते 'वाल्मीकि' इस उत्तम नाम से तुम्हारी प्रख्याति होगी ।५०-५६। इतना कहकर उन ऋषियों ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया । पश्चात् उस वाल्मीकि मुनि ने अष्टादश कल्पयुक्त एवं शतकोटि के विस्तृत रामायण की रचना की, जो निर्मल पद्यरूप में निर्मित होकर समस्त पापों का विनाशक है । अनन्तर शिव होकर उस मुनि ने वहाँ निवास किया और वह मृगव्याध एवं सनातन स्वामी आज भी वहाँ स्थित है। देववृन्द ! शिवप्रिय उनके चरित्र को मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! सत्ययुग के प्रारम्भ में जबकि वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान रहे हैं, ब्रह्मा ने उस 'उत्पलारण्य' में जाकर एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस समय सरस्वती ने वहाँ नदी रूप में पदार्पण किया, जिन्हें देखकर

---

१. 'त्वामौ द्विती'—इति मादेशे सवर्णदीर्घः ।

बाहुभ्यां क्षत्रियं चैव चोरुभ्यां वैश्यमुत्तमम् । पद्भ्यां शूद्रं शुभाचारं जनयामास वीर्यवान् ॥६२
द्विजराजस्तथा सोमश्चन्द्रमा नामतो द्विजः । लोके सर्वातपः सूर्यः कश्यं वीर्यं हि पाति यः ॥६३
कश्यपो हि द्वितीयोऽसौ मरीचिस्तु ततोऽभवत् । रत्नानामाकरो यो वै स हि रत्नाकरः स्मृतः ॥६४
लोकान्धरति यो द्रव्यैः स तु धर्मो हि नामतः । गम्भीरश्चास्ति सदृशः कोशो यस्य सरित्पतिः ॥६५
लोकान्दक्षति यः कृत्यैः स तु दक्षः प्रजापतिः । ब्रह्मणोऽङ्गाच्च ते जातास्तस्माद्वै ब्राह्मणाः स्मृताः ॥६६
वर्णधर्मेण ते सर्वे वर्णात्मानश्च वै क्रमात् । दक्षस्य मनसो जाताः कन्याः पञ्चशतं ततः ॥
विष्णुमायाप्रभावेन कलाभूताः स्थिता भुवि ॥६७
तदा तु भगवान्ब्रह्मा सोमायाश्विनिमण्डलम् । सप्तविंशद्गणं श्रेष्ठं ददौ लोकविवृद्धये ॥६८
कश्यपायादितिगणं क्षत्ररूपं त्रयोदशम् । धर्माय कीर्तिप्रभृतीर्ददौ स च महामुनिः ॥६९
नानाविधानि सृष्टानि चासन्वैवस्वतेऽन्तरे । तेषां पतिस्त्वयं दक्षोऽभूद्विधेराज्ञया भुवि ॥७०
तत्र वासं स्वयं दक्षः कृतवान्यज्ञतत्परः । सर्वे देवगणा दक्षं नमस्कृत्य चरन्ति हि ॥७१
भूतनाथो महादेवो न ननाम कदाचन । तदा क्रुद्धः स्वयं दक्षः शिवभागं न दत्तवान् ॥७२
मृगव्याधः शिवः क्रुद्धो वीरभद्रो बभूव ह । त्रिशिराश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपदस्तत्र चागतः ॥७३

ब्रह्मा ने अपने मुख द्वारा ब्राह्मण, भुजाओं द्वारा क्षत्रिय, उरु द्वारा वैश्य और अपने चरण द्वारा शुभाचार के अनुगामी शूद्रों को उत्पन्न किया । उस पराक्रमी (ब्रह्मा) ने ब्राह्मण नाम से द्विजराज सोम को उत्पन्न किया, जिन्हें द्विजश्रेष्ठ चन्द्रमा कहा जाता है, क्षत्रिय नाम से सूर्य को उत्पन्न किया, जो सभी के लिए आतप रूप होकर लोक में कश्य-वीर्य (पराक्रम) की रक्षा करते हैं । इसलिए उन्हें कश्यप भी कहा जाता है और उसके अनन्तर मरीचि भी । रत्नों के आकर (निधि) होने के नाते उसे (समुद्र को) रत्नाकर कहा गया है और द्रव्यों द्वारा लोकों के पोषण करने से धर्म तथा अगाध एवं असाधारण कोश होने के नाते सरित्पति भी । अपने कार्यों द्वारा जो लोक को कार्यकुशल बनाये उसे दक्ष प्रजापति कहा जाता है । ब्रह्मा के अंगों द्वारा उत्पन्न होने के नाते ये सभी ब्रह्म कहे गये हैं ।५७-६६। जो वर्णधर्म के अनुसार क्रमशः वर्णो को अपनाये हुए हैं । पश्चात् दक्ष प्रजापति के मन द्वारा पाँच सौ कन्यायें उत्पन्न हुईं जो भगवान् विष्णु की माया से प्रभावित होकर इस भूतल में कलामूर्ति होकर स्थित हैं । उस समय भगवान् ब्रह्मा ने लोक के अत्यन्त वृद्ध्यर्थ सोम (चन्द्रमा) को अश्विनी आदि नक्षत्र मण्डल रूप में सत्ताईस, कश्यप (ऋषि) को क्षत्री रूप अदिति और धर्म को कीर्ति आदि कन्याएँ प्रदान किया । उस महामुनि के इस प्रकार वितरण करने पर उस वैवस्वत मन्वन्तर के समय लोकों में अनेक भाँति की सृष्टियाँ हुईं । पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा से लोक-समृद्ध इस भूतल के अध्यक्ष दक्षप्रजापति ही निश्चित किये गये, जिससे वहाँ निवास करते हुए दक्ष ने एक विशाल यज्ञानुष्ठान का आयोजन किया । उनके उस यज्ञ महोत्सव में सभी देवगण पहुँचकर उन्हें नमस्कार पूर्वक यथेच्छ विचरण कर रहे थे, किन्तु भूतनाथ महादेव ने उन्हें किसी भाँति नमस्कार नहीं किया जिससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्ष ने उन्हें शिव-भाग देना अस्वीकार कर दिया । उस समय मृगव्याध शिव ने उस अपमान को सहन न कर वीरभद्र का रूप धारण किया—तीन नेत्र, तीन शिर और तीन चरण-धारण कर उनके आगमन करने से देव, मुनि एवं पितृगण अत्यन्त पीड़ित होने लगे और

तेनैव पीडिता देवा मुनयः पितरोऽभवन् । तदा वै यज्ञपुरुषो भयभीतः समन्ततः ॥७४
मृगभूतो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा व्याधः शिवोऽभवत् । रुद्रव्याधेन स मृगो विभिन्नाङ्गो बभूव ह ॥७५
तदा तु भगवान्ब्रह्मा तुष्टाव मधुरस्वरैः । सन्तुष्टश्च मृगव्याधो यज्ञं पूर्णमकारयत् ॥७६
तुलाराशिस्थिते भानौ तं रुद्रं चन्द्रमण्डले । स्थापयित्वा स्वयं ब्रह्मा सप्तविंशद्दिनात्मके ॥
प्रययौ सप्तलोकं वै स रुद्रश्चन्द्ररूपवान् ॥७७
इति श्रुत्वा वीरभद्रो रुद्रः संहृष्टमानसः । स्वांशं देहात्समुत्पाद्य द्विजगेहमचोदयत् ॥७८
विप्रभैरवदत्तस्य गेहं गत्वा स वै शिवः । तत्पुत्रोऽभूत्कलौ घोरे शङ्करो नाम विश्रुतः ॥७९
स बालश्च गुणी वेत्ता ब्रह्मचारी बभूव ह । कृत्वा शङ्करभाष्यं च शैवमार्गमदर्शयत् ॥८०
त्रिपुण्ड्रश्चाक्षमाला च मन्त्रः पञ्चाक्षरः शुभः । शैवानां मङ्गलकरः शङ्कराचार्यनिर्मितः ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

आनन्दगिरिवनशर्मपुरीशर्म-उत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

पुरा तु नैमिषारण्ये विप्रश्चाजगरोऽभवत् । वेदान्तशास्त्रनिपुणो ज्ञानवाञ्छम्भुपूजकः ॥१

यज्ञपुरुष के भयभीत होकर मृगरूप धारणकर चारों ओर भागने पर शिव ने व्याधरूप धारण किया । अनन्तर उस व्याधरूपी रुद्र द्वारा मृगरूपधारी यज्ञपुरुष का अंग छिन्न-भिन्न हो गया । उसी समय भगवान् ब्रह्मा ने मधुरवाणी द्वारा उनकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उस मृगव्याध ने उनके यज्ञ को पूर्ण तथा सुसम्पन्न किया । तदुपरांत ब्रह्मा ने तुलाराशि पर सूर्य के स्थित होने पर सत्ताईस नक्षत्रों के अधिपति उस चन्द्रमा के मण्डल में स्वयं रुद्र को प्रतिष्ठितकर अपने लोक को प्रस्थान किया और चन्द्र रूप में रुद्र ने सातों लोकों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया । इसे सुनकर वीरभद्र ने अत्यन्त हर्षमग्न होकर अपनी देह से अपने अंश को निकालकर उस भैरवदत्त नायक ब्राह्मण के घर भेज दिया, जो उनके यहाँ उनके पुत्र रूप में अवतरित होकर उस घोर कलि के समय शंकराचार्य के नाम से भूतल में प्रख्यात हुआ । उस गुणी, वेत्ता एवं ब्रह्मचारी बालक ने शांकरभाष्य की रचनाकर उस शैवमार्ग का प्रदर्शन किया, जो त्रिपुण्ड्र चन्दन, रुद्राक्षमाला एवं पंचाक्षर (ओं शिवाय नमः) मंत्र के रूप में शैवों के लिए अत्यन्त मांगलिक है ।६७-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्य और शंकराचार्य की उत्पत्ति वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

आनन्दगिरि, वनशर्मा और पुरीशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में नैमिषारण्य स्थान में एक ब्राह्मण अजगर की योनि प्राप्तकर

द्वादशाब्दान्तरे रुद्रस्तुष्टोऽभूत्पार्थिवार्चनात् । तदागत्य ददौ ज्ञानं जीवन्मोक्षत्वमागतः ॥२
सङ्कर्षणं समाराध्य तज्ज्ञानेन द्विजोत्तमः । तुष्टाव पुष्कलाभिश्च स्तुतिभिः परमेश्वरम् ॥३

अजगर उवाच

सदैव्यं प्रधानं परं ज्योतिरूपं निराकारमव्यक्तमानन्दनित्यम् ।
त्रिधा तत्तु जातं त्रिलिङ्गैक्यभिन्नं पुमान्सत्त्वरूपो रजोरूपनारी ॥
तयोर्यत्तु शेषं तमोरूपमेव ततश्शेषनाम्ने नमस्तेनमस्ते ॥४
रजश्चाविभूतो गुणस्सैव माया तथा मध्यभूतो नरस्सत्त्वरूपम् ।
तथैवान्तभूतो नपुंस्कं तमोयत्सदैवाद्य नागेश तुभ्यं नमस्ते ॥५
नराधाररूपो भवान्कालकर्ता नराकर्षणस्त्वं हि सङ्कर्षणश्च ।
रमन्ते मुनीशास्त्वयि ब्रह्मधाम्नि नमस्तेनमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥
नराङ्गेषु चाधारभूता शिवा या स्मृता योगनिद्रा हि शक्तिस्त्वदीया ॥६

जीव उवाच

एवं हि संस्तुतो देवो द्विजं चाजगरं प्रभुः । सायुज्यं कृतवान्स्वाङ्गे रुद्रः सर्पो हि सोऽभवत् ॥७
फणासहस्रसहितो गौराङ्गो गौरविग्रहः । क्षीराब्धौ मन्दिरं यस्य बभूव च गुणाकरम् ॥८
तं सर्पाख्यं महारुद्रं प्रत्यागत्यात्मभूः स्वयम् । कर्कराशिस्थिते सूर्ये चन्द्रे भगणमण्डले ॥९
तं रुद्रं स्थापयामास चन्द्रमाः स तु चाभवत् । इति श्रुत्वा शेषनागो रुद्रः श्रीगुरुभाषितम् ॥१०

रह रहा था, जो वेदान्तशास्त्र में निपुण, ज्ञानी और शिव का नित्य उपासक था । बारह वर्ष के उपरान्त उसकी पार्थिव-अर्चना से प्रसन्न होकर रुद्र ने वहाँ आकर उसे जीवन्मोक्ष होने का ज्ञान प्रदान किया, जिससे उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने उन संकर्षण (शिव) के समीप पहुँचकर विशुद्ध स्तुतियों द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की । १-३

अजगर ने कहा—उस दिव्य, प्रधान परं ज्योतिरूप निराकार, अव्यक्त एवं नित्यानन्द को जो तीन रूप में होकर पुनः तीनों लिंगों (पुमान्, स्त्री और नपुंसक) से भिन्न है, वही सत्व रूप से पुरुष और रजरूप से स्त्री होता है और उन दोनों के शेष तमोगुण से भिन्न है । बार-बार नमस्कार है । नररूप होकर आप कालकर्त्ता, नरों के आकर्षण करने के नाते संकर्षण कहे गये हैं । आप के ही ब्रह्मतेज में मुनिवृन्द रमण करते हैं और उस नररूप होने में आपकी शक्ति ही उस अंग की आधार है, जो शिवा एवं योगनिद्रा के नाम से जगत् में प्रथित है । अतः आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । ४-६

बृहस्पति ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर शिवदेव ने उस अजगर ब्राह्मण को अपने अंग में सायुज्य मोक्ष प्रदान करने के हेतु सर्परूप धारण किया, जो सहस्र फण, गौरवर्ण की शरीर, क्षीरसागर निवासी एवं गुणनिधि था । पश्चात् ब्रह्मा ने उस सर्प रूप शिव के पास आकर उन्हें कर्कराशिस्थित सूर्य के समय नक्षत्र मण्डल के अधिनायक चन्द्र में स्थापित किया, जिससे शिव ने चन्द्ररूप होकर अपने मुख से तेज निकालकर विंध्यपर्वत के निवासी देवदत्त ब्राह्मण के घर भेज दिया, जो वहाँ उत्पन्न होकर

वचनं स प्रसन्नात्मा तेज उत्पाद्य वै मुखात् । विन्ध्याद्रौ जनयामास देवदत्तद्विजालये ॥११
गिरिशर्मा स वै विप्रो विजित्य विदुषां गणान् । काशीपुरीं समायातः शिष्योऽभूच्छङ्करस्य वै ॥१२
इति ते कथितं विप्र यथा रुद्रो बभूव ह । पुनः शृणु कथां विप्र यथा जीवेन भाषिताम् ॥१३

जीव उवाच

प्रयागे च पुरा ह्यासीद्ब्राह्मणो हरिसेवकः । दारिद्र्यार्तो मन्दभाग्यो नैर्ऋतो नाम विश्रुतः ॥१४
महाकष्टेन तस्यैव भिक्षा प्राप्ता दिनान्तके । नैर्ऋतः पुत्रपत्नीको दारिद्र्यार्तो दिनेदिने ॥१५
एकदा नारदो योगी सम्प्राप्तो वैष्णवप्रियः । पूजितस्तेन विप्रेण विष्णुलोकमुपाययौ ॥१६
दृष्ट्वा नारायणं देवं नमस्कृत्य पुनःपुनः । वचनं प्राह नम्रात्मा सदैव भगवत्प्रियः ॥१७
भगवन्ये सुराः सर्वे सदा त्वत्पूजने रताः । तेषां भक्ताश्च ये भूमौ धनधान्यसमन्विताः[1] ॥१८
त्वद्भक्ताश्च मया दृष्टा दारिद्र्यार्ताः सदा भुवि । किमर्थं ब्रूहि मे स्वामिञ्जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥१९
इत्युक्तो नारदेनैव भगवान्भक्तवत्सलः । तमाह वचनं रम्यं तच्छृणु त्वं सुरोत्तम ॥२०
मद्भक्तो भगवान्ब्रह्मा दृष्ट्वा नारायणप्रियान् । जनांश्च स्ववशीकृत्य लोककार्यं करोति हि ॥२१
धर्मोऽधर्मस्तेन कृतो धर्मो वेदमयः स्मृतः । सप्त लोकाश्च धर्मस्य निर्मितास्तेन धीमता ॥२२

'गिरिशर्मा' के नाम से प्रख्यात हुआ। उस ब्राह्मण ने विद्वानों को पराजित कर काशी की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर उसने शंकराचार्य की सेवा (शिष्य रूप से) करना स्वीकार किया, जिससे आनन्दगिरि नाम से वह विख्यात हुआ। विप्र ! इस प्रकार मैंने रुद्रावतार की कथा सुना दी, किन्तु बृहस्पति की कही हुई कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ७-१३।

बृहस्पति जी बोले—पहले प्रयाग में नैर्ऋत नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो भगवद्भक्त, मंदभागी-दरिद्र था। वह नैर्ऋत ब्राह्मण संध्या समय तक किसी भाँति भिक्षा की प्राप्तिकर अपने पुत्र और पत्नी का पालन कर रहा था। इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रतिदिन दरिद्र्य से अत्यन्त पीड़ित उस ब्राह्मण के घर एकबार वैष्णव-प्रिय नारद जी का आगमन हुआ। ब्राह्मण ने यथाशक्ति उनकी पूजा की। पश्चात् वे विष्णुलोक चले गये। वहाँ पहुँचकर नारायण देव को बार-बार दण्डवत् प्रणाम करके सदैव भगवत्प्रिय नारद ने विनम्र होकर उनसे कहा—भगवन् ! आपकी पूजा में निरन्तर संलग्न देवों के जितने भक्त होते हैं, सभी धन-धान्य से पूर्ण रहते हैं, किन्तु भूतल में मैंने आपके भक्तों को भी देखा है, जो दरिद्रता से अत्यन्त पीड़ित रहते हैं, स्वामिन्, जनार्दन मैं इसमें कुछ निश्चय नहीं कर पाता हूँ कि इस विभेद का क्या कारण है, अतः मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ, इसके भेद बताने की कृपा करें।१४-१९। इस प्रकार नारद जी के कहने पर भक्तवत्सल भगवान् ने उनसे सुन्दर वाणी में कहा—सुरोत्तम ! मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मेरे भक्त भगवान् ब्रह्मा नारायण प्रिय मनुष्यों को देखकर उन्हें अपने अधीनकर लोक का कार्य करते रहते हैं। उन्होंने धर्म और अधर्म का निर्माण किया जिसमें धर्म वेदमय कहा गया है। उस

---

१. सन्तीति शेषः।

भूर्भुवः स्वो महश्चैव जनश्चैव तपस्तथा । सत्यं तथैव क्रमतो नृणां द्विगुणदं सुखम् ।।२३
अधर्मो वेदरहितो भुवि शब्दान्यकर्तृकः । ये शब्दाश्च महावाण्या दूषितास्ते हि लोकगाः ।।२४
वेदेतर पापमया दैत्यवृद्धिकराः सदा । अधर्मः स तु विज्ञेयः सप्तलोकाश्च तस्य वै ।।२५
भूमिगर्तेषु विधिना निर्मिताः सुखदायकाः : अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम् ।।
महातलं रसा चैव पातालं चान्यधर्मजम् ।।२६
अन्यधर्मा ह्यधर्मश्च देवास्त्वन्दे हि तेऽसुराः । धर्मपक्षाः सुरा ज्ञेया असुराश्चान्यधर्मजाः ।।२७
तयोर्विहीनो यो धर्मो देवैर्दैत्यैश्च दूषितः । विधर्मः स नु विज्ञेयस्तत्र लोका व्यथाकुलाः ।।२८
तामिस्रमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकश्च रौरवम् । महारौरवमेवापि तथामूर्तिरयस्तथा ।।२९
इक्षुयन्त्रं शाल्मलं च ह्यसिपत्रवनं तथा । ज्ञेयमित्येव रचितं विधिना चैकविंशतिः ।।३०
ब्रह्माण्डोऽयं लोकमयः परं तस्माच्च मत्पदम् । मद्भक्ता भूतले ये वै ते गच्छन्ति परं पदम् ।।३१
देवभक्ताश्च ये लोकाः सप्त लोकान्व्रजन्ति ते । ये तु वै तामसा लोका दैत्यपूजनतत्पराः ।।
ते गच्छन्ति महीलोकानतलादिमयाँस्तथा ।।३२
पातालाद्योजनं लक्षमधोलोकः प्रकीर्तितः । विधर्मतत्परा लोकास्ते गच्छन्ति ह्यधोगतिम् ।।
अतो वै विधिना भ्रष्टा मद्भक्ताश्च दरिद्रगाः ।।३३
ये मद्भक्ताः सुरान्पूर्वं पूजयित्वा भजन्ति माम् । लक्ष्मीवन्तश्च ते ज्ञेया भुक्तिमुक्तिपरायणाः ।।३४
प्रयागे नैर्ऋतो विप्रस्त्यक्त्वा देवान्मम प्रियान् । भजत्यनन्यभावेन तस्मात्स हि दरिद्रवान् ।।३५

बुद्धिमान् ने धर्म के सात लोकों का निर्माण किया, जो भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक एवं सत्यलोक के नाम से निर्मित होकर मनुष्यों को उत्तरोत्तर क्रमशः दुगुने सुख प्रदान करने की चेष्टा करता है । उसी प्रकार वेदरहित को अधर्म कहा गया है, जो भूतल में प्रतिकूल शब्दों की रचना करता है, महावाणी द्वारा दूषित उन शब्दों को अपनाने पर प्राणियों को उसी प्रकार के लोकों की प्राप्ति होती है । वेदरहित होने के नाते वह अधर्म पापमय दैत्यों की सदैव वृद्धि करता रहता है । उस अधर्म के भी सातलोक विदित हैं, जो भूमि के गर्त (नीचे भाग) में ब्रह्मा द्वारा निर्मित होकर वहाँ के प्राणियों के लिए सुखावह होते हैं । अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल उनके नामकरण हैं । इनमें देवगण धर्म और असुरगण अधर्म को अपनाते हैं, अतः धर्मपक्ष के देव एवं अधर्मपक्ष के दैत्य बताये जाते हैं किन्तु इन देवों और दैत्यों से हीन एवं दूषित जो अन्य मार्ग है, उसे विधर्म कहा गया है उसमें रहने वाले प्राणी सदैव व्यथित रहते हैं—तामिस्र, अंधतामिस्र, कुम्भीपाक, रौरव, महारौरव, मूर्तिरय, ऊखयंत्र (कोल्हू) शाल्मल (फांसी देने के लिए सेमर का वृक्ष), असि (तलवार के समान) पत्र वाला वन आदि इक्कीस स्थानों की ब्रह्मा ने रचना की है । इस प्रकार इस समस्त को लोकमय ब्रह्माण्ड कहते हैं, जिससे मेरा परमपद अत्यन्त समुन्नत है । भूमण्डल के रहने वाले मेरे भक्त ही उस परमपद की प्राप्ति करते हैं, किन्तु देवों के भक्तगण उन्हीं स्वर्ग आदि सातलोकों की उसी भाँति दैत्यों के उपासक तामसी पुरुष पृथ्वी के नीचे स्थित उन पातालादि लोकों की प्राप्ति करते हैं ।२०-३२। पाताल से अधोलोक एक लक्ष योजन की दूरी पर स्थित है, जिसमें विधर्मी प्राणियों की यात्रा होती है । इसलिए मेरे भक्त ब्रह्मा द्वारा उस (समस्त पदों) से भ्रष्ट होकर दरिद्र होते हैं किन्तु जो मेरा भक्त देवों की पूजापूर्वक मेरी उपासना करता है वह लक्ष्मीयुक्त एवं भुक्ति-मुक्ति परायण होता है और प्रयागनिवासी वह नैर्ऋत ब्राह्मण

देवैर्दत्तं हि यद्द्रव्यं भोक्तव्यं सर्वदा जनैः । मया दत्तं हि यद्वस्तु ब्रह्माण्डे नास्ति नारद ॥
अतो मदाज्ञया विप्र देहि तस्मै वरं शुभम् ॥३६
इत्युक्तो नारदो योगी हरिणा विश्वकारिणा । द्विजपत्नी स्थिता गेहे तत्र प्राप्य वचोऽब्रवीत् ॥३७
वरं वरय हे साध्वि त्वया यद्वाञ्छितं हृदि । साह देहि वरं स्वामिन्भूपराज्ञी भवाम्यहम् ॥३८
इत्युक्त्वा वचनं तत्र दिव्यरूपा बभूव सा । आगतस्तत्र नृपतिर्गृहीत्वा गेहमाययौ ॥३९
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते द्विजस्तत्र समागतः । नारदस्तं वचः प्राह शृणु विप्र हरिप्रिय ॥४०
वरदानाच्च ते पत्नी भूपराज्ञी हि वर्तते । त्वया किं वाञ्छितं वस्तु मत्तः प्राप्य सुखी भव ॥४१
इति श्रुत्वा दैववशो वचः प्राह रुषान्वितः । क्रोष्ट्री भवेच्च मत्पत्नी देहि विप्र वरं मम ॥४२
इत्युक्त्वावचनात्क्रोष्ट्री सा बभूव द्विजप्रिया । एकस्मिन्नन्तरे प्राप्तस्तत्पुत्रो गुरुपूजकः ॥४३
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं नारदं स वचोऽब्रवीत् । मम माता यथा स्वामिंस्तथा शीघ्रं वराद्भवेत् ॥४४
एतत्त्रिभिर्वरैः प्राप्तं दैवमायाविमोहितैः । तदा तु नारदो दुःखी नैर्ऋतं प्राह वै वचः ॥४५
ब्रह्माण्डोऽयं देवमयो भवस्तस्य महेश्वरः । अतो भवं भजाशु त्वं स ते कार्यं करिष्यति ॥४६
इत्युक्तवचनो विप्रो भवं तं पार्थिवार्चनैः । तुष्टाव परया भक्त्या वर्षमात्रं हि नैर्ऋतः ॥४७
तदा प्रसन्नो भगवान्महेशो भक्तवत्सलः । कुबेरसदृशं दिव्यं ददौ तस्मै महद्धनम् ॥४८
तद्धनेन स वै विप्रो धर्मकार्यं चकार ह । प्रसिद्धोऽभून्महीपृष्ठे नाम्ना पुण्यजनो धनैः ॥४९

मेरे प्रिय देवों के त्यागपूर्वक केवल अनन्यभाव से मेरी ही उपासना करता है इसीलिए दरिद्र है । नारद ! देवों के दिये हुए द्रव्यों का उपभोग सर्वदा सभी मनुष्य किया करते हैं, किन्तु मैं जो वस्तु अपने भक्त को प्रदान करता हूँ, वह ब्रह्माण्ड में है ही नहीं । इसलिए मेरी आज्ञा से उसे शुभात्मक वरदान प्रदान करो । विश्व रचयिता भगवान् के इस भाँति कहने पर नारद ने उसके घर जाकर उसकी पत्नी से कहा—पतिव्रते ! तुम अपने अभिलषित वर की याचना करो ।' इसे सुनकर उसने कहा—स्वामिन् ! मेरी राजरानी होने की इच्छा है । इतना कहते ही वह एक दिव्य रूप में परिणत हो गई और उस समय राजा आकर उसे अपने घर ले गया । सायंकाल होने पर ब्राह्मण देव के घर आने पर नारद जी ने उनसे कहा—भगवत्प्रिय, ब्राह्मणदेव ! मैं कुछ कह रहा हूँ, सुनिये ! वरदान प्राप्तकर आपकी पत्नी राजरानी हो गई है, अब आप भी मुझसे अपनी मन-इच्छित वस्तु प्राप्तकर सुख का अनुभव करें । इसे सुनकर उस ब्राह्मण ने दैववश क्रुद्ध होकर कहा—विप्र ! मुझे यही वरदान देने की कृपा कीजिये कि मेरी पत्नी गीदड़ी हो जाये ।' इतना कहने पर वह ब्राह्मण पत्नी गीदड़ी हो गई । उसी समय उस ब्राह्मण के गुरुभक्त पुत्र ने वहाँ आकर उन कारणों को सुनकर नारद जी से कहा—स्वामिन् ! मेरी माता पूर्व की भाँति हो जायें । इस प्रकार वे तीनों दैवमाया से मोहित होने के कारण वरदान प्राप्त करने पर भी अपने मनोरथों से वंचित ही रहे । उस समय दुःखी होकर नारद ने नैर्ऋत से कहा—विप्र ! देवमय होने के नाते इस समस्त ब्रह्माण्ड के अधीश्वर महेश्वर जी हैं, अतः तुम उनकी उपासना करो, वे तुम्हारा कार्य शीघ्र सफल करेंगे। इस प्रकार कहने पर उस ब्राह्मण नैर्ऋत ने पार्थिव पूजन द्वारा भगवान् शंकर की आराधना की । एक वर्ष के उपरान्त प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् महेश जी ने कुबेर के समान दिव्य एवं अगाध धन उसे प्रदान किया । उस धन द्वारा ब्राह्मण ने अनेकों धर्म-कार्य सुसम्पन्न किया जिससे इस भूतल में उसकी द्रव्यजन

शिवभक्तिप्रभावेण प्राप्य द्रव्यमकण्टकम् । सहस्राब्धवपुर्भूत्वा त्यक्त्वा प्राणान्दिवं ययौ ॥५०
वृषराशिस्थिते सूर्ये राजा चन्द्रस्य सोमवत् । नैर्ऋतो नाम विख्यातो रुद्रः सर्वजनप्रियः ॥५१
इति श्रुत्वा नैर्ऋतस्तु भृगुवर्य गुरूदितम् । स्वांशाद्भूतलमागम्य गिरिनालगिरौ वने ॥५२
योगिनः सिद्धसाङ्ख्यस्य पुत्रोऽभूद्वनवासिनः । वनशर्मेति विख्यातो वेदशास्त्रपरायणः ॥५३
द्वादशाब्दवपुर्भूत्वा जित्वा विद्वज्जनान्बहून् । काशीमागम्य तत्त्वार्थी शङ्कराचार्यमुत्तमम् ॥
प्रणम्य तस्य शिष्योऽभूद्वनशर्मा विशारदः ॥५४

बृहस्पतिरुवाच

वसुशर्मा द्विजः कश्चिन्माहिष्मत्यां पुराभवत् । शिवव्रतपरो नित्यं पुत्रार्थी पार्थिवार्चकः ॥५५
चतुर्विंशतिवर्षाणि पूजतस्तस्य धीमतः । व्यतीतानि सुरास्तत्र न प्रसन्नोऽभवच्छिवः ॥५६
तदा तु दुःखितो विप्रो वह्निं प्रज्वाल्य भैरवम् । जुहाव स्वाङ्गमांसानि मुखतश्चरणान्तकम् ॥५७
न प्रसन्नोभवद्रुद्रस्तदा विप्रः शुचान्वितः । गृहीत्वा चोत्तमं मेषं संस्कारं कृतवाञ्छुचिः ॥
तेन मेषेण सहितो ज्वलदग्नौ समाययौ ॥५८
प्रसन्नो भगवान्रुद्रस्तत्रागत्य गणैर्युतः । स्वरूपं दर्शयामास शुद्धस्फटिकसुन्दरम् ॥
वरं ब्रूहि वचः प्राह वसुशर्माणमुत्तमम् ॥५९
तच्छ्रुत्वा स प्रसन्नात्मा नत्वा पार्वतिवल्लभम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा वचनं प्राह शङ्करम् ॥६०

(देवमूर्ति कुबेर) के नाम से अत्यन्त ख्याति हुई। इस भाँति शिवजी की भक्ति के प्रभाव से निष्कटंक द्रव्य की प्राप्तिपूर्वक एक सहस्र वर्ष तक दिव्य जीवन व्यतीत करने के उपरान्त उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। वृषराशि पर सूर्य के स्थित होने पर चन्द्रराज सोम की भाँति वह नैर्ऋत ब्राह्मण भी सर्वजनप्रिय और रुद्र की भाँति प्रख्यात हुआ। भृगुवर्य ! वृहस्पति के इस प्रकार देवों से कहने पर उस नैर्ऋत ने अपने अंश द्वारा गिरिनाल पर्वत के वन में रहने वाले सिद्धसांख्य योगी के यहाँ पुत्ररूप में जन्म-ग्रहण किया। वेदशास्त्र के पारायण में निरत रहकर उन्होंने 'वनशर्मा' के नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की। बारह वर्ष की अवस्था में अनेकों विद्वानों को पराजितकर वनशर्मा ने काशी आकर तत्त्वज्ञानार्थ योगी शिरोमणि शंकराचार्य की शिष्य-सेवा स्वीकार की। ३३-५४

वृहस्पति जी बोले—पहले समय में माहिष्मती नामक पुरी में वसुशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने पुत्रप्राप्ति के लिए पार्थिव पूजन एवं व्रत विधान द्वारा भगवान् आशुतोष की उपासना आरम्भ की। देववृन्द ! चौबीस वर्ष तक उसने अनवरत आराधना की, किन्तु शिव जी की प्रसन्नता उसके ऊपर न हुई। पश्चात् दुःखी होकर उस ब्राह्मण ने प्रज्वलित अग्नि की भीषण ज्वाला में मुख से चरण तक की अपनी देह के मांस को आहुतिरूप में हवन कर दिया, परन्तु रुद्रदेव तब भी न प्रसन्न हुए। उस समय शोक-पीड़ित होकर उस ब्राह्मण ने पवित्र होकर एक उत्तम भेड़ का संस्कार करके उसके समेत उसी अग्नि में प्रवेश किया कि उसी समय भगवान् रुद्रदेव ने अपने गणों समेत वहाँ आकर शुद्ध स्फटिक के समान अपने सुन्दर स्वरूप का दर्शन उसे दिया। तदुपरांत उन्होंने वसुशर्मा से कहा—यथेच्छ वर की याचना करो। उसे सुनकर प्रसन्नता से गद्गद होकर उन पार्वतीप्रिय के नमस्कार पूर्वक उसने विनम्र होकर

देहि मे तनयं स्वामिञ्छरणागतवत्सल । इत्युक्तश्शङ्करस्तेन विहस्योवाच तं द्विजम् ।।६१
पुत्रदाता स्वयं ब्रह्मा भाग्यकर्त्ता परात्परः । तुभ्यं च शतजन्मान्तं तेन पुत्रो न निर्मितः ।।
तस्मादहं सुतं स्वांशात्तव विप्र ददामि भोः ।।६२
इत्युक्त्वा स्वमुखात्तेजो निराकृत्य महेश्वरः । तत्पत्न्यां जनयामास सकाशाद्वसुवर्मणः ।।६३
दशमासान्तरे जातः सुपुत्रो मधुराननः । अजस्येव पदश्चैको द्वितीयो नरवत्ततः ।।
अजैकपाद इति स प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।६४
चतुश्शताब्दवपुषि प्राप्ते तस्मिन्सुते प्रिये । सम्प्राप्तो भगवान्मृत्युस्तदा रोगगणैर्युतः ।।६५
तस्य तैरभवद्युद्धमजैकचरणस्य वै ।।६६
वर्षमात्रेण तान्सर्वाञ्जित्वा मल्लरणोत्कटः । मृत्युञ्जयः स वै नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।६७
दुःखितो भगवान्मृत्युस्तेन विप्रेण निर्जितः । परमेष्ठिनमागम्य कथयामास कारणम् ।।६८
तदा तु भगवान्ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्युतः । कुम्भगेद्युमणौ देवे चन्द्रमण्डलगं नृपम् ।।
तं द्विजं च चकाराशु रुद्ररूपं भयावहम् ।।६९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महादेवः स विप्रश्च तदाजपाद् । पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तः कलिशुद्धिकरः प्रभुः ।।
पुरीशर्मेति विख्यातो यतिदत्तस्य वै सुतः ।।७०
षोडशाब्दवपुर्भूत्वा जित्वा वेद परायणान् । शङ्कराचार्यमागम्य तस्य शिष्यो बभूव ह ।।

शंकर जी से कहा—स्वामिन्, शरणागत वत्सल ! मुझे पुत्र देने की कृपा कीजिये !' इतना कहने पर शिव जी ने हँसते हुए कहा—पुत्रदाता तो स्वयं ब्रह्मा जी हैं, जो परमोत्तम एवं भाग्यविधाता हैं । उन्होंने सौ जन्म तक तुम्हें पुत्र नहीं दिया है । अतः विप्र ! मैं अपने अंश से तुम्हें पुत्र दे रहा हूँ । इतना कहकर भगवान् महेश्वर जी ने अपने मुख से तेज निकालकर उनकी पत्नी को प्रदान किया, जो दो भागों में विभक्त होकर दशवें मास में प्रथम बकरे के समान चरण वाला और दूसरा मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ तथा इस भूतल में 'अजैकपाद' के नाम से उसकी अत्यन्त ख्याति भी हुई । चार सौ वर्ष के सुखीजीवन व्यतीत करने के उपरान्त मृत्युदेव अपने रोगगणों समेत उस पुत्र के समक्ष उपस्थित हुए, किन्तु उसी समय दोनों का भीषण युद्ध आरम्भ हो गया । पश्चात् उस उत्कट योद्धा ने उस संग्राम में वर्ष के भीतर ही उन सबको पराजित कर पृथिवी मण्डल में 'मृत्युञ्जय' के नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । अनन्तर मृत्युदेव ने दुःखी होकर उस ब्राह्मण द्वारा पराजित होने पर ब्रह्मा के पास जाकर उनसे सभी वृत्तान्त का वर्णन किया, जिससे भगवान् ब्रह्मा ने निखिल देवों समेत वहाँ आकर कुम्भ-राशि पर सूर्य के स्थित होने पर उस भीषण रुद्ररूप ब्राह्मण को चन्द्रमण्डल में राजपद पर प्रतिष्ठित किया ।५५-६९

सूत जी बोले—इसे सुनकर ब्राह्मण रूपधारी उस 'अजपाद' महादेव ने, जो कलि के शुद्धि-निर्माता एवं प्रभु हैं, माहिष्मती पुरी में जाकर यतिदत्त के पुत्र पुरीशर्मा के नाम से ख्यातिप्राप्त करते हुए सोलह वर्ष की अवस्था में वेदनिष्णात विद्वानों को पराजित करने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा

इति ते कथितं विप्र यथा मृत्युञ्जयोभवत् ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये आनन्दगिरिवनशर्मपुरीशर्मउत्पत्तिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

भारतीशगोरक्षनाथक्षेत्रशर्मढुण्ढिराजोपपत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः शृणु कथां रम्यां प्रयागे जीवभाषिताम् । हिर्बुर्नाम पुरा चासीद्दानवो लोककण्टकः ॥१
निकुम्भान्वयसम्भूतः शक्रतुल्यपराक्रमः । सहस्राब्दं तपः कृत्वा तापयामास वै सुरान् ॥२
तदा लोकपतिर्ब्रह्मा लोकरक्षार्थमुद्यतः । वरं ब्रूहीति वचनमुवाच दनुजेश्वरम् ॥३
नमस्कृत्य विधातारं वचनं प्राह नम्रधीः । यदि देयो वरः स्वामिंस्त्वया विश्वकृता विभो ॥४
मरणं न च मे भूयात्त्वत्कृतैश्च चराचरैः । इत्युक्तस्स तथेत्युक्त्वा ब्रह्मलोकमुपाययौ ॥५
दानवस्स तु रौद्रात्मा जित्वा स्वर्गनिवासिनः । आहूय दानवान्दैत्यान्विवरेभ्यः प्रसन्नधीः ॥६
स्वर्गे निवासयामास ते देवा भूतलीकृताः । लक्षाब्दं च सुरास्सर्वे बुभुजुः परमापदः ॥७
एकदा नारदो धीमान्दृष्ट्वा देवांस्तथागतान् । वचनं प्राह योगात्मा भजध्वं लोकशङ्करम् ॥८

स्वीकार किये । विप्र ! इस प्रकार मैंने मृत्युञ्जय की उत्पत्ति कथा तुम्हें सुना दिया ।७०-७१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में आनन्दगिरि, वनशर्मा और पुरीशुर्मा की उत्पत्ति वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११

अध्याय १२

भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्रशर्मा और ढुण्ढिराज की उत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—बृहस्पति की कही हुई कथा मैं पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! पहले हिर्बु नामक एक दानव हुआ था, जो प्राणीमात्र के लिए कंटक की भाँति सदैव दुःखदायी रहता था । निकुम्भ दैत्य के कुल में उत्पन्न होकर उसने इन्द्र के समान पराक्रमी होने पर भी एक सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की, जिससे उसके तेज द्वारा देवों को अत्यन्त पीड़ा होने लगी । उस समय लोकनियन्ता ब्रह्मा ने लोक के रक्षार्थ उसके समीप पहुँचकर उस दानवेश्वर से वर-याचना करने के लिए कहा—उसने विधाता को नमस्कार करके विनम्र होकर कहा—स्वामिन् ! विश्वस्रष्टा होकर आप मुझे यदि कृपया वर प्रदान करने के लिए उत्सुक है, तो आपकी सृष्टि में चर-अचर किसी प्राणी द्वारा कभी मेरी मृत्यु न हो ।' वर प्रदानकर ब्रह्मा के ब्रह्मलोक चले जाने पर दुरात्मा दैत्य ने स्वर्ग निवासी देवों को पराजितकर पाताल से दैत्यों को बुलाकर वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया और देवों ने भूतल निवास करना आरम्भ किया । एक लाख वर्ष तक देवों का इस प्रकार परम दुरुपयोग करने के उपरान्त एक बार योगिराज नारद ने देवों की दुरावस्था देखकर उनसे कहा—लोकशंकर भगवान् शिव की आराधना करो, क्योंकि वे ही महादेव एवं ब्रह्माण्ड के

स देवश्च महादेवो ब्रह्माण्डेशो विपत्तिहा । इति श्रुत्वा तु वचनं ते देवा विस्मयान्विताः ॥९
पार्थिवैः पूजयामासुर्देवदेवमुमापतिम् । गतैकादशवर्षाश्च तेषां पूजनकारिणाम् ॥१०
तदा प्रसन्नो भगवान्महेशो लोकशङ्करः । ज्योतिर्लिङ्गमयो भूत्वा लोकाँस्त्रीन्समदाहयत् ॥११
ये तु वै देवभक्ताश्च शेषाश्चासन्महाभये । अन्ये तु दानवैस्सार्द्धं भस्मीभूता बभूविरे ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विष्णुना सह हर्षितः । तुष्टाव स महारुद्रं स्तोत्रैस्सामसमुद्भवैः ॥१३
मिथुनस्थे दिवानाथे शशिमण्डलभूपतिम् । हिर्बुध्नं च महारुद्रं चकार सुरहेतवे ॥१४
इति श्रुत्वा स हिर्बुध्नो देवकार्यार्थमुद्यतः । हिमालये गिरौ रम्ये पुत्रोऽभूत्साद्यकर्मणः ॥१५
यतिरूपः कलाभिज्ञो भारतीश इति श्रुतः । स जित्वा विदुषां वृन्दान्काशीनगरमागतः ॥
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्योऽभूत्तेन निर्जितः ॥१६

बृहस्पतिरुवाच

मयपुत्रः स्मृतो मायी तपोघोरं चकार ह ॥१७
पदैकेन स्थितः सूर्य्ये सहस्राब्दं प्रयत्नतः । सः लोकाँस्तापयामास तपसा लोकवासिनः ॥१८
तदा प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी पितामहः । त्रयो ग्रामास्तत्प्रियार्थे क्रमाद्वै तेन निर्मिताः ॥१९
सौवर्णं स्वर्गसदृशं पुरं षोडशयोजनम् । तदधो योजनान्ते च राजतं च भुवर्मयम् ॥२०
तदधो योजनान्ते च भूर्लोकमिव चायसम् । एवं पुरनिवासिन्यो दैत्यानां योषितो मुदा ॥२१

अधिनायक दुःखभंजन है । इसे सुनकर विस्मित होते हुए देवों ने पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना आरम्भ की । ग्यारह वर्ष के अनन्तर उन पूजन करने वाले देवों के ऊपर प्रसन्न होकर लोक के कल्याणमूर्ति भगवान् शिव ने ज्योतिर्लिङ्ग रूप धारणकर तीनों लोकों को भस्म कर दिया ।९-११। उस समय केवल देवभक्त ही शेष रह गये और अन्य लोग उन्हीं दानवों के साथ उस भीषण अग्नि की ज्वाला में भस्म हो गये । उसी समय ब्रह्मा ने हर्षमग्न होकर विष्णु समेत वहाँ आकर सामवेद की स्तुति द्वारा उन महारुद्र को प्रसन्न किया, पश्चात् देवों के हितार्थ मिथुन राशि पर सूर्य के स्थित होने पर उन हिर्बुघ्न महारुद्र को चन्द्रमण्डल के राजपद पर विभूषित किया । इसे सुनकर हिर्बुघ्नदेव ने देवों के कार्य सफल करने के लिए हिमालय पर्वत निवासी साद्यकर्मा के घर पुत्र-रूप में जन्म ग्रहण किया, जो यतिरूप एवं कला के पूर्ण ज्ञाता होकर 'भारतीश के नाम से प्रख्यात हुए । उन्होंने अनेक विद्वानों को पराजित कर काशी यात्रा की । वहाँ पहुँचकर शंकराचार्य से पराजित होने पर उन्होंने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की ।१२-१६

बृहस्पति जी बोले—मयपुत्र मायी ने एक चरण से स्थित होकर एक सहस्र वर्ष तक सूर्य की ओर दृष्टि लगाये कठिन तपस्या की । जिस समय उसके तेज द्वारा लोक एवं लोक निवासी प्राणियों को अत्यन्त सन्ताप होने लगा । उस समय भगवान् पितामह ब्रह्मा प्रसन्न होकर उसके प्रसन्नार्थ तीन ग्रामों (लोकों) के निर्माण पूर्वक क्रमशः तीनों उसे प्रदान किये ।१७-१९। जिसमें स्वर्ग के समान सोलह योजन का विस्तृत सुवर्ण निर्मित महल वाला पहला, उसके एक योजन के नीचे भुवर्लोक की भाँति रजत (चाँदी) निर्मित दूसरा और उसके एक योजन के नीचे भूलोक की भाँति विस्तृत लोहे द्वारा रचित तीसरा लोक था । इस प्रकार ब्रह्मा

शतकोटिमिता दैत्या धर्मात्मानो निवासिनः । गृहीत्वा यज्ञभागं च देवतुल्या बभूविरे ॥२२
तदा निर्बलिनो देवाः क्षुधया पीडिताः प्रभुम् । भगवन्तं महाविष्णुं तुष्टुदुः परया गिरा ॥२३
चतुर्युगसमूहानां वर्षाणां भगवन्प्रभो । अधिकारविहीनाश्च वर्तन्ते स्वर्गमण्डले ॥२४
तामसान्तरमेऽपि षोडशैव चतुर्युगम् । व्यतीतानि महाविष्णो मायिनां दुःखभुञ्जताम् ॥२५
इति श्रुत्वा वचस्तेषां भगवान्मधुसूदनः । दृष्ट्वा संस्कृतवार्तायां दैत्यान्धर्मपरायणान् ॥२६
बौद्धरूपस्स्वयं जातः कलौ प्राप्ते भयानके । अजिनस्य द्विजस्यैव सुतो भूत्वा जनार्दनः ॥२७
वेदधर्मपरान्विप्रान्मोहयामास वीर्यवान् । निर्वेदाः कर्मरहितास्त्रिवर्णास्तामसान्तरे ॥२८
षोडशे च कलौ प्राप्ते बभूवुर्यज्ञवर्जिताः । तदा दैत्या रुषाविष्टास्सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥२९
मनुजान्पीडयामासुर्निर्यज्ञान्वेदवर्जितान् । क्षयं जग्मुर्नरास्सर्वे कल्पान्ते दैत्यभक्षिताः ॥३०
पुनस्सत्ययुगे प्राप्ते कैलासे गुह्यकालये । देवैश्चाराधितः शम्भुस्सर्वलोकशिवङ्करः ॥३१
ज्योतिर्लिङ्गं वपुः कृत्वा तत्र तस्थौ भयङ्करः । एतस्मिन्नन्तरे देवाः प्रसन्नास्तामसान्तरे ॥३२
भूमेस्सारं गृहीत्वा ते रथं कृत्वा विधानतः । चन्द्रभास्करयोस्साराच्चक्रे कृत्वा तथैव च ॥३३
सुमेरोश्च तथा सारात्केतुं कृत्वा रथस्य वै । ददौ शिवाय महते यानं स्यन्दनरूपि तत् ॥३४
तदा ब्रह्मा स्वयं प्राप्य बभूव रथसारथिः । वेदाश्च वाजिनश्चासन्देवदेवस्य वै रथे ॥३५

द्वारा रचित उन पुरों में दैत्यों की स्त्रियाँ तथा सौ कोटि धार्मिक दैत्यगण प्रसन्नतापूर्ण निवास कर रहे थे । वहाँ रहकर दैत्यों ने देवों के यज्ञ-भाग को भी ग्रहण करना आरम्भ किया जिससे क्षुधा से पीड़ित होकर देवों ने अपने स्वामी भगवान् विष्णु की उत्तम स्तुतियों द्वारा आराधना की—भगवन्, प्रभो ! हम लोगों को अधिकारहीन होकर रहते हुए चारों युगों के सभी वर्ष व्यतीत हो गये । महाविष्णो ! यहाँ इस कलि के समय भूमण्डल में भी दुःखों के भोग करते सोलह बार चारों युग व्यतीत हो गये ।२०-२५। इस प्रकार उन लोगों के आर्तनाद सुनकर भगवान् मधुसूदन ने उन धार्मिक दैत्यों को संस्कृत भाषा में निपुणता प्राप्त करते हुए देखकर उस भीषण कलि के समय स्वयं बौद्ध रूप धारण किया, जो पहले अजिन ब्राह्मण के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे । जनार्दन भगवान् ने उन वेदधर्म परायण दैत्यों को अपनी माया से मोहितकर उन्हें सुखी एवं कर्मरहित किया । इस प्रकार उस कलि में इनके सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के समय तक इनसे प्रभावित होकर तीनों वर्णों के मनुष्य यज्ञ करना छोड़ दिये । उस समय त्रिपुरवासी दैत्यों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेदाध्ययन एवं यज्ञानुष्ठान से रहित उन मनुष्यों को देखकर पीड़ित करना आरम्भ किया जिससे उस कल्पान्त के समय दैत्यों द्वारा भक्षित होकर सभी मनुष्य नष्ट हो गये । पुनः सत्ययुग के प्रारम्भ में कैलास में जाकर देवों ने लोक शंकर शिव की उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने अपनी ज्योतिर्लिङ्ग की शरीर धारण किया । उस समय देवों ने प्रसन्न होकर पृथिवी के सार को निकालकर एक विचित्र रथ का निर्माण किया, जिसमें चन्द्र-सूर्य के सार से चक्र, सुमेर पर्वत के सार से उस रथ का केतु (धुरा) निर्मित था । इस प्रकार उन लोगों ने उस विचित्र रथ का निर्माण कर जिस समय उसे महाशिव जी को अर्पित किया उसी समय ब्रह्मा ने वहाँ आकर सारथी पद को अपनाया और वेदों ने उनके वाहन (अश्व) का रूप धारण किया । देवाधिदेव शंकर जी के उस रथपर प्रतिष्ठित होने पर उनके

लोकालोकगिरेः सारो धनुश्चासीन्महात्मनः । घोरं चाजगवं नाम प्रसिद्धमभवद्धनुः ।।३६
राज्यं चकार भगवांस्तद्धनुः कठिनं महत् । भग्नीभूतमभूच्चापं देवदेवस्य वै रुषा ।।३७
विस्मितो भगवान्विष्णुस्सारं स्वर्गस्य वै तदा । गृहीत्वाशु धनुर्दिव्यं पिनाकं स चकार ह ।।३८
सज्यं जातं च रुद्रेण पुष्टिभूतं महद्धनुः । तदा ब्रह्मर्षयस्तुष्टास्तुष्टुवुर्मनसा हरम् ।।३९
पिनाकीति च तन्नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महेश्वरः । गुणश्चास्य वै शेषः शक्रो बाणस्तदाभवत् ।।४०
शरपक्षौ वह्निवायू शल्यं विष्णुसनातनः । तेन बाणेन दैत्यानां कोटिसंख्या मृता च खे ।।४१
त्रिपुरं दाहयामास नायिना पालितं शिवः । भस्मीभूते पुरे घोरे तदालोकपतिर्विधिः ।।४२
पिनाकिनं महारुद्रं मीनराशिस्थिते रवौ । शशिनो मण्डलस्यैव राजानं स चकार तम् ।।
स्वाधिकारांस्तदा देव अवापुस्तामसान्तरे ।।४३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा पिनाकी च स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् ।।४४
समुत्पाद्य हरद्वारे हिमसानौ चकार ह । मच्छन्दो नाम तत्रैव योगी शम्भुपरायणः ।।४५
गोरखस्य गुरुर्यो वै तन्मुखे तेज आविशत् । रम्भा नाम्नैव तत्रैव स्वर्वेश्या कामरूपिणी ।।४६
मच्छन्दं च वशीकृत्य बुभुजे स्मरविह्वला । तयोस्सकाशाद्वै जातस्स पुत्रो रुचिराननः ।।४७
नाथशर्मेति विख्यातो विद्वाञ्छ्रेष्ठतरोऽभवत् । स जित्वा पण्डितान्भूमौ पुरीं काशीं समागतः ।।
शङ्कराचार्यविजितस्तस्य शिष्यो बभूव ह ।।४८

लिए लोकालोक पर्वत का सारभूत एक धनुष बनाया गया, जो भीषण धनुष 'अजगव' के नाम से विख्यात हुआ। उस धनुष को भगवान् सत्यदेव ने अत्यन्त कठोर बनाया था, किन्तु देवाधिदेव भगवान् शंकर द्वारा उसे भग्न होते देखकर आश्चर्यचकित होकर भगवान् विष्णु से उस समय स्वर्गलोक के सार द्वारा एक दिव्य धनुष का निर्माण किया। जिस समय भगवान् रुद्र द्वारा उस अत्यन्त पुष्ट एवं विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाई गयी उस समय हर्षातिरेक से मग्न होकर देव ब्रह्मर्षियों ने उनकी आराधना की और भगवान् महेश्वर उसी समय से 'पिनाकी' के नाम से प्रख्यात हो गये। उस धनुष की प्रत्यञ्चा शेष और बाण इन्द्र हुए थे तथा अग्नि और वायु उस बाण के पक्ष एवं शल्य स्वयं सनातन विष्णु भगवान् हुए। भगवान् शंकर ने उस बाण द्वारा आकाश में करोड़ों दैत्यों के विनाशपूर्वक उस त्रिपुर का भस्मावशेष किया। तीनों पुरों के भस्म हो जाने पर लोकनायक ब्रह्मा ने महारुद्र उन पिनाकी देव को मीनराशिस्थ सूर्य के समय चन्द्रमण्डल का राजपद प्रदान किया। पश्चात् देवगणों ने भी अपने-अपने अधिकारों को प्राप्त किया।२६-४३

सूत जी बोले—इसे सुनकर पिनाकी देव ने मुख द्वारा अपने अंश को निकालकर हिमालय पर्वत के समीप हरिद्वार में भेजा जो वहाँ मच्छन्द नामक योगी की ख्याति प्राप्तकर भगवान् शंकर का अनन्य उपासक हुआ। वही गोरखनाथ का गुरु वर्ण भी था जिसके मुख में वह तेज आविष्ट हुआ था। रम्भा नामक देवाङ्गना ने जो यथेच्छ रूप धारण किया करती हैं कामपीड़ित होने पर योगी मच्छन्द द्वारा अपनी कामपिपासा शान्ति की। पश्चात् उन दोनों के रमण करने पर एक मधुरमूर्ति बालक की उत्पत्ति हुई, जो 'नाथ शर्मा' (गोरखनाथ) के नाम से प्रख्यात होते हुए अत्यन्त गम्भीर विद्वान् हुआ। उसने अनेक धुरन्धर पण्डितों को पराजित कर काशीपुरी की यात्रा की। वहाँ पहुँचने पर योगिराज शंकराचार्य से पराजित होने पर उनकी शिष्य-सेवा स्वीकार की।४४-४८

बृहस्पतिरुवाच

चाक्षुषान्तरसम्प्राप्ते द्वादशे द्वापरे युगे ॥४९
क्षत्रियैस्तालजङ्घीयैर्ब्राह्मणा भृगुवंशजाः । विनाशिताः कुरुक्षेत्रे गृहीत्वा तद्धनं बहु ॥५०
जभुजुर्बलवन्तस्ते दैत्यपक्षा महाधमाः । कस्यचित्तु मुनेः पत्नी गुर्विणी च भयान्विता ॥५१
हिमतुङ्गे समागम्य तद् गर्भं मुनिसम्भवम् । शतवर्षं ददौ देवी तपसा ज्ञानरूपिणी ॥५२
मातुरूरू सुतो भित्त्वा ततो जातो महीतले । तेजसा तस्य पुत्रस्य भस्मीभूतमभूज्जगत् ॥५३
तदा तु सकला देवाः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् । वज्रस्थितश्च वैतालास्समाजग्मुर्भयातुराः ॥५४
पितृभिर्दैवतैर्बालस्समाज्ञातो हिमाचले । लोकनाशकरं तेजो जलमध्ये स चाक्षिपत् ॥५५
जलदेवी च वडवा भूत्वा तत्तेज उत्तमम् । पीत्वा ववाम तत्रैव पीडिता रौद्रतेजसा ॥५६
तदागत्य स्वयं ब्रह्मा त्रिकुटो यत्र वै गिरिः । तदधः सागरे घोरे स्थापयामास लोकपः ॥५७
मेषगे द्युमणौ प्राप्ते शशिमण्डलगं प्रभुम् । तं रुद्रं स चकाराशु परमेष्ठी पितामहः ॥५८
ऊरुजातात्स्मृतो वोर्वो दहनो लोकदाहतः । वडवामुखतो जातो वाडवो नाम स प्रभुः ॥५९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु दहनो गुरुवाक्यं मनोहरम् । स्वमुखात्तेज उत्पाद्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥६०

बृहस्पति बोले—द्वापर युग में चाक्षुष मन्वन्तर के समय तालजंघीय क्षत्रियों द्वारा कुरुक्षेत्र के स्थान में भृगुवंशीय ब्राह्मणों के विनष्ट हो जाने पर उनके धनों का अपहरण कर उन नीच दैत्यों ने उसका उपभोग किया। उसी समय किसी मुनि की पत्नी ने उस गर्भिणी अवस्था में अत्यन्त भयभीत होकर हिमालय के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न किया। वहाँ पहुँचकर ज्ञानरूपिणी उस मुनिपत्नी के सौ वर्ष तक उस गर्भ को धारण करने के उपरान्त उरु के भेदनपूर्वक एक तेजस्वी बालक ने उस गर्भ से जन्म ग्रहण किया। इस भूमण्डल पर जिस समय उस शिशु ने पदार्पण किया उसी समय उसके तेज द्वारा सम्पूर्ण संसार भस्म हो गया। पश्चात् देवों ने भयभीत होकर ब्रह्मा को आगे कर वज्रस्थित वैताल समेत वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया। वहाँ पहुँचने पर पितरों एवं देवों की आज्ञा को स्वीकार कर उसने उस लोक-नाशक तेज को जल के मध्य में डाल दिया। उस समय जल-देवी ने बडवा (घोड़ी) रूप धारणकर उस तेज का पान किया किन्तु उस रुद्र तेज से पीड़ित होने पर उसने उसका वमन कर दिया। उस समय स्वयं ब्रह्मा ने वहाँ जाकर त्रिकूट पर्वत के नीचे घोर सागर में उसकी स्थापना की। सूर्य के मेषराशिस्थ होने पर पितामह ब्रह्मा ने उस रुद्र रूप को चन्द्रमण्डल के स्वामी पद से विभूषित किया। उरु से उत्पन्न होने के 'वोर्वो' लोक करने से 'दहन' और वडवा के मुख से उत्पन्न होने के नाते उसका 'वाडव' नाम हुआ।४९-५९

सूतजी बोले—उस दहन (तेजस्वी) ने बृहस्पति की ऐसी सुन्दर वाणी सुनकर अपने मुख से तेज निकालकर कुरुक्षेत्र में भेजा, जो सारस्वत ब्राह्मण के घर पुत्ररूप में उत्पन्न होकर 'क्षेत्रशर्मा, के नाम से

सारस्वतस्य विप्रस्य गृहे जातस्स वै शिवः । क्षेत्रशर्मेति विख्यातो विद्वच्छ्रेष्ठो बभूव ह ।।६१
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्यो भूत्वा पराजितः । ब्रह्मचर्यव्रती काश्यां तस्थौ शम्भुपरायणः ।।६२

बृहस्पतिरुवाच

एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावर जङ्गमे । शताब्दे ब्राह्मणः प्राप्तेऽव्यक्तजन्मनि लोकगे ।।६३
अव्यक्तं प्रकृतिर्माया पीत्वा सर्वजलं मुदा । महाकाली स्वयं मूर्तिरन्धकारस्वरूपिणी ।।६४
एका बभूव तत्रैव प्राकृते कल्पदारुणे । चतुर्युगानां कोटीनां त्रयाणां दारुणे लये ।।६५
षष्टिलक्षयुतानां च कालस्तत्र व्यतीतवान् । तदा सा प्रकृतिर्देवी नित्यशुद्धा सनातनी ।।६६
स्वेच्छया च स्वरूपं स्वं महागौरमनुत्तमम् । पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं च दधौ शिवा ।।६७
भालनेत्रेण सा माता सूक्ष्मतेजो ददर्श ह । शून्यभूतं परं नित्यमविकारि निरञ्जनम् ।।६८
तदा दिक्षु गतं ब्रह्म स्वभुजैः प्रकृतिः पुरा । ग्रहीतुमिच्छती तत्र न समर्था बभूव वै ।।६९
विस्मिता प्रकृतिर्माता पञ्चवक्त्रैः सनातनम् । तुष्टाव परया भक्त्या चिरकालात्परात्परम् ।।७०
धातुशब्दैः प्राङ्मुखजैः प्रत्ययैर्याम्यवक्त्रजैः । सुविभक्तिमयैः शब्दैर्मुखपश्चिमजैः स्थिरा ।।७१
तिङ्विभक्तिमयैर्नित्या मुखोत्तरमयैर्मुदा । नभोवक्त्रमयैः शब्दैर्वर्णमात्रैर्निरञ्जनम् ।।७२
सच्चिदानन्दघनकं पूर्णब्रह्म सनातनम् । तुतोष तत्तु सर्वज्ञं पञ्चवक्त्रेषु चागमत् ।।७३
पुरुषत्वमभूद्ब्रह्म स्वयम्भूर्नाम चाभवत् । अव्यक्तात्प्रकृतेर्जातोऽव्यक्तजन्मा हि स स्मृतः ।।७४

विख्यात एवं श्रेष्ठ विद्वान् हुआ । उसने काशी पहुँचकर शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार करने के उपरान्त ब्रह्मचर्यव्रती रहकर विश्वनाथ जी की सेवा का पारायण किया ।६०-६२

बृहस्पति जी बोले—स्थावर जंगमरूप जगत् के उस प्रलयकालीन एकार्णव में विलीन होने पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सौ वर्ष के उपरान्त प्रकृति माया ने उस आसव जल रूप अव्यक्त का पानकर स्वयं मूर्तिमती होकर अंधकार स्वरूपिणी महाकाली का रूप धारण किया । उस भीषण प्राकृतकल्प के समय एकाकिनी उत्पन्न होकर साठ लाख कोटि चारों युग के समय को व्यतीत किया । पश्चात् उस प्रकृति देवी ने, जिसे शुद्ध एवं सनातनी कहा जाता है, स्वेच्छया अपने स्वरूप को अत्यन्त गौरवर्ण बनाया । उस शिवा ने उस स्वरूप में पाँच मुख, दश भुजाएँ और तीन नेत्र धारण किया और उस माता के भालनेत्र द्वारा सूक्ष्म तेज का दर्शन किया, जो शून्य पर नित्य, अविकारि एवं निरंजन है । उसे देखकर प्रकृति देवी ने अपनी भुजाओं द्वारा उस दिग्दिगन्त व्यापक ब्रह्म को ग्रहण करने की इच्छा की किन्तु समर्थ न हो सकी । पश्चात् विस्मित होकर प्रकृतिमाता ने उस सनातन एवं परात्पर देव की अपने पाँचों मुखों द्वारा चिरकाल तक भक्तिपूर्वक आराधना की पूर्वमुख से धातु, दक्षिण मुख से प्रत्यय, पश्चिम मुख से सुप विभक्तिमय, उत्तरमुख से तिङ् विभक्तिमय और आकाशीय मुख से वर्णमात्र शब्दों द्वारा उस निरञ्जन की उपासना की जो सच्चिदानन्द, घन, पूर्ण एवं सनातन ब्रह्मा है । तदनन्तर प्रसन्न होकर उस सर्वज्ञ ने उनके पाँचो मुखों में प्रविष्ट होकर पुरुष रूप धारण किया,जो स्वयम्भू के नाम से विश्व विख्यात हुआ और अव्यक्त प्रकृति से उत्पन्न होने के नाते वह अव्यक्तजन्मा भी कहा गया है ।६३-७४। पश्चात् उसी पुरुष के लिए वरदात्री एवं

तस्य हेतोः स्वयं देवी वरदा लोकरूपिणी । महालक्ष्मीश्च पूर्वार्द्धाज्जाता षोडशलोकिनी ।।७५
अष्टादशभुजास्तस्या लोकरक्षणतत्पराः । दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं स्वयंभूर्विस्मयान्वितः ।।७६
प्रविश्य बहुधा भूत्वा नान्तं तस्या जगाम ह । बृहत्वाद्बहुरूपत्वाद्ब्रह्मा नामेति विश्रुतः ।।७७
श्रमितो भगवान्ब्रह्मा सत्यलोकमुपस्थितः । मुखेभ्य उद्भवैर्देवो वेदैस्तुष्टाव शङ्करम् ।।७८
चिरं कालं तदङ्गाद्वै नदीनदसमुद्भवः । एकार्णवं तदा जातं शेते तत्र स्वयं प्रभुः ।।७९
सहस्रयुगपर्यंतमुषित्वाऽव्यक्तभूः स्वयम् । सत्यलोकमुपागम्य पुनः सृष्टिं चकार ह ।।८०
अनन्ताः सृष्टयश्चासन्गणरूपाः पृथक्पृथक् । ताभिर्व्यक्तमभूत्सर्वं महालक्ष्मीमयं जगत् ।।८१
दृष्ट्वा बहुत्वं सृष्टीनां महालक्ष्मीः सनातनी । विस्मिताभूच्च सर्वेशं भगवन्तमुपाययौ ।।८२
नत्वोवाच वचो रम्यं कृष्णमव्यक्तमङ्गलम् । भगवन्नित्यशुद्धात्मन्नराश्चासन्महत्तराः ।।८३
कथं तेषां च गणना कर्तव्या च मया सदा । इति श्रुत्वा वचस्तस्या द्विधाभूतश्च सोऽव्ययः ।।८४
पूर्वार्द्धात्स तु रक्ताङ्गः परार्द्धाद्गौररूपवान् । चतुर्भुजस्स रक्ताङ्गो गौरवर्णश्चतुर्भुजः ।।८५
सर्वसृष्टिगणानां च स ईशो भगवान्भवः । गणेशो नाम विख्यातश्चेश्वरस्स तु विश्रुतः ।।८६
परश्चतुर्भुजो यो वै योगिध्येयो निरञ्जनः । एकदा विधितो जातः शिवः पार्वतिवल्लभः ।।८७
गणेशं पूजयामास सहस्राब्दं प्रयत्नतः । तदा प्रसन्नो भगवान्गणेशः शर्वपूजकः ।।८८

लोकरूपिणी देवी ने स्वयं अपने पूर्वार्द्ध भाग से महालक्ष्मी का रूप धारण किया, और उस सोलह लोकनायिका ने अपने अठ्ठारह भुजाओं द्वारा लोक की रक्षा की । उस अद्भुत रूप को देखकर स्वयम्भू को महान् आश्चर्य हुआ । अनन्तर उन्होंने उस रूप में प्रविष्ट होकर अनेक रूपों से उसका पता लगाया किन्तु उसका पार न पा सके । उसी समय से बृहत् (वज्र) और बहुत्व (अनेक) होने के नाते 'ब्रह्मा' नाम से उसकी ख्याति हुई । तदुपरान्त श्रान्त होकर भगवान् ब्रह्मा ने सत्यलोक पहुँचकर अपने मुखों से उत्पन्न वेदों द्वारा भगवान् शंकर को प्रसन्न किया । चिरकाल के उपरान्त उनके अंगों द्वारा नदी एवं नदों द्वारा (प्रलयकालीन जल बढ़कर) एकार्णव (एक समुद्र) हो गया जिससे उसी में शयन करते हुए स्वयम्भू ब्रह्मा ने सहस्र युग व्यतीतकर सत्यलोक पहुँचकर पुनः सृष्टि करना आरम्भ किया । उस प्रमत्त सृष्टि द्वारा जो गणरूप में पृथक्-पृथक् स्थित थे, सम्पूर्ण विश्व महालक्ष्मीमय दिखाई देने लगा । उस समय सनातनी महालक्ष्मी ने सृष्टि की अधिकता एवं अनेकता देखकर आश्चर्यचकित होकर सर्वेश भगवान् के समीप जाकर नम्रतापूर्वक उन अव्यक्त एवं मांगलिक कृष्ण भगवान् से कहा—भगवन्, नित्यशुद्धात्मन् ! नरों की महत्तर सृष्टि हो गई है, मैं सदा उनकी गणना किस प्रकार करूँगी । इसे सुनकर उस अव्यय ने अपने को दो भागों में विभक्तकर पूर्वार्द्ध से रक्तवर्ण और चार भुजाएँ तथा उत्तरार्द्ध से गौरवर्ण और चार-भुजाएँ धारण किया, जिसमें रक्तवर्ण एवं चार भुजाओं वाले रूप ने समस्त सृष्टिगणों के ईश का स्थान ग्रहण किया, जो भगवान् भव गणेश के नाम से विश्वविख्यात हुए और उनका दूसरा गौरवर्ण का स्वरूप जो निरंजनस्वरूप है योगियों का परमध्येय हुआ । एक बार ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न शिव ने पार्वती समेत व्रती होकर भगवान् गणेश की एक सहस्र वर्ष तक सप्रयत्न आराधना की। उस समय शिव जी की पूजा

वरं वरय तं प्राह पार्वतीसहितं हरम् । प्रसन्नात्मा भवः साक्षात्तुष्टाव च विनम्रधीः ॥८९

शिव उवाच

नमो विष्णुस्वरूपाय गणेशाय परात्मने । चतुर्भुजाय रक्ताय यज्ञपूर्णकराय च ॥९०
विघ्नहन्त्रे जगद्भर्त्रे सर्वानन्दप्रदायिने । सिद्धीनां पतये तुभ्यं निधीनां पतये नमः ॥९१
प्रसन्नो भव देवेश पुत्रो भव मम प्रियः । इति श्रुत्वादिशून्यस्तु गणेशो भक्तवत्सलः ॥९२
पार्वत्याः सर्वदेहात्तु तेजोभूतात्समुद्भवः । तदा कैलासशिखरे सर्वे देवास्सवासवाः ॥९३
मङ्गलार्थमुपाजग्मुर्देवदेवस्य मन्दिरे । महोत्सवश्च तत्रासीत्सर्वलोकसुखावहः ॥९४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सूर्यपुत्रः शनिः स्वयम् । क्रूरदृष्टिः समायातः कालात्मा देवमण्डपे ॥९५
तस्य दर्शनमात्रेण स बालो विशिरा ह्यभूत् । हाहाकारो महाँश्चासीत्कैलासे गुह्यकालये ॥९६
तच्छिरश्चन्द्रलोके वै तुलासंस्थे दिवाकरे । सप्तविंशद्दिनान्येव प्रकाशयति भूतले ॥९७
निन्दितो दैवतैस्तत्र शनिर्जनभयङ्करः । गजस्य मस्तकं छित्त्वा दन्तैकं रागरूपि यत् ॥९८
तच्छिशोः कन्धरे रक्तेऽरोपयत्सूर्यसम्भवः । गजयोन्या स्तुतो ब्रह्मा कर्कटस्य तदा शिरः ॥९९
समारोप्य तु तद्योनिः कर्कटो विशिरीकृतः । एवं गजाननो जातो गणेशश्चेश्वरः स्वयम् ॥१००

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गणेशस्तु गुरोर्वचनमुत्तमम् । स्वमुखात्स्कन्धमुत्पाद्य काश्यां जातः स चेश्वरः ॥१०१

से प्रसन्न होकर भगवान् गणेश ने उनसे कहा—वरदान की याचना कीजिये । उन्होंने प्रसन्न होकर नम्रतापूर्वक उनकी स्तुति किया ।७५-८९

शिव जी बोले—उस विष्णुस्वरूप को नमस्कार है, जो गणेश, परात्मा, एवं यज्ञ की मूर्ति के लिए रक्तवर्ण एवं चार भुजाओं को धारण किये हैं । विघ्नहर्त्ता, जगत् के भर्ता समस्त आनन्दप्रदाता एवं सिद्धि-ऋद्धि के अधीश्वर को नमस्कार है । देवेश ! 'आप प्रसन्नतया मेरा पुत्र होना स्वीकार करें ।' इसे सुनकर भक्तवत्सल एवं आदिशून्य भगवान् गणेश ने तेजरूप में पार्वती के समस्त अंगों से निकलकर बालक रूप धारण किया । उस समय उस कैलास के शिखर पर देवाधिदेव शंकर के घर उस पुत्र-जन्म के मांगलिक महोत्सव के उपलक्ष में समस्त इन्द्रादि देव उपस्थित हुए । जो महोत्सव प्राणीमात्र के लिए अत्यन्त सुखावह था । उसी बीच सूर्य पुत्र शनि का भी वहाँ आगमन हुआ, जो क्रूरदृष्टि एवं कालात्मा कहे जाते हैं । उनके देखते ही उस शिशु का शिर विलीन हो गया, ऐसा देखकर उस कैलास पर हाहाकार मच गया । तुला राशि पर स्थित सूर्य के समय चन्द्रलोक में स्थित होकर वही शिर इस भूमण्डल पर सत्ताईस दिन तक प्रकाश करता रहता है । उस समय वहाँ देवगणों से निन्दित होने पर उस जनभयङ्कर शनि ने गज का मस्तक काटकर उस बालक के मस्तक स्थान पर रख दिया । पश्चात् ब्रह्मा ने उस गज के मस्तक स्थान पर कर्कट (केकड़ा) का शिर रखकर उस केकड़ा को मस्तकहीन किया । इस प्रकार गजानन की उत्पत्ति बता दी गई, जो गणेश एवं स्वयं ईश्वर कहे जाते हैं ।९०-१००

सूतजी बोले—इसे सुनकर गणेश जी ने मुख द्वारा अपने स्कन्ध को निकालकर काशी में दैवज्ञ

दैवज्ञस्य द्विजस्यैव पुत्रो भूत्वा शुभाननः । ढुण्ढिराजस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।१०२
जातकाभरणं नाम ज्योतिःशास्त्रं फलात्मकम् । कृत्वा स वेदरक्षार्थं शङ्कराचार्यमागमत् ।।१०३
शिष्यो भूत्वा प्रसन्नात्मा गुरुसेवापरोऽभवत् । इति ते कथितं विप्र ढुण्ढिराजो यथाभवत् ।।१०४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये भारतीशगोरखनाथक्षेत्रशर्मढुण्ढिराजसमुत्पत्तिवर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अघोरपथभैरवहनुमज्जन्मरुद्रमाहात्म्यबालशर्मसमुत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

षोडशाब्दे च सम्प्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । स उषित्वा च कमले स्थितः सृष्ट्यर्थमुद्यतः ।।१
एतस्मिन्नन्तरे वक्त्रात्समुद्भूता च शारदा । दिव्याङ्गं सुन्दरं तस्या दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः ।।२
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मरपीडितः । रतिं देहि मदाघूर्णे रक्ष मां कामविह्वलम् ।।३
इति श्रुत्वा तु सा माता रुषा प्राह पितामहम् । पञ्चवक्त्रोऽयमशुभो न योग्यस्तव कन्धरे ।।४
चतुर्वक्त्रो वेदमयो योग्यस्सर्वेश्वरे त्वयि । इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ब्रह्मा क्रोधान्वितोऽभवत् ।।५
तस्य कोपाग्निना तोयं शुष्कभूतमभूद्भुवि । शान्तिभूते च तत्कोपे रुद्रो जातो भयङ्करः ।।६

ब्राह्मण के यहाँ पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, जिस कल्याणमुख बालक की इस भूतल में ढुण्ढिराज के नाम से अत्यन्त ख्याति हुई है। उन्होंने जातकाभरण नामक ज्योतिःशास्त्र के फलित ग्रन्थ का, समस्त देवों के रक्षार्थ निर्माण करने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार की। विप्र ! इस प्रकार मैंने ढुण्ढिराज की उत्पत्ति कथा तुम्हें सुना दी।१०१-१०४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्राशर्मा और ढुण्ढिराज की उत्पत्तिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अध्याय १३

अघोरपंथिभैरव हनुमज्जन्म, रुद्रमाहात्म्य और बालशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा ने सोलह वर्ष तक कमल में स्थित रहने के उपरान्त पुनः सृष्टि करने का प्रयत्न किया। उसी समय उनके मुख द्वारा शारदा देवी का आविर्भाव हुआ, जिसके दिव्य सौन्दर्यपूर्ण अंगों को देखकर ब्रह्मा ने कामपीड़ित होकर बलात् उसे पकड़कर अपनी अधीरता प्रकट की थी—उन्होंने कहा—मदोन्मत्ते ! रतिदान द्वारा मेरी कामपीड़ा-शान्तिपूर्वक रक्षा करो। इसे सुनकर उस माता ने क्रुद्ध होकर पितामह ब्रह्मा से कहा—यह तुम्हारा पाँचवा मुख अशुभ होने के नाते तुम्हारे कन्धे पर रहने योग्य नहीं है। तुम सर्वेश्वर हो, अतः वेदमय यह चार ही मुख तुम्हारे कन्धे पर रहने योग्य हैं। इतना कहकर वह माता अन्तर्हित हो गयी, जिससे ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उनके उस

भैरवो नाम विख्यातः कालात्मा सप्तवाहनः । स्वनखैश्च नृसिंहाभैः क्षिप्त्वा तत्पञ्चमं शिरः ॥७
जगर्ज बलवान्रुद्रः शङ्करो लोकशङ्करः । भयभीतस्तदा ब्रह्मा भैरवं शरणं ययौ ॥८
नाथ नः पापभूतानां धियो योऽसौ प्रचोदयात् । इति श्रुत्वा स भगवान्भैरवो लोकविश्रुतः ॥९
ब्रह्मभूतमहं स्वामिन्वरेण्यं त्वामुपागतः । सवितुस्तद्वरेण्यं यद्भर्गो देवस्य धीमहि ॥१०
गाढमुच्चै रुरोदाशु आत्पेतुश्चाश्रुबिन्दवः । ततो वृक्षास्समुद्भूता रुद्राक्षाणां पृथक्पृथक् ॥११
शिवो ब्रह्मवधाद्भीतस्तत्कपालं गृहीतवान् । कपाली नाम विख्यातं भैरवस्य तदा ह्यभूत् ॥१२
सर्वलोकेषु भूतानि यानि चायतनानि च । तानि तान्येव गत्वाशु शुद्धो नाभूच्छिवङ्करः ॥१३
एकदा तेषु वृक्षेषु संस्थितो भगवान्हरः । तदा ब्रह्मवधे दोषं त्यक्त्वा दूरमुपागतः ॥१४
ततः प्रभृति वै शम्भुर्धृत्वा रुद्राक्षमुत्तमम् । पुरीं काशीं समायातः कपालस्तेन मोचितः ॥१५
कपालमोचनं नाम तीर्थं जातमघापहम् । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवसमन्वितः ॥१६
समागत्य महादेवं तुष्टाव स्तुतिजैस्तवैः । मकरस्थे दिनानाथे शशिनश्चेश्वरं शुभम् ॥
कपालिनं महारुद्रं चकार भगवान्विधिः ॥१७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं कपाली भैरवः शिवः । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य काश्यां जातो ह्ययोनिजः ॥१८

क्रोधाग्नि द्वारा पृथिवी के समस्त जल सूख गये, पश्चात् क्रोध के शान्त होने पर भयंकर रुद्र का आविर्भाव हुआ, जो भैरव, कालात्मा एवं सप्तवाहन के नाम से प्रख्यात हैं। उन्होंने अपने नृसिंह के समान नखों द्वारा उनके उस पाँचवें मुख का छेदन कर दिया। पश्चात् लोककल्याणकर्त्ता भगवान् शंकर ने उस रुद्र देश में भीषण गर्जना की जिससे भयभीत होकर ब्रह्मा भैरव की शरण में गये। उन्होंने कहा—नाथ! मुझ पापात्मा की मद्‌बुद्धि की यह प्रेरणा करें। इसे सुनकर लोकप्रख्यात भगवान् भैरव ने कहा—स्वामिन्! ब्रह्मरूप मैं भी आप वरेण्य (तेजस्वी) के समीप उपस्थित हूँ, जो सविता देव का तेज एवं वरेण्य रूप है। पश्चात् उन्होंने अत्यन्त प्रगाढ़ रुदन किया जिससे आकाश से अश्रुबिन्दुओं का अविरल पतन हुआ। उसी से रुद्राक्ष के पृथक्-पृथक् वृक्ष उत्पन्न हुए। १-११। शिवजी ने ब्रह्म-वध से भयभीत होकर उनके कपाल को ग्रहण किया, जिससे उन भैरव की कपाली नाम से प्रख्याति हुई। उस समय शिवजी ने सभी लोकों के पवित्र स्थानों एवं मन्दिरों में यात्रा की, किन्तु उस ब्रह्महत्या से मुक्त न हो सके। एक बार भगवान् हर ने भ्रमण करते हुए उन रुद्राक्ष के वृक्षों के आश्रित रहना आरम्भ किया, वहाँ ब्रह्महत्या उन्हें मुक्तकर दूर चली गई। उसी समय से शिव ने उस परमोत्तम रुद्राक्ष को धारण किया और पश्चात् काशी आकर उस कपाल का मोचन किया, जिससे उस स्थान की अघविनाशक कपालमोचन नामक तीर्थपद से विस्तृत ख्याति हुई। उसी बीच समस्त देवों समेत ब्रह्मा ने वहाँ आकर स्तुतियों द्वारा महादेव की आराधना की। तदुपरांत ब्रह्मा ने मकर राशिस्थ सूर्य के समय उन कपाली महादेव को चन्द्रमण्डल का अधिनायक बनाया। १२-१७

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर उन कपाली भैरवशिव ने अपने मुख द्वारा अपने अंश

कपालमोचनात्कुण्डात्समागम्य महीतले । यतिरूपो वेदनिधिर्भैरवो नाम विश्रुतः ॥
अघोरं कठिनं मार्गं स्वशिष्यान्समचोदय ॥१९
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्योभूत्वा स भैरवः । डामरं नाम वै तन्त्रं मन्त्रभूतं चकार ह ॥
कीलिता ये तु वै मन्त्रास्तेन चोत्कीलितीकृताः ॥२०

बृहस्पतिरुवाच

मन्दोदरी मयसुता त्रिपुराधिपतेः स्वसा । त्रिपुरे तु तदा नष्टे महाविष्णुं सनातनम् ॥
भक्त्या तुष्टाव सा देवी प्रत्यहं गुप्तभाविनी ॥२१
भक्तिभावात्ततो योगं हरौ प्राप्य महोत्तमम् । विन्ध्याद्रिकन्धरे घोरे तत्रैवान्तरधीयत ॥२२
चतुर्युगं च द्विशतं तस्या जातं समाधितः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते द्वादशे चैव कृतयुगे ॥२३
पुलस्त्यो ब्रह्मणः पुत्रो विश्रवा रोषतोऽभवत् । शताब्दं च तपस्तप्त्वा विश्रवा नाम यो मुनिः ॥२४
सुमालिनोऽथ दैत्यस्य सुतां वै कैकसीं मुदा । समुद्वाह्य विधानेन पुलस्त्यस्स च विश्रवाः ॥२५
कदलीविपिने रम्ये गन्धमादनपर्वते । स रेमे च तया सार्द्धं विश्रवा भगवानृषिः ॥२६
रावणः कुम्भकर्णश्च तयोर्जातो हि राक्षसौ । रावणो मातृभक्तश्च पितृभक्तस्ततोऽनुजः ॥२७
सहस्राब्दं तपो घोरं चक्रतुस्तौ वरार्थिनौ । तदा प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी पितामहः ॥२८
ददौ ताभ्यां वरं रम्यमजेयं देवदानवैः । तौ तु लब्धवरौ क्रुद्धौ पुष्पकं यानमुत्तमम् ॥
गृहीत्वा च बलाद्वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥२९

को निकालकर काशी में अयोनिज जन्म ग्रहण किया, जो कपालमोचन नामक कुण्ड से भूतल पर आकर 'वेदनिधि' संन्यासी के नाम से विश्व-विख्यात हुए। उन्होंने अपने शिष्यों को उस कठिन अघोरमंत्र के उपदेश देने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार की। उन्होंने एक यंत्र-मंत्रात्मक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें कीलित मंत्रों का उत्कीलन-विधान बताया गया है।१८-२०

बृहस्पति ने कहा—मयदानव की पुत्री मन्दोदरी ने, जो त्रिपुराधीश्वर की भगिनी थी, त्रिपुर के नष्ट हो जाने के उपरान्त सनातन विष्णु भगवान् की भक्तिपर्वूक, अनवरत आराधना की। इस प्रकार उसके गुप्तभाव से प्रतिदिन सप्रेम आराधित होने के नाते भगवान् ने प्रसन्नतया उसे योग प्रदान किया, जिससे वह विंध्यपर्वत के उस घोर शिखर पर उनमें तन्मय होकर समाधि द्वारा अदृश्य हो गई। पश्चात् चारों युगों के दो सौ बार व्यतीत होने पर वैवस्वत मन्वन्तर के बारहवें कृतयुग के समय ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य ऋषि के क्रोध द्वारा विश्रवा की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर सौ वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त पुलस्त्य पुत्र विश्रवा ने सुमाली दैत्य की कैकसी नामक कन्या के साथ पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न कर गन्धमादन पर्वत के उस कदली वन के रमणीक स्थान में उसके साथ रमण किया। उससे राक्षस रावण और कुम्भकर्ण की उत्पत्ति हुई। रावण मातृभक्त और कुम्भकर्ण अपने पिता का परमभक्त था। उन दोनों ने वरदान प्राप्ति के निमित्त एक सहस्र वर्ष तक घोर तप किया, उससे प्रसन्न होकर भगवान् पितामह ब्रह्मा ने वहाँ जाकर उन्हें देव-दानवों द्वारा अजेय होने का वरदान प्रदान किया। पश्चात् उन दोनों ने बलप्रयोग द्वारा पुष्पक यान का अपहरण करके देवों के साथ घोर युद्ध किया। उस युद्ध में सुखप्रद

ताभ्यां विनिर्जिता देवास्त्यक्त्वा स्वर्गं सुखप्रदम् । पार्थिवैः पूजयामासुः शिवं कैलाससंस्थिताः ।।३०
एकादशाब्दमाराध्य ते देवा गिरिजापतिम् । शङ्कराच्च वरं प्राप्ता निर्भयाश्च तदाभवन् ।।३१
शिवोऽपि च स्वपूर्वार्द्धाज्जातो वै मानसोत्तरे । गिरौ यत्र स्थिता देवी गौतमस्य तनूद्भवा ।।
अञ्जना नाम विख्याता कीशकेसरिभोगिनी ।।३२
रौद्रं तेजस्तदा घोरं मुखे केसरिणो ययौ । स्मरातुरः कपीन्द्रस्तु बुभुजे तां शुभाननाम् ।।३३
एतस्मिन्नन्तरे वायुः कपीन्द्रस्य तनौ गतः । वाञ्छितामञ्जनां शुभ्रां रमयामास वै बलात् ।।३४
द्वादशाब्दमतो जातं दम्पत्योर्मैथुनस्थयोः । तदनु भ्रूणमासाद्य वर्षमात्रं हि साऽदधत् ।।३५
पुत्रो जातस्स रागात्मा स रुद्रो वानराननः । कुरूपाच्च ततो मात्रा प्रक्षिप्तोऽभूद्गिरेरधः ।।३६
बलादागत्य बलवान्दृष्ट्वा सूर्यमुपस्थितम् । विलिख्य भगवान्रुद्रो देवस्तत्र समागतः ।।३७
वज्रसन्ताडितो वापि न तत्याज तदा रविम् । भयभीतस्तदा प्रान्शुस्सूर्यं त्राहीति जल्पितः ।।३८
श्रुत्वा तदार्तवचनं रावणो लोकरावणः । पुच्छे गृहीत्वा तं कीशं मुष्टियुद्धमचीकरत् ।।३९
तदा तु केसरिसुतो रविं त्यक्त्वा रुषान्वितः। वर्षमात्रं महाघोरं मल्लयुद्धं चकार ह ।।४०
श्रमितो रावणस्तत्र भयभीतस्समन्ततः । पलायनपरो भूतः कीशरुद्रेण ताडितः ।।४१
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्रवा भगवानृषिः । स्तोत्रैर्वेदमयैर्देवं तुष्टाव परया गिरा ।।४२

स्वर्ग के त्यागपूर्वक पराजित होकर देवों ने कैलासपर्वत पर रहकर गिरिजापति भगवान् शंकर की पार्थिवार्चन द्वारा ग्यारह वर्ष तक आराधना की। अनन्तर शंकर द्वारा वरदान प्राप्तकर निर्भीकता प्राप्त की और उधर भगवान् शिव भी अपने पूर्वार्द्ध भाग द्वारा मानसरोवर के उत्तरीय पर्वत पर स्थित गौतम ऋषि की पुत्री के गर्भ द्वारा अवतरित हुए जो अंजना के नाम से विख्यात एव केसरी वानरेन्द्र की सहधर्मिणी थी, उस रौद्र तेज के उनके मुख द्वारा प्रविष्ट होने के नाते काम विह्वल होकर वानरेन्द्र केसरी ने उस कल्याणमुखी के साथ सम्भोग किया।२१-३३। उसी समय केसरी के शरीर में प्रविष्ट होकर वायु ने भी बलात् उस अंजना के साथ रमण किया। इस प्रकार रमण करते हुए उस दम्पती के बारह वर्ष व्यतीत हो गये पश्चात् उस सुन्दरी के एक वर्ष तक गर्भ धारण करने के उपरान्त भगवान् रुद्र ने वानर रूप से रक्तवर्ण के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, किन्तु कुरूप होने के नाते माता द्वारा पर्वत के नीचे भाग में डाल देने पर भी उस बलवान् पुत्र ने बलात् पर्वत के ऊपर आकर वहाँ उपस्थित सूर्य को पकड़ लिया। भगवान् रुद्रदेव के द्वारा सूर्य के पीड़ित होने पर देवेन्द्र ने वहाँ आकर उन पर अपने वज्र का प्रहार किया, किन्तु उस पर भी उन्होंने सूर्य का त्याग नहीं किया। अनन्तर भयभीत होकर देवों ने 'सूर्यं त्राहि' (सूर्य की रक्षा करो) की ध्वनि उच्च स्वर से की। उसे सुनकर लोक दुःखदायी रावण ने उस वानर की पूँछ पकड़कर मुष्टि युद्ध करना आरम्भ किया। उस समय केसरी पुत्र ने क्रुद्ध होकर सूर्य के त्यागपूर्वक उस राक्षस से एक वर्ष तक महाघोर मल्लयुद्ध किया। पश्चात् उस वानर रूपधारी रुद्र से पीड़ित होने पर श्रान्त एवं भयभीत रावण ने चारों ओर भागना आरम्भ किया। उसी समय भगवान् विश्रवा ऋषि ने वहाँ आकर वैदिक स्तोत्रों द्वारा उनकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् रुद्र ने

प्रसन्नस्तु तदा रुद्रो रावणं लोकरावणम् । त्यक्त्वा पम्पासरस्तीरे निवासं कृतवान्बली ॥
स्थाणुभूतः स्थितस्तत्र स्थाणुर्नाम ततोऽभवत् ॥४३
निघ्नन्तं च सुरान्मुख्यान्रावणं लोकरावणम् ॥४४
निहन्ति मुष्टिभिर्यो न हनुमानिति विश्रुतः ॥४५
तपसा तस्य कीशस्य प्रसन्नो भगवान्विधिः ।नम्रधीर्वचनं प्राह शृणु रुद्र तपोनिधे ॥४६
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाष्टाविंशत्तमे युगे । त्रेतायाः पूर्वचरणे रामस्साक्षाद्भविष्यति ॥
तस्य भक्तिं च सम्प्राप्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥४७
इति चोक्त्वा ददौ तस्मै चन्द्रं भाद्रप्रकाशकम् । रावणाय प्रियां रम्यां ददौ मन्दोदरीं विधिः ॥४८
नैर्ऋतस्यैव दिक्पालस्स बभूव च रावणः । अल्पायुर्मरणं प्राप्तो रामेण हरिरूपिणा ॥४९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स हनुमानयोनिः कदलीवने । देहभूतो महीं प्राप्तो बालशर्मेति विश्रुतः ॥५०
पुरीं काशीं समायातो यत्र वै मणिकर्णिका । रामपक्षे बालशर्मा शिवपक्षे तु शङ्करः ॥५१
मासमात्रं च शास्त्रार्थस्तयोश्चासीन्महोत्तमः। शङ्कराचार्ययतिना बालशर्मा पराजितः ॥५२
शिष्यो भूत्वा च तत्रैव गुरुसेवापरोऽभवत् । यश्चकार तन्त्रमन्त्रं सर्व जातिकथामयम् ॥५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये अघोरपथभैरवहनुमज्जन्मरुद्रमाहात्म्यबालशर्मसमुत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

उस लोकापकारी रावण के त्यागपूर्वक पम्पा सरोवर के निकट अपना निवास स्थान बनाया वहाँ स्थाणु की भाँति स्थित रहने के नाते उनकी 'स्थाणु' के नाम से प्रख्याति हुई । मुख्य देवों और लोक विद्वेषी रावण को मुष्टि द्वारा प्रताड़ित करने पर भी उन लोगों की मुष्टियों द्वारा हनन न होने के कारण उस वानर रूपधारी रुद्र की 'हनुमान' नाम से ख्याति हुई । पश्चात् उनके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वहाँ आकर नम्रतापूर्वक कहा—तपोनिधे रुद्र ! मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । वैवस्वत मन्वतर के समय अट्ठाइसवें त्रेतायुग के प्रथम चरण में साक्षात् भगवान् राम अवतार धारण करेंगे, उस समय उनकी भक्ति की प्राप्तिपूर्वक आप कृतकृत्य होंगे । इतना कहकर उन्हें भाद्रमासकालीन चन्द्र का अधिनायक बनाया और रावण को उस अनुपम रमणी मन्दोदरी को प्रदान किया । वह रावण नैर्ऋत्य दिशा का अधीश्वर होते हुए भी भगवान् राम द्वारा हनन होने के नाते अल्पायु ही हुआ ।३४-४९

सूत जी बोले—इसे सुनकर अयोनिज हनुमान ने देहधारणकर इस भूतल में 'बालशर्मा' के नाम से विख्याति प्राप्त की । पश्चात् काशी में मणिकर्णिका नामक घाट स्थान पर रामपक्ष की ओर से बालशर्मा और शिवपक्ष की ओर से शंकराचार्य का एक मास तक शास्त्रार्थ हुआ, अनन्तर शंकराचार्य द्वारा पराजित होने पर बालशर्मा ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की और उसी गुरुसेवा के साथ सर्वजाति की कथा एक तंत्र-मंत्र के ग्रन्थ का निर्माण भी किया ।५०-५३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में अघोरपंथिभैरव हनुमज्जन्म, रुद्रमाहात्म्य और बालशर्मा की उत्पत्ति वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

रुद्रमाहात्म्यवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

इदं दृश्यं यदा नासीत्सदसदात्मकं च यत् । तदाक्षरमयं तेजो व्याप्तरूपमचिन्त्यकम् ॥१
न च स्थूलं न च सूक्ष्मं शीतं नोष्णं च तत्परम् । आदिमध्यान्तरहितं मनागाकारवर्जितम् ॥२
योगिदृश्यं परं नित्यं शून्यभूतं परात्परम् । एका वै प्रकृतिर्माया रेखा या तदधः स्मृता ॥३
महत्तत्वमयी ज्ञेया तदधश्चोर्ध्वरेखिकाः । रजस्सत्वतमोभूता ओमित्येदमुलक्षणम् ॥४
तत्सद्ब्रह्म परं ज्ञेयं यत्र प्राप्य पुनर्भवः । कियता चैव कालेन तस्येच्छा समपद्यत ॥५
अहङ्कारस्ततो जातस्ततस्तन्मात्रिकाः पराः । पञ्चभूतान्यतोऽप्यासञ्ज्ञानविज्ञानकान्यतः ॥६
द्वाविंशज्जडभूतांश्च दृष्ट्वा स्वेच्छामयो विभुः । द्वन्द्वभूतश्च सगुणो बुद्धिर्जीवस्समागतः ॥७
पूर्वार्द्धात्सगुणः सोसौ निर्गुणश्च परार्द्धतः । ताभ्यां गृहीतं तत्सर्वं चैतन्यमभवत्ततः ॥८
सविराडितिसंज्ञो वै जीवो जातस्सनातनः । विराडो नाभितो जातं पद्मं तच्छतयोजनम् ॥९
पद्माच्च कुसुमं जातं योजनायाममुत्तमम् । तत्पद्मकुसुमाज्जातो विरञ्चिः कमलासनः ॥१०
द्विभुजस्स चतुर्वक्त्रो द्विपादो भगवान्विधिः । ज्ञेयः सप्तवितत्यङ्गो महाचिन्तामवाप्तवान् ॥११

अध्याय १४

रुद्रमाहात्म्य का वर्णन

बृहस्पति बोले—जिस समय यह सदसदात्मक दृश्य (स्थूल प्रपञ्च-जगत्) महाप्रलय में विलीन हो जाने के कारण दिखाई नहीं देता है, उस समय केवल अक्षर (अविनाशी) तेज वर्तमान रहता है, जो व्याप्त एवं अचिन्त्य (मन, वाणी द्वारा अगोचर) है। वह तेज, स्थूल, सूक्ष्म, शीत (ठंडा) और उष्ण (गरम) नहीं है तथा आदि, मध्य एवं अन्तरहित होते हुए उसका कोई आकार भी नहीं है। उस पर, नित्य, शून्यभूत एवं परात्पर तेज के नीचे जिसका दर्शन केवल योगियों को होता है, एक वही प्रकृति माया रेखा की रहती है। पुनः उसके नीचे उर्ध्वरेखा की भाँति महत्तत्वमयी रज, सत्व और तम की स्थित रहती है। इन सबका आधार भूत 'ओंकार' ही तत्सत् रूप परब्रह्म है, जिसकी प्राप्ति हो जाने पर पुनः जन्म नहीं होता है। इस प्रकार उस महाप्रलय के अगाध पयोधि में विहार करते हुए बहुत दिनों के उपरांत उस पर ब्रह्म की पुनः इच्छा उत्पन्न होती है, जिससे उसके साथ ही अहंकार तथा अहंकार से पंचतन्मात्र और उससे ज्ञान-विज्ञान रूप पंचभूत (आकाशादि) की उत्पत्ति हुई। उस बाईस तत्त्वों से युक्त जडभूत प्रकृति कार्य (ब्रह्माण्ड) को देखकर स्वेच्छामय विभु ने दो भागों में विभक्त होकर सगुण के द्वारा बुद्धि और जीव का निर्माण किया। इन्हीं दोनों द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चेतना प्राप्त होती है जिससे उस सनातन जीव की 'विराड्' संज्ञा होती है। उसी विराड् के नाभि द्वारा सौ योजन का विस्तृत कमल एवं उस कमल से एक योजन का विस्तृत पुष्प उत्पन्न होता है।१-९। और उसी कमलपुष्प द्वारा कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है, जो दो भुजाएँ, चारमुख और दो चरणों से सुसज्जित रहते हैं सत्ताईस अंगों से विभूषित भगवान् ब्रह्मा को अपने जन्म ग्रहण करने के उपरान्त घोर चिंता उत्पन्न होती है कि—मैं कौन हूँ, किसके द्वारा

कोऽहं कस्मात्कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इत्यधिचिन्तय तं हृदि देवं शब्दमहत्त्वमयेन स आह ।। १२
तपश्चैव तु कर्तव्यं संशयस्यापनुत्तये । तदाकर्ण्य विधिस्साक्षात्तपस्तेपे महत्तरम् ।। १३
सहस्राब्दं प्रयत्नेन ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् । चतुर्भुजं योगगम्यं निर्गुणं गुणविस्तरम् ।। १४
समाधिनिष्ठो भगवान्बभूव कमलासनः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्बालो भूत्वा चतुर्भुजः ।। १५
श्यामाङ्गो बलदानस्त्री दिव्यभूषणभूषितः । ब्रह्मणोऽङ्के हरिस्तस्थौ यथा बालः पितुः स्वयम् ।। १६
तदा प्रबुद्धश्च विधिस्तं दृष्ट्वा मोहमागतः । वत्सवत्सेति वचनं विधिः प्राह प्रसन्नधीः ।। १७
विहस्याह तदा विष्णुरहं ब्रह्मन्पिता तव । तयोर्विवदतोरेवं रुद्रो जातस्तमोमयः ।। १८
ज्योतिर्लिङ्गश्च भयदो योजनानन्तविस्तरः । हंसरूपं तदा ब्रह्मा वराहो भगवान्प्रभु ।। १९
शताब्दं तौ प्रयत्नेन जातौ चोर्ध्वमधः क्रमात् । लज्जितौ पुनरागत्य तदा तुष्टुवतुर्मुदा ।। २०
ताभ्यां स्तुतो हरः साक्षाद्भवो नाम्ना समागतः । कैलासनिलयं कृत्वा समाधिस्थो बभूव ह ।। २१
जातं पञ्चयुगं तत्र दिव्यं रुद्रस्य योगिनः । एतस्मिन्नन्तरे घोरो दानवस्तारकासुरः ।। २२
सहस्राब्दं तपः कृत्वा ब्रह्मणो वरमाप्तवान् । भववीर्योद्भवः पुत्रः स ते मृत्युं करिष्यति ।। २३
इति मत्वा सुराञ्जित्वा महेन्द्रश्च तदाभवत् । ते सुराश्चैव कैलासं गत्वा रुद्रं प्रतुष्टुवुः ।। २४
वरं ब्रूहीति वचनं सुरान्प्राह तदा शिवः । ते तु श्रुत्वा प्रणम्योचुर्वचनं नम्रकन्धराः ।। २५

कहाँ से उत्पन्न हुआ, और मेरी माता एवं पिता कौन हैं? इस प्रकार की चिंता करते हुए उनके हृदय में एक महान्-ध्वनि द्वारा परब्रह्म ने कहा—अपने संशय के नाशार्थ तुम्हें तप करना परमावश्यक है ! इसे सुनकर विधि ने एक सहस्र वर्ष तक भगवान् सनातन विष्णु की घोर आराधना की, जो चार भुजाओ से युक्त योगगम्य, निर्गुण एवं विस्तृत गुणरूप हैं। भगवान् कमलासन (ब्रह्मा) के समाधिस्थ होने पर विष्णु बालक का रूप धारणकर, जो श्यामल वर्ण, बलवान् एवं अस्त्रादिसमेत भूषणों से भूषित था, पिता की गोद में बच्चे की भाँति ब्रह्मा उस बालक के अंङ्क में स्थित हो गये । १०-१६। उस समय प्रबुद्ध होने पर ब्रह्मा ने उस बालक को देखकर मोह-मुग्ध होते हुए 'वत्स, वत्स' कहना आरम्भ किया । उसे सुनकर प्रसन्नतापूर्ण भगवान् ने हँसकर उनसे कहा—ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारा पिता विष्णु हूँ। किन्तु ब्रह्मा इसे स्वीकार नहीं कर रहे थे । उन दोनों के इस प्रकार विवाद करने के समय ही तमोमय रुद्र का आविर्भाव हुआ, जो ज्योतिर्लिंग रूप, भयदायक एवं अनन्त योजन विस्तृत थे । उस समय ब्रह्मा ने हंसरूप और भगवान् विष्णु ने वाराह रूप धारणकर ऊपर-नीचे क्रम से सौ वर्ष तक उसकी सीमा का पता लगाने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसका पता न लगने पर लज्जित होते हुए दोनों ने उसकी आराधना की । उन दोनों की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव ने भवनाम से वहाँ साक्षात् प्रकट होकर पश्चात् कैलास को अपना आवास स्थान बनाकर समाधि लगाया । वहाँ रुद्रयोगी के समाधिस्थ होने पर दिव्य पाँच युगों के बीत जाने के उपरान्त दानव श्रेष्ठ तारकासुर ने एक सहस्र वर्ष तक घोर तप करके ब्रह्मा द्वारा वरदान प्राप्त किया । उस समय ब्रह्मा ने उससे यह भी कहा था कि—(शिव) के वीर्य द्वारा उत्पन्न पुत्र से तुम्हारी मृत्यु होगी । इसे सुनकर उसने देवों पर विजय प्राप्ति पूर्वक देवेन्द्र का पद अपना लिया । अनन्तर उन देवों ने कैलास जाकर भगवान् रुद्र की आराधना थी। प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें वर याचना के लिए कहा। इसे सुनकर विनीत भाव से प्रणाम पूर्वक

भगवन्ब्रह्मणा दत्तो वरो वै तारकाय च । शिववीर्योद्भवः पुत्र स ते मृत्युर्भविष्यति ॥
अतोऽस्मान्रक्ष भगवन्विवाहं कुरु शङ्कर ॥२६
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं दक्षश्चासीत्प्रजापतिः । षष्टिकन्यास्ततो जातास्तासां मध्ये सती वरा ॥२७
वर्षमात्रं भवन्तं सा पार्थिवैः समपूजयत् । तस्यै त्वया वरो दत्तः सा बभूव तव प्रिया ॥२८
तत्पित्रा या कृता निन्दा भवतोऽज्ञानचक्षुषा । तस्य दोषात्सती देवी तत्याज स्वं कलेवरम् ॥२९
सतीतेजस्तदा दिव्यं हिमाद्रौ घोरमागमत् । पीडितस्तेन गिरिराड् बभूव स्मरविह्वलः ॥३०
पित्रीश्वरं स तुष्टाव कामव्याकुलचेतनः । अर्यमा तु तदा तुष्टो ददौ तस्मै सुतां निजाम् ॥
मेनां मनोहरां शुद्धां स दृष्ट्वा हर्षितोऽभवत् ॥३१
नररूपं शुभं कृत्वा देवतुल्यं च तत्प्रियम् । स रेमे च तया सार्द्धं चिरं कालं महावने ॥३२
गर्भो जातस्तदा रम्यो नववर्षान्तमुत्तमः । कन्या जाता तदा सुभ्रूर्गौरी गौरमयी सती ॥३३
जातमात्रा च सा कन्या बभूव नवहायिनी । तुष्टाव शङ्करं देवं भवन्तं तपसा चिरम् ॥३४
शताब्दं च जले मग्नाशताब्दंवह्निसंस्थिता । शताब्दे च स्थिता वायौ शताब्दं नभसि स्थिता ॥३५
शताब्दं च स्थिता चन्द्रे शताब्दं रविमण्डले । शताब्दं गर्भभूम्यां च स्थिता सा गिरिजा सती ॥३६
शताब्दं च महत्तत्वे गत्वा योगबलेन सा । भवन्तं शङ्करं शुद्धं तत्र दृष्ट्वा स्थिताद्य वै ॥३७
त्रिशताब्दमतो जातं तस्मात्त्वं पार्वतीं शिवाम्[1] । वरं देहि प्रसन्नात्मा महादेव नमोऽस्तु ते ॥३८

देवों ने उनसे कहा—भगवन् ! ब्रह्मा ने तारकासुर को वरदान दिया है कि—शिव के वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी ।अतः भगवान् ! शंकर ! हम लोगों के रक्षार्थ आप विवाह अवश्य करें । पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर के समय में दक्ष नामक प्रजापति हुए थे । उनकी साठ कन्याओं में सती कन्या सर्वश्रेष्ठ थी जिसने पार्थिव पूजन द्वारा एक वर्ष तक आपकी आराधना की । उससे प्रसन्न होकर, आपने वरदान प्रदान पूर्वक उसे अपनी सहधर्मिणी बनाया था किन्तु अज्ञानी उनके पिता दक्ष ने आपकी निंदा की जिस दोष के कारण सती ने अपनी शरीर का परित्याग कर दिया । पश्चात् सती का वह दिव्य तेज हिमालय पर्वत पर गया, उससे पीड़ित होकर गिरिराज कामचेष्टा करने लगे । काम से अत्यन्त पीड़ित होने पर उन्होंने पितरों के अधीश्वर अर्यमा की आराधना की । प्रसन्न होकर अर्यमा ने उन्हें मैना नामक अपनी सुन्दरी कन्या प्रदान किया, जो मनोहर एवं अत्यन्त विशुद्ध थी । उसे देखकर इन्होंने हर्षित होकर देवतुल्य एवं प्रिय मनुष्य का रूप धारण कर उसके साथ उस महावन में चिरकाल तक रमण किया ।१७-३३। तदुपरांत उनके गर्भ द्वारा नववर्ष की एक परमाद्भुत कन्या की उत्पत्ति हुई । जो सुभ्रू, गौरमयी एवं सती गौरी थी । उत्पन्न होते ही वह नववर्ष की हो गई और भगवान् शंकर देव की तप द्वारा चिरकाल तक उसने आराधना की—सौ वर्ष जल में, सौ वर्ष अग्नि से आवेष्टित (पंचाग्नि), सौ वर्ष तक वायु द्वारा और सौ वर्ष तक आकाश में स्थित, सौ वर्ष चन्द्र मण्डल, सौ वर्ष सूर्य मण्डल, सौ वर्ष भूगर्भ (गुफा), और सौ वर्ष तक योगबल द्वारा महत्तत्त्व में स्थित रहकर— आप का शुद्ध दर्शन किया। इसीलिए आज तीन सौ वर्ष हो रहे हैं वह उसी स्थान स्थित है। अतः महादेव ! आप प्रसन्न होकर उस पार्वती शिवा को वर प्रदान करें। महादेव आपको नमस्कार कर रहा हूँ। इस

---

१. सम्प्रदाने द्वितीयार्षी ।

इति श्रुत्वा वचो रम्यं शङ्करो लोकशङ्करः । देवानाह तदा वाक्यमयोग्यं वचनं हि वः ॥३९
मत्तो ज्येष्ठाश्च ये रुद्राः कुमारव्रतधारिणः । मृगव्याधादयो मुख्या दशज्योतिस्समुद्भवाः ॥४०
अहं तेषामवरजो भवो नामैव योगराट् । मायारूपां शुभां नारीं कथं गृह्णामि लोकदाम् ॥४१
नारी भगवती साक्षात्तया सर्वमिदं ततम् । मातृरूपा तु सा ज्ञेया योगिनां लोकवासिनाम् ॥४२
अहं योगी कथं नारीं मातरं वारितुं क्षमः । तस्मादहं भवदर्थे स्ववीर्यमाददाम्यहम् ॥४३
तद्वीर्यं भगवान्वह्निः प्राप्य कार्यं करिष्यति । इत्युक्त्वा वह्नये देवो ददौ वीर्यमनुत्तमम् ॥
स्वयं तत्र समाधिस्थो बभूव भगवान्हरः ॥४४
तदा शक्रादयो देवा वह्निना सह निर्ययुः । सत्यलोकं समागत्याब्रुवन्सर्वं प्रजापतिम् ॥४५
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं स्वयम्भूश्चतुराननः । नमस्कृत्य परं ब्रह्म कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥४६
ध्यानमार्गेण भगवान्गत्वा ब्रह्मा परं पदम् । हेतुं तद्वर्णयामास यथा शङ्करभाषितम् ॥४७
श्रुत्वा विहस्य भगवान्स्वमुखात्तेज उत्तमम् । समुत्पाद्य ततो जातः पुरुषो रुचिराननः ॥४८
ब्रह्माण्डस्य च्छविर्या वै स्थिता तस्य कलेवरे । प्रद्युम्नो नाम विख्यातं तस्य जातं महात्मनः ॥४९
तेन सार्द्धं तदा ब्रह्मा सम्प्राप्य स्वं कलेवरम् । ददौ तेभ्यस्स पुरुषं प्रद्युम्नं शम्बरार्तिदम् ॥५०
तेजसा तस्य देवस्य नरा नार्यस्समन्ततः । एकीभूतास्त्रिलोकेषु बभूवुः स्मरपीडिताः ॥५१
स्थावराः सौम्यभूता वै ते तु कामाग्निपीडिताः । सरिद्भिश्च लताभिश्च मिलितास्सम्बभूविरे ॥५२

सुन्दर वाणी को सुनकर लोकशंकर शिवजी ने देवों से कहा—'ब्रह्मा का कहना उचित नहीं है।' क्योंकि मुझसे ज्येष्ठ रूद्रगण, जो कुमारावस्था में ही व्रत धारण किये हैं, ज्योति से उत्पन्न होकर मृगव्याघ आदि के रूप में रह रहे हैं। मैं उनसे कनिष्ठ (छोटा) योगीश्वर भव के नाम से ख्यात हूँ। माया रूप शुभ स्त्री का ग्रहण करना, जो लोक सर्जन कर्त्री है, मेरे लिए अनुचित है। क्योंकि साक्षात् भगवती नारी हैं, जिसने इस ब्रह्माण्ड का विस्तार किया है। अतः लोक निवासी योगियों की वह मातृरूप है। मैं योगी होकर उस मातृरूप नारी का ग्रहण कैसे कर सकता हूँ। इसलिए आप लोगों के कार्य के लिए मैं स्वयं अपने वीर्य को निकालकर अग्निदेव को दे दूँगा, उसके द्वारा वे आपका कार्य करेंगे। इतना कहकर शिवजी ने अपना वीर्य अग्नि को देकर पुनः उसी स्थान पर समाधि लगाया। पश्चात् इन्द्रादि देवों ने अग्निसमेत वहां से निकलकर सत्यलोक की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने प्रजापति ब्रह्मा से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया। उसे सुनकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने परब्रह्म कृष्ण का नमस्कार पूर्वक ध्यान किया। ब्रह्मा ने ध्यान मार्ग से परमपद पर पहुँचकर शंकरजी की कही हुई सम्पूर्ण बातें भगवान् को सुनाया, जिसे सुनकर हँसते हुए भगवान् ने अपने मुख द्वारा उत्तम तेज बाहर निकाला, जो अत्यन्त सुन्दर पुरुष हुआ और ब्रह्माण्ड की सभी छवि उसकी शरीर में झलक रही थी। उस पुरुष का 'प्रद्युम्न' विश्वविख्यात नाम हुआ, जिसके साथ ब्रह्मा ने अपने कलेवर में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने उस शम्बरासुर को पीड़ित करने वाले प्रद्युम्न नामक पुरुष को सभी लोगों को सौंप दिया।३४-५०। जिसके तेज से कामपीड़ित होकर तीनों लोक के स्त्री-पुरुष गण एक होकर अत्यन्त कामातुर होने लगे। यहाँ तक कि सौम्य वृक्षगणों ने भी नदियों, एवं लताओं से मिलकर कामाग्नि की शांति की इच्छा प्रकट की। उस समय ब्रह्माण्ड नायक कालरूप शिव ने,

ब्रह्माण्डेशः शिवः साक्षाद्रुद्रः कालाग्निसन्निभः । [1]त्रिनेत्रात्तेज उत्पाद्य शमयामास तद्व्यथाम् ।।५३
तदा क्रुद्धः स कृष्णाङ्गो गृहीत्वा कौसुमं धनुः । दिव्यान्पञ्च शरान्घोरान्महादेवाय सन्धवे ।।५४
उच्चाटनेन बाणेन गन्ताभूल्लोकशङ्करः । वशीकरणबाणेन नारीवश्यः शिवोऽभवत् ।।५५
स्तम्भनेन महादेवः शिवापार्श्वे स्थिरोऽभवत् । आकर्षणेन भगवाञ्छिवाकर्षणतत्परः ।।
मारणेनैव बाणेन मूर्छितोऽभून्महेश्वरः ।।५६
एतस्मिन्नन्तरे देवी महत्तत्वे स्थिता शिवा । मूर्छितं शिवमालोक्य तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ।।५७
तदोत्थाय महादेवो विललाप भृशं मुहुः । हा प्रिये चन्द्रवदने हा शिवे च घटस्तनि ।।५८
हा उमे सुन्दराभे च पाहि मां स्मरविह्वलम् । दर्शनं देहि रम्भोरु दासभूतोऽस्मि साम्प्रतम् ।।५९
एवं विलपमानं तं गिरिजा योगिनी स्वयम् । समागत्य वचः प्राह नत्वा तं शङ्करः प्रियम् ।।६०
कन्याहं भगवन्देव मातृपित्रानुसारिणी । तयोस्सकाशाद्भगवन्मम पाणिं गृहाण भोः ।।६१
तथेति मत्वा स शिवः प्रद्युम्नशरपीडितः । सप्तर्षीन्प्रेषयामास ते तु गत्वा हिमाचलम् ।।
सम्बोध्य च विवाहस्य विधिं चक्रुर्मुदान्विताः ।।६२
ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवास्तेषां स्वामी महेश्वरः । विवाहे तस्य सम्प्राप्ते सर्वे देवास्समाययुः ।।६३
अनन्तांश्च गणांश्चैव सुरान्दृष्ट्वा हिमाचलः । गिरिजां शरणं प्राप्य तस्थौ पर्वतराट् स्वयम् ।।६४

जो साक्षात् रुद्रदेव हैं, अपने त्रिनेत्र से तेज प्रकटकर उस पीड़ा की शान्ति किया । उस समय कृष्णांग प्रद्युम्न ने क्रुद्ध होकर महादेवजी के लिए अपने कुसुम धनुषपर उन घोर दिव्य पाँचो वाणों का अनुसन्धान किया, जिससे उच्चाटन वाण द्वारा लोक रक्षक शिव ने गमन किया, वशीकरण वाण द्वारा स्त्री के अधीन, स्तम्भन वाण द्वारा पार्वती के समीप स्थित, आकर्षण वाण द्वारा शिवा के आकर्षणार्थ उद्यत होकर और मारण वाण द्वारा मूर्च्छा प्राप्त की । उसी बीच महत्तत्त्व में स्थित पार्वती ने शिव को मूर्च्छित देखकर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गईं । पश्चात् शिव ने उठकर बार-बार विलाप करना आरम्भ किया—हा प्रिये, चन्द्रवदने, हा कलशस्तनी शिवे ! हा सौन्दर्य पूर्णे ! मुझ कामपीड़ित की रक्षा करो । रम्भे ! मुझे दर्शन दो, इस समय मैं तुम्हारा सेवक हूँ । इस प्रकार विलाप करने वाले शिव के समीप पहुँचकर योगिनी गिरिजा ने नमस्कार पूर्वक कहा—देव ! माता-पिता के अनुसार चलनेवाली मैं कन्या हूँ । भगवन्! उन दोनों के अनुमोदन द्वारा मेरा पाणिग्रहण करें ।। प्रद्युम्न के शर से पीड़ित होने पर शिव ने पार्वती की बात स्वीकार पूर्वक सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजा । सप्तर्षियों ने वहाँ जाकर हिमाचल को विशेष जानकारी कराते हुए विवाह के लिए स्वीकृति प्राप्त की । सहर्ष उनके विवाह में सभी देवगणों ने यात्रा की । क्योंकि ब्रह्माण्डनायक के विवाह में उन्हें सम्मिलित होना परमावश्यक था। हिमालय विवाह के अवसर पर शिव के साथ अनन्त देवगणों को देखकर विचलित हो उठे। अन्त में पर्वतराज गिरिजा की शरण में जाकर समस्त वृतान्त

---

१. तृतीयनेत्रादित्यार्थः ।

तदा तु पार्वती देवी निधीन्सिद्धीः समन्ततः । चकार कोटिशस्तत्र बहुरूपा सनातनी ॥६५
दृष्ट्वा तद्विस्मिता देवा ब्रह्मणा सह हर्षिताः । तुष्टुवुः पार्वतीं देवीं नारीरत्नं सनातनीम् ॥६६

देवा ऊचुः

उ वितर्के च मा लक्ष्मीर्बहुरूपा विदृश्यते । उमा तस्माच्च ते नाम नमस्तस्यै नमो नमः ॥६७
कतिचिदयनान्येव ब्रह्माण्डेऽस्मिञ्छिवे तव । कात्यायनी हि विज्ञेया नमस्तस्यै नमो नमः ॥६८
गौरवर्णाच्च वै गौरी श्यामवर्णाच्च कालिका । रक्तवर्णाद्धैमवती नमस्तस्यै नमो नमः ॥६९
भवस्य दयिता त्वं वै भवानी रुद्रसंयुता । दुर्गा त्वं योगि दुष्प्राप्या नमस्तस्यै नमोनमः ॥७०
नान्तं जग्मुर्वयं[१] ते वै चण्डिका नाम विश्रुता । अम्बा त्वं मातृभूता नो नमस्तस्यै नमोनमः ॥७१
इति श्रुत्वा स्तवं तेषां वरदा सर्वमङ्गला । देवानुवाच मुदिता दैत्यभीतिं हरामि वः ॥७२
स्तोत्रेणानेन सम्प्रीता भवामि जगतीतले ॥७३
इत्युक्त्वा शम्भुसहिता कैलासं गुह्यकालयम् । गुहायां मिथुनीभूय सहस्राब्दं मुमोद वै ॥७४
एतस्मिन्नन्तरे देवा भीरुका लोकनाशनात् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तुष्टुवुर्गिरिजापतिम् ॥७५
लज्जितौ तौ तदा तत्र पश्चात्तापं हि चक्रतुः । महान्क्रोधस्तयोश्चासीत्तेन वै दुद्रुवुः सुराः ॥७६
प्रद्युम्नो बलवाँस्तत्र सन्तस्थे गौरिवाचलः । रुद्रकोपाग्निना दग्धो बभूव बलवत्तरः ॥७७

कहा । उसे सुनकर पार्वती देवी ने, जो बहुरूपा एवं सनातनी है, चारो ओर ऋद्धियों और सिद्धियों की करोड़ों मूर्तियों को उत्पन्नकर सभी को सेवा कार्य में नियुक्त किया । ब्रह्मा समेत देवों ने उसे देख अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए नारीरत्न एवं सनातनी उस पार्वती देवी की आराधना की ।५१-६६

देवों ने कहा—आपके उमा नामक शब्द में उ का अर्थ वितर्क और मा का लक्ष्मी अर्थ है । इसीलिए आपका बहुरूप दिखाई देता है । हम लोग उमा नामक आपको बार-बार नमस्कार कर रहे हैं । शिवे ! इस ब्रह्माण्ड में आपके कतिचित् (अनेकों) स्थान हैं अतः कात्यायनी रूप आपको नमस्कार करता हूँ । गौर, श्यामल रूप के नाते काली और सद्वर्ण होने के नाते हैमवती को नमस्कार है । भव (शिव) की दयिता होने के नाते रुद्र समेत रहने वाली भवानी तथा योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य होने के नाते तुम्हें दुर्गा को नमस्कार कर रहा हूँ । आपके प्रख्यात रूप का पार हमलोग न पा सके । अतः चण्डिका और मातृरूप होने के नाते अम्बारूप आपको नमस्कार है । देवों की ऐसी स्तुति को सुनकर वरदायिनी सर्वमंगलादेवी ने देवों से कहा—मैं तुम्हारे दैत्य भय को दूर करूँगी । क्योंकि त्रिलोक से प्रसन्न होने के नाते मैं भूतल पर प्रकट हूँगी । इतना कहने के उपरांत पार्वती शिव के साथ कैलास पहुँचकर उसकी गुफा में सहस्र वर्ष तक आनन्द प्राप्त कीं । उसी बीच देवगणों ने लोक नाश होने के भय से भयभीत हो ब्रह्मा को आगे कर शिव की आराधना किया । उस समय लज्जित होकर उन दोनों ने अत्यन्त पश्चाताप करते हुए पीछे अत्यन्त क्रोध भी किया, जिससे भयभीत होकर देवों ने वहाँ से पलायन किया किन्तु बलवान् प्रद्युम्न निश्चल वृषभ की भाँति उसी स्थान पर स्थित रहने के नाते उस प्रचण्ड रुद्र

---

१. जग्मिमेत्यर्थः ।

प्रद्युम्नः स्थलरूपं च त्यक्त्वा भस्ममयं तदा । सूक्ष्मदेहमुपागम्य विश्रुतोऽभूदनङ्गकः ।।
यथा पूर्वं तथैवासीत्कायं कृत्वा स्मरो विभुः ।।७८
स्थूलरूपा रतिर्देवी शताब्दं शङ्करं परम् । ध्यानेनाराधयामास गिरिजावल्लभं व्रतैः ।।
तदा ददौ वरं देवस्तस्यै रत्यै सनातनः ।।७९
रतिदेवि शृणु त्वं वै लोकानां हृत्सु जायसे । यौवने वयसि प्राप्ते नृणां देहैः पतिं स्वकम् ।।
भजिष्यसि मदर्धेन प्रद्युम्नं कृष्णसम्भवम् ।।८०
स्वारोचिषान्तरः कालो वर्तते चाऽद्यसुप्रियः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतमे युगे ।।
द्वापरान्ते च भगवान् कृष्णः साक्षाज्जनिष्यति ।।८१
तदा तस्य सुतं देवं प्रद्युम्नं मेरुमूर्द्धनि । भजिष्यसि सुखं रम्ये विपिने नन्दने चिरम् ।।८२
अन्येषु द्वापरान्तेषु स्वर्णगर्भो हि तत्पतिः । जन्मवान्वर्तते भूमौ यथा कृष्णस्तथैव सः ।।८३
मध्याह्ने चैव सन्ध्यायां ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कल्पेकल्पे हरिस्साक्षात्करोति जनमङ्गलम् ।।८४
इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् । राजा बभूव रुद्राणी गिरिजावल्लभो भवः ।।८५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा भवः साक्षात्स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् । समुत्पाद्य तदा भूमौ गोदावर्यां बभूव ह ।।८६
आचार्यशर्मणो गेहे पुत्रो जातो भवांशकः । रामानुजस्स वै नाम्नानुजोऽभूद्रामशर्मणः ।।८७
एकदा रामशर्मा वै पतञ्जलिमते स्थितः । तीर्थात्तीर्थान्तरं प्राप्तः पुरीं काशीं शिवप्रियाम् ।।८८
शङ्कराचार्यमागम्य शतशिष्यसमन्वितः । शास्त्रार्थं कृतवान्रम्यं कृष्णपक्षो हरिप्रियः ।।८९

कोपग्नि में दग्ध को गये। भस्ममय उस स्थूल रूप के परित्याग पूर्वक सूक्ष्म देह की प्राप्ति की, जिससे उन्हें 'अनङ्ग' कहा गया है। अंगहीन होने पर भी कामदेव पूर्व की भाँति ही शक्तिशाली है। पश्चात् रति ने भगवान् शंकर की जो गिरिजावल्लभ कहे जाते हैं। एक वर्ष तक आराधना की। उससे प्रसन्न होकर सनातन शिव ने रति को वर प्रदान किया कि—रति देवि! मैं कह रहा हूँ, सुनो! मनुष्यों के हृदय में तुम्हारी उपस्थिति होगी युवावस्था प्राप्त मनुष्यों के देह द्वारा अपने उस पति के उपभोग प्राप्त करोगी जो मेरी अर्चना एवं कृष्ण द्वारा उत्पन्न प्रद्युम्न नामक है। इस स्वरोचिष मन्वन्तर काल के बीत जाने के उपरांत वैवस्वतमन्वन्तर के समय जो अट्ठाईसवें द्वापर का अन्त भाग कहलायेगा, साक्षात् भगवान् का अवतार होगा। उस समय उनके पुत्र रूप में उत्पन्न प्रद्युम्न के साथ मेरुपर्वत के उस नन्दन वन में चिरकाल तक रमण सुख तुम्हें प्राप्त होगा। अन्य द्वापरान्त युगों में वह सुवर्ण गर्भित होकर भूमि में भगवान् कृष्ण की भाँति वर्तमान रहेगा। इस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म के मध्यान्ह और संध्या समय प्रत्येक कल्पों में भगवान् विष्णु साक्षात् प्रकट होकर जन मांगलिक क्रिया करते हैं। इतना कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्हित हो गये। पश्चात् रुद्र गिरिजावल्लभ भवराज पद से प्रतिष्ठत हुए।६७-८५

सूतजी बोले—इसे सुनकर साक्षात् भव ने अपने मुख से अपने अंश को निकालकर गोदावरी नदी में डाल दिया, जो आचार्य शर्मा के गृह में पुत्र रूप से उत्पन्न होकर रामशर्मा के अनुज होने के नाते 'रामानुज' नाम से प्रख्यात हुआ। एक बार रामशर्मा ने पतञ्जलि मतावलम्वी होकर तीर्थों में भ्रमण करते हुए शिवप्रिय काशी की यात्रा की। वहाँ शंकराचार्य के पास जाकर अपने सौ शिष्यों समेत उन हरिप्रिय रामशर्मा द्वारा पराजित होने पर

शङ्कराचार्यविजितो लज्जितो निशि भीरुकः । स्वगेहं पुनरायातः शाङ्करैर्वा शरैर्हतः ।।९०
रामानुजस्तु तच्छ्रुत्वा सर्वशास्त्रविशारदः । भ्रातृशिष्यैश्च सहितः पुरीं काशीं समाययौ ।।९१
वादो वेदान्तशास्त्रे च तयोश्चासीन्महात्मनोः । शङ्करः शिवपक्षश्च कृष्णपक्षस्स वै द्विजः ।।९२
मासमात्रेण वेदान्ते दर्शितस्तेन वै हरिः । वासुदेवस्स वै नाम सच्चिदानन्दविग्रहः ।।९३
वासुदेवस्स वै ज्ञेयो वसुष्वंशेन दीव्यति । वसुदेवस्स वै ब्रह्मा तस्य सारो हि यः स्मृतः ।।९४
वासुदेवो हरिस्साक्षाच्छिवपूज्यः सनातनः । शङ्करो लज्जितस्तत्र भाष्यशास्त्रे समागतः ।।९५
पक्षमात्रं शिवैस्सूत्रैर्वर्णयामास वै शिवम् । रामानुजेन तत्रैव भाष्ये सन्दर्शितो हरिः ।।९६
गोविन्दो नाम विख्यातो वैय्याकरणदेवता । गां परां विन्दते यस्माद्गोविन्दो नाम वै हरिः ।।९७
गिरीशस्तु न गोविन्दो गिरीणामीश्वरो हि सः । गोपालस्तु न वै रुद्रो गवारूढः प्रकीर्तितः ।।९८
ज्ञेयः पशुपतिः शम्भुर्गोपतिर्नैव विश्रुतः । लज्जितः शङ्कराचार्यो मीमांसाशास्त्रमागतः ।।९९
तयोर्दशदिनं शास्त्रे विवादस्सुमहानभूत् । यस्तु वै यज्ञपुरुषो रामानुजमतप्रियः ।।१००
विच्छिन्नः शङ्करेणैव मृगभूतः पराजितः । आचारप्रभवो धर्मो यज्ञदेवेन निर्मितः ।।१०१
भ्रष्टाचारस्तदा जातो यज्ञे दक्षप्रजापतेः । इति रामानुजः श्रुत्वा वचनं प्राह नम्रधीः ।।१०२
कर्मणे जनितो यज्ञो विश्वपालनहेतवे । कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।।१०३
अक्षरोऽयं शिवः साक्षाच्छब्दब्रह्मणि संस्थितः । पुराणपुरुषो यज्ञो ज्ञेयोऽक्षरकरो भुवि ।।
अक्षरात्स तु वै श्रेष्ठः परमात्मा सनातनः ।।१०४

लज्जित एवं उन शांकर वर्णों से पीड़ित होते हुए वे अपने घर लौट आये । उनके वृत्तान्त सुनकर समस्त शास्त्र निपुण रामानुज ने अपने भाई के शिष्यों समेत काशीपुरी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर उन दोनों ने वेदान्त शास्त्र का विषय लेकर शंकराचार्य ने शिव और रामानुज ने कृष्ण पक्ष का समर्थन करना आरम्भ किया । इस प्रकार एक मास तक वेदान्त की चर्चा करते रहने पर रामानुज ने भगवान् विष्णु का दर्शन कराया, जो सच्चिदानन्द एवं वासुदेव कहे जाते हैं । इसलिए वसुदेव ब्रह्मा हुए और उनके सारभूत वासुदेव हुए । जो शिवपूज्य, सनातन एवं साक्षात् विष्णु कहे जाते हैं । पश्चात् लज्जित होकर शिव ने भाष्य में प्रवेश किया जिससे शिव सूत्रों द्वारा एक पक्ष तक शिव पक्ष की स्थापना की वसुओं में अपने अंश द्वारा प्रकाशित रहने वाले को वसुदेव कहा गया है। किन्तु रामानुज ने उस भाष्य में भी भगवान् का दर्शन कराया, जो गोविन्द के नाम से वैयाकरण देव प्रख्यात हैं । जिस नाम के सामर्थ्य से परावाणी की प्राप्ति हो सके उसे गोविन्द कहा गया है इसलिए यह भगवान् का नामान्तर ही बताया जाता है । और गिरीश गोविन्द नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे पर्वतेश्वर हैं। रुद्र वृषवाहन के नाते गोपाल भी नहीं कहे जा सकते। यद्यपि शिवजी पशुपति कहे जाते हैं किन्तु गोपति नाम से उनकी ख्याति नहीं है। इससे लज्जित होकर शंकराचार्य ने मीमांसा शास्त्र का अवलम्बन किया। उस शास्त्र में भी दोनों का दस दिन तक महान् विवाद हुआ। उसमें रामानुज ने यज्ञ पुरुष का समर्थन किया ।८६-१००। किन्तु शंकराचार्य ने उसका इस प्रकार खण्डन किया कि यद्यपि आचार से उत्पन्न धर्म की व्यवस्था यज्ञ देव ने ही की है, तथापि दक्ष प्रजापति के यज्ञ में वह आचार भ्रष्ट हो गया था, इसे सुनकर रामानुज ने विनम्र होकर कहा—'विश्वपालन रूप कर्म के सुसम्पन्न करने के लिए यज्ञ की उत्पत्ति की गई और वह कर्म अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न है, और वही अक्षर शिव रूप है जो साक्षात् शब्द ब्रह्म में अवस्थित है। उसी अक्षर कर्ता को पुराण पुरुष, यज्ञ कहा जाता है। अतः उस अक्षर से सनातन परमात्मा

अक्षरेण न वै तृप्तातृप्तोऽभूद्यज्ञकर्मणि । नाम्ना स यज्ञपुरुषो वेदे लोके हि विश्रुतः ।।१०५
प्रपौत्रस्य तदा वृद्धिं दृष्ट्वा स्पर्द्धातुरः शिवः । मृगभूतश्च रुद्रोऽसौ दिव्यबाणैरतर्पयत् ।।१०६
समर्थो यज्ञपुरुषो ज्ञात्वा गुरुमयं शिवम् । पलायनपरो भूतो धर्मस्तेन महान्कृतः ।।१०७
लज्जितः शङ्कराचार्यो न्यायशास्त्रे समागतः । भवतीति भवो ज्ञेयो मृडतीति स वै मृडः ।।१०८
लोकान्भरति यो देवः स कर्ता भर्ग एव हि । हरतीति हरो ज्ञेयः स रुद्रः पापनाशनः ।।१०९
स्वयं कर्ता स्वयं भर्त्ता स्वयं हर्ता शिवः स्वयम् । शिवाद्विष्णुर्महीं धातो विष्णोर्ब्रह्मा च पद्मभूः ।।११०
इति श्रुत्वा तु वचनं प्राह रामानुजस्तदा । धन्योऽयं भगवाञ्छम्भुर्यस्यायं महिमा परः ।।१११
सत्यं सत्यं ममाज्ञेयं कर्ता कारयिता शिवः । रामनाम परं नित्यं कथं शम्भुर्जपेद्धरिम् ।।११२
अनन्ता सृष्टयः सर्वा उद्भूता यस्य तेजसा । अनन्तः शेषतः शेषार[1]मन्ते योगिनो हि तम् ।।११३
स च वै मत्प्रभोर्धाम सच्चिदानन्दविग्रहः । इति श्रुत्वा तदा वाक्यं लज्जितः शङ्करोऽभवत् ।।११४
योगशास्त्रे परो देवः कृष्णस्तेनैव दर्शितः । कालात्मा भगवान्कृष्णो योगेशो योगतत्परः ।।११५
साङ्ख्यशास्त्रे च कपिलस्तस्मै तेनैव दर्शितः । कं वीर्यं पाति यो वै स कपिस्तं चैव लाति यः ।।
कपिलस्स तु विज्ञेयः कपी रुद्रः प्रकीर्तितः ।।११६

श्रेष्ठ है । यज्ञकर्म में वह कर्त्ता अक्षर द्वारा तृप्त न होने पर लोक और वेद में यज्ञपुरुष नाम से प्रख्यात हुआ । उस समय शिव ने अपने प्रपौत्र की वृद्धि देखकर स्पर्द्धा की—यज्ञभूत रुद्र ने अपने दिव्य वाणों द्वारा उसकी तृप्ति की, किन्तु समर्थ यज्ञपुरुष ने शिव को गुरुमय समझकर वहाँ से पलायन किया । इस प्रकार उसने महान् धर्म सुसम्पन्न किया । इसे सुनकर शंकराचार्य ने लज्जित होकर न्याय शास्त्र का अवलम्बन किया । कहा—भवतीति (उत्पन्न) और मृडतीति (संतुष्ट) होने के नाते उन्हें भव एवं मृड कहा गया है ! लोकों के भरण करने वाला ही देव कर्ता और भर्ग (तेज) रूप है । उसी प्रकार हरती रति (हरण) करने के नाते उन पापनाशक रुद्र को हर कहा जाता है । इस प्रकार साक्षात् शिव ही स्वयं कर्ता, स्वयं भर्ता एवं स्वयं हर्ता कहे जाते हैं । उसी शिव द्वारा इस भूतल पर विष्णु, और विष्णु द्वारा कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । इसे सुनकर रामानुज ने कहा—भगवान् शंकर धन्य हैं जिनकी इस प्रकार महान् महिमा है, यह सत्य एवं ध्रुवसत्य है कि कर्ता कारयिता शिव ही हैं, किन्तु मुझे एक महान संशय है कि महामहिम सम्पन्न शिव नित्य राम नाम पर आधृत रहकर हरि का जप क्यों करते हैं ? जिसके तेज द्वारा अनन्त सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं और शेष से भी अनन्त है एवं उसी में योगीगण रमण करते हैं और वही सच्चिदानन्द विग्रहधारी मेरे प्रभु का धाम है । इसे सुनकर लज्जित होते हुए शंकराचार्य ने योगशास्त्र की चर्चा प्रारम्भ की । उसमें भी उन्होंने भगवान् कृष्ण की ही उपासना सिद्ध की । जो कालात्मा, भगवान् कृष्ण, योगनायक एवं योगारूढ़ हैं । पश्चात् सांख्य शास्त्र को अपनाने पर रामानुज ने कपिल भगवान् की प्रधानता सिद्ध की—क (वीर्य) को पान करनेवाला कपि कहा गया है, उसे ले आने वाले को कपिल । इस प्रकार कपि रुद्र की संज्ञा हुई और कपिल भगवान् विष्णु की जो सर्वज्ञ एवं

---

१. अन्तर्भवितव्यर्थः ।

कपिलो भगवान्विष्णुः सर्वज्ञः सर्वरूपवान् । तदा तु शङ्कराचार्यो लज्जितो नम्रकन्धरः ॥११७
शुक्लाम्बरधरो भूत्वा गोविन्दो नाम निर्मलम् । जजाप हृदि शुद्धात्मा शिष्यो रामानुजस्य वै ॥११८
इति ते रुद्रमाहात्म्यं प्रसङ्गेनापि वर्णितम् । धनवान्पुत्रवान्वाग्मी भवेद्यः शृणुयादिदम् ॥११९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
रुद्रमाहात्म्यवर्णनोत्तररामानुजोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

वसुमाहात्म्ये त्रिलोचनवैश्योत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य महाभाग शृणु त्वं जीववर्णितम् । पवित्रं वसुमाहात्म्यं सर्ववस्तुसुखप्रदम् ॥१

बृहस्पतिरुवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे । इल्वला तामसी शक्तिः प्रिया विश्रवसो मुनेः ॥
शिवमाराधयामास सती सा पार्थिवार्चनैः ॥२
एतस्मिन्नन्तरे जातो दीक्षितान्वयसम्भवः । यक्षशर्मा महाधूर्तो यक्षिणीपूजने रतः ॥३
तस्य मित्रस्नुषा सुभ्रू रमिता तेन पापिना । तेन दोषेण विप्रोऽसौ कुष्ठभूतस्तदाभवत् ॥४

सर्वरूपवान् है । इसे सुनकर शंकराचार्य ने नम्रतापूर्ण रामानुज के शिष्य होकर शुक्लवस्त्र धारणकर अपने हृदय में निर्मल गोविन्द का नाम स्मरण करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार मैंने इस रुद्र महात्म्य का वर्णन प्रसंगवश सुना दिया, जिसे सुनकर मनुष्य धन, पुत्र एवं सत्यवाणी से विभूषित होता है ।१०१-११९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रुद्रमाहात्म्य
और रामानुजोत्पत्ति वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४

अध्याय १५

वसुमाहात्म्य में त्रिलोचनवैश्योत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य एवं महाभाग ! बृहस्पति द्वारा कथित उस वसुमाहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ, जो पवित्र एवं सर्व वस्तुओं को सुख प्रदान करता है, सुनो ! १

बृहस्पति जी बोले—सतयुग के आदि काल में वैवस्वत मन्वन्तर के समय विश्रवा मुनि की उस तामसी प्रिया एवं इल्वला सती शक्ति ने पार्थिव पूजन द्वारा शिव की आराधना की । उसी समय दीक्षित कुल में उत्पन्न महाधूर्त यक्षशर्मा ने यक्षिणी की आराधना करके उसे प्रसन्न किया । पश्चात् उस पापी ने अपने मित्र की पुत्रवधू के साथ भी रमण किया, जिससे उसे कुष्ठ का रोग उत्पन्न हो गया । उस ब्राह्मण

कुष्ठभूतं द्विजं त्यक्त्वा यक्षिणी मन्त्रवत्सला । शिवलोकं ययौ देवी कैलासं गुह्यकालयम् ॥५
क्षुधातुरो यक्षशर्मा शिवरात्रे महोत्तमे । दर्शितं पूजनं तेन योषिद्भ्यश्चोपदेशतः ॥६
प्रभाते समनुप्राप्ते पारणां कृतवान्द्विजः । मरणं प्राप्तवान्कुष्ठी तत्रैव शिवमन्दिरे ॥७
तेन पुण्यप्रभावेन राजासीत्करणाटके । राजराज इति ख्यातो मण्डलीको नृपोऽभवत् ॥८
शिवार्चनं मङ्गलाढ्यं गेहे गेहे दिने दिने । ब्राह्मणैः कारयामास राजराजो महाबलः ॥९
शताब्दं भूतले राज्यं कृतं तेन महात्मना । राज्याधिकारं श्रेष्ठस्य सुतस्य प्रददौ नृपः ॥
ततः काशीपुरीं प्राप्य शिवं तुष्टाव पूजनैः ॥१०
त्रिवर्षान्ते महादेवो ज्योतिर्लिङ्गो बभूव ह । राजराजेश्वरो नाम प्रसिद्धोऽभूच्छिवः स्वयम् ॥११
स नृपः पावितस्तेन त्यक्त्वा प्राणाँस्तदा स्वयम् । इल्वलागर्भमागम्य पुत्रोऽभूच्छुभलक्षणः ॥१२
जातः कुत्सितवेलायां रात्रौ घोरतमोवृते । कुबेर इति तन्नाम प्रसिद्धमभवद्भुवि ॥१३
तपसा तोषयामास स बालः परमेष्ठिनम् । तस्मै ब्रह्मा तदागत्य लङ्कां नाम पुरीं शुभाम् ॥
सुवर्णरचितां रम्यां कारयित्वा ददौ प्रभुः ॥१४
तिस्रः कोटयः स्मृता यक्षा लोककार्यपरायणाः । तेषां स्वामी स वै चासीद्यक्षराडिति विश्रुतः ॥१५
किन्नरा बहुरूपाश्च तदादेशनिवासिनः । बलिभिः पूजयामासुः किन्नरेशस्तदा स्वयम् ॥१६
गुह्यका नरभावस्था दिव्यमूल्यप्रकारिणः । तेषां स्वामी स वै चासीत्कुबेरो भगवान्स्वयम् ॥१७

को कुष्ठ का रोगी देखकर उस यक्षिणी ने उसे त्यागकर गुह्यकाल कैलास की यात्रा की । एक समय शिव-रात्र व्रत के दिन भूख से पीड़ित होने पर यक्षशर्मा को भोजन नहीं दिया, किन्तु उपदेश देकर उसे शिवार्चन का दर्शन करने के लिए विवश किया । प्रातः होने पर उस ब्राह्मण ने पारण किया । तदुपरांत उसी मंदिर में उसका निधन हो गया । उस पुण्य के प्रभाव से वह करणाटक देश का राजा हुआ, जो राजराज के नाम से प्रख्यात मण्डलीक राजा कहा जाता था । उस महाबली राजराज ने अपने राज्य में प्रत्येक प्रजाओं के यहाँ प्रतिदिन ब्राह्मणों द्वारा उस मांगलिक शिवार्चन की व्यवस्था सुसम्पन्न कराना आरम्भ किया । उस पुण्य प्रभाव से सौ वर्ष तक सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरांत उस महात्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य भी सौंपकर स्वयं काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर शिवपूजन करना आरम्भ किया । तीन वर्षों के उपरांत महादेव जी ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो राज राजेश्वर के नाम से प्रख्यात हुए । उनके द्वारा पूतात्मा होकर उस राजा ने इल्वला के गर्भ में पहुँचकर शुभ लक्षणों से विभूषित पुत्र का जन्म ग्रहण किया । अंधेरी रात की कुत्सित (निंदित) वेला में उत्पन्न होने के नाते उस पुत्र का कुबेर नाम से इस भूमण्ड में प्रख्याति हुई । उसने अपने तपश्चर्या द्वारा पितामह ब्रह्मा को प्रसन्न किया तत्पश्चात् ब्रह्मा ने सुवर्ण रचित लंका नामक पुरी उसे प्रदान किया । लोककार्य सुसम्पन्न करने के लिए तीन कोटि यक्षों की उत्पत्ति की गई है । और उनके स्वामी कुबेर 'यक्षराट् के नाम से विख्यात हैं ।२-१५। बहुरूपी किन्नरगण जो उनके आदेश पालक हैं, उन्हें बलि प्रदान द्वारा प्रसन्न रखते हैं। नरभाव से दिव्य एवं सुसज्जित केशपाश धारण करने वाले उन गुह्यकों के स्वामी भगवान् कुबेर स्वयंभू ही हैं। उन्होंने लोक कल्याणार्थ

गिरिभ्यो बहुरत्नानि गृहीत्वा लोकहेतवे । रक्षोभिः प्रेषयामास गेहे गेहे जने जने ॥१८
धर्मकार्यकरा ये तु नरा वेदपरायणाः । तेषां कोशाश्च तेनैव पूरिता नरधर्मिणा ॥१९
ये तु लोभपरा धूर्ता नराः सञ्चयकारिणः । तेषां राजा स भगवान्द्रव्यदो राक्षसेश्वरः ॥२०
शवभूता नरा ये वै दाहिता वह्निकर्मणि ।अग्निद्वारेण तन्मांसं भुञ्जते राक्षसाः सदा ॥२१
आभिर्विभूतिभिर्युक्तं दृष्ट्वा तं रावणो बली । जित्वा निष्कास्य लङ्कायां स्वयं राजा बभूव ह ॥२२
कुबेरो दुःखितस्तत्र शङ्करः दुःखनाशनम् । शरण्यं शरणं प्राप्तस्तदा तु भगवान्हरः ।
तेन मैत्री कृता रम्या कुबेरेण समं दधौ ॥२३
अलकावती नाम पुरी रचिता विश्वकर्मणा । स तां मङ्गलदामाप्य कुबेरो हर्षमाप्तवान् ॥२४
इति श्रुत्वा तदनुजो रावणो लोकरावणः । कैलासं गिरिमागम्य नलकूबरभोगिनीम् ॥२५
दृष्ट्वा पुलस्त्यतनयः पस्पर्श मधुराननाम् । तदा पतिव्रता देवी सुप्रभा प्राह तं रुषा ॥२६
स्नुषेव तव पापात्मन्वर्तेऽहं लोकरावण । कुष्ठो भवेत्तव तनौ तेन दोषेण दारुणः ॥२७
त्वया हृतं विमानं यज्ज्येष्ठबन्धोश्च पुष्पकम् । निष्फलत्वमवाप्नोतु यथा चौरैर्हृतं धनम् ॥२८
इति शापान्वितो वीरस्तथाभूतः सुदुःखितः । शिवमाराधयामास कैलासे पार्थिवार्चनैः ॥२९
द्वादशाब्दमतो जातं पूजनं तस्य कुर्वतः । स रुद्रो न प्रसन्नोऽभूत्तदा दुःखी स रावणः ॥३०
जुहाव वह्नौ क्रमतः शिरांसि पुरुषादनः । स्थूलदेहं च सकलं स रुद्राय तदार्पयत् ॥३१

पर्वतों से रत्नों के संग्रहकर प्रत्येक घरों एवं मनुष्यों के लिए राक्षस द्वारा भेज दिया है। जितने वेदमार्गानुयायी धार्मिक लोग होते हैं उनके कोशों की पूर्ति इन्हीं धर्ममूर्ति कुबेर द्वारा होती है। इसी भाँति लोभी धूर्त धनिकों के राजा जो उन्हें द्रव्य प्रदान करते है, भगवान् राक्षसेश्वर होते हैं, जिनके राक्षस गण अग्नि में जलाये गये शवों के मांस उसी अग्नि द्वारा भक्षण करते हैं। इन विभूतियों से सुसम्पन्न इन्हें देखकर बलवान् रावण ने लंका से हटकर स्वयं राजसिंहासन अपना लिया। उस समय दुःखी होकर कुबेर ने दुःखनाशक एवं शरण्य भगवान् शंकर की शरण प्राप्त की। भगवान् शिव ने कुबेर के साथ मैत्री करके विश्वकर्मा द्वारा अलकावती पुरी की रचनाकर उन्हें उसका अधीश्वर बनाया। वह पुरी सज्जनों को सदैव मंगल प्रदान करती रहती है। भगवान् कुबेर ने उसमें रहकर अत्यन्त हर्षित जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। इसे सुनकर उनके अनुज लोकविदारक रावण ने कैलास जाकर नलकूबर की प्रेयसी को देखा। पुलस्त्य वंशज रावण ने अधीर होकर उस सुन्दरी का उपभोग बलात् किया, जिससे क्रुद्ध होकर उस पतिव्रता सुप्रभा देवी ने उनसे कहा। लोक दुःखदायी रावण ! पापिन् ! मैं तुम्हारी पुत्र-वधू की भाँति हूँ। इस पाप से तुम्हें भीषण कुष्ठ का रोग हो जायेगा और अपने ज्येष्ठ भाई कुबेर के विमान का जो तुमने अपहरण कर लिया है, चोरों के यहाँ से चुराये गये धन की भाँति तुम्हारे घर से निवृत्त होकर वहीं चला जायेगा। इस प्रकार शाप से अभिमूत होने के कारण दुःखी होकर रावण ने उसी कैलास पर रहकर पार्थिव पूजन द्वारा शिव की आराधना की। बारह वर्ष तक पूजन करने पर भी भगवान् रुद्र के न प्रसन्न होने पर रावण ने ।१६-३०। अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए प्रज्वलित अग्नि में अपने शिर का हवन करना आरम्भ किया उसने अपनी स्थूल देह का समस्त भाग रुद्र के लिए अर्पित

भस्मभूतस्तदा रक्षो न मृतो ब्रह्मणो वरात् । पावकादुद्भवं चान्यं देहं प्राप्य मनोहरम् ॥३२
शिवाय वायुरूपाय ददौ स्वाङ्गं पुनर्बली । पिशाचैर्वायुरूपैश्च भक्षितः स च रावणः ॥३३
न ममार वराद्घोरो वायोर्जातं कलेवरम् । गृहीत्वा स च रुद्राय नभोभूताय चार्पयत् ॥३४
तदा मातृगणैर्घोरैर्भक्षितोऽभूत्स रावणः । ब्रह्मणो वरदानेन न पञ्चत्वमवाप्तवान् ॥३५
नभसश्चोद्भवं देहं शून्यभूतं स रावणः । पुनः प्राप्य शिवायैव सोऽहं भूताय चार्पयत् ॥३६
तदा प्रसन्नो भगवान्रुद्रोऽहङ्कारदेवता । कुबेरस्य यथा मित्रं रावणस्य तथाभवत् ॥३७
एकैकेनैव शिरसा कोटिकोटिशिरोऽभवत् । वज्रभूतोऽभवद्देहो देवदेवप्रसादतः ॥
एवं स रावणो घोरो बभूव वरदर्पितः ॥३८
देवदैत्यमनुष्याणां पन्नगानां च योषितः । नवोढा रमिताश्चासन्ब्रह्माण्डे तेन रक्षसा ॥३९
पतिव्रतामतो रम्यो वेदधर्मः सनातनः । भग्नीभूतोऽभवत्सर्वः सर्वलोकेषु रक्षसा ॥४०
क्षुतृड्भ्यां वर्जितो नित्यं शङ्करेणैव तर्पितः । अन्ये सुरा विना यज्ञैः क्षुधिताः सम्बभूविरे ॥४१
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य क्षीराब्धौ प्राप्य दुःखिताः । एकीभूय सुरास्सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥४२
तदा प्रसन्नो भगवान्सगुणो निर्गुणो हरिः । उवाच सकलान्देवान्भक्तिनम्रान्यतेन्द्रियान् ॥४३
कल्पाख्ये श्वेतवाराहे नेदृशः कोऽपि दानवः । बभूव च यथैवासौ रावणो लोकरावणः ॥४४
पुरा मार्कण्डकल्पे च निशुम्भः शुम्भ एव हि । यथा जातौ तथा घोरौ कुम्भकर्णश्च रावणः ॥४५

कर दिया । केवल भस्मावशेष रह गया, किन्तु ब्रह्मा के वरदान द्वारा उसकी मृत्यु न हुई । उस समय अग्निकुंड से निकली हुई अन्य मनोहर शरीर की प्राप्तिकर उस बली ने अपने अंग को पुनः उन वायु रूप शिव के लिए अर्पित किया । उस समय वायुरूपधारी पिशाचों ने रावण की उस शरीर का भक्षण कर लिया था, किन्तु वरदान के प्रभाव द्वारा वह जीवित ही रहा । उस वायु द्वारा आधी देह को आकाश रूप रुद्र के पुनः अर्पित किया । उस समय भी घोर मातृगणों द्वारा उसके भक्षित होने पर भी वरदान प्राप्ति के नाते उसकी मृत्यु न हो सकी । पश्चात् आकाश जन्य उस शून्यभूत देह की प्राप्तिकर रावण ने पुनः उसे अहं भूतरूप शिव को समर्पित कर दिया । उस समय अहंकार देव भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर कुबेर की भाँति रावण से भी मैत्री स्थापित की । तदुपरांत उसे एक शिर के बदले में कोटि-कोटि शिरों की प्राप्ति पूर्वक देवाधिदेव की प्रसन्नतावश उसकी वज्र की भाँति कठोर देह हो गई । इस प्रकार उस रावण ने भीषण वरदान द्वारा गर्वित होकर देव, दैत्य, मनुष्य एवं पन्नगों की नवोढा रमणियों के साथ इस ब्रह्माण्ड में घूमते हुए रमण करना आरम्भ किया । उस राक्षस ने सम्पूर्ण लोकों के वैदिक एवं सनातनी पतिव्रता धर्म को निर्मूल कर दिया । शिव द्वारा तृप्त होने के नाते उसे भूख प्यास नहीं लगती थी । उस समय यज्ञानुष्ठान स्थगित हो जाने के नाते देवगण क्षुधा पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी रहने लगे । तदुपरांत दुःखी देवों ने ब्रह्मा को आगे कर क्षीरसागर में जाकर एक साथ परमेश्वर की आराधना आरम्भ की । उस समय प्रसन्न होकर सगुण निर्गुण भगवान् ने संयमी एवं भक्ति नम्र समस्त देवों से कहा—इस श्वेतवाराह नामक कल्प में इस लोक दुःखदायी रावण की भाँति अन्य कोई दानव उत्पन्न नहीं हुआ । पहले मार्कण्डेय कल्प में उत्पन्न शुम्भ निशुम्भ की भाँति ऐसे कुम्भ कर्ण और रावण भीषण हैं ।३१-४५।

रावणा बहवश्चासन्हीदृशो नैव रावणः । अहं ब्रह्मा तथा रुद्रो यतो जातास्सनातनाः ॥
सा तु वै प्रकृतिर्माया कोटिविश्वविधायिनी ॥४६
देवसङ्कटघोरेषु समर्थो देवराट् स्वयम् । शक्रविघ्ने समुद्भूते समर्थो भगवान्हरः ॥४७
रुद्राणां सङ्कटे घोरे समर्थोऽहं सदा भुवि । मयि सङ्कटसम्प्राप्ते समर्थो भगवान्हरः ॥४८
ब्रह्मणः परमे दुःखे समर्था प्रकृतिः परा । मधुकैटभौ पुरा जातौ दानवौ लोकविश्रुतौ ॥४९
ताभ्यां दुःखमयो ब्रह्मा तुष्टाव जगदम्बिकाम् । तदा तस्या बलेनाहं जघान मधुकैटभौ ॥५०
अतो मदाज्ञया सर्वे विष्णुमायां सनातनीम् । शरण्यां शरणं प्राप्य कुर्वतां जगतो हितम् ॥५१
इति श्रुत्वा तु ते देवास्तुष्टुवुः प्रकृतिं पराम् । प्रसन्ना च तदा देवी ब्रह्मज्योतिर्मयी शिवा ॥५२
द्विधाभूता महीं प्राप्ता सीतारामौ परापरौ । त्रिलिङ्गजननी सीता तया तदपरं द्विधा ॥
कृतं तौ च द्विधा जातौ शब्दार्थौ रामलक्ष्मणौ ॥५३
शब्दमात्रसमूहानां स्वामी रामस्सनातनः । अर्थमात्रसमूहानामीशः क्लीबस्स लक्ष्मणः ॥५४
यस्य वज्रमयं वीर्यं ब्रह्मचर्यं दृढं तथा । स क्लीबश्च ततोऽन्ये वै क्लीबभूता हि वानराः ॥५५
परा तु प्रकृतिस्सीता तयोर्मङ्गलदायिनी । भूमिमध्यात्समुद्भूता ह्ययोनिर्योनिकारिणी ॥५६
सहस्रं रामरामेति जपितं येन धीमता । सीतानाम्ना च तस्यैव फलं ज्ञेयं च तत्समम् ॥५७
योनिभूतौ च तौ देवौ राधेयस्य गृहं गतौ । इदं दृश्यं यदा नासीत्तामसी प्रकृतिस्तदा ॥
अक्षराशेषभूता च स्वयं जाता त्रिधेच्छया ॥५८

रावण भी अनेक हो चुके हैं किन्तु इस रावण के समान वे नहीं थे । जिस प्रकृति द्वारा मैं ब्रह्मा, तथा सनातन रुद्र उत्पन्न हुए हैं, वह माया प्रकृति कोटि विश्व की रचना एवं धारण करने की शक्ति है । और देवों के घोर संकट उपस्थित होने पर उसके निवारण के लिए स्वयं देवराट् समर्थ हैं, शक्र विघ्न के उपस्थित होने पर भगवान् शिव, और रुद्र के भीषण संकट उपस्थित होने पर मैं उसे निवारण के लिए सदैव समर्थ रहता हूँ । उसी प्रकार मेरे संकट के वारणार्थ भगवान् हरि समर्थ हैं और ब्रह्मा के अत्यन्त संकट ग्रस्त होने पर परा प्रकृत्ति निवारण करती है । पहले समय में लोक विख्यात मधु और कैटभ दानव के उत्पन्न होने पर उनसे दुःखी होकर ब्रह्मा ने जगदम्बिका की आराधना की । उस समय अम्बिका द्वारा बल प्राप्तकर मैंने मधु कैटभ का संहार किया था । इसलिए मेरी आज्ञा से सबलोग उस विष्णु माया की जो शरण प्रदान करती है, शरण में पहुँचकर उसकी आराधना करो । उसे सुनकर देवों ने पराप्रकृति की आराधना आरम्भ की । उस समय प्रसन्न होकर उस ब्रह्म ज्योतिर्मयी शिवा ने द्विधा (दो भोगों में विभक्त) होकर सीताराम के रूप में जो पर अपर कहलाते हैं, अवतार धारण किया । त्रिलिंग उनकी सीता ने अपने अपर रूप को दो भागों में विभक्तकर उसके द्वारा शब्द और अर्थात्मक राम लक्ष्मण की उत्पत्ति की जिसमें शब्द मात्र संमूह के स्वामी राम और अर्थ मात्र समूह के ईश क्लीब लक्ष्मण हुए। जिसका वीर्य वज्रमय और ब्रह्मचर्य दृढ था। उसी प्रकार अन्य वानर गण भी क्लीब ही थे। उन दोनों की मंगलदायिनी सीता, जो परा प्रकृति रूप है, भूमि के मध्य से अयोनिज रूप में उत्पन्न हुई।४६-५६। जिस बुद्धिमान् ने राम राम का सहस्र जप किया है, उसका फल सीता नाम के समान ही उसे प्राप्त होता है । इस दृश्य के

पूर्वं शेषस्स वै रामो मध्ये क्लीबस्य लक्ष्मणः । अपरौ पूर्वतो जातौ पुंक्लीबौ च परेश्वरौ ॥
परो भागस्तु सा देवी योगनिद्रा सनातनी ॥५९
अन्यकल्पेषु हे देवाः क्षीरशायी हरिः स्वयम् । रामो ज्ञेयस्तथा शेषो रुद्ररूपस्सः लक्ष्मणः ॥६०
सीता भगवती लक्ष्मीर्जाता जनकनन्दिनी । सुदर्शनश्च भरतो हरेः शङ्खस्ततोऽनुजः ॥६१
कल्पाख्ये श्वेतवाराहे रामो जातः परात्परः । प्रद्युम्नो भरतो ज्ञेयोऽनिरुद्धः शत्रुहा प्रभुः ॥
तैश्च सर्वे विदलिता राक्षसा रावणादयः ॥६२
कीर्ति स्वकीयां लोकेषु संस्थाप्य पावनीं प्रभुः । पुष्पकं च कुबेराय विमानं च तदा ददौ ॥
रुद्रसङ्ख्या सहस्राब्दं राज्यं कृत्वा परं ययौ ॥६३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कुबेरस्तु प्रथमो वसुदेवता । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य वैश्ययोनौ बभूव ह ॥६४
धरदत्तस्य वैश्यस्य पुत्रो भूत्वा महीतले । त्रिलोचनस्स वै नाम मथुरायां बभूव ह ॥६५
सर्वद्रव्यव्ययं कृत्वा नानातीर्थेषु हर्षितः । पुरीं काशीं समागम्य रामानन्दं च वैष्णवम् ॥
नत्वा तद्वश्यमभजच्छिष्यो भूत्वा त्रिलोचनः ॥६६
स्वगेहं पुनरागत्य स वैश्यश्चाज्ञया गुरोः । रामभक्तिपरश्चासीत्साधुसेवापरायणः ॥६७
तदा तु भगवान्रामो दासभूतश्च तद्गृहे । स्थितस्त्रयोदशे मासि सर्ववाञ्छितदायकः ॥६८
मणिरत्नहिरण्यानि वासांसि विविधानि च । नाना व्यञ्जनयोग्यानि ब्राह्मणेभ्यः स्वयं ददौ ॥६९

अभाव काल में तामसी प्रकृति, जो अक्षर (अविनाशिनी) एवं अशेष (सम्पूर्ण) रूप है, स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर पूर्व भाग द्वारा राम मध्य से लक्ष्मण और पूर्व भाग से क्लीब (अलिंग और नपुंसक) रूप दो और की उत्पत्ति हुई है। देववृन्द ! अन्य तीसरे भाग से सनातनी योगनिद्रा देवी प्रकट होकर अवस्थित हैं। अन्य कल्पों में क्षीरशायी स्वयं भगवान् राम और रुद्र लक्ष्मण एवं लक्ष्मी जनक- नन्दिनी भगवती सीता के रूप में प्रकट होती हैं। उसी प्रकार उनके अस्त्र सुदर्शन भरत एवं शंख शत्रुघ्न रूप धारण करते हैं। श्वेत वाराह कल्प में परात्पर ब्रह्म राम, प्रद्युम्न लक्ष्मण और अनिरूद्ध भरत के रूप में प्रकट होकर रावणादि राक्षसों के विनाश करते हैं। वह स्वयं प्रभु राम रूप में जो अवतरित रहते हैं, ब्रह्माण्ड में अपनी पावन कीर्ति की स्थापना पूर्वक पुष्पक विमान कुबेर को लौटा देते हैं। पश्चात् एकादश सहस्र वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत परमपद की प्राप्ति करते हैं।५७-६३

सूत जी बोले—इसे सुनकर प्रथम वसुदेवता कुबेर ने मुख द्वारा अपने अंश को निकालकर धरदत्त वैश्य के घर भेजा जो वहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होकर इस भूमण्डल पर प्रख्यात हुआ। उसकी पुरी का नाम 'मथुरा' और उसका नाम त्रिलोचन था। उसने अपने समस्त द्रव्य को व्यय करते हुए तीर्थों में भ्रमण करते काशी की यात्रा की। वहाँ पहुँचने पर 'रामानन्द वैष्णव' के अधीन होकर उनकी शिष्य सेना स्वीकार की। पश्चात् अपने घर जाकर त्रिलोचन ने गुरु की आज्ञा से राम भक्ति में तत्पर रहकर साधु सेवा करना आरम्भ किया। उस उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर राम ने तेरहवें मास दास रूप में उसके घर रहकर उसकी इच्छापूर्ति समेत मणि रत्न, सुवर्ण भाँति-भाँति के वस्त्र तथा अनेक भाँति के व्यंजन

वैष्णवेभ्यो यतिभ्यश्च मनोवाञ्छितदायकः । ततस्त्रिलोचनं प्राह भगवान्रावणार्तिहा ।।७०
अहं रामो न वै दासस्तव भक्तिविमोहितः । निवासं कृतवान्गेहे तव प्रियहिते रतः ।।७१
अद्यप्रभृति भो वैश्य वसामि हृदये तव । इत्युक्त्वान्तर्हितो देवः स वैश्यो हर्षमागतः ।।७२
त्यक्त्वा कलत्रं पुत्रं च प्राप्य वैराग्यमुत्कटम् । उषित्वा सरयूतीरे रामध्यानपरोभवत् ।।७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये वसुमाहात्म्ये त्रिलोचनवैश्योत्पत्तिवर्णन नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

रङ्कणवैश्योत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं ध्रुववंशसमुद्भवः । राजाप्राचीनबर्हिश्च बभूव मखकारकः ।।१
नारदस्योपदेशेन त्यक्त्वा हिंसामयं मखम् । ज्ञानवान् वैष्णवो भूत्वा दशपुत्रानजीजनत् ।।२
प्रचेतानाम तेषां वै जातं ते चैकरूपिणः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य जलमध्ये तपोऽर्थिनः ।।
रत्नाकरस्य सिन्धोश्च मग्नभूता बभूविरे ।।३
तेषां तु तपसा तुष्टः स्वयम्भूश्चतुराननः । सप्ताब्धिषु स तान्सप्त सुतान्संस्थाप्य लोकराट् ।।४

ब्राह्मणों को स्वयं प्रदान कर उन्हें तृप्त करना आरम्भ किया । उस समय वैष्णवों एवं योगियों को उनके मनवांछित पदार्थ दिये जाते थे । इस प्रकार अनेक वर्षों की सेवा करने के उपरांत रावण विनाशी भगवान् ने एक दिन त्रिलोचन वैश्य से कहा—मैं राम हूँ, तुम्हारा मनुष्य सेवक नहीं । तुम्हारी भक्ति से मोहित होकर तुम्हारे घर रहकर तुम्हारा प्रिय एवं हितसाधन किया करता था, किन्तु अब आज ही मैं इस सेवक रूप में रहकर तुम्हारे हृदय में निवास करूँगा । इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और उस वैश्य ने जाकर वैराग्य उत्पन्न होने के नाते हर्षमग्न होकर अपनी स्त्री एवं पुत्र के परित्याग पूर्वक सरयू के तट पर भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया ।६४-७३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में त्रिलोचन वैश्य की उत्पत्ति वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

रंकणवैश्योत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—स्वायम्भुव मन्वन्तर काल में ध्रुववंशज राजा प्राचीन बर्हि ने यज्ञानुष्ठान करना आरम्भ किया । नारद के उपदेश से हिंसामय यज्ञों के त्यागपूर्वक उन्होंने ज्ञानी वैष्णव के रूप में रहते हुए दश पुत्रों को उत्पन्न किया । उन समान रूप वाले पुत्रों का प्रचेता नामकरण किया गया, जो पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर समुद्र के मध्य तप करने की इच्छा प्रकटकर समुद्र के भीतर रहना प्रारम्भ किये । उनके तप से प्रसन्न होकर लोकराट् एवं स्वयंभू चतुरानन ने सातों समुद्रों में क्रमशः

रत्नाकरेऽष्टमं पुत्रं नवमं मानसोत्तरे । दशमं मेरुशाखायां सुतं कृत्वा मुमोद ह ॥५
आपो वहति यो लोके स आपव इति स्मृतः । द्वितीयो वरुणो नाम यादसां पतिरप्पतिः ॥६
ददौ पाशं तदा ब्रह्मा दैत्यबन्धनहेतवे । पाशी नाम ततो जातं वरुणस्य महात्मनः ॥७
स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणः शक्तिपूजकः । आपवो नाम विख्यातो वारुणीपानतत्परः ॥८
भद्रकाल्याः प्रियो भक्तो नित्यं पूजनतत्परः । नानारक्तमयैः पुष्पैर्गुण्ठितां रक्तमालिकाम् ॥९
रक्तचन्दनसंयुक्तां गृहीत्वा मन्त्रसंयुतः । भद्रकाल्यै निवेद्याशु नवार्णवपरोऽभवत् ॥१०
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैर्ऋतुजैः फलैः । पूजयित्वा महालक्ष्मीं भद्रकालीं सनातनीम् ॥११
तिलैः शर्करया युक्तं मधुना च हविः स्वयम् । वह्निद्वारेण संहुत्य तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥१२
चरित्रं मध्यमं देव्या विष्णुदेवेन निर्मितम् । नवार्णवेन तेनैव प्रत्यहं जाप्यतत्परः ॥१३
एवं वर्षत्रयं जातं तस्य पूजां प्रकुर्वतः । प्रसन्नाभूत्तदा देवी वरदा सर्वमङ्गला ।
वरं ब्रूहीति वचनं तमाह द्विजसत्तमम् ॥१४
इति वाक्यं प्रियं श्रुत्वा द्विज आपव नम्रधीः । तुष्टाव दण्डवद्भूत्वा भद्रकालीं सनातनीम् ॥१५

आपव उवाच

विष्णुकल्पे पुरा चासीद्दानवो महिषासुरः । कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथैर्वाजिगजैर्युतः ॥१६
त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा महेन्द्रस्स तदाभवत् । स्वारोचिषान्तरः कालो गतो राज्यं प्रकुर्वतः ॥१७

उनके सात पुत्रों को अधिनायक पद पर प्रतिष्ठित करके आठवें पुत्र को रत्नाकर में, नवें को मानस के उत्तर प्रदेश और दशवें को मेरु की शाखा में प्रतिष्ठित करके प्रसन्नता प्रकट की । लोक में आप (जल) प्रवाहित होने के नाते 'आपव' प्रथम पुत्र का और यादवगण के स्वामी होने के नाते 'वरुण' दूसरे पुत्र का नामकरण हुआ । उस समय ब्रह्मा ने वहाँ जाकर दैत्यों के बन्धनार्थ उन्हें 'पाश' प्रदान किया, उसी दिन से वरुण माहात्म्य का 'पाशीत्रय' हुआ । पूर्व जन्म में उसने ब्रह्म शक्ति की उपासना की थी, आपव नाम से प्रख्यात वह वारुणी (मदिरा) पान में निरत रहता था । भद्रकाली का प्रिय भक्त होने के नाते वह अनेक भाँति के रक्तवर्ण के पुष्प एवं उसी भाँति के पुष्पों की माला और रक्तचन्दन द्वारा समंत्रक भद्रकाली की नित्य पूजन करता था और पूजनोपरांत नवार्ण मंत्र के जप भी । इस प्रकार धूपदीप, नैवेद्य, ताम्बूल और ऋतु फलों द्वारा सनातनी एवं भद्रकाली रूप महालक्ष्मी की भक्तिपूर्वक आराधना करने के उपरांत तिल शक्कर, शहद, युक्त हवि की आहुति-प्रदान कर नित्य भगवती जगदम्बिका को प्रसन्न करता था । विष्णु देव निर्मित मध्यम चरित्र के पाठ और नवार्ण मंत्र के जप सविधान सुसम्पन्न करना उस ब्राह्मण का नित्य नियम था । इस भाँति तीन वर्ष पूजन करने के उपरांत सर्वमंगला भगवती देवी ने प्रसन्न होकर उससे वर याचना के लिए कहा । इस प्रिय वाणी को सुनकर ब्राह्मण श्रेष्ठ आपव ने विनम्र होकर दण्डवत् करते हुए सनातनी भद्रकाली देवी की आराधना आरम्भ की ।१-१५।

आपव ने कहा—विष्णु कल्प में पहले महिषासुर नामक दानव रहता था, जिसके कोटि-कोटि सहस्र रथ, घोड़े एवं गजराज थे । उस समय उसने तीनों लोक को अपने अधीन करके स्वयं देवेन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित होकर उसका शासन आरम्भ किया । इस प्रकार उसके राज्य करते हुए स्वारोचिष मन्वन्तर

ततस्स भगवान्विष्णुस्सर्वदेवसमन्वितः । समुत्पाद्य मुखात्तेजो ज्वालामाली बभूव ह ।।१८
ज्योतिर्लिङ्गात्तदा देवी भवती स्वेच्छया भुवि । सम्भूय महिषं हन्त्री तस्यै देव्यै नमोनमः ।।१९
रुद्रकल्पे पुरा चासीद्रुद्रच्छम्भुमुखाद्दिवि । रावणश्च सहस्रास्यो जातो ब्रह्माण्डरावणः ।।२०
राक्षसो बलवान्घोरो लोकालोकगिरेरधः । न्यवसद्देवदैत्यानां मनुष्याणां च भक्षकः ।।
षष्ठे मन्वन्तरे तेन ब्रह्माण्डं राज्यसात्कृतम् ।।२१
ततो वैवस्वते प्राप्ते त्रेताष्टाविंशके प्रभुः । स जातो राघवगृहे रामस्सङ्कर्षणः स्वयम् ।।२२
षोडशाब्दवपुर्भूत्वा स गतो जनकालये । धनुश्चाजगवं घोरं प्रभग्नं तेन धीमता ।।२३
तदा ब्रह्मादयो देवा ज्ञात्वा रामं सनातनम् । सहस्रवदनस्यैव वर्णयामास कारणम् ।।२४
तच्छ्रुत्वा हंसयानं च समारुह्य स सीतया । लोकालोकगिरौ प्राप्य घोरयुद्धमचीकरत् ।।२५
हंसयानपताकायां संस्थितो हनुमान्कपिः । वेदाश्च वाजिनस्तत्र नेता ब्रह्मा सनातनः ।।२६
दिव्यवर्षमभूद्घोरः सङ्ग्रामस्तेन रक्षसा । रावणस्स तदा क्रुद्धो द्विसहस्रैश्च बाहुभिः ।।२७
अपरौ मूर्छयित्वा तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । जगर्ज बलवान्घोरस्स च ब्रह्माण्डरावणः ।।२८
ब्राह्मणा संस्तुता माता भवती ब्रह्मरूपिणी । सीता शान्तिमयी नित्या तया ब्रह्माण्डरावणः ।।
विनाशितो नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२९
ब्रह्मकल्पे पुरा चासीत्तालजं घान्वयोद्भवः । मुरो नाम महादैत्यो ब्रह्मणो बलदर्पितः ।।३०

का काल व्यतीत हो गया । पश्चात् समस्त देवों के साथ विष्णु अपने मुख द्वारा तेज निकालकर माला की भाँति ज्वालाओं से आच्छादित हो गये । उस समय भगवती देवी ने अपनी इच्छा से ज्योतिर्लिंग द्वारा प्रकट होकर उस महिषासुर का वध किया था, उन्हें मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । पहले रुद्र कल्प में रुद्र शिव जी के मुख द्वारा सहस्र मुख वाला एक राक्षस उत्पन्न हुआ जिसका ब्रह्माण्ड रावण नाम था । वह बलवान् एवं घोर राक्षस लोक पर्वत के नीचे अपना वासस्थान बनाकर देव, दैत्य एवं मनुष्यों के भक्षण करता था । इस प्रकार उसने छठें मन्वन्तर काल तक समस्त ब्रह्माण्ड को अपने अधीन रखकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था । तदनन्तर वैवस्वत् मन्वन्तर काल के अट्ठाईसवें त्रेतायुग में राघव के घर स्वयं संकर्षण राम ने अवतरित होकर सोलह वर्ष की अवस्था में जनकपुर जाकर 'अजगव' नामक धनुष का भंजन किया । उस समय ब्रह्मादिक देवों ने वहाँ आकर उन्हें सनातन राम समझते हुए कहा—सहस्र वदन रावण ने लोक को अत्यन्त पीड़ित किया है । उसे सुनकर सीता समेत हंसयान पर बैठकर लोकालोक पर्वत पर जाकर उन्होंने उस राक्षस से घोर युद्ध किया । उस समय उनके हंसयान में पताका के उपर हनुमान् जी अवस्थित रहते थे, वेद घोड़ों के रूप में और उसके नेता स्वयं ब्रह्मा थे । दिव्य वर्ष तक घोर युद्ध करने के उपरांत उस राक्षस ने क्रुद्ध होकर अपनी दो सहस्र भुजाओं द्वारा राम लक्ष्मण को मूर्च्छित कर भीषण गर्जना किया । उस समय ब्रह्मा ने ब्रह्मरूपिणी, आप माता जी की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर सनातनी एवं शान्तिमयी सीता रूप आपने उस ब्रह्माण्ड रावण का विनाश किया था। प्रातः आपको बार-बार नमस्कार है।१६-२९। पहले ब्रह्मकल्प में लालजंघ के कुल में मुर नामक एक दैत्य उत्पन्न हुआ था, जो ब्रह्मा द्वारा वर प्राप्तकर अत्यन्त मदान्ध हो गया था। उसने देवेन्द्र समेत समस्त

ब्रह्माण्डेशं महारुद्रं महेन्द्रादिसमन्वितम् । स बभूव पराजित्याधिकारी रौद्र आसने ।।३१
देवैस्सार्द्धं महादेवो माधवं क्षीरशायिनम् । गत्वा निवेदयामास स विष्णुः क्रोधसंयुतः ।।३२
जगाम गरुडारूढो यत्र दैत्यो मुरः स्थितः । तेन सार्द्धमभूद्युद्धं तस्य देवस्य दारुणम् ।।३३
सहस्राब्दमतो जातं दृष्ट्वा ब्रह्मा भयान्वितः । परां तु प्रकृतिं नित्यां तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।३४
प्रसन्ना सा तदा देवी कुमारी सप्तहायिनी । चतुर्भुजास्त्रसहिता भूत्वा दैत्यमुवाच ह ।।३५
पराजितोऽयं भगवान्दैत्यराजेन वै त्वया । विजया नाम मे रम्या कैश्चिन्नाहं पराजिता ।।३६
उन्मीलिनी विञ्जुली च त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी । जया जयन्ती विजया वर्षेवर्षे क्रमादहम् ।।३७
एकादशशुभाचारा विष्णवस्तनया मम । एकादशीति विख्याता वेदमध्ये सदा ह्यहम् ।।३८
अतो मां बलवाञ्जित्वा विजयां विष्णुमातरम् । पाणिं ग्रहाण मे रम्यं सर्वपूज्यो भवान्भवेत् ।।३९
इति श्रुत्वा मुरो दैत्यस्तस्या रूपेण मोहितः । युयुधे स तया सार्द्धं क्षणार्द्धेन लयङ्गतः ।।४०
तं मुरं निहतं दृष्ट्वानुजस्तन्नरकासुरः । दैत्यमायां महाघोरां चकार सुरनाशिनीम् ।।४१
एकादशी स्वयं माता हुङ्कारेणैव तं तदा । नरकेण समं हत्वा जगर्ज जगदम्बिका ।।४२
तयोस्तेजो महाघोरमन्नमध्येषु चागमत् । दुष्टभूतमभूदन्नं नृणां रोगभयप्रदम् ।।४३
दृष्ट्वा चैकादशी नाम्ना रविशुक्रावुवाच ह । कुरुतां शुद्धमेवान्तर्भवन्तौ लोकविश्रुतौ ।।४४

देवों एवं ब्रह्माण्ड नायक महादेव को पराजितकर उस रौद्र आसन का अधिकार प्राप्त कर लिया था। पश्चात् देवों समेत महादेव ने क्षीरशायी भगवान् के पास जाकर उनसे समस्त वृतान्त का वर्णन किया। उसे सुनकर विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गरुण पर बैठकर क्रूर दैत्य के यहाँ युद्धार्थ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उन दोनों का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ।३०-३३। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर भयभीत होकर ब्रह्मा ने अपनी विनम्र वाणी द्वारा परा प्रकृति की उपासना की। उससे प्रसन्न होकर देवी ने सात वर्ष की कुमारी का रूपधारण कर जो चार भुजाओं में अस्त्र लिए सुसज्जित थी, मुर दैत्य से कहा—दैत्यराज ! यह भगवान् तुमसे पराजित हो चुके हैं। मैं अभी तक युद्ध में किसी से पराजित नहीं हुई हूँ, अतः मेरा विजया नाम है। प्रत्येक वर्ष में क्रमशः उन्मीलिनी, विंजुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्द्धिनी, जया, जयंती, और विजया के नाम में परिवर्तित हुआ करती हूँ। शुभाचार को अपनाने वाले विष्णव आदि एकादश (ग्यारह) मेरे पुत्र हैं, इसलिए एकादशी नाम से मैं वेदमध्य में सदैव निवास करती हूँ। अतः तू बलवान् होकर युद्ध में विजय प्राप्ति पूर्वक विजया नामक मुझ विष्णु माता का पाणिग्रहण कर सर्वपूज्य बनो। इसे सुनकर मुर दैत्य ने उस रूप पर मोहित होकर देवी के साथ युद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु एक क्षण के आधे समय तक भी युद्ध में न ठहर सका देवी ने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पश्चात् मुर दैत्य के निधन होने पर उसके अनुज नरकासुर ने देव विनाशिनी एक महाभीषण माया की रचना की, पर जगन्माता एकादशी देवी ने अपने हुंकार द्वारा नरकासुर समेत उस माया का विनाशकर भीषण गर्जना की। उस समय उन दोनों दैत्यों का तेज अन्न के मध्य में व्याप्त हो गया। जिससे अन्न के दूषित होने के नाते मनुष्यों के अनेक रोग उत्पन्न होने लगे। उसे देखकर देवी जी ने सूर्य और शुक्र से कहा—आप लोग लोक प्रख्यात हैं अतः अन्न का अन्तःस्थल शुद्ध करो। पश्चात् वे दोनों उनकी आज्ञा का पालनकर देव

तदाज्ञया तथा कृत्वा देव पूज्यौ बभूवतुः । एवं मातस्त्वया सर्वं कृतं तस्यै नमो नमः ।।४५
इति श्रुत्वा भद्रकाली स्तोत्रं दिव्यं कथामयम् । आपवं प्राह सा देवी ब्राह्मणं वेदकोविदम् ।।४६
प्रलये च तदा प्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे । एकार्णवे पुरा त्वं वै मत्प्रसादात्सुखी भव ।।४७
स्तोत्रेणानेन सुप्रीता वरदाहं सदा नरान्[1] । इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी स विप्रो वरुणोऽभवत् ।।४८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भगवान्द्वितियो[2] वसुः । वरुणः स्वमुखात्तेजो जनयामास भूतले ।।४९
देहल्यां स तु वै जातो धर्मभक्तस्य वै गृहे । विधवा तस्य या कन्या गर्भं धत्ते हरेः स्वयम् ।।५०
इति ज्ञात्वा धर्मभक्तो मुमुदे सुतजन्मनि । नामदेव इति ख्यातः साङ्ख्ययोगपरायणः ।।५१
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णुमयं जगत् । ज्ञात्वा दृष्ट्वा गतः काश्यां रामानन्दं हरिप्रियम् ।।५२
नत्वा तच्छिष्यतां प्राप्य तत्र वासमकारयत् । सिकन्दरो म्लेच्छपतिर्देहलीराज्यमास्थितः ।।५३
नामदेवं समाहूय सम्परीक्ष्य तदा सुखी । अर्धकोटिमितं द्रव्यं ददौ तस्मै कलिप्रियः ।।५४
नामदेवस्तु तद्द्रव्यैर्गङ्गारोहणमुत्तमम् । कारयामास वै काश्यां शुभ्रं सर्वं शिलामयम् ।।५५
दशविप्रान्पञ्च नृपान्पञ्च वैश्याञ्छतं गवाम् । पुनरुज्जीवयामास शवभूतान्स योगवान् ।।५६

पूज्य हुए । इस प्रकार माता आपने सब कुछ सुसम्पन्न किया है । अतः आपको बार-बार नमस्कार है । इस भाँति दिव्य कथामय उस स्तोत्र को सुनकर भद्रकाली देवी ने उस वेद निपुण आपव नामक ब्राह्मण से कहा—स्थावर जंगमरूप इस जगत् के प्रलय होने पर उस एकार्णव के समय भी तुम मेरे प्रसाद से सुखी जीवन व्यतीत करो और इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर मैं मनुष्यों को सदैव वर प्रदान करती रहूँगी । इतना कहकर देवी अन्तर्हित हो गई और वह विप्र वरुण के रूप में परिवर्तित हो गया ।३४-४८

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर भगवान् वरुण ने जो दूसरे वसु कहलाते है अपने मुख द्वारा तेज निकालकर भूतल में प्रक्षिप्त किया । जो दिल्ली नगर में धर्मभक्त के घर उनकी विधवा कन्या के गर्भ में प्रविष्ट हुआ । कन्या के गर्भ में भगवान् स्वयं अपना अंश स्थापितकर पुत्र रूप में अवतरित होंगे, यह जानकर धर्मभक्त को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । पुत्र के उत्पन्न होने पर उन्होंने उसका 'नामदेव' नामकरण किया, जो सांख्ययोग का निपुण विद्वान् था । उसने निपुण ज्ञान प्राप्तकर आब्रह्मस्तम्ब पर्वत पर्यन्त इस जगत् को विष्णुमय समझकर काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर हरिप्रिय रामानन्द की शिष्य सेवा नमस्कार पूर्वक स्वीकार कर वहाँ निवास करने लगा । उस समय दिल्ली अधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित होकर सिकन्दर ने नामदेव को बुलवाकर उनकी परीक्षा की । उससे प्रसन्न होकर उस कलिप्रिय म्लेच्छ ने उन्हें अर्धकोटि द्रव्य प्रदान किया । उस द्रव्य द्वारा नामदेव ने काशी में गंगा में स्नानार्थ पत्थर की उत्तम शिलामय सीढ़ियाँ बनवाई । उस योगी ने अपने योगबल द्वारा दश ब्राह्मण, पाँच राजाओं एवं पाँच वैश्यों और सौ गौओं को पुनः जीवनदान प्रदान किया । ४९-५६

---

१. नरेभ्यः इत्यर्थः । २. ह्रस्व आर्षः ।

बृहस्पतिरुवाच

विश्वानरः पुरा ह्यासीद्ब्राह्मणो वेदकोविदः । अनपत्यो विधातारं तुष्टाव बहुपूजनैः ।।५७
वर्षमात्रेण भगवान्परमेष्ठी प्रजापतिः । समागत्य वचः प्राह वरं ब्रूहि द्विजोत्तम ।।५८
इति श्रुत्वा स होवाच भगवँस्ते नमो नमः । प्रकृतेश्च परः पुत्रो भूयान्मम वरात्तव ।।५९
इति श्रुत्वा तदा ब्रह्मा विस्मितः प्राह तं द्विजम् । एका वै प्रकृतिर्माया त्रिलिङ्गजननी स्वयम् ।।६०
तया दृश्यं जगत्सर्वं समुत्पादित मात्मना । प्रकृतेश्च परो यो वै परमात्मा स चाव्ययः ।।६१
अबुद्धिर्बोधनिरतो ह्यश्रुतिश्च शृणोति वै । अदेहः स स्पृशत्येतदचक्षुः पश्यति स्वयम् ।।६२
अजिह्वोऽन्नं स गृह्णाति स जिघ्रति न सा विना । अमुखो वेदवक्ता च कर्मकारः करं विना ।।६३
अपदो गच्छति ह्येतदलिङ्गो नारिभोगवान् । अगुह्यो हि करोत्येतां सतत्त्वां गुह्यभूतिनीम् ।।६४
शब्दब्रह्म स्पर्शमयं रूपब्रह्म रसात्मकम् । गन्धब्रह्म परं ज्ञेयं तस्मै तद्ब्रह्मणे नमः ।।६५
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादि उभावपि । विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।।६६
एकार्थौ तौ च शब्दैकौ रूपैकौ नित्यविग्रहौ । आदिमध्यान्तरहितौ नित्यशुद्धौ सनातनौ ।।६७
पुंस्त्रीनपुंस्कजननो ज्ञेया सा प्रकृतिः परा । पुरुषश्च कविः सूक्ष्मः कूटस्थो ज्ञानवान्परः ।।६८
अजन्मा जन्म चाप्नोति मया जातः स जन्मवान् । कथं स पुरुषो नित्यस्तव पुत्रो भविष्यति ।।६९
अतो विश्वानर मुने मायाभूतो हरिः स्वयम् । तव पुत्रत्वमाप्नोति वरान्मम जनार्दनः ।।७०

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में विश्वानर नामक एक वेद निपुण ब्राह्मण था । उसने सन्तान-हीन होने के नाते पितामह ब्रह्मा की अनेक भाँति की पूजा आरम्भ की । एक वर्ष के व्यतीत होने पर उस पूजन से प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ आकर उस ब्राह्मण से वर याचना करने के लिए कहा । उसे सुनकर उसने कहा—भगवन् ! तुम्हें नमस्कार है, आप मुझे यही वरदान दें कि—प्रकृति से परे रहने वाला वह परब्रह्म मेरे पुत्र के रूप में अवतरित हो इसे सुनकर विस्मय प्रकट करते हुए ब्रह्मा ने उस ब्राह्मण से कहा—एक उसी माया प्रकृति ने जो स्वयं त्रिलिंग जननी है, अपने द्वारा इस समस्त दृश्य जगत् की उत्पत्ति की है । और उस प्रकृति से परे रहने वाला परमात्मा , जो अधम कहलाता है, बुद्धिहीन होने पर भी बोद्धा, विना काल के श्रवण, विनादेह के स्पर्श, एवं विना नेत्र के देखता है तथा विना जिह्वा के अन्न का ग्रहण, बिना नासा के गन्ध ग्रहण, बिना मुख के वेदवेक्ता, कर निना सर्व कर्मकर्ता, बिना पैर के चलना और बिना लिंग के नारि भोग करता है उसी भाँति बिना गुह्येन्द्रिय के प्रकृति को गुह्य युक्त करता है । वही ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक हैं, अतः उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ।५७-६५। इस भाँति प्रकृति और पुरुष वे दोनों अनादि और प्रकृति से उत्पन्न सभी गुण विकारी कहे जाते हैं । इसलिए वे दोनों एकार्थ, एक शब्द, एक रूप, एवं नित्य शरीरात्मक हैं, जो आदि, मध्य, अन्तरहित, नित्य, शुद्ध, सनातन हैं । उसमें पुं (पुल्लिग) स्त्रीलिंग और नपुंसक की जननी वह परा प्रकृति है, एवं वह पुरुष कवि, सूक्ष्म, कूटस्थ, ज्ञानवान् और पर होने के नाते अजन्मा है । यद्यपि वह उपरोक्त गुण सम्पन्न होने पर भी मेरे द्वारा जन्म ग्रहण करता है, तथापि वह तुम्हारा पुत्र कैसे हो सकेगा । इसलिए विश्वानर ! माया विशिष्ट भगवान् जिन्हें जनार्दन कहा गया है, मेरे वर द्वारा तुम्हारे यहाँ पुत्र रूप में अवतरित होंगे ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पावकस्तद्वरादभूत् । अष्टानां च वसूनां च पावको हि पतिस्त्वयम् ॥७१
वैश्वानर इति ख्यातोऽभवत्स्वाहापतिः प्रभुः । स तु पूर्वभवे देवः पुरा कल्पेऽनलोऽभवत् ॥७२
नैषधो ब्राह्मणो धीमान्यथा राजा नलस्तथा । सङ्कटायां गते भूपे दमयन्ती पतिव्रता ॥७३
स्वपितुर्गेहमासाद्यान्वेषयामास भूपतिम् । तदा नलो द्विजं प्राप्तो दमयन्तीपतिः प्रभुः ॥७४
दृष्ट्वा तं मोहमापन्ना दमयन्ती शुभानना । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥७५
नायं नलस्तव पतिर्ब्राह्मणोऽयं सुमोहितः । अनलो नाम विख्यातो देववाक्यात्स चाभवत् ॥७६
महासरस्वतीं देवीं तुष्टाव स तु मोहितः । तस्य पुण्यप्रभावेन विश्वानरसुतोऽभवत् ॥७७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं पावको भगवान्प्रभुः । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य सञ्जातस्तु ततो वसुः ॥७८
रङ्कणो नाम विख्यातो लक्ष्मीदत्तस्य वै सुतः । नगरे काञ्चनपुरे वैश्यजातिसमुद्भवः ॥७९
यङ्कणा नाम तत्पत्नी बभूव च पतिव्रता । सर्वद्रव्यव्ययं कृत्वा धर्मकार्येषु दम्पती ॥८०
काष्ठमानीय विक्रीय बुभुजाते परस्परम् । रामानन्दस्तस्य गुरू रङ्कणस्य महात्मनः ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये वसुमाहात्म्ये रङ्कण वैश्योत्पत्तिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६

इतना कहकर ब्रह्मा के अन्तर्हित हो जाने पर पावक उत्पन्न हुए जो आठों वसुओं के अधीश्वर हैं । उन स्वाहापति पावक की वैश्वांनर नाम से प्रख्याति हुई । वे पहले कल्प में अनल नाम से ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, जो निषध देश में राजानल के समय रहा करते थे । जिस समय राजा नल संकट में पड़कर जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय पतिव्रता दमयन्ती अपने पिता के घर रहकर राजा नल का अन्वेषण कर रही थी । उस समय अनल ब्राह्मण को देखकर दमयन्ती ने मोहित होकर उन्हें अपना पति निश्चित किया था किन्तु उसी बीच आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारे पति नल नहीं अनल हैं । इसने ब्रह्मा की उपासना से यह रूप प्राप्तकर अनल नाम से ख्याति प्राप्त की है और उसने मोहित होकर देवी सरस्वती की भी उपासना की है, जिससे विश्वानर के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ है ।६६-७७

सूत जी बोले—बृहस्पति की इन बातों को सुनकर भगवान् पावक ने मुख द्वारा अपना तेज निकालकर भूतल पर भेज दिया, जो कांचनपुर नगरी के प्रतिष्ठित एवं वैश्य शिरोमणि लक्ष्मीदत्त के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ, जो रंकण नाम से प्रख्यात था । उसकी पतिव्रता पत्नी का नाम पंकणा था । वे दम्पती (दोनों) अपने सम्पूर्ण द्रव्यों को धार्मिक कार्यो में व्यय करने के उपरांत लकड़ी बेंच-बेंचकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे जो अपने गुरु रामानन्द से वैसी ही शिक्षा ग्रहण किये थे ।७८-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रंकण वैश्योत्पत्ति वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कबीरनरसमुत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

दितिपुत्रौ महाघोरौ विष्णुना प्रभविष्णुना । संहतौ तु दितिर्ज्ञात्वा कश्यपं समपूजयत् ॥१
द्वादशाब्दान्तरे स्वामी कश्यपो भगवानृषिः । उवाच पत्नीं स हि तां वरं ब्रूहि वरानने ॥
सा तु श्रुत्वा नमस्कृत्य वचनं प्राह हर्षिता ॥२
अदितिर्मम या देवी सपत्नी पुत्रसंयुता । द्वादशतनयास्तस्या मम द्वौ तनयौ स्मृतौ ॥३
तदवर्यसुते नैव विष्णुना सुरपालिना । विनाशितौ सुतौ घोरौ ततोऽहं भृशदुःखिता ॥४
देहि मे तनयं स्वामिन्द्वादशादित्यनाशनम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं दितिं प्राह सुदुःखितः ॥५
ब्रह्मणा निर्मितौ लोके धर्माधर्मौ परापरौ । धर्मपक्षास्तु ये लोके नरास्ते ब्रह्मणः प्रियाः ॥६
अधर्मपक्षास्तु नरा वैरिणस्तस्य धीमतः । अधर्मपक्षौ तनयौ तस्मान्मृत्युमुपागतौ ॥७
अतो धर्मप्रिये शुद्धं कुरु तस्मान्महाबलः । भविष्यति सुतो धीमाँश्चिरञ्जीवि तव प्रियः ॥८
इति श्रुत्वा दितिर्देवी कश्यपाद्गर्भमुत्तमम् । सम्प्राप्य सा शुभाचारा बभूव व्रतधारिणी ॥९
तस्या गर्भगते पुत्रे महेन्द्रश्च भयान्वितः । दासभूतः स्थितो गेहे स दितेराज्ञया गुरोः ॥१०

अध्याय १७

कबीरनरसमुत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न भगवान् विष्णु द्वारा उन दोनों भीषण पुत्रों के निधन होने पर दिति ने अपने पति काश्यप ऋषि को प्रसन्न करना आरम्भ किया । बारह वर्ष के उपरांत उसके स्वामी भगवान् कश्यप ने प्रसन्न होकर अपनी उस पत्नी से कहा—सुन्दरि ! वर की याचना करो । उसे सुनकर उसने हर्षित होकर नमस्कार पूर्वक कहा—मेरी सपत्नी (सौत) अदिति देवी के बारह पुत्र हैं और मेरे दो पुत्र थे । किन्तु उनके छोटे भाई विष्णु ने जो सदैव सुरों की ही रक्षा करते हैं, मेरे उन दोनों पुत्रों का निधन कर दिया, इसीलिए मैं अत्यन्त दुःखी हूँ । स्वामिन् ! मुझे एक ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो बारह आदित्यों का विनाशक हो, इस घोर वाणी से दुःखी होकर कश्यप ने उस पत्नी से कहा, ब्रह्मा ने लोक में धर्म और अधर्म की सृष्टि की हैं, उसमें लोक में धर्मानुयायी मनुष्य ब्रह्मा को प्रिय होते हैं और अधर्मानुयायी मनुष्य शत्रु । अतः अधर्म के अनुयायी होने के नाते तुम्हारे दोनों पुत्रों का निधन हुआ है । धर्मप्रिये ! इस पर मेरा यह कहना है कि पहले अपने मन की शुद्धि पूर्वक धर्माचरण करो ।, इससे तुम्हें एक बलवान् पुत्र की प्राप्ति होगी, जो धीमान्, चिरजीवी एवं प्रिय होगा । इसे सुनकर दिति ने कश्यप द्वारा गर्भ धारण करने के उपरांत व्रत धारणकर शुभाचरण द्वारा काल यापन का नियम किया । उसके गर्भ में पुत्र की अवस्थिति समझकर इन्द्र ने भयभीत होकर दिति के घर सेवक की भाँति रहकर गुरु की भाँति उसकी

सप्तमासि स्थिते गर्भे शक्रमायाविमोहिता । अशुचिश्च दितिर्देवी सुष्वाप निजमन्दिरे ।।११
अङ्गुष्ठमात्रो भगवान्महेन्द्रो वज्रसंयुतः । कुक्षिमध्ये समागम्य चक्रे गर्भं स सप्तधा ।।१२
जीवद्भूतानतिबलान्दृष्ट्वा सप्त महारिपून् । एकैकः सप्तधा तेन महेन्द्रेण तदा कृतः ।।१३
नम्रीभूतश्च तान्दृष्ट्वा महेन्द्रस्तैः समन्वितः । योनिद्वारेण चागम्य प्रणनाम तदा दितिम् ।।१४
प्रसन्ना सा दितिर्देवान्महेन्द्राय च तान्ददौ । मरुद्गणाश्च ते सर्वे विख्याताः शक्रसेवकाः ।।१५
स तु पूर्वभवे जातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः । इलो नाम स वेदज्ञो यथेलो नृपतिस्तदा ।।१६
एकदा बलवान्राजा मनुपुत्रः इलः स्वयम् । एकाकी हयमारुह्य मेरोर्विपिनमाययौ ।।१७
मेरोरधः स्थितः खण्डः स्वर्णगर्भो हरिप्रियः । निवासं कृतवाँस्तत्र कृत्वा राष्ट्रं महोत्तमम् ।।१८
इलेनावृतमेवापि कृतं तत्र स्थले सुराः । इलावृतमिति ख्यातः खण्डोऽभूद्विबुधप्रियः ।।१९
भारते ये स्थिता लोका इलावृतमुपागताः । मेरुर्गिरिर्वृक्षनयो विधात्रा निर्मितो हि सः ।।२०
आरोहणं नरैस्तस्मिन्कृतं स्वर्णमयं शुभम् । तमारुह्य क्रमाल्लोकः स्वर्गलोकमुपागतः ।।२१
तान्दृष्ट्वा मनुजान्प्राप्तान्सदेहान्स्वर्गमण्डपे । विस्मिताश्च सुरास्सर्वे महेशं शरणं ययुः ।।२२
ज्ञात्वा स भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्करः । इलावृतवने रम्ये स रेमे च तया सह ।।२३
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वैवस्वतसुतो महान् । इलो नाम महाप्राज्ञो मृगयार्थी सदाशिवम् ।।२४
नग्नभूतं समालोक्य नेत्रे सन्मील्य संस्थितः । लज्जितां गिरिजां दृष्ट्वा शशाप भगवान्हरः ।।२५

सेवा करना आरम्भ किया । गर्भ के सात मास के होने के उपरांत इन्द्र की माया से मोहित दिति देवी ने अपने घर में अपवित्रता पूर्ण शयन किया । उस समय भगवान् इन्द्र ने अंगुष्ठ के समान छोटा रूप धारण कर वज्रसमेत दिति के कुक्षि में प्रविष्ट होकर उस गर्भ का सात खण्ड कर दिया । उन महाबली सातो शत्रुओं को जीवित देखकर एक-एक का सात सात खण्ड किया । पश्चात् दिनम्र होकर महेन्द्र ने उन सबको साथ लिए योनि द्वार से बाहर निकालकर दिति को प्रणाम किया । उस समय प्रसन्न होकर दिति ने अपने उन सभी पुत्रों को सुरेन्द्र को सौंप दिया, जिससे वे सभी इन्द्र सेवक के रूप में रहकर 'मरुद्गण' के नाम से प्रख्यात हुए ।१-१५। वह गर्भस्थजीव पहले समय में राजा इल की भाँति 'इल' नामक प्रख्यात ब्राह्मण था । एक बार मनुपुत्र बलवान् राजा इल ने अश्वारूढ होकर एकाकी मेरुपर्वत के घोर जंगल में यात्रा की । उस राजा ने वहाँ पहुँचने पर मेरु के नीचे उस खण्ड प्रदेश को, जो स्वर्ण गर्भित एवं हरिप्रिय था, उत्तम राष्ट्र के रूप में परिणतकर वहाँ निवास पूर्वक अपना आधिपत्य स्थापित किया । इल के अधित्य स्थापित होने पर देवगण भी वहाँ रहने लगे । इसलिए उस देवप्रिय खण्ड की 'इलावृत' प्रदेश से प्रख्याति हुई । पश्चात् भारत के सभी जनवर्ग इलावृत प्रदेश में पहुँच गये । ब्रह्मा ने मेरुपर्वत का निर्माण वृक्ष की भाँति किया । जिसमें आरोहण करने के लिए मनुष्यों ने स्वर्णमयी सीढ़ियों की रचना की है । उस पर चढ़कर सभी लोग क्रमशः स्वर्ग लोक पहुँचने लगे । उस समय देवों ने उस स्वर्ग मण्डल में मनुष्यों को सदेह पहुँचते हुए देखकर आश्चर्य-चकित होकर महेश जी के यहाँ जाकर उनसे सब वृत्तान्त कहा—उसे सुनकर भगवान् शंकर ने भवानी पार्वती को साथ लेकर उसी वन में जाकर रमण करना आरम्भ किया। उसी बीच वैवस्वत पुत्र इल ने मृगया (शिकार) के लिए भ्रमण करते हुए उस वन में यात्रा की वहाँ पहुँचने पर उस राजा ने सदाशिव भगवान् को नग्न देखकर नेत्र मूँदकर वहीं खड़ा हो गया। उस समय गिरिजा को लज्जित होते देखकर भगवान् शिव ने यह शाप

अस्मिन्खण्डे सदा नार्यो भविष्यन्ति च मां विना। इत्युक्त्वा वचनं तस्मिन्नार्यस्सर्वा बभूविरे ॥२६
इला बभूव नृपतेः कन्या जनमनोहरा । बहुकालं मेरुशृङ्गे महत्तपमचीकरत् ॥२७
इलासमाधिभूतायाः सप्तविंशच्चतुर्युगम् । जातं तत इला कन्या त्रेतामध्ये तु चन्द्रजम् ॥
बुधं देवं पतिं कृत्वा चन्द्रवंशमजीजनत् ॥२८
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्यदेलावृतमागतः । तस्य राज्ञी मदवती नाम्ना तुष्ट्वा पार्वतीम् ॥२९
तदा प्राप्त इलो विप्रस्तस्या रूपेण मोहितः । पस्पर्श तां मदवतीं राज्ञीं कामविमोहितः ॥३०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी । इलो नायं द्विजश्चायं तव रूपविमोहितः ॥३१
अनिलो नाम तत्रैव विख्यातोऽभूद्द्विजस्य वै। कामाग्निपीडितो विप्रस्स तुष्टाव च पावकम् ॥३२
छित्त्वाछित्त्वा शिरो रम्यं तस्मै जातं पुनः पुनः । दत्त्वा तुष्टाव तं देवं प्रसन्नोऽभूद्धनञ्जयः ॥३३
प्राह त्वमूनपञ्चाशद्विभेदाञ्जनयिष्यसि । तथाहं मित्रवान्भूत्वा तत्सङ्ख्यस्तव कामदः ॥३४
यथा कुबेरो भगवान्षड्विंशद्वरुणप्रियः । तथाहमूनपञ्चाशद्विभेदस्तव वै सखा ॥३५
इत्युक्ते वचने तस्मिन्दितिकुक्षौ द्विजोत्तमः । वायुर्नाम स वै जातः पावकस्य प्रियस्सखा ॥३६

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वैश्यजात्यां समुद्भवः । धान्यपालस्य वै गेहे मूलगण्डान्तजः सुतः ॥
पितृमातृपरित्यक्तः काश्यां विन्ध्यवने तदा ॥३७

प्रदान किया कि—इस खण्ड प्रदेश में जो कोई आयेगा, मेरे अतिरिक्त वे सभी स्त्री हो जायेगें। उनके इस प्रकार कहने पर वहाँ सभी लोग स्त्री के रूप में परिणत हो गये। राजा इल भी एक परम सुन्दरी कन्या के रूप में परिणत हो गया। उस इला कन्या ने वहाँ उस मेरे शृंग पर रहकर समाधिस्थ होकर महान् तप करना आरम्भ किया। सत्ताईस बार चारों युगों के व्यतीत होने के उपरांत इस इला ने इन्द्र पुत्र बुध देव को अपना पति स्वीकारकर चन्द्रवंश की उत्पत्ति की। जिस समय अयोध्या नरेश इल ने इलावृत में अपना आधिपत्य स्थापित किया उस समय उसकी रानी मदमती ने सुरा द्वारा पार्वती देवी को प्रसन्न किया। उसी समय इला नामक ब्राह्मण ने जो राजा के समान सौन्दर्य पूर्ण था, रानी के रूप पर मोहित होकर कामपीड़ा से अधीर होते हुए उस रानी मदमती का स्पर्श किया।१६-३०। उस समय आकाश-वाणी हुई। यह राजा इल नहीं अपितु इल नामक ब्राह्मण है, जो तुम्हारे रूप पर आसक्त हैं, वहाँ अनिल नाम से उस ब्राह्मण की ख्याति हुई। पश्चात् कामव्यथित होकर उस ब्राह्मण ने पावकदेव की आराधना की—बार-बार उस अपने शिर को आहुति रूप में उन्हें अर्पित किया, जो सौन्दर्य पूर्ण पुनः पुनः उत्पन्न हो रहा था। उससे प्रसन्न होकर धनंजय ने कहा—तुम अपने को उनचास रूपों में उत्पन्न करोगे, और मैं तुम सबका यथेच्छ सहायक रहूंगा। जिस प्रकार भगवान् कुबेर उन छब्बीस वरुणों के प्रिय सहायक हैं। उसी भाँति मैं तुम उनचासों का प्रिय रहूँगा। इतना कहने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने दिति के कुक्षि में जाकर वायु नाम से उत्पत्ति की, जो पावक का प्रिय सखा था।३१-३६

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर वह काशीपुरी के वैश्य कुल में धनपाल के घर मूल गण्डान्त के समय पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिससे उसके माता-पिता ने विंध्याटवी में लाकर परित्याग

अलिको नाम वै म्लेच्छस्तत्र स्थाने समागतः ॥३८
अनपत्यो वस्त्रकारी सुतं प्राप्य गृहं ययौ । कबीर इति विख्यातः स पुत्रो मधुराननः ॥३९
स सप्ताब्दवपुर्भूत्वा गोदुग्धपानतत्परः । रामानन्दं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत् ॥४०
स्वहस्तेनैव संस्कृत्य भोजनं हरयेऽर्पयत् । तत्प्रियार्थं हरिस्साक्षात्सर्वकामप्रदोऽभवत् ॥४१

बृहस्पतिरुवाच

उत्तानपादतनयो ध्रुवोऽभूत्क्षत्रियः पुरा । पितृमातृपरित्यक्तः स बालः पञ्चहायनः ॥४२
गोवर्द्धनगिरौ प्राप्य नारदस्योपदेशतः । स चक्रे भगवद्ध्यानं मासान्षट् च महाव्रती ॥४३
तदा प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्नारायणः प्रभुः । खमण्डले पदं तस्मै ददौ प्रीत्या नभोमयम् ॥४४
दृष्ट्वा तद्वदनं रम्यं मायाशक्त्या दिशो दश । स्वामिनं च ध्रुवं मत्वा भक्तिनम्रा बभूविरे ॥४५
ध्रुवोऽपि भगवान्साक्षात्सर्वपूज्यो बभूव ह । दिक्पतिः स तु विज्ञेयो भगणानां पतिः स्वयम् ॥४६
नभः पतिः कालकरः शिशुमारपतिस्स वै । पञ्चतत्त्वा[1] हि वै माया प्रकृतिस्तत्पतिः स्वयम् ॥४७
तस्माद्धरायां सम्भूतो भौमो नाम महाग्रहः । जलदेव्यास्ततो जातः शुक्रो नाम महाग्रहः ॥४८
वह्निदेव्यां ततो जातश्चाहं तत्र महाग्रहः । वासुदेव्यां ध्रुवाज्जातः केतुर्नाम महाग्रहः ॥४९
ग्रहभूतः स्थितस्तत्र नभोदेव्यां तदुद्भवः । राहुर्नाम तथा घोरो महाग्रह उपग्रहः ॥५०

किया । उसी समय अलिक नामक एक म्लेच्छ वहाँ आ गया । सन्तानहीन होने के नाते उस जुलाहे ने उस शिशु को लेकर अपने घर को प्रस्थान किया । पश्चात् वह सुन्दर बालक 'कबीर' के नाम से प्रख्यात हुआ । सात वर्ष की अवस्था तक वह बालक गोदुग्ध का पान ही कर रहा था । और उसी समय से रामानन्द को अपना गुरु मानकर उसने राम का ध्यान भी करना आरम्भ किया । वह अपने हाथ से स्वयं भोजन बनाकर भगवान् को अर्पित करता था । और भगवान् ने भी साक्षात् प्रकट होकर उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति की ।३७-४१

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में राजा उत्तानपाद के प्रिय पुत्र राजा ध्रुव हुए थे, जो पाँच वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता द्वारा परित्यक्त किये गये थे । पश्चात् उन्होंने नारद जी के उपदेश से गोवर्द्धन पर्वत की यात्रा की । उस समय महाव्रती ने वहाँ पहुँचकर छे मास तक भगवान का ध्यान किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु नारायण स्वामी ने आकाशमण्डल के पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया । उनके सुन्दर बदन को देखकर माया शक्ति जो दश दिशाओं में पूर्ण व्याप्त है, ध्रुव को अपना स्वामी स्वीकार कर भक्तिपूर्वक अपनी विनम्र अवस्थिति की। अनन्तर भगवान् ध्रुव भी साक्षात् सर्व पूज्य हुए। तथा वे दिशाओं, नक्षत्रों, एवं आकाश के भी पति वहीं हैं वे कालकर्त्ता, शिशुमार पति तथा पाँच तत्वों वाली उस प्रकृति माया के भी पति हैं । उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भ से महाग्रह भौम, जल देवी के गर्भ से महाग्रह शुक्र, अग्नि की स्त्री के गर्भ से महाग्रह मैं (गुरु), वासुदेवी के गर्भ से महाग्रह केतु, और नभो देवी के गर्भ से महाग्रह राहु, जो घोर एवं उपग्रह भी कहा जाता है। उन्हीं ध्रुव द्वारा उत्पन्न हुए हैं।४२-५०।

---

१. पञ्चतत्त्वा माया प्रकृतिस्तत्पतिस्स स्वयमित्यर्थः ।

पूर्वस्यां दिशि वै तस्माज्जातश्चैरावतो गजः। आग्नेय्यां दिशि वै तस्मात्पुण्डरीको गजोऽभवत् ।।५१
वामनः कुमुदश्चैव पुष्पदन्तः क्रमाद्गजाः । सार्वभौमः सुप्रतीको नभोदिक्षु तु तत्सुताः ।।५२
अभ्रमुः कपिला चैव पिङ्गलाख्या इमाः क्रमात्। ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चाङ्गना चाञ्जनावती ।।५३
भूमिदिक्षु करिण्यश्च जातास्तस्मात्तु तत्प्रियाः। भगिनी च तथा माता सुता चैव स्नुषा तथा ।।५४
पशुयोन्युद्भवानां च नृणां ता योषितस्सदा । देवयोन्युद्भवानां च नृणां पत्नी स्मृता स्वसा ।।५५
मनुवंशोद्भवानां च नृणां चान्योद्भवाः स्त्रियः। इति धर्मो विधात्रोक्तो मया प्रोक्तः सुरा हि वः ।।५६
द्विधा ध्रुवस्स विज्ञेयो भूमेरुर्द्ध्वमधस्तथा । सद्गुणः स दिवारूपो रात्रिरूपस्तमोगुणः ।।५७
अधोध्रुवे सदा रात्रिर्नरकास्तत्र वै स्थिताः । ऊर्ध्वध्रुवे दिवा नित्यं तपोमध्ये निशा दिवा ।।५८
महो जनस्तपस्सत्यं तेषु नित्यं दिनं स्मृतम् । रौरवश्चान्धकूपश्च तामिस्रं च तमोमयम् ।।
तेषु नित्यं स्मृता रात्रिः कल्पमानं च कोविदैः ।।५९
स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणो माधवप्रियः । षष्टचब्दं सर्वतीर्थेषु प्रातःस्नानं चकार ह ।।६०
तीर्थ पुण्यात्स वै विप्रो माधवो माधवप्रियः । सुनीत्यां गर्भवासाद्य ध्रुवो भूत्वा रराज ह ।।
षट्त्रिंशच्च सहस्राब्दं राज्यं कृत्वा ध्रुवोऽभवत् ।।६१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं स ध्रुवः पञ्चमो वसुः । गुर्जरे देश आगम्य वैश्यजात्यां समुद्भवः ।।

उनके द्वारा पूर्व दिशा में ऐरावत नामक गज, अग्नि दिशा में पुण्डरीक नामक गज, और वामन, कुमुद एवं पुष्पदन्त नामक गजेन्द्रों की उत्पत्ति हुई सार्वभौम एवं सुप्रतीक नामक उन गजेन्द्रों के पुत्र उन्हीं द्वारा उत्पन्न हुए जो आकाश दिशाओं के अधिपति हैं एवं अभ्रभु, कपिला, पिंगला, ताम्रकर्णी, शुभ्रदन्ती, अंगना, अंजनावती आदि उनकी पत्नियाँ भी उन्हीं द्वारा उत्पन्न हुईं, जो पृथिवी की दिशाओं में रहती हैं। उसी प्रकार उनकी भगिनी, माता, पुत्री, पुत्रवधू आदि भी। जो पशुयोनि में उत्पन्न नरपशुओं की सदैव स्त्रियाँ हो रही हैं। देवयोनि में उत्पन्न नरों की स्वसा उनकी स्वसा (भगिनी) ही पत्नी और मनुवंश में उत्पन्न पुरुषों की पत्नियाँ अन्य द्वारा उत्पन्न स्त्रियाँ हुई हैं। देववृन्द! इस धर्म की व्याख्या ब्रह्मा ने स्वयं की थी, मैंने तुम्हें सुना दिया। वह ध्रुव दो भागों में विभक्त होकर भूमि के ऊपर एवं नीचे लोकों में अवस्थित हैं, जो सतोगुण रूप से दिवारूप और तमोगुण रूप से रात्रिरूप है। तथा पृथिवी के नीचे रात्रिरूप में सदैव अवस्थित हैं, जहाँ नारकीयों की स्थिति होती है। पृथिवी के ऊपर ध्रुव की अवस्थिति होने से ऊपर के लोकों में सदैव दिवस, मध्य के तपलोक में रात्रि दिवस दोनों, तथा महर्लोक, जनलोक के तपलोक और सत्यलोक में दिन रहता है। उसी भाँति पण्डितों ने रौरव, अंधकूप, और तमोमय तामिस्र में सदैव रात्रि ही रहती है। पूर्व जन्म में वे माधव नामक ब्राह्मण थे, जो अत्यन्त भगवत्प्रिय थे। उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था तक सभी तीर्थों में भ्रमणकर प्रातः स्नान किया था। जिस पुण्य के प्रभाव से वे भगवान् के अत्यन्त प्रिय हुए। पश्चात् रानी सुनीति के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर ध्रुव नाम से राजपद पर प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज का उपभोग करके उन्होंने अटल ध्रुव का पद प्राप्त किया।५१-६१

सूत जी बोले—इस प्रकार बृहस्पति की वाणी सुनकर पाँचवें वसु ध्रुव ने अपने तेज को निकाल

नरश्रीर्नाम विख्यातो गुणवैश्यस्य वै सुतः ॥६२
कुसीदगुणगुप्तश्च नरश्रीः पुत्रवत्सलः । त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्गं स वैश्यतनयो ध्रुवः ॥६३
प्रत्यहं स हरेः क्रीडां वृन्दावनमहोत्तमे । शिवप्रसादात्प्रत्यक्षां दृष्ट्वा हर्षमवाप्तवान् ॥६४
यस्य पुत्रविवाहे च भगवान्भक्तवत्सलः । यादवैस्सह सम्प्राप्तस्तस्य वाञ्छितदायकः ॥६५
पुरीं काशीं समागम्य नरश्रीर्भक्तराट् स्वयम् । रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्विष्णुधर्मविशारदः ॥६६

बृहस्पतिरुवाच

कदाचिद्भगवानत्रिर्गङ्गाकूलेऽनसूयया । सार्द्धं तपो महत्कुर्वन्ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥६७
तदा ब्रह्मा हरिश्शम्भुः स्वस्ववाहनमास्थिता । वरं ब्रूहीति वचनं तमाहुस्ते सनातनाः ॥६८
इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयम्भूतनयो मुनिः । नैव किञ्चिद्वचः प्राह संस्थितः परमात्मनि ॥६९
तस्य भाव सनालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः । अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०
लिङ्गहस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धनः । ब्रह्मा कामब्रह्मलोपः स्थितस्तस्या वशं गतः ॥
रतिं देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥७१
पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषां वचोऽशुभम् । नैव किञ्चिद्वचः प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ॥७२
मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदा । मैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्मायाविमोहिताः ॥७३

कर फेंका। उसी द्वारा गुजरात देश निवासी गुण वैश्य नामक वैश्यशिरोमणि के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुए, नर श्री नाम से प्रख्यात हुए। रुपये के व्याज द्वारा जीवन-यापन करने वाले गुणगुप्त वैश्य अपने पुत्र को बहुत प्यार करता था, किन्तु वैश्यपुत्र ध्रुव ने अल्पकाल में ही अपना प्राण परित्याग कर स्वर्ग की यात्रा की। शिव जी की प्रसन्नता से वे उस उत्तम वृन्दावन में भगवान् की रासक्रीडा का दर्शन प्रत्यक्ष किया करते थे, जो उन्हें अत्यन्त हर्षातिरेक से प्राप्त हुआ था। उस भक्तराट् के पुत्र के विवाह में भक्त-वत्सल भगवान् कृष्ण ने अपने यादवगणों समेत आकर उनका मनोरथ पूरा किया। पश्चात् विष्णुधर्म प्रिय नरश्री ने काशीपुरी में जाकर रामानन्द की शिष्य सेवा स्वीकार की।६२-६६

बृहस्पति जी बोले—एकबार भगवान् अत्रि ऋषि ने अपनी अनसूया नामक पत्नी समेत गंगा के तट पर ब्रह्मध्यान में निमग्न होकर महान् तप करना आरम्भ किया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव जी ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने ब्रह्मपुत्र अत्रि से वरयाचना करने के लिए कहा। किन्तु अत्रि इन लोगों की बात पर कुछ ध्यान न देकर पूर्व की भाँति ब्रह्मध्यान में मग्न ही रहे। उनके भाव को जानकर उन तीनों देवों ने उनकी पत्नी अनसूया के पास जाकर उनसे कहना आरम्भ किया। उस समय अनसूया के वशीभूत होकर रूद्र हाथ से लिंग ग्रहण किये थे, विष्णु उसमें रस वृद्धि कर रहे थे और ब्रह्मा अपनी कामवासना नष्ट करने पर तुले थे। वे लोग उससे बार-बार यही कह रहे थे कि—मदभरे नेत्रों से कटाक्षपात करने वाली प्रिये! मुझे रति दान प्रदान करो, अन्यथा तुम्हारे सामने मेरा प्राण निकल रहा है। उस समय पतिव्रता अनसूया ने उन लोगों की उस अशुभ वाणी को सुनकर भी उनके कोपभय से भयभीत होने के नाते उन लोगों से कुछ नहीं कहा। किन्तु अत्यन्त मोहित उन बलवान् देवों ने जो माया विमुग्ध थे, बलात् उसे पकड़कर मैथुनार्थ प्रयत्न किया।६७-७३।

तदा क्रुद्धा सती सा वै तान्छशाप मुनिप्रिया । मम पुत्रा भविष्यन्ति यूयं कामविमोहिताः ।।७४
महादेवस्य वै लिङ्गं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः । चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैस्सदा ।।
भविष्यन्ति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ।।७५
इति श्रुत्वा वचो घोरं नमस्कृत्य मुनिप्रियाम् । तुष्टुवुर्भक्तिनम्राश्च देवपाठैश्च ऋङ्मयैः ।।७६
अनसूया तदा प्राह भवन्तो मम पुत्रकाः । भूत्वा शापं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिमवाप्स्यथ ।।७७
इत्युक्ते वचने ब्रह्मा चन्द्रमाश्च तदा ह्यभूत् । दत्तात्रेयो हरिः साक्षद्दुर्वासा भगवान्हरः ।।
तत्पापपरिहारार्थं योगवन्तो बभूविरे ।।७८
एतस्मिन्नन्तरे देवी प्रकृतिस्सर्वधर्मिणी । विधिं विष्णुं हरं चान्यं चक्रे सा गुणरूपिणी ।।७९
मन्वन्तरमतो जातं तेषां योगं प्रकुर्वताम् । हृषिताश्च त्रयो देवास्समागम्य च तान्प्रति ।।८०
उवाच वचनं रम्यं तेषां मङ्गलहेतवे । चन्द्रमाश्च भवेत्सोमो वसुः षष्ठः सुरप्रियः ।।८१
रुद्रांशश्चैव दुर्वासाः प्रत्यूषः सप्तमो वसुः । दत्तात्रेयमयो योगी प्रभासश्चाष्टमो वसुः ।।
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य वसवस्ते त्रयोऽभवन् ।।८२

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसवो हर्षितास्त्रयः । स्वांशेन भूतलं जग्मुः कलिशुद्धाय दारुणे ।।
दाक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्यां समुद्भवः ।।८३
पीपा नाम सुतः सोमः सुदेवस्य तदा ह्यभूत् । कृतं राज्यपदं तेन यथा भूपेन तत्पुरे ।।८४

उस समय क्रुद्ध होकर उस सती मुनिपत्नी ने उन्हें शाप दिया कि—काम मोहित होने के नाते तुम लोग मेरे पुत्र होगे । सुरश्रेष्ठ ! महादेव का लिंग, ब्रह्मा का शिर और विष्णु के चरण की पूजा मनुष्यों द्वारा सदैव जो होती है, यह एक उत्तम उपहास की बात होगी । इस घोर वाणी को सुनकर नमस्कार पूर्वक उन देवो ने भक्ति नम्र होकर वेद ऋचाओं के पाठ द्वारा उस मुनिपत्नी की आराधना की । पश्चात् अनसूया ने कहा—आप लोग मेरे पुत्र होकर शापमुक्ति पूर्वक ही प्रसन्नचित्त हो सकेंगे । ऋषि पत्नी के इस प्रकार कहने पर उस पाप के परित्यागार्थ ब्रह्मा ने चन्द्रमा, विष्णु ने दत्तात्रेय, और रूद्र ने दुर्वासा के रूप में परिणत होकर योग करना आरम्भ किया । उसी बीच समस्त धर्मधारिणी प्रकृति देवी ने जिसे गुणात्मक (सत्, रज एवं तम रूपा) कहा गया है, अन्य ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का निर्माणकर अपना कार्य सुसम्पादन करना आरम्भ किया था । इस प्रकार योग करते हुए उपरोक्त ऋषियों का वह मन्वन्तर काल समाप्त हो गया । पश्चात् हर्षित होकर उन तीनों देवों ने उन योगियों के पास जाकर उनके कल्याणार्थ मांगलिक वाणी द्वारा उन सब से कहा—सोम नामक देव विप्र छठाँ बसु चन्द्रमा, प्रत्यूष नामक सातवाँ वसु रुद्रांश दुर्वासा, और प्रभास नामक आठवाँ वसु, योगिश्रेष्ठ दत्तात्रेय होंगे । इस भाँति उन दोनों की बातें सुनकर वे तीनों योगी वसु हो गये ।७४-८२

सूत जी बोले—बृहस्पति जी इस बात को सुनकर हर्षपूर्ण उन तीनों वसुओं ने कलि शुद्धार्थ इस भूतल में अपने अंश का प्रेषण किया, जो दक्षिण देश के वैश्यशिरोमणि राजकुल में सुदेव के गृह उत्पन्न होकर पीपा नामक पुत्र हुआ । अपने पिता के समान ही पीपा ने यथावसर राजपद पर प्रतिष्ठित होकर

रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्द्वारकां स समागतः । हरेर्मुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ।।
वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ।।८५
प्रत्यूषश्चैव पाञ्चाले वैश्यजात्यां समुद्भवः । मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ।।।८६
रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः । स वै म्लेच्छान्वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गमदर्शयत् ।।८७
प्रभासो वै शान्तिपुरे ब्रह्मजात्यां समुद्भवः । शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्द इति स्मृतः ।।
इति ते वसुमाहात्म्यं मया शौनक वर्णितम् ।।८८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये वसुमाहात्म्ये कबीरनरश्रीपीपानानकनित्यानन्दसमुत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

सधनरैदाससमुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तान्सुरान्देवो भगवान्बृहतां पतिः । अश्विनौ च समालोक्य तयोर्गाथामवर्णयत् ।।१
वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं विश्वकर्मा विचित्रकृत् । चित्रगुप्तश्रियं दृष्ट्वा चित्रलेखाविनिर्मिताम् ।।
स्पर्द्धाभूतो महामायां तुष्टाव बहुपूजनैः ।।२

राज्य का उपभोग किया था । पश्चात् रामानन्द के शिष्य होकर उन्होंने द्वारका की यात्रा की । वहाँ रहकर उन्होंने भगवान् कृष्ण द्वारा प्रेततत्वनाशिनी सुवर्ण की मुद्राओं को प्राप्तकर वैष्णवों में वितरण करने का नियम किया था । उसी भाँति प्रत्यूष ने भी पांचाल (पंजाब) प्रदेश में वैश्य श्रेष्ठ मार्गपाल के घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया । जिनकी नानक नाम से ख्याति हुई । रामानन्द के शिष्य होकर नानक ने म्लेच्छों (यवनों) को अपने अधीनकर उन्हें सूक्ष्म मार्ग का दिग्दर्शन कराया और प्रभास ने शांतिपुर में ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्लदत्त के घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया । उनकी ख्याति नित्यानंद नाम से हुई थी । इस प्रकार शौनक ! मैंने तुम्हें वसु माहात्म्य का वर्णन सुना दिया ।८३-८८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय के वसुमाहात्म्य में कबीर, नर श्री पीपा नानक और नित्यानन्द की उत्पत्ति का वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

सधनरैदाससमुत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—भगवान् बृहस्पति ने देवों से इस प्रकार की बातें कहकर पुनः अश्विनी कुमार की गाथों का वर्णन करना आरम्भ किया । वैवस्वत मन्वतर काल के पूर्व समय में विचित्र कारीगरी करने वाले विश्वकर्मा ने चित्रलेखा द्वारा निर्माण की हुई उस चित्रगुप्त को भी देखकर ईर्ष्या प्रकट करते हुए अनेक भाँति के पूजनों द्वारा महामाया का पूजन करना आरम्भ किया । पश्चात् प्रसन्न होकर उस

प्रसन्ना सा तदा देवी चित्रायां तस्य योषितिः। स्वांशाज्जाता स्मृता संज्ञा सर्वज्ञानकरी स्वयम् ॥३
षोडशाब्दे वयः प्राप्ते संज्ञायास्तत्पिता सुखी। विवाहार्थी सुरान्सर्वानाह्वयन्मेरुमूर्द्धनि ॥४
यक्षाधीशाश्च षड्विंशत्कुबेराद्यास्समागताः। यादसां पतयः प्राप्ता दश तत्रैव कामुकाः ॥५
पावका ऊनपञ्चाशद्वायवश्च तथा स्मृताः। ध्रुवौ द्वौ च स्वयं प्राप्तौ सोमास्तत्रैव षोडश ॥६
त्रयोदश च प्रत्यूषाः प्राप्ता विश्वरक्षकाः। षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं प्रभासा दिनरक्षकाः ॥७
भवाद्याश्च तदा रुद्राः शशिमण्डलरक्षकाः। आदित्याश्च स्थितास्सर्वे संज्ञायाश्च स्वयंवरे ॥८
दानवा विप्रचित्याद्याश्चतुराशीतिरायगुः। प्रह्लादाद्यास्तदा दैत्या वासुक्याद्याश्च पन्नगाः ॥९
शेषाद्याश्च तदा नागास्तार्क्ष्याद्या गरुडाः स्मृताः। सर्वे स्वयंवरे प्राप्ता महान्कोलाहलो ह्यभूत् ॥१०
एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकन्यासमन्विता। संज्ञा देवान्प्रति तदा प्रत्यक्षमभवद्दिवि ॥११
तां समालोक्य बलवान्बलिः काममिमोहितः। करे गृहीत्वा प्रययौ पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥१२
तदा क्रोधातुरा देवा रुरुधुर्दैत्यसत्तमम्। शस्त्रास्त्रैस्तर्पयित्वा तं महद्युद्धमकारयन् ॥१३
दानवाश्च तदा दैत्या नानावाहनसंस्थिताः। देवैः सार्द्धं महद्युद्धं तुमुलं चक्रिरे मुदा ॥१४
दानवैश्च हता देवाः सुरैर्दैत्या विनाशिताः। शवभूतैरिलावर्तेऽभूदगम्या वसुन्धरा ॥१५
पक्षमात्रमभूद्युद्धं दिव्यं दानवदेवयोः। पाञ्चजन्यस्तथा धाता हयग्रीवश्च मित्रकः ॥१६
अघासुरोऽर्यमा चैव बलः शक्रस्तथैव च। बकासुरश्च वरुणः शकटः प्रांशुरेव च ॥१७
वत्सासुरो भगश्चैव विवस्वांश्च बलिः स्वयम्। प्रलम्बश्च तथा पूषा गर्दभः सविता युधि ॥१८

माहामाया ने जो सम्पूर्ण ज्ञानों की प्रदात्री है, उनकी चित्रा नामक पत्नी में अपने अंश द्वारा संज्ञा नाम से जन्म ग्रहण किया। संज्ञा की सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उसके सुखी पिता ने मेरुशिखर पर स्वयम्बर का आयोजन किया, जिसमें सभी देवों का आवाहन किया गया। उस स्वयम्बर में छब्बीस यक्षों समेत उनके अधीश्वर कुबेर, यादों गणों समेत उनके अध्यक्ष वरुण, पावकगण, उनचास वायुगण दोनों ध्रुव सोलह सोमगण, विश्वरक्षक तेरह प्रत्यूषगण, दिनरक्षक तीन सौ साठ प्रभास गण, चन्द्रमण्डलरक्षक भवादि रुद्रगण, , तथा सभी आदित्य उपस्थित थे। उसी प्रकार चौरासी विप्रचिति आदि दानव, प्रह्लाद आदि दैत्य, वासुकी आदि पन्नग, शेष आदि नाग और तार्क्ष्य आदि गरुणगण भी उपस्थित थे। उस समय उस स्वयम्बर में महान् कोलाहल हो रहा था। उसी बीच देवकन्याओं के साथ वह संज्ञा देवी देवों के सामने आकाश में दिखाई पडी। उसे देखकर काममोहित होकर बलवान् बलि ने हाथ से पकड़कर उन सभी के देखते ही उन्हें लेकर चल दिया। उस समय देवों ने क्रुद्ध होकर उस दैत्यश्रेष्ठ को रोकने की चेष्टा की। अपने शस्त्रास्त्रों के घात-प्रतिघात द्वारा उससे महान् युद्ध आरम्भ किया। दानवों और दैत्यों ने अनेक भाँति के अपने-अपने वाहनों पर बैठकर उन देवों के साथ भीषण युद्ध किया।१-१४। जिससे दानवों ने देवों का और देवों ने दैत्यों का विनाश किया। देव-दानवों का वह दिव्य युद्ध एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक हुआ, जिसमें उस इलावृत की भूमि शवमय दिखाई देती थी। उस युद्ध में पाञ्चजन्य-धाता, हयग्रीवमित्रक, अघासुर अर्यमा, बल-इन्द्र, वकासुर-वरुण, शकट-प्रांशु, वत्सासुरभग विवस्वान्-बलि, प्रलम्ब-पूजा, गर्दभ-सविता,

विश्वकर्मा मयश्चैव कालनेमिर्हरिः स्वयम् । काङ्क्षमाणौ च विजयं ययुधाते परस्परम् ॥
पराजिताश्च ते दैत्या युद्धं त्यक्त्वा प्रदुद्रुवुः ॥१९
विवस्वाँश्च तदा संज्ञां गृहीत्वा रथसंस्थिताम् । विश्वकर्माणमागम्य ददौ तस्मै प्रसन्नधीः ॥२०
विवस्वन्तं सुरश्रेष्ठं दृष्ट्वा संज्ञा वचोऽब्रवीत् । मत्पतिश्च भवान्देवो भवेत्कार्यकरस्सदा ॥२१
त्वया जिताहं भगवन्बलेर्विप्रियकारिणः । भ्रातृजाग्रहणे दोषो न भवेत्स कदाचन ॥२२
वीरभुक्ता सदा नारी स्त्रीरत्नं मुनिभिः स्मृतम् । चतुर्द्धा प्रकृतिर्देवी गुणभिन्ना गुणैकिका ॥
एका सा प्रकृतिर्माता गुणसाम्यात्सनातनी ॥२३
सत्त्वभूता च भगिनी रजोभूता च गेहिनी । तमोभूता च सा कन्या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥२४
बहवः पुरुषा ये वै निर्गुणाश्चैकरूपिणः । चैतन्याऽज्ञानवन्तश्च लोके प्रकृतिसम्भवाः ॥२५
अलोके पापजास्सर्वे देवब्रह्मसमुद्भवाः । या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम् ॥
कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत् ॥२६
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम् । भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादितिसम्भवः । विवस्वान्भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत् ॥२८
सुताः कन्यास्तयोर्जाता मनुर्वैवस्वतस्तथा । यमश्च यमुना चैव दिव्यतेजोभिरन्विताः ॥२९
तदा संज्ञा सती साक्षात्तेजोभूतं पतिं स्वकम् । ज्ञात्वा छायां समुत्पाद्य तपसे वनमागता ॥३०

विश्वकर्मा मय, और कालनेमि विष्णु आपस में एक दूसरे को पराजित करने की इच्छा से युद्ध कर रहे थे। पश्चात् उस युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने पलायन किया। उस समय विवस्वान् ने संज्ञा को रथ पर बैठाकर ले जाकर विश्वकर्मा को सौंप दिया। उस समय देवश्रेष्ठ विवस्वान् को प्रसन्न देखकर संज्ञा ने उनसे कहा—आप मेरे पति होकर मेरा कार्य सदैव किया करें। क्योंकि भगवन् ! तुम्हीं ने उस वली बलि को पराजित कर विजय रूप में मुझे प्राप्त किया है। भाई की पुत्री (भतीजी) का ग्रहण करने में कोई दोष भी न होगा, क्योंकि मुनियों ने यह स्वीकार किया है कि नारी सदैव वीरभोग्या हैं और विशेषकर स्त्रीरत्न-गुणयुक्ता प्रकृति देवी अपने को गुण भेद द्वारा चार रूपों विभक्त करती है— एक भाग से वह सनातनी प्रकृति माता, सतोगुण रूप से भगिनी, रजोगुण रूप से गृहिणी, और तमोगुण रूप से कन्या होती है, अतः उस देवी को नमस्कार है। तथा एकरूपी उस निर्गुण को अनेक पुरुष रूपों में विभक्त किया है, जो चैतन्य, अज्ञानी एवं प्रकृति द्वारा उत्पन्न कहे जाते हैं। अलोक निवासी सभी लोग पापकर्म द्वारा ब्रह्मादि देवों से उत्पन्न हैं। और उसे ही ज्ञानमयी नारी पुरुष रूप में वरण करती है। अतः उस स्त्री के पुत्र, पिता, भ्राता और पति कौन हो सकते हैं? क्योंकि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री, विष्णु ने अपनी माता, एवं भगवान् शंभु ने अपनी भगिनी का (स्त्रीरूप) ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की है। अदितिपुत्र विवस्वान् ने इस वेदमयी वाणी को सुनकर उस भ्रातृपुत्री संज्ञा का ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की।१५-२८। पश्चात् उन दोनों के द्वारा कन्या सुत यम और यमुना वैवस्वत तेजपूर्ण जन्म हुआ। उस समय संज्ञा ने अपने पति को तेजपुञ्ज जानकर अपनी प्रतिनिधि छाया को वहाँ रखकर स्वयं तप करने के लिए प्रस्थान किया। अनन्तर

सावर्णिश्चमनुस्तस्यां शनिश्च तपती तथा । छायायां च समुद्भूताः क्रूरदृष्ट्या विवस्वतः ।।३१
पुत्रभेदेन तां नारीं मत्वा मायां रुषान्वितः । चकार भस्मभूतां तां विवस्वान्भगवान्रविः ।।३२
तदा शनिश्च सावर्णिर्विवस्वन्त रूषान्वितम् । ज्ञात्वा च क्रोधताम्राक्षौ युयुधाते परस्परम् ।।३३
कियता चैव कालेन भग्नभूतौ विवस्वता । हिमाचले गिरौ प्राप्य तेपतुः परमं तपः ।।३४
त्रिदर्जान्ते च सा देवी महाकाली समागता । अर्चितं च वरं ताभ्यां ददौ तद्भक्तिवत्सला ।।३५
पुनस्तौ च समागम्य युयुधाते विवस्वता । विवस्वान्भयभीतश्च त्यक्त्वा युद्धं पराभवत् ।।३६
तत्र स्थिता प्रिया संज्ञा वडवारूपधारिणी । कुरुखण्डे महारम्ये तपन्ती तप उल्बणम् ।।३७
गत्वा ददर्श भगवान्संज्ञां सम्बोधकारिणीम् । कामातुरो हयो भूत्वा तत्र रेमे तया सह ।।३८
पञ्चवर्षान्तरे संज्ञा गर्भं तस्माद्दधौ स्वयम् । तनयौ च समुद्भूतौ दिव्यरूपपराक्रमौ ।।३९
पितुर्दुःखं समालोक्य जग्मतू रविमण्डलम् । जित्वा बन्धू दुराचारौ क्रूरदृष्ट्या तदा स्वयम् ।।४०
बद्ध्वा तौ स्वपितुः पार्श्वं सम्प्राप्तौ वडवासुतौ । दृष्ट्वा विवस्वान्भगवान्वैरिणौ समुपागतौ ।।४१
सम्पीडच्य ताडयामास लोहदण्डैर्भयानकैः । पङ्गुभूतौ पुनस्त्यक्त्वा छायापुत्रौ दिवाकरः ।।४२
आश्विनेयौ समालोक्य वचनं प्राह तौ मुदा । जीव ईशो यथा मित्रे नरनारायणौ यथा ।।
एकनाम्ना युवां प्रीतौ नासत्यौ च भविष्यथः ।।४३
सोमशक्तिरिडादेवी ज्येष्ठपत्नी भविष्यति । पिङ्गला सूर्यशक्तिश्च लघुपत्नी भविष्यति ।।४४

विवस्वान् ने सावर्णि मनु शनि और तपती को अपनी क्रूरदृष्टि द्वारा छाया के गर्भ से उत्पन्न किया। किन्तु पुत्रभेद से उसे नारी समझने पर भी क्रुद्ध होकर भगवान् विवस्वान् ने उस माया को भस्मकर दिया। पश्चात् शनि और सावर्णि ने विवस्वान् को क्रुद्ध होते देखकर आपस में युद्ध किया। कुछ काल के उपरांत विवस्वान् द्वारा भीत होकर उन दोनों ने हिमालय पर्वत पर जाकर तप करना आरम्भ किया। तीन वर्ष के उपरांत भक्तवत्सला महाकाली देवी ने उन दोनों को वर प्रदान किया। वे दोनों पुनः आकर विवस्वान् से युद्ध करने लगे, किन्तु भयभीत होकर विवस्वान् ने उस युद्ध से पलायन कर उस रमणीक कुरु प्रदेश की यात्रा की, जहाँ उनकी संज्ञा नामक प्रिय बडवा (घोड़ी) का रूप धारणकर महाभीषण तप कर रही थी। भगवान् विवस्वान् ने वहाँ पहुँचकर उस अपनी संज्ञा पत्नी को देखकर कामपीड़ित होते हुए अश्वरूप धारण पूर्वक उसके साथ रमण किया। पाँच वर्ष तक रमण करने के उपरांत संज्ञा ने गर्भ धारण किया, जिससे दिव्य रूप एवं पराक्रम पूर्ण दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। उन दोनों पुत्रों ने अपने पिता को दुःखी देखकर रविमण्डल में पहुँचकर उन दोनों दुराचारी बन्धुओं को विजयपूर्वक बाँधकर अपने पिता के सामने उपस्थित किया। उन दोनों बडवापुत्रों द्वारा उपस्थित अपने शत्रुओं को देखकर भगवान् विवस्वान् ने भयानक लोहदंड से उन्हें इस भाँति प्रताडित किया जिससे वे दोनों छायापुत्र पंगु हो गये।२९-४२। पश्चात् दिवाकर ने बडवा पुत्रों की ओर देखकर हर्षित होकर कहा—जिस प्रकार जीव, ईश (परमात्मा) और नर-नारायण एक रूप रंग एवं अभिन्न मित्र हैं, उसी प्रकार 'नासत्य' इस एक नाम से प्रख्यात होकर तुम दोनों प्रसन्न रहोगे। सोम की शक्ति इड़ादेवी ज्येष्ठ की और सूर्य की शक्ति पिंगला कनिष्ठ पुत्र की पत्नी होगी। इसलिए प्रथम पुत्र की इडापति और दूसरे की पिंगलापति

इडापतिस्स वै नाम द्वितीयः पिङ्गलापतिः । द्वादशस्स नृणां राशेः क्रूरदृष्टिः शनैश्चरः ।।
तस्य शान्तिकरो ज्येष्ठो भविष्यति महीतले ।।४५
द्वितीयश्च नृणां राशेः सावर्णिर्भ्रमकारकः । तस्य शान्तिकरो भूमौ भविता पिङ्गलापतिः ।।४६
जन्मराशिस्थिता देवी तपन्ती तापकारिणी । इडा च पिङ्गला तस्याः शान्तिकर्त्र्यौ भविष्यतः ।।४७
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुरवैद्यो बभूवतुः । सावर्णिश्च शनी राहुः केतुः स्वर्गप्रतापनः ।।
तेषां तु परिहारार्थौ दस्त्रौ चाश्विनिसम्भवौ ।।४८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रसन्नौ सुरसत्तमौ । स्वांशान्महीतले जातौ शूद्रयोन्यां रवेस्सुतौ ।।४९
चाण्डालस्य गृहे जातश्छागहन्तुरिडापतिः । सधनो नाम विख्यातः पितृमातृपरायणः ।।५०
शालिग्रामशिलातुल्यं छागमांसं विचिक्रिये । कबीरं समुपागम्य शिष्यो भूत्वा रराज वै ।।५१
स तु सत्यनिधिः पूर्वं ब्रह्मणस्तप आस्थितः । भयभीतां च गां तत्र चाण्डालाय ह्यदर्शयत् ।।
राजगेहे करस्तस्मात्सधनस्य लयं गतः ।।५२
चर्मकारगृहे जातो द्वितीयः पिङ्गलापतिः । मानदा सस्य तनयो रैदास इति विश्रुतः ।।५३
पुरीं काशीं समागम्य कबीरं रामतत्परम् । जित्वा मतविवादेन शङ्कराचार्यमागतः ।।५४
तयोर्विवादो ह्यभवदहोरात्रं मतान्तरे । पराजितस्स रैदासो नत्वा तं द्विजसत्तमम् ।।

के नाम से ख्याति होगी । मनुष्यों की बारहवीं राशि के स्थान में प्राप्त क्रूरदृष्टि शनि की शांति इस भूतल में ज्येष्ठ पुत्र द्वारा होगी और उसी भाँति दूसरे स्थान में प्राप्त सावर्णि (शनि) राहु और केतु भ्रमण कारक होते हैं, उसकी शांति पिंगलापति करेंगे । उसी प्रकार जन्म राशि-स्थान में रहकर तपंती देवी ताप करने वाली होगी । उसकी शांति दुर्गा और पिंगला द्वारा होगी । इसे सुनकर अश्विनी कुमार वैद्य और सावर्णि शनि, राहु और केतु हुए, जो स्वर्ग में ताप प्रदान करते रहते हैं । उन्ही के वारणार्थ अश्विनी कुमारों का जन्म है ।४३-४८

सूत जी बोले—गुरु की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होकर उन दोनों देव श्रेष्ठों ने अपने अंश द्वारा इस भूतल में शूद्र कुल में जन्म ग्रहण किया । उनमें प्रथम पुत्र इडापति ने बकरे का वध करके चाण्डाल के घर उत्पन्न होकर 'सघन' नाम से प्रख्याति प्राप्त की, जो माता-पिता का परमभक्त था । उसने शालग्रामशिला के समान छाग (बकरे) का मांस विक्रय किया था । पश्चात् कबीर के पास पहुँचकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । यह पूर्व जन्म में सत्यनिधि नामक तपस्वी ब्राह्मण था । एक बार एक भयभीत गौ इसने चाण्डाल को सौंप दी, जिससे इसे राजघर से कर की प्राप्ति हुई । अनन्तर धन समेत स्वयं विनष्ट हो गया था । दूसरे पुत्र पिंगलापति ने मानदास चर्मकार के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होकर रैदास के नाम से प्रख्याति की । उसने काशीपुरी में राम परायण कबीरदास को अपने मत-विवाद द्वारा पराजित किया था । पश्चात् शंकराचार्य के सामने भी उन दोनों का एक रात-दिन विवाद हुआ, जिसमें

रामानन्दमुपागम्य तस्य शिष्यत्वमागतः ॥५५
इति ते कथितं विप्र सुरांशाश्च यथाभवन् । कलिशुद्धिकरी लीला येषां मार्गप्रदर्शिनाम् ॥५६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये अश्विनीकुमारावतारे सधनरैदाससमुत्पत्तिवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

विष्णुस्वामीमध्वाचार्यवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवो देवमाहात्म्यमुत्तमम् । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य ब्रह्मयोनौ बभूव ह ॥१
इष्टिका नगरी रम्या गुरुदत्तस्य वै सुतः । रोपणो नाम विख्यातो ब्रह्ममार्गप्रदर्शकः ॥२
सूत्रग्रन्थमयीं मालां तिलकं जलनिर्मितम् । वासुदेवेति तन्मन्त्रे कलौ कृत्वाजनेजने ॥३
कृष्णचैतन्यमागम्य कम्बलं च तदाज्ञया । गृहीत्वा स्वपुरीं प्राप्य कृष्णध्यानपरोभवत् ॥४
अतः परं शृणु मुने चरित्रं च हरेर्मुदा । यच्छ्रुत्वा च कलौ घोरे जनो नैव भयं व्रजेत् ॥५
पञ्चाब्दे कृष्णचैतन्ये यज्ञांशे यज्ञकारिणि । वङ्गदेशभवो विप्र ईश्वरः शारदाप्रियः ॥६
प्राप्तः शान्तिपुरे ग्रामे वाग्देवीवरदर्पितः । सतां दिग्विजयं कृत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ॥७

रैदास ने पराजित होकर रामानन्द की शिष्य-सेवा स्वीकार की । विप्र ! इस प्रकार मैंने उन देवांशों की उत्पत्ति सुना दी, जिन मार्गप्रदर्शकों की लीला कलि को शुद्ध करती है ।४९-५६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में अश्विनी कुमार, सधन, रैदास की उत्पत्ति वर्णन नामक अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

विष्णुस्वामी मध्वाचार्य का वर्णन

सूत जी बोले—इस प्रकार देवों के माहात्म्य वर्णन करने के उपरांत भगवान् वृहस्पति ने मुख द्वारा अपना अंश निकालकर व्रह्मयोनि में उत्पन्न होने के लिए प्रेषण किया, जो इष्टिका नामक रमणीक पुरी के निवासी गुरुदत्त के यहाँ पुत्ररूप से उत्पन्न होकर रोपण नाम से ख्याति प्राप्त की । व्रह्ममार्ग के प्रदर्शक उस रोपण ने गाँठयुक्त सूत्र की माला, जल का तिलक और वासुदेव नामक मंत्र का अनेक मनुष्यों में प्रसार किया था । पश्चात् कृष्ण चैतन्य के पास पहुँचकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कम्बल धारण किये । अपनी पुरी में जाकर कृष्ण का ध्यान करना आरम्भ किया । मुने ! इसके उपरांत मैं भगवत्चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! जिसके श्रवण करने से मनुष्यों को कलिभय नहीं होता है । कृष्ण चैतन्य की पाँच वर्ष की अवस्था में, जो यज्ञांश एवं यज्ञकर्ता कहे जाते हैं, एक केशव नामक व्राह्मण आया, जो काश्मीर नगर का रहने वाला एवं शारदा प्रिय था । उस शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् ने शास्त्रार्थ द्वारा दिग्विजय करते हुए वाग् देवी द्वारा प्राप्त वरदान से मदान्ध होकर शान्तिपुर की यात्रा की ।१-७। वह व्राह्मण

गङ्गाकूले स्तवं दिव्यं रचित्वा[1] सोऽपठद्द्विजः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्ञांशस्समुपागतः ।।
उवाच वचनं रम्यमीश्वरं स्तुतिकारिणम् ।।८
सुकृतं पूर्तमर्णं च श्रुतीनां सारमेव हि ! इत्युक्तं भवता स्तोत्रे दूषणं भूषणं वद ।।९
तथाह चेश्वरो धीमान्दूषणं नैव दृश्यते । इत्युक्त्वा प्राह भगवान्भूषणं नैव दृश्यते ।।१०
सुकृतं च स्मृतं धर्मः पूर्तं चैतन्यमुच्यते । अर्णं वीर्यमिति ज्ञेयं श्रुतिसारमतस्त्रयम् ।।
गङ्गाजले दूषणोऽयं भूषणोऽयं कलेवरे ।।११
इति श्रुत्वा स वै भिक्षुर्विस्मितोऽभून्न्न गीः प्रियः । लज्जितं स्वजनं दृष्ट्वा शारदा सर्वमङ्गला ।।
विहस्येश्वरमित्याह कृष्णश्चैतन्यसंज्ञकः ।।१२
इति श्रुत्वा तु तच्छिष्यः कृष्णमन्त्रउपासकः । बभूव वैष्णवश्रेष्ठः कृष्णचैतन्यसेवकः ।।१३

सूत उवाच

श्रीधरो नाम विख्यातो ब्राह्मणः शिवपूजकः । पत्तने नगरे रम्ये तस्य सप्ताहमुत्तमम् ।।१४
राज्ञा भागवतं तत्र कारितं सधनं बहु । गृहीत्वा श्रीधरो विप्रो जगाम श्वशुरालये ।।१५
तत्रोष्य मासमात्रं च स्वपत्न्या सह वै द्विजः । स्वगेहमगमन्मार्गे चौराः सप्त तु तं प्रति ।
शपथं रामदेवस्य कृत्वा सार्द्धमुपाययुः ।।१६

वहाँ पहुँचकर गंगा के तट पर अपने बताये हुए स्तोत्र से उनकी आराधना कर रहा था । उसी बीच यज्ञांशदेव ने वहाँ आकर उस स्तुति करने वाले केशव नामक ब्राह्मण से रम्य वाणी द्वारा कहा—सुकृत, पूर्त और अर्ण यही तीन श्रुतियों के सार बताये गये हैं, जो आपके इस स्तोत्र में दूषणरूप हैं तथा इसमें भूषण कौन हैं, कहने की कृपा कीजिये ? इसे सुनकर केशव ने कहा—इसमें कोई दोष नहीं दिखाई देता है, इतना कहने पर यज्ञांश भगवान् ने कहा—तो इसमें कोई भूषण भी नहीं दिखाई देता है । क्योंकि सुकृत धर्म, पूर्त चैतन्य और अर्ण बीज को कहते है, इसीलिए ये तीनों श्रुतियों के तत्त्व कहे गये हैं ! जिस प्रकार गंगाजल में जो दूषणरूप है, वही इस देह में भूषणरूप होता है । इसे सुनकर सरस्वती प्रिय उस ब्राह्मण ने आश्चर्यचकित नेत्र से उन्हें देखने लगा । उस समय सर्वमंगला शारदा ने अपने भक्त को लज्जित होते देखकर मन्दहासपूर्वक केशव से कहा—स्वयं भगवान् यह यज्ञांश रूप हैं । यह सुनकर उस ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करके कृष्ण मंत्र की उपासना आरम्भ की, जो पश्चात् कृष्ण चैतन्य का वैष्णवश्रेष्ठ सेवक हुआ ।८-१३

सूत जी बोले—श्रीधर नामक एक प्रख्यात ब्राह्मण था, जो सदैव शिव जी की उपासना करता था । पत्तनाधीश्वर ने एक बार श्रीधर ब्राह्मण को सादर बुलवाकर अपने यहाँ उनके द्वारा भागवत का सप्ताह पारायण कराया, जिसमें उन्हें बहुत सा धन प्राप्त हुआ । उसे लेकर श्रीधर ने अपने श्वसुर के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर एक मास के उपरांत पत्नी समेत अपने घर की यात्रा की । यात्रा के समय मार्ग में सातों चोरगण भगवान् राम के शपथ द्वारा अपनी सज्जनता का परिचय देकर उनके साथ चल रहे

---

१. रचयित्वा ।

समाप्ते विपिने रम्ये हत्वा ते श्रीधरं द्विजम् । गोरथं सधनं तत्र सभार्यं जगृहुस्तदा ।।१७
एतस्मिन्नन्तरे रामः सच्चिदानन्दविग्रहः । सप्त तांश्च शरैर्हत्वा पुनरुज्जीव्य तं द्विजम् ।।१८
प्रेषयामास भगवांस्तदा वृन्दावने प्रभुः । तदा प्रभृति वै विप्रः श्रीधरो वैष्णवोऽभवत् ।।१९
सप्ताब्दे चैव यज्ञांशे गत्वा शान्तिपुरीं शुभाम् । ब्रह्मज्ञानमुपागम्य यज्ञांशाच्छिष्यतां गतः ।।
टीका भागवतस्यैव कृता तेन महात्मना ।।२०

सूत उवाच

रामशर्मा स्थितः काश्यां शङ्करार्चनतत्परः । शिवरात्रे द्विजो धीमानविमुक्तेश्वरस्थले ।।
एकाकी जागरन्ध्यानी जप्त्वा पञ्चाक्षरं शुभम् ।।२१
तदा प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो लोकशङ्करः । वरं ब्रूहीति वचनं तमाह द्विजसत्तमम् ।।२२
रामशर्मा शिवं नत्वा वचनं प्राह नम्रधीः । भवान्यस्य समाधिस्थो ध्याने यस्य परो भवान् ।।२३
स देवो हृदये मह्यं वसेत्तव वरात्प्रभो । इत्युक्तवचने तस्मिन्विहस्याह महेश्वरः ।।२४
एका वै प्रकृतिर्माया त्रिधा ब्रह्मस्वरूपिणी । शून्यभूताव्ययस्यैव पुरुषस्यार्द्धतैजसम् ।।
गृहीत्वा लोकजननीं पुंक्लीबौ सुषुवे सुतौ ।।२५
पुमान्नारायणः साक्षाद्गौरश्चाष्टभुजैर्युतः । त्रिधा बभूव भगवान्स्वेच्छया विश्वरक्षकः ।।२६
अर्धतेजास्स वै विष्णुर्वनमाली चतुर्भुजः । क्षीरशायी स आदित्यः स्वयं सद्गुणदेवता ।।२७

थे, किन्तु जंगल प्रदेश के समाप्त होने पर उन चोरों का जो उन श्रीधर ब्राह्मण के निधन पूर्वक गोरथ (बहल) समेत धन और स्त्री लेकर उपस्थित होना चाहते थे कि उसी समय सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् राम ने अपने बाणों द्वारा उन चोरों के निधन करने के उपरांत श्रीधर को जीवन-प्रदान कर उनके घर भेज दिया । भगवान् के उस चरित्र का स्मरण कर श्रीधर ने उसी समय से वृन्दावन में जाकर वैष्णव के वेष में रहते हुए उस शुभ शान्तिपुर की भी यात्रा की । उस यज्ञांशदेव की सात वर्ष की अवस्था थी । वहाँ पहुँचने पर ऊन्होंने यज्ञांशदेव द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति पूर्वक उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की और वहीं रहकर भागवत पुराण की टीका की रचना की ।१४-२०

सूत जी बोले—एक बार रामशर्मा काशीपुरी में शिवरात्रि के दिन भगवान् शिव की अर्चना कर रहे थे । उस समय उस विमुक्तेश्वर स्थान में वही एकाकी ब्राह्मण शिव जी के पंचाक्षर मंत्र के जप पूर्वक ध्यान कर रहा था । उसे ध्यानमग्न देखकर लोक के कल्याणकारी भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से वरयाचना के लिए कहा । उस समय रामशर्मा ने नमस्कार पूर्वक विनम्र वाणी द्वारा शिव जी से कहा—आप जिसके लिए समाधिनिष्ठ होते हैं, और जिसके ध्यान में अत्यन्त तल्लीन रहते हैं । प्रभो ! वह देव आपके वरदान द्वारा मेरे हृदय में निवास करे । ब्राह्मण के ऐसा कहने पर हँसते हुए महेश्वर जी ने कहा—उसी एक प्रकृति-माया ने जो ब्रह्मस्वरूपिणी एवं लोक की जननी है शून्य भूत उस अव्यय पुरुष के आधे तेज के ग्रहण पूर्वक स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर पुमान् (नर) और क्लीब (नपुंसक) दो पुत्रों की उत्पत्ति की । वह पुमान् (पुरुष) साक्षात् नारायण भगवान् हैं, जो गौरवर्ण एवं आठ भुजाओं से युक्त हैं। उस विश्व के त्राता भगवान् ने स्वेच्छया। तीन भागों में विभक्त होकर आधे तेज द्वारा विष्णु, वनमाली, चतुर्भुज, क्षीरशायी, एवं आदित्य के रूपों में प्रकट होकर पुनः आधे तेज द्वारा नर-

अर्धतेजा द्विधा सैव नरनारायणावृषी । जिष्णुर्विष्णुः स वै ज्ञेयो पर्वते गन्धमादने ।।२८
क्लीबः सङ्कर्षणः साक्षाद्ब्रह्मरूपं त्रिधाभवत् । पूर्वार्द्धाद्गौरशेषश्च परार्धाद्रामलक्ष्मणौ ।।२९
गौरशेषो द्वापरान्ते बलभद्रः स वै स्वयम् । रामलक्ष्मणयोर्ध्यानं बलभद्रस्य पूजनम् ।।
सदा मया च कर्तव्यं तत्प्राप्य त्वं सुखी भव ।।३०
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो रामानन्दस्य चाभवत् । कृष्णचैतन्यमागम्य द्वादशाब्दवयोवृतम् ।।३१
शिष्यो भूत्वा स्थितस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः । कृतं तदाज्ञया तेनाध्यात्मरामायणं शुभम् ।।३२

सूत उवाच

जीवानन्दस्स वै विप्रो रूपानन्दसमन्वितः । श्रुत्वा चैतन्यचरितं पुरीं शान्तिमयीं गतः ।।३३
चैतन्ये षोडशाब्दे च नत्वा तं तौ समास्थितौ । ऊचतुः कृष्णचैतन्यं भवता किं मतं स्मृतम् ।।३४
विहस्याह स चैतन्यः शाक्तोऽहं शक्तिपूजकः । शैवोऽहं वै द्विजौ[1] नित्यं लोकार्थे शङ्करव्रती ।।
वैष्णवोऽहं ध्यानपरो देवदेवस्य भक्तिमान् ।।३५
अहं भक्तिमदं पीत्वा पापपुंसो बलिं शुभम् । शक्त्यै समर्प्य होमान्ते ज्ञानाग्नौ यज्ञतत्परः ।।३६
इति श्रुत्वा द्विजौ तौ तु तस्य शिष्यत्वमागतौ । आचारमार्गमागम्य सर्वपूज्यौ बभूवतुः ।।३७
तदाज्ञयाषट्सन्दर्भं जीवानन्दश्चकार वै । उवास तत्र मतिमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ।।३८

नारायण ऋषि के रूप में अवतरित हुआ है । जो गंधमादन पर्वत पर जिष्णु विष्णु रूप से प्रथित है । साक्षात् ब्रह्मरूप संकर्षण ने जो तीन भागों में विभक्त होकर पूर्वार्द्ध भाग से गौरवर्ण के शेष और अपरार्द्ध से रामलक्ष्मण का रूप धारण करता है । वही गौर शेष द्वापर के अन्तिम समय में स्वयं बलभद्र होता है । इसलिए राम लक्ष्मण ध्यान और बलभद्र का पूजन मैं सदैव करता हूँ, उसकी प्राप्ति करके तुम सुखी होगे । इतना कहकर शंकर जी अन्तर्हित हो गये और वह देव रामानन्द के यहाँ उत्पन्न होकर बारह वर्ष की अवस्था प्राप्तकर कृष्ण चैतन्य के घर जाकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करके कृष्ण चैतन्य के पुजारी हुए । पश्चात् कृष्ण चैतन्य की आज्ञा प्राप्तकर उन्होंने अध्यात्म रामायण की रचना की ।२१-३२

सूत जी बोले—इस भाँति यज्ञांशदेव के चरित को सुनकर निम्बादित्य ब्राह्मण ने रामानुज समेत शान्तिपुरी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर वे दोनों यज्ञांशदेव को नमस्कार करके उनके पास बैठ गये और कृष्ण चैतन्य से प्रश्न किया कि—आप किस मत के अनुयायी हैं ? उस समय यज्ञेश देव की सोलह वर्ष की अवस्था थी । उन्होंने हँसकर कहा—ब्राह्मण देव ! मैं शाक्तमत को स्वीकार कर शक्ति की उपासना करता हूँ, लोक के कल्याणार्थ शंकर के व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए शैव, और देवाधिदेव का भक्ति पूर्वक ध्यान करने वाला वैष्णव भी हूँ । मैं भक्तिरूपी मद का पानकर पापपुरुष की बलि उस शक्ति देवी को समर्पित करते हुए ज्ञानरूप अग्नि की ज्वाला में हवन करके यज्ञ की पूर्ति करता हूँ । इसे सुनकर वे दोनों उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक आचार मार्ग अपनाकर सर्वपूज्य हुए । वहाँ रहकर मतिमान् रामानुज मुनि आचार-भाष्य की रचना करके कृष्ण चैतन्य की ही उपासना करते रहे ।

---

१. इदमुभयोत्सम्बोधनम् ।

रूपानन्दो गुरोराज्ञां पुरस्कृत्य महामुनिः । कृष्णखण्डं पुराणाङ्गं चक्रे दशसहस्रकम् ।।
तत्रोष्य गुरुसेवाढ्यो राधाकृष्ण प्रपूजकः ।।३९

सूत उवाच

विष्णुस्वामी स वै विप्रो गतः शान्तिपुरीं शुभाम् । यज्ञांश ऊनविंशाब्दे नत्वा तं प्राह स द्विजः ।।४०
को देवः सर्वदेवानां पूज्यो ब्रह्माण्डगोचरे । इति श्रुत्वा स भगवानुवाच द्विजसत्तमम् ।।४१
सर्वपूज्यो महादेवो भक्तानुग्रहकारकः । विष्ण्वीश्वरश्च रुद्रेशो ब्रह्मेशो भगवान्हरः ।।४२
विना तत्पूजकेनैव पदार्था निष्फला हि ते । ये तु वै विष्णुभक्ताश्च शङ्करार्चनतत्पराः ।।४३
शिवप्रसादात्सुलभा वैष्णवी भक्तिरुत्तमा । वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम् ।।४४
कर्मभूम्यां समागम्य न पूजयति नारकः । विष्णुस्वामीति तच्छ्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुणैः ।।४५
कृष्णमन्त्रमुपासित्वा[1] स बभूव शिवार्चकः ।।४६
वैष्णवी संहिता तेन निर्मिता च तदाज्ञया । तत्रोष्य विष्णुभक्तश्च कृष्णचैतन्यपूजकः ।।४७

सूत उवाच

मध्वाचार्यः कृष्णपरो ज्ञात्वा यज्ञांशमुत्तमम् । गत्वा शान्तिपुरीं रम्यां नत्वा तं प्राह स द्विजः ।।४८
कृष्णोऽयं भगवान्साक्षात्तदन्ये विश्वकारकाः । देवा धात्रादयो ज्ञेयास्तर्हि तत्पूजनेन किम् ।।४९

महामुनि निम्बादित्य ने भी गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर दशसहस्रात्मक कृष्णखण्ड की रचना की, जो पुराण का अंग कहा गया है । पश्चात् राधा कृष्ण की उपासना पूर्वक गुरु की सेवा में तत्पर रहकर जीवन व्यतीत किया ।३३-३९

सूत जी बोले—विप्रवर विष्णु स्वामी ने भी उस शुभ शान्तिपुरी जाकर नमस्कार पूर्वक यज्ञांशदेव से कहा—इस निखिल ब्रह्माण्ड में समस्त देवों का पूजक कौन देव है? उस समय यज्ञांशदेव की उन्नीस वर्ष की अवस्था थी । उसे सुनकर भगवान् यज्ञांशदेव ने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से कहा—सर्वपूज्य भगवान् महादेव हैं, वही भक्तों के ऊपर कृपा किया करते हैं । भगवान् शिव ही विष्णु, रुद्र एवं ब्रह्म के ईश्वर हैं। अतः विना शिव की पूजा किये सभी पदार्थ निष्फल हो जाते हैं । जो विष्णुभक्त नित्य शिव की अर्चना करता है, उसे शिव जी की प्रसन्नता द्वारा भगवान् विष्णु की उत्तम भक्ति सुलभ हो जाती है । जो पुरुष इस कर्म भूमि में उत्पन्न होकर वैष्णव होते हुए लोक शंकर भगवान् शंकर की पूजा नहीं करता है, वह नारकीय है । इसे सुनकर विष्णु स्वामी ने उनके गुणों पर मुग्ध होकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । कृष्ण मंत्र की आराधना पूर्वक शिव जी की अर्चना कर जीवन व्यतीत किया । वहाँ रहकर उस विष्णु भक्त एवं कृष्ण चैतन्य के सेवक ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वैष्णवी संहिता की रचना की ।४०-४७

सूत जी बोले—भगवान् कृष्ण के उपासक मध्वाचार्य ने देवश्रेष्ठ यज्ञांश को अवतरित सुनकर शान्तिपुरी को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस ब्राह्मण ने नमस्कार पूर्वक यज्ञांशदेव से कहा—साक्षात् यह कृष्ण ही सब के भगवान् एवं आराध्य देव हैं और अन्य ब्रह्मादि देवता केवल विश्व स्रष्टा

---

१. ल्यबभाव आर्षः ।

शक्तिमार्गपरा विप्रा वृथा हिंसामयैर्मखैः । अश्वमेधादिभिर्देवान्पूजयन्ति महीतले ।५०
इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशश्च शचीसुतः । न कृष्णो भगवान्साक्षात्तामसोऽयं च शक्तिजः ।।५१
चौरोऽयं सर्वभोगी च हिंसको मांसभक्षकः । परस्त्रियं भजेद्यो वै स गच्छेद्यममन्दिरम् ।।५२
चौरो यमालयं गच्छेज्जीवहन्ता विशेषतः । एभिश्च लक्षणैर्हीनो भगवान्प्रकृतेः परः ।।५३
यस्य बुद्धिः स वै ब्रह्माऽहङ्कारो यस्य वै शिवः । शब्दमात्रा गणेशश्च स्पर्शमात्रा यमः स्वयम् ।।५४
रूपमात्रा कुमारो वै रसमात्रा च यक्षराट् । गन्धमात्रा विश्वकर्मा श्रवणं भगवाञ्छनिः ।।५५
यस्य त्वक्स बुधो ज्ञेयश्चक्षुस्सूर्यः सनातनः । यज्जिह्वा भगवाञ्छुक्रो घ्राणस्तस्याश्विनीसुतौ ।।५६
यन्मुखं भगवाञ्जीवो यस्य हस्तस्तु देवराट् । कृष्णोऽयं तस्य चरणौ लिङ्गं दक्षः प्रजापतिः ।।
गुदं तद्भगवान्मृत्युस्तस्मै भगवते नमः ।।५७
हिंसायज्ञैश्च भगवान्स च तृप्तिमवाप्नुयात् । स च यज्ञपशुर्वह्नौ ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।
तस्य मोक्षप्रभावेन महत्पुण्यमवाप्नुयात् ।।५८
विधिहीनो नरः पापी हिंसायज्ञं करोति यः । अन्धतामिस्रनरकं तद्दोषेण वसेच्चिरम् ।।५९
महत्पुण्यं महत्पापं हिंसायज्ञेषु वर्तते । अतस्तु भगवान्कृष्णो हिंसायज्ञं कलौ युगे ।।६०
समाप्य कार्तिके मासि प्रतिपच्छुक्लपक्षके । अन्नकूटमयं यज्ञं स्थापयामास भूतले ।।६१
देवराजस्तदा क्रुद्धो ह्यनुजं प्रति दुःखितः । वज्रं संप्लावयामास तदा कृष्णः सनातनीम् ।।

आदि हैं अतः इनके पूजन से कोई लाभ नहीं । शक्ति मार्ग अपना कर जो ब्राह्मण हिंसापूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा देवों की आराधना करते हैं, उनका वह करना व्यर्थ है ।' इसे सुनकर इन्द्राणी पुत्र यज्ञांशदेव ने हँसकर कहा—कृष्ण साक्षात् भगवान् नहीं अपितु तामसी शक्ति द्वारा उत्पन्न होने के नाते तामस है ये चोर, सर्वभोगी, हिंसक, और मांसभोजी भी हैं क्योंकि परस्त्री का उपभोग करने वाले चोर और विशेषकर जीवहिंसक को यमपुरी जाना पड़ता है । भगवान् इन लक्षणों से हीन एवं प्रकृति से भी परे हैं । उसकी बुद्धि अहंकार शिव, शब्दमात्रा गणेश, स्पर्शमात्रा यम, रूपमात्रा कुमार, रसमात्रा कुबेर, गंध-मात्रा विश्वकर्मा, श्रवण शनि, त्वक् बुध एवं नेत्र सनातन सूर्य, जिह्वा शुक्र, घ्राण (नासा) अश्विनी कुमार, मुख वृहस्पति, हाथ देवेन्द्र, हैं । यह कृष्ण उसी देव के चरण, लिंग दक्ष प्रजापति, तथा गुदा मृत्यु हैं, उस भगवान् को नमस्कार है । वह भगवान् हिंसापूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से ही प्रसन्न होता है और वह पशु, जो आहुति द्वारा अग्नि में प्रविष्ट होता है परमपद की प्राप्ति करता है । उसके मोक्ष हो जाने पर कर्ता को अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । जो पापी पुरुष हिंसायज्ञ की पूर्ति सविधान नहीं करता है, उसी दोष के कारण वह अंध तामिस्र नामक नरक में चिरकाल तक निवास करता है । इसलिए हिंसायज्ञ के अनुष्ठान में अत्यन्त पुण्य और अत्यन्त पाप की भी प्राप्ति होती है । अतः भगवान् कृष्ण ने इस कलि के समय हिंसायज्ञ का निषेध कर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन इस भूतल पर अन्नकूट यज्ञ की स्थापना की है ।४८-६१। उस समय देवराज ने क्रुद्ध होकर अपने अनुज के लिए दुःख

प्रकृतिं स च तुष्टाव लोकमङ्गलहेतवे ॥६२
तदा सा प्रकृतिर्माता स्वपूर्वार्द्दिव्यविग्रहम् । राधारूपं महत्कृत्वा हृदि कृष्णस्य चागता ॥६३
तच्छक्त्या भगवान्कृष्णो धृत्वा गोवर्धनं गिरिम् । नाम्ना गिरिधरो देवः सर्वपूज्यो बभूव ह ॥६४
राधाकृष्णस्स भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः । अतः कृष्णो न भगवान्राधाकृष्णः परः प्रभुः ॥६५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मध्वाचार्यो हरिप्रियः । शिष्यो भूत्वा स्थितस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्ययज्ञांशशिष्यबलभद्रविष्णुस्वामिमध्वाचार्यादिवृत्तान्तवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९

अथ विंशोऽध्यायः

जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

भट्टोजिस्स च शुद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य वचोऽब्रवीत् ॥१
महादेवो गुरुः स वै शिव आत्मा शरीरिणाम् । विष्णुर्ब्रह्मा च तद्दासौ तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥२
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विंशदब्दवयोवृतः । विहस्याह स भट्टोजिं नायं शम्भुर्महेश्वरः ॥३
समर्थो भगवाञ्छम्भुः कर्ता किन्न शरीरिणाम् । न भर्ता च विना विष्णुं संहर्तायं सदा शिवः ॥४

प्रकट करते हुए वह व्रज को डुबा देने की आयोजना की थी। किन्तु कृष्ण ने उसी समय लोक के कल्याणार्थ सनातनी प्रकृति देवी की आराधना की। प्रसन्न होकर प्रकृति माता ने अपने पूर्वार्द्ध देह से महत्त्वपूर्ण राधा का रूप धारणकर कृष्ण के हृदय में निवास किया। उसी शक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया था, जिससे उस देव का गिरिधर नाम हुआ और वह स्वयं सर्वपूज्य हुए। वहीं राधा कृष्ण भगवान् एवं सनातन पूर्ण व्रह्म हैं। इसलिए कृष्ण नहीं प्रत्युत राधाकृष्ण भगवान् कहे जाते हैं, जो सबसे पर एवं स्वामी हैं। इसे सुनकर कृष्णप्रिय मध्वाचार्य ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करते हुए उन कृष्ण चैतन्य की सदैव आराधना की।६२-६६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्य यज्ञांश शिष्य बलभद्र विष्णुस्वामी और मध्वाचार्य के वृत्तान्त वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।१९।

अध्याय २०

जगन्नाथ माहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार शुद्धात्मा एवं शिव भक्ति में निमग्न रहने वाले भट्टोजि ने कृष्ण चैतन्य के यहाँ जाकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—समस्त प्राणियों के गुरु महादेव हैं और शिव ही उनकी आत्मा भी। तदितर व्रह्मा विष्णु देव उनके दास हैं अतः उन दोनों के पूजन से क्या लाभ होता है। उस यज्ञांश-देव की बीसवें वर्ष की अवस्था प्रारम्भ थी, उन्होंने हँसकर भट्टोजि से कहा—यह शम्भु महेश्वर नहीं हैं और विना विष्णु के सदाशिव शम्भु प्राणियों के कर्ता, भर्ता, एवं संहर्ता होने की क्षमता नहीं रख सकते

एकमूर्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । शाक्तमार्गेण भगवान्ब्रह्मा मोक्षप्रदायकः ॥५
विष्णुर्वैष्णवमार्गेण जीवानां मोक्षदायकः । शम्भुर्वै शैवमार्गेण मोक्षदाता शरीरिणाम् ॥६
शाक्तः सदाश्रमो गेही यज्ञभुक्पितृदेवगः । वानप्रस्थाश्रमी यो वै वैष्णवः कन्दमूलभुक् ॥७
यत्याश्रमः सदा रौद्रौ निर्गुणः शुद्धविग्रहः । ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषामनुगामी महाश्रमः ॥८
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः । तृतीयाङ्गं च वेदानां व्याचख्यौ पाणिनिकृतम् ॥९
तदाज्ञया च सिद्धान्तकौमुद्यास्स चकार ह । तत्रोष्य दीक्षितो धीमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ॥१०

सूत उवाच

वराहमिहिरो धीमान्स च सूर्यपरायणः । द्वाविंशाब्दे च यज्ञांशं तमागत्य वचोऽब्रवीत् ॥११
सूर्योऽयं भगवान्साक्षात्त्रयो देवा यतोऽभवन् । प्रातर्ब्रह्मा च मध्याह्ने विष्णुः सायं सदाशिवः ॥१२
अतो रवेः शुभा पूजा त्रिदेवयजनेन किम् । इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह शुभं वचः ॥१३
द्विधा बभूव प्रकृतिरपरा च परा तथा । नाममात्रा तथा पुष्पमात्रा तन्मात्रिका तथा ॥१४
शब्दमात्रा स्पर्शमात्रा रूपमात्रा रसा तथा । गंधमात्रा तथा ज्ञेया परा प्रकृतिरष्टधा ॥१५
अपरायां जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी । भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ॥
अहङ्कार इति ज्ञेया प्रकृतिश्चापराष्टधा ॥१६

हैं । क्योंकि एक ही मूर्ति के तीन विभागों में विभक्त होने के नाते उसी द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का जनन होता है । इसलिए शाक्तमार्ग अपनाकर भगवान् ब्रह्मा, वैष्णव मार्ग के अनुयायी होकर विष्णु और शैवमार्ग द्वारा शिव प्राणियों को मोक्षप्रदान करते हैं । शाक्त ही गृहस्थाश्रम हैं, जिसमें पितर एवं देव यज्ञ के भोक्ता होते हैं । उसी भाँति वैष्णव को वानप्रस्थाश्रम कहा गया है, जिसमें कन्दमूल के भक्षण द्वारा जीवन व्यतीत होता है, सन्यास आश्रम सदैव रौद्ररूप, निर्गुण एवं शुद्ध शरीर रहा है । इस प्रकार प्राणियों के ब्रह्मचर्याश्रम के अनुयायी महेश्वर हैं, जो अति श्रमसाध्य हैं । ये उनकी बातें सुनकर ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । पश्चात् उनकी आज्ञा से पाणिनि व्याकरण की जो वेदों का तीसरा अंग है, उन्होंने व्याख्या की, जो सिद्धान्त कौमुदी के नाम से प्रथित है । भट्टोजिदीक्षित ने वहाँ रहकर ही अपनी जीवन लीला भी समाप्त की ।१-१०

सूत जी बोले—वराह मिहिराचार्य ने , जो अति धीमान् एवं सूर्य के उपासक थे, यज्ञांशदेव के यहाँ पहुँचने का प्रयत्न किये । उस समय यज्ञांशदेव की बाईस वर्ष की अवस्था थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञांशदेव से कहा—सूर्य ही साक्षात् भगवान् हैं, क्योंकि अन्य तीन प्रधान देवों की उत्पत्ति उन्हीं द्वारा हुई है । सूर्य प्रातःकाल ब्रह्मा, मध्याह्न में विष्णु, और संध्यासमय शिव रूप हैं, अतः सूर्य की ही शुभ पूजा करनी चाहिए, तीनों देवों के पूजन से कोई लाभ नहीं है । इसे सुनकर यज्ञांश देव ने शुभ वाणी द्वारा हास पूर्वक उनसे कहा । प्रकृति देवी ने परा और अपरा नाम से दो रूपों में प्रकट होकर इस ब्रह्माण्ड की रचना की है । नाममात्रा, पुष्पमात्रा, तन्मात्रा, शब्दमात्रा, स्पर्शमात्रा रूपमात्रा, समात्रा, और गंधमात्रा के नाम से परा प्रकृति आठ भागों में विभक्त हैं । उसी प्रकार अपरा प्रकृति भी, जो जीवभूत, नित्यशुद्ध एवं जगन्मयी है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार

विष्णुर्ब्रह्मा महादेवो गणेशो यमराड् गुहः । कुबेरो विश्वकर्मा च परा प्रकृतिदेवता ।।१७
सुमेरुर्वरुणो वह्निर्वायुश्चैव ध्रुवस्तथा । सोमो रविस्तथा शेषोऽपरा प्रकृतिदेवता ।।१८
अतः सोमपती रुद्रो रविः स्वामी विधिः स्वयम् । शेषस्वामी हरिः साक्षान्नमस्तेभ्यो नमो नमः ।।१९
इति श्रुत्वा तदा विप्रः शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः । तदाज्ञया चतुर्थाङ्गं ज्योतिःशास्त्रं चकार ह ।।२०
वराहसंहिता नाम बृहज्जातकमेव हि । क्षुद्रतन्त्रांस्तथान्यान्वै कृत्वा तत्र स चावसत् ।।२१

सूत उवाच

वाणीभूषण एवापि शिवभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य वचः प्राह विनम्रधीः ।।२२
विष्णुमाया जगद्धात्री सैका प्रकृतिरुत्कृता । तया जातमिदं विश्वं विश्वाद्देवसमुद्भवः ।।२३
विश्वेदेवस्य पुरुषश्शक्तिजो बहुधाभवत् । ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव देवाः प्रकृतिसम्भवाः ।।
अतो भगवती पूज्या तर्हि तत्पूजनेन किम् ।।२४
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह द्विजोत्तमम् । न वै भगवती श्रेष्ठा जडरूपा गुणात्मिका ।।२५
एका सा प्रकृतिर्माया रचितुर्जगतां क्षमा । पुरुषस्य सहायेन योषितेव नरस्य च ।।२६
देवीभागवते शास्त्रे प्रसिद्धेयं कथा द्विज । कदाचित्प्रकृतिर्देवी स्वेच्छयेदं जगत्खलु ।।२७
निर्मितं जड़भूतं तद्बहुधा बोधितं तया । न चैतन्यमभूद्विप्रा विस्मिता प्रकृतिस्तदा ।।२८
शून्यभूतं च पुरुषं चैतन्यं समतोषयत् । प्रविष्टो भगवान्देवीमायाजनितगोलके ।।२९

रूप आठ भागों में विभक्त हैं। विष्णु ब्रह्मा, महादेव, गणेश, यमराज, गुह, कुबेर एवं विश्वकर्मा, परा प्रकृति के देवता हैं। सुमेरु, वरुण, अग्नि, वायु, ध्रुव, सोम, रवि और शेष अपरा प्रकृति के देव हैं। अतः सोमपति रुद्र ही रवि, ब्रह्मा स्वामी, और शेष स्वामी, साक्षात् हरि हैं। उन्हें बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार उनकी बातें सुनकर उस मिहिराचार्य ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक वेद के चौथे अंग ज्योतिः शास्त्र का निर्माण किया, जो बाराह संहिता एवं वृहज्जातक नाम से प्रख्यात है। वहाँ रहकर उन्होंने क्षुद्र तंत्रो एवं अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है।११-२१

सूत जी बोले—शिव जी की भक्ति में निमग्न रहने वाले वाणीभूषण ने भी कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नम्रता पूर्वक उनसे कहा—विष्णु की माया ही जग को धारण करती है, इसलिए वही एक प्रकृति सर्वोत्क्रष्ट है। उसी ने इस विश्व की रचना की है, विश्व से देवगण और विश्वेदेव पुरुष की शक्ति द्वारा अखिल की उत्पत्ति हुई है। अतः ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव की उत्पत्ति प्रकृति द्वारा कही गई है। इस भगवती की ही उपासना करनी चाहिए अन्य किसी देव की नहीं इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने हँसकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—जडरूप एवं गुणमयी होने के नाते भगवती श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती है क्योंकि प्रकृति अकेले जगत् की रचना करने में पुरुष की सहायता विना स्त्री की भाँति कभी भी समर्थ नहीं है। विप्र ! देवी भागवत में यह कथा प्रसिद्ध है कि—एक बार प्रकृति देवी ने स्वेच्छया इस जगत् की रचना की, किन्तु विप्र ! अनेक बार बोधित करने पर भी उस जड़ जगत् में चैतन्यता न आई। उसे देखकर प्रकृति को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसी समय उसने शून्यभूत पुरुष की जो चैतन्य रूप है, उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने देवी द्वारा रचित उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया।२२-२९। समस्त

स्वप्नवद्वा स्वयं जातश्चैतन्यस्सभवज्जगत् । अतः श्रेष्ठः स भगवान्पुरुषो निर्गुणः परः ।।३०
प्रकृत्यां स्वेच्छया जातो लिङ्गरूपस्तदाऽभवत् । पुँल्लिङ्गप्रकृतौ जातः पुँल्लिङ्गोऽयं सनातनः ।।३१
स्त्रीलिङ्गप्रकृतौ जातः स्त्रीलिङ्गोऽयं सनातनः । नपुंस्कप्रकृतौ जातः क्लीबरूपः स वै प्रभुः ।।३२
अव्ययप्रकृतौ जातौ निर्गुणोऽयमधोक्षजः । नमस्तस्मै भगवते शून्यरूपाय साक्षिणे ।।३३
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः । त्रिविंशाब्दे च यज्ञांशे तत्र वासमकारयत् ।।३४
छन्दोग्रन्थं तु वेदाङ्गं स्वनाम्ना तेन निर्मितम् । राधाकृष्णपरं नाम जप्त्वा हर्षमवाप्तवान् ।।३५

सूत उवाच

धन्वन्तरिर्द्विजो नाम ब्रह्मभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वा वचनमब्रवीत् ।।३६
भवांस्तु पुरुषः श्रेष्ठो नित्यशुद्धस्सनातनः । जड़भूता च तन्माया समर्थो भगवान्स्वयम् ।।३७
नित्योऽव्यक्तः परः सूक्ष्मस्तस्मात्प्रकृतिरुद्भवः । अतः पूज्यस्स भगवान्प्रकृत्याः पूजनेन किम् ।।३८
इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशस्सर्वशास्त्रगः । नायं श्रेष्ठस्य पुरुषो न क्षमः प्रकृतिं विना ।।३९
पुराणे चैव वाराहे प्रसिद्धेयं कथा शुभा । कदाचित्पुरुषो नित्यो नाममात्रः स्वकेच्छया ।।
बभूव बहुधा तत्र यथा प्रेतस्तथा स्वयम् ।।४०
असमर्थो विरचितुं जगन्ति पुरुषः परः । तुष्टाव प्रकृतिं देवीं चिरकालं सनातनीम् ।।४१

जगत, उसी समय स्वप्न की भाँति उद्बुद्ध होकर चैतन्य हो गया। अतः वही भगवान् श्रेष्ठ है, जो पुरुष, निर्गुण एवं पर है। स्वेच्छया प्रकृति में उत्पन्न होने के नाते वह लिंगरूप हुआ, जिससे पुल्लिग प्रकृति में उत्पन्न होने के कारण सनातन पुल्लिग, स्त्रीलिंग की प्रकृति में उत्पन्न होकर सनातन स्त्रीलिंग, नपुंसक प्रकृति में उत्पन्न होकर नपुंसक रूप कहा गया है। अव्यय प्रकृति में उत्पन्न होकर वह निर्गुण अधोक्षज (इन्द्रियजेता) कहलाता है। इसलिए, उस शून्यरूप, एवं साक्षीभूत भगवान् को नमस्कार है। इसे सुनकर उस ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा सुसम्पन्न करने के लिए उनके यहाँ निवास करना प्रारम्भ किया। उस समय यज्ञांश देव की तेईस वर्ष की अवस्था थी। वाणीभूषण ने वहाँ रहकर वेदाङ्ग छन्द ग्रन्थ की अपने नाम से रचना की। इस प्रकार राधाकृष्ण के उत्तम नाम जप करते हुए उन्होंने सहर्ष का जीवन व्यतीत किया।३०-३५

सूत जी बोले—ब्रह्मभक्ति में तन्मय रहने वाले धन्वन्तरि नामक ब्राह्मण ने कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—आप पुरुषश्रेष्ठ, नित्यशुद्ध, एवं सनातन हैं और आपकी माया जड़रूप हैं। नित्य, अव्यक्त, पर, एवं सूक्ष्म होने के नाते स्वयं भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि प्रकृति उन्ही से उत्पन्न हुई है। इसलिए सर्वश्रेष्ठ भगवान् की ही पूजा करनी चाहिए प्रकृति की नहीं। इसे सुनकर समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ यज्ञांश देव ने हँसकर कहा—केवल पुरुष सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रकृति के बिना वह सर्वदा असमर्थ है। वराह पुराण में इस विषय की एक प्रसिद्ध कथा है कि—एक बार उस नित्य पुरुष ने जो केवल नाम मात्र हैं, स्वेच्छया प्रेत की भाँति अनेक रूप धारण किया किन्तु वह नित्य पुरुष जगत् की रचना करने में असमर्थ ही रहा। पश्चात् उसने सनातनी प्रकृति देवी की चिरकाल

तदा देवी च तं प्राप्य महत्तत्वं चकार ह । सोऽहङ्कारश्च महतो जातस्तन्मात्रिकास्ततः ।।४२
महाभूतान्यतोऽप्यासंस्तैः सञ्जातमिदं जगत् ।।४३
अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृतिः परा । प्रकृतेः पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्यां नमो नमः ।।४४
इति धन्वन्तरिः श्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः । तत्रोष्य चैव वेदाङ्गं कल्पवेदं चकार ह ।।
सुश्रुतादपरे चापि शिष्या धन्वन्तरेः स्मृतः ।।४५

सूत उवाच

जयदेवस्स वै विप्रो बौद्धमार्गपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य पञ्चविंशवयोवृतम् ।।
नत्वोवाच वचो रम्यं स च श्रेष्ठ उषापतिः ।।४६
यस्य नाभेरभूत्पद्मं ब्रह्मणा सह निर्गतम् । अतस्स ब्रह्मसूर्नाम सामवेदेषु गीयते ।।४७
विश्वो नारायणस्साक्षाद्यस्य केतौ समास्थितः । विश्व केतुरतो नाम न निरुद्धोऽनिरुद्धकः ।।४८
ब्रह्मवेला च तत्पत्नी नित्या चोषा महोत्तमा । स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चावतारकः ।।४९
इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशस्तं द्विजोत्तमम् । वेदो नारायणः साक्षात्पूजनीयो नरैः सदा ।।५०
ततः कालस्ततः कर्म ततो धर्मः प्रवर्तते । धर्मात्मकामः समुद्भूतः कामपत्नी रतिः स्वयम् ।।५१
रत्यां कामात्समुद्भूतोऽनिरुद्धो नामदेवता । उषा सा तस्य भगिनी तेन सार्द्धं समुद्भवा ।।५२
कालो नाम स वै कृष्णो राधा तस्य सहोदरा । कर्मरूपः स वै ब्रह्मा नियतिस्तत्सहोदरा ।।५३
धर्मरूपो महादेवः श्रद्धा तस्य सहोदरा । अनिरुद्धः कथं चेशो भवतोक्तः सनातनः ।।५४

तक उपासना की ।३६-४१। उससे प्रसन्न होकर देवी ने उसके पास जाकर सहयोग प्रदान पूर्वक महत्तत्त्व की रचना की । पुनः उस महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार द्वारा तन्मात्रा एवं तन्मात्र से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई । उसी आकाशादि भूतों द्वारा इस विश्व की रचना हुई है । अतः उन सनातन पुरुष और प्रकृति में पुरुष से प्रकृति ही श्रेष्ठ है और प्रकृति से पुरुष ! इसलिए उन दोनों को नमस्कार है । इसे सुनकर धन्वन्तरि ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार कर वहाँ रहते हुए वेदाङ्ग कल्पवेद की रचना की । धन्वन्तरि के सुश्रुत के अतिरिक्त दो शिष्य और थे ।४२-४५

सूत जी बोले—बौद्ध मतावलम्बी जयदेव नामक ब्राह्मण ने पच्चीस वर्ष की आयु से कृष्णचैतन्य के पास जाकर नमस्कार पूर्वक सुन्दर वांणी द्वारा उनसे कहा—उषापति ही सर्वश्रेष्ठ देव हैं क्योंकि जिसकी नाभि द्वारा ब्रह्मासमेत पद्म की उत्पत्ति हुई अतः सामवेद में उसे ब्रह्मा का जन्मभू कहा गया है । साक्षात् विश्व नारायण जिसकी केतु (पताका) में स्थित रहते हैं, उसे विश्वकेतु एवं निरुद्ध नहीं अनिरूद्ध कहा जाता है । ब्रह्मवेला उसकी पत्नी है, जो नित्या, एवं सर्वश्रेष्ठ उषा कही गयी है । अतः लोक कल्याणार्थ वही उषापति यथावसर अवतरित होता है । इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने हासपूर्वक उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—वेद ही साक्षात् नारायणस्वरूप है, मनुष्यों को सदैव उसकी पूजा करनी चाहिए । क्योंकि वेद से काल, काल से कर्म, कर्म से धर्म, और धर्म से काम और काम से पत्नी रति की उत्पत्ति हुई है । उसी काम-रति के संयोग से अनिरुद्ध नामक देवता की उत्पत्ति हुई है और उनकी भगिनी उषा ने भी उसी के साथ जन्म ग्रहण किया है ।४३-५२। काल नाम कृष्ण का है, और राधा उनकी सहोदरा (भगिनी) है । कर्म रूप ब्रह्मा हैं, नियति उनकी सहोदरा है । उसी प्रकार धर्म रूप महादेव हैं और श्रद्धा उनकी सहोदरा हैं । इसलिए आप के कहे हुए अनिरूद्ध सनातन ईश कैसे कहे जा सकते हैं । इस निखिल ब्रह्माण्ड में स्थूल,

त्रिधा सृष्टिश्च ब्रह्माण्डे स्थूला सूक्ष्मा च कारणा। स्थूलसृष्ट्यै समुद्भूतो देवो नारायणः स्वयम् ।।५५
नारायणी च तच्छक्तिस्तयोर्जलसमुद्भवः। जलाज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि समास्थितौ ।।५६
सुप्ते नारायणे देवे नाभेः पङ्कजमुत्तमम् । अनन्तयोजनायामस्मुदभूच्च ततो विधिः ।।५७
विधेः स्थूलमयी सृष्टिर्देवतिर्य्यङ्नरादिका । सूक्ष्मसृष्ट्यै समुद्भूतः सोऽनिरुद्ध उषापतिः ।।५८
ततो वीर्यमयं तोयं जातं ब्रह्माण्डमस्तके । वीर्याज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि स चास्थितः ।।५९
तस्य नाभेस्समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामहः । सूक्ष्मसृष्टिस्ततो जाता यथा स्वप्नेऽपि दृश्यते ।।६०
हेतुसृष्ट्यै समुद्भूतो वेदा नारायणः स्वयम् । वेदात्कालस्ततः कर्म ततो धर्मादयः स्मृताः ।।६१
त्वद्गुरुश्च जगन्नाथ उड्रदेशनिवासकः । मया तत्रैव गन्तव्यं सशिष्येणाद्य भो द्विजाः ।।६२
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णचैतन्यकिङ्कराः । स्वान्स्वाञ्छिष्यान्समाहूय तत्पश्चात्प्रययुश्च ते ।।६३
शाङ्कराः द्वादशगणा रामानुजमुपाययुः । नामदेवादयस्तत्र गणास्सप्त समागताः ।।६४
रामानन्दं नमस्कृत्य संस्थितास्तस्य सेवकाः । रोपणश्च तदागत्य स्वशिष्यैर्बहुभिर्वृतः ।।६५
कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य स्थितः स्वयम् । जगन्नाथपुरीं ते वै प्रययुर्भक्तितत्पराः ।।६६
निधयः सिद्धयस्तत्र तेषां सेवार्थमागताः । सर्वे च दशसाहस्रा वैष्णवाः शैवशाक्तकैः ।।६७
यज्ञांशं च पुरस्कृत्य जगन्नाथपुरीं ययुः । अर्चावतारो भगवानानिरुद्ध उषापतिः ।।६८

सूक्ष्म, एवं कारण के भेद से तीन प्रकार की सृष्टि हुई है जिसमें स्थूल सृष्टि के कर्ता स्वयं नारायण देव हैं, और नारायणी उनकी शक्ति है। उन दोनों से जल की उत्पत्ति हुई एवं उस जल से शेष की उत्पत्ति हुई है, जिस पर वे (नारायण और उनकी नारायणी शक्ति) दोनों सहर्ष सुशोभित हैं। नारायण देव के शयन करने पर उनकी नाभि द्वारा कमल की उत्पत्ति हुई, जो अनन्त योजन तक विस्तृत है। पुनः उसी से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। और ब्रह्मा ने देव पशु पक्षी एवं मनुष्यों आदि की स्थूल सृष्टि की रचना की है। सूक्ष्म सृष्टि के लिए उषापति अनिरूद्ध का जन्म हुआ। पश्चात् ब्रह्माण्ड के मस्तक में उन्हीं द्वारा वीर्यमय जल का आविर्भाव हुआ और उसी से शेष की उत्पत्ति हुई जिस पर वे स्थित हैं। उनकी नाभि द्वारा लोक पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई जिनके द्वारा स्वप्न दर्शन की भाँति सूक्ष्म सृष्टि का सर्जन हुआ। उसी प्रकार कारण सृष्टि के लिए स्वयं वेद नारायण का आविर्भाव हुआ। पश्चात् वेद द्वारा काल, काल से कर्म, और कर्म द्वारा धर्मादि की उत्पत्ति हुई है। विप्रवृन्द ! तुम्हारे गुरूवर जगन्नाथ जी उड्र (उड़िया) देश के निवासी हैं, मैं भी शिष्यों समेत वहाँ के लिए आज ही प्रस्थान करना चाहता हूँ। इसे सुनकर उनके अनुयायी शिष्यगणों ने भी अपने-अपने शिष्यों को बुलाकर उनके समेत जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान किया। बारह शांकर मतानुयायी समेत रामानुज, नामदेव आदि सात गणों समेत रामानन्द, जो दूर से आकर नमस्कार करके उनके समीप स्थित थे, और अनेक शिष्यों समेत रोपण में कृष्ण चैतन्य के पास पहुँच कर नमस्कार करके उनकी सेवा में तत्पर रहते हुए ।५३-६५। जगन्नाथ पुरी की यात्रा किये। उस उनसब की सेवा वहाँ आकर ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ कर रही थीं। उस जनसमूह में शैवों एवं शाक्तों समेत दशसहस्र वैष्णव उपस्थित थे, जो यज्ञांश देव को सम्मान पूर्वक आगे कर जगन्नाथ पुरी की यात्रा कर रहे थे। वहाँ पहुँचने पर उस समय अर्चावतार भगवान् उषापति अनिरुद्ध ने यज्ञांशदेव का आगमन जानकर

तदागमनमालोक्य द्विजरूपधरो मुनिः । जगन्नाथः स्वयं प्राप्तो यत्र यज्ञांशकादयः ॥६९
यज्ञांशस्तं समालोक्य नत्वा वचनमब्रवीत् । किं मतं भवता ज्ञातं कलौ प्राप्ते भयानके ॥७०
तत्सर्वं कृपया ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । इति श्रुत्वा तु वचनं जगन्नाथो हरिः स्वयम् ॥
उवाच वचनं रम्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥७१
मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः । संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥७२
शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम् । यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् ॥७३
दुःखितो भगवानिन्द्रः श्वेतद्वीपमुपागतः । स्तुत्या मां बोधयामास देवमङ्गलहेतवे ॥७४
प्रबुद्धं मां वचः प्राह शृणु देव दयानिधे । शूद्रसंस्कृतमन्नं च खादितुं न द्विजोऽर्हति ॥७५
तथा च शूद्रजनितैर्यज्ञैस्तृप्तिं न चाप्नुयाम् । काश्यपे स्वर्गते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति ॥७६
मम शत्रुर्बलिर्दैत्यः कलिपक्षमुपागतः । निस्तेजाश्च यथाऽहं स्यां तथा वै कर्तुमुद्यतः ॥७७
मिश्रदेशोद्भवे म्लेच्छे सांस्कृती तेन संस्कृता । भाषा देवविनाशाय दैत्यानां वर्द्धनाय च ॥७८
आर्य्येषु प्राकृती भाषा दूषिता तेन वै कृता । अतो मां रक्ष भगवन्भवन्तं शरणागतम् ॥७९
इति श्रुत्वा तदाहं वै देवराजमुवाच ह । भवन्तो द्वादशादित्या गन्तुमर्हन्ति भूतले ॥८०
अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौ युगे । प्रवीणो निपुणोऽभिज्ञः कुशलश्च कृती सुखी ॥८१

ब्राह्मण वेष धारण किया और और जहाँगण समेत वे ठहरे थे, उस स्थान पर जगन्नाथ देव स्वयं चले गये । यज्ञांशदेव ने उन्हें देखकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—इस भयानक कलि के समय आप का कौन सिद्धान्त है, विस्तार पूर्वक उसे बताने की कृपा कीजिये । मैं उसे तत्त्वसमेत जानना चाहता हूँ । इसे सुनकर जगन्नाथ देव ने जो स्वयं विष्णु रूप हैं, लोक के कल्याणार्थ सुन्दर वाणी द्वारा कहना आरम्भ किये—मिश्र देश के निवासी म्लेच्छ लोगों ने जो काश्यप द्वारा शासित एवं शूद्र वर्ण द्वारा जिनके संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण बनकर शिखाभसूत्र के धारण पूर्वक वेदाध्ययन के उपरांत यज्ञानुष्ठान द्वारा देवाधि देव इन्द्र की पूजा की । उससे दुःख प्रकट करते हुए वे श्वेतद्वीप चले गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने देवों के कल्याणार्थ मेरी आराधना स्तुति द्वारा की । पश्चात् मेरे प्रबुद्ध होने पर उन्होंने कहा—देव, दयानिधे ! मेरा दुःख सुनने की कृपा करें—शूद्र के बनाये हुए अन्न का भोजन ब्राह्मण कैसे कर सकता है, उसी प्रकार शूद्रों के यज्ञानुष्ठान द्वारा मैं कैसे तृप्त हो सकता हूँ । काश्यप के स्वर्गीय हो जाने पर मगध राज के शासन काल में मेरे शत्रु बलि दैत्य ने कलि के पक्ष का समर्थन किया है । वह मुझे निस्तेज बनाने के लिए प्रयत्नशील है । उसी ने मिश्रदेश के निवासी उन म्लेच्छों की भाषा को देवों के विनाश पूर्वक दैत्यों के वलवर्द्धनार्थ संस्कृत का रूप दिया है । और आर्यों में दूषित प्राकृत भाषा का प्रचार किया है ।६९-७८। अतः भगवन् ! मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ, आप मेरी रक्षा करें । इसे सुनकर मैंने देवराज इन्द्र से कहा—आप बारहों आदित्यों से भूतल में जन्म ग्रहण करने के लिए कहिये । मैं भी इस घोर कलि के समय लोक के कल्याणार्थ वहाँ अवतार धारण करूँगा । प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, कुशल, कृती, सुखी, निष्णात, शिक्षित, सर्वज्ञ, सुनत, प्रबुद्ध, और बुद्ध के रूप में क्रमशः इन धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, मेघ,

निष्णातः शिक्षितश्चैव सर्वज्ञः सुगतस्तथा । प्रबुद्धश्च तथा बुद्ध आदित्याः क्रमतो भवाः[१] ॥८२
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो मेघः प्रांशुर्भगस्तथा । विवस्वांश्च तथा पूषा सविता त्वाष्ट्रविष्णुकौ ॥
कीकटे देश आगत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात् ॥८३
वेदनिन्दां पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन् । तेभ्यो वेदान्समादाय मुनिभ्यः प्रददुस्सुराः ॥८४
वेदनिन्दाप्रभावेण ते सुराः कुष्ठिनोऽभवन् । विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुवुर्बौद्धरूपिणम् ॥८५
हरिर्योगबलेनैव तेषां कुष्ठमनाशयत् । तद्दोषान्नग्नभूतश्च बौद्धस्स तेजसाऽभवत् ॥८६
पूर्वार्द्धान्नेमिनाथश्च परार्द्धाद्बौद्ध एव च । बौद्धराज्यविनाशाय दारुपाषाणरूपवान् ॥८७
अहं सिन्धुतटे जातो लोकमङ्गलहेतवे । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिः स्वर्गलोकादुपागतः ॥
मन्दिरं रचितं तेन तत्राहं समुपागतः ॥८८
अत्र स्थितश्च यज्ञांशप्रसादमहिमा महान् । सर्ववाञ्छितदं लोके स्थापयामास मोक्षदम् ॥८९
वर्णधर्मश्च नैवात्र वेदधर्मस्तथा न हि । व्रतं चात्र न यज्ञांशमण्डले योजनान्तरे ॥९०
येनोक्ता यावनी भाषा येन बौद्धो विलोकितः । तस्य प्राप्तं महत्पापं स्थितोऽहं तदघापहः ॥
मां विलोक्य नरः शुद्धः कलिकाले भविष्यति ॥९१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यचरित्रे जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

प्रांशु, भर्ग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वाष्ट्र, और विष्णु नामक आदित्य देवों ने कीकट देश में जन्म ग्रहण किया । इन लोगों ने वेद की निन्दापूर्वक बौद्ध शास्त्र की रचना की । उन लोगों से वेदों को लेकर मुनियों को प्रदान किया । इसीलिए इस वेद की निन्दा करने के कारण वे सभी देव गण, जो इस भूमण्डल पर आकर उत्पन्न हुए थे, कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर उन बौद्ध रूपी विष्णु देव के पास पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगे । जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने अपने योगबल द्वारा उनके कुष्ठरोग का नाश किया । किन्तु उस दोष के कारण तेजस्वी होते हुए बौद्ध नग्न रहने लगे । पूर्वार्द्ध भाग से नेमिनाथ और उत्तरार्द्ध भाग से बौद्ध का अविर्भाव हुआ । उस बौद्धराज्य के विनाशार्थ एवं लोक के कल्याणार्थ मैं सिंधु तट पर स्वर्ग से आये हुए राजा इन्द्रद्युम्न, द्वारा रचित उस मन्दिर में दारु-पाषाण (काष्ठ-पत्थर) का रूप धारण कर रहता हूँ । इस स्थल में यज्ञांश देव के ठहरने से इसकी महिमा बढ़ गई है जिन्होंने लोक में सभी मनोरथों को सिद्ध एवं मोक्षदायक धर्म की स्थापना की है । इस स्थल की महिमा बढ़ जाने के कारण इस एक योजन के मण्डल में वर्णधर्म ,वेदधर्म और व्रत-पारायण की विशेष व्यवस्था मोक्ष के लिए नहीं की गई है, क्योंकि वह यहाँ अत्यन्त सुलभ है । जिसने यवनों की भाषा का व्यवहार और बौद्धदर्शन किया या करते रहते हैं, उनके उस महान् पाप के विध्वंस के लिए मैं यहाँ रहता हूँ । क्योंकि कलियुग में मनुष्य मेरे दर्शन करने से शुद्ध हो जायेंगे ।७९-९१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में जगन्नाथ माहात्म्य वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

---

१. पचाद्यच् । भवेयुरित्यर्थः ।

अथैकविंशोऽध्यायः

कृष्णचैतन्यवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य जगन्नाथस्य धीमतः। कृष्णचैतन्य एवापि तमुवाच प्रसन्नधीः ॥१
भगवन्प्राणिनां श्रेयो यदुक्तं भवता मुने। विस्तरात्तत्कथां ब्रूहि यथा बौद्धसमुद्भवः ॥२

जगन्नाथ उवाच

सहस्राब्दे कलौ प्राप्ते कर्मभूम्यां च भारते। कण्वो नाम मुनिश्रेष्ठस्सम्प्राप्तः कश्यपात्मजः ॥३
आर्यावती देवकन्या कण्वस्य दयिता प्रिया। शक्राज्ञया च सम्प्राप्तौ दम्पती शारदातटे ॥४
सरस्वतीं नदीरूपां कुरुक्षेत्रनिवासिनीम्। चतुर्वेदमयैः स्तोत्रैः कण्वस्तुष्टाव नम्रधीः ॥५
वर्षमात्रान्तरे देवी प्रसन्ना समुपागता। आर्यसृष्टिसमृद्धौ सा ददौ तस्मै वरं शुभम् ॥६
दशपुत्रास्तयोर्जाता आर्यबुद्धिकरा हि ते। उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिश्रकौ ॥७
अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्ड एव च। चतुर्वेदीति कथिता यथा नाम तथा गुणाः ॥८
ते वै सरस्वतीं देवीं तुष्टुवुर्नम्रकन्धराः। द्वादशाब्दवयोभ्यश्च तेभ्यो देवी स्वशक्तितः ॥
कृत्वा कन्यां ददौ माता शारदा भक्तिवत्सला ॥९

अध्याय २१

कृष्णचैतन्य का वर्णन

सूत जी बोले—धीमान् जगन्नाथ की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होकर कृष्णचैतन्य ने कहा—भगवन्! प्राणियों के कल्याणार्थ आप ने जो कुछ कहा है, उसे और मुने! बौद्ध की उत्पत्ति आप विस्तार पूर्वक कहने की कृपा करें।१-२

जगन्नाथ जी बोले—कलि के सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर इस कर्मभूमि भारत में कश्यप पुत्र कण्व मुनि का आगमन हुआ। देवकन्या आर्यावती कण्व की प्रिया स्त्री थी। उसे साथ लेकर इन्द्र की आज्ञापूर्वक शारदा के तट पर वे दोनों दम्पत्ति पहुँचे। वहीं जाकर कण्व ने नम्रतापूर्वक चारों वेदों के स्तोत्रों द्वारा कुरुक्षेत्र निवासिनी सरस्वती देवी की आराधना की, जो वहाँ महीरूप में रह रही है। उससे प्रसन्न होकर सरस्वती देवी ने वर्ष के भीतर ही आर्यसृष्टि के समृद्ध्य्यर्थ उन्हें शुभ वरदान प्रदान किया। पश्चात् उन दोनों स्त्री-पुरुष द्वारा आर्यबुद्धि वाले दशपुत्रों की उत्पत्ति हुई। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय और चतुर्वेदी उनके नाम एवं उसी के अनुसार गुण हुए। बारह वर्ष की अवस्था में उन पुत्रों ने नम्र होकर सरस्वती देवी की आराधना की उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सला शारदा माता ने अपनी शक्ति द्वारा कन्याएँ उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया, जो

उपाध्यायी दीक्षिता च पाठकी शुक्लिका क्रमात् । मिश्राणी च तथा ज्ञेया षष्ठी सा चाग्निहोत्रिणी ।। १०
द्विवेदिनी तथा ज्ञेया चाष्टमी च त्रिवेदिनी । पाण्डायनी च नवमी दशमी तुर्यवेदिनी ।। ११
तासां च स्वपतिभ्यो वै सुताःषोडश षोडश । ते तु गोत्रकरा ज्ञेयास्तेषां नामानि मे शृणु ।। १२
कश्यपश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः । जमदग्निर्वशिष्ठश्च वत्सो गौतम एव च ।। १३
पराशरस्तथा गर्गोऽत्रिर्भृगुश्चांङ्गिरास्तथा । शृंङ्गी कात्यायनश्चैव याज्ञवल्क्यः क्रमात्सुताः ।।
इति नाम्ना सुतास्सर्व ज्ञेयाः षोडश षोडश ।। १४
सरस्वत्याज्ञया कण्वो निश्रदेशमुपाययौ । म्लेच्छान्संस्कृतमभाष्य तदा दशसहस्रकान् ।।
वशीकृत्य स्वयम्प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ।। १५
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् । पञ्चवर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती ।।
सपत्नीकाँश्च तान्म्लेच्छाञ्छूद्रवर्णाय चाकरोत् ।। १६
कारुवृत्तिकरास्सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः । द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ।। १७
तन्मध्ये चाचार्यपृथुर्नाम्ना कश्यपसेवकः । तपसा स च तुष्टाव द्वादशाब्दं महामुनिम् ।। १८
तदा प्रसन्नो भगवान्कण्वो देववराद्वरः । तेषां चकार राजानं राजपुत्रपुरं ददौ ।। १९
राजन्या नाम तत्पत्नी मागधं सुषुवे तदा । तस्मै कण्वो ददौ ग्रामं पूर्वस्यां दिशि मागधम् ।। २०
स्वर्गलोकं पुनः प्राप्तः स मुनिः कश्यपात्मजः । स्वर्गते काश्यपे विप्रे ते म्लेच्छाः शूद्रवर्णकाः ।। २१
यज्ञैस्समर्चयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् । दुःखितो भगवानिन्द्रस्सबन्धुर्जगतीतले ।। २२

उपाध्यायी, दीक्षिता, पाठकी शुक्लानी, मिश्राणी, अग्निहोत्राणी, द्विवेदिनी, त्रिवेदिनी, पाण्डायनी, और चतुर्वेदिनी नाम से प्रख्यात हुई ।३-१०। इन कन्याओं ने अपने उन उपरोक्त पति की सेवाकर सोलह-सोलह पुत्रों को उत्पन्न किया, जो गोत्रवंश के प्रचारक हुए । कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ, वत्स, गौतम, पराशर, गर्ग, अत्रि, भृगु, अंगिरा, शृङ्गी, कात्यायन, एवं याज्ञलवक्य क्रमशः उन पुत्रों के नामकरण हुए। तदुपरांत सरस्वती की आज्ञा से कण्व मिश्रदेश चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दशसहस्र म्लेच्छों को संस्कृत भाषा द्वारा अपने वशीभूत कर पुनः उन लोगों समेत सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवर्त प्रदेश में आगमन किया। यहाँ आने पर उन लोगों ने सरस्वती देवी की तप द्वारा आराधना की । पाँच वर्ष के उपरांत उनकी आराधना से प्रसन्न होकर सरस्वती देवी ने वहाँ प्रकट होकर पत्नी समेत उन म्लेच्छों को शूद्र वर्ण बनाया । अनन्तर बहुपुत्र वाले उन म्लेच्छों ने कार (शिल्प) वृत्ति अपनाकर अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ किये, उनमें दो सहस्र म्लेच्छ वैश्य हो गये थे, जिनमें सर्वश्रेष्ठ आचार्य पृथु ने जो कश्यप का सेवक था, बारह वर्ष तप द्वारा उन महामुनि की आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् कण्व ने वरदान प्रदान पूर्वक उन्हें राजा बनाकर राजपुत्र नामक पुर सौंप दिया । पश्चात् राजन्या नामक उनकी रानी ने मागध नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसे कण्व ने पूर्व दिशा के मागध नामक ग्राम को सौंप दिया था ।११-२०। तदुपरांत कश्यपपुत्र कण्व मुनि स्वर्ग चले गये । उनके स्वर्ग यात्रा करने पर शूद्र वर्ण वाले उन म्लेच्छों ने यज्ञानुष्ठान द्वारा शचीपति इन्द्र की आराधना की। उससे दुःखी होकर भगवान् इन्द्र ने अपने बंधुओं समेत इस भूतल पर ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहणकर वेदों के अपहरण करने के लिए

वेदानाहर्तुमिच्छन्तो ब्रह्मयोनौ बभूविरे । जिनो नाम द्विजः कश्चित्तत्पत्नी जयनी स्मृता ।।२३
कश्यपाददितेरंशाज्जातौ तौ कीकटस्थले । तयोस्सकाशात्सञ्जाता आदित्या लोकहेतवे ।।२४
कर्मनाशानदीतीरे पुरी बोधगया स्मृता । तत्रोष्य बौद्धशास्त्राढ्याश्चक्रुः शास्त्रार्थमुत्तमम् ।।२५
वेदाञ्छुद्रेभ्य आहृत्य विशालां प्रययुः पुरीम् । समाधिस्थान्मुनीन्सर्वान्समुत्थाप्य ददुः स्वयम् ।।२६
गतास्सर्वे सुरास्स्वर्गे ततः प्रभृतिभूतले । म्लेच्छा बभूविरे बौद्धास्तदन्ये वेदतत्पराः ।।२७
सरस्वत्याः प्रभावेण त आर्या बहवोऽभवन् । तैश्च देवपितृभ्यश्च हव्यं कव्यं समर्पितम् ।।२८
तृप्तिमन्तः सुराश्चासंस्त आर्याणां सहस्रकाः । सप्तविंशच्छते भूमौ कलौ सवंत्सरे गते ।।२९
बलिना प्रेषितो भूमौ मयः प्राप्तो महासुरः । शाक्यसिंहगुरुर्गेयो बहुमायाप्रवर्तकः ।।३०
स नाम्ना गौतमाचार्यो दैत्यपक्षविवर्द्धकः । सर्वतीर्थेषु तेनैव यन्त्राणि स्थापितानि वै ।।३१
तेषामधो गता ये तु बौद्धाश्चासन्समन्ततः । शिखासूत्रविहीनाश्च बभूवुर्वर्णसङ्कराः ।।३२
दश कोटयः स्मृता आर्या बभूवुर्बौद्धमार्गिणः । पञ्चलक्षास्तदा शेषाः प्रययुर्गिरिमूर्द्धनि ।।३३
चतुर्वेदप्रभावेण राजन्या वह्निवंशजाः । चत्वारिंशभवा योधास्तैश्च बौद्धास्समुज्झिताः ।।३४
आर्यांस्तांस्ते तु संस्कृत्य विन्ध्याद्रेर्दक्षिणे कृतान् । तत्रैव स्थापयामासुर्वर्णरूपान्समन्ततः ।।
आर्यावर्तः पुण्यभूमिस्तत्रस्थाः पञ्चलक्षकाः ।।३५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य यज्ञांशो भगवान्हरिः ।।३६

प्रयत्न करना आरम्भ किया। उनका नाम 'जिन' था तथा उनकी पत्नी का नाम 'जयिनी'। इस कीकट नामक प्रदेश में कश्यप और अदिति के संयोग से इन दोनों की उत्पत्ति हुई थी और लोक के मंगलार्थ आदित्यों की भी। कर्मनाशा नदी के तटपर बोधगया नामक स्थान में रहकर उन लोगों ने उन बौद्ध निपुण विद्वानों से शास्त्रार्थ किया। उन लोगों ने उन शूद्रों से वेदों का अपहरण कर विशाला में पहुँचकर वहाँ के समाधिनिष्ठ मुनियों को जागृतकर सौंप दिया। पश्चात् सभी देवगण इस भूतल से प्रस्थान कर स्वर्ग चले गये। पश्चात् वे म्लेच्छ तथा उनके अनुयायी वेदपाठी लोग बौद्ध हुए। सरस्वती जी के प्रभाव से वे ही बहुसंख्यक आर्य हुए जिन्होंने देवों एवं पितरों के उद्देश्य से हव्य, कव्य का समर्पण किया, और उससे देवों की अत्यन्त तृप्ति हुई। इस भूतलपर कलि के सत्ताईस सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरांत बलि दैत्य की प्रेरणावश मायावी मय दानव आया, जो अत्यन्त मायावी एवं शाक्यसिंह का गुरु था। उसकी प्रख्याति गौतम के नाम से हुई जो सदैव दैत्यपक्षों के वर्धनार्थ प्रयत्न करता रहा। उसी ने समस्त तीर्थों में जाकर यंत्रों की स्थापना की थी। उसके नीचे जो कोई बौद्ध पहुँच गये वे सभी शिखा-सूत्रहीन होकर वर्ण संकर हो गये। उन आर्यों की दश कोटि संख्या थी, जो बौद्ध पथ गामी थे। शेष पाँच लाख आर्य उनके ऊपर पर्वत-शिखरों पर पहुँचे। चारों वेद के प्रभाव से अग्निवंश के चालीस राजपुत्र क्षत्रिय-गणों ने जो महान् योद्धा थे, अपने यहाँ से बौद्धों को निकाल दिया। उन्होंने उन आर्यों को विन्ध्यपर्वत के दक्षिण प्रदेश में संस्कार पूर्वक निवास कराया, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था को अत्यन्त दृढ़ किया। उस आर्यावर्त नामक पुण्य प्रदेश में पाँच लाख आर्य रह रहे थे।२१-३५

सूत जी बोले—इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने जो साक्षात् नारायण रूप हैं, जगन्नाथ जी के शिष्य होकर

जगन्नाथस्य शिष्योऽभूद्वेदमार्गपरायणः । शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्दो द्विजोत्तमः ।।३७
जगन्नाथपदं नत्वा शिष्यो भूत्वा रराज ह । तदा प्रसन्नो भगवाननिरुद्ध उषापतिः ।।३८
अभिषेकन्तयोर्भाले महत्तत्वे चकार ह । महत्त्वपदवी जाता तदा प्रभृतिभूतले ।।३९
गुरुबन्धू प्रसन्नौ तौ स्वशिष्यान्प्रोचतुर्मुदा । जगन्नाथस्य वदनं पद्मनाभेरुषापतेः ।।
दृष्ट्वा यश्चात्र सम्प्राप्य स वै स्वर्गमवाप्नुयात् ।।४०
प्रसादं यश्च भुञ्जीयात्तस्य[1] देवस्य सादरम् । कोटिजन्म भवेद्विप्रो वेदपात्रो महाधनी ।।४१
मार्कण्डेय वटे कृष्णं दृष्ट्वा स्नात्वा महोदधौ । इन्द्रद्युम्नसरस्येव पुनर्जन्म न विन्दते ।।४२
इमां गाथां शृणोद्यो[2] वै श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । यत्पुरीगमने पुण्यं फलं तच्छीघ्रमाप्नुयात् ।।४३
इति यज्ञांवचनं श्रुत्वा ह्यवतारकः । वैष्णवैश्च तथेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।४४
एतस्मिन्नन्तरे विप्र कलिना प्रार्थितो बलिः । मयदैत्यं समाहूय वचनं प्राह दुःखितः ।।४५
सुकन्दरो म्लेच्छपतिः सदा मद्वर्द्धने रतः । सहायं तस्य दैत्येन्द्र कुरु शीघ्रं ममाज्ञया ।।४६
इति श्रुत्वा बलेर्वाक्यं शतदैत्यसमन्वितः । कर्मभूम्यां मयः प्राप्तः कलविद्याविशारदः ।।४७
म्लेच्छजातीन्नरान्दुष्टान्रेखागणितमुत्तमम् । एकविंशतिमध्यायं कलवेदमशिक्षयत् ।।४८
तदा कलान्विता म्लेच्छाः कलाविद्याविशारदाः । यन्त्राणि कारयामासुः सप्तस्वेव पुरीषु च ।।४९
तदधो ये गतालोकास्ते सर्वे म्लेच्छतां गताः । महत्कोलाहलं जातमार्याणां शोककारिणाम् ।।५०

वेदमार्ग का विस्तार करना आरम्भ किया । शुक्लदत्त के पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्यानन्द ने नमस्कार पूर्वक जगन्नाथ की शिष्य सेवा स्वीकार की । उस समय प्रसन्न होकर उषापति भगवान् अनिरुद्ध ने उन दोनों के मस्तक में महत्त्वपूर्ण अभिषेक (तिलक) किया । उसी समय से पृथ्वी पर महत्त्व पदवी की ख्याति हुई । गुरु एवं उनके बंधु ने प्रसन्न होकर अपने शिष्यों से कहा—उषापति, एवं पद्मनाभ भगवान् जगन्नाथ के बदन का दर्शन करने से लोग स्वर्ग की प्राप्ति करेंगे और जो मनुष्य सादर उनके प्रसाद का भक्षण करेगा वह कोटि जन्म तक वेदपाठी एवं महाधनवान् ब्राह्मण होता रहेगा । मार्कण्डेय वटवृक्ष के नीचे कृष्णदर्शन और समुद्रस्नान के उपरांत इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान करने वाले प्राणी का पुनर्जन्म नहीं होगा । श्रद्धाभक्ति पूर्वक इस कथा का श्रवण करने वाला जगन्नाथ पुरी की यात्रा का फल प्राप्त करेगा । इस प्रकार अवतारित होने वाले वैष्णवों ने यज्ञांश की बातें सुनकर अन्तर्हित होकर स्वर्ग को प्रस्थान किया । विप्र ! उसी बीच कलि की प्रार्थना करने पर वलि दैत्य ने दुःख प्रकट करते हुए मय दानव से कहा—सुकन्दर (सिकन्दर) नामक म्लेच्छ को, जो मेरी वृद्धि के लिए सदैव अटूट परिश्रम करता है, शीघ्र मेरा सहाय बना दीजिये । बलि की इस बात को सुनकर वह विद्या निपुण मय दैत्य अपने सौ दैत्यगणों समेत इस कर्मभूमि भूतल पर आगमन किया । यहाँ आकर उसने म्लेच्छ जाति के दुष्टों को रेखागणित के उस समय इक्कीस अध्यायों का अध्ययन कराया । ३६-४८ । पश्चात् कलापूर्ण होने पर उन कलाविद्या विशारद म्लेच्छों ने सातों पुरियों में यंत्रों की स्थापना की जिससे म्लेच्छों की अधिक वृद्धि हुई । उन यंत्रों के नीचे जो पहुँच जाते थे,

---

१. प्रयागोऽयमार्षः । २. शृणुयात् ।

श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्णचैतन्यसेवकाः । दिव्यमन्त्रं गुरोश्चैव पठित्वा प्रययुः पुरीम् ।।५१
रामानन्दस्य शिष्यो वै चायोध्यायामुपागतः । कृत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयत् ।।५२
भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत् । कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता ।।५३
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन्रामानन्दप्रभावतः । संयोगिनश्च ते ज्ञेया रामानन्दमते स्थिताः ।।५४
आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे । निम्बादित्यो गतो धीमान्सशिष्यः काञ्चिकां पुरीम् ।।
म्लेच्छयन्त्रं राजमार्गे स्थितं तत्र ददर्श ह ।।५५
विलोमं स्वगुरोर्मन्त्रं कृत्वा तत्र स चावसत् । वंशपत्रसमा रेखा ललाटे कण्ठमालिका ।।५६
गोपीवल्लभमन्त्रो हि मुखे तेषां रराज ह । तदधो ये गता लोका वैष्णवाश्च बभूविरे ।।५७
म्लेच्छाः संयोगिनो ज्ञेया आर्यास्तन्मार्गवैष्णवाः । विष्णुस्वामी हरिद्वारे जगाम स्वगणैर्वृतः ।।५८
तत्र स्थितं महायन्त्रं विलोमं तच्चकार ह । तदधो ये गता लोका आसन्सर्वे च वैष्णवाः ।।५९
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विरेखाभं तन्मध्ये बिन्दुरुत्तमः । ललाटे च स्थितस्तेषां कण्ठे तुलसिगोलकम् ।।६०
मुखे माधवमन्त्रश्च बभूव हितदायकः । मथुरायां समायातो मध्वाचार्यो हरिप्रियः ।।६१
राजमार्गे स्थितं यन्त्रं विलोमं स चकार ह । तदधो ये गता लोका वैष्णवास्तस्य पक्षगाः ।।६२
करवीरपत्रसदृशं ललाटे तिलकं शुभम् । स्थितम् नासार्द्धभागान्ते कण्ठे तुलसि मालिका ।।
राधाकृष्णशुभं नाम मुखे तेषां बभूव ह ।।६३

वे सभी म्लेच्छ हो जाते थे । इसे सुनकर आर्यवृन्दों में एक महान् शोकपूर्ण कोलाहल उत्पन्न हुआ । उसे सुनकर कृष्णचैतन्य के सेवक उन वैष्णवों ने अपने गुरु के दिव्य मंत्र के पाठपूर्वक उन पुरियों की यात्रा की । रामानन्द के दोनों शिष्यों ने अयोध्या में पहुँचकर उस मंत्र के विलोम पाठ द्वारा उन वैष्णवों के आकार में परिवर्तन किया—भाल में त्रिशूल का चिह्न (तिलक) जो श्वेत एवं रक्त वर्ण का होता है, कंठ में तुलसी की माला धारण किये । उनकी जिह्वा राममयी हो गई । रामानन्द के प्रभाव से अयोध्या के म्लेच्छ संयोगी वैष्णव रूप में परिवर्तित हो गये, जो गृहस्थाश्रम में रहते हुए उनके मत का अवलम्बन किये थे । इस प्रकार अयोध्या में वे आर्य मुख्य वैष्णव हुए । बुद्धिमान् निम्बादित्य ने अपने शिष्यों समेत काञ्चीपुरी की यात्रा की । उन्होंने राजमार्ग में उस म्लेच्छयंत्र को देखा । पश्चात् अपने गुरु मंत्र के विलोम पाठ द्वारा प्रचार करना आरम्भ किया । उनके उपदेश द्वारा वहाँ की जनता के ललाट में वांस के पत्ते के समान एक रेखा, कंठ में माला और मुख से सदैव गोपीवल्लभ का मंत्रोचारण होने लगा । उनकी छाया में जो कोई पहुँचे सभी वैष्णव हुए । म्लेच्छ संयोगी और आर्य शुद्धवैष्णव हुए । विष्णु स्वामी ने अपने शिष्यगणों समेत हरिद्वार की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर अपने विलोम मंत्र द्वारा वहाँ के यंत्र को शुद्ध किया । उसके नीचे पहुँचने वाले वैष्णव हो जाते थे । उनके वेष में मस्तक में ऊर्ध्व पुंड्र की दो रेखा थी जिसके मध्य में एक उत्तम विन्दु रहता था । कंठ में तुलसी की गोलमाला और मुख से माधव मंत्र का सदैव उच्चारण होता था । मथुरा में हरिप्रिय मध्वाचार्य की यात्रा हुई ।४९-६१। उन्होने राजमार्ग में यंत्र को देखकर उसे विलोम किया जिससे उसके नीचे पहुँचने वाले सभी वैष्णव हो जाते थे। वहाँ के वैष्णव वेश में भाल में करवीर पत्र के समान शुभ तिलक भी , जो नासा के आधे भाग तक स्थित रहती है, कंठ में तुलसी की माला और मुख से सदैव राधाकृष्ण का परमोत्तम नामोच्चारण होता था। शैवमतावलम्बी

शङ्कराचार्य एवापि शैवमार्गपरायणः । रामानुजाज्ञया प्राप्तः पुरीं काशीं गणैर्युतः ॥६४
कृत्वा विलोमं तद्यन्त्रं शैवाश्च तदधोऽभवन् । त्रिपुण्ड्रं च स्थितं भाले कण्ठे रुद्राक्षमालिका ॥
गोविन्दमन्त्रश्च मुखे तेषां तत्र बभूव ह ॥६५
तोतादर्यां च सम्प्राप्तस्तदा रामानुजः सुखी । ऊर्ध्वरेखाद्वयोर्मध्ये सूक्ष्मरेखा च पीतिका ॥
ललाटे तु तथा कण्ठे माला तुलसिका शुभा ॥६६
उज्जयिन्यां च सम्प्राप्तो वराहमिहिरो गुणी । तद्यन्त्रं निष्फलं कृत्वा नराञ्छैवांश्चकार ह ॥६७
चिताभस्मस्थितं भाले कण्ठे रुद्राक्षमालिका । शिवेति मङ्गलं नाम तेषां तत्र बभूव ह ॥६८
कान्यकुब्जे स्वयं प्राप्तो वाणीभूषण एव हि । अर्द्धचन्द्राकृतिं पुण्ड्रं रक्तचन्दनमालिका ॥
देव्याश्च निर्मलं नाम तेषां तत्र बभूव ह ॥६९
धन्वन्तरिः प्रयागे च गत्वा तद्यन्त्रमुत्तमम् । विलोमं कृतवांस्तत्र तदधो ये गता नराः ॥७०
अर्द्धपुण्ड्रं स्मृतं रक्तं सबिन्दु च ललाटके । रक्तचन्दनजा माला कण्ठे तेषां बभूव ह ॥७१
भट्टोजिः स गतो धीमानुत्पलारण्यमुत्तमम् । त्रिपुण्ड्रं च तथा रक्तं कण्ठे रुद्राक्षमालिका ॥
विश्वनाथेतितन्मन्त्रं तेषां तत्र बभूव ह ॥७२
रोपणश्चेष्टिकां प्राप्तस्तद्यन्त्रं चैव निष्फलम् । कृत्वा जने जने तत्र ब्रह्म मार्गम् ददर्श ह ॥७३
जयदेवः स्वयं प्राप्तो द्वारकां विष्णुभक्तिमान् । तद्यन्त्रं निष्फलं यातं तदधो ये गता नराः ॥७४
रक्तरेखा स्थिता भाले चैका कण्ठे तु मालिका । पद्माक्षा मन्त्रगोविन्दस्तत्र तेषां बभूव ह ॥

शंकराचार्य ने रामानुज की आज्ञा से अपने गणों समेत काशीपुरी की यात्रा की ।६२-६४। वहाँ पहुँच-कर उन्होंने उस यंत्र को विलोमकर शैवों का प्रचार किया । उसके नीचे आने वाले सभी शैव हुए । उनके मस्तक में त्रिपुंड्र कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, और मुख से सदैव गोविंद नाम का उच्चारण हो रहा था । तोतादरी में सुखी रामानुज ने प्रस्थान किया । उनके वेष में मस्तक में उर्ध्व दोनों रेखा के मध्य पीत वर्ण की एक सूक्ष्मरेखा रहती थी । कण्ठ में तुलसी की माला रहती है । गुणी वराहमिहिराचार्य ने उज्जयिनी में जाकर उस यंत्र को विफल करके वहाँ की जनता में शैव मत का प्रचार किया । उस वेष में भाल में चिताभस्म, कण्ठ मे रुद्राक्ष की माला और मुख में मांगलिक शिव, नाम का उच्चारण सदैव होता है । वाणी भूषण ने स्वयं कान्यकुब्ज (कन्नौज) में जाकर शाक्तमत का प्रचार किया, जिस वेष में अर्धचन्द्राकार पुंड्र रक्तचन्दन की माला, और मुख से देवी के निर्मल नाम का उच्चारण होता रहता है धन्वतरि ने प्रयाग में पहुँच कर उस यंत्र के विलोम पूर्वक वहाँ की एकत्रित जनता में भाल में रक्तवर्ण के विन्दु समेत अर्द्ध पुंड्र एवं कण्ठ में रक्तचन्दन की माला धारण करने का प्रचार किया। बुद्धिमान् भट्टोजि ने उत्पलारण्य में जाकर वहाँ की जनता में रक्तचन्दन के त्रिपुण्ड्र, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला और विश्वनाथ जी के परमोत्तम नाम यंत्र के जप करने का प्रचार किया । रोपण ने इष्टिका में जाकर उस यंत्र को विफल करके वहाँ की जनता में ब्रह्ममार्ग का प्रचार किया । उसी भाँति सर्वश्रेष्ठ विष्णु भक्त जयदेव जी ने द्वारका में जाकर उस यंत्र को निष्फल करके वहाँ की जनता के मस्तक में रक्तवर्ण की रेखा, कण्ठ में पद्माक्ष की माला तथा गोविन्द नाम का उच्चारण करने का प्रचार किया । इस प्रकार उन वैष्णव, शैव, एवं

एवं ते वैष्णवाः शैवाः शाक्तका बहुधाऽभवन् ॥७५
निर्गुणाः शाक्तका ज्ञेयाः सगुणा वैष्णवाः स्मृताः । निर्गुणाः सगुणा ये तु शैवा ज्ञेया बुधैस्तदा ॥७६
समाधिस्थास्त्रयस्त्रिंशद्देवाः पुण्या बभूविरे । नित्यानन्दः शान्तिपुरे नदीहापत्तने हरिः ॥७७
कबीरो मागधे देशे रैदासस्तु कलिञ्जरे । सधनो नैमिषारण्ये समाधिस्थो बभूव ह ॥७८
अद्यापि संस्थितो विप्र वैष्णवानां गणो महान् । यज्ञभागमहावृद्धिः सञ्जाता मेरुमूर्द्धनि ॥७९
इति ते कथितं विप्र यज्ञांशचरितं शुभम् । यच्छ्रुत्वा च नरा नार्यो महत्पुण्यमवाप्नुयुः ॥
मयाद्या निष्फला दैत्या बलिपार्श्वमुपागताः ॥८०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यचरित्रं नामैकविंशोऽध्यायः ।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

गुरुण्डमौनराज्यवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा बलिर्दैत्यो देवानां विजयं महत् । रोषणं नाम दैत्येन्द्रं समाहूय वचोऽब्रवीत् ॥१
सुतस्तिमिरलिङ्गस्य सरुषो नाम विश्रुतः । त्वं हि तत्र समागम्य दैत्यकार्यं महत्कुरु ॥२

शाक्त गणों की अत्यन्त अभिवृद्धि हुई । विद्वानों ने शाक्त को निर्गुण, वैष्णव को सगुण और निर्गुण सगुण मिश्रित को शैव बताया है । तदनन्तर तैंतीस देवों ने समाधिस्थ होकर इस भूमि को अत्यन्त पावन किया । शान्तिपुर में नित्यानन्द नदीहा में हरि, मागधप्रदेश में कबीर, कलिंजर में रैदास, और नैमिषारण्य में सधन ने समाधिस्थ होकर उन-उन प्रदेशों को परमपवित्र किया है । विप्र ! उसी से आज भी वैष्णवों का महानगण इस भूतल पर स्थित रहकर मेरुमूर्धा स्थान में यज्ञों की महान् अभिवृद्धि का रहा है । विप्र ! इस प्रकार मैंने यज्ञांशदेव का शुभ चरित तुम्हें सुना दिया, जिसके सुनने से स्त्री एवं पुरुषों को अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । पश्चात् मय आदि दैत्यों ने पलायन कर बलि दैत्यराज के पास पहुँचकर उनसे निवेदन किया ।६५-८०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्यचरित्र वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—दैत्यराज बलि ने देवों के इस प्रकार की महान् विजय को सुनकर रोषण नामक दैत्येन्द्र को बुलाकर उससे कहा—तिमिरलिंग के सरुष नामक पुत्र को साथ लेकर उसी स्थान पर दैत्यों के उस महान् कार्य को पूरा करो । इसे सुनकर उस दैत्य ने दिल्ली प्रदेश में निवासपूर्वक अपने हृदय में

इति श्रुत्वा स वै दैत्यो हृदि विप्राप्तरोषणः । ननाश वेदमार्गस्थान्देहलीदेशमास्थितः ॥३
पञ्चवर्षं कृतं राज्यं तत्सुतो बाबरोऽभवत् । विंशदब्दं कृतं राज्यं होमायुस्तत्सुतोऽभवत् ॥४
होमायुषा मदान्धेन देवताश्च निराकृताः । ते सुराः कृष्णचैतन्यं नदीहोपवने स्थितम् ॥५
दुष्टुवुर्बहुधा तत्र श्रुत्वा क्रुद्धो हरिः स्वयम् । स्वतेजसा च तद्राज्यं विघ्नभूतं चकार ह ॥६
तत्सैन्यजनितैर्लोकैर्होमायुश्च निराकृतः । महाराष्ट्रैस्तदा तत्र शेषशाकः समास्थितः ॥७
देहलीनगरे रम्ये म्लेच्छो राज्यं चकार ह । धर्मकार्यं कृतं तेन तद्राज्यं पञ्चहायनम् ॥८
ब्रह्मचारी मुकुन्दश्च शङ्कराचार्यगोत्रजः । प्रयागे च तपः कुर्वविंशच्छिष्यैर्युतस्थितः ॥९
बाबरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवताः । भ्रंशिता स तदा ज्ञात्वा वह्नौ देहं जुहाव वै ॥१०
तस्य शिष्या गता वह्नौ म्लेच्छनाशनहेतुना । गोदुग्धे च स्थितं रोमं पीत्वा स पयसा मुनिः ॥११
मुकुन्दस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनौ बभूव ह । होमायुषश्च काश्मीरे संस्थितस्यैव पुत्रकः ॥१२
जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचा शरीरिणी । अकस्माच्च वरो जातः पुत्रोऽयं सर्वभाग्यवान् ॥१३
पैशाचे दारुणे मार्गे न भूतो न भविष्यति । अतः सोऽकबरो नाम होमायुस्तनयस्तव ॥१४
श्रीधरः श्रीपतिः शम्भुर्वरेण्यश्च मधुव्रती । विमलो देववान्सोमो वर्द्धनो वर्तको रुचिः ॥१५
मान्धाता मानकारी च केशवो माधवो मधुः । देवापिः सोमपाः शूरो मदनो यस्य शिष्यकाः ॥१६

अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेदमार्ग के अनुयायियों का विनाश करना आरम्भ किया । पाँच वर्ष तक राज्योपभोग करने के उपरांत उसके 'बाबर' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने बीस वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उसके होमायु (हुमायूँ) नामक पुत्र हुआ । उस होमायु ने मदान्ध होकर देवताओं को अपमानितकर देश से निकालना आरम्भ किया, जिससे दुःखी होकर देवों ने नदीहा के उपवन में पहुँचकर भगवान् कृष्णचैतन्य की अनेक भाँति से आराधना की जिसे सुनकर स्वयं विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तेज द्वारा उस राज्य में महान् विघ्न उत्पन्न किया—वहाँ की जनता ने जो सैनिकों के पद पर काम कर रही थी, होमायु (हुमायूँ) को पराजित कर निकाल दिया । उस समय महाराष्ट्रों की सहायता से शेषशाक ने दिल्ली में पहुँचकर उस म्लेच्छराज्य को अपने अधीन किया । उन्होंने उस पद पर पाँच वर्ष तक रहकर धार्मिक कार्यों की अत्यन्त वृद्धि की । उसी समय ब्रह्मचारी मुकुन्द ने जो शंकराचार्य के गोत्र में उत्पन्न होकर अपने बीस शिष्यों समेत प्रयाग में तप कर रहे थे, धूर्त म्लेच्छराज बाबर द्वारा देवों का भ्रष्ट होना सुनकर प्रदीप्त अग्नि में अपनी देह को भस्म कर दिया । उनके शिष्यगणों ने भी इस म्लेच्छ के नाशार्थ अपने को उसी अग्नि में भस्मावशेष किया । एकबार उन मुनि मुकुन्द ने गोदुग्ध के साथ लोम का भी पानकर लिया था । उसी दोष के कारण उन्हें म्लेच्छ के यहाँ उत्पन्न होना पड़ा । उस समय होमायु (हुमायुँ) काश्मीर में रह रहा था । उसी के यहाँ पुत्ररूप में ब्रह्मचारी मुकुन्द ने जन्म ग्रहण किया । पुत्र के उत्पन्न होने के समय आकाशवाणी हुई—'यह पुत्र अकस्मात् वर (सर्वश्रेष्ठ) और सर्वभाग्यवान् होगा ।' इस भाँति का पुत्र उस भीषण पिशाचों के यहाँ न हुआ और न होगा । इसलिए इस होमायु (हूमायूँ) पुत्र का 'अकबर' नाम होगा ।१-१४। जिस तपस्वी के श्रीधर, श्रीपति, शम्भु, वरेण्य, मधुव्रती, विमल, देववान्, सोम, वर्द्धन, वर्तक रुचि, मांधाता, मानकारी, केशव, माधव, मधु, देवाधि, सोमपा, शूर,

स मुकुन्दो द्विजः श्रीमान्दैवात्त्वद्गेहमागतः । इत्याकाशवचः श्रुत्वा होमायुश्च प्रसन्नधीः ॥१७
ददौ दानं क्षुधार्तेभ्यः प्रेम्णा पुत्रमपालयत् । दशाब्दे तनये जाते देहलीदेशमागतः ॥१८
शेषशाङ्कं पराजित्य स च राजा बभूव ह । अब्दं तेन कृतं राज्यं तत्पुत्रश्च नृपोऽभवत् ॥१९
सम्प्राप्तेऽकबरे राज्यं सप्तशिष्याश्च तत्प्रियाः । पूर्वजन्मनि ये मुख्यास्ते प्राप्ता भूपतिं प्रति ॥२०
केशवो गानसेनश्च वैजवाक्स तु माधवः । म्लेच्छास्ते च स्मृतास्तत्र हरिदासो मधुस्तथा ॥२१
मध्वाचार्यकुले जातो वैष्णवः सर्वरागवित् । पूर्वजन्मनि देवापिः स च वीरबलोऽभवत् ॥२२
ब्राह्मणः प्राप्तिवमात्यो वै वाग्देवीवरदर्पितः । सोमपा मानसिंहश्च गौतमान्वयसम्भवः ॥२३
सेनापतिश्च नृपतेरार्यभूपशिरोमणेः । सूरश्चैव द्विजो जातो दक्षिणश्चैव पण्डितः ॥२४
बिल्वमङ्गल एवापि नाम्ना तन्नृपतेः सखा । नायिकाभेदनिपुणो वेश्यानां स च पारगः ॥२५
मदनो ब्राह्मणो जातः पौर्वात्यः स च नर्तकः । चन्दलो नाम विख्यातो रहः क्रीडाविशारदः ॥२६
अन्यदेशे गताः शिष्यास्तेषां पूर्वास्त्रयोदश । अनपस्य सुतो जातः श्रीधरः शत्रुवेदितः ॥२७
विख्यातस्तुलसीशर्मा पुराणनिपुणः कविः । नारीशिक्षां समादाय राघवानन्दमागतः ॥२८
शिष्यो भूत्वा स्थितः काश्यां रामानन्दमते स्थितः । श्रीपतिः स बभूवान्धो मध्वाचार्यमते स्थितः ॥२९
सूरदास इति ज्ञेयः कृष्णलीलाकरः कविः । शम्भुर्वै चन्द्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रियः ॥३०

और मदन शिष्य हैं, वही श्रीमान् मुकुन्द ब्राह्मण दैवात् तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुए हैं । इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर होमायु (हुमायूँ) ने अत्यन्त प्रसन्न होकर क्षुधापीड़ितों को दान देकर अत्यन्त प्रेम से उस पुत्र का लालन-पालन किया । पुत्र की दश वर्ष की अवस्था में उसने दिल्ली आकर शेषशाक को पराजित कर पुनः राजपद को अपने अधीन किया । उसके एक वर्ष राज्य करने के उपरांत अकबर ने उस पद को अलंकृत किया । अकबर के राजपद पर प्रतिष्ठित होने पर पूर्वजन्म के उनके सप्त शिष्यों ने उस राजदरबार में आकर अपने-अपने गुणों के अनुसार उन पदों को सुशोभित किया—केशव, गानसेन, वैजवाक् एवं माधव ने म्लेच्छ के यहाँ जन्म ग्रहण किया था, हरिदास तथा मधु मध्वाचार्य के कुल में उत्पन्न होकर सर्वरागवेत्ता वैष्णव हुए । पूर्वजन्म के देवाधि वीरवल हुए जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर वाग्देवी से वरदान प्राप्तकर ख्यातिप्राप्त आमात्य हुआ था । सोमपा, एवं मानसिंह गौतम कुल में उत्पन्न होकर आर्यश्रेष्ठ राजा के सेनापति हुए । सूर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर कुशल पण्डित हुए जो उस राजा के परम मित्र एवं विल्वमंगल नाम से प्रख्यात थे । उन्हें नायिका भेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान था और उसी प्रकार वेश्याओं का भी । मदन पूर्वदेश निवासी ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहणकर कुशल नर्तक हुए जो एकान्त क्रीड़ा में निपुण होकर चन्दन नाम से प्रथित थे । उनके शेष तेरह शिष्यों ने अन्य देशों में जाकर जन्म ग्रहण किया—शत्रु मर्मज्ञ श्रीधर ने अनघ के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न होकर तुलसी शर्मा के नाम से ख्याति प्राप्त की, जो पुराण के निपुण कवि थे । उन्होंने नारी द्वारा शिक्षा प्राप्तकर काशी में राघवानन्द के पास आकर ।१५-२८। उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक रामानन्द मत का अवलम्बन किया। श्रीपति अन्धे होकर मध्वाचार्य का मत अपनाये जो सूरदास के नाम से प्रख्यात होकर कृष्णलीला के परमोत्तम कवि थे। हरिप्रिय शम्भु ने चन्द्रभट्ट के कुल में जन्म ग्रहणकर रामानन्द का मार्ग अपनाया। वे भक्तों की

रामानन्दमते संस्थो भक्तकीर्तिपरायणः । वरेण्यः सोग्रभुङ्नामा रामानन्दमते स्थितः ॥३१
ज्ञानध्यानपरो नित्यं भाषाछन्दकरः कविः । मधुव्रती स वै जातो कीलको नाम विश्रुतः ॥३२
रामलीलाकरो धीमान्रामानन्दमते स्थितः । विमलश्च स वै जातः स नाम्नैव दिवाकरः ॥३३
सीतालीलाकरो धीमान्रामानन्दमते स्थितः । देववान्केषवो जातो विष्णुस्वामिमते स्थितः ॥३४
कविप्रियादिरचनां कृत्वा प्रेतत्वमागतः । रामज्योत्स्नामयं ग्रन्थं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३५
सोमो जातः स वै व्यासो निम्बादित्यमते स्थितः । रहः क्रीडामयं ग्रन्थं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३६
वर्द्धनश्च स वै जातो नाम्ना चरणदासकः । ज्ञानमालामयं कृत्वा ग्रन्थं रैदासमार्गगः ॥३७
वर्तकः स च वै जातो रोपणस्य मते स्थितः । रत्नभानुरिति ज्ञेयो भाषाकर्ता च जैमिनेः ॥३८
रुचिश्च रोचनो जातो मध्वाचार्यमते स्थितः । नानागानमयीं लीलां कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३९
मान्धाता भूपतिर्नाम कायस्थः स बभूव ह । मध्वाचार्यो भागवतं चक्रे भाषामयं शुभम् ॥४०
मानकारो नारिभावान्नारीदेहमुपागतः । मीरानामेति विख्याता भूपतेस्तनया शुभा ॥४१
मा शोभा च तनौ यस्या गतिर्गजसमाकिल । सा मीरा च बुधैः प्रोक्ता मध्वाचार्यमते स्थिता ॥४२
एवं ते कथितं विप्र भाषाग्रन्थप्रकारणम् । प्रबन्धं मङ्गलकरं कलिकाले भयङ्करे ॥४३
स भूपोऽकबरो नाम कृत्वा राज्यमकण्टकम् । शतार्द्धेन च शिष्यैश्च वैकुण्ठभवनं ययौ ॥४४
सलोमा तनयस्तस्य कृतं राज्यं पितुः समम् । खुर्दकस्तनयस्तस्य दशाब्दं च कृतं पदम् ॥४५

कीर्ति को सदैव तन्मय होकर गाया करते थे । वरेण्य ह्न सोग्रभुक् नाम से प्रथित होकर रामानन्द का मत स्वीकार किया । जो ज्ञानी ध्यानी होते हुए भाषा छन्द के निपुण कवि हुए थे । मधु का कीलक नाम से ख्याति हुई, जो रामलीला करने वाले एवं रामानन्द के मतावलम्बी थे विमल दिवाकर नाम से प्रख्यात होकर सीता जी की लीला करते हुए रामानन्द के परमभक्त हुए । देवबाबू ने केशव नाम से प्रथित होकर विष्णु स्वामी का मत अपनाया जिन्होंने कविप्रिया की रचना की । किंतु उन्हें प्रेतयोनि में ही जाना पड़ा । उन्होंने राम ज्योत्स्नामय ग्रंथ की भी रचना की है । सोम ने व्यास के नाम से उत्पन्न होकर निम्बादित्य का मार्ग ग्रहण किया, जिन्होंने एकान्त क्रीड़ा के विवेचनात्मक ग्रन्थ का निर्माण किया । वर्द्धन ने ज्ञानमाला नामक ग्रन्थ की रचना कर रैदास का मत अपनाया । वर्तक ने रोपण का मत ग्रहण किया । रुचि ने रोचन नाम से प्रथित होकर मध्वाचार्य का मत अपनाया । उन्होंने अनेक भाँति के गान लीला की रचनाकर पश्चात् स्वर्ग को प्रस्थान किया । मांधाता कायस्थ कुल में उत्पन्न होकर राजपद से विभूषित हुए । मध्वाचार्य ने भाषा में शुभ भागवत की रचना की । मानकार ने नारीभाव की प्रधानता वश नारीदेह धारण किया, जो राजा की 'मीरा' नामक प्रख्यात पुत्री थी । विद्वानों ने जिसकी शरीर में मा (लक्ष्मी) की भाँति सौन्दर्य और गज की भाँति गति हो, उसे मीरा कहा है । वह मीरा मध्वाचार्य की अनुयायिनी थी ।२९-४२। विप्र ! इस प्रकार भाषाग्रन्थ का प्रकरण मैंने कहकर समाप्त किया, जो प्रबन्ध रूप एवं भीषण कलि समय अत्यन्त मांगलिक है । उस अकबर नामक राजा ने अकंटक राज्य का सुखोपभोग करके अपने पचास शिष्यों समेत वैकुण्ठ भवन की यात्रा की। उसके सलोमा (सलीम) जहाँगीर नामक पुत्र ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया और खुर्दक (खुर्रम) सलीम का पुत्र था,

चत्वारस्तनयास्तस्य नवरङ्गो हि मध्यमः । पितरं च तथा भ्रातॄञ्जित्वा राज्यमचीकरत् ॥४६
पूर्वजन्मनि दैत्योऽयमन्धको नाम विश्रुतः । कर्मभूम्यां तदंशेन दैत्यराजाज्ञया ययौ ॥४७
तेनैव बहुधा मूर्तीर्भ्रंशिताश्च समन्ततः । दृष्ट्वा देवास्तदागत्य कृष्णचैतन्यमब्रुवन् ॥४८
भगवन्दैत्यराजांशः स जातश्च महीपतिः । भ्रंशयित्वा सुरान्वेदान्दैत्यपक्षं विवर्द्धते ॥४९
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो नदीहोपवने स्थितः । शशाप तं दुराचारं यथा वंशक्षयो भवेत् ॥५०
राज्यमेकोनपञ्चाशत्कृतं तेन दुरात्मना । सेवाजयो नाम नृपो देवपक्षविवर्द्धनः ॥५१
महाराष्ट्रद्विजस्तस्य युद्धविद्याविशारदः । हत्वा तं च दुराचारं तत्पुत्राय च तत्पदम् ॥५२
दत्वा ययौ दाक्षिणात्ये देशे देवविवर्द्धनः । अलोमा नामतनयः पञ्चाब्दं तत्पदं कृतम् ॥५३
तत्पश्चान्मरणं प्राप्तो विद्रधेन रुजा मुने । विक्रमस्य गते राज्ये सप्तत्युत्तरकं शतम् ॥५४
ज्ञेयं सप्त दशं विप्र यदालोमा मृतिं गतः । तालनस्य कुले जातो म्लेच्छः फलरुषो बली ॥५५
मुकुलस्य कुलं हत्वा स्वयं राज्यं चकार ह । दशाब्दं च कृतं राज्यं तेन भूपेन भूतले ॥५६
शत्रुभिर्मरणं प्राप्तो दैत्यलोकमुपागमत् । महामदस्तत्तनयो विंशत्यब्दं कृतं पदम् ॥५७
तद्राष्ट्रे नादरो नाम दैत्यो देश उपागमत् । हत्वार्यांश्च सुराञ्जित्वा देशं खुरजमाययौ ॥५८
महामत्स्यो हि मदस्य तनयस्तत्पितुः पदम् । गृहीत्वा पञ्चवर्षान्तं स च राज्यं चकार ह ॥५९
महाराष्ट्रैर्हतो दुष्टस्तालनान्वयसम्भवः । देहलीनगरे राज्यं दशाब्दं माधवेन वै ॥६०

जिसने दश वर्ष तक राज्य किया । उसके चार पुत्रों में नवरंग (औरङ्गजेब) मध्यम पुत्र था जिसने अपने पिता और भ्राताओं पर विजय प्राप्तकर राज्यपद अपने अधीन किया । पूर्वजन्म में वह अन्धक नामक दैत्य था । दैत्यराज बलि की आज्ञा से उसने इस कर्मभूमि भारत में जन्म ग्रहण किया, जिसके द्वारा अनेकों देवमूर्तियाँ भ्रष्ट की गई थीं । उसे देखकर देवों ने कृष्णचैतन्य से कहा—भगवन् ! वह दैत्यराज के अंश से उत्पन्न होकर राजपद की प्रतिष्ठा के उपरांत देवों एवं वेदों को नष्ट-भ्रष्टकर दैत्यपक्षों को बढ़ा रहा है । इसे सुनकर नदीहा के उपवन में स्थित यज्ञांश ने उस दुराचारी के वंशनाशार्थ शाप प्रदान किया । उस दुष्ट के उनचास वर्ष राज्य करने के उपरांत सेवाजय (शिवा जी) नामक राजा ने, जो देवपक्ष के अभिवर्द्धक थे, और महाराष्ट्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर युद्ध विद्या की निपुणता प्राप्त की थी । उस दुराचारी का निधन कर उसका पद उसके पुत्र को सौंपकर दक्षिणदेश की यात्रा की । मुने ! उसके आलोमा नामक उस पुत्र ने पाँच वर्ष तक राज्य करने के उपरांत विद्रध (भगन्दर) नामक रोग से पीड़ित होकर शरीर का त्याग किया । विक्रमराज्य के सत्रह सौ सत्तर वर्ष उस समय आलोमा के शरीर त्याग के समय व्यतीत हुआ था । तालन कुल में उत्पन्न बली फल रुष म्लेच्छ ने मुकुल (मुगल) की कुल की समाप्तिकर स्वयं राज्यपद को अपने अधीन किया । इस भूमण्डल पर दश वर्ष तक राज्य करने के उपरांत।४३-५६। शत्रुओं द्वारा मृतक होकर उसने दैत्यलोक की यात्रा की । उसके पुत्र महामद ने बीस वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उसके राज्य में नादर (नादिर शाह) नाम का दैत्य ने आर्यों एवं देवों पर विजय प्राप्तिपूर्वक खुरजा प्रदेश में आगमन किया। उसके पुत्र महामत्स्य ने अपने पिता के पद को अपने अधीन कर पाँच वर्ष तक राज्य किया। तदनन्तर महाराष्ट्रों द्वारा तालनवंशीय उस दुष्ट के निधन होने पर दिल्ली

कृतं तत्र तदा म्लेच्छ आलोमा राज्यमाप्तवान् । तद्राष्ट्रे बहवो जाता राजानो निजदेशजाः ।।६१
ग्रामपा बहवो भूपा देशे देशे बभूविरे । मण्डलीकपदं तत्राक्षयं जातं महीतले ।।६२
त्रिशदब्दमतो जातं ग्रामे ग्रामे नृपे नृपे । तदा तु सकला देवाः कृष्णचैतन्यमाययुः ।।६३
यज्ञांशश्च हरिः साक्षाज्ज्ञात्वा दुःखं महीतले । मुहूर्तं ध्यानमागम्य देवान्वचनमब्रवीत् ।।६४
पुरा तु राघवो धीमाञ्जित्वा रावणराक्षसम् । कपीनुज्जीवयामास सुधावर्षैस्समन्ततः ।।६५
विकटो वृजिलो जालो वरलीनो हि सिंहलः । जवस्सुमात्रश्च तथा नाम्ना ते क्षुद्रवानराः ।।६६
रामचन्द्रं वचः प्राहुर्देहि नो वाञ्छितं प्रभो । रामो दाशरथिः श्रीमाञ्ज्ञात्वा तेषां मनोरथम् ।।६७
देवाङ्गनोद्भवाः कन्या रावणाल्लोकरावणात् । दत्त्वा तेभ्यो हरिस्साक्षाद्वचनं प्राह हर्षितः ।।६८
भवन्नाम्ना च ये द्वीपा जालन्धरविनिर्मिताः । तेषु राज्ञो भविष्यन्ति भवन्तो हितकारिणः ।।६९
नन्दिन्या गोश्च रुण्डाद्वै जाता म्लेच्छा भयानकाः । गुरुण्डा जातयस्तेषां तास्तु तेषु सदा स्थिताः ।।७०
जित्वा तांश्च गुरुण्डान्वै कुरुध्वं राज्यमुत्तमम् । इति श्रुत्वा हरिं नत्वा द्वीपेषु प्रययुर्मुदा ।।७१
विकटान्वयसम्भूता गुरुण्डा वानराननाः । वाणिज्यार्थमिहायाता गौरुण्डा बौद्धमार्गिणः ।।७२
ईशपुत्रमते संस्थास्तेषां हृदयमुत्तमम् । सत्यव्रतं कामजितमक्रोधं सूर्यतत्परम् ।।७३
यूयं तत्रोष्य कार्यं च नृणां कुरुत मा चिरम् । इति श्रुत्वा तु ते देवाः कुर्युरार्चिकमादरात् ।।७४

सिंहासनासीन होकर माधव ने दश वर्ष तक राज्य किया । उन्होंने आलोमा के समस्त राज्यपर अपना आधिपत्य स्थापित किया था । उस राज्य में अपने देश के अनेक लोग राजा थे और अनेक ग्रामपति भी अनेक देशों में राज्यपद पर रहकर राज्य कर रहे थे उस समय मण्डलीक पद के नष्ट होने पर प्रत्येक गाँवों के अधिपति राजा कहे जाते थे । इस प्रकार उन राजाओं के उस पद पर तीस वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत समस्त देवों ने कृष्णचैतन्य के पास जाकर उनसे कहा । जिसे सुनकर साक्षात् विष्णु रूप यज्ञांश-देव ने पृथिवी तल पर लोगों को दुःखी देखकर एक मुहूर्त ध्यान करने के उपरांत देवों से कहा—पहले समय में धीमान् राघव ने रावण राक्षस को पराजित कर चारों ओर अमृत वर्षा करके बानरों को जीवित किया था । उस समय वहाँ उपस्थित होकर विकट, वृजिल, जाल, वरलीन, सिंहल, जव, और सुमात्रा नामक वानरों ने रामचन्द्र जी से कहा—प्रभो ! मनइच्छित वरदान देने की कृपा कीजिये । उसे सुनकर भगवान् दाशरथी श्रीमान् राम ने उन लोगों के मनोरथ को जानकर लोक रावण रावण द्वारा देवाङ्गनाओं के गर्भ से उत्पन्न कन्याएँ उन्हें प्रदान किया तथा तदनन्तर हर्षित होकर कहा—जालंधर के बनाये हुए जो द्वीप आप लोगों के नाम से प्रथित हैं, उन्हीं के राजाओं के यहाँ उत्पन्न होकर आप लोग उनके हितैषी बने । नन्दिनी नामक गौ के देह से भीषण म्लेच्छों की उत्पत्ति हुई थी । उन्ही की गुरुण्ड जाति हुई, जो उनमें से सदैव स्थित रहती है ।५७-७०। उन गुरुण्डों को जीत कर तुम लोग उस राज्य को अपनाओं । इसे सुनकर उन वानरों ने भगवान् राम के नमस्कार पूर्वक अपने उन द्वीपों को प्रस्थान किया । विकट नामक वानर कुल में उत्पन्न उन गुरुण्डों ने जिनके मुख वानरों की भाँति होते हैं, और बौद्ध मत के अनुयायी हैं, व्यापार के उद्देश्य से वहाँ आगमन किया। किन्तु उनके हृदय में ईशामत की ओर अत्यन्त विनम्रता हैं। वे सत्यव्रती, कामजीतने वाले, एवं क्रोधहीन होते हैं और सूर्य की ही आराधना करते हैं । आप देवगण वहाँ जाकर मनुष्यों के हित साधन में शीघ्रता करें। इसे सुनकर उन देवों ने सादर अर्चना करके उस कलकत्ता नगर

नगर्यां कलिकातायां स्थापयामासुरुद्यताः । विकटे पश्चिमे द्वीपे तत्पत्नी विकटावती ।।७५
अष्टकौशलमार्गेण राजमन्त्रं चकार ह । तत्पतिस्तु पुलोमार्चिः कलिकातां पुरीं स्थितः ।।७६
विक्रमस्य गते राज्ये शतमष्टादशं कलौ । चत्वारिंशं तथाब्दं च तदा राजा बभूव ह ।।७७
तदन्वये सप्तनृपा गुरुण्डाश्च बभूविरे । चतुष्षष्टिमितं वर्षं राज्यं कृत्वा क्षयं गताः ।।७८
गुरुण्डे चाष्टमे भूपे प्राप्ते न्यायेन शासति । कलिपक्षो बलिर्दैत्यो मुरं नाम महासुरम् ।।७९
आरुह्य प्रेषयामास देवदेशे महोत्तमे । स मुरो वार्डिलं भूपं वशीकृत्य हृदि स्थितः ।।८०
आर्यधर्मविनाशाय तस्य बुद्धिं चकार ह । मूर्तिसंस्थास्तदा देवा गत्वा यज्ञांशयोगिनम् ।।८१
नमस्कृत्याब्रुवन्सर्वे यथा प्राप्तो मुरोऽसुरः । ज्ञात्वा शशाप कृष्णांशो गुरुण्डान्बौद्धमार्गिणः ।।८२
क्षयं यास्यन्ति ते सर्वे ये मुरस्य वशं गताः । इत्युक्ते वचने तस्मिन्गुरुण्डाः कालनोदिताः ।।८३
स्वसैन्यैश्च क्षयं जग्मुर्वर्षमात्रान्तरे खलाः । सर्वे त्रिंशत्सहस्राश्च प्रययुर्यममन्दिरे ।।८४
वाग्दण्डैस्स च भूपालो वार्डिलो नाशमाप्तवान् । गुरुण्डो नवमः प्राप्तो मेकलो नाम वीर्यवान् ।।८५
न्यायेन कृतवान्राज्यं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः । आर्यदेशे च तद्राज्यं बभूव न्यायशासति ।।८६
लार्डलो नाम विख्यातो गुरुण्डो दशमोहितः । द्वात्रिंशाब्दं च तद्राज्यं कृतं तेनैव धर्मिणा ।।८७
लार्डले स्वर्गते प्राप्ते मकरन्दकुलोद्भवाः । आर्याः प्राप्तास्तदा मौना हिमतुङ्गनिवासिनः ।।८८
बभ्रूवर्णाः सूक्ष्मनसो वर्तुला दीर्घमस्तकाः । एवं लक्षाश्च सम्प्राप्ता देहल्यां बौद्धमार्गिणः ।।८९

में राजधानी स्थापित किया । विकट नामक पश्चिम द्वीप के राजा की पत्नी का विकटावती नाम था । जिसने आठ प्रकार के कुशल मार्गों द्वारा वहाँ का शासन संचालित किया उसके पति पुलोमार्चि कलकत्ता में रह रहे थे । उस समय विक्रम काल के अठ्ठारह सौ चालीस वर्ष के व्यतीत हो जाने पर राजा हुए थे । उस गुरुण्ड (गोरे अंग्रेज) कुल में सात राजा हुए । गुरुण्ड जाति के आठवें राजा के शासनाधिकार के समय कलिपक्ष के समर्थक दैत्यराज बलि ने मुर नामक महासुर को बुलाकर उस मुर दैत्य ने वाडिल नामक राजा को अपने वशीभूत कर उनके हृदय पर अधिकार किया—उसकी बुद्धि को इस भाँति भ्रष्ट किया कि वह आर्यधर्मों के विनाशपूर्वक देव मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने लगा । उस समय मूर्ति स्थित देवों-ने यज्ञांशदेव के पास जाकर नमस्कार पूर्वक मुर राक्षस का पूर्ण वृत्तान्त सुनाया । उसे सुनकर यज्ञांशदेव ने उन बौद्धमार्गानुयायी गुरुण्डों को शाप दिया—मुरराक्षस के अधीन रहने वाले सभी गुरुण्ड नष्ट हो जाँयेगे । उनके इस प्रकार शाप देने पर अपनी सेनाओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो गये । उस समय उनकी संख्या तीस सहस्र की थी, वे सबके सब मृतक होकर यमराज के यहाँ चले गये ।७१-८४। उस वागदंड द्वारा वार्डिल राजा का भी नाश हुआ । अनन्तर 'मेकल' नामक नवें गुरुण्ड राजा ने जो महान् शक्तिशाली था, अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक न्याय द्वारा बारह वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस समय आर्यों के प्रदेश में न्यायप्रिय शासनाधिकार सर्वत्र विस्तृत हो रहा था । तदुपरांत लार्डल नामक दशवें गुरुण्ड राजा ने भी उस प्रकार धर्मपूर्वक बत्तीस वर्ष तक राज्य किया । लार्डल राजा के स्वर्गीय होने पर मकरन्द वंश के मौन आर्यों ने, जो हिमलाय के शिखर निवासी एवं बभ्रु वर्ण, सूक्ष्मनासा, गोल एवं विस्तृत मस्तक वाले होते हैं, एक लाख की संख्या में दिल्ली पहुँचकर उनमें श्रेष्ठ 'अर्जिक' ने उस सिंहासन पद को विभूषित किया ।

आर्जिको नाम वै राजा तेषां तत्र बभूव ह । तस्य पुत्रो देवकर्णो गङ्गोत्रगिरिमूर्द्धनि ॥९०
द्वादशाब्दं तपो घोरं तेपे राज्यविवृद्धये । तदा भगवती गङ्गा तपसा तस्य धीमतः ॥९१
स्वरूपं स्वेच्छया प्राप्य ब्रह्मलोकं जगाम ह । कुबेरश्च तदागत्य दत्त्वा तस्मै महत्पदम् ॥९२
आर्याणां मण्डलीकं च तत्रैवान्तरधीयत । मण्डलीको देवकर्णो बभूव जनपालकः ॥९३
षष्टयब्दं च कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले । तदन्वयेऽष्ट भूपाश्च बभूवुर्देवपूजकाः ॥९४
द्विशताब्दं पदं कृत्वा स्वर्गलोकमुपाययुः । एकादशश्च यो मौनः पन्नगारिरिति श्रुतः ॥९५
चत्वारिंशच्च वर्षाणि राज्यं कृत्वा प्रयत्नतः। स्वर्गलोकं गतो राजा पन्नगैर्मरणं गतः ॥९६
एवं च मौर्यजातीयैः कृतं राज्यं महीतले ॥९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये गुरुण्डमौनराज्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

वैक्रमे राज्यविगते चतुष्षष्टयुत्तरं मुने । द्वाविंशदब्दशतकं भूतनन्दिस्तदा नृपः ॥१

गंगोत्री पर्वत के निवासी उसके पुत्र देवकर्ण ने उस राज्य को विस्तृत करने की इच्छा से बारह वर्ष तक घोर तप किया, जिसके प्रभाव से भगवती गंगा ने अपने स्वरूप की प्राप्तिकर स्वेच्छया ब्रह्मलोक की यात्रा की । पश्चात् कुबेर ने उस राजपुत्र के पास जाकर उसे 'आर्यमण्डलीक' नामक महान् पद प्रदान किया । उसी दिन से राजा देवकर्ण की मण्डलीक नाम से ख्याति हुई । इस भूमण्डल पर उस राजा ने साठ वर्ष तक राज्य किया । उनके वंशज आठ राजाओं ने क्रमशः उस राजपद को दो सौ वर्ष तक अलंकृत कर पश्चात् स्वर्ग की यात्रा की । उसने ग्यारहवें पन्नगारि नामक मौन राजा के प्रयत्न पूर्वक चालीस वर्ष तक राज्य करने के उपरांत पन्नगों द्वारा मृतक होकर स्वर्ग की यात्रा की । इस प्रकार इन मौन जातीयों का इस भूमण्डल पर राज्य करने का वर्णन कर दिया गया ।८५-९७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में गुरुण्ड एवं मौन राज्य का वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२२।

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! बाईस सौ चौंसठ वर्ष विक्रम काल के व्यतीत होने पर भूत नन्दि नामक

कुबेरयक्षकान्मौनान्धनधान्यसमन्वितान् । सार्द्धलक्षान्कलैर्घोरैर्जित्वा तान्युद्धकारिणः ॥२
किल्किलायां स्वयं राज्यं नागवंशैश्चकार ह । आग्नेय्यां दिशि विख्याता पुण्डरीकेण निर्मिता ॥३
पुरी किलकिला नाम तत्र राजा बभूव ह । पुण्डरीकादयो नागास्तस्मिन्राज्यं प्रशासति ॥४
गेहे गेहे जनैस्सर्वैः पूजनीया बभूविरे । स्वाहा स्वधा वषट्कारो देवपूजा महीतले ॥५
त्यक्त्वा देवानुपागम्य संस्थिता मेरुमूर्द्धनि । शक्राज्ञया कुबेरस्तु शूकधान्यं समन्ततः ॥६
यक्षैः षडंशानादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः । मणिस्वर्णादिवस्तूनि मौनराज्येषु यानि वै ॥७
दत्तानि तानि कोशेषु पुनर्देवश्चकार ह । मण्डलीकं पदं तेन सत्कृतं भूतनन्दिना ॥८
शतार्द्धं तु ततो राजा शिशुनन्दिर्बभूव ह । नागपूजां पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य सुरान्भुवि ॥९
चकार राज्यं विंशाब्दं यशोनन्दिस्ततोऽनुजः । भ्रात्रासनं स्वयं प्राप्तो नागपूजापरायणः ॥१०
पञ्चविंशतिवर्षाणि स च राज्यमचीकरत् । ततस्तत्तनयो राजा स बभूव प्रवीरकः ॥११
एकादशाब्दं तद्राज्यं कर्मभूम्यां प्रकीर्तितम् । कदाचित्स च बाह्लीके सेनया सार्द्धमागतः ॥१२
तत्र तैरभवद्युद्धं पैशाचैर्म्लेच्छदारुणैः । मासमात्रान्तरे म्लेच्छा लक्षसंख्या मृतिं गताः ॥१३
तथा षष्टिसहस्राश्च नागभक्ता लयं गताः । बादलो नाम तद्राजा रोमजस्थो महाबलः ॥१४
यशोनन्दिनमाहूय ददौ जालवतीं सुताम् । गृहीत्वा म्लेच्छराजस्य सुतां गेहमुपागतः ॥१५

राजा ने उस समय उन धन-धान्य पूर्ण मौन वंशजों को, जिन्हें कुबेर के यक्ष कहा जाता है, और डेढ़ लाख की संख्या में उपस्थित थे, उन्हें पराजित कर शासन-सूत्र को अपने अधीन किया । उस समय किल्किला में नाग वंश वाले राज्यपद पर प्रतिष्ठित थे जो आग्नेय दिशा में पुण्डरीक द्वारा निर्मित होकर प्रख्यात पुरी थी । पुण्डरीक आदि नाग वहाँ पर राजा हुए । उनके राज्य करते हुए घर-घर में सभी पूजनीय होने लगे थे । स्वाहा, स्वधा, वषट्कार एवं देव की पूजा प्रारम्भ हो गयी थी । देवताओं को छोड़कर लोग मेरुपर्वत के शिखर पर स्थापित होने लगे थे । शक्र की आशा से कुबेर तो चारों तरफ से शूक धान्य यक्षों द्वारा ग्रहणकर षडंश को देवताओं को दे दिये । यौनराज्य में जो मणि एवं स्वर्णादि की वस्तुएँ थीं सबको कोशों में दे दिया । मण्डलीक के पद की सृष्टि कर मूतनन्दि द्वारा उसका सत्कार किया गया । उन्होंने पचासवर्ष तक राज्य किया । इसके बाद शिशुनन्दि नाम के राजा हुए । उन्होंने नागों की पूजा करके देवताओं का तिरस्कार करके बीस वर्ष तक राज्य किया । इसके बाद उनके छोटे भाई नाग की पूजा करने वाले यशोनन्दि ने राज्य किया । उन्होंने पचीसवर्ष तक राज्य किया । इसके बाद प्रवीरक नाम का उनका पुत्र राजा हुआ । वह ग्यारहवर्ष तक इस कर्मभूमि में राज्य किया । एक बार बाह्लीक प्रदेश में सेना समेत आकर उस राजा ने उन पिशाच म्लेच्छों के साथ घोर युद्ध किया, जिससे एक लाख म्लेच्छों का निधन हुआ । और साठ सहस्र नाग भक्तों की भी मृत्यु हुई । उन्हीं दिनों रोम देश के राजा बादल ने जो अत्यन्त पराक्रमी था ।१-१४। यशोनन्दिन् को बुलाकर उन्हें अपनी जालमती नामक पुत्री सौंप दी । अनन्तर म्लेच्छराज की उस पुत्री को लेकर वे अपने घर लौट आये । कुछ समय के उपरान्त दोनों के

गर्भो जातस्ततस्तस्यां बभूव तनयो बली । बाह्लीको नाम विख्यातो नागपूजनतत्परः ।।१६
तदन्वये नृपा जाता बाह्लीकाश्च त्रयोदश । चतुश्शतानि वर्षाणि कृत्वा राज्यं मृतिं गताः ।।१७
अयोमुखे च बाह्लीके राज्यमत्र प्रशासति । तदा पितृगणास्सर्वे कृष्णचैतन्यमाययुः ।।१८
नत्वोचुर्वचनं तत्र भगवञ्छृणु मे वचः । वयं पितृगणा भूपैर्नागवंश्यैर्निराकृताः ।।१९
श्राद्धतर्पणकर्माणि तैर्वयं वर्द्धितास्सदा । पितृवृद्धात्सोमवृद्धिस्ततो देवाश्च वर्द्धनाः ।।२०
देववृद्धाल्लोकवृद्धिस्तस्माद्ब्रह्मा प्रजापतिः । ब्रह्मवृद्धात्परं हर्षं गेहे गेहे जने जने ।।२१
अतोऽस्मान्रक्ष भगवन्प्रजाः पाहि सनातनीः । इति श्रुत्वा वचस्तेषां यज्ञांशो भगवान्हरिः ।।२२
पुष्यमित्रं धर्मपरमार्यवंशदिवर्द्धनम् ।।२३
जातमात्रः स वै बालः षोडशार्द्धवयोऽभवत् । अयोनिर्योनिभूतांस्तानयोमुख पुरस्सरान् ।।२४
जित्वा देशान्निराकृत्य स्वयं राज्यं गृहीतवान् । यक्षा शिवांशतो जातो विक्रमो नाम भूपतिः ।।२५
शकान्गन्धर्वपक्षीयाञ्जित्वा पूज्यो बभूव ह । नागपक्षांस्तथा भूपान्गोलकास्यान्भयङ्करान् ।।२६
पुष्यमित्रस्तदा जित्वा सर्वपूज्योऽभवद्भुवि । सप्तविंशच्छतं वर्षं द्विसप्तत्युत्तरं तथा ।।२७
राज्यं विक्रमतो जातं समाप्तिमगमत्तदा । पुष्यमित्रे राज्यपदं प्राप्ते समभवत्तदा ।।२८
शतवर्षं राज्यपदं तेन धर्मात्मना धृतम् । अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।।२९

संयोग द्वारा एक बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो बाह्लीक नाम से प्रख्यात एवं नाग देवों का उपासक था। उसके वंश में उत्पन्न होकर तेरह बाह्लीक राजाओं ने क्रमशः चार सौ वर्ष तक राज्य करने के अनन्तर अपनी देह का परित्याग किया। अधोमुख नामक बाह्लीक के शासनाधिकार के समय पितरगणों ने कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा— भगवन् ! आप हम लोगों की कुछ प्रार्थना सुनने की कृपा करें— नाग वंशीय राजाओं ने हम लोगों को निकाल दिया है। श्राद्ध और तर्पणरूप कर्मों द्वारा हम लोगों की सदैव वृद्धि होती रही है। क्योंकि पितरों की वृद्धि द्वारा सोमवृद्धि सोमवृद्धि से देवों की वृद्धि, देववृद्धि द्वारा लोक की वृद्धि, और उसके द्वारा प्रजापति ब्रह्मा की वृद्धि होती है एवं ब्रह्मा की वृद्धि से अनेक घरों के प्रत्येक प्राणी सुखी-जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिए भगवन् ! हम सनातनी प्रजाओं की रक्षा कीजिये। इसे सुनकर विष्णुरूप भगवान् यज्ञांशदेव ने आर्यवंश के वृद्ध्यर्थ धर्ममूर्ति पुष्यमित्र के यहाँ पुत्ररूप में जन्मग्रहण किया। उत्पन्न होते ही वह बालक आठ वर्ष के बालक की भाँति दिखाई देने लगा। उस अयानिज बालक ने योनिद्वारा उत्पन्न उन अयोमुख नामक आदि बाह्लीक राजाओं को पराजित करके देश से निकाल दिया और स्वयं उस राज्य का शासनाधिकार अपनाया। जिस प्रकार शिवांश से उत्पन्न होकर राजा विक्रमादित्य ने गन्धर्व पक्ष के समर्थक शकों को पराजितकर दिया था और स्वयं सर्वपूज्य हुए, उसी भाँति उस समय राजा पुष्यमित्र ने भीषण एवं गोल मुख वाले उन नागवंशीय राजाओं को पराजित किया और स्वयं सर्वपूज्य हुए। राजा पुष्यमित्र के राज्यपद प्राप्ति के समय विक्रम काल का सत्ताईस सौ बहत्तर वर्ष व्यतीत हो चुका था।१५-२८। उस धर्ममूर्ति ने सौ वर्ष तक राज्यपद को सुशोभित किया था। उसी राजा ने अपने राजकाल के समय अयोध्या, मथुरा, माया

पुरी द्वारवती तेन राज्ञा च पुनरुद्धृताः । कुरुसूकरपद्मानि क्षेत्राणि विविधानि च ।।३०
नैमिषोत्पलवृन्दानां वनक्षेत्राणि भूतले । नानातीर्थानि तेनैव स्थापितानि समन्ततः ।।३१
तदा कलिः स गन्धर्वो देवतापितृदूषकः । ब्राह्मणं वपुरास्थाय पुष्यमित्रमुपागमत् ।।३२
नत्वोवाच प्रियं वाक्यं शृणु भूप दयापर । आर्यदेशे पितृगणाः पूजार्हाः श्राद्धतर्पणैः ।।३३
अज्ञानमिति तज्ज्ञेयं भुवि यत्पितृपूजनम् । मृता ये तु नरा भूमौ पूर्वकर्मवशानुगाः ।।३४
भवन्ति देहवन्तस्ते चतुराशीतिलक्षधा । छद्मना मयदेवेन पितृपूजा विनिर्मिता ।।३५
वृथा श्रमं वृथा कर्म नृणां च पितृपूजनम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं विहस्याह महीपतिः ।।३६
भवान्मूर्खो महामूढो न जानीष परं फलम् । भुवर्लोके न ये दृष्टाः शून्यभूताश्च भास्वराः ।।३७
ये तु ते वै पितृगणाः पिण्डरूपविमानगाः । सत्पुत्रैश्च विधानेन पिण्डदानं च यत्कृतम् ।।३८
तद्विमानं नभोजातं सर्वानन्दप्रदायकम् । अब्दमात्रं स्थितिस्तेषां पिण्डपायसरूपिणाम् ।।३९
गीताष्टादशकाध्यायैः सप्तशत्याश्चरित्रकैः । पावितं यत्तु वै पिण्डं त्रिशताब्दं च तत्स्थितिः ।।४०
श्राद्धतर्पणहीना ये दृश्यन्ते मानवा भुवि । ते सर्वे नारका ज्ञेयाः कुलमेकोत्तरं शतम् ।।४१
श्राद्धकर्म महान्धर्मः श्राद्धोऽयं सर्वकारणम् । इति श्रुत्वा स गन्धर्वः कलीराजोऽत्र देहिनाम् ।।४२
नत्वोवाच नृपश्रेष्ठं प्रसन्नवदनो हि सः । सदा भव ममाशु त्वं तवाहं नृप किङ्करः ।।४३

(हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारकापुरी नामक तीर्थ स्थानों का पुनरुद्धार किया था। उन्होंने ही इस भूमण्डल पर चारों ओर कुरु, सूकर (वाराह) पद्म नामक विविध क्षेत्र नैमिषारण्य उत्पलारण्य एवं वृन्दावन और अनेक तीर्थों की स्थापना की थी। उस समय देवता तथा पितरों के निंदक कलि ने गन्धर्वसमेत ब्राह्मणवेष धारणकर राजा पुष्यमित्र के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—दयालु राजन्! कुछ मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये—आर्य प्रदेशों में श्राद्ध- तर्पण द्वारा पितरों की पूजा का जो एक महान् क्रम चला आ रहा है, मैं उसे उचित नहीं समझता। क्योंकि इस पृथ्वी पर पितरों की पूजा करना अज्ञानता प्रकट करना है, इसलिए कि इस कर्मक्षेत्र में जिस मनुष्य की परलोक यात्रा होती है, वे वहाँ जाकर चौरासी लाख योनियों की शरीर क्रमशः प्राप्त करते रहते हैं। अतः देवों ने इस पित्तृ-पूजा का क्रमेण पूर्ण प्रचार किया। क्योंकि पितृ-पूजन के निमित्त किये गये मनुष्यों- के श्रम एवं कर्म व्यर्थ हैं।' इसे सुनकर राजा ने हंसकर कहा—आप मूर्ख ही नहीं महामूढ़ हैं, इसलिए उस उत्तम फल की प्राप्ति आप नहीं जान सकते हैं। भूवर्लोक में शून्य-भूत एवं भास्वर रूप जो दिखाई पड़ते हैं, वे पिंडरूप विमान पर सुशोभित पितृगण हैं। सत्पुत्रों द्वारा सविधान दिये गये पिंड दान आकाश में पहुँचकर सभी प्रकार के आनन्दप्रदायक विमानरूप हो जाते हैं। पश्चात् वे विमान जो पायस पिंड द्वारा निर्मित होते हैं पूरे वर्ष तक वहाँ स्थित रहते हैं। गीता के अठारह अध्याय और सप्तशती (दुर्गाजी) के चरित्र पाठ द्वारा पवित्र किये गये पिंडदान विमानरूप में वहाँ तीन सौ वर्ष स्थित रहते हैं। इस पृथ्वी तल पर जो मनुष्य श्राद्धतर्पण कर्म से वञ्चित होते हैं, उनके वंश के एक सौ एक पीढ़ी के लोग नारकीय होते हैं। अतः श्राद्ध कर्म महान् धर्म हैं, क्योंकि वही समस्त का कारण है। इसे सुनकर गन्धर्वसमेत राजा कलि ने प्रसन्न होकर नमस्कार पूर्वक।२९-४२। नृप श्रेष्ठ राजा पुष्पमित्र से कहा—नृप! मैं आप का सेवक हूँ, मेरी इच्छा है कि आप मेरे मित्र हों। इससे आपका कलिमित्र पुष्य-

कलिमित्रः पुष्यमित्रो भवान्भुवि भवेत्सदा । यथा विक्रमराजस्य वैतालस्य च वै सखा ।।४४
सर्वकार्यकरोऽहं वै तथा तव न संशयः । इत्युक्त्वा च नृपं धीरं समादाय स वै कलिः ।।४५
सप्तद्वीपांस्तथा खण्डान्नभोमार्गाननेकशः । स्वपृष्ठस्थाय राज्ञ च दर्शयामास वीर्यवान् ।।४६
आर्यधर्मं कलौ स्थाप्य नष्टभूतं स वै नृपः । त्यक्त्वा प्राणांश्च यज्ञांशे तेजस्तस्य समागमत् ।।४७
आन्ध्रदेशोद्भवो राजा सुगदो नाम वीर्यवान् । विना भूपं च तं देशं दृष्ट्वा राज्यमचीकरत् ।।४८
विंशदब्दं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् । तदन्वये षष्टिनृपा बभूवुर्बहुमार्गिणः ।।४९
पुष्यमित्रगते राज्ये दशोत्तरशतत्रयम् । तस्मिन्काले लयं जग्मुश्चान्ध्रदेशनिवासिनः ।।५०
शतार्द्धाब्दं ततो भूमिर्विना राज्ञा बभूव ह । तदा क्षुद्रा नरा लुब्धा लुण्ठिताश्चौरदारुणैः ।।५१
दारिद्रमागमन्घोरं विना स्वर्णं च भूरभूत् । पुनर्देवाश्च भगवान्प्रार्थितस्तानुवाच ह ।।५२
देशे कौशलके जातः सूर्य्यांशाच्च महीपतिः । राक्षसारिरिति ख्यातो देवमार्गपरायणः ।।५३
ममाज्ञया स वै राजा भविष्यति महीतले । इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्देवलोकानुपागमत् ।।५४
राक्षसारिमयोध्यायां स्थापयामासुरेव तम् । आन्ध्रराष्ट्रे च यद्द्रव्यं राक्षसैश्च समाहृतम् ।।५५
तद्द्रव्यं राक्षसाञ्जित्वा ग्रामे ग्रामे चकार सः । तारधातोरष्टमूल्यं सुवर्णं भुवि तत्कृतम् ।।५६
आरधतोः शतं मूल्यं राजतं तेन वै कृतम् । ताम्रधातोः पञ्चमूल्यमारधातोश्च तत्कृतम् ।।५७

मित्र नाम इस भूमण्डल में सदैव स्थापित रहेगा । जिस प्रकार राजा विक्रमादित्य के मित्र वैताल उनके सभी कार्य सुसम्पन्न करते थे, उसी में मैं आपकी सेवा पूर्वक समस्त कार्यों को पूरा करूँगा, इतना कहकर उस पराक्रमी कलि ने उस धीर गम्भीर राजा को अपनी पीठ पर बैठाकर आकाश के मार्गों द्वारा उन्हें सातों द्वीपों नव खण्डों के दर्शन कराया । राजा पुष्पमित्र ने कलि के समय सभी प्रदेश में नष्ट प्राय उस आर्य- धर्म का पुनः विस्तृत प्रचार किया । पश्चात् शरीर परित्याग करने पर उनका तेज यज्ञांश में विलीन हुआ । उस समय आंध्र देशीय एवं पराक्रम शाली राजा सुगद ने राज्य के न रहने पर उस राज्य को अपने अधीन कर उसका उपभोग किया । इस कर्मभूमि क्षेत्र में बीस वर्ष तक राज्य पद सुशोभित करने के उपरांत उनकी परलोक यात्रा हुई । अनन्तर उनके वंश के साठ राजाओं ने जो अनेक मार्गावलम्बी थे, क्रमशः उस सिंहासन को सुशोभित किये । पुष्यमित्र राज्य के च्युत होने के तीन सौ दश वर्ष व्यतीत होने पर उसी समय आंध्र देश निवासी राजा का भी विनाश हुआ था । पश्चात् पचास वर्ष तक यह पृथिवी विना राजा की ही रही । उस समय चोर डाकुओं ने छोटे-छोटे मनुष्यों को लूटकर अत्यन्त दुःखी बना दिया था, उससे घोर दरिद्र का आगमन हुआ—पृथ्वी सुवर्ण हीन हो गई । उसे देखकर देवों ने पुनः भगवान् से प्रार्थना की । प्रसन्न होकर भगवान् ने उन देवों से कहा—कौशल देश में सूर्यांश द्वारा 'राक्षसारि' नामक राजा है, जो अत्यन्त देवों का अनुयायी है मेरी आज्ञा से वही नदीतल का राजा होगा । इतना कहकर विष्णु ने अन्तर्हित होकर देवलोक की यात्रा की । अनन्तर उस राक्षसारि को अयोध्या के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया । उस राजा ने आंध्रप्रदेश में राक्षसों द्वारा अपहृत किये गये द्रव्यों को पराजित राक्षसों से प्राप्तकर प्रत्येक ग्रामों में मोतियों का आठ सुवर्ण मूल्य निर्धारित किया ।४३-५६। उसी प्रकार पीतल का सौ मुद्रा चाँदी, ताँबें का पाँच पीतल, नागधातु का पाँच ताँबे का मूल्य निश्चित

नागधाताः पञ्चमूल्यं भुवि तेनैव निर्मितम् । ताम्रं पवित्रमधिकं नागो वङ्गस्तथोत्तमः ।।५८
लौहधातोः शतं मूल्यं वङ्गोऽसौ तेन सत्कृतः । शताद्धाब्दं मही भुक्त्वा सूर्यलोकमुपाययौ ।।५९
तदन्वये षष्टिनृपा जाता वेदपरायणाः । पुष्यमित्रगते राज्ये द्वाब्दे सप्तशते गते ।।६०
कौशलान्वयसम्भूता भूपाः स्वर्गमुपाययुः । शताद्धाब्दं ततो भूमिर्मण्डलीकं नृपं विना ।।६१
क्षुद्रभूपांश्च बुभुजे देशे देशे च भार्गवः । ततो बैदरदेशीयो नाम्ना भूपो विशारदः ।।६२
आर्यदेशमुपागम्य लक्षसैन्यसमन्वितः । क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य मण्डलीको बभूव ह ।।६३
नानाकलैश्च कर्माणि विचित्राणि महीतले । ग्रामे ग्रामे नराश्चक्रुर्वर्णसङ्करकारकाः ।।६४
ब्रह्मक्षत्रमयो वर्णो नाममात्रेण दृश्यते । वैश्यप्राया नरा आर्याः शूद्रप्रायाश्च कारिणः ।।६५
तद्राष्ट्रे मनुजाश्चासन्नाममात्रं सुरार्चकाः । षष्टिवर्षं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् ।।६६
ततो नृपा महीं प्राप्ताः षट्सङ्ख्यास्तु तदन्वयाः । पुष्यमित्रगते राष्ट्रे शतषोडशहायनी ।।६७
वैद्रा निधनं जग्मुः कलिकाले भयानके । चतुश्शतानि वर्षाणि क्षुद्ररूपा च भूरभूत् ।।६८
तत्पश्चान्नैषधे राष्ट्रे कालमाली नृपोऽभवत् । क्षुद्रभूपान्वशीकृत्यस्वयं राजा बभूव वै ।।६९
यमाभूयः भुवि त्वष्ट्रा नगरी यमुनातटे । निर्मिता योजनायातु कालकालेति विश्रुता ।।७०
तत्रार्यदेश भूपानां पूज्यो राजा स चाभवत् । देवान्पितॄंस्तिरस्कृत्य प्रेतपूजां जने जने ।।७१

किया। पश्चात् उसी क्रम से नागवंश का भी। और लोहे का सौ वंश मूल्य स्थापित किया। इस भाँति उसने पचास वर्ष तक राज्य पद सुशोभित करनेके उपरांत सूर्यलोक की यात्रा की। अनन्तर उनके कुल के साठ राजाओं ने क्रमशः उस राजपद को सुशोभित करते रहे। पुष्पमित्र के राज्य काल के सात सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर कौशलवंशीय राजाओं ने स्वर्गारोहण किया, जिससे पचास वर्ष तक यह पृथ्वी मण्डलीक राजा से वञ्चित रही। भार्गव ! उस समय छोटे-छोटे राजा पृथ्वी पर राज कर रहे थे। उसी बीच वैदर देश के राजा ने आर्यदेश में पहुँचकर अपने लाख सैनिकों द्वारा उन छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीनकर मण्डलीक पद को अपनाया। उस राजा ने इस भूमण्डल पर अनेक भाँति के कलापूर्ण एवं विचित्र कार्यों के सुसम्पन्न होने के लिए प्रत्येक ग्रामों में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया, जो वर्णसंकर के प्रचारक थे। उस राज काल में ब्राह्मण-क्षत्रियवर्ण नाममात्र का रह गया था। आर्य मनुष्य वैश्य और शूद्र राजगीर हो गये थे। उसके राज्य में मनुष्य नाममात्र के देवपूजक थे। इस प्रकार उसने इस कर्म भूमि प्रदेश में साठ वर्ष तक उस सिंहासन को अपनाया था। पश्चात् उसके वंश के क्रमशः छे राजाओं ने उस पद को अपनाकर राज्य किया। पुष्यमित्र राजा के सोलह सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर उस भीषण कलिकाल के समय दूर राजाओं का समूल विनाश हो गया। पुनः छोटे-छोटे राजाओं ने पृथक्-पृथक् अपना आधिपत्य स्थापित किया। चार सौ वर्ष के उपरांत नैषध राज्य के प्रदेश में कालमाली नामक राजा ने राजसिंहासन को सुशोभित किया। उसने अनेक छोटे राजाओं को अपने अधीन करने के उपरांत उस नगर में अपनी राजधानी स्थापित की, जो यमुना नदी के तट पर त्वष्ट्रा द्वारा एक योजन में विस्तृत एवं 'काल-काला' नाम से प्रख्यात थी।५७-७०। आर्य राजाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित करके उसने देवों तथा पितरों के अपमान पूर्वक प्रत्येक जनों में प्रेत-पूजा का प्रचार किया। इस प्रकार

कालमाली च कृतवान्देशनैषधसंस्थितः । द्वात्रिंशद्वर्षराज्यं तद्बभूव जनपीडनम् ।।७२
तदन्वये षष्टिनृपाः बभूवुः प्रेतपूजकाः । शताब्दांतमभूद्राज्यं तेषां नैषधदेशिनाम् ।।७३
सहस्राब्दं तु तत्पश्चात्क्षुद्रभूपा मही ह्यभूत् । सुरार्चनं वेदमार्गः श्रुतमात्रश्च दृश्यते ।।७४
पुष्यमित्रगते राज्ये चैकत्रिंशच्छते कलौ । द्वात्रिंशदुत्तरे चैव तदा देवाश्च दुःखिताः ।।७५
कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वोचुर्वचनं प्रियम् । भगवन्कलिकालेऽद्य वर्णाश्चित्वारिभूतले[१] ।।७६
भ्रष्टाचाराः प्रेतमयाः शतार्द्धाब्दप्रजीविनः । देवान्पितॄंस्तिरस्कृत्य पिशाचान्पूजयन्ति वै ।।७७
ग्रामे ग्रामे च कुस्थानि पूजितानि नरैर्भुवि । दृश्यन्तेऽस्माभिरद्यैव दुःखिताश्च नरा भृशम् ।।७८
भूतप्रेतपिशाचाश्च डाकिनीशाकिनीगणाः । स्वपूजाभिर्मदान्धाश्च निन्दयन्ति सुरान्पितॄन् ।।७९
अतोऽस्मान्दुर्बलान्विद्धि सबलान्भूतनायकान् । कृपया पाहि नः स्वामिञ्छरणागतवत्सल ।।८०
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो नदीहोपवने स्थितः । नम्रभूतान्सुरान्प्राह मागधे तु महीपतिः ।।८१
पुरञ्जयो ब्रह्मपरस्तस्य पत्नी पुरञ्जनी । मदाज्ञया तयोः पुत्रो भविष्यति महाबलः ।।८२
विश्वस्फूर्जिरिति ख्यातो ब्रह्ममार्गपरो गुणी । इत्युक्तवचने तस्मिन्गर्भं धत्ते पुरञ्जनी ।।८३
दशमासान्तरे जातो विश्वस्फूर्जिर्महाबलः । जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ।।८४
पुष्यमित्रो यथा चासीद्वर्णधर्मप्रवर्तकः । तथायं बालको जातो ब्रह्ममार्गपरो बली ।।८५
करिष्यति परो वर्णान्कलिन्दयदुमद्रकान् । प्रजाश्च ब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ।।८६

उस कालमाली राजा ने प्रजाओं को पीड़ित करते हुए बत्तीस वर्ष तक राज्य किया । तदनन्तर उसके वंशज साठ राजाओं ने जो नैषध देश के निवासी थे, क्रमशः सौ वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक पुनः पूर्व की भाँति छोटे-छोटे राजाओं ने पृथक्-पृथक् शासन सूत्र ग्रहण किया । उस समय देवों-की पूजा, वैदिकधर्म केवल नाममात्र सुनाई पड़ता था । पुष्यमित्र के राज्यकाल के इकतीस सौ वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत बत्तीसवें के अन्त समय में देवों ने दुःख प्रकट करते हुए कृष्णचैतन्य के पास जाकर नमस्कार पूर्वक प्रियवाणी द्वारा उनसे कहा—भगवन् भूमण्डल में इस समय चारों वर्ण भ्रष्ट हो गये हैं, जो प्रेतमय जीवन व्यतीत करते हुए पचास वर्ष तक ही जीवित रहते हैं । वे लोग पृथ्वी में चारों ओर देवों एवं पितरों के अपमानपूर्वक पिशाचों की ही पूजा करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक ग्रामों में मनुष्यों द्वारा वही निन्दित पूजन चल रहा है । उसी लिए वे अत्यन्त दुःखी भी है यह हम लोगों ने भली भाँति देखा है, और भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी एवं शाकिनीगण अपनी पूजा से मदान्ध होकर देवों और पितरों की निन्दा करते हैं । अतः स्वामिन् शरणागत वत्सल ! कृपाकर हमारी रक्षा कीजिये, क्योंकि वे सब सबल और हम लोग सभी निर्बल हैं । इसे सुनकर नदीहा के उपवन में स्थित यज्ञांशदेव ने विनयविनम्र देवों से कहा—मगध देश के राजा पुरंजय और उसकी पत्नी पुरञ्जनी ब्रह्म की उपासना कर रहे हैं, मेरी आज्ञावश उनके संयोग से एक महाबली पुत्र की उत्पत्ति होगी, जो 'विश्व स्फूर्जि' के नाम से प्रख्यात, ब्रह्ममार्गपरायण एवं गुणी होगा । इसके अनन्तर पुरञ्जनी ने गर्भ धारण किया, जिससे दशवें मास में महाबली विश्वस्फूर्जि नामक राजकुमार का जन्म हुआ ।७१-८४। उस राजकुमार के जन्म ग्रहण करने के समय आकाश वाणी हुई—वर्णधर्म के प्रवर्तक राजा पुष्यमित्र की भाँति यह बली बालक भी वर्णधर्म के प्रचार पूर्वक ब्रह्ममार्ग का अनुगामी होगा। यदुवंशियों, तथा भद्रदेश निवासियों में वर्णव्यवस्था

वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्याः स वै पुरम् । इत्याकाशवचः श्रुत्वा स नृपस्तु पुरञ्जयः ॥८७
ददौ दानं क्षुधार्तेभ्योऽतिथिभ्यस्सपरिच्छदः । अष्टौ वर्षसहस्राणि चाष्टवर्षशतानि च ॥८८
कर्मभूम्यां कलौ प्राप्ते व्यतीतानि तदा मुने । विश्वस्फूर्जिर्नृपश्चासीन्महाबुद्धो महाबलः ॥८९
क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य सर्ववर्णान्नरांस्तदा । स्थापयामास वै ब्रह्मे वर्णे ब्रह्मपरायणे ॥९०
क्षत्रविट्च्छूद्रका वर्णाः पिशाचा वर्णसङ्कराः । गुरुण्डाद्यास्तथा म्लेच्छा ब्राह्मणास्ते बभूविरे ॥९१
सन्ध्यातर्पणदेवानां पूजादिविविधाः क्रियाः । चक्रुस्ते वेदविधिना तुल्यभोजनशीलिनः ॥९२
षष्टिवर्षं कृतं राज्यं तेन सम्यक्कृता मुने । तदन्वये नृपाश्चासन्सहस्रा भुवि विश्रुताः ॥९३
अयुताब्दान्तरे जाता ब्रह्ममार्गपरायणाः । तैश्च दत्तानि भागानि यज्ञमध्ये विधानतः ॥९४
दैत्येभ्यश्च सुरेभ्यश्च तुल्यरूपाणि चागमन् । विस्मिताश्च सुरास्सर्वे यज्ञांशं शरणं ययुः ॥९५
तदुक्तं कारणं ज्ञात्वा शक्रपुत्र उवाच तान् । वेदो नारायणः साक्षाद्विवेकी हंसरूपवान् ॥९६
नृणां च गुणभेदेन वर्णभेदं चकार ह । सद्गुणो ब्राह्मणो वर्णः क्षत्रियस्तु रजोगुणः ॥९७
तमोगुणस्तथा वैश्यो गुणसाम्यात्तु शूद्रकः । तृप्तिं यान्ति पितुर्वृन्दा ब्राह्मणैः क्षत्रियैः सुराः ॥९८
वैश्यैश्च यक्षरक्षांसि शूद्रैर्दैत्याश्च दानवाः । एकवर्णे च चत्वारो वर्णाः कायस्थ एव सः ॥९९
भूतप्रेतपिशाचाद्याः कायस्थैस्तर्पितास्सदा । ब्रह्मवर्णे तु वर्णाश्चस्थिताश्चत्वारि साम्प्रतम् ॥१००

की स्थापना करते हुए कलि के दमन करने वाला यह राजपुत्र उन दुष्ट बुद्धिवाली प्रजाओं को वैदिक मार्ग के अनुयायी करने के उपरांत दुष्ट राजाओं के विनाश पूर्वक पद्मवतीपुरी की स्थापना करेगा । इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर राजा पुरञ्जय ने क्षुधा पीडितों अतिथियों को वस्त्रादि समेत दान प्रदान किया । मुने ! उस समय कलि के आगमन का आठ सहस्र आठ सौ वर्ष व्यतीत हो चुका था । उस अवसर पर महाबलवान् एवं महाप्रबुद्ध राजा विश्वस्फूर्जि ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीनकर सभी वर्ण के मनुष्यों को ब्राह्मण वर्णों में सम्मिलित किया—क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर पिशाच, गुरुण्ड और म्लेच्छ सभी ब्राह्मण हो गये । उन तुल्य भोजियों ने वैदिक विधान द्वारा संध्या, तर्पण एवं देवों की विविध भाँति की पूजाओं को सुसम्पन्न करते हुए अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत किया । मुने ! इस प्रकार साठ वर्ष तक राज्य के सुखोपभोग करने के उपरांत उनके कुल सहस्र राजाओं ने क्रमशः जो इस महिमण्डल में अत्यन्त प्रख्यात थे, दशसहस्र वर्ष तक राज्य किया । उन ब्रह्ममार्गावलम्बि राजाओं द्वारा यज्ञानुष्ठान में दिये गये भाग को दैत्य और देवगण समान रूप में ग्रहण करते थे । उसे देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ । पश्चात् उन देवों ने यज्ञांशदेव की शरण जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया । उसका कारण जानकर शक्रपुत्र (यज्ञांशदेव) ने कहा—वेद साक्षात् नारायण भगवान् हैं । उन्होंने विवेकी हंस- रूप धारण करके मनुष्यों में गुणभेद के अनुसार वर्णभेद की व्यवस्था स्थापित की है—सतोगुण वाले ब्राह्मण, रजोगुण वाले क्षत्रिय, तमोगुण वाले वैश्य, और तीनों गुणों के समान वाले शूद्र कहे गये हैं, जिनमें ब्राह्मणों क्षत्रियों द्वारा पितरवृन्द और देवगण, वैश्यों द्वारा यक्ष राक्षस ।८५-९८। और शूद्रों द्वारा दैत्य-दानवगण तृप्त होते हैं । एक वर्ण में चारों वर्णों के धर्म की समानता हो जाने से वह वर्ण कायस्थ कहलाया जो सदैव भूत-प्रेत और पिशाचों को तृप्त करते रहते हैं। इसलिए इस समय ब्रह्म,

ब्रह्मशङ्करवर्णोऽयं तेभ्यः पूर्वं हि दानवाः । अर्द्धतृप्ता भविष्यन्ति तत्पश्चात्स्वर्गवासिनः ।।१०१
अतोऽहं च कलौ घोरे युष्मदर्थे महीतले । सौराष्टनृपतेर्गेहं स्वांशाद्यास्यामि भोः सुराः ।।१०२
इत्युक्त्वा स च यज्ञांशः सोमनाथः कलैकया । नाम्ना बभूव तद्गेहे सौराष्ट्रनगरीस्थितः ।।१०३
जित्वा भूपान्स्वयं राज्यं चकाराब्धितटे मुदा । क्षत्रवर्णमयी भूमिस्तदा जाता कलौ युगे ।।१०४
सोमनाथः स वै यज्ञैः सुरान्सर्दानितर्पयत् । शताब्दं च कृतं राज्यं तेन देवप्रसादतः ।।१०५
तस्य राज्यमयं संवदभवल्लोकविश्रुतम् । तदन्वये सार्द्धशतं भूपाश्चासन्सुरप्रियाः ।।१०६
अयुताब्दान्तरे किञ्चिदधिके च सुखप्रदाः । कर्मभूम्यां कलौ प्राप्ते हायना अयुतत्रयम् ।।१०७
व्यतीतं च ततो दैत्या दुःखिताः कलिमब्रुवन् । पुरास्समाभिः शताब्दं च तपसा वै महेश्वरः ।।१०८
तुष्टीकृतस्तदास्मभ्यं भवान्दत्तो हितेन वै । अर्धभागं वज्रमयमर्धभागं च कोमलम् ।।१०९
तवाङ्गं सुन्दरं देव कलेऽस्मान्रक्ष दुःखितान् । इति श्रुत्वा च स कलिर्दैत्यपक्षविवर्द्धनः ।।११०
स्वांशाज्जन्म कलौ प्राप्य गुर्जरे देशदारुणे । आभीरी सिंहिका नाम सिंहमांसाशना खला ।।१११
तस्या योनौ समागम्य राहुर्नाम स चाभवत् । यथा राहुर्नभोमार्गे दारुणो हि विधुन्तुदः ।।११२
तथा राहुः कलेरंशो भुवि जातः सुरन्तुदः । जातमात्रे सुते तस्मिन्भूमिकम्पो महानभूत् ।।११३
विपरीता ग्रहाः सर्वे जनयन्ति महद्भयम् । तद्भयात्सकला देवास्त्यक्त्वा मूर्तीः समन्ततः ।।११४

वर्ण में चार वर्ण हुए हैं । ये सभी ब्रह्म शंकर वर्ण के हैं । इन सब द्वारा दिये गये यज्ञ-भागों से सबभसे पहले दानव अर्धतृप्त होते हैं, फिर स्वर्गीय देवलोग । अतः देववृन्द ! इस भीषण कलि के समय तुम लोगों के हित के लिए मैं भूमण्डल में सौराष्ट्र राजा के यहाँ अपने अंश से अवतरित होने जा रहा हूँ । इतना कहकर यज्ञांशदेव ने अपनी एक कला द्वारा सौराष्ट्र नगरी के अधीश्वर के यहाँ अवतरित होकर सोमनाथ नाम से प्रख्याति प्राप्त की । उन्होंने सभी राजाओं को पराजित कर समुद्र तट पर अपनी राजधानी स्थापित की । उस समय कलियुग में पृथ्वी पर क्षत्रिय वर्ण की अधिकता दिखाई देने लगी । सोमनाथ ने अनेक यज्ञानुष्ठानों की सुसम्पन्नता द्वारा सदैव देवों को तृप्त किया । इस प्रकार उन्होंने देवों के प्रसाद से सौ वर्ष तक उस राजसिंहासन को सुशोभित किया । और उनके राज्यकाल में ही उनके नाम पर संवत् आरम्भ हुआ । पश्चात् उनके कुल के डेढ़ सौ राजाओं ने देवप्रिय होकर दश सहस्र वर्ष तक क्रमशः राज्याधिकार पूर्वक सुखी जीवन व्यतीत किया । इस कर्मभूमि भारत प्रदेश में कलि के तीस सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर दुःखी होकर दैत्यों ने कलि से कहा—पहले हम लोगों ने सौ वर्ष तक महेश्वर की आराधना की थी, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसके फलस्वरूप हमें आपको दिया, और आप की शरीर में आधा भाग वज्र की भाँति कठोर और आधे भाग को कोमल बनाया । अतः कलि महाराज ! आप हमारी रक्षा करें । इस समय हमलोग अत्यन्त दुःखी हैं । इसे सुनकर दैत्यपक्ष के समर्थक उस कलि ने अपने अंश से उस दारुण गुर्जर (गुजरात) प्रदेश में सिंहिका नामक आभीरी (अहीरिन) के गर्भ से जो सिंहमांस भक्षण करती थी, जन्म ग्रहण किया । उसका नाम 'राहु' हुआ जिस प्रकार आकाशमार्ग में स्थित होकर राहु चन्द्रमा को पीड़ित करने के नाते विधुंतद् कहलाता है ।९९-११२। उसी प्रकार यह राहु भी कलि अंश द्वारा भूतल पर जन्म ग्रहण करने के नाते सुरन्तुद् (देवों को दुःख देने वाला) कहा जाने लगा । उसके जन्म ग्रहण करने के समय महान् भूकम्प हुआ, सभी देवगण प्रतिकूल होकर भयंकर भय की

महेन्द्रं शरणं जग्मुः सुमेरुगिरिमूर्द्धनि । तदर्थे भगवाञ्छक्रस्तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥११५
कन्यामूर्तिमयी देवी सुरान्प्राह शिवङ्करी । ममाङ्गदर्शनाद्देवाः क्षुत्तृड्भ्यां च विना सदा ॥११६
भवध्वं च ततो यूयं मद्विलोकनतत्पराः । इति श्रुत्वा तु ते देवा हर्षिताः सम्बभूविरे ॥११७
आभीरीतनयो राहुः कृत्वा राज्यं शतं समाः । त्यक्त्वा प्राणान्कलौ लीनो बभूव मुनिसत्तम ॥११८
तदन्वये सार्द्धशतमयुताब्दान्तरेभवत् । महामदमतं घोरं चिरकालाद्विनाशितम् ॥११९
तैः पुनश्चोद्धृतं भूमौ सर्वे म्लेच्छा बभूविरे । न वेदाश्च न देवाश्च न वर्णाश्च कलौ युगे ॥१२०
दृश्यन्ते न च मर्यादा कलिकाले तदन्वये । द्विजशेषाः सहस्राश्च पुनरर्बुदमूर्द्धनि ॥१२१
द्वादशाब्दं प्रयत्नेन देवानाराधितुं क्षमाः । अर्बुदाच्च समुद्भूतोराजन्यः खड्गचर्मधृक् ॥१२२
जित्वा म्लेच्छान्दुराधर्षान्नाम्ना चार्वबली ह्यभूत् । पञ्चयोजनमाना स भूमिरात्मादिवृद्धये ॥१२३
निर्मिता तेन शुद्धेन नाम्ना चार्वपुरी स्मृता । शनैः शनैरार्यकुलं पुनस्तत्र ववर्द्ध ह ॥१२४
शतार्द्धाब्दं प्रयत्नेन तेन राज्यं महत्कृतम् । तदन्वये सार्द्धशतं नृपाश्चासंस्तदामुने ॥१२५
अयुताब्दान्तरे वीरा म्लेच्छमित्राश्च सङ्कराः । म्लेच्छकन्योद्वहा घोरा नाममात्रार्य्यमार्गगाः ॥१२६
तदा मलयदेशस्थैर्म्लेच्छैर्लक्षप्रमाणकैः । आर्वुदार्यैः समं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥१२७

सूचना देने लगे। उस समय समस्त देवों ने अपनी मूर्ति का निवास त्यागकर सुमेरु पर्वत के लिए शिखर पर महेन्द्रदेव की शरण प्राप्त की। इसे सुनकर इन्द्र ने भगवती जगदम्बा की आराधना की। तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक कन्यारूप में प्रकट होकर कल्याणकारिणी भगवती ने देवों से कहा—देववृन्द ! मेरे अंग दर्शन के फलस्वरूप तुम्हें क्षुधा एवं पिपासा का नष्ट नहीं होगा, इसी भाँति सदैव यहाँ स्थित रहकर तुम लोग मेरा दर्शन करते रहो। इसे सुनकर देवों ने सहर्ष उसे स्वीकार कर किया। मुनिसत्तम ! वह आभीरी (अहीरिन) का पुत्र राहु सौ वर्ष तक राज्य करके अपने प्राण के परित्याग पूर्वक कलि में विलीन हो गया। पश्चात् उसके वंश में डेढ़ सौ राजाओं ने दश सहस्र वर्ष तक महामद (मुहम्मद) के मृतकों जो घोर एवं चिरकाल में विनष्ट हो गये, अपनाकर राज्य का उपभोग किया। उन्होंने अपने उस मत का पुनः विस्तृत प्रचार आरम्भ किया, जिससे पृथ्वी के सभी लोग म्लेच्छ होने लगे। उस भीषण कलि में उन राजाओं के राजकाल के समय वेद, देव, एवं वर्ण की व्यवस्था का प्रायः लोप हो चला था, और मर्यादा तो एकदम विलीन हो गई थी। उस समय शेष सहस्र ब्राह्मणों ने अर्बुद पर्वत के शिखर पर जाकर सप्रयत्न देवों की आराधना करना आरम्भ किया, जिससे उसी अर्बुद पर्वत से खड्ग एवं चर्म अस्त्रधारी एक राजाओं का समूह उत्पन्न हुआ, जो उन दुर्धर्ष म्लेच्छो पर विजयप्राप्ति पूर्वक बलवान् 'चार्व' के नाम से ख्याति प्राप्त की। उन्होंने अपने वंश वृद्ध्यर्थ पाँच योजन की समतल भूमि पर अपने शुद्ध नाम की एक पुरी का निर्माण कराया। उसी स्थान पर पुनः आर्यकुल की वृद्धि धीरे-धीरे होने लगी। उन्होंने वहाँ रहकर प्रयत्न पूर्वक पचास वर्ष तक राज्य किया। मुने ! उसके अनन्तर उनके कुल के डेढ़ सौ राजाओं ने इस भूमण्डल पर राजपद को दश सहस्र वर्ष तक समलङ्कृत किया। पश्चात् दश सहस्र वर्ष के उपरांत उन वीरों ने म्लेच्छों से मैत्री स्थापितकर म्लेच्छ कन्याओं के साथ विवाह करना आरम्भ किया, जिससे नाममात्र आर्यों की उत्पत्ति हुई और उस समय आर्यमार्ग के अनुयायी नाममात्र के रह गये थे। उसी बीच मलयदेश के निवासी म्लेच्छों ने एक लाख की संख्या में एकत्र होकर आर्बुद आर्यों पर

वर्षमात्रान्तरे जित्वा मालवस्था महाबलाः । मण्डलीकपदातैश्च मुक्तमार्यैः समन्ततः ।।१२८
चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणि जगतीतले । म्लेच्छभूपाश्च शतशो बभूवुः स्वल्पजीविनः ।।१२९
पंचविंशत्सहस्राणि तेषां संख्या च भूभुजाम् । ये तु पुण्या महीपालाः पूर्वजन्मतपोद्भवाः ।।१३०
तेषां लीला च मुनिभिः पुराणेषु प्रकीर्तिता । नानासंवत्कराः सर्वे पैशाचा धर्मदूषकाः ।।१३१
नवत्यब्दसहस्राणि व्यतीतानि कलौ युगे । जाता म्लेच्छमयी भूमिरलक्ष्मीरस्तु जनेजने ।।१३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

ततस्ते सकला दैत्याः कलिना च पुरस्कृताः । कृत्वा च जलयानानि हरिखण्डमुपाययुः ।।१
मनुजा हरिखण्डे च देवतुल्या महाबलाः । अयुध्यंस्तान्महाशस्त्रैरयुताब्दप्रजीविनः ।।२
दशवर्षान्तरे सर्वे मायायुद्धैः पराजिताः । महेन्द्रं शरणं जग्मुर्हरिखण्डनिवासिनः ।।३

चढ़ाई की जिससे एक वर्ष तक रोमाञ्चकारी युद्ध होता रहा। उस भयानक युद्ध में मालवदेश के महाबली म्लेच्छों ने जो राजा के पैदल सैनिक थे, राजा को पराजित कर आर्यों को उनके देश से निकाल दिया। इस प्रकार उन म्लेच्छ भूपों ने क्रमशः इस भूमण्डल पर चालीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया, उन स्वल्पजीवी म्लेच्छ राजाओं की संख्या पच्चीस सहस्र थी। उनमें जो पुण्यात्मा राजा थे, जिन्होंने पूर्व जन्म के तप द्वारा राज्यपद की प्राप्ति की थी, उन्हीं के चरित्रों का वर्णन मुनियों ने पुराणों में किया है। वे अनेक भाँति के संवत्प्रवर्तक पैशाच धर्म (अधर्म) के विनाशक थे। पश्चात् नब्बे सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरांत कलि युग में समस्त भूमि म्लेच्छमयी हो गई जिसमें प्रत्येक प्राणी दरिद्रता से पीड़ित हो रहा था।११३-१३२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहास समुच्चय
वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।२३।

अध्याय २४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उसके पश्चात् सभी दैत्यों ने कलि को आगे कर जलयान द्वारा हरिखण्ड को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उस खण्ड के निवासी मनुष्यों ने जो देवतुल्य, महाबली, एवं दशसहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, अपने महास्त्रों द्वारा उन दैत्यों से घोर युद्ध किया। दशवर्ष के उपरांत हरिखण्ड के निवासियों ने उन मायावी दैत्यों द्वारा युद्ध में पराजित होकर सुरेन्द्र की शरण प्राप्त की।१-३। उस समय

तदा तु भगवाञ्छक्रो विश्वकर्माणमब्रवीत् । भ्रमिश्च नामयन्त्रोऽयं संस्थितः सप्तसिन्धुषु ।।४
त्वया विरचितस्तात तत्प्रभावान्नरा भुवि । अन्यखण्डे न गच्छन्ति स च यन्त्रस्तु मायिना ।।५
मयेन भ्रंशितो भ्रात्रा म्लेच्छैः सार्द्धं समन्ततः । सप्तद्वीपेषु यास्यन्ति मनुजा मम बैरिणः ।।६
अतो नः पाहि मर्यादां भूमध्ये भवता कृताम् । इति श्रुत्वा विश्वकर्मा दिव्ययन्त्रमचीकरत् ।।७
तेन यन्त्रप्रभावेन भ्रमितास्ते बभूविरे । भ्रमियन्त्रान्महावायुर्ज्जातो म्लेच्छविनाशकः ।।८
तद्वायोरभवत्पुत्रो वात्यो वात्यासमुद्भवः । दैत्ययक्षांश्च पैशाचाञ्जित्वा ज्ञानमयो बली ।।९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रिवर्णास्तेन सत्कृताः । बलान्म्लेच्छान्वर्णमयान्कृत्वा वात्यो महाबलः ।।१०
शतार्द्धाब्दं मण्डलीकं पदं भुवि गृहीतवान् । तदन्वये सहस्राश्च नृपाश्चासन्कलौ युगे ।।११
वायुपक्षास्त्रिवर्णाढ्याः षोडशाब्दसहस्रके । वायोर्जातः स्वयं ब्रह्मा वायोर्जातः स वै हरिः ।।१२
वायोर्जातो महादेवः सर्वं वायुमयं जगत् । विना वायुं मृताः सर्वे वायुना भुवि जीविनः ।।१३
इति मत्वा तु ते लोका वायुं च समतर्पयन् । पुनस्तदा कलिर्घोरो दैत्यराजं बलिं प्रभुम् ।।१४
नत्वा निवेदयामास दुःखितोऽभूत्तदा बलिः । वामनान्तिकमागम्य कलिमित्रेण संयुतः ।।१५
नत्वोवाच स वै राजा देवदेवं जनार्दनम् । त्वया कलिः कृतो मह्यं प्रसन्नेन सुरोत्तम ।।१६

देवेन्द्र ने विश्वकर्मा से कहा—तात ! सातों समुद्रों में तुम्हारे बनाये हुए यंत्र स्थापित हैं, जिससे प्रभावित होकर मनुष्य एक खण्ड से दूसरे खण्ड की यात्रा नहीं कर सकता है, किन्तु उस मायावी मय दैत्य ने उस यंत्र को नष्ट कर दिया, जिससे म्लेच्छों के साथ मेरे शत्रु मनुष्यगण भी सातों द्वीपों में यथेच्छ विचरण कर सकेंगे ! इसलिए भूमण्डल की उस मेरी मर्यादा की जो आपके द्वारा निर्धारित हुई है, रक्षा कीजिये । इसे सुनकर विश्वकर्मा ने एक दिव्य यंत्र की रचना की, जिससे प्रभावित होकर वहाँ के सभी यात्री चक्कर काटने लगे । पुनः उस भूमियंत्र द्वारा म्लेच्छों के विनाशार्थ एक महावायु की उत्पत्ति हुई । पश्चात् उस वायु के 'वात्य' नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस बली एवं ज्ञानमय पुत्र ने दैत्य, यक्ष तथा पिशाचों को पराजित कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्य, इन तीनों वर्णों का स्थापनपूर्वक विशेष सम्मान किया । महाबलवान् वात्य ने म्लेच्छों में भी वर्ण-व्यवस्था स्थापित की । इस प्रकार इस भूमण्डल में उन्होंने मण्डलीक पद को सुशोभित करते हुए पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस कलियुग के समय उनके कुल के एक सहस्र राजाओं ने उनके अनन्तर क्रमशः जो वायु पक्ष के समर्थक और तीनों वर्णों के विस्तृत प्रचारक थे, सोलह सहस्र वर्ष तक इस पद को विभूषित किया । क्योंकि वायु द्वारा स्वयं ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और उसी भाँति विष्णु, महादेव की उत्पत्ति पूर्वक समस्त विश्व वायुमय हैं, विशेषकर भूतल में वायुहीन होने पर मृतक और वायुद्वारा जीवित होते हैं । ऐसा जानकर लोक निवासियों ने वायु को प्रसन्न करने के लिए विविध भाँति की चेष्टा की । पश्चात् घोर कलि में दैत्यराज बलि के पास जाकर नमस्कार पूर्वक उनसे समस्त वृत्तान्त का निवेदन किया । उसे सुनकर दुःख प्रकट करते हुए बलि ने कलि मित्र समेत वामन भगवान् के पास जाकर नमस्कार पूर्वक उन देवाधिदेव जनार्दन से कहा—सुरश्रेष्ठ ! आपने प्रसन्नता पूर्वक मेरे लिए कलि का निर्माण किया था ।४-१६। किन्तु कर्मक्षेत्र (भारत) में कलि के

वात्यैर्द्विजैः कर्मभूमेः कलिस्तु स निराकृतः । एकपादो व्यतीतोऽद्य किञ्चिदूनं कलेः प्रभोः ॥१७
मया सम्यक्तु वै भुक्ता भूमिर्देवेन्द्रमायया । सहस्राब्दं कलौ प्राप्ते मया भुक्तं महीतलम् ॥१८
ततः सार्द्धं सहस्राब्दं देवैर्भुक्तं सुरस्थलम् । ततः पंचशतं वर्षं किञ्चिदधिकमेव च ॥१९
मया भुक्ता कर्मभूमिः सर्वलोकस्य कारणात् । ततः सार्द्धं सहस्राब्दं देवैर्भुक्तेयमुत्तमा ॥२०
ततः सार्द्धसहस्राब्दं किञ्चिदूनं मया धृता । सार्द्धत्रिशत्सहस्राब्दं देवैर्दैत्यैस्तथा मही ॥२१
भुक्ता दैत्यैः पुनर्देवैःतथादेवैश्च दानवैः ॥२२
त्वया दत्तो हि मे देव कलिः कलिविनाशन । नाधिकारं कृतं नाथ सत्यं सत्यप्रियक्षम ॥२३
इति श्रुत्वा बलेर्वाक्यं भगवान्वामनो हरिः । स्वांशान्महीतले प्राप्तो दैत्यपक्षविवर्धनः ॥२४
कामशर्मा तदा विप्रो यमुनातटसंस्थितः । हरिं तुष्टाव मनसा द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ॥२५
तदा तु वामनः श्रीमान्वचः प्राह द्विजोत्तमम् । वरं ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ यत्ते मनसि संस्थितम् ॥
इति श्रुत्वा कामशर्मा तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥२६

कामशर्मोवाच

नमो देवाय महते सर्वपूज्याय ते नमः ॥२७
धर्मप्रियाय धर्माय देवदैत्यकराय च । दैवाधीननृणां भर्त्रे कर्मकर्त्रे नमो नमः ॥२८

जाने पर वात्य के अनुयायी ब्राह्मणों ने उसे वहाँ से अपमान पूर्वक निकाल दिया है । प्रभो ! कलि के एक चरण व्यतीत होने में भी अभी कुछ अवशेष समय रह गया है । देवेन्द्र के समान अधिकार पूर्वक मैंने भूमि का भलीभाँति उपभोग कर लिया है । कलि के समय में भी एक सहस्र वर्ष तक मैंने पृथ्वीतल का उपभोग किया है । पश्चात् देवों ने डेढ सहस्र वर्ष तक उस देवभूमि का उपभोग किया । तदनन्तर मैंने सभी लोकों के कारणवश पाँच सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तक इस कर्मभूमि (भारत) का सुखोपभोग किया । अनन्तर देवों ने डेढ़ सहस्र वर्ष तक इस सर्वोत्तम पृथ्वी का उपभोग किया । पश्चात् उससे कुछ कम समय तक मैंने उस पर आधिपत्य स्थापित किया । उसके अनन्तर साढ़े तीन सहस्र वर्ष तक देवों और दैत्यों का भूमण्डल पर आधिपत्य रहा । इस प्रकार दैत्यों के अनन्तर देवों का और देवों के अनन्तर दैत्यों तथा दानवों का आधिपत्य होता रहा । देव ! कलिविनाशक यद्यपि आपने मुझे कलि प्रदान किया, तथापि नाथ, सत्यप्रिय अधिकार कुछ भी न दिया । इसे सुनकर भगवान् वामन विष्णु ने दैत्यपक्ष के वृद्धयर्थ अपने अंश द्वारा इस भूतल पर अवतरित होने का विचार किया । उस समय कामशर्मा नामक ब्राह्मण यमुना तट पर स्थित होकर अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक बारह वर्ष से भगवान् विष्णु की आराधना कर रहा था । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् वामन ने उस ब्राह्मण से कहा—द्विजश्रेष्ठ ! मन इच्छित वर की याचना करो । इसे सुनकर कामशर्मा ने नम्रतापूर्वक स्नेहमयी वाणी द्वारा भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया ।१७-२६

कामशर्मा ने कहा—देवों में महान् एवं सर्वपूज्य आपको नमस्कार है । धर्मविप्र, धर्ममूर्ति, देवों और दैत्यों के जनक, दैवाधीन होने के नाते मनुष्यों के पोषण करने वाले, एवं कामकर्ता आपको बार-बार

**दैवाधीनाश्च ते देवा दैवोल्लाङ्घाश्च दानवाः । तेषां भर्त्ता क्रमाद्धर्ता तस्मै देवाय ते नमः ।।२९
पुत्रो भव हरे स्वामिन्सफलं वाञ्छितं कुरु । इति श्रुत्वा हरिः साक्षाद्वामनो बलिरक्षकः ।।३०
स्वपूर्वार्द्धाद्देवहूत्यां तत्पत्न्यां च समुद्भवः । द्विधा भूत्वा मही जातौ दिव्याङ्गौ दिव्यविग्रहौ ।।३१
भोगसिंहः केलिसिंह देवपो दैत्यपो हरिः । जित्वा वात्योद्भवान्भूपान्कल्पक्षेत्रमुपस्थितः ।।३२
रहः क्रीडावती नाम नगरी मयनिर्मिता । तत्रोष्य बलवन्तौ तौ दधतुश्च कलेर्धुरम् ।।३३
पत्नीयं सर्वधर्माणां सारभूता सनातनी । पतिव्रतायां ये जाता नरा आर्याः सुरप्रियाः ।।३४
दूषितायां नरा जातास्ते सर्वे वर्णसङ्कराः । इति सञ्चिन्त्य भगवान्कृत्वा काममयं वपुः ।।३५
दिने दिने सहस्राणि योजितो बुभुजे हरिः । ताः सर्वा गर्भमाधाय यमौ सुषुविरे मुदा ।।३६
नार्या तया सहोदर्या रेमिरे ते सहोदराः । एवं च बहुधा सृष्टिस्तेषां जाता कलौ युगे ।।३७
पूर्वजातांस्त्रिवर्णाश्च भक्षयित्वा दिनेदिने । कर्मभूम्यां ववृधिरे पक्षिणश्च यथा द्रुमे ।।३८
उभयाब्दसहस्रान्ते तैरन्नाः पूर्वमानवाः । तदा कलेश्च चरणो द्वितीयो भुवि चागमत् ।।३९
साम्प्रतं वर्तते वार्ता किन्नराणां च भूतले । द्विकिष्कुमात्राश्च नराः सार्द्धा दैत्यमयाः स्मृताः ।।४०
यथा खगाः कर्महीनाश्चत्वारिंशाब्दजीविनः । भूमिगाश्च तथा ते वै भेदं तेष्वेषु नैव भोः ।।४१**

नमस्कार है । आपके देवगण दैव के अधीन रहते हैं, और दानवगण उस दैव का उल्लंघन करते हैं, क्रमशः उन सबके भर्ता और हर्तारूप आपको नमस्कार है । स्वामिन् ! हरे ! मेरी बहुत बड़ी इच्छा है कि आप मेरे पुत्र हों । कृपाकर इसकी पूर्ति कीजिये । इसे सुनकर साक्षात् विष्णु ने, जो वामन रूप से बलि की रक्षा करते हैं, अपने पूर्वार्द्धभाग द्वारा देवहूति के यहाँ और पुनः उस ब्राह्मण की पत्नी में अवतरित होने के लिए इस भूतल में दो भागों में विभक्त होकर दिव्यांश और दिव्य शरीर धारण किया । भोगसिंह और केलिसिंह के नाम से उनकी ख्याति हुई, जो देवरक्षक और दैत्यरक्षक थे । उन्होंने वायुकुल के राजाओं पर विजय प्राप्तकर कल्पक्षेत्र में निवास स्थान बनाया ।२७-३२। वहाँ रहः क्रीडावती नामक एक नगरी का निर्माण मयदैत्य ने किया था, उसी में उन दोनों बलवानों ने रहकर उसमें अपनी राजधानी स्थापित की । वहाँ रहकर उन दोनों से कलि की अत्यन्त वृद्धि की । यह सारभूत सनातनी एवं समस्त धर्मों की पत्नी है, किन्तु उस पतिव्रता के साथ जिन देवप्रिय आर्यों ने गमन किया वे सभी दूषित होकर वर्णसंकर धर्म के प्रवर्तक हो गये । ऐसा समझकर भगवान् ने काममय शरीर धारण एक एक दिन में सहस्रों स्त्रियों का उपभोग करना आरम्भ किया, जिससे प्रसन्न होकर वे सभी स्त्रियाँ गर्भ धारणकर सन्तानों को उत्पन्न कीं । उन प्रत्येक स्त्रियों के गर्भ द्वारा पुत्र-पुत्री का एक जुड़वाँ उत्पन्न हुआ, जो सृष्टि करने की अवस्था प्राप्त होने पर पति-पत्नी के रूप में रमणकर कलिसृष्टि की वृद्धि किया । इस प्रकार उस कलियुग में अनेक भाँति की सृष्टि हुई । उन लोगों ने पूर्व के तीनों वर्णों के प्रतिदिन भक्षण करके उनके विनाश पूर्वक इस कर्म-भूमि में वृक्ष पर रहने वाले पक्षी की भाँति अपनी अत्यन्त वृद्धि की । इस समय भूतल पर कलि का दूसरा चरण आरम्भ था । उसी दो सहस्र वर्ष के उपरांत जिन पुत्रों द्वारा पूर्व के मनुष्य विशालकाय हुए थे, उन्हीं पुत्रों से जीवित होकर आज के मनुष्य इस पृथ्वी पर दो मूठे अर्थात् एक बीते के हो रहे हैं, जिनके आचरण दैत्यों की भाँति हैं । इस प्रकार की वार्ता किन्नरों में उस समय हो रही थी । जिस प्रकार कर्महीन होने के नाते पक्षीगण चालीस वर्ष का ही जीवन प्राप्त करते हैं,

दृश्यन्ते चाद्य युष्माभिर्भूतले किन्नरा नराः । द्वितीयचरणान्ते च भविष्यन्त्येवमेव हि ॥४२
न विवाहो न भूपश्च नोद्यमो न हि कर्मकृत् । भविता च तदा तेषां द्वितीयचरणान्तिके ॥४३
सपादलक्षाब्दमितमद्यप्रभृति भो द्विजाः । भोगकेल्यन्वयोद्भूता भविष्यन्ति महीतले ॥४४
अतो मया च सहिता भवन्तो मुनिसत्तमाः । कृष्णचैतन्यमागम्य गमिष्यामस्तदाज्ञया ॥४५

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तु मुनयो विशालापुरनिवासिनः । भो नमस्ते गमिष्यन्ति यज्ञांशं प्रति हर्षिताः ॥४६
नत्वा सर्वे मुनिश्रेष्ठा यज्ञांशं यज्ञरूपिणम् । वचनं च वदिष्यन्ति देह्याज्ञां भगवन्भो ॥४७
इन्द्रलोकं गमिष्यामो नाकमध्यं मनोहरम् । इति श्रुत्वा तु यज्ञांशः सर्वशिष्यसमन्वितः ॥४८
तैः सर्वैः सह स्वर्लोकं गमिष्यति सुरप्रियः । तदा कलिः समं दैत्यैर्भजिष्यति महीतलम् ॥
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छा ते हृषीकोत्तम तद्वद ॥४९

मनुरुवाच

भगवन्विस्तराद्ब्रूहि भोगकेलिचरित्रकम् । कलौ यथा भविष्यन्ति मनुजास्तत्तथा प्रभो ॥५०

व्यास उवाच

भोगसिंहे केलिसिंहे वामनांशसमुद्भवे ॥५१
जित्वा दैत्यान्नरमयान्नरान्वात्योद्भवान्भुवि । वामनांशमुपागम्य हर्षिताः सम्बभूविरे ॥५२

उसी भाँति आजकल इस मर्त्यलोक में और उनमें कोई भेद नहीं है। आज भूतल में तुम लोगों को किन्नरगण भी दिखाई दे रहे हैं। किन्तु कलि के दूसरे चरण की समाप्ति के अवसर पर ऐसा न होकर अत्यन्त प्रतिकूल दिखायी देगा—उस समय न कोई मनुष्य विवाह करेंगें, न राजा होगा, न कोई उद्यम करेगा और न तो कोई कर्म। द्विजवृन्द ! यह सब दूसरे चरण की समाप्ति के समय ही होंगे और आज से सवा लाख वर्ष तक भूतल पर दोनों भोगसिंह तथा केलिसिंह के वंशज राजपद सुशोभित करेंगे। अतः मुनिसत्तम वृन्द ! आप लोग मेरे साथ कृष्णचैतन्य के पास चलकर उके बताये हुए स्थान को चलें।३३-४५

व्यास जी बोले—इसे सुनकर विशालापुरी के निवासी मुनिगण ने सहर्ष यज्ञांश के दर्शनार्थ यात्रा की ।वहाँ पहुँचकर श्रेष्ठ मुनिगणों ने नमस्कार पूर्वक यज्ञरूपी यज्ञांशदेव से कहा—प्रभो ! आपकी आज्ञा हो तो हम सब स्वर्ग के मध्य में सुरम्य उस इन्द्रलोक की यात्रा करें। उसे सुनकर उन सब मुनियों समेत यज्ञांशदेव स्वर्ग की यात्रा करेंगे। पश्चात् इस पृथ्वी पर चारों ओर कलि का साम्राज्य स्थापित होगा। अब उसके उपरान्त तुम हृषीकोत्तम ! अन्य कौन-सी गाथा सुनना चाहते हो।४६-४९

मनु ने कहा—भगवन् ! भोग और केलि के चरित्र का सविस्तार वर्णन करने की कृपा कीजिये और कलि में मनुष्य किस भाँति के होंगे, वह भी बताने की कृपा कीजिये।५०

व्यास जी बोले—वामन के अंश से उत्पन्न भोगसिंह और केलिसिंह ने वात्य के वंशज उन मनुष्यों को, जो दैत्य के आचरण वाले थे, पराजितकर सहर्ष राजपद को सुशोभित किया और उनके अनुयायी

तदा तु दुःखिता देवास्त्यक्त्वा मूर्त्तीः समन्ततः । कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वोचुर्नतकन्धराः ।।५३
भगवंस्त्वत्प्रसादेन चरणं प्रथमं कलेः । भुक्ता तथा मही स्वामिञ्जित्वा दैत्यत्रपूजकान् ।।५४
किं कर्तव्यं च यज्ञांश नमस्ते करुणाकर । इति श्रुत्वा हरिः प्राह तदा शृणुध्वं सुरसत्तमाः ।।५५
अहं स्वर्गं गमिष्यामि भवद्भिः सह हर्षितः । अतो यूयं सुराः सर्वे देववंशान्नरान्सदा ।।५६
उत्थाप्य शीघ्रमागम्य गच्छध्वं च त्रिविष्टपम् । इति सूतेन कथिते मुनीन्प्रति सुमण्डलम् ।।५७
देवा विमानमादाय तत्र यास्यन्ति भो मनः । सूतादींश्च मुनीन्सर्वान्समारुह्य सुरास्तदा ।।५८
यज्ञांशं च गमिष्यन्ति नदीहोपवने तदा । अह्लादश्च तदा योगी गोरखाद्यास्तथैव च ।।५९
शङ्कराद्याश्च रुद्रांशा नृपो भर्तृहरिस्तदा । अन्ये तु योगनिष्ठाश्च गमिष्यन्ति हितप्रदाः ।।६०
तैः सार्द्धं कृष्णचैतन्यो देवलोकं गमिष्यति । तदा तौ वामनांशौ च द्वितीयचरणे कलौ ।।६१
योगनिष्ठां समाधाय कल्पक्षेत्रे वसिष्यतः । तदैव सकला दैत्या हर्षितास्तैर्नृभिर्मुहुः ।।६२
विवरान्वर्द्धयिष्यन्ति पातालाद्यान्समन्ततः । कलेस्तृतीयचरणे सम्प्राप्ते किन्नराश्च ते ।।६३
शनैःशनैः क्षयं भूमौ गमिष्यन्ति समन्ततः । षड्विंशाब्दसहस्रे च तृतीयचरणे गते ।।६४
रुद्राज्ञया भृङ्गऋषिर्भूतपक्षो गमिष्यति । सौरभी नाम तत्पत्नी जनिष्यति महाबलान् ।।६५
कौलकल्पान्नरान्घोरान्सर्वकिन्नरभक्षकान् । षड्विंशाब्दवयस्तेषां भविष्यति तदा कलौ ।।६६
शरणं वामनांशं च गमिष्यन्ति सकिन्नराः । भोगसिंहः केलिसिंहस्तैश्च सार्द्धं महद्रणम् ।।६७

उन वामनांश को अपने स्वामी के रूप में पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । उस समय देवों ने दुःख प्रकट करते हुए सभी मूर्तियों के परित्याग पूर्वक कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक विनय विनम्र होकर उनसे कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से कलि के प्रथम चरण के समय तक हमलोगों ने दैत्यों के अधिनायकों को पराजितकर इस पृथ्वी का सुखोपभोग किया । किन्तु करुणेश यज्ञांश देव ! इस समय हम लोग क्या करें? बताने की कृपा कीजिये । हम सब आपको नमस्कार कर रहे हैं । इसे सुनकर विष्णु ने कहा—सुरोत्तम वृन्द ! मैं कह रहा हूँ सुनो ! मैं आप लोगों के साथ सहर्ष स्वर्ग चलने को प्रस्तुत हूँ, इसलिए तुम देववृन्द देववंशज मनुष्यों को लेकर शीघ्र स्वर्ग चले आवो । मनु ! इस प्रकार मुनियों से सूत जी के कहने पर देव लोग विमान लेकर सूत आदि महर्षियों के पास जाँयेगे, जिससे वे सब भी नदीहा के उपवन में स्थित कृष्णचैतन्य के समीप पहुँचकर उनके दर्शन पूर्वक स्वर्ग की यात्रा कर सकें । उन सबके साथ आह्लाद योगी गोरखनाथ आदि शंकराचार्य आदि रुद्रांश, और भर्तृहरि आदि नृपगण तथा अन्य योगनिष्ठ जनसमेत जो सदैव लोक के हितैषी थे, कृष्णचैतन्य देव के साथ देवलोक की यात्रा करेंगे । पश्चात् कलि के उस दूसरे चरण के समय वामन के अंश से उत्पन्न वे दोनों (भोग और केलिसिंह) योगी की भाँति ध्यानमग्न होकर कल्पक्षेत्र में निवास करेंगे । उस समय हर्षित होकर दैत्यगण मनुष्यों के साथ पाताल की यात्रा के लिए उसके सभी विवरों (मार्गों) को पुनः विस्तृत करेंगे । कलि के तीसरे चरण के समय वे किन्नरगण पृथ्वी में धीरे-धीरे विनष्ट हो जायें । छब्बीस सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरांत।५१-६४। रुद्र की आज्ञा से भृंग ऋषि भूतपक्ष के समर्थन पूर्वक उस कुल में जन्म ग्रहण करेंगे । अनन्तर सौरभी नामक अपनी पत्नी द्वारा महाबली एवं कोल की भाँति घोर मनुष्यों को उत्पन्न करेंगे, जिससे वे समस्त किन्नरों का भक्षण करके विनाश कर देंगे। उस कलि के समय मनुष्यों की आयु छब्बीस वर्ष की होगी। वे किन्नरगण उस समय त्रस्त्र होकर उन वामनांश

करिष्यति दशाब्दं च पुनस्तैश्च पराजितौ । दैत्यैः सार्द्धं च पातालं वामनांशौ गमिष्यतः ।।६८
भृङ्गसृष्टिर्महाघोरा भविष्यति तदा कलौ । मातुः स्वसुः सुतास्ते वै नराश्च पशुरूपिणः ।।६९
भुक्त्वा प्रीत्या च कामान्धा जनिष्यन्ति सुतान्बहून् । कलेस्तृतीयचरणे समाप्ते तास्तु सृष्टयः ।।७०
तिर्य्यग्योनिधरा घोराः क्षयिष्यन्ति कलौ युगे । कलेश्चतुर्थचरणे सम्प्राप्ते तु तदा नराः ।।७१
विंशदब्दवयस्काश्च मरिष्यन्ति च नारकाः । यथा जलमनुष्याश्च यथैव वनजा नराः ।।७२
कन्दमूलफलाहारा भविष्यन्ति कलौ तदा । आलोका ये तु विख्यातास्तामिस्राद्या भयानकाः ।।७३
ते सर्वे पूर्णमेष्यन्ति कर्मभूमिभवैर्नरैः । यथा सत्यस्य प्रथमे चरणे सत्यलोककः ।।७४
द्वितीये च तपोलोके जनलोकस्तृतीयकः । चतुर्थे स्वर्गलोकश्च पूरितः कर्मभूमिजैः ।।७५
त्रेतायुगाद्यचरणे भुवर्लोकं ध्रुवास्पदम् । स्वर्गलोकं यथा तैश्च मनुजैः पूरितं स्मृतम् ।।७६
द्वितीये ऋषिलोकं च तृतीये ग्रहविष्टपम् । चतुर्थे च भुवर्लोकं पूरितं कर्मजैर्नरैः ।।७७
द्वापराद्यपदे पूर्णे भवेद्द्वीपः स पुष्करः । द्वितीये शाल्मलः क्रौञ्चस्तृतीये द्वीपशेषकः ।।७८
जम्बूद्वीपश्चतुर्थे च चरणे मुनिभिः स्मृतः । कलेश्च चरणे चाद्येधश्चोर्ध्वं पूरितं जगत् ।।७९
द्वितीये सप्तपातालस्तृतीये भूतविष्टपम् । पूरितं मनुजैस्तत्र कर्मभूमिसमुद्भवैः ।।८०
तदाद्यनारकास्सर्वे पूर्णमेष्यन्ति तैर्नरैः । इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं मनो त्वया ।।८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४

भोगसिंह और केलिसिंह की शरण में आश्रित होंगे, जिससे उन मनुष्यों के साथ उन दोनों का भीषण युद्ध होगा । किन्तु दश वर्ष के उस युद्ध में वे दोनों पराजित होकर दैत्यों समेत पाताल चले जाँयेगे । उस समय भृंग ऋषि की सृष्टि अत्यन्त घोररूप धारण करेगी—माता, भगिनी एवं पुत्री के साथ पशु के समान वे मनुष्य कामांध होकर सप्रेम रति करके उनके पुत्रों की उत्पत्ति करेंगे । पश्चात् कलि के तीसरे चरण की समाप्ति होने पर वे सभी सृष्टियाँ नष्ट हो जाँयगी, जो उस कलि के समय पक्षीयोनि धारण किये रहेंगी । कलि के चौथे चरण के प्रारम्भ में मनुष्यों की बीस वर्ष की आयु होगी । वे नगरीय मनुष्य, जल मनुष्य और वनज मनुष्यों की भाँति कन्दमूल के आहार करेंगे । उस समय तामिस्रादि नरककुण्डों की पूर्ति वेदि कर्मभूमि के निवासी मनुष्यों द्वारा होगी । जिस प्रकार सत्ययुग के प्रथम चरण में कर्म क्षेत्र (भारत) निवासी मनुष्य सत्यलोक, दूसरे चरण में तपलोक, तीसरे चरण में जनलोक, और चौथे चरण में स्वर्गलोक की पूर्ति करते हैं । त्रेतायुग के पहले चरण में ध्रुवलोक नामक भुवर्लोक तथा स्वर्गलोग की पूर्ति मनुष्यों ने की है । दूसरे चरण में ऋषिलोक, तीसरे में स्वर्ग, और चौथे चरण में भुवर्लोक और द्वापर युग के पहले चरण में पुष्करद्वीप, दूसरे चरण में शाल्मल, तीसरे चरण में क्रौंच, एवं चौथे चरण में जम्बूद्वीप को मुनियों ने पूरा किया है । उसी प्रकार कलि के पहले चरण में समस्त संसार ऊपर एवं नीचे के लोक समेत पूरा हुआ है, दूसरे चरण में सातों लोकसमेत पाताल तथा तीसरे चरण में भूतलोक की पूर्ति कर्मभूमि (भारत) निवासी मनुष्यों ने की है और इन्हीं मनुष्यों द्वारा समस्त नरक कुण्डों की पूर्ति हुई है । मनु ! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मैंने सब कुछ सुना दिया ।६५-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्
व्यास उवाच

चतुर्थचरणे जातैर्मनुजैरेकविंशतिः । अजीर्णभूता नरका यास्यन्ति च यमालयम् ॥१
नमस्ते धर्मराजाय नश्च तृप्तिकराय च । वचनं शृणु सर्वज्ञ नश्च जातमजीर्णकम् ॥२
यथा भजाम प्रकृतिं तथा कुरु सुरोत्तम । इति श्रुत्वा धर्मराजश्चित्रगुप्तेन संयुतः ॥३
ब्रह्माणं च गमिष्यन्ति सन्ध्यायां च कलौ युगे । चतुरश्च यमान्दृष्ट्वा परमेष्ठी पितामहः ॥४
तदीरितं स्वयं ज्ञात्वा क्षीराब्धिं प्रति यास्यति । पूजयित्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥५
साङ्ख्यशास्त्रनयैः स्तोत्रैः संस्तोष्यति परम् प्रभुम् ॥६

जय जय जय निर्गुण गुणधारिन्नगजगजीवतत्त्वशुभकारिन् ।
सारभूतसद्गुणमय तत्त्वैर्देवान्रचयति पाति गुणसत्त्वैः ॥
तस्मै नमो नमो गुणराशे देववृन्दहृदि कृष्णविकाशे ॥७
रजोभूततत्त्वेभ्य उताशु विरचति भुवि च नरान्स्वयमाशु ।
पाति हन्ति यो देव उदारस्तस्य शिरसि संस्थितजगभारः ॥

अध्याय २५
कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

व्यास जी बोले—कलि के चौथे चरण के आरम्भ होने पर मनुष्यों द्वारा अजीर्ण होने पर इक्कीस प्रधान नरकगण यमराज के यहाँ जाकर नमस्कार पूर्वक उनकी प्रार्थना करगें—धर्मराज को नमस्कार है, जिन्होंने मुझे अत्यन्त तृप्ति दी है, किन्तु सर्वज्ञ ! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिये—सुरोत्तम ! मुझे अब अजीर्ण का रोग हो गया है । जिस प्रकार स्वस्थ हो सकूँ, वह उपाय बताने की कृपा कीजिये इसे सुनकर धर्मराज चित्रगुप्त को साथ लेकर उस कलियुग के संध्याकाल में ब्रह्मा के पास आँयेगे । परमश्रेष्ठी, एवं पितामह ब्रह्मा ने चारों गणों समेत यमराज को देखकर उनके अभिप्राय जानने के उपरांत क्षीरसागर के निवासी विष्णु के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर वे सांख्यशास्त्र के स्तोत्रों द्वारा वे परब्रह्म की जो जगत् के स्वामी एवं देवों के अधिदेव हैं, आराधना करेंगे । निर्गुण एवं सगुणरूप धारण करने वाले ब्रह्म की बार-बार जय हो, जो इस चर अचरमय जगत् के जीव-तत्व का शुभ निर्माता है । जो सारभूत सतोगुण के तत्वों द्वारा देवों को उत्पन्नकर सतोगुण द्वारा उनकी रक्षा करता है, उस गुण राशि एवं देवों के हृदय में कृष्ण-रूप के विकास करने वाले को बार-बार नमस्कार है । रजोगुण तत्त्व से जगती तल के मनुष्यों की शीघ्र सृष्टिकर जो उसका पालन एवं सहार स्वयं करता है, वह अत्यन्त उदार देव हैं, क्योंकि उसी के शिर पर जगत् का समस्त भार निहित है । अतः दैत्यों के विनाश करने वाले नाथ !

पाहि नाथ नो दैत्यविनाशिन्कालजनितलीलागुणभासिन् ॥८

तेषामिति वचनं प्रभुः श्रुत्वा ह्यवनिमिदाशु । यथा जनिष्यति स प्रभुस्तच्छृणु वै मन आशु ॥९

नम्रीभूतान्सुरान्विष्णुर्नमोवाक्येन तान्प्रति । वदिष्यत वचो रम्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥१०

भोः सुराः सम्भलग्रामे कश्यपोऽयं जनिष्यति । नाम्ना विष्णुयशाः ख्यातो विष्णुकीर्तिस्तु तत्प्रिया ॥११

कृष्णलीलामयं ग्रन्थं नरांस्ताञ्छ्रावयिष्यति । तदा ते नन्दिनो भूत्वा चैकीभूय समन्ततः ॥१२

तं द्विजं विष्णुयशसं गृहीत्वा निगडैर्दृढैः । बद्ध्वा सर्वे सपत्नीकं कारागारे दृढायसे ॥१३

करिष्यन्ति महाधूर्ता नारका इव दारुणाः । विष्णुकीर्त्यां स भगवान्पूर्णो नारायणो हरिः ॥१४

जनिष्यति महाविष्णुः सर्वलोकशिवङ्करः । निशीथे तमसोद्भूते मार्गकृष्णाष्टमीदिने ॥१५

ब्रह्माण्डं मङ्गलं कुर्वन्सुराः प्रादुर्भविष्यति । ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव गणेशो वासवो गुरुः ॥१६

वह्निः पितृपतिः पक्षो वरुणः सविभीषणः । चित्रो वायुर्ध्रुवो विश्वे रविः सोमः कुजो बुधः ॥१७

गुरुः शुक्रः शनिः राहुः केतुस्तत्र गमिष्यति । पद्यैकैकेन ते देवाः स्तोष्यन्ति परमेश्वरम् ॥१८

महत्तमा मूर्तिमयी तवाजा तदास्य पूर्वाज्जनितोऽहमादौ ।
मया ततं विश्वमिदं सदैव यतो नमस्तत्पुरुषोत्तमाय ॥१९
अजस्य याम्याज्जनितोऽहमादौ विष्णुर्महाकल्पकरोऽधिकारी ।
स्वकीयनाम्ना तु मया ततं तद्विश्वं सदैवं च नमो नमस्ते ॥२०

हमारी रक्षा कीजिये । क्योंकि आप कलि के लीला गुणों से प्रकट होते रहते हैं । मन ! उन देवों की ऐसी बातें सुनकर समर्थवान् प्रभु भूतल पर जिस प्रकार शीघ्र अवतरित होंगे, मैं कह रहा हूँ सुनो ! उस समय विनय विनम्र देवों को देखकर विष्णु भगवान् नमः शब्द के उच्चारण पूर्वक देवों से कहेंगे—दैववृन्द ! संभल ग्राम में कश्यप जी जन्म ग्रहण करेंगे । उस समय उनकी विष्णुयशा नाम से प्रख्याति होगी और विष्णु कीर्ति उनकी पत्नी का नाम होगा । वे जिन मनुष्यों को कृष्ण लीलाप्रधान ग्रंथ को सुनायेंगे उस समय वहाँ की जनता एकत्र होकर नन्दी होने के नाते उस ब्राह्मण को पकड़कर लोहे की दृढ़ शृंखला से बाँध देगी और पत्नी समेत उन्हें जेल में बन्द कर देगी उससे उन महाधूर्तों को, जो नारकीयों की भाँति अत्यन्त भीषण रूप थे, अत्यन्त प्रसन्नता होगी । वहाँ उस जेल में उस ब्राह्मण पत्नी विष्णुकीर्ति के गर्भ से पूर्ण परब्रह्म अवतरित होंगे जिन्हें नारायण हरि, महाविष्णु, एवं समस्त लोकों के कल्याणार्थ कहा जाता है । मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के उस अँधेरी आधी रात के समय देवों समेत समस्त ब्रह्माण्ड के मंगलार्थ उनके अवतरित होने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, इन्द्र वृहस्पति ।१-१६। अग्नि, अर्यमा, यक्ष, विभीषण समेत वरुण, चित्र, वायु, ध्रुव, विश्वेदेव, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु देवगण वहाँ पहुँचकर एक-एक पद्य द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति करेंगे—आपकी महत्तमा मूर्ति से जिसे अज कहा गया है, इस पूर्वमुख द्वारा सर्वप्रथम मेरी उत्पत्ति हुई है । जिसके द्वारा मैंने देवसमेत इस समस्त विश्व का विस्तृत प्रसार किया है, उस पुरुषोत्तम को मैं नमस्कार करता हूँ । अर्यमा विष्णु के उस दक्षिण मुख द्वारा, जो महत्कल्प कर्ता एवं अधिकारी है, सर्वप्रथम मेरा जन्म हुआ है, मैंने अपने नाम द्वारा इस देवसमेत विश्व का अत्यधिक विस्तार किया है अतः मैं उस देव को नमस्कार करता हूँ ।

अव्यक्तपाश्चात्यमुखात्सुजन्मा शिवोऽहमादौ सुरतत्त्वकारी ।
मया महाकल्पकरस्तृतीयात्वदाज्ञया देव नमो नमस्ते ।।२१
प्रधानवक्त्रोत्तरतोऽहमादौ जातो गणेशः किल कल्पकर्ता ।
मया ततं विश्वमिदं सदैव तस्मै नमः कारुणिकोत्तमाय ।।२२
आजर्द्धवक्त्राज्जनितोऽहमादौ मरुन्महाकल्पकरो महेन्द्रः ।
मया ततं विश्वमिदं स्वकल्पे यदाज्ञया देव नमो नमस्ते ।।२३
प्रधानभालाक्षिसमुद्भवोऽहं वह्निर्महाकल्पकरो गुहाख्यः ।
विनिर्मितं विश्वमिदं मया तद्यदाज्ञया नाथ नमो नमस्ते ।।२४
अजामुखात्पूर्वगताच्च जातश्चादौ महाकल्पकरोऽहमग्निः ।
ब्रह्माण्डमेतच्च मया ततं वै ब्रह्माण्डकल्पाय नमो नमस्ते ।।२५
अजाभुजाद्दक्षिणतोऽहमादौ जातो महाकल्पककरः सधर्मः ।
मया सदेवैरचितं समग्रं लिङ्गाख्यकल्पाय नमो नमस्ते ।।२६
अजाभुजात्पश्चिमतोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः स यज्ञः ।
मया ततं विश्वमिदं समग्रं मत्स्याख्यकल्पाय नमो नमस्ते ।।२७
प्रधानबाहूत्तरतोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः प्रचेताः ।
मया ततं नाथ तवाज्ञयेदं कर्माख्यकल्पाय नमो नमस्ते ।।२८

अव्यक्त के पश्चिम मुख द्वारा मुझ शिव का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ है, मुझे सुरतत्व का कर्ता, एवं अधिकारी बनाया गया है, इसीलिए मैंने आपकी आज्ञा से तीसरे महत्वकल्प का निर्माण किया है । अतः देव ! आपको नमस्कार है । आपके प्रधान मुख द्वारा, जो उत्तर की ओर स्थित है, मुझ कल्पकर्ता गणेश का सर्वप्रथम अविर्भाव हुआ है । दैव ! मैंने देवों समेत उस समय विश्व का विस्तृत प्रसार किया है, अतः आप करुणामूर्ति को नमस्कार है । अज के आधे मुख द्वारा सर्व प्रथम मेरा जन्म हुआ, मैंने मरुत्महत्कल्प की रचना की जिससे महेन्द्र नाम से मेरी ख्याति हुई । देव ! मैंने भी उस अपने कल्प के समय देवोंसमेत विश्व का निर्माण किया है । नाथ ! आपको नमस्कार है । अग्निरूप आप के भाल में स्थित उस प्रधान नेत्र द्वारा सर्वप्रथम मेरा जन्म हुआ और गुह देव के नाम से मेरी ख्याति हुई । नाथ ! आपकी आज्ञा से मैंने महाकल्प के निर्माण पूर्वक इस विश्व का विस्तृत निर्माण किया है, आपको नमस्कार है । उस अजन्मा देव की पूर्व भुजा द्वारा सर्वप्रथम मुझ अग्नि की उत्पत्ति हुई है, मैंने अपने समय में महान् कल्प की रचना की है, और इस ब्रह्माण्ड का प्रचुर विस्तार भी । अतः ब्रह्माण्ड कल्परूप आपको नमस्कार है । अजन्मा के दक्षिण बाहु द्वारा सर्वप्रथम धर्म समेत मेरी उत्पत्ति हुई, मैंने देवों समेत इस लिंगकल्प की रचना की है, अतः लिंग कल्परूप, आपको नमस्कार है । उस अजदेव की पश्चिम भुजा द्वारा सर्वप्रथम मुझ यज्ञ की उत्पत्ति हुई, मैंने मत्स्यकल्प की रचनापूर्वक इस विश्व की रचना की है । अतः मत्स्यकल्प रूप आपको नमस्कार है । प्रधान बाहु द्वारा जो उत्तर की ओर स्थित है सर्वप्रथम मुझ अचेता की उत्पत्ति हुई है नाथ ! आपकी आज्ञा से मैंने कर्म नामक महान्कल्प की रचना पूर्वक इस विश्व

ब्रह्माण्डतमसो जातस्त्वद्दासोऽहं विभीषणः । मया ततं त्रिलोकं च नमस्ते मनुरूपिणे ॥२९
ब्रह्माण्डसद्गुणाज्जातश्चित्तोऽहं मनुकारकः । मया ततं च त्रैलोक्यं स्वायम्भुव नमोऽस्तुते ॥३०
ब्रह्माण्डरजसो जातो वायुर्मन्वन्तरं ततम् । मया स्वारोचिषं स्वामिन्नमस्ते मनुरूपिणे ॥३१
ब्रह्माण्डमनसो जातो ध्रुवोऽहं मनुकारकः । मयोत्तमं च रचितं नमस्तेऽस्तु तवाज्ञया ॥३२
ब्रह्माण्डश्रवणाज्जातो विश्वकर्माहमीश्वरः । मया ततं रैवतं च नमो देव तवाज्ञया ॥३३
ब्रह्माण्डदेहतो जातस्सूर्योऽहं चाक्षुषप्रदः । तवाज्ञया ततं विश्वं मनुरूपाय ते नमः ॥३४
ब्रह्माण्डनेत्रतो जातः सोमोऽहं तु मया ततम् । वैवस्वतान्तरं रम्यं नमस्ते मनुरूपिणे ॥३५
ब्रह्माण्डरसनाज्जातो मोहोऽहं मनुकारकः । नमस्ते मनुरूपाय मया सावर्णिकं ततम् ॥३६
ब्रह्माण्डघ्राणतो जातो बुधोऽहं नाथ किङ्करः । निर्मितं ब्रह्मसावर्णं मया तात नमो नमः ॥३७
ब्रह्माण्डवक्त्रतो जातो जीवोऽहं मनुकारकः । मया वै दक्षसावर्णं ततं तस्मै नमो नमः ॥३८
ब्राह्माण्डकरतो जातः शुक्रोहं तव किङ्करः । निर्मितं रुद्रसावर्णं मया तुभ्यं नमो नमः ॥३९
ब्रह्माण्डपदतो जातोमन्दोऽहं नाथ तेऽनुगः । ततं वै धर्मसावर्णं प्रभातेस्मै नमो नमः ॥४०
ब्रह्माण्डलिङ्गतो जातो राहुश्चाहं तव प्रियः । मया भौमं कृतं नाथ नमस्ते मनुरूपिणे ॥४१

का प्रसार किया है, अतः कर्मकल्प नामक आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के तम द्वारा आपके दास मुझ विभीषण का जन्म हुआ है, मैंने तीनों लोकों का अत्यन्त प्रसार किया है, अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के सतोगुण से मुझ चित्त की उत्पत्ति हुई। मैंने मनु का निर्माण किया है और तीनों लोकों का प्रसार भी। अतः स्वायम्भुवरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के रजोगुण द्वारा मुझ वायु की सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई। मैंने आपकी आज्ञा से मन्वन्तर का प्रसार किया है। अतः स्वामिन्! स्वरोचिष नामक मैं आप मनुरूप को नमस्कार करता हूँ। ब्रह्माण्ड के मानसिक कर्म द्वारा ध्रुव नामक मेरी उत्पत्ति हुई। मैंने आपकी आज्ञा द्वारा मनु निर्माण पूर्वक उस उत्तम की रचना की है। अतः आपको नमस्कार है।१७-३२। ब्रह्माण्ड के श्रवण द्वारा मुझ ईश्वर विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई है। देव! आपकी आज्ञा द्वारा मैंने रैवत की रचना की है। अतः आपको नमस्कार करता हूँ। ब्रह्माण्ड के देह से मुझ सूर्य की उत्पत्ति हुई है। मैंने चाक्षुप् तेज प्रदान पूर्वक इस विश्व का विस्तृत प्रसार किया है। अतः मनुरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के नेत्र से मुझ सोम की उत्पत्ति हुई है। मैंने विश्वनिर्माणपूर्वक वैवस्वत की रचना की है, अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के रसना इन्द्रिय द्वारा मुझ मोह की उत्पत्ति हुई देव! मैंने सावर्णि मनु का विस्तृत प्रसार किया है, अतः मनुरूप आपको नमस्कार है। नाथ! ब्रह्माण्ड के घ्राण (नाक) इन्द्रिय द्वारा मुझ बुध की उत्पत्ति हुई है। तात! मैंने ब्रह्म सावर्ण्य का प्रचुर प्रसार किया है। अतः आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के मुख द्वारा मुझ जीव की उत्पत्ति हुई है। मैंने इस सावर्ण मनु के निर्माणपूर्वक अत्यन्त प्रसार किया है। अतः आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के कर द्वारा आपके दास शुक्र की उत्पत्ति हुई है। मैंने रुद्र सावर्ण की रचना की है अतः आपको नमस्कार करता हूँ। ब्रह्माण्ड के चरण से उत्पन्न होने के नाते मेरी मन्द (शनि) नाम से ख्याति हुई। नाथ मैंने गर्भ सावर्ण की प्रचुर ख्याति एवं विस्तार किया है। अतः प्रभारूप आपको नमस्कार है। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के लिंगेन्द्रिय द्वारा आपके प्रिय राहु की उत्पत्ति हुई है। नाथ! मैंने भौम का निर्माण किया है

ब्रह्माण्डगुह्यतो जातः केतुश्चाहं तवानुगः । भौतं मन्वतरं सृष्टं तस्मै देवाय ते नमः ।।४२

व्यास उवाच

इति तेषां स्तवान्स्वामी श्रुत्वा देवान्वदिष्यति । वरं ब्रूहीति वचनं ततं प्रति मनुः क्रमात् ।।४३
इति श्रुत्वा तु ते देवा बालरूपं हरिं स्वयम् । नमस्कृत्य वदिष्यन्ति वाञ्छितं लोकहेतवे ।।४४
भवान्ब्रूहि लोकानां कल्पे कल्पे तमुद्भवम् । तथा मन्वन्तरे चैव श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।।४५

कल्क्युवाच

अष्टादश महाकल्पाः प्रकृतेश्च तनौ स्थिताः । आद्यो ब्रह्ममहाकल्पस्तत्र ब्रह्मा परः पुमान् ।।४६
तत्पूर्वार्द्धात्समुद्भूतास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः । परार्द्धाद्भगवान्ब्रह्मा योगिध्येयो निरञ्जनः ।।४७
तस्मिन्कल्पे तु या लीला ब्रह्मपौराणिकैः स्मृता । शतकोटिप्रविस्तारो ब्रह्मपौराणिकस्य वै ।।४८
पुराणपुरुषस्यान्ते महाकल्पः स्मृतो बुधैः । ब्रह्माण्डप्रलये कल्पो युगदैवसहस्रकः ।।४९
कल्पाश्चाष्टादशख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु । कूर्मकल्पो मत्स्य कल्पः श्वेतवाराहकल्पकः ।।५०
नृसिंहकल्पश्च तथा तथा वामनकल्पकः । स्कन्दकल्पो रामकल्पः कल्पो भागवतस्तथा ।।५१
तथा मार्कण्डकल्पश्च तथा भविष्यकल्पकः । लिङ्गकल्पस्तथा ज्ञेयस्तथा ब्रह्माण्डकल्पकः ।।५२
अग्निकल्पो वायुकल्पः पद्मकल्पस्तथैव च । शिवकल्पो विष्णुकल्पो ब्रह्मकल्पस्तथा क्रमात् ।।५३
द्विसहस्रमितावर्तैरेषां कल्पो महान्स्मृतः । सहस्रयुगपर्यन्तं ब्रह्माण्डायुः प्रकीर्तितम् ।।५४
यन्नाम्ना च स्मृतः कल्पस्तस्माज्जातो विराडयम् । चतुर्दशमनूनां च मध्ये कल्पः स कालवान् ।।५५

अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । तथा ब्रह्माण्ड के गुह्येन्द्रिय द्वारा केतु की उत्पत्ति हुई है, जो आपका अनुगामी है । मैंने भूत मन्वन्तर की सर्जना की है, इसलिए उस देवरूप आपको नमस्कार है ।३३-४२

व्यास जी बोले—इस प्रकार उनकी स्तुतियों को सुनकर स्वामी विष्णुदेव उन प्रत्येक देवों से वर याचना के लिए कहेंगे । इसे सुनकर वे देवगण भगवान् के उस बालरूप के नमस्कार पूर्वक उनसे लोक के मंगलार्थ अपनी-अपनी अभिलाषा प्रकट करेंगें । आप प्रत्येक कल्प के प्राणियों की कथा और मन्वन्तरों की कथा सुनाने की कृपा करें ।४३-४५

कल्कि ने कहा—प्रकृति माया के शरीर में अठ्ठारह महाकल्प सन्निहित हैं जिनमें सर्व प्रथम ब्रह्म महाकल्प नामक कल्प का सर्जन होता है । उसके अधिनायक श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्म है । उनके पूर्वार्द्ध भाग से तैंतीस देवों एवं परार्द्ध भाग से उस भगवान् ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ है, जिस निरंजन का ध्यान योगीगण सदैव किया करते हैं । इस कल्प में जो लीला होती है वह ब्रह्मपुराण में विस्तारपूर्वक स्पष्ट है, वह पुराण सैकड़ों कोटि का विस्तृत है । पुराण पुरूष के मध्य महाकल्प का स्थान विद्वानों ने बताया है । ब्रह्माण्ड प्रलय के समय दिव्य चार सहस्र वर्ष तक कल्प उसमें अन्तर्हित रहता है । वे कल्प अठ्ठारह भाँति के हैं उनके नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कूर्मकल्प, मत्स्यकल्प, श्वेतवाराहकल्प, नृसिहकल्प, वामन- कल्प, स्कन्दकल्प, रमकल्प, भगवतकल्प, मार्कण्डकल्प, भविष्यकल्प, लिंगकल्प, ब्रह्माण्डकल्प, अग्नि कल्प, वायुकल्प, पद्मकल्प, शिवकल्प, विष्णुकल्प, तथा ब्रह्मकल्प का क्रमशः निर्माण हुआ । दो सहस्र आवर्त होने के नाते ये सभी महाकल्प कहे गये हैं । उसी प्रकार एक सहस्र युग तक ब्रह्माण्ड की आयु बतायी गई है। जिस नाम द्वारा कल्प की ख्याति हुई है, उसी से इस विराट् की उत्पत्ति हुई है। चौदह

स्वायम्भुवान्तरे यद्वै जातं जातं चतुर्युगम् । तस्मिंश्चतुर्युगे सर्वे नृणामायुर्हरे शृणु ।।५६
लक्षाब्दं वै सत्ययुगे त्रेतायामयुताब्दकम् । द्वापरे च सहस्राब्दं कलौ चायुश्शताब्दकम् ।।५७
स्वारोचिषेऽन्तरे देव जातं जातं चतुर्युगम् । शृणु तत्र नृणामायुस्सत्येऽशीतिसहस्रकम् ।।५८
त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे तु तदर्द्धकम् । कलौ द्विक सहस्राब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।।५९
औत्तमस्यान्तरे चैव सत्ये षष्टिसहस्रकम् । त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे तु तदर्द्धकम् ।।६०
कलौ सार्द्धसहस्राब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् । तामसान्तरके चैव षट्त्रिंशाब्दसहस्रकम् ।।६१
नृणामायुः सत्ययुगे त्रेतायां च तदर्द्धकम् । द्वापरे च तदर्द्धाब्दं कलौ वर्षसहस्रकम् ।।६२
रैवतान्तरके चैव सत्ये त्रिंशत्सहस्रकम् । त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे च तदर्द्धकम् ।।६३
कलौ चाष्टशताब्दायुर्नृणां वेदैः प्रकीर्तितम् । चाक्षुषान्तरके चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् ।।६४
त्रेतायां त्रिसहस्राब्दं द्वापरे द्विसहस्रकम् । कलौ सहस्रवर्षान्तं नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।।६५
वैवस्वतेन्तरे चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् । त्रेतायां त्रिशताब्दं च द्वापरे द्विशताब्दकम् ।।६६
कलौ शताब्दकं प्रोक्तमायुर्वेदैस्तथा नृणाम् । सावर्णिकेऽन्तरे देव नृणां विंशत्सहस्रकम् ।।६७
आयुः सत्ये तदर्द्धं तु त्रेतायां च प्रकीर्तितम् । द्वापरे च तदर्द्धाब्दं तदर्द्धाब्दं तु वै कलौ ।।६८
ब्रह्मसावर्णिके चैव सत्ये दशसहस्रकम् । त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे तु तदर्द्धकम् ।।६९
कलौ चैव तदर्द्धाब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् । दक्षसावर्णिके चैव तथाब्दायुश्चतुर्युगे ।।७०

मनुष्यों के मध्य में कालवान् कल्प ही बताया गया है । जिस स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर में चारों युग क्रमशः उत्पन्न एवं व्यतीत होते रहते हैं, उन युगों में मनुष्यों की आयु बता रहा हूँ सुनो ! सत्ययुग में एक लाख, त्रेतायुग में दश सहस्र, द्वापरयुग में एक सहस्र, और कलियुग में सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । देव ! स्वारोचिष मन्वन्तर में चारों युग क्रमशः उत्पन्न एवं व्यतीत होते हैं, उनके समय मनुष्यों की आयु बता रहा हूँ, सुनो ! सत्ययुग में अस्सी सहस्र, त्रेता में चालीस, द्वापर में बीस, और कलि में दो सहस्र वर्ष मनुष्यों की आयु कही गयी है । उत्तम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में साठ सहस्र, त्रेता में तीस सहस्र, द्वापर में पन्द्रह सहस्र और कलि में डेढ़ सहस्र वर्ष मनुष्यों की आयु बतायी गयी है । तामस मन्वन्तर में सत्ययुग में छत्तीस सहस्र, त्रेता में अट्ठारह सहस्र, द्वापर में नवसहस्र और कलि में एक सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । रैवत मन्वन्तर के समय सत्ययुग में तीस सहस्र त्रेता में पन्द्रह सहस्र, द्वापर में साढ़े सात सहस्र और कलि में आठ सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । चाक्षुष मन्वन्तर में सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सहस्र, द्वापर में दो सहस्र, एवं कलि में एक सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । वैवस्वत मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सौ, द्वापर में दो सौ, और कलि में सौ वर्ष की आयु आयुर्वेद ने मनुष्य की बतायी है ।४६-६४। देव ! सावर्णि मन्वन्तर में सत्ययुग में बीस सहस्र त्रेता में दश सहस्र द्वापर में पाँच सहस्र, और कलि में ढाई सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर में सत्युग में दशसहस्र त्रेता में पाँच सहस्र, द्वापर में ढाई सहस्र, तथा कलि में सवा सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । दक्षसावर्णि मनु के समय

रुद्रसावर्णिके चैव सत्ये चाष्टसहस्रकम् । त्रेतायां तदर्द्धाब्दं द्वापरे च तदर्द्धकम् ।।७१
कलौ तदर्द्धकं ज्ञेयं नृणामायुः पुरातने । धर्मसावर्णिके चैव तथाब्दायुश्चतुर्युगे ।।७२
भौममन्वन्तरे चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् । त्रेतायां त्रिसहस्राब्दं द्वापरे च तदर्द्धकम् ।।७३
कलौ तदर्द्धकं ज्ञेयं नरायुश्चार्षसम्मतम् । भौतमन्वन्तरे चैव सत्ये तुर्यशताब्दकम् ।।७४
त्रेतायां त्रिशताब्दं च द्वापरे तु तदर्द्धकम् । तदर्द्धकं कलौ घोरे नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।।७५
मन्वन्तरे तु यन्नाम्ना नृपाश्चासंश्चतुर्युगे । तन्नाम्ना च नृपा जातास्तेषां लीलाः पृथक्पृथक् ।।७६
एवमन्यत्र वै ज्ञेयं युगे तुर्ये मनौ मनौ । यो मनुस्तस्य वंशाश्च दिव्यैकयुगसप्ततौ ।।७७
युगान्ते कर्मभूमेश्च लयः कल्पः स वै स्मृतः । मन्वन्ते सर्वभूमेश्च प्रलयः स च कल्पकः ।।७८
पुराणपुरुषस्यैव दिनान्ते प्रलयो हि यः । मुख्यकल्पः स वै ज्ञेयः सर्वलोकविनाशकः ।।७९
षड्विंशत्कल्पसाहस्रैर्महाकल्पो हि यः स्मृतः । यदा पुराणपुरुषो मेषराशौ समास्थितः ।।८०
तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं भूपं स्वायम्भुवं गतः । यदा पुराणपुरुषो मकरे च समागतः ।।८१
स्वायम्भुवमनोर्मध्ये वाराहोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो गतः सिंहे स्वकेच्छया ।।८२
स्वारोचिषमनोरन्ते नृसिंहोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो वृषराशौ समास्थितः ।।८३
तदौत्तममनोर्मध्ये रुद्रोऽभूत्सगणो भुवि । यदा पुराणपुरुषो मीनराशौ समास्थितः ।।८४

चारों युगों में समान आयु होती रही । रुद्र सावर्णि के समय सत्ययुग में आठ सहस्र त्रेता में चार सहस्र, द्वापर में दो सहस्र, तथा कलि में एक सहस्र की आयु मनुष्यों की होती रही । धर्मसावर्णि के समय भी चारों युगों में एक वर्ष की समान आयु होती रही । भौम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सहस्र द्वापर में डेढ़ सहस्र एवं कलि मे पन्द्रह सौ वर्ष मनुष्यों की आयु होती है । उसी भाँति भौम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सौ, त्रेता में तीन सौ, द्वापर में डेढ़ सौ, एवं कलि में साढ़े सात सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । मन्वन्तरों के समय जिस नाम से राजा चारों युग में कहे गये हैं, उसी नाम के भूप उत्पन्न होते हैं जिनकी पृथक्-पृथक् लीला का वर्णन किया गया है । इसी प्रकार प्रत्येक मनु के चारों युगों में जिस मनु का अधिपत्य रहता है, उसके वंशज दिव्य एकहत्तर युग तक स्थित रहते हैं, उसके पश्चात् इस कर्मभूमि (भारत) का प्रलय हो जाता है, जिसे कल्प कहा गया है और मनु की समाप्ति के समय समस्त भूमि का प्रलय होता है, जो पुराण पुरुष के दिनान्त का प्रलय कहा गया है । उसे ही मुख्य कहा जाता है, क्योंकि उस प्रलय में समस्त लोकों का विनाश होता है । अतः छब्बीस सहस्र कल्प का एक महाकल्प बताया गया है जिस समय पुराणपुरुष मेषराशि पर स्थित होता है ।६५-८०। उस समय देवों समेत ब्रह्मा 'स्वयम्भुव' मनु होते हैं । पुनः पुराण पुरुष के मकर राशि पर स्थित होने पर स्वायम्भुव मनु के मध्यकाल में भूतल पर वह वाराह के रूप में अवतरित होता है। जिस समय पुराण पुरुष अपनी इच्छा से सिंह राशि पर स्थित होता है, उस समय स्वारोचिष् नामक मनु का काल होता है और उसके अन्त में भूतल पर नृसिंह का अवतार होता है। पुराण पुरुष के वृष राशि पर स्थित होने पर उत्तम मनु का काल आरम्भ होता है तथा उसके मध्य समय गणसमेत रुद्र अवतरित होते हैं । जिस समय पुराणपुरुष मीन (राशि) पर स्थित होता है, उस समय तामस मनु का काल होता है, उसके अन्त

तामसान्तेऽभवद्मत्स्यः स वै भुवि सनातनः । यदा पुराणपुरुषो युग्मराशौ समास्थितः ।।८५
वैवस्वतमनोर्मध्ये कृष्णोभूद्भुवि स प्रभुः । यदा पुराणपुरुषः कर्कराशौ समास्थितः ।।८६
रैवतान्तेऽभवत्कूर्मः स वै भुवि सनातनः । यदा पुराणपुरुषः कन्याराशौ समास्थितः ।।८७
चाक्षुषान्ते जामदग्न्योऽभवद्रामः स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषः प्राप्तोऽलौ च स्वकेच्छया ।।८८
वैवस्वतमनोरादौ वामनोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषस्तुलाराशौ समास्थितः ।।८९
वैवस्वतमनोर्मध्ये कल्की नाम्नाहमागतः । यदा पुराणपुरुषः कुम्भराशौ समास्थितः ।।९०
सावर्णिकादौ भविता बुद्धो नाम्ना स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो धनुराशौ समास्थितः ।।९१
वैवस्वतमनोर्मध्ये रामो दाशरथिर्भुवि । यदा पुराणपुरुषो नक्रराशौ समास्थितः ।।९२
सर्वपूज्यावतारश्च न भवेद्वै कदाचन । अस्मिंश्चतुर्युगे देवाः पुराणपुरुषस्य हि ।।९३
त्रयोऽवताराः कथितास्तथा नान्यच्चतुर्युगे । त्रेतायाः प्रथमे पादे रामो दाशरथिः प्रभुः ।।९४
द्वापरस्य तथा कृष्णः शेषेण सह वै भुवि । कलेश्शेषे तथाहं वै द्वात्रिंशाब्दसहस्रके ।।९५
अतः खण्डः पवित्रोऽयं नृणां पातकनाशनः । इमं चतुर्युगं खण्डं यः पठेच्छ्रावयेच्च यः ।।९६
जन्म प्रभृति पापानि तस्य नश्यन्ति नान्यथा । इति वः कथितं देवा महाकल्पचरित्रकम् ।।९७
द्वितीयो यो महाकल्पो विष्णुकल्पः स वै स्मृतः । तत्कथा पठिता देवा विष्णुपौराणिकैर्नरैः ।।९८

समय भूतल पर सनातन भगवान् का मत्स्यावतार होता है । पुराण पुरुष के मिथुन राशि पर स्थित होने पर उस वैवस्वत मनु के मध्यकाल में इस वसुन्धरा पर भगवान् कृष्ण का अवतार होता है । उसी प्रकार पुराण पुरुष के कर्क राशिस्थ होने पर उस रैवतअन्त मनु के समय सनातन भगवान् का कूर्मावतार होता है उस पुराण पुरुष के कन्या राशि पर स्थित होने पर उस चाक्षुष मनु का काल होता है, भूतल पर भगवान् राम का जामदग्न्यावतार और उसके वृश्चिक राशिस्थ के समय उस वैवस्वत मनु के आदि काल में भगवान् का भूमण्डल पर वामनावतार होता है । जिस समय पुराण पुरुष तुला राशि पर स्थित होता है, उस समय वैवस्वत मनु के मध्यकाल में भगवान् का कल्कि अवतार होता है । उसी भाँति पुराण पुरुष के कुम्भ राशि पर गमन करने के समय उस सावर्णि मनु के आदि काल में भूतल पर भगवान् का बुद्धावतार, धनुराशि पर स्थित होने पर वैवस्वत मनु के मध्य काल में भूतल पर भगवान् का दाशरथी (दशरथपुत्र) राम का अवतार और उसके मकर राशि पर स्थित होने के समय भगवान् का सर्वपूज्यावतार होता है, जो कभी भी नहीं होता है । देववृन्द ! इन चारों युगों में होने वाले पुराण पुरुष के तीनों अवतार को बता दिया गया त्रेता के पहले चरण में भगवान् राम का (दशरथ के यहाँ) रामावतार, द्वापर में शेष के साथ कृष्णावतार और कलियुग में बत्तीस सहस्र वर्ष शेष रहने पर कल्कि अवतार होता है । अतः यह खण्ड अत्यन्त पावन है, जिससे मनुष्यों के पातक नष्ट होते हैं । इस प्रकार इन चारों खण्डों के पाठ करने का दूसरे को सुनाने से मनुष्यों के सभी जन्मों के पाप नष्ट होते हैं ।८१-९६। देववृन्द ! इस भाँति मैनें महाकल्प के पवित्र चरित्र को तुम्हें सुना दिया । दूसरे महाकल्प को विष्णुकल्प कहा गया है, उसी की कथा विष्णुपुराण में कही गयी है, जिसे मनुष्यों ने सप्रेम हृदयङ्गम किया है । वह पुराण सैकड़ों कोटि का

शतकोटिप्रविस्तारो विष्णुपौराणिकस्य वै । तत्रैव च महाकल्पो विष्णोर्नाभिसमुद्भवः ।।९९
पूर्वार्द्धाद्भगवान्ब्रह्मा सर्वदेवसमन्वितः । परार्द्धाद्भगवान्विष्णुः पुराणपुरुषः स वै ।।१००
तृतीयो यो महाकल्पः शिवकल्पः स वै स्मृतः । शिवपूर्वार्द्धतो जातो विष्णुस्तस्माद्विधिः स्वयम् ।।१०१
शतकोटिप्रविस्तारः शिवपौराणिकैः स्मृतः । चतुर्थो यो महाकल्पः पद्मकल्पः स वै स्मृतः ।।१०२
गणेशस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने । गणेशादभवद्रुद्रो रुद्राद्विष्णुः सुरोत्तमः ।।१०३
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतः परमेष्ठी पितामहः । कल्पेकल्पे क्रमादादौ देवाश्चासन्समन्ततः ।।१०४
पञ्चमो यो महाकल्पो वायुकल्पः स वै स्मृतः । महेन्द्रस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ।।१०५
महेन्द्रादभवत्प्राप्तो महेन्द्रादिन्द्रियाणि च । इन्द्रियेभ्यश्च तद्देवास्तेषां नामानि मे शृणु ।।१०६
शनिर्बुधो रविः शुक्रो विश्वकर्मा बृहस्पतिः । इन्द्रो विष्णुस्तथा ब्रह्मा रुद्रः सोमः क्रमात्स्मृताः ।।१०७
सृष्टिकर्ता स वै ब्रह्मा लिङ्गेन्द्रियसमुद्भवः । सृष्टिपाता स वै विष्णुरवतारियदोद्भवः ।।१०८
चतुर्विंशतितत्त्वेषु कल्पेकल्पे प्रभुर्गतः । सनत्कुमारो हंसश्च वाराहो नारदस्तथा ।।१०९
नारायणौ च कपिलात्रेयौ यज्ञाश्वकण्टकौ । वृषभश्च पृथुर्मत्स्यः कूर्मो धन्वन्तरिस्तथा ।।११०
मोहिनी च नृसिंहश्च वामनो भार्गवस्तथा । रामो व्यासो बलः कृष्णो बुद्धः कल्की स्वतत्त्वगः ।।१११
गुह्यजन्मा महादेवः सृष्टिदैत्यविनाशकः । एवं जातास्त्रयो देवा महाकल्पे च पञ्चमे ।।११२
षष्ठो यस्तु महाकल्पो वह्निकल्पः स वै स्मृतः । स्कन्दस्तत्रैव भगवान्पुराणपुरुषासने ।।११३

विस्तृत है । उसी महाकल्प में उस विष्णु भगवान् की नाभि का उत्पन्न होना बताया गया है । जो अपने पूर्वार्द्ध भाग से देव समेत भगवान् ब्रह्मा, और परार्द्ध भाग से पुराणपुरुष कहलाता है । शिवकल्प नामक तीसरे महाकल्प में शिवजी के पूर्वार्द्ध भाग से विष्णु और विष्णु द्वारा स्वयं ब्रह्मा का उत्पन्न होना बताया गया है, जो शिवपुराण के रूप में सौ कोटि का विस्तृत है । पद्मकल्प नामक चौथे महाकल्प में भगवान् गणेश पुराण पुरुष कहे गये हैं, जिससे रुद्र,रूद्र से विष्णु और उस विष्णु की नाभि से कमल समेत परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । प्रत्येक कल्प के आदि में क्रमशः देवों की भी चारों ओर से स्थिति होती है । उसी प्रकार वायुकल्प नामक पाँचवें महाकल्प में महेन्द्र भगवान् पुराणपुरुष के स्थानापन्न होते हैं । उस महेन्द्र द्वारा महेन्द्र, महेन्द्र द्वारा इन्द्रियाँ और इन्द्रियों द्वारा देवों की उत्पत्ति होती है, जिनके विषय में मैं बता रहा हूँ, सुनो ! शनि, बुध, रवि, शुक्र, विश्वकर्मा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा,रुद्र और सोम (चंद्र) नामक देवों की क्रमशः उत्पत्ति होती है । उसके लिंगेन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होने के नाते ब्रह्मा सृष्टिकर्ता का पद सुशोभित करते हैं, और चरण द्वारा उत्पन्न होकर सृष्टि का पालन करने के नाते विष्णु को अवतारी कहा गया है । प्रत्येक कल्प के चौबीस तत्त्वों में भगवान् सन्निहित रहते हैं—सनत्तकुमार, हंस, वाराह, नारद, नर, नारायण, कपिल, यज्ञाश्व, कंटक, वृषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिह, वामन, भार्गव, राम, व्यास, बल, कृष्ण, बुद्ध और भगवान् का कल्की स्वरूप अपने-अपने कल्प के तत्त्व में निहित है । इसी प्रकार गुह्येन्द्रिय द्वारा महादेव की उत्पत्ति हुई है, जो सृष्टि एवं दैत्यों के विनाशक हैं। पाँचवे महाकल्प में इस प्रकार तीनों देवों की उत्पत्ति बतायी गयी है।९७-११२। बह्निकल्प नामक छठे महाकल्प में स्कन्ददेव पुराणपुरुष कहे जातें हैं उस अव्यय पुरुष के

पुरुषाव्ययतः स्कन्दः स्कन्दस्तस्मान्महार्चिमान् । सूर्यरूपा महार्चिर्या तस्यां जातो हरिः स्वयम्॥११४
वह्निरूपा महार्चिर्या तस्यां जातः पितामहः । चन्द्ररूपा महार्चिर्या तस्यां जातः स वै हरः ॥११५
ऋषयो मुनयो वर्णा लोका जाताः पितामहात् । आदित्या विश्ववसवस्तुषिता भास्वरानिलाः ॥११६
महाराजिकसाध्याश्च देवा विष्णुसमुद्भवाः । यक्षराक्षसगन्धर्वाः पिशाचाः किन्नरादयः ॥११७
दैत्याश्च दानवा भूतास्तामसा रुद्रसम्भवाः । कल्पे कल्पे समुद्भूतमेवं ब्रह्माण्डगोचरे ॥११८
सप्तमो यो महाकल्पः स वै ब्रह्माण्डकल्पकः । पावकस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ॥११९
अचिन्त्यतेजसस्तस्मात्पुरुषाद्वह्निरुद्भवः । ततो जातो महाब्धिश्च तस्माज्जातं विराण्मयम् ॥१२०
रोम्णि रोम्णि ततस्तस्य ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् । ब्रह्माण्डादभवद्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥१२१
तस्माज्जातो विभुर्विष्णुस्तस्माज्जातो हरः स्वयम् । शतकोटिप्रविस्तारो ब्रह्माण्डाख्यपुराणके॥१२२
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च दशबाहुर्भयस्य च । अष्टादशानां कल्पानां वायुर्वै वैदिकैः स्मृतः ॥१२३
महाकल्पेऽभवन्सर्वे द्विसहस्राः क्षयं गताः । अष्टमो यो महाकल्पो लिङ्गकल्पः स वै स्मृतः ॥१२४
तत्रैव भगवान्धर्मः पुराणपुरुषासने । अचिन्त्याव्यक्तरूपश्च जातो धर्मः सनातनः ॥१२५
धर्मात्कामः समुद्भूतः कामाल्लिङ्गस्त्रिधाभवत् । पुँल्लिङ्गः क्लीबलिङ्गश्च स्त्रीलिङ्गश्च सुरोत्तम॥१२६
पुँल्लिङ्गादभवद्विष्णुः स्त्रीलिङ्गाच्च महेन्दिरा । क्लीबलिङ्गात्स वै शेषस्तस्योपरि स च स्थितः॥१२७
त्रिभ्यस्तमोमयेभ्यश्च जातमेकार्णवं जगत् । सुप्ते नारायणे देवे नाभेः पङ्कजमुत्तमम् ॥१२८

स्कन्द होने से उनका स्कन्द नाम हुआ । इसलिए वे महा अर्चिमान् (पूर्णप्रकाश युक्त) कहे गये हैं । उन्हीं सूर्य रूप महार्चि से स्वयं विष्णु की वह्निरूप महार्चि द्वारा पितामह ब्रह्मा और चन्द्र रूप महार्चि द्वारा शिव की उत्पत्ति होती है । इसी भाँति पितामह (ब्रह्मा) द्वारा ऋषि, मुनि, वर्ण एवं लोकों की उत्पत्ति हुई है, विष्णु द्वारा आदित्यगण, विश्वावसु देव, तुषित, भास्वर, अनिल, और महाराजिक साध्व देवों की उत्पत्ति हुई है । और रुद्र द्वारा यक्ष राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, किन्नर, दैत्य, दानव एवं भूतगणों की उत्पत्ति हुई है । इस प्रकार प्रत्येक कल्पों में ब्रह्माण्ड के सर्जन को शुभ बताया गया है । ब्रह्माण्ड कल्प नामक सातवें महाकल्प में पुराण पुरुष के आसन पर भगवान् पावक प्रतिष्ठित होते हैं, जिस अजेय तेजस्वी पुरुष द्वारा अग्नि का जन्म हुआ । उसी अग्नि द्वारा महासागर और उसी सागर द्वारा इस विराट् की उत्पत्ति हुई, जिसके रोम रोम में कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं । उस ब्रह्माण्ड से समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा से विभु विष्णु, और उस विष्णु द्वारा स्वयं हर की उत्पत्ति हुई । इसीलिए उस ब्रह्माण्ड नामक पुराण का सैकड़ों कोटि का विस्तार हुआ है । शिव के तीन नेत्र, पाँच मुख और दश भुजाएँ हैं अठ्ठारह कल्पों के वैदिकों ने वायु नाम से ख्याति की है । इस महाकल्प में सबकी उत्पत्ति होने से दो सहस्र उसी समय नष्ट हो गये । लिंगकल्प नामक आठवें महाकल्प में भगवान् धर्म पुराणपुरुष के आसनासीन होते है, जो अचिन्त्य, अव्यक्त एवं सनातन धर्मरूप हैं । उस धर्म से काम की उत्पत्ति हुई और काम द्वारा वह लिंग तीन (पुल्लिंग स्त्रीलिंग एवं नपुसंकलिंग) भागों में विभक्त होकर पुल्लिंग द्वारा विष्णु स्त्रीलिंग द्वारा इन्दिरा (लक्ष्मी), एवं नपुंसक लिंग से उस शेष का आविर्भाव हुआ, जिस पर विष्णु शयन किये रहते हैं । पुनः इन तीनों तमोमय रूप द्वारा एक समुद्र जगत् की उत्पत्ति होती है । उसी में नारायण देव के शयन करने पर उनकी नाभि द्वारा एक उत्तम कमल की उत्पत्ति होती है।११३-१२८।

जातं तस्मात्स वै ब्रह्मा तस्माज्जातो विराडयम्। शतकोटिप्रविस्तारैर्लिङ्गपौराणिकैः कथा ।।१२९
गीता चैव विधेरग्रे तस्य सारोऽयमुत्तमः । नवमो यो महाकल्पो मत्स्यकल्पः स वै स्मृतः ।।१३०
कुबेरस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने । अव्ययाच्च समुद्भूतो धूलिवृन्दो महांस्तथा ।।१३१
रजोभूताच्च तस्माच्च कुबेरस्य समुद्भवः । कुबेराद्भूवन्मत्स्यो वेदमूर्तिश्च सद्गुणः ।।१३२
मत्स्योदरात्समुद्भूतो विष्णुर्नारायणो हरिः । विष्णोर्नाभेः समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामहः ।।१३३
ब्रह्मणश्चोद्भवं दैवं देवाद्देवा बभूविरे । चतुर्विंशतितत्त्वानि तैर्देवैर्जनितानि वै ।।१३४
कल्पेकल्पे क्रमादेवं कल्पनामान्यकारयत् । मत्स्यकल्पे तु मत्स्यश्च महामत्स्यात्समुद्भवः ।।१३५
तन्मत्स्याद्भगवान्विष्णुस्ततो ब्रह्म उद्भवः । कूर्मकल्पे महामत्स्यात्कूर्मो जातः स कच्छपः ।।१३६
कूर्माच्च भगवान्विष्णुस्ततो ब्रह्मा ततो विराट् । श्वेतवाराहकल्पे च वराहाद्विष्णुरुद्भवः ।।१३७
विष्णोर्नाभेश्च स ब्रह्मा ततो जातो विराडयम् । एवं सर्वे च वै कल्पा ज्ञेयाः सर्वत्र वै बुधैः ।।१३८
दशमो यो महाकल्पः कूर्मकल्पः स वै स्मृतः । अचेतास्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ।।१३९
प्रकृतेश्च परो यो वै तुरीयोऽव्यय एव च । शून्यभूतात्ततो जातः प्रचेता भगवान्स्वयम् ।।१४०
तस्माज्जातो महानब्धिस्तत्र सुष्वाप स प्रभुः । नारायण इति ख्यातः स वै जलपतिः स्वयम् ।।१४१
तदर्द्धाच्च महाकूर्मस्ततः शेषो महानभूत् । त्रिधाऽभवत्स वै शेषो भूमा शेषश्च भौमनी ।।१४२
भूमा स वै विराड् ज्ञेयः शेषोपरि स चास्थितः । भौमनी च महालक्ष्मीः सा भूम्नो हृदि संस्थिता ।।१४३

जिससे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा द्वारा यह विराट् ! इसलिए लिंग पुराण की कथा सैकड़ों कोटि की विस्तृत है । उसी का साररूप गीता ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित हुआ है । मत्स्यकल्प नामक नवें महाकल्प में भगवान् कुबेर पुराणपुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । पश्चात् उस अव्यय द्वारा एक अत्यन्त बड़ी धूल राशि उत्पन्न होती है, जिस रजोभूत धूलि द्वारा कुबेर जन्म ग्रहण करते हैं । पुनः कुबेर द्वारा वेदमूर्ति एवं सद्गुण रूप मत्स्य की उत्पत्ति होती है । उसी मत्स्य के उदर से स्वयं नारायण विष्णु देव उत्पन्न होते हैं और विष्णु की नाभि से पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा से दैव और दैव द्वारा देवों की उत्पत्ति होती है । पश्चात् उन्हीं देवों ने चौबीस तत्त्वों को उत्पन्न किया है । इस प्रकार प्रत्येक कल्प में देव प्रधान नाम द्वारा कल्पों के नाम होते हैं—मत्स्यकल्प में महामत्स्य द्वारा मत्स्य की उत्पत्ति कही गयी है । जिस मत्स्य के द्वारा भगवान् विष्णु और विष्णु द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । कूर्मकल्प में महामत्स्य द्वारा कूर्म (कच्छप) का आविर्भाव और उसी कूर्म द्वारा भगवान् विष्णु, उनसे ब्रह्मा और ब्रह्मा द्वारा विराट् उत्पन्न होते हैं । श्वेत वाराहकल्प में वराह द्वारा विष्णु उत्पन्न होते हैं । उसी विष्णु की नाभि द्वारा ब्रह्मा और उस ब्रह्मा से विराट् उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार विद्वानों को सभी कल्पों में उनकी प्रधानता एवं समस्त कथा का ज्ञान करना चाहिए । कूर्मकल्प नामक दशवें महाकल्प में भगवान् अचेता पुराण कहे गये हैं । जो प्रकृति से परे तुरीय, अव्यय एवं शून्यभूत हैं । उसी से भगवान् अचेता स्वयं उत्पन्न होते हैं और अचेता द्वारा महासागर उत्पन्न होता है जिसमें शयन करने पर भगवान् को जलपति नारायण कहा गया है । उनके अर्द्धभाग से महाकूर्म और महाशेष की उत्पत्ति होती है । वह शेष पुनः तीन रूप में विभक्त होकर भूमा, शेष और भौमनी के रूप में प्रकट होता है, उस भूमा को विराट् कहा गया है, जो भूमा

भूम्नो जातः स वै ब्रह्मा सृष्टिस्थितिविनाशकः। त्रिधामूर्तिः स वै ब्रह्मा कल्पे कल्पे क्रमादयम् ॥१४४
पटं सुषुप्तभूतं यत्पुराणपुरुषासनम् । यत्र गत्वेन्द्रियाण्येव तृप्तिं प्राप्य क्षयन्ति वै ॥१४५
अहङ्कारस्तदागत्य चैतन्यं मनसि स्थितम् । वञ्चयित्वा पुनर्लोकं करोतिस्मस्वलीलया ॥१४६
तुरीयशक्तिर्या ज्ञेया महाकाली सनातनी । महाकल्पैश्च तैःसर्वैस्तदङ्गं श्रुतिभिः स्मृतम् ॥१४७
नमस्तस्यै महाकाल्यै मम मात्रे नमो नमः । यतः पुराणपुरुषा भवन्ति च लियन्ति च ॥१४८
दशैव च महाकल्पा व्यतीता इह भोः सुराः । साम्प्रतं वर्तते यो वै महाकल्पो भविष्यकः ॥१४९
तदुत्पत्तिं शृणुध्वं भो देवाः सर्पिगणा मम । अचिन्त्यमक्षरं यत्तु तुरीयं च सदा स्थितम् ॥१५०
यद्गत्वा न निवर्तन्ते नरास्तन्नैव तत्पदम् । अनेकसृष्टिरचनाः सन्ति तस्यैव लीलया ॥१५१
तस्यान्तं न विदुर्देवाः कथं जानन्ति वै नराः । भूतो भूतो महाकल्पो दृष्टो वैदैस्तदीरितः ॥१५२
भाव्या ये तु महाकल्पा न वै जानन्ति ते सदा । त्र्यस्त्रिंशन्महाकल्पाः कैश्चिद्वेदैरुदीरिताः ॥१५३
अष्टादश महाकल्पाः पृथङ् नाम्नोपवर्णिताः । एकादश महाकल्पाः कैश्चित्प्रोक्ताः पुरातनैः ॥१५४
अतोऽहं निश्चयेनाद्य भाव्यकल्पेषु भोः सुराः । वेदानां वचनं सत्यं नान्यथा च भवेत्क्वचित् ॥१५५
तदव्ययात्समुद्भूतो राधाकृष्णः सनातनः । एकीभूतं द्वयोरङ्गं राधाकृष्णो बुधैः स्मृतः ॥१५६
सहस्रयुगपर्यन्तं यत्तेपे परमं तपः । तदा स च द्विधा जातोः राधाकृष्णः पृथक्पृथक् ॥१५७

(विराट्) के हृदय में स्थित है। उसी भूमा द्वारा सृष्टि, स्थिति एवं उसके विनाशक देवों की उत्पत्ति होती है। वही ब्रह्मा प्रत्येक कल्पों में त्रिधा विभक्त होकर तीनों रूपों को धारण करता है।१२९-१४४। पुराण पुरुष का वह आसन है, जो उसके शयन काल का स्तरण घर रूप है वहाँ पहुँचने पर इन्द्रियाँ तृप्त होकर नष्ट हो जाती है। वह अहंकार चैतन्य रुप से गन में स्थित होता है, उसे वंचितकर अपनी लीला द्वारा जो लोक-निर्माण करती है, वह सनातनी तुरीय शक्ति महाकाली है। समस्त महाकल्प एवं श्रुतियों द्वारा जिसके अंगभूत (लोक कथाओं) का वर्णन किया गया है, उस अपनी माता महाकाली को मैं नमस्कार करता हूँ। तथा उसी द्वारा पुराणपुरुष का आविर्भाव और विलय होता है। देववृन्द ! दश महाकल्प व्यतीत हो चुके हैं। इस समय भविष्य महाकल्प का आरम्भ है। इसमें देवों समेत मेरा जिस प्रकार जन्म हुआ है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनो ! अचिन्त्य, अविनाशी, तुरीय रूप से सदैव स्थित, तथा जिसके पद की प्राप्तिकर मनुष्यों को पुनः संसार में नहीं आना पड़ता है, वह अपनी लीला द्वारा अनेक सृष्टियों की रचना करता है। उसके अंत को देवगण नहीं जान सकते हैं तो उसके लिए मनुष्यों को क्या कहा जा सकता है। वेद तो यही कहता है कि महाकल्प हुए हैं, किन्तु भविष्य रूप में होने वाले कल्पों को वे भी नहीं जानते हैं। कुछ वेदों का यह कहना है कि तैंतीस महाकल्प होते हैं, कुछ लोग अष्टादश कल्पों को स्वीकार करते हैं, जो अपने नामानुसार पृथक्पृथक् वर्णित हैं और किसी प्राचीन वादी ने ग्यारह महाकल्प को स्वीकार किया है। देवगण ! अतः मैंने निश्चय किया है—भावी कल्पों के विषय में वेदों की बातें सत्य माननी चाहिए, जो किसी प्रकार कभी अन्यथा नहीं हो सकती है और उसने बताया है कि उस अव्यय द्वारा सनातन राधाकृष्ण का आविर्भाव हुआ है, जिस दोनों के अंग एक हो जाने पर विद्वानों ने उसे राधाकृष्ण कहा है। प्रकट होने के उपरांत राधाकृष्ण ने सहस्र युग तक घोर तपस्या की। पश्चात् वह दो भागों में विभक्त होकर राधाकृष्ण के नाम से पृथक्-पृथक् अवस्थित होकर उन दोनों ने एक सहस्र युग

सहस्रयुगपर्यन्तं तेपतुस्तौ परं तपः । तयोरङ्गात्समुद्भूता ज्योत्स्ना तमनाशिनी ॥१५८
तज्ज्योत्स्नाभिः समुद्भूतं दिव्यं वृन्दावनं शुभम् । एकविंशत्प्रकृतयो योजने योजने स्मृताः ॥१५९
दिव्यं वृन्दावनं जातं चतुराशीतिसम्मिते । क्रोशायामं महारम्यं तल्लिङ्गं शृणु मे प्रभो ॥१६०
इन्द्रियप्रकृतीनां च दशानां ग्रामतद्दश[1] । गोकुलं वार्षं नान्दं भाण्डीरं माथुरं तथा ॥१६१
वज्रं च यामुनं मान्यं श्रेयस्कं गोपिकं क्रमात् । मात्राभूतदशभ्यश्च प्रकृतिभ्यः समुद्भवम् ॥१६२
तथा दशवनं रम्यं तेषां नामानि मे शृणु । वृन्दावनं गोपवनं बहुलावनमेव च ॥१६३
मधुशृङ्गं कुञ्जवनं वनं दधिवनं तथा । रहः क्रीडावनं रम्यं वेणुपद्मवनं क्रमात् ॥१६४
मनसः प्रकृतेर्जातो गिरिर्गोवर्द्धनो महान् । दिव्यं वृन्दावनं दृष्ट्वा परमानन्दमाप सः ॥१६५
कृष्णादुद्भवन्गोपास्तिस्रः कोट्यो गुणात्मकाः । श्रीदामाद्याः सात्त्विकाश्च राजसा अर्जुनादयः॥१६६
कंसाद्यास्तामसा जाता दिव्यलीलाप्रकारिणः । राधाङ्गादुद्भवा गोप्यस्तिस्रः कोटयस्तथा क्रमात्॥१६७
ललिताद्याः सात्त्विकाश्च कुब्जाद्या राजसास्तथा । तामसाः पूतनाद्याश्च नानाहेलाचरित्रकाः ॥१६८
सहस्रयुगपर्य्यन्तं तेषां लीला बभूव ह । ततस्तौ तान्समाहृत्य तेपतुश्च पुनस्तपः ॥१६९
द्विधा जातः स वै कृष्णो राधा देवी तथा द्विधा । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१७०
पूर्वार्द्धात्स च वै जातः परार्द्धात्कृष्ण एव हि । एकशीर्षा त्रिनेत्रा च द्विपदी द्विसहस्रिका ॥१७१

तक पुनः घोर तपस्या की जिससे उन दोनों के अंग से तम नष्ट करने वाली ज्योत्स्ना का अविर्भाव हुआ। उसी ज्योत्स्ना द्वारा शुभमूर्ति वृन्दावन का निर्माण हुआ, जिसके एक-एक योजन की दूरी पर इक्कीस प्रकृति तत्त्व का सन्निहित होना बताया गया है। वह दिव्य वृन्दावन चौरासी कोश में विस्तृत है। प्रभो! उसके लिंग की व्याख्या कर रहा हूँ सुनो! ।१४५-१६०। दश प्राकृतिक इन्द्रियों द्वारा उसके दश ग्रामों का निर्माण हुआ है—गोकुल, वार्षभ, नान्द, भांडीर, माथुर, व्रज, यामुन, मान्य, श्रेयस्क, एवं गोपियों की क्रमशः उत्पत्ति हुई। दश तन्मात्रा प्रकृति द्वारा दश रमणीक वन उत्पन्न हुए हैं, उनके नाम बता रहा हूँ सुनो! वृन्दावन, गोपवन, बहुलावन, मधुवन, भृङ्गवन, दधिवन, एकान्त क्रीडावन, रम्य वेणु और पद्मवन का क्रमशः जन्म हुआ। प्रकृति के मन द्वारा महान् गोवर्द्धन पर्वत का अविर्भाव हुआ, जिसने दिव्य वृन्दावन को देखकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया है। भगवान् कृष्ण द्वारा तीन कोटि गुणी गोपों का जन्म हुआ है, जिसमें श्रीदामा आदि गोपा के जन्म सतोगुण द्वारा अर्जुन आदि के रजोगुण और कंस आदि के जन्म तमोगुण द्वारा हुए हैं, जो दिव्य लीला के विषय में उसी भाँति क्रमशः राधा जी के अंग द्वारा ललिता आदि तीन कोटि गोपियों के जन्म हुए हैं, जिसमें ललिता आदि गोपियाँ सात्त्विकी, कुब्जा आदि राजसी, और पूतना आदि गोपियाँ तामसी प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुई हैं। जो अनेक हाव-भाव के चरित्रों का चित्रण किये हैं इन लोगों ने एक सहस्र युग तक अनेक भाँति की लीला करने के उपरांत इन (राधाकृष्ण) दोनों ने अपने में उन सब के संहरण पूर्वक पुनः घोर तप किया है। कृष्ण और राधादेवी पृथक् पृथक् दो-दो भागों में विभक्त हुए। कृष्ण ने अपने पूर्वार्द्ध भाग से एक-एक पुरुष को प्रकट किया जिसके- सहस्र शिर, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण हैं तथा उत्तरार्द्ध भाग कृष्णरूप हुआ। उसी प्रकार राधा

---

१. प्रयोगोयमार्षः।

पूर्वार्धात्सा तु वै जाता राधा देवी परार्द्धतः । पुरुषः प्रकृतिश्चोभौ तेपतुः परमं तपः ॥१७२
सहस्रयुगपर्य्यन्तं दिव्ये वृन्दावने शुभे । तपसा ववृधाते तौ नाम्नानन्तो ह्यनन्तकः ॥१७३
एकीभूतौ तु तत्पश्चात्संस्थितौ मैथुनेच्छया । तदङ्गरोमकूपेषु ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् ॥१७४
कोटचर्द्धयोजनायामास्ते तु सर्वे पृथक्पृथक् । हृदि रोमसमुद्भूतो ब्रह्माण्डोऽयं च भोः सुराः ॥१७५
ब्रह्माण्डादुद्भवो ब्रह्मा पद्मपुष्पे समास्थितः । स पद्मो योजनायामो भूमिमण्डलसंस्थितः ॥१७६
यतो जातं विधेः पद्मं तद्वै पद्मसरोवरम् । प्रसिद्धं पुष्करक्षेत्र तत्पद्मसरसं सुराः ॥१७७
विस्मितः स तदा ब्रह्मा नररूपश्चतुर्मुखः । नाले नाले गतोसौ वै दिव्यं जातं शतं समाः ॥१७८
नान्तं जगाम पद्मस्य पुनर्ब्रह्मा स चागतः । मायया मोहितस्तत्र रुरोद बहुधा तदा ॥१७९
रोदनाद्रुद्र उत्पन्नः स च तत्क्षेमकारकः । किं रोदिषि महाभाग त्वदीशो हृदये तव ॥१८०
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा लोकपितामहः । समाधिभूतो हृदये चिरं तेपे स्वकेच्छया ॥१८१
दिव्यवर्षशताब्दे तु प्रादुर्भूतो हरिः स्वयम् । वचनं प्राह भगवान्मेघगम्भीरया गिरा ॥१८२
कर्मभूमिरियं ब्रह्मञ्जीवान्ता जीवकारिणी । सहस्रयोजनायां तु विश्वस्मिन्भूमिमण्डले ॥१८३
हिमाद्रिरुत्तरे तस्याः पूर्वेऽब्धिश्च महोदधिः । रत्नाकरः पश्चिमेऽब्धिर्दक्षिणे वडवाब्धिकः ॥१८४
अतः सर्वे भविष्यन्ति लोकाश्चोद्ध्र्वं तथा ह्यधः । कर्मभूमेर्मध्यभूतः पुष्करोऽयं सनातनः ॥१८५

देवी के पूर्वार्द्ध भाग द्वारा दो सहस्त्र (मूर्ति) उत्पन्न हुई, जिनके एक शिर तीन नेत्र एवं दो चरण हैं और परार्द्ध भाग राधारूप हुआ। उस शुभ एवं दिव्य वृन्दावन में उन प्रकृति-पुरुष दोनों ने सहस्र युग पर्यन्त घोर तप किया जिसके कारण उनकी इतनी वृद्धि हुई हैं कि उसका पार न मिलने से उनका अनंत नामकरण हुआ। पश्चात् वे दोनों मैंथुन करने की इच्छा से एक होकर स्थित हुए। उस समय उनके अङ्ग के रोमकूपों में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए, जो पृथक्-पृथक् स्थित होकर आधे-आधे कोटि के विस्तृत थे। देवगण ! उनके हृदय रोम द्वारा इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। अनन्तर ब्रह्माण्ड द्वारा कमलपुष्प पर स्थित ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। वह कमलपुष्प भूमि में एक योजन के विस्तार में स्थित था।१६१-१७६। वह ब्रह्म-कमल जिससे उत्पन्न हुआ वह पद्मसरोवर के नाम से प्रख्यात होकर पुष्कर क्षेत्र में स्थित है। उस समय चतुर्मुख धारण किये नररूप में अवस्थित ब्रह्मा ने उस कमल को देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया। तदुपरांत उसके नाल में प्रवेशकर ब्रह्मा ने दिव्य सौ वर्ष तक उसके मूल का पता लगाया किन्तु उसके अन्त का पार न प्राप्त कर सके। किन्तु माया से मोहित होकर अनेक भाँति रुदन करना आरम्भ किया, जिससे रुद्र की उत्पत्ति हुई, जो उनके कल्याण कर्ता हुए। उन्होंने कहा—महाभाग ! क्यों रुदन कर रहे हो, तुम्हारा स्वामी तो तुम्हारे हृदय में ही स्थित हैं इसे सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने अपनी इच्छा से अपने हृदय में उनके ध्यान पूर्वक समाधि लगाना प्रारम्भ किया। सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने के उपरांत विष्णु भगवान् के स्वयं आविर्भूत होकर अपनी मेघ-गम्भीर वाणी द्वारा गर्जना करते हुए ब्रह्मा से कहा—ब्रह्मन् ! यह कर्मभूमि है, जिसमें जीवगण उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं। इस विश्व के भूमण्डल में यह सहस्र योजन में विस्तृत है, जिसके उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में समुद्र, पश्चिम में रत्नाकर समुद्र और दक्षिण में बडवानल वाला समुद्र है। अतः कर्मभूमि के ऊपर नीचे लोकों की अवस्थिति होगी और मध्य में इस सनातन पुष्कर को

सत्तो वेदान्भवान्प्राप्य करिष्यति मखं शुभम् । यज्ञाद्देवा भविष्यन्ति त्रिधाभूता गुणत्रयात् ।।१८६
सिद्धा विद्याधराश्चैव चारणाः सात्त्विकास्त्रिधा । गन्धर्वयक्षरक्षांसि राजसा गिरिसंस्थिताः ।।१८७
पिशाचगुह्यका भूतास्तामसा गामिनो ह्यधः । तथा स्वधामया यज्ञास्त्रिधा पितृगणा विधे ।।१८८
भविष्यन्ति सुरै रम्या विमानसदृशाश्च खे । खेचरा गौरवर्णाश्च श्यामास्ते सात्त्विकाः स्मृताः ।।१८९
गिरिद्वीपमया रम्याः सरोरूपाश्च राजसाः । भूचरास्ते भविष्यन्ति त्रिधा पितृगणा विधे ।।१९०
बिलेतलमया ये तु नारका यातनामयाः । तामसास्ते भविष्यन्ति पितरोऽधोमहीतले ।।१९१
व्ययभूताश्च ते लोका वृद्धा मध्याः क्षयाः क्रमात् । इयं भूमिर्महाभागा सर्वदा च सनातनी ।।१९२
मेरुर्वै च नमेरुश्च द्वीपाश्चातंस्तथा न हि । इलावर्तादिखण्डाश्च सन्ति नैव क्वचित्क्वचित् ।।१९३
ये तु तारामया लोका विमानसदृशा विधे । स्वेच्छया च करिष्यन्ति रक्षिता यज्ञकर्मणा ।।१९४
यज्ञो नास्ति यदा भूमौ तदा ते भगणा विधे । विघ्नभूताश्चरिष्यन्ति नित्यवक्रातिचारिणः ।।१९५
कर्मभूमिश्च गौर्ज्ञेया श्रुतिरूपा जगन्मयी । यस्तां पाति च भो ब्रह्मन्स गोप इति विश्रुतः ।।१९६
गोपशक्तिः स वै गोपो गोपानामर्चको हरिः । कोटिकोटिसहस्राश्च सर्वे गोपा हरेः कलाः ।।१९७
तावन्तश्चैव ब्रह्माण्डा गोपनाम्ना प्रकीर्तिताः । कर्मभूमेस्तथोर्ध्वं च रविर्योजनलक्षकः ।।१९८

मुझसे वेदों की प्राप्ति करके आप लोग यज्ञानुष्ठान सुसम्पन्न करेंगे जिससे तीनों युगों के तीन भाग द्वारा देवों की उत्पत्ति होगी उस सात्त्विक गुण के तीन भागों में विभक्त होने से सिद्ध विद्याधर एवं चारण राजस् द्वारा पर्वत निवासी गन्धर्व यक्ष तथा राक्षस और अधोलोक में रहने वाले पिशाच एवं गुह्यकों की उत्पत्ति तामस गुणों द्वारा होगी । उसी प्रकार पितृगणों के लिए स्वधामय यज्ञ (पिंडदान) तीन भागों में विभक्त होकर देवों के यानों से अधिक रमणीक विमान रूप में आकाश में उनके समीप स्थित होंगे । पुनः सतोगुण द्वारा खेचरों की उत्पत्ति होगी, जो गौरवर्ण एवं श्यामल वर्ण के होते हैं । राजस् गुण द्वारा गिरि, द्वीप एवं सरोवरों की उत्पत्ति होगी और पितृगणों के समीप रहने वाले भूचर तीन भागों में विभक्त होंगे । विल (पाताल आदि) रूप, और यातनामय नरकाकुण्डों की तमोगुण द्वारा उत्पत्ति होगी जो पितरों के नीचे भूतल पर अवस्थित हैं ।१७७-१९२। क्रमशः लोकों में ऊपर के लोकों का मध्य व्यय मध्य वाले की वृद्धि और नीचे वाले लोकों का क्षय होता है । यह पवित्र भूमि सनातनी है, किन्तु इस पर स्थायी मेरु के रूप में तथा द्वीपगण, और इलार्वत आदि खंग अपने रूप में सदैव स्थित नहीं रहते हैं अर्थात् महाप्रलय होने पर विलीन हो जाते है । विमान के समान आकाश में दिखायी देने वाले तारागण यज्ञों द्वारा सुरक्षित होने पर स्वेच्छया लोक की रक्षा किया करते हैं । जिस समय भूतल पर यज्ञानुष्ठान नहीं होते उस समय वे भगण नित्य उनकी और अतिचारी होकर लोक में विघ्न उत्पन्न करते हैं । ब्रह्मन् ! श्रुति रूप एवं संसारमयी यह कर्मभूमि गौरूप है, जो इसका पालन-पोषण करता है, उसे गोप कहा जाता है । गोपशक्ति एवं गोरूप भगवान् विष्णु है, जो गोपियों की सदैव पूजा करते हैं । सहस्र कोटि के उत्पन्न सभी गोप भगवान् के कला स्वरूप है और उतने ही ब्रह्माण्ड गोप नाम से कहे गये हैं । इस कर्म-

ततश्शशी तथामानस्ततश्चोर्ध्वं भमण्डलम् । द्विलक्षयोजनगतस्ततो भौमस्तथाविधः ।।१९९
भौमाद्बुधस्तथा ज्ञेयो बुधाच्च बृहतांपतिः । गुरोः शुक्रस्तथामानः शुक्रात्सौरिस्तथागतः ।।२००
शनेराहुस्तथा ज्ञेयो राहोः केतुस्तथोर्ध्वगः । सप्तलक्षमितंज्ञेयं केतोः सप्तर्षिमण्डलम् ।।२०१
लक्षैकादशगाः सर्वे ततश्चोर्ध्वं ध्रुवास्पदम् । लक्षयोजनगं चैव ततश्चोर्ध्वं महत्पदम् ।।२०२
लक्षयोजनगं ज्ञेयं ततश्चोर्ध्वं जनास्पदम् । लक्षयोजनगं ज्ञेयं तदूर्ध्वं तपसः स्थलम् ।।२०३
एवं च कर्मभूमेश्च तपः कोटयर्धयोजनम् । कर्मभूमेरधश्चैव पातालाः सप्त चान्तराः ।।२०४
लक्षयोजनगा ज्ञेयास्ततश्चाधोगताश्च ये । नरकाश्च क्रमाज्ज्ञेया भूमेः कोटयर्द्धयोजनाः ।।२०५
कर्मभूमेरुत्तरे च खण्डान्यष्टौ ततः परम् । लवणाब्धिस्ततो द्वीपस्ततः क्षीराब्धिरेव हि ।।
ततो द्वीपस्ततः सिन्धुस्ततो द्वीपस्ततोऽब्धिकः ।।२०६
कोटयर्द्धलक्षव्यानेन योजनेन विधे स्वयम् ।।२०७
कर्मभूमेः स वै ज्ञेयो लोकालोका महाचलः । लोकालोको दक्षिणे च पश्चिमे च स वै गिरिः ।।२०८
पूर्वे च कर्मभूमेश्च लोकालोकस्तथाविधः । एतेषां समुदायानां ब्रह्माण्डोऽयं प्रकीर्तितः ।।२०९
त्वत्तो भविष्यति विधे कल्पपर्यन्तमेव हि । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ततो विष्णुस्त्रिधाभवत् ।।२१०
अद्य विष्णुः स वै कृष्ण इह विष्णुः स वै विराट् । इति विष्णुः स वै ज्ञेयः पुराणपुरुषोत्तमः ।।२११
पुराणपुरुषो ज्ञेय आदिब्रह्मा चिरायुगः । दैवे युगसहस्रे द्वयहोरात्रं तस्य कीर्तितम् ।।२१२
विष्णोस्तु रोमकूपेषु ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् । अद्य विष्णुरहं ब्रह्मन्विग्रहा तव भूतले ।।२१३

भूमि से ऊपर एक लक्ष योजन की दूरी पर सूर्य स्थित हैं, उनसे उतनी ही दूर चन्द्रमा और उनसे ऊपर उतने दूर पर नक्षत्रों का मण्डल स्थित है । उनसे दो लक्ष योजन की दूरी पर मंगल, उनसे उतनी दूर बुध, बुध से उतनी दूरी पर बृहस्पति, बृहस्पति से उतने दूर शुक्र, शुक्र से शनि, शनि से राहु और राहु से केतु उपरोक्त दो लाख की समान दूरी पर स्थित हैं । केतु से सात लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षियों का मण्डल अवस्थित है । इस प्रकार सभी ग्यारह लाख योजन की दूरी पर स्थित हैं और उनसे एक लाख योजन की दूरी पर धुव्र का स्थान, उससे लक्ष योजन पर महात्पद महात्पद से ऊपर लक्ष योजन पर जनपद, उस से ऊपर लक्ष योजन पर तप लोक स्थित है । इस भाँति कर्मभूमि से तपलोक आधे कोटि योजन की दूरी पर है । कर्मभूमि से एक लक्षयोजन की दूरी पर नीचे पाताल आदि लोक और उससे उतनी ही दूर नीचे नरक कुण्ड अवस्थित हैं, जो भूमि से आधे कोटि योजन पर कहा गया है । कर्मभूमि के उत्तर आठ खण्डों का निर्माण हुआ है—लवण सागर उसके अनन्तर द्वीप, उसके पश्चात् क्षीरसागर है इसी भाँति द्वीप सागर और पुनः द्वीप का निर्माण किया गया है, जो आधे कोटि लक्ष योजन की दूरी पर है । कर्मभूमि के चारों ओर लोकालोक नामक पर्वत अवस्थित है । विधे ! इन्हीं सब समुदायों का यह प्रख्यात ब्रह्माण्ड नाम है जो तुम्हारे द्वारा उत्पन्न होकर कल्प पर्यन्त सुस्थित रहेंगे।१९३-२०८। ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म द्वारा विष्णु की उत्पत्ति होती है, जो विष्णु, कृष्ण, एवं विराट् रूप से प्रख्यात होते हैं। वही विष्णु पुराण पुरुष आदि ब्रह्मा के नाम से प्रख्यात हैं, जिनकी चिरायु होती है । दिव्य दो सहस्र युग का उनका दिन रात होता है। इस विष्णु के रोमकूपों में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। ब्रह्मन् ! विष्णु मैं इस भूतल पर तुम्हारे

इत्युक्तवान्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा सृष्टिमचीकरत् । तेन प्रोक्तं यतो भाव्यं महाकल्पो हि स स्मृतः ॥२१४
भविष्यो नाम विख्यातो द्विसहस्रभवायुषः । पूर्वार्द्धश्च कूपरार्द्धश्च पुराणपुरुषस्यहि: ॥२१५
अष्टादशसहस्राणि कल्पाः पूर्वार्द्धके गताः । परार्द्धः साम्प्रतं ज्ञेयो जातं तस्य दिनद्वयम् ॥२१६
अद्याहं कूर्मकश्चैव वाह्ने मत्स्यः प्रकीर्तितः ।तृतीयः श्वेतवाराहो दिवसस्तस्य कल्पवान् ॥२१७
तथा मध्याह्नकालो हि साम्प्रतं वर्तते सुराः । भविष्याख्ये महाकल्पे कथा भाविष्यकैर्जनैः ॥२१८
कथिता ब्रह्मणश्चाग्रे शतकोटिप्रविस्तरैः । दशलक्षणसंयुक्तं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥२१९
महापुराणं कथितं पुराणं पञ्चलक्षणम् । पद्यत्रिंशत्सहस्रं च कल्पे कल्पे प्रकीर्तितम् ॥२२०
कल्पनाम्ना पुराणं च महादेवेन निर्मितम् । अष्टादशपुराणानि निर्मितानि शिवात्मना ॥२२१
द्वापरान्ते च भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः । तान्येव जनयामास लोकमङ्गलहेतवे ॥२२२

व्यास उवाच

इति कल्किवचः श्रुत्वा ते देवाः विस्मयान्विताः । नमस्कृत्य गमिष्यन्ति स्वं स्वं धाम प्रहर्षिताः ॥२२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

विघ्न के अपहरणार्थ स्थित हूँ । इतना कर विष्णु अन्तर्हित हो गये और ब्रह्मा ने सृष्टि करना आरम्भ किया । उन्होंने ही यह बताया है कि भावीकल्प भविष्यमहाकल्प के नाम से प्रख्यात होगा, जिसकी दो सहस्र वर्ष की आयु बतायी गयी है । पुराण पुरुष के पूर्वार्द्ध भाग द्वारा उत्पन्न अठारह सहस्र कल्पव्यतीत हो चुके हैं और इस समय वर्तमान परार्द्धभाग के भी दो दिन व्यतीत हो गये हैं । यहाँ कूर्म और अग्नि का मत्स्य, तथा तीसरा श्वेत वाराह नामक कल्प उसका दिवस रूप बताया गया है । सुरवृन्द ! इस समय उस भविष्य महाकल्प का मध्याह्न काल है, जिसकी कथा भावी जनों द्वारा निर्मित होकर ब्रह्मा के सम्मुख कही गयी है । वह महाकल्प सैकड़ों कोटि का विस्तृत और उन शतलक्षणों से अंकित है, जो सैकड़ों कोटि विस्तृत है, उसे ही महापुराण कहा गया है । पुराणों के पाँच लक्षण होते हैं और उसमें तीस सहस्र पद्य जो प्रत्येक कल्पों में विरचित होते हैं । कल्प नाम पुराण का है, जिसे महादेव जी ने स्वयं निर्मित किया है । इस प्रकार शिव जी ने अठारह पुराणों का निर्माण किया है, जिसे द्वापर युग के अन्तिम समय में सत्यवती पुत्र व्यास जी ने लोकों के हितार्थ उत्पन्न (दृष्टि गोचर) किया है ।

व्यास जी बोले—कल्कि देव की इस प्रकार की बातें सुनकर देवों को अत्यन्त विस्मय हुआ । अनन्तर वे नमस्कार करके अपने-अपने लोक चले जाँयेगे ।२०९-२२३

श्री भविष्य महापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

व्यास उवाच

तदा स भगवान्कल्किः पुराणपुरुषोद्भवः । दिव्यं वाजिनमारुह्य खड्गी वर्मी च चर्मधृक् ॥
म्लेच्छांस्तान्दैत्यभूतांश्च हत्वा योगं गमिष्यति ॥१
षोडशाब्दसहस्राणि तद्योगाग्निप्रतापिता । भस्मभूता कर्मभूमिर्निर्जीवा भविता तदा ॥२
ततोऽनुयोगं जनितो मेघो भूत्वा लयङ्करः । प्रलयाग्रेण सा भूमिर्जलमध्ये गमिष्यति ॥३
तदा कलियुगो घोरो बलिपार्श्वं गमिष्यति । गते कलियुगे घोरे कर्मभूमिं पुनर्हरिः ॥
कृत्वा स्थलमयीं रम्यां यज्ञैर्देवान्यजिष्यति ॥४
यज्ञभागमुपादाय देवास्ते बलसंयुताः । वैवस्वतं मनुं गत्वा कथयिष्यन्ति कारणम् ॥५
कल्किनो वदनाज्जातो ब्राह्मणो वर्ण एव हि । बाह्वोः क्षत्रं विशो जान्वोः शूद्रो वर्णस्तदङ्घ्रयोः ॥६
गौरो रक्तस्तथा पीतः श्यामस्ते ब्राह्मणादयः । देव्याः शक्तिं समादाय जनिष्यन्ति सुतान्बहून् ॥७
एकविंशत्किष्कुमिताः मनुजा धर्मरूपिणः । जातिधर्ममुपादाय यजिष्यंति सुरान्मुदा ॥८
तदा वैवस्वतो धीमान्नत्वा तं कल्किनं हरिम् । अयोध्यायां राजपदं करिष्यति तदाज्ञया ॥९

अध्याय २६

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय वर्णन

व्यास जी बोले—पुराण पुरुष द्वारा उत्पन्न कल्कि देव दिव्यअश्व पर सुशोभित होकर खड्ग, चर्म के धारण पूर्वक उन दैत्यरूप म्लेच्छों का हनन करेंगे । तदुपरांत योग समाधिनिष्ठ होकर सोलह सहस्र वर्ष तक तप करेंगे, जिससे उस योग द्वारा उत्पन्न अग्नि से यह कर्मभूमि भस्म हो जायगी । कर्मक्षेत्र के निर्जीव हो जाने पर उनके योग द्वारा प्रलयकारी मेघों की उत्पत्ति होगी, जिनके द्वारा प्रलय होने पर वह भूमि जल मध्य में विलीन हो जायगी । उस समय कलियुग बलिदैत्य के समीप चला जायगा । कलियुग के चले जाने पर भगवान् विष्णु पुनः इस कर्मभूमि (भारत भूमि) को सौन्दर्य पूर्ण स्थल बनाकर उस पर यज्ञों द्वारा देवों की पूजा करेंगे । उस यज्ञ भाग के ग्रहणपूर्वक बली होकर देवगण वैवस्वत मनु के समीप पहुँच कर उनसे समस्त कारण का वर्णन करेंगे । तदनन्तर कल्किदेव के मुख द्वारा ब्राह्मण वर्ण, भुजा द्वारा क्षत्रिय, जानु द्वारा वैश्य और चरणों द्वारा शूद्र वर्णों की उत्पत्ति होगी जो क्रमशः गौर, रक्त, पीत, एवं श्याम वर्ण के रहेंगे । वे ब्राह्मण आदि वर्ण के मनुष्य देवी शक्ति (स्त्री) को अपनाकर उनके द्वारा अनेक पुत्रों की सृष्टि करेंगे । वे मनुज धर्म वाले मनुष्य जो इक्कीस किष्कु[1] परिमाण के रहेंगे अपने-अपने जातीय धर्म के आलम्बनपूर्वक देवों की अर्चना आदि करेंगे । उस समय धीमान् वैवस्वत् मनु कल्किरूपी विष्णु के नमस्कार पूर्वक उनकी आज्ञा से अयोध्या के राजपद को विभूषित करेंगे ।१-९। उनकी शिक्षा-

तच्छिक्षातो भवेत्पुत्रो यः स इक्ष्वाकुरेव हि । पितू राज्यं पुरस्कृत्य भूमौ दिव्यं शतं समाः ।।
दिव्यवर्षशतायुश्च त्यक्त्वा देहं गमिष्यति ।।१०
यदा तु भगवान्कल्की ब्रह्मसूत्रं करिष्यति । तदा वेदाश्च चत्वारो मूर्तिमन्तश्च साङ्गकाः ।।
अष्टादशपुराणैश्च तत्रायास्यन्ति हर्षिताः ।।११
स्तोष्यन्ति कल्किनं देवं पुराणपुरुषांशकम् । कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां गुरुवासरे ।।१२
यज्ञकुण्डाच्च पुरुषो भविष्यति महोत्तमः । नाम्ना सत्ययुगो ज्ञेयः सत्य मार्गप्रदर्शकः ।।१३
दृष्ट्वा तं पुरुषं रम्यं तदा ब्रह्मादयः सुराः । तां तिथिं वर्णयिष्यन्ति कर्मक्षयकरीं मनो ।।१४
अस्यां तिथौ च मनुजो धातृवृक्षतटे मुदा । योऽर्चयिष्यति यान्देवान्देवास्ते तस्य वश्यगाः ।।१५
अक्षया नवमी नाम युगादिनवमी हि सा । लोकमङ्गलदात्री च सर्वकिल्बिषनाशिनी ।।१६
धातृमूलतले चैव मालतीं तुलसीं मुदा । संस्थाप्य वेदविधिना शालग्रामं यजन्ति ये ।।
जीवन्मुक्ताश्च ते ज्ञेया पितॄणां तृप्तिकारकाः ।।१७
धातृवृक्षतले गत्वा यो वै श्राद्धं करिष्यति । गयाश्राद्धसहस्रस्य लप्स्यते च फलं परम् ।।१८
यः करोति तथा होमं सहस्रमखसन्निभम् । मृतः सस्वर्गमाप्नोति सकुलः सपरिच्छदः ।।१९
इत्युक्ते वचने तेषां कल्की देवो मुदान्वितः । तथास्त्वित्येव वचनं वदिष्यति सुरान्प्रति ।।२०
इत्युक्त्वा भगवान्कल्की पश्यतां देवरूपिणाम् । तत्रैवान्तर्गतो भूत्वा सुषुप्तश्च भविष्यति ।।२१
गते तस्मिन्भगवति कर्मभूमिः सुदुःखिता । विरहाग्निमती भूत्वा बीजांस्तान्संक्षयिष्यति ।।२२

दीक्षा द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसका इक्ष्वाकु नाम होगा जो पृथ्वी पर अपने पिता के राज्य-भार का वहन करते हुए दिव्य सौ वर्ष का सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे और उसके पश्चात् आयु की समाप्ति में देह का परित्याग करेंगें । भगवान कल्कि जिस समय ब्रह्मसत्र नामक यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करेंगे उस समय उनके सेवा में चारों वेद एवं अठ्ठारहो पुराण मूर्तिमान होकर साङ्गोपाङ्ग वहाँ उपस्थित होंगे । अनन्तर कल्किदेव की जो पुराणपुरुषरूप हैं, आराधना करने पर कार्तिक शुक्ल नवमी गुरुवासर के समय उस यज्ञकुण्ड द्वारा एक महोत्तम पुरुष का आविर्भाव होगा, जो सत्ययुग के नाम से प्रख्यात एवं सत्यमार्ग के प्रदर्शक होगें । मन ! उस समय उस पुरुष को देखकर ब्रह्मादि देवगण उस तिथि को कर्मक्षय करने वाली बतायेंगे उस तिथि के दिन जो मनुष्य धातृ (आँवला) वृक्ष के नीचे प्रसन्नता पूर्वक देवों की अर्चना करेंगे, तो वे देवगण उनके वशीभूत हो जायेंगे । युग की आदि नवमी होने के नाते इसको अक्षय नवमी कहते हैं, जो लोक का मंगल करने वाली, एवं समस्त पापों को विनष्ट करती है । आँवले वृक्ष के नीचे मालती और तुलसी को स्थापितकर जो मनुष्य शालिग्राम देव की सविधान पूजा करते हैं, वे स्यवं जीवन्मुक्त होकर पितरों की तृप्ति करेंगे । आँवले वृक्ष के नीचे जो श्राद्ध करता है, उसे गयाश्राद्ध करने के फल प्राप्त होते हैं । जो उसके नीचे हवन करेंगे, उन्हें सहस्र यज्ञों के सुसम्मपन्न करने का फल प्राप्त होगा। १०-१९। और उसके नीचे मृतक प्राणी अपने साङ्ग सपरिवार समेत स्वर्ग की प्राप्ति करता है । उन देवों के इस प्रकार वर्णन करने पर कल्किदेव प्रसन्नतया उन्हें 'तथास्तु' कहकर देवों को प्रसन्न करेंगे और पश्चात् उन देवों के समक्ष कल्किदेव अन्तर्हित होकर पुनः (क्षीरसागर) में शयन करेंगे । भगवान् के चले जाने पर यह कर्मभूमि अत्यन्त दुःखी होकर उनके

तस्मिन्काले महादैत्याः पातालतलवासिनः । प्रह्लादं च पुरस्कृत्य गमिष्यन्ति सुरान्प्रति ।।२३
खरोष्ट्रगृद्ध्रमहिषकाककर्कसमास्थिताः । सिंहव्याघ्रवृकारूढाः शृगालश्येनवाहनः ।।२४
प्रासपट्टिशखड्गांश्च भुशुण्डीपरिघादिकान् । गृहीत्वा वेगवन्तस्ते गर्जिष्यन्ति पुनः पुनः ।।२५
तदा शक्रादयो देवास्त्रयस्त्रिंशद्गणा मुदा । स्वायुधानि गृहीत्वाशु करिष्यन्ति रणं महत् ।।२६
दिव्यवर्षमयं घोरं युद्धं तेषां भविष्यति । मृतान्मृतान्रणे दैत्यान्भार्गवो जीवयिष्यति ।।२७
श्रमभूतास्तथा देवास्त्यक्त्वा युद्धं समन्ततः । क्षीराब्धिं च गमिष्यन्ति यत्र साक्षाद्धरिः स्वयम् ।।२८
तेषां स्तुत्या स भगवान्देवमङ्गलहेतवे । स्वपूर्वार्द्धं स्वरूपं च करिष्यति सनातनः ।।२९
स च हंसो हरिः साक्षाच्छतसूर्यसमप्रभः । शुक्रं प्रह्लादप्रमुखान्स्तेजसा तापयिष्यति ।।३०
तदा पराजिता दैत्यास्त्यक्त्वा गां दुःखिता भृशम् । वितले च गमिष्यन्ति महादेवेन रक्षिताः ।।३१
पुनस्ते सकला देवा निर्भया निरुपद्रवाः । वैवस्वतस्य तनयं चाभिषेक्ष्यन्ति भूपदे ।।३२
दिव्यवर्षशतायुश्च स इक्ष्वाकुर्भविष्यति । वर्षाणां च प्रमाणेन नृणामायुश्चतुश्शतम् ।।३३
इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं मनो त्वया । चतुर्युगानां चरितं नृपाणां च पृथक् पृथक् ।।३४
चतुष्पादा हि धर्मस्य ज्ञानं ध्यानं शमो दमः । आत्मज्ञानं स वै ज्ञानं ध्यानमध्यात्मचिन्तनम् ।।
मनः स्थिरत्वं च शमो दमस्त्विन्द्रियनिग्रहः ।।३५
चतुर्लक्षाब्दकान्येव द्वात्रिंशच्च सहस्रकम् । तत्सङ्ख्यया हि धर्मस्य पादश्चैकः प्रकीर्तितः ।।३६

वियोगाग्नि से संतप्त होने पर बीजों को विनष्ट करेगी । उसी बीच पाताल निवासी महादैत्य-गण प्रह्लाद को आगेकर देवों से युद्ध करने के निमित्त अपने गधे, ऊँट, गीद। महिष, कौवे, केकहरा, सिंह, बाघ, भेडिया स्यार, बाज पक्षी आदि वाहनों पर बैठकर प्रास, पट्टिश, खड्ग, भुशुण्डि एवं परिघ आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर अत्यन्त वेग से वहाँ पहुँचकर बार-बार गर्जन करेंगे । उसे सुनकर इन्द्रादि देवगण अपने तैतीस गणों समेत अपने अस्त्रों को ग्रहणकर शीघ्र घोररण आरम्भ करेंगे, जो दिव्य वर्ष तक अनवरत चलता रहेगा । उस युद्ध में मृतक दैत्यों को शुक्र पुनः पुनः जीवित करेंगे । उसे देखकर श्रान्त देवगण पलायनकर क्षीरसागर पहुँचने का प्रबल प्रयास करेंगे, जहाँ साक्षात् विष्णुदेव शयन किये हैं । वहाँ पहुँचकर देवगण उनकी स्तुति करेंगे, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् उस समय लोक के कल्याणार्थ अपने पूर्वार्द्ध भाग द्वारा हंस का रूप धारण करेंगे, जो सनातन, एवं सूर्य के समान प्रखर तेज युक्त होगा । पश्चात् उस अपने तेज द्वारा शुक्र तथा प्रह्लाद आदि प्रमुख दैत्यों को संतप्त करेंगे, जिससे पराजित होकर दैत्यगण दुःख प्रकट करते हुए पृथ्वी के त्याग पूर्वक वितल लोक की यात्रा करेंगे । उस समय उनकी रक्षा महादेव जी करते रहेंगे । अनन्तर समस्त देवगण निर्भय होकर वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु का पृथ्वी के राजसिंहासन पर अभिषेक करेंगे । जो दिव्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त किये रहेंगे । मनु उस समय तदितर मनुष्यों की आयु चार सौ वर्ष की होगी । इस प्रकार मैंने तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर विस्तार पूर्वक सुना दिया, जो चारों युगों के मनुष्यों के पृथक् पृथक् चरित रूप हैं । धर्म के ज्ञान, ध्यान, श और दम ये चार चरण कहे गये हैं, जिनमें आत्मज्ञान को ज्ञान अध्यात्म चिन्तन करने को ध्यान, मन को सुस्थिर करने को शम और इन्द्रियों को वश में करने को दम कहा गया है। इस प्रकार चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष का धर्म

प्राह्णमध्याह्नसायाह्नं त्रिसन्ध्यं च भवेत्सदा । एकैकेन पदा तस्य दिराजो भुवि वर्तते ।।३७
यदा धर्मो भवेद्वृद्धस्तदायुश्चैव वर्द्धते । सप्तश्लोकसहस्राणि खण्डेऽस्मिन्कथितानि हि ।।
अतश्चोत्तरखण्डं हि वर्णयामि मनो शृणु ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे तृतीयं प्रतिसर्गपर्वचतुर्युगखण्डापरपर्यायं समाप्तम् ।।३।।

का एक चरण होता है, जिसमें पूर्वार्द्ध मध्याह्न सायाह्न रूपी तीन संध्याएँ होती हैं। इस भाँति भूतल पर एक चरण से वह सदैव वर्तमान रहता है। जिस समय धर्म की वृद्धि होती है उस समय प्राणियों की आयु भी बढ़ जाती है! मनु! इस खण्ट में मैंने सात सहस्र श्लोकों का वर्णन तुम्हें सुना दिया। अब इसके उपरांत उत्तरखण्ड का वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।२०-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

॥ भविष्य महापुराणम् ॥

(तृतीय खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

भविष्य महापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

उत्तर-पर्व

भविष्य महापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
पंडित बाबूराम उपाध्याय

शक : २०२५ **सन् : २००३**

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक :
विभूति मिश्र
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशन वर्ष : शक २०२५ सन् २००३

मूल्य : ३२५ रुपये मात्र

फोटो कम्पोजिंग : मनोज ऑफसेट

मुद्रक
दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स (प्रा०) लि०
२५५, चक, जीरो रोड, इलाहाबाद
दूरभाष - २४००२४३

आवरण-सज्जा : कृष्णकुमार मित्तल

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के 'प्राण' स्वनामधन्य स्व० राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी द्वारा प्रवर्तित 'पुराण प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत सम्मेलन के पूर्व प्रधानमंत्री स्व० डॉ० प्रभात शास्त्री ने पुराणों के स्तरीय प्रकाशन का जो शिवसंकल्प लिया था, उसके परिणामस्वरूप अद्यावधि पर्यन्त ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, मार्कण्डेय, बृहन्नारदीय, वायु, मत्स्य, कूर्म, स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड तथा भविष्यपुराण के दो खण्ड (ब्राह्मपर्व, मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व) का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। भविष्यमहापुराण की पाण्डुलिपि एवं परिष्कृत भूमिका गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी द्वारा उपलब्ध करायी गयी थी, जिनके प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

'भविष्यपुराण' प्रकाशन की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है। भविष्यपुराण के दो भागों के प्रकाशित हो जाने के बाद तीसरा खण्ड (उत्तर-पर्व) आपके समक्ष प्रस्तुत है।

ग्रन्थ के सुष्ठु एवं स्तरीय प्रकाशन हेतु आचार्य रुद्रप्रसाद मिश्र, डॉ० शेषनारायण शुक्ल एवं शेषमणि पाण्डेय जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आकर्षक आवरण एवं सुन्दर मुद्रण हेतु इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स (प्रा०) लि० एवं मनोज ऑफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्णकुमार मित्तल एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति भी आभारी हूँ।

सम्प्रति भविष्यपुराण का 'उत्तर-पर्व' आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव आह्लाद हो रहा है। विश्वास है, यह पुराण सुधीजनों द्वारा समादृत एवं जन-उपयोगी सिद्ध होगा।

राम नवमी
संवत् २०६०

विभूति मिश्र
प्रधानमंत्री

विषयानुक्रमणिका

उत्तर-पर्व

भविष्यपुराणम् – उत्तरपर्व

।। श्री गणेशाय नमः ।।

।। श्रीसरस्वत्यै नमः ।। ।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।।

भविष्यमहापुराणम्

उत्तरपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासागमनवर्णनम्

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ।।१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ।।२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय क्लेशौघच्छिदुरपदपद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ।।३

अध्याय १

व्यास के आगमन का वर्णन

वह गणपति देव तुम्हें कल्याण प्रदान करें, जिनके असन्तुष्ट हो जाने पर शक्ति कुण्ठित होने के कारण ब्रह्मा छोटे कार्य की भी पूर्ति करने में असमर्थ ही रह जाते हैं और जिसके चरणकमल की सेवा का सौभाग्य भाग्यशाली प्राणी सदैव किया करते हैं । अतः मैं भी उनकी सेवा के लिए सचेष्ट हूँ, क्योंकि उसी चरण-सेवा के फल स्वरूप समस्त विश्व में देवराज इन्द्र की राजलक्ष्मी की अतुलनीय ख्याति हुई है। ब्रह्मा की उस जिह्वा रूप पवित्र सिंहासन पर सदैव सुशोभित होने वाली वागधिदेवता सरस्वती तुम्हें अत्यन्त कल्याण प्रदान करती रहे, जिसके चरण की कोमल अंगुलियों के नखों की स्वच्छ किरणों द्वारा अत्यन्त बढ़ा हुआ वह शब्द ब्रह्म रूप अमृत सागर विद्वानों के मन में स्वच्छन्द हिलोरें लेता रहता है। १-२। उस शिव (कल्याण) मूर्ति को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करना अपना स्वभाव ही बना लिया है, जिसका चरणकमल सदैव विघ्न व्यूहों को नष्ट करता है, और निरन्तर तेजी से होने वाली उस स्वच्छन्द एवं अत्यन्त प्रख्यात विश्व लीला रूप (विराट्) शरीर धारण किये हैं तथा जिसकी तत्व स्थिति का वर्णन करने में वेदवाणी भी असमर्थ रहती है। ऐसे गणाधिदेव मेरी रक्षा करें। जिनके कपोल के ऊपर स्वच्छ

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भविष्यमहापुराणम्

उत्तरपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासागमनवर्णनम्

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय क्लेशौघच्छिदुरपदपद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ॥३

अध्याय १

व्यास के आगमन का वर्णन

वह गणपति देव तुम्हें कल्याण प्रदान करें, जिनके असन्तुष्ट हो जाने पर शक्ति कुण्ठित होने के कारण ब्रह्मा छोटे कार्य की भी पूर्ति करने में असमर्थ ही रह जाते हैं और जिसके चरणकमल की सेवा का सौभाग्य भाग्यशाली प्राणी सदैव किया करते हैं । अतः मैं भी उनकी सेवा के लिए सचेष्ट हूँ, क्योंकि उसी चरण-सेवा के फल स्वरूप समस्त विश्व में देवराज इन्द्र की राजलक्ष्मी की अतुलनीय ख्याति हुई है। ब्रह्मा की उस जिह्वा रूप पवित्र सिंहासन पर सदैव सुशोभित होने वाली वागधिदेवता सरस्वती तुम्हें अत्यन्त कल्याण प्रदान करती रहे, जिसके चरण की कोमल अंगुलियों के नखों की स्वच्छ किरणों द्वारा अत्यन्त बढ़ा हुआ वह शब्द ब्रह्म रूप अमृत सागर विद्वानों के मन में स्वच्छन्द हिलोरें लेता रहता है।१-२। उस शिव (कल्याण) मूर्ति को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करना अपना स्वभाव ही बना लिया है, जिसका चरणकमल सदैव विघ्न व्यूहों को नष्ट करता है, और निरन्तर तेजी से होने वाली उस स्वच्छन्द एवं अत्यन्त प्रख्यात विश्व लीला रूप (विराट्) शरीर धारण किये हैं तथा जिसकी तत्व स्थिति का वर्णन करने में वेदवाणी भी असमर्थ रहती है। ऐसे गणाधिदेव मेरी रक्षा करें। जिनके कपोल के ऊपर स्वच्छ

यस्य[१] गण्डतले भाति विमला षट्पदावली । अक्षमालेव विमला स नः पायाद्गणाधिपः ।।४
ॐ नमो वासुदेवाय सशार्ङ्गाय सकेतवे । सगदाय सचक्राय सशङ्खाय नमो नमः ।।५
नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे । सवृषाय सशूलाय सकपालाय सेन्दवे ।।६
शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् । चित्रभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ।।७
छत्राभिषिक्तं धर्मज्ञं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । द्रष्टुमभ्यागता हृष्टा व्यासाद्या परमर्षयः ।।८
मार्कण्डेयः समाण्डव्यः शाण्डिल्यः शाकटायनः । गौतमो गालवो गार्ग्यः शातातपपराशरौ ।।९
जामदग्न्यो भरद्वाजो भृगुर्भागुरिरेव च । उत्तङ्कः शङ्खलिखितौ शौनकः शाकटायनिः ।।१०
पुलस्त्यः पुलहो दाल्भ्यो बृहदश्वः सलोमशः । नारदः पर्वतो जह्नुरपावसुपरावसू ।।११
तानृषीनागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान् । भक्तिमान्भ्रातृभिः सार्द्धं कृष्णधौम्यपुरःसरः ।।१२
युधिष्ठिरः संप्रहृष्टः समुत्थायाभिवाद्य च । अर्घ्यमाचमनं पाद्यमासनानि स्वयं ददौ ।।१३
उपविष्टेषु तेष्वेव तपस्विषु युधिष्ठिरः । विनयावनतो[२] भूत्वा व्यासं वचनमब्रवीत् ।।१४
भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं राज्यं महन्मया । विक्रम्य निहतः संख्ये सानुबन्धः सुयोधनः ।।१५
सरोगस्य यथा भोगः प्राप्तोऽपि न सुखावहः । हत्वा ज्ञातींस्तथा राज्यं न सुखं प्रतिभाति मे ।।१६

रुद्राक्ष की माला की भाँति भ्रमर पंक्तियाँ सुशोभित होती रहती हैं । ओंकार रूप वासुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ, जो धनुष, ध्वजा, गदा, चक्र, एवं शंख से सुसज्जित रहते है । उसी भाँति शिव जी को नमस्कार कर रहा हूँ ! जो अपने वृष (बैल), त्रिशूल, कपाल एवं चन्द्रमा से सदैव सुसज्जित रहते हैं । इस प्रकार मैं शिव जी का ध्यान, विष्णु की स्तुति, और चित्रभानु नामक सूर्य समेत लोक पितामह ब्रह्मा को प्रणाम करके इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कर रहा हूँ ।३-७। (राजचिह्न) मंत्र एवं चामरों से विभूषित, धर्मज्ञाता, एवं धर्मपुत्र युधिष्ठिर को देखने के लिए व्यास आदि श्रेष्ठ ऋषियों का आगमन हुआ जिसमें मार्कण्डेय, माण्डव्य, शाण्डिल्य, शाकटायन, गौतम, गालव, गार्ग्य, शातातप, पराशर, परशुराम, भरद्वाज, भृगु, भागुरि, उत्तंक, शंख, लिखित, शौनक, शाकटायनि, पुलस्त्य, पुलह, दाल्भ्य, वृहदश्व, लोमश, नारद, पर्वत, जह्नु, अपावसु, और परावसु नामक ऋषिगण सम्मिलित थे । उस समय उन आये हुए ऋषियों को जो वेद एवं वेदाङ्गों के धर्मज्ञ विद्वान् थे, देखकर भक्तिमान् युधिष्ठिर ने सिंहासन से उतरकर अपने भाइयों समेत अत्यन्त हर्षित होते हुए कृष्ण और धौम्य को आगे कर उन ऋषियोंका शुभ समेत अभिवादन स्वागत किया। पश्चात् स्वयं प्रदत्त यथोचित आसन पर आसीन कराकर उन्हें अर्घ्य, आचमन एवं पाद्य (हाथ मुख चरण के प्रक्षालनार्थ जल) प्रदान किया। उन तपस्वियों के अपने आसनों पर श्रान्त होने पर युधिष्ठिर ने विनम्र होकर व्यास जी से कहा—भगवन् ! आपकी कृपा द्वारा ही मुझे इस महान् राज्य की प्राप्ति हुई है, जो युद्ध में पराक्रम द्वारा बन्धु समेत सुयोधन के निधन होने पर प्राप्त हुआ है।८-१५। किन्तु रोगी प्राणी को भोग की प्राप्ति सुख कर न होने की भाँति मुझे भी अपने कुल के नाश

---

१. 'यस्य' इत्यारम्य—'छत्राभिषिक्तम्' इत्यतः प्राक्तनः पाठ एकस्मिन्पुस्तकेऽधिकोऽस्ति ।
२. विनयप्रणतः—इ०पा० ।

यत्सुखं पावनं प्रीतिर्वनमूलफलाशिनाम् । प्राप्य गां च हतारातिं न तदस्ति पितामह ॥१७
यो नो बन्धुर्गुरुर्गोप्ता सदा शर्म च वर्म च । स मया राज्यलोभेन भीष्मः पापेन घातितः ॥१८
अविवेकमहं धास्ये मनो मे पापपङ्किलम्[1] । क्षालयित्वा तव गिरा बहुदर्शितवारिणा ॥१९
संश्रुतानि पुराणानि वेदास्सांगा मया विभो । ममाद्य धर्मसर्वस्वं प्रज्ञादीपेन[2] दर्शय ॥२०
एते सधर्मगोप्तारो मुनयः समुपागताः । पिबन्तो नेत्रभ्रमरैर्भवतो मुखपङ्कजम् ॥२१
अर्थशास्त्राणि यावन्ति धर्मशास्त्राणि यानि वै । श्रुतानि सर्वशास्त्राणि भीष्माद्भागीरथीसुतात् ॥२२
स्वर्गं गते शान्तनवे भवान्कृष्णोऽथ यादवः । सुहृत्त्वाद्बन्धुभावाच्च नान्यः शिक्षयिता मम ॥२३
सत्यं[3] सत्यवतीसूनुर्द्धर्मराजाय वक्ष्यति । विशेषधर्मानखिलान्मुनीनामविशेषतः ॥२४

व्यास उवाच

यदाख्येयं तदाख्यातम् मया भीष्मेण तेऽनघ । मार्कण्डेयेन धौम्येन लोमशेन महर्षिणा ॥२५
धर्मज्ञो ह्यसि मेधावी गुणवान्प्राज्ञसत्तमः । न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्धर्माधर्मविनिश्चये ॥२६
पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने । कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र सम्परिवर्तते ॥२७

करने के नाते यह राज्य सुखकर नहीं दिखाई दे रहा है। पितामह ! वन में कन्द मूल खाकर जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों को जिस सुख एवं पावन प्रीति की प्राप्ति होती है, वह शत्रुओं के समूल नष्ट होने पर प्राप्त हुए राज्य से नहीं मिल सकता है। मैं ऐसा पापी था कि राज्य लोभ के कारण मैंने उन भीष्म की हत्या की जो मेरे बन्धु, गुरु, रक्षक, सदैव कल्याणेच्छुक एवं कवच की भाँति दुर्भेद्य आचरण के थे। मैं महान् अविवेकी हो गया हूँ, मेरा मन पाप कीचड़ में एकदम ओतप्रोत हो गया है । यद्यपि आपकी वाणी रूप जल से जिसमें अनके भाँति से तत्त्व को हृदयंगम करना बताया गया है, इस मन को शुद्ध कर पुराणों एवं अंगों समेत वेदों के श्रवण मैंने अनेक बार किये हैं, किन्तु विभो ! आज अपने ज्ञानद्वीप द्वारा धर्म सर्वस्व के दर्शन करायें। १६-२०। ये समस्त ऋषिगण भी जो धर्म के योद्धा हैं, अपने नेत्र रूपी भ्रमरों द्वारा आपके मुख कमल का रसास्वादन कर रहें हैं। समस्त अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, और इतर सभी शास्त्रों का मैंने भागीरथी (गङ्गा) के पुत्र भीष्म द्वारा श्रवण किया है। किन्तु शान्तनु पुत्र भीष्म के स्वर्गीय हो जाने पर मित्र एवं बन्धु होने के नाते यादव श्रेष्ठ कृष्ण ही मेरे शिक्षक हैं अन्य कोई नहीं। पश्चात् सत्यवती पुत्र व्यास धर्मराज के लिए समस्त धर्मों की विशेष व्याख्या करेगे, विशेष कर मुनियों के लिए भी। २१-२४

व्यास जी बोले—अनघ ! मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसकी व्याख्या भीष्म द्वारा आप पहले सुन चुके है। तथा मार्कण्डेय, धौम्य, और लोमश ऋषि ने भी उसकी व्याख्या की है । आप धर्म-मर्मज्ञ बुद्धिमान् गुणवान्, एवं विशिष्ट विद्वान् हैं इसलिए धर्माधर्म का निश्चय आपसे अविदित नहीं है। तथापि धर्मप्रिय होने के नाते रहते समय जो केशव, और केशि (राक्षस) संहर्ता कहे जाते हैं, कहने के लिए

---

१. पापशंकितम् । २. ज्ञानदोषेन । ३. सेव्यः ।

कर्ता पालयिता हर्ता जगतां यो जगन्मयः । प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य धर्मान्विक्ष्यत्यसौ तव[1] ।।२८

समादिश्येतिकर्तव्यं भगवान्बादरायणः । पूजितः पाण्डुतनयैर्जगाम स्वतपोवनम् ।।२९

स्वाभाष्य भारतविधातरि सम्प्रयाते ते कौतुकाकुलधियो मुनयः प्रशान्ताः ।

किम् पृच्छति क्षपितभारतलोकशोकः[2] किं वक्ष्यतीह भगवान्यदुवंशवीरः ।।३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि व्यासागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्य प्रतिष्ठा निर्दिष्टा को हेतुः किं परायणम् । कस्मिन्नैतल्लयं याति कस्माद्‌दुत्पद्यते जगत् ।।१

कति द्वीपाः समुद्राश्च[3] कियंतो हि कुलाचलाः । कियत्प्रमाणमवनेर्भुवनानि कियन्ति च ।।२

किसकी जिह्वा अग्रसर हो सकती है। वे जगत् के कर्ता, रक्षक, अपहर्ता हैं इसलिए वही प्रत्यक्षदर्शी समस्त धर्मों की व्याख्या पूर्वक दिग्दर्शन करायेंगे, अच्छा अब आज्ञा प्रदान कीजिये। इतना कहकर भगवान् वादरायण व्यास जी पाण्डुपुत्रों द्वारा पूजित होने के उपरांत तपोवन चले गये। इस प्रकार विवेचन पूर्वक कहकर उन भारत भाग्यविधाता व्यास के चले जाने के उपरांत शान्तचित्त कैसे हुए उन ऋषियों के बीच जिनके मन से सुनने के लिए लालायित हैं, भारत के शोकापहरण करने वाले युधिष्ठिर ने क्या प्रश्न किया ? और वीर यदुवंशीय भगवान् कृष्ण ने उसका किस प्रकार समाधान किया।२५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में व्यास का आगमन वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त।१।

अध्याय २

ब्रह्माण्डोत्पत्ति का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—इस विश्व में किसकी प्रतिष्ठा सदैव स्थित रहती है, संसार होने का कारण कौन है, उत्पन्न होकर वह अपनाता किसे है, और इस जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय किसमें होना है। उस प्रकार द्वीप, समुद्र, पर्वत कितने हैं, पृथ्वी का प्रमाण क्या है, और इसमें कितने भुवन हैं।१-२

---

१. धर्मतत्त्वार्थकोविदः। २. दुःखितलोकशोक। ३. च वार्ष्णेय।

श्रीकृष्ण उवाच

पौराणश्चैव विषयो यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ । श्रुतोऽनुभूतश्च मया संसारे सरता[1] चिरम् ।।३
अजाय विश्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने । नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ।।४
अत्र ते वर्णयिष्यामि शृणु पार्थ पुरातनम् । याज्ञवल्क्येन मुनिना भविष्यं भास्वतां पतिः ।।
पृष्टो यदुत्तरं प्रादादृषिभ्यस्तन्मया श्रुतम् ।।५
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वाशुभविनाशनम् । भविष्योत्तरमेतत्ते कथयामि युधिष्ठिर ।।६
एकात्मकं[2] त्रिदैवत्यं चतुःपञ्चसुलक्षणम् । गुणकालादिभेदेन सदसत्सम्प्रदर्शितम् ।।७
एक एव जगद्योनिः प्रतियोनिषु संस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।।८
ब्रह्मा विष्णुर्वृषाङ्कश्च त्रयो देवाः सतां[3] मताः । नामभेदैः क्रियाभेदैर्भिद्यन्ते नात्मना स्वयम् ।।९
प्रक्रिया चानुषङ्गश्च उपोद्धातस्तथैव च । उपसंहार इत्येतच्चतुष्पादं प्रकीर्तितम् ।।१०
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।११
एष वक्तव्यविषयः समुहान्प्रतिभाति मे । तथाप्युद्देशतो वच्मि सर्गं प्रति तवानघ ।।१२
महदादिविशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । पञ्चप्रमाणं षट्कक्षं पुरुषाधिष्ठितं जगत् ।।१३
अव्यक्ताज्जायते बुद्धिर्महानिति च सा स्मृता । अहङ्कारस्तु महतस्त्रिगुणः स च पठ्यते ।।१४

श्रीकृष्ण बोले—अनघ ! आप ने जो कुछ पूँछा है, वह सब पुराणों का विषय है जिसका अनुभव इस संसार में रहते हुए मैंने बहुत दिनों से किया है, और लोक शास्त्र से सुना भी है । उस भगवान् वासुदेव को, अजन्मा, विश्वरूप (विराट्), निर्गुण, एवं सगुण और ब्रह्मा रूप है। पार्थ ! इस विषय के उत्तर में एक पुरातन इतिहास का वर्णन, जिसे सूर्य के पूछने पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा था, मैं कर रहा हूँ, सुनो ! उसे मैंने और ऋषियों ने भी सुना है। युधिष्ठिर ! उस धन्य, यशस्वी, आयुवर्द्धक और शुभ-अशुभ के विनाशक इतिहास का भविष्योत्तर नाम है, जिसमें मैं कह रहा हूँ। वही एक (ब्रह्म) सदैव स्थित रहता है एक आत्मा है, जो तीनों प्रधान देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) के रूप में रहकर चार-पाँच लक्षणों से युक्त होता है, और गुण एवं कालादि भेद से वही सदा असत् प्रदर्शित किया गया है। वही एक विश्व का कारण है, जो उनके योनियों में स्थित रहकर जल में एक चन्द्र के उनकों चन्द्र दर्शन की भाँति दिखाई देता रहता है।३-८। ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर यही तीनों सनातन प्रधान देव हैं, जो अपने नाम और क्रिया द्वारा स्वयं पृथक-पृथक् मालूम होते हैं। प्रक्रिया, अनुषङ्ग (आकस्मिकता), उपोद्धात, और उपसंहार नामक उसके चार चरण बताये गये हैं, तथा सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश चरित्र यही उस (ब्रह्म) पुराण के पाँच लक्षण कहे गये हैं। अनघ ! यद्यपि मेरी दृष्टि में यह वक्तव्य विषय अत्यन्त महान् दिखाई दे रहा है, तथापि उद्देश्य के अनुसार सर्ग वर्णन मैं प्रारम्भ कर रहा हूँ, जिसमें महदादि से लेकर विशेष तक बताया गया है, और वही रूप एवं लक्षण भी है। पाँचों प्रमाण और छः कक्षा वाले इस ब्रह्माण्ड का वह अव्यक्त पुरुष अधिष्ठाता है, जिससे सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे महान् भी कहा गया है। उस

---

१. चरता मया । २. सर्वात्मकम् । ३. सनातनाः ।

तन्मात्राणि च पञ्चाहुरहङ्काराच्च सात्त्विकात्[1] । जातानि तेभ्यो भूतानि भूतेभ्यः सचराचरम् ॥१५
जलमूर्तिमये विष्णौ नष्टे स्थावरजङ्गमे । भूतात्मकमभूदण्डं महत्तदुदकेशयम् ॥१६
सृष्टया[2] शक्त्या च निर्भिन्नं तदण्डमभवद्द्विधा । भूकपालमथैकं तद्द्वितीयमभवन्नभः ॥१७
उल्बं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः । नद्यो धमन्यःसञ्जाताः क्लेदः सर्वत्रगं[3] पयः ॥१८
योजनानां सहस्राणि षोडशाधः प्रतिष्ठितः । उत्सेधे [4]चतुराशीतिर्द्वात्रिंशदूर्ध्वविस्तृतः ॥
भूमिपङ्कजविस्तीर्णा कर्णिका मेरुरुच्यते ॥१९
आदित्यश्चादिदेवत्वात्तत्राभूत्त्रिगुणात्मकः । प्रातः प्रजापतिरसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यते ॥
रुद्रोऽपराह्णसमये स एवैकस्त्रिधामतः ॥२०
प्रातः प्रजापतेर्जाता मुनयो नव मानवाः[5] । मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वशिष्ठ इत्यष्टौ नारदो नवमः स्मृतः ॥२१
नव ब्रह्माण इत्येष पुराणे निश्चयः स्मृतः । अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षः सञ्जज्ञे कमलोद्भवात् ॥२२
वामा प्रसूतिरुदगादङ्गुष्ठात्तौ च दम्पती । ताभ्यां जातास्तु तनया हर्यश्वास्ते विनाशिताः ॥
सृष्टिं प्रति समुद्युक्ता नारदेन महात्मना ॥२३
दक्षः क्षीणान्सुतान्वीक्ष्य जनयामास कन्यकाः । पञ्चाशद्दश विख्याताः सत्याद्या नामभिः स्मृताः ॥२४
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥२५

महान् द्वारा तीनों युक्त अहंकार और उस सात्त्विक अहंकार द्वारा पाँच तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है जिससे पाँच (आकाशादि) भूतों एवं उन भूतों द्वारा इस चराचरमय जगत् की (उत्पत्ति) होती है। जल मूर्तिमय विष्णु में इस स्थावर जंगम रूप जगत् के विलीन होने पर वह भूतात्मक, महदण्डक् उदक में शयन किये एवं सृष्टि-शक्ति से निर्भिन्न है, दो भागों में विभक्त होकर एक भाग से भू कपाल और दूसरे से आकाश होता है।९-१७। इसका उल्व (गर्भावरण झिल्ली) मेरु और जरायु (गर्भाशय) पर्वत, धमनियाँ (नाड़ियाँ) नदी, एवं क्लेद जल है, वह सोलह सहस्र योजन नीचे चौरासी सहस्र योजन उन पर प्रतिष्ठित है, जो ऊपर बत्तीस सहस्र योजन विस्तृत हैं। इस पृथ्वी रूपी कमल के विकसित होने पर उसकी कर्णिका मेरु हुआ है। उस स्थल में आदि देव होने के नाते आदित्य भगवान् त्रिगुणात्मक रूप धारण करते हैं—प्रातः काल प्रजापति, मध्याह्न में विष्णु, और अपराह्ण समय में रुद्र रूप अवस्थित होता है। इस प्रकार वह एक (ब्रह्म) होते हुए तीन भागों में विभक्त होता है। उन प्रातःकालीन प्रजापति द्वारा नव महर्षियों के जन्म हुए, जिनके मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, और नारद नाम है इस प्रकार पुराणों में इन नव महर्षियों को ब्रह्मा रूप बताया गया है। ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से दक्ष और उनकी पत्नी प्रसूति का जन्म हुआ है। पुनः उस दम्पत्ति के द्वारा हर्यश्व आदि के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जो सृष्टि के लिए समुत्सुक महात्मा नारद द्वारा विनष्ट हो गये। उस समय अपने पुत्रों को क्षीण देखकर दक्ष ने सत्या आदि नामक पचास कन्याओं की उत्पत्ति की। अनन्तर उन्होंने उनमें से दश कन्याएँ धर्म के लिए तेरह कश्यप जी के लिए दो काल के लिए, सत्ताईस

---

१. साक्षिकात्। २. सृष्टशक्त्या। ३. सर्वगतम्। ४. मुखविस्तृतः। ५. मानसाः।

द्वे प्रादाद्बाहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय चैव हि । रूपयौवनशालिन्यश्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।।२६
एकां भृगोर्भवायैकां प्रादात्तेभ्यश्चराचरः । अभवत्पुरुषव्याघ्र भूतग्रामश्चतुर्विधः ।।२७
वैराजमथ वैकुण्ठं कैलासमिति नामतः । मेरोः शृङ्गत्रयं मूर्ध्नि ब्रह्मविष्णुशिवालयम् ।।२८
प्राचीदिक्क्रमयोगेन तेषाम् पार्श्वे पुरः स्मृताः । इन्द्रादिलोकपालानां दिव्यैः स्वर्लक्षणैर्युताः ।।२९
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च । नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी जम्बूद्वीपे कुलाचलाः ।।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन सहस्रगुणितं शतम् ।।३०
भिद्यते नवधा सोऽपि वर्षभेदेन भारत । जम्बूशाककुशक्रौञ्चशाल्मगोमेदपुष्कराः ।।
द्वीपाः सप्त समाख्याताः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ।।३१
क्षारक्षीरेक्षुसुरया दध्ना चैव घृतेन च । स्वादूदके न च भृतैर्द्विगुणैर्द्विगुणैस्तथा ।।३२
भूर्लोकोऽथ भुवर्ल्लोकः स्वर्महर्ज्जन इत्यपि । तपः सत्यश्च कथिताः पार्थ सप्त सुरालयाः ।।३३
महातलो भूमितलः सुतलो वितलस्ततः । रसातलश्च विज्ञेयः सप्तमश्च तलातलः ।।३४
हिरण्याक्षप्रभृतयो दानवेन्द्रा महोरगाः । वसंत्येतेषु कौन्तेय सिद्धाश्च ऋषयश्च ये ।।३५
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषोऽभवत् । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषेति षट् ।।३६
वैवस्वतोऽयमधुना वर्तते मनुरुत्तमः । यस्य पुत्रैः प्रपौत्रैश्च विभक्तेयं वसुन्धरा ।।३७
आदित्या वसवो रुद्रा एकादश तथाश्विनौ । उषस्त्रयः समाख्याता देव वैवस्वतेऽन्तरे ।।३८

चन्द्रमा के लिए प्रदान किया । उसी प्रकार बहुपुत्र के लिए दो, कृशाश्व के लिए दो अरिष्टनेमि के लिए रूप यौवन सम्पन्न चार, भृगु और शिव के लिए एक-एक कन्याएँ प्रदान की जिससे चराचर मय इस जगत् का निर्माण हुआ । पुरुषव्याघ्र ! इस लोक में प्राणि समूहों की चार प्रकार से सृष्टि हुई है । प्रधान देव ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर के वैराज, वैकुण्ठ, तथा कैलास नामक लोक मेरु के तीनों शिखर पर अवस्थित हैं, जो पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से वे स्थान उन लोगों के सम्मुख ही है । इन्द्रादि लोकपालों के लिए स्वर्ग आदि दिव्य लक्षणों से युक्त हैं हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत, और भृङ्गी नाम कुलाचल पर्वतगण स्थानरूप में उस जम्बूद्वीप में नियुक्त हैं, जो द्वीप एक लक्ष के प्रमाण में स्थित हैं । उसी का वर्ष भेद से नव भाग किया है, जिसमें प्रथम भारत वर्ष है । इस प्रकार जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शालमलि, गोमेद, और पुष्कर नामक सात द्वीपों का निर्माण किया गया है, जो अपने चारों ओर सातों समुद्रों से क्रमशः आवृत (घिरे हुए) हैं । उन समुद्रों के क्रमशः क्षार, क्षीर, इक्षु (ईख), सुरा, दधि, घृत और स्वादपूर्ण जल नाम हैं, जो उत्तरोत्तर एक दूसरे से दुगुने विस्तृत एवं गम्भीर हैं । पार्थ ! भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक देवों के आवास स्थान हैं, उसी प्रकार महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल, और तल एवं अतल लोक ।१८-३४। हिरण्याक्ष आदि दानवेन्द्रों एवं महासर्पों के आवास स्थान हैं । कौन्तेय ! इसी लोको में सिद्ध तथा ऋषिगण भी निवास करते हैं। मनुगणों में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु, पश्चात् क्रमशः स्वारोचिषु, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, और सातवें वैवस्वत मनु हैं, जो इस समय वर्तमान अधिकारी हैं । इनके वंश के पुत्रों प्रपौत्रों द्वारा यह वसुन्धरा विभक्त की गयी है । इस वैवस्वत मनु के समय में आदित्य, वसु, एकादश और अश्विनी कुमार

विप्रचित्तिहिरण्याख्यौ दैत्यदानवसत्तमौ । तयोर्वंशे तु बहवो दैत्यदानवसत्तमाः ।।३९
पञ्चाशद्गुणितकोटियोजनानां महत्तया । सप्तद्वीपसमुद्रायाः प्रमाणमवनेः स्मृतम् ।।४०
पिण्डेन च सहस्राणि सप्ततिर्जलमध्यतः । गौरिवैषा सुमहती भ्राजते न च लीयते ।।४१
लोकालोकः परतरः पर्वतोऽग्रमहोच्छ्रयः । द्वैतमर्थं स नियतो योऽसौ रविरुचामपि ।।४२
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः । नित्यश्चतुर्थो विज्ञेयः कालो नित्यापहारकः ।।४३
उत्पद्यते स्वयं यस्मात्तत्तस्मिन्नेव लीयते । रक्षति च परे पुंसि भूतानामेष निश्चयः ।।४४
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ।।४५
प्रतिलीनेषु भूतेषु विबुद्धः सकलं जगत् । वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ।।४६
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मानृतानृते । ते तं विना प्रपद्यन्ते पुनस्तेष्वेव कर्मसु ।।४७
भूर्दशगुणेन पयसा संवृता तच्च तेजसा । तेजोऽनिलेन नभसा तद्गुणेनानिलो वृतः ।।४८
भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महतावृतः । महान्परिवृतस्तेन पुरुषेणाविनाशिना ।।४९
एवं विधानामण्डानां सहस्राणि शतानि च । उत्पन्नानि विनष्टानि भावितानि महात्मना ।।५०
वैकुण्ठकोष्ठगतमेतदशेषतायां ख्यातं[1] जगत्सुरनरोरगसिद्धनद्धम् ।
पश्यन्ति शुद्धमुनयो बहिरन्तरे च माया चराचरगुरोरपरैव काचित् ।।५१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरे पर्वणि ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

एवं तीनों उप प्रख्यात देव हैं । उसी भाँति विप्रचित्त और हिरण्याक्ष नामक दो दैत्य दानव हैं, जिनके बहु संख्यक दैत्य दानव राज हैं । सातों द्वीप और सातों समुद्र समेत इस पृथ्वी का प्रमाण पचास करोड़ योजन है, जो जल के मध्य भाग में गौ की ही भाँति पिंड रूप में, जो सत्तर सहस्र का है, सुशोभित है । अत्यन्त महान् होने पर भी वह उस जल में विलीन नहीं होती है । लोकालोक नामक पर्वत सबसे श्रेष्ठ एवं अत्यन्त ऊँचा है, वही द्वैत (देव विभाग) करने के लिए अवस्थित है । वही सूर्य की किरणों का नैमित्य निमित्तक, प्राकृतिक, एवं आत्यन्तिक लय स्थान है, इसलिए उसे नित्य अपहरण करने वाला काल भी कहा जाता है । प्राणियों का यह निश्चित नियम है कि जिससे उनकी उत्पत्ति होती है, उसी में विलीन भी होते हैं और उसी सर्वश्रेष्ठ पुरुष में प्रतिष्ठित रहकर सुरक्षित होते हैं जिस प्रकार ऋतुओं में विवर्दय के समय उनके लिङ्ग अनेक रूप धारण करते दिखायी देते हैं उसी भाँति युगादि काल में उनके भाव भी उस रूप में प्रत्यक्ष होते हैं । जीव समूहों के प्रलय होने के उपरांत पुनः समस्त जगत् चेतना प्राप्त करता है । आदि काल में सर्वप्रथम वेद शब्दों के द्वारा उसकी रचना करने वाले महेश्वर हैं । वे जीव पुनः हिंसक एवं अहिंसक मृदु एवं क्रूर धर्माधर्म सत्य और असत्य में लीन होकर उन्हीं कर्मों को अपनाते हैं । यह पृथ्वी अपने से दश गुने जल से घिरी है उसी भाँति तेज से जल, अनिल (वायु) से तेज, आकाश से वायु, (पंच) भूतादि से आकाश, महान् से भूतादि, और महान् उस अविनाशी पुरुष से आवृत (घिरा) है । इस प्रकार उस महापुरुष द्वारा यह ब्रह्माण्ड सैकडों सहस्रों बार उत्पन्न होकर नष्ट हुए हैं । इस ब्रह्माण्ड को जो देव, मनुष्य, उरग, सिद्ध आदि से पूर्ण आवद्ध हैं, प्रलयकाल में महर्षि गण जो समान रूप से बाहर भीतर विशुद्ध होते हैं, उसे देखते हैं और इस चराचर निर्माता की माया दूसरी ही है ।३५-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

---

१. ध्यानम्, ध्यातम् ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

मायादर्शनवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशी कृष्ण सा माया विष्णोरमिततेजसः । यया व्यामोहितं यच्च जगदेतच्चराचरम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

येन द्वीपे पुरा विष्णुरास्त चक्रगदाधरः । वासुदेवः सगरुडः सचक्रश्च श्रिया सह ॥२
नीलोत्पलदलश्यामः कुण्डलाभ्यां विभूषितः । भ्राजते मुकुटोद्द्योतकेयूरवनमालया ॥३
तस्य द्रष्टुमथाभ्यागान्नारदो मुनिसत्तमः । प्रणम्य स्तुतिभिर्देवं प्राहेदं विस्मयान्वितः ॥४
संशयं परिपृच्छामि भगवन्वक्तुमर्हसि । का माया कीदृशी माया किंरूपा च कुतस्तथा ॥५
तस्या दर्शय मे रूपं मायायाः पुरुषोत्तम । या च मोहयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥६
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सदेवासुरमानुषम् । वैकुण्ठं वासुदेवं च प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥७
एवमुक्तस्तु मुनिना देवदेवो जनार्दनः । प्रहस्योवाच देवर्षे कार्यं मायया त्वया ॥८
भूयोऽपि मोहयामास सोमग्राहेण नारदम् । नारदोऽपि महाराज प्रोवाचेदं पुनःपुनः ॥९
मायां दर्शय मे देव नान्यदस्ति प्रयोजनम् । अथासौ विष्णुरुत्थाय श्वेतद्वीपं पुनर्ययौ ॥१०

अध्याय ३

मायादर्शन नामक वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—भगवन् ! अमित तेजवाले विष्णुदेव की वह माया जिससे यह चराचर समस्त जगत् मोहित होता है, किस प्रकार की है ।१

श्रीकृष्ण बोले—उस द्वीप में भगवान् विष्णु, चक्र गदा धारण किये गरुड़ और लक्ष्मी समेत आसनासीन थे । उन वासुदेव भगवान् के उस रूप को, जो नील कमल दल की भाँति श्यामल वर्ण, कुण्डलों से अलंकृत, सिर पर मुकुट, बाँह में केयूर और हृदय में वनमाला से सुशोभित था, देखने के लिये मुनि श्रेष्ठ नारद का एक बार वहाँ आगमन हुआ । स्तुति प्रणाम करने के उपरांत आश्चर्य चकित होकर नारद मुनि ने उनसे कहा—भगवन् ! मैं एक संशय प्रकट कर रहा हूँ, उसे बताने की कृपा करें । पुरुषोत्तम ! माया किसे कहा जाता है । वह किस प्रकार की होती है, उसका रूप क्या है, और कहाँ स्थित है तथा मुझे उस माया का रूप दिखाने की कृपा करें । जिससे चराचर मय यह तीनों लोक संमोहित है तथा ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यंत देव, मनुष्य, समेत वैकुण्ठ और वासुदेव भी मोहित हैं । मुनि के इस प्रकार कहने पर देवाधिदेव जनार्दन भगवान् ने हँसकर कहा—देवर्षे ! आप माया की बातें छोड़ दें । किन्तु सोमपान के द्वारा नारद को मुग्ध कर पुनः उसके लिए प्रेरित किया था । नारद ने पुनः कहा महाराज ! देव ! मुझे माया का दर्शन कराइये और कुछ नहीं चाहता । इस प्रकार नारद के बार-बार कहने पर भगवान् विष्णु ने वहाँ से उठकर पुनः श्वेतद्वीप को प्रस्थान किया ।२-१०। और अंगुली के अग्रभाग पकड़े

सोऽपि द्विजो मुनिश्रेष्ठ संसारादुत्तरिष्यति । इत्येवं संवदन्तौ च जग्मतुर्मार्गमुत्तमम् ।।३८
कान्यकुब्जस्य सामीप्ये सरः श्रेष्ठमपश्यताम् । हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।।३९
पद्मिनीजलकह्लाररक्तोत्पलसितोत्पलैः । छादितं पद्मिनीपत्रैर्मत्स्यैः कूर्मैर्जलोद्भवैः ।।४०
तटै रम्यैर्घनैर्वृक्षैः केतकीखण्डमण्डितम् । केतकीकुसुमामोदैर्लकुचैस्तटमण्डितैः ।।४१
दात्यूहशिखिभारुण्डचकोराद्यैश्च संकुलम् । कुरवैश्चातकै रम्यं केकाकुलनिनादितम् ।।४२
जलकुक्कुटसङ्गीतं हंससारसशोभितम् । जीवंजीवकहारीतचकोरैरुपशोभितम् ।।४३
वशिष्ठस्य मुनेर्नाम्ना विख्यातं श्रीमहोदयम् । अस्मिन्नद्य प्रवेष्टव्यं महाजनविवेकिनाम् ।।४४
स्थातव्यं पुरतस्तेषां तस्मात्स्नानं समाचरेत् । इत्युक्त्वा केशवः पापं सस्नौ प्रागेव तज्जलैः[1] ।।४५
यत्तीर्थलोकं विख्यातं स्नात्वा तीरं समाश्रितः । प्रहरे वासुदेवस्य नारदोऽपि मुदा युतः ।।४६
आचम्य सस्नौ तीर्थेन क्षणात्तीर्थमवाप्य च । यावदुत्तिष्ठते तोयात्स्नात्वा ऋषिरुदारधीः ।।४७
तावत्स्त्रीत्वं समापन्नो नारदः केन वर्ण्यते । यस्यास्तु विस्तृते नेत्रे वक्त्रं चन्द्रोपमं शुभम् ।।४८
स्मरपाशोपमौ कर्णौ कपोलौ कनकोज्ज्वलौ । नासिका तिलसूनेन कामचापोपमे भ्रुवौ ।।४९
दशना हीरकैस्तुल्या विद्रुमाभः शुभाधरः । मयूरस्य कलापेन तुल्यं कचनिबन्धनम् ।।५०

भोजन किया और न विश्राम ही अपितु यहाँ ब्राह्मण के घर आकर विश्राम किया है। मुनिश्रेष्ठ ! इसलिए वह ब्राह्मण श्रेष्ठ इस संसार सागर को पार करेगा। इस प्रकार मार्ग में वार्तालाप करते हुए वे दोनों कान्यकुब्ज (कन्नौज) नगर के समीप सुन्दर एक सरोवर पर पहुँचे जो हंस, कारण्डव (वत्तक), से आच्छादित, और चकोर से सुशोभित था। वह सरोवर कमलिनी, रक्तकमल, नीलकमल, श्वेतकमल और कुमुदिनी के पत्तों से आच्छादित था।३१-४०। उसमें अनेक भाँति की मछलियाँ एवं कछुवे शोभा बढ़ा रहे थे। उस के तट केतकी वृक्षों से सुशोभित हो रहे थे। वहाँ लकुच (बड़हर) के वृक्ष भी उस केतकी के सुगंधों से सुवासित होकर उस स्थल को मनोरम बना रहा था। दात्यूह (कठफोडवा), मयूर, गारुण्ड, एवं चकोर आदि पक्षियों से संयुक्त होकर वह कुरब, चातक (पपीहा) तथा मयूर के मधुर कलरव से निनादित हो रहा था। जलमुर्गी के गान से भूषित एवं हंस सारस, जीवजीव (चकोर) हरिल आदि पक्षियों से वह अत्यन्त सुरम्य दिखाई दे रहा था। इस वशिष्ठ महर्षि के श्री महादेव नामक सरोवर में आज विवेकी एवं महात्माओं के साथ अवश्य स्नान करना चाहिए। इतना कह कर भगवान् केशव देव ने सर्वप्रथम उस सरोवर में स्नान किया। उस लोक प्रख्यात सरोवर के जल में भली भाँति स्नान करके उनके बाहर आने पर नारद ने भी सहर्ष उसमें स्नान करने के लिए इच्छा प्रकट की। उन्होंने उसमें प्रविष्ट पहले आचमन किया और पश्चात् डुबकी लगाई। उदार चेता महर्षि नारद ने उस जल में डुबकी लगाकर पानी के ऊपर हुए कि उसी समय अपने को इस प्रकार स्त्री वेष में देखा जिसके सौन्दर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता, जिसके विशाल नेत्र, चन्द्रमा की भाँति शुभ मुख, काम पाश के समान कान, सुवर्ण की भाँति समुज्जवल कपोल, तिलभूषित नासिका, कामबाण की भाँति भौंहे, हीरे के समान दाँत, विद्रुम (प्रवाल) की भाँति अधरोष्ठ, मयूर पुच्छ की भाँति चित्र विचित्र बँधे केश पाश, शंख के

१. तज्जले।

शंखरेखात्रयेणैव कंठदेशो विराजते । माधवीलतया तुल्यौ मञ्जू तस्या भुजौ शुभौ ।।५१
युतौ रक्तोत्पलाभासौ पाणीरक्तनखांगुली । पीनावतुङ्गतनुधृत्कठिनौ कलशोपमौ ।।५२
स्तनावविरलौ स्निग्धौ चक्रवाकयुगोपमौ । स्वल्पकं मध्यदेशं तु मुष्टिग्राह्यमसंशयम् ।।५३
नाभिमंडलगांभीर्यं लावण्यं केन वर्ण्यते । वलित्रयेण विकृता रोमराजिर्विराजिता ।।५४
नयने च पुनस्तस्या मृग्या इव सुशोभने । नितम्बो बिम्बफलको मन्मथायतनं शुभम् ।।५५
रम्भायुग्मोपमावूरू स्मरबाणनिबन्धनौ । विपरीतरताभ्यासखेदभारसहौ दृढौ ।।५६
नवकुन्दलतासारसरलं सनिबन्धनम् । जङ्घायुगं महाराज गूढगुल्फयुगं तथा ।।५७
रक्तांगुलीलतातल्पनखचन्द्रकयाचितम् । चरणारविंदयुगलं सरक्तं सुप्रतिष्ठितम् ।।५८
सैवंविधा तदा नारी सर्वलक्षणपूजिता । बभूव क्षणमात्रेण जगद्व्यामोहकारिणी ।।५९
क्षीरोदमथनोत्तीर्णां लक्ष्मीमन्यामिवोच्छ्रिताम् । दृष्ट्वाप्यदर्शनं प्राप्तो मायया मधुसूदनः ।।६०
सम्प्राप्यते च सा कालसंगराहारिणी[1] यथा । आस्त एकाकिनी मुग्धा कुर्याद्दिगवलोकनम् ।।६१
अथाजगाम तं देशं नाम्ना तालध्वजो नृपः । सह सैन्यैः परिवृतः पुरन्दर इवामरैः ।।६२
गजारूढैर्हयारूढै रथारूढैर्नरोत्तमैः । विमानयानयुग्मस्थैस्तथांतः पुरिकाजनैः ।।६३
ध्वजातपत्रकलिलैरनीकैः परिवारितः । तेन सा सहसा दृष्टा नारी कमललोचना ।।६४

समान तीन रेखाओं से सुशोभित कंठ, माधवीलता की भाँति अत्यन्त कोमल भुजाएँ रक्त कमल की भाँति हथेली एवं उसी भाँति रक्त वर्ण के नख समेत अंगुली, पीन (स्थूल), ऊँचे, कठोर, एवं कलश की भाँति स्तन थे, जो एक में मिले, मनोरम चिकनाहट लिए युगल चकोर की भाँति दिखाई देते थे । उसी भाँति मध्यभाग (कटि) मुट्ठी के अन्दर निःसन्देह आ जाता था ।४१-५३। उसकी नाभि मण्डल की गम्भीरता एवं सौन्दर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता था । उदर में तीन वलि से विभूषित रोम पंक्ति थी और मृगी के समान चञ्चल नेत्र विम्बफल की भाँति नितम्ब सुशोभित हो रहा था । उसी का अवर्णनीय काम मन्दिर, कदली की भाँति उरू थे, जो काम बाण से पूर्ण थे एवं विपरीत रति के भ्रम जनित खेद और उसके भार सहन करने में दृढ़ थे । महाराज ! नवीन कुन्द लतासार की भाँति सरल जंघा गूढ़ गुल्फ, जो रक्त वर्ण की अंगुली लता में विभूषित नख चन्दिका से चर्चित था और रक्त वर्ण के चरण युगल थे । इस प्रकार समस्त लक्षण सम्पन्न स्त्री का वेष क्षण मात्र में उन्हें प्राप्त हुआ, जो संसार को मोहित कर रहा था । उस रूप को देखकर यही मालूम होता था कि क्षीर सागर मंथन करने पर निकली हुई यह दूसरी लक्ष्मी है । देखकर के भी भगवान् अपनी माया द्वारा अन्तर्हित हो गये । पुरुष संगम के लिए निश्चित् स्थान पर आई हुई कामिनी की भाँति वह मुग्धा वहाँ अकेली रह कर चारों ओर देख रही थी । उसी बीच तालध्वज नामक राजा अपने सैनिकों समेत वहाँ आ गये, जो देवों समेत इन्द्र की भाँति सुसज्जित था । उनके साथ घोड़े एवं रथों पर स्थित श्रेष्ठ पुरुष, दो यानों पर अंतःपुर की रानियाँ और ध्वजा एवं आतपत्र युक्त सेनाएँ चल रही थी । राजा ने सहसा उस कमलनयना कामिनी को देखा और देखते ही काम की

---

१. सङ्गमाहारिणी ।

बभूव क्षणमात्रेण कन्दर्पशरपीडितः । केयं कस्य कुतः प्राप्ता किं देवी दाथ मानुषी ।।६५
अदृष्टरूपाप्सरसा काचिद्देवी समागता । अहोरूपं सुरूपाया गोचरे परितः पुमान् ।।६६
मुमूर्षुर्जायते मोहादनुदिग्धहतो यथा । इति संचिन्त्य हृदये राजा तालध्वजोऽन्तिके ।।६७
उवाच नारीं मुग्धां तां शृणु मद्वचनं शुभे । का त्वं कस्य कुतः प्राप्ता देशमेतं शुचिस्मिते ।।६८
इत्युक्ते साश्रु चार्वङ्गी प्राह नां विद्धचयोनिजाम् । पित्रा मात्रा विहीनां च तथाद्यापि कुमारिकाम् ।।६९
निराश्रयां विदित्वेनां ततो जातः स्मरार्दितः । आरोप्य हयपृष्ठे तां ततो राजा गतो गृहम् ।।७०
नीत्वा विवाहयामास शास्त्रोक्तविधिना ततः । रेमे प्रासादशृङ्गाग्रे पर्यङ्के सितया तया ।।७१
उद्यानभव्यभूमीषु नदीनां पुलिनेषु च । पर्वतानां नितम्बेषु निर्झरेषु गुहासु च ।।७२
पद्मखण्डेषु फुल्लेषु शोभितेषु सरस्सु च । प्रयागादिषु तीर्थेषु नदीनामाश्रमेषु च ।।७३
दिव्यावसथरम्येषु वेलाकूलेषु पार्थिवः । यावद्द्वादशवर्षाणि एकाहमपि भारत ।।७४
ततस्त्रयोदशे वर्षे तस्या गर्भोऽभवन्महान् । एतस्मिन्गर्भसम्पूर्णे जातं दीर्घमलाबुकम् ।।७५
तद्भेदाहतकुम्भेषु बीजप्ररोहणान्नराः । बभूवुर्धातुशून्या वै दिव्यदेहबलोत्कटाः ।।७६
पञ्चाशत्सङ्ख्यया जाता उपसर्गादिवर्जिताः । आरूढयौवनाः सर्वे सुताः[1] सङ्ग्रामकोविदाः ।।७७
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बभूवुः सुरसत्तमाः । युयुधुः शरसङ्घातैश्चक्रशूलासिपट्टिशैः ।।७८

व्यथा से व्याकुल हो उठे, अपने मन में तर्क करने लगे कि यह कौन एवं किसकी वल्लभा है, कहाँ से आई है, देवी है या मानुषी ।५४-६५। मालूम होता है कोई अपूर्व रूप वाली अप्सरा आई है। अहो, इस सुन्दरी का स्वरूप कैसा मनमोहक है कि इसे देखते ही अनुदिग्धहत की भाँति मोहित होकर मृतक-सा हो जाता है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करने के उपरान्त राजा तालध्वज ने उस के समीप जाकर उस मुग्धा स्त्री से कहा—कल्याणि ! मेरी बात सुनो ! मन्द मुसुकान करने वाली तुम कौन हो, किसकी कामिनी हो, यहाँ कैसे आई हो। इसे सुनकर उस सुन्दरी ने अश्रु पूर्ण नेत्रों से देखती हुई कहा—मैं अयोनिज हूँ, और माता पिता से वञ्चित रहने पर भी मैं अभी तक कुमारी ही हूँ। इसे सुनकर राजा ने उसे निराश्रित जानकर काम पीड़ित हुए उसे घोड़े पर बैठाया और अपने घर को प्रस्थान किया वहाँ पहुँच कर शास्त्र विधान पूर्वक उसका पाणिग्रहण किया। अनन्तर प्रासाद के शिखर पर धवल वस्त्र से विभूषित शय्या पर उसका उपभोग करना आरम्भ किया। वाटिका, सुन्दर स्थान नदियों के तट, पर्वतों की कन्दराओं, झरनों, गुफाओं में विकसित कमलों से विभूषित सरोवरों, प्रयागादि तीर्थों, नदियों या आश्रमों, दिव्य स्थलों एवं समुद्र के तट पर राजा ने उसके साथ पूरे बारह वर्ष तक रमण किया। पश्चात् तेरहवें वर्ष उसे गर्भ रहा। उस गर्भ के पूरे होने पर उसके गर्भ से कुम्हड़े की भाँति एक पिंड निकला, जिसके भीतर अनेक बीज के अंकुर की भाँति मनुष्य थे, जो धातु शून्य, दिव्य देह, एवं अत्यन्त बली थे। उनकी संख्या कुल पचास थी। युवा होने पर वे सभी रण कुशल हुए।६६-७७। और उन्हीं के समान उनके पुत्र पौत्र भी अत्यन्त बुद्धिमान् एवं

---

१. सुराः ।

हयैरन्यैर्गजैरन्यैः क्रोधान्धाः कौरवा इव । पाण्डवैः सह सङ्ग्रामे युयुधुः क्षणमञ्जसा ॥७९
सपदातिगजारोहाः सान्तःपुरधुगेच्छया । विनेशुरब्धिमासाद्य सिन्धूनां प्रवहा इव ॥८०
सासिसबलविस्ताराः सदर्पाः समहोच्छ्रयाः । इन्द्रलोकोपमं सर्वं कुलं नष्टं क्षणं तदा ॥८१
संदृश्य नारदीयैषा विनष्टं स्वकुलं रणे । रुरोद स्नेहसंयुक्तैः रसैः कलुषया गिरा ॥८२
हा दैव हा[1] विधे पाप हा कृतान्त नमस्कृत । दर्शयित्वा विधानं मे पुनर्नेत्रे हृते त्वया ॥८३
इत्युक्त्वा स्वमुरोहस्तैर्जघान भृशदुःखिता । भूमौ मूर्च्छातुरा भूत्वा पुनः प्राप्ता विचेतनम् ॥८४
सोऽपि राजा विषण्णोऽसौ निर्विण्णः शोकसागरे । भूमौ निपतितौ दुःखाद्रुरोद भृशदुःखितः ॥८५
विषण्णो मन्त्रिभिः सार्धं वृद्धशोकेन संयुतः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगाम द्विजैः सह ॥८६
द्विजवेषपरिच्छन्न उपविष्टः सुखासने । ततः पुरस्सरो भूत्वा चक्रे धर्मार्थदर्शनम् ॥८७
किं रोदनेन बहुना युवयोः क्लेशकारिणा । श्रूयतां विष्णुमायैषा स्वप्नदृष्टधनोपमा ॥८८

सर्वश्रेष्ठ पुरुष हुए । पश्चात् कौरवों की भाँति वे सब मदान्ध होकर अपने बाण, चक्र, शूल, तलवार और पट्टिश अस्त्रों से सुसज्जित तथा वाहनों पर बैठकर पाण्डवों के साथ युद्ध करने के लिए रणस्थल में पहुँचे । वहाँ पहुँच कर अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाण्डवों से घोर युद्ध करना आरम्भ किया । अनन्तर अपने घोड़े एवं हाथियों पर बैठकर सैनिकों समेत शत्रु दल का मर्दन करते हुए युद्ध के मध्य स्थल में पहुँचे उसी समय चारों ओर से शत्रुओं से घिर जाने पर बढ़े हुए नदी जल के सागर में पहुँच कर विलीन होने की भाँति सब के सब नष्ट हो गये । उस युद्ध में इन्द्र लोक की भाँति उनके अस्त्र बल, दर्प, वाहन सैनिक, आदि समस्त कुल का विनाश हो गया । उस समय उस नगरदीपा (स्त्री) को रण में अपने कुल नाश का समाचार मिल गया, जिससे वह अत्यन्त स्नेह कातर होकर अपनी क्रन्दन वाणी द्वारा विलाप करना आरम्भ किया—हा दैव, हा विधे, पाप हारिन् ! आप की वन्दना यमराज भी सदैव किया करते हैं । आप ने मुझे दोनों नेत्र देकर पुनः उसका अपहरण कर लिया । इतना कह कर अत्यन्त दुःखी होने के कारण अपना सिर पीट लिया, जिसके आघात से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती थी और चैतन्य होने पर उसी भाँति पुनः सिर पीटती थी । उसके पति देव राजा तालध्वज भी अत्यन्त शोक कातर होकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और चेतना आने पर अपनी स्त्री की भाँति विलाप करते थे । उस समय उनके मंत्रिगण भी उनके शोक से दुःखी होकर राजा को शान्त करने में परिश्रम भ्रान्त हो रहे थे । उसी बीच भगवान् विष्णु ब्राह्मण वेष धारण कर ब्राह्मणों समेत वहाँ राजा के दरबार में पहुँचे मंत्रियों ने उन्हें नमस्कार पूर्वक राज सिंहासन पर बैठाया । तत्पश्चात् उन्होंने राजा और रानी की उस दीन अवस्था का कारण पूँछा । कारण जान लेने के उपरांत ब्राह्मण वेष धारी विष्णु ने उन्हें धर्मार्थ उपदेश प्रदान करना आरम्भ किया ।७८-८८। राजन् ! आप दोनों इतना अधीर होकर रोदन कर रहे हैं जिससे लाभ तो कुछ नहीं प्रत्युत दुःख की अत्यन्त वृद्धि होती है । आप लोग ! मेरी बातों पर ध्यान दें । यह संसार तथा इसके धन एवं परिवार सभी विष्णु की मायाजन्य होने के नाते स्वप्नतुल्य हैं । शोभने ! संसार सागर में

---

१. विषेयाथ ।

शोभने यादृशः शोकः कृतः संसारसागरे । सर्वेषामेव भूतानां परिणामोयमीदृशः ॥८९
पुरन्दरसहस्राणि चक्रवर्तिशतानि च । निर्वापितानि कालेन प्रदीप इव वायुना ॥९०
येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं सग्राहसङ्कुलम् । कुर्युश्च करयुग्मेन चूर्णं मेरुं महीतले ॥९१
ऊद्धर्तुं धरणीसंज्ञां ग्रहीतुं चन्द्रभास्करौ । प्रविष्टास्ते तु कालेन कृतान्तवदनं तदा ॥९२

दुर्गस्त्रिकूटः परिखाःसमुद्रा रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम् ।
मन्त्रश्च यस्योशनसा प्रणीतः स रावणो दैववशाद्विपन्नः ॥९३
सङ्ग्रामे गजतुरगसमाकुलेऽपि वादादग्नौ वा गतविवरे महोदधौ वा ।
सर्वैर्वा सह वसतामुदीर्णकोपैर्नाभाव्यो कदाचिदेव नाशः ॥९४
पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रलोकमारोहतु क्षितिधराधिपतिं सुमेरुम् ।
मन्त्रौषधिप्रहरणैश्च करोतु रक्षां यद्भावि तद्भवति नाथ विभावितोऽस्मि॥९५

रोदिति कश्चिदथाश्रुधौताननगुरुतरशोकविह्वलः ।
प्रविकटचरणवानपि नृत्यति कश्चिद्धर्मादिविग्रहः॥९६
गायति हृदयहारि सुखनिर्भरमायतविस्तृताऽधरोऽधिकाम्।
सार एष रङ्गोदरगतनटपटहाकाम एवायम्॥९७

इत्येवं धर्ममुद्दिश्य विष्णुः संसारचेष्टितम् । तूष्णीं बभूवानुपदम् ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥९८

पड़कर इस भाँति का शोक करना केवल तुम्हारे ही लिए नहीं है किन्तु संसार में आये हुए सभी प्राणियों की एक दिन यही अवस्था होती है, यहाँ तक इस सबल काल ने अग्नि की भाँति सहस्रों इन्द्र और सैकड़ों चक्रवर्ती राजाओं को समूल नष्ट किया है । ग्राह आदि जीवों समेत इस समुद्र के शोषण करने में समर्थ अपने दोनों हाथों से इस भूपृष्ठ पर मेरु पर्वत को चूर्ण करनेवाले, पृथ्वी के उद्धार एवं चन्द्र सूर्य को पकड़ लेने वाले प्राणी भी कालकवलित होकर कृतान्त के मुख में पहुँच गये । दैववश वह रावण भी काल कवलित हुआ, जिसका नगर त्रिकूट पर्वत का दुर्ग, समुद्र खांई, राक्षस गण योद्धा थे, कुबेर का धन एवं जो शुक्राचार्य की भाँति मंत्र प्रणेता था । हाथी, घोड़ों के संकुल से पूर्ण संग्राम स्थल, अग्नि, (पाताल) शिखर, एवं समुद्र कहीं भी छिप जाये अथवा समस्त जनों के सामने ही सदैव रहे और चाहे कि (काल का) उस प्रचण्ड कोप में पड़कर नाश न हो, यह असम्भव है । स्वामिन् ! पाताल, देव लोक, अथवा पर्वत राज सुमेरु के शिखर पर आरोहण या मंत्रों औषधियों द्वारा रक्षा करता रहे किन्तु होनहार होकर ही रहता है, यह मुझे भली भाँति निश्चित है । इस संसार में महान् शोक से व्यथित होकर कोई इस प्रकार रोदन कर रहा है, जिससे उसका मुख अश्रु धाराओं से अत्यन्त प्रक्षालित की भाँति हो गया है, कोई धर्मादि मूर्ति विकट चरण होने पर भी नृत्य कर रहा है और कोई अत्यन्त प्रसन्न चित्त से सुखानुभव प्रकट करते हुए मुख द्वारा संगीत के रागों को प्रकट करते हुए गायन कर रहा है । इसलिए इसका सार यह है कि रंग भूमि में नट के वाद्यों द्वारा आकर्षित करके उसमे तन्मय रखने की भाँति इस संसार को जानना चाहिए। इस प्रकार सांसारिक धर्मोपदेश करके ब्राह्मण वेषधारी भगवान् विष्णु चुप हो गये।८९-९८।

उत्तिष्ठ स्नाहि पुत्राणां प्रकुरुष्वौर्ध्वदेहिकम् । मा शोकं विष्णुमायैषा विष्णुना निर्मिता स्वयम् ॥९९
इत्युक्ता चारुसर्वाङ्गी स बभूवाचलः पुमान् । स एष सदृशाकारो नारदस्तत्क्षणेऽभवत् ॥१००
सोऽपि राजा ददर्शाथ तं समन्त्रिपुरोहितः । सान्तः पुरमिदं सर्वमिन्द्रजालोपमं क्षणात् ॥१०१
नारदं मुनिशार्दूलं जटाभारभयानकम् । गौरवर्णं ज्वलन्तं च ब्राह्म्या लक्ष्म्या विराजितम् ॥१०२
शिखाकमण्डलुधरम् वीणदण्डकरं तथा । ब्रह्मसूत्रेण शुभ्रेण कौपीनाच्छादनेन च ॥
पादुकाभ्यां स्थितं तीरे सरसो ब्राह्मणासने ॥१०३
सम्प्रगृह्य कराग्रेण जगामादर्शनम् हरिः । अम्बरेण सुरैः सार्द्धं तस्माद्देशाद्युधिष्ठिर ॥१०४
श्वेतद्वीपमथासाद्य प्राह देवो मुनिं नृप । देवर्षे यत्त्वया पृष्टं पूर्वं मायाकथाम् प्रति ॥१०५
माया ययेदृशी माया यत्स्वरूपा यदात्मिका । सा ते माया मया ब्रह्मन्वैष्णवी सम्प्रदर्शिता ॥१०६
एवमुक्त्वा मुनिवरं देवदेवो जनार्दनः । बभूवान्तर्हितस्सद्यो देवर्षेस्तस्य पश्यतः ॥१०७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
मायादर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

संसारदोषवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

देवत्वं मानुषत्वं च तिर्यक्त्वं केन कर्मणा । प्राप्नोति पुरुषः केन गर्भवासं सुदारुणम् ॥१

द्विजपुंगव ! पश्चात् उन सब के इस भाँति कहने पर कि उठो, स्नान पूर्वक पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया करो, शोक करना व्यर्थ है, क्योंकि यह सब भगवान् विष्णु की माया है, जिसे विष्णु ने स्वयं उत्पन्न किया है। वह सर्वाङ्ग सुन्दरी उसी समय अचल पुरुष के रूप में परिणत होकर नारद के वेष में दिखाई देने लगी। अनन्तर मंत्रिगण, एवं पुरोहित समेत राजा और उनके अन्तः पुर की समस्त रानियों ने इन्द्रजाल की भाँति देखा कि—अपने भयानक जटाभार से भूषित प्रदीप्त गौरवर्ण, ब्रह्म लक्ष्मी से सुशोभित तथा शिखा, कमण्डलु, वीणा, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत), कौपीन, एवं आच्छादन वस्त्र धारण किये मुनिश्रेष्ठ नारद उपस्थित हैं। उस सरोवर के तट पर अपने चरण पादुका रखे ब्राह्मण आसन पर उन नारद की अंगुली ग्रहण किये विष्णु भी स्थित हैं। युधिष्ठिर ! देवों समेत आकाश मार्ग से पुनः श्वेत द्वीप में पहुँच कर देवाधिदेव जनार्दन भगवान् ने नारद मुनि से कहा—देवर्षे ! आप ने पहले माया के विषय में जो प्रश्न किया था उसके उत्तर में मैंने आपको उस वैष्णवी माया के लक्षण, एवं स्वरूप दिखा दिया।९९-१०७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में मायादर्शन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त।३।

अध्याय ४

संसारदोष नामक वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! देव, मनुष्य एवं पक्षियों आदि की योनि किस कर्म द्वारा पुरुष

गर्भस्थश्च किमश्नाति कथमुत्पद्यते पुनः । दत्तोत्थानादिकान्दोषान्कथं तरति दुस्तरान्[1] ।।२
बालभावे कथं पुष्टिः स्याद्युवा केन कर्मणा । कुलीनः केन भवति सुरूपः सुधनः कथम् ।।३
कथं दारानवाप्नोति गृहं सर्वगुणैर्युतम् । पण्डितः पुत्रवान्स्त्यागी स्यादामयविवर्जितः ।।४
कथं सुखेन म्रियते कथम् भुङ्क्ते शुभाशुभम् । सर्वमेवामलमते गहनं प्रतिभाति मे ।।५

श्रीकृष्ण उवाच

शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रैर्मानुषतां व्रजेत् । अशुभैः कर्मभिर्जंतुस्तिर्यग्योनिषु जायते ।।६
प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये । पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा ।।७
ऋतुकाले तदा भुक्तं निर्दोषं येन संस्थितम् । तदा तद्वायुना स्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत् ।।८
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः करणसंयुतः । भृत्यः प्रविशते योनिं कर्मभिः स्वैर्नियोजितः ।।९
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कललं भवेत् । पञ्चरात्रेण कललं बुद्बुदाकारतां व्रजेत् ।।१०
बुद्बुदं सप्तरात्रेण मांसपेशी भवेत्ततः । द्विसप्ताहाद्भवेत्पेशी रक्तमांसदृढान्वितः ।।११
बीजस्येवाङ्कुराः पेश्याः पञ्चविंशतिरात्रतः । भवन्ति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः ।।१२
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम्[2] । मासद्वयेन सर्वाणि क्रमशः सम्भवन्ति च ।।१३
त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते सद्वव्याङ्कुरसन्धयः । मासैश्चतुर्भिरङ्गुल्यः प्रजायन्ते यथाक्रमम् ।।१४

प्राप्त करता है, और अत्यन्त दारुण गर्भवास में क्या खाता है और पुनः गर्भस्थ रहकर कैसे उत्पन्न होता है, दाँत आदि निकलने के उस दुस्तर दुःखों को किस भाँति सहन करता है, बचपन में पुष्टि तथा किस कर्म द्वारा युवा की प्राप्ति, एवं किस कर्म से कुलीन, सौन्दर्य, अत्यन्त सुधन, समस्त गुणों एवं स्त्रियों की प्राप्ति होती है और कैसे वह पंडित, पुत्रवान्, त्यागी, रोगहीन, और सुख पूर्वक शरीर त्याग करता है एवं शुभाशुभ कर्मों के भोग करता है। हे स्वच्छमनवाले! मुझे यह सब अत्यन्त गहन मालूम हो रहा है। १-५

श्रीकृष्ण जी बोले—शुभ कर्म से देव, (शुभाशुभ के) सम्मिश्रण से मनुष्य, और अशुभ कर्मों द्वारा (जीव) पक्षी आदि योनि प्राप्त करता है और उस धर्माधर्म के निश्चय करने में केवल श्रुति ही एक मात्र प्रमाण है। जिसमें बताया गया है कि पाप कर्म द्वारा पाप और पुण्य कर्मों द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। यह निर्दोष जीव कर्मवश (स्त्री के) ऋतु काल में वायु द्वारा स्त्री के उस रक्त के साथ मिलकर एक हो जाता है। वीर्य के पतन समय में साधन समेत यह जीव भृत्य की भाँति अपने किये कर्मों द्वारा निर्दिष्ट योनि में पहुँचता है। उस समय गर्भ में शुक्र शोणित (पुरुष स्त्री के वीर्य रज) एक में मिलकर एक दिन कलल (कल-कल) करता हुआ पकता है। पाँच रात्रों तक वहीं बुद्बुद् करता है, सात दिन के अनन्तर वही मांस पेशी बनना प्रारम्भ होता है। दो सप्ताह तक वह रक्त मांस की अत्यन्त दृढ़ मांस पेशी बन जाती है, जो बीज का ही अंकुर रूप रहती है। पच्चीसवीं रात्रि से उसमें पाँच भाग—ग्रीवा, शिर, कन्धा, पीठ वंश (रीढ़) और उदर रूप होना प्रारम्भ होता है। इस प्रकार क्रमशः दो मास में उपरोक्त पूर्ण होते हैं। तीसरे मास में संधियों के अंकुर चौथे मास में क्रमशः अंगुलियाँ, पाँचवें मास में मुख, नासिका, दोनों कान,

---

१. दन्तोत्थानादिकान्। २. अंसौ पृष्ठं तथोदरम्।

मुखं नासा च कर्णौ च जायन्ते पञ्चमासकैः । दन्तपंक्तिस्तथा गुह्यं जायन्ते च नखाः पुनः ।।१५
कर्णौ च रन्ध्रसहितौ षण्मासाभ्यन्तरेण तु । पायुर्मेढ्रमुपस्थश्च नाभिश्चाप्युपजायते ।।१६
सन्ध्यो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सप्तभिः । अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णः शिरः केशसमन्वितः ।।१७
विभक्तावयवः पुष्टः पुनर्मासाष्टकेन च । पञ्चात्मकसमायुक्तः परिपक्वः स तिष्ठति ।।१८
मातुराहारवीर्येण षड्विधेन स तिष्ठति । रसेन प्रत्यहं बालो वर्धते भरतर्षभ ।।१९
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम । नाभिसूत्रनिबन्धेन वर्द्धते स दिनेदिने ।।२०
ततः स्मृतिं लभेज्जीवः सम्पूर्णेऽस्मिञ्छरीरके । सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुरा कृतम् ।।२१
मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः । नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टानि तानि वै ।।२२
अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च । एतच्छ्रेयः[1] करिष्यामि ये न गर्भे न संश्रयः ।।२३
गर्भस्थश्चिन्तये देवमहं गर्भाद्विनिःसृतः । अध्येष्ये चतुरो वेदान्संसारविनिवर्तकान् ।।२४
एवं स गर्भदुःखेन महतापरिपीडितः । जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयन् ।।२५
यथा गिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति । तथा जरायुणा देही दुःखे तिष्ठति चेष्टितः ।।२६
पतितः सागरे यद्वद्दुःखैरास्ते समाकुलः । गर्भोदकेन सिक्तांगस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ।।२७
लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना । तथा स पच्यते जन्तुर्गर्भस्थः पीडितोदरः ।।२८

छठें मास में दाँतों की पंक्तियाँ (मसूढ़ा) गुह्यभाग, नख, कान के छिद्र; सातवें मास में स्नायु, अण्ड, लिंग, नाभि और शरीर की संधियाँ (जोडवी की गाँठे) और आठवें मास में अंगप्रत्यंग की पूर्ति समेत शिर के केश एवं पृथक्-पृथक् अंगों की पुष्टि होती है । भरतर्षभ ! उस नवें मांस में वह पूर्ण इन्द्रियों समेत परिपक्व होकर माता के आहार वीर्य द्वारा जो छह रसों से बनता है, उसी गर्भ में बढ़ता रहता है । अरिन्दम ! जिस प्रकार मैंने सुना है, उसी भाँति इसकी व्याख्या कर रहा हूँ ! वह जीव अपनी शरीर के नाभि सूत्र द्वारा प्रतिदिन बढ़ता हुआ पूर्व जन्म की बातों का स्मरण करता है, क्योंकि उस समय उसकी देह सभी प्रकार से तैयार रहती है । वह पहले किये हुए सुख, दुख, स्वप्न को भली भाँति जानता है । उसे उसी गर्भ में इस प्रकार का ज्ञान होता है कि पहले मैं कहाँ उत्पन्न हुआ और कैसे मृतक हुआ तथा उत्पन्न होकर पुनः मृतक हूँगा ! इस भाँति मैंने सहस्रों योनियों में भ्रमण करते इस समय यहाँ इस गर्भ में अवस्थित हूँ । अब की बार उत्पन्न होते ही संस्कार करके उसभेद कर्म को करूँगा, जिससे पुनः इस गर्भ पिण्ड में न आना पड़े अभी गर्भस्थ होने के नाते मैं केवल इस प्रकार का विचार कर रहा हूँ किन्तु उत्पन्न होने पर चारों वेदों का अध्ययन करूँगा जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो जाये ।६-२५। इस प्रकार वह जीव कर्मवश गर्भ दुःख से अत्यन्त पीड़ित होकर अपने मोक्ष होने के उपाय सदैव सोचता रहता है, क्योंकि जिस प्रकार महान् पर्वत के भार से दबकर कोई व्यथित होता है उसी भाँति गर्भ पीड़ा से यह जीव दुःखी होता है । सागर में गिर जाने से जिस प्रकार दुःखी एवं व्याकुल होता है, उसी भाँति जीव गर्भ के जल से सिक्त होने पर वह दुःखी होता है । लोहे के घड़े में रहकर अग्नि द्वारा पकने से पीड़ित होने की भाँति यह जीव उदर गर्भ में रहकर पकने की पीड़ा का

---

१. तत्तच्छ्रेयः ।

सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्य निरन्तरम् । यः दुःखमुपजायेत तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत् ॥२९
गर्भवासात्परो वासः कष्टो नैवास्ति कुत्रचित् । देहिनां दुःखवद्राजन्सुघोरो ह्यतिसङ्कटः ॥३०
इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम् । चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरूपतः ॥३१
गर्भात्कोटिगुणं दुःखं योनियन्त्रप्रपीडनात् । समूर्च्छितस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ॥३२
शरवत्पीडचमानस्य यन्त्रेणैव समन्ततः । शिरसि ताडचमानस्य पापमुद्गरकेण च ॥३३
गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैःसूतिमारुतैः । जायते सुमहद्दुःखं परित्राणमविन्दतः ॥३४
यन्त्रेण पीडिता यद्वन्निःसाराः स्युस्तिलेक्षवः । तथा शरीरं निःसारं योनियन्त्रप्रपीडितम् ॥३५
अस्थिमज्जात्वचामांसस्नायुबन्धेन[1] यन्त्रितम् । रक्तमान्समृदः युक्तं विण्मूत्रद्रवलेपनम् ॥३६
केशलोमतृणाच्छन्नं रोगायतनमातुरम् । वदैनकमहद्द्वारं दन्तोष्ठकदिभूषितम्[2] ॥३७
ओष्ठद्वयकपाटं च दन्तजिह्वार्गलान्वितम् । नाडीस्वेदप्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम् ॥३८
जराशोकसमाविष्टं कालचक्रानले स्थितम् । कामक्रोधसमाक्रान्तं व्यसनैश्चोपमर्दितम् ॥३९
भोगतृष्णातुरं मूढं रागद्वेषवशानुगम् । संवर्तिताङ्गप्रत्यङ्गं जरायुपरिवेष्टितम् ॥४०
सङ्कटेनाविविक्तेन योनिद्वारेण निर्गतम् । विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं पत्केशाच्च समुद्भवम् ॥४१
इति देहगृहं प्रोक्तं नित्यस्यानित्यमात्मनः । अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबन्धविनिर्मितम् ॥४२

अनुभव करता है । अग्नि के समान प्रज्वलित सूत्रियों (सुइयों) द्वारा अंग छेदन होने से उससे आठ गुना दुःख गर्भ में जीव को प्राप्त होता है । राजन् ! गर्भवास के समान घोरवास एवं उसके समान कष्ट इस जीव को कहीं नहीं होता है क्योंकि वह गर्भ घोर अत्यन्त संकटों से पूर्ण रहता है । इस प्रकार मैंने गर्भ दुःख का वर्णन तुम्हें सुना दिया । इसी भाँति अपने गर्भ दुःख के अनुरूप चर अचर के उत्पन्न होने को भी समझना चाहिए । और गर्भ दुःख से कोटि गुना दुःख योनि यंत्र से निकलते समय होता है । उत्पन्न होते समय यह जीव अत्यन्त दुःख के कारण मूर्च्छित रहता है। उस समय वाणों के आघात एवं मंत्रों द्वारा पीड़ित होने से सर्वाङ्ग की पीड़ा उसे होती है । उसी बीच पाप मुद् गर के आघात उसके शिर में होते हैं और गर्भ से निकलते समय वायु के अनेकों आघातों के सहन पूर्वक वह अत्यन्त दुख का अनुभव करता है, जहाँ कोई सहायक नहीं रहता है। जिस प्रकार यंत्र (कोल्हू) में तिल के पीड़ित होने पर उसकी खली निस्तत्व होकर निकलती है, उसी भाँति योनि यंत्र से अत्यन्त पीड़ित होकर सारहीन यह शरीर निकलता है। उस समय उस देह में अस्थि, मज्जा, त्वचा, मास, स्नायु से आबद्ध, रक्त मांस समेत विष्ठा और मूत्र से लिप्त रहता है तथा केश, लोम, से आच्छन्न रोग मंदिर उसमें विभूषित है । उसके दोनों ओष्ठ कपाट (किवाड) दाँत, जिह्वा, अर्गला (जंजीर), नाडियों में स्वेद का प्रवाह, कफ, पित्त, युक्त, जरा शोक समेत काल चक्ररूपी अनल में स्थित रहता है । काम, क्रोध, एवं व्यसनों से आक्रान्त, भोग, तृष्णा से व्याकुल, राग, द्वेष के वशीभूत और अंग प्रत्यंग जरायु से आवेष्टित एवं अनेक गुप्त संकटों से घिर कर योनि के द्वार से निकलता है, जो विष्ठा, मूत्र, रक्त श्वेत अंग चरण केश से युक्त होता है ।२६-४१। इस भाँति मैं इस नित्य जीवात्मा के उस अशुद्ध देह तथा उसकी प्राप्ति का वर्णन कर दिया जो उस विशुद्ध जीवात्मा का यह

---

१. तुलास्तम्भम् । २. गवाक्षाष्टकभूषितम् ।

शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः सञ्जायते यतः । नित्यविण्मूत्रपूर्णश्च तेनायमशुचिः स्मृतः ॥४३
यथान्तर्विष्ठया पूर्णः शुचिः स्यान्न बहिर्घटः । यत्नतः शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिस्तथा ॥४४
सम्प्राप्यात्र पवित्राणि पञ्चगव्यहवींषि च । अशुचित्वं क्षणाच्चापि किमन्यद्वस्तुबिंदवः ॥४५
देहः संशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्यकुशाम्बुभिः । घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति ॥४६
स्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्ति गिरेरिव । कफमूत्रपुरीषाद्यैः स देहः शुद्धयते कथम् ॥४७
सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते । शुचिरेकः प्रदेशोऽपि विट्पूर्णः स्यन्दते किल ॥४८
कायः सुगन्धधूपाद्यैर्यत्नेनापि तु संस्कृतः । न जहाति स्वकं भावं श्वपुच्छमिव नामितम् ॥४९
यथा जात्यैव कृष्णो[1] हि न शुक्लः स्यादुपायतः । संशोध्यमानाऽपि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला ॥५०
जिघ्रन्नपि स्वदुर्गंधं पश्यन्नपि मलं स्वकम् । न विरज्जति लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ॥५१
अहो मोहस्य माहात्म्यं येन व्यामोहितं जगत् । जिघ्नन्पश्यन्स्वकं दोषं कायस्य न विरज्जते ॥५२
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि ध्रुवम्[2] । त्वङ्मात्रसारं निःसारं कदलीसारसन्निभम् ॥५३
गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा जातस्य प्रणश्यति । संमूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्रप्रपीडनात् ॥५४
बाह्येन वायुना चास्य मोहसंज्ञेन देहिनः। स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरः समुपजायते ॥५५

अत्यन्त अशुद्ध कर्म बंधन रूप है । शुक्र शोणित के संयोग द्वारा यह देह उत्पन्न होती है जो नित्य विष्ठा, मूत्र, से पूर्ण रहने के नाते नितान्त अशुद्ध है जिस प्रकार पट के भीतर विष्ठा पूर्ण करके अनेक बार उपायों द्वारा पवित्र करने पर भी वह पवित्र नहीं होता है उसी भाँति यह अशुद्ध शरीर फलतः संशोधन करने पर भी शुद्ध नहीं होती है । गाय के दूध, घी, दही, मूत्र और गोबर मिलकर पंचगव्य होता है, उस पंचगव्य द्वारा यह शरीर क्षण मात्र के लिए पवित्र होती है । क्योंकि उन पाँच वस्तुओं में कितना सामर्थ्य हो सकता है । कोयले घिसने पर निर्मल न होने की भाँति यह शरीर पंचगव्य कुशाओं द्वारा संशोधन करने पर भी निर्मल नहीं होती है । जिस शरीर के श्रोत्र (कान) इन्द्रिय पर्वत झरने की भाँति सदैव प्रवाहित रहती है, कफ, मूत्र एवं पुरीषादि युक्त वह देह शुद्ध कैसे हो सकती है । अपवित्रता के विधान रूप इस शरीर का कोई भी अंग विष्ठा पूर्ण होने के नाते पवित्र नहीं है । सुगन्धों एवं धूपों से धूपित करने पर यह शरीर श्वान के नैमित पूंछ की भाँति अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकती है । जिस प्रकार काली कमरी अनेकों उपाय द्वारा शुक्ल वर्ण की नहीं हो सकती है, उसी भाँति संशोधन करने पर भी यह शरीर पवित्र नहीं हो सकती है। अहो आश्चर्य की बात है कि अपने दुर्गन्ध के आ घ्राण एवं अपने मल को देखते हुए भी यह जीवात्मा विरागी नहीं होता है । यह सारा संसार इस प्रकार मोहित हुआ है कि उपरोक्त विषयों के आ घ्राणादि दोष इस शरीर के देखते हुए भी इससे विरागी नहीं होता है । इस भाँति यह शरीर स्वभावतः अत्यन्त अपवित्र है, जो निस्तत्व कदली की भाँति केवल त्वचा मात्र सार से युक्त रहती है । गर्भ में स्थित रहने पर जिन पक्षों का भली भाँति स्मरण होता है उत्पन्न होने पर वे स्मरण नष्ट हो जाते हैं क्योंकि योनि यंत्र से पीड़ित होने के नाते वह अत्यन्त दुःख से मूर्च्छित रहता है।४२-५४। बाहर होने पर मोह संज्ञक वायु के स्पर्श होने

---

१. कृष्णोर्णा न शुक्ला स्यादुपायतः । २. विदुः ।

तेन ज्वरेण महता महामोहः प्रजायते । संमूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं सञ्जायते पुनः ।।
स्मृतिभ्रंशात्तु तस्येह पूर्वकर्मवशेन च । रतिः सञ्जायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि ।।
रक्तो मूढस्य लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्तते । न चात्मानं विजानाति न परं विन्दते[1] च सः ।।
न श्रूयते परंश्रेयः सति चक्षुषि नेक्षते । समे पथि शनैर्गच्छन्स्खलतीव पदे पदे ।।
सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि । संसारे क्लिश्यते तेन रागलोभवशानुगः ।।
गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः । तद्दुःखमथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसादकम् ।।
ये सन्त्यस्मिन्परे ज्ञाने सर्वकामार्थसाधके । न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ।।
अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः । इच्छन्नपि न शक्नोति कर्तुं वक्तुं च सत्क्रियाम् ।।
दन्तोत्थाने महद्दुःखं मौलेन व्याधिना तथा । बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ।।
तृड्बुभुक्षापरीतांगः क्वचित्तिष्ठति[2] रारटन् । विण्मूत्रभक्षणमपि मोहाद्बालः समाचरेत् ।।
कौमारे कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनात् । अक्षराध्ययनात्पुंसां दुःखं स्याद्गुरुशासनात् ।।
प्रसन्नेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रपीडनात् । रोगोद्धतस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने ।।

पर उसे घोर ज्वर उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण उसे महामोह उत्पन्न होता है और उस मूढ समस्त स्मृतियाँ शीघ्र विनष्ट हो जाती हैं । पूर्व जन्म के कर्मों द्वारा उसकी स्मृति के नाश पूर्वक उस की उसी योनि के जन्म में अत्यन्त अनुराग हो जाता है । पुनः कर्म करने लगता है । उस समय यह न अपने की जानकारी रखता है और न उस पर ब्रह्म की ही । कहने पर भी अत्यन्त हित की बात सुनता है, आखें रहने पर देखता नहीं । उसी प्रकार समतल पर चलते हुए भी मार्ग में पग पग पर गि करता है । बुद्धि रहते हुए भी विद्वानों की बातें नहीं जानता है । अनुराग एवं लोभ के अधीन होकर संसार में अत्यन्त दुःखों का अनुभव करता रहता है । गर्भ की बातों के स्मरण यद्यपि उस समय नहीं र किन्तु उस दुःख के शमनार्थ महर्षियों ने शास्त्रों के निर्माण किये हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्ष के साधक हैं । लोक में यह एक कितने आश्चर्य की बात है कि उत्तम ज्ञान एवं उसके साधक (शास्त्र) के रहने पर मनुष्य आत्मकल्याण नहीं करता है । शिशु अवस्था में इन्द्रियों की वृत्तियाँ जागरुक न होने के का अत्यन्त इच्छा करते हुए भी किसी सत्क्रिया को सुसम्पन्न करना एवं कुछ कहना उस समय उसके साम की बात नहीं रहती है, इसलिए उस अवस्था में जीव को महान दुःख का अनुभव होता है । दाँतो निकलते समय भी उसे मसूड़ों की पीड़ा से अत्यन्त दुखी रहना पड़ता है । अनेक भाँति के बाल रोग बाल ग्रह जनित पीडाओं के अनुभवपूर्वक वह क्षुधा और प्यास से व्यथित होकर एक भाँति का रटन क हुए रोदन करता है। बच्चे मोहवश विष्ठा मूत्र के भक्षण भी कर लेते हैं।५५-६५। कुमारावस्था में कर्ण (कनछेदन), (उद्दण्डता करने पर) माता पिता और अक्षरों के अध्ययन करते समय गुरु के शासन द्व ताडना मिलती है । उसी प्रकार यौवन (युवा) अवस्था में इन्द्रियों के प्रसन्न होने के नाते उनकी वृ परतन्त्र रहती हैं, जिससे काम में अत्यन्त अनुराग उत्पन्न होकर उसे व्याकुल किया करता है और अत्य

---

१. न च देवताम् । २. क्वचित् ।

ईर्ष्यया च महद्दुःखं मोहाद्रक्तस्य जायते । नेत्रस्य कुपितस्यैव रोगो दुःखाय केवलम् ॥६८
न रात्रौ विन्दते निद्रां कोपाग्निपरिपीडितः । दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया ॥६९
स्त्रीष्वायासितदेहस्य ये पुंसः शुक्रबिंदवः । न ते सुखाय मन्तव्याः स्वेदजा इव बिंदवः ॥७०
कृमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनः कामिनस्तथा । कण्डूयनाग्नितापेन यद्भवेत्स्त्रीषु तद्धि तत् ॥७१
यादृशं विन्दते सौख्यं गण्डान्वयविनिर्गमे । तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते ॥७२
गण्डस्य वेदना यद्वत्स्फुटितस्य निवर्तते । तद्वत्स्त्रीष्वपि मन्तव्यं न सौख्यं परमार्थतः ॥७३
विण्मूत्रस्य समुत्सर्गात्सुखं भवति यादृशम्। तादृशं तेषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा ॥७४
नारीष्वशुचिभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च । नाणुमात्रकमप्येवं सुखमस्ति विचारतः ॥७५
सन्मानमपमानेन वियोगेन सुसङ्गमः । यौवनं जरया ग्रस्तं किं सौख्यमनुपद्रवम् ॥७६
वलीपलितखालित्यैः शिथिलीकृतविग्रहम् । सर्वक्रियास्वशक्तं च जरया जर्जरीकृतम् ॥७७
स्त्रीपुंसयोर्नवं रूपं तदान्योन्यं प्रियं पुरा । तदेव जरया ग्रस्तमुभयोरपि न प्रियम् ॥७८
अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्तितः । यः पश्यन्नपि रज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥७९

भोगी होने से प्रचण्ड रोगग्रस्त होना पड़ता है, अतः युवावस्था में सुख का लेश भी मिलना कठिन हो जाता है। अनुरागी प्राणी को ईर्ष्या के कारण भी कठिन दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। इसलिए क्रुद्ध प्राणी में अनुराग एक मात्र दुख का कारण होता है। क्योंकि क्रोधाग्नि से दग्ध होने पर उसे रात्रि में नींद नहीं आती है। अर्थोपार्जन की चिन्ताओं से व्याकुल होने पर दिन में भी वह सुख से वञ्चित रह जाता है। स्त्री में अत्यासक्त रहकर उसके साथ उपभोग करने में जो वीर्य के बिंदु गिरते हैं उन्हें भी स्वेद विन्दुओं की भाँति सुखकर नहीं जानना चाहिए। कुष्ठ के रोगी को कीडों के काटने पर कंडूपर (खुजलाने) अग्निताप द्वारा शांति मिलने की भाँति ही पुरुषों को भी (शुभ्र कीटाणुओं) कीड़ो के काटने पर स्त्रियों के उपभोग में शुक्र विन्दुओं के पतन होने पर वह कण्डूयन शांत हो जाता है। मुहासे आदि छोटी फुन्सियों के बह जाने पर जिस प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है स्त्रियों में रमण करने पर भी उतने ही सुख की प्राप्ति होती है अधिक नहीं। फोड़े के फूट जाने पर जिस प्रकार उसकी वेदना नष्ट हो जाती है उसी प्रकार स्त्रियों में रमण द्वारा कामवेदना ही शांति होती है अन्य कोई परमार्थ सुख की प्राप्ति नहीं है। विष्ठा, मूत्र के परित्याग करने पर जिस प्रकार का सुख प्राप्त होता है वैसा ही सुख शुक्र बिंदु के पतन होते समय होता है किन्तु मूढ़ों ने उसे उसके विरुद्ध ही कल्पना किया है।६६-७७। इस प्रकार स्त्रियों के रमण में जो अत्यन्त अविमात्र तथा सभी दोषों की खानि होती है, विचार करने पर सुख का लेश भी नहीं मिलता है। युवा काल में प्राणी सम्मान पूर्वक मान एवं वियोग के पश्चात् स्त्री रमण में दृढालिङ्गन प्राप्त करता है किन्तु वह यौवन जरा (बुढ़ापा) से ग्रसा होने के नाते उसके पीछे उपद्रव लगा ही रहता है इसलिए उस अवस्था में कोई सुख नहीं वृद्धावस्था में बुढाई द्वारा देह के जर्जर होने पर उसकी खाल लटक जाती है और समस्त शरीर शिथिल होने के कारण वह सभी क्रियाओं के करने में असमर्थ रहता है। जो रूप सौन्दर्य पूर्ण होने के नाते युवावस्था में नित्य नूतन ही दिखाई देता है। इसलिए दम्पति को आपस में एक दूसरे की देह अत्यन्त प्रिय रहती है, वही देह जरा ग्रस्त होने पर पूर्व की भाँति प्रिय नहीं होती है। अपने को इस भाँति देखते हुए भी कि जो पहले कितना अपूर्व था और वही जरा ग्रस्त होने पर किस प्रकार परिवर्तित हो गया

जराभिभूतः पुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः । अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥८०
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च न जरी यतः । शक्तः साधयितुं तस्माच्छरीरमिदमात्मनः ॥८१
वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते । तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥८२
वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीनां पञ्जरस्य च । रोगैर्नानाविधैर्यानि देहदुःखान्यनेकधा ॥
तानि च स्वात्मवेद्यादि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥८३
एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः ॥८४
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः । जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥८५
यदि चापि न मृत्युः स्याद्विषमद्यादशंकितः । न सन्ति पुरुषे तस्मादपमृत्युविभीतयः ॥८६
विविधा व्याधयः शस्त्रं सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा । विषाणि जङ्गमाद्यानि[1] मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ॥८७
पीडितं सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् । स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति प्राप्तमृत्युं च देहिनम् ॥८८
नौषधं न तपो दानं न मंत्रा न च बांधवाः । शक्नुवन्ति परित्रान्तु नरं कालेन पीडितम् ॥८९
रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः । कालमृत्युरपि प्राज्ञैस्तीर्यते नालसैर्नरैः ॥९०
नास्ति मृत्युसमं दुःखं नास्ति मृत्युसमं भयम् । नास्ति मृत्युसमस्त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥९१

है, उसमे आसक्त होता है, उससे बढ़कर अन्य कोई प्राणी नहीं है। बुढाई आने पर पुरुष के अशक्त होने पर पत्नी पुत्र एवं दुराचारी बन्धुओं और भृत्यों (सेवकों) द्वारा सदैव अपमानित होता रहता है। मनुष्य अपने शरीर द्वारा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति करने में समर्थ रहता है अतः उसकी प्राप्ति उसे अवश्य करना चाहिए क्योंकि उसमें बुराई का भय कभी नहीं होता है। अन्यथा वात, पित्त एवं कफ की विषमता से व्याधि उत्पन्न होती है इसलिए इस शरीर को व्याधि मन्दिर जानना चाहिए। उसी प्रकार वातादि रोग के अतिरिक्त अनेक भाँति के रोग एवं पांजर आदि के द्वारा अनेक प्रकार की व्यथा उत्पन्न होते रहने के कारण यह देह दुःख की है। जिसका अनुभव सभी लोगों को होता रहता है। अन्य कोई बात न है और न कह रहा हूँ। इस शरीर में एक सौ एक मृत्यु दायक रोग सदैव रहते हैं उसमें एक काल है और अन्य आगन्तुक रोग। किन्तु जो आगन्तुक के नाम से प्रथित हैं वे औषधियों के सेवन से शान्त हो जाते हैं, अथवा जप हवन एवं दान द्वारा और काल मृत्यु का शमन किसी प्रकार नहीं होता है। यदि मृत्यु का किसी प्रकार शमन हो सकता है तो प्राणी पुनः निःशंक होकर विष भक्षण किया करते किन्तु पुरुषों में वैसा असम्भव है, उन्हें तो अनेक भाँति की व्याधि शस्त्र एवं सर्पादि रूप से ही प्राणियों की विष एवं जंगमादि द्वारा मृत्यु होती रहती है। उसे समस्त रोगों की व्यथा का अनुभव करना पड़ता है। प्राणी की मृत्यु के समय साक्षात् धन्वन्तरि आकर औषध आदि से उपचार करें, तो भी स्वस्थ नहीं हो सकता है।७८-८८। काल से पीडित होने पर औषध, तप, दान, मंत्र एवं बन्धु गण उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। योगसिद्ध महात्मा लोग जो रसायन सेवन, तप और जप निरन्तर करते हैं, काल मृत्यु को भी पराजित करते हैं, किन्तु आलसी पुरुष कभी नहीं। इसलिए समस्त प्राणियों के लिए मृत्यु के समान दुःख, भय,

---

१. चातिवादाश्च।

सद्भार्यापुत्रमित्राणि राज्यैश्वर्यधनानि च । अबद्धानि च वैराणि मृत्युः सर्वाणि कृन्तति ॥९२
हे जनाः किं न पश्यध्वं सहस्रस्यापि मध्यतः । जनाः शतायुषः पञ्च भवन्ति न भवन्ति च ॥९३
अशीतिका विपद्यन्ते केचित्सप्ततिका नराः । परमायुषं स्थितं षष्टिस्तच्चैवानिश्चितं पुनः ॥९४
यस्य यावद्भवेदायुर्देहिनां पूर्वकर्मभिः । तस्यार्द्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी ॥९५
बालभावेन मोहेन वार्द्धक्ये जरया तथा । वर्षाणां विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जिता ॥९६
आगन्तुकैर्भयैः पुंसां व्याधिशोकैरनेकधा । क्षयतेऽर्द्धं च तत्रापि यच्छेषं तच्च जीवति ॥९७
जीवितान्ते च मरणं महाघोरमवाप्नुयात् । जायते जन्मकोटीषु[1] मृतः कर्मवशात्पुनः ॥९८
देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्मसंक्षयात् । मरणं तद्विनिर्दिष्टं नान्यथा परमार्थतः ॥९९
महातपप्रविष्टस्य च्छिद्यमानेषु मर्मसु । यद्दुःखं मरणे जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित् ॥१००
हा तात मातः कान्तेति रुदन्नेवं[2] हि दुःखितः । मण्डूक इव सर्पेण ग्रस्यते मृत्युना जनः ॥१०१
बान्धवैः सम्परिष्वक्तः प्रियैः स परिवारितः । निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यति ॥१०२
क्रन्दते चैव खट्वायां परिवर्तन्मुहुर्मुहुः । संमूढः क्षिपतेऽत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ॥१०३

तथा त्रास अन्य नहीं है । यह काल मृत्यु साध्वी स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, और धन आदि सभी का नाश करता है । जनगण ! क्या तुम लोग यह भी नहीं देखते हो कि सहस्रों मनुष्यों के बीच में पाँच भी मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं करते हैं । उनमें किसी की मृत्यु अस्सी तथा किसी की सत्तरवर्ष की अवस्था में हो जाती है । उनकी परमायु साठ वर्ष की होती है किन्तु वह भी उसके लिए अनिश्चित रहती है, क्योंकि जन्मान्तरी कर्मों के अनुसार उसकी निश्चित आयु के आधे भाग को मृत्यु रूपी रात्रि हर लेती है । और शिशु, अवस्था में मोहवश एवं वृद्धावस्था में बुढाई द्वारा उसकी बीस वर्ष की आयु यों ही नष्ट हो जाती है, जिसमें धर्म, अर्थ, एवं काम की कोई बात नहीं होती है । पश्चात् आगन्तुक अनेक भाँति की व्याधियों द्वारा उसकी आधी आयु नष्ट हो जाती है । इन सबसे शेष आयु में वह जीवित रहता है । जीवन के अंत में पुनः वही महाघोर मरण और तदनन्तर कर्म वश पुनः उसे जन्म ग्रहण की परम्परा में आना पड़ता है । प्राणी अपने कर्मों के अनुसार निर्दिष्ट योनि में पहुँच कर शरीर धारण करता है और उस भोग कर्म के समाप्त होने पर उस शरीर के त्याग पूर्वक पुनः अन्य योनि में जाकर उसकी शरीर धारण करता है, इस प्रकार शरीर प्राप्ति और उसका मरण रूप वियोग का क्रम होता रहता है । किन्तु इसमें कोई क्रम परमार्थ नहीं है। महातपस्वी मनुष्य कभी मृत्यु के समय उसके अंग प्रत्यंग में व्यथा द्वारा उसे जिस दुःख का अनुभव होता है, उसकी उपमा कहीं नहीं है। मरण समय में प्राणी हे तात, हा मातः हे कान्ते कहकर अत्यन्त दुःखी होने पर उस रोदन के समय परिवारों को बुलाता है किन्तु साँप द्वारा ग्रसित होने पर मेढ़क की भाँति यह प्राणी भी मृत्यु द्वारा ग्रस्त होकर विनष्ट हो जाता है।८९-१०१। उस समय उसके प्रिय बन्धु गण उसे चारों ओर से घेर कर उसकी बाधा दूर करने में सतत प्रयत्न करते रहते हैं तथापि वह उसी भाँति दीर्घ निश्वास लेता रहता है जिसके कारण उसका मुख सूख जाता है। और उसी शय्या पर पड़े बार बार दुखाक्रन्द किया करता है। चेतना आने पर हाथ चरण के इधर-उधर से चालन करते हुए

---

१. योनिकोटीषु । २. क्रन्दन् ।

खट्वातो काङ्क्षते भूमिं भूमेः खट्वां पुनर्महीम् । विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः ।।१०४
याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । चिन्तयानश्च वित्तानि कस्यैतानि मृते मयि ।।१०५
पश्चावटान्खन्यमानः कालपाशेन कर्षितः । म्रियते पश्यतामेव जनानां घुर्घुरस्वनः ।।१०६
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहं विशेत्क्रमात् । सम्प्राप्योत्तरकालं हि देहं त्यजति पौर्वकम् ।।१०७
[1]मरणात्प्रार्थनादुःखमधिकं हि विवेकिनः । क्षणिकं मरणद्दुःखमनंतं प्रार्थनाकृतम् ।।१०८
जगतां पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः । अधिकः कोऽपरस्तस्माद्यो न यास्यति लाघवम् ।।१०९
ज्ञातं मयेदमधुना मतं भवति यद्गुरु । न परं प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ।।११०
आदौ दुःखं तथा मध्ये दुःखमन्ते च दारुणम् । निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरम्परा ।।१११
वर्तमानान्यतीतानि दुःखान्येतानि यानि तु । नरा न भावयंत्यज्ञा न विरज्यन्ति तेन ते ।।११२
अत्याहारान्महद्दुःखमनाहारान्महत्तमम् । तुलितं जीवितं कष्टं मन्येऽप्येवं कुतः सुखम् ।।११३
बुभुक्षा सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः । स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति ।।११४
क्षुद्व्याधिवेदनातुल्या निःशेषबलकर्तनी । तयाभिभूतो म्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्न हि ।।११५
तद्रसोपि हि कामाद्वा जिह्वाग्रे परिवर्तते । तत्क्षणाद्वार्धकालेन कण्ठं प्राप्य निवर्तते ।।११६

शय्या से भूमि में और भूमि में आकर पुनः शय्या पर जाने की इच्छा प्रकट करता है। उस समय विवश होने पर निर्लज्ज हो जाता है, उसकी देह में विष्ठा मूत्र लगे रहते हैं कंठ, ओष्ठ एवं तालु के सूजने पर बार-बार पानी की याचना करता रहता है और अपने धन के लिए सोचता रहता है कि मेरे मर जाने के पश्चात् इसका अधिकारी कौन होगा। काल पाश से आबद्ध होकर अपने प्रिय परिवारों के सामने ही घुर-घुर की आवाज करते हुए यह प्राणी तृण की भाँति कर्मानुसार इस देह से अन्य देह में क्रमशः प्रवेश अवशेष करता है। इसी प्रकार काल द्वारा पूर्व शरीर का त्याग और भावी शरीर की प्राप्ति करता रहता है। किन्तु इस जीव को मरने से कहीं अधिक दुःख याचना करने पर होता है, क्योंकि मरण में क्षणिक दुःख का अनुभव करना पड़ता है और याचना में अनन्त बार, इसीलिए जगत पति भगवान् विष्णु को याचना के कारण वामन लघुरूप की प्राप्ति हुई है। अतः कभी भी याचना किसी से न करनी चाहिए, क्योंकि लाघव होने में मुख्य एक मात्र तृष्णा ही कारण कहा गया है। इसी प्रकार समस्त प्राणी को गर्भ मध्य (जन्म) और अंत (मरण) के समय कष्ट ही कष्ट रहता है, जो दुःख परम्परा उनके स्वाभाविक सी बन जाती है। अतीत एवं वर्तमान दुःखों के मूलकारण का विचार प्राणी नहीं करता है इसी अज्ञान वश उन दुःखों से उसे विराग उत्पन्न नहीं होता है। प्राणी जिस पुष्टाहार को परमोत्तम मानता है, उसके अधिक आहार करने पर महान् दुःख होता है तथा उसका परित्याग भी नहीं कर सकता। इस प्रकार तुलित (नपातुला) जीवन होने से उसे कष्टमय समझना चाहिए उसमें सुख कहाँ से हो सकता है। प्राणियों में वुभुक्षा (खाने की इच्छा) जो समस्त रोगों की व्याधि है, वह अन्य औषधि रूपी लेपन से क्षण मात्र में शान्त हो जाती है। क्षुधा रूपी व्याधि की वेदना, जो सम्पूर्ण बल का नाश कर देती है, अनुपम कहीं गई है। क्योंकि रोगी पुरुष की भाँति क्षुधा-पीडित होने पर प्राणी की मृत्यु हो जाती है। सुस्वाद पूर्ण अन्न मुख में रखने पर उसका रस जिह्वा पर व्याप्त रहता है किन्तु वह उसी समय कंठ पहुँचते हुए भीतर (उदर) में

---

१. मरणात्प्राक्—कर्णनासिकामुखानि हस्तेन चालयतीत्यवटखननापदेशः।

इति क्षुद्व्याधितप्तानामन्नमौषधवत्स्मृतम् । न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पण्डितैः ।।११७
मृतोपमो यच्चेक्षेत सर्वकार्यविवर्जितः । तत्रापि च कुतः सौख्यं तमसाच्छादितात्मनः ।।११८
प्रबोधेऽपि कुतः सौख्यं कार्यैरुपहतात्मनः । कृषिगोरक्षवाणिज्यसेवाध्वादिपरिश्रमैः ।।११९
प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने तु बुभुक्षया । तृप्ताः कामेन बाध्यन्ते जन्तवोऽपि विनिद्रया ।।१२०
अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेऽभ्यश्च कुतः सुखम् ।।१२१
चौरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात्पार्थिवादपि । भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ।।१२२
खे यातं पक्षिभिर्मांसं भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि । जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ।।१२३
विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्तिषु । खेदयन्त्यर्जनाकाले कदा[1] ह्यर्थाः सुखावहाः ।।१२४
यथार्थपतिरुद्विग्नो यच्च सर्वार्थनिःस्पृहः । यतश्चार्थपतिर्दुःखी सुखी सर्वार्थनिःस्पृहः ।।१२५
शीतेन दुःखं हेमेन्ते ग्रीष्मे तापेन दारुणम् । वर्षासु वातवर्षाभ्यां कालेऽप्येवं कुतः सुखम् ।।१२६

चला जाता है ।१०२-११६। इस प्रकार क्षुधा रोग से संतप्त प्राणियों के लिए अन्न औषध रूप अवश्य है, किन्तु वह सुख पण्डितों के विचार से पारमार्थिक नहीं है । जो प्राणी समस्त कार्यों के त्याग पूर्वक केवल मृतक की भाँति देखा ही करता है, उस प्राणी को जीवन में सुख का लेश कहाँ से मिल सकता है क्योंकि उसका ज्ञान आत्मा सदैव, अज्ञानान्धकार से आवृत्त रहता है । बोध करने पर भी कृषि, गोरक्षा, व्यापार, सेवा रूपी कार्यों की अधिकता एवं उसे सुसम्पन्न करने के लिए मार्ग आदि गमन करने के परिश्रम से सदैव व्याकुल रहने के कारण उसके उस अबोधित जीवन में सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है । प्राणियों के यही जीवन क्रम है कि प्रातःकाल शौचादि नित्य क्रिया, मध्याह्न में भोजन द्वारा क्षुधा शान्ति और भोजनोपरांत तृप्त होने पर स्त्री के साथ रमण एवं निद्रा से विवश रहता है । प्राणी को अर्थोपार्जन करने में अनेक प्रकार के महान दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं और उसकी रक्षा करने में भी इस भाँति अर्थोपार्जन एवं उसके व्यय में नितान्त कष्ट ही रहने के नाते धन द्वारा उसे सुख कैसे मिल सकता है । मृत्यु द्वारा भयभीत प्राणियों की भाँति धनवान् पुरुष को भी चोर, जल की बाढ़, अग्नि, स्वजन एवं राजा से सदैव भय बना रहता है जिस प्रकार मांस लेकर आकाश में उड़ते हुए पक्षी गण तो उसका उपभोग करते ही हैं किन्तु उसके भूमि में गिरने पर कुत्ते और जल में गिरने पर मछलियाँ उसका उपभोग करती हैं उसी भाँति धनवान्, सर्वत्र सभी का भक्ष्य बना करता है । धनवान् होने पर प्राणी सदैव उसी में मुग्ध रहता है और उसी भाँति विपत्तियों के समय संतप्त होता है एवं उसके उपार्जन समय खिन्न रहता है। इसलिए धन किस समय सुख-दायक हो सकता है यह कहना कठिन है धनवान् जितना बुद्धिमान रहता है उससे कहीं अधिक शान्त उसके त्यागी देखे जाते हैं क्योंकि धनी सदैव दुःखी रहता है और सर्वार्थ निस्पृष्ट सुखी।११७-१२५। हेमन्त ऋतु में शीत, ग्रीष्म में ताप, एवं वर्षा में वायु तथा वर्षा द्वारा दारुण दुःख प्राप्त होने के नाते प्राणियों को काल (समय) द्वारा भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है! इसी प्रकार कुटुम्ब जीवन में किस प्रकार सुख प्राप्त हो सकता है । क्योंकि सर्वप्रथम विवाह के आयोजन

---

१. कथम् ।

विवाहविस्तरे दुःखं तद्गर्भोद्वहने पुनः । प्रसवेऽपत्यदोषैश्च दुःखं दुःखादिकर्मभिः ।।१२७
दन्ताक्षिरोगैः पुत्रस्य हा कष्टं किं करोम्यहम् । गावो नष्टाः कृषिर्भग्ना वृषाः क्वापि पलायिताः ।।१२८
अमी प्राघूर्णकाः प्राप्ता भक्तच्छेदे च मे गृहे । बालापत्या च मे भार्या कः करिष्यति रन्धनम् ।।१२९
प्रदानकाले कन्यायाः कीदृशश्च वरो भवेत् । इति चिन्ताभिभूतानां कुतः सौख्यं कुटुम्बिनाम् ।।१३०

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः श्रुतं च शीलं च गुणाश्च सर्वे ।
अपक्वकुम्भे निहिता इवापः प्रयान्ति देहेन समं विनाशनम्।।१३१

राज्येऽपि च महद्दुःखं सन्धिविग्रहचिन्तया । पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम् ।।१३२
सजातीयाद्वधः प्रायः सर्वेषामेव देहिनाम् । एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम् ।।१३३
नाप्रधृष्यबलः कश्चिन्नृपः ख्यातोऽस्ति भूतले । निखिलं यस्तिरस्कृत्य सुखं तिष्ठति निर्भयः ।।१३४

आजन्मनः प्रभृति दुःखमयं शरीरं कर्मात्मकं तव मया कथितं नरेन्द्र ।
दानोपवासनियमैश्च कृतैस्तदेव सर्वोपभोगसुखभाग्भवतीह[1] पुंसाम्।।१३५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
संसारदोषाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

पूर्वक उसके सुसम्पन्न करने में अनेक दुःख पश्चात् स्त्री को गर्भ वहन करने एवं पुरुष काल में दारुण दुःख शिशु के उत्पन्न होने पर उसके अनेक रोगों से पीड़ित होने पर दाँत निकलते समय, और उनके आ जाने पर उसके अतिरिक्त अन्य शिशुओं से आक्रान्त होने पर प्राणी उस अपने पुत्र की व्यथा से व्याकुल होकर अचेतन सा हो जाता है ।वह समय यही कहता है कि हा, महान् कष्ट उपस्थित है क्या करुँ, कहा जाऊँ । मेरी गाय न जाने कहाँ चली गई, जो सतत प्रयत्न करने पर भी नहीं मिली, अबकी साल खेती एकदम नष्ट हो गई है, बैल को न जाने कौन चुरा ले गया, ये अतिथिगण मेरे घर आ गये हैं इस समय बना हुआ भोजन कौन बनाये क्योंकि स्त्री की गोदी में छोटा बच्चा है कन्या के विवाह के अवसर पर चिन्ता होने लगती है इसके योग्य वर कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकेगा आदि चिन्ताओं से वह सदैव घिरा रहता है । इतनी ही नहीं कुटुम्व की चिन्ता से जर्जर होने पर प्राणी अपनी विद्या, शील, एवं गुण समेत जल पूर्ण घडे की भाँति नष्ट हो जाता है राज्य प्राप्त होने पर उसके लिए संधि, विग्रह की चिंता सदैव होती रहती है तथा जिसमें पुत्र से भी भय बना रहे उसमें किस प्रकार का सुख प्राप्त हो सकता है, नहीं कहा जा सकता । क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि एक ही वस्तु अभिलाषा प्रकट कर आपस में लड़ने वाले कुत्तों की भाँति सभी प्राणियों का निधन अपनी जाति के लोगों के ही द्वारा होता है । इस भूतल में इस प्रकार का कोई शान्त राजा है भी नहीं जो अपने समस्त का त्याग कर सुख पूर्वक रह रहा हो । नरेन्द्र ! मैंने तुम्हें शरीर प्राप्ति एवं उसके दुःख-दायक कर्म समूह की जो जन्म से आरम्भ की मरण पर्यन्त दुःख प्रदान करता है, व्याख्या करके बता दिया किन्तु दान, उपवास एवं नियम पालन करने से वह समस्त के उपभोग पूर्वक सुख प्रदान करता है ।१२६-१३५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में संसारदोषवर्णन्त
नामक चौथा अध्याया समाप्त ।४।

---

१. सर्वोपभोगसुभगम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पापभेदाख्यानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अधोधः पतनं पुंसामधः कर्म प्रकीर्तितम् । नरकार्णवघोरेषु यातना पापमुच्यते ।।१
अधर्मभेदा विज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः । स्थूलाः सूक्ष्माः सुसूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकधा ।।२
तत्र ये पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः । ते समासेन कथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनाः ।।३
परस्त्रीष्वथ सङ्कल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम् । अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम् ।।४
अनिबद्धप्रलापित्वमसत्यं चाप्रियं च यत् । परापवादिपैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम् ।।५
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम् । परस्वानामुपादानं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ।।६
इत्येतद्द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं ससाधनम् । तेषां भेदं पुनर्वच्मि येषां फलमनन्तकम् ।।७
ये द्विषन्ति महादेवं[1] संसारार्णवतारणम् । समस्तपातकोपेतास्ते यान्ति नरकाग्निषु ।।८
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । महापातकिनश्चैते तत्संसर्गी च पञ्चमः ।।९
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणं विशसन्ति ये । प्राणांतिको महादोषो ब्रह्मघ्नास्ते प्रकीर्तिताः ।।१०

अध्याय ५

पापभेद के आख्यान का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—पुरुषों के अधः पतन होने में उसके उसी प्रकार से नीच कर्म कारण होते हैं, जिसके द्वारा वह भीषण नरकों में पहुँच कर यातनाएँ भोगता है। उसमें चित्त वृत्ति के भेद से अधर्म के भी भेद होते हैं इसीलिए स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्माति सूक्ष्म के भेद से उसमें कोटि भेद हैं किन्तु उसमें जो स्थूल पाप कर्म हैं जिसे नरक की घोर प्राप्ति होती है उन्हें मैं बता रहा हूँ। वे कर्म मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किये जाते हैं—पर स्त्री की इच्छा, उसके साथ शयन करने का संकल्प निन्दित कार्यों के विचार रूप मानसिक कर्म चार प्रकार के होते हैं। क्रमहीन प्रलाप (असंगत प्रलाप) असत्य, अप्रिय एवं दूसरे की चुगुली करना रूप चार कर्म वाचिक और अभक्ष्य भक्षण, हिंसा, मिथ्या काम सेवन एवं दूसरे के धन ले लेना रूप चार कर्म कायिक (शरीर द्वारा) होते हैं। इस प्रकार मैंने बारह भाँति के कर्म तथा उसके साधन भी बता दिये थे किन्तु पुनः उनके भेदों को बता रहा हूँ, जिनका अनन्त फल कहे गये हैं। संसार सागर के उद्धारक महादेव जी से जो द्वेष करते हैं वे समस्त पापों से युक्त होकर नरक की अग्नि में गिरते हैं। ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन करने तथा इनके संसर्ग में रहने वाले पंचम महापातकी बताये गये हैं।१-९। क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभ से वशीभूत होकर जो ब्राह्मण पर शासन कर उनकी हत्या करते

---

१. सदा विष्णुम् ।

ब्राह्मणं च समाहूय याचमानमकिञ्चनम् । पश्चान्नास्तीति तं ब्रूयात्स चैवं ब्रह्महा स्मृतः ।।११
यस्तु विद्याभिमानेन नित्यं जयति वै द्विजान् । समासीनः सभामध्ये ब्रह्महा सोऽपि कीर्तितः ।।१२
मिथ्यागुणैः स्वमात्मानं नयत्युत्कर्षणं बलात् । गुरूणां च विरुद्धो यः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१३
क्षुत्तृट्संतप्तदेहानां द्विजानां भोक्तुमिच्छताम् । समाचरति यो विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।१४
पिशुनः सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः । उद्वेगजननः क्रूरः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१५
गवां तृष्णाभिभूतानां जलार्थमुपसर्पताम् । समाचरति यो विघ्नं स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१६
परदोषमभिज्ञाय नृपकर्णे करोति यः । पापीयान्पिशुनः क्षुद्रः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१७
देवद्विजगवां भूमिं पूर्वभुक्तां हरेत्तु यः । प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।१८
द्विजवित्तापहरणे न्यायतः समुपार्जिते । ब्रह्महत्या समं ज्ञेयं[1] पातकं नात्र संशयः ।।१९
अग्निहोत्रपरित्यागो यस्तु याज्ञिककर्मणाम् । मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ।।२०
गवां मार्गे वने चाग्निं पुरे ग्रामे च दीपयेत् । इति पापानि घोराणि सुरापानसमानि तु ।।२१
हीनस्वहरणे चापि नरस्त्रीगजवाजिनाम् । गोभूरजतरत्नानामौषधीनां रजस्य च ।।२२
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीखण्डवाससान्[2] । हस्ते न्यस्यापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ।।२३
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे । पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ।।२४
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम् । अवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् ।।२५

हैं उनको ब्रह्मघ्न कहा गया है। ब्राह्मण को बुलाकर जो किसी छोटी सी वस्तु की याचना कर रहा हो, पीछे नहीं है, कह देने वाले को ब्रह्म हत्यारा कहा गया है। जो अपनी विद्या के अभिमान से सभा में उदासीन होकर ब्राह्मणों को अपमानित करता है, उसे भी ब्रह्महा ही कहा गया है। क्षुधा प्यास से व्याकुल ब्राह्मण को जो भोजन की इच्छा प्रकट कर रहा हो, मना करता है या अन्य कोई विघ्न उपस्थित करता है, वह भी ब्रह्मघाती है। सभी लोगों की चुगुली सब में दोष ही ढूंढना, उद्वेग दायक, क्रूर कर्मा, अत्यन्त प्यास से व्याकुल गाय से, जो पानी पीने के लिए जा रही हो, न जाने देने वाले दूसरे के दोषों (अपराधों) को जानकर राजा से कहने, पापकर्मा, नीच स्वभाव, निन्दा करने वाला। देव, ब्राह्मण और गायों के लिए दी हुई भूमि के अपहरण करने वाला जो थोड़े समय में नष्ट भी हो जाने के योग्य हो, ब्राह्मण धन के अपहरण करने वाला, जिसे उस ब्राह्मण ने न्याय पूर्वक उपर्जित किया है, ब्रह्मघाती है इसमें संशय नहीं। अग्निहोत्र, याज्ञिक कर्म, माता, पिता के त्याग, न्यायालय में कूटसाक्षी (गवाही), मित्रवध, गौओं के मार्ग वन, नगर या ग्राम में अग्निदाह करने आदि ये सभी पाप सुरापान के समान हैं। धन, मनुष्य, स्त्री, गज, घोड़े, गाय, पृथ्वी, चाँदी, रत्न, औषध, चंदन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, वस्त्र एवं धरोहर के अपहरण करना सुवर्ण चोरी के समान है। विवाह योग्य कन्या उसके अनुरूप वर को प्रदान न करने, पुत्रवधू, मित्रपत्नी, भगिनी के साथ गमन, कुमारियों के साथ घोर दुस्साहस, शूद्र स्त्री भोग, जातिच्युत स्त्री के साथ गमन करने आदि गुरुतुल्य (गुरुपत्नी गमन) के समान हैं।१०-२५। इस प्रकार मैंने महापातक तथा

---

१. पापं हरणे। २. चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम्।

महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तद्वदाम्युपपातकम् ।।२६
द्विजार्थं च प्रतिज्ञाय न प्रयच्छति यः पुनः । तस्मान्नरपते विघ्नतुल्यं तदुपपातकम् ।।२७
द्विजद्रव्यापहरणं मर्यादाया व्यतिक्रमः । अतिकोपश्च मानश्च दाम्भिकत्वं कृतघ्नता ।।२८
अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं श्रेष्ठमत्सरः । परदारापहरणं साधुकन्याविदूषणम् ।।२९
परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते । तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।।३०
पुत्रमित्रकलत्राणामभावे स्वामिनस्तथा । शिष्टानां चैव संन्यासः सहजानां तपस्विनाम् ।।३१
भङ्गश्च धर्मकृत्यानां सहायानां विनाशनम् । पीडामाश्रमसंस्थानान्नाचरेत्स्वल्पिकामपि ।।३२
स्वभृत्यपरिवर्गस्य पशुधान्यधनस्य च । कुप्यधान्यपशुस्तेयमयाच्यानां च याचनम् ।।३३
गवां क्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः । यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयः ।।
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतायतनकर्मणाम् ।।३४
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः । अरक्षणं च नारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।।३५
ऋणानामप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपजीविनाम् । निन्दिताच्च धनादानमपण्यानां च विक्रयः ।।३६
विषमारणमन्त्राणां प्रयोगे मूलकर्मणाम् । उच्चाटनाविचारश्च गरविद्वेषणक्रिया ।।३७
जिह्वासमुपभोगार्थं यस्यारम्भः स्वकर्मसु । मूल्येनाध्यापयेद्यश्च मूल्येनाधीयते च ये ।।३८
व्रात्यता व्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम् । असद्दाराभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ।।३९
देवाग्निसाधुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिकामपि ।।

उसके समान पातकों को बता कर अब उपपातक बता रहा हूँ, नरपते ! ब्राह्मण को वचन देकर उसकी पूर्ति न करना वह उपपातक कहा गया है । द्विज के धनापहरण मर्यादा का उल्लंघन अत्यन्त क्रोध, मान, दम्भ, कृतघ्नता, अत्यन्त स्त्री भोग, कृपणता, बड़ों से बैर परस्त्री का हरण, कन्या दूषित करना, परिवित्त[१] परिवेत्ता[२] को कन्यादान तथा उनके यज्ञ कराने, मित्र, पुत्र की स्त्रियों के पति के न रहने पर उनके धर्म भंग करने, सहज तपस्वी, शिष्यों के सन्यास में धार्मिक कार्य एवं उसके सहायक धर्मों के विनाश करने, आश्रम वासियों को स्वल्प भी पीड़ित करने, अपने सेवक या उनके परिवार के पशु, धन-धान्य के अपहरण, अयाच्य से याचन, गौ, क्षत्रिय, वेश्या, स्त्री, शूद्रों विशेषकर यज्ञ, वगीचे, सरोवर, स्त्री, पुत्र के विक्रय करने, तीर्थयात्री, जो व्रतों को सनियम पालन करता है तथा स्त्रीधन से जीविका चलाने वाले, स्त्री द्वारा पराजित, स्त्रियों की रक्षा न करने, सुरापान करने वाली स्त्री के गमन, ऋणों को न देने, धान्य वृद्धि से (विशार देकर) जीविका चलाने, निन्दित से धन ग्रहण करने, गृह की वस्तुओं के विक्रय, विष, मारण मंत्र, मूल कर्म के प्रयोग, उच्चाटन, निन्दित विचार करने, विष, एवं विद्वेष कराने, अपनी ही जिह्वा के सुख-साधनार्थ कर्म करने, मूल्य लेकर अध्ययन एवं अध्यापन करने । व्रात्यता, व्रतों के त्याग, समस्त के आहार करने, निन्दिता स्त्री गमन, शुष्क तर्क, देव, अग्नि, साधु, पतिव्रता स्त्री, गौ, ब्राह्मण तथा

---

१. बड़ी कन्या के रहते छोटी कन्या का विवाहित होना ।

२. ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे का विवाहित होना ।

दुःशीला नास्तिकाः पापाः सर्वशून्यस्य वादिनः ॥४०
पर्वकाले दिवा चैव वियोनौ पशुयोनिषु । रजस्वलानां योनौ च मैथुनं च समाचरेत् ॥४१
स्त्रीपुत्रमित्रसम्प्रीते ग्रासान्नच्छेदकाश्च ये । जनस्याप्रियवक्तारो धूर्ता समयभेदिनः ॥४२
भेत्ता तडागचक्राणां संक्रमाणां रथस्य च । एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ॥४३
इत्येतैस्ते नरा पापैरुपपातकिनः स्मृताः । युक्तास्तदूनकैः क्षुद्रैः पापै पापतराः स्मृताः ॥४४
ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् । अन्तरं यान्ति कार्येषु ते नरा नारकाः स्मृताः ॥४५
परश्रिया[1] ये तप्यन्ते ये परद्रव्यसूचकाः । परव्यापारनिरताः परस्त्रीनरदूषकाः ॥४६
द्विजाय दुःखं यः कुर्यात्प्रकारैर्बहुभिः[2] सदा । सेवते यो द्विजः शूद्रां सुरां जिघ्रति[3] कामतः ॥४७
ये पानाभिरताः क्रूरा ये हिंसाप्रिया[4] नराः । वित्तार्थं[5] ये च कुर्वंति दानयज्ञादिकां क्रियाम् ॥४८
गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायामठेषु च । त्यजन्तनेध्यं पुरुषा आरामायतनेषु च ॥४९
मद्यपानरता नित्यं गानवाद्यरता नराः । केलीकलाभुजङ्गाश्च रन्ध्रान्वेषणतत्पराः ॥५०
वंशेषु काशकाष्ठैश्च शुभैः शङ्कुभिरेव वा । ये मार्गान्समुपघ्नन्ति परस्त्रीराहरन्ति च ॥५१
कूटशासनहर्तारः कूटकर्मक्रियारताः । कूटयुद्धाश्च शस्त्रेण कूटसंव्यवहारिणः ॥५२
धनुषां शल्यशस्त्राणां यः कर्ता यश्च विक्रयी । निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमकश्च यः ॥५३
मिथ्या प्रवदतो वाक्यमाकर्णयति यः शनैः । स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठः ॥५४

मण्डलेश्वर राजा की प्रत्यक्ष या परोक्ष निन्दा करने, दुःशील, नास्तिक, पापी, सब स्थान शून्य ही कहने वाले पर्व के समय, दिन, में वियोनि या पशु योनि तथा रजस्वला की योनि में मैथुन करने, स्त्री, पुत्र, मित्र के अन्नग्रास के नष्ट करने या न देने, जनों में अप्रिय वक्ता, धूर्त, समय-समय पर भेद करने, तालाब, चलते हुए रथ के चक्के को तोड़ने, एक पंक्ति में स्थित वालों में पंक्ति भेद करने आदि ये सभी कर्म उपपातक कहे गये हैं और वे पुरुष उपपातकी। उससे कुछ न्यून छोटे-छोटे पाप करने वाले, गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र और तपस्वियों के कार्यों में बाधक होने वाले प्राणी नारकी कहे गये हैं।२६-४५। दूसरे की लक्ष्मी देख कर जलने वाले, दूसरे के धन की (इधर-उधर) सूचना देने अन्य जाति के धर्म-कर्म अपनाने वाले, परस्त्री को दूषित करने वाले तथा जो अनेक प्रकार से ब्राह्मण को दुःखी करते है। मद्यपान करने वाले, शूद्र स्त्री के रमण, क्रूर, हिंसाप्रिय, धन के लोभ से दान एवं यज्ञादि क्रियाओं को सुसम्पन्न करने वाले, गोशाला अथवा गौओं के उठने बैठने के स्थान, अग्नि, जल, डालियों, वृक्ष की छाया, तथा मठ, उपवन, मन्दिरों को अपवित्र करने वाले नित्य मद्यपान करके गायन वाद्य करते रहने वाले। क्रीडा-कला के नाशक, छिद्रान्वेषी बाँस, काश, काष्ठ या खूंटा गाड़कर मार्ग को रोक देने वाले, परस्त्री के अपहरण करने वाले, कूटशासन के नाशक, कूर कर्म की क्रिया करते रहने वाले, कूट शुद्ध, शास्त्र द्वारा क्रूर व्यहार करने वाले, धनुष, शल्य, तथा शास्त्रों के बनाने एवं विक्रय करने वाले और सेवकों पर निर्दय व्यवहार पशुओं के दमन असत्य वादियों की बातें धीरे-धीरे सुनने वाले, स्वामी, मित्र एवं गुरु से द्रोह करने वाले, मायावी, चपल, शठ, स्त्री पुत्र मित्र, बाल वृद्ध, आतुर,

---

१. परिस्त्रिया ये हृष्यन्ते। २. दद्यात्। ३. चाघ्राति। ४. हिंसापराः। ५. पंक्त्यर्थम्।

ये भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् । भृत्यानतिथिबन्धूंश्च प्रबाधन्ते बुभुक्षया ।।५५
यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रायान्यत्प्रयच्छति । वृथापाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ।।५६
नियमान्स्वयमादाय[1] ये त्यजन्त्यजितेंद्रियः । प्रव्रज्यावासिनो ये च रहस्यानां च भेदकाः ।।५७
ताडयन्ति च वेगाद्ये शपन्ति च मुहुर्मुहुः । दुर्बलांश्च न पुष्णन्ति पुनस्तान्वाहयन्ति च ।।५८
पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्ति च । सार्द्धयामादुपरितः संयुक्तेषु च भुञ्जते ।।५९
ये भग्नक्षतरोगार्तान्स्वगोरूपान्बुभुक्षया । न पालयन्ति यत्नेन ते गोघ्ना नारका नराः ।।६०
वृषाणां वृषणान्येव पापिष्ठा गालयन्ति ये । वाहयन्ति च गां वध्यां ते महानारकाः स्मृताः ।।६१
आश्रमं समनुप्राप्तं क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितम् । येऽतिथिं नाभिमन्यन्ते ते वै निरयगामिनः ।।६२
अनाथं विकलं दीनं बालं वृद्धं कृशातुरम् । नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति निरयार्णवम् ।।६३
अजाविको माहिषिकः सामुद्रो[2] वृषलीपतिः । शूद्रविट्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद्द्विजाधमः ।।६४
शिल्पिनः कारुका वैद्या हेमकारा नटा द्विजाः । कृतकौक्षेय संयुक्तास्तथान्ये नारकाः स्मृताः ।।६५
यश्चोदितमतिक्रम्य स्वेच्छया वा हरेत्करम् । नरके तु स पच्येत यश्च दण्डरुचिर्भवेत् ।।६६
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीडचते । यस्य राज्ञः प्रजा रुष्टा पच्यते नरकेषु सः ।।६७
ये द्विजाः प्रतिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः । प्रयान्ति[3] तेऽपि घोराणि नरकाणि न संशयः ।।६८

सेवक, अतिथि, एवं बन्धुओं को बुक्षुक्षित करने वाले, मधुर पदार्थ ब्राह्मण को न देकर स्वयं खाने वाले, नियमपालन पूर्वक पुनः अजितेन्द्रिय होने, संन्यासी होकर एक स्थान पर नियमित रूप से रहने वाले, रहस्यों के भेदक, वेगपूर्वक ताड़न करने बार-बार शाप देने, दुर्बलों (असहायों) के पालन न करने पुनः उन्हें अत्यन्त भार से पीड़ित तथा अंगदात होने पर काम से मुक्त न करने, डेढ़ प्रहर के उपरांत मिलकर भोजन करने वाले एवं भग्न, क्षत, रोगी, तथा गौओं को समय पर भोजन न देने वाले ये सभी प्राणी गो हत्यारे एवं नरकीय कहे गये हैं ।४६-६०। बैलों के अण्डकोष को निकालने या मदन द्वारा गलाने वाले और नाक छेदकर गायों पर भार लादने वाले प्राणी महा नारकीय कहे गये हैं । क्षुधा तृष्णा से पीड़ित किसी अतिथि के अपने आश्रम में आने पर उसकी सेवा सम्मान न करने वाले नरकगामी होते हैं । अनाथ, विकल, दीन, बाल, वृद्ध, कृश, आतुर के ऊपर कृपा नहीं करने वाले वे मूढ़ नरक गामी होते हैं । भेंड, बकरी, भैंसे रखने वाले, समुद्रयात्री, वृषली, (शूद्र स्त्री) के पति होने, शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रियों की वृत्ति अपनाने वाले ब्राह्मण अधम एवं नारकी होते हैं । शिल्पी (कारीगरी), कारू (राजगीर) वैद्य एवं सोनार जाति तथा नट के कार्य करने वाले एवं उदर पूर्ति करने वाले ब्राह्मण नारकी कहे गये हैं । नियमानुसार रीति के त्याग पूर्वक यथेच्छ कर ग्रहण करने, तथा दंड की रुचि रखने वाले प्राणी नरक में पकते रहते हैं तथा जीवित समय में घूस खाके अधिकारियों और तस्कर (चोर) से सदैव पीड़ित रहते हैं । जिस राजा की प्रजा सदैव उससे रुष्ट रहती है वह राजा तथा अन्यायी राजा के दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण घोर नरक की यातनाओं के उपभोग करते हैं इसमें संदेह नहीं ।६१-६८। पर स्त्री के चुराने वाले प्राणी के समान पाप उस राजा का

---

१. व्रतम् । २. सामिद्धः । ३. व्रजन्तिः ।

**पारदारिकचौराणां यत्पापं पार्थिवस्य तत् । भवेदरक्षतस्तस्माद्घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥६९
अचौरं चौरवत्पश्येच्चोरं वाऽचौररूपवत् । अविचार्य नृपस्तस्माद्घातयन्नरकं व्रजेत् ॥७०
घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम् । गुडेक्षुक्षारशाकानि दधिमूलफलानि च ॥७१
तृणं काष्ठं पुष्पपत्रमौषधं कांस्यभाजनम् । उपानच्छत्रशकटमासनं शयनाम्बरम् ॥७२
ताम्रं सीसं त्रपुं काचं शंखाद्यं च जलोद्भवम् । वार्क्षं वा वैणवाद्यं वा गृहेषूपस्कराणि च ॥७३
ऊर्णाकार्पासकौशेयभङ्गपट्टोद्भवानि च । स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये च लोभाद्धरन्ति च ॥७४
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च । नरकाणि ध्रुवं यान्ति नरा वा नात्र संशयः ॥७५
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् । अपहृत्य नरो यान्ति नरकं नात्र संशयः ॥७६
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तेः समनन्तरम् । शरीरं यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ॥७७
यमलोकं व्रजेत्तेन शरीरेण यमाज्ञया । यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानः सुदुःखितः ॥७८
तिर्यङ्मानुषदेहानामधर्मनिरतात्मनाम् । धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥७९
विनयाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् । प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न च तैर्दृश्यते यमः ॥८०
पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् । नृपतिः शासकस्तेषां प्रच्छन्नानां न धर्मराट् ॥८१
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् । नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥८२
यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वापि मोदयेत् । कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम् ॥८३**

होता है जो प्रजापालन नहीं करता है, इसीलिए उसका प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करना अत्यन्त निषिद्ध है। जो राजा ईमानदार को चोर और चोर को ईमानदार अविचार पूर्वक बनाता तथा दण्डित करता है, वह नरकगामी होता है। घी तेल से बने अन्न के भोजन, मधुमांस मद्य और आसव के पान, गुड़, ईख, खार वस्तु, शाक, दही, मूलफल, तृण, काष्ठ, दुग्ध, पत्र, औषध, कांसपात्र, उपानह (जूते), छत्र, गाडी में शयन, ताँबा, शीशा, जस्ता, काँच, शंख आदि जलीय वस्तु, काष्ठ या बाँस के वाद्य, घर वस्तुओं, ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्रों, जो मोटे या पतले हो, हरण करने वाले इसी प्रकार और अन्य वस्तुओं के अपहरण करने वाले प्राणी निश्चित नरक गमन करते हैं। नमक भी राई के समान दूसरे के पदार्थ चुराने वाले प्राणी निःसन्देह नरक गामी होते हैं। इसी प्रकार अन्य पाप करने वाले प्राणी इस देह के त्याग करने पर पूर्व शरीर की भाँति दूसरी शरीर (नरक यातनार्थ) प्राप्त करते हैं। उसी शरीर से यमलोक की यात्रा करने के उपरांत यमराज की आज्ञा से उनके दूतगण उस प्राणी को घोर दंड देते हैं। मनुष्य तथा पक्षी आदि शरीरधारी सभी प्राणियों के लिए जो अधर्म करने में ही सदैव लगे रहते हैं, धर्मराज अनेक भाँति के घोर दंड प्रदान द्वारा उनके शासक कहे गये हैं।६९-७९। विनय आचार पूर्वक नियम पालन करने वाले प्राणी के लिए जो प्रमाद वश कहीं अनीति व्यवहार किया है, उसके गुरु प्रायश्चित का रूप दंड प्रदान करने के नाते शासक कहे गये हैं, वैसा करने पर उन्हें यमराज का भय नहीं रहता है। परस्त्री के अपहरण एवं अन्याय से व्यवहार करने वाले प्राणियों के शासक राजा होता है, क्योंकि वही उसका प्रच्छन्न रूप से धर्मराज है। इसलिए किये हुए पापों के प्रायश्चित अवश्य करने चाहिए क्योंकि बिना उसके भोग किये सैकड़ों कोटि कल्प में भी मुक्त नहीं होता है। जो मनवाणी एवं शरीर से पापाचारण करता या अनुमोदन करता है उसकी

इति संक्षेपतः प्रोक्ताः पापभेदाः ससाधनाः । कथ्यन्ते गतयश्चित्रा नराणां पापकर्मणाम् ।।८४
वाक्कायचित्तजनितैर्बहुभेदभिन्नैः कृत्यैः शुभाशुभफलोदयहेतुभूतैः ।
भास्वत्सुरेशभुवनं नरकाननेकान्सम्प्राप्नुवन्ति मनुजा मनुजेन्द्रचन्द्र ।।८५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि पापभेदाख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

शुभाशुभफलनिर्देशवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथैभिः पातकैर्याति यमलोकं चतुर्विधैः । संत्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः[1] ।।१
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः । पुंस्त्री नपुंसकैर्वृद्धैर्ज्ञातव्यं सर्वजन्तुभिः ।।२
शुभाशुभफलं तत्र देहिनां प्रविचार्यते । चित्रगुप्तादिभिः सभ्यैर्मध्यस्थैः सर्वदर्शिभिः ।।३
न तेऽत्र प्राणिनः सन्ति ये यान्ति यमक्षयम्[2] ! अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विधारितम् ।।४
तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः । ते नरा यांति सौम्येन पथा यमनिकेतनम् ।।५
यः प्रदद्याद्द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुकाम् । स वराश्वेन महता सुखं याति यमालयम् ।।६

अधोगति अवश्य होती है । इस प्रकार मैने तुम्हें पाप भेद और उसके साधन बता दिया । अब पापी प्राणियों की गति का वर्णन करूँगा । (पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा) मनुजेन्द्रचन्द्र ! शुभाशुभ फल प्रदायक अपने मन वाणी एवं शरीर द्वारा किये गये जिन कर्मों द्वारा, जो अनेक भेदों से युक्त हैं, प्रदीप्त इन्द्र भवन और घोर नरकों की प्राप्ति मनुष्यों की होती है ।८०-८५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में पापभेद वर्णन नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

शुभाशुभ फलों का निर्देश-वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—सभी प्राणी चार प्रकार के पापाचरण द्वारा विवश होकर यमलोक के उन अत्यन्त दुःख दायक नरकों की प्राप्ति करता है । पुरुष, स्त्री, नपुंसक और वृद्ध प्राणी, गर्भ में उत्पन्न होने पर बाल और मध्य युवावस्था में किये गये कर्मों द्वारा उसके शुभाशुभ फलों के विचार वहाँ के मध्यस्थ चित्रगुप्तादि लोग किया करते हैं, जो सभ्य एवं सर्वदर्शी कहे गये हैं । यहाँ ऐसे प्राणी नहीं उत्पन्न हैं जो यमलोक की यात्रा नही करते हैं, क्योंकि किये हुए कर्मों के फलोपभोग अवश्य करने पड़ते हैं । जो प्राणी शुभ कर्म करते हुए सौम्यचित्त, दयालु हैं वे सौम्य मार्ग द्वारा यमलोक की यात्रा करते हैं ।१-५। जो ब्राह्मणों को उपानह, खडाउँ अर्पित करते हैं वे सुन्दर घोड़े पर बैठकर सुखपूर्वक यमलोक की यात्रा करते हैं। छत्र

---

१. सर्वजन्तवः । २. यमक्षयं यमगृहमित्यर्थः ।

छत्रदानेन गच्छन्ति यथा छत्रेण देहिनः । दिव्यवस्त्रपरीधाना यान्ति वस्त्रप्रदायिनः ॥७
शिबिकाश्वप्रदानेन ततस्तेन सुखं व्रजेत् । शय्यासनप्रदानेन सुखं यान्ति यमाश्रयम् ॥८
आरामकर्ता छायासु शीतलासु सुखं व्रजेत् । यान्ति पुष्पकयानेन पुष्पारामप्रदायिनः ॥९
देवायतनकर्ता च यतीनामाश्रमस्य च । अनाथमण्डपानां च क्रीडन्याति गृहोत्तमैः ॥१०
देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः । पूज्यमाना नरा यान्ति कामिकेन पथा सुखम् ॥११
द्योतयन्तो दिशः सर्वा यान्ति दीपप्रदायिनः । प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यान्ति गृहं स्वयम् ॥१२
सर्वकामसमृद्धेन पथा गच्छन्ति गोप्रदाः । ये न पापानि कुर्वन्ति ते तृप्ता यान्ति नान्यथा ॥१३
[१]आर्तौषधप्रदातारः सुखं यान्ति निराकुलाः । विश्राम्यमाणा गच्छन्ति गुरुशुश्रूषणे रताः ॥१४
पादशौचप्रदानेन शीतलेन पथा व्रजेत् । पादाभ्यङ्गं च यः कुर्यादश्वपृष्ठेन स व्रजेत् ॥१५
हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि निस्तरन् । यानवाहनदानेन नरयानेन गच्छति ॥१६
सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेन गच्छति । अन्नपानप्रदानेन पिबन्खादंश्च गच्छति ॥१७
इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति यमक्षयम्[२] । स्वर्गेऽपि विपुलान्भोगान्प्राप्नुवन्ति[३] नरोत्तम ॥१८
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बलबुद्धिविवर्द्धनम् ॥१९
त्रयाणामपि लोकानां जीवितं ह्युदकं[४] स्मृतम् । पवित्रममृतं दिव्यं शुद्धं सर्वरसायनम् ॥२०
अन्नं पानं च गोवस्त्रभूशय्याच्छत्रमासनम् । परलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥२१

दान द्वारा छत्रधारी, वस्त्रदान द्वारा दिव्य वस्त्र की प्राप्ति पूर्वक तथा शिविका (पालकी) और अश्व के दान देने से वह सुखपूर्वक वहाँ पहुँचता है। शय्या , आसन के दान, बगीचे लगाने, शीतल छाया प्रदान करने एवं वाटिका प्रदान द्वारा पुष्पक यान से सम्मानपूर्वक वह वहाँ जाता है। देवालय, पतियों के आश्रम, अनाथाश्रम के रचयिता क्रीड़ापूर्वक और देव, अग्नि, विप्र, माता-पिता की पूजा करने वाले, पूज्य होकर यथेच्छ मार्ग से वहाँ जाते हैं। दीपदान, आश्रयदान प्रदान करने वाले प्राणी सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए गृह की भाँति सुख पूर्वक जाते हैं। गोदान करने वाले प्राणी समस्त कामनाओं की वस्तुओं से परिपूर्ण मार्ग से जाता है, उसी भांति जो पापी पाप नहीं किये हैं वे सदैव तृप्त होकर वहाँ जाते हैं। गरीबों को औषध देने वाले निश्चित सुखपूर्वक गुरु की सेवा करने वाले विश्राम करते हुए, चरण प्रक्षालनार्थ जल देने वाले शीतल मार्ग से तथा विप्रचरण में तेल लगाने वाले सुन्दर घोड़े पर बैठकर वहाँ जाते हैं सुवर्ण जल के प्रदाता अत्यन्त सुखी मार्ग से तथा यान वाहन देने वाला मनुष्य यान पर बैठकर जाता है! भूमिदान करने वाला समस्त कामनाओं से तृप्त अन्न दान देने वाला खाते पीते वहाँ जाता है। नरोत्तम। इस प्रकार दान देने से वह सुखपूर्वक यमलोक की यात्रा के उपरांत स्वर्ग जाकर विपुल सुखों के उपभोग करता है। सभी दानों से श्रेष्ट अन्नदान है, क्योंकि उससे उसी समय प्रेम और दिव्य बल बुद्धि की वृद्धि होती है। तीनों लोकों में जल ही जीवन कहा गया है, जो पवित्र, दिव्य, अमृत, शुद्ध एवं सम्पूर्ण रसों का गृह है। भोजन, पान, गौ, वस्त्र, भूमि, शय्या, छाता, और आसन यही आठ प्रकार के

---

१. अग्न्यौषधप्रदातारः। २. यमालयम्। ३. प्राप्नोति विविधान्नरः। ४. कथितं पयः।

अन्नदानं विशेषेण धर्मराजपुरे नराः । यस्माद्यान्ति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत्[1] ॥२२
ये पुनः क्रूरकर्माणः पापा दानविवर्जिताः । ते घोरेण पथा यान्ति दक्षिणेन यमालयम् ॥२३
षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य यत् । वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपव्यवस्थितम् ॥२४
समीपस्थमिवाभाति नराणां शुभकर्मणाम्[2] । पापानामतिदूरस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ॥२५
तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च । क्षुरधारानिभैस्तीव्रैः पाषाणैर्निचितेन च ॥२६
क्वचित्पङ्केन महता दुस्तारैश्च खातकैः । लोहसूचिनिभैर्दर्भैः सन्छन्नेन पथा क्वचित् ॥२७
तटप्रपातविष्टम्भैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः । प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ॥२८
क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छिलैः । प्रतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ॥२९
अनेकतापैर्विततैर्व्याप्तं वंशवनं क्वचित् । क्वचिद्वालुकया व्याप्तं कष्टेनैव प्रवेशनम् ॥३०
क्वचिदुष्णांबुना[3] व्याप्तं क्वचित्कारीषवह्निना । क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याप्तं दंशैः कीटैश्च दारुणैः ॥३१
क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैः पुनः । मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणैः ॥३२
मत्तमातङ्गयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः । पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः ॥३३
महाविषाणैर्महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैश्च खादकैः । डाकिनीभिश्च[4] रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ॥३४
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीडयमाना व्रजन्ति च । महाधूलीविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥३५
महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः । क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन[5] दीर्यमाणा व्रजन्ति च ॥३६

दान लोक में अत्यन्त प्रशस्त हैं ।६-२१। विशेषकर अन्न दान द्वारा मनुष्य धर्मराज के नगर सुखपूर्वक जाता है, अतः उस धर्म को अवश्य करना चाहिए । इसी प्रकार जो लोग क्रूरकर्मा, तथा अनेक पाप करते हैं वे अत्यन्त दारुण दक्षिण मार्ग से यम लोक जाते हैं । यहाँ से छियासी योजन की दूरी पार करके प्राणी अनेक भाँति से व्यवस्थित उस यमलोक में जाता है, जो शुभकर्मा प्राणी के लिए अत्यन्त सन्निकट और भीषण मार्ग से जाने वाले पापी के लिए अत्यन्त दूर दिखाई देता है । पापियों के मार्ग में उनके यात्रा के समय कहीं तीखे काँटे, रेत (बालू) की भूमि, कहीं क्षुरा की भांति तीव्र पत्थरों के टुकड़ों की ढेरी, कहीं पंकपूर्ण वह दुस्तर खाईं और कहीं लोहे की सूची (सूई) की भाँति कुशाओं से आच्छन्न रहता है । कहीं पर्वत के गिर जाने से नदी तट के अवरुद्ध मार्ग, कहीं सघन वृक्षों से घिरे, कहीं तप्तांगार पूर्ण उस दुःखदायी मार्ग से चलना पड़ता है । वहीं विषम गढ्ढे, चिकनी भूमि, जलती बालुकायें, तीखे, शंकु (खूंटे), अनेक भाँति से संतप्त करने वाले उस व्याप्त बाँस के जंगलों, कहीं अत्यन्त जलती हुई बालुओं से जाया जाता है, जिसमें प्रवेश करना अत्यन्त कष्टदायक होता है । कहीं संतप्त जल में प्रवेश, कहीं करिष अग्नि द्वारा संताप, कहीं सिंह, भेडिया, उपदंश (दसा) और भीषण कीट व्याप्त रह मार्ग अवरुद्ध किये रहते हैं । कहीं भीषण जलौका, अजगर, रौद्र रूप भक्षिकायें, विषैले सर्प, और कहीं मतवाले उन बलशाली गजराजों और अपनी तीक्ष्ण सीगों द्वारा भूमि खोदते हुए बैलों से मार्ग रुके रहते हैं । उसी प्रकार कहीं कहीं भीषण सींग वाले भैंस ऊँट जो प्राणियों के भक्षक हैं, भयंकर डाकिनी, विकराल राक्षस, तथा घोर व्याधियों से पीडित होते हुए महाधूली से पूर्ण उस प्रचण्ड वायु द्वारा प्रचण्ड पाषाण वर्षा से उपहत निराश्रय, तथा कोई बिजली

---

१. सुखं चरेत् । २. गुरुकर्मणाम् । ३. लोहसूची[illegible] । ४. दुष्टांबुना । ५. शाकिनीभिः ।

महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वशः । पतद्भिर्वज्रसंघातैरुल्कापातैश्च दारुणैः ।।३७
प्रतप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना व्रजन्ति च । तप्तेन[1] पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति च ।।३८
महामेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः । निशितायुधवर्षेण चूर्यमाणा नरैर्वृताः ।।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना द्रवन्ति च ।।३९
महाशीतेन मरुता तीक्ष्णेन परुषेण च । [2]समन्तात्पीडचमानास्ते शुष्यन्ते सङ्कुचन्ति च ।।४०
इत्थं मार्गेण रौद्रेण पान्थैर्विरहितेन च । निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ।।४१
अविश्रामेण महता निर्गतापाश्रयेण च । तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुःखाश्रयेण च ।।४२
नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः[3] । यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ।।४३
एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः । शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्तश्च मुहुर्मुहुः ।।४४
प्रेतभूता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः । कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निना[4] ।।४५
बद्धा शृङ्खलया केचिदुत्तानाः पादयोर्नराः । आकृष्यन्ते घृष्यमाणा[5] यमदूतैर्बलोत्कटैः ।।४६
पुनश्चाधोमुखाश्चान्ये घृष्टमाणाः सुदुःखिताः । केशपाशनिबद्धाश्च कृष्यन्ते[6] रज्जुभिर्नराः ।।४७
ललाटे चाङ्कुशैस्तीक्ष्णैर्भिन्नाः कृष्यन्ति देहिनः । उत्ताना रटमानाश्च क्वचिदङ्गारवर्त्मना ।।४८

द्वारा अंग विदीर्ण होने के दुःख का अनुभव करते हुए जाता है । कहीं पर उस प्राणी के ऊपर महान् बाणों की वर्षा होती है, जिससे उसके अंग प्रत्यंग अनेक भाँति की पीड़ा होने लगती है । कहीं पर दारुण एवं उल्का और वज्रों के समुदाय से ताड़ित होता है । कहीं पर तप्तांगार के वर्षासे दग्ध होता है । संतप्त बालूकाओं की वर्षा से दग्ध होकर रुदन करते हुए चलते समय उन भीषण महामेघों की गर्जना से बार-बार त्रस्त होता और तीक्ष्ण अस्त्रों की वर्षा से चूर्ण की भाँति होकर आगे बढ़ता है । पश्चात् अत्यन्त खारे जल की धाराओं से सिंचित होकर चलने पर अत्यन्त शीतल, तीक्ष्ण एवं संगविदारक वायु से सम्पूर्ण देह पीडित होने पर उसके अंग प्रत्यंग सूख कर संकुचित हो जाते हैं ।२२-४०। इस प्रकार उस भयानक मार्ग द्वारा, जहाँ पर कुछ पाथेय भी नहीं मिलता है, निराश्रय दुर्ग को पार करते हुए जो विश्राम स्थानों से हीन एवं जलाशयों से वञ्चित है, उस अंधकारमय मार्ग से जो एकान्त दुःखमय है, उस मूढ एवं पाप कर्मा प्राणी को भीषण स्वरूप वाले यमदूत गण ले जाते हैं उस समय उन दूतों की आज्ञाएँ बलात् शिरोधार्य करनी पड़ती है, क्योंकि वह जीव उस स्थान एकाकी, विवश, मित्र बंधु से परित्यक्त, रहता है । वहाँ पहुँचकर वह अपने किये हुए कर्मों के शोक से दुःखी होकर बार-बार रुदन करता है । उस समय वह प्रेत रूप और वस्त्र हीन रहता है, उसके कण्ठ ओष्ठ, और तालु सूखते रहते हैं । कृशित होने के नाते अत्यन्त भयभीत एवं क्षुधा से पीडित होते हैं तथा कोई शृंखला से आबद्ध होकर दोनों चरण ऊपर उलटा लटकाये जाते हैं । वे सबल यमदूत किसी को संत्रस्त कर घसीटते हुए उन्हें नीचे मुख करके घसीटते हैं । जिससे उस प्राणी को कठोर दुःख के अनुभव होते हैं । किसी को उसके केश पाश में रस्सी बाँधकर घसीटते हैं। और किसी को उसके ललाट में तीक्ष्ण अंकुशों में प्रविष्ट कर किसी को उतान कर घसीटते है, जिससे वह करुण रोदन

१. महता । २. म्रियमाणास्ते । ३.पापकारिणः । ४. क्रुधाग्निना । ५. कृष्यमाणाः । ६. केशपाशनिबद्धांश्च तान्याम्याः कर्षयन्ति च ।

पाश्चाद्वाह्वंसवद्धाश्च जठरे च प्रपीडिताः । पूरिताः शृङ्खलाभिश्च हस्तयोश्च प्रकीलिताः[1] ॥४९
ग्रीवायामर्द्धचन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्ततः । शिश्ने च वृषणे बद्धा नीयन्ते चर्मरज्जुना ॥५०
विशिन्ना उदरे चान्ये तप्तशृङ्खलया नराः । कृष्टन्ते कर्णयोश्चान्ये भिन्नाश्च चिबुकोपरि ॥५१
छिन्नाग्रपादहस्ताश्च छिन्नकर्णौष्ठनासिकाः । सञ्छिन्नशिश्नवृषणाश्छिन्नभिन्नांगसन्धयः ॥५२
प्रतुद्यमानाः कुन्तैश्च सायकैश्च ततस्ततः । भिद्यमानाः प्रधावन्ति क्रन्दमाना निराश्रयाः ॥५३
मुद्गरैर्ल्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहुर्मुहुः । कशैश्च विविधैघोरैर्ज्वलिताग्निसमप्रभैः ॥५४
भिन्दिपालैर्विभिद्यन्ते स्रवन्तः पूयशोणितम् । मांसे क्षताश्च कृमिभिर्नीयन्ते विवशा नराः ॥५५
याचमानाश्च सलिलमन्नं चापि बुभुक्षिताः । छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ता बहुवायुना[2] ॥५६
दानहीनाः प्रयान्त्येवं यावन्तो विमुखा नराः । गृहीतदानपाथेयाः सुखं यान्ति यमालयम् ॥५७
एवं पन्थातिकष्टेन प्राप्ता यमपुरं तदा । प्रज्ञापितास्तदा दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रतः ॥५८
तत्र ये शुभकर्माणस्तांश्च सम्मानयेद्यमः । स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेण प्रियेण च ॥५९
धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः । येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥६०
इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् । स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥६१

करता है, कहीं अंगार के ऊपर और किसी के हाथ बाँध कर उसके ऊपर तृप्ति करते हैं । किसी को शृंखला से बांधकर उसके हाथ में कील गाड़ देते हैं तथा उसके गले में हांथ डाल इधर ऊधर झोंक देते हैं । किसी के मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोष चमड़े से बाँधकर उसे ले जाते है, किसी के उदर को तप्त शृंखला द्वारा विदीर्ण करते हैं, किसी को कान काटकर घसीटते हैं तथा किसी की चिबुक (ठुड्डी) । किसी को हाथ, चरण, कान, ओष्ठ तथा नासिका के विदीर्ण कर, किसी को शिश्न अण्डकोष काटकर किसी को उसके देह की संधियों को विदीर्ण कर पुनः भाले और बाणों द्वारा पीडित करते ले जाते है । अस्त्रों से उनके अंगविदीर्ण करने पर प्राणी करुण क्रन्दन करता हुआ जो निराश्रय रहता है, इधर ऊधर भागता है किन्तु उस समय वे दूत उसे मुद्गर लोढ़े, दंडा से बार-बार प्रताडित करते हैं ।४१-५२। किसी को अग्नि के समान कोड़े और भिन्दिपाल अस्त्रों द्वारा आहत करते हैं, जिससे उसके शरीर से पीब और रक्त की धाराएँ निकलने लगती हैं । किसी के मांस को काट काट कर कीड़े खाते रहते हैं । तृष्णा से व्याकुल और क्षुधा से पीडित प्राणी वहाँ बार-बार जल तथा अन्न की याचना किया करता है । उसी भाँति शीत और प्रचण्ड वायु से पीड़ित होकर छाया की प्रार्थना करता है किन्तु दानहीन होने के नाते उसे उससे निराश होकर मार्ग समाप्त करना पड़ता है । दान करने वाले प्राणी उस दान रूप पाथेय समेत वहाँ सुख पूर्वक पहुँचते हैं । और दानहीन प्राणी उपरोक्त कष्ट सहनपूर्वक उस समय यमराज के दूतगण यमराज से निवेदन करते हैं, यमराज भी उसी समय सिंहासन से उठकर उस पुण्यात्मा प्राणी का सम्मान पूर्वक स्वागत करते हैं और आसन पर सुशोभित होने के उपरांत पाद्य तथा प्रिय अर्घ्य (जलपान) आतिथ्य सत्कार करके उससे इस भाँति कहते हैं कि—आप महात्मा लोग अत्यन्त धन्य हैं क्योंकि आत्मा के हितैषी होकर अपने दिव्य सुख की प्राप्ति के लिए सुकृत कर्म को सुसम्पन्न किया है, इसलिए इस सुन्दर विमान पर बैठकर जो दिव्य

---

१. प्रपीडिताः । २. च पुनः पुनः ।

ततो भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यस्य संक्षयात् । यत्किञ्चिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ।। ६२
ते चापि धर्मराजानं पराः पुण्यानुभावतः । पश्यन्ति सौम्यवदनं पितृभूतमिवात्मनः ।।६३
ये पुनः पापकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् । पापाविशुद्धनयना विपरीतात्मबुद्धयः ।।६४
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् । ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुप्रस्फुरदधरोतरम् ।।६५
अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् । सर्वायुधोद्यतकरं ब्रह्मदण्डेन तर्जकम् ।।६६
महामहिषनारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् । रक्तमाल्यांबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।।६७
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं[1] पिबन्तमिव सागरम् । ग्रसन्तिमिव लोकानामुद्गिरन्तमिवानलम् ।।६८
मृत्युश्च तत्समीपस्थः कालानलसमप्रभः । कालश्चाञ्जनसङ्काशः कृतान्तश्च भयानकः ।।६९
मारी चोग्रा महामारी कालरात्रिः सुदारुणा । विविधा व्याधयः कष्टा नानारूपभयावहाः ।।७०
शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिधारिणः । वज्रदण्डधरा रौद्राः क्षुद्रतूर्णीधनुर्धराः ।।७१
असंख्याता महावीर्याः क्रूराश्चाञ्जनसम्प्रभाः । सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ।।७२
अनेन परिवारेण महाघोरेण सम्वृतम् । यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ।।
निर्भर्त्सयन्तं चात्यन्तं यमं सदुपकारिणम् ।।७३

वनिताओं के उपभोग से भूषित हैं, यथेच्छ कामनाओं की सफलता पूर्वक उस अनुपम स्वर्ग के हैं, यथेच्छ कामनाओं की सफलता पूर्वक उस अनुपम स्वर्ग के लिए प्रस्थान कीजिये। वहाँ महान् भोगों के अनुभव करके अंत में पुण्य के क्षीण होने पर जो कुछ थोड़ा अशुभ वर्ष हैं, उसका फो भोग यहाँ कर लीजियेगा। उस समय पुण्यात्मा प्राणी अपनी पुण्य के प्रभाव से धर्मराज को सुन्दर रूप में देखता है, जो उसे अपने पिता की भाँति मालूम पड़ते हैं।५३-६३। उसी प्रकार पापी प्राणी को उनका रूप भयानक दिखाई पड़ता है। पापी, अशुद्ध नेत्र और प्रतिकूल आत्मबुद्धि होने के नाते वह प्राणी धर्मराज के उस स्वरूप को देखता है, जो बड़े-बड़े भीषण दाँत, करालमुख, भौंहे टेढ़ीकर देखते, लम्बे केश, बड़ी-बड़ी दाढ़ी मोंछे क्रुद्ध होने के नाते कम्पित ओष्ठ, अठारह भुजाओं से युक्त काले पर्वत के समान शरीर तथा समस्त अस्त्रों को हाथों में लिए उस ब्रह्मदंड द्वारा उसे तर्जित करते रहते हैं। विशाल शरीर वाले माहिष पर बैठे, जलती हुई अग्नि की भाँति नेत्र, रक्त वस्त्र और माला पहने, मेरुशिखर के समान ऊँचे, प्रलय कालीन मेघों के समान गर्जन करते हुए सागर का पान करने के समान और लोकों के ग्रसित करने तथा अंगारों के वमन करते हुए दिखाई देते हैं। उनके समीप काले वर्ण एवं प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होकर मृत्यु भी स्थित रहती है। उनके उस दरबार में काले पर्वत के समान काल, भयानक कृतान्त, उग्र मारीच, महामारी और अत्यन्त दारुण काल रात्रि तथा अनेक व्याधि गण सदैव वर्तमान रहते हैं जो अत्यन्त भयंकर एवं अनेक भाँति के कष्ट देते हैं, शक्ति, शूल, अंकुश, पाश, चक्र, असि, वज्रदण्ड रौद्र धनुष तथा तूणीर आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर असंख्य रहते हैं। वहाँ के यमदूत भी असंख्य, महापराक्रमी, क्रूर और काले पर्वत की भाँति प्रभा से पूर्ण रहते हैं, अपने समस्त अस्त्रों से सुसज्जित होकर दिखाई देते हैं। इन समस्त घोर परिवार से युक्त उन भयंकर यमराज को वह पापी प्राणी देखता है।६४-७२। उसे वहाँ स्थित चित्रगुप्त भी

---

१. अश्नन्तमिव त्रैलोक्यम् ।

चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् । भोभो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः ।।
गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः ।।७४
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः । तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ।।७५
इदानीं किं प्रतप्यध्वं पीड्यमानाःस्वकर्मभिः । भुञ्जध्वं स्वानि कर्माणि नात्र दोषोऽस्ति कस्यचित् ।।७६
एते च पृथिवीपालाः सम्प्राप्ता मत्समीपतः । स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगर्विताः ।।७७
भोभो नृपाः दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः । अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ।।७८
राज्यलोभेन मोहाद्वा बलादन्यायतः प्रजाः । यत्पीडिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ।।७९
कृतं राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् । तत्सर्वं सम्परित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ।।८०
पश्यामि तद्बलं तुभ्यं[1] येन विध्वंसिताः प्रजाः । यमदूतैस्ताड्यमाना अधुना कीदृशं भवेत् ।।८१
एवंबहुविधैर्वाक्यैरुपालब्धा यमेन ते । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिव ।।८२
इति धर्मं समादिश्य नृपाणां धर्मराट् पुनः । तत्पापपङ्कशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ।।८३
भोभोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान्[2] । विशोधयध्वं पापेभ्यः[3] क्रमेण नरकाग्निषु ।।८४
ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः । भ्रामयित्वातिवेगेन विक्षिप्योर्ध्वं विगृह्य[4] च ।।८५

भीषण रूप में दिखाई देते हैं, जो सदुपकारी यम को सम्बोधित किया करते हैं। भगवान्, चित्रगुप्त अपने धार्मिक प्रवचनों द्वारा पापी प्राणियों को सम्बोधित करते हैं कि पाप कर्म करने वाले प्राणी वृन्द ! तुम लोगों ने दूसरे के धनों का अपहरण किया है, अपने रूप तथा पराक्रम से मदान्ध होकर पर स्त्री का उपभोग किया है, जैसा कर्म किया जाता है उसका फल अवश्य भोग किया जाता है, अतः तुम लोगों ने आत्महनन पूर्वक उन दुष्कृत कर्मों को क्यों अपनाया और इस समय अपने कर्मों से पीड़ित होने पर क्यों संतप्त हो रहे हो। जैसे कर्म किये हो वैसे ही फलों के भी उपभोग करो, इसमें किसी का दोष नहीं है। अनन्तर राजाओं को भी सम्बोधित करते हैं कि—महीपतिगण ! अपनी दुर्बुद्धि एवं बल से गर्वित होकर तुम लोगों ने अपने कर्मों द्वारा यहाँ प्रस्थान किया है तथा अपने दुराचारों द्वारा प्रजाओं को निर्मूल किया है राज के उस अल्प कालीन भोग करने के लोभ से इस प्रकार कर्म क्यों किया और राज्य लोभ, मोह, बल अथवा अन्याय से प्रजाओं को पीड़ित क्यों किया, अब उसके समुचित फलों के उपभोग करो। जिस राज्य एवं स्त्री के लिए इस पाप कर्म को किया है, उन्हें छोड़कर यहाँ तो तुम लोग अकेले ही इस यातना को भोग रहे हो।७३-८०। तथा मैं तुम्हारे उस बल को भी देखता हूँ, जिससे मदान्ध होकर तुम लोगों ने प्रजाओं का नाश किया है अब दूतों द्वारा आहत होने पर कैसा अनुभव हो रहा है। राजन् ! इस प्रकार के अनेक वाक्यों के कहने पर वे प्राणी अपने किये पर पश्चाताप प्रकट करते हुए मौन स्थित रहते हैं। पश्चात् धर्मराज राजाओं के उपदेश करके उनके पाप शोधनार्थ अपने दूतों से कहते हैं कि—चण्ड महाचण्ड ! इन राजाओं के पाप शोधनार्थ क्रमशः नरक रूपी अग्नि में डाल दो। इसे सुनकर वे दूतगण शीघ्रता से शुरू कर राजाओं के चरण पकड़कर अत्यन्त वेग से घुमाकर ऊपर

---

१. तुभ्यं तवेत्यर्थः—[illegible] र्थे चतुर्थी। २. बलात्। ३. पापिष्ठान्। ४. प्रगृह्य।

सर्वप्राणेन महता सुतप्ते तु शिलातले । आस्फालयन्ति[1] तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ।।८६
ततः स रक्तस्रोतोभिः स्रवते जर्जरीकृतः । स निःसंज्ञस्तदा देही निश्चेष्टः सम्प्रजायते ।।८७
ततः स वायुना स्पृष्टः शनैरुज्जीवते पुनः । ततः पापविशुद्धयर्थं क्षिप्यते नरकार्णवे ।।८८
अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः । सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः ।।८९
रौरवप्रभृतीनां च नरकाणां शतं स्मृतम् । चत्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ।।९०
येषु[2] पापाः प्रपच्यन्ते नराः कर्मानुरूपतः । यातनाभिर्विचित्राभिराकर्मप्रक्षयाद् भृशम्[3] ।।९१
आ मलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ धास्यन्ति धातवः । तथा पापक्षयात्पापाश्शोध्यन्ते नरकाग्निषु ।।९२
सुगाढहस्तया बाढं तप्तशृङ्खलया नराः । महावृक्षाग्रशाखायां लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ।।९३
ततस्ते सर्पयन्त्रेण क्षिप्ता दोल्यन्ति किङ्करैः । दोल्यन्तश्चातिवेगेन निःसंज्ञा यान्ति योजनम् ।।९४
अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं ततः । पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः ।।९५
तेन भारेण महता भृशमातर्द्दिता नराः । ध्यायन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति विह्वलाः ।।९६
ज्वालाभिरग्निवर्णाभिर्ल्लोहदंडैः सकंटकैः । हन्यन्ते किंकरैर्घोरैः समन्तात्पापकारिणः ।।९७
ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः । समन्ततः प्रलिप्यन्ते क्षतांगा जर्ज्जरीकृताः ।।९८
पुनर्विदार्य चांगेषु शिरसः प्रभृति क्रमात् । वृन्ताकवत्प्रपच्यन्ते तप्ततैलकटाहके ।।९९

फेंक देते हैं, पुनः बीच में उन्हें पकड़ कर अत्यन्त संतप्त शिलातल पर महान् वृक्ष को वज्र की भाँति अत्यन्त वेग से पटक कर विदीर्ण करते हैं, जिससे उसके जर्जर अंगों से रक्त की धारा निकलती है । उस मर्म भेदी आघात से आहत होकर वह प्राणी एकदम मूर्च्छित हो कर निष्प्राण हो जाता है किन्तु वायु के स्पर्श करने पर पुनः जीवित होता है । पश्चात् उसके पाप शुद्धयर्थ उन अट्ठाईस नरक कुण्डों में डाल देते हैं जो सागर की भाँति विशाल गम्भीर पृथ्वी के नीचे स्थित हैं । सातवें तल नामक लोक के अंत में रौरव आदि नामक वे भीषण नरक एक सौ चालीस की संख्या में स्थित हैं । उन्हीं में वह पापी प्राणी अपने दुष्कृत के अनुरूप फल का अनुभव करता है ।८१-९१। जितने समय तक मल रहता है उतने समय तक अग्नि में धातुओं के जलते रहने की भाँति जब तक कर्म का क्षय नहीं होता है, अनेक भाँति की यातनाओं से पीड़ित होते रहते हैं । पापों के क्षीण होने के लिए नरक रूपी अग्नि में किसी को डालते हैं, किसी को अत्यन्त संतप्त शृंखला से उसके हाथ बाँधकर कर विशाल वृक्ष की ऊँची शाखा में वे यमदूत लटका देते हैं । वहाँ पीड़ित करने के उपरांत सर्पयंत्र द्वारा उसे पीड़ित करते हैं उस समय वह प्राणी वेग से भागते हुए मूर्च्छित होता है । उसके अंतरिक्ष में भागने पर वली यमदूत गण अत्यन्त भार से युक्त लोहे को उसके पैर में बाँध देते हैं जिसके भार से अत्यन्त दुखी होकर वह प्राणी अपने किये कर्म के लिए शोक करता हुआ मौन होकर उन यातनाओं का सहन करता है । यमदूत अग्नि की भाँति प्रज्वलित लोह दंडों से जिसमें वड़े-बड़े काँटे लगे रहते हैं, उन पापियों को आहत करते हैं । पुनः प्रदीप्त अग्नि के अंगारों से उनके अंग जलाते हैं जिससे उनके अंग अत्यन्त जर्जर हो जाते है तथा पश्चात् उनके शिर आदि अंगों को विदीर्ण करते ही रहते

---

१. आस्फोटयन्ति । २. एषु । ३. बुध्यन्ते स्वानि कर्माणि कृष्यन्ते यमकिंकरैः ।

विष्टापूर्णे ततः कूपे कृमीणां निचये ततः । मेदस्त्वक्पूयपूर्णायां वाप्यां[1] क्षिप्यन्ति ते पुनः ।।१००
भक्ष्यन्ते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः । श्वभिर्दंशैर्वृकैर्घोरैर्व्याघ्रैरप्यथ[2] वानरैः ।।१०१
पच्यन्ते मांसवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु[3] । प्रोताः शूलेषु तीक्ष्णेषु नराः पापेन कर्मणा ।।१०२
तिलपिण्डैरिवाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः । तिलवत्सम्प्रपीड्यन्ते चक्राख्ये नरके तथा ।।१०३
भिद्यन्ते चापि तल्पेषु लोहभ्राष्ट्रेष्वनेकधा । तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः ।।१०४
बहुशः पीड्यते जिह्वा याऽसत्यप्रियवादिनी । सन्दंशेन सुतप्तेन प्रपीड्यन्ते च पादयोः ।।१०५
मिथ्यागमप्रवक्तुश्च द्विजिह्वस्य च निर्गता । जिह्वार्द्धक्रोशविस्तीर्णा हलैस्तीक्ष्णैश्च बाध्यते ।।१०६
निर्भर्त्सयन्ति ये क्रूरा मातरं पितरं गुरुम् । तेषां पक्ष उलूकाभिर्मुखमापूर्य सेव्यते ।।१०७
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण तु पुनः पुनः । हृतेनापूर्यतेऽत्यर्थं तप्ततैलैश्च तन्मुखम् ।।१०८
इतस्ततः पुनर्वक्त्रं भृशमापूर्य हन्यते । विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि सुवर्णहरणैर्नरः ।।१०९
परिष्वजति चात्युग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् । हन्यते पृष्ठदेशे च पुनस्तीक्ष्णैर्महाघनैः ।।११०
दतुरेणातिकूटेन क्रकचेन बलीयसा । शिरः प्रभृति पादान्तं घोरैः कर्मभिरात्मजैः ।।
खाद्यते स्वानि[4] मांसानि पायते शोणितं स्वकम् ।।१११

हैं । अत्यन्त संतप्त तेल से पूर्ण उस कराह (कड़ाहे) में फल गुच्छे की भाँति पक जाने पर उस प्राणी को विष्ठा एवं कीटाणुओं से पूर्ण उस नरक कुण्ड में डालते हैं, जिसमें मेदा, त्वक, और पीब से भरा रहता है । पापियों के मांस कीड़ों के काटने के उपरांत लोहे के समान तीक्ष्ण अपनी उन चोंच द्वारा वहाँ के कौये काटते और खाते हैं और उसी भाँति किसी के मांस कुत्ता, हंसा, भेड़िया तथा वाघ भक्षण करते है । कहीं पर प्रदीप्त अंगारों में उनकी मांस मांस की भाँति पकाते हैं । कहीं पर प्राणी तीक्ष्ण शूलों द्वारा मर्माहत होता है प्राणी तिलपिंड की भाँति अपने घोर कर्मों से आक्रान्त हैं चक्र यंत्र में तिल की भाँति पूर्ण किया जाता है । किसी को ऊँची अट्टालिका से गिरा कर विदीर्ण लोहे की भट्टी में जलाकर अनेक टुकड़े संतप्त तेल से पूर्ण कराहें में डालकर बार-बार पीड़ित करते हैं । असत्य बोलने वाली जिह्वा को अनेक भाँति से पीड़ित करते हैं पश्चात् हिंसक जन्तुओं से संदंशन संतप्त तेल में दाह तथा उनके चरण में पीड़ा पहुँचाते हैं । शास्त्रों को असत्य कहने वाले प्राणी सर्पयंत्र में डाल दिये जाते हैं, पश्चात् उनकी जिह्वा, आधे कराहे के लम्बे एवं तीक्ष्ण दलों द्वारा पीड़ित होती है । जो अपनी माता, पिता, तथा गुरु की भर्त्सना करता है उसके वक्षःस्थल भाग को उलूक आदि पक्षीगण तीक्ष्ण चोंच से भक्षण करते हैं । पश्चात् खार, दीप्त एवं ताँबे के अस्त्रों से उसे मृतक बनाते हैं, जीवित होने पर उसके मुख में संतप्त तेल डालते हैं ।९२-१०८। इधर उधर करने पर उसके मुख में बार-बार तेल डाला करते हैं। सुवर्ण की चोरी करने वाले विष्ठा और कृमि पूर्ण कुण्डों में डालकर उसकी वेदना भोगने के उपरांत लोहे की उसी भाँति प्रतप्त शलाका से आलिङ्गन करते हैं। तदनन्तर उसके पीठ में महाधन द्वारा आधात भी। कोई प्राणी वहाँ लोहे के उस आरा द्वारा जिसमें तीक्ष्ण दाँत की भाँति बने रहते हैं, शिर से प्रारम्भ कर चरण तक विदीर्ण किये जाते हैं। (कोई अपने कर्मों के फलस्वरूप अपने मांस के भक्षण और शोणित पान करते हैं।) जिन मूढ़ों ने अन्नपान के दान नहीं किये हैं

---

१. द्रोण्यवाम् । २. व्याघ्रैश्च विरुताननैः । ३. दीप्ताङ्गारप्रदीप्तिषु । ४. ह्रस्वमांसानि ।

अन्नं पानं न दत्तं यैर्मूढैर्नाप्यनुमोदितम् । इक्षुवत्ते प्रपीड्यन्ते जर्जरीकृतमस्तकाः ।।११२
असितालवने घोरे च्छिद्यन्ते खण्डखण्डशः । सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्तप्तशूलप्ररोपिताः ।।
सम्बाध्यमाना विवशाः क्लिश्यन्ते न म्रियन्ति वै ।।११३
देहादुत्साद्यमांसानि भिद्यन्तेऽस्थीनि[1] मुद्गरैः । दृष्टिराकृष्यते तूर्णं यमदूतैर्बलोत्कटैः ।।११४
निरस्तास्ते निरुच्छ्वासास्तिष्ठन्ति नरके ध्रुवम् । उच्छ्वसन्ति सदा श्वासैर्वालुकावदनावृताः ।।११५
रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधैः शरैः । महारौरवपीडाभिर्महतीभिस्तदन्तिके ।।११६
पदोरास्ये गुदे चैव पार्श्वे चोरसि मस्तके । निखन्यन्ते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशङ्कुभिः ।।११७
सुतप्तवालुकायां च प्रलुठयन्ते[2] पुनः पुनः । जतुपङ्के भृशं तप्ते क्षिप्राः क्रन्दन्ति विस्तरम् ।।११८
तेनतेनैव रूपेण हसन्ते पारदारिकम् । गाढमालिङ्ग्यते नारीं ज्वलन्तीं लोहनिर्मिताम् ।।११९
पूर्वाकारं च पुरुषं प्रज्वलन्तं समन्ततः । दुश्चारिणीः स्त्रियो गाढमालिंगन्ति वदन्ति[3] च ।।१२०
किं प्रधावसि वेगेन ते न मोक्षोऽस्ति साम्प्रतम् । लङ्घितस्ते यथा भर्ता पापं भुंक्ष्व तथाधुना[4] ।।१२१
लोहकुम्भे तथा क्षिप्ताः सविधानैः शनैः शनैः । मृद्वग्निनाथ पच्यन्ते स्वपापैरेव मानवाः ।।१२२

और न उसके अनुमोदन ही । वे ऊख की भाँति लोह यंत्र (कोल्हू) में डालकर पेरे जाते हैं । उस घोर ताल वन में जिसके पत्र तलवार की भाँति तीक्ष्ण होते हैं, चलने पर उस प्राणी के अंग उन पत्रों द्वारा खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, किसी के अंग सूची (सूई) द्वारा विदीर्ण किये जा रहे हैं, कोई शूल द्वारा आहत हो रहा है । विवश होकर प्राणी उन दण्डों के अनुभव करता है किन्तु उसके प्राण निकलते नहीं । यमराज के सबल दूतगण किसी के देह से मांस निकाल रहे हैं, मुद्गरों के आघात द्वारा किसी की अस्थियाँ (हड्डियाँ) तोड़ी जा रही हैं । किसी की आँख निकाल कर उसे घसीट रहे हैं, और वे प्राणी उसके सहन पूर्वक नरक में पड़े रहते हैं । वहाँ दीर्घ श्वास (लम्बी) श्वांस भी लेना कठिन होता है क्योंकि दीर्घ निःश्वास लेने के समय यमदूत उस प्राणी के मुख में बालुकाएँ झोंक देते हैं । कहीं रौरव नरक में प्राणी अनेक भाँति के दाणों से आहत होकर रोदन कर रहा है । कहीं कोई महारौरव नरक की उस घोर पीड़ा से व्यथित हो रहा है । उसी के समीप स्थित कर उस प्राणी के, जिसने पर स्त्री के उपभोग किया है, चरण, मुख, गुदा, वक्षःस्थल, हृदय, एवं मस्तक में संतप्त लोहे की कील गाड़ते हैं जो दृढ़ तथा तीक्ष्ण रहता है अनन्तर अत्यन्त बालुका में उसे घसीटते रहने के उपरांत संतप्त लोह के पंक में उसे डाल देते हैं, जिससे वह सदैव करुण क्रन्दन ही करता रहता है, किन्तु इन सभी यातनाओं के प्रदान पूर्वक वे यम दूत उसकी विकलता देखकर हँसते रहते हैं । तदुपरान्त उसकी प्रेमिका की एक लोहे की उसी भाँति की प्रतिमा से जो अग्नि से अत्यन्त प्रज्वलित रहती है, उसका दृढालिङ्गन करते हैं उसी प्रकार उस दुराचारिणी स्त्री को भी उसके प्रेमी पुरुष की लौह प्रतिमा से जो आनुपूर्व तत्समान बना एवं अग्नि द्वारा अत्यन्त प्रज्वलित रहता है, उसका दृढ़ालिङ्गन कराते हैं । उस समय यमदूत उससे कहते भी हैं कि क्यों इधर-उधर वेग से दौड़ रही है, अपने पति की मान मर्यादाओं का जिस प्रकार उल्लघंन किया है, इस समय उसके फल का अनुभव करो पश्चात् तुम्हें मुक्त कर दिया जायगा ।१०९-१२१। जिस प्रकार लोहे के घड़े में डालकर धीरे-धीरे मन्द अग्नि द्वारा

---

१. अशिवमुद्गरैः । २. जल्पन्ते । ३. तदा नरम् । ४. तथाविधम् ।

स्वणन्त्युदूखले साम्राः प्रक्षिप्यन्ते शिलासु च । क्षिप्यन्ते चान्धकूपेषु दश्यन्ते भ्रमरैर्भृशम् ।।१२३
कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः । सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम् ।।१२४
महाज्वाले च नरके पापाः फूत्कारयन्ति च । इतस्ततश्च धावन्ति दह्यमानास्तदर्च्चिषा ।।१२५
पृष्ठे चानीय जङ्घे द्वे विन्यस्ते स्कन्धयोः स्थिते । तयोर्मध्येन चाकृष्य बाहुपृष्ठेन गाढतः ।।
दद्धाः परस्परं सर्वं सुदृढं गाढरज्जुभिः ।।१२६
पीडयन्ति सुसंरब्धा भ्रमरास्तीक्ष्णलोहजाः । मानिनां क्रोधिनां चैव पुरा पापस्य संशयात् ।।१२७
पापानां नरके पुंसां घृष्यते चन्दनं यथा । शरीराभ्यन्तरगतं तरुणानां च दारुणम् ।।१२८
पिण्डबन्धः स्मृतो याम्यो महाज्वालेषु यातनाः । रज्जुभिर्वेष्टिताङ्गाश्च प्रलिप्ताः कर्दमेन च ।।
करीषरक्षवह्नौ च पच्यन्ते न म्रियन्ति च ।।१२९
सुतीक्ष्णक्षारतोयेन शर्करासु शिलासु च । आ पापसंक्षयात्पापा घृष्यन्ते चन्दनं यथा ।।१३०
शरीराभ्यन्तरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः । भक्ष्यन्ते तीक्ष्णवदनैरादेहप्रक्षयाद् भृशम् ।।१३१
कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूतिमांसस्य राशिषु । तिष्ठन्त्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां च पीडिताः ।।१३२
सुतप्तवज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते । अधोमुखोर्ध्वपादाश्च[1] धृतास्तप्यन्ति वह्निषु ।।१३३
वदनान्ते प्रविन्यस्तं सुतप्तायोमयं गुडम् । ते खादन्ति पराधीना हन्यमानास्तु मुद्गरैः ।।१३४

पकाया जाता है उसी भाँति अपने पापों द्वारा मनुष्य वहाँ पकता रहता है । कोई ओखली में डालकर कूटा जा रहा है, कोई शिला पर पटका जा रहा है, किसी को अंध (जलहीन) कूप में डाल देते हैं, जहाँ भ्रमरगण उसके मांस नोचते रहते हैं । कीटाणुओं द्वारा समस्त अंगों के विदीर्ण होने पर जब वह भली भाँति जर्जर हो जाता है, अत्यन्त तीक्ष्ण एवं खार कूप में उसे डाल देते हैं । महा ज्वालाओं से पूर्ण नरक में पहुँच कर पापी प्राणी फूत्कार (फू-फू) करते हैं, उसकी किरणों से संतप्त होने पर इधर-उधर भागते हैं । किसी को उसकी पीठ की ओर दोनों जंघाओं को लाकर दोनों के मध्य में भुजाओं को भी खींच कर अत्यन्त दृढ रस्सी से बाँधकर लोहे की तीक्ष्ण भ्रमर द्वारा उसे पीड़ित करते हैं । मानी एवं क्रोधी प्राणी को उनके पाप शोधनार्थ नरक में डालकर चन्दन की भाँति घिसते हैं । कहीं तरुणों के शरीर में दारुण पीड़ा हो रही है । इस भाँति के दृश्य देखकर उस दक्षिण दिशा में स्थित यमपुरी का स्मृति अवश्य रखनी चाहिए, जो अत्यन्त ज्वाला रूप है वहाँ अनेक भाँति की यातनाएँ प्राणियों को मिलती रहती हैं । किसी को सम्पूर्ण अंग रस्सी से द्वारा बाँध कर जिस अंग में कीचड़ लिपटा रहता है, सूखे उपले की प्रदीप्त अग्नि में पकाते हैं, किन्तु वह मृतक नहीं होने पाता ।१२२-१२९। किसी को तीक्ष्ण, खार बालूका और पत्थर की शिलाओं पर उसके पाप के अनुसार चन्दन की भाँति घिसते हैं। किसी के शरीर में असंख्य कीडे प्रविष्ट होकर अपने तीक्ष्ण मुखों द्वारा उसके मांस काटकर खाया करते हैं। कीडों के समूहों तथा पीबमांस की ढेरी में प्राणी को डालने और पर्वतों द्वारा पीड़ित होने पर वह उद्विग्न होकर पलायन करना चाहता है, किन्तु अत्यन्त तप्त वज्र लेप से उसकी शरीर लिप्त करते हैं । किसी को नीचे मुख ऊपर पैर करके अग्नि कुण्ड में डाल देते हैं अनन्तर उसके मुख में गुड़ की भाँति सुदीप्त लोहे के गोले डालते हैं, जिससे विवश होकर

---

१. अधःशिरोर्ध्वपादाश्च ।

ये शिवायतनारामवापीकूपमठाङ्गणात् । अभिद्रवन्ति पापिष्ठा नरास्तत्र वसन्ति च ।।१३५
व्यायामोद्वर्तनाभ्यंगस्नानमापानभोजनम् । क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति रमन्ति च ।।१३६
ते बाधैर्विविधैर्घोरैरिक्षुयन्त्रादिपीडनैः । निरयाग्निषु पच्यन्ते यावदाचन्द्रतारकम् ।।१३७
ये शृण्वन्ति गुरोर्निन्दां तेषां कर्णः प्रपूर्यते । अग्निवर्णैरयः कीलैस्तप्तताम्रादिभिर्द्रुतैः ।।१३८
त्रपुसीसारकूटाद्यैः क्षारेण जतुना पुनः । क्रमादापूर्यते कर्णो नरकेषु च यातनाः ।।
अनुक्रमेण सर्वेषु भवन्त्येताः समन्ततः ।।१३९
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः । भवन्ति घोराः प्रत्येकं शरीरे तत्कृतेन च ।।१४०
स्पर्शलोभेन ये मूढाः संस्पृशन्ति परस्त्रियम् । तेषां त्वगग्निवर्णाभिः सूचीभिः पूर्यते भृशम् ।।१४१
ततः क्षारादिभिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते । यातना च महाकष्टा सर्वेषु नरकेषु च ।।१४२
गुरोः कुर्वन्ति भ्रुकुटिं क्रूरं चक्षुश्च ये नराः । परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्निग्धेन चक्षुषा ।।१४३
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रं प्रपूर्यते । क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वैर्देहे सर्वाश्च यातनाः ।।१४४
देवाग्निगुरुविप्राणां येऽनिवेद्य प्रभुञ्जते । लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं प्रपूर्यते ।।१४५
ततः क्षारेण दीप्तेन तैलताम्रादिभिः क्रमात् । शरीरे च महाघोराश्चित्रा नरकयातनाः ।।१४६
ये शिवारामपुष्पाणि[१] लोभात्संगृह्य पाणिना । जिघ्रन्ति मूढमनसः शिरसा धारयन्ति च ।।१४७

उस प्राणी को खाना पड़ता है न खाने पर मुद्‌गरों के आघात से पीड़ित करते हैं। जो पापी प्राणी शिवालय, बगीचे, बावली, कूप एवं मठ को नष्ट कर वहाँ घर बना कर निवास करता है अथवा उन स्थानों पर व्यायाम, उबटन लगाना अभ्यंग स्नान, पान, भोजन, क्रीडन, मैथुन एवं द्यूत क्रीडा करते कराते हैं वे अनेक भाँति की घोर यातना, और ऊँखयंत्र (कोल्हू) में पीड़ित होने के उपरांत नरक की अग्नि में चन्द्रमा तथा ताराओं के स्थित समय तक पकते रहते हैं। जो गुरु की निन्दा सुनते हैं, उनके दोनों कान अग्नि के समान प्रदीप्त लोहे की कील, संतप्त ताँबा, रांगा, सीसा के टुकड़े से भर कर ऊपर से तप्त लाह डालते हैं। इस प्रकार उसकी समस्त देह को क्रमशः पीड़ित करते रहते हैं। जिसमें समस्त इन्द्रियाँ क्रमशः यातनाओं द्वारा व्याकुल होती हैं। इसी भाँति प्रत्येक पापी प्राणी को यहाँ दुःख यातना अनुभव करना पड़ता है। जिस मूढ ने स्पर्श लोभ से परस्त्री का स्पर्श किया है, उसके देह की त्वक् इन्द्रिय (देह की ऊपरी खाल) अग्नि संतप्त सूची द्वारा विदीर्ण की जाती है।१३०-१४१। पश्चात् खार आदि समस्त उपरोक्त पदार्थों के लेपन उसके शरीर में करते हैं तथा क्रमशः समस्त नरकों की यातना के अनुभव भी। जो पुरुष अपने गुरु के ऊपर भौहें टेढ़ी करता है, दूसरे की पत्नी पर मुग्ध होकर स्नेह दृष्टि से देखता है, उसके नेत्र में अग्नि की भाँति प्रज्वलित सूची डाली जाती है और खार पदार्थों के लेपन पूर्वक क्रमशः सभी नरकों की यातनाओं के अनुभव कराते हैं। देव, अग्नि, गुरु और विप्रों को विना समर्पित किये वस्तु के भक्षण जो प्राणी करता है, उसकी जिह्वा लोहे की सैकड़ों संतप्त कीलों से छेदी जाती है। अनन्तर क्षार पदार्थों के लेपन पूर्वक तेल कुण्ड के अनुभव ताँबे आदि के दुःख सहन करके पुनः उसके शरीर नरकों की चित्र विचित्र यातनाओं से पीड़ित होती है। जो पुरुष देवता के बगीचे के पुष्पों को तोड़कर सूंघते या

---

१. ये देवारामपुष्पाणि।

आपूर्यते शिरस्तेषां सुतप्तैर्लोहशंकुभिः । नासिका चातिबहुशस्ततः क्षारादिभिः पुनः ।।१४८
ये निन्दन्ति महात्मानमाचार्यं धर्मदेशिकम् । शिवभक्तांश्च ये मूढाः शिवधर्मं[1] च शाश्वतम् ।।१४९
तेषामुरसि कंठे च जिह्वायां दन्तसन्धिषु । तालुकोष्ठे च नासायां मूर्ध्नि सर्वाङ्गसन्धिषु ।।१५०
अग्निवर्णाः सुतप्ताश्च त्रिशिखा लोहशंकवः । आखन्यन्ते सुबहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः ।।१५१
ततः क्षारेण तप्तेन ताम्रेण त्रपुणा पुनः । तप्ततैलादिभिः सर्वैरापूर्यन्ते समंततः ।।१५२
क्षारताम्रादिभिर्दीप्तैर्दह्यन्ते बहुशः पुनः । नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा देहया तनाः ।।१५३
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादसमुद्भवाः । शिवायतनपर्यंते[2] शिवारामे च कुत्रचित् ।।१५४
समुत्सृजंति ये पापाः पुरीषं मूत्रमेव वा । तेषां लिंगं सवृषणं चूर्ण्यते लोहमुद्गरैः ।।१५५
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्ततश्चापूर्यते पुनः[3] । लोहदण्डश्च सुमहानग्निवर्णः सकण्टकः ।।
[4]आखन्यते गुदे तेषां यावन्मूर्ध्नि विनिर्गतः ।।१५६
ततः क्षारेण महता ताम्रेण त्रपुणा पुनः । द्रुतेनापूर्यते गाढं गुदं शिश्नं हि देहिनाम् ।।१५७
मनः सर्वेन्द्रियाणां च यस्मादुक्तं प्रवर्त्तकम् । तस्मादिन्द्रियदुःखेन जायते तत्सुदुःखितम् ।।१५८
धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया । अतिथिं चावमन्यन्ते कालप्राप्तं गृहाश्रमे ।।१५९
ते लोहतोरणे बद्धा हस्तपादावताडिताः । विदारितांगाः शुष्यन्ते तिष्ठन्त्यब्दशतं नराः ।।१६०
हस्तपादललाटेषु कीलिता लोहशंकुभिः । नित्यं च नोवृतं वक्रं कीलकद्वयनाडितम् ।।१६१

शिर, कान पर धारण करते हैं, उनके शिर में लोहे की अनेक संतप्त कीलें गाड़ दी जाती हैं । उसी भाँति नासिका को भी पीड़ित कर उसकी शरीर क्षार आदि पदार्थों से क्रमशः पीड़ित की जाती है । धर्म, देश के आचार्यों तथा महात्माओं शिवभक्त अथवा शैव धर्म की निन्दा करने वाले प्राणी के हृदय कंठ, जिह्वा, दाँतों की संधि, तालु, ओष्ठ, नासिका, शिर एवं समस्त अंगों की संधियों में अग्नि की भाँति लोहे के प्रज्वलित त्रिशूल से छेदन करके उनके शरीर मुद्गरों के आघातों से पीड़ित करते हैं । पश्चात् तप्त खार, ताँबा, रांगा के टुकड़े तथा तप्त तेल सभी इन्द्रियों में डालकर पुनः खार ताँबे आदि के तप्त वस्तुओं से उसे अनेक बार समस्त नरक यातनाओं के अनुभव कराते हैं जिससे उसके समस्त हाथ पैर आदि अंगों में अत्यन्त कष्ट होता रहता है । शिवालय के घेरा या उसके बगीचे में किसी स्थान पर जो पापी प्राणी मूत्रपुरीषोत्सर्ग करता है, उसके लिंग एवं अण्डकोष को लोहे के मुद्गरों से चूर्ण करते हैं प्रतप्त सूची से छेदन करने के उपरांत लोहे के संतप्त दण्ड को, जिसमें बड़े-बड़े कीले लगे रहते हैं, उसको गुदा मार्ग से डालकर मुख द्वार से निकालते हैं अनन्तर खार, ताँबें रांगा आदि के तप्त टुकड़े उसकी गुहा एवं लिंग में डालते हैं । उस समय उसका मन जो इन्द्रियों का प्रवर्तक रहता है, इन्द्रियों के दुःख से दुःखी होकर मुक्ति होने की याचना किया करता है ।१४२-१५८। धन के रहते हुए जो प्राणी लोभवश दान नहीं करता, समय से घर पर अतिथि के आने पर उसकी सेवा नहीं करता है, उसके हाथ पैर लोहे के तार द्वारा बांध ताडनपूर्वक समस्त देह विदीर्ण करते हैं, इस प्रकार उसे इसी भाँति की वेदना सैकड़ों वर्ष सहन करनी पड़ती है । अनन्तर हाथ, पैर और भाल में लोहे की कील गाड़कर उसके मुख में नित्य दो कीलें गाडते रहते हैं और

---

१. विष्णुधर्मं च । २. देवायतनपर्यन्ते देवारामे च कुत्रचित् । ३. भृशम् । ४. निरूप्य च गुदे तेषां यावन्मूर्ध्नि विनिर्गमः ।

कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहदण्डश्च वायसैः । उपद्रवैर्बहुविधैः सर्पैर्मुखरकैस्ततः ।।१६२
आपीड्यन्ते जिह्वामूले निबध्य शृङ्खलाः पुनः । तिष्ठन्ति लम्बमानाश्च लोहभारप्रपीडिताः ।।१६३
स्निग्धे च वृषणे नद्धे लोहभारद्वयं पुनः । तिष्ठते लम्बमानं च बहुभारचतुर्गुणम् ।।१६४
ततः स्वामांसमुत्कृत्य तिलमात्रप्रमाणतः । भोजनं दीयते तेषां सूच्यग्रेण सशोणितम् ।।१६५
यदा निर्मांसतां प्राप्ताः कालेन महता पुनः । ततः क्षारेण दीप्तेन वपुस्तेषां प्रलिप्यते ।।१६६
सिच्यन्ते वर्षधाराभिः शोष्यन्ते वायुना पुनः । सिच्यन्ते तप्ततैलेन प्रतप्तेन समन्ततः ।।१६७
पश्चात्ते वह्निना भूयो दूरस्थेन शनैः शनैः । निःशेषयातनाभिश्च पीड्यन्ते क्रमशः पुनः ।।१६८
भृशं बुभुक्षया पीडा मूर्च्छयातिपिपासया । अत्युष्णेनातिशीतेन पापानां समरेण च ।।१६९
एवमादिमहाघोरा यातनाः पापकारिणः[1] । एकैके नरके चैव शतशोऽथ सहस्रशः ।।१७०
प्रत्येकं यातनाश्चित्राः सर्वेषु नरकेषु च । कष्टं वर्षशतेनापि सोढुं सर्वैश्च नारके ।।१७१
एते च दिविधैर्घोरैर्यात्यमानाश्च कर्मभिः । म्रियन्ते नैव पापिष्ठा विविधाः पापकारिणः ।।१७२
महाघोराभिघोराख्याः कालाग्निसदृशोपमाः । श्रुतैरेतैर्महारौद्रैर्म्रियन्ते मृदुचेतसः ।।१७३
ततस्तेनात्र कथिताः पापा गच्छन्ति तान्स्वयम् । पुत्रमित्रकलत्रार्थं यदा पुण्यं त्वपाकृतम् ।।१७४
एकाकी दह्यते तेन न च पश्यति तानि सः । आत्मना च कृतं पापं भोक्तव्यं ध्रुवमात्मना ।।१७५
तत्किमन्योपघातार्थं मूढ पापं कृतं त्वया । एवं दूतैरुपालब्धास्ते पृच्छन्ति ततः पुनः ।।१७६

कीडों, तीक्ष्ण लोह दंड, कौवे, तथा सर्प आदि अनेक भाँति के जन्तुओं द्वारा उसे पीड़ित करने के उपरांत उसकी जिह्वा के मूलभाग में शृङ्खला से बाँधकर खड़ा करते और लोहे के भार से पीड़ित करते हैं । उसके अण्ड कोष को बांध कर दो लोहे के भार से पीड़ित करते हुए उसे खड़ा कर उसके ऊपर चौगुने भार रखते हैं और उसकी देह के मांस को सूची द्वारा तिल के समान टुकडे करके उसे भोजन देते हैं । इस प्रकार अधिक समय में उसके मांस हीन होने पर उसकी देह में वही खार आदि पदार्थों के लेपन करते हैं, वर्षा की धार से सिंचित करके वायु द्वारा शब्द करते हैं, सूख जाने पर तप्त तेल से सेवन करके मन्द अग्नि द्वारा धीरे-धीरे उसे पीड़ित करते हुए सभी यातनाओं के अनुभव कराते हैं । इसी प्रकार क्षुधा, तृष्णा, मूर्च्छा, अत्यन्त गर्मी, अत्यन्त शीत के द्वारा भी उसे पीड़ित करते रहते हैं ।१५९-१६९। इस भाँति उन घोर यातनाओं के प्रत्येक नरकों में सैकड़ों सहस्रों बार अनुभव पूर्वक समस्त नरकों की चित्र विचित्र यातनाओं के सहन करते हैं, जिसके दुःख सहन करने में प्राणी को वहाँ सैकड़ों वर्ष रहना पड़ता है । अनेक भाँति की घोर यातनाओं को अपने कर्म के फल स्वरूप प्राप्त होती है, सहन करते हुए वे प्राणी मृतक नहीं होते हैं । प्रत्युत महाचोर, घोर, कालाग्नि के समान उन महाभीषण यातनाओं के उपभोगार्थ उसे अत्यन्त मृदु होना पड़ता है। इस प्रकार अपने कर्मानुसार उन यातनाओं को पापी प्राणी प्राप्त करते हैं, जो पुत्र, मित्र, एवं स्त्री के निमित्त मुग्ध होकर किये गये रहते हैं । पापी प्राणी वहाँ पहुँच कर अकेले ही उन यातनाओं को भोगता है, जिनके निमित्त पाप करता है उनके वहाँ दर्शन भी नहीं होते हैं। दूत लोग कहते हैं किये हुए पापों को अवश्य भोगना पड़ता है यह जान लेते हुए तुमने मूढ़ता वश पाप कर्म किया और इसी भाँति के वे

---

१. अस्मादग्रे—"तत्रान्यायतनानां च विविधाः पापकारिणः" इति पाठ एकस्मिन्पुस्तकेऽधिकः पृथक्तयोपलभ्यते।

कियन्तं केन पापेन कालमत्रायते नरः । देवद्रव्यविनाशेन गुरुद्रोहादिकर्मभिः ॥
पापात्सर्वेषु पच्यन्ते नरकेष्वामहाक्षयात् ॥१७७
महापातकिनश्चापि सर्वेषु नरकेष्विह । आचन्द्रतारकं यावत्पीडयन्ते विविधैर्वधैः ॥१७८
महापातकिनश्चान्ये नरकार्णवकोटिषु । चतुर्दशसु पच्यन्ते कलार्धं विविधैर्वधैः ॥१७९
उपपातकिनश्चापि तदर्थं यान्ति मानवाः । शेषपापैस्तदर्धं तु कालं चापि तथाविधम् ॥१८०
तस्मात्पापं न कुर्वीत चञ्चले जीविते सति । पापेन हि ध्रुवं यान्ति नरकेषु नराः स्वयम् ॥१८१
यः करोति नरः पापं तस्यात्मा ध्रुवमप्रियः । पापस्येह फलं दुःखं तद्भोक्तव्यमिहात्मना ॥१८२
कथं ते पापनिरता नरा रात्रिषु[1] शेरते । मरणांतरिता[2] येषां नारकी तीव्रयातना ॥१८३
एवं क्लिष्टविशुद्धाश्च सावशेषेण कर्मणा । ततः क्षितिं समासाद्य जायन्ते देहिनः पुनः ॥
स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः ॥१८४
तत्रानुभूय दुःखानि जायन्ते कीटयोनिषु । निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः ॥१८५
संश्लिष्टाः पक्षिभावेन भवन्ति मृगजादिषु । मार्गं दुःखमतिक्रम्य जायन्ते पशुयोनिषु ॥१८६
क्रमाद्गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः । एवं योनिषु सर्वासु परिक्रम्य क्रमेण तु ॥
कालान्तरवशाद्यान्ति मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥१८७

सभी पापियों के पास पहुँच कर पूँछा करते हैं और यह भी कहते हैं कि मनुष्य वृन्द तुम लोगों ने किस पाप को और कितने समय तक किया है । इसी भाँति देवों के द्रव्य विनाश करने और गुरु से द्रोह आदि कर्मों के करने से प्राणी अपने किये हुए पाप कर्मों के फल स्वरूप नरकों में महाप्रलय काल तक यातनाएँ भोगता रहता है । महापातकी प्राणी चन्द्र और ताराओं के स्थित समय तक समस्त नरकों में रहकर अनेक भाँति की यातनाओं से पीड़ित होते हैं । कुछ लोग उन कोटि नरक सागरों में ही सदैव पड़े रहते हैं । उपपातकी प्राणी को चौदह नरकों में विविध भाँति की यातनाएँ उसके (महापातकी के) आधे समय तक मिलती रहती हैं और शेष पापों के शोधनार्थ उसके आधे समय तक । इसलिए मनुष्य के इस चल जीवन को प्राप्त कर प्राणी को कभी भी पाप न करना चाहिए । क्योंकि पाप करने पर नरक गमन करना मनुष्यों के लिए निश्चित है । जो पुरुष पाप करता है, निश्चय है उसकी आत्मा उसे प्रिय नहीं है, क्योंकि पाप का फल भोगने के लिए उसे नरक जाना होगा । इन घोर यातनाओं को देखते हुए मनुष्य पाप की ओर विशेष ध्यान न देकर रात्रि में कैसे नारी विलास ही करता रहता है। (आत्मोद्धार के उपाय नहीं करता) नरक की तीव्र यातनाओं के, जिसमें निधन होने के समान अनेक पीडाएँ अन्तर्निहित है, भोग करने के उपरांत उस विशुद्ध कठिनाई के उपभोगार्थ कुछ कर्म के शेष रहने पर वह प्राणी इस पृथ्वी तल पर पुनः आकर शरीर धारण करता है। उसमें उसे तृण गुल्म आदि के भेद से स्थावर (वृक्षादि) योनि की प्राप्ति पूर्वक उसके उग्र दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं। पश्चात् वह कीट योनि में पहुँचता है, वहाँ की घोर व्यथाओं को सहन करके पक्षी शरीर प्राप्त करता है । इसी क्रम के अनुसार वह पक्षी योनि की प्राप्ति के अनन्तर मृग आदि की योनि उससे पशु और पशुओं की योनि में भक्षण करके गो योनि तथा अनन्तर मनुष्य योनि में पहुंचता है इस प्रकार क्रमशः समस्त योनियों में भ्रमण करते हुए उसे कालान्तर में अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है।१७०-१८७। अत्यन्त पुण्य कर्मों के प्रभाव

---

१. नारीषु । २. मरणं त्वरितं येषाम् ।

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगोचरात् । विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ।।१८८
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् । द्वयोर्न साधयत्येकं स मृतस्तप्यते चिरम् ।।१८९
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् । तत्सम्प्राप्य कथाः कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ।।१९०
स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यतः । स्वर्गस्य मूलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत् ।।१९१
धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् । यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्षस्व यत्नतः ।।१९२
मनुष्यत्वे च विप्रत्वं यः सम्प्राप्यातिदुर्लभम् । न करोत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ।।१९३
सर्वेषामेव देशानां मध्यदेशः[1] परः स्मृतः । अतः स्वर्गश्च मोक्षश्च यशः सम्प्राप्यते नरैः ।।१९४
एतस्मिन्भारते पुण्ये प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् । यः कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा रक्षितः स्वयम् ।।
यः कुर्यान्नात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वंचितः स्वयम् ।।१९५
भोगभूमिः स्मृतः स्वर्गः कर्मभूमिरियं मता । इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदुपभुज्यते ।।१९६
यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचर । अस्वस्थश्चातियत्नेन न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत् ।।१९७

से प्राणी को व्युत्क्रम से (सभी योनियों में न जाकर) भी मनुष्य योनि की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि छोटे बड़े कर्मों के अनुसार उसके फल भी वैसे ही होते हैं इसीलिए कर्मों की गति विचित्र बतायी गयी है। अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति करके जो स्वर्ग एवं मोक्ष का साधक है, प्राणी इन दोनों में से किसी एक की भी प्राप्ति न कर सके, वह मृतक की भाँति है और निधन होने पर चिरकाल तक (नरक यातनाओं आदि द्वारा) संतप्त होता है। देवों और असुरों आदि सभी योनियों से मनुष्य योनि अत्यन्त दुर्लभ एवं परमोत्तम कही गई है। इसलिए इसे प्राप्त कर मनुष्य को वह कर्म करना चाहिए, जिससे नरक यातनाओं का अनुभव पुनः न करने पड़े। यदि मनुष्य योनि प्राप्त कर प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के प्राप्त्यर्थ समुचित उद्योग नही कर सकता है, तो अपने मनुष्यत्व के स्थिर रखने में उसे सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि मनुष्यत्व ही स्वर्ग प्राप्ति का मूल कारण है और मनुष्य योनि की प्राप्ति का मूल कारण धर्म है। इसलिए उस धर्म मूलक मनुष्य योनि के प्राप्त होने पर जो समस्त का साधक हैं, यदि उससे अन्य (स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति रूप) लाभ नहीं कर सकता है, तो उसे अपने मूल की ही रक्षा में निरन्तर प्रयत्न पूर्वक सचेष्ट रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्य योनि अति दुर्लभ है और मनुष्यों में ब्राह्मण होना परम दुर्लभ है। ब्राह्मण होने पर जो अपने आत्मा के (मोक्ष रूप) कल्याणार्थ सतत प्रयत्नशील नहीं रहता है, उससे बढ़कर अज्ञानी अन्य कौन हो सकता है। इसी प्रकार पृथ्वी मण्डल के सभी देशों से यह मध्य देश परम श्रेष्ठ है क्योकि जिसमें रहकर मनुष्य स्वर्ग, मोक्ष, एवं अनुपम यश की प्राप्ति करता रहता है। इस पुण्य भारत वर्ष में इस अनिश्चित मनुष्य जीवन की प्राप्ति करके जिस प्राणी ने अपनी आत्मा का कल्याण सुसम्पन्न किया उसी ने अपनी आत्म रक्षा स्वयं की है और जो आत्मा कल्याण न कर सका उसने स्वयं अपनी आत्मा को वञ्चित किया। १८८-१९५। स्वर्ग को भोग भूमि कहा गया है और इसे कर्म भूमि यहाँ तो कर्म किया जाता है, स्वर्ग में उसी का उपभोग प्राप्त होता है। इसलिए शरीर का स्वास्थ्य जब तक वर्तमान है तब तक धर्मोपार्जन के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि अस्वस्थ होने पर कुछ भी करने में

---

१. अयं देशः।

अध्रुवेण शरीरेण ह्यध्रुवं यः प्रसाधयेत् । ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव च ।।१९८
आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तवाग्रतः । अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ।।१९९
यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति । आकस्मिके हि मरणे धृतिं विन्देत कस्तदा ।।२००
परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् । न ददासि तदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ।।२०१
गृहीतदानपाथेया सुखं यान्ति महाध्वनिः । अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ।।२०२
येषां द्विजेन्द्रवाहिन्नी पूर्णभाण्डा तु गच्छति । स्वर्गदेशस्य पुरतस्तेषां लाभः पदेपदे ।।२०३
इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् । पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरकं व्रजेत् ।।२०४
ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाः शरणं शिवम् । तेऽपि घोरं न पश्यन्ति यमस्य वदनं नराः ।।२०५
किं तु पापैर्महाघोरैः किञ्चित्कालं शिवाज्ञया । भवन्ति प्रेतराजानस्ततो यान्ति शिवालयम् ।।२०६
ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् । न ते लिप्यन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।२०७
तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः । तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ।।२०८

असमर्थ रहना पड़ेगा । इस अनिश्चित शरीर की प्राप्ति करके जो प्राणी इसी द्वारा अनिश्चित पदार्थ की ही प्राप्ति करता है, उसका निश्चित पदार्थ (स्वर्ग मोक्ष) नष्ट (दुष्प्राप्य) हो जाता है, और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट ही है । तुम्हारे ही सम्मुख तुम्हारी आयु दिन रात्रि के व्याज से खण्ड-खण्ड होकर नष्ट हो रही है, फिर किसलिए अब भी तुम नहीं जाग रहे हो जब यह नहीं मालूम हो रहाहै कि किसी की मृत्यु कब होगी, तो इस आकस्मिक निधन के अवसर पर धैर्य धारण करायेगा ।१९६-२००। यह तो ध्रुव है कि अपनी यहाँ की सभी वस्तुओं के त्याग पूर्वक यहाँ से अकेले ही यात्रा करोगे तो मार्ग में पाथेय के रूप में प्राप्त होने के निमित्त इस धन का दान क्यों नहीं करते । क्योंकि दान रूपी पाथेय लेकर जो प्राणी उस महामार्ग की यात्रा करता है उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है । इसके विपरीत पाथेय रहित प्राणी को अत्यन्त घोर यातना का अनुभव करना पड़ता है । जिस प्राणी की स्वर्ग की यात्रा के समय मार्ग में उसके आगे आगे पाथेय पूर्ण भांड चलता है उसी को प्रत्येक पग पर लाभ होता रहता है । ऐसा जान कर मनुष्य को पाप के त्याग पूर्वक पुण्य का ही उपार्जन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि पुण्य द्वारा देवत्व की प्राप्ति होती है और पाप द्वारा नरक की । जिस प्राणी ने देवाधिदेव भगवान् शंकर की शरण एकबार भी प्राप्त कर लिया है, उसे भी यमराज के उस घोर मुख का दर्शन नही करना पडेगा । किंतु उस समय महाघोर पाप कर्म करने के नाते शिव जी की आज्ञा वश थोड़े समय तक उसे प्रेत राज अवश्य होना पड़ता है । तथा पश्चात् शिवपुरी की प्राप्ति हो जाती है ।२०१-२०६। और जो सर्व भाव से भगवान् महेश्वर की शरण प्राप्त करता है जल से कमल पत्र की भाँति पाप से उसका स्पर्श कभी नहीं होता है । इसलिए विद्वान् को उनके महत्त्व के विचार पूर्वक संसार दोष से विरक्त होकर भगवान् शिव की आराधना सदैव करनी चाहिए । पार्थ ! यमराज के लोक में प्राणी पाँच

---

१. हरिम् । २. परां गतिम् ।

पापानि पञ्च परमार्थतयैव पार्थ दुःखप्रदानि सुचिरं पितृराजलोके।
अन्यानि यानि चिरकालभयानकानि वक्तुं न यान्ति किल तानि परिस्फुटानि ।।२०९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शुभाशुभफलनिर्देशो नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

शकटव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

यदेतत्ते समाख्यातं गम्भीरं नरकार्णवम् । व्रतोपवासनियमप्लवेनोत्तीर्यते सुखम् ।।१
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं विद्युत्पतनचञ्चलम् । तथात्मानं समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा ।।२
दानव्रतमयी कीर्तिर्यस्य स्यादिह देहिनः । परलोकेऽपि स तया ज्ञायते[1] ज्ञातिवर्द्धनः ।।३
ज्ञायते नेह नामुत्र व्रतस्वाध्यायवर्जितः । पुरुषः पुरुषव्याघ्र तस्माद्व्रतपरो भवेत् ।।४
अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । सिद्धेन[2] सह संवादमवन्त्यां ब्राह्मणस्य हि ।।५
योगर्द्धिसिद्ध्या संसिद्धः कश्चित्सिद्धो महीतलम् । चचार विकृतं कृत्वा वपुः परमभीषणम् ।।६

प्रकार के दारुण पापों द्वारा चिरकाल तक दुःखों के अनुभव करता रहता है । और अन्य पाप को जिसके कारण चिरकाल तक नरकों के दुःखानुभव करने पड़ते हैं एवं भयानक भी है, कहने भी आवश्यकता नहीं है वे अति प्रसिद्ध है ।२०७-२०९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद विषयक शुभाशुभ फल वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

शकटव्रतमाहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—जिस गम्भीर नरक सागर का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है, व्रत, उपवास एवं नियम के पालन रूप नौका द्वारा प्राणी उसे पारकर सुखपूर्वक रहता है, प्राप्त करके प्राणी को चाहिए कि अपनी आत्मा को गर्त में न गिरा सके । जिस प्राणी की दान-व्रत मयी कीर्ति दिग्दिगन्त में फैली हुई है, उस कीर्ति द्वारा परलोक में भी वह जातिवर्धक ही कहलाता है । पुरुषव्याघ्र ! व्रत एवं स्वाध्याय हीन प्राणी की ख्याति लोक परलोक में कहीं नहीं होती है, इसलिए व्रत नियम का पालन अवश्य करो । इस विषय में तुम्हें एक इतिहास मैं सुना रहा हूँ, जो अवंती पुरी के निवासी उस ब्राह्मण से सिद्ध (योगी) रूप शिव जी ने कहा था । योग की ऋद्धि सिद्धि से सम्पन्न होकर एक सिद्ध (योगी) अपने अंगों को अत्यन्त (कोढ़ी का रूप) बनाकर जो देखने में अत्यन्त भयानक भी था, भूमण्डल

---

१. जनो यज्ञविवर्जितः । २. शिवेन ।

निर्गीर्णदन्तो लम्बोष्ठः पिङ्गाक्षस्तनुमूर्द्धजः । त्रुटितैककर्णो दुर्वणः शीर्णवस्त्रो महोदरः ॥७
चिपिटाक्षः[1] स्फुटितपाज्जङ्घाढ्यः कृशकूर्परः । दिशः पश्यति संहृष्टो बभ्रामोद्भ्रान्तचित्तवत् ॥८
मूलजालिकविप्रेण दृष्टः पृष्टश्च को भवान् । कदा स्वर्गात्समायातः केन कार्येण मे वद ॥९
कच्चिद्दृष्टा त्वया रम्भा भाभासितदिगंतरा । चित्तसंमोहनकरी देवानामेकसुन्दरी ॥१०
गत्वा मद्वचनाद्वाच्या निर्वाच्या दोषदर्शिभिः । आवंत्यस्त्वां कुशलिनीं पृच्छति स्म द्विजोत्तमः ॥११
सिद्धः प्रसिद्धं तं विप्रं प्राहेदं विस्मयान्वितः । कथं त्वयाहं विज्ञातः स्वर्गादभ्यागतः स्फुटम् ॥१२
ब्राह्मणस्तमथोवाच विज्ञातोऽसि मया यथा । तथा तेऽहं प्रवक्ष्यामि क्षीणाधौघावधारय ॥१३
गात्रत्रयं विरूपं स्याद्द्वितीयं वा स्वरूपतः । दृष्ट्वा सर्वाङ्गवैरूप्यं विज्ञातोऽसि ततो मया ॥१४
दुर्लंघ्या प्रकृतिः साक्षादनुभूतकरी भवेत् । प्रकृतेरन्यथाभावः सर्वथा[2] लक्ष्यते जनैः ॥१५
विप्रस्यैवं वचः श्रुत्वा जगामादर्शनं शनैः । पुनः कैश्चिदहोरात्रैराजगाम स तां पुरीम् ॥१६
मूलजालकविप्रेण पृष्टः प्राहामरावतीम् । गतोऽहं पृष्टवांस्तत्र रम्भां विभ्रमकारिणीम् ॥१७
शक्रस्यावसरे वृत्ते व्रजन्त्याः स्वगृहं मया । त्वत्संदेशः समाख्यातः सावदत्को न वेद्मि तम् ॥१८

पर विचर रहा था ।१-६। उसके निकले हुए बड़े-बड़े दाँत लम्बा ओष्ठ, पिंग वर्ण की आँखें और शरीर तथा शिर के केश, टूटा हुआ एक कान, दूषित वर्ण, जीर्ण शीर्ण वस्त्र लम्बा उदर, चिपटे नेत्र, रोग के नाते विदीर्ण चरण, स्थूल जंघा, अत्यन्त पतली भुजाओं के मध्य की गाँठे थी । इस प्रकार का रूप धारण किये वह भ्रान्त पुरुष की भाँति प्रसन्न चित्त से चारों ओर देख रहा था । उस समय मूल जाल नामक अवन्ती पुरी का निवासी एवं ब्राह्मण ने उन्हें देखकर पूछा—आप का स्वर्ग से यहाँ के लिए कब प्रस्थान हुआ है और किस उद्देश्य से क्या आप ने उस रम्भा अप्सरा को देखा है, जिसके चलने पर उसकी मनोरम दीप्ति द्वारा दिग्दिगन्त भासित होता चलता है । तथा देवों के चित्र को मुग्ध करने वाली वही एक सुन्दरी है । यदि हाँ तो आप वहाँ पहुँचने पर उस सुन्दरी से जो दोष द्रष्टा के सम्मुख भी सर्वथा दोष हीन है मेरी ओर से कहना—अवन्ति पुरी का रहने वाला वह ब्राह्मण तुम्हारा कुशल समाचार पूँछ रहा था ।७-११। इसे सुनकर वह सिद्ध आश्चर्य चकित होकर उस प्रख्यात ब्राह्मण से कहा—आपने यह कैसे जान लिया कि मैं निश्चित स्वर्ग से ही आया हूँ । इसे सुनकर ब्राह्मण ने कहा—पाप समूह के नाशक ! मैं उस (लक्षण) को बता रहा हूँ, जिसे देखकर मैंने निश्चित किया है कि आप स्वर्ग से ही आये हैं । शरीर के तीन अंग विरूप हैं और दूसरा स्वरूपतः विरूप है । इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर को विकृत देखकर मैंने निश्चय कर लिया है । क्योंकि यद्यपि प्रकृति अत्यन्त दुर्लभ है, जिसका साक्षात् अनुभव हो रहा है, तथापि प्रकृति जन्य अंग विकार को देखते ही लोग पहचान जाते हैं । ब्राह्मण की ऐसी बात सुनकर वह योगी (शिव) धीरे से अन्तर्हित हो गया । पुनः कुछ दिन के अनन्तर अवन्ती पुरी में आकर इस योगी ने ब्राह्मण को दर्शन दिया । मूलजाल नामक ब्राह्मण के पूछने पर उसने कहा—मैंने देवलोक जाकर उस विलासिनी रंभा से उस समय जब वह देवेन्द्र के यहाँ से होकर अपने घर जाती थी, पूछा—अवन्ती पुरी का निवासी मूलजाल नामक ब्राह्मण

---

१. चिपिटाक्षः स्फुटितखण्डजाकृशकटित्याः—इत्यशुद्धः पाठः कस्मिंश्चित्पुस्तके दृश्यते ।
२. सर्वैर्व्यालक्ष्यते जनैः ।

विद्यया कलया चापि पौरुषेण व्रतेन च। तपसा वा पुमान्मर्त्यो दिवि विज्ञायते चिरम् ॥१९
ब्राह्मणस्तमथोवाच मुग्धा दग्धाग्निसंभवा। न भक्षयामि शकटं व्रतेनैतेन वेत्ति माम् ॥२०
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा स सिद्धः सुविशुद्धधीः। प्रहस्यामंत्र्य[1] तं विप्रं जगामादर्शनं पुनः ॥२१
कदाचिच्च रता तेन स्वर्गमार्गं यदृच्छया। दृष्ट्वा रम्भां द्विजप्रोक्तं सर्वमेव निवेदितम् ॥२२

रम्भोवाच

को न जानामि तं विप्रं शकटव्रतचारिणम्। मूलजालैर्वर्तयन्तं महाकालवनाश्रयम् ॥२३
दर्शनादथ सम्भाषादुपकारात्सहासनात्। चतुर्धा स्नेहनिर्बन्धो नृणां सञ्जायतेऽधिकः ॥२४
न दर्शनं न सम्भाषा कदाचित्सह तेन मे। नामश्रवणमात्रेण स्नेहः सन्दर्शितो[2] महान् ॥२५
इत्येवमुक्त्वा रम्भोरू रम्भा जम्भारिणोन्तिकम्। विस्मयोत्फुल्लनयना जगाम गजगामिनी ॥२६
गत्वा निवेदयामास स्नेहव्रतविचेष्टितम्। पुरतो रुद्धहृदया ब्राह्मणस्य च धीमतः ॥२७
शक्रः प्रोवाच चार्वंगीं गीर्वाणहृदयङ्गमाम्। किमानयामि तं विप्रं समीपं तव सुव्रतम् ॥२८

तुम्हारा कुशल समाचार जानना चाहता है। इसे सुनकर उसने उत्तर दिया कि वह कौन है, मैं उसके विषय में कुछ भी नहीं जानती हूँ। तथा यह भी कहा कि—विद्या, कला, पौरुष, व्रत, और तप द्वारा ही पुरुष इस (स्वर्ग) लोक में प्रख्यात होता है और उसका यश चिरकाल तक स्थायी भी रहता है। अनन्तर उस ब्राह्मण ने कहा कि—मैं शकट व्रत का पालन कर रहा हूँ, उसका भक्षण नहीं करता, क्या वह मुग्धा, जो दग्ध अग्नि द्वारा उत्पन्न हुई है, यह भी जानने में संकोच कर रही है। ब्राह्मण की ऐसी बात सुनकर वह विशुद्ध बुद्धि वाला योगी हँस कर उससे बात करने के उपरांत पुनः अलक्षित हो गया। स्वर्ग मार्ग में यथेच्छ भ्रमण करते हुए उस योगी ने किसी समय वहाँ रम्भा को देखा और उससे ब्राह्मण की कही हुई सम्पूर्ण बातें निवेदित किया। उसे सुनकर रम्भा ने कहा।१२-२२

रम्भा बोली—महाकाल नामक वन में निवास करते हुए उस मूल जाल नामक ब्राह्मण को जो शकट व्रत का पालन कर रहा है, मैं सर्वथा नहीं जानती। क्योंकि दर्शन, सम्भाषण, उपकार और साथ-साथ आसनासीन होने इन्हीं चार प्रकार से मनुष्यों के स्नेह सूत्र अधिक दृढ होते हैं, किन्तु उस ब्राह्मण के साथ मेरे न कभी दर्शन हुआ न किसी प्रकार से कोई बात-चीत ही हुई, केवल नाम ही सुनने से उसने महान् स्नेह प्रकट किया है। जम्भासुर के विनाशक उन शिव जी से कदली स्तम्भ के समान ऊरू वाली उस रम्भा ने उसके नेत्र आश्चर्य चकित होने के नाते कमल की भाँति खिल उठे थे, इतना कहकर गज की भाँति मन्दगति से वहाँ से धीरे-धीरे प्रस्थान किया। उसने वहाँ (देवलोक) में जाकर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण के स्नेह समेत व्रत को जिस ब्राह्मण के लिए उसका हृदय इन्द्र के सामने ही आसक्त होने के नाते अवरुद्ध सा हो गया था, तथा उसकी चेष्टाओं को विस्तार पूर्वक निवेदन किया। उसे सुनकर देवेन्द्र ने उस सुन्दरी से जो देवों के हृदय को सर्वथा अपने अधीन किये रहती है, कहा—क्या, उस सविधान व्रत नियम पालन करने वाले ब्राह्मण को तुम्हारे समीप ही मँगवा दूँ। इतना कहकर उन्होंने उस ब्राह्मण

---

१. संभाष्यापूज्य। २. संवर्द्धितः।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रगनुलेपनम् । विमानवरमारोप्य दर्शयामास तं पुनः ॥२९
तत्रस्थः स द्विजो भोगान्भुनक्ति सह रम्भया । शकटव्रतमाहात्म्यमित्येतत्ते मयोदितम् ॥३०
राज्यश्रियं जगति सर्वजनोपभोग्यमाप्नोति शक्रशिवकेशवयोर्निवासम्[1] ।
नाप्राप्यमस्ति भुवने सुदृढव्रतानां तस्मात्सदा व्रतपरेण नरेण भाव्यम् ॥३१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शकटव्रतमाहात्म्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

तिलकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

ब्रह्मेश केशवादीनां गौर्या गणपतेस्तथा । दुर्गासूर्याग्निसोमानां व्रतानि मधुसूदन ॥१
शास्त्रान्तरेषु दृष्टानि तव बुद्धिगतानि च । तानि सर्वाणि मे देव वद देवकिनन्दन ॥२
प्रतिपत्क्रमयोगेन विहिता यस्य या तिथिः । देवस्य तस्यां यत्कार्यं तदशेषेण कीर्तय ॥३

को, जो दिव्य वस्त्र, माला, एवं दिव्य चन्दनादि से विभूषित किया गया था, सुसज्जित विमान द्वारा मँगा कर उसे दिखाया । अनन्तर वह ब्राह्मण वहाँ रहकर उस रम्भा के साथ अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने लगा । इस प्रकार मैंने शकट व्रत का माहात्म्य तुम्हें सुना दिया । क्योंकि व्रतों के नियमों को दृढ़ता से पालन करने वाले मनुष्य को संसार में इस प्रकार की राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, जिसके उपभोग सभी लोग कर सकते हैं, और शिव, तथा भगवान् विष्णु के भवन का निवास भी उसे प्राप्त होता है । अर्थात् उसे लोक में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं हो जाती है । इसलिए मनुष्यों को सदैव व्रती होना परमावश्यक है ।२३-३१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद विषयक शकट-व्रत-माहात्म्य वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

तिलकव्रत माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन ! ब्रह्मा, शिव और केशवादि देव तथा गौरी, गणपति, दुर्गा, सूर्य, अग्नि, एवं चन्द्र आदि के व्रतों को बताने की कृपा करें । देवकीनन्दन ! शास्त्रों पुराणों में जितने व्रत कहे गये हों और उसके अतिरिक्त जो आप के हृदय में निहित हैं, उन सब की व्याख्या करने की कृपा करें । उसी प्रकार प्रतिपदा आदि के क्रम से जिस देव की जो तिथि हो, तथा उसमें जो कार्य सुसम्पन्न किया जाता हो, सभी कुछ की व्याख्या समेत वर्णन कीजिये ।१-३

---

१. शिववासवयोः ।

श्रीकृष्ण उवाच

वसन्ते किंशुकाशोकशोभने प्रतिपत्तिथिः । शुक्ला तस्यां प्रकुर्वीत स्नानं नियमतत्परः ॥४
नारी नरो वा राजेन्द्र सन्तर्प्य पितृदेवताः । नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥५
पिष्टातकेन[1] विलिखेद्वत्सरं पुरुषाकृतिम् । ततश्चन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनार्चयेत् ॥६
दीपैश्चापि सनैवेद्यैः पूजयेद्वत्सरं तदा । मासर्तुनामभिः पश्चान्नमस्कारान्तयोजितैः ॥
पूजयेद्ब्राह्मणान्विद्वान्मन्त्रैर्वेदोदितैः शुभैः ॥७
सम्वत्सरोऽसिपरिवत्सरोसीडावत्सरोऽभित्सरोऽसि उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रस्ते कल्पन्तामर्ध-
मासस्ते कल्पतां सम्वत्सरस्ते कल्पताम् ॥८
एवमभ्यर्च्य वासोभिः पश्चात्तमभिवेष्टयेत् । कालोद्भवैर्मूलफलैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः ॥९
ततस्तं प्रार्थयेत्पश्चात्पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिः । भगवन्तस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदमस्तु मे ॥१०
एवमुक्त्वा यथाशक्ति दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । ललाटपट्टे तिलकं कुर्याच्चांदनपङ्कजम् ॥११
ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालंकृतं मुखम् । धार्यं सम्वत्सरं यावच्छशिनेव नभस्तलम् ॥१२
एवं नरो वा नारी वा व्रतमेतत्समाचरेत् । सदैव पुरुषव्याघ्र भोगान्भुवि भुनक्त्यसौ ॥१३
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च दुर्वारा वैरिणो ग्रहाः । निरर्थका भवंत्येते तिलकं वीक्ष्य तत्क्षणात् ॥१४
पूर्वमासीन्महीपालो नाम्ना शत्रुञ्जयो[2] जयी । चित्रलेखेति तस्याभूद्भार्या चारित्रभूषणा ॥१५

श्रीकृष्ण जी बोले—राजेन्द्र ! वसंत ऋतु में मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि किंशुक (पलाश) और अशोक को सुशोभित करती है । उसमें स्त्री पुरुष सभी प्राणियों को चाहिए कि नदी, सरोवर, अथवा घर में कूप जल से नियम पूर्वक स्नान करके पितर एवं देवों के तर्पण आदि कर्म के उपरान्त उसी स्थान पर पीठी द्वारा पुरुष के समान वत्सर (वर्ष) की प्रतिमा बनायें और चन्दन चूर्ण, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य पूर्वक उसकी पूजा करके मास और ऋतु के नाम में नमस्कार पद लगाकर (वसंताय नमः वसंतमावाहयामि, स्थापयामि पूजयामि) उन शुभ वैदिक मंत्रों द्वारा विद्वान् ब्राह्मणों की अर्चना करें । तदुपरांत आप संवत्सर, परिवत्सर, ईजवत्सर, अभिवत्सर रूप हैं, अतः मेरे उषाकाल, दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु, और संवत्सर के शुभोदय करते हैं । इस प्रकार उनकी सविनय पूजा करने के उपरांत वस्त्र से उन्हें आवेष्टित करना चाहिए और सामयिक फल, फूल, नैवेद्य, मोदक आदि मधुर पदार्थों द्वारा उन्हें तृप्त कर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो जाये तथा इस भाँति की प्रार्थना करे कि भगवन् आप की कृपा से वर्ष शुभदायक हो । इतना कहकर ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा अर्पित करे । उसी समय अपने भाल में सुगन्ध मिश्रित चन्दन का तिलक करके पश्चात् तभी से प्रारम्भ कर प्रतिदिन तिलक से अपने मुख को चन्द्रमा द्वारा आकाश मण्डल की भाँति प्रतिदिन सुशोभित करता रहे । पुरुषश्रेष्ठ ! जो पुरुष या स्त्री इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करते हैं वे इस पृथिवी तल पर सदैव भोगों के उपभोग करते रहते हैं । भूत, प्रेत, पिशाच और अनिष्ट ग्रहमण्डल जो अनिवार्य होते हैं, उस तिलक को देखकर उसी समय शक्ति हीन हो जाते हैं ।४-१४। पहले समय में शत्रुञ्जय नामक एक राजा था, जो रणस्थल में सदैव विजयी रहता था चित्रलेखा

---

१. सुपिंष्टकेन । २. सत्त्वजयो जयी ।

तया व्रतमिदं चैत्रे गृहीतं द्विजसन्निधौ । सम्वत्सरं पूजयित्वा धृत्वा[1] हृदि जनार्दनम् ।।१६
असूयुः क्षेप्तुकामो वा समागच्छति यः पुरः । प्रयाति प्रियकृत्तस्या दृष्ट्वा मुखमधोमुखः ।।१७
सपत्नीदर्पापहरा वशीकृतमहीतला । भर्तुरिष्टा प्रहृष्टा च सुखमास्ते निराकुला ।।१८
तावत्करेणाभिभूतो भर्ता पुत्रः सवेदनः । शिरोऽर्त्या नाशं प्रयातः सुहृदां दुःखदायकः ।।१९
धर्मराजपुरं प्राप्तुं सर्वभूतापहारकः । तस्मिन्क्षणे महाराजः धर्मराजस्य किङ्कराः ।।२०
तस्य द्वारमनुप्राप्ताः प्रवेष्टुं गृहमञ्जसा । शत्रुञ्जयं समानेतुं कालमृत्युपुरःसराः ।।२१
पार्श्वस्थितां चित्रलेखां तिलकालङ्कृताननाम् । दृष्ट्वा प्रनष्टसङ्कल्पाः परावृत्य गताः पुनः ।।२२
गतेषु तेषु स नृपः पुत्रेण सह भारत । नीरुजो बुभुजे भोगान्पूर्वकर्मार्जिताञ्छुभान् ।।२३
एतद्व्रतं महाभाग कीर्तितं ते महोदयम् । शङ्करेण[2] समाख्यातं मम पूर्वं युधिष्ठिर ।।२४

एतत्त्रिलोकतिलकालकभूषणं ते ख्यातं व्रतं सकलदुःखहरं परं च ।
इत्थं समाचरति यः स सुखं विहृत्य मर्त्यः प्रयाति पदमापदि पद्मयोनेः ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे तिलकव्रतकथनं नामाष्टमोऽध्यायः।८

नामक उसकी पत्नी थी, जिसका चरित्र भूषण की भाँति आदर्श था । उसने चैत्र मास में किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर बुलवाकर उनके सम्मुख इस व्रत नियम को सविधान सुसम्पन्न किया । उसने संवत्सर की अर्चना करते समय भगवान् जनार्दन को ध्यान द्वारा अपने हृदय में धारण किया था, जिसके फलस्वरूप जो कोई प्राणी निन्दा के व्याज से उसके सम्मुख उपस्थित होता था, वह वहाँ पहुँचते ही अत्यन्त प्रिय एवं हितैषी होकर उसके मुख दर्शन करते ही अपना नीचे मुख कर लेता था । उसने अपनी सपत्नियों के गर्व को चूर्ण कर इस पृथ्वी मण्डल को अपने अधीन कर लिया था और उसके समान उसके पति को कोई स्त्री प्रिय नहीं थी । इस प्रकार वह सदैव हर्षित रहकर अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत कर रही थी । उसी बीच कर द्वारा तिरस्कृत होने पर उसके पति पुत्र, शिर की वेदना से अत्यन्त पीड़ित हुए औरकुछ समय के अनन्तर उनका निधन हो गया वे दोनों सहृदय सुहृदगण को भी अपमानित करते थे । उन्हें धर्मराज की पुरी ले जाने के लिए उनके दूत गण राजमहल के द्वार पर आकर खड़े हुए क्योंकि काल मृत्यु होने पर शत्रुञ्जय को वहाँ ले जाना परमावश्यक था । किन्तु अपने पार्श्वभाग में स्थित उस चित्रलेखा को महाराज धर्मराज के दूतों ने देखा, उसका मुख मण्डल तिलक द्वारा अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण दिखायी देता था । पश्चात् उनका संकल्प नष्ट हो गया, जिसके लिए वे वहाँ आये थे, और लौटकर अपने लोक चले गये । भारत ! उन दूतों के चले जाने पर पुत्र समेत वह राजा जीवित होकर आरोग्य रहते हुए अनेक भाँति के भोगों का उपभोग किया, जो जन्मान्तरीय कर्मों द्वारा अर्जित होकर संचित थे । युधिष्ठिर ! महाभाग ! इस अनुपम और महोदय व्रत का वर्णन मुझसे शङ्कर ने पहले ही किया था । इस प्रकार मैंने इस तिलक व्रत को तुम्हें बता दिया, जो तीनों लोकों के भूषण, समस्त दुःखों के अपहर्ता और सर्वश्रेष्ठ हैं । इसके सविधान सुसम्पन्न करने वाला प्राणी इस मर्त्यलोक की सभी कठिनाईयों को सरलता से पार कर सब भाँति के सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरांत ब्रह्म पद की प्राप्ति करता है ।१५-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद विषयक
तिलकव्रतवर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

---

१. ध्यात्वा । २. अक्रूरेण ।

अथ नवमोऽध्यायः

अशोकव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आश्वयुच्छुक्लपक्षस्य प्रथमेऽह्नि दिनोदये । अशोकं पूजयेद्वृक्षं प्ररूढशुभपल्लवम् ।।१
विरूढैः सप्तधान्यैश्च गुणकैर्मोदकैः शुभैः । फलैः कालोद्भवैर्दिव्यैर्नारिकेरैः सदाडिमैः ।।२
पुष्पधूपादिना तद्वत्पूजयेत्तद्दिनेऽनघ । अशोकं पांडवश्रेष्ठ शोकं नाप्नोति कुत्रचित् ।।३
पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां[1] तथैव च । अशोकशोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले ।।४
इत्युच्चार्य ततो दद्यादर्घ्यं श्रद्धासमन्वितम् । पताकाभिरलङ्कृत्य प्रच्छाद्य शुभवाससा ।।५
दमयन्ती यथा स्वाहा यथा वेदवती सती । तथाशोकव्रतादस्माज्जायते पतिवल्लभा ।।६
वने व्रजंत्या सद्धर्मः सीतया सम्प्रदर्शितः । दृष्ट्वाऽशोकं वने पार्थ पल्लवालङ्कृताम्बरम् ।।७
कृत्वा समीपे भर्तारं देवरं च तिलाक्षतैः । दीपालङ्कृतनैवेद्यधूपसूत्रफलार्च्चनैः ।।८
अर्चयित्वा ह्यर्थितोऽसौ रक्ताशोको युधिष्ठिर । मैथिल्या प्राञ्जलिर्भूत्वा शृण्वता राघवस्य च ।।९
चिरं जीवतु मे वृद्धः श्वशुरः कोशलेश्वरः । भर्ता मे देवराश्चैव जीवन्तु भरतादयः ।।

अध्याय ९

अशोकव्रत माहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन में सूर्यदेव के समय उस अशोक वृक्ष की पूजा करनी चाहिए, जो शुभ पल्लवों द्वारा विभूषित हों। अनघ पाण्डवश्रेष्ठ ! सप्त धान्य, गुण मोदक, सामयिक दिव्य फल, नारियल, अनार, पुष्प, धूप, दीप द्वारा अशोक वृक्ष का प्रेम पूर्वक पूजन करने वाले प्राणी कभी भी शोक नहीं करता है। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पितर, भ्राता, पति, श्वसुर सास आदि परिवार के सभी प्राणियों के शोक का नाश करो।१-४। इतना कहकर श्रद्धा समेत अर्घ्य, प्रदान करे, अनन्तर पताका तथा शुभ वस्त्रों से उस वृक्ष को सुशोभित करके प्रार्थना करे कि देव ! दमयन्ती, स्वाहा, और सती वेदवती के समान मैं भी इस अशोक व्रत द्वारा पति वल्लभा हो जाऊँ। पार्थ ! वनगमन के समय जानकी जी ने पल्लवों से विभूषित उस सर्वश्रेष्ठ अशोक के दर्शन द्वारा ही उस महान् सद्धर्म को सुसम्पन्न किया था। युधिष्ठिर ! उस अशोक वृक्ष के समीप पहुँच कर जानकी जी ने अपने समीप पति और देवर को बैठाकर तिल, अक्षत, दीप, नैवेद्य, धूप, सूत्र एवं फल द्वारा उसकी सप्रेम अर्चना के उपरांत उस रक्ताशोक की उन्होंने प्रार्थना की भगवान् रामचन्द्र जी के सामने बैठी हुई जानकी जी ने अञ्जलि बाँधकर इस भाँति कहना प्रारम्भ किया।५-९। कि—मेरे वृद्ध श्वसुर कोशलेश्वर चिरजीवन प्राप्त करें। उसी प्रकार मेरे पति, भरत आदि देवर और माता कौशल्या जी चिरजीवन प्राप्त करे जिससे मैं पुनः उनके

---

१. पितृभ्रातृपतिश्वश्रूसुतानां च तथैव च।

कौशल्यामपि जीवन्तीं पश्येयमिति मैथिली ॥१०
ययाचे तं महाभागा द्रुमं सत्योपयाचनम् । प्रदक्षिणमुपादृत्य ततस्ते प्रययुः पुनः ॥११
एवमन्यापि या नारी पूजयेद्भुवि तं नगम् । तिलतण्डुलसम्मिश्रैर्यवगोधूमसर्षपैः ॥१२
क्षमाप्य वन्दयेन्मूलं पादपं रक्तपल्लवम् । मन्त्रेणानेन कौंतेय प्रणम्य स्त्री पतिव्रता ॥१३
महावृक्ष महाशाख मकरध्वजमन्दिर । प्रार्थये त्वां महाभाग वनोपवनभूषण ॥१४
एवमाभाष्य तं वृक्षं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । सखीभिः सहिता भवती ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥१५

याः शोकनाशनमशोकतरुं तरुण्यः सम्पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
ताः प्राप्य सौख्यमतुलं भुवि भ्रातृजानं नारीपदं प्रमुदिताः पुनराप्नुवन्ति ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
अशोकव्रतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

करवीरव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्रथमेऽह्नि दिनोदये । देवोद्यानभवं हृद्य करवीरं समर्चयेत् ॥१

दर्शन कर सकूँ । इस प्रकार उस महापराक्रमी जानकी ने उस सत्यनिष्ठ वृक्ष से याचना करके प्रदक्षिणा के उपरांत सबके साथ वहाँ से प्रस्थान किया । इसी भाँति इस पृथ्वी मण्डल के अन्य नारी को भी तिल, अक्षत, मिश्रित, जवा, गेहूँ, और राई द्वारा उस रक्त पल्लव शोभित वृक्ष के मूल भाग में सप्रेम पूजन करना चाहिए । कौन्तेय ! इस मंत्र द्वारा पतिव्रता स्त्री उनकी प्रार्थना करे—महावृक्ष ! आप महाशाखा वाले एवं काम गृह हैं वन, उपवन के भूषण ! मैं आप की प्रार्थना कर रही हूँ । इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मण को दक्षिणा देने के उपरांत अपनी सखियों समेत व अपने गृह को प्रस्थान करे । इस प्रकार जो स्त्री उस शोक नाशक अशोक वृक्ष की पुष्प, अक्षत, धूप, एवं दीप द्वारा अर्चना करती है उसे इस भूतल में अपने पति द्वारा अतुल सुख की प्राप्ति पूर्वक पुनः गौरीपद की प्राप्ति होती है ।१०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
अशोकव्रतवर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

करवीरव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—ज्येष्ठ मास के शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्योदय समय में किसी देवालय की वाटिका में स्थित करवीर वृक्ष की अर्चना करनी चाहिए । रक्तवस्त्र में उसे आवेष्टित करके गन्ध, धूप,

रक्ततन्तुपरीधानं[1] गन्धधूपविलेपनैः । दिरूढैः[2] सप्तधान्यैश्च नारङ्गैर्बीजपूरकैः ।।२
गणकैर्घटकैर्दिव्यैर्नालिकेरैः[3] सुशोभनैः । सुजलाक्षततोयेनानेनेवं क्षमापयेत् ।।३
करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ । मौलिमण्डनसद्रत्न नमस्ते केशवेशयोः ।।४

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।५

एवं भक्त्या समभ्यर्च्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । प्रदक्षिणामथो कृत्वा ततः स्वभवनं व्रजेत् ।।६
एतद्व्रतं महाभाग[4] सूर्याराधनाकम्यया । अनसूयया च क्षमया सावित्र्या सत्यभामया ।।७
दमयन्त्या सरस्वत्या गायत्र्या गंगया तथा । अन्याभिरपि नारीभिर्मर्त्यलोकेऽप्यनुष्ठितम् ।।
करवीरव्रतं पार्थ सर्वसौख्यफलप्रदम् ।।८

सम्पूज्य रत्नकुसुमाञ्चितसर्वशाखं नीलैर्दलैस्तततनुं करवीरवृक्षम् ।
भुक्त्वा मनोऽभिलषितान्भुवि भव्यभोगानन्ते प्रयाति भवनं भरताग्र्य भानो ।।९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
करवीरव्रतवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।१०

चन्दन, सप्त धान्य, नारङ्गी, नेबू, गुणक, और दिव्य नारियल को समर्पित करके अक्षत जल से सेचन करने के उपरांत इस मंत्र द्वारा क्षमा प्रार्थना करे—विषवास, करवीर ! आप सूर्य के अत्यन्त प्रिय पात्र हैं एवं भगवान् विष्णु और महादेव जी के मौलि मंडल के लिए उत्तम रत्न रूप हैं अतः आप को नमस्कार है। पश्चात् 'आकृष्णेन रजसेति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति भाव से उनकी अर्चना करने के उपरांत ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे और अनन्तर प्रदक्षिणा करके अपने घर को प्रस्थान करे। महाभाग ! सूर्य की आराधना करने की इच्छा से इस मर्त्यलोक में इस व्रत को अनसूया, क्षमा, सावित्री, सत्यभामा, दमयन्ती, सरस्वती, गायत्री गङ्गा आदि स्त्रियों ने सुसम्पन्न किया है। इस प्रकार पार्थ ! यह करवीरव्रत सभी प्रकार का सुख प्रदान करता है। भरताग्रज ! इस प्रकार करवीर वृक्ष के सविधान पूजन करने पर, जिसमें उसकी प्रत्येक शाखाएँ पुष्पों से भूषित और वह स्वयं तीन दलों से आच्छादित किया गया हो, उस मनुष्य को इस लोक में यथेच्छ समस्त भागों के उपभोग करने के उपरांत भगवान् सूर्य के लोक की प्राप्ति होती है।१-९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
करवीर व्रतवर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त।१०।

---

१. रक्तवस्त्रपरीधानम्। २. विकृतैः। ३. वटकैः। ४. पुरा पार्थ।

अथैकादशोऽध्यायः

कोकिलाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्वभर्त्रा सह सम्बद्धमहास्नेहो यथा भवेत् । कुलस्त्रीणां तदाचक्ष्व व्रतं मम सुरोत्तम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यमुनायास्तटे पूर्वं मथुरास्ते पुरी शुभा । तस्यां शत्रुघ्ननाम्नाभूद्राजा रामप्रतिष्ठितः ॥२
तस्य भार्या कीर्तिमाला नाम्नासीत्प्रथिता भुवि । तया प्रणम्य भगवान्वशिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥३
पृष्टः सुखं मुनिश्रेष्ठं कथं समुपजायते । ब्रूहि मे तिलसम्बन्धकारणं व्रतमुत्तमम् ॥४
एवमुक्तस्तया ज्ञानी वशिष्ठः कीर्तिमालया । ध्यात्वा मुहूर्तमाचख्यौ कोकिलाव्रतमुत्तमम् ॥५

श्रीवशिष्ठ उवाच

आषाढपूर्णिमायां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । सङ्कल्पयेन्मासनेकं श्रावणे श्वःप्रभृत्यहम् ॥६
स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥७
इति सङ्कल्प्य पुरुषो नारी वा ब्राह्मणांतिके । प्राप्यानुज्ञां ततः प्रातः सर्वसामग्रिसंयुतः ॥८
पुरुषः प्रतिपत्कालाद्दन्तधावनपूर्वकम् । नद्यां गत्वा तथा वाप्यां तडागे गिरिनिर्झरे ॥९

अध्याय ११

कोकिलाव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—सुरोत्तम ! मुझे वह व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके सुसम्पन्न करने पर कुल स्त्रियाँ अपने पति का अगाध स्नेह प्राप्त करती हैं ।१

श्रीकृष्ण जी बोले—यमुना के पूर्वी तट पर मथुरा नामक एक यम पुरी थी, जिसमें राजा रामचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित शत्रुघ्न नामक राजा रहता था । उसकी पत्नी का नाम कीर्तिमाला था, जो इस भूमण्डल में प्रख्यात पतिव्रता थी । उसने एक बार मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठ से सादर प्रणाम पूर्वक पूछा कि—मुनीश्वर ! मुझे वह उत्तम व्रत बताने की कृपा करें, जिससे अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है और वह व्रत तिलाक्षत द्वारा सुसम्पन्न किया जाता हो । इस भाँति कीर्तिमाला के पूँछने पर ज्ञानी वशिष्ठ जी ने मुहूर्त मात्र ध्यान करके उस सर्वश्रेष्ठ, कोकिला नामक व्रत का विधान कहना प्रारम्भ किया—२-५

श्रीवशिष्ठ जी बोले—आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन सायंकाल में संकल्प करे कि कल से आरम्भ कर पूरे श्रावण मास में ब्रह्मचर्य के नियम पालन पूर्वक प्रतिदिन नियत स्नान करूँगी और रात्रि में भोजन, भूमि शयन एवं प्राणियों पर दया करती रहूँगी । इस प्रकार स्त्री या पुरुष किसी ब्राह्मण विद्वान के समक्ष संकल्प करके प्रातः काल प्रतिपदा के समय सम्पूर्ण सामग्री समेत किसी नदी, बावली, सरोवर, अथवा

स्नानं कुर्याद्व्रती पार्थ सुगन्धामलकैस्तिलैः । दिनाष्टकं तथा पश्चात्सर्वौषध्या पुनः पृथक् ॥१०
वचयाष्टौ पुनः पिष्ट्वा शिरोरुहविमर्दनम् । स्नात्वा ध्यात्वा रविं चैव वन्दित्वा च पितॄनथ ॥११
तर्पयित्वा[1] तिलापिष्टैः कोकिलां पक्षिरूपिणीम् । कलकण्ठीं शुभैः पुष्पैः पूजयेच्चम्पकोद्भवैः ॥१२
पत्रैर्वा धूपनैवेद्यदीपालक्तकचन्दनैः । तिलतन्दुलदूर्वाग्रैः पूजयित्वा क्षमापयेत् ॥
नित्यं तिलव्रती भक्त्या मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१३
तिलसहे तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलप्रिये । सौभाग्यं द्रव्यपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः ॥१४
इत्युच्चार्य ततः पश्चाद्गृहमभ्येत्य संयतः । कृत्वाहारं स्वपेत्पार्थ यावन्मासः समाप्नुते ॥१५
मासान्ते ताम्रपात्र्यां तु कोकिलां तिलपिष्टजाम् । रत्ननेत्रां स्वर्णपक्षां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१६
वस्त्रैर्द्धनैर्गुडैर्युक्तां श्रावण्यां कुण्डलेऽथ वा । श्वश्रूश्वशुरवर्गे वा दैवज्ञे वा पुरोहिते ॥
व्यासे वा सम्प्रदातव्या व्रतिभिः शुभकाम्यया ॥१७
एवं या कुरुते नारी कोकिलाव्रतमादरात् । सप्त जन्मनि सौभाग्यं सा प्राप्नोति सुविस्तरम् ॥१८
निःसापत्न्यं पतिं भव्यं सस्नेहं प्राप्य भूतले । मृता गौरीपुरं याति विमानेनार्कवर्चसा ॥१९
एतद्व्रतं वशिष्ठेन मुनिना कथितं पुरा । तथा चानुष्ठितं पार्थ समस्तं कीर्तिमालया ॥२०

पर्वत के झरने में स्नान करे। पार्थ ! उस व्रती को चाहिए कि सुगन्धित आँवले, तिल तथा समस्त औषधियों को पृथक्-पृथक देह में लगाकर पुनः वच आदि के चूर्ण द्वारा शिर के केशों को भली भाँति शुद्ध करे। पश्चात् स्नान, सूर्य के ध्यान पूजन और पितरों की वन्दना के अनन्तर उस पक्षी रूपी कोकिला की, जो कलकंठ से विभूषित है, तिलभूषणों द्वारा सर्वाङ्ग सुन्दर आठ प्रतिमा बनाकर चम्पा के पुष्पों अथवा उसके पत्रों, धूप, दीप, नैवेद्य, अलक्तक (महावर) चन्दन, तिलाक्षत और दूर्वा के अंकुरों द्वारा उसकी पूजा सुसम्पन्न करके क्षमा प्रार्थना करे। पाण्डव ! भक्तिपूर्वक उस तिलव्रती को उसी भाँति प्रतिदिन इसी मंत्र द्वारा प्रार्थना करनी चाहिए तिल सहे, तिल सौख्ये, तिल के समान वर्ण वाली एवं तिल प्रिये ! कोकिले ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रही हूँ, मुझे आप सौभाग्य, पुत्र, द्रव्य आदि प्रदान करने की कृपा करती रहें।६-१४। इस प्रकार प्रार्थना करके घर जाकर संयम पूर्वक आहार करके शयन करे। पार्थ ! मास की समाप्ति तक उसे इसी भाँति सुसम्पन्न करते हुए मास के अन्त में उस कोकिला पक्षी को जो ताम्रपात्र में प्रतिष्ठित और तिल की पीठी से उसकी देह, रत्न से नेत्र और सुवर्ण के पक्ष से विभूषित हों, एवं वस्त्र, धान्य, गुड़ों से संयुक्त हो, सादर ब्राह्मण को समर्पित कर दे। अपनी शुभकामनाओं की पूर्ति के लिए सास ससुर वर्ग के किसी को अथवा, ज्योतिषी, पुरोहित या व्यास को उसे समर्पित कर देना चाहिए। इस भाँति जो स्त्री इस कोकिला व्रत को सादर सुसम्पन्न करती है, उसे इस भूतल में वह सपत्नी हीन रहकर अपने पति के उस भव्य एवं अगाध स्नेह का प्रिय पात्र बनती है अनन्तर निधन होने पर सूर्य के समान तेज पूर्ण विमान पर सुशोभित होकर गौरी पद की प्राप्ति करती है। पार्थ ! इस प्रकार वशिष्ठ मुनि ने पहले समय में उसकी कीर्तिमाला से इस व्रत का वर्णन किया था, जिसने भली भाँति उसे सुसम्पन्न किया है।

---

१. तर्पयित्वा लिखेदष्टौ कोकिलाः पक्षिरूपिणीः । कलकण्ठीः ।

तस्याश्च सर्वं सम्पन्नं वशिष्ठवचनादिह । पुत्रसौभाग्यसम्मानं शत्रुघ्नस्य प्रसादजम् ॥२१
एवं यान्यापि कौंतेय कोकिलाव्रतमादरात् । करिष्यति ध्रुवं तस्याः सौभाग्यं च भविष्यति ॥२२
ये कोकिलां कलरवां कलकण्ठपीठां यच्छन्ति साज्यतिलपिष्टमयीं द्विजेभ्यः ।
ते नन्दनादिषु वनेषु विहृत्य कामं मर्त्ये समेत्य मधुरध्वनयो भवन्ति ॥२३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसन्वादे
कोकिलाव्रतं नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

बृहत्तपोव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ पापापहं वक्ष्ये बृहद्व्रतमनुत्तमम् । सुरासुरमुनीनां च दुर्लभं विधिना शृणु ॥१
पर्वण्याश्वयुजस्यान्ते पायसं घृतसंयुतम् । नक्तं भुञ्जीत शुद्धात्मा ओदनं शैक्षवान्वितम् ॥२
आचम्याथ शुचिर्भूत्वा बिल्वजं दन्तधावनम् । भक्षयित्वा महादेवं प्रणम्येदमुदीरयेत् ॥३
अहं देवव्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् । तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥४

वशिष्ठ मुनि के कथनानुसार इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर वह समस्त सुखों से सुसम्पन्न हुई उसके पति शत्रुघ्न की कृपा से पुत्र, सौभाग्य, सम्मान आदि की अतुल प्राप्ति उसे सदैव होती रही । कौंतेय ! इस प्रकार जो अन्य स्त्री इस कोकिला व्रत को सविधान सुसम्पन्न करेंगी, उसे अतुल सुख सौभाग्य की निश्चित प्राप्ति होती रहेगी जो नारियाँ कलरव करने वाली उस कोकिला पक्षी की सुन्दर प्रतिमा को घी समेत तिल के चूर्ण द्वारा जिसके पीठ आदि सभी अंग प्रत्यंङ्ग अत्यन्त सुन्दर बने हो, ब्राह्मणों को अर्पित करती है, वे नन्दन वन के उस रमणीक बिहारों के यथेच्छ, अनुभव करके यहाँ मर्त्य लोक में जल ग्रहण करने पर कोकिल कण्ठा (कोकिल के समान मधुर ध्वनि वाली) होती है ।१५-२३

अध्याय १२

बृहत्तप व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—अब मैं तुम्हें उसके श्रेष्ठ वृहद्व्रत नामक व्रत का, जो पापहारी, सुर, असुर एवं मुनियों को भी परम दुर्लभ है, सविधान वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कार्तिक मास की पूर्णिमा के अंत समय (सांयकाल में) शुद्धात्मा होकर घी समेत पायस का मधुर भोजन रात्रि में एक बार कर, जो उस मधुर चावल की मधुर खीर बनी हो । पश्चात् प्रातःकाल आचमन पूर्वक पवित्र होकर वेल की दातून करके भी महादेव जी से नमस्कार पूर्वक **प्रार्थना करे कि**—देव ! आप की आज्ञा से मैं इस व्रत को निरन्तर सुसम्पन्न करना चाहता हूँ, श्रीमहादेव ! इसका समुचित निर्वाह जिस भाँति हो सके, करने

इत्येवं नियमं कृत्वा यावद्वर्षाणि षोडश । तिथयः प्रतिपत्पूर्वा भजिष्यामीत्यनुक्रमात् ॥५
ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि । पृष्ट्वा गुरुं चोपवासं महादेवं स्मरन्मुहुः ॥६
स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य रात्रौ प्रज्वाल्य दीपकान् । यमुनां च महादेवं नत्वा पश्चान्निमन्त्रयेत् ॥७
महादेवरतान्विप्रान्सपत्नीकान्यतव्रतान् । षोडशाष्टौ तदर्धं वा एकं वा शक्त्यपेक्षया ॥८
आमंन्त्र्य स्वगृहं गत्वा महादेवं स्मरन्क्षितौ । शुचिवस्त्रास्तृतायां तु निराहारो निशि स्वपेत् ॥९
भास्करोदयमासाद्य स्नात्वा चादाय दीपकान् । नैवेद्यं स्नपनं पुष्पं धूपं गच्छेच्छिवालये ॥१०
अभ्यङ्गयित्वा देवेशं कषायैश्च विरूक्षयेत् । स्नपयेत्पञ्चगव्येन पयसा तदनन्तरम् ॥११
घृतेन मधुना दध्ना रसेन पयसा पुनः । तिलाम्बुना ततः स्नाप्य स्नापयेदुष्णवारिणा ॥१२
लेपयेत्सुघनं पश्चात्कर्पूरागरुचन्दनैः । पुष्पैः सम्पूज्य दातव्यं हैमं शिरसि पङ्कजम् ॥१३
वस्त्रयुग्मं पताकां च पञ्चवर्णं वितानकम् । धूपं दीपं च घण्टाञ्च दद्याद्देवस्य शक्तितः ॥१४
पश्चान्निवेद्य नैवेद्यं स्तुत्वा स्वभवनं व्रजेत् । सुसमिद्धं ततः कृत्वा पूजयेज्जातवेदसम् ॥१५
व्रतिनश्च तथाचार्य्यं भोजयेन्मिथुनानि च । हेमवस्त्रादिदानेन यथाशक्ति क्षमापयेत् ॥१६
एवं विसृज्य तान्सर्वान्सार्द्धं बन्धुजनैः स्वयम् । आशयित्वा पञ्चगव्यं हृष्टो भुञ्जीत वाग्यतः ॥१७
एवमेव विधिं कृत्वा प्रारभेताधनो धनी । वित्तसामर्थ्यतश्चैव प्रतिमासं च कृत्स्नशः ॥१८
वित्तहीनो यथा कश्चिच्छ्रद्धया च पुनः पुनः । पुष्पार्चनविधानेन सर्वमेतत्समाचरेत् ॥१९

की कृपा करें ।१-४। मैं भी सोलह वर्ष तक इन्हीं नियम पालन पूर्वक प्रतिपदा आदि तिथि से प्रारम्भ कर इसे सुसम्पन्न करता रहूँगा इस प्रकार संकल्प करने के अनन्तर मार्गशीर्ष (अगहन) की प्रतिपदा तिथि में प्रातः काल गुरु की आज्ञा पूर्वक महादेव जी के स्मरण करते हुए उपवास विधान प्रारम्भ करें । स्नान एवं देव पूजन करके रात्रि में दीपक प्रज्वलित कर यमुना और महादेव जी के नमस्कार पूर्वक सोलह, आठ, चार अथवा शक्त्यानुसार एक ही सपत्नीक ब्राह्मण को निमंत्रित करे, जो महादेव जी का प्रिय भाजन, सयंमी एवं व्रतशील हो । अनन्तर अपने घर आकर महादेव जी के स्मरण पूर्वक उपवास रहकर रात्रि में ऐसे स्थान पर भूमि शयन करे जहाँ शुद्ध वस्त्र बिछाया गया हो । पुनः सूर्योदय होने पर स्नान पूर्वक दीप नैवेद्य, स्नान में जल, पुष्प एवं धूप आदि वस्तु समेत शिवालय में जाकर देवाधिदेव शिव जी अभ्यंग कराकर कषाय द्वारा सुखाकर सर्वप्रथम पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराये । अनन्तर पय, घी, मधु, दही, रस, पुनः पय, और तिल-जल से क्रमशः स्नान कराने के उपरांत उष्ण (गर्म) जल से स्नान कराये । पश्चात् कपूर, अगरु, और चन्दनों के मिश्रित से घन लेपन तथा पुष्पों द्वारा अर्चना करके उनके शिर को सुवर्ण कमल से विभूषित करे और दो वस्त्र, पताका, पाँच रंग का वितान (चाँदनी), धूप, दीप, घण्टा, आदि वस्तु अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें अर्पित करें ।५-१४। तदुपरांत नैवेद्य के निवेदन पूर्वक आराधना करके अपने गृह को प्रस्थान करे । वहाँ पहुँच कर प्रज्वलित अग्नि पूजा करके पत्नी समेत व्रती और आचार्य ब्राह्मण को सप्रेम भोजन कराकर यथाशक्ति सुवर्ण और वस्त्रादि के दानों से तृप्त करते हुए उनकी क्षमा प्रार्थना करे । इस प्रकार उनके पूजन-विसर्जन के उपरांत बंधुओं के साथ पञ्चगव्य के प्राशनपूर्वक प्रसन्नचित्त एवं वाक्संयमी होकर भोजन करे । इसी विधान द्वारा धनवान और निर्धनप्राणी को अपने वित्तसामर्थ्य के अनुसार प्रतिमास इसे सुसम्पन्न करना चाहिए ।१५-१८। निर्धन प्राणी अत्यन्त श्रद्धालु होकर पुष्पार्चन द्वारा

प्रतिमासमुपोष्यैवं प्रतिपत्कार्त्तिकावधौ । पारयेत्तं हुतं पार्थ प्रारम्भविधिना स्फुटम् ॥२०
द्वितीये द्वे पञ्चदश्यां कृत्वा नक्तं नराधिपः । प्रतिपत्सद्वितीया चेत्तस्यामुपवसेत्सुधीः ॥२१
द्वितीयोपवसेच्छुक्ला ततः प्रभृति वत्सरम् । प्रारम्भविधिना चैवं द्वितीयामपि पारयेत् ॥२२
उपवासद्वयं कृत्वा तृतीयां प्रारभेत्ततः । अनेन क्रमयोगेन यावद्वर्षं समाप्यते ॥२३
कृत्वैवं षोडशे वर्षे पूर्णमास्यां समुद्यतः । पूर्ववद्देवमभ्यर्च्य कृशानुं वाभितर्प्य च ॥२४
हेमशृंगीं रौप्यखुरां सघण्टां कांस्यदोहनाम् । महादेवाय गां दद्याद्दीक्षिताय द्विजाय वै ॥२५
शिवभक्तिरतान्विप्रान्विशुद्धांश्चैव षोडश । वस्त्राभरणदानैश्च शक्त्या सम्पूजयेद्व्रती ॥२६
ब्राह्मणांश्च यथाशक्त्या भोजयेदपरानपि । अन्येषां च क्षुधार्तानां दद्याद्दानं यथेच्छया ॥२७
बृहत्तपोव्रतं चैव ब्रह्मघ्नाद्यघशोषणम् । भूर्भुवादिषु लोकेषु भूरिभोगप्रदं नृणाम् ॥२८
चतुर्णामपि वर्णानां स्वर्गसोपानवत्स्थितम् । न कुर्याद्यो धनं प्राप्य स मुष्टो नष्टचेतनः ॥२९
धन्यमायुःप्रदं पुण्यं रूपसौभाग्यवर्द्धनम् । स्त्रीपुंसयोश्च निर्दिष्टं व्रतमेतत्पुरातनम् ॥३०
विधवयापि कर्तव्यं भूयोऽवैधव्यहेतवे । सधवयापि कर्तव्यमवियोगाय सद्व्रतम् ॥३१
उपोष्य प्रतिमासं तु भुञ्जीत ब्राह्मणैःसह । एकद्वित्रिचतुर्भिर्वा स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ॥३२

ही इसकी पुनः पुनः पूर्ति करते हुए भली भाँति सुसम्पन्न कर सकता है । पार्थ ! इस प्रकार इस प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर कार्तिक तक की अवधि तक सुसम्पन्न होने वाले व्रत को प्रतिमास में उपवास पूर्वक इस सरल निर्दिष्ट विधान द्वारा प्रारम्भ कर हवन पर्यंत कर्मों के अनुष्ठान करके निभाने की चेष्टा करता रहे । दोनों द्वितीया और पूर्णिमा के दिन नक्त (रात्रि में एक बार) भोजन करते हुए इसकी पूर्ति करनी चाहिए । यदि प्रतिपदा के दिन उपरांत द्वितीया भी आ जाये तो विद्वानों को उपवास करना उसी दिन परमावश्यक होगा । उस दिन से प्रारम्भ कर पूरे वर्ष भर शुक्ल द्वितीया के उपवास पूर्वक उस विधान को सुसम्पन्न करता रहे अथवा प्रतिपदा और द्वितीया के दिन दो उपवास रहकर तृतीया से व्रतानुष्ठान प्रारम्भ करके इसी क्रम से वर्ष की समाप्ति करे । इस प्रकार सोलह वर्ष की समाप्ति में पूर्णिमा के दिन पूर्व की भाँति देव तथा अग्नि के पूजन एवं तर्पणोंपरांत महादेव जी के निमित्त दीक्षित ब्राह्मण को इस भाँति की गौ अर्पित करे, जिसके सींगों में सुवर्ण, खुरों में चाँदी, एवं गले में घंटा विभूषित हो और कांसे की कोहनी हो । पश्चात् उस व्रती को आवश्यक है कि सोलह ब्राह्मण विद्वानों का, जो शिव के परम उपासक एवं विशुद्ध हों, यथाशक्ति वस्त्राभूषणों द्वारा सादर सम्मानित करते हुए भोजन कराये । शक्त्यनुसार अन्य ब्राह्मणों को भी भोजनादि द्वारा संतुष्ट करना चाहिए । उसी प्रकार अन्य पीड़ितों को यथेच्छ दान से सुशोभित करे । इस प्रकार यह वृहत्तपोव्रत नामक व्रत मनुष्यों को ब्रह्महत्या आदि पापों के शमन पूर्वक भूर्भुवादि लोकों में अत्यन्त भोगों के उपभोग प्रदान करता रहे । यह व्रत चारों वर्णों के लिए स्वर्ग सोपान (सीढ़ी) है, इसलिए धनवान् होकर जो प्राणी इस व्रत को सुसम्पन्न नहीं करता है, उस मूढ़ के समान आत्महन्ता अन्य कौन हो सकता है । यह पुरातन व्रत स्त्री पुरुषों के सौभाग्य जीवन, पुण्य और सौभाग्य को सदैव वृद्धि करता रहता है । जन्मान्तर में विधवा न होने के लिए विधवा स्त्रियों और पति से कभी वियोग न हो इसके लिए सधवा स्त्रियों को इस व्रतानुष्ठान की पूर्ति के हेतु प्रतिमास के उपवास पूर्वक शक्त्यनुसार एक, दो, तीन या चार के साथ भोजन करना चाहिए।१९-३२। पाण्डुनन्दन ! इसके अनुष्ठान

अन्ते चान्ते सुवर्णानां प्रारम्भविधिनाचरेत् । पुण्यसम्भारमन्विच्छन्गमयित्वा शिवालयम् ।।३३
व्रतविघ्ने महाराज जाते दैवात्कथञ्चन । तावत्यस्तिथयश्चान्याः समुपोष्याः समाप्तये ।।३४
अथ शीघ्रतरं कश्चिद्व्रतं कर्तुं समुद्यतः । विधिनानेन राजेन्द्र तेन ग्राह्यं तिथिद्वयम् ।।३५
अन्ते चान्ते च वर्षाणां प्रारम्भविधिनाचरेत् । अथारब्धे व्रते कश्चिदसमाप्ते म्रियेत चेत् ।।३६
सोऽपि तत्फलमाप्नोति सत्यारम्भप्रभावतः । वाचकाः श्रावकाश्चैव व्रतस्यास्य युधिष्ठिर ।।
भवन्ति पुत्रसंश्लिष्टाः शिवध्यानानुभावतः ।।३७

पुण्यं बृहत्तप इदं व्रतमादराद्ये कुर्वंति षोडशसमा निरताः स्वधर्मे ।
ते भानुमण्डलमभेद्यमचिंत्यमाद्यं भित्त्वा प्रयान्ति शशिशेखरपादमूलम् ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
बृहत्तपोव्रतवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भद्रोपवासव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे मतिः । तदहं ज्ञातुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्मणा ।।१

के अंत में सुवर्ण आदि वस्तुओं से संयुक्त होकर पुण्य भार की अधिकता का अभिलाषी होकर शिवालय की यात्रा करे । महाराज ! दैव योग से किसी कारण वश व्रत में विघ्न उपस्थित होने पर उस व्रत के समाप्ति के लिए उतनी अन्य तिथियों के उपवास करना चाहिए । राजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य इस व्रत को शीघ्र सुसम्पन्न करना चाहे तो इसी विधान द्वारा दो तिथियों के ग्रहण करना चाहिए । प्रत्येक वर्षों के अन्त समय प्रारम्भ किये गये विधान द्वारा उसकी पूर्ति करे । व्रतानुष्ठान को प्रारम्भ कर व्रती की मृत्यु हो जाने पर उस सत्य प्रारम्भ के प्रभाव से उसे समस्त फलों की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इस व्रत के अनुष्ठान करने वाले और उसके श्रवण करने वाले दोनों, भगवान् शंकर के ध्यान प्रसाद द्वारा पुत्रादि परिवार समेत अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । वृहत्तपोव्रत नामक इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी जो अत्यन्त श्रद्धालु एवं सोलह वर्ष तक इस अपने अनुपम धर्म में तन्मय रहकर सादर उसे सुसम्पन्न करते रहते हैं, उस अभेद्य भानु मण्डल के भेदन पूर्वक भगवान् शशिशेखर (शिव) जी के चरण कमल की प्राप्ति करते हैं ।३३-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
बृहत्तपोव्रत वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अध्याय १३

भद्र नामक उपवास व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—देवेश ! पूर्व जन्म के वे दुष्प्राप्य स्मरण किस कर्म द्वारा होते हैं मैं उसे जानना

वरप्रदानाद्देवानामृषीणां सेवनेन वा । तीर्थस्नानेन वा देव तपोहोमव्रतेन वा ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

चत्वारि राजन्भद्राणि समुपोष्याणि यत्नतः । तत्प्रभावाद्भवेन्नूनं राजञ्जातिस्मरो नरः ।।३
शुभोदयः पुरा वैश्यो बभूव यमुनातटे । तेन व्रतमिदं चीर्णंमृतः कालक्रमादसौ ।।४
संजयस्य सुतो जातः स्वर्णष्ठीवीति विश्रुतः । व्रतप्रभावाज्जातिज्ञः स च चौरैर्निपातितः ।।५
नारदस्य प्रभावेण पुनरुज्जीव्यतेऽप्यसौ । सस्मार पूर्ववृत्तांतं सकलं व्रतधर्मतः ।।६

युधिष्ठिर उवाच

संजयस्य कथं पुत्रः स्वर्णष्ठीवीति वा कथम् । दस्युभिश्च कथं नीतो मृत्युं वै जीवितः कथम् ।।७

श्रीकृष्ण उवाच

संजयो नाम राजासीत्कुशावत्यां नराधिप । देवर्षी तस्य मित्रे च सदा नारदपर्वतौ ।।८
एकदा संजयगृहं सम्प्राप्तौ तौ यदृच्छया । स्वागतासनदानाद्यैरुपचारैरपूजयत् ।।९
तेषामथोपविष्टानां पूर्ववृत्तान्तभाषिणौ । सञ्जयस्य सुता प्राप्ता तरुणी पितुरन्तिकम् ।।१०
पर्वतः प्राह राजानं कन्येयं वरवर्णिनी । गुप्तगुल्फा संहतोरूः पीनश्रोणिपयोधरा ।।११

चाहता हूँ, व्रत बताने की कृपा कीजिये । देव ! उसकी प्राप्ति किसी वरदान, देवों या ऋषियों की सेवा, तीर्थ स्नान, तप, हवन अथवा किस व्रतानुष्ठान द्वारा होती है ।१-२

श्रीकृष्ण जी बोले—राजन् ! भद्र नामक व्रत के चार उपवास करने पर उसके प्रभाव से उस व्रती पुरुष को निश्चित जन्मान्तरीय स्मरण हो जाता है । पहले समय में यमुना जी के तट पर एक शुभोदय नामक वैश्य रहता था, जिसने इस व्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न किया था अंत में (वही) मृतक होने पर संजय के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिसकी स्वर्णष्ठीवी नाम से प्रख्याति थी । इस व्रत के प्रभाव से उसे जाति स्मरण हुआ था । यद्यपि चोरों ने उसे प्राणहीन कर दिया था तथापि नारद जी के प्रभाव से उसे पुनः जीवन प्राप्त हुआ और इस व्रत के प्रभाव से उसे इन समस्त वृत्तान्तों का स्मरण हुआ था।३-६

युधिष्ठिर जी बोले—संजय के स्वर्णष्ठीवी नामक पुत्र की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, चोरों ने उसका निधन कैसे किया और पुनः वह जीवित कैसे हुआ आदि बातें बताने की कृपा कीजिये ।७

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कुशावती नगरी के अधीश्वर संजय के देवर्षि नारद और ऋषीश्वर पर्वत नामक दो मित्र थे, जो सदैव उनके यहाँ आया जाया करते थे । एक बार राजा संजय के यहाँ वे दोनों मित्र इधर-उधर भ्रमण करते हुए अकस्मात् आ गये । राजा ने उन्हें देखकर स्वागत करते हुए आसनादि उपचारों द्वारा उनकी पूजा की। अनन्तर वे सब राजा से अपने-अपने वृत्तान्तों को कह रहे थे कि उसी बीच राजा संजय की एक युवती कन्या वहाँ अपने पिता के पास आ गई । उसे देखकर पर्वत ऋषि ने राजा से कहना आरम्भ किया कि यह तो बड़ी अनुपम कन्या है, क्योंकि इसके गुल्फ (एड़ी) मांसल होने के नाते अत्यन्त गुप्त हैं, और उसी भाँति घने ऊरु, अत्यन्त पीन श्रोणि एवं घने पयोधर हैं। विकसित कमल की

पद्मपत्रेक्षणनखा पद्मकिञ्जल्कसप्रभा । आकुञ्चितमृदुस्निग्धैः केशैरविततैर्घनैः ॥१२
सविलासा गजगतिः सुनासा कोकिलस्वरा । अहोरूपमहो धैर्यमहो लावण्यमुत्तमम् ॥१३
तिलपुष्पस्फुटा नासा रूपं सम्परिलक्ष्यते । कस्येयं भद्रिका भद्रा ममातिहृदयङ्गमा ॥१४
एवं ब्रुवाणं तं विप्रं विस्मयोत्फुल्ललोचनम् । स राजा प्राह कन्येयं दुहिता मम पर्वत ॥१५
अथोवाच नृपं धीमान्नारदः क्षुभितेन्द्रियः । राजन्निवेष्टुकामोऽहं कन्येयं मम दीयताम् ॥१६
ईप्सितं तव दास्यामि वरं मर्त्येषु दुर्लभम् । एवमुक्तो नारदेन प्रीतात्मा सञ्जयस्तथा ॥१७
कृताञ्जलिरुवाचेदं प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः । पुत्रो मे दीयताम् क्षिप्रमक्षीणकनकाकरः ॥१८
यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षितौ । जातरूपं हि तत्सर्वं सुवर्णं भवतु स्थिरम् ॥१९
एवमस्त्विति तं राजन्नारदः प्रत्यभाषत । सुवर्णष्ठीविनं पुत्रं ददामि तव सुव्रत ॥२०
एवमुक्त्वा स तां कन्यां सालङ्काराम् सुमध्यमान् । विवाहयामास तया नारदो हृष्टमानसः ॥२१
ततस्य चेष्टितं दृष्ट्वा पर्वतः क्रोधमूर्च्छितः । उवाच नारदं रोषाद्दीप्ताक्षः स्फुरिताधरः ॥२२
मयेयं प्रार्थिता पूर्वं त्वया यस्माद्विवाहिता । तस्मान्मया समं स्वर्गं न गन्तासि कथञ्चन ॥२३
दत्तस्त्वयास्य यः पुत्रो वरदानेन नारद । सोऽपि चौरैरभिहतः पञ्चत्वमुपयास्यति ॥२४

भाँति दोनों नेत्र, कमल पत्र की भाँति कोमल, नख, पद्मपराग, के समान शरीर का वर्ण, कोमल, स्निग्ध, छोटे, घने और आकुञ्चित (टेढ़े मेढ़े) शिर के केश और विलास पूर्वक गज की भाँति गमन (चाल) और सुन्दर नासा, एवं कोकिल की भाँति मधुर भाषिणी है। उसका रूप और रूप लावण्य तो अपनी उत्तमता के नाते आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है, उसी प्रकार धीरता भी इसमें कितनी गम्भीर हैं। तिलपुष्प की भाँति इसकी नासिका मन को निरन्तर मुग्ध कर रही है! यह कल्याणमयी भव्य मूर्ति जिसने मेरे हृदय को सहसा अपने अधीन कर लिया है, किसकी प्रेयसी है। इस प्रकार कहने वाले उस ब्राह्मण से जिनके नेत्र आश्चर्य चकित होने के नाते विकसित हो उठे थे, राजा ने कहा—पर्वत! यह मेरी कन्या है। इसे सुनकर धीमान् नारद ने काम व्यथित होते हुए कहा—राजन्! इसमें निविष्ट होने (गर्भाधान करने) की मेरी प्रबल इच्छा हो रही है। अतः इसका पाणिग्रहण मेरे साथ सुसम्पन्न कर दें। मैं भी तुम्हें वह अभिलषित वर प्रदान करूँगा, जो इस मर्त्यलोक में अत्यन्त दुर्लभ है। नारद के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा संजय ने कमल की भाँति जिनके नेत्र उस समय खिल उठे थे, करबद्ध प्रार्थना की। मुझे एक ऐसे पुत्र को, जो अक्षय सुवर्ण का स्वपिता हो, शीघ्र देने की कृपा कीजिये। और जिसका मूत्र, पुरीष (मल) तथा श्लेष्मा पृथिवी पर गिरते ही उसी समय वह सब सुवर्ण का स्थिर रूप प्राप्त करे।८-२०। नारद ने कहा—राजन्! जैसा आप चाहते हैं, वह सब वैसा ही होगा। सुव्रत! मैं तुम्हें सुवर्ण पृथ्वी पुत्र प्रदान कर रहा हूँ। इतना कहकर नारद ने हर्षमान होकर उस कन्या के साथ, जो अलङ्कारों से सुसज्जित और जिसका मध्य भाग विशेष कमनीय था, सविधान पाणिग्रहण सुसम्पन्न किया। पश्चात् उसे देखकर पर्वत ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जिनकी आखें रोष से रक्तवर्ण की और अधरोष्ठ फड़क रहाथा, उसके साथ यदि तुम्हीं ने पाणिग्रहण कर लिया है, तो इसी दोष के नाते तुम मेरे साथ स्वर्ग की यात्रा किसी प्रकार नहीं कर सकते, तथा नारद! इन राजा को तुमने जो पुत्र प्रदान किया है, वह भी चोरों द्वारा निहत होकर स्वर्गीय

एवमुक्तः पर्वतेन नारदः प्राह दुर्मनाः । न त्वं धर्मं विजानासि किञ्चिन्मूढोऽसि दुर्मते ॥२५
सामान्यं सर्वभूतानां कन्या भवति सुव्रत । न तस्या वरणे दुःखं[1] पश्यन्तीह बहुश्रुताः ॥२६
न सेवितास्त्वया वृद्धास्तेन मां शपसे रुषा । पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥२७
यस्मादेतदविज्ञाय शपसे मामनागसम् । तस्मात्त्वमप्यहो स्वर्गं न गन्तासि मया विना ॥२८
सञ्जयस्य सुतः शापाद्यदि पञ्चत्वमेष्यति । आनयिष्ये तथाप्येनं यमलोकान्न संशयः ॥२९
एवं शप्त्वा तदाऽन्योन्यं देवर्षी तावुभौ पुनः । पूजितौ सञ्जयेनाथ जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥३०
अथास्य सप्तमे मासि जातः पुत्रो नृपस्य सः । स्वर्णष्ठीवीति नामास्य यथार्थमकरोत्पिता ॥३१
जातिस्मरः स्मरवपुः सुवर्णोत्पत्तिकारणम् । सर्वभूतरुतज्ञोऽभूद्भद्रव्रतफलादिह ॥३२
मूत्रश्लेष्मपुरीषादि यत्किञ्चित्क्षिपति क्षितौ । जायते कनकं सर्वं प्रसादान्नारदस्य च ॥३३
तेनासौ यजते राजा विधिवद्भूरिदक्षिणैः । राजसूयादिभिर्यज्ञैर्विविधैर्ब्राह्मणैर्वृतः ॥३४
बभार भृत्याननिशं पुपोष स्वजनातिथीन् । चकार देवतागारं सरश्चारामवाटिकाः ॥३५
जातस्नेहं तथा पुत्रं ररक्ष रक्षिभिर्वृतः । राशयः कनकस्यास्य बभूवुर्नृपतेः सुतात् ॥३६

हो जायगा। इस प्रकार पर्वत ऋषि के कहने पर दुःख प्रकट करते हुए नारद ने कहा—दुर्मते ! तुम महामूर्ख हो, तुम्हें कुछ भी धर्म का ज्ञान नहीं है, क्योंकि सुव्रत ! सामान्यतः कन्या सभी प्राणियों की होती है, किन्तु उसके वरण करने में विद्वान लोग इस प्रकार दुःख नहीं प्रकट करते । तुमने वृद्ध समाज की सेवा नहीं की है, इसीलिए रुष्ट होकर मुझे शाप दे रहे हो । और यह जानते हुए कि पाणिग्रहण मंत्रों की सप्तपदी के सातवें पद के उच्चारण करने पर दृढ़तर स्थिरता हो जाती है अर्थात् पाणिग्रहण दृढ़ हो जाता है । इस पर ध्यान न देकर निरपराध मुझे शाप दिया है, इसलिए मेरे बिना तुम भी स्वर्ग की यात्रा नहीं कर सकोगे और शाप के कारण राजा संजय का पुत्र यदि मृतक हो जायगा, तो यह निःसन्देह है कि यमलोक से भी उसे ला दूँगा । इस प्रकार आपस में एक दूसरे को शाप देकर वे दोनों देवर्षि संजय से पूजित होने के उपरांत अपने आश्रम चले गये । इसके अनन्तर सातवें मास में राजा के वह स्वर्णष्ठीवी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । पिता ने उसका यथोचित संस्कार सम्पन्न किया । इस भद्र व्रत के फलस्वरूप उस काल को अपने जन्मान्तर के स्मरण, काम के समान सुन्दर शरीर जो सुवर्णोत्पत्ति का कारण थी, तथा समस्त प्राणियों की भाषा का अर्थ भली भाँति स्पष्ट था। उसके मूल आदि शरीर के सभी प्रकार के मल, पृथ्वी पर गिरते ही नारद के प्रसाद से कनक मय हो जाते थे। उसी सुवर्णों द्वारा राजा संजय विद्वान् ब्राह्मणों को निमंत्रित करके उन्हें अधिक दक्षिणादि प्रदान द्वारा सुसम्मानित करते हुए राजसूय आदि अनेक यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करते थे। उसी प्रकार सेवक वर्गों के सुभरण पोषण, अपने स्वजनों और अतिथियों के पोषण पूर्वक देवमन्दिरों, सरोवरों, बाग, बगीचे आदि के अनेक प्रकार से रचना करवाया। उस स्नेह भाजन प्रिय पुत्र की रक्षा रक्षकों समेत राजा स्वयं करते थे जिसके द्वारा उनके यहाँ असंख्य सुवर्णों की राशियाँ उत्पन्न होती थी।२१-३६। कुछ समय के उपरांत दक्षिण देश के रहने वाले चोर

---

१. दोषम् ।

अथास्य दस्यवः केचिच्छ्रुत्वा तं कनकाकरम् । धनलोलुपया जघ्नुर्दाक्षिणात्या मदोद्धताः ॥३७
तस्मिन्विनष्टे तन्नष्टं वरदानं समुद्भवम् । कनकं तदपश्यन्तो जग्मुरन्योन्यतः क्षयम् ॥३८
पातितं दस्युभिः पुत्रं दृष्ट्वा राजा सुदुःखितः । विललापाकुलमतिः स मुमोह पपात च ॥३९
विलपन्तं तु तं दृष्ट्वा नारदः प्राह सञ्जयम् । राजन्विषादं मा कार्षीः शृण्विमां भारतीं मम ॥४०
इत्युक्त्वा स समाचख्यौ चरितानि महौजसाम् । विशिष्टानां नरेन्द्राणां यतीनां दक्षिणावताम् ॥४१
श्रुत्वा राजा नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् । विनष्टशोकः सहसा प्रकृतिस्थो बभूव सः ॥४२
नारदोऽपि नरेन्द्रस्य मृतं पुत्रं यमालयात् । आनयामास तरसा तथारूपं यथा हतम् ॥४३
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स पुत्रं तं परितुष्टेन चेतसा । व्रीडितो विस्मितश्चैव कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ॥४४
किमाश्चर्यं प्रसन्नेन भवता मम नारद । दत्तः पुत्रस्तथाभूतो दस्युभिर्घातितो यथा ॥४५
षण्मासान्ते पुनरसौ जीवितं सर्वमेव तत् । सस्मार पूर्वं वृत्तान्तं भद्राणां पारणात्किल ॥४६
एतत्ते सर्वमाख्यातं जातिस्मरणकारकम् । व्रतं व्रताधिकं श्रेष्ठं किमन्यत्कथयामि ते ॥४७

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणाश्चैव शूद्राश्च कुले महति जन्म च । दाता क्षमी धनी वाग्मी रूपी स्वैर्भद्रकैर्भवेत् ॥४८

डाकुओं ने उसकी 'सुवर्ण की खानि' होने की प्रख्याति को सुनकर धन के लिए लालायित होकर उस बालक का हनन कर दिया । वरदान द्वारा उत्पन्न उस बालक के निधन होने पर राजा की कनक राशि भी इधर-उधर विनष्ट हो गई । चोरों द्वारा आहत हुए अपने पुत्र को देखकर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये । इस प्रकार उन्हें दुःखी देखकर नारद ने कहा—राजन्! आप इस प्रकार अधीर न हों, मैं कुछ कह रहा हूँ, उस पर ध्यान देने की कृपा करें । इतना कहकर उन्होंने अत्यन्त ओजपूर्ण राजाओं और महात्माओं के पवित्र चरित्रों और उनके काल-कवलित होने की कथा सुनायी जिसके सुनने से राजा का शोक नष्ट हो गया और वे पूर्व की भाँति सुस्थिर हुए । नारद ने भी राजा के उस मृतक पुत्र को, यमराज के यहाँ से शीघ्र लाने का प्रयत्न किया । राजा ने अत्यन्त हर्ष में विभोर होकर उस अपने पुत्र का दर्शन-स्पर्शन किया और पश्चात् लज्जित एवं विस्मित होते हुए हाथ जोड़कर नारद जी से कहा—ऋषीश्वर ! आपने उस मेरे पुत्र को, जिसे चोरों ने मृतक कर दिया था, मुझे लाकर सौंप दिया । इससे मुझे भलीभाँति निश्चित हो गया कि आप के प्रसन्न होने पर किसी कार्य के सम्भव होने में कुछ भी आश्चर्य नहीं है । इस भद्र व्रत के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने के नाते उस बालक को छठें मास के ही अनन्तर अपने जन्मान्तरी वृत्तान्तों के स्मरण होने लगे । इस प्रकार मैंने जन्मान्तरीय वृत्तान्तों के स्मरण होने के कारण को विस्तार पूर्वक तुम्हें सुना दिया और इस श्रेष्ठ व्रत के अतिरिक्त इसके विषय में मैं तुम्हें अन्य क्या कह सकता हूँ ।३७-४७

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, शूद्र, उत्तर कुल में जन्म, दाता, क्षमाशील, धनवान्, निपुणवाग्मी विद्वान्, और सौन्दर्यपूर्ण रूपवान्, उस भद्रव्रत को सुसम्पन्न करने वाला प्राणी ही होता है । राजन् ! इस भद्रव्रत के

चत्वारि राजन्भद्राणि चतुष्पादानि तानि वै । तान्येव बहुविघ्नानि दुष्प्राप्यान्यकृतात्मभिः ।।४९
मार्गशीर्षे तु प्रथमं द्वितीयं फाल्गुने तथा । ज्येष्ठे तृतीयं राजेन्द्र ख्यातं भाद्रपदेपरम् ।।५०
फाल्गुनामलपक्षादौ त्रीन्मासांस्तु नराधिप । तन्त्रिपुष्पमिति ख्यातं तपस्याकरणं परम् ।।५१
ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षादौ त्रीन्वै मासान्युधिष्ठिर । तत्त्रिराममिति ख्यातं सत्यशौर्यप्रदायकम् ।।५२
शुक्ले भाद्रपदस्यादौ त्रीन्मासान्पाण्डुनन्दन । तन्त्रिरङ्गमिति ख्यातं बहुविद्याप्रदायकम् ।।५३
शुक्लमार्गशिरस्यादौ त्रीन्मासांस्तु नराधिप । तद्विष्णुपदमित्युक्तं सर्वधर्मप्रदायकम् ।।५४
समासेनैव चोक्तानि भद्राण्येतानि भारत । कर्तव्यानि नरैः स्त्रीभिर्ब्राह्मणानुमतेन वा ।।५५

युधिष्ठिर उवाच

विस्तरेणैव मे ब्रूहि देवदेव जगत्पते । भद्राणां नियमाधानं प्रधाननियमांस्तथा ।।५६

श्रीभगवानुवाच

शृणु राजन्नवहितो भद्राणां विस्तरं परम् । कथयिष्ये न कथितं कस्यचिद्यन्मया पुरा ।।५७
शुक्ले मार्गशिरस्यादौ चत्वारस्तिथयो वराः । द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ।।५८
एकभुक्तासनस्तिष्ठेत्प्रतिपद्यां जितेन्द्रियः । प्रभाते तु द्वितीयायां कृत्वा यत्करणीयकम् ।।५९
प्रहरत्रये समधिके गते स्नानं समाचरेत् । मृद्गोमयं च संगृह्य मन्त्रैरेभिर्विचक्षणः ।।६०
अहं ते तु प्रदिश्यामि मन्त्राणां विधिमुत्तमम् । येषां देयो न देयो वा ताञ्छृणुष्व वदामि ते ।।६१

चार चरण हैं, जिनकी प्राप्ति में अनेक विघ्न आते हैं और अन्य कर्मानुष्ठान वालों को दुष्प्राप्य भी है राजन् ! मार्गशीर्ष में पहला, फाल्गुन में दूसरा, ज्येष्ठ में तीसरा और भाद्रपद में चौथा पाद बताया गया है । नराधिप ! फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष से प्रारम्भ कर तीन मास तक के समय को 'त्रिपुष्प' कहा गया है, जो तपश्चर्या के लिए परम उपयोगी है । युधिष्ठिर ! ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष से तीन मास तक के समय को जो सत्य एवं शौर्यप्रद है 'त्रिराम' और पाण्डुनन्दन ! भाद्रपद के शुक्लपक्ष से तीन मास तक के समय को 'त्रिरंग' कहा जाता है, इसे अनेक विद्या का प्रदायक बताया गया है । नराधिप ! उसी प्रकार मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष से तीन मास तक के समय को 'विष्णुपद' कहा गया है, जो समस्त धर्मों का प्रदाता है । भारत ! इस प्रकार मैंने इस भद्र व्रत की व्याख्या बता दी है, जो पुरुषों और स्त्रियों को ब्राह्मण विद्वानों की अनुमति पूर्वक सुसम्पन्न करना परमावश्यक होता है ।४८-५५

युधिष्ठिर ने कहा—देवाधिदेव, जगत्पते ! इस भाद्रव्रत के नियम विधान और प्रधान नियम मुझे बताने की कृपा करें ।५६

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! मैं इस भद्र व्रत के नियमादि विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! जिसकी व्याख्या कभी किसी से कहा ही नहीं । मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी तिथि इस व्रत के लिए सर्वश्रेष्ठ बतायी गयी है संयमशील पुरुष को उन्हीं तिथियों में इस व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिए । द्वितीया के दिन प्रातः काल नित्य कर्म करने के उपरांत उस बुद्धिमान व्रती को तीसरे प्रहर में मृत्तिका और गोमय द्वारा मंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करना चाहिए उन मंत्रों के विधान समेत मैं तुम्हें यह भी बता रहा हूँ कि वे किसके लिए देने योग्य है

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये शुचयोऽमलाः । तेषां मन्त्राः प्रदेया वै न तु सङ्कीर्णधर्मिणाम् ।।६२
या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि स्वाचारैः संयुता शुभा । सा च मन्त्रान्प्रगृह्णातु सभर्त्री तदनुज्ञया ।।६३
स्नानं नद्यां तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽपि वा । दशोत्तरं फलं ज्ञेयमधिकं हि समन्त्रकम् ।।६४
मृदं मन्त्रेण संगृह्य सर्वाङ्गेषु प्रलेपयेत् । त्वं मृत्स्ने वन्दिता देवैः समलैर्दैत्यघातिभिः ।।६५
मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुरु ।।६६

। इति मृण्मन्त्रः ।

एवं जपन्मृदं दत्वा स्वहस्ताग्रे समन्त्रकम् । जलावगाहनं कुर्यात्कुण्डमालिख्य धर्मवित् ।।
सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैर्वचासर्वौषधीः क्रमात् ।।६७
त्वमादिः सर्वदेवानां जगतां च जगन्मये । भूतानां वीरुधां चैव रसानां पतये नमः ।।६८
गंगासागरजं तोयं पौष्करं नार्मदं तथा । यामुनं सांनिहत्यं च सन्निधानमिहास्तु मे ।।६९

। इति स्नानमन्त्रः ।

शरीरालम्भनं पूर्वं कृत्वा मृद्गोमयाम्बुभिः । एवं स्नात्वा समाप्लुत्य आचम्य तटमास्थितः ।।७०
निवस्य वाससी शुभ्रे शुचिः प्रयतमानसः । देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च तर्पयेत्सुसमाधिना ।।७१
एवं गृहीतनियमो गृहं गच्छेच्छुचिव्रतः । उपविश्य न संजल्पेद्यावच्चन्द्रस्य दर्शनम् ।।७२

और किसके लिए नहीं । सदाचारी एवं निर्मल अन्तःकरण वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को यह मंत्र बताया जाना चाहिए, किन्तु संकीर्ण धर्म वाले को कभी नहीं । पति वियोग होने पर स्त्री अपने सदाचारों के पालन पूर्वक संयमशील हो, पति की आज्ञा प्राप्त कर पति समेत उस शुभमूर्ति स्त्री को भी इस मंत्रों को प्रदान करना चाहिए । किसी नदी, सरोवर, वावली अथवा गृहकूप में मंत्रोच्चारणपूर्वक स्नान करे । नदी आदि में स्नान करने से क्रमशः दश फल अधिक की प्राप्ति होती है । मंत्रोच्चारण पूर्वक मृत्तिका को ग्रहण कर सर्वांग में लेपन की भाँति लगा लेना चाहिए । प्रथम उससे इस भाँति प्रार्थना करे कि—'मृत्तिके ! देवों ने तुम्हारी वन्दना की है, जो मल समेत और दैत्यों के हन्ता हैं । उसी भाँति मैं भी भक्तिपूर्वक तुम्हारी वंदना कर रहा हूँ, इसलिए मुझे निर्मल करने की कृपा करें । इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस धर्मशील व्रती को मृत्तिका अपने हाथ में लेकर पूर्व बनाये हुए कुण्ड के जल का आवाहन करना चाहिए। तदनन्तर राई, काले तिल तथा वच आदि समस्त औषधियों को क्रमशः मंत्रपूर्वक ग्रहण करके इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए कि—जगन्मये ! समस्त संसार और देवों के आदि हो, और समस्त प्राणी, वृक्ष और इस के अधीश्वर हो, अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। पश्चात् इस मंत्र के उच्चारण करते हुए स्नान करे, कि—'गंगासागर, पुष्कर, नर्मदा और यमुना जी के जल इस जल में मिलकर मेरे सान्निधि में रहने की कृपा करे।'५७-६९। स्नान करने के समय सर्वप्रथम मृत्तिका और गोमय मिश्रित जल का शरीर में लेपन करके भली भाँति स्नान करें तथा तट पर आकर आचमन पूर्वक दो स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे। पवित्र होने पर उस संयमशील को देव, पितर एवं मनुष्यों के तर्पण करके घर जाना चहिए, उस नियम धारण करने वाले को पवित्रतापूर्वक व्रतानुष्ठान के आरम्भ करने पर आसन पर बैठने के उपरांत जब तक चन्द्रोदय का दर्शन न हो, किसी से कोई बातचीत न करनी चाहिए। स्नान करने के अनन्तर

स्नात्वा चैव ततो नाम तृतीयादिचतुर्दिने । नमः कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति च क्रमात् ॥७३
चतुर्दिने द्वितीयादौ देवमभ्यर्चयेऽच्युतम् । प्रथमेह्नि स्मृता पूजा पादयोश्चक्रपाणिनः ॥७४
नाभिपूजा द्वितीयेह्नि कर्तव्या विधिवन्नरैः । मुरद्विषस्तृतीयेह्नि पूजां वक्षसि विन्यसेत् ॥७५
चतुर्थेह्नि जगद्धातुः पूजां शिरसि कल्पयेत् । पुष्पैर्विलेपनैधूपैरर्घ्यं दद्युर्विभूषणैः ॥७६
घीवरैर्हरिनैवेद्यैर्दीपदानैश्च भक्तितः । पूजयित्वा विधानेन विष्णुं विश्वेश्वरं व्रती ॥७७
ततो दिनावसाने तु मुहूर्ते निर्गते सति । अर्घ्यं प्रदद्यात्सोमाय भक्त्या तद्भावभावितः ॥७८
शशिचन्द्रशशाङ्केन्दुनामानि क्रमशो नरः । तृतीयादिषु चन्द्रस्य सङ्कीर्त्यार्घ्यं निवेदयेत् ॥७९
स चार्घ्यो यादृशो देय ऋद्धिमाद्भिरथेतरैः । तत्ते सम्यक्प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध मे ॥८०
चन्दनागुरुकर्पूरदधिदूर्वाक्षतादिभिः । रत्नैः समुद्रजैश्चान्यैर्वज्रवैडूर्यमौक्तिकैः ॥८१
पुष्पैः फलैः स्वकालोत्थैः खर्जूरैर्नालिकेरकैः । वस्त्राच्छादनगोवाजिभूमिहेमगजान्वितैः ॥८२
सत्त्वयुक्तस्य ऋद्धस्य राजन्नेष विधिः स्मृतः। इतरस्य यथाशक्ति फलपुष्पाक्षतोदकैः ॥८३
लवणं गुडं घृतं तैलं पयः कुम्भास्तिलैः सह । अर्घेष्वेतानि शस्तानि शशिवृद्ध्या विवर्द्धयेत् ॥८४
प्रत्यहं वर्द्धयेदर्घ्यं शशि वृद्ध्या नरोत्तम । एवमर्घः प्रदातव्यः शृणु मन्त्रविधिक्रमम् ॥८५
नवोनवोसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः । त्रिरग्निसमवेतो वै देवानाप्यायसे हविः ॥८६
गगनाङ्गणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव । भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥८७

द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के दिनों में क्रमशः कृष्ण, अच्युत, अनंत तथा हृषीकेश आदि भगवान् के नामों के 'कृष्णाय नमः' की रीति से उच्चारण करते रहना चाहिए क्योंकि द्वितीया से आरम्भ कर उन चारों दिनों में अच्युत देव का ही पूजन होता है—प्रथमदिन भगवान् चक्रपाणि के चरण की पूजा, दूसरे दिन नाभि की पूजा, तीसरे दिन उन मुरारि भगवान् के वक्षःस्थल की पूजा और चौथे दिन उन जगद्धाता के शिर की पूजा सविधान सुसम्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । पुष्प, चन्दन, धूप, भूषण समेत अर्घ्य, घीवर, नैवेद्य, और दीपदान द्वारा भक्तिपूर्वक विश्वेश्वर भगवान की पूजा करने के उपरांत दिन की समाप्ति में मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर सोम को उनकी भक्ति-भाव मास में निमग्न होकर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । शशि, चन्द्र, शशांक और इन्दु नामों के क्रमशः उच्चारण पूर्वक तृतीयादि तिथियों में उन्हें जिस प्रकार अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।७०-७९। युधिष्ठिर ! मैं विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चन्दन, अगरु, कपूर, दही, दूर्वा, अक्षत आदि रत्नाकर के रत्न अथवा वज्र या वैदूर्य मणि मोती, पुष्प, सामयिक फल खजूर, नारियल समेत उसे वस्त्र से आच्छादित करके गौ, अश्व, भूमि, सुर्वण गज से पूर्ण कर इस प्रकार के अर्घ्य सात्त्विक धनवानों को प्रदान करना चाहिए । राजन् ! अन्य लोगों को यथाशक्ति फल, पुष्प, अक्षत, जल, लवण, गुड, घी, तेल, और तिल समेत जलपूर्ण कलश के इस प्रशस्त अर्घ्य चन्द्रमा की वृद्धि के अनुसार प्रतिदिन वृद्धि पूर्ण देना चाहिए । नरोत्तम ! इस प्रकार के अर्घ्य प्रदान करने में मंत्रविधि के क्रम बता रहा हूँ, सुनो ! 'आप प्रत्येक मास में उत्पन्न होकर नूतन ही बने रहते है, उसी प्रकार तीनों अग्नि से युक्त होकर हवि द्वारा देवों के पालन पोषण करते हैं। आप इस गगन प्राङ्गण के उत्तम दीप एवं क्षीरसागर के मंथन करने से जन्म ग्रहण किया है और आपके प्रकाश से

दत्त्वार्घ्यं द्विजराजाय तद्विप्राय निवेदयेत् । निर्वर्त्यार्घ्यक्रममिमं ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥८८
भूमिं तु भाजनं कृत्वा पद्मपत्रसमास्तृताम् । पालाशैर्मधुपत्रैर्वा सुरूपैर्वा शिलातले ॥८९
समालभ्य धरां देवीं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् । त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्वरसोद्भवे ॥९०
मदनुग्रहाय सुस्वादं कुर्वन्नममृतोपमम् । एवं जप्त्वा च भुक्त्वा च शाकं पाकं गुणोत्तरम् ॥९१
आचम्य खान्दुपालभ्य स्मृत्वा सोमं स्वपेद्भुवि । भोक्तव्यं तु द्वितीयायामक्षारलवणं हविः ॥९२
मुन्यन्नं तु तृतीयायां चतुर्थ्यां गोरसोत्तरम् । घृताक्ताः सगुणाः शस्ताः पञ्चम्यां कृशरास्सदा ॥९३
शस्ता[1] भद्रेषु सर्वेषु सदा श्यामाकतण्डुलाः । प्रसाधिका घृतं गव्यं वन्यं फलमयाचितम् ॥९४
प्रातः स्नानं ततः कृत्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः । भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या दत्तदानान्विसर्जयेत् ॥९५
भृत्यबन्धुजनैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत कामतः । एवं भद्रेषु सर्वेषु त्रिमासेषु[2] गतेषु यः ॥९६
करोत्येतन्नरो भक्त्या वर्षमेकममत्सरी । तस्य श्रीर्विजयश्चैव नित्यं सोमः प्रसीदति ॥९७
एतत्करोति या कन्या शुभं प्राप्नोति सा पतिम् । दुर्भगा सुभगा साध्वी भवत्यविधवा सदा ॥९८
राज्यार्थी लभते राज्यं धनार्थी लभते धनम् । पुत्रार्थी[3] लभते पुत्रानितिप्राह प्रभाकरः ॥९९

समस्त दिशाएँ पूर्ण प्रकाशित होती हैं अतः आपको नमस्कार है ।' इस भाँति द्विजराज चन्द्र को अर्घ्य अर्पित करके उसे ब्राह्मण को समर्पित करे । पश्चात् इसी प्रकार प्रतिदिन अर्घ्य क्रम की समाप्ति होने पर मौन होकर भूमि प्रार्थना पूर्वक भोजन करे पवित्र भूमि में कमल पत्र, पलाश, महुवे के पत्र अथवा शिलातल पर पृथ्वी देवी की समस्त रसों समेत उत्पन्न होने वाली देवि ! मैं आपके तल पर भोजन की इच्छा से उपस्थित हो रहा हूँ, इसलिए मेरे अनुग्रहार्थ आप इस भोजन को अमृत की भाँति सुस्वाद पूर्ण करें ।८०-९०। इस भाँति आराधना पूर्वक बने हुए शाक के भोजन करने के उपरात उस मंत्रवेत्ता को आचमन करके उस जल कुण्ड के समीप में सोम के स्मरण पूर्वक भूमि शयन करना चाहिए । इसी प्रकार अक्षार लवण समेत तिनी के चावल की हवि चतुर्थी को गोरस (मट्ठा), और पञ्चमी के दिन घी गुड़ समेत कृशरान्न (खिचड़ी) के भोजन सदैव करना चाहिए । सभी भद्र व्रत में सावाँ के चावल को गाय के घी में तल कर अयाचित वन्य फल का भोजन प्रशस्त बताया गया है । प्रातः काल स्नान, और देव-पितृ तर्पण आदि नित्य नियम के उपरांत ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक दान और भोजन से तृप्त कर विसर्जन करना चाहिए । पश्चात् बन्धु वर्ग और सेवकों समेत स्वयं यथेच्छ भोजन करे । इसी भाँति तीन मास वाले सभी भद्र व्रतों में जो प्राणी पूर्ण वर्ष का समय व्यतीत करता है, उस मत्सरहीन पुरुष की भी वृद्धि एवं विजय नित्य होती रहती है और सोम सदैव उसके ऊपर प्रसन्न रहते हैं । दुर्भगा-सुभगा जो कोई कन्या इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करती है, उसे शुभ पति की प्राप्ति पूर्वक वह सदैव पतिपरायणा पतिव्रता और सधवा होती रहती है । उसी प्रकार राज्यार्थी को राज्य, धनार्थी को धन, एवं पुत्र की कामना वाले को पुत्र की प्राप्ति होती है । भारत ! भद्रव्रत के अनुष्ठानों को सुसम्पन्न करने पर उस

---

१. भोज्याः । २. प्रकाशेषु । ३. अपुत्रः ।

योषित्कुलाकुलविवाहमनोरमाणि शय्यान्नयानशयनासनशोभितानि ।
भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजानि जातिस्मरो भवति भारत भद्रकर्ता ।।१००

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तर पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भद्रोपवासव्रतनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

द्वितीयाव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

संत्यन्यास्तिथयः पार्थ द्वितीयाद्याः परिश्रुताः । मासैश्चतुर्भिश्चत्वारः प्रावृट्छुक्लाः क्लमापहाः ।।१
गोपिताश्च सदा लोके न प्रोक्ताश्च मया क्वचित् । प्रकाशयामि ताः पार्थ शृणु सर्वा मया हिताः ।।२
एका तु श्रावणे मासि अन्या भाद्रपदे तथा । अपराश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ।।३
श्रावणे कलुषा नाम प्रोष्ठपादे च गीर्मला । आश्विने प्रेतसञ्चारा कार्तिके च यमा स्मृता ।।४

युधिष्ठिर उवाच

कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सा गीर्मला मता । कस्मात्सा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ।।५

भद्रवती प्राणी को सुन्दरी स्त्री, धन, पुत्र, मनोरम शय्या, स्वादपूर्ण भोजन, पान आदि के समस्त सुखों की प्राप्तिपूर्वक जन्मान्तरीय स्मरण होता है ।९१-१००

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
भद्रोपवास व्रत निरूपण नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

द्वितीया व्रतमाहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! श्रावण मास के शुक्ल पक्ष से आरम्भ कर चार मास की द्वितीया आदि अन्य भी तिथियाँ इस प्रकार की हैं, जिनके अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से प्राणी के समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं । पार्थ ! मैंने उन्हें इस लोक में सदैव गुप्त रखा था, किसी से कभी भी प्रकाशित नहीं किया था । किन्तु वह तुम्हें आज बता रहा हूँ । सावधान होकर सुनो ! श्रावण मास के शुक्ल की पहली, भाद्रपद (भादों) की दूसरी, आश्विन मास की तीसरी और कार्तिक मास की चौथी द्वितीया तिथि के क्रमशः कलुषा, गीर्मला, प्रेत संचार और यम नाम बताये गये हैं ।१-४

युधिष्ठिर ने कहा—श्रावण, भाद्रपद, (भादों), आश्विन और कार्तिक मास की शुक्ल द्वितीया तिथि के उपरोक्त कलुषा आदि नाम क्रमशः जो रखे गये हैं, उनके उस नामकरण में कौन कारण है, बताने की कृपा करें ।५

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा वृत्रवधे वृत्ते प्राप्तराज्ये पुरन्दरे । ब्रह्महत्यापनोदार्थमश्वमेधे प्रवर्तिते ॥६
क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता । षट्खण्डा[1] च कृता क्षिप्ता वृक्षे तोये महीतले ॥७
नार्यां ब्रह्महने वह्नौ संविभज्य यथाक्रमम् । तत्पापं श्रावणे व्यूढं द्वितीयायां दिनोदये ॥८
नारीवृक्षनदीभूमिवह्निब्रह्महनेष्वथ । निर्मलीकरणं जातमतोऽर्थं कलुषा स्मृता ॥९
मधुकैटभयो रक्ते पुरा मग्नेति मेदिनी । अष्टांगुला पवित्रा सा नारीणां तु रजो मलम् ॥१०
नद्यः पूरमलाः सर्वा वह्नेर्धूमशिखा मलः । कलुषाणि चरंत्यस्यां तेनैषा कलुषा मता ॥११
गीर्गिरा भारती वाणी वाचा मेधा सरस्वती । गीर्मलं वहते यस्माद्द्वितीया गीर्मला मता ॥१२
देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिकाः शठाः । तेषां सा वाग्मलव्यूढा द्वितीया तेन गीर्मला ॥१३
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयन्ति पठन्ति च । शाब्दिकास्तार्किकाः श्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजाः ॥
मला व्यूढा द्वितीयायामतोऽर्थं गीर्मला च सा ॥१४
प्रेतास्तु पितरः प्रोक्तास्तेषां तस्यां तु संचरः । द्वितीयायां च लोकेषु तेन सा प्रेतसञ्चरा ॥१५
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा । पितृपितामहप्रेतसंचरात्प्रेतसंचरा ॥१६

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में वृकासुर के वध द्वारा राज्य की प्राप्ति होने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का दोषभागी होना पड़ा था । उस ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिए उन्होने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया, किन्तु यज्ञ के सुसम्पन्न होने पर भी अपने को उससे मुक्त होते न देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने वज्र द्वारा ब्रह्महत्या का नाश करना चाहा, जिससे ब्रह्महत्या के छः खण्ड हो गये, किन्तु उन खण्डों को क्रमशः वृक्ष, जल, पृथ्वी, स्त्री, वृषलीपति और अग्नि के समभाग करके बाँट देने पर ही उससे मुक्त हो सके । पश्चात् ब्रह्महत्या के उन भागों के ग्रहण करने वाले नारी वृक्ष, आदि ने श्रावण शुक्ल की द्वितीया के दिन सूर्योदय के समय सविधान स्नान पूर्वक अपने पापों के शमन किये जिससे वे सब पूर्व की भाँति निर्मल हो गये । इसीलिए उस द्वितीया का कलुषा नामकरण हुआ । यद्यपि पहले समय में मधुकैटभ दैत्यों के रक्त से यह पृथिवी अत्यन्त ओत-प्रोत हो गयी थी, तथापि उस समय भी आठ अंगुल पृथिवी अवशिष्ट रहने के नाते पवित्र थी । स्त्रियों के रज, नदियाँ के दोनों तट का जलपूर्ण रहना, और अग्नि में धूमशिखा रूप मल बताया गया है । उस द्वितीया के समय इन कलुषों के यथापूर्व स्थित रहने के और नष्ट होने के नाते भी इसका कलुषा नाम हुआ है । गीर शब्द गिरा, भारती, वाणी, वाचा, मेघा और सरस्वती के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इसीलिए इसके मल के भाद्रपद (भादों) की शुक्ल द्वितीया में नष्ट होने के नाते गीर्मला नामकरण उस द्वितीया का हुआ है । तथा देव, ऋषि, एवं पितृधर्मों के निन्दक, नास्तिक, एवं शठ प्राणी के वाग्मल को विनष्ट करने के कारण भी उसका गीर्मला नाम हुआ है ।६-१३। अनध्याय के दिनों में शाब्दिक (वैयाकरण), तार्किक, एवं वैदिक विद्वान् शास्त्रों को पढ़ते पढ़ाते हैं, जिससे उनके मुख से निकले हुए शुद्ध और अशुद्ध शब्द मलरूप बताये जाते हैं उनके शमन करने के नाते भी उसका उपरोक्त नाम सार्थक हुआ है । आश्विन द्वितीया के दिन प्रेत (पितर) लोग अपना संचार करते रहते है, अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, आज्यपा, तथा सोमपा आदि पितृ पितामह भी उस समय संचार

---

१. षड्भागा ।

पुत्रैः पौत्रैश्च दौहित्रैः स्वधामन्त्रैः सुपूजिताः । श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यात्यतः प्रेतसंचराः ।।१७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे तदा ।।१८
द्वितीयायां महोत्सर्गे नारकीयाश्च तर्पिताः । पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे विबंधनाः ।।
भ्रामिता नर्तितास्तुष्टाः स्थिताः सर्वे यदृच्छया ।।१९
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावहः । ततो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ।।२०
अस्यां निजगृहे पार्थ न भोक्तव्यमतो बुधैः । स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।२१
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णालंकारवस्त्राद्यैः पूजासत्कारभोजनैः ।।२२
सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपत्तिगाः । पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ।।२३
मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयायां पुनर्नृप । पितृमातृस्वसारौ ये तृतीयायां तयो करात् ।।२४
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् । सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम् ।।२५
धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थवर्द्धनम् । व्याख्यातं सकलं स्नेहात्सरहस्यं मया तव ।।२६

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितो जगति सत्त्वरसौहृदेन ।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति[1] प्राप्नोति वित्तमथ[2] भोज्यमनुत्तमं सः ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
यमद्वितीयाव्रतमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

(गमन) करते रहते हैं और उसी दिन पुत्र पौत्र, एवं दौहित्रों द्वारा स्वधा मंत्रों के उच्चारण पूर्वक श्राद्ध-दान रूपी यज्ञों से तृप्त होते हैं इसलिए भी उसका प्रेत संचरा नाम हुआ है । युधिष्ठिर ! उसी प्रकार कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था, जिससे नारकीयों को अत्यन्त तृप्ति हुई थी । पापों से मुक्त होकर सभी लोग बन्धन हीन होकर यथेच्छ भ्रमण करते, नृत्य करते हुए अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । क्योंकि उस महोत्सव के सुसम्पन्न होने पर यमपुरी में अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इसीलिए इसका यमद्वितीया नाम हुआ है । पार्थ ! इस द्वितीया के दिन विद्वानों को चाहिए कि अपने घर भोजन न करके भगिनी के यहाँ उसके बनाये हुए उस सुस्वादु और पुष्टिवर्धक भोजन से आत्मतुष्टि करें। उस अवसर पर स्वर्णाभरण एवं उत्तम वस्त्रादि के दान पूर्वक सत्कार भोजनादि द्वारा समस्त भगिनियों की पूजा करनी चाहिए। युधिष्ठिर ! सर्वप्रथम पितृव्य-भगिनी, इसकी मामा की पुत्री तथा तीसरी माता-पिता की भगिनी के हाथ के भोजन करने के उपरांत अपनी सहोदरा भगिनी के यहाँ भोजन करना चाहिए। इस प्रकार सभी भगिनियों के हाथ का सुस्वादु भोजन करना आवश्यक होता है, जो पुष्टिकारक, धन्य और यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थ की वृद्धि करता रहता है। इस प्रकार स्नेह वश मैंने तुम्हें रहस्य समेत इसकी सम्पूर्ण व्याख्या सुना दी। जिस तिथि में यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था, उस तिथि के दिन जो मनुष्य अपनी भगिनी के हाथ का सुस्वादुपूर्ण भोजन करता है, उसे उत्तम भोजन समेत धन की प्राप्ति सदैव होती रहती है।१४-२७
श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में द्वितीया व्रत माहात्म्य नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

---

१. प्रयत्नात् । २. अथ सौख्यम् ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अशून्यशयनमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं धर्मार्थदिः सुसाधनम् । गार्हस्थ्यं तच्च भवति दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ।।१
पत्नीहीनः पुमान्पत्नी भर्त्रा विरहिता तथा । धर्मकामार्थसंसिद्धी न स्यातां मधुसूदन ।।२
तद्ब्रूहि देवदेवेश विधवा स्त्री न जायते । व्रतेन येन गोविन्द पत्न्याऽविरहितो नरः ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

अशून्यशयनीं नाम द्वितीयां शृणु तां मम । यामुपोष्य न वैधव्यं प्राप्नोति स्त्री युधिष्ठिर ।।४
पत्नीविमुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते । शेते जगत्पतिर्विष्णुः स्त्रिया सार्द्धं यदा किल ।।५
अशून्यशयनंनाम तदा ग्राह्या च सा तिथिः । उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।।६
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे नृपसत्तम । स्नानं नद्यां तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ।।७
कृत्वा पितॄन्मनुष्यांश्च देवान्संतर्प्य भक्तिमान् । स्थण्डिलं चतुरस्रं तु मृण्मयं कारयेत्ततः ।।८
तत्रस्थं श्रीधरं श्रीशं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह । नैवेद्यपुष्पधूपाद्यैः फलैः कालोद्भवैः शुभैः ।।९

अध्याय १५

अशून्यशयन माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—भगवान् ! गार्हस्थ्य धर्म को धर्म, काम एवं अर्थ का साधक बताया है, जो दम्पत्ति (स्त्री-पुरुष) के अत्यन्त प्रसन्नता पूर्ण रहने पर सुसम्पन्न किया जा सकता है । किन्तु मधुसूदन ! पत्नी हीन पुरुष और पति हीना स्त्री के धर्म कामार्थ की सिद्धि कभी नहीं हो सकती है, अतः देवाधिदेव गोविन्द ! उस व्रत के विधान बताने की कृपा कीजिये, जिसके अनुष्ठान द्वारा स्त्री कभी भी विधवा न हो सके और पुरुष को पत्नी वियोग न हो ।१-३

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! द्वितीया के दिन सुसम्पन्न होने वाले अशून्य शयन नामक व्रत की व्याख्या तुम से कह रहा हूँ, उसके अनुष्ठित होने पर स्त्री कभी विधवा नहीं हो सकती और पुरुष को पत्नी वियोग नहीं होता । जिस समय जगत्पति भगवान् विष्णु अपनी प्रिया समेत शयन करते हैं, उन्हीं दिनों से वह अशून्य शयन नामक व्रत आरम्भ होता है, जिसमें उपवास एवं अयाचित अन्न का नक्त भोजन करना बताया गया है । नृपसत्तम ! इसके व्रती को चाहिए कि श्रावण मास की कृष्ण द्वितीया के दिन नदी, सरोवर अथवा गृह कूप पर ही स्नान करके देव ऋषि एवं पितरों के तर्पण करें । पश्चात् श्रद्धा भक्ति समेत उसे चौकोर मिट्टी की वेदी के ऊपर भगवान् श्रीधर को प्रतिष्ठित करके नैवेद्य, पुष्प, धूप एवं सामयिक फल आदि द्वारा लक्ष्मी समेत उन श्रीश की पूजा करे और अनन्तर इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक

इममुच्चारयेन्मन्त्रं प्रणम्य जगतः पतिम् । श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधामञ्छ्रीपतेऽव्यय[१] ॥१०
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् । अग्नेयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवताः ॥
पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः ॥११
लक्ष्म्या वियुज्यते कृष्ण न कदाचिद्यथा भवान् । तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु ॥१२
लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१३
एवं प्रसाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्या हरेस्तथा । चन्द्रोदये स्नानपूर्वं पञ्चगव्येन संयुतम् ॥
विप्राय दक्षिणां दद्यात्स्वशक्त्या फलसंयुताम् ॥१४
अनेन विधिना राजन्यावन्मासचतुष्टयम् । कृष्णपक्षे द्वितीयायां प्रागुक्तविधिमाचरेत् ॥१५
कार्त्तिके चाथ सम्प्राप्ते शय्यां श्रीकान्तसंयुताम् । सोपस्करां सोदकुम्भां सान्नां दद्याद् द्विजातये ॥१६
प्रतिमासं च सोमाय अर्घ्यं दद्यात्समन्त्रकम् । दध्यक्षतैर्मूलफलै रत्नैः सौवर्णभाजनैः ॥१७
गगनांगणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव । आभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥१८
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् । तस्य जन्मत्रयं यावद्गृहभङ्गो न जायते ॥१९
अशून्यशयनश्चैव धर्मकामार्थसाधकः । भवत्यव्याहतैश्वर्यः पुरुषो नात्र संशयः ॥२०

उन जगत्पति की आराधना करे—भृगुलता को धारण करने वाले श्रीकान्त , श्रीधाम, श्रीपते एवं अव्यय मेरा यह गार्हस्थ्य धर्म का जिसके द्वारा धर्म अर्थ तथा काम की सफलता होती है, कभी विघटन न हो, उसी प्रकार मेरे अग्नि और देवता का भी न नाश हो तथा दम्पती (स्त्री-पुरुष) के भेद से मेरे पितरों का भी कृष्ण ! जिस प्रकार आप को लक्ष्मी वियोग कभी नहीं होता है, देव ! उसी भाँति मेरा स्त्री संबंध कभी नष्ट न हो । नारद ! जिस भाँति आप का शयन गृह लक्ष्मी से शून्य कभी नहीं होता है, उसी प्रकार मेरी भी शय्या प्रत्येक जन्म में सदैव स्त्री संयुक्त ही बनी रहे । इस प्रकार लक्ष्मी समेत भगवान् की प्रार्थना करने के उपरांत चन्द्रोदय होने पर पंचगव्य का प्राशन पूर्वक स्नान करके ब्राह्मण को फल समेत यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करना चाहिए ।४-१४। राजन् ! इसी विधान द्वारा चारों मास की कृष्ण द्वितीया के दिन इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए कार्तिक मास की कृष्ण द्वितीया के दिन पूजनोपरांत ब्राह्मण को इस भाँति की शय्या का दान करना चाहिए, जिस पर लक्ष्मी समेत भगवान विष्णु प्रतिष्ठित हो और उपस्कर (छत्र, कमण्डलु, खडाऊँ, जूता, भोजन पात्र आदि) उदक पूर्ण घट एवं पुत्र आदि अपने सभी अंगों से पूर्ण हो । प्रत्येक मास में सोमदेव को मंत्रोच्चारण पूर्वक दही, अक्षत, मूल फल, रत्न और सुवर्ण पात्र के अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । पश्चात् उनकी इस प्रकार प्रार्थना करे कि—गगन प्राङ्गण के उत्तमदीप, क्षीर सागर के मन्थन द्वारा उत्पन्न होने वाले एवं दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाले आप लक्ष्मी जी के अनुज को बार-बार नमस्कार है ।१५-१८। इस विधान द्वारा जो पुरुष चारों मास के व्रत की समाप्ति करता है, उसका तीन जन्म तक गार्हस्थ्य धर्म अत्यन्त दृढ़ रहता है और इस अशून्य शयन नामक व्रतानुष्ठान द्वारा उस पुरुष को अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, जिससे धर्म, अर्थ एवं कामनाओं की सफलता सदैव होती

---

१. अच्युत ।

नारी च पार्थ धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि । या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ।।२१
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम । प्राप्नोति जन्मत्रितयं न सा पाण्डुकुलोद्वह ।।२२
एषा ह्यशून्यशयना नृपते द्वितीया ख्याता समस्तकलुषापहराऽद्वितीया ।
एतां समाचरति यः पुरुषोऽथ योषित्प्राप्नोत्यसौ शयनमग्र्यमहार्हभोग्यम् ।।२३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
अशून्यशयनव्रतमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

मधूकतृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

फाल्गुनेऽप्यसिते पक्षे तृतीयायामुपोषिता । प्रातः स्थित्वा ब्रह्मचर्ये जटामुकुटशोभिता ।।१
गोधारथगतां देवीं रुद्रध्यानपरायणाम् । पूजयेद्गन्धकुसुमैर्दीपालक्तकचन्दनैः ।।
केसरैर्मधुरैर्द्रव्यैः स्वर्णमाणिक्यपूजया ।।२
ॐ भूषिका देवभूषा च भूषिका ललिता उमा । तपोवनरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु ।।३
दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नमनाः सदा । अवैधव्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि ।।४

रहती है—इसमें संशय नहीं । पार्थ ! इसी प्रकार जो स्त्री भी इसी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करती है, उसके विषय में उसके बन्धु वर्ग को किसी प्रकार का शोक कभी नहीं करना पड़ता है तथा पाण्डव सत्तम ! तीन जन्म तक उसे विधवा, दुर्भगा, एवं पति त्याग दुःखों से दुःखी नहीं होना पड़ता है । नृपते ! इस भाँति इस अशून्य शयन नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर, जो कृष्ण द्वितीया के दिन सुसम्पन्न होता है और इसीलिए वह द्वितीया समस्त पापों के अपहरण करने में प्रख्यात हो गयी है, स्त्री पुरुष सभी व्रती को उत्तम शयन समेत अनुपम भागों की प्राप्ति होती है ।१९-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
अशून्य शयन व्रत माहात्म्य वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

मधूकतृतीयाव्रत नामक वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन कृष्ण तृतीया के दिन उपवास करने के लिए उसके पूर्व दिन से ही ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । उस दिन प्रातः काल स्नान-नित्यकर्म के उपरांत गोधा के रथ पर सुखासीन एवं रुद्र के ध्यान में तन्मय देवी जी की गंध, पुष्प, चन्दन, दीप, अलक्तक (महोवर), केसर, नैवेद्य, तथा सुवर्ण मणि समेत अत्यन्त भक्ति श्रद्धा से पूजा करके इस प्रकार की प्रार्थना करे कि—आप अलङ्कार रूप हैं, क्योंकि देवाधिदेव भगवान् शंकर आप के द्वारा ही सुशोभित होते हैं और समलंकृत देवियो में आप अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण हैं अतः तपोवन में विहार करने वाली गौरी देवी मुझे सौभाग्य प्रदान करें, अत्यन्त प्रसन्न होकर मेरे दुर्भाग्य के शमन पूर्वक उत्तम कुल में जन्म और अवैधव्य अगले जन्म के लिए भी प्रदान

अङ्गेऽङ्गे च ममोपाङ्गे पर्वेपर्वे स्थितामृतम् । सुखदृष्टिस्पर्शरसं गौरी सौभाग्यं यच्छतु ॥५
एवमुच्चार्य मन्त्रांश्च नारीज्ञानवती सती । पूजयेद्ब्राह्मणोक्तैस्तु मन्त्रैर्मुखसुवासिनी ॥६
जीरकैः कटुहुण्डैश्च लवणैर्गुडसर्पिषा । हृद्यैरार्द्रैः फलैः स्वर्णैर्मनोज्ञैः पुष्पबन्धनैः ॥७
कुसुमैः कुंकुमैर्गन्धैः कालेयागुरुचन्दनैः । सिन्दूरेणातिरक्तेन वस्त्रैर्नानाविधैः शुभैः ॥८
नेत्रैरनेकदेशोत्थैः पूपकैस्तिलतण्डुलैः । अशोकैश्च विगुणकैर्घृतपूर्णैस्तु मोदकैः ॥९
इत्येवमादिनैवेद्यैः पूजयित्वा महाद्रुमम् । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥१०
एतत्करोति या पुत्री तृतीयाव्रतमुत्तमम् । ततः प्राप्स्यति दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये श्रीधरं प्रति ॥११
एतद्व्रतं मयाख्यातं यास्यन्ति शाश्वतीः समाः । व्याख्यातं कश्यपेनादौ रुक्मिण्या व्रतमुत्तमम् ॥१२
याश्चरिष्यन्ति ताः सर्वा भविष्यन्ति निरामयाः । अङ्गप्रत्यङ्गसुभगा लोकदृष्टिमनोहराः ॥१३
स्थित्वा वर्षशतं चान्ते ततो रुद्रपुरं शुभम् । यास्यन्ति हंसयानेन किङ्किणीशब्दनादिना ॥१४
तत्र त्वारमयिष्यन्ति स्वभर्तॄन्वत्सरान्बहून् । दिव्यभोगभुजो हृष्टाः सिद्ध्यष्टकसमन्विताः ॥१५

अर्घं महार्घमणिकुंकुमकेसराढ्यं स्रग्गन्धमुग्धमुखरालि कुलोपगीतम् ।
दत्त्वा फलाक्षतयुतं मधुपादपस्य गौरीव लोकमहिता भवतीह नारी ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण-युधिष्ठिरसम्वादे
मधूकतृतीयाव्रतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६

करें । मेरे शरीर के प्रत्येक अंगों, उपाङ्गों और अस्थि ग्रन्थियों में भी अमृत भरा रहे तथा गौरी देवी मुझे इस भाँति का सौभाग्य प्रदान करें, जो दृष्टि, सुख, और स्पर्श आदि सुखों का अगाध सागर हो । इस प्रकार ज्ञानवती एवं सती स्त्री को ब्राह्मणोक्त मंत्रों द्वारा पूजन प्रार्थना के उपरांत जीर, कटु, लवण, गुड़, घी, सुस्वादु मनोहर फल, स्वर्ण की भाँति मनोज्ञ पुष्प-बन्धन, कुसुम, कुंकुम, गंध, कालेय, अगरु, चन्दन, सिन्दूर से अतिरञ्जित, अनेक भाँति के वस्त्र, अनेक देश के नेत्र पूआ, तिल, तण्डुल, अशोक-पुष्प और मोदक आदि नैवेद्यों द्वारा महावृक्ष मधूक (महुवे) की पूजा करनी चाहिए । पश्चात् प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा प्रदान करे ।१-१०। इस प्रकार इस दुहिता व्रत को जो कन्या सविधान सुसम्पन्न करेगी उसे भगवान् श्रीधर की कृपा से इस त्रैलोक्य के सुन्दर एवं दुष्प्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति अनेक वर्ष तक होती रहेगी । सर्वप्रथम कश्यप जी ने इस व्रत विधान की व्याख्या रुक्मिणी जी को बताया था । इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियों के अंग प्रत्यग आरोग्य पूर्वक अत्यन्त सुभग और लोक दृष्टि के लिए अत्यन्त सुखावह होंगे । सौ वर्ष तक इस अनुपम सुखानुभव करने के उपरान्त उन्हें हंसयान पर बैठकर, जो कि किंकिणी शब्दों से अत्यन्त मुखरित रहता है, रुद्रलोक की प्राप्ति होगी । वहाँ पहुँच कर दिव्य भोगों के उपभोग पूर्वक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट रहकर आठों सिद्धियों समेत वह अपने पति के साथ अनेक वर्षों तक रमण करती रहेगी । इस प्रकार बहुमूल्य मणि, कुंकुम, केसर पूर्ण माला जिसकी गन्ध से मुग्ध होकर भ्रमरकुल गुंजते हो, तथा फल समेत अक्षत उस मधु के वृक्ष को समर्पित करने से वह स्त्री गौरी देवी की भाँति लोक में पूजनीय होती है ।११-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
मधूकतृतीयाव्रत वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मेघपालीतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

मेघपालीव्रतं कृष्ण कदाचित्क्रियते नृभिः । किं पुण्यं किमनुष्ठानं कीदृग्वल्ली स्मृता तु सा ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु तृतीयायां युधिष्ठिर । मेघपाल्यै प्रदातव्यो भक्त्या स्त्रीभिर्नृभिस्तथा ।।२
अर्घो विरूढैर्गोधूमैः सप्तधान्यसमन्वितैः । तिलतण्डुलपिण्डैर्वा दातव्यो धर्मलिप्सुभिः ।।३
ताम्बूलसदृशैः पर्वैं रक्ता वल्ली समञ्जरी । वाटीषु ग्रामनार्गेषु प्रोत्थिता पर्वतेऽपि च ।।४
मेघपाल्यां धान्यतैलगुडकुंकुमहैमनान् पदानपि च कुर्वन्ति जना वाणिज्यजीवनाः ।।५
पापं सत्यानृतं कृत्वा द्रव्यलुब्धाः फलान्विताः । अर्घ्यं दत्त्वा मेघपाल्यै नाशयन्ति क्षणादिह ।।६
मानोन्मानैर्जन्म मध्ये यत्पापं कुत्रचित्कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति व्रतेनानेन पाण्डव ।।७
मेघपाली शुभे स्थाने शुभे देशे समुत्थिता । पूजनीया वरस्त्रीभिः फलैः पुष्पैस्तथाक्षतैः ।।८
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च दाडिमैः करवीरकैः । गन्धधूपैर्दधिदीपैर्विरूढैर्धान्यसञ्चयैः ।।९

अध्याय १७

मेघपालीतृतीयाव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! कदाचित् मनुष्यों को मेघपाली नामक व्रत का अनुष्ठान करते देखा गया है, इसलिए मुझे जानने की इच्छा है कि उसके सुसम्पन्न करने से किस पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसके अनुष्ठान के विधान तथा वह वल्ली किस भाँति की होती है बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! आश्विन मास की कृष्ण तृतीया के दिन श्रद्धा भक्ति समेत स्त्री पुरुष को मेघपाली व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए । उसमें अर्घ्य प्रदान पूर्वक गेहूँ, सप्त धान्य समेत तिल तण्डुल के पिंड प्रदान करना उन धर्मार्थियों को बताया गया है । ताम्बूल के समान उसके पर्व (पारे) और मंजरी (गुच्छे) विभूषित रक्त वर्ण की वल्ली होती है । गाँवों, मार्ग के छोटे-छोटे पुरवे और पर्वतों में वह ऊपर खड़ी की जाती है । मेघपाली तृतीया के दिन धान्य, तैल, गुड़, कुंकुम एवं सुवर्ण खण्डों समेत उसे व्यापारी लोग प्रत्येक स्थानों में रखते है अर्थात् उसी व्यापार द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं । द्रव्य के लोभ वश वे सदैव सत्य, असत्य के व्यवहार करते रहते हैं जिससे उन्हें पाप भागी होना पड़ता है । उस पाप से मुक्त होने के लिए मेघपाली के दिन अर्घ्य प्रदान उन्हें अवश्य करना चाहिए जिससे उनके समस्त पाप क्षण मात्र में नष्ट हो जाँय।२-६। पाण्डव ! जीवन में मानापमान द्वारा जहाँ कहीं जो कुछ पाप होता है, वह समस्त पाप इस व्रतानुष्ठान द्वारा विनष्ट हो जाता है । शुभ देश और शुभ स्थान में समुत्थित मेघपाली की पूजा सुन्दरी स्त्रियों को फल, पुष्प, अक्षत, खजूर, नारियल, अनार, करवीर कनेर के पुष्प, गंध, धूप, दीप तथा बढ़े हुए धान्यों के संचय समेत अर्घ्य प्रदान उन्हें रक्त वस्त्र से

रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य पिष्टातकविभूषिताम् । कृत्वार्घ्यः सम्प्रदातव्यो मन्त्रेणानेन भारत ॥१०
वेदोक्तेन द्विजो विद्वान्स्तच्च तस्यै निवेदयेत् । इत्येवं पूजयित्वा तां मेघपालीं पुमान्स्ततः ॥११
नारी वा पुरुषव्याघ्र प्राप्नोति परमां श्रियम् । स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये सुखसौभाग्यगर्विते ॥१२
विष्णुलोकमवाप्नोति देहान्ते यानसंस्थितः । कुलानि सप्त नयति स्वर्गं स्वानि रसातलात् ॥
उद्धृत्य नात्र सन्देहस्त्वया कार्यो युधिष्ठिर ॥१३

नरकभीरुतया ददाति योऽर्घ्यं फलाद्यनुयुतं ननु मेघपालेः ।
उन्मानकूटकपटानि कृतानि यानि पापानि हन्ति सवितेव तमः प्ररोहान् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
मेघपालीतृतीयाव्रतवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

रूपरम्भाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्त्रीणां सम्पद्यते येन मर्त्यलोकं गृहं शुभम् । पतिप्रेम तथात्यन्तं तन्मे ब्रूहि व्रतं शुभम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

एकदा पार्वतीशम्भू स्थितौ मुनिसुरावृतौ । कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ॥२

आच्छादित और पीठी से विभूषित करके अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । भारत ! वैदिक ब्राह्मण द्वारा मंत्रोच्चारण करते हुए मेघपाली की पूजा पूर्वक उन्हें इस प्रकार के अर्घ्य प्रदान करने पर उस स्त्री या पुरुष को उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा पुरुष व्याघ्र ! इस मर्त्य लोक में सौ वर्ष के गर्वपूर्ण सुख सौभाग्य के अनुभव करने के उपरांत उसे उत्तम यान द्वारा विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! वह अपने सात पीढ़ियों को रसातल से स्वर्ग पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं । अतः तुम इस व्रतानुष्ठान द्वारा अपने कुलों का उद्धार अवश्य करो । जो पुरुष नरक भीरु होकर फल समेत अर्घ्य प्रदान मेघपाली के लिए करता है, उसके कूट-कपट तुला मान आदि समस्त पाप सूर्य द्वारा अंधकार की भाँति विनष्ट हो जाते हैं।७-१४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
मेघपाली तृतीया व्रत वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

रूपरम्भा नामक व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—इस मर्त्य लोक में स्त्रियों को शुभगृह और अत्यन्त पति-प्रेम किस व्रतानुष्ठान द्वारा प्राप्त होता है, बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—एक समय पार्वती और शिव जी कैलास शिखर के उत्तम स्थान पर बैठे हुए थे, जो

नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते । मुनिकिन्नर संघुष्टे गेयनृत्यसमाकुले ।।३
शङ्करः पार्वतीं प्राह किं त्वया सद्व्रतं कृतम् । वामारूपेण मेऽत्यन्तं प्रियासि वरवर्णिनी ।।४
आगच्छ जानुदेशं तु सुप्रसन्ना तथा प्रिये ! ब्रूहि चावितथं सर्वं त्वया पार्वति यत्कृतम् ।।५
इत्युक्त्वा प्रणता भूत्वा गौरी प्राह शिवं शुभा । तृतीयायां मया चीर्णं पुरा रम्भाव्रतं शुभम् ।।६
तेन मे त्वं मनोहारी भर्ता लब्धोऽसि शङ्कर । ईश्वरी चाप्यहं स्त्रीणां तव देहार्द्धहारिणी ।।७

ईश्वर उवाच

कीदृशं तद्व्रतं भद्रे सर्वसौख्यप्रदायकम् । ब्रूहि पार्वति यत्नेन यच्चीर्णं पितुरन्तिके ।।८

गौर्युवाच

पुराहं देव तिष्ठामि कुमारी भवने पितुः । हिमवद्गह्वरे रम्ये सखीगणसमावृता ।।९
ततोऽहं मेनया प्रोक्ता स्वपित्रा च हिमाद्रिणा । पुत्रि रम्भाव्रतं कार्यं वरसौभाग्यवर्धनम् ।।१०
येन प्रारब्धमात्रेण सर्वं सम्पत्स्यते तव । सौभाग्यं स्त्रीगणैश्वर्यं महादेवीपदं तथा ।।११
एवं करोमि वै मातर्मन चोक्तं पुरस्त्वया ! मनोभिलषितं येन येन प्राप्नोमि शङ्करम् ।।१२

मेनोवाच

अद्य शुक्लतृतीयायां स्नात्वा नियमतत्परा । कुरु पार्श्वेषु पञ्चाग्नीञ्ज्वालमानान्हुताशनान् ।।१३

अनेक भाँति के धातुओं द्वारा चित्र विचित्र, अनेक भाँति के वृक्ष और लताओं से आच्छन्न तथा भाँति-भाँति के पुष्पों से सुशोभित था। महर्षियों और देवों का समाज भी वहाँ उपस्थित था। सभासदों के मनोविनोदार्थ किन्नरगण मिलकर वहाँ सुन्दर कलापूर्ण नृत्य कर रहे थे। उसी बीच भगवान् शंकर ने पार्वती जी से कहा—वर्णिनि ! तुमने कौन सा उत्तम व्रत सुसम्पन्न किया है, जिसके द्वारा तुम मेरी पत्नी होकर मुझे अत्यन्त प्रिय हो गई हो। प्रिये, आओ, मेरे इस जानु प्रदेश पर सुशोभित होकर इस हर्ष विभोर जन समाज में बताओ। पार्वति ! इसके लिए तुमने जो कुछ किया है, उसे सत्यतः कहना आरम्भ करो। उनके इस प्रकार कहने पर विनय विनम्र होकर पार्वती जी ने शिव जी से कहा—शंकर ! मैंने पहले समय (बाल्यावस्था) में तृतीया के दिन रम्भाव्रत के अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था, जिसके द्वारा तुम मेरे मनोहारी भर्ता प्राप्त हुए हो और तुम्हारे देह की अर्धांगिनी होती हुई समस्त स्त्रियों की ईश्वरी भी हुई हूँ।२-७

ईश्वर बोले—भद्रे, पार्वति ! समस्त सौख्य प्रदान करने वाला यह व्रत किस भाँति किया जाता है, जिसे तुमने अपने पिता के यहाँ रहकर सुसम्पन्न किया था।८

गौरी बोली—देव ! पहले जिस समय मैं कुवांरी थी और अपने सखियों के साथ पिता के उस सुन्दर भवन में क्रीड़ा करती थी, उन्हीं दिनों मेरे माता मेना और पिता हिमालय ने कहा—पुत्रि ! सौभाग्य वर्द्धनार्थ इस रम्भा व्रत का अनुष्ठान करना आरम्भ करो, जिससे तुम्हें सौभाग्य, स्त्रीगणों के ऐश्वर्य और महादेवी पद की प्राप्ति पूर्वक सभी कुछ की प्राप्ति होती रहे। मैंने कहा—मातः जो कुछ आपने कहा है, मैं उसे अवश्य करूँगी, जिससे मुझे समस्त अभिलषित की प्राप्ति पूर्वक शंकर की प्राप्ति होगी।९-१२

मेना बोली—आज शुक्ल पक्ष की तृतीया है, नियम पालन में तत्पर होकर स्नान करके पञ्चाग्नि

गार्हपत्यं दक्षिणाग्निमन्यं चाहवनीयकम् । पञ्चमं भास्करं तेज इत्येते पञ्च वह्नयः ।।१४
एतेषां मध्यतो भूत्वा तिष्ठ पूर्वमुखा चिरम् । चतुर्भुजां ध्यानपरां पद्द्वयोपरि संस्थिताम् ।।१५
मृगाजिनच्छन्नकुचां जटावल्कलधारिणीम् । सर्वाभरणसंयुक्तां देवीमभिमुखीं कुरु ।।१६
महालक्ष्मीर्महाकाली महामाया महानतिः । गङ्गा च यमुना सिन्धुः शतद्रुर्नर्मदा मही ।।१७
सरस्वती वैतरिणी सैव प्रोक्ता महासती । तस्याश्च प्रेक्षणपरा भव तद्भावभासिता ।।१८
होमं कुर्युर्यतात्मानो ब्राह्मणाः सर्वतोदिशम् । देव्याः पूजा प्रकर्तव्या पुष्पधूपादिना ततः ।।१९
बहुप्रकारनैवेद्यं नैवेद्यं घृतपाचितम् । स्थापयेत्पुरतो देव्याः पृथक्सौभाग्यमेव च ।।२०
जीरकं कडुहुण्डश्चाप्यपूपान्कुसुमं तथा । निपाचां पावनतरां लवणं शर्करां गुडम् ।।२१
पुष्पमण्डपिका कार्या गन्धपुष्पाधिवासिता । पद्मासनेन संतिष्ठेद्यावत्परिणतो रविः ।।
ततः प्रणम्य रुद्राणीं मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।।२२
वेदेषु सर्वशास्त्रेषु दिवि भूमौ धरातले । दृष्टः श्रुतश्च बहुशः शङ्काविरहितः स्तवः ।।२३
त्वं शक्तिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती । पतिं देहि गृहं देहि वसु देहि नमोस्तु ते ।।२४
एवं संक्षमयेद्देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः । देहि भक्त्या गृहं रम्यं विचित्रं बहुभूमिकम् ।।
आच्छाद्यद्वारकेदारकपोतादिविभूषितम् ।।२५

तापने के लिए अपने चारों ओर प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करो। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय और अन्य अग्नि की स्थापना अपने चारों ओर करके पाँचवा भास्कर का तेज उसमें सम्मिलित किया गया है। इसे ही पंचाग्नि कहा जाता है। इन अग्नियों के मध्य पूर्वाभिमुख बैठकर देवी को प्रसन्न करो, जो चार भुजाओं को धारण किये दोनों चरण पर स्थित होकर (शिव) के ध्यान में निमग्न हैं और जटा वल्कल धारण पूर्वक मृगचर्म से कुच को आवृत किये समस्त आभूषणों से विभूषित हैं। महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया महासरस्वती, गंगा, यमुना, सिंधु, शतद्रु नर्मदा, मही, सरस्वती तथा वैतरणी आदि नाम उन्हीं महासती के है। इसलिए उनके सम्मुख अपलक नेत्रों से उन्हें देखती हुई तद्भाव में निमग्न हो जाओ।१३-१८। यतात्मा ब्राह्मणों द्वारा उनके चारों ओर हवन करना चाहिए। पुष्प, धूप, दीपादि द्वारा देवी जी की पूजा करके अनेक भाँति के नैवेद्य, जो घृतयुक्त हों, अपने सौभाग्यार्थ देवी जी को अर्पित करें। जीरे, कडुवे मसाले मिश्रित पूआ, कुसुम, अत्यन्त पावन निपाचा, लक्षण, शक्कर, गुड़ के अर्पण पूर्वक गंध पुष्प से अधिवासित पुष्प का मंडप उनके लिए बनाना चाहिए। उसमें देवी के सम्मुख पद्मासन द्वारा जब तक सूर्यास्त न हो, आसन बाँधकर बैठना चाहिए। पश्चात् भगवती रुद्राणी को करबद्ध प्रणाम करते हुए मंत्रोच्चारण पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे—समस्त वेदों और शास्त्रों में यह लिखी हुई बात स्वर्ग तथा इस धरातल में अत्यन्त प्रख्यात है कि आप की स्तुति में किसी प्रकार की शंका सम्भव नहीं है—शक्ति, स्वधा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती तुम्हीं हो, अतः देवी ! गृह समेत पति प्रदान करने की कृपा करें, मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ।१९-२४। इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करके बार-बार अनुनय विनय करते हुए कि मुझे रम्य, विचित्र एवं अत्यन्त भूमिवाले गृह को प्रदान कीजिये, जो अनेक भाँति के दरवाजे एवं कमरे से पूर्ण हो, तथा सुन्दर भित्ति (दीवाल), स्तम्भ, खिड़कियों, मणि माण्डित तोरण से आवृत

कुडयस्तम्भगवाक्षाढचं मणिमण्डिततोरणम् । पद्मरागमहानीलवज्रवैडूर्यभूषितम् ॥२६
गृहदानविधानेन ब्राह्मणाय यशस्विने । सपत्नीकाय सम्पूज्य सर्वोपस्करसंयुतम् ॥२७
सुवासिनीभ्यस्तद्देयं नैवेद्यं सूर्यसंस्थितम् । निर्वर्त्य विधिनानेन तत्पश्चात्क्षमयेदघम् ॥२८
दाम्पत्यानि च भोज्यानि चतुर्थ्यां मधुरैः रसैः । इत्युक्तमुमया चीर्णं हर रम्भाव्रतं परम् ॥२९
व्रतान्तेऽगस्त्यमुनये दत्तं गृहवरं शुभम् । लोपामुद्रा प्रिया पत्नी तस्य वेश्मनि पूजिता ॥३०
तेन धर्मेण देव त्वं भर्ता लब्धोऽसि शङ्करः । अर्द्धाङ्केऽपि स्थिता तेन याश्चरिष्यन्ति योषितः ॥३१
कौंतेय पुरुषो वापि ख्यातं रम्भाव्रतं भुवि । तासां पुत्रा गृहं भोगाः कुलवृद्धिर्भविष्यति ॥३२
स्त्रीणां चातुर्यसौभाग्यं गार्हस्थ्यं सर्वकामिकम् । बालावृद्धासुमध्यानां रूपलावण्यबृंहणम् ॥
सपत्नीदर्पदलनं वशीकरणमुत्तमम् ॥३३
हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये आर्यावर्ते मनोहरे । उत्पत्य शोभने वासे पूर्वोत्पन्नधने कुले ॥३४
मृतः शक्रपुरं याति ततो विष्णुपुरं व्रजेत् । ततः शिवपुरं याति व्यासस्य वचनं यथा ॥३५

यद्रम्भया किल भयापहरं ततश्च गौर्या हिमाद्रिभवनस्थितयापि चीर्णम् ।
तस्या व्रतं सुविकरोति रता च धर्मे ब्रह्मेशकेशवपतिं सुखदं लभेत ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
पञ्चाग्निसाधनाख्यं रम्भातृतीयाव्रतं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८

और पद्मराग, महानील, वज्र, वैदूर्य मणि से विभूषित हो, पश्चात् गृहदान विधान द्वारा उस समस्त साधन सम्पन्न गृह को किसी संयमी प्रतिष्ठित ब्राह्मण विद्वान् की सपत्नीक पूजन करके उन दम्पत्ति के लिए अर्पित कर रहे और सूर्यास्त के पूर्व ही सुवासिनी (सधवा) स्त्रियों को नैवेद्य द्वारा तृप्त करके पुनः क्षमा प्रार्थी रहे । अनन्तर चौथ के दिन मधुर रसों के भोजन द्वारा उन दम्पत्ति को संतृप्त करके विसर्जित करे । भगवती उमा ने कहा—हर ! इस भाँति मैंने इस रम्भाव्रत को सविधान सुसंपन्न करके अनन्तर उस शुभ गृह को अगस्त्य मुनि के लिए अर्पित कर दिया था, जिसमें उनकी प्रेयसी पत्नी लोपामुद्रा पूजनीय होकर निवास करती है । देव, शंकर ! उसी व्रत द्वारा मुझे आप भर्तारूप में प्राप्त हुए हैं और उसी के प्रभाव से आपकी अर्धदेहा एवं ईश्वरी हुई हूँ । कौंतेय ! भूतल में अत्यन्त प्रख्यात इस रम्भाव्रत के अनुष्ठान को जो स्त्री अथवा पुरुष सुसम्पन्न करेगा उनके पुत्र, गृह, एवं भोगों की प्राप्ति पूर्वक कुल वृद्धि होती रहेगी । स्त्रियों को चातुर्य, सौभाग्य, गृहस्थ धर्म की समस्त कामनाओं की सफलता, तथा बाला, वृद्धा एवं मध्या स्त्रियों से अधिक रूप लावण्य की प्राप्ति होती है और सपत्नियों के दर्प दलने के लिए यह उत्तम वशीकरण है । इस व्रत के प्रभाव से हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य में स्थित इस मनोहर आर्यावर्त प्रदेश में किसी धनवान कुल में उसका जन्म होता है और देहावसान के समय उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है तथा इन्द्रलोक से विष्णु लोक और विष्णु लोक से शिव लोक की प्राप्ति व्यास जी के वचनानुसार होती है । हिमालय के यहाँ रहती हुई गौरी जी ने इस व्रतानुष्ठान की सविधि समाप्ति की है अतः जो धार्मिक स्त्री इस व्रत को सुसम्पन्न करती है, उसे क्रमशः ब्रह्मा, शिव, और विष्णु की प्राप्ति पतिरूप में होती है ।२५-३६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद विषयक पञ्चाग्नि साधन रूपरम्भातृतीयाव्रत के वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

गोपदतृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये । तृतीयायां चतुर्थ्यां च शुद्धायां प्रतिवत्सरम् ।।१
उपवासेन गृह्णीयाद्व्रतं नाम्ना तु गोपदम् । स्नात्वा नरो वा नारी वा पुष्पधूपविलेपनैः ।।२
दध्यक्षतैश्च मालाभिः पिष्टकैर्वनमालया । अभ्यंजयेद्गवां शृङ्गं खुरं पुच्छान्तमेव च ।।३
दद्याद्गवाह्निकं भक्त्या तासां पूर्वापराह्णयोः । अनग्निपाकं भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ।।४
व्रजंतीनां गवां नित्यमायांतीनां च भारत । पुरद्वारेऽथवा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।।५

अर्घ्यं प्रदद्याद्गृष्टयां वा गवां पादेषु पाण्डव ।
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।।६

।।इति गवां मंत्रः।।

गावो मे अग्रतःसन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।७
इत्थं सम्पूज्य दत्त्वार्घं[1] ततो गच्छेद्गृहाश्रमम् । पञ्चम्यां क्रोधरहितो भुञ्जीत गोरसं दधि ।।८

अध्याय १९

गोपदतृतीयाव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—पार्थ ! प्रतिवर्ष भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में शुद्ध तृतीया और चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक गोपद व्रत को सुसम्पन्न किया जाता है । उस दिन सूर्योदय के समय स्त्री या पुरुष को स्नान के उपरांत पुष्प, धूप, लेपन, दही, अक्षत, माला, पीठी, और वनमाला से गाय की सींग, खुर और अच्छ को विभूषित करना चाहिए । पूर्वाह्ण और अपराह्ण दोनों समय भक्तिपूर्वक गवादिक प्रदान के उपरांत अग्नि पाक और तेल क्षार को त्याग कर अन्य पदार्थ करना चाहिए । भारत ! घर से गौओं के जाते समय और आते समय नगर के दरवाजे अथवा गोष्ठ स्थान में उस सकृत प्रसूता गौ के चरण में अर्घ्य प्रदान करना बताया गया है । पाण्डव ! मन्त्रवेत्ता को इसी निम्नलिखित मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करना चाहिए—माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा दित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय गाम मनागामादिति बधिष्ट ।१-६। पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे कि—मेरे सामने, पीछे, और हृदय स्थान में गौंए स्थित हैं इस प्रकार मैं गौओं के मध्य में सदैव निवास करता हूँ । इस प्रकार पूजन पूर्वक उन्हें अर्घ्य-प्रदान के उपरांत घर जाकर पञ्चमी में शान्त चित्त होकर गोरस (मट्ठा) और दही के

---

१. अर्थम् ।

शालिपिष्टं फलं शाकं तिलमन्नं च शोभनम् । भुक्तावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेत् ॥९
प्रभाते गोपदं दत्त्वा ब्राह्मणाय हिरण्मयम् । क्षमयेच्च गवां नाथं गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥१०
अर्च्यतेऽत्र यथा गावस्तथा गोवर्धनो गिरिः । प्रणम्याच्युतमुद्दिश्य शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥११
गोभक्तो गोव्रतं कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोष्पदम् । सौभाग्यं रूपलावण्यं प्राप्नोति पृथिवीतले ॥१२
गोतर्णकाकुलं गेहं गोकुलं च समासतः । धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरसमृद्धिमान् ॥१३
सन्तानं पूजितं लब्ध्वा ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् । दिव्यरूपधरः स्रग्वी दिव्यालङ्कारभूषितः ॥१४
गन्धर्वैर्गीतवाद्येन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः । दिव्यं युगशतं छित्त्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥१५

यो गोपदव्रतमिदं कुरुते त्रिरात्रं गा वै प्रपूजयति गोरसपूजनाच्च ।
गोविंदमादिपुरुषं प्रणतः सवित्रामालोकमुत्तममुपैति गवां पवित्रम् ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तृतीयाव्रते गोष्पदतृतीयाव्रतं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९

अथ विंशोऽध्यायः
हरिकालीव्रतवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले भाद्रपदस्यैव तृतीयायां समर्चयेत् । सर्वधान्यैस्तां विरूढां भूतां हरितशङ्कुलाम् ॥

साथ चावल चूर्ण, फल, शाक, तिल और उत्तम अन्न का भोजन करना चाहिए । पश्चात् राजेन्द्र ! संयम पूर्वक उस रात्रि में शयन करे । प्रातः काल होने पर स्नान नित्य कर्म को सुसम्पन्न करके सुवर्ण के गोपद ब्राह्मण को अर्पित करने के उपरांत उन गोस्वामी गरुडध्वज गोविन्द की प्रार्थना करे । जिस प्रकार गौओं की पूजा की जाती है, उसी प्रकार गोवर्धन पर्वत की भी अर्चना करके उन अच्युत भगवान् को प्रणाम करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जो भक्त पुरुष भक्तिपूर्वक गोव्रत को सुसम्पन्न कर अपनी शक्ति के अनुसार गोपद ब्राह्मण को अर्पित कर सौभाग्य, और रूप लावण्य की प्राप्ति करता है तथा इस भूतल में उसे गाय, बछड़े, गृह, गोकुल धन-धान्य, शाली, क्षुर एवं समृद्धि की प्राप्तिपूर्वक पूजित संतान और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है । वहाँ देवरूप होकर सुन्दर मालाओं और अलंकारों से विभूषित होने पर गन्धर्व गण और अप्सरायें गीत वाद्य से उसकी सेवा करती हैं । इस प्रकार वहाँ दिव्य सौ युग तक सुख के समय व्यतीत कर पश्चात् विष्णु लोक चला जाता है । इस भाँति जो पुरुष तीन रात्रि में इस गोपद व्रत को सुसम्पन्न करते हुए गौ पूजन, गोरस पूजन और आदिपुरुष गोविन्द का अनुनय विनय पूर्वक सूर्य देव को नमन करता है, उसे उत्तम एवं पवित्र गोलोक की प्राप्ति होती है ।७-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
गोपद तृतीया वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०
हरिकालीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की शुक्ल तृतीया के दिन भगवान् शंकर की वल्लभा हरि काली जी

हरकालीं देवदेवीं गौरीं शङ्करवल्लभाम् ॥१
गन्धैः पुष्पैः फलैर्धूपैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः । प्रीणयित्वा समाच्छाद्य पद्मरागेन भास्वता ॥२
घण्टावाद्यादिभिर्गीतैः शुभैर्दिव्यकथानुगैः । कृत्वा जागरणं रात्रौ प्रभाते ह्युद्गते रवौ ॥३
सुवासिनीभिः सा नेया मध्ये पुण्यजलाशये । तस्मिन्विसर्जयेत्पार्थ हरकालीं हरिप्रियाम् ॥४

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्हरकालीति का देवी प्रोच्यते भुवि । आर्द्रधान्यैः स्थिता कस्मात्पूज्यते स्त्रीजनेन सा ॥
पूजिता किं ददातीह सर्वं मे ब्रूहि केशव ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वपापहरां दिव्यां मत्तः शृणु कथामिमाम् । आसीद्दक्षस्य दुहिता कालीनाम्नी तु कन्यका ॥६
वर्णेनापि च सा कृष्णा नवनीलोत्पलप्रभा । सा च दत्ता त्र्यम्बकाय महादेवाय शूलिने ॥७
विवाहिता विधानेन शङ्खतूर्यानुनादिना । यत्कुर्यादागतैर्देवैर्ब्राह्मणानां च निस्वनैः ॥८
निर्वर्तिते विवाहे तु तया सार्धं त्रिलोचनः । क्रीडते विविधैर्भोगैर्मनसः प्रीतिवर्धनैः ॥९
अथ देवसमानस्तु कदाचित्स वृषध्वजः । आस्थानमण्डपे रम्ये आस्ते विष्णुसहायवान् ॥१०
तत्रस्थश्चाह्वयामास नर्मणा त्रिपुरान्तकः । कालीं नीलोत्पलश्यामां गणमातृगणावृताम् ॥११

की अर्चना करनी चाहिए जो समस्त धान्यों की हरियाली द्वारा विवर्द्धित एवं देव देवी गौरी के नाम से प्रख्यात है। उस दिन गंध, पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य तथा मोदक आदि वस्तुओं से उन्हें प्रसन्न कर पद्मराग से आच्छादित करने के उपरांत घंटा वाद्य, गीत, और शुभ दिव्य कथाओं के प्रवचन द्वारा रात्रि जागरण करना चाहिए। पश्चात् प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के समय सुवासिनी स्त्रियों द्वारा उन्हें किसी पवित्र जलाशय के मध्य में ले जाकर विसर्जित करे। १-४

युधिष्ठिर बोले—भगवान्! भूतल में हरिकाली देवी की अत्यन्त प्रसिद्धि है, उन्हें हरे धान्यों में क्यों स्थापित किया जाता है, तथा सभी वर्ग उनकी पूजा किसलिए करता है और केशव! पूजित होने पर वे कौन फल प्रदान करती हैं आदि सभी बातें बताने की कृपा कीजिये। ५

श्रीकृष्ण बोले—समस्त पापों के हरण करने वाली इस दिव्य कथा को मैं बता रहा हूँ, सुनो! दक्ष प्रजापति के काली नाम की एक कन्या थी, जो वर्ण से भी काली एवं नवीन नीलोत्पल के समान प्रभावपूर्ण थी। दक्ष ने त्रयम्बक महादेव को, जो सदैव त्रिशूल धारण किये रहते है, बुलाकर उनके द्वारा अपनी उस पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार सविधान सुसम्पन्न कराया। उस विवाह में शंख तुरूही आदि वाद्य सभी देव वाद्य एवं सभी देवगण सम्मिलित थे। देवों तथा ब्राह्मणों के वेदध्वनि द्वारा उस मांगलिक संस्कार के समाप्त होने पर भगवान् त्रिलोचन ने उस कन्या को साथ लिये कैलास को प्रस्थान किया। वहाँ रहकर आत्मसंतुष्टि कारक एवं प्रीतिवर्द्धक अनेक भाँति के भोगों द्वारा उसके साथ क्रीडा करना प्रारम्भ किया। उन्हीं दिनों एक दिन वृषध्वज रमणीक मण्डप में सिंहासनासीन होकर जिसमें विष्णु भी उपस्थित थे, हास्य करते हुए अपनी हरिकाली प्रिया को बुलाया जो काली, नील कमल की भाँति श्यामल एवं गण और

एह्येति त्वमितः कासि कृष्णांजनसमन्विते । कालसुन्दरि मत्पार्श्वे धवले त्वमुपाविश ॥१२
एवमुत्क्षिप्तमनसा देवी संक्रुद्धमानसा । श्वासयामास ताम्राक्षी बाष्पगद्गदया गिरा ॥१३
रुरोद सस्वरं बाला तत्रस्था स्फुरिताधरा । किं दैव योगात्ताम्रा गौर्गौरी चेत्यभिधीयते ॥१४
यस्मान्ममोपमा दत्ता कृष्णवर्णेन शङ्कर । हरकालीति वाहूता देवर्षिगणसेविता ॥१५
तस्माद्देहमिमं कृष्णं जुहोमि ज्वलितेऽनले । इत्युक्त्वा वार्यमाणा तु हरकाली रुषान्विता ॥१६
मुमोच हरितच्छायाकान्तिं हरितशाद्वले । चिक्षेप दोषं रागेण ज्वलिते हव्यवाहने ॥१७
पुनः पर्वतराजस्य गृहे गौरी बभूव सा । महादेवस्य देहार्द्धे स्थिता सम्पूज्यते सुरैः ॥१८
एवं सा हरकालीति गौरीशस्य व्यवस्थिता । पूजनीया महादेवी मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१९
हरकर्मसमुत्पन्ने हरकाये हरप्रिये । मां त्राहीशस्य मूर्तिस्थे प्रणतास्तु नमोनमः ॥२०
इत्थं सम्पूज्य नैवेद्यं दद्याद्विप्राय पाण्डव । तां च प्रातर्जले रम्ये मन्त्रेणैव विसर्जयेत् ॥२१
अर्चितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् । हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च ॥२२
एवं यः पाण्डवश्रेष्ठ हरकालीव्रतं चरेत् । वर्षेवर्षे विधानेन नारी नरपते शुभा ॥२३
सा यत्फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व नराधिप । मर्त्यलोके चिरं तिष्ठेत्सर्वरोगविवर्जिता ॥२४
सर्वभोगसमायुक्ता सौभाग्यबलगर्विता । पुत्रपौत्रसुहृन्मित्रनप्तृदौहित्रसङ्कुला ॥२५

मातृगणों से संयुक्त थी—कालि, काले अंजन की भाँति वर्ण वाली काल सुन्दरि आओ, इसी धवल आसन पर मेरे पार्श्व में आकर तुम भी बैठो । इस प्रकार की उपेक्षा दृष्टि से अपमानित होने पर हरिकाली देवी अत्यन्त क्रुद्ध होकर दीर्घ निःश्वास लेने लगी और पश्चात् वह ताम्राक्षी होकर आंसुओं से कण्ठ के अवरुद्ध होने पर गदगदवाणी द्वारा रुदन करने लगी । उस समय उस देवी का अधरोष्ठ क्रोध से फड़क रहा था । उन्होंने कहा—शंकर ! क्या आप के साथ बैठने से गौरवर्ण हो जाऊँगी ; जो आप कृष्ण वर्ण से मेरी उपमा दे रहे हैं । इस देव ऋषि गणों के सामने आप ने हरिकाली नाम से बुलाकर कृष्ण वर्ण की उपमा दी है, इसलिए मैं इस कृष्ण वर्ण की देह को इसी प्रज्वलित अग्नि में आहुति रूप में डाल दूँगी । इतना कहकर हरि काली ने देवों के मना करने पर भी अत्यन्त रोषपूर्ण होने के नाते अपनी श्यामल कान्ति हरी घासों में डालकर देह को प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया । पश्चात् वही गिरिराज के यहाँ गौरी के नाम से उत्पन्न होकर पुनः श्री महादेव जी की अर्धांगिनी हुई, जो देवों से पूजित हैं । पाण्डव ! इस प्रकार गौरी शंकर भगवान् की हरिकाली की कथा जानकर उन महादेव की इस मंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।६-१९। हर कर्म के लिए उत्पन्न हर की देहार्द्धिनी, और हरप्रिये, मेरी रक्षा करो, शिवमूर्तिस्थ आप को विनय पूर्वक नमस्कार कर रहा हूँ । पाण्डव इस भाँति उनकी पूजा करके उन्हें नैवेद्य अर्पित करे, और इसी दिन प्रातः काल मंत्र पूर्वक जल में विसर्जन करे—देवि ! भक्ति पूर्वक मैंने आपकी अर्चना की है, हर कालि, शिवे एवं गौरि अब आप देव लोक चली जांय और पुनः आवाहित होने पर आने की कृपा करती रहे ।२०-२२। पाण्डव राजन् ! प्रति वर्ष जो स्त्री इस हरिकाली व्रत को सविधान सुसम्पन्न करती है, उसे जिस फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ सुनो ! नराधिप ! वह इस मर्त्यलोक में समस्त रोग से मुक्त होकर चिरकाल तक समस्त भोगों का उपभोग करती है उसका सौभाग्य फल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहता है, तथा पुत्र, पौत्र, मित्र, नप्ता (नाती) और दोहित्र आदि परिवार से संयुक्त रहकर सौ वर्ष तक इस भूमण्डल पर सम्पूर्ण भोगों के उपभोग करने

साग्रं वर्षशतं यावद्भोगान्भुक्त्वा महीतले । ततोऽवसाने देहस्य शिवज्ञाना महामुने ॥२६
चिरभद्रा महाकालनन्दीश्वरविनायकाः । तदाज्ञाकिंकराः सर्वे महादेवप्रसादतः ॥२७
सम्पूर्णसूर्यगणसप्तविरूढशस्यां तां वै हिमाद्रितनयां हरकालिकाख्याम् ।
सम्पूज्य जागरमनुद्धतगीतवाद्यैर्यच्छन्ति या इह भवन्ति पतिप्रियास्ताः ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
हरकालीतृतीयाव्रतं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

अथैकविंशोऽध्यायः

ललिताव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अथ पृच्छामि भगवन्व्रतं द्वादशमासिकम् । ललिताराधनं नाम मासमासक्रमेण वा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन यथा वृत्तं पुरातनम् । शङ्करस्य महादेव्याः सम्वादं कुरुसत्तम ॥२
कैलासशिखरे रम्ये बहुपुष्पफलोपगे । सहकारद्रुमच्छन्ने चम्पकाशोकभूषिते ॥३
कदम्बबकुलामोदवशीकृतमधुव्रते । मयूररवसंघुष्टे राजहंसोपशोभिते ॥४
मृगर्क्षगजसिंहैश्च शाखामृगगणावृते । गन्धर्वयक्षदेवर्षिसिद्धकिन्नरपन्नगैः ॥५

के उपरांत देहावसान के समय शिव जी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर कैलासवास करती है और महादेव जी की आज्ञा से चिरभद्रा, महाकाली, नंदीश्वर एवं विनायक आदि उसकी सेवा करते हैं। इस प्रकार हिमाद्रितनया हरिकाली देवी की पूजा एवं व्रत को सुसम्पन्न करके गीत वाद्य द्वारा रात्रि जागरण करने वाली स्त्री समस्त सौभाग्य समेत अपने पति की अत्यन्त प्रेयसी होती है।२३-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
हरिकाली तृतीया व्रत नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।२०।

अध्याय २१

ललिताव्रतमाहात्म्य-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवान्! ललिताराधना नामक व्रत के विधान, जो क्रमशः प्रत्येक मास में सुसम्पन्न होते हुए चार मास में समाप्त किया जाता है, मैं पूँछ रहा हूँ, बताने की कृपा करें।१

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! इस विषय का शंकर और महादेवी का सम्वाद मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! कुरुश्रेष्ठ! एक बार कैलास पर्वत के उस रमणीक शिखर पर शंकर और महादेवी सुशोभित हो रहे थे, जो अत्यन्त पुष्प, फल वाले आम के वृक्षों से आच्छन्न, चम्पक अशोक से विभूषित, कदम्ब तथा वकुल की गन्ध से मत्त होकर भ्रमरवृन्दों से गुंजित मयूरवाणी से प्रशान्त, एवं राजहंस से अलंकृत था। वहाँ मृग, रीछ, गज, सिंह, और वानर गण स्वतन्त्र विचरण करते थे। उस स्थान पर

तपस्विभिर्महाभागैः सेवमानं समन्ततः । सुखासीनं महादेवं भूतसङ्घैः समावृतम् ॥६
अप्सरोभिः परिवृतमुमा नत्वाब्रवीदिदम् ॥

उमोवाच

भगवन्देवदेवेश शूलपाणे वृषध्वज ॥७
कथयस्व महेशान तृतीयाव्रतमुत्तमम् । सौभाग्यं लभते येन धनं पुत्रान्पशून्सुखम् ॥८
नारी स्वर्गं शुभं रूपमारोग्यं श्रियमुत्तमाम् । एवमुक्तो दयितया भार्यया प्रीतिपूर्वकम् ॥
विहस्य शङ्करः प्राह किं व्रतेन तव प्रिये ॥९
ये कामास्त्रिषु लोकेषु दिव्या भूम्यन्तरिक्षजाः । सर्वेऽपि तेन चायत्ता वश्यस्तेऽहं यतः पतिः ॥१०

उमोवाच

सत्यमेतत्सुरेशान त्वयि दृष्टे न दुर्लभम् । किंचित्त्रिभुवनाभोगभूषणे शशिभूषणे ॥११
भक्त्या स्त्रियो हि मां देव प्रजपन्ति शुभाशुभम् । विरूपाः सुलभाः काश्चिदपुत्रा बहुपुत्रकाः ॥१२
सुशीलास्तपसा काश्चिच्छ्वश्रुभिः पीडिता भृशम् । शौचाचारसमायुक्ता न रोचन्तेऽथ कस्यचित् ॥१३
एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानास्तु दारुणैः । शरणं मां प्रपन्नास्ताः कृपाविष्टा ततो ह्यहम् ॥१४
येन ताः सुखसम्भोगरूपलावण्यसम्पदा । पुत्रैः सौभाग्यवित्तौघैर्युक्ताः स्युः सुरसत्तम ॥
तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥१५

भूतगण समेत महादेव अपनी प्रिया (पार्वती) के साथ सुख पूर्वक बैठे हुए थे और गन्धर्व, यक्ष, देव, ऋषि, सिद्ध , किन्नर, पन्नग तथा महाभाग तपस्विगण उनकी सेवा में उपस्थित थे । अप्सराएँ अपने नृत्य गान से उन्हें मुग्ध कर रही थी । उसी समय नमस्कार पूर्वक उमादेवी ने भगवान् शंकर जी से कहा—२-६

उमा बोली—भगवन् ! देवाधिदेव, शूलपाणि एवं वृषध्वज ! महेशान ! तृतीया व्रत के उस विधान को बताने की कृपा कीजिये जिसके अनुष्ठान सुसम्पन्न करने पर सौभाग्य, धन, पुत्र और पशुओं की प्राप्ति पूर्वक अत्यन्त सुख नारी, स्वर्ग, प्रेम रूप, आरोग्य एवं उत्तम श्री की प्राप्ति होती है। प्रीतिपूर्वक अपनी दयिता के इस भाँति कहने पर शंकर जी ने हँसकर कहा—प्रिये ! तुम्हें व्रत विधान की क्या आवश्यकता है, क्योंकि तीनोंलोकों में, स्वर्ग, पृथिवी और आकाश विषयक तुम्हारे सभी मनोरथ इसीलिए सफल हैं, कि पति रूप मैं तुम्हारे वशीभूत हूँ ।७-१०

उमा बोली—सुरेशान ! आप का कहना सर्वथा सत्य है, क्योंकि नाग और चन्द्र से विभूषित आप ऐसे अनुपम पति के दर्शन से मुझे इस त्रिभुवन में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है, किन्तु भक्तिपूर्वक स्त्रियाँ अपने शुभाशुभ के निमित्त मेरी आराधना करती हैं—कुरूप, सुलभ, पुत्रहीना, एवं बहुपुत्रा होने के नाते और तपस्विनी सुशीला होती हुई भी सास से अत्यन्त पीड़ित तथा पवित्र, आचार पूर्ण होने पर भी गृहकुटुम्ब से व्यथित और इसी भाँति के अन्य अनेक दारुण दुःखों से दुःखी होकर स्त्रियाँ जब मेरी शरण में आती हैं, तो मुझे उनके ऊपर करुणा करना ही पड़ता है । सुरसत्तम ! इसीलिए मेरी इच्छा है कि जिसके द्वारा उन्हें सुख संभोग, रूप लावण्य, पुत्र, सौभाग्य और अधिक वित्त की प्राप्ति हो सके, उस उत्तम व्रत को मुझे बताने की कृपा करें ।११-१५

ईश्वर उवाच

माघे मासि सिते पक्षे तृतीयायां यतव्रता: । मुखं प्रक्षाल्य हस्तौ च पादौ चैव समाहिता: ।।१६
उपवासस्य नियमं दन्तधावनपूर्वकम् । मध्याह्ने तु ततः स्नानं बिल्वैरामलकैः शुभैः ।।१७
स्नात्वा तीर्थजले शुभ्रे वाससी परिधाय च । सुगन्धैः सुमनोभिश्च प्रभूतैः कुंकुमादिभिः ।।१८
अर्चयन्ति सदा देवि त्वां भक्त्या भक्तवत्सले । कर्पूराद्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैः शर्करादिभिः ।।१९
यदृच्छालाभसम्पन्नैर्धूपदीपार्चनादिभिः । नाम्नेशानीं[1] गृहीत्वा तु प्रतीक्षेद्घटिकां ततः ।।२०
पात्रे ताम्रमये शुद्धे जलाक्षतविमिश्रिते । सहिरण्यं द्विजं कृत्वा मन्त्रपूर्वं समाधिना ।।२१
शिरसि प्रक्षिपेत्तोयं ध्यायन्ति मनसेप्सितम् । ब्रह्मावर्तात्समायाता ब्रह्मयोनेर्विनिर्गता ।।२२
भद्रेश्वरा ततो देवी ललिता शङ्करप्रिया । गङ्गाद्वाराद्धरं प्राप्ता गङ्गाजलपवित्रिता ।।२३
सौभाग्यारोग्यपुत्रार्थमर्थार्थं हरवल्लभे[2] । आयाता घटिकां भद्रे प्रतीक्षस्व नमोनमः ।।२४
दत्त्वा हिरण्यं तत्तस्मै प्राश्नीयाच्चकुशोदकम् । आचम्य प्रयतो भूत्वा भूमिस्था क्षपयेत्क्षपाम् ।।२५
ध्यायमाना उमां देवीं हरिते यवसंस्तरे । द्वितीयेह्नि ततः स्नात्वा तथैवाभ्यर्च्य पार्वतीम् ।।२६
यथाशक्ति द्विजान्पूज्य ततो भुञ्जीत वाग्यता । एवं तु प्रथमे मासि पूजनीयासि कालिके ।।२७
द्वितीये पार्वती नाम तृतीये शङ्करप्रिया । भवान्यथ चतुर्थे त्वं स्कन्दमाताऽथ पञ्चमे ।।२८
दक्षस्य दुहिता षष्ठे मैनाकी सप्तमे स्मृता । कात्यायन्यष्टमे[3] मासि नवमे तु हिमाद्रिजा ।।२९

ईश्वर बोले—माघ मास की शुक्ल तृतीया के दिन संयम पूर्वक मुख, हाथ, चरण प्रक्षालन के उपरांत उपवास के लिए दंतधावन से ही नियम करना चाहिए । मध्याह्न के समय बेल और आँवले मिश्रित किसी तीर्थ जल से स्नान करके शुभ एवं शुद्ध दो वस्त्र धारण पूर्वक सुगंध, सुगन्धित पुष्प, तथा कुंकुमादि वस्तुओं द्वारा भक्ति समेत तुम्हारी भक्तवत्सला की अर्चना करते हुए जिसमें कपूर, धूप, नैवेद्य, शक्कर एवं यथाशक्ति धूपादि वस्तुएँ सम्मिलित हो, ईशानी देवी के नामोच्चारण करके घटिका का दर्शन करे । पश्चात् ताम्रपात्र में जल, अक्षत रखकर उसे ब्राह्मण को सुवर्ण दक्षिणा देने के उपरांत देवी के ध्यान पूर्वक शिर पर छोड दें और इस प्रकार प्रार्थना करें कि—ब्रह्मयोनि से निकलने और ब्रह्मावर्त से आगमन करने के नाते भद्रेश्वर और पश्चात् ललिता शंकर प्रिया आप का नाम हुआ है । हर वल्लभ ! गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में हर से मिलकर गंगाजल से पवित्र हुई हो अतः सौभाग्य, आरोग्य, पुत्र एवं धन की प्राप्ति के लिए मैं आप की आराधना कर रहा हूँ, आप यहाँ आकर इस घटिका का निरीक्षण करें आपको बार-बार नमस्कार है ।१६-२४। अनन्तर उस कुशोदक के आचमन पूर्वक भूमिशयन करते हुए हरे यव के आसन पर उमा देवी के ध्यान करके रात्रि व्यतीत करे । दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार समान नित्य कर्म के उपरांत पार्वती पूजन और यथाशक्ति ब्राह्मण को दान देकर वाक् संयम पूर्वक भोजन करे । कालिके ! इसी नाम से आपकी प्रथम मास की अर्चना होनी चाहिए । इसी भाँति दूसरे मास में पार्वती, तीसरे में शंकर प्रिया, चौथे में भवानी, पाँचवें में स्कन्दमाता, छठें में दक्ष-दुहिता, सातवें में मैनाकी (मैना की पुत्री), आठवें में

---

१. च तत्त्वतः । २. ततः सायं गृहीत्वा तु । ३. जनवल्लभे ।

दशमे मासि विख्याता देवि सौभाग्यदायिनी। उमा त्वेकादशे मासि गौरी तु द्वादशे परा ॥३०
कुशोदकं पयः सर्पिर्गोमूत्रं गोमयं फलम्। निम्बपत्रं कण्टकारी गवां शृङ्गोदकं दधि ॥३१
पञ्चगव्यं तथा शाकः प्राशनानि क्रमादमी। मासिमासि स्थिता ह्येवमुपवासपरायणा ॥३२
ददाति श्रद्धयैतानि वाचके ब्राह्मणोत्तमे। कुसुम्भमाज्यं लवणं जीरकं गुडमेव च ॥३३
दत्तैरेभिः सूर्यस्था त्वं सूर्यस्था तुष्यसि प्रिये। मासिमासि भवेन्मन्त्रो गकारो द्वादशाक्षरः ॥३४
ओङ्कारपूर्वको देवि नमस्कारान्त ईरितः। एभिस्त्वं पूजिता मन्त्रैस्तुष्यसि व्रततः प्रिये ॥३५
तुष्टा त्वमभीप्सितान्कामान्ददासि प्रीतिपूर्वकम्। समाप्ते तु व्रते तस्मिन्ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥३६
सहितं भार्ययाभ्यर्च्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः। द्विजं महेश्वरं कृत्वा उमां भार्यां तथैव च ॥३७
अन्नं सदक्षिणं दद्यात्तथा शुक्ले च वाससी। रक्तं वासोयुगं दद्यात्त्वामुद्दिश्य हरप्रिये ॥३८
ब्राह्मणे श्रद्धया युक्तस्तस्यां फलमिदं शृणु। दशवर्षसहस्राणि लोकान्प्राप्य परापरान् ॥३९
मोदते भर्तृसहिता यथेंद्रेण शची तथा। मानुषत्वं पुनः प्राप्य स्वेन भर्त्रा सहैव सा ॥४०
पुण्ये कुले श्रिया युक्ता नीरोगा सुखमश्नुते। सप्त जन्मानि यावच्च न वैधव्यमवाप्नुयात् ॥४१
पुत्रान्भोगान्स्तथा रूपं सौभाग्यारोग्यमेव च। एकपत्नी तथा भर्तुः प्राणेभ्योऽप्यधिका भवेत् ॥४२
शृणुयाद्वाच्यमानं तु भक्त्या या ललिताव्रतम्। मया स्नेहेन कथितं सापि तत्फलभागिनी ॥४३

कात्यायनी, नवें में हिमाद्रिजा (गिरिजा) दशवें में सौभाग्यदायिनी, ग्यारहवें में उमा और बारहवें मास में परमोत्तम गौरी नाम से तुम्हारा पूजन होना चाहिए। उन मासों में क्रमशः कुशोदक, पय, घी, गोमूत्र, गोमय, फल, निम्बपत्र, कंटकारी, गौका शृंगोदक, दही, पञ्चगव्य तथा शाक का प्राशन करना चाहिए। श्रद्धा भक्ति समेत प्रत्येक मास में उपवास रहकर वाचक ब्राह्मण को कुसुंभ, घी, लवण, जीरा और गुड का दान जो स्त्री प्रदान करती है ओर प्रतिमास में पूजनोपरांत ओंकार सहित द्वादशाक्षर गकार के उच्चारण पूर्वक नमस्कार करती है, प्रिये! सूर्यस्थ होकर तू उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होती हो और इस मंत्र द्वारा पूजित होने पर तुष्ट होकर तुम उसके मनोरथ सफल करती हो। प्रीतिपूर्वक व्रत के समाप्त होने पर वेद के निष्णात विद्वान् को भार्या समेत बुलाकर उत्तम गंध पुष्पादि द्वारा ब्राह्मण को महेश्वर और ब्राह्मणी को उमा की भावना से पूजन करके अन्न, दो शुक्ल वस्त्र, तथा दो रक्त वस्त्र उन्हें प्रदान करे। हरिप्रिये! श्रद्धा समेत इस कर्म को सुसम्पन्न करने पर जिस उत्तम फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बता रहा हूँ सुनो! दश सहस्र वर्ष तक उत्तम लोक में पहुँच कर वह स्त्री पति समेत इन्द्र युक्त इन्द्राणी की भाँति समस्त भोगों के उपभोग करती है और पश्चात् उत्तम मानुष कुल में जन्म ग्रहण कर पुनः उसी पति के साथ लक्ष्मी और आरोग्य की प्राप्तिपूर्वक सभी सुखों का अनुभव करती है, सात जन्म तक विधवा नहीं होती है।२५-४१। पुत्र, उत्तमभोग, रूप, सौभाग्य, तथा आरोग्य की प्राप्ति समेत वह अपने पति की अत्यन्त प्राण प्रिय एवं एक पत्नी होती है। भक्ति पूर्वक जो स्त्री इस ललिता व्रत को कथा वाचक द्वारा श्रवण करती है, वह भी इसी के समान फलों की प्राप्ति करती है। मैंने स्नेहवश इस व्रत विधान को तुम्हें सुना दिया। इस प्रकार लक्ष ललिता देवी के पूजन पूर्वक सलितांग यष्टि और गंधोंदक मिश्रित उस अमृत घटी को अपने शिर पर जो

---

१. मुदा। २. मृडानी चाष्टमे मासि।

सम्पूज्य लक्षललितां ललिताङ्गयष्टिं गन्धोदकामृतघटीं शिरसि क्षिपेद्यः ।
सा स्वर्गमेत्य ललितासु ललानभूता भूपाधिपं पतिमवाप्य भुवं भुनक्ति ॥४४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
ललितातृतीयाव्रतमहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

अवियोगतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

इहावियोगमासाद्य भर्तृबन्धुजनैःसह । वद नारी नरश्रेष्ठ व्रजेद्येन शिवालयम् ॥१
विधवा च परे लोके भूयोऽपि न वियुज्यते । सुखसन्दोहसौभाग्ययुक्ता भवति भामिनी ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

उभयान्तरितं यत्नाद्भववाग्ललितामृतम् । लब्ध्वा हि भवतो जन्म दक्षकोपाद्वियुक्तया ॥३
महासौभाग्यसन्दोहं दृष्ट्वा देव्या महात्मना । अरुन्धत्या वशिष्ठेन पृष्टेन कथितं शृणु ॥४
मासि मार्गशिरे प्राप्ते चन्द्रवृद्धौ शुचि स्मिता । द्वितीयायां समासाद्य नक्तं भुञ्जीत पायसम् ॥५
आचम्य च शुचिर्भूत्वा दण्डवच्छङ्करं नमेत् । मुदान्विता नमस्कृत्य विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥६

स्त्री छोड़ती है वह सर्वाङ्ग सुन्दरी वनिता होकर स्वर्ग सुख भोगने के उपरांत राजाधिराजपति की प्राप्ति कर भूतल के समस्त सुखों के अनुभव करती है ।४२-४४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में
ललिता तृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

अध्याय २२

अवियोगतृतीया व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—नरश्रेष्ठ ! इस लोक में उत्तम कुल में जन्मग्रहण पूर्वक उत्तम पति और बान्धवों के साथ रहकर गृहसुख के अनुभव करते हुए देहावसान के समय शिवलोक की प्राप्ति और समस्त सुख सौभाग्य की उपलब्धि भामिनियों को किस के अनुष्ठान द्वारा होती है, बताने की कृपा कीजिये ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—दक्ष के ऊपर रुष्ट होकर शरीर त्याग करने के उपरांत पुनः जन्मग्रहण करके पार्वती ने ललिता व्रत को प्रयत्नपूर्वक सुसम्पन्न कर महासौभाग्य संदोह की प्राप्ति की । उसे देखकर देवी अरुन्धती ने महात्मा वशिष्ठ जी से पूछा, उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल द्वितीया के दिन पवित्रता पूर्वक उपवास रहकर रात में पायस का नक्त भोजन करने के उपरांत आचमन पूर्वक पवित्र होकर शंकर जी को दण्डवत् नमस्कार कर, पश्चात् प्रातः काल

औदुम्बरमृजुं गृह्य भक्षयेद्दंतधावनम् । उत्तराशागतं साग्रं सत्वचं निर्व्रणं शुभम् ॥७
द्वितीयायां परे वाह्नि गौरीं शम्भुं च पूजयेत् । शालिपिष्टमये कृत्वा रूपे स्त्रीपुंसयोः शुभे ॥
पात्रे संस्थाप्य सम्पूज्य जागरं निशि कल्पयेत् ॥८
विधिवत्पूजयित्वा तु शङ्करं कीर्तयन्स्वपेत् । प्रभाते ते गृहीत्वा तु आचार्याय निवेदयेत् ॥९
भोजयेन्मृष्टमन्नाद्यं शिवभक्त्या द्विजोत्तमान् । दाम्पत्यानि च तत्रैव शक्त्या तान्यपि भोजयेत् ॥१०
प्रतिमासं प्रकुर्वीत विधिना तेन संयता । कार्तिकान्ते ततो मासि मार्गशीर्षे समुद्यमेत् ॥११
नामानि च प्रवक्ष्यामि प्रतिमासं क्रमाच्छृणु । पूजाजाप्यनिमित्तं च सिद्धयर्थं चेति तस्य च ॥१२
एवं पौषे तु सम्प्राप्ते गिरिशं पार्वतीं तथा । समभ्यर्च्य चतुर्थ्यां तु पञ्चगव्यं पिबेत्सुधीः ॥१३
एतत्पारणमुद्दिष्टं मार्गादौ मार्गगोचरम् । न चान्यत्पञ्चगव्यादि पावनं परमं स्मृतम् ॥१४
भवं चैव भवानीं च मासि माघे प्रपूजयेत् । फाल्गुने तु महादेवमुमया सहितं मतम् ॥१५
ललितां शङ्करं देवं चैत्रे सम्पूजयेत्ततः । स्थाणुं वैशाखमासे तु लोलनेत्रायुतं यजेत् ॥१६
ज्येष्ठे वीरेश्वरं देवमेकवीरासमन्वितम् । आषाढ़े पशुनाथं च शक्त्या सार्द्धं त्रिलोचनम् ॥१७
श्रीकण्ठं श्रावणे देवं सुतान्वितमथार्चयेत् । भीमं भाद्रपदे मासि दुर्गया सहितं यजेत् ॥
ईशानं कार्त्तिके मासि शिवादेवीयुतं यजेत् ॥१८
जप्यध्यानार्चनायैव नामान्येतानि सुव्रत । स्मृतानि विधिना राजन्व्रतसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१९
प्रतिमासं तु पुष्पाणि यानि पूजासु योजयेत् । तानि क्रमात्प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रीतिकराणि वै ॥२०

प्रसन्न रहकर शंकर जी को नमस्कार और उनसे इस व्रत का विज्ञापन करके गूलर की सीधी लकड़ी का दंत धावन करे, जो अत्यन्त शुद्ध, लम्बी, तथा (छिलका) समेत व्रण रहित और मनोहर दिखाई दे। अनन्तर अग्नि एवं गौरी शिव जी की उस प्रतिमा की अर्चना करो, जो साठी चावल के चूर्ण से अत्यन्त सुन्दर बनायी गयी हो। किसी पात्र में रखकर पूजन करने के उपरांत आधीरात तक जागरण करके अनन्तर सविधान पूजन करके शंकर नाम का कीर्तन करते हुए शयन करे। प्रातःकाल प्रतिमा समेत वह सब आचार्य को अर्पित कर शिवभक्त ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराते हुए आचार्य दम्पत्ती को भी यथा शक्ति दान समेत भोजन कराकर इसी विधान द्वारा संयम पूर्वक प्रतिमास यह अनुष्ठान करते हुए कार्तिक के अंत में समाप्त करे।३-११। प्रत्येक मास में पूजा, जप, एवं व्रतसिद्धि के निमित्त उपयोग करने के लिए उनके नाम भी बता रहा हूँ, सुनो! पौष मास में इसी भाँति गिरीश और पार्वती जी के पूजन करके चतुर्थी के दिन पंचगव्य का प्राशन पारण रूप में करे, क्योंकि मार्गशीर्ष और पौष मास के पारण विधान में इसी का पारण बताया गया है और पंचगव्य से उत्तम पारण के लिए अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसी प्रकार माघ मास में भव-भवानी, फाल्गुन में महादेव उमा, चैत्र में शंकर ललिता, वैशाख में स्थाणु लोलनेत्रा, ज्येष्ठ में वीरेश्वर एकवीरा, आषाढ़ में शक्ति सहित त्रिलोचन पशुनाथ, श्रावण में सुता समेत श्रीकण्ठ, भाद्रपद में भीम दुर्गा और कार्तिक में ईशान और शिवा जी की पूजा करनी चाहिए।१२-१८। सुव्रत! उनके जप ध्यान एवं अर्चना में नामों का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार सविधान इसे सुसम्पन्न करने पर निश्चय व्रत की सिद्धि हो जाती है। राजन्! प्रत्येक मास के पूजन में सद्यः प्रीतिदायक पुष्पों को भी बता रहा हूँ,

आदौ नीलोत्पलं योज्यं तदभावेऽपराण्यपि । पवित्राणि सुगन्धीनि योजयेद्भक्तितोऽर्चने ॥२१
करवीरं बिल्वपत्रं किंशुकं कुब्जमल्लिका । पाटलाब्जकदम्बं च तगरं द्रोणमालती ॥२२
एतान्युक्तक्रमेणैव मासेषु द्वादशस्वपि । भक्त्या योज्यानि राजेन्द्र शिवयोस्तुष्टिहेतवे ॥२३
वत्सरान्ते वितानं च धूपोत्क्षेपं सघण्टिकम् । ध्वजं दीपं वस्त्रयुगं शङ्कराय निवेदयेत् ॥२४
स्नापयित्वा च लिप्त्वा च सौवर्णं मूर्ध्नि पङ्कजम् । पूपयुग्मं च पुरतः शालिपिष्टमयं न्यसेत् ॥२५
नैवेद्यं शक्तितो दत्वा नत्वा च विधिवच्छिवम् । कुर्यान्नीराजनं शम्भोस्ततो गच्छेत्स्वकं गृहम् ॥२६
तत्र गत्वा त्रिकोणञ्च चतुरस्रं च कारयेत् । त्रिकोणे ब्राह्मणी भोज्या चतुरस्रे द्विजोत्तमाः ॥२७
व्रतिनो भोजयेत्पश्चाद्द्वादशैव द्विजोत्तमान् । मिथुनानि च तावन्ति शक्त्या भक्त्या च पाण्डव ॥२८
उमामहेश्वरं हैमं कारयित्वा सुशोभनम् । मौक्तिकानि चतुःषष्टिस्तावन्तोऽपि प्रवालकाः ॥
तावन्ति पुष्परागाणि ताम्रपत्रोपरि न्यसेत् ॥२९
वस्त्रेण वेष्टयित्वा च गन्धैर्धूपैस्तथार्चयेत् । एतत्सम्भारसंयुक्तमाचार्याय निवेदयेत् ॥३०
व्रतिनां ब्राह्मणानां च दम्पतीनां च भारत । दत्त्वा हिरण्यवासांसि क्षमयेत्प्रणिपत्य च ॥३१
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च कुम्भांश्छत्रमुपानहौ । सहिरण्याक्षतान्सर्वान्दद्यात्पुष्पोदकान्वितान् ॥३२
दीनान्धदुःखितानां च तद्दिने दा निवारितम् । कल्पयेदन्नदानं चालोचयञ्छक्तिमात्मनः ॥३३
न्यूनाधिकं च कर्तव्यं स्ववित्तपरिमाणतः । सम्पूरेत्कल्पनया वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥३४

सुनो ! मार्गशीर्ष मास के पूजन में नील कमल होना चाहिए, उसके प्रभाव में अन्य पुष्प भी अर्पित किया जा सकता है, किन्तु उसे अत्यन्त सुगन्धित एवं पवित्रता पूर्ण होना चाहिए । उसी प्रकार करवीर (कनेर) बिल्वपत्र, किंशुक, कुब्जामल्लिका (मालती), रक्त-कमल, कदम्ब, तगर, द्रोणमालती पुष्पों को शिव शिवा के बारह मास के पूजन में अर्पित करना चाहिए । राजेन्द्र ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक शिव शिवा को संतुष्ट करते हुए वर्ष की समाप्ति में शंकर को वितान, धूप, घटिका, ध्वज, दीप, चार वस्त्र अर्पित करे । उन्हें स्नान कराकर अंग में लेप और शिर में सुवर्ण के कमल से विभूषित करके चावल पूर्ण का पूआ, नैवेद्य सविधान समर्पित करते हुए नमस्कार पूर्वक उनका नीराजन करे । अनन्तर घर जाकर त्रिकोण और चतुष्कोण की रचना करके त्रिकोण पर ब्राह्मणी एवं चतुष्कोण में उत्तम ब्राह्मण बैठाकर उन्हें तथा अन्य बारह व्रती ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरांत व्रती को स्वयं भोजन करना चाहिए । पाण्डव ! भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार दम्पती ब्राह्मण (जोड़े) को भोजन कराकर उमा महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा को, जो चौंसठ मोती, चौंसठ प्रवाल (मूँगे) और उतने ही पुष्पों से विभूषित की गई हो, वस्त्र से आवेष्टित करके ताम्रपात्र में स्थापित करे और गन्ध, धूपादि से उनकी अर्चना करने के उपरांत वह प्रतिमा आचार्य को अर्पित करे। १९-३१। भारत ! व्रती दम्पत्ति ब्राह्मणों को सादर निमन्त्रित कर सुवर्ण और वस्त्र के समर्पण पूर्वक उनकी क्षमा प्रार्थना करे। उस समय अड़तालीस घट, छत्र, उपानह, (जूते) सुवर्ण, अक्षत और पुष्पोदक ब्राह्मण को अर्पित कर अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्धे, एवं दुःखी जनों को भी पुत्र वस्त्र के दान से सन्तुष्ट करना चाहिए। ३२-३४। अपने धन के अनुसार न्यूनाधिक भी कर सकता है। किन्तु धन रहते हुए वित्त शठता कभी न करनी चाहिए। इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर रूप

अवियोगकरं चैतद्रूपसौभाग्यवित्तदम् । आयुः पुत्रप्रदं स्वर्ग्यं शिवलोकप्रदायकम् ।।३५

सम्यक्पुराणपतितं व्रतचर्यमेतत्तत्त्वं चराचरगुरोर्हृदयङ्गमायाः ।
पूजां विधाय विधिवन्न वियोगमेति साध्वीस्वभर्तुसुतबन्धुजनैर्धनैश्च ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि अवियोगतृतीयाव्रतं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

उमामहेश्वरव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

केन धर्मेण नारीणां व्रतेन नियमेन च । सौभाग्यं जायतेऽतीव पुत्राश्च बहवः शुभाः ।।१

धनं धान्यं सुवर्णं च वस्त्राणि विविधानि च ! अवियोगं च सततं लभते पुत्रपौत्रयोः ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सुभगा नारी बह्वपत्या च जायते ।।३

धनं धान्यं हिरण्यं च दासीदासादिकं बहु । उत्पद्यते गृहे येन तद्व्रतं कथयामि ते ।।४

उमामहेश्वरं नाम अप्सरोभिः पुरा कृतम् । विद्याधरैः किन्नरैश्च ऋषिकन्याभिरेव च ।।५

रूपिण्या रम्भया चैव सीतयाऽहल्यया तथा । रोहिण्या दमयन्त्या च तारया चानसूयया ।।६

एताभिश्चरितं पार्थ व्रतं सर्वव्रतोत्तमम् । सौभाग्यारोग्यफलदं दारिद्र्यव्याधिनाशनम् ।।७

सौभाग्य, वित्त, आयु, पुत्र, स्वर्ग भोग और शिव लोक की प्राप्ति होती है । इस व्रत के अनुष्ठान में चर-अचर एवं समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु शिव जी और उनकी हृदयाधिष्ठित पार्वती जी की पूजा सविधान सुसम्पन्न करने पर पति-भक्ता स्त्री को अपने पति, पुत्र, बान्धव और धन का वियोग कभी नहीं होता है ।३५-३६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में अवियोग तृतीया व्रत वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।२२।

अध्याय २३

उमामहेश्वर व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—किस धर्म अथवा व्रत नियम द्वारा स्त्रियों को अत्यन्त सौभाग्य, अनेक पुत्र, धन धान्य, सुवर्ण अनेक भाँति के वस्त्र, और पुत्र पौत्र का सतत अवियोग प्राप्त होता है ।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं उस सर्वोत्तम व्रत के विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा स्त्री को अनेक सन्तानों की प्राप्ति होती है और उसके घर में धन धान्य, सुवर्ण एवं उनके दास दासीगण सदैव वर्तमान रहते हैं । पार्थ ! उमामहेश्वर नामक व्रत सभी व्रतों से उत्तम बताया गया है । इसी व्रत को सर्व प्रथम अप्सराओं ने सुसम्पन्न किया था पश्चात् विद्याधर, किन्नर ऋषियों की कन्यायें, रूपिणी, रंभा, सीता, अहिल्या, रोहिणी दमयन्ती तथा तारा ने भी इसे सुसम्पन्न किया है जो सौभाग्य, आरोग्य के प्रदान पूर्वक

मर्त्यलोके स्त्रियो याश्च दुर्भगा रूपवर्जिताः । अपुत्रा निर्धनाश्चैव सर्वभोगविवर्जिताः ।।८
तासां हितार्थं पार्वत्या उमामहेश्वरं व्रतम् । अवतारितं पुरा पार्थ न जानंत्यधमाः स्त्रियः ।।९
पूर्वं मार्गशिरे मासि नारी धर्मपरायणा । शुक्लपक्षे तृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया ।।१०
स्नात्वा सम्पूज्य ललितां हरकायार्धवासिनीम् ! पुनः प्रभातसमये स्नानं चाकृत्रिमे जले ।।
कृत्वा देवीस्तर्पयित्वा इदं वाक्यमुदीरयेत् ।।११
नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्द्धधारक । महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकायार्द्धवासिनि ।।१२
हृदि कृत्वा शिवं देवीं जपेद्यावद्गृहं गता । पूजयेद्देवमीशानं पुष्पैः कालोद्भवैस्ततः ।।१३
वामपार्श्वे उमां देवीं दक्षिणे तु महेश्वरम् । धूपं वा गुग्गुलं वापि दहेत्पश्चात्सुभाविता ।।
नैवेद्यं तु यथाशक्ति घृतपक्वं निवेदयेत् ।।१४
कारयेद्वैश्वदेवं तु तिलाज्येन सुसंस्कृतम् । पञ्चगव्यं ततः प्राश्य आत्मकायविशोधनम् ।।१५
एवं द्वादशमासांस्तु पूजयित्वा महेश्वरम् । उद्यापनं ततः कुर्यात्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।१६
शिवं रूप्यमयं कृत्वा उमां हैममयीं तथा । आरूढौ वृषभे रौप्ये सर्वालङ्कारभूषितौ ।।१७
चन्दनेन शिवं चर्च्य कुङ्कुमेन च पार्वतीम् । अर्चयेत्कुसुमैः पश्चात्सुगन्धैः सुमनोहरैः ।।१८
वेष्टयेच्छुक्लवस्त्रेण शिवं रक्तेन पार्वतीम् । पश्चाद्धूपं दहेन्नारी भक्तिभावेन भाविता ।।१९
भोजयेच्छिवभक्तांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान् । भक्तेभ्यो दक्षिणा देया भक्त्या शाठ्यविवर्जिता ।।२०

दरिद्र रूपी व्याधि को शमन करता है । इस मर्त्यलोक में जितनी स्त्रियाँ दुर्भगा, रूपहीन, अपुत्रा, निर्धन और स्त्री भोगों से वञ्चित हैं, उन्हीं के हित के लिए पार्वती जी ने इस उमामहेश्वर नामक व्रत को अवतरित किया है किन्तु अधम स्त्रियाँ इसे नहीं जानती हैं । पहले मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल तृतीया के दिन धर्मपरायण रहकर स्त्री संयमपूर्वक उपवास रहने का दृढ़ निश्चय (संकल्प) करके स्नान करने के उपरांत भगवान् ही की अर्धांगिनी ललिता देवी की अर्चना करे और पश्चात् प्रातः समय किसी जलाशय में स्नान करके देवी की पूजनोपरांत इस प्रकार प्रार्थना करके कि—उमादेहार्ध को धारण करने वाले देवेश ! आप को बार-बार नमस्कार है और हर की शरीर की अर्धांगिनी महादेवी को नमस्कार कर रहा हूँ । अनन्तर घर पहुँचने तक अपने हृदय में शिव और देवी का स्मरण करता रहे । वहाँ पहुँचने पर शिव देव की इस भाँति पूजा करे कि दाहिनी ओर शिव और उनके बायें भाग में उमा देवी स्थित रहें । गुग्गुल का धूप देते हुए नैवेद्य तथा घृत-पक्व भोजन उन्हें अर्पित करें ।२-१४। तिल और घी से भली भाँति सुसंस्कृतपदार्थ से बलि वैश्व करके पञ्चगव्य के प्राशन द्वारा अपनी देह का संशोधन करे । इस प्रकार बारह मास महेश्वर जी की पूजा करके अन्त में प्रसन्न चित्त होकर व्रतोद्यापन सुसम्पन्न करे । शिव की चाँदी की प्रतिमा उमा की सुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर उन्हें उनके उस वृषभ वाहन पर स्थापित कराये, जो चाँदी द्वारा सौन्दर्य पूर्ण बनाया गया हो और उन्हें सभी आभूषणों से सुसज्जित कर चन्दन से शिव की और कुंकुम द्वारा उमा जी की अर्चना करे । पूजन के समय शुक्ल वस्त्र से शिव और रक्त वस्त्र से उमा देवी को विभूषित करके अत्यन्त श्रद्धा भक्ति समेत स्त्री को उन्हें धूप देना चाहिए ।१५-१९। अनन्तर शिवभक्त एवं वैदिक विद्वान ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा उन्हें प्रदान करके प्रदक्षिणा के उपरांत इस

ततः प्रदक्षिणीकृत्य इदमुच्चारयेद्बुधः । उमामहेश्वरौ देवौ सर्वलोकपितामहौ ॥
व्रतेनानेन सुप्रीतौ भवेतां मम सर्वदा ॥२१
एवमुक्त्वा जितक्रोधे ब्राह्मणे वेदपारगे । व्रतं निवेदयेद्भक्त्या वाचके वा गुणान्विते ॥२२
इदं कृत्वा व्रतं नारी महेशार्पितमानसा । प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥२३
शिवलोके वसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश । अप्सरोभिः परिवृता किन्नरीभिस्तथैव च ॥२४
यदा मानुष्यमायाति जायते विमले कुले । रूपयौवनसम्पन्ना बहुपुत्रा पतिव्रता ॥२५
धनधान्यसमायुक्ते सुवर्णमणिमण्डिते । यावज्जीवं गृहे रम्ये तिष्ठत्यव्याहतेन्द्रिया ॥२६
वियोगं नैव सा पश्येद्भर्तृमित्रसुतादिकैः । मृता शिवपुरं याति शिवगौरीप्रसादतः ॥२७

हैमीमुमां रजतपिण्डमयं महेशं रौप्ये सुरूपवृषभे च समास्थितौ तौ ।
सम्पूज्य रक्तसितवस्त्रयुगावगूढौ नारी भवत्यविधवा सुतसौख्ययुक्ता ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरे पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
उमामहेश्वरव्रतं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

रम्भातृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

रम्भातृतीयां वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् पुत्रसौभाग्यफलदां सर्वामयनिवारिणीम् ॥१

प्रकार क्षमा प्रार्थना करे कि उमा और महेश्वर देव, जो समस्त लोक के पितामह हैं, मेरे इस व्रतानुष्ठान से सदैव प्रसन्न रहें। इतना कहकर किसी विद्वान् ब्राह्मण अथवा गुणीवाचक के लिए भक्तिपूर्वक व्रतनिवेदन करे। इस प्रकार महेश के ध्यानपूर्वक इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री महेश लोक को प्रस्थान करती है। वहाँ चौदह इन्द्रों के समान काल तक अप्सराओं और किन्नरियों से सुसेवित रहकर कभी मनुष्य कुल में आने की इच्छा होने पर उत्तम कुल में उसका जन्म होता है। रूप यौवन से सम्पन्न होकर वह पतिव्रता अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक धन-धान्य एवं सुवर्ण मण्डित गृह में आजीवन इन्द्रियों के अवाध सुख का अनुभव करती है। उसे भर्ता, मित्र, एवं पुत्रों के वियोग कभी नहीं होते शिव गौरी के प्रसाद से पुनः देहावसान होने पर शिव लोक को प्रस्थान करती है। उमा की सुवर्ण प्रतिमा, शिव की चाँदी की प्रतिमा और चाँदी की ही वृषभ की प्रतिमा वनाकर जो स्त्री रक्त और श्वेत वस्त्र से क्रमशः उन्हें आवृत कर सविधान उनके पूजन सुसम्पन्न करती है, वह स्त्री सदैव सधवा रहकर सुत और सौख्य से सदैव परिपूर्ण रहती है।२०-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
उमामहेश्वर व्रत नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।२३।

अध्याय २४

रम्भातृतीया व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं इस रम्भा तृतीया व्रत का वर्णन कर रहा हूँ, जो समस्त पापों के उन्मूलन करने

सर्वदुष्टहरां पुण्यां सर्वसौख्यप्रदां तथा । सपत्नीदर्पदलनां तथैश्वर्यकरीं शिवाम् ।।२
शङ्करेण पुरा प्रोक्ता पार्वत्याः प्रियकाम्यया । तामिमां शृणु भूपाल सर्वभूतहिताय वै ।।३
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां नराधिप । शुक्लायां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।।
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभाविता ।।४
देवि सम्वत्सरं यावत्तृतीयायामुपोषिता । प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽहनि ।।
तदविघ्नेन मे यातु प्रसादात्तव पार्वति ।।५
एवं सङ्कल्प्य विधिवत्कौंतेय कृतनिश्चयः । भक्त्या नरो वा नारी वा स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ।।६
नद्यां तडागे वाप्यां गृहे वा नियतात्मवान् । पूजयेत्पार्वतीं नाम रात्रौ प्राश्य कुशोदकम् ।।७
प्रभाते भोजयेद्विद्वाञ्छिवभक्तान्यशेषतः । हिरण्यं लवणं चैव तेषां दद्यात्तु दक्षिणाम् ।।
गौरीश्वरं यथाशक्ति भोजयेत्प्रयता सती ।।८
अनेन विधिना राजन् यः कुर्यान्मासि पौषके । गोमूत्रं प्राशयेद्रात्रौ प्रभाते भोजयेद्द्विजान् ।।९
हिरण्यं जीरकं चैव स्वशक्त्या दापयेत्ततः । कडुहुण्डं च कनकं तेभ्यो दत्त्वा विसर्जयेत् ।।१०
वाजपेयातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः । शक्रलोके वसेत्कल्पं ततः शिवपुरं व्रजेत् ।।११
माघे मासि तृतीयायां सुदेवीं नाम पूजयेत् । गोमयं प्राशयेद्रात्रौ ततश्चैकाकिनी स्वपेत् ।।१२

वाली एवं पुत्र और सौभाग्य के प्रदान पूर्वक सम्पूर्ण व्याधियों को विनष्ट करती हैं तथा समस्त दुष्टों के अपहरण करती हुई, समस्त सौख्य प्रदायक, सपत्नी के दर्प को दलने वाली एवं ऐश्वर्यकारिणी और कल्याणरूप है । भूपाल ! पार्वती जी की प्रिय कामनावश शंकर जी ने पहले ही समय में इसकी व्याख्या उनसे की थी, जिसमें समस्त प्राणियों का हित निहित है, मैं उसे बता रहा रहा हूँ, सुनो ! नराधिप मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल तृतीया के दिन प्रातःकाल उठकर श्रद्धा भक्ति समेत दंत धावन पूर्वक उपवास के लिए दृढ़ संकल्प करते हुए प्रार्थना करे कि देवि ! संवत्सर की समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक मास की तृतीया में उपवास के नियम पालन पूर्वक दूसरे दिन पारण करूँगा, अतः गिरिजे ! मेरी प्रार्थना है कि यह मेरा व्रत आप के प्रसाद से निर्विघ्न समाप्त हो ।१-५। कौंतेय ! इस प्रकार सविधान संकल्प करके स्त्री अथवा पुरूष को भक्ति पूर्वक आलस्यरहित होकर किसी नदी, सरोवर, बावली अथवा गृह में संयमपूर्वक स्नान करके पार्वती जी की पूजा करे और रात्रि में कुशोदक के प्राशन करके पुनः प्रातः काल होने पर विशेषकर शिव भक्त ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा सुवर्ण एवं लवण की दक्षिणा प्रदान करके यथाशक्ति प्रयत्न पूर्वक उस साध्वी स्त्री को गौरी और महेश जी को भोजन करना चाहिए ।६-८। राजन् ! इस विधान द्वारा जो स्त्री पौष मास की तृतीया के व्रत को सुसम्पन्न कर रात्रि में गोमूत्र प्राशन करके प्रातः काल ब्राह्मणों के भोजन, और यथाशक्ति सुवर्ण एवं जीरा के दान अर्पित करते हुए कडु हुण्ड समेत कनक समर्पित कर विसर्जन करती है उस वाजपेय और अतिरात्र यज्ञ के फल निश्चय प्राप्त होते हैं । देहावसान होने पर इन्द्र लोक में सभी सुखों के उपभोग करने के उपरांत वह शिवलोक प्राप्त करती है ।९-११। माघ मास की तृतीया के दिन सुदेवी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में गोमय प्राशन पूर्वक एकाकिनी शयन करे

प्रातः कुसुम्भं कनकं दद्याच्छक्त्या द्विजातिषु । विष्णुलोके चिरं स्थित्वा प्राप्नोति शिवसाम्यताम् ।।१३
गौरीति फाल्गुने नाम गोक्षीरं प्राशयेन्निशि । प्रभाते भोजयेद्विद्वाञ्छिवभक्तान्सुवासिनीः ।।१४
कुडुहुंडं सकनकं तेभ्यो दत्त्वा विसर्जयेत् । वाजपेयातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।।१५
चैत्रे मासि विशालाक्षीं पूजयेद्भक्तितत्परा । दधि प्राश्य स्वपेत्प्रातर्दद्याद्धेम सकुंकुमम् ।।
सौभाग्यं महदाप्नोति विशालाक्ष्याः प्रसादतः ।।१६
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीमुखीं नाम पूजयेत् । घृतं च प्राशयेद्रात्रौ ततश्चैकाकिनी स्वपेत् ।।१७
शिवभक्तान्द्विजान्प्रातर्भोजयित्वा यथेप्सितम् । ताम्बूलं लवणं दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।
अनेन विधिना दत्त्वा पुत्रानाप्नोति शोभनान् ।।१८
आषाढ़े माधवीं नत्वा प्राश्नीयाच्च तिलोदकम् । प्रभाते भोजयेद्विप्रान्दक्षिणायां गुडः स्मृतः ।।
सकाञ्चनः शुभाँल्लोकान्प्राप्नोति हि न संशयः ।।१९
श्रावणे तु श्रियं पूज्य पिबेदगोश्रृङ्गजं जलम् । शिवभक्तांश्च सम्पूज्य दद्याद्धेमफलैः सह ।।
स च लोकेश्वरो भूत्वा सर्वकामानवाप्नुयात् ।।२०
भाद्रे चैव तृतीयायां हरतालीति पूजयेत् । माहिषं च पिबेद्दुग्धं सौभाग्यमतुलं लभेत् ।।
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते शिवपुरं व्रजेत् ।।२१

पश्चात् प्रातः काल होने पर ब्राह्मणों को भोजनोपरांत पुष्प समेत सुवर्ण के दान अर्पित करने वाली स्त्री विष्णु लोक में चिरकाल तक निवास करती है और अनन्तर शिव लोक में पहुँच कर शिव का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करती है । फाल्गुन मास में गौरी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में गो दुग्ध का प्राशन और प्रातः काल होने पर शिवभक्त एवं विद्वान् ब्राह्मणों को भोजनोपरांत कड़ु हुंड समेत सुवर्ण के दान पूर्वक विसर्जन करने वाली स्त्री को वाजपेय और अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं इसमें संशय नहीं । चैत्र मास में विशालाक्षी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में दही के प्राशन पूर्वक शयन करके पश्चात् प्रातः काल सुवर्ण और कुंकुम के दान जो स्त्री करती है उसे विशालाक्षी के प्रसाद से महान् सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।१२-१६। उसी प्रकार वैशाख मास की तृतीया के दिन श्रीमुखी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में घृत के प्राशन पूर्वक एकाकिनी शयन करे । प्रातः काल होने पर शिव भक्त ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजन कराकर ताम्बूल समेत लवण दान करके विनय पूर्वक विसर्जन करने पर उस साध्वी को अनेक सौन्दर्यपूर्ण पुत्रों की प्राप्ति होती है । आषाढ़ मास में तृतीया के दिन माधवी देवी की पूजा करके तिलोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करने के उपरांत प्रातः काल के समय ब्राह्मणों को भोजनोपरांत गुड़ समेत सुवर्ण के दान अपित करने पर उसे उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । श्रावण मास में श्री जी की पूजा करके रात्रि में श्रृङ्गोंदक के प्राशन पूर्वक शयन कर पुनः प्रातः काल शिवभक्त ब्राह्मणों को भोजन कराकर फल समेत सुवर्ण की दक्षिणा अर्पित करने पर समस्त लोकों के ऐश्वर्य समेत प्रभुत्व की प्राप्ति पूर्वक निखिल कामनाओं की सिद्धि होती है । भाद्रपद मास की तृतीया के दिन हरिताली देवी की पूजा करके रात्रि में महिषी (भैस) के दुग्ध प्राशन करने से उसे अतुल सौभाग्य की प्राप्ति होती है और इस लोक में समस्त सुखों के अनुभव पूर्वक अन्त में देहावसान के समय शिव लोक की प्राप्ति होती है ।१७-२१। आश्विन मास की तृतीया के दिन

आश्विने तु तृतीयायां गिरीपुत्रीति पूजयेत् । सम्प्राश्य तण्डुलजलं प्रातर्विप्रान्श्च पूजयेत् ।।२२
दक्षिणा चापि निर्दिष्टा कनकं च सचन्दनम् । सर्वयज्ञफलं प्राप्य गौरीलोके महीयते ।।२३
पद्मोद्भवा कार्तिके च पञ्चगव्यं पिबेत्ततः । रात्रौ प्रजागरं कुर्यात्प्रभाते भोजयेद्द्विजान् ।।२४
सपत्नीकाञ्छुभाचारान्माल्यवस्त्रविभूषणैः । पूजयेच्छिवभक्तांश्च कुमारीश्चैव भोजयेत् ।।२५
उमामहेश्वरं हैमं समाप्ते कारयेन्नृप । यथादिभवसारेण वितानं पञ्चवर्णकम् ।।२६
अशनं च शुभं दद्याच्छ्वेतच्छत्रं कमण्डलुम् । पादुकोपानहौ दिव्यैर्वस्त्रयुग्मैश्च पाण्डव ।।२७
पीतयज्ञोपवीतैश्च दीपनेत्रैः समुज्ज्वलैः । शङ्खशुक्तिसमोपेतैर्दर्पणैश्च सुशोभितैः ।।२८
उमामहेश्वरं स्थाप्य पूजयित्वा यथाविधि । नानाविधैः सुगन्धैश्च पत्रैः पुष्पैः फलैस्तथा ।।२९
घृतपक्वैश्च नैवेद्यैर्दीपमालाभिरेव च । शर्करानालिकेरैश्च दाडिमैर्बीजपूरकैः ।।३०
जीरकैर्लवणैश्चैव कुसुम्भैः कुंकुमैस्तथा । सताम्रभाजनैर्दिव्यैर्योदकै रससंयुतैः ।।
पूजयेद्देवदेवेशं क्षमयेत्तदनन्तरम् ।।३१
शङ्खवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिसमन्वितैः । एवं कृते फलं यत्स्यात्तन्न शक्यं मयोदितुम् ।।३२
पूर्वोक्तफलभागीस्यात्सर्वदेवैश्च पूज्यते । कल्पकोटिशतं यावत्सर्वकामानवाप्नुयात् ।।३३
तदन्ते शिवसायुज्यं प्राप्नोतीह न संशयः । पुरैतद्रंभया चीर्णं तेन रम्भाव्रतं स्मृतम् ।।३४
योऽहं सा च स्मृता गौरी या गौरी स महेश्वरः । इति मत्त्वा महाराज शरणं व्रज पार्वतीम् ।।३५

गिरी पुत्री की पूजा करके तण्डुल जल के प्राशन पूर्वक रात्रि व्यतीत करने के उपरांत प्रातः काल ब्राह्मणों को भोजनोपरांत चन्दन समेत सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करने पर उसे समस्त यज्ञों के फल प्राप्ति पूर्वक गौरी लोक में अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त होतीहै । उसी भाँति कार्तिक मास की तृतीया के दिन पद्मोद्भवा देवी की पूजा करके पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक रात्रि में जागरण करने के उपरांत प्रातः काल ब्राह्मणों को पत्नी समेत भोजन कराकर माला और वस्त्रों एवं आभूषणों से विभूषित करे अनन्तर कुमारियों को भोजन कराये । नृप ! इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर अपनी शक्ति के अनुसार उमा और महेश्वर की सुवर्ण की प्रतिमा बनवाकर पांच रंग के वितान, शुभ भोजन, श्वेतचन्दन, कमण्डलु, पादुका, उपानह, दिव्ययुग्म वस्त्र, पीत यज्ञोपवीत, दीप, शंख, शुक्ति आँख सौन्दर्य पूर्ण दर्पणों से सज्जित कर उन्हें स्थापन और सविधान पूजन कर अनेक भाँति के सुगन्ध पत्र, पुष्प, फल, घृतपक्व नैवेद्य, दीप माला, शक्कर, नारियल, अनार, वीजौरा नीबू, जीरा, लवण, कुसुम पुष्प, कुंकुम, ताम्र पात्र एवं दिव्यमोदक समेत देवाधिदेव की अर्चना के उपरांत उनकी क्षमा प्रार्थना करे ।२२-३१। उस समय शंख तथा अन्य वादित्र की ध्वनि और वेद ध्वनि होनी चाहिए । पाण्डव ! इस प्रकार उनकी अर्चना करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है मैं उसे बताने में असमर्थ हूँ, पूर्वोक्त फलों की प्राप्ति पूर्वक सम्पूर्ण देवों से पूजित होकर सौ कोटि कल्प तक सभी कामानाओं की सफलता पूर्वक सुखानुभव करने के उपरांत अन्त समय में शिवसायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है इसमें संशय नहीं । महाराज ! सर्वप्रथम रम्भा ने ही इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, इसीलिए इसका रम्भा व्रत नामकरण हुआ है । मैं गौरी हूँ और गौरी ही महेश्वर है, ऐसा जानकर पार्वती जी की शरण में शीघ्र पहुँच जाना चाहिए ।३२-३५। हिमालय की पुत्री पार्वती की प्रिय कामनाओं के

एषा हिमाद्रिदुहितुर्दयिता तृतीया रम्भाविधानमलभद्भुवि तत्कृतेति ।
सत्प्राशितैरुदितनामयुतामुपोष्य प्राप्नोति वांछितफलान्य बलाबहूनि ।।३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
रम्भातृतीयाव्रतं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सौभाग्याष्टकवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

**तथैवान्यत्प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ।।१
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवः स्वर्महादिषु । सौभाग्यं सर्वलोकानामेकस्थमभवत्तदा ।।२
तच्च वैकुण्ठमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थले स्थितम् । ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप ।।३
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते । स्पर्द्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः ।।४
पिङ्गाकारा समुद्भूता ज्वाला वक्षस्थली तदा । तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ।।५
यद्वक्षस्थलमाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम् । रसरूपतया तावत्प्राप्नोति वसुधातलम् ।।६
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षस्थं ब्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तु रूपलावण्यकारणम् ।।७**

कारण उत्पन्न इस रम्भा व्रत को सविधान सुसम्पन्न करके क्रमशः प्रत्येक मास के प्राशन और देवी की अर्चना उपवास रहकर समाप्त करने पर इस भूतल में स्त्री को समस्त यथेच्छ फलों की प्राप्ति होती है।३६

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
रम्भा तृतीया व्रत वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

सौभाग्याष्टक-वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं उसी भाँति का एक अन्य व्रत का विधान बता रहा हूँ, जो सम्पूर्ण कामप्रदायक है, तथा पौराणिक विद्वानों ने जिसका नाम सौभाग्य शयन बताया है ।१। पहले समय में भूर्भुवः, स्वर और महरादि लोकों के प्रलाप विलीन हो जाने पर समस्त लोकों का सौभाग्य एकरूपी हो जाता है, जो वैकुण्ठाधिपति भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में परम सुरक्षित रहता है। नृप ! पुनः महान कालों के व्यतीत होने के उपरांत सृष्टि विधान के अवसर पर जब कि समस्त लोक प्रधान पुरुष अहंकार द्वारा सर्वथा आवृत सा रहता है और ब्रह्मा तथा कृष्ण का आपस में भयानक स्पर्द्धा उत्पन्न रहती है, विष्णु के वक्षःस्थल से पिङ्गवर्ण की एक भीषण ज्वाला उत्पन्न हुई। उससे संतप्त होने पर विष्णु के वक्षस्थल से वह सौभाग्य निकल कर रस और रूप के आकार में पृथ्वी तल में पहुँच रहा था कि मध्य मार्ग में दक्ष ने उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उसे और ऊपर अन्तरिक्ष में फेंक कर पान कर लिया, जिससे दक्ष को

बलं[१] तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद्भूभावष्टधा तदजायत ॥८
इक्षवस्तवराजं च निष्पावाजाजिधान्यकम् । विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा ॥
लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥९
पीतं यद्ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा तथा । दुहितास्याभवत्तस्माद्या सतीत्यभिधीयते ॥
लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते ॥१०
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् । त्रिविष्टवसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥११
आराध्य तामुनां भक्त्या स्त्री राजन्किन्न विन्दति ॥१२

युधिष्ठिर उवाच

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन । यद्विधानं च तत्सर्वं जगन्नाथ वदस्व मे ॥१३

श्रीकृष्ण उवाच

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां युधिष्ठिर । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ले तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥१४
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती । पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरुद्वाह्या वरवर्णिनी ॥१५
तथा सदैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत् । फलैर्नानाविधैर्धूपदीपनैवेद्यसंयुतैः ॥१६
पञ्चगव्येनानुमासं[२] तथा गन्धोदकेन च । स्नपयित्वार्चयेद्गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥१७
पाटलां शम्भुसहितां पादयोस्तु प्रपूजयेत् । त्रियुगां शिवसंयुक्तां गुल्फयोरुभयोरपि ॥१८

अत्यन्त तेज की प्राप्ति हुई तथा शेष भाग आठ भागों में विभक्त होकर पृथ्वी पर प्राप्त हुआ, जो इक्षु, स्वराज, निष्पाप, जाजिधान्य, दही, कुसुम्भप्राप, कुंकुम और लवण के नाम से लोक में प्रख्यात है और इसे ही सौभाग्यष्टक भी कहा जाता है। योग ज्ञान के प्रखरविद्वान् दक्ष ने इसी का शयन किया था, इसीलिए उनके यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर सती जी ने विश्व विख्याति प्राप्ति की। समस्त लोकों से अत्यन्त ललित होने के नाते उनकी ललिता नाम से ख्याति हुई और उस त्रैलोक्य सुन्दर का पाणिग्रहण भगवान् शंकर ने सुसम्पन्न किया,जो तीनों लोकों में अत्यन्त सौभाग्यमयी एवं मुक्ति और भुक्ति प्रदान करती हैं अतः राजन् ! भक्ति पूर्वक जो स्त्री उनकी आराधना करती है उसे किस फल की प्राप्ति नहीं होती है। अर्थात् वह समस्त फलों के उपभोग करती है।२-१२

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! जगन्नाथ ! उस जगद्धात्री की आराधना किस भाँति की जाती है, उसके समस्त विधान की व्याख्या बताने की कृपा कीजिये।१३

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! वसंत (चैत्र) मास की शुक्ल तृतीया के दिन पूर्वाह्ल काल में तिल से स्नान करके उत्तमाङ्गी सती देवी का पाणिग्रहण विश्वात्मा शंकर जी के साथ उसी दिन सुसम्पन्न करके। देवेश शिव जी के साथ अनेक भाँति के फल, धूप, दीप, पंचगव्य और गंधोदक द्वारा सती देवी की अर्चना करे। इन्दुशेखर समेत गौरी की पूजा करते हुए दोनों चरणों में शम्भु सहित पाटला (रक्तवस्त्र) देवी, दोनों गुल्फों (एड़ियों) में शिव संयुक्त त्रियुगा देवी की पूजा करनी चाहिए। उसी भाँति दोनों

---

१. तुल्यतेज। २. घृतगव्येन।

भद्रेश्वरेण सहितां विजयां जानुनोर्युगे । ईशानीं हरिकेशं च कट्यां सम्पूजयेद्बुधः ॥१९
कोटनीं शूलिनं कुक्षौ मङ्गलां शर्वसंयुताम् । उदरे पूजयेद्राजन्नुमां रुद्रं कुचद्वये ॥२०
अनन्तां त्रिपुरघ्नं च पूजयेत्करसम्पुटे । कण्ठे भवं भवानीं च मुखे गौरीं हरं तथा ॥२१
सर्वात्मना च सहितां ललितां मस्तकोपरि । ओङ्कारपूर्वकैरेतैर्नमस्कारान्तयोजितैः ॥
पूजयेद्भक्तिसहितो गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२२
एवमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः । स्थापयेत्स्विन्ननिष्पावान्कुसुम्भं क्षीरजीरकम् ॥२३
तवराजेक्षुलवणं कुङ्कुमं च तथाष्टमम् । दत्तं सौभाग्यकं यस्मात्सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥२४
एवं निवेद्य तत्सर्वं शिवयोः प्रीयतामिति । चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य[1] स्वप्याद्भूमावरिन्दम ॥२५
ततः प्रातः समुत्थाय कृतप्राण जयः शुचिः । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सौवर्णं चरणद्वयम् ॥२६
प्रीयतामत्र[2] ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् । एवं संवत्सरं यावत्तृतीयायां सदा नृप ॥२७
प्राशने नाममन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे । गोशृङ्गोदकमाद्ये स्याद्वैशाखे गोमयं पुनः ॥२८
ज्येष्ठे मन्दारपुष्पं च बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् । श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम् ॥२९
क्षीरमाश्वयुजे तद्वत्कार्तिके पृषदाज्यकम् । मृगोत्तमाङ्गे गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम् ॥३०

जानुओं में भद्रेश्वर समेत विजय देवी, कटि प्रदेश में हरि केश समेत ईशानी देवी, कुक्षि में शूली समेत कोटिनी देवी, उदर में शर्व समेत सर्वमंगला देवी, दोनों कुचों में रुद्रसहित उमा देवी, करसंपुट में त्रिपुरघ्नद समेत अनन्ता देवी, कंठ में भव समेत भवानी, मुख में हर और गौरी और मस्तक के ऊपर सर्वात्मा समेत ललिता देवी की सविधान तथा ओंकार पूर्वक नमस्कारांत पद के उच्चारण करते हुए (ओं इन्द्र शेरवासहितायै गौर्य्यै नमः) इस रीति से पूजन करे। भक्ति श्रद्धा पूर्वक गन्ध, माला एवं अनुलेपन द्वारा उनकी अर्चना करके उनके आगे सौभाग्याष्टक स्थापित कर, जो निष्पाप, कुसुंभ, क्षीर, जीरा, तवराज, इक्षु, लवण और कुंकुम नाम से विख्यात है। ये सौभाग्य रूप हैं, इनके अर्पण करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, अतः ये सौभाग्यष्टक कहे जाते हैं।१४-२४। अरिन्दम ! उस चैत्र मास की तृतीया के दिन सविधान उनकी अर्चना समेत अर्पण करके शिवयो प्रीयताम् (शिव समेत शिवा) प्रसन्न हों। इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होने के उपरांत शृंगोंदक के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करके पुनः प्रातःकाल उठकर शौचादि नित्य नियम धर्म से निवृत्त होने पर माला, वस्त्र, और आभूषण द्वारा द्विज दम्पत्ति की पूजा करके उनके चरण पर सुवर्ण सहित सौभाग्यष्टक अर्पित करते हुए ललिता देवी प्रीयतमाम् (ललिता देवी प्रसन्न हों) कहकर उसे ब्राह्मण को समर्पित करके। नृप ! इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष भर प्रत्येक मास की तृतीया के दिन उनकी पूजा करें। उसमें प्राशन और नाम मंत्र की विशेषता को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! चैत्र में गोशृंगोदक वैशाख में गोमय, ज्येष्ठ में मंदारपुष्प, आषाढ में बिल्वपत्र, श्रावण में दही, भाद्रपद में कुशोदक, आश्विन में दुग्ध, कार्तिक में वृषदाज्य, मार्गशीर्ष में गोमूत्र, पौष में घी।२५-३०। माघ में काले तिल, और फाल्गुन

---

१. प्राप्य। २. प्रीयतां ललिता देवी।

माघे कृष्णतिलान्स्तद्वत्पञ्चगव्यं च फाल्गुने । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदाश्रिता ।।३१
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती । उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ।।३२
मल्लिकाशोककमलकदम्बोत्पलमालति । कुड्मलं करवीरं च बाणमम्लानकुंकुमम् ।।
सिन्दुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम् ।।३३
जपा कुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका । यथालाभं प्रदेयानि करवीरं च सर्वदा ।।३४
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः । स्त्री नक्ते तु कुमारी वा शिवामभ्यर्च्य शक्तितः ।।
व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ।।३५
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह । स्थापयित्वा तु शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।३६
अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः । धान्यालङ्करणैर्दानैरन्यैश्च धनसञ्चयैः ।।
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः ।।३७
एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशयनव्रतम् । सर्वान्कामानवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ।।३८
सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः । न वियुक्तो भवेद्राजन्वर्षायुतशतत्रयम् ।।३९
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनं व्रतम् । करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभुवनेश्वरैः ।।
पूज्यमानो [1]भवेत्सम्यग्यावत्कल्पायुतत्रयम् ।।४०
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा नरेश्वर । सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ।।४१
शृणुयादपि यश्चैतत्प्रदद्यादथ वा मतिम् । सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत् ।।४२

गौरी, मंगला, कमला, सती, तथा उमा नामक देवियों के नामोच्चारण करते हुए दान के समय देवी प्रीयताम् कहे। उसी प्रकार प्रतिमास में क्रमशः मलिका (मालती), अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पन्न, मालती, कुण्डल, करवीर, वाण, कुंकुम एवं सिंदुवार पुष्प से सुसज्जित करते हुए करवीर (कनेर) सर्वदा अर्पित करना चाहिए। इस भाँति पूर्ण वर्ष तक उपवास रहकर उनकी सविधान अर्चना करके स्त्री अथवा कुमारी शिवा देवी को व्रत के अंत समय समस्त सामग्री समेत शयन कराये।३१-३५। उमा, महेश्वर और वृषभ (वाहन) की सुवर्ण आदि की प्रतिमा बनवाकर सम्पूर्ण वस्तु सुसज्जित शय्या पर स्थापित करके ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए। यथा शक्ति अन्य युगल वस्त्र, धान्य, अलंकार, एवं सुर्वणादि के प्रदान द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए अर्चना करनी चाहिए। पूजा के प्रत्येक समय में वित्त शाठ्य दोष पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।३६-३७। इस प्रकार जो भली भाँति इस सौभाग्य शयन व्रत को सविधान सुसम्पन्न करता है, उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक अनन्त पद की प्राप्ति होती है। राजन्! सौभाग्य, आरोग्य, रूपलावण्य, आयु, वस्त्र, अलंकार, आदि सुख के साधन उसे तीन सौ वर्ष तक निरन्तर प्राप्त होता रहता है। जिसने बारह वर्ष या सात आठ वर्ष निरन्तर इस सौभाग्य शयन व्रत को सुसम्पन्न किया है अथवा जो करते हैं, वह तीस सहस्र कल्प तक विष्णु तथा महेश्वर द्वारा सम्मानित होता है। नरेश्वर! स्त्री अथवा कुमारी को इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर देवी की अनुकम्पा द्वारा उपरोक्त सभी फल की प्राप्ति होती है।३८-४१। जो इसका श्रवण करते या इसके लिए अनुमति प्रदान करते हैं, वे भी विद्याधर होकर चिरकाल तक

---

१. वसेत्स्वर्गे।

इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं चरितमिदं शशबिन्दुना व्रतं वै ।
सुरपतिधनदेशवायुसोमैश्चरितामिदं करुणेन[१] बन्दिना च ।।४३
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ।
निर्माल्यवन्ति प्रतिमानि तानि स नाम साधुः पुनराददानः ।।४४
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि सौभाग्यष्टकतृतीयायाव्रतं
नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

रसकल्याणिनीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सौभाग्यारोग्यफलदं विपक्षक्षयकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं किञ्चिद्व्रतं ब्रूहि जनार्दन ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यदुमायै पुरा दैव उवाचासुरसूदनः । कथासु सम्प्रवृत्तासु ललिताराधनं प्रति ।।२
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम् ।।३
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वपापप्रणाशनम् । नभस्ये वाथ वैशाखे पुनर्मार्गशिरेऽथ वा ।।४

स्वर्ग निवास करते हैं । इस व्रत को सर्वप्रथम मदन, इन्द्र, कुबेर, ईश, वायु, सोम, और वरुण ने सुसम्पन्न किया है । जिन नरेन्द्रों ने इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए धर्म अर्थ एवं यश के प्राप्यर्थ उत्तम दान समेत प्रतिमा को पूजित कर ब्राह्मण के लिए अर्पित किया है, उन्ही के नाम प्रशंसनीय होने के नाते सभी लोगों के द्वारा ग्रहण हो रहे हैं ।४२-४४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में सौभाग्याष्टक तृतीया व्रत वर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५।

अध्याय २६

रसकल्याणीव्रत-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! कोई इस भाँति के व्रत बताने की कृपा करें, जिसके अनुष्ठान द्वारा सौभाग्य, आरोग्य, शत्रुशमन एवं मुक्ति-भुक्ति की प्राप्ति हो ।१

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में ललिता देवी की आराधना की चर्चा करते हुए असुर सूदन शिव ने उमादेवी से जो कुछ कहा था, उसे मैं बता रहा हूँ, उसके सुसम्पन्न करने पर भुक्ति मुक्ति की निश्चित प्राप्ति होती है, इसलिए स्त्री पुरुषों के लिए वह परमोत्तम आराधना है और समस्त पापों का विनाश होता है, अतः सावधान होकर सुनो ! श्रावण, वैशाख अथवा मार्गशीर्ष मास की शुक्ल तृतीया के दिन

---

१. वरुणेन ।

शुक्लपक्षतृतीयायां स्नातः सद्गौरसर्षपैः । गोरोचनसुगोमूत्रमुस्तागोशकृतं तथा ॥
दधिचन्दनसम्मिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥५
सौभाग्यारोग्यकृद्यस्मात्सदा च ललिताप्रियम् । प्रतिपक्षं तृतीयायां बद्ध्वा वा पीतवाससी ॥६
धारयेदथ वा रक्तपीतानि कुसुमानि च । विधवाप्यनुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी ॥७
देव्यर्चां पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम् । स्नपयेन्मधुना तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन च ॥८
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च फलैर्नानाविधैरपि । धान्यकाजाजिलवणगुडक्षीरघृतादिभिः ॥९
शुक्लाक्षतैस्तिलैरर्च्यां ललितां यः सदार्चयेत् । आपादाद्यर्चनं कुर्याद्गौर्याः सम्यक्यसमासतः ॥१०
वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः । अशोकायै नमो जंघे भवान्यै जानुनी तथा ॥११
ऊरू माङ्गल्यकारिण्यै कामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोद्भवायै जठरमुरः कामप्रिये नमः ॥१२
करौ सौभाग्यवासिन्यै बाहू शशिमुखश्रियै । मुखं कन्दर्पवासिन्यै पार्वत्यै तु स्मितं तथा ॥१३
गौर्य्यै नमस्तथा नासां सुनेत्रायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटफलकं कात्यायन्यै शिरस्तथा ॥१४
नमो गौर्यै नमः सृष्ट्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै । रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमोनमः ॥१५
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत् । पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं[1] कुंकुमेन सकर्णिकम् ॥१६
पूर्वेण विन्यसेद्गौरीमपर्णां च ततः परम् । भवानीं दक्षिणे तद्वद्रुद्राणीं च ततः परम् ॥१७
विन्यसेत्पश्चिमे सौम्यां ततो मदनवासिनीम् । वायव्यां पाटलावासामुत्तरेण ततो ह्युमाम् ॥१८
लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टिं मङ्गलां कुमुदां सतीम् । रुद्राणीं मध्यतःस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ॥

स्नान करने के अनन्तर गौर वर्ण की राई, गोरोचन, गोमूत्र, मुस्ता, गोशकृत, दधि और चन्दन मिश्रित का भाल में तिलक लगायें ।२-५। क्योंकि उससे सौभाग्य और आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा वह ललिता देवी को अत्यन्त प्रिय भी है । प्रत्येक पक्ष की तृतीया के दिन पीत वस्त्र से विभूषित करके रक्त, पीत वस्तुओं से सुसज्जित करे । विधवा स्त्री को रक्त वस्त्रों द्वारा और कुमारियों को शुक्ल वस्त्रों द्वारा उन्हें विभूपित करके सर्वप्रथम पञ्चगव्य, क्षीर, मधु, और पुष्प गंधोदक द्वारा क्रमशः स्नान कराकर शुक्ल पुष्प, अनेक भाँति के फल, धान्यक, जजि, लवण, गुड़, क्षीर, घी, आदि समेत शुक्ल अक्षत और तिल द्वारा ललिता देवी की सदैव विधिवत् अर्चना करे। उस समय गौरी देवी की प्रत्येक अंग के पूजन में पृथक्-पृथक नामोच्चारण करना चाहिए । वरदायैनमः से चरण, श्रियै नमः से गुल्फ, अशोकायै नमः से गंध, भवान्यै नमः से जानु, मांगल्यकारिण्यै से ऊरू, कामदैव्यै से कटि, पद्मोद्भवायै से जठर, कामप्रियायै नमः से हृदय, सौभाग्यवासिन्यै नमः से कर, शशिमुखाश्रियै नमः से बाहू, कन्दर्पनासिन्यै से मुख, पार्वत्यैनमः से मन्दहास, गौर्यैनमः से नासिका, सुनेत्रायै नमः से नेत्र, तुष्यैनमः से माल, कात्यायन्यै नमः से शिर की पूजा करके ।६-१४। गौरी, सृष्टि, कांति, कहकर क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर उनके आगे सविधान कमल निर्माण करे । उसमें बारहपत्तों से उसे युक्त कर कुंकुम द्वारा उसकी कर्णिका के निर्माण पूर्वक पूर्व की ओर गौरी, अपर्णा और भवानी, दक्षिण की ओर रुद्राणी, पश्चिम की ओर सौम्या, मदनवासिनी, वाव्यय में रक्त वस्त्रा तथा उत्तर की ओर उमा, लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मंगला,

---

१. व्यक्तम् ।

कुसुमैरक्षतैः शुभ्रैर्नमस्कारेण विन्यसेत् ॥१९

गीतमङ्गलघोषं च कारयित्वा सुवासिनीः । पूजयेद्रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः ॥२०

सिन्दुरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् । सिन्दूरं कुंकुमं स्नानमिष्टं सत्याः सदा यतः ॥२१

नभस्ये पूजयेद्गौरीमुत्पलैरसितैस्तथा । बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिके शतपत्रकैः ॥२२

कुन्दपुष्पैर्मार्गशिरे पौषे वै कुंकुमेन च । माघे तु पूजयेद्देवीं सिन्दुवारेण भक्तितः ॥२३

जात्या तु फाल्गुने पूज्या पार्वतीं पाण्डुनन्दन । चैत्रे च मल्लिकाशोकैर्वैशाखे गंन्ध पाटलैः ॥२४

ज्येष्ठे कमलमन्दारैराषाढे चम्पकाम्बुजैः । कदम्बैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेदुमाम् ॥२५

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । बिल्वपत्रार्कपुष्पं च गवां श्रृङ्गोदकं तथा ॥

पञ्चगव्यं तथा बिल्वं प्राशयेत्क्रमशः सदा ॥२६

एतद्भाद्रपदाद्यं तु प्राशनं समुदाहृतम् । प्रतिपक्षं द्वितीयायां मया प्रोक्तं वरानने ॥२७

ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव शिवं गौरीं प्रकल्प्य च । भोजयित्वार्चयेद्भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥

पुंसे पीताम्बरे दत्त्वा श्रियै कौसुम्भवाससी ॥२८

निष्पावाजाजिलवणमिक्षुदण्डं गुणान्वितम् । स्त्रियै दद्यात्फलं पुंसे सुवर्णोत्पलसंयुतम् ॥२९

यथा न देवदेवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु ॥३०

कुमुदा विमलानन्ता भवानी वसुधा शिवा । ललिता कमला गौरी सती रम्भाथ पार्वती ॥३१

नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् । व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णं कमलान्वितम् ॥३२

कुमुदा, सती और रुद्राणी को मध्य भाग में स्थापित कर ललिता को कर्णिका के ऊपर अक्षत कुसुमों द्वारा नमस्कार पूर्वक स्थापित करे। गीत, मंगल घोष समेत रक्त वस्त्र, रक्तमाला और अनुलेपन द्वारा उस सुरवासिनी देवी की अर्चना करके सिन्दूर तथा कुंकुम चूर्ण द्वारा उन देवियों के शिर विभूषित करे। क्योंकि सिन्दूर और कुंकुम के स्नान सती देवी कोसदैव प्रिय है। श्रावण मास में गौरी की पूजा नील कमल द्वारा और आश्विन में बन्धूक (उपहरिया), कार्तिक में कमल, मार्गशीर्ष में कुन्द पुष्प, पौष में कुंकुम, माघ में सिन्दुवार, फाल्गुन में जाती (चमेली) द्वारा पार्वती की पूजा चैत्र में मल्लिका अशोक वैशाख में गंध पाटल, ज्येष्ठ में कमल, मन्दार, आषाढ में कमल, श्रावण में कदम्ब, मालती, द्वारा उमा की पूजा करते हुए प्रत्येक मास में क्रमशः गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घी, कुशोदक, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प गोश्रृंगोदक, पञ्चगव्य, तथा बिल्व का भाद्रपदमास से प्रारम्भ कर प्राशन करना चाहिए। प्रत्येक पक्ष की द्वितीया के दिन ब्राह्मण ब्राह्मणी को शिव गौरी की कल्पना करके भक्ति पूर्वक वस्त्र, माला, और अनुलेपन द्वारा उन दम्पत्ति की अर्चना करते हुए पुरुष को पीताम्बर और स्त्री की कुसुमी वस्त्र से विभूषित करने का विशेष ध्यान रखे। पश्चात् स्त्री को निष्पाप (धान्य राशि), सफेद जीरा, लवण, ऊख के दान करके फल समेत सुवर्ण पुरुष को अर्पित करे और इस प्रकार क्षमा प्रार्थी हो कि जिस प्रकार देवाधिदेव (महेश) तुम्हें वियोग कष्ट कभी नहीं देते हैं, उसी भाँति मेरा पति मुझे छोड़कर कहीं न जाये।१५-३०। अनन्तर कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, वसुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा, एवं पार्वती जी की श्रावण आदि प्रत्येक मास में क्रमशः पूजनोपरांत प्रीयताम् (प्रसन्न हो) कहकर व्रत की समाप्ति के समय सुवर्ण कमल से सुसज्जित कर शय्या दान उस दम्पत्ति को अर्पित करे। चौबीस, बारह

मिथुनानि चतुर्विंशत्तदर्द्धं सकृदर्च्चयेत् । अष्टावष्टावथ पुनश्चातुर्मास्ये समर्चयेत् ॥३३
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम् । न पूज्येत गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥३४
उक्तानन्ततृतीयैषा सदानन्तफलप्रदा । सर्वपापहरा देवी सौभाग्यारोग्यवर्धिनी ॥३५
न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत् । नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात्पतत्यधः ॥३६
गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारी चाथ रोगयुक् । श्रद्धा तदान्येन क्रियमाणं तु कारयेत् ॥३७
इमामनन्तफलदां तृतीयां यः समाचरेत् । कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके स पूज्यते ॥३८
वित्तहीनोऽपि कुर्वीत वर्षत्रयमुपोषणैः । पुष्पपत्रविधानेन[1] सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ॥३९
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा तथा । साऽपि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहभाविता ॥४०
इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्दु लोकसंस्थः ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः ॥४१

॥ (इति अनन्ततृतीयाव्रतम्) ॥

रसकल्याणीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । रसकल्याणिनीं नाम पुरा कल्पविदो विदुः ॥४२
माघमासे तु सम्प्राप्य तृतीयां शुक्लपाक्षिकीम् । प्रातर्गव्येन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥४३

अथवा एक ही बार या आठ आठ बार चौमासे में अर्चना करते हुए उपदेव का भी पूजन करे और गुरु की अर्चना में विशेष प्रयत्नशील रहे क्योंकि जिस व्रत के आरम्भ में गुरु की पूजा नहीं होती है, उसकी क्रिया निष्फल हो जाती है। सदा आनन्द फलप्रद होने के नाते वह अनन्त तृतीया के नाम से प्रख्यात है। उस दिन देवी की आराधना अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि समस्त पापों के अपहरण पूर्वक देवी उसके सौभाग्य और आरोग्य को सदैव वृद्धि करती रहती है। वित्त की शठतावश कभी इस तृतीया का उल्लंघन न करे क्योंकि वित्तशाठ्य दोष के द्वारा स्त्री पुरुष सभी का अधः पतन निश्चित हो जाता है। इस प्रकार गर्भिणी, प्रसूता, कुमारी, रोगिणी को जिस समय विशेष श्रद्धा भक्ति उत्पन्न हो उसी समय स्वयं उस व्रत को सुसम्पन्न करे, इसलिए कि इस अनन्त फल दायिनी तृतीया के दिन जो व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करता है, उसे सौ कोटि कल्प तक शिवलोक में निवास प्राप्त होता है। निर्धन को भी पत्र पुष्प द्वारा तीन वर्ष तक उपवास पूर्वक इस व्रत के सुसम्पन्न करने से उपरोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। स्त्री, कुमारी, विधवा को भी इसे सुसम्पन्न करने पर गौरी की अनुकम्पा द्वारा उसी फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इस अनन्त तृतीया व्रत के अध्ययन, श्रवण, करने से जो हिमालय पुत्री (ललिता) के नाम से प्रख्यात है, वह तथा उपदेष्टा भी देवों तथा उनकी स्त्रियों और परिजनों द्वारा सदैव सुसेवित होता है। ३१-४१

रसकल्याणी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अन्य एक और पापनाशिनी तृतीया को बता रहा हूँ, कल्प के विद्वानों ने जिसका रसकल्याणिनी नाम बताया गया है। माघमास की शुक्ल तृतीया के दिन प्रातः काल गो दुग्ध और तिल

---

१. पुष्पमंत्रविधानेन।

स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च । पुनः पूजा प्रकर्तव्या जात्या वा कुंकुमेन वा ।।४४
दक्षिणाङ्गानि सम्पूज्य ततो वामानि पूजयेत् । ललितायै नमः पादौ गुल्फं तद्वदथार्चयेत् ।।४५
जम्बे जानू तथा सत्यै तथोरुश्च श्रियै नमः । मदनालसायै तु कटिं मदनायै तथोदरम् ।।४६
स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्धरम् । भुजान्भुजाग्रं माधव्यै कमलायै ह्युपस्थकम् ।।४७
भ्रूललाटे च रुद्राण्यै शङ्करायै तथालकान् । मुकुटं विश्ववासिन्यै पुनः कान्त्यै तथालकान् ।।४८
नेत्रं चक्रावधारिण्यै पुष्ट्यै च वदनं पुनः । उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठमनन्तायै तु कन्धराम् ।।४९
रम्भायै वामबाहुं च विशोकायै नमः परम् । हृदयं मन्मथादित्यै पाटलायै नमोनमः ।।५०
एवं सम्पूज्य विधिवद्द्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयत्विान्नदानेन मधुरेण विमत्सरः ।।५१
सलड्डुकं वारिकुम्भं शुक्लाम्बरयुगं ततम् । दत्वा सुवर्णकलशं गन्धमाल्यैरथार्चयेत् ।।५२
प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम् । अनेन विधिना देवीं मासिमासि समर्चयेत् ।।५३
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः । तवराजं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे ।।५४
पारकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे जीरकं तथा । श्रावणे वर्जयेत्क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा ।।५५
घृतमश्वयुजे तद्वद्वर्जयेद्या च मज्जिका । धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या तु शर्करा ।।५६
व्रतान्ते करका पूर्णा एतेषां मासिमासि च । दद्याद्विकालवेलायां भक्षपात्रेण संयुतान् ।।५७
तण्डुलाञ्छ्वेतवर्णांश्च संयावमधुपूरिकाः । घारिका घृतपूरांश्च मण्डकान्क्षीरशाककम् ।।५८
दध्यन्नं षड्विधं चैव भिण्डयः शाकवर्तिकाः । माघादौ क्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि ।।५९
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा । उमा शची सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा ।।६०

द्वारा स्नान करके मधु और ऊख रस द्वारा देवी को स्नान कराने के उपरांत चमेली, और कुंकुम द्वारा उनकी अर्चना करे। उसमें प्रथम दक्षिणांग की पूजा करके पश्चात् वामाङ्ग के पूजन करना चाहिए। ललितायै नमः से चरण, गुल्फ, जंघा और जानु, श्रियै नमः से उरु, मदनालसायै नमः से कटि, मदनायै नमः से उदर, मदनवासिन्यैनमः से कुच, कुमुदायै नमः से कंधा, माधव्यै नमः से भुजा, कमलायै नमः से कर रुद्राण्यै नमः से भौंहे और भाल, शंकरायै नमः से शिर के दक्षिण केश, विश्ववासिन्यै नमःसे मुकुट, कान्त्यैनमः से शिर के वामकेश, चक्रावधारिण्यै नमः से नेत्र, पुष्ट्यै नमः से मुख, उत्कण्ठिन्यै नमः से कण्ठ, अनंतायै नमः से कंधा, रम्भायैनमः से वामभुजा, विशोकायै नमः से दक्षिण भुजा, मन्मथादित्यै से हृदय की अर्चना करके पाटलायै नमोनमः से प्रार्थना करे। इस प्रकार देवी की विधिवत् पूजा करके द्विजदम्पत्ति की अर्चना करे, पश्चात् अन्न दान द्वारा निर्मत्सर होकर मधुर पदार्थ का भोजन कराये। तदुपरांत लड्डू समेत जलपूर्ण घट, चार शुक्ल वस्त्र, सुवर्ण कलश, गंध और माला आदि से सविधान अर्चना करके 'कुमुदा देवी प्रीयताम् प्रसन्न हों, और इस लवण व्रत को ग्रहण करने पर। इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होकर पुनः प्रत्येक मास में देवी की पूजा सुसम्पन्न करता रहे। उस समय माघ में लवण, फाल्गुन में गुड़ चैत्र में तावराज, वैशाख में मधु (शहद), ज्येष्ठ में पारक, आषाढ़ में जीरा, श्रावण में क्षीर, भाद्रपद में दधि।४२-५५। आश्विन में घृत, कार्तिक में मज्जिका, मार्गशीर्ष में धनियाँ और पौष में शक्कर के त्याग पूर्वक, व्रतानुष्ठान के समाप्त होने पर प्रत्येक मास में करवापूर्ण समेत श्वेत तण्डुल पूर्ण भोजन पात्र दान देने चाहिए। उस समय करवा के ऊपर लप्सी, शहद, पूरी, घारिका, घृतपूरी, मठ्ठा, क्षीर शाक, दधि में पक्क अन्न जो छे भाँति का बनाया जाता है, तथा भिण्डी के शाक भी रखकर माघ मास आदि सभी मासों में दान करते हुए 'कुमुदा' माधवी, गौरी,

क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् । चर्वन्तं पञ्चगव्यं च प्राशनं समुदाहृतम् ।।६१
उपवासी भवेन्नित्यमशक्तो दक्षिणे करे । पुनर्माघे तु सम्प्राप्य शर्करां करकोपरि ।।६२
कृत्वा तु काञ्चनीं गोधां पञ्चरत्नसमन्विताम् । उमामङ्गुष्ठमात्रां च सुधासूत्रे कमण्डलुम् ।।६३
तद्वद्गोमिथुनं सर्वं सुवर्णास्यं सितं परम् । सवस्त्रभाजनं दत्त्वा भवानी प्रीयतामिति ।।६४
अनेन विधिना यश्च रसकल्याणिनीव्रतम् कुर्यात्स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते ।।६५
भवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते क्वचित् अग्निष्टोमसहस्रेण यत्फलं तदवाप्नुयात् ।।६६
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा युधिष्ठिर । विधवा वा वराकी वा सापि तत्फलभागिनी ।।
सौभाग्यारोग्यसम्पन्ना गौरी लोके महीयते ।।६७

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्सकलकलुषमुक्तः पार्वतीलोकमेति ।
मतिमपि च नराणां यो ददाति प्रियार्थं विपुलमतिजनानां नायकः स्यादमोघम् ।।६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
रसकल्याणिनीव्रतवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।२६

रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मंगला, और रतिलालसा देवी प्रीयताम् (प्रसन्न हों) क्रमशः प्रत्येक मासों में विनयविनम्र होकर कहता रहे । चरु एवं पंचगव्य के प्राशन और उपवास उसे सदैव करना चाहिए, किन्तु असमर्थ होने पर दाहिने हांथ में परिमाण मात्र का भक्षण करे । इस प्रकार व्रत विधान को सुसम्पन्न करते हुए,पुनः माघ मास में उस दिन शक्कर पर करवा रख कर उसके ऊपर पंच रत्न समेत सुवर्ण की उमा की अंगुष्ठ समान प्रतिमा रखकर सुधा सूत्र, कमण्डलु और गो मिथुन जिसके मुख सुवर्ण रचित हों एवं काय श्वेतवर्ण, वस्त्र और भोजनादि पात्र अर्पित करते हुए 'भवानी प्रीयताम् कहकर क्षमाप्रार्थी होना चाहिए । इस विधान द्वारा जो इस कल्याणिनी व्रत को सुसम्पन्न करता है, उसे तत्काल समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । तथा सहस्रअर्वुद वर्षपर्यन्त उसे संसार का कष्ट नहीं होता है, अपितु सहस्र अग्निष्टोम यज्ञ के फलों की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इसी प्रकार स्त्री, कुमारी, विधवा, अथवा बारकी (दीनहीना) के भी उसके सुसम्पन्न करने पर वे ही फल प्राप्त होते हैं—सौभाग्य और आरोग्य सम्पन्न होकर इस लोक में समस्त सुखानुभव करने के उपरांत देहावसान के समय गौरी लोक में पहुँच कर सुसम्मानित होता है । इस भाँति इस कथा प्रसङ्ग को अध्ययन अथवा श्रवण करने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर पार्वती लोक की प्राप्ति करता है और इस व्रतानुष्ठान के लिए अपनी सम्मति प्रदान करने वाली सभी अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले जनसमूहों का सफल नायक होता है ।५६-६८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
रस कल्याणिनी व्रत-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

आर्द्रानन्दकरीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथा चान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । लोकेषु नाम्ना विख्यातामार्द्रानन्दकरीमिमाम् ॥१
यदा शुक्लतृतीयायामाषाढर्क्षं भवेत्क्वचित् । ब्रह्मर्क्षं चाथ मार्गं वा व्रतं ग्राह्यं तदा शुभम् ॥२
दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक्समाचरेत् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥३
भवानीमर्चयेद्भक्त्या शुक्लपुष्पैः[1] सुगन्धिभिः । महादेवेन सहितामुपविष्टां वरासने ॥४
वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्कराय नमो हरेः । जङ्घे शोकविनाशिन्यायानन्दाय नमः प्रभो ॥५
रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिनः । आदित्यै च कटिं पूज्या शूलिनः शूलपाणये ॥६
माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय वै । स्तनावानन्दकारिण्यै शङ्करायेन्दुधारिणे ॥७
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरेः । करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय जगतीपतेः ॥८
बाहुं च परिरम्भिण्यै नृत्यशीलाय वै हरेः ॥९
देव्या मुखं विलासिन्यै वृषेशाय पुनर्विभोः । स्मितं सस्मरशीलायै विश्ववक्त्राय[2] वै विभोः ॥१०
नेत्रं मदनवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिने । भ्रुवौ रतिप्रियायै च ताण्डवेशाय वै विभोः ॥११
देव्यै ललाटमिन्द्राण्यै हव्यवाहाय वै विभोः । स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोः पञ्चशराय वै ॥१२

अध्याय २७

आर्द्रानन्दकरीव्रत-वर्णन

कृष्ण जी बोले—अन्य एक पाप प्रणाशिनी तृतीया बता रहा हूँ, जिसे लोक में आर्द्रानन्दकरी कहा जाता है। जिस शुक्ल तृतीया के दिन आषाढ़ नक्षत्र (उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा), ब्रह्म नक्षत्र अथवा मृगशिरा की प्राप्ति हो, उसी समय इस व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिए। उस समय व्रती को गंध समेत कुशोदक स्नान करके शुक्लाम्बर धारण और शुक्ल गन्ध के लेपन करने के उपरांत भक्ति पूर्वक सुगंध, रक्त, पुष्प, द्वारा महादेव समेत उत्तमासनासीन भवानी की अर्चना करनी चाहिए। १-४। वासुदेव्यै नमः शंकराय नमः से शिव और भवानी के चरण शोकविनाशिन्यै आनन्दायनमः से जंघा, रम्भायै शिवाय नमः से ऊरु, आदित्यैकशूलपाणये नमः से कटि, माधव्यै भवाय नमः से नाभि, आनन्दकारिण्यै शंकराय इन्दुधारिणे नमः से स्तन, उत्कंठिन्यै नील कंठाय नमः से कण्ठ, उत्पलधारिण्यै रुद्राय नमः से कर, परिरम्भिण्यै नृत्यशीलाय नमः से बाहु, विलासिन्यै वृषेशाय नमः से मुख, सस्मरशीलायै विश्ववक्त्राय नमः मन्दस्मित, मदनवासिन्यै, विश्वधाम्नेत्रिशूलिने नमः से नेत्र, रतिप्रियायै ताण्डवेशाय नमः से भ्रू, इन्द्राण्यै देव्यै हव्य वाहाय नमः से भाल और स्वाहायै पञ्चशरायनमः से मुकुट, की पूजा करके क्षमा

---

१. रक्तपुष्पैः। २. विश्वचक्राय।

विश्वकायै विश्वमुख्यै विश्वपादकरौ शिवौ । प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥१३
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः । पद्मोत्पलानि च तथा नानावर्णानि कारयेत् ॥१४
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकं वर्द्धमानकम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥१५
शृङ्गोदकं बिल्वपत्रं वारि कुम्भान्वितं तथा । उशीरनीरं तद्वच्च यवचूर्णोदकं ततः ॥१६
तिलोदकं च सम्प्राप्य स्वप्यान्मार्गशिरादिषु । प्रतिपक्षद्वितीयायां प्राशनं समुदाहृतम् ॥१७
सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि शिवार्चने । दानकालेषु सर्वेषु मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१८
गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला । सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी[1] सर्वसिद्धये ॥१९
संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भं समर्जितम् । चन्दनं नेत्रपट्टं च सितवस्त्रयुगान्वितम् ॥
उमामहेश्वरं हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम् ॥२०
प्रस्तरावरणं शय्यां सविश्रामां निवेदयेत् । सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति ॥२१
आर्द्रानन्दकरी नाम तृतीयैषा सनातनी । यामुपोष्य नरो याति शम्भोस्तत्परमं पदम् ॥२२
इह लोके यथानन्दं प्राप्नोति धनसञ्चयात् । आयुरारोग्यसम्पन्नो न किञ्चिच्छोकमाप्नुयात् ॥२३
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा तथा । सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥२४
प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानतः । रुद्राणीलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥२५

प्रार्थना करे कि विश्वरूप शरीर धारण करने वाले विश्व में सर्वप्रधान, तथा विश्व के चरण एवं कर शिव शिवारूप और प्रसन्न मुख वाले आप पार्वती परमेश्वर की मैं वंदना कर रहा हूँ।५-१३। इस प्रकार सविधान पूजन समाप्त करके। उसके सम्मुख अनेक भाँति के रक्त कमल और नीलकमल की रचनापूर्वक शंख-चक्र, वलय, कङ्कण, स्वस्तिक (टीका) एवं वर्द्धमानक से उन्हें सुसज्जित करे। गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घी, कुशोदक, शृंगोदक, बिल्वपत्र, जलपूर्ण घट, उशीर नीर (खस) जय चूर्ण समेत जल, तिलोदक आदि मार्गशीर्ष आदि प्रत्येक मासों के क्रमशः प्रतिपक्ष की द्वितीया के प्राशन बताये गये हैं। शिवार्चन में सर्वथा शुक्ल पुष्प ही प्रशस्त बताया गया है। और सभी दान के समय इसी मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—गौरी मेरे ऊपर सदैव प्रसन्न रहे, उसी भाँति पापनाश के लिए मंगलादेवी, सौभाग्य के लिए ललिता, और सर्व सिद्ध भवानी प्रसन्न हों। अनन्तर वर्ष की समाप्ति में लवण, गुड़, घट, चन्दन, सूक्ष्मवस्त्र और चार श्वेत वस्त्र समेत उस शुभा और महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा को इक्षुफल के साथ साधन सम्पन्न उत्तम शय्या पर स्थापित कर पूजन विश्राम कराने के उपरांत उसे सपत्नीक ब्राह्मण को अर्पित करते हुए 'गौरी मुझ पर प्रसन्न हों' कहे।१४-२१। इस सनातनी तृतीया को आनन्दकरी बताया गया है, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य शम्भु के परम पद की प्राप्ति करता है, और धन संचय समेत समस्त आनन्द, आयु एवं आरोग्य से सुसम्पन्न होकर इसके सुखमय जीवन में किसी प्रकार का शोक नहीं होता है ।२२-२३। नारी, विधवा, एवं कुमारी को भी इसके सुसम्पन्न करने पर देवी के अनुग्रह वश सभी फल प्राप्त होते हैं। इसी भाँति प्रत्येक पक्ष में उपवास रहकर सविधान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे उस रुद्राणी लोक की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर पुनः जलग्रहण नहीं करना पड़ता है। जो मनुष्य इस कथा को सुनते या सुनाते हैं वे

---

१. शर्वाणा ।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । शक्रलोके सगन्धर्वैः पूज्यतेऽब्दशतत्रयम्[1] ॥२६
आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां या स्त्री करोति विधिवत्सधवाधवा च ।
सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो गौरीपुरं सदयिता मुदिता प्रयाति ॥२७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आर्द्रानन्दकरीतृतीयाव्रतं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

अथाष्टविंशोऽध्यायः

चैत्रभाद्रपदमाघवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

चैत्रे भाद्रपदे माघे रूपसौभाग्यपुत्रदम् । तृतीयाव्रतमेतन्मे कृष्ण कस्मान्न कीर्तितम् ॥१
किमहं भक्तिरहितस्त्रयीमार्गातिगो नरः । सुप्रसिद्धं जगत्येतद्गोपितं केन हेतुना ॥२
भवान्सर्वार्थानुकूलः सर्वज्ञ इति मे मतिः

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतं चैतज्जगत्ख्यातं नाख्यातं तेन ते मया ॥३
यद्यस्ति श्रवणे बुद्धिः श्रूयतां पाण्डुनन्दन । कोऽन्यः श्रोता जगत्यस्मिन्भवता सदृशो भुवि ॥४

इन्द्र लोक में तीन सौ वर्ष तक गन्धर्वों एवं अप्सराओं आदि द्वारा पूजित होते रहते हैं । आनन्द प्रदायिनी और समस्त दुःख के अपहरण करने वाली इस तृतीया व्रत को जो भी विधिवत् सुसम्पन्न करती है, उसे अपने घर में समस्त सुखों की अनुभूति होने के उपरांत देहावसान के समय प्रसन्नतापूर्ण गौरी लोक की प्राप्ति होती है ।२४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
आर्द्रानन्दकरी तृतीया व्रत वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

चैत्र, भाद्रपद तथा माघ का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण ! चैत्र, भाद्रपद और माघमास की इन तीनों तृतीया का, जो सौभाग्य और पुत्रप्रद बतायी गयी है, आप ने वर्णन क्यों नहीं किया । क्या मुझे भक्तिहीन एवं वेदमार्ग के प्रतिकूल चलने वाला पुरुष आपने समझ लिया है । यदि ऐसा नहीं है, तो आप मेरी सम्मति से सर्वथानुकूल एवं सर्वज्ञ है, अतः यह बताने की कृपा कीजिये कि—यह तृतीया विश्व में इतनी प्रख्यात कैसे हुई ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन ! यह व्रत अत्यन्त विश्वविख्यात है, इसीलिए इसकी व्याख्या मैंने तो नहीं की । यदि आप की इच्छा यही सुनने की है, तो मैं वह कह रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि इस संसार मे

---

१. अब्दशतद्वयम् ।

जया च विजया चैव उमायाः परिचारिके । आगत्य मुनिकन्याभिः पृष्टेऽभीष्टफलेच्छया ॥५
भवत्यौ सर्वदा देव्याश्चित्तवृत्तिविदौ किल । केन व्रतोपचारेण कस्मिन्नहनि पार्वती ॥
पूजिता तुष्टिमभ्येति मन्त्रैः कैश्च वरानने ॥६
तासां तद्वचनं श्रुत्वा जया प्रोवाच सादरम् । श्रूयतामभिधास्यामि सर्वकामफलप्रदम् ॥
व्रतमुत्सवसंयुक्तं नरनारी मनोरमम् ॥७
चैत्रे सिततृतीयायां दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितम् ॥८
सकुंकुमं सताम्बूलं सिन्दूरं रक्तवाससी । विधवा[१] सोपवासाप्यवैधव्यकरणं परम् ॥९
विधवा यान्ति मार्गेण कुमारी तु यदृच्छया । कुर्यादभ्यर्चनविधिं श्रूयतां मन्त्रविक्रमः ॥१०
नेत्रपट्टपटीवस्त्रैर्वस्त्रमण्डपिकां शुभाम् । कारयेत्कुसुमानोदिव्याभरणभूषिताम् ॥११
प्रवाललम्बितव्रतामन्तर्दिव्यवितानिकाम् । विन्यस्तपूर्णकलशां सत्पीठस्थापिताद्विजाम् ॥१२
पुरतः कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं समेखलम् । ततः स्नातानुलिप्ता च परिधाय सुवाससी ॥१३
देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य ततो देवीगृहं व्रजेत् । नामाष्टकेन सम्पूज्या गौरी गोपतिवल्लभा ॥१४
तत्कालप्रभवैः पुष्पैर्गन्धालिबकुलाकुलैः । कुंकुमेन समालभ्य[२] कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥१५

आपके समान अन्य कोई श्रोता भी नहीं है। एक बार उमादेवी की जय-विजया नामक दोनों परिचारिकाओं से मुनि कन्याओं ने वहाँ आकर पूछा कि—वरानने ! हमें कुछ अपना अभीष्ट सिद्ध करना है, और आप दोनों देवी की चित्तवृत्ति जानती हैं इसलिए आप यह बताने की कृपा करें कि किस व्रत के अनुष्ठान एवं किस दिन में पूजा करने पर पार्वती जी प्रसन्न होकर अभीष्ट प्रदान करती है और उसमे किस मंत्र का उच्चारण किया जाता है। उन लोगों की बाते सुनकर जया ने सादर कहा—मैं उस व्रत को बता रही हूँ, जो उत्सव संयुक्त होने पर समस्त कामनाओं को सफल करते हुए स्त्री पुरुष सभी के लिए अत्यन्त मनोरम है। चैत्रमास की शुक्ल तृतीया के दिन अत्यन्त भक्तिपूर्वक दातून करने से ही आरम्भ कर उपवास के नियम को ग्रहण करे।३-८। अनन्तर स्नानादि नित्यनियम के उपरांत कुंकुम, ताम्बूल, सिन्दूर, दो रक्त वस्त्र से देवी जी की सविधि अभ्यर्चना करनी चाहिए। विधवा को भी इसी भाँति अपने अवैधव्य के निमित्त पूजन करना चाहिए और कुमारियों के लिए यथेच्छ पूजन करना बताया गया है। सुनो, आगे मंत्र विधान भी बताऊँगा। सर्वप्रथम सूक्ष्म वस्त्र और चार अन्य वस्त्र पूजन के लिए रखकर सौन्दर्य पूर्ण मंडप के भीतर सुसम्पन्न वेदी पर, जो चारों ओर प्रवाल समूह, भीतर दिव्य वितान और पूर्ण कलश से सुसज्जित किया गया हो, सिंहासन पर शिवा शिव की प्रतिमा स्थापित कर पुष्प, गन्ध एवं दिव्य आभूषणों से सुशोभित करके उनके सामने हस्त मात्र के एक कुण्ड की रचना करे, जो मेखला आदि से विभूषित हो, उपरांत स्नान अनुलेपन नित्य नियम देव-पितृ पूजन पूर्वक पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण कर देवी जी की सेवा में उपस्थित हो और वहाँ सुस्थिर चित्त से गोपति (भगवान शंकर) की प्राण वल्लभा गौरी जी की नामाष्टक का उच्चारण करते हुए सामयिक पुष्प—गन्ध, बकुलपुष्प वृन्द, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन द्वारा सविधि

---

१. विभृयात्सोपवासापि। २. समालक्ष्य।

एवं सम्पूज्य विधिवत्सद्धूपेनाधिवासयेत् । पार्वती ललिता गौरी गान्धारी शाङ्करी शिवा ॥
उमा सती समुद्दिष्टं नामाष्टकमिदं मया ॥१६
लड्डुकैः खण्डवेष्टैश्च गुडकैः सिंहकेसरैः सोमालकैः कोकसरैः खण्डखाद्यकरम्बकैः ॥१७
घृतपक्वैर्बहुविधैः सुपक्वफलकल्पितैः । दृष्टिप्राणहरैर्हृद्यैर्नैवेद्यैः प्रीणयेदुमाम् ॥१८
कटुखण्डं जीरकं च कुङ्कुमं लवणार्द्रकम् । इक्षुदण्डानैक्षवं च हरिद्रार्द्रान्पुरो न्यसेत् ॥१९
नारिकेलानामलकान्मातुलुङ्गान्सदाडिमान् । कूष्माण्डकर्कटीवृन्तनारङ्गपनसादिकान् ॥२०
कालोद्भवानि चान्यानि फलानि विनिवेदयेत् । गृहाद्युलूखलशिलाशूर्पान्प्रणतिभिः सह ॥२१
नेत्राञ्जनशलाकाश्च नखरे चनकानि च । दर्पणं वंशपात्राणि भवान्यै विनिवेदयेत् ॥२२
शङ्खतूर्यनिनादेन गीतमङ्गलनिस्वनैः । भक्त्या सम्पूजयेद्देवीं स्वशक्त्या शिववल्लभाम् ॥२३
ततोऽस्तसमये भानो कुमार्यः करकैर्नवैः । स्नानं कुर्युर्मुदा युक्ताः सौभाग्यारोग्यवृद्धये ॥२४
यामेयामे गते स्नानं देवीपूजनमेव च । तैरेव नामभिर्होमस्तिलाज्येन प्रशस्यते ॥२५
पद्मासनस्थिता साध्वी तेनैवार्द्रेण वाससा । गौरीमुखेक्षणपरा तां रात्रिमतिवाहयेत् ॥२६
काश्चिद्वाद्यन्ति संहृष्टाः काश्चिन्नृत्यन्ति हर्षिताः । कथयन्ति कथाः काश्चिद्देव्यास्तत्र महोत्सवे ॥२७
गीततालानुसम्बद्धमनुद्धतमनाकुलम् । नृत्यन्ति स्म पुरे देव्याः काश्चिदुल्लसितभ्रुवः ॥२८

पूजन करे। अनन्तर उत्तम धूप द्वारा उनका अधिवासन भी। पूजन के समय पार्वती, ललिता, गौरी गांधारी, शांकरी, शिवा, उमा और सती के इसी नामाष्टक का सप्रेम उच्चारण करना बताया गया है।९-१६। लड्डू, खांड के पदार्थ, सिंह केसर, सोमाल, काकेसर, खण्ड खाद्य करम्बक और पके फल समेत घृत पक्व अनेक प्रकार के नैवेद्य, जो इतने प्रिय हों कि उसके देखने से ही अपनी सुधि-बुधि भूल जाये, भी उमा देवी को सप्रेम समर्पित करके कटु खंड, जीरा, कुंकुम, एवं लवण से आर्द्र किया हुआ तथा ईख दंड, गुड और हरिद्रा से आर्द्र किया हुआ पदार्थ तथा नारियल, आँवला, बिजौरा नीबू, अनार, कूष्माण्ड, ककंडी वच, नारङ्गी, कटहल एवं सामयिक अन्य फलों को भी उन्हें सादर अर्पित करें। गृह के ओखली मूसल, तिल, नेत्र में अंजन लगाने की शलाका (सलाई) और नख रंजित करने का पदार्थ, दर्पण, वांस के पात्र (पुष्प संचयार्थ) सूर्य के प्रणाम पूर्वक उनकी सेवा में अर्पित करना चाहिए। भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार शिववल्लभा भगवती पार्वती जी की पूजा के समय शंख, तुरही, की ध्वनि समेत गीत के तथा, अन्य मांगलिक ध्वनि होना चाहिए। अनन्तर सूर्य के अस्त हो जाने पर कुमारियों को नवे करवें के जलों से सौभाग्य एवं आरोग्य के वृद्धचर्थ स्नान पूर्वक प्रत्येक प्रहर में देवी की पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए और पूजनोपरांत तिल घी के हवन उन्हीं नामों के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करे। उस साध्वी स्त्री को उसी आर्द्र (भीगे) वस्त्र को पहने पद्मासन से बैठकर गौरी जी के मुखारविन्द को देखते वह रात्रि व्यतीत करना परमोत्तम बताया गया है।१७-२६। उस रात्रि देवी जी के उस महोत्सव के उपलक्ष में किसी स्त्री को प्रसन्नता पूर्ण होकर वाद्य ध्वनि, किसी को हर्षातिरेक के कारण नृत्य, और किसी को उनकी पवित्र कथाओं के उद्गार प्रकट करने चाहिए। गीत के ताल-स्वर शान्त एवं स्थिर चित्त से आरम्भ होना चाहिए। कुछ स्त्रियों को देवी के समक्ष हाव-भाव के विलास पूर्वक नृत्य करना चाहिए क्योंकि नृत्य करने

नृत्येन हृष्यति हरो गौरी गीतेन तुष्यति । सद्भावेनाथ वा सर्वे गच्छन्ति परमां मुदम् ॥२९
सुवासिनीयस्ताम्बूलं कुंकुमं कुसुमानि च । प्रदेयं जागरकत्या चान्येषामपि किञ्चन ॥३०
नटैर्विटैर्भटैश्चैव तथा प्रेक्षणकोत्सवैः । सखिभिः सहिता रात्रिं गायन्नृत्यन्हितां नयेत् ॥३१
एवं प्रभातसमये स्नात्वा सम्पूज्य पार्वतीम् । ततो वै सा समारोहेद्वस्त्रालङ्कृततोरणम् ॥३२
तोलयेत्सा तथासीनं गुडेन लवणेन च । कुङ्कुमेनाथ वा शक्त्या कर्पूरागरुचन्दनैः ॥३३
पर्वतानामपिच्छेदैः केचिदिच्छन्ति सूरयः । कुण्डमण्डपसम्भारैर्मंत्रैस्तत्रैव शोभयेत् ॥३४
लवणेन सहात्मा हि तोल्यते च गुडेन वा । कयापि भक्तिपरया सौभाग्यमतुलीकृतम् ॥३५
एवं देवीं प्रणम्यार्यां क्षमाप्य गृहमाविशेत् । आमंत्र्य शास्त्रकुशलानाचारविधिपारगान् ॥३६
अन्नं च मधुरप्रायं भोजयित्वा सुवासिनीः । स्वयं भुंजीत सहसा ज्ञातीजनबुधैः स्वकैः ॥३७
यच्च देव्याः पुरो दत्तं नैवेद्यादि तदिच्छया । गृहं प्रतिनयेत्सर्वं विभज्याभ्रान्तिमानसा ॥३८
ततो दद्याद्गृहस्थेभ्यः कृतकृत्या भवेत्तदा । विधिर्भाद्रपदेऽप्येष सुसौन्दर्यप्रदायकः ॥३९
सप्तधान्यस्वरूपां च शूर्पे सम्पूजयेदुमाम् । गोमूत्रप्राशनं ह्यत्र तेन गोमूत्रसंज्ञिता ॥४०
माघमासतृतीयायां विशेषः श्रूयतामिति । पूर्वोक्तं सकलं कृत्वा प्रभाते यवसंस्तरम् ॥
तोलयित्वा कुन्दपुष्पैः पूजयेत्तत्सुतामिति ॥४१
एतेन कारणेनोक्ता चतुर्थी कुन्दसंज्ञया । तृतीयाख्यं मयैतत्ते कथितं सर्वकारणम् ॥

से शिव और गीत द्वारा गौरी अत्यन्त प्रसन्न होती है। उसी समय अत्यन्त सद्भावना समेत जागरण कराने वाले को उचित होता है कि वह ताम्बूल, कुंकुम, और उत्तम पुष्प से सुवासिनी (सौभाग्यवती) स्त्रियों तथा अन्य कुमारियों आदि को सुसम्मानित करे। नट, विट, भट, तथा अन्य उस महोत्सव के दर्शनगण एवं सखियों के साथ नृत्य-गीत करते हुए वह रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। पश्चात् प्रातः काल होने पर स्नान नित्य नियमोपरांत पार्वती जी की पूजा करके वस्त्र-विभूषित एवं तोरण सम्पन्न उस आसन पर बैठकर गुड़ लवण, कुंकुम, अथवा शक्ति हो तो, कपूर, अगरु चन्दन के साथ तौल करे। कुछ विद्वानों ने पर्वतों के टुकड़ों से भी तौलने को बताया है। सुसज्जित कुण्ड और मण्डप को उसके संभार एवं मंत्रोच्चारण द्वारा सुशोभित करते हुए लवण अथवा गुड द्वारा अपने को तौलना चाहिए। भक्त शिरोमणि कुछ स्त्रियाँ उपरोक्त सभी वस्तुओं अथवा सौभाग्याष्टक से अपने को तौलती है। इस भाँति आर्या देवी को प्रणाम पूर्वक क्षमा प्रार्थना करने के उपरांत अपने घर पहुँचकर शास्त्र कुशल एवं उत्तम सदाचारी और सौभाग्यवती स्त्रियों को अन्न तथा मधुर पदार्थों द्वारा पूर्ण तृप्त करके वान्धवगण और परिजन समेत स्वयं भी भोजन करे। देवी जी के निमित्त अर्पित उनके सामने की मधुरादि वस्तुओं को घर ले जाकर विभाजन करके शुद्ध चित्त से सभी गृहस्थों के यहाँ भिजवा देने से वह स्त्री कृतकृत्य होती है। भाद्रपद मास के व्रतानुष्ठान में यह सौन्दर्य प्रदायक विधान बताया गया है, जिसमें शूर्प (सूप) में उमा की सप्त धान्य रचित प्रतिमा को स्थापित कर पूजन करने के लिए कहा गया है और इसमें गोमूत्र का प्राशन किया जाता है अतः इस तृतीया की गोमूत्र संज्ञा हुई है।२७-४०। अब माघ मास की विशेषता को मैं बता रहा हूँ। पूर्वोक्त समस्त कर्म समाप्त कर प्रातः काल जवा के संस्तरण पूर्वक तौलकर कुन्द-पुष्पों द्वारा गौरी की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि इसीलिए चतुर्थी की कुन्द संज्ञा हुई है। इस प्रकार मुनि कन्याओं के लिए

जयया मुनिकन्यानां यत्पुरा समुदाहृतम् ॥४२

श्रीकृष्ण उवाच

आसीद्विदर्भनगरे वेश्या सर्वाङ्गसुन्दरी । तया ब्राह्मणवाक्येन सर्वमेतत्कृतं पुरा ॥४३
भुक्त्वा भोगान्महीपृष्ठे दत्त्वा दान यथेप्सया ॥४४
कालेन समनुप्राप्ता मरणं मनुजेश्वर ! अचिन्त्या राजदुहिता सा बभूवातिशोभना ॥
अवन्तिसुन्दरी नाम देवानामपि सुन्दरी ॥४५
यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्रं स्यात्कथञ्चन ! तथापि निर्वर्णयितुमशक्या सा सुलोचना ॥४६
चैत्रतृतीयामाहात्म्यात्सा बभूव प्रभावती । मातापित्रोरतिप्रेष्ठा शिष्टान्यजनवल्लभा ॥४७
लब्धाब्धितनभवा यद्वत्कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । तत. सा बुभुजे भोगान्भर्त्रा सार्द्धं मुदा सती ॥४८
यददाद्ब्राह्मणेभ्यः सा भूषणं कटकादिकम् । तत्प्रभावेण सा लेभे सौभाग्यं किं ततः परम् ॥४९
पुत्रांश्च जनयामास विष्णुशक्रपराक्रमान् । सर्वास्त्रशस्त्रकुशलान्वेदोक्तविधिपारगान् ॥५०
एवं रूपं महत्प्राप्य सौभाग्यं पुत्रसम्पदम् । भर्त्रा सह वै मरणमन्ते प्राप्य पतिव्रता ॥५१
शक्रादिलोकपालानां भवनेषु यथाक्रमम् । आक्रम्य ब्रह्मलोकं च जगाम शिवसात्मताम् ॥५२
एवं यान्यापि कुरुते नारी व्रतमिदं शुभम् । सा रूपसौभाग्यसुतान्प्राप्य स्वर्गे महीयते ॥५३

जया द्वारा बताये गये तृतीया विषयक सभी कारणों को मैंने तुम्हें बता दिया ।४१-४२

श्रीकृष्ण बोले—विदर्भ नगर में एक सर्वाङ्ग सुन्दरी वेश्या रहती थी, जिसने किसी विद्वान् ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य कर इस व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया था । मनुजेश्वर ! इस पृथ्वीतल में उसने यथेच्छ दान करके समस्त भोगों का उपभोग किया और समयानुसार देहावसान होने पर उसने परम सुन्दरी राजपुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया, जो देवों से भी अधिक सुन्दरी थी । उसका नाम अवन्ति सुन्दरी था । उसके रूप लावण्य का वर्णन करना सभी के लिए अशक्य था, यहाँ तक कि सहस्र मुख वाले शेष के यदि सहस्र मुख और हो जायें, तो भी उस सुलोचना के सौन्दर्य वर्णन करने में वे अममर्थ ही रहेंगे । चैत्र तृतीया के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने से तो उसके प्रभाव द्वारा वह अत्यन्त प्रभा पूर्ण थी । अपने पिता माता के लिए जिस प्रकार वह प्रेम की एक सजीव मूर्ति थी, उसी प्रकार शिष्ट एवं अन्य लोगों के लिए भी उतनी ही मनमोहक थी । जिस भाँति भगवान् कृष्ण को प्राप्त कर समुद्र पुत्री लक्ष्मी ने समस्त भोगों के उपभोग को प्राप्त किया है, उसी भाँति उसने भी आजीवन अपने भर्ता के साथ निखिल भोगों का उपभोग किया है ।४३-४८। उसने ब्राह्मणों को दान रूप में अपने कटक (कंकड़) आदि आभूषण प्रदान किये थे, जिसके प्रभाव से परमोत्तम सौभाग्य और विष्णु इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्रों को जन्म दिया जो सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र में परम कुशल एवं वेदोक्त विधानों के निष्णात विद्वान थे । इस प्रकार पराकाष्ठा का रूप लावण्य, परम सौभाग्य , अनेक पुत्र, और समस्त निधि के उपभोग करने के उपरांत अपने भर्ता के साथ सामयिक देहावसान प्राप्त कर उस पतिव्रता ने क्रमशः इन्द्र आदि लोकपालों के भवनों में देव दुर्लभ प्रतिष्ठा सुख का अनुभव करती हुए ब्रह्मलोक की प्राप्ति की और पश्चात् शिव का सायुज्य मोक्ष । इसी भाँति जो अन्य स्त्री इस शुभव्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न करती है, उसे भी रूप सौन्दर्य, सौभाग्य, और पुत्रों

न दुर्भगा कुले तस्याः काचिद्भवति कन्यका । न दुर्विनीतश्च सुतो न भृत्योऽप्रियकृद्भवेत् ॥५४
न दारिद्र्यं गृहे तस्मिन्न व्याधिरुपजायते । यत्र सा रमते साध्वी ध्मातचामीकरप्रभा ॥५५
अन्याश्च याश्चरिष्यन्ति ब्राह्मणानुमते व्रतम् । सम्पूज्य वाचकं भक्त्या भूषणाच्छादनादिभिः ॥५६
ताः सर्वसुखसम्पन्ना अविपन्नमनोरथाः । भविष्यन्ति कुरुश्रेष्ठ तस्यै देवि नमोस्तु ते ॥५७
माघे महार्घ्यमणिमण्डितपादपीठां चैत्रे विचित्रकुसुमोत्करचर्चिताङ्गीम् ।
शूर्पप्ररूढनवसस्यमयीं नभस्ये सम्पूज्य शम्भुदयितां प्रभवन्ति नार्यः ॥५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
चैत्रभाद्रपदमाघतृतीयाव्रतवर्णनं नामाष्टविंशतितमोऽध्यायः ।२८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

अनन्तरतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शुक्लपक्षतृतीयास्तु बहवः समुदाहृताः । आनन्तर्यव्रतं ब्रूहि तृतीयोभयसंयुतम् ॥१
हिताय सर्वभूतानां ललनानां विशेषतः । नाम प्रशननैवेद्यैर्मासिमासि पृथक्पृथक् ॥२

की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । उसके कुल में कोई दुर्भगा कन्या उत्पन्न नहीं होती है, न उद्दण्ड पुत्र, और न अप्रिय भाषी कोई सेवक होता है । उसके गृह में दरिद्रता का निवास कभी नहीं होता और न कभी वह रुग्णा होती है । जिस महल में वह साध्वी निवास करती है, वह अग्नि में संतप्त किये गये सुवर्णों की प्रखर प्रभा से विभूषित रहता है । गुरुश्रेष्ठ ! ब्राह्मणों की अनुमति शिरोधार्य कर जो अन्य स्त्रियाँ भी इस व्रत को सुसम्पन्न करती है और भक्ति पूर्वक वाचक को भूषण वस्त्रादि समर्पित करती है, वे समस्त सुखों की प्राप्ति पूर्वक सदैव सफल मनोरथ होती रहती है, इसलिए उस देवी को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार स्त्रियाँ माघ मास में बहुमूल्य मणियों से अलंकृत सिहासन पर सुशोभित चैत्र मास में विचित्र कुसुमों के इत्र आदि से चर्चित और भाद्रपद में सूर्य द्वारा परिवर्द्धित नवे सस्यों के स्वरूप धारण करने वाली शिव दयिता पार्वती की पूजा करके उपरोक्त समस्त फल समेत अत्यन्त प्रभाव शालिनी होती है ।४९-५८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
चैत्र भाद्रपद और माघ तृतीया व्रत वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अध्याय २९

अनन्तरतृतीया व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—आप ने शुक्ल पक्ष की तृतीया के अनेक व्रत सुनाये हैं, किन्तु अब मुझे आनन्तर्य व्रत बताने की कृपा कीजिये, जो द्वितीया तृतीया उभय संयुत में सुसम्पन्न किया जाता है और समस्त प्राणियों एवं विशेष कर ललनाओं के लिए अत्यन्त हितैषी है तथा प्रत्येक मास में उसके नाम, प्राशन और नैवेद्य भी ।१-२।

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मादिष्णुमहेशाद्यैर्यथोक्तं सुरसत्तमैः । अपूर्वं सर्वमन्त्राणामानंतर्यव्रतंशृणु ।।३
आदौ मार्गशिरे मासि व्रतमेतत्समाचरेत् । नक्तं कुर्याद् द्वितीयायां तृतीयायामुपोषिता ।।४
उमां देवीं समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिः क्रमात् । शर्करापुत्रिकां शक्त्या प्रणिपत्य निवेदयेत् ।।५
सम्प्राश्य दधि रात्रौ च स्वप्याद्विगतमत्सरा । प्रभाते विधिवद्भक्त्या मिथुनं भोजयेत्सुधीः ।।६
अश्वमेधमवाप्नोति समग्रं नात्र संशयः । तथा कृष्णतृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया ।।७
जपेत्कात्यायनीं नाम नालिकेरं निवेदयेत् । स्वप्यात्प्राश्य पयो रात्रौ कामक्रोधविवर्जिता ।।
दाम्पत्यं सुभगं भोज्यं गोमेधफलमाप्नुयात् ।।८
पौषस्यादितृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया । गौरीं नाम तु सम्पूज्य लड्डुकान्विनिवेदयेत् ।।९
स्वप्यात्प्राश्य घृतं रात्रौ त्यक्त्वा कामं तदग्रतः । प्रभाते मिथुनं भोज्यं नरमेधफलं भवेत् ।।१०
एवं कृष्णतृतीयायां पार्वतीमिति पूजयेत् । निवेद्यान्नं शष्कुल्यो गोमयं प्राशयेन्निशि ।।
दाम्पत्यं विविधं भोज्यमश्वमेधफलं लभेत् ।।११
माघस्य शुक्लपक्षे तु तृतीयायामुपोषितः । सुरनायिकां च सम्पूज्य खण्डबिल्वं निवेदयेत् ।।१२
ततः कुशोदकं प्राश्य स्वप्याद् भूमौ जितेन्द्रिया । प्रभाते मधुरान्ने तं मिथुनं भोज्य भक्तितः ।।

श्रीकृष्ण जी बोले—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदि श्रेष्ठ देवों ने जिस प्रकार इसका वर्णन किया है और जो सभी मंत्रों से अपूर्व है, मैं उसी आनन्तर्य व्रत का उसी प्रकार वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! मार्गशीर्ष मास के प्रारम्भ में इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए । द्वितीया के दिन नक्त व्रत रहकर तृतीया के दिन उपवास पूर्वक पुष्प गंधादि द्वारा उमा देवी की समभ्यर्चना करके शर्करा पुत्रिका (प्रतिमा) को नमस्कार पूर्वक उस व्रत के निवेदन कर रात्रि में दही प्राशन के उपरांत शान्ति पूर्वक पवित्र भावना से शयन करे । प्रातः काल होने पर सविधान द्विज दम्पति को भोजन कराये तो उसे अश्वमेध यज्ञ के सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं । उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन संयम पूर्वक उपवास रहकर कात्यायनी देवी के पूजन जप कर नारियल अर्पित करते हुए रात्रि में क्षीर के प्राशन पूर्वक काम-क्रोध रहित होकर शयन करे । पश्चात् प्रातः काल परम सौभाग्य एवं सौभाग्यवान् दम्पती को सप्रेम रुचिकर भोजन कराने से गोमेध के फल की प्राप्ति होती है । पौष मास के आरम्भ में तृतीया के दिन इन्द्रिय संयम पूर्वक उपवास रहकर गौरी नामक देवी की पूजा करके लड्डू निवेदन करे अनन्तर रात्रि में घृत के प्राशन पूर्वक काम के त्याग समेत उनके आगे शयन करे और पश्चात् प्रातः काल होने पर सौभाग्यवान पुरुष स्त्री के जोड़े को भोजन से संतृप्त करने पर नरमेध के फल की प्राप्ति होती है ।३-११। इसी भाँति पौष कृष्ण तृतीया के दिन पार्वती जी की पूजा करके अन्न की शष्कुली (पूरी) उन्हें समर्पित करे गोमय प्राशन द्वारा रात्रि व्यतीत करे । पुनः प्रातःकाल होने पर उत्तम दम्पत्ति के सुरुचि भोजन कराने से अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। माघ मास की शुक्ल तृतीया के दिन उपवास रहकर सुरनायिका नामक देवी की पूजा करके बिल्व का मधुर खण्ड निवेदित करते हुए कुशोदक के प्राशन पूर्वक संयम पूर्वक भूमि शयन कर रात्रि व्यतीत करे । प्रभात समय भक्तिपूर्वक सुभग ब्राह्मण-ब्राह्मणी को मधुर अन्नों

क्षमाप्यान्ते नमस्कृत्य इति स्वर्णफलं लभेत् ॥१३
पुनरेतत्ततो माघे कृष्णपक्षे शुचिव्रता । आर्यां नाम्ना प्रपूज्याथ खाद्यकानि निवेदयेत् ॥१४
मधु प्राश्य स्वपेद्रात्रौ कामक्रोधविवर्जिता । मिथुनं भोजयित्वा तु वाजपेयफलं भवेत् ॥१५
एवं वै फाल्गुने मासि सोपवासा शुचिव्रता । भद्रीं नाम प्रपूज्याथ कासारं विनिवेदयेत् ॥१६
सुप्राश्य शर्करां चाथ स्वप्याद्रात्रौ विमत्सरा । प्रभाते मिथुनं भोज्यं सौत्रामणिफलं लभेत् ॥१७
पुनः कृष्णतृतीयायां फाल्गुनस्यैव भारत ! विशालाक्षीं समभ्यर्च्य पूरिका विनिवेदयेत् ॥१८
सोदकान्स्तण्डुलान्दत्त्वा स्वप्याद्भूमौ मनस्विनी । भोजयेन्मिथुनं प्रातरग्निष्टोमफलं लभेत् ॥१९
चैत्रस्यादितृतीयायां शुचिर्भूता जितेन्द्रिया । श्रियं देवीं यजेद्भक्त्या वटकान्विनिवेदयेत् ॥२०
बिल्वपत्रं ततः प्राश्य स्वप्याद्ध्यानपरायणा । प्रातरुत्थाय मद्भक्त्या मिथुनं पूजयेत्सुधीः ॥
प्रणिपत्य क्षमाप्यैवं राजसूयफलं लभेत् ॥२१
पुनः कृष्णतृतीयायां चैत्रे सम्यगुपोषिता । कालीं नाम समभ्यर्च्य पिष्टं प्राश्य स्वपेन्निशि ॥२२
पूपकानि निवेद्याथ कुर्याद्रात्रौ प्रजागरम् । मिथुनानि च सम्भोज्य अतिरात्रफलं भवेत् ॥२३
एवं वैशाखमासे तु सोपवासा जितेन्द्रिया । पूजयेच्चण्डिकां देवीं मधुकानि निवेदयेत् ॥२४
श्रीखण्ड चन्दनं लिप्त्वा स्वप्याद्देव्यग्रतो भुवि । भोजयित्वा च दाम्पत्यं चान्द्रायणफलं लभेत् ॥२५
तथा कृष्णतृतीयायां सोपवासा विमत्सरा । पूजयेत्कालरात्रिं तु गन्धपुष्पैः सदीपकैः ॥२६

द्वारा संतुष्ट कर क्षमा प्रार्थना के उपरांत नमस्कार करने से स्वर्ण फल की प्राप्ति होती है। पुनः माघकृष्ण तृतीया के दिन उसी भाँति पवित्रता पूर्ण व्रत-नियमों के ग्रहणपूर्वक आर्या नामक देवी की अर्चना के उपरांत उन्हें अत्यन्त रुचिकर भक्ष्य पदार्थ अर्पित करके मधुप्राशन कर रात्रि में काम-क्रोध के त्यागपूर्वक शयन करे। अनन्तर प्रातः काल स्त्री-पुरुष ब्राह्मण को भोजनों द्वारा प्रसन्न करने से वाजपेय फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार फाल्गुन मास में पवित्रता पूर्ण उपवास रहकर भद्री नामक देवी का भी अर्चना करके उन्हें कासार अर्पित कर शक्कर के प्राशनपूर्वक रात्रि में शुद्ध भाव से शयन करे। पुनः प्रातः काल ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने से सौत्रामणि यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। भारत ! फाल्गुन कृष्ण तृतीया के दिन विशालाक्षी नामक देवी की पूजा करके पूरी समर्पित करे। और उदक समेत तण्डुल के दान एवं प्राशन करके उस मनस्विनी स्त्री को शयन कर रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। प्रातः काल होने पर ब्राह्मण के जोड़े को भोजन कराने से अग्निष्टोम के फल की प्राप्ति होती है। चैत्र मास की आदि तृतीया के दिन पवित्रता पूर्ण एवं संयम पूर्वक श्री नामक देवी की भक्ति समेत पूजा करके वटका (वरिआ) समर्पित करे। रात्रि में बिल्वपत्र के प्राशनपूर्वक उनके ध्यान परायण होकर शयन करके रात्रि व्यतीत करे। प्रातःकाल होने पर मेरी भक्ति समेत ब्राह्मण मिथुन की अर्चना करते हुए भोजनोपरांत नमस्कार पूर्वक क्षमाप्रार्थना करने से राजसूय फल की प्राप्ति होती है।१२-२१। उसी प्रकार चैत्र कृष्ण तृतीया के दिन भली भाँति उपवास रहकर काली नामक देवी की अर्चना करके पीठी के प्राशन पूर्वक जागरण कर रात्रि व्यतीत करे। उस रात्रि पूआ उन्हें अर्पित करना चाहिए। प्रातः काल होने पर ब्राह्मण ब्राह्मणी को भोजन कराने से अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। वैशाख मास में उपवास रह कर जितेन्द्रिय होकर चण्डिका देवी की पूजा कर उन्हें मधुपूर्ण मधुर पदार्थ अर्पित करके श्रीखण्ड चन्दन से अपने शरीर को

सुराज्यं यावकं दत्त्वा तिलान्भुञ्जन्स्वपेन्निशि । प्रभाते मिथुनं भोज्यमतिकृच्छ्रफलं लभेत् ।।२७
ज्येष्ठे सिततृतीयायां ह्युपवासकृता दरा । शुभां देवीं समभ्यर्च्य आम्राणि विनिवेदयेत् ।।
सम्प्राश्यामलकं रात्रौ गौरीं ध्यात्वा सुखं स्वपेत् ।।२८
ततःप्रातः समुत्थाय दम्पती रूपशालिनौ । भोजयित्वा विधानेन तीर्थयात्राफलं लभेत् ।।२९
पुनः कृष्णतृतीयायां सोपवासा सुवासिनी । स्कन्दमातेति सम्पूज्य इडायै विनिवेदयेत् ।।३०
प्राशयेत्पञ्चगव्यश्च स्वप्याद्देव्यग्रतस्ततः । प्रभाते मिथुनं भोज्यं कन्यादानफलं लभेत् ।।३१
आषाढमासे सम्प्राप्ते पूजयेच्च यशोधनम् । करंजकं च नैवेद्यं गोश्रृङ्गाम्भः पिबेन्निशि ।।
प्रभाते मिथुनं भोज्यं कन्यादानफलं लभेत् ।।३२
तथा कृष्णतृतीयायां कूष्माण्डीं शक्तितो यजेत् । सक्तून्गुडाज्यसम्मुक्तान्पुरतो विनिवेदयेत् ।।३३
कुशोदकं च सम्प्राश्य स्वप्याद्रात्रौ जितेन्द्रिया । प्रभाते मिथुनं भोज्यं गोसहस्रफलं लभेत् ।।३४
श्रावणे सोपवासा च चण्डां घण्टां प्रपूजयेत् । कुल्माषास्तत्र नैवेद्यं पिबेत्पुष्पोदकं पुनः ।।३५
प्रभाते शक्तितो दद्याद्भोजनं मिथनस्य तु । प्राप्नोत्यभयदानस्य फलं नैवात्र संशयः ।।३६
तद्वत्कृष्णतृतीयायां रुद्राणीं नामभिर्यजेत[1] । सिद्धपिण्डानि दिव्यानि नैवेद्यं दापयेत्तथा ।।३७

विभूषित करते हुए उनके सम्मुख भूमि शयन कर रात्रि व्यतीत करे। प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन-तृप्त करने से चान्द्रायण के फल की प्राप्ति होती है।२२-२५। वैशाख की कृष्ण तृतीया के दिन उपवास रहकर शुद्ध हृदय से गंध, पुष्प, धूप दीप द्वारा कालरात्रि की पूजा करके सुरा, घी, अर्पित कर रात्रि में तिल के प्राशन पूर्वक शयन करना चाहिए। पुनः प्रातःकाल के समय ब्राह्मण जोड़े को भोजन कराने से अति कृच्छ्र के फल की प्राप्ति होती है।२६-२७। ज्येष्ठ की शुक्ल तृतीया के दिन उपवास रहकर शुभा नामक देवी की अर्चना करके आमों को अर्पित करे अनन्तर रात्रि में आँवले के प्राशन पूर्वक गौरी के ध्यान करते हुए सुख, शयन द्वारा रात्रि व्यतीत करे। पश्चात् प्रातः काल होने पर रूप लावण्य युक्त ब्राह्मण दम्पत्ति के पूजन और भोजन सविधान कराने से तीर्थयात्रा के फलों की प्राप्ति होती है। पुनः कृष्ण तृतीया के दिन उपवास रहकर स्कन्द माता इड़ा की पूजा करके नैवेद्य अर्पित करें। और पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक देवी के समक्ष शयन करके पुनः प्रातः काल होने पर ब्राह्मण मिथुन को भोजन कराने से कन्यादान के फल प्राप्त होते हैं। आषाढ मास की तृतीया के दिन यशोधन नामक देवी की अर्चना करके करंजक फल समेत नैवेद्य अर्पित कर श्रृंगोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि व्यतीत करे। अनन्तर प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने से कन्यादान का फल प्राप्त होता है।२८-३२। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन शक्त्यनुसार कूष्माण्डी देवी की आराधना करके सतुआ, गुड़ और घी उन्हें अर्पित करे और कुशोदक के प्राशन करके संयम पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे। उपरांत प्रातः काल होने पर सुभगा ब्राह्मण जोड़े को भोजन कराने से गो सहस्र दान के फल प्राप्त होते हैं। श्रावण मास की तृतीया के दिन घंटा समेत चंडा देवी की पूजा करके उरद के भोजन समेत नैवेद्य अर्पित कर रात्रि में पुष्पोदक के प्राशन पूर्वक शयन करे। अनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजनादि से प्रसन्न करने से अभय दान के फल प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन रुद्राणी देवी की पूजा करके सिद्ध पिंड के नैवेद्य अर्पित कर

१. सम्प्रपूजयेत्।

पिण्याकं प्राशयित्वा तु स्वप्याद्रात्रौ विमत्सरा । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यमिष्टापूर्तफलं लभेत् ॥३८
भाद्रे[1] शुक्लतृतीयायां पूजयेत् हिमाद्रिजाम् । गोधूमान्नं निवेद्यैव प्राशयेच्चन्दनं सितम् ॥३९
गन्धोदकं ततः प्राश्य सखीभिः सहिता स्वपेत् । प्रभाते मिथुनं भोज्यं मार्गपालीशतं लभेत् ॥४०
तद्वत्कृष्णतृतीयायां दुर्गां देवीं समार्चयेत् । दद्यात्पिष्टफलान्दिव्यान्गुडाज्यपरिपूरितान् ॥४१
प्राशयित्वा तु गोमूत्रं स्वप्याच्छान्तेन चेतसा । प्रातस्तु मिथुनं भोज्यं सदासत्रफलं लभेत् ॥४२
मासि चाश्वयुजे भक्त्या देवीं नारायणीं यजेत् । सोपवासा खण्डपूपान्नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥४३
प्राशयेच्चन्दनं रक्तं स्वप्याच्च गतमत्सरा । प्रभाते भोज्यं दाम्पत्यमग्निहोत्रफलं लभेत् ॥४४
तथा कृष्णतृतीयायां स्वस्ति नाम प्रपूजयेत् । शाल्योदनं गुडोपेतं नैवेद्यं निर्वपेत्ततः ॥४५
कुसुंभबीजान्सम्प्राश्य त्यक्त्वा कामं स्वपेन्निशि । सम्भोज्य मिथुनं प्रातर्गवाह्निकफलं लभेत् ॥४६
कार्तिकस्य तृतीयायां स्वाहानाम्नीं प्रपूजयेत् । क्षीरं खण्डघृतोपेतं नैवेद्यं दापयेच्च ताम् ॥४७
स्वप्याद्रात्रौ जितक्रोधा प्राश्य कुंकुमकेशरान् । प्रभाते मिथुनं भोज्यमेकभक्तफलं लभेत् ॥४८
तथा कृष्णतृतीयां स्वधानाम्नीं प्रपूजयेत् । मुद्गौदनं निवेद्याथ घृतं प्राश्य स्वपेन्निशि ॥४९
प्रातः सम्भोज्य मिथुनं नक्तव्रतफलं लभेत् । एवं सम्वत्सरं कृत्वा मुक्तपापा शुचिर्भवेत् ॥५०

अनन्तर तिल की खली के प्राशन पूर्वक शुद्ध भावना से रात्रि व्यतीत करे । पुनः प्रातः काल द्विज दम्पत्ति को प्रसन्न करने से इष्टापूर्त फल की प्राप्ति होती है ।३३-३८। भाद्र शुक्लतृतीया के दिन हिमालय पुत्री पार्वती की अर्चना करके गोधूमान्न के भक्ष्य पदार्थ उन्हें अर्पित कर श्वेत चन्दन और गंधोदक के प्राशन पूर्वक सखियों समेत शयन करे । प्रातः काल होने पर ब्राह्मण के जोड़े को भोजन से तृप्त करने पर सौ मार्ग-पाली फल की प्राप्ति होती है । उसी प्रकार कृष्ण तृतीया के दिन उमा देवी की पूजा करके पीठी के दिव्य फल जो गुड घी से बनाये गये हों, अर्पित करके गोमूत्र प्राशन पूर्वक शान्त चित्त से शयन कर रात्रि व्यतीत करे । प्रातः काल होने पर मिथुन (स्त्री-पुरुष) ब्राह्मण को भोजन कराने से सत्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं । आश्विन मास की शुक्ल तृतीया के दिन भक्ति पूर्वक नारायणी देवी की उपवास रहकर पूजा करने के उपरांत खांड समेत पूआ अर्पित करे । अनन्तर रात्रि में शुद्ध मन से रक्त चन्दन के प्राशन पूर्वक शयन करके पुनः प्रातः काल के समय द्विज दम्पत्ति को भली भाँति तृप्त करने से अग्निहोत्र के फल प्राप्त होते हैं । कृष्ण तृतीया के दिन स्वाति नामक देवी की पूजा करके गुड मिश्रित साठी चावल के मधुर पदार्थ उन्हें अर्पित करे । अनन्तर कुसुंम बीज के प्राशन कर रात्रि में काम के त्याग पूर्वक शयन करके पुनः प्रातः काल दम्पत्ति ब्राह्मण को भोजन कराने से गवाह्निक फल की प्राप्ति होती है ।३९-४६। कार्तिक तृतीया के दिन स्वाहा नामक देव की पूजा करके क्षीर, खांड, और घी से बने भक्ष्य पदार्थ उन्हें अर्पित कर कुंकुम केशर के प्राशन पूर्वक क्रोध त्याग कर शयन करे। अनन्तर प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति के भोजन कराने से एक भक्त का फल प्राप्त होता है। उसी प्रकार कृष्ण तृतीया के दिन स्वधा नामक देवी की आराधना करके मूँग के लड्डू अर्पित कर घी के प्राशन पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे। अनन्तर प्रातः काल होने पर शुभ ब्राह्मण दम्पत्ति को तृप्त भोजन कराने से नक्त व्रत के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पूर्ण वर्ष तक

---

१. एवं भाद्रपदस्यादौ पूजयेत्कमलालयाम् ।

शुक्लपक्षे तृतीयायां सोपवासा निरामया । विज्ञाय च द्रुतं भक्त्या उमां शास्त्रार्थबोधकैः ॥५१
मण्डलं च ततो लिख्य नवनाभं वरप्रदम् । सौवर्णं कारयेद्देवमुमया सहितं प्रभुम् ॥५२
ताभ्यां नेत्रेषु दातव्यं मौक्तिकं नीलमेव च । प्रवालमोष्ठयोर्दद्यात्कर्णयो रत्नकुण्डले ॥५३
उपवीतं तु देवस्य देव्या हारं तथोरसि । रक्तवस्त्रधरां देवीं सितवस्त्रं महेश्वरम् ॥५४
चतुःसमेन वालस्य पुष्पैर्धूपैरथार्च्चयेत् । मण्डले पूजयित्वा च होमं कुर्यात्ततोऽगुरोः[1] ॥५५
ततोऽपराजितां नाम देवीं तत्रैव पूजयेत् । मृत्स्नां सम्प्राशयित्वा च रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥५६
गीतवाद्योत्सवैर्हृद्यैर्वीणामङ्गलपाठकैः । रात्रिमेवं जपेद्भक्त्या यावदुद्गच्छते रविः ॥५७
तूलीगण्डकसन्युक्ते पर्यङ्केत्यन्तशोभिते । उद्धृत्य मण्डलाद्देवं पर्यङ्कोपरि विन्यसेत् ॥५८
वितानध्वजमालालिकिंकिणीदर्प्पणान्वितम् । पुष्पमण्डपिकाच्छन्नं धूपगुग्गुलवासितम् ॥५९
तस्याग्रे भोजयेद्भक्त्या स्वशक्त्या मिथुनानि च । प्रीणयेद्भक्ष्यभोज्यैश्च पक्कान्नैर्मधुरैः शुभैः ॥६०
ततो दत्त्वाऽक्षतान्हस्ते ताम्बूलं विनिवेदयेत् । प्रीयतां मे उमाकान्तः पार्वत्या सहितःशिवः ॥६१
उच्छिष्टं शोधयित्वा तु पुनः प्रोक्ष्य समन्ततः । रक्तवर्णां सुशीलां च सुरूपां सुपयस्विनीम् ॥६२
शृङ्गाभ्यां दत्तकनकां राजतखुरसंयुताम् । कांस्यदोहनकोपेतां रक्तवस्त्रावगुण्ठिताम् ॥६३
घण्टाभरणशोभाढ्यां देवदेव्यग्रसंस्थिताम् । पादुकोपानहच्छत्रभोज्यभाजनसंयुताम् ॥

इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने से वह पापों से मुक्त हो जाती है । शुक्ल पक्ष में तृतीया के दिन तन्द्रा रहित उपवास के नियम ग्रहण कर भक्ति श्रद्धासमेत उमा के स्मरण पूर्वक नव कोष्ठ के मण्डल की रचना कर उसके भीतर उमा और महेश्वर की सुवर्ण की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर—दोनों देवों के नेत्र स्थान में मोती और नील, ओष्ठ में प्रवाल (मूंगा), एवं कान में रत्न के कुण्डल सुशोभित करके शिव जी का वक्षःस्थल यज्ञोपवीत द्वारा और उमादेवी का उरस्थल हार से विभूषित करते हुए देवी को रक्तवस्त्र और महेश्वर को श्वेतवस्त्र से सुसज्जित करके चारो ओर से उस मण्डल की पुष्प, धूप द्वारा अर्चना करके मध्य में उन देवों की पूजा के उपरांत हवन प्रारम्भ करना चाहिए । अनन्तर अपराजिता देवी की उसी स्थान पर अर्चना करके प्रशस्त मृत्तिका के प्राशन पूर्वक गीत, वाद्य, वीणा आदि वाद्य मङ्गल पाठ अथवा अन्य उत्सव द्वारा जागरण कर रात्रि व्यतीत करे । पुनः सूर्योदय होने पर तोशक तकिया एवं ऊँचे गद्दे आदि से सुसज्जित ऊस शय्या पर देव को मण्डल से उठाकर स्थापित करे, जो वितान, ध्वजा, मालाओं के समूह, किंकड़ी दर्पण से सुशोभित, पुष्प मण्डप से आच्छन्न, धूप एवं गुग्गुल से सुवासित हो । तथा उन्ही के समक्ष ब्राह्मण दम्पत्ति को यथाशक्ति भोजनादि मधुर पक्वान द्वारा भली भाँति तृप्त करके अक्षत समेत ताम्बूल हाथ में देकर क्षमा प्रार्थना करे कि—पार्वती समेत उमाकांत शिव मुझ पर प्रसन्न हों ।४७-६०। तदुपरांत वहाँ के उच्छिष्ठ (जूठे) स्थानों को चारों ओर से शुद्ध कर उमा समेत महादेव जी के समक्ष एक रक्तवर्ण की गौ को जो सुशील, सुरूप, एवं अधिक दूध देती हो, और सुवर्ण से उसकी सींग चाँदी से चारों खुर विभूषित करके रक्त वस्त्र से उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग आच्छन्न हों तथा गले में घंटा रूपी आभूषण से सुशोभित कर उसके समीप कांसे की दोहनी रखी हो, स्थित कर चरण पादुका, उपानह, छत्र, पाक करने के समस्त

---

१. ततः ।

त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्या गुरोः सर्वं निवेदयेत् ॥६४
उमामहेश्वरं देवमवियोगं सुरार्चितम् । अव्यवच्छेदभूतं च सुप्रीतं तदिहास्तु मे ॥६५
प्रणम्य शिरसा भूमौ क्षमस्वेति गुरुं वदेत् । एवं समाप्यते देव्या[1] आनन्तर्यव्रतोद्यमन् ॥
यः प्रकुर्यात्पुमान्स्त्री वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥६६
गन्धर्वयक्षलोकांश्च विद्याधरमहोरगान् । ऋषिसिद्धामरं ब्राह्मं विष्णुलोकं सनातनम् ॥६७
भुक्त्वा भोगानशेषांश्च एकविंशत्कुलान्वितः । रत्नयाने समारूढो गुह्याप्सरसंवृतः ॥६८
देवविद्याधरैर्यक्षैर्वृतो याति शिवालयम् । तत्र भुक्त्वा महाभोगान्स भुंक्ते शिववद्वहून् ॥६९
भुक्त्वा भोगान्यदा भूतः कदाचित्तपसः क्षयात् । पृथिव्यां तु समागम्य भवेत्सकलभूमिपः ॥७०
स्त्री वा समाचरेद्या तु महादेवी तु जायते । आनन्तर्यव्यवच्छिन्नान्भोगान्देवी उमा यथा ॥
त्रैलोक्यपतिरुद्रेण सा भुंक्ते सहिता तथा ॥७१
मनुर्देव्या यथामह्या शच्या शक्रो यथासुखम् । नैरंतर्यं यथा सौख्यं सा भुंक्ते पतिना सह ॥७२
मुनेररुधन्ती यद्वद्विष्णोर्लक्ष्मीर्हृदि स्थिता । तया तयोर्महत्सौख्यं नैरन्तर्यं हि जायते ॥७३
सावित्री ब्रह्मणो यद्वद्गङ्गा तोयनिधेर्यथा । अव्यवच्छिन्नयोः प्रीतिस्तथा जन्मनिजन्मनि ॥७४
अथ जन्मन्यहोन्यस्मिन्व्रतमेतत्कृतं भवेत् । तेनैव पतिना सार्द्धं न वियोगमुपैति सा ॥

पात्र भी वहाँ रखकर तीन प्रदक्षिणा करने के उपरांत उन सभी वस्तुओं को गुरु के लिए अर्पित करे।६१-६४। उस समय साञ्जलि उनके सामने यह कहे कि जिस प्रकार देव पूजित उमा और महेश्वर का अवियोग और सुखद अव्यवहित सदैव रहा करता है, उसी भाँति मेरा भी अविच्छिन्न एवं सुखद साथ रहे—इतना कह कर पृथ्वी में शिर से प्रणामपूर्वक गुरु से 'क्षमस्व' कहे। इस प्रकार इस आनन्तर्य व्रत विधान को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो! गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, महोरग, ऋषि, सिद्ध, देव, ब्रह्मा, विष्णु के उस सनातन लोकों के अशेष उपभोग करने के उपरांत इक्कीस पीढ़ी समेत रत्न भूषित विमान पर बैठकर गुह्य, अप्सरागण, देव, विद्याधर, एवं यक्षों से सुसेवित होते हुए शिवलोक की प्राप्ति करता है, वहाँ पहुँच कर शिव जी की भाँति समस्त सुखों के उपभोग के उपरांत कदाचित् तप के क्षीण होने पर पुनः इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण कर महाराजीय होता है। और जो स्त्री इस व्रत को सुसम्पन्न करती है, वह उमादेवी की भाँति महादेवी होकर समस्त सुखों के अविच्छिन्न उपभोग त्रैलोक्यपति रुद्र के साथ करती है। पुनः पृथ्वी पर उत्पन्न होकर जिस प्रकार मही देवी के साथ मनु और इन्द्राणी के साथ इन्द्र महान् सौख्य का निरन्तर उपभोग करते हैं उसी भाँति वह अपने पति के साथ सदैव सुखोपभोग करती है। वशिष्ठ अरुन्धती और विष्णु के हृदय में सुखासीन लक्ष्मी विष्णु की भाँति उन दोनों (पति-पत्नी) में निरन्तर महान सौख्य होता है।६५-७३। तथा जिस प्रकार सावित्री और ब्रह्मा का गंगा जल की भाँति पवित्र एवं अगाध प्रेम सदैव प्रख्यात है। उसी भाँति उन दोनों के प्रत्येक जन्म में गाढ़ प्रेम सदैव बना रहता है। इस व्रत के प्रभाव से वह अगले जन्म में उसी पति के साथ निरन्तर

---

१. सम्यक्।

योजनायुतसाहस्रे सुरूपा मण्डले भवेत् । अर्घाढ्या सुभगा साध्वी पुत्रपौत्रैरलङ्कृता ।।७५
एतत्तेनिखिलं प्रोक्तमानन्तर्यव्रतं मया । भक्त्या सुविनीताय कथितव्यं न चान्यथा ।।७६
एषा विशेषविहिताभिहिता तृतीया यानन्तरीत्यविधवाभिरुदीरितोच्चैः ।
ऐतामुपोष्य विधिवत्प्रतिपक्षयोगान्नैवांन्तरं सुतसुहृत्स्वजनैरुपैति ।७७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
अनन्तरतृतीयाव्रतवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।२९

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अक्षयतृतीयव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

बहुनात्र किमुक्तेन किं बह्वक्षरमालया । वैशाखस्य सितामेकां तृतीयां शृणु पाण्डव ।।१
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । यदस्यां क्रियते किञ्चित्सर्वं स्यात्तदिहाक्षयम् ।।२
आदौ कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथ्यते । सर्वपापप्रशमनी सर्वसौख्यप्रदायिनी ।।३
शाकले नगरे कश्चिद्धर्मनामाभवद्वणिक् । प्रियंवदः सत्यरतो देवब्राह्मणपूजकः ।।४
तेन श्रुतं वाच्यमानं तृतीया रोहिणी पुरा । यदा स्याद्बुधसंयुक्ता तदा सा च महाफला ।।५

आनन्दोपभोग करती है तथा दश सहस्र योजन के मण्डल में वह असाधारण सौन्दर्य की प्राप्ति पूर्वक बहुमूल्य आभूषणों से भूषित होकर वह पतिव्रता पुत्र-पौत्र समेत अत्यन्त सुभगा होती है । इस प्रकार मैंने इस आनन्तर्य व्रत का समस्त विधान बता दिया, जो विनम्र भक्त को ही बताया जा सकता है अन्य को नहीं इस आनन्तर्य तृतीया को उपवास रहकर सविधान प्रत्येक पक्ष में सुसम्पन्न करने वाली स्त्री सुत, मित्र आदि अपने स्वजनों के साथ चिरकाल तक निरन्तर सुखोपभोग करती है ।७४-७७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
अनन्तर तृतीया व्रतवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अध्याय ३०

अक्षयतृतीया व्रत का वर्णन

कृष्णजी बोले—पाण्डव ! अन्यतृतीया की बहुत व्याख्या एवं वाक्योजना करने की अपेक्षा वैशाखशुक्ल तृतीया की व्याख्या, जिसमें स्नान, दान, जप, हवन, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि जो कुछ किया जाये वह सब अक्षय होता है सुनो मैं बता रहा हूँ, सुनो ! यह व्रत कृतयुग के आदि का है इसीलिए इसे युगादि कहा गया है, जिसके अनुष्ठान से समस्त पापों के शमन पूर्वक अखिलसौख्य की प्राप्ति होती है । १-३। शाकल नामक नगर में धर्म नामक एक वैश्य रहता था, जो प्रिय एवं सत्यवक्ता और देव ब्राह्मण-पूजक था उसने किसी कथावाचक विद्वान् से यह सुनकर—कि रोहिणी नक्षत्र समेत बुधवार के दिन तृतीया होने से

तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् । इति श्रुत्वा स गङ्गायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥६
गृहमागत्य करकान्सान्नानुदकसंयुतान् । अम्बुपूर्णान्गृहे कुम्भान्क्रमान्निःशेषतस्तदा ॥७
यवगोधूमचणकसक्तुदध्यौदनं तथा । इक्षुक्षीरविकारांश्च सहिरण्यांश्च शक्तितः ॥८
शुचिः शुद्धेन मनसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ वणिक् । भार्यया वार्यमाणोऽपि कुटुम्बासक्तचिन्तया ॥९
तावत्स च स्थितः सत्त्वे मत्वा सर्वं विनश्वरम् । धर्मार्थकाम शक्तस्तु कालेन बहुना ततः ॥१०
जगाम पञ्चत्वमसौ वासुदेवं स्मरन्मुहुः । ततः स क्षत्रियो जातः कुशावत्यां नरेश्वरः ॥११
बभूव चाक्षया तस्य समृद्धिर्धर्मनिर्जिता । इयाज स महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥१२
ददौ गोभूहिरण्यादि दानान्यस्यामहर्निशम् । बुभुजे कामतो भोगान्दीनार्तांस्तर्पयञ्जनान् ॥१३
तथाप्यक्षयमेवास्य क्षयं याति न तद्धनम् । श्रद्धापूर्वं तृतीयायां यद्दत्तं विभवं विना ॥१४
एतद्व्रतं मयाख्यातं श्रूयतामत्र यो विधिः । उदकुम्भान्सकरकान्स्नानसर्वरसैर्युतान् ॥१५
ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यदानं प्रशस्यते । छत्रोपानत्प्रदानं च गोभूकाञ्चनवाससाम् ॥१६
यद्यदिष्टतमं चान्यत्तद्देयमविशंकया । एतत्ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७
अनाख्येयं न मे किञ्चिदस्ति स्वस्त्यस्तु तेऽनघ ॥१८

अस्यां तिथौ क्षयमुपैति हुतं न दत्तं तेनाक्षया च मुनिभिः कथिता तृतीया ।
उद्दिश्य यत्सुरपितॄन्क्रियते मनुष्यैस्तच्चाक्षयं भवति भारत सर्वमेव ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-
ऽक्षय्यतृतीयाव्रतवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३०

वह महान् फल प्रदान करती है, उस दिन जो कुछ थोड़ा बहुत दान दिया जाये, वह सब अक्षय होता है—गंगा में स्नान पितृ-तर्पण आदि करके पुनः घर आकर जलपूर्ण कलश, जवा, गेहूँ, चना के सत्तु, दही, चावल, गुड़ घी और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मणों को अर्पित करना आरम्भ किया । उस समय कुटुम्ब के भरण-पोषण में व्यस्त रहने वाली उस अपनी स्त्री के वरण करने पर भी वह निखिल वस्तुओं को नश्वर मानकर उसी भाँति दान करता रहा । इस भाँति धर्म, अर्थ और काम में आसक्त रहने वाले उस वैश्य का बहुत समय के उपरांत वासुदेव के स्मरण पूर्वक निधन हो गया । पश्चात् कुशावती नगर का वह नरेश्वर होकर उत्पन्न हुआ । पिछले जन्म के उस व्रत के प्रभाव से उसके अगाध सम्पत्ति हुई जिसके द्वारा उसने अनेक महान् यज्ञों को सुसम्पन्न किया और उनके प्रारम्भ में उसने गौ, भूमि, सुवर्ण आदि के दान रात-दिन किये तथा दीन-हीनों को यथोचित तृप्त करते हुए अनेक भाँति के समस्त सुखों के उपभोग किये, किन्तु उसका वह धन श्रद्धा समेत तृतीया में दान करने के नाते वैसे ही अक्षय बना रहा । इस प्रकार इस व्रत को मैंने तुम्हें बता दिया । अब इसके विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! जलपूर्ण कलश और करवा के जो स्नान एवं समस्त रसों से पूर्ण हो, दान ग्रीष्मऋतु में अत्यन्त प्रशस्त बताया गया है तथा यथाशक्ति छत्र, उपानह, गौ, भूमि और सुवर्ण एवं अन्य अभीष्ट वस्तु के दान भी उसे निःसंकोच करना चाहिए । अनघ ! यह तो मैंने सुना दिया अब और क्या सुनना चाहते हो, क्योंकि तुमसे कुछ भी गुप्त मैं नहीं रखना चाहता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । भारत ! इस तिथि में हवन अथवा दान करने से वह क्षीण नहीं होता है, इसीलिए मुनियों ने इसे अक्षय तृतीया कहा है क्योंकि देव पितृ के उद्देश्य से किये गये सभी कर्म इसमें अक्षय होते हैं ।४-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
अक्षय तृतीया व्रत वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

अङ्गारकचतुर्थीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

रूपसौभाग्यसुखदं नरनारीजनप्रियम् । पापापहं बहुफलं सुकरं सूपवासकम् ॥१
ऋद्धिवृद्धिकरं स्वर्ग्यं यशस्यं सर्वकामदम् । तन्मे वद व्रतं किञ्चिद्यदि तुष्टोऽसि माधव[1] ॥२

माधव उवाच

शृणु पार्थ परं गुह्यं यन्मया कथितं न च । पुरा तव वनस्थस्य तदद्य प्रवदाम्यहम् ॥३
शिवयोरतिसंहर्षाद्रक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ । मेदिन्या स प्रयत्नेन विधृतो धृतियुक्तया ॥४
तस्माज्जातः कुमारोऽसौ रक्तो रक्तसमुद्भवः । अङ्गं प्रसिद्धमेवेहाङ्गारको वेग उच्यते ॥५
शिवाङ्गाद्रभसा जातस्तेनाङ्गारक उच्यते । अगस्थोऽङ्गारकान्तिश्च अङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः ॥६
सौभाग्यारोग्यकृद्यस्मात्तस्मादङ्गारकः स्मृत । भक्त्या चतुर्थ्यां नक्तेन यस्तु श्रद्धासमन्वितः ॥७
तं पूजयति यत्नेन नारी वाऽनन्यमानसा । तस्य तुष्टः प्रयच्छेत्स यत्त्वया समुदाहृतम् ॥
रूपं सौभाग्यसम्पन्नं नरनारीमनोहरम् ॥८

अध्याय ३१

अङ्गारक चतुर्थीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यादव ! यदि आप मेरे ऊपर अधिक प्रसन्न हैं, तो व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिस के अनुष्ठान द्वारा रूप सौभाग्य सुख की प्राप्ति पूर्वक जो स्त्री पुरुषों को परम प्रिय, पापनाशक एवं अत्यन्त फलदायक हो और उपवास रहकर उसे सुसम्पन्न करने पर ऋद्धि, वृद्धि, स्वर्ग, यश एवं समस्त कामनाओं की सफलता अत्यन्त सुलभ हो। १-२

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले तुम्हारे वनवास के समय भी जिस गुह्य व्रत को नहीं बताया था, आज उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ। पार्वती-शिव के काम-केलि के समय जो रक्त बिन्दु पृथिवी पर च्युत हुआ उसे इस भूमि ने अत्यन्त प्रयत्न के साथ धारण किया था, जिस इस रक्तवर्ण के कुमार की उत्पत्ति हुई है। अंगारक नामक वेग का है, शिवजी के अंग से शीघ्रता से उत्पन्न होने और अंग में रहकर उसकी कांति समेत अंग प्रत्यंग से जन्मग्रहण एवं सौभाग्य आरोग्य प्रदान करने के नाते भी उन्हें अंगारक कहा जाता है। श्रद्धा भक्ति समेत चतुर्थी के दिन नक्त व्रत समेत उनकी अर्चना करने वाले स्त्री पुरुष को वे प्रसन्न होकर उपरोक्त सभी फलप्रदान करते हैं और वह रूप-सौभाग्य सम्पन्न एवं नर नारी को अत्यन्त प्रिय भी हैं। ३-८

---

१. यादव।

युधिष्ठिर उवाच

एतन्मे[1] वद देवेश अङ्गारकविधिं शुभम् । सहोममन्त्रसंस्थानं साधिवासविधानतः ।।९

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं तु कृत सङ्कल्पः स्नानं कृत्वा बहिर्जले । स्नानार्थं मृत्तिकां मंत्रैर्गृह्णीयादम्भसि स्थितः ।।१०
त्वं मृदे वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरताकिल । तेन मे दह पापौघं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ।।११
इमं मन्त्रं पठन्पार्थ आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरश्मिसन्तप्तां गङ्गाजलकणोक्षिताम् ।।१२
तां मृदं शिरसि प्रार्थ्य पूर्वं दत्वाङ्गसन्धिषु । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रेणान्तर्जलेपुनः ।।१३
त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवरक्षसाम् । स्वेदजोद्भिज्जयोनीनां रसानां पतये नमः ।।१४
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च । नदीषु देवखातेषु स्नानं तेषु च मे भवेत् ।।१५
ध्यायन्ध्यनिमिमंमन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् । ततः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा गृहमागत्य न स्पृशेत् ।।
न जल्पेच्च न वीक्षेत क्वचित्पापिष्ठमेव हि ।१६
दूर्वाश्वत्थौ शमीं स्पृष्ट्वा मां च मन्त्रेण मन्त्रवित् । दूर्वामप्यस्य मन्त्रेण युतेन समुपस्थिताम् ।।१७
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि सर्वदेवैश्च वन्दिता । वन्दिता दह तत्सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।।१८

(इति दूर्वामन्त्रः)

पवित्राणां पवित्रं त्वं काश्यपी पठ्यसे श्रुतौ । शमी शमय तत्पापं यन्मया दुरनुष्ठितम् ।।१९

(इति शमीमंत्रः)

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश ! इस अंगारक के शुभ विधान को, होम और अधिवास समेत बताने की कृपा कीजिये ।९

श्रीकृष्ण जी बोले—सर्वप्रथम संकल्प करने के उपरांत स्नान के निमित्त जल में खड़े होकर मंत्रोच्चारण पूर्वक मृत्तिका ग्रहण करे—मृत्तिके ! उद्धार करने के समय कृष्ण ने सर्वप्रथम तुम्हारी वन्दना की है, इसलिए मेरे भी पापों को नष्ट करो, मैंने भी पूर्व पापों का संचय किया है, इस मंत्र को कहते हुए वह मृत्तिका सूर्य को दिखाकर पुनः अपने शिर एवं अंग प्रत्यंग में लेपन कर सूर्य की रश्मि से स्पृष्ट गंगाजल में स्नान करते हुए यह मंत्र कहे कि दैत्य, दानव राक्षस आदि सभी को उत्पन्न करने वाले, तथा स्वेदज, उद्भिज एवं समस्त रसों के पति तुम्हें नमस्कार है, मैं आप में स्नान कर रहा हूँ । इसलिए यह मेरा स्नान समस्त तीर्थों, झरनों, नदियों एवं देव कुण्डों के स्नान का फल प्राप्त करे । इस प्रकार कहते हुए स्नान करके घर आने पर किसी का स्पर्श एवं बातचीत बिना किये (मौन रहकर) पहले यह देख ले कि यहाँ कोई पापी तो नहीं है । पश्चात् दूर्वा, अश्वत्थ (पीपल), शमी और मेरे मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्पर्श करे। प्रथम दूर्वा के स्पर्श में—दूर्वे ! अमृत द्वारा तुम्हारा जन्म हुआ है और समस्त देवों से तुम अर्चित हो अतः मैं भी तुम्हारी वन्दना कर रहा हूँ, मेरे सभी दुष्कृतों का दहन करो।१०-१८। अनन्तर शमी वृक्ष के समीप जाकर इस प्रकार कहते हुए उसका स्पर्श करे तुम अत्यन्त पवित्र, और वेद में काश्यप भी कहे जाते हो, अतः शमी वृक्ष ! मेरे सभी पापों को विनष्ट करो।१९। अश्वत्थ के समीप

---

१. त्वमेव वद देवेश ।

अश्वत्थमङ्गं लभते मन्त्रमेतं निबोध मे । अक्षिस्पंदं भुजस्पंदं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ॥
शत्रूणां च समुत्थानमश्वत्थ शमयस्व मे ॥२०

(इत्यश्वत्थमन्त्रः)

गां दद्यात् ततो देवीं सवत्सां सप्रदक्षिणाम् । समालभ्य तु मन्त्रेण मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२१
सर्वे देवमये देवि दैवतैस्त्वं सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दामि वन्दिता पापहा भव ॥२२

(इति गोमन्त्रः)

एवं मन्त्रं पठन्पार्थ भक्तिभावेन भावितः । प्रदक्षिणां यः कुरुते गां दृष्ट्वा वरवर्णिनीम् ॥२३
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी नात्र संशयः । एवं मौनेन चागत्य वन्द्यान्वन्द्य गृहं व्रजेत् ॥२४
प्रक्षाल्य च मृदा पादौ आहिताऽग्निगृहं विशेत् । होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मंत्रैः पदैर्वरैः ॥२५
शर्वाय शर्वपुत्राय पार्वत्या गोः सुताय च । कुजाय लोहिताङ्गाय ग्रहेशाङ्गारकाय च ॥
भूयोभूयोयमाहुत्या हुत्वाहुत्वा जुहोति वै ॥२६
ओंकारपूर्वकैर्मंत्रैः स्वाहाकारान्तयोजितैः । अष्टोत्तरशतं पार्थ अर्द्धमर्धार्धमेव च ॥२७
एभिर्मंत्रवरैर्भक्त्या शक्त्या वा काममेव वा । सामिद्भिः खादिरीभिश्च[1] घृतदुग्धैस्तिलैर्यवैः ॥२८
भक्ष्यैर्नानाविधैरन्यैः शक्त्या वा मन्त्रविद्वशी । हुत्वाहुतीस्ततः पार्थ देवं संस्थापयेत्क्षितौ ॥२९
स्नपनं[2] केचिदिच्छन्ति सगुडे ताम्रभाजने । सौवर्णं रक्तवर्णं च शक्त्या दारुमयं तथा ॥३०
कृष्णागरुमयं चैव श्रीखण्डघटितं पुनः । सौवर्णपात्रे रौप्ये वा अर्च्यं कुंकुमकेसरैः ॥३१
अन्यैरालोहितैः पार्थ पुष्पैर्वस्त्रैः फलैः शुभैः । राजन्रत्नैश्च विविधैरर्थवान्भक्तितोऽर्चयेत् ॥३२

जाकर करबद्ध होकर कि—अश्वत्थ ! अशुभनेत्र एवं भुजा के स्फुरण, दुःस्वप्न, तथा शत्रुओं के समुत्थान का शमन करो ।२०। उसी प्रकार गौ के समीप जाकर जो नवी के निमित्त दान की गई हो क्षमा प्रार्थी हो कि सर्वदेवमये, देवि ! समस्त देवों ने तुम्हारी अर्चना की है, इसलिए मैं भी तुम्हारे स्पर्श एवं वन्दना करता हूँ, मेरे पापों का अपहरण करो ।२१-२२। पार्थ ! इस प्रकार अत्यन्त भक्ति में तन्मय होकर जो उत्तम गौ की प्रदक्षिणा करते हैं, वे समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं, इसमें संदेह नहीं । पुनः मौन ही रहकर वन्दनीयाँ की वन्दना पूर्वक मृत्तिका से हाथ चरण शुद्ध कर अग्नि शाला में जहाँ आहिताग्नि स्थापित हो, जाकर मंत्रोच्चारण पूर्वक हवन आरम्भ करे—मैं उन मंगले के निमित्त आहुति प्रदान करता हूँ, जो शर्व रूप, शर्व पुत्र, तथा पार्वती और गौ के पुत्र कहे गये हैं, तथा लोहित अंग, गृहेश एवं अंगारक कहे जाते हैं एवं जिसके लिए बार-बार आहुति प्रदान की जाती है । इस प्रकार ओंकार पूर्वक उनके नाम के अंत में स्वाहा पद लगाकर (कुजाय नमः स्वाहा) एक सौ आठ, आधा अथवा तदर्द्ध आहुति अपनी शक्ति के अनुसार खैर आदि की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में घृत, दुग्ध, तिल, जवा और अनके भाँति के भक्ष्य पदार्थों समेत डालकर अनन्तर देव को पृथ्वी में स्थापित कर गुड़ समेत ताँबें के पात्र अथवा सुवर्ण या काष्ठ के रक्तवर्ण पात्र में जो कृष्ण अगरू तथा श्रीखण्ड से विभूषित हो, अथवा कुंकुम केसर युक्त सुवर्ण चाँदी के पात्र में रखकर रक्तवर्ण के पुष्प वस्त्र उत्तम फल एवं रत्नों द्वारा उनकी अर्चना करें।२३-३२। राजन् !

---

१. बादरीभिः । २. स्थापनम् ।

यावद्धि शक्यते चित्तं वित्तवान्भक्तिभावितः । तावद्धि वर्धते पुण्यं दातुः शतसहस्रिकम् ।।३३
किञ्चित्ताम्रमये पात्रे वंशजे मृण्मयेपि वा । पूजयन्ति नरा रक्तै[1] पुष्पैः कुंकुमकेशरैः ।।३४
(ॐ अङ्गारकाय नमः शिरसि । ॐ कुजाय नमः वदने । ॐ भौमाय नमः स्कंधयोः । ॐ मङ्गलाय नमः
बाह्वोः । ॐ रक्ताय नमः उरसि । ॐ लोहिताङ्गाय नमः कट्याम् । ॐ आराय नमः जंघयोः ।
ॐ महीधराय[2] नमः पादयोः एषाऽष्टपुष्पिका । पुरुषाकृति कृतः पात्रे कुजं मंत्रैः समर्चयेत् ।
गुग्गुलं घृतसंयुक्तं कृष्णागरुसमन्वितम् । धूपं सद्द्रव्यजं वापि दद्यात्तत्र समाधिना ।।३५
होमं कुर्वीत पूर्वोक्तैर्मंत्रैर्मंगलसंज्ञितैः । एवं प्रणम्य देवेश ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।३६
निष्पावकं भोजनं वा दद्याच्छक्त्या सदक्षिणम् । वित्तशाठ्यं हि कुर्वाणो न मुख्यफलभाग्भवेत् ।।३७
पश्चाद्भुञ्जीत मौनेन भूमिं कृत्वा तु भाजनम् । मन्त्रेणानेन चालभ्य तन्निबोध मयोदितम् ।।३८
सर्वौषधिरसावासे सर्वदा सर्वदायिनी । त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं तद्भुक्तममृतं भवेत् ।।३९

युधिष्ठिर उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता चतुर्थी नक्तभोजनैः । उपोष्या कतिमात्रा सा किमेका वद यादव ।।४०

श्रीकृष्ण उवाच

चतुर्थी च चतुर्थी च यदाङ्गारकसंयुता । उपोष्या तत्रतत्रैव प्रदेयो विधिना कुजः ।।

अत्यन्त भक्ति श्रद्धासमेत यथाशक्ति दान करने से सैकड़ों एवं सहस्रों गुना पुण्य की वृद्धि होती है । बाँस अथवा मृत्तिका के कुछ रक्तपात्र में रक्तपुष्प, कुंकुम, केशर द्वारा मनुष्यों को ओं अंगारकाय नमः से शिर, ओं कुजाय नमः से मुख, ओं भौमाय नमः से कंधे, ओं मंगलायनमः से बाहुओं रक्तायनमः से उर, ओं लोहितांगाय नभः से कटि, ओ आराय नमः से जंघे, ओं महीधरायनमः से चरण, की पूजा करनी चाहिए । पुरुषाकार आकृत्ति बनाकर पात्र में स्थापन पूर्वक इस आठ पुष्पिका रूप कुज के मंत्र द्वारा उनकी सविधान अर्चना करना बताया गया है । पूजन के समय घृत, कृष्ण अगरु समेत गुग्गुल की अथवा किसी उत्तम वस्तु की धूप अर्पित करना चाहिए । पश्चात् उस समाधिनिष्ठ पुरुष को पूर्वोक्त मंगल मंत्र के उच्चारण द्वारा हवन करके प्रणाम पूर्वक उस देव को ब्राह्मण के लिए अर्पित करे । यथाशक्ति दक्षिणा समेत अग्नि पक्व के अतिरिक्त अन्य भोजन अर्पित करना चाहिए । वित्तशाठ्य तो कभी करना ही न चाहिए, क्योंकि उसके करने से मुख्य फल की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है । तदुपरान्त मौन होकर भूमि पर भोजन पात्र रखकर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भोजन करें—समस्त औषधों के रस से सुवासित सर्वदा सब कुछ देने वाली पृथिवी देवी ! मैं तुम्हारे तल के ऊपर भोजन करने की इच्छा प्रकट कर रहा हूँ, अतः वह मेरे भुक्त पदार्थ अमृत के समान होये ।३३-३९

युधिष्ठिर ने कहा—यादव ! अंगारक संयुक्त चतुर्थी का नक्त भोजन द्वारा एक ही तिथि में उपवास करना चाहिए अथवा अनेक चतुर्थी तिथि में इसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा कीजिये ।४०

श्रीकृष्ण जी बोले—पाण्डव ! अंगारक युक्त प्रत्येक चतुर्थी तिथि में उपवास रह कर सविधान

---

१. रत्नैः । २. महीनन्दनाय नमः ।

वित्तहीनाः प्रतीक्षन्ते यावद्वित्तोपलम्भनम् ॥४१
चतुर्थ्यां च चतुर्थ्यां च विधानं शृणु पाण्डव । सौवर्णपात्रे कृत्वा तु अङ्गारकमकृत्रिमम् ॥
दश सौवर्णिकं मुख्यं दशार्द्धार्द्धमथापि वा ॥४२
विंशत्पलानि पात्राणि विंशत्यर्द्धपलानि च । विंशत्कर्षाणि वा पार्थ अतो न्यूनं न कारयेत् ॥४३
प्रतिष्ठाप्य कुजं मन्त्रैर्वस्त्रैः सम्परिवेष्टितम् । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा दिव्यां सद्धूपधूपिताम् ॥४४
तत्र[1] सम्पूजयेद्देवं पूर्वमन्त्रैर्विधानतः । भक्त्या भोज्यैरनेकैश्च फलैरत्नैश्च सागरैः ॥४५
वस्त्रैः प्रावरणैर्यानैः शय्योपानद्वरासनैः । छत्रैः पुष्पैर्गन्धवरैः शक्त्या वित्तानुसारतः ॥४६
ततो विप्रं परीक्षेत व्रतशौचसमन्वितम् । वेदाध्ययनसम्पन्नं शास्त्रज्ञं निरहंकृतिम् ॥४७
अङ्गारकविधिं यश्च सम्यग्जानाति शास्त्रतः । आह्वानविधिमन्त्रांश्च होमार्चनविसर्जनम् ॥४८
सम्पूज्य वस्त्राभरणैस्तस्मै देयः कुजोत्तमः । यथा श्रुतो यथा ज्ञातस्तथा भक्त्या ह्युपोषितः ॥४९
वित्तसारेण तुष्य त्वं मन भौम भवाद्भव । पठन्निमं मन्त्रवरं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
ब्राह्मणश्चाप्यसौ विद्वन्मन्त्रमेतमुदाहरेत् ॥५०
मङ्गलं प्रतिगृह्णामि उभयोरस्तु मङ्गलम् । दातृप्रतिग्राहकयोः क्षेमारोग्यं भवत्विति ॥५१

प्रतिग्राहकमन्त्र

एवं चतुर्थे सम्प्राप्ते धनप्राप्तिर्न विद्यते । तदामन्त्रार्चनपरः पुनरेतां समाचरेत् ॥५२

मंगल के लिए अर्चना की वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए। निर्धन लोगों को धन प्राप्ति के निमित्त अंगारक युक्त प्रत्येक चतुर्थी का विधान विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सुनो! पार्थ! अंगारक की अकृत्रिम प्रतिमा सुवर्ण के उस पात्र में जो दश तोले, तदर्ध (पाँच), तदर्ध (ढाई), बीस पल, दश पल अथवा बीस कर्ष के परिमाण का बना हो, इससे न्यून का पात्र कभी न बनाना चाहिए, स्थापित कर वस्त्र से आवेष्टित करने के उपरांत पुष्प मण्डपिका में पूर्वोक्त मंत्रों के उच्चारण पूर्वक सविधान दिव्य धूप आदि वस्तुओं से उनकी अर्चना करे। पुनः भक्तिपूर्वक भोज्यार्थ अनेक फल, समुद्र रत्न, ऊनी वस्त्र, पान, शय्या, उपानह, उत्तमासन, छत्र, पुष्प, गन्ध आदि यथाशक्ति समुपार्जित वस्तुओं का समर्पण कर किसी व्रती, पवित्रता पूर्ण, वेदाध्याय धनसम्पन्न, शास्त्र मर्मज्ञ एवं निराभिमानी ब्राह्मण को सादर बुलाकर जो अंगारक के शास्त्रीय विधान को भली भाँति जानता हो, तथा आह्वान, हवन, अर्चन और विसर्जन का मर्मज्ञ हो, वस्त्र और आभूषणों द्वारा उसकी पूजा करके मंगल की वह उत्तम प्रतिमा उन्हें अर्पित करे। उस समय इस मंत्र के उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए—शास्त्र में जिस प्रकार सुना और जिस भाँति मेरी बुद्धि में इसकी धारणा हुई उसके अनुसार भक्ति पूर्वक मैंने उपवास रहकर अपनी शक्ति के अनुसार आपकी अर्चना की है, अतः भव (शिव) द्वारा उत्पन्न भौमदेव! मेरे ऊपर प्रसन्न हो। दान-प्रतिग्रहीता उस विद्वान् को भी उस समय यह मंत्रोच्चारण करना चाहिए कि मंगल की यह उत्तम मूर्ति मैं अपना रहा हूँ, इसलिए दोनों (दाता प्रतिग्रहीता) के यहाँ मंगल होता रहे तथा वे दोनों कुशल एवं

---

१. तत्रस्थमर्चयेन्मन्त्रैः पुष्पधूपैर्विधानतः। २. शुभैः।

आशरीरनिपाताद्वा यथोक्तफलभाग्भवेत् । अल्पवित्तो यथा शक्त्या सर्वमेतत्समाचरेत् ॥५३
अङ्गारके संयुक्ता वस्त्रां तिलशराविकाम् । अनेन विधिना दत्त्वा यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥५४
एवं चतुर्थी यो भक्त्या कुजयुक्तामुपोपयेत् । तस्य पुण्यफलं यच्च तन्निबोध युधिष्ठिर ॥५५
इह स्थित्वा चिरं कालं पुत्रपौत्रश्रिया वृतः । देहावसाने दिव्यौजा दिव्यगन्धानुलेपनः ॥५६
दिव्यनारीगणवृतो विमानवरमास्थितः । याति देवपुरं हृष्टो देवैः सहाभिनन्दितः ॥५७
स तत्र रमते कालं देवैः सह सुरेश वत् । चतुर्युगानि षट्त्रिंशत्ततः कालान्तरे पुनः ॥५८
इह चागत्य राजासौ कुले महति जायते । रूपवान्धनवान्दाम्मी दानशीलो दयापरः ॥५९
नारी च रूपसम्पन्ना सुभगा जातिसंयुता । पुत्रपौत्रैः परिवृता भर्त्रा सह रमेच्चिरम् ॥६०
रमित्वा सुचिरं कालं पुनः स्वर्गगतिं लभेत् । एष ते कथितो राजन्सरहस्यो विधिस्तथा ॥
दुर्लभो यो मनुष्याणां देवानां भद्रमस्तु ते ॥६१

अङ्गारकेण सहिता तु सिता चतुर्थी शस्ता सुरार्च्चनविधौ पितृपिण्डदाने ।
तस्यां कुजं कुरुकुलोद्वह येऽर्चयन्ति भूमौ भवन्ति बहुमङ्गलभाजनास्ते ॥६२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
चतुर्थीव्रते अङ्गारकचतुर्थीव्रतवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३१।

आरोग्य रहें ।४१-५१। इस प्रकार चतुर्थी के दिन पूजन करने पर यदि धन लाभ न हो तो यंत्र के पूजन पूर्वक पुनः अंगारक युक्त चतुर्थी में मंगल की पूजा प्रारम्भ कर आजीवन करता रहे, तो अवश्य फलभागी होगा। निर्धन व्यक्ति को भी अंगारक युक्त सभी चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक कुज के लिये वस्त्र, तिल, एवं कसोरा आदि के समर्पण पूर्वक सविधान उनकी अर्चना करनी चाहिए, जिससे उसे भी समस्त फल प्राप्त होते हैं। युधिष्ठिर ! इस प्रकार मंगल युक्त चतुर्थी के दिन उपवास रहकर अर्चना समेत उन्हें उपरोक्त वस्तुओं के समर्पण करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इस मर्त्य लोक में चिरकाल तक पुत्र-पौत्र आदि परिवार समेत अनेक सुखों के उपभोग करने के उपरांत देहावसान होने पर दिव्य तेज, द्वारा आनन्द मग्न देवों के साथ देवलोक की यात्रा करता है। वहाँ पहुँचकर इन्द्र की भाँति देवों के साथ समस्त सुखोपभोग करते हुए छत्तीस चतुर्युगी व्यतीत करता है। अनन्तर कदाचित् पृथिवी पर जन्मग्रहण करके उत्तम कुल में रूपवान्, धनवान, सत्यवक्ता, दानी, एवं दयाशील राजा होता है। इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी रूप सौन्दर्य, सौभाग्य एवं उत्तमगति की प्राप्ति पूर्वक पुत्र-पौत्र समेत अपने पति के साथ चिरकाल तक रमण करती है और देहावसान होने पर पुनः स्वर्ग की प्राप्ति करती है। राजन् ! इस प्रकार मैंने सरहस्य इस अंगारक चतुर्थी के विधान को सुना दिया जो मनुष्यों एवं देवों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। तुम्हारा मंगल हो। कुरुकुलोद्वह ! शुक्ल पक्ष की चतुर्थी अंगारक युक्त होने पर देवार्चना और पितरों के पिण्डदान के लिए उत्तम बतायी गयी है। अतः जो कोई उस दिन मंगल की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करते हैं, उन्हें इस भूतल में अत्यन्त कल्याण की प्राप्ति होती है।५२-६२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
चतुर्थी व्रत के मध्य अंगारक चतुर्थी व्रत वर्णन नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त।३१।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः
विनायकस्नपनचतुर्थीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

यन्न सिद्धयन्ति कर्माणि प्रारब्धानि नरोत्तमैः । तत्केन कारणेनैतत्पृष्टो मे ब्रूहि माधव ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

विनायकोर्थसिद्धयर्थं लोकस्य विनियोजितः । गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥२
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥३
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति । अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥४
व्रजमानस्तथात्मानं मन्यते तु गतं परैः । विमना विफलारम्भः ससीदत्यनिमित्ततः ॥५
पातकी विहीनच्छायो म्लानत्वहेतुलक्षणः । करभारूढमात्मानं महिषखरगं तथा ॥६
यातुधानाश्रितं यानं श्मशानस्यान्तिकं[1] नृप । वीक्षेत कुरुशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः ॥
तैलार्द्रमात्रं स्वं देहं करवीरविभूषितम् ॥७
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः । कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ॥८
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा । वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ॥९

अध्याय ३२
विनायकस्नपनचतुर्थीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—माधव ! मुझे यह जानने की इच्छा है कि उत्तम मनुष्यों द्वारा भी आरम्भ किये गये कर्म सफल न होकर अधूरे रह जाते हैं, इसका क्या कारण है, बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण बोले—लोक में अर्थसिद्धि के निमित्त ब्रह्मा और शिव जी ने गणाधिपति विनायक की स्थापना की है । उन्होंने यह बताया है कि उनके पूजन करने पर जिन लक्षणों का प्रादुर्भाव स्वप्न में होता है, उन्हें बता रहा हूँ, जो शुभाशुभ के सूचक हैं, सुनो ! स्वप्न में अगाध जल का अवगाहन, काषाय वस्त्र धारी मुण्डी (संन्यासी) का दर्शन, राक्षसारोहण, शूद्र, गधे और ऊँटो के साथ एकत्र स्थिति, तथा चलते हुए अपने को दूसरे द्वारा अन्यत्र प्राप्त होना आदि देखने वाले पुरुष के आरम्भ निष्फल होते हैं तथा म्लान मुख होकर उसे कष्ट का अनुभव करना पड़ता है । पातकी और छायाहीन पुरुष म्लान मुख होता है । हाथी के शिशु, महिष अथवा गधे पर बैठना, राक्षस रक्त के स्पर्श, श्मशान समीप यात्रा, तथा कुरुशार्दूल ! तैल से आर्द्र होना और कनेर पुष्प से विभूषित होने के स्वप्न देखने वाले राजपुत्र को राज्य की प्राप्ति कुमारी को पति की प्रप्ति, सधवा को पुत्र, वेदाध्यायी को आचार्यत्व, शिष्य को अध्ययन, वैश्य को लाभ,

---

१. प्रासादानुगतम् ।

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केन वस्त्रेणाच्छादितस्य तु ॥१०
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वारे वा धिषणस्य तु ॥११
पुष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिर्वाच्या द्विजैः शुभैः ॥१२
चत्वार ऋग्यजुः सामाथर्वणप्रवणास्ततः । व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भूमिजं तथा ॥१३
कृष्णस्य पितरं चाथ अवतारं सितं तथा । धिषणं क्लेदपुत्रं च कोणं लक्ष्मीं च भारत ॥
विधुंतुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ॥१४
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ह्रदात् । मृत्तिकां रोचनां रत्नं गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥१५
यदाहृतं ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥१६
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिचामि पावमान्यः पुनंतु मे ॥१७
ॐ भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥१८
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नंतु सर्वदा ॥१९
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्धिन शफलान्सव्येन प्रतिगृह्य च ॥२०
मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ । कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥२१
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥२२
कृताकृतान्स्तण्डुलांश्चचपलौदनमेव च । मत्स्यान्ह्यपक्वांच तथा मांसमेतावदेव तु ॥२३

कृषक को कृषी की प्राप्ति नहीं होती है ।२-९। उसको किसी पुण्य दिन में दुर्निमित्त के शांत्यर्थ सविधान स्नान करना चाहिए । राजन् ! गौर सर्षप (राई) अलसी की खली के स्पर्श समेत वस्त्र के आच्छन्न होकर समस्त औषध एवं सम्पूर्ण गंध के लेपन शिर में लगाकर शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में वृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र संयुक्त होने पर उनके सामने भद्रासन पर बैठकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराये । जो ऋग, यजु, साम तथा अथर्व वेद के मर्मज्ञ विद्वान हो, पश्चात् शिव, पार्वती और मंगल, कृष्ण जनक वासुदेव, वृहस्पति, क्लेदपुत्र, कोण, लक्ष्मी, खड्गसमेत राहु की पूजा करने के उपरांत अश्व, गज के स्थान, वल्मीक (विभौर) तथा संगम की मृत्तिका, गोरोचन, रत्न एवं गुग्गुल । उस चार कलशों के जल में डालकर, जो एक वर्ण के सौन्दर्य पूर्ण बनाये गये हों रक्त वृषभ के चर्मासन पर, जो भद्रतापूर्ण सुरचित हो, उन्हें स्थापित कर स्नान कराते हुए इन मंत्रों के उच्चारण करे—ऋषियों ने जिसके सैकडों धारों को सहस्राक्ष बना अत्यन्त पावन कर दिया है, उसी शत धारा वाले जल के द्वारा तुम्हारा अभिषेक कर रहा हूँ, अत्यन्त पवित्र भाजन होकर मुझे पावन करो ।१०-१७। ओंकार समेत राजा वरुण, सूर्य वृहस्पति, इन्द्र, वायु, एवं सप्तर्षियों ने तुम्हें प्रदान किया है, इसलिए तुम्हारे केश, सीमन्त (के वृन्द के सौन्दर्य) शिर, भाल, कान, और आँखों में स्थित दुर्भाग्य को यह जल शमन करे । स्नान के उपरांत गूलर के स्रुवा द्वारा दाहिने हाथ से राई के तेल की आहुति छोड़ते समय मित, सम्मित, शाल कटंकट, कूष्माण्ड, और राजपुत्र के अंत में स्वाहा पद लगाकर (मिताय स्वाहा) उच्चारण करता रहे । अनन्तर चौराहे पर पहुँच कर सूप में चारों ओर कुश बिछाकर नमस्कार पूर्वक नाम मंत्रोच्चारण करते हुए पृथक्-पृथक् कच्चे-पक्के चावल, मांस,

पुष्पान्वितं सुगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिका पूपांस्तथैवोंडेरकस्रजः ॥२४
दध्यन्नं पायसं चैव गुडवेष्टितमोदकम् । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोम्बिकाम् ॥
दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२५
रूपं देहि जयं देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥२६
प्रबलं कुरु मे देवि बलविख्यातिसम्भवम् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२७
एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२८
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९

वैनायकं विनयसत्त्ववतां नराणां स्नानं प्रशस्तमिह विघ्नविनाशकारि ।
कुर्वंति ये विधिवदत्र भवन्ति तेषां कार्याण्यभीष्टफलदानि स संशयोऽत्र ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
विनायकस्नपनचतुर्थीव्रतं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३२

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

विनायकचतुर्थीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथाविघ्नकरं राजन्कथयाम व्रतं तव । येन सम्यक्कृतेनेह न विघ्नमुपजायते ॥१

कच्चे-पक्के मत्स्य पुष्पसमेत सुगन्धित तीनों भाँति के मद्य, मूलक, पूरी, पूआ, अंडेरक की माला । दधि-अन्न, खीर, मोदक समेत गुड़ की पीठी की बलि प्रदान करने के उपरांत विनायक की जननी भगवती अम्बिका के समीप जाकर दूर्वा, राई, समेत, पुष्पों के अर्घ्य प्रदान कर साञ्जलि क्षमा प्रार्थना करे कि भवति ! मुझे रूप-सौन्दर्य, जन, तेज, पुत्र और धन के प्रदान समेत समस्त कामनाओं की सफलता प्रदान करें और देवि ! मुझे प्रख्यात बलवान् बनाये । पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण एवं श्वेत गंधानुलेपन पूर्वक ब्राह्मण भोजन हो जाने पर गुरू के लिए युग्म वस्त्र अर्पित करे । इस प्रकार विनायक के पूजनोपरांत ग्रहों की समर्चना करने पर आरम्भ कर्मों के फल तथा उत्तम श्री की प्राप्ति होती है । आदित्य की नित्यपूजा और महागणपति के नित्यतिलक करने से निश्चित सिद्धि प्राप्त होती है । इस प्रकार विनय-विनम्र पुरुषों के लिए विघ्नविनाशकारी एवं प्रशस्त विनायक देव की पूजा बता दी गयी है, जिसे सविधान सुसम्मपन्न करने पर अभीष्ट सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं ।१८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
विनायक स्नपन चतुर्थीव्रत वर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

अध्याय ३३

विनायकचतुर्थी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! मैं तुम्हें विघ्नविनाशक एक व्रत भी बता रहा हूँ, जिसे सविधान सुसम्पन्न

चतुर्थ्यां[1] फाल्गुने मासि गृहीतव्यं व्रतं त्विदम् । नक्ताहारेण राजेन्द्र तिलान्नं पारणं स्मृतम् ॥२
तदेव वह्नौ होतव्यं ब्राह्मणाय च तद्भवेत् ॥३
शूराय वीराय गजाननाय लम्बोदरायैकरदाय चैव ।
एवं तु सम्पूज्य पुनश्च होमं कुर्याद्व्रती विघ्नविनाशहेतोः ॥४
चातुर्मास्यां व्रतं चैव कृत्वेत्थं पञ्चमे तथा । सौवर्णं गजवक्त्रं तु कृत्वा विप्राय दापयेत् ॥५
ताम्रपात्रैः पायसभृतैश्चतुर्भिः सहितं नृप । पञ्चमेन तिलैः सार्द्धं गणेशाधिष्ठितेन च ॥६
मृण्मयान्यपि पात्राणि वित्तहीनस्तु कारयेत् । हेरम्बं राजतं तद्वद्विधिदानेन दापयेत् ॥
इत्थं व्रतमिदं कृत्वा सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते ॥७
हयमेधस्य विघ्ने तु सञ्जाते सगरः पुरा । एतदेव व्रतं चीर्त्वा पुनरश्वं प्रलब्धवान् ॥८
तथा रुद्रेण देवेन त्रिपुरं निघ्नता पुरा । एतदेव कृतं यस्मात्त्रिपुरस्तेन घातितः ॥९
मया समुद्रं विशता एतदेव व्रतं कृतम् । तेनाद्रिद्रुमसंयुक्ता पृथिवी पुनरुद्धृता ॥१०
अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृतं पुरा । तपोऽर्थिभिर्यज्ञ सिद्धयै निर्विघ्नं स्यात्परन्तप ॥११
अनेन कृतमात्रेण सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते । मृतो रुद्रपुरं याति वराहवचनं यथा ॥१२

करने पर कभी विघ्न नहीं होता है । राजेन्द्र ! फाल्गुन मास की शुक्ल चतुर्थी के दिन इस व्रत नियम के पालनपूर्वक नक्त भोजन कर तिल का पारण करे । उसी (तिल) का हवन एवं ब्राह्मण भोजन भी कराये । शूर, वीर, गजानन, लम्बोदर, एकदंत, आदि के उच्चारण करते हुए सप्रेम उनकी पूजा करके विघ्नविनाशार्थ व्रती को हवन करना चाहिए । चार मास तक इस भाँति व्रत एवं पूजन करने के अनन्तर पाँचवें मास कें सुवर्ण के एक गजदाँत बनाकर ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक अर्पित करना चाहिए । नृप ! चार मास तक पायस और ताम्रपात्र के प्रदान द्वारा उनकी पूजा करके पाँचवे मास में तिल के साथ गणेश की प्रतिष्ठा-पूजन करना चाहिए । निर्धन व्यक्ति को अन्य पात्र अथवा मृत्तिका पात्र में पूजन करना बताया गया है । इस प्रकार हेरम्ब (गणेश) के निमित्त अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा की सविधान अर्चना कर ब्राह्मण को अर्पित करे इस भाँति इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह समस्त विघ्नों से मुक्त हो जाता है ।१-७। क्योंकि पहले समय में अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान में विघ्न हो जाने पर राजा सगर ने इसी व्रतानुष्ठान द्वारा इस अश्व की पुनः प्राप्ति की थी । उसी भाँति रुद्र देव के त्रिपुरासुर के वध के समय पहले इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे त्रिपुरासुर का निधन हुआ था । समुद्र प्रवेश के समय मैंने भी इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे पर्वत एवं वृक्षों समेत इस पृथ्वी का पुनरुद्धार कर सका । तथा अन्य राजाओं और तपस्वियों ने अपने अभीष्ट सिद्धार्थ इसे सुसम्पन्न किया है। परंतप ! इस व्रत के अनुष्ठान मात्र से प्राणी समस्त विघ्नों से मुक्त हो जाता है और देहावसान होने पर बराह के कथनानुसार वह रुद्रपुर की प्राप्ति करता है।८-१२। इस प्रकार जिसने विश्वेश्वर की जो सप्तमी के चन्द्र-खण्ड की कांति से विभूषित होने की भाँति शुभ्र गजदाँत से सुशोभित है, चतुर्थी के दिन नक्त भोजन

---

१. शुक्लपक्षीयाम्—इत्यर्थः ।

विघ्नानि तस्य न भवन्ति गृहे कदाचिद्धर्मार्थकामसुखसिद्धिविघातकानि ।
यः सप्तमीन्दुशकलाकृतिकां तदन्तं विघ्नेशमर्चयति नक्तकृती चतुर्थ्याम् ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विनायकचतुर्थीव्रतं नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ।३३

।। इति चतुर्थीकल्पः समाप्त ।।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

शान्तिव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि भृणुष्वैकमनाधुना । येन चीर्णेन शान्तिः स्यात्सर्वदा गृहमेधिनाम् ।।१
पञ्चम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके मासि पार्थिव । आरभ्य वर्षमेकं तु ह्यश्नीयादम्लवर्जितम्[1] ।।२
नक्तं देवं च सम्पूज्य हरिं शेषोपरिस्थितम् । अनन्तायेति पादौ तु धृतराष्ट्राय वै कटिम् ।।३
उदरं तक्षकायेति उरः कर्कोटकाय च । पद्माय कर्णौ सम्पूज्य महापद्माय दोर्युगम् ।।४
शङ्खपालाय वक्षस्तु कुलिकायेति वै शिरः । एवं विष्णुं सर्वगतं पृथगेव प्रपूजयेत् ।।५
क्षीरेण स्नपनं कुर्याद्धरिमुद्दिश्य वाग्यतः । तदग्रे होनयेत्क्षीरं तिलैः सह विचक्षणः ।।६

और तिल पारणपूर्वक सविधान अर्चना की है, उसके घर धर्म, अर्थ, एवं काम की सुखसिद्धि सदैव होती रहती है तथा किसी प्रकार का कभी भी विघ्न नहीं होता है ।१३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
विनायक चतुर्थीव्रत वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

।।चतुर्थी कल्प समाप्त।।

अध्याय ३४

शान्तिव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं अब तुम्हें उस शांति व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान द्वारा गृहस्थों को सर्वथा पूर्ण शांति प्राप्त होती है, सावधान होकर सुनो ! पार्थिव ! कार्तिकमास की शुक्ल पञ्चमी से आरम्भ कर वर्ष की समाप्ति पर्यन्त आँवले के त्यागपूर्वक भोजन करे, तथा नक्त के समय शेषशायी भगवान् विष्णु की सर्वाङ्ग आराधना—अनंताय नमः से चरण, धृतराष्ट्राय नमः से करि, तक्षकाय नमः से उदर, कर्कटिकाय नमः से हृदय, पद्माय नमः से कान, महापद्माय नमः से बाहू, शंखपालाय नमः से वक्षःस्थल, कुलिकाय नमः से शिर की पूजा करते हुए इस प्रकार सर्वगत विष्णु देव की पृथक् पूजा करने के उपरांत हरि के उद्देश्य से मौन होकर क्षीर से स्नान के उपरांत उनके सम्मुख क्षीर समेत तिल का हवन

---

१. दन्तवर्जितम् ।

एवं संवत्सरस्यान्ते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । अच्युतं काञ्चनं कृत्वा सुवर्णं तु विचक्षणः ।।७
गां सवत्सां वस्त्रयुग्मं कांस्यपात्रं सपायसम् । हिरण्यम् च यथाशक्ति ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।८
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिप । तस्य शान्तिर्भवेन्नित्यं नागानामभयं तथा ।।९
शेषाहिभोगशयनस्थमथोगमूर्तिं सम्पूज्य यज्ञपुरुषं पतगेन्द्रनाथम् ।
ये पूजयन्ति मधुरैः सितपञ्चमीषु तेषां न नागजनितं भयमभ्युपैति ।।१०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शान्तिव्रतं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३४

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सारस्वतव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन । तथैव जनसौभाग्यमतिविद्यासु कौशलम् ।।१
अभेदश्चापि दम्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च । आयुश्च विपुलं पुंसां जायते केन केशव ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

सम्यक्पृष्टस्त्वया राजञ्छृणु सारस्वतं व्रतम् । यस्य सङ्कीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती ।।३

करे । इस प्रकार वर्ष की समाप्ति तक सविधान इसे सुसम्पन्न करके अनन्तर ब्राह्मण भोजन भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा, सवत्सा गौ, चार वस्त्र, काँसे का पात्र, पायस, तथा हिरण्य यथाशक्ति ब्राह्मण को अर्पित करे । नराधिप ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे सदैव शांति प्राप्त रहती है और नागों से भय कभी नहीं होता है । इस भाँति शेषशायी भगवान् यज्ञपुरुष की जो पतगेन्द्र नाथ कहे जाते हैं, शुक्ल पञ्चमी के दिन मधुर पदार्थों द्वारा अर्चना करते हैं, उन्हें सभी प्रकार की सुखशांतिपूर्वक नागों से भय कभी नहीं होता है ।१-१०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
शांति व्रत वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

अध्याय ३५

सारस्वत व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन ! केशव ! किस व्रत के अनुष्ठान द्वारा मधुरवाणी, सौभाग्य पराकाष्ठा की विद्या, कौशल, दम्पति में सदैव अविच्छिन्न गाढ़प्रेम, बन्धुओं के अवियोग, और दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आप ने अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, अतः मैं सारस्वत व्रत के विधान बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान करने से सरस्वती देवी अत्यन्त प्रसन्न होती है, सावधान होकर सुनो ! जो

योऽयं भक्तः पुमान्कुर्यादेतद्व्रतमनुत्तमम् । तद्वत्सरादौ सम्पूज्य विप्रेण तं समाचरेत् ।।४
अथ चादित्यवारेण ग्रहताराबलेन च । पायसं भोजयित्वा च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ।।५
शुक्लवस्त्राणि दद्याच्च सहिरण्यानि शक्तितः । गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।
एभिर्मंत्रपदैः पश्चात्पूर्वं कृत्वाकृताञ्जलिः ।।६
यथा तु देवि भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः । त्वां परित्यज्य नो तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ।।७
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत् । वाहितं यत्त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ।।८
लक्ष्मीर्मेधा वरारिष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा मतिः । एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति ।।९
एवं सम्पूज्य गायत्रीं वीणाक्षमणिधारिणीम् । शुक्लपक्षेऽक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम् ।।१०
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातश्च धर्मवित् । पञ्चम्यां प्रतिपक्षे च पूजयित्वा सुवासिनीः ।।११
तिलैश्च तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । क्षीरं तथा हिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति ।।१२
सन्ध्यायां च ततो मौनं तद्व्रतं तु समाचरेत् । नान्तरा भोजनं कुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदश ।।१३
समाप्ते तु व्रते दद्याद्भोजनं शुक्लतण्डुलैः । पूर्णं सुवस्त्रयुग्मं च गां च विप्राय भोजनम् ।।१४
देव्यै वितानं घण्टां च सितनेत्रं पटान्वितम् । चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दध्यन्नं शिरैर्युतम् ।।१५
तथोपदेष्टारमपि भक्त्या सम्पूजयेद्गुरुन् । वित्तशाठ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।।१६

कोई भक्तपुरुष इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करे, उसे चाहिए कि वर्ष के आरम्भ में ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य कर व्रत ग्रहण करे । अपने ग्रह एवं तारावल को भली भाँति देखकर किसी रविवार के दिन पायस भोजन द्वारा ब्राह्मण को संतृप्त कर स्वस्ति वाचन कराये । यथाशक्ति ब्राह्मण को शुक्ल वस्त्र, और सुवर्ण प्रदान करने के उपरांत भक्तिपूर्वक शुक्ल माला, गंध और अनुलेपन द्वारा गायत्री की अर्चना मंत्रोच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करके साञ्जलि क्षमा प्रार्थना करे कि—देवि ! जिस प्रकार लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं, मेरे लिए भी वैसा ही करने की कृपा करें । तथा देवि ! समस्त वेदशास्त्र एवं नृत्यगीत आदि जो कुछ आप के पास निधि है, वे सभी सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हों । सरस्वति ! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा एवं मसि, आदि विभूतियों (अंगों) द्वारा मेरी रक्षा करें । इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन वीणा, अक्षमाल, मणि, कमण्डलु और पुस्तक से सुशोभित गायत्री देवी की अर्चना भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न करके उस धार्मिक व्रती को सायं प्रातः मौन होकर भोजन कराना चाहिए । प्रत्येक पक्ष की पञ्चमी के दिन तिल, तंडुल, घी, क्षीर, सुवर्ण द्वारा सौभाग्यवती स्त्री की अर्चना करके अञ्जलि बाँधकर गायत्री देवी मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर क्षमा प्रार्थी होये ।३-१२। इसी प्रकार सायंकाल के समय भी मौनव्रत धारणपूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । प्रातः और सायंकाल पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत ही भोजन करने का विधान बताया गया है । इस प्रकार तेरह मास तक प्रतिदिन पूजन करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में श्वेत तण्डुल पूर्ण पात्र, युग्म वस्त्र, और गौ ब्राह्मण के लिए अर्पित कर देवी के लिए भी वितान (चाँदनी) घंटा, शुभ नेत्र, चन्दन, युग्म वस्त्र, दध्यन्न, और शिखर समर्पित करके भक्तिपूर्वक अपने उपदेष्टा गुरु की भी यथा शक्ति वस्त्र, माला, अनुलेपन द्वारा पूजा करे। दान के समय वित्तशाठ्य दोष पर विशेष ध्यान रखना चाहिए । इस

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम् । विद्यावानर्थयुक्तश्च रक्तकण्ठश्च जायते ।।१७
सरस्वत्याः प्रसादेन व्यासवत्तु कविर्भवेत् । नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलभागिनी ।।
ब्रह्मलोके वसेत्तावद्यावत्कल्पायुतत्रयम् ।।१८
सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत् । विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत्कल्पायुतत्रयम् ।।१९
संवत्सरं व्रतवरेण सरस्वतीं ये सम्पूजयन्ति जगतो जननीं जनित्रीम् ।
विद्यावदातहृदया मधुरस्वरास्ते रूपान्विता बहुकलाकुशला भवन्ति ।।२०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सारस्वतव्रतनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३५

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चमी दयिता राजन्नागानन्दविवर्द्धनी । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ।।१
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालिको माणिभद्रकः । धृतराष्ट्रो रैवतश्च कर्कोटकधनंजयौ ।।
एते प्रयच्छन्त्यभयं प्राणिनां प्राणजीविनाम् ।।२
पञ्चम्यां स्नपयन्तीह नागान्क्षीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति अभयं प्राणिनां सदा ।।३

विधान द्वारा सारस्वत व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष विद्यावान, धनवान् एवं रक्त कण्ठ होता है तथा सरस्वती जी की प्रसन्नता से वह व्यास की भाँति महान कवि, नारी भी इस के अनुष्ठान द्वारा उपरोक्त फल प्राप्त करती है और तीस सहस्र कल्प तक ब्रह्मलोक में सुसम्मानित होती है। इस सारस्वत नामक व्रत को सुसम्पन्न करने एवं सुनने वाले प्राणी विद्याधर के लोक में तीससहस्र कल्प तक सुप्रतिष्ठित होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष इस उत्तम व्रत विधान द्वारा जो जगजननी सरस्वती जी की अर्चना करते हैं, वे निष्णात् विद्वान्, पवित्र हृदय, मधुरस्वर, रूप सौन्दर्य प्राप्ति पूर्वक कलाओं में अत्यन्त कुशल होते हैं।१३-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
सारस्वत व्रत-वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।३५।

अध्याय ३६

नागपञ्चमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! पञ्चमी तिथि नागों के लिए, अत्यन्त प्रिय है और इसी पञ्चमी तिथि में नागों का महान उत्सव भी होता है। वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक, और धनञ्जय नामक नागगण प्राणियों को अभय-प्रदान करते हैं। पञ्चमी के दिन जो मनुष्य क्षीर द्वारा नागों को

शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् । निर्वापिता गवां क्षीरैस्ततः प्रभृति वल्लभाः ॥४

युधिष्ठिर उवाच

मात्रा शप्ताः कथं नागाः किमुद्दिश्य च कारणम् । कथं वा तस्य[1] शापस्य विनाशोऽभूज्जनार्दन ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

उच्चैःश्रवाश्वराजश्च श्वेतवर्णोऽमृतोद्भवः । तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूर्नागानां जननीं स्वसाम् ॥६
अश्वरत्नमिदं श्वेतं पश्यपश्यामृतोद्भवम् । कृष्णांश्च वीक्ष्यसे बालान्सर्वश्वेतानुताद्य वै ॥७

विनतोवाच

सर्वश्वेतो हयवरो नायं कृष्णो न लोहितः । कथं त्वं वीक्षसे कृष्णं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥८

कद्रूरुवाच

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबालसमन्वितम् । द्विनेत्रा च त्वं विनते न पश्यसि पणं कुरु ॥९

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णकेशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ॥१०
एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । सुषुप्ते प्राज्यदोषे तु कद्रूर्जिह्ममचिंतयत् ॥११

स्नान कराता है, उसके कुल में वे नागगण अभय दान देते हैं । क्योंकि अपनी माता के द्वारा शाप प्राप्त कर जिस समय अत्यन्त पीडित हो रहे थे, उस समय उसी पञ्चमी के दिन गौओं के दुग्ध द्वारा स्नान कराने पर उनकी पीड़ा शान्त हो गई थी, इसीलिए वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है ।१-४

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! माता द्वारा नागों को शाप क्यों मिला, उसका उद्देश्य एवं कारण क्या है ? और उस शाप का शमन कैसे हुआ, बताने की कृपा कीजिये ।५

श्रीकृष्ण बोले—एक समय अश्वराज उच्चैश्रवा को देखकर नागों की माता कद्रू ने जो अमृत के साथ उत्पन्न होने के नाते श्वेत वर्ण का था, अपनी भगिनी विनता से कहा—इस अश्व रत्न को देखो, जो अमृत से उत्पन्न बताया जाता है, उसके सूक्ष्म काले बाल तुम्हें दिखायी दे रहे हैं या समस्त अंग में श्वेत ही बाल देख रही हो ।६-७

विनता ने कहा—यह सर्वश्रेष्ठ अश्व सर्वाङ्ग श्वेत है, और न कृष्ण न रक्तवर्ण और तुम उसे कृष्ण वर्ण कैसे देख रही हो । इस प्रकार विनता के कहने पर ।८

कद्रू बोली—विनते ! मेरे एक ही नेत्र है किन्तु मैं उसके काले बाल को देख रही हूँ, और तुम्हारे दो नेत्र हैं, तू नहीं देख रही है ? अच्छा तो प्रतिज्ञा कर ! ९

विनता ने कहा—यदि काले बाल उसमें दिखायी दें तो मैं तुम्हारी दासी होकर आजीवन सेवा करूँगी । और कद्रू ! यदि तुम वैसा न दिखा सकी तो तुम्हें मेरी दासी होना पड़ेगा । इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा करने के उपरांत शयनागार में पहुँच कर शयन किया, किन्तु कद्रू ने कुछ कपट

---

१. मन्दमभवत्प्रसादात्कस्य माधव ।

आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे । तिष्ठध्वं विपणौ जेष्ठे विनतां जयगृद्धिनीम् ॥१२
प्रोचुस्ते जिह्मबुद्धिं तां नागाः कद्रूं विगृह्य च । अधर्म एष तु महान्करिष्यामो न ते वचः ॥
अशपद्रुषिता कद्रूः पावको वः प्रधक्ष्यति ॥१३
गते बहुतिथे काले पाण्डवो जनमेजयः । सर्पसत्रं स कर्ता वै भूमावन्यैः सुदुष्करम् ॥१४
तस्मिन्सत्रे च तिग्मांशुः पावको भक्षयिष्यति । एवं शप्त्वा तदा कद्रूः प्रत्युवाच न किंचन ॥१५
मात्रा शप्तस्तदा नागः कर्तव्यं नान्वपद्यत । वासुकिर्दुःखसंतप्तः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१६
वासुकिं दुःखितं दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाच सांत्वयन् । मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१७
यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१८
भगिनीं च जरत्कारुं तस्य त्वं प्रतिदास्यसि । भविता तस्य पुत्रोऽसावस्तीक इति विश्रुतः ॥१९
स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भयदं महत् । निषेधयिष्यति मुनिर्वाग्भिः सम्पूज्य पार्थिवम् ॥२०
तदियं भगिनी नाग रूपौदार्यगुणान्विता । जरत्कारुर्जरत्कारोः प्रदेया ह्यविचारतः ॥२१
यदासौ प्रार्थ्यतेऽरण्ये यत्किञ्चित्प्रवदिष्यति । तत्कर्तव्यमशेषेण इच्छेच्छ्रेयस्तथात्मनः ॥२२
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं परममास्थितः ॥२३
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः । पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२४

पूर्ण व्हवहार करने का निश्चय किया उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा—तुम लोग सूक्ष्म रूप से उस श्रेष्ठ अश्व के अङ्ग में प्रविष्ट हो जाओ, जिससे मैं उस जयाभिमानी विनता को इस प्रतिज्ञा में पराजित कर दूँ। नागों ने उसकी कपट बुद्धि जानकर कहा—ऐसा करना महान् अधर्म है, अतः तुम्हारी इस आज्ञा को हम लोग नहीं स्वीकार करेंगे! इसे सुनकर कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि पावक तुम्हें भस्मसात् कर दे। बहुत दिनों के व्यतीत होने पर पाण्डव जनमेजय सर्पसत्र नामक यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करेंगे जो इस धरातल में अन्य लोगों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। उसी यज्ञ में प्रचण्ड पावक तुम्हें दग्ध करेगा। इस प्रकार शाप प्रदान कर कद्रू ने पुनः कुछ नहीं कहा। माता के शाप प्रदान करने पर वासुकी नाग कर्तव्य च्युत होते हुए अत्यन्त दुःखसंतप्त होने के कारण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। ब्रह्मा ने वासुकी को दुःखी देखकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—वासुके! इस प्रकार चिन्तित न हो, और सावधान होकर मेरी बात सुनो! यायावर देश-देशान्तर में भ्रमण करने वाले के कुल में महातेजस्वी एवं तपोनिधि जरत्कारु नामक द्विज उत्पन्न होंगे। उस समय तुम जरत्कारु नामक अपनी भगिनी उन्हें अर्पित कर देना, जिससे उनके आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न होगा। जिस समय नागों का भयदायक वह सर्प यज्ञ प्रारम्भ होगा, वह आस्तीक पुत्र वाणी द्वारा राजा को प्रसन्न करते हुए उस यज्ञ को स्थगित करा देगा। इसलिए जरत्कारू नामक यह तुम्हारी भगिनी के जो रूप एवं उदार गुण भूषित हैं, जरत्कारु नामक द्विज को समर्पित करने में किसी प्रकार के विचार करने की आवश्यकता न रहेगी। उस अरण्य में जरत्कारु द्विज के मिलने पर अपने आत्मकल्याणार्थ तुम्हें उसकी सभी आज्ञाओं का पालन करना होगा। पितामह की ऐसी बातें सुनकर नागवासुकी ने विनय-विनम्र होकर सहर्ष उसकी स्वीकृति प्रदान की और उसी समय से उसके लिए प्रयत्न भी करना आरम्भ किया।१०-२३। इसे सुनकर सभी श्रेष्ठ नागों के नेत्र अत्यन्त हर्षातिरेक द्वारा

अप्लवे तु निमग्नानां घोरे यज्ञाग्निसागरे । आस्तीकस्तत्र भविता प्लवभूतोऽभयप्रदः ।।२५
श्रुत्वा स चाग्निराजानमृत्विजस्तदनन्तरम् । निवर्तयिष्यति यागं नागानां मोहनं परम् ।।२६
पञ्चम्यां तच्च भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं[1] महाराज पञ्चमी दयिता शुभा ।।२७
नागानां हर्षजननी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा । दत्त्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः ।।२८
विसृज्य नागाः प्रीयन्तां ये केचित्पृथिवीतले । हिमाचले ये वसन्ति येऽन्तरिक्षे दिविस्थिताः ।।
ये नदीषु महानागा ये सरःस्वभिगामिनः ।।२९
ये वापीषु तडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ।।३०
नागान्विप्रांश्च सम्पूज्य विसृज्य च यथार्थतः । ततः पश्चाच्च भुञ्जीयात्सह भृत्यैर्नराधिप ।।३१
पूर्वं मधुरमश्नीयात्स्वेच्छया तदनन्तरम् । एवं[2] नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे ।।३२
मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ।।३३
इह चागत्य राजासौ सर्वराजवरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धश्च वाहनाढ्यश्च जायते ।।३४
पञ्चजन्मन्यसौ राजा द्वापरेद्वापरे भवेत् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ।।
तस्मात्पूज्याश्च नागाश्च[3] घृतक्षीरादिना सदा ।।३५

विकसित कमल की भाँति खिल उठे । उस दिन उन लोगों ने अपने को पुनः जन्म ग्रहण करने के समान समझा । सभी लोगों में यह चर्चा होने लगी कि—उस घोर एवं अगाध यज्ञ-अग्निसागर के प्रस्तुत होने पर उससे पार होने के लिए केवल आस्तीक ही, अभयप्रद नौका होंगे तथा आस्तीक भी इसे सुनकर नागों के सम्मोहनार्थ आरम्भ यज्ञ को स्थगित करने के लिए अग्नि, राजा, और ऋत्विजों को क्रमशः विनय-विनम्रपूर्वक उससे निवृत्त करने की चेष्टा करेंगे । ब्रह्मा ने लेलिहों (नागों) को बताया है कि यह सब पञ्चमी के दिन होगा । इसीलिए महाराज ! यह पञ्चमी तिथि नागों को अत्यन्त प्रिय है जिस हर्षजननी को पहले ब्रह्मा ने नागों को प्रदान किया था । अतः उस दिन ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजनों से संतृप्त करके 'नागगण मुझ पर प्रसन्न रहें' ऐसा कहकर कुछ लोग इस भूतल में उनके विसर्जन करते हैं । नराधिप ! हिमालय, अन्तरिक्ष, स्वर्ग नदी, सरोवर, बावली, एवं तडाग आदि में निवास करने वाले उन महानागों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार नागों और ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक विसर्जन करके पश्चात् परिजनों समेत भोजन करना चाहिए । सर्वप्रथम मधुर भोजन पश्चात् यथेच्छ भोजन करने आदि सभी नियमों के सुसम्पन्न करने वाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! २४-३२। देहावसान होने पर यह परमोत्तम विमान पर सुखासीन एवं अप्सराओं द्वारा सुसेवित होकर नागलोक की प्राप्ति कर यथेच्छ समय तक सुखोपभोग करने के अनन्तर इस मर्त्य लोक में जन्म ग्रहण कर सर्वश्रेष्ठ राजा होता है, जो समस्त रत्नों से सुस्मृद्ध एवं अनेक प्रकार के वाहनों से सदैव सुसज्जित होता है । पाँच जन्म तक प्रत्येक द्वापर युग में सर्वमान्य राजा होता है, जो आधि व्याधि रोगों से मुक्त होकर पत्नी पुत्र समेत सदैव, आनन्दोपभोग करता है । इसलिए घी, क्षीर आदि से सदैव नागों की अर्चना करनी चाहिए ।३३-३५

---

१. इह । २. एतेन व्रतमुख्येन । ३. मान्याश्च ।

युधिष्ठिर उवाच

दशन्ति यं नरं कृष्ण नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद्ब्रूहि मां हरे ।।३६

श्रीकृष्ण उवाच

नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः । अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ।।३७

युधिष्ठिर उवाच

नादष्टः पिता यस्य भ्राता माता सुहृत्सुतः । स्वसा वा दुहिता भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ।।३८
मोक्षाय तस्य गोविन्द दानं व्रतमुपोषितम् । ब्रूहि मे यदुशार्दूल येन स्वर्गतिमाप्नुयात् ।।३९

श्रीकृष्ण उवाच

उपोष्या पञ्चमी राजन्नागानां पुष्टिवर्द्धिनी । वर्षमेकं तु राजेन्द्र विधानं शृणु यादृशम् ।।४०
मासे भाद्रपदे या तु शुक्लपक्षे महीपते । सा च पुण्यतमा प्रोक्ता ग्राह्या सद्गतिकाम्यया ।।४१
ज्ञेया द्वादश वर्षाते पञ्चम्यो भरतर्षभ । चतुर्थ्यामेक भक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।।४२
भूरिचन्द्रमयं नागमथवा कलधौतजम् । कृत्वा दारुमयं चापि उताहो मृण्मयं नृप[1] ।।४३
पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागं पञ्चफणं शृणु । करवीरैस्तथा पद्मैर्जातीपुष्पैः सुशोभनैः ।।४४
गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः पूज्य पन्नगसत्तमम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ।।४५

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! क्रुद्ध होकर नाग जिसे काट लेता है, उसकी कौन गति होती है, विस्तार पूर्वक बताने की कृपा कीजिये ।३६

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! नाग के काटने पर मृत्यु द्वारा वह प्राणी अधोगति (पाताल) पहुँच कर विषहीन सर्प होता है ।३७

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! नाग के काट लेने पर उस प्राणी के प्रति उसके पिता, माता, मित्र, पुत्र, भगिनी, पुत्री, और स्त्री का क्या कर्तव्य होता है ? गोविन्द, यदुशार्दूल ! उस प्राणी के मोक्षार्थ इस प्रकार कोई दान व्रत अथवा उपवास आदि बताने की कृपा कीजिये, जिसे सुसम्पन्न करने पर उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाये ।३८-३९

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उस प्राणी के मोक्षार्थ इसी पंचमी विधि का सविधान उपावस करना चाहिए, जो नागों के लिए अत्यन्त पुष्ट वर्द्धिनी है । राजेन्द्र मैं उसके विधान को बता रहा हूँ, जो एक वर्ष तक निरन्तर सुसम्पन्न किया जाता है, सावधान होकर सुनो ! महीपते ! भाद्रपद की शुक्ल पञ्चमी अत्यन्त पुण्यतमा होने के नाते प्राणियों की सद्गति कामना के लिए अत्यन्त प्रशस्त बतायी गयी है । भरतर्षभ ! बारहवर्ष तक निरन्तर उसके सुसम्पन्न करने के उपरांत उसके व्रतोद्यापन के निमित्त चतुर्थी में एक भक्त नक्त भोजन करके पञ्चमी के दिन नागी की उस सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा की, जो सुवर्ण, रजत (चाँदी) काष्ठ अथवा मृत्तिका द्वारा प्रयत्न पूर्वक निर्मित रहती है, और पाँच फलों से सुसज्जित भी कनेर, कमल, चमेली एवं अन्य सुगन्धित पुष्प, और नैवेद्य द्वारा अर्चना करके घृत समते पायस एवं मोदक

---

१. तथा ।

नारायणबलिः कार्यः सर्पदष्टस्य देहिनः । दाने पिण्डप्रदाने च ब्राह्मणानां च तर्पयेत् ।।४६
वृषोत्सर्गास्तु कर्तव्यो गते सम्वत्सरे नृप । स्नानं कृत्वोदकं दद्यात्कृष्णोऽत्र प्रीयतामिति ।।४७
अनन्तो वासुकिः शेषः[1] पद्मः कम्बल एव च । तथा तक्षक नागश्च नागश्चाश्वतरो नृप ।।४८
धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तक्षकस्तथा । पिङ्गलश्च महानागो मासिमासि प्रकीर्तिताः ।।
वत्सरान्ते पारणं स्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ।।४९
इतिहासविदे नागः काञ्चनेन कृतो नृप । तथार्जुनी प्रदातव्या सवत्सा कांस्यदोहना ।।५०
एव पारणके पार्थ विधिः प्रोक्तो विचक्षणैः । कृते व्रतवरे तस्मिन्सद्गतिं यान्ति बान्धवाः ।।५१
ये दन्दशूकरदनैर्दष्टाः प्राप्ता ह्यधोगतिम् । वर्षमेकं चरिष्यन्ति भक्त्या ये व्रतमुत्तमम् ।।
दांष्ट्रिकं मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ।।५२
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं पठेद्भक्त्या समन्वितः[2] । न वै कुटुम्बे नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ।।५३

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वद्भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । यस्त्वालिख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकैः ।।
पूजयेद्गन्धपुष्पैस्तु सर्पिर्गुग्गुलुपायसैः ।।५४
तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः । आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् ।।५५

के भोजन से ब्राह्मण को अत्यन्त संतृप्त करें। पश्चात् उस सर्पदष्ट प्राणी के मोक्षार्थ नारायण बलि भी करनी चाहिए। नृप ! दान और पिण्ड दान के समय ब्राह्मणों को भली भाँति संतप्त कर वर्ष के अन्त में उसके लिए वृषोत्सर्ग नामक यज्ञ भी करना चाहिए। स्नान करके उदक दान करते समय 'कृष्ण प्रसन्न हों' कहकर पुनः प्रत्येक मास में अत्यन्त अनन्त वासुकी, शेष, पद्म, कम्बल, तक्षक, अवश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, पिंगल आदि महानागों के नामोच्चारण पूर्वक पूजनोपरांत वर्ष के अन्त में महाब्राह्मण को भोजनादि से तृप्त कर पारण करना चाहिए। इतिहास वेत्ता ब्राह्मण को बुलाकर नाग की सुवर्ण प्रतिमा, जो सवत्सा गौ, और काँसे की दोहनी दान से सुसज्जित रहती है, सप्रेम अर्पित करनी चाहिए। पार्थ ! उसके पारण के निमित्त विद्वानों ने यही विधान बताया है। बन्धुओं द्वारा इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर उस प्राणी की अवश्य सद्गति होती है। सर्पों के काट लेने पर अधोगति प्राप्त उस प्राणी के निमित्त जो एक वर्ष तक इस उत्तम व्रत को सुसम्पन्न करेंगे, उससे उस प्राणी की शुभस्थान की प्राप्ति पूर्वक अवश्य मुक्ति होगी। इस प्रकार भक्ति श्रद्धा पूर्वक जो ईसे श्रवण अथवा अध्ययन करेंगे, उनके परिवार में नागों का भय कभी नहीं होगा।४०-५३

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की पञ्चमी के दिन श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो कृष्णादि वर्ण (रंग) द्वारा नागों की प्रतिमा सुनिर्मित कर गन्ध, पुष्प, घृत, गुग्गुल, और खीर द्वारा उसकी अर्चना करता है, उस पर तक्षक आदि नाग गण अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं और उसके सात पीढ़ी तक के वंशजों को नाग भय नहीं होता

---

१. शङ्खम्। २. पठेद्वा श्रद्धयान्वितः।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सम्पूजयेद्बुधः । तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्यां कुरुनन्दन ।।५६
कृत्वा कुशमयान्नागानिंद्राण्या सह पूजयेत् । घृतोदकाभ्यां पयसा स्नापयित्वा विशाम्पते ।।५७
गोधूमैः पयसा स्विन्नैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा । यस्त्वस्यां विविधान्नागाञ्छुचिर्भक्त्या समन्वितः ।।५८
पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप । नागाः प्रीता भवन्तीह शांन्तिं प्राप्नोति शोभनाम् ।।
स शान्तिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ।।५९
इत्येतत्कथितं वीर पञ्चमीव्रतमुत्तमम् । तत्रायमुच्यते मंत्रः सर्वदोषनिषेधकः ।।६०
(ॐ कुरुकुल्ले[१] हुं फट् स्वाहा)
भक्तेन भक्तिसहिताः शतपञ्चमीषु ये पूजयन्ति भुजगाकुसुमोपहारैः[२] ।
तेषां गृहेष्वभयदा हि सदैव सर्पाः शश्वत्प्रमोदपरमा रुचयो भवन्ति ।।६१
इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम षट्त्रिंशतमोऽध्यायः ।३६

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

श्रीपञ्चमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कथमासाद्यते लक्ष्मीर्दुर्ल्लभा भुवनत्रये । दानेन तपसा वापि व्रते नियमेन वा ।।१

है । कुरुनन्दन ! अतः नागों की पूजा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । विशांपते उसी प्रकार आश्विन मास की पञ्चमी के दिन नागों की कुश की प्रतिमा बना कर इन्द्राणी के साथ उन्हें स्थापित कर घृत, उदक और क्षीर के क्रमशः स्नान पूर्वक गेहूँ के चूर्ण (आंटा) और घृत के अनेक भाँति के व्यजनों के समर्पण करते हुए उन्हें श्रद्धा भक्ति समेत अत्यन्त प्रसन्न करता है, उससे कुल में शेष आदि नाग गण अत्यन्त प्रसन्न होकर सदैव शांति प्रदान करते है तथा देहावसान के समय शांति लोक प्राप्त कर अनेक वर्षों तक सुखोपभोग करता हूँ । वीर ! इस प्रकार मैंने इस परमोत्तम पञ्चमी व्रत की व्याख्या सुना दी जिसमें समस्त दोष के निवृत्यर्थ यह 'ओं कुरू कुल्ले हुँ फट् स्वहा' मंत्र बताया गया है । भक्ति भावना समेत जो लोग लगभग एक सौ पञ्चमी व्रत एवं उस हिम पुष्प आदि उपहारों द्वारा नागों की अर्चना करते हैं उनके गृह में सदैव अभय और निरन्तर सौख्य प्रदान नाग गण किया करते हैं ।५४-६१
श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
नाग पञ्चमी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३६।

अध्याय ३७

श्रीपञ्चमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुश्रेष्ठ ! आप मेरे विचार से सम्पूर्ण वेत्ता हैं, अतः मुझे यह बताने की कृपा

---

१. ओं वाच कुल्ले हुं फट् स्वाहा । २. सुभगोपहारैः ।

जपहोमनमस्कारैः संस्कारैर्वा पृथग्विधैः । एतद्वद यदुश्रेष्ठ सर्ववित्त्वं मतो मम ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना पूर्वं श्रीः श्रूयते शुभा । वासुदेवाय सा दत्ता मुनिना मानवृद्धये ।।३
वासुदेवोऽपि तां प्राप्य पीनोन्नतपयोधराम् । पद्मपत्रविशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।४
आभासितदिगाभोगं साक्षाद्भानोः प्रभामिव । नितम्बाडम्बरवतीं मत्तमातङ्गगामिनीम् ।।
रेमे सह तया राजन्विभ्रमोद्भ्रान्तचित्तया ।।५
सा च विष्णुं जगज्जिष्णुं पतिं त्रिजगतां पतिम् । प्राप्य कृतार्थमात्मानं मेने मानयशोधना ।।६
हृष्टं पुष्टं जगत्सर्वमभवद्भावितं तया । लक्ष्म्या[1] निरीक्षितं चैव सानन्दं हि महीतलम् ।।७
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यमनाक्रन्दमनाकुलम्[2] । जगदासीदनुद्भ्रान्तं प्रशान्तोपद्रवं तथा ।।८
दिवि देवा मुमुदिरे दानवा दैत्यमागताः । विस्फारितफणाभोगा नागाश्चैव रसातले ।।९
हृदये ब्राह्मणैर्वह्नौ भुज्यते त्रिदिवैर्हविः । चातुर्वर्ण्यमसङ्कीर्णं पाल्यते पार्थ पार्थिवैः ।।१०
विरोचनप्रभृतिभिर्दृष्ट्वैवं दैत्यसत्तमैः । तपस्तप्तुमथारब्धमग्रिमाश्रित्य संयतैः ।।११
सोमसंस्थाहविः संस्थापाकसंख्यादिभिर्मखैः । सदाचारैः समारब्धमिष्टं स्वष्टाभिलाषिभिः ।।१२

कीजिये कि—तीनों लोकों में पर दुर्लभ लक्ष्मी की प्राप्ति किस दान, तप, व्रत, नियम, जप, हवन, नमस्कार एवं अन्य पृथक् संस्कार द्वारा होती है।१-२

श्रीकृष्ण बोले—सर्वप्रथम भी श्री का जन्म भृगु के यहां हुआ था, यही सुना जाता है। उसे महर्षि ने मानवृद्ध्यर्थ उस लक्ष्मी को वासुदेव के लिए अर्पित किया। वासुदेव ने भी उस लक्ष्मी को, जो स्थूल एवं उन्नत पयोधर, कमल पत्र के समान विशाल नेत्र, पूर्ण चन्द्र के समान मुख आदि अंगों से अत्यन्त मनमोहक थी, प्राप्त कर राजन्! अपनी आभा से समस्त दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाली एवं साक्षात् सूर्य प्रभा के समान प्रभा पूर्ण, विशाल कमनीय निलम्ब से विभूषित और मत्तगजेन्द्र की भाँति गमन करने वाली उस नारी रत्न लक्ष्मी के साथ विष्णु ने रमण करना आरम्भ किया, जो विलास पूर्ण दृष्टि से भ्रान्त चित्त वाले व्यक्ति की भाँति इधर-उधर देख रही थीं। संसार के सर्वश्रेष्ठ विजेता, एवं तीनों लोकों के प्रभु भगवान् विष्णु को पतिरूप में प्राप्त कर उस यशस्विनी एवं मानिनी लक्ष्मीने भी अपने को कृतार्थ माना। उसकी प्रसन्नता वश यह सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हो गया था। लक्ष्मी श्री कृपा दृष्टि से अनुग्रहीत होने पर इस भूमण्डल में चारों ओर आनन्द सागर उमड़ रहा था—सर्वशः क्षेम, सुभिक्ष, आरोग्य, एवं सुख शांति का आवाह था। उस समय जगत् में किसी प्रकार का कष्ट प्रद कलह एवं अशान्ति नहीं थी—स्वर्ग में देवगण, दानव, दैत्य और रसातल में नागलोक अपने फणों को विस्तृत किये सुखोपभोग कर रहे थे। ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में डाली गयी हवि की आहुतियों को ग्रहण कर देवगण अत्यन्त आनन्द मग्न थे। पार्थिव गण चारों वर्णों का उत्तम पालन पोषण कर रहे थे। उसे देखकर विरोचन आदि श्रेष्ठ दैत्यों ने क्षोभ प्रकट करते हुए संयम पूर्वक अग्निहोत्र समेत तप करना आरम्भ किया।३-११। सोम, हवि, एवं पाक आदि द्वारा अनेक भाँति के यज्ञ भी उन लोगों ने सुसम्पन्न किया, क्योकि सदाचार आदि द्वारा वे लोग अपना

---

१. लक्ष्यायं पालपञ्चम्यां सदृष्टे च महीतलम्। २. अनामयम्।

एवं धर्मप्रधानैस्तैर्वेदवादरतात्मभिः । जगदासीत्समाक्रान्तं विक्रमेण क्रमेण तु ॥१३
लक्ष्मीविलासप्रभवो देवानामभवन्मदः । मदाच्छीलं च शौचं च सत्यं सद्यो व्यनीनशन् ॥१४
सत्यशौचविहीनान्स्तान्देवान्संत्यज्य चञ्चलान् । जगाम दानवकुलं कुलदेवानुरागतः ॥१५
लक्ष्म्या भावितदेहैस्तैः पुनरुद्धतमानसैः । व्यवहर्तुं समारब्धमन्यायेन मदोद्धतैः ॥१६
वयं वेदा वयं यज्ञा वयं विद्या वयं जगत् । ब्रह्मविष्णुशङ्कराद्या वयं सर्वे दिवौकसः ॥१७
अहङ्कारविमूढान्स्तान्ज्ञात्वा दानवसत्तमान् । सागरं सा विवेशाथ भ्रान्तचित्ता भृगोः सुता ॥१८
क्षीराब्धिमध्यगतया लक्ष्म्या क्षीणार्थसञ्चयम् । निरानन्दगतश्रीकमभवद्भुवनत्रयम् ॥१९
गतश्रीकमथात्मानं मत्वा शम्बरसूदनः । पप्रच्छाङ्गिरसं विप्रं ब्रूहि किञ्चिद्व्रतं मम ॥२०
येन सम्प्राप्यते लक्ष्मीर्लब्धा न चलते पुनः । निश्चलापि सुहृन्मित्रैर्भोग्या भवति सा मुने ॥२१
न सा श्रीत्यभिमन्तव्या कन्या सा पाल्यते गृहे । परार्थे या सुहृन्मित्रभृत्यैर्नैवोपभुज्यते ॥२२
शक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिरुदारधीः । कथयामास संचिन्त्य शुभं श्रीपञ्चमीव्रतम् ॥२३
यत्पुरा कस्यचित्प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । तदस्मै कथयामास सरहस्यमशेषतः ॥२४
तच्छ्रुत्वा कर्तुमारब्धं सुरेशेन सुरैस्तथा । दैत्यदानवगन्धर्वैर्यक्षैः प्रक्षीणकल्मषैः ॥२५
सिद्धैः प्रसिद्धचरितैर्विष्णुना प्रभविष्णुना । ब्राह्मणैर्ब्रह्मतत्त्वज्ञैः समर्थैः पार्थिवैः सह ॥२६

अभीष्ट सिद्ध करना चाहते थे । कुछ दिनों में उन लोगों के वेद-वाद परायणता आदि धर्म के कृत्यों और विक्रयों द्वारा सम्पूर्ण जगत् आक्रान्त हो उठा और देवों को लक्ष्मी विलास के कारण उस समय सर्वथा उन्माद हो गया था । जिससे उस मद के कारण उनका शील, शौच (पवित्रता) और सत्य उसी समय नष्ट हो गया । पुनः सत्य शौचादि से हीन एवं चञ्चल उन देवों को त्याग कर लक्ष्मी ने अनुराग पूर्ण होकर दानव कुल में प्रस्थान किया । लक्ष्मी-विलास में आसक्त होने के नाते उन मदोद्धत दानवों ने भी सर्वत्र अन्याय पूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया—वेद, यज्ञ, विद्या, जगत्, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर एवं समस्त देवता हमीं लोग हैं—इस भाँति अहंकार विमूढ़ दानवों को देख कर भृगुपुत्री लक्ष्मी ने भ्रान्त चित्त होकर सागर में प्रविष्ट हो गई । क्षीर सागर के मध्य में लक्ष्मी के प्रविष्ट हो जाने पर सभी जगह अर्थ संचय क्षीण होने लगा और कुछ ही दिन में तीनों लोक से आनन्द और श्री की समाप्ति हो गई । उस समय शम्बर सूदन (इन्द्र) ने अपने को भी हीन देखकर अंगिरा पुत्र वृहस्पति से कहा—विप्र ! किसी इस प्रकार के व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा ऐसी लक्ष्मी की प्राप्ति हो, जो चल न हो अर्थात् सदैव अचल बनी रहे । मुने ! निश्चल होने पर भी सुहृद् मित्र आदि द्वारा उसका उपभोग भली भाँति हो किन्तु उसे भी न समझकर कन्या की भावना से अपने घर पालन-पोषण करे और परार्थ होने पर सुहृत् मित्र एवं सेवक आदि उसका उपभोग न कर सके। शक्र की ऐसी बात सुनकर उदारचेता वृहस्पति ने कहा—श्री के निमित्त इस परमोत्तम पञ्चमी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए।१२-२३। यह उत्तम व्रत पहले समय में किसी के लिए बताया गया था, उसी को मैं सरहस्य तुम्हें बता रहा हूँ। यह सुनकर सुरेश ने उसे सविधान सुसम्पन्न किया और उसी भाँति दैत्य, दानव, गंधर्व, निष्पाप यक्ष, सिद्ध, प्रभावशाली विष्णु और राजाओं के साथ व्रह्मतत्ववेत्ता ब्राह्मणों ने सुसम्पन्न किया किन्तु उसी ने सात्विक भावना से राजस और

कैश्चित्सात्त्विकभावेन राजसेनापरैरपि । तामसेन तथा कैश्चित्कृतं व्रतमिदन्तथा ।।२७
व्रते समाप्ते भूयिष्ठे निष्ठया परया प्रभो । देवानां दानवानां च युद्धमासीदथोद्धतम् ।।२८
निर्मथ्य भुजवीर्येण सागरं सरितां पतिम् । समाहरामो ह्यमृतं हिताय त्रिदिवौकसाम् ।।२९
इत्येवं समयं कृत्वा ममन्थुर्वरुणालयम् । मन्थानं मन्दरं कृत्वा वेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ।।३०
मथ्यमानजलाज्जातश्चन्द्रः शीतांशुरुज्ज्वलः । अनन्तरं समुत्पन्ना लक्ष्मीः क्षीराब्धिमध्यतः ।।३१
तया विलोकिताः सर्वे दैत्यदानवसत्तमाः । आलोक्य सा जगामाशु विष्णोर्वक्षःस्थलं शुभम् ।।३२
विधिना विष्णुना चीर्णं व्रतं तेनाब्धिसम्भवा । शरीरस्था बभूवास्य विभ्रमोद्भ्रान्तलोचना ।।३३
किं च राजसभावेन शक्रेणैतत्कृतं यतः । ततस्त्रिभुवनैश्वैर्यं प्राप्तं तेन महर्द्धिकम् ।।३४
तमसावृतचित्तैस्तु सञ्चीर्णं दैत्यदानवैः । तेन तेषामथैश्वर्यं दृष्टनष्टमभूत्किल ।।३५
एवं सश्रीकमभवत्सदेवासुरमानुषम् । जरच्च जगतां श्रेष्ठ व्रतस्यास्य प्रभावतः ।।३६

युधिष्ठिर उवाच

कथमेतद्व्रतं कृष्ण क्रियते मनुजैः कदा । प्रारभ्यते पार्यते च सर्वं वद यदुत्तम ।।३७

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे पञ्चम्यां पतगोदये । उपवासस्य नियमं कुर्यादाशुसुहृद्धृदि ।।३८
स्वर्णरौप्यारकूटोत्था ताम्रमृत्काष्ठजाथ वा । चित्रपट्टगतां देवीं लक्ष्मीं क्षमापाल कारयेत् ।।३९

तामस भावना से भी किसी किसी ने इसका आरम्भ किया था, जिससे व्रत के समाप्त होने पर देवों और दानवों का महान् भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। उसी बीच विष्णु ने देवों के साथ यह निश्यच किया कि—देवों के हितार्थ सरित्पति क्षीर सागर को अपनी भुजाओं द्वारा मथ कर अमृत निकालना परमावश्यक है, यह सोंचकर उन्होंने सब के साथ उस वरुणालय (सागर) का मंथन करना आरम्भ किया, जिसमें मंदराचल मथानी, नागवासुकी रस्सी बनाये गये थे। सर्वप्रथम उस सागर मंथन से उज्ज्वल एवं शीत किरण वाले चन्द्रमा का जन्म हुआ और तदनन्तर क्षीर सागर के मध्य से लक्ष्मी उत्पन्न होते ही सभी देव, ने श्रेष्ठ दानवों को भी देखा किन्तु भगवान् विष्णु के ही वक्षःस्थल का ही उन्होंने आश्रय लिया इसलिए कि विष्णु ने उत्तम विधान द्वारा उस व्रत को सुसम्पन्न किया था। विलास पूर्ण एवं मदभरे नेत्र वाली लक्ष्मीसदैव के लिए विष्णु का ही शरीर अपनाया और शक्र (इन्द्र) ने राजस भाव से उस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे उन्हें तीनों लोक का बहुमूल्य ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। दैत्य तथा दानवों ने तामस भाव से उनकी उपासना की थी, जिससे उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति तो हुई किन्तु देखते देखते वह नष्ट भी हो गया। उसी समय से देव, असुर और मनुष्यों को श्री प्राप्ति होने लगी।२४-३६

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण, यदुत्तम ! मनुष्यों को यह व्रत किस प्रकार और कब प्रारम्भ एवं समाप्त करना चाहिए, बताने की कृपा कीजिये।३७

श्रीकृष्ण बोले—मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन सूर्योदय होने पर उपवास समेत व्रत के नियमों का पालन आरम्भ करना चाहिए। सुवर्ण, चांदी, पीतल, ताँबे अथवा काष्ठ पर लक्ष्मी की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण करे, जिसमें उनके हाथ में कमल, पद्म वर्ण, और कमल दल के समान विकसित

पद्महस्तां पद्मवर्णां पद्मा पद्मदलेक्षणाम् । दिग्गजेन्द्रैः स्नाप्यमानां काञ्चनैः कलशोत्तमैः ॥४०
ततो यामत्रये जाते निम्नगायां गृहेऽथ वा । स्नानं कुर्यादसम्भ्रान्तं शक्रवदुपचारतः ॥४१
देवान्पितृंश्च सन्तर्प्य ततो देवगृहं व्रजेत् । तत्रस्थां पूजयेद्देवीं पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ॥४२
चपलायै नमः पादौ चंचलायै च जानुनी । कटिं कमलवासिन्यै नाभिं ख्यात्यै नमोनमः ॥४३
स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायै भुजद्वयम् । उत्कंठितायै कण्ठं च माधव्यै मुखमण्डलम् ॥४४
नमः श्रियै शिरः पूज्य दद्यान्नैवेद्यमादरात् । फलानि च यथालाभं विरूढान्धान्यसञ्चयान् ॥४५
ततः सुवासिनी पूज्या कुसुमैः कुंकुमेन च । भोजयेन्मधुरान्नेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥४६
ततस्तु तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं श्रीशः सम्प्रीयतामिति ॥४७
निर्वर्त्य तदशेषेण ततो भुञ्जीत वाग्यतः । मासानुमासं कर्तव्यं विधिनानेन भारत ॥४८
श्रीर्लक्ष्मीः कमला सम्पदुमा नारायणी तदा । पद्मा धृतिः स्थितिः पुष्टिर्ऋद्धिः सिद्धिर्यथाक्रमम् ॥
मासानुमासं राजेन्द्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥४९
ततश्च द्वादशे मासि सम्प्राप्ते पञ्चमे दिने । वस्त्रमण्डपिकां कृत्वा पुष्पगन्धाधिवासिताम् ॥५०
शय्यायां स्थापयेल्लक्ष्मीं सर्वोपस्कारसंयुताम् । मौक्तिकाष्टकसंयुक्तां नेत्रपट्टावृतस्तनीम् ॥५१
सप्तधान्यसमोपेतां रसधातुसमन्विताम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसत्कृताम् ॥५२
दद्यात्सम्पूज्य विधिवद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । व्यासाय वेदविदुषे यस्य वा रोचते स्वयम् ॥
सोपस्कारां सवत्सां च धेनुं दत्त्वा क्षमापयेत् ॥५३

एवं विशाल नेत्र हों, और दिक्पाल (गजेन्द्र गण), सुवर्ण कलशों द्वारा उन्हें स्नान करा रहे हों। तदनन्तर वसंत तीसरे पहर किसी नदी अथवा गृह में इन्द्र की भाँति उपचार समेत स्नान करके देव पितृतर्पण आदि नित्य कर्म की समाप्ति के अनन्तर देव मन्दिर में प्रविष्ट होकर समाप्ति के पुष्पों द्वारा उनकी सविधि अर्चना करे। चपलायै नमः से चरण, चंचलायै नमः से जानुनी (घुटने), कमलवासिन्यै नमः से कटि, ख्यात्यै नमः से नाभि, मन्मथवासिन्यै नमः से स्तन, ललितायै नमः से बाद्, उत्कण्ठितायै नमः से कण्ठ, माधव्यै नमः से मुख, और श्रियै नमः से शिर की अर्चना करके उन्हें सादर फल, हरे भरे सस्य अर्पित करे। ३८-४५। पश्चात् पुष्प, और कुंकुम द्वारा सौभाग्यवती की पूजा और मधुर भोजन से तृप्त कर अनुनय विनय पूर्वक विसर्जन करने के उपरांत घृत फल समेत एक सेर तण्डुल ब्राह्मण को अर्पित करते हुए श्रीशः प्रीयताम् (भगवान् विष्णु प्रसन्न हों) कहकर अनन्तर सबके साथ मौन होकर भोजन करे। भारत! इस प्रकार प्रत्येक मास के विधान कर्तव्य में श्री, लक्ष्मी, कमल, सम्पद, उमा, नारायणी, पद्मा, धृति, स्थिति, वृष्टि, और सिद्धि नामों के उच्चारण पूजन एवं संकीर्तन करता रहे। बारहवें मास में पञ्चमी के दिन पुष्प और सुगन्ध से अधिवासित परमोत्तम वस्त्र के सौन्दर्य पूर्ण मण्डप बना कर उसमें सुसज्जित शय्या पर जो समग्र साधनों से विभूषित की गयी हो, अधिवासन के उपरांत लक्ष्मी की प्रतिमा को उस पर स्थापित करके, जिनके आठ मोतियों से केश, सूक्ष्म वस्त्र से स्तन और परिधान (साड़ी) वस्त्र से सुसज्जित हो, और सप्तधान्य, रस, धातु, पादुका, उपानह, छत्र, भोजन, वस्त्र, आसन आदि से सुशोभित हों, पूजनोपरांत किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को जो व्यास की भाँति वेद का निष्णात विद्वान् अथवा जिसे इच्छा हो सादर समर्पित कर काँसे की दोहनी समेत सवत्सा गौ के दान करके क्षमा प्रार्थना करे—क्षीर सागर के

क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोर्वक्षःस्थलालये । सर्वकामप्रदे देवि ऋद्धिं यच्छ नमोस्तु ते ।।५४
ततः सुवासिनीः पूज्याः वस्त्रैराभरणैः शुभैः । भोजयित्वा स्वयं पश्चाद्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ।।५५
एवं यः कुरुते पार्थ भक्त्या श्रीपञ्चमीव्रतम् । तस्य श्रीर्भवने भाति कुलानामेकविंशतिः ।।५६
नारी वा कुरुते या तु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः । सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ।।५७
श्रीपञ्चमीव्रतमिदं दयितं मुरारेर्भक्त्या समाचरति पूज्यभृगोस्तनूजाम् ।
राज्यं निजं स भुवि भव्यजनोपभोगान्भुक्त्वा प्रयाति भुवनं मधुसूदनस्य ।।५८
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पञ्चमीव्रतकल्पे पञ्चमीव्रतनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।३७

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः
विशोकषष्ठीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

षष्ठीविधानमधुना कथयस्व जनार्दन । सर्वव्याधिप्रशमनं सर्वकर्मफलप्रदम् ।।१
श्रुतं मया पूज्यमानो भानुः सर्वं प्रयच्छति । दिवाकराराधनं मे तस्मात्कथय केशव ।।२

मंथन से उत्पन्न विष्णु के वक्षस्थल में निवास करने वाली एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाली देवि ! मुझे यथेच्छ ऋद्धि प्रदान कीजिये, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । अनन्तर सौभाग्यवती स्त्री की वस्त्र और आभूषणों द्वारा पूजन एवं उत्तम भोजन से संतृप्त करने के पश्चात् वान्धवों समेत स्वयं भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस पञ्चमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी के गृह में इक्कीस पीढ़ी तक लक्ष्मी का अचल निवास रहता है, तथा पति की आज्ञा प्राप्त कर इसे सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी सौभाग्यवती, परमसौन्दर्य और अनेक पुत्रों की प्राप्ति करती है । इस प्रकार पञ्चमी व्रत को जो भगवान् मधुसूदन को अत्यन्त प्रिय है, सुसम्पन्न करते हुए भृगुपुत्री लक्ष्मी की भक्ति पूर्वक आराधना करता है, वह इस भूतल में राज्य पद पर भूषित होकर अनेक भव्य भोगों के उपरांत देहावसान के समय सादर विष्णु लोक की प्राप्ति करता है ।४६-५८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद के पञ्चमी व्रत कल्प में
श्रीपञ्चमी व्रत वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३७।

अध्याय ३८
विशोकषष्ठीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! मुझे इस समय वह षष्ठी विधान बताने की कृपा कीजिये, जिससे समस्त व्याधियों के शमन और समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त होती है । केशव ! मैंने यह भी सुना है कि भानु की आराधना करने पर समस्त सुखों की प्राप्ति होती है, अतः दिवाकर का आराधना-विधान बताने की कृपा अवश्य करें ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

विशोकषष्ठीमतुलां वक्ष्यामि मनुजोत्तम । यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिह जायते ।।३
माघे कृष्णतिलैः स्नातः पञ्चम्यां शुक्लपक्षतः[१] । कृताहारः कृशरया दन्तधावनपूर्वकम् ।।४
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि । ततः प्रभाते चोत्थाय कृतस्नानस्ततः शुचिः ।।५
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कोऽयमिति पूजयेत् । करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ।।६
यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्यसर्वदा । तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिर्जन्मजन्मनि ।।७
एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु शक्त्या सम्पूजयेद्द्विजान् । सुप्त्वा सम्प्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनिश्चयः[२] ।।८
सम्पूज्य विप्रमन्त्रेण गुडपात्रसमन्वितः । सुसूक्ष्मवस्त्रयुगलं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।९
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः । ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।।१०
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः । कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ।।११
व्रतान्ते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् । शय्यां सोपस्करां तद्वत्कपिलां च पयस्विनीम् ।।१२
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः । विशोकषष्ठीं कुरुते स याति परामं गतिम् ।।१३
यावज्जन्मसहस्राणां साग्रकोटिशतं भवेत् । तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ।।१४
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् । निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ।।१५

श्रीकृष्ण बोले—नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें अनुपम विशोक षष्ठी के विधान बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहने पर मनुष्य को कभी किसी प्रकार का शोक नहीं होता है। माघ मास में कृष्ण पञ्चमी के दिन काले तिल से स्नान कर कृशरान्न (खिचड़ी) के भोजन कर रात्रि में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने के उपरांत प्रातःकाल दंतधावन पूर्वक उपवास के नियम पालन करते हुए पवित्रता पूर्ण स्नान नित्य नियम के उपरांत सुवर्ण के अष्टदल कमल को सूर्य मान कर रक्त कनेर पुष्प एवं रक्त वस्त्र द्वारा उनकी अर्चना कर क्षमा प्रार्थी होकर कहे कि—आदित्य देव ! आपकी प्रसन्नता से सभी प्राणियों का शोक नष्ट होता है, अतः मुझे भी सर्वदा के लिए शोक हीन करते हुए प्रत्येक जन्म में अपनी भक्ति प्रदान करते रहे। षष्ठी के दिन इस प्रकार उनकी आराधना करके ब्राह्मणों की पूजा के उपरांत गोमूत्र पान पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल नित्य नियम सुसम्पन्न करे गुड़ पात्र और दो सूक्ष्म वस्त्र समेत ब्राह्मण पूजन एवं तेल, लवण के त्याग पूर्वक भोजनोपरांत मौन होकर अपने ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ पुराण कथा श्रवण करना आरम्भ करे। इस विधान द्वारा दोनों पक्षों की षष्ठी में व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करते हुए अगले माघ की शुक्ल सप्तमी के दिन सुवर्ण कमल समेत कलश, साधन समेत शय्या, कपिला एवं पयस्विनी गौ, के दान पूर्वक उसकी समाप्ति करे। इस विधान द्वारा जो पुरुष अपने वित्तशाठ्य दोष से सतर्क रहकर इस विशोक षष्ठी व्रत को भक्ति पूर्वक सुसम्पन्न करता है, उसे परम गति की प्राप्ति पूर्वक सौ कोटि जन्म तक रोग, दुर्गति, एवं शोक हीन सुखों की प्राप्ति होती है, और जिस पदार्थ की कामना करता है उसकी सफलता शीघ्र हो जाती है। जो पुरुष निष्काम होकर इसको सुसम्पन्न करता है उस पर ब्रह्म की प्राप्ति

---

१. कृष्णपक्षतः। २. कृतनैत्यकः।

यः पठेच्छृण्याद्वापि षष्ठीं शोकविनाशिनीम् । सोपींद्र लोकनाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ।।१६
ये भास्करं दिनकरं करवीरपुष्पैः सम्पूजयन्त्यभिनमन्ति कृतपोपवासाः ।
ते दुःखशोकरहिताः सहिताः सुहृद्भिर्भूमौ विहृत्य रविलोकमवाप्नुवन्ति ।।१७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकषष्ठीव्रतं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।३८

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः
कमलषष्ठीव्रतवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मषष्ठीं शुभां तथा । यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत् ।।१
मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः । षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा सुकाञ्चनम् ।।२
शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । रूपं च काञ्चनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् ।।३
दद्यात्प्रातः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति । भक्त्या तु विप्रान्सम्पूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ।।४
कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं या च स्यात्कृष्णसप्तमी । एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ।।५
तद्वै हैमं फलं दत्त्वा सुवर्णं कमलान्वितम् । शर्करापात्रसंयुक्तवस्त्रमालासमन्वितम् ।।६
षष्ठ्योरुभयोर्महाराज यावत्सम्वत्सरं ततः । उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्यमन्त्रानुदीरयेत् ।।७

होती है । इस प्रकार उस शोक शमन करने वाली षष्ठी को सुसम्पन्न एवं उसकी कथा पढ़ता या सुनाता है, उसे भी इन्द्र लोक की प्राप्ति पूर्वक कभी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है । उपवास पूर्वक जो कनेर पुष्प द्वारा भास्कर के पूजन एवं नमस्कार करता है, उसे दुःख रहित होकर इस धरातल पर अपने मित्रों समेत समस्त सुखोपभोग करने के उपरांत सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३-१७

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
विशोक षष्ठी व्रत वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३८

अध्याय ३९
कमलषष्ठी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पद्म षष्ठी नामक एक अन्य व्रत-विधान बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहकर पुरुष पाप मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है । मार्गशीर्ष मास की शुभ पञ्चमी में संयम पूर्वक व्रत नियम पालन करते हुए षष्ठी में सुवर्ण कमल की पूजा कर शक्कर समेत उसे सादर किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करते हुए सुवर्ण या चाँदी का एक फल भी प्रातः स्नान के उपरांत समपर्ण करे और सूर्य मुझ पर प्रसन्न हों, कह कर ब्राह्मण के पूजन पूर्वक सप्तमी के दिन क्षीर भोजन कर समाप्त करे । इसी क्रम से कृष्ण पक्ष की सप्तमी भी उपवास रहकर फल के त्याग (दान) पूर्वक सुसम्पन्न करना चाहिए । उसमें सुवर्ण के कमल और सुवर्ण का ही फल होना चाहिए, जो शक्कर, वस्त्र और माला समेत पूजनोपरांत ब्राह्मण को अर्पित किया जाता है । महाराज! इस प्रकार दोनों पक्षों की षष्ठी को पूरे वर्ष तक सुसम्पन्न

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शुक्रो हरिः शिवः । श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति ।।८
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत् । प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ।।९
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः । शर्कराकलशं दद्याद्धैमपद्मफलान्वितम् ।।१०
यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे । तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ।।११
इमामनन्तफलदां फलषष्ठीं करोति यः । स सर्वपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।।१२
सुरापानादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोकं स गच्छति ।।१३
भूतान्भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम् । शृणुयाद्यः पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत् ।।१४
हैमं फलं सकमलं कलशं सितायाः षष्ठीमुपोष्य विधिवद्द्विजपुङ्गवाय ।
दद्यात्सुरासुरशिरोमणिघृष्टपादं भानुं प्रणम्य फलसिद्धिमुपैति मर्त्यः ।।१५
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कमलषष्ठीव्रतं नामैकोत्वारिंशोऽध्यायः ।३९

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

मंदारषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । सर्वकामप्रदां पुण्यां षष्ठीं मन्दारसंज्ञिताम् ।।१

करते हुए प्रत्येक मास में सूर्य के नाम मंत्रों के उच्चारण करने चाहिए ।१-७। भानु, अर्क, रवि ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा, और वरुण के क्रमशः प्रत्येक मास की सप्तमी में नामोच्चारण पूर्वक 'मुझ पर प्रसन्न हों' कहते हुए सुवर्ण के त्याग करता रहे । पुनः व्रत के समाप्ति में युगल ब्राह्मणों की वस्त्र, आभूषण, शक्कर, कलश, एवं सुवर्ण के कमल और फल के प्रदान समेत पूजनोपरांत क्षमा प्रार्थना करे कि—रवे ! जिस प्रकार आप के मास सदैव फल प्रदान करते रहते हैं, उसी भाँति मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होती रहे । इस प्रकार अत्यन्त फलप्रद षष्ठीको जो (विधान) सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पाप से मुक्त होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है और लोक परलोक में सुरापान आदि जो कुछ किये रहता है, उसके नाश पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति करता है और अपने भूत एवं भविष्य के इक्कीस पीढ़ी के उद्धार भी करता है । इसके सुनने अथवा पढ़ने वाला भी कल्याण भागी होता है । इस प्रकार इस शुक्ल षष्ठी के व्रत को उपवास रहकर सुवर्ण के कमल, कलश और फल के दान स्त्री श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित कर देवों एवं असुरों के किरीट मुकुट की मणियों से अभिवन्दित चरण वाले सूर्य को भक्ति पूर्वक प्रणाम करता है, उसे शीघ्र अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है ।८-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में कमल षष्ठी व्रत वर्णन
नामक उनतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।३९।

अध्याय ४०

मंदारषष्ठी-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उस मंदार नामक षष्ठी के विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों के

माघस्यानलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्नरः । दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद्बुधः ।।
विप्रान्सम्पूज्य विधिवन्मंदारं प्राशयेन्निशि ।।२
ततः प्रभाते चोत्थाय कृतस्नानः पुनर्द्विजान् । भोजयेच्छक्तितः कृत्वा मन्दारकुसुमाष्टकम् ।।३
सौवर्णं पुरुषं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम् । पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम् ।।४
पूज्य मन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः । नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यनले दले ।।५
दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णे च नैर्ऋते । पश्चिमे वसुधात्रे च वायव्ये चण्डभानवे ।।६
पूष्णे ह्युत्तरतः पूज्य आनन्दायेत्यतः परम् । कर्णिकायां तु पुरुषः पूज्यः सर्वात्मनेति च ।।७
शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः । एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः ।।
भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ।।८
अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासिमासि च । कुर्यात्सम्वत्सरं यावद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।।९
एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि । गोभिर्विभवतः सार्द्धं दातव्यं भूतिमिच्छता ।।१०
नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च । त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात्संसारकर्दमात् ।।११
अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारकं व्रतम् । विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते ।।१२
इमा मघौघपटलध्वान्तसद्व्रतिदीपिकाम् । गच्छन्प्रगृह्य संसारशर्वर्यां न स्खलेन्नरः ।।१३

प्रणाश पूर्वक समस्त कामनाओं को सफल करने वाली एवं पुण्य रूप है । माघ मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन लघु आहार करके षष्ठी के प्रातः काल दातून करने आदि से प्रारम्भ कर उपवास के सभी नियम पालन और ब्राह्मण पूजन के उपरांत रात्रि में मंदार के प्राशन करके शयन करे । अनन्तर सप्तमी के दिन प्रातः काल स्नान एवं नित्य नियम सुसम्पन्न करने के उपरांत यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन सुवर्ण निर्मित मंदार के आठ पुष्प, और सुवर्ण के पुरुष निर्माण करे, जिसके साथ सुवर्ण कमल से विभूषित हो, पुनः उस अष्टदल कमल को जो काले तिल समेत कर्णिका समेत स्थित हो ताम्र पात्र में स्थापित कर उस मंदार कुसुमों द्वारा उस कमल दल में भास्कराय नमः से पूर्व, सूर्याय नमः से अग्निकोण, अर्काय नमः से दक्षिण, अर्यम्णे नमः से नैऋत्य, वसुधायै नमः से पश्चिम, भानवे नमः से वायव्य, पूष्णे नमः से उत्तर, आनन्दाय नमः से ईशान कोण की अर्चना करके कर्णिका में उस सुवर्ण पुरुष की शुक्ल वस्त्र से आवेष्टित कर माला एवं भक्ष्य फल आदि द्वारा भक्ति पूर्वक अर्चना सुसम्पन्न करे । इस प्रकार उसकी सविधान पूजा के उपरांत उसे सादर वेद निष्णात विद्वान् को अर्पित कर घर में तेल लवण के त्याग पूर्वक पूर्वाभिमुख मौन होकर भोजन करे । इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास की प्रति सप्तमी में यथाशक्ति पूर्ण वर्ष तक पूजन दान करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में कलश के ऊपर उपरोक्त वस्तुएँ स्थापित कर अपने कल्याणार्थ धन, और गौ आदि के पूजन करते हुए क्षमा प्रार्थना करे कि मंदार नाथ एवं मंदार विधान को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ, इस संसार कीचड़ से मेरा उद्धार करें ।१-११। इस प्रकार सविधान इस मंदार व्रत को सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य पाप मुक्त होकर इस भूमण्डल में सुखोपभोग करने के उपरांत देहावसान होने पर कल्प तक स्वर्ग का सुखोपभोग करता है । पाप समूह को नष्ट करने वाली इस षष्ठी व्रत रूप प्रज्वलित बत्ती से युक्त दीपक को हाथ में लिए यात्रा करता है, उसे इस संसार रूप रात्रि में कोई कष्ट न

मन्दारषष्ठीं विख्यातामीप्सितार्थफलप्रदाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ।।१४
षष्ठीमुपोष्य तिलपङ्कजकर्णिकायां सम्पूज्य भास्करमहो सुरवृक्षपुष्पैः ।
यत्प्राप्नुवन्ति पुरुषा न हि तत्कदाचिद्गोभूहिरण्यतिलदाः पदमाप्नुवन्ति ।।१५
इति श्रीभविष्ये महापुराणष उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मन्दारषष्ठीव्रतनिरूपणंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।४०

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ललिताषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भद्र भाद्रपदे मासि शुक्लषष्ठ्यां युधिष्ठिर । योषित्सुवेषा सुभगा सर्वलोकमनोहरा ।।१
प्रातः स्नानं महानद्यां कृत्वा संगृह्य वालुकाम् । नवे वंशमये पात्रे यायाद्गृहमतन्द्रिता ।।२
सोपवासा प्रयत्नेन देवीं तत्र प्रपूजयेत् । कृत्वा वस्त्रगृहं रम्यं दीपनेत्रपटावृतम् ।।३
तत्र संस्थाप्य तां देवीं पुष्पैः सम्पूजयेन्नवैः । ध्यात्वा ललितिकां गौरीं तपोवननिवासिनीम् ।।४
मन्त्रेणानेन कुसुमैश्चंपकस्य सुशोभनैः । चम्पकं करवीरं च नेमालिं मालतीं तथा ।।
नीलोत्पलं केतकीं च संगृह्य तगरं तथा ।।५
एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा । अक्षतैः कलिका ग्राह्यास्तैस्तु देवीं समर्चयेत् ।।६

होकर अच्युत सुख से मार्ग समाप्त करता है । अभीष्ट फलदायक इस मंदार षष्ठी व्रत को पढ़ने अथवा सुनने वाला भी समस्त पापों से मुक्त होता है । इस भाँति इस षष्ठी के दिन उपवास पूर्वक तिल निर्मित कमल की कर्णिका में मन्दार पुष्पों द्वारा भास्कर की पूजा करने पर मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है उसे गो, भूमि और सुवर्ण के एवं तिल दान करने वाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं ।१२-१५
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में मंदार षष्ठी व्रत वर्णन
नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४०।

अध्याय ४१

ललिता षष्ठी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भद्र, युधिष्ठिर ! भाद्रपद मास की शुक्ल षष्ठी के दिन सौभाग्यवती स्त्री को चाहिए कि अपने वेष भूषा को मनमोहक बनाकर प्रातः काल किसी महा नदी में स्नान करने के उपरांत नवीन वाँस के पात्र में घर लौटते समय बालू भी लेती आये । घर पहुँच कर उपवास रहते हुए बालू द्वारा देवी की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बमाकर सूक्ष्म वस्त्रादि से विभूषित करने के उपरांत उस प्रतिमा को वस्त्र के सुसज्जित मण्डप में स्थापित कर नबीन पुष्पों द्वारा तपोवन निवासिनी ललिता देवी के ध्यान पूर्वक उसकी सविधान पूजन करे । उनकी अर्चना में चम्पा के पुष्प होने चाहिए अथवा कनेर, नेमालि, मालती, नील कमल, केतकी और तगर भी होने चाहिए।१-५ जिसकी एक एक संख्या आठ सौ, अथवा अट्ठाईस हों तथा

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते । स्नात्वा कनखले तीर्थे हरं लब्धवती व्रजेत् ।।७
ललितेललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि । या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्यै देव्यै नमोनमः ।।
एवमभ्यर्च्य विधिना नैवेद्यं पुरतो न्यसेत् ।।८
कूष्माण्डैः कर्कटीवृन्तैः कर्कोटैः कारवेल्लकैः । वृन्ताकैरक्षतैरङ्गैर्दीपधूपाद्यलक्तकैः ।।९
सार्द्धं सगुडकैर्धूपैः सोहालककरम्बकैः । गुडपुष्पैःकर्णवेष्टैर्मोदकैर्मुखमोदकैः ।।१०
एवमभ्यर्च्य विधिवद्रात्रौ जागरणं ततः । गीतवाद्यनटच्छत्रप्रेक्षणीयैः सुशोभनैः ।।
सखीभिः सहिता साध्वी तां रात्रीं प्रशमन्नयेत् ।।११
न च सम्मीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टम् । दुर्भगा दुर्गता वन्ध्या नेत्रसम्मीलनाद्भवेत् ।।१२
एवं जागरणं कृत्वा सप्तम्यां सरितं नयेत् । गन्धपुष्पैरथाभ्यर्च्य गीतवाद्यपुरःसरम् ।।१३
तच्च दद्याद्विजेन्द्राय नैवेद्यादि नरोत्तम । स्नात्वा गृहमुपागम्य हुत्वा वैश्वानरं क्रमात् ।।
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च पूजयित्वा सुवासिनीम् ।।१४
कुमारिका भोजनीया ब्राह्मणा दशपञ्च च । भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्देया तेभ्यः सुदक्षिणा ।।
ललिता प्रीतियुक्ताऽस्तु इत्युक्त्वा तान्विसर्जयेत् ।।१५
यः कश्चिदाचरेदेतद्भक्त्या ललितिकाव्रतम् । नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु ।।१६
तन्नास्ति मानुषे लोके तस्य यन्नोपद्यते । सुखसौभाग्यसंयुक्ता गौरीलोकमवाप्नुयात् ।।१७

अक्षत कलियों से भी देवी की उत्तम अर्चना की जा सकती है । पूजन के समय—उस गंगाद्वार (हरिद्वार) में जो कुशाओं एवं बिल्व से संयुक्त नीलपर्वत पर सुशोभित है, तथा कनखल तीर्थ में स्नान पूर्वक शिव को प्राप्त करके ही विश्राम किया है, और सौख्य एवं सौभाग्य दायिनी ललिते देवि ! आप सौभाग्य रूप है, अतः मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रही हूँ, इस प्रकार उच्चारण कर उनके समक्ष नैवेद्य रखकर कुष्मांड, ककड़ी, अखरोट, करेला, अक्षत पपीता, धूप, दीप, अलक्तक (महावर) सोहालक करम्बक, महुआ के पुष्प, कुण्डल और मोदक द्वारा उनकी सविधान अर्चना करने के उपरांत रात्रि में गीत, वाद्य, सुन्दर नाटकादि दृश्य के द्वारा सखियों समेत जागरण करे । रात्रि के उस चार प्रहर के समय में निद्रा के कारण कुछ भी नेत्र निमीलन न होने पाये, क्योंकि नेत्रनिमीलन (झपकी) होने से स्त्री को दुर्भगा दुर्गति एवं वंध्या होना पड़ता है । पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल गन्ध पुष्पादि द्वारा अर्चना करने के उपरांत गायन वाद्य करते हुए उस प्रतिमा को किसी नदी में छोड़े दें और उसकी सभी वस्तुएं किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित कर स्नान कर घर आने पर हवन, देव-पितृ तर्पण के अनन्तर सौभाग्यवती स्त्री की पूजा, कुमारी भोजन, दश या पांच ब्राह्मणों को दक्षिणा समेत अनेक भाँति के भोजन से तृप्त कर 'ललिता देवी अत्यन्त प्रसन्न हों' कहते हुए उनके विसर्जन करे ।६-१५। इस भाँति ललिता देवी की भक्ति पूर्वक आराधना सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! उसके सुख सौभाग्य प्राप्ति पूर्वक उपभोगार्थ कोई वस्तु इस लोक में अप्राप्तव्य नहीं रहती है और देहावसान के समय गौरी लोक की प्राप्ति होती है । इस प्रकार षष्ठी के दिन जल के भीतर प्रविष्ट होकर

षष्ठ्यां जलान्तरगता वरवंशपात्रे संगृह्य पूजयति या सिकताः क्रमेण।
नक्तं च जागरमनुद्धतगीतनृत्यैः कृत्वा ह्यसौ त्रिभुवने ललितेव भाति ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ललिताषष्ठीव्रतवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।४१।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयपूजावर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

येयं मार्गशिरे मासि षष्ठी भरतसत्तम। पुण्या पापहरा धन्या शिवा शान्ता गुहप्रिया ।।१
निहत्य तारकं षष्ठ्यां गुहस्तारकराजवत्। रराज तेन दयिता कार्त्तिकेयस्य सा तिथिः ।।
स्नानदानादिकं कर्म तस्यामक्षयमुच्यते ।।२
यस्यां पश्यन्ति गाङ्गेयं दक्षिणापथनाश्रितम्। ब्रह्महत्यादिपापैस्ते मुच्यन्ते नात्र संशयः ।।३
तस्मादस्यां सोपवासः कुमारं स्वर्णसम्भवम्। राजतं वा महाराज मृण्मयं वापि कारयेत् ।।४
अपराह्णे ततः स्नात्वा समाचम्य यतव्रती। पद्मासनस्थो गाङ्गेयं ध्यायंस्तिष्ठेत्समाधिना ।।५
ब्राह्मणस्तु ततो विद्वान्गृहीत्वा करकं नवम्। पातयेत्तस्य शिरसि धारां वै दक्षिणामुखः ।।६

स्नानोपरांत बाँस के पात्र में बालुकाओं को लेकर उसकी सुन्दर प्रतिमा के पूजन, गीत एवं नृत्य, वाद्य द्वारा रात्रि जागरण करने पर वह तीनों लोक में प्रख्याति प्राप्त ललिता देवी की भाँति सुशोभित होती है।१६-१८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
ललिता षष्ठीव्रत वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।४१।

अध्याय ४२

कार्तिकेय पूजा का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भारत सत्तम ! मार्गशीर्ष मास की षष्ठी अत्यन्त पुण्या, पापहारिणी, धन्या, कल्याणिनी, शान्त एवं गुह प्रिय है।१-२। इसी षष्ठी के दिन कुमार को तारकासुर का निधन कर लोकोत्तर ख्याति प्राप्त की है, इसीलिए उन कार्तिकेय को यह तिथि अत्यन्त प्रिय है। इस दिन स्नान एवं दान आदि जो कुछ कर्म किये जाते हैं, अक्षय फल प्रदान करते हैं। इस तिथि में गांगेय (कुमार) के दक्षिणा पथ आश्रित होते हुए जो लोग दर्शन करते हैं, उनके ब्रह्महत्यादि सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं इनमें संदेह नहीं। महाराज ! इसलिए इस तिथि के दिन सुवर्ण चाँदी अथवा मृत्तिका की कुमार की प्रतिमा बनाकर अपराह्ण के समय संयम पूर्वक स्नान-नित्य नियम के उपरांत पद्मासन द्वारा बैठकर गङ्गा पुत्र (स्कन्द) के ध्यान में समाधिनिष्ठ होकर उस विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणाभिमुख होकर नवीन करवा द्वारा उनके शिर पर स्नानार्थ जल गिरायें उस समय कहना चाहिए कि— गंगाकुमार ! शिव जी की विभूति की भाँति

चन्द्रमण्डलभूतानां भवभूतिपवित्रितः । गङ्गाकुमारधारेयं पतिता तव मस्तके ।।७
एवं स्नात्वा समभ्यर्च्य भास्करं भुवनाधिप । पुष्पधूपादिना पश्चात्पूजयेत्कृत्तिकासुतम् ।।८
देवसेनापते स्कन्द कार्त्तिकेय भवोद्भव । कुमार गृह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोऽस्तु ते ।।९
एभिर्नामपदैः पूज्य नैवेद्यं विनिवेदयेत् । फलानि दक्षिणान्नानि चन्दनं मलयोद्भवम् ।।१०
पार्श्वस्थौ पूजयेच्छागकुक्कुटौ स्वामिवल्लभौ । सकलापं मयूरं च प्रत्यक्षां हिमजां तथा ।।११
कृत्तिकाकटकं पार्श्वे सम्पूज्य स्कन्दवल्लभम् । तेनैव नामभिर्होमः कार्यः साज्यैस्तिलैस्तथा ।।१२
एवं निर्वर्त्य विधिवत्फलमेवं युधिष्ठिर । भक्षयित्वा स्वपेद्भूमौ स्वास्तृते दर्भसंस्तरे ।।१३
नालिकेरं मातुलुंगं नारिंगं पनसं तथा । जम्बीरं दाडिमं द्राक्षां हृद्यान्याम्रफलानि च ।।१४
श्रीफलामलकं तद्वत्रपुसं कदलीफलम् । क्रमेण भक्षयेद्राजन्संयतो नियतव्रती ।।
अलाभे कलकालौघफलमद्यादतन्द्रितः ।।१५
प्रत्यक्षो हेमघटितश्छागो वा कुक्कुटोऽथवा । प्रातर्दद्याद् द्विजायैतत्सेनानीः प्रीयतामिति ।।१६
सेनायां स च सम्भूतः क्रौञ्चारिः षण्मुखो गृहः । गाङ्गेयः कार्तिकेयश्च स्वामी बालग्रहाग्रणीः ।।१७
छागप्रियश्शक्तिधरो द्वारो द्वादशभः स्मृतः । प्रीयतामिति सर्वेषु क्रमान्मासेषु कीर्तयेत् ।।१८
ब्राह्मणान्भोजयित्वादौ पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं संवत्सरस्यान्ते कार्त्तिके मासि शोभने ।।१९
कार्त्तिकेयं समभ्यर्च्य वासोभिर्भूषणैः सह । गाङ्गेयः कार्तिकेयश्च सकृदेवैवमाचरेत् ।।२०
सम्वत्सरविधिं कृत्वा जपं होमपुरस्कृतम् । दद्याद्विप्राय राजेन्द्र वाचकाय विशेषतः ।।२१
एते विप्राः स्मृता दिव्या भौमास्त्वन्ये द्विजातयः । पालितेऽस्मिन्व्रते पार्थ तीर्णः स्याद्भवसागरात् ।।२२

अत्यन्त पवित्र यह धारा चन्द्र मण्डल के आकार में तुम्हारे मस्तक पर गिर रही है । भुवनाधिप ! इस प्रकार स्नान कराकर पुष्प, एवं धूप आदि द्वारा उन कृत्तिका सुत की अर्चना करके देव सेनापति, स्कन्द, कार्तिकेय, भवपुत्र, कुमार, गृह, गाङ्गेय, और शक्ति हस्त को नमस्कार है, कहते हुए उन्हें नैवेद्य, फल समेत दक्षिणा तथा मलय चन्दन आदि सुगन्ध की वस्तुएँ सादर समर्पित करनी चाहिए । पश्चात् उनके पार्श्व में स्थित छाग (बकरी) कुक्कुट (मुर्गा), कल्प समेत मयूर और पार्वती जी की पूजा करते हुए उनके पार्श्व में स्थित स्कन्द प्रिय कृत्तिका कटक की अर्चना करके उन्हीं नामों के उच्चारण पूर्वक घृत और तिल का हवन करे । युधिष्ठर ! तदुपरांत फल भक्षण कर भूमि में कुश के आसन पर शयन करे । नारियल, मातुलुङ्ग (विजौरा नीबू), नारङ्गी, कटहल, जम्बीर, अनार, द्राक्षा, प्राण, श्रीफल, आंवला, ककडी, केला, आदिफलों के भक्षण क्रमशः प्रतिमा में उस व्रती को करना चाहिए । और उसके अजा लाभ का लौघ फल व्रत में छाग (बकरी) और कुकुट मुर्गे की अथवा किसी एक की सुवर्ण की प्रतिमा बना कर पूजनोपरांत सादर किसी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करे। और सेनानी प्रसन्न हों, कहकर विसर्जन करे सेनानी, क्रौञ्चारि, षण्मुख, गुह, गाङ्गेय, कार्तिकेय, स्वामी, बाल गृह, प्राणी, घटाप्रिय, शक्तिधर, और द्वार नामों के उच्चारण क्रमशः प्रत्येक मासों में करके उनकी अर्चना सुसम्पन्न करना चाहिए तथा ब्राह्मण भोजन के उपरांत मौन होकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार वर्ष की समाप्ति के अवसर पर उस उत्तम कार्तिक मास में वस्त्राभूषण द्वारा कार्तिकेय की पूजा, सम्वत्सर विधान और जप हवन के उपरांत उसे ब्राह्मण वाचक को सादर समर्पित करे।३-२१। राजेन्द्र ! यही दिव्य एवं भौम ब्राह्मण ही इस व्रत में व्रती द्वारा पूजित होने योग्य बताये गये हैं। पार्थ ! व्रत में इनकी पूजा करने से वह व्रती भवसागर को पार करता है।

एवं यः कुरुते भक्त्या नरो योषिदथापि वा । स प्राप्येह शुभं कामं गच्छतीन्द्रसलोकताम् ॥२३
सदैव पूजनीयस्तु कार्तिकेयो महीयते । कार्त्तिकेयादृते नान्यो राज्ञां पूज्यः प्रवक्ष्यते ॥२४
सङ्ग्रामं गच्छमानो यः पूजयेत्कृत्तिकासुतम् । स सर्वं जयते वीरो यथेन्द्रो दानवान् रणे ॥२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेच्छंकरात्मजम् । पूज्यमानस्तु सद्भक्त्या सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥२६
यस्तु षष्ठ्यां नरो नक्तं कुर्याद्भारतसत्तम । सर्वपापविनिर्मुक्तो गाङ्गेयस्य सदा व्रजेत् ॥२७
श्रुत्वैवं दक्षिणां मासं गत्वा श्रद्धासमन्वितः । पूजयेद्देवदेवेशं स गत्वा शिवमन्दिरम् ॥२८

स्कन्दं गुहं शरवणोद्भवनादिदेवं शम्भोः सुतं सदयितं गिरिराजपुत्र्याः ।
स्वर्गे निरर्गलसुखान्यनुभूयते न सेनापतिर्भवति राज्यधुरन्धरोऽसौ ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तारकवधकार्त्तिकेयपूजाषष्ठीव्रतवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।४२

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

विजयसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सप्तमी च यदा देव केन कालेन पूज्यते । किंफला नियमः कश्चिद्वद देवकिनन्दन ॥१

इस भाँति भक्तिपूर्वक व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री अपनी कामनाओं की सफलता पूर्वक अन्त में इन्द्रलोक प्राप्त करती है । महीपते ! इसलिए कार्तिकेय जी की सदैव पूजा करनी चाहिए और कार्तिकेय के अतिरिक्त अन्य कोई देव राजाओं के लिए पूज्य है भी नहीं क्योंकि संग्राम के लिए उत्सुक प्राणी कृत्तिका की पूजा करके यदि रणस्थल में प्रयाण करता है, तो वह वीर दानवों को इन्द्र की भाँति शत्रुओं को पराजित कर विजय प्राप्त करता है । अतः उन शिवात्मज कुमार की पूजा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने पर समस्त कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है । भारत सत्तम ! इस प्रकार जो पुरुष षष्ठी में नक्त व्रत सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर कुमार लोक की प्राप्ति करता है । दक्षिण पथाश्रित उन्हें सुनकर श्रद्धा समेत शिवजी के मन्दिर में जाकर शिव एवं पार्वती के पुत्र कार्तिकेय की जो देवनायक के पद पर प्रतिष्ठित हैं, तथा स्कन्द, गुह, शरवणोद्भव आदि नामों से प्रख्यात है, सविधान अर्चना करता है करने पर वह राज्य धुरंधर होकर समस्त सुखों के उपभोग करने के उपरांत स्वर्ग में सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित होता है ।२२-२९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व मे श्रीकृष्ण युधिष्ठर सम्वाद में
तारक वध कार्तिकेय पूजा षष्ठी व्रत वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

अध्याय ४३

विजयसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव, देवकिनन्दन ! सप्तमी की पूजा किस समय की जाती है, और उसके फल, तथा नियम बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥२
स्नानं दानं जपो होम उपवासस्तथैव च । सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥३
प्रदक्षिणां यः कुरुते फलैः पुष्पैः दिवाकरम् । स सर्वगुणसम्पन्नं पुत्रं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥४
प्रथमा नालिकेरैस्तु द्वितीया रक्तनागरैः । तृतीया मातुलुङ्गैश्च चतुर्थी कदलीफलैः ॥५
पञ्चमी वरकूष्माण्डैः षष्ठी पक्वैस्तु तैंदुकैः[1] । वृन्ताकैः सप्तमी देया अष्टोत्तरशतेन च ॥६
मौक्तिकैः पद्मरागैश्च नीलैः कर्केतनैस्तथा । गोमेदैर्वज्रवैडूर्यैः शतेनाष्टाधिकेन तु ॥७
अक्षोटैर्बदरैर्बिल्वैः करमर्दैः सबर्बरैः । आम्रातकजंबीरैर्जंबुककर्कोटिकाफलैः ॥८
पुष्पैर्धूपैः फलैः पत्रैर्मोदकैर्गुणकैः शुभैः । एभिर्विजयसप्तम्यां भानोः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥९
अन्यैः फलैश्च काम्यैश्च ऐक्षवैर्ग्रंथिवर्जितैः । रवेः प्रदक्षिणा देया फलेन फलमादिशेत् ॥१०
न विशेन्न च सञ्जल्पेन्न च कश्चिद्वदेदपि । एकचित्ततया भानुश्चिन्तनाय प्रयच्छति ॥११
वसोर्धारा प्रदातव्या भानोर्गव्येन सर्पिषा । चन्द्रातपत्रं बध्नीयाज्जयं किंकिणिकायुतम् ।१२
कुंकुमेन समालभ्य पुष्पधूपैश्च पूजयेत् । शुभं निवेद्य नैवेद्यं ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१३
भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर । आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते ॥१४

श्रीकृष्ण बोले—शुक्लपक्ष की सप्तमी के दिन रविवार होने से वह सप्तमी विजयानाम से ख्याति होती है, इसलिए उसमें दान करने से महान् फल की प्राप्ति होती है। स्नान, दान, जप, हवन, और उपवास आदि सभी कर्म विजया सप्तमी के दिन सुसम्पन्न होने पर महान् पातकों के नाश करते हैं। उस दिन फल पुष्प समेत जो भगवान् दिवाकर की प्रदक्षिणा करता है, उसे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होती है। नारियल समेत पहली, रक्तनागर सेत दूसरी, बिजौरा नीबूं से तीसरी, केला से चौथी, कूष्माण्ड से पाँचवी, तिनी के चावल समेत छठी और एक सौ आठ वृन्ताक (पपीता) आदि फलों द्वारा आठवी सप्तमी में सूर्य की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। उसी भांति मोती, पद्मराग, नील, कर्केतन, गोमेद, वज्र, वैदूर्य की भी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिए। अखरोट, बेर, बिल्व, करनर्द, बर्वर, आम, आँवला, जम्बीर, जामुन, और कोर्टिका फल समेत पुष्प, धूप, फल, पत्र, एवं उत्तम मोदक द्वारा विजया सपतमी के दिन सूर्य की प्रदक्षिणा की जाती है। इसी प्रकार अन्य फलों और गांठहीन ऊख के द्वारा सूर्य की प्रदक्षिण की जाती है, क्योंकि फल प्रदान के अनुसार ही उसे फल की प्राप्ति होती है। भानुदेव की आराधना के समय किसी के घर प्रस्थान और किसी के साथ बातचीत करना अवैध बताया गया है। इसलिए उस समय केवल तन्मय होकर उनकी आराधना ही करनी चाहिए।२-११। हवन के समय उन्हें गाय के घी का वसोर्धारा और पूजन के समय चाँदी का सौन्दर्य पूर्ण छत्र एवं किंकड़ी (ऽछंटियों) से विभूषित करना बताया गया है। कुंकुम के लेपन कर पुष्प धूप से पूजन करने के अनन्तर उत्तम नैवेद्य से उन्हें तृप्त कर क्षमा प्रार्थना करे कि भानो, भास्कर, मार्तण्ड, चण्डरश्मे, एवं दिवाकर ! प्रसन्न होकर आप मुझे आरोग्य, आयु, विजय एवं पुत्र प्रदान करने की कृपा करें, आपको मैं नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार उपवास,

---

१. षष्टिपकैस्तु तण्डुलैः।

उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । कृता नियमयुक्तेन या त्वियं जयसप्तमी ।।१५
रोगी विमुच्यते रोगाद्दरिद्रः श्रियमाप्नुयात् । अपुत्रो लभते पुत्रं विद्या विद्यार्थिनो भवेत् ।।१६
शुक्लपक्षे यदा पार्थ सादित्यसप्तमी भवेत् । तदा नक्तेन मुद्गाशी क्षपयेत्सप्त सप्तमीः ।।१७
भूमौ पलाशपत्रेषु स्नात्वा हुत्वा यथाविधि । समाप्ते तु व्रते दद्यात्सौवर्णं मुद्गमिश्रितम् ।।१८
मुद्गं श्रेष्ठाय विप्राय वाचकाय विशेषतः । सप्तम्यां सप्तिसंयुक्त आदित्येन नरोत्तम ।।१९
उपोष्य विधिनानेन मन्त्रप्राशनपूजनैः । षडक्षरेण मन्त्रेण सर्वं कार्यं विजानता ।।२०
अर्चनं वह्निकार्यं च शतमष्टोत्तरं नरः । समाप्ते तु व्रते पश्चात्सुवर्णेन घटापितम् ।।२१
सौवर्णं भास्करं पार्थ रुक्मपात्रगतं शुभम् । रक्ताम्बरं च काषायं गन्धं दद्यात्सदक्षिणम् ।।२२
मन्त्रेणानेन विप्राय कर्मसिद्ध्यै द्विजातये । ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर ।।२३
ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमोनमः । दानानि च प्रदेयानि गृहाणि शयनानि च ।।२४
श्राद्धानि पितृदेवानां शाश्वतीं तृप्तिमिच्छता । यात्राप्रशस्ता यातॄणां राज्ञां च जयमिच्छताम् ।।२५
विजयो जायतेऽवश्यं यतीनां च नृणां तदा । अतोर्थं विश्रुता लोके सदा विजयसप्तमी ।।२६
एवमेषा तिथिः पार्थ इह कामप्रदा नृणाम् । परत्र सुखदा सौम्या सूर्यलोकप्रदायिनी ।।२७
दाता भोगी च चतुरो दीर्घायुर्नीरुजः सुखी । इहागत्य भवेद्राजा हस्त्यश्वधनरत्नवान् ।।२८
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्पुण्यभागिनी । भवत्यत्र न संदेहः कार्यः पार्थ त्वया क्वचित् ।।२९

नक्तव्रत, अयाचित, अन्न के भोजन आदि नियमों के पालन पूर्वक इस जया सप्तमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी रोगों से मुक्त, दरिद्र को लक्ष्मी, अपुत्री को पुत्र, विद्यार्थी, को विद्या की प्राप्ति होती है ! पार्थ ! शुक्ल पक्ष में रविवार के दिन सप्तमी होने पर नक्त व्रत में मूंग के भोजन करते हुए सातो सप्तमी को सविधि—भूमि शयन, पलाश पत्र में भोजन तथा स्नान और हवन सुसम्पन्न कर व्रत के समाप्ति में कथावाचक को मूंग के लड्डू में सुवर्ण रखकर प्रदान करना चाहिए ।१२-१८। नरोत्तम ! इस भाँति आदित्य युक्त सातों सप्तमी में सविधान उपवास मंत्रोच्चारण, प्राशन और पूजन में उस व्रती को षडक्षर मंत्र के उच्चारण द्वारा सुसम्पन्न कर एक सौ आठ आहुति अग्नि देव को प्रदान करना चाहिए । पार्थ ! पुनः व्रत की समाप्ति में भास्कर की सुवर्ण की प्रतिमा को सुवर्ण या चाँदी के पात्र में स्थापित कर रक्तवर्ण के कौशेय (रेशमी) वस्त्र से सुसज्जित करके दक्षिणा समेत गन्ध आदि उत्तम वस्तुओं द्वारा उनकी एवं उस वाचक ब्राह्मण की पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे कि—यशस्कंर, एवं सुदेव भगवान् भास्कर देव को मैं नमस्कार करता हूँ, आज आप मेरी अभिलाषा की पूर्ति करें । तत्पश्चात् अनेक भाँति के दान, गृह, शय्या आदि के दान से उन्हें तृप्त करे । देव पितरों के श्राद्ध में उन्हें निरन्तर तृप्त रखने की मनुष्य और विजयार्थ यात्रा के लिए उत्सुक राजाओं तथा अन्य यात्रियों को व्रतानुष्ठान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । इससे उन्हें विजय की प्राप्ति अवश्य होती है । पार्थ ! इसीलिए लोक में यह विजय सप्तमी के नाम से प्रख्यात है, जो मनुष्यों को इस लोक में समस्त सुख और परलोक में पहुँचने पर सूर्यलोक प्रदान करती है ।१९-२७। पश्चात् जन्म ग्रहण करने पर दाता, भोगी, चतुर, दीर्घायु, आरोग्य एवं समस्त सुख की प्राप्ति पूर्वक हाथी, अश्व, एवं धन रत्नों से विभूषित राजा होता है । पार्थ ! इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी पुण्य भानिनी होकर उपरोक्त फल प्राप्त करती है। इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार स्वर्ग, मनोरथ, सुख

स्वर्ग्या समीहितसुखार्थफलप्रदा च या मृग्यते मुनिवरैः प्रवरा तिथीनाम् ।
सा भानुपादकमलार्चनर्चितकानां पुंसां सदैव विजया विजयं ददाति ।।३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विजयसप्तमीव्रतकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।४३

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यमण्डलविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यदपि ते वच्मि दानं श्रेयस्करं परम् । आदित्यमण्डलं नाम सर्वाशुभविनाशनम् ।।१
यवचूर्णेन शुभ्रेण कुर्याद् गोधूमजेन वा । सुपक्वं भानुबिम्बाभं गुडगव्याज्यपूरितम् ।।२
सम्पूज्य भास्करं भक्त्या तदग्रे मण्डलं शुभम् । रक्तचन्दनजं कुर्यात्कुंकुमं वा विशेषतः ।।३
मण्डलं तत्र संस्थाप्य रक्तवस्त्रैः सुपूजितम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं मन्त्रेणानेन पाण्डव ।।४
आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम् । श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम् ।।५

(इति दानमंत्रः)

कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव । आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम् ।।६

(इति प्रतिग्रहणमन्त्रः)

एवं धन आदि फल प्रदान करने वाली यह विजया सप्तमी, जो तिथियाँ श्रेष्ठ, एवं महर्षिगण जिसके लिए सदैव लालायित रहते हैं, उस दिन भानु के चरण की आराधना करने वाले प्राणी को सदैव विजय प्रदान करती है ।२८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
विजयासप्तमीव्रतवर्णन नामक तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ।४३।

अध्याय ४४

आदित्यमण्डलविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें आदित्य मण्डल नामक एक अन्य दान बता रहा हूँ, जो परम श्रेयस्कर और समस्त पापों का विनाशक है । जवा अथवा गेहूं के चूर्ण (आटे) में गुड और गौ के घी डालकर सूर्य के विम्ब के समान बनाकर और परिपक्व कर उसे भास्कर की अर्चना के उपरांत उनके समक्ष में भक्ति पूर्वक रक्तचन्दन अथवा कुंकुम द्वारा मण्डल बनाकर वस्त्र से विभूषित एवं पूजित कर मंत्रोच्चारण पूर्वक ब्राह्मण को अर्पित करे । पाण्डव ! अर्पित करते समय इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—विप्र ! सूर्य के तेज से उत्पन्न, रजत (चांदी) द्वारा सविधान निर्मित इसे मेरे कल्याणार्थ आप ग्रहण करें । प्रतिग्राही को भी इस प्रकार कहना चाहिए—कि आदित्य के प्रीत्यर्थ प्रदान किये गये इस मण्डल को, जो कामनाओं, धन, धर्म, पुत्र, एवं सुख प्रदान करने वाला है, मैं सादर ग्रहण कर रहा हूँ । राजन् ! इस प्रकार का दान

एवं दत्त्वा नरो राजन्सूर्यवद्दिवि राजते । सर्वकामसमृद्धार्थो मण्डलाधिपतिर्भवेत् ।।७
दातव्यं जयसप्तम्यां तदारभ्य दिनेदिने । भास्करस्य महाराज शक्त्या भावेन भावितः ।।८
गोधूमचूर्णजनितं यवचूर्णजं वा आदित्यमण्डलमखण्डगुडाद्यपूर्णम् ।
कृत्वा द्विजाय विधिवत्प्रतिपादयेद्यो भूमौ भवत्यमितमण्डलमण्डितोऽसौ ।।९
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आदित्यमण्डलविधिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।४४

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यामुपोष्य नरः कामान्प्राप्नोति मनसेप्सितान् । तामेकां वद मे देव सप्तमीं धनसौख्यदाम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

भानोर्दिने सिते पक्षे अतीते चोत्तरायणे । पुन्नामाह्वयनक्षत्रे गृह्णीयात्सप्तमीव्रतम् ।।२
सव्रीहिकान्यवतिलान्सह माषमुद्गैर्गोधूममांसमधुमैथुनकांस्यपात्रम् ।
अभ्यंजनांजनशिलातलचूर्णितानि षष्ठ्यां परं परिहरेदहनि प्रसिद्ध्यै ।।३

करने वाला पुरुष सूर्य के समान स्वर्ग में सुशोभित होता है अनन्तर समस्त कामनाओं की समृद्धता पूर्वक मण्डलाधीश्वर होता है । महाराज ! पुनः उसी दिन से आरम्भ कर सदैव जयसप्तमी के दिन भास्कर देव की भावनाओं से प्रेरित होकर अपनी शक्ति के अनुसार मण्डल का दान करते रहना चाहिए । इस भांति गेहूं अथवा जवा के चूर्ण में गुड घी डाल कर (सूर्य के बिम्ब के समान) बना कर एवं परिपक्व कर उस मण्डल को सविधान ब्राह्मण को अर्पित करने वाला इस भूतल में मण्डलेश्वर पद पर प्रतिष्ठित होता है।१-९

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
आदित्य मण्डल विधि वर्णन नामक चौवालिसवां अध्याय समाप्त ।४४।

अध्याय ४५

त्रयोदशवर्ज्यसप्तमी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव ! मुझे उस सप्तमी का विधान बताने की कृपा कीजिये, जिसके उपवास रहने से मनुष्य को मनोरथ की सिद्धि, धन एवं सौख्य की प्राप्ति होती है ।१

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य के दक्षिणायन होने पर शुक्ल सप्तमी के दिन रविवार एवं पुनर्वसु नक्षत्र होने पर व्रत विधान, आरम्भ करते हुए उसे पूर्व षष्ठी के दिन से ही वृद्धि, जव, तिल, उरद, मूंग, गेहूँ, मांस, मधु, मैथुन काँस्य पात्र, अभ्यञ्जन, और काले शिलातल के चूर्ण के त्याग करने चाहिए । पुनः सप्तमी के

देवान्मुनीन्पितृगणान्सजलांञ्जलीभिः संतर्प्य पूज्य गगनांगणहस्तभुक्तान् ।
हुत्वानले तिलयवान्बहुशो घृताक्तान्भूमौ स्वपेद्धृदि निधाय हि तं सवित्रम् ।।४
यानि त्रयोदशजनैरिह वर्जितानि द्रव्याणि तानि परिहृत्य परिद्विषष्ट्या ।
सम्प्राश्य शुद्धचणकानिह वर्षमेकं प्राप्नोति भारत सुखं मनसेप्सितं च ।।५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीव्रतं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।४५

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कुक्कुटीमर्कटीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

लोमशो नाम विप्रर्षिर्मथुरायां गतः पुरा । सोऽर्चितो वसुदेवेन देवक्या च युधिष्ठिर ।।१
उपविष्टः कथाः पुण्याः कथयित्वा मनोहराः । ततः कथयितुं भूयः कथामेतां प्रचक्रमे ।।२
कंसे हते मृताः पुत्राः पुत्रा जाताः पुनः पुनः । मृतवत्सा देवकि त्वं पुत्रदुःखेन दुःखिता ।।३
यथा चन्द्रमुखी दीप्तिर्बभूव मृतपुत्रिका । पश्चाच्चीर्णव्रता सैव बभूवाक्षतवत्सका ।।
त्वमेक देवकि तथा भविष्यसि न संशयः ।।४

प्रातः काल देव, मुनि और पितरों से निमित्त तर्पण करने के उपरान्त गगन प्राङ्गण में विहार करने वाले सूर्य की सविधि अर्चना एवं घृतयुक्त (घी में डुबे हुए) तिल जवा के हवन करके रात्रि के समय सूर्य के ध्यान पूर्वक भूमि में शयन करे। भारत् ! उपरोक्त तेरह निषिद्ध वस्तुओं के त्याग पूर्वक केवल शुद्ध चने द्वारा ही जीवन निर्वाह करते हुए एक वर्ष का समय पूरा करने पर उसे यथेच्छ सुख की प्राप्ति होती है।२-५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
त्रयोदशवर्ज्य सप्तमी व्रत वर्णन नामक पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त।४५।

अध्याय ४६

कुक्कुटीमर्कटीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! एक समय महर्षि लोमश के मथुरा जाने पर वसुदेव और देवकी द्वारा सुपूजित होने के उपरांत पवित्र एवं मनमोहक कथाओं के प्रसङ्ग में उन्होंने यह भी कहना आरम्भ किया कि—देवकि ! कंसके निधन होने पर भी तुम्हारे अनेक पुत्र हुए किन्तु दुर्भाग्य वश रह न सके, इसलिए पुत्र दुःख से दुःखी होकर तुम यह जो मृतवत्सा होने का अनुभव कर रही हो, चन्द्रमुखी रानी के समान, उसने अनेक संतानों के निधनहोने के दुःख को अनुभव करती हुई इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर अनेक अक्षय संतानों का सुख प्राप्त किया है, तुम्हें भी वैसा ही सुख होगा, इसमें संशय नहीं।१-४

देवक्युवाच

का सा चन्द्रमुखी ब्रह्मन्बभूव बहुपुत्रिका ॥५
चरितं किं व्रतवरं बहुसन्ततिकारकम् । सतां सदर्थकरणं सौभाग्यारोग्यवर्द्धनम् ॥६

लोमश उवाच

अयोध्यायां पुरा राजा नहुषो नाम विश्रुतः । तस्य राज्ञो महादेवी नाम्ना चन्द्रमुखी पुरा ॥७
पुरोहितस्य तस्यैव पत्न्यासीन्मानमानिका । तयोरासी दृढा प्रीतिः स्पृहणीया परस्परम् ॥८
अथापि तेऽपि मित्रिण्यौ स्नानार्थं सरयूजले । प्राप्ते प्राप्ताश्च तत्रैव बह्व्यश्च नगराङ्गनाः ॥९
स्नात्वा तु मण्डलं चक्रुः स्वपतेर्व्यक्तरूपिणः । लेखयित्वा शिवं शान्तमुमया सह शङ्करम् ॥१०
गन्धपुष्पाक्षतैर्भक्त्या पूजयित्वा यथाविधि । प्रणम्य गन्तुकामास्ताः पृष्टास्ताभ्यां नरस्त्रियः ॥११
ता ऊचुः शङ्करोऽस्माभिः पार्वत्या सह पूजितः । स्वर्णसूत्रमयस्तंतुः शिवायात्मा निवेदितः ॥१२
धारामयमिदं तावद्यावत्प्राणावधारणम् । तासां तु वचनं श्रुत्वा मित्रिण्यौ तेऽपि भारत ॥१३
तस्यैव समयं तत्र बद्ध्वा दोर्भ्यां तु दोरकैः । ततस्ताः स्वगृहाञ्जग्मुः स्वसखीभिः समावृताः ॥१४
कालेन महता यातं तस्या वै तद्व्रतं नृप । चन्द्रवत्याः प्रमत्ताया विस्मृतः स तु दोरकः ॥१५
मृता कैश्चिदहोरात्रैः सा बभूव प्लवङ्गमी । मानी च कुक्कटी जाता प्रायः संनिकटञ्चरे ॥१६
तथैव जाते मित्रिण्यौ पूर्वजातिस्मरे तथा । संभूय भूमसमयं प्राग्भूतं चक्रतुः पुनः ॥१७
तद्दिने तत्र सम्प्राप्ते पुनः कालेन ते मृते । तत्रैव मात्रके देशे जाते गोकुलसंयुते ॥१८

देवकी ने कहा—ब्रह्मन् ! अनेक पुत्रों का सुख प्राप्त करने वाली वह चन्द्रमुखी कौन है, और उनके संतान प्रदायक श्रेष्ठ व्रत को, जो सज्जन के मनोरथ, सौभाग्य आरोग्य वर्द्धक हैं, उसने सुसम्पन्न किया है ।५-६

लोमश बोले—पहले समय में अयोध्यापुरी के राजा नहुष थे, जिनकी प्रधान रानी का नाम चन्द्रमुखी था । उनके पुरोहित की मानमानिका नामक पत्नी के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता थी । अनन्तर सरयू जल में स्नानार्थ उन दोनों के प्रस्थान करने पर नगर की अनेक सुन्दरियोंका भी यहाँ समागम हुआ । स्नान करके व्यक्त पति के मण्डल तथा उमा के साथ शांत शिव की प्रतिमा बनाकर गन्ध पुष्प, एवं अक्षतों द्वारा भक्तिपूर्वक अर्चना तथा प्रणाम करके घर के लिए प्रस्थित उन स्त्रियों से इन दोनों के पूछने पर कहा कि—हम लोगों ने पार्वती समेत शिव जी की पूजा की है, और सुवर्ण सूत्र उनके हाथ में बांधकर उन्हें अपनी आत्मा सौंप दी है कि—यह धारामय होकर आजीवन वर्तमान रहे । भारत ! उन लोगों की बातें सुनकर इन दोनों मित्र स्त्रियों ने भी (शिव के हाथ में) सुवर्णसूत्र बांधकर अपनी सखियों समेत अपने अपने भवन को प्रस्थान किया । नृप ! अधिक समय व्यतीत होने पर भी उस प्रमत्त चन्द्रमुखी को व्रतसूचक उस सूत्र बन्धन की बातें स्मरण न हो सकी । कुछ काल के उपरांत निधन होने पर वह वानरी के रूप में हुई और पुरोहित की वह मानी स्त्री कुक्कुटी (मुर्गी) की योनि में । किन्तु, पूर्व स्मरण के कारण उन दोनों ने उसी मित्रता के नाते एक दूसरे के सन्निकट रहकर अपने जीवन को व्यतीत करते हुए उस शरीर के त्याग किया । रानी चन्द्रमुखी अपने पितृ नगर गोकुल में ही राजा पृथ्वीनाथ

राज्ञो जाया बभूवाथ पृथ्वीनाथस्य वा पुनः। ईश्वरी नाम विख्याता राज्ञी राजेन्द्रवल्लभा ।।१९
अग्निमीला[1] द्विजस्याभूद्भार्या भूषणनामिका। पुरोहितस्य कालेन कुक्कुटी बहुपुत्रिणी ।।२०
जातिस्मरा पद्महस्ता अष्टपुत्रा मृतप्रजा। पुनर्निरन्तरा प्रीतिर्बभूवाथ तयोर्नृप ।।२१
तत्रेश्वरी पुत्रमेकं प्रसूता चैव रोगिणम्। नववर्षस्तु पञ्चत्वमगात्स च युधिष्ठिर ।।२२
ततस्तां भूषणां द्रष्टुमथैषा पुत्रदुःखिता। सखीभावादतिस्नेहात्सर्वपुत्रसमन्विता ।।
अमुक्ताभरणा नित्यं स्वभावेनैव भूषिता ।।२३
तां दृष्ट्वा पुत्रिणीं भव्यां प्रजज्वालेश्वरी रुषा। ततो गृहं प्रेष्य च तां सखीं वै तीव्रमत्सरा ।।२४
चिन्तयामास सा रात्र्यां तस्याः पुत्रवधं प्रति। हताहताश्च तत्पुत्रा पुनर्जीवन्त्यनामयाः ।।२५
कदाचिदाहूय सखीं भूषणां पुरतः स्थिताम्। ईश्वरी प्राह किमिदं सखि पुण्यं त्वया कृतम् ।।२६
येन ते निहताः पुत्राः पुनर्जीवन्ति नो भयम्। बहुपुत्रा जीववत्सा अमुक्ताभरणा कथम् ।।
शोभसेऽभ्यधिकं भद्रे विद्युत्सौदामिनीव हि ।।२७

भूषणोवाच

भद्रे भाद्रपदे मासि सप्तम्यां सलिलाशये। स्नात्वा शिवं मण्डलके लेखयित्वा सहाम्बिकम् ।।२८
भक्त्या सम्पूज्य समयं कुर्याद्बद्ध्वा करे गुणम्। यावज्जीवं मया वातच्छिवस्यात्मा निवेदितः ।।२९

की सहधर्मिणी हुई, जिस राजमहिष की प्रख्याति ईश्वरी नाम भूपा प्रज्वलित था। और पुरोहित की अनेक पुत्र वाली वह स्त्री, जो कुक्कुटी हुई थी, भूषणा नाम से प्रख्यात होकर अग्निमीला ब्राह्मण की पत्नी हुई। उसे जातिस्मरण, लक्ष्मी के समान सुख और अष्टपुत्रों के निधन होने पर भी उसके पुत्र जीवित थे। नृप! उन दोनों में पुनः गाढ़मैत्री स्थापित हुई। उस समय ईश्वरी के ही रोगी पुत्र उत्पन्न किया था, जो नववर्ष' जीवित रहने के उपरांत स्वर्गीय हो गया। युधिष्ठर! उस समय पुत्रदुःख से अत्यन्त दुःखी ईश्वरी ने सखी भावना से प्रेरित एवं अत्यन्त स्नेह के कारण भूषणा को मिलने के लिए बुलवाया। भूषणा ने समस्त आभूषणों से सुसज्जित होकर एवं सभी पुत्रों को साथ लिए रानी के महल में प्रवेश किया। उस समय उसे सुसज्जित रूप एवं पुत्रों को देखकर अत्यन्त रुष्ट होकर प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रोध से जल उठी। उसे इतना महान् मत्सर उत्पन्न हुआ कि वह उस अपनी सखी को किसी प्रकार बिदाकर उस रात्रि उसके पुत्रों के बधार्थ ही उपाय सोचती रही। पश्चात् उसने अनेक पुत्रों के वध कर दिये, किन्तु वे पुनः जीवित होकर सर्वथा स्वस्थ रहते थे। बहुत दिनों के अनन्तर उसने अपनी भूषणा सखी को पुनः बुलाकर उस ईश्वरी ने उसके सामने ही कहा—सखि! तुमने कौन सा पुण्य किया है कि जिसके नाते तुम्हारे ये मृतक पुत्र पुनः जीवित होकर सदैव के लिए निर्भय हो जाते हैं। इस प्रकार अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक तुम सदैव भूषण रहित होकर विद्युत् की भाँति सुशोभित हो रही हो।७-२७

भूषणा बोली—भद्रे! भाद्रपद मास की सप्तमीके दिन किसी जलाशय में स्नान कर अम्बिका समेत शिव जी का मण्डल प्रतिमा बनाकर भक्ति पूर्वक पूजनोपरांत हाथ में सुवर्ण सूत्र बांधकर यह प्रतिज्ञा किया कि आजीवन मैंने अपनी आत्मा तुम्हें अर्पित की है। इस प्रकार अविज्ञापूर्वक उसी समय से उस

---

१. अग्निमाला।

इत्येवं समयं कृत्वा ततःप्रभृति दोरकम् । स्वर्णरौप्यमयं वापि करशाखासु धारयेत् ॥३०
मण्डकं वेष्टिकां दद्याच्छ्वश्रूपक्षे द्विजे तु वा । स्वयं च ता न भोक्तव्या व्रतभङ्गभयात्सखि ॥३१
परितो मुद्रिका रौप्या सौवर्णी च युधिष्ठिर । ताम्रपात्रोपरि स्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३२
सोहालकानि कांसारं दद्याद्भुञ्जीत च स्वयम् । मण्डलं सद्म वित्तं च शिवं शक्तिसमन्वितम् ॥३३
सम्पूज्य सखि दुष्प्राप्यं त्रैलोक्येऽपि न विद्यते । तदेवं समयः पूर्वं त्वया सह मया कृतः ॥३४
स मया पालितो भक्त्या ततोऽहं सुस्थिता सखि । त्वया स भग्नः समयो दर्पात्त्यक्तः शरीरयोः ॥३५
तेन सन्ततिविच्छिन्ना राज्येऽपि सति दुःखिता । एष प्रभावः कथितो व्रतस्यास्य मया तव ॥३६
अर्द्धं तव प्रदास्यामि तस्य धर्मस्य सुव्रते । सखीभावात्प्रतीच्छ त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥३७
इत्युक्त्वा प्रतिजग्राह व्रतदानफलं ततः । बभूव सुप्रजाः साध्वी मोक्षं प्राप सुरेश्वरी ॥३८
व्रतस्यास्य प्रभावेण सुपुत्रा त्वं च देवकि । भविष्यसि त्रिलोकेशं पुत्रं च जनयिष्यसि ॥३९
इत्येवं कथयित्वास्यै लोमशो मुनिपुङ्गवः । जगाम नभसा पार्थ मयाऽप्येतत्तवोदितम् ॥४०
ये चरिष्यंति मनुजा व्रतमेतद्युधिष्ठिर । कृकवाकुप्रसङ्गाख्यं देवक्या चरितं शुभम् ॥४१
तेषां सन्ततिविच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति । स्त्रियश्च याश्चरिष्यन्ति, व्रतमेतत्सुतप्रदम् ॥
मर्त्यलोके सुखं स्थित्वा यास्यन्ति शिवमन्दिरम् ॥४२

सुवर्ण अथवा चांदी के डोरे को अङ्गुलियों में धारण कर उस मण्डल और वस्त्र आदि श्वसुर पक्ष के ब्राह्मण को अर्पित करे । तथा सखि ! व्रतभंग के भय से स्वयं भोजन करे । युधिष्ठिर ! उस सुवर्ण अथवा चांदी की मुद्रिकाओं को ताँबें के पात्र पर स्थापित कर उसे ब्राह्मण को निवेदित करते हुए मधुर पक्वान्न से भी तृप्त कर पश्चात् स्वयं भोजन करे । सखि ! इस प्रकार यथाशक्ति मण्डल एवं शक्ति समेत शिव की आराधना करने पर उसे तीनों लोक में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती है । सखि ! यही प्रतिज्ञा पहले तुम्हारे साथ मैंने की थी, भक्ति पूर्वक मैंने उसका पालन किया और तुमने अहंकार वश उसके त्याग करने से अपने को शरीर के भी त्याग किया है । इसीलिए राज्य प्राप्ति करने पर भी संतान विच्छेद दुःख का अनुभव तुम्हें करना पड़ रहा है । इस प्रकार मैंने तुम्हें इस व्रत का प्रभाव सुना दिया । सुव्रते ! मैं अपने धर्म के आधे भाग को तुम्हें दे रही हूँ, और सखी भाव से तुम इसके अपनाने में कोई विचार मत करो । इतना कहने पर उसने उस व्रत दान को स्वीकार किया, जिससे उस सुरेश्वरी साध्वी को अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हुई । देवकि ! इस प्रकार तुम भी इस व्रत के प्रभाव से अनेक पुत्रों से युक्त होने पर भी त्रैलोक्य के अधीश्वर को पुत्र रूप में उत्पन्न करोगी । पार्थ ! इतना कहकर मुनि श्रेष्ठ लोमश ने आकाश मार्ग से प्रस्थान कर दिया । वही सब बातें मैंने भी तुम्हें बताया है ।२८-४०। युधिष्ठिर ! इस व्रत को जो देवकी द्वारा सुसम्पन्न एवं (कृकवाकु) के प्रसङ्गों से प्रख्यात है, सुसम्पन्न करने वाले के संतान विच्छेद कभी नहीं होगा । इसे सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी पुत्र की प्राप्ति पूर्वक इस भूतल में सुखानुभूति के उपरांत शिव लोक प्राप्त करती है । इस भाँति इस उत्तम व्रत को, जो कुक्कुटी (मुर्गी) तथा वानरी चरितापूर्ण है, चराचर के ईश शिव को ध्यान पूर्वक सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त कलि

य: कुक्कुटीव्रतवरं प्लवगीसमेतं चक्रे चराचरगुरुं हृदये निधाय।
तद्व्याकरोति कलुषौघविघातरक्षां सा स्त्री युवां भवति शोभनगीतवत्सा ।।४३

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कुक्कुटीमर्कटीव्रतवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय ।४६

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:

उभयसप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सप्तमीव्रतकल्पमुत्तमम् । माघमासात्समारभ्य शुक्लपक्षे युधिष्ठिर ।।१
सप्तम्यां कुरु सङ्कल्पमहोरात्रे व्रते नृप । वरुणेत्यर्चयित्वा तु ब्रह्मकूर्चं तु कारयेत् ।।२
अष्टम्यां भोजयेद्विप्रांस्तिलपिष्टं गुडौदनम् । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।३
सप्तम्यां फाल्गुने मासि सूर्यमित्यभिपूजयेत् । वाजपेयस्य यज्ञस्य यथोक्तं लभते फलम् ।।४
सप्तम्यां चैत्रमासे तु वेदांशुमभिपूजयेत् । उक्थाध्वरसमं पुण्यं नरः प्राप्नोति भक्तिमान् ।।५
वैशाखस्य तु सप्तम्यां धातारमभिपूजयेत् । पशुबन्ध्वध्वरे पुण्यं सम्यक्प्राप्नोति मानवः ।।६
सप्तम्यां ज्येष्ठमासस्य इन्द्र इत्यभिपूजयेत् । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति दुर्ल्लभम् ।।७
आषाढमासे सप्तम्यां पूजयित्वा दिवाकरम् । बहुवर्णस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ।।८

कल्प के विध्वंस एवं सौख्य प्राप्त करता है और स्त्री भी सुन्दर संतानों से युक्त होती है ।४१-४३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
कुक्कुट व्रत वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४६।

अध्याय ४७

उभयसप्तमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें एक अन्य सप्तमी का विधान बता रहा हूँ सुनो ! नृप ! माघमास की शुक्ल सप्तमी के दिन संकल्प पूर्वक उपवास रहकर वरुण की अर्चना के उपरांत ब्रह्म कूच करके अष्टमी में तिल में गुड़ मिश्रित भोजन से ब्राह्मण को संतृप्त करने पर उस पुरुष को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। फाल्गुन मास की सप्तमी के दिन सूर्य, नाम से पूजनादि करने पर वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। चैत्र मास की सप्तमी में 'वेदांशु' नामक (सूर्य) की अर्चना करने पर उस भक्तिमान पुरुष को उक्था यज्ञ के समान फल प्राप्त होते हैं। वैशाख मास की सप्तमी के दिन 'धाता' नामक सूर्य की अर्चना करने पर पशुबंधन यज्ञ के सभी पुण्य तथा ज्येष्ठ सप्तमी के दिन इन्द्र नामक सूर्य की पूजा करने पर वाजपेय यज्ञ के दुर्लभ फल, ज्येष्ठ सप्तमी के दिन इन्द्र नामक सूर्य की पूजा करने पर वाजपेय यज्ञ के दुर्लभ फल प्राप्त होते हैं। १-७। आषाढ़ मास की सप्तमी में दिवाकर नामक सूर्य की अर्चना करने से बहुवर्ण यज्ञ के फल, श्रावण मास

सप्तम्यां श्रावणे मासि मातापिं नाम पूजयेत् । सौत्रामणिफलं सम्यक्प्राप्नोति पुरुषः शुभम् ।।९
रविं प्रौष्ठपदे मासे सप्तम्यामर्चयेच्छुचिः । तुलापुरुषदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।१०
आश्वयुक्छुक्लसप्तम्यां सवितारं प्रपूज्य च । गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।११
कार्तिके शुक्लसप्तम्यां दिनेशं सप्तवाहनम् । योऽभ्यर्चयति पुण्यात्मा पौण्डरीकं स विन्दति ।।१२
भानुं मार्गसिते पक्षे पूजयित्वा विधानतः । राजसूयस्य यज्ञस्य फलं दशगुणं भजेत् ।।१३
भास्करं पौषमासे तु पूजयित्वा यथाविधि । नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ।।१४
तदेव कृष्णसप्तम्यां नाम सम्पूजयेद्बुधः । सोपवासः प्रयत्नेन वर्षमेकं युधिष्ठिर ।।
पश्चात्समाप्ते नियमे सूर्ययागं समाचरेत् ।।१५
शुचिर्भूमौ समे देशे लेपयेद्रक्तचन्दनैः । एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुर्हस्तमथापि वा ।।१६
सिंदूरगैरिकाभ्यां च सूर्यमण्डलमालिखेत् । रक्तपुष्पैः सपद्मैश्च धूपैः कुन्दुरकादिभिः ।।
सम्पूज्य दद्यान्नैवेद्यं विचित्रं घृतपाचितम् ।।१७
पुरतः स्थापयेत्कुम्भान्सहिरण्यान्नसंयुतान् । अग्निकार्यं ततः कुर्यात्समभ्युक्ष्य हुताशनम् ।।१८
आकृष्णेनेति मन्त्रेण समिद्भिश्चार्कसम्भवैः । तिलैराज्यगुडोपेतैर्दद्याद्दशशताहुतीः ।।१९
ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणानां युधिष्ठिर । भोजयित्वा रक्तवस्त्रैः शुक्लान्यपि पिधापयेत् ।।२०
द्वादशात्र प्रशंसन्ति गावो वस्त्रान्विताः शुभाः । छत्रोपानहयुग्मं च एकैकाय प्रदापयेत् ।।
एवं विसृज्य तान्विप्रान्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।।२१

की सप्तमी में 'भारतीय' नामक सूर्य की पूजा करने पर उस पुरुष को सौत्रामणि यज्ञ के फल और भाद्रपद मास की सप्तमी में रवि की अर्चना करने से तुला पुरुष दान के फल प्राप्त होते हैं। आश्विन शुक्ल सप्तमी में सविता की अर्चना करने पर सहस्र गोदान फल, कार्तिक शुक्ल सप्तमी के दिन सप्तवाहन नाम सूर्य की आराधना करने पर उस पुण्यात्मा को पुण्डरीक के फल प्राप्त होते हैं। मार्गशीर्ष में सप्तमी के दिन भानु की पूजा करने पर राजसूय यज्ञ के दशगुने फल अधिक प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार पौषमास में भास्कर की सविधान अर्चना करने पर नरमेध यज्ञ के पुण्यफल प्राप्त होते हैं और कृष्ण सप्तमी में भी उसी नाम द्वारा अर्चना करनी चाहिए। युधिष्ठिर ! इसी प्रकार एक वर्ष तक उपवास समेत सप्रयत्न व्रत सुसम्पन्न करने के उपरांत सूर्ययाग को सविधान सुसम्पन्न करने के उद्देश्य से किसी पवित्र भूमि में रक्त चन्दन से लेपन करके एक दो चार हाथ का विस्तृत एवं सौन्दर्य पूर्ण सूर्य मण्डल को सिन्दुर और गेरू द्वारा बनाये। अनन्तर रक्त पुष्प, कमल, धूप एवं कुदुरकादि से सविधान अर्चना करके घृत युक्त नैवेद्य अर्पित करे और उनके समक्ष पूर्ण कलश सुवर्ण समेत रख स्थापित पूर्वक कुश कण्डिका विधान समेत हवन आरम्भ करते हुए 'आकृष्णेनेति' मंत्र द्वारा मंदार के लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में तिल, घी, एवं गुड़ की दश आहुति डाल कर ब्राह्मणों को रक्त वस्त्र और श्वेत वस्त्र धारण कराकर भोजन से तृप्त कर यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। दक्षिणा के विषय में बारह वस्तुओं की यहाँ प्रशंसा की गयी है—गौ, वस्त्र, छत्र, उपानह आदि वस्तु सौ में से प्रत्येक को वितरण करना चाहिए। इस प्रकार उस ब्राह्मणों को सम्मान पूर्वक विसर्जन करने के उपरांत स्वयं मौन होकर भोजन करे।८-२१। पार्थ ! इस प्रकार इस सप्तमी व्रत को

य एवं कुरुते पार्थ सप्तमीव्रतमुत्तमम् । नीरुजो रूपवान्वाग्मी दीर्घायुश्चैव जायते ।।२२
सप्तम्यां सोपवासस्तु भानोः पश्यन्ति ये मुखम् । सर्वपापविनिर्मुक्ताः सूर्यलोकमवाप्नुयुः ।।२३
व्रतमेतन्महाराज सर्वाशुभविनाशनम् । सर्वदुष्टप्रशमनं शरीरारोग्यकारकम् ।।
सूर्यलोकप्रदं चान्ते प्राहैवं नारदो मुनिः ।।२४

ये सप्तमीमुपवसन्ति सितासितां च नामाक्षरैरहिमदीधितिमर्चयन्ति ।
ते सर्वरोगरहिताः सुखिनः सदैव भूत्वा रवेरनुचराः सुचिरं भवन्ति ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उभयसप्तमीव्रतवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।४७

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कल्याणसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्दुर्गसंसारसागरोत्तारकारकम् । किञ्चिद्व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् । तदा सा तु महापुण्या विजया तु निगद्यते ।।२
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरः पद्ममक्षतैः परिकल्पयेत् ।।३

सुसम्पन्न करने वाला पुरुष आरोग्य, रूपवान्, सत्यनिष्ठ, और दीर्घायु होता है । सप्तमी के दिन उपवास रहकर सूर्य मुख के दर्शन करने वाले पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । महाराज ! समस्त पापनाशक, सम्पूर्ण दुष्टों के विध्वंसक, आरोग्य, और अन्त में सूर्य लोक प्रदान करने वाले इस व्रत को नारद मुनि ने इसी भाँति वर्णन किया है । इस प्रकार कृष्ण एवं सप्तमी के दिन उपवास रहकर उपरोक्त नामोंच्चारण पूर्वक सूर्य की सविधान एवं भक्ति पूर्वक अर्चना सुसम्पन्न करते हैं, वे समस्त रोगों से मुक्त एवं सम्पूर्ण सुखों के अनुभव करने के उपरांत सदैव के लिए सूर्य के अनुचर हो जाते हैं।२२-२५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
उभय सप्तमी व्रत नामक वर्णन नामक सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४७।

अध्याय ४८

कल्याणसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! इस घोर संसार सागर को पार करने के लिए मुझे एक ऐसा व्रत विधान की कृपा कीजिये, जिसे सुसम्पन्न करने पर स्वर्ग, आरोग्य एवं समस्त सुखों की प्राप्ति हो ।१

श्रीकृष्ण बोले—शुक्ल सप्तमी के दिन रविवार होने से वह महापुण्य स्वरूपा विजया के नाम से प्रख्यात होती है । प्रातः काल गौ के क्षीर से स्नान एवं शुक्ल वस्त्र परिधान पूर्वक अक्षतों द्वारा कर्णिका

प्राङ्मुखोष्टदलं मध्ये तद्विचित्रां च कर्णिकाम् । सर्वेष्वपि दलेष्वेव विन्यसेत्पूर्वतः क्रमात् ॥४
पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति वै नमः । याम्ये दिवाकरायेति विधात्रे नैर्ऋतेन च ॥५
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति वानिले । सौम्ये च वरुणायेति रवयेत्येऽष्टमे दले ॥६
आदावन्ते च तन्मध्ये नमोऽस्तु परमात्मने । मन्त्रैरेवं समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ॥७
शुक्लवस्त्रफलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः । स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ॥८
ततो व्याहृतिहोमेन विभज्य द्विजपुङ्गवान् । शक्तितस्तर्पयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ॥९
तिलपात्रं हिरण्यं च गुरवे च निवेदयेत् । एवं नियमकृत्स्नात्वा प्रातरुत्थाय मानवः ॥१०
कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् । भुक्त्वा च वेदविद्वद्भिर्बैडालव्रतवर्जितैः ॥११
एवं सम्वत्सरस्यान्ते कृत्वैतदखिलं नृप । उद्यापयेद्यथाशक्ति भास्करं संस्मरन्हृदि ॥१२
घृतपात्रं सकरकं सोदकुम्भं निवेदयेत् । वस्त्रालङ्कारसन्युक्तां सुवर्णास्यां पयस्विनीम् ॥१३
एकामपि प्रदद्याद्गां वित्तहीनो विमत्सरः । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत ततो मोहात्पतत्यधः ॥१४
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम् । शृणुयाद्वा पठेद्वापि सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१५

यश्चाष्टपत्रकमलोदरकर्णिकायां सम्पूजयेत्कुसुमधूपविलेपनाद्यैः ।
षष्ठ्याः परेऽहनि नवार्तिहरं दिनेशं कल्याणभाजनमसौ भवते हि जन्तुः ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्याणसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८

समेत अष्टदल कमल का सुनिर्माण करके समस्त दलों में क्रमशः (सूर्य) के नामोच्चारण करते हुए स्थापन पूजन करना चाहिए—पूर्व में तपनाय नमः, अग्निकोण में मार्तण्डायनमः, दक्षिण में दिवाकराय नमः, नैऋत्य में विधात्रै नमः, पश्चिम में वरुणाय नमः, वायव्य में भास्कराय नमः उत्तर में वरुणाय नमः और ईशान में रवये नमः, तथा आदि, मध्य एवं अन्त में नमः परमात्मने कहकर आवाहन स्थापन के उपरांत शुक्ल वस्त्र, उत्तम, फल, धूप, माला, अनुलेपन द्वारा उस कमल एवं हवन वेदी की भक्ति पूर्वक पूजा करके गुड़-लवण समेत की व्याहृति हवन के उपरांत श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथा शक्ति गुड, क्षीर एवं घृत आदि के मधुर भक्ष्य द्वारा अत्यन्त प्रसन्न कर सुवर्ण तिल पात्र गुरू के लिए समर्पित करे । प्रातः काल होने पर उस व्रती पुरुष को स्नान जप करने के अनन्तर विद्वान् ब्राह्मणों के साथ ही, जो विडाल व्रत के त्याग हों, घृत समेत पायस भोजन करना चाहिए । नृप ! इस प्रकार वर्ष के अन्त में हृदय में भास्कर के स्मरण पूर्वक यथाशक्ति घृत समेत करवा, जलपूर्ण कुम्भ, वस्त्र एवं अलंकार से सुसज्जित पयस्विनी एक गौ की मत्सरहीन होकर निर्धनावस्था में किसी प्रकार प्रदान करना ही चाहिए । वित्त शाठ्य (धन रहते देव निमित्त व्यय न करना अथवा अल्प करना) का विशेष ध्यान न रखने पर उस का अधः पतन होता है । इस प्रकार इस कल्याण सप्तमी को सुसम्पन्न करने अथवा श्रवण या अध्ययन करने वाला समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । इस भाँति जो पुरुष सप्तमी के दिन कर्णिका समेत अष्टदल कमल के भीतर (नाम्मोच्चारण पूर्वक) पुष्प, धूप, एवं अनुलेपन आदि से दिवानायक सूर्य की आराधना करता है, वह समस्त कल्याणों का दृढ़ भाजन होता है ।२-१६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
कल्याण सप्तमी व्रत वर्णन नामक अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४८।

अथैकोनपञ्चाशोऽध्यायः

शर्करासप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये सर्वकल्मषनाशिनीम् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानन्तं प्रजायते ।।१
माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां श्रद्धयान्वितः । प्रातः स्नात्वा तिलैः शुद्धैः शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।२
स्थण्डिले पद्ममालिख्य कुंकुमेन सकर्णिकम् । तस्मिन्नमः सवित्रेति गन्धपुष्पं निवेदयेत् ।।३
स्थापयेदुदककुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम् । रक्तवस्त्रैः स्वलंकृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।४
सुवर्णाश्वसमायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् । विश्वेदेवमयो यस्माद्वेदवादीति पठचते[1] ।।५
त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन । सौरसूक्तं जपंस्तिष्ठेत्पुराणश्रवणेन वा ।।६
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनित्यकः । सर्वं च वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।७
भोजयेच्छक्तितो विप्राञ्छर्कराघृतपायसैः । भुञ्जीत तैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः ।।८
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् । वत्सरान्ते पुनर्दद्याद्ब्राह्मणाय समाहितः ।।९
शयनं वस्त्रसम्वीतं शर्कराकलशान्वितम् । सर्वोपस्कारसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् ।।१०
गृहं च शक्तितो दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम् । सहस्रेणापि निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा ।।११

अध्याय ४९

शर्करासप्तमीव्रत का वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं तुम्हें शर्करा नामक सप्तमी का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर समस्त पापों के नाश पूर्वक न्याय, आरोग्य एवं अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है सुनो ! चैत्रमास की शुक्ल सप्तमी के दिन श्रद्धा समेत प्रातः काल स्नान करके शुद्धतिल, श्वेत माला एवं अनुलेपन से विभूषित वेदी के ऊपर कुंकुम द्वारा कर्णिका समेत पुष्पदल कमल के निर्माण के उपरांत 'सवित्रे नमः' कहकर गंध और पुष्प के निवेदन करते हुए शर्करा पात्र समेत जल पूर्ण कुम्भ की याचना करने और रक्त वस्त्र, श्वेत माला एवं अनुलेपन के द्वारा उसे सुसज्जित कर सुवर्ण निर्मित अश्व के समेत मंत्रोच्चारण पूर्वक उसकी सप्रेम अर्चना करे। देव ! वैदिक विद्वान् यतः आप ही अमृत सर्वदेव को विश्वदेव मय बतलाते हैं, अतः सनातन ! आप मेरी रक्षा करें। अनन्तर सौर सूक्त के जप अथवा (सूर्य) पुराण के श्रवण करते हुए रात्रि व्यतीत करने के उपरांत अष्टमी के दिन नित्य कर्म सुसम्पन्न कर उसे किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करके यथाशक्ति शक्कर घी, मुक्त पायस द्वारा ब्राह्मणों को भली भाँति तृप्त करे। १-७। अनन्तर तेल लवण के त्याग पूर्वक मौन होकर स्वयं भी भोजन करे। इस विधान द्वारा प्रत्येक मास में समस्त सप्तमी व्रत को सुसम्पन्न करते हुए व्रत की समाप्ति में पुनः ब्राह्मण को सुसज्जित शय्या, शक्कर एवं समग्र साधन समेत कलश, तथा एक पयस्विनी गौ अर्पित करके यथाशक्ति साधन सम्पन्न गृह अथवा उसके निष्क्रय के रूप में एक सहस्र

---

१. मुच्यते ।

दशभिर्द्वित्रिभिर्निष्कैस्तदर्धेनापि भक्तितः । सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवाचनम् ।।१२
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुर्वन्दोषान्समश्नुते । अमृतं पिबतो वक्त्रात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः ।।१३
निपेतुरेत उत्थाय शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः । शर्करा च परं तस्मादिक्षुरसोद्भवा मता ।।१४
इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः। शर्करासप्तमी चैषा वाजिमेधफलप्रदा ।।१५
सर्वे[1] ह्युपशमं यान्ति पुनः सन्ततिवर्द्धिनी । यः कुर्यात्परया भक्त्या स परं ब्रह्म गच्छति ।।१६
कल्पमेकं वसेत्स्वर्गे ततो याति परं पदम् ।।१७

इदमनघ शृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीह सुरेश्वरस्य लोके।
मतिमपि च ददाति यो जनानाममरवधूजनकिन्नरैः स पूज्यः ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शर्करासप्तमीव्रतवर्णनं नामैकोपञ्चाशोऽध्यायः ।४९

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कमलासप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्व्रतकमलसप्तमीम् । यस्याः संकीर्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः ।।१

निष्टक, अथवा सौ, दश, दो तीन या उसके आधे निष्टक प्रदान करते हुए पूर्व की भाँति मंत्रोच्चारण पूर्वक सुवर्ण के अश्व प्रदान करना चाहिए। दान के समय वित्तशाठ्य दोष पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि वैसा न करने से दोष भागी होना पड़ता है। अमृत पान करते समय सूर्य के मुख से गिरे हुए अमृत की बूंदों से शाठी (चावल) मूंग और ईख का उत्पन्न होना बताया जाता है तथा ऊख के रस से उत्पन्न होने के कारण शक्कर उन्हें अत्यन्त प्रिय है। इसीलिए रूप के हव्य कव्य में पुष्प शक्कर का सम्मिलित रहना परम आवश्यक है। और अश्वमेध फल प्रदान करने वाली इस शर्करासप्तमी को भक्तिपूर्वक सविधान सुसम्पन्न करने वाला पुरष समस्त उपद्रव के शमन पूर्वक सन्तान की निरन्तर वृद्धि और परब्रह्म की प्राप्ति करता है। एक कल्प तक स्वर्ग में सुखोपभोग करने के उपरांत परमपद की प्राप्ति करता है। अनघ ! इस प्रकार इस व्रत विधान का श्रवण पठन अथवा सम्मति प्रदान करने वाला पुरुष स्वर्ग में पहुँच कर देवों की स्त्रियों एवं किन्नरों द्वारा सुपूजित होता है।८-१८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
शर्करासप्तमी व्रत वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त।४९।

अध्याय ५०

कमलासप्तमीव्रत का वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं तुम्हें कमला सप्तमी नामक व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसके संकीर्तन मात्र

---

१. विघ्ना इति शेषः।

वसन्तेऽमलसप्तम्यां स्नातः संगौरसर्षपैः । तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ।।२
वस्त्रयुग्मवृतं कृत्वा गन्धपुष्पैरथार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ।।३
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते । ततो द्विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम् ।।४
विप्राय दद्यात्सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः । अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद्द्विजान् ।।५
यथाशक्त्याथ भुञ्जीत विमांसं तैलवर्जितम् । अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासिमासि च ।।६
सर्वं समाचरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ।।७
गावं[1] स दद्याच्छक्त्या तु सुवर्णाढ्यां पयस्विनीम् । भाजनासनदीपादीन्दद्यादिष्टानुपस्करान् ।।८
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम् । लक्ष्मीमनन्तामभ्येत्य सूर्यलोके च मोदते ।।९
कल्पेकल्पे तथा लोकान्सप्तगत्वा पृथक्पृथक् । अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति पराङ्गतिम् ।।१०

यः पश्यतीदं शृणुयान्मुहूर्तं पठेच्च सुमतिं ददाति ।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य गन्धर्वविद्याधरलोकमेति ।।११

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कमलासप्तमीव्रत वर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०

करने से दिवाकर देव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । वसन्त मास की शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान करके तिल के पात्र में (पीली राई) समेत सुवर्ण निर्मित कमल को स्थापित कर दो वस्त्रों से उसे आच्छन्न करने के उपरांत गन्ध पुष्प द्वारा सविधि अर्चना करके कर कमल विभूषित, विश्व को धारण करने वाले, दिवाकर एवं प्रभाकर देव को बार बार नमस्कार है । क्षमा प्रार्थना करे । अनन्तर दोनों वेला में जलपूर्ण धर को वस्त्र, माला एवं भूषण भूषित करके पूजा के उपरांत ब्राह्मण को समर्पित करे । इस प्रकार दिन-रात व्यतीत कर अष्टमी में तेल मांस वर्जित मधुर भोजनों द्वारा यथाशक्ति ब्राह्मणों को प्रसन्न करे । इसीभाँति प्रत्येक मास की शुक्ल सप्तमी में अनुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए व्रत के अंत में सुसज्जित शय्या पर सुवर्ण कमल स्थापित कर पूजनोपरांत उसे तथा सुवर्ण समेत पयस्विनी गौ, भोजन पात्र, आसन दीप आदि सभी साधन ब्राह्मणों के लिए सादर समर्पित करना चाहिए । इस भाँति सविधि कमलसप्तमी को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक का सुखानुभव करता है—एक एक कल्प तक पृथक्-पृथक् सातों लोकों के सुखानुभव पूर्वक अप्सराओं से सुसेवित होते हुए उत्तम गति प्राप्त करता है । इस व्रत विधान को देखने, सुनने अथवा मुहूर्त मात्र ही पढ़ने वाला या उपदेश देने वाला पुरुष भी अचल लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक गन्धर्वविद्याधर के लोकों की प्राप्ति करता है ।१-११

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
कमला सप्तमी व्रत वर्णन नामक पचासवां अध्याय समाप्त ।५०।

---

१. आर्षम् ।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शुभसप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम् । यामुपोष्य नरो रोगाच्छोकदुःखात्प्रमुच्यते ॥१
पुण्य आश्वयुजे मासि कृतस्नानः यमः शुचिः । वाचयेच्च ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम् ॥२
कपिलां पूजयेद्भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः । नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम् ॥३
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये । अथाहृत्य तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम् ॥४
काञ्चनं वृषभं तद्वद्वस्त्रमाल्यगुडान्वितम् । दद्याद्विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति ॥५
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य स्वप्याद्भूमौ विमत्सरः । ततः प्रभाते सञ्जाते भक्त्या सन्तर्पयेद्द्विजान् ॥६
अनेन विधिना दद्यान्मासिमासि सदा नरः । वाससी वृषभं हैमं तद्वद्धेनोस्तु पूजनम् ॥७
सम्वत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । सोपधानकविश्रामं भाजनासनसञ्युतम् ॥८
ताम्रपात्रं तिलप्रस्थं सौवर्णवृषसञ्युतम् । दद्याद्वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥९
अनेन विधिना राजन्कुर्याद्यः शुभसप्तमीम् । तस्य श्रीर्विमला कीर्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥१०
अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये । वसेद्गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसम्प्लवम् ॥११
स कल्पादवतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । ब्रह्महत्यासहस्रस्य भ्रूणहत्याशतस्य च ॥१२

अध्याय ५०

शुभसप्तमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य शुभ एवं शोभन सप्तमी का विधान बता रहा हूँ, जिसका उपवास रहकर मनुष्य रोग, शोक एवं दुःखों से मुक्त होता है। पुण्य कार्तिक मास की सप्तमी के दिन यमपूत स्नान करके कथा आरम्भ पूर्वक शुभ सप्तमी का अनुष्ठान आरम्भ कर गन्ध, एवं अनुलेपन द्वारा कपिला गौ की पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे कि सूर्य से उत्पन्न, निखिल भुवनों के आधार एवं शुभ कल्याण की साक्षात् मूर्ति आप को मैं सर्व सिद्धयर्थ नमस्कार करता हूँ। अनन्तर ताम्र पात्र में एक सेर तिल रखकर उसके ऊपर वृषभ की सुवर्ण प्रतिमा को वस्त्र माला एवं गुड़ से सुशोभित कर द्विकाल वेला में 'अर्यमा प्रसन्न हों कह कर ब्राह्मण के लिए अर्पित कर रात्रि में पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक भूमि शयन कर अनन्तर प्रातःकाल में भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को तृप्त करे। १-६। इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास में वस्त्र, वृषभ की सुवर्ण प्रतिमा, और गौ के पूजन पूर्वक वर्ष की समाप्ति में सुसज्जित शय्या, ऊख, गुड़ भोजन पात्र, ताम्रपात्र, एकसेर तिल, सुवर्ण की वृषभ प्रतिमा आदि वस्तुएँ पूजनोपरांत 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कहकर किसी विद्वान् ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए। राजन्! इस विधान द्वारा इस शुभ सप्तमी को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष भी निर्मल कीर्ति प्राप्ति करके प्रत्येक जन्म में करते हुए अन्त में अप्सराओं और गन्धर्वों से पूजित होकर स्वर्ग में गणाधिप होकर प्रतिष्ठित होता है। पुनः सृष्टि के आरम्भ होने पर सातों द्वीपों का अधीश्वर होता है और यह शुभ

नाशङ्करोति पुण्येयं कृता वै शुभसप्तमी ॥१३

इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं वीक्षन्नते सङ्गादपि दीयमानम् ।
सोऽप्यत्र सम्बाध्य विमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शुभसप्तीव्रतनिरूपणं नामैकोपञ्चाशत्ततोऽध्यायः ।५१

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्नपनसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमुद्वेगाद्भवेत्कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते । मृतवत्सादिकार्येषु दुःस्वप्ने च किमिष्यते ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यत्र युधिष्ठिर । रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टविघातनैः ॥२
तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणसप्तमीम् । सप्तमीस्नपनं नाम व्याधिपीडाविनाशनम् ॥३
बालानां मरणं यत्र क्षीरपानं प्रशस्यते । तद्वद्वृद्धातुराणां च यौवने वापि वर्तताम् ॥४
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्सादिके च यत् । एतदेवाद्भुतोद्वेगचिन्ताविभ्रममानसम् ॥५
वराहकल्पे सम्प्राप्ते मनोर्वैवस्वतेऽन्तरे । कृते युगे महाराज हैहयो रूपवर्द्धनः ॥६

सप्तमी सुसम्पन्न होने पर सहस्र ब्रह्म हत्या तथा सौ भ्रूण हत्या के पाप विध्वंसकरती है । इस प्रकार इसके अध्ययन, श्रवण अथवा मुहूर्त मात्र दर्शन करने वाले पुरुष भी निःसंग होकर विद्याधर के नायक पद पर प्रतिष्ठित होते हैं ।७-१४

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में
शुभ सप्तमी व्रत वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।५१।

अध्याय ५२

स्नपनसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मनुष्यों के उद्वेग (अशांति) और दुर्भाग्य किस उपाय द्वारा नष्ट होते हैं तथा मृतवत्सा आदि दोषों के निवारण एवं दुःखस्वप्नों के कर्तव्य बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर जन्मान्तरीय पापों के परिणाम स्वरूप मनुष्यों के रोग, दुर्गति और अभीष्ट के हनन रहते हैं । अतः इनके विघातार्थ मैं कल्याण सप्तमी के विधान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! सप्तमी में स्नान करने से व्याधियों एवं तज्जनित पीडाओं के शमन होते हैं । बच्चों के निधन होने पर प्रशस्त क्षीर पान की भाँति वृद्ध और आतुरों के लिए मृतवत्सादि दोषों के अपहराणार्थ इसी सप्तमी के व्रत सुसम्पन्न किया जाता है तथा उद्वेग एवं चिंता जर्जर प्राणियों के लिए भी । बाराह कल्प में वैवस्वत

आसीन्नृपोत्तमः पूर्वं कृतवीर्यः प्रतापवान् ।स सप्तद्वीपमखिलं पालयामास भूतलम् ।।७
यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति भारत । जातमात्रं च तस्याथ शुभं पुत्रशतं किल ।।८
यवनस्य तु शापेन विनरामगमत्पुरा । कृतवीर्यः समाराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम् ।।९
उपवासव्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च भारत । दर्शयामास चात्मानं कृतवीर्यस्य भानुमान् ।।१०
कृतवीर्येण वै पृष्टः प्रोवाचेदं बृहस्पतिः । अतिक्लेशेन[1] महता पुत्रस्तव नराधिप ।।११
भविष्यति चिरञ्जीवी किं तु कल्मषनाशनम् । सप्तमीस्नपनं वाप्यां कुरु पापविनष्टये ।।१२
जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि भूपते । ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मण वाचनम् ।।१३
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत्तां तिथिं बुधः । सद्वृद्धातुरगाणां तु कृतं स्यादिति तेषु च ।।१४
गोमयेनोपलिप्तायां भूमावेकाग्रचितवान् । तण्डुलैः रक्तशालेयैर्वरुणाक्षीर संयुतम् ।।१५
निर्वपेत्सूर्यमुद्गाभ्यां मातृभ्योऽपि विधानतः । कीर्तयेत्सूर्यदैवत्यं सप्तार्चिषि घृताहुतीः ।।१६
जुहुयाद्रुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय भारत ! होतव्याः समिधश्चात्र तत्र वार्कपलाशजाः ।।१७
यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्याष्टशतं पुनः । हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मध्ये गाङ्गेन धीमता ।।१८
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्दर्भपाणिना । स्थापयित्वा चतुष्कोणे चतुष्कुम्भान्प्रशोभनान् ।।१९
पञ्चमं च पुनर्मध्ये चाक्षतेन विभूषितम्[2] । स्थापयेद्दर्पणाक्रान्तं सप्तर्षिणाभिमन्त्रितम् ।।२०
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णचन्द्रमलान्वितम्[3] । सर्वान्सर्वौषधियुतान्पञ्चभङ्गजलान्वितान्[4] ।।२१

मन्वन्तर के समय कृत युग में महाराज हैहय वंश के भूषण स्वरूप कृतवीर्य नामक प्रतापी राजा राज करता था, जो इस वसुन्धरा पर सातों द्वीपों का अधीश्वर था । भारत ! सतहत्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर उनके सौन्दर्य पूर्ण सौ पुत्र उत्पन्न हुए, किन्तु यवन के शाप द्वारा उत्पन्न होते ही विनष्ट भी हो गये थे । अनन्तर भारत ! उपवास, व्रत, एवं दिव्य वेद सूक्तों द्वारा सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करने पर सूर्य ने कृतवीर्य को साक्षात् दर्शन प्रदान किया । कृतवीर्य के पूछने पर बृहस्पति (सूर्य) ने उनसे कहा—नराधिप ! अत्यन्त क्लेश सहन करने पर पर आप को कठिनाई से एक चिरजीवी पुत्र की प्राप्ति होगी किन्तु, सर्वप्रथम कल्मष नाशक इस सप्तमी का अनुष्ठान अपने पाप विनाशार्थ आरम्भ करो ।२-१२। भूपते ! सातवें मास में पुत्र उत्पन्न होने पर (रानी के) मृतवत्सादि दोष निवारणार्थ ग्रह तारा बल देखकर ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन पूर्वक बालक के जन्म नक्षत्र तिथि को त्यागकर गोमय से शुद्ध की हुई भूमि में रक्त वर्ण के साठी चावल एवं वरुणाक्षीर द्वारा सूर्य की प्रतिमा बनाकर सविधान अर्चना करने के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुति प्रदान करे । भारत ! रुद्र मूर्ति सूर्य प्रसन्नार्थ रुद्र सूक्त के पाठ करते हुए मंदार अथवा पलाश की समिधा (लकड़ी) से प्रज्वलित अग्नि में जवा और काले तिल की एक सौ आठ आहुति प्रदान करके मध्याह्न के समय गङ्गा जल में स्नान करने के अनन्तर हाथ में कुश लिए हुए वैदिक विद्वानों द्वारा चारों कोने पर चार कलशों के स्थापन करते हुए उनके मध्य में सौन्दर्य पूर्ण पाँचवें कलश की प्रतिष्ठा कर जो दर्पण से विभूषित, सप्तर्षियों से अभिमन्त्रित हो । उस कलशों का सौर तीर्थ के जल, कपूर, समस्त औषधियाँ, पंच पल्लव, पंच रत्न, और फलों से पूर्ण एवं वस्त्र

---

१. अतिक्रमेण । २. दक्षिणम् । ३. कर्पूरसंयुतमित्यर्थः । ४. पञ्चभङ्गा पञ्चपल्लवाः—इत्यर्थः ।

पञ्चरत्नफलैर्युक्ताञ्छाखाभिरपि वेष्टितान् । गजाश्वरथ्याराजद्वार्वल्मीकाद्ध्रदगोकुलात् ।।२२
सुशुद्धांमृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् । चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ।।२३
गृहीत्वा ब्राह्मणं चात्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत् । नारीभिः सप्तसंख्याभी रथाङ्गाङ्गाभिरत्र च ।।२४
भोजिताभिर्यथाशक्तिमाल्यवस्त्रविभूषणैः । सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ।।२५
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवपुत्रा च भाविनी । आदित्यचन्द्रमासार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलम् ।।२६
शक्रः सलोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । एते चान्ये च वै देवाः सदा पान्तु कुमारकम् ।।२७
मासनिर्मांस हुतभुङ्मा च बालग्रहा क्वचित् । पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातृजनकस्य वै ।।२८
ततः शुक्लाम्बरधराः कुमारं पतिसंयुताः । सप्तकं पूजयेद्भक्त्या पुष्पैर्गन्धैः फलैः शुभैः ।।२९
काञ्चनीं च ततः कृत्वा तिलपात्रो परिस्थिताम् । प्रतिमां धर्मराजस्य गुरवे विनिवेदयेत् ।।३०
वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः । पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।
भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः ।।३१
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी । यत्किञ्चिदस्य दुरितं तत्क्षिप्तं वडवामुखे ।।३२
ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो वायुः शक्रो हुताशनः । रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदा यान्तु सर्वदा ।।३३
एवमादीनि चान्यानि वदतः पूयजेद्गुरून् । शक्तितः कपिलां दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।३४
चरुं च पुत्रसहितम्र प्रणम्य रविशङ्करौ । हुतशेषं तदानीयादादित्याय नमोऽस्तु ते ।।३५

से आवेष्टित कर हाथी, घोड़े, शय्या राजद्वार, वल्मीक, सरोवर, और गौओं के निवास स्थान की शुद्ध मृत्तिका उन कलशों में डाले पूजनोपरान्त मध्यम कलश के जल द्वारा ब्राह्मणों और सात स्त्रियों से जो भोजन कराकर यथाशक्ति माला, वस्त्र, एवं आभूषणों से भूषित की गई हो, मृतवत्सा स्त्री का अभिषेक होना चाहिए । यह पुत्र दीर्घ जीवी हो, और यह स्त्री अब से जीवितपुत्रा हो एवं सूर्य, चन्द्र, समस्त ग्रह, नक्षत्र, मण्डल, लोकपाल समेत इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवों सदैव इस कुमार की रक्षा करें । मांस एवं निर्मांस भोजी बाल ग्रह इस शिशु, तथा इसके माता पिता को कभी पीड़ित न करें—इस प्रकार अभिषेक करने के अनन्तर श्वेत वस्त्र धारण किये पति समेत सात स्त्रियों के पुष्प, गन्ध, एवं शुभ फलों द्वारा इस कुमार की पूजा करने के उपरांत तिलपात्र में स्थापित धर्म राज की उस काञ्चनी प्रतिमा को गुरु के लिए अर्पित कर वित्तशाठ्यदोष को ध्यान में रखते हुए यथाशक्ति वस्त्र, सुवर्ण, एवं रत्नों और घृत समेत पायस के भोजनों द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करके गुरुदेव की अर्चना करे, जो उस समय भोजनों द्वारा गद्‌गदचित्त होकर—यह बालक चिरजीवि हो, [1]बारह वर्ष तक निरन्तर सुखी रहे, इसके जो कुछ शेष दुरित हों, वह बड़वामुख (अग्नि) में प्रक्षिप्त होकर विनष्ट हो जाँय, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द, वायु, शक्र, अग्नि आदि देव समस्त अनिष्टों से इसकी रक्षा करते हुए सदैव वरदायक रहें—आदि आशीर्वाद मंत्रोंच्चारण रूप में प्रदान करता रहे । तदुपरांत यथाशक्ति सुसज्जित कपिला गौ के दान और नमस्कार करके विसर्जन करे ।१३-३४। पश्चात् पुत्र समेत उस स्त्री को यदि चाहिए कि सूर्य और शंकर के प्रणाम पूर्वक हुत शेष चरु को ग्रहण करते हुए आदित्य को नमस्कार कर रही हूँ, कहकर क्षमा प्रार्थना करे । यही

---

१. शिशु अवस्था में बारह वर्ष तक पूतना आदि (अभोगा) रोग का भय रहता है ।

अयमेवाद्भुतं योगो ह्यद्भुतेषु च शस्यते । कर्तुर्जन्मनि वृक्षाणां देवान्सम्पूजयेत्तदा ॥
शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ॥३६
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः । कथयित्वा नरश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ॥३७
स चानेन विधानेन कार्तवीर्योऽर्जुनो नृपः । सम्वत्सराणामयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ॥३८
आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् । शङ्कराज्ज्ञानमिच्छेत्तु गतिमिच्छेज्जनार्दनात् ॥३९
एतन्महापातकनाशनं स्यादप्यक्षयं वेदविदः पठन्ति ।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥४०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
स्नपनसप्तमीव्रतवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५२

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अचलासप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अध्रुवेण शरीरेण सुपक्वेनापि किं फलम् । माघस्नानविहीनेन यत्खलु यदुनन्दन ॥१
प्रातः स्नानासमर्थानां शरीरं पश्य देहिनाम् । किं तेन वद कर्तव्यं माघे संसारभीरुणा ॥२

अद्भुत योग उद्वेग आदि को शमनार्थ प्रशस्त बताया गया है । बालक जन्म, तथा मृतवत्सा आदि दोषों के शान्त्यर्थ इसी शुक्ल सप्तमी का व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करने वाला पुरुष कभी दुःख का अनुभव नहीं करता है । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार इस पुण्य, पवित्र, आयुप्रद सप्तमी के स्नान आदि के वर्णन कर सूर्य देव उसी समय अन्तर्हित हो गये नृप ! इसी विधान द्वारा इस सप्तमी को सुसम्पन्न करने के परिणाम स्वरूप वह कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन ने दश सहस्र वर्ष तक इस समस्त पृथ्वी का निर्बाध शासन किया । भास्कर से आरोग्य, अग्नि से धन, शंकर से ज्ञान और जर्नादन भगवान् से उत्तम गति की प्राप्ति मनुष्यों को करनी चाहिए । इसके अनुष्ठान द्वारा महापातक का विध्वंस होना वेद निष्णात विद्वानों ने कहा है । अनन्य भाव से इसके श्रवण करने वाले की भी सिद्धि होती है, ऐसा मनुष्यों का कहना है ।३५-४०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में स्नपन सप्तमी व्रत वर्णन
नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ।५२।

अध्याय ५३

अचलासप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुनन्दन ! इस नश्वर शरीर को प्राप्त कर मनुष्य यदि माघस्नान से वंचित रहा, तो वृद्धावस्था तक इसे धारण करने का कौन फल उसे प्राप्त हुआ ? और माघ मास के प्रातः स्नान करने में असमर्थ इस संसार भीरु जीवों के कर्तव्य बताने की कृपा कीजिये। यदूत्तम ! शरीर की सुकुमारता एवं

कायक्लेशसहा नार्यो न भवन्ति यदूत्तम । सौकुमार्यं शरीरस्य अचलत्वात्तथैव च ।।३
कथं च ताः सुरूपाः स्युः सुभगाः सुप्रजास्तथा । सुकृतस्येह पुण्यस्य सर्वमेतत्फलं यतः ।।४
अल्पायासेन सुमहद्येन पुण्यमवाप्यते । स्त्रीभिर्माघे मम ब्रूहि स्नानं तत्त्वं च माधव ।।५

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पाण्डवश्रेष्ठ ! रहस्यमृषिभाषितम् । यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तनीव्रतम् ।।६
वेश्या चेन्दुमती नाम रूपौदार्यगुणान्विता । आसीत्कुरुकुलश्रेष्ठ मगधस्य विलासिनी ।।७
तनुमध्या सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ! सम्यग्विभक्तावयवा पूर्णचन्द्रनिभानना ।।८
सौंदर्यं सौकुमार्यं च तस्याः कामेन गीयते । यस्याः सन्दर्शनादेव कामः कामातुरो भवेत् ।।९
मूर्तिः शशधरस्येव नयनानन्दकारिणी । वशीकरणविद्येव सर्वलोकमनोहरा ।।१०
एकस्मिन्दिवसे प्रातः सुमुखस्थितया तया । चिंतिता हृदये राजन्संसारस्यानवस्थितिः ।।११
सन्निमज्य जगदिदं विषये कायसागरे । जन्ममृत्युजराग्राहं न कश्चिदवबुद्धयते ।।१२
अपाको भूतभाण्डानां धातृशिल्पिविनिर्मितम् । स्वकर्मैंधनसम्वीतं पच्यते बालवह्निना ।।१३
ये यान्ति दिवसाः पुंसां धर्मकामार्थवर्जिताः । न ते पुनरिहायान्ति हरभक्ता नरा यथा ।।१४
स्नानं दानं तपो होमं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । यस्मिन्दिने न क्रियते वृथा स दिवसो नृणाम् ।।१५

अचल होने के नाते स्त्रियाँ शारीरिक क्लेश सहन करने में असमर्थ होती है, किन्तु, सौन्दर्य पूर्ण, सौभाग्य और शोभन सन्तान की प्राप्ति उन्हें किस प्रकार होतीहै, क्योंकि ये समस्त सुन्दर फल सुकृत जन्म पुण्य द्वारा ही उपलब्ध होते हैं। सुमाधन ! व्रत अल्प आयास द्वारा महान पुण्य की प्राप्ति तथा माघ में स्त्रियों के स्नान मुझसे कहने की कृपा कीजिये ।१-५

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव श्रेष्ठ ! इस अचला सप्तमी के विधान रहस्य को जिसे ऋषियों ने बताया है और मैंने, अभी तक किसी से कहा नहीं है, कह रहा हूँ, सुनो ! कुरुकुल श्रेष्ठ ! रूप लावण्य एवं उदारादि गुण भूषित इन्दुमती नामक वेश्या मगध में परम विलासिनी स्त्रियों में से थी, जिसकी कटि अत्यन्त सूक्ष्म, शोभन जाँघें, पीन एवं उन्नत पयोधर तथा उस विधुवदनी के समस्त अंग मनमोहक थे। उसके सौन्दर्य और सौकुमार्य का वर्णन स्वयं मन्मथ ने मुक्त कण्ठ से किया था, क्योंकि उसके दर्शन मात्र से वह स्वयं कामातुर हो जाता था । चन्द्रमा की प्रतिमा की भाँति वह सदैव नेत्रों को तृप्त करने वाली, तथा वशीकरण की भाँति समस्त लोकों के लिए मनोहर थी। राजन् ! एक दिन प्रातः काल उस सुमुखी ने संसार की असारता पर विचार करना आरम्भ किया कि सम्पूर्ण संसार इस शरीर रूपी विषय सागर में निमग्न होकर इसमें रहने वाले जन्म, मृत्यु एवं जरा (बुढ़ाई) रूपी भीषण ग्राह (घड़ियाल) को कुछ भी ध्यान नहीं दे रहा है। ब्रह्मा रूपी शिल्पी द्वारा सुनिर्मित यह शरीर, जो भूतों (प्राणियों) का अपाक भाजन है, स्वकर्म रूपी ईंधन से प्रज्वलित बाल अग्नि द्वारा पक्व होता है। मनुष्यों के जितने दिन धर्म, अर्थ एवं काम से वञ्चित होकर व्यतीत हो जाते हैं, शिवभक्त मनुष्यों की भाँति वे पुनः लौट कर नहीं आते हैं। स्नान, दान, तप, हवन, स्वाध्याय, एवं पितृ तर्पण आदि पुण्य कर्म का सम्पादन जिस दिन नहीं होता है, मनुष्यों का वह दिन व्यर्थ निकल जाता है।६-१५। पुत्रों तथा स्त्री और घर में यह मन इतना आसक्त रहता है

पुत्राणां दारगृहकसमासक्तं हि मानसम् । वृकीवोरणमासाद्य मृत्युर्द्धाराय गच्छति ।।१६
इत्येवं चिंतयित्वा तु वेश्या चेन्दुमती ततः । वशिष्ठस्याश्रमं पुण्यं जगाम गजगामिनी ।।१७
वशिष्ठमृषिमासीनं प्रणम्य विनयात्ततः । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ।।१८

इन्दुमत्युवाच

दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः । दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ।।१९
मया न दत्तं न हुतं नोपवासो व्रतं कृतम् ! भक्त्या न पूजितः शम्भुः श्रितो[1] नैको धनी नरः ।।२०
साम्प्रतं वर्तमानाया व्रतं किंचिद्वदस्व मे । येन दुःखाम्बुपापौघादुत्तरामि भदार्णवात् ।।२१
एतदस्याः सुबहुशः श्रुत्वा धर्मं परन्तपः । वशिष्ठः कथयामास महाकारुणिको मुनिः ।।२२

वशिष्ठ उवाच

माघस्य सितसप्तम्यां सर्वकामफलप्रदम् । तपः सौभाग्यजननं स्नानं तव वरानने ।।२३
कृत्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।।२४
माघस्य सितसप्तम्याचलं चालितं मया । जलामलानां सर्वेषां कृतं न चलनं तथा ।।२५
वशिष्ठवचनं श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भूपते । सर्वं चकारेन्दुमती स्नानं दानं यथाविधि ।।२६
त्र्यहस्नानप्रभावेण[2] भुक्त्वा भोग्यान्यथेप्सितान् । इन्द्रलोकेप्सरः सङ्घे नायिकात्वमवाप सा ।।२७

कि रण में पहुँ चकर भेंडिये की भाँति अनायास मृत्यु के मुख में पहुँच जाता है । इस प्रकार विचार कर उस गज गामिनी इन्दुमती वेश्या ने महर्षि वशिष्ठ जी के पुण्य आश्रम को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर सुखासीन वशिष्ठ जी को सविनय प्रणाम करने के उपरांत अञ्जली बाँधकर उसने यह कहना आरम्भ किया ।१६-१८

इन्दुमती ने कहा—दश भाँति की हिंसा के समान एक चक्री, दश चक्री के समान एक ध्वज, दश ध्वज के समेन एक वेश्या और दश वेश्या के समान एक राजा होता है । अतः देव ! मैंने न कोई दान दिया, न हवन किया, और न उपवास रहकर कोई व्रतानुष्ठान ही सुसम्पन्न किया तथा शिव जी के आश्रित रहकर भक्ति समेत उनकी कभी भी अर्चना नहीं की । इसलिए इस समय मेरे लिए कोई व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा मुझ पापिनी का भी इस संसार सागर से उद्धार हो जाये । इसके ऐसे अनेक धार्मिक वचनों को सुनकर परम तपस्वी वशिष्ठ जी ने अत्यन्त करुणा के नाते आर्द्र होकर उपदेश देना आरम्भ किया—१९-२२।

वशिष्ठ जी बोले—वरानने ! माघ शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान करना तुम्हारे लिए अत्यन्त हितकर है, क्योंकि समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक वह अत्यन्त सौभाग्य के दिन रात्रि के पिछले समय दीप दान समेत उस (जलाशय के) निश्चल जल का संचालन (स्नान) करे । उस समय कहे भी कि—माघ शुक्ल सप्तमी के दिन जब कि उस निर्मल जल का संचालन नहीं हुआ था, उस निश्चल जल का संचालन मैंने किया है । नृप ! वशिष्ठ जी की बातें सुनकर उसी दिन उस इन्दुमती वेश्या ने उनके कथनानुसार स्नान दान आदि कर्मों को सविधान सुसम्पन्न किया । उस स्नान के प्रभाव वश उसके इस लोक के समस्त सुखों के उपभोग करने के अनन्तर इन्द्र लोक की समस्त अप्सराओं का नायकत्व पद प्राप्त

---

१. श्रितः आश्रित इत्यर्थः । २. अहो स्नानप्रभावेण ।

अचलासप्तमीस्नानं कथितं च विशाम्पते । सर्वपापप्रशमनं सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ।।२८

युधिष्ठिर उवाच

सप्तमीस्नानमाहात्म्यं श्रुतं न च विशेषतः । साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि विधिमन्त्रसमन्वितम् ।।२९

श्रीकृष्ण उवाच

एकभक्तेन सन्तिष्ठेत्षष्ठयां सम्पूज्य भास्करम् । सप्तम्यां तु व्रजेत्प्रातः सुगम्भीरं जलाशयम् ।।३०
सरित्सङ्गं तडागं च देवखातमथापि वा । सुखावगाहसलिलं दुष्टसत्त्वैरदूषितम् ।।३१
पशुभिः पक्षिभिश्चैव जलजैर्मत्स्यकच्छपैः । न जलं चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ।।३२
नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते ।।३३
यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ।।३४
जननी सर्वभूतानां सप्तमीसप्तसप्तिके । सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले ।।३५
जलोपरितरं दीपं स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।।३६
मध्ये शर्वं सपत्नीकं प्रणवेन तु पूजयेत् । भानुं शक्रे दले पूज्य रविं वैश्वानरे दले ।।३७
याम्ये विवस्वान्नैर्ऋत्ये भास्करस्येति पूजयेत् । पश्चिमे सविता पूज्यः पूज्योऽर्को वायुना जले ।।३८
सौम्ये सहस्रकिरणः शेषे सर्वात्मनेति च । पूज्याः प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारान्तयोजिताः ।।३९
पुष्पैः सुगन्धधूपैश्च वस्त्रेणाच्छाद्य भास्करम् । विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वस्थानं गम्यतामिति ।।४०

किया । विशाम्पते ! इस प्रकार अचला सप्तमी का स्नान महत्व मैंने तुम्हें सुना दिया,जो समस्त पापों के शमन पूर्वक सुख सौभाग्य का वर्द्धक है ।२३-२८

युधिष्ठिर ने कहा—सप्तमी के स्नान का महत्व मैंने सुना, किन्तु इस समय विशेषकर मैं मंत्र समेत उसका विधान सुनना चाहता हूँ ।२९

श्रीकृष्ण बोले—षष्ठी के दिन भास्कर की पूजा के उपरांत एकाहार रहकर रात्रि व्यतीत करे, पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल किसी जलाशय नदी, सरोवर, देव कुण्ड अथवा अन्य जलाशय में उस समय पहुँच कर जब कि पशु, पक्षी, मत्स्य, कच्छप अथवा अन्य दुष्ट जीव द्वारा उस जलाशय का जल सञ्चालित न किया गया हो, स्नान कर प्रार्थना करे । समस्त रसों के अधीश्वर रुद्ररूप, एवं वरुण देव को नमस्कार है, जिसमें स्वयं विष्णु निवास करते हैं—मेरे सात जन्मों के किये हुए समस्त पाप, रोग एवं शोक आदि दुःखों के शीघ्र अपहरण यह मकर की सप्तमी करे । उनचास रूप धारण करने वाली देवि ! तुम समस्त प्राणियों की जननी एवं रविमण्डल रूप हो, अतः मेरी समस्त व्याधि का अपहरण करो, मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । पश्चात् जल के ऊपर दीपक रखकर स्नान तर्पण आदि करके चन्दन द्वारा कर्णिका समेत, अष्ट दल कमल का सुन्दर निर्माण करने के उपरांत मध्य में पार्वती समेत शिव जी की ओंकार करते हुए पूजन करके पूर्व में भानु, अग्नि कोण में रवि, दक्षिण में विवस्वान्, नैऋत्य में भास्कर, पश्चिम में सविता, वायव्य में अर्क, उत्तर में सहस्र किरण और ईशान में सर्वात्मा के नामोच्चारण द्वारा स्थापन पूजन पुष्प, सुगन्ध एवं धूप अर्पित करते हुए सुसम्पन्न कर वस्त्र से आच्छन्न उन भास्कर का अपने स्थान

ताम्रपात्रे सुविस्तीर्णे मृण्मये वा युधिष्ठिर । स्थापयेत्तिलचूर्णं च सघृतं सगुडं तथा ।।४१
काञ्चनं तालकं कृत्वा ह्यसिक्तिस्तिलचूर्णकम् । संस्थाप्य रक्तवस्त्रैस्तु पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ।।४२
ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्दत्त्वा मन्त्रेण तालकम् । आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नानफलं भजेत् ।।४३
दुष्टदौर्भाग्यदुःखेभ्यो मया दत्तं तु तालकम् । ततस्तत्तालकं कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।४४
सुपुत्रपशुभृत्याय मेऽर्कोयं प्रीयतामिति । ततो व्रतोपदेष्टारं पूजयेद्वस्त्रगोतिलैः ।।४५
विप्रानन्यान्यथाशक्त्या पूजयित्वा गृहं व्रजेत् । एतत्ते कथितं कार्यं रूपसौभाग्यकारकम् ।।४६
अचलासप्तमीस्नानं सर्वकामफलप्रदम् ।।४७

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्कलिकलुषहरं वै सप्तमीस्नानमेतत् ।
मतिमपि नयनानां यो ददाति प्रसङ्गात्सुरभवनगतोऽसौ पूज्यते देवसन्धैः ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अचलासप्तमीव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५३

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

बुधाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

बुधाष्टमीव्रतं भूयो ब्रवीमि शृणु पाण्डव । येन चीर्णेन नरकं नरः पश्यति न क्वचित् ।।१

पधारने की कृपा कीजिये, कहकर विसर्जन करे । पूजन करते समय ओंकार पूर्वक नमस्कारान्त पद का उच्चारण करना चाहिए । युधिष्ठिर ! विस्तीर्ण ताम्र पात्र अथवा किसी मृत्तिका के पात्र में तिल के चूर्ण को घी गुड़ स्थापन पूर्वक सुवर्ण के तालक को काले तिल के चूर्ण समेत स्थापित करके वस्त्र से सुशोभित करते हुए पुष्प धूप आदि से अर्चना करने के उपरांत उस विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । ऐसा करने से आदित्य देव प्रसन्न होकर उसे स्नान फल प्रदान करते हैं । दुष्ट, ग्रह, दौर्भाग्य एवं अनेक दुःखों के अपहरणार्थ मैंने यह तालक ब्राह्मण को अर्पित किया है, इससे पशु, पुत्र, एवं सेवक आदि समेत मुझ पर भगवान् सूर्य प्रसन्न हों पश्चात् व्रत के उपदेष्टा (गुरु) तथा अन्य ब्राह्मणों की यथाशक्ति वस्त्र, गौ और तिल द्वारा पूजन करके गृह का प्रस्थान करे । रूपसौभाग्यदायक इस अचला सप्तमी के स्नान को मैंने तुम्हें बता दिया, जिससे समस्त कामनायें सफल होती हैं । इस प्रकार इस कलि कलुष के अपहरण करने वाले सप्तमी स्नान को पढ़ने, सुनने अथवा प्रसङ्ग वश उपदेश देने वाले पुरुष देवों से सुसेवित होकर देव लोक की प्राप्ति करते हैं ।३०-४८

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
अचला समप्तमी व्रत विधान वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।५३।

अध्याय ५४

बुधाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! बुधवार संयुक्त अष्टमी व्रत का विधान जिसके सुसम्पन्न करने पर मनुष्य

पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह । बहुभृत्यसुहृन्मित्रमन्त्रिभिः परिवारितः ।।२
जगाम हिमवत्पार्श्वे महादेवेन वारितः । योऽन्यः प्रविशते भूमौ सा स्त्री भवति निश्चितम् ।।३
स राजा मृगसंगेन प्राविशत्तदुमावने । एकाकी तुरगोपेतः क्षणात्स्त्रीत्वं जगाम ह ।।४
सा बभ्राम वने शून्ये पीनोन्नतपयोधरा । कुतोऽहमागतेत्येवं न त्वबुध्यत किंचन ।।५
तां ददर्श बुधः सौम्यां रूपौदार्यगुणान्विताम् । अष्टम्यां बुधवारेण तस्यास्तुष्टो बुधो ग्रहः ।।६
दधौ गर्भं तदुदरे इलायाः रूपतोषितः । पुत्रमुत्पादयामास योऽसौ ख्यातः पुरूरवाः ।।७
चन्द्रवंशकरो राजा आद्यः सर्वमहीक्षिताम् । ततः प्रभृति पूज्येयमष्टमी बुधसन्युता ।।८
सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी । अथान्यदपि ते वच्मि धर्मराज कथानकम् ।।९
आसीद्राजा विदेहानां मिथिलायां स वैरिभिः । सङ्ग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्या दरिद्रिणी ।।१०
ऊर्मिला नाम बभ्राम महीं बालकसंयुता । अवन्ती विषयं प्राप्ता ब्राह्मणस्य निवेशने ।।११
चकारोदरपूर्त्यर्थं नित्यं कण्डनपेषणे । हृत्वा स्तोकगोधूमान्ददौ बालकयोस्तदा ।।१२
कारुण्यान्मातृवात्सल्यात्क्षुधासंपीड्यमानयोः । कालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमच्छुभा ।।१३
पुत्रस्तस्या विदेहायां गत्वा स्वपितुरासने । उपविष्टः सत्त्वयोगाद्बुभुजे गामनाकुलः ।।१४

को नरक का भय नहीं होता है, तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! पहले समय में कृतयुग के समय भूमण्डल के अधीश्वर राजा इल थे, जो अपने सेवक, मित्र, एवं मित्रगणों समेत हिमालय के समीप वाले प्रदेश की यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए थे। महादेव जी के इस प्रकार निवारण करने पर भी कि—इस भूमि प्रदेश में मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी यात्रा करने पर निश्चित स्त्री का रूप प्राप्त करेगा। उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर मृगया के त्याग से उस उत्तम वन में घोड़े पर बैठकर वह राजा एकाकी वन में ज्यों पहुँचा, उसी क्षण अश्व समेत स्त्री रूपमें परिणत हो गया ! पीत एवं उन्नत यशोधर से भूषित वह उस जंगल में भ्रमण करते हुए 'मैं कैसे और कहाँ आ गई' इसका कुछ भी ज्ञान नहीं कर पा रहा था, उसी बीच बुध देव से भेंट हुई। उसके सौम्य रथ को देखकर जो उदारादि गुणों से विभूषित था, बुध देव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस दिन अष्टमी समेत बुधवार था। बुध देव ने उसके रूप लावण्य पर अत्यन्त तुष्ट होकर उसे गर्भाधान कराया, जिससे पुरूरवा नामक एक प्रख्यात पुत्र का जन्म हुआ, जो समस्त चन्द्रवंशी राजाओं में सर्वप्रथम राजा था। उसी दिन से बुध संयुक्त इस अष्टमी का पूजन आरम्भ हुआ, जो समस्त पाप एवं उपद्रवों को निरन्तर विनष्ट करती है। धर्मराज ! तुम्हें एक अन्य भी कथानक सुना रहा हूँ सुनो ! एक बार विदेहराज की मिथिला नगरी का राजा रण स्थल में अपने शत्रुओं द्वारा आहत हुआ। दरिद्र दुःख से पीड़ित होने पर उसकी उर्मिला नाम पत्नी ने अपने शिशुओं समेत घर से निकल कर इधर उधर पृथ्वी पर भूलती भटकती उनकी नगरी में पहुँच कर एक ब्राह्मण के यहाँ शरण प्राप्त किया। उनके घर नित्य गृह के कार्य कूटने पीसने एवं सफाई आदि करती हुई अपनी जीविका का निर्वाह कर रही थी, उसी बीच उसने एक दिन ब्राह्मण के घर से थोड़ा गेहूँ अपने बच्चों को क्षुधा निवर्त्यर्थ दे दिया जो उस समय उस अत्यन्त क्षुधा पीड़ित हो रहे थे। उनकी अवस्था देखकर उससे न रहा गया, करुणा और मातृवत्सलता के नाते वह स्वयं भी अधीर थी। कुछ समय के उपरांत उस साध्वी का निधन हो गया। १-१३। और पुत्र ने विदेह नारी में आकर पुनः अपने पैतृक गृह आदि को अपने अधीन किया और निश्चिन्त होकर जीवन के दिन व्यतीत

अन्विष्य धर्मराज्ञो वै सा कन्या मिथिवंशजा ! विवाहिता हिता भर्तुः सा महानायिकाऽभवत् ॥१५
श्यामला नाम चार्वंगी प्रसिद्धा श्रूयते श्रुतौ । तामुवाच दरारोहां धर्मराजः स्वयं प्रियाम् ॥१६
वहस्व सर्वव्यापारं श्यामले त्वं गृहे मम । कुरु स्वजनभृत्यानां दानक्षेपं यथेप्सितम् ॥१७
किं त्वेते पञ्जराः सप्त कीलकैरतियन्त्रिताः । कदाचिदपि नोद्घाटयास्त्वया वैदेहनन्दिनी ॥१८
एवमस्त्विति तामुक्त्वा निजं कर्म चकार ह । कदाचिद्व्याकुलीभूते धर्मराजे विदेहजा ॥
उद्घाटयित्वा प्रथमं ददर्श जननीं स्वकाम् ॥१९
सा पच्यमाना क्रन्दन्ती भीषणैर्यमकिङ्करैः । हेलया क्षिप्यते बद्ध्वा तप्ततैले पुनः पुनः ॥२०
तथैव तालकं दत्त्वा व्रीडितासा मनस्विनी । द्वितीये पञ्जरे तद्वत्सा तामेवं ददर्श ह ॥२१
सुधावल्लिप्यमानां तां शिलातलेष्टकेन तु ! तृतीयपञ्जरे तद्वत्तां ददर्श स्वमातरम् ॥
क्रकचैः पाट्यते मूर्ध्नि घण्टायुक्तैः करोल्बणैः ॥२२
चतुर्थे पञ्जरे स्थाने भीषणैर्दारुणाननैः । भक्ष्यमाणां श्वापदैश्च क्रन्दन्तीं तां पुनः पुनः ॥२३
पञ्चमे निहिता भूमौ कण्ठे पादेन पीड़िता । संदंशैर्वनघातैश्च विदीर्णा क्रियते रुषा ॥२४
षष्ठे चेक्षुयन्त्रगतां मस्तके मुद्गराहताम् । सम्पीडयमानामनिशं सुदृढामिक्षुखण्डवत् ॥२५
सप्तमे पञ्जरे चीर्णस्वनां पूतिकगन्धिनीम् । दृष्ट्वा तथा गतां तां तु मातरं दुःखकर्षिता ॥

करने लगा, किन्तु उसकी भगिनी ने धर्मराज के साथ अपना पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराकर अपने पति की अत्यन्त वल्लभा नायिका का पद ग्रहण किया। उस सुन्दरी का नाम श्यामला था, जिसने अत्यन्त प्रख्याति प्राप्त की है। अनन्तर धर्म राज ने अपनी उस मनोनीत प्रेयसी से कहा—प्रिये, श्यामले ! मेरे इस गृह को तुम अपना गृह समझ कर इसका भार वहन करो—परिवार एवं सेवक आदि के यथेच्छ पालन पोषण तथा देना लेना आदि सभी संभालो, किन्तु लोहे के इन सातों पिंजड़ों को, जो लोहे की कीलों से अत्यन्त दृढ़ नियन्त्रित कर दिये गये हैं, वैदेह नन्दिनि ! इन्हें कभी न खोलना। 'तथास्तु' कहकर उसने भी स्वीकार किया और अपने गृह कार्यों में तन्मयता से परिश्रम प्रारम्भ किया। एकबार धर्मराज के किसी कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहने पर विदेह नन्दिनी श्यामला के पहले पिंजड़े को खोला तो उसमें उसे अपनी माता का दर्शन हुआ।१४-१९। जो भीषण यमदूतों द्वारा नरको में पकायी जाने के कारण करुण क्रन्दन कर रही थी और वे यमदूत उसे बाँधकर बार बार तप्त लेत के कडाहे में उसे डाल रहे थे वह मनस्विनी उस दृश्य को देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और अन्त में उसे वैसे ही बन्द कर दिया। दूसरे पींजड़े को खोलने पर उसमें भी अपन माता को देखा, जो पत्थर की शिला और ईटों के अन्दर चुनी जा रही थी। तीसरे में भी उसने देखा कि भीषण हांथों से आरा खींचते हुए यमदूत उसके शरीर को शिर से आरम्भ कर दो भागों में विभक्त कर रहे हैं। चौथे पींजड़े में भयानक दाँत वाले कुत्ते उसके मांस काट काट कर खा रहे हैं और वह पूर्व की भाँति करण क्रन्दन कर रही है। पाँचवें में उसने देखा कि भूमि पर शयन कराकर जंगली हिंसक जन्तु अपने चरण द्वारा उसे कण्ठ को पीड़ित करते हुए उसके शरीर को विदीर्ण कर रहे हैं। छठे में इक्षुयन्त्र (कोल्हू) में ऊख के टुकड़े की भाँति उसके शरीर खण्ड को निष्पीन कर रहे हैं। और ऊपर से मस्तक पर मुद्गर के प्रहार करते उसने देखा। तथा सातवें में उसने देखा कि मल दुर्गंध के कुण्ड में वह निमग्न की जा

श्यामला म्लानवदना किंचिन्नोवाच भामिनी ॥२६
अथागतं यमं प्राह सरोषा श्यामला पतिम् । किं तवापहृतं राजन्मम मात्र सुदारुणम् ॥
येनेयं विविधैर्घातैर्बध्यते बहुधा त्वया ॥२७
यमः प्राह प्रियां दृष्ट्वा भद्रे ह्युद्घाटितास्त्वया । एते पञ्जरकाः सप्त निषिद्धा त्वं मया पुरा ॥२८
तव मात्रा सुतस्नेहाद्गोधूमा ये हृताः किल । किं न जानासि तद्भद्रे येन रुष्टा ममोपरि ॥२९
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥३०
गोधूमास्त इमे भूताः कृमिरूपाः सुदारुणाः । ये पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्तव कृतेऽनया ॥३१

श्यामलोवाच

जानामि तदहं सर्वं यन्मे मात्रा कृतं पुरा । तथापि त्वां समासाद्य सा च जामातरं शुभम् ॥
मुच्यते कृमिराशित्वाद्यथा तदधुना कुरु ॥३२
तच्छ्रुत्वा चिन्तयाविष्टश्चिरं स्थित्वा जगाद ताम् । धर्मराजः सहासीनां प्रियां प्राणधनेश्वरीम् ॥३३
इतश्च सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी शुभा । आसीस्तस्मिस्त्वया सङ्गात्सखीनां पर्युपासिता ॥
बुधाष्टमी सुसम्पूर्णा यथोक्तफलदायिनी ॥३४
तत्फलं यद्ददास्यस्यै सत्यं कृत्वा ममाग्रतः । तेन मुच्यते ते माता नरकात्पापसंकटात् ॥

रही है । इस प्रकार अपनी माता को अगाध दुःख सागर में निमग्न देखकर उस साध्वी श्यामला ने अपने मुख को केवल म्लान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा । किन्तु धर्म राज के आने पर भामिनी श्यामला ने रोषपूर्ण शब्दों में अपने पति से कहा—राजन् ! मेरी माता ने तुम्हारा क्या अपहरण किया है, जिससे आप उसे अनेक भाँति के दारुण आघातों द्वारा पीडित कर रहे हैं । यम ने भी अपनी प्रेयसी को देखकर कहा—भद्रे ! इसीलिए मैंने इन पींजडों को खोलने के लिए पहले से ही रोक दिया था, किन्तु पूछ रही हो, तो बता रहा हूँ । भद्रे ! तुम्हारी माता ने पुत्र स्नेह के कारण गेहूँ की चोरी जो की थी, क्या तुम उसे नहीं जानती है, जो मुझ पर क्रुद्ध हो रही है—प्रेमवश ब्राह्मण के धन का उपभोग करने पर सात पीढ़ी का नाश हो जाता है—और चोरी कार्य तो तारा समेत चन्द्रमा को भी विनष्ट कर देता है । जिस गेंहू की चोरी इसने पुत्र के लिए ब्राहाण के घर की थी, वे (गेहूँ के दाने) भीषण रूप कीड़े होकर इसे पीड़ित कर रहे हैं ।२०-३१

श्यामला ने कहा—मेरी माता ने पहले जो कुछ किया है, उसे मैं भली भाँति जानती हूँ, किन्तु, तुम्हारे ऐसे कल्याण मूर्ति जामाता (जमाई) को प्राप्त कर भी उसकी वैसी ही दुर्दशा होती रहे, यह उचित नहीं है । इन कीड़ों से मुक्त होने के लिए आप कोई उपाय शीघ्र करे । इसे सुनकर थोड़ी देर तक गम्भीर भाव से विचार कर धर्मराज ने उस अपनी प्रेयसी से, जो उनके एवं प्राण एवं धन आदि की ईश्वरी (स्वामिनी) थी, कहा—प्रिये ! आज से पूर्व सातवें जन्म में तुमने ब्राह्मणी के यहाँ उत्पन्न होकर सखियों के साथ में बुध युक्त अष्टमी व्रत का नियम पालन किया था, जो समस्त फल प्रदान करती हूँ । यदि मेरे सम्मुख संकल्प पूर्वक उस फल को अपनी माता के लिए अर्पित करो, तो अवश्य इस नारकीय पाप संकट से

तच्छ्रुत्वा त्वरितं स्नात्वा ददौ पुण्यं स्वकं कृतम् । स्वमातुः श्यामला तुष्टा तेन मोक्षं जगाम सा ।।३५
उर्मिला रूपसम्पन्ना दिव्यदेहधरा शुभा । विमानवरमारूढा दिव्यमाल्याम्बरावृता ।।३६
भर्तुः समीपे स्वर्गस्था दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः । बुधस्य पार्श्वे नभसि मिथिराजसमीपतः ।।
विस्फुरन्ती महाराजबुधाष्टम्या प्रभावतः ।।३७

युधिष्ठिर उवाच

यद्येवं प्रवरा कृष्ण सा तिथिर्वै बुधाष्टमी । तस्याः एव विधिं ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।।३८

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन बुधाष्टम्या विधिं शुभम् । यदा यदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेद्यदि ।।
तदातदा च सा ग्राह्या एकभक्ताशनैर्नृभिः ।।३९
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे गृहीत्वा कलशं नवम् । जलपूर्णं तु सद्रव्यं पूर्णपात्रसमन्वितम् ।।४०
अष्टवारान्प्रकर्तव्या विधानैस्तु पृथक्पृथक् । प्रथमा मोदकैः कार्या द्वितीया फेणकैस्तथा ।।४१
तृतीया घृतपूपैश्च चतुर्थी वटकैर्नृप । पञ्चमी शुभ्रकारैश्च षष्ठी मोहालकैस्तथा ।।४२
अशोकवर्तिभिः शुभ्रैः सप्तमी खण्डसंयुतैः । अष्टमी फलपुष्पैश्च केवलाखण्डफेणिकैः ।।
एवं क्रमेण कर्तव्या सुहृत्स्वजनबान्धवैः ।।४३
सह कृत्वा स्थितैर्भोज्यं भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः । उपोष्याणामिदं श्रेष्ठं कथयद्भिः शनैः शनैः ।।४४

तुम्हारी माता मुक्त हो जाये । इसे सुनते ही श्यामला ने उसी समय स्नान करके उस अपने पुण्य का दान संकल्प पूर्वक माता के लिए सुसम्पन्न किया, जिससे उसकी माता उसी समय मुक्त हो गई । दिव्य देह धारण करने के नाते रूप लावण्य से सुशोभित होकर (उसकी माता) उर्मिला दिव्यमाला, वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित होती हुई दिव्य विमान द्वारा अपने पति के साथ स्वर्ग में आज भी दिखायी दे रही है । महाराज ! इस बुधाष्टमी व्रत के प्रभाव से मिथिलाराज के समीप बुध देव के पार्श्वभाग में वह आज भी चमक रही है ।३२-३७

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! यदि बुधाष्टमी व्रत का इतना महान् महत्त्व है,तो उसके विधान भी बताने की कृपा कीजिये और प्रभो ! यदि मुझ पर अत्यन्त तुष्ट हैं तो सर्व प्रथम इसी के विधान बताने की कृपा कीजिये ।३८

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! बुध के संयुक्त होने पर उस विशिष्ट अष्टमी का विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जब कभी शुक्ल पक्ष की अष्टमी बुधवार युक्त हो, तो सप्तमी के दिन एकाहार रहकर मनुष्य को अष्टमी का दिन उस का व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए । उस दिन प्रातः काल नदी में स्नान करके नवीन घट में जल समेत समस्त वस्तुओं द्वारा उसे सुशोभित कर पूजनोपरांत पूर्णपात्र समेत दान करना चाहिए । इस भाँति आठ बार अष्टमी विधान पृथक् पृथक् सुसम्पन्न करने में पहली बार मोदक द्वारा दूसरी फेणक (मठ्ठा) तीसरी घी के पूआ, चौथी, बटक (बाटी), पाँचवी श्वेत द्रव्य छठीं सोहाल, सातवीं अशोक और आठवीं फल पुष्प एव अखंड फेणिक द्वारा क्रमशः उसे सुसम्पन्न कर परिजनों समेत स्वस्थ चित्त होकर भोजन करे । उस उपवास व्रती को धीरे धीरे कथा कहते या सुनते हुए भोजन करते रहने पर

श्रुत्वाष्टमीबुधस्यापि माहात्म्यं भोजनं त्यजेत् । तावदेव न भोक्तव्यं कथा यावत्समाप्यते ।।४५
तथा भुक्त्वा बुधस्याग्रे आचम्य च पुनः पुनः । विप्राय वेदविदुषे तम् बुधन्प्रतिपादयेत् ।।४६
साक्षतं सहिरण्यं च जातरूपमयं शुभम् । अर्चितं विविधैः पुष्पैर्धूपदीपैः सुगन्धिभिः ।।४७
पीतवस्त्रैः समाच्छन्नं बुधं सोमात्मजाकृतिन् । माषकेण सुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।।४८
ॐ बुधाय नमः । ॐ सोमात्मजाय नमः । ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः । ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः । ॐ ताराजाताय नमः । ॐ सौम्यग्रहाय नमः । ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः । एतेपूजामन्त्राः । अष्टमी तु यदा पूर्णा तदा राजर्षिसत्तम । ब्राह्मणान्भोजयेदष्टौ गां दद्याच्च सवत्सिकाम् ।।४९
वस्त्रालङ्करणैः सर्वैर्भूषणैर्विविधैरपि । सपत्नीकं समभ्यर्च्य कर्णमात्राङ्गुलीयकैः ।।
मन्त्रेणानेन कौन्तेय दद्यादेवं समाचरन् ।।५०
बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम् । दीयते बुधराजाय तुष्यतां च बुधो मम ।।५१
(इति दानमंत्रः)
बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः । कुमारो द्विजराजस्य यः पुरूरवसः पिता ।।५२
(इति प्रतिग्रहणमंत्रः)
दुर्बुद्धिबाधजनितं नाशयित्वा च मे बुधः । सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः ।।५३
इत्युच्चार्य गृहीत्वा तु दद्यान्मन्त्रपुरःसरम् । सप्तजन्मनि राजेन्द्र जातो जातिस्मरो भवेत् ।।५४
धनधान्यसमायुक्तः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनः । दीर्घायुर्विपुलान्भोगान्भुक्त्वा चैव महीतले ।।५५

कथा समाप्ति के साथ ही भोजन भी त्याग देना चाहिए । क्योंकि बताया गया है कि जब तक कथा होती रहे भोजन तभी तक करे और उसकी समाप्ति के साथ ही उसका त्याग भी । पश्चात् आचमन आदि द्वारा मुख शुद्धिपूर्वक किसी ब्राह्मण विद्वान् को बुध की वह अक्षत सुवर्ण प्रतिमा, जो सौन्दर्य पूर्ण विनिर्मित अनेक भाँति के पुष्प, धूप, दीप एवं सुगन्धि से अर्पित एवं पीताम्बर से आच्छन्न की गयी हो, और एक मासा, आधे, अथवा उसके अर्ध भाग (चौथाई) सुवर्ण से की हो, सादर समर्पित करे । पूजन के समय ओं बुधाय नमः, ओं सोमात्मजाय नमः, ओं दुर्बुद्धिनाशकाय नमः, ओं सुबुद्धिप्रदाय नमः, ओं ताराज्ञाताय नमः, ओं सौम्यग्रहाय नमः, ओं सर्वसौख्यप्रदायनमः मंत्रों के उच्चारण करने चाहिए । राजर्षिसत्तम ! अष्टमी व्रत के समाप्त होने पर आठ ब्राह्मणों के भोजनोंपरांत सवत्सा गौ का दान वस्त्र, अलंकार, भूषणों, और अंगूठियों से सुविभूषित दम्पति की पूजाकर उन्हें सादर समर्पित करे । कौंतेय ! उस समय 'इस द्रव्य में स्वयं बुध देव स्थित होकर इसे स्वीकार करें, मैं राजाबुध के लिए यह अर्पित कर रहा हूँ, मेरे ऊपर वे प्रसन्न हों, कहते हुए दान करना चाहिए और प्रतिग्रहीता को 'सौम्य मूर्ति बुध तारा के पुत्र, राजपुत्र इला के पति, द्विजराज (चन्द्र) के कुमार एवं पुरूरवा के पिता है।३९-५१। कहकर ग्रहण करना चाहिए अनन्तर क्षमा प्रार्थना करे कि—बुध देव, शशिनन्द ! आप मेरी दुर्बुद्धि के अपहरण पूर्वक समस्त सौख्य प्रदान करते हुए मेरे चित्त को सदैव प्रसन्न रखें। राजेन्द्र ! इस प्रकार मंत्रोंच्चारण पूर्वक आदान प्रदान करने से सात जन्म तक जाति स्मरण और इस भूतल में दीर्घायु, एवं विशाल भोगों के उपभोग करने के उपरांत किसी पवित्र

ततः सुतीर्थे मरणं ध्यात्वा नारायणं विभुम् । मृतोऽसौ स्वर्गमाप्नोति पुरन्दरसमो नरः ।।५६
वसते यावदासृष्टेः पुनराभूतसम्प्लवम् । एवमेतन्मया ख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।।५७
एषैवं च मयाख्याता गुह्या पार्थ बुधाष्टमी । यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५८
यच्चाष्टमीं बुधयुतां समवाप्य भक्त्या सम्पूजयेद्विधुसुतं कनपृष्ठसंस्थम् ।
पक्वान्नपानसहितैः सहिरण्यवस्त्रै पश्येदसौ यमपुरं न कदाचिदेव ।।५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
बुधाष्टमीव्रतवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५४

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जन्माष्टमीवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तेरण ममाच्युते । कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिः स्मृतः ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर । देवकी मां परिष्वज्य कृत्वोत्सङ्गे रुरोद ह ।।२
तत्रैव रङ्गवाढेन मञ्चारूढजनोत्सवे । मल्लयुद्धे पुरावृत्ते समेते कुकुराऽन्धके ।।३

तीर्थ में नारायण भगवान् के स्मरण करते हुए निधन प्राप्त होता है, अनन्तर स्वर्ग में पहुँच कर पुरंदर (इन्द्र) के समान महाप्रलय पर्यन्त समस्त सौख्य का उपभोग करता है। पार्थ ! इस प्रकार मैंने इस बुधाष्टमी व्रत को, जो सभी व्रतों में परमोत्तम स्वयं जिसे सुनकर ब्रह्म हत्या आदि समस्त पाप समूल नष्ट हो जाते हैं। जो बुध समेत इस अष्टमी में उपावस पूर्वक बुध की सुवर्ण प्रतिमा के पूजा करके पक्वान, हिरण्य, वस्त्र से उन्हें विभूषित करने वाला पुरुष यमराज से भयभीत कभी नहीं होता है ।५२-५९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
बुधाष्टमी व्रत वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।५४।

अध्याय ५५

जन्माष्टमी का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—अच्युत ! जन्माष्टमी व्रत का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिये, किस समय यह व्रत उत्पन्न हुआ और इसे सुसम्पन्न करने से कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है, तथा विधान क्या है।१

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर मथुरा में दुष्ट कंसासुर के निधन होने पर देवकी मुझे अपने (गोद) में बैठा कर रोदन करने लगी। उस समय वहाँ मंचानों पर बैठे एवं इतर आगन्तुक दर्शकों का महान् समूह एकत्र था, जहाँ पहले हमलोगों के साथ राक्षसों का मल्ल युद्ध भी हो चुका था। अपने प्रेमी बन्धुओं एवं

**स्वजनैर्बंधुभिः स्निग्धैः समं स्त्रीभिः समावृते । वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह ॥४
समाकृष्य परिष्वज्य पुत्रपुत्रेत्युवाच ह । सगद्गदस्वरो दीनोबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥५
बलभद्रं च मां चैव परिष्वज्य मुदा पुनः । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं यत्सुजीवितम् ॥६
यदुभाभ्यां सुपुत्राभ्यां समुद्भूतः समागमः । एवं वर्षेण दाम्पत्ये हृष्टं पुष्टं तथा ह्यभूत् ॥७
प्रणिपत्य जनाः सर्वे बभूवस्ते प्रहर्षिताः । एवं महोत्सवं दृष्ट्वा मामाह सकलो जनः ॥८**
प्रसादः क्रियतां नाथ लोकस्यास्य प्रसादतः । यस्मिन्दिने जगन्नाथ देवकी त्वामजीजनत् ॥९
तद्दिने देहि वैकुण्ठं कुर्मस्तेऽत्र नमोनमः । सम्यग्भक्तिप्रपन्नानां प्रसादं कुरु केशव ॥१०
एवमुक्ते जनौघने वसुदेवोऽतिविस्मितः । विलोक्य बलभद्रं च मां च कृत्वा रुरोद ह ॥
एवमस्त्विति लोकानां कथयस्व यथा तथा ॥११
ततश्च पितुरादेशात्तथा जन्माष्टमीव्रतम् । मथुरायां जनौघाग्रे पार्थ सम्यक्प्रकाशितम् ॥१२
पौरजना जन्मदिनं वर्षेवर्षे ममोदितम् । पुनर्जन्माष्टमीं लोके कुर्वन्तु ब्राह्मणादयः ॥
क्षत्रिया वैश्यजातीयाः शूद्रा येन्येऽपि धार्मिकाः ॥१३
सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ॥
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते ॥१४
वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् । एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीमव्रतम् ॥१५

स्त्रियों के उस संकुल में वसुदेव भी वात्सल्य के नाते रोदन करने लगे । 'पुत्र-पुत्र कहते हुए पकड़ कर मुझे अपने क्रोड (गोद) में बैठाकर गद्गद वाणी द्वारा, आखों में आसूंभरे दीन की भाँति हर्षातिरेक के नाते बार बार मेरे और बलभद्र का आलिङ्गन करते हुए वे कहने लगे कि —आज मेरा जन्म सफल हुआ एवं मेरा जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि मेरा अपने दोनों पुत्रों से आज सुखद मिलन हो रहा है । वे प्रसन्न होकर इतने हृष्ट पुष्ट हो गये जितना कोई पूर्ण वर्ष में होता है । वहाँ की उपस्थित जनता नम्रता पूर्ण अत्यन्त हर्षित हो रही थी, जो उस महोत्सव में आमन्त्रित की गयी थी । वह जन समुदाय मुझे देखकर कहने लगा कि नाथ ! इन जनों को अपनाकर आनन्दित करें तथा जगन्नाथ ! देवी देवकी ने जिस दिन आप को उत्पन्न किया है, उस दिन लोगों को बैकुण्ठ का आभास प्रदान करने की कृपा करें, हम लोग आपको बार-बार नमस्कार कर रहे हैं। केशव ! अपने प्रणत भक्तों को यही सदा प्रदान करें।२-१०। उस जन समुदाय के इस प्रकार कथम को सुनकर आश्चर्य चकित हो कर वसुदेव मुझे और बलभद्र को देखकर रोदन करने लगे। जिस किसी प्रकार मैंने 'तथास्तु' कहकर उन लोगों को आश्वासन दिया और पिता की आज्ञा से मथुरा में उस जन समुदाय को जन्माष्टमी व्रत का वर्णन करना आरम्भ किया। पार्थ ! उसके अनुसार समस्त पुरवासी प्रत्येक वर्ष मेरे जन्म दिन का महोत्सव करने लगे और लोक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इस जन्माष्टमी व्रत को भली भाँति सुसम्पन्न कर सके। इसलिए भी मैंने इसको पूर्ण विवेचन किया था । जनवृन्द ! सिंहराशि पर सूर्य के गमन करने पर भादों की कृष्णाष्टमी में आधी रात के समय वृष राशिस्थ चन्द्रमा और रोहिणी नक्षत्र के समागम के मेघाच्छन्न होने पर वसुदेव देवकी द्वारा मैंने जन्म ग्रहण किया है। राजन् ! इस प्रकार यह जन्माष्टमी व्रत लोक में

भगवत्पार्श्वतो राजन्बहुरूपं महोत्सवम् । मथुरायास्ततः पश्चाल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥
शान्तिरस्तु सुखं चास्तु लोकाः सन्तु निरामयाः ॥१६

युधिष्ठिर उवाच

तत्कीदृशं व्रतं देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् । जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ॥१७
येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभुरव्ययः । एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ॥१८

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ तद्दिवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितः ॥१९
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन । सर्वजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥२०
उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवास स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥२१
ततः स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले । देव्याः सुशोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ॥२२
पद्मरागैः पत्रनेत्रैर्मंडितं चर्चितं शुभैः । रम्यं तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ॥२३
सर्वं गोकुलवत्कार्यं गोपीजनसमाकुलम् । घण्टामर्दलङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ॥२४
यवार्धं स्वस्तिका कुडचैः शङ्खवादित्रसङ्कुलम् । बद्धासुरा लोहखड्गैः प्रियच्छागसमन्वितम् ॥२५
धान्ये विन्यस्य मुसलं रक्षितं रक्षपालकैः । षष्ठ्या देव्या च सम्पूर्णैर्नैवेद्यैर्विविधैः कृतैः ॥२६
एवमादि यथाशेषं कर्तव्यं सूतिकागृहम् । एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ॥२७

प्रसिद्ध हुआ पश्चात् अनेक रूपधारी यह महोत्सव मथुरा में भगवान् के पार्श्व से लोक में ख्याति प्राप्त करेगा, लोक में सुखशान्ति हो, सभी प्राणी आरोग्य रहे ।११-१६

युधिष्ठिर बोले—देव ! पुरुषोत्तम लोगों ने इस व्रत को किस विधान द्वारा सुसम्पन्न किया, जो जन्माष्टमी नाम से प्रख्यात एवं परम पवित्र है । भगवन्, मधुसूदन ! इसके सुसम्पन्न करने से अव्यय एवं प्रभु रूप आप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, अतः कृपा कर इसी की व्याख्या कीजिये ।१७-१८

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! उस दिन प्रातः काल भक्ति मग्न होकर दातून करने से आरम्भ कर उपवास के नियमों को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि कुरुनन्दन ! एक ही उपवास करने से उस जन्म के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । और उपवास का अभिप्राय भी यही होता है कि पाप निवृत्त एवं समस्त भोगों के त्याग पूर्वक सात्त्विक गुणों द्वारा (उतने) समय व्यतीत करना (उपवास कहलाता है) तदुपरांत मध्याह्न के समय किसी नदी आदि जलाशय में निर्मल जल में स्नान करके देवकी देवी के सूतिका गृह को पद्मराग मणि एवं पत्र नेत्र से भली भाँति विभूषित करते हुए रक्षामणि से भी सुसज्जित करे। वहाँ के सभी कार्य (व्यवहार) गोकुल की भाँति ही होने चाहिए। अनेक भाँति की सुसज्जित गोपियों से अलंकृत घण्टा, मृदङ्ग आदि के वाद्य, माङ्गलिक कलश, जवार्ध, स्वस्तिका, शंख आदि वाद्यों की ध्वनि, बँधा हुआ असुर, लोहे खड्ग, और प्रिय छाग (बकरी) से सुशोभित करके फैलाये गये धान्य पर रखकर रक्षपालों द्वारा सुरक्षित मुशल तथा अनेक भाँति के सुमधुर नैवेद्य आदि सभी शेष पदार्थों द्वारा उस सूतिका गृह को विभूषित करना चाहिए। उसी के मध्य में सुवर्ण, चाँदी, ताँबें, पीतल मृत्तिका,

काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृण्मयी तथा। दार्वी मणिमयी चैव वर्णिका लिखिताथ वा ॥२८
सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्यंकेचार्द्धसुप्तिका । प्रतप्तकाञ्चनाभासा मया सह तपस्विनी ॥२९
प्रस्तुता च प्रसूता च तत्क्षणाच्च प्रहर्षिता । मां चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् ॥३०
श्रीवत्सवक्षसं पूर्णं नीलोत्पलदलच्छविम् । यशोदा चापि तत्रैव प्रसूता वरकन्यकाम् ॥३१
तत्र देवगृहं नागा यक्षविद्याधरा नराः । प्रणताः पुष्पमालाग्रव्यग्रहस्ताः सुरासुराः ॥३२
सञ्चरन्त इवाकाशे प्राकारैरुदितोदितैः । वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ॥३३
कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चापि देवकी । बलभद्रः शेषनागो यशोदादित्यजायत ॥३४
नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः । एषोऽवतारो राजेन्द्र कंसोऽयं कालनेमजः ॥३५
तत्र कंसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधाः । ते च प्राहारिकाः सर्वे सुप्ता निद्रादिमोहिताः ॥३६
गोधेकुकुञ्जराश्चास्य दानवाः शस्त्रपाणयः । नृत्यंत्यप्सरसो हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः ॥३७
लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे । रम्यमेदं विधिं कृत्वा देवकीं नवसूतिकाम् ॥३८
तां पार्थ[1] पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः । कूष्माण्डैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्दाडिमीफलैः ॥३९
बीजपूरैः पूगफलैर्ल्लकुचैस्त्रपुसैस्तथा । कालदेशोद्भवैर्मृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ॥४०
ध्यात्वावतारं प्रागुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥४१

काष्ठ, एवं मणि की सुन्दर देवकी जी की प्रतिमा अथवा चित्र आदि जो समस्त लक्षणों से अंकित हो। सुसज्जित शय्या के आधे भाग पर शयन किये वह संतप्त सुवर्ण की प्रतिमा आसन्नप्रसवा मेरे प्रसन्नार्थ प्रस्तुत दिखायी देती हो, और प्रसन्न होने पर उसी समय हर्ष निमग्न उस प्रसूता के साथ मुझे भी बालक रूप में वहाँ शयन कराये, जो शयन किये दुग्ध पान करते हो, श्रीवत्स से विभूषित वक्षःस्थल और नीलकमल दल की माधुरी छवि से सम्पन्न हों, और यशोदा भी वहाँ उत्तम कन्या के प्रसव समेत स्थित हों। भगवान् के उस सूतिका गृह में नाग, यक्ष, विद्याधर एवं मनुष्य, नम्रता पूर्ण पुष्प मालाओं से सुशोभित इस भाँति दिखायी दें, जो दर्शनार्थ आकाश में जैसे व्यग्र होकर इधर उधर संचरण कर रहे हों। खड्ग और चर्म (ढाल) लिए वसुदेव की भी प्रतिमा वहाँ रहनी चाहिए। कश्यप जी वसुदेव अदिति देवकी, शेष नाग बलभद्र, दिति यशोदा, प्रजापति दक्ष नन्द, और चतुर्मुख ब्रह्मा गर्ग के रूप में अवतारित थे। राजेन्द्र ! उसी प्रकार यह कंस काल नेमि का पुत्र था। मेरे प्रकट होने के समय कंस द्वारा नियुक्त किये गये सूतिका गृह द्वार के सभी दानवगण, जो अनेक भाँति के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थे, तथा इतर गण, जो वहाँ सावधानी से पहरा दे रहाथा, निद्रमग्न होकर भूमि शायी हो गये। नृत्य करती हुए अप्सराएं, हर्ष मग्न एवं गान करते हुए गन्धर्व एवं यमुना कुण्ड में निवास करते हुए कालिया नाग की प्रतिमा बनानी चाहिए। पार्थ ! इस प्रकार देवीकी भी उस सूतिका गृह का निर्माण करने भक्ति पूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, कूष्माण्ड, नारियल, खजूर, अनार, विजौरानीबू, सुपारी बडहर, पायस आदि ऋतु फलों एवं पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करते हुए उनके ध्यान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए। १९-४१। युधिष्ठिर ! उस मनोरम रूप वाली एवं सुबदन देवमाता देवकी की सर्वदा जय हो, जो मुझ बालक को साथ लिए सुसज्जित

---

१. पाद्यार्घ्यैः ।

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः ।
पर्यङ्कं स्वास्तृते या मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी कान्तरूपा ।।४२
पादावभ्यंजयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै च मंत्रतः ।।४३
ॐ देवक्यै नमः । ॐ वसुदेवाय नमः । ॐ बलभद्राय नमः । ॐ श्रीकृष्णाय नमः । ॐ सुभद्रायै नमः ।
ॐ नन्दाय नमः । ॐ यशोदायै नमः ।
एवमादीनि नामानि समुच्चार्य पृथक्पृथक् । पूजयेयुर्द्विजाः सर्वे शूद्राणाममन्त्रकम् ।।४४
विध्यन्तरमपीच्छन्ति केचिदत्र द्विजोत्तमाः । चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं स्मरेत् ।।४५
अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ।।४६
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिहं ब्राह्मणप्रियम् । दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ।।४७
गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् । अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ।।४८
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् । नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।४९
पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम् ।।५०
योगेश्वराय योगेशभवाय योगपतये गोविन्दाय नमोनमः ।
(इति स्नान मंत्रः)
यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमोनमः ।।५१
इत्यनुलेपनार्घ्याद्यर्चनधूपमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमोनमः ।।५२
(इति नैवेद्यमन्त्रः)

शय्या पर अत्यन्त मुदित होकर शयन किये हो, वेणु वीणा द्वारा गान करते हुए किन्नरसाठा, एवं अगस्त्य आदि महर्षियों से आवृत हैं। देवकी देवी के चरण के समीप उनके चरण की सेवा करती एवं कमल पर सुशोभित की भी पूजा करे। उस समय 'नमो देव्यै' मंत्र का उच्चारण करना चाहिए, तथा 'ओं देवक्यै नमः' ओं वासुदेवाय नमः, 'ओं बलभद्राय नमः', 'ओं श्रीकृष्णाय नमः', 'ओं सुभद्रायै नमः', 'ओं नन्दाय नमः', 'ओं यशोदायै नमः', आदि नामों के उच्चारण पूर्वक पृथक् पृथक् पूजा करना ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों) को बताया गया है। उसी प्रकार स्त्री और शूद्रों को विना मंत्र के। कुछ विद्वानों के विधान में भी मतभेद हैं—चन्द्रोदय होने पर भगवान् के स्मरण पूर्वक चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। अनघ, वामन, शौरि, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वाराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिह, ब्राह्मणप्रिय, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द अच्युत, कृष्ण, अनन्त अपराजित, अधोक्षज, जगत् के बीच एवं उसी की सृष्टि, स्थिति, विनाशक, तथा आदि अंत से शून्य विष्णु त्रैलोक्येश, त्रिविक्रम, नारायण, चतुर्बाहु, शंख, चक्रगदाधारी, पीताम्बरधारी, नित्यवनमाला से विभूषित एवं श्रीवत्सांक, जगत्सेतु, श्रीधर, श्रीपति, हरि, योगेश्वर, योगेश, भव, योगपति तथा गोविन्द को नमस्कार है—इसके उच्चारण पूर्वक स्नान कराना चाहिए।४२-५०। यज्ञेश्वर, यज्ञद्वारा उत्पन्न, यज्ञपति एवं गोविन्द को बार-बार नमस्कार है, इसके उच्चारण द्वारा लेपन, अर्घ्य अर्चन एवं धूप आदि प्रदान करना चाहिए। विश्वरूप, विश्वेश्वर, विश्वसृष्टा, विश्वपति तथा गोविन्द को नमस्कार है, इसके उच्चारण से नैवेद्य अर्पित करना

धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमोनमः ।।५३

(इति दीपासनमंत्रः)

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव । गृहाणार्घ्यं शशाङ्केन्दो रोहिण्या सहितो मम ।।५४
स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं तथा । देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च ।।५५
बलदेवं तथा पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । अर्द्धरात्रे वसोर्द्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा ।।५६
ततो वर्द्धापनं षष्ठीनामादिकरणं मम । कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने ।।५७
यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।।५८
हिरण्यं काञ्चनं गावो वासांसि कुसुमानि च । यद्यदिष्टतमं तत्तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।५९
यमेवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् । भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।।६०
सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ।।६१
एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम् । वर्षेवर्षे भगवतो मद्भक्तो धर्मनन्दन ।।६२
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलमाप्नुयात् ।।६३
पुत्रसन्तानमारोग्यं धनधान्यादिसद्गृहम् । शालीक्षुयवसम्पूर्णमण्डलं सुमनोहरम् ।।६४
तस्मिन्राष्ट्रे प्रभुर्भुंक्ते दीर्घायुर्मनसेप्सितान् । परचक्रभयं नास्ति तस्मिन्राज्येऽपि पाण्डव ।।६५
पर्जन्यः कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भयं भवेत् । यस्मिन्गृहे पाण्डुपुत्र क्रियते देवकीव्रतम् ।।६६
न तत्र मृतनिष्क्रांतिर्न गर्भपतनं तथा । न च व्याधिभयं तत्र भवेदिति गतिर्मम ।।६७

बताया गया है । धर्मेश्वर, धर्मपति, धर्मात्मा धर्मसम्भव उस गोविन्द को नमस्कार है, के उच्चारण पूर्वक दीप और आसन तथा उसी भाँति क्षीर सागर से उत्पन्न, एवं अत्रि महर्षि के नेत्र से प्रकट होने वाले चन्द्र देव ! रोहिणी समेत मेरे इस अर्घ्य को ग्रहण करें । पश्चात् वेदी के (ऊपर देव (कृष्ण) चन्द्रमा समेत, रोहिणी, देवकी सुदेव, यशोदा नन्द और बलदेव की अर्चना करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त होती है । आधीरात के समय गुड समेत घी का वसोद्धार प्रदान कर वर्द्धापन और षष्ठी में नामकरण आदि संस्कार रात्रि के उसी समय करना चाहिए । प्रातः काल नवमी के दिन मेरे समान ही भगवती का महोत्सव करना बताया गया है । ब्राह्मण भोजनोपरांत उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करते समय— सुवर्ण, गौ, वस्त्र, एवं कुसुम आदि, भगवान् की इष्ट वस्तुएँ उन्हें सादर समर्पित कर रहा हूँ, भगवान् कृष्ण मेरे ऊपर प्रसन्न हों । देवकी देवी के वसुदेव द्वारा भगवान् को मौन और ब्रह्मा के रक्षार्थ उत्पन्न किया है, अतः उस ब्रह्मात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । अनन्तर वासुदेव, एवं ब्राह्मण के हितार्थ शोभन जन्म ग्रहण करने वाले (भगवान्) शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें—कहकर विसर्जन करे। धर्मनन्दन ! इस प्रकार प्रतिवर्ष मुझ समेत देवकी देवी के महोत्सव करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को उक्त फल प्राप्त होता है—५१-६३। पुत्र, आरोग्य, धन धान्य समेत उत्तम ग्रह, शाली (साठी), ऊख, और जवा आदि से सुसम्पन्न उस राष्ट्र में वे दीर्घायु होकर इच्छित भोगों के उपभोग करते हैं । पाण्डव ! उस राज्य में उसे कभी भी शत्रुभय नहीं होता है । मेघ सदैव इच्छानुसार जलप्रदान करते रहते हैं, ईति का भय कभी नहीं होता है। पाण्डुपुत्र ! जिस गृह में देवकी का व्रत सविधान सुसम्पन्न किया जाता है, उस घर में मरण-प्रसव अथवा गर्भपतन कभी नहीं होता है और उसी भाँति व्याधि भी नहीं होता है, ऐसा

न वैद्यजनसंयोगो न चापि कलहो गृहे । सम्पर्केणापि यः कश्चित्कुर्याज्जन्माष्टमीव्रतम् ॥
विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पार्थ न संशयः ॥६८

जन्माष्टमी जनमनोनयनाभिरामा पापापहा सपदिनन्दितनन्दगोपा ।
यो देवकीं सदयितां यजतीह तस्यां पुत्रानवाप्य समुपैति पदं स विष्णोः ॥६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
जन्माष्टमीव्रतवर्णनं नाम पञ्चपंचाशत्तमोऽध्यायः ।५५

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दूर्वाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले भाद्रपदस्यैव पक्षेऽष्टम्यां युधिष्ठिर । दूर्वाष्टमीव्रतं पुण्यं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥१
न तस्य क्षयमाप्नोति सन्तानं सप्तपौरुषम् । नन्दते वर्द्धते नित्यं यथापूर्वं तथा कुलम् ॥२

युधिष्ठिर उवाच

कुत एषा समुत्पन्ना दूर्वा कस्माच्चिरायुषा । कस्माच्च सा पवित्रा च लोकनाथ ब्रवीहि मे ॥३

मेरा कहना है । न कभी वैद्यों की आवश्यकता होती है, और कलह का काम नहीं रहता है । पार्थ ! किसी के सम्पर्क द्वारा भी इस जन्माष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं । इस प्रकार जनमनरंजन, नयनाभिराम एवं पापहारी इस जन्माष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करते हुए प्रसन्नता पूर्ण नंद गोपियों समेत देवी देवकी की अर्चना करने पर उसे पुत्र प्राप्ति विष्णु **पद की** प्राप्ति होती है ।६४-६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
जन्माष्टमी व्रतवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।५५।

अध्याय ५६

दूर्वाष्टमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन श्रद्धालु होकर दूर्वाष्टमी व्रत के विधान, जो अत्यन्त पुण्य रूप हैं, सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरूष की सात पीढ़ियों में संतान एवं पौरूष का विच्छेद नहीं होता है, पूर्वक की भाँति सदैव प्रसन्नता पूर्ण उनकी वृद्धि होती रहती है ।१-२

युधिष्ठिर ने कहा—लोकनाथ ! इस दूर्वाष्टमी का जन्म, किस भाँति और किसके द्वारा हुआ है, तथा यह महान् पवित्र क्यों है । मुझे बताने की कृपा कीजिये ।३

श्रीकृष्ण उवाच

क्षीरोदसागरे पूर्वं मथ्यमानेऽमृतार्थिना । विष्णुना बाहुजंघाभ्यां यद्धृतो मन्दरो गिरिः ।।४
भ्रमितो वै स वेगेन रोमाण्युद्धर्षितानि वै । तान्येतानि जलोर्मीभिरुत्क्षिप्तानि तदर्णवात् ।।५
अजायत शुभा दूर्वा रम्या हरितशाद्वला । एवमेषा समुत्पन्ना दूर्वा विधुतनूरुहा ।।६
तस्याश्चोपरि विन्यस्तं मथितामृतमुत्तमम् । देवदानवगन्धर्वैर्यक्षविद्याधरैस्तथा ।।७
तत्राप्यमृतकुम्भस्य पेतुर्निष्यन्दबिन्दवः । तैरियं स्पृष्टमात्राभूद्दूर्वा रम्याऽजराऽमरा ।।८
वन्द्या पवित्रा देवैस्तु वन्दिताभ्यर्चिता पुरा । अष्टम्यां फलपुष्पैस्तु खर्जूरैर्नालिकेरकैः ।।९
द्राक्षाक्षोटकपित्थैश्च बर्बरैर्लकुचैस्तथा । नारिंगैर्जंबुकैराम्रैर्बीजपूरैश्च दाडिमैः ।।१०
दध्यक्षतैः सुपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शृणुष्वावहितेन च ।।११
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः । सौभाग्यं सन्ततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव ।।१२
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले । तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरे ।।१३
एवमेषा पुरा पार्थ पूजिता त्रिदशोत्तमैः । तेषां पत्नीवधूभिश्च भगिनीभिस्तथैव च ।।१४
पूजिताभ्यर्हिता वाचा गौर्या राजञ्छ्रिया तथा । मर्त्यलोके वेदवत्या दमयन्त्यापि सीतया ।।१५
सुकेश्या च घृताच्या च रम्भया च सुकेशया । सहन्या कामकन्दन्या मेनकोर्वशिकादिभिः ।।१६
स्त्रीभिरेवार्चिता दूर्वा सौभाग्यसुखदायिनी । स्नाताभिः शुचिवस्त्रभिः सखीभिः ससुहृज्जनैः ।।१७
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः फलं दत्त्वार्चयेत्प्रभोः । तिलपिष्टकगोधूमसप्तधान्यानि पाण्डव ।।१८

श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन काल में क्षीर सागर के मथन करने के लिए भगवान् विष्णु ने मंदराचल को अपनी जंघाओं पर धारण किया था। वेग से उसके भ्रमण करने पर घर्षित होने (घिसने) पर उनके लोम समुद्र की तरङ्गों द्वारा ऊपर आकर हरी हरी एवं शुभ दूर्वा का रूप धारण किया। इसी प्रकार इस चन्द्रवदना दूर्वा के जन्म ग्रहण करने पर उसी के ऊपर रखकर उसे भक्षने से अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष तथा विधाधरो द्वारा ले जाते समय उस कलश से अमृत के विन्दु गिर पड़े थे, उसके स्पर्श होने के नाते यह दूर्वा अजर अमर एवं देवों द्वारा वन्दित हुई है। इसलिए उस अष्टमी के दिन फल, पुष्प, खजूर, नारियल, द्राक्षा, अखरोट, कैथ, बर्बर, बड़हर, नारंगी, जामुन, आम, बिजौरा नींबू, अनार, दही, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चना करनी चाहिए। राजेन्द्र, उसका विधान मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! दूर्वे! तुम्हारा जन्म अमृत द्वारा हुआ है, सुर एवं असुरों ने तुम्हारी अर्चना की है, अतः सौभाग्य तथा संतान के प्रदान पूर्वक मेरे समस्त कार्यों को सफल करो। हे अजर अमर रहने वाली दूर्वे! इस पृथ्वी तल पर जिस प्रकार शाखाओं एवं शाखाओं द्वारा अविच्छिन्न विस्तृत हुई हो, उसी भाँति एवं उनकी पत्नी, पुत्रवधू, भगिनी, तथा सरस्वती, गौरी लक्ष्मी और मर्त्यलोक में वेदवती, दमयन्ती, सीता, सुकेशी, घृताची, रम्भा और सुकेश, सहन्या, कामकन्दनी, मेनका, तथा उर्वशी आदि स्त्रियों ने इस सौभाग्य एवं सुख दायिनी दूर्वा की अर्चना की है। स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण पूर्वक सखियों एवं सहृदय जनों समेत ब्राह्मणों को दान देने के उपरांत भगवान् की अर्चना करनी चाहिए। अनन्तर तिल चूर्ण, गेहूँ, और सप्त धान्य के भक्षण सुहृद्, सम्बन्धी, एवं स्वजन के साथ करे। ४-१८।

भक्षयित्वा सुहृन्मित्रसम्बंधिस्वजने तथा । या नार्यो विचरिष्यन्ति व्रतमेतत्पुरातनम् ।।१९
दूर्वाष्टमीति विख्यातं पुण्यं सन्तानकारकम् । ताः सर्वाः सुखसौभाग्यपुत्रपौत्रादिभिस्तथा ।।२०
मर्त्ये लोके चिरं स्थित्वा ततःस्वर्गं गताः पुनः । देवैरानन्दितास्तत्र भर्तृभिः सह बान्धवैः ।।२१
वसन्ति रममाणस्ता यावदाभूतसंप्लवम् ।।२२

मेघावृतेऽम्बरतले हरिते वनान्ते या साष्टमी शुभफला सफला नभस्ये ।
दूर्वाफलाक्षततिलैः प्रतिपूज्य योषिद्दूर्वेव वृद्धिमुपयाति सुतैः सुहृद्भिः ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दूर्वाष्टमीव्रतवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५६

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृष्णाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णाष्टमीव्रतं पार्थ शृणु पापभयापहम् । धर्मसंजननं लोके रुद्रप्रीतिकरं परम् ।।१
मासि मार्गशिरे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं कुर्यान्नक्तस्य वा पुनः ।।२
अशक्तशक्तभेदेन गृहान्निष्क्रम्य वाह्यतः । कृष्णाष्टम्यां वर्षमेकं गुरुं पृष्ट्वा विचक्षणः ।।३
ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवार्चनजपे रतः । ततोऽपराह्णसमये स्नात्वा नद्यां विशुद्धधीः ।।४

इस प्रकार पुण्य तथा संतानकारक इस दूर्वाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियाँ सुख, सौभाग्य, पुत्र पौत्र आदि समेत इस भूमण्डल में चिरकाल तक समस्त भोगों के उपभोग करने के अनन्तर अन्त में स्वर्ग लोक प्राप्त करती हैं। वहाँ पहुँच कर अपने पतियों आदि के साथ देवों से सुसेवित रहकर महाप्रलय के समय तक रमण करती है। इस प्रकार भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन मेघाच्छन्न आकाश के समय हरे भरे उपवनों में दूर्वा, अक्षत तथा तिल द्वारा इस दूर्वाष्टमी के व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री सुहृत बन्धुओं समेत दूर्वा के समान ही वृद्धि प्राप्त करती है।१९-२३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
दूर्वाष्टमी व्रत वर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।५६।

अध्याय ५७

कृष्णाष्टमी का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पाप नाशक, धर्मजनन एवं रुद्र दीप्तिकारक कृष्णाष्टमी व्रत मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन दंतधावन पूर्वक उपवास के नियम ग्रहण कर नक्त व्रत समेत उसे सुसम्पन्न करे। अशक्त होने पर गृह से बाहर निकल कर पूछने पर गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए एक वर्ष तक ब्रह्मचारी, क्रोधहीन होकर शिवार्चन एवं जप में तन्मय रहे।१-३।

**शिवलिङ्गं समभ्यर्च्य सुमनोभिः सुगन्धिभिः । गुग्गुलुं च शुभं दग्ध्वा दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥५
ततो देवस्य पुरतो होमं कुर्यात्तिलैः गुरुः । मार्गशीर्षे शुभे मासि शङ्करायेति पूजयेत् ॥६
गोमूत्रप्राशनं कृत्वा स्वप्याद्भूमौ ततो निशि । अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७
एवं पुष्येऽपि सम्पूज्य शम्भुं नाम महेश्वरम् । कृष्णाष्टम्यां घृतं प्राश्य वाजपेयफलं भजेत् ॥८
माघे माहेश्वरं नाम कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत् । निशि पीत्वा गवां क्षीरं गोमेधाष्टकमाप्नुयात् ॥९
फाल्गुने च महादेवं सम्पूज्य प्राशयेत्तिलान् । राजसूयस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भजेत् ॥१०
चैत्रे च स्थाणुनामानं कृष्णाष्टम्यां शिवं यजेत् । यवाहारोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥११
वैशाखे शिवनामानमिष्ट्वा रात्रौ कुशोदकम् । पीत्वा पुरुषमेधस्य फलं दशगुणं भजेत् ॥१२
ज्येष्ठे पशुपतिं पूज्य गवां शृङ्गोदकं पिबेत् । गवां लक्षप्रदानस्य नरः फलमवाप्नुयात् ॥१३
आषाढ़े चोग्रनामानमिष्ट्वा सम्प्राश्य गोमयम् । वर्षाणां नियुतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥१४
श्रावणे शर्वनामानमिष्ट्वार्कं निशि भक्षयेत् । बहुस्वर्णस्य यज्ञस्य नरः फलमवाप्नुयात् ॥१५
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां त्र्यम्बकं नाम पूजयेत । बिल्वपत्रं निशि प्राश्य अन्नदीक्षाफलं भजेत् ॥१६
भवनामाश्विने पूज्यः प्राशयेत्तण्डुलोदकम् । पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं भजेत् ॥१७
कार्तिके रुद्रनामानं सम्पूज्य प्राशयेद्दधि । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१८
अब्दान्ते भोजयेद्विप्राञ्छिवभक्तिपरायणान् । पायसं मधु संयुक्तं घृतेन समभिप्लुतम् ॥**

पश्चात् अपराह्ण के समय नदी के विशुद्ध जल में स्नान करके शोभन पुष्प एवं सुगंध द्वारा शिवलिंङ्ग की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए। गुग्गुल की धूप, और मधुर नैवेद्य सादर अर्पित करने के उपरांत उनके सम्मुख तिल द्वारा गुरु से हवन सुसम्पन्न कराये। मार्गशीर्ष मास में 'शंकर, की अर्चना, गोमूत्र के प्राशन, और रात्रि में भूमि शयन करने पर मनुष्य को अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार पौष मास में कृष्णाष्टमी में महेश्वर के इस शम्भु नामोच्चारण द्वारा पूजन, एवं घृत के प्राशन करने पर वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त हैं। माघ की कृष्णाष्टमी के दिन 'महेश्वर' नामोच्चारण पूर्वक पूजन, और रात्रि में गोक्षीर के प्राशन करने से आठ यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। फाल्गुन में 'महादेव की अर्चना तथा तिल के प्राशन करने से राजसूय यज्ञ का आठ गुना फल प्राप्त होता है।४-१०। चैत्रमास में कृष्णाष्टमी के दिन 'स्थाणु' यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वैशाख मास में 'शिव' नामक उच्चारण एवं पूजन करके रात्रि में कुशोदक के प्राशन करने से नरमेध यज्ञ के दश गुने फल प्राप्त होते हैं। ज्येष्ठ मास में 'पशुपति' नाम शिव की पूजा एवं गोशृंगोदक के प्राशन करने से मनुष्य को लक्ष गोदान के फल प्राप्त होते हैं। आषाढ़ मास में 'उग्र' नामक शिव की आराधना तथा गोमय के प्राशन करने से दशसहस्र वर्ष तक रुद्र लोक में सम्मानित होता है। श्रावण में 'शर्व' नामक (शिव) की अर्चना करके रात्रि में मंदार के प्राशन करने से मनुष्य को बहुसुवर्ण वाले यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। भाद्रपद मास की अष्टमी के दिन 'त्र्यम्बक' नामक शिव की आराधना और रात्रि में बिल्वपत्र के प्राशन करने से अन्न दीक्षा के फल प्राप्त होते हैं। आश्विन में 'भव' नामक शिव की पूजा तथा तण्डुलोदक के प्राशन करने से पुण्डरीक यज्ञ के सौ गुने फल प्राप्त होते हैं।११-१७। कार्तिक मास में 'रुद्र' नामक शिव की अर्चना और दधि के प्राशन करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर वर्ष के अन्त में शिव भक्त ब्राह्मणों को मधु एवं घी परिपूर्ण पायस

शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥१९
सतिलाः कृष्णकलशा भक्ष्यभोज्येन संयुताः । द्वादशात्र प्रदातव्याश्छत्रोपानद्युगान्विताः ॥
निवेदयीत रुद्राणां गां च कृष्णां पयस्विनीम् ॥२०
वर्षमेकं चरेदेवं नैरन्तर्य्येण यो नरः । कृष्णाष्टमीव्रतं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२१
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः । मोदते भूपवन्नित्यं मर्त्यलोके शतं समाः ॥२२
अनेन विधिना देवाः सर्वे देवत्वमागताः । देवी देवीत्वमापन्ना गुहः स्कन्दत्वमागतः ॥२३
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमागतः । इन्द्रश्च देवराजत्वं गाणपत्यं गणो गतः ॥२४
नारी वा पुरुषो वापि कृत्वा[1] कृष्णाष्टमीव्रतम् । अखण्डितं महाराज पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥२५
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः । रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्हंससारससंयुतैः ॥२६
नृत्यवादित्रसंयुक्तैरुत्कृष्टध्वनिनादितैः । दोधूयमानश्चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥२७
त्रिनेत्रः शूलपाणिश्च शिवैश्वर्यसमन्वितः । आस्ते शिवपुरे तावद्यावत्कल्पेषु चाष्टकम् ॥२८
इत्येतत्ते समाख्यातं पार्थ कृष्णाष्टमीव्रतम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो[2] मुच्यते नात्र संशयः ॥२९

कृष्णाष्टमीव्रतमिदं शिवभावितात्मा सत्याशनैरुदितनामयुतैरुपोष्य ।
कृष्णान्ददाति कलशान्सतिलान्नयुक्तान्योसौ प्रयाति पदमुत्तममिन्दुमौलेः ॥३०

इति श्रीभविष्येमहापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कृष्णाष्टमीव्रतवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७

से संतृप्त कर यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र, तिल समेत बारह कृष्ण कलश, अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ, छत्र, उपानह पयस्विनी कृष्णा गौ सादर समर्पित करना चाहिए । इस प्रकार एक वर्ष तक निरन्तर भक्तिपूर्वक कृष्णाष्टमी के व्रत सुसम्पन्न करने से जिस फल की प्राप्ति होती है मैं वह कह रहा हूँ, सुनो ! समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त ऐश्वर्य समेत इस भूतल पर राजा की भाँति सौ वर्ष तक सुखोपभोग करता है । इस विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न कर देवी देवों ने देवत्व, गुहस्कन्द, ब्रह्मा ब्रह्मत्व और मैंने विष्णुत्व प्राप्त किया है । उसी भाँति इन्द्र ने देवराजत्व और गण ने गणपतित्व की प्राप्ति की है । महाराज् ! इस कृष्णाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने पर नारी अथवा पुरुष को अखण्ड पुण्य प्राप्त होता है, अनन्तर यथेच्छ सुखोपभोग से पूर्ण एवं कोटि सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर बैठकर जो रुद्र कन्याओं से आच्छन्न तथा हंस सारस से संयुक्त तथा नृत्य-गान की उत्कृष्ट ध्वनि से निनादित रहता है, शिवलोक की प्राप्ति करता है । सुर असुर चामर डुलाते हुए उसकी वन्दना करते हैं । शिव के समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर शूलपाणि एवं त्रिनेत्र शिव की भाँति सुखोपभोग करते हुए आठ कल्प तक वहाँ निवास करता है । पार्थ ! इस प्रकार मैंने कृष्णाष्टमी व्रत का विधान तुम्हें बता दिया, जिसके श्रवण करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं । कल्याण मूर्ति इस कृष्णाष्टमी को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करते हुए वर्षान्त में तिल और पूर्ण बारह कलशों को प्रदान करने वाला मनुष्य चन्द्रशेखर का उत्तम पद प्राप्त करता है ।१८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-सम्वाद में
कृष्णाष्टमी व्रत वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

---

१. वृद्धः । २. पार्थ पापस्य ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अनघाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा अत्रिर्नाम महानृषिः । तस्य पत्नी महाभाग अनसूया पतिव्रता ॥१
तयोः कालेन महता जातः पुत्रो महातपाः । दत्तो नाम महायोगी विष्णोरंशो महीतले ॥२
द्वितीयो नाम लोकेऽस्मिन्ननघश्चेति विश्रुतः । तस्य भार्या नदी नाम बभूव सहचारिणी ॥३
अष्टपुत्रा जीववत्सा सर्वब्राह्मगुणैर्वृता । अनयोर्विष्णुरूपेण लक्ष्मीश्चैवनदी स्मृता ॥४
एवं तस्य सभार्यस्य योगाभ्यासरतस्य वा । आजग्मुः शरणं देवाः शुम्भदैत्येन पीडिताः ॥५
ब्रह्मलब्धप्रसादेन द्रुतं गत्वामरावतीम् । संरुद्धां जम्भदैत्येन दिव्यवर्षशतं नृप ॥६
दैत्यदानवसंयोगे पातालादेत्य भारत । तस्य सैन्यमसंख्येयं दैत्यदानवराक्षसैः ॥७
तेन निर्णाशिता देवाः सेंद्रचन्द्रमरुद्गणाः । त्याजिताः स्वानि धिष्ण्यानि त्यक्त्वा जग्मुर्दिशो दश ॥८
अग्रतः प्रलयं यांतः सेन्द्रा देवा भयार्दिताः । पृष्ठतोनुव्रजन्ति स्म दैत्या जम्भपुरःसराः ॥९
युध्यन्तः शरसन्धानैर्गदामुसलमुद्गरैः । नर्दन्तो वृषभारूढाः केचिन्महिषवाहनाः ॥१०
शरभैर्गंडकैर्व्याघ्रैर्वानरै रभसैर्द्रुताः । मुञ्चन्तो यान्ति पाषाणाञ्छतघ्नीस्तोमराञ्छरान् ॥११

अध्याय ५८

अनघाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग ! ब्रह्मा के पुत्र अत्रि की जो महातेजस्वी एवं महान् ऋषि थे, पतिव्रता पत्नी का नाम अनसूया था । बहुत दिनों के व्यतीत होने पर दोनों के संयोग से 'दत्त' नामक महातेजस्वी एक पुत्र दत्त, जो विष्णु का अंश एवं महायोगी था । उसी समय में एक अनघ नामक परम तपस्वी ऋषि थे, उनकी सहचारिणी का नाम नदी, जो आठ पुत्रों से संयुक्त, जीवित पुत्रिका, एवं ब्राह्मण गुणों से युक्त थी । अनघ विष्णुरूप और नदी लक्ष्मी रूप थी । पत्नी समेत योगाभ्यास करते हुए उन ऋषि की शरण में प्राप्त होकर शुम्भ दैत्य से पीड़ित देवों ने उनकी प्रार्थना की थी । नृप ! ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर दैत्य ने शीघ्र अमरावती को प्रस्थान कर उसे चारों ओर से घेर लिया और दिव्य सौ वर्ष तक वहाँ का सुखोपभोग करता रहा । भारत ! उसकी दैत्य, दानव एवं राक्षसों की असंख्य सेनाएँ स्वर्ग में पहुँच कर इन्द्र चन्द्र एवं मरुद्गण आदि देवों को अपने शस्त्राघातों से जर्जरित कर पराजित किया, पश्चात् देवों ने भी अपने स्थानों को त्याग कर इधर-उधर पलायन करना आरम्भ किया आगे जाने पर राक्षसों द्वारा विनष्ट हो जाने पर भय से इन्द्रादि देवों के इधर उधर भागने पर उनके पीछे जम्भादि राक्षसों ने भी धावा किया ।१-९। उस तुमुल संग्राम में शर, गदा, मुशल, एवं मुद्गर आदि शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित वे दैत्यगण, जो नर्दमान वृषभ, महिष, क्षरभ, गैंडा, व्याघ्र एवं वानरों पर बैठे हुए वेग से शत्रुओं पर आघात कर रहे थे, तथा पाषाणों और गोलियों की वर्षा देवों का पीछा करते हुए विन्ध्यगिरि के समीप पहुँच

यावद्विन्ध्यगिरिं प्राप्तास्तत्तस्याश्रममण्डलम् । अनघश्चानदी चैव दाम्पत्यं यत्र तिष्ठति ।।१२
तयोः समीपं सम्प्राप्तास्ते नराः शरणार्थिनः । अनघोऽपि च तान्देवाँल्लीलयैव सवासवान् ।।१३
अभ्यन्तरे प्रविश्याथ तिष्ठध्वं विगतज्वराः । तथेति नाम ते कृत्वा सर्वे तुष्टिं समास्थिताः ।।१४
दैत्या अपि द्रुतं प्राप्ता घ्नंतः प्रहरणैररीन् । इत्यूचुरुल्बणा घोरा गृह्णीध्वं ब्राह्मणीं मुनेः ।।१५
द्रुतं द्रुमानाक्षिपध्वं पुष्पोपगफलोपगान् । अथारोप्यानघं मूर्ध्नि दैत्या जग्मुस्तदाश्रमान् ।।१६
तत्क्षणाच्चापि दैत्यानां श्रीर्बभूव शिरोगता । दत्तकेनापि ते दृष्टा नष्टा ध्यानाग्निना क्षणात् ।।
निस्तेजसो बभूवुर्हि निःश्रीका मदपण्डिताः ।।१७
देवैरपि गृहीतास्ते दैत्याश्च हरणे रणे । रुदन्तो निस्तनन्तश्च निश्चेष्टा ब्रह्मकण्टकाः ।।१८
ऋष्टिभिः करणैः शूलैस्त्रिशूलैः परिघैर्घनैः । एवं ते प्रलयं जग्मुस्तत्प्रभावान्मुनेस्तदा ।।१९
असुरा देवशस्त्रौघैर्जिता इन्द्रेण घातिताः । देवा अपि स्वराष्ट्रेषु तस्थुः सर्वे यथा पुरा ।।
सुरैरपि मुनेस्तस्य देवर्षेर्महिमाऽभवत् ।।२०
ततः स सर्वलोकानां भवाय सततोत्थितः । कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरत् ।।२१
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महातपाः । ब्रह्मोत्तरं नाम तपस्तेपे सुविनयतव्रतः ।।२२
नेत्रे ह्यनिमिषे कृत्वा भ्रुवोर्मध्ये विलोकयन् । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ।।२३
तथोर्द्धरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य हि । योगाभ्यासप्रयत्नस्य माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।।२४

गये । देवों ने उस जंगल में उस आश्रम में पहुँच कर जहाँ अनघ और नदी का दाम्पत्य जीवन योगाभ्यास में सदैव तन्मय रहा करता था, उनसे शरण की याचना की । उसे सुनकर अनघ ने भी इन्द्र समेत उन देवों को (गिरि गह्वर के) अभ्यन्तर में सुरक्षित रखकर उनसे कहा—शान्त एवं सुखमय जीवन व्यतीत करो । देवगण भी उसे स्वीकार कर वहीं अत्यन्त सन्तुष्ट रहने लगे । अपने आघातों से शत्रुओं को पीड़ित करते हुए दैत्यों ने भी वहाँ पहुँच कर कठोर एवं विषमय वाणी का प्रयोग किया 'मुनि की इस ब्राह्मणी को पकड़ कर ले चलो' और पुष्प फल समेत इन वृक्षों को उखाड़ कर इन्हें आच्छन्न कर दो । अनन्तर दैत्यों ने अनघ महर्षि के शिर पर वृक्ष समूहों को प्रक्षिप्त कर अपने स्थान को प्रस्थान किया, उसी समय दैत्यों की श्री उनके शिरोमणि से निकली और उसी क्षण दत्तक के देखने एवं ध्यान करने पर अग्नि में भस्म होकर समूल नष्ट हो गई । पश्चात् श्रीहीन उन मूर्ख दैत्यों को देवों ने पकड़ कर अपने ऋष्टि, करुण, शूल, त्रिशूल, परिध एवं घन आदि के आघातों द्वारा मुनि के प्रभाव से उन्हें समूल नष्ट कर दिया, जो उस समय रोदन एवं करुणक्रन्दन करते हुए निश्चेष्ट हो रहे थे । इस प्रकार इन्द्र आदि देवों के शस्त्रास्त्र आघातों द्वारा दैत्यों के समूल नष्ट होने पर देवगण अपने अपने राष्ट्रों में पहले की भाँति सिंहासनासीन होकर सुखोपभोग करने लगे । देवों के निमित्त देवर्षि मुनि की इस प्रकार की महिमा जागरुक होने पर समस्त लोकों के कल्याणार्थ उन्होंने मन वाणी और शरीर द्वारा कार्य करना आरम्भ किया--काष्ठ एवं पत्थर शिलाओं के समान अचल होकर उस महातपस्वी ने संयम पूर्वक ऊर्ध्व बाहु होकर ब्रह्मोत्तर नामक तप करना आरम्भ किया ।१०-२२। अपने अपलक दोनों नेत्रों से भ्रू के मध्य में देखते हुए उन्होंने दिव्य तीन सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की । उर्ध्व बाहु होकर एकाग्र दृष्टि से ध्यान पूर्वक योगाभ्यास में महर्षि के तन्मय

एकाह्नाद्रुतमभ्येत्य कार्तवीर्यार्जुनो नृपः । शुश्रूषा विनयं चक्रे दिवारात्रमतन्द्रितः ॥२५
गात्रसम्वाहनं पूजां मनसा चिन्तितं तथा । सम्पूर्णे नियमे वृत्ते दृढतुष्ट्या समन्वितः ॥२६
तस्मै ददौ वरान्पुष्टांश्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे प्रथमं वरम् ॥२७
अधर्माद्धीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् । धर्मेण पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥२८
संग्रामान्सुबहूञ्जित्वा हत्वा वीरान्सहस्रशः । सङ्ग्रामे युध्यमानस्य वधो मे स्याद्धरेः करात् ॥२९
तेन दत्तेन लोकेऽस्मिन्दत्तं राज्य महीतले । कार्तवीर्याय कौंतेय योगाभ्यासः सविस्तरः ॥
चक्रवर्तिपदं चैव अष्टसिद्धिसमन्वितम् ॥३०
तेनापि पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपर्वता । ससमुद्राकरवती धर्मेण विधिना जिता ॥३१
तस्य बाहुसहस्रं तु प्रभावात्किल धीमतः । यागाद्रथो ध्वजश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥३२
दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु । निरर्गलानि वृत्तानि स्वयं वै तस्य पाण्डव ॥३३
सर्वे यज्ञा महाबाहो प्रसन्ना भूरिदक्षिणाः । सर्वे काञ्चनवेदिक्याः सर्वे यूपैश्च काञ्चनैः ॥३४
सर्वदेवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलङ्कृताः । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥३५
तस्य यज्ञे जगुर्गाथां गन्धर्वा नारदस्तथा । चरितं राजसिंहस्य महिमानं निरीक्ष्य ते ॥३६
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥३७
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गचर्मशरासनी । व्यचरच्छ्येनवद्यो वै दूरादारादवैक्षत ॥३८

होने पर महिष्मति का अधीश्वर सहस्रबाहु ने एक ही दिन में वहाँ पहुँच कर अनुनय विनय समेत उनकी सेवा में रात-दिन तत्पर रहने लगा। वह उन्हीं महर्षि की पूजा, एवं ध्यान करते हुए उनकी वाद संवाहन (हाथ पैर दाबना) आदि शारीरिक शुश्रुषा भी करने लगा। इस प्रकार सम्पूर्ण नियम के सुसम्पन्न होने पर प्रसन्न होकर उन्होंने इसे चार वरदान प्रदान किया सहस्रबाहु होने का पहला, अधार्मिक अध्ययन का सज्जनों द्वारा निराकरण दूसरा, धर्म द्वारा पृथिवी को प्राप्त कर धर्म द्वारा उसका पालन करना तीसरा और अनेक संग्रामों में अनेक वीरों के धराशायी होने पर रणस्थल में ही भगवान् के हाथों द्वारा अपना निधन रूप चौथा वरदान प्राप्त कर इस महीतल पर उस दुष्ट ने समस्त राज्य उन्हें प्रदान किया और कौंतेय ! (महर्षि ने) योगाभ्यास के विस्तार पूर्वक अष्टसिद्धि समेत उस चक्रवर्ती पद की प्राप्ति की। सहस्रबाहु ने भी समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवी को धर्म द्वारा अपने अधीन किया। पाण्डव ! प्रथम उस धीमान् के सहस्र बाहु उत्पन्न हुए और अनन्तर माया द्वारा यज्ञ से रथ और ध्वज निकला। सहस्रबाहु ने सातो द्वीपों में दशसहस्र यज्ञ को सविधान स्वयं सुसम्पन्न किया, महाबाहो ! जो उस समय विशाल संभार से सम्पन्न तथा जिसमें यथेच्छ दक्षिणा द्वारा सभी लोग अत्यन्त संतृप्त थे और उन यज्ञों की समस्त वेदियों तथा यूप (स्तम्भ) सुवर्ण निर्मित और सुवर्ण सुसज्जित थे। उस समय सभी देव गण अपने विमानों पर स्थित रहते हुए अलंकृत किये गये थे, अप्सराएँ नित्य गान करती थीं, तथा गन्धर्व नारदादि उसकी गाथा का गान कर रहे थे। पार्थिव ! इस भाँति उस राजसिंह की महामहिमा को देखकर यह निश्चय होता है कि वैसा करने पर तुम भी उस सहस्रबाहु के समान गति प्राप्त करोगे। उसने यज्ञ, दान, एवं तप आदि के क्रम से तथा विक्रम और वेदों के द्वारा सातों द्वीपों समेत इस पृथिवी पर खड्ग, चर्म, धनुषबाण, धारणकर चारों ओर निःशङ्क विचरण करैं रहा था।२३-३८। वह दूर और समीप सभी

अनष्टद्रव्यता चास्य न शोको न च वैक्लमः । प्रभावेण महीराजोरक्षद्धर्मेण च प्रजाः ।।३९
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां दै नराधिप । समुद्रवसनायां स चक्रवर्ती बभूव ह ।।४०
स एव पशुपालोभूत्क्षेत्रपालः स एव च । स एवं वृष्ट्यां पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ।।४१
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा । वाति रश्मिसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ।।४२
स हि नागमनुष्यैस्तु माहिष्मत्यां महाद्युतिः । कर्कोटाहेः सुताञ्जित्वा पुरि तत्र न्यवेशयत् ।।४३
स वै पत्नीं समुद्रस्य प्रावृट्कालेम्बुजेक्षणाम् । क्रीडते च मदोन्मत्तः प्रतिस्रोतश्चकार ह ।।४४
ललितं क्रीडता तेन फलनिष्पन्दमालिनी । ऊर्मीभ्रुकुटिमत्येवं शंकितास्येति नर्मदा ।।४५
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ । भवन्त्यालीनानिश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ।।४६
तूर्णीकृतो महाभाग लीनाहीनमहामतिः । चकारोत्तुङ्गक्षुब्धोर्मिं दोःसहस्रेण सागरम् ।।४७
क्रान्ता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुश्च महोरगाः । सायाह्ने कदलीखण्डान्निर्घातनिहता इव ।।
जिता धनुर्धराः सर्वे सुत्यैतैः पञ्चभिः शरैः ४८
लङ्काधिपं मोहयित्वा सबलं रावणं बलात् । निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध च ।।४९
ततोभ्येत्य पुलस्त्यस्तु अर्जुनं सम्प्रसादयन् । मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पौलस्त्येनानुगामिना ।।
तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ।।५०
क्षुधितेन कदाचित्स प्रार्थितश्चित्रभानुना । सप्तद्वीपां चित्रभानोः प्रादाद्भिक्षां महीमिमाम् ।।५१

स्थानों में दिखायी देता था । उसकी सम्पत्ति कभी क्षीण नहीं हुई और न कभी शोक चिंता । नराधिप ! इस प्रकार उसने धार्मिक उपायों द्वारा प्रजाओं की रक्षा करते हुए पचासी सहस्र वर्ष तक इस समुद्र पर्यन्त समस्त पृथ्वी का चक्रवर्ती पद सुशोभित किया, तथा वही पशुपाल और क्षेत्रपाल भी हुआ था वर्षा के लिए मेघ एवं योग द्वारा अर्जुन भी हुआ ! उसने अपने उन सहस्र बाहुओं द्वारा, जो धनुष प्रत्यंचा के संघर्ष से अत्यन्त कठोर हो गये थे । विस्तृत ख्याति प्राप्त कर महासागर को भी क्षुब्ध कर दिया था ।३९-४२। एक बार उस महातेजस्वी ने कर्कोटक नामक सर्पाधीश्वर की पुत्री को विजय रूप में प्राप्त कर अपनी महिष्मती पुरी में लाया और वर्षा ऋतु में उस कमलनयनी प्रेयसी के साथ समुद्र में क्रीडा करते हुए दूसरी नदी का निर्माण ही कर दिया । वह सदोन्मत्त होकर बहुधा नर्मदा में क्रीडा करता था, इसीलिए क्रीड़ा करते समय अत्यन्त प्रसन्न रहने पर भी तरङ्ग शून्य होकर नर्मदा सदैव सशंकित रहती थी । उसके सहस्रबाहुओं द्वारा समुद्र के क्षुब्ध होने पर पाताल निवासी असुर गण मौन होकर दीन हीन रहने लगे तथा दो सहस्र बाहुओं से सागर को विचलित करते देख कर अत्यन्त विषधर सर्पराज शेष उसके आक्रमण करने पर भी सर्वथा अपने शिर को निश्चल रखते थे और सायंकालीन कदली खण्ड की भाँति अपने को निहत भी समझते थे । उसने अपने तीक्ष्ण पाँच बाणों द्वारा लंकाधीश्वर रावण को बलात् मोहित कर पकड़ कर अपने अधीन किया और महिष्मती में लाकर बाँध दिया ।४३-४९। अनन्तर पुलस्य ने वहाँ जाकर उसे (सहस्रार्जुन को) प्रसन्न कर अपने पौत्र (रावण) को मुक्त कराया । एक बार उसकी बाहु प्रत्यंचा के आघात से टकराकर महान् शब्द हुआ था और एक समय क्षुधा पीड़ित चित्रभानु के याचना करने पर उसने सातों द्वीप समेत इस पृथ्वी को भिक्षा रूप में उन्हें दान दिया था जो वहाँ कुण्ड में शयन करने वाले

कुण्डेशयस्ततोऽद्यापि दृश्यते भगवान्हरिः । निम्बादित्यश्च प्रत्यक्षो जाग्रत्संस्तस्य वेश्मनि ।।
बभूव दुहितुर्हेतोः शरदोऽद्यापि तिष्ठति ।।५२
स एवं गुणसंयुक्तो राजाभूदर्जुनो भुवि । अनघस्य प्रसादेन योगाचार्यस्य पांडव ।।५३
तेनेयं वरलब्धेन कार्तवीर्येण योगिना । प्रवर्तिता मर्त्यलोके प्रसिद्धा ह्यनघाष्टमी ।।५४
अघं पापं स्मृतं लोके तच्चापि त्रिविधं भवेत् । यस्मादघं नाशयति तेनासावनघा स्मृता ।।५५
तस्याष्टगुणमैश्वर्यं विनोदार्थं विभाव्यते । अणिमा महिमा प्राप्तिः प्राकाम्ये लघिमा तथा ।।५६
ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसायिता । इत्यष्टौ योगसिद्धस्य सिद्धयो मोक्षलक्षणाः ।।५७
समुत्पन्ना दत्तकस्य लोके प्रत्ययकारकाः । यात्रासमाप्तौ संगृह्य यदघानि तथैव वा ।।५८
जगत्समस्तमनघं कुर्यादस्मादतोऽनघा । मदंशो मद्गतप्राणो लोकेस्मिन्नृतको[1] द्विजः ।।५९

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं पुण्डरीकाक्ष स वै राजार्जुनो व्रतम् । चक्रे वा त्रिषु लोकेषु कैर्मन्त्रैः समयैश्चकैः ।।
कस्मिन्काले तिथौ कस्यामेतन्मे वद केशव ।६०

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे दम्पती दर्भनिर्मितौ । अनघं चानघां चैव बहुपुत्रैः समन्विताम् ।।६१

भगवान् आज भी दिखायी देते हैं । निम्बादित्य भी उसके घर में पुत्री के निमित्त प्रत्यक्ष होकर आज भी शरद रूप में वर्तमान है । पाण्डव ! इस प्रकार अनघ महर्षि की असीम अनुकम्पा द्वारा वह राजा समस्त भूतल में सर्वगुण सम्पन्न राजा हुआ । और उनके द्वारा वरदान प्राप्त सहस्रार्जुन इस मर्त्यलोक में इस अनघाष्टमी का प्रचार किया है । अघ नाम पाप का बताया गया है, जो लोक में तीन भाँति का होता है । तथा उस अघ को नष्ट करने वाले को अनघ कहा जाता है । उसके विनोदार्थ आठ गण समेत यह ऐश्वर्य सदैव वहाँ वर्तमान रहता था—अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा । प्रभुत्व, वशित्व और समस्त कामनाओं को सफल करने वाली यही आठ योग सिद्धियाँ बतायी गयी हैं, जो मोक्ष लक्षण सम्पन्न हैं । लोक के दृढ़ ज्ञानार्थ ये सिद्धियाँ दत्तक के लिए प्रत्यक्ष हुई थी, यात्रा की समाप्ति में जिसका संग्रहण भी उन्होंने किया था । समस्त जगत् को पाप मुक्त करने के नाते उस ब्राह्मण का नाम अनघ और इस अष्टमी का अनघा नाम हुआ है, जो ब्राह्मण मेरे अंश, मेरे लिए सदैव चिन्तन करने वाला एवं इस लोक में प्रख्यात वृत्तक है ।५०-५९

युधिष्ठिर ने कहा—पुण्डरीकाक्ष ! उस राजा ने इस व्रत को किस भाँति, किस समय एवं किस मंत्र के उच्चारण द्वारा सुसम्पन्न करते हुए तीनों लोकों मे प्रख्यात किया है, और केशव ! उसकी तिथि भी बताने की कृपा करें ।६०

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन कुश की निर्मित प्रतिमा अनघ

---

१. वृत्तकः ।

पुरा कृतीकृतौ शान्तौ भूमिभागे स्थितौ शुभौ । स्नात्वैवमर्चयेत्पुष्पैः ससुगन्धैर्युधिष्ठिर ।।६२
ऋग्वेदोक्तऋचा विप्रो विष्णुं ध्यात्वा ममांशजम् । अनघं वासुदेवेनानघां लक्ष्मीं व्रजां तनुम् ।।
प्रद्युम्नादिपुत्रवर्गं हरिवंशे यथोदितम् ।।६३
"ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ।
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूळ्हमस्यपांसुरे त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् । विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम्" ।।
लोकोद्भवैः फलैः कन्दैः शृङ्गारैर्बदरैः शुभैः । दितैश्च धान्यैः पुष्पैश्च गन्धधूपैः सदीपकैः ।।६४
यः पूजयेद्भक्तियुक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो द्विजान्भोजयेच्च सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।।६५
व्रतावसाने गृह्णीयात्कश्चिदेको नरो व्रतम् । तेषां मध्ये दृढाश्चक्रुरनघव्रतपारगाः ।।६६
इदं जीवनघाती चेतसत्यं तु समयोषितम् । वर्षमेकं ततः स्वेच्छा इदं तवानघव्रतम् ।।६७
तत्रोपेक्षणकं कार्यं नटनर्तकगायकैः । प्रभाते तु नवम्यां तं तोयमध्ये विसर्जयेत् ।।६८
एवं यः कुरुते यात्रां वर्षेवर्षे च हर्षितः । भक्तियुक्तः श्रद्धया च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६९
कुटुम्बं वर्द्धते तस्य यस्य विष्णुः प्रसीदति । आरोग्यं सप्त जन्मानि ततो यान्ति परां गतिम् ।।७०

एतामघौघशमनामनघाष्टमीं च कौंतेय सम्प्रति मया कथितां हिताय ।
कुर्वंत्यनन्यमनसः स्वयशोभिवृद्धचै ऋद्धिं प्रयान्ति कृतवीर्यसुतानुरूपाम् ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अनघाष्टमीव्रतवर्णनं नामाष्टापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५८

की और अनेक पुत्रों समेत अनघा की सु भूमि भाग में स्थापित कर स्नान एवं सुगन्धित पुष्पों द्वारा अर्चना करने के उपरांत ब्राह्मण को विष्णु, मेरे अंश, अनघ, और वासुदेव की अनघा रूप धारिणी लक्ष्मी तथा हरिवंश में बताये गये के अनुसार प्रद्युम्नादि पुत्रों के ध्यान ऋग्वेदोक्त ऋचाओं द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। सामयिक फल, कन्द, शृंगार, बरे, धन, धान्य, पुष्प, गंध, धूप दीप द्वारा भक्ति पूर्वक जो उनकी पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होता है। अनन्तर सत्दृत, सम्बन्ध एवं बन्धु वर्गों समेत ब्राह्मण भोजन कराये। व्रत की समाप्ति में कुटुम्ब के किसी एक पुरुष को यह व्रत अपनाना चाहिए और उनके बीच किसी अनघ व्रत मर्मज्ञ को इस प्रकार सान्त्वना देना चाहिए कि यह व्रत जीवनघाती नहीं अपितु जीवन को सर्वथा परमोन्नत करने वाला है क्योंकि मैंने एक वर्ष तक इस तुम्हारे अनघ व्रत को यथेच्छ पालन किया, अनन्तर नट नर्तक एवं गायकों द्वारा अनुरञ्जित समाज द्वारा नवमी के प्रातः काल किसी जलाशय में उसका विसर्जन करे। इस प्रकार हर्ष पूर्ण श्रद्धा भक्ति समेत प्रति वर्ष इसकी यात्रा (क्रिया) सुसम्पन्न करने वाले का समस्त पाप विनष्ट होता है और विष्णु के प्रसन्न होने पर सात जन्म तक कुटुम्ब वृद्धि, आरोग्य एवं शेष सुखोपभोग के उपरांत उत्तम गति होती है। कौंतेय ! पापसमूह नाशिनी इस अष्टमी की व्याख्या मैं तुम्हें सुना दी, इसे सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की यशोऽभिवृद्धि पूर्वक सहस्रार्जुन की भाँति ऋद्धि प्राप्त होती है।६१-७१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
अनघाष्टमी व्रत वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।५८।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः
सोमाष्टमीव्रतवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि व्रतं श्रेयस्करं परम् । शिवलोकप्रदं पुण्यं विधिवन्मे निबोधताम् ।।१
वारे सोमे सिताष्टम्यां पक्षे सोमं समर्चयेत् । विधिना चन्द्रचूडालं प्राप्यमेतत्स चन्द्रकम् ।।२
दक्षिणार्धे हरिं ध्यात्वा मध्ये तु परितः प्रभुम् । पञ्चामृतादिना देवं स्थापयित्वा यतव्रती ।।३
चन्दनेनेन्दुयुक्तेन दक्षिणार्धं विलेपयेत् । हरभागं नीलरक्तं शिवस्योपरि मौक्तिकम् ।।४
पश्चात्पुष्पैः समभ्यर्च्य सितै रक्तैरनुत्तमैः । नीराजनं पुनः कुर्यात्पञ्चविंशतिदीपकैः ।।
अथ[1] सिद्धैः शुभैर्भक्ष्यैर्नैवेद्यं विनिवेदयेत् ।।५
एवंकृतोपवासस्तु प्रभाते पूर्ववच्छिवम् । सम्पूज्याज्यं तिलैर्मिश्रं जुहुयाज्जातवेदसि ।।६
व्रतिनो ब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयित्वा विधानतः । मिथुनानि तु सम्भोज्य यथाशक्त्यनुपूजयेत् ।।७
आवर्त्य पितरावर्च्य विधिना तेन सुव्रत । सम्वत्सरान्ते कर्तव्यं यत्तत्सर्वं निबोध मे ।।८
प्रागुक्तविधिना पूज्या सितपीतयुगद्वयम् । दद्याद्वितानकं चैव पताकां घटकीं तथा ।।९
धूपगन्धारसी चापि दीपवृक्षं सुशोभनम् । एवमादीनि योज्यानि पूर्ववद्भोज्यमाचरेत् ।।१०

अध्याय ५९
सोमाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक परम श्रेयस्कर व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर पुण्य शिवलोक की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो ! शुक्ल पक्ष की अष्टमी में सोमवार के दिन चन्द्रमा तथा चन्द्र चूड शिव की सविधान अर्चना करनी चाहिए चन्द्रमा समेत सुसज्जित उनकी प्रतिमा में दक्षिणार्ध में हरि और मध्य में चारों ओर प्रभु के ध्यान पूर्वक स्थापना एवं पञ्चामृत आदि द्वारा स्नान के उपरान्त उस यतवृती को उसके दक्षिणार्ध भाग को चन्दन और नीलरक्त शिवभाग को मोतियों से सुशोभित करना चाहिए। पश्चात् श्वेत, रक्त वर्ण वाले परमोत्तम पुष्पों द्वारा पूजन और पच्चीस दीपक (पृथक् पृथक वत्तियों) द्वारा नीराजन (आरती) करके पापवरणार्थ शुभ एवं मधुर भक्ष्य अर्पित करे। इस प्रकार उपवास पूर्वक रात्रि व्यतीत होने के अनन्तर प्रातः काल में पूर्ववत् शिव की अर्चना करके प्रज्वलित अग्नि में घी तिल की आहुति प्रदान कर व्रती ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करे। सुव्रत् ! ब्राह्मण दम्पत्ती को यथाशक्ति आभूषण वस्त्र एवं भोजन से तृप्त कर शिव शिवा की पुनः पूजा कर उसकी समाप्ति करनी चाहिए।१-८। वर्ष के अन्त में व्रत की समाप्ति के दिन सुसम्पन्न किये जाने वाले कर्मों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पूर्वोक्त विधान द्वारा पूजनोपरांत श्वेत और पीत वर्ण के वितान (चंदोवा), पताका, घंटा, धूप, गंध, रस, और दीप वृक्षों से उन्हें सुशोभित कर पूर्व की

---

१. अद्यसिद्धयै।

चतुरस्त्रं त्रिकोणं च मण्डलं कारयेत्ततः । त्रिकोणे पार्वतीं ध्यायेच्चतुरस्त्रे महेश्वरम् ।।११
सङ्कल्प्य द्विजदाम्पत्यं वासोभिर्भूषणैस्तथा । पूजयित्वा यथाशक्त्या कुर्यान्नीराजनं शुभैः ।।
दीपकैः पञ्चविंशद्भिर्भोजयित्वा विसर्जयेत् ।।१२
अब्दपञ्चकमेकं वा एवं यः कुरुते नरः । उभाभ्यां लोकमासाद्य पदं यास्यत्यनामयम् ।।१३
आ देहपतनाद्यस्तु नित्यमेतत्समाचरेत् । इहैव स हरिः साक्षान्नररूपो विभाव्यते ।।१४
न स्पृशन्त्यापदस्तस्य न दुःखी भवति क्वचित् । ज्वरग्रहादिभिर्नैव पीड्यतेऽसौ कदाचन ।।१५

श्रीकृष्ण उवाच

अथ वा तेन मार्गेण तामवेहि सिताष्टमीम् । सम्प्राप्यादित्ययोगेन प्राग्विधानेन चाभ्यसेत् ।।१६
किन्तु[1] दक्षिणतन्त्रस्थं भास्करं वार्चयेद्बुधः । पद्मरागेण दिव्येन सुवर्णेन च पार्वतीम् ।।१७
कुंकुमेन समालभ्य चन्दनेन शिवं तथा । अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत् ।।१८
रुद्रबीजं परं पूतं प्रियं रुद्रस्य सर्वदा । रक्तमाल्याम्बरधरं नैवेद्यं घृतपाचितम् ।।१९
शेषः पूर्वविधानेन कर्तव्यो विधिविस्तरः । तिथौ पूर्णे च कुर्वीत गव्येनानघ पारणम् ।।२०
एतत्प्राक्च विधायाब्दं पञ्चाब्दानेवमेव च । कृत्वा सूर्यादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्व्रजेत्परम् ।।२१
पतङ्गवत्प्रतापी स्यादहीनश्च जनप्रियः । अस्मिन्रोगो न बाधेत धनवान्पुत्रवान्भवेत् ।।२२

भाँति भोजन आदि सभी कर्मों के उपरांत चौकोर और त्रिकोण मण्डल की स्थापना करते हुए त्रिकोण में पार्वती और चौकोर में महेश्वर का ध्यान पूजन, और द्विज दम्पत्ती को विविध भाँति के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एवं यथाशक्ति पूजन करके पचीस दीपों के नीराजन (आरती) तथा ब्राह्मण भोजन के अनन्तर विसर्जित करे । इस प्रकार पाँच अथवा एक ही वर्ष तक इस व्रत विधान के सुसम्पन्न करने पर दोनों लोक के सुखोपभोग करने के अनन्तर उत्तम पद की प्राप्ति होती है । इस व्रत को आजीवन सुसम्पन्न करने वाला पुरुष इस लोक में वह नर रूप में साक्षात विष्णु माना जाता है । उसे किसी प्रकार की आपत्ति या दुःख तथा ज्वर ग्रहादि पीड़ा कभी नहीं होती है ।९-१५

श्रीकृष्ण बोले—अथवा उसी प्रकार की शुक्लाष्टमी रविवार के दिन प्राप्त होने पर पूर्व विधान द्वारा उसकी (अष्टमी) निरंतर अर्चना करते हुए दक्षिण तन्त्रस्थ भास्कर की उपासना करे—पद्मराग अथवा दिव्य सुवर्ण द्वारा पार्वती को विभूषित कर कुंकुम द्वारा उन्हें और चन्दन से शिव को समलंकृत करना चाहिए । समस्त रत्नों के अभाव में सर्वत्र सुवर्ण का ही प्रयोग करना चाहिए । अत्यन्त पवित्र एवं प्रिय होने के नाते रुद्र बीज द्वारा शिव और रक्तमाला वस्त्र से उमा को सुसज्जित करके घृतप्लुत नैवेद्य से उन्हें सुतृप्त करे । अनघ ! शेष विधान पूर्व की भाँति सुसम्पन्न करते हुए तिथि के समाप्त होने पर गोघृत के पारण करना चाहिए । इस व्रत को एक वर्ष सुसम्पन्न करके पुनः पाँच वर्ष तक उसी भाँति सुसम्पन्न करने पर सूर्यादि लोकों में समस्त सुखोपभोग की प्राप्ति पूर्वक परम पद की प्राप्ति होती है।१६-२१। वह सूर्य की भाँति प्रतापी, अदीन, तथा जनप्रिय होता है, कभी रोग बाधा नहीं होती है । धन-पुत्र से सदैव परिपूर्ण रहता है। कुरुकुलोद्वह ! शुक्लपक्ष की अष्टमी सोम या रविबार के दिन आने पर उपवास पूर्वक उस

---

१. किं तु लक्षणनेत्रस्थम् ।

यद्यष्टमी भवति सोमयुता कदाचिदर्केण वा कुरुकुलोद्वह तामुपोष्य।
पूज्यो मया सह हरं हरिणांकचिह्नं भक्त्यायुषां पदमुपैति पदम् पुरारेः ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सोमाष्टमीव्रतवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।५९

अथ षष्टितमोऽध्यायः

श्रीवृक्षनवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

समुत्पन्नेषु रत्नेषु क्षीरोदमथने पुरा । दैत्यानां मोहनार्थाय योषिद्भूते जनार्दने ॥१
बिल्वे वृक्षे क्षणं श्रांता विश्रान्ता कमलालया । यामेवमिति वान्योन्यं युयुधुर्देवदानवाः ॥२
जिताः सर्वे पुरा पार्थ युद्धे कृष्णेन चक्रिणा । पातालं गमिता दैत्याः सश्रीकः स्वयमायशौ ॥३
श्रीः समावासिता यस्माच्छ्रीवृक्षस्तु ततः स्मृतः । तस्माद्भाद्रपदस्यैव शुक्लपक्षे कुरूत्तम ॥४
नवम्यामर्चयेद्भक्त्या ईषत्सूर्योदये नगम् । श्रीवृक्षं विविधैः पुष्पैरनग्निपाचितैः फलैः ॥५
तिलपिष्टान्नगोधूमैर्धूपगन्धस्रगम्बरैः । ईषद्भानुकराताम्रताम्रीकृतनभस्तले ॥६
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् । ततो भुञ्जीत मौनेन तैलक्षारविवर्जितः ॥

दिन मेरे साथ शिव और चन्द्रमा की भक्तिपूर्वक अर्चना करने से उसे मुरारि पद की प्राप्ति होती है ।२२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
सोमाष्टमी व्रत वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।५९।

अध्याय ६०

श्रीवृक्षनवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में क्षीर सागर के मंथन करने पर (१४) रत्नों का आविर्भाव हुआ, जिसके निमित्त दैत्यों को मोहित करने के लिए भगवान् जनार्दन ने (मोहिनी) स्त्री का रूप धारण किया। भ्रांत उस कमला (मोहिनी) ने विल्व वृक्ष के नीचे एक क्षण विश्राम किया। जिससे उसी समय उसे अपनाने के निमित्त उन मुग्ध देव-दानवों में महान् युद्ध आरम्भ हुआ। पार्थ ! चक्रधारी ! भी कृष्ण ने उन दैत्यों को पहले ही पराजित किया था, इसीलिए श्री समेत उनके वहाँ आने पर दैत्य गण पाताल चले गये।१-३। श्री के (उस क्षणिक) निवास करने के नाते उस वृक्ष को श्रीवृक्ष कहा जाने लगा। अतः कुरूत्तम ! भाद्रपद मास की शुक्ल नवमी के दिन सूर्योदय के समय भक्ति पूर्वक उस वृक्ष की अर्चना करनी चाहिए। राजेन्द्र ! अनेक भाँति के पुष्प, अनग्नि पाक फल, तिल-चूर्ण, गेहूँ-चूर्ण, धूप, गन्ध, माला एवं वस्त्र द्वारा प्रभातकालीन सूर्य के रक्तविम्ब से नभस्तल के रक्तिम होने के समय भी वृक्ष की सविधान अर्चना सुसम्पन्न कर ब्राह्मण भोजन के उपरांत वाणी संयम पूर्वक तैल-छार रहित भोजन करे जो अनग्नि

अनग्निपाकं भूपात्रे दधिपुष्पफलैः शुभम् ॥७
एवं यः कुरुते पार्थ श्रीवृक्षस्यार्चनं नरः । नारी वा दुःखशोकाभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ॥८
सप्तजन्मान्तरं यावत्सुखसौभाग्यसंयुता । श्रीमती फलिनी धन्या मर्त्यलोके महीयते ॥९
श्रीवृक्षमक्षतफलं वसितं नवम्यां नैवेद्यपुष्पफलवस्त्रविचित्रधान्यैः ।
पूज्यः प्रभातसमये पुरुषोत्तमेष्ट सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषाः पुरुषेन्द्रवन्द्याम् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
श्रीवृक्षनवमीव्रतवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।६०

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

ध्वजनवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महिषासुरे विनिहते भगवत्या महासुरैः । पूर्ववैरमनुस्मृत्य संग्रामा बहवः कृताः ॥१
नानारूपधरा देवी अवतीर्य पुनः पुनः । धर्मसंस्थापनार्थाय निजघ्ने दैत्यसत्तमान् ॥२

पाक फलों, पुष्पों, एवं दधि समेत भूपात्र पर सुसज्जित किया गया हो । पार्थ ! इस प्रकार वृक्ष की पूजा सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री शोक दुःख से मुक्त होती है, इसमें संदेह नहीं । सात जन्म तक वह श्रीमती सुख सौभाग्य संयुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि रूपी फल समेत इस मर्त्य लोक में अत्यन्त सम्मानित होती है । इस प्रकार नवमी के दिन प्रातः काल सूर्योदय के समय नैवेद्य, पुष्प, फल, वस्त्र, एवं अनेक प्रकार के धान्य द्वारा अक्षत फल वाले श्री वृक्ष की जो पुरुषोत्तम का परम प्रिय है, सविधान पूजन करने पर मनुष्यों को परम पद की प्राप्ति होती है ।४-१०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
श्रीवृक्षनवमी व्रत वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ।६०।

अध्याय ६१

ध्वजनवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भगवती जगदम्बिका द्वारा महिषासुर के निधन होने पर भी उसी वैर को स्मरण कर उन महान् असुरों ने अनेक बार संग्राम किया किन्तु देवी ने भी धर्म के संस्थापनार्थ अनेक भाँति के रूप धारण कर उन महान् असुर योद्धाओं का बार-बार हनन किया । तदुपरांत महिष पुत्र महाबली रक्तासुर

अथ रक्तासुरो नाम महिषस्य सुतो महान् । आसीत्तेन तपस्तप्तं वर्षाणां नियुतानि षट् ।।
तस्मै ददौ चतुर्वक्त्रो राज्यं त्रैलोक्यमण्डले ।।३
तेन लब्धं वरेणाथ मेलयित्वा दनोः सुतान् । प्रारब्धं सह शक्रेण युद्धं गत्वाऽमरावतीम् ।।४
तद्दृष्ट्वा दानवबलं सन्नद्धात्युद्धतध्वजम् । युयुधे दानवैः सार्द्धं सुरैः शक्रपुरस्सरैः ।।५
तत्र प्रावर्तत नदी शोणतौघतरङ्गिणी । खड्गमत्स्यगदाग्राहवसुनन्दककच्छपा ।।
वहन्ती पितृलोकाय सुरासुरभयानका ।।६
अथ रक्तासुरो रोषाद्युयुधे विबुधैः सह । ते हन्यमाना विबुधा रक्ताक्षेण महारणे ।।७
भ्रष्टाः स्वर्गं परित्यज्य त्यक्तप्रहरणा द्रुतम् । करच्छत्रां पुरीं प्राप्ता यत्रास्ते भववल्लभा ।।८
दुर्गा चामुण्डया सार्धं नवदुर्गासमन्विता । आद्या तावन्महालक्ष्मीर्नंदा क्षेमकरी तथा ।।९
शिवदूती महारुण्डा भ्रामरी चन्द्रमङ्गला । रेवती हरसिद्धिस्तु नवैताः परिकीर्तिताः ।।
एतासां ते स्तुतिं चक्रुस्त्रिदशाः प्रणताननाः ।।१०

अमरपतिमुकुटचुम्बितचरणाम्बुजसकलभुवनसुखजननी ।
जयति जगदीशवन्दिता सकलामलनिष्कला दुर्गा ।।११
विकृतनखदशनभूषणरुधिरवशाच्छुरितक्षतखड्गहस्ता ।
जयति नरमुण्डमुण्डितपिशित सुराहारकृच्चण्डी ।।१२

के साठ सहस्र वर्ष तक घोर तप करने पर चतुर्मुख ब्रह्मा ने इस त्रैलोक्य मण्डल में उसे पुनः राज्य प्रदान किया। वरदान प्राप्त कर उस राक्षस ने दनु वंशजों को प्रोत्साहन देकर अपने पक्ष में मिलाया और असंख्य सैनिकों समेत अमरावती में पहुँच कर इन्द्र के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया।१-४। दानवों की भीषण सेना देख कर देवों ने इन्द्र को आगे कर उन उद्धृत ध्वजा वाले दानवों के साथ घोर संग्राम किया, जिससे एक शोणित वाहिनी भीषण नदी उत्पन्न हो गयी तथा जिसमें गदा, ग्राह, वसु और नंदक (तलवार) कच्छप के समान भीषण रूप धारण कर उन देवों एवं असुरों को पितृ लोक के लिए आवाहित करते थे। अनन्तर देवों के साथ युद्ध करते हुए रक्तासुर के तीक्ष्ण प्रहारों द्वारा आहत होकर देवों ने शास्त्रास्त्रों के त्याग पूर्वक स्वर्ग पुरी का भी त्याग कर भववल्लभा (भवानी) की करच्छत्रा नामक पुरी को प्रस्थान किया। जहाँ चामुण्डा एवं अपने नवरूपों समेत श्री महादुर्गा जी आवास करती हैं—आद्या महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुण्डा, भ्रामरी, चन्द्र मङ्गला, रेवती और हरसिद्धि, उनके नाम बताये गये हैं। वहाँ पहुँच कर देवों ने विनम्र होकर उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।५-१०। ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों को सुख प्रदान करने वाली उस दुर्गा जी की जय हो, जिसके चरण कमल को सुरेश का मुकुट सदैव चुम्बन करता है, और जगदीश की वन्द्या, कलायुक्त, अमलच्छवि एवं निर्गुण रूप हैं। नरमुण्ड की माला एवं राक्षसों के मांस-रक्त के पान करने वाली चण्डी देवी की जय हो, जो भूषण रूप नख और दशनों के विकृत होने के नाते

प्रच्छादितशिखिगणोद्दलविकटजटाबद्धचन्द्रमणिशोभा ।
जयति दिगम्बरभूषा सिद्धवटेशा महालक्ष्मीः ।।१३
करकमलजनितशोभा पद्मासनबद्धपद्मवदना च ।
जयति कनण्डलुहस्ता नन्दा देवी नतार्तिहरा ।।१४
दिग्वसना विकृतमुखा फेत्कारोद्दामपूरितदिशौघा ।
जयति विकरालदेहा क्षेमङ्करी रौद्रभावस्था ।।१५
क्रोशितब्रह्माण्डोदरसुरवरमुखरहुंकृतनिनादा ।
जयति सदातिमिहस्ता शिवदूती प्रथमशिवशक्तिः ।।१६
मुक्ताट्टहासभैरवदुःसहतरचकितसकलदिक्चक्रा ।
जयति भुजगेन्द्रमणिशोभितकर्णा महातुण्डा ।।१७
पटुपटहमुरजमर्दलझल्लरिझङ्कारनर्तितावयवा ।
जयति मधुव्रतरूपा दैत्यहरी भ्रामरी देवी ।।१८
शान्ता प्रशान्तवदना सिंहवरा ध्यानयोगतन्निष्ठा ।
जयति चतुर्भुजदेहा चन्द्रकला चन्द्रमण्डला देवी ।।१९

पक्षपुटचंचुघातैः संचूर्णितविविधशत्रुसङ्घाता । जयति शितशूलहस्ता बहुरूपा रेवती भद्रा ।।२०

प्रवाहित रक्त की धारा वश क्षत अंगों में चमकने वाले खड्ग को धारण करती हैं । दिगम्बर वेष धारिणी, एवं सिद्धों की स्वामिनी महालक्ष्मी की जय हो, जो अपनी विकराल जटा में बाँधे हुए चन्द्रमणि की शोभा को मयूरों द्वारा आच्छादित करती हैं । कर में कमण्डलु लिए एवं प्रणत भक्तों की आर्तिहरिणी नन्दा देवी की जय हो, जो अपनी करकमल-जनित शोभा को कमलासन में आबद्ध सा किये एवं कमल मुखी परम सुन्दरी हैं । दिगम्बर वेश, विकृत मुख, अपनी रोष पूर्ण श्वास की ज्वाला से चारों दिशाओं को प्रज्वलित करने वाली, विकराल देह एवं रौद्रमास से स्थित रहने वाली क्षेमकरी देवी की जय हो ।११-१५। शिव की शिव दूती नामक उस आधा शक्ति की जय हो, जो इस ब्रह्माण्ड के उदर में क्रन्दन करने वाले देवेन्द्र की उस मुखरता को अपने हुंकार विवाद से नष्ट करती हैं । और अत्यन्त प्रमत्त होकर अपने हात में मत्स्य धारण करती है । भुजगेन्द्र से अपने कर्ण को आबद्ध करने वाली उस महातुण्डा देवी की जय हो । जो अपने भीषण एवं अत्यन्त दुःसह अट्टहास से सम्पूर्ण दिशाओं को चकित करती हैं । पटह, मुरज, मर्दल एवं झालरि वाद्यों के अलङ्कारों से सात शरीर के अंग को नचाने वाली, मधुव्रत रूप एवं दैत्य घातिनी भ्रामरी देवी की जय हो । चार भुजाओं से भूषित, चन्द्र कलाओं से पूर्ण उस चन्द्र मण्डल देवी की जय हो, जो शांत स्वभाव, अत्यन्त शान्त मुख, और परमोत्तम सिंह पर सुशोभित होकर योगियों की भाँति ध्यान मग्न रहती हैं । भद्र रूप धारिणी रेवती देवी की जय हो, जो अपने दोनों पक्षों और चोंच के

पर्यटति जगति हृष्टा पितृवननिलयेषु योगिनीसहिता ।
जगति हरसिद्धिनाम्नी हरसिद्धिर्वंदिता सिद्धैः ॥२१

इति नवदुर्गासंस्तवमनुपममार्याभिरपरराट् कृत्वा । इदमूचे सह देवैस्त्राह्यस्मान्सर्वभीतिभ्यः ॥२२
पुनः पुनः प्रणम्योचुर्भवानीं सिंहवाहिनीम् । अस्माकं भयभीतानां शरण्ये शरणं भव ॥२३
देवानां तद्वचः श्रुत्वा दत्त्वा तेभ्योऽभयं ततः । सिंहारूढा विनिर्गत्या दुर्गाभिः सहिता पुरा ॥२४
युयुधे दानवैस्सार्धं महासमरदुर्दिनम् । कुमारी विंशतिभुजा घनविद्युल्लतोपमा ॥२५
तेऽपि तत्रासुरा प्राप्ताः प्रचण्डा रुद्ररूपिणः । सर्वे लब्धवराः शूराः सुतप्ततपसस्तथा ॥२६
महाग्राहपराक्रान्ता दुष्टमायाविनष्टये । अब्राह्मण्याद्वृद्यमिषा नामतश्च निजोद्यतात् ॥२७
इन्द्रमारी असत्क्लेशः प्रलम्बो नरकः सुतः । कुष्ठः पुलोमा शरभः शम्बरो दुन्दुभिः खरः ॥२८
इल्वलो नमुचिर्भौमो वातापिर्धेनुकः कलिः । मायावृतौ बलौ बन्धुर्मधुकैटभकालजित् ॥२९
रहः प्रौंड्रादिदैत्येन्द्राः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः । कनगोभिर्जनाः सर्वे सन्नद्धाः स्वग्रतो ध्वजः ॥३०
रूपतो वर्णिताश्चैव ध्वजास्तेषां पृथक्पृथक् । प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥३१
काञ्चनाः काञ्चना पीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः । पताका विविधैर्वालैरुच्छ्रिता लक्षणान्विताः ॥३२

आघातों द्वारा अनेक शत्रु संघ का मर्दन करती हैं तथा तीक्ष्ण शूल हाथ में लिए अनके रूप धारण करती हैं ।१६-२०। उसी भाँति सिद्धों से सुसेवित हर सिद्धि देवी की जय हो, जो हर्ष मग्न होकर योगिनियों समेत अपने पिता हिमालय के वन निवेशों में स्वतन्त्र विचरण किया करती हैं । इस प्रकार आर्या छन्द वाली स्तुतियों द्वारा नवदुर्गा की स्तुति करने के उपरांत देवराज इन्द्र ने देवों के साथ यह भी कहा कि—समस्त भय से हम लोगों की रक्षा करो पश्चात् प्रणत होकर अनुनय विनय पूर्वक बार-बार उस सिंह वाहिनी भवानी से कहा—शरण्ये ! हम भय भीतों की शरण हो । सिंहारूढ होकर देवी ने अपनी विभूतियों समेत देवों को अभय दान प्रदान कर पुर से बाहर निकल कर दानवों के साथ महासमर आरम्भ किया । उस समय कुमारी रूप भगवती के बीस भुजा और स्वयं घन घमण्ड की विद्युल्लता की भाँति प्रकाशित हो रही थी ।२१-२५। समराङ्गण में दैत्य गण भी, जो शूर वीर, कठिन तप द्वारा वरदान प्राप्त कर प्रचण्ड एवं रुद्र रूप दिखायी देते थे, उन दुष्टों की माया के विनष्ट करने के लिए महाग्राह रूपी देवी द्वारा आक्रान्त होने पर जो इन्द्रमारी, अलत्क्लेश, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुंदुभि, खर, इल्वल, नमुचि, भौम, वातापि, धेनुक, कलि मायावी दोनों बन्धु मधु कैटभ और कालजित् एवं प्रौंड्रादि नामों से प्रख्यात थे, अपनी ध्वजाओं को आगे किये रण क्रीड़ा के लिए सन्नद्ध थे ।२६-३०। उन अशुद्ध आमिषभोजी राक्षसों के, जो सामग्री समेत उपस्थित थे, रूपों के वर्णन कर दिये गये, उनकी ध्वजाएँ भी पृथक्-पृथक् प्रज्वलित अग्नि की भाँति दिखायी देती थी । काञ्चनमय, काञ्चन-खचित, और काञ्चन की मालाओं से विभूषित वे पताकाएँ उन्नत लक्षणों से अंकित थी, जो नील, पीत, श्वेत-रक्त, और कृष्ण वर्ण की चौकोर

नील्यः पीताः सिता रक्ताः कृष्णाम्राः पञ्चवर्णकाः । तत्र पट्टपटीसौत्राः कृतबुद्‌बुदकर्बुराः ।।३३
पताकाकान्तिरनला नर्तक्य इव शोभनाः ।।३४
ततो हलहलारावं चक्रुस्ते दानवोत्तमाः । प्रास्फालयन्त पणवभेरीझर्झरगोमुखान् ।।
न्यवादयन्तानकान्ये शङ्खाडम्बरडिंडिमान् ।।३५
एवं ते समयुध्यन्त भवानीं दैत्यदानवाः । समाजघ्नुः शरैः शूलैः परिघैः शक्तितोमरैः ।।
कर्णकैरीषणैः कुन्तैः शतघ्नीकूटमुद्‌गरैः ।।३६
आहत्य मानरोषेण जज्वलुः समरेऽधिकम् । सिंहारूढाद्रुतं देवी रणमध्ये प्रधाविता ।।३७
आच्छिद्याच्छिद्य चिह्नानि ध्वजान्नानाविधांस्तथा । बलात्कारेण दैत्यानामनाथसमरे रुषा ।।३८
चिह्नकानि ददौ तुष्टा देवेभ्यः शीघ्रचारिणी । सुरैरपि गृहीतानि जय देवीति वादिभिः ।।३९
अम्बिका तु भृशं तुष्टा तेषां चक्रे क्षणात्क्षयम् । कालरात्री दानवानां मारीव निपपात सा ।।
जीवितानि च जग्राह दैत्यानां देवनन्दिनी ।।४०
अथ रक्तासुरं कण्ठे गृहीत्वापात्य भूतले । देवी जघान तीक्ष्णेन त्रिशूलेन भृशं दिवि ।।४१
स भिन्नहृदयः पश्चाद्‌भूमौ तत्र प्रपोथितः । तथापि देव्या निहतः पपात च ममार च ।।४२
देवास्तानसुराञ्जित्वा गत्वा शत्रुपुरं जितम् । ददृशुस्ते रणप्रान्ते लम्बमानान्महाध्वजान् ।।
यात्रां चक्रुः सम्प्रहृष्टा नवम्या ध्वजचिह्निताम् ।।४३

एवं सूत्रों की चित्र-विचित्र चित्रकारियों से सुसज्जित थीं, तथा प्रज्वलित अग्नि वर्ण की नर्तकियों की भाँति उस समय उनकी कान्ति मनमोहक थी । उसी समय उन श्रेष्ठ दानवों के कोलाहल भयानक शब्द सुनायी पड़े, जो पणव, भेरी, झर्झर, गोमुख, आनक, शंख, आडम्बर, और डिंडिम की ध्वनियों से परिवर्द्धित था । तदुपरांत भगवती के साथ उन दैत्य दानवों का समर प्रारम्भ हुआ, जिसमें शर, शूल, परिध, तोमर शक्ति, कर्णके, इषण, कुंत, शतघ्नी एवं कूट मुद्‌गर के आघातों से रुष्ट होकर भगवती अत्यधिक प्रज्वलित (कुद्ध) हो उठी, और सिंह पर सुशोभित होकर उस रण में आक्रमण के साथ, छत्र, चिह्न, एवं अनेक भाँति की ध्वजाओं को बलात् दैत्यों से छीन कर उन देवों को प्रदान किया ।३१-३८। शीघ्रचारिणी देवी द्वारा प्राप्त चिह्नों को सहर्ष स्वीकार कर देवों ने 'जय-जय' की ध्वनि करना आरम्भ किया, जिससे प्रसन्न होकर देवी अम्बिका ने उसी क्षण दैत्यों का वधकर उन्हें धराशायी कर दिया । कारकात्री ने मारी की भाँति दानवों का संहार किया, देवनन्दिनी उन्हें जीवित पकड़ कर भक्षण कर जाती थीं । पश्चात् देवी ने अपने तीक्ष्ण त्रिशूल द्वारा रक्तासुर के कण्ठ को भेदन कर आकाश में उछाल कर पृथिवी पर गिरा दिया । भूमि पर गिरते ही हृदय के विदीर्ण होने के अवसर कुछ स्वस्थ होना चाहा, किन्तु देवी ने उसे पुनः आघात द्वारा गिराया जिससे गिरने पर आहत होते ही उसके प्राण निकल गये । तदुपरांत देवों ने शत्रुओं के आवास स्थानों पर अधिकार किया और यह भी देखा कि वहाँ ऐसे विशाल ध्वज लगे हुए हैं, जो रण के अंत तक लम्बे दिखायी देते थे । पाण्डव ! देवों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवमी के दिन ही वह ध्वज चिह्नित

अतोद्यापीह भूपालैर्जयलब्धीच्छयादृतैः । उपोष्यते नरैर्भक्तैर्नारीभिश्चैव पाण्डव ॥४४

युधिष्ठिर उवाच

कीदृग्विधानं तस्यास्तु नवम्या ब्रूहि मे प्रभो । सरहस्यं समन्त्रं च येन तुष्यति चण्डिका ॥४५

श्रीकृष्ण उवाच

पौषस्य शुक्लपक्षे या नवमी सम्परिश्रुता । तस्यां स्नात्वा शुभैः पुष्पैरर्चनीया हरेः स्वसा ॥४६
कुमारी सुभगा देवी सिंहस्यन्दनगामिनी । ध्वजान्नानाविधान्कृत्वा पुरस्तस्याश्च पूजयेत् ॥
मालतीकुसुमैर्दीपैर्गन्धधूपविलेपनैः ॥४७
बलिभिः पशुभिर्मेध्यैः सुरामांसासृगम्बरैः । दधिचन्दनचूर्णैश्च भग्नैश्चानग्निपाचितैः ॥
मन्त्रेणानेन कौंतेय ब्रह्मणोप्यथवा ननु ॥४८
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो हिताम् । सम्वेशिनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ॥४९
प्रपन्नोहं शिवां रात्रीं भद्रे पारय मे व्रतम् । सर्वभूतपिशाचेभ्यः सर्वसत्वसरीसृपैः ॥
देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ॥५०
ततश्चारोपयेद्राजा देवीनां भवने तथा । भोजयेत कुमारीं च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥५१
उपवासेन कुर्वीत एकभक्तेन वा पुनः । भक्त्या भूपालपञ्चास्य भक्तिस्तस्या गरीयसी ॥५२

यात्रा आरम्भ की थी । इसीलिए जयाभिलाषी राजा, पुरुष एवं स्त्रियाँ भक्ति पूर्वक उसमें उपवास रहते हैं ।३९-४४

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो ! उस नवमी के उपवास आदि विधानों को सहर्ष बताने की कृपा कीजिये, जिसके समंत्रक प्रयोग करने पर भगवती चण्डिका शीघ्र प्रसन्न होती हैं ।४५

श्रीकृष्ण बोले—पौष मास की शुक्ल नवमी के दिन स्नान करके सुगन्धित एवं मनोरम पुष्पों द्वारा हरि की भगिनी (देवी) की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । सिंह के स्पन्दन पर सुशोभित उन सुभगा कुमारी देवी के सम्मुख अनेक भाँति की ध्वजाओं के स्थापन पूर्वक मालती पुष्प, दीप, गन्ध, धूप, अनुलेपन, पशु की बलि—उसके मध्य, मांस रक्त एवं चर्म सुरा, दधि, चन्दन, और अनग्नि पक्क फलों द्वारा मंत्रोच्चारण करते हुए उसकी पूजा करे भद्रे ! ब्रह्म विश्व के हितार्थ आविर्भूत होने वाली कृष्णा एवं भगवती भद्रा की शरण में प्राप्त हूँ, जो आब्रह्माण्ड की संवेशिनी, संयमन करने वाली एवं ग्रह, नक्षत्र-मालाओं से विभूषित है । तथा शिवा एवं कालरात्रि रूप हैं । भद्रे ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ, समस्त भूत, पिशाच, सभी प्राणियों, सर्प, देव, और उभय भाँति के मनुष्यों से मेरी सदैव रक्षा करो । अनन्तर राजा को चाहिए उन्हें देवी के भवन में आरोपित करके कुमारियों के भोजनोपरांत क्षमा प्रार्थना करे । भूप ! उपवास रहकर अथवा एकाहारी रहकर ध्वजा-रोपण करना प्रशस्त कहा गया है और भक्ति पूर्वक उनके मन्दिर का निर्माण करने वाला पुरुष एवं उसकी भक्ति अत्यन्त गौरव शालिनी बतायी

एवं ये पूजयिष्यन्ति ध्वजैर्भगवतीं नराः । तेषां दुर्गा दुर्गमार्गे चोरव्यालाग्नि संकटे ॥५३
रणे राजकुले गेहे युद्धमध्ये जले स्थिते । रक्षां करोति सततं भवानी सर्वमङ्गला ॥५४
अस्यां बभूव विजयो नवम्यां पाण्डुनन्दन । भगवत्यास्तु तेनैषा नवमी सततं प्रिया ॥५५
धन्या पुण्या पापहरा सर्वोपद्रवनाशनी । अनुष्ठेया प्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सुभिः ॥५६
देव्यर्चनाहितमतिर्मनुजो नवम्यां हेमस्रजं ध्वजवरं स हि रोपयेद्यः ।
भोगानवाप्य मनसोभिमतान्प्रकामं देहं विहाय समुपैति स वीरलोकम् ॥५७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ध्वजनवमीव्रतवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।६१

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

उल्कानवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

उल्काख्यां नवमीं राजन्कथयामि निबोधताम् । या काश्यपेन कथिता तारकस्यार्तिनाशिनी ॥१
अश्वयुक्छुक्लपक्षे या नवमी लोकविश्रुता । नद्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य पितृदेवौं यथाविधि ॥२
पश्चात्सम्पूजयेद्देवीं चामुण्डां भैरवप्रियाम् । पुष्पैर्धूपैस्सनैवेद्यैर्मांसमत्स्यसुरासवैः ॥३
पूजयित्वा स्तवं कुर्यान्मन्त्रेणानेन मानवः । समारोप्याञ्जलिं मूर्ध्नि जानुभ्यामवनीं गतः ॥४

गयी है । इस प्रकार ध्वजाओं द्वारा भगवती की आराधना करने वाले मनुष्य के दुर्गम मार्ग में स्थित होकर भवानी सर्व मंगला देवी चोर, सर्प, अग्नि संकट, रण, राजकुल, गृह, युद्ध, जल मध्य से उसकी निरन्तर रक्षा करती हैं । पाण्डुनन्दन ! इसी नवमी के दिन विजय होने के नाते भगवती को यह नवमी अत्यन्त प्रिय है । इसलिए समस्त कामनाओं की सफलता के इच्छुकों को इसी दिन में अनुष्ठान एवं स्तुति करनी चाहिए, जो धन्य पुण्य, पापहारिणी तथा समस्त उपद्रवों को शमन करने वाली है । इस प्रकार देवी की आराधना में तन्मय रहने वाले मनुष्य को, जो नवमी के दिन सुवर्ण की माला समेत को आरोपित करते हैं, समस्त सुखोपभोग के अनन्तर देवी लोक की प्राप्ति होती है ।४६-५७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
ध्वज-नवमी व्रत वर्णन नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त ।६१।

अध्याय ६२

उल्कानवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उल्का नवमी का व्रत विधान मैं तुम्हे बता रहा हूँ, जिस तारक के दुःख शमनार्थ बृहस्पति ने उन्हें बताया था । सुनो ! आश्विन मास की शुक्ल नवमी के दिन नदी में स्नान करके पितृ एवं देव के तर्पण करने के उपरांत पुष्प, धूप, नैवेद्य, सुरा, मांस, मत्स्य द्वारा भैरव प्रिया चामुण्डा देवी की अर्चना सुसम्पन्न करके उस मनुष्य को घुटने के बल भूमि पर बैठे और अञ्जलि को शिर से लगा

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । द्रव्यमारोग्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते ।।५
कुमारीर्भोजयेत्पश्चान्नवनीलसुकंचुकैः[1] । परिधानैर्भूषणैश्च भूषयित्वा क्षमापयेत् ।।६
सप्त पञ्चाप्यथैकां वा चित्तवित्तानुरूपतः । श्रद्धया तुष्यते देवी इति वीरानुशासनम् ।।७
अभ्युक्ष्य मण्डलं कृत्वा गोमयेन शुचिस्मितः । दत्तासने चोपविशेत्पात्रं च पुरतो न्यसेत् ।।८
ततः सुसिद्धमन्नं यत्तत्सर्वं परिवेषयेत् । सघृतं पायसं चापि स्थापयेत्पात्रसन्निधौ ।।९
तृणानि षष्टिमादाय चादाय धमनीं तथा । प्रज्वालयेत्ततो भोज्यं यावज्ज्वलति पावकः ।।१०
प्रशान्ते भोजनं त्यक्त्वा समाचम्य प्रसन्नधीः । चामुण्डां हृदये ध्यात्वा गृहकृत्यपरो भवेत् ।।११
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । ततः संवत्सरस्यान्ते भोजयित्वा कुमारिकाः ।।१२
वस्त्रैराभरणैः पूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् । सुवर्णं शक्तितो दद्याद्गां च विप्राय शोभनाम् ।।१३
य एवं कुरुते पार्थ पुरुषो नवीव्रतम् । न तस्य शत्रवो नार्तिः स राजा नष्टतस्करः ।।१४
भूताः प्रेताः पिशाचा नो जनयन्ति भयं गृहे । समुद्यतेषु शस्त्रेषु हन्ता तस्य न विद्यते ।।१५
तं रक्षति सदोद्युक्ता सर्वास्वापत्सु चण्डिका । नरो वा यदि वा नारी व्रतमेतत्समाचरेत् ।।
उल्कावत्स सपत्नानां ज्वलन्नास्ते सदा हृदि ।।१६

कर इस भाँति स्तुति करनी चाहिए । कि महिषासुर घातिनि एवं मुण्डमाला धारण करने वाली चामुण्डे महाभागे ! मैं आपको बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे द्रव्य समेत आरोग्य तथा विजय प्रदान करने की कृपा करें । अनन्तर कुमारी भोजन तथा नवीन एवं नीलरंग की चोली वस्त्र और आभूषण से उन्हें विभूषित करके अपने चित्त वृत्ति के अनुसार सात, पाँच अथवा एक ही बार श्रद्धा समेत क्षमा प्रार्थना करने पर देवी प्रसन्न होती हैं, ऐसा बताया गया है । भूमि को जल अभिसिञ्चित कर उस मण्डल को गोमय से लीप कर शुद्ध करे, पश्चात् आसन पर बैठकर उनके सम्मुख सत्पात्र में सिद्ध अन्न को, जो घृतप्लुत एवं खीर युक्त हो, रखकर साठ की संख्या में तृण रखकर धमनी (धौंकनी) द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके जब तक वह जलता रहे भोजन करे उसके शांत होने पर भोजन त्याग कर अत्यन्त प्रसन्नता से आचमन करे और हृदय में चामुण्डा देवी के ध्यान पूर्वक गृहकार्य करता रहे । इस प्रकार प्रतिमास में सविधान उसे सुसम्पन्न करते हुए वर्ष की समाप्ति में कुमारियों के भोजनोपरांत वस्त्राभूषणों से उनकी पूजा करके नम्रतापूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। ब्राह्मण के लिए यथाशक्ति सुवर्ण और शोभन गौ का दान अवश्य करना चाहिए।१-१३। पार्थ ! इस प्रकार नवमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष को शत्रु राजा एवं तस्कर जनित संकट, भूत, प्रेत एवं पिशाच के भय नहीं होता है और चलित अस्त्रों के मध्य भी उसका हन्ता कोई नहीं हो सकता है। सभी आपत्तियों में चण्डिका देवी उसकी रक्षा करती है। इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी अपनी सपत्नियों के हृदय में उल्का की भाँति सदैव प्रज्वलित रहती है। इस प्रकार नवमी के दिन

---

१. नवनीलकुसंभकैः ।

तां शुष्ककोहरमुखीं प्रकटोरुदंष्ट्रां कापालिनीं समवलम्बितमुण्डमालाम् ।
उक्तव्रतेषु पुरुषो नवमीषुचण्डीं सम्पूज्य कस्य हृदये न च शं करोति ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उल्कानवमीव्रतवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

दशावतारचरित्रव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं कृतयुगस्यादौ भृगोर्भार्या महासती । दिव्यारामाश्रमे रम्या गृहकार्यैकतत्परा ॥१
बभूव सा भृगोर्नित्यं हृदयेप्सितकारिणी । तस्यां मुनिर्महातेजा । अग्निहोत्रं निधाय च ॥२
विष्णोस्त्रासाद्दानवानां कुलत्राणसमाकुलम् । मुक्त्वा युद्धस्थितं पार्श्वे समर्प्य मुनिपुङ्गवः ॥३
दत्त्वा निक्षेपकं सर्वं[1] दिव्यायै सुमहातपाः । जगाम हिमवत्पार्श्वे हरं तोषयितुं रहः ॥४
संजीवनीकृते नित्यं कणैर्धूममधोमुखः । पपौ दानवराजस्य विजयाय पुरोहितः ॥५
आजगाम गते तस्मिन्गरुडेनाश्रितो हरिः । अभ्येत्य जल्पनं चक्रे चक्रेणोत्कृत्तकन्धरम् ॥६

चण्डिका देवी की, जो शुष्क हरमुख, ऊरु और दाँतों को प्रकट किये, कपाल लिए एवं लम्बायमान मुण्डमाला से विभूषित है, आराधना करने पर किसके हृदय को अपने अधीन नहीं कर लेता है। अर्थात् सभी उसके दासानुदास होने के लिए लालायित रहते हैं।१४-१७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
उल्कानवमी व्रत-वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त।६२।

अध्याय ६३

दशावतार चरित्र का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में कृतयुग के आरम्भ में भृगु (शुक्र) की स्त्री महासती दिव्या अपने आश्रम से रहती हुई गृहकार्य को अत्यन्त परिश्रम एवं पटुता से सुसम्पन्न कर रही थी, जिससे वह अपने पति मनु की हृदयेश्वरी बन गयी थी। महातेजा मुनि ने उस अपनी वल्लभा को अग्नि होत्र सौंप कर विष्णु के त्रास से भयभीत दानवों के ऋणार्थ युद्धस्थिति को रोककर तथा अपनी प्रिया दिव्या को धरोहर रूप में उसे प्रदान कर आशुतोष हर को प्रसन्न करने के लिए हिमालय के समीप प्रदेश को प्रस्थान किया। संजीवनी विद्या की प्राप्ति के लिए उन्होंने कठिन तप आरम्भ किया—अधोमुख होकर धूप कण का पान करते हुए आराधना आरम्भ की। दानव राज के विजयार्थ पुरोहित भृगु के उस कठिन व्रत के लिए जंगल चले जाने पर उनके गृह गरुड पर बैठे विष्णु का आगमन हुआ। भगवान् विष्णु ने

---

१. ह्यर्घम्।

गलद्रुधिरसम्पन्नं लोहितार्णवसंनिभम् । दृष्ट्वासुरबलं सर्वं निहतं विष्णुना तदा ॥
दिव्या संशप्तुकामाभूद्विष्णुं सास्राविलेक्षणा ॥७
यावन्नोच्चरते वाचं चक्रेण कृत्तकंधरम् । तावन्निपातयामासशिरस्तस्याः सकुण्डलम् ॥८
प्राप्य संजीवनीं विद्यां यावदायात्यसौ मुनिः । तावत्स दैत्यान्नापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ॥९
रोषाच्छशाप च हरिं भ्रुकुटीकुटिलाननः । अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ॥१०
यस्मात्त्वया हता दैत्या ब्रह्मणो मत्परिग्रहाः । तस्मात्त्वं मानुषे लोके दश वारान्गमिष्यसि ॥११
अतोऽर्थं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् । अवतारं चकाराहं भूयोभूयः पृथग्विधम् ॥१२
पूर्वोक्तैः कारणैः पार्थ अवतीर्णं महीतले । मां नरा येऽर्चयिष्यन्ति तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१३

युधिष्ठिर उवाच

व्रतं दशावताराख्यं कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् । समन्त्रं सरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४

श्रीकृष्ण उवाच

प्रोष्ठपदे सिते पक्षे दशम्यां नियतः शुचिः । स्नात्वा जलाशये स्वच्छे पितृदेवादितर्पणम् ॥१५
कृत्वा कुरुकुलश्रेष्ठ गृहमागत्य मानवः । गृह्णीयाद्धान्यचूर्णस्य द्विहस्तप्रसृतित्रयम् ॥१६
क्रमेण पावयेत्तां तु पुंसंज्ञं घृतसंश्रितम् । वर्षे वर्षे दिने तस्मिन्यावद्वर्षाणि वै दश ॥१७
प्रथमे पूरिकान्वर्षे द्वितीये घृतपूरकान् । तृतीये शुक्लकांसारं चतुर्थे मोदकाञ्छुभान् ॥१८

वहाँ पहुँच कर कुछ बातें की और अपने चक्र द्वारा उनके कंधे में आघात किया, जिससे उसने (दिव्या ने) देखा कि समस्त असुर सैनिकों के शरीर से शोणित नदी प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार विष्णु द्वारा असुर सेना को विनष्ट देख कर दिव्या ने अश्रुमुखी होकर प्रचण्ड रूप धारण किया और विष्णु को शाप देने के लिए कटिबद्ध हुई। जब तक वह मुख से कुछ कहे कि विष्णु ने अपने चक्र द्वारा कुण्डल समेत उसके शिर को काट कर भूमि पर गिरा दिया। अनन्तर संजीवनी विद्या को प्राप्त कर मुनि ने घर आकर दैत्यों के नाश देखने के पूर्व अपना ही (दिव्या का निधन) सर्वनाश देखा, जिससे भौंहे और मुख को कुटिल करते हुए उन्होंने अत्यन्त रोष से विष्णु को शाप प्रदान किया—उस अवश्यंभावी को, जो विश्व का एक मात्र हित साधन था, कौन टाल सकता था। उन्होंने कहा—जो ब्रह्म होकर तुमने दैत्यों और विशेष कर मेरे परिजनों का संहार किया है, अतः मनुष्य लोक में तुम्हें दश बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। पार्थ ! इसीलिए मैं मर्त्य लोक में राजाओं के रक्षार्थ बार-बार पृथक-पृथक अवतार धारण करता हूँ और पूर्वोक्त कारणों वश मैं अभी इस पृथ्वी तल पर अवतरित हूँ। इसलिए मेरी अर्चना करने वाले मनुष्यों का आवास स्थान स्वर्ग में अवश्य निश्चित रहता है। १-१३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! समस्त पापों के शमन करने वाले इस दशावतार नामक व्रत की व्याख्या विस्तारपूर्वक सरहस्य एवं मंत्र समेत बताने की कृपा कीजिये। १४

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन संयम पूर्वक किसी जलाशय में पवित्रता पूर्ण स्नान एवं देवपितृ तर्पण करने के उपरांत अपने घर आकर तीन अञ्जली धान्य के पूर्ण में घीकुवांर को मिलाकर उसी के नैवेद्य क्रमशः प्रत्येक वर्ष प्रदान करता रहे। पहले वर्ष में पूरी, दूसरे में

सोहालकान्पञ्चमेऽब्दे षष्ठेऽब्दे खण्डवेष्टकान् । सप्तमेऽब्दे कोकरसानपूपांश्च तथाष्टमे ॥१९
नवमे कर्णवेष्टांस्तु दशमे खण्डकाञ्छुभान् । दश धेनूर्दशहरे दशविप्राय दापयेत् ॥२०
क्रमेण भक्षयित्वा च यथोक्तं भरतर्षभ । अर्द्धार्द्धं पिष्टयेदेवमर्द्धार्द्धं वा द्विजातये ॥
स्वत एवार्धमश्नीयाद्गता रम्ये जलाशये ॥२१
दशावतारानभ्यर्च्य पुष्पधूपविलेपनैः । मन्त्रेणानेन मेधावी हरिमभ्युक्ष्य वारिणा ॥२२
मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम् । श्रीरामं रामकृष्णौ च बुद्धं चैव सकल्किनम् ॥२३
गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम् । प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२४
छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या जातो जनार्दनः । श्वेतद्वीपं नयस्यस्मान्समात्मनि निवेदयेत् ॥२५
एवं यः कुरुते पार्थ विधिनानेन सुव्रत । दशावतारनामाख्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२६
श्रूयन्ते यास्त्विवगालोच्य पुरुषाणां दशा दश । ताश्छिनत्ति न संदेहः शक्रप्रहरणैर्हरिः ॥२७
संसारसागरे घोरे मज्जंतं तत्र मां हरिः । श्वेतद्वीपं नयत्वाशु व्रतेनानेन तोषितः ॥२८
किं तस्य न भवेल्लोके यस्य तुष्टो जनार्दनः । सोऽहं जनार्दनो राजन्कालरूपी धरासुतः ॥
मर्त्यलोके स्वयं पार्थ भूभारोत्तारकारणम् ॥२९
या स्त्रीव्रतमिदं पार्थ चरिष्यति मयोदितम् । सा लक्ष्म्याऽचलया युक्ता भर्तुपुत्रसमन्विता ॥३०
मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा विष्णुलोके महीयते । विष्णुलोकाद्रुद्रलोकं ततो याति परं पदम् ॥३१

घृत पूरक, तीसरे में शुक्ल कांसार, चौथे में मोदक, पाँचवें में सोहाल, छठे में खांड पूरी, सातवें में कोकरस, आठवें में मालपूआ नवें कर्णवेष्ट और दशवे में खांड के शुभ पदार्थ अर्पित करते हुए दश विष्णु के निमित्त दश गोदान दश ब्राह्मणों को प्रदान करे और उपरोक्त पदार्थ के भक्षण करते हुए इस वृत को सुसम्पन्न करता रहे । भरतर्षभ ! सर्वप्रथम उस भक्ष्य चूर्ण का चौथाई देव और तदर्ध ब्राह्मण को अर्पित कर किसी जलाशय के समीप जाकर उस आधे भाग का भोजन करना चाहिए । इस भाँति उस मेधावी पुरुष को चाहिए कि पुष्प, धूप, एवं लेपन द्वारा विष्णु के दश अवतारों की अर्चना करके इस मंत्र द्वारा भगवान् को अभिषेक करे—मत्स्य, कूर्म (कच्छप), बराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम, रामकृष्ण, बुद्ध तथा कल्की उस नारायण प्रभु की शरण में मैं प्राप्त हूँ, जगन्नाथ को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, विष्णु देव मुझ पर प्रसन्न हों । मैं भक्ति पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि जनार्दन देव मेरी वैष्णवी-मायाबंधन को दूर करें, मैं आत्म निवेदन कर रहा हूँ कि मुझे श्वेत द्वीप पहुँचाने की कृपा करें । सुव्रत पार्थ ! इस प्रकार सविधान इस दशावतार नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! १५-२६। भगवान् विष्णु इन्द्र के आयुधों द्वारा पुरुषों के इस प्रख्यात दश दशाओं का विच्छेद अवश्य करते हैं, इसमें संदेह नहीं । मेरे इस व्रत से संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु इस भीषण संसार सागर में निमग्न होते हुए मुझे शीघ्र श्वेतद्वीप पहुचाएँ । भगवान् जनार्दन के सन्तुष्ट होने पर भक्त की कौन कामना सिद्ध नहीं होती है ! राजन्, पार्थ ! मैं वही जनार्दन इस पृथ्वी के भार को नष्ट करने के लिए इस पृथ्वी पर कालरूप से अवतरित हूँ । पार्थ ! मेरे इस प्रकार बताये हुए इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री अचल लक्ष्मी युक्त होकर इस मर्त्यलोक में पति पुत्र समेत चिरकाल तक सुखोपभोग करके विष्णु लोक में सम्मानित होती है और विष्णु लोक से रुद्र लोक तथा परम पद की

ये पूजयन्ति पुरुषाः पुरुषोत्तमस्य मत्स्यादिकांस्तु दशमीषु दशावतारान् ।
मर्त्या दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य ते यान्ति यानमधिरुह्य सुरेशलोकान् ।।३२

इति श्रीभाविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दशावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।६३

अथ चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

आशादशमीवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ पार्थिववृन्दानां मुखपङ्कजसद्रवे । शृणुष्वावहितो वच्मि तवाशादशमीव्रतम् ।।१
नलनामाभवत्पूर्वं निषधेषु महीपते । स भ्रात्रा निर्जितो राज्ये पुष्करेणेति नः श्रुतम् ।।२
अक्षैर्द्यूतेन राजेन्द्र निर्ययौ भार्यया सह । वनं प्रतिभयं शून्यं झिल्लीकगणनादितम् ।।३
स गत्वा प्रत्यहोरात्रं जलमात्रेण वर्तयन् । ददर्श वनमध्यस्थाञ्छकुनीन्काञ्चनच्छवीन् ।।४
ग्रहीतुमिच्छंस्तान्राजन्समाच्छाद्य स्ववाससा । खमापेतुः खगास्तूर्णं गृहीत्वा वसनं शुभम् ।।५
आससाद समाः कश्चिद्धृतवासाः सुदुःखितः । दमयन्तीं समाप्राप्य निद्रयापहृतां तदा ।।

प्राप्ति करती है। इस प्रकार दशमी के दिन भगवान् के मत्स्यादि दश अवतारों की अर्चना करने वाले पुरुष इस मर्त्यलोक में दशावस्थाओं में सुखोपभोग करके अंत में विमान द्वारा देवलोक प्राप्त करते हैं।२७-३२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-सम्वाद में
दशावतारचरित्र वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६३।

अध्याय ६४

आशादशमी का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें आशादशमी व्रत का विधान बता रहा हूँ, जो राजसमूहों के मुख कमल को विकसित करने के लिए उत्तम रवि रूप है। सावधान होकर सुनो ! पहले समय में निषध देश के राजा नल प्रतिष्ठित राजा हुए थे। उन्होंने अपने भ्राता (पुष्कर) के साथ द्यूत क्रीडा (जूआ खेलना) प्रारम्भ किया। जिसके परिणाम स्वरूप राज्य छोड़कर, अपनी भार्या दमयन्ती को साथ लेकर उस घोर अरण्य का यात्री होना पड़ा है, जहाँ हिंसक पशु, एवं झिल्लीक गण से वह सदैव मुखरित रहता था। वहाँ पहुँचने पर केवल जलपान के द्वारा अपने दिन व्यतीत करते हुए उन्हें वन के मध्य स्वर्ण छवि वाली पक्षियाँ दिखायी पड़ी। राजन् ! नल ने उन्हें पकड़ने के लिए उन पर अपने वस्त्र डाल दिये किन्तु, वे पक्षियाँ उनके उस शुभ वस्त्र को लेकर अत्यन्त शीघ्रता से आकाश में उड़कर अदृश्य हो गयी। अनन्तर वस्त्र के अपहरण से भी अत्यन्त दुःखी होकर दमयन्ती के साथ किसी सभा (स्थान) में पहुँच कर वे विश्राम करने लगे। वहाँ भ्रान्त दमयन्ती

दुःखादुत्सृज्य गतवान्भाग्यतः प्राग्धनेश्वरम् ॥६
गते तु नैषधे भैमी प्रबुद्धे चाञ्चितानना । अपश्यन्ती नलं वीरं वीर भीमसुता वने ॥
इतश्चेतश्च बभ्राम हाहेति रुदती मुहुः ॥७
दुःखशोकसमाक्रान्तां नलदर्शनलालसा । आससाद दिनैः कैश्चित्सा चैद्यपुरमंजसा ॥८
उन्मत्तवत्परिवृता शिशुभिः कौतुकाकुलैः ! सा दृष्टा चेदिराजस्य जनन्या जनवेष्टिता ॥९
चन्द्रलेखेव पतिता भूमौ भासितदिङ्मुखा । आरोप्य सा स्वभवनं पृष्टा का त्वं वरानने ॥१०
उवाच भैमी सव्रीडं सैरध्रीं मां निबोधताम् । न धावयेयं चरणौ नोच्छिष्टं भक्षयाम्यहम् ॥११
यदि प्रार्थयते कश्चिद्दंडयस्ते साम्प्रतं भवेत् । प्रतिज्ञयानया देवि तिष्ठेयं तव वेश्मनि ॥
एवमस्त्वनवद्यांगि राजमाताप्युवाच ताम् ॥१२
एवंविधा तद्भवने कञ्चित्कालमनिंदिता । उवास वसनार्द्धेन प्रवृत्तान्ते किल द्विजः ॥
आनयामास मुदितो दमयन्तीं गृहं पितुः ॥१३
मात्रा पित्रा समायुक्ता सुतैर्भ्रातृभिरेव च । दमयन्ती तथाप्यास्ते दुःखं नैषधवर्जिता ॥१४
प्रोवाच विमनाहूय व्रतं दानमथापि वा । कथयध्वं यथा मे स्यादिष्टेन सह सङ्गमः ॥१५
तत्रेतिहासकुशलो विप्रः प्रोवाच बुद्धिमान् । भद्रे त्वमाशादशमीं कुरुष्वेप्सितसिद्धिदाम् ॥१६

को अत्यन्त निद्रित अवस्था में छोड़कर (भाग्यवादी की दृढ़ आज्ञा से) उन्होंने कुबेर-हिमालय के पहले वाले प्रदेश (अयोध्या) को प्रस्थान किया।१-६। उनके चले जाने पर प्रबुद्ध होकर उस चन्द्रमुखी भीम सुता दमयन्ती ने राजा नल को न देख कर उन्हें इधर-उधर वनों में खोजती हुई 'हाय हाय' कहते रुदन करती, दुःख शोक के भार से पीड़ित, नल के दर्शन की इच्छा से कितने दिनों के मार्ग को कष्ट से पार कर राजा वैद्य की पुरी में पहुँची। वहाँ पहुँच कर वह उन्मत्त की भाँति दिखायी देने लगी, जिससे शिशु-वृन्दों ने उसे अपना कौतुक-लक्ष्य बना कर चारों ओर से घेर लिया था। उसी बीच चेदिराज की माता ने उधर देखा कि किसी स्त्री को कुछ लोग चारों ओर से घेर कर खड़े हुए हैं, जो भूमि में गिर कर दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाली चन्द्र लेखा की भाँति दिखायी देती थी, शीघ्र अपने भवन में बुलवाकर उससे पूछा—'सुन्दरि ! तुम कौन हो और क्या चाहती हो ? भैमी ने लज्जा पूर्वक कहा—मैं सैरन्ध्री (दासी) हूँ, और वही अपना सेवा कार्य चाहती हूँ, किन्तु देवी ! चरण प्रक्षालन (पैर धोना) एवं उच्छिष्ट भोजन का भक्षण नहीं करूँगी, तथा मुझसे अनुचित प्रार्थना करने वाला उसी समय दण्डित किया जाये। इसी प्रतिज्ञा पर मैं आप के महल में सेवा कार्य के लिए रहना स्वीकार करूँगी। 'तथास्तु' कहकर राजमाता ने उस प्रशस्त-वदना की बात स्वीकार किया। इस प्रकार उसने वही आधे वस्त्र पहने उस राजभवन में कुछ समय तक निवास किया अनन्तर समाचार ज्ञात होने पर उसके पिता भीम ने ब्राह्मण द्वारा उसे अपने यहाँ बुला लिया। वहाँ पहुँचने पर माता, पिता, सुत और भ्राताओं द्वारा सुसेवित होने पर भी दमयन्ती को नल के वियोग में अत्यन्त कष्ट ही था। उसने खिन्न मन से कहा विप्र ! व्रत, दान अथवा अन्य जिस उपाय से मेरा और नल का साथ हो सके, मुझे बताने की कृपा करें।७-१५। इसे सुनकर इतिहास कुशल उस ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे ! मनोरथ सिद्ध करने वाली इस आशादशमी का व्रत विधान प्रारम्भ करो'। पुराण

चकार सर्वम् तन्वङ्गी यत्पुराणविदा तदा । ख्यातमाख्यातविदुषा दमनेन पुरोधसा ।।१७
व्रतस्यास्य प्रभावेण दमयन्त्या नरोत्तम । सञ्जातः सुखदोऽत्यर्थं भर्त्रा सह समागमः ।।१८

युधिष्ठिर उवाच

कथमाशादशम्येषा गोविन्द क्रियते कदा । सर्वमेतत्समाचक्ष्व मां सर्वज्ञोऽसि यादव ।।१९

श्रीकृष्ण उवाच

राज्याशया राजपुत्रः कृष्यर्थं तु कृषीवलः । भार्यार्थं तु वणिक्पुत्रः पुत्रार्थे गुर्विणी तथा ।।२०
धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै लोककन्या वरार्थिनी । यष्टुकामो द्विजवरो रोगी रोगापनुत्तये ।।२१
चिरप्रवासिते कान्ते कालेन धृतिपण्डिता । एतेष्वन्येषु कर्तव्यमाशाव्रतमिदं सदा ।।२२
यदा यस्य भवेदार्तं कार्यते हि तदा व्रतम् । शुक्लपक्षे दशम्यां तु स्नात्वा सम्पूज्य देवताः ।।२३
नक्तं तदाशाः सम्पूज्या पुष्पालक्तकचन्दनैः । गृहाङ्गणे लेखयित्वा यवैः पिष्टातकेन वा ।।
दत्त्वा घृताक्तं नैवेद्यं पुनः कार्यं निवेदयेत् ।।२४
आशाश्चाशाः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां च मनोरथाः । भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति ।।२५
एवं सम्पूज्य भुञ्जीत दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । अनेन क्रमयोगेन मासिमासि समाचरेत् ।२६
यावन्मनोरथः पूर्णस्ततः पश्चात्समुद्यमात् । मासि पूर्णे च षण्मासे वर्षे वर्षे द्वये गते ।।२७
सौवर्णा कारयेदाशा रौप्यपिष्टातकेन वा । ज्ञातिबन्धुजनैः सार्द्धं स्नातः सम्यगलंकृतः ।।२८

निष्णात एवं आख्यान के विद्वान् उस दमन पुरोध ने जैसा कहा, उसे उस कोमलाङ्गी ने वैसा ही सविधान सुसम्पन्न किया, नरोत्तम् ! इस व्रत के प्रभाव से दमयन्ती का भर्ता (नल) के साथ अत्यन्त सुखद समागम हुआ ।१६-१८

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द एवं यादव आप मासों के अधिनायक हैं अतः यह आशादशमी किस विधान द्वारा और कब सुसम्पन्न की जाती है आदि सभी कुछ मुझे बताने की कृपा करें ।१९

श्रीकृष्ण बोले—'राज्य की आशा से राजपुत्र, कृषि के निमित्त कृषक, भार्या प्राप्त्यर्थ वैश्य-पुत्र, पुत्र प्रसव के लिए गर्भिणी धर्म, अर्थ और काम के सिद्धयर्थ जनवर्ग, अनुकूल वर की कामना से कन्याओं, यज्ञ के सुसम्पन्नार्थ उत्तम ब्राह्मणों, रोगापहरणार्थ रोगी और चिरकाल से पति के प्रवासी होने पर धैर्य धारण करने वाली वियोगिनी स्त्री को तथा अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिए भी इस आशादशमी व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न करना चाहिए । तथा जिस किसी समय किसी भाँति का कष्ट अनुभव होने लगे, तो उसके अपवारणार्थ इस व्रत का अवश्य पालन करना चाहिए । शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन स्नान देव पूजन आदि करके गृहाङ्गण में पिष्टातक (चूर्ण) द्वारा सुन्दर प्रतिमा बनाकर पुष्प, अलक्तक, एवं चन्दनादि द्वारा भक्ति पूर्वक आशा की अर्चना करके घृतप्लुत नैवेद्य अर्पित करने के उपरांत प्रार्थना करे कि—'आशादेवि ! आप समस्त आशा रूप हैं और सदैव रहें, मेरे मनोरथों को सफल करती रहे और आपके प्रसाद से सदैव कल्याण हो । अनन्तर ब्राह्मण को भोजन एवं दक्षिणा से तृप्त कर स्वयं भोजन करे और इसी क्रम से प्रत्येक मास की दशमी का सविधान व्रत मनोरथ पूर्ण होने तक करता रहे । ढाई वर्ष के उपरांत व्रत के समाप्त होने पर गृहाङ्गण में सुवर्ण, चाँदी अथवा सुगन्धित चूर्ण द्वारा आशा की सौन्दर्यपूर्ण प्रतिमा बनाकर बन्धुओं समेत स्नान एवं नूतन वस्त्रादि से सुसज्जित होकर

पूजयेन्मन्त्रसन्दर्भैरभिध्यात्वा गृहाङ्गणे । तव सन्निहितः शक्रः सुरासुरनमस्कृतः ।
पूर्वा चन्द्रेण सहिता ऐन्द्रीदिग्देवते नमः ॥२९
अग्नेः परिग्रहादार्ये तवमाग्नेयीति पठ्यसे । तेजोमयी परा शक्तिराग्नेयी वरदा भव ॥३०
देवराजं समासाद्य लोकः संयमयत्यसौ । तेन संयमनी यासि याम्ये कामप्रदा भव ॥३१
खड्गसहातिविकृता नैर्ऋतिस्त्वमुपाभृता । तेन नैर्ऋतनाम्नीत्वं कृतदान्मनघवा सदा ॥३२
त्वय्यास्ते भवनाधारवरुणो यादसां पतिः । इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं वारुणिप्रभवा भव ॥३३
अधिश्रितासि यस्मात्त्वं वायुना जगदायुनी । वायव्ये त्वमतः शान्तिं नित्यं यन्छ नमोनमः ॥३४
कुबेरवासतः सौम्या प्रख्याता त्वमथोत्तरा । ऐशानी जगदीशेन शम्भुना त्वमलंकृता ॥
अतस्त्वं शिवसान्निध्यं देवि देहि शिवे नमः ॥३५
सर्पाष्टककुलेन त्वं सेवितासि तथाप्यधः । नागांगनाभिः सहिता हिता नः सर्वदा भव ॥३६
सप्तलोकैः परिगता सर्वदा त्वं शिवा यतः । सनकाद्यैः परिवृता ब्राह्मी जिह्मानपाकुरु ॥३७
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहास्ताराग्रहास्तथा । नक्षत्रमातरो ये च भूतप्रेतदिनायकाः ॥
सर्वे ममेष्टसिद्ध्यर्थे भवन्तु प्रणताः सदा ॥३८
एभिर्मंत्रैः समभ्यर्च्य पुष्पधूपादिना ततः । वासोभिरभिसंस्थाप्य फलानि विनिवेदयेत् ॥३९
तत्तूर्यध्वनिघोषेण गीतमङ्गलनिःस्वनैः । नृत्यन्तीभिर्वरस्त्रीभिस्तां रात्रिमतिवाहयेत् ॥४०

मन्त्रोच्चारण पूर्वक ध्यान-पूजन करे—पूर्वदिक् देवता को मैं नमस्कार करता हूँ, जो देव एवं असुर वन्दित इन्द्र का सम्पर्क सदैव प्राप्त करती है और उदीयमान चन्द्रमा से संयुक्त रहती है। आर्ये (अग्निदिक्) ! अग्नि के साथ परिग्रह होने के नाते 'आग्नेयी' के नाम से तुम्हारी प्रख्याति है, आप तेजोमयी एवं पराशक्ति रूप हैं अतः मुझे वरदान प्रदान करें।२०-३०। याम्ये (दक्षिणदिक्) ! देवराज इन्द्र को प्राप्त कर तुम लोक का संयमन् करती हो उसी से तुम्हें लोग संयमनी कहते हैं अतः मेरे लिए भी कामप्रदा हो। (नैऋत्य दिक् !) खड्गसहन करने वाली, विकृत एवं निऋति से अलंकृत हो, इसीलिए मधवा इन्द्र ने नैऋत्य नाम से तुम्हारी ख्याति की है। वारुणि ! समुद्र के जल-जन्तु के अधीश्वर वरुण के भवन का आधार तुम हो अतः मेरे इष्ट काम और अर्थ की सिद्धि प्रदान करो। इस ब्रह्माण्ड के आयु स्वरूप वायु के आश्रित रहने के नाते तुम्हें वायव्य कहा गया है, अतः मुझे नित्य शान्ति प्रदान करने की कृपा करो मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। सुन्दरि ! कुबेर के वशीभूत होने के नाते तुम्हें लोग उत्तरा भी कहते हैं। ऐशानी देवि ! जगन्नियन्ता शम्भु द्वारा तुम सदैव अलंकृत हो, अतः शिवे देवि ! मुझे भी शिव सान्निध्य प्रदान करने की कृपा करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। सर्पराज के आठ कुलों द्वारा सुसेवित होने पर भी तुमने अधोलोक को ही अपनाया है, अतः अधोदेवि ! नागांगनाओं समेत सदैव मेरे हितार्थ उद्यत रहो।३१-३६। सातो लोकों में व्याप्त रहकर तुम सदैव कल्याण की निधि हो, अतः सनकादि ब्रह्मर्षियों से आवृत होकर सदैव मेरे लिए कल्याण प्रदान करो। उसी भाँति नक्षत्र, समस्त गृह, तारा, नक्षत्र मातृकाएँ, भूत, प्रेत, पिशाच एवं विनायक आदि देवगण मेरे इष्ट सिध्यर्थ सदैव नम्र-विनम्र रहे। इन्हीं मन्त्रोच्चारण द्वारा पुष्प, धूप, वस्त्र, आदि से उनका अलंकार और अर्चना करके अनेक भाँति के फल अर्पित करे। तुरुही आदि वाद्य, गीत, मांगलिक शब्द और सुन्दरियों के नृत्य द्वारा उस रात्रि को व्यतीत करती हुई उन्हें

कुंकुमक्षोदतीव्रेण दानमानादिभिः सुखम् । प्रभाते वेदविदुषे सर्वं तत्प्रतिपादयेत् ।।४१
अनेन विधिना सर्वं क्षमयन्प्रणिपत्य च । भुञ्जीत मित्रसहितः सुहृद्बन्धुजनैरपि ।।४२
य एवं कुरुते पार्थ दशमीव्रतमादरात् । स सर्वकाममाप्नोति मनसाभीप्सितं नरः ।।४३
स्त्रीभिर्विशेषतः कार्यं व्रतमेतद्युधिष्ठिर । लघुचित्ता यतो नार्यः सदा कामपरायणाः ।।४४
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् । कथितं ते महाराज मया व्रतमनुत्तमम् ।।४५
ये मानवा मनुजपुङ्गव कामुकामाः सम्पूजयन्ति दशमीषु सदा दशाशाः ।
तेषां विशेषनिहिता हृदये प्रकाममाशाः फलत्यलमलं बहुनोदितेन ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आशादशमीव्रतं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ।६४

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

तारकद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अहं त्वागस्करः पापः पृथिवीक्षयकारकः । परिपृच्छामि गोविन्द त्वां नमस्कृत्य पादयोः ।।१
गुह्याद्गुह्यतरं ब्रूहि व्रतं किञ्चिदनुत्तमम् । तरामि येन पापौघं भीष्मद्रोणवधार्णवम् ।।२

कुंकुम, अक्षौद, दान एवं मान आदि से प्रसन्न करके पुनः प्रातः काल किसी विद्वान् ब्राह्मण को वह सब अर्पित करे । इस विधान द्वारा व्रत सुसम्पन्न कर क्षमा प्रार्थना के उपरांत मित्र-बन्धुओं समेत भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार सादर इस दशमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । युधिष्ठिर ! स्त्रियों को यह व्रत विशेषकर सुसम्पन्न करना चाहिए क्योंकि वे लघुचित्त एवं सदैव कामपरायण होती हैं । महाराज ! इस प्रकार धन्य, यशस्वी, आयु एवं, समस्त कामना प्रदान करने वाले इस उत्तम व्रत का विधान तुम्हें बता दिया गया । दशमी के दिनों में इस आशा दशमी के दश व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाले मनुज पुगंवों के हृदय में यह आशा अनेक फलों से युक्त होकर प्रतिफलित होती है ।३७-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
आशादशमी व्रत वर्णन नामक चौंसठवा अध्याया समाप्त ।६४।

अध्याय ६५

तारकद्वादशी का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—गोविन्द ! मैं पृथिवी का क्षय करने वाला, पापी एवं आप का महान् अपराधी हूँ, अतः आप के चरण की वन्दना करके मैं पूछ रहा हूँ कि —सर्वश्रेष्ठ एक गूढ़ से भी गूढ़ व्रत बताने की कृपा कीजिये । जिससे भीष्म-द्रोण के वध-जनित उस अगाध पाप-सागर को पार कर सकूँ ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्पुरोत्तरो नाम्ना विदर्भायां कुशध्वजः । सांतःपुरसुतो यश्च चक्रे राज्यमतंद्रितः ।।३
जघान तापसं सोऽथ प्रमादान्मृगयां गतः । मृगं मत्वा महारण्ये ब्राह्मणं दैवमोहितः ।।४
तेन कर्मविपाकेन देहान्ते नरकं गतः । तत्रासौ यातना घोरा अनुभूयातिपीडितः ।।५
तस्मादिहागतो मर्त्ये रौद्रो विषधरोऽभवत् । अदशत्सोऽपि राजेन्द्र ब्राह्मणं चरणे रुषा ।।६
लब्ध्वा सह च पञ्चत्वं जगाम द्विजसंयुतः । विपन्नस्तु ततः सिंहो द्वितीयेऽभूत्सुदारुणः ।।७
विदारितमुखो हिंस्रो नानासत्त्वभयंकरः । जघानासौ पुनः श्रेष्ठं राजन्यं मृगया गतम् ।।८
ततोऽपि बहुभिः शस्त्रै राजलोकैर्निपातितः । पुनर्व्याघ्रो बभूवासौ तृतीयेऽपि भवान्तरे ।।९
तीक्ष्णपादनखाघातव्यापादितमृगान्वयः । तेनापि वैश्यो निधनं नीतः किञ्चिद्वनान्तरम् ।।१०
स नीतः कृमिराशित्वं लोकैः खातनिपातनात् । सञ्जातस्तु महानृक्षो नखराहतजन्तुरुक् ।।११
जघान बालं चण्डालादसौ मृत्युमवाप्नुयात् । पञ्चमे मकरो जातः समुद्रेऽतिभयंकरः ।।१२
स्त्रियं जघान तरुणीं स्नातुकामामथागताम् । प्रभाते शङ्करस्याग्रे शशाङ्कग्रहणे निशि ।।१३
तत्रापि बडिशं दत्त्वा जनैः प्राणैर्वियोजितः । पुनः षष्ठे भवे जातः पिशाचः पिशिताशनः ।।१४
क्रूरश्छिद्रपरः क्षुद्रो नरप्राणवियोजकः । सोऽवतीर्णो नरस्यांगं कर्षयामास कस्यचित् ।।१५

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में विदर्भ देश का अधीश्वर राजा कुशध्वज था, जो अपने स्त्री-पुत्र समेत सतत प्रयत्न द्वारा प्रजाओं के पालन-पोषण में सदैव व्यस्त रहता था। एक बार मृगयार्थ जंगल में जाकर दुर्दैव वश मोहित होकर प्रमादी की भांति घूमते हुए उस राजा ने मृग के धोखे में एक तपस्वी ब्राह्मण की हत्या की। उस दुर्विपाक के परिणाम-स्वरूप उसे देहावसान होने पर नरक जाना पड़ा। वहाँ की घोर यातनाओं के अत्यन्त कटु अनुभव करने के उपरांत इस मर्त्यलोक में अत्यन्त रौद्र एवं विषधर सर्प की योनि-ग्रहण किया। राजेन्द्र ! पश्चात् उसने अत्यन्त रुष्ट होकर एक ब्राह्मण के चरण में काट लिया, किन्तु उस ब्राह्मण के साथ उसका भी निधन हो गया। दूसरे जन्म में वह दारुण सिंह हुआ, जिसका अत्यन्त विशाल मुख और स्वयं हिंसक एवं समस्त प्राणियों के लिए भयंकर था। मृगया के लिए आये हुए किसी राजा का उसने पुनः वध किया, किन्तु, राजा के अनेक सेवकों ने अपने अस्त्रों द्वारा उसका भी निधन किया। तीसरे जन्म में वह भीषण व्याघ्र हुआ, जो अपने चरण के तीक्ष्ण नखों द्वारा जंगल के जन्तुओं का सदैव वध करता था। अनन्तर उस प्रदेश में आये हुए एक वैश्य का उसने वध किया और अनेक लोगों ने मिलकर उसे भी वहाँ से भगाया, जिससे वह आगे चल कर एक गड्ढे में गिर गया और उसी कारण उसके अंग में असंख्य कृमि उत्पन्न हो गये। उस दुःसह पीडा को सहन करते अनेक दिनों में निधन होने पर ऋक्ष योनि प्राप्त किया, जो अपने नखों से जीव जन्तुओं को पीड़ित करते रहते हैं। किसी बालक का हनन करने पर किसी चण्डाल द्वारा उसकी भी मृत्यु हो गयी। पाँचवें जन्म में वह समुद्र में भीषण मगर हुआ। ३-१२। एक बार चन्द्र ग्रहण में रात्रि में प्रातः समय शिवालय के सामने समुद्र जल में स्नान करने वाली एक तरुणी स्त्री का उसने वध किया किन्तु उपस्थित लोगों ने उसी समय वडिश द्वारा उसे भी पकड़ कर काल कवलित कर दिया। पुनः छठें जन्म में मांस-भोजी पिशाच हुआ, जो क्रूर, छिद्रान्वेशी, क्षुद्र और मनुष्यों का प्राणहन्ता था। किसी मनुष्य के अंगों के कर्षण करने

मन्त्रेणाहूय सिद्धेन वातिकेन व्यसुः कृतः । सप्तमे स पुनर्जातो दुर्निरीक्ष्यवपुर्भृशम् ।।१६
क्रूरदंष्ट्रः करालास्यो मांसशोणितभोजनः । दिग्वासा मरुभूमीषु वाशिष्ठो ब्रह्मराक्षसः ।।१७
स राष्ट्रं जर्जरं[१] शून्यं सर्वं चक्रे विषादिषु । आक्रम्य भीमदासेन राज्ञा राक्षसशत्रुणा ।।१८
समारोप्य धनुः सङ्ख्ये ब्रह्मास्त्रेण निपातितः । भूयोऽभवव्द्याघ्रसमः स्वजन्मन्यष्टमे भुवि ।।१९
वनेचराणां क्रुद्धाङ्गो ब्राह्मणान्निधनं गतः । ततो हस्ती च भल्लूको मातङ्गेन धनुष्मता ।।२०
एकादशेऽपि पाञ्चालो भवमध्येऽपि भीषणः । ऊर्ध्वकेशोऽतिरक्ताक्षो जातो ह्रस्वतनुर्दृढः ।।२१
पापो धर्मध्वजो रक्षो देवतोज्झितमाल्यधृक् । स दण्डपाशिकेनैव वृक्षाग्रे ह्यवलम्बितः ।।२२
द्वादशे स पुनर्जातः पुष्कलक्लेशभाजनः । भक्ष्यलोभाद्बिलगतो व्याधेन विनिपातितः ।।२३
तेन चासीत्कृतं पूर्वं तारकद्वादशीव्रतम् । तस्य प्रभावाज्जातोऽपि दुष्टयोनौ पुनः पुनः ।।२४
अवाप शीघ्रं पञ्चत्वं संसारभवसागरे । पुनरेवाभवद्राजा विदर्भायां सुधार्मिकः ।।२५
भूयश्चोपोषिता तेन तारकद्वादशी शुभा । दृश्यतां व्रतमाहात्म्यं जातोजातः पुनः पुनः ।।२६
तत्प्रभावद्भुवने भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् । प्राप विष्णुपुरे स्थानं यावदाभूतसंप्लवम् ।।२७

युधिष्ठिर उवाच

कथमेतद्व्रतं कृष्ण कर्तव्यं पुरुषोत्तमैः । स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन स्नानदानजपादिकम् ।।२८

(खरोचने) पर उसने भी किसी सिद्ध तांत्रिक द्वारा उसका निधन कराया। सातवें जन्म में अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य ब्रह्म राक्षस हुआ, जो विकराल, दाँत, भीषणमुख, मांस-शोणितभोजी, दिगम्बर, भूमिवासी और वाशिष्ठ कुल के समान घातक था। गुर्जर प्रदेश के राष्ट्र को अत्यन्त निर्जन बना देने पर वहाँ के राजा भीमदास ने जो उस राक्षस का महान् शत्रु था अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र के प्रयोग द्वारा उसका निधन किया। आठवें जन्म में पुनः व्याघ्र के समान ही एक अन्य हिंसक जंतु हुआ, वनेचरों के लिए सदैव काल स्वरूप था। किसी ब्राह्मण द्वारा निधन होने पर हस्ती, पश्चात् भल्लूक (रीछ) हुआ किसी धनुर्धारी किरात (वनचर) द्वारा वध होने पर पाञ्चाल (पंजाब) प्रदेश में अतिभीषण राक्षस हुआ, जो उर्ध्वकेश किये, रक्तनेत्र, लघु एवं दृढकाय, पापी, अधर्म की मूर्ति एवं सदेव त्यक्त मालाओं को धारण करता था। वह सदैव दण्ड और पाश अस्त्र लिए एक वृक्ष की शिखा पर स्थित रहता था। बारहवें जन्म में अत्यन्त क्लेश भाजन (सर्प) योनि प्राप्त किया जो भक्ष्य के लोभवश विल में प्रवेश करते समय किसी व्याघ्र द्वारा आहत किया गया था। उसने पूर्व काल में तारक नामक द्वादशी व्रत का विधान सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से इस संसार सागर में बार-बार दुष्ट योनियों में जाने पर भी शीघ्र निधन प्राप्त करता था। तदुपरांत वह विदर्भ देश का परम सुधार्मिक राजा हुआ। उसने पुनः उस तारक नामक द्वादशी व्रत का अनुष्ठान उपवास पूर्वक सविधान सुसम्पन्न किया, जिसके प्रभाव से बार-बार जन्म ग्रहण करने पर भी इस भूतल में निष्कंटक राज्य के अनन्त सुखोपभोग करने के उपरांत महाप्रलय समय पर्यन्त विष्णु-लोक का अविच्छिन्न निवास प्राप्त किया।१३-२७

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! पुरुष श्रेष्ठों को किस भाँति इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए और पतिव्रताओं को पति की आज्ञा प्राप्त होने पर स्नान दान, एवं जप आदि समेत इसे कैसे सुसम्पन्न करना बताया गया है।२८

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे गृहीत्वा द्वादशीव्रतम् । अकृत्रिमे जले स्नानमपराह्णे समाचरेत् ।।२९
प्रणम्य भास्कराायाथ कृत्वा देवार्चनं तथा । होमश्च तावत्स्थातव्यो यावदस्तमितो रविः ।।३०
ततो भुक्त्वा फलैः पुष्पैर्गन्धधूपविलेपनैः । सजलं साक्षतं कृत्वा सहिरण्यं शुभैः फलैः ।।३१
रम्ये ताम्रमये पात्रे जानुभ्यां धरणीं गतः । पूर्वामुखः प्रदोषाग्रे मूर्ध्नि कृत्वार्घ्यभाजनम् ।।३२
भूमौ तु मण्डलं कृत्वा गोमयेन सतारकम् । चन्दनेन समालिख्य ध्रुवं हि गगनोन्मुखः ।।३३
सहस्रशीर्षामन्त्रेण भूमौ शक्त्या शनैः स्वयम् । तारकाणां कुरुश्रेष्ठ दद्यादर्घ्यमतन्द्रितः ।।३४
पर्युक्ष्य धूम्रमुत्क्षिप्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । क्रमेण सर्वं निर्वर्त्य भोज्यं भोज्यं निशागमे ।।३५
मार्गशीर्षे खण्डखाद्यं पौषे सोहालकं तथा । तिलतण्डुलकं माघे गुडापूपं च फाल्गुने ।।३६
मोदकांश्चैत्रमासे तु वैशाखे खण्डवेष्टकम् । ज्येष्ठे सक्तुभृतैः पात्रैराषाढे गुडपूरिकैः ।।३७
श्रावणे मधुशीर्षेण नभस्ये पायसेन च । घृतपर्णैश्चाश्वयुजे कांसारैः कार्तिके क्रमात् ।।३८
एभिर्द्वादशभिर्वर्षैर्भोजयित्वा द्विजान्स्वयम् । भुञ्जीत भक्त्या राजेन्द्र पश्चादेवं क्षमापयेत् ।।३९
समाप्ते तु व्रते कृत्वा राजतं तारकागणम् । दृष्ट्वा वा पूर्वविधिना पूजयित्वा क्षमापयेत् ।।४०
कुम्भा द्वादश दातव्याः सोदका मोदकाश्रिताः । ब्राह्मण्यां परिधानं च पद्मरागः सकुंचकः ।।४१
ब्राह्मणे वल्गुलल्लाटं लक्षपुष्पोपशोभितम् । चालकेनोपवीतं च पुष्पं दत्त्वा क्षमापयेत् ।।४२

श्रीकृष्ण बोले—मार्गशीर्ष मास की शुक्ल द्वादशी के दिन अपराह्ण समय किसी नदी अथवा अन्य अकृत्रिम जलाशय में स्नान, भास्कर को प्रणाम और देवार्चना के उपरांत सूर्य के अस्त होने समय तक हवन कार्य सुसम्पन्न करके भोजनानन्तर प्रदोष के समय ताम्र पात्र में फल, पुष्प, गन्ध, धूप, अनुलेपन, अक्षत, जल और सुवर्ण रखकर घुटने के बल पूर्वाभिमुख बैठकर गोमय से मंडलाकार लिपी हुई भूमि में चन्दन द्वारा ताराओं की निर्मित प्रतिमा के लिए आकाश की ओर देखते हुए 'सहस्रशीर्षा' मंत्र के उच्चारण पूर्वक धीरे धीरे अर्घ्य प्रदान करे। पश्चात् धूम का पर्युक्षण (सिंचन) करके वे सभी वस्तुएं दक्षिणा समेत किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित कर क्रमशः सभी कार्यों के सुसम्पन्न होने पर ब्राह्मण भोजन तथा स्वयं भोजन करे। इसी प्रकार प्रतिमास में इसे सुसम्पन्न करते हुए मार्गशीर्ष मास में खांड की वस्तु, पौष में सोहाल, माघ में तिल चावल के लड्डू, फाल्गुन में गुड का पूआ, चैत्र में मोदक, वैशाख में खांड का पदार्थ, ज्येष्ठ में सामग्री समेत सत्तू का पूर्ण पात्र, आषाढ़ में गुड़ समेत पूरी, श्रावण में मधु मिश्रित पदार्थ भाद्रपद में पायस, अश्विन में घृत का तरल पदार्थ और कार्तिक में कसेरू के भोजन करना चाहिए। राजेन्द्र ! इस प्रकार बारह वर्ष तक व्रत को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण भोजनोपरांत भोजन करे और भक्ति समेत देव की क्षमा प्रार्थना करे।२९-३९। व्रत के समाप्त होने पर चाँदी की तारागण की प्रतिमा बनवाकर पूर्वोक्त सविधान पूजन तथा क्षमा प्रार्थना करके मोदक समेत जलपूर्ण बारह घट, ब्राह्मणी के लिए साड़ी, कञ्चुकी (चोली) और पद्मरागमणि के भूषण, ब्राह्मण के लिए सौन्दर्य पूर्ण शिरोभूषण जो एक लक्ष पुष्पों से विभूषित किया गया हो, तथा चालक द्वारा (निर्मित) उपवीत एवं पुष्प अर्पित कर

अनेन विधिना राजन् यः करोति व्रतं नरः । नारी वा भरतश्रेष्ठ भक्तिभावपुरः सरा ।।४३
नक्षत्रलोकं व्रजति विमानेनार्कवर्चसा । अप्सरोगणगन्धर्वयक्षविद्या धरामरैः ।।४४
सहस्रभर्त्ता स्वर्लोके पूज्यमाने दिवाकरैः । वसेत्कल्पायुतं यावत्पुनर्विष्णुपुरं व्रजेत् ।।४५
एतद्व्रतं पुरा चीर्णं शच्या राज्ञ्या श्रियोमया । सीतया दमयंत्या च रुक्मिण्या सत्यभामया ।।४६
मेनया रंभया स्वर्गे उर्वश्या देवदत्तया । अन्याभिरपि नारीभिः पुरुषैश्च पृथग्विधैः ।।४७
चीर्णमेतद्व्रतं पार्थ सर्वपापभयापहम् ।।४८

जन्मान्तरेष्वपि कृतानि हरत्यघानि या संदहत्यहरहः सुकृतोपयोगात् ।
सा द्वादशी जगति तारकनामधेया तन्नास्ति यन्न विदधाति कृता मनुष्यैः ।।४९

इति श्रीभविष्येमहापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तारकद्वादशीव्रतं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।६५

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

अरण्यद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्ब्रूहि मे सम्यगरण्यद्वादशीव्रतम् । सप्राशनं सोपवासं सरहस्यं समन्त्रकम् ।।१

क्षमा प्रार्थना करे। राजन्, भरतश्रेष्ठ ! इस विधान द्वारा इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर सुशोभित और अप्सराओं, गन्धर्व, यक्ष एवं विद्याधर-देवों तथा साक्षात् दिवाकर से पूजित होकर नक्षत्र लोक की प्राप्ति होती है । दश सहस्र कल्प तक वहाँ के सुख पूर्ण निवास करने के उपरान्त विष्णुलोक की प्राप्ति होती है ।४०-४५। पार्थ ! पहले समय में इन्द्राणी समेत इन्द्र, लक्ष्मी सहित मैं, सीता, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा, मेना, रम्भा, उर्वशी एवं देवदत्ता और अन्य स्त्री-पुरुषों ने पृथक्-पृथक् इस समस्त भयहारी व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है । सुकृत कर्मों के योग से जो जमान्तरीय एवं नित्य के पापों का शमन करती है, उसे संसार में तारक द्वादशी के नाम से ख्यात किया गया है, इसलिए इस व्रत को सभी मनुष्य अत्यन्त प्रेम से सुसम्पन्न करते हैं ।४६-४९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
तारक द्वादशी व्रत वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।६५।

अध्याय ६६

अरण्यद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! मुझे आप अरण्य द्वादशी व्रत के विधान, प्राशन, उपवास, रहस्य एवं मन्त्र समेत बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण उवाच

कौन्तेय यत्पुरा चीर्णं सीतया वनसंस्थया । व्रतं राघववाक्येन प्रशस्तं दोषवर्जितम् ।।२
लोपामुद्रालये साध्व्यो मुनिपत्न्यो बहुप्रजाः । भोजितास्तर्पिताः सर्वैराहारैः सर्वकामिकैः ।।३
पद्मिनीपत्रविस्तीर्णे सोपदंशैर्यथा नवैः । भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा लेह्यैश्चोष्यैश्चापि यदृच्छया ।।४
तामिहैकमनाः पार्थः शृणुष्वारण्यद्वादशीम् । मार्गशीर्षे सिते पक्षे एकादश्यां दिनोदये ।।५
स्नात्वा नरः सोपवासः कृत्वा पूजां जनार्दने । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्जागरणैर्निशाम् ।।६
नीत्वा प्रभाते गत्वा च वने वेदाङ्गपारगान् । भोजयित्वा फलप्रायं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।।७
पञ्चगव्यं प्राशयित्वा पूर्वमेवाथ तद्दिने । वर्षमेकं शुभं पूर्णं पारयित्वा युधिष्ठिर ।।८
श्रावणे कार्त्तिके माघे[१] चैत्रे वाथ समर्चिते । सोपदंशैः पत्रशाकैस्तिलशष्कुलिकादिभिः ।।९
अपूपैः[२] खण्डवेष्टैश्च मरीचैः सिंहकेसरैः । धूलीमुखैरमृतफलैः स्वादुकोकरसैः शुभैः ।।१०
शीतलैस्तर्पयेद्विद्वानर्कपुष्पैः सुमालकैः । दधिक्षीराज्यपाणिज्यैश्चातुर्जातकरञ्जितैः ।।११
कर्पूरनखविद्धैश्च मधुरैः पनसोत्तमैः । बहुवृक्षं वनं गत्वा सुस्वादुसलिलं शिवम् ।।१२

श्रीकृष्ण बोले—कौंतेय ! वनवास के समय जानकी जी ने अपने पति राघव की आज्ञा शिरोधार्य कर इस दोषहीन एवं प्रशस्त व्रत को सुसम्पन्न किया था। उसी प्रकार (अगस्तपत्नी) लोपामुद्रा के आश्रम निवासिनी अनेक मुनिपत्नियों ने, जो अनेक संतानों से सुशोभित थी, समस्त प्रकार के यथेच्छ भोजनों द्वारा ब्राह्मणों को संतृप्त करती हुई, इस व्रत को सुसम्पन्न किया। उन्होंने कमल के विस्तृत पत्र पर लेह्न, चोष्य, नवीन उपदंश्य आदि अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्यों द्वारा विप्रों को तृप्त किया था। पार्थ! उसी अरण्य द्वादशी का व्रत विधान मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। मार्गशीर्ष मास की शुक्ल एकादशी के दिन प्रातः सूर्योदय के समय स्नान करके उपवास नियम के ग्रहण पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप द्वारा भगवान् जनार्दन के सप्रेम पूजा सुसम्पन्न करके जागरण करते हुए रात्रि व्यतीत करें। उपरांत प्रभात समय किसी वन में जाकर वेद निष्णात ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर फल भक्षण करे। तथा पूर्व दिन रात्र में उसे पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए। युधिष्ठिर इस विधान द्वारा एक वर्ष तक व्रत को सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में श्रावण, कार्तिक अथवा चैत्र के मास में भगवान् की पूजा करके उपदंश्य, पत्र, शाक, तिलमिश्रित शष्कुली, खांडपूर्ण एवं मिर्च नागकेसर आदि सुगन्धित वस्तु मिश्रित मालपूआ, अत्यन्त सुस्वादु, सरस, मनोहर एवं अमृत के समान मधुर धूली मुख आदि फल शीतल, सुस्वादु एवं मधुर जल से भलीभाँति विद्वान् को तृप्त करे, जो अर्कपुष्प की माला सुशोभित किया गया हो। दही, क्षीर एवं घृत प्लुत पदार्थों और कर्पूर वासित मधुर कटहल फल अर्पित करे।२-११। अनन्तर अनेक वृक्ष के सघन जंगल के निवासी बारह ब्राह्मण विद्वानों को भद्रासन

१. मासे। २. प्रपापैः।

सुखासनोपविष्टांश्च प्रागुदङ्मुखवच्छुचीन् । भोजयेद्दश च द्वौ वा मुनीनारण्यवासिनः ॥१३
एकदण्डींस्त्रिदण्डींश्च गृहस्थांश्चापि सुव्रतान् । ब्राह्मणीर्विविधाः सप्त एकपत्नीः पतिव्रताः ॥१४
चार्वंग्यश्चार्चिताः स्नाताः सर्वावयमशोभनाः । सुवस्त्राः कुंकुमाक्ताङ्गाः सुगन्धकुसुमान्विताः ॥१५
अङ्गैर्वा भोजनीयास्तास्ताश्चादित्यस्य देवताः । वासुदेवजनार्दनदामोदरमधुसूदनाः ॥१६
पद्मनाभकृष्णविष्णुगोवर्द्धनत्रिविक्रमाः । श्रीधरश्च हृषीकेशः पुण्डरीकाक्ष आदिवाराहाः ॥१७
एभिर्द्वादशभिर्मन्त्रैर्नमस्कारान्तयोजितैः । गन्धचन्दनसम्वस्त्रं धूपं दत्त्वा पृथक्पृथक् ॥१८
भोजयित्वा शुभान्नानि दद्यात्ताभ्यः सुदक्षिणाम् । प्रणम्य प्रार्थयेद्भक्त्या विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥१९
ततो भुञ्जीत सहितो भृत्यैः प्रेष्यजनेन च । आगताभ्यागतैर्लोकैः सुहृत्सम्बन्धिबन्धुभिः ॥२०
एवं कौन्तेय कुरुते योऽरण्यद्वादशीं नरः । स देहान्ते विमानस्थो दिव्यकन्यासनावृतः ॥
याति ज्ञातिसमायुक्तः श्वेतद्वीपं हरेः पुरम् ॥२१
यत्र लोकाः पीतवस्त्राः श्यामदेहाश्चतुर्भुजाः । शङ्खचक्रगदापद्मचारुहस्ताः सकौस्तुभाः ॥२२
गरुडासनाः साभरणा मुकुटोत्कटकुण्डलाः । नीलोत्पलोद्दामपद्ममालयालंकृतोरसः ॥२३
लक्ष्मीधरा मेघवर्णाः कपूर्राङ्गदभूषणाः । तिष्ठन्ति विष्णुसामान्ये यावदाभूतसंप्लवम् ॥२४

पर पूर्व और उत्तराभिमुख सुखासीन कर उपरोक्त वस्तुओं के भोजन से तृप्त करना चाहिए जिनमें एक दंडी और त्रिदंडी संन्यासी तथा कर्मनिष्ठ गृहस्थ भी हो। उस समय सात ब्राह्मणी के भोजन भी सुसम्पन्न करे, जो अपने पति की एक वही पत्नी एवं पतिव्रता हो। उन सुन्दरियों को सर्वाङ्ग स्नान लेपन (उपटन) सुवासित सुन्दर वस्त्र, कुंकुम, सुगन्ध और पुष्पों द्वारा अंग प्रत्यंग, सुशोभित कर सुन्दर भोजनोपरांत वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, कृष्ण, विष्णु, गोवर्द्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष एवं आदिवाराह, के अंत में नमस्कार पद जोड़कर (वासुदेवायनमः) गंध, चंदन, वस्त्र, धूप द्वारा पृथक्-पृथक् उनकी पूजा करके दक्षिणाओं से अत्यन्त प्रसन्न करे। पश्चात् प्रणाम पूर्वक प्रार्थना करे कि—'विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों,। इस प्रकार इस विधान द्वारा सुसम्पन्न करके सेवक, दूत, आगन्तुक, मित्र, एवं बंधुओं समेत भोजन करे। कौंतेय ! अरण्य द्वादशी व्रत को इस प्रकार सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य देहावसान के समय विमान पर स्थित होकर दिव्य कन्याओं से सुसेवित होते हुए अपने बन्धुओं समेत श्वेत द्वीप नामक विष्णु के लोक की प्राप्ति करता है जिस लोक के निवासी के पीत वस्त्र, श्यामल देह, चारभुजाएं शंख चक्र, गदा, पद्म से भूषित रहती है, कौस्तुभमणि, गरुड़ वाहन, भूषण, मुकुट कुण्डल से भूषित और नीलकमल की भाँति सूत्र में गुथी हुई कमल की माला से सुशोभित वक्षःस्थल है। लक्ष्मी धारी, मेघ वर्ण एवं कपूर्र, अङ्गद भूषण भूषित वे निवासी सामान्यतः वहाँ विष्णु समान ही दिखायी देते हैं। महाप्रलय तक वहाँ सुखोपभोग करने के अनन्तर इस भूतल में जन्म ग्रहण करने पर महातेजस्वी,

तस्मादेत्य महातेजाः पृथिव्यां नृपपूजिताः । मर्त्यलोके कीर्तिमन्तः सम्भवन्ति नरोत्तमाः ।।२५
ततो यान्ति परं स्थानं मोक्षमार्गं शिवं शुभम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति न संसारे भ्रमन्ति च ।।२६
ये द्वादशीमुपवसन्ति सितामरण्यनाम्नीं वने द्विजवरानथ भोजयन्ति ।
साध्व्यः स्त्रियः सुचरिताभरणाश्च तासां विष्णुः प्रसादमुपयाति ददाति मोक्षम् ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अरण्यद्वादशीव्रतं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।६६

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

घनावृते वरे देवे वर्षाकाले ह्युपस्थिते । मयूरकेकाकुलिते दर्दुरारावपूरिते ।।१

राजाओं के पूज्य एवं प्रख्यात कीर्तिमान होते हैं । पश्चात् देहावसान होने पर शिव प्रसाद उस परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति करते हैं । जहाँ पहुँच कर किसी प्रकार कर शोक और संसार भ्रमण (जन्म मरण) नहीं होता है । इस प्रकार द्वादशी के दिन उपवास पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले, जिसमें अरण्य निवासी ब्राह्मण विद्वानों को भोजन और पतिव्रता स्त्रियों को भोजन एवं आभूषण वस्त्र से सुसम्पन्न किया जाता है, पुरुष को प्रसन्नता पूर्ण होकर विष्णु मोक्ष प्रदान करते हैं ।१२-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
अरण्यद्वादशी व्रत वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।६६।

अध्याय ६७

रोहिणीचन्द्रव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण ! वर्षा काल के समय घनाच्छादन आकाश को देखकर मयूर और दादुर (मेंढक) अपनी वाणियों से मुखरित करते हैं, उन दिनों कुल स्त्रियाँ किस देवता की पूजा करती हैं,

कुलस्त्रियः प्रयच्छन्ति कस्यान्नं काऽत्र देवता । किं व्रतं कृष्ण विख्यातमन्नं कस्यां तिथौ भवेत् ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

प्रवृत्ते श्रावणे मासि कृष्णपक्षे ह्युपस्थिते । एकादश्यां शुचिर्भूत्वा सर्वौषधिजलैः शुभैः ।।३
माषचूर्णेन राजेन्द्र कुर्यादिंदुरिकाशनम् । मोदकांश्च तथा पञ्च घृतपक्वान्सुनिर्मलान् ।।४
नरमेकैकमुद्दिश्य ततो गत्वा जलाशयम् । दुष्टयादोविरहितं सतोयं जलजैर्युतम् ।।५
तस्यैव पुलिने रम्ये जुष्टान्ने गोमयादिना । कृत्वा मण्डलकं वृत्तं पिष्टकादिभिरर्चितम् ।।६
चर्चितं गन्धकुसुमैर्धूपदीपाक्षतोज्ज्वलम् । तत्र चन्द्रं लिखेदेव रोहिण्या सहितं विभुम् ।।
अर्चयेच्च सभार्यो वै मन्त्रेणाऽनेन भावितः ।।७
सोमराज नमस्तुभ्यं रोहिण्यै ते नमोनमः । महासति महादेवि सम्पादय ममेप्सितम् ।।८
एवं सम्पूज्य तस्याग्रे नैवेद्यं देयमर्चितम् । तत्रैव ब्राह्मणे दद्यात्सोमो मे प्रीयतामिति ।।
प्रीयतामिति मे देवी रोहिणी सहितप्रिया ।।९
एवमुच्चार्य दत्त्वा च ततोऽन्तर्जलमाविशेत् । कण्ठान्तं कटिमात्रं वा गुल्फान्तं वा जलाशये ।।१०
ध्यायेच्च मनसा सोमं रोहिणीसहितं तदा । यावत्समस्तं तद्भुक्तं भुक्त्वा चान्तस्तटे स्थितः ।।११

भोजनार्थ कौन अन्न अर्पित करती हैं, उस व्रत का नाम क्या है, और किस तिथि में किस पुत्र की प्रधानता बतायी गयी है ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! श्रावण मास की कृष्ण एकादशी के दिन समस्त औषधमिश्रित जल से पवित्र होकर उरदी के चूर्ण का इन्दुरिकाशन और घृतपक्व निर्मल मोदक प्रत्येक व्यक्ति के पर्याप्त भोजनार्थ एक एक के उद्देश्य से बनाकर ग्रह आदि दुष्ट जन्तु से ही किसी उत्तम जलाशय के रमणीक तट पर गोमय से मण्डलाकार लीप कर चूर्ण आदि से सुशोभित करे अनन्तर गंध, कुसुम, धूप, दीप से अर्चना करते हुए श्वेत अक्षतों द्वारा रोहिणी समेत चन्द्रमा को सुन्दर प्रतिमा बनाकर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सप्रेम उनकी पूजा करे—सोमराज को नमस्कार है, और महासती एवं महादेवी रोहिणी को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, आप लोग मेरी कामनाशीघ्र सफल करे । इस भाँति भक्ति पूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पित करे और उसे उसी स्थान ब्राह्मण को प्रदान करते समय 'रोहिणी देवी समेत चन्द्र देव मुझ पर प्रसन्न हों' ।३-९। ऐसा कहते हुए जल के भीतर कंठ, कटि या गुल्फ (एड़ी) तक के जल में प्रविष्ट होकर रोहिणी समेत सोम का ध्यान करते हुए उसका भक्षण करे और उसके समाप्त होते ही तत्पर स्थित हो जाये । नियम पूर्वक वहाँ रहकर अन्त में ब्राह्मण भोजन और दक्षिणा से उन्हें तृप्त कर दृढ़ प्रतिज्ञा करे

नियम्य वसताम् चान्ये ततो विप्राय भोजनम् । दक्षिणासहितं देयं निश्चयं वाचि कल्पयेत् ॥
भक्त्या शक्त्या यथाचित्तं यथावित्तं तथा तथा ॥१२
यः करोति नरो राजन्नारी वाथ कुमारिका । वर्षेवर्षे विधानेन पार्थेदं रोहिणीव्रतम् ॥१३
इह लोके चिरं स्थित्वा धनधान्यसमाकुले । गृहाश्रमे शुभां लब्ध्वा पुत्रपौत्रादिसन्ततिम् ॥१४
ततः सुतीर्थे मरणं ततो ब्रह्मपुरं व्रजेत् । तस्माद्विष्णुपुरं पार्थ ततो रुद्रपुरं शुभम् ॥१५

खे रोहिणी शशधराभिमता हिता च किं कारणं शृणु नरेन्द्र निवेदयामि ।
सम्पिष्टमाषरचितेन्दुरिकाशितुं यद्भुक्तं जले गुडघृतेन फलं तदेतत् ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रोहिणीचन्द्रव्रतं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।६७

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

अवियोगव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अवियोग व्रतं ब्रूहि मम यादवनन्दन । विधानं तस्य कीदृक्च किं पुण्यं काऽत्र देवता ॥१

कि—'मैं भक्ति पूर्वक यथाशक्ति मनोनुरूप इस व्रत को सुसम्पन्न करता रहूँगा ।' इस प्रकार इस रोहिणी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले कुमार अथवा कुमारी को इस लोक में धन धान्य समेत गृहस्थाश्रम के पुत्र पौत्रादि समेत सुखोपभोग करने के उपरांत किसी प्रतिष्ठा सुतीर्थ में देहावसान होने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है । पार्थ ! पश्चात् विष्णु लोक और रुद्र लोक की भी क्रमशः उसे प्राप्ति होती है । इस भाँति नरेन्द्र ! मनुष्य को ऊपर सदैव रोहिणी समेत चन्द्रमा के प्रसन्न रहने का कारण मैं बता रहा हूँ सुनो ! इस व्रत के अनुष्ठान के समय जल के भीतर प्रविष्ट होकर माष (उरदी) के चूर्ण में गुड़ घी डाल कर चन्द्रमा के आकार वने उस मधुर भक्ष्य (इन्द्रादि का) के भक्षण करना ही इस का मुख्य कारण बताया गया है।१०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
रोहिणी चन्द्र व्रत वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६७।

अध्याय ६८

अवियोगव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादवनन्दन ! मुझे अवियोग व्रत के विधान, उसके पुण्य और प्रधान देवता के बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन कथ्यमानं यथाखिलम् । अवियोगव्रतं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमम् ॥२
प्रौष्ठपदे शुक्लपक्षे द्वादश्यां प्रातरुत्थितः । यस्तु शुक्लाम्बरधरः स्नात्वा पूर्वं जलाशये ॥३
हृद्ये रम्ये सौधतटे हरिं लिख्येत मण्डले । गोधूमचूर्णपिष्टेन लक्ष्मीं तत्पार्श्ववर्तिनीम् ॥४
तत्रैव च हरं गौरीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह । राज्ञीसहितं च रविं त्रैलोक्योद्योतकारकम् ॥५
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैर्नैवेद्यैरर्चयेद्यथाशक्त्या । अवियोगव्रतचारी मन्त्रेणानेन राजेन्द्र ॥६
नारी वा पुरुषो वा अवियोगमतिं दृढां कृत्वा । भक्त्या ध्यानी मौनी दाम्पत्यं पूजयेद्देवम् ॥७
सहस्रमूर्द्धा पुरुषः पद्मनाभो जनार्दनः । व्यासोऽपि कपिलाचार्यो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥८
नारायणो मधुलिहो विष्णुर्दामोदरो हरिः । महावराहो गोविन्दः केशवो गरुडध्वजः ॥९
श्रीधरः पुण्डरीकाक्षो विश्वरूपस्त्रिविक्रमः । उपेन्द्रो वामनो रामो वैकुण्ठो माधवो ध्रुवः ॥१०
वासुदेवो हृषीकेशः कृष्णः संकर्षणोऽच्युतः । अनिरुद्धो महायोगी प्रद्युम्नो नन्द एव च ॥११
नित्यं स मे शुभः प्रीतः सश्रीकः केशशूलिनः । उमापतिर्नीलकण्ठः स्थाणुः शम्भुर्भगाक्षिहा ॥१२
ईशानो भैरवः शूली त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः । कपर्दीशो महालिंगी महाकालो वृषध्वजः ॥१३
शिवः शर्वो महादेवो रुद्रो भूतमहेश्वरः । ममास्तु सह पार्वत्या शङ्करः शङ्करश्चिरम् ॥१४
ब्रह्मा शम्भुः प्रभुः स्रष्टा पुष्करी प्रपितामहः । हिरण्यगर्भो वेदज्ञः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१५
चतुर्मुखः सृष्टिकर्ता स्वयंभूः कमलासनः । विरञ्चिः पद्मयोनिश्च ममास्तु वरदः सदा ॥१६

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! समस्त व्रतों में परमोत्तम इस अवियोग नामक व्रत की व्याख्या विस्तार पूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी के दिन प्रातः काल किसी जलाशय में स्नान नित्य कर्म सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसी जलाशय के सुरम्य तट पर गेहूँ के चूर्ण (आटे) द्वारा विष्णु लक्ष्मी, हर-गोरी, ब्रह्मा-सावित्री, और राज्ञी समेत त्रैलोक्य निर्माता सूर्य की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर यथा शक्ति गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समेत भक्ति पूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुए सविधि अर्चना करनी चाहिए। उसी समय स्त्री पुरुष स्त्री को अवियोग व्रत के लिए दृढ़ संकल्प भक्ति समेत ध्यान, एवं मौन होकर देव दम्पत्तियों की पूजा प्रारम्भ कर अन्त में क्षमा प्रार्थना भी करते रहना चाहिए कि—सहस्र शीर्षा (शिर) वाले पुरुष, जिन्हें, पद्मनाभ, जनार्दन, व्यास, कपिलाचार्य, भगवान् पुरुषोत्तम, नारायण, मधुलिह, विष्णु, दामोदर, हरि, महावराह, गोविन्द केशव, गरुड़ध्वज, श्रीधर, पुण्डरीकाक्ष, विश्वरूप, त्रिविक्रम, उपेन्द्र, वामन राम, वैकुण्ठ, माधव, ध्रुव, वासुदेव, हृषीकेश, कृष्ण, संकर्षण, अच्युत, अनिरुद्ध, महायोगी प्रद्युम्न, और नंद कहा जाता है श्री समेत मेरे लिए शुभ प्रदान करते हुए परम प्रसन्न हों। जप-त्रिशूल से सुशोभित उमापति, नीलकंठ, स्थाणु, शम्भु, भगाक्षिहा, ईशान, भैरव, शूली, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, कपर्दी, ईश, महालिंगी, महाकाल, वृषध्वज शिव, शर्व, महादेव, रुद्र, भूत महेश्वर, एवं पार्वती समेत शंकर जी मेरे लिए सदैव शंकर कल्याणप्रद हों। तथा ब्रह्मा, शंभु, प्रभु, स्रष्टा, पुष्करी, प्रपितामह, हिरण्यगर्भ, वेदज्ञ, परमेष्ठी, प्रजापति, चतुर्मुख, सृष्टिकर्ता स्वयं भू, कमलासन, विरञ्चि एवं पद्मयोनि मेरे लिए सदैव वरदायक हों।२-१६। उसी भाँति आदित्य, भास्कर, भानु,

आदित्यो भास्करो भानुः सूर्योऽर्कः सविता रविः। मार्तण्डो मण्डलज्योतिरग्निरश्मिर्जनेश्वरः॥१७
प्रभाकरः सप्तसप्तिस्तरणिः सरणिः खगः। दिवाकरो दिनकरः सहस्रांशुर्मरीचिमान्॥१८
पद्मप्रबोधनः पूषा किरणी मेरुभूषणः। निकुम्भो दर्णभो देवः सुप्रीतोऽस्तु सदा मम॥१९
लक्ष्मीः श्रीः सम्पदा पद्मा मा विभूतिर्हरिप्रिया। पार्वती ललिता गौरी उमा शङ्करवल्लभा॥२०
गायत्री प्रकृतिः सृष्टिः सावित्री वेधसो मता। राज्ञी भानुमती संज्ञा नित्यभा भास्करप्रिया॥२१
इति पद्मनाभशङ्करपितामहार्कादीन्सप्रियान्पूज्य। दत्त्वादत्त्वा दानं भुक्त्वा चान्ते व्रजेद्वेश्म॥२२
द्वादश्यां चरति नरो व्रतमेतद्भक्तिभावितो लोके। भवति यशोधनभागी सन्ततिमान्विगतसन्तापः॥२३
हरिहरहिरण्यगर्भप्रभाकराणां क्रमेण लोकेषु। भुक्त्वा भोगान्विपुलानथ योगी निर्वृतो भवति॥२४
स्त्रीपुंसयोर्यदि युग्मं पुरुषो वा यदि समाचरति कश्चित्। नारी वा व्रतमेतच्चीर्त्वा यात्यालयं विष्णोः॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हरिहरहिरण्यगर्भप्रभाकराणामवियोगव्रतं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः।६८

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

गोवत्सद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अक्षौहिण्यो दशाष्टौ च मद्राज्यार्थे क्षयं गताः। तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्सातीव वर्तते॥१

सूर्य, अर्क, सविता, रवि, मार्तण्ड, मण्डल ज्योति, अग्नि रश्मि, जनेश्वर, प्रभाकर, सप्त सप्ति, तरणि, सरणि, खग, दिवाकर, दिनकर, सहस्रांशु, मरीचिमान्, पद्मप्रबोधन, पूषा, किरणी, मेरुभूषण, निकुंभ और दर्णभ देव मुझ पर सदा प्रसन्न रहे। लक्ष्मी, श्री, सम्पदा, पद्मा, मा, विभूति, हरिप्रिया, पार्वती, ललिता, गौरी, उमा, शंकरवल्लभा, गायत्री, आकृति, सृष्टि, सावित्री ब्रह्मप्रिया, और राज्ञी, भानुमती, संज्ञा, नित्यभा, तथा भास्कर प्रिया आदि देवियाँ पति समेत सदैव मुझ पर प्रसन्न रहें। इस प्रकार पद्मनाभ (विष्णु), शंकर, पितामह, एवं सूर्य आदि देवों को पत्नी समेत अर्चना पृथक्-पृथक दान और ब्राह्मण भोजन के उपरांत स्वयं भी भोजन करके घर का प्रस्थान करे। इस प्रकार द्वादशी के दिन भक्ति भावना से इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य यश, धन, सौभाग्य, एवं संतति की प्राप्ति पूर्वक सदैव विगत संताप रहता है। अनन्तर विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्य के लोकों में क्रमशः विपुल सुखोपभोग करने के उपरांत महायोगी की भाँति निर्वाण पद प्राप्त करता है। पुरुष अथवा स्त्री को उपरोक्त देवों की पत्नियों समेत उनकी सविधान पूजा करने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होतीहै।१७-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
हरिहरहिरण्यगर्भ और प्रभाकर के अवियोग व्रत वर्णन नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त।६८।

अध्याय ६९

गोवत्सद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते! मेरे राज्य प्राप्ति के निमित्त अठ्ठारह अक्षौहिणी सैनिकों का वध हुआ

तत्र ब्राह्मणराजन्यवैश्यशूद्रादयो हताः । भीष्मद्रोणकलिङ्गादिकर्णशल्यसुयोधनाः ॥२
तेषां वधेन यत्पापं तन्मे मर्माणि कृंतति । पापप्रक्षालनं किञ्चिद्धर्मं ब्रूहि जगत्पते ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

सुमहत्पुण्यजननं गोवत्सद्वादशीव्रतम् । अस्ति पार्थ महाबाहो पाण्डवानां धुरन्धर ॥४

युधिष्ठिर उवाच

केयं गोद्वादशी नाम विधानं तत्र कीदृशम् । कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्काले जनार्दन ॥५
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मां नरकार्णवात् ॥६

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतयुगे पार्थ मुनिकोटिः समागता । तपश्चचार विपुलं नामव्रतधरा गिरौ ॥७
हर्षेण महताविष्टा देवदर्शनकांक्षया । जम्बूमार्गे महापुण्ये नामतीर्थविभूषिते ॥८
पारियात्रे सिद्धपात्रे रम्ये तन्दुलिकाश्रमे । टन्टाविरिति[1] विख्याते उत्तमे शिखरे नृप ॥९
तापसारण्यमतुलं दिव्यकाननमण्डितम् । वशिष्ठशुक्राङ्गिरसक्रतुदक्षादिभिर्वृतम् ॥१०
वल्कलाजिनसम्वीतैर्भृगोराश्रममण्डलम् । नानामृगगणैर्जुष्टं शाखामृगगणैर्युतम् ॥११

है, उस पाप के कारण मेरे चित्त में अत्यन्त जुगुप्सा हो रही है । क्योंकि उस युद्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति के अनेक सैनिक आहत हुए हैं और भीष्म, द्रोण, कलिंगादिक कर्ण, शल्य तथा सुयोधन समेत इन सभी के वध जनित पाप मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहा है । अतः इन पापों के प्रक्षालनार्थ किसी धर्माचरण का उपदेश करने की कृपा कीजिये ।१-३

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डवों के धुरंधर, महाबाहो, पार्थ ! अत्यन्त पुण्य जनक गोवत्स द्वादशी नामक व्रत का विधान तुम्हें बता रहा हूँ ।४

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! गोद्वादशी किसे कहते हैं, उसका विधान क्या है, और किस समय (इस लोक में) उसका अविर्भाव हुआ है, हरे ! इन सबके विस्तार पूर्वक उत्तर देते हुए आप मुझे इस नरक सागर से रक्षित रखने की कृपा करें ।५-६

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में कोटि मुनियों ने देव दर्शन की अभिलाषा से हर्षमग्न होकर अनेक भाँति के व्रतानुष्ठान पूर्वक उस पर्वत शिखर पर तप करना आरम्भ किया । जो 'टंटावि' के नाम से प्रख्यात जम्बू मार्ग में परमोत्तम, महापुण्य एवं अनेक तीर्थों से सुशोभित है । उस आश्रम का नाम तन्दुलिकाश्रम है, जो सोमापर्वत और सिद्ध प्रदेशों से सम्मिलित है । नृप ! उस तपसारण्य के विस्तृत क्षेत्र में दिव्य वन की अतुल शोभा सदैव निखरी सी रहती है जो बल्कल एवं मृग चर्म धारी वशिष्ठ, शुष्क, अंगिरापुत्र, क्रतु दक्ष आदि से चारों ओर से आवृत एवं भृगु के आश्रम मण्डल से विभूषित है । वहाँ जंगल के सभी प्रकार के जन्तुगण आपस में प्रीति पूर्वक निवास करते हैं । शाखामृग गण (वानरों) के मनोहरदृश्य सदैव होते रहते हैं । सिंह और हरिण, अत्यन्त शांत दिखायी देते हैं । वहाँ सभी वस्तु तथा सभी भाँति के वृक्ष हैं, जो इस प्रकार गहन, निर्ऋत, रम्य एवं, अनेक प्रकार की लताओं से आच्छन्न उस

---

१. टटाभिरिति ।

प्रशान्तसिंहहरिणं सर्ववस्तुगतद्रुमम् । गहनं निर्ऋत रम्यं लतासंतानसंकुलम् ॥१२
सिंहव्याघ्रगजैर्भिन्न हरिणैः शबरैः शशैः । वराहैरुरुमिश्रितैः समन्तादुपशोभितम् ॥१३
तपस्यता तत्र तेषां मुनीनां दर्शनार्थिनाम् । व्याजं चक्रे महीनाथ द्वादशार्धार्धलोचनः ॥१४
बभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापाण्डुरमूर्द्धजः । श्लथच्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणिः सवेपथुः ॥
उमापि चक्रे गोरूपं शृणु तत्पार्थ यादृशम् ॥१५
क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुराऽमृतमन्थने । पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ॥१६
नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला बहुला इति । एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च ॥१७
जमदग्निभरद्वाजवशिष्ठासित गौतमाः । जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥१८
गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् । षडंगानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च ॥१९
गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षः शिवप्रियः । तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ॥
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात् ॥२०
गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका । गोमूत्राद्गुग्गुलुर्जातः सुगन्धितः प्रियदर्शनः ॥
आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः ॥२१
यद्बीजं जगतः किञ्चित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् । दधुः सर्वाणि जातानि मङ्गलान्यर्थसिद्धये ॥

आश्रम की भूमि में सिंह व्याघ्र, गज, हरिण, शम्बर, शश, वराह, तथा अनेक भाँति के रुरु (मृग) स्वच्छन्द चारों ओर निर्वाध भ्रमण करते है । उस आश्रम में उन दर्शनार्थी महात्माओं की तपोनिष्ठा को देखकर त्रिनेत्र शिवजी ने जो पंचदश (१५) नेत्रों से भी अलंकृत है, कुछ व्याज पूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया—उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया, वयोवृद्ध होने के नाते उनके शिर के केश अत्यन्त पीत वर्ण के हो गये थे, शरीर की त्वचा (मांस से) शिथिल होकर झूल रही थी, शरीर में कूबर निकल आया था और वे स्वयं हांथ में यष्टिका (छडी) लिए हिलतें काँपते चल रहे थे । पार्थ ! उधर उमादेवी ने भी जिस प्रकार का गोरूप धारण किया था, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पहले समय में क्षीरसागर के मथने पर उसमें से पाँच सौन्दर्य पूर्ण गौओं की उत्पत्ति हुई थी, जो लोक माताएँ कही जाती है नंदा, सुभद्रा, सुरभी, सुशीला और ब्रह्मा के नाम प्रख्यात होकर लोक के उपकार और देवों की तृप्ति के लिए आविर्भूत हुई थी । इत पाँचों कामधेनु गौओं को देवों के सप्रेम प्रदान करने पर जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित, एवं गौतम ने सहर्ष ग्रहण किया । गौओं के षडंग पदार्थ गोमय, गोरोचन, मूत्र, क्षीर, दधि और घृत, अत्यन्त पवित्र एवं संशुद्धिकारक माने जाते हैं । क्योंकि गोमय से उत्पन्न होने के नाते बिल्ववृक्ष भी सम्पन्न तथा शिवप्रिय है । उस वृक्ष पर पद्महस्ता लक्ष्मी सदैव सुशोभित रहती है, इसीलिए उसे भी श्री वृक्ष कहा जाता है । उसी गोमय द्वारा नील कमल के बीज भी उत्पन्न हुए हैं ।७-२०। गोरोचन, मांगलिक, पवित्र एवं सर्वसाधक है । गोमूत्र से अत्यन्त सुगन्ध द्वारा मनोहारी गुगुल की उत्पत्ति हुई है । जो समस्त देवों एवं विशेषकर शिव जी का आहार है । इस समस्त जगत् का जो कुछ थोडा बहुत मूल बीज है, वह (गो) क्षीर से ही उत्पन्न हुआ है । जो अर्थ सिद्धि के निमित्त मंगल परम्परा का विधान कहा गया है ।

घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम् ॥२२
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥२३
गोषु यज्ञाः प्रवर्तंते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः । गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडंगपदक्रमाः ॥२४
शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ । शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥२५
शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम् । ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च षण्मुखः ॥२६
कम्बलाश्वतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ । कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ ॥२७
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः । सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः ॥२८
सन्ध्याद्वयं तथेष्टाभ्यां ग्रीवायां च पुरन्दरः । रक्षांसि ककुदे द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता ॥२९
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जङ्घासु तिष्ठति । खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ॥३०
खुराणां पश्चिमे भागे राक्षसाः सम्प्रतिष्ठिताः । रुद्रा एकादश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्धिषु ॥३१
श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषु च मानवाः । श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालङ्कारमाश्रिताः ॥३२
आदित्या रश्मयो वालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः । साक्षाद्गंगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥३३
त्रयस्त्रिंशद्देवकोटयो रोमकूपे व्यवस्थिताः । उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ॥३४
चत्वारः सागराः प्रोक्ता गावां ये तु पयोधराः । पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा बिन्दुव्यवस्थिताः ॥३५
जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः ।
कण्ठे आहवनीयोऽग्निः सभ्योऽग्निस्तालुनि स्थितः ॥३६
अस्थिव्यवस्थिताः शैला मज्जासु क्रतवः स्थिताः । ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा ॥३७

घृत से अमृत की उत्पत्ति हुई है जिससे देवों को परम तृप्ति हुई है ।२१-२२। इस प्रकार ब्राह्मणों और गौओं के कुल एक ही हैं किन्तु उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है—मंत्र एकत्र स्थित हैं और हवि अन्यत्र गौओं में समस्त यज्ञ एवं देव गण प्रतिष्ठित हैं तथा षडंग वेद पद क्रम आदि समेत उनमें व्याप्त है । गौओं के शृंग मूल में ब्रह्मा, विष्णु सदैव निवास करते हैं, शृंग के अग्रभाग में समस्त तीर्थ, स्थावर और चर स्थित हैं, मध्यभाग में समस्त कारणों के मूलकारण महादेव शिव विराजते हैं, ललाट में गौरी, नासा वंश में षडानन, नासापुट में कम्बल और अश्वतर नामक नाग, कान में अश्विनीकुमार, नेत्रों में चन्द्र सूर्य, दांतों में सभी वसुगण, जिह्वा में वरुण, कुहर में सरस्वती, गंडस्थल में भाग में यज्ञ यक्ष, ग्रीवा में दोनों इष्ट संध्या समेत पुरन्दर, कुकुद (डिल्ल) में रक्षोगण, पार्ष्णि (एड़ी) में आकाश पृथिवी, तथा चार चरण समेत धर्म उनकी जंघाओं में नित्य निवास करता है। खुर के मध्य में गन्धर्व, अग्रभाग में पन्नग (सर्प), खुर के पीछे भाग में राक्षस, पृष्ठ भाग में एकादशी रुद्र, समस्त सन्धियों में वरुण, भोगीतट में पितर गण, कपोल में मानव, अपान स्थान में भी स्वाहा से अलंकृत होकर सदैव रहती है । आदित्य की उदयकालीन समस्त किरणें समस्त शरीर में स्थित हैं गोमूत्र में साक्षात् गंगा, गोमय में यमुना, रोम कूपों में तैंतीस कोटि देवता, और उदर में समस्त शैल एवं कानन समेत पृथिवी, तथा पयोधर में चारों सागरों, क्षीर धारा में पर्जन्य विन्दुओं में मेघगण स्थित है ।२३-३५। उसी प्रकार जठर में गार्हपत्याग्नि, हृदय में दक्षिणाग्नि कंठ में आहवनीय अग्नि, तथा तालु में सम्याग्नि अस्थियों में पर्वत गण, मज्जा में क्रतु (यज्ञ), गौओं के सुरक्त, पीत तथा कृष्ण आदि वर्ण में ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद सुव्यवस्थित है । युधिष्ठिर ! इस प्रकार

सुरक्तपीतकृष्णादौ गवां वर्णे व्यवस्थिताः । तासां रूपमुमा स्मृत्वा सुरभीणां युधिष्ठिर ॥३८
संस्मृत्य तत्क्षणाद्गौरी इयेष सदृशीं तनुम् । आत्मानं विदधे देवी धर्मराज शृणुष्व ताम् ॥३९
षडुन्नतां पञ्चनिम्नां मण्डूकाक्षीं सुवालधिम् । ताम्रस्तनीं रौप्यकटिं सुखुरीं सुमुखीं सिताम् ॥४०
सुशीलां च सुतस्नेहां सुक्षीरां सुपयोधराम् । गोरूपिणीमुमां स्पृष्ट्वा स्वामिनीं तां सवत्सिकाम् ॥४१
दर्शया प्रतरन्हृष्टो महादेवः स्वचेतसि । शनैः शनैर्ययौ पार्थ विप्ररूपी महाश्रमम् ॥४२
दत्त्वा कुलपतेः पार्श्वे भृगोस्तां गां न्यवेदयत् । तपस्विना महातेजास्तां च सर्वेषु पाण्डव ॥४३
न्यासरूपां ददौ धेनुं रक्षित्वा तां दिनद्वयम् । यावत्स्नात्वा इतस्तीर्त्वा जम्बूमार्गं वियाम्यहम् ॥४४
रक्षिष्यामः प्रतिज्ञाते मुनिभिः सुरभीमिमाम् । अन्तर्द्धिमगमद्देवः पुनर्व्याघ्रो बभूव ह ॥४५
वज्रचक्रनखो दर्वी ज्वलत्पिङ्गललोचनः । जिह्वा करालवदनो जिह्वालाङ्गूलदारुणः ॥४६
सम्प्रायादाश्रमपदं तां च धेनुं सवत्सिकाम् । त्रासयामास तां देव मुनीनां दिक्ष्ववस्थितः ॥४७
ऋषयोऽपि समाक्रान्ता आर्तनादं प्रचक्रिरे । हाहेत्युच्चैः केचिदूचुर्हुंहुंकारैस्तथापरे ॥४८
तालास्फोटान्ददुः केचिद्व्याघ्रं दृष्ट्वातिभैरवम् । सापि हम्भारवांश्चक्रे गौरुत्प्लुत्य सवत्सिका ॥४९
तस्या व्याघ्रभयार्तायाः कपिलाया युधिष्ठिर । पलायन्त्या शिलामध्ये क्षणं खुरचतुष्टयम् ॥५०
व्याघ्रवत्सकयोस्तत्र वन्दितं सुरकिन्नरैः । दृश्यतेऽतीव सुव्यक्तं तदद्यापि चतुष्टयम् ॥५१

सुरभी के उन रूपों के स्मरण करके गौरी जी ने उनके समान रूप धारण किया। धर्मराज ! देवीजी ने जिस प्रकार का रूप धारण किया है मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ३६-३९। उनके उस मनोहारी शरीर के ये अंग उन्नत, पाँच निम्न, मेढक के समान नेत्र, सुन्दर वालों से विभूषित पूछ, ताम्रपत्र के समान रक्तवर्ण के स्तन, श्वेत वर्ण की कटि, सौन्दर्य पूर्ण खुर, सुशोभन मुखसित वर्ण था। उमा के उस सवत्सा और स्वामिनी गोरूप को देखकर जो सुशील पूर्ण सुत स्नेह से कातर, सुन्दर क्षीर और पयोधर से विभूषित था, अपने हृदय में अत्यन्त हर्षित होते हुए महादेव उसके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे। पार्थ ! विप्ररूप धारी एवं महातेजा महादेव ने उस आश्रम मे पहुँच कर कुलपति भृगु महर्षि के पार्श्व में स्थित होकर सभी तापसों के समक्ष निवेदन किया। पाण्डव ! उन्होंने कहा कि— न्यास (धरोहर) रूप में यह गौ आप लोगों के पास रख रहा हूँ, जम्बू मार्ग (तीर्थ) में स्नान कर मैं दो दिन में लौट आऊंगा, आप लोग तब तक इसकी रक्षा करे। हम लोग इस सुरभी की रक्षा अवश्य करेंगे इस भाँति मुनियों के प्रतिज्ञाबद्ध होने पर महादेव ने अन्तर्हित होकर पुनः व्याघ्र का रूप धारण किया। वज्र के समान कठोर एवं तीक्ष्ण कर चरण के नख, दर्वी (करछी) के समान लम्बी चौड़ी जिह्वा, जपत्वं प्रज्वलित अंगार के समान पिंगल नेत्र, कराल मुख, दारुण लांगूल (पूंछ) थी। उस आश्रम में इस भीषण रूप से वे मुनियों की ओर अवस्थित होकर सवत्सा उस गौ का त्रस्त कर रहे थे। उसके आक्रमण से भयभीत होने वाले महर्षिगण आर्तनाद करने लगे—४०-४७½। उच्च स्वर से कोई हाय हाय कर रहा था, कोई हुंकार और उस भीषण व्याघ्र को देखकर कोई ताली पीट रहाथा वह गौ भी अपने बछड़े समेत गौओं की 'हंभा' बोली द्वारा करुण क्रन्दन करती हुई पलायन करने लगी। युधिष्ठर ! व्याघ्र से भयभीत होकर उस कपिला के पलायन करने पर शिलाओं के मध्य में व्याघ्र और वत्स के चारों ओर खुर के चिह्न अंकित हैं, जो सुर किन्नरों से वन्दित हैं, आज भी

सजलं शिवलिंगं च शम्भोस्तीर्थं तदुत्तमम् । यस्संस्पृशति राजेन्द्र स गोवध्यां व्यपोहति ।।५२
तत्र स्नात्वा महातीर्थे जम्बूमार्गे नराधिप । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।५३
ततस्ते मुनयः क्रुद्धा ब्रह्मदत्तां महास्वनाम् । जघ्नुर्घंटां सुरैर्दत्तां गिरिकन्दरपूरणीम् ।।५४
शब्देन तेन व्याघ्रोऽपि मुक्त्वा गावं सदत्सिकाम् । विप्रैस्तत्र कृतं नाम ढुण्ढागिरिरिति श्रुतिः ।।
तं प्रपश्यन्ति ये पार्थ ते रुद्रा नात्र संशयः ।।५५
अथ प्रत्यक्षतां श्रेष्ठस्तेषां देवो महेश्वरः । शूलपाणिस्त्रिपुरहा कामघ्नो वृषभे स्थितः ।।५६
उमासहायो वरदः सस्वामी सविनायकः । सनन्दिः समहाकालः सभृङ्गी सुमनो हरः ।।५७
वीरभद्रा च चामुण्डा घण्टाकर्णादिभिर्वृता । मातृभिर्भूतसङ्घातैर्यक्षराक्षसगुह्यकैः ।।
देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ।।५८
प्रणम्य देवेदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा । गोरूपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ।।५९
कार्त्तिके शुक्लपक्षे[1] तु द्वादश्यां नन्दिनीव्रतम् । ततः प्रभृति राजेन्द्र अवतीर्णं महीतले ।।६०
उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णमिदं शृणु । उत्तानपादनामासीत्क्षत्रियः पृथिवीपते ।।६१
तस्य भार्याद्वयं चासीद्रुचिशुघ्नीति विश्रुतम् । शुघ्नीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ।।६२
रुच्याः समर्पितः शुघ्न्या ध्रुवोऽयं रक्ष्यतां सखि । अहं करिष्ये शुश्रूषां भर्तुस्तावत्सदा स्वयम् ।।६३

अत्यन्त स्फुट दिखायी देते हैं । राजेन्द्र भगवान् शम्भु का वह सजल एवं परमोत्तम शिवलिंग तीर्थ वहाँ सुशोभित है, जिसके स्पर्श करने से मनुष्य गो हत्या पाप से शीघ्र मुक्त हो जाता है । नराधिप ! वहाँ के जम्बू मार्ग नामक महातीर्थ में स्नान करने पर ब्रह्म हत्यादि पाप से प्राणी अवश्य मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं । अनन्तर उन मुनिवृन्दों ने क्रुद्ध होकर भीषण स्वपन करने वाले उस देव दत्त नामक घंटा को बजाया, जो सुरगण प्रदत्त था उसके भीषण रव से व्याप्त होने पर गिरि कन्दरों द्वारा भीषण प्रतिध्वनि हुई, जिसके कारण उस व्याघ्र ने उस बछड़े समेत गाय को छोड दिया । ब्राह्मणों ने उस स्थान की 'ढुंढागिरी' से ख्याति की है । पार्थ ! उसके दर्शन करने वाले अवश्य रुद्र रूप हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ।४८-५५। तदुपरान्त महादेव ने उन ऋषियों के सम्मुख प्रत्यक्ष होकर उस रूप से दर्शन दिया, जो अत्यन्त सौम्य था—त्रिपुरान्तक एवं कामविनाशी शिव हांथ में त्रिशूल लिए, उमासमेत वृषभ वाहन पर शोभित, स्वामी कार्तिकेय, विनायक, नंदी, महाकाल, भृंगी, वीरभद्रा, चामुण्डा, और घंटाकर्ण आदि से विभूषित थे । मातृकाएँ, भूतगण, यक्ष, राक्षस गुप्तक, देव, दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर, पन्नग, आदि ब्रह्मचारी गणों ने उमासमेत देवाधि देव भगवान् शिव को प्रणाम कर वत्स समेत गोरूप धारिणी उमा की कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन अर्चना की है । राजेन्द्र ! उसी समय से इस पृथ्वी तल पर यह व्रत अवतरित हुआ है । (राजा) उत्तानपाद ने भी इस व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पृथ्वीपते ! उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय (राजा) थे । रुचि और शुघ्नी नामक उनकी दो स्त्रियाँ थी । शुघ्नी पुत्र ध्रुव के उत्पन्न होने पर, जो बालपन के चरण से विभूषित उस समय अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण दिखायी देते थे । शुघ्नि ने अपनी पत्नी रुचि को वह पुत्र अर्पित कर दिया और कहा—'सखि ! इस

---

१. कृष्णपक्षे तु ।

रुची रसवतीं नित्यं प्रत्यहं कुरुते गृहे । अकरोद्भर्तृशुश्रूषां शुघ्नी नित्यं पतिव्रता ॥६४
कदाचित्क्रोधमात्सर्यात्सापत्न्यं दर्शितं तया । स्वयं रुच्या निहत्यासौ शिशुः खण्डलशः कृतः ॥६५
तापिकायां तथा स्थाल्यां पक्वसिद्धः सुसंस्कृतः । अन्नभोजनवेलायां ददाति नृपभाजने ॥६६
तं वै भक्षयितुं दुष्टा सामिषं भोजनं किल । अथ भोजनवेलायां वत्से जीवितमाप्तवान् ॥६७
तथैव प्रहसन्बालो मातुरुत्सङ्गजोऽभवत् । तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुची पप्रच्छ विस्मिता ॥६८
किमेतद्ब्रूहि वृत्तान्तं कस्येयं व्युष्टिरुत्तमा । किं त्वयाचरितं किञ्चिद्व्रतं दत्तं हुतं तथा ॥६९
सत्यंसत्यं पुनः सत्यं येन जीवति ते सुतः । मयायं सप्त वारांस्तु विशल्य शकलो कृतः ॥७०
पक्वः स्वयं कृतः स्थाल्यां व्यञ्जनैः सह भोजनैः । परिविष्यमाणः स पुनः कथं जीवितमाप्तवान् ॥७१
किं ते सिद्धा महाविद्या मृतसञ्जीवनी शुभा । रत्नं मणिर्महारत्नं योगाञ्जनमहौषधम् ॥७२
कथयस्व महाभागे सत्यंसत्यं भगिन्यसि । एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचख्यौ वत्सगोव्रतम् ॥७३
कार्तिके चैव द्वादश्यां यथा चानुष्ठितं पुरा । व्रतस्यास्य प्रभावेन पुनर्जीवति मे सुतः ॥७४
वत्सो मे वत्सवेलायां मृतोऽर्थं लभते पुनः । समागमश्च भवति व्रतैः प्रवसितैरपि ॥७५
यथार्थमेतद्व्याख्यातं ते च गोद्वादशीव्रतम् । तवापि रुचि तत्सर्वं भविष्यति शुभं प्रियम् ॥७६
एवमुक्तं व्रतं चीर्णं रुच्या पुत्राः सुखं धनम् । संप्राप्ता जीवितान्ते च ध्रुवस्थाने निवेशिताः ॥७७

बालक ध्रुवकी देखभाल तुम करो ।५६-६३। मैं सदैव पति की शुश्रूषा ही करनी चाहती हूँ । इसलिए इसके पालन करने का समय मुझे नहीं है । रुचि सदैव अपने पति के निमित्त रसागार भंडार गृह में भोजन भी बनाती थी और पतिव्रत शुघ्नी नित्य पति की ओर सेवा करती थी एक बार सापत्न्य बैर के नाते अत्यन्त क्रुद्ध होकर रुचि शुघ्नी के पुत्र ध्रुव को खंड खंड करके भोजन पात्र में रखकर प्रज्वलित चूल्हे पर चढ़ा दिया । भोजन के समय राजा के सामने बालक के उस पक्व मांस को भी रखा । उपरांत भोजन के समय वह पुत्र जीवित हो कर अपनी माता के अंक में हँसते खेलते दिखायी दिया । उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर रुचि ने शुघ्नि से पूछा कि—इस वृत्तान्त को तुम बताओ—यह किस सत्कर्म का परमोत्तम फल है, तुमने किस व्रत का अनुष्ठान, हवन अथवा दान किया है । वह सत्य, और सत्य एवं परमसत्य है । क्योंकि उसी कारण यह तुम्हारा जीवित है । मैंने इसे सात बार स्वयं अपने हाथों से खंड खंड करके परिपक्व किया है और अन्य व्यञ्जनादि भोजनों में इसे उलट पुलट कर अत्यन्त सम्मिलित कर दिया था। फिर भी कैसे यह जीवित हो गया ! क्या तुम उस सिद्ध एवं अमृत संजीविनी महाविद्या को जानती हो, अथवा तुम्हारे पास कोई रत्न, मणि, महारत्न, योगाञ्जन या महौषध है।६४-७२। महाभागे ! इस वृतान्त को सत्य-सत्य बताना, क्योंकि तुम मेरी भगिनी हो। इस प्रकार रुचि के कहने पर शुघ्नी ने इस वत्स गोव्रत की व्याख्या सविधान उसे सुनाया—पहले समय में मैंने कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन इस व्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से यह मेरा पुत्र पुनर्जीवित हुआ है । और यह मेरा वत्स वत्स वेला (सायंप्रातःकाल) में अमृत प्राप्त करता है, तथा प्रवासी होने पर भी इसका समागम होता है । इस प्रकार मैंने इस गोद्वादशी व्रत का माहात्म्य यथार्थ वर्णन कर दिया । इसलिए रुद्र देवि ! तुम्हारी भी इष्ट इससे सिद्ध होगा । इस प्रकार शुघ्नि के बताते हुए उस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न कर रुचि ने भी धन पुत्र समेत सुखोपभोग करने के अनन्तर ध्रुव लोक में स्थान प्राप्त किया ।७३-७७। और सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के

ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्त्रा सहासिता । दशनक्षत्रसंयुक्तो ध्रुवः सोऽद्यापि दृश्यते ॥
ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोकः पापैः प्रमुच्यते ॥७८

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्विधानं च तन्मे ब्रूहि जनार्दन । यत्कृतं शुघ्निवचनाद्रुच्या यदुकुलोद्भव ॥७९

श्रीकृष्ण उवाच

सम्प्राप्ते कार्तिके मासि शुक्लपक्षे कुरूत्तम । द्वादश्यां कृतसंकल्पः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥
नरो वा यदि वा नारी एकभक्तं प्रकल्पयेत् ॥८०
ततो मध्याह्नसमये दृष्ट्वा धेनुं सवत्सिकाम् । सुशीलां वत्सलां श्वेतां कपिलां रक्तरूपिणीम् ॥८१
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां स्त्रीजनेश्वर । यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्धपुष्पजलाक्षतैः ॥८२
कुंकुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकैः शुभैः । कुसुमैर्वत्सकं चापि मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥८३
ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट" नमो नमः स्वाहा ॥८४
इत्थं सम्पूज्य गां पृष्ट्वा पश्चात्तां च क्षमापयेत् । ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि ।
मातर्ममाभिलाषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥८५
एवमभ्यर्चयेदेकां गामेतद्धि गवाह्निकम् । पर्युक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभीं ततः ॥८६
तद्दिने तापिकापक्वं स्थालीपाकं च वर्जयेत् । भूमौ स्वयं ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ॥८७
यावन्ति गात्रे रोमाणि गवां कौरवनन्दन । तावत्कालं स वसति गोलोके नात्र संशयः ॥८८

समान अपने पति के साथ रुचि सदैव सुशोभित हुई रहती है । दश नक्षत्रों समेत ध्रुव आज भी दिखायी देते हैं, उनके नक्षत्र के दिन उनके दर्शन करने से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं ।७८

युधिष्ठिर ने कहा—यदुकलोद्भव, जनार्दन ! इस व्रत का विधान मुझे बताने की कृपा करें, जिसे शुघ्नी के कहने पर रुचि ने सुसम्पन्न किया है ।७९

श्रीकृष्ण बोले—कुरूत्तम ! कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के दिन प्रातः किसी पुण्य जलाशय में स्नान करके व्रत के लिए संकल्प करते हुए उस स्त्री या पुरुष को एकाहारी होना चाहिए । अनन्तर मध्याह्न के समय सवत्सा गौ का दर्शन पूजन करे सुशीला एवं वत्सला हो । उसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को भी क्रमशः श्वेत, कपिल एवं रक्तवर्ण की गौ के पूजन बताया गया है । गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत, कुंकुम, अलक्तक, दीप, और माषान्न (उरदी) के सुशोभन वटक (बड़ा) द्वारा गौ की और कुसुमों द्वारा उसके वत्स (बछड़े) की समंत्र अर्चना होनी चाहिए । पाण्डवों की माता रूद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्याना ममृतस्य नाभि" आदि मंत्रों द्वारा उस गौ वत्स की पूजा सुसम्पन्न कर पश्चात् आकार पूर्वक प्रार्थना करे—समस्त देवमय एवं लोक के कल्याण प्रदान करने वाली मातः कुरुनन्दिनि ! मेरी कामना सफल करो ।' इस प्रकार एक गौ की अर्चना की थी क्षमा प्रार्थना के अनन्तर सभी वस्तुओं को जल से अभिसिञ्चित करते हुए सुरभी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और उस दिन पक्व भोजन के त्याग पूर्वक भूमि शयन करने से उस ब्रह्मचारी को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! कौरवनंदन ! गौ के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने दिन वह गोलोक का निश्चल निवास प्राप्त करता है, इसमें सन्देह

मेरोः पुर्यष्टकं रम्यमिन्द्राग्नियमरक्षसाम् । वरुणानिलयक्षाणां रूद्रस्य च युधिष्ठिर ।।
तासामुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोव्रती ।।८९
ऊर्जे सिते द्विदशमेऽहनि गां सवत्सां याः पूजयन्ति कुसुमैर्वटकैश्च हृद्यैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो मर्त्ये वसन्ति सुचिरं बहुजीववत्साः ।।९०
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठरसम्वादे
गोवत्सद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।६९

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्दशयनं व्रतम् । कटदानं समुत्थानं चातुर्मास्यव्रतक्रमम् ।।१

युधिष्ठिर उवाच

किं देवशयनं नाम देवस्स्वपिति चाप्यसौ । देवः किमर्थं स्वपिति किं विधानं सदा वद ।।२
के मन्त्राः के च नियमा व्रतान्यथ क्रिया च का । किं ग्राह्यं किं च भोक्तव्यं सुप्ते देवे जनार्दने ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्थापयेन्मधुसूदनम् । तुलाराशिगते तस्मिन्पुनरुत्थापयेद्व्रतम् ।।४

नहीं, जो मेरु पर्वत रहने वाली इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, यक्ष एवं रुद्र की रमणीयक इन आठ पुरियों के ऊपर स्थित है। युधिष्ठिर ! इस भाँति कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन कुसुम और वटक (बड़ा) द्वारा सवत्सा गौ की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करने वाला इस मर्त्य लोक में अपने अनेक परिवार समेत चिरकाल तक सभी प्रकार के सुखोपभोग करता है।८०-९०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठरसम्वाद में
गोवत्स द्वादशी व्रत वर्णन नामक उन्हत्तरवाँ अध्याय समाप्त।६९।

अध्याय ७०

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें गोविन्दशयन नामक व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसमें कट दान, भगवानकार उत्थान, और चातुर्मास्य व्रत का क्रम बताया है, सुनो।१

युधिष्ठिर ने कहा—(देव!) शयन किसे कहा जाता है, क्या भगवान् भी शयन करते हैं! और उनका शयन किमर्थ होता है ! अतः उसके विधान, मन्त्र, नियम, व्रत, उसकी क्रिया, और भगवान् जनार्दन के शयन करने पर भक्ष्य-भोज्य में किस वस्तु का ग्रहण होता है और किसके त्याग आदि सभी बातों को बताने की कृपा कीजिये।२-३

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य के मिथुन राशिस्थ होने पर भगवान् मधुसूदन की स्थापना और तुलाराशि

अधिमासे च पतिते एष एव विधिक्रमः । नान्यथा स्थापयेद्देवं न चैवोत्थापयेद्धरिम् ॥५
आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः । स्थापयेद्भक्तिमान्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६
पीताम्बरधरं सौम्यं पर्यङ्के स्वास्तृते शुभे । शुक्लवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ॥७
इतिहासपुराणज्ञो विष्णुभक्तोऽपि यः पुमान् । स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रजलैस्तथा ॥८
समालभ्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्वस्त्रैरलङ्कृतम् । पूजयित्वा कुङ्कुमाद्यैर्मंत्रेणानेन पाण्डव ॥९
सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम् ॥१०
एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर । तस्यैवाग्रे स्वयं वाचं गृह्णीयान्नियमांस्ततः ॥११
चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि । स्त्री वा नरो वा भद्भक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः ॥१२
गृह्णीयान्नियमानेतान्दंतधावनपूर्वकम् । तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तृणां पृथक्पृथक् ॥१३
मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् । तैलस्य वर्जनात्पार्थ सुन्दराङ्गः प्रजायते ॥१४
कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुक्षयमवाप्नुयात् । मधूकतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥१५
पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत् । योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ॥१६
कटुकाम्लतिक्तमधुरक्षारकाषायमेव च । यो वर्जयेत्स वैरूप्यं दौर्गत्यं नाप्नुयात्क्वचित् ॥१७
ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठश्च जायते । घृतत्यागात्सुलावण्यं सर्वसिद्धिः पुनर्भवेत् ॥१८

की संक्रांति में उत्थापन करना चाहिए। उस समय अधिक मास के उपस्थित होने पर भी वही विधान एवं क्रम बताया गया है और अन्य रूप से उनकी शयन-स्थापना होनी चाहिए तथा न जागरण रूप उत्थान ही होना चाहिए। आषाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन उपवास पूर्वक श्वेतस्त्र तथा उपधाव (तोशक-तकिया से) सुसज्जित शय्या के ऊपर भगवान् विष्णु की उस प्रतिमा को, जो शंख, चक्र, गदा एवं पद्म से सुशोभित और पीताम्बर से विभूषित हो, शयनार्थ स्थापित करें। इतिहास पुराण वेत्ता एवं विष्णु-भक्त उस पुरुष को चाहिए कि—दधि, क्षीर, घृत, मधु, शहद और अन्य में जल से प्रतिमा का स्नान करा कर सुगन्ध के विलेपन पूर्वक धूप वस्त्र से अलंकृत करते हुए कुंकुम आदि के समंत्र उनकी अर्चना सुसम्पन्न करे। पाण्डव! तदुपरांत—'जगन्नाथ, देव! न्याय के शयन करने पर यह सारा संसार शयन कर जाता है और पुनः प्रबुद्ध होने पर समस्त पराया जगत् जागृत होता है। इस प्रकार की प्रार्थना समेत विष्णु की उस प्रतिमा को शय्या पर स्थापित कर उन्हीं के समक्ष संकल्प पूर्वक चातुर्मासिक-नियम का ग्रहण करे। युधिष्ठिर! विष्णु देव के जागरण-अवधि तक के चातुर्मासिक नियमों के भक्ति पूर्वक ग्रहण करने वाले सभी प्रथम पुरुष को, जो मेरे परमभक्त एवं धर्मार्थ उस व्रत के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा रहते हैं, और दंतधावन पूर्वक ही नियम का पालन करना आरम्भ करते हैं, प्राप्त होने वाले तत्कर्तृक फलों को पृथक्-पृथक् बता रहा हूँ, सुनो! नियम ग्रहण करने पर उन्हें दियाँ गुड के त्याग करने पर वह मधुरवाणी राजा होता है। पार्थ! तैल के त्याग से सुन्दर शरीर, कटु-तैल के त्याग से शत्रु पक्ष, मधूक (महुवा) तेज के त्याग से अतुल सौभाग्य की शोभा होती है।४-१५। उसी भाँति पुष्प आदि भोगों के त्याग से स्वर्ग में विद्याधर एवं योगाभ्यास से ब्रह्मपद की गद्दी तथा कटु आम्ल (खट्टे), तिक्त, मधुर, क्षार एवं काषाय के त्याग से अंग-वैरूप और दुर्गति कभी नहीं होती है। ताम्बूल के त्याग से रक्त कण्ठ भोगी, घृत और त्याग से लावण्य

फलत्यागाच्च मतिमान्बहुपुत्रश्च जायते । शाकपत्राशनाद्रोगी अपक्वादोऽमलो भवेत् ॥१९-
पादाभ्यङ्गपरित्यागाच्छिरोभ्यङ्गाच्च पार्थिव । दीप्तिमान् दीप्तकरणो यक्षो द्रव्यपतिर्भवेत् ॥२०
दधिदुग्ध तक्रनियमाद्गोलोकं लभते नरः । इन्द्रातिथित्वमाप्नोति स्थालीपाकविवर्जितात् ॥२१
लभेत संततिं दीर्घां तापपक्वस्य भक्षणात् । भूमावस्तरशायी च विष्णोरनुचरो भवेत् ॥२२
सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात् । निर्व्याधिर्नीरुजौजस्वी सुरामद्यविवर्जनात् ॥२३
एवमादिपरित्यागाद्धर्मः स्याद्धर्मनन्दन । एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥२४
धारणं नखरोमाणां गङ्गास्नानं दिनेदिने । मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ॥२५
भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । नमो नारायणायेति जपतोनशनं फलम् ॥२६
पादाभिवंदनाद्विष्णोर्लभेद् गोदानजं फलम् । विष्णुपादाम्दुसंस्पर्शात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥२७
विष्णुदेवकुले कुर्यादुपलेपनमर्चनम् । कल्पस्थायी भवेद्राजा स नरो नात्र संशयः ॥२८
प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः । हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२९
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गांधर्वं लोकमाप्नुयात् । नित्यं शास्त्रविनोदेन लोकान्यस्तु प्रबोधति ॥३०
स व्यासरूपी भगवानंते विष्णुपुरं व्रजेत् । पुष्पमालादिभिः पूजां कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३१
नित्यस्नायी नरो यस्तु नरकं स न पश्यति । भोजनं च जयेद्यस्तु स स्नानं पौष्करं लभेत् ॥३२
कृत्वा प्रेक्षणकं दिव्यं राज्यं सोऽप्सरसां लभेत् । अयाजितेन प्राप्नोति वापीकूपे यथा फलम् ॥३३

समेत सर्वसिद्धि तथा फल त्याग से अनेक पुत्र की प्राप्ति होती है । शाक-पत्ते के भोजन से रोगी और अपक्व-भोजन से निर्मल चित्त, चरण तथा शिर के अभ्यंग त्याग से दीप्यमान् एवं दीप्तिकरण युक्त द्रव्याधीश्वर होता है। पार्थिव ! दधि-क्षीर तथा तक्र (मट्ठे) के त्याग करने से गोलोक का निवास, और (वटलोई) पात्र में परिपक्व मध्य के त्याग से इन्द्र का सम्मानित अतिथि होता है ! केवल ताप-पक्व वस्त्र के भक्षण करने से अविच्छिन्न संतति, भूमि शायी होने से विष्णु के अनुसार, मधु-मांस त्याग से सदैव मुनि, योगी, सुरा-मद्य के त्याग से व्याधि हीन तथा ओजपूर्ण आरोग्य करता है । कर्म-नन्दन ! इस प्रकार आदि वस्तु के त्याग से धर्म, एकांत उपवास से ब्रह्मलोक का सम्मान अदा होता है । नख-रोम (शिटकोटा आदि) के धारण पूर्वक मौन व्रत एवं प्रतिदिन स्नान करने वाले की सभी बातें सार्थक होती हैं । सदैव भूमि पर भोजन करने वाला पृथिवी का अधीश्वर होता है, किन्तु 'नमोनारायण' के जप पूर्वक अशन (भोजन) करने से ही उच्च फल की प्राप्ति होती।१६-२६। विष्णु की चरण-वन्दना करने से गोदान के फल प्राप्त होते हैं, और विष्णु का पादारविन्द का स्पर्श करने से मनुष्य व्रत में कृत-कृत्य हो जाता है । कुल परम्परा में विष्णु देव की सदैव लेख अर्चन करने वाला मनुष्य कल्प स्थायी राजा होता है, इसमें संशय नहीं । स्तुति पाठ पूर्वक सौ प्रदक्षिणा करने वाला हंस युक्त विमान द्वारा विष्णु लोक का निवास प्राप्त करता है । विष्णु के विभिन्न गीत वाद्य करने से गन्धर्व-लोक की प्राप्ति होती है । नित्य शाखाओं की चर्चा करते हुये लोगों को जागरूक करने वाला पुरुष व्यास रूपी भगवान् कहलाता है अंत में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, तथा पुष्प-माला की प्राप्ति द्वारा पूजन करने वाले को भी । नित्य स्नान के फल, प्राप्त होते हैं । विष्णु के निमित्त प्रेक्षणवाद की रचना करने से अप्सराओं का दिया हुआ

षष्टकालेन्नभोज्येन स्थायी स्वर्गे नरो भवेत् । पर्णेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ।।३४
शिलायां भोजनान्नित्यं स्नानं प्रयागजं भवेत् । यामद्वये जलत्यागान्न रोगैः परिभूयते ।।३५
एवमादिव्रते पार्थ तुष्टिमायाति हेतुतः । सुप्ते सति जगन्नाथे केशवे गरुडध्वजे ।।३६
निवर्तते क्रियाः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यस्य भारत । विवाहव्रतबंधादिभूतसंस्कारदीक्षणम् ।।३७
यज्ञाश्च गृहवेशादि गोदानाच्च प्रतिष्ठितम् । पूज्यानि यानि कर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ।।३८
असंक्रांतं तु मासं वै दैवे पित्र्ये वर्जयेत् । मलिम्लुचमशौचं च सूर्यसक्रांतिवर्जितम् ।।३९
प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां दिने हरेः । कटदानं भवेद्विष्णोर्महापूजां प्रवर्तयेत् ।।४०
य एतदेव शयनं तत्रेदं कारणं शृणु । पुरा तपःप्रभावेन तोषयित्वा हरिं विभुम् ।।४१
ममापि मानयत्यङ्गं प्रार्थितो योगनिद्रया । निरीक्ष्य चात्मनो देवा रुद्धं लक्ष्म्या उरः स्थलम् ।।४२
शङ्खचक्रासिमार्गाद्यैर्बाहवोप्यथ वक्षसा । अधो नाभेर्विरुद्धं मे वैनतेयेन पक्षिणा ।।४३
मुकटेन शिरो रुद्धं कुण्डलाभ्यां च कर्णकौ । ततो ददावहं तुष्टो नेत्रयोः स्थानमादरात् ।।४४
चतुरो वार्षिकान्मासान्माऽऽश्रिता सा भविष्यति । योगनिद्रापि [1]माहात्म्यं श्रुत्वा पौरातनं शुभम् ।।४५
चकार लोचनावासमतोऽर्थे मे युधिष्ठिर । अहं च तां भावयित्वा मानयामि मनस्विनीम् ।।४६
योग निद्रा महानिद्रा शेषाभिशयने स्थितः । क्षीरोदधौ च विध्यग्रे धौतपादः समाहितः ।।४७

राज्य प्राप्त होता है । अपरिचित पुत्र के भोजन से वापसी और कूप के निर्माण फल, छठें काल में अन्य भोजन करने से स्वर्ग में स्थायी निवास, पत्र पर भोजन करने से कुरुक्षेत्र का पल और शिला पर भोजन करने से प्रयाग स्नान के पुण्य प्राप्त होते हैं । द्वितीय प्रहर में जल के त्याग करने से वह कभी रोग-पीड़ित नहीं होता है । पार्थ! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर मैं अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ । भारत ! गरुड़ध्वज केशव एवं जगन्नाथ के शयन करने पर चारों वर्णों की सभी क्रियाएँ विवाह, व्रतबंध, भूत-संसार, दीक्षा, यज्ञ, गृह प्रवेश आदि समस्त क्रियाएँ, जो योगदान द्वारा प्रतिष्ठित होती है वे सभी पूज्य कर्म इसमें निषिद्ध किये गये हैं । उसी भाँति संक्रांति हीन मास आदि मास में देव और पितृ की सभी क्रियायें स्थगित होने लगती हैं । भाद्रपद मास की शुक्ल एकादशी के दिन विष्णु के लिए केश-दान करना विष्णु की महापूजा का प्रवर्तक होता है।२७-४०। पार्थ! इस समय में शयन करने का कारण बता रहा हूँ, सुनो ! योगनिद्रा देवी ने पहले समय में तप द्वारा भगवान् को प्रसन्न करके समान पूर्वक मेरे अंग-निवास की प्रार्थना की थी । उस समय वैसा देखकर देवो ने लक्ष्मी द्वारा मेरे स्थल को अवरुद्ध करा दिया और शङ्ख, चक्र एवं रबड़ आदि द्वारा बाहु तथा नाभि से नीचे भाग को वक्षःस्थल द्वारा गरुड़ ने अवरुद्ध कर दिया । उसी भाँति मुकुट द्वारा शिर और कुण्डल से कान अवरुद्ध होने पर मैंने अत्यन्त तुष्ट होने के कारण (योगमाया को) अपने नेत्रों में सादर स्थान प्रदान किया । और कहा कि वर्ष के हर चातुर्मास्य के समयवत मेरे आकृति रहेगी । युधिष्ठिर ! योगनिद्रा भी मेरे उस बात को सुनकर सभी से सहर्ष मेरे नेत्रों में निवास करती है । मैं भी उस समय शेषशायी होकर योगनिज एवं महानिज रूपी उस मनस्थित का भावना पूर्ण सुसम्मान करता हूँ । क्षीर-सागर में शेष-शायी होने के समय विधि के सम्मुख या प्रक्षालन

---

१. तद्वाक्यम् ।

लक्ष्मीकराम्बुजैरच्छैर्मृग्यमानपदद्वयः । तस्मिन्कालेऽपि मद्भक्तो यो मासांश्चतुरः क्षिपेत् ।।४८
व्रतैरनेकैर्नियमैः पाण्डवश्रेष्ठ मानवः । कल्पस्थायी विष्णुलोकं स व्रजेन्नात्र संशयः ।।४९
ततोऽववुध्यते देवः श्रीमाञ्छङ्खगदाधरः । कार्तिके शुक्लपक्षस्य एकादश्यां पृथक्छृणु ।।५०
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्द्विजः । इदं विष्णुर्विचक्रमे स्वासने च तदा नृप ।।५१
समुत्थिते तदा विष्णौ क्रियाः सर्वाः प्रवर्तयेत् । महातूर्यरवे रात्रौ भ्रामयेत्स्यंदने स्थितम् ।।५२
उत्थिते देवदेवेशे नगरे पार्थिवः स्वयम् । दीपोद्रेककरे मार्गे नृत्यगीतजनाकुले ।।५३
यं यं दामोदरः पश्येदुत्थितो धरणीधरः । तं तं प्रदेयं राजेन्द्र सर्वं स्वर्गाय कल्पते ।।५४
रात्रौ प्रजागरे देवमेकादश्यां सुरालये । प्रभाते विमले स्नात्वा द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ।।५५
होमयेद्धव्यदाहं च हव्यद्रव्यैर्घृतादिभिः । ततो विप्राञ्छुभान्स्नात्वा भोजयेदन्नविस्तरैः ।।५६
घृतदधिक्षौद्रकाद्यैर्गुडधूपैः समोदकैः । यजमानोऽपि संतुष्टस्त्वरा हास्यविवर्जितः ।।५७
एकादश दशाष्टौ वा पञ्च द्वौ वा कुरूत्तम । अर्चयेच्चन्दनैर्धूपैः पुष्पैर्गन्धैर्द्विजोत्तमान् ।।५८
श्रद्धोक्तविधिना पार्थ भोजयेद्भाग्यवान्यतीन् । आचांतेभ्यस्ततो दद्यात्त्यागं यत्किञ्चिदेव हि ।।५९
स्वदाद्या स्वमनोभीष्टपत्रपुष्पफलादिकम् । चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो यस्य यः कृतः ।।६०
कथयित्वा द्विजेभ्यस्तं दद्याद्भक्त्या सदक्षिणाम् । दत्त्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् ।।६१

पूर्वक मेरे विदित होने पर लक्ष्मी जी अपने कर कमलों से मेरी निरन्तर सेवा करती हैं। इसलिए पाण्डव! उस समय में चार मास तक व्रत-नियम द्वारा उसे व्यतीत करने से दृढ़ प्रतिज्ञा वाले मेरे भक्त पुरुष विष्णु लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं। पश्चात् कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन शङ्ख चक्र, गदाधारी श्री विष्णु देव के जागृत होने के लिए विधान बता रहा हूँ, सुनो! राजेन्द्र! इदं विष्णुर्विचक्रमे, आदि इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उन्हें प्रबुद्ध करना चाहिए। क्योंकि नृप! उनके शयनोत्थान करने पर ही समस्त धार्मिक क्रियाओं का आरम्भ होता है। उस समय राजा को चाहिए कि उन्हें सुसज्जित साधन (रथ) पर सुशोभित करके अनेक वाद्य-ध्वनियों के कोलाहल समेत भ्रमण करायें।४१-५२। मार्ग में प्रकाश का आधिक्य और नृत्य-गीत करने वाले मनुष्यों का महान् संकुल होना चाहिए। उस समय जागृत होकर धरणीधर भगवान् दामोदर जिस जिस प्रदेय वस्तुओं के निरीक्षण करते हैं, वे स्वर्ग में सुसम्मानित होती हैं। एकादशी के दिन रात्रि में विष्णु देव के जागृत होने पर द्वादशी के प्रातः काल स्नान करके उनकी सप्रेम अर्चना सुसम्मान करे। हवनीय वस्तु-तिल, चावल, जवा, आदि घृतयुक्त करके प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को विविध भाँति के भोजन कराये, जो घृत, दधि, मधु, आदि एवं मनोरम गुड-मोदक से सुसम्पन्न किया गया हो। यजमान भी शीघ्रता एवं हास-परिहास का त्याग कर ब्राह्मण-सेवा में ही दत्त चित रहे। कुरुत्तम! एकादश, दश, आठ, पाँच, प्रथम दो ब्राह्मणों को (भोजन के पहले० चन्दन, धूप, पुष्प, एवं गन्धों द्वारा सप्रेम अर्चना करनी चाहिए तथा पार्थ! उस भाग्यवान् को श्रद्धा-भक्ति पूर्वक चार यतियों को भी भोजन कराना चाहिए। अनन्तर अपनी अभीष्ट वस्तु-पत्र, पुष्प एवं फल आदि जो कुछ हो, संकल्प पूर्वक दानरूप में उन्हें अर्पित करे। इस प्रकार चौमासे में जिस वस्तु का नियम पहले से कर लिया गया हो, उसके कथन पूर्वक दक्षिणासमेत उसे ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए विसर्जन के उपरान्त

यत्यक्तं चतुरो मासान्प्रवृत्तिन्तस्य चाचरेत् । एवं य आचरेत्पार्थ सोऽनन्तं धर्ममाप्नुयात् ॥६२
अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरीं व्रजेत् । यस्याविघ्नैः समाप्येत चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥६३
स भवेत्कृतकृत्यस्तु न पुनर्मातृको भवेत् । यो देवशयनं पार्थ मासं मासं समाचरेत् ॥६४
उत्थानं चापि कृष्णस्य स हरेर्लोकमाप्नुयात् । श्रृणोति ध्यायति स्तौति जुहोत्याख्याति यो नरः॥
विष्णोर्भक्तिं परां पार्थ स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥६५

दुग्धाब्धिभोगशयने भगवाननन्तो यस्मिन्दिने स्वपिति यत्र विबुध्यते वा ।
तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति सुगतिं गरुडाङ्कसङ्गी ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रतवर्णनं नामसप्ततितमोऽध्यायः ॥७०

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

नीराजनद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा बभूव राजर्षिरजपाल इति श्रुतः । प्रार्थितः स प्रजाभिस्तु सर्वदुःखापनुत्तये ॥१
दुःखापनोदं कुरु भो व्याधितानां नरेश्वर । एवमुक्तिश्चिरं ध्यात्वा कृत्वाव्याघोन्प्रजागणान् ॥२
पालयामास हृष्टोऽसावजपालस्ततोऽभवत् । तेनैषा निर्मिता शांतिर्नाम्ना नीराजना जने ॥३

स्वयं भोजन करे और चौमासे में अन्य वस्तु की पुनः सेवा करना आरम्भ करे। पार्थ! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाला अनन्त धर्म की प्राप्ति करता है तथा देहावसान के समय इन्द्रलोक की प्राप्ति करता है। राजेन्द्र! नृप! जिस पुरुष का चातुर्मास्य-व्रत निर्विघ्न सुसम्पन्न होता है वह कृत कृत्य होकर पुनः मांस-जठर में प्रवेश नहीं करता है। पार्थ! इस देव के शयन और उत्थान नामक व्रत को प्रति (वर्षक) मास में सुसम्पन्न करता है, उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। पार्थ! इस व्रत के श्रवण, ध्यान, स्तवन, दान एवं आख्यान करने वाले को विष्णु की पराभक्ति समेत वैष्णव भक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार क्षीर-सागर शायी भगवान अनन्त देव के शयन और जागरण के दिन उपवास पूर्वक प्रबल प्रेम प्रकट करने वाले को गरुड वाहन भगवान् विष्णु उत्तम गति प्रदान करते हैं।५३-६६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
देवशयन उत्थापन द्वादशी व्रत वर्णन नामक सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त।७०।

अध्याय ७१

नीराजन द्वादशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में राजर्षि अजपाल नामक राजा राज करते थे, उनकी प्रजाएँ अपने समस्त दुःखों के विनाशार्थ उनसे प्रार्थना की नरेश्वर! हमलोग अत्यन्त व्याधि-पीड़ित हैं, पुनः हमें इससे मुक्त करने की कृपा कीजिए। प्रजाओं के इस प्रकार कहने पर राजा अजपाल ने चिरकाल तक ध्यान रहने के अनन्तर प्रजाओं को व्याधि मुक्त किया तथा अत्यन्त प्रसन्न रहकर उनके पालन-पोषण भी किया पाण्डव

तस्यास्तु पाण्डवश्रेष्ठ लक्षणं वच्मि ते शृणु । राजा पुरोहितैः सार्द्धमनुष्ठेया विधानतः ॥४
तस्मिन्काले बभूवाथ रावणो राक्षसेश्वरः । लङ्कास्थितः सुरगणान्नियुनक्ति स्वकर्मसु ॥५
अखण्डमण्डलं चन्द्रमातपत्रं चकार ह । इन्द्रं सेनापतिं चक्रे वायुं पांसुप्रमार्जकम् ॥६
वरुणं बद्धकर्मस्थं धनदं धनरक्षकम् । यमं संयमनेऽरीणां युयुजे मंत्रणे मनुम् ॥७
मेघाश्छादन्ति नृपतिं द्रुमपुष्पादिपंक्तिषु । सप्तर्षयः शांतिपरा ब्रह्मणा सह संस्थिताः ॥८
यामिका मध्यकक्षायां गन्धर्वा गीततत्पराः । प्रेक्षणीयेऽप्सरोवृंदं बाह्ये विद्याधरा वृताः ॥९
गङ्गाद्याः सरितः पाने गार्हपत्ये हुताशनः । विश्वकर्मान्नसंस्कारे यमः शिल्पिप्रयोजने ॥१०
तिष्ठन्ति पार्थिवाः सर्वे पुरःसेवाविधायिनः । दृश्यन्ते भासुरै रत्नैः प्रभावंतो विभूषणैः ॥११
संदृश्य रावणः प्राह प्रशस्तं प्रतिहारकम् । सेवां कर्तुं मम स्थाने ब्रूहि[1] कोऽत्र समागतः ॥१२
स उवाच प्रणम्याग्रे दण्डपाणिर्निशाचरः । एष ककुत्स्थो मांधाता धुंधुमारो नलोऽर्जुनः ॥१३
ययातिर्नहुषो भीमो राघवोऽयं विदूरथः । एते चान्ये च बहवो राजान इति आसते ॥१४
मेघाकारास्तव स्थाने नाजपाल इहागतः । रावणः कुपितः प्राह शीघ्रं दूतं व्यसर्जयत् ॥१५
इत्युक्ते प्रहितो दूतो धूम्राक्षो नाम राक्षसः । धूम्राक्ष गच्छ ब्रूहि त्वमजपालं ममाज्ञया ॥१६
सेवां कुरु समागच्छ कबन्धो यस्य पार्थिवः । अन्यथा चन्द्रहासेन त्वं करिष्ये विकंधरम् ॥१७

श्रेष्ठ ! उन्हीं राजा अजपाल द्वारा इस शांति की, जो मनुष्यों के लिए परमोत्तम एवं नीराजन के नाम से प्रख्यात है, लक्षण मैं बता रहा हूँ सुनो ! पुरोहितों को साथ लेकर राजा को सविधान इसका अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। उन्हीं दिनों राक्षसाधीश्वर रावण ने लंका में रहकर देवगणों को अपने यहाँ प्रत्येक (उनके योग्य) कार्यों में नियुक्ति किया था—चन्द्रमा को अखण्ड मण्डलाकार आतपत्र (छत्र), इनको सेनापति, वायु को गृहमार्जनक (झाड़ू लगाने वाला), वरुण को बद्धकर्म, कुबेर धनाध्यक्ष, यम को शत्रुनियामक, मनु को मन्त्री एवं वृक्ष-पुष्प आदि की पंक्तियों में मेघ द्वारा आच्छादन अजपाल कर रहे थे। उसी भाँति ब्रह्मा के साथ राजर्षि गण शांति निदान में संलग्न थे। दक्षिण ओर की मध्य कक्षा में गन्धर्व गण गानकर रहे थे, प्रेक्षणीय स्थानों में अप्सराएँ और वाह्य भाग में विद्याधर नियुक्त थे। पान करने के लिए गङ्गा आदि सरिताओं की नियुक्ति की, गार्हपत्य के लिए अग्नि, भण्डार गृह (रसोई) में विश्वकर्मा, शिल्पि कार्य में यम और समस्त नृपगण आचरणों के भूषणों से भूषित होकर उसके समक्ष सेवा कार्य में संलग्न थे। उस समय रावण ने अपने प्रतिहारी प्रशस्त से कहा—यहाँ मेरी सेवा के लिए कौन-कौन उपस्थित है, मुझे शीघ्र बताओ ! दण्डपाणि उस समय राक्षस ने प्रणाम पूर्वक उससे कहा—यह ककुत्स्थ, मांधाता, धुंधुमार, नल, अर्जन, ययाति, नकुल, भीम तथा रघुवंशी राजा विदूरथ हैं और अन्य सभी राजगण उपस्थित हैं एवं मेघ के रूप में यह राजा अजपाल की सेवा कर रहा है। जो सुनकर रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (अजपाल के पास) शीघ्र दूत भेजने की आज्ञा प्रदान की—उसने धूमाक्ष नामक दूत से कहा—'धूम्राक्ष ! मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र जाकर उस अजपाल से कहो कि जिसका राजा कबन्ध है वह शीघ्र आकर मेरी सेवा करो, अथवा चन्द्रहास (रावण) द्वारा विना कन्धे का कर दूँगा'।१-१७। रावण

---

१. नारदः। २. वशम्।

रावणेनैवमुक्तस्तु धूम्राक्षो गरुडो यथा । संप्राप्य तां पुरीं रम्यां तच्च राजकुलं गतः ।।१८
ददर्श यं तमेकं स अजपालमजावृतम् । मुक्तकेशं मुक्तकक्षं नैकमुक्तक्रमद्वयम् ।।१९
यष्टिस्कन्धं रेणुभृतं व्याधिभिः परिवारितम् । निहतामित्रशार्दूलं सर्वोपद्रवनाशनम् ।।२०
मह्यमालिख्य नामानि विनिघ्नितं द्विषां गणम् । स्नातं भुक्तं शुभे स्थाने कृतकृत्यं मुनिं यथा ।।२१
दृष्ट्वा हृष्टमनाः प्राह धूम्राक्षो रावणोदितम् । साक्षेपमजपालोऽपि प्रत्युक्त्वा कारणांतरम् ।।२२
प्रेषयामास धूम्राक्षं ततः कृत्यं समादधे । ज्वरमाकारयित्वा तु प्रोवाचेदं महीपतिः ।।२३
गच्छ लङ्काधिपस्थानमाचरस्व यथोचितम् । नियुक्तस्तदजपालेन ज्वरो राजञ्जगाम ह ।।२४
गत्वा च कंपयामास सगणं राक्षसेश्वरम् । रावणस्तं विदित्वा नु ज्वरं परमदारुणाम् ।।२५
प्रोवाच तिष्ठतु नृपस्तेन मे न प्रयोजनम् । ततः सविज्वरो राजा बभूव धनदानुजः ।।२६
तेनैषा निर्मिता शांतिरजपालेन धीमता । सर्वरोगप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ।।२७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां रजनीमुखे । समुत्थिते विनिद्रे तु देवे दामोदरे तदा ।।२८
वेद्यंते रत्नमालाभी रम्ये मालानुरञ्जिते । जनयित्वा नवं विष्णुं हुत्वा मन्त्रैर्द्विजोत्तमैः ।।२९
वर्द्धमानतरूस्थाभिर्दीपिकाभिर्हुताशनम् । कृत्वा महाजनः सर्वैर्हरिं नीराजयेच्छनैः ।।३०
पुष्पैरभ्यर्चितं देवं समालब्धं च चन्दनैः । बदरैः कर्बुरैश्चैव त्रपुसैरिक्षुभिस्तथा ।।३१
गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्वस्त्रै रत्नैश्च पूजितैः । तस्यैवानुमतां लक्ष्मीं ब्रह्माणं चण्डिकां तथा ।।३२

के इस प्रकार कहने पर धूम्राक्ष ने गरुड की भाँति शीघ्र उसकी रम्यपुरी में पहुँच कर राज दरबार में राजा अजपाल को देखा जो अजाओं (बकरियों) से आवृत था । उसके केश और कक्ष खुले थे तथा क्रमशः दोनों ही मुक्त थे, कन्धे पर घड़ी रखे, धूलि-धूसर, स्वयं व्याधि-परिवार से युक्त था । अपने शत्रु राजाओं का निहन्ता समस्त उपद्रवों का विनाशक, शत्रु गणों के नाम पार्थ ! पर लिख-लिख कर हनन करने वाला वह अजपाल, स्नान भोजन से निवृत्त होकर मुनि की भाँति कृत नृत्य कर्म एवं प्रसन्न मना राजसिंहासन पर सुशोभित था। धूम्राक्ष ने उन्हें देखकर उनसे रावण की सभी बातें सुनाया। राजा अजपाल ने भी साक्षेप (गर्वपूर्ण) उसका उत्तर देकर धूम्राक्ष को भेज दिया और उसके प्रति (रावणार्थ) अपना कृत्य आरम्भ किया—'राजा ने ज्वर को बुलाकर कहा—लंका जाओ और रावण के पास पहुँच कर यथोचित व्यवहार करो।' राजन् ! अजपाल के नियुक्त करने पर ज्वर वहाँ जाकर परिजन समेत राक्षस रावण को कम्पित करने लगा। अनन्तर रावण ने उस ज्वर को अत्यन्त भीषण जानकर कहा—उस राजा को रहने दो, (अर्थात् मेरी सेवा के लिए अजपाल को न बुलाओ), क्योंकि उससे मेरी कोई आवश्यकता नहीं है। पश्चात् वह रावण ज्वर से मुक्त हुआ। १८-२६। उसी धीमान् अजपाल ने इस शांति का निर्माण किया है, जो समस्त रोग के शमन एवं सम्पूर्ण उपद्रवों की विनाशिनी है। कार्तिक मास को शुक्र द्वादशी के दिन सायंकाल के समय भगवान् दामोदर देव के जागृत होने पर माला और रत्न मालाओं से विभूषित एवं रमणीक वेदी स्थान भगवान् विष्णु के जन्मोत्सव पूर्वक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा एवं दीपक वक्ष (रोशनी) आदि के उपरान्त धीरे-धीरे भगवान् का नीराजन (आरती) करे। उस समय विष्णु देव को पुष्प, चन्दन, वेर, कर्बुर त्रपु (रांगां) इच्छु, गन्ध, पुष्प, अलंकार, वस्त्र एवं रत्नों द्वारा पूजन पूर्वक सुसज्जित करने के उपरान्त उसी भाँति लक्ष्मी,

आदित्यं शङ्करं गौरीं यक्षं गणपतिं ग्रहान् । मातरं पितरं नागान्सर्वान्नीराजयेत्ततः ।।३३
गवां नीराजनं कुर्यान्महिष्यादेश्च मण्डलम् । भ्रामयेत्त्रासयेसच्छर्दिघण्टावादनछादनैः ।।३४
ता गावः प्रस्नुता यान्ति स्वापीडास्तबकाङ्गदाः । सिन्दूरकृतशृङ्गाग्राः संभारवशवत्सकाः ।।३५
अनुयांति सगोपालाः कालयन्तो धनानि ते । छेदानुलिप्तरक्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बराः ।।३६
एवं कोलाहले वृत्ते गवां नीराजनोत्सवे । तुरगाँल्लक्षणैर्युक्तान्द्विरदांश्च सुपूजितान् ।।३७
राजचिह्नानि सर्वाणि उद्धृत्य स्वगृहाङ्गणे । राजा पुरोहितैः सार्द्धं मन्त्रिभृत्यपुरःसरः ।।३८
सिंहासनोपविष्टश्च शङ्खतूर्यादिनिस्वनैः । पूजयेद्गन्धकुसुमैर्वस्त्रदीपविलेपनैः ।।३९
ततः स्त्रीलक्षणैर्युक्ता वेश्या वाथ कुलाङ्गना । शीर्षोपरि नरेन्द्रस्य भ्रामयेद्दारुपात्रिकाम् ।।४०
शांतिरस्तु समृद्धिश्च द्विजैश्च स्वजनेन च । ततो नीराजयेत्सौम्यं हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ।।४१
एवमेषा महाशान्तिः ख्याता नीराजने जने । येषां राष्ट्रे पुरे ग्रामे क्रियते पाण्डुनन्दन ।।४२
तेषां रोगाः क्षयं यांति सुभिक्षं वर्द्धते तदा । शान्तिर्नीराजनाल्लोके सर्वान्रोगान्व्यपोहति ।।४३
लोकानावर्द्धयित्वा तु अजपालवरो यथा । एषां रोगादिपीडासु जन्तूनां हितमिच्छता ।।४४
वर्षेवर्षे प्रयोक्तव्या शान्तिर्नीराजना इति ।।४५

ब्रह्मा, चण्डिका, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, गृहगण, मातृ-पितृ और नागो के नीराजन पूर्वक गौओं को नीराजन तथा महिषी आदि के मण्डल करना चाहिए, जो घंटावादन और आच्छादन द्वारा भ्रमण के समय भासित की जाती है। मयूरपिच्छ द्वारा भूषित करने तथा सीगों के अग्र भाग को सिन्दूरों से अनुरञ्जित होने पर वे वस्त्र समेत सुसज्जित गौएँ आधिक दुग्ध देती हैं, जिनके एक वर्ण द्वारा अंग और रक्त पीत एवं श्वेत वस्त्रों द्वारा समस्त देह सुसज्जित रहती है। गोपालों को भी उसी भाँति सुशोभित होकर उनका पुनर्गामी होना चाहिए। २७-३६। इस प्रकार गौओं के कोलाहलपूर्ण नीराजन के समय सुलक्षणों से युक्त घोड़े, हाथियों, राजचिह्न आदि को गृहाङ्गण में रख कर राजा पुरोहित, मन्त्रिगण तथा परिजन समेत वहाँ पहुँच राजसिंहासन को स्वयं विभूषित करते हुए शंख तुरही आदि की ध्वनि पूर्वक पुष्प, वस्त्र, दीप एवं अलेपन द्वारा उन सब की अर्चना करे। तदुपरांत सभी लक्षणों से विभूषित वेश्या अथवा कुलस्त्री सभी द्वारा राजा के शिर के ऊपर दारुपात्रिका का भ्रमण होना चाहिए। ब्राह्मणों तथा स्वजनों द्वारा शांति पाठ के अनन्तर हाथी, अश्व रथ के उस सौम्य समुदाय का नीराजन करे। पाण्डुनन्दन! इस प्रकार मनुष्यों के हितार्थ नीराजन विषयक यह महा शांति उत्पन्न हुई है, अतः जिस राष्ट्र नगर अथवा ग्राम में यह सुसम्पन्न होती है, वहाँ के सभी के रोग-शमन पूर्वक प्रदेश में अत्यन्त सुभिक्ष होता है। यह शांति नीराजन द्वारा लोक के समस्त रोगों को विनष्ट करती है। अजपाल के कथनानुसार प्राणियों के हितार्थ एवं उत्पन्न रोग का आदि के शमनार्थ इसे सुसम्पन्न करने पर अजावृद्धि होती है अतः प्रत्येक वर्ष इस नीराजना शांति को सुसम्पन्न करना परमावश्यक है। अजपाल के वाक्यों से यह निश्चित है कि नूतन जल धर के समान श्यामल भगवान विष्णु के नीराजन पूर्वक ब्राह्मण, रथ, गज, एवं राजचिह्नों के नीराजन करने वाले रोग

नीराजयन्ति नवमेघनिभं हरिं ये गोब्राह्मणान्रथगजांश्च नरेशचिह्नान् ।
ते सर्वरोगरहिताश्च नुता नरेन्द्रैरिंद्रप्रभा भुवि भवंत्यजपालवाक्यात् ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नीराजनद्वादशीव्रतवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।७१

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदेतदतुलं पुण्यं व्रतनामुत्तमं व्रतम् । कर्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम् ।।१
विधानं कीदृशं तस्य फलं च यदुत्तम । कथयस्व प्रसादान्मे मुनीनां हितमिच्छताम् ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

प्रवक्ष्यामि व्रतं पुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यथाविधि च कर्तव्यं फलं चास्य यथोदितम् ।।३
मयापि भृगवे प्रोक्तं भृगुश्चोशनसे ददौ । उशनापि हि विप्रेभ्यः प्रह्लादाय च धीमते ।।४
तेजस्विनां यथा वह्निः पवनः शीघ्रगामिनाम् । विप्रो यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ।।५
भूलोकः सर्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी यथा । यथाश्वमेधो यज्ञानां मथुरा मुक्तिकांक्षिणाम् ।।६
वेदो यथैव शास्त्राणां देवानामच्युतो यथा । तथा सर्वव्रतानां तु वरोक्तं भीष्मपञ्चकम् ।।७

मुक्त होकर इस धरातल पर इन्द्र की भाँति सौन्दर्य पूर्ण प्रजा से भूषित होते हैं । ३७-४६।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में भी कृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
नीराजन द्वादशी व्रत वर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७१।

अध्याय ७२

भीष्मपञ्चकव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कुरुसत्तम! आप ने कार्तिक मास में भीष्मपञ्चक-कर्तव्य को सुसम्पन्न करना परमावश्यक बताया है, अतः उस अतुल पुण्य वाले परमोत्तम व्रत का विधान और फल मेरे तथा महर्षियों के हितार्थ बताने की कृपा कीजिये ! १-२

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें पुण्य रूप एवं परमश्रेय व्रत का विधान एवं फल उसी प्रकार बता रहा हूँ, जिस प्रकार इसका वर्णन शास्त्र में किया गया है । सर्वप्रथम मैंनै मनु जी को और भृगु ने शुक्र को और शुक्र ने ब्राह्मणों एवं श्रीमान् प्रह्लाद को बताया था । जिस प्रकार तेजस्वी पुरुषों में अग्नि, शीघ्र गामियों में पवन, पूज्यों में विप्र, दान में सुवर्ण, सर्वलोकों में भूलोक, तीर्थो में गंगा, यज्ञो में अश्वमेघ, मुक्तेच्छुकों के लिए मथुरा, शास्त्रों में वेद एवं देवों में अच्युत का महत्व विशेष है, उसी भाँति समस्त व्रतों में यह भीष्म पञ्चक व्रत परमोत्तम बताया गया है ।३-७। भीष्म पञ्चक व्रत अत्यन्त दुष्कर वस्तु है, ऐसा भद्र पुरुषों का कहना है

दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं तदिहोच्यते । यस्तत्करोति राजेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥८
वशिष्ठभृगुभर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु । नाभागांगांबरीषाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥९
सीरभद्रादिभिर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैः कलौ युगे ! दिनानि पञ्च पूज्यानि चीर्णमेतन्महाव्रतम् ॥१०
ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियाभिः । क्षत्रियैश्च तथा शक्त्या शौचव्रतपरायणैः ॥११
पराधिः परिहर्तव्यो ब्रह्मचर्येण निष्ठया । मद्यं मासं परित्यज्य मैथुनं पापभाषणम् ॥१२
शाकाहारपरैश्चैव कृष्णार्चनपरैर्नरैः । स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं सुखवर्द्धनम् ॥१३
विधवाभिश्च कर्तव्यं पुत्रपौत्रादिवृद्धये । सर्वकामसमृद्ध्यर्थं मोक्षार्थमपि पांडव ॥१४
नित्यं स्नानेन दानेन कार्त्तिकी यावदेव तु । प्रातः स्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथा व्रती ॥१५
नद्य निर्झरगर्ते वा समालभ्य च गोमयम् । यवव्रीहितिलैः सम्यक्तर्पयेच्च प्रयत्नतः ॥१६
देवानृषीन्पितृंश्चैव ततोन्यान्कामचारिणः । स्नानं मौनं नरः कृत्वा धौतवासा दृढव्रतः ॥१७
ततोऽनुपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् । स्नापयेच्चाच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च ॥१८
तत्रैव पञ्चगव्येन गंधचंदनवारिणा । चन्दनेन सुगंधेन कुंकुमेनाथ केशवम् ॥१९
कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् । अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गंधधूपसमन्वितैः ॥२०
गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं दहेत्कृष्णाय भक्तितः । दीपकं च दिवा रात्रौ दद्यात्पंचदिनानि तु ॥२१
नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् । ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२२

अतः उसके महत्व का वर्णन अशक्य है। क्योंकि राजेन्द्र! जिसने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है, उसने सभी कुछ कर लिया। कृत युग में वशिष्ठ, भृगु एवं गर्ग आदि, त्रेतायुग में नाभाग, अम्बा, अम्बरीष आदि तथा कलियुग में शीरभद्रादि वैश्य और अन्य शूद्रों ने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है। ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक जप, हवन-क्रियाओं द्वारा ब्राह्मणों को और यथा शक्ति पवित्रता पूर्ण व्रत के परायण द्वारा क्षत्रियों को पाँच दिन में इस महाव्रत को सुसम्पन्न कराना है। (व्रत के समय) ब्रह्मचर्य के पालन पूर्वक (अपने कर्तव्य द्वारा) किसी प्राणी को मानसिक पीड़ा न होने पाये, इसका विशेष ध्यान रखते हुए मद्य, मांस, मैथुन और पाप भाषण का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। उस समय भगवान् कृष्ण की अर्चना और शाकाहारी होना बताया गया है। सधवा स्त्री भी सुख समृद्धि वर्द्धक इस व्रत को अपने पति की आज्ञा से सुसम्पन्न कर सकती है और पाण्डव! विधवा स्त्रियों को अपने पुत्र-पौत्रादि के वृद्धयर्थ, समस्त कामनाओं की सफलता और मोक्षार्थ इसका अनुमान अवश्य करना चाहिए। कार्तिक मास में नित्य स्नान और दान करते हुए व्रती को प्रातः स्नान के उपरान्त मध्याह्न के समय किसी नदी, झरना अथवा सरोवर आदि जलाशय में जाकर शरीर में गोमय के अनुलेपन पूर्वक मौन स्नान करके जवा, धान, चावल और तिल समेत देव ऋषि एवं पितृतर्पण करने के उपरांत स्वच्छ वस्त्र को धारण कर संकल्प पूर्वक समस्त पापहारी भगवान् विष्णु की अर्चना आरम्भ करे। अच्युत भगवान् को मधु, क्षीर एवं घृत और पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराकर सुगन्ध पूर्ण चन्दन, कुंकुम, कपूर तथा अर्चना सुसम्पन्न करे। उस समय घृत पूर्ण गुग्गल की धूप अवश्य प्रदान करना चाहिए और पाँच दिन तक अखण्ड दीप की ज्योति होनी चाहिए।८-२१। अनन्तर देवाधिदेव के सम्मुख परमोत्तम नैवेद्य अर्पित करते हुए 'ॐ नमो वासुदेवाय' मंत्र का एक सौ आठ

**जुहुयाच्च घृताक्तांश्च तिलव्रीहींस्ततो व्रती । षडक्षरेण मंत्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ।।२३
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् । जपित्वा पूर्ववन्मंत्रं क्षितिशायी भवेन्नरः ।।२४
सर्वमेतद्विधानं च कार्यं पञ्चदिनेषु हि । संविशेत्कंबले चास्मिन्पदपूर्वं शृणुष्व मे ।।२५
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्नरः । द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ।।२६
पूजयेच्च तृतीयेऽह्नि नाभिं भृङ्गरसेन च । मध्ये बिल्वजयाभिश्च ततः स्कंधौ प्रपूजयेत् ।।२७
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्याः कुसुमैर्नवैः । कार्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ।।२८
अर्चयित्वा हृषीकेशमेकादश्यां समाहितः । संप्राश्य गोमयं सम्यङ् मंत्रवत्समुपावसेत् ।।२९
गोमूत्रं मन्त्रवत्कृत्वा द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती । क्षीरं तत्र त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ।।३०
संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं[1] लङ्घयेत चतुर्दिनम् । पंचमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ।।३१
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् । तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ।।३२
ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् । एवं समापयेत्सम्यग्यथोक्तं व्रतमुत्तमम् ।।३३
सर्वपापहरं पुण्यं प्रख्यातं भीष्मपञ्चकम् । मद्यपो यस्त्यजेन्मद्यं जन्मनो मरणांतिकम् ।।३४
तद्भीष्म पञ्चकं त्यक्त्वा प्राप्नोत्यभ्यधिकं फलम् । ब्रह्मचर्यं नरश्चीर्त्वा सुघोरं नैष्ठिकं व्रतम् ।।३५
यत्प्राप्नोति महत्पुण्यं तत्कृत्वा भीष्मपंचकम् । गात्राभ्यंगं शिरोऽभ्यंगं मधु मांसं च मैथुनम् ।।३६
ब्रह्मलोकमवाप्नोति त्यक्त्वैकं भीष्मपञ्चकम् । संवत्सरेण यत्पुण्यं कार्तिकेन च यद्भवेत् ।।३७**

(एक माला) जप और घृत तिल-चावल की आहुति षडाक्षर मंत्र के अन्त में स्वाहा शब्द के उच्चारण पूर्वक प्रदान करे।२२-२३। सायंकाल के समय संध्या वन्दन के अनन्तर भगवान् गरुड़ध्वज को प्रणाम, और पूर्ववत् मंत्र-जप करके पृथिवी पर शयन करना चाहिए। उसी भाँति उसे पाँच दिन तक करना चाहिए- कम्वल पर सुखासीन होकर प्रथम दिन कमल पुष्प द्वारा भगवान् के चरण, दूसरे दिन नित्य पत्र द्वारा जानु (घुटने), तीसरे दिन भृंग (भंगरैया) द्वारा नाभि, और विल्व तथा जपा द्वारा मध्यभाग और स्कन्ध-पूजन के उपरांत मालती पुष्पों द्वारा शिरोभाग की पूजा करनी चाहिए। कार्तिक मास में देव नामक भगवान् विष्णु के ध्यान परायण रहकर एकादशी के दिन उन हृषीकेश की आराधना के अनन्तर अभिमंत्रित गोमय के अशन, द्वादशी के दिन गोमूत्र, त्रयोदशी में क्षीर, और चतुर्दशी में दधि के प्राशन करके इस प्रकार चार दिन शरीर शुद्ध होने के उपरांत-पाँचवे दिन भगवान् केशव की सविधान अर्चना करे। शराबी ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा द्वारा अत्यन्त प्रसन्न करके वस्त्र-भूषण द्वारा उपदेश की भी अर्चना करे। पश्चात् रात्रि में पंचगव्य के पान पूर्वक नक्त भोजन करके उस व्रत की समाप्ति करे, जो परमोत्तम, सर्वपापहारी, पुण्य एवं भीष्मपञ्चक के नाम से प्रख्यात है। जो मद्यपी (शमावी) अपने मद्यप मद्य का भीष्म पञ्चक के दिन परित्याग करता है, उसे अधिक फल प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य के सुघोर एवं नैष्ठिक व्रत के पालयिता को जिस महान् पुण्य की प्राप्ति होती है, भीष्म पञ्चक व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह अत्यन्त सुलभतया प्राप्त होता है। शरीर एवं शिर के अभ्यंग, मधु-मांस, मिथुन, के त्याग पूर्वक एक भीष्म पञ्चक व्रत को सुसम्पन्न करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण वर्ष,

---

१. कार्यसिद्ध्यर्थम्।

यत्फलं कार्तिकेनोक्तं भवेत्तद्भीष्मपञ्चके । व्रतमेतत्सुरैः सिद्धैः किन्नरैर्नागगुह्यकैः ॥३८
फलं समीहितं प्राप्य कृत्वाभ्यर्च्य जनार्दनम् । पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा ॥३९
खड्गहस्तातिविकृता सर्वलोकमयी नृप । तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ॥४०
करवीरकुसुमापीडा चलत्काञ्चनकुंडला । ब्राह्मणाय प्रदातव्यो कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥४१
अन्येषामपि दातव्यं यत्कृत्वा वसु वांछितम् । कृतकृत्यः स्थिरो भूत्वा विरक्तः संयतो भवेत् ॥४२
शांतचेता निराबाधः परं पदमवाप्नुयात् । नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥४३
अष्टषष्ठैकनयनः शंकुकर्णो महारवनः । जटी द्विजिह्वस्ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः ॥४४
चिंतनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते । इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे ॥४५
तदेव ते समाख्यातं दुष्करं भीष्मपंचकम् । व्रतं च राजशार्दूल प्रवरं भीष्मपञ्चकम् ॥४६
यस्तस्मिंस्तोषयेद्भक्त्या तस्मै मुक्तिप्रदोऽच्युतः । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ॥४७
प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं तत्कृत्वा भीष्मपञ्चकम् । ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी गुरुगामी सदाकृती ॥४८
मुच्यते पातकात्सम्यक्कृत्वैकं भीष्मपञ्चकम् । नास्माद्व्रतात्पुण्यतमं वैष्णवेभ्यो यतोव्रतम् ॥४९
अथास्मिंस्तोषितो विष्णुर्नृणां मुक्तिप्रदो भवेत् । श्रुत्वैतत्पठ्यमानं तु पवित्रं भीष्मपंचकम् ॥५०
मुच्यते पातकेभ्यो वा पाठको विष्णुलोकभाक् । धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर महाव्रतम् ॥५१

तथा कार्तिक मास में कहे हुए फल भीष्मपञ्चक के व्रती को प्राप्त होते हैं। इस व्रत के अनुमान द्वारा सुर, सिद्ध, किन्नर, गुह्यक और नाम गणों ने जनार्दन देव की समर्चना करके अपने अभीष्ट की सिद्धि की है। नृप! पाप की प्रतिमा- रौद्रमुख, अतिभीषण काय, खड्ग हाथ में लिए, अतिविकृति एवं समस्त लोकमयी-वनाकर काले वस्त्र से आवेष्टित करके एक सेर तिल के ऊपर स्थापित करे। कनेर-पुष्प, मयूरपुच्छ, और सुवर्ण-कुण्डल से विभूषित करने के उपरांत 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों, कहते हुए ब्राह्मण को अर्पित करें तथा अन्य को भी प्रदान करना चाहिए। इसको सुसम्पन्न करने पर अभीष्ट धन की प्राप्ति तथा कृतकृत्य एवं स्थिर विरक्त संयत होता है और उस शांत चेता को निर्वाध परम पद की प्राप्ति होती है। नील कमल दल की भाँति श्यामल, चार दाँत, चार भुजाएँ, पन्द्रह नेत्र, शंकुकर्ण, महास्वन, जटीयुक्त, सर्पभूषित, ताम्रमुख, और बाघम्बर धारण किये उस रूप हीन महादेव के इस रूप का ध्यान करना चाहिए। ऐसा भीष्म ने शरशय्या पर पड़े हुए मुझसे कहा था। राजशार्दूल! उसी प्रकार, एवं परमोत्तम भीष्मपञ्चक व्रत का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है। उस व्रतानुष्टान में प्रसन्न करने पर भगवान् अच्युत उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी को भीष्मपञ्चक व्रत सम्पन्न करने पर वैष्णवलोक की प्राप्ति होती है। भीष्मपञ्चक व्रत को एक ही बार सुसम्पन्न करने पर ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, एवं गुरु तल्पग प्राप्ति के पाप से मुक्त हो जाता है। वैष्णव यतियों के लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य परमोत्तम व्रत नहीं हैं। इस पवित्र भीष्मपञ्चक व्रत के श्रवण, पाठ करने से पाप-मुक्ति पूर्वक विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। युधिष्ठिर! इसलिए यह महाव्रत धन्य, पुण्य एवं अत्यन्त पापहारी है।२४-५१। पाण्डव! अन्य भोजन के त्याग

यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम् ।
अन्नस्य भोजननिवृत्तिवशादमुष्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा ।।५२

इति श्रीभविष्ये महापुराण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भीष्मपञ्चकव्रतवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।७२

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

मल्लद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शङ्खचक्रगदापाणे श्रीवत्स गरुडासन । ब्रूहि मे मल्लद्वादश्या विधानं देवकीसुत ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यदा भंडीरन्यग्रोधे वसामि यमुनातटे । गोपालमध्ये गोवत्सैरष्टवर्षोस्मि लीलया ।।२
कंसासुरवधार्थाय मथुरोपवने तदा । आबालो बालरूपेण गोपमल्लैर्बलोत्कटैः ।।३
समेत्य मल्लगोपस्य बलेन सह कानने । आस्फोटयन्ति नृत्यन्ति त्रिदशे त्रिदशा इव ।।४
सुरभद्रो मण्डलीकयोगवर्द्धनयोगदाः । यक्षेन्द्रभद्र इत्यादि तेषां नामानि गोकुले ।।५
गोपीनामपि नामानि प्राधान्येन निबोध मे । गोपाली पालिका धन्या विशाखा ध्याननिष्ठिका ।।६
इल्वानुगन्धा सुभगा तारका दशमी तथा । इत्येवमादिभिरहं सूपविष्टो वरासने ।।७

पूर्वक एकादशी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त इस भीष्मपश्चक नामक व्रत को जो इस भूतल पर अत्यन्त प्रख्यात है, सुसम्पन्न करते हुए प्रसन्न करने पर शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णु उसे अभीष्ट प्रदान करते हैं।५२

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
भीष्मपश्चक व्रत वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७२।

अध्याय ७३

मल्लद्वादशी व्रत-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले, श्रीवत्स (भृगुलता) भूषित एवं गरुड़वाहन देवकीसुत! मुझे मल्ल द्वादशी व्रत का विधान बताने की कृपा कीजिए ।१

श्रीकृष्ण बोले—जिस समय भण्डीरवन में यमुना तटवर्ती वटवृक्ष के नीचे गोपालों के मध्य रहकर गोवंसों के साथ अनेक भाँति की लीलाएँ करता था और कंसासुर केवधार्थ मथुरा के उपवन में अत्यन्त वलोत्कट गोमल्लों के साथ मेरी, वलभद्र एवं अन्य गोपमल्लों की मल्लक्रीडा होती थी-वे सब ताल ठोकते थे, नृत्य करते थे और तीनों समय में देवों के समान रहते थे, जिनके सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्द्धन, योगद और पक्षेन्द्रभद्र नाम थे, तथा गोकुल आदि की रहने वाली प्रधान गोपियों को भी बता रहा हूँ, सुनों! गोपाली, पालिका, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, इल्वा, अनुगंधा, सुभागा, तारका और दशमी आदि

पूजितोऽस्मि सुरैः पुष्पैर्दधिदुग्धाक्षतैस्तथा । शतानि त्रीणि षष्टिश्च मल्लानां पूजयंति माम् ।।८
मल्लिन्यश्च सुरामांसैरङ्गजागरनर्त्तनैः । मल्लयुद्धैर्बहुविधैर्बाह्यैर्मल्लभटैः स्फुटैः ।।९
भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा पानैर्दधिदुग्धघृतासवैः । गोदानैर्वृषदानैश्च श्रद्धया विप्रपूजनैः ।।१०
गोष्ठीप्रभूतैर्बंधूनां स्नेहसंभाषणैर्मिथः । एवं द्वादश द्वादश्यो ग्रहीतव्या यथेच्छया ।।११
संबंधिभिः क्रमेणैव मल्लानां च पृथक्पृथक् । पूजयंति क्रमेणैव मासिमासि तनुं मम ।।१२
मासादिकार्तिकांतं च भक्त्या द्वादशनामभिः । पारणेपारणे दद्यान्मल्लकानि द्विजातये ।।१३
केशवनारायणमाधवगोविन्दविष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामन
श्रीधरहृषीकेशपद्मनाभदामोदराणां नमोनमः इति ।।१४
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्जागरणैर्निशि । गीतवाद्यैश्च नृत्यैश्च मल्लक्ष्वेडाङ्गयुद्धकैः ।।१५
घृतदानैः क्षीरदानैः कृष्णो मे प्रीयतामिति । एवमेष विधिः प्रोक्तो मासैर्द्वादशभिर्नृप ।।१६
द्वादशी या ममाद्यापि मनसः प्रीतिवर्द्धनी । मल्लैः प्रवर्तिता यस्मादतोऽर्थं मल्लद्वादशी ।।१७
तेषां परममल्लानां तेषां ज्ञानं युधिष्ठिर । गोष्ठे सुप्राज्यं गोमहिष्याद्यजाविकम् ।।१८
मत्प्रसादाद्धर्मपुत्र बलं कीर्तियशो धनम् । एवमन्येऽपि पुरुषा ह्यबला मल्लद्वादशीम् ।।१९
ये करिष्यंति मद्भक्तास्तेषां दास्यामि हृद्गतम् । आरोग्यं बलमैश्वर्यं विष्णुलोकं च शाश्वतम् ।।२०

गोपियों समेत मैं वह सौन्दर्य पूर्ण उत्तम प्रासन पर सुखासीन होकर पुष्प, दधि, दुग्ध और अक्षतादि द्वारा सुपूजित होता था। आज भी वहाँ तीन सौसाठ मल्ल तथा मल्ल स्त्रियों द्वारा सुरा, मांस, जागरण और नृत्य से मेरी पूजा होती है। अनेक भाँति के मल्लयुद्ध करने वाले बाहरी मल्लभरों द्वारा मल्लयुद्ध के प्रदर्शन भक्ष्य भोज्य, दधि, क्षीर, एवं घृत और (आसवों) तथा गोदान, वृषदान, श्रद्धा समेत विप्रपूजन एवं सज्जन गोष्ठी और बन्धुओं में स्नेह पूर्ण भाषणों द्वारा वे हमारी सेवा करते हैं। इसी प्रकार अन्य भी वारह द्वादशी तक इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए।२-११। उपरोक्त गोपों की भाँति सम्बन्धियों द्वारा क्रमशः मल्लों की पृथक्-पृथक् युद्ध बन्धुओं से प्रतिमास मेरी शारीरिक पूजा करनी चाहिए।१२। मार्गशीर्ष मास से आरम्भ कर कार्तिक मास वर्पन्त भक्ति पूर्वक 'केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, एवं दामोदर को नमस्कार है' प्रतिमास में क्रमशः ऐसा कहते हुए प्रत्येक पारण में ब्राह्मणों को मल्ल अर्पित करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप द्वारा विष्णु के पूजन, रात्रि जागरण, गायन, वाद्य, नृप, नामोच्चारण पूर्वक अंग-अपंग के युद्ध, घृतधन और क्षीर दान अर्पित कर कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर अन्त में विसर्जन करे। नृप! इस प्रकार मैंने इन वारह द्वादशियों के विधान का वर्णन कर दिया, जो द्वादशी आज भी मेरे प्रेम की वृद्धि कर रही है तथा मल्लों द्वारा आरम्भ होने के नाते मल्ल द्वादशी के नाम से ख्यात है।१३-१७। युधिष्ठिर! इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उन परम मल्लों के गोष्ठी सुप्राज्य, तथा गौ, महिषी, बकरी और भेंड़ विषपक ज्ञान की प्राप्ति पूर्वक मेरी प्रसन्नता से बल, कीर्ति, यश और धन की वृद्धि होती है। धर्मपुत्र! इसी प्रकार अन्य पुरुषों और स्त्रियों को भी जो भक्ति पूर्वक इस मल्ल द्वादशी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करते हैं, मनोरथ सफल करता हूँ तथा अरोग्य, बल, ऐश्वर्य, और शाश्वत विष्णुलोक का निवास भी प्रदान करता हूँ। भाण्डीर वन में न्यग्रोध

भाण्डीरपादपतले मिलितैर्महद्भिर्मल्लैरनाकुलितबाहुबलैर्बलिष्ठैः ।
संपूजितः सपदि यत्र तिथौ ततश्च सा द्वादशी सुविदिता व्रत मल्लसंज्ञा ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नल्लद्वादशीव्रतवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।७३

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भीमद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

विदर्भाधिपतिः श्रीमानासीत्पूर्वं सुधार्मिकः । दमयन्त्याः पिता पूर्वं नलस्य श्वशुरो भुवि ॥१
सत्यवादनशीलश्च प्रजापालनतत्परः । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान् संग्रामेष्वपराजितः ॥२
तस्यापि कुर्वतो राज्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । आजगाम महाभागः पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥३
सर्वज्ञाननिधिः श्रीमांस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । तमागतमथो दृष्ट्वा ब्रह्मयोनिमकल्मषम् ॥४
उत्थाय प्रददौ राजा स्वमासनमभीप्सितम् । अर्घ्यं पाद्यं च यत्किञ्चित्तत्तस्मै प्रददौ स्वयम् ॥५
राज्यं चैवात्मना सार्द्धं निवेद्य स कृतांजलिः । तेन चैवाभ्यनुज्ञातो निषसाद वरासने ॥६
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं तपस्यध्ययने तथा । तथेति चोक्त्वा स मुनिस्तं राजानमभाषत ॥७

(वट) की छाया में अनेक मल्ल योद्धाओं द्वारा द्वादशी के दिन मेरी पूजा होने के नाते इसे मल्ल द्वादशी कहा गया है ।१८-२१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
मल्ल द्वादशी व्रत वर्णन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७३।

अध्याय ७४

भीमद्वादशी व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पूर्व काल में विदर्भ देश के नरेश्वर (राजा भीम) परम धार्मिक पुरुष थे, जो दमयंती के पिता एवं राजा नल के श्वसुर थे। सत्यवादी, प्रजाओं के पालन-पोषण में सदैव तत्पर, क्षत्रिय धर्म निष्ठ, एवं रणस्थल में अजेय उस राजा के शास्त्रीय-विधान द्वारा राजशासन काल में एक बार ब्रह्मा के पुत्र महाभाग पुलस्त्य महर्षि का उनके यहाँ आगमन हुआ, जो समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं ब्रह्मतेज विभूषित थे। तीर्थ यात्रा के क्रम में कलमषहीन उन ब्रह्म-पुत्र के आगमन को देखकर राजा ने सहसा आसन, से उठकर अपने अभीष्ट अर्घ्य-पाद्य द्वारा उनकी सेवा की तथा अंजली बाँधकर अपने समेत सम्पूर्ण राज्य उन्हें निवेदित किया। पश्चात् उनकी आज्ञा से राजसिंहासन को भूषित करते हुए उनके अध्ययन और तप का कुशल-मंगल पूछा। महर्षि ने राजा मे प्रश्न का यथोचित उत्तर देते हुए कहा ।१-७

पुलस्त्य उवाच

कच्चित्ते कुशलं राजन्कोशे जनपदे पुरे । धर्मे च ते मतिर्नित्यं कच्चित्पार्थिव वर्तते ।।८

भीम उवाच

सर्वत्र कुशलं ब्रह्मन्येषां कुशलमिच्छसि । तव चागमनेनाहं पावितः संगवारिणा ।।९
एवं तौ संविदं कृत्वा संभाष्याथ परस्परम् । रेमते पूर्ववृत्तान्तैः कथाभिरितरेतरम् ।।१०
ततः कथांते राजेन्द्र पुलस्त्यं जातविस्मयः । पप्रच्छ सर्वलोकस्य हिताय जगतः पतिः ।।११
भगवन्प्राणिनः सर्वे संसारार्णवमध्यगाः । दृश्यंते विविधैर्दुःखैः पीड्यमाना दिवानिशम् ।।१२
नरके गर्भवासे[1] च व्याधिभिर्जन्मनः तथा । तथा कष्टवियोगादिदुःखैर्दौर्गत्यसंभवैः ।।१३
लालप्यमाना बहवः परपीडोपजीविनः । एवं विधान्यनेकानि दुःखानि मुनिपुङ्गव ।।१४
दृष्ट्वैव तानि तान्येव भृशं मे व्याधितं मनः । तेषां दुःखानि भूतानां प्राणिनां भुवि मानद ।।१५
उपकारकरं ब्रूहि ममानुग्रहकाम्यया । स्वल्पायासेन भगवञ्जायते सुमहत्फलम् ।।१६

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यदुपोष्य न दुखानां भाजनो जायते जनः ।।१७
माघमासे सिते पक्षे द्वादशी पावनी स्मृता । तस्यां जलार्द्रवसन उपोष्य सुखभाग्भवेत् ।।१८

पुलस्त्य बोले—राजन्! आप के कोश एवं प्रजाएँ सकुशल हैं! तथा पार्थिव! तुम्हारी धार्मिक दृढ़-भावना सदैव अविरत रहती है ! ८

भीम ने कहा—ब्रह्मन्! जिनके कुशल आप पूँछ रहे हैं, वे सभी सकुशल हैं और मैं तों आप के इस आगमन द्वारा इस संयोग (मिलन) रूपी वारि से अत्यन्त पवित्र हो गया। इसी प्रकार वे दोनो परस्पर के कुशलमंगल की जानकारी के उपरांत पूर्व वृत्तान्त एवं अन्योन्य कथाओं द्वारा अधिक समय तक मनोविनोद करते रहे। राजेन्द्र! कथाओं के अन्त में राजा भीम ने लोक कल्याणार्थ महर्षि प्रवर पुलस्त्य जी से पूछाँ—'भगवान्! संसार मे सभी प्राणी इस घोर भवसागर में निमग्न हो रहे हैं—वे अनेक व्याधियों द्वारा अहर्निश पीड़ित दिखायी दे रहे हैं—नरक वास, गर्भ वास, व्याधि पीड़ित जन्य, वियोगादि जन्य दुःख तथा दुर्गति की यातनाओं के सम्मुख कर रहे हैं। अनेक प्राणी तो लालन-पालन के योग्य होते हुए भी पर-पीड़ोपजीवी देखे जाते हैं। इस प्रकार अन्य अनेक भाँति के घोर दुःख हैं। मुनि पुङ्गव! इन दुःखों को देखने से मुझे अत्यन्त मानसिक पीड़ा होने लगती है अतः मानव! मुझ पर अनुग्रह करते हुए प्रायः इन भूतल के प्राणियों के उपकारार्थ कोई व्रत आदि उपाय मुझे बताने की कृपा करे, भगवान्! जिससे स्वल्प प्रयत्न द्वारा अच्छे और महान् फल की प्राप्ति हो सके ! ९-१६।

पुलस्त्य बोले—राजन्! मैंने तुम्हें एक परमोत्तम व्रत बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहने पर मनुष्यों को दुःख भाजन नहीं होना पड़ेगा, (सावधान होकर) सुनो! माघमास की शुक्ल द्वादशी के दिन, जो अत्यन्त पावनी बतायी गयी है—जलार्द्रवसन के धारण पूर्वक उपवास करने से सुख की प्राप्ति होती है। १७-१८

---

१. उत्तरोत्तरम्।

भीम उवाच

कथं सा मुनिशार्दूल उपोष्या द्वादशी भवेत् । विधिना केन विप्रेन्द्र तन्मे ब्रूहि यथाक्रमम् ।।१९

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्नवहितो व्रतं पापप्रणाशनम् । तव शुश्रूषणाद्वाच्यं ममाप्येतन्न संशयः ।।२०
अदीक्षिताय नो देया नाशिष्याय कदाचन । विष्णुभक्ताय शांताय धर्मनिष्ठाय चैव हि ।।२१
वाच्यमेतन्महाराज भवतान्यस्य न क्वचित् । ब्रह्महा गुरुघाती च बालस्त्रीघातकस्तथा ।।२२
कृतघ्नो मित्रध्रुक्चौरः क्षुद्रो भग्नव्रतस्तथा । मुच्यते पातकैः सर्वैर्व्रतेनानेन भूपते ।।२३
शुद्धे तिथौ मुहूर्ते च मंडपं कारयेत्ततः । दशहस्तप्रमाणेन दशपूर्वोत्तरे प्लवे ।।२४
तन्मध्ये पञ्चहस्तां तु वेदिकां परिकल्पयेत् । शुक्लां सुकुट्टिमां भूमिं वेद्यां कृत्वा प्रयत्नतः ।।२६
विलिखेन्मंडलं तत्र[1] पञ्चवर्णैर्विधानतः । ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।।२६
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः स्वाचाराभिरतस्तथा । कुण्डानि कल्पयेत्तत्र अष्टौ चत्वारि वा पुनः ।।२७
ब्राह्मणांस्तेषु युंजीत चातुश्चरणिकाञ्छुभान् । मध्ये च मण्डलस्याथ कर्णिकायां जनार्दनम् ।।२८
प्रत्यङ्मुखं न्यसेद्देवं चतुर्बाहुमरिंदम । पूजयेत्तं विधानेन शास्त्रोक्तेन विचक्षणः ।।२९
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि । एवं सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणैः सह देशिकः ।।३०
न्यसेत्स्तंभद्वयं पश्चात्तिष्ठन्काष्ठसमन्वितम् । देवस्याभिमुखं तत्र पीठं तु परिकल्पयेत् ।।३१

भीम ने कहा—मुनि शार्दूल! किस विधान द्वारा उस द्वादशी का उपवास किया जाता है, विप्रेन्द्र! उसके सभी क्रम मुझे बताने की कृपा करें ।१९

पुलस्त्य बोले—राजन्! तुम्हारी शुश्रूषा से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसमें संशय नहीं । अतः इस द्वादशी-व्रत का यह पापापहारी विधान तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! महाराज! दीक्षाहीन, अशिष्य एवं अन्य व्यक्ति को इसे कभी न बताना चाहिए । विष्णुभक्त ही इसके लिए अधिकारी हैं, जो अत्यन्त धर्म निष्ठ एवं शांत हो । भूपते! इसके सुसम्पन्न करने से ब्रह्महत्या, गुरुघात, बाल और सभी का घात कृतघ्न, मित्रद्रोह, चोरी, क्षुद्र, और मानव्रत आदि समस्त घातक गण विनष्ट होते हैं ।उस (द्वादशी) तिथि के दिन शुभ मुहूर्त में दश हाथ का विस्तृत मण्डप का निर्माण कर, जो पूर्व और उत्तर की ओर पनप (ढालू) हो, उसके मध्यभाग में पक्की सुसज्जित भूमि पर पाँच हाथ की वेदी की सुन्दर रचना करे, उस वेदी के ऊपर पाँच रगों से वैदिक, विष्णुभक्त एवं संयमी ब्राह्मणों द्वारा सौन्दर्य पूर्ण मण्डल (पंत्र) की संविधान रचना करके कुण्डों के निर्माण कराये । आठ अथवा चार ब्राह्मणों द्वारा, जो पच्चीस तत्वों के मर्मज्ञ, आचार-निष्ठ, श्रममूर्ति एवं वेद के चतुष्पादाध्यायी हों, मण्डल के मध्य और कर्णिका में चतुर्बाहु भगवान् जनार्दन की प्रतिमा पश्चिमाभिमुख स्थापित करके शास्त्रीय विधान द्वारा गन्ध, पुष्प, धूप, एवं अनेक भाँति के नैवेद्य से उनकी अर्चना करते हुए अपने देशिक ब्राह्मणों द्वारा देवेश के पश्चाद्भाग में दोकाष्ठ स्तम्भ के न्याय पूर्वक देवाधिदेव के अभिमुख छत्तीस अंगुल के चौकोर पीठासन स्थापित करे ।२०-३१

---

१. अष्टौ चत्वारि वा पुनः ।

षट्त्रिंशदङ्गुलं श्रेष्ठं चतुरस्रं समंततः । तत्र शिक्यं समालंब्य सुवृत्तं सुदृढं नवम् ॥३२
आरोपयेद्घटं तत्र यादृशं तच्छृणुष्व मे । कलधौतं तथा रौप्यं ताम्रं वाप्यथ मृण्मयम् ॥३३
सर्वलक्षणसंयुक्तं दृढं व्यंगविवर्जितम् । तत्सहस्रं शतं कुर्यादेकच्छिद्रमथापि वा ॥३४
कुशलत्वानुरूपेण पाशैकच्छिद्रमेव वा । सन्निधाने ततः कुर्यात्सलिलं वस्त्रपावनम् ॥३५
होमार्थं कल्पयेच्चापि पालाश्यः समिधः शुभाः । तिला घृतं तथा क्षीरं शमीपत्राणि चैव हि ॥३६
वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे ग्रहपीठं प्रकल्पयेत् । तत्र पूज्या ग्रहाः सर्वे ग्रहयज्ञविधानतः ॥३७
पूर्वस्यां दिशि शक्रस्य पूजां कुर्वीत यत्नतः । दक्षिणस्यां यमस्याथ प्रतीच्यां वरुणस्य च ॥३८
कुबेरस्य तथोदीच्यां बलिं कुर्यात्फलाक्षतैः । एवं संभृत्य संभारं शुक्लांबरधरस्तथा ॥३९
समालभ्य शुभैर्गंधैर्दर्भपाणिरतन्द्रितः । पीठमारोपयेयुस्ते यजमानं द्विजोत्तमाः ॥४०
यजमानोऽपि देवस्य सम्मुखः प्रयतः शुचिः । उपविश्य पठेन्मन्त्रं पुराणोक्तमिदं शृणु ॥४१
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर । व्रतेनानेन मां पाहि परमात्मन्नमोस्तु ते ॥४२
ततोदकस्य धारास्ताः प्रत्यङ्गेषु समन्विताः । शिरसा धारयेत्तूष्णीं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३
होमं कुर्युस्ततो विप्रा दिक्षु सर्वासु तत्पराः । पठेयुः शान्तिकाध्यायं विष्णुसंज्ञानि यानि वै ॥४४
वादित्रैस्ताडयमानैश्च शङ्खगेयस्वनैस्तथा । पुण्याहजयशब्दैश्च वेदस्वनविमिश्रितैः ॥४५
मंगलैः स्तुतिसंयुक्तैः कारयेत्तन्महोत्सवम् । देवदेवस्य चरितं केशवस्य महात्मनः ॥४६
हरिवंशादिकं सर्वं श्रावयेद्ब्राह्मणो वरः । सौपर्णिकमथाख्यानं भारताख्यानमेव च ॥४७

उसके रस्सी के सहारे अत्यन्त गोलाकार, दृढ़ एवं नवीन घर का जिस भाँति आरोपण होता है, मैं बता रहा हूँ सुनो! सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा मृत्तिका के सर्वलक्षण सम्पन्न, दृढ़ एवं सौन्दर्य पूर्ण घर को, जिसमें सहस्र, शत अथवा एक छिद्र किया गया हो और वह कुसे अथवा सूत्र (डोरा) से संयुक्त हो, उस पर स्थापित कर उसके सविधान में वस्त्रपूत जल की स्थापना करे। हवन के लिए पलाश की रश्मि पर, तिल, घृत, क्षीर और रेशमीपत्र के स्थापन पूर्वक वेदी के पूर्वोत्तर भाग में ग्रह पीठासन पर पूज्य ग्रहों की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करे—पूर्व दिशा में देवराज इन्द्र, दक्षिण दिशा में यम, पश्चिम में वरुण, और उत्तर दिशा में कुबेर की अर्चना करके फल-अक्षत समेत बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ-संभार संयुक्त तथा शुक्ल वस्त्रके धारण, गन्ध के व्रतालेप और हाथ में कुश लिए उस तंडारहित यजमान को ब्राह्मणों द्वारा मण्डपपीठ पर शोभित होना चाहिए। उस समय यजमान को भी देवनायक (विष्णुदेव) के संमुख पवित्रता पूर्ण एवं सप्रयत्न बैठकर इस पुराणोक्त मंत्रों द्वारा वन्दना करनी चाहिए—देव देवेश एवं भुवनाधिपति को नमस्कार है, परमात्मन्! इस व्रतानुष्ठान द्वारा मेरी रक्षा करो। मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ।३२-४२। अनन्तर प्रत्यंगो में समन्वित होने वाली उस उदक-धारा को तन्मय एवं मौन होकर शिर से धारण करने के उपरांत हवन सुसम्पन्न करके प्रति दिशाओं में स्थित ब्राह्मणों द्वारा विष्णु के शांति अध्याय के पाठ, वाद्य, शंख-ध्वनि गान, पुण्य एवं जय शब्दों के उच्चैः उच्चारण वेद पाठ एवं मांगलिक स्तुतियों द्वारा उस महोत्सव को सुसम्पन्न करे। देवाधिदेव भगवान् केशव देव के हरिवंशादि का ब्राह्मण द्वारा श्रवण, सौपर्णिक-भारत के आख्यान और आख्यान में कुशल विद्वानों के

व्याख्यानकुशलाः केचिच्छ्रावयेयुरतन्द्रिताः । अनेन विधिना सर्वां तां रात्रिं प्रीतिवर्द्धिनीम् ॥४८
यजमानो नयेद्धीमान्यावत्सूर्योदयो भवेत् । ब्राह्मणाश्चापि तां रात्रीं जुह्वतो जातवेदसम् ॥४९
मंत्रैस्तु वैष्णवैर्दिव्यैः क्षपयेयुर्महीपते । वासुदेवस्य शिरसि वसोर्द्धारां प्रपातयेत् ॥५०
क्षीरेणाज्येन वा राजन्सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् । ततः प्रभातसमये यजमानो द्विजैः सह ॥५१
स्नानं कुर्यान्नृपश्रेष्ठ नद्यां सरसि वा पुनः । अथ वा शक्तिहीनस्तु यजमानोष्णवारिणा ॥५२
ततः शुक्लानि वस्त्राणि परिधाय यतव्रतः । अर्घ्यं दत्त्वा भास्कराय सविधानं प्रसन्नधीः ॥५३
पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैः पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । हुत्वा हुताशनं भक्त्या दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः ॥५४
पूजयेद्ब्राह्मणान्सर्वान्होतारो यज्ञकल्पिताः । शय्याभोजनगोदानैर्वस्त्रैराभरणैस्तथा ॥५५
आचार्यः पूजनीयोऽत्र सर्वस्वेनापि भारत । येन वा तस्य सन्तुष्टिर्देवतुल्यो गुरुर्यतः ॥५६
वित्तशाठ्यविहीनस्तु भक्तिशक्तिसमन्वितः । दीनानाथविशिष्टाश्च बन्दिनश्च समागताः ॥५७
तेषामन्नं हिरण्यं च दद्याच्छुद्धेन चेतसा । एवं संपूज्य विप्राय भोजयित्वा यथेप्सितम् ॥५८
यथाविभवसारेण पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । हविष्यमन्नं यज्ञेन हविष्याः सतिलास्तथा ॥५९
एवं यज्ञो महाराजंश्चोक्तस्ते संप्रकीर्तितः । पापिष्ठाः सर्वपापेभ्यो मुच्यंते नात्र संशयः ॥६०
वाजपेयातिरात्राभ्यां ये यजंति शतं समाः । सर्वे ते विष्णुयागस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ॥६१
सप्त जन्मानि सौभाग्यमायुरारोग्यसंपदः । प्राप्नोति द्वादशीमेतां तामुपोष्य विधानतः ॥६२

भाषण-श्रवण पूर्वक उस प्रीतिवर्द्धनी समस्त रात्रि को व्यतीत कर, जिसमें ब्राह्मणगण वैष्णव मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अग्नि देव को प्रसन्न करते रहे, सूर्योदय होने पर यजमान क्षीर अथवा घृत की वसोर्द्धारा भगवान् वासुदेव के शिर पर गिराये । महीपते! ऐसी वसोर्द्धारा सर्वसिद्धि प्रदान करती है । राजन्! प्रभात होने पर ब्राह्मणों के साथ यजमान किसी नदी, सरोवर अथवा अन्य जलाशय में स्नान, एवं शुक्ल वस्त्र धारण कर प्रसन्न चित से सविधान सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे । नृपश्रेष्ठ! अशक्त यजमान को उष्ण जल से शुद्ध होना चाहिए । अनन्तर भक्ति पूर्वक पुष्प, दूध, नैवेद्य समेत भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना कर, अग्नि में पूर्णाहुति प्रदान करे । तदुपरांत यज्ञ में अनुष्ठित सभी होता आदि ब्राह्मणों को शय्या, भोजन, गोदान, वस्त्र और आभूषणों द्वारा सुसम्मानित करके सर्वस्व समर्पित करते हुए आचार्य की पूजा करनी चाहिए । भारत! जिससे वे अधिक प्रसन्न हों उन्हें वही वस्तु अर्पित करें क्योंकि गुरु को देवतुल्य बताया गया है । वित्तशाठ्य (कृपणता) दोष के परित्याग पूर्वक भक्ति सहित यथाशक्ति दीन, अनाथ, वंदी एवं अन्य अभ्यागतों का शुद्ध भावना से यथा शक्ति अन्न और सुवर्णप्रदान करना चाहिए । इस प्रकार पूजनोपरान्त धनानुसार ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजनों से संतृप्त यज्ञ में अवशिष्ट शीतल हविस्यान्न का मौन होकर स्वयं भोजन करे । राजन्! इस भाँति मैंने (विष्णु) यज्ञ की व्याख्या तुम्हें बता दिया, जिसके सुसम्पन्न होने पर घोर पापी भी समस्त पातकों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं । वाज-पेय एवं अतिरात्र यज्ञ को सौवार सुसम्पन्न करने पर प्राप्त होने वाले उसके सभी फल इस विष्णु-यज्ञ की सोलहवीं कला की भी समानता प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।४३-६१। इस द्वादशी में सविधान उपवास रहने पर सात जन्म तक सौभाग्य, आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर

मृतो विष्णुपुरं याति विष्णुना सह मोदते । चतुर्युगानि द्वात्रिंशद्विष्णुरूपधरः स्थितः ।।६३
रुद्रलोके तथा राजन्युगानि द्वादशैव तु । ब्रह्मलोके तथा त्रीणि सूर्यलोके युगानि च ।।६४
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । पृथिव्यधिपतिः श्रीमान्विजितारिः प्रतापवान् ।।६५
व्रतमेतत्पुरा चीर्णं सागरेण महात्मना । अजेन धुन्धुमारेण दिलीपेन ययातिना ।।६६
अन्यैश्च पृथिवीपालैः पालिताशेषभूतलैः । स्त्रीभिर्वैश्यैस्तथा शूद्रैर्धर्मकामैः सदा नृप ।।६७
भृग्वाद्यैर्मुनिभिः सर्वैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । त्वया च पृष्ठेन मया कथितं ते नराधिप ।।६८
अद्य प्रभृति चैवेयं ख्यातिं यास्यति भूतले । भीमाख्या द्वादशी चेति कृतकृत्या च भारत ।।६९
एषा पुलस्त्यमुनिना कथिता कुरुनन्दन । यश्चैनां कथितां श्रुत्वा कुर्याद्वा भक्तिभावतः ।।७०
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । दरिद्रश्चापि भोः पार्थ वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।
विष्णुभक्तेन कर्तव्या संसारभयभीरुणा ।।७१

भीमेन या किल पुरा समुपोषिता च रात्रौ घटस्थिरसुशीतलवारिधारा ।
तां द्वादशीं दशमुखारिमुखाच्छ्रुतां च सम्यग्व्रती चरति याति स विष्णुलोके ।।७२

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भीमद्वादशीव्रतवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।७४

विष्णुलोक में विष्णु देव के साथ आमोद-प्रमोद प्राप्त होता है । राजन् ! वहाँ बत्तीस चतुर्युग तक विष्णु रूप में सुखानुभूति करने के उपरान्त बारह युग तक रुद्रलोक, तीन युग तक ब्रह्मलोक और एक युग तक सूर्यलोक का सम्मान प्राप्त होता है । पश्चात् पुण्य क्षीण होने पर इस भूतल का विजेता, प्रतापी, धार्मिक एवं श्रीमान् पृथिवीपति होता है । पहले समय में सर्वप्रथम महात्मा सगर, अज, धुन्धमार, दिलीप एवं ययाति तथा अन्य नृपगण, स्त्रियाँ, वैश्य, धर्मार्थी शूद्र, भृगु आदि मुनिवृन्द और वेद के पारदर्शी विद्वान् ब्राह्मणों ने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है । नराधिप ! तुम्हारे प्रश्न का इस प्रकार मैंने यथोचित व्याख्या में उत्तर प्रदान किया है । भारत ! इस कृत कृत्य भीम द्वादशी इस भूतल पर आज से अत्यन्त प्रख्याति होगी । कुरुनन्दन ! इस प्रकार पुलस्त्य मुनि ने इसकी व्याख्या उन्हें सुनायी थी । भक्ति भावना से इस पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होते हैं । पार्थ ! दरिद्र पुरुष को भी वित्तशाठ्य दोष के त्याग का विशेष ध्यान रखना चाहिए । संसार भय-भीरु विष्णु भक्त को यह व्रत अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । राजा भीम ने जिस द्वादशी के दिन उपवास रह कर रात्रि में घट स्थापन पूर्वक सुशीतल वारिधारा का संचार किया है, उसी द्वादशी व्रत को रावण के निहन्ता (नृप) राम के मुख से सुनकर सुसम्पन्न करने वाला विष्णु लोक की प्राप्ति करता है ।६२-७२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में भी श्रीकृष्णयुधिष्ठर के संवाद में
भीमद्वादशी व्रत वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७४।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रवणद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवासासमर्थानां सदैव पुरुषोत्तम ! एका या द्वादशी पुण्या तां वदस्व ममानघ ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता । सर्वकामप्रदा पुण्या चोपवासे महाफला ॥२
सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादश्यां समुपोषितः । अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥३
बुधश्रवणद्वादश्यामेवं वै संयतो भवेत् । अतीव महती तस्यां कृतं सर्वमथाक्षयम् ॥४
द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति भारत । सङ्गमे सरितां स्नात्वा गङ्गादिस्नानजं फलम् ॥
सोपवासः समाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥५
जलपूर्णे तथा कुम्भे स्थापयित्वा विचक्षणः । पञ्चरत्नसमोपेतं सोपवीतं सुपूजितम् ॥६
तस्य स्कन्धे सुघटितं स्थापयित्वा जनार्दनम् । यथाशक्ति स्वर्णमयं शङ्खशार्ङ्गविभूषितम् ॥७
स्नापयित्वा विधानेन सितचन्दनचर्चितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥८
ॐ नमो वासुदेवायेति शिरः सम्पूजयेद्धरेः । श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै पुनः ॥९
ॐ नमः श्रीमते वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमः कुक्षी केशवायोदरं नमः ॥१०

अध्याय ७५

श्रवणद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पुरुषोत्तम अनघ ! उपवास रहने में असमर्थ प्राणियों के लिए एक ही किसी पुण्य द्वादशी की व्याख्या बताने वाले की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी श्रवण नक्षत्र प्राप्त होने पर समस्त काम प्रदायिनी, पुण्य एवं उपवास के लिए महाफलप्रदा बतायी गयी है । द्वादशी के दिन किसी सरिता-संगम में स्नान करके उपवास रहने पर अनायास बारहों द्वादशी के फल होते हैं । बुधवार के दिन श्रवण युक्त द्वादशी में संयमपूर्वक व्रती रहने से महान फल प्राप्त होते हैं—उसमें किये हुए सभी कर्म, अक्षय फल प्रदान होते हैं । भारत ! श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन सरिता-संगम में स्नान करने पर गंगा-स्नान के फल प्राप्त होते हैं । उसमें बिना विचारे हुए उपवास अवश्य रहना चाहिए । अनन्तर जल पूर्ण घट स्थापन करके उसके स्कंध भाग में भगवान जनार्दन पञ्चरत्न यज्ञोपवीत समेत स्थापित करते हुए यथाशक्ति सुवर्ण के शङ्ख और धनुष से विभूषित कर सविधान स्नान कराये और श्वेत चन्दन से चर्चित कर श्वेत दो वस्त्र, छत्र एवं उपानह आदि द्वारा—ॐ नमो वासुदेवाय मन्त्र के उच्चारण से उनके शिर, भू धराय नमः से मुख, कृष्णाय नमः से कंठ, श्रीमते नमः से वक्ष, सर्वास्त्रधारिणे नमः से बाहू, व्यापकाय नमः से कुक्षि, केशवाय

त्रैलोक्यजनकायेति एवं संपूजयेद्धरिम् । सर्वाधिपतये जङ्घे पादौ सर्वात्मने नमः ॥११
अनेन विधिना राजन्पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् । ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम् ॥१२
सोदकांश्च नवान्कुंभाञ्छक्त्या दद्याद्विचक्षणः । एवं संपूज्य गोविंदं जागरं तत्र कारयेत् ॥१३
प्रभाते विमले स्नात्वा संपूज्य गरुडध्वजम् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभनैः ॥
ततः पुष्पाञ्जलिं बद्धा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१४
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवण सञ्ज्ञक । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१५
एवं संपूज्य गोविंदं ब्राह्मणं पूजयेत्ततः । अनंतरं ब्राह्मणे वै वेदवेदांतपारगे ॥
पुराणज्ञे विशेषेण विधिवत्संप्रदापयेत् ॥१६
द्वादश्यां श्रवणे युक्ते अशेषाहस्कराण्विते । करकं संगमे स्नात्वा प्रीयतां मे जनार्दनः ॥१७

श्रीकृष्ण उवाच

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । महत्यरण्ये यद्वृत्तं भूमिपाल शृणुष्व तत् ॥१८
देशो दशार्णको नाम तस्य भागे तु पश्चिमे । अस्ति कश्चिन्मरुदेशः सर्वसत्त्वभयंकरः ॥१९
सुतप्तसिकता भूमिर्यत्र दुष्टा महोरगाः । अल्पच्छायद्रुमाकीर्णो मृतप्राणि समाकुलः ॥२०
शमीखदिरपालाशकरीरैः पीलुभिः सह । तत्र भीमा द्रुमाः पार्थ कण्टकैः शबला दृढैः ॥२१
दग्धप्राणिगणाकीर्णा यत्र भूर्दृश्यते क्वचित् । अन्नोदकं नो लभन्ते राजंस्तत्र बलाहकाः ॥२२

नमः से उदर और त्रैलोक्य जनकाय नमः से समस्त की अर्चना करते हुए सर्वाधिपतये नमः से जंघाएँ और सर्वात्मने नमः से चरण की समर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए।२-११। राजन्! इसी विधान द्वारा पुष्प, धूप, आदि से उन्हें प्रसन्न कर उनके सम्मुख घृत नैवेद्य, यथा शक्ति एक से अधिक (नव) जलपूर्ण पर अर्पित करे । ९-९३। इस प्रकार गोविन्द की अर्चना करके जागरण द्वारा रात्रि व्यतीत करने के उपरांत विष्णु की पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल एवं सुशोमन वस्त्रों द्वारा पूज्य करके पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर क्षमा प्रार्थना करे—बुध एवं श्रवण संज्ञा वाले गोविन्द देव को बार-बार नमस्कार है, मेरे पापौघ के विनाश पूर्वक समस्त सौख्य प्रदान करे। इस प्रकार गोविन्द की आराधना के समनन्तर ब्राह्मण की अर्चना करके उसी वेद-वेदान्त के मर्मज्ञ एवं पुराण निष्णात विद्वान् को वे सभी वस्तुएँ अर्पित करना चाहिए। बुधवार एवं श्रवण युक्त द्वादशी के दिन संगम में स्नान पूर्वक उपरोक्त ब्राह्मण को करक (कमण्डलु) के स्नान करते हुए 'जनार्दन देव मुझ पर प्रसन्न हों, कहना चाहिए।१२-१७

श्रीकृष्ण बोले—भूमिपाल! इसी विषय का एक प्राचीन इतिहास उस महान् अरण्य में जो कुछ हुआ है—मैं बता रहा हूँ, सुनो! दशार्ण देश के पश्चिम भाग में कोई मरु प्रदेश है, जिसमें समस्त प्राणियों को भयंकर यातनाएँ प्राप्त होती हैं—वहाँ की सिकता (वालुका) मयी भूमि अत्यन्त सन्तप्त रहती है, एवं अनेक दुष्ट एवं महान सर्पगण दिखायी देते हैं, अल्प छाया वाले वृक्ष मृतक प्राणियों से घिरे रहते हैं, सभी, खदिर (खैर), करीर (वांस) और पीलु वृक्ष अधिक हैं। पार्थ! वहाँ के भीमकाय वृक्ष दृढ़ कंटकों से व्याप्त रहते हैं—तथा भूमि में दग्ध प्राणियों की महान् राशि दिखायी देती है। राजन्! बलाहकों (दैत्यो आदि) को वहाँ अन्नोदक की प्राप्ति नहीं होती। भ्रमण करते पक्षीगण कभी-कभी दिखायी देते हैं।१८-२१½।

कदाचिदपि दृश्यन्ते भ्राम्यन्तो हि विहङ्गमाः । वृक्षांतरगतैर्नित्यं शिशुभिस्तृषितैः समम् ।।
उत्कृत्तजीविता राजन्दृश्यन्ते विहगोत्तमाः ।।२३
तृषातुराश्च सहसा मृगाः सैकतमागताः । सैकतेष्वेव नश्यन्ति जलं सैकतसेतुवत् ।।२४
तस्मिंस्तथाविधे देशे कश्चिद्दैववशाद्वणिक् । निजसार्थपरिभ्रष्टः प्रविष्टो मरुजांगले ।।२५
पिशाचान्मलिनांस्तीक्ष्णान्निर्मांसान्भीमदर्शनान् । इतस्ततः संचरतो ददर्श वणिगुत्तमः ।।२६
बभ्रामोद्भ्रान्तहृदयः क्षुत्तृषाश्रमकर्षितः । क्व ग्रामः क्व जलं क्वाहं यास्यामि न बुबोध सः ।।२७
अथ प्रेतान्ददर्शासौ तृष्णाव्याकुलितेंद्रियान् । स्नायुबद्धास्थिचरणान्प्रेक्षमाणानितस्ततः ।।२८
प्रेतस्कंधसमारूढमेकं प्रेतं ददर्श ह । अपश्यद्बहुभिः प्रेतैः समंतात्परिवारितम् ।।२९
आगच्छन्तं तमव्यग्रं स्नुतुशब्दपुरःसरम् । प्रेतस्कंधान्महीं गत्वा तस्यांतिकमुपागमत् ।।३०
स दृष्ट्वाथ वणिक्छ्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् । अस्मिन्वै निर्जले देशे गमनं भवतः कथम् ।।३१
तमुवाच वणिग्धीमान्सार्थभ्रष्टस्य चैव मे । प्रवेशो दैवयोगेन पूर्वकर्मकृतेन तु ।।३२
तृष्णा मां बाधतेऽत्यर्थं क्षुद्दुनोति भृशं तथा । प्राणाः कण्ठमनुप्राप्ता वचनं नश्यतीव मे ।।
अत्रोपायं न पश्यामि जीवेयं येन केनचित् ।।३३

कृष्ण उवाच

इत्येवमुक्ते प्रेतस्तं वणिजं वाक्यमब्रवीत् । पुंनागमिममाश्रित्य प्रतीक्षस्व मुहूर्तकम् ।।३४

राजन्! वहाँ के विहगगण वृक्षों के कोटरों में स्थित अपने शिशु-शावकों को पिपासा पीड़ित होने पर नित्य प्राण परित्याग करते देखते हैं—और तृषा से व्याकुल होकर मृगगण भी जलके भ्रमवश उस सैकत (बालू) प्रदेश में इधर-उधर से सहसा आ पहुँचते हैं, जहाँ सिकता (बालू) मय प्रलय की भाँति जल सर्वथा नष्ट हो जाता है। इस भाँति के उस मरुजंगल प्रदेश में एकबार कोई वेश्या अपने साथियों के साथ छूट जाने पर भूलता-भटकता आ पहुँचा। उसने मलिन, तीक्ष्ण, मांस रहित एवं भयंकर स्वरूप वाले वणिक् को इधर-उधर भ्रमण करते देखकर स्वयं भी अन्तचित्त, एवं सुधर-तृषा से पीडित होने के नाते कहीं स्थिर न रह सका—इधर-उधर घूमता ही रहा। कहां ग्राम, कहाँ जल हैं और मैं कहाँ जा रहा हूँ, इसका कुछ भी ज्ञान उसे नहीं था।२२-२९। अनन्तर उसने तृषा पीड़ित, इन्द्रिय शिथिल, स्नानु सा आबद्ध प्राप्ति और चरण तथा इधर-उधर ध्यान से देखने वाले उन प्रेतों को देखते हुए यह भी देखाकि किसी प्रेत के कन्धे पर एक प्रेत स्थित है जिसे अनेक प्रेतगण चारों ओर से घेरे हुए हैं—एवं 'स्नुतु' शब्द करते हुए निर्भय उधर ही आ रहे हैं। प्रेत के कन्धे के उतर कर उस प्रेत ने उस वैश्य सेठ के समीप जाकर उससे कहा—इस निर्जल प्रदेश में आप का कैसे आगमन हुआ! बुद्धिमान् वैश्य ने कहाकि —दैवयोग से साथियों के साथ छूटने और जलान्तरीय कर्म के प्रभाव से मुझे यहाँ आना पड़ा—मैं तृष्णा एवं क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ, प्राण निकलने के हेतु कंठ तक आगया है तथा बोल नहीं पा रहा हूँ। किन्तु जीवित रहने का यहाँ कोई उपाय दिखायी नहीं देता है।३०-३३

श्रीकृष्ण बोले—इस भाँति उसके कहने पर प्रेत ने उस वैश्य से कहा—इसी पुंनाग वृक्ष के नीचे प्रायः मुहूर्त मात्र मेरी प्रतीक्षा करें—मैं अभी आ रहा हूँ—मेरी इस अतिथि सेवा को स्वीकार करने के

कृतातिथ्यो यथालाभं गमिष्यसि यथासुखम् । एवमुक्तस्तथा चक्रे स वणिक्तृष्णयार्दितः ।।३५
मध्याह्नसमये प्राप्ते ततस्तं देशमागतः । पुन्नागवृक्षात्करको वारिधारामनोरमः ।।
दध्योदनसमायुक्तो वर्धमानेन संयुतः ।।३६
आगते करके तस्मिन्प्रादादतिथये तदा । भुक्त्वान्नं च जलं पीत्वा वणिक्तुष्टिमुपागतः ।।
वितृष्णो विज्वरश्चैव क्षणेन समपद्यत ।।३७
ततस्तु प्रेतसंघस्य भोक्तुकामस्य वै ददौ । दध्योदनं सपानीयं प्रेतास्तृप्तिं परां गताः ।।३८
अतिथिं तर्पयित्वा च प्रेतलोकं च सर्वशः । ततः स्वयं स बुभुजे भुक्तशेषं यथासुखम् ।।३९
तस्य भुक्तवतश्चान्नं पानीयं च क्षयं ययौ । प्रेताधिपं ततस्तृप्तो वणिग्वचनमब्रवीत् ।।४०
आश्चर्यमेतत्परमं वनेऽस्मिन्प्रतिभाति मे । अन्नपानस्य सम्प्राप्तिः परमस्य कुतस्तव ।।४१
स्तोकेन च तथान्नेन बिभर्षि सुबहून्पृथक् । तृप्ताः परं कथं त्वेते निर्मांसा भिन्नकुक्षयः ।।४२
अपरं च कथं चेह मम पापपरिक्षयः । हस्तावलंबनकस्त्वं सम्प्राप्तो निर्जने वने ।।
तृप्तश्चासि कथं ग्राससमात्रेण च शुभव्रत ।।४३
कस्त्वमस्यां सुघोरायामटव्यां तु कृतालयः । तमेतं संशयं छिंधि परं कौतूहलं मम ।।४४
एवमुक्तः स वाणिज्या प्रेतो वचनमब्रवीत् । शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि दुष्कृतं कर्म चात्मनः ।४५
शाकले नगरे रम्ये अहमासं सुदुर्मतिः । वाणिज्यासक्तितः पूर्वं कालो नीतो मयानघ ।।४६
धनलोभान्मया तत्र कदाचिच्च प्रमादिना । न दत्ता भिक्षवे भिक्षा तृष्णया पीडिताय च ।।४७

अनन्तर, आप अपने, अभीष्ट स्थान को सुख पूर्वक चले जाइयेगा । उसके कथनानुसार वैश्य ने वैसा ही किया—वह मध्याह्न के समय वहाँ पहुँचा था । उस पुराण वृक्ष के नीचे उसे कमण्डल में वारिधराके मनोरम जल और दध्योदन (देहीमात), जो आवश्यकतानुसार बढ़ता रहता था, वहाँ आया । प्रेत ने सप्रेम उसे वैश्य को अर्पित किया । अन्न भोजन एवं जलपान करके वह वैश्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसके तृष्णादि के ज्वर क्षण मात्र में नष्ट हो गये । तत्पश्चात् उस प्रेत ने उन प्रेतों को भी दधि-चावल तथा जलप्रदान किया जिससे वे लोग अत्यन्त तृप्त हो गये । इस प्रकार अतिरिक्त वैश्य और प्रेत मंत्रों के संतृप्त होने पर उसने शेष भाग स्वयं भोजन किया । अत्यन्त तृप्त होने पर उस वैश्य ने उस प्रेत नायक से कहा—मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है, जो तुम्हें इस घोर जंगल में इस प्रकार के सुस्वादु पूर्ण भोजन की प्राप्ति जिस अल्प परिणाम भोजन से तुम पृथक्-पृथक् अनेक लोगों की संतृप्ति पूर्वक सदैव रक्षा करते हो । भिन्न कुक्षि वाले इन मांसहीन प्रेतों की संतृप्ति कैसे हो गयी! और इस निर्जन वन में मेरे पाप क्षीण कैसे हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप आप का कटावलम्बन मुझे प्राप्त हुआ—आप कैसे और कहाँ से आये । शुभव्रत! (भोजन के) ग्रास मात्र से तुम्हारी तृप्ति कैसे हो गयी और इस भयानक पृथवी में निवास करने वाले आप कौन हैं! कृपया मेरे इस संशय को दूर करें क्योंकि (इसके जानने के लिए) मुझे महान् कुतूहल हो रहा है । वैश्य के इस प्रकार कहने पर प्रेत ने कहा—भद्र! अपने दुष्कृतों को मैं बता रहा हूँ, अनघ! पूर्व जन्म में मैं शाकल नगर का निवासी था, मेरी मन्दगति सदैव अपने वणिक्-व्यवसाय में ही तन्मय रहती थी। इस प्रकार जीवन यापन करते हुए हम अत्यन्तलोभ के कारण तृष्णा पीड़ित रहते थे।३४-४७।

प्रतिवेशे च तत्रासीद्‌ब्राह्मणो गुणवान्मम । श्रवणद्वादशीयोगे मासि भाद्रपदे तथा ।।४८
स कदाचिन्मया सार्धं तोषां नाम नदीं ययौ । तस्याश्च सङ्गमः पुण्यो यत्रासीच्चन्द्रभागया ।।४९
चंद्रभागा सोमसुता तोषा दैवार्कनंदिनी । तयोः शीतोष्णसलिलसंगमः सुमनोहरः ।।५०
तत्तीर्थवरमासाद्य प्राति वेश्यः स च द्विजः । श्रवणद्वादशीयोगे स्नातश्चैवमुपोषितः ।।५१
चंद्रभागातोषयोश्च वारिधान्यैर्नवैर्दृढैः । दध्योदनयुतैः सार्धं सम्पूर्णैर्वर्धमानकैः ।।५२
छत्रोपानद्युगं वस्त्रं प्रतिमां विधियद्वरैः । चंद्रभागाजीवनेन दध्योदनयुतं तदा ।।५३
एतत्कृत्वा गृहं प्राप्तस्ततः कालेन केनचित् । पञ्चत्वमहमासाद्य नास्तिक्यात्प्रेततां गतः ।।
अस्यामटव्यां घोरायां यथा दृष्टस्त्वयानघ ।।५४
ब्रह्मस्वहारिणस्त्वेते पापाः प्रेतत्वमागताः । परदाररताः केचित्स्वामिद्रोहरताः परे ।।५५
मित्रद्रोहरताः केचिद्देशेऽस्मिंस्तु सुदारुणे । ममैते भृत्यतां याता अन्नपानकृतेन च ।।५६
अक्षय्यो भगवान्कृष्णः परमात्मा सनातनः । यद्दीयते तमुद्दिश्य अक्षय्यं तत्प्रकीर्तितम् ।।५७
मया विहीनाः किं त्वेते वनेऽस्मिन्भृशदारुणे । पीडामनुभविष्यन्ति दारुणां कर्मयोनिजाम् ।।५८
एतेषां त्वं महाभाग ममानुग्रहकाम्यया । अनेकनामगोत्राणि गृहाण लेखनेन च ।।५९
अस्तु कक्षागता चैव तव संपुटिका शुभा । हिमवत्यां तथासाद्य तत्र त्वं लप्स्यसे निधिम् ।।६०
गयाशीर्षे ततो गत्वा श्राद्धं कुरु महामते । एकमेकमथोद्दिश्य प्रेतं प्रेतं यथासुखम् ।।६१

किन्तु मेरे पड़ोस में रहने वाले एक विद्वान् ब्राह्मण ने एकबार भाद्रपदमास की शुक्ल, श्रवण युक्त द्वादशी के अवसर पर तोषा नामक नदी की यात्रा की, जहाँ तोषा और चन्द्रभागा का रमणीयक संगम हुआ है। सोम सुता चन्द्रभागा एवं चन्द्र नन्दिनी तोषा का संगम-जल शीतोष्ण और अत्यन्त मनोहर है। उस परमोत्तम तीर्थ में पहुँच कर उस प्रतिवेशी (पड़ोसी) ब्राह्मण ने उस योग में स्नान के अनन्तर उपवास नियम के पालन पूर्वक चन्द्रभागा और तोष्ण के नवीन, दृढ़ एवं वर्धमान वारिधान्य के चावल तथा दधि, धन, उपानह एवं युग्म वस्त्र द्वारा भगवान् विष्णु की उस सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा की सविधान अर्चना करके उसके साथ में कभी चन्द्रभागा के जल एवं उसी दध्योदन द्वारा प्राण रक्षा करते घर का प्रस्थान किया। कुछ काल के अनन्तर देहावसान होने पर नास्तिक होने के नाते मुझे प्रेत-योनि प्राप्त हुई। अनघ! उसी समय से मैं इस घोर अरण्य में रह रहा हूँ, जैसा कि आप देख रहे हैं।४८-५४। ब्रह्मस्व के अपहरण करने वाले इन पापियों को भी प्रेत योनि प्राप्त हुई है—इनमें कोई परास्त्रीगामी, कोई स्वामि द्रोही और कोई मित्र द्रोही है, जो इस दारुण प्रदेश में रह रहे हैं। अन्न-पान से पालन-पोषण करने के नाते ये सभी मेरे सेवक हुए हैं। परमात्मा, एवं सनातन भगवान् कृष्ण अक्षय हैं, और उनके उद्देश्य से जो कुछ प्रदान किया जाता है वह भी अक्षय होता है, क्योकि इस घोर प्रदेश में मेरे विना ये प्रेतगण कर्मानुसार अत्यन्त घोर पीडा का अनुभव करेंगे अतः महाभाग! मेरे ऊपर अनुग्रह करते हुए आप अनेक नाम गोत्र का उल्लेख कर दें।५५-५९। अनन्तर हिमालय के कक्ष प्रदेश में पहुँचने पर आप को निधि प्राप्त होगी। महाशय! गया तीर्थ में पहुँच कर प्रत्येक प्रेतों के उद्देश्य से उनके नाम गोत्र के उच्चारण पूर्वक श्राद्ध सुसम्पन्न कीजियेगा। इस प्रकार उस वैश्य के साथ सम्भाषण करते उस प्रेत राज की शरीर अग्नि तप्त

एवं सम्भाषमाणोऽसौ तप्तजांबूनदप्रभः । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोकमितो गतः ।।६२
स्वर्गते प्रेतनाथे तु प्रभावात्स वणिक्पुमान् । नामगोत्राणि संगृह्य प्रयातः स हिमाचलम् ।।६३
तत्र प्राप्य निधिं गत्वा विनिक्षिप्य स्वके गृहे । धनभागमुपादाय गयाशीर्षवटं ययौ ।।
प्रेतानां क्रमशस्तत्र चक्रे श्राद्धं दिने दिने ।।६४
यस्य यस्य गयाश्राद्धं स करोति दिने वणिक् । स च तस्य सदा स्वप्ने दर्शयत्यात्मनस्तनुम् ।।६५
ब्रवीति च महाभाग प्रसादेन तवानघ । प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोस्मि परमां गतिम् ।।६६
स कृत्वा धनलोभाच्च प्रेतानां सत्कृतिं वणिक् । जगाम स्वगृहं तत्र मासि भाद्रपदे तथा ।।६७
श्रवणद्वादशीयोगे पूजयित्वा जनार्दनम् । दानं च दत्त्वा विप्रेभ्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ।।६८
महानदीसङ्गमेषु प्रतिवर्षं युधिष्ठिर । चकार विधिवद्दानं ततो दिष्टांतमागतः ।।६९
अवाप परमं स्थानं दुर्लभं चात्र मानवैः । यत्र कामफला वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः ।।
शीतलामलपानीयाः पुष्करिण्यो मनोहराः ।।७०

तं देशमासाद्य वणिङ् महात्मा सुतप्तजांबूनदभूषिताङ्गः ।
कल्पं समग्रं सह सुन्दरीभिः स्वर्गे स रेमे मुदितः सदैव ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
श्रवणद्वादशीव्रतवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।७५

सुवर्ण की भाँति मनोहर हो गयी । उस समय वह एक परमोत्तम विमान पर सुखासीन होकर स्वर्ग चला गया । प्रेतराज स्वर्ग के चले जाने पर उससे प्रभावित होकर उस वैश्य ने प्रेतों के नाम-गोत्र के संकलन पूर्वक हिमालय की यात्रा की । वहाँ प्राप्त हुई निधि को अपने गृह में सुरक्षित रखकर शुभ निमित्तक कुछ धन समेत गया की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उसने क्रमशः प्रत्येक दिन उनके श्राद्ध करना प्रारम्भ किया—वह वैश्य जिस दिन से प्रेत के उद्देश्य से श्राद्ध सुसम्पन्न करता था, वह प्रेत रूप में उसे (प्राप्त हुई) दिव्य शरीर का दर्शन प्रदान करते हुए कहता था कि—'महाभाग अनघ ! तुम्हारी कृपा से प्रेत भाव के त्याग पूर्वक मुझे परम गति की प्राप्ति हुई ।' इस भाँति उस वैश्य ने उन प्रेतों की सद्गति प्राप्ति कराने के अनन्तर अपने गृह का प्रस्थान किया । युधिष्ठिर ! प्रति वर्ष भाद्रपद के शुक्ल तथा श्रवण युक्त द्वादशी के दिन महानदी के संगम स्थल पर पहुँच कर उस वैश्य ने संयम पूर्वक स्नान, उपवास भगवान जनार्दन की सविधान आराधना और ब्राह्मण-दान सप्रेम सुसम्पन्न करता रहा अनन्तर देहावसान होने पर मानव मात्र दुर्लभ उस परम स्थान की प्राप्ति की, जो कामनानुसार फलप्रदायक वृक्षों, पायस रूपी कर्दम (पंक) पूर्ण नदियों और प्रयत्न, शीतल वारि पूर्ण बावलयों से सदैव सुसज्जित रहता है । उस परमोत्तम स्थान में पहुँच कर उस महात्मा वैश्य ने संतप्त जाम्बूनद (सुवर्ण) भूषित सुन्दरियों के साथ सम्पूर्ण कल्प आमोद-प्रमोद पूर्वक रमण किया ।६०-७१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
श्रवणद्वादशी व्रत वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७५।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

विजयश्रवणद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रावणे यो युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः ।।१
एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ।।२
बलवानजितो दैत्यो बलिर्नामा महाबलः । तेन देवगणाः सर्वे त्याजिताः सुरमंदिरम् ।।३
ततो देवा महाविष्णुं गत्वा वचनमूचिरे । त्वं गतिः सर्वदेवानां शीघ्रं कष्टात्समुद्धर ।।४
जहि दैत्यं महाबाहो बलिं बलनिषूदन । श्रुत्वा विष्णुस्तदा वाक्यं देवानां करुणोदयम् ।।५
उवाच वाक्यं कालज्ञो देवानां हितकाम्यया । जाने वैरोचनिं दैत्यं बलिं त्रैलोक्यकण्टकम् ।।६
तपसा भावितात्मानं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् । मद्भक्तं मद्गतप्राणं सत्यसन्धं महाबलम् ।।
तपसोऽन्तः सुबहुना काले नास्य भविष्यति ।।७
यदाविनयसम्पन्नं ज्ञास्ये कालेन केनचित् । समाहृत्य प्रियं तस्य तदा दास्ये दिवौकसाम् ।।८
अदितिर्मां प्रपन्ना वै पुत्रार्थे पुत्रलोभिनी । तस्यामतिहितं देवाः करिष्ये नात्र संशयः ।।९
तद्देवानां हितं सर्वे चाहितं तु सुरद्विषाम् । तद्गच्छध्वं निरुद्विग्नाः कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।।१०

अध्याय ७६

विजयश्रवणद्वादशी व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! श्रवण-द्वादशी वर्णन किया हुआ विधान समस्त पापों के शमन पूर्वक अत्यन्त सौख्य का वर्द्धक है । उसी भाँति श्रवण युक्त एकादशी का भी भक्तों के विजयप्रद होने के नाते विजया तिथि कहा गया है ! बलवान, अजेय एवं महाबली दैत्यराज बलि द्वारा परिणत होने पर देवों के अपने-अपने आवास स्थानों को त्याग कर महाविष्णु के यहाँ जाकर उनसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो ! हम समस्त देवों की गति, आप ही हैं, अतः इस कष्ट से शीघ्र उद्धार करने की कृपा करें । बलिनिषूदन! उस दैत्यराज बलि का हनन शीघ्र होना चाहिए । देवों के इस करुण वाक्य को सुनकर कालवेत्ता भगवान् विष्णु ने देवों के हितार्थ-उनसे कहा—"मैं" उस विरोचन दैत्यराज बलि को भली-भाँति जानता हूँ वह त्रैलोक्य का महान् कण्टक है । उसने तपोबल द्वारा, अपने को शांत, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यप्रतिज्ञ एवं महा बलवान् बना दिया है । वह सदैव मुझमें ही तन्मय रहने वाला मेरा महान् भक्त है । अतः उसके तप पुण्य के क्षीण होने में सभी बलवान् प्रवेक्षित हैं । इसलिए मैं किसी उपवास पर विनय- विनम्र की याचना द्वारा उसके समस्त प्रिय (वस्तुओं) का अपहरण कर देवताओं को प्रदान करता करूँगा। देववृन्द! पुत्र की कामना प्राप्ति हेतु आराधना की है, अतः उसका परमहित मैं अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं।१-९। इसमें देवों का भी अत्यन्त कल्याण एवं देव द्रोही राक्षसों का अहित होगा। इसलिए जाओ, और अनुद्विग्न रहकर कुछ समय की प्रतीक्षा करो । इस प्रकार कहने पर देवों ने वहाँ से प्रस्थान

एवमुक्ता गता देवाः कार्यं विष्णुरचिंतयत् । सा चिन्तयित्वा सुचिरं देव्या गर्भावतारणम् ॥
अदितिर्वरयामास वांछितं मे भविष्यति ॥११
अथ काले बहुतिथे गते सा गर्भिणी ह्यभूत् । सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम् ॥१२
ह्रस्वपादं ह्रस्वकायं महच्छिरसमर्भकम् । पाणिपादोदरकृशं स्वयं नारायणं हरिम् ॥१३
दृष्ट्वा तु वामनं जातं यदि सा वक्तुमुद्यता । निरुद्धवाक्या ह्यभवद्वक्तुं किंचिन्न पारितम् ॥१४
एकादश्यां भाद्रपदे श्रवणेन नरोत्तम । तंचचाल मही जाते वामने तु त्रिविक्रमे ॥१५
भयं बभूव दैत्यानां देवानां तोष आभवत् । जातकर्मादिकांस्तस्य संस्कारान्स्वयमेव हि ॥१६
चकार कश्यपो धीमान्प्रजापतिरनुद्यतः । आबद्धमेखलो दंडी धृत्वा यज्ञोपवीतकम् ॥१७
कुशस्वच्छोदकधरः कमंडलुविभूषितः । बलेर्बलवतो यज्ञं जगाम बहुविस्तरम् ॥१८
दृष्ट्वा बलिमथोवाच वामनोऽभ्येत्य तत्क्षणम् । अथ चाह यज्ञपते दीयतां मम मेदिनी ॥१९
पादत्रयप्रमाणेन पठनार्थे स्थितो ह्यसि । दत्तादत्ता तव मया बलिः प्राह द्विजोत्तमम् ॥२०
ततो वर्द्धितुमारब्धो वामनोऽनंतविक्रमः । पादौ भूमौ प्रतिष्ठाय शिरसावृत्य रोदसी ॥२१
ताभ्यामिंद्रादिकाँल्लोकाँल्ललाटे ब्रह्मणः पदम् । न तृतीयं पदं लेभे ततो नेदुर्दिवौकसः ॥२२
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सिद्धा देवर्षयस्तथा । साधुसाध्विति देवेशं प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥२३

किया और विष्णु देव ने उस कार्य के निमित्त विचार प्रारम्भ किया—उन्होंने देवी (अदिति) के गर्भावतार को स्मरण करते हुए कि—अदिति ने पुत्रार्थ मुझसे वरदान प्राप्त किया है—अतः मेरा कार्य वहीं से सम्पन्न होगा—ऐसा निश्चय किया ।१०-११। अनेक समय के व्यतीत होने पर अदिति ने गर्भ धारण किया नवें मास में भगवान् के उस रूप को उत्पन्न किया, जो लघु चरण, लघुकाय, महान् शिर, कृश हाथ, चरण और उदर सुसज्जित था । उस वामन रूप के उत्पन्न होने पर अदिति कुछ कहना चाहती थी किन्तु विरुद्धकंठ के नाते कुछ भी न कह सकी । नरोत्तम! भाद्रपदमास की श्रवण-युक्त एकादशी के दिन त्रिविक्रम वामन भगवान् के अवतरित होने पर पृथिवी में कम्प, दैत्यों में भय एवं देवों में हर्ष प्रवाह उत्पन्न हुआ । श्रीमान् तथा प्रजापति कश्यप जी ने स्वयं उनके जातकर्म आदि संस्कारों के सविधान सुसम्पन्न किया—मेखला से आबद्धकर दंड और यज्ञोपवीत धारण कराया । कुश समेत स्वच्छ जल पूर्ण कमण्डलु से विभूषित होकर बामन भगवान् ने बलवान् बलिराज के उस विस्तृत यज्ञ-संभार के दर्शनार्थ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँच कर उन्होंने उसी समय बलि से कहा—यज्ञपते! मुझे तीन पग भूमि प्रदान कीजिये । क्योंकि तुम इस समय दान करने के लिए स्थित हो । उसे सुनकर बलि ने उन ब्राह्मण से कहा—मैंने आपको (सहर्ष) उतनी भूमि प्रदान किया । अनन्तर अनन्त विक्रम वाले बामन देव ने अपनी शरीर की वृद्धि करना आरम्भ किया—दोनों चरण भूमि पर स्थिर कर शिर से, आकाश को आवृत कर लिया, और दोनों से इन्द्रादि लोक को आक्रान्त करते हुए ललाट में ब्रह्म स्थान स्थित किया । इस प्रकार तीसरे पग की भूमि की प्राप्ति न होने पर देवगण वाद्यों द्वारा हर्ष ध्वनि प्रकट करने लगे । सिद्ध और देवर्षियो को वह देख कर महान् आश्चर्य हुआ । वे सब प्रसन्न होकर देवाधिदेव वामन की 'साधु-साधु' शब्दों के उच्चारण द्वारा अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ।१२-२३। पश्चात् त्रिभुवन को अपने अधीन करते

ततो दैत्यगणान्सर्वाञ्जित्वा त्रिभुवनं वशी । बलिमाह ततो गच्छ सुतलं स्वबलानुगः ।।२४
तत्र त्वमीप्सितान्भोगान्भुक्त्वा मद्बाहुपालितः । अस्येंद्रस्यावसाने तु त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि ।।२५
एवमुक्तो बलिः प्रायान्नमस्कृत्य नरोत्तमम् । विसृज्येमं बलिं देवान्सकलान्स उवाच ह ।।२६
स्वानि धिष्ण्यानि गच्छध्वं तिष्ठध्वं विगतज्वराः । देवेनोक्ता गता देवा हृष्टाः संपूज्य वामनम् ।।२७
देवः कृत्वा जगत्कार्यं तत्रैवांतर्द्धिनागमत् । एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां नराधिप ।।
तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वदा विजया तिथिः ।।२८
एषा वै फाल्गुने मासि पुष्येण सहिता नृप । विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा ।।२९
एकादश्यां सोपवासो रात्रौ संपूजयेद्धरिम् । रौप्ये सौवर्णपात्रे वा दारुवंशमयेऽपि वा ।।३०
कुण्डिकां स्थापयेत्पार्श्वे छत्रं वै पादुके तथा । शुभां च वैष्णवीं यष्टिं तथा सूत्रकमंडलू ।।३१
आच्छाद्य पात्रं वासोभिः फलैश्चापि सुशोभनैः । मार्गचार्मणगन्धैश्च भक्त्या वा मृगचर्मणा ।।३२
तिलाढकेन वित्ताढ्यः प्रस्थेन कुडवेन वा । व्रीहिभिर्वाथ गोधूमैः फलैः शुक्लतिलैर्भवेत् ।।३३
पुष्पैर्गंधर्धूपदीपैः पक्वान्नैरर्चयेद्धरिम् । नानाविधैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैर्गुडौदनैः ।।३४
स्वस्ववित्तानुसारेण सहिरण्यं च कारयेत् । मंत्रैः शतगुणं चैव भक्त्या लक्षगुणोत्तरम् ।।
भक्तिमांश्च गुणोपेतं कोटिकोटिगुणोत्तरम् ।।३६
एभिर्मन्त्रपदैस्तत्र पूजयेद्गरुडध्वजम् । उपहारैर्नरश्रेष्ठ शुचिर्भूत्वा समाहितः ।।३६
ॐ जलजोपमदेहाय जलजास्याय शंखिने । जलराशिस्वरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम ।।३७

हुए उन संयमी वामन देव ने दैत्यगणों को पराजित कर बलि से कहा—अपने परिजनों समेत तुम सुतल लोक में निवास करो। वहाँ मेरे द्वारा इस इन्द्र का अन्त होने पर इन्द्र पद की प्राप्ति होगी। बलि ने नमस्कार पूर्वक उसे स्वीकार किया। अनन्तर वामन देव ने देवों से कहा—अपने-अपने गृह जाकर सुख-शांति का अनुभव करो। उनके इस भाँति कहने पर देवों ने सहर्ष वामन की अर्चना पूर्वक अपने-अपने आवासस्थान को प्रस्थान किया—और देवाधिदेव जगत् कार्य सुसम्पन्न कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये। नराधिप! यह समस्त कार्य एकादशी के ही दिन सुसम्पन्न हुआ था, इसीलिए यह विजया तिथि देवाधिदेव को अत्यन्त प्रिय है। नृप! फाल्गुन मास में पुष्य नक्षत्र प्रद होने पर भी इसे विजया तिथि कहा गया है, जो उत्तरोत्तर कोटि-कोटि गुने अधिक फल प्रदान करती है। एकादशी के दिन उपवास रह कर रात्रि में सुवर्ण, चाँदी, काष्ठ, एवं वांस के सौन्दर्य पूर्ण पात्र पर विष्णु देव को स्थापित कर उनके पूजन पूर्वक कुण्ड स्थापन, और उनके पार्श्व भाग में छत्र, पादुका (खड़ाऊँ), मनोरम वैष्णवी यष्टि (छड़ी), यज्ञोपवीत एवं कमण्डलु, आदि को वस्त्र से आच्छादित कर उत्तम फल, मृग नाभि, (कस्तूरी), अथवा मृगचर्म, ढाईसेर या वित्तानुसार, एक पाव तिल, धान्य या गोधूम (गेहूँ), श्वेत तिल, पुष्प, गंध, धूप, दीप और पक्वान्न, अपने भाँति के नैवेद्य, भक्ष्य-भोज्य, गुडोदन (मीणभात) और यथाशक्ति हिरण्य दान द्वारा भगवान् विष्णु देव की भक्ति-श्रद्धासमेत अर्चना सुसम्पन्न करते समय 'मंत्रंशत गुण आदि' मंत्रपदों के उच्चारण, जिनके उच्चारण सौ गुने, भक्ति समेत लक्ष गुने और भक्तिमान् को कोटि गुने फल प्राप्त होते हैं, तथा उन गरुड वाहनको उपहारों द्वारा सुसम्मानित करे।२४-३८। नरश्रेष्ठ! पवित्रता पूर्ण ध्यानावस्थित होकर—'कमल की भाँति देह एवं मुख से भूषित, शंख धारी उन जल राशि-स्वरूप वाले पुरुषोत्तम

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने । नमस्ते केशवानंत वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥३८
इति स्नानमन्त्रः । मलयेषु समुत्पन्नं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । मया निवेदितं तुभ्यं गृहाण परमेश्वर ॥३९
इति चन्दनमन्त्रः । वनस्पतिसमुत्पन्नं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । मया निवेदितं पुष्पं गृहाण पुरुषोत्तम ॥४०
इति पुष्पमन्त्रः । नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे । मनोहरवपुःस्कन्धधृतचक्राय शार्ङ्गिणे ॥४१

इति पूजामंत्रः

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च नामभिर्वामनाय ते ॥
पादाद्यैकैकाङ्गस्य पूजनं शीर्षगं ततः ॥४२

इति सर्वाङ्गपूजा

धूपोऽयं देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । अच्युतानंत गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥४३

इति धूपमन्त्रः

त्वमेव पृथिवी ज्योतिर्वायुराकाशमेव च । त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥४४

इति दीपमन्त्रः

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं प्रसीद परमेश्वर ॥४५
अन्नं प्रजापतिर्विष्णूरुद्रेन्द्रशशिभास्कराः । अन्नं त्वष्टा यमोऽग्निश्च पापं हरतु मेऽव्ययः ॥४६

इति नैवेद्यमंत्रः

जगदादिर्जगद्रूपमनादिर्जगदन्तकृत् । जलाशयो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥४७

इति प्रीणनमंत्रः

अनेककर्मनिर्बंधध्वंसिनं जलशायिनम् । नतोऽस्मि मथुरावासं माधवं मधुसूदनम् ॥४८

को बार-बार केशव, अनन्त एवं वासुदेव को बार-बार नमस्कार है।' इन मंत्रो के उच्चारण करते हुए उन्हें सम्मान, और मलय देश में उत्पन्न एवं परम मनोहर गंधाढ्य को मैं निवेदित कर रहा हूँ, परमेश्वर! इसे ग्रहण करने की कृपा करें—से चन्दन अर्पित करके—'पुरुषोत्तम! वनस्पति द्वारा उत्पन्न सुमनोहर तथा अत्यन्त सुगन्धित पुष्प तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ,—से आप भूषित करें। कमल-केशर समान पीत एवं निर्मल वस्त्र को धारण करने वाले, तथा मनोहर शरीर के अंग स्कन्ध वाले चक्र से सुसज्जित रहने वाले उन शार्ङ्गपाणि (विष्णु) को नमस्कार है, इसे पूजा का मन्त्र कहा गया है। मत्स्य, कूर्म (कच्छप), वराह, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, और कृष्ण नामों के उच्चारण करते हुए चरण से शिर तक के प्रत्येक अंग की पूजा करनी चाहिए। 'देवाधि देव, शंख, चक्र, गदाधारी, अच्युत, अनन्त, गोविन्द और वासुदेव को नमस्कार है, उच्चारण करते हुए—'पृथिवी, ज्योति, वायु, आकाश, और ज्योतियों के परम ज्योति तुम्हीं हो, इस दीप को ग्रहण करने की कृपा करो। के उच्चारण से दीप, तथा इन चार प्रकार के अन्न द्वारा बने हुए सुस्वादु, एवं षड़रस युक्त, भक्ष्य-भोज्य तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, परमेश्वर! मुझ पर प्रसन्न हो। प्रजापति, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, शशि, भास्कर, त्वष्टा, यम और अग्नि, आदि सभी देव रूप जगत्-कारण भगवान् जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हों। अनेक कर्मनिर्बन्धों के विनाशक, क्षीरशायी, मथुरा निवासी, उन माधव मधुसूदन को नमस्कार है।३९-४८। तथा वामन रूप त्रिविक्रम को सतत

नमोवामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम । नमस्ते मणिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ।।४९

इति नमस्कारमन्त्रः

नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम ।।५०

अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव ।।५१

इति प्रार्थनामन्त्रः

सर्वगः सर्वदेवेशः श्रीधरः श्रीनिकेतनः । विश्वेश्वरश्च विष्णुश्च श्रीशायी च नमोनमः ।।५२

इति शयनमन्त्रः

एवं संपूज्य यो रात्रावेकादश्यां नृपोत्तम । जागरं तत्र कुर्वीत गीतवादित्रनिस्वनैः ।।५३

या च श्रवणसंयुक्ता द्वादशी परमा तिथिः । तस्यां च सङ्गमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५४

एवं संपूज्य यत्नेन प्रभाते विमले सति । प्रदेयं शास्त्रविदुषे ब्राह्मणाय च मंत्रतः ।।५५

ब्राह्मणश्चापि मन्त्रेण प्रतिगृह्णीत मंत्रवत् । वामनोऽस्य प्रतिग्राही वामनाय नमोनमः ।।५६

(ॐ गुह्ये । ॐ शिरसि । ॐ पादयोः । ॐ नाभौ । ॐ भुजयोः । ॐ सर्वांगे । सर्वात्मने नमः ।)

पुष्पं फलं च नैवेद्यं सर्वमेतद्यथाविधि । नरो दद्यादुपोष्यैवमेकादश्यां समंत्रकम् ।।५७

पूर्वोक्तविधिना प्रातर्भोजनं पृषदाज्यकम् । पूर्वं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः पश्चाद् भुञ्जीत वाग्यतः ।।५८

भूयोभूयोऽपि राजेन्द्र सर्वत्रैवं विधिः स्मृतः । समाप्ते तु व्रते राजन् यत्पुण्यं तन्निबोध मे ।।५९

चतुर्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततिसङ्ख्यया । प्राप्य विष्णुपुरे राजन् क्रीडते कालमक्षयम् ।।६०

इहागत्य भवेद्राजा प्रतिपक्षक्षयंकरः । हस्त्यश्वरथपत्तीनां दाता भोक्ता विमत्सरी ।।६१

नमस्कार है । मंणि बंधन से आबद्ध वासुदेव को नमस्कार है, देव! मेरे पाप-समूह के ध्वंसन पूर्वक समस्त कामनाओं को प्रदान करने की कृपा करें । इस क्षमा प्रार्थना करते हुए उन्हें—सर्व व्यापक, सर्वदेवेश, श्रीधर, श्रीनिकेतन, विश्वेश्वर, विष्णु और उन श्रीशायी को नमस्कार है—शयनकराये । नृपोत्तम! इस भाँति एकादशी की रात्रि में भगवान् की पूजा करके गीत वाद्य द्वारा जागरण करता रहे । श्रवण संयुक्त उस परमद्वादशी तिथि के समय संगम में स्नान करने पर समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त होती है । इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा के उपरांत प्रातः काल के समय उस विमल वस्त्र को किसी विद्वान् ब्राह्मण को समंत्रक अर्पित करे और ब्राह्मण का भी मंत्रोच्चारण पूर्वक ही उसका ग्रहण करना चाहिए । इसके प्रतिग्राही वामन रूप को नमस्कार है—ओंकार के उच्चारण पूर्वक गुह्य, शिर, पाद, नाभि, वाहू, एवं सर्वाङ्ग के स्पर्श करते हुए उस सर्वात्मा को नमस्कार है, कह कर पुष्प, फल, चन्दन, एवं नैवेद्य द्वारा उस एकादशी के दिन उपवास रहकर समंत्रक उनकी अर्चना करनी चाहिए । अतः प्रातः काल सर्वप्रथम ब्राह्मण को घृत भोजन द्वारा संतृप्त करके पश्चात् स्वयं भोजन करे । राजेन्द्र! सर्वेश उनके बार-बार के पूजन इसी विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । राजन्! इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! ४९-५९। इकहत्तर चतुर्युगी के समय तक वह विष्णुलोक में क्रीडा करते हुए समस्त सुखानुभव के उपरांत इस धरातल पर शत्रुविनाशक भयंकर राजा होता है—हाथी, घोड़े, रथ एवं पदाति के दाता, भोक्ता, मत्सरहीन, रूप सौभाग्य सम्पन्न, दीर्घायु रोग एवं

रूपसौभाग्यसंपन्नो दीर्घायुर्नीरुजो भवेत् । पुत्रैः परिवृतो जीवो जीवेच्च शरदः शतम् ॥६२
एतस्याः फलमाख्यातमेकादश्या मया तव । पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ॥६३
उपोष्यैकादशीं पश्चाद्द्वादशीमप्युपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः ॥६४
(एकादशीद्वादश्योरन्यतरस्यां श्रवणयुक्तायां श्रवणयुक्तोपवासेनैव व्रतद्वयसिद्धिः । एकस्मिन् व्रते पूर्वमन्यां तिथिमुपोष्य पश्चादपारयित्वैवान्योपोष्यत इति यो विधिलोपः स एकदेवताकत्वेन न भवतीत्यर्थः)।
बुधश्रवणसंयुक्ता द्वादशी सङ्गमोदकम् । दानं दध्योदनं सत्यमुपवासः परो विधिः ॥६५
सगरेण ककुत्स्थेन धुंधुमारेण गाधिना । एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृतं वै द्वादशीव्रतम् ॥६६

सा द्वादशी बुधयुता श्रवणेन सार्कं स्याद्वै जयाय कथिता ऋषिभिर्नभस्ये ।
तामादरेण समुपोष्य नरोऽमरत्वं प्राप्नोति पार्थ अणिमादिगुणोपपन्नम् ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
विजयश्रवणद्वादशीव्रतवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।७६

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सम्प्राप्तिद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णपक्षे तु पौषस्य संप्राप्तं द्वादशीव्रतम् । पौषादिपारणं मासैः षड्भिर्ज्येष्ठान्तिकं स्मृतम् ॥१

अनेक पुत्रों से संयुक्त होकर सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । इस प्रकार मैंने इस एकादशी का समस्त फल तुम्हें बता दिया और श्रवण युक्त द्वादशी के फल पहले ही बता दिये गये हैं । एकादशी के उपवास के अनन्तर द्वादशी के उपवास करने में विधिलोप (अवैधानिक) नहीं होता है क्योंकि दोनो के देवता भगवान् विष्णु ही हैं । 'एकादशी व्रतद्वय सिद्धिः अर्थात् एकव्रत-विधान को सुसम्पन्न करने के लिए पूर्वतिथि में उपवास रहकर बिना पारण किये हुए पुनः किसी दूसरी तिथि के उपवास करने पर प्राप्त होने वाला विधि लोप (निष्फल) रूप दोष दोनों विधि के एक ही देवता होने पर नहीं होता है ।' अतः श्रवण युक्त द्वादशी बुधवार के दिन संगम जल से स्नान, दही भात के दान सत्य पूर्वक उपवास करना परमोत्तम विधान बताया गया है । राजेन्द्र! सागर, ककुत्स्थ, धुंधमार, तथा गाधि राजाओं ने इस द्वादशी व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है । पार्थ! भाद्रपद मास में श्रवण शुक्ल द्वादशी बुधवार के दिन सादर उपवास करने पर मनुष्य को अणिमादि गुणों समेत अमरत्व की प्राप्ति होती है, क्योंकि ऋषियों ने विजया तिथि बताया है ।६०-६७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
विजय श्रवण द्वादशी व्रत वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७६।

अध्याय ७७

सम्प्राप्तिद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पौष मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी से आरम्भ कर ज्येष्ठ मास तक के इनके मासों

प्रथमं पुण्डरीकाक्षं नाम कृष्णस्य गीयते । द्वितीये माधवाख्यं तु विश्वरूपं तु फाल्गुने ॥२
पुरुषोत्तमाख्यं तु ततः पंचमेऽच्युतसंज्ञकम् । षष्ठे जयेति देवेशगुह्यनाम प्रकीर्तितम् ॥३
पूर्वोक्तेषु च मासेषु स्नानप्राशनयोस्तिलाः । आषाढादिषु मासेषु पञ्चगव्यमुदाहृतम् ॥४
स्नानं च प्राशनं चैव पञ्चगव्यं सदेष्यते । पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं तैस्तैरेव च नामभिः ॥५
प्रतिमासं च देवेश कृत्वा पूजां यथाविधि । विप्राय दक्षिणां दद्याच्छ्रद्दधानश्च भक्तितः ॥६
पारणं चैव देवेश प्रीणनं भक्तिपूर्वकम् । कुर्वीत भक्त्या गोविन्दसद्भावेनार्चनं यतः ॥७
नक्तं भुञ्जीत सततं तैलक्षारविवर्जितम् । एकादश्यामुपोष्यैवं द्वादश्यामथ वा दिने ॥८
एवं संवत्सरस्यांते यदभिप्रेतमात्मनः । धनं वसु हिरण्यं च धान्यं भाजनमासनम् ॥
शय्यां वा ब्राह्मणे दद्यात्केशवः प्रतिगृह्यताम् ॥९
एतामुपोष्य विधिना विष्णुप्रीतौ च तत्परः । सर्वान् कामानवाप्नोति यद्यदिच्छति चेतसा ॥
ततो लोकेषु विख्यातं संप्राप्तं द्वादशीति वै ॥१०
कृताभिलषिता दृष्टा प्रारब्धा धर्मतत्परैः । पूरयेदखिलान्कामान्संस्मृता वा दिनेदिने ॥११

संप्राप्तिकामुपवसन्ति समीहितार्था ये मानदा मनुजपुङ्गव विष्णुभक्ताः ।
तेषां समीहितफलानि ददाति शश्वद्वासः सुरेशभवने भगवत्प्रसादात् ॥१२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
संप्राप्तिद्वादशीव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।७७

के पारण विधान बता रहा हूँ—प्रथम मास में कृष्ण के पुण्डरीकाक्ष नाम, दूसरे में माधव, फाल्गुन में विश्वरूप, चौथे में पुरुषोत्तम, पाँचवे में अत्यन्त और छठे में जय देवेश के इन ग्राह्य नामों के उच्चारण एवं तिल के स्नान और प्राशन करना चाहिए । आषाढ़ आदि मासों में पंचगव्य ही प्रशस्त बताया गया है अतः उसी के स्नान और प्राशन होना चाहिए । उन मासों में भी उपरोक्त नामोच्चारण पूर्वक भगवान् की प्रतिमास की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण को श्रद्धा भक्ति पूर्वक दक्षिणा, पारण और देवेश की क्षमायाचना करनी चाहिए । इस प्रकार भक्तिपूर्वक गोविन्द की अर्चना करके तेल और क्षार (नमक) रहित रात्रि में भोजन करे । इस व्रत के विधान में एकादशी अथवा द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिए । इस भाँति वर्ष के अन्त में अपने अभीष्ट वस्तु—चाँदी, सुवर्ण, धान्य, पात्र, आसन और शय्या—अर्पित करते हुए 'भगवान् केशव इसे स्वीकार करें' कहकर उनमें सप्रेम तन्मय रहे । ऐसा करने से उसकी मन इच्छित सभी कामनाएँ सफल होती हैं और लोक ख्याति भी प्राप्त होती है । मनुजपुंगव! इस प्रकार इसमें संप्राप्ति नामक द्वादशी सादर उपवास पूजन करने वाले मनुष्यों को भगवत्प्रसाद अभीष्ट सिद्धि और देवेन्द्र भवन का अविच्छिन्न निवास प्राप्त होता है ।१-१२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
संप्राप्ति द्वादशी व्रत वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७७।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथान्यामपि ते वच्मि गोविंदद्वादशीं शृणु । तस्याः सम्यगनुष्ठानात्प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ।।१
पौषे मासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः । सम्यक्संपूज्य गोविन्दनाम्ना देवमधोक्षजम् ।।२
धूपपुष्पोपचारैश्च नैवेद्यैश्च समाहितः । गोविंदेति जपेन्नाम पुनस्तद्गतमानसः ।।३
विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या नराधिप । स्वयं विबुद्धस्तुलितो गोविन्देति च कीर्तयेत् ।।४
पाखण्डिभिर्विकर्मस्थैरालापांश्च विवर्जयेत्[1] । गोमूत्रं गोमयं वापि दधि क्षीरमथापि वा ।।५
गोदोहतः समुद्भूतं प्राश्नीयादात्मशुद्धये । द्वितीयेऽह्नि पुनः स्नानं तथैवाभ्यर्च्य केशवम् ।।६
तेनैव नाम्ना संपूज्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । ततो भुञ्जीत गोदोहं संभूतेन समुद्भवम् ।।७
एवमेवाखिलान्मासानुपोष्य प्रयतः शुचिः । दद्याद्गवाह्निकं विद्वान्प्रतिमासं तु शक्तितः ।।८
पारिते च पुनर्वर्षे गोविन्दं पद्मया सह । गोविन्दः प्रीतिमायातु व्रतेनानेन मे सदा ।।९
विशेषतः पुनर्दद्यात्तस्मिन्नह्नि गवाह्निकम् । भक्त्या परमया राजञ्छृणु यत्फलमाप्नुयात् ।।१०

अध्याय ७८

गोविन्दद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें गोविन्द द्वादशी व्रत विधान बता रहा हूँ, सुनो! जिस अनुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न करने पर मन इच्छित फल प्राप्त होता है । पौष मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन उपवास रहकर धूप, पुष्पादि उपचार और नैवेद्य द्वारा गोविन्द देव की अर्चना करके दत्तचित्त होकर 'गोविन्द' नाम का जप करना चाहिए । नराधिप! यथा शक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर देव-भावना से गोविन्द नाम का कीर्तन करता रहे । पाखण्डी एवं निन्दित पुरुषों के साथ संलाप के त्याग भी करे । प्रथमदिन दही, क्षीर अथवा गोदोहन के समय प्राप्त गोमय या गोमूत्र का प्राशन आत्म शुध्यर्थ करना चाहिए ।१-५½। दूसरे दिन अतः उसी भाँति पूर्वोक्तनामोच्चारण द्वारा भगवान् केशव की स्नान प्राप्ति अर्चना, तथा ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर गोदोहन के समय उससे उत्पन्न पदार्थों का भोज न करे । इस भाँति प्रतिमास की द्वादशी में उपवास और यथा शक्ति गोविन्द की अर्चना, करते हुए वर्ष की समाप्ति में लक्ष्मी समेत गोविन्द की अर्चना करके क्षमा प्रार्थना करे कि—'इस व्रतानुष्ठान द्वारा गोविन्ददेव सदैव मुझ पर प्रसन्न रहे ।' राजन्! उस दिन विशेष कर पुनः उन्हें भक्ति समेत गवाह्निक प्रदान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो! तथा सुवर्ण खचित सींग और रजत (चौटी) भूषित खुरों वाली सौ गौओं समेत परमोत्तम नृपदान करने पर भी । निखिलभोगों के उपभोग करने के अनन्तर

---

१. विकल्पस्थैः ।

**स्वर्णभृंगं रौप्यखुरं गोशतैर्वृषभं वरम् । इति मासं द्विजातिभ्यो दत्त्वा यत्भोगमश्नुते ।।११
तदाप्नोत्यखिलं सम्यग्व्रतमेतदुपोषितः । तं च लोकमवाप्नोति गोविन्दो यत्र तिष्ठति ।।१२
गोविन्दद्वादशीमेतां समुपोष्य विधानतः । विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकेऽद्यापि शशांकवत् ।।१३**

**गोविन्दमर्चयति गोरसभोजनस्तु गा वै विनोदयति तद्वद्गवाह्निकदव ।
यो द्वादशीषु कुरुराज कृतोपवासः प्राप्नोत्यसौ सुरभिलोकमपेतशोकम् ।।१४**

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।७८

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवासव्रतानां तु वैकल्यं यन्महामते । दानधर्मे कृतं यस्य विपाकं वद यादृशः ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

**यज्ञानामुपवासानां व्रतानां च नरेश्वर । वैकल्यात्फलवैकल्यं यादृशं तच्छृणुष्व मे ।।२
[१]उपवासान्विना खण्डं प्राप्नुवंत्येव तच्छृणु । भ्रष्टैश्वर्या निर्धनाश्च वसन्ति पुरुषाः पुनः ।।३
रूपं तथोत्तरं प्राप्य व्रतवैकल्यदोषतः । काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च भवंत्यन्धाश्च मानवाः ।।४**

भगवान् गोविन्द के लोक की प्राप्ति होती है। सविधान गोविन्द द्वादशी के उपवास (एवं हरि पूजा) करने वाले आज भी चन्द्रमा की भाँति प्रकाश पूर्ण दिखायी देते हैं। कुरुराज! द्वादशी के दिन उपवास करते हुए गोविन्द की अर्चना, गोरस के भोजन, गौवों के विनोद एवं गवाह्निक के अर्पण करने वाले को शोक निवृत्ति पूर्वक सुरभि लोक की प्राप्ति होती है।६-१४।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में भी श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
गोविन्द द्वादशी व्रत वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७८।

अध्याय ७९

अखण्डद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—महामते! उपवास व्रत और दान धर्म के वैकल्य (भङ्ग) होने पर जिस प्रकार के विपाक (फल) प्राप्त होते हैं, उन्हें बताने की कृपा कीजिये।१

श्रीकृष्ण बोले—नरेश्वर! यज्ञ, उपवास, एवं व्रतों का वैकल्य (भङ्ग) होने पर जिस दुःखदायक फलों की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ सुनो! तथा सर्वप्रथम उपवास के विना प्राप्त होने वाले दुष्फलों का बता रहा हूँ,—व्रत वैकल्य दोष के नाते पुरुष ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर सदैव निर्धन रहता है तथा एकाक्ष (काना) कूबड़ा, छक्का (हिजड़ा) और अन्धा होता है।२-४। वैसे पुरुष अपने अनुरूप पत्नी और सभी अपने

---

१. उपवासादिना राज्यं प्राप्वयंत्येव।

उपवासी नरः पत्नीं नारी प्राप्य तथा पतिम् । वियोगं व्रतवैकल्ये दुर्भगत्वमवाप्नुयात् ।।५
ये द्रव्ये सत्यदातारस्तथान्ने सत्यनग्नयः । कुले वसंति दुःशीला दुष्कुलाः शीलनिश्च ये ।।६
वस्त्रानुलेपनैर्हीना भूषणैश्चातिरूपिणः । विरूपरूपाश्च तथा प्रसाधकगुणान्विताः ।।७
ते सर्वे व्रतवैकल्यात्फलवैकल्यमागताः । तस्मात्तद्व्रतवैकल्यं यज्ञवैकल्यमेव च ।।
उपवासेन कर्तव्यं वैकल्याद्विकलं फलम् ।।८

युधिष्ठिर उवाच

कथंचिद्यदि वैकल्यमुपवासादिके भवेत् । किं तत्र वद कर्तव्यमच्छिद्रं येन जायते ।।९

श्रीकृष्ण उवाच

अखंडद्वादशी ह्येषा समस्तेष्वेव कर्मसु ।।१०
वैकल्यं प्रशमं याति शृणुष्व गदतो मम । मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वादश्यां नियतः शुचिः ।।
कृतोपवासो देवेशं समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।।११
स्नातो नारायणं ब्रूयाद्भुञ्जन्नारायणं तथा । गच्छन्नारायणं देवं स्वपन्नारायणं पुनः ।।१२
पञ्चगव्यजलस्नातो विशुद्धात्मा जितेन्द्रियः । यवव्रीहिमयं पात्रं दत्त्वा विप्राय भक्तितः ।।
इदमुच्चारयेत्पश्चाद्देवस्य पुरतो हरेः ।।१३
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मया खण्डव्रतं कृतम् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखंडमिहास्तु मे ।।१४
यथाखंडं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम । तथाखिलान्यखंडानि व्रतानि मम संतु वै ।।१५
चतुर्भिरपि मासैस्तु पारणं प्रथमं स्मृतम् । प्रीणनं च हरेः कुर्यात्पारिते पारणे ततः ।।१६

अनुरूप पति की प्राप्ति कर सदैव वियोगी, व्रत-च्युति एवं भाग्यहीन रहते हैं । धन के रहते हुए दान न करने और अन्न के रहते अग्नि को आहुति न प्रदान करने वाले पुरुष सत्कुल में अश्लील एवं असत्कुल में शीलवान् होते हैं । वस्त्र अनुलेपन से हीन, भूषणों से अतिरूपवान्, विरूप, और साधकगुण सम्पन्न आदि से सभी पुरुष व्रत भंग दोष के कारण फल-वैकल्य (अंग विकार आदि) प्राप्ति करना चाहिए। अन्यथा उसका अनिष्ट फल होना निश्चित रहता है ।५-८

युधिष्ठिर ने कहा—उपवास आदि कर्मों में किसी भाँति विघ्न हो जाने पर उस समय क्या कर्तव्य होता है, जिससे उसकी पूर्णता में कोई त्रुटि न रह सके, बताने की कृपा कीजिये ।९

श्रीकृष्ण बोले——यह अखण्ड द्वादशी ही समस्त कर्मों में उत्पन्न वैकल्य दोष का प्रशमन करती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल द्वादशी के दिन संयम पूर्वक पवित्र होकर उपवास रहते हुए देवेश जनार्दन की अर्चना करके स्नान, भोजन, गमन, और शयन आदि सभी काल में 'नारायण देव' का नामस्मरण करना चाहिए । संयम पूर्वक पंचगव्य जल से विशुद्ध होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को जवा और धान्य के पूर्णपात्र प्रदान कर नारायण देव के समक्ष क्षमा प्रार्थना करे कि—'भगवान्! आज से पिछले सातजन्मों में मेरे जितने खण्डित व्रत हैं, आप के प्रसाद से वे व्रत अखण्ड हो जाँये। पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आप जगत् के प्रधान एवं अखण्ड हैं, उसी भाँति मेरे निखिल खण्डित व्रत अखण्ड रूप प्राप्त करें। इस व्रतानुमान में चार मास के अनन्तर प्रथम पारण बताया गया है।१०-१६।

चैत्रादिषु च मासेषु चतुर्गुण्यं तु पारणम् । तत्रापि सक्तुपात्राणि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥१७
श्रावणादिषु मासेषु कार्त्तिकान्तेषु पारणम् । तत्रापि घृतपात्राणि दद्याद्विप्राय दक्षिणाः ॥१८
सौवर्णं रौप्यं ताम्रं च मृण्मयं पात्रमिष्यते । स्वशक्त्यपेक्षया राजन् पालाशं वापि कारयेत् ॥१९
एवं संवत्सरस्यांते ब्राह्मणान् स जितेन्द्रियः । द्वादशामन्त्र्य विप्रांश्च भोजयेद्घृतपायसैः ॥२०
वस्त्राभरणदानैश्च प्रणिपत्य क्षमापयेत् । उपदेष्टारमप्यत्र पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥२१
एवं सम्यग्यथान्याय्यमखण्डद्वादशीं नरः । समुपोष्य अखण्डस्य व्रतस्य फलमश्नुते ॥२२
सप्तजन्मसु वैकल्यं यद्व्रतस्य क्वचित्कृतम् । करोत्यविकलं सर्वमखण्डद्वादशी तु तत् ॥२३
तस्मादेषा प्रयत्नेन नरैः स्त्रीभिश्च सुव्रत । अखण्डद्वादशी सम्यगुपोष्या फलकांक्षया ॥२४

ये द्वादशीव्रतमखण्डमिति प्रसिद्धं मार्गोत्तमाङ्गमधिकृत्य कृतेन येन ।
खण्डव्रतानि पुरुषैः सुकृतानि यानि संपूर्णतां समुपयान्ति हरेः प्रसादात् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-
ऽखण्डद्वादशीव्रतवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।७९

अथाशीतितमोऽध्यायः

मनोरथद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

फाल्गुनेऽमलपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः । नरो वा यदि वा नारी समभ्यर्च्य जगत्पतिम् ॥१

पश्चात् विष्णु को प्रसन्न करते हुए शेष मासों के व्रतों को सुसम्पन्न करता रहे । चैत्र आदि मासों में चौगुना पारण कहा गया है, उसमें भी श्रद्धा समेत धृत पात्र का दान करना चाहिए । श्रावण से आरम्भ कर कार्तिक मास तक अर्चना घृत पूर्ण पात्र ब्राह्मण को अर्पित करे । राजन्! सुवर्ण, रजत, ताम्र, मृत्तिका, अथवा यथाशक्ति पलास-पत्र का वाल बनाये । इस प्रकार संवत्सर के अन्त में संयम पूर्वक द्वादश ब्राह्मणों निमंत्रित कर घृत पूर्ण पायस के भोजनोपरान्त वस्त्र और आभूषणों से प्रसन्न करके क्षमा याचना करे तथा उपदेष्टा भुरु की भी सविधान अर्चना करे ।१७-२२। इस भाँति अखण्ड द्वादशी में यथोचित उपवास करके मनुष्य अखण्ड फल की प्राप्ति करता है । सात जन्मों तक उसके सभी खण्डित व्रत अथवा पुरुषों को फल की आकांक्षा से इस अखण्ड द्वादशी के उपवास के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । इस अखण्ड द्वादशी व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करने वाले के सभी खण्डित व्रत भगवान् विष्णु के प्रसाद से अखण्ड सम्पूर्णता प्राप्त करते हैं ।२३-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
अखण्ड द्वादशी व्रत वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।७९।

अध्याय ८०

मनोरथद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन शुक्ल एकादशी केदिन नर-नारी सभी को चाहिए कि जगत्पति भगवान्

हरेर्नाम वदन्भक्त्या भावयुक्तो युधिष्ठिर । उत्तिष्ठन्प्रस्वपंश्चैव हरिमेवानुकीर्तयेत् ।।२
ततोन्यस्मिन्दिने प्राप्ते द्वादश्यां नियतो हरिम् । स्नात्वा सम्यगनभ्यर्च्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।।३
हरिमुद्दिश्य चैवाग्नौ घृतहोमकृतक्रियः । प्रणिपत्य जगन्नाथमिति वाणीमुदीरयेत् ।।४
पातालसंस्थां वसुधां यां प्रसाद्य मनोरथान् । अवाप वासुदेवोसौ प्रदद्यात्तु मनोरथान् ।।५
यमभ्यर्च्य दिवि प्राप्तः सकलांश्च मनोरथान् । भ्रष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्यं जगत्पतिम् ।।६
मनोरथानभिनवान्प्राप्तवांश्च मनोहरान् । एवमभ्यर्च्य पूजां च निष्पाद्य च हरेस्ततः ।।
भुञ्जीत प्रयतः सम्यग्हविष्यं पाण्डुनन्दन ।।७
फाल्गुने चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे मासि च सत्तम । चतुर्भिः पारणं मासैरेभिर्निष्पादितं भवेत् ।८
रक्तपुष्पैश्च चतुरो मासान्कुर्वीत चार्चनम् । दहेत्तु गुग्गुलं प्राश्य गोभृंगक्षालनं जलम् ।।९
हविष्यान्नं च नैवेद्यमात्मनश्चापि भोजनम् । ततश्च श्रूयतां पार्थ आषाढादौ तु या क्रिया ।।१०
जातीपुष्पाणि धूपश्च शस्तः सार्जरसो नृप । प्राश्य दर्भोदकं चास्य शाल्यन्नं च निवेदनम् ।।११
स्वयं तदेव चाश्नीयाच्छेषं पूर्ववदाचरेत् । कार्तिकादिषु मासेषु गोमूत्रं कायशोधनम् ।।१२
सुगन्धिश्चेच्छया पूजा धूपं भृङ्गारकेन च । कांसारं चात्र नैवेद्यमश्नीयात्तच्च वैस्वयम् ।।१३
प्रतिमासं च विप्राय दातव्या दक्षिणा तथा । पारणं चेच्छया विष्णोः पारणे पावने मते ।।१४
यथाशक्त्या यथाप्रीत्या वित्तशाष्ठ्यं विवर्जयेत् । सद्भावेनैव गोविंदः पूजितः प्रीयते यतः ।।१५
पारणांते यथाशक्ति स्नापितः पूजितो हरिः । प्रीणितश्चेप्सितान्कामांस्तान्ददात्यव्ययान्नृप ।।१६

विष्णु की अर्चना के अनन्तर भक्तिभावना से जागृत स्वप्न सभी काल में भगवान् के नामों का कीर्तन किया करें । पश्चात् दूसरे दिन द्वादशी के समय स्नान करके भगवान् की अर्चना, ब्राह्मण-दक्षिणा, और हरि के उद्देश्य से घी की आहुति प्रदान करके जगन्नाथ की विनय-विनम्र क्षमा याचना करे कि —पाताल स्थित होने पर भी वसुधा की प्राप्ति द्वारा अपने मनोरथों के सफल करने वाले भगवान् वासुदेव मेरे मनोरथों को सफल करें तथा राज्यच्युत देवेन्द्र ने जिस जगत्पति की आराधना द्वारा स्वर्ग के उस मनोरथों के सफल करते हुए मनोहर एवं अभिनव मनोरथों को भी सफल किया है । पाण्डुनन्दन! इस भाँति भगवान् विष्णु की भक्ति पूर्वक आराधना करके स्वयं हविष्यान्न का भोजन करे । सत्तम! इस प्रकार फाल्गुन चैत, नैशाख और ज्येष्ठ मास में पूजन करके पारण करना चाहिए । उन चारों मासों में रक्त पुष्प द्वारा पूजन, गुग्गुल की धूप, गोश्रृंग-पूत जल, हविष्यान्न एवं नैवेद्य को अर्पित करते हुए स्वयं भी यही भोजन करे । पार्थ! अनन्तर आषाढ़ आदि मासों में चमेली के पुष्प सार्जरस (शाल वृक्ष के रस) के प्रशस्त धूप, साठी चावल के भोजन निवेदन करते हुए कुशोदक के प्राशन पूर्वक उन्हीं के भोजन करे । कार्तिक आदि मासों में पाकशुद्धयर्थं गोमूत्र के आशन, सुगंध, धूप, सुवर्ण-पात्र के जल, कसेरू मे नैवेद्य द्वारा पूजन करके स्वयं भी उसी के भोजन करे । प्रतिमास में ब्राह्मण की दक्षिणा तथा विष्णु का ऐच्छिक पारण यथा शक्ति एवं सप्रेम सुसम्पन्न करते हुए वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष का त्याग करे । क्योंकि सद्भावना द्वारा ही पूजित होने पर गोविन्द प्रसन्न होते हैं। १-१५। नृप! पारणान्त में स्नान-पूजन करने पर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसे

वर्षांते प्रतिमामिष्टां कारयित्वा सुशोभनाम् । स्वर्णकेन यथा शक्त्या शङ्खशार्ङ्गविभूषिताम् ।।१७
पुष्पवस्त्रयुगच्छन्नां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । द्वादशब्राह्मणांस्तत्र भोजयित्वा क्षमापयेत् ।।१८
द्वादशात्र प्रदातव्याः कुंभाः सान्नजलाक्षताः । छत्रोपानद्युगैः सार्द्धं दक्षिणाभिश्च भारत ।।१९
एषा पुण्या पापहरा द्वादशी फलमिच्छताम् । यथाभिलषितान् कामान् ददाति नृपसत्तम ।।२०
पूरयत्यखिलान्भक्त्या यतश्चैषां मनोरथान् । मनोरथा द्वादशीयं ततो लोकेषु विश्रुता ।।२१
उपोष्यैतां त्रिभुवनं लब्धमिन्द्रेण वै पुरा । आदित्याश्चेप्सिताः पुत्रा धनमौशनसा तथा ।।२२
धौम्येनाध्ययनं प्राप्तमन्यैश्चाभिमतं फलम् । राजर्षिभिस्तथा विप्रैः स्त्रीविट्शूद्रैश्च भूतले ।।२३
यं यं काममभिध्याय व्रतमेतदुपोषितम् । तत्तदाप्नोत्यसंदिग्धं विष्णोराराधनोद्यतः ।।२४
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो[1] लभते धनम् । रोगाभिभूतश्चारोग्यं कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ।।२५
समागमं प्रवसनैरुपोष्यैतामवाप्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति मृतः स्वर्गे च मोदते ।।२६
नापुत्रो नाधनो ज्येष्ठो वियोगी न च निर्गुणः । उपोष्यैतद्व्रतं मर्त्यः स्त्रीशूद्रो वापि जायते ।।२७
स्वर्गलोके सहस्राणि वर्षाणामयुतानि च । भोगानभिमतान्भुक्त्वा तत्र तत्र यथेच्छया ।।२८
इह पुण्यवतां नृणां धनिनां लघुशालिनाम् । गृहे प्रजायते राजन् सर्वव्याधिविवर्जितः ।।२९

मनोनुकूल फल प्रदान करते हैं । वर्ष के अन्त में उनकी सुवर्ण-प्रतिमा को शंख एवं शार्ङ्ग से भूषित कर पुष्प तथा युग्म (चार) वस्त्रों से सुसम्पन्न करके ब्राह्मण को अर्पि त कर और बारह ब्राह्मणों को भोजन से संतृप्त कर क्षमा याचना करते हुए बारह सान्नोदक कुंभ, छत्र, उपानह एवं दक्षिणा से उन्हें सम्मानित करे । भारत! यह पुण्य एवं पापहारिणी द्वादशी सविधान सुसम्पन्न करने पर मन इच्छित कामनाएँ प्रदान करती है । नृपसत्तम! भक्ति समेत इसे सुसम्पन्न करने पर निखिल मनोरथ सफल होते हैं, इसीलिए लोक में वह मनोरथ द्वादशी नाम से ख्यात है । पुरातन काल में इसमें उपवास करने पर इन्द्र को त्रिभुवन, आदित्य को इच्छित पुत्र, शुक्र को धन, धौम्य को अध्ययन और अन्यों को भी उनके अभिमत फल प्राप्त हुए हैं । उसी प्रकार राजर्षि, ब्राह्मण, सभी वैश्य, एवं शूद्रों ने इस भूतल पर जिन कामनाओं के उद्देश्य इस व्रत को उपवास रहकर सुसम्पन्न किया है, वे सभी कामनाएँ इस विष्णु की आराधना द्वारा निःसंदेह सफल हुई है । अपुत्र को पुत्र, निर्धन को धन, रोगी को आरोग्य, और कन्याओं को सत्पति की प्राप्ति होती है ।१६-२५। इसके उपवास से प्रवासी को गृह समागम तथा समस्त कामनाओं की सफलता के अनन्तर देहावसान होने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर पुरुष सभी अथवा शूद्र भी कभी अपुत्र, निर्धन, ज्येष्ठ, वियोगी एवं निर्गुण नहीं होते तथा राजन्! स्वर्ग में दशसहस्र वर्ष तक ऐच्छिक भोगों मे उपभोग करने के उपरांत धनी-मानी कुल में जन्म ग्रहण कर सदैव नीरोग रहते हैं । जो

---

१. अलब्धः ।

न द्वादशीमुपवसन्ति मनोरथाख्यां नैवार्चयंति पुरुषोत्तममादिदेवम्।
गोब्राह्मणांश्च न नमन्ति न पूजयन्ति ये ते मनोभिलषितं कथमाप्नुवन्ति ।।३०
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मनोरथद्वादशीव्रतवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ।।८०

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

उल्कानवमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अल्पायासेन भगवन् धनेनाल्पेन वा विभो । पापं प्रशममायाति येन तद्वक्तुमर्हसि ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ परां पुण्यां द्वादशीं पापनाशिनीम् । यामुपोष्य परं पुण्यमाप्नुयाच्छ्रद्धयान्वितः ।।२
माघमासे च संप्राप्ते आषाढर्क्षं भवेद्यदि । मूलं वा कृष्णपक्षस्य द्वादश्यां नियतव्रतः ।।३
गृह्णीयात्पुण्यफलदं विधानं तस्य मे शृणु । देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः ।।४
कृष्णनाम्ना च संपूज्य एकादश्यां महामते । उपोषितो द्वितीयेह्नि पुनः संपूज्य केशवम् ।।५
संस्तूय नाम्ना तेनैव कृष्णाख्येन पुनःपुनः । दद्यात्तिलांश्च विप्राय कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।६

लोग मनोरथ द्वादशी में उपवास, पुरुषोत्तम देव की अर्चना, को ब्राह्मणों को नमन नहीं करते हैं उनकी अभीष्ट सिद्धि कैसे होती है ।२६-३०

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
मनोरथ द्वादशी व्रत वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।८०।

अध्याय ८१

उल्कानवमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवान् विभो! अल्प धन तथा अल्प प्रयत्न पूर्वक जिस व्रत द्वारा पाप का प्रशमन हो सके, आप बताने की कृपा करें! १

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! मैं उस पुण्य, पापनाशिनी एवं परा द्वादशी की चर्चा कर रहा हूँ, जिसमें श्रद्धा भक्ति समेत उपवास करने पर अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । माघमास की कृष्ण द्वादशी के दिन आषाढ़ नक्षत्र प्राप्त होने पर संयम पूर्वक इस पुण्य व्रत को आरम्भ करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! महामते! एकादशी के दिन स्नान-पवित्र होकर देवेश विष्णु के कृष्ण नामोच्चारण करते हुए रात्रि व्यतीत होने के उपरांत द्वादशी के दिन उपवास रहकर उसी कृष्ण नामोच्चारण स्तुति एवं केशव देव के पूजन सुसम्पन्न करके 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों' कहते हुए ब्राह्मण को तिल प्रदान करे और

ततश्च प्राशयेच्छस्तांस्तथा कृष्णांतिलान्नृप । विष्णुप्रीणनमंत्रोरके समाप्ते वर्षपारणे ।।७
कृष्णकुंभास्तिलैः सार्द्धं पक्वान्नेन च संयुताः । छत्रोपानद्युगैर्वस्त्रैः सहिता अन्नगर्भिणः ।।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदेयास्ते यथावन्माससंख्यया ।।८
तिलप्ररोहाजायंते यावत्संख्यास्तिला नृप । तावद्वर्षसहस्त्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।
अरोगो जायते नित्यं नरो जन्मनि जन्मनि ।।९
अन्धो न बधिरश्चैव न कुष्ठी न च कुत्सितः । भवत्येतामुषित्वा तु तिलाख्यां द्वादशीं नरः ।।१०
अनेन पार्थ विधिना तिलदाता न संशयः । मुच्यते पातकैः सर्वैरनायासेन मानवः ।।११
दानं विधिस्तथा श्राद्धं सर्वपातकशांतये । नार्थः प्रभूतो नायासः शरीरे नृपसत्तम ।।१२
सर्वोपभोगनिरतोह्नि परे दशम्यां स्नानं तिलैस्तिलनिवेदनकृत्तिलाशी ।
दत्त्वातिलान्द्विजवराय विराजकेतु संपूज्य विष्णुपदवीं समुपैति मर्त्यः ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उल्कानवमीव्रतवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।।८१

पश्चात् स्वयं उसी का आशन करे ! नृप! इस प्रकार विष्णु का नामोच्चारण मंत्र द्वारा जपते हुए वर्ष के अन्त में तिलसमेत एवं पक्वान्न समेत कृष्ण कुम्भ, छत्र, उपानह, चार वस्त्र एवं मिष्ठान के नैवेद्य माससंख्या (वारह) के अनुसार ब्राह्मण को सादर अर्पित करे । नृप! उन तिलों द्वारा उत्पन्न तिल की संख्या के समान उतने वर्ष यह व्रती स्वर्ग लोक के सम्मान प्राप्ति के अनन्तर प्रत्येक जन्म में व्याधि रहित रहता है । इस तिल नामक द्वादशी के उपवास करने से मनुष्य कभी भी अंधा, वधिर, कुष्ठी एवं कुत्सित (निन्दित) नहीं होता है । पार्थ! इस विधान द्वारा तिल दान करने वाला समस्त पातकों से निःसंदेह मुक्त हो जाता है । नृप सत्तम! समस्त पातकों के शमनार्थ श्रद्धा समेत इस व्रत के अनुष्ठान एवं दानं करने से न अधिक धन की आवश्यकता है और न शारीरिक परिश्रम की । इस प्रकार दशमी के दिन समस्त भोगों के त्याग पूर्वक तिल द्वारा स्नान, भोजन निवेदन, आशन, तथा ब्राह्मणों को दान तथा हरि की अर्चना करने पर उसे विष्णु लोकप्राप्त होता है ।२-१३।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
उत्कानवमी व्रत वर्णन इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।८१।

---

१. कृतेनानेन । २. पूज्यं वा

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सुकृतद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यन्न तापाय वै पुंसां भवत्यामुष्मिकं कृतम् । तदपायाय भवति तदाचक्ष्व यदूत्तम ॥१
उपवासप्रभावं वै कृष्णाराधनकांक्षिणाम् । कथयेह महाबाहो नैव तृप्यामि जल्पतः ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पार्थ यत्पृष्टः कौतुकाद्भवता त्वयम् । आमुष्मिकं न तापाय प्रतापाय च जायते ॥३
उपोशितप्रभावं च कृष्णाराधनकांक्षिणाम् । कथयामि यथावृत्तं पूर्वमेव नरोत्तम ॥४
वैदिशं नाम नगरं प्रख्यातं नृपसत्तम । तत्र वैश्योऽभवत्पूर्वं सीरभद्र इति श्रुतः ॥५
भार्यया मातृदुहित पुत्रपौत्रैः समन्वितः । प्रभूत भृत्यवर्गश्च बहुव्यापारकारकः ॥६
पुत्रपौत्रादिभरणे व्यासक्तिर्मतिरेव च । परलोकं प्रति मतिस्तस्य नासीत्कदाचन ॥७
चकारानुदिनं सोऽथ न्यायान्यायैर्द्धनार्जनम् । सर्वत्रान्यत्र निःस्नेहः पुत्रस्नेहपरिप्लुतः ॥८
न जुहोत्युदिते काले न ददात्यतितृष्णया । बभूव चोद्यमस्तस्य पुत्रादिभरणे परः ॥९
नित्यनैमित्तिकानां च हानिं चक्रे स्वकर्मणा । तृष्णाभिभूतो राजेन्द्र स्ववर्गभरणोज्झितः ॥१०

अध्याय ८२

सुकृतद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदूत्तम! मनुष्यों के उन ऐहिक कर्मों को जिससे किसी प्रकार का संतोष नहीं होता है प्रत्युत पुण्य ही होता है, बताने की कृपा कीजिये । महाबाहो! कृष्ण की आराधना करने वालों के उपवास का वर्णन करें क्योंकि आप की कथाओं से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! आप ने कौतुकवश मुझसे जो प्रश्न किया है कि—'मनुष्यों के ऐच्छिक कर्म, जो ताप की अपेक्षा प्रताप उत्पन्न करते हैं, तथा कृष्ण की आराधना के अभिलाषुकों के उपवास प्रभाव बताने की कृपा करें ।' नरोत्तम! मैं उसका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! ।३-४। नृपसत्तम! विदिशा नगरी में सीरभद्र नामक एक प्रख्यात वैश्य रहता था, जो स्त्री, माता, सभी पुत्र, एवं पौत्रों से संयुक्त रह अनेक भृत्यों द्वारा सदैव अनेक भाँति का सफल व्यापार करता था । अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार के भरण-पोषण में अहोरात्र संलग्न रहने के नाते उसने कभी-भी परलोक-विषयों का ध्यान ही नहीं किया । वह प्रतिदिन न्याय-प्रयास से धनोपार्जन करते हुए सदैव पुत्र स्नेह में आत्म-विभोर रहता था और अन्य विषयों से निःस्पृही प्रतितृष्णा क्रान्त होने के नाते उसने कभी हवन-यज्ञ एवं किसी प्रकार का दान नहीं किया । उसके सभी प्रकार के उद्यम पुत्रादिकों के भरण-पोषणार्थ ही होते थे। राजेन्द्र! इस प्रकार उसने प्रति तृष्णा के नाते अपने ही हाथों अपने नित्य नैमित्तिक की अपार क्षति की।५-९। इस प्रकार अनेक

कालेनागच्छतासोऽथ मृतो विंध्याटवीतटे । यातनादेहभृत्प्रेतो ग्रीष्मकालेऽभवन्नृप ।।११
तं ददर्श महाभागो दिव्ययानसमन्वितः । वेदवेदाङ्गविद्वेषी विपीतो नाम वै द्विजः ।।
भास्करस्यांशुभिर्दीप्तैर्दह्यमानमतिदारुणैः ।।१२
प्रतप्तवालुकामध्ये तृषार्तं चातिपीडितम् । क्षुत्क्षामकंठं शुष्कास्यं तथोद्वृत्तविलोचनम् ।।
निष्क्रांतजिह्वमङ्गेषु विस्फोटैः सर्वतश्चितम् ।।१३
निश्वासायासखेदेन विह्वलं पीडितोदरम् । निजेन कर्मणा बद्धमसमर्थं प्रसर्पणे ।।१४
तथादृशमथो दृष्ट्वा गर्दभेदो महानृषिः । विपीतः प्राह राजेन्द्र कारुण्यभरितं वचः ।।१५
जानन्नपि यथाप्राप्तं तस्यानुष्ठानजं फलम् । जंतोस्तस्योपकाराय सर्वतो ह्लादयन्निव ।।१६

विपीत उवाच

अधः सूर्यांशुनिस्तप्तैर्बहुभिः पथि पांशुभिः । उपर्यर्ककरैस्तीक्ष्णैस्तृषावातनिपीडितम् ।।१७
अन्यस्तत्राणकैर्घोरै रविषह्यैःसुदारुणैः । कथयेह यथातत्त्वमेकाकी दह्यसे कथम् ।।१८
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा विपीतस्य सवेदनः । वेदनार्त उवाचेदं कृच्छ्रादुच्छ्वस्य मन्दकम् ।।१९

सीरभद्र उवाच

ब्रह्मन्नालोचितं पूर्वं कथमंते भविष्यति । अशाश्वते शाश्वतधीस्तेन दह्यामि दुर्मतिः ।।२०
इदं करिष्याम्यपरं त्विदं कृत्वात्विदं पुनः । इतीच्छा शतमारूढस्तेन दह्यामि दुर्मतिः ।।२१

समय व्यतीत होने के उपरांत देहावसान होने पर वह विंध्याटवी के समीप प्रेत योनि में उत्पन्न होकर उस (प्रचण्ड) ग्रीष्म समय में शारीरिक यातनाओं के अत्यन्त कटु अनुभव कर रहा था। उस समय विपीत नामक एक ब्राह्मण ने उसे देखा, जो दिव्ययान युक्त एवं वेद-वेदाङ्ग का महान् द्वेषी था। वह भास्कर की अति दारुण एवं प्रखर किरणों द्वारा संतृप्त एवं उस प्रज्जलित बालुकाओं के बीच, अत्यन्त तृषा पीड़ित था। क्षुधापीडित होने के नाते उसके क्षीणकण्ठ, शुष्क वदन एवं नेत्र ऊपर निकले जैसे आ रहे थे। जिह्वा मुखसे निकली हुई थी, और अंगों में अनेक फोड़े (फलके) हो गये थे। इस प्रकार उष्ण एवं ऊर्ध्व (लम्बी) श्वासों से विद्वान्, उदर पीड़ित, एवं निजकर्मों से आवद्ध होने के नाते चलने में असमर्थ उस प्रेत को देख कर विपीत नामक, गर्दन में महर्षि ने करुणा पूर्ण वाणी से कहा। राजेन्द्र! यद्यपि वह ब्राह्मण जानता था कि—यह किस कर्म का फल अनुभव कर रहा है—तथापि जीव के उपकारार्थ उसने उसे सभी प्रकार से आच्छादित करने की भाँति कहना आरम्भ किया।१०-१६

विपीत बोले— सूर्य के प्रखर किरणों द्वारा संतप्त हुई मार्ग-धूलियों (रजकणों) से और प्रचण्ड मार्तण्ड के तीक्ष्ण किरणों तृषा और वात से पीडित होते हुए आप एकाकी यहाँ क्यों दग्ध हो रहे हैं, इसका मूल कारण बताइये! विपीत की ऐसी बातें सुनकर वेदना-पीडित उस प्रेतने उर्ध्व (लम्बी) श्वांस लेने के कारण अत्यन्त कठिनाई से कहना आरम्भ किया।१७-१९

सीरभद्र ने कहा— ब्रह्मन्! मैंने (अपने कर्मों पर) कभी नहीं ध्यान दिया कि —इसका परिणाम क्या होगा। इस अशाश्वत् जगत् को सदैव शाश्वत मानता रहा इसीलिए मुझे ऐसी दुर्दशा हो

शीतोष्णवर्षादिभवं लोभात्सोढं मयाऽशुभम् । तदेव हि न धर्मार्थं तेन दह्यामि दुर्मतिः ॥२२
पितृदेवमनुष्याणामदत्त्वा योषिता हि ये । ते गता नापि वर्तंते दह्याम्येकोऽत्र दुर्मतिः ॥२३
पुत्रक्षेत्रकलत्रेषु ममत्वाहृतचेतसा । बह्वसाधु कृतं कर्म तेन दह्यामि दुर्मतिः ॥२४
मृते मयि धने तस्मिन्नन्यायोपार्जिते सदा । रूपवंतोऽभिवर्तन्ते दह्याम्येकोऽत्र दुर्मतिः ॥२५
न मया पूजिताः गेहान्निर्गता द्विजसत्तमाः । स्ववर्गमिह कामेन तेन दह्याम्यहंमतिः ॥२६
यन्नो न पूजिता देवाः कुटुम्बं पोषितं परम् । एकाकी तत्र दह्यामि ये सुतास्तेऽन्यतो गताः ॥२७
नित्यं नैमित्तिकं कर्म पूर्वेषां चैव नो कृतम् । एकाकी तेन दह्यामि गतस्ते फलभोगिनः ॥२८
दाराः पुत्राश्च भृत्याश्च पापबुद्धया मया भृताः । एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥२९
दाराः पुत्राश्च भृत्यार्थे मया न्यायार्थसञ्चयः । कृतस्तेनात्र दह्यामि ये भुक्तास्तेऽन्यतो गताः ॥३०
क्षतपापं मया भुक्तमन्यैस्तत्कर्म सञ्चितम् । दह्याम्येकोऽहमत्यन्तं गतास्ते फलभोगिनः ॥३१
यन्ममत्वाभिभूतेन मया पापमुपार्जितम् । न तदन्यस्य कस्यापि केवलं मम दुष्कृतम् ॥३२
अन्तर्दुःखेन दग्धोऽहं बहिर्दह्यामि भावयन् । तावद्दुःखं नवाभं तु पापमेकं द्विधा स्थितम् ॥३३
कुरु तस्मात्समुद्धारं पश्यस्यमृतसागरम् । तव येनाहमाह्लादं प्राप्नुयां मुनिसत्तम ॥३४

रही है। इस कार्य को सर्व प्रथम करके अनन्तर पुनः इसे करूँगा। इसी प्रकार सैकड़ों इच्छाओं में तल्लीन रहा करता था। मैंने लोभ वश शीतकाल उष्ण (गर्मी) काल एवं वर्षा काल के घोर प्रकोप का सहन किया, किन्तु धर्मार्थ न कर सका, इसीलिए मुझ दुर्मति को इस प्रकार दग्ध होना पड़ रहा है। पितर, देव और (याचक) आदि मनुष्यों को कुछ भी न देकर सदैव कलत्र आदि का ही पोषण करता रहा, किन्तु वे सब तो नहीं करते और मैं एकाकी यहाँ दग्ध हो रहा हूँ। पुत्र, क्षेत्र एवं कलत्र आदि की ममता में सदैव तल्लीन रह कर मैनें अनेक असाधु कर्म किया है। मेरे निधन होने के पश्चात् मेरे उस धन के उपयोग, जिसके उपार्जन में मैंने न्याय-अन्याय का कुछ भी स्मरण नहीं किया था, सभी घर के लोग कर रहे हैं और मैं ही अकेला इस यातना को भोग रहा हूँ। घर पर आये हुए अतिथि का सम्मान मैंने नही किया, वे विमुख होकर लौट गये, केवल अपने ही वर्ग का पोषण करता रहा।२०-२६। देवों के पूजन न कर मैनें सदैव कुटुम्ब-पोषण ही किया, किन्तु वे सुतादिक तो प्रथम रह गये और मैं यहाँ दग्ध हो रहा हूँ। पूर्व के नित्य-नैमित्तिक कर्मो के पालन मैंने कभी नहीं किया और सदैव निश्छलभाव से कलत्र, पुत्र और सेवकों का ही पालन करता रहा किन्तु वे सभी फल भागी तो चले गये और मैं एकाकी इसका अनुभव कर रहा हूँ। सभी पुत्र एवं भृत्यों के निमित्त मैंने अन्यायतः अर्थ सञ्चय किया, जिसके उपभोग करके वे सब जहाँ के तहाँ चले गये, किन्तु उन लोगों ने अपने संचित कर्मों का उपभोग किया और मैंने इस प्रकार के क्षीण पाप (दुर्विपाक कर्मों) का। ममता-मग्न होकर मैंने जितने पाप कर्म किये हैं, वे सब मेरे ही दुष्कृत हैं किसी अन्य के नहीं। इसीलिए अन्तः और ब्राह्य के उभयथा दुःखों से दग्ध हो रहा हूँ। जो मेरे एक ही भागों के दो रूप हैं। अतः मुनिसत्तम! आप को अमृत सागर अवश्य दिखायी दे रहा है, उससे मेरा उद्धार करने की कृपा करें जिससे आप के द्वारा मुझे भी कुछ आह्लाद की प्राप्ति हो जाये।२७-३४

विपीत उवाच

अल्पकालिक उद्धारे तव पश्यामि संशयम् । प्रक्षीणं पापमेतावत्सुवृत्तं चास्ति ते परम् ।।३५
प्रतीते दशमे जन्मन्यच्युताराधनेच्छया । सुकर्मजयदा भद्रद्वादशीं समुपोषितः ।।
न च तस्याः प्रसादेन पापमत्यन्तदुर्जयम् ।।३६
अल्पैरहोभिः संक्षीणमामपात्रे यथा जलम् । गतं पापमयं ह्यस्याः प्रभावोऽत्यन्तदुर्लभः ।।३७
नाशं पापस्य कुरुते जयं सुकृतकर्मणः । सकृत्कर्मप्रदा ह्येषा ततो वै द्वादशी स्मृता ।।३८
यथैतद्दवतार्तेन भवता परिदेवितम् । तमुवाचात्र संदेहो मम तापाय देव किम् ।।३९
पापमत्र कृतं प्रेत्य भद्र तापाय जायते । आह्लादाय तथा पुण्यमिह पुण्यकृतां नृणाम् ।।४०
सीरभद्रं समाश्वास्य यथावित्थं महामुनिः । सोप्यल्पेनैव कालेन ततो मोक्षमवाप्तवान् ।।४१
उपवासप्रभावश्च कथितस्ते नरोत्तम । येनाल्पैरेव दिवसैर्भूरि पापं क्षयं गतम् ।।४२
तस्मान्नरेण पुण्याय यतितव्यं न पातकम् । उपवासाश्च कर्तव्याः सदैवात्महितैषिणा ।।४३

युधिष्ठिर उवाच

अथैतत्कष्टपापानां विपाको नरकस्थितैः । पुरुषैर्भुज्यते शश्वत्तं मोक्षं वद सत्तम ।।४४

श्रीकृष्ण उवाच

जयासमेताः पुरुषाः सदा सुकृतकर्मणः । जया सा द्वादशी शस्ता नृणां सुकृतकर्मणाम् ।।४५

विपीत बोले—तुम्हारे अल्प कालिक उद्धार होने में मुझे सन्देह हो रहा है, क्योंकि इतना महा पाप तो तुम्हारा नष्ट अवश्य हो गया किन्तु अभी अधिकांश शेष है। आज के दशवें जन्म में मैंने भगवान् अच्युत की आराधना की कामना से जप और कल्याण प्रदायिनी इस सुकृत द्वादशी के उपवास (व्रत) सुसम्पन्न किया था। क्योंकि उसके समक्ष कोई दुर्जेय पाप है ही नहीं। इसीलिए उसके अत्यन्त दुर्लभ अभाव के नाते मेरे सभी पाप अल्प काल में कच्चे पात्र में स्थित जल की भाँति अल्प काल में ही नष्ट हो गये। उन सुकृत कर्मों द्वारा पाप के नाश पूर्वक जप का अप्राप्य होता है और सुकृत कर्म प्रदान करने के नाते उसकी सुकृत द्वादशी नाम से ख्याति भी हुई है।३५-३८। उस (प्रेत) ने कहा—देव! आपने मेरे दुःख में दुःख प्रकट किया है, अतः वह द्वादशी व्रत विधान बताने की कृपा कीजिये। आप ने प्रथम सन्देह भी प्रकट किया, जिससे मुझे कुछ विशेष सन्ताप अवश्य हुआ, किन्तु इस लोक में पापकर्म करने पर भरण के अनन्तर संताप, और पुण्य करने वाले मनुष्यों के पुण्य कर्म आह्लाद। (विशेष हर्ष) के लिए अवश्य होते ही हैं। अनन्तर उस महामुनि ने उसकी व्याख्या पूर्वक उसे सीरभद्र को आश्वासन प्रदान कर आगे की यात्रा की और वह (उस विधान द्वारा) अल्प काल में ही अपने घोर पापों से मुक्त हो गया। नरोत्तम! इस प्रकार मैंने उपवास के उस प्रभाव को, जिसके द्वारा अल्प समय में ही उसके अनेक पाप नष्ट हो गये, तुम्हें बता दिया। इसलिए मनुष्यों को सदैव पुण्य के लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए, और आत्म कल्याण को ध्यान में रखते हुए उपवास भी करना चाहिए।३९-४३

युधिष्ठिर ने कहा—सत्तम! कष्ट दायक विपाक कर्मों के दुर्विपाक (दुःखपरिणाम) नरक स्थित पुरुषों को निरन्तर भोगने पड़ते हैं, अतः उनके मोक्ष्यार्थ उपाय बताने की कृपा करें।४४

श्रीकृष्ण बोले—सुकर्म करने वाले पुरुषों के लिए जय प्रदान समेत (पाप विनष्ट करने वाली) वह

फाल्गुनामलपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः । द्वादश्यां तु द्विजश्रेष्ठ पूजयेन्मधुसूदनम् ।।४६
एकादश्यां समुत्तिष्ठन्विष्णोर्नामानुकीर्तयन् । पूजायां वासुदेवस्य भुञ्जीत सुसमाहितः ।।४७
कामं क्रोधं च लोभं च मदं मोहं च वर्जयेत् । द्रोहादीन् वर्जयेद्दोषान् सर्वान्धनमदोद्भवान् ।।४८
भावयेद्विष्णुभक्तश्च संसारेऽसारतां तथा । एवं भावितचित्तेन प्राणिनां हितमिच्छता ।।४९
नमो नारायणायेति वक्तव्यं स्वपता निशि । तथैव कुर्याद्द्वादश्यां नाम्ना क्षुत्पारणं नृप ।।५०
सौवर्णताम्रपात्राणि मृण्मयान्यपि पांडव । यवपात्राणि पूर्वं तु दद्यान्मासचतुष्टयम् ।।५१
आषाढादिद्वितीयं तु पारयेच्च महामते । तत्रापि घृतपात्राणि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।।५२
कार्तिकादिषु मासेषु माघांतेषु तथा तिलान् । विप्राय दद्यात्पात्रं तु प्रतिमासमुपोषितः ।।५३
नामत्रयमशेषेण मासिमासि दिनद्वयम् । तथैवोच्चारयन् दद्यान्मासिमासि यवादिकम् ।।
प्रणम्य च हृषीकेशं कृतपूजः प्रसादयेत् ।।५४

विष्णो नमस्ते जगती प्रसोते श्रीवासुदेवाय नमो नमस्ते ।
नारायणाख्यः प्रणतैर्विचिंत्यः करोतु मां शाश्वतपुण्यराशिम् ।।५५
प्रसीद पुण्यं जयमेति विष्णो श्रीवासुदेवार्द्धिमुपैतु पुण्यम् ।
प्रयातु वाशेषमथोविनाशं मातेंऽघ्रिपद्मादितरत्र मे मतिः ।।५६

विष्णो पुण्योद्भवो मेस्तु वासुदेवास्तु मे शुभम् । नारायणोऽस्तु मे धर्मो जहि पापमशेषतः ।।५७

जया द्वादशी अत्यन्त प्रशस्त बतायी गयी है । द्विज श्रेष्ठ! फाल्गुन मास की शुक्ल एकादशी के दिन उपवास करके द्वादशी के दिन भगवान् मधुसूदन की सप्रेम अर्वना करनी चाहिए । एकादशी के प्रातः काल उठते ही विष्णु के नामानुकीर्तन प्रारम्भ कर पूजन आदि कर्मों में भी यथावसर करता रहे, भगवान् वासुदेव की पूजा के उपरांत भोजन में भी समाहितमनस्क रहे । उस समय धन के भाव से उत्पन्न होने वाले इन सभी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, और द्रोहादि के त्याग पूर्वक उस विष्णु भक्त को संसार की नश्वरता पर विशेष ध्यान रख कर उनकी प्रेम-भावना को अधिक आश्रय देना चाहिए । इस प्रकार भावना निमग्न होकर प्राणियों के हितार्थ रात्रि में शयन करते समय नमो नारायणाय का उच्चारण करे । नृप! उसी प्रकार द्वादशी के दिन भी नामोच्चारण पूर्वक ही क्षुधांशांत्यर्थ पारण करे ।४५-५०। पाण्डव! प्रथम के चारों मासों में सुवर्ण, ताम्र, अथवा मृत्तिका के पात्र में जवा रखकर प्रदान करता रहे । महामते! आषाढ़ आदि मासों के दूसरे चौमासे में श्रद्धा समेत घृत पान, और कार्तिक आदि से माघ के अन्त समय तक तिल पात्र उपवास करते हुए प्रतिमास ब्राह्मण को प्रदान करता रहे । प्रत्येक मास के दोनों (एकादशी-द्वादशी के) दिन भगवान् के विशेष नामों के उच्चारण और पक्वान्नादि के पूर्ण पात्र ब्राह्मण को प्रतिमास अर्पित करते हुए भगवान् हृषीकेश की सप्रणाम पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे— जगत्कारण विष्णु को नमस्कार है, और श्री वासुदेव को नमस्कार है । श्री नारायणदेव का वह मुखारविन्द, जिसका ध्यान सदैव प्रणत पुरुष किया करते हैं, मुझे शाश्वत पुण्य की राशि बनाये । विष्णो! आप प्रसन्न हों, और मेरा पुण्य श्री वासुदेव जी की पुण्य-जप रूप भक्ति प्राप्त करे (अर्थात् अतुल हो जाये) अथवा विनष्ट हो जाये, किन्तु मेरी बुद्धि आप के चरण-कमल का त्याग कभी न करे । विष्णो! मेरा पुण्योद्भव हो, अशेष पापों के विनाश हो, नारायण! मेरी धर्म-वृद्धि हो और अशेष पापों के विनाश ।५१-५६। उसी भाँति अनेक जन्मों

अनेकजन्मजनितं बाल्ययौवनवार्द्धके । पुण्यं विवृद्धिमायातु यातु पापं च संक्षयम् ।।५८
आकाशादिषु शब्दादौ श्रोत्रादौ महदादिषु । प्रकृतौ पुरुषे चैव ब्रह्मण्यपि च स प्रभुः ।।५९
यथैक एव धर्मात्मा वासुदेवो व्यवस्थितः । तेन सत्येन पापं मे नरकार्तिकप्रदं क्षयम् ।।६०
प्रयातु सुकृतस्यास्तु समानु दिवसञ्जयः । पापस्य हानिः पुण्यस्य वृद्धिर्मेस्तूत्तमोत्तमा ।।६१
एवमुच्चार्य विप्राय दद्यात् यत् कथितं तव । भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु पारणेपारणे गते ।।६२
पारणान्ते तु देवेश प्रीणनं शक्तितो नृप । कुर्वीताखिलपाखण्डैरालापं च विवर्जयेत् ।।६३
एवं संवत्सरस्यान्ते काञ्चनीं प्रतिमां हरेः । पूजयित्वा वस्त्रपुष्पैर्घृतपात्रेण संयुतैः ।।६४
गां सवत्सां च विप्राय दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः । विलंबितं च यत्पूर्वं देवानन्यान् भजेद्यदि ।।६५
तस्मिन्नहनि दातव्यं भोजने चानिवारितम् । इत्येषा कथिता पुण्या सुकृतस्य जयावहा ।।
द्वादशी नरकं पार्थ यामुपोष्य न पश्यति ।।६६
नाग्नयो न च शस्त्राणि न च लोहमुखाः खगाः । नारकास्तं प्रबाधन्ते मतिर्यस्य जनार्दने ।।६७
नामोच्चारणमात्रेण विष्णोः क्षीणाघसञ्चयः । भवत्यघविनाशश्च नरके पतनं कुतः ।।६८
नमो नारायण हरे वासुदेवेति कीर्तयन् । न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाशेषपातकः ।।६९
तस्मात्पाखण्डिसंसर्गकुर्वन् द्वादशीमिमाम् । उपोष्य पुण्योपचये न याति नरकं नरः ।।७०

में वाल्य, यौवन एवं वृद्धावस्था-जनित पुण्य की वृद्धिपूर्वक पापों का ध्वंस हो । आकाशादि पञ्च तत्त्वों शब्द आदि (रूप रस गन्धादि) विषय, श्रोत्र (कर्ण) आदि इन्द्रियाँ, महदादि (सोलह विकार), प्रकृति, पुरुष और ब्रह्मा में सदैव एक भाँति स्थित रहने वाले धर्मात्मा वासुदेव नारकीय दुःख प्रद मेरे पापों के विनाश कर सुकृत कर्मों की अनुदिन परमोत्तम वृद्धि होती रहे । इस प्रकार कहकर ब्राह्मण को दान करने के अनन्तर कृतकृत्य होते हुए प्रत्येक पारण में भोजन करे । नृप! पारण के अनन्तर पाखण्डों और असप्त् आलापों के त्याग पूर्वक वर्ष की समाप्ति में भगवान् विष्णु की काञ्चनमयी प्रतिमा बनवा कर सविधान पूजन करके वस्त्र, पुष्प, घृतपात्र, तथा सवत्सा गौ श्रद्धा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । विलम्ब होने अथवा किसी अन्य देव की अर्चना उपस्थित होने पर भी उस दिन ब्राह्मण भोजन अवश्य होना चाहिए । पार्थ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुण्य एवं जयावह उस सुकृत द्वादशी का वर्णन सुना दिया, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य नरक-दर्शन नहीं करता है ।५७-६६। भगवान् जनार्दन के लिए वुद्धया प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को अग्नि, शास्त्र, लोहमुख पक्षी गण जनित कष्ट और नारकीय यातनाएँ प्राप्त नहीं होती हैं । क्योंकि भगवान् विष्णु के नामोच्चारण मात्र से पापों के समूह विनष्ट हो जाते हैं तो नरक-पतन सम्भव कहाँ। नारायण, हरे, एवं वासुदेव आदि भगवान् के नामों के कीर्तन करने वाले मनुष्य निखिल पापों के विनष्ट हो जाने के कारण नरक के भी नहीं होते हैं। इसलिए पाखण्डों आदि के त्याग पूर्वक सुकृत द्वादशी के उपवास करने पर पुण्य वृद्धि के नाते उस पुरुष को नरक की प्राप्ति नहीं होती है।६७-७०। जो द्वादशी सुकृत नाम से प्रख्यात होकर पाप-नाश, सुकृत-वृद्धि, अनुदिन वृद्धि-प्रदान एवं समस्त दोषों के अपहरण करती

पापं क्षिणोति सुकृतस्य करोति वृद्धिं वृद्धिं प्रयच्छति नियच्छति सर्वदोषान् ।
यद्द्वादशीह सुकृतातिहिता च लोके कस्मान्न तामुपवसंति विमूढचित्ताः ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तर पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सुकृतद्वादशीव्रतवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।८२

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

धरणीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदेतत्परमं गुह्यं सर्ववेदेषु पठ्यते । स देवः पुण्डरीकाक्षः स्वयं नारायणो हरिः ॥१
स यज्ञैर्विविधैरिष्टैर्व्रतैश्च यदुसत्तम । प्राप्यते परमो देवः सनातनः कथञ्चन ॥२
बहुवित्तेन भगवन्नृत्विग्भिर्वेदपारगैः । प्राप्यन्ते सुसहायैश्च क्वचित्त्यक्ताः सुदुष्कराः ॥३
वित्तेन च विना दानं दातुं कृष्ण न शक्यते । विद्यमानेऽपि न मतिः कुटुम्बासक्तचेतसः ॥४
तस्य मोक्षः कथं कृष्ण सर्वथा दुर्लभो हरिः । अल्पायासेन लभते येन देवः सनातनः ॥
तन्मे सामान्यतो ब्रूहि सर्ववर्णेषु यद्भवेत् ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि परं गुह्यं रहस्यं देवनिर्मितम् । धरण्या यत्कृतं पूर्वं मज्जन्त्या वसुधातले ॥६

है, उस लोक-हितैषिणी में मूढ़चेता प्राणी उपवास क्यों नहीं करते हैं! (अर्थात् सदैव करना चाहिए) ।७१।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
सुकृत द्वादशी व्रत वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय सपाप्त ।८२।

अध्याय ८३

धरणीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुसत्तम ! समस्त वेदों में पुण्डरीकाक्ष एवं स्वयं नारायण विष्णु देव को परम गुह्य बताया गया है, अतः उन देवेश की प्राप्ति अनेक भाँति के अथवा काम्यव्रत, द्वारा होती है, अथवा अन्य उपाय द्वारा, बताने की कृपा कीजिये । कृष्ण ! यदि भगवान् की प्राप्ति बहुवित्त द्वारा होती है जिसमें वेद निष्णात ऋत्वग् विद्वानों की सहायता अपेक्षित है अथवा किसी दुष्कर के त्याग द्वारा तो बिना दान के वित्त की प्राप्ति सम्भव नहीं होती और धन के रहने पर अहोरात्र कुटुम्ब के भरण-पोषण में आसक्त रहने के नाते उधर (दान करने की ओर) बुद्धि ही नहीं जाती । इसलिए कृष्ण ! उस (वृद्धि) का मोक्ष किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि भगवान् विष्णु तो सर्वथा दुर्लभ है । अल्पायास से सभी वर्ण के प्राणियों को भगवान् विष्णु सिद्ध हो सके, मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१-५

श्रीकृष्ण बोले—पार्थिव ! मैं इसके लिए तुम्हें एक परम गुह्य एवं देव निर्मित रहस्य बता रहा हूँ,

पृथिव्याः पार्थिवपुरा सञ्जातः सङ्गमोऽम्बुभिः । तस्मिन्सलिलसंलग्ने मही प्रायाद्रसातलम् ॥७
सा भूतधात्रीधरणी रसातलगता शुभा । आराधयामास विभुं देवं नारायणं परम् ॥८
उपवासव्रतैर्देवी नियमैश्च पृथग्विधैः । कालेन महता तस्याः प्रसन्नो गरुडध्वजः ॥
उज्जहार स्थितो चेमां स्थापयामास चाच्युतः ॥९
प्राप्ते मार्गशिरे मासे दशम्यां नियतात्मवान् । स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा अग्निकार्यं यथाविधि ॥१०
शुचिवासाः प्रसन्नात्मा ह्यत्यल्पान्नं सुसंस्कृतम् । भुक्त्वा पञ्चपदं कृत्वा पुनः शौचं च पादयोः ॥११
कृत्वाष्टाङ्गुलमात्रं तु क्षीरवृक्षसमुद्भवम् । भक्षयेद्दन्तकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः ॥१२
स्पृष्ट्वा न्यस्यान्यकर्माणि चिरं ध्यात्वा जनार्दनम् । शङ्खचक्रगदापाणिं पीताम्बरसमावृतम् ॥१३
एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले महाद्युते । एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ॥
सम्भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥१४
एवमुक्त्वा ततो देव देवदेवस्य सन्निधौ । जपेन्नारायणायेति रूपे तत्र विधानतः ॥१५
ततः प्रभाते विमले नदीं गत्वा समुद्रगाम् । इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥१६
आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणानेन मानवः । धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा ॥
तेन सत्त्वेन मां पाहि पापान्मोचय सुव्रते ॥१७

इति मृत्तिकामन्त्रः

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः । भवन्ति भूतानि सतां मृत्तिकामालभेत्पुनः ॥१८

जिसे वसुधा तल में निमग्न होती हुई धरणी ने सर्वप्रथम सुसम्पन्न किया है । जिस समय यह सारा संसार सलिल मग्न होने लगता है, उस समय यह धारण करने वाली धरणी भी रसातल चली जाती है । उसी समय यह धात्री उपवास, व्रत, नियम एवं पृथक् विधान द्वारा विभु एवं परम् उस नारायण देव की आराधना करती है । पश्चात् अनेक काल के व्यतीत होने पर भगवान् गरूड ध्वज प्रसन्न होकर उद्धार करके इसकी स्थापना करते हैं । मार्गशीर्ष मास की शुक्ल दशमी के दिन संयम पूर्वक स्नान, देवार्चन एवं सविधान करके पवित्र वस्त्र धारण कर प्रसन्नता पूर्ण सुसंस्कृत पक्वान्न का अल्पभोजन करे । अनन्तर पंचपद पूर्वक चरण प्रक्षालन, के उपरांत क्षीर वृक्ष के आठ अंगुल की दातुन आचमन (कुल्ला) और स्नान करके (अंग और करके) व्यास पूर्वक शंख, चक्र, गदा से सुसज्जित एवं पीताम्बर भूषित भगवान् जनार्दन का चिरकाल तक ध्यान करते हुए इस प्रकार उनसे प्रार्थना करे कि पुण्डरीकाक्ष ! मैं इस एकादशी के दिन निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा । अतः अच्युत ! आप मेरे शरण हो । ऐसा कहकर उन्हीं देवाधिदेव के समीप सविधान नारायण नाम का जप करे । पुनः विमल प्रातः काल होने पर किसी समुद्र गामिनी नदी, तडाग, अथवा गृह कूप पर स्थित होकर संयम पूर्वक उसे इस मंत्र द्वारा शुद्ध मृत्तिका लाना चाहिए—देवि ! सदैव धारण पोषण तुम्हारे ही द्वारा होता आया है, अतः उसी बल द्वारा मेरी रक्षा कीजिये और सुव्रते ! पाप से मुक्त भी । अनन्तर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक आदित्य का दर्शन करे—इस ब्रह्माण्ड के उदर मध्यवर्ती समस्त तीर्थ भगवान् सूर्य के किरणों से स्पृष्ट है, जिनके द्वारा निखिल प्राणियों की सृष्टि होती है अतः इस का आलम्भन कर रहा हूँ ।६-१८। इस प्रकार उस मृत्तिका को सूर्य के सम्मुख प्रदर्शन

इत्यादित्यादर्शनमन्त्रः

एवं मृदं रवेरग्रे कृतवाथात्मानमालभेत् । त्रिःकृत्वाशेषमृदया कुण्डमालिख्य वै जले ॥१९
ततः स्नात्वा नरः सम्यक्चक्रवर्त्युपचारकः । आचम्यावश्यकं कृत्वा पुनर्देव गृहं व्रजेत् ॥२०
तमाराध्य महायोगं देवं नारायणं प्रभुम् । केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ॥२१
ऊरुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे । कण्ठं कौस्तुभनाथाय वक्षः श्रीपतये तथा ॥२२
त्रैलोक्यविजयायेति बाहू सर्वात्मने शिरः । रथाङ्गधारिणे चक्रं शङ्करायेति चाम्बुजम् ॥२३
गम्भीरायेति च गदामभयं शान्तमूर्तये । एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणं प्रभुम् ॥२४
पुनस्तस्याग्रतः कुम्भांश्चतुरः स्थापयेद्बुधः । जलपूर्णान्समाल्यांश्च सितचन्दनचर्चितान् ॥२५
चतुर्भिस्तालपात्रैश्च स्थगितान्रत्नसंयुतान् । चत्वारस्ते समुद्रास्तु कलशाः परिकीर्तिताः ॥२६
तेषां मध्ये तु सम्पीठं स्थापयेद्वस्त्रसम्वृतम् । तस्मिन्सौवर्णं रौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा ॥
पात्रं तोयभृतं कृत्वा तस्य मध्ये ततो न्यसेत् ॥२७
सौवर्णं मात्स्यरूपेण कृत्वा देवं जनार्दनम् । वेदवेदाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम् ॥२८
भक्ष्यैर्बहुविधै राजन् फलैः पुष्पैश्च शोभितम् । गन्धैर्धूपैर्मन्त्रवरैरर्चयित्वा यथाविधि ॥२९
रसातलगता वेदा यथा देव त्वयाहृताः। मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव ॥३०
एवमुच्चार्य तस्याग्रे जागरं तत्र कारयेत् । यथाविभवसारेण प्रभातेऽपि पुनः पुनः ॥
चतुर्णां ब्राह्मणानां तु चतुरो दापयेद्धटान् ॥३१

कर अपने शरीर के सर्वाङ्गों में उसका लेपन और सम्मुख प्रदर्शन कर अपने शरीर के सर्वाङ्गों में उसका लेपन और उसी जल में शेष मृत्तिका द्वारा तीन बार कुण्ड के समान गोलाकार बनाकर चक्रवर्ती के उपचार पूर्वक स्नान करे। तदुपरांत आचमन आवश्यक (नित्य नैमित्तिक कार्य एवं देव पितृ तर्पण) करके देवमन्दिर में महायोगी एवं प्रभु नारायण देव की आरधना करे—केशवाय नमः से चरण, दामोदराय नमः से कटि, नृसिंहाय नमः से दोनों ऊरू, श्रीवत्सधारिणे नमः से उरु, कौस्तुभनाथाय नमः से कण्ठ, श्रीपतये नमः से वक्ष, त्रैलोक्याय विजयाय नमः से बाहू, सर्वात्मने नमः से शिर, रथाङ्गधारिणेनमः से चक्र, शंकराय नमः से कमल, गम्भीराय नमः से गदा और शांतमूर्तये नमः से सर्वाङ्ग की अर्चना करनी चाहिए। इस प्रकार देवाधि देव उन नारायण प्रभु की अर्चना करने के अनन्तर उनके समक्ष जलपूर्ण चार कलशों की स्थापना करे, जो माल्यभूषित एवं सितचन्दन चर्चित हो। उनकी सन्निधि में रत्न पूर्ण चार तिलपात्र भी रखना चाहिए। उन चार कलशों को चारों समुद्रों का प्रतिरूप बताया गया है। उन कलशों के मध्य वस्त्राच्छन्न एक सौन्दर्य पूर्ण पीठ स्थापन कर उसी के मध्य सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा काष्ठ के पात्र में पूर्ण जल रखकर स्थापित करे।१९-२७। पुनः उस जल के मध्य में भगवान् जनार्दन के मत्स्य रूप की सुवर्ण प्रतिमा रखकर, जो वेद-वेदाङ्ग युक्त एवं श्रुति-स्मृति विभूषित रहती है, अनेक भाँति के भक्ष्य, फल, पुष्प, गंध, धूप द्वारा सविधान एवं श्रेष्ठ मंत्रवर्णों के उच्चारण पूर्वक उनकी अर्चना सुसम्पन्न करके क्षमा प्रार्थना करे कि—'केशव देव ! जिस प्रकार आप ने रसातल प्राप्त वेदों का उद्धार किया है, उसी भाँति इस मत्स्य रूप द्वारा मेरा भी उद्धार करे। इस प्रकार कहकर उनके समक्ष जागरण करे। पुनः प्रातः काल अपनी धनशक्ति के अनुसार निर्मित एवं स्थापित कलशों को ब्राह्मणों के लिए अर्पित करे।२८-३१। विधान

पूर्वं तु बह्वृचे दद्याच्छन्दोगे दक्षिणं तथा । यजुः शाखान्विते दद्यात्पश्चिमं घटमुत्तमम् ।।३२
उत्तरं कामतो दद्याद्देश एव विधिक्रमात् । ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वं सामवेदश्च दक्षिणः ।।३३
यजुषः पश्चिमो नाम्ना आथर्वायोत्तरं तथा । पूर्णपात्रैस्तु सतिलैः स्थगितान्कारयेद्घटान् ।।३४
ततस्तं जलपात्रस्थं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दद्यादेवं महाभाग ततः पश्चात्तु भोजयेत् ।।३५
ब्राह्मणान्पायसान्नेन ततः पश्चात्स्वयं गृही । भुञ्जीत भृत्यसहितो वाग्यतः संयतेन्द्रियः ।।३६
अनेन विधिना यस्तु द्वादशीं क्षपयेन्नरः । तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणु सत्यवतां वर ।।३७
यदि वक्त्रसहस्राणि भवन्ति हि युगेयुगे । आयुश्च ब्रह्मणस्तुल्यं भवेद्यदि महामते ।।
तदस्य फलसंख्यानं कर्तुं शक्यं न धारयेत् ।।३७
यः कृष्णद्वादशीमेतामनेन विधिना नृप । करोति ब्रह्मलोकं स समाप्नोति न संशयः ।।३९
ब्रह्महत्यादिपापानि जन्मान्तरकृतान्यपि । अकामतः कामतो वा प्रणश्यन्ति न संशयः ।।४०
तथैव पौषमासेन अमृतं मथितं सुरैः । तत्र कूर्मोभवद्देवः स्वयमेव जनार्दनः ।।४१
तस्येयं तिथिरुद्दिष्टा हरेर्वै कूर्मरूपिणः । पौषमासं समासाद्य द्वादशीं शुक्लसंयुताम् ।।४२
तस्यां प्राग्वत्संकल्पः प्रातः स्नानादिकाः क्रियाः । निर्वर्त्याराधयेद्रात्र्यामेकादश्यां जनार्दनम् ।।
प्रीयमन्त्रैर्नृपश्रेष्ठ देवदेवं जगद्गुरुम् ।।४३

कूर्माय पादौ प्रथमं सुपूज्य नारायणायेति कटिं हरेस्तु ।
सङ्कर्षणायेत्युदरं विशोधेत्पुरोभवायेति च कण्ठपीठम् ।।४४

क्रम से पूर्व दिशा का कलश व ऋच (ऋग्वेद) के विद्वान् दक्षिण कलश छन्दोग (सामवेदी) पश्चिम कलश यजुः शाखाध्यायी और उत्तर कलश यथेच्छ व्यक्ति को देना चाहिए। पूर्व दिशा में स्थित ऋग्वेदी, दक्षिण सामवेदी, पश्चिम यजुर्वेदी, और उत्तर स्थित अथर्वेदी प्रसन्न हों। महाभाग ! सतिल एवं पूर्णपात्र समेत वह जल घट किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए। पश्चात् ब्राह्मणों को पायस भोजनों द्वारा संतृप्त कर अनन्तर परिवार एवं परिजन समेत मौन तथा संयम पूर्वक भोजन करे। राजन् सत्यावतांवर ! इस विधान द्वारा इस द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ, सुनो ! महामते ! यदि प्रत्येक युग में ब्रह्मा के समान आयु और सहस्रमुख धारण कर उसकी फल संख्या निर्धारित करना चाहें तो भी असमर्थ रहेंगे। नृप ! उस विधान द्वारा कृष्ण द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष ब्रह्म लोक की प्राप्ति करता है इसमें संदेह नहीं।३२-३९। ज्ञान अज्ञान वश कीगयी जन्मान्तरीय ब्रह्महत्या एवं अन्य पापराशि भी सर्वथा, निर्मूल हो जाते हैं। उसी भाँति पौष मास में देवों के अमृत मन्थन समय में भगवान् जनार्दन देव ने स्वयं कच्छप रूप धारण किया था। इसलए कच्छप रूप धारी भगवान् विष्णु के लिए यह तिथि सर्वथा उद्दिष्ट है। पौष मास की शुक्ल द्वादशी के दिन पूर्व की भाँति संकल्प पूर्वक प्रातः स्नान आदि क्रियाओं को सुसम्पन्न करना चाहिए। नृपश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन रात्रि के समय देवाधिदेव एवं जगद्गुरु भगवान् जनार्दन की सर्वाङ्ग अर्चना उनके प्रेयान मंत्रों द्वारा करनी चाहिए। कूर्माय नमः से चरण, नारायणाय नमः से कटि, संकर्षणाय नमः से उदर, और पुरोभवाय नमः से कंठ, पीठ, सुवाहवे नमः से भुजाएँ, एवं सर्वात्मने नमः

सुबाहवेत्येव भुजौ शिरश्च सर्वात्मने पाण्डव पूजनीयौ ।
स्वनाममन्त्रेण च शङ्खचक्रे गदां नमस्कारपरेण चैव ॥४५
एभिर्मन्त्रैः पुष्पसुगन्धधूपैर्नैवेद्यदीपैर्विविधैः फलैश्च ।
अभ्यर्च्य देवं कलशं तदग्रे संस्थापयेन्माल्यविलेपनाढ्यम् ॥४६
तं रत्नगर्भं सुसुगन्धतोयं कृत्वा ततो हेममयं स्वशक्त्या ।
समन्दरं कूर्मतनुं सुरेशं संस्थापयेच्चात्र शुभे च पात्रे ॥४७
घृतैश्च पूर्णे कलशोऽग्रसंस्थं सम्पूजयेज्जागरनृत्यगीतैः ।
सम्पूज्य विप्रान् घृतपायसेन निवेद्य पूर्वं द्विजपुङ्गवाय ॥
निर्वर्त्य सर्वं विधिवत्ततश्च भुञ्जीत सन्तुष्टमनाः समृत्यः ॥४८
एवं कृते कल्पयुगान्तराणि स्वर्गे वसेत्सर्वसमृद्धकामः ॥४९
संसारचक्रं स विहाय शीघ्रमाप्नोति लोके तु हरेः पुराणे ।
प्रयान्ति पापानि विनाशमाशु श्रिया युतो जायति सत्यधर्मः ॥५०
अनेकजन्मार्जितसंयुतानि नश्यन्ति पापानि नरस्य भक्त्या ।
प्रागुक्तरूपं च फलं लभेत नारायणं वस्तुमुपैति सद्यः ॥५१

एवं माघे सिते पक्षे द्वादशीं धरणीधर । वराहस्य भृगुश्चान्यां राजन् परमधार्मिक ॥५२
प्रागुक्तेन विधानेन स्नानं सङ्कल्पमेव च । कृत्वा देवं समभ्यर्च्य एकादश्यां समाहितः ॥५३
धूपनैवेद्यगन्धैस्तु अर्चयित्वा पुनर्नरः । पश्चात्तस्याग्रतः कुम्भं जलपूर्णं तु विन्यसेत् ॥५४

से शिर एवं सर्वाङ्ग की अर्चना करनी चाहिए । पाण्डव ! स्वनाम मंत्रोच्चारण पूर्वक शंख, चक्र, और गदा की अर्चना एवं नमस्कारान्त नाम मंत्रों द्वारा पुष्प, धूप, सुगन्ध, नैवेद्य, दीप और विविध प्रकार के फलों को अर्पित करते हुए उनकी अर्चना के उपरांत उनके सम्मुख माला भूषित एवं चन्दन चर्चित उस कलश का स्थापन करे, जो अन्तः पीत रत्नों, सुगंध एवं मधुर जलों से परिपूर्ण हो । उसके ऊपर सुवर्ण निर्मित मन्दर समेत भगवान् कच्छप की हेममयी प्रतिमा किसी शुभ पात्र में रखकर स्थापित घृत पूर्णपात्र समेत अर्चना करने के अनन्तर नृप गान द्वारा रात्रि जागरण करे । पूजनोपरांत घृत पूर्ण पायस भोजन द्वारा ब्राह्मण को सुतृप्त कर और समस्त विधि सुसम्पन्न हो जाने के अनन्तर प्रसन्नता पूर्ण रहकर गुह्य आदि के साथ स्वयं भोजन करे । इस भाँति इसे सविधान सुसम्पन्न करने पर देवहावसान के समय स्वर्ग पहुँचकर एक कल्पयुग समस्त कामनाओं के परिपूर्ण सुखोपभोग करते हुए इसी प्रकार समस्त संसार चक्र के परमोत्तम लोकों के भ्रमण करके उसे भगवान् विष्णु के उस पुराण लोक की प्राप्ति होती है । समस्त पापों के विनाश होने पर वह सदैव श्री सम्पन्न एवं सत्य धर्म की मूर्ति रूप में स्थित रहता है । भक्ति पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों को अनेक जन्मों के पाप नाश पूर्वक नारायण लोक की प्राप्ति होती है ।४०-५१। इसी प्रकार धरणीधर ! माघ शुक्ल द्वादशी के दिन भगवान् के वराहावतार की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए । राजन् ! उस परम धार्मिक को पूर्वोक्त विधान द्वारा स्नान संकल्प पूर्वक एकादशी के दिन तन्मयता से भगवान् की अर्चा धूप, नेवेद्य एवं गन्ध द्वारा सुसम्पन्न कर उनके अग्रभाग में जलपूर्ण

**वाराहायेति पादौ तु माधवायेति वै कटिम् । क्षेत्रज्ञायेति जठरं विश्वरूपेत्युरो हरेः ॥५५
पूर्वत्रायेति कण्ठं तु प्रजानां पतये शिरः । प्रद्युम्नायेति च भुजौ दिव्यास्त्राय सुदर्शनम् ॥५६
अमृतोद्भवाय शङ्खं तु गदिने च गदां तथा । एवमभ्यर्च्य मेधावी तस्मिन्कुम्भेऽपि विन्यसेत् ॥५७
सौवर्णं रूप्यं ताम्रं वा पात्रं विभवशक्तितः । सर्वबीजैस्तु सम्पूर्णं स्थापयित्वा विचक्षणः ॥५८
तत्र शक्त्या च सौवर्णं वाराहं कारयेत्ततः । दंष्ट्राग्रेणोद्धरन् पृथ्वीं सपर्वतवनद्रुमाम् ॥५९
माधवं मधुहन्तारं वाराहं रूपमास्थितम् । सर्वबीजभृतैः पात्रै रत्नगर्भघटोपरि ॥६०
स्थापयेत्परमं देवं जातरूपमयं हरिम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्राभावे तु वैणवे ॥६१
स्थाप्यार्चयेद्गन्धपुष्पैर्नैवेद्यैर्विविधैः फलैः । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा जागरं तत्र कारयेत् ॥६२
प्रादुर्भावं हरेर्दिव्यं वाचयेद्दापयेद्बुधः । एवं सनियमस्यास्य प्रभाते उदिते रवौ ॥६३
वेदवेदाङ्गविदुषे साधुवृत्ताय धीमते । विष्णुभक्ताय राजेन्द्र विशेषेण प्रदापयेत् ॥६४
एवं सकुम्भं दत्त्वा च हरिं वाराहरूपिणम् । ब्राह्मणाय भवेद्यत्तत्फलं तन्मे निशामय ॥६५
इह जन्मनि सौभाग्यं श्रीकान्ती पुष्टिमेव च । प्राप्नोति पुरुषो राजन् यद्यदिच्छति किञ्चन ॥६६
एकाऽपि विधिनोपास्ता ददात्यमृतमुत्तमम् । किं पुनर्वर्षमेकं च करोति कुरुनन्दन ॥६७
एषा च फाल्गुने मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशी । उपोष्या पूर्वविधिना हरिमाराधयेत्सुधीः ॥६८
नरसिंहाय पादौ तु गोविन्दायोदरं तथा । कटिं विश्वसृजे पूज्ये अनिरुद्धेत्युरो हरेः ॥६९**

कलश की स्थापन करे। 'वराहाय नमः से चरण, माधवाय नमः से कटि, क्षेत्रज्ञाय नमःसे जठर, विश्वरूपाय नमःसे उदर, पूर्वत्राय नमःसे कण्ठ, प्रजानां पतये नमः से शिर, प्रद्युम्नाय नमः से बाहु, दिव्यास्त्राय नमःसे सुदर्शन, अमृतोद्भवाय नमःसे शंख, और गदिने नमः से गदा की पूजा करके उस मेधावी को उस कलश पर बाराह भगवान् की प्रतिमा स्थापित करना चाहिए, जो सुवर्ण, चाँदी, ताँबा अथवा अपने विभवानुसार किसी अन्य पात्र पर स्थित हो और सुवर्ण द्वारा निर्मित की गयी हो। समस्त बीजों समेत स्थापित करते हुए उस विचक्षण को मधुहन्ता माधव के उस वरहारूप की प्रतिमा का इस भाँति निर्माण करना चाहिए। जिसमें वे अपने दंष्ट्रा (दाँत) के अग्रभाग पर समस्त पर्वत वन द्रुम समेत पृथिवी को रखकर उस का उद्धार कर रहे हों। रत्न गर्भित उस सौन्दर्य पूर्ण कलश पर भगवान् की उस सुवर्ण प्रतिमा को श्वेत शाखाओं से आच्छन्न कर ताँबे आदि के अभाव में वाँस पात्र में ही स्थापित एवं गन्ध पुष्प, नैवेद्य और विविध भाँति के फलों से उनकी अर्चना के उपरांत पुष्प मंडप में जागरण करता रहे।५२-६२। और उसी स्थान भगवान् का दिव्य जन्मोत्सव करे। इस भाँति नियम पालन के उपरांत प्रातःकाल सूर्योदय होने पर किसी वेद वेदाङ्ग के निष्णात विद्वान् ब्राह्मण को, जो साधु-शील, अत्यन्त धीमान् एवं विशेषकर विष्णु भक्त हो, भगवान् की वाराहरूपी प्रतिमा समेत वह कलश सादर समर्पित करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो! राजन्! इसी जन्म में सौभाग्य, श्री, कांति, पुष्टि समेत मनोनीत कामनाएँ सफल होती हैं। कुरुनन्दन! सविधान एक बार (वह व्रत) सुसम्पन्न करने पर परमोत्तम अमृत प्रदान करता है, और जो उसी भाँति सम्पूर्ण वर्ष तक उसे सुसम्पन्न करता रहता है, उसे पुनः क्या कहा जा सकता है। फाल्गुन मास की शुक्ल द्वादशी के दिन विद्वानों को उपवास रहते हुए भगवान् को सविधान अर्चन सुसम्पन्न करना चाहिए।६३-६८। 'नरसिंहाय नमः से चरण, गोविन्दाय नमः से

कण्ठं तु शितिकण्ठाय वैनतेयाय वै शिरः । असुरध्वंसनायेति वक्त्रं तोयात्मने नमः ॥७०
शङ्खमित्येव सम्पूज्य गन्धपुष्पैः फलैस्तथा । तदग्रे तु घटं स्थाप्य सितवस्त्रायुगान्वितम् ॥७१
तस्योपरि नृसिंहं तु सौवर्णं ताम्रभाजने । हैमे च शक्तितः कृत्वा दारुवंशमयेऽपि वा ॥७२
रत्नगर्भमये स्थाप्य भक्त्या सम्पूज्य मानवः । द्वादश्यां वेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७३
एषा वन्द्या पापहरा द्वादशी भवते मया । कथिता च प्रयत्नेन श्रुता च भवतेप्सिता ॥७४
एवमेनां नरव्याघ्र चैत्रे सङ्कल्प्य द्वादशीम् । उपोष्याराधयेत्पश्चाद्देवदेवं जनार्दनम् ॥७५
कुण्डिकां स्थापयेत्पार्श्वे छत्रिकां पादुके तथा । अमलं वामनं स्थाप्य बृसीं कांसपरिच्छदाम् ॥७६
फलैः पुष्पैः सुगन्धैश्च प्रभाते सद्द्विजातये । दापयेत्प्रीयतां विष्णुर्ह्रस्वरूपीत्युदीरयेत् ॥७७
मासनाम्नात्र संयुक्तं प्रादुर्भावं विधानतः । प्रीयतामिति सर्वत्र विधिरेवं प्रकीर्तितः ॥७८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं मृतं विष्णुपुरं व्रजेत् ॥७९
क्रीडित्वा सुचिरं कालमिह मर्त्यमुपागतः । चक्रवर्ती भवेद्धीमान् ययातिरिति नाहुषः ॥८०
वैशाखेऽप्येवमेवं तु सङ्कल्प्य विधिवन्नरः । तद्वत्स्नानं मृदा तद्वत्ततो देवालयं व्रजेत् ॥८१
तत्राराध्य हरिं भक्त्या एभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः । जामदग्न्याय पादौ तु उदरं सर्वधारिणे ॥८२
मधुसूदनायेति कटिमुरः श्रीवत्सधारिणे । क्षत्रान्तकाय च भुजौ मणिकण्ठाय कण्ठकम् ॥८३

उदर, विश्वसृजे नमः से कटि, अनिरुद्धाय नमः से उर, शितिकण्ठाय नमः से कण्ठ, वैनतेयाय नमः से शिर, असुरध्वंसनाय नमः से मुख, और तोयात्मने नमः से शंख, की अर्चना गंध पुष्प, एवं फलों द्वारा सुसम्पन्न कर उनके समक्ष चार वस्त्रों से आच्छन्न घट के स्थापन कर भगवान् नृसिंह की सुवर्ण प्रतिमा किसी सुवर्ण, ताम्र, अथवा शक्त्यानुसार काष्ठ या बांस के पात्र में रखकर उसी रत्न गर्भस्थ घट पर स्थापित एवं पूजित करना चाहिए। पुनः द्वादशी के दिन किसी वैदिक विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। इस प्रकार मैंने इस वंदनीया पापहरा द्वादशी का वर्णन तुम्हें सुना दिया, जिसे आप ने सप्रयत्न श्रवण किया है। नरश्रेष्ठ ! इसी भाँति चैत्र मास की शुक्ल द्वादशी के दिन उपवास रहकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की आराधना करनी चाहिए। उनके पार्श्व भाग में कुण्डिका स्थापन पूर्वक छत्र, पादुका (खड़ाऊँ), वामन की प्रतिमा मृगचर्म कुशासन समेत स्थापित कर फल, पुष्प, सुगन्ध आदि द्वारा अर्चना करने के अनन्तर प्रातः काल उन सभी वस्तुओं को 'लघुकाय (वामन) रूपी विष्णु प्रसन्न हों, कहते हुए किसी आचार नैष्ठिक ब्राह्मण के लिए सादर समर्पित करे। इसी प्रकार सभी मासों में ये नाम के अनुसार सविधान उनके प्रादुर्भाव एवं 'वे प्रसन्न हों' यही विधान सर्वत्र प्रशस्त बताया गया है। इसे सुसम्पन्न करने पर अपुत्री को पुत्र, निर्धन को धन, राज्य च्युत को राज्यकी प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है।६९-७९। वहाँ चिरकाल तक क्रीडा करने के उपरांत वह इस धरातल पर जन्म ग्रहण कर ययाति अथवा नहुष कुल में चक्रवर्ती राजा होता है। वैशाख मास में भी सविधान एवं संकल्प पूर्वक मृत्तिका स्नान करके देव मन्दिर में इन मंत्रों के उच्चारण द्वारा भक्ति श्रद्धा संयुक्त भगवान् विष्णु की आराधना करे—जामदग्नये नमःसे चरण, सर्वधारिणे नमः से उदर, मधुसूदनाय नमः से कटि, श्रीवत्सधारिणे नमः से उर क्षत्रान्तकाय नमः से बाहु, मणिकण्ठाय नमः से कण्ठ, सुरूपाय नमः से मुख, पुनः जामदग्नये नमः से

पूजयेन्नियतो भूत्वा सुरूपायेति वै मुखम् । स्वनाम्ना शङ्खचक्रे च शिरो ब्रह्माण्डधारिणे ।।८४
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वंशस्याग्रतो घटम् । विन्यस्येत्पुष्पवस्त्राढ्यं सितचन्दनचर्चितम् ।।८५
वैणवेऽभिनवे पात्रे स्थापयेन्मधुसूदनम् । जामदग्न्येन रूपेण कृत्वा सौवर्णमग्रतः ।।८६
दक्षिणे परशुं हस्ते तस्य देवस्य कारयेत् । सर्वगन्धैस्तु सम्पूज्य पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।।८७
ततस्तस्याग्रतः कुर्याज्जागरं भक्तिमान्नरः । प्रभाते विमले सूर्ये ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।८८
एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे । काश्यपे ब्रह्मणो लोके चोषित्वाप्सरसाङ्गणैः ।।
स्थित्वा क्षौते च सृष्टौ च चक्रवर्ती भवेत् ध्रुवम् ।।८९
ज्येष्ठे मासेऽप्येवमेव संकल्प्य विधिवन्नरः । अर्चयेत्परमं देवं पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।।९०
नमो दामोदरायेति पादौ पूर्वं समर्चयेत् त्रिविक्रमायेति कटिं धृतविश्वाय चोदरम् ।।९१
उरः सम्वर्तकायेति कण्ठं सम्वत्सराय च । सर्वासुधारिणे बाहुं स्वनाम्नाब्जरथाङ्गके ।।९२
सहस्रशिरसेऽभ्यर्च्य शिरस्तस्य महात्मनः । एवमभ्यर्च्य विधिवत्प्रागुक्तविधिवन्न्यसेत् ।।९३
प्राग्वद्वस्त्रसुगन्धैश्च सौवर्णौ रामलक्ष्मणौ । अर्चयित्वा विधानेन प्रभाते ब्राह्मणाय तौ ।।
दातव्यौ मनसा काममीहता पुरुषेण तु ।।९४
अपुत्रेण पुरा पृष्टो राज्ञा दशरथेन तु । पुत्रकामेन यजता वशिष्ठः परमार्चितः ।।९५

शंख चक्र और ब्रह्माण्डधारिणे नमः से शिर की समर्चना करके उनके सम्मुख पुष्प वस्त्र से सुशोभित एवं चन्दन चर्चित कलश की स्थापना कर उसके ऊपर नूतन बाँस के पात्र में मधुसूदन भगवान् के परशुरामावतार की सुवर्ण प्रतिमा रखकर स्थापित करे, जिसके दक्षिण हांथ में परशु (कुठार) सुसज्जित हो। सुगन्ध और अनेक भाँति के पुष्प द्वारा उनकी अर्चना करने के उपरांत इस भक्तिमान् पुरुष को उनके सम्मुख रात्रि जागरण करना चाहिए। पुनः निर्मल मन से प्रातः काल में सूर्योदय होने पर उसे सादर ब्राह्मण को अर्पित करे। इस प्रकार नियम पूर्वक उसे सुसम्पन्न करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ सुनो ! ब्रह्मलोक में अप्सरावृन्दों के साथ चिरकाल तक सुखानुभव करने के उपरांत इस भूमण्डल पर जन्मग्रहण कर चक्रवर्ती राजा होता है।८०-८९। इसी प्रकार ज्येष्ठ मास में भी संकल्प पूर्वक सविधान अनेक भाँति के मांगलिक पुष्पो द्वारा भगवान् की अर्चना करनी चाहिए। सर्वप्रथम दामोदराय नमः से भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—सर्वप्रथम दामोदराय नमः से चरण, त्रिविक्रमाय नमः से कटि, धृतविश्वाय नमः से उदर, संवर्तकाय नमः से उर, संवत्सराय नमः से कण्ठ, सर्वासुधारिणे नमः से बाहु, स्वनाम द्वार कमल चक्र, और सहस्र शिरसे नमः उन महात्मा के शिर की अर्चा करे। इस प्रकार सविधि अर्चना के उपरांत पूर्वोक्त की भाँति वस्त्र एवं सुगन्ध भूषित घट के ऊपर भगवान् राम लक्ष्मण की सुवर्ण प्रतिमा के स्थापन पूजन कर। पुनः प्रातः समय वे सभी वस्तुएँ किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर उस प्रशस्त व्रती पुरुष की पुत्रकामना समेत पुण्य कामनाएँ भी सफल होती है।९०-९४। क्योंकि पूर्वकाल में पुत्रहीन राजा दशरथ के पुत्रकामनया पूजनोपरांत भी वशिष्ठ जी से पूछने पर उन्होंने इसी विधान का वर्णन किया था। रहस्य समेत अवगत होने पर इस विधान द्वारा उन्होंने उसे सुसम्पन्न किया, जिसके प्रभाव से भगवान् राम ने ही उनके पुत्र रूप में अवतरित हुए और अत्यन्त सन्तुष्ट

इदमेव विधानं तु कथयामास वै द्विजः । सरहस्यं विदित्वा स राजा कृतवानिदम् ॥९६
तस्य पुत्रः स्वयं जज्ञे रामो नाम महाबलः । चतुर्द्धा सोऽव्ययो विष्णुः परितोषादजायत ॥
एतदेवं महाख्यातं परलोके सुखप्रदम् ॥९७

श्रीकृष्ण उवाच

आषाढेऽप्येवमेवं तु सङ्कल्प्य विधिना नरः । अर्चयेत्परमं देवं गन्धपुष्पैः समाहितः ॥९८
वासुदेवाय पादौ तु कटिं सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायेति जठरमनिरुद्धाय वै नमः ॥९९
चक्रपाणिं भुजौ कण्ठं मुखं भूपतये तथा । स्वनाम्ना शङ्खचक्रे तु पुरुषायेति वै शिरः ॥१००
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वत्तस्याग्रतो घटम् । विन्यस्य वस्त्रसंयुक्तं तस्योपरि ततो न्यसेत् ॥
काञ्चनं वासुदेवेति चक्रबाहुं सनातनम् ॥१०१
तमभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् । प्राग्वत्तद्ब्राह्मणे दद्याद्वेदवादिनि सुव्रते ॥१०२
एषा ह्युपोषिता राजन्विद्यां विप्रे प्रयच्छति । राज्यं च भ्रष्टराज्यानामपुत्राणां सुतान्बहून् ॥१०३
मृतो विष्णुपुरे रम्ये क्रीडते कालमक्षयम् ॥१०४
मन्वन्तराणि षट्त्रिंशत्ततः कालात्यये पुनः । इह लोके भवेद्राजा सप्तजन्मनि मानवः ॥
दाता यशः क्षमायुक्तस्ततो निर्वाणमाप्नुयात् ॥१०५

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेवं श्रावणे तु मासि सङ्कल्प्य द्वादशीम् । अर्चयेत्परमं देवं गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥१०६
बुधाय पादौ सम्पूज्य श्रीधरायेति वै कटिम् । पद्मोद्भवाय जठरमुरः सम्वत्सराय च ॥१०७

होने के नाते वे चार भाँति का रूप धारण कर वहाँ रह रहे थे । इस भाँति परलोक सुखावह इस विषय को मैंने तुम्हें बता दिया ।९५-९७

श्रीकृष्ण बोले—इसी भाँति आषाढ मास में संकल्प पूर्वक सविधान गंध पुष्प द्वारा भगवान् की अर्चना करे—वासुदेवाय नमः से चरण, संकर्षणाय नमः से कटि, प्रद्युम्नाय नमः से जठर, तथा अनिरुद्धाय नमः से बाहु, कण्ठ, भूपतये नमः से मुख, स्वनाम द्वारा शंख चक्र और पुरुषाय नमः से शिर की अर्चना करे । इस भाँति पूजनोपरांत उस मेधावी पुरुष को चाहिए कि पूर्वोक्त की भाँति उनके समक्ष वस्त्र चन्दन भूषित कलश स्थापन कर उसके ऊपर सनातन एवं चन्द्रपाणि भगवान् वासुदेव की सुवर्ण मूर्ति स्थापित कर सविधान गंध पुष्प द्वारा क्रमशः उसकी अर्चना केअनन्तर उस सब को किसी वैदिक विद्वान् एवं नैष्ठिक ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । राजन् ! इस प्रकार उपवास पूर्वक इसे सनियम सुसम्पन्न करने पर यह उस व्रती ब्राह्मण को विद्या प्रदान करता है । तथा राज्य च्युत को राज्य, अपुत्री को अनेक पुत्र की प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर विष्णु लोक में अक्षयं काल तक क्रीड़ा करता है । पुनः छत्तीस मन्वन्तरों के उस अनेक काल के व्यतीत होने पर इस भूमि में जन्म ग्रहण कर दाता, यश एवं क्षमा आदि अनेक गुण सम्पन्न राजा होता है और निधन होने पर निर्वाण की प्राप्ति करता है ।९८-१०५

श्रीकृष्ण बोले—इसी प्रकार श्रावण मास की द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान गंध, पुष्प एवं क्षमायाचना आदि द्वारा परम विष्णु देव को सुपूजित करे—'बुधाय नमः' से चरण, श्रीधराय नमः से कटि, पद्मोद्भवाय नमः से उदर, संवत्सराय नमः से उर, सुग्रीवाय नमः से कण्ठ एवं चित्रबाहवे नमः से बाहू की

सुग्रीदायेति वैं कण्ठं भुजौ वैचित्रबाह्वे । प्राग्वदस्त्राणि सम्पूज्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१०८
अनेन विधिना सर्दा द्वादशीं समुपोषितः । शुद्धौदनेन तस्याभूत्स्वयं पुत्रो जनार्दनः ॥१०९
महतीं च श्रियं प्राप्य पुत्रपौत्रसमन्वितः । भुक्त्वा राज्यश्रियं सोऽथ गतः परमिकां गतिम् ॥११०
एष ते विधिरुद्दिष्टः श्रावणे मासि सत्तमः । एकैकोपोषिताप्यस्तु राज्यमेकैव यच्छति ॥
किं पुनर्द्वादशैवात्र दद्युरैन्द्रं महत्पदम् ॥१११
तद्वद्भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम् । सङ्कल्प्य विधिना देवमर्चयेत्परमेश्वरम् ॥११२
नमोऽस्तु कल्किने पादौ हृषीकेशाय वै कटिम् । म्लेच्छप्रध्वंसनायेति जगन्मूर्ते तथोदरम् ॥११३
शितिकण्ठाय कण्ठं तु खड्गपाणीति वैं भुजौ । शङ्खचक्रे स्वनाम्नात्र विश्वमूर्ते तथासितः ॥११४
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वत्तस्याग्रतो घटम् । विन्यस्य कल्किनं देवं सौवर्णं तत्र कारयेत् ॥११५
सितवस्त्रयुगच्छन्नं गन्धपुष्पोपशोभितम् । कृत्वा प्रभाते विप्राय प्रदेयः शास्त्रवित्तमे ॥११६
एवं कृते भवेद्यत्तु तन्निबोध नृपोत्तम । दशावतारदानेन पूजने चैव तत्फलम् ॥११७
पूज्यते मत्स्यरूपेण सर्वज्ञत्वमभीप्सुभिः । स्ववंशभरणायाथ कूर्मरूपी तु पूज्यते ॥११८
भवोदधिनिमग्नैस्तु वाराहः पूज्यते हरिः । नृसिंहनवरूपेण तद्वत्पापभयान्नरः ॥११९
वामनं मोहनाशाय वित्तार्थे जमदग्निजम् । क्रूरशत्रुविनाशाय यजेद्दाशरथिं बुधः ॥१२०

अर्चना करके पूर्व की भाँति वस्त्राच्छन्न कलश और प्रतिमा के स्थापन पूजन करे अनन्तर ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। इसी विधान द्वारा समस्त द्वादशी के उपवास रहकर पूजन सुसम्पन्न करने पर उनके यहाँ भगवान् जनार्दन शुद्धोदन (बुद्ध) के रूप अवतरित हुए जिसे पुत्र, पौत्र की प्राप्ति तथा राज्य श्री का सुखोपभोग और निधन होने पर परमोत्तम गति की प्राप्त हुई। सत्तम! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रावण मास का विधान बता दिया जिसके एक ही द्वादशी के व्रतोपवास सुसम्पन्न करने पर वह द्वादशी राज्य प्रदान करती है और समस्त वर्ष की बारह द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को क्या कहना है, वह तो उसे ऐन्द्र पद प्रदान करता है।१०६-१११। तद्वत् भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान भगवान् की अर्चना करे—कल्किने नमः से चरण, हृषीकेशायनमः से कटि, म्लेच्छ प्रध्वंसनाय नमः से और जगन्मूर्तये नमःसे उदर, शितिकण्ठाय नमः से कण्ठ, खड्गपाणयेनमः से बाहु, स्वनाम द्वारा शंख चक्र और विश्वमूर्तये नमः से शिर की समर्चना सुसम्पन्न करे। अनन्तर पूर्ववत् सुसज्जित घट स्थापन कर उसके ऊपर कल्कि देव की सुवर्ण प्रतिमा को श्वेत वस्त्र से आच्छन्न कर गंध, पुष्पों द्वारा उसकी पुण्यर्चना करने के उपरांत उसे किसी शास्त्र निपुण विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। नृपोत्तम! इस प्रकार उसकी अर्चना द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो! इसके पूजन सुसम्पन्न करने पर भगवान् के दश अवतारों के दान फल प्राप्त होते हैं, जो इस भाँति कहे गये थे कि—सर्वज्ञत्व की कामना से मत्स्यावतार, कुटुम्ब के भरण पोषणार्थ कच्छप भगवान्, संसार सागर को पार करने के लिए भगवान की वाराह मूर्ति पापमय से नृसिंह, मोहनाशार्थ वामन, वित्त प्राप्यर्थ परशुराम, क्रूर शत्रुओं के विनाशार्थ राम, पुत्रकामनार्थ बलराम, कृष्ण रूप सौन्दर्यार्थ, बुद्ध और शत्रु

बलकृष्णौ यजेद्धीमान्पुत्रकामो न संशयः । रूपकामो यजेद्बुद्धं कल्किनं शत्रुघातने ॥
सर्वां दत्त्वा विधानेन पूजां प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥१२१

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वदाश्वयुजे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम् । संकल्प्याभ्यर्चयेद्देवं पद्मनाभं सनातनम् ॥१२२
पद्मनाभाय पादौ तु कटिं वै पद्मयोनये । उदरं सर्वदेवाय पुष्कराक्षाय वा उरः ॥
अव्ययाय तथा शीर्षं प्राग्वदस्त्राणि पूजयेत् ॥१२३
ततस्तस्याग्रतः कुम्भं माल्यवस्त्रसमन्वितम् । यथाशक्त्या काञ्चनेन पद्मनाभेति भूषितम् ॥१२४
रात्रौ तु जागरं कृत्वा प्रभाते विमले ततः । ब्राह्मणे तत्प्रदातव्यं संसारभयभीरुणा ॥१२५
एवं कृते तु यत्पुण्यं तद्वक्तुं शक्यते कथम् । ब्रह्महत्यादिपापानि किं तु पञ्चैव भारत ॥
नश्यन्ति कृतपुण्यस्य विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥१२६

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन् महाबाहो कार्तिके मासि द्वादशीम् । उपोष्य विधिना येन यथास्याः प्राप्यते फलम् ॥१२७
प्राग्विधानेन संकल्प्य वासुदेवं प्रपूजयेत् । अनुलोमेन देवेशं पूजयित्वा विचक्षणः ॥
नमो दामोदरायेति सर्वाङ्गं पूजयेद्धरिम् ॥१२८
एवं सम्पूज्य विधिना तस्याश्च चतुरो घटान् । स्थापयेद्रत्नगर्भांश्च सितचन्दनचर्चितान् ॥१२९

हननार्थ भगवान् के कल्कि रूप की अर्चना की जाती है सविधान पूजन सुसम्पन्न होने पर इन सभी के दान फल प्राप्त होते हैं ।११२-१२१

श्रीकृष्ण बोले—आश्विन शुक्ल की द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान सनातन पद्मनाभ भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—पद्मनाभाय नमः से चरण, पद्मयोनये नमःसे कटि, सर्वदेवायनमः से उदर, पुष्कराक्षाय नमः से उर, अव्ययाय नमः से शिर और पूर्व की भाँति अस्त्रों की पूजा करे । पुनः उसके समक्ष माला और वस्त्र से विभूषित घट स्थापन कर उसके ऊपर भगवान् पद्मनाभ की सुवर्ण प्रतिमा की यथाशक्ति आराधना करनी चाहिए । रात्रि में जागरण करने के उपरांत विमल प्रभात के समय संसारभय भीरु उस व्रती को चाहिए कि वह सब वस्तु किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करना सामर्थ्य के परे है । भारत् ! उसके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ब्रह्म हत्या आदि पाँच दारुण पापों का विनाश केवल विष्णु के नामानुकीर्तन द्वारा ही हो जाता है ।१२२-१२६

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो, राजन् ! कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के सविधान उपवास एवं पूजन करने से जिस प्रकार फलों की प्राप्ति होती है, कह रहा हूँ, सुनो ! पूर्वोक्त विधान द्वारा संकल्प पूर्वक वासुदेव की पूजा करनी चाहिए—उनके चरण से आरम्भ कर शास्त्र समेत शिर तक अनुलोम क्रम द्वारा प्रत्येक अंगों की अर्चना करते हुए 'नमःदामोदराय' से विष्णु के सर्वाङ्ग की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार सविधान पूजनोपरांत उनके सम्मुख रत्न गर्भित एवं चन्दन चर्चित चार कलशों के स्थापन पूजन

स्रग्दामालम्बितग्रीवान्सितवस्त्रैश्च गुण्ठितान् । स्थगितांस्ताम्रपात्रे तु तिलपूर्णैः सकाञ्चनैः ।।१३०
चत्वारः सागरास्ते च कथिता राजसत्तम । तन्मध्ये प्राग्विधानेन सौवर्णं स्थापयेद्धरिम् ।।१३१
योगेश्वरनङ्गनिधिं विरक्तं पीतवाससम् । तद्वद्देवं च सम्पूज्य जागरं तत्र कारयेत् ।।१३२
कृत्वा तु वैष्णवं योगं यजेद्योगेश्वरं हरिम् । षोडशे वै रथांगेषु रजोभिर्बहुभिः कृते ।।१३३
एवं कृत्वा प्रभाते तु ब्राह्मणान् पञ्च भोजयेत् । चत्वारः कलशा देयाश्चतुर्णां पञ्चमस्य हि ।।१३४
योगेश्वरं च सौवर्णं दापयेत्प्रयतः शुचिः । ब्राह्मणाय समं दत्तं द्विगुणं वेदवादिने ।।१३५
वेदवेदाङ्गविदुषे सहस्रगुणितं भवेत् । पञ्चमस्य रहस्यं तु ससमं चोपपादयेत् ।।१३६
विधानं तस्य पञ्चैव दत्त्वा कोटिगुणोत्तरम् । इतिहासपुराणज्ञे दत्तं चैवाक्षयं भवेत् ।।१३७
पञ्चदत्त्वा विधानेन द्वादश्यां विष्णुमर्च्य च । विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्त्या सदक्षिणम् ।।
दीनानाथादिकान्सर्वान्पूजयेच्छक्तितो नृप ।।१३८
धरणीव्रतमेतत्तु पुरा कृत्वाप्रजापतिः । प्रजां लेभे ततो मुक्तिर्ब्रह्मणा विष्णवे शुभे ।।१३९
युवनाश्वो हि राजर्षिरनेन विधिना पुरा । मान्धातारं सुतं लेभे परं ब्रह्म च शाश्वतम् ।।१४०
तथा हैहयदायादः कृतवीर्यो नराधिपः । चक्रवर्तिसुतं लेभे सहस्रार्जुनमूर्जितम् ।।१४१
शकुन्तलाप्येवमेव व्रतं चीर्त्वा नरोत्तमम् । लेभे शाकुन्तलं पुत्रं दुष्यन्तश्चक्रवर्तिनम् ।।१४२
तथा पुराणराजानो वेदोक्ताश्चक्रवर्तिनः । अनेन विधिना प्राप्ताश्चक्रवर्तित्वमुत्तमम् ।।१४३

करे, जो कण्ठ से नीचे भाग तक लटकती हुई मालाओं से विभूषित, और वस्त्रों से सुसज्जित हों तथा ताम्र पात्र में काञ्चन समेत तिल पूर्ण सस्थित किये गये हों ! राजसत्तम ! इन चारों को सागर बताया गया है । उनके मध्य में पूर्व विधान द्वारा भगवान् की सुवर्ण प्रतिमा, जो योगेश्वर के रूप में निर्मित एवं पीताम्बर भूषित हो, स्थापित कर पूजनोपरांत रात्रि जागरण करे । विष्णु पूजन, योगेश्वर मंत्र के जप और चक्र में अधिक रज दृष्टि गोचर हो, इसके लिए उसकी षोडशोचार अर्चा करनी चाहिए । अनन्तर प्रातः काल पाँच ब्राह्मणों को भोजन द्वारा सुतृप्त कर चार को चार कलश और पाँचवें ब्राह्मण को योगेश्वर की सुवर्ण मूर्ति का दान सादर प्रदान करे । किसी सामान्य ब्राह्मण को कलश दान अर्पित करने पर सम, वेदवेत्ता को देने पर दुगुने एवं वेद वेदाङ्ग निष्णात विद्वान् को अर्पित करने पर सहस्र गुने फल प्राप्त होते हैं । वह सुवर्ण प्रतिमा भी उस पाँचवें सामान्य ब्राह्मणों को अर्पित करने पर साधारण, वेदनिष्णात् को देने पर कोटि गुने और इतिहास पुराण मर्मज्ञ को अर्पित करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है । इस प्रकार पाँचों ब्राह्मणों को दान, सविधान विष्णु का द्वादशी में अर्चन, यथाशक्ति दक्षिणा समेत ब्राह्मण भोजन एवं दीन अनाथ आदि प्राणियों को भी यथाशक्ति तृप्त करना चाहिए।१२७-१३८। नृप पूर्वकाल में प्रजापति ने इस धरिणी व्रत को सुसम्पन्न कर प्रजा (सन्तान) प्राप्ति पूर्वक मुक्ति प्राप्त की। राजर्षि युवनाश्व ने इसी विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न कर शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की। इसी प्रकार हैहयवंशीय कृतवीर्य ने सहस्रार्जुन नामक चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त किया और दुष्यन्त शकुन्तला ने इस परमोत्तम व्रत को सुसम्पन्न कर भारत नामक पुत्र प्राप्त किया था। इसी प्रकार वेदोक्त अनेक चक्रवर्ती राजाओं ने सविधान इसे सुसम्पन्न कर चक्रवर्ती पद की प्राप्ति की है।१३९-१४३। और सर्वप्रथम धरणी ने पाताल लोक में

धरण्या अपि पाताले मग्नयाचरितं पुरा । व्रतमेतत्ततो नाम्ना धरणीव्रतमुच्यते ।।१४४
समाप्तेऽस्मिंस्तदा देवी हरिणा क्रोडरूपिणा । उद्धृता दशनाग्रेण स्थापिता नौरिवाम्भसि ।।१४५
धरणीव्रतमेतत्ते कथितं पाण्डुनन्दन । य इदं श्रृणुयाद्भक्त्या यश्च कुर्यान्नरोत्तम् ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाव्रजेत् ।।१४६

चीर्णं रसातलतले गतया धरण्या तेन प्रसिद्धिमगमद्धरणीव्रतेति ।
सद्यः समाचरति धर्मरतिर्द्धरित्र्यामुद्धृत्य सप्त पुरुषान्स परं प्रयाति ।।१४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
धरणीव्रतं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।८३

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

विशोकद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमभीष्टवियोगशोकसङ्घाल्लघु इह समुपोषतां व्रतं वा ।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन्भवति विभो भयसूदनं च पुंसाम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

परिमृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात् ।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरदानवेषु गुह्यम् ।।२

निमग्न होने पर इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे 'धरणी व्रत' नाम से इसकी प्रख्याति हुई। व्रत के समाप्त होने पर बाराह मूर्ति भगवान् को द्रंष्ट्रा (दाँत) के अग्रभाग पर जल में नौका की भाँति स्थित होकर उनके द्वारा इस पृथ्वी का उद्धार हुआ था। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार मैंने यह धरणी व्रत तुम्हें सुना दिया जिसे भक्ति पूर्वक श्रवण करने पर समस्त पापों से मुक्त होकर वह विष्णु सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। रसातल में पहुँचने पर धरणी के इसे सविधान सुसम्पन्न करने पर धरणीव्रत नाम से इसकी प्रख्याति हुई। इसलिए इस भूतल पर इसे सुसम्पन्न करने पर उस धार्मिक पुरुष के सात पीढ़ी परिवार विष्णु के परमोत्तम लोक प्राप्त करते हैं।१४४-१४७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसम्वाद में
धरणीव्रतवर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।८३।

अध्याय ८४

विशोकद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—विभो ! उपवास रहने वाले पुरुषों के अभीष्ट सिध्यर्थ किसी इस भाँति के लघुव्रत बताने की कृपा कीजिये, जो इस धरातल पर ऐश्वर्य वृद्धि के लिए प्रख्यात एवं भय विनाशक हो।१

श्रीकृष्ण बोले—लोकहितार्थ तुम्हारे इस प्रश्न एवं भक्ति को देखकर मैं तुम्हें ऐसा व्रत बता रहा हूँ, जो महत्त्वपूर्ण, देव दुर्लभ एवं देव दानव और राक्षसों के लिए परम गुह्य है। आश्विन मास की शुक्ल

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम् । दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु ।।३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम् ।।४
विधिवत्त्वां समभ्यर्च्य भोक्ष्यामि अपरेऽहनि । एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।।५
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु । शुक्लमाल्याम्बरस्तद्वत्पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ।।६
विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै । श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ।।७
कन्दर्पाय नमो गुह्ये माधवाय नमः कटिम् । दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै ।।८
नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै । श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुभिदे नमः ।।९
चक्रिणे नाम बाहुं च दक्षिणं गदिने नमः । वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ।।१०
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी । ललाटं वामनायेति किरीटं विश्वरूपिणे ।।११
नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् । एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः ।।१२
ततस्तस्याग्रतो भव्यं स्थण्डिलं कारयेन्मृदा । चतुरस्रं समन्ताच्चारत्निमात्रमुदग्भवम् ।।१३
नदीवालुकया पूर्णं लक्ष्म्याकृतिं कृती न्यसेत् । स्थण्डिले सूर्यमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः ।।१४
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै । नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमो[1] दृष्ट्यै नमोनमः ।।१५
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे । विशोका वास्तु सन्तत्यै विशोका सर्वसिद्धये ।।१६

दशमी के दिन लघु आहार करके उस पुण्य विशोक द्वादशी व्रत विधान को नियम पूर्वक उत्तर अथवा पूर्वाभिमुख दंत धावन (दातून) करने से ही प्रारम्भ करना चाहिए । एकादशी के दिन उपवास रहते हुए भगवान् केशव की सविधि अर्चना सुसम्पन्न कर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा' इस भाँति नियम करके शयन करने के अनन्तर प्रातः काल उस पुरुष को समस्त औषध मिश्रित पञ्चगव्य के जल से स्नान और शुक्ल वर्ण की माला एवं वस्त्र धारण करके कमल पुष्पों द्वारा श्री पति विष्णु भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—'विशोकाय नमः से उनके चरण युगल, वरदाय नमः से जंघा, श्रीशाय नमः से घुटना, जलशायिने नमः से कटि, दामोदराय नमः से उदर, विपुलाय नमः से पार्श्व भाग, पद्मनाभाय नमः से नाभि, मन्मथाय नमः से हृदय, श्रीधराय नमः से वक्ष, और मधु भिदेनमः से कर, चक्रिणे नमः से वाम बाहु, गदिने नमः से दक्षिण बाहु, वैकुण्ठाय नमः से कण्ठ, यज्ञ मुखाय नमः से मुख, अशोकनिधये नमः से नासा, वासुदेवाय नमः से दोनों नेत्र, वामनाय नमः से भाल, विश्वरूपाय नमः से किरीट, और सर्वात्मने नमः से गोविन्द के शिर की पूजा फल, माला, एवं विलेपन द्वारा सुसम्पन्न करके उनके सम्मुख मृत्तिका श्री सुन्दर वेदी की रचना करे, जो चौकोर, अरत्नि मात्र विस्तृत उत्तर की ओर से ढालू और नदी की वालुकाओं से परिपूर्ण हो । उस पर लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित कर सूर्य के आवाहन पूर्वक उनकी पूजा तथा क्षमा प्रार्थना करे ।२-१४। देवी को नमस्कार है, एवं शान्ति, लक्ष्मी श्री, पुष्टि, तुष्टि और दृष्टि रूप को नमस्कार है । विशोक दुखों का नाश पूर्वक मुझे वर प्रदान करे और संतति प्रवाह को अविच्छिन्न रखती हुई विशोका मेरी सम्पूर्ण सिद्धि करती रहे ।१५-१६। अनन्तर शुक्लाम्बर धारी वह पुरुष वेष्टन भूषित सूप की

---

१. हृष्ट्यै कृष्ट्यै नमोनमः ।

ततः शुक्लाम्बरधरो शूर्पं संवेष्ट्य पूजयेत् । भक्ष्यैर्नानाविधैस्तद्वत्सुवर्णकमलेन च ॥१७
रजनीषु च सर्वासु पिबेद्दर्भोदकं व्रती । ततस्तु नृत्यगीतादि कारयेत्सर्वरात्रकम् ॥१८
यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वा स्वस्थोपमानसः । अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि सदार्चयेत् ॥१९
शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । शयनास्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥२०
ततस्तु गीतवाद्याद्यै रात्रौ जागरणे कृते । प्रभाते विमले स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥२१
भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । भुक्त्वा श्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं त्वतिवाहयेत् ॥२२
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । व्रतान्ते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम् ॥
सोपधानकविश्राममास्तरावरणं शुभम् ॥२३
यथा न लक्ष्मीर्देवेश त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा कुरु यथायोग्यमशोकं चास्तु मे सदा ॥२४
यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित् । तथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे ॥२५
मन्त्रेणानेन ध्यात्वा तु गुडधेनुसमन्वितम् । शूर्पं च लक्ष्म्यां सहितं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥२६
उत्पातं करवीरं च बाणमम्लान कुण्डलम् । केसरं सिन्दुवारं च मल्लिकागन्धपाटलम् ॥
कादम्बैः कुंकुमैर्जात्या तथान्यैरपि पूजयेत् ॥२७

युधिष्ठिर उवाच

गुडधेनुविधानं मे त्वमाचक्ष्व जगत्पते । किंरूपा केन मन्त्रेण दातव्या तदिहोच्यताम् ॥२८

पूजा अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ तथा सुवर्ण कमल द्वारा सुसम्पन्न करके रात्रि में कुशोदक के प्राशन और नृत्य, गीत द्वारा जागरण करता रहे। तीन प्रहर व्यतीत हो जाने पर रात्रि के चौथे प्रहर में शयन से उठकर तथा स्वस्थचित्त होकर (नित्य नैमित्तिक के पश्चात्) ब्राह्मण दम्पति की सदैव अर्चना करनी चाहिए। यथा शक्ति वस्त्र, माला एवं लघुलेपन द्वारा तीन अथवा एक ब्राह्मण दम्पति और उनके शयन स्थान की पूजा 'नमोऽस्तु जलशायिने' मंत्र द्वारा ही करना बताया गया है। इस भाँति नृत्य, गीत और वाद्यों द्वारा रात्रि जागरण करने के पश्चात् विमल प्रातः काल के समय स्नान, दम्पत्ति पूजन, यथाशक्ति एवं वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष ध्यान में रखते हुए अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ से ब्राह्मणों को तृप्त कर स्वयं भी भोजन करके पुराण श्रवण द्वारा दिन व्यतीत करे। इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास में व्रत पूजन करते हुए उसके अन्त में गुड, धेनु युक्त उस भाँति की शय्या जो उत्तम आस्तरावरण (चद्दर) एवं तोशक तकिये से सुसज्जित हो, अर्पितकरके क्षमा प्रार्थना करे कि—देवेश ! जिस प्रकार तुम्हें छोड़कर लक्ष्मी कभी कहीं नहीं जाती है, उसी भाँति मुझे सदैव के लिए शोक रहित करें। जिस प्रकार देव रहित होकर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती है, उसी प्रकार शोक रहित करते हुए मुझे केशव की उत्तम भक्ति प्राप्त हो। इस मंत्र से ध्यान करते हुए अपने ऐश्वर्यार्थ गुड धेनु समेत एवं लक्ष्मी भूषित सूप का दान तथा उत्पात, कनेर, वाण, अम्लान कुण्डल, केसर, सिंदुवार, मालती, गंध पाटल, कदम्ब, कुंकुम और जाती पुष्पों द्वारा पूजन सदैव करना चाहिए।१७-२७

युधिष्ठिर ने कहा—जगत्पते ! गुड़ धेनु का विधान बताने की कृपा करें। उसका स्वरूप क्या है और किस मंत्र द्वारा उसका दान किया जाता है।२८

श्रीकृष्ण उवाच

गुडधेनुविधानं च यद्रूपमिह यत्फलम् । तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥२९
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्रागेवं विन्यसेद्भुवि । गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥३०
लब्धेन काञ्चनं तद्वत्समं च परिकल्पयेत् । प्राङ्मुखी कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सिकाम् ॥३१
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भार चतुष्टया । वत्सं भारेण कुर्वीत द्वाभ्यां वै मध्यमा स्मृता ॥३२
अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु । चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारितः ॥३३
धेनुवत्सौ कृतावेतौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुक्तिमुक्ताफलेक्षणौ ॥३४
सितसूत्रशिरालौ तु सितकम्बलकम्बलौ । ताम्रगल्लकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥३५
विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥३६
सुवर्णभृङ्गाभरणौ राजतखुरसञ्युतौ । नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ ॥
इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ॥३७
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥३८
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहायां च विभावसौ । चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥३९
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥४०
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां पुनः । सर्वपापहरे धेनोतस्माद्भूतिं प्रयच्छ मे ॥४१

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें गुडधेनु का विधान, उसका स्वरूप और फल बता रहा हूँ, जो समस्त पापों का शमन करता है । गोमय (गोबर) से लिपी हुई भूमि में चार हाथ का विस्तृत कृष्ण मृगचर्म बिछाकर, जिसके चारों ओर कुश बिछाये गये हो, उसी पर पूर्व की ओर मुख और उत्तर की ओर चरण किये उस सवत्सा गौ की कल्पना करनी चाहिए चार भाग गुड की धेनु सदैव परमोत्तम मानी गयी है । उस समय उसके बछड़े का निर्माण एक भार गुड से होना चाहिए । दो भाग गुड की बनी हुई धेनु, जिसमें आधे भार गुड़ का बछड़ा बनाया जाता है, मध्यमा और अपने गृह वित्तानुसार एक भार गुड की कल्पित धेनु, जो चौथाई भार गुड़ निर्मित बछड़े से संयुक्त रहती है, कनिष्ठा बतायी गयी है । इस प्रकार सवत्सा धेनु का निर्माण कर श्वेत वर्ण के सूक्ष्म वस्त्रों से आवृत करना चाहिए, जिनके शुवित्त (सीप) से कान, ऊख से चरण, मुक्ताफल, (मोती) से नेत्र, श्वेत सूत्र से नाडियाँ, श्वेत कम्बल से गले के कम्बल (लोमसमूछचर्म), ताम्रगल्लक से पृष्ठ पीठ, श्वेत चामर से रोम, मूंगे की भौंहे, नवनीत के स्तन, क्षौम (रेशम) से पूँछ, कांसे की दोहनी, इन्द्रनील मणि से आँखों की तारिका बनी हो और सुवर्ण से सींग, रजत (चाँदी) से खुर सुसज्जित कर अनके फलों द्वारा उसके नासा पुट एवं छिद्रकी रचना की गयी हो । इस प्रकार उसकी रचना करके धूप दीप आदि से उनकी अर्चा करने के अनन्तर क्षमा प्रार्थना करे ।२९-३७। समस्त प्राणियों में तथा देवों में सुव्यवस्थित रहने वाली लक्ष्मी देवी अपने धेनु रूप द्वारा मेरे पापों को नष्ट करे । विष्णु के वक्षस्थल पर विभूषित, अग्नि में स्वाहा रूप से वर्तमान रहने वाली चन्द्र सूर्य एवं इन्द्र की शक्ति रूप लक्ष्मी अपने धेनुरूप द्वारा मेरी भी समृद्धि करे । उसी प्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा, कुबेर, एवं लोक पालों की लक्ष्मी अपने धेनुरूप से मुझ पर प्रदान करे । तुम पितरों की स्वधा और यज्ञभोक्ता की स्वाहा हो, अतः पाप हारिणी इस अपने धेनुरूप से मुझे ऐश्वर्य प्रदान करने की कृपा करो ।३८-४१। इस प्रकार उस धेनु का निर्माण

एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ॥४२
यास्तु पापविनाशिन्यः श्रूयन्ते दश धेनवः । तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥४३
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुरथापरा । तिलधेनुस्तृतीया स्याच्चतुर्थी मधुधेनुका ॥४४
जलधेनुः पञ्चमी तु षष्ठी तु क्षीरसम्भवा । सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुरथाष्टमी ॥
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ॥४५
कुम्भां स्युर्दशधेनूनामितरासां तु राशयः । सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥४६
नवनीतेन रत्नैश्च तथाप्यन्ये महर्षयः । एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ॥४७
मन्त्रावाहनसंयुक्तां सदा पर्वणिपर्वणि । यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥४८
गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तव मयोदिताः । अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥४९
व्रतानामुत्तमं यत्स्याद्विशोकद्वादशीव्रतम् । तदङ्गत्वेन चैवैषा गुडधेनुः प्रशस्यते ॥५०
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वा पुनः । गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वसु ॥५१
विशोकद्वादशी चैषा सर्वपापहरा शुभा । यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५२
इह लोके तु सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च । वैष्णवं पदमाप्नोति मरणे सद्गतिर्भवेत् ॥५३
भवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित् । न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप ॥५४
नारी वा कुरुते यातु विशोकद्वादशीमिमाम् । नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात् ॥५५

एवं पूजन करके विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । यही विधान समस्त धेनुओं के दान में बताया गया है । नराधिप ! मैं उन दशधेनुओं के स्वरूप एवं नाम बता रहा हू, जिन्हें पापविनाशिनी बताया गया है । सर्वप्रथम गुडधेनु, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी मधुधेनु, पाँचवी जलधेनु, छठीं क्षीरधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दशवीं स्वरूपतः (अर्थात् साक्षात्) धेनु कहीं गयी है । कुछ विद्वानों का कहना है कि दश धेनुओं के निर्माण में कुम्भ और अन्य धेनुओं के लिए राशि की कल्पना की जाती है और सबसे पृथक् एक सुवर्ण धेनु भी होती है । अन्य महर्षियों की सम्मति में नवनीत और रत्नों द्वारा धेनुओं का निर्माण होता है । किन्तु सब के विधान और साधन यही एक मात्र है । सदैव प्रत्येक पर्वों के अवसर पर श्रद्धानुकूल इन भुक्ति एवं मुक्ति प्रदायिनी धेनुओं के दान अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार मैंने इस गुड़ धेनु के प्रसंग में उन सभी धेनुओं का वर्णन तुम्हें सुना दिया, जो निखिल यज्ञों के फल प्रदान करने वाली समस्त पापहारिणी और शुभ मूर्ति है । यह विशोक द्वादशी व्रत समस्त व्रतों से परमोत्तम व्रत है और उसी भाँति तदंगत्वेन इस गुड धेनु की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है ।४२-५०। दोनों अयन, विषुव, पुण्य काल, व्यतीपात योग एवं ग्रहण आदि पर्व तिथियों के अवसर पर इन गुड धेनु आदि के दान अवश्य करना चाहिए । यह विशोक द्वादशी समस्त पापों के शमन करने वाली एवं शुभ है, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य विष्णु के परम पद की प्राप्ति करता है । इस धरातल पर सौभाग्य, आयु और आरोग्य की प्राप्ति पूर्वक सुखानुभव के अनन्तर देहावसान होने पर सद्गति रूप में विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। नृप ! इस अनुष्ठान के सुसम्पन्न करने पर अठ्ठारह, अर्बुद सहस्र वर्ष तक उसे धर्म वेत्ता को शोक, दुःख, और दुर्गति नहीं होते हैं । इस विशोक द्वादशी व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाली उस स्त्री को भी, जो नृत्य गीत द्वारा रात्रि जागरण करती है, उपरोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं ।५१-५५। इस

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ् मधुपुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत् ।
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके वसति स विबुधाद्यैः पूज्यमानः सदैव ।।५६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकद्वादशीव्रतं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।८४

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

विभूतिद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भूपाल वक्ष्यामि विष्णुव्रतमनुत्तमम् । विभूतिद्वादशीं नाम सर्वामरनमस्कृतम् ।।१
कार्त्तिके वाथ वैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने । आषाढे वा दशम्यां च शुक्लायां लघुभुङ्नरः ।।२
कृत्वा सायन्तनीं सन्ध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।।३
द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो । तदविघ्नेन मे यातु साफल्यं मधुसूदन ।।४
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः । पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।५
भूतिदाय नमः पादौ विशोकाय च जानुनी । नमः शिवायेत्यूरु च विश्वमूर्ते नमः कटिम् ।।६

प्रकार इसके पारायण एवं भली भाँति श्रवण करने और मधुहन्ता भगवान् के पूजन दर्शन तथा इसके लिए मनुष्यों को सन्मति प्रदान करने वाले पुरुष देव वन्दनीय होकर सदैव इन्द्रलोक में सुखानुभव करते हैं।५६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसम्वाद में
विशोक द्वादशी व्रत वर्णन नामक चौरसीवाँ अध्याय समाप्त ।८४।

अध्याय ८५

विभूतिद्वादशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल ! मैं तुम्हें विभूति द्वादशी नामक व्रत का वर्णन सुना रहा हूँ, जो विष्णु के व्रतों में परमोत्तम एवं समस्त देवों से पूजित है। सावधान होकर सुनो ! कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष (अगहन), फाल्गुन अथवा आषाढ़ मास की शुक्ल दशमी के दिन लघु आहार करके सायंकालीन संध्या के अनन्तर उसका नियम पालन आरम्भ करना चाहिए। विभो ! एकादशी के दिन निराहार रहकर भगवान् जनार्दन की अर्चना एवं द्वादशी के दिन ब्राह्मणों के साथ भोजन करूँगा। मधुसूदन ! वह निर्विघ्न समाप्त होकर मुझे सफलता प्रदान करे। इस भाँति संकल्प पूर्वक शयन करने पर पुनः प्रातःकाल स्नान जप आदि से पूर्ण पवित्रता प्राप्त करते हुए श्वेतमाला और अनुलेपन आदि वस्तुओं से भगवान् पुण्डरीकाक्ष की अर्चना करनी चाहिए।१-५। ऐश्वर्यदायक को नमस्कार है, कहकर चरण युगल, शोक हीन रहने वाले को नमस्कार है, कहकर शिव को नमस्कार है, कहकर उरू विश्वमूर्ति को नमस्कार है कहकर कटि, कन्दर्प

कन्दर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय नमः करौ । दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ।।७
माधवायेति हृदयं कण्ठं वैकुण्ठिने नमः । श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति पाण्डव ।।८
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै । स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाणये ।।९
सर्वात्मने शिरो राजन् नम इत्यभिपूजयेत् । दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्नृप ।।१०
दत्तात्रेयं यथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम् । दद्यादनेन विधिना पाखण्डानपि वर्जयेत् ।।११
समाप्यैवं यथाशक्त्या द्वादशं द्वादशीर्नरः । सम्वत्सरान्ते लवणपर्वतेन सह प्रभो ।।
शय्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ गुरवे रससंयुताम् ।।१२
ग्रामं च शक्तिमान्दद्यात्क्षेत्रं वा भवनान्वितम् । गुरुं सम्पूज्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।।१३
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । तर्पयेद्वस्त्रगोदानैरन्यत्र धनसञ्चयात् ।।१४
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकंस्तोकं समाचरेत् । यश्चातिनिःस्वः पुरुषो भक्तिमान् माधवं प्रति ।।
पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्वत्सरत्रयम् ।।१५
अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम् । कुर्यात्स पापनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम् ।।१६
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग्भवेत् । न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् ।।१७
वैष्णवो वाथ शैवो वा भवेज्जन्मनिजन्मनि । यावद्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।।

को नमस्कार है, कहकर मेढ्र (लिङ्ग), आदित्य को नमस्कार है, कहकर दोनों हाथ, दामोदर को नमस्कार है, कहकर उदर, वासुदेव को नमस्कार है, कहकर स्तन, माधव को नमस्कार है, कहकर हृदय, वैकुण्ठपति को नमस्कार है, कहकर कण्ठ, श्रीधर को नमस्कार है, कहकर मुख, केशव को नमस्कार है, कहकर केश, शार्ङ्गधर को नमस्कार है, कहकर पृष्ठ, वरद को नमस्कार है, कहकर दोनों श्रवण, स्वनाम के उच्चारण कर शंख, चक्र, तलवार और परशुपाणि को नमस्कार है, कहकर गदा, एवं सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर उनके शिर की अर्चना करनी चाहिए। राजन् ! इस प्रकार भगवान् के दश अवतारों की प्रतिमाके क्रमशः प्रतिमास पूजन करके कमल पुष्प भूषित दत्तात्रेय और व्यास की प्रतिमा इस विधान द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित करे और पाखण्डों के सर्वथा परित्याग भी। इस भाँति बारह द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने के अनन्तर व्रत की समाप्ति में लवण पर्वत समेत सुसज्जित एवं संयुत शय्या विष्णु के निमित्त गुरु को अर्पित करते हुए उस शक्तिमान् पुरुष को चाहिए कि ग्राम अथवा सुसज्जित भवन समेत क्षेत्र भी अर्पित करे। वस्त्र और आभूषणों द्वारा सविधान गुरु की अर्चना करने के उपरांत अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति भोजन से संतृप्त कर वस्त्र, गोदान और धन दान द्वारा संतुष्ट करना चाहिए। अल्प वित्त वाले यथाशक्ति थोड़े थोड़े धन के व्यय द्वारा उसे सुसम्पन्न करते रहना चाहिए। अत्यन्त निर्धन पुरुषोत्तम माधव भगवान् का अन्य भक्त हो, पुष्पार्चन द्वारा तीन वर्ष तक उस व्रत नियम का पालन करना बताया गया है।६-१५। इस विधान द्वारा इस विभूति द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त पातकों से मुक्त होकर पूर्वजों की सौ पीढ़ियों के उद्धार करता है। सैकड़ों एवं सहस्रों जन्म तक वह शोक ग्रस्त नहीं होता है। उसे न कोई व्याधि होती है न दरिद्र एवं न किसी बंधन में पड़ता है। प्रत्येक जन्म में वह वैष्णव अथवा शैवमत ग्रहण कर एक सौ आठ सहस्र युग के

तावत्स्वर्गे वसेद्राजन्भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥१८
पुरा रथन्तरे कल्पे राजासीत्पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥१९
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण भारत । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगतिः सदा ॥२०
समस्तभृत्यसहितः सान्तः पुरपरिस्थितः । द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं विचरत्यसौ ॥२१
कल्पादौ सप्तमे द्वीपे तेन पुष्करवासिनः । लोके सम्पूजिता यस्मात्पुष्करद्वीप उच्यते ॥२२
तदैव ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतो नृप । पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात्तं देवदानवाः ॥२३

नागस्य तस्यास्य जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।
पत्नी च तस्याप्रतिमा नरेन्द्र नारीसहस्रैरभितोऽभिनन्द्या ॥२४
नाम्ना च लावण्यवती बभूव या पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ।
तस्यात्मजानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्र्यधनुर्द्धराणाम् ॥२५
तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद ।
सोभ्यागतं पूज्य मुनिप्रवीरं प्रचेतसं वाचमिमां बभाषे ॥२६
कस्माद्विभूतिरमला मम मर्त्यपूज्या जाया च सर्वविजितामरसुन्दरी या ।
भार्या त्वनल्पतपसा वसुतोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहं परमप्रसादात् ॥२७
यस्मिन्प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जरनराश्वघनावृतानाम् ।
नालक्ष्य सम्बाधतया हि बाधस्तारागणैरपि सुरासुरलोकपालैः ॥२८

काल पर्यन्त स्वर्ग में निवास कर अन्त में पुनः भूपति होता है । राजन् ! पहले समय में रथन्तर कल्प के समय एक पुष्पवाहन नामक राजा राज करता था, जो इस पृथ्वी तल पर प्रख्यात एवं सूर्य के समान तेजस्वी था । भारत ! उसके तप से अत्यन्त तुष्ट होकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने उसे एक सुवर्ण कमल प्रदान किया, जो सदैव मनोवाञ्छित सफल करता था । अपने समस्त सेवक और अन्तःपुर समेत वह सदैव द्वीपों एवं देवलोक में यथेच्छ विचरण करता था । कल्पादि में उसे सातवाँ पुष्कर द्वीप (ब्रह्मा द्वारा) दिया हुआ । वहाँ के निवासी लोक पूजित हैं इसी लिए उसका पुष्कर (श्रेष्ठ) द्वीप नामकरण हुआ था । नृप ब्रह्मा ने वह द्वीप उसे उसी समय प्रदान किया था । वह वहाँ के लोगों का वन्दनीय हुआ इसीलिए देव दानवों ने पुष्पवाहन' नाम से उसकी प्रख्याति की ।१६-२३। नरेन्द्र ! तप के प्रभाव से ब्रह्मा द्वारा सुवर्ण कमल प्राप्त उस सर्वश्रेष्ठ राजा की पत्नी भी उस समय अद्वितीय थी, जिसका सदैव चारों ओर सहस्रों नारियों द्वारा अभिनन्दन होता था । भगवान् शंकर की प्रियतमा पार्वती की भाँति वह लावण्यवती रानी भी अपने पति की अत्यन्त प्रेयसी स्त्री हुई । उस स्त्री से उस राजा के दशसहस्र धनुर्धर एवं परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा ने अपने इस वैभव एवं इस प्रकार की स्त्री पुत्रों को देखकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था । एक बार मुनि प्रवर प्रचेता के आगमन होने पर राजा ने उनकी अभ्यागत सेवा करने के अनन्तर उनसे इस प्रकार कहा, देव मेरी यह अमल विभूति तथा मानव वन्दनीया एवं देवाङ्गनाओं से परम सुन्दरी किस पुण्य द्वारा मुझे प्राप्त हुई है । क्योंकि ऐसी स्त्री की प्राप्ति अल्प पुण्यों द्वारा नहीं हो सकती है । अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने मुझे कमल गृह प्रदान किया है ।२४-२७। जिसमें सौ कोटि राजाओं अथवा उनके मंत्री समेत असंख्य घोड़े प्रविष्ट होने पर उसी प्रकार नहीं दिखायी देते हैं । जिस भाँति असुर लोकपाल रूपी

तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषजनातिगं स्यात् ।
सम्यङ्मयाथ तनयैरनया महर्षे माहार्यया तदखिलं कथय प्रचेतः ॥२९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ध्यानेनावेक्ष्य चाखिलम् । प्रचेतास्तमुवाचाथ शृणु भूप पुरातनम् ॥३०
लुब्धकस्त्वं पुरा राजन्सर्वसत्त्वभयंकरः । आसीदसाधुचरितः सुहृन्मित्रविवर्जितः ॥३१
यतमध्यो ह्रस्वकेशः कृष्णाङ्गो रक्तलोचनः । धनुष्पाणिर्वनगतः कृतान्तकसमो भवान् ॥३२
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तरोषः ।
पद्मान्यथादाय ततो बहूनि गतं पुरं वैदिशनामधेयम् ॥३३
उन्मूल्य लोभाच्च पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहत्तदासीत् ।
क्रेता न कश्चित्कमलेषु जातस्तोके भृशं क्षुत्परिपीडितश्च ॥३४
उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्सभार्यो भवनाङ्गणे । अथ मङ्गलशब्दस्तु त्वया रात्रौ तथा श्रुतः ॥३५
समाप्य माघमासस्य द्वादश्यां लवणाचलम् । निवेदयंती गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम् ॥३६
अलंकृत्य हृषीकेषं सौवर्णं परमं पदम् । साथ दृष्टा ततस्ताभ्यामिदं चित्तेवधारितम् ॥३७
किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः । इति भक्तिस्तदा जाता दाम्पत्यस्य नरेश्वर ॥३८
तत्प्रसङ्गात्समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम् । शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्च सर्वदा ॥३९

तारागणों के बीच आकाश में नौका नहीं दिखायी देती हैं । महर्षे ! इसलिए मैंने कहाँ किस जननी के जठर में जन्म ग्रहण कर कौन धर्म का आचरण किया, जिससे इस प्रकार की श्रेष्ठता, उत्तम युक्तों एवं ऐसी (अनुपम) स्त्री की प्राप्ति मुझे हुई है । प्रचेतस् ! आप मेरे इन सभी प्रश्नों के यथोचित्त उत्तर प्रदान करने की कृपा करें । उस राजा की उन सभी बातों को सुनकर महर्षि प्रचेता ने ध्यान द्वाराउसके सम्पूर्ण रहस्य को जानकर राजा से कहना आरम्भ किया राजन् ! मैं पुरातन बातें कह रहा हूँ , सुनो ! पहले जन्म में तुम अत्यन्त भयंकर लुब्धक (बहेलिया) थे । दुश्चरित्र होने के नाते तुम्हारे कोई मित्र आदि नहीं था । मध्यम कद, छोटे-छोटे केश, कालावर्ण, रक्तनेत्र, और हांथ में धनुष लिए तुम सदैव उस वन के मध्य यम की भाँति दिखायी देते थे । एकबार अनावृष्टि होने के कारण आहार न मिलने पर तुम्हें अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ । शिकार के बदले तुमने अनेक कमलों को तोड़कर साथ लिए अपने विदिशा नगर का प्रस्थान किया । लोभवश समस्त कमलों को तोड़कर वहाँ लाने पर तुम्हारे इस कर्म पर नगर के सभी लोग भ्रान्त से दिखायी पड़ने लगे—अर्थात् ! कुछ भी देकर उन कमलों का कोई क्रेता (खरीददार) नहीं हुआ । अत्यन्त क्षुधा से पीड़ित होकर तुम पत्नी समेत किसी घर के अंगने में बैठे-बैठे रात्रि व्यतीतकर रहे थे कि उसी समय मांगलिक शब्दों की ध्वनि कहीं से सुनायी पड़ी ।२८-३५। पश्चात् शब्दानुकरण करने पर तुम्हें वह स्त्री दिखायी पड़ी जो इस व्रतानुष्ठान की समाप्ति में माघ मास की द्वादशी के दिन भगवान् हृषीकेश की सुवर्ण प्रति को अलंकार वस्त्रों से विभूषित एवं पूजित कर लवण पर्वत समेत समस्त साधन सम्पन्न एवं सुसज्जित शय्या गुरु को समर्पित कर रही थी । उसे देखकर तुम दोनों के चित्त में ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि इन कमलों से भगवान् विष्णु अलंकृत क्यों न किया जाय । नरेश्वर ! दम्पति में इस प्रकार की भक्ति उत्पन्न होने पर उसी प्रसङ्ग में लवण पर्वत समेत केशव और उस शय्या को उन पुष्पों द्वारा

अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्हेमशतत्रयम् । प्रादाद्गृहीतं ताभ्यां च न तत्सर्वावलम्बनात् ॥४०
अनङ्गवती च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम् । आनाय्योपहृतं कृत्वा भुज्यतामिति भूपते ॥४१
ताभ्यां तु तदपि त्यक्तं भोज्यावः श्वो वरानने । प्रसङ्गाच्चोपवासेन तवाद्यास्तु सुखावहः ॥४२
जन्मप्रभृति पापिष्टावावां देवि दृढव्रते । सत्प्रसंगाद्धनुर्मध्ये धर्मलाभस्तु चावयोः ॥४३
इति जागरणं ताभ्यं प्रसङ्गात्तदनुष्ठितम् । प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला ॥४४
ग्रामश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव हि । वस्त्रालङ्कारयुक्ताङ्गा गावश्च कनकान्विताः ॥४५
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैः समम् । तत्तु लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम् ॥४६
भवांस्तु लुब्धको जातः सपत्नीको नरेश्वरः । पुष्पाणां प्रकरे तस्मात्केशवस्य प्रपूजनम् ॥४७
प्राप्तं सुदुर्ल्लभं वीर त्वया पुष्करमन्दिरम् । तस्य सर्वस्य माहात्म्याद्दलं न तपसा नृप ॥४८
यथा कामगतं दक्षं पद्मयोनिं विरिञ्चिना । सन्तुष्टस्तस्य राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः ॥४९
शय्यानङ्गवती वेश्या कामदेवस्य साम्प्रतम् । पत्नी सपत्नी सञ्जाता रत्या प्रीतिरिति श्रुता ॥५०
लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता । तदप्युत्सृज्य राजेन्द्र निर्वाणं समवाप्स्यसि ॥५१
इत्युक्त्वा स मुनिः सर्वं तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । राजा यथोक्तं च पुनः स चक्रे पुष्पवाहनः ॥५२

सुसज्जित एवं पूजित किया । अनन्तर अनंगवती ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए उसके उपलक्ष में उन दोनों को तीन सौ प्रदान किया, किन्तु उन लोगों ने उसका कुछ ही अंश स्वीकार किया । अंनगवती ने पुनः चार भाँति के भक्ष्य पुनः उन्हें लाकर दिया और कहा इसे भोजन कर लो । भूपते ! उस समय उन दम्पति ने उसका भी त्याग करते हुए कहा—वरानने ! मैं प्रातः समय इसका भोजन करूँगा प्रसङ्ग वश आप दोनों उस रात्रि उपवास किया, जिसका आज सुखावह परिणाम प्राप्त हुआ । आपने उस समय कहा—दृढवृत करने वाली देवि ! हम लोग जन्म ग्रहण के समय से ही पाप करना आरम्भ किया है, इसलिए महान पापी हैं, किन्तु जीवन में सत्संग वंश आज इतना धर्म लाभ भी हुआ । इस प्रकार कहते सुनते प्रसंग वश रात्रि जागरण भी हो गया । प्रातः काल होने पर अनंगवती नामक उस स्त्री ने लवण पर्वत समेत सुसज्जित शय्या, और गाय भक्ति पूर्वक अपने गुरु को अर्पित कर उन द्वादश ब्राह्मणों को वस्त्र, आभूषण एवं सुवर्ण भूषित गौओं के दान से सुसम्मानित कर सुहृत्, मित्र दीन, अन्धे और कृपणादि व्यक्तियों को भोजन से सन्तुष्ट किया । अनन्तर उस लुब्धक (शिकारी) दम्पति को भी सुसम्मानित कर विदा किया । वही सपत्नीक लुब्धक (बहेलिया) आप नरेश्वर रूप में उत्पन्न हुए हैं । वीर ! आप ने पुष्प समूहों से भगवान् केशव की सुखद अर्चना की है, जिससे अत्यन्त दुर्लभ इस पुष्कर मन्दिर (पुष्कर द्वीप) की प्राप्ति हो हुई है । नृप ! उसी सब का महत्व है, धन परिवार समेत यह तपो दुर्लभ सुवर्ण कमल ब्रह्मा द्वारा तुम्हें प्राप्त हुआ है । राजेन्द्र ! ब्रह्म रूपी जनार्दन देव इस व्रत के अनुष्ठान के ऊपर विशेष सन्तुष्ट होते हैं ।इसीलिए वह अनंगवती वेश्या इस समय कामदेव (काम) की पत्नी रति की सपत्नी रूप से उत्पन्न हुयी है, जो लोकों में सतत आनन्द प्रदायिनी एवं देवों की वन्दनीय है । राजेन्द्र ! आप उसे (स्त्रीको) भी त्याग कर निर्वाण पद प्राप्त करेंगे।३६-५१। इस प्रकार राजा से कहकर मुनि देव उसी समय अन्तर्हित हो गये। राजा पुष्पवाहन ने मुनि के कथनानुसार धर्माचरण

इमामाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत् । यथाकथञ्चित्कालेन द्वादश द्वादशीर्मुने ॥
कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणा नृप ॥५३

इति कलुषविदारणं जनानामिति पठति शृणोति चातिभक्त्या ।
मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स परःशतानि वत्सराणाम् ॥५४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विभूतिद्वादशीव्रतवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।८५

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

मदनद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रोतुमिच्छामि भगवन्मदनद्वादशीव्रतम् । सुतानेकोनपञ्चाशद्येन लेभे दितिः पुरा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वशिष्ठादिभिः प्रोक्तमित्येका तिथिरुत्तमा । विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत ॥२
चैत्र मासे सिते पक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः । स्थापयेदव्रण कुम्भं सिततण्डुलपूरितम् ॥३
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम् ॥४

करते हुए इस द्वादशी व्रत का अखण्ड व्रत पालन किया और अन्य को भी उचित है कि इस द्वादशी के बारह व्रतों को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार इस कलुष विध्वंसक द्वादशी का भक्तिपूर्वक पारायण श्रवण अथवा सम्मति प्रदान करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक देव लोक में उत्तम सुखानुभव करता है ।५२-५४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विभूति द्वादशी व्रत वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।८५।

अध्याय ८६

मदनद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर—भगवन् ! मुझे मदन द्वादशी व्रत सुनने की इच्छा हो रही है, जिसके अनुष्ठान, द्वारा दिति को उन्चास पुत्रों की प्राप्ति हुई है ।१

श्रीकृष्ण बोले—वशिष्ठ आदि महर्षियों ने इसके विषय में बताया है कि 'यही एक परमोत्तम तिथि है' उसी को विस्तार रूप से मैं सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन संयम पूर्वक व्रत नियम पालन करते हुए श्वेत तण्डुल पूर्ण सुन्दर कलश की स्थापना करे, जो अनेक भाँति के फल और ऊख दण्ड से संयुक्त तथा श्वेत वस्त्र से आच्छन्न, श्वेत चन्दन (मलयागिर) से चर्चित, एवं अनेक भाँति के

नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं च शक्तितः । ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेदयेत् ॥५
तस्योपरि तथा कामं कदलीदलसंस्थितम् । कुर्याच्छर्करयोपेतमिति तस्य समीपतः ॥६
गन्धं पुष्पं तथा दद्याद्गीतं वाद्यं च कारयेत् । तदलाभे कथां कुर्यात्कामकेशवयोर्नरः ॥७
कामं नाम्ना हरेरर्चा स्नापयेद्गन्धवारिणा । शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेन्मधुसूदनम् ॥८
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च । मन्मथाय तथा मेढ्रं माधवाय कटिं नमः ॥९
शान्तोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरो हरेः । मुखं पद्ममुखायेति बाहुं पञ्चशराय वै ॥१०
नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम् । ततः प्रभाते कुम्भं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥११
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वयं च लवणादृते । भक्त्यार्थं दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥१२
प्रीयतामत्र भगवान्कामरूपी जनार्दनः । हृदये सर्वभूतानां यथा वेदोऽभिधीयते ॥१३
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । फलमामलकं प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत् ॥१४
ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् । शय्यां दद्याद्द्विजेन्द्राय सर्वोपस्करसंयुताम् ॥१५
काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् । वसोभिर्द्विजदांपत्यं पूज्य शक्त्या विभूषणैः ॥१६
होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत् । गव्येन सर्पिषा तत्र पायसेन च धर्मवित् ॥१७

भक्ष्य भोज्य और यथाशक्ति हिरण्य से भूषित हो। ताम्रपात्र में गुड़ रख कर उसके ऊपर रखते हुए कदलीदल और शक्कर भी रखना चाहिए। अनन्तर उसके समीप भगवान् की प्रतिमा का गंध पुष्पादि द्वारा अर्चन तथा गीत वाद्य करना चाहिए। उसके प्रभाव में केशव की कथा चर्चा होनी चाहिए।२-७। भगवान् के नामों के उच्चारण पूर्वक भगवान् मधुसूदन एवं काम की अर्चना गंध मिश्रित जल, श्वेत पुष्प, अक्षत तथा तिल द्वारा सुसम्पन्न करते हुए—काम को नमस्कार है, इससे उनके चरण युगल सौभाग्य दायक को नमस्कार है, कहकर जाँघे, मन्मथ को नमस्कार है कहकर कटि, शान्तोदर को नमस्कार है, कहकर उदर, अनंग को नमस्कार है, कहकर उरु, पद्ममुख को नमस्कार है, कहकर मुख, पञ्चशर को नमस्कार है, कहकर बाहू, और सर्वातमा को नमस्कार है, कहकर उनके शिर की अर्चना करनी चाहिए। इस प्रकार भगवान् विष्णु केशव की अर्चना सुसम्पन्न कर पुनः प्रातः काल वह कलश किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। अनन्तर ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक भोजन और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान द्वारा संतुष्ट कर इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करे कि—'कामरूपी भगवान् जनार्दन इस व्रतानुष्ठान द्वारा मुझ पर उसी प्रकार प्रसन्न हों, जिस प्रकार समस्त प्राणियों के हृदय में वेद भगवान् धारण करने पर निहित रहते हैं। पश्चात् लवण हीन भोजन कर उसकी समाप्ति करे। इस भाँति प्रत्येक मास में सविधान इसे सुसम्पन्न करते हुए उस द्वादशी के दिन आँवले का प्राशन और भूमि शयन करना चाहिए।८-१४। तदुपरांत तेरहवें मास में व्रत के समाप्त होने पर घृत धेनु समेत सब साधन सम्पन्न सुशय्या किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित कर काम देव की सुवर्ण प्रतिमा श्वेत वर्ण की पयस्विनी (कपिला) गौ, यथा शक्ति वस्त्राभूषण द्वारा द्विज दम्पति के पूजन और काम के नामों के उच्चारण पूर्वक श्वेत तिल का हवन करना चाहिए। अनन्तर उस धार्मिक को चाहिए कि—गौ के घृत पूर्ण खीर के भोजन द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए कृपणता का त्याग करें और

विप्रेभ्योभोजनं दद्याद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । इक्षुदण्डान्नरो दद्यात्पुष्पमालां च शक्तितः ॥१८
यः कुर्याद्विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥१९
इह लोके वरान्पुत्रान्सौभाग्यं सुखमश्नुते । कश्यपो व्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा ॥२०
चकाराकर्कशां भूयो रूपलावण्यसंयुताम् । वरेण च्छन्दयामास या च वव्रे वरं वरम् ॥
पुत्रं शत्रुवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥२१
प्रार्थयामि महाभाग्यं सर्वामरनिषूदनम् । कश्यपः प्राह तां भद्रे एवमस्तु सुशोभने ॥२२
सम्वत्सरशतं त्वेकं गर्भो धार्यः सुखेप्सया । सन्ध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि ॥२३
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा । नोपस्कारे भुवि विशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥२४
जलं न चावगाहेत शून्यागारं विवर्जयेत् । वर्जयेत्कलहं गेहे गात्रभङ्गं तथैव च ॥२५
मुक्तकेशी न तिष्ठेत नाशुचिः स्यात्कथञ्चन । न शयीतोन्नतशिरा न चाप्यर्द्रशिराः क्वचित् ॥२६
न वस्तुहीना नोद्विग्ना नार्द्रपादा न भूतले । नामङ्गल्यां वदेद्वाचं न च हास्यपरा भवेत् ॥२७
कुर्याच्च गुरुशुश्रूषां नित्यं मङ्गलतत्परा । सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥२८
कुस्त्रियो नाभिभाषेत वस्त्रवातं विवर्जयेत् । मृतवत्सादिसंसर्गं परगेहं च सुन्दरि ॥२९
न शीघ्रं मार्गमाक्रामेल्लङ्घयेन्न महानदीम् । न च वीभत्सकं किञ्चिन्नुचेद्रक्षयेद्भयानकम् ॥३०
गुरुवातुलमाहारमजीर्णं न समाचरेत् । सम्पूर्णगर्भिण्यायामं व्यायामं वा विवर्जयेत् ॥३१

यथाशक्ति उक्त दण्ड एवं पुष्प माला से भूषित कर दक्षिणा समेत उन्हें विसर्जित करें । इस विधान द्वारा मदन द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने पर समस्त पातकों के विनाश एवं परम पद की प्राप्ति होती है । तथा इस लोक में सुख सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक अनेक उत्तम पुत्रों की प्राप्ति भी होती है । इसी व्रत महात्म्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षि प्रवर कश्यप जी ने कोमलाङ्गी एवं रूप लावण्य सम्पन्न उस अपनी दिति नामक भार्या के पास पहुँच कर उसे यथेच्छ वर याचना की अनुमति प्रदान की । उस सुन्दरी ने कहा—देव ! महाभाग ! शत्रुओं के वध करने के लिए समर्थ एवं अमित तेजस्वी पुत्र की मैं प्रार्थना कर रही हूँ, जो समस्त देव वृन्दों का समूल विनाश कर सके । इसे सुनकर कश्यप जी ने कहा—भद्रे ! ऐसा ही होगा । किन्तु सुशोभने ! इस सुख वाञ्छा की पूर्ति के लिए तुम्हें सौ वर्ष तक एक गर्भ धारण करना पड़ेगा । वरवर्णिनी ! गर्भिणी को सन्ध्या काल में भोजन करना निषिद्ध है, वृक्षों के मूल भाग पर न चढ़ना एवं न बैठना चाहिए । उसी भाँति भूमि में मूशल उलूखल (ओखली) पर या उसके सहारे बैठना, किसी जलाशय में प्रविष्ट होकर स्नान, शून्य गृह में निवास, गृह में कलह, तथा गोत्र भंग न करना चाहिए उसी भाँति खुले वेश और किसी प्रकार अपवित्र न रहना चाहिए । उन्नत शिर करके शयन जलार्द्र शिर, वस्तुहीन, उद्विग्न एवं चरण प्रक्षालन कर भूमि में चलना निषिद्ध है । उन्हें कभी भी अमांगलिक वाणी के उच्चारण एवं हास्य न करना चाहिए । मंगल भावना से नित्य गुरु सेवा और समस्त औषध मिश्रित कुछ गर्म जल से स्नान करना आवश्यक होता है ।१५-२८। दुष्प्रकृति वाली स्त्रियों के साथ बात चीत तथा वस्त्र की वायु का सेवन उन्हें नहीं करना चाहिए । सुन्दरि ! मृतवत्सा (अल्पायु संतान वाली) आदि स्त्रियों के साथ, पर गृह गमन, शीघ्रतापूर्वक मार्ग-गमन, तथा महा नदी का उल्लंघन अथवा संतरण न करना चाहिए । किसी बीभत्स एवं भयानक का दर्शन, गुरु भोजन, वायुरोग एवं अजीर्ण रोग उत्पन्न कारक भोजन निषिद्ध है । गर्भिणी को परिश्रम या व्यायाम कभी न करना चाहिए । उन्हें सदैव औषधों

गर्भो रक्ष्यः सदौषध्या हृदि धार्यो न मत्सरः । अनेन विधिना साध्वि शोभनं पुत्रमाप्नुयात् ॥३२
अन्यथा गर्भपतनं स्तम्भनं वा प्रवर्तते । तस्मात्त्वननया वृत्या गर्भेऽस्मिंश्च समाचरेः ॥
भविष्यति शुभः पुत्रः सर्वावयवसुन्दरः ॥३३
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया च सः । पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥३४
ततः सा कश्यपोक्तेन विधिना समतिष्ठत । अथाप पुत्रान्दश्चाशदेकोनान्पाण्डुनन्दन ॥३५
एवमन्यापि या नारी मदनद्वादशीमिमाम् । करोति पुत्रानाप्नोति सह भर्त्रा सुखी भवेत् ॥३६
एकोनमर्द्धशतमाप दितिः सुतानां येन व्रतेन बलवीर्यसमन्वितानाम् ।
मर्त्यः समाचरित पुत्रधनाभिलाषी तत्सर्वमत्र सफलं भवतीह पुंसः ॥३७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मदनद्वादशीव्रतवर्णनं नाम षडशीतमोऽध्यायः ।८६

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अबाधकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कान्तारवनदुर्गेषु सुप्रसन्नाटवीषु च । समुद्रतरणे दाने सङ्ग्रामे तस्करार्दने ॥१
कां देवतां स्मरेत्कृष्ण परित्राणाकरीमिह । कथं च देवः पुरुषः परित्राणं स्मृतो जनैः ॥२

द्वारा गर्भ रक्षा का विशेष ध्यान रखना और मन में कभी मत्सर आदि दोष न आने पाये । साध्वि ! इस विधान द्वारा उसे उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है, अन्यथा गर्भ के पतन या स्तम्भन होने का भय रहता है । इसलिए तुम इन विधानों द्वारा इसकी रक्षा करो । इससे सर्वाङ्ग सुन्दर एवं एक शुभ पुत्र का जन्म होगा । अनन्तर 'स्वस्त्यस्तु' (तुम्हारा कल्याण हो) कहकर सब के देखते उसी स्थान अर्न्तहित हो गये और दिति ने भी उनकी बातों को स्वीकार कर उसी विधान को आरम्भ किया । पाण्डुनन्दन ! कश्यप जी के बताये हुए विधान पालन के फल स्वरूप उसे (दिति) को उन्चास पुत्रों की प्राप्ति हुई । इसी भाँति अन्य स्त्रियाँ भी इस मदन द्वादशी के अनुष्ठान द्वारा अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक पति समेत सुखी रह सकती है । इस व्रतानुष्ठान द्वारा दिति ने बलवीर्य सम्पन्न उन्चास पुत्रों की प्राप्ति की है, अतः पुत्र धन की अभिलाषा वाले मनुष्य भी इस अनुष्ठान द्वारा सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेंगे ।२९-३७

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
मदन द्वादशी व्रतवर्णन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ।८६।

अध्याय ८७

अबाधकव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! घोरवन, दुर्ग, जंगलों की भाँति विस्तृत ऊसर भूमि, समुद्र तरण, दान, संग्राम, तथा तस्कर जनित उपद्रव के समय किस रक्षक देवता का स्मरण किया जाता है एवं उस देव श्रेष्ठ पुरुष को मनुष्यों ने अपना त्राण कर्ता कैसे समझा ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वमङ्गलमागल्यां दुर्गां भगवतीमिमाम् । नाप्नोति दुःखं पुरुषः संस्मरन्सर्वमङ्गलाम् ॥३
अलक्ष्यां लक्ष्यभूतानां संस्मरन्सर्वमङ्गलाम् । न भयं समवाप्नोति पुरुषः पार्थ कुत्रचित् ॥४
यदा तां प्रतिजिज्ञासुरवन्त्यामहमागतः । पुरा सन्दीपनिः पार्थ बलेन सह भारत ॥५
प्राप्तविद्येन च मया प्रतिज्ञातास्य दक्षिणा । दिव्यं स्तवं विदित्वा मे तेनाहं याचितः प्रभो ॥६
प्रभासतीर्थे पुत्रो मे गतः केनाप्यसौ हृतः । तमानय महाबाहो सत्यं कुरु वचो मम ॥७
उपाध्यायस्य वचनाद्वैवस्वतपुरे मया । प्राप्तः सन्दीपनेः पुत्रः समानीतः क्षणादसौ ॥८
दक्षिणां तामुदाहृत्य प्रस्थितौ पुनरागतौ । स्थानमेतत्स्वपादांकं कृत्वावां गृहमागतौ ॥९
ततः प्रभृति पुत्रार्थाः पूजयन्ति जनाः सदा । मां चैव बलभद्रं च मध्यस्थां सर्वमङ्गलाम् ॥१०
वामे नारायणो हंस एवमेव च के भवेत् । अबाधकं योऽर्चयते तृतीयं कुन्तिनन्दन ॥११
त्रयोदश्यां सिते पक्षे मासिमासि यतव्रतः । नक्तेनैवोपवासेन एकभक्तेन वा पुनः ॥१२
गन्धपुष्पैश्च मधुभिः सीधुभिश्च सुरासवैः । मृण्मयीं काञ्चनीं वापि कृत्वा प्रतिकृतिं तु यः ॥१३
यक्षगन्धबलिक्षेपैः पललौदनसंसृजैः। योऽभ्यर्चयति राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४
नारी वा भर्तृसहिता स्वर्गलोके महीयते ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—सर्वमङ्गल रूप, एवं मांगलिक कार्यों के लिए प्रख्यात भगवती दुर्गा के स्मरण करने पर मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता है । पार्थ ! उस सर्वमङ्गला भगवती के स्मरण करने पर जो प्राणियों के दृष्टि गोचर न होती हुई भी समस्त मंगल प्रदान करती है, पुरुषों को किसी प्रकार का भय नहीं होता है । भारत ! उसके प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए मैं बलभद्र के साथ जिस समय अवन्ति नगरी के सुप्रतिष्ठित संदीपन ब्राह्मण के घर आपसे और उनसे विद्याध्ययन कर अन्त में गुरु दक्षिणा की प्रतिज्ञा करते समय मुझसे उन्होंने दिव्य भावना से प्रेरित होकर कहा—प्रभो ! मेरे पुत्र को प्रभास तीर्थ में किसी ने आहत कर दिया है, महाबाहो ! मैं चाहता हूँ कि मेरी बात को सत्य करते हुए आप उसे अवश्य लायेंगे । मैंने अपने उपाध्याय (अध्यापक) की बातें सुनकर यमराज के यहाँ जाकर उन संदीपन के पुत्र को उसी समय वहाँ से लाया और दक्षिणा रूप में उन्हें सौंप कर पुनः हम दोनों इसी स्थान से होकर अपने घर गये । उसी समय से संसार के सभी लोग मुझे बलभद्र को तथा मध्य में सर्वमङ्गला दुर्गा भगवती की पूजा करते हैं । कुन्ति उनके बायें भाग नारायण, बलभद्र और तीसरा उन्हें अबाध रूप से जो प्रतिमास की शुक्लत्रयोदशी के दिन संयम पूर्वक नक्त व्रत, उपवास अथवा एकाहार करके गंध, पुष्प, मधु, ईख का मध और सुरासव द्वारा उनकी सुवर्ण प्रतिमा अथवा मृत्तिका की मूर्ति की अर्चना यक्षगन्ध की धूप बलि प्रदान एवं मांस भात द्वारा सुसम्पन्न करते हैं, उनके सभी पातक विनष्ट हो जाते हैं । राजेन्द्र ! स्त्री भी इसे सुसम्पन्न करने पर पति समेत स्वर्ग की पूजनीय होती है ।३-१५। इस प्रकार शुक्र त्रयोदशी के दिन अम्बा अम्बिका

अम्बाम्बिके द्विदशमेऽह्नि सिते सदैव यः पूजयेत्कुसुममांससुरोपहारैः।
नश्यन्ति तस्य भवनेष्वतिभीषणानि चौराग्निराजजनितानि भयानि सद्यः ॥१६

इति भविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अबाधकव्रतवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।८७

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

मन्दारकनिम्बार्कव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

ब्रूहि मे यदुशार्दूल व्रतं गन्धविनाशनम् । कटुतिक्ताम्लदेहोत्थदौर्भाग्यशमनं तथा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

इमं प्रश्नं पुरा पार्थ जाजुकर्ण्यो महामुनिः । पृष्टो राज्ञ्या विष्णुभक्त्या कालनन्दनजातया ॥२
कथयामास सम्पृष्टः सूपविष्टा शृणोति सा । देवी कृताञ्जलिपुटा जाजुकर्ण्योऽवदद्व्रतम् ॥३
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां युधिष्ठिर । स्नात्वा पुण्यनदीतोये पूजयेच्छुभदेशजम् ॥४
श्वेतमन्दारकनर्कं वा करवीरं च रक्तकम् । निम्बं च सूर्यदेवस्य वल्लभं दुर्लभं तथा ॥५
पुष्पैर्नैवेद्यधूपाद्यैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव । निरीक्ष्य गगने सूर्यं ध्यात्वा हृदि समुच्चरेत् ॥६
सूर्यं श्वेतारमन्दारश्वेतार्कास्यसंशयम् । करवीर नमस्तुभ्यं निम्बवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥७

भगवती की अर्चना पुष्प, मांस, आसव एवं बलिदान द्वारा सुसम्पन्न करने पर उसके गृह की समस्त बाधा चोर, अग्नि, एवं मृगी आदि से रोगजनित सभी दोष उसी समय नष्ट होते हैं।१६

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
अबाधक व्रत वर्णन नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त ।८७।

अध्याय ८८

मन्दार निम्बार्क व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुशार्दूल ! मुझे एक ऐसा व्रत बताने की कृपा कीजिये जिसके अनुष्ठान द्वारा कटु, तिक्त और अम्ल (खट्टा) रसपूर्ण उसदेह जनित दुर्गंध का विनाश एवं दुर्भाग्य का शमन होता है।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में कालनन्दनजाति में उत्पन्न उस विष्णु भक्ता रानी ने यही प्रश्न जाजुकर्ण्य महर्षि से किया था। उसके पूछने पर जाजुकर्ण्य ने कहना आरम्भ किया और वह बैठी हुई हांथ जोड़े सुन रही थी—युधिष्ठिर ! ज्येष्ठ मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन नदी के पवित्र जल से स्नान करके किसी शुभ स्थान में उत्पन्न श्वेत मंदार, अर्क, रक्त कनेर, अथवा सूर्य देव के अत्यन्त वल्लभ नीम की जो अन्य के लिए दुर्लभ है, पुष्प, नैवेद्य, धूप, आदि द्वारा मंत्रोंच्चारण पूर्वक अर्चना करनी चाहिए। पाण्डव ! आकाश मध्य में सूर्य का निरीक्षण एवं हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य, श्वेत मंदार, श्वेत अर्क तथा

इत्थं योऽर्कपतेर्भक्त्या वर्षेवर्षे पृथङ् नरः । मूलमन्त्रेण नृश्रेष्ठ वा नारी भक्तिसंयुता ।।
तस्याः शरीरदौर्गन्ध्यं दौर्भाग्यं वा अजाविकम् ।।८

निम्बं नवार्ककरवीरलतां सुपुष्पां याः पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगसमृद्धिभाजो दौर्भाग्यदोषरहिताः सुभगा भवन्ति ।।९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मन्दारनिम्बार्ककरवीरव्रतवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।८८

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

त्रयोदशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यमस्याराधनं ब्रूहि श्रीवत्स पुरुषोत्तम । कथं न गम्यते कृष्ण नरकं नरकेसरिन् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

द्वारवत्यां पुरा पार्थ स्नातोऽहं लवणाम्भसि । दृष्टवान्मुनिमायान्तं मुद्गलं नाम पार्थिव ।।२
प्रज्वलन्तमिवादित्यं तपसा द्योतितान्तरम् । तं प्रणम्यार्घ्यसत्कारैः पप्रच्छाहं युधिष्ठिर ।।३
यमादर्शननामैतद्व्रतं जन्तुभयापहम् । कथयामास सकलं मुद्गलो विस्मयान्वितः ।।४

कनेर एवं निम्ब वृक्ष को नमस्कार है । कहकर उसकी समाप्ति करे । इस प्रकार प्रति वर्ष श्रद्धा भक्ति समेत मूल मंत्र के उच्चारण पूर्वक सूर्य की आराधना करने वाले मनुष्य (स्त्री या पुरुष) की शरीर के दुर्गंध और दुर्भाग्य समूल विनष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार नीम, श्वेतार्क, श्वेत मंदार, और कनेर की पुष्पित लता की पुष्प, अक्षत, धूप, दीप द्वारा अर्चना करने वाली स्त्रियों और पुरुषों के शरीर के दुर्गंध की शांति पूर्वक उन्हें समस्त सुखभोग एवं समृद्धि सौभाग्य प्राप्त होते हैं ।२-९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
मन्दार निम्बार्क करवीर व्रत वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।८८।

अध्याय ८९

त्रयोदशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—श्रीवत्स पुरुषोत्तम एवं नरकेसरिन ! मुझे यम की आराधना बताने की कृपा कीजिये तथा कृष्ण ! नरक गमन न करने के लिए क्या उपाय है ।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में मैं द्वारका पुरी में रहकर एक समय लवण (खारी) समुद्र में स्नान कर रहा था, उसी समय मुद्गल नामक महर्षि आते हुए दिखायी दिये। पार्थिव ! वे ज्वलन्त सूर्य की भाँति अपने तप अग्नि से पूर्ण प्रकाशित होने के नाते दिखायी देते थे। युधिष्ठिर ! मैंने प्रणाम पूर्वक अर्घ्यादि सत्कार से सुसम्मानित करने के अनन्तर उनसे पूँछा। उसे सुनकर मुद्गल ने आश्चर्य चकित होकर उस व्रत की कथा कहना आरम्भ किया जिस समय के दर्शन न होने एवं जन्तुओं के समस्त नष्ट हो जाते हैं।२-४।

मुद्गल उवाच

अकस्मात्कृष्ण मूर्च्छा मे पतितोऽस्मि धरातले । पश्यामि दण्डपुरुषैर्मद्देहात्प्रज्वलन्निव ॥५
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो बलादाकृष्य रोषितः । बद्धो यमभटैर्गाढं नीयते वेदवादिभिः ॥६
क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनम् । कृष्णावदातं रौद्रास्यं मृत्युं व्याधिशतान्वितम् ॥७
वातपित्तमहाश्लेष्मैर्मूर्तिमद्भिरुपासितम् । कासशोफज्वरान्तकस्फोटिकालूतमारिभिः ॥८
ज्वरगर्दभशीर्षादिभगन्दरमलक्षयैः । गण्डमालाक्षिरोगैश्च मूत्रकृच्छ्रहरोव्रणैः ॥९
वेदनाभिः प्रमेहैश्च पिटकैर्गंडबुद्बुधैः । विषूचिकागलग्राहदरिद्राभूततस्करैः ॥१०
इत्थं बहुविधै रौद्रैर्नानारूपभयंकरैः । करालशस्त्रहस्तैश्च संग्रामैर्नरकैस्तथा ॥११
राक्षसैर्दानवैरुग्रैरुपविष्टैः पुरः स्थितैः । धर्माधिकरणस्थैश्च चित्रगुप्तादिलेखकैः ॥१२
सिंहव्याघ्रैर्वराहैश्च तरक्षैश्चानुजन्तुकैः[1] । वृश्चिकैर्दंशमशकैः शिवासर्पैः सडुण्डुभैः ॥१३
गृध्रैरुलूकैर्बहुभिर्मत्कुणैर्डाकिनीग्रहैः । अपस्मारस्मरोन्मादवृद्धिकारेवतीग्रहैः ॥१४
पिशाचैर्यक्षकूष्माण्डैः पाशखड्गधनुर्द्धरैः । मुक्तकेशैस्त्रासकरैर्भ्रुकुटीकुटिलाननैः ॥१५
बृहत्कायैर्नारकीयैः पापिष्ठानां नियामकैः । असिपत्रवनाङ्गारैः क्षारगर्ताण्डदायकैः ॥१६
असिभङ्गामिषच्छेदरुधिरस्रावकादिभिः । आस्थाने सम्भृतो भाति यमो मृत्यूपमोसमः ॥१७
स आह किङ्करान्सर्वान्धर्मराजो जनार्दन । किमयं मुनरानीतो युष्माभिर्भ्रांतनामभिः ॥१८

मुद्गल बोले—कृष्ण ! एक बार मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गई जिससे मैं भूमि में गिर गया । उस समय मुझे दिखायी देता था कि यम के दूत हाथ में दण्ड लिए, जो वेद वादी भी माने जाते हैं, मेरी देह से एक अंगुष्ठ मात्र के पुरुष को जो अत्यन्त प्रदीप्त था, बलात् निकाल कर दृढ बन्धनों से बाँधे लिये जाते हों । क्षण मात्र में मैंने सभा में पहुँच कर पिंगल नेत्र कृष्ण वर्ण, भीषण मुख और सैकड़ों मृत्यु व्याधियों से घिरे यम को देखा । वे वात, पित्त, महाश्लेष्मा मूर्ति मान होकर उनकी उपासना कर रहे थे और कास (खांसी), शोफ, ज्वरांतक, स्फोटक, लूता, मारी (मृगी) गर्दभशिखर लिज्वर, भगंदर, गंडमाला, नेत्र रोग, मूत्रकृच्छ, हरव्रण, वेदना, प्रमेह, पिटक, गंडबुद्बुद, विषूचिका, गलग्रह, दरिद्रता, भूत तस्कर, आदि अनेक भाँति के रौद्र एवं भीषण रूपवाले तथा कराल शस्त्र धारीसंग्राम, नरक, दानव, और धर्माधिकारी चित्रगुप्त आदि लेखकों से संयुक्त थे । सिंह, व्याघ्र, वाराह, तरक्षु (लकडबग्घा), जम्बूक, विच्छी, दंश (डसा) मशक (मसा) शिवासर्व, दुदुंभ, गीध, उल्लू, मत्कुण (खटमल) वृन्द, डाकिनी, ग्रह, अपस्मार, स्मरोरभाद, वृद्धिका, रेवती गृह, पिशाच, यक्ष, कूष्माण्ड, एवं पाश, खड्ग, धनुष लिए केश बिखरे, हाथों द्वारा मास दिखाने, भौंहे टेढ़ी मुख कुटिल एवं वृहत्काय वाले वे नारकीय दूत गण जो पापियों परे नियंत्रण रखते हैं, अपने असिपत्र, वनांगार, क्षारगर्त (गड्ढा) दण्ड दायक वहाँ उपस्थित थे जो तलवार भङ्ग व्याज से नारकीय प्राणियों के अंगच्छेद कर रुधिर स्राव कर रहे थे।५-१७। जनार्दन ! उस समय धर्मराज ने अपने दूतों से कहा—तुम लोगों ने भ्रम में पड़कर नाम वाले इस महर्षि को क्यों यहाँ उपस्थित किया। मैंने

---

१. जानुंजम्बुकैः ।

मुद्गलो नाम कौडिन्ये नगरे भीष्मकात्मजः। क्षत्रियोऽस्ति स आनेयः क्षीणायुस्त्यज्यतां मुनिः॥१९
इत्युक्तास्ते गतास्तस्मादायाताः पुरनेव ते । ऊचुर्यमभटाः प्रह्वा धर्मराजं सविस्मयाः॥२०
अस्माभिस्तत्र क्षीणायुर्नल देही लक्षितो गतैः। न जानीमो भानुसूनो कथञ्चित्तद् भ्रान्तमानसाः॥२१

यमराज उवाच

प्रायेण ते न दृश्यन्ते पुरषैर्यर्नाकिंकरैः । कृता त्रयोदशी नरकार्तिविनाशिनी॥२२
उज्जयिन्यां प्रयागे वा भैरवे वाथ ये मृताः। तिलान्नगोहिरण्यादि दत्तं यैश्च गवाह्निकम्॥२३

दूत उवाच

कीदृशं तद्व्रतं स्वाभिञ्छंस नो भास्करात्मज । किं तत्र वद कर्तव्यं पुरुषैस्तव तुष्टिदम्॥२४

यम उवाच

पूर्वाह्णे मार्गशीर्षादौ वर्षमेकं निरन्तरम् । त्रयोदश्यां सौम्यदिने सूर्यागारवर्जितः॥२५
मम[1] नाम्ना द्विजानष्टौ पञ्च चैव समाह्वयेत्। वेदान्तगाञ्जातिशुद्धाञ्छान्तचित्तान्सुशोभनान्॥२६
वाचकश्चापि तन्मध्ये सदा भास्करवल्लभान्। दिनस्य प्रथमे यामे शुचौ देशे समास्थितान्॥२७
अन्तर्वासोवृतान्भक्तान्सोपदिष्टदिगुन्मुखान् । अभ्यङ्गयेच्छिरोदेशत्तिलतैलेन मर्दयेत्॥२८
स्नापयेद्गन्धकाषायैः सुखोष्णाम्बुभिरेव च । पृथक्पृथक्स्नापयित्वा सर्वानेव द्विजोत्तमान्॥२९

कौडिन्य नगर के निवासी भीष्मवंशज एवं क्षत्रिय कुलोत्पन्न उस मुद्गल को यहाँ लाने के लिए कह रहा था। अतः इस मुनि को छोड़ दो और उसी को ले आओ। इसभाँति उनके कहने पर दूत गण वहाँ जाकर पुनः लौट आये और विनीत भाव से आश्चर्य प्रकट करते हुए धर्मराज से कहने लगे—भानु पुत्र! भ्रान्त होने के नाते हम लोग वहाँ जा कर भी किस क्षीण पुवाल देही को नहीं देखा, नहीं जानते कि इसका रहस्य क्या है।१८-२१

यमराज बोले—किंकर वृन्द! तुमलोग आप उन पुरुषों को नहीं देख सकते हो, जिन्होंने नरक दुःख विनाशिनी इस त्रयोदशी व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया है। उज्जयिनी, प्रयाग एवं भैरव स्थान में जिसने तिल, पुत्र, गौ, और हिरण्य इस प्रकार के गवाह्निक दान किया है, उसे देखना असम्भव है।२२-२३

दूतों ने कहा—स्वामिन् भास्करात्मज किस प्रकार का यह व्रत है, और उसमें आप के प्रसन्नार्थ पुरुषों का क्या कर्तव्य है, हमें बताने की कृपा करें।२४

यमराज बोले—मार्गशीर्ष (अगहन) मास से प्रारम्भ कर प्रत्येक त्रयोदशी चन्द्रवार के पूर्वाह्ण समय मेरे नाम पर इस प्रकार के तेरह ब्राह्मणों को निमंत्रित करे, जो अध्यात्म निपुण, अति शुद्ध, शांतचित्त, एवं परम सुशोभन हों। उनके मध्य में किसी भास्कर प्रिय को वाचक पद पर प्रतिष्ठित करे। दिन के प्रथम भाग में पवित्र स्थान में स्थित उन लंगोटीधारी, भक्त एवं रूप दिष्ट ब्राह्मणों के शिर आदि प्रत्येक अंग में तिल तैल मर्दन कर गन्ध पूर्ण एवं किंचित उष्ण को आसनासीन करे। अनन्तर उस व्रती एवं भक्ति परायण पुरुष को चाहिए कि स्वयं उनकी शुश्रूषा करके पृथक् सभी की पूर्वाभिमुख बैठकर

---

१. यमनाम्ना।

शुचिर्भूत्वा तथाचान्तो व्रती भक्तिपरायणः । स्वयं सम्भृत्य शुश्रूषां तेषां कृत्वा नरोत्तम ॥३०
प्राङ्मुखानुपविष्टांश्च त्रयोदश पृथक्पृथक् । भोजयेच्छालिमुद्गाद्यं गुडपूपान्सुखोचितान् ॥३१
सुव्यञ्जनं सुपक्वान्नं भूयोभूयो निवेदयेत् । शुचिर्भूत्वा तथाचान्तो ह्यर्चयेत्तिलतण्डुलैः ॥३२
प्रस्थमात्रैरथैकैकं ताम्रपात्रसमन्वितैः । सदक्षिणैः सच्छत्रैश्च जलकुम्भैः पवित्रकैः ॥३३
चर्मप्रावरणैः श्रेष्ठैस्तेषां दत्त्वा विसर्जयेत् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र अर्चयेत्तान्पृथक्सुधीः ॥
ब्राह्मणान्वाचकं वापि पंक्तिभेदं न कारयेत् ॥३४
ॐ नमः शनैश्चरो मृत्युर्दंडहस्तो विनाशकः । अभावः प्रलयः सौरिर्दुःखघ्नः शमनोऽन्तकः ॥३५
लोकपालो ह्यतिक्रूरो रौद्रो घोराननः शिवः । यमः प्रसन्नमानस्को दद्यान्मेऽभयदक्षिणाम् ॥३६
(स्वाहा)
इत्युक्त्वा सम्प्रयच्छेच्च देयं दत्त्वा व्रती पुनः । द्विजांश्चानुव्रजेत्तृप्तान्गृहांश्चार्चितचर्चितान् ॥३७
एवं यः पुरुषः कश्चित्सकृद्व्रतमिदं चरेत् । स मृतोऽपि नरोमर्त्यो नायाति मम मन्दिरम् ॥३८
अदृष्टो मम मायाभिर्विमानेनार्कमण्डलम् । स चायाति पुरीं विष्णोस्ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥३९
कृतं चीर्णं व्रतं तेन मुद्गलेन ममोदितम् । तेन नायात्यसौ लोके मम क्षत्रियपुङ्गवः ॥४०
इति कालवचः श्रुत्वा तेऽपि दूता गतास्तु मे । अहं पुनः समापन्नस्तूर्णं कालैर्विसर्जितः ॥
स्वशरीरं पुनः प्राप्य नीरोगः पुनरुत्थितः ॥४१
त्वां द्रष्टुमागतः प्रोक्तमेतद्वृत्तं मया तव । इत्युक्त्वा मुद्गलो राजन्प्रयातः स्वगृहं प्रति ॥४२

चावल, मूंग के भक्ष्य एवं गुड के पूआ से उन्हें संतृप्त करें। नरोत्तम ! अनेक भाँति के उन पक्वान एवं सुव्यजनों का बार-बार निवेदन कर आचमन, (मुखशुद्धि) करने के उपरांत ताम्रपात्र में एक से तिल चावल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश और चर्मवस्त्र (ऊनी वस्त्र) समेत अर्पित कर उन्हें बिदा करें। राजेन्द्र ! पृथक् पृथक् सभी विद्वानों की अर्चना करते हुए पंक्ति भेद का विशेष ध्यान रखे। वाचक को भी उसी भाँति सुसम्मानित करना चाहिए।२५-३४। उन्हें दान प्रदान करते समय ऐसा कहना चाहिए—शनैश्चर को नमस्कार है, मृत्यु रूप, दण्ड लिए, विनाशक, प्रभाव, प्रलय एवं दुःख नाशक सूर्य पुत्र यम को नमस्कार है, जो लोकपाल, अतिक्रूर , रौद्र, भीषण मुख, शिव (कल्याण) पूर्ति है। यम प्रसन्न होकर मुझे अभय दक्षिणा प्रदान करें। ऐसा कहते हुए ब्राह्मण को दान देने के उपरांत उस व्रती को उन ब्राह्मणों के सम्मानार्थ अनुगमन करके अपने गृह जाना चाहिए। इस प्रकार इस विधान द्वारा इस व्रतानुष्ठान को एक बार भी सुसम्पन्न करने वाले पुरुष निधन होने पर यमपुरी का प्रस्थान नहीं करते अपितु मेरी माया द्वारा अदृष्ट होकर सुसज्जित विमानों पर सुशोभित होते हुए सूर्य मण्डल के मार्ग से विष्णु पुरी का प्रस्थान करते हैं, और तदनन्तर शिवपुरी कैलाश का मुद्गल ने मेरे कहे हुए इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न किया है, इसीलिए वह क्षत्रिय पुङ्गव मेरी पुरी में नहीं आ रहा है। काल की ऐसी बाँते सुनकर वे दूत गण मुझे छोड़कर चले गये। और मैं भी काल से परित्यक्त होने के नाते उसी समय अपनी शरीर में प्रविष्ट होकर नीरोग उठ बैठा।३५-४१। अनन्तर तुम्हारे दर्शन के लिए यहाँ आकर तुम्हें यह वृत्तान्त सुनाया। राजन् ! इतना

इदं कुरुष्व कौन्तेय त्वमप्यत्र महीतले । ततो यास्यस्यसन्दिग्धं वञ्चयित्वा यमं मृतः ॥४३
एवं येऽन्येऽपि पुरुषाः स्त्रियो वापि युधिष्ठिर । त्रयोदश्यां त्रयोदश्यां च चरिष्यन्ति[1] भूतले ॥४४
एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः । यमदर्शनमाख्यातं गतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥४५
सर्वपापविनिर्मुक्ता दिव्यमानं समाश्रिताः । यास्यन्तीन्द्रपुरं हृष्टा अप्सरोगणसम्वृताः ॥४६
दोधूयमानाश्चमरैःस्तूयमानाः सुरासुरैः । गन्धर्वतूर्यनादेन च्छत्रपंक्तिविराजिताः ॥४७
अदृष्टो घोररूपास्यैर्यमदूतैर्युधिष्ठिर । अनर्दितो व्याधिगणैरदृष्टो यमकिङ्करैः ॥४८
अदारितो महारौद्रैर्नानाप्रहरणोत्तमैः । यमदृष्टिपथान्मुक्ताः सर्वसौख्यसमन्विताः ॥४९
सर्वसौख्यसमायुक्ताः शिववत्सौम्यदर्शनाः । स्वर्गे वसन्ति सुचिरं भाविताः स्वेन कर्मणा ॥५०

स्नात्वा त्रयोदश मुनीन्घृतपायसेन सम्पूज्य पूज्यतिलतण्डुलवस्त्रदानैः ।
कुर्वन्ति ये व्रतमिदं त्रिदशेह्नि पूताः पश्यन्ति ते यममुखं न कदाचिदेव ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
यमदर्शनत्रयोदशीव्रतवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।८९

कहकर मुद्गल अपने घर चले गये । कौंतेय ! इस महीतल पर तुम भी इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करो, जिससे देहावसान के समय यम को वञ्चित करते हुए विष्णु लोक भी निश्चित प्राप्त कर सको । युधिष्ठर! इसी प्रकार अन्य स्त्री अथवा पुरुष इस भूतल पर रहकर अपने जीवन में प्रत्येक त्रयोदशी के दिन एकाहार नक्त व्रत उपवास द्वारा इस यमदर्शन नामक श्रेष्ठ व्रत को सुसम्पन्न करके समस्त पापों से मुक्त होते हुए अप्सराओं से सुशोभित विमानों द्वारा स्वर्ग का प्रस्थान करते हैं । युधिष्ठिर ! उस समय देव एवं असुर वृन्द स्तुति करते हुए उसके चामर डुलाते हैं और गन्धर्वों के तुरुही वाद्य की ध्वनियों एवं छत्र पंक्तियों से विभूषित होता है भीषण काय एवं मुख वाले यमदूत उसे देख नहीं सकते । किसी व्याधि द्वारा पीड़ित होता, यमकिन्नरों से सर्वदा अदृष्ट रहता है, महान् एवं रौद्र अस्त्रों से कभी आर्त नहीं होता और यम मार्ग से सर्वथा मुक्त रहता है । समस्त सौख्य की प्राप्ति पूर्वक शिव की भाँति सौम्य दर्शन प्राप्त कर चिरकाल तक स्वर्ग निवास करता है । इस प्रकार त्रयोदशी के दिन स्नान करके घृत युक्त पायस (खीर) तिल, तन्दुल एवं वस्त्र द्वारा मुनियों की अर्चना करते हुए इस व्रतानुष्ठान को सदैव सुसम्पन्न करने पर उन्हें यममुख का भीषण दर्शन कभी नहीं होता है ।४२-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
यमदर्शन त्रयोदशी व्रत-वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।८९।

---

१. यजिष्यन्ति ।

अथ नवतितमोऽध्यायः

अनङ्गत्रयोदशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्भूतभव्येश संसारार्णवतारक ! व्रतं कथय किञ्चिन्मे रूपसौभाग्यदायकम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

किं कृतैर्बहुभिः पार्थ व्रतैरुन्मत्तचेष्टितैः । कायक्लेशकरैः क्रूरैरसारैः फलसाधनैः ॥२
वरमेकापि वरदा कृतानङ्गत्रयोदशी । प्रसिद्धिं समनुप्राप्ता मर्त्ये कामप्रदायिनी ॥३
सौभाग्यरोग्यजयदा सर्वातङ्कनिवारिणी । सर्वदुष्टोपशमनी सर्वमङ्गलवर्धनी ॥४
शृणुष्व तां महाबाहो कथयामि सविस्तरम् । पुरा दग्धेन कामेन त्रिनेत्रनयनाग्निना ॥५
भस्मीभूतेन लोकानां सङ्कल्पिता पुरानघ । अनङ्गेन कथा ह्येषा तेनानङ्गत्रयोदशी ॥६
हेमन्ते समनुप्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे । शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥७
स्नानं नद्यां तडागे च गृहे वा नियतात्मवान् । कृत्वा समभ्यर्च्य विभुं विधिना शशिशेखरम् ॥८
धूपदीपैः सनैवेद्यैः पुष्पैः कालोद्भवैस्तथा । शंभुनामान्यथोच्चार्य[1] होमःकार्यस्तिलाक्षतैः ॥९

अध्याय ९०

अनंग त्रयोदशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! आप जीवों के परम हितैषी एवं संसार सागर के उद्धारक हैं, अतः मुझे कोई रूपसौभाग्यदायकव्रत बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! (उसमें) उन्मत्त की भाँति चेष्टा रख कर ऐसे अन्य अनेक व्रतों को जो काय को क्लेशित करने, क्रूर, प्रसार एवं फल साधक हैं, सुसम्पन्न करने से क्या लाभ है, जब कि इस वरदायिनी अनंत त्रयोदशी को एक ही बार सुसम्पन्न करने से मनुष्य की ख्याति पूर्वक अनेक भाँति की सभी कामनाएँ सफल हो सकती हैं । यह अनंग त्रयोदशी, सौभाग्य, आरोग्य, एवं जय प्रदान करती हुई समस्त पातकों की निवृत्ति करती है तथा सभी दुष्टों की शांति पूर्वक समस्त मण्डलों का वर्धन करती है । महाबाहो ! मैं विस्तार पूर्वक उसका वर्णन करता हूँ, सुनो ! अनघ ! पहले समय में भगवान् शंकर के तीसरे नेत्र की अग्नि द्वारा काम के भस्मसात् होने पर लोगों ने अंनग कथा पूर्ण इसी अनंग त्रयोदशी की कल्पना की है । हेमन्त ऋतु के समागम में मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन उपवास रहते हुए संयम पूर्वक किसी नदी, सरोवर अथवा गृह, कूप आदि के जल से स्नान करके व्यापक रहने वाले भगवान् चन्द्रचूड (शिव) की सविधान धूप, दीप, नैवेद्य, एवं सामयिक पुष्प फल द्वारा अर्चना करके उनके नेत्रों के उच्चारण पूर्वक तिल-अक्षत के हवन ।२-९। अंग नामों की पूजा, एवं मधु प्राशन रात्रि शंयन करना

---

१. मधुनामान्यथोच्चार्य ।

अनङ्गनाम्ना सम्पूज्य मधु प्राश्य स्वपेन्निशि । नैवेद्यैर्मधुरैर्दिव्यैः सुस्वादैघृतपाचितैः ॥१०
धूपं सुगन्धिं दद्याच्च रक्तपुष्पैस्तु पूजनम् । रम्भातुल्या भवेत्सा तु रूपयौवनशालिनी ॥११
मधुवत्स्यात्समधुरः कामरूपधरस्तथा । दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥१२
पुष्यमासस्य चैवोक्तं चन्दनं प्राशयेन्निशि । योगेश्वरं तु सम्पूज्य मालतीकुसुमैः शुभैः ॥१३
नैवेद्यं घृतपूराश्च इनशान्तास्तु ताः स्त्रियः । सौम्यशीतसुगन्धाढ्यचन्दनप्राशनोद्भवैः ॥१४
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । माघे नटेश्वरं नाम पूजयेत्पङ्कजेन तु ॥१५
नैवेद्यं क्षीरखण्डाद्यैर्मौक्तिकं प्राशयेन्निशि । बहुपुत्रा भवेत्सा तु धनं सौभाग्यमुत्तमम् ॥१६
मुक्ताचूर्णनिभैर्नेत्रैर्यद्वा स्यात्तद्वदेव हि । गौरीतुल्या भवेत्सा तु कोमलाङ्गी प्रजायते ॥१७
तप्तजाम्बूनदाभासो भवेद्दिव्यतनुर्महान् । गोमेधस्य सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१८
फाल्गुने मासि सम्पूज्य देवदेवं हरेश्वरम् । कर्णिकारस्य पुष्पाणि नैवेद्यै बीजपूरकम्[1] ॥१९
कङ्कोलं प्राशयेद्रात्रौ सौन्दर्यमतुलं लभेत् । चैत्रे सुरूपकं नाम पूजयेद्दमनेन तु ॥२०
नैवेद्यं धूपकं दद्याद् घृतखण्डविपाचितम् । कर्पूरं प्राशयेद्रात्रौ सौभाग्यं महदाप्नुयात् ॥२१
चन्द्रश्च चन्द्रकान्तिश्च चन्द्रवर्त्यहरावृते । नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति शोभनम्[2] ॥२२
वैशाखे च महारूपं पुष्पैर्नौमालिकार्चनम् । कारम्बकैस्तु नैवेद्यं दातव्यं चातिशोभनम् ॥२३

चाहिए। मधुर, दिव्य, मृतप्लुत एवं अत्यन्त सुस्वादु नैवेद्य को समर्पित करते हुए सुगन्धित धूप तथा रक्त पुष्प द्वारा पूजन करने पर वह स्त्री रम्भा के समान रूप यौवन सम्पन्न होकर उत्तम वराङ्गना होती है। पुरुष उसके सुसम्पन्न करने पर मधुर भाषी, काम की भाँति यथेच्छ सौन्दर्य समेत दश अश्वमेध के फल प्राप्त करता है।१०-१२। पौष मास में उसी उपरोक्त विधान द्वारा उनकी अर्चना करके चन्दन के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करे। मालती के सुन्दर पुष्प, और घृत प्लुत नैवेद्य द्वारा योगेश्वर शंकर की आराधना तथा मन्द, सुगंध एवं शीतल चन्दन के प्राशन करने पर उन स्त्रियों को राजसूय यज्ञ के उत्तम फल प्राप्त होते हैं। माघमास में नटेश्वर शिव की कमल, नैवेद्य, क्षीर के नैवेद्य द्वारा अर्चना और रात्रि में जल का प्राशन करने वाली स्त्री बहुपुत्र, धन एवं उत्तम सौभाग्य प्राप्त करती है, और उसके नेत्र मोती चूर्ण के समान चमकीले होते हैं तथा वह गौरी की भाँति कोमलाङ्गी होती है। उसी प्रकार पुरुष भी तपाये गये सुवर्ण की भाँति कान्त पूर्ण दिव्य देह समेत सहस्र गोमेध यज्ञ के फल की प्राप्त करता है। फाल्गुन मास में कर्णिकार (हरदी) के पुष्प एवं नैवेद्य द्वारा देवाधिदेव हर की अर्चना और जम्बीर पूर्ण कंकोल के प्राशन करने से अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है। चैत्र मास में संयम पूर्वक नैवेद्य, धूप एवं घृत खांड के भक्ष्य द्वारा सुरूप नामक शिव की अर्चा और रात्रि में कपूर के प्राशन करने पर महान् सौभाग्य प्राप्त होता है। तथा चन्द्रच्छविपूर्ण शंकर की भाँति वह दिखायी देता है, जो चन्द्र कांति पूर्ण चन्द्र से संयुक्त हैं। और नरमेध के परमोत्तम फल प्राप्त होते हैं।१३-२२। वैशाख मास में पुष्प, मनःसिल (मैनसिल) द्वारा महारूप नामक शिव की अर्चना करम्ब (मिश्रित) परम मधुर नैवेद्य अर्पित करते हुए जाति फल (जायफल) के प्राशन

---

१. तु जवीरकम्। २. षड्गुणम्।

जातीफलं तु सम्प्राश्य जातिमाप्नोत्यनुत्तमाम् । सफलास्तस्य सर्वाशा भवन्ति भुवि भारत ॥२४
गोसहस्रफलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते । ज्येष्ठे मासे तु प्रद्युम्नं पूजयेन्मल्लिकासुमैः ॥२५
नैवेद्यं खण्डवर्तिं च लवङ्गं प्राशयेन्निशि । ज्येष्ठं पदमवाप्नोति तथा लक्ष्मीं जनार्दनात् ॥२६
सर्वसौख्यसमोपेतः स्थित्वा भुवि शतं समाः । वाजपेयस्य यज्ञस्य शतमष्टगुणोत्तरम् ॥२७
आषाढ़े चैव सम्प्राप्ते उमाभर्तारमर्चयेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः प्राश्नोयाच्च तिलोदकम् ॥२८
तिलोत्तमारूपधरा सुखी स्याच्छरदः शतम् । श्रावणे उमापतिं नाम तिलपुष्पैस्तु पूजयेत् ॥२९
नैवेद्यं लड्डुकान्दद्यात्कृष्णांश्च प्राशयेत्तिलान् । पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनाकुलम् ॥३०
तदन्ते राजराजः स्याच्छत्रुण्क्षक्षयंकरः । सद्योजातं भाद्रपदे पूज्य कुंकुमकेशरैः ॥३१
नैवेद्यं सोलिकां दद्यात्प्राशयेदगुरुं निशि । अगुरुं प्राशयित्वा तु गुरुर्भवति भूतले ॥३२
पुत्रपौत्रैः परिवृत्तो भुक्त्वा भोगान्मनोऽनुगान् । उक्तयज्ञफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥३३
त्रिदशाधिपतिमश्वयुजि पूज्य सिन्दूरकस्रजैः । स्वर्णादिकं तु सम्प्राश्य स्वर्णवर्णः प्रजायते ॥३४
रूपवान्सुभगो वाग्मी भुक्त्वा भोगान्महीतले । सुवर्णकोटिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३५
विश्वेश्वरं[1] कार्तिके तु सर्वपुष्पैस्तु पूजयेत् । दमनस्य फलं प्राश्य दमनेन पुमान् भवेत् ॥३६
दमनोन्मादकर्ता च सर्वस्य जगतः प्रभुः । भवेद् भुजबलोपेतस्ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥३७

करने पर उत्तम जाति की प्राप्ति होतीहै । तथा भारत ! इस भूतल पर उसकी सभी कामनाएँ सफल होती रहती है । इस प्रकार गोसहस्र के फल प्राप्ति पूर्वक वह ब्रह्मलोक में पूजनीय होता है । ज्येष्ठ मास में मालती पुष्प की माला और खांड पूरित नैवेद्य के अर्पण द्वारा प्रद्युम्न की आराधना एवं रात्रि में लवंग के प्राशन करने से ज्येष्ठ पद समेत भगवान् जनार्दन से लक्ष्मी प्राप्त होती है । इस धरातल पर सैकड़ों वर्ष तक समस्त सुखों के अनुभव एवं एक सौ आठ गुने वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। आषाढ मास में पुष्प, धूप आदि नैवेद्य द्वारा उमापति महादेव की अर्चना और तिलोदक के प्राशन करने से तिलोत्तमा के समान रूप लावण्य प्राप्त कर वह स्त्री सौ वर्ष तक सुखी जवन व्यतीत करती है । श्रावण मास में तिल पुष्प, एवं लड्डू के नैवेद्य द्वारा उमापति की अर्चना तथा कृष्ण तिल के प्राशन करने से पौंडरीक (विष्णु) यज्ञ के फल प्राप्ति समेत वह शत्रु पक्ष का विनाशक राजा होता है। भाद्रपद मास में कुंकुम केसर द्वारा सदाशिव की अर्चा सोलिका नैवेद्य के समेत रात्रि में अगुरु के प्राशन करने पर वह व्रती इस भूतल पर गुरु होता है ।२३-३२। और अपने पुत्र पौत्र समेत अनेक भाँति के मनोनीत सुखभोग करके उक्त यज्ञ की फल प्राप्ति पूर्वक विष्णु लोक में पूजनीय होता है । आश्विन मास में सिंदूर पुष्प की माला से त्रिदशाधिपति (देवनायक शिव) की आराधना सुवर्णादि के प्राशन करने पर सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण प्राप्त होता है, तथा रूपवान्, सुभग, सत्यवक्ता होते हुए अनेक भाँति के उपभोग एवं कोटि सुवर्ण दान के फल प्राप्त करता है । कार्तिक मास में समस्त पुष्पों से भगवान् विश्वेश्वर की अर्चना और दमन फल प्राशन करने से वह दमन की भाँति गुण प्राप्त कर उसके समान उन्माद कर्ता एवं समस्त संसार का प्रभु होता है। अपने भुजाओं के असीम बल द्वारा

---

१. विद्येश्वरम् ।

एवं संवत्सरस्यान्ते पारितेऽस्मिन्व्रतोत्तमे । यत्कर्तव्यं तदधुना श्रूयतां कुरुनन्दन ॥३८
व्रते विघ्नो यदा च स्यादशक्त्या सूतकेन वा । उपोष्यमेवोपवसेत्तदा द्रुमपुरः पुनः ॥३९
पूर्वोक्तमेवं निर्वत्य सौवर्णं कारयेच्छिवम् । ताम्रपात्रे तु संस्थाप्य कलशोपरि विन्यसेत् ॥४०
शुक्लवस्त्रेण सञ्छाद्य पुष्पनैवेद्यपूजितम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं शिवभक्ताय सुव्रत ॥४१
शक्तिमाञ्छयनं दद्याद्गां सवत्सां पयस्विनीम् । छत्रोपानात्प्रदातव्यं कलशाः सोदकास्तथा ॥४२
शान्ताश्च केचिदिच्छन्ति शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । पञ्चामृतेन स्नानं च तस्मिन्नहनि कारयेत् ॥४३
देवदेवस्य राजेन्द्र पुष्पदीपान्नसंयुतम् । भोजनं च यथा शक्त्या षड्रसंमधुरोत्तमम् ॥४४
प्रदद्याच्छिवभक्तेभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना । एवं निर्वर्त्य विधिवत्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ॥४५
नारी वा भरतश्रेष्ठ कुमारी वा यतव्रता । पारिते तु व्रते पश्चात्कुर्याच्च सुमहोत्सवम् ॥४६
अनेन विधिना कुर्याद्यस्त्वनङ्गत्रयोदशीम् । स राज्यं निहतामित्रं[1] कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥४७
सौभाग्यं महदाप्नोति यावज्जन्मशतं नृप । ततो निर्वाणमायाति शिवलोकं च गच्छति ॥४८

कामेन या किल पुरा समुपोषितासीच्छुभ्रा तिथिस्त्रिदशमी सुशुभाङ्गहेतोः ।
तां प्राशनैरुदितनामयुतैरुपेतां कृत्वा प्रयाति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वण्यनङ्गत्रयोदशीव्रतवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।९०

सुखोपभोग करने के अनन्तर शिवलोक की प्राप्ति करता है ।३३-३७। यदुनन्दन ! इस भाँति सम्वत्सर (वर्ष) की समाप्ति होने पर इस परमोत्तम व्रत के विषय में मनुष्यों के क्या कर्तव्य होते हैं, तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! इस व्रतानुष्ठान के समय अशक्त होने अथवा सूतक प्राप्ति द्वारा किसी भाँति के विघ्न उपस्थित होने पर उसे उपवन (बगीचे) में उपवास रहकर उसके समस्त नियमों के पालन करना चाहिए । भगवान् शंकर की सुवर्ण प्रतिमा ताम्रपात्र में स्थापित कर कलश के उपर रखे और वस्त्र से आच्छन्न करते हुए पुष्प, नैवेद्य द्वारा उसकी सविधान अर्चना करने के उपरान्त किसी शिव भक्त एवं विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । सुव्रते ! उस शक्ति सम्पन्न व्रती को उस समय सुसज्जित शय्या, दूध देने वाली सवत्सा गौ, धन, उपानह और जलपूर्ण कलश के दान करना चाहिए । कुछ शांत वादियों ने शक्ति समेत दक्षिणा प्रदान करना बताया है । राजेन्द्र ! उस दिन देवनायक शिव की प्रतिमा को पंचामृत द्वारा स्नान, और पुष्प दीप आदि से अर्चना करने के अनन्तर यथा शक्ति षड्रस के मधुर भोजनों द्वारा शिवभक्त एवं विद्वान् ब्राह्मणों को विशुद्ध अन्तः करण भली भाँति तृप्त करने वाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है । भरत श्रेष्ठ ! नारी अथवा संयम पूर्वक व्रत को सुसम्पन्न करने वाली कुमारी को व्रत समाप्ति के दिन परम महोत्सव करना चाहिए । नृप ! इस विधान द्वारा इस अनंग त्रयोदशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष शत्रुहीन राज्य कीर्ति आयु, यश, बल एवं महान् सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक अपने सैकड़ों जन्मों तक प्राप्त सुखानुभूति करते हुए अन्त में निर्वाण पद एवं शिवलोक की प्राप्ति करता है । इस प्रकार अपने सर्वाङ्ग सुन्दर होने हेतु कामदेव ने इस शुभ तिथि त्रयोदशी में उपवास एवं (शिवके) पूजन किया था । अतः प्रत्येक मास में बताये गये उपरोक्त प्राशनों द्वारा उस तिथि में उपवास और पूजन करने पर चन्द्रचूड (शिव) का पावन परम पद प्राप्त होता है ।३८-४९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में अनंग त्रयोदशी व्रत वर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।९०।

---

१. मम ।

अथैकनवतितमोऽध्यायः

पालीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अम्बुपूर्णतडागेषु महातोयाशयेषु च । कस्यार्थं सम्प्रयच्छन्ति कृष्णैताः कुलयोषितः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

मासि भद्रपदे प्राप्ते शुक्ले भूततिथौ नृप । तडागपाल्यां दातव्यं वरुणायार्घ्यमुत्तमम् ॥२
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिस्तथैव च । तस्मिन्दिने भक्तिनम्रैर्देयादर्घ्यं युधिष्ठिर ॥३
पुष्पैः फलैस्तथा वस्त्रैर्दीपालक्तकचन्दनैः । अनग्निपाकसिद्धान्नैस्तिलतण्डुलमिश्रकैः ॥४
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च बीजपूर्णारकैस्तथा । द्राक्षादाडिमपूगैश्च त्रपुसैश्चापि पूजयेत् ॥५
आलिख्य मण्डले देवं वरुणं वारुणीयुतम् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र पूजयेद्भक्तिभावतः ॥६
वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पते । अपाम्पते नमस्तेऽस्तु रसानाम्पतये नमः ॥७
मा क्लेदं मा च दौर्गंध्यं विरस्यं मा मुखेऽस्तु मे । वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदा मम (स्वाहा) ॥८
एवं यः पूजयेद्भक्त्या वरुणं वरुणालयम् । मध्याह्ने सरसि स्नात्वा नग्निपाकी व्रती नृप[1] ॥९
चातुर्वर्ण्यथ वै नारी व्रतेनानेन पाण्डव । नैवेद्यं ब्राह्मणे देयं यन्नैवेद्ये प्रकल्पितम् ॥१०

अध्याय ९१

पालीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! अगाध सरोवर आदि महान् जलाशय में ये कुल वधुएँ किसके लिए निमित्त (अर्घ्य) प्रदान करती हैं मुझे बताने की कृपा कीजिए । १

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! भाद्रपद मास के शुक्ल चतुर्दशी के दिन 'तडाग' 'पाली' व्रत विधान करने लिए अर्घ्य प्रदान करना बताया गया है । युधिष्ठिर ! उस दिन भक्ति पूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, एवं स्त्रियों को इस प्रकार अर्घ्य प्रदान करना चाहिए जिसमें पुष्प, फल, वस्त्र, दीप, अलक्तक (महावर), चन्दन, अनाग्नि, पाकं तिल चावल मिश्रित सिद्धान्न, खजूर, नारियल, बिजौरा नीबू, द्राक्षा (किसमिस) दाडिम (अनार), पूंगीफल (सुपारी) और ककडी फल मिश्रित हो । राजेन्द्र ! मण्डल में वरुण दम्पति की मूर्ति स्थापित कर इस मंत्र द्वारा भक्ति भावना से पूजन करे वरुण को नमस्कार है, जलनिधि को नमस्कार है, जल पति एवं रसों के अधीश्वर को नमस्कार है देव ! क्लेश, दुर्गंध एवं नीरसता मेरे मुख में कभी न हो अपने वरुण भर्ता समेत वारुणी मेरे लिए सदैव वरदानार्थ प्रस्तुत रहें । २-८। नृप ! इस प्रकार विधान द्वारा मध्याह्न के समय सरोवर में स्नान कर नग्नि पाकी रहकर चारों वर्ण के सभी नारी नर इस व्रत को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण को शास्त्र निर्णीत नैवेद्य प्रदान करें । इस भाँति परमोत्तम पाली

---

१. मम ।

एवं यः कुरुते पार्थ पालीव्रतमुत्तमम् । तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥११
संरुद्धशुद्धसलिलातिबलां विशालां पालीमुपेत्य बहुभिस्तरुभिः कृतालीम् ।
ये पूजयन्ति वरुणं सहितं समुद्रैस्तेषां गृहे भवति भूतिरलब्धनाशः ॥१२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पालीव्रतवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ।९१

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

रम्भाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अस्मिन्नेव दिने पार्थ शृणु ब्रह्मसभातले । देवलेन पुरा गीतं देवर्षिगणसन्निधौ ॥१
अप्सरोगणगन्धर्वैर्देवैः सर्वैः समर्चितम्[1] । संसारासारतां दृष्ट्वा तत्रस्थकदलीद्रुमे ॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे नृप ॥२
दत्तमर्घ्यं वरस्त्रीभिः फलैर्नानाविधैः शुभैः । विरूढैः सप्तधान्यैश्च दीपालक्तकचन्दनैः ॥३
दधिदूर्वाक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । जातीफलैर्लवङ्गैश्च तथैलालवलीफलैः ॥४
कदलैः कन्दरभटैर्मोचा सात्र निगद्यते । तस्मिन्नहनि दातव्यं स्त्रीभिः सर्वाभिरप्यलम् ॥५

व्रत को सुसम्पन्न करने वाला उसी समय समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है । शुद्ध जल के अवरोध करने वाली उस बलातिक्रांत एवं विशाल पाली में पहुँच कर जो अनेक तरुवरों से सुसज्जित की जाती है, समुद्र समेत वरुण दम्पति के सविधान पूजन करने वाले को अचल भूमि की प्राप्ति होती है ।९-१२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में पालीव्रतवर्णन नामक इक्यानबेवां अध्याय समाप्त ।९१।

अध्याय ९२

रम्भा-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में इसी (चतुदर्शी) दिन देवल जी ने देव एवं ऋषि गणों के बीच ब्रह्मा सभा में बताया है । संसार की प्रसारता को ध्यान में रखकर अप्सराओं गन्धर्व एवं देवों ने वहाँ कदली वृक्ष पर उसी अनुसार उसी भावना से पूजन भी किया था, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! नृप ! भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन सभी स्त्रियों को अनेक भाँति के शुभ फल, हरे सप्त धान्य, दीप, अलक्तक, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, घृत प्लुत नैवेद्य, जाप फल लवंग, इलायची, लवली फल, कदली, तथा कदंर भट द्वारा जिसे मोंचा भी कहा जाता है, वह अर्घ्य मंत्रोच्चारण पूर्वक प्रदान करना

---

१. समन्वितम् ।

मन्त्रेणानेन चैवार्घ्यं शृणुष्व च नराधिप ! चित्या त्वं कन्दलदलैः कदले कामदायिनि ॥
शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥६
इत्थं यः पूजयेद्राजा पुरुषो भक्तिमान्नृप । नारी वानग्निगाकान्ता चातुर्वर्ण्या युधिष्ठिर ॥७
तस्याः कुले न भवति क्वचिन्नारी कुलाटनी । दुर्गता दुर्भगा वन्ध्यास्वैरिणी पापकारिणी ॥८
विलासिनी वा वृषली पुनर्भूः पुनरेतसी । गणिका स्वैरिणी वोढा मूल्यकर्मकरी खला ॥९
भर्तृ व्रतात्प्रचलिता न कदाचित्प्रजायते । भवेत्सौभाग्यसौख्याढ्या पुत्रपौत्रैस्तथावृता ॥
आयुष्मती कीर्तिमती स्नेद्वर्षशतैर्भुवि ॥१०
एकं रम्भा व्रतं चीर्णं गायत्र्या स्वर्गसंस्थया ! तथा गौर्या च कैलास इन्द्राण्या नन्दने वने ॥११
श्वेतद्वीपे तथा लक्ष्म्या राज्ञ्या च रविमण्डले । अरुन्धत्या दारुवने स्वाहया मेरुपर्वते ॥१२
सीतादेव्या त्वयोध्यायां वेदवत्या हिमाचले । भानुमत्या नागपुरे व्रतमेतदनुष्ठितम् ॥१३
एतद्व्रतं पार्थिवेन्द्र मासि भाद्रपदे सिते । या करोति न सा दुःखैः कदाचिदपि पीड्यते ॥१४
संभिन्नकन्दकदलीं च मनोज्ञरूपां याः पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
तासां गृहेषु न भवन्ति कदाचिदेव नार्यस्त्वनार्यचरिता विधवा विरूपाः ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रम्भाव्रतवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।९२

चाहिए ।१-५। नराधिप ! अनन्तर इस प्रकार क्षमायाचना करके कि कदली दल में निवास करने वाली कामदायिनी देवि ! इन कदली पुष्पों द्वारा अग्नि (के समान) प्रज्वलित होती है । मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे आरोग्य एवं रूप लावण्य प्रदान करने की कृपा करे । नृप ! इस प्रकार जो राजा, भक्तिमान् पुरुष अथवा नारी इसे सुसम्पन्न करती है, युधिष्ठिर ! उसके कुल में कोई स्त्री कुलटा, दुर्गति दुःखी, दुर्भगा, वंध्या, स्वतन्त्र बिहार करने वाली, पापिनी, विलासिनी, वृषली (शूद्री), पुनर्भू, निर्वाहित, व्यभिचारिणी, गणिका, स्वतन्त्र भारवाहिनी, सवैतनिक दासी नहीं है । किन्तु वह अपने पतिव्रता धर्म से कभी भी विचलित नहीं होती है । अपने पुत्र पौत्र समेत अगाध सुख सौभाग्य के अनुभव पूर्वक आयुष्मती और यशस्विनी रहकर इस भूतल पर सैकड़ों वर्ष तक पति के साथ विहार करती है । इसी एक रम्भा व्रत को स्वर्ग में रहकर गायत्री, कैलास में गौरी, नन्दन वन में इन्द्राणी, श्वेत द्वीप में लक्ष्मी, सूर्य मण्डल में उनकी बली राज्ञी दारुन में अरून्धती, मेरू पर्वत पर स्वाहा, अयोध्या पुरी में सीता जी, हिमालय पर वेदवती और नागपुरी में भानुमती देवी ने सविधान सुसम्पन्न किया है । पार्थवेन्द्र ! भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में इस व्रतानुष्ठान को न करने वाली स्त्री अनेक दुःखों का अनुभव करती है । इस प्रकार किसी कदली वृक्ष में मनोहर रूप की भावना कर पुष्प, अक्षत धूप, एवं दीप आदि द्वारा सविधान पूजन करने वाली स्त्रियों के कुल में कोई स्त्री अनार्यचरित, विधवा एवं कुरूपा नहीं होती है ।६-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
रम्भा व्रत वर्णन नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९२।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

आग्नेयीचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

चतुर्दशी महाराज हुतभुग्दयिता शुभा । नष्टस्तदा हव्यवाहः पुनस्तित्वमाप्तवान् ॥१

युधिष्ठिर उवाच

कथमग्निः पुरा नष्टो देवकार्येप्युपस्थितः । केनाग्नित्वं कृतं तत्र कथं हि विदितोऽनलः ॥
एतद्वदस्व देवेश सर्वं हि विदितं तव ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा सुरा महाराज तारकेण पराजिताः । अपृच्छन्विश्वकर्तारं तारकं को वधिष्यति ॥३
उवाचासौ चिरं ध्यात्वा रुद्रोमाशुक्रसम्भवः । गङ्गास्वाहाग्नितेजोजः शिशुर्दैत्यं वधिष्यति ॥४
एवं श्रुत्वा गता देवा यत्र शम्भुः सहोमया । प्रणम्य ते तमूचुर्हि यदुक्तं ब्रह्मणा तदा ॥५
प्रतिपन्नं च रुद्रेण उमया सहितेन तत् । प्रयत्नमकरोत्तं च य उक्तोमरसत्तमैः ॥६
दिव्यं वर्षशतं साग्रं गतः कालोऽस्य मैथुने । न चाप्युपरमस्तत्र तयोरासीत्कथञ्चन ॥
भयं च सुमहत्तेषां देवानां समजायत ॥७

अध्याय ९३

आग्नेयीचतुर्दशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चतुर्दशी तिथि अग्नि की परम प्रेयसी है, क्योंकि नष्ट होते हुए भी अग्नि देव में इसी दिन पुनः अस्तित्व प्राप्त किया था।१

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश! पहले समय में एकबार देवकार्य में संलग्न रहने पर भी अग्नि देव सर्वथा विनष्ट हो चुके थे, तो किसके द्वारा उन्हें अग्नित्व प्राप्त हुआ और अनन्त नाम से उनकी ख्याति कैसे हुई। इसका रहस्य आप को भली भाँति मालूम है अतः मुझे बताने की कृपा करें।२

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में तारकासुर द्वारा पराजित होने पर देवों ने विश्वस्रष्टा ब्रह्मा के पास जाकर उनसे पूछा कि— तारकासुर का वध कौन करेगा। चिरकाल तक ध्यान करने के अनन्तर उन्होंने कहा—रुद्र-उमा के तेज से उत्पन्न पुत्र, जिसे गंगा, स्वाहा और अग्नि के तेज से उत्पन्न होना भी बताया जायेगा, उस दैत्य का वध करेगा। इसे सुनकर देवों ने उमा समेत शिव जी जिस स्थान में रहता था, वहाँ जाकर ब्रह्मा की कही हुई सभी बातें उनसे कहा—अनन्तर देवों के कथनानुसार रुद्र ने उमा समेत उस प्रयत्न को प्रारम्भ किया। मैथुन करते हुए उनके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत जाने पर भी उन दोनों का किसी प्रकार विराम नहीं हुआ। इसे देखकर देवों को अत्यन्त भय हुआ।३-७। उन्होंने सोचा—रुद्र से उत्पन्न

स रुद्रसम्भवो यो वै भविष्यति महाबलः । स दैत्यान्दानवगणान्वधिष्यति न संशयः ॥८
केन कालेन भवति रतेर्विरतिरेतयोः । एतद्विचिन्त्य प्रहितौ देवैस्तत्रानिलाननौ ॥९
गतौ तौ चोमया दृष्टौ समस्थौ विषमस्यथा । शशाप च रुषा देवी देवान्गर्भविवर्जिता ॥१०
यस्मात्तैर्जनितो विघ्नो मेऽपत्यार्थे दिवौकसाम् । तस्मात्ते स्वेषु दारेषु जनयिष्यन्ति न प्रजाः ॥११
अथोवाच तदा देवो देवान्सर्वगणाञ्छनैः । अग्निर्गृह्णातु वीर्यं मे संभृतं सुचिरं हि यत् ॥१२
एवमुक्तोथ रुद्रेण नष्टोऽग्निर्देवसङ्कुलात् । न स्वस्थो न भुविस्थो वा न सूर्यस्थो न च भूतले ॥१३
देवा अन्वेषणे यत्नमकुर्वन्नग्निदर्शने । कृमिकीटपतङ्गाश्च अष्टौ च त्रिदिवौकसः ॥१४
हंसाः केकाः शुकाः वह्निः शीघ्रं शरवणं गताः । शशापाग्निर्गजा जिह्वा द्विगुणो वा भविष्यति ॥१५
दृष्ट्वाथ विबुधाः सर्वे पक्षिणं पक्षिणां वरम् । जीवं जीवकनामानं भोभोः सत्यं वदस्व नः ॥१६
कच्चिदृष्टस्त्वया वह्निर्वनेऽस्मिन्नटता सदा । नाभद्रं नापि भद्रं वा किञ्चिदेव वचोऽब्रवीत् ॥१७
भूयोभूयस्तु पृष्टोऽपि न गामुच्चारयेच्चिरम् । तुष्टस्तस्याब्रवीद्वह्निर्जीवंजीव वदामि ते ॥१८
यस्मान्न किञ्चिदुक्तं ते तस्माच्चित्रतनूरुहाः । जीव जीव पुनर्जीव यावदिच्छा तथायुषः ॥१९
द्वितीयं ते वरं दद्मो जीवंजीवक शोभनम् । व्यक्ता ते मानुषी वाचा स्पष्टार्था च भविष्यति ॥२०
कश्चिद्यदि तवाधस्थाद्बुधः स्नानं करिष्यति । वंध्या वा षोडशाब्दीया क्षणाद्बालो भविष्यति ॥२१
मासं यश्च तृतीयं वै भक्षयिष्यत्यनिंदितम् । अजरः सोऽमरश्चैव सर्वकालं भविष्यति ॥२२

होने वाला अवश्य महाबली होगा और दैत्य-दानव गणों का वध भी करने में समर्थ होगा, किन्तु इन दोनों के रति का विराम कब होगा! यह सोचकर देवों ने विप्र और अग्नि को वहाँ भेजा । वे दोनों गये और मैंने देखा भी कि वे विषम परिस्थित में फंस गये हैं—देवी को गर्भ नहीं हुआ था, इसी लिए रुष्ट होकर उन्होंने देवों को शाप दिया कि —देवों के निमित्त संतान उत्पन्न करने में तुम लोगों ने विघ्न उपस्थित किया है (अतः तुम्हारी स्त्रियों को कोई सन्तान न होगी ।) अनन्तर शंकर देव ने समस्तदेव गणों से कहा कि—इस मेरे चिर संचित वीर्य को अग्नि ग्रहण करें। इस प्रकार कहकर रुद्र के निकले हुए तेजरूप वीर्य से अग्नि सर्वथा नष्ट हो गये आकाश, भूतल एवं सूर्य के यहाँ कहीं भी उनका पता न चला । वहाँ देवों ने भी अग्नि दर्शनार्थ उनके अन्वेषण में अत्यन्त प्रयत्न किया—कृमि, कीट, पतंग, आठ भाँति के देव, हंस, केका (मयूर) तथा शुक्र आदि के स्थानों मे खोजा । अग्नि नहीं मिले । अग्नि शरवण में पहुँच गये थे । अग्नि को शाप दिया था कि—गज की भाँति दुगुनी जिह्वा तुम्हारी होगी । अनन्तर देवों के एक सर्वोत्तम पक्ष देखा जिसे जीवक कहा जाता है, और कहा—भो! हम लोगों से सत्य-सत्य बताइये —इस पुण्य में भ्रमण करते आप ने कहीं अग्नि का देखा है, इसके अनन्तर में उस पक्षी ने शुक्र-प्रशुक्र कोई बात नहीं कही । यहाँ तक कि बार-बार पूछने पर भी बहुत समय तक उसने कुछ बोला ही नहीं । इससे प्रसन्न होकर अग्नि के जीव-जीवक पक्षी से कहा—तुमने कुछ नहीं कहा, इससे मैं प्रसन्न होकर वरदान दे रहा हूँ कि—जीवंजीव! तुम अपनी इच्छानुसार आयु प्राप्त कर जीवित रहो। मैं तुम्हें एक सुन्दर वरदान दे रहा हूँ कि—तुम्हारी वाणी मनुष्य की भाँति स्पष्ट अर्थ बताने वाली होगी, तुम्हारे नीचे विद्वान् अथवा वंध्या सभी कोई भी सोलह वर्ष की आयु वाले यदि स्नान करेंगे तो उसी समय बालक रूप हो जाँयगे।८-२१। और निंदित मांस का भोजी सदैव अजर-अमर होगा। इस प्रकार उसे वर प्रदान करने

इदं दत्त्वा वरांस्तस्य वह्नित्वमथ आप्तवान् । विबुधा अपि तत्रैव तमदृश्यंतं वंशगम् ॥२३
ऊष्मया जातकल्माषं ज्ञात्वा संहृष्टमानसः । तुष्टा वंशमथोचुस्ते देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥२४
ऊष्मया कल्मषीभूय ह्यग्निर्गर्भं धरिष्यति । यो गृही वैणवीं यष्टिं ब्रह्मचारी च नैष्ठिकः ॥२५
पण्डाग्निपालने पुण्यं यद्दृष्टं ब्रह्मवादिभिः । वदंतं कल्मषीयष्टिस्तं प्राप्नोति द्विजोत्तमम् ॥२६
वंशस्यानुग्रहं कृत्वा देव्याहृतिनथाब्रुवन् । गृह्णीत शुक्रं भद्रस्य तव पुत्रो भविष्यति ॥२७

युधिष्ठिर उवाच

यदाग्निर्नष्टो देवानां केनाग्नित्वं तदा कृतम् । भूयोऽपि केन कालेन अग्निरग्नित्वमाप्तवान् ॥२८

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रनष्टेऽग्नौ येनाग्नित्वं कदाचन । यस्मिन्काले तिथौ यस्यां पुनरग्नित्वमाप्तवान् ॥२९
उतथ्याङ्गिरसोः पूर्वमासीद्व्यतिकरो महान् । अहं विद्यातपोभ्यां वै तव ज्यायाञ्छ्रुतेन च ॥
उतथ्येनैवमुक्तस्तु अङ्गिराः प्राह तं मुनिम् ॥३०
गच्छावो ब्रह्मसदनं मरीचिप्रमुखैर्द्विजैः । उपेतं चान्यमुनिभिर्ब्रह्मराजर्षिसत्तमैः ॥
उतथ्यः प्राहसद्ब्रह्मनृषींस्तांस्तान्स्तब्धमानसः ॥३१
ज्यायान्वा कतमोस्माकमिति नः कथ्यतां स्फुटम् ॥३२
अथोवाच मुनिर्ब्रह्मा तावुभौ क्रुद्धमानसौ । आनयध्वं द्रुतं गत्वा विबुधान् भुवनेश्वरान् ॥३३

के अनन्तर उन्होंने अग्नित्व प्राप्त किया, जहाँ देवगण भी अपने उस रूप वंशग को देख रहे थे।९-२३। (अग्नि की) गर्मी से वहाँ (धूएँ द्वारा) अंधेरा होने देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए देवों एवं त्रिभुवनेश्वरों ने अग्नि की प्रशंसा करते हुए कहा—अपनी उष्मा द्वारा कल्मष (धुआँ) उत्पन्न कर अग्नि निश्चय गर्भ धारण करेंगे। गृहस्थ अथवा नैष्टिक ब्रह्मचारी को वेणु-यष्टि (बाँस की छड़ी) ग्रहण कर न वही पुण्य प्राप्त होता है, जो पण्डाग्नि के पालन करने में ब्रह्म वेत्ताओं ने बताया है। द्विजोत्तम! उसी भाँति कलमषी यष्टि भी उसे कहने वाले को ही प्राप्त होता है। देवी (पार्वती) ने भी अपने वंश के ऊपर अनुग्रह करते हुए कहा—कल्याण स्वरूप शिव के वीर्य को तुम लोग धारण करो, उससे तुम्हें पुत्र अवश्य होगा।२२-२७

युधिष्ठिर ने कहा—देवकार्यार्थ उपस्थित अग्नि को किस ने नष्ट किया, उन्हें किसके द्वारा अग्नित्व प्राप्त हुआ और पुनः अग्नि को किस समय अग्नित्व प्राप्त हुआ था।२८

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अग्नि कैसे नष्ट हुए, अग्नित्व कैसे प्राप्त हुआ और किस समय अग्नि को पुनः अग्नित्व की प्राप्त हुई। मैं बता रहा हूँ, सुनो! पहले समय में उतथ्य और अंगिरा नामक ऋषियों में महान् विवाद आरम्भ था, विद्या, तप एवं वेदाध्याय मैं ही सर्व श्रेष्ठ हूँ, उतथ्य के ऐसा कहने पर अंगिरा ने उनसे कहा—मरीचि आदि प्रमुख द्विजों के साथ हम लोग ब्रह्मा के भवन में चलकर वहाँ इसका निर्णय कर लें। श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि एवं राजर्षि तथा अन्य ऋषियों के साथ वहाँ पहुँचने पर उतथ्य ने कुछ सस्मित-सा होकर ब्रह्मा तथा उन ऋषियों के समक्ष कहा कि—आप लोग यह स्पष्ट बताने की कृपा करें कि—हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है! अनन्तर ब्रह्मा ने उन दोनों क्रुद्ध मुनियों से कहा—सर्व प्रथम तुम दोनों शीघ्र जाकर सभी

ततो विवादं पश्यामि भवतां तैः समेत्य च। ततस्तौ सहितौ नत्वाऽऽनिन्यतुश्च ऋषींस्तदा ॥३४
लोकपालान्महेन्द्रादीनसयमान्वारुणानिलान्। साध्यान्मरुद्गणान्विश्वानृषीन्भृग्वग्निनारदान्॥३५
गन्धर्वान्वित्तरक्षोघ्नान्राक्षसान्दैत्यदानवान्। नायातस्तत्र तिग्मांशुः सर्वे चान्ये समागताः ॥३६
दृष्ट्वा तु विबुधान्सर्वान्ब्रह्मा प्रोवाच तानृषीन्। आनयध्वमितः सूर्यं साम्ना दंडेन वा पुनः ॥३७
एवमुक्तो गतस्तावदुतथ्यः सूर्यमण्डलम्। स गत्वा प्राह मार्तण्डं शीघ्रमेह्येव संविदम् ॥३८
स उतथ्यमथोवाच कथं ब्रह्मन्व्रजाम्यहम्। एवमुक्त्वा गतः सूर्यो भुवने मयि निर्गते ॥३९
एवमुक्तो मुनिः प्रायात्सर्वं देवसमागमम्। आचचक्षे च यत्प्रोक्तं भास्वता तपनं प्रति ॥४०
उवाचाङ्गिरसं ब्रह्मा शीघ्रमेनं त्वमानय। स तथोक्तो गतस्तत्र यत्रासौ तपते रविः ॥४१
एह्येहि भगवन् सूर्य तप्यते भवतान्वहम्। एवमुक्तो गतः सूर्यो यत्र देवाः समागताः ॥४२
स्थित्वा मुहूर्तं प्रोवाच किं वा कार्यमुपस्थितम्। पृच्छन्तमेव मार्तंडं ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ॥४३
गच्छ शीघ्रं न दहते भुवनं यावदङ्गिराः। लब्धप्रायं तु गोलोकं वर्तते कृष्णपिङ्गलम् ॥४४
पाटलो हरितः शोणः श्वेतो वर्णः प्रणाशितः। शाकद्वीपं कुशद्वीपं कौञ्चद्वीपं सपन्नगम् ॥
दग्धमङ्गिरसा सर्वं भूयोऽपि प्रदहिष्यति ॥४५
यावच्च दहते सर्वं भुवनं तपसांगिराः। गच्छ तावदितः शीघ्रं स्वस्थाने तप भास्कर ॥४६

देवों एवं भुवनाधीश्वरों को यहाँ ले आओ।२९-३३। तदुपरांत उनके समक्ष इसी भवन में इस विवाद का निर्णय किया जायेगा। इसे सुनकर वे दोनों सभी ऋषियों आदि को बुला लाये जिसमें लोकपाल महेन्द्र आदि देव, यम, वरुण, वायु, साध्य, मरुद्गण, विश्वावसु, भृगु, अग्नि, नारद आदि ऋषि, धन-रक्षक गन्धर्व, राक्षस, दैत्य, दानव सभी उपस्थित थे। किन्तु प्रखर किरण वाले सूर्य न आ सके। ब्रह्मा ने देवगण आदि सभी को वहाँ देखकर भी उन ऋषियों से यह कहा कि—साम (शान्ति) अथवा दण्ड उपाय द्वारा यहाँ सूर्य को अवश्य लाओ। ऐसा कहने पर उतथ्य ने सूर्य-मण्डल का प्रस्थान किया।३४-३८। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने सूर्य से कहा कि —आप शीघ्र यहाँ पहुँचने का प्रयत्न करें, यही समाचार है। ऐसा कहने पर उन्होंने उतथ्य ऋषि से कहा—'ब्रह्मन्! मैं कैसे चल सकता हूँ! इतना कह कर सूर्य मेरे उस भवन में चले गये जहाँ मैं रह नहीं रहा था। और उतथ्य ने भी उनकी बात सुन कर देवों के बीच आ सुनाया। जिसे सूर्य ने उनसे कहा था। इसे सुनकर ब्रह्मा ने अंगिरा से कहा—तुम इन्हें शीघ्र लाओ! उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर वहाँ का प्रस्थान किया जहाँ रहते हुए सूर्य अपने अखण्ड तेज प्रकाशित कर रहे थे।३९-४१। उन्होंने कहा—भगवान् सूर्य! आप नित्य ऐसे ही तपा करते हैं! आइये, आइये मेरे साथ चलिये। ऐसा कहने पर सूर्य सहर्ष चल पड़े और देवों के बीच पहुँच कर क्षण के उपरांत उन्होंने कहा—'मेरे योग्य कौन कार्य उपस्थित है। मार्तण्ड के ऐसा पूछने पर ब्रह्मा ने सादर कहा—अंगिरा ऋषि उस अपने को दग्ध कर देना चाहते हैं अतः उसके सूर्य वहाँ पहुँच जाओ। प्रायः जो लोक की शेष रहा है, किन्तु फिर भी कृष्ण-पिंगल ही हो गया, नये रक्त-हरितस्व और रक्त वर्ण दिखायी देता है। उसका श्वेत वर्ण तो सर्वथा नष्ट हो गया। शाक द्वीप, कुश द्वीप और अलग समेत क्रौंच द्वीप आदि समस्त को अंगिरा ने दग्ध कर डाला है तथा फिर भी करने के लिए उद्यत हैं। भास्कर! जब तक अंगिरा समस्त लोकों के दहन न करें, उसके पूर्व ही तुम यहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर पुनः अपन स्थानस्थित रह कर प्रकाश करो।४२-४६। विप्र ब्रह्मा के

एवमुक्तः स विभुना स्वस्थानमधिरूढवान् । विसृष्टवानंगिरसं सकाशममृताशिनाम् ॥४७
गत्वाङ्गिरा उवाचेदं गतः किं करवाण्यहम् । देवा अङ्गिरसं प्राहुस्तपोराशिमकल्मषम् ॥४८
संप्रशस्योचुरग्नित्वं कुरु तावन्महीतले । पूर्वं यथाग्निः कृतवांस्तथा त्वमपि सत्तम ॥४९
यावदग्निं प्रपश्यामः क्वासौनष्टः क्व तिष्ठति । एवमुक्तः सदेवैस्तु अग्नित्वं कृतवांस्तदा ॥५०
देवैर्दृष्टो यथा ह्यग्निस्तत्ते सर्वं निवेदितम् । देवकार्ये कृते तस्मिन्देवावह्निमथाब्रुवन् ॥५१
अग्नेऽग्नित्वं कुरुष्व त्वमङ्गिरास्तु यथा पुरा । एवमुक्तः सुरैर्वह्निश्चिन्तयामास दुःखितः ॥५२
केन मेऽपहृतं तेजः केनाग्नित्वं कृतं त्विह । दृष्ट्वाथाग्निरङ्गिरसं तेजोराशिमकल्मषम् ॥५३
उवाच मुञ्च मत्स्थानं वचस्तोषकरं शृणु । अहं ते तनयश्चेष्टो भविष्ये प्रथमे शुभे ॥५४
बृहस्पतीति नाम्ना वै तथान्ये बहवः सुताः । एवमुक्तो मुनिस्तुष्टो बहूंश्चाजनयत्सुतान् ॥५५
वह्निं तंजनयामास पुत्रान्पौत्रांस्तदाङ्गिराः । अवाप पुनरग्नित्वमग्निस्तस्यां तिथौ नृप ॥५६
सर्वमेव चतुर्दश्यां संजातं हव्यवाहनम् । हव्यवाहनदेवानां भूतानां गुह्यचारितम् ॥५७
ततोष्टपतिपत्वे च रुद्रेण प्रतिपादितम् । पूजितेयं तिथिर्देवैर्दिविस्थैश्च नृपैरपि ॥५८
पैलजाबालिमन्वाद्यैरन्यैश्च नहुषादिभिः । विषशस्त्रहतानां च संग्रामेन्यत्र ते क्वचित् ॥५९
अज्ञातावृषपापैश्च व्यालैर्य व्याप्य हिंसिताः । नदीप्रवाहपतितः समुद्रे पर्वतेऽध्वनि ॥६०

इस प्रकार कहने पर सूर्य अपने स्थान पर अधिकार प्राप्त किया । देवों के साथ अंगिरा को भी वहाँ से विसर्जित करने पर अंगिरा ने देवों के पास जाकर उनसे कहा—मेरे योग्य कौन कार्य है! इसे सुनकर उस तपोनिधि अंगिरा से देवों ने प्रशंसा पूर्वक कहा—सत्तम! पूर्व काल में जिस भाँति अग्नि द्वारा सभी कार्य सुसम्पन्न होता था, उसी भाँति इस भूतल में तुम भी अग्नित्व की स्थापना करो । हम लोग तब तक अग्नि का अन्वेषण करेंगे कि —अग्नि कहाँ पर छिपा दिये हैं और कहाँ रह रहे हैं । देवों के इस प्रकार कहने पर उन्होंने अग्नि की स्थापना की । इस भाँति मैंने देवों को जिस प्रकार पुनः अग्नि दर्शन न प्राप्त हुआ तुम्हें बता दिया । देवकार्य करने के अनन्तर देवों ने अग्नि से कहा अग्नि! जिस प्रकार पहले अंगिरा ने अग्नित्व की स्थापना की है, आप भी वैसा ही कीजिये! देवों के इस भाँति कहने पर अग्नि देव चिन्तित होकर दुःख प्रकट करने लगे कि—किसने मेरे तेज का अपहरण किया है और अग्नित्व का स्थापन यहाँ किसने किया! अनन्तर अग्नि ने उन तेजों विधान एवं कलमष हीन अंगिरा ऋषि को देखकर उनसे कहा—आप मेरे स्थान का परित्याग कर दें, मैं आप को अत्यन्त संतोष की बात बता रहा हूँ—मैं आप का प्रथम एवं विप्रहितैषी पुत्र हूँगा, मेरा नाम वृहस्पति होगा तथा अन्य भी अनेक पुत्र होंगे । ऐसा कहने पर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने अनेक पुत्रों को उत्पन्न किये । अग्नि ने भी अनेक पुत्र-पौत्रों को उत्पन्न किया ।४७-५५½। नृप! उसी (चतुर्दशी) तिथि में अग्नि को पुनः अग्नित्व (तेज) की प्राप्ति हुई । चतुर्दशी के दिन हव्य वाहन (अग्नि) के उत्पन्न होने के नाते उन्हें सर्व देवों का गुप्तचर बनाया गया और भगवान् रुद्र ने भी दिग्पालों का आधिपत्य प्रदान किया । इसीलिए यही तिथि समस्त स्वर्गवासी देवता, नृपगण, पैल, जाबाल आदि ऋषि, एवं अन्य ऋषि आदि राजाओं द्वारा पूजित हुई है ।५६-५८½। विष या शस्त्र द्वारा संग्राम में आहत, अथवा अत्यन्त कहीं निधन होने पर, अज्ञात निधन, वृषपाप, सर्प के काटने, नदी प्रवाह अथवा

पतिताः पर्वतेभ्यश्च तोयाग्निदहने मृताः । उदध्या पातिता ये च ये के चात्महनो जनाः ।।
तेषां शस्तं चतुर्दश्यां श्राद्धं स्वर्गसुखप्रदम् ।।६१
श्राद्धानि चैव दत्तानि दानानि सुलघून्यपि । प्रसूनफलभोज्यानिउपतिष्ठंति तान्नरान् ।।६२
एवं तिथिरियं राजन्नग्नेयी प्रोच्यते[1] जनैः । रौद्रीं च केचिदित्याहू रुद्रोग्निः स न पठ्यते ।।६३
यस्यां मनोरथं यंयं समुद्दिश्य ह्युपोषति । ददाति तस्य तद्वह्निः साग्रे संवत्सरे गते ।।६४
चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य त्रिलोचनम् । पुष्पधूपादिनैवेद्यै रात्रौ जागरणान्नरः ।।
पञ्चगव्यं निशि प्राश्य स्वप्याद्भूमौ विमत्सरः ।।६५
श्यामाकमथवा भुक्ता तैलक्षारविवर्जितम् । होमः कृष्णतिलैः कार्यः शतमष्टोत्तरं नृप ।।६६
अग्नये हव्यवाहनाय सोमायांगिरसे नमः । ततः प्रभाते विमले स्नाप्य पंचामृतैः शिवम् ।।६७
पूजयित्वा विधानेन होमं कृत्वा तथैव च । उदीरयेन्मन्त्रमेतं कृत्वा शिरसि चांजलिम् ।।६८
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं नमः सूर्याग्निरूपिणे । पुत्रान्यच्छ सुखं यच्छ मोक्षं यच्छ नमोऽस्तु ते ।।६९
नीराजनं ततः कृत्वा पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं संवत्सरस्यांते कृत्वा सर्वं यथोदितम् ।।७०
सौवर्णं कारयेद्देवं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् । वृषस्कंधगतं सौम्यं सितवस्त्रयुगान्वितम् ।।७१

समुद्र में पतन होने, पर्वतीय मार्ग पर्वत से गिर कर, जल में डूबने, अग्नि में जल कर, ऊपर कूदने और आत्म हत्या करने वाले प्राणियों के उद्धारार्थ चतुर्दशी के दिन श्राद्ध करने तथा किसी छोटी वस्तु के प्रदान करने से स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है । उस दिन पुष्प, फल जो कुछ दान किया जाता है उस पुरुष को अवश्य प्राप्त होता है । राजन्! इस प्रकार इस तिथि को कुछ लोग आग्नेयी (अग्नि की प्रेयसी) और कुछ लोग रुद्र की प्रेयसी कहकर रौद्री अग्नि कहते हैं । जिस मनोरथ के उद्देश्य से जो कोई इसमें उपवास करता है, अग्नि उसे सफल करता है । वर्ष के आरम्भ में चतुर्दशी के दिन उपवास करते हुए त्रिलोकनाथ को त्रिलोचन (शिव) की पुष्प, धूप एवं नैवेद्य आदि द्वारा अर्चना करके रात्रि जागरण एवं पंचगव्य के प्राशन करते हुए भूमि-शयन करना चाहिए ।५९-६५। नृप! मत्साहीन हृदय से तेल और क्षार (नमक आदि) के त्याग पूर्वक श्यामाक के भोजन वाले तिल की एक सौ आठ आहुति, अग्नि, हव्य वाहन, सोम और अंगिरा को नमस्कार है, कहते हुए प्रदान करनी चाहिए । तदुपरांत निर्मल प्रातः काल के समय पंचामृत द्वारा शिव जी का सविधान स्नान-पूजन करके पूर्व की भाँति हवन कार्य के अनन्तर शिरसे प्रणाम पूर्वक क्षमा याचना करे ।६६-६८। कि—त्रिमूर्ति को नमस्कार है, तथा सूर्य और अग्नि रूप तुम्हें नमस्कार है । मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे अनेक पुत्रों समेत सुखानुभव और (देहावसान के समय) मोक्ष देने की कृपा करें । अनन्तर नीराजन करके मौन होकर भोजन करें । इसी भाँति प्रत्येक मास की चतुर्दशी के दिन सविधान सुसम्पन्न करने वर्ष के अन्त में पूर्वोक्त के अनुसार ही उसकी समाप्ति करना चाहिए— उस दिन सर्वप्रथम त्रिनेत्र एवं शूल पाणि भगवान् शिव की सुवर्ण प्रतिमा ताम्र पात्र में, जो वृष (वैल) के कंधे पर स्थित, स्वयं सौम्य रूप सम्पन्न, श्वेत चार वस्त्रों से सुसज्जित, चन्दन-चर्चित और मालाओं से

---

१. बुध्यते ।

चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं सितमाल्योपशोभितम् । स्थापयित्वा ताम्रपात्रे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
सर्वकालिकमेतत्ते कथितं व्रतमुत्तमम् ॥७२
संवत्सरं समाप्तं हि व्रतस्य तु यदा भवेत् । काले गते बहुतिथे तीर्थस्य शरणं भवेत् ॥
मृतस्य देहो दिव्यस्थो दिव्यालंकारभूषितः ॥७३
दिव्यानारीगणवृतो विमानवरमास्थितः । देवदेवैः समः शंभोः क्रीडति त्रिपुरे चिरम् ॥७४
इह चागत्य कालान्ते जातः स च नृपो भवेत् । दाता यज्वा धनी दक्षो ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ॥७५
श्रीमान्वाग्मी कृती धीमान्पुत्रपौत्रसमन्वितः । पत्नीगणसमायुक्तश्चिरं भद्राणि पश्यति ॥ ७६

ये दुर्ल्लभा भुवि सुरोरगमानवानां कामा ह्यनुत्तमगुणेन युताः सदैव ।
तानाप्नुवन्ति सितभूततिथौ सुरेशं सम्पूज्य सोमतिलकं विधिवन्मनुष्याः ॥७७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
[१]आग्नेयीचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३

विभूषित हो, स्थापित करके पूजनोपरांत किसी विद्वान् ब्राह्मण को ताम्रपात्र पर समर्पित करे । मैंने इस भाँति तुम्हें इस सर्वकालिक एवं परमोत्तम व्रत का वर्णन सुना दिया, जिस व्रत के वर्ष समाप्ति के अवसर पर पूजन करने के अनन्तर बहुत समय व्यतीत होने पर उसे तीर्थ शरण (निवास) प्राप्त होता है और वहाँ के निधन होने पर दिव्य देह की प्राप्ति पूर्वक दिव्यालंकार से सुसज्जित होकर उत्तम विमान में अप्सरा वृन्दों से सुशोभित होता है । अनन्तर उस शिव पुरी में देव-नाथ के साथ चिरकाल तक क्रीडा करता है । कभी इस लोक में आने के समय दाता, यज्वा (यज्ञकर्ता) ब्राह्मण प्रिय और ब्राह्मण कुल में राजा होता है । श्रीसम्पन्न, सत्यवक्ता, कृतकृत्य एवं धीमान् वह राजा पत्नी गण एवं पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक कल्याण-परम्परा के प्रमुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता है । उत्तम गुण सफल मनुष्यों के देव शुक्लचतुर्दशी के दिन चन्द्रचूडशिव की सविधान आराधना करने पर निःसंदेह सफलता प्राप्त होती है ।६९-७७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
आग्नेय (आनन्द) चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९३।

---

१. आनन्दचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम ।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

अनन्तचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अनंतव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापहरं शिवम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ।।१
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे शुभे । तस्यानुष्ठानमात्रेण [1]सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो ह्यनंत इति विश्रुतः । किं शेषनाग आहोस्विदनंतस्तक्षकः स्मृतः ।।३
परमात्माथ वानंत उताहो ब्रह्म उच्यते । क एषोऽनंतसंज्ञो वै तथ्यं ब्रूहि केशव ।।४

श्रीकृष्ण उवाच

अनंत इत्यहं पार्थ मम नाम निबोधय । आदित्यादिषु वारेषु यः काल उपपद्यते ।।५
कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् । पक्षमासर्तुवर्षादियुगकल्पव्यवस्थया ।।६
योऽयं कालोमयाख्यातस्तव धर्मभृतां वर । सोऽहं कालोऽवतीर्णोऽत्र भुवो भारावतारणात् ।।७
दानवानां विनाशाय वसुदेवकुलोद्भवम् । मां विद्धयनंतं पार्थं त्वं विष्णुं जिष्णुं हरं शिवम् ।।८
ब्रह्माणं भास्करं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । विश्वरूपं महात्मानं सृष्टिसंहारकारकम् ।।९
प्रत्ययार्थं मयाख्यातं सोऽहं पार्थ न संशयः ।

अध्याय ९४

अनन्तचतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! समस्त पापापहारी, कल्याण रूप यह अनन्त व्रत भी सभी पुरुषों की सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करता है। भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन उसके अनुष्ठान मात्र से समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त होती है। १-२

युधिष्ठिर के कहा—कृष्ण! आप ने अभी कहते समय अनन्त का नाम लिया है। वह अनन्त कौन है, शेषनाग अथवा तक्षक! परमात्मा या ब्रह्म! केशव! मुझे यह तथ्य बताने की कृपा कीजिये—यह अनन्त नाम किसका है! ३-४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! इसे भलीभाँति जान लो, अनन्त यह नाम मेरा है। रविवार आदि दिनों जितने काल (समय) उपस्थित होते हैं—कला, काष्ठ, एवं मुहूर्त आदि दिन-रात्रि, तथा पक्ष, मास, ऋतु एवं वर्ष आदि, जिसके द्वारा युग तथा कल्प की व्यवस्था की गयी है। धर्म धुरन्धर! इनमें जो काल नाम से बताया जाता है, भूभार के अपहरणार्थ यह काल रूप मैं ही अवतरित हूँ। पार्थ! दानवों के विनाशार्थ वसुदेव के कुल में उत्पन्न मुझे ही, अनन्तजयी, विष्णु, हर, शिव, ब्रह्मा, भास्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर, विश्व रूप, महात्मा, एवं सृष्टि संहारी जानों। पार्थ! इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे विश्वासार्थ मैंने व्याख्या पूर्वक कहा है।५-९

---

१. सर्वपापं प्रणश्यति।

युधिष्ठिर उवाच

अनन्तव्रतमाहात्म्यविधिं वद विदां वर ॥१०
किं पुण्यं किं फलं चास्य ह्यनुष्ठानवतां नृणाम् । केन वादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ॥११
एवं समस्तं विस्तार्य ब्रूह्यनंतव्रतं हरे ।

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्पुरा कृतयुगे सुमंतो नाम वै द्विजः ॥१२
वशिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुरूपश्च भृगोः सुताम् । दीक्षां नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना ततः ॥१३
तस्याः कालेन संजाता दुहितानंतलक्षणा । शीला नाम सुशीला सा वर्धते पितृसद्मनि ॥१४
माता च तस्याः कालेन हरदाहेन पीडिता । विननाश नदीतीरे मृता स्वर्गपुरं ययौ ॥१५
सुमंतोऽपि ततोऽन्यां वै धर्मपुंसः सुतां पुनः । उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः ॥१६
दुःशीलां कर्कशां चंडीं नित्यं कलहकारिणीम् । सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनरता विभो ॥१७
कुडयस्तंभतुलाधारदेहलीतोरणादिषु । चातुर्वर्णकरं वैश्यनीलपीतसितासितैः ॥१८
स्वस्तिकैः शंखपद्मैश्च अर्चयन्ती पुनःपुनः । पित्रा दृष्टा सुमन्तेन स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता ॥१९
कस्मै देया मया शीला विचार्यैवं सुदुःखितः । पिता ददौ मुनीन्द्राय कौंडिन्याय शुभे दिने ॥२०
स्मृत्युक्तशास्त्रविधिना विवाहमकरोत्तदा । निवर्त्योद्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान् कर्कशां द्विजः ॥२१

युधिष्ठिर के कहा—विदांवर! मुझे अनन्त व्रत का माहात्म्य और विधान बताने की कृपा करें। इसके अनुष्ठान करने पुरुष को किस पुण्य और किस फल की प्राप्ति होती है! तथा इस मृर्त्यलोक में सर्वप्रथम किस व्यक्ति ने इसका अनुष्ठान सुसम्पन्न किया है। इस प्रकार समस्त बातों की विस्तृत व्याख्या पूर्वक भगवान् विष्णु के अनन्त व्रत बताने की कृपा करें। १०-११

श्रीकृष्ण बोले—पहले सतयुग के समय सुमन्त नामक एक ब्राह्मण था, जो बसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न, एवं परम सुन्दर था। उसने सविधान द्वारा भृगु-पुत्री दीक्षा का पाणिग्रहण किया। कुछ समय व्यतीत होने पर उस स्त्री से शीला नामक एक कन्या का जन्म हुआ, जो अनन्त लक्षणों से भूषित एवं परम सुशीला थी। पिता के घर पर वह (चन्द्र कला की भाँति) वढ़ रही थी, उसी समय नदी-तट पर उसकी माता कालरूपी हरदाह से पीड़ित होकर निधन होने के अनन्तर स्वर्ग चली गयी। उपरांत सुमन्त ने एक अन्य धर्म पुरुष की कन्या का पाणिग्रहण किया, जो कर्कशा नाम से प्रख्यात थी। वह दुःशीला, कर्कशा, एवं चण्डी रूप धारण कर नित्य कलह करने वाली थी। विभो! शीला अपने पिता के घर में रहती हुई उसकी स्वच्छता के लिए दिन-रात अथक परिश्रम करती थी। गृह की भित्ति (दीवाल) स्तम्भ, तुलाधार, देहली, एवं तोरण आदि को नील, पीत, श्वेत तथा कृष्ण (काले) रंगों से सुशोभित और स्वास्तिक तथा शंख, पद्म चिन्हों से उसे अंकित करती हुई उसे उसके पिता ने देखाकि—यह युवावस्था को प्राप्त हो रही है, क्योंकि सभी चिह्न इसमें स्पष्ट प्रतीत हो रहे हैं। अतः मैं इस शीला कन्या को किसे अर्पित करूँ। यह विचार कर उसके पिता दुःखी होने लगे। अनन्तर सर्व सम्मति से उन्होंने शुभ मुहूर्त में मुनि श्रेष्ठ कौंडिन्य को अपनी पुत्री प्रदान किया। १२-२०। स्मृति-शास्त्र के विधान द्वारा विवाह संस्कार

किञ्चिदायादिकं देयं जामातुः पारितोषिकम् । तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोद्धृत्य गृहमण्डपम् ॥२२
कपाटे सुस्थिरं कृत्वा गम्यतामित्युवाच ह । भोज्यावशिष्टचूर्णेन पाथेयं च चकार सा ॥२३
कौंडिन्योऽपि विवाह्यैनां पथि गच्छञ्छनैःशनैः । शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ॥२४
मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे । ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥२५
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक्पृथक् । उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ॥२६
नार्यः किमेतन्मे ब्रूत किंनाम व्रत मीदृशम् । ता ऊचुर्योषितः सर्वा अनन्तो नाम विश्रुतः ॥२७
साब्रवीदहमप्येवं करिष्ये व्रतमुत्तमम् । विधानं कीदृशं तत्र किं दानं कस्य पूजनम् ॥२८

स्त्रिय ऊचुः

शीले पक्वान्नप्रस्थस्य पुन्नान्नः सुकृतस्य तु । अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि भोजनम् ॥२९
कर्तव्यं तु सरित्तीरे कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् । अनंतानंतमभ्यर्च्य मंडले गंधदीपकैः ॥३०
धूपैः पुष्पैः सनैवेद्यैः पीतालक्तैश्चतुःशतैः । तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुंकुमाक्तं सुदोरकम् ॥३१
चतुर्दशग्रंथियुतं वामे[1] स्त्री दक्षिणे पुमान् । मंत्रेणानेन राजेन्द्र यावद्वर्षं समाप्यते ॥३२

सुसम्पन्न हो जाने के उपरांत उन्होंने अपनी कर्कशा नामक आर्या से कहा—जामाता जा रहे हैं, अतः इन्हें अपने कुछ हाथ भाग द्वारा सम्मानित करना चाहिए । यह सुनकर क्रुद्ध होकर कर्कशा ने गृह मण्डप की सभी वस्तुएँ किंवाड़ के भीतर रखकर उसको दृढ़ बन्द कर कहा—'चले जाओ (कुछ नहीं मिलेगा) । केवल भोज्य का कुछ अवशिष्ट बचा रह गया था । पाथेय (मार्ग-व्यय) रूप में वही उसने उन्हें दिया । विवाह होने के अनन्तर कौंडिन्य भी उस नवोढ़ा शीला को साथ लिए गोरथ (बैलगाड़ी-वहन) पर बैठे धीरे-धीरे मार्ग में जा रहे थे । मध्याह्न के समय नदी को पार कर उस भोजन बेला के समय शीला ने देखा कि—यहाँ इस नदी तट पर रक्त वस्त्र भूषित कुछ स्त्रियों का समूह उपस्थित है, जिसमें सभी स्त्रियाँ पृथक्-पृथक् श्रद्धा भक्ति पूर्वक अनन्त भगवान् की सविधान अर्चना उस चतुर्दशी के दिन कर रही थीं । शीला ने धीरे-धीरे वहाँ जाकर उन स्त्रियों से पूछा—आप लोग यह कौन व्रत सुसम्पन्न कर रही हैं, मुझे बताने की कृपा करें । इसे सुनकर उन सभी स्त्रियों ने कहा—'अनन्त' नाम से इसकी प्रख्याति है । शीला ने कहा—मैं भी यह परमोत्तम व्रत सुसम्पन्न करूँगी, किन्तु इसका विधान दान, और किसका पूजन होगा । बताने की कृपा करें ।२१-२८

स्त्रियों ने कहा—शीले! भली भाँति बनाये हुए एक सेर के पक्वान के आधे भाग ब्राह्मण को अर्पित कर शेष स्वयं अथवा परिसर के लिए सुरक्षित रखे । किसी नदी के तट पर इस कथा के श्रवण पूर्वक मण्डल में स्थापित अनन्त देव की गन्ध, दीपक, धूप, पुष्प, नैवेद्य, तथा चार सौ पीत अलक्तक द्वारा सविधान अर्चना करके उनके सम्मुख दृढ़ सूत्र का बना हुआ जो कुंकुम में भलीभाँति भीगा हो, चौदह गांठ का एक सुन्दर डोरा रख पूजनोपरांत सभी स्त्रियाँ बायें हाथ और पुरुष दक्षिण हाथ में बाँधकर वर्ष की समाप्ति तक सुरक्षित रखे।२९-३२। राजेन्द्र! उसे हाथ में बाँधते समय इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होना चाहिए—वासुदेव!

---

१. वामे करतले न्यसेत् ।

अनन्त संसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥३३
अनेन दोरकं बद्ध्वा भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः। ध्यात्वा नारायणं देवमनंतं विश्वरूपिणम्॥३४
भुक्त्वा चांते व्रजद्वेश्म हीदं प्रोक्तं व्रतं तव। सापि श्रुत्वा व्रतं चक्रे शीला बद्धा सुदोरकम्॥३५
भर्ता तस्याः समागत्य तां ददर्श महाधनाम्। पाथेयशेषं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च॥३६
पुनर्जगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वमाश्रमम्। भर्त्रा सहैव शनकैः प्रत्यक्षं तत्क्षणादभूत्॥
[1]तेनानन्तप्रभावेण शुभगोधनसङ्कुलः ॥३७
गृहाश्रमः श्रिया युक्तो धनधान्यसमायुतः। आकुलो व्याकुलो रम्यः सर्वत्रातिथिपूजनः॥३८
सापि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता। दिव्यांगवस्त्रसंछन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत्॥३९
कदाचिदुपविष्टेन दृष्टं बद्धं सुदोरकम्। शीलाया हस्तमूले तु साक्षेपं त्रोटितं रुषा॥४०
तेन कर्मविपाकेण तस्य सा श्रीः क्षयं गता। गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं चाग्निविदाहितम्॥४१
यद्यदेवागतं गेहे तत्र तत्रैव नश्यति। स्वजनैः कलहो मित्रैर्वचनं न जनैस्तथा॥४२
अनंताक्षेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे। न कश्चिद्वदते लोकस्तेन सार्द्धं युधिष्ठिर॥४३

अनन्त! इस संसार में निमग्न प्राणियों का उद्धार करें। अनन्त रूप में मैंने अपनी आत्मा को संलीन कर अनन्त रूप आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ। डोरा बाँधने के उपरांत स्वस्थ चित्त से नारायण एवं विश्वरूपी अनन्त देव के ध्यान पूर्वक भोजन करके सप्रेम अपने गृह का प्रस्थान करे। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह व्रत बता दिया। शीला ने भी इसे सुनकर व्रत नियम पालन पूर्वक एक डोरा हाथ में बाँध लिया। उसी समय उसके पति ने वहाँ आकर उसे महाधन सम्पन्न देखा। शीला ने पाथेय यात्रा (मार्ग व्यय) धन रख कर शेष धन के दान और भोजन द्वारा ब्राह्मणों को सुसम्मानित किया। भोजन करके वह हर्षित होती हुई गोरथ (वहल) द्वारा अपने आश्रम आई। वहाँ पहुँचते उसने यह देखा कि—पति समेत उसके उस आश्रम में पहुँचने के साथ उसी अनन्त व्रत के प्रभाव से वहाँ गौओं का समूह उत्पन्न हो गया है, उसका प्रारम्भ-गृह धन-धान्य पूर्ण भी सम्पन्न दिखायी दे रहा है। उसकी ओर से चारों ओर लोग, अतिथि पूजन में व्याकुल हो रहे हैं। शीला भी उसी समय माणिक्य आदि के आभूषणों से अंग-प्रत्यंग सुसज्जित, मुक्ताहार भूषित और दिव्य वस्त्रों से आच्छन्न होना सावित्री की साक्षात् प्रतिमा मालूम होने लगी। इस प्रकार अनन्त सुखानुभति करती हुई उस शीला के साथ बैठे हुए उसके पति ने एक बार कभी उसके हाथ में बंधे हुए उस (अनन्त के) डोरे को देखा। उन्होंने रुष्ट होकर आक्षेप करते हुए शीला के हाथ से उस डोरे को तोड़ कर फेंक दिया। उस कर्म के दुःखदायी परिणाम स्वरूप उनकी समस्या भी नष्ट हो गयी। गौओं को चोरों ने चुरा लिया, और अग्नि होत्र (अग्नि) ने गृह त्याग दिया।३३-४१। अर्थात् जो धन जहाँ से आया था वह वहाँ चला गया—नष्ट हो गया। स्वजनों में कलह, मित्रजनों से बात-चीत न हो—आदि दुःखों के साथ अनन्त भगवान् के अपमान के नाते उनके घर में साङ्गोपाङ्ग दारिद्र का निवास हो गया। उसके कारण युधिष्ठिर! उनके साथ कोई भी पुरुष बात नहीं करता

---

१. तेनानंतव्रतेनास्य बभौ।

ततो जगाम कौंडिन्यो निर्वेदाद्वनगह्वरम् । मनसा ध्यायतेऽनंतं कदा द्रक्ष्यामि केशवम् ।।४४
व्रतं निरशनं गृह्य ब्रह्मचर्यं जपन्हरिम् । विह्वलः प्रययौ पार्थ अरण्यं जनवर्जितम् ।।४५
तत्रापश्यन्महावृक्षं फलितं पुष्पितं तथा । तमपृच्छत्त्वयानंतः कच्चिद्दृष्टो महाद्रुम ।।
तद्ब्रूहि सोप्युवानेदं नानंतं वेद्म्यहं द्विज ।।४६
एवं निरीक्षितस्तेन गां ददर्श सवत्सकाम् । तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव ।।४७
सोऽवदद्धेनुके ब्रूहि यद्यनंतस्त्वयेक्षितः । गौरुवाचाथ कौंडिन्यं नानंतं वेद्म्यहं विभो ।।४८
ततो जगामाथ वने गोवृषं शाद्वले स्थितम् । दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननंतो लक्षितस्त्वया ।।४९
गोवृषस्तमुवाचाथ नानन्तो वीक्षितो मया । ततो व्रजन्ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम् ।।५०
अन्योन्यजलकल्लोलवीचिभिः परिशोभितम् । छन्नं कुमुदकह्लारैः कुमुदोत्पलमण्डितम् ।।५१
सेवितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रैः कारंडवैर्बकैः । ते अपृच्छ द्विजोऽनन्तो भवद्भ्यां नोपलक्षितः ।।५२
ऊचतुः पुष्करिण्यौ तं नानंतं विद्महे द्विज । ततो ब्रह्मन्ददर्शाग्रे गर्दभं कुञ्जरं तथा ।।५३
तावप्युक्तौ मुमतेन तस्यापि विनिवेदितम् । नावाभ्यां वीक्षितोऽनंतस्तच्छ्रुत्वा निषसाद ह ।।५४
तस्मिन्क्षणे मुनिवरे कौण्डिन्ये ब्राह्मणोत्तमे । कृपयाऽनन्तदेवोऽपि प्रत्यक्षः समजायत ।।५५
वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच तम् । प्रवेशयित्वा स्वगृहं गृहीत्वा दक्षिणे करे ।।५६
तां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युताम् । तस्यां निविष्टमात्मानं वरसिंहासने नृप ।।५७

था। अनन्त उस दुःख से दुःखित कौंडिन्य ने घोर जंगल का प्रस्थान किया। मन में सदैव यही चिन्ता करते थे कि—मैं अनन्त भगवान् केशव को कहाँ और कैसे देखूँ। ब्रह्मचारी रहकर उपवास पूर्वक व्रत के पालन करते हुए भगवान् अनन्त के दर्शनार्थ कौंटिन्य व्याकुल होकर निर्जन जंगल में चले गये। पार्थ! वहाँ पहुँचने पर उन्हें फल-पुष्प भूषित एक महावृक्ष दिखायी दिया। उसे देखकर उन्होंने कहा—महाद्रुम! तुमने कहीं अनन्त देव को देखा है! उसने कहा-द्विज! मैं अनन्त को नहीं जानता हूँ। पाण्डव! इसी भाँति चारों ओर देखते हुए वह (विप्र) जा रहा था, मार्ग में बछड़े समेत एक गौ दिखायी पड़ा। जो उस हरे-भरे तृण समूहों में दौड़ रही थी। उससे उन्होंने कहा—धेनुके! मुझे बताओ, तुमने कहीं अनन्त को देखा है। इसके प्रत्युत्तर में गौ ने कहा—विभो! कौंडिन्य! मैं अनन्त को नहीं जानती। अनन्तर वन में आने जाने पर उन्होंने हरी घास में एक वृष (बैल) देखा। उससे गोस्वामिन्! तुमने कहीं अनन्त देव को देखा है। उसने कहा—अनन्त को मैं कहीं नहीं देखा। आगे बढ़ने पर उसे दो सुन्दर पुष्करिणियाँ दिखायी पड़ी, जो आपस में जल-कल्लोल करने वाली तरङ्गों से सुशोभित हो रही थी, और कुमुदिनी के कुङ्मल (कलियों) से आच्छन्न एवं कुमुद तथा कमल से विभूषित एवं भ्रमरगण, हंस, चकोर, कारण्डव और वकुलो से सुशोभित थीं। ब्राह्मणों ने उनसे पूँछा—आप लोगों ने कहीं अनन्त को देखा है! उन लोगों ने उत्तर दिया—द्विज! हम लोगों ने अनन्त को कहीं नहीं देखा है। उपरांत आगे जाने पर गर्दभ (गधा) और गजराज दिखायी पड़ा। उन दोनों से भी उन्होंने निवेदन किया। किन्तु उनके ऐसा उत्तर देने पर कि हमें कहीं नहीं अनन्त दिखायी दिये। वे ब्राह्मण देव वहीं बैठ गये। उसी समय मुनि श्रेष्ठ एवं ब्राह्मणोत्तम कौंडिन्य के ऊपर भगवान् अनन्त देव ने कृपा करते वहाँ उन्हें प्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिया।४२-५५। वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर उन्होंने (अनन्त देव ने) उन ब्राह्मणों से कहा—यहाँ

पार्श्वस्थशङ्खचक्रासिगदागरुडशोभितम् । दर्शयामास विप्राय पूर्वोक्तं विश्वरूपिणम् ।।५८
विभूतिभेदैश्चानन्तमनन्तं परमेश्वरम् । तं दृष्ट्वा तु द्विजोऽनन्तमुवाच परया मुदा ।।५९
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः । पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ।।६०
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । चूतवृक्षो वृषः कस्तु का गौः पुस्करिणीद्वयम् ।।
गर्दभं कुञ्जरं चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वतः ।।६१

अनन्त उवाच

चूतवृक्षो हि विप्रोऽसौ विद्वान्यो वेदगर्वितः । विद्यादानं[1] नोपकुर्वञ्छिष्येभ्यस्तरुतां गतः ।।६२
सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता । स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ।।६३
धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् । खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो धर्मदूषकः ।।
ब्राह्मणोऽसावनंतोऽहं गुहासंसारगह्वरे ।।६४
इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ।।६५
चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च । ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ।।६६
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् । पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ।।६७

आवो, यहाँ आवो । उनका दाहिना हाथ पकड़ कर वृद्ध ब्राह्मण रूप धारी अनन्त ने अपने गृह के भीतर ले जाकर दिव्य सभी-पुरुषों से सुशोभित उस पुरी को दिखाया जहाँ सिंहासन पर उन्हीं का रूपान्तर अपने पार्श्व भाग में शंख, चक्र, खड्ग, गदा और गरुड़ से युक्त होकर विभूषित हो रहा था । नृप, उन ब्राह्मण को उन्होंने अपना पूर्वोक्त विश्व रूप दिखाया, जो अनेक भाँति की विभूतियों (सौख्यों) से सुसम्पन्न होने के नाते उनकी अनन्तता का परिचायक था । ब्राह्मण देव कौंडिन्य ने परमेश्वर अनन्त देव को देख कर अपनी परम प्रसनन्ता प्रकट करते हुए उनकी क्षमा अर्चना की—कमलनेत्र! मैं स्वयं पाप स्वरूप, पापकर्मी, पापात्मा और पाप से ही उत्पन्न हुआ हूँ । अतः समस्त पापों के अपहरण पूर्वक आप मेरी रक्षा करें । आज मेरा जन्म सफल हुआ और जीवन सुजीवन हुआ । देव! मार्ग में मुझे मिलने वाले वे आप के वृक्ष, वृषभ, गौ, दो पुष्करिणी गधा और हाथी कौन थे, बताने की कृपा करें ।५६-६१

अनन्त बोले—आम का वृक्ष वह ब्राह्मण है जो अपनी वेद विद्या के मद में अंधा रहने के नाते शिष्यों को कभी पढ़ाया ही नहीं, इससे उसे वृक्ष होना पड़ा । वह गौ निष्फला भूमि थी जिसे तुमने देखा था । वह प्रसन्न चित्त वृक्ष जिसे तुमने भलीभाँति देखा था, लोभाक्रान्त तुमने जिसको अपनाया था वह वही था । धर्मा धर्म की व्यवस्था (स्थान) रूप वे दोनों पुस्करिणियाँ थीं । वह गधा क्रोध का रूप और वह हाथी धर्मदूषक था । इस संसार की घोर अन्धकारमय इस गुफा में यह ब्राह्मण रूप अनन्त मैं हूँ । विप्र! इस प्रकार मैंने तुम्हें सभी कुछ बता दिया अब तुम अपने घर लौट जाओ और चौदह वर्ष तक इस अनन्त व्रत-तत्त्व की उपासना करते रहो । तदुपरांत प्रसन्न होकर मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्र स्थान प्रदान करूँगा । मनोनुकूल विपुल भोगों के उपभोग करते हुए तुम अपने पुत्र-पौत्रों समेत देहावसान के समय

---

१. आसीददानाच्छास्त्रस्य ।

इति दत्त्वा वरं देवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । कौण्डिन्योऽप्यागतो गेहं चचारानन्तसद्व्रतम् ॥६८
शीलया सह धर्मात्मा भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । अंते जगाम च स्वर्गं नक्षत्रं च पुनर्वसूम् ॥६९
कल्पस्थानी च संभूतो दृश्यतेऽद्यापि स ज्वलन् । अनंतव्रतधर्मेण सम्यक्चीर्णेन कौरव ॥७०
एतत्ते कथितं पार्थ व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥७१
ये च शृण्वन्ति सततं वाच्यमानं नरोत्तम । ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यास्यंति परमां गतिम् ॥७२

संसारसागरगुहासु सुखं विहर्तुं वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भव शुद्धसत्त्वाः ।
सम्पूज्य ते त्रिभुवनेशमनंतदेवं बध्नाति दक्षिणकरे वरदोरकं मे ॥७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अनंतचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।९४

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

श्रवणिकाव्रतम्

युधिष्ठिर उवाच

लोके प्रसिद्धाः श्रूयंते श्रावण्यो नाम देवताः । एताः काः किं च कुर्वंति धर्मं चासां ब्रवीहि मे ॥१

मोक्ष प्राप्त करोगे ।६२-६७। इस भाँति वरदान देकर अनन्त देव उसी स्थान अन्तर्हित हो गये। धर्मात्मा कौंडिन्य भी घर आकर उस उत्तम अनन्त व्रत को सुसम्पन्न किया, जिससे शीला के साथ समस्त मनोरथ सुखों के उपभोग करते हुए देहावसान के समय उन्हें स्वर्ग में पुनर्वसु नक्षत्र का लोक प्राप्त हुआ। कल्प स्थायी रह कर उस अनन्त व्रत धर्म के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने के नाते आज भी प्रकाश पूर्ण दिखायी देते हैं। कौरव! पार्थ! इस प्रकार मैंने तुम्हें एक परमोत्तम व्रत की व्याख्या सुनायी, जिसके अनुष्ठान द्वारा प्राणी समस्त पातकों से मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं। नरोत्तम! इसके श्रवण करने वाले भी समस्त पापों से मुक्त होकर परमोत्तम गति प्राप्त करते हैं। कुरुकुल-भूषण! इस प्रकार संसार-सागर की गुफा में सुखी जीवन व्यतीत करने की वाञ्छा से पुनान्तःकरण शुद्धि पूर्वक त्रिभुवनाधीश्वर अनन्त की आराधना और मेरे उस डोरे को दक्षिण हाथ में बाँधना चाहिए।६८-७२।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
अनन्त चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९४।

अध्याय ९५

श्रवणिकाव्रत-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—लोक प्रसिद्ध श्रावणी नामक देवताओं के नाम मैं प्रायः सुना करता हूँ, वे कौन हैं, क्या करते हैं और उनके धर्म क्या हैं! मुझे बताने की कृपा करें! १

श्रीकृष्ण उवाच

विद्यन्ते देवताः पुण्याः श्रावण्यो नाम पांडव । ब्रह्मणा प्रथमं सृष्टा नियोगश्च जने कृतः ।।२
यो यद्वदति लोकेस्मिञ्छुभं वाप्यथ वाशुभम् । श्रावयंति हि तच्छीघ्रं ब्राह्मण्यः कर्मगोचरम् ।।३
जातास्त्रिलोके पूज्यास्तु नियमेन प्रजापते । दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् ।।४
तासामस्तीह सा शक्तिरचिन्त्या तर्कहेतुभिः । नरैस्तुष्टैश्च यत्प्रोक्तं कार्याकार्यस्य कारणात् ।।५
तान्छृण्वंति यतः पार्थ नैकाः श्रावणिका मताः । यथा देवा यथा दैत्या यथा विद्याधरा नराः ।।६
यथा हि सिद्धगंधर्वा नागाः किंपुरुषाः खगाः ।राक्षसाश्च पिशाचाश्च देवानामष्टयोनयः ।।
तथैताः पुण्यनामानो वंद्याः श्रावणिकाः स्मृताः ।।७
ता समुद्दिश्य कर्तव्यं व्रतं नारीनरैरिह । किं तु तासां महोग्रं तु व्रतं संयमनं सदा ।।८
आघ्राय धूपं पक्वान्नं जलं चागन्धमेव च । दातव्या पुनरन्यासां नारीणां भोज्यपारणा ।।९
अदत्त्वा यदि मृत्युः स्यादन्तरालेऽपि पाण्डव । तदा लग्नग्रहैर्ग्रस्ता लग्ना ह्युपरिकारटम् ।।
सफेनिलैर्मुखै रौद्रैर्म्रियन्ते नीचदुःखिताः ।।१०
श्रूयंते हि पुरा पार्थ पृथिव्यां नहुषो नृपः । तस्य भार्या महादेवी जयश्रीर्नाम भारत ।।११
प्रत्यक्षरूपसंपन्ना दर्शनीयतरा शुभा । पीवरोरुस्तना श्यामा मृदुकुञ्चितमूर्द्धजा ।।१२
शब्दगद्गदसंभाषा मत्तमातंगगामिनी । यथारूपा तथा शीला सती चेष्टा महीतले ।।१३

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! पुण्य रूप श्रावणी नामक देवताओं की भी स्थिति लोक में है ही जिन्हें सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने उत्पन्न कर इस लोक के आप के प्राणी के (द्रष्टा) के रूप में नियुक्त किया है । इस लोक में प्राणी जो कुछ शुभ-अशुभ कहता है, उसे वे ब्रह्मा को शीघ्र सुनाती हैं । अतः वे त्रिलोक की पूज्य हैं । उन्हें सभी के दूर से श्रवण विज्ञान और दूर से ही दर्शन भी होते हैं इसलिए उनलोगों की शक्ति तर्क (उहापोह) अथवा हेतुकारण, द्वारा अनुमेय नहीं है । पार्थ! अपने कार्याकार्य कर्तव्य के अनुसार प्रसन्न होकर मनुष्यों द्वारा कही गयी वातों कों वे एक ही नहीं अपितु सभी श्रवणिकायें सुनती हैं । जिस प्रकार देव, दैत्य, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, नाग, किंपुरुष (किन्नर), नाग, राक्षस और पिशाच देवों की आठ योनियाँ बतायी गयी हैं, उसी भाँति वंदनीय तथा ये पुण्य नाम वाली श्रवणिका भी हैं । उनके उद्देश्य से इस लोक में नारी-नर सभी को व्रतानुष्ठान करना चाहिए । किन्तु उनके उस महान् उग्र व्रत को संयम पूर्वक सुसम्पन्न करते हुए धूप, अक्रान्त जल और सुगन्ध पारण भोजन के समय पुनः अन्य स्त्रियों को अर्पित करे ।२-९। पाण्डव! उस समय यदि उपरोक्त वस्तुओं के दान के पूर्व मृत्यु हो गयी, उस समय की घटना के कारण उसके मुख का आकार भीषण एवं उससे फेनिल फेन की भाँति लार टपकते हुए उस नीच की दुःखद मृत्यु होती है । पार्थ! पहले समय में इस वसुधा के अधीश्वर राजा नहुष थे । उनकी प्रधान रानी का नाम जयश्री था । भारत! उसका रूप-लावण्य अनुपम होने के नाते वह अत्यन्त दर्शनीय एवं कल्याण मूर्ति थी । उसके उरु और स्राव स्थूल, स्वयं श्यामा, कोमल एवं टेढे शिर के बाल थे । गद्गदवाणी में शब्दोच्चारण करने के नाते उसकी भाषा मुग्ध करने वाली थी और मतवाले गजराज की भाँति गमन करने वाली थी। इस धरातल पर जिस भाँति

सा कदाचिद्गता स्नातुं गङ्गायां चाश्रमे मुनेः । वशिष्ठस्य ददर्शाथ सतीं भार्यामरुंधतीम् ।।१४
भोजयंतीं मुनीनां तु पत्नीर्नानान्नभोजनैः । तया च प्रणिपत्याथ पृष्टा देव्या महासती ।।१५
पूज्यं भगवति ब्रूहि किमेतद्व्रतमुच्यते ।।१६

अरुन्धत्युवाच

जयश्रिये शृणुष्व त्वं नाम्ना श्रावणिकाव्रतम् । एतद्भर्त्रा समाख्यातं वशिष्ठेन महर्षिणा ।।१७
गूढं ब्रह्मर्षिसर्वस्वं सुरतिव्रतमं शुभम् ! गच्छ वा तिष्ठ वा राज्ञि तवातिथ्यं करोम्यहम् ।।१८
एवमुक्ता जयश्रीस्तु भोज्ये तस्मिन्यदृच्छया । बुभुजे सापि तत्रैव अरुंधत्या कृतादरा ।।१९
भुक्त्वाचम्य जगामाथ स्वपुरं परमेश्वरम् । कालेन विस्मृतं तस्यास्तद्व्रतं तस्य भोजनम् ।।२०
ततस्तु समये पूर्णे म्रियमाणा महासती । जयश्रीर्घर्घरं गंतुं कुर्वाणा कंठगद्गदम् ।।२१
फेनं लालाविलाद्वक्त्रादुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः । स्थिता पञ्चदशाहानि बीभत्सा दारुणानना ।।२२
ततः षोडशके प्राप्ते दिने स्वयमरुंधती । प्रविश्याभ्यंतरं पूर्णं तां राज्ञीमवलोक्य च ।।
नहुषाय समाचख्यौ यदुक्तं श्रावणी व्रते ।।२३
तच्छ्रुत्वा नहुषो राजा द्रुतं भोज्यं प्रचक्रमे । यथोक्तं तदरुंधत्या यच्च यावदभीप्सितम् ।।२४
दत्वा च करकानष्टौ तामुद्दिश्य जयश्रियम् । क्षणाज्जगाम पञ्चत्वं करकाणां प्रदानतः ।।२५

वह रूप शील से विभूषित थी उसी भाँति वह महासती भी थी । एक बार गंगा स्नान के लिए प्रस्थान कर उसने गुरु एवं मुनि वशिष्ठ जी के आश्रम में जाकर उनकी धर्म पत्नी एवं सती मूर्ति अरुन्धती का दर्शन किया । उस समय अरुन्धती अनेक भाँति के अन्न भोजनों द्वारा मुनि पत्नियों को संतृप्त कर रही थीं । उसी बीच देवी जयश्री ने महासतो अरुन्धती से विनय-विनम्र प्रश्न किया—भगयअवति! आज यह कौन पूज्य व्रत है, जिसे आप तृष्टता से सुसम्पन्न कर रहीं हैं ! मुझे बताने की कृपा करें ।१०-१६

अरुन्धती बोली—जयश्रिये! मैं तुम्हें इस श्रावणिका की व्याख्या सुना रही हूँ, सावधान होकर सुनो! मेरे पति वशिष्ठ महर्षि ने इसे मुझे बताया था । यह व्रत अत्यन्त रहस्य पूर्ण, ब्रह्मचर्य का सर्वस्व, एवं अत्यन्त शुभ पतिव्रत धर्म है । राज्ञि! जाना चाहती हो तो, जाओ अथवा ठहरो । मेरा आतिथ्य सत्कार स्वीकार करो । अरुन्धती के इस प्रकार कहने पर जयश्री ने सहर्ष उस भोज में सम्मिलित होकर उनके उस सादरसत्कार को स्वीकार किया । भोजनोपरांत वह अपनी उत्तम पुरी अयोध्या को लौट आई । इससे देहावसान के समय वह महासती जयश्री घाघरा नदी के तट पर स्थित रह कर उसी के पवित्र जल से अपने कंठ को गन्ध करती रही, किन्तु उसके मुख से बार-बार फेनिल लार टपक रहा था । पन्द्रह दिन वहाँ निवास करने पर उसका मुख अत्यन्त वीभत्स एवं भयानक हो गया था । उसकी उस घोर पीड़ा को सुनकर सोलहवें दिन महासती अरुन्धती स्वयं वहाँ आई और कफ पूर्ण ढंग से घुरघुर शक करती हुई उस रानी की पीड़ा का कारण उन्होंने राजा नहुष से श्रवणिका व्रत विषयक पूर्वोत्तर सभी बातें बतायी ।१७-२३। उसे सुन कर राजा नहुष ने अरुन्धती के आदेशानुसार उनके मनोनीत वस्तुओं का (अत्यन्तशीघ्र) भोज्य आरम्भ किया और रानी जयश्री के उद्देश्य से आठ करवों के दान सुसम्पन्न किया । उसी करवों के प्रदानानन्तर क्षण मात्र में रानी का निधन हुआ । सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण

जगाम शक्रलोकं सा विमानेनार्कवर्चसा । दोधूयमाना चमरैः स्तूयमाना सुरासुरैः ॥२६

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वपि पाण्डव । द्रव्यप्राप्तिश्च भक्तिश्च दानकाले प्रशस्यते ॥२७
भुक्त्वा यज्ञे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा युधिष्ठिर । व्रती स्नात्वा तु पूर्वाह्णे नद्यादौ विमले जले ॥२८
आमन्त्रयेद्दशैकैका नारीगौरीस्वरूपिणीः । यताचाराः सुवेषाश्च ब्राह्मणीर्वा स्वगोत्रजाः ॥२९
द्वादश ब्राह्मणांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् । मन्त्रज्ञानितिहासज्ञानुपशान्ताञ्जितेन्द्रियान् ॥३०
सर्वं दद्याद्विधानेन पादक्षालनपूर्वकम् । चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पधूपादिना तथा ॥३१
ग्रीवासूत्रकसिन्दूरकुङ्कुमेन च भूषयेत् । तासामग्रे प्रदातव्या वर्द्धन्यो द्वादशैव तु ॥३२
अच्छिद्रा जलपूर्णास्तु सुवृत्ताः सूत्रवेष्टिताः । सोहालकादिभिश्छन्नाः पुष्पमालाविभूषिताः ॥३३
चन्दनेन समालब्धाः सहिरण्याः पृथक्पृथक् । तन्मध्ये वर्द्धनीं चैकां स्वके शीर्षे निवेशयेत् ॥३४
स्थित्वा मण्डलके मध्ये यजमानः स्वयं तदा । यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्द्धके वापि यत्कृतम् ॥
तत्सर्वं नाशमायातु पितृदेवर्षिणां नृणाम् ॥३५
इमा मे समयं स्वर्ण तारयस्व भवार्णवात् । अद्याहं गन्तुमिच्छामि विष्णोः पदमनुत्तमम् ॥
एवमस्त्विति ता ब्रूयुः स्त्रियः सर्वा युधिष्ठिर ॥३६

विमान पर सुशोभित एवं देव और असुर द्वारा चलते हुए चामरों से सुसेवित होकर वह इन्द्रलोक पहुँच गयी।२४-२६

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! पाण्डव ! मार्गशीर्ष आदि बारहों मासों में दान के समय द्रव्य प्राप्ति और भक्ति दोनों प्रशस्त कहे गये हैं। चतुर्दशी अथवा अष्टमी के दिन यज्ञ में भोजन करने के उपरान्त उस व्रती को पूर्वाह्ण के समय नदी आदि किसी जलाशय के निर्मल जल में स्नान करके दश स्त्रियों को आमन्त्रित करना चाहिए, जो एक-एक करके सभी स्त्रियाँ गौरी की भाँति सुरूपवती, सदाचारिणी एवं उनके वेष-भूषा उत्तम हों और ब्राह्मणी हों अथवा अपने गोत्र की। पुनः वेद-वेदाङ्ग निष्णात, मंत्र-इतिहास के मर्मज्ञ, उपदेश कुशल एवं जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए।२७-३०। सर्वप्रथम उनके पाद प्रक्षालन करके चन्दन, सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि द्वारा उन स्त्रियों के पूजन और कण्ठ सूत्र, सिन्दूर एवं कुंकुम से उन्हें विभूषित करके उनके सम्मुख बारह वर्द्धनी पात्र रखे, जो छिद्ररहित, जलपूर्ण, सुन्दर गोलाकार, सूत्र से आवेष्टित, सोहालक आदि से छिन्न, माला विभूषित, चन्दन-चर्चित और हिरण्य युक्त हों। पृथक्-पृथक् उन्हें स्थापित कर पूजनोपरान्त यजमान उस मण्डल के मध्य में स्थित होकर मध्य की वर्द्धनी सिर में स्पर्श किये ऐसा कहे कि—बाल्य, कौमार एवं वृद्धावस्था में मैंने जो कुछ उत्कर्ष किया है, इस देव, ऋषि, पितृ एवं मनुष्यों के तर्पण द्वारा विनष्ट हो जाये। ये सभी वर्द्धनी पात्र मेरे देहावसान के समय इस संसार-सागर से मेरा उद्धार करें और मैं आज ही विष्णु के उस परमोत्तम लोक की प्राप्ति करना चाहता हूँ।३१-३५। युधिष्ठिर ! उस समय उन सभी स्त्रियों को 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)' कहना

ततो ब्राह्मणमाहूय यजमान इदं वदेत् । ब्रूहि ब्राह्मण यन्मे त्वमघं येन क्षयं व्रजेत् ।।३७
उत्तीर्य श्रावणं मासं समुत्तारय साम्प्रतम् । उत्तारयेत मन्त्रेण ब्राह्मणो वर्धनीं च ताम् ।।३८
उपोष्य शिरसो देव्याः समुत्तीर्य रुहद्द्रुमान् । कटुकं निम्बवृक्षं वा ततो मधुकमारुह ।।
ततो गच्छ महादेवं श्रवणे श्रवणोत्तमे ।।३९

इति वर्धनिकोत्तारणमन्त्र

एवं ताः समयं प्रोच्य दत्त्वाशीर्वचनानि च ।।४०
तां वर्द्धनिकामेकान्ते विप्राय प्रतिपादयेत् । गृहीत्वा करकान्नार्य्यो व्रजेयुः स्वेषु वेश्मसु ।।४१
यजमानोऽपि यातासु यथेष्टं काममाचरेत् । एवमाचरते पार्थ श्रावणीव्रतमादरात् ।।४२
तस्य काले तु सम्प्राप्ते सुखं मृत्युः प्रजायते । निर्व्याधिर्नीरुजो भोजी स्थित्वास्थित्वा शतं सुखम् ।।४३
पुत्रपौत्रसमृद्ध्यादौ भुक्त्वा मर्त्यसुखानि च । रुद्रलोकमवाप्नोति सोमलोकं स गच्छति ।।४४
स्त्रीणां तुल्यं स हीनोऽपि व्रती व्रतफलं व्रजेत् । गौरीभोज्येषु दत्तेषु एकादशसु यत्फलम् ।।४५
तदेकेनापि लभते पार्थ श्रावणिकाव्रते । भक्त्या गच्छन्ति ते लोकान्विहृत्य सुखमादरात् ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
श्रवणिकाव्रतं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।९५

चाहिए । अनन्तर यजमान उन ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे कहे कि—ब्राह्मण ! जिसके द्वारा मेरा पाप नष्ट हो सके, कहने की कृपा करें और इस समय इस श्रावण मास (वर्द्धनी) को मेरे शिर से उतारने की भी । उस समय ब्राह्मणों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक यजमान के शिर से उस वर्द्धनी को उतारना चाहिए और उतारते समय उन्हें ऐसा कहना चाहिए कि—उपवास पूर्वक तुम देवी के शिर से उतर कर कटुक और नीम के वृक्ष पर आरोहण कर पुनः महुए के वृक्ष पर आरोहण करो । तदुपरान्त श्रवणोत्तम महादेव श्रवण की प्राप्ति करो । इस प्रकार प्रतिज्ञा रूप में कहकर आशीर्वाद देने के उपरान्त एकान्त में वर्द्धनी किसी ब्राह्मण को समर्पित करे । पश्चात् वे स्त्रियाँ करवो के ग्रहण पूर्वक अपने-अपने घर को प्रस्थान करें । तथा यजमान भी उन स्त्रियों के जाने के अनन्तर यथेच्छ कार्य प्रारम्भ करे । पार्थ ! इस प्रकार सादर इस श्रावणी व्रत को सुसम्पन्न करने पर देहावसान समय उसकी सुख पूर्वक मृत्यु होती है । व्याधिरहित अनेक भाँति के सुखों के उपभोग अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार समेत करने के उपरान्त उसे रुद्र लोक और चन्द्रलोक की क्रमशः प्राप्ति होती है । स्त्री रहित होने पर भी उस व्रती को स्त्रियों के तुल्य ही व्रत-फल की प्राप्ति होती है । पार्थ ! गौरी प्राप्ति के भोज्य में जाने वाले उन एकादश फलों के एक ही फूल प्रदान द्वारा भक्ति पूर्वक उस श्रावणिका व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे समस्त लोकों के विहार पूर्वक उत्तम लोक (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ।३६-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
श्रावणिका व्रत वर्णन नामक पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९५।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ नक्तोपवासस्य विधानं शृणु पांडव । येन विज्ञातमात्रेण नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।।१
येषु तेषु च मासेषु शुक्लपक्षे चतुर्दशीम् । ब्राह्मणं भोजयित्वा तु प्रारभेत ततो व्रतम् ।।२
मासिमासि भवन्ति द्वावष्टम्यौ च चतुर्दशी । शिवार्चनरतो भूत्वा शिवध्यानैकमानसः ।।
वसुधाभाजनं कृत्वा भुञ्जीयान्नक्तभोजनम् ।।३
उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितम् । अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन भोजयेत् ।।४
देवैश्च भुक्तं पूर्वाह्णे मध्याह्ने मुनिभिस्तथा । अपराह्ने च पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ।।५
सर्वलोकानतिक्रम्य नक्तभोजी सदा भवेत् । हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।।६
अग्निकार्यो ह्यधःशय्यो नक्तभोजी सदा भवेत् । एवं संवत्सरस्यांत व्रतपूर्णस्य सर्पिषा ।।
पूर्णकुम्भोपरि स्थाप्य पूजयेच्च सुशोभने ।।७
कपिलापञ्चगव्येन स्थापयेन्मृण्मयं शिवम् । फलं पुष्पं यवक्षीरं दधिदूर्वांकुरांस्तथा ।।८
तत्कुम्भानां जलोन्मिश्रमर्घमष्टांगमुच्यते । शिरसा धारयित्वा तु जानू कृत्वा महीतले ।।९
महादेवाय दातव्यं गन्धपुष्पं यतोक्रमम् । भक्ष्यौदनैर्बलिं कृत्वा प्रणम्य परमेश्वरीम् ।।१०

अध्याय ९६

श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर संवाद

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! मैं तुम्हें उत्तम उपवास का वह विधान बता रहा हूँ, जिसके केवल ज्ञान मात्र से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होता है, सावधान होकर सुनो ! जिस किसी मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन ब्राह्मण भोजन पूर्वक उस व्रत का आरम्भ करना चाहिए। प्रत्येक मास की दोनों अष्टमी और चतुर्दशी के दिन सप्रेम भगवान् शिव की अर्चना करते हुए उनके ध्यान एकाग्रचित्त होना चाहिए । अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराकर स्वयं नक्त (स्त्रियाँ) भोजन करें। क्योंकि उपवास से भिक्षा के अन्न और उससे अयाचित एवं उससे नक्त परमोत्तम बताया गया है अतः नक्त भोजन सर्वश्रेष्ठ है। देवगण पूर्वाह्न में, मुनिगण मध्याह्न में, पितृगण अपराह्न में और गुह्यक आदि संध्या में भोजन करते हैं, इसलिए समस्त लोगों को (समय का) अप्रतिक्रमण कर सदैव नक्त भोजी होना चाहिए। नित्य स्नान, हविष्यान्न का लघु आहार, हवन एवं भूमिशयन नक्तभोजी के लिए परमावश्यक है। इस प्रकार इस घृत के व्रत सम्पूर्ण होने पर वर्ष के अन्त में सुशोभन जल पूर्वकलश के ऊपर स्थापित कर पूजा करनी चाहिए ।१-७। उस समय कपिला गौ, शिव की मृण्मयी प्रतिमा को स्थापन एवं पंचगव्य द्वारा स्नान पूजन करने के उपरान्त फल, पुष्प, जवा, क्षीर, दही, कुश तथा सजल कुम्भ इन आठ वस्तुओं के मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने के लिए उस कलश को शिर से स्पर्श किये दोनों घुटने पृथ्वी पर टेक कर महादेव जी के लिए क्रमशः अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। उपरान्त भक्ष्य-भात द्वारा परमेश्वरी को

धेनुं वा दक्षिणां दद्याद्वृषं वापि धुरंधरम् । श्रोत्रियाय दरिद्राय कल्पव्रतविदाय च ॥
यो ददाति शिवे भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥११
विमानमर्कप्रतिमं हंसयुक्तमलङ्कृतम् । आरूढोऽप्सरसां गीतैर्याति रुद्रालये सुखम् ॥१२
स्थित्वा रुद्रस्य भवने वर्षकोटिशतत्रयम् । इह लोके नृपश्रेष्ठ ग्रामलक्षेश्वरो भवेत् ॥१३
यश्चाष्टमीषु च शिवासु चतुर्दशीषु नक्तं समाचरति शास्त्रविधानदृष्टम् ।
स्वर्गांगनाकलरवाकुलितं विमानमारुह्य याति स सुखेन सुरेशलोकम् ॥१४
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे षण्णवतितमोऽध्यायः ।९६

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम् । त्रिषु लोकेषु विख्यातं नाम्ना शिवचतुर्दशी ॥१
मार्गशीर्षत्रयोदश्यां सितायामेकभुङ्नरः । मासेष्वन्येषु वा राजन्पार्थ एवं न कारयेत् ॥२
चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य महेश्वरम् । सौवर्णं वृषभं दत्त्वा भक्ष्यामि च परेऽहनि॥३
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शङ्करम् ॥

सप्रणाम बलि प्रदान कर 'धेनु' दक्षिणा तथा उत्तम धुरंधर एक वृष (बैल) उस दरिद्र एवं कल्प व्रत वेत्ता श्रोत्रिय को अर्पित करें । इस प्रकार भक्ति पूर्वक शिव जी को उपरोक्त वस्तुएँ अर्पित करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, कह रहा हूँ, सुनो! सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण, हंस युक्त एवं अलंकृत उस विमान पर सुखासीन होकर अप्सरा वृन्दों से सुसेवित होते हुए वह रुद्रलोक की प्राप्ति करता है । नृप श्रेष्ठ! वहाँ तीन सौ कोटि वर्ष तक सुखोपभोग करने के अनन्तर इस लोक में वह लक्ष ग्रामों का अधीश्वर होता है । इस प्रकार अष्टमी और चतुर्दशी के दिन शास्त्र विधान द्वारा नक्त व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी स्वर्गांगनाओं (अप्सराओं) के मधुरालाप से सुसम्मानित विमान पर बैठ कर सुख पूर्वक इन्द्रलोक की प्राप्ति करते हैं ।८-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में छानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९६।

अध्याय ९७

शिवचतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैं तुम्हें वह माहेश्वर व्रत बता रहा हूँ, जो तीनों लोकों में शिव चतुर्दशी के नाम से परम अख्यात है, सावधानतया सुनो! पार्थ! मार्गशीर्ष मास की शुक्लत्रयोदशी के दिन एकव्रती रहकर, जो कि किसी अन्य मास में करने के लिए निषेध किया गया है, चतुर्दशी के दिन उपवास पूर्वक भगवान् महेश्वर की अर्चना करके दूसरे दिन वृष (वैल) की सुवर्ण-प्रतिमा का दान करें ।१-३। इस प्रकार नियम पालन करने वाले उस मानव को प्रातः काल उठकर स्नान-जप करने के पश्चात् उमासमेत शंकर जी

पूजयेत्कुसुमैः शुक्लैर्गन्धधूपानुलेपनैः ॥४
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः । ललाटं तु त्रिनेत्राय नेत्राणि हरये नमः ॥५
मुखमिन्दुमुखायेति तथेशानाय चोदरम् । पार्श्वे चानंतधर्माय ज्ञानरूपाय वै कटिम् ॥६
ऊरू चानन्त्य वैराग्यं जानुनी चार्चयेद्बुधः । प्रधानाय नमो जंघे गुल्फौ व्योमात्मने नमः ॥७
व्योमव्योमात्मरूपाय पृष्ठमभ्यर्चयेन्नरः । नमः सृष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चापि पूजयेत् ॥८
ततश्च वृषभं हेममुदकुम्भसमन्वितम् । शुक्लमाल्यांबरयुतं पञ्चरत्नविभूषितम् ॥९
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक् ॥१०
घृतदाज्यं च संप्राश्य स्वप्याद्भूमावुदङ्मुखः । पञ्चदश्यां ततः प्रातः सर्वमेतत्समाचरेत् ॥११
तर्पयित्वा ततोऽन्नेन ब्राह्मणाञ्छक्तितः शुभान् । सुहृत्पदातिसहितः पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥१२
ततः कृष्णचतुर्दश्यामेतत्सर्वं समाचरेत् । चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात्पूर्ववदर्चनम् ॥१३
ये च मासे विशेषाः स्युस्तान्निबोध क्रमादिह । मार्गशीर्षादिमासेषु स्वपन्नेतानुदीरयेत् ॥१४
शंकराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करवीरक । त्र्यंबकाय नमस्तुभ्यं महेश्वरमतः परम् ॥१५
नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम् । नमः पशुपते नाथ नमस्ते शंभवे नमः ॥१६
नमस्ते परमानंद नमः सोमार्द्धधारिणे । नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः ॥१७

की शुक्ल पुष्प, गन्ध, धूप एवं अनुलेपन (उपटन) समेत इनके द्वारा आराधना करे— 'शिव को नमस्कार है, कहकर उनके चरण, सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर शिर, त्रिनेत्र को नमस्कार है, कहकर भाल, हरि को नमस्कार है, कहकर नेत्र, चन्द्रमुख को नमस्कार है, कहकर मुख, ईशान को नमस्कार है, कहकर उदर, अनंत धर्म को नमस्कार है, कहकर दोनों पार्श्वभाग, ज्ञानरूप को नमस्कार है, कहकर कटि, अनन्त वैराग्य को नमस्कार है, कहकर ऊरू और जानु (जंघे), प्रधान को नमस्कार है, कहकर जंघे, व्योमात्मा को नमस्कार है कहकर गुल्फ, एवं व्योम और व्योमात्म रूप को नमस्कार है, कहकर पृष्ठ की अर्चना करते हुए (मनुष्य को), सृष्टि को नमस्कार है और तुष्टि को नमस्कार है, कहकर वे भगवती पार्वती की आराधना करनी चाहिए।४-८। अनन्तर वृषभ (बैल) की सुवर्ण-प्रतिमा समेत जल कलश, जो शुक्लवर्ण की माला-वस्त्र, और पाँचो रत्नों से विभूषित किया रहता है, तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए।९-१०। उस समय 'इस कर्म द्वारा देवाधिदेव, एवं विनाकधारी शंकर प्रसन्न हों, कहकर दान करे और घृत का आशन कर उत्तराभिमुख भूमि में शयन करे। पुनः पञ्चदशी (पूर्णिमा) के दिन प्रातः समय उपरोक्त विधानों को सुसम्पन्न कर शुभमूर्ति ब्राह्मणों को यथाशक्ति अन्न भोजन से भलीभाँति संतुष्ट करें। अनन्तर मित्र-भृत्य के साथ स्वयं मौन होकर (वाक्संयमपूर्वक) भोजन करें। कृष्ण चतुर्दशी के दिन भी इसी विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न करते हुए समस्त चतुर्दशी के दिन पूर्व की भाँति अर्चना करनी चाहिए। मास में जो विशेष करना होता है, उसे भी बता रहा हूँ, सुनो! मार्गशीर्ष आदि मासों में शयन के समय ऐसा कहना चाहिए।११-१४। शंकर को नमस्कार है, करवीरक! तुम्हें नमस्कार है, अम्बक को नमस्कार है, महेश्वर को नमस्कार है, महादेव को नमस्कार है, स्थाणु को नमस्कार है, पशुपति को नमस्कार है, शंभु को नमस्कार है, परमानन्द को नमस्कार है, अर्धचन्द्रधारी को

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । पंचगव्यं तथा बिल्वं यवागूक्षीरवारिजम् ॥१८
तिलांश्च कृष्णान्विधिवत्प्राश्नीयात्समुदाहृतान् । प्रतिमासं चतुर्दश्यामेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥१९
मंदारैर्मालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि । सिंदुवारैरशोकैश्च मल्लिकाकुब्जपाटलैः ॥२०
अर्कपुष्पैः कदंबैश्च शतपत्रैस्तथोत्पलैः । करवीरैश्च राजेन्द्र तथा पूज्यो महेश्वरः ॥२१
एकैकेन चतुर्दश्यामर्चयेत्पार्वतीपतिम् । पुनश्च कार्तिके मासि संप्राप्ते तर्पयेद्द्विजान् ॥२२
अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रैर्माल्यविभूषणैः[1] । कृत्वा नीलं वृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः ॥२३
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह । मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम् ॥२४
सर्वोपस्करयुक्तायां शय्यायां विनिवेदयेत् । उदकुम्भयुतं तद्वच्छालितण्डुलसंयुतम् ॥२५
स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च । ज्येष्ठसामविदे देयं न च कुर्वन्ति ते क्वचित् ॥२६
अव्यङ्गाय च सौम्याय सदा कल्याणकारिणे । सपत्नीकाय संपूज्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वल्लोभात्पतत्यधः ॥२७
अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम् । सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२८
ब्रह्महत्यादिकं पापं यदत्रामुत्र वा कृतम् । पितृभिर्मातृभिर्वापि तत्सर्वं नाशमाप्नुयात् ॥२९
दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धिरत्राक्षयान्यत्र चतुर्भुजत्वम् ।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटीः स्वर्गे उषित्वा पदमेति शम्भोः ॥३०

नमस्कार है, एवं भीम को नमस्कार है और उग्रदेव! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दही, घृत, कुशोदक, पंचगव्य, विल्वयवागू (लप्सी) क्षीर, कमल, नाल, कृष्णतिल, का प्रत्येक मासों में क्रमशः सविधान आशन करना बताया गया है, प्रतिमास की चतुर्दशी के दिन क्रमशः उपरोक्त के आशन करते हुए मंदार, मालती, धत्तूर, सिंधवार, अशोक, चमेली, कुब्ज, पोटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, कमल और करवीर (कनेर) पुष्पों द्वारा पार्वती पति की आराधना करते हुए व्रत की समाप्ति में कार्तिक मास के अवसर पर अनेक भाँति के अन्नों के भक्ष्य-भोज्य, वस्त्र, मालायें, और आभूषणों द्वारा ब्राह्मणों को संतृप्त करना चाहिए । तथा वेद विधान द्वारा नीलवृपोत्सर्ग करते हुए उमा-महेश्वर और गौसमेत वृष की सुवर्ण प्रतिमा, जो आठ मुक्ताफल (मोती) के श्वेत नेत्र, घंटा भूषित एवं वस्त्राच्छन्न हो, तथा समस्त साधन सम्पन्न सुसज्जित शय्या उन्हें अर्पित कर साठी चावल युक्त जल कलश स्थापन-पूजन के उपरांत शांत, वेद-व्रत परायण किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए । जो प्रधान साम गायक, अव्यंग, सौम्य, सदा कल्याण कर्ता एवं सपत्नीक हो । माल्य वस्त्र, एवं आभूषणों द्वारा भूषित करने के उपरांत उसे उपरोक्त के प्रदान से सुसम्मानित करे उस समय धन की कृपणता न करनी चाहिए, क्योंकि उससे उसका अधः पतन होता है ।१५-२७। इस भाँति इस विधान द्वारा शिव चतुर्दशी व्रत को सुसम्पन्न करने पर उस मनुष्य को सहस्र अश्वमेघ यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं । लोक-परलोक में पिता-माता द्वारा किये गये ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप भी विनष्ट हो जाता है ।२८-२९। दीर्घायु, आरोग्य और अक्षीण कुल वृद्धि समेत सुखानुभव करने के उपरान्त देहावसान के समय गणाधिपत्य पद की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग में

---

१. माल्यानुलेपनैः ।

न बृहस्पतिरप्यतमन्नरस्य फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम् ।
न च सिद्धगणोऽप्यलं वाहं यदि जिह्वायुतकोटयपीह वक्त्रे ।।३१
भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद्वा सदा शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम् ।
इमां शिवचतुर्दशीममरकामिनीकोटयः स्तुवंति दिवि नंदिताः किमु समाचरेद्यः सदा ।।३२
या पार्थ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमापृच्छ्च शुभं गुरुं वा ।
सापि प्रसादात्परमेश्वरस्य परं पदं याति पिनाकपाणेः ।।३३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शिवचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

फलत्यागचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथा सर्वफलत्यागमाहात्म्यं शृणु भारत । यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ।।१
मार्गशीर्षे शुभे मासि चतुर्दश्यां धृतव्रतः । आरंभे शुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।।२
अन्येष्वपि तु मासेषु अष्टम्यां नरसत्तम । सदक्षिणापायसेन शक्तितः पूजयेद्द्विजान् ।।३
अष्टादशानां धान्यानामन्यत्र फलमूलकम् । वर्जयेदब्दमेकं तु विधिनौषधकारकम् ।।४

पितामह, और सिद्धगण नहीं कर सकते हैं तथा किसी के मुख में दशसहस्र जिह्वा हो जाये तथापि वह भी असमर्थ होगा । मत्सरहीन होकर इसके स्मरण या श्रवण करने से समस्त पातक की मुक्ति पूर्वक उस पुरुष की देवाङ्गनाएँ सदैव सेवा प्रति करती हैं और जो इसे सुसम्पन्न करता है, उसे क्या कहा जा सकता है । पार्थ! अपने भर्ता अथवा गुरु आदि श्रेष्ठ लोगों की आज्ञा प्राप्त कर भक्ति पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाली कभी भी परमेश्वर पिनाकपाणि (शिव) के प्रसाद से उनका लोक प्राप्त करती है ।३०-३३।

श्रीभविष्यमहापुराण में शिव चतुर्दशी नामक व्रत वर्णन नामक सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९७।

अध्याय ९८

फलत्याग चतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भारत! मैं तुम्हें समस्त फल त्याग का महत्व बता रहा हूँ, जो समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक परलोक के लिए अक्षय रहता है । सावधान होकर सनो! मार्गशीर्ष मास की शुक्र चतुर्दशी के दिन व्रत के नियम-पालन पूर्वक ब्राह्मण द्वारा कथा श्रवण करना चाहिए । नरसत्तम! अन्य मास में भी अष्टमी के दिन दक्षिणा समेत पायस भोजन द्वारा ब्राह्मणों को पूजित करते हुए संतृप्त करना चाहिए ।१-३। इस व्रत नियम के पालन में एक वर्ष तक अठारह प्रकार के धान्यों के फल-मूल का सेवन न

ततः संवत्सरस्यांते चतुर्दश्यष्टमीषु च । अशक्तश्च व्रतं कर्तुं सहसैव प्रमुच्यते ॥५
सौवर्णं कारयेद्रुद्रं धर्मराजं तथैव च । कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वृंताकं पनसं तथा ॥६
आम्रातकपित्थं च कलिंगं सेर्ववारुकम् । श्रीफलं सवटाश्वत्थं जंबीरं कदलीफलम् ॥७
बदरं दाडिमं शक्त्या कार्याण्येतानि षोडश । मूलकामलकं जंबूपुष्करं करमर्दकम् ॥८
उदुम्बरं नालिकेरं द्राक्षा च बृहतीद्वयम् । कंकाली काकतुंडीरं करीरकुटजं शमी ॥९
रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश । ताम्रं तालफलं कुर्यादगस्त्यफलमेव वा ॥१०
पिण्डीरकं च खर्जूरं तथा सूरण कंदकम् । पनसं लकुचं चैव कर्कटं तिंतिडिं तथा ॥११
चित्रावल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिकाफलम् । मधूकं कारवेल्लं च वल्लीं गुदपटोलकम् ॥१२
कारयेच्छक्तितो धीमान्फलान्येतानि षोडश । उदकुंभद्वयं कुर्याद्धान्योपरि सवाससम् ॥
पक्षपात्रद्वयोपेतं यमरुद्रसमन्वितम् ॥१३
धेन्वा सहैव शांताय विप्रायाथ कुटुम्बिने । सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽहनि निवेदयेत् ॥१४
यथा फलेषु सर्वेषु वसंत्यमरकोटयः । तथा सर्वफलत्यागाच्छिवे भक्तिः सदास्तु मे ॥१५
यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ । तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ॥१६
यथा फलानां कामस्य शिवभक्तस्य सर्वदा । यथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥१७
यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजाम् । तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शंकरः सदा ॥१८
इत्युच्चार्य च तत्सर्वमलंकृत्य विभूषणैः । शक्तश्चेच्छयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥

करना चाहिए, किन्तु औषध रूप में सेवन करने के लिए निषेध नहीं है। अनन्तर वर्ष की समाप्ति में चतुर्दशी और अष्टमी के दिन व्रत रहने में असमर्थ होने पर उसे रुद्र, धर्मराज, कूष्माण्ड, विजौरा नीबू, वृन्ताक, कटहल, आम, अनार, कैथ, कुटज, सेर्व वारुक, श्रीफल (विल्व), वरगद, पीपल, जंबीर नीबू, केला, वेर, अनार, के फलों की सुवर्ण-प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। उसी प्रकार मूलक, आँवला, जामुन, पुस्कर, करमर्दक, गूलर, नारियल, द्राक्षा, दो भटुकटैया, कंकाली, कांकतुण्डी,। करीर, कुटज और सभी इन सोलहों फलों की चांदी की प्रतिमा तथा ताल फल, अगसृपे फल, पिंडीरक, खजूर, सूरज, कन्द, कटहल, बड़हर, कर्कटी, ईमली, चित्रावेल्ली, कूट, सेमस्फल, महुआ, कारवेल, वल्ली, और गुदपटोल इन सोलह फलों की तौंबे की प्रतिमा होनी चाहिए। धान्य के ऊपर वस्त्राच्छन्न करके दो जल कलश की स्थापना पूर्वक दो पक्ष पात्र युक्त रुद्र और यम की प्रतिमा तथा नौ पूजनोपरांत शांत एवं कुटुम्बी किसी ब्राह्मण दम्पती को उस पुण्यहित सादर समर्पित करके क्षमा याचना करते हैं।४-१४। जिस प्रकार सभी फलों में करोड़ों देवगण निवास करते हैं, उसी प्रकार समस्त फलों के त्याग करने पर शिव में मेरी अल्प भक्ति सदैव बनी रहे। शिव और धर्मराज सदा अनन्त फल दायक कहे जाते हैं, इसलिए उक्त फल प्रदान पूर्वक वे दोनों मेरे लिए वर प्रदान करते रहें। जिस प्रकार शिव भक्त को यथेच्छ फलों की प्राप्ति सदैव होती रहती है, उसी प्रकार मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होती रहे। शिव, विष्णु, सूर्य और लक्ष्मी में मुझे कभी-कभी भेद संदेह न हो, इसके लिए विश्वात्मा भगवान् शंकर मेरा सदैव कल्याण करते रहें।१५-१८। ऐसा कहकर भूषण-भूषित उपरोक्त के दान करें। सशक्त रहने पर समस्त साधन सम्पन्न एवं

अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः ॥१९
तथोदकुंभसहितौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ । विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥
अन्यानपि यथा शक्त्या भोजयेद्द्विजपुङ्गवान् ॥२०
न शक्नोति विहातुं चेत्सर्वाण्यपि फलान्युत । एकमेव परित्यज्य तदित्थं प्रतिपादयेत् ॥२१
एतत्त्यागव्रतानां तु गवे वैष्णवयोगिनाम् । शस्तं सर्वफलत्यागं व्रतं वेदविदो विदुः ॥२२
नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं राजसत्तम ॥२२
नैतस्मादपरं किञ्चिदिह लोके परत्र च । व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदन्नं तत्फलप्रदम् ॥२३
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावंतः परमाणवः । भवन्ति चूर्यमाणेषु फलेषु नृपसत्तम ॥
तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥२४

एतत्समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेश्वर सर्वदा स्यात् ।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रकलत्रदुःखमाप्नोति धाम स पुरंदरजुष्टमेव ॥२५
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनो नरो वा यो ब्राह्मणस्तु भवनेषु च धार्मिकाणाम् ।
पापैर्विमुक्तश्च पुरं मुरारेरानंदकृत्परमुपैति नरेन्द्र सोऽपि ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
फलत्यागचतुर्दशीव्रतवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।९८

सुसज्जित शय्या भी समर्पित करनी चाहिए और अशक्त रहने पर सविधान उपरोक्त फलों को भी । जल कलश समेत शिव और धर्मराज की सुवर्ण-प्रतिमा के दान करने के अनन्तर तेल और क्षार रहित भोजन करे । यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणों को भी भोजनों द्वारा संतृप्त करे और समस्त फलों के त्याग में असमर्थ होने पर ही फल का त्याग करे और कहे भी कि गौ, के निमित्त इसके त्याग एवं व्रत करने वाले वैष्णव योगियों के समस्त फलत्याग शास्त्र में बताये गये हैं ऐसा वैदिक विद्वानों का निश्चय है । राजसत्तम ! स्त्रियों को भी यथाशक्ति इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए । मुनिश्रेष्ठ ! लोक तथा परलोक में इसके समान कोई अन्य व्रत नहीं है, जिसमें अन्न दान द्वारा उपरोक्त फल की प्राप्ति हो सके । नृपश्रेष्ठ ! सुवर्ण, चाँदी, और ताँबे के परमाणु और फलों के पूर्ण की संख्या के सहस्रों युग रुद्र लोक में वह सम्मानित होता है । इस प्रकार महेश्वर ! समस्त पाप नाशक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह व्रती आजीवन सुखी रहता है और कालान्तर में भी पुत्र-स्त्री, विषयक दुःख न होकर उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है । धार्मिकों के मन्दिरों में इसके श्रवण करने वाले अल्पधार्मिक पुरुष, ब्राह्मण और इसे सुसम्पन्न करने वाला नरेन्द्र भी समस्त पापों की मुक्तिपूर्वक मुरारिकृष्ण लोक को प्राप्त करता है ।१९-२६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
फलत्याग चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९८।

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

पौर्णमासीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः । पूर्णमासो भवेद्यस्यां पौर्णमासी ततः स्मृता ।।१
पौर्णमास्यां च सञ्जातः सङ्ग्रामो जयलक्षणः । सोमस्यारिबुधैः सार्द्धं सर्वसत्वभयङ्करम् ।।२
तारायां चन्द्रमाः सक्तस्तस्या भर्ता बृहस्पतिः । तयोरभून्महायुद्धं भार्याकृत्येषु वै पुरा ।।३

युधिष्ठिर उवाच

तारा कस्य सुता कस्मात्स क्रुद्धः ससुरारिहा । सोमेन सह सङ्ग्रामं चक्रे चक्रगदाधर ।।४

श्रीकृष्ण उवाच

प्रजापतेरभूत्कन्या तारा वृत्रस्य चानुजा । तां बृहस्पतये प्रादात्पृथिव्यामेकसुन्दरीम् ।।५
देवाचार्याय सा भार्या त्वनिर्देश्या तथाविधा । रूपेणाभ्यां रूपवती सा निर्धूग व्यवस्थिता ।।६
बृहस्पतिं पर्यचरद्यथा चान्याः स्त्रियः क्वचित् । तां ददर्शायतापाङ्गीं तन्वङ्गीं चारुहासिनीम् ।।७
शीतांशुर्दर्शनादेव कामस्य वशमीयिवान् । आबभाषे च मधुरं तारे एह्येहि मा चिरम् ।।८
इङ्गिताकारकुशला तारा सोमस्य चेष्टितम् । बुद्धा शुद्धिमथो तन्वी प्राहेदं मधुराक्षरम् ।।९

अध्याय ९९

पौर्णमासीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्णिमातिथि चन्द्रमा को अत्यन्त पवित्र है क्योंकि पूर्णमासी तिथि वहीं होती है जिसमें मास की पूर्ति हो और इसी पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा का देवों के साथ जयसूचक संग्राम हुआ था। जो समस्त प्राणियों के लिए भयावह था। पहले समय में तारा में प्रसक्त होने के नाते चन्द्रमा से और उसके पति बृहस्पति से भी यहाँ घोर संग्राम हुआ था।१-३

युधिष्ठिर ने कहा—चक्र एवं गदाधारी भगवन्! तारा किसकी पुत्री है और देवों समेत अपने शत्रु हन्ता वृहस्पति ने क्रुद्ध होकर चन्द्रमा के साथ घोर युद्ध क्यों किया।४

श्रीकृष्ण बोले—प्रजापति (ब्रह्मा) की पुत्री जो वृत्रासुर की कनिष्ठा भगिनी है 'तारा' नाम से विख्यात है। उस त्रैलोक्य सुन्दरी को उन्होंने देवों के आचार्य वृहस्पति को सविधान अर्पित किया। यद्यपि उस सुन्दरी तारा के रूपलावण्य द्वारा वे दोनों अत्यन्त मदन व्यथित थे तथापि वह अन्य स्त्रियों की भाँति वृहस्पति की सेवा करती थी। उस विशाल लोचना को, जो सौन्दर्य के निधान एवं मुग्धहास करने वाली थी, देखते ही चन्द्रमा काम पीडित होने लगे। उन्होंने संकेत करते हुए उससे मधुर शब्दों में कहा—तारा! आओ, आओ! विलम्ब न करो।५-८। इंगित आकार समझने वाली उस कुशल तारा ने

मुनेरंगिरसः पुत्रस्त्वं च सौम्योऽसि सोमराट् । अङ्गिरसो मुनेर्वीर स्नुषाहमुचितं न ते ।।
सह सौम्येन यो योगस्तद सिद्धोऽद्भुतो महान् ।।१०
अंगिरास्त्वां किल पुरा ससुरासुरराक्षसैः । राजत्वे स्थापयामास नैतत्स्मरसि किं विधो ।।११
कथमद्य निशानाथ ह्यनङ्गेनासि पीडितः । तस्माद् ब्रवीमि सिद्धिं ते रोचये घटितं कुरु ।।
परवत्यस्मि भद्रं ते न गम्यास्मि वुधोत्तम ।।१२
एवमुक्तस्तथा चासौ न चैतत्कृतवांस्ततः । गृहीत्वाकर्षयामास सोनोऽनङ्गवशीकृतः ।।१३
बृहस्पतिस्तु तां ज्ञात्वा स तं सोनमगर्हयत् । प्रेषयिष्यति मे भार्यां स्वयमेव ममान्तिकम् ।।१४
एवं चिरेण विज्ञाय बृहस्पतिरुदारधीः । नाससाद स्वकां भार्यां रोषात्प्रस्फुरिताधरः ।।१५
आचख्यौ सर्वमिन्द्राय सोमस्येदं विचेष्टितम् । इन्द्रः समाह्वयामास देवानृषिगणांस्तथा ।।१६
न सोमो गणयामास ततोऽबुध्यत देवराट् । आकार्यं त्रिदशान्सर्वानाचख्यौ चन्द्रचेष्टितम् ।।१७
तच्छ्रुत्वा देवगंधर्वाः क्रोधान्धाः क्षुब्धमानसाः । प्रगृहीतप्रहरणा रथानारुरुहुः स्वकान् ।।१८
सोमोऽपि देवान्सोद्योगाञ्ज्ञात्वा सुकृतनिश्चयान् । दैत्यदानवरक्षांसि समानीय व्यवस्थितः ।।१९
आरुह्य च रथश्रेष्टं युद्धायैव मनो दधे । प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं शरतोमरकंपनैः ।।२०
कौणपैः क्ष्मासुरैः शूलैर्देवदानवदारणम् । स तेषां सुमहद्युद्धं दत्त्वा तारागणाधिपः ।।

चन्द्रमा की उस चेष्टा को देखकर शुद्ध भावना से पूर्ण एवं मधुर अक्षरों में कहा—वीर! आप अंगिरा मुनि के पुत्र, सौम्य एवं सोमराट् हैं, और मैं भी उन्हीं अंगिरा मुनि की ही स्नुषा हूँ, अतः आप को मेरे साथ ऐसी चेष्टा करना उचित नहीं है । सौम्य होने के नाते ही आप की महान् एवं योग की सिद्धि हुई है—महर्षि-प्रवर अंगिरा ने देव, असुर और राक्षसों के लिए तुम्हें राज पद पर प्रतिष्ठत किया है, विधो! क्या इसका भी स्मरण नहीं हो रहा है! निशानाथ! आज आप काम-पीडित क्यों हो रहे हैं ।९-१२। इसलिए मैं कह रहीं हूँ, आप का वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा । आप की जैसी इच्छा हो करें, किन्तु देवोत्तम! मैं पराये की हो चुकी हूँ, अब आप के साथ गमन करना उचित नहीं है । इस प्रकार तारा के कहने पर भी उन्होंने काम पीड़ित होने के नाते उस का कहना नहीं माना और उसे पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया । वृहस्पति ने उसे देखकर चन्द्रमा की बड़ी निन्दा की । अनन्तर बहुत दिनों तक उन्हें यहीं निश्चय था कि—चन्द्रमा मेरी पत्नी स्वयं भेज देगें । किन्तु चिरकाल की प्रतीक्षा के उपरांत भी उनके द्वारा माया के प्रेषण न करने पर उन्होंने अत्यन्त रुष्ट होकर, जिसमें उनके होंठ फड़क रहे थे, इन्द्र से चन्द्रमा की समस्त चेष्टाओं का विवरण निवेदन किया । उसे सुनकर देवराज ने समस्त देवों और ऋषिगणों को अपने यहाँ, आवाहित किया । किन्तु इन्द्र को यह जानते देर नहीं लगी कि—चन्द्रमा ने मेरी आज्ञा की अवहेलना की है । उन्होंने समस्त देवों के समक्ष चन्द्रमा की उस अनीति का स्पष्ट विवेचन किया जिसे सुनकर देव और गन्धर्वगण क्रोधान्ध एवं अत्यन्त क्षुब्ध होकर अपने अस्त्र-शस्त्र समेत रथ पर बैठकर युद्धार्थ चल पड़े । चन्द्रमा ने भी युद्धोन्मुख देवों के निश्चय को भलीभाँति जानकर दैत्य, दानव और राक्षसों को आवाहित कर रण की तैयारी की ।१३-१९। एक परमोत्तम रथ पर बैठकर उन्होंने रण भूमि में पहुंचते ही संग्राम प्रारम्भ कर दिया । तारा गणाधीश्वर चन्द्रमा ने देव-दानवों के शर, तोमर, एवं शूलों! द्वारा प्रारम्भ उस

बभञ्ज देवान्सेन्द्रांश्च हिमवृष्टया क्षपाकरः ॥२१
स जित्वा देवगन्धर्वान्सोमो राजन्यसत्तम । श्रिया परमया युक्तो यथा नान्यो हविर्भुजाम् ॥२२
देवाश्च निर्जितास्तेन सोमेनामिततेजसा । आजग्मुः शरणं देवं शरण्यं स्वर्गवासिनाम् ॥२३
इन्द्रः सर्वं समाचख्यौ सोमस्येदृग्विचेष्टितम् । श्रुत्वा क्रुद्धो हृषीकेश आरुह्य गरुडं रुषा ॥
गृहीत्वा [१]चायुधं श्रेष्ठं युद्धायैव मनो दधे ॥२४
प्रकर्तुं सुमहद्युद्धं चक्रशार्ङ्गगदाधरः । जगाम विबुधैः सार्धं सोमस्योपरि रोषितः ॥२५
विष्णुं विदित्वा संप्राप्तं सोमो दैत्यगणैः सह । युद्धाय समरामर्षी स्थितः [२]प्रध्माय वारिजम् ॥२६
स जित्वा देवसंघातं सेंद्रं[३] वायुपुरस्सरम् । विष्णुना सह संयुक्तं शस्त्रास्त्रैरसुभोजनैः ॥२७
यदा नासावुपरमेद्युद्धाय सह विष्णुना । तदाऽऽददे रुषा विष्णुश्चक्रं क्रोधसमन्वितः ॥२८
अथाह ब्रह्मा देवेशमजितं विष्णुमव्ययम् । योऽसौ मेघप्रपुष्टांगं यत्त्वां वच्मि निबोध तत् ॥२९
नास्ति वध्यं त्रिभुवने चक्रस्यास्य तवानघ । सोमो दिवाधिपत्ये च मया समभिषेचितः ॥३०
तस्माद्यद्युज्यते देवकार्येऽस्मिंस्तद्विधीयताम् । अथाह भगवान्विष्णुः सुरब्रह्मर्षिसन्निधौ ॥३१
सिनीवाली कुहूर्नाम तस्यां क्षपाकारः । विनष्टोऽपि पुनर्जन्म प्राप्स्यतीति न संशयः ॥३२

भयानक युद्ध में देवों का डटकर सामना करने के अनन्तर अपनी हिमवृष्टि द्वारा इन्द्रादि देवों को मर्माहत कर दिया । राजन्य सत्तम! देव गन्धर्वों को पराजित करने पर हविभोक्ता अग्नि की भाँति उन्हें परमोत्तम श्री की प्राप्ति हुई । चन्द्रमा के तेज से आहत होने पर देवों ने स्वर्गवासियों के शरण्य भगवान् विष्णु की शरण में पहुँच कर चन्द्रमा की उस धृष्टता पूर्ण चेष्टा का विशद विवेचन किया और इन्द्र ने भलीभाँति उसका विवरण किया जिसे सुनकर भगवान् हृषीकेश ने रुष्ट होकर अपने पुष्पक समेत गरुड़ वाहन पर बैठ कर युद्ध करने का निश्चय किया और भीषण युद्ध प्रारम्भ करने के लिए देवों समेत रणस्थल को प्रस्थान भी किया । युद्धार्थ रण भूमि में उपस्थित विष्णु को देखकर समरामर्षी चन्द्रमा ने भी दैत्यगणों समेत रणस्थल में पहुँच कर शंख ध्वनि द्वारा अपनी उपस्थित की सूचना दी । प्राण भक्षी शस्त्रास्त्रों द्वारा इन्द्र, वायु आदि प्रमुख देवों को पराजित कर उन्होंने विष्णु के साथ भी युद्ध करने के लिए निश्चय किया और उनके सम्मुख उपस्थित भी हो गये । चन्द्रमा को अपने साथ युद्ध स्थगित करते न देखकर भगवान् विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन पर प्रहारार्थ अपने चक्र को ग्रहण किया । उस समय उन्हें क्रुद्ध देखकर ब्रह्मा ने देवेश, अजित एवं अव्यय भगवान् विष्णु से कहा—भगवान् अनघ! आप मेघ मे समान अत्यन्त पुष्ट अंगवाले हैं और इस चक्र द्वरा त्रिभुवन की रक्षा करते हैं अतः मेरी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देने की कृपा करें—'मैंने चन्द्रमा को द्विजाधिपत्य पद पर प्रतिष्ठित किया है । इसलिए देवकार्यार्थ युद्ध के लिए उपस्थित आप इस प्रकार का अनर्थ न करें। इसे सुनकर भगवान् विष्णु ने देवों और ब्रह्मर्षियों के समक्ष कहा—सिनीवाली एवं कुहू नामक अमावास्या तिथि के दिन यहीं निशाकर चन्द्रमा नष्ट हो जायेगा और विनष्ट होकर पुनः नाम ग्रहण करेंगे इसमें संशय नहीं।२०-३२। राका (पूर्णिमा) को प्राप्त

---

१. विमलं चक्रम् । २. प्रध्मातवारिजः । ३. विष्णुं चाभिप्रदुद्रुवे ।

राकां चानुमतिं प्राप्य वृद्धिरस्य भविष्यति । आप्यायितश्च श्रुत्युक्तैः पितृपिण्डैः समन्त्रकैः ॥
ब्राह्मणैर्हव्यकव्यानि देवेभ्यः प्रापयिष्यति ॥३३
वृद्धिः कृष्णेन चैवास्य न च जातस्य भूयसी । एवमेव विधिर्दृष्टस्तस्याप्याय नमेव मे ॥३४
अमोघस्य न मोघत्वं भविष्यति कदाचन् । शप्तश्च सोमो दक्षेण स चावश्यं भविष्यति ॥३५
सुदर्शनस्य च प्रीतिरेवमेव भविष्यति । एवमस्त्विति देवेश यद्भवान्प्रब्रवीति वै ॥३६
ब्रह्मा प्रोवाच सोमं तु विनीतवदुपस्थितम् । अर्पयस्व गुरोर्भार्यां न कार्यं पुनरीदृशम् ॥३७
स तथोक्तः समानीय ददौ तारां बृहस्पतेः । पुनरूचे शशी स्पष्टं शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥३८
अस्यां गर्भो मदीयोऽयं यदपत्यं ममैव तत् । बृहस्पतिरथोवाच मया गर्भः समाहितः ॥३९
क्षेत्रे मदीये चोत्पन्नस्तस्मात्स मम पुत्रकः । उक्तं च वेद शास्त्रज्ञैर्ऋषिभिर्द्धर्मदर्शिभिः ॥४०
उप्तं वाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति । क्षेत्रिणस्तस्य तद्बीजं न बीजी फलभाग्भवेत् ॥४१
सम्यगुक्तं न भवता शशांकः प्राह तत्त्ववित् । माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥
इति पौराणिकाः प्राहुर्मुनयो नयचक्षुषः ॥४२
विवदंतौ निवार्याथ ब्रह्मा प्रोवाच तां वधूम् । शनैरेकान्तमानीय गर्भोयं कस्य शंस मे ॥४३
एवमुक्ता तु सा तारा ह्रिया नोवाच किञ्चन । उत्ससर्ज क्षणाद्गर्भं भाभासितसुरालयम् ॥४४

कर इनकी वृद्धि होगी । वृद्धि होने पर वे देवमंत्रो के उच्चारण पूर्वक ब्राह्मणों द्वारा दिये गये पिण्डदान को पिता गण और हव्यकव्य को देव लोग प्राप्त करेंगे । उत्पन्न होने पर इनकी वृद्धि कृष्ण पक्ष में न हो सकेगी । इस प्रकार के दृष्टिगोचर विधान में इनका अध्यापन (वृद्धि) भी ऐसा ही निर्मित है । और मेरे इस अमोघ (अस्त्रों) में कभी भी विफलता होना असम्भव है, किन्तु दक्ष द्वारा दिये गये शाप का फल भागी इन्हें अवश्य होना है ।३३-३५। इसलिए इनका सुदर्शन प्रेम भी वैसा ही बना रहेगा । भगवान् देवाधीश के इस भाँति कहने पर ब्रह्मा ने कहा—देवेश! आप का सभी कहना परमोत्तम है । पुनः उन्होंने विनय-विनम्र उपस्थित उन चन्द्रमा से कहा—तुम गुरु बृहस्पति की भार्या लौटा दो और पुनः कभी ऐसा करने का उत्साह न करना, उन्होंने 'तथास्तु' कहकर तारा वृहस्पति को समर्पित कर दिया और उसी समय समस्त देवों के समक्ष यह भी कहा कि—इसमें जो गर्भ है वह मेरा है, अतः उत्पन्न होने पर वह संतान मेरी होगी । इसे सुनकर वृहस्पति ने भी कहा कि—गर्भ मेरी स्त्री में है, अतः मेरे क्षेत्र में उत्पन्न होने के नाते यह पुत्र मेरा होगा । क्योंकि वेद-शास्त्र के निपुण मर्मज्ञ ऋषियों ने कहा भी है कि—वायु द्वारा आहत अथवा किसी प्रकार बोये गये बीज का अंकुर जिसके क्षेत्र में उत्पन्न होता है, वह बीज उसी क्षेत्र वाले का होता है न कि बीज बोने वाले का ।३६-४१। इसे सुनकर तत्त्ववेत्ता शशांक ने कहा—'आप ने भलीभाँति विचार कर नहीं कहा । क्योकि नृप विशारद एवं पुराणमर्मज्ञ मुनियों ने वह बताया है कि—पुत्र की माता उसके पिता की भस्त्रा (माठी) के समान है, अतः उससे उत्पन्न होने वाला पुत्र पिता का ही होता है। ब्रह्मा ने इन दोनों विवाद निवारणार्थ तारा को एकान्त स्थान में ले जाकर उससे धीरे से कहा—मुझे बताओ, यह गर्भ किसका है! उनके ऐसा कहने पर तारा ने लज्जा वश नम्रमुख करके कुछ भी नहीं कहा । किन्तु उसी समय स्वर्ग को देदीप्यमान गर्भ का उत्सर्जन किया । ब्रह्मा ने उस पुत्र से कहा—पुत्र! आप किसके

तमुवाच ततो ब्रह्मा पुत्र कस्य सुतो भवान् । सोमस्याहं सुतो ब्रह्मन्निति तथ्यं मयोदितम् ।।४५
बुधोऽयं विबुधाः प्राहुः सर्वज्ञानविदां वरः । गृहीत्वा पुत्रकं सोमो जगाम स्वं निवेशनम् ।।४६
गुरुर्गृहीत्वा स्वां भार्यां जगाम भवनं शनैः । सोमोऽपि तनयं लब्ध्वा हर्षव्याकुलमानसः ।।४७
पौर्णमासी समाख्याता प्राप्तपूर्णमनोरथा । प्राप्तः पुत्रो मया ह्यस्यां लब्धश्च विजयस्तथा ।।४८
तस्मादेनामुमासिष्ये विधिना व्रततत्परः । एवमन्योऽपि पूर्णार्थः पूर्णांशः पूर्णलक्षणः ।।४९
यो मामक्यां तिथौ भक्त्या विधिवत्पूजयिष्यति । तस्य प्रसादभिमुखः सर्वकामप्रदो ह्यहम् ।।५०
एवमेषा तिथिः पार्थ सोमस्य दयिता शुभा । पौर्णमासी समाख्याता पूर्णोमासो भवेद्यथा ।।५१
तदस्यां स्रोतसि स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः । आलिख्य मंडले सोमं नक्षत्रैः सहितं विभुम् ।।५२
पूजयेत्कुसुमैर्हृद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । शुक्लाक्षतैः शुक्लवस्त्रैः पूजयित्वा क्षमापयेत् ।।
शाकाहरणमुन्यन्नैर्नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ।।५३
वसन्तबान्धव विधो शीतांशो स्वस्तिः नः कुरु । गगनार्णवमाणिक्यचन्द्रदाक्षायणीपते ।।५४
[1]पक्षेपक्षे पौर्णमास्यां विधिरेष प्रकीर्तितः । कृष्णपक्षेऽपि यः कश्चिच्छ्रद्धावान्वै व्रती भवेत् ।।५५
तस्याप्येष विधिः प्रोक्तः सर्वसौख्यप्रदायकः । आमावास्या तिथिरियं पितृणां दयिता सदा ।।
अस्यां दत्तं तपस्तप्तं पितृणामक्षयं भवेत् ।।५६

पुत्र हैं! उसने कहा—ब्रह्मन्! मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ। मैंने कहा-यह तथ्य कह रहा है और देवों ने कहा—यह समस्त ज्ञानियों में परमोत्तम चेष्टा है अतः इसको बुध कहना चाहिए। अनन्तर चन्द्रमा ने पुत्र लेकर और वृहस्पति ने अपनी भार्या लेकर अपने-अपने गृह का प्रस्थान किया। पुत्र प्राप्ति होने पर सोम को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने कहा—यह पूर्णमासी मनोरथ सफल करने वाली तिथि है। क्योंकि मैंने इसी दिन पुत्र और विजय दोनों की प्राप्ति की है! अतः सविधान व्रत को सुसम्पन्न करने के निमित्त मैं इसमें उपवास करूँगा। यद्यपि इसके समान अन्य व्रत भी मनोरथ सफल करने के लिए पूर्णांश एवं पूर्ण लक्षण युक्त हैं तथापि इस मेरी प्रेयसी तिथि के दिन भक्ति पूर्वक सविधान मेरी पूजा करने पर मैं प्रसन्न होकर उनकी समस्त कामनाएँ सफल करता हूँ। पार्थ! इस प्रकार यह तिथि रूप में की उत्पन्न प्रेयसी है और मैंने उस पूर्णमासी की समस्त व्याख्या कर दी जिसमें मास की पूर्ति होती है। इसलिए नदी में स्नान करके देव-पितृ तर्पण करने के उपरांत मण्डल की रचना कर उसके भीतर नक्षत्रों समेत विप्र सोम की अर्चना मनोहर पुष्प, घृतप्लुत नैवेद्य, श्वेत अक्षत और श्वेत वस्त्र द्वारा सुसम्पन्न करते हुए शाकाहार एवं मुनि के पुत्र का मौन होकर नक्त भोजन करे और इस भाँति क्षमा प्रार्थना करे कि—वसन्त वान्धव एवं शीत किरण वाले विधो! हमें कल्याण परम्परा प्रदान कर अनुगृहीत करो। आप, गगन-सागर की परमोत्तम रवि, चन्द्र तथा दाक्षायणी के पति हैं। यही विधान प्रत्येक मास की पूर्णिमा व्रत के लिए बताया गया है। और कृष्ण पक्ष में भी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक कोई व्रती होना चाहे, तो उसके लिए भी यही समस्त सौख्य दायक विधान कहा गहा है। इसी भाँति यह समस्त तिथि पितरों को सदैव प्रिय हैं। क्योंकि इसमें दिया गया दान तप पितरों के लिए अक्षय होता है।४२-५६। महाराज! अमावस्या के दिन सप्रयत्न

---

१. मासेमासे।

अमावास्या महाराज प्रयत्नैर्यैरुपोषिता । तैरक्षय्यं भवेद्दत्तं पितृभ्यस्तीर्थमुत्तमम् ॥५७
यः कश्चिकुरुते तस्मिन्पितृपिण्डोदकक्रियाम् । स तारयति पुण्यात्मा[1] पुरुषानेकविंशतिम् ॥५८
भवेयुरक्षयास्तस्य लोकाः पितृनिषेविताः । यदा तु इह कालांते तस्यात्रागमनं भवेत् ॥५९
ब्राह्मणः पितृभक्तश्च सर्वविद्याविशारदः । एवं जन्मनि राजेन्द्र भवेद्धनसमन्वितः ॥६०
एवं संवत्सरस्यांते हैमं कृत्वा सुशोभनम् । सोमं नक्षत्रसहितं विप्राय प्रतिपादयेत् ॥६१
उपदेशं प्रयच्छेद्यस्तस्मै व्रतकृते नरः । संपूज्य वस्त्राभरणैर्मंत्रेणेत्थं निवेदयेत् ॥
मासेमासे विधिरयं व्रतस्यास्य नराधिप ॥६२
यो न शक्नोति वा कर्तुं पक्षं वाथ निरंतरम् । स एकामप्युपोष्यैव कुर्यादुद्यापनं सुधीः ॥६३
यश्चैतत्कुरुते पार्थ पौर्णमासीव्रतं नरः । सर्वपापाविनिर्मुक्तश्चन्द्रवद्दिवि राजते ॥६४
पुत्रपौत्रधनोपेतो यज्वा दाता प्रियंवदः । सन्ततिं विपुलां प्राप्य प्रयागे मरणं भजेत् ॥६५
ततश्चैवाक्षयाँल्लोकान्प्राप्नोति सुरसेवितान् । सेव्यमानः स गन्धर्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥
आस्ते संपूर्णसर्वांगो यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥६६

उपवास करते हुए पितरों के उद्देश्य से दिया गया यह उत्तम तीर्थ अक्षय होता है । उस दिन पिण्डोदक क्रिया करने वाला वह पुण्य पुरुष अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करता है । तथा उसका वह पितृ लोक सदैव के लिए अक्षय रहता है । राजेन्द्र! कदाचित् उसकी इस लोक में आगमन होने पर वह ब्राह्मण, पितृ भक्त और समस्त विधाओं में खयाति प्राप्ति विद्वान् एवं धनवान् होता है । अनन्तर वर्ष के अन्त में नक्षत्र समेत चन्द्रमा की सुवर्ण प्रतिमा बनाकर पूजनोपरांत ब्राह्मण को अर्पित करें । वस्तुतः इस व्रत के उद्देश्य को ही वस्त्राभूषण द्वारा सुसम्मानित करने के उपरांत प्रतिमा आदि समर्पित करना चाहिए । नराधिप! प्रत्येक मास में इसे सुसम्पन्न करने के लिए यही विधान बताया गया है । जो पुरुष प्रत्येक मास में इस व्रत को सुसम्पन्न करने में असमर्थ होता है, उसे एक ही व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करने के अनन्तर इसका उद्यापन कर देना चाहिए । पार्थ! इस पौर्णमासी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त पातकों से मुक्त होकर स्वर्ग में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है । पुनः इस धरातल पर जल ग्रहण कर पुत्र, पौत्र, एवं धन समेत सुखी, यज्वा, दाता एवं प्रियवादी होता है । सन्तति एवं विपुल भोग प्राप्त कर अन्त में तीर्थराज प्रयाग में प्राणोत्सर्ग होता है और अनन्तर सुरसेवित अक्षय लोकों की प्रप्ति होती है। वह वहाँ गन्धर्वों द्वारा सुसेवित और देवों-असुरों द्वारा वन्दनीय होते हुए तीन अयुत (तीस सहस्र) कल्प पर्यन्त सुखानुभव प्राप्त करता है।५७-६६। पार्थ! इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा में सोम और कृष्ण पक्ष की

---

१. नरकात् ।

अभ्यर्चयन्ति सितपञ्चदशीषु सोमं कृष्णासु[1] ये पितृगणं जलपिण्डदानैः।
तेषां गृहाणि धनधान्यसुतादिसंपत्पूर्णानि पार्थिव भवंति विधेर्विधानात् ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विजयपौर्णमासीव्रतवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ।९९

अथ शततमोऽध्यायः

वैशाखीकार्त्तिकीमाघीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

संवत्सरे च याः काश्चित्तिथयः पुण्यलक्षणाः । ता मे वद यदुश्रेष्ठ स्नाने दाने महाफलाः॥१

श्रीकृष्ण उवाच

वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः । स्नानदानविहीनैस्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥२
तीर्थस्नानं तदा शस्तं दानं वित्तानुरूपतः । वैशाख्यां पांडवश्रेष्ठ श्रेष्ठा द्योतनिका मता ॥३
कार्त्तिक्यां पुष्करारण्यं माघ्यां वाराणसी स्मृता । स्नानेनोदकदानेन तारयत्यपि दुष्कृतीन् ॥४
कुम्भान्स्वच्छांभसः पूर्णान्सहिरण्यान्नसंयुतान् । वैशाख्यां ब्राह्मणो दत्त्वा न शोचति कृते व्रते ॥५

अमावस्या के दिन जल-पिंड दान द्वारा पितरों की अर्चना करता है, उसे विधि के विधान द्वारा धन-धान्य, सुतादि और सम्पत्तिपूर्ण गृह उपलब्ध होते हैं ।६७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विजयपौर्णमासी-व्रत वर्णननामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९९।

अध्याय १००

वैशाखी, कार्तिकी, माघी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुश्रेष्ठ! मुझे पूरे वर्ष की उन सभी पुण्य तिथियों के महत्त्व आदि बताने की कृपा कीजिए, जिनमें स्नान-दान करने से महान्फलों की प्राप्ति होती है ।१

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन! वैशाख, कार्तिक और माघ मास की तिथियाँ अत्यन्त पूजनीय बतायी गयी हैं, उन्हें स्नान-दान से कभी वञ्चित न रखना चाहिए। पाण्डव श्रेष्ठ! वैशाख मास की तिथियों में तीर्थ-स्नान और अपने वित्तानुसार दान करना महर्षि प्रवरों ने अत्यन्त श्रेयस्कर बताया है। उसी प्रकार कार्तिक मास में पुष्कर और माघ मास में वाराणसी तीर्थ में स्नान एवं उदक दान करने से अत्यन्त पातकी का भी संतरण हो जाता है। वैशाख मास की तिथि में व्रत-पालन पूर्वक स्वच्छ जलपूर्ण घट के, जो सुवर्ण और अन्न से सुसज्जित हों, दान करने पर उसे कभी भी किसी प्रकार की चिंता नहीं होती है।२-५। उस

---

१. कृत्वा बलिम् ।

मधुरान्नरसैः पूर्णान्भाजनान्कनकोज्ज्वलान् । गोभूहिरण्यवासांसि विधिवत्प्रतिपादयेत् ॥६
माघ्यां मघासु च तथा संतर्प्य पितृदेवताः । तिलपात्राणि देयानि तिलांश्च पललौदनम् ॥७
कार्पासदानमत्रैव तिलदानं च शस्यते । कम्बलाजिनरत्नानि मोचकौ पापमोचकौ ॥८
उपानद्दानमत्रैव कथितं सर्वकामदम् । यत्र वा तत्र वा स्नानं दानं वित्तानुरूपतः ॥९
कलिकालोद्भवं सर्वं शस्यते पाण्डुनन्दन । कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गो विवाहः पुण्यलक्षणः ॥
कार्यं कुरुकुलश्रेष्ठ हरेर्नीराजनं तथा ॥१०
गजाश्वरथदानं च घृतधेन्वादयस्तथा । प्रदेयाः पुण्यकृद्भिश्च तास्ताः सङ्कल्प्य देवताः ॥११
फलानि यानि विद्यन्ते सुगन्धिमधुराणि च । जातीफलं च कङ्कोलं लवङ्गं लवलीफलम् ॥१२
खर्जूरीं नालिकेरांश्च कदल्याश्च फलानि च । दाडिमान्मातुलुङ्गांश्च कर्कोटांस्त्रपुसांस्तथा ॥१३
वृंताकान्कारवेल्लांश्च बिम्बान्कूष्मांडकर्बुरान् । अप्रदानेन येषां नु तिथयो यांति भारत ॥
ते व्याधिता दरिद्राश्च जायन्ते भुवि मानवाः ॥१४
न केवलं ब्राह्मणानां दानं सर्वस्य शस्यते । भगिनीभागिनेयानां मातुलानां पितृष्वसुः ॥
दरिद्राणां च बंधूनां दानं कोटिगुणोत्तरम् ॥१५
मित्रं कुलीनश्चापन्नो बन्धुर्दारिद्र्यदुःखितः । आशयाभ्यागतो दूरात्सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ॥१६
वनं प्रस्थापिते रामे ससीते सहलक्ष्मणे । मातामहकुलादेत्य विशुद्धेनान्तरात्मना ॥
सा सर्वैः श्रावितानेकैः कौशल्या भरतेन वै ॥१७

तिथि के दिन मधुर अन्न-रस से पूर्ण वे पात्र, जो सुवर्ण द्वारा देदीप्य मान हों, गौ, भूमि हिरण्य और वस्त्र के सहित दान करना चाहिए। उसी प्रकार माघ मास में मघा नक्षत्र के दिन पितृ-देव के तर्पण पूर्वक तिल पात्र, तिल, मांस-ओदन (भात) कपाश और तिल दान करना प्रशस्त कहा गया है। कम्वल, मृगचर्म, एवं रत्नदान पाप मोचक बताया गया है और समस्त कामनाओं को सफल करने वाला उपानह्-दान भी इसी मास में करना चाहिए। पाण्डुनन्दन! स्नान चाहे जहाँ करो, किन्तु दान अपने अनुसार ही करना चाहिए। इस प्रकार कलिकाल में सभी प्रशस्त है। कुरुकुलश्रेष्ठ! कार्तिक (पूर्णिमा) के दिन वृषोत्सर्ग, पुण्य विवाह, भगवान् विष्णु के नीराजन अवश्य करना चाहिए और पुण्यात्माओं द्वारा तत्तद्देवताओं के निमित्त संकल्प पूर्वक गज, अश्व, रथ, धृत और धेनु के दान तथा सुगन्धित एवं मधुर फलों—जातीफल, कंकोल, लवंग, लवलीफल, खजूर, नारियल, केला, कदलीफल, अनार, विजौरा नीबू, कर्कोटक, त्रपुस, भाँया आदि, नारिकेल, विम्ब, कूष्माण्ड, और कर्बुर फल के दान करना चाहिए। भारत! इन तिथियों को दान से वञ्चित रखने पर मानव इस पृथिवी में व्याधिग्रस्त होकर दरिद्र-पीड़ित होते हैं।६-१४। उपरोक्त समस्या के दान वाले ब्राह्मणों के लिए ही नहीं प्रशस्त कहे गये हैं अपितु भगिनी, भागिनेय (भाञ्जा), मातुल और पिता को भगिनी के संतानों एवं दरिद्र वन्धुगणों को दिये गये दान कोटि गुने अधिक फल प्रदान करते हैं। मित्र, विपद्ग्रस्त कुलीन, दरिद्र वन्धु, और दूर से किसी आशा वश आया हुआ अभ्यागत, ये सभी अतिथि, क्रमशः स्वर्ग सोपान हैं। सीता और लक्ष्मण समेत भगवान् राम के वन जाने पर मातामह के यहाँ (तीन साल) से आने पर विशुद्ध अन्तः करण वाले भरत जी ने अपने को निरपराधी बताने के लिए कौशल्या के समक्ष अनेक प्रकार का शपथ किया।१५-१७। किन्तु कोशल पुत्री कौशल्या

यदा न प्रत्ययं याति कथंचित्कौशलात्मजा । तदा विशुद्धभावेन तिथयः श्राविताः पुनः ।।१८
वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽमरपूजिताः । अप्रदानवतो यांति यस्यार्च्योनुमते गतः ।।१९
एतच्छ्रुत्वा तु कौशल्या सहसा प्रत्ययं गता । अंकमानीय भरतं सांत्वयामास दुःखितम् ।।२०
एतत्तीर्थानां माहात्म्यं आख्यातं बहुविस्तरम् । भूयस्तु किं प्रवक्ष्यामि तव राजन् महामते ।।२१
वैशाखकार्तिकमघासहिताथ माघे या पूर्णिमा भवति पूर्णशशाङ्कचिह्ना ।
तस्यां जलान्नकनकाम्बरमातपत्रं दत्त्वा प्रयाति पुरुषः पुरुहूतलोकम् ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वैशाखीकार्तिकीमाघीव्रतवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ।१००

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

युगादितिथिव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

पुनर्मे ब्रूहि देवेश त्वद्भक्त्या भावितात्मनः । कथ्यमानमिहेच्छामि शुभधर्मपदं महत् ।।१
यत्राण्वपि नरैर्दत्तं जप्तं वा सुमहद्भवेत् ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पांडव ते वच्मि रहस्यं देवनिर्मितम् । यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ।।३

को उससे विश्वास होते न देख कर उन्होंने पुनः तिथियों का भी शपथ किया—'वैशाखी, कार्तिकी और माघी (पूर्णिमा) तिथियाँ देव पूज्य हैं उसे वे फल दायक न हों ।' इसे सुनते ही कौशल्या जी ने विश्वस्त होकर सहसा उन्हें अपने गोद में लेकर दुःखनिवृत्यर्थ सान्त्वना देने लगीं । महामते, राजन्! इन तिथियों का महत्त्व मैंने अत्यन्त विस्तृत रूप में तुम्हें सुना दिया, पुनः यदि जानना चाहते हो, बताओ । वैशाख, कार्तिक और मघायुक्त माघ की पूर्णिमा के दिन चन्द्र भूषित होने से जल, अन्न, सुवर्ण, वस्त्र, और छत्र के दान करने वाले को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है ।१८-२२।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
वैशाखी, कार्तिक और माघी (पूर्णिमा) के व्रत वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।१००।

अध्याय १०१

युगादितिथिव्रतमाहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश! आप की भक्ति द्वारा पूतात्मा होने के नाते मुझे सतत यही इच्छा हो रही है कि आप कुछ न कुछ कहते रहें । अतः आप किसी ऐसे शुभ धर्मात्मक एवं महान् व्रत—विकेवर्णन करने की कृपा करें जिसमें मनुष्यों को अणुमात्र दान अथवा जप करने से महान् फल की प्राप्ति हो सके।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! मैं तुम्हें एक देव-निर्मित रहस्य बता रहा हूँ, जिसे किसी को आज तक

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे।
नभस्यमासस्य तु कृष्णपक्षे त्रयोदशीं पञ्चदशीं च माघे ।।४
वैशाखस्य तृतीया तु समा कृतयुतेन तु । नवमी कार्तिकी या तु त्रेतायुगसमागता ।।५
त्रयोदशी नभस्ये तु द्वापरेण समा मता । माघे पञ्चदशी राजन् कलिकालादिरुच्यते ।।६
एता चतस्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवास्तथा । युगादयश्च कथ्यन्ते तथैताः सर्वसूरिभिः ।।७
उपवासस्तपो दानं जपहोमक्रियास्तथा । यद्यत्तु क्रियते किंचित्सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।८
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुम् । नारायणं पूजयेथाः पुष्पधूपविलेपनैः ।।
वस्त्रालंकारसंभारैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।।९
ततस्तस्याग्रतो धेनुर्लवणस्याढकेन तु । कार्या कुरुकुलश्रेष्ठ चतुर्भागेण वत्सकः ।।१०
अविचर्मोपरि स्थाप्य कल्पयित्वा विधानतः । शास्त्रोक्तक्रमयोगेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।११
श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमाञ्छ्रीशः संप्रीयतामिति । अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं विप्राय भारत ।।
गोसहस्रं दशगुणं प्राप्नोतीह न संशयः ।।१२
तथैव कार्तिके मासि नवम्यां नक्तभुङ्नरः । स्नात्वा नदीतडागेषु देवखातेषु वा पुनः ।।१३
उमासहायं वरदं नीलकण्ठमथार्चयेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैरनिन्द्यैः शङ्करं शिवम् ।।१४
धेनुं तिलमयीं दद्यात्पुराणोक्तविधानतः । अष्टमूर्तिर्नीलकण्ठः प्रीयतामिति चिंतयेत् ।।१५

बताया ही नहीं । भारत! वैशाखमास की तृतीया, कार्तिक शुक्ल नवमी, भाद्रपद कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी और माघ की अमावस्या ये तिथियाँ युग प्रवर्तक कही गयी हैं । वैशाखमास की शुक्ल तृतीया के दिन कृत (सत्य) युग, कार्तिक शुक्ल की नवमी के दिन सत्य युग और त्रेता युग, भाद्रपद की त्रयोदशी के दिन द्वापर और माघ की अमावास्या के दिन कलियुग का आरम्भ होता है । राजेन्द्र! ये चारों तिथियाँ युगों के प्रवर्तक होने के नाते समस्त विद्वानों की अनुमति से युगादि कही जाती है । इसलिए इन तिथियों में उपवास, तप, दान, जप और हवन क्रिया आदि जो कुछ किये जाते हैं वे कोटिगुने अधिकफल प्रदान करते हैं ।३-८। वैशाख मासकी तृतीया के दिन श्री समेत जगद्गुरु नारायण की पुष्प, धूप, लेपन, वस्त्र, अलंकार, और विविधभाँति के मधुर नैवेद्यों के अर्पण द्वारा सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । कुरुकुल श्रेष्ठ! तत्पश्चात् उनके सम्मुख एक आढक लवण द्वारा निर्मित धेनु और उसके चौथाई भाग द्वारा रचित वत्स (बछड़ों) को शास्त्र विधान द्वारा अवि (भेंड) के चर्मासन पर स्थापित एवं पूजित कर ब्राह्मणों को समर्पित करे । उस समय उसको ऐसा कहना चाहिए कि-श्रीधर, श्रीपति, श्रीमान् और श्री के ईश भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों । भारत! इस प्रकार से ब्राह्मण को गोदान प्रदान करना पर उसे दशसहस्र गौ के फल प्राप्त होते हैं इसमे संशय नहीं । उसी प्रकार कार्तिक मास की शुक्ल नवमी के दिन,उस नक्तभोजी पुरुष को किसी नदी, सरोवर अथवा देव कुण्ड आदि जलाशय में स्नान करके उमापति, एवं वरदायक नीलकण्ठ भगवान् की उत्तम पुष्प, धूप एवं नैवेद्यादि द्वारा, अर्चना करनी चाहिए । कल्याण मूर्ति भगवान् शिव की पूजा के उपरांत विधान द्वारा तिलमयी गौ के दान करते समय 'अष्टमूर्ति भगवान् नीलकण्ठ प्रसन्न हों,

यदत्र प्राप्यते पुण्यं पार्थ तत्केन वर्ण्यते । दत्त्वा तिलमयीं धेनुं शिवलोकमवाप्नुवात् ॥१६
त्रयोदशी नभसि सा कृष्णभस्यां समर्चयेत् । [1]पितृन्पायसदानेन मधुना च घृतेन तु ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगान् ॥१७
पितृनुद्दिश्य दातव्या सवत्सा कांस्यदोहनी । प्रत्यक्षा गौर्महाराज तरुणी सुपयस्विनी ॥१८
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । प्रीयंतां गोप्रदानेन इति दत्त्वा विसर्जयेत् ॥१९
कृतेनानेन राजेन्द यत्पुण्यं प्राप्यते नृभिः । तत्केन वर्णितुं याति वर्षकोटिशतैरपि ॥२०
पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च धनं च महदीप्सितम् । इह चाप्नोति पुरुषः परत्र च शुभां गतिम् ॥२१
पञ्चदश्यां च माघस्य पूजयित्वा पितामहम् । गायत्र्या सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूषितम् ॥२२
नवनीतमयीं धेनुं फलैर्नानाविधैर्युताम् । सहिरण्यां सवत्सां च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
कीर्तयेत्प्रीयतामत्र पद्मयोनिः पितामहः ॥२३
यत्स्वर्गे यच्च पाताले यच्च मर्त्ये सुदुर्लभम् । तदवाप्नोत्यसंदिग्धं पद्मयोनिप्रसादतः ॥२४
यानि चान्यानि दानानि दत्तानि सुबहून्यपि । युगादिषु महाराज अक्षयानि भवंति हि ॥२५
अल्पमल्पं हि यः कश्चित्प्रदद्यान्निर्द्धनोऽपि सन् । तदक्षयं भवेत्सर्वं युगादिषु न संशयः ॥२६
वित्तानुसारं स्वं ज्ञात्वा वित्तवान्पार्थिवोऽपि वा । अनुसारेण वित्तस्य असाध्येन समाधिना ॥२७
भूर्हिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि च । छत्रोपानत्सुयुग्मानि प्रदेयानि द्विजातिषु ॥२८

कहना चाहिए । पार्थ! इस व्रत-दान द्वारा जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करना सभी के लिए अशक्य है । तिलनिर्मित धेनु दान करने से शिव लोक की प्राप्ति होती है । भाद्रपद की कृष्ण त्रयोदशी के दिन मधु-घृत पूर्ण पायस (खीर) पिण्डदान द्वारा पितरों का संतृप्त कर भक्ति पूर्वक वेद-वेदाङ्गमर्मज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराये और पितरों के उद्देश्य से सवत्सा गौ और कांसे की दोहनी भी प्रदान करना चाहिए । महाराज! उस तरुणी पयस्विनी एवं प्रत्यक्षस्थित गौ के दान करते समय कहना चाहिए कि— 'पिता, पितामह, और प्रपितामह इस गोदान द्वारा प्रसन्न हों । अनन्तर विसर्जन करे । राजेन्द्र! इस सुकृत द्वारा मनुष्यों को जिस पुण्य राशि की प्राप्ति होती है, सौ कोटि वर्ष में भी उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता है । पुरुष को इस लोक में अनेक पुत्र-पौत्र- और यथेच्छ धन की प्राप्ति पूर्वक अन्त में शुभ गति प्राप्ति होती है । उसी प्रकार माघ की कृष्ण पञ्चदशी (अमावस्या) के दिन गायत्री समेत वेद-वेदाङ्गभूषित पितामह (ब्रह्मा) की अर्चना के उपरांत नवनीतमयी धेनु की और अनेक भाँति के फल, हिरण्य समेत बछड़े की अर्चना करके सादर ब्राह्मण को अर्पित करे और उस समय कहता रहे कि—'पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा' इस कर्म से प्रसन्न हों ।९-२३। पितामह ब्रह्मा की कृपा से जो स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक में उसे प्राप्त होती हैं इसमें संदेह नहीं । महाराज! इन युगादितिथियों के दिन अन्य वस्तुओं के भी किये गये दान अक्षय होते हैं । जो कोई निर्धन व्यक्ति इन दिनों अल्प भी दान करता है, वह सब अक्षय होता है इसमें संदेह नहीं । इसलिए कि—भूमि, हिरण्य, गृह, वस्त्र, शयन, आसन, छत्र और उपानह के दान

---

१. पितृनुद्दिश्य ।

एवं दत्त्वा यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि । पश्चाद्भुञ्जीत सुमना वाग्यतः स्वजनैः सह ॥२९
यत्किञ्चिन्मानसं पापं कायिकं वाचिकं तथा । तत्सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात् ॥३०
उद्गीयमानो गन्धर्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः । रमते चाक्षयं कालं स्वर्गलोके न संशयः ॥३१
यद्दीयते किमपि कोटिगुणं तदाहुः स्नानं जपोनियममक्षयमेव सर्वम् ।
स्यादक्षयासु युगपूर्वतिथीषु राजन्व्यासादयो मुनिवराः समुदाहरन्ति ॥३२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
युगादितिथिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।१०१

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

वटसावित्रीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्मरामि हृशीकेश यन्नोक्तं भवता क्वचित् । तत्सावित्रीव्रतं ब्रूहि ममोपरि दयां कुरु ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि कुलस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर । यथा चीर्णं व्रतवरं सावित्र्या राजकन्यया ॥२
आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः । पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम पौरजानपदप्रियः ॥३

ब्राह्मणों को प्रदान करें। उपरांत ब्राह्मणों को यथा शक्ति भोजन कराकर परिवार समेत स्वयं भी मौन होकर भोजन करें। इन युगादितिथियों के पूजन करने से मन, वाणी एवं शरीर-जनित समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं। गन्धर्व गण उसका गुणगान करते हैं और सुर-असुर उसकी सदैव वन्दना किया करते हैं। इस प्रकार वह स्वर्गलोक में अक्षय काल तक रमण करता है। राजन्! व्यासादि मुनिवरों के कथनानुसार इन युगादितिथियों में स्नान, जप, दान आदि जो कुछ किया जाता है, वह कोटि गुने फल प्रदान करते हुए प्रक्षय रहता है।२४-३२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
युगादितिथिव्रत-माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ एक अध्याय समाप्त।१०१।

अध्याय १०२

वटसावित्रीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—हृषीकेश! मेरे ऊपर दया कर आप मुझे उस सावित्री व्रत को बताने की कृपा कीजिये, जिसे आप ने अभी तक किसी को बताया नहीं है।१।

श्री कृष्ण बोले—युधिष्ठिर! सावित्री आदि राजकन्याओं ने उसे जिस प्रकार सुसम्पन्न किया है, कुलस्त्रियों के उस महाभाग्यशाली व्रत को मैं तुम्हें बता रहा हूँ। मद्र देश में अश्वपति नामक एक

क्षमावांश्च क्षितिपतिः सत्यवांश्च जितेन्द्रियः । स सभार्यो व्रतमिदं चचार नृपतिः स्वयम् ॥४
सावित्रीव्रतसिद्धं तत्सर्वकामप्रदायकम् । तस्य तुष्टाभवद्राजन् सावित्री ब्राह्मणः प्रिया ॥५
भूर्भुवःस्वरितीत्येषा साक्षान्मूर्तिमती स्थिता । कमण्डलुधरा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥६
उवाच दुहिता ह्येका तव राजन् भविष्यति । इत्येवमुक्त्वा सावित्री जगामादर्शनं पुनः ॥७
कालेन सा तथा राजन् दुहिता देवरूपिणी । सावित्र्या प्रीतमा दत्ता सावित्र्या जप्तया तदा ॥८
सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता । सा गृहवती सश्रीर्व्यवर्द्धत नृपात्मजा ॥
सावित्री सुकुमाराङ्गी यौवनस्था बभूव ह ॥९
तां सुमध्यां पृथुश्रोणीं प्रतिमां काञ्चनीमिव । प्राप्तेव देवकन्येति दृष्ट्वा तामितरे जनाः ॥१०
सा तु पद्मपलाशाक्षी प्रज्वलंतीव तेजसा । चचार सा च सावित्रीव्रतं यद्भृगुणोदितम् ॥११
अथोपोष्य शिरःस्नाता देवतामभिगम्य सा । हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रान्वाचयित्वेन्दुपर्वणि ॥१२
तेभ्यः सुमनसः शेषाः प्रतिगृह्य नृपात्मजा । साध्वी पतिव्रताभ्येत्य देवश्रीरिव रूपिणी ॥१३
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ शेषान्पूर्वं निवेद्य च । कृतांजलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वतः स्थिता ॥१४
तां दृष्ट्वा यौवनं प्राप्तां स्वच्छां तां देवरूपिणीम् । उवाच राजा संमंत्र्य स्मृत्यर्थं सह मंत्रिभिः ॥१५

राजारहता था, जो धर्मात्मा, समस्त प्राणियों का हितैषी, पुरवासियों को अनन्तप्रिय, क्षमाशील, पृथिवीपति, सत्यवादी एवं इन्द्रियसंयमी था। स्त्री समेत उस राजा ने स्वयं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले उस सिद्ध सावित्री को सविधान सुसम्पन्न किया। राजन्! ब्रह्मप्रिया सावित्री ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा को प्रत्यक्ष दर्शन दिया, जो भूर्भुवःस्वः की साक्षात् प्रतिमा मालूम होती थी। कमण्डलु लिए हुए उन सावित्री देवी ने अपनी प्रसन्नमुखमुद्रा एवं विकसित नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई राजा से कहा—राजन्! तुम्हारे एक पुत्री होगी। इतना कह कर सावित्री पुनः अन्तर्हित हो गयीं। राजन्! सावित्री के एक मात्र अटल प्रेम और उनकी अर्चना-वन्दना करने के नाते समयानुसार राजा के एक देव स्वरूपिणी कन्या की उत्पत्ति हुई। विप्रवृन्द! उसके पिता ने उस कन्या का सावित्री ही नाम रखा। वह सुकुमारी राज कुमारी धीरे-धीरे सौन्दर्य समेत बढ़ने लगी और कुछ ही काल में पूर्ण युवती हो गयी उस काञ्चनी प्रतिमा को देखकर जिसका मध्यभाग (कटि) अत्यन्त क्रमनीय एवं श्रोणिभाग पृथुल था, पुरवासी गण उसे देवकन्या ही मानते थे। कमल पुष्प की भाँति नेत्र एवं तेज से प्रज्जलित रहने वाली उस सावित्री ने भृगुऋषि के बताये अनुसार सावित्री व्रत सविधान सुसम्पन्न किया।२-११। राजकुमारी ने उस चन्द्र पर्व के दिन सर्वप्रथम उपवास पूर्वक शिर से स्नान, देव-पूजन, अग्नि में सविधान हवन, और ब्राह्मणों द्वारा कथा-पारायण कराने के उपरांत ब्राह्मणों से प्रसाद रूप पुष्प (मंत्राक्षत) ग्रहण किया। उस साध्वी पतिव्रता ने, जो साक्षात् देव श्री की मूर्ति दिखायी देती थी, अपने पिता के समीप पहुँच कर समस्त वृत्तान्तों के निवेदन पूर्वक हाथ जोड़कर उनके चरण का अभिवादन किया और अनन्तर वह वरा-रोहा राजा के बगल में बैठ गयी। राजा ने उस देवरूपिणी एवं अत्यन्त स्वच्छ अपनी कन्या को यौवन प्राप्त देखकर मंत्रियों के साथ विचार कर उससे कहा—सयुक्तिक और सामयिक विचार के अनुसार ही लोग

युक्तः प्रदानकालोऽस्यास्तेन कश्चिद् वृणोत्विमाम् । विचारयित्वा पश्यामि वरं तुल्यं महात्मनः ॥१६
देवादीनां यथा वाच्यो न लभेयं तथा कुरु । बोद्धयमाना मया पुत्रि धर्मशास्त्रेषु गच्छतम् ॥१७
पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । ब्रह्महत्या पितुस्तत्र सा कन्या वृषली स्मृता ॥१८
अतोर्थं प्रेषयामीति कुरु पुत्रि स्वयंवरम् । वृद्धैरमात्यैः सहिता शीघ्रं गच्छ विधारय ॥१९
एवमस्त्विवति सावित्री प्रोक्ता तस्माद्विनिर्ययौ । तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम सा ॥२०
मान्यानामत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिषेचनम् । ततोभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रयाणि च ॥२१
आजगाम पुनर्वेश्म सावित्री सह मन्त्रिभिः । तत्रापश्यच्च देवर्षि नारदं पुरतः पितुः ॥२२
आसीनमासने विप्रं प्रणम्य स्मितभाषिणी । कथयामास तत्सर्वं यथावृत्तं वनेऽभवत् ॥२३

सावित्र्युवाच

आसीत्साल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः । द्युमत्सेन इति ख्यातो दैवदत्तो बभूव सः ॥२४

नारद उवाच

अहो बत महत्कष्टं सावित्र्या नृपतेः कृतम् । बाल्यभावाद्यदनया न कृतः सत्यवान्नृपः ॥२५
सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते । उपेतोऽस्ति गुणैः सर्वैर्द्युमत्सेनसुतो बली ॥२६

वरण आदि करते हैं अतः पहले अपनी ऐसी धारणा बताओ कि—मेरा वरण करने के लिए कोई प्रस्तुत है । मैं भी अपने विचारों से इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहा हूँ कि— किसी महान् व्यक्ति के साथ सम्बन्ध हो तो अच्छा है और जहाँ तक हो सके मैं देवों की निन्दा का पात्र न बन सकूं वैसा ही करना! अतः पुत्रि! मैं ने धर्मशास्त्रों के आलोकन से यह निश्चय किया कि—अब तुम अपना विवाह संस्कार अवश्य करो, क्योंकि विवाह संस्कार हीन कन्या अपने पिता के घर यदि रजोवती होती है तो उसके पिता को ब्रह्म हत्या का दोषभागी होना पड़ता है और वह कन्या वृषली कही जाती है । इसलिए पुत्रि! मैं तुम्हें कुछ मंत्रियों के साथ भेज रहा हूँ तुम स्वयं वर का अन्वेषण कर उसे अपनाओं । जाने के लिए शीघ्रता करो और मेरी बातों का ध्यान रखना । इसे स्वीकार कर सावित्री राजर्षियों के रमणीयक तपोवन के लिए निकल पड़ी । वहाँ के मान्य एवं वृद्धों के चरण-पूजन करके वह सभी-कल्याण तीर्थों में गयी और मंत्रियों के साथ पुनः घर लौट आयी । घर आकर उसने अपने पिता के पास बैठे हुए देवर्षि नारद को देखा, जो उत्तम आसन पर सुशोभित हो रहे थे । मन्द मुसुकान करती हुई उसने उन विप्रदेव को प्रणाम कर उनके समक्ष जंगल के समस्त वृतान्त का निवेदन किया ।१२-२३

सावित्री बोली—साल्व देश में द्युमत्सेन नामक क्षत्रिय राजा थे, जो धर्मात्मा, एवं दैव द्वारा प्रदत्त थे । उसे सुनकर नारद ने कहा ।२४

नारद बोले— आश्चर्य एवं अत्यन्त खेद है कि सावित्री ने अपने लड़कपन (अज्ञानता) के कारण (सत्यवान के साथ अपना पाणिग्रहण संस्कार हेतु उनका वरण कर अपने पिता राजा को महान् कष्ट प्रदान कियाहै । यद्यपि सत्यवान् अत्यन्त गुणी पुरुष है और उसके पिता एवं माता सदैव सत्य बोलते हैं और वह द्युमत्सेन का पुत्र (सत्यवान्) बली तथा समस्त गुणों से युक्त भी है, तथापि उसमें एक महान्

एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवाक् । संवत्सरेण हीनायुर्देह त्यागं करिष्यति ॥२७
नारदस्य वचः श्रुत्वा तनयां प्राह पार्थिवः । पुत्रि सावित्रि गच्छ त्वमन्यं वरय सत्पतिम् ॥
संवत्सरेण सोल्पायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥२८

सावित्र्युवाच

सकृज्जल्पंति राजानः सकृज्जल्पंति पंडिताः । सकृत्प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥२९
दीर्घायुरथ वाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा। सकृवृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥३०
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते । क्रियते कर्मणा पश्चात्प्रमाणं मे मनः सदा ॥३१

नारद उवाच

यद्येतदिष्टं दुहितुस्ततः शीघ्रं विधीयताम् । अविघ्नमग्रे सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव ॥३२
एवमुक्त्वा समुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः । राजा च दुहितुः सर्वं वैवाहिकमथाकरोत् ॥
शुभे मुहूर्ते पार्श्वस्थैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥३३
सावित्र्यपि वरं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम् । मुमुदेऽतीव तन्वङ्गी स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥३४
एवं तत्राश्रमे तेषां वसतां प्रीतिपूर्वकम् । कालस्तपस्यतां कश्चिदतिचक्राम भारत ॥३५
सावित्र्यास्तप्यमानायास्तिष्ठंत्याश्च दिवानिशम् । नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्तते ॥३६
ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रांते कदाचन । सम्प्राप्तकालो म्रियेत इति संचिंत्य भामिनी ॥

दोष यह है—वह वर्ष के भीतर ही शरीर त्याग कर देगा । किन्तु यह उसका निजी दोष नहीं है क्योंकि वह तो आज जक सत्य ही बोलता आया है । नारद की ऐसी बाते सुनकर राजा ने अपनी कन्या से कहा—पुत्रि सावित्री! तुम जावो और किसी अन्य पति का शीघ्र वरण करो! क्योंकि वह (सत्यवान्) अल्पायु होने के नाते शीघ्र इसी वर्ष में शरीर का त्याग कर देगा ।२५-२८

सावित्री बोली—राजा और पण्डितों के कथन तथा कन्या दान ये तीनों एक ही बार होते हैं । अतः वे दीर्घायु, अल्पायु, सगुण, अथवा निर्गुण जो कुछ हों, मैंने भर्ता के रूप में उनका एक बार वरण कर लिया है अब दूसरे का वरण नहीं करूँगी । क्योंकि जो कार्य करना होता है उसे प्रथममन से निश्चय किया जाता है अनन्तर वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है और तब वह कार्य आरम्भ होता है । इस कार्य में सदैव के लिए मेरा मन ही प्रमाण रूप है ।२९-३१

नारद बोले—तुम्हारी कन्या का यदि यही निश्चय है तो इसे पूरा करने में शीघ्रता करो और तुम्हारे द्वारा कन्यादान होने पर इस तुम्हारी पुत्री सावित्री का आगे चल कर अमङ्गल भी नहीं होगा । इतना कहकर नारद जी स्वर्ग चले और राजा ने भी कन्या के विवाह सम्बन्धी सभी कार्यो को शुभ मुहूर्त में अपने पड़ोसी वैदिक ब्राह्मण द्वारा पूरा किया । कृशाङ्गी सावित्री भी मन इच्छित पति को पाकर स्वर्ग प्राप्त पुण्यात्मा की भाँति अत्यन्त प्रसन्न हुई । भारत! इस प्रकार उस आश्रम में दोनों को प्रीतिपूर्वक सुखी जीवन व्यतीत करते कुछ समय बीत गया । नारद की कही हुई बातों का सदैव मनमें ध्यान रख कर उसने दिन रात के घोर परिक्रमा से उन दिनों तपस्या भी आरम्भ की थी । बहुत दिनों के बीत जाने पर

प्रोष्ठपदे सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे ॥३७
गणयन्ती च सावित्री नारदोक्तं वचो हृदि । व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं विनाभवत् ॥३८
ततस्त्रिरात्रं निर्वर्त्य स्नात्वा संतर्प्य देवताः । चतुर्थेऽहनि मर्तव्यमिति संचिंत्य भामिनी ॥
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववंदे चारुहासिनी ॥३९
अथ प्रतस्थे परशुं गृहीत्वा सत्यवान्वनम् । सावित्र्यपि च भर्तारं गच्छतः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥४०
ततोऽवदत्स भर्ता तां पृच्छस्व श्वशुरौ निजौ । तथेत्युक्त्वा हि पप्रच्छ नत्वा श्वश्रूपदानि सा ॥४१
श्वशुराववदतां च न गन्तव्यं त्वयानघे । बाले त्वं परमं भीरुः कथं गच्छसि काननम् ॥४२
भूयो भावेन सा प्रोचे द्रष्टव्यं काननं मया । गच्छेति तां तदोचाते श्वशुरौ चारुहासिनीम् ॥४३
ततो गृहीत्वा तरसा फलपुष्पसमित्कुशान् । यथा शुष्काणि चादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥४४
अथ पाटयतः काष्ठं जाता शिरसि वेदना । व्यथा मां बाधते बाले स्वप्तुमिच्छामि सुंदरि ॥४५
विश्रमस्व महाबाहो सावित्री प्राह दुःखिता । पश्चादुपगमिष्यामि स्वाश्रमं श्रमनाशनम् ॥४६
यावदुत्संगके कृत्वा शिर आस्ते महीतले । तावद्ददर्श सावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥
किरीटिनं पीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥४७
तमुवाचाथ सावित्री प्रणम्य मधुपिङ्गलम् । कस्त्वं देवोऽथ वा दैत्यो मां धर्षयितुमागतः ॥४८

एक बार ऐसा सोचकर कि—'समय आने पर यह (सत्यवान्) अवश्य मर जायेंगे ।' उसने भादो मास की शुक्र द्वादशी के संध्या समय हृदय में नारद की बातों का विशेष ध्यान रखकर त्रिरात्र व्रत आरम्भ किया । पश्चात् दिन रात के उस त्रिरात्र व्रत से निवृत्त होकर उसने स्नान और देवपूजन किया । वह भामिनी सोच रही थी कि—आज चौथे दिन (इनका) मरण अवश्य है, अतः सौभाग्य के लिए उस प्रसन्नवदना ने अपनी सास-ससुर की चरण-वन्दना की । उसी समय सत्यवान् कुल्हाणी लेकर वन की ओर चल पड़े । उसे उन्हें जाते देखकर सावित्री भी अपने पति के पीछे चल पड़ी ।३२-४०। उसे पीछे आती हुई देखकर सत्यवान् ने कहा—(प्रिये) 'सास-ससुर की आज्ञा लेकर ही चलो ।' उसने 'तथा' (स्वीकार) कह कर सास-ससुर की चरण-वन्दना पूर्वक कहा—उनसे आज्ञा मांगी । किन्तु उन लोगों ने कहा—अनघे! तुम जंगल मत जाओ । और बोले! तुम तो अत्यन्त भीरु हो, जंगल कैसे जा रही हो । उसने अत्यन्त विनम्रता से कहा—'मुझे वन देखने की बड़ी इच्छा है । इसे सुन कर उसके सास-ससुर ने उस चारुहासिनी को सप्रेम वन जाने की आज्ञा प्रदान की । पश्चात् शीघ्रता से चलती हुई उसने फल, पुष्प समिधा (लकड़ी) और कुशाओं के संचय पूर्वक सूखी लकड़ियों का एक प्रहर बोझा तैयार किया । तदुपरांत लकड़ी काटते समय सत्यवान् के शिर में पीड़ा उत्पन्न हुई । उन्होंने कहा—बाले! मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है, अतः सुन्दरी! मैं शयन करना चाहता हूँ ।४१-४५। उस समय उनके दुःख से दुःखी होकर सावित्री ने कहा— महाबाहो! आप थोड़ा विश्राम कर लें, पश्चात् अपने आश्रम लौट चला जायेगा । सावित्री ने ज्यों ही बैठकर उनके शिर को अपनी गोद में रखा त्यों हि एक कृष्ण-पिंगल वर्ण पुरुष उसे दिखायी दिया, जो किरीट और पीतवस्त्र-धारण किये साक्षात् सूर्य की भाँति मालूम हो रहा था। सावित्री ने प्रणाम पूर्वक उस काले पुरुष से कहा—मेरी घर्षणा करने के लिए आये हुए तुम देव अथवा दैत्य कौन हो ? ।४६-४८। पुरुषश्रेष्ठ! मुझे कोई

न चाहं केनचिच्छक्या स्वधर्मादवरोपितुम् । स्प्रष्टुं वा पुरुष श्रेष्ठ दीप्ता वह्निशिखा यथा ।।४९

यम उवाच

यमः संयमनश्चास्मि सर्वलोकभयङ्करः । क्षीणायुरेव ते भर्ता तं नयामि पतिव्रते ।।
न शक्यः किंकरैर्नेतुमतोऽहं स्वयमागतः ।।५०
एवमुक्त्वा सत्यवतः शरीरात्पाशसञ्चयैः । अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ।।
अथ प्रयातुमारेभे पंथानं पितृसेवितम् ।।५१
सावित्र्यपि वरारोहा पृष्ठतोऽनुजगाम ह । पतिव्रतां तथा श्रांतां तामुवाच यमस्तदा ।।५२
निवर्त गच्छ सावित्रि स्वगृहे त्वमिहागता । एष मार्गो विशालाक्षि न केनाप्यनुगम्यते ।।५३

सावित्र्युवाच

न श्रमो न च मे ग्लानिः कदाचिदपि जायते । भर्तारमनुगच्छंति यास्तासां न श्रमादयः ।।५४
सतां संतो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः । वेदो वर्णाश्रमाणां च शिष्याणां च गतिर्गुरुः ।।५५
सर्वेषामेव जन्तूनां स्थानमस्ति महीतलम् । भर्तार एव मनुजस्त्रीणां नान्यः समाश्रयः ।।५६
एवमन्यैश्च विविधैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः । तुतोष सूर्यतनयः सावित्रीं चेदमब्रवीत् ।।५७
तुष्टोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय भामिनी । सावित्र्यपि वरान्वव्रे विनयावनतानना ।।५८
चक्षुःप्राप्तिस्तथा राज्यं श्वशुरस्य महात्मनः । पितुः पुत्रशतं चैव पुत्राणां शतमात्मनः ।।५९

अपने धर्म से विचलित नहीं कर सकता और प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता है ।४९

यम बोले—पतिव्रते! मैं समस्त (पापी) लोगों को भीषण संयमन (नियंत्रण) करने वाला यम हूँ । यह तुम्हारे पति (सत्यवान्) की आयु अब क्षीण हो चुकी है अतः इसे अब यमपुरी ले जा रहा हूँ । मेरे सेवक गण इन्हें ले जाने में असमर्थ थे इसीलिए मैं स्वयं आया हूँ । इतना कह कर यमराज ने बल प्रयोग द्वारा सत्यवान् की देह से पाश में बँधे अंगूठे मात्र के एक पुरुष को निकाला । अनन्तर पितरों के मार्ग से जाने का उपक्रम भी किया । किन्तु वह वरारोहा सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी । उस पतिव्रता को शांत देखकर यम ने उससे कहा—विशाल नेत्रों वाली सावित्री! तुम अपने घर लौट जाओ, यहाँ क्यों आ रही हो । क्योंकि इस मार्ग से कोई दूसरा नहीं आ सकता है ।५०-५३

सावित्री बोली—मुझे कोई श्रम अथवा ग्लानि नहीं हो रही है क्योंकि पति की अनुगामिनी स्त्रियों को श्रम आदि का कष्ट होता ही नहीं । सज्जनों के सज्जन और स्त्रियों के पति ही सदा गीत रूप हैं । जिस प्रकार वर्णाश्रमों की भाँति वेद, शिष्यों के गुरु, और समस्त जीवों का स्थान यह महीतल है उसी भाँति स्त्रियों के आशय पति ही होते हैं अन्य नहीं । इसी प्रकार अन्य अनेक धर्मार्थ विषय की उसकी बातें सुनकर यमराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने सावित्री से कहा—भामिनी! तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुम्हारी बातों से अति प्रसन्न हूँ अतः यथेच्छ वर की याचना करो । उसने विनय-विनम्र होकर उनसे वर की याचना की ।५४-५८। हमारे ससुर महोदय को आँख प्राप्ति समेत राज्य की प्राप्ति हो और उनके सौ पुत्र एवं

जीवितं च तथा भर्तुर्धर्मसिद्धिश्च शाश्वती । धर्मराजो वरान्दत्त्वा प्रेषयामास तां ततः ॥६०
अथ भर्तारमासाद्य सावित्री हृष्टमानसा । जगाम साश्रमपदं सह भर्त्रा निराकुला ॥६१
भाद्रस्य पौर्णमास्यां तु यथा चीर्णं व्रतं त्विदम् । माहात्म्यमस्य नृपते कथितं सकलं मया ॥६२

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्व्रतं देव सावित्र्या यदनुष्ठितम् । तस्मिन्भाद्रपदे मासि सिद्धान्नं तस्य कीदृशम् ॥६३
का देवता व्रते तस्मिन्ब्रूहि कामं प्रति प्रभो ! सविस्तरं हृषीकेश ब्रूहि धर्मं सनातनम् ॥६४

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पाण्डवश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमादरात् । कथयामि कथं चीर्णं तया सत्या युधिष्ठिर ॥६५
त्रयोदश्यां भाद्रपदे दंतधावनपूर्वकम् । त्रिरात्रं नियमः कार्यं उपवासस्य भारत ॥६६
अशक्त्या तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रियः । अयाचितं चतुर्दश्यामुपवासेन पूर्णिमाम् ॥६७
नित्यं स्नात्वा महानद्यां तडागे चाथ निर्झरे । विशेषः पौर्णमास्यां तु स्नानं सर्षपमृज्जलैः ॥६८
गृहीत्वा तिलकान्पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर । अथ वा धान्यमादाय यवशालितिलादिकम् ॥६९
ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् । सावित्रीप्रतिमां कृत्वा सर्वावयशोभनाम् ॥७०
सौवर्णीं मृण्मयीं वापि स्वशक्त्या रौप्यनिर्मिताम् । रक्तवस्त्रयुगं दद्यात्सावित्र्यैः ब्राह्मणे तथा ॥७१

उन पुत्रों के सौ पुत्र हों तथा जीवनदान समेत मेरे पति की शाश्वती धर्मसिद्धि होती रहे । पश्चात् धर्मराज ने उसे वर प्रदान कर उसके घर भेज दिया । पति की प्रप्ति से सावित्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । अनन्तर उसने पति के साथ अत्यन्त स्वस्थ चित से अपने आश्रम का प्रस्थान किया । नृपते! इस प्रकार भादों मास की पूर्णिमा के दिन जिस प्रकार यह व्रत सुसम्पन्न होता है मैंने उसका सफल महत्त्व तुम्हें बता दिया ।५९-६२।

युधिष्ठिर ने कहा—देव! भादों के मास में सावित्री ने जिस व्रत का अनुष्ठान किया था, उसका स्वरूप क्या है, उस व्रत में कौन सा सिद्धान्न खाया जाता है! प्रभो, हृषीकेश! अपनी कामना को सफल करने के लिए उस व्रत में किस देवता की आराधना की जाती है! मुझे विस्तार पूर्वक यह सनातन धर्म बताने की कृपा कीजिये ।६३-६४

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डवश्रेष्ठ! युधिष्ठिर! पतिव्रता सावित्री ने किस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न किया है, सादर सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! भारत! भादों मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन से ही दातून करने से लेकर उपवास पूर्वक उस त्रिरात्र व्रत नियम का पालन करना चाहिए । उस दिन से उपवास करने में असमर्थ होने पर इन्द्रिय संयम पूर्वक त्रयोदशी के दिन नक्त (रात्रि में) भोजन, चतुर्दशी के दिन अपचित अन्न के भोजन और केवल पूर्णिमा के दिन उपवास करे ।६५-६७। किसी महानदी, सरोवर अथवा झरना में नित्यस्नान करते हुए पूर्णिमा के दिन राई, मिट्टी समेत जल से विशेष स्नान करना चाहिए । युधिष्ठिर (वाँस के) पात्र में एक सेर तिल, धान्य, जवा, अथवा साठी चावल, रख कर उसे दो वस्त्रों से आवेष्टित करे, पश्चात् सुवर्ण, मिट्टी अथवा यथाशक्ति चाँदी की सावित्री की सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिमा बना

सावित्रीं ब्रह्मणा सार्द्धमेवं भक्त्या प्रपूजयेत् । गन्धैः सुगन्धिपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः ॥७२
पूर्णैः कोशातकैर्भक्ष्यैः कूष्माण्डैः कर्कटीफलैः । नालिकेरैश्च खर्जूरैः कपित्थैर्दाडिमीफलैः ॥७३
जम्बूजम्बीरनारङ्गैः कर्कटैः पनसैस्तथा । जीरकैः कटुखण्डैश्च गुडेन लवणेन च ॥७४
विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे प्रकल्पितैः । राजन्या सूत्रकण्टैश्च शुभैः कुङ्कुमकेसरैः ॥७५
अवतारवतीत्येवं सावित्री ब्रह्मणः प्रिया । तामर्चयेत मंत्रेण सावित्रीं ब्राह्मणः स्वयम् ॥
इतरेषां पुराणोक्तमन्त्रोऽत्र समुदाहृतः ॥७६
ॐकारपूर्वके देवि वीणापुस्तकधारिणि । वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥७७
एवं संपूज्य विधिवज्जागरं कारयेत्ततः । गीतवादित्रशब्देन ह्यष्टतारीकदं बकैः ॥७८
नृत्यहासैर्नयेद्रात्रिं पृष्ठतश्च कथानकैः । सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयेद्द्विजसत्तमम् ॥
यावत्प्रभातसमयं गीत्या भावरसैः समम् ॥७९
ततः प्रभाते विमल उषःकाले ह्युपस्थिते । ब्राह्मणे वेदविदुषि सावित्रीं विनिवेदयेत् ॥८०
यथा सावित्रकल्पज्ञे सावित्र्याख्यानवाचके । दैवज्ञ उंच्छवृत्तौ च दरिद्रे चाग्निहोत्रिणि ॥८१
मंत्रेणानेन कौंतेय प्रणम्य विधिपूर्वकम् । दर्भाक्षततिलैर्मिश्रा पूर्वाशाभिमुखास्थिता ।
सुधी विप्रवरो विप्र ॐकारस्वास्तिपूर्वके ॥८२

कर स्थापित करे। रक्तवर्ण के चार वस्त्रों से सावित्री और ब्रह्मा सुशोभित कर ब्रह्मा के साथ में ही सावित्री की भक्ति पूर्वक गंध, सुगंधित पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और दीपक द्वारा विशेष अर्चना करे।६८-७२। पूर्ण कोशातकी के भक्ष्य, कूष्माण्ड (कुम्हड़ा), ककड़ी, नारियल, खजूर, कैथ, अनार, जामुन, जम्हीरी नीबू, नारङ्गी, कटहल, जीरा, कटुखंड, गुड़ और नमक मिश्रित वह भोजन होना चाहिए। नये सवाधान्य के अंकुर, राजन्या सूत्रकंट और शुभ कुंकम केसर से उस बाँस के पात्र को विभूषित रखे। जिसमें सावित्री देवी स्थापित हों। अवतारवती उस ब्रह्म प्रिया सावित्री देवी की अर्चना वेदमंत्रों द्वारा ब्राह्मण को स्वयं करना चाहिए और इतर जनों को निम्नलिखित पौराणिक मंत्रों द्वारा—ओंकार पूर्वक उस (सावित्री) देवी को नमस्कार कर रहा हूँ, जो वीणा वाद्य और पुस्तक को धारण किये वैधव्य का नाश करती हैं और वेद की माता है। इस प्रकार सविधान पूजन करने के अनन्तर रात्रि-जागरण करते हुए गीत, वाद्य, नृप के ह्रास और कथाओं के द्वारा रात व्यतीत करनी चाहिए। किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ द्वारा सावित्री का आख्यान और भाव-रस पूर्ण गीत गाते हुए रात व्यतीत करने के अनन्तर उस विमल ऊषा काल के किसी वैदिक ब्राह्मण विद्वान को सावित्री की वह प्रतिमा समर्पित करे।७३-८०। 'जिस प्रकार सावित्री कल्प के ज्ञाता और सावित्री-आख्यान के कथावाचक का सुसम्मान किया जाता है उसी प्रकार उञ्छवृत्ति[1] वाले ज्योतिषी, और दरिद्र अग्नि होत्री का सम्मान करना चाहिए।' कौंतेय! इस मंत्र द्वारा सविधि सावित्री देवी को प्रणाम करके निम्नलिखित मंत्रोच्चारण पूर्वक वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे— कुश, अक्षत, और तिल मिश्रित आसन पर पूर्वाभिमुख सुशोभित सती सावित्री देवी को हिरण्य समेत श्रेष्ठ एवं

---

१. किसानों द्वारा खेत काटकर छोड़ने के उपरांत उसमें कहीं-कहीं के शेष दानों को इकट्ठा कर उससे जीवका निर्वाह करना।

सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती । ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्रह्मण प्रतिगृह्यताम् ।।८३
एवं दत्त्वा द्विजेंद्राय सावित्रीं तां युधिष्ठिर । नैवेद्यादि च तत्सर्वं ब्राह्मणं स्वगृहं नयेत् ।।
स्वयं दशपदं गच्छेत्स्ववेश्म पुनराविशेत् ।।८४
तत्र भुक्त्वा हविष्यान्नं ब्राह्मणैर्बांधवैः सह । विसर्जयेत्ततो विप्रान्सावित्री प्रीयतामिति ।।८५
पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे वटके च महासती । त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ।।८६
सार्द्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यकदीपकैः । पट्टावलम्बनं कृत्वा काष्ठभारं युधिष्ठिर ।।८७
रात्रौ जागरणं कृत्वा नृत्यगीतपुरस्सरैः । प्रभाते विधिना पूर्वं पूर्वोक्तेन नरोत्तम ।।
तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।।८८
एतत्तु ते व्रतमिदं कथितं विधिवन्मया । याश्चरिष्यंति लोकेस्मिन्पुत्रपौत्रसमन्विताः ।।
भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यंति ब्रह्मणः पदम् ।।८९
एतत्तु ते व्रतमिदं कथितं विधिवन्मया । याश्चरिष्यंति लोकेस्मिन्पुत्रपौत्रसमन्विताः ।।
भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ।।९०
एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् । जपतां शृण्वतां चैव सावित्रीव्रतनादरात् ।।९१
स्मृत्यर्थवेदजननीं सहशंभुजायां संपूजयेदिह त्रिरात्रकृतोपवासा ।
सावित्रिवत्पितृकुलं च तथा स्वभर्तुरुद्धारयेच्च विभुनक्ति चिरं सुखानि ।।९२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वटसावित्रीव्रतवर्णनं नाम द्वयधिकशततमोऽध्यायः ।१०२

विद्वान ब्राह्मण के लिए अर्पित कर रहा हूँ । हे ब्राह्मण! ओंकार पूर्वक स्वस्ति उच्चारण करते हुए ब्रह्मा के प्रसन्नार्थ इसका ग्रहण करो । युधिष्ठिर! इस प्रकार सावित्री को, अर्पित करने पर वह ब्राह्मण उस प्रतिमा समेत नैवेद्य आदि सब वस्तु अपने घर ले जाये । उस समय (यजमान को) ब्राह्मण के साथ उसके सम्मानार्थ दश पग चल कर पुनः अपने घर लौट आना चाहिए ।८१-८४। पश्चात् सावित्री प्रीपताम् (प्रसन्न हों) कहकर विप्रो को सादर विसर्जित करे । युधिष्ठिर ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन वट के नीचे त्रिरात्र व्रत के उपवास पूर्वक नारी को इसी विधान द्वारा पूजन करना चाहिए । परदे के भीतर लकड़ी के गट्ठर समेत सत्यवान् के साथ सती सावित्री की फल, नैवेद्य, और दीपक आदि द्वारा अर्चना सुसम्पन्न करके नृत्य गीत करते हुए जागरण द्वारा रात्रि व्यतीत करे और विमल प्रभात होने पर पुनः पूर्वोक्त की भाँति प्रतिमा आदि सब कुछ सादर ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा याचना करे । इस प्रकार मैंने वह व्रत सविधान तुम्हें सुना दिया । जो स्त्रियाँ इस विधान द्वारा इस त्रिरात्र व्रत को सुसम्पन्न करेंगी, वे इस लोक में पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक उत्तम भोगों के उपभोग करके अन्त में ब्रह्म पद प्राप्त करेंगी । इस सावित्री व्रत को सादर सुनने वाले प्राणी को पाप और दुःस्वप्न के विनाश पूर्वक पुण्य की प्राप्ति होती है । इस त्रिरात्र व्रत में उपवास पूर्वक स्मृति-वेद आदि की जननी (सावित्री) की पार्वती के साथ अर्चना करने पर वह सभी भी सावित्री की भाँति पितृ कुल और पति के उद्धार पूर्वक चिरकाल तक सुख का उपभोग करती है ।८५-९२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
वट सावित्री व्रत वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ।१०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

कार्तिककृत्तिकाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वमासीत्कृतयुगे क्षत्रिणी बहुपुत्रिणी । नाम्ना कलिंगभद्रेति रूपलावण्यसंयुता ।।१
तुङ्गस्तनी पद्मनेत्रा हंसनागेन्द्रगामिनी । सौभाग्यगुणसंपूर्णा चंद्रबिंबनिभानना ।।२
धनरत्नैश्च सम्पूर्णा मध्यदेशे वृषस्थले । राज्ञः पत्नी तु सा देवी दिलीपस्य महात्मनः ।।
कलिङ्गभद्रा ललिता महादेवी गुणान्विता ।।३
महाप्रसादं मन्वाना बहुमानपुरस्सरम् । ब्राह्मणेभ्यश्च दानानि प्रयच्छति महासती ।।४
त्यागसंभोगसौभाग्ये द्वितीया नैव तादृशी । नारीणां तु नरश्रेष्ठ दिलीपस्य यथा विधा ।।५
यथा च कार्तिके मासि गृहीतं क्षत्रयाव्रतम् । षण्मासेन व्रतं यावदिदं संचिन्त्य चेतसि ।।
पारितं च तया सर्वं किंचिन्मात्रं तु वर्तते ।।६
पारणेपारणे चापि पुराणज्ञे द्विजोत्तमे । उद्यापनं प्रयच्छन्ती कालं नयति सुन्दरी ।।७
कदाचिदर्धरात्रे तु सुप्ता भर्त्रा सहैव सा । दष्टा सर्पेण रौद्रेण जगाम निधनं क्षणात् ।।८
तेन दोषेण सा बाला अजायोनौ ह्यजायत । वनेचरी धर्मपरा पूर्वजातिस्मरा दृढ़ा ।।९

अध्याय १०३

कार्तिककृत्तिकाव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में कलिंगभद्रा नामक एक क्षत्रियाणी रानी थी, जो अनेक पुत्रों से युक्त एवं रूप-लावण्य सम्पन्न थी । उसके ऊँचे स्तन और कमल के समान नेत्र तथा हंस एवं गजराज की भाँति उसकी चाल थी । समस्त सौभाग्य के गुणों से युक्त वह चन्द्रमुखी मध्यदेश के वृषस्थल निवासी एवं महात्मा राजा दिलीप की पत्नी थी, जो धन-रत्नों से परिपूर्ण थे । महादेवी के गुणों से युक्त वह परमसुन्दरी रानी कलिंगभद्रा, जो उच्चकोटि की पतिव्रता थी, महाप्रसाद की भाँति अत्यन्त सम्मान पूर्वक ब्राह्मणों को दान देती थी । नरश्रेष्ठ! उस समय राजा दिलीप की प्रेयसी पत्नी कलिंग भद्रा के समान त्याग संभोग और सौभाग्य में सामना करने वाली कोई दूसरी स्त्री नहीं थी ।१-३। 'छः मास में वह व्रत समाप्त हो जायगा' वह सोचकर उसने कार्तिक मास में क्षत्रिका व्रत का अनुष्ठान आरम्भ किया किन्तु अनुष्ठान का सब कुछ अंश समाप्त करने पर भी कुछ अवशेष रह गया । प्रत्येक पारण में वह सुन्दरी पुराणवेत्ता ब्राह्मण को उद्यापन में दान की समस्त वस्तुओं से सुसम्मानित करती थी । इस प्रकार अपने सुखी जीवन को व्यतीत करती हुई वह किसी दिन आधी रात के समय अपने पति के साथ शयन किये थी कि उसी बीच भीषण सर्प के काट लेने से उसकी मृत्यु हो गयी । जिसके कारण उस बाला को अजा (वकरी) की योनि में जाना पड़ा ।४-८। अजा (वकरी) रूप में भी वह जंगलों में घूमती हुई

पूर्वाभ्यासेन तेनैव गृहीतं कृत्तिकाव्रतम् । व्यस्ता यूथपरिभ्रष्टा उपवासपरिस्थिता ॥१०
परक्षेत्रेण गच्छंती अजा सस्यावमर्दिनी । कार्तिक्यां गलके बद्धा ग्राम्यकेण चिरागता ॥११
दृष्टात्रिणा महाभागा पूर्वजातिस्मरेण सा । कारणं बुध्य तां बुद्धा सहकालिंदभद्रिकाम् ॥१२
मोक्षिता बदरीबद्धा चरंती कृत्तिकाव्रतम् । गोपालबंधनात्साध्वी अनिर्वेदपरा तु सा ॥१३
संप्राप्य बदरीपत्रं पीत्वा पुष्करिणीपयः । ममेत्युक्त्वा ह्यसंभ्रांता पारयामास तद्व्रतम् ॥
तस्यै योगं ततो दत्त्वा जगामात्रिस्तपोवनम् ॥१४
सापि योगेश्वरी भूत्वा निंदित्वा जन्म चात्मनः । तत्याज योगात्स्वान्प्राणान्प्रस्थिता गौतमस्य हि ॥
ऋषेर्बभूव दुहिता ह्यहल्यागर्भसुन्दरी ॥१५
योगलक्ष्मीति नाम्ना सा कन्या गुणगणैर्युता । विद्येव दत्त्वा सा पित्रा शाण्डिल्याय महर्षये ॥
तपोधनाय दान्ताय नित्यं सहचरी बभौ ॥१६
ब्राह्मलक्ष्म्या दीप्यमाना साक्षाद्वेदस्मृतिर्यथा ! सरस्वती च स्वाहा च शची चारुन्धती यथा ॥१७
गौरी राज्ञी तथा लक्ष्मीर्गायत्री चोत्तमा सती । महालक्ष्मीस्तथा राजञ्छाण्डिल्यस्य गृहे बभौ ॥१८
पितृदेवमनुष्याणां नित्यं शुश्रूषणे रता । अथ तेनात्रिणा दृष्टा पुनर्गर्भवती गृहे ॥१९
भक्त्या भिक्षां प्रयच्छंती ब्राह्मणानामनिंदिता । योगाद्विदित्वा तामूचे भगवान्पूर्ववच्छनैः ॥२०

जन्मान्तरीय कर्मों के स्मरण के कारण कृत्तिका व्रत का पालन करना आरम्भ किया । वह अपने यूथ से अलग रह कर उपवास करने लगी । दूसरों के खेतों में जाना छोड़ दिया । अनन्तर उसी कार्तिक पूर्णिमा के दिन उसे कोई ग्रामीण पुरुष यहाँ बाँध रखा किन्तु अत्रि (महर्षि) ने चिरकाल के अनन्तर उधर से लौटते समय उसे देखा । पूर्वजन्म के स्मरण होने के नाते उसने उन्हें पहचान लिया और अपने बाँधे जाने के कारण को जानने के लिऐ उन्हें संकेत भी किया । महर्षि ने भी कृत्तिका व्रत का अनुष्ठान करने वाली अजा (बकरी) को कलिंग भद्रा जान कर उसे वेर के वृक्ष से बँधे बंधन से मुक्त कराया । वह पतिव्रता उस अहीर के द्वारा बाँधे जाने पर भी अपने अल्प व्रत के नाते कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं कर रही थी । बंधन से मुक्त होकर उसने वेर का पत्ता खाया और पुष्करिणी का जल पीया । पश्चात् 'यह मेरा ही है' ऐसा कहकर निर्भ्रान्त चित्त से उस व्रत के अनुष्ठान को पूरा किया । महर्षि अत्रि ने उसे योग का उपदेश देकर अपने तपोवन को प्रस्थान किया और उसने भी (योगाभ्यास द्वारा) योगेश्वरी होकर अपने उस जन्म की निन्दा करती हुई योग द्वारा अपने प्राण का परित्याग किया और पुनः गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के गर्भ से परमसुन्दरी कन्या होकर उत्पन्न हुई ।९-१५। उसके पिता गौतम ने उसका योगलक्ष्मी नाम करण करके सर्वगुण सम्पन्न उस कन्या को विद्या की भाँति ही शांडिल्य महर्षि को प्रदान किया । वेद की सहचरी स्मृति की भाँति वह ब्राह्मलक्ष्मी से देदीप्यमान होकर उन तपोधनं एवं विशुद्ध शांडिल्य ऋषि की नित्यकी सहधर्मिणी होकर रहने लगी राजन्! सरस्वती, स्वाहा, शची, अरुन्धती, गौरी, (सूर्य पत्नी) राज्ञी, लक्ष्मी और परमसती गायत्री की भाँति ही वह शांडिल्य के घर की महालक्ष्मी हुई ।१६-१८। पितरों, देवों और अतिथि मनुष्यों की नित्य सेवा शुश्रूषा करती थी । तदुपरांत गर्भवती समय में महर्षि अग्नि से पुनः भेंट हो गयी, जबकि वह भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भिक्षा प्रदान कर रही थी । भगवान् अग्नि ने योगद्वारा

योगलक्ष्मि महाभागे वर्तंते कति कृत्तिकाः । सापि जातिस्मरा प्राह भगवंतं महासती ।।
षड्वर्तंते महायोगिन्नेका परवशे स्थिता ।।२१
तच्छ्रुत्वास्यै भगवता सकारुण्येन चेतसा । दत्तं व्रतं तथा मन्त्रो येन स्वर्गं जगाम सा ।।२२
इह भुक्त्वा चिरं भोगान्पुत्रपौत्रश्रिया वृता । ततः सा तत्पदं प्राप्ता पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।२३

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्व्रतं कृष्ण मन्त्रश्चापि जनार्दन । विधानं कृत्तिकानां च तं च कालं वदस्व मे ।।२४

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्तिकासु स्वयं सोमः कृत्तिकासु बृहस्पतिः । यदा स्यात्सोमवारेण सा महाकार्तिकी स्मृता ।।२५
ईदृशी बहुभिर्वर्षैर्बहुपुण्यैश्च लभ्यते । तथा सा न वृथा नेया यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।।२६
अन्यापि कार्तिकी पार्थ समुपोष्य विधानतः । तस्या विधानं राजेन्द्र शृणुष्वैकमना भव ।।२७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य पूर्णमास्यां दिनोदये । नक्ताय नियमं कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ।।२८
उपवासस्य वा शक्त्या ततः स्नात्वा जलाशये । कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा पुष्करे नैमिषे तथा ।।२९
शालग्रामे कुशावर्ते मूलस्थाने सकुन्तले । गोकर्णे वार्बुदे पुण्येष्वथ वाप्यमरकंटके ।।३०
पुरे वा नगरे वापि ग्रामे घोषेऽथ पत्तने । यत्र वा तत्र वा स्नायान्नरो योषिदथापि वा ।।
देवर्षिपितृपूजां च कृत्वा होमं युधिष्ठिर ।।३१

उसे पहचान कर पूर्व की भाँति पुनः उससे धीरे-धीरे पूछा—'महाभागे—योगलक्ष्मि! कितनी कृत्तिकायें हों चुकी। उस महासती ने भी पूर्व जन्म के स्मरण द्वारा कहा—भगवन्! महायोगिन्! छह है किन्तु इस समय में फिर भी एक परवश है। इसे सुनकर भगवान् अग्नि ने करुणा प्रकट करते हुए उसके व्रत को पूरा करते हुए वह मंत्र भूतल में पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने के अनन्तर उस पद पर चली गयी जहाँ से कभी जन्म होता ही नहीं।१९-२३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! जनार्दन! कृत्तिकाओं का वह व्रत और उसका विधान किस प्रकार का है, मुझे बताने की कृपा कीजिये।२४

श्रीकृष्ण बोले—कृत्तिकाओं में स्वयं सोम और बृहस्पति निवास करते हैं और सोमवार के दिन प्राप्त होने पर वह महाकार्तिक कही जाती है जो अपने वर्षों के पुण्य से प्राप्त होती है। इसलिए अपने श्रेय के इच्छुक को इसे व्यर्थ न निकल जाने देना चाहिए। पार्थ! राजेन्द्र! दूसरी कार्तिकी का भी सविधान उपवास आदि करना चाहिए। मैं उसका बिधान बता रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो! कार्तिक मास की (शुक्र) पूर्णिमा को दिन निकलते समब दातून से आरम्भ कर नक्त (रात्रि तक) के समस्त नियमों के पालन करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उपवास करने में असमर्थ रहने पर कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, नैमिष, शालग्राम, कुशावर्त, सकुंतल मूलस्थान गोकर्ण, अर्बुद अथवा पुष्प अमरकण्टक के किसी जलाशय में या पुर, नगर, गांव अथवा घर में जहाँ कहीं स्नान करके उस स्त्री या पुरुष को देव, ऋषि एवं पितरों की

ततोऽस्तसमये प्राप्ते पात्रं गव्यस्य सर्पिषः । क्षीरस्य वा सुसंपूर्णं कृत्वा गुडफलान्वितम् ।।
षट्प्रमाणं यथा व्योम्नि कृत्तिकाशकटं न्यसेत् ।।३२
षट्कृत्तिकानां बिम्बानि स्वर्णरौप्यमयानि च । रत्नगर्भाणि कुर्याच्च स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ।।३३
प्रथमा स्वर्णनिष्पन्ना द्वितीया रौप्यकीकृता । तृतीया रत्नघटिता चतुर्थी नवनीतजा ।।३४
पञ्चमी कणिकान्यूना षष्ठी पिष्टमयीकृता । षट् कृत्तिकाः कृतबिंबाः कृत्वालक्तकसूत्रिका ।।३५
रत्नगर्भाः कुंकुमाक्ताः पृष्ठतः स्तबकान्विताः । सिंदूरचन्दनाभ्यक्ता जातीपुष्पैः सुपूजिताः ।।
मंत्रेणानेन राजेन्द्र द्विजाय प्रतिपादयेत् ।।३६

"ॐ सप्तर्षिदारा ह्यनलस्य वल्लभा या ब्रह्मणा रक्षितयेति युक्ताः ।
तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरो ममापि सुप्रीततरा भवंतु—स्वाहा" ।।३७

एवमुच्चार्य विप्राय प्रदेयाः कृत्तिका नृप । ब्राह्मणोऽपि प्रतीच्छेत मंत्रेणानेन पांडव ।।३८
धर्मदाः कामदाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः । कृत्तिका दुर्गसंसारात्तारयंत्वावयोः कुलम् ।।३९
अनेन विधिना दत्त्वा दृष्ट्वा चैवांबरे स्थिताः । विसृज्य ब्राह्मणान्भक्त्या चानुव्रज्य पदानि षट् ।।
निवर्त्य च कथार्थं तु शृणुयात्फलमाप्नुयात् ।।४०
विमानेनार्कवर्णेन गत्वा नक्षत्रमंडलम् । दिव्येन वपुषा युक्तः स्रक्चंदनविभूषितः ।।४१
दिव्यनारीगणवृतः सुखं भुंक्ते ह्यनामयम् । दोधूयमानश्चमरै रत्नपङ्क्त्या विराजितः ।।४२

पूजा और हवन करनी चाहिए। युधिष्ठिर! पश्चात् सूर्यास्त के समय गौ का घृत अथवा दुग्ध गुड और फल समेत किसी पात्र में रख कर छः भागों में विभाजित करते हुए व्योम में स्थित कृत्तिकाशकट को अर्पित करे। पाण्डुनन्दन! छः कृत्तिकाओं के उन विम्बों को सुवर्ण अथवा चाँदी के रत्नगर्भित बनाये यथाशक्ति पहला विम्ब सुवर्ण का दूसरा चाँदी का तीसरा, रत्न का, चौथा नवनीत (मक्खन) का, पाँचवाँ गेहूँ के आटे (मैदा) का और छठाँ पीठी का बनाकर रत्नगर्भित उन्हें अलक्तक और कुंकुम से भूषित कर उनके पृष्ठ भाग पुष्प गुच्छों से सुशोभित करे। राजेन्द्र! सिन्दूर, चन्दन और चमेली का पुष्पों से विभूषित एवं पूजित कर किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को समर्पित कर दे। नृप-पाण्डव! ब्राह्मण को अर्पित करते समय यह मंत्र कहना चाहिए।२५-३६। 'कुमार के ऊपर सन्तुष्ट होने वाली वे मातायें, जो सप्तर्षियों की स्त्रियाँ एवं अग्नि की वल्लभा होकर ब्रह्म द्वारा सुरक्षित हैं, मेरे ऊपर भी उसी भाँति अत्यन्त प्रसन्न हों। इसे पूर्व में ओंकार शब्द और अन्त में स्वाहा शब्द समेत उच्चारण करते हुए सादर अर्पित करे। उसी प्रकार अतिग्राही ब्राह्मण भी उसे ग्रहण करते समय कहे कि—धर्म और कामनाओं को सफल करने वाली कृत्तिकाँए जो नक्षत्रो की जननी रूप हैं, इस दुर्गम संसार से हम दोनों के कुल का उद्धार करें। इस विधान से प्रदान करते समय आकाश में उनके दर्शन कर ब्राह्मण विसर्जित करे। उस समय (उनके सम्मानार्थ) कम से कम छः पग तक उनके पीछे चलना चाहिए। पश्चात् लौट कर कथा की यथार्थ बातें सुननें पर जो फल प्राप्त होते हैं सुनों! ३७-४०। सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठ कर वह नक्षत्र मण्डल की यात्रा करना है। उस समय वह दिव्य शरीर धारण किये माला-चन्दन से भूषित एवं दिव्य नारियों से सुसेवित होते हुए उत्तम सुख का अनुभव करता है। उसके दोनों ओर चामर चलते रहते हैं, रत्नों की राशि सदैव लगी रहती है

पारिजातकमंदारपुष्पभारोपशोभितः । कृतार्थः परिपूर्णाशस्तिष्ठेदाभूतसंप्लवम् ।।४३
ताराः कृत्वा व्रतांते वा गत्वा स्वर्गं सभर्तृका । रमते निर्भया साध्वी सर्वभोगसमन्विता ।।४४
यश्चैतच्छृणुयात्पार्थ भक्तियुक्तः समाधिना । नारी वा पुरुषो वापि मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।४५
सौवर्णरौप्यमणिगोनवनीतसिद्धाः षट् कृत्तिकाः कणिकपिष्टमयीश्च कृत्वा।
पात्रे निधाय कुसुमाक्षतधूपदीपैः संपूज्य जन्मगहनं न विशंति मर्त्याः ।।४६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कार्तिक्यां कृत्तिकाव्रतवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०३

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णमनोरथव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चदश्यां शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य नरोत्तम । पाखंडान्पतितां चैव तथैवान्त्यावसायिनः ।।१
नास्तिकान्भिन्नवृत्तांश्च पापिनो नैव चालपेत् । नारायणे गतमनाः पुरुषो हि जितेन्द्रियः ।।२
तिष्ठन्व्रजन्प्रस्खलन्वा भुञ्जानोऽपि जनार्दनम् । कीर्तयेच्च क्रियाकाले सप्तकृत्वो महीपते ।।३

इस प्रकार पारिजात एवं मंदार आदि पुष्पों के भार से सुशोभित होकर वह कृतार्थ एवं समस्त आशाओं को पूरी कर महाप्रलय तक वर्तमान रहता है । व्रत के अन्त में नक्षत्रों की प्रतिमाओं के दान करने पर सभी पति समेत स्वर्ग पहुँच कर शुभ-पतिव्रता की भाँति समस्त सुखो का उपभोग करती हैं । पार्थ! भक्ति पूर्वक एकाग्र मन से इस पापों से मुक्त हो जाती है । इस प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, तथा गाय के मक्खन गेहूँ का मैदा, अथवा पीठी से कृत्तिकाओं की प्रतिमा बनाकर पात्रों में उनके स्थापन पूर्वक पुष्प, अक्षत, धूप, और दीप द्वारा पूजन करने से मनुष्यों को जन्म ग्रहण करने के घोर दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है ।४१-४६।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
कार्तिक में कृत्तिका व्रत वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ।१०३।

अध्याय १०४

पूर्णमनोरथव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन पाखण्डी, पतित, शूद्र, नास्तिक, (अपनी जाति से) अन्य वृत्ति (जीविका) अपनाने वाले एवं पापी प्राणियों से किसी प्रकार की बात-चीत न करके केवल इन्द्रिय-संयम पूर्वक नारायण में चित्त लगाकर ठहरते, चलते, गिरते-उठते, खाते-पीते, और अन्य क्रियाओं के करते समय भी भगवान् जनार्दन के नामों का संकीर्तन करना चाहिए। इस भाँति सात प्रकार से उनका कीर्तन-सेवा करते हुए लक्ष्मी समेत जनार्दन भगवान् की अर्चना करे ।१-३। संध्यादि से

लक्ष्म्या समन्वितं देवमर्चयेच्च जनार्दनम् । संध्याद्युपरमे चन्द्रस्वरूपं हरिमीश्वरम् ॥
रात्रौ च लक्ष्मीं संचिन्त्य सम्यगर्घ्येण पूजयेत् ॥४
श्रीनिशाकररूपस्त्वं वासुदेव जगत्पते । मनोभिलषितं देव पूरयस्व नमोनमः ॥५
मंत्रेणानेन दत्त्वार्घं देवदेवस्य भक्तितः । नक्तं भुञ्जीत न स्वैरं तैलक्षारविवर्जितम् ॥६
तथैव चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे च नृपसत्तम । अर्चयेच्च यथाप्रोक्तं मासिमासि च तद्दिने ॥७
निष्पादितं भवेदेकं पारणं पार्थ शक्तितः । द्वितीयं चापि वक्ष्यामि पारणं ते नरोत्तम ॥८
आषाढे श्रावणे मासि प्राप्ते भाद्रपदे तथा । तथैवाश्वयुजेभ्यर्च्य श्रीधरं प्रियया सह ॥
अर्घं चन्द्रमसे दत्त्वा भुञ्जीताथ यथाविधि ॥९
द्वितीयमेतदाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु । कार्तिकादिषु मासेषु तथैवाभ्यर्च्य केशवम् ॥
भूत्वा समन्वितं दद्याच्छशांकाय तथा निशि ॥१०
भुञ्जीत च यथाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु । प्रतिपूज्य ततो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥
प्रतिमासं च वक्ष्यामि प्राशनं कायशुद्धये ॥११
चतुरः प्रथमान्मासान्पञ्चगव्यमुदाहृतम् । कुशोदकं तथैवान्यदुक्तं मासचतुष्टयम् ॥१२
सूर्यांशुतप्तं तद्वच्च जलं कायविशोधनम् । गीतवाद्यादिकं रात्रौ तथा कृष्णकथां शुभाम् ॥
कारयेच्चैव देवस्य पारणेपारगे गते ॥१३

निवृत्त होने पर चन्द्रस्वरूप एवं ईश्वर भगवान् विष्णु के ध्यान पूर्वक पूजन करना चाहिए और रात्रि में लक्ष्मी जी के ध्यान करते हुए अर्घ्य प्रदान करते समय इस मंत्र का उच्चारण करे कि—'वासुदेव। जगत्पते! आप भी निशा-पति चन्द्र की भाँति स्वरूप धारण किये हैं, अतः देव! मेरी अभिलाषा पूरी करें। मैं आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ।' देवाधि देव भगवान् विष्णु को इस भाँति भक्ति पूर्वक अर्घ्य प्रदान करके रात्रि में तेल रहित नक्त भोजन करे किन्तु यथेच्छ नहीं। नृपसत्तम! उसी प्रकार चैत्र, वैशाख, और ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन पूर्वोक्त रीति से भगवान् की अर्चना करके तीसरे मास के अन्त में बताये गये के अनुसार पारण करे। इस प्रकार यह पहला पारण हुआ और अब दूसरा बता रहा हूँ सुनो! पार्थ, नरोत्तम! आषाढ़, सावन और भादों तथा आश्विन (कुवार) मास में प्रिया लक्ष्मी समेत भगवान् श्रीधर की अर्चना और चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करके यथा विधान भोजन (पारण) करे। इस प्रकार यह दूसरा पारण बता दिया गया। अब तीसरा पारण बता रहा हूँ, सुनो! कार्तिक आदि चारों मासों में भगवान् केशव देव की अर्चना और रात्रि में शशांक (चन्द्र) देव को अर्घ्य प्रदान करके भोजन (पारण) करे। इस प्रकार तीसरे पारण की व्याख्या करके पारण करने की वस्तु बता रहा हूँ, सुनो! सर्वप्रथम भगवान् की अर्चा और ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के अनन्तर मेरे बताये हुए वस्तु का शरीर शुद्ध्यर्थ पारण करे।४-११। प्रथम (फाल्गुन आदि) के चौथे मास के अन्त में पञ्चगव्य, दूसरे (कार्तिक आदि के) तीसरे पारण में सूर्य किरण से संतृप्त जल के पारण शरीर-शुध्यर्थ करना चाहिए। प्रत्येक पारण में रात्रि के समय गीत, वाद्य के उपरांत भगवान् कृष्ण की शुभ कथा सुननी चाहिए। प्रथम पारण

जनार्दनं सपत्नीकमर्चयेत्प्रथमं ततः । सश्रीकं श्रीधरं तद्वत्तृतीये भूतिकेशवौ ॥१४
प्रतिमासं तु नामानि कृष्णस्यैतानि भारत । कृतोपवासः सुस्नातः पूजयित्वा जर्नादनम् ॥
उच्चारयन्नरो याति यथालोकं यथासुखम् ॥१५
ततोविप्राय वै दद्यादुदकुम्भं सदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रयुग्मं च च्छत्रं कनकमेव च ॥१६
यद्वै मासगतं नाम प्रीयतामिति कीर्तयेत् । केशवं मार्गशीर्षे तु पौषे नारायणं तथा ॥१७
माधवं माघमासे तु गोविन्दमपि फाल्गुने । चैत्रमासे तथा विष्णुं वैशाखे मधुसूदनम् ॥१८
ज्येष्ठे त्रिविक्रमो ज्ञेयस्त्वाषाढे च वामनः । श्रीधरः श्रावणे तद्वद्हृषीकेशेति चापरम् ॥१९
रामो भाद्रपदे मासि गीयते पुण्यकांक्षिभिः । पद्मनाभमथाश्वयुजि दामोदरमतः परम् ॥२०
कार्तिके देवदेवेशं स्तुवंस्तरति दुर्गतिम् । एवं संवत्सरस्यांते प्रतिमासे क्रमोदितम् ॥
यदि दातुं न शक्नोति दद्याच्चैवैकहेलया ॥२१
विशेषश्चात्र कथितश्चन्द्रं कृत्वा हिरण्ययम् । पूजयित्वा फलैर्वस्त्रैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२२
स्तुवन्नेवं विधानेन पारणेऽभ्यर्चयेत्प्रभुम् । तावंति जन्मान्यसुखं नाप्नोतीष्टावियोगजम् ॥२३
इहैव स्वस्थतां प्राप्य मरणे स्मरणं ततः । स्थानं तु मम संप्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥२४
ततो मानुष्यमासाद्य निरातंको गतज्वरः । धनधान्यवति स्फीतेजन्म साधुकुलेर्हति ॥२५

के मासों में सपत्नीक जनार्दन देव, दूसरे में श्री समेत श्रीधर और तीसरे में भूति समेत केशव की पूजा करनी चाहिए। प्रति मास में भगवान् कृष्ण के इन्हीं नामों का कीर्तन करना चाहिए। उपवास करते हुए भगवान् जनार्दन की अर्चना के अनन्तर उनके नाम का कीर्तन करने पर मनुष्य परमोत्तम लोक की प्राप्ति पूर्वक यथेच्छ सुखों का उपभोग करता है।१२-१५। (उद्यापन के समय) जलपूर्ण कलश, दक्षिणा, उपानह्, चारवस्त्र, छत्र और सुवर्णका दान ब्राह्मण को सादर समर्पित कर उस समय में पूजित होने वाले भगवान् के नाम का कीर्तन करे। अगहन में केशव, पौष में नारायण, माघ में माधव, फाल्गुन में गोविन्द, चैत में विष्णु, वैशाख में मधुसूदन, ज्येष्ठ में त्रिविक्रम, आषाढ़ में वामन, सावन में श्रीधर, और हृषीकेश भादों में राम, आश्विन में पद्मनाभ और दामोदर तथा कार्तिक में देवदेवेश की स्तुति करने पर मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है। इस प्रकार पूरे वर्ष के क्रमशः प्रति मास के नाम कीर्तन बता दिया गया। यदि उपरोक्त वस्तुओं के दान करने में असमर्थ हो तो एक ही किसी वस्तु का दान करे।१६-२१। विशेष दान भी बता रहा हूँ, सुनो! चन्द्रमा की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर फल-वस्त्र समेत इसी विधान द्वारा प्रत्येक पारण में उनकी पूजा करने पर वह भी अनेक जन्मों तक सुखों के उपभोग करते हुए प्रिय के वियोग दुःख का अनुभव नहीं करता है। तथा इस लोक में आजीवन स्वस्थ एवं सुखी रह कर अन्त में मेरे स्वर्ग लोक में सुसम्मानित होता है।२२-२४। पश्चात् मनुष्य की शरीर प्राप्त कर निर्भीक और चिन्ता हीन रहते हुए धन-धान्य सम्पन्न एवं पवित्र कुल में जन्म ग्रहण करता

श्रीशर्वरी मधुनि हा भगवाञ्छशांकः संकल्प्य चन्दनतिलाक्षतपुष्पमिश्रम् ।
यच्छंति येऽर्घमनया नृप पूर्णिमायां नूनं भवंति परिपूर्णमनोरथास्ते ॥२६

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पूर्णमनोरथव्रतं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।१०४

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

विशोकपूर्णिमाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अशोकपूर्णिमां चान्यां शृणुष्व गदतो मम । यामुपोष्य नराः शोकं नाप्नुवंति कदाचन ॥१
फाल्गुनामलपक्षस्य पौर्णमास्यां नरोत्तम । मृगज्जलेन नरः स्नात्वा दत्वा शिरसि वै मृदम् ॥
मृत्प्राशनं ततः कृत्वा च स्थंडिलं मृदा ॥२
पुष्पैः पत्रैस्तथाभ्यर्च्य भूधरं नाम नामतः । धरणी च तथा देवीमशोकेत्यभिकीर्तयेत् ॥३
यथा विशोकां धरणे कृतवांस्त्वां जनार्दनः । तथा मां सर्वशोकेभ्यो मोचयाशेषधारिणि ॥४
यथा समस्तभूतदामाधारस्त्वं व्यवस्थिता । तथा विशोकं कुरु मां सकलेच्छाविभूतिभिः ॥५
ध्यानमात्रे तथा विष्णोः स्वास्थ्यं जानासि मेदिनी । तथा मनः स्वस्थतां मे कुरु त्वं भूतधारिणि ॥६
एवं स्तुत्वा तथाभ्यर्च्य चन्द्रयार्घ्यं निवेद्य च । उपोषितव्यं नक्तं वा भोक्तव्यं तैलवर्जितम् ॥७

है । नृप! पूर्णिमा के दिन भी निशापति भगवान् चन्द्र देव के लिए संकल्प पूर्वक चन्दन, तिल, अक्षत और पुष्प मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने वाले मनुष्यों के मनोरथ निश्चय सफल होते हैं ।२५-२६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
पूर्णमनोरथ व्रत वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ।१०४।

अध्याय १०५

विशोकपूर्णिमा व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं एक अन्य अशोक पूर्णिमा की व्याख्या तुम्हें बता रहा हूँ, जिसमें उपवास करने पर मनुष्य को कभी भी किसी प्रकार का शोक नहीं होता है सुनो! नरोत्तम! फाल्गुन मास की शुक्र पूर्णिमा के दिन मिट्टी समेत जो से स्नान, शिर में मिट्टी के लेप और मिट्टी के आशन करके पुष्प-पत्र द्वारा भूधर भगवान् और पृथिवी देवी की अर्चना करे अनन्तर धरणी के अशोक नाम का कीर्तन करके प्रार्थना करे—अखिल लोक धारण करने वाली देवि! जिस प्रकार भगवान् जनार्दन ने तुम्हें शोक रहित किया है, मुझे भी उसी भाँति समस्त शोकों से रहित करो तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों आदि का आधार तुम्हें बनाया गया है उसी भाँति मुझे भी समस्त इच्छाओं की पूर्ति समेत शोक हीन करने की कृपा करें । जीवों को धारण करने वाली मेदिनी देवि! ध्यान मात्र से जिस भाँति विष्णु मेरे मन को स्वस्थ करो ।१-६। इस भाँति स्तुति पूजन और चन्द्रमा के लिए अर्घ्य प्रदान कर उपवास करते हुए रात्रि में

अनेनैव प्रकारेण चत्वारः फाल्गुनादयः । उपोष्या नृपते मासाः प्रथमं पारणं स्मृतम् ।।८
आषाढादिषु मासेषु तद्वत्स्नानं मृदम्बुना । तथैव प्राशनं पूजा तद्वदिंदोस्तथार्हणम् ।।९
चतुर्ष्वन्येषु चैवोक्तं कार्तिकादिषु पारणम् । पारणत्रितये चैव चातुर्मासिकमुच्यते ।।१०
विशेषपूजा दानं च तथा जागरणं निशि । विशेषेणैव कर्तव्यं पारणेपारणे गते ।।११
प्रथमे धरणी नाम तुभ्यं मासचतुष्टयम् । द्वितीये मेदिनी वाच्या तृतीये च वसुन्धरा ।।१२
पारणेपारणे पार्थ युग्मानेवार्च्चयेद्द्विजान् । धरणीं देव देवं च तत्तत्स्थानेन केशवम् ।।१३
वस्त्राभावे च सूत्रेण पूजयेद्धरणीं तथा । घृताभावे तथा क्षीरं शस्तं वा सलिलं हरेः ।।१४
एवं संवत्सरस्यान्ते गौः सवत्सा द्विजातये । प्रदेया धरणी देवी वस्त्रालङ्कारसंयुता ।।१५
पातालसंस्थया देव्या चीर्णमेतन्महाव्रतम् । धरण्या केशवप्रीत्यै ततः प्राप्ता समुन्नतिः ।।१६
देवेन चोक्ता धरणी वराहवपुषा पुरा । उपवासव्रतपरा समुद्धृत्य रसातलात् ।।१७
व्रतेनानेन कल्याणि त्वयाहं परितोषितः । तस्मात्प्रसादमतुलं करोमि तव सुव्रते ।।१८
यथैव कुरुषे भक्त्या पूजां मम सुशोभनाम् । तथैव तव कल्याणि प्रणतो यः करिष्यति ।।१९
व्रतमेतदुपाश्रित्य पारणं च यथाविधि । सर्वबाधाविनिर्मुक्तो जन्मजन्मांतराण्यपि ।।
विशोकः सर्वकल्याणभाजनं स्यान्न संशयः ।।२०
यथा त्वमेव वसुधे संप्राप्ता निर्वृतेः पदम् । तथा स परमँल्लोके सुखं प्राप्स्यति मानवः ।।२१

तेल-नमक रहित नक्त भोजन करे। नृप! इसी विधान द्वारा फाल्गुन आदि चार मासों के पूजनादि सुसम्पन्न कर अन्त में पारण करे। इसी प्रकार आषाढ़ आदि के चारों मासों में मिट्टी-जल स्नान और उसके अन्त में दूसरा पारण तथा कर्तिक आदि चारों मासों में पूर्वोक्त विधान द्वारा पूजन -जागरण आदि करके तीसरा पारण करे। इन चातुर्मासिक पारणों में विशेष पूजा, दान और रात्रि में जागरण करते हुए प्रत्येक पारण में विशेष करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। प्रथम पारण के चौमासे में धरणी, दूसरे में मेदिनी और तीसरे पारण में वसुंधरा नाम का कीर्तन-पूजन करते हुए चार-चार ब्राह्मणों की अर्चा करे।७-१३½। धरणी और देवाधिदेव केशव की पूजा करते समय वस्त्राभाव में सूत्र से ही पूजन करने तथा घृत के अभाव में क्षीर अथवा जल द्वारा भगवान् की अर्चा करे। इस प्रकार वर्ष के अन्त में सवत्सा गौ और वस्त्रालंकार भूषित धरणी देवी ब्राह्मण को अर्पित करें। पाताल में रहते समय धरणी देवी ने इस महाव्रत का अनुष्ठान किया था जिससे प्रसन्न होकर भगवान् केशव देव ने उसकी उन्नति की। भगवान् ने उस समय वाराह रूप धारण कर उपवास परायण उस धरणी देवी का रसातल से उद्धार किया। उन्होंने कहा—कल्याणि! सुव्रते! मैं तुम्हारे इस व्रतानुष्ठान से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें, अनुपम प्रसन्नता प्रदान करूँगा। भक्तिपूर्वक तुमने जिस प्रकार मेरी परमोत्तम पूजा की है उसी भाँति अन्य प्राणी भी नम्रता पूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान और सविधान पारण करेंगे, तो जन्म-जन्मान्तर की समस्त बाधा से वे मुक्त रहेंगे और शोकहीन रहकर वे सदैव कल्याण पात्र हैं इसमें संदेह नहीं।१४-२०। वसुधे! जिस प्रकार तुम्हें परम पद की प्राप्ति हुई है उसी प्रकार वह मनुष्य भी उत्तम लोक की प्राप्ति कर सुखोपभोग करता है। इसी प्रकार इस विशोक नामक व्रत का जो

एवमेतन्महापुण्यं सर्वपापप्रशांतिदम् । विशोकाख्यं व्रतवरं तत्कुरुष्व महाव्रतन् ।।२२
सम्यग्विशोककरणी नृपपूर्णिमा ते ख्याता मया मनुमहेन्द्रसमानकीर्ते।
एवं करोति कुरुपुङ्गव यः प्रयत्नाच्छोको न तस्य भवतीह कुलेऽपि पुंसः ।।२३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकपूर्णिमाव्रतं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।१०५

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सर्वकामानवाप्नोति समाराध्य जनार्दनम् । प्रकारैर्बहुभिः कृष्ण यान्यानिच्छति चेतसा ।।१
नृणां स्त्रीणां च सर्वेषां नान्यच्छोकस्य कारणम् । अपत्यादधिकं किंचिद्विद्यते ह्यत्र जन्मनि ।।२
अपुत्रता महादुःखमतिदुःखं कुपुत्रता । सुपुत्रः सर्वसौख्यानां हेतुभूतोमतो मम ।।३
धन्यास्ते ये सुतं प्राप्ताः सर्वदुःखविवर्जितम् । शक्तं प्रशांतं बलिनं परां निर्वृतिमागतम् ।।४
स्वकर्माभिरतं नित्यं देवद्विजपरायणम् । शास्त्रज्ञं सर्वधर्मज्ञं दीनानाथानुकंपिनम् ।।५
विनिर्जितारिसर्वस्वं मनोहृदयनन्दनम् । देवानुकूलतायुक्तं युक्तं सम्यग्गुणेन च ।।६

महापुण्य रूप और समस्त पापों का विनाश करता है, अनुष्ठान अवश्य करो। मनु और महेन्द्र की भाँति कीर्ति प्राप्त करने वाले नृप! कुरुपुङ्गव! यह पूर्णिमा जिसकी व्याख्या मैंने तुम्हें भलीभाँति सुनाई है जो प्रयत्न पूर्वक इसे सुसम्पन्न करते हैं उनके कुल में किसी प्रकार का शोक नहीं होता है।२१-२५
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विशोक पूर्णिमाव्रत वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त।१०५।

अध्याय १०६

अनन्तव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! जो जिस-जिस की कामना करता है, उसे अनेक प्रकार से भगवान् जनार्दन की आराधना द्वारा प्राप्त करता है। इस जन्म में स्त्री पुरुषों के शोक का कारण सन्तान से अधिक अन्य कोई है भी नहीं। क्योंकि अपुत्रता महादुःख और कुपुत्रता का अनुभव अति दुःख बताया गया है। मेरा विचार है कि उसी प्रकार सुपुत्र ही समस्त सौख्यों का कारण है। वे सब धन्य हैं जिन्होंने समस्त दुःख रहित, शक्त, प्रशान्त, एवं बलवान् पुत्र की प्राप्ति की है। उन्हें ही अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है।१-४। अपने कर्म में तत्पर, नित्य द्विज-देव की अर्चना करने वाले, शास्त्र और समस्त धर्म का मर्मज्ञ, दीन-अनाथ के ऊपर कृपा करने वाले, देव सौभाग्य युक्त, सर्व गुण सम्पन्न मित्र तथा अपने जन-परिजन द्वारा

-मिश्रस्वजनसन्मानलब्धं निर्वाणमुत्तमम् । यः प्राप्नोति सुतं तस्मान्नान्यो धन्यतरो भुवि ॥७
सोऽहमेवंविधं श्रोतुं कर्मेच्छामि महामते । येनेदृग्लक्षणः पुत्रः प्राप्यते भुवि मानवैः ॥८

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेतन्महाभाग पुत्रापुत्रसमुद्भवम् । दुःखं प्रयात्युपशमं तनयान्नेह केनचित् ॥९
अत्रापि श्रूयतां वृत्तं यत्पूर्वमभवन्मुने । उत्पत्तौ कार्तवीर्यस्य हैहयस्य महात्मनः ॥१०
कृतवीर्यो महीपालो हैहयो नाम वै पुरा । तस्य शीलधना नाम बभूव वरवर्णिनी ॥११
पत्नीसहस्रप्रवरा महिषी शीलमण्डना । सा त्वपुत्रा महाभागा मैत्रेयीं पर्यपृच्छत ॥१२
गुणवत्पुत्रलाभाय कृतासनपरिग्रहम् । तया पृष्टाथ सा सम्यङ्मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी ॥१३
कथयामास परमं नाम्नानन्तव्रतं महत् । सर्वकामफलावाप्तिकारणं पापनाशनम् ॥
तस्याः सुपुत्रलाभाय राजपुत्र्यास्तपस्विनी ॥१४

मैत्रेय्युवाच

यो यमिच्छेन्नरः कामं नारी वा वरवर्णिनी ॥१५
स तं समाराध्य विभुं समाप्नोति जनार्दनात् । मार्गशीर्षे मृगशिरो भीमो यस्मिन्दिनेऽभवत् ॥१६
तस्मिन्संप्राश्य गोमूत्रंस्नातो नियतमानसः । पुष्पैर्धूपैस्तथा गन्धैरुपवासैश्च भक्तितः ॥
वामपादमनन्तस्य पूजयेद्वरवर्णिनि ॥१७

सुसम्मानित और अत्यन्त प्रशान्त सुत की प्राप्ति करने वाले इस भूतल में अत्यन्त धन्य हैं अन्य नहीं। महामते! इस लिए मैं ऐसा ही कर्म जानना चाहता हूँ, जिसके सुसम्पन्न करने पर उपरोक्त लक्षण युक्त पुत्र की प्राप्ति इस भूतल में होती है।५-८

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग! पुत्र और अपुत्र-जनित दुःख-सुख की बात जो कह रहे हो वह सर्वथा वैसा ही है। क्योंकि जिस प्रकार पुत्र द्वारा दुःखों के प्रशमन होते हैं वैसा अन्य किसी द्वारा नहीं। मुने! इस विषय में तुम्हें पहले का एक वृत्तान्त सुना रहा हूँ, सुनो! हैहय वंश में उत्पन्न महात्मा कृतवीर्य की उत्पत्ति का इतिहास इस प्रकार है—पहले समय में हैहय नामक कृतवीर्य राजा रहते थे जिसके शीलधना नामक परमोत्तम पत्नी थी। वह उनकी प्रधान रानी सहस्रों स्त्रियों में परमोत्तम और शील का निधान थी किन्तु पुत्र हीन होने के नाते वह महाभाग एक बार मैत्रेयी से गुणवान् पुत्र उत्पन्न होने का कारण पूँछा। रानी के पूछनेपर ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने उसे भलीभाँति अनन्त व्रत का परम महत्व समझाया जो समस्त कामनाओं को सफल करने वाला एवं पाप नाशक है। इस प्रकार उस तपस्विनी ने राजपुत्री के सुपुत्र उत्पन्न होने की सभी बातें बतायी।९-१४

मैत्रेयी बोली—स्त्री अथवा पुरुष जिस वस्तु की इच्छाकरते हैं वे भगवान् जनार्दन देव की आराधनाद्वारा उस विभु से प्राप्त कर लेते हैं। उत्तमाङ्गि! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की मृगशिरा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन गोमूत्र के प्राशन पूर्वक स्नान करके एकाग्र चित्त से भगवान् अनन्त के बाँये चरण की अर्चना पुष्प, धूप और गन्ध आदि द्वारा सुसम्पन्न करे। उपवास रहकर भक्ति पूर्वक पूजन करते

अनंतः सर्वकामानामनंतं भगवान्फलम् । ददात्वनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि ॥१८
अनंतपुण्योपचयमनन्तं तु महाव्रतम् । यथाभिलषितावाप्तिं कुरु मे पुरुषोत्तम ॥१९
इत्युच्चार्याभिपूज्यैनं यथावद्विधिना नरः । समाहितमना भूत्वा प्रणिपातपुरस्सरम् ॥२०
विप्राय दक्षिणां दद्यादनंतः प्रीयतामिति । समुच्चार्य ततो नक्तं भुञ्जीत तैलवर्जितम् ॥२१
ततश्च पौषे पुष्यर्क्षे तथैव भगवत्कटिम् । वामामभ्यर्चयेद्भक्त्या गोमूत्रप्राशनं ततः ॥२२
अनंतः सर्वकामानामिति चोच्चारयेत्पुनः । भोजयेत तथा विप्रान्वाचयित्वा यथाविधि ॥२३
माघे मघासु तद्वच्च बाहुं देवस्य पूजयेत् । स्कन्धौ च मम फाल्गुन्योः फाल्गुने मासि भामिनि ॥२४
चतुर्ष्वेतेषु गोमूत्रं प्राशयेन्नृपनंदिनि । ब्राह्मणाय तथा दद्यात्तिलान्कनकमेव च ॥२५
देवस्य दक्षिणं स्कन्धं चैत्रे चित्रासु पूजयेत् । तथैव प्राशनं चात्र पञ्चगव्यमुदाहृतम् ॥
विप्रे प्रवाचके दद्याद्यवान्मासचतुष्टयम् ॥२६
वैशाखे च विशाखासु बाहुं सम्पूज्य दक्षिणम् । तथैवोक्तान्यवान्दद्यान्नक्तं कुर्याद्द्विजक्रियाम् ॥२७
ज्येष्ठासु कटिपूजां च ज्येष्ठमासि शुभव्रते । आषाढासु तथाषाढे कुर्यात्पादार्चनं शुभे ॥२८
पादद्वयं तु श्रवणे श्रावणे मासि पूजयेत् । घृतं विप्राय दातव्यं प्राशनीयं यथाविधि ॥२९
श्रावणादिषु मासेसु प्राशनं दानमेव च । एतदेवं समाख्यातं देवांस्तद्वच्च पूजयेत् ॥३०
गुह्यं प्रोष्ठपदायोगे मासि भाद्रपदेऽर्चयेत् । तद्वदाश्वयुजे पूज्यं हृदयं चाश्विनीषु च ॥३१

समय ऐसे कहता भी रहे कि—पुरुषोत्तम! भगवान् अनन्त मुझे समस्त कामनाओं का अनन्त फल प्रदान करें और अगले जन्म में भी अनन्त फल की प्राप्ति समेत अनन्त पुण्य एवं अनन्त महाव्रत का सौभाग्य प्राप्त हो। इस प्रकार मेरी सभी अभिलाषाओं को पूरी करने की कृपा करें।१५-१९। सावधान होकर अनन्त भगवान् की अर्चना के अनन्तर अनुनय-विनय समेत 'अनन्त भगवान् प्रसन्न हों' कहते हुए ब्राह्मणों के पूरक अनन्त देव हैं, ऐसा वह कर भोजन करे और यथा विधान ब्राह्मण द्वारा कथा का श्रवण भी करे। दामिनि! नृप नन्दिनि! इसी भाँति माघ मास में मघा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन अनन्त भगवान् की बाहू और फाल्गुन मास में फाल्गुनी नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के अवसर पर उनके कंधे की अर्चना करे तथा इन चारों मासों में गोमूत्र का ही प्राशन करता रहे। पूजनोपरांत ब्राह्मण को तिल और कनक के दान से सुसम्मानित करे। उसी प्रकार चित्रा नक्षत्र युक्त चैत्र की पूर्णिमा के दिन अनन्त देव के दाहिने कंधे की पूजा, पञ्चगव्य के प्राशन और चार मास के कथापारायण की दक्षिणा में ब्राह्मण को जवा प्रदान करे। वैशाख मास की विशाखा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन दाहिनी बाहु के पूजनोपरांत पूर्व की भाँति जवा के दान और रात्रि में नक्त भोजन करे।२०-२७। शुभव्रते! ज्येष्ठ मास की ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन उनके कटि की पूजा तथा आषाढ़ युक्त आषाढ़ मास की पूर्णिमा में उनके चरण की अर्चना करे। श्रवण नक्षत्र युक्त श्रावण (सावन) मास की पूर्णिमा के दिन दोनों चरण की अर्चना करके यथा विधान धृत के प्राशन और दान करे क्योंकि सावन आदि मासों में इसी का प्राशन तथा दान करना प्रमुख बताया गया है और उसी भाँति देवों की पूजा भी।२८-३०। भाद्रपद नक्षत्र युक्त भादों की पूर्णिमा के दिन उनके गुह्य स्थान और अश्विनी नक्षत्र युक्त आश्विन मास की पूर्णिमा में उनके हृदय की अर्चना, स्नान और आशन आदि सावधान होकर करे।

कुर्यात्समाहितमनाः स्नानं प्राशनमर्चनम् । अनन्तशिरसः पूजां कार्तिके कृत्तिकासु च ।।३२
यस्मिन्यस्मिन्दिने पूजा तत्र तत्र तदा दिने । नामानंतस्य जप्तव्यं क्षुतप्रस्खलितादिषु ।।३३
घृतेनानंतमुद्दिश्य पूर्वं मासचतुष्टयम् । कुर्वीत होमं चैत्रादौ शालिना कुलनंदिनी ।।३४
क्षीरेण श्रावणादौ च होमो मासचतुष्टयम् । प्रशस्तं सर्वमासेषु हविष्यान्नेन भोजनम् ।।३५
एवं द्वादशभिर्मासैः पारणात्रितयं शुभे । व्रतावसाने चानन्तं सौवर्णं कारयेच्छुभम् ।।३६
राजतं मुसलं चैव हलं पार्श्वेषु विन्यसेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः पूजा कार्या यथाविधि ।।३७
ताम्रपीठोपरि हरेर्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् । नमोऽस्त्वनंताय शिरः पादौ सर्वात्मने नमः ।।३८
शेषाय जानुयुगलं कामायेति कटिं नमः । नमोस्तु वासुदेवाय पार्श्वे संपूजयेद्धरेः ।।३९
संकर्षणायेत्युदरं भुजं सर्वासुधारिणे । कण्ठं श्रीकण्ठनाथाय मुखमिंदुमुखाय च ।।४०
हलं च मुसलं चैव स्वनाम्ना पूजयेद्बुधः । एवं सम्पूज्य गोविन्दं सितवस्त्रविभूषितम् ।।४१
छत्रोपानसुसंयुक्तं स्रग्दामालंकृतं तथा । नक्षत्रदेवताः पूज्या नक्षत्राणि च सर्वशः ।।४२
सोमो नक्षत्रराजश्च मासः संवत्सरं तथा । द्वादशात्र घटान्कुर्यात्सतोयांश्चान्नसंयुतान् ।।४३
एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवं जनार्दनम् । ब्राह्मणं पूजयित्वा च वस्त्रैराभरणैस्तथा ।।४४
कर्णांगुलैः पवित्रैश्च शांतं दांतं जितेन्द्रियम् । पुराणज्ञं धर्मनित्यमव्यंगं सुप्रियंवदम् ।।४५

उसी भाँति कार्तिक मास की कृत्तिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन अनन्त भगवान् के शिर की पूजा सुसम्पन्न करे।३१-३२। जिस-जिस दिन उनकी पूजा बतायी गयी है उसमें खाते-पीते आदि सभी समय के नाम का कीर्तन करता रहे। कुलनन्दिनि! पहले (अगहन आदि) के चारों मासों में भगवान् अनन्त के उद्देश्य से घृत के हवन, चैत्रआदि के मासों में साठी चावल के हवन करे तथा सभी मासों में प्रशस्त हविष्यान्न के भोजन। शुभे! वारह मास की तीन पारणों की समाप्ति के अनन्तर (उद्यापन में) अनन्त भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर चाँदी के हल और मूसलसे उनके दोनों पार्श्व भाग सुशोभित करे। ताँबे के पीठासन पर उन्हें स्थापित कर पुष्प, धूप, नैवेद्यादि द्वारा क्रमशः उनके अंगों की पूजा निम्नलिखित मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करे। 'अनन्त को नमस्कार है' से उनके शिर, 'सर्वात्माको नमस्कार है, से चरण, 'शेष को नमस्कार है' से 'दोनों जानु (घुटने)' 'काम को नमस्कार है' से 'कटि' 'वासुदेव को नमस्कार है' से दोनों पार्श्व भाग, 'संकर्षण को नमस्कार है' से उदर, 'प्राणीमात्र को धारण करने वाले को नमस्कार है' से भुजाएँ, 'श्रीकण्ठनाथ को नमस्कार है' से कण्ठ, 'इन्द्रमुख को नमस्कार है' से मुख और हल तथा मुसल की अर्चना करने वाले नाम मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करे।३३-४०½। इस प्रकार उन गोविन्द देव की, जो श्वेत वस्त्र से भूषित, छत्र और उपानह से युक्त एवं उत्तम पुष्प की मात्रा से अलंकृत किये गये हों, अर्चना करने के अनन्तर नक्षत्र के देवता और उन सभी नक्षत्रों की पूजा करे। पश्चात् नक्षत्र राज सोम (चन्द्र), मास तथा संवत्सर (वर्ष) की अर्चना करते समय अन्न समेत जल-पूर्ण कलश का भी पूजोपरांत दान करे। इस भाँति देवाधिदेद जनार्दन भगवान् की पूजा करके वस्त्र, आभूषण, कुण्डल, अंगूठी और पवित्री द्वारा उस पुराण-वेत्ता ब्राह्मण की पूजा करके जो शांत चित्त, इन्द्रिय-संयमी, धर्ममूर्ति, दोष-हीन मधुर भाषी हो, 'अनन्त देव प्रसन्न हों' कह कर उन्हीं को वह सब कुछ

तस्मै देयं समस्तं तदनन्तः प्रीयतामिति । अन्येषां ब्राह्मणानां च देयं शक्त्या यथेप्सितम् ।।४६
अनेन विधिना पार्थं व्रतं चैतत्समाप्यते । पारिते च समाप्नोति सर्वानेव मनोरथान् ।।४७
पुत्रार्थिभिर्वित्तकामैर्भृत्यदारानभीप्सुभिः । प्रार्थयद्भिश्च मर्त्येऽस्मिन्नारोग्यफलसम्पदः ।।४८
एतद्व्रतं महाभागे पुण्यं स्वस्त्ययनप्रदम् । अनन्तव्रतसंज्ञं वै सर्वपापप्रणाशनम् ।।४९
तत्कुरुष्वैव देवि त्वं व्रतं शीलधने परम् । वरिष्ठं सर्वलोकस्य यदि पुत्रमभीप्ससि ।।५०

श्रीकृष्ण उवाच

इति शीलधना श्रुत्वा मैत्रेयीवचनं शुभम् । चकारैतद्व्रतवरं सा विष्ण्वाहितमानसा ।।५१
पुत्रार्थिन्यास्ततस्तस्माद्व्रतेनानेन सुव्रत । विष्णुस्तुतोष तुष्टे च विष्णौ सा सुषुवे सुतम् ।।५२
तस्य वै जातमात्रस्य प्रववौ चानिलः शुभम् । नीरजस्कमभूद्व्योम मुदं प्रापाखिलं जगत् ।।५३
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च । प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।।५४
धर्मे मनः समस्तस्य पार्थं लोकस्य चाभवत् । तस्य नाम पिता चक्रे तनयस्यार्जुनेति वै ।।५५
कृतवीर्यसुतत्वाच्च कार्तवीर्यो बभूव सः । तेनापि भगवान्विष्णुर्दत्तात्रेयस्वरूपवान् ।।
आराधितोऽतिमहता तपसा पार्थ भूभृता ।।५६
तस्य तुष्टो जगन्नाथश्चक्रवर्तित्वमुत्तमम् । ददौ शौर्यधने[1] चापि सकलान्यायुधानि च ।।
स[2] वव्रे च वधो देव मम त्वत्तो भवेदिति ।।५७

अर्पित भी कर दे । अनन्तर अन्य ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति यथेच्छ दान से सुसम्मानित करे । पार्थ! इसी विधान द्वारा इस व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया जाता है और इसके पूरा होने पर सम्पूर्ण मनोरथ सफल होते हैं । इस मर्त्य (मनुष्य) लोक में पुत्र, वित्त, सेवक और स्त्री आदि की कामना वश इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर आरोग्य और सम्पत्ति समेत उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं । महाभागे, शीलधने! यदि तुम्हें समस्त लोगों से परमोत्तम पुत्र की अभिलाषा है तो इस व्रत का, जो पुण्यस्वरूप कल्याणकारी समस्त पापों का नाशक है, अनुष्ठान अवश्य करो ।४१-५०

श्रीकृष्ण बोले—मैत्रेयी की इन शुभ बातों को सुनकर रानी शीलधना ने भगवान्-विष्णु में अपना चित लगाकर पुत्र की कामना से इस व्रत को सुसम्पन्न किया । सुव्रत! उससे भगवान् विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए, जिसके उत्पन्न होने पर कल्याणकारी वायु चलने लगा, आकाश अत्यन्त निर्मल हो गया, समस्त संसार को हर्ष हुआ, देवताओं ने दुंदुभी बजायी और पुष्प की वर्षा की, देव-गन्धर्व गान करने लगे एवं अप्सरायें नृत्य करने लगी । पार्थ! उस समय सम्पूर्ण लोकों की धर्म में अधिक प्रवृत्ति हुई । पिता ने उस का 'अर्जुन' नाम करण किया और कृतवीर्य के पुत्र होने से कार्तवीर्य भी नाम हुआ । पार्थ! उस कार्तवीर्य ने भगवान् विष्णु के दत्तात्रेय स्वरूप की महान् तप द्वारा आराधना की, जिससे अत्यन्त तुष्ट होकर भगवान् जगन्नाथ ने चक्रवर्तित्व प्रदान किया और उसके साथ-साथ शौर्य, बल एवं सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र भी । उसने कहा-देव! आप के द्वारा ही मेरा निधन होये, किन्तु जगत्पते! स्मरणमात्र से मुझे

---

१. शौर्यबले । २. स वव्रे च वरं देव मम त्राता भवेति च ।

परं तु स्मरणं ज्ञानं भीतानामार्तिनाशनम् । स्मरणादुपकारित्वं जगतोऽस्य जगत्पते ।।५८
तमाह देवदेवेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः । सर्वमेतन्महाभाग तव भूयो भविष्यति ।।५९
यश्च प्रभाते रात्रौ च त्वां नरः कीर्तयिष्यति । नमोऽस्तुकार्तवीर्यायेत्यभिधास्यति चैव यः ।।
तिलप्रस्थप्रदानस्य नरः पुण्यमवाप्स्यति ।।६०
अनष्टद्रव्यता चैव तव नामानुकीर्तने । भविष्यति महीपालेत्युक्त्वा तं प्रययौ हरिः ।।६१
स वापि वरमासाद्य प्रसन्नाद्गरुडध्वजात् । पालयामास भूपालः सप्तद्वीपां वसुंधराम् ।।६२
तेनेष्टं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । जित्वारिवर्गमखिलं धर्मतः पालिताः प्रजाः ।।६३
अनंतव्रतमहात्म्यादासाद्य तनयं च तम् । पितुः पुत्रोद्भवं दुःख नासीत्स्वल्पमपि प्रभो ।।६४
एवमेतत्समाख्यातमनंताख्यं व्रतं तव । यत्कृत्वा राजपत्नी सा कार्तवीर्यमसूयत ।।६५
यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म कार्तवीर्यस्य मानवः । स्त्री वा दुःखमपत्योत्थं सप्तजन्मसु नाश्नुते ।।६६

ऐश्वर्यमप्रतिहतं परमं विवेकं पुत्रानमित्रहृदयार्तिकरान्बहूंश्च ।
[1]कृत्वा त्वनंत इति यद्व्रतनामधेयं प्राप्नोत्यनंतविभवस्य विभोः प्रसादात् ।।६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद
अनंतव्रतवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।१०६

इस जगत् के उपकारी होने एवं उसके स्मरण, ज्ञान और दुःखीजनों के दुःख दूर करनेका ज्ञान अधिक मात्रा में बना रहे । देवाधि-देव कमलनयन ने कहा—महाभाग! वह सब कुछ तुम्हें अधिकाधिक होता रहेगा । प्रातःकाल और रात्रि में तुम्हारेनाम का कीर्तन तथा 'कार्तवीर्य को नमस्कार है' कहेगा और एक सेर तिल का दान करेगा तो उस पुरुष को पुण्य की प्राप्ति होगी, तथा महीपाल! तुम्हारे नाम के संकीर्तन करने से द्रव्यसञ्चय सदैव बना रहेगा । इतना कह कर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये और उस राजा ने भगवान् गरुड़ध्वज की प्रसन्नता से वरदान की प्राप्ति कर सातों द्वीप समेत इस पृथिवी का पालन करना आरम्भ किया । उन्होंने अनेक भाँति से इष्ट यज्ञ उत्तम दक्षिणा के प्रदान पूर्वक सुसम्पन्न किया। समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर धर्मतः प्रजाओं का पालन किया । प्रभो! अनन्त व्रत के महत्त्व द्वारा वैसे पुत्र की प्राप्ति कर उनके पिता को (दुर्गुण) पुत्र होने का स्वल्प भी कष्ट नहीं हुआ । इस प्रकार मैंने तुम्हें अनन्त व्रतका महत्व सुना दिया जिसके अनुष्ठान द्वारा रानी ने कार्तवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न किया । कार्तवीर्य के जन्म की कथा को सुनने वाला पुरुष अथवा स्त्री सात जन्मों तक पुत्र-जनित दुःखों के अनुभव नहीं करती है । इस भाँति अनन्त नामक व्रत के अनुष्ठान करने पर उनके प्रसाद से अतुल ऐश्वर्य, परमज्ञान, शत्रु-विजेता अनेक पुत्र और अनन्त सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।५१-६७।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
अनन्त व्रत वर्णन नामक एक सौ छठाँ अध्याय समाप्त ।१०६।

---

१. सौभाग्यमिष्टजनलाभसुखं च लोकास्ते वै समस्तसुखदाः सुलभा भवन्ति ।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सांभरायणीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अप्राप्तैर्न तथा दुःखमैश्वर्याद्यैर्नरोत्तम । यथा मनोरथैः स्वैः स्वैर्नानादुःखं भवेन्नृणाम् ॥१
यथा मनोरथैर्लब्धैर्न स्याद्दुःखभयं नृणाम् । ऐश्वर्याद्विच्युतो वापि संततेर्देवलोकतः ॥२
अभीष्टादन्यतो वापि यदायेन विनिष्कृतिम् । प्राप्नोति पुरुषो वाथ नारी वा पुण्यसंचयात् ॥
तन्ममाचक्ष्व भगवन्येन नाप्नोति विच्युतिम् ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यमेतन्महाभाग दुःखं प्राप्नोत्यसंशयः ॥४
ऐश्वर्योदयचित्तस्य बन्धुवर्गसुखस्य च । तदेतच्छ्रूयतां पार्थ यथा नेष्टात्परिच्युतिः ॥५
स्वर्गादेर्जायते सम्यगुपवासवतां सताम् । द्वादशर्क्षाणि राजेन्द्र प्रतिमासं तु यानि वै ॥६
तन्नाम्ना चाच्युतं तेषु सम्यक्संपूजेन्नृप । पुष्पैर्धूपैस्तथांभोभिरभीष्टैरपरैरपि ॥७
आदितः कृत्तिकां कृत्वा कार्तिके नृपसत्तम । कृशरान्नं नैवेद्यं पूर्वं मास चतुष्टयम् ॥८
निवेदयेत्फाल्गुनादि संयावं च ततः परम् । आषाढादिषु देवाय पायसं विनिवेदयेत् ॥९

अध्याय १०७

सांभरायणीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—नरोत्तम! मनुष्यों को ऐश्वर्य के न मिलने पर नाना भाँति का उतना दुःख नहीं होता है, जितना कि अपने मनोनीत ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर। जिस प्रकार मनुष्यों को सफल मनोरथ होने पर दुःख और भय नहीं होता है, उसी प्रकार ऐश्वर्य के और संतान एवं स्वर्ग आदि अभीष्ट लोकों के लोकों के च्युत हो जाने पर अधिक दुःख होता है, जो स्त्री अथवा पुरुष के पुण्य सञ्चय रहने पर भी पाप के बदले में प्राप्त होता है। भगवान्! इसलिए मुझे वह उपाय बताने की कृपा कीजिये जिससे उपरोक्त के कभी वियोग ही न हो।१-३

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग! यह सत्य ही है कि अभिवृद्धि ऐश्वर्य और बन्धुवर्ग के सुखी प्राणी को यह दुःख निःसंदेह प्राप्त होता है। पार्थ! इसलिए मैं वह उपाय बता रहा हूँ, जिससे उपवास पूर्वक व्रत सुसम्पन्न करने वाले सज्जनों को स्वर्ग आदि अपने अभीष्ट वस्तु का कभी वियोग ही न हो। राजेन्द्र! बारह मास में होने वाले बारहों नक्षत्रों से क्रमशः प्रतिमास में प्रतिनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् अच्युत की अर्चना पुष्प, धूप तथा (तीर्थ आदि के) अभीष्ट जल द्वारा सुसम्पन्न करे। नृप सत्तम! कार्तिक मास की कृत्तिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा से आरम्भ करके चार-चार मास के अन्त में निम्न लिखित वस्तुओं के पारण करे—पहले चार मास के पारण में कृशरान्न (खिचड़ी), और लड्डू, फाल्गुन आदि चार मासों के पारण संयाव (लप्सी) और आषाढ आदि चार मासों मे पारण में खीर का पारण करे।४-९।

तेनैवान्नेन राजेन्द्र ब्राह्मणान्भोजयेद्बुधः । पञ्चगव्यजलस्नानं तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥१०
सम्यक्संपूज्य राजेन्द्र तमेव पुरुषोत्तमम् । प्रणम्य प्रार्थयेद्विष्णुं शुचिः स्नातो यथाविधि ॥११

नमोनमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्तादि तथाऽक्षयं मेक्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥१२
यथाच्युतस्त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा ।
तथाच्युतं मे कुरु वांछितं त्वं हरस्व पापं च तथाऽप्रमेय ॥१३

अच्युतानंत गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् । तदक्षयममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१४
एवमेवं समभ्यर्च्य प्रार्थयित्वा तथा शिवम् । नैवेद्यं स्वयमश्नीयान्नक्तं संपूजितेच्युते ॥१५
ततः संवत्सरस्यांते [1]सुखसुप्तोत्थितेऽच्युते । घृतपूर्णं ताम्रपात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१६
शक्तितो दक्षिणां दद्यादच्युतः प्रीयतामिति । ततस्तु सप्तमे वर्षे कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥१७
कार्या चैवाच्युतस्यार्चा शक्त्या स्वर्णमयी नृप । तदग्रे ब्राह्मणी स्थाप्या स्थविरा सांभरायणी ॥१८
महासती रौप्यमयी समानार्हा सदेवता । ततस्तौ पूजयित्वा च माल्यवस्त्रविलेपनैः ॥१९
मंत्रेणानेन राजेन्द्र प्रणिपत्य विधानतः । प्रतिवर्षं च दत्तं चेत्ताम्रं पात्रं द्विजातये ॥२०
तदेवहेलया दद्यात्सहिरण्याश्वसंयुतम् । गाश्च प्रदद्यात्संपूज्य सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥२१
एकां वा शक्तितो दद्याद्भक्त्या तुष्यति केशवः । घटा सत्पात्रनिर्दिष्टाः सान्नाः [2]पूर्णजलोज्ज्वलाः ॥२२

राजेन्द्र! उन दिनों उन्हीं पारण के अन्नों से ब्राह्मणों को सुतृप्त करते हुए पञ्चगव्य के जल से स्नान और उसी के आशन द्वारा कायशुद्धिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की सविधि अर्चना करके विष्णु देव की प्रार्थना करे—अच्युत! मेरे पापों के क्षय और पुण्य की प्राप्ति हो । उसी प्रकार मेरे ऐश्वर्य एवं धन आदि अक्षय हों और क्षय मास की वृद्धि हो । अप्रमेय! अच्युत! जिस प्रकार आप सब से परे ब्रह्म रूप परमात्मा हैं उसी प्रकार मेरे मनोरथ की उच्चकोटि की सफलता और पापों के अपहरण करें । अच्युत, अनन्त, गोविन्द, एवं पुरुषोत्तम! प्रसन्न होकर मेरे मनोरथ को अक्षय सफल करने की कृपा करें । इस भाँति भगवान् की अर्चना और शिव की प्रार्थना करके रात्रि में भगवान् अच्युत की पूजा के उपरांत नैवेद्य का नक्त भोजन करें । पश्चात् वर्ष के अन्त में भगवान् अच्युत के जागने पर घृत पूर्ण ताँबे का पात्र 'अच्युत प्रसन्न हों' कहते हुए दक्षिणा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । तदुपरांत सातवें वर्ष निम्न लिखित विधान द्वारा उद्यापन कर्म सप्रेम सम्पन्न करे—नृप! भगवान् अच्युक्त की यथाशक्ति सुवर्ण की प्रतिमा ब्राह्मणी की चाँदी की प्रतिमा स्थापित करे, जो महासती एवं देवता की भाँति पूजनीय है । राजेन्द्र! माला, वस्त्र और लेपन (उवटन) आदि से उन दोनों की सविधान पूजा और नमस्कार करके उसी भाँति प्रतिवर्ष ताँबे का पात्र ब्राह्मण को प्रदान करते रहे ।१०-२०। सुवर्ण समेत अश्व, और कांसे की दोहनी समेत सवत्सा गौ भी उन्हें अर्पित करे । अपनी शक्ति के अनुसार एक ही गौ के प्रदान करने पर भी भगवान् केशव प्रसन्न हो जाते हैं । अन्न समेत जलपूर्ण घट छत्र, उपानह, रुई के गद्देदार शय्या और

---

१. सुखव्युष्टोत्थिते । २. पूर्णजलान्विताः ।

छत्रोपानद्युगैः सार्धमेवं दत्त्वा विसर्जयेत् । शय्यां सतूलिकां दद्याद्गृहं चोपस्करैः सह ॥२३
श्रिया च सह विष्णुं च पूजयेद्भूषयेत्प्रभुम् । वस्त्रैराभरणैश्चैव प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥२४
कृतेनानेन राजेन्द्र च्युतिं नाप्नोति मानवः । संततेः स्वर्गवित्तादेरैश्वर्यस्य तथैव च ॥
यद्वाभिमतमन्यच्च ततो न च्यवते नरः ॥२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मासनक्षत्रपूजनैः । यजेताक्षयकामस्तु सदैव पुरुषोत्तमम् ॥२६

श्रीकृष्ण उवाच

अत्रापि श्रूयते काचित्सिद्धा स्वर्गे महाव्रता । नारी तपोधना भूत्वा प्रख्याता सांभरायणी ॥
समस्तसंदेहहरा सदास्वर्गौकसां हि सा ॥२७
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवराजः शतक्रतुः । पूर्वेन्द्रचरितं राजन्पप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ॥२८
पूर्वेन्द्रात्परतः पूर्वे ये बभूवुः सुरेश्वराः । तेषां चरितमिच्छामि श्रोतुमंगिरसां वर ॥२९
एवमुक्तस्तदा तेन देवेन्द्रेणामलद्युतिः । प्राह धर्मभृतां श्रेष्ठः परमर्षिर्बृहस्पतिः ॥३०
नाहं चिरंतनान्वेद्मि देवराज सुरेश्वरान् । आत्मनः समकालीनमवेहि च सुरेश्वर ॥३१
ततः पप्रच्छ देवेन्द्रः कोस्माभिर्मुनिपुंगवः । प्रष्टव्योऽत्र महाभाग कृतादिवसतिर्दिवि ॥३२
बृहस्पतिश्चिरं ध्यात्वा ततः प्राह शचीपतिम् । तपस्विनीं महाभागां पृच्छैतां सांभरायणीम् ॥३३
इत्युक्तस्तेन देवेन्द्रः कौतूहलसमन्वितः । ययौ यत्र महाभागा सम्यगास्ते तपस्विनी ॥३४
सा तौ दृष्ट्वा समायांतौ देवराजबृहस्पती । सम्यगर्घ्येण संपूज्य प्रणिपत्याह सुव्रता ॥३५

साधन सम्पन्न गृह के दान किसी संत्पात्र को समर्पित कर विसर्जन करे । राजेन्द्र! लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु की अर्चा वस्त्र और आभूषण द्वारा सुसम्पन्न करके विनय-विनम्र क्षमा याचना करने पर मनुष्य को किसी का वियोग दुःख नहीं होता है । संतान, स्वर्ग, वित्त और ऐश्वर्य आदि तथा अन्य अभीष्ट वस्तु का वियोग कभी नहीं होता है अतः अत्यन्त प्रयत्न के साथ अपनी अक्षय कामना के लिए मास नक्षत्र द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए ।२१-२६

श्रीकृष्ण बोले—इस विषय की एक कथा सुना रहा हूँ—स्वर्ग में सांभरायणी नामक एक प्रख्यात, सिद्धि, महाव्रत करने वाली एवं तपस्विनी थी, जो सदैव देवों के समस्त संदेह को दूर करती थी ।२७। राजन्! एक समय देवराज इन्द्र ने अपने से पूर्व के इन्द्रों का चरित बृहस्पति से पूँछा, कहा कि—अंगरिस प्रवर! मुझसे पूर्व और उनसे भी पूर्व के होने वाले इन्द्रों के चरित मुझे सुनने की इच्छा है, आप बताने की कृपा करें । देवेन्द्र के ऐसा कहने पर निर्मल प्रभा पूर्ण, धार्मिक श्रेष्ठ एवं ऋषिप्रवर बृहस्पति ने कहा—देवराज! मैं चिरन्तन के इन्द्रों के विषय में कुछ नहीं जानता और मुझे भी अपना समवयस्क ही समझो! देवलोक (स्वर्ग) में कौन ऐसा श्रेष्ठ व्यक्ति है, जिससे यहाँ की आदि वसती (निवासी) के विषय में पूँछा जा सकता है । इसे सुनकर बृहस्पति ने चिरकाल तक ध्यान किया और पश्चात् शचीपति इन्द्र से कहा—आप उस महापुण्य स्वरूपा एवं तपोमूर्ति सांभरायणी से यह विषय पूँछें । उनके ऐसा कहने पर देवराज इन्द्र ने अत्यन्त कुतूहल से उस महाभाग एवं तपस्विनी सांभरायणी के यहाँ प्रस्थान किया । उस सुव्रता ने अपने यहाँ अतिथि रूप में आये हुए इन्द्र और बृहस्पति को देख कर

नमोऽस्तु देवराजाय तथैवाङ्गिरसे नमः । यद्वा कार्यं महाभागौसकलं तदिहोच्यताम् ॥३६
यदि कर्तुंमया शक्यं तत्करिष्ये विमृश्य च ॥३७

बृहस्पतिरुवाच

आवामभ्यागतौ प्रष्टुं त्वामत्रातिविवेकिनीम् । यच्च कार्यं महाभागे पृष्टं तत्कथयस्व नः ॥३८
यदि स्मरसि कल्याणि पूर्वेन्द्रचरितानि वै । तदाख्याहि महाभागे देवेन्द्रस्य कुतूहलम् ॥३९

सांभरायण्युवाच

यो वै पूर्वं सुरेन्द्रस्य ततश्च प्रथमो हि यः । तस्मात्पूर्वतरो यस्य तस्यापि प्रथमश्च यः ॥४०
तेषां पूर्वतरा ये चे वेद्मि तानखिलानहम् । तेषां च चरितं कृत्स्नं जानाम्यंगिरसां वर ॥४१
मन्वंतराण्यनेकानि सृष्टेश्च त्रिदिवौकसाम् । सप्तर्षीन्सुबहून्वेद्मि मनूनां च सुतान्नृपान् ॥४२
एवमुक्त्वा ततस्ताभ्यां [1]सुहृष्टा सांभरायणी । यथावदाचष्ट तयोः पूर्वेन्द्रचरितं महत् ॥४३
स्वायंभुवे यस्तु मनौ मनौ स्वारोचिषे च यः । उत्तमे तामसे चैव रैवते चाक्षुषे तथा ॥४४
ये बभूवुर्हि देवेन्द्रास्तस्य तस्य तपस्विनी । तदा जगाद चरितं यथावत्सांभरायणी ॥४५
कथयामास चाश्चर्यं तच्चापि कथयामि ते । शंकुकर्णस्तदा दैत्यो बभूवात्यंतदुर्जयः ॥
स लोकपालान्समरे विजित्य सह दैवतैः ॥४६

अर्घ्यादि द्वारा उन लोगों की भलीभाँति पूजा की और पश्चात् नम्रता पूर्वक कहा—मैं देवराज इन्द्र एवं अंगिरस प्रवर बृहस्पति को नमस्कार कर रही है । महाभाग! आप लोग जिस कार्य के लिए आये हैं, कहने की कृपा करें । यदि मैं कर सकूँगी, अर्थात् मेरे वश की बात होगी, तो विचार विमर्श पूर्वक उसे पूरा करने का प्रयत्न अवश्य करूँगी ।२७-३७

बृहस्पति बोले—महाभागे! हम दोनों अतिथि विवेक-कुशलता से कुछ पूछने ही आये हैं अतः जो कुछ पूछना है कह रहा हूँ, उसे हमें बताने की कृपा करें । कल्याणि महाभागे! इन देवराज को इनसे पूर्व के इन्द्र के चरित जानने का बहुत बड़ा कुतूहल है अतः इसे बता सकें तो अवश्य कहने की कृपा करें ।३८-३९

सांभरायणी बोली—इन देवराज इन्द्र के पूर्व के इन्द्र, उनसे भी पहले वाले तथा उनके भी पहले वाले और इन सभी के पहले जो इन्द्र हों चुके हैं इन सब के चरित्र मैं भलीभाँति जानती हूँ—अंगिरसांवर! मैं अनेकों मन्वन्तरों, देवों की सृष्टि, सप्तर्षियों और मनु के समस्त पुत्रों के जन्म आदि जानती हूँ उन दोनों पुरुषों से ऐसा कहकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उस सांभरायणी ने पूर्व कालीन इन्द्रों के महान् चरित्र उन दोनों से यथोचित कह सुनाया—स्वायम्भुव, स्वारोचिष्, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष् मनु के समय में क्रमशः जितने इन्द्र हो चुके थे, उस सांभरयणी ने उन सबका यथावत् चरित्र वर्णन किया । बीच में उसने जो आश्चर्य की बात कही थी, उसे भी बता रहा हूँ, सुनो! पूर्व के किसी इन्द्र के समय में एक शंकुकर्ण नामक दैत्य हुआ था जो अत्यन्त दुर्जय था। उसने रण स्थल में देवों समेत लोकपालों को

---

१. सा हृष्टा ।

इन्द्रस्यासाद्य भवनं प्रविवेश सुनिर्भयः ॥४७
तं दृष्ट्वा सहसा प्राप्तं शक्रः शय्यातलेऽलुठत् । जुगोप सहसात्मानं शंकुकर्णभयार्दितः[1] ॥४८
दानवः शक्रशयने तस्मिन्नुपविवेश ह । इन्द्राण्यपि तथा भीता गता वाचस्पतेर्गृहम् ॥४९
अथ देवाः समाजग्मुर्भयाद्द्रष्टुं सुरद्विषम् । आसीनं शक्रशयने प्रणिपातपुरस्सराः ॥५०
वासुदेवोऽपि तत्रागात्तं द्रष्टुं देवकंटकम् । दृष्ट्वा कृष्णमनुप्राप्तं दानवः प्राह हर्षितः ॥५१
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं[2] यस्य मे गरुडध्वजः । शक्रशय्यासनस्थस्य द्रष्टुमभ्येति केशवः ॥५२
ततः करे समालंब्य शयनाभ्याशमानयत् । चकार कण्ठग्रहणं बान्धवस्येव हर्षितः ॥५३
ततः कृष्णस्तु सहसा गृह्य दोर्भ्यां शनैःशनैः । पीडयामास विहसन्नदन्तं भैरवान् रवान् ॥
ममार दानवेन्द्रोऽसौ बलाद्भग्नास्थिपञ्जरः ॥५४
निर्जगाम ततः शक्रः शय्यामूलादवाक्छिराः । तुष्टाव हरिमासीनं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५५
एतद्दृष्टं मया शक्र वसंत्या सुरसद्मनि ॥५६
ततः कुतूहलपरो देवराट् तां तपस्विनीम् । उवाच जानासि कथं त्वमेतान्सांभरायणि ॥५७

सांभरायण्युवाच

सर्व एव हि देवेन्द्राः स्वर्गस्था येऽमरेश्वराः । बभूवुरेते चरितमेतेषां वेद्मि तेन वै ॥

पराजित कर उन पर अधिकार करके पश्चात् निर्भय होकर इन्द्र के महल में प्रवेश किया ।४०-४७। उसे सहसा आया हुआ देख कर इन्द्र अपनी शय्या पर पड़ गये और उस शंकुकर्ण के भय के नाते अपने को उसके भीतर छिपा लिया । वह दानव भी इन्द्र की उस शय्या पर बैठ गया जिसके भय से इन्द्राणी उसी समय बृहस्पति के घर चली गयीं । तदुपरांत देवगण भी भय के मारे उस अपने शत्रु दानव को देखने के लिए जो इन्द्र की शय्या पर स्थित था, विनय-विनम्रता पूर्वक वहाँ उपस्थित हुए । देवों के कण्टक (काँटे) स्वरूप उस दैत्य को देखने के लिए भगवान् वासुदेव भी वहाँ पहुँचे । वहाँ कृष्ण को आये हुए देख कर हर्षित होकर उस दानव ने कहा—मैं धन्य हूँ और आज कृत कृत्य भी हो गयाकि इस इन्द्र की शय्या पर बैठे हुए मुझे देखने के लिए गरुड़ध्वज केशव भी आ गये । इतना कह कर उसने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें उसी शय्या पर बैठाना चाहा । उस समय भगवान् कृष्ण ने भी बन्धु आदि से मिलने की भाँति अत्यन्त हर्षित होकर उसका गला पकड़ा और हँसते हुए अपने दोनों हाथों से धीरे-धीरे उसके गले को इतने जोर से दबाया कि उसकी हड्डियाँ टूट गयीं और वह भीषण शब्द से चिल्लाते हुए मर गया । पश्चात् उस शय्या के मूल भाग से निकल कर नीचे शिर किये इन्द्र ने वहाँ स्थित एवं शंख-चक्र धारी भगवान् कृष्ण की स्तुति की । इन्द्र! इस देव पुरी (स्वर्ग) में रहती हुई मैंने यह सब अपनी आँखों देखा है । इसे सुनकर अत्यन्त कुतूहल से देवराज इन्द्र ने उस तपस्विनी से कहा—सांभरायणी! तुम इसे कैसे जानती हो! ४८-५७

सांभरायणी बोली—इस स्वर्ग के समस्त इन्द्र और देवों के चरित यहाँ रहने के नाते मैं भलीभाँति

---

१. महानुः । २. कृतपुण्योऽहम् ।

चरितं च मया तेषां श्रुतं दृष्टं तथैव च ॥५८

इन्द्र उवाच

किं कृतं वद धर्मज्ञे त्वया येनेयमक्षया । स्वर्लोके वसतिः प्राप्ता यथा नान्येन केनचित् ॥५९
अहो सर्वव्रतानां तु ह्युपोषितमथाद्भुतम् । प्रधानतरमत्यंतं स्वर्गवासप्रदं मतम् ॥६०
एवमुक्ता ततस्तेन देवेन्द्रेण तपस्विनी । प्रत्युवाच महाभागा यथावत्सांभरायणी ॥६१
मासर्क्षे [1]ह्यच्युतो देवः प्रतिमासं सुरेश्वर । यथोक्तस्तया सम्यक्सप्तवर्षाणि पूजितः ॥६२
तस्येयं कर्मणो व्युष्टिरच्युताराधनस्य मे । देवलोकादभिमता देवराजपदच्युतिः ॥६३
स्वर्गेन्द्रविभवैश्वर्यं संततिं याति चाच्युतिम् । नरो वाञ्छति तेनेत्थं तोषणीयस्ततः प्रभुः ॥६४
एतत्ते पूर्वदेवेन्द्रचरितं सकलं मया । स्वर्गवासाक्षयत्वं च मासर्क्षाच्युतपूजनात् ॥
यथावत्कथितं देव पृच्छतस्त्रिदशेश्वर ॥६५
धर्मार्थकाममोक्षाश्च वाञ्छिता विबुधाधिप । विष्णोराराधनादन्यत्परमं सिद्धिकारणम् ॥६६
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवराजबृहस्पती । तत्तथेत्यूचतुः साध्वीं चेरतुश्चापि तद्व्रतम् ॥६७
तस्मात्पार्थ प्रयत्नेन प्रतिमासं समाहितः । मासर्क्षाच्युतपूजायां भवेथास्तन्मनाः सदा ॥६८

जानती हूँ तथा मैंने देखा भी और सुना भी है ।५८

इन्द्र बोले—धर्मज्ञे! तुमने कौन उपाय किया है, जिससे तुम्हें इस स्वर्ग लोक का अक्षय निवास प्राप्त हुआ है, जिसे अन्य कोई नहीं प्राप्त कर सका । तुमने समस्त व्रतों से अत्यन्त अद्भुत एवं किसी सर्वश्रेष्ठ व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न किया है, जो मेरे सम्मति से अत्यन्त स्वर्गवास प्रदायक है । देवराज इन्द्र के ऐसा कहने पर उस महाभागा एवं तपस्विनी सांभरायणी ने उस व्रत की यथोचित व्याख्या की । उसने कहा—सुरेश्वर! पूर्वोक्त व्रत विधान द्वारा प्रतिमास में मासनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक अच्युत देव की अर्चनाकरे और इस प्रकार उसे सात वर्ष तक सुसम्पन्न करता रहे । मुझे उसी अच्युतासधन कर्म के फल स्वरूप इस अभीष्ट देवलोक (स्वर्ग) का जहाँ से देवराज का पदच्युत हो जाता हैं, अक्षय निवास और स्वर्ग तथा इन्द्र के विभव एवं अटल ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है । जो मनुष्य इस (फल) की अभिलाषा करते हैं, उनका भगवान् का प्रसन्न करना परम कर्तव्य है । देव, त्रिदशेश्वर! तुम्हारे पूँछने पर इस प्रकार मैंने पूर्व के देवराजों के समस्त चरित और मासनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् अच्युत देव के पूजन द्वारा अक्षय स्वर्गवास की प्राप्ति का वर्णन कर दिया, जिसमें मन वाञ्छित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भी निहित है तथा विष्णु की आराधना से पृथक् एक परमसिद्धि का कारण भी है । उसकी ऐसी बातें सुनकर इन्द्र तथा बृहस्पति ने उसे साध्वी के कथन का समर्थन करते हुए उस व्रत को भी सविधान सुसम्पन्न किया। पार्थ! इसलिए प्रतिमास में मासनक्षत्र द्वारा भगवान् अच्युत की अर्चना के लिए तन्मयता पूर्वक प्रयत्नशील रहना परमावश्यक है।५९-६८। इस प्रकार सांभरायणी के

---

१. अपि ।

ये तांभरायणिकथाचरितव्रतेस्मिन्वर्षाणि सप्त विधिना सुधियो नयंति ।
ते स्वर्गलोकमभिगम्य कृताधिवासाः कल्पायुतायुतशतैरपि न च्यवंते ॥६९
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सांभरायणीव्रतवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।१०७

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सुरूपता मनुष्याणां स्त्रीणां च यदुसत्तम । कर्मणा जायते केन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१
सुरूपाणां सुगात्राणां सुवेषाणां तथैव च । न्यूनं तथाधिकं चापि यथा नाङ्गं प्रजायते ॥२
समस्तैः शोभनैरंगैर्नराः केचिद्यदूत्तम । काणाः कुब्जाश्च[1] जायंते त्रुटितश्रवणास्तथा ॥३
नराणां योषितां चैव समस्ताङ्गसुरूपता । कर्मणा येन भवति तत्पूर्वं कथयामल ॥४
लावण्यगतिवाक्यानि सति रूपे महामते । कुर्वंत्यभ्यधिकां शोभां समस्ताः परमागुणाः ॥५
वाक्यलावण्यसंस्कारविलासललिता गतिः । विडम्बना कुरूपाणां केवला सा हि जायते ॥६
रूपकारणभूताय कर्मणा प्रयतो भवेत् । तस्मात्तन्मे समाचक्ष्व कर्म यच्चारु रूपदम् ॥७

कथनानुसार उस व्रत को सात वर्ष तक सविधान सुसम्पन्न करने वाले विद्वद्गणों की स्वर्ग लोक में निवास प्राप्ति होने पर वहाँ से एक सौ वीस सहस्र कल्प तक च्युति न होगी ।६९।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में भी कृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
सांभरायणी व्रत वर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।१०७।

अध्याय १०८

नक्षत्रपुरुषव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुसत्तम! स्त्रियों और पुरुषों को किस कर्म द्वारा उत्तम रूप की प्राप्ति होती है, मुझे बताने की कृपा करें। यदूत्तम! सुरूप, सुन्दर शरीर और उत्तम देष की प्राप्ति होते हुए भी उसमें जिसमें हीनांग और अधिक अंग होने की संभावना न हो सके क्योंकि कुछ लोग सर्वाङ्ग सुन्दर और कुछ लोग काने, लंगड़े, और कनफटे देखे जाते हैं। अमल! महामते! पुरुषों और स्त्रियों को सर्वाङ्गसौन्दर्य की प्राप्ति जिस कर्म द्वारा होती है, कहने की कृपा करें क्योंकि रूप सौन्दर्य के रहते उसकी गति (चाल) और वाक्य के भी परम सुरम्य होने पर उस व्यक्ति की शोभा अत्यधिक बढ़ जाती है। रूप के अनुरूप मनोरम वाक्य, उत्तम विलास और ललित गति के होने पर वे सब उसके विडम्बना मात्र होते हैं। इसलिए रूप-प्राप्ति होने के कारण भूत कर्म को सुसम्पन्न करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। आप मुझे भी उस रूप प्रदायक व्रत को बताने की कृपा कीजिये ।१-७

---

१. खंजाश्च ।

श्रीकृष्ण उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया ह्रीदमुपवासाश्रितं नृप । कथयामि यथा प्रोक्तं वशिष्ठेन महात्मना ॥८
वशिष्ठमृषिमासीनं सप्तर्षिप्रवरं द्विजम् । पप्रच्छारुन्धती पृष्टा यदेतद्भवता वयम् ॥९
तस्यास्तु परिपृच्छन्त्या जगाद मुनिसत्तम । यत्तच्छृणुष्व कौंतेय ममेदं वदतोऽखिलम् ॥१०

वशिष्ठ उवाच

श्रूयतां ह्रदहं पृष्टस्त्वयैतद्वरवर्णिनि । सुरूपता नृणां येन योषितां चोपजायते ॥११
अनभ्यर्च्य तु गोविंदमनाराध्य च केशवम् । रूपादिका गुणाः केन प्राप्यंतेऽन्येन कर्मणा ॥१२
तस्मादाराधनीयोऽग्रे विष्णुरेव यशस्विनी । पारत्र्यं प्राप्तुकामेन रूपसंपत्सुतादिकम् ॥१३
यस्तु वाञ्छति धर्मज्ञे रूपं सर्वांगसुन्दरम् । नक्षत्रपुरुषं भद्रे जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१४
सुस्नातः प्रयताहारः संपूजयति योऽच्युतम् । भक्त्या योषिन्नरो वापि सुरूपांगः प्रजायते ॥१५
योषिता हि परं रूपमिच्छन्त्या जगतः पतिः । स एवाराधनीयोऽग्रे नक्षत्रांगो जनार्दनः ॥१६

अरुन्धत्युवाच

नक्षत्ररूपी भगवान्पूज्यते पुरुषोत्तमः । मुने येन विधानेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१७

श्री कृष्ण बोले—नृप! इस उपवास प्रधान कर्म (व्रत) का विषय लाकर आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, मैं महात्मा वशिष्ठ के इस विषय के कथन को कह रहा हूँ, सुनो! कौंतेय! एक बार सप्तर्षियों में सर्वश्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ के सुखासीन होने पर उनकी पत्नी अरुन्धती ने उनसे इसे पूँछा था। उस समय उनके पूँछने पर मुनि प्रवर वशिष्ठ ने जो कुछ कहा था, मैं वह सम्पर्ण तुम्हें बता रहा हूँ।८-१०

वशिष्ठ बोले—उत्तमाङ्गि! पुरुषों और स्त्रियों को परमोत्तम रूप की प्राप्ति कैसे होती है, जो तुमने पूँछा है, मैं वह कर्म बता रहा हूँ। तुम्हारा प्रश्न था कि—भगवान् गोविन्द केशव की अर्चना एवं आराधना विना किये किस अन्य कर्म द्वारा रूप आदि परमोत्तम गुण की प्रप्ति होती है! मेरा उत्तर है कि किसी अन्य की आराधना द्वारा इस की प्राप्ति नहीं होती है अतः सर्व प्रथम भगवान् विष्णु की ही आराधना करनी चाहिए जिससे रूप, सम्पत्ति और पुत्रादि की प्राप्ति पूर्वक परलोक सुख की भी प्राप्ति हो सके। यशस्विनि एवं धर्मज्ञे! जो लोग सर्वाङ्गसुन्दर रूप की कामना करते हैं, उन्हें क्रोधहीन होकर संयमपूर्वक नक्षत्र पुरुष (भगवान्) की आराधना करनी चाहिए। भलीभाँति स्नान और नियत आहार करते हुए भक्तिपूर्वक (स्त्री-पुरुष) जो कोई भगवान् अच्युत की अर्चना करता है उसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप प्राप्त होता है। परमोत्तम रूप की कामना करने वाली स्त्री को भी सर्वप्रथम नक्षत्रों के अङ्ग—भूत भगवान् जनार्दन की अर्चना करनी चाहिए।११-१६

अरुन्धती बोली—मुने! जिस विधान द्वारा नक्षत्र रूपी भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना की जाती है, मुझे बताने की कृपा करें।१७

वशिष्ठ उवाच

चैत्रमासात्समारभ्य विष्णोः पादाभिपूजनम् । यथा कुर्वीत रूपार्थं तन्निशामय तत्त्वतः ॥१८
नक्षत्रमेकमेकं वै स्नातः सम्यगुपोषितः । नक्षत्रपुरुषस्यांग पूजयेच्च विचक्षणः ॥१९
मूले पादौ तथा जंघे रोहिण्यामर्चयेच्छुभे । जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढे चोरुसंज्ञिते ॥२०
फाल्गुनीद्वितये गुह्यं कृत्तिकासु तथा कटिम् । पार्श्वे भाद्रपदा गुल्फे द्वे कुक्षी रेवतीषु च ॥२१
अनुराधासूरः पृष्ठं धनिष्ठास्वभिपूजयेत् । भुजयुग्मं विशाखासु हस्ते चैव करद्वयम् ॥२२
पुनर्वसावंगुलीश्च आश्लेषासु तथा नखान् । ज्येष्ठायां पूजयेद्ग्रीवां श्रवणे श्रवणे तथा ॥२३
पुष्ये मुखं तथा स्वातौ दशनानभिपूजयेत् । आस्यं शतभिषग्योगे मघायोगे च नासिकाम् ॥२४
मृगोत्तमांगे नयने पूजयेद्भक्तितः शुभे । चित्रायोगे ललाटं च भरणीषु तथा शिरः ॥२५
संपूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायां च शिरोरुहाः । उपोषितो नरो भद्रे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥२६
वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तद्विनिर्दिशेत् । पूजयेत्तच्च नक्षत्रं नक्षत्रस्य च दैवतम् ॥२७
सोमं नक्षत्रराजानं स्वमन्त्रैरर्चयेद्बुधः । प्रतिनक्षत्रयोगे च भोजनीया द्विजोत्तमाः ॥२८
नक्षत्रज्ञाय विप्राय दानं दद्याच्च शक्तितः । अन्तराये समुत्पन्ने सूतकाशौचकारिते ॥२९
उपोष्य वाचोपविशेन्नक्षत्रमपरं पुनः । एवं माघावसाने तु व्रतपारः समाप्यते ॥३०
समाप्ते तु व्रते दद्याच्छक्त्या सोपस्करान्वितम् । नक्षत्रपुरुषं हैमं पूजयेत्तत्र शक्तितः ॥३१
ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः । शय्यायां तु समासन्नं गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३२

वशिष्ठ बोले—रूप प्राप्त्यर्थ चैत मास से आरम्भ कर भगवान् विष्णु के चरण की पूजा जिस भाँति की जाती है मैं उसे सविधान बता रहा हूँ सुनो! उपवास रह कर स्नान करने के उपरांत नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु के अङ्गभूत नक्षत्रों की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए—मूल नक्षत्र में उनके चरण, रोहिणी, नक्षत्र में उनकी शुभ जंधाओं, अश्विनी में जानु (घुटने), आषाढ़नक्षत्र में उरु, फाल्गुन नक्षत्र में पार्श्व भाग, रेवती नक्षत्र में दोनों गुल्फ (पैर की एंड़ी) और दोनों कुक्षि (कोरव), अनुराधा में पृष्ठभाग, घनिष्ठा में दोनों भुजाएँ, विशाखा में दोनों हाथ और उसकी अङ्गुलियाँ, आश्लेषा में नख, ज्येष्ठ में ग्रीवा (गला), श्रवण में दोनों कान, पुष्प में मुख, स्वाती में दाँत, शतभिषा में कपोल, मघा में नासिका, मृगशिरा में नेत्र, चित्रा में ललाट, भरणी में शिर और आर्द्रा में शिरोरूह (बाल) की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। भद्रे! उपवास रह कर मनुष्य को अभ्यङ्ग स्नान न करना चाहिए क्योंकि वह रूप नाशक होता है। विद्वान को चाहिए कि— नक्षत्र मंत्र द्वारा नक्षत्र के अधिदेव राजा सोम की सविधान पूजा करे और प्रत्येक नक्षत्र के अवसर पर उत्तम ब्राह्मणों को भोजन तथा यथाशक्ति नक्षत्रवेत्ता विद्वान् को दान अर्पित करे।१८-२८। बीच में सूतक अथवा अशौच रूप विघ्न आ जाने पर उपवास पूर्वक अगले नक्षत्र में पूजन करे। इस प्रकार माघ के अन्त में व्रत समाप्त हो जाता है और उसकी समाप्ति में यथाशक्ति साधन सम्पन्न नक्षत्र पुरुष की सुवर्ण प्रतिमा की अर्चना और ब्राह्मणी के वस्त्राभूषण से विभूषित करके सुसज्जित शय्या पर स्थापित करे।२९-३२। पश्चात् गन्धः

सप्तधान्यं यथालाभं गां सवत्सां पयस्विनीम् । छत्रोपानद्युगं चैव घृतपात्रं तथैव च ।।३३
मन्त्रेणानेन विप्राय सुशीलाय निवेदयेत् । यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित् ।।
तथा सुरूपतारोग्यसुखसंपदिहास्तु मे ।।३४
यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ।।३५
एवं निवेद्य तत्सर्वं प्रणिपत्य क्षमापयेत् । शक्तिहीनस्तु गां दद्याद् घृतपात्रसमन्वितम् ।।३६
नक्षत्रपुरुषाख्योऽयं यथावत्कथितस्तव । पापापनोदं कुरुते ह्यन्यक्छ्रद्धावतां सताम् ।।३७
अङ्गोपाङ्गानि चैवास्य पादादीनि यशस्विनि । सुरूपाण्यभिजायंते सदा जन्मान्तराणि वै ।।३८
गात्राणि चैव भद्राणि शरीरारोग्यमुत्तमम् । सन्ततिं मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम् ।३९
वाङ्माधुर्यं तथा कांतिं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् । ददाति नक्षत्रपुमान्पूजितश्च जनार्दनः ।।४०
वशिष्ठेन यथाख्यातं सर्वं तत्ते निवेदितम् । नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमम् ।।४१

हृद्बाहुजानुनयनोरुनितंबभागं दक्षैः प्रकल्प्य सुतनुं पुरुषोत्तमस्य ।
ये पूजयन्ति जितकोपमनोविकाराः कौन्तेय ते ननु भवन्ति सुरूपदेहाः ।।४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।१०८

माला और लेपन आदि से उनकी पूजा करने के उपरांत सप्तधान्य सवत्सा धेनु गौ, छत्र, उपानह, तथा घृत पूर्ण पात्र किसी सुशील ब्राह्मण को मंत्र द्वारा अर्पित करे—जनार्दन! जिस प्रकार विष्णु-भक्तों को असफलता नहीं ही प्राप्त होती है उसी भाँति मुझे भी सुरूपता, आरोग्य और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति हो । आप का शयन लक्ष्मी शून्य कभी नहीं होता है, उसी प्रकार प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या अशून्य ही रहे । इस प्रकार नम्रता पूर्वक समस्त वस्तु उन्हें निवेदित कर क्षमा याचना करे । शक्तिहीन होने पर केवल घृतपात्र समेत गोदान ही करें । इस भाँति नक्षत्र-पुरुष का आख्यान जैसा सुना था तुम्हें बता दिया जो श्रद्धालु सज्जनों का सदैव पापापहरण करता रहता है । यशस्विनि! उसके चरण आदि समस्त अंङ्गोपाङ्ग प्रत्येक उत्तम आरोग्य, संतान, प्रसन्नता पूर्ण मन, परम-मनोहर रूप, मधुर वाणी, कांति और अन्य अभिलषित पदार्थ नक्षत्र पुरुष भगवान् जनार्दन प्रदान करते हैं । समस्त व्रतों से परमोत्तम इस नक्षत्र पुरुष नामक व्रत को जिस प्रकार वशिष्ठ जी ने बताया था तुम्हें सुना दिया । कौंतेय! इस प्रकार नक्षत्र देव भगवान् पुरुषोत्तम के हृदय, भुजा, जानु (घुटने), उरु, नयन, और नितम्ब आदि शरीर के समस्त अंगो की मनोहर रचना करके क्रोध एवं मनोविकार से रहित होकर पूजन करने वाले को निश्चय सौन्दर्य पूर्ण शरीर की प्राप्ति होती है ।३३-४२

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तरपर्व के श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
नक्षत्रपुरुषव्रत वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।१०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्राख्यव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपावासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः । अनभ्यासेन योगाद्वा किमिष्टं व्रतमुच्यते ॥१
शिवस्योपरि यस्य स्याद्भक्तिः सूर्यस्य संभवेत् । नक्षत्राख्यं व्रतं तेन कथं कार्यं वदस्व मे ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । अस्मिन्व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत् ॥३
शिवनक्षत्रपुरुषं शिवभक्तिप्रदायकम् । यस्मिन्नक्षत्रयोगे तु पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥४
फाल्गुनस्यामले पक्षे यदा हस्तः प्रजायते । तदा ग्राह्यं व्रतं चैव नक्तेन शिवपूजनम् ॥५
शिवायेति च हस्तेन पादौ पूज्यतमौ स्मृतौ । शंकराय नमो [1]गुल्फौ पूज्यौ चित्रासु पांडव ॥६
भीमायेति च स्वातीषु पूजयेत्पुरुषर्षभ । ऊरुद्वयं विशाखासु त्रिनेत्रायेति पूजयेत् ॥७
मेढ्रं चैवानुराधासु अनङ्गाङ्गहराय च । कटिं ज्येष्ठासु च तथा सुरज्येष्ठेति चार्चयेत् ॥८
दानाख्याय नमो नाभिः पूज्या मूलेन शूलिनः । पूर्वोत्तराषाढयुगे पार्श्वे वै पार्वतीपतिः ॥९

अध्याय १०९

नक्षत्रव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—उपवास रहने में असमर्थ प्राणी को, जो पूर्वोक्त फलों की कामना करता है और योगाभ्यास भी नहीं कर सकता है, और शिवभक्त तथा सूर्यभक्त को यह नक्षत्र व्रत किस भाँति करना चाहिए मुझे बताने की कृपा करें। १-२

श्रीकृष्ण बोले—इस व्रत के अनुष्ठान में उपवास करने में असमर्थ पुरुष को नक्त (रात्रि) में भोजन करना चाहिए तथा और भी अक्षय एवं महान फलदायक उपाय बता रहा हूँ, सुनो! पुराणमर्मज्ञों का कहना है कि जिस नक्षत्र में शिव नक्षत्र पुरुष की अर्चना करने से अत्यन्त दृढ़ शिव-भक्ति प्राप्त होती है, कह रहा हूँ—फालगुन मास के शुक्ल पक्ष में हस्त नक्षत्र के प्राप्त होने पर भी उसी दिन से इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ कर रात्रि में शिव जी की अर्चना करनी चाहिए। ३-५। पाण्डव! 'शिवजी को नमस्कार है' इस वाक्य से हस्तनक्षत्र में उनके अत्यन्त पूजनीय चरण, 'शङ्कर को नमस्कार है' से चित्रा नक्षत्र में उनकी गुल्फ (एड़ी) और 'भीम को नमस्कार है' से स्वाती नक्षत्र में जानु (घुटने) की अर्चना करनी चाहिए। पुरुषर्षभ! उसी प्रकार 'त्रिनेत्र को नमस्कार है' से विशाखा नक्षत्र में दोनों उरु 'अनङ्ग (काम) के अङ्गापहारी हर को नमस्कार है' से अनुराधा नक्षत्र में लिङ्ग, 'सुरज्येष्ठ को नमस्कार है' से ज्येष्ठा नक्षत्र में कटि 'दानविख्यात को नमस्कार है' से मूल नक्षत्र में शिव जी की नाभि, 'शूली को नमस्कार है' से पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में पार्वतीपति शिव के पार्श्वभाग, 'कपाली को नमस्कार है, से श्रवण

---

१. अङ्गुल्यौ।

श्रवणेन तथा कुक्षी पूज्ये कपालिनेति च । वक्षःस्थलं धनिष्ठासु सद्योजातेति नाम च ।।१०
वामेति पूजयेत्पार्थ हृदयं शतभिषासु च । पूर्वोत्तरायुगे बाहू नमः खट्वांगधारिणे ।।११
पूज्यं रुद्राय च तथा रेवतीषु करद्वयम् । नखः पूज्योऽश्विनीयोगे नमः खण्डेन्दुधारिणे ।।१२
भरणीषु ततः पृष्ठं वृषांकाय नमोऽस्तु ते । कृत्तिवासाय च तथा कृत्तिकासु कृकाटिकाम् ।।१३
वाक्यपूज्या रोहिणीयोगे नमो वाचस्पतेति च । मृगोत्तमांगे दशनान्भैरवायेति वै नमः ।।१४
आर्द्रासु पूज्यावधरौ स्थाणवेति युधिष्ठिर । नासा पुनर्वसौ पूज्या पूषदंतविनाशिने ।।१५
पुष्ये नेत्रत्रयं पूज्यं नमस्ते सर्वदर्शिने । आश्लेषायां ललाटं च त्र्यम्बकाय नमोनमः ।।१६
मघासु च जटाजूटं पूजयेदंधकारये । पूर्वाफाल्गुनिकायुग्मे श्रवणे सोमधारिणे ।।१७

नमोऽस्तु पाशांकुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्द्धराय ।
गजासुरानङ्गधुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ।।१८

शिरः सम्पूजयेद्दद्यात्ततो धूपविलेपनम् । ततस्तु रात्रौ भोक्तव्यं तैलक्षारविवर्जितम् ।।१९
शालितण्डुलकप्रस्थं घृतमात्रेण संयुतम् । दद्यात्सर्वेषु नक्तेषु ब्राह्मणाय नृपोत्तम ।।२०
शक्त्यभावे न दोषः स्यादधिके चाधिकं फलम् । नक्षत्रयुगले प्राप्ते नक्तयुग्मं समाचरेत् ।।२१
सूतकाशौचदोषे तु पुनरन्यदुपोषयेत् । एवं क्रमेण संप्राप्ते पारणे पाण्डवादिके ।।२२
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः । काञ्चनं कारयेद्देवमुमया सह शंकरम् ।।२३

नक्षत्र में दोनों कुक्षि,'सद्योजात को नमस्कार है' से धनिष्ठा नक्षत्र में वक्षः स्थल 'वामदेव को नमस्कार है' से शतभिषा नक्षत्र में हृदय 'खड्गङ्गधारी को नमस्कार है' से पूर्वा और उत्तरा नक्षत्र में दोनों बाहू, 'रुद्र को नमस्कार है' से रेवती नक्षत्र में दोनों हाथ, 'चन्द्र खण्डधारी को नमस्कार है, से अश्विनी नक्षत्र में नख, 'वृषाङ्क को नमस्कार है, से भरणीं नक्षत्र में पीठ 'कृत्तिवास (चर्मवस्त्र) धारी को नमस्कार है, से कृत्तिका नक्षत्र में कण्ठ में रहने वाली घाटी, 'वाणीपति को नमस्कार है, से रोहिणी नक्षत्र में वाणी, 'भैरव को नमस्कार है, से मृगशिरा नक्षत्र में दाँत और 'स्थाणु को नमस्कार है, से आर्द्रा नक्षत्र में अधरोष्ठ की अर्चना करनी चाहिए । युधिष्ठिर! 'दंतविनाशक को नमस्कार है' से पुनर्वसु नक्षत्र में नासा (नाक), 'सर्वदर्शी को नमस्कार है' से पुष्य नक्षत्र में तीनों नेत्र, 'त्र्यम्बक को नमस्कार है' से आश्लेषा नक्षत्र में ललाट, 'अंधकासुर निहत्ता को नमस्कार है' से मघा नक्षत्र में जटाजूट, 'सोमधारी को नमस्कार है' से पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में दोनों कान तथा 'पाश, अंकुश, पद्म, शूल, कपाल, सूर्य, चन्द्र और धनुष को धारण करने वाले एवं गजासुर, अनङ्ग (काम), धुर, तथा अन्धक आदि राक्षसों के निहन्ता शिव को नमस्कार है, से उनके शिर की अर्चना करके धूप और लेपन उन्हें समर्पित करे पश्चात् रात्रि में तेल-नमक रहित वस्तु का भोजन करना चाहिए ।६-१९। नृपोत्तम! सभी नक्त भोजन के समय एक सेर साठी चावल घृत का दान ब्राह्मण को अर्पित करता रहे । इसमें अशक्त होने पर कोई दोष नहीं होता है और युगल नक्षत्र के एक साथ प्राप्त होने पर युगल नक्त भोजन करना चाहिए क्योंकि अधिक का अधिक ही फल प्राप्त होता है! पाण्डव! बीच में सूतक और अशौच के उपस्थित होने पर पुनः अन्य समय उपवास करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए । इस प्रकार क्रमशः पूजन करते हुए व्रत की सम्पत्ति के अवसर पर पार्वती समेतशिव जी की सुवर्ण प्रतिमा को सुन्दर सुसज्जित एवं गाँठी आदि रहित शय्या पर स्थापित पर पूजनोपरांत

शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रंथिवर्जिताम् । सोपधानकविश्रामां स्वस्तिरावरणां शुभाम् ।।२४
भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ।।२५
तस्यां निधाय तं देवमलंकृत्य गुणान्वितम् । कपिलां वस्त्रसंवीतां शुचिशीलां पयस्विनीम् ।।२६
सुवर्णश्रृङ्गीं रौप्यखुरां सवत्सां कांस्यदोहनाम् । दद्यान्मंत्रेण पूर्वाह्णे न कालमभिलङ्घयेत् ।।२७
यथा न देवशयनं तत्र पर्वतजातया । शून्यं वृत्याथ संतत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः ।।२८
यथा देव न श्रेयोऽर्थस्त्वदन्यो विद्यते क्वचित् । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ।।२९
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् । शय्यागवादितत्सर्वं [1]द्विजस्य भवनं नयेत् ।।३०

नैतद्विशीलाय न दांभिकाय कुतर्कदुष्टाय विनिंदकाय ।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेर्यश्चापि लोभोपहतांतरात्मा ।।३१
भक्ताय दांताय गुणान्विताय प्रदेयमेतच्छिवभक्तियुक्तैः ।
इदं महापातककृन्नराणामप्यक्षयं वेदविदो वदंति ।।३२
या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमाश्रित्य शुभं गुरुं वा ।
न बंधुपुत्रैर्नधनैर्वियोगमाप्नोति दुःखं न सुहृत्समुत्थम् ।।३३
इदं वशिष्ठेन पुराऽर्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण ।
यत्कीर्तनादप्यखिलान्यघानि विघ्नं समायांति न संशयोऽत्र ।।३४

भोजनादि पात्र उपानह, छाता, चामर, आसन, दर्पण, भूषण, फल, वस्त्र और लेपनादि युक्त, तथा सुवर्ण द्वारा सींग और चाँदी से खुर भूषित हो, और काँसे की दोहनी समेत अपराह्न काल में अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे—देव! जिस प्रकार आप शयन पार्वती वृत्ति एवं संतान से कभी शून्य नहीं होते हैं उसी प्रकार मुझे भी सभी सिद्धियाँ हों ।२०-२८। देव! जिस प्रकार आप से पृथक् कहीं भी कल्याण सम्भव नहीं होता है उसी प्रकार आप इस दुःख सागर रूप संसार से मेरा उद्धार करने की कृपा करें। इस प्रकार क्षमा याचना करने के उपरांत प्रदक्षिणा करके, अनुनय-विनय समेत प्रणाम करते हुए विसर्जन करे और शय्या आदि ब्राह्मण के घर पहुँचा दे। दुःशील, दम्भी, कुर्तक की दुष्टता करने वाले निन्दक और अत्यन्त लोभी को चन्द्रमौलि (शिव) का यह व्रत कभी न बताना चाहिए। भक्त, पवित्र, एवं गुणवान् पुरुष को ही शिवभक्तों द्वारा यह व्रत दिया जाना चाहिए। वैदिक विद्वानों का कहना है कि यह व्रत महापातकी पुरुषों के लिए भी अक्षय फल प्रदान करता है। जो स्त्री अपने पति, अथवा गुरु आदि के आश्रित रह कर इस शुभ व्रत को सुसम्पन्न करती है उसे बन्धुवर्ग, पुत्र एवं धनादि के वियोग दुःख अथवा मित्र की ओर से किसी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है। इस व्रत को सर्व पथम वशिष्ठ, अर्जुन, कुबेर और इन्द्र से सुसम्पन्न किया था, जिसके कीर्तन द्वारा भी समस्त पापों के विनाश पूर्वक विघ्नों के शमन होते हैं इसमें संशय नहीं ।२९-३४। जो पुरुष इस शिवपुरुष नामक व्रत को इस भाँति सुसम्पन्न अथवा

---

१. ब्राह्मणस्य गृहम् ।

इति पठति शृणोति वा य इत्थं शिवपुरुषं पुरुहूतवल्लभः स्यात् ।
अपि नरकगतान्पितृनशेषाञ्छिवभवनं नयतीह यः करोति ॥३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शिवनक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ।१०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

सम्पूर्णव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदि कर्तुं न शक्नोति व्रतं नक्षत्रपौरुषम् । गृहीतं रभसा कृष्ण ह्यन्यद्वा व्रतमुत्तमम् ॥१
संपूर्णं जायते येन यदचीर्णं पुरा स्थितम् । कुरु प्रसादं गुह्यार्थमेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

साधुसाधु महाबाहो कुरुराज युधिष्ठिर । रहस्यानां रहस्यं ते कथयामि व्रतोत्तमम् ॥३
सम्पूर्णं नाम तच्चापि व्रतं सम्यक्फलप्रदम् । यच्चीर्णं नरनारीभिर्भवेत्सम्पूर्णकारकम् ॥४
अवश्यं तच्च [1]कर्तव्यमक्षीणफलकांक्षिभिः । किञ्चिद्भग्नं प्रमादेन यद्व्रतं व्रतिनां स्थितम् ।
तत्संपूर्णं भवेत्सर्वं व्रतेनानेन पाण्डव ॥५

पारायण या श्रवण करता है वह इन्द्रप्रिय होकर नरक में पड़े हुए अपने अशेष पितरों को शिवलोक पहुँचता है ।३५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
शिवनक्षत्र पुरुष व्रत वर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त ।१०९।

अध्याय ११०

सम्पूर्ण व्रतों का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! यदि इस नक्षत्रपुरुष नाम व्रत को सुसम्पन्न करने में अशक्त होने अथवा शीघ्रतया किसी अन्य उत्तम व्रत को अपनाने पर सम्पूर्ण सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है, मुझे यह गुह्य बात बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—साधु-साधु! महाबाहो एवं कुरुराज युधिष्ठिर! मैं तुम्हें एक परमोत्तम व्रत बता रहा हूँ, जो अत्यन्त गुप्त है । उस व्रत का लाभ सम्पूर्ण है। जों समस्त फलों को प्रदान करता है और जिस सम्पूर्ण कारी व्रत को नर नारियों ने सुसम्पन्न किया है । उसे अक्षय फल चाहने वालों को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । पाण्डव! प्रमाद-वश व्रती पुरुषों का व्रत जो किसी प्रकार से कुछ खण्डित हो जाता है, इस व्रतानुष्ठान द्वारा उस सम्पूर्ण व्रत की सिद्धि हो जाती है । पार्थिव! (वृत्तारम्भ में) अनेक प्रकार के

---

१. सम्पूर्णफलकाङ्क्षिभिः ।

उपद्रवैर्बहुविधैर्मदान्मोहाच्च पार्थिव । यद्भग्नं किञ्चिदेव स्याद्व्रतं विघ्नविनायकैः ॥
तत्सम्पूर्णं भवेत्पार्थ सत्यंसत्यं न संशयः ॥६
काञ्चनं रौप्यकं रूपं शिल्पिना तद्घटापयेत् । भग्नव्रते तु यो देवस्तत्स्वरूपं सुनिर्मितम् ॥७
रूपं स्त्रीपुंसयोर्वापि प्रारब्धं यद्व्रते किल । नवनिष्पादितं किञ्चिद्दैवात्सर्वं तथोत्थितम् ॥८
द्विभुजं पङ्कजारूढं सौम्यप्रहसिताननम् । निष्पादितं शिल्पभावात्तस्मिन्नेव दिनेदिने ॥९
तन्मासे च पुनः प्राप्ते ब्राह्मणो विधिना गृहे । स्नापयेत्पयसा दध्ना घृतक्षीररसांबुभिः ॥१०
गन्धचन्दनपुष्पैश्च [1]चर्चयेत्कुंकुमादिना । तोयपूर्णस्य कुम्भस्य पृथिव्यां विन्यस्य चंदनैः ॥११
धूपदीपाक्षतैर्वस्त्रै रत्नैरप्युपहारकैः । अर्घ्यं दद्याच्च तन्नाम्ना मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१२
उपरान्नस्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताञ्जलेः । शरणं च प्रपन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो ॥१३
परत्र भयभीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च । कुरु प्रसादं सम्पूर्णं व्रतं सम्पूर्णमस्तु मे ॥१४
तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते । तव प्रसादाद्देवेश सर्वमच्छिद्रमस्तु नः स्वाहा ॥१५
(अमुकदेवाय नमः)
पूर्वतो दक्षिणतः पश्चिमत उत्तरतः । विदिक्षु चोपर्यधस्ताद्दिक्पालेभ्यो नमोनमः ॥१६
इदमर्घ्यमिदं पाद्यं नैवेद्यं ते नमोनमः । एवं प्रोच्य ततः पादौः जानुनी कटिशीर्षके ॥१७
[2]वक्षःकुक्षिदृष्टिपृष्ठबाह्वंसांकशिरोरुहान् । पूजयेत्तस्य देवस्य ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१८

उपद्रव, मद, तथा मोह आदि विघ्नविनाशक द्वारा व्रत के कुछ भाग खण्डित होने पर सम्पूर्ण व्रत द्वारा सत्य एवं (ध्रुव) सत्य सुसम्पन्न हो जाता है इसमें संदेह नहीं। पार्थ! व्रतारम्भ के समय खण्डित व्रत के प्रधान देवी सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा शिल्पी द्वारा निर्माण करे, चाहे वह स्त्री अथवा पुरुष किसी की हो। दैव संयोग से उस मूर्त्ति रचना में कुछ नवीन भले आजाये, किन्तु रहे वह यथा कथित ही। दो भुजाओं, कमल पर सुशोभित, सौम्य (दर्शन) एवं प्रसन्न मुख का निर्माण उन्हीं दिनों में शिल्पी भावना (सौन्दर्यपूर्ण ढंग) से करना चाहिए। पुनः उस मास के प्राप्त होने पर ब्राह्मण को अपने घर में दूध, दही, घी, क्षीर, एवं जल का सविधि स्नान गंध, चन्दन, पुष्प और कुंकुम आदि से उन देवों की अर्चना करनी चाहिए। पाण्डव! जलपूर्ण कलश को पृथिवी में स्थापित कर चन्दन, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र रत्न एवं अन्य उपहार द्वारा उन्हें नाम मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस कलश पर अर्घ्य प्रदान करे और पश्चात् इस भाँति क्षमा याचना करे—प्रभो! आप के निकट आये हुए मुझ दीन के ऊपर, जो प्रायश्चित्तार्थ हाथ जोड़े आप की शरण में प्राप्त है, दया करें। व्रत के खण्डित होने के नाते परलोक प्राप्ति के लिए भयभीत होने वाले मुझपर कृपा करते हुए आप इस सम्पूर्ण व्रत द्वारा मेरे खण्डित व्रत को सुसम्पूर्ण करें। देवेश! तप, व्रत, अथवा जिस किसी द्वारा खण्डित इस व्रत का समस्त अंग सुसम्पूर्ण हो। अमुक देव को नमस्कार है।३-१६। पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की दिशाओं और विदिशाओं तथा ऊपर-नीचे के दिक्पालों को नमस्कार है। यह अर्घ्य, पाद्य एवं नैवेद्य आप के लिए अर्पित है और मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर उनके चरण, जानु (घुटने), कटि, शिर, वक्ष, कुक्षि (कोख), नेत्र, पीठ, बाहू, कन्धे और केशों की अर्चना करके उनकी क्षमा प्रार्थना करे—सुरोत्तम! नाथ!

---

१. कुसुमादिना। २ चक्षुःकुक्षी।

पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम । ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं दिशस्व मे ॥१९
एवं क्षमापयित्वा तु देवरूपं विधानतः । ततो द्विजस्य कौन्तेय विधिज्ञस्योपपादयेत् ॥२०
स्थित्वा पूर्वमुखो विप्रो गृह्णीयाद्दर्भपाणिना । विप्रस्य हस्ते यच्छेच्च दाता वै चोत्तरामुखः ॥
मन्त्रेणानेन कौन्तेय सोपवासः प्रयत्नतः ॥२१
इदं व्रतं मया खण्डं कृतमासीत्पुरा द्विज । भगवंस्त्वत्प्रसादेन संपूर्णं तदिहास्तु मे ॥२२
ब्राह्मणोऽपि प्रतिच्छेत्तु मन्त्रेणानेन तद्व्रतम् । वाक्सम्पूर्णं मनःपूर्णं पूर्णं कायव्रतेन ते ॥
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः ॥२३
ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः । सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा ॥२४
जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम् । सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः ॥२५
ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्महत्या प्रणश्यति । अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्येत नात्र संशयः ॥२६
व्यासवाल्मीकिवचनाद्ब्राह्मणवचनाच्च गर्गगौतमपराशरधौम्याङ्गिरसवशिष्ठनारदादि-
मुनिवचनात्संपूर्णं भवतु ते व्रतम् ॥२७
एवंविधविधानेन गृहीत्वा ब्राह्मणो व्रजेत् । तद्दानं [1]प्रेषयेत्स ब्राह्मणस्य गृहे स्वयम् ॥
ततः पञ्च महायज्ञान्निर्वपेद्भोजनादि च ॥२८
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतत्सकृत्तथा । तस्य संपूर्णतां याति तद्व्रतं यत्पुरा स्थितम् ॥२९

मैंने यथाशक्ति आप की अर्चना की है, अतः लोक-परलोक सम्बन्धी सभी कार्य सिद्धि मुझे प्रदान करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ ।१७-१९। कौंतेय! इस प्रकार देव का सविधान क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर वह सब कुछ किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । उस समय उस प्रतिगृहीता ब्राह्मण को हाथ में कुश लिए पूर्वाभिमुख और दाता को उत्तराभिमुख रहना चाहिए । उपवास पूर्वक प्रदान करते समय इस भाँति की प्रार्थना करनी चाहिए कि—द्विज! भगवान्! इस व्रत का अनुष्ठान पहले मैंने आरम्भ किया किन्तु सुसम्पन्न होकर खण्डित ही रह गया है अतः मेरी प्रार्थना है—इस व्रत द्वारा उस खण्डित व्रत को सुसम्पूर्ण करने की कृपा करें । ग्रहण करते समय ब्राह्मण को भी इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—'तुम्हारे इस शारीरिक व्रत द्वारा वाणी और मन की पूर्ति समेत इस सम्पूर्ण नामक व्रतानुष्ठान द्वारा आप का मनोरथ पूरा हो । ब्राह्मणों के भाषणों का देवतागण इसलिए सदैव अनुमोदन करते हैं कि ब्राह्मणों के वचन कभी अन्यथा नहीं होते । महात्मा ब्राह्मणों ने ही समुद्र और सहस्र नेत्र वाले को इन्द्र पद पर प्रतिष्ठित किया है । ब्राह्मणों के वचनों द्वारा ब्रह्म हत्या दोष विनष्ट होता है एवं पूरे अश्वमेध मे फल की प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं । व्यास, ब्राह्मण, वाल्मीकि, गौतम, पराशर, धौम्य, अंगिरस, वशिष्ठ नारद आदि मुनियों के वचन से तुम्हारा व्रत पूर्ण हो । इस विधान से ब्राह्मण उसे स्वीकार कर अपने घर को प्रस्थान करे और (यजमान) स्वयं उस दान की सभी वस्तुओं को ब्राह्मण के घर भिजवा दे ।२०-२८। पंच महायज्ञ और भोजन आदि कार्य सुसम्पन्न करे । इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो एक बार भी इस व्रत को सुसम्पन्न करता है, व्रत देव के प्रसन्न होने पर उसका पहले का

---

१. प्रापयेत् ।

खण्डं सम्पूर्णतां याति प्रसन्ने व्रतदैवते । सम्पूर्णं च ततः कृत्वा सम्पूर्णाङ्गो भवेद्व्रती ।।३०
भोगी भव्यो लसत्कीर्तिः स्वसम्पूर्णमनोरथः । स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् ।।३१
यथेष्टचेष्टाचारी च ब्रह्मविष्ण्विन्द्रपूजितः । स्वर्गलोके चिरं स्थित्वा पुनर्मोक्षमवाप्नुयात् ।।३२
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पुरा गर्गेण मे प्रभो । गोकुले गोकुलाकीर्णे मया बाल्येऽप्युपोषितम् ।।३३
एवं त्वमपि कौंतेय चर सम्पूर्णकं व्रतम् ।।३४

भग्नानि यानि मदमोहवशाद्गृहीत्वा जन्मान्तरेष्वपि नरेण समत्सरेण ।
सम्पूर्णपूजनपरस्य पुरो भवन्ति सर्वव्रतानि परिपूर्णफलप्रदानि ।।३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सम्पूर्णव्रतवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११०

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

कामदानवेश्याव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः । पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ।।१
का ह्यासां देवता कृष्ण किं व्रतं किमुपोषितम् । केन धर्मेण चैवेताःस्वर्गमाप्स्यंत्यनुत्तमम् ।।२

खण्डित व्रत सुसम्पूर्ण हो जाता है । इस सम्पूर्ण व्रत को सुसम्पन्न करने पर व्रत करने वाले का समस्त अंग पूरा हो जाता है और वह भव्य भोगी, ख्याति प्राप्त कीर्तिमान तथा पूर्ण मनोरथ होता है इस मर्त्य लोक में सौ वर्ष तक सुखोपभोग करने के उपरान्त स्वर्ग लोक में अमर पद प्राप्त कर ब्रह्म, विष्णु एवं इन्द्र द्वारा सुसम्मानित होकर यथेच्छ विचरण करता है । इस भाँति स्वर्ग लोक में चिर स्थायी रहकर पुनः मोक्ष की प्राप्ति करता है । प्रभो! इस प्रायश्चित्त को सर्वप्रथम गर्ग ने मुझे बताया और वहाँ गोकुल में गोकुल निवासियों के बीच रहते हुए मैंने अपने बाल्यकाल में इसे सुसम्पन्न भी किया था । कौंतेय! इसलिए तुम भी इस सम्पूर्ण व्रत को अवश्य सुसम्पन्न करो । जन्मान्तर में भी मत्सरता पूर्व मनुष्यों के व्रतानुष्ठान, जो सम्पूर्ण नामक व्रत-पूजन द्वारा सुसम्पूर्ण होतें हैं और उसके प्रभाव से सभी व्रत परिपूर्ण फल प्रदान करते हैं ।२९-३५।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
सम्पूर्ण व्रत वर्णन नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ।११०।

अध्याय १११

कामदानवेश्याव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! वर्णाश्रम की उत्पत्ति तो मैंने पुराणों में सुन लिया । अब वेश्याओं का आचरण धर्म सविधान जानना चाहता हूँ । उनके दैवत कौन हैं, व्रत क्या है और उपवास किस भाँति करना चाहिए तथा किस धर्म द्वारा उन्हें परमोत्तम स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

मम पत्नीसहस्राणि सन्ति पाण्डव षोडश । रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथायतनाः शुभाः ॥३
ताभिर्वसंतसमये कोकिलालिकुलाकुले । पुष्पितोपवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृते ॥४
कुरङ्गनयनः श्रीमान्मालतीकृतशेखरः । गच्छन्समीप मार्गेण साम्बः परपुरञ्जयः ॥५
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः । अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ॥६
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां सर्वाङ्गक्षोभदायकः । निरीक्ष्य तमहं सर्वं विकारं ज्ञानचक्षुषा ॥७
अशपं रुषितः सर्वा हरिस्यंतीह दस्यवः । मयि स्वर्गमनुप्राप्ते भवतीः काममोहिताः ॥८
एतद्वाक्यमुपश्रुत्य बाष्पर्याकुलेक्षणाः । मामूचुर्वद गोविन्द कथमेतद्भविष्यति ॥९
भर्तारं जगतामीशं भवंतमपराजितम् । दिव्यानुभावां च पुरीं रत्नवन्ति गृहाणि च ॥१०
द्वारिकावासिनः सर्वान्देवरूपान्कुमारकान् । भगवन्सर्वलोकस्य कथं भोग्या भवामहे ॥११
दासभावमनुप्राप्य भविष्यामः कथं पुनः । को धर्मः क समाचारः कथं वृत्तिर्भविष्यति ॥१२
तथा लालप्यमानास्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ! मया प्रोक्ता युवतयस्ताः सन्तापस्त्यज्यतामयम् ॥१३
जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनां सगर्वाणां नारदोऽभ्याशमागतः ॥१४
हुताशनसुताः सर्वा भवत्योऽप्सरसः पुराः । अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! मेरी सोलह सहस्र स्त्रियाँ हैं, जो रूप सौन्दर्य एवं उदार गुणों से युक्त होने के नाते कामदेव का शुभ मन्दिर ही कही जाती है। एक बार वसंत ऋतु के समय एक सरोवर के तट पर, जो कोकिल और भौंरों के समूह से सुशोभित, खिले हुए उपवन एवं खिली हुई कलियों से सुसज्जित था, आसव-पान में आसक्त उन सुन्दरियों के समीप वाले मार्ग से श्रीमान् साम्ब जा रहे थे, जो मृग मे समान नेत्र, मालती पुष्पों से सुगुम्फितशिर एवं शत्रुओं के विजेता थे। निखिल आभूषणों से विभूषित होने के नाते साक्षात् कामदेव की भाँति उन्हें देखकर मेरी स्त्रियाँ काम-पीड़ित होकर मुग्ध दृष्टि से देखने लगीं। अत्यन्त कामासक्त होने पर उन स्त्रियो के समस्त अंगों में पीड़ा होने लगी। उस समय मैंने अपने ज्ञानचक्षु से उनके मनकी विकृति भावनाओं का देखकर आवेश में उन्हें शाप दे दिया—'दस्युगण तुम लोगों का अपहरण करेंगे और मेरे स्वर्ग चले जाने पर तुम्हें काम पीडा होगी। इसे सुन कर आँखों में आँसू भरे ये स्त्रियाँ मुझसे कहने लगीं—गोविन्द! यह कैसे सम्भव होगा! भगवान् जगन्नियन्ता एवं अजेय आप को पतिरूप में प्राप्त कर इस प्रकार की दिव्यपुरी, रत्नों से भरे घर और देव रूप द्वारका वासी समस्त कुमारों के रहते क्या हमें सभी लोगों की उपभोग्या होना ही पड़ेगा! अस्तु दासी होने पर हमारे धर्म एवं आचार कैसे होंगे और वृत्ति (जीविका) क्या होगी! ३-१२। आँखों में आँसू भरे उन स्त्रियों के ऐसा कहने पर मैंने उनसे कहा—युवतिगण! अव सन्ताप करना छोड़ दो! क्योंकि पहले समय में एक बार मानसरोवर में जल- विहार करते समय तुम लोगों के समीप नारद ऋषि आ गये थे। उस समय अग्नि के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर तुम सभी अप्सराएँ थी। अभिमान वश विना प्रणाम किये ही तुम लोगों ने उन योगवेत्ता

कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश । तस्माद्व्रतप्रदानं च शापदानमभूत्पुरा ॥१६
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः । सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥
भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥१७
न कृतो यत्प्रणामो मे रूपसौभाग्यमत्सरात् । परं पृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति ॥
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥१८
एवं नारदशापेन मच्छापेन च सांप्रतम् । न कार्यः संभ्रमः कश्चिद्दासीत्वं वो भविष्यति ॥१९
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराननाः । पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः पुनः ॥२०
तेषां नारीसहस्राणि शतशोऽथ सहस्रशः । परिणीतानि यानि स्युर्बलाद्भुक्तानि यानि वै ॥२१
तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः । वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे ॥२२
भक्तिमत्यो वरारोहास्तदा देवकुलेषु च । राजानः स्वामिनः स्तुत्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ॥२३
तेषां गृहेषु तिष्ठध्वं सूतकं चापि तत्समम् । भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः ॥२४
नचैकस्मिन्रतिः कार्या पुरुषे धनवर्जिते । अनुमान्यः प्रसाद्यश्च शुल्कदो देववत्सदा ॥२५
सुरूपो वा विरूपो वा द्रव्यं तत्र प्रयोजनम् । न तद्व्यतिक्रमः कार्यो ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥
न चापि मद्यपाभिश्च भाव्यं कौटिल्यबुद्धिभिः ॥२६
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा । निश्छद्मनैवापहार्यं तत्सर्वं दंभवर्जितम् ॥२७
व्यभिचारो न कर्तव्यःस्वामिना सह कर्हिचित् । रूपयौवनदर्पेण धनलोभेन वा पुनः ॥२८

से पूँछा—हम लोगों को नारायण पति रूप में कैसे प्राप्त होंगे, इसका उपदेश दीजिये! उन्होंने व्रत का उपदेश कर उसी समय शाप भी प्रदान किया था। उन्होंने कहा—वसन्त ऋतु के दोनों मासों में शुक्ल द्वादशी के दिन सुवर्ण-साधन सम्पन्न दो शय्याओं के दान करने पर दूसरे जन्म में नारायण पति अवश्य प्राप्त होंगे। अपने रूप सौन्दर्य और सौभाग्य के मद से तुम लोगों ने विना प्रणाम किये ही मुझसे पूँछा है, इसलिए चोरों द्वारा अपहरण होने पर तुम्हें वेश्या होना पड़ेगा। इस प्रकार पहले के नारद शाप और इस समय मेरे शाप वश तुम्हें दासी होना ही पड़ेगा। अतः भ्रम करना व्यर्थ है। अब इसके अतिरिक्त मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो! वराननें! पहले देवासुर संग्राम में सैकड़ो दानवो का वध हुआ था। उनकी सैकड़ो एवं सहस्रो स्त्रियों को, जिनमें विवाहिता तथा बल प्रयोग द्वारा उपभोग की हुई थीं, देवेश ने कहा था—इस समय राज मन्दिरों में रहकर तुम सब वेश्या धर्म अपनाओं। वरारोहे! उन देव घरो में रहकर राज्य, उनके स्वामी और ब्राह्मण विद्वानों के गुणगान करो। उनके घरों मे रहने से तुम्हें उनके समान ही सूतक होगा और यथा शक्ति सौभाग्य की प्रप्ति भी होगी। वहाँ रह कर निर्धन पुरुषों से रति क्रीडा कभी न करना और शुल्क देने वाले पुरुषों का सदैव देवों की भाँति सम्मान पूर्वक प्रसन्न करना, चाहे वह रूपवान् हो, अथवा कुरूप, तुम्हें तो केवल द्रव्य से प्रयोजन है। इसमें त्रिक्रम (उलटफेर) न करना, करने पर ब्रह्म हत्या का दोष भागी होना पड़ेगा। मद्य पान कर कभी कुटिल व्यवहार न करना। तुम लोगों के घर जो कोई शुल्क लिये सदैव आता रहे, दम्भ छोड़कर निष्कपट भाव से उसके रूपयों आदि के लेने की चेष्टा करना।१३-२७। उस आगन्तुक स्वामी के साथ कभी भी किसी प्रकार का अनाचार न करना। रूप सौन्दर्य

दासी भूत्वा च या काचिद्व्यभिचारं करोति च। पतिना[1] सह पापिष्ठा पापिष्ठां यात्यधोगतिम्॥२९
देवतानां पितृणां च पुण्येऽह्नि समुपस्थिते। गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि च शक्तितः॥३०
ब्राह्मणेभ्यो वरारोहाः कार्याणि वचनानि च। यच्चाप्यन्यद्व्रतं सम्यगुपदेक्ष्यामि तत्त्वतः॥३१
अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत्पुनः। संसारोत्तारणायालमेतद्वेदविदो विदुः॥३२
यदा सूर्यदिने प्राप्ते पुष्यो वा सपुनर्वसुः। भवेत्सर्वौषधिस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्॥३३
तदा पञ्चशरस्यापि संनिधातृत्वमेष्यति। अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यापि कीर्तनम्॥३४
कामाय पादौ संपूज्य जंघे वै मोहकारिणे। मेढ्रं कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतियुजे नमः॥३५
नाभिं सौख्यसमुद्राय वामनाय तथोदरम्। हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे॥३६
उत्कण्ठायेति वै कंठमास्यमानन्दजाय च। वामांसं पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम्॥३७
नमोऽनन्ताय वै मौलिं विलोलायेति च ध्वजम्। सर्वात्मने शिरस्तद्वद्देवदेवस्य पूजयेत्॥३८
नमः श्रीपतये तार्क्ष्यध्वजांकुशधराय च। गदिने पीतवस्त्राय शंखिने चक्रिणे नमः॥
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः ॥३९
नमः शांत्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै। नमः पुष्टयै नमस्तुष्टयै नमः सर्वार्थदाय च॥४०
एवं संपूज्य गोविन्दमनंगात्मकमीश्वरम्। गंधैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैश्चैव भामिनी॥४१

और युवावस्था के मद में अथवा धनवान् होने के नाते जो कोई वेश्या उस पति के साथ अनाचार करती है, उस पापिनी को अत्यन्त भयावह अधोगति होती है। देवता-पितरों के पुण्य दिन उपस्थित होने पर गौ, भूमि, सुवर्ण और धान्य आदि के दान यथाशक्ति ब्राह्मणों को अर्पित करते रहना और उनकी आज्ञाएँ मानना। इसके अतिरिक्त भी जिस व्रत के रहस्य को उपदेश करूँगा सभी लोग विना विचारे ही उसे अवश्य सुसम्पन्न करना, क्योंकि संसार से पार होने के लिए वैदिक विद्वानों ने उसे ही समर्थ बताया है। रविवार के दिन पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र के उपस्थित होने पर नारी को समस्त औषधि मिश्रित स्नान करके अनङ्ग (काम) रूपात्मक भगवान् पुण्डरीकाक्ष की सविधि अर्चना करे—'काम को नमस्कार है' से उनके चरण की पूजा करके 'मोहकारी को नमस्कार है' से जंघाओं, 'कन्दर्प निधि को नमस्कार है' से लिङ्ग। 'प्रीतिभाजन को नमस्कार है, से कटि, सुखसागर को नमस्कार है' से नाभि, 'वामन को नमस्कार है' से उदर, 'हृदय-शायी को नमस्कार है' से हृदय, 'हर्षप्रदाता को नमस्कार है' से स्तन। 'उत्कण्ठ को नमस्कार है' से कण्ठ, 'आनन्द जन्मा को नमस्कार है, से मुख, 'पुष्पधन्वा को नमस्कार है' से दाहिना कंधा, 'अनन्त को नमस्कार है' से मस्तक, 'विलोल को नमस्कार है, से ध्वजा, 'सर्वात्मा को नमस्कार है, से उन देवाधीश के शिर की अर्चना करनी चाहिए। गरुड़ध्वज एवं अंकुश धारी पति को नमस्कार है, गदा, पीताम्बर, शंख और चक्रधारी को नमस्कार है, नारायण को नमस्कार है, काम-देवात्मा को नमस्कार है, शान्ति को नमस्कार है, प्रीति मो नमस्कार है, रति को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार तथा सर्वार्थद को नमस्कार है।२८-४०। इस प्रकार माला, धूप, एवं नैवेद्य आदि से अर्चा करके उस कामिनी को एक ऐसे ब्राह्मण की गंध-प्रष्पादि द्वारा अर्चना करनी चाहिए, जो

---

१. स्वामिना।

अत्र चाहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् । अव्यङ्गावयवं पूज्यं गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥४२
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥४३
यथेष्टाहारभुक्तं च तमेव द्विजसत्तमम् । रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य च ॥४४
यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद्विलासिनी । सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत्स्मितभाषिणी ॥४५
एवमादित्यवारेण सदा तद्व्रतमाचरेत् । तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासांस्तु द्वादश ॥४६
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भाविनी । विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणाम् ॥४७
सोपधानकविश्रामां स्वास्तरावरणां शुभाम् । दीपिकोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥४८
सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः । सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्धूप माल्यानुलेपनैः ॥४९
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् । ताम्रपात्रासनगतं हैमनेत्रपटावृतम् ॥५०
सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् । दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् ॥५१
यथांतरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम ॥५२
यथा न कामिनीदेहात्प्रयाति तव केशव । तथापि मम देवेश शरीरस्थं पतिं कुरु ॥
तथैव काञ्चनं देवं प्रति गृह्णन्द्विजोत्तमः ॥५३
"क इदं कोऽदात्कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता काम समुद्रमाविशमैतत्त"
इति वैदिकमन्त्रमीरयेत्" । कोऽदादिति पठेन्मन्त्रं ध्यायंश्चेतसि माधवम् ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृजेद्द्विजपुङ्गवम् । शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥५४

धर्म मर्मज्ञ, वेदनिष्णात विद्वान् हो और उसकी शरीर के अङ्ग यथोचित हों। पश्चात् घृतपूर्ण पात्र समेत एक सेर साठी चावल के दान उन्हें अर्पित करते समय 'माधव प्रसन्न हों' कहे। ब्राह्मण के यथेच्छ एवं प्रिय आहार करने पर विलासिनी को उसके पति 'यह कामदेव है' अपने मन में ऐसी भावना रख कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण के समीप जाना चाहिए और मन्द मुसुकान करते हुए सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण करके उनकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक रविवार के दिन एक सेर चावल के दान समेत पूरे वर्ष तक उस व्रत को सुसम्पन्न करे। पश्चात् तेरहवे मास साधन सम्पन्न एवं विलक्षण एक शय्या का दान करे, जिसमें सुन्दर तकिया, गद्दा और मनोरम चादर से भूषित हो और दीपक, उपानह, छाता, खड़ाऊँ आदि युक्त हो। पत्नी समेत उन कामरूप भगवान् को सुवर्ण सूत्र यज्ञोपवीत , अंगूठी, सूक्ष्म वस्त्र और बलटा (कंकड़ भूष्ड) भूषित एवं धूप माला से पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करें, जो पत्नी समेत गोलाकार कलश पर ताम्र में स्थित, सुवर्ण के नेत्र और वस्त्र से आच्छादन तथा कांस पात्र और ऊख दण्ड युक्त है। उनके साथ एक धेनु गौ का भी दान होना चाहिए।४१-५१। पश्चात् इस भाँति प्रार्थना करे—विष्णों! काम और केशव में मैं कभी भी किसी प्रकार का भी अन्तर (भेदभाव) न देख सकूँ तथा मेरे सभी मनोरथ सदैव सफल होते रहे। देवेश! जिस प्रकार आप के देह से कामिनी (लक्ष्मी) पृथक् नहीं होती है, उसी भाँति पति को मेरे शरीरस्थ करने की कृपा करें। उस सुवर्ण प्रतिमा का ग्रहण करते हुए ब्राह्मण को भी 'क इदं को' दादिति मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। तदुपरान्त माधव का ध्यान करते हुए प्रदक्षिणा करके ब्राह्मण को विदा करे और शय्या आदि सभी वस्तुओं को ब्राह्मण के घर

ततःप्रभृति योऽन्योपि रत्यर्थं गृहमागतः । स सम्यक्सूर्यवारेण समं पूज्यो यथेच्छया ।।५५
एवमेकं द्विजं शांतं पुराणज्ञं[1] विचक्षणम् । तमर्चयेत् च सदा अपरं वा तदाज्ञया ।।५६
न प्राप्नोति तदा विघ्नं गर्भसूतकजं क्वचित् । दैवं वा मानुषं वा स्यादुपरागेण वा ततः ।।५७
साधारनष्टपशुवद्यथाशक्त्या [2]समापयेत् । एतद्वः कथितं सर्वं वेश्याधर्मशेषतः ।।५८
पुरुहूतेन यत्प्रोक्तं दानवीषु ततो मया । तदिदं च व्रतं सर्वं भवतीषु प्रकाशितम् ।।५९
सर्वपापप्रशमनमनंतफलदायकम् । कल्याणिनीनां कथितं कुरुध्वं तद्वरानना: ।।६०
एतत्पार्थ महा पूर्वं गोपीनां तु प्रकाशितम् । पुराणं धर्मसर्वस्वं वेश्याजनसुखप्रदम् ।।६१

करोति याशेषमखण्डमेतत्कल्याणिनी माधवलोकसंस्था ।
सा पूजिता देवगणैरशेषैरानन्दकृत्स्थानमुपैति विष्णोः ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कामदानवेश्याव्रतवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।१११

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वृन्ताकव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातो वृंताकविधिं व्याख्यास्यामः । संवत्सर च षण्मासांस्त्रीन्मासान्वा न भक्षयेत् ।।

पहुँचाये । पश्चात् उस दिन से जो कोई अन्य भी रति निमित्त आये, पूर्व की भाँति उसकी भी यथेच्छ पूजा करे । एक ऐसे शांत पुराण वेत्ता एवं विचक्षण ब्राह्मण की सदैव अर्चना करती रहे और अन्य की उसकी आज्ञा से ही करे । उससे उसे कर्म और सूतक जनित दैव-मानुष का अशौच और ग्रहण जनित अशौच नहीं होता है । क्योंकि वह एक खोये हुए पशु की भाँति रहती अतः उसे (आगन्तुक का) यथाशक्ति पूजन करना चाहिए । इस प्रकार आप लोगों ने बताया है, जिस प्रकार पुरुहूत (इन्द्र) ने दानवीयों को बताया था । वरानने! समस्त पापों के नाशक और अनन्त फल प्रदायक इस वेश्या धर्म को अपनाओं, जो कल्याण रूप स्त्रियों को बताया गया है । पार्थ! मैंने इस वेश्या जनों को सुख देने वाले पुराने धर्म सर्वस्व को गोपियों को पहले से बताया था । इस प्रकार इस अशेष व्रत को अखण्ड सुसम्पन्न करने वाली वह कल्याणिनी समस्त देव वृन्दों से पूजित होकर विष्णु का प्रिय लोक प्राप्त करती है ।५२-६२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
कामदान वेश्या व्रत वर्णन नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।१११।

अध्याय ११२

वृन्ताकव्रतविधि का वर्णन

श्री कृष्ण बोले—मैं तुम्हें वृन्ताक विधि की व्याख्या बता रहा हूँ—जिसमें पूरा वर्ष, छः मास

---

१. आचारज्ञम् । २. प्रपूजयेत् ।

अथ भरण्यां मघायां वा एकरात्रोपवासं कृत्वा स्थण्डिले देवानाहूय गन्धधूपपुष्पनैवेद्यदीपादिना पूजयेत् । दर्भपाणिर्गन्धोदकेनावाहयेत् । यमराजानमावाहयामि । कालमावाहयामि । नीलमावाहयामि । चित्रगुप्तमावाहयामि । वैवस्वतमावाहयामि । मृत्युमावाहयामि । परमेष्ठिनमावाहयामीति । ततोऽग्निमुपसमाधाय तिलाज्यै जुहुयात् । यमराजाय स्वाहा । कालाय स्वाहा । नीलाय स्वाहा । चित्रगुप्ताय स्वाहा । वैवस्वताय स्वाहा । मृत्यवे स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहेति । अग्निर्मूर्धेत्याहुतीस्त्वष्टशतं हुत्वा स्विष्टकृतिं कृत्वा प्रायश्चित्तं हुत्वा ब्राह्मणः स्वयमेव करोति । इतरेषामाचार्यः । अथ सौवर्णं वृंताकं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । कृष्णवृषभं गां च दद्यात् । कर्णवेष्टांगुलीयके छत्रोपानहौ कृष्णयुगं कृष्णकम्बलं च दद्यात् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा आशिषो वाचयेत् । पौंडरीकाश्वमेधफलमवाप्नोति । सप्त कोटिसहस्राणि नाकपृष्ठे महीयते । सप्तजन्मांतरं यावद्यमलोकं न पश्यतीत्याह भगवान्बौधायनः । वृंताकमप्रतिहतान्तरहेमसिद्धं दद्याद्विजाय घृततक्रसमन्वितं यः । कृत्वा व्रतं वत्सरमासमेकं याम्यं न पश्यति पुरं पुरुषः कदाचित् ॥१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृंताकव्रतविधिवर्णनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११२

अथवा तीन मास तक भोजन न करना चाहिए । भरणी या मघा नक्षत्र के दिन उपवास रहकर भूमि की वेदी में देवों का आवाहन पूर्वक गंध, धूप, पुष्प, नैवेद्य एवं दीपक आदि द्वारा अर्चना करके—हाथ में कुश लिए यमराज का आवाहन कर रहा हूँ, काल का आवाहन कर रहा हूँ, नील का आवाहन कर रहा हूँ, वैवस्वत का आवाहन कर रहा हूँ, मृत्यु का आवाहन कर रहा हूँ और परमेष्ठी का आवाहन कर रहा हूँ । इस प्रकार आवाहन करके अग्नि पूजन पूर्वक तिल-घृत द्वारा हवन करे—यमराज, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु और परमेष्ठी के नामों को क्रमशः चतुर्थ्यन्त उच्चारण करते हुए अन्त में स्वाहा पद कह कर आहुति डालता रहे । 'अग्निमूर्धा' मंत्र से एक सौ आठ आहुति प्रदान कर पश्चात् स्विष्टकृत और प्रायश्चित हवन करे ये सभी कार्य ब्राह्मण को स्वयम् और अन्य जाति को आचार्य द्वारा सुसम्पन्न कराना चाहिए । अनन्तर वह वृन्ताक की सुवर्ण -प्रतिमा कृष्ण बैल और गौ समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । कुण्डल, अंगूठी, छत्र, उपानह, कृष्णयुग और काले कम्बल का भी दान उस अवसर पर करना चाहिए । उपरांत ब्राह्मण भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे । इस प्रकार उसे सुसम्पन्न करने पर पौंडरीक अश्व-मेध की फल प्राप्त होता है । सात करोड़ सहस्र वर्ष स्वर्ग में सुसम्मानित रहकर अनन्तर सात जन्म तक उसे यमलोक नहीं जाना पड़ता ऐसा भगवान् बौधायन ने कहा है । इस प्रकार सुवर्ण, घृत, तक्र (मट्ठा) के दान समेत इस अप्रतिहत शक्ति वाले वृन्ताक व्रत को एक वर्ष अथवा एक मास ही सुसम्पन्न करने वाले पुरुष को यमपुरी नहीं जाना पड़ता है ।१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
वृन्ताक व्रत विधान वर्णन नामक एक सौ वारहवाँ अध्याय समाप्त ।११२।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । येन लक्ष्मीनिर्वृतिस्तु पुष्टिश्चैवोपजायते ।।१
सर्वे ग्रहाः सदा सौम्या जायन्ते येन पाण्डव । आदित्यवारे हस्तेन पूर्वं गृह्य विचक्षणः ।।२
नक्तोक्तविधिना सर्वं कुर्यात्पूजां तथा रवेः । प्रत्यक्षं सप्त नक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ।।३
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । भास्करं सर्वसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ।।४
ताम्रपात्रे स्थापयित्वा रक्तपुष्पैः प्रपूज्य च । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।।५
घृतेन स्नपनं कृत्वा [1]लड्डुकान्विनिवेद्य च । मंत्रेणानेन विदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।६
आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते दिवाकर । त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात् ।।७
कृतेनानेन राजेन्द्र भवेदारोग्यमुत्तमम् । द्रव्यसंपत्सुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ।।८
अविसंवादिनी चेयं शान्तिपुष्टिप्रदा नृणाम् । तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ।।९
सप्तमे च ततः प्राप्ते दत्त्वा ब्राह्मणभोजनम् । कांस्यभाजनसंस्थं वा राजतं राजतेऽथ वा ।।१०

अध्याय ११३

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—पाण्डव! तुम्हें वह परमोत्तम रहस्य बता रहा हूँ, जिसके सुसम्पन्न करने पर अत्यन्त लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक पुष्टि एवं समस्त ग्रह सदैव सौम्य बने रहते हैं। विद्वान् को चाहिए कि—रविवार के दिन हस्त नक्षत्र उपस्थित होने पर पूर्वोक्त नक्त विधान द्वारा सूर्य की अर्चना करें। और उसी प्रकार भक्ति पूर्वक सात नक्त व्रत रहने के उपरांत उस अन्तिम वाले सातवें व्रतानुष्ठान में किसी विद्वान् ब्राह्मण द्वारा कथा पारायण करायें—सर्वप्रथम सूर्य की सुवर्ण प्रतिमा बनवा कर ताँबे के पात्र में उसके स्थापन पूर्वक समेत घृत से स्नान और भोजनार्थ लड्डू अर्पित करें। पश्चात् इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वह सब कुछ उसी ब्राह्मण को अर्पित कर दे।१-६। सात घोड़े पर चलने वाले आदि देव दिवाकर को नमस्कार है। मुझे इस संसार सागर से पार करने की कृपा करें। राजेन्द्र! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उत्तम आरोग्य, द्रव्य सम्पति, और पत्र आदि की प्राप्ति होती है ऐसा पुराणज्ञों का कहना है। यह मनुष्यों को अविकल शांति और पुष्टि प्रदान करती है। इसी भाँति सोमवार के दिन चित्रा नक्षत्र के उपस्थित होने पर सोमराज की अर्चना करे और सातवें व्रत के समय ब्राह्मण भोजन तथा सोमराज की रजत प्रतिमा का रजत पात्र अथवा काँसे के पात्र में स्थापित एवं श्वेत वस्त्र से आच्छन्न करके

---

१. तण्डुलान्।

पात्रे कृत्वा सोमराजं श्वेतवस्त्रावगुंठितम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनसंयुतम् ।।११
दध्यन्नशिखरं दत्त्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् । मंत्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व [1]वदामि ते ।।१२
श्रीमहादेवजावल्लीपुष्पगोक्षीरपांडुर । सोम सौम्यो भवास्माकं सर्वदा ह्युत्तमोत्तम ।।१३
एवं कृते महाराज सोमस्तुष्टिप्रदो भवेत् । भवन्ति तुष्टेऽत्रिसुते सर्वे सानुग्रहाः ग्रहाः ।।१४
स्वात्यामङ्गारकं गृह्य क्षपयेन्नक्तभोजनः । सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते स्थापितं ताम्रभाजने ।।१५
रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं कुंकुमेनानुलेपनम् । नैवेद्यं हंतकारं च पूज्य धूपाक्षतादिभिः ।।१६
मंत्रेणानेन तं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । कुजन्मप्रभवोऽपि त्वं मंगलः पठ्यसे बुधैः ।।
अमंगलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मंगलम् ।।१७
विशाखासु बुधं गृह्य सप्त नक्तान्यथा चरेत् । बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ।।१८
शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनैः । गुडौदनोपहारं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।१९
बुधः सद्बुद्धिजननो बोधदः सर्वदा नृणाम् । तत्त्वावबोधं कुरु मे राजपुत्र नमोनमः ।।२०
अनुराधास्वथाचार्यं देवानां पूज्य भक्तितः । पूर्वोक्तक्रमयोगेन सप्त नक्तान्यथाचरेत् ।।२१
हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा बृहस्पतिम् । पीतांबरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतिनम् ।।२२
पादुकाच्छत्रसहितं सदंडं सकमण्डलुम् । संपूज्य पुष्पनिकरैर्दीपधूपाक्षतादिभिः ।।२३

पूजन करने के उपरांत चरणपादुका (खड़ाऊ आदि), उपानह, छत्र और भोजन पात्र के समेत दही से बने अन्न का शिखर (पर्वत) मंत्र द्वारा ब्राह्मण को अर्पित करे। राजेन्द्र! वह मंत्र मै बता रहा हूँ, सुनो! श्री महादेव जी के द्वारा उत्पन्न वल्ली[1]-पुष्प और गौ के क्षीर से पाण्डुर वर्ण दिखायी देने वाले सोमदेव! मेरे लिए परमोत्तम सौम्य होने की कृपा करें। महाराज! इस प्रकार उनकी अर्चना आदि करने पर सोमदेव तुष्टि प्रदान करते हैं और उन अत्रियुक्त (चन्द्र) के प्रसन्न होने सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं।७-१४। स्वाती नक्षत्र में मंगलवार के दिन मंगल देव की अर्चना और नक्त भोजन करता रहे। पुनः सातवें व्रत के अवसर पर उनकी प्रतिमा को रक्त वस्त्र से आच्छादन कर ताँबे के पात्र में स्थापन पूर्वक कुंकुम का लेप हर्षप्रद नैवेद्य, धूप और अक्षत आदि द्वारा पूजनोपरांत मंत्रोच्चारण पूर्वक किसी बहुमुखी को अर्पित करे अनन्तर—मंगल देव! कु (पृथिवी और निन्दित) जन्म होने पर भी आप मंगल ही कहे जाते हैं अतः समस्त अमंगल के विनाशपूर्वक मुझे सदैव मंगल प्रदान करते रहें। विशाखा नक्षत्र में बुध के दिन बुध के पूजन करे और सातवें व्रत के दिन बुध की सुवर्ण प्रतिमा काँस के पात्र में स्थापित कर शुक्ल वस्त्र से आवृत करके श्वेत पुष्प मालाओं आदि से पूजा तथा मीठा भात का उपहार ब्राह्मण को अर्पित करे। राजपुत्र! बुध देव मनुष्यों के सद् बुद्धि और ज्ञान के प्रदाता बताये गये हैं अतः मुझे तत्त्व विशद बोध कराने की कृपा करें मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। अनुराधा नक्षत्र में गुरुवार के दिन देवों के आचार्य बृहस्पति देव की भक्ति पूर्वक पूजा करे और इस भाँति सातवे नक्त व्रत के दिन वृहस्पति की सुवर्ण प्रतिमा सुवर्ण के पात्र में स्थापित कर पीताम्बर और पीत यज्ञोपवीत से भूषित करने के उपरांत पादुका, छत्र, दण्ड और कमण्डलु के प्रदान समेत पुष्प समूह, दीप, धूप एवं अक्षत आदि से उनकी अर्चना करे।१५-२३।

---

१. महामत।

खण्डखाद्योपहारैश्च द्विजाय प्रतिपादयेत् । धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग ॥
अगाधबुद्धिगाम्भीर्य देवाचार्य नमोऽस्तु ते ॥२४
शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य क्षपयेन्नक्तभोजनैः । पूर्वोक्तक्रमयोगेन द्विजसंतर्पणेन च ॥२५
सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते सौवर्णं कारयेच्छुभम् । रौप्ये वा वंशपात्रे वा स्थापयित्वा भृगोः सुतम् ॥२६
संपूज्य परया भक्त्या श्वेतवस्त्रविलेपनैः । अग्रे तस्य प्रदातव्यं पायसं घृतसंयुतम् ॥२७
दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय विचक्षणः । भार्गवो भृगुपुत्रोऽसि शुक्र क्रमविशारद ॥२८
हत्वा ग्रहकृतान्दोषानायुरारोग्यदो भव । मूलेन सूर्यतनयं गृहीत्वा भरतर्षभ ॥२९
तस्मिन्दिने पूजनीयं ग्रहत्रितयमादरात् । शनैश्चरश्च राहुश्च केतुश्चेति क्रमान्नृप ॥३०
होमं तिलघृतैः कुर्याद्ग्रहनाम्ना तु मन्त्रवित् । अर्कः पलाशखदिरौ ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ॥३१
उदुम्बरशमीदूर्वाकुशाश्च समिधः क्रमात् । एकैकस्य त्वष्टशतमष्टविंशतिरेव वा ॥३२
होतव्यं मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा पायसेन वा । सप्तते त्वथ संप्राप्ते नक्तं सूर्यसुतस्य तु ॥३३
ग्रहास्त्रयोऽपि कर्तव्या राजंल्लौहमयाः शुभाः । व्रतांते सर्वतश्चैतान्सौवर्णान्वाथ कारयेत् ॥३४
कृष्णवस्त्रयुगं दद्यादेकैकस्य क्रमान्नृप । मृगनाभ्या समालभ्य कृशरान्विनिवेद्य च ॥३५
होमावसाने सर्वं तद्ब्राह्मणायोपपादयेत् शनैश्चर नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु राहवे तथा ॥३६
केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वशांतिप्रदो भव । एवं कृते भवेद्यस्तु तन्निबोध नरेश्वर ॥३७
यदि भौमो रविसुतो भास्करो राहुणा सह । केतुश्च मूर्ध्नि तिष्ठंति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥३८

पश्चात् खण्ड खाद्य का उपहार प्रदान कर ब्राह्मण को अर्पित करते हुए इस भाँति क्षमा याचना करे—देवचार्य! धर्मशास्त्र के अथवा शास्त्र के ज्ञाता और ज्ञान-विज्ञान के पारगामी एवं अगाधवुद्धि के विधान समेत शुक्र के दिन नक्त भोजन के विधान समेत शुक्र की अर्चा और पूर्व की भाँति ब्राह्मण भोजन आदि करे। सातवें व्रत के दिन शुक्र की सुवर्ण अथवा रजत प्रतिमा बाँस के पात्र में स्थापित करके भक्ति पूर्वक श्वेत वस्त्र, लेपन आदि द्वारा अर्चना करके उन्हें घृत पूर्ण पायस (खीर) मंत्रोच्चारण पूर्वक अर्पित करे—देव! आप भार्गव, भृगु-पुत्र एवं शुक्र क्रम के विशारद कहे जाते हैं अतः ग्रह जनित दोषों के उपशमन पूर्वक मुझे आयु और आरोग्य प्रदान करने की कृपा करें। भरतर्षभ! नृप! नक्षत्र में सूर्य-पुत्र शनि राहु और केतु की शनि के दिन अर्चना सादर सम्पन्न कर ग्रहों के नाम मंत्रो द्वारा तिल और घृत का हवन करे। अर्क (मदार), पलाश, खदिर (खैर),। चिरचिरा, पीपल, गूलर, सभी दूर्वा तथा कुश की एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुति घी मधु, या दही, अथवा खीर के साथ प्रदान करना चाहिए। नृप! इस भाँति नक्त व्रत करते हुए सातवें व्रत के दिन तीनों ग्रहों की लौह प्रतिमा, जो ऊपर से सुवर्ण भूषित हों, कृष्ण वस्त्र, कस्तूरी से सुसज्जित और पूजित होने के अनन्तर कृशरान्न (खिचड़ी) अर्पित करे तथा हवन की समाप्ति में ब्राह्मण भोजन और वह सब ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे—शनैश्चर देव! आप को नमस्कार है, राहुदेव! आप को नमस्कार है।२४-३६। एवं केतु को मैं नमस्कार कर रहा हूँ। मुझे सम्पूर्ण शांति प्रदान करने की कृपा करें। नरेश्वर! इस भाँति उस व्रत को सुसम्पन्न करने पर जो फल प्राप्त होते हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो! यदि भौम, शनि, सूर्य, राहु और केतु शिर स्थान में स्थित हों, तो सभी ग्रह उस

अनेन कृतमात्रेण सर्वे शाम्यंत्युपद्रवाः ।।३९
एवं यः कुरुते राजन्सदाभक्तिसमन्वितः । तस्य सानुग्रहाः सर्वे यच्छन्ति विजयं सुखम् ।।४०
यश्चैतच्छृणुयात्कल्पं ग्रहाणां पठतेऽपि वा । तस्य सानुग्रहाः सर्वे शांतिं यच्छंति नान्यथा ।।४१
शनैश्चरं राहुकेतू लोहपात्रेषु विन्यसेत् । कृष्णागरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तितः ।।४२
सूर्यं विधुं कुज बुधौ गुरुशुक्रसौरीन्हस्तादिकर्क्षसहितानुदितक्रमेण ।
संपूज्य हेमघटितान्द्विजपुङ्गवाय दत्त्वा पुमान्ग्रहगणेन न पीड्यतेऽत्र ।।४३

इतिश्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११३

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

शनैश्चरव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा त्रेतायुगे पार्थ नावर्षत्पाकशासनः । कथंचिदनयाद्राज्ञस्तस्य राष्ट्रे समंततः ।।१
ततो राष्ट्रं क्षुधाविष्टं बभूवातीवदारुणम् । पतङ्गमूषिकाकीर्णं चौरव्यालभयाकुलम् ।।२
तस्मिन्घोराकुले काले सपत्नीकः सबालकः । कौशिकः स्वगृहं त्यक्त्वा परराष्ट्रमगाच्छनैः ।।३

(व्यक्ति) को पीडित करते हैं किन्तु उपरोक्त व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने पर सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। राजन्! भक्तिपूर्वक सदा इस भाँति करने पर समस्त गृह अनुकूल होकर विजय एवं सुख प्रदान करते हैं। इस कल्प के श्रवण या पारायण करने पर सभी ग्रह अनुकूल होकर शांति प्रदान करते हैं जो अन्यथा सम्भव नहीं होता है। (पूजन के समय) शनि, राहु एवं केतु की प्रतिमा तथा यथाशक्ति दक्षिणा से सुसम्मानित करे। क्रमशः हस्त आदि नक्षत्रों में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की सुवर्ण प्रतिमा का क्रमिक पूजन करके किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करने पर ब्राह्मणों की पीड़ा नहीं होती है।३७-४३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
ग्रहनक्षत्रव्रत्त वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त।११३।

अध्याय ११४

शनैश्चर व्रत-वर्णन

श्री कृष्ण बोले—पार्थ! एक बार पहले त्रेता युग में पाकशासन (इन्द्र) के किसी प्रकार वर्षा न करने पर उस राष्ट्र में चारों ओर महान् भयंकर अकाल पड़ा था, जिसमें परिगण, मूषक (चूहे), चौर और सर्प आदि का महान् भय उपस्थित हो गया था। उस भीषण काल के समय कौशिक मुनि ने सभी बच्चों को साथ लेकर दूसरे राष्ट्र का प्रस्थान किया।१-३। धीरे-धीरे मार्ग में चलते हुए महर्षि कौशिक ने कुटुम्ब-पालन

मार्गेऽथ गच्छता तेन कौशिकेन महर्षिणा । त्यक्तः स बालको ह्येको दुर्भरं च कुटुम्बकम् ॥४
तस्मिन्काले विशेषेण क्षीणेन्नौषधि सञ्चये । कृत्वातिनिर्घृणं कर्म गतोऽसौ कौशिको मुनिः ॥५
सोऽपि बालो रुदन्दीनो दिशो वीक्ष्य स्थितः पथि । उत्थाय पिप्पलस्याधः फलान्यत्तुं प्रचक्रमे ॥६
कूपे जलं पपौ नित्यं तत्रैवाश्रममंडले । कृत्वा सम्यक् स्थितो रौद्रं तेपे च विपुलं तपः ॥७
अथाजगाम भगवान्नारदो वेदपारगः । तं दृष्ट्वा दीनवदनं क्षुधार्तं द्विजपोतकम् ॥८
दयया तस्य संस्कारं चक्रे मौंज्यादिबंधनम् । वेदानध्यापयामास सरहस्यपदक्रमान् ॥
ददौ वैष्णवं मन्त्रं द्वादशाक्षरमित्युत ॥९
वेदाभ्यासरतस्यास्य विष्णुध्यानपरस्य च । प्रत्यहं पिप्पलादस्य विष्णुः प्रत्यक्षतां ययौ ॥१०
वैनतेयसमारूढो नीलोत्पलदलच्छविः । चतुर्भुजः पीतवासाः शंखचक्रगदाधरः ॥११
स उवाच तदा तुष्टो वरं ब्रूहि यमिच्छसि । तच्छ्रुत्वा नारदमुखं समालोक्य शिशुस्तदा ॥
नारदेनाप्यनुज्ञातो ज्ञानविद्यामयाचत ॥१२
दत्त्वा ज्ञानं सोपदेशं योगाभ्यासं च निर्मलम् । नागारिगमनो विष्णुस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥१३
ततो राजन्महाज्ञानी महर्षिः स शिशुस्तदा । नारदं परिपप्रच्छ केनाहं पीडितो मुने ॥१४
ग्रहेणाग्रहभूतेन बालरूपोऽपि दुःखितः । न मे पिता न मे माता जीवितोस्म्यतिपीडया ॥१५
ब्राह्मण्यं भवता दत्तं दैवान्मम द्विजोत्तम । एतच्छ्रुत्वा शिशोर्वाक्यं कथयामास नारदः ॥१६

की असमर्थता वश एक पुत्र को मार्ग में ही छोड़ दिया । संचित अन्न एवं औषधि के समाप्त होने पर अतिघृणित कर्म करते हुए उन्होंने मार्ग को किसी भाँति पार किया । वह बालक भी दीन-हीन वेप में रुदन करते मार्ग में चारों दिशाओं की ओर देखते एक पीपल वृक्ष के नीचे फल खाकर कूएँ का पानी पीते हुए किसी प्रकार अपना दिन व्यतीत करने लगा । इस भाँति उसने उस आश्रम मण्डल में रह कर अत्यन्त भीषण एवं विपुल तप किया । अनन्तर वेद पारगामी भगवान् नारद एक बार वहाँ आये मलिन मुख एवं क्षुधापीडित उस ब्राह्मण बच्चे को देख कर दयावश मौजीबन्धन (यज्ञोपवीत) आदि संस्कार सुसम्पन्न करके सरहस्य -पद क्रम आदि समेत वेदाध्ययन कराया । पश्चात् द्वादशाक्षर वैष्णव मंत्र भी प्रदान किया । वेदाभ्यास में निमग्न रहने एवं विष्णु के अल्पध्यान करने वाले उस बालक को प्रतिदिन उस पीपल के वृक्ष से निकल कर भगवान् विष्णु का साक्षात् दर्शन होने लगा । गरुड पर सुखासीन्, नील कमल दल की छवि, चार भुजाएँ, पीतवस्त्र, शंख, चक्र एवं गदाधारण करने वाले विष्णु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बालक से कहा—यथेच्छ वर की याचना करो । बालक ने नारद के मुख की ओर देखकर नारद की भी आज्ञा से ज्ञान विद्या (अध्यात्मविद्या) की याचना की । गरुड वाहन भगवान्-विष्णु ज्ञानोपदेश और निर्मल योगाभ्यास प्रदान कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।४-१३। राजन्! पश्चात् उस बालक ने महाज्ञानी महर्षि होकर एक दिन नारद से पूछा—मुने! मैं किसके द्वारा पीडित हुआ था, ग्रह अथवा अन्य किसी द्वारा शिशु अवस्था में ही अत्यन्त दुःखित हुआ, जबकि मेरे पिता-माता नहीं थे, किन्तु फिर भी पीड़ित होते हुए भी जीवित रहा । द्विजोत्तम! दैवसंयोग से ब्राह्मणत्व तो मुझे आप ने प्रदान किया है । (अन्यथा उससे भी वञ्चित ही रह जाता) । बालक की ऐसी बात सुनकर नारद ने कहा—क्रूर ग्रह शनि के द्वारा

शनैश्चरेण क्रूरेण ग्रहेण त्वं हि पीडितः । पीडितश्च समस्तोऽपि देशोऽयं मंदचारिणा ॥१७
तेनैतत्ते फलं प्राप्तं सैषः सौरिः शनैश्चरः । प्रज्वलन्नतिदर्पेण [1]स्फुरतीव नभस्तले ॥१८
एवमुक्तः शिशुः क्रोधात्प्रजज्वालेवपावकः । आलोक्य गगनाद्भूमौ पातयामास वै शनिम् ॥
पतमानो गिरेः शृङ्गाद्भग्नः खञ्जो बभूव ह ॥१९
धरण्यां पतितं दृष्ट्वा भास्करात्मजमातुरम् । ननर्त्त भुजक्षेपैर्नारदो हृष्टमानसः ॥२०-
हर्षाद्देवानथाहूय दर्शयामास तं शनिम् ॥२१
अथ देवास्तथा प्राप्ता ब्रह्मरुद्रेन्द्रपावकाः । शनैः संशमयामासुरुचुश्चेदमृषिं च तम् ॥२२
स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग पिप्पलाद महामुने । भद्रं तेऽत्र कृतं नाम नारदेन महर्षिणा ॥
अन्वर्थयुक्तं विप्रेन्द्र जीवितं पिप्पलादनात् ॥२३
भगवन्पिप्पलान्यस्त्वा जीवितोऽसि यतो मुने । ततश्च पिप्पलादेति ख्यातिं लोके गमिष्यसि ॥२४
ये च त्वां पूजयिष्यंति स्नात्वा पुष्पैर्महाऋषिम् ॥२५
इहाश्रमे समभ्येत्य ह्येऽस्मिन्भक्तिभाविताः । सप्तजन्मान्तरं यावत्पुत्रपौत्रानुगामिनः ॥२६
तेषां बाधिकां[2] सत्यं ग्रहपीडा भविष्यति । स्मरिष्यंतीह ये च त्वां पिप्पलादेति नामतः ॥२७
तेषां शनैश्चर कृता पीडा न प्रभविष्यति । क्षमास्वास्य महाभाग निर्दोषोऽयं ग्रहाग्रणीः ॥२८
चरन्वृक्षं शनैरेष शुभाशुभफलप्रदः । हतसाध्या ग्रहाश्चैते न भवंति कदाचन ॥२९
बलिहोमनमस्कारैः शांतिं यच्छंति पूजिताः । अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥३०

तुम और यह समस्त देश पीडित हुआ है । इस मंदचारी शनैश्चर ने ही ऐसा फल प्रदान किया है, जो आकाश में प्रज्वलित होते हुए अभिमान स्थित है । नारद के ऐसा कहने पर उस बालक ने प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध होकर आकाश की ओर देखते ही शनि को नीचे गिरा दिया । भास्कर पुत्र शनि को पृथिवी पर गिरा हुआ एवं व्याकुल देख महर्दि नारद हर्ष मग्न होकर भुजाओं को इधर-उधर डुलाते नृत्य करने लगे । पश्चात् देवों को बुलाकर गिरे हुए शनि को दिखाया । ब्रह्मा, रूद्र , इन्द्र, और अग्नि देवों ने शनि को धीरे-धीरे आश्वासन प्रदान कर पश्चात् ऋषि से कहा—महाभाग! पिप्पलाद महामुने! नारद महर्षि द्वारा तुम्हारा बहुत बड़ा कल्याण हुआ । विप्रेन्द्र, भगवन् मुने! पीपल फल खाकर जीवित रहने के नाते आप ने अपने नाम को नामार्थ में भलीभाँति संघटित कर लिया और उसी नाते 'पिप्पलाद' नाम से तुम्हारी लोकप्रसिद्धि होगी । इस आश्रम में आकर जो कोई भक्तिभाव से स्नान करके पुष्पों द्वारा उस महा ऋषि की अर्चना करेगा सात जन्म तक उसे स्वर्ग लोक की प्रप्ति होती रहेगी और ग्रह जनित बाधा कभी नहीं होगी । महाभाग! आप के इस पिप्पलाद नाम का जो कोई स्मरण करेगा, उसे शनि जन्य बाधा नहीं होगी ।१४-२७। अतः इस प्रमुख ग्रह को आप क्षमा प्रदान करें, जो वृक्षों पर धीरे-धीरे चलते शुभाश्रम फल प्रदान करता रहता है तथा हवन करने से कोई ग्रह कभी भी अनुकूल नहीं होते हैं, बलिप्रदान, हवन और नमस्कार द्वारा पूजित होने पर ये सभी ग्रह शांति प्रदान करते हैं अतः इस ग्रह के उद्देश्य से शनि के दिन तेल के अभ्यङ्ग पूर्वक स्नान करके अभ्यङ्गार्थ

---

१. स्फुटित । २. स्थावरकृता ।

कार्यं देयं च [1]विप्राणां तैलमभ्यंगहेतवे । यस्तु संवत्सरं यावत्प्राप्ते शनिदिने नरः ।।३१
तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्त्यान्यजनेऽपि च । ततस्संवत्सरस्यांते प्राप्ते तस्य दिने पुनः ।।३२
लोहैस्संघटितं सौरिं तैलमध्ये विनिक्षिपेत् । लोहभाण्डकमध्यस्थं कृष्णवस्त्रयुगच्छदम् ।।३३
कृष्णगोदक्षिणायुक्तं कृष्णकम्बलशायिनम् । तिलतैलेन च स्नानं कृष्णपुष्पैः सुपूजितम् ।।३४
कृष्णगंधैः कृष्णधूपैः कृशरान्नैस्तिलौदनैः । पूजयित्वा सूर्यपुत्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।३५
मंत्रेणानेन ब्रह्मर्षे शन्नोदेवीति [1]भक्तिमान् । इतरेषांतु वर्णानां शृणु मन्त्रं द्विजोत्तम ।।३६
क्रूरावलोकनवशाद्भुवनं नाशयिष्यतियो ग्रहो रुष्टः । तुष्टो धनकनकसुखं ददाति सौरिः शनैश्चरः पातु ।।३७
यत्पुरा नष्टराज्याय नलाय प्रददौ किल । स्वप्ने सौरिर्निजं[2] मन्त्रं शृणु कामफलप्रदम् ।।३८
क्रोडं[3] नीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमस्रजम् । छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम् ।।३९

नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णांजनमेचकाय ।
श्रुत्वा रहस्यं भवकामदश्च फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र।।४०

नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः । शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने ।।४१
य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो [4]भवाम्यहम् । मदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति ।।४२
एवमूचे शनिः पूर्वमतस्तं ब्राह्मणे ददेत् । एवमेतद्व्रतं विप्र ये चरिष्यंति मानवाः ।।४३
स्थावरेस्थावरे प्राप्ते वत्सरं यावदेव तु । तेषां शानैश्चरी पीडा देशेऽपि न भविष्यति ।।४४

ब्राह्मण को तेल प्रदान करना चाहिए । जो मनुष्य शनि के दिन पूरे वर्षभर यथाशक्ति तेल दान ब्राह्मण अथवा अन्य जनों को देते रहते हैं और पश्चात् वर्ष की समाप्ति में शनि के दिन शनि की लोहे की मूर्ति को लोहे के पात्र में रखे हुए तेल में स्थापित कर दक्षिणा समेत कृष्णा गौ, काला कम्बल अर्पित करते हुए तैल में स्नान और काले पुष्पों से पूजा करे । कृष्ण गंध, कृष्णधूप, कृशरान्न भक्ति पूर्वक 'शन्नो देवी ति' मंत्र का उच्चारण करते हुए वह मूर्ति ब्राह्मण को सादर अर्पित करे । द्विजोत्तम! इतर जाति के पुरुषो को जिस मंत्र द्वारा वह मूर्ति अर्पित करनी चाहिए मै बता रहा हूँ, सुनो! रुष्ट होने पर अपनी क्रूर दृष्टि द्वारा लोक का विनाश और प्रसन्न होने पर सुवर्ण तथा सुख प्रदान करने वाले सूर्य पुत्र शनि मेरी रक्षा करें । जिस सौरि (शनि) ने पहले समय में राज्य के छूट जाने पर नल को स्वप्न में अपना वह मंत्र बताया था जिससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं तथा नील अञ्जन पर्वत के समान देह, नीलरंग की माला एवं सूर्य की छाया सभी से उत्पन्न होने वाले उस शनैश्चर को मैं नमस्कार करा रहा हूँ । सूर्य पुत्र! मैं उस अर्क पुत्र आप को नमस्कार कर रहा हूँ, जो श्याम वर्ण की चन्द्रिका सा भूषित और अपने रहस्य (मंत्र) के सुनने पर कामनाएँ सफल करते हैं, मुझे उत्तम फल प्रदान करने की कृपा करें । प्रेतराज, कृष्ण उस क्रूर ग्रह शनि को नमस्कार कर रहा हूँ । मेरे इन नामों द्वारा जो मेरी स्तुति करता है मैं उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ और मेरा भय उसे स्वप्न में भी नहीं होता है ।२८-४२। विप्र! शनि ने ही पहले ऐसा कहा था । अतः ऐसा कह कर वह मूर्ति ब्राह्मण को अर्पित करे । इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों को, जो पूर्ण वर्ष तक उनकी पीडा कभी नहीं होगी । इतना कह कर समस्त देव वृन्द जिस मार्ग से आये थे, चले

---

१. भक्तितः । २. स्वयम् । ३. कोद्रम् । ४. भवत्यसौ ।

एवमुक्त्वा सुरा : सर्वे प्रतिजग्मुर्यथागतम् । शनैश्चरोऽपि स्वस्थाने ग्रहांते खे प्रतिष्ठितः ।।४५
पिप्पलादोऽपि ब्रह्मज्ञो ब्रह्माज्ञां प्रतिपालयन् । शनैश्चरं तु सम्पूज्य तुष्टाव रचिताञ्जलिः ।।४६
कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः । सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ।।४७
शनैश्चरमिति स्तुत्वा पिप्पलादो महामुनिः । खे प्रज्वलन्विमानस्थो दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ।।४८
इदं शनैश्चराख्यानं ये श्रोष्यन्ति समाहिताः । तेषां कुरुवरश्रेष्ठ शनिः पीडां न दास्यति ।।४९

कृष्णायसेन घटितां ग्रहराजमूर्तिं लोहे निधाय कलशे तिलतैलपूर्णे ।
यो ब्राह्मणाय रविजं प्रददाति भक्त्या पीडा शनैश्चरकृता न हि बाधते तम् ।।५०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शनैश्चरव्रतवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११४

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यदिननक्तविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनंतफलप्रदम् । व्रतं तद्ब्रूहि गोविन्द सर्वपापप्रणाशनम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम् । सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधा जगति स्थितम् ।।२

गये और शनि भी आकाश में ग्रहों के मध्य स्थित हुआ । ब्रह्मवेत्ता पिप्पलाद ऋषि ने भी ब्रह्मा की आज्ञा शिरोधार्य कर शनि की अर्चना हाथ जोड़कर उनकी क्षमा याचना की—कोने में स्थिति, पिङ्गल, बभ्रु, कृष्ण वर्ण, रौद्र स्वरूप , यम की भाँति प्राणान्त करने वाले सूर्यपुत्र, ग्रहोत्तम, एवं मन्दगामी शनैश्चर मुझ पर प्रसन्न हों । शनि की इस प्रकार स्तुति करने के नाते महामुनि पिप्पलाद विमान पर बैठे आज भी आकाश में मनुष्यों को दिखायी देते हैं । शनि के इस आख्यान को सावधानतया सुनने वाले व्यक्ति शनि पीडा से पीडित नहीं होते हैं । इस प्रकार जो कोई भक्ति पूर्वक शनि के दिन ग्रहराज शनि की लौहमूर्ति तिलसमेत तैल पूर्ण लोहे के पात्र में स्थापित एवं पूजित कर ब्राह्मण के समर्पित करता है उसे शनि-पीडा नहीं होती है ।४३-५०।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
शनि व्रत वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।११४।

अध्याय ११५

आदित्य के दिन नक्त व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द! मनुष्यों को आरोग्य एवं अनन्त फल की प्राप्ति पूर्वक उनके समस्त पातकों को नष्ट करने वाले व्रत मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—कुरुनन्दन! सनातन परब्रह्म विश्वात्मा (विराट् रूप) भगवान् का धाम है,

तमाराध्य पुमान् किं न प्राप्नोति कुरुनन्दन । तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥३
उत्पद्यते यदा भक्तिर्भानोरुपरि शाश्वती । तदारभ्य सदा कार्यं नक्तमादित्यवासरे ॥४
पूर्वोक्तविधिना चैव पूजयित्वा द्विजोत्तमान् । ततोऽस्तसमये भानो रक्तचन्दनपङ्कजम् ॥५
विलिख्य द्वादशदलं पूज्य सूर्येति पूर्वतः । दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वंतमतः परम् ॥६
भगं तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले । महेन्द्रं मारुतदले आदित्यं तु तथोत्तरे ॥७
शांतमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत् । कर्णिकापूर्वपत्रे[1] तु सूर्यस्य तुरगान्न्यसेत् ॥८
दक्षिणे यमनामानं मार्तंडं पश्चिमे दले । उत्तरेण रविं देवं कर्णिकायां तु भास्करम् ॥९
अर्घ्यं दद्यात्ततः पार्थ सतिलारुणचन्दनम् । फलाक्षतयुतं तद्वदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥१०
कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः । यस्मादग्नींदुरूपस्त्वमतः पाहि प्रभाकर ॥११
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जे च भास्करे । अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषां पते ॥१२
अर्घ्यं दत्त्वा विसर्ज्याथ निशि तैलविवर्जितम् । भुञ्जीत भावितमना भास्करं संस्मरन् मुहुः ॥१३
प्राक्तनेऽह्नि शनौ चैव तैलाभ्यङ्गं विवर्जयेत् । वत्सरांते कारयित्वा काञ्चनं कमलोत्तमम् ॥१४
पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद्द्विभुजं तथा ॥१५

सुवर्णशृंगीं कपिलां महार्घ्यां रौप्यखुरां कांस्यदोहां सवत्साम् ।
पूर्णे गुडस्योपरि ताम्रपात्रे निधाय पद्मं च ततो निदध्यात् ॥१६

और वही सूर्य, अग्नि एवं चन्द्रमा रूप से इस जगत् में स्थित है, तो उसकी आराधना द्वारा मनुष्य को क्या नहीं प्राप्त होता है? इसलिए रविवार के दिन सदैव नक्त भोजी होना चाहिए। (मनुष्य के हृदय में) सूर्य की शाश्वती भक्ति ज़ब उत्पन्न हो जाये, उसी समय से आरम्भ कर सदैव रविवार के दिन नक्त भोजी रहना चाहिए।२-३। पूर्वोक्त विधान द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अर्चना करके पुनः सूर्य के अस्त होते समय भानु के द्वादश दल कमल की रक्त चन्दन द्वारा रचना करके, 'सूर्य को नमस्कार है' से पूर्व की ओर, 'दिवाकर को नमस्कार है' से अग्नि कोण, विवस्वान को नमस्कार है, से दक्षिण दिशा, भग को नमस्कार है, नैर्ऋत्य कोण, वरुण को नमस्कार है, से पश्चिम, महेन्द्र को नमस्कार है, से वायु कोण, आदित्य को नमस्कार है, जो उत्तर, शांत को नमस्कार है, से ईशान कोण में उन-उन देवों को स्थापित करके कर्णिका के पूर्वभाग में सूर्य के घोड़ों की स्थापना करे। दक्षिण दल में यम, पश्चिम दल में मार्तण्ड, उत्तर में रवि, और कर्णिका में भास्कर देव को तिल, रक्त चन्दन, फल और अक्षत समेत अर्घ्य प्रदान करते समय इस मंत्र का उच्चारण करे— प्रभाकर! आप कालात्मा, सर्वभूतात्मा, वेदात्मा, विश्वतो मुख एवं अग्नि और चन्द्र रूप हैं अतः मेरी रक्षा करें।४-११। अग्निमीले और इषेत्वोर्ज भास्कर को नमस्कार है, परदायक अग्नि यहाँ आने की कृपा कीजिये। मै ज्योतिष्पति को नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन करे और तेल-क्षार रहित नक्त भोजन करके करके प्रेमभाव से भास्कर देव का बार-वार स्मरण करता रहे। उसके पूर्व शनि के दिन तैलाभ्यंग (तैलमर्दन कभी न करे)। पुनः वर्ष की समाप्ति में कमल और दो बाहु वाले) पुरुष की यथाशक्ति सुवर्ण प्रतिमा बनवाकर कपिला गौ समेत, जिसकी सींग सुवर्ण से और खुर

---

१. पूर्वभागे तु।

गां कल्पयित्वा पुरुषं सपद्मं दद्यादनेकव्रतनायकाय।
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय कुटुम्बिने [1]शुद्धमनुद्धताय ॥१७
नमोस्तु ऋक्सामयजुर्विधात्रे पद्मप्रबोधाय जगत्सवित्रे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने च त्रिलोकनाथाय नमो नमस्ते ॥१८
इत्यनेन विधानेन वर्षमेकं तु यो नरः। नक्तमादित्यवारेण कुर्यात्स नीरुजो भवेत् ॥१९
धनधान्यसमायुक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः। मर्त्ये स्थित्वा चिरं कालं सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥२०
कर्मसंक्षयमवाप्य पार्थिव शोकदुःखभयरोगवर्जितः।
स्यादमित्रकुलकालसन्निभो धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः॥२१
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा वेदमूर्तिदिननक्तमाचरत्।
सापि लोकममरेशपूजिता याति कौरव रवेर्न संशयः॥२२
यः पठेदथ शृणोति वा नरः पश्यतीत्थमथ वानुमोदयेत्।
सोऽपि शक्रभवने दिवौकसैः कल्पकोटिशतमेकमीड्यते ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद आदित्यदिननक्तविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११५

चाँदी से सुसज्जित हो, तथा कांसे की दोहनी और वत्सा युक्त हो, गुड के ऊपर ताँबे के पात्र में कमल सहित रखे। पूजनोपरांत इन सभी वस्तुओं को उस ब्राह्मण के लिए अर्पित करनी चाहिए जो अनेक व्रतों को सुसम्पन्न किये, अव्यंग रूप, इन्द्रिय संयमी सपरिवार, शुद्ध और शांत मूर्ति हो। पश्चात् क्षमायाचना करे—ऋग्वेद, सामवेद, एवं यजुर्वेद के विधाता, कमलों को विकसित करने वाले, जगत् के सविता, त्रयी (तीनों वेद) मय, त्रिगुणात्मक और तीनों लोकों के स्वामी (सूर्य) को मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस विधान द्वारा एक वर्ष तक इस व्रत को सुसम्पन्न करने एवं रविवार को नक्त भोज करने वाले पुरुष नीरोग होता है। धनधान्य सम्पन्न होकर पुत्र-पौत्र समेत इस धरातल पर चिर सुख का अनुभव करने के उपरांत उसे सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है। कर्मो के क्षीण होने पर वह शोक, दुःख, भय एवं रोग हीन, शत्रुओं का काल, धर्म मूर्ति और अमित तेज युक्त राजा होता है।१२-२१। कौरव! जो भर्ता, गुरु और देवाराधन में तत्पर रहने वाली स्त्री भी वेदमूर्ति सूर्य देव के दिन नक्त व्रत रहती है देवराज इन्द्र द्वारा उसकी भी पूजा होती इसमें संशय नहीं। इस आख्यान को पढ़ने सुनने, देखने या अनुमोदन करने वाला पुरुष भी इन्द्र के भवन में सौ कोटि कल्प देवों द्वारा सुपूजित होता है।२२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में आदित्य के दिन नक्त-व्रत वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।११५।

---

१. सर्वमनुव्रताव।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

संक्रांत्युद्यापनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यदपि ते वच्मि संक्रांत्युद्यापने फलम् । यदक्षयं परं लोके पुराणकवयो विदुः ॥१
विषुवे अयने वापि संक्रांतिव्रतमारभेत् । पूर्वेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥२
संक्रांतिवासरे प्राप्ते तिलैः स्नानं विधीयते । अभिसंक्रमणं भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् ॥३
पद्मं सकर्णिकं कुर्यात्तस्मिन्नावाहयेद्रविम् । कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यमादित्यं पूर्वतस्ततः ॥४
नमः सप्तार्चिषेऽग्नेये याम्ये रुङ्मण्डलाय च । नमः सवित्रे नैर्ऋत्ये वरुणं वारुणे यजेत् ॥५
सप्तसप्तिं च वायव्ये पूजयेद्भास्वतां पतिम् । मार्तंडमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेद्दले ॥६
गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थण्डिले पूजयेत्ततः । चन्दनोदकपुष्पैस्तु दत्त्वार्घ्यं विन्यसेद्भुवि ॥७
नमस्ते विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयंभुवे । नमोऽनन्तस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते ॥८
अनेन विधिना दत्त्वा भानवेऽर्घ्यं नरोत्तम । द्विजाय सोदकं कुम्भं घृतपात्रं हिरण्मयम् ॥९
कमलं च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत् । विधिनानेन कर्तव्यं मासि मासि नरोत्तम ॥१०
एकभक्ताशनैः पुंभिः सर्वमेतद्यथाविधि । एकस्मिन्नह्नि कर्तव्यं वत्सरांतेऽथ वा पुनः ॥११

अध्याय ११६

संक्रान्ति उद्यापन का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य संक्रान्ति उद्यापन का फल बता रहा हूँ, जिसे पुराणवेत्ता कवियों ने इस लोक में अक्षय और परमोत्तम बताया है। विषुव अथवा अयन के समय संक्रान्ति व्रत आरम्भ करे और उसके पूर्व के दिन एक भक्त (एकाहार) करे। पश्चात् संक्रान्ति वाले दूसरे दिन दातून करने से ही उस के नियम को पालन करते हुए तिल-स्नान करे और भूमि में चन्दन द्वारा कर्णिका समेत कमल की रचना करके कर्णिका में सूर्य का और उसमें रवि का आवाहन इस भाँति करे—'आदित्य को नमस्कार है' पूर्व की ओर, 'सप्तर्चि को नमस्कार है' अग्नि कोण, 'रोगध्वंश को नमस्कार है' नैर्ऋत्य कोण, 'वरुण को नमस्कार है' पश्चिम दिशा, 'भास्वत्पति सप्तसप्ति को नमस्कार है' वायु कोण, 'मार्तण्ड को नमस्कार है' उत्तर की ओर और 'विष्णु को नमस्कार है' कह कर दल के ईशान कोण में आवाहित करें।१-६। पश्चात् गंध, माला, फल एवं भक्ष्य पदार्थों द्वारा वेदी पर उनकी अर्चना और चन्दन पुष्प समेत जल द्वारा अर्घ्य प्रदान कर क्षमा प्रार्थना करे—विश्व रूप, विश्वधाम और स्वयंभू को नमस्कार है तथा ऋक्, साम एवं यजु के अधीश्वर और वरदायक सूर्य को नमस्कार है। नरोत्तम! इस विधान द्वारा भानु देव को अर्घ्य प्रदान करने के अनन्त जलपूर्ण कलश घृतपूर्ण पात्र, सुवर्ण और वह सुवर्ण की प्रतिमा सविधान ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करे और इसी भाँति प्रतिमास करता रहे। नरोत्तम! पूर्व दिन एकाहारी रहकर यथा विधान एक दिन पूजन करके पुनः वर्ष की समाप्ति में पूजन करे।७-११। कौंतेय! उस दिन घृत पूर्ण

कौन्तेय तस्मिन्घृतपायसेन संपूज्य वह्निं द्विजपुंगवाय ।
कुम्भान्पुनर्द्वा दशधेनुयुक्तान्दौर्गत्ययुक्तः कुशलामथैकाम् ॥१२
निवेदयेद्ब्राह्मणपुङ्गवाय हेमीं च दद्यात्पृथ्वीं ससस्याम् ।
शक्त्याथ रौप्यामथ वापि ताम्रीं पैष्टीमशक्तो वसुधां विधाय ॥१३
सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यान्न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात् ।
कुर्वन्नधो याति नरेन्द्रचन्द्रयावन्महेन्द्रप्रमुखाः सुरेशाः ॥१४
पृथ्वी च यावत्सकुलाचला च यावच्च सूर्यानिलवह्निचन्द्राः ।
तावत्सगन्धर्वकुलैरशेषैः संपूज्यते भारत नाकपृष्ठे ॥१५
ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिपः स्यात्सुकुलप्रसूतः ।
दिव्यैः सुखैर्युक्तवपुः सभार्यः प्रसूतपुत्रान्वयबन्धुवर्गः ॥१६
इति पठति शृणोति योऽतिभक्त्या विधिमखिलं रविसंक्रमेषु पुण्यम् ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपतिप्रमुखैर्मृतस्तु पूज्यः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
संक्रांत्युद्यापनवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।११६

पायस की आहुति द्वारा अग्नि को तृप्त कर द्वादश कलश, उतनी ही गौ अथवा दरिद्रता का नाते एक ही गौ, सुवर्ण , चाँदी, ताँबे अथवा अशक्ततया पिष्टी की पृथ्वी सूर्य के साथ ही ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए । नरेन्द्र पूजनं आदि में किसी भाँति कृपणता न करे अन्यथा इन्द्र आदि देवों के समय तक उसकी अधोगति होती रहेगी । भारत! और उदार-भाव से पूजन करने पर पर्वतों समेत यह पृथ्वी, सूर्य, वायु अग्नि, और चन्द्रमा के समकालीन निखिल गंधर्वो द्वारा स्वर्ग में उसकी अर्चना होती रहेगी । पश्चात कर्म के क्षय होने पर उत्तम कुल में उत्पन्न होकर सातो द्वीप का अधीश्वर होता है और दिव्य शरीर धारण कर पुत्र-स्त्री और अपने वन्धुवर्गों समेत दिव्य सुख का अनुभव करता है । इस प्रकार इस आख्यान को संक्रान्ति के दिन भक्ति पूर्वक पढ़ने, सुनने, एवं सम्मति प्रदान करने वाले प्राणी देहावसान के समय प्रमुख देव नायकों द्वारा स्वर्ग में पूजित होता है ।१२-१७

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
संक्रांन्ति उद्यापन वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

विष्टिव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण केयं जनैः सर्वैर्विष्टिर्भद्रेति चोच्यते । कस्यात्मजेयं किंरूपा पूज्यते च कथं जनैः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

सुता मार्तण्डदेवस्य छायया जनिता पुरा । शनैश्चरस्य सोदर्या भगिन्यतिभयंकरी ॥२
सा जातमात्रा भुवनं ग्रस्तुं समुपचक्रमे । कृष्णा करालवदना सितदंष्ट्रोर्ध्वमूर्द्धजा ॥३
निर्याति यदि कार्येण कश्चित्तस्य पुरः स्थिता । विघ्नं करोति स्वपतो भुञ्जानस्य स्थितस्य वा ॥४
यज्ञविघ्नकरी रौद्रा समाजोत्सवनाशिनी । नित्योद्वेगकरी रौद्रा विनाशयति सा जगत् ॥५
तां तु दुर्विनयासक्तां दृष्ट्वा देवो दिवाकरः । चिन्तयामास कस्यापि यच्छाम्येनां सुमध्यमाम् ॥६
कन्यादुर्विनयाच्चेह पिता दोषेण गृह्यते । युवत्यास्तु ततो भर्ता तस्माद्भर्तृगृहं नयेत् ॥७
विचिन्त्यैवं सुतां भद्रां यस्य यस्य प्रयच्छति । ते नमंति क्षणेनैव सुरराक्षसकिन्नराः ॥८
मण्डपं मण्डपारम्भे भंक्त्वा भीषयते जनम् । विवस्वांश्चिन्तयाविष्टः कस्येयं प्रतिपाद्यताम् ॥९
विरूपा दुष्टहृदया स्वेच्छाचारविहारिणी । दत्ताप्येषा न दोषाय भवतीह कथंचन ॥१०

अध्याय ११७

विष्टिव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! सब लोग जिसे विष्टि और भद्रा कहते हैं, वह क्या वस्तु है, किससे उत्पन्न एवं उसका रूप कैसा है और क्यों सभी मनुष्य उसकी पूजा करते हैं ।१

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य देव की छाया नामक पत्नी द्वारा यह पहले ही उत्पन्न हुई थी, जो शनैश्चर की अतिभीषण भागिनी है । यह उत्पन्न होते ही तीनों भुवन को अपने मे विलीन करने के लिए तैयार हो गयी थी । काले वर्ण, करालमुख, श्वेत दाँत और ऊपर का उठे हुए केश वाली यह जो कोई कार्य वश कहीं बाहर निकलता है, उसके सामने खड़ी हो जाती है और शयन करने, खाते, अथवा बैठते समय उसका विघ्न करती है । यह रौद्रस्वरूपा यज्ञध्वंस और समाजोत्सव का विनाश करती है तथा भीषण स्वरूप से नित्य उद्वेग उत्पन्न करती हुई इस भाँति जगत् का नाश करती है । इस दुर्विनीता को देख कर दिवाकर देव चिंतित होने लगे कि इसे किसे सौंपा जाय! क्योंकि कन्या के अविनीता होने पर पिता का ही दोष बताया जाता है और युवती होने पर पालनार्थ पति की आवश्यकता होती है इसलिए उसे पति के घर भेजा जाता है ।२-७। इस प्रकार विचार कर वे अपनी वह भद्रा कन्या जिस किसी को सौंपते थे वे देव, राक्षस अथवा किन्नर गण उसी समय नमस्कार करते थे और उसके अपनाने की स्वीकृति प्रदान करते थे कारण कि मण्डप के आरम्भ होते ही यह मण्डप को छिन्नभिन्न कर लोगों को भयभीत करती थी । विवस्वान् (सूर्य) देव अत्यन्त व्याकुल होकर सोच रहे थे कि इसका पाणिग्रहण किसके साथ किया जाय, क्योंकि यह विरूपा,

वितर्कयन् यावदेवमास्ते देवो दिवस्पतिः । तावत्तया जगत्सर्वं दुष्टया समभिद्रुतम् ।।११
अथाजगाम सवितुः पार्श्वे ब्रह्माऽण्टसंभवः । कार्यं निवेदयामास विष्टेर्दौष्ट्यमशेषतः ।।१२
भास्करस्तमुवाचाथ ब्रह्माणं भुवनेश्वरम् । भवान्कर्ता च हर्ता च कस्मादेवं प्रभाषसे ।।१३
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा भास्करेणामितद्युतिः[1] । उवाच विष्टिमानाय्य शृणु भद्रे मयोदितम् ।।१४
करणैः सह वर्तस्व बवबालवकौलवैः । सप्तमेऽर्धदिने प्राप्ते यदभीष्टं कुरुष्व तत् ।।१५
यात्राप्रवेशमाङ्गल्यकृषिवाणिज्यकारणात् । भक्षयस्वाभिमुखगान्नरानुन्मार्गगामिनः ।।१६
उद्वेजनीयो नो हि जनो भवत्या दिवसत्रयम् । पूज्या सुरासुराणां त्वं दिवसार्द्धे भविष्यसि ।।१७
उल्लंघ्य ये प्रवर्तन्ते भद्रे त्वां निर्भया नराः । तेषां विनाशयाशु त्वं कार्यमार्ये सुखी भव ।।१८
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा भद्रापि भुवनत्रयम् । बभ्रामोद्भ्रांतहृदया भीषयन्ती सुरासुरान् ।।१९
एवमेषा समुत्पन्ना विष्टिरिष्टविनाशिनी । निवेदिता ते कौंतेय तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।२०

असितजलदवर्णा दीर्घनासोग्रदंष्ट्रा विपुलहनुकपाला[2] पिण्डिकोद्बद्धजङ्घा ।
अनलशतसहस्रं चोद्गिरन्ती समंतात्पतति भुवनमध्ये कार्यनाशाय विष्टिः ।।२१
भानोः सुता केतुशताग्रजाता कृष्णा कुमूर्तिः सततं कुचेला ।
देवैर्नियुक्ता करणार्थसंस्था विष्टिस्तु सर्वत्र विवर्जनीया ।।२२

द्रष्टा, एवं यथेच्छ आचार और बिहार, करने वाली है और किसी को देने पर भी इसका दोष नहीं माना जायगा (प्रत्युत मेरा ही समझा जायगा) । दिन नायक देव इस प्रकार जब तक विचार मग्न थे उसी बीच इस दुष्टा ने सम्पूर्ण जगत् को आक्रान्त कर लिया ।८-११। अनन्तर अण्ड कटाह से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा सूर्य के समीप आकर उस विष्टि (भद्रा) नामक कन्या की समस्त दुष्टता की चर्चा करने लगे । उसे सुनकर भास्कर देव ने भुवनेश्वर ब्रह्मा से कहा—आप (इस जगत् के) कर्ता और हर्ता हैं इसलिए आप यह क्या कह रहे हैं! उनके ऐसा कहने पर अमेय तेज वाले ब्रह्मा ने उनकी कन्या विष्टि को बुलवाकर उससे कहा—भद्रे! मेरी बात सुनो! बव, बालव और कौलव नामक करणों के साथ निवास करो तथा सातवें अर्ध-दिन में ही यथेच्छ कार्य करना । यात्रा, (गृह) प्रवेश आदि, मंगल कार्य, कृषी अथवा व्यापारार्थ स्वामि मुख आये हुए मनुष्यों का भक्षण करो जो कुपथगामी कहे जाते हैं । तीन दिन मनुष्यों को उद्वेजित न करना, दिन के आधे समय तक सुर-असुर तुम्हारी पूजा करेंगे । भद्रे! जो मनुष्य निर्भय होकर तुम्हारा उल्लंघन करके कार्य आरम्भ करें, उनका शीघ्र विनाश करना और सदैव सुखी रहो । इतना कह कर ब्रह्मा चले गये और भद्रा ने उद्भ्रान्त होकर देवों और राक्षसों को भयभीत करती हुई तीनों लोकों का भ्रमण किया । कौंतेय! इस प्रकार मैंने इष्टविनासिनी इस भद्रा की जन्म कथा सुना दी इसलिए इसका अवश्य त्याग करना चाहिए । तीनों लोकों में चारों ओर सैकड़ो एवं सहस्रों अग्नि का वमन करती विचरती हुई यह विष्टि कार्य-विनाश करती हैं, जो काले मेघ के समान वर्ण, दीर्घ नासिका (लम्बी नाक), तेज और बड़े दाँत, विशाल हनु (ठुन्डी) और कपोल, तथा पेडू में बंधे हुए जंघे वाली दिखायी देती है । भानु के केतु आदि सैकड़ों सन्तानों में यह कृष्ण सर्व प्रथम उत्पन्न हुई है, जो कुरूप एवं कुवेला रूप है । देवों ने इस विष्टि को करण के साथ रहने के लिए नियुक्त किया है किन्तु सर्वत्र यह त्याज्य

---

१. महद्युतिः । २. विपुलहनुकपालो ।

मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते । हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमंडले ॥२३
कट्यां पञ्चैव विज्ञेयास्तिस्रः पुच्छे जयावहाः । मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी ॥२४
हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यांतु कलहावहा । कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जयः ॥२५
पृथिव्यां यानि कार्याणि सुशुभान्यशुभानि च । तानि सर्वाणि सिद्ध्यंति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥२६
धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरानना । कालरात्रिर्महारुद्रा विष्टिश्च कुलपुत्रिका ॥२७
भैरवी च महाकाली असुराणां क्षयंकरी । द्वादशैव तु नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥२८
न च व्याधिर्भवेत्तस्य रोगी रोगात्प्रमुच्यते । ग्रहाः सर्वेऽनुकूलाः स्युर्न च विघ्नादि जायते ॥२९
रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥३०
यश्च पूजयते नित्यं शास्त्रोक्तविधिना नरः । तस्य सर्वार्थसिद्धिस्तु भवतीह न संशयः ॥३१
येनोपवासविधिना व्रतेन च [1]यशस्विनी । पूजिता [2]तुष्टिमभ्येति तदेव कथयामि ते ॥३२
यस्मिन्दिने भवेद्भद्रा तस्मिन्नहनि भारत । उपवासस्य नियमं कुर्यान्नारी नरोऽथ वा ॥३३
यदि रात्रौ भवेद्विष्टिरेकभुक्तं दिनद्वयम् । कार्यं तेनोपवासः स्यादिति पौराणिकी श्रुतिः ॥३४
प्रहरस्योपरि यदा स्याद्विष्टिः प्रहरत्रयम् । तत्रोपवासः कर्तव्य एकभुक्तमतोऽन्यथा ॥३५
सर्वौषध्युदकस्नानं सुगन्धामलकैरथ । नद्यां तडागेऽथ गृहे स्नानं सर्वत्र शस्यते ॥३६
देवान्पितॄन्प्रीणयित्वा ततो दर्भमयीं शुभाम् । विष्टिं कृत्वा पुष्पधूपैर्नैवेद्येन च पूजयेत् ॥३७

करने योग्य है ।१२-२२। मुख में दशघड़ी, कण्ठ में सदैव हृदय में एकादश (ग्यारह), नाभिमण्डल में चार, करि में पाँच और पूँछ में तीन घड़ी निवास करती है । मुख में प्राण का अपहरण, नाभि में कलह, कटि में अर्थनाश और पूंछ में रहने से निश्चित जय प्रदान करती है । पृथ्वी में जितने शुभ अथवा अशुभ कार्य हैं विष्टि के पुच्छ निवास करने पर वे सब निश्चय सिद्धि होते हैं इसमें संदेह नहीं । धन्या, दधिमुखी, भद्रा, महामारी, खरानना, कालरात्रि, महारुद्रा, विष्टि, कुलपुत्रिका, भैरवी, महाकाली, और असुरक्षया भद्रा के इन बारह नामों को प्रातः काल शय्या से उठते ही जो पढ़ता है, उसे कोई व्याधि नहीं होती है, उस रोगी को रोग से शीघ्र मुक्ति हो जाती है, सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं विघ्न-बाधा कभी नहीं होती है । रणस्थल, राजकुल, द्यूत क्रीडा आदि सर्वत्र निश्चित विजय प्राप्त होती है ।२३-३०। शास्त्र-विधान द्वारा इसकी पूजा करने वाले मनुष्य की सर्वार्थ सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं । भारत! जिस उपवास विधान द्वारा व्रातनुष्ठान में पूजित होने पर यह यशस्विनी (भद्रा) प्रसन्न होती हैं, तुम्हें बता रहा हूँ (सुनो!) नर-नारी सभी को भद्रा के दिन उपवास के नियम-पालन आरम्भ करना चाहिए । यदि भद्रा रात्रि में हो, तो (पूर्व-पर) दोनों दिन एकाहारी रहना चाहिए इसे भी उपवास कहा जाता है, ऐसी पौराणिकी जनश्रुति है और एक प्रहर से अधिक तीन प्रहर तक यदि भद्रा रहे तो उस दिन उपवास रहना चाहिए अन्यथा एकाहार करे । अनन्तर समस्त औषध मिश्रित जल से स्नान करे, जिसमें सुगंध और आँवला पड़ा हो । यदि नदी अथवा सरोवर या कूप स्नान सुलभ हो तो अत्युत्तम, क्योकि यह स्नान परमोत्तम बताया गया है ।३१-३६। स्नान, देव-पितृ तर्पण कर्मों को सुसम्पन्न कर विष्टि की कुश की मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप नैवेद्य आदि द्वारा सविधान उसकी अर्चना करे

१. पयस्विनी । २. पुष्टिम् ।

होमं कृत्वा [1]विष्टिनामैरष्टोतरशतं ततः। भुञ्जीत दत्त्वा विप्राय तिलान् पायसमेव च।
सतिलां कृशरां भुक्त्वा पश्चाद् भुञ्जीत कामतः ॥३८
छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टर्थदायिनि। पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥३९
उपोष्य विधिनानेन दश सप्त यथाक्रमम्। उद्यापनं ततः कुर्यात्पूर्ववत्पूज्य भामिनीम् ॥४०
स्थापयित्वायसे पीठे कृशरान्नं निवेद्य च। परिधाप्य कृष्णयुगं स्तुत्वा मंत्रेण तां पुनः ॥४१
ब्राह्मणाय पुनर्दद्याल्लोहं तैलं तिलांस्तथा। कृष्णां सवत्सां गामेकां तथैकं कालकंबलम्।
दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा भद्रां विसर्जयेत् ॥४२
य एवं कुरुते पार्थ सम्यग्भद्राव्रतं नरः। विघ्नो न जायते तस्य कार्यारम्भे कदाचन ॥४३
राक्षसाश्च पिशाचा वा पूतनाशाकिनीग्रहाः। न पीडयन्ति तं मर्त्यं यो भद्राव्रतमाचरेत् ॥४४
न चैवेष्टवियोगः स्यान्न हानिस्तस्य जायते। देहान्ते याति सदनं भास्करस्य न संशयः ॥४५

सूर्यात्मजातिदयिता भगिनी शनेर्या मर्त्ये भ्रमत्यतिरथा करणक्रमेण।
तां कृष्णभासुरमुखीं समुपोष्य विष्टिमिष्टार्थसिद्धिमबुधोऽपि पुमानुपैति ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विष्टिव्रतवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११७

और आहुति प्रदान करके तिल और पायस ब्राह्मणको अर्पित करे। अनन्तर तिलसमेत कृशरान्न (खिचड़ी) का भोजन करके पीछे यथेच्छ वस्तु का भोजन करे। उसकी क्षमा प्रार्थना इस भाँति करे—छाया और सूर्य की पुत्रि, देवि! विष्टि! तुम अभीष्ट सिद्धि करती हो, मैंने तुम्हारी यथा शक्ति पूजा की है अतः मेरा कल्याण करने की कृपा करो। इस विधान द्वारा क्रमशः सत्रह उपवास कर लेने के उपरांत पूर्व की भाँति उस भागिनी की अर्चना पूर्वक उद्यापन कार्य सुसम्पन्न करे—लोहे के आसन पर उसे स्थापित और काले चार वस्त्रों से आच्छन्न करके समंत्रक पूजन स्तुति करे। पश्चात् कृशरान्न (खिचड़ी), लोह, तिल, तैल, सवत्सा कृष्णा गौ, काला कम्बल और यथा शक्ति दक्षिणा से उसे सुसम्मानितकरे तथा वह सब वस्तु ब्राह्मण को अर्पित करके भद्रा व्रत को सुसम्पन्न करता है उसके कार्यारम्भ में कभी-भी विघ्न नहीं होता है। भद्रा व्रत के सुसम्पन्न करने वाले प्राणी को राक्षस, पिशाच, पूतना, शाकिनी, तथा गृहगण कभी पीडित नहीं करते हैं, न उसे कभी इष्ट वियोग हो और न उसकी कभी हानि ही सम्भव हो सकती है। देहावसान के समय उसे भास्कर लोक प्राप्त होता है। इस प्रकार उस भद्रा की, जो सूर्य की दयिता पुत्री और शनि की भगिनी होकर इस मर्त्य लोक में (वव) आदि करणों के साथ क्रमशः रथ का अतिक्रमण करने वाले वेग से विचरती है और जिसका मुख कृष्ण वर्ण एवं प्रदीप्त है, उपवास रह कर अर्चना करने पर मूढ़ पुरुष को भी इष्ट सिद्धि हो जाती है। ३७-४६

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
विष्टि व्रत वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त। ११७।

---

१. आर्षमेतत्।

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्यव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अगस्त्यव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापप्रणाशनम् । तच्छृणुष्व महीपाल कथ्यमानं मयानघ ॥१

युधिष्ठिर उवाच

शृणोमि ब्रूहि मे कृष्ण देवर्षेस्तस्य चेष्टितम् । जन्म चैवार्घ्यदानं च कालमुद्गमनस्य च ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

मित्रश्च वरुणश्चैव पूर्वमेतौ सुरोत्तमौ । मंदरस्य समीपे तु चेरतुर्विपुलं तपः ॥३
तयोः संक्षोभणार्थाय वासवेन वराप्सराः । उर्वशी प्रेषिता तत्र रूपौदार्यगुणान्विता ॥४
तस्याः संदर्शनादेव क्षुभितौ तौ सुरोत्तमौ । विकारं मनसो बुद्धा कुंभे वीर्यं ससर्जतुः ॥५
निमेः शापात्तत्र जातो वशिष्ठो भगवानृषि । अनन्तरमगस्त्यस्तु जातो दिव्यस्तपोधनः ॥६
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः । सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥७
आस्तां दैत्यौ पुरा दुष्टावादौ कृतयुगस्य तु । नाम्ना इल्वलवातापी देवब्राह्मणकण्टकौ ॥८
तयोरेकोऽभवन्मेषो द्वितीयो भोज्यदायकः । श्राद्धक्रमेण तेनैवं बहवो नाशिता द्विजाः ॥९

अध्याय ११८

अगस्त्यव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—महीपाल, अनघ! समस्त पापों को विनष्ट करने वाले एक अन्य अगस्ति नामक व्रत बता रहा हूँ, सुनो ।१

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! उन देवर्षि का व्रत सुनने के लिए तो मैं तैयार हूँ, किन्तु मुझे उनका जन्म, अर्घ्यदान और उनके प्रस्थान करने का काल भी बताने की कृपा करें ।२

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में मित्र और वरुण नामक दोनों श्रेष्ठ देवों के मन्दराचलपर तप करना आरम्भ किया । उनके विपुल तपश्चर्या को देख कर वासव (इन्द्र) ने उन्हें विचलित करने के लिए उर्वशी नामक एक श्रेष्ठ अप्सरा वहाँ भेजा, जो रूप-सौन्दर्य और उदारता आदि गुणों से सुविभूषित थी । उसे देखते ही क्षुब्ध होने पर उन दोनों देवों ने मनो विकार उत्पन्न होने के नाते कुम्भ (घड़े) में अपना वीर्य-निक्षेप किया । निमि द्वारा शाप होने के कारण उस घड़े से प्रथम वशिष्ठ का जन्म हुआ और पश्चात् दिव्यशरीर एवं तपोधन अगस्त्य का ।३-६। एक बार मलयाचल पर ब्राह्मण गण सखी समेत रहते हुए वैशाख-विधान द्वारा दुष्कर तप कर रहे थे । उस समय वहाँ इल्वल और वातापी नामक दो दुष्ट दैत्य कृत युग के आरम्भ से ही रहे थे, जो देवों और ब्राह्मणों के (मार्ग के) प्रमुख कंटक रूप थे । उनमें एक भेड़ा बन जाता था और दूसरा उसे मार कर श्राद्ध भोज्य देता था । इस श्राद्ध क्रम द्वारा उन दोनों ने बहुत

अथान्यस्मिन्दिने दैत्यो ह्यगस्त्यं संन्यमन्त्रयत् । भोज्यार्थं ब्राह्मणैः सार्द्धं भृगुगर्गकुलोद्भवैः ।।१०
अगस्त्योप्यभवच्छ्राद्धे धौरेयो रोषदर्पितः । सोऽपि हत्वापचद्वह्नौ वातापिं मेषरूपिणम् ।।११
परिविष्यमाणेषु तेषु स्तिमितं प्राह दानवम् । अगस्त्यो भगवान्क्रुद्धः सर्वं मे दीयतामिति ।।१२
मैषं मांसं ततः प्रादादिल्वलः कुपितस्तदा । भक्षयित्वाऽभवत्स्वस्थो निर्विकारो महामुनिः ।।१३
शुचिर्बभौ ततः प्राह वातापिमिल्वलः शनैः । निष्क्रमस्व मुनेर्देहं भित्त्वा कस्माद्विलम्बसे ।।१४
तच्छ्रुत्वाऽगस्त्यविप्रोऽपि उद्गारं कृतवान्गुरुम् । कुतो निष्क्रमणं प्राह भक्षितः स मया पुनः ।।१५
जीर्णोऽयं भस्म भूतोऽयं वातापिर्ब्रह्मकण्टकः । इल्वलोऽपि स्फुरत्क्रोधः सोऽगस्त्येन निरीक्षितः।।१६
भस्मीभूतः क्षणेनैव ततः शांतं जगद्बभौ । तेन वैरेण ते दुष्टा नष्टशेषास्तु दानवाः ।।१७
संमन्त्र्य निश्चयं मेरौ ततोऽगस्त्यमुपागतः । विवर्द्धयिषवस्तेजो मुनेरस्य दिवौकसः ।।१८
तेऽगस्त्यमाहुर्ब्रह्मर्षे समुद्रं शोषयस्व वै । तच्छ्रुत्वागस्त्यविप्रोऽपि आग्नेयीं धारणां दधत् ।।१९
तया पीतः समुद्रोऽपि भ्रांतमीनोर्मिकच्छपः । पीते समुद्रतोयेऽपि देवैः क्रुद्धैस्तु दानवाः ।।२०
क्षयं नीताः क्षणात्सर्वे क्रन्दमानाः पुनःपुनः । क्षेमं जगत्यभूत्सर्वमगस्त्यर्षेः प्रसादतः ।।२१
अथ गंगानदीतोयैः संपूर्णे सागरे पुनः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ।।२२
ममंथुः सहिताः सर्वे समुद्रं दैत्यदानवाः । अथोत्थिते रत्नसंघे सोमे श्रीकौस्तुभे गजे ।।२३

ब्राह्मणों का विनाश किया । तदुपरांत एक दिन भृगु, गर्ग आदि कुल के ब्राह्मणों के साथ अगस्त्य ऋषि को भी उस दैत्य ने भोजनार्थ अपने यहाँ निमंत्रित किया । जिसे अगस्त्य ने वहाँ पहुँच कर अपना रोष प्रकट कर दिया था । इल्वल ने वातापी को भेड़ा बनाकर मार डाला और उसके मांस को अग्नि में पका कर भोजनार्थ रखा । उस समय मण्डलाकार समस्त ब्राह्मणों के बैठ जाने पर भगवान् अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर उस दानव से कहा—सब मांस मुझे दे दो । इल्वल भी कुपित होकर उस भेड़ का सम्पूर्ण मांस उन्हें दे दिया । महामुनि (अगस्त्य) ने वह सब मांस भक्षण कर पूर्व की भाँति ही स्वस्थ रहे, किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ । हाथ मुख शुद्ध करने पर इल्वल मे वातापी से कहा—मुनि की देह विदीर्ण कर निकलो, विलम्ब क्यों कर रहे हो ।७-१४। उसे सुनकर ब्राह्मण अगस्त्य ने लम्बी डकार लेकर कहा—मैंने उसका भक्षण कर लिया है अतः अब उसका निकलना कैसे सम्भव है! ब्रह्म कण्टक यह वातापी भस्म होकर (पेट में) पच भी गया । यह सुनकर क्रुद्ध होने ने नाते इल्वल का होंठ फड़कने लगा । किन्तु अगस्त्य के देखने मात्र से वह भी उसी क्षण भस्म हो गया, जिससे सम्पूर्ण जगत् शांत हुआ था । पश्चात् उस पैर के कारण विनष्ट होने से शेष बचे हुए दानवों ने आपस में मंत्रणा करके मेरु पर्वत को प्रस्थान किया । देवों ने अगत्स्य मुनि के तेज को प्रज्वलित करने के विचार से उनसे कहा—ब्रह्मर्षे! समुद्र को सूखा कर दें । यह सुनकर ब्राह्मण अगस्त्य ने आग्नेयी मर्यादा धारण कर उस समुद्र का पान कर लिया, जिसमें मछलियाँ, भँवर और कछुए आदि भ्रान्त रहते हैं । पश्चात् देवों ने क्रुद्ध होकर क्षण मात्र में करुण क्रन्दन करने वाले दानवों का विनाश कर दिया । अगस्त्य ऋषि के प्रसाद से सारा संसार पुनः कल्याण मय हुआ और गंगा-जल द्वारा सागर को पूरा कर दिया । अनन्तर एक समय दैत्य दानवों ने मंदराचल की मथानी और वासुकी रस्सी बना कर समुद्र मन्थन आरम्भ किया ।१५-२२। मन्थन करने से समुदाय—चन्द्र, लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, ऐरावत गजराज—के निकलने पर अत्यन्त लोभ वश पयोनिधि

अतिलोभान्मथ्यमाने सागरे पयसां निधौ । अथोत्थितं ज्वलद्रौद्रं कालकूटं महाविषम् ॥२४
येनासौ सुरसंघाते आघूर्णिता इवाभवत् । सागरं संप्रविष्टास्ते रात्रौ रात्रौ विनिर्ययुः ॥२५
निर्गम्य च वधं चक्रुर्मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । बभंजुर्यज्ञपात्राणि दिवा तोये निलिल्यिरे ॥२६
समुद्रमध्ये न ज्ञात्वा ब्रह्मा नारायणो हरः । वायुः कुबेरो वसवः सर्वे देवाः सवासवाः ॥२७
ततो मन्त्रैः शंकरेणकिञ्चित्तत्रैव भक्षितम् । क्षणाद्दग्धः स मंत्रोऽपि नीलकंठीकृतो हरः ॥२८
ब्रह्मापि चेतनां प्राप्य अब्रह्मण्यमुवाच ह ! नास्ति कश्चिज्जगत्यस्मिन्विषमापातुमीश्वर ॥२९
अगस्त्यो दक्षिणाशायां लङ्कामूले महामुनिः । तद्गच्छध्वं महाभागाः शरणं सर्वदा ह्यसौ ॥३०
एवमुक्ता गता देवा अगस्त्याश्रमदक्षिणाम् । देवान्वीक्ष्य च तान्हर्षादगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥३१
ध्यानं चक्रे विषं येन हिमाद्रौ संप्रवेशितम् । कंठीसूत्रं निकुंजेषु हिमपर्वतसानुषु ॥३२
तस्मिन्काले विषं लग्नं किञ्चिच्छेषं द्रुमादिषु । उन्मत्तकरवीरार्क्कस्थलभूमिजलानिले ॥३३
तद्विषं चूर्णितं तेन क्षणात्संकोचितं तथा । हिमवातेन दुष्टेन वहमानेन पाण्डव ॥३४
मनुष्याणां तु जायंते रोगा नाना विधा भुवि । ते च मासत्रयं सार्द्धं प्रवहंति विषोल्बणाः ॥३५
वृषसंक्रांतिमारभ्य सिंहांते शाम्यते विषम् । रोगदोषापनोदश्च भवेत्पार्थ प्रभावतः ॥३६
एवं कालेन महता नीरुजे व्याधिवर्जिते । जगत्यस्मिन्पुरा पार्थ घनीभूते प्रजागणे ॥३७

सागर का मन्थन करना बन्द नहीं किया । अनन्तर ज्वलन्त एवं रौद्र कालकूट महाविष के निकलने पर सभी दैत्य गण मूर्च्छित से होने लगे । किन्तु वे लोग समुद्र में छिप गये और रात्रि के समय ही बाहर निकलते थे । इस प्रकार प्रत्येक रात्रि में बाहर निकल कर तेजस्वी महर्षियों का वध करते, उनके यज्ञपात्र तोड़ते और दिन में समुद्र में छिप जाते थे ।२३-२६। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, कुबेर, वसुऔर इन्द्र आदि देवगण समुद्र के मध्य में उन्हें खोज नहीं सकते थे । अनन्तर मंत्र द्वारा शंकर ने कुछ विष का पान किया कि उसी क्षण मंत्र दग्ध हो गया और उन्हें नील कण्ठ होना पड़ा । कुछ समय में चेतना प्राप्त कर ब्रह्मा ने कहा—ईश्वर! यह तो महान् अनर्थ उपस्थित हुआ । इस समस्त जगत् में इस विष का पान करने वाला कोई नहीं है अतः देव वृन्द! दक्षिण दिशा में लङ्का के समीप महामुनि अगस्त्य रह रहे हैं । तुम लोग उन्हीं की शरण जावो, क्योंकि वे सर्वदा शरण देते रहे हैं । उनके ऐसा कहने पर देवों ने दक्षिण दिशा मे स्थित अगस्त्य आश्रम का प्रस्थान किया । देवों को वहाँ उपस्थित देख कर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ने हिमालय मेंजिस के द्वारा वह विष प्राप्त हुआ था । उसका ध्यान किया । उन्होंने देखा—हिमालय की चोटी और निकुञ्जों में वह विष संलग्न है । और उसका कुछ थोड़ा -सा शेष अंश वृक्षों आदि में संलग्न दिखायी दिया, जो धतूरा, मुचुकुन्द वृक्ष, कनेर, मदार की भूभि, जल और वायु में भी प्रविष्ट हो चुका था । उन्होंने उस विष को क्षण मात्र में ही पूर्ण कर संकुचित (अल्प मात्रा में) कर दिया । पाण्डव! हिमालय की उस दुष्ट वायु के चलने पर इस धरातल में मनुष्यों के अनेक भाँति के रोग उत्पन्न होते हैं और वह विष-प्रज्जलित वायु वृष संक्रान्तिसे आरम्भ होकर सिंह संक्रान्ति तक तीन मास चलती है और अन्त में शान्त हो जाती है, जिससे रोग दोष सभी शान्त हो जाते हैं ।२७-३६। पार्थ! पहले समय में इस जगत् के चिरकाल तक नीरोग और व्याधिहीन होने पर प्रजाओं की अत्यन्त वृद्धि हुई । मर्त्यलोक के इस प्रकार ऊपर हाथ

निरन्तरे मर्त्यलोके ऊर्ध्वबाहु प्रसारिणी । बलवान्धूमनिर्देशान्मृत्युर्भ्राम्यति मूर्तिमान् ।।३८
प्रजा व्यापादयन्कालादाजगाम महामुनेः । समीपं मूर्तिमान्क्रुद्धो मृत्युस्तेन निरीक्षितः ।।३९
भस्मीबभूव पश्चाच्च ब्रह्मणः सुखकारणात् । व्याधिवृन्दसमोपेतो मृत्युरन्यो विनिर्मितः ।।४०
तथान्यो दण्डकारण्ये श्वेतो नाम नृपोत्तमः । स्वमांसमश्नता तेन निर्वेदात्प्रार्थितो मुनिः ।।४१
भगवन्सर्वमेवान्यद्दत्तं राज्यमदान्मया । अन्नं जलं वा श्राद्धं वा न दत्तं पापबुद्धिना ।।४२
ततोऽगस्त्यः कारुणया रत्नैः श्राद्धमकल्पयन् । श्राद्धे निवृत्ते सहसा दिव्यदेहः श्रिया वृतः ।।४३
प्राप्तश्च परमंस्थानमगस्त्यर्षेः प्रसादतः । अथ विन्ध्यो महाशैलः सूर्यरोषाद्व्यवर्धत ।।४४
कस्मान्मेरुमिवासौ मां न करोति प्रदक्षिणम् । वर्द्धमानं तु तं दृष्ट्वा ततो देवाः सवासवाः ।।४५
एकीभूयाश्रमं गत्वा स्तुत्वा देवर्षिपुङ्गवम् । अगस्त्यमूचुर्भगवन्सूर्यमार्गनिरोधिनम् ।।४६
विन्ध्यं निवारय स्वैनं स्थितौ स्थापय पर्वतम् । अगस्त्योपि द्रुतं गत्वा प्राहेदं विन्ध्यपर्वतम् ।।४७
प्रस्थितं तीर्थयात्रायां विद्धि मामचलोत्तम ।स्थितौ च स्थीयतां तावद्यावदागमनं मम ।।४८
एवमुक्त्वा सम्प्रयातो नाद्यापि विनिवर्तते। दृश्यते भ्राजयन्नाशां दक्षिणां गगने ज्वलन् ।।४९
त्रैलोक्यवंद्यचरणो लोपामुद्रासहायवान् । लोपामुद्रापि तं प्राह देवर्षिं देवपूजितम् ।।५०
तत्राश्रमस्थलिकायामृतुकाले ह्युपस्थिते । भोक्तुमिच्छामि विषयांस्त्वया सह सुखैषिणी ।।५१
भवेद्यदि गृहं रम्यं [1]सर्वरत्नविभूषितम् । गजै रथैश्च सम्पूर्णं शयनैः प्रवरासनैः ।।५२

फैलाये बढ़ते समय सबल मृत्यु धूम की भाँति मूर्ति मती होकर प्रजाओं का विनाश करती समयानुसार महामुनि अगस्त्य के समीप आई। उन्होंने मूर्तिमान् मृत्यु को क्रुद्ध देखकर तुरन्त भस्मकर दिया किन्तु ब्रह्मा के सुखार्थ व्याधिवृन्द समेत एक अन्य मृत्यु की रचना की। एक बार दण्डकारण्य निवासी नृपोत्तम श्वेत ने, जो अपने मांस का भक्षण कर (प्रेत योनि का) जीवन व्यतीत कर रहा था, अत्यन्त दुःखी होकर मुनि अगस्त्य से प्रार्थना की—भगवन्?! राज्य मद में आकर पाप बुद्धि मैंने सब कुछ का दान किया किन्तु अन्न, जल और श्राद्ध दान नहीं किया (उसी का यह दुष् परिणाम प्राप्त हुआ है)। इसे सुनकर अगस्त्य ने करुणया रत्नों द्वारा उसका श्राद्ध सम्पन्न किया जिस से श्राद्ध सम्पन्न होते ही उसे दिव्य देह की प्राप्ति पूर्वक उत्तमलोक की प्राप्ति हुई। एक बार विन्ध्याचल सूर्य के (ऊपर क्रुद्ध होकर—क्यों ये मेरु का ही प्रदक्षिणा द्वारा सम्मान करते हैं—ऊपर (आकाश में) बढ़ने लगा। उसे बढ़ते देख कर इन्द्रादि—देव गण एक साथ देवर्षि अङ्गव अगस्त्य के आश्रम में जाकर उनकी स्तुति करने लगे—भगवान्! सूर्य मार्ग का अवरोध करने वाले इस विन्ध्य पर्वत को आप (ऊपर बढने से) रोकिये और यथा स्थान स्थित कीजिये। इसे सुनकर अगस्त्य ने शीघ्र वहाँ जाकर विन्ध्यपर्वत से कहा—अचलोत्तम! मैं तीर्थ यात्रा का प्रस्थान कर चुका हूँ, अतः जब तक मैं पुनः लौट न आऊँ तुम अपने यथा स्थान स्थित रहो।३७-४८। इतना कह कर वे चले गये और आज तक न लौटे। दक्षिण दिशा की ओर आकाश में प्रकाश पूर्ण सुशोभित दिखायी देते हैं।उसी भाँति लोपा मुद्रा ने उस आश्रम भूमि में ऋतु काल उपस्थित होने पर त्रैलोक्य वन्दनीय एवं देव पूजित देवर्षि अगस्त्य से कहा—मुने! मैं उस की लिप्सा से तुम्हारे साथ विषयों का उपभोग करना चाहती हूँ। अतः एक ऐसा उत्तम गृह होना चाहिए, जो समस्त रत्नो, गजों और रथों से परिपूर्ण, उत्तम शय्या,

---

१. सर्वरत्नसमन्वितम्।

दुकूलपट्टनेत्रैश्च विलासैर्ललितैर्मुने । त्वया सह समायोगं यास्येऽहं कुरु चिन्तितम् ॥५३
एतच्छ्रुत्वा मुनिर्हृष्टः प्राह्वयद्धनदं क्षणात् । कारयामासभवनं संपूर्णं रत्नराशिभिः ॥५४
तत्र रेमे स भगवानगस्त्यः स्वाश्रमे सुखम् । तस्यैवं चेष्टितस्यर्षेः प्रयच्छार्घ्यं युधिष्ठिर ॥५५
आस्तिक्यबुद्धया भक्त्या च धर्मं प्राप्स्यसि पाण्डव । कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने ॥५६
कन्यायां समनुप्राप्ते सूर्ये यः सन्निवर्तते । प्रत्यूषसमयेविद्वान्कुर्यादस्योदये निशि ॥५७
स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही । स्थापयेदव्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम् ॥५८
पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रेण संयुतम् । नानाभक्ष्यसमोपेतं सप्तधान्यसमन्वितम् ॥५९
काञ्चनं कारयित्वा तु यथाशक्त्या सुशोभनम् । पुरुषाकृतिं प्रशान्तं च जपमण्डलधारिणम् ॥६०
कमंडलुकरं शिष्यैर्मृगैश्च परिधारितम् । मृत्युघ्नं विषहन्तारं दर्भाक्षेष्टकरं मुनिम् ॥६१
तस्मिन्क्रमे समालग्नं चन्दनेन ततो न्यसेत् । स्नापितं चानुलिप्तं च चन्दनेन सुगन्धिना ॥६२
पूजितं चापि कुसुमैर्हृद्यैर्धूपैस्तु धूपितम् । ततश्चार्घ प्रदातव्यो यैर्द्रव्यैस्तानि मे शृणु ॥६३
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च कूष्माण्डैस्त्रपुपैरपि । कर्कोटकारवेल्लैश्च कर्चूरैर्बीजपूरकैः ॥६४
वृंताकैर्दाडिमैश्चैव नारङ्गैः कदलीफलैः । दूर्वांकुरैः कुशैः काशैः पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा ॥६५
नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च गोभिर्वस्त्रै रसैः शुभैः । विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे निधापितैः ॥६६
सौवर्णरौप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन च । मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां पृथिवीतले ॥६७

पहनने के यथेच्छ वस्त्र तथा ललित विलास के साधन रूप शृङ्गारादि की वस्तुओं से सुसज्जित हो। इसलिए मेरे उस संयोग सुखार्थ प्रायः इन सभी आवश्यकताओं को पूरी करने की कृपा करें। यह सुनकर मुनि अगस्त्य ने प्रसन्न होकर उसी क्षण कुबेर को बुलाकर उनके द्वारा सम्पूर्ण रत्नराशिपूर्ण गृह बनवाया। पश्चात् भगवान् अगस्त्य ने उस अपने आश्रम में सुखपूर्वक रमण किया। अतः युधिष्ठिर! इस प्रकार की चेष्टाओं से सुसम्पन्न करने वाले उन अगस्त्य ऋषि के लिए अर्घ्य प्रदान करो। क्योंकि भक्ति पूर्वक इस प्रकार की आस्तिक् बुद्धि रखने से तुम्हें धर्म की प्राप्ति होगी। पाण्डव! कन्या राशि पर सूर्य के आने के सात दिन पहले जो विद्वान् प्रातः काल सूर्योदय के साथ शुक्र तिल मिश्रित स्थान और श्वेत वस्त्र धारण कर एक वस्त्र रहित सुन्दर कलश, जो माला वस्त्र से विभूषित हो, पञ्चरत्न और घृतपूर्ण पात्र समेत स्थापित कर उसकी सविधि अर्चना करे। अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य, सप्त धान्य से उसे सुसम्मानित करके उन मुनिकी पुरुषाकार वाली सुवर्ण प्रतिमा स्थापित करे, जो यथाशक्ति सुवर्ण द्वारा रचित, सुशोभन, प्रशान्त, जय मण्डल धारण किये, हाथ में कमण्डलु, चारों ओर शिष्य और मृगों से घिरे हों। मृत्यु और विषके हन्ता, दर्भाक्ष और अभीष्ट प्रदायक उन मुनि के क्रमशः पूजन में सर्वप्रथम उन्हें चन्दन पर प्रतिष्ठित करके स्नान कराये और सुगन्ध पूर्ण चन्दन का लेपन करे।४९-६२। अनन्तर मनोरम पुष्प और उत्तम धूप से पूजन करने के उपरान्त जिस प्रकार का अर्घ्य उन्हें प्रदान करना चाहिए मैं बता रहा हूँ, सुनो! खजूर, कुम्हड़ा, बेल, करेला, कचूर, वृन्ताक—, अनार, नारंगी, केला, दूर्वाङ्कुर, कुश, काश कमल, नील-कमल, अनेक भाँति के भक्ष्य,गौ उत्तम वस्त्र सप्त धान्य की हरियाली को सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा वाँस के पात्र में रख कर जानु (घुटने) के बल पृथिवी में आसन पर बैठे हुए उस पात्र को अपने शिर

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा ह्यर्घ्यपाद्यादिकं च यत् । शीलेन चेतसा भक्त्या दद्यात्कौरवनन्दन ।।६८
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुंभयोने नमोऽस्तु ते ।।६९
विंध्यवृद्धिक्षयकर मेषतोयविषापह । रक्तो बल्लभदेवर्षे लङ्कावास नमोऽस्तु ते ।।७०
वातापिर्भक्षितो येन समुद्राः शोषिताः पुरा । लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमोऽस्तु ते ।।७१
येनोदितेन पापानि प्रलयं यांति व्याधयः । तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणे ।।
ब्राह्मणो वेदऋचया दद्यादर्घ्यं नमोऽस्तु ते ।।७२

"अगस्त्यः खनमानश्च नित्यं प्राजापत्यं बलिभिच्छमानः ।
उभौ वर्णौ वृष्टचनुग्रहार्थमनुपोष सत्यादेष्वशिखो जगाम"।।

दत्त्वैवमर्घ्यं कौंतेय प्रतिपूज्य च पुष्पकैः । विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् ।।७३
दैवज्ञव्यासरूपाय वेदवेदांगवादिने । एवं यः कुरुते भक्त्या ह्यगस्त्यप्रतिपूजनम् ।।
फलमेकं तथा धान्यं कोपं वासं परित्यजेत् ।।७४
सम्पूर्णे च ततो वर्षे पुनरन्यदुपक्रमेत् । दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पांडव ।।
पुमान्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ।।७५
ब्राह्मणश्चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रविशारदः । क्षत्रियः पृथिवीं सर्वां प्राप्नोत्यर्णवमेखलाम् ।।७६
वैश्योऽप्यायुष्यमाप्नोति गोधनं चापि नंदति । शूद्राणां धनमारोग्यं सन्मानश्चाधिको भवेत् ।।७७
स्त्रीणां पुत्राः प्रजायंते सौभाग्यं वृद्धिऋद्धिमत् । विधवानां महापुण्यं वर्धते पांडुनन्दन ।।७८

से लगाये, दक्षिणाभिमुख, प्रसन्नचित्त एवं भक्ति पूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान करे—कौरवनन्दन! पुनः उनकी इस प्रकार क्षमा याचना करे—काश पुष्प के समान (श्वेत रूप), अग्नि और वायु से उत्पन्न एवं मित्रा वरुण के पुत्र कुम्भ योनि अगस्त्य को नमस्कार है। विन्ध्यपर्वत की वृद्धि की क्षय, भेंड़ा, जल और विष के अपहारी, रक्तवर्ण वल्लभ देवर्षि एवं उन लंकावासी मुनि को नमस्कार है। वातापी का भक्षण और समुद्र शोषण करने वाले उदय होने पर समस्त पाप अनेक भाँति की व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, शिष्य और सुपुत्र समेत उन अगस्त्य ऋषि को नमस्कार है।६३-७२। वेद की ऋचा द्वारा ब्रह्मा को अर्घ्य प्रदान करने वाले ऋषि को नमस्कार है। आकाश में स्थित, नित्य प्राजापत्य बलिके इच्छुक, वृष्टि के हेतु दो भाँति के वर्ण अगस्त्य ने शिखाहीन ही यात्रा की। कौंतेय! इस भाँति उन्हें अर्घ्य, पुष्पों से पूजित और विसर्जन करके वह प्रतिमा आदि किसी ज्योतिषी, व्यास रूप एवं वेद-वेदाङ्ग वेत्ता, विद्वान ब्राह्मण को अर्पित करे। इस भाँति भक्तिपूर्वक अगस्त्य की पूजा करने वाले को एक फल, एक अन्न और क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए तथा वर्ष की समाप्ति होने पर पुनः आरम्भ करना चाहिए। पाण्डव! इस प्रकार सात वर्ष तक इसी क्रम से अर्घ्य प्रदान करने वाले पुरुष को जिस फल की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो! ब्राह्मण चोरों वेद सहित सम्पूर्ण शास्त्रों का मर्मज्ञ विद्वान् होता है। क्षत्रिय को समुद्र से घिरी हुई समस्त पृथिवी प्राप्तिपूर्वक प्राप्त होता है। तथा शूद्रों को धन, आरोग्य और अधिक सम्मान प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्त्रियों को अनेक पुत्र, भक्ति-वृद्धि समेत सौभाग्य प्राप्त होता है। पाण्डुनन्दन!

कन्या भर्तारमाप्नोति व्याधेर्मुच्येत दुःखितः ॥७९
येषु देशेष्वगस्त्यर्षेः पूजनं क्रियते जनैः । तेषु देशेषु पर्जन्यः कामवर्षी प्रजायते ॥८०
ईतयः प्रशमं यान्ति नश्यन्ति व्याधयस्तथा । पठंति ये त्वगस्त्यर्षेः ख्यानं शृण्वंति चापरे ॥८१
ते सर्वे पापनिर्मुक्ताश्चिरं स्थित्वा महीतले । हंसयुक्तविमानेन स्वर्गं यान्ति नरोत्तम ॥८२

मर्त्यो यदीच्छति गृहं परमर्द्धियुक्तं भोगं शरीरमरुजं पशुपुत्रपुष्टिम् ।
तत्सर्ववल्लभमुनेरुदये महार्घ्यं यच्छेन्महार्घफलवस्त्रधनैः सहान्यैः ॥८३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अगस्त्यार्घविधिव्रतवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११८

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ पार्थिव दिव्यस्त्रीमुखपङ्कजसेंदवे । शृणुष्वाभिनवस्येंदोरुदयेऽर्घ्यविधिं परम् ॥१
रविर्द्वादशभिर्भागैर्वारुण्या दृश्यते यदि । प्रदोषसमये पार्थ अर्घ्यं दद्यात्तदा विभो ॥२
द्वितीयायां सिते पक्षे संध्याकाले ह्युपस्थिते । संस्थाप्याभिनवं चन्द्रं स भूम्यां दृश्यते यदि ॥३

इसके द्वारा विधवाओं को महान् पुण्यफल, कन्या को सुहाग पति और रोगी रोगमुक्त होता है ।७३-७८। जिस-जिस देशों के निवासी अगस्त्य ऋषि की सप्रेम अर्चना करते हैं, उन उन देशों में मेघवृन्द वहाँ की प्रजाओं के अनुकूल वर्षा करते हैं । नरोत्तम! अगस्त्य ऋषि इस आख्यान को पढने और सुनने वाले भी पाप मुक्त होकर इस भूतल में चिरकाल तक स्थायी रहते हैं और देहावसान के समय हंस युक्त विमान द्वारा स्वर्ग की यात्रा करते हैं । इस प्रकार उत्तम सिद्धि सम्पन्न गृह, उत्तम भोग, नीरोग शरीर और पशु तथा पुत्रों की पुष्टि चाहने वाले मनुष्यों को वल्लभ मुनि अगस्त्य के उदय होने पर पूर्वोत्तर विधान द्वारा उत्तम फल वस्त्र आदि का अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।७९-८३।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
अगस्त्यार्घ्य विधि और व्रत वर्णन नामक एक सौ अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।११८।

अध्याय ११९

अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—पार्थ! नवीनचन्द्र (द्वितीया के दिन) उदय होने पर पार्थिव शरीर वाली दिव्य सभी के मुख कमल समेत चन्द्रमा को दिये जाने वाले अर्घ्य विधान सुनो! सूर्य केअपने द्वादश भागों समेत पश्चिम दिशा में दिखायी पड़ने पर उस प्रदोष काल में उन्हें अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । शुक्ल पक्ष की द्वितीया के सायं काल चन्द्रमा के भूमि दर्शन होने पर नवीन चन्द्र का स्थापन कर गोमय (गोबर) से

गोमयं मण्डलं कृत्वा चन्दनेन सुशोभितम् । रोहिण्या सहितं देवं कुमुदामोदसंभवम् ॥४
पुष्पचन्दन धूपैश्च दीपाक्षतजलैः शुभैः । दूर्वांकुरै रत्नवरैर्दध्ना वस्त्रैश्च पाण्डुरैः ॥५
मंत्रेणानेन राजेन्द्र क्षत्रियः सपुरोहितः । नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥
आप्यायस्व समेत्वेदं सोमराज नमोनमः ॥६
अनेन विधिनाचार्यं सर्वकामफलप्रदम् । यः प्रयच्छति कौंतेय मासिमासि समाहितः ॥७
स कीर्त्या यशसा कांत्या धन्यश्च भुवि मानवः । पुत्रपौत्रैः परिवृतो गोधान्यधनसंकुलः ॥८
स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये ततः सोमपुरं व्रजेत् । तत्रास्ते दिव्यवपुषा भोगान्भुञ्जन्नृपोत्तम ॥
वरस्त्रीभिः सहात्यर्थं यावदाभूतसंप्लवम् ॥९

धर्मं समृद्धिमतुलां यदि वाञ्छसि त्वं मासानुमासमिह मद्वचनं कुरुष्व ।
सोमस्य सोमकुलनन्दनधूपपुष्पैरर्घ्यं प्रयच्छ नतजानु नवोदितस्य ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अभिनवचंद्रार्घ्यव्रतवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।११९।

मण्डलाकार (गोल) लिये और चन्दन से सुशोभित करे। पश्चात् रोहिणी समेत चन्द्रदेव को वहाँ प्रतिष्ठित कर जो, कुमुद के आमोद द्वारा उत्पन्न हुए हैं, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप शुभ अक्षत जल, दूर्वाङ्कुर, उत्तम रत्न, दही एवं पाण्डुरंग वस्त्र द्वारा उनकी सविधि अर्चना करे और निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करता रहे—राजेन्द्र! पुरोहित समेत वह क्षत्रिय सोमराज! आप प्रति मास के अन्त में बार-बार नवीन होते रहते हैं उसी भाँति मेरी भी वृद्धि करने की कृपा कीजिये, मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ ।१-६। कौंतेय! इस विधान द्वारा जो प्रतिमास एकाग्रचित्त से समस्त कामनाओं के पूरक आचार्य को प्रदान करता रहता है, वह मनुष्य इस भूतल में कीर्ति, यश कांति की प्राप्ति पूर्वक धन्य होकर पुत्र-पौत्र गौ, धन, धान्य का सुखानुभव करके सौ वर्ष तक इस लोक में प्रतिष्ठित रहता है और देहावसान के समय चन्द्र लोक की प्राप्ति करता है। नृपोत्तम! वहाँ पहुँचने पर उसे दिव्याङ्गनाओं के साथ अपनी दिव्य शरीर द्वारा महाप्रलय काल तक सुखोपभोग प्राप्त होता है। सोमकुल नन्दन! यदि तुम्हें धार्मिक अतुल सम्पत्ति की चाह हो तो मेरी बातें स्वीकार करो—भूमि में घुटने के बल बैठकर पूर्वोक्त विधान द्वारा धूप-पुष्प मिश्रित का अर्घ्य उन नवोदय चन्द्र को सप्रेम प्रदान करो ।७-१०।

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
अभिनव चन्द्रार्घ्य व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।११९।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुक्रबृहस्पत्यर्घपूजाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः शृणु भूपाल प्रतिशुक्रप्रशांतये । यात्रारंभे प्रयाणे च तथा शुक्रोदयेष्विह ।।१
शुक्रपूजा प्रकर्तव्यां तां निशामय सारतः । राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः ।।२
शुक्लपुष्पांबरयुते सिततण्डुलपूरिते । निधाय राजतं शुक्रं शुचि मुक्ताफलान्वितम् ।।३
सह तेन सवत्साङ्गं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन ।।
कवे सर्वार्थसिद्धयर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।।४
दत्त्वैवमर्घ्यं कौन्तेय प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।५
यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा सोहालकैः शुभैः । वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि ।।
तावन्न दानं दातव्यं स्त्रीभिः कामार्थसिद्धये ।।६
एवं तस्योदये कुर्वन्यात्रादिषु च भारत । सर्वसस्यागमं चैव सर्वान्मानामवाप्नुयात् ।।७
तद्वद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर । सौवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ।।
पीतपुष्पांबरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः ।।८
पालाशाश्वत्थभङ्गेन पञ्चगव्यजलेन च । पीताङ्गरागवसनं घृतहोमं तु कारयेत् ।।९

अथ अध्याय १२०

शुक्र और बृहस्पति की अर्घ्यपूजा-विधि

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल! तुम्हें शुक्र शांति का विधान बता रहा हूँ, सुनो! यात्रा के आरम्भ अथवा प्रस्थान के समय और शुक्रोदय में जिस प्रकार शुक्र की अर्चना की जाती है उसका सार बता रहा हूँ । चाँदी, सुवर्ण, या काँसे के पात्र में शुक्र की चाँदी की प्रतिमा पवित्र मोतियों समेत स्थापित एवं पूजित कर सवत्सा गौ के साथ उसे ब्राह्मण को अर्पित करें और अर्घ्यदान के समय क्षमा प्रार्थना करे—समस्त देवों के स्वामी भृगुनन्दन को नमस्कार है । कवे! मेरी कामनाओं को सफल करते हुए इस अर्घ्य को स्वीकार करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ । कौंतेय! इस प्रकार अर्घ्य प्रदान करने के अनन्तर नमस्कार करते हुए विसर्जन करे ।१-५। कामनाओं की सफलता के लिए शृंगार करके वड़ा और पूरी द्वारा शुक्र की पूजा किये विना स्त्रियों को अन्नदान न करना चाहिए । भारत! इस प्रकार शुक्रोदय के समय यात्रादिकाल में उनकी अर्चना करने पर समस्त धान्य की प्राप्ति पूर्वक सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।६-७। युधिष्ठिर! इसी भाँति बृहस्पति की पूजा बता रहा हूँ। सुवर्ण के पात्र में देवराज के पुरोहित बृहस्पतिकी सुवर्ण प्रतिमा पीतपुष्प और पीतवस्त्र से भूषित करके राई, पलाश, पीपल, भङ्ग तथा पञ्च गव्य-जल से स्नान कराये और पीताङ्गराग एवं पीतवस्त्र अर्पित कर घृत की आहुति प्रदान करे। पश्चात्

प्रणम्य च गवा सार्द्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१०
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पतेथ बृहस्पते । क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय भवस्व नः ॥११
एवं सुरगुरुं पूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् । संक्रातावुदये चास्ते सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१२
अथ वा मौक्तिकान्येव सुवृत्तानि बृहंति च । भार्गवांगिरसौ चिंत्य तान्येव प्रतिपादयेत् ॥१३
भक्त्या मौक्तिकदानेन दत्तेन कुरुनन्दन । विरूपता दृशोः पुंसां यात्रास्वभ्युदयेषु च ॥
कुर्वन्बृहस्पतेः पूजां न कदाचित्प्रजायते ॥१४

ये भार्गवोदयमवाप्य सवस्त्रपुष्पां कुर्वंत्यनन्यमनसोऽङ्गिरसे च पूजाम् ।
तेषां गृहे प्रविशतां प्रतिशुक्रजातं विघ्नं न संभवति भारत पुण्यभाजाम् ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शुक्रबृहस्पत्यर्घपूजाविधानं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२०

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपञ्चाशीतिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि पञ्चाशीतिव्रतानि च । नोक्तानि यानि कस्यापि मुनिभिर्धर्मदर्शिभिः ॥१
भविष्यमत्स्यमार्तंडपुराणेषु च वर्णितम् । वाराहं चैव संगृह्य कथ्यन्ते तानि पाण्डव ॥२

प्रणाम पूर्वक गोदान समेत वह प्रतिमा आदि ब्राह्मण को समर्पित कर क्षमा याचना करे—अंगिरागोत्र वालो के स्वामी एवं वाक्यपति बृहस्पति को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, मेरी क्रूर ग्रह-जनित बाधा शान्ति करें। इस प्रकार संक्रान्ति में बृहस्पति देव की अर्चा और नमस्कार पूर्वक क्षमा याचना करने वाले की सभी कामनाएँ सफल होती हैं। कुरुनन्दन! शुक्र अथवा बृहस्पति को सुन्दर मोतियों द्वारा प्रार्थना समेत सुसम्मानित करे। क्योंकि भक्तिपूर्वक मौक्तिकदान या अर्पण यात्रा और अभ्युदय के समय करने पर कभी-भी किसी प्रकार का अङ्गविकार नहीं होता है। भारत! शुक्रोदय के समय वस्त्र-पुष्प से भूषित बृहस्पति की अर्चना करने वाले उस अनन्य भक्त एवं पुण्य भाजन के गृह अनिष्ट शुक्र के आगमन होने पर उसे किसी भाँति की बाधा नहीं होती है।८-१५

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
शुक्र बृहस्पति की अर्घ्य पूजा व्रत वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२०।

अध्याय १२१

पचासीव्रतों का वर्णन

श्री कृष्ण बोले—भारत! मैं तुम्हें पचासी व्रत बता रहा हूँ, जिन्हें धर्मदर्शी मुनियों ने कभी किसी को बताया ही नहीं है! पाण्डव! जिसकी चर्चा मैं तुमसे कर रहा हूँ भविष्य, मत्स्य, मार्तण्ड और वाराह

यदभीष्टं सुमित्राय शिष्याय च सुताय च । न कथ्यते धर्मजातं किं तेनोदरवर्तिना ॥३
श्रुतिस्मृतिपुराणेभ्यो यन्मया ह्यवधारितम् । तत्ते वच्मि कुरुश्रेष्ठ कस्यान्यस्योपदिश्यते ॥४
स्नात्वा प्रभातसंध्यायामुपगृह्य च पिप्पलम् । तिलपात्राणि यो दद्यान्न स शोचेत तत्कृते ॥५
व्रतानामुत्तमं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् । पात्रव्रतमितिख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥६
सुशुद्धस्य सुवर्णस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रीत्या पीतयुगान्वितम् ॥७
व्रतं वाचस्पतेरेतद्बलबुद्धिप्रदायकम् । वृत्रघ्नस्य पुराख्यातं गुरुणा सर्वकामदम् ॥८
लवणं कटुतिक्तं च जीरकं मरिचानि च । हिंगुशुण्ठिसमायुक्तं सर्वं परिचयं तथा ॥९
चतुर्थ्यामेकभक्ताशी सकृद्दत्त्वा कुटुम्बिने । गृहेषु सप्तसु सदा शिलायुक्तानि भारत ॥१०
एतच्छिलाव्रतं नाम लक्ष्मीलोकप्रदायकम् । कर्तव्यमिह यत्नेन मुखपाटवकारकम् ॥११
नक्तमदं चरित्वा तु गवा सार्द्धं कुटुंबिने । हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विप्राय वाससी ॥१२
प्रणम्य भक्त्या देवेशौ प्रीयेतां शिवकेशवौ । एतदेवव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥१३
कृत्वैकभुक्तं वर्षांते शक्त्या हैमवृषान्विताम् । धेनुं तिलमयीं दद्यात्सर्वोपस्करणैर्युताम् ॥१४
एतद्रुद्रव्रतं नाम पापशोकप्रणाशनम् । यः करोति पुमान्राजान्स पदं याति शाङ्करम् ॥१५
सर्वोषध्युदकस्नातः पञ्चम्यां पूज्य पञ्चकम् । सप्तोपस्करदानं च यः करोति गृहाश्रमी ॥१६
गृहाद्युलूखलं शूर्पः शिला स्थाली च पञ्चमी । उदकुम्भश्च चुल्ली च एतेषामनुकिञ्चन ॥१७

पुराणों में उसकी रुचि विस्तृत व्याख्या हुई है, उसका संकलन ही कह रहा हूँ । और सुमित्र, शिष्य एवं पुत्र की अभीष्ट बातें उनसे न कही जाये तो उसे न कहने वाले उदरकर (पेटू) से लाभ ही क्या हो सकता है । कुरुश्रेष्ठ! अतः श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों से इस विषय का जो ज्ञान मैंने प्राप्त किया है वह तुम्हें बता रहा हूँ, उसका उपदेश और किसे दे सकता हूँ! प्रातः काल संध्या (सूर्योदय) के समय स्नान करके पीपल वृक्ष के समीप तिलपात्र का दान करने वाला पुरुष कभी चिन्तित नहीं होता है । समस्त व्रतों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण पाप नाशक यह व्रत पात्रव्रत नाम से विख्यात है मैंने इसे किसी को नहीं बताया है ।१-६। ब्राह्मण के बताये हुए किसी पुण्य दिवस में शुद्ध आचार विचारवाले ब्राह्मण को पीतयुग समेत सुवर्ण का दान सप्रेम देना चाहिए । बल-बुद्धि प्रदायक वह व्रत वाचस्पति का बताया गया है । गुरु बृहस्पति ने वृत्तासुर के हन्ता इन्द्र को यह व्रत बताया था जिससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । भारत! लवण (नमक), कटु तिक्त, जीरा, मरिच, हींग, सोंठी, का शिला (सिल-वहा) समेत दान चौथ के दिन एकाहारी रह कर दूसरे दिन सात घरों में परिवार वाले को देना चाहिए । लक्ष्मी प्रदायक यह व्रत शिलाव्रत के नाम से ख्यात है । मुख पटु (चतुर) होने के निमित्त नक्तभोजी होकर सुवर्ण का चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्र भक्ति-नमस्कार पूर्वक शिव और केशव देव को अर्पित करे । पुनः वर्ष के अन्त में इस महाघातक व्रत के अनुष्ठान में एकाहारी रह कर यथाशक्ति सुवर्ण की बनी हुई बैल की प्रतिमा और तिलमयी धेनु समस्त साधनों समेत ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए । राजन्! पाप-शोक नाशक इस रुद्रव्रत को सुसम्पन्नकरने पर शिवलोक शीघ्र प्राप्त होता है ।७-१५। पञ्चमी के दिन सम्पूर्ण दिन सम्पूर्ण औषध मिश्रित जल से स्नान और पाँचों देवो की पूजा करके गृह, ओखली, सूप, सिल-बट्टा, बटलोई, घड़ा,

एतानि गृहिणां गेहे प्रस्थाप्य पुरुषोत्तमम् । उपस्करोति या नारी न सीदति कदाचन ।।१८
एतद्गृहव्रतं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम् । अत्रिणा ह्यनसूयायाः कथितं पाण्डुनन्दन ।।१९
यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम् । ददाति श्रद्धयोपेतो ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।२०
स वैष्णवं पदं याति लीलाव्रतमिदं स्मृतम् । आषाढादिचतुर्मासमभ्यंगं वर्जयेन्नरः ।।२१
पारिते च पुनर्दद्यात्तिलतैलघटं नवम्। भोजनं पायसाज्यं च स याति भवनं हरेः ।।२२
लोकप्रीतिकरं चैतत्प्रीतिव्रतमिहोच्यते । वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् ।।२३
दद्याद्वस्त्रयुगं सूक्ष्मं रसपात्रैश्च संयुतम् । संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति ।।२४
एतद्गौरीव्रतं नाम भवानीलोकदायकम् । पुरुषो यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः ।।२५
संवत्सरांते तस्मिन्वा दिवसे विघ्नवर्जितम् । अशोककाञ्चनं दद्यात्सद्वस्त्रयुगसंश्रितम् ।।२६
विप्राय वसुसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति । कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात्पुनर्नृप ।।२७
एतत्कामव्रतं नाम सर्वशोकविनाशनम् । आषाढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नखकर्तनम् ।।२८
वृंताकभक्षणं चैव मधुसर्पिर्घटान्वितम् । कार्तिक्यां तु पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।२९
रुद्रलोकनवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् । एवं पञ्चदशीं स्मृत्वा एकभक्तेन मानवः ।।३०
सम्पूज्य पूर्णिमां देवीं लिखित्वा चन्दनादिना । ततः पञ्च घटान्पूर्णान्पयोदधिघृतेन च ।।
मधुना सितखण्डेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।३१

और चूल्हे इन सात वस्तु का दान भगवान् पुरुषोत्तम की चर्चा पूर्वक करने पर कोई भी गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी दुःखी नही होता है। पाण्डुनन्दन! समस्त सुखदायक यह गृहव्रत अत्रि ने अनसुइया से कहा था। श्रद्धा समेत सुवर्ण का नीलोत्पल शक्करपात्र समेत किसी कुटुम्ब ब्राह्मण को प्रदान करना पर उसे वैष्णव लोक प्राप्त होता है और इसे लीलाव्रत कहा गया है। आषाढ़ आदि चौमासे में अभ्यङ्ग का त्याग कर पुनः चौमासे मे अन्त में तिल, तेल, नवीन, घट, घृतपूर्ण पायस भोजन ब्राह्मण को अर्पित करने पर विष्णु भवन प्राप्त होता है। लोक प्रीति करने के नाते इसे प्रीतिव्रत कहा गया है। मधु (चैत) मास में दही, क्षीर, घृत और गुड़ के त्याग पूर्वक सूक्ष्म रसपात्र समेत चार वस्त्र का दान ब्राह्मण दम्पति को पूजनोपरांत प्रदान करते समय 'गौरी प्रसन्न हों, कहे। भवानीलोकदायक इस व्रत को गौरी व्रत कहा गया है। त्रयोदशी के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में त्रयोदशी के दिन चार वस्त्र समेत अशोक की कांचनी प्रतिमा द्रव्य समेत ब्राह्मण को प्रदान करते समय 'प्रद्युम्न प्रसन्न हों' कहे। नृप! इस भाँति इसे सुसम्पन्न करने पर कल्प पर्यंत विष्णुलोक का सुखानुभव करके शोकहीन मानव होता है। समस्त शोक विनाशक होने के नाते इसे काम व्रत कहा गया है। आषाढ़ आदि चौमासे में नख न कटाये एवं वृंत्ताक भक्षण करे। कार्तिक में पुनः अन्त में सुवर्ण कलश को अर्पित करनेपर रुद्रलोक की प्राप्ति होती है और इसे शिवव्रत कहा गया है।१६-२९½। इसी प्रकार पूर्णिमा के दिन एकाहारी रहकर चन्दन आदि से पूर्णिमा देवी की रचना करके पूजा करने के उपरांत दूध, दही, घी, शहद, और मिश्री वा शक्कर के पूर्ण घट ब्राह्मण को सादर समर्पित करे और पुनः क्षमा प्रार्थना करे—'इन पाँच कलशों के प्रदान करने से जीवों की तुष्टि होती है मेरी भी उसी प्रकार तुष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार ब्राह्मणों के नमस्कार करने से उसके सभी

मनोरथान्पूरयस्व संपूर्णान्पूर्णिमा ह्यसि । पञ्चकुम्भप्रदानेन भूतानां तुष्टिरस्तु मे ॥
द्विजानेवं नमस्कृत्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३२
एतत्पञ्चघटं नाम व्रतं पुष्टिप्रदायकम् । वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमंतशिशिरावृतम् ॥३३
पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्याथ काञ्चनम् । दद्याद्वै कालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥३४
शिरःसौगन्ध्यजननं सदानन्दकरं नृणाम् । कृत्वा परपदं याति सौगन्ध्यव्रतमुत्तमम् ॥३५
फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् । समाप्ते शयनं दद्याद्गृहे चोपस्करान्वितम् ॥३६
सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति । गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुत्तमम् ॥३७
सन्ध्यामौनं नरः कृत्वा समाप्ते घृतकुम्भदः । वस्त्रयुग्मं च घंटां च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३८
सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्ति दुर्लभम् । एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम् ॥३९
लक्ष्मीमध्येऽथ पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः । समाप्ते हेमकमलं दद्याद्धेनुसमन्वितम् ॥४०
स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीः स्याज्जन्मजन्मनि । एतल्लक्ष्मीव्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥४१
या तु नारी पिबेत्तोयं जलधारां प्रपातयेत् । समाप्तघृतसंपूर्णां दद्याद्द्वंतिकां नवाम् ॥४२
एतद्धाराव्रतं नाम सर्वरोगहरं परम् । कांतिसौभाग्यजननं सपत्नीदर्पनाशनम् ॥४३
गौरीसमन्वितं रुद्रं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् । राज्ञीसमन्वितं सूर्यं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि ॥४४
धूपाक्षेपेण सहितां सुघण्टां पात्रसंयुताम् । यो ददाति द्विजेन्द्राणां पुष्पैरभ्यर्च्य पाण्डुरैः ॥४५

मनोरथ सफल होते हैं । तथा पुष्टिप्रदायक इस व्रत को पंच घट व्रत कहा जाता है । हेमन्त और शिशिर के मासों में पुरुषों के त्याग कर फालुन की पूर्णिमा मे दिन तीन पुष्पों की यथाशक्ति काञ्चनी प्रतिमा बनवाकर संध्या समय शिव-केशव प्रसन्न हों, कहते हुए ब्राह्मण को अर्पित करे । इसे सुसम्पन्न करने पर शिर-सुगन्धि एवं आनन्द प्राप्ति समेत उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । और इसे सौगन्ध व्रत कहा जाता है ।३०-३५। फालुनमास के आरम्भ में तृतीया के दिन लवण (नमक) के त्याग करते हुए व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण दम्पती की अर्चना पूर्वक साधन सम्पन्न सुशय्या प्रदान करते समय 'भवानी प्रसन्न हों' कहे । पुनः इस सौभाग्य व्रत को सुसम्पन्न करने के नाते उसे कल्प पर्यंत गौरी लोक का निवास प्राप्त होता है । सायं काल में मौन व्रत रहते हुए समाप्ति के समय घृत पूर्ण कुम्भ दो वस्त्र और घंटा ब्राह्मण को अर्पित करने पर सारस्वत पद की प्राप्ति होती है जहाँ पहुँचने पर फिर लौटना दुर्लभ हो जाता है । इसी लिए रूप और विद्या प्रदान करने के नाते इसे सारस्वत व्रत कहा जाता है । पञ्चमी के दिन उपवास पूर्वक मध्य काल लक्ष्मी की अर्चना करते हुए समाप्ति के समय धेनु समेत सुवर्ण की लक्ष्मी प्रतिमा प्रदान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, और प्रत्येक जन्म में लक्ष्मी का अचल निवास होता है अतः इस दुःख शोक विनाशक व्रत को लक्ष्मी व्रत कहा जाता है । जलाहार और जलधारा प्रपात करते (गिराते) हुए व्रत समाप्ति के दिन घृत पूर्ण नवीन द्वन्तिका प्रदान करनी चाहिए ।३६-४२। इस प्रकार इस सर्वरोगापहारी धाराव्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री को कांति, सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक उसकी सपत्नी का दर्पनाश होता है । गौरी शिव, लक्ष्मी जनार्दन, और राज्ञी सूर्य की यथा विधान प्रतिष्ठा पूजा करके पात्र समेत सुघंटा पीत पुष्पों द्वारा ब्राह्मण की अर्चनोपरांत उन्हें अर्पित कर दक्षिणा प्रदान, और प्रणाम

दक्षिणासहितां कृत्वा प्रणम्य च विसर्जयेत् । एतद्देवव्रतं नाम दिव्यदेहप्रदायकम् ।।४६
कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च । यावद्व्रतं समाप्यैतद्धेनुं च सजलान्विताम् ।।४७
जन्मायुतं स राजा स्यात्ततः शिवपुरे वसेत् । एतच्छ्रुत्वा व्रतं नाम बहुकल्याणकारकम् ।।४८
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैव च वाग्यतः । एकभुक्तं नरः कुर्यादष्ट चैकं विमत्सरः ।।४९
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्य धेनुत्रयान्वितम् । वृक्षं हिरण्मयं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।५०
दिवि दिव्यविमानस्थः सेव्यतेऽप्सरसां गणैः । एतत्कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ।।५१
घृतेन स्नपनं कृत्वा शम्भोर्वा केशवस्य च । ब्रह्मणो भास्करस्यापि गौर्या लंबोदरस्य वा ।।५२
अक्षतैस्तु समं कुर्यात्पद्मं गोमयमण्डले । समाप्य हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितम् ।।५३
शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते । सामगाय नतश्चैतत्सामव्रतमिहोच्यते ।।५४
नवम्यामेकभुक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः । भोजयित्वा समादद्याद्धैमकञ्चुकवाससी ।।५५
हैमं च सिंहं विप्राय दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् । भवार्बुदं सुरूपश्च शत्रुभिश्चापराजितः ।।५६
एतद्वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम् । यावत्समारभेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः ।।५७
समाप्ते श्रद्धया दद्याद्गाश्च पञ्च पयस्विनीः । वासांसि च पिशंगानि जलकुंभयुतानि च ।।५८
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम् । कल्पान्ते राजराजः स्यात्पितृव्रतमिदं स्मृतम् ।।५९
तांबूलं समये नित्यं गौरीपुत्रं ददाति या । पूगचूर्णसमायुक्तं नारी वा पुरुषोऽपि वा ।।६०

पूर्वक विसर्जन करें । दिव्य देहप्रदायक इस व्रत को देवव्रत कहा जाता है । शिव और केशव (विष्णु) को लेपन भूषित करते हुए व्रत की समाप्ति में जल समेत धेनु दान करने से दश सहस्र जन्म पर्यंत राजा होता है और देहावसान होने पर शिव पुरी में निवास प्राप्त होता है इसलिए यह बहुकल्याणकारक व्रत कहा जाता है । पीपल के वृक्ष, सूर्य और गङ्गा को मौन व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण दम्पती की अर्चना पूर्वक उन्हें तीन धेनु समेत सुवर्ण का वृक्ष प्रदान करने पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है और अन्त में स्वर्ग में दिव्य विमान पर बैठे अप्सरागणों से सुसेवित होता है । ऐश्वर्य और कीर्ति प्रदान करने के कारण इसे कीर्तिव्रत कहा जाता है । शिव, विष्णु, सूर्य, गौरी और लम्बोदर (गणेश) को गोमय (गोबर) से लिपी हुई गोलाकार भूमि में, जिसमें अक्षत द्वारा समभाग का सुन्दर कमल बना हो, घृत से स्नान और पूजा करते हुए अंगुल का सुवर्ण कमल प्रदान करने पर शिव लोक की प्राप्ति होती है । सामवेद के गायन करने वाले इसे सामव्रत कहते हैं ।४३-५४। नवमी के दिन एकाहारी रह कर कन्या को यथाशक्ति भोजन कराये और सुवर्ण भूषित कंचुकी (चोली) और साड़ी अर्पित करे । व्रत की समाप्ति में सुवर्ण की सिंह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करने पर शिव पुरी प्राप्त होती है और दशकरोड़ जन्म पर्यंत सुखवान एवं शत्रु का अजेय होता है । इसे वीर व्रत कहा जाता है इससे नारियों को अत्यन्त सुख प्राप्त होता है । जो पूर्णिमा के दिन पयोव्रत आरम्भ कर व्रत की समाप्ति के दिन श्रद्धा समेत धेनु, पीताम्बर, तथा जलपूर्ण कलश प्रदान करता है, वह अपने सौ पीढ़ी के पितरों को स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराते हुए स्वयं कल्प के अन्त में राजाधिराज (महाराज) होता है और इसे पितृव्रत कहते हैं । सुसज्जित ताम्बूल (पान का बीड़ा) गौरी पुत्र गणेश को नित्य अर्पित करते हुए वर्ष के अन्त में तृतीया के दिन सुवर्ण का ताम्बूल, जो मोती

वर्षस्यान्ते तु सौवर्णं कारयित्वा फलान्वितम् । मुक्ताफलमयं चूर्णत्रितयं[1] या प्रयच्छति ।।६१
न सा प्राप्नोति दौर्भाग्यं न दौर्गन्ध्यं मुखस्य च । एतत्पत्रव्रतं नाम सौगन्ध्यजननं परम् ।।६२
चैत्रादिचतुरो मासाञ्जलं कुर्यादयाचितम् । ज्येष्ठाषाढे च वा मासं पक्षं वा पाण्डुनन्दन ।।६३
व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम् । घृतेन सहितं तद्वत्सप्तधान्यसमन्वितम् ।।६४
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पांते राजराजः स्याद्वारिव्रतमिहोच्यते ।।६५
पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा विष्णोः शिवस्य च । वत्सरांते पुनर्दद्याद्धेनुं पञ्चामृतैर्युताम् ।।६६
विप्राय कनकं शंखं स पदं याति शांकरम् । राजा भवति कल्पांते वृत्तिव्रतमिहोच्यते ।।६७
यो हिंसां वर्जयित्वा तु मासं संवत्सरं तथा । व्रतांते हेमहरिणं कृत्वा शक्त्या विचक्षणः ।।६८
तद्वत्सवत्सां गां दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् । अहिंसाव्रतमित्येतत्सर्वशांतिप्रदं नृणाम् ।।६९
माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत् । भोजयित्वा यथा शक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः ।।७०
सौभाग्यं महदाप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम् । सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ।।७१
आषाढादिचतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः । विप्राय भोजनं दद्यात्कार्त्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ।।७२
घृतकुंभे ततो दत्त्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् । वैष्णवव्रतमित्युक्तं विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।७३
अयनादयनं यावद्वर्जयेन्मधुसर्पिषी । तदन्ते पुण्यदानानि घृतधेन्वा सहैव तु ।।७४

चूर्ण से भूषित हो, अर्पित करने पर उस स्त्री अथवा पुरुष का दुर्भाग्य नही होता है और न कभी मुख -दुर्गन्धि होती है, अपितु सुगन्ध उत्पन्न होता है। और इसे पत्रव्रत कहा जाता है। पाण्डुनन्दन! चैत्र आदि के चार मासों में नित्य अयाचित जलदान (प्याऊ) करता है और आषाढ़ मास में पूरे समय तक न कर पक्ष तक ही सीमित करते हुए व्रत की समाप्ति के दिन अन्न वस्त्र समेत मटका दान, जो घृत, सप्त धान्य, तिल पूर्ण पात्र और सुवर्ण युक्त हो, ब्राह्मण को अर्पित करने पर ब्रह्म लोक में पूजित होता है और कल्प के अन्त में राजराजा (महाराज) होता है। इसे वारिव्रत कहा जाता है। विष्णु और शिव को पञ्चायतन से स्नान कराते हुए वर्ष के अन्त में पञ्चामृत समेत धेनु और सुवर्ण का शंख ब्राह्मण को अर्पित करने पर शंकर लोक की शीघ्र प्राप्ति होती है और कल्प के अन्त में राजप्रद प्राप्त होता है अतः इसे वृत्तिव्रत कहा गया है। हिंसा का त्याग रूप व्रत करते हुए मास अथवा वर्ष के अन्त में व्रत समाप्ति के दिन यथा शक्ति सुवर्ण रचित हरिण और सवत्सा गौ प्रदान करने पर उस बुद्धिमान् पुरुष को अश्वमेघ का फल प्राप्त होता है। मनुष्यों को शांति प्रदान करने के नाते यह अहिंसा व्रत कहा गया है। माघ मास में ऊषा काल (सूर्योदय के पूर्व शेष आराओं के रहते) स्नान करके दम्पती की अर्चना, भोजन, माला, वस्त्र और यथाशक्ति भूषण-भूषित करने पर महान् सौभाग्य तथा उत्तम आरोग्य की प्रप्ति पूर्वक अंत में सूर्य लोक में एक कल्प निवास प्राप्त होता है। इसे सूर्य व्रत कहते हैं ।५५-७३। आषाढ़ आदि के मासों में प्रातः काल स्नान, ब्राह्मण भोजन कराते हुए कार्तिक पूर्णमा के दिन घृत पूर्ण कुम्भ (कलश) समेत गो दान करने से उस पुरुष को वैष्णव लोक प्राप्त होता है अतः यह वैष्णव व्रत कहा गया है। एक अयन से दूसरे अयन (अर्थात् सूर्य के दक्षिणायन होने से उत्तरायण अथया उत्तरायण से दक्षिणायन) तक मधु (शहद) और घृत के

---

१. तृतीयायां प्रयच्छति।

दत्त्वा शिवपदं याति दत्त्वा तु घृतपायसम् । एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम् ।।७५
संध्यादीपप्रदो यस्तु मांसं तैलं विवर्जयेत् । समाप्ते दीपकं दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने ।।७६
वस्त्रयुग्मं च विप्राय स तेजस्वी भवेद्दृढम् । एतद्दीपव्रतं नाम सदा कांतिप्रदायकम् ।।७७
एकभक्तेन सप्ताहं गौरीं वा यस्तु पूजयेत् । संपूज्य पार्वतीं भक्त्या गन्धपुष्पविलेपनैः ।।७८
ततःसवासिनीभ्यां तु कुंकुमेन विलेपयेत् । पुष्पैर्विलेपयेच्चैनां कर्पूरागरुचन्दनैः ।।७९
ताम्बूलं शोभनं दत्त्वा नारिकेलफलं तथा । प्रीयतां कुमुदा देवीं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।८०
एकैकां पूजयेद्देवीं सप्ताहं यावदेव तु । पुनस्तु सप्तमे पूर्णे ताः सप्तैव निमंत्रयेत् ।।८१
षड्रसं भोजयित्वा तु यथा शक्त्या विभूषणैः । भूषयित्वा माल्यवस्त्रैः कर्णवेष्टांगुलीयकैः ।।८२
कुमुदा माधवी गौरी भवानी पार्वती उमा । काली च दर्पणं हस्ते प्रत्येकं विनिवेदयेत् ।।८३
ब्राह्मणं पूजयित्वैकं वाच्यः संपन्नमस्तु ते । सप्तसुन्दरकं नाम व्रतं चैतद्युधिष्ठिर ।।८४
करोति सुन्दरं देहं सौभाग्यं यच्छते परम् । वर्जयेच्चैत्रमासे तु यस्तु गन्धानुलेपनम् ।।८५
शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी । शक्त्या च दक्षिणां दद्यात्सर्वान्कामान्समश्नुते ।।८६
वारुणं च पदं याति तदेतद्वरुणव्रतम् । वैशाखमासे लवणं वर्जयित्वा यतव्रतः ।।८७
मासांतेऽथ ततो दद्यात्सवत्सां गां द्विजातये । स्थित्वा विष्णुपदे कल्पं ततो राजा भवेदिह ।।८८
एतत्कांतिव्रतं नाम कांतिकीर्तिप्रदायकम् । ब्रह्माण्डं कांचनं कृत्वा तिलद्रोणोपरि स्थितम् ।।८९

त्याग करते हुए व्रत की समाप्ति में घृत, गो और घृत पूर्ण पायस समेत प्राप्त होता है इसीलिए इसे शील-व्रत कहा जाता है। मांस और तेल के त्याग पूर्वक संध्या समय दीप दान करते हुए व्रत के अन्त में दीप, सुवर्ण का चक्र और त्रिशूल समेत दो वस्त्र ब्राह्मण को प्रदान करने पर दृढ़ तेज प्राप्त होता है। सदैव क्रान्ति प्रद होने के नाते इसे दीपव्रत कहा जाता है। सप्ताह में प्रतिदिन एकाहारी रहकर गन्ध, पुष्प और लेपन द्वारा गौरी, पार्वती की सविधान अर्चना करके सौभाग्यवती दो स्त्रियों की कुंकुम के अनुलेपन पूर्वक पुष्प, कपूर, अगरु, चन्दन, द्वारा अर्चा करे। पश्चात् सुशोभित ताम्बूल और नारियल प्रदान करते हुए 'कुमुदा देवी प्रसन्न हों' कह कर विसर्जन करे।७४-८०। इस सप्ताह में प्रत्येक दिन एक-एक की पूजा करके पुनः सातवें दिन उन सातों को निमंत्रित कर षड्रस भोजन, यथाशक्ति भूषण माला, वस्त्र, कुण्डल, और अंगूठी, द्वारा कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथाकाली की अर्चा करे और प्रत्येक के हाथ में दर्पण अर्पित करते हुए एक ब्राह्मण की पूजा कर उनसे प्रार्थना करे—आप मेरे व्रत को सुसम्पन्न करने की कृपा करें मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ। युधिष्ठिर! इस भाँति इस सप्त सुन्दरक नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर सुन्दर देह और उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति होती है। चैत्र मास में गन्ध का लेपन त्याग करते हुए गंध-पूर्ण शुक्ति (सुतही) श्वेत दो वस्त्र और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं तथा वरुण पद प्राप्त होता है अतः इसे वरुण व्रत कहा गया है। वैशाख मास में संयम पूर्वक लवण (नमक) के त्याग करते हुए मास के अन्त में सवत्सा गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर एक कल्प तक विष्णु लोक का निवास प्राप्त होता है तदुपरांत राजा होता है। कांति और कीर्ति प्रदान करने के नाते इसे कांतिव्रत कहा जाता है।८१-८८। ब्रह्माण्ड की काञ्चन प्रतिमा एक द्रोण (पसेरी) तिल के ऊपर स्थापित और

त्र्यहं तिलव्रती भूत्वा वह्निं संतर्पयेद्द्विजम् । संपूज्य विप्रदांपत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥९०
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति । पुण्येऽह्नि दद्यात्स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम् ॥९१
एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणफलदं नृणाम् ॥९२
यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् । दिनं पयोव्रतं तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ॥९३
त्र्यहं पयोव्रतः स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम् । पलादूर्ध्वं यथा शक्त्या तण्डुलं रूपसंयुतम् ॥९४
छादितं वरवासोभिः पुष्पमालाविभूषितम् । दत्त्वा स्वर्गे वसेत्कल्पं कल्पव्रतमिदं स्मृतम् ॥९५
यस्तु वत्सतरीं भव्याङ्कण्ठाभरणभूषिताम् । सुपर्याणां सुखस्पृष्टां खलीनालंकृताननाम् ॥९६
मोदकोदकपात्रेण ताम्बूलेन समन्विताम् । स्थगितां स्थापयेत्पृष्ठे भृङ्गाग्रेषु हिमान्विताम् ॥९७
ईदृग्विधां व्यतीपाते ग्रहणे चायनद्वये । अयाचितेन च स्थित्वा ततो दद्याद्द्विजातये ॥९८
एतद्द्वारव्रतं नाम मार्गखेदाविनाशनम् । परलोकार्द्धगमने क्लान्तिश्रमहरं परम् ॥९९
नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरांतेऽष्टगोप्रदः । पौरंदरं पदं याति सुगतिव्रतमुच्यते ॥१००
यश्चेन्धनप्रदो राजन्हेमंतशिशिरस्तग् । धृतधेनुं प्रयच्छेत परं ब्रह्म स गच्छति ॥१०१
शरीरारोग्यजननं द्युतिकान्तिप्रदायकम् । वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥१०२
एकादश्यां तु नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्[1] । तद्वच्छंखं तु सौवर्णं चैत्रे चित्रासु पांडव ॥१०३

पूजित करते हुए तीन दिन तिल-व्रत करके अन्त में अग्नि तथा ब्राह्मण भोजन कराकर माला, वस्त्र, एवं भूषण द्वारा ब्राह्मण दम्पती की पूजा और यथा शक्ति तीन रत्न सुवर्ण का दान करते समय 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कहे । इस प्रकार किसी पुण्य दिवस में इसे सुसम्पन्न करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है । मनुष्यों को निर्वाण फल प्रदान करने के नाते इसे ब्रह्मव्रत कहा गया है । अधिक परिणाम में सुवर्ण की उभयमुखी प्रतिमा कादान और दिन में केवल पय-आहार करते हुए चौथे दिन सुवर्ण का कल्प वृक्ष और यथाशक्ति एक पत्र से अधिक का तंदुलाकार, जो उत्तम वस्त्र एवं पुष्पमाला से विभूषित हो, अर्पित करने पर स्वर्ग में पुष्प कल्प का निवास प्राप्त होता है अतः इसे छोटा बच्चा-बछिया जो परम सुन्दरी, कण्ठाभरण भूषित, पीठपर चारजामा-जीनपोस आदि से सुसज्जित, लगाम की भाँति मुख में रस्सी (मोहरी) से बंधी हो, और पीठ तथा सीगों में चाँदी लगी है ताम्बूल समेत व्यतीपात, ग्रहण, अथवा अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) के समय अयाचित ब्राह्मण को प्रदान करे।८९-९८। मार्ग मे श्रम को विनाश करने वाले इस व्रत को द्वारव्रत कहा जाता है । परलोक की यात्रा में आधे मार्ग पर पहुँचने में जितना श्रम और क्रान्ति होती है विनष्ट करता है । प्रत्येक अष्टमी तिथि के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में आठ गौप्रदान करने पर पुरन्दर (इन्द्र) पद प्राप्त होता अतः इसे सुगति व्रत कहा गया है । राजन्! हेमन्त और शिशिर ऋतु के मासोंमें ईन्धन (लकड़ी) दान करके घृत की धेनु प्रदान करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । शरीरारोग्य और कांति के प्रदान पूर्वक समस्त पापों के विनाश करने के नाते इसे वैश्वानर व्रत कहा जाता है ।९९-१०२। पाण्डव! चैत्र मास की एकादशी को नक्तभोजन

---

१. विनिवेशयेत् ।

य एतत्कुरुते भक्त्या स विष्णोः पदमाप्नुयात् । एतद्विष्णुव्रतं नाम कल्पादौ राज्यलाभकृत् ।।१०४
पयोव्रतस्तु पञ्चम्यां व्रतान्ते गोयुगप्रदः । लक्ष्मीलोके वसेत्कल्पमेतद्देवीव्रतं स्मृतम् ।।१०५
सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समाप्ते गां पयस्विनीम् । सोऽर्कलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिहोच्यते ।।१०६
चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादष्ट गा होमचारणम् । व्रतं वैनायकं नाम सर्वविघ्नविनाशनम् ।।१०७
महाफलानि यस्त्यक्त्वा चातुर्मासं द्विजातये । हैमानि कार्त्तिके दद्याद् गोयुगेन समं नरः ।।१०८
सितं वस्त्रयुगं नाम सम्पूर्णाद्यघटानि च । एतत्फलव्रतं नाम [1]फलावाप्तिकरं सदा ।।१०९
यश्चोपवासी सप्तम्यां समांते हेमपङ्कजम् । धेनुश्च शक्तितो दद्यात्सवत्साः कांस्यदोहना ।।११०
भक्त्या राजेन्द्र विप्राय वाचकाय निवेदयेत् । एतत्सौरव्रतं नाम सूर्यलोकप्रदायकम् ।।१११
द्वादश द्वादशीर्यस्तु नाम प्राशनसंयुतः । समुपोष्य समान्ते तु सवस्त्राः सोदका घटाः ।।११२
द्वादशात्रप्रदेयाश्च सर्वकामप्रसिद्धये । गोविन्दव्रतमित्येतद्गोविन्दपददायकम् ।।११३
कार्त्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । स गोलोकमवाप्नोति वृषव्रतमिदं स्मृतम् ।।११४
व्रतांते गौः प्रदातव्या भोजनं शक्तितः परम् । विप्राणामत्र कथितं प्राजापत्यमिदं व्रतम् ।।११५
चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समांते गोयुगप्रदः । शैवं पदमवाप्नोति ज्ञेयं च त्र्यम्बकव्रतम् ।।११६

करके सुवर्ण का चक्र और चित्रा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन सुवर्ण शंख भक्तिपूर्वक प्रदान करने पर विष्णुपद प्राप्त होता है । अतः इसे विष्णुव्रत कहा जाता है । जो कल्प के आदि में राज्य का लाभ प्रदान करता है । पञ्चमी तिथि के दिन दुग्धाहार करते हुए व्रत के अन्त में दो गौ प्रदान करने पर एक कल्पपर्यंत लक्ष्मी लोक का निवास प्राप्त होता है अतः इसे देवी व्रत कहते हैं । सप्तमी में नक्त व्रत करते हुए व्रत की समाप्ति में धेनु गाय प्रदान करने पर सूर्यलोक प्राप्त होता है अतः इसे भानुव्रत कहते हैं । चतुर्थी के दिन नक्त भोजन करते हुए अन्त में आठ गौ प्रदान पूर्वक हवन सुसम्पन्न कर सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करने के नाते यह वैनायकव्रत कहा जाता है । चौमासे में महाफलों के त्याग करते हुए कार्तिक पूर्णिमा के दिन दो गौसमेत सुवर्ण के फल चार श्वेत वस्त्र, और पूर्ण कलश प्रदान करने पर उत्तम फलों की प्राप्ति होती है अतः इसे फल व्रत कहा जाता है । राजेन्द्र! भक्ति पूर्वक सप्तमी के दिन उपवास करते हुए व्रत की समाप्ति में सुवर्ण-कमल, सवत्सा और काँसे की दोहनी समेत यथाशक्ति गौ वाचक ब्राह्मण को प्रदान करने पर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे सौकर व्रत कहते हैं । प्रति द्वादशी के दिन उपवास रहकर नाम प्राशन करते हुए वर्ष के अन्त वस्त्र समेत जलपूर्ण बारह घट प्रदान करने पर समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं । गोविन्द पद प्रदान करने के नाते इसे गोविन्द व्रत कहा जाता है । कार्तिकी पूर्णिमा के दिन वृषोत्सर्ग याग सम्पन्न करके नक्त भोजन करने पर गोलोक की प्राप्ति होती है अतः इसे वृषव्रत कहा जाता है ।१०३-११४। ब्राह्मण को यथाशक्ति भोजन प्रदान करते हुए व्रत के अन्त में गौ प्रदान करना चाहिए । इसे प्रजापत्य व्रत कहा जाता है । चतुर्दशी के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में चार गौ प्रदान करने पर शैव लोक प्राप्त होता है । इसे त्र्यम्बक व्रत कहते हैं ।११५-११६। सात रात्रि में उपवास पूर्वक ब्राह्मण को

---

१. विष्णुलोकप्रदायकम् ।

सप्तरात्रोषितोदद्याद्घृतकुम्भं द्विजातये । ब्रह्मव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥११७
मासान्ते च स गां दद्याद्धेनुमंते पयस्विनीम् । शक्रलोके वसेत्कल्पं शक्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥११८
कार्त्तिकस्य[1] सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासः पञ्चगव्यं पिवेद्रात्रौ विचक्षणः ॥११९
कपिलायास्तु गोमूत्रं कृष्णाया गोमयं तथा । सितधेन्वास्तथा क्षीरं रक्तायास्तु तथा दधि ॥१२०
गृहीत्वा कर्बुरायास्तु घृतमेकत्र मेलयेत् । वेदोक्तमन्त्रै राजेन्द्र कुशोदकसमन्वितम् ॥१२१
ततः प्रभातसमये स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । ब्राह्मणान्वाचयित्वा तु भुञ्जीयाद्वाग्यतः शुचिः ॥१२२
ब्रह्मकूर्चव्रतं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् । यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धक्ये चापि यत्कृतम् ॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन तत्सर्वं नश्यति क्षणात् ॥१२३
अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः । गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१२४
एतदृषिव्रतं नाम सर्वमाङ्गल्यकारकम् । हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम् ॥१२५
तिलप्रस्थोपरि गतं सितमाल्ययुगान्वितम् । दत्त्वा कृतोपवासस्तु दिवि कल्पशतं वसेत् ॥
तदन्ते राजराजः स्यादग्निव्रतमिदं स्मृतम् ॥१२६
कृत्वा पलद्वयादूर्ध्वं शय्याभ्यां संयुतं नरः । हैमं रथवरं श्रेष्ठं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥१२७
सत्यलोके वसेत्कल्पं सहस्रमथ भूपतिः । भवेदुपोषितो दत्त्वा करिव्रतमिदं शुभम् ॥१२८
मुखवासं परित्यज्य समांते गोप्रदो भवेत्। यक्षाधिपं समाप्नोति सुमुखं व्रतमुच्यते ॥१२९

घृत पूर्ण कलश प्रदान करने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है अतः यह दान करते हुए वर्ष के अन्त में धेनु गौ प्रदान करने पर शक्र (इन्द्र) लोक में एक कल्पका निवास प्राप्त होता है इसीलिए इसे शक्रव्रत कहा गया है। नराधिप! कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन उपवास करते हुए रात्रिमें उस भाँतिका पञ्चगव्यपान करना चाहिए, जिसमें कपिला गौ का गोमूत्र, कृष्णागौका गोमय (गोबर), श्वेत वर्ण वाली गौ का क्षीर, रक्त वर्ण वाली का दही, कर्बुर (चितकबरी) गौ का घृत पिलाया गया हो, राजेन्द्र! उसे कुशोदक पूर्ण करते हुए संयम पूर्वक वेदमंत्रो द्वारा वाल्य, कुमार और वृद्धावस्था के समस्त पाप उपवास करते ही उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। तृतीया के दिन अग्नि पक्व भोजन करते हुए व्रत के अन्त में गोदान करने वाले पुरुष को शिव लोक प्राप्त होता है। जहाँ पहुँचने पर पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) नहीं होता है। समस्त मङ्गल करने के नाते इसे ऋषिव्रत कहा जाता है। उपवास करते हुए दोपल से अधिक सुवर्ण का अश्व समेत रथ एक सेर तिल के ऊपर स्थापित एवं पूजित करके, जिसमें श्वेत माला का जूआ लगी हो, उसका दान करने पर स्वर्ग में सौकल्प का निवास प्राप्त होता है। और अंत में महाराज का पद प्राप्त होता है। इसे अग्नि व्रत कहा गया है। उपवास पूर्वक दो पल से अधिक सुवर्ण के सुन्दर रथ समस्त साधन सम्पन्न एवं सुसज्जित शय्या प्रदान करने पर सहस्र कल्प तक सत्य लोक में निवास करने के उपरांत राजा होता है और इसे करिव्रत कहा गया है।११७-१२८। मुख वास (ताम्बूल आदि के त्याग पूर्वक वर्ष के अन्त में गौ प्रदान करने पर यक्षाधिप पद प्राप्त होता है तथा इसे सुमुख व्रत कहा जाता है। रात्रि में जलनिवास

---

१. असिते पक्षे।

निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत् । वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते ॥१३०
चान्द्रायणं च यः कुर्याद्धैमं चन्द्रं निवेदयेत् । चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकप्रदायकम् ॥१३१
ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदोदिवम् । अथाष्टमीचतुर्दश्यौ रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥१३२
अनुलेपनं यः कुर्यात्तृतीयायां शिवालये । स स्वर्गं धेनुदो याति भवानी व्रतमुच्यते ॥१३३
माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदो भवेत् । दिवि कल्पं वसित्वेह राजा स्यात्तापनं व्रतम् ॥१३४
दत्त्वा कृतोपवासस्तु दिवि कल्पशतं वसेत् । तदंते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् ॥१३५
तद्वत्कल्पद्वयादूर्ध्वं करिभ्यां संयुतं नरः । हैमं रथं नरश्रेष्ठ सर्वोपस्करणान्वितम् ॥१३६
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्फाल्गुन्यां भवनं शुभम् । आदित्यलोकमाप्नोति पूजितः स सुरासुरैः ॥१३७
सुरलोकमवाप्नोति धाम[1] व्रतसमन्वितम् । त्रिसंध्यं पूज्य[2] दांपत्यमुपवासी विभूषणैः ॥१३८
पौर्णमास्यामवाप्नोति मोक्षमिन्दुव्रतादिह ॥१३९
दत्त्वा[3] सितद्वितीयायामिंदोर्लवणभोजनम् । कांस्यं सवस्त्रं राजेन्द्र दक्षिणासहितं तथा ॥१४०
समांते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम् । कल्पान्ते राजराजः स्यात्सोमव्रतमिदं स्मृतम् ॥१४१
प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः । वैश्वानरपुरं याति आग्नेयव्रतमुच्यते ॥१४२

करके प्रातः काल गोदान करने पर वरुण लोक प्राप्त होता है अतः इसे वरुण व्रत कहते हैं। चान्द्रायण व्रत करने के अनन्तर सुवर्णचन्द्र प्रदान करने पर चन्द्र लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे चन्द्रव्रत कहते हैं। ज्येष्ठ मास की अष्टमी और चतुर्दशी के दिन पञ्चतपा (पंचाग्नि) तापों के उपरांत सायंकाल सुवर्ण की धेनु पञ्चतपा (पंचाग्नि) तापने के उपरांत सायंकाल सुवर्ण की धेनु प्रदान करना चाहिए। इसे रुद्रवत कहा जाता है। तृतीया के दिन शिवालय में शिवजी के लेप करते हुए अन्त में गोदान करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसे भवानी व्रत कहा गया है। माघ मास की सप्तमी की रात्रि में भीगे वस्त्र पहने व्यतीत कर अन्त में गोदान करने पर स्वर्ग में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है और यहाँ जन्म ग्रहण करने राजपद प्राप्त होता है। इसे तापन व्रत कहते हैं। १२९-१३४। उपवास पूर्वक अश्वदान करने पर सौकल्प तक स्वर्ग निवास प्राप्त होता है और अन्त में राजाधिराजपद। इसे अश्वव्रत कहा गया है। नरश्रेष्ठ! उसी प्रकार कल्प के ऊपर दो हाथियों समेत सुवर्ण रथ जो सभी साधनों से सुसम्पन्न हो, तीन रात्रि के उपवास करने के उपरांत फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सुन्दर भवन के साथ दान करने पर आदित्य लोक प्राप्त होता है। पश्चात् सुर एवं असुर द्वारा पूजित होकर स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है अतः इसे धाम व्रत कहते हैं। पूर्णिमा मे दिन उपवास रह कर तीनों समय आभूषणों द्वारा ब्राह्मण दम्पती की पूजा करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः इसे इन्दुव्रत कहा गया है। राजेन्द्र! कृष्ण पक्ष की द्वितीया के दिन चन्द्रमा के लिए लवण भोजन, कांसे का पात्र वस्त्र और दक्षिणा प्रदान करते हुए वर्ष की समाप्ति में ब्राह्मण को गोदान अर्पित करने पर शिवमन्दिर की प्राप्ति होती है। पुनः कल्प के अन्त में राजाधिराज होता है अतः इसे सोमव्रत कहा गया है। १३५-१४१। प्रतिपदा के दिन एकाहारी रहते हुए वर्ष के अन्त में कपिला गौ अर्पित करने पर वैश्वानर (अग्नि)

---

१. धामव्रतमिदं स्मृतम्। २. पूजितं देवम्। ३. कस्मिंश्चित्पुस्तके—"दत्त्वासिताद्वितीयायाम्" —इत्यारभ्य "संतारयति सप्तष्टौ कुलान्यात्मानमेव च" सार्धनवश्लोकात्मको ग्रन्थः—"कार्तिकादि तृतीयां प्राश्य गोमूत्रयावकम्"—इत्येतदग्रेऽस्ति।

एकादश्यां माघमासे चतुर्दश्यष्टमीषु च । एकभक्तेन यो दद्याद्वालकान्यजिनानि च ॥१४३
उपानहौ कम्बलांश्च चैत्रे छत्रादिकं ततः । करपत्रादिकं चापि यथा शक्त्या विचक्षणः ॥१४४
ब्राह्मणानां महाराज सोऽश्वमेधफलं लभेत् । एतत्सौख्यव्रतं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥१४५
दशम्यामेकभक्ताशी समांते दशधेनुदः । दिशश्च काञ्चनीर्दद्यान्नारीरूपा[1] युधिष्ठिर ॥१४६
तिलद्रोणोपरिगतो ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् । एतद्विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥१४७
संपूज्य सितसप्तम्यां भानुधान्यानि सप्त यः । ददाति नक्तभुग्राजँल्लवणेन समं द्विजे ॥१४८
स तारयति सप्ताष्टौ कुलान्यात्मानमेव च । एतद्धान्यव्रतं[2] नाम धनधान्यप्रदायकम् ॥१४९
मासोपवासी यो दद्याद्धेनुं विप्राय शोभनाम्[3] । स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् ॥१५०
पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाद्वयम् । स ब्रह्मलोकमाप्नोति पूजितः सुरसत्तमैः ॥१५१
दद्यात्रिंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् । कुलाचलाद्रिसहितां तिलवस्त्रसमन्विताम् ॥१५२
तिलद्रोणोपरि गतां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रलोके महीयते ॥१५३
एतन्महीव्रतं प्रोक्तंसप्तकल्पानुवर्तकम् । माघमासेऽथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥१५४
गुडव्रतस्तृतीयायां सर्वोपस्करणैर्युतः । गौरीलोकमवाप्नोति पूज्यतेऽप्सरसां गणैः ॥१५५
[4]उमाव्रतमिदं प्रोक्तं सततानन्ददायकम् । वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुंभदः ॥१५६

लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे अग्निव्रत कहते हैं। महाराज! माघमास की एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन एकाहारी रह कर कुंकुम, मृगचर्म, उपानह, कम्बल तथा चैत्र में यथा शक्ति छत्ता, पंखा -जल पात्र आदि ब्राह्मणों को सादर अर्पित करने पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। अतः सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करने के नाते इसे सौख्य व्रत कहा जाता है। युधिष्ठिर! दशमी के दिन एकाहार रहते हुए वर्ष के अन्त में दश धेनु गौ और एक द्रोण तिल के ऊपर दश दिशाओं की सुवर्ण की सभी रूप प्रतिमा स्थापित एवं पूजित करने पर ब्रह्माण्ड नामक पद प्राप्त होता है। अतः इस महापातक विनाशक को विश्वव्रत कहा गया है। राजन्! कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन भानु की अर्चना करके सूर्य समेत सप्त धान्य के दान और नक्तभोजी होने पर अपनेसमेत पन्द्रह कुल का उद्धार होता है। अतः धन धान्य पद होने के नाते यह धान्य व्रत बताया गया है। एक मास के उपवास करने के अन्त में सुन्दर गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वैष्णव लोक की प्राप्ति होती है इसे भीम व्रत कहा गया है।१४२-१५०। एक पक्ष का उपवास करके अन्त में दो कपिला गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर देवों द्वारा पूजित होता हुए ब्रह्म लोक प्राप्त होता है। एक द्रोण तिल के ऊपर तीस पले से अधिक सुवर्ण की पृथिवी प्रतिमा, कुलाचल पर्वत, तिल और वस्त्र समेत किसी कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को अर्पित कर दिन में केवल दुग्धपान करने से रुद्र लोक की प्राति होती है। सात कल्पतक फल प्रदान करने वाले इस व्रत को मही व्रत कहा गया है। माघ और चैत्र मास में गुडधेनु प्रदान करना चाहिए। तृतीया के दिन समस्त साधनों समेत गुडव्रत को सुसम्पन्न करने पर अप्सराओं द्वारा सुसम्पन्न और गौरी लोक की प्राप्ति होती है। निरन्तर आनन्द प्रद होने के नाते इसे उमा व्रत कहा गया है।१५१-१५६। एक वर्ष तक एकाहारी रहकर अन्त में भक्ष्य भोज्य समेत सजल कुम्भ प्रदान करने पर शिवलोक

---

१. द्विजाग्रयाय। २. एतद्धानुव्रतं नाम। ३. शुभम्। ४. महाव्रतम्।

शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम् । कार्त्तिकादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम् ।।१५७
गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । एतद्रुद्रव्रतं नाम महाकल्याणकारकम् ।।१५८
चैत्री त्रिरात्रं नक्ताशी नद्यां स्नात्वा ददाति यः । अजा पयस्विनीः पञ्च ब्राह्मणाय[1] कुटुंबिने ।।१५९
न जायते पुनरसौ जीवलोके कदाचन । एतद्वस्तव्रतं प्रोक्तं सर्वव्याधिवि[2]नाशनम् ।।१६०
कन्यादानं तु यः कुर्यादुद्वाहं कारयेच्च यः । एकविंशतिकुलोपेतो ब्रह्मलोकं स गच्छति ।।१६१
कन्यादानात्परं दानं न चास्त्यभ्याधिकं क्वचित् । ये करिष्यंति नृपते तेषां लोकोऽक्षयो दिवि ।।१६२
तिलपिष्टमयं कृत्वा गजं हेमविभूषितम् । कुर्यात्कुशमयं तद्वदारोहकसमन्वितम् ।।१६३
नक्षत्रमालासहितं चामरापीडधारिणम् । दशनाग्रबद्धनेत्ररक्तवस्त्रयुगान्वितम् ।।१६४
ताम्रपात्र्यां कुण्डके वा कृतं दत्त्वाग्रमोदकम् । प्रदद्याद्द्विजदाम्पत्यं पूज्य माल्यविभूषणैः ।।१६५
कण्ठप्रमाणमाविश्य जलं मलविवर्जितः । कान्तारकारिणा ह्येतत्कथितं तु युधिष्ठिर ।।१६६
कांतारकारिदुर्गेषु वारयत्यपि दुष्कृतीन् । इह लोके परे चैव नात्र कार्या विचारणा ।।१६७
ये कुर्वंति दिने पुण्ये व्रतं पौरंदरं नराः । तेषां पौरंदरो लोको भवेदाभूतसंप्लवम् ।।१६८
पयोव्रतस्तु पञ्चम्यां दत्त्वा नागं द्विजातये । सौवर्णं सर्पजनितं भयं तेभ्यो न जायते ।।१६९
सिताष्टम्यां सोपवासो वृषभं यः प्रयच्छति । सितवस्त्रसमाच्छन्नं घण्टाभरणभूषितम् ।।१७०

में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है । इसे प्राप्ति व्रत कहा गया है । कार्तिक मास की आरम्भिक तृतीया के दिन गोमूत्र और यावक के प्राशन पूर्ण करने पर गौरी लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है । पश्चात् जन्म ग्रहण करने पर राजा होता है । इस महाकल्याणकारी व्रत को रुद्रव्रत बताया गया है । चैत्र मास में तीन रात्रि नक्त भोजन करने के उपरांत नदी में स्नान पूर्वक किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को पाँच अजा (बकरी) प्रदान करने पर इस जीव लोक में कभी जन्म नही होता है । समस्त व्याधियों के शयन करने के नाते इसे बस्त व्रत कहा गहा है । कन्या दान करने और विवाह कराने वाले अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत ब्रह्म लोक की प्राप्ति करते है । नृपते! कन्यादान से अधिक महत्व पूर्ण कोई अन्य दान नहीं है अतः उसे सुसम्पन्न करने वाले स्वर्ग में अक्षय निवास प्राप्त करते हैं । तिल के चूर्ण की गज प्रतिमा, जो सुवर्ण भूषित, कुश और आरोहक युक्त, नक्षत्रमाला, चामर, एवं शिरोभूषण भूषित तथा दाँत के अग्रभाग में नेत्र का आवरण रक्त वस्त्र बँधा हो, ताम्र पात्र में स्थापित एवं पूजित करके अनन्तर उसके अग्रभाग में मोदक रख कर माला और विभूषण द्वारा द्विजदम्पती की अर्चना करके कंठ प्रमाण निर्मल जल में खड़े हो प्रदान करना चाहिए । युधिष्ठिर! इसे कातांरकारी ने कहा था । यह दुर्गमार्ग के समस्त विद्वानों का शमन करते है तथा लोक-परलोक सभी को सुगम बताता है इसमें संदेह नहीं । पुण्य दिन में इस पौरन्दर नामक व्रत को सुसम्पन्न करने महाप्रलय पर्यन्त पुरन्दर (इन्द्र) लोक का अक्षय निवास प्राप्त होता है । पञ्चमी के दिन सर्पो को दुग्ध प्रदान करके सुवर्ण का नाग प्रदान करने पर सर्प भय नहीं होता है ।१५७-१६९। शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन उपवास करते हुए श्वेत वस्त्र से आच्छादन और घण्टा तथा आभरण भूषित वृष

---

१. दरिद्राय । २. सर्वविघ्ननिवारणम् ।

शिवलोके वसेत्कल्पं ततो[1] राजा भवेदिह । वृषव्रतमिदं प्रोक्तं सर्वधर्मप्रदायकम् ।।१७१
उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतप्रस्थेन यो हरिम् । स्नापयित्वा ब्राह्मणाय वडवां यः प्रयच्छति ।।१७२
स सर्वकामसंयुक्तः पुत्रभ्रातृसमन्वितः[2] । सूर्यलोके वसेद्राजन्राज्ञीव्रतमिहोच्यते ।।१७३
सकृन्नवम्यां भक्तेन पूजयेद्विन्ध्यवासिनीम् । पुष्पधूपैस्ततो दद्यात्पञ्जरं शुकशोभितम् ।।१७४
हैमं विप्राय शांताय स वाग्मी जायते नरः । एतदाग्नेयमित्युक्तं व्रतमग्निपदप्रदम् ।।१७५
द्वादश्यां गुह्यकानां च पललैक्षवसंयुतम् । विप्राय भोजनं दत्त्वा यः स याति हरेः पदम्[3] ।।१७६
विष्कम्भादिषु योगेषु एकभुक्तरतो नरः । एतदाग्नेयमित्युक्तं व्रतमग्निपदप्रदम् ।।१७७
यो ददाति क्रमात्तेषु घृततैलफलैक्षदम् । यवगोधूमचणकान्निष्पावाञ्छालितण्डुलान् ।।१७८
लवणं दधि दुग्धं च वस्त्रं कनकमेव च । कंबलं गां वृषं छत्रमुपानद्युगलं तथा ।।१७९
कर्पूरं कुंकुमं चैव चंदनं कुसुमानि च । लोहं कनकताम्रं च रौप्यं चेति युधिष्ठिर ।।१८०
स्नातः स्वशक्त्या विधिवत्सर्वपापैः प्रमुच्यते । न वियोगमवाप्नोति योगव्रतमिदं स्मृतम् ।।१८१
कार्त्तिक्यां नक्तभुग्दद्यान्मेषं मार्गशिरे वृषम् । पौषमाघादिमासेषु सौवर्णीः सर्व एव हि ।।१८२
क्रमेण राशयः सर्वा वस्त्रमाल्यैर्विभूषिताः[4] । पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कौंतेय [5]बहुदक्षिणाम् ।।१८३
एतद्राशिव्रतं नाम [6]सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वाशापूरकं तद्वत्सोमलोकप्रदायकम् ।।१८४

(वैल) प्रदान करने पर शिव लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है और अनन्तर राजपद । सम्पूर्ण धर्म प्रद होने के नाते इसे वृषव्रत कहा गया है । राजन्! सूर्य के उत्तरायण होने के दिन एक सेर घृत से विष्णु के स्नान पूर्वक ब्राह्गण को (सुवर्ण) वडवा (घोड़ी) अर्पित करने पर पुत्र और भ्रातृ समेत समस्त कामनाओं का सफलता पूर्वक सूर्यलोक प्राप्त होता है । अतः इसे रात्री व्रत कहा गया है । एकाहार रह कर नवमी के दिन पुष्प धूप द्वारा विन्ध्यवासिनी देवी की एक ही वार अर्चना करने के उपरांत सुवर्ण का पिंजड़े समेत शुक्र (तोता) ब्राह्मण को प्रदान करने पर पुरुष वाग्मी होता है । अग्नि पद प्रद होने के नाते इसे आग्नेय व्रत कहा गया है । बारह गुह्यकों के मांस और ऐक्षव (गुड) तथा ब्राह्मण को भोजन प्रदान करने विष्णु-लोक प्राप्त होता है । विष्कम्भ आदि योग के दिन एकाहारी होने पर अग्नि पद प्राप्त होता है अतः इसे भी आग्नेय व्रत कहा गया है । युधिष्ठिर! क्रमशः इन योगों के दिन, घृत, तैल, फल, गुड, जवा, गेहूँ, चना, साठी चावल, लवण, दधि, दुग्ध, वस्त्र, सुवर्ण, कम्बल, गौ, वृष (वैल) छत्ता, उपानह, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोह, कनक, ताँबा, और चाँदी के दान पूर्वक सविधान स्नान करने पर समस्त पातकों के विनाश और अभीष्ट का भी वियोग नहीं होता है। अतः इसे योग व्रत कहा गया है।१७०-१८१। कौंतेय! कार्तिक मास से आरम्भ कर प्रत्येक पूर्णिमा के दिन नक्त भोजन पूर्वक कार्तिक पूर्णिमा में मेष (भेड़ा) मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा में वृष और पौष-माघ आदि के शेष मासों में क्रमशः सुवर्ण की राशि प्रतिमाएँ वस्त्र और मालाओं से विभूषित कर बहु दक्षिणा समेत प्रदान करने पर समस्त उपद्रवों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण

---

१. विष्णुलोकं ततो व्रजेत् । २. पुत्रपौत्रसमन्वितः । ३. पुरम् । ४. सुपूजिताः । ५. फलदक्षिणाम् । ६. ग्रहोपद्रवनाशम् ।

पञ्चाशीतिर्व्रतानां ते कथिता पांडुनंदन । यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा मातृहा तथा ।।१८५
मुच्यते तत्क्षणादेव पातकैः सोपपातकैः ।।१८६

पञ्चाधिका तव मया कथिता व्रतानां राजन्नशीतिरतिसौख्यधनप्रदानाम् ।
एतां समाचरति यः शृणुयात्पठेद्वा हस्ताग्रलग्न इव तस्य सुरेशलोकः ।।१८७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
व्रतपञ्चाशीतिवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२१

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघस्नानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृतं ब्रह्मयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् । वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ।।१
कलौराजन्मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि । तथापि माघव्याजेन कथयिष्यामि ते शृणु ।।२
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ।।३
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः । हेतुनिष्ठाश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ।।४
प्रयागं पुष्करं प्राप्य कुरुक्षेत्रमथापि वा । यत्र वा यत्र वा स्नायान्माघे नित्यमिति श्रुतिः ।।५
त्रिरात्रिफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः । समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ।।६

विधान बता दिया, जिसे सुनने पर ब्राह्मण, गौ, पिता एवं माता का हनन दोष तथा उपपातक समेत समस्त पातकों से उसी क्षण मुक्ति हो जाती है । राजन्! इन पचासी व्रतों के, जो तुम्हें बता दिये गये हैं एवं सौख्य तथा धन प्रद है, सुनने पढ़ने तथा सुसम्पन्न करने पर इन्द्र लोक उसके सदैव करतल गत रहता है ।१८२-१८७।

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
पचासी व्रत वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२१।

अध्याय १२२

माघस्नानविधिवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—कृत (सत्य) युग ब्रह्मयुग, त्रेतायुग, क्षत्रिय युग, द्वापर वैश्य युग और कलियुग शूद्र युग कहा गया है । राजन्! यद्यपि कलियुग में मनुष्यों का स्नान-कर्म अत्यन्त शिथिल रहेगा, तथापि माघ मास के (स्नान) आज से तुम्हें इसकी व्याख्या बता रहा हूँ, सुनो! जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन अत्यन्त संयत हों और विद्या, तप एवं कीर्ति युक्त हो, उसे तीर्थफल प्राप्त होता है । श्रद्धाहीन, पापात्मा, नास्तिक, संशयालु और कारण-प्रेमी जन तीर्थ-फल भागी नहीं होते हैं । प्रयाग, पुष्कर अथवा कुरुक्षेत्र या जिस किसी तीर्थ में हो माघ में नित्य स्नान करे ऐसा वेदों का कहना है ।१-५। साधारण नदियाँ, जो समुद्र में नहीं पहुँच सकी हैं, (एकवार स्नान-करने पर) तीन रात्रि का फल प्रदान करती हैं और समुद्र गामिनी

उषःसमीपे यः स्नानं संध्यायामुदिते रवौ । प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥७
प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातः स्नायी सदा भवेत् । स सर्वपापनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८
वृथा चोष्णोदकस्नानं वृथा जाप्यमवैदिकम् । अश्रोत्रिये वृथा श्राद्धं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥९
स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिर्युधिष्ठिर ! वायव्यं वारुणं ब्राह्मं द्विव्यं चेति पृथक्छृणु ॥१०
वायव्यं गोरजःस्नानं वारुणं सागरादिषु । ब्राह्मं ब्राह्मणमंत्रोक्तं दिव्यं मेघांबुभास्करम् ॥
सर्वेषामेव स्नानानां विशिष्टं तत्र वारुणम् ॥११
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । एते सर्वे प्रशंसंति सर्वदा माघमज्जनम् ॥१२
बालास्तरुणका वृद्धा नरनारीनपुंसकाः । स्नात्वा माघं शुभे तीर्थे प्राप्नुवंतीप्सितं[1] फलम् ॥१३
ब्रह्मक्षत्रविशां चैव मन्त्रवत्स्नानमिष्यते । तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणां च कुरुनन्दन ॥१४
माघमासे रटंत्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ । ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कम्पं तं तं पुनीमहे ॥१५
प्रासादा यत्र सौवर्णाः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । दधिकुल्यावहा यत्र नद्यः पायसकर्दमाः ॥
तत्र ते यो निमज्जन्ति ये माघे भास्करोदये ॥१६
यातिवत्पथि गच्छेत मौनी पैशुन्यवर्जितः । यदीच्छेद्विपुलान्भोगांश्चन्द्रसूर्योपमान्गृहान् ॥१७

एक पक्ष (पखवारे) तथा महासागर एक मास का पल प्रदान करता है । ऊषा काल और सूर्योदय के बीच संध्या समय का स्नान प्राजापत्य की समानता प्राप्त कर महापातक का नाश करता है । सदैव प्रातः काल स्नान करने वाला ब्राह्मण समस्त पापों से मुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करता है । अतः उष्ण (गरम) जल का स्नान, वैदिक मंत्रों से पृथक मंत्रों के जप, खगोलिय का श्राद्ध भोजन या दान देना और साक्षी हीन (अकेले) भोजन करना व्यर्थ है । युधिष्ठिर! वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य भेद से स्नान चार प्रकार का होता है । उनकी पृथक्-पृथक् व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो! गौ के खुर की धूलि का स्नान वायव्यस्नान, सागर आदि का स्नान दारुण-स्नान, ब्राह्मण द्वारा मंत्रोक्त स्नान ब्राह्म-स्नान और सूर्य के प्रकाश में वर्षा के जल का स्नान दिव्य स्नान कहलाता है । किन्तु सभी स्नानों में वरुण स्नान ही विशिष्ट बताया गया है । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी) सभी लोग माघस्नान की प्रशंसा करते हैं । बाल, युवा, एवं वृद्ध नर-नारी नपुंसक शुभ तीर्थ में माघस्नान द्वारा मन इच्छित फल प्राप्त करते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्नान और शूद्रों तथा स्त्रियों को मौन स्नान करना चाहिए।६-१४। कुरुनन्दन! माघ मास में सूर्य के अर्धोदय समय जल सदैव आता रहता है—ब्रह्महत्या और मद्यपान करने वाले को, जो अपने गुरुतर पाप के नाते काँपते रहते हैं, मैं पुनीत करता हूँ। माघ मास में सूर्योदय के समय स्नान करने वाले उस स्थान की प्राप्त करते हैं, जहाँ सुवर्ण भूषित प्रासाद (महल के कोठे), अप्सराओं की भांति मनोरम स्त्रियाँ, दही की नालियाँ और दूध के कीचड़ भरी नदियाँ प्रवाहित होती हैं । स्नानार्थ जाते हुए मार्ग में संन्यासी की भाँति मौन तथा परकीय निन्दा आदि दोष रहित होकर जाना चाहिए । यदि विपुल उत्तम भोग, और चन्द्र सूर्य के समान अनुपम गृहों के प्राप्ति की इच्छा हो,

---

१. महत् ।

पौषफाल्गुनयोर्मध्ये प्रातः स्नायी [1]भवेन्नरः। पौर्णमास्या ह्यमावास्याः प्रारभ्य स्नानमाचरेत् ।।१८
त्रिंशद्दिनानि पुण्याणि मकरस्थे दिवाकरे । तत्र उत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।।१९
माघमासमिमं पूर्णं स्थाप्येहं देवमाधवम् । तीर्थशीतजले नित्यमिति सङ्कल्प्य चेतसा ।।२०
अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।२१
तत्र स्नात्वा शुभे तीर्थे दत्त्वा शिरसि वै मृदम् । वेदोक्तविधिना राजन्सूर्यस्यार्घं निवेदयेत् ।।२२
पितॄन्संतर्प्य तत्रस्थो ह्यवतीर्य ततो जलात् । इष्टदेवं नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।।२३
शङ्खचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ।।२४
भूशय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तस्य [2]धनाढ्यस्य स्वेच्छा सा तत्र कथ्यते ।।२५
अवश्यमपि कर्तव्यं माघे स्नानमिति श्रुतिः । ईश्वरेण यथाकामं बलं धर्मोऽनुवर्तते ।।२६
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी । तिलहोता च दाता च षट्तिलो नावसीदति ।।२७
तैलस्यामलकानां च तीर्थे देयानि नित्यशः । तथा प्रज्वालयेद्वह्निं निवातार्थं द्विजन्मनाम् ।।२८
एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयमवारितम् । भोजयेद्विजदांपत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ।।२९
कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च । चोलकानि च दिव्यानि प्रच्छादनपटीस्तथा ।।३०
उपानहौ तथा गुप्तं मोदकैः पापमोचकैः । अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ।।३१

तो पौष और फाल्गुन के मध्य वाले मास में प्रातः स्नायी होना आवश्यक है। इस स्नान को पूर्णिमा या अमावास्या से ही आरम्भ करना बताया गया है। मकर राशि पर सूर्य के पहुँचने पर वह पूरा तीस दिन (मास) पुण्य काल रहता है। उसमें प्रातः काल उठकर सविधान नियम पालन आरम्भ करना चाहिए-तीर्थ के इस शीतल जल में माघ मास भर माधव देव की स्थापना मैं कर रहा हूँ-इस प्रकार मानसिक संकल्प पूर्वक ही आरम्भ कर स्नान करे। नंगेवदन चलते हुए इस प्रकार के कष्ट पूर्ण स्नान करने पर उस मानव के पग-पग पर अश्वमेध फल प्राप्त होता है। राजन्! उस शुभ-तीर्थ के जल में स्नान और शिर में मृत्तिका लगा कर वैदिक विधान द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। अनन्तर तीर्थ जल से बाहर निकल कर पितृतर्पण और इष्ट देव को नमस्कार करके पुरुषोत्तम देव की उनके शंख चक्रधर और माधव नाम के उच्चारण पूर्वक अर्चना करे। पश्चात् सविधान तपन और एकाहार करे। सशक्त होने पर भूशय्या तथा ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक स्नान बताया गया है और अशक्त एवं धनी-मानी के लिए स्वेच्छया। अतः श्रुति के कथनानुसार माघ मास अवश्य स्नान करना चाहिए। जिस प्रकार ईश्वर यथेच्छ धार्मिक बल धारण करता है उसी भाँति तिलस्नान, तिल-लेपन, तिलभोजन, तिलोदक, तिल-हवन, और तिल-दान इस प्रकार षट्तिल (छह प्रकार से तिल के उपभोग) करने वाले कभी कहीं दुःखीं नहीं होते हैं।१५-२७। आमलक (आँवले) के तेल का दान तीर्थ में नित्य करते हुए ब्राह्मणों के घरों में उसी द्वारा अग्नि-प्रज्वालन भी करे। इस प्रकार स्नान की समाप्ति में वस्त्र और आभूषणों द्वारा द्विजदम्पती को विभूषित करके भोजन कराये और कम्बल, मृगचर्म, रत्न, अनेक भाँति के वस्त्र, चोलक (पुरुषों के कुर्ते, आदि) वस्त्र और दिव्य उत्तरीय वस्त्र (चदरा आदि), उपानह, तथा गुप्त भाव से पापमोचक मोदक

---

१. सदा भवेत्। २. धनेशस्य।

अगम्यागमनस्तेयपापेभ्यश्च परिग्रहात् । रहस्याचरिताच्चापि मुच्यते स्नानमाचरेत् ।।३२
पितृभिः पितामहैः सार्द्धं तथैव प्रपितामहैः । मातामातामहैः सार्द्धं वृद्धमातामहैस्तथा ।।३३
एकविंशकुलैः सार्द्धं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । माघमास्युषस स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ।।३४
यो माघमास्युषसि सूर्य्यकराभिताम्रे स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे ।
उद्धृत्य सप्तपुरुषान्पितृमातृतश्च स्वर्गं प्रयात्यमलदेहधरो नरोऽसौ ।।३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
माघस्नानविधिवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२२

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नित्यस्नानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न युज्यते । तस्मात्कायविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ।।१
अनुद्धतैरुद्धतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् । तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ।।२
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः । दर्भपाणिस्तु विधिना स्वाचान्तः प्रयतः सुधीः ।।३

प्रदान द्वारा उसे सुसम्मानित करे । इस विधान द्वारा उपरोक्त दान से समय 'माधव प्रसन्न हों' कहे । अगम्या स्त्री के साथ गमन, चोरी, प्रतिग्रह एवं रहस्य मय पापों से छुटकारा मिलता है अतः स्नान अवश्य करना चाहिए । माघ मास में उष्ण काल में स्नान करने से पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमाता मह, इस प्रकार अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत उत्तम भोगों के यथेच्छ उपभोग करने के अनन्तर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । इस प्रकार माघ मास में उषाकाल के समय, जब अरुणोदय सूर्य की रक्त वर्ण की किरणों द्वारा जल में लालिमा भर जाती है, किसी उत्तम नदी के जल-प्रवाह में स्नान करने वाला मनुष्य निर्मल देह धारण पूर्वक अपनी माता-पिता की सात पीढ़ियों समेत स्वर्ग प्राप्त करता है ।२८-३५

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
माघस्नान विधि वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।१२२।

अध्याय १२३

नित्यस्नानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—विना स्नान किये निर्मलता और भावशुद्धि नहीं होती है अतः शरीर शुद्ध्यर्थ सर्व-प्रथम स्नान-विधान बताया गया है । (कूप आदि से) निकाले हुए अथवा नदी आदि के ज़ल से स्नान करना आवश्यक होता है । मंत्र वेत्ता विद्वान् को चाहिए- 'नमो नारायणाय— (नारायण को नमस्कार है)' इस मूल मन्त्र के उच्चारण द्वारा तीर्थ की कल्पना करें । सर्व प्रथम आचमन द्वारा भीतर और

चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्त्रं समंततः । प्रकल्प्यावाहयेद् गङ्गामेभिर्मंत्रैर्विचक्षणः ।।४
ॐविष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता । पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणांतिकात् ।।५
तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भुव्यंतरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ।।६
नंदिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च । क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया[1] शिवा स्मृता ।।७
विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी । क्षेम्या तथा जाह्नवी च शांता शांतिप्रदायिनी ।।८
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् । भवेत्संनिहिता तत्र गङ्गात्रिपथगामिनी ।।९
सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम् । (३) मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूप त्रिचतुःपञ्चसप्तधा ।।१०
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य च विधानतः ।।११
अश्वक्रांते रथाक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे । मृत्तिके हर मे सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।।१२
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते ।।१३
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः । उत्थाय वाससी शुक्ले सूक्ष्मे तु परिधाय वै ।।१४
ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय तु । देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।।
क्रूराः सर्वाः सुपर्णाश्च तरक्षा विहगाः खगाः ।।१५
विद्याधरा जलधरास्तथैवाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये ।।१६
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया । कृतोपवीतो देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ।।१७

कुशाओं के सींचने द्वारा बाहरकी शुद्धि पूर्वक हाथ में कुश लिए चार हाथ के चौकोर गड्ढे को सजल कर उसमें निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा गङ्गा प्रवाहित करो। ओंकार के उच्चारण पूर्वक —विष्णु चरण से उत्पन्न होने के नाते वैष्णवी और विष्णु देवता वाली गङ्गे! मेरे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत के सभी पापों से मेरी रक्षा करो। क्योंकि वायु देव के कथनानुसार साढ़ेतीन कोटिदेवगण, जो आकाश, भूतल, और अन्तरिक्ष (विदिशाओं) में स्थायी रहते हैं सभी तुम्हारे अधीन हैं।१-६। नन्दिनी, देवों प्रचलित नलिनी, क्षमा, पृथिवी, विहगा, विश्वकाया, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोभ प्रसादिनी, हैमा, जान्हवी, शांता, शांतिप्रदा, स्नान के समय इन नामों के संकीर्तन करने पर त्रिपथ (आकाश -पाताल और मर्त्यलोक में) गामिनी (गमन करने वाली) गङ्गा वहाँ सम्मिलित होती हैं। भूप! दोनों हाथों को सम्पुटित करके सात वार उपरोक्त नामों के जप करते हुए तीन, चार, पाँच, अथवा सात वार जल को शिर से स्पर्श पूर्वक स्नान आरम्भ करे। उसी भाँति आमंत्रित करके सविधान मृत्तिका स्नान भी बताया गया है—अश्व, रथ, एवं विष्णु से आक्रान्त होने वाली वसुन्धरे मृत्तिके! मेरे किये हुए समस्त दुष्कृतों का अपहरण करो। समस्त लोकों के प्राण धारण करने वाली सुव्रते! बराह रूप धारी कृष्ण एवं शतबाहु द्वारा तुम्हारा उद्धार हुआ है अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार स्नान और सविधान आचमन करके सूक्ष्म एवं श्वेत वस्त्र पहन कर तीनों लोकों के वृध्यर्थ तर्पण करे—देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा गण, क्रूरसर्प, सुवर्ण, वृन्द, तरक्ष, विहग, खग, विद्याधर, जलधर, आकाश गामी तथा विद्याधर रहने वाले और पापी जीव के संतृप्ति के लिए, मैं यह जल दान कर रहा हूँ।७-१६। अनन्तर बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण कर देवों के लिए, कंठ में

---

१. विश्वमाया।

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१८
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे ते तृप्तिमायांतु मद्दत्तेनाम्बुना सदा ॥१९
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥२०
देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयेताक्षतोदकैः । अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जानु च भूतले ॥२१
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो हविष्मंतस्तथोष्मपाः । सुकलितास्तथा भौमा आज्यपाः सोमपास्तथा ॥२२
तर्पयेच्च पितॄन्भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः । दर्भपाणिस्तु विधिवत्तर्पयेन्नामगोत्रतः ॥२३
पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि । संतर्प्य विधिवद्भक्त्या इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥२४
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः । ते तृप्तिमखिला यांतु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥२५
ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रतः । अक्षतैः सह पुष्पैश्च सतिलारुणचन्दनैः ॥२६
अर्घं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः । नमस्ते विश्वरूपाय नमो विष्णुसखाय वै ॥२७
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे । नमस्ते सर्ववपुजे नमस्ते सर्वशक्तये ॥२८
जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित । पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदधारिणे ॥२९
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत । सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानासि सर्वदा ॥३०
सत्यदेव नमस्तेस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते । दिवाकर नमस्तेऽस्तु त्रयीमय नमोऽस्तु ते ॥३१
एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वा च प्रदक्षिणाम् । द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ॥३२

रख कर ऋषियों के लिए तर्पण करने के उपरांत मनुष्यों और ब्रह्म पुत्र ऋषियों का तर्पण करे—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोढा और पञ्चशिख ये सभी लोग मेरे किये गये जल से तृप्त हों ।१७-१९। मरीचि, अग्नि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु, नारद और समस्त देव, ब्रह्म एवं ऋषिओं का तर्पण अक्षत-जल द्वारा सुसम्पन्न करके अपसव्य (यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर रख कर) होकर दाहिना घुटने के बल बैठें चन्दन, तिल जल द्वारा भक्ति पूर्वक अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, हविष्मान् उष्मपा, सुकलित भौम, आज्यपा, और सोमपा पितरों को तृप्त करते हुए हाथ में कुश लिए नाम-गोत्र के उच्चारण पूर्वक पितृ-मातृ कुल को तर्पण द्वारा तृप्त करे और अनन्तर (वस्त्र निचोड़ने द्वारा) बन्धु, अबन्धु और अन्य जन्म के वन्धुगण मेरे इस जल दान द्वारा तृप्त हों, जो मुक्त से जल पाने की अभिलाषा रखते हों । उपरान्त आचमन करके कमल की रचना करके उस पर सूर्य के आवाहन स्थापन पूर्वक उनक नामों का कीर्तन करते हुए अक्षत, पुष्प, तिल तथा रक्तचन्दन का अर्घ्य उन्हें प्रदान करें—विश्वरूप को नमस्कार है, विष्णु सखा को नमस्कार है, सहस्रकिरण को नमस्कार है, समस्त तेज को नमस्कार है, सर्वदेह और सर्वशक्ति को नमस्कार है, जगत् के स्वामी दिव्य चन्दनभूषित, पद्मनाभ, कुण्डल और अंगद (विजयपठ) धारी को नमस्कार है । समस्त लोकों के ईश एवं समस्त असुरवृन्दों के वन्दनीय को नमस्कार है, आप (मेरे) सुकृत और दुष्कृत का भलीभाँति सदैव ज्ञान रखते हैं अतः सत्य देव को नमस्कार है और त्रयी (तीनों वेद) मय को नमस्कार है ।२०-३१। इस भाँति सूर्य का नमस्कार, तीन प्रदक्षिणा, ब्राह्मण, गौ एवं सुवर्ण का स्पर्श करके विष्णु मन्दिर में दर्शनार्थ का स्नान, जो पाप का

स्नानं खलु प्रतिदिनं कथितं मुनीन्द्रैः पापापहं मलहरं सुखदं सदैव।
तस्मान्नदीष्वथ गृहेष्वथ वा तडागे कर्तव्यमेतदिह[1] धर्मधिया नरेण।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नित्यस्नानविधिवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।१२३

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुद्रस्नानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

रुद्रस्नानविधानं मे कथयस्व जनार्दन। सर्वदुष्टोपशमनं सर्वशांतिप्रदं नृणाम्।।१

श्रीकृष्ण उवाच

देवसेनापतिं स्कन्दं रुद्रपुत्रं दुरासदम्। अगस्त्यो मुनिशार्दूलः सुखासीनमुवाच ह।।२
सर्वज्ञोऽसि कुमार त्वं प्रसादाच्छङ्करस्य वै। स्नानं रुद्रविधानेन ब्रूहि कस्य कथं भवेत्।।३

स्कन्द उवाच

मृतप्रजा तु या नारी दुर्भगा सुतवर्जिता[2]। या सुते [3]दुहितां वंध्या स्नानमासां विधीयते।।४
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यामुपवासपरायणा। ऋतौ शुद्धे चतुर्थेऽह्नि प्राप्ते सूर्यदिनेऽथ वा।।५

नाशक एवं सदैव सुख प्रद है, मुनीद्रों के कथनानुसार मैंने तुम्हें बता दिया। अतः नदी, सरोवर, अथवा गृह में स्नान बुद्धिमान् पुरुष को अवश्य करना चाहिए।३२-३३

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
नित्य स्नान विधि वर्णन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त।१२३।

अथ अध्याय १२४

रुद्रस्नानविधि-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन! मुझे वह रुद्रस्नान बताने की कृपा कीजिए, जो समस्त दुष्टों के शमन पूर्वक मनुष्यों को सम्पूर्ण शान्ति प्रदान करता है।१

श्री कृष्ण बोले—एक वार मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने सुख पूर्वक बैठे हुए देवसेना नायक स्कन्द से जो रुद्र के पुत्र एवं दुधर्ष हैं, कहा—कुमार! आप शङ्कर जी की कृपा से सर्वज्ञ हो गये हैं अतः रुद्रस्नान का विधान तथा वह किसे, और कब करना चाहिए, बताने की कृपा करें।२-३

स्कन्द बोले—जिसके बच्चे उत्पन्न होकर मर जाते हैं, दुर्भगा, पुत्र हीन, तथा जिसके कन्या ही उत्पन्न होती हैं और बन्ध्या स्त्रियों के लिए यह स्नान विधान बताया गया है—ऋतु धर्म की शुद्धि होने पर

---

१. धर्मपरेण पुंसा २. ऋतुवर्जिता। ३. दुहितामित्यार्षम्।

नद्योस्तु सङ्गमे कुर्यान्महानद्योर्विशेषतः । शिवालयेऽथ वा गोष्ठे विविक्ते वा गृहाङ्गणे ॥६
आहिताग्निं द्विजं शांतं धर्मज्ञं सत्यशीलिनम् । स्नानार्थं प्रार्थयेद्देवं[१] निपुणं रौद्रकर्मणि ॥७
ततस्तु मण्डपं कुर्याच्चतुरस्रमुदग्गतम् । बद्धचन्दनमालं तु गोमये नोपलेपितम् ॥८
तन्मध्ये [२]श्वेतरजसा सम्पूर्णं पद्ममालिखेत् । मध्ये तस्य महादेवं स्थापयेत्कर्णिकोपरि ॥९
दद्याद्दलेषु शक्त्यादींश्चतुर्थविधिं[३] पूर्वकम् । इन्द्रादिलोकपालांश्च दलेष्वन्येषु विन्यसेत् ॥१०
देवीं विनायकं चैव स्थापयेत्तस्य पार्श्वतः । दत्त्वार्घं गन्धपुष्पं च धूपदीपं गुडौदनम् ॥११
भक्ष्यान्नानाविधान्दद्यात्फलानि विविधानि च । चतुष्कोणेषु भृंगारमश्वत्थदलभूषितम् ॥१२
एकैकं विन्यसेद्ब्रह्मन्सर्वौषधिसमन्वितम् । चतुर्दिशं मंडपस्य दद्याद्भूतबलिं ततः ॥१३
आग्नेय्यां दिशि कर्तव्यं मण्डपस्य समीपतः । अग्निकार्यं शुभे कुण्डे पुष्पपत्रैरलंकृते ॥१४
लवणं सर्षपैर्युक्तं घृतेन मधुना सह । मानस्तोकेन जुहुयात्कृतहोमे नवग्रहे ॥१५
द्वितीयमग्निकार्यस्य कर्तारं ब्राह्मणं कुरु । रुद्रजापकमाचार्यं सितचन्दनचर्चितम् ॥१६
सितवस्त्रपरीधानं सितमालाधरं शुभम् । शोभितं कङ्कणैः कण्ठचैः कर्णवेष्टांगुलीयकैः ॥१७
मण्डलस्य समीपस्थो जपेद्रुद्रान्विमत्सरः । यावदेकादश गताः पुनरेव जपेत्तु तान् ॥१८
देवमण्डलवत्कार्यं द्वितीयं मण्डलं शुभम् । तस्य मध्ये तु सा नारी श्वेतपुष्पैरलंकृता ॥१९
श्वेतवस्त्रैश्च संछन्ना श्वेतगन्धानुलेपिता । सुखासनोपविष्टायामाचार्यो रुद्रचिंतकः ॥२०

चौथे दिन के उपरांत रविवार अष्टमी अथवा चतुर्दशी के दिन उपवास पूर्वक नदी के सङ्गम स्नान, अथवा विशेषतया महानदी के संगम, शिवालय, गोशाला, या विस्तृत ओर खुले हुए गृह के आङ्गण गोष्ठ अग्नि होत्र करने वाले ब्राह्मण की, जो शांत धर्मज्ञ, सत्यप्रेमी निपुण, एवं देव रूप हो, इस रौद्र स्नान के कर्मारम्भ में स्नानार्थ प्रार्थना करके उत्तर की ओर मण्डप की रचना करे जो चन्दन की माला से भूषित रहे । पुनः गोमय (गोबर) से लीप कर उसके मध्य भाग में श्वेत-रक्त चूर्ण द्वारा पूरे कमल की रचना करे और उसके मध्य कर्णिका के ऊपर सविधान महादेव, दलों में शक्ति पार्श्वभाग में विनायक तथा देवी की स्थापना एवं पूजन करने के उपरान्त अर्घ्य और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गुडौदन (मीठा भात) अनेक भाँति के भक्ष्य और अनेक भाँति के फल अर्पित करके चारों कोने पर पीपल के पत्ते और समस्त औषधियों से पूर्ण सजल सुवर्ण का जल पात्र स्थापित करे । अनन्तर मण्डप के चारों दिशाओं में भूतबलि के प्रदान करते हुए मण्डप के समीप अग्निकोण मे बनाये एवं पुष्प पत्र से भूषित उस शुभ कुण्ड में प्रथम नवग्रह हवन और पश्चात् लवण (नमक) राई, घृत तथा मधु (शहद) की आहुति 'मानस्तोके' आदि मंत्रों के उच्चारण पूर्वक प्रदान करे ।४-१५। इस अनुष्ठान में अग्नि कार्य करने वाले एक दूसरे ब्राह्मण और रुद्र जप करने वाले एक आचार्य कर रख कर उन्हें चन्दन, श्वेत वस्त्र, श्वेत माला, कङ्कण, कण्ठाभूषण, कुण्डल तथा अंगूठी से विभूषित करे, जो निर्मत्सरतापूर्ण एकादश रुद्र का जप मण्डल भाँति एक दूसरे मण्डल की भी रचना करें जिसके मध्य में श्वेत पुष्पों से भूषित, श्वेत वस्त्र पहने, श्वेतगंध लेप लगाये भद्रासन पर वह सभी सुख पूर्वक

---

१. एवं सगुणं रुद्रकर्मणि । २. श्वेतरक्तं च । ३. सद्यादीनात पाठ सद्यः प्रणव इति मांत्रिकसंज्ञा ।

अभिषिंचेत्ततश्चैव नामर्कपत्रपुटांबुना । चतुःषष्टिविधेनैव रुद्रेणैकादशेन तु ।।२१
शतानि सप्तपर्णानां चतुर्भिरधिकानि तु । अच्छिद्राणां मनूनां च स्नानार्थं विनियोजयेत् ।।२२
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ह्रदात् । वेश्यांगणाद्राजगृहाद्गोष्ठादानीय वै मृदः ।।२३
सर्वौषधिं रोचनां च नदीतीर्थोदकानि च । एतान्संक्षिप्य कलशे शिवसंज्ञे सुपूजिते ।।२४
आपादतलकेशं च कुक्षी चैव विशेषतः । सर्वांगं लेपयेन्नार्याः सुशीला काचिदङ्गना ।।२५
रुद्राभिजप्तेन ततः स्नापयेत् कलशेन ताम् । तोयपूर्णाष्टकलशैरश्वत्थदलपूरितैः ।।२६
सर्वतोदिक्स्थितैः पश्चात्स्नापयेत्सफलाक्षतैः । एवं स्नाता स्नापकाय दद्याद्गां काञ्चनं तथा ।।२७
हेतुरप्यत्र निर्दिष्टा दक्षिणा गौः पयस्विनी । ब्राह्मणानामथान्येषां स्वशक्त्या पांडुनंदन ।।२८
गोवत्सकाश्चनादीनि दत्त्वा सर्वं क्षमापयेत् । कृतेनानेन राजेन्द्र रुद्रस्नानेन भागिनी ।।२९
सुभगा सुखसंयुक्ता बहुपुत्रा च जायते । सर्वेष्वपि हि मासेषु ब्राह्मणाभिमते शुभम् ।।३०
तस्मादवयं कर्तव्यं पुत्रश्रीसुखमिच्छता ।।३१

या स्नानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्धिं श्रद्धान्विता द्विजवरानुमताऽऽनताङ्गी।
दोषान्निहत्य सकलान्स्वशरीरभागाद्भर्तुः प्रिया भवति भारत जीववत्सा ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रुद्रस्नानविधिवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२४

बैठी रहे और रुद्र के ध्यान करके वाले आचार्य अर्कपत्र (मदार) के पत्ते की दोनियाँ द्वारा चौसठविधान, एकादश रुद्र, एक सौ चार सप्तपर्ण और निर्दुष्ट मन्त्रो के उच्चारण पूर्वक उसका अभिषेक करें । स्नान के पश्चात् उस शिवकलश, वेश्यागृह, राजगृह और गोशाला की मृत्तिका, समस्त औषध, रोचना, नदी और तीर्थ के जल पड़े हों, उस स्त्री के पैर के तलवे से लेकर शिर तक विशेषतया दोनों कुक्षि और सर्वाङ्ग में किसी सुशील कामिनी द्वारा उस मृत्तिका के लेप पूर्वक आचार्य द्वारा जल-स्नान कराना चाहिए।१६-२५। पुनः उन आठ कलशों के जल से, जो पीपल पत्ते आदि से पूर्ण और दिशाओं के स्थापित हों, फल अक्षत समेत आचार्य उस सभी का स्नान कराये । स्नानोपरांत वह सभी स्नान कराने वाले आचार्य को गौ और सुवर्ण अर्पित करे । पाण्डुनन्दन! यथाशक्ति आचार्य एवं अन्य ब्राह्मणों का दक्षिणा दे धेनु (दूध देने वाली) गौ अर्पित करना चाहिए । राजेन्द्र! इस प्रकार सवत्सा गौ एवं काञ्चन आदि अर्पित करके क्षमा प्रार्थना करे । इस भाँति रुद्र स्नान करने पर वह भामिनी, सुभाग सुखी और बहु पुत्रा होती है। पुत्र, श्री एवं सुख की वाञ्छा करने वाली स्त्रियों को ब्राह्मण की सम्मति से यह स्नान अवश्य करना चाहिए। भारत! इस प्रकार इस प्रसिद्ध रुद्र स्नान को श्रेष्ठ ब्राह्मण की अनुमति से सम्पन्न करने वाली नताङ्गी कामिनी अपनी देह के समस्त दोषों के हनन पूर्वक भर्ता की प्रेयसी एवं जीव वत्सा होती है।२६-३२

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
रुद्रस्नान विधि वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२४।

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधिवर्णनम्

युधिष्ठर उवाच

चन्द्रादित्योपरागेषु यत्स्नानमभिधीयते । तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रं प्रधानतः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यस्य राशि समासाद्य भवेद्ग्रहणसंप्लवः । तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥२
चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । सम्पूज्य चतुरो विप्रान्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३
पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुम्भानग्रतः सागरानिति ॥४
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशात्तु मृदमानीय प्रक्षिपेत् ॥५
पञ्चगव्यं च कुम्भेषु पञ्च रत्नानि चैव हि । रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चभङ्गसमन्वितौ ॥६
स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम् । गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरगुग्गुलम् ॥
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान् ॥७
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा ह्रदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥८
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनश्चेन्द्रः पीडां मेऽत्र व्यपोहतु ॥९
रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानिलसप्रभः । खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षः पीडां व्यपोहतु ॥१०

अध्याय १२५

चन्द्र-सूर्य-ग्रहण-स्नान की विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण समय में जो अन्न प्रधान द्रव्य स्नान किया जाता है, मुझे सुनने की इच्छा है बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—जिसकी राशि पर वह ग्रहण लगता है, उसके लिए मन्त्र और औषध समेत वह स्नान करना बता रहा हूँ । चन्द्र ग्रहण में ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन पूर्वक गन्ध, माला एवं अनुलेपन द्वारा चार ब्राह्मणों की अर्चना करे । ग्रहण के पूर्व समय घृत और औषध मिश्रित सागर के रूप में चार कलश की स्थापना करे, जिसमें गज, अश्व, रथ, वल्लीक, संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार की मृत्तिका, पंचगव्य, पंचरत्न, गोरोचन, कमल, शंख, पंचगंग, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थजल, राई, गजदाँत, कुंकुम, खश (गडरा की जड) और गुग्गुल पड़ा हो । इन सभी वस्तुओं को कलश में डालने के अनन्तर उस कलश में देवों के आवाहन आरम्भ करे—समस्त समुद्र, नदियाँ, तीर्थ, जलद, बादल एवं सरोवर यजमान के पापविनाशार्थ यहाँ आने की कृपा करें।२-८। वज्र धारण करने वाले इन्द्र देव जो आदित्यगण के प्रभु एवं सहस्र नेत्र हैं इस मेरी व्यथा को दूर करें। रक्षागणाधिप ! जो साक्षात् प्रलय कालीन वायु की भाँति दुधर्ष खड्ग लिये व्यग्र और अति भीषण है, राक्षस जनित मेरी पीड़ा शान्त करे।९-१०।

योऽसो बिन्दुकरो बिन्दुः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शङ्करः ॥११
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मार्कविष्णुयुक्तानि तानि पापं दहन्तु वै ॥१२
एवमामन्त्रितैः कुम्भैरम्भोर्युक्तैयुगान्वितैः । ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ॥१३
एतानेव ततो मन्त्रान्संलिख्य कनकान्वितान् । यजमानस्य शिरसि उद्धार्यास्ते नरोत्तम ॥१४
कलशान्द्रव्यसंयुक्तान्प्राप्ते ग्रहणपर्वणि । चन्द्रग्रहे निवृत्ते तु कृतगोदानमङ्गलः ॥१५
कृतस्नानः श्वेतपट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अनेन विधिना यस्तु सग्रहं स्नानमाचरेत् ॥१६
न तस्य ग्रहपीडास्याम्न च बन्धुजनक्षयः । परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥१७
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् । द्रव्यैस्तैरेव कथितं स्नानं कुरुकुलोद्वह ॥१८
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते ॥१९

चन्द्रग्रहे नृप रविग्रहणे जपन्मां मन्त्रैरिमैः समभिमन्त्र्य शुभोदकुम्भात् ।
स्नानं करोति नियमेन नरश्च यश्च पीडा न तं ग्रहकृता च पुनर्दुनोति ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधिवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२५

विन्दु करने वाले विन्दु पिनाकी तथा वृषवाहन शङ्कर देव ! चन्द्रग्रहण जनित मेरे समस्त पापों को नष्ट करें। त्रैलोक्य में स्थित चार, अचर समस्त प्राणी समेत ब्रह्मा, सूर्य एवं विष्णु देव मेरे पापों को भस्मसात करें। इस प्रकार उन जलपूर्ण चारों कलशों में आवाहन, ऋक्, यजु और साम के मन्त्रों द्वारा श्वेत पुष्पों की माला, विलेप, वस्त्र, तथा गोदान अर्पित करते हुए इष्ट देवता एवं ब्राह्मणों की अर्चना सुसम्पन्न करे। नरोत्तम ! इन मंत्रों को कनकमय करते हुए लिखने के उपरांत यजमान के शिर पर उन मन्त्रों के उद्धार पूर्वक उस ग्रहण के समय औषधादि संयुक्त कलशों के जल से स्नान और ग्रहण के निवृत्त होने पर मङ्गलार्थ गोदान करके श्वेत वर्ण का दुपट्टा ब्राह्मण को सादर अर्पित करें। इस विधान द्वारा ग्रहण के समय स्नान करने वाले की ग्रह पीड़ा शांति हो जाती है, बन्धु, परिवार का क्षय नहीं होता तथा ऐसी उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है जिसमें पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) होता ही नहीं। कुरुकुलोद्वह ! सूर्य ग्रहण के समय मंत्रोच्चार करते हुए सूर्य के नाम का ही सदैव कीर्तन करना चाहिए। और पूर्वोक्त वस्तुओं समेत घट स्नान। इस आख्यान को सुनने अथवा सुनाने वाले मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर इन्द्र लोक में सुसम्मानित होते हैं। नृप ! चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय मेरी आराधनापूर्वक इन मंत्रों से अभिमंत्रित उस शुभ कलश जल से सनियम स्नान करने वाले पुरुष को ग्रहपीड़ा पीड़ित नहीं करती है।११-२०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
चन्द्रसूर्य ग्रहण स्नान विधि वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।१२५।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सांभरायणीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

गृहस्थो मरणे प्राप्ते कथं त्यजति जीवितम् । एतन्मे ब्रूहि गोविन्द परं कौतूहलं हि मे ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

नान्यदुष्कृष्टमुद्दिष्टं तज्ज्ञैरनशनात्परम् । तस्याहं लक्षणं वक्ष्ये यज्जप्यं च मुमूर्षतः ।।२
यादृग्रूपश्च भगवान्श्चिंतनीयो जनार्दनः । आसन्नमात्मनः कालं ज्ञात्वा प्राज्ञो युधिष्ठिर ।।३
निर्धूतमलदोषश्च स्नातो नियतमानसः । समभ्यर्च्य हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्ततः ।।४
प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्गंधैर्धूपैस्तु पूजयेत् । दत्त्वा दानं च विप्रेभ्यो विकलादिभ्य एव च ।।
समर्प्य ब्राह्मणेभ्यश्च देवर्चाद्युपयोगि च ।।५
बन्धुपुत्रकलत्रेषु क्षेत्रधान्यधनादिषु । मित्रवर्गे च राजेन्द्र ममत्वं विनिवर्तयेत् ।।६
मित्राण्यमित्रान्मध्यस्थान्परान्स्वांश्च पुनः पुनः । अत्यर्थमपकारेण नोपकारेण चिन्तयेत् ।।७
ततश्च प्रयतः कुर्यादुत्सर्गं सर्वकर्मणाम् । शुभाशुभानां राजेन्द्र वाक्यं चेदमुदीरयेत् ।।८
परित्यजाम्यहं भोगांस्त्यजामि सुहृदोऽखिलान् । भोजनं हि मयोत्सृष्टमुत्सृष्टमनुलेपनम् ।।९

अध्याय १२६

सांभरायणी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द ! ग्रहण का समय प्राप्त होने पर गृहस्थों को किस प्रकार अपना जीवन त्याग करना चाहिए । यह जानने के लिए मुझे महान् कुतुहल हो रहा है, अतः इसे कहने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—अनशन करने वाले विद्वानों ने उपवास करना बहुत कठिन बताया है (अर्थात् उससे कठिन अन्य कुछ भी नहीं है) अतः मरणासन्न प्राणी को उस समय का जप और अनशन का लक्षण बता रहा हूँ, सुनो ! युधिष्ठिर ! अपना मरण सन्निकट जान कर भगवान् जनार्दन के जिस रूप का ध्यान करना चाहिए उसे भी सुनो ! मन को संयत करते हुए मल दोष रहित एवं स्नान करने के पश्चात् पुष्प, धूप, नम्रतापूर्ण स्तुतियों और पुण्य गंध आदि वस्तुओं द्वारा भगवान् हृषीकेश की अर्चना, ब्राह्मणों और लंगडे लूले आदि को दान करे और देवों आदि की अर्चा आदि उपयोगी कर्म ब्राह्मणों को सौंप करके भाई, पुत्र, स्त्री क्षेत्र (खेत), धन धान्य आदि एवं मित्र वर्ग से अपना मोह हटा ले । मित्र, शत्रु, मध्यस्थ और अपना, पराया उपकार अथवा अपकार का कुछ भी स्मरण न करे । अनन्तर प्रयत्न पूर्वक समस्त कर्मों के त्याग भी । राजेन्द्र ! पुनः शुभाशुभात्मक इन वाक्यों का उच्चारण करे ।२-८। मैं सम्पूर्ण भोग और निखिल मित्रों का त्याग कर रहा हूँ । मैंने भोजन का त्याग तो कर ही दिया है किन्तु विलेप, माला, भूषण आदि,

स्रग्भूषणादिकं गेयं दानमासनमेव च । होमादयः परार्था ये ये च नित्यक्रमागताः ॥१०
नैमित्तिकास्तथा काम्याः श्राद्धधर्मादयोज्झिताः । त्यक्ताश्चाश्रमिका धर्मा वर्णधर्मास्तथोज्झिताः॥११
पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्कुर्वाणः कर्म चोद्वहन् । न पापं कस्यचिन्न्याय्या प्राणिनः संतु निर्भयाः ॥१२
नभसि प्राणिनो ये च दे जले ये च भूतले । क्षितेर्विवरगा ये च ये च पाषाणसंपुटे ॥१३
धान्यादिषु च वस्त्रेषु शयनेष्वासनेषु च । ते स्वयं तु विबुध्यंते दत्तं तेभ्योऽभयं मया ॥१४
न मेऽस्ति बांधवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । मित्रपक्षे च मे विष्णुरधश्चोर्ध्वं तथा पुनः ॥१५
पार्श्वतो मूर्ध्नि हृदये बाहुभ्यां चैव चक्षुषोः । श्रोत्रादिषु च सर्वेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥१६
इति सर्वं समुत्सृज्य धृत्वा सर्वेशमच्युतम् । वासुदेवेत्यविरतं नाम देवस्य कीर्तयेत् ॥१७
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु शेते वै प्राक्छिरास्तथा । उदक्छिरा वा राजेंद्र चिन्तयञ्जगतः पतिम् ॥१८
विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् । नारायणं नरं शौरिं वासुदेवं जनार्दनम् ॥१९
वाराहं यज्ञपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम् ॥२०
पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजम् । सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धमनन्तं विश्वरूपिणम् ॥२१
चक्रिणं गदिनं शान्तं शङ्खिनं गरुडध्वजम् । किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्ययम् ॥२२
अहमस्मि जगन्नाथ मयि वासं कुरु द्रुतम्। आवयोरन्तरं मास्तु समीराकाशयोरिव ॥२३
अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम । नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥२४

गेय, दान और आसन के त्याग पूर्वक नित्य के क्रम प्राप्त पारमार्थिक हवन आदि, नैमित्तिक कर्म एवं श्राद्ध धर्म आदि काम्य कर्म का भी त्याग कर रहा हूँ । उसी भाँति आश्रम धर्म तथा जातीय धर्म कर्म को भी अपने कर चरण द्वारा अनेक ममय तक सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसे भी त्याग दिया है । किसी भी प्राणी के लिए पाप कर्म न्याय प्राप्त नहीं है अतः वे निर्भय हों और आकाश, जल, थल, पाताल, पर्वत की गुफाओं धान्यादि, वस्त्रों और शयनासनों में रहने वाले प्राणियों को यह बात स्वयं जान लेना चाहिए कि मैंने उन्हें अभय दान दे दिया है । जगद्गुरु भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अब मेरा कोई बन्धु नहीं है । मित्र तथा नीचे ऊपर, पार्श्व भाग, शिर, हृदय बाहु, नेत्र और कान आदि सभी स्थानों में भगवान् विष्णु स्थित हैं ।९-१६। इस प्रकार सभी के त्यागपूर्वक भगवान् अच्युत का तन्मयता से ध्यान करते हुए उनके वासुदेव नाम का कीर्तन करे । दक्षिण की ओर अग्र किये हुए कुश ऊपर पूर्व अथवा उत्तर की ओर शिर करके जगन्नियन्ता विष्णु के ध्यान पूर्वक शयन करे । राजेन्द्र पुनः विष्णु, विष्णु, हृषीकेश, केशव, मधुसूदन, नर नारायण, शौरि, वासुदेव, जनार्दन, वाराह, यज्ञ पुरुष, पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिह, अपराजित, पद्मनाभ, अज, श्रीश, दामोदर, अधोक्षज, सर्वेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शांत, शंखी, गरुडध्वज, तथा किरीट कौस्तुभ को धारण करने वाले अव्यय (अक्षीण) रहने वाले भगवान् को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, जगन्नाथ ! मैं इसमें और आप मुझमें रहने की शीघ्र कृपा करें । वायु एवं आकाश की भाँति मुझमें और आप में कोई अन्तर न रहे । मेरे सामने यह विष्णु, शौरि एवं कृष्ण स्थित हैं, नील कमलदल की भाँति श्यामल तथा कमल पत्र की भाँति विस्तृत नेत्र वाले मेरे स्वामी भगवान् अधोक्षज मुझे देखने की कृपा करें, मैं उन्हें देख रहा हूँ । इस प्रकार सर्वेश्वर हरि को एकाग्रचित्त

एष पश्यतु मामीशः पश्याम्यहमधोक्षजम् । इत्थं जपेदेकमनाःस्मरन्सर्वेश्वरं हरिम् ॥२५
आसीत सुखदुःखेषु समो मित्राहितेषु च । "ॐ नमो वासुदेवाय" इत्येतत्सततं जपेत् ॥२६
यथा यथा भवेत्कामस्तथा तन्नाम कीर्तयेत् । ध्यायेच्च देवदेवेशं विष्णो रूपं मनोरमम् ॥२७
प्रसन्ननेत्रभ्रूचक्रशङ्खचक्रगदाधरम् । श्रीवक्षसं सुमनसं चतुर्वक्त्रं किरीटिनम् ॥२८
पीताम्बरधरं कृष्णं चारुकेयूरधारिणम् । चिन्तयेत्तु सदा रूपं मनः कृत्वैकनिश्चयम् ॥२९
यादृशे वा मनः स्थैर्यं रूपे बध्नाति चक्रिणः । तदेव चिन्तयेद्रूपं वासुदेवेति कीर्तयेत् ॥३०
इत्थं जपन्स्मरन्नित्यं स्वरूपं परमात्मनः । अप्राणपरमोदारस्तच्चित्तस्तत्परायणः ॥३१
सर्वपातकयुक्तोऽपि पुरुषः पुरुषर्षभ । प्रयाति देवदेवेशे लयमीड्यतमेच्युते ॥३२
यथाग्निस्तृणजातानि दहत्यनिलसङ्गतः । तथानशनसङ्कल्पः पुंसां पापमसंशयम् ॥३३

युधिष्ठिर उवाच

उत्क्रान्तिकाले भूतानां मुह्यन्ति चित्तवृत्तयः । जराव्याधिविहीनानां किमुत व्याधिदोषिणाम् ॥३४
अत्यन्तवयसा दग्धो व्याधिना चोपपीडितः । यदि स्थातुं न शक्नोति क्षितिस्थो दर्भसंस्तरे ॥३५
किमप्यन्योऽप्युपायोऽस्ति न वानशनकर्मणि । वैकल्यं येन नाप्नोति तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥३६
त्वयोक्तं भगवन् ध्यानं तद्ब्रूहि मम तत्त्वतः । ध्यानस्वरूपमखिलं कथयस्व जनार्दन ॥३७

से स्मरण करते हुए सुख-दुःख और मित्र शत्रु सब में समभाव की कल्पना पूर्वक 'ओं नमो वासुदेवाय' (ओंकार रूप वासुदेवाय को नमस्कार है) इस समंत्र का निरन्तर जप करे तथा ज्यों ज्यों भाव वृद्धि होती जाये त्यों त्यों उनके नाम का कीर्तन करता जाये। और देवाधिदेव भगवान् विष्णु के मनोरम रूप का ध्यान करता रहे। इस प्रकार अपने मन से एक मात्र निश्चय कर विकसित नेत्र, भौंहे एवं शंख, चक्र गदा धारण करने वाले, श्री से सुशोभित वक्षस्थल, निर्मलचित्त, चारमुख, किरीट, पीताम्बर और सुन्दर केयूर धारण करने वाले भगवान् कृष्ण के रूप का स्मरण करते हुए चक्रधारी भगवान् विष्णु के जिस रूप में मनकी दृढ़ स्थिरता हो सके उनके उस रूप का ध्यान करते हुए वासुदेवाय नमः का कीर्तन करें। पुरुषर्षभ ! इस प्रकार के जप और परमात्मा के स्वरूप का नित्य स्मरण करते हुए प्राणान्त तक परम उदार, तच्चित्त और तत्परायण रहने से समस्त पातकों से युक्त पुरुष का भी देवाधिदेव भगवान् अच्युत में सायुज्य मोक्ष हो जाता है। जिस प्रकार वायु के संसर्ग से अग्नि तृण मात्र को भस्म करता है उसी भाँति अनशन करने का दृढ़संकल्प मनुष्यों के निखिल पापों का विनाश करता हूँ इसमें संदेह नहीं। १७-३३

युधिष्ठिर बोले—प्राण निकलने के समय जरा एवं व्ययहीन प्राणियों की चित्त वृत्ति मोहित होती है अथवा व्याधि दोष ग्रस्त प्राणियों की तथा अत्यन्त वयोवृद्ध एवं व्याधि पीड़ित प्राणी के लिए जो भूमि में बिछाये हुए कुशों पर बैठने में असमर्थ हो, अनशन करने का क्यों कोई अन्य उपाय है। जनार्दन ! जिससे विकलता प्राप्त न हो सके वह मुझे बताने की कृपा कीजिये भगवान् ! जनार्दन ! आप ने ध्यान करने की जो चर्चा की है उसके मर्म और निखिल स्वरूप भी कृपया मुझे बताये। ३४-३७

श्रीकृष्ण उवाच

नात्र भूमिर्न च कुशाः स्वास्तराश्च न कारणम् । चित्तसन्यालं बनीभूतो विष्णुरेवात्रकारणम् ॥३८
तिष्ठन्भुञ्जन्स्वपन्गच्छन्स्तथा धावन्नितस्ततः । उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं संस्मरंस्तन्मयो भवेत् ॥३९
यं यच्चापिस्मरन्भावंत्यजत्यन्ते कलेवरम् । तम् तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥४०
तस्मात्प्रधानमत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनम् । यद्यत्पृष्टं त्वयाऽध्यानं तदेव कथयामि ते ॥४१
पुरा मे कथितं पार्थ मार्कण्डेयेन धीमता ॥४२

राज्योपभोगशयनासनवाहनेषु स्त्रीगन्धमाल्यमणिवस्त्रविभूषणेषु ।
इच्छाभिलाषमतिमात्रमुदेति मोहाद्ध्यानं तदात्तमिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४३
सञ्छेदनैर्दहनताडनपीडनैश्च गात्रप्रहारदमनैर्विनिकर्तनैश्च ।
यस्येह चेतसि हि याति न चानुकम्पा ध्यानं तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४४
सूत्रार्थमार्गणमहाव्रतभावनाभिर्बंधप्रमोक्षगतिरागतिहेतु चिन्ता ।
पञ्चेन्द्रियाद्युपशमश्च शमश्च भूतेर्ध्यानं तु धर्म्यमिति तत्प्रवदन्ति सन्तः ॥४५

यस्येन्द्रियाणि विषयैर्न विवर्जितानि सङ्कल्पनात्मज विकल्पविकारयोगैः ।
तत्वैकनिष्ठहृदयो निभृतान्तरात्मा ध्यानं तु शुक्लमिति तत्प्रवदन्ति सिद्धाः ॥४६
आद्ये तिर्यगधोगतिश्च नियतं ध्याने तु रौद्रे सदा धर्म्ये देवगतिः शुभं फलमहोशुक्ले च जन्मक्षयः ।
तस्माज्जन्मरुजापहे हिततरे संसारनिर्वाहके ध्याने शुक्लतरे रजः प्रमथने कुर्यात्प्रयत्नं बुधः ॥४७

श्रीकृष्ण बोले—प्राणोत्सर्ग करने के समय चित्त का आलम्बन एक मात्र विष्णु भगवान् ही हैं जिसका कारण भूमि, कुश और स्तरण आदि कुछ भी नहीं है । उस समय ठहरते, खाते, शयन करते चले फिरते और दौड़ते आदि सभी काल में गोविन्द देव का स्मरण करते हुए तन्मय होना चाहिए । कौन्तेय ! शरीर त्याग के समय जिन-जिन भावों के संस्मरण होते हैं वह उसकी प्राप्ति पूर्वक उन्हीं भावों को अपनाता है । इसलिए उस समय भगवान् वासुदेव का चिन्तन करना ही सर्व प्रधान रहता है । पार्थ ! ध्यान आदि जो कुछ तुमने पूछा था मैंने सब बातें कही, पहले समय में महर्षि मार्कण्डेय ने यह मुझे बताया था । जिस ध्यान में अथवा शयन, आसन, वाहन, स्त्री, गंध माला, मणि, वस्त्र, एवं विभूषण प्राप्त होने की अत्यन्त अभिलाषा उत्पन्न हो उसे उसके मर्मज्ञों ने आत्त ध्यान बताया है । काटना, जलाना, ताड़ना देना, पीड़ित करने, शरीर आघात, दमन और निकृन्त की इच्छा ही जिसके मन में उत्पन्न हो अनुकम्पा किस भाँति नहीं, उसे रौद्र ध्यान कहा गया है । सूत्रों के अर्थान्वेषण, महाव्रतों की भावनाओं द्वारा संसार रूप बन्धन से मोक्ष पुनर्जन्म की चिन्ता, पाँचों इन्द्रियों के जप शमन की इच्छा वाले ध्यान को धार्मिक बताया गया है । और जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से मुक्त न होकर संकल्प विकल्प जनित विकारों में लिपटी हों, किन्तु अन्तरात्मा में लीन होकर एकमात्र तत्त्व निष्ठ होने वाले ध्यान को शुक्ल ध्यान कहा गया है । प्रथम ध्यान से तदात्त, रौद्र से अधोगति, धार्मिक से देवगति, और शुक्ल ध्यान द्वारा शुभ फल की प्राप्ति पूर्वक अपुनर्जन्म प्राप्त होता है । अतः इस शुक्लन्तर ध्यान के लिए जो जन्म मरण रूप रोग का पुष्पहर्ता, अत्यन्त हितैषी, संसार का निर्वाहक और

समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नौ पवने च षोडश ।
गवां गृहे षष्टिरशीतराहवे अनाशने भारत चाक्षया गतिः ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सांभरायणीव्रतवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।१२६

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वापीकूपतडागोत्सर्गविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

तडागोत्सर्जने देव विधिं विधिविदां वर । कथयस्व महाभाग मम देवकिनन्दन ॥१
वापीकूपोदकानाञ्च के मन्त्राः परिकीर्तिताः । के ऋत्विजोऽत्र के यूपाः कर्तव्याः कुण्डमण्डपे ॥२
दानं किमत्र निर्दिष्टं बलयः के प्रकीर्तिताः । कस्मिन्काले कथं कुर्यादित्येतत्सकलं वद ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

साधुसाधु महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि । तडागवापीकूपानामुत्सर्गं कथयामि ते ॥४
निष्पन्ने बद्धपालीके सर्वोद्भेदविवर्जिते । सोपानपंक्तिसहिते पाषाणैः सर्वतश्चिते ॥५
तस्मिन्सलिलसम्पूर्णे कार्तिके वा विशेषतः । तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः ॥६

विकारों का शमन करता है, विद्वानों को सतत प्रयत्न शील रहना चाहिए । भारत ! जल में सात सहस्र अग्नि में ग्यारह, वायु में सोलह गौओं में ग्रहण में साठ और शुद्ध में अस्सी सहस्र अनशन में अक्षय गति प्राप्ति होती है ।३८-४८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठर के सम्वाद में
सांभरायणी व्रत वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२६।

अध्याय १२७

बावली, कुआँ तथा तालाब के निर्माण-विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव ! आप विधिज्ञों में श्रेष्ठ हैं अतः तडागोत्सर्जन की विधि मुझे बताने की कृपा कीजिये ! महाभाग, देवकीनन्दन ! बावली, कूप और सरोवर आदि निर्माण में कौन मंत्र बताये गये हैं, ऋत्विज, यूप स्तम्भ कुण्डमण्डप में किस प्रकार होना चाहिए । दान इसमें क्या बताया गया है और बलि किस भाँति की दी जाती हैं तथा किस समय एवं कैसा करना चाहिए यह समस्त विषय मुझे बताने की कृपा करें ।१-३

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो ! जो तुम मुझसे पूँछ रहे हो यह अत्यन्त साधु प्रश्न है अतः मैं तुम्हें तडाग, बावली एवं कूप का उत्सर्ग बता रहा हूँ, सुनो ! सरोवर के निर्माण में भूमि को पानी की तह तक खोदने के अनन्तर गोलाकार (मनुरी) ईंटे द्वारा बाँधने वृक्षों आदि के संपर्क रहित, क्रमशः सोपान

मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे । न कालनियमो ह्यत्र प्रमाणं सलिलं यतः ॥७
तडागपालशीर्षे तु मण्डलं कारयेच्छुभम् । दशद्वादशहस्तं च चतुर्द्वारं सुविस्तृतम् ॥८
तोरणानि तु चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणैः । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखामयानि च ॥९
नानावर्णास्तु परितः पताकाः परिकल्पयेत् । मध्ये महाध्वजः कार्यः पञ्चवर्णः सुशोभनः ॥१०
चतुर्हस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराथ वा । यजमानप्रमाणेन मध्ये यूपेन शोभिता ॥११
कदम्बाश्वत्थपालाशवैकंकतमयः शुभः । ब्राह्मणस्यास्य निर्दिष्टो यूपः श्रुतिविचक्षणैः ॥१२
न्यग्रोधबिल्वजः प्रोक्तः क्षत्रियाणां च खादिरः । वैश्यस्योदुम्बरमयो ह्यध्वर्जुनसमुद्भवः ॥१३
विभीतकोदुम्बरजः शाकशाल्मलिसम्भवः । शूद्रस्य यूपो निर्दिष्टः सारदारुमयोऽथ वा ॥१४
लोकपालाष्टकं तत्र रजसा च विलेखयेत् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च कमला चाम्बिका तथा ॥१५
सावित्री सहिता कार्या पुष्पधूपैरथार्चयेत् । कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥१६
मेखलात्रययुक्तानि हस्तमात्राणि सर्वतः । हेमालङ्कारिणः कार्या होतारः षोडशाष्ट वा ॥१७
अहताम्बरसम्वीताः स्रक्चन्दनविभूषिताः । स्थापकाश्चात्र विहिता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥१८
इतिहासपुराणज्ञाः प्रियवाचोऽनसूयकाः । मृण्मयानि च पात्राणि ताम्राणि स्रुक्स्रुवन्तथा ॥१९
व्यञ्जनानि च कार्याणि होमार्थं समिधस्तिलाः । ग्रहयज्ञविधानेन होमः कार्यो विजानता ॥२०

(सीढियों) और पाषाण शिलाओं द्वारा चारों ओर से सुरुचित होने पर उस जल पूर्ण सरोवर का (उत्सर्ग) विधान विशेषतया कार्तिक मास और स्थिर नक्षत्र में प्रारम्भ करना चाहिए । कुछ मुनियों का अभिमत है कि उत्तरायण (सूर्य) के व्यतीत होने पर ही उसका आरम्भ होना चाहिए । किन्तु इसमें जल प्रमाण होने के नाते समय का कुछ भी नियम नहीं है । तडाग पाल के मूर्धन्य स्थान पर एक शुभ मण्डल की रचना करे, जो बाईस हाथ का लम्बा, चार दरवाजा सुविस्तृत चारों ओर तोरणों से सुसज्जित जो पीपल, गूलर, पाकर और बरगद की शाखा मय हो और अनेक भाँति की पताकाओं से चारों ओर सुशोभित हो । उसके मध्य में पाँच रंग का अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण महाध्वज स्थापित करके उसके मध्य में चार या पाँच हाथ की वेदी का निर्माण करने के उपरान्त यजमान प्रमाण का यूप (स्तम्भ) मध्य में स्थापित करे ।४-११। कदम्ब पीपल, पलाश, शमी का यूप (स्तम्भ) ब्राह्मणों के लिए बौद्धिक विद्वानों ने बताया है उसी प्रकार बरगद, बेल, खदिर (खैर) का यूप क्षत्रियों के लिए, गूलर, अशोक, अर्जुन का स्तम्भ वैश्यों को और बहेड़ा, गूलर, शाक, सेमर अथवा वृक्ष के भीतरी भाग (सार) का स्तम्भ शूद्रों को बताया गया है । अनन्तर आठ लोक पाल ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, कमला (लक्ष्मी), अम्बिका और सावित्री की पुष्प धूप आदि से अर्चना करे । चारों दिशाओं में चार कुण्ड की रचना कर एक एक हाथ की तीन मेखला, और सुवर्णात्मक अलङ्कार से सुशोभित करे । इस शुभ कार्य में सोलह या आठ होता होने चाहिए, जो नवीन वस्त्र, माला, चन्दन से भूषित हो और वेद वेदाङ्ग, इतिहास और पुराण का मर्मज्ञ, मधुर भाषी, एवं अनिन्दित आचार्य होना चाहिए । यज्ञ में समस्त पात्र मृत्तिका के अथवा ताँबें के हों ।१२-१९। स्रुक् और स्रुव के निर्माण पूर्वक हवन के लिए उत्तम व्यञ्जन, समिधा और तिल की आहुति ग्रह यज्ञ के विधान द्वारा अर्पित करते हुए सर्व प्रथम वेदी में प्रतिष्ठित देवों के निमित्त तथा पुष्टि

वेद्याधिवासितानां च सुराणां होम इष्यते । वारुणैस्तु तथा मन्त्रैर्होतव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।२१
इन्द्रादिलोकपालानां पूर्वादिक्रमयोगतः । बलिं दद्याच्च तल्लिङ्गैर्मन्त्रैस्सर्वार्थसिद्धये ।।२२
द्वारेषु कलशान्दद्यात्सहिरण्यान्सपल्लवान् । अश्वत्थपल्लवैः कार्या शुभाश्चन्दनमालिकाः ।।२३
सौवर्णं कारयेत्कूर्मं ताम्रेण मकरं तथा । रजतेन तथा मत्स्यं त्रपुणा दर्दुरं तथा ।।२४
शिशुमारजलौकाश्च रजतेनैव कारयेत् । सर्वानपि यथास्थानं ताम्रपात्र्यां निधापयेत् ।।२५
एषा प्रतिष्ठा नामेति मन्त्रेणामन्त्रयेच्च तान् । यूपप्रतिष्ठा कर्तव्या वेदोक्तविधिना ततः ।।२६
कुंकुमेन समालभ्य पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् । वस्त्रयुग्मेन सम्पूज्य नैवेद्यादि यथाक्रमम् ।।२७
ततो द्विजातिप्रवरः श्रपयित्वा चरुं नवम् । ततश्चाग्न्याहुतीर्दद्याद् भूर्भुवः स्वरिति क्रमात् ।।२८
ततश्चावाहयेद्देवं वरुणं सरितां पतिम् । वादित्रघोषैर्गीतैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः ।।२९
श्वेतेनैव तु वस्त्रेण शिरोवेष्टं तु कारयेत् । आदाय ताम्रपात्रीं तु ब्रह्मघोषपुरःसरः ।।३०
अप्रमाणं जलं गत्वा वरुणाय निवेदयेत् । त्वं वरुण इति मन्त्रेण जलमध्ये प्रवाहयेत् ।।३१
यच्चान्यद्वस्त्रबीजानि तत्सर्वं मज्जयेज्जले । तारयेच्च ततो धेनुं दक्षिणायां उदग्व्रजेत् ।।३२
गोशिरोवेष्टनं कुर्यात्सति वस्त्रे तु बुद्धिमान् । लाङ्गूलस्याग्रमादाय अवतीर्य ततो जलम् ।।३३
ज्ञातिभिः सहितः कर्ता सभार्यश्चावगाहयेत् । ततोऽवतीर्य सलिलाद्दत्त्वा गां ब्राह्मणाय ताम् ।।
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्देवं विप्रान्विसर्जयेत् ।।३४

वद्धनार्थ वरूण मंत्रो द्वारा आहुति प्रदान करते हुए पूर्वादि क्रम से इंद्र आदि लोक पालों के लिए आहुति अर्पित करे। पश्चात् उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उन्हें बलि प्रदान करके अपनी सर्वार्थ सिद्धि हेतु दरवाजों पर सुवर्ण और पल्लवों से भूषित कलशों को स्थापित करें, जो पीपल के पल्लव, चन्दन एवं शुभ माला से भूषित हों। सुवर्ण का कछुवा, ताँबें का मकर (घड़ियाल) रजत (चाँदी) की मछली, राँगे का मेंढक तथा शिशुकुमार (सूंस) और जलौका (जोंक) की चाँदी की रचना करके ताँबें के पात्र में यथा स्थान स्थापित करते हुए 'एषा प्रतिष्ठा' मंत्रोंच्चारण पूर्वक उनका आवाहन प्रतिष्ठित करे। तदुपरांत वेद विधान द्वारा यूप प्रतिष्ठा करते हुए कुंकुम के विलेप पूर्वक पुष्प, धूप, दो वस्त्र और नैवेद्य आदि वस्तुओं से क्रमशः उसकी अर्चा करके श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा पकाये हुए नवीन चरु द्वारा 'भू र्भुवः स्वः' के उच्चारण पूर्वक क्रमशः आहुति प्रदान के अनन्तर सरित्पति वरुण देव का आवाहन करके वाद्य, मांगलिक घोष (शब्द), गीत, गन्ध, माला, लेप, श्वेत वस्त्र के शिरो वेष्टन (पगिया) से उन्हें सुसम्मानित करे। ब्रह्म घोष (वेद पाठ आदि) पुरस्सर उस ताम्र पात्री को अगाध अथवा कुछ जल के भीतर जाकर वरुण देव को सादर अर्पित करते हुए। 'त्वं वरुण' इति मंत्र के उच्चारण पूर्वक जल के मध्य में प्रवाहित करे।२०-३१। अन्य वस्त्र बीज आदि वस्तुओं को उसी जल में डालकर दक्षिण से उत्तर की ओर धेनु गौ पार करे। उस समय गौ के शिर में वस्त्र का वेष्टन (पगिया) बाँध कर उसकी पूंछ की अग्रभाग पकड़े और जल में उतर कर पार होये। पश्चात् जाती बन्धुओं आदि समेत तथा स्त्री सहित वह यज्ञ कर्ता ज़लावगाहन के उपरांत जल से निकल कर वह गौ ब्राह्मण (आचार्य) को और अन्य ब्राह्मणों को यथा शक्ति दक्षिणा प्रदान करते हुए देवों तथा ब्राह्मणों का विसर्जन (विदा) करे। मैं सामान्यतः सभी

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् । एवं जलाञ्जलिं क्षिप्त्वा पूजयेज्जलमातरः ॥३५
तोष्याः कर्मकराः सर्वे कुद्दालानि च पूजयेत् । अवारितं तु दातव्यं मन्त्रपूर्वं दिनत्रयम् ॥३६
एकाहं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं न कारयेत् । गोसहस्रं तदर्धं वा तस्यार्धमथवापि वा ॥३७
शतमर्धशतं वापि पञ्चविंशतिमेव च । तासामभावे गां दद्यात्सवत्सां कांस्यदोहनाम् ॥३८
एष राजंस्तडागस्य विधिस्ते परिकीर्तितः । वापीकूपविधानं च कथयामि तथा परम् ॥३९
कुण्डमण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् । तडागविधिवत्कुर्याद्यूपगोतरणादिकम् ॥४०
अकालमूलान्कलशान्वापीकोणेषु दापयेत् । तीर्थोदकसमायुक्तान्सितचन्दनचर्चितान् ॥४१
सितवासोयुगच्छन्नान्समाल्यान् रत्नगर्भिणः । श्रपयित्वा चरुं तत्र यावन्मात्रो यथाविधि ॥४२
चतस्र आहुतीर्दद्याद्भूर्भुवः स्वरिति क्रमात् । ग्रहहोमं प्रकुर्वीत शान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥४३
वरुणाय बलिं दद्याल्लोकपालेभ्य एव च । वारुणानि च सूक्तानि पठेयुर्द्विजसत्तमाः ॥४४
वेदीमध्ये मण्डलं च पद्ममत्र प्रशस्यते । तन्मध्ये पूजयेच्छम्भुं ब्रह्माणं केशवं तथा ॥४५
मत्स्यकमठमण्डूकान्वेद्या मध्येऽधिवासयेत् । मित्रमित्रोऽसि भूतानां धनदो धनकांक्षिणाम् ॥४६
वैद्यो रोगाभिभूतानां शरण्यः शरणार्थिनाम् । अनेनैव हि मन्त्रेण वरुणाय विसर्जयेत् ॥४७
आदौ चावाहयेद्देवमनेनैव विशेषतः । नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपाम्पते ॥४८
सान्निध्यं कुरु देवेश समुद्रे यद्वदत्र वै । ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणानां नराधिप ॥४९

प्राणियों के निमित्त यह जल दान अर्पित कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए जलाञ्जलि के त्याग पूर्वक जल माताओं की अर्चा और काम करने वाले मजदूरों को सन्तुष्ट करने के अनन्तर उनके कुदार फरसे आदि की पूजा करे। उस समय तीन पहले से अथवा यथाशक्ति एक ही दिन अविरत (चित्त रोक टोक) दान करता रहे वित्त की कृपणता न करे। एक सहस्र, उसका आधा, तदर्ध अथवा सौ, पचास या पचीस और इनके अभाव में एक सवत्सा गौ का काँसे की दोहनी समेत दान करे। राजन्! इस प्रकार मैंने तडाग की विधि सुना दी अब इसके उपरान्त बावली और कूप का विधान बता रहा हूँ। बावली के प्रतिष्ठा में कुण्ड, मण्डप का संभार, भूषण, आच्छादन आदि और धूप (स्तम्भ) गौ, तोरण आदि सभी कुछ सरोवर विधान के समान ही किया जाता है। बावली कोने में उन अकाल मूल कलशों को स्थापित करना चाहिए, जो तीर्थ जल से भरे, श्वेत चन्दन से चर्चित, श्वेत दो वस्त्रों से आच्छन्न, मालाभूषित, एवं रत्न गर्भित हों। यथा विधान उचित मात्रा में बनायी गयी हवि द्वारा 'भू र्भुवः स्वः' के उच्चारण क्रम से चार आहुति प्रदान कर शांति और पुष्टि के वृद्ध्यर्थ ग्रह होम करे। अनन्तर वरुण तथा लोक पालों के निमित्त बलि देते समय वारुण सूक्त का पाठ ब्राह्मण द्वारा सम्पन्न करे। पुनः वेदी के मध्य में कमल की रचना करके उसके शिव, ब्रह्मा, विष्णु की अर्चा पूर्वक वेदी के मध्य में मत्स्य कच्छप, और मेढ़क का अधिवासन करे।३२-४५। पश्चात् आप प्राणी मात्र के मित्र, धनेच्छुक के कुबेर, रोगी के वैद्य और शरणार्थियों के शरण्य हैं इस मंत्र के उच्चारण द्वारा क्षमा प्रार्थना पूर्वक वरुण देव का विसर्जन करते समय देवेश! विश्व रक्षक रूप आप को नमस्कार है, और जलाधीश्वर विष्णु को नमस्कार है, समुद्र की भाँति आप इस बावली में निवास करने की कृपा करें—ऐसा कहते हुए उनका पूर्व आवाहन करना चाहिए।

गौः स्थापकाय दातव्या भोजनं[1] चानिवारितम् । सर्वेषामेवदातव्यमेष पौराणिको विधिः ।।५०
शराया आगतं तोयं सामुद्रं प्रथमं स्मृतम् । निपाने वा तडागे वा संस्थितं तद्भवेच्छुचि ।।५१
वापीकूपतडागे वा स्थितं तु प्रथमं जलम् । अपेयं तु भवेत्सर्वं तज्जलं सूतिकासमम् ।।५२
समुद्रोऽपि हि कौंतेय देवयोनिरपाम्पतिः । कुशाग्रेणापि रभसा न स्पृष्टव्यस्त्वसंस्कृतः ।।५३
अग्निश्चतेजो मृडयाथ देहे रेतोधाविष्णुरमृतस्य नाभिः ।
एवं ब्रुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं ततोवगाहेत पतिं नदीनाम् ।।५४
वैष्णवे मासि सम्प्राप्ते नक्षत्रे वारुणे तथा । अर्घ्यं प्रदद्याद्भक्त्या तु तस्मिन्काले महोदधेः ।।५५
स्नात्वा तु विधिवन्मन्त्रैः सागरे तु समाहितः । फलमूलाक्षतैर्भक्ष्यैस्तथार्घ्यं सम्प्रकल्पयेत् ।।५६
अपि जन्म सहस्रं तु यत्पापं कुरुते नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्नात्वा तु लवणांभसि ।।५७
विधिज्ञेन तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन यथाविधि । कर्ता कारयिता चैव उभौ तु स्वर्गगामिनौ ।।५८
विधिं त्वेनमजानानो यः कुर्यादर्थमोहितः । कर्ता कारयिता चैव उभौ तौ नरकगामिनौ ।।५९
यो न कारयते शान्तिं तडागाद्येषु कर्मसु । तस्य तन्निष्फलं सर्वमुप्तं बीजमिवोषरे ।।६०
सर्वरत्नमयं दिव्यं चन्द्रार्कसदृशप्रभम् । विमानं तेजसा युक्तमारोहेत्पुण्यकर्मकृत् ।।६१

अनन्तर ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करते समय आचार्य के लिए गौ और सभी लोगों को यथेच्छ भोजनों से प्रसन्न करना चाहिए। ऐसा पौराणिक विधान में कहा गया है। नराधिप ! मिट्टी के (कसोरे आदि) पात्र में रखा हुआ समुद्र जल प्रथम जल कहलाता है, अतः कूप के समीप किसी अन्य (बावली) अथवा जलाशय और सरोवर में वह जल रखने से इन जलाशयों के जल पवित्र हो जाते हैं। क्योंकि बावली, कूप और तडाग का जल जो सर्व प्रथम निकलताहै, सूतिका की भाँति अपेय होता है।४६-५२। कौंतेय ! उसी भाँति उस समुद्र का भी जल, जो देवयोनि और जलाधीश्वर कहलाता है, संस्कार हीन होने पर कुश के अग्र भाग से भी स्पर्श करने योग्य नहीं रहता है। पाण्डव अतः 'अग्निश्च तेजो मृडयाथ देहे रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः' इस मंत्र के उच्चारण द्वारा संस्कार करके नदी पति समुद्र का जलावगाहन करना चाहिए। वैष्णव मास में वारुण (शतमिषा) नक्षत्र के दिन भक्ति पूर्वक सागर को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए—मंत्रोच्चारण पूर्व सविधान स्नान करने के उपरान्त सावधान मन से भक्ष्य फल, मूल एवं अक्षत द्वारा अर्घ्य दान करके क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए। मनुष्य अपने सहस्रों बार के जन्मों में जो कुछ पाप करता है, लवण सागर में स्नान करके वह उन समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। विधान निपुण ब्राह्मण द्वारा यथा विधान इसे सुसम्पन्न करने पर कर्ता और कारयिता। दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। विधि का ज्ञान शून्य मनुष्य द्वारा केवल अर्थ मोह वश इसके सम्पन्न होने पर कर्ता कारयिता दोनों नरक गामी होते हैं। इस प्रकार तडाग आदि के (प्रतिष्ठा) कर्म में शांति न कराने वाले पुरुष का किया हुआ सभी कर्म ऊपर भूमि में बीजारोपण की भाँति निष्फल हो जाता है।५३-६०। इस भाँति का पुण्य कर्म करने वाला मनुष्य ऐसे विमान पर सुशोभित होता है, जो समस्त दिव्य रत्नों से भूषित, चन्द्र सूर्य के समान प्रभा

---

१. भेषजम्।

कश्चित्पिबति तत्तोयं निपानस्थं ततोऽञ्जलिम् । ब्राह्मणो वा यतिर्गौर्वा येन कर्ता न सीदति ॥६२
उत्सृष्टे कृतकृत्यस्तु सुहृत्कुर्यान्महोत्सवम् । महाभोज्यं महोत्सर्गं यजमानो दिनाष्टकम् ॥६३
कारकाः कर्मणो वापि सूत्रधारादयो नराः । इष्टापूर्तेन धर्मेण तेऽपि स्वर्गं प्रयान्ति हि ॥६४
खन्यमाने महीभागे प्राणिनो ये क्षयं गताः । चित्रे वा देवकूटार्थे ते सर्वे त्रिदिवं गताः ॥६५
धेनोस्तु रोमकूपाणि यावन्तीह नरोत्तमम् । तावद्वर्षसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ॥६६
कोटिर्युगसहस्राणां स्वर्गे तिष्ठेत्तडागकृत् । चेत्तस्य पितरः केचिन्नरकं समुपागताः ॥६७
तांस्तु तारयते सर्वानात्मानं च महीपते । आस्फोटयन्ति पितरो वल्गन्ति प्रपितामहाः ॥६८
अपि नः स कुले जातो यस्तडागं करिष्यति । सर्वस्वेनापि कौन्तेय भूमिष्ठमुदकं कुरु ॥६९
कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषीभवेत् । एवं वर्ष शतेनापि कृत्तिका विहरीवने ॥७०
मासं चेतागृहे कोटिक्षणध्वंसिधनस्य हि । तडागं देवभवनं वापीवृक्षोघनच्छदः ॥७१
चतुर्थकं फलं प्राप्तं कारितेऽस्मिंश्चतुष्टये । यथा मातुः समाचष्टे पुत्रः शीलं स्वकैर्गुणैः ॥७२
तथा स्वादेन च जलं कर्तुः सर्वं शुभाशुभम् । अतः शुभागतं द्रव्यं तडागादिषु लापयेत् ॥७३
धन्यस्य पान्थाः सम्प्राप्य तडागं वृक्षमण्डितम् । पीत्वापः पादपतले विश्रमन्ति रमन्ति च ॥७४
मारुतोद्धूतवीच्यग्रैः करैः कमलमण्डितम् । अभ्यागताय सुधिया तडागाद्यं प्रकल्पितम् ॥७५

पूर्ण और तेजोमय रहता है । पश्चात् उस बावली के जल को किसी ब्राह्मण, यति (संन्यासी) अथवा गौ के सर्वप्रथम स्नान करना चाहिए । जिससे कर्ता को कोई कष्ट सम्भव न हो सके । इस प्रकार उस उत्सृष्ट कर्म के सुसम्पन्न होने पर एक महोत्सव आरम्भ करना चाहिए, जिसमें आठ दिन तक महाभोज चलता रहे । इस इष्टापूर्त यज्ञ द्वारा बावली निर्माण के छोटे बड़े सभी कर्मचारी गण को स्वर्ग प्राप्ति होती है । बावली के महापुण्य रूप खनन कर्म होते समय या देवों के चित्र निर्माण में जितने प्राणी विनष्ट हुए रहते हैं वे सभी स्वर्ग निवासी होते है । नरोत्तम तडाग स्वमित पुरुष धेनु गौ की देह में स्थित रोम की संख्या के समान सौ कोटि सहस्र वर्ष और कोटि सहस्र युग तक स्वर्ग में सुसम्मानित होता है । महीपते ! यदि उसके कुछ पितर नरक में स्थायी हों, तो उन्हें समेत स्वयं का वह उद्धार करता है । तडाग निर्माता के पितर यह समझ कर कि मेरे कुल में उत्पन्न होकर यह तडाग का निर्माण अवश्य करायेगा ताल ठोंक कर प्रतिवादी का अन्वेषण करते हैं और पितामह उछलते कूदते आनन्द विभोर होते हैं । कौंतेय ! अतः अपने सर्वस्व द्वारा भी पृथ्वी में जलाशय निर्माण अवश्य कराओ जिससे गौ की तृषा शान्ति होने पर सात पीढ़ियों का उद्धार हो । यह जानते हुए कि धन सर्वदा क्षण ध्वंसी है—गृह के स्थायी धनों द्वारा तडाग, देवालय, बावली और घनी छाया वाले वृक्ष का आरोपण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इन चारों कर्मों को सुसम्पन्न करने पर चौथे (मोक्ष) फल की प्राप्ति होती है ।६१-७१। जिस प्रकार पुत्र अपने निजी गुणों द्वारा माता का शील स्वभाव प्रकट करता है उसी भाँति जल के आस्वादन द्वारा उसके कर्ता का शुभ सूचित होता है । अतः शुभ कर्म द्वारा उपार्जित धन तडाग आदि जलाशयों के निर्माण में अवश्य लगा देना चाहिए । वह धन्य पुरुष है, जिसके निर्माण कराये तडाग में जो अनेक वृक्षों से विभूषित हो, पथिक उनका जल पान कर वहाँ के वृक्षों का घनी छाया में विश्राम एवं रमण करते हैं, जो वायु

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो येन भूमिगतं जलम् । तारितं कारितं तेन सुपुत्रेण कुलद्वयम् ।।७६
मूर्तं स्वभावतः सिद्धमिष्टं मन्त्रप्रदर्शितम् । इष्टापूर्ते कृते राजन्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ।।७७
उन्नता वाथ निम्ना वा कीर्तिर्येन प्रकाशिता । तेन त्रैलोक्यचन्द्रेण जननी पार्थ पुत्रिणी ।।७८
त्रितयं निम्नतां नेयं त्रितयं चोन्नतिं पराम् । तडागमथ यो भूमौ देव देवालयंकृती ।।७९
यः कारयति लोकेऽस्मिन्कीर्तिस्तस्यामला भवेत् । स जीवति स एवैकः स भवेदजरामरः ।।८०
उपेतानामपि दिवं स निबन्धविधायिनाम् । आस्त एवं निरातङ्कं तस्य कीर्तिमयं वपुः ।।८१
तावत्स्वर्गे स रमते यावत्कीर्तिरनश्वरा । तावत्किलायामध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम् ।।८२
हंसास्याक्षिप्तनील्यदं पद्मिनीखण्डमण्डितम् । पीयमानं महाग्रामैर्धन्याः पश्यन्ति स्वं सरः ।।८३
घटैरञ्जलिभिर्वक्त्रैर्यस्य वाटीपुटैर्जलम् । पिबन्ति जन्तवः सर्वे किमन्यत्तस्य वर्ण्यते ।।८४
तडागं नगरोपान्ते धन्यस्य किल जायते । उभयोरर्थसंसिद्धिर्दृष्टा कर्तुर्जनस्य च ।।८५
येषां देवकुलं तत्तु निष्पद्येत सरस्तटे । अभीष्टदेवतायुक्तं तेषां पार्थ किमुच्यते ।।८६
न भवन्तीष्टिका यावद्द्रोणी वा भूमिसन्निभा । स्वर्गे महीयते तावत्कारको देववेश्मनः ।।८७
भोग्यस्थाने कृतः कूपः सुस्वादुसलिलस्तथा । दृढरज्जुसमायुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।८८

द्वारा उद्वेलित तरङ्ग रूपी कर कमलों से सदैव सुशोभित होते रहते हैं। जिस सुपुत्र ने सर्वसाधारण के हितार्थ भूमि में जलाशय का निर्माण कराया है, उसने साथ ही साथ अपने दोनों कुल का उद्धार भी किया है। राजन् ! इस इष्टा पूर्त (प्रस्तुत हितैषी) नामक यज्ञ सुसम्पन्न करने पर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थ ! उन्नत निम्न किसी भी प्रकार की कीर्ति जिसने उत्पन्न की है। उसी त्रैलोक्य के चन्द्रमा द्वारा उसकी माता पुत्रिणी होने की ख्याति प्राप्त करती है ! इस कर्म द्वारा देवाधिदेव के कुल को अलंकृत करने वाले उस पुरुष को तड़ाग निर्माण के समय उसमें तीन को अत्यन्त निम्न और तीन को अत्यन्त उँचा बनाना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के तड़ाग का निर्माण कराने वाले की कीर्ति निर्मल होती है और वही एक अजर अमर होकर जीवित भी कहलाता है। उसमें सीढ़ियों की रचना कराने वाले का स्वर्ग निवास निरातङ्क होता है और उसकी देह कीर्तिमयी कही जाती है। वह सुकृती अपनी कीर्ति के अनश्वर समय तक स्वर्ग में रमण और इला में देवपद पर सुशोभित रहता है। धन्य पुरुष ही अपने ऐसे सरोवर का दर्शन करता है, जिसमें हंसों के मुख में सदैव नील कमल दण्ड का अग्रभाग पड़ा रहता हो और कमलिनी समूहों से सुशोभित एवं सर्वसाधारण के सेवन करने योग्य हो। प्रत्येक भाँति के प्राणी जिसके जल को, घट, अञ्जली, मुख एवं वाटी पुट द्वारा पान करते हैं उसका (महत्त्व) वर्णन किस भाँति किया जा सकता है। धन्य पुरुष के ही सरोवर नगर के समीप बनाये जाते हैं क्योंकि उसमें प्राणियों का दोनों भाँति स्वार्थ सिद्ध होता है। पार्थ ! ऐसे सरोवर के निकट जिन लोगों के अभीष्ट देय समेत देव कुल प्रकट हो जाते हैं उनका (महत्व) वर्णन क्या किया जा सकता है। क्योंकि उसकी ईटें या द्रोणी जब तक भूमि की भाँति (बराबर) होती है तब तक उस देवालय का निर्माता स्वर्ग में सुसम्मानित होता है।७२-८६। भोग्य स्थान में (जहाँ सर्वसाधारण का हित निहित हो) सुस्वाद जल वाला कूप निर्माण कराने से सात पीढ़ियों का उद्धार होता है। जिसके कूप का सुस्वादु जल निरन्त लोग पान करते हैं समस्त प्राणियों के

यस्य स्वादुजलं कूपे पिबन्ति सततं जनाः । किं तेन न कृतं पुण्यं सर्वसत्त्वोपकारिणा ।।८९
यः प्रासादान् रचयति शुभान्देवतानां तडागे कीर्तिस्तस्य भ्रमति विपुला वंशमार्गानुयाता ।
दिव्यान्भोगान्भजति च सदा कारकश्चाप्रमेयान्भुक्त्वा सौख्यं पुनरपि च भवेच्चक्रवर्ती पृथिव्याम्।।९०
तेषां तडागानि बहूदकानि कूपाश्च यूपाश्च प्रतिश्रयाश्च ।
अन्नप्रदानं मधुरा च वाणी यमस्य ते निर्वचनीभवन्ति ।।९१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वापीकूपतडागोत्सर्गविधिवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२७

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वृक्षोद्यापनविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

वृक्षारोपणमाहात्म्यं वद देवकिनन्दन । उद्यापनविधिं चैव सरहस्यं समासतः ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

वरं भूमिरुहाः पञ्च नगकाष्ठरुहा दश । पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वंति पितृतर्पणम् ।।२
बहुभिर्मृतकिञ्जातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः । वरमेकं पथितरुर्यत्र विश्रमते जनः ।।३

हितैषी उस पुरुष ने किसी पुण्य का उपार्जन नहीं कर लिया । (अर्थात् समस्त पुण्य का भागी वह हो गया) । सरोवर के निकट सुन्दर प्रासाद (कोठे) पूर्ण देवालय की संरचना कराने वाले प्राणी की विपुल कीर्ति उसके वंश परम्परा में सदैव वर्तमान रहती हैं और अनेक भाँति के दिव्य प्रमेय भोगों और सौरवों के अनुभव के उपरांत वह इस भूतल में चक्रवर्ती पद भूषित करता है जिसके अनेक अगाध सरोवर, कूप, स्तम्भ, धर्मशाला बने तैयार रहते हैं । उनके यहाँ पुत्र दान सदैव होता रहता है, वाणी अत्यन्त मधुर होती है और यम के लिए वे अनिर्वचनीय होते हैं ।८७-९१

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
वापी, कूप, तडाग का उत्सर्ग विधि वर्णन नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।१२७।

अध्याय १२८

वृक्ष के उद्यापनविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवकीनन्दन ! वृक्ष के लगाने का महत्त्व और उसका उद्यापन विधान रहस्य समेत एवं विवेचन पूर्ण बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—भूमि में लगाये गये पाँच ही वृक्ष पर्वतीय दश अत्यन्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं क्योंकि वे अपने पत्र पुष्प एवं फल मूल द्वारा पितरों को तृप्त करते रहते हैं। उन धर्मार्थ हीन पुत्रों के जो जीवित रहते हुए मृत के समान हैं, उत्पन्न होने से क्या लाभ हो सकता है ? मार्ग में लगा हुआ एक ही वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ

प्राणिनः प्रीणयन्ति स्म च्छायावल्कलपल्लवैः । घनच्छदाः सुतरवः पुष्पैर्देवान् फलैः पितॄन् ।।४
पुष्पपत्रफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः । धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः ।।५
पुत्राः सम्वत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति वा नवा । प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि ।।६
न तत्करोत्यग्निहोत्रं सुखं यद्योषितः सुतः । यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि रोपितः ।।७
सच्छाया च सुपुष्पा च सफला वृक्षवाटिका । कुलयोषेव भवति भर्तृलोकद्वयानुगा ।।८
अशोकफलावकरा रतिकालंकृतानना । सर्वोपभोगवेश्येव वाटिका रसिका सदा ।।९
सदा स तीर्थाभवति सदा दानं प्रयच्छति । सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपम् ।।१०

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकान् ।
कपित्थबिल्वामलकीत्रयं च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ।।११
पुष्पोपगन्धाढ्यफलोपगन्धं यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय ।
स स्त्रीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं लभेद्विमानप्रतिमं गृहं वै ।।१२
प्रतिश्रयाश्रान्त समाश्रयत्वात्सदैहितं तत्र फलं बुभुक्षोः ।
अपत्यमेकं परलोकहेतोर्विमृश्यतां किं तरवो न रोपिताः ।।१३

न खानिताः पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः । मातुर्यौवनचौरेण तेन जातेन किं कृतम् ।।१४

है, जिसकी छाया में पथिक सुखपूर्वक विश्राम करते हैं। घनी छाया वाले उत्तम वृक्ष अपनी छाया, वल्कल (छिलका) और पल्लवों द्वारा प्राणियों को तथा पुष्पों द्वारा देवों और फलों द्वारा पितरों को सुखी करते हैं जिनके लगाये हुए वृक्ष गण अपने पत्र, पुष्पों, फल, छाया, मूल (जड़), वल्कल (छिलका) और लकड़ियों द्वारा प्राणियों की सेवा करते हैं वे वृक्ष धन्य है क्योंकि याचक उनके यहाँ से विफल नहीं लौटता है। पुत्र वर्ष के अन्त में श्राद्ध करता है या नहीं उसका कुछ निश्चित नहीं रहता है। किन्तु वृक्ष समूह प्राणियों की नित्य पुष्टि और उनके सुख स्वार्थ प्रदान करते रहते हैं। अपनी परिणीता स्त्री से उत्पन्न (औरस) पुत्र अग्निहोत्र कर्म द्वारा जो भविष्य नें सुखदायक होता है वहाँ सुख नहीं पहुँचा सकता है जो मार्ग में लगाये गये धनी छाया वाले वृक्ष द्वारा प्राप्त होता है। सुन्दर छाया, और पुष्प फल समेत सुशोभित होने वाली वाटिका कुल स्त्री की भाँति दोनों कुलों को सुखी करती है। अशोक के फलों से अत्यन्त निर्मल और तिलक नामक वृक्षों से मण्डित मुख वाली वह रस भरी वाटिका वेश्या की भाँति सब की उपभोग्या होती है। वृक्षारोपण करने वाला प्राणी वृक्ष रोपने के नाते सदा सूर्य की भाँति रहता है, सदैव दान करता है और सदा यज्ञ कर्ता ही बना रहता है।२-१०। पीपल, नीम और बरगद का एक एक वृक्ष, चिञ्चणी का दश, कैथ, बेल तथा आँवले का तीन तीन, पाँच आम का वृक्ष एवं बावली का स्वामी कभी भी नरक गामी नहीं होता है। पुष्प,गन्ध और फलों से अत्यन्त पूर्ण वृक्ष ब्राह्मण को अर्पित करने वाला पुरुष स्त्री समेत समृद्ध एवं बहुरत्न पूर्ण विमान की भाँति गृह प्राप्त करता है। फल भक्षण के लिए लालायित प्राणियों से कहना है कि फल समेत भ्रान्त होने पर गृह की भाँति समस्त सुख प्रदान करने वाले वृक्षों का, जो सन्तान की भाँति परलोक के लिए एक मात्र हितैषी है, विचार पूर्वक, आरोपण क्यों नहीं किया। क्योंकि जिसने कर्म भूषित जलाशय का निर्माण नहीं कराया और वृक्षारोपण नहीं किया, माता के यौवन चोर उस प्राणी के उत्पन्न होने से क्या लाभ हुआ।

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे । फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थेषु महाद्रुमाः ॥१५
अतः परं प्रवक्ष्यामि वृक्षस्योद्यापने विधिम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वकीर्तिविवर्द्धनम् ॥१६
अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले । अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः ॥१७
जातकर्मादिकास्तस्य याः क्रियाः किल बुद्धिमान् । चरकात्रिपुराणोक्तास्ताः शृणुष्व युधिष्ठिर ॥१८
ततो मूले घनदलो वल्गुच्छायाङ्गपल्लवः । शीतवातातपसहः संस्कार्यस्तरुणस्तरु ॥१९
स्त्रीनामकण्टकीकुब्जः कीटवृश्चिककोटरः । नोद्याप्यः पादपः पार्थ शिष्टानां यो न सम्मतः ॥२०
आलवाले सुविहिते शुभे बद्धचतुष्किके । शोधयित्वा तमुद्देशं सुगुप्तं कारयेत्ततः ॥२१
सदैवोद्यापनं पार्थ पादपानां प्रशस्यते । शुभेऽह्नि विप्रकथिते ग्रहनक्षत्रसम्युते ॥२२
पताकालंकृतं वृक्षं पूर्वेद्युरधिवासयेत् । रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥२३
पिष्टातकेनावकिरेत्सर्वौषध्या च पादपम् । स्थापयेत्पूर्णकलशांश्चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥२४
पल्लवालंकृतमुखान्सितचन्दनचर्चितान् । सितवासोयुगच्छन्नान्सकलान् रत्नगर्भिणः ॥२५
पताकालंकृताः सर्वे कार्यास्तत्सन्निधौ द्रुमाः । मूलविन्यस्तकलशा रक्तसूत्रावगुण्ठिताः ॥२६
रक्तपीतसिताच्छादैर्श्चर्चिताः सुमनोहरैः । कलधौतमयान्यत्र फलानि दश पञ्च वा ॥२७
ताम्रपात्र्यां सबीजानि सरत्नान्यधिवासयेत् । तूर्यमङ्गलघोषेण चतुर्दिक्षु क्षिपेद्वलिम् ॥२८

महावृक्ष स्वयं धूप में खड़े रहकर अपनी छाया दूसरों के हितार्थ प्रदान करते हैं और सदा परार्थ के लिए फलते फूलते हैं न कि स्वार्थ वश । इसके उपरांत मैं तुम्हें वृक्षों का उद्यापन विधान बता रहा हूँ, जो सम्पूर्ण पापों की शान्ति पूर्वक चौमुखी कीर्ति की वृद्धि करता है । पार्थ ! मन्दराचल पर निवास करते समय पार्वती जी ने सन्तानहीनकाल में पुत्र के स्थान पर शोकशमनकारी अशोक वृक्ष लगाकर उसमें पुत्रत्व की कल्पना की थी । युधिष्ठिर ! उन्होंने उसका जातकर्म आदि सभी संस्कार क्रियाओं द्वारा सुसम्पन्न किया था, चरक और तीनों पुराणों में प्रथित हैं, सुनो ! ऐसे तरुण वृक्ष का संस्कार करना चाहिए । जो (स्थूल) मूल, धन दल, मनोरम छाया एवं अंग रूप पल्लव हों और वह स्वयं शीत, वायु एवं धूप का सहन करने में समर्थ हो । पार्थ ! स्त्रीनामक , कांटेदार, कूबडे और जिसके कोटर (खोंडर) में कीड़े तथा विच्छू आदि रहते हों शिष्टों के सम्मति वाले इन वृक्षों का उद्यापन करना चाहिए । वृक्षों के चारों ओर आलबाल (थाला) बनाकर शुभ चबूतरे से विभूषित उस स्थान की संशोधन रक्षा करनी चाहिए । पार्थ ! वृक्षों का उद्यापन अत्यन्त प्रशस्त कर्म है अतः ब्राह्मण द्वारा बताये गये ग्रह, नक्षत्र युक्त किसी शुभ दिन पताका से भूषित उस वृक्ष का पहले दिन अधिवासन करते हुए वृक्ष रक्त वस्त्र, रक्त सूत्र से आबद्ध लेप एवं समस्त औषध पूर्ण करके चारों दिशाओं में चार ऐसे कलशों को स्थापित करे ।११-२४। जिनके मुख पल्लवों से अलंकृत, चन्दन चर्चित, श्वेत दो वस्त्रों से आच्छन्न एवं सकाल रत्न गर्भित हों और उनके समीप सभी वृक्ष पताकालंकृत हों। जिनके मूल भाग में रक्त सूत्र से चारों ओर घिरे कलश स्थित हों, जो रक्त, पीत और श्वेत रंगों से भूषित निर्मल एवं मनोहरता से पूर्ण हों। सुस्वाद दश पाँच फलों की भी ताँबे के पात्र में बीज तथा रत्नों समेत अधिवासन करके तुरूही वाद्य और मङ्गलघोष पूर्ण चारों दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों तथा भूतों के निमित्त बलि प्रदान करे।२५-२८। पश्चात् दूसरे दिन निर्मल प्रातः काल के समय मेखला समेत

इन्द्रादिलोकपालेभ्यो भूतेभ्यो मन्त्रविद्गुरुः । ततः प्रभाते विमले कुण्डं कृत्वा समेखलम् ॥२९
ग्रहयज्ञविधानेन शान्तिकर्म समारभेत् । सुवर्णालंकृतान्कृत्वा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥३०
चतुरोऽष्टौ यथाशक्त्या वासोभिरभिपूजयेत् । तिलाज्येन च होमः स्यात्तुष्टिपुष्टिकरः सदा ॥३१
मातरं स्थापयित्वाग्रे पूजयेत्कुसुमाक्षतैः । श्रपयित्वा चरुं सम्यक्पायसाज्यपरिप्लुतम् ॥३२
होमादौ जातकर्मादि गोदानं यावदेव तु । पादपं स्नापयित्वा तु समन्त्रैस्तीर्थवारिभिः ॥३३
जातकं नामकरणमन्नप्राशनमेव च । सुवर्णसूच्या कुर्वीत कर्णवेधं विधानवित् ॥३४
जातरूपक्षुरेणात्र चूडाकार्या यथाक्रमम् । बध्नीयान्मेखलां मौञ्जीं वासश्च परिधापयेत् ॥३५
यजमानस्ततः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । पुष्पाञ्जलिः समभ्येत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥३६

ये शाखिनः शिखरिणां शिरसा विभूषा ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः ।
ये कामदाः सुरनरोरगकिन्नराणां ते मे नतस्य दुरितार्तिहरा भवन्तु ॥३७
एतैर्द्विजैर्विधिवरप्रहुतो हुताशः पश्यत्यसावहिमदीधितिरम्बरस्थः ।
त्वं वृक्ष पुत्रपरिकल्पनया वृतोऽसि कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यम् ॥३८

इत्येवमुक्त्वा तं वृक्षं लालयित्वा पुनः पुनः। घृतापात्रे स्ववदनं दृष्ट्वाशिषमुदीरयेत् ॥३९
अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादभिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥४०
ब्राह्मणानां ततो देया दक्षिणा हृष्टमानसैः । स्थापकाय शुभां धेनुं दत्त्वा कुर्यान्महोत्सवम् ॥४१
दीनानाथजनानां च भोजनं चानिवारितम् । इतरेषां प्रदातव्यं सन्तुष्टेन सुरासवम् ॥४२

कुण्ड का निर्माण करके ग्रहयज्ञ विधान द्वारा शांति कर्म का आरम्भ करे । उस यज्ञ में चार या आठ वैदिक ब्राह्मणों को यथाशक्ति सुवर्ण भूषित एवं वस्त्र से पूजित करके । तुष्टि तथा पुष्टि के वृध्यर्थ तिल घी का हवन करते समय सामने मातृका के स्थापन और पुष्पाक्षत से पूजा करें । अनन्तर घृतपूर्ण पायस (खीर) से परि प्लुत हवि की आहुति प्रदान करे । हवन के आदि में वृक्षों के जातकर्म आदि संस्कार के पूत्यर्थ गोदान भी करना चाहिए । उसमें सर्वप्रथम मंत्र विधान द्वारा वृक्षों को तीर्थ जल से स्नान कराकर उनके जातकर्म नामकरण, अन्नप्राशन, सुवर्ण की सुई द्वारा कर्णवेध (कनछेदन), सुवर्ण के छुरे से चूडा कर्म (मुण्डन) यथाक्रम सुसम्पन्न करते हुए मेखला मौञ्जी बन्धन और वस्त्र भी पहनाये। तदुपरांत यजमान स्नान करके शुक्ल वस्त्र पहन कर पवित्रता पूर्ण पुष्पाञ्जलि लेकर इन मंत्रों द्वारा क्षमा प्रार्थना करे।२९-३६। पर्वतों के शिखरों पर रहते उनकी चोटी से विभूषित, नन्दन आदि वनों में सुप्रतिष्ठित एवं देव, मनुष्य, सर्प एवं किन्नर आदि की कामनायें सफल करने वाले वृक्षवृन्द मेरे दुरितों के अपहरण करें । इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा सविधान छोड़ी गयी आहुति से अत्यन्त प्रदीप्त होकर अग्नि- ज्वाला आकाश में पहुँच कर जैसे सब को देख रही हो । वृक्ष ! पुत्र भावना से तुम्हारी कल्पना की गयी है अतः मेरा पुत्र कर्म द्वारा होने योग्य सभी कार्य करते रहना ।' इस प्रकार कहते हुए उसे बार-बार प्यार करके घृत पात्र में अपने मुख का दर्शन करे और आशिष प्रदान करें—मेरे अङ्गों से तुम्हारे अङ्ग और हृदय से हृदय उत्पन्न हुआ है क्यों कि अपनी ही आत्मा पुत्र नाम से प्रसिद्ध होती है अतः सैकडों वर्ष का जीवन प्राप्त करो । अनन्तर हर्षमग्न होते हुए ब्राह्मणो को दक्षिणा तथा आचार्य को शुभमूर्ति धेनुओं को अर्पित कर उस महोत्सव में हीन, अनाथ प्राणियों को अनिवार्य भोजन एवं अन्य लोगों को 'सुरासव' प्रदान कर सजातीय के

ज्ञातिबन्धुजनैः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत कामतः । प्रेष्याः कर्मकराः सर्वे पूजनीयाः स्वशक्तितः ॥४३
य एवं कुरुते पार्थ वृक्षाणां महदुत्सवम् । सर्वकामानवाप्नोति इहलोके परत्र च ॥४४
पुत्रैर्विना शुभगतिर्न भवेन्नराणां दुष्पुत्रकैरिति तथोभयलोकनाशः ।
एतद्विचार्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान्पुत्राः पुराणविधिना परिकल्पनीयाः ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृक्षोद्यापनविधिवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवपूजाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ये मानवास्त्रिदशमूर्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिमनोहराणि ।
तेषां मृतेऽथ परमार्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्तिमयं शरीरम् ॥१
यः कारयेद्द्वारसिताभ्रगौरमुत्तुङ्गसौधधवलायतनं सुराणाम् ।
चन्द्रावदातभवने दिवि लब्धसौख्यो राज्यश्रियं स भुवि बोधयुतामुपैति ॥२

बन्धुओं समेत यथेच्छ भोजन करे। काम करने वाले मजदूरों को यथाशक्ति सन्तुष्ट कर विदा करना चाहिए। पार्थ ! वृक्षों के उद्यापन महोत्सव सुसम्पन्न करने वाले लोक परलोक सर्वत्र अपनी कामनाएँ सफल करते हैं। (शास्त्र का प्रवचन है) विना पुत्र के (उत्तम) गति प्राप्त नहीं होती है और दुराचारी पुत्र से दोनों लोक नष्ट हो जाता है ऐसा समझकर विद्वानों को पुत्ररूप में वृक्षारोपण करके उनका पुत्रवत् पालन पोषण करना चाहिए।३७-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
वृक्ष का उद्यापन विधि वर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।१२८

अध्याय १२९

देवपूजा-विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—जो लोग देव मूर्तियों का आवास स्थान (देवमन्दिर) इस भाँति बनवाते हैं जो साधुजनों के मन को सदैव लुभाया करता है पार्थिव शरीर के त्याग होने के उपरांत लोक में उनकी कीर्तमयी पारमार्थिक शरीर सदैव विचरण करती रहती है।१। श्वेत एवं जल शून्य बादलों की भाँति धवल दरवाजे और ऊँचे धवल प्रासाद (कोठे) वाले देव मन्दिरों की रचना कराने वाले प्राणी स्वर्ग के चन्द्र किरणों की भाँति मल में अतुल सौख्य का अनुभव करने के उपरान्त भूतल में ज्ञान समेत राजलक्ष्मी

ये कारयन्ति सुरसद्मसु देवतानामर्चाः सुवर्णरजतायसशैलताम्राः ।
सामन्तमौलिमणिरश्मिसमर्चितास्ते सिंहासनेऽङ्गकिरीटभृतोऽवभान्ति ।।३
ये मेरुमौलिसुरसङ्घकृताभिषेकाः पञ्चामृतैः सुरवरानभिषेचयन्ति ।
ते दिव्यकल्पमभिधार्य सुरेश्वरत्वं राज्याभिषेकमतुलं पुनराप्नुवन्ति ।।४
ये शैलराजमलयोद्भवचन्दनेन सत्कुंकुमेन च सुराननुलेपयन्ति ।
ते दिव्यगन्धपटवाससुगन्धिदेहा नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाप्सरोभिः ।।५
गन्धाढ्यजातिकमलोत्पलदिव्यपुष्पैर्देवान्नवैरनुदिनं ननु येऽर्चयन्ति ।
पुष्पोत्तमैर्नरपतित्वनवाप्य तेऽपि यास्यन्ति कुन्दधवलामचिरेण सिद्धिम् ।।६
आमोदिभिर्हिमतुरुष्कसुगन्धधूपैर्ये मानवाः सुरवरानपि धूपयन्ति ।
कर्पूरधारनिभगन्धदराभिरामे स्वर्गे विमानवति ते भवने रमन्ते ।।७
दोधूयते कनकदण्डविराजितैश्च सच्चामरैर्धवलकुण्डलसुन्दरीभिः ।
दिव्याम्बरस्रगनुलेपनभूषिताङ्गं कृत्वा सुरेशभवनाम्बरवस्त्रपूजाम् ।।८
देदीप्यते दिनकरोज्ज्वलपद्मरागरत्नप्रभाच्छुरितहेममये विमाने ।
दिव्याङ्गनापरिवृतो नयनाभिरामः प्रज्वाल्य दीपममलं भवने सुराणाम् ।।९
यो जागरं सुरवराभिमतो ददाति चैत्रोत्सवादिदिवसेष्वपि तूर्यनादैः ।
वीणासुवेणुमधुरस्वरभाषिणीभिः सङ्गीयते च स कृशोदरकिन्नरीभिः ।।१०

की प्राप्ति करते हैं। सुवर्ण, चाँदी, लोहा, पत्थर और ताँबे की देवमूर्ति निर्माण कराने वाले पुरुष अङ्गद और किरीट से भूषित होकर ऐसे सिंहासन पर प्रतिष्ठित होता है, जो सामन्तों के मस्तक पर सुशोभित मणि किरणों से सदैव अर्चित होता है। मेरु पर्वत के मौलि स्थान पर रहने वाले देवों का अभिषेक और पञ्चामृत द्वारा देवों का स्नान कराता है, वह एक दिव्य कल्प तक देवरूप में सुखानुभव करने के उपरांत अतुल राज्याभिषेक की प्राप्ति करते हैं। शैलराज मलयगिरि में उत्पन्न होने वाले चन्दन का लेप देवों को अर्पित करने वाले प्राणी दिव्य गन्ध, दिव्य वस्त्र एवं दिव्यगंध भूषित देह की प्राप्ति पूर्वक नन्दन वन में अप्सराओं के साथ सुखानुभव करते हैं। गंध भरी चमेली और नील कमल के दिव्य पुष्पों द्वारा प्रतिदिन देवों की अर्चा करने वाले लोग उत्तम पुष्पों के समर्पण द्वारा नरपति की प्राप्ति करते हुए भी कुन्द की भाँति धवल सिद्धि (कीर्ति) शीघ्र ही प्राप्त करते हैं। हिम (ठंडी), लोहबान और सुगन्ध पूर्ण धूपों से देवों की सेवा करने वाले पुरुष कपूर धारा की भाँति स्वच्छ और उत्तम गन्धों से पूर्ण स्वर्गीय भवनों में सदैव रमण करते हैं। प्रबल कुण्डलों से भूषित सुन्दरियों द्वारा सुवर्ण दण्डमय एवं उत्तम चामरों से देव सेवा कराने वाले प्राणी जो दिव्य वस्त्र, माला, लेपन द्वारा वस्त्र मण्डित देव मन्दिरों की अर्चा करते रहते हैं, वे सूर्य की भाँति समुज्ज्वल और पद्मरागमणि की चञ्चल रत्नप्रभा से भूषित उस सुवर्णमय विमान पर दिव्याङ्गनाओं से घिरे सुशोभित होते हैं तथा देवालयों में अमल दीपक दान करने वाले सभी के नयनाभिराम होते हैं।२-९। चैत्रादि मासों में उत्सवों के दिन तुरही वाद्य समेत देवों के समक्ष जागरण करने वाले प्राणी वीणा और सुवेणु की भाँति मधुरभाषिणी उन कृशोदरी किन्नरियों के साथ स्वर्ग में

कुर्वन्ति ये सद्उपलेपनधातुरागासन्मार्जनं सुरवरायतनेऽनुरक्ताः ।
मुक्ताकलापमपि काञ्चन भक्ति चित्रैवैडूर्यकुट्टिमतले दिवि ते वसन्ति ।।११
दद्याच्च यः परमभक्तियुतः सुराणां घण्टावितानवरचामरमातपत्रम् ।
केयूरहारमणिकुण्डलभूषितोसौ रत्नाधिपो, वसति भूतलचक्रवर्ती ।।१२
अभ्यर्चयेत्प्रतिवचः कुसुमैर्विचित्रैर्देवाधिदेवपरिसंस्तुतपादपद्मान् ।
भक्त्या प्रहृष्टमनसः प्रणमन्ति देवान्स्ते भूर्भुवः स्वर्महिमाप्तफला भवन्ति ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणष उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ।१२९

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्केन तपसा व्रतेन नियमेन वा । दानेन केन वा लोके प्रोज्वलत्वं प्रजायते ।।१
अतितेजो[1] महद्दीप्तं दीप्तांशुकिरणोज्ज्वलम् । शरीरं जायते येन तन्मे वक्तुमथार्हसि ।।२

विहार सुख प्राप्त करते हैं। अनेक भाँति के रंगों से देव मन्दिरों को सुशोभित कराते हुए सदै व झाडू आदि द्वारा उसे सप्रेम अमल स्वच्छ रखने वाले ऐसे स्वर्ग का निवास प्राप्त करते हैं, जो मोतियों की अमल सुवर्ण की चित्रविचित्र रेखाओं और वैदूर्य मणियों से जिसका भूमितल अलंकृत रहता है परमभक्ति पूर्वक घण्टा, वितान (चाँदनी), उत्तम चामर और छत्र देवों के निमित्त अर्पित करने वाले प्राणी केयूर, हार तथा मणि कुण्डल से भूषित होते हुए भूतल में रत्नाधिप चक्रवर्ती पद प्राप्त करते हैं अनेक भाँति के पुष्पों द्वारा समंत्रक देवों की सेवा उनके चरण कमल की वन्दना और भक्ति प्रेम में आनन्द विभोर होकर उनका प्रणाम करने वाले मनुष्य भूर्भुवः स्वः का महत्त्व फल प्राप्त करते हैं।१०-१३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में देवपूजा एवं फल व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।१२९।

अध्याय १३०

दीपदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! किस तप, व्रत, नियम अथवा दान द्वारा इस लोक में प्रकृष्ट उज्ज्वलता प्राप्त होती है। अत्यन्त तेजोमय, दीप्त, एवं प्रदीप्त किरणों से समुज्ज्वल शरीर की प्राप्ति जिसे उपाय से हो सके बताने की कृपा कीजिये।१-२

---

१. अतितीव्रं महद्दिव्यम्।

श्रीकृष्ण उवाच

मथुरायां पुरा पार्थ पिङ्गलो नाम तापसः । आगतः स च मे पत्न्या जाम्बवत्या प्रपूजितः ।।३
पृष्टश्च प्रश्नमेवैतं स चावोचद्यथातथम् । तयापि मे समाख्यातं तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ।।४
यदा यदा नृपश्रेष्ठ पुण्यकालः प्रपद्यते । संक्रांतौ सूर्यग्रहणे चन्द्रपर्वणि वैधृतौ ।।५
उत्तरे त्वयने प्राप्ते दक्षिणे विषुवे तथा । एकादश्यां शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां दिनक्षये ।।६
सप्तम्यामथ वाष्टम्यां स्नात्वा व्रतपरो नरः । नारी वा भूमिदेवेभ्यः प्रयच्छेत्प्रयताङ्गणे ।।
घृतकुम्भेन दीपने प्रज्वलन्तं प्रदीपकम् ।।७

युधिष्ठिर उवाच

भूमिदेवा इति प्रोक्तं यत्त्वया मधुसूदन । किमेतत्कौतुकं मेऽस्ति संशयं छेत्तुमर्हसि ।।८

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतयुगस्यादौ त्रिशंकुर्नाम पार्थिवः । स स्वर्गं गन्तुकामोऽभूच्छरीरेण नरोत्तम ।।
ततश्चाण्डालतां नीतो वशिष्ठेन महात्मना ।।९
त्रिशंकुः सर्वमाचख्यौ विश्वामित्राय धीमते । सोऽपि मन्युवशाद्यज्ञं चकाराहूय देवताः ।।१०
न ता हविः प्रत्यगृह्णंस्ततः क्रुद्धः कुशात्मजः । विश्वामित्रस्तु कोपेन चकारान्यान्सुरोत्तमान् ।।११
भृङ्गाटकान्नालिकेरान्पचनानानजौडकान् । मेधारथदवार्ताकतारिकूष्माण्डकोद्रवान् ।।१२
उष्ट्रान्मनुजदेवांश्च क्रोधान्मुनिरवासृजत् । चकारान्यान्सप्तऋषीन्प्रतिमासं सुरोत्तमान् ।।१३
ततः शक्रः समागम्य विश्वामित्रं प्रसाद्य वै । सृष्टिं निवारयामास ये सृष्टास्ते तथापि च ।।१४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ पहले समय मथुरा में पिङ्गल नामक तपस्वी मेरे यहाँ आया और मेरी प्रेयसी जाम्बवती के द्वारा पूजित एवं उनके पूँछने पर जो कुछ उत्तर दिया था । मैं क्रमशः उसी का वर्णन कर रहा हूँ क्योंकि इसके पश्चात् जाम्बवती ने मुझसे सब बताया था । नृपश्रेष्ठ ! प्रत्येक पुण्यकाल के अवसर पर—संक्रान्ति, सूर्य चन्द्र ग्रहण, अयन, विषुव, शुक्लपक्ष की एकादशी, कृष्ण चतुर्दशी, सप्तमी और अष्टमी के दिन स्नान करके व्रतपरायण नर नारी गृहाङ्गण में घृत कुम्भ का प्रज्वलित दीपक भूमि देवों के निमित्त सादर समर्पित करें ।३-७

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन आपने भूमिदेव का नाम कहकर कौन सा कौतुक प्रकट किया है अतः इस मेरे सन्देह को दूर करने की कृपा कीजिये ।८

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम ! पहले समय कृतयुग के आदि काल में एक त्रिशंकु नामक राजा था, जो इसी देह से स्वर्ग जाने का अभिलाषी था । किन्तु हठात् उसके इस अनुरोध पर महात्मा वसिष्ठ ने उसे चाण्डाल होने का शाप दे दिया । चाण्डाल होने पर त्रिशंकु ने महर्षि विश्वामित्र से अपनी इच्छा प्रकट की । उसे सुनकर विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर देवताओं के आवाहन पूर्वक यज्ञ करना आरम्भ किया किन्तु देवों के अपने हविभाग अस्वीकार करने पर उन्होंने सक्रोध अन्य देवों की सृष्टि की । क्रोध के आवेश में विश्वामित्र ने सिंगाडा, नारियल, पचनान, अनजौडका मेधारथ, वार्ताक, तारि, कूष्माण्ड, कोदौ उँट,

मर्त्यलोके च ते सर्वे देवा देवकुलेष्वथ । मन्त्रैर्निबद्धाः पिण्डीषु स्थिता मूर्तिभृतो यथा ॥१५
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ये चान्ये देवतागणाः । लोकानामुपकाराय मर्त्यलोकमुपागताः ॥१६
प्रतिमासु स्थिताः शश्वद्भोगान्भुञ्जन्ति शाश्वतान् । वरप्रदाश्च भक्तानामिति ते गुह्यमीरितम् ॥१७
तेभ्यः पुरस्ताद्दातव्यो दीप्यमानः प्रदीपकः । सूर्याय रक्तवस्त्रेण पूर्णवर्ति घृतैर्युताम् ॥
चतुःप्रस्थैः प्रज्वलन्तीं मन्त्रेणानेन दापयेत् ॥१८
"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम्" ॥१९
पीतवस्त्रेण कृष्णाय श्वेवस्त्रेण शूलिने । कौसुम्भवस्त्रेणाढ्येन गौरीमुद्दिश्य दापयेत् ॥२०
लाक्षारक्तेन दुर्गायै पूर्णवर्ति प्रबोधयेत् । नीलवस्त्रेण कामाय गणनाथाय खादिरैः ॥२१
नागेभ्यः कृष्णवस्त्रेण ग्रहेभ्य इषिकायुधाम् । देवाङ्गनापितृभ्यस्तु पितृवर्ति प्रबोधयेत् ॥२२
विशेषं शृणु सूर्याय पूर्णवर्तिर्निगद्यते । शिवायेश्वरवर्तीति भोगवर्तिर्जनार्दने ॥२३
पद्मवर्तिविरिंचाय गौर्य्यै सौभाग्यवर्तिका । नागेभ्यो नागवर्तीति ग्रहवर्तिर्युधिष्ठिर ॥२४
नेत्रपट्टेन मधुना घृतेन मधुकुण्डके । अर्चिते चर्चिते चैव ललितायै प्रबोधयेत् ॥२५
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्निशामय वैदिकम् ॥२६
"अग्ने त्वां काम्यया गिरा तुभ्यं ता गिरसस्तु विश्वाः । सुक्षितयः पृथक्पृथक् ॥२७

अग्ने कामाय जेगिरे अग्निप्रियेषु धामसु ।
कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजति ताभ्यां नाम स्वाहा" ॥२८

मनुष्य एवं देवों की रचना की । अन्य सप्तर्षि तथा प्रतिमास देवों की सृष्टि होते देख कर इन्द्र ने वहाँ आकर उन्हें प्रसन्न करते हुए सृष्टि करना बन्द कराया ।९-१४। किन्तु जिन देवों की सृष्टि हो चुकी थी वे मर्त्य लोक में देवकुलों में मंत्रों द्वारा पिंडीभूत मूर्तियों की भाँति निबद्ध है । उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं अन्य देव गण लोकोपकारार्थ मर्त्य लोक में जाकर प्रतिमाओं में रहते हुए निरन्तर भोगों के उपभोग करते हैं और भक्तजनों को वर प्रदान करते रहते हैं । ऐसा गुप्त आख्यान उन्होंने बताया था । उन्हीं देवों के समक्ष प्रज्वलित दीपक, सूर्य को रक्त वस्त्र समेत चार सेर घी में जलती हुई पूर्णबत्ती समंत्रक प्रदान करना चाहिए—विष्णु के उस परम रूप को पण्डित वृन्द सदैव देखा करते हैं । 'आकाश की भाँति विस्तृत नेत्र' इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पीतवस्त्र से कृष्ण की श्वेत वस्त्र से शिव की, कुसुमरंग वाले वस्त्र से गौरी की, लाक्षा (लाख की भाँति) रक्त वस्त्र से दुर्गा की पूर्ण बत्ती बनानी चाहिए । उसी भाँति नील वस्त्र से कामदेव, कत्थई रंग वाले वस्त्र से गणनाथ, काले वस्त्र से नागगण, इषिकायुध वाली ग्रहों के लिए और देवाङ्गना तथा पितरों के लिए पितृवत्ती प्रज्वलित करनी चाहिए। कुछ विशेषता भी बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य के लिए अर्पित की जाने वाली को पूर्ण वत्ती, शिव के लिए ईश्वर वती, जनार्दन देव के लिए भोग बत्ती, ब्रह्मा को पद्मवती, गौरी को सौभाग्यवती, नामों के लिए नागवती और ग्रहों के लिए ग्रहवर्ति कही जाती है ।१५-२४। युधिष्ठिर ! वस्त्र की पट्टी शहद घृत में भली भाँति भिगोकर ललिता के प्रबोधनार्थ समर्पित करने के लिए मैं उन मंत्रों को बता रहा हूँ, सुनो ! 'अग्ने त्वां काम्या गिरा तुभ्यं ता गिरसस्तु विश्वाः' सुक्षितयः पृथक्-पृथक् ! अग्ने कामायजेगिरे अग्निप्रियेषु धामसु। कामों भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको

एवमेतेन विधिना यः प्रयच्छति दीपकम् । विस्तीर्णे विपुले पात्रे घृतकुम्भे नियोजितम् ॥२९
यान्ति ते ब्रह्मसदनं विमानेनार्कवर्चसा । तिष्ठन्ति द्योतमानास्ते यावदाभूसंप्लवम् ॥३०
सदीपे तु यथा देशे चक्षूंषि बलवन्ति हि । तथा दीपस्य दातारो भवन्ति सफलेक्षणाः ॥३१
यथैवोर्ध्वं गतिर्नित्यं राजन्दीपशिखासु वै । दीपदातुस्तथैवोर्ध्वं गतिर्भवति शोभना ॥३२
घृतेन दीपो दातव्यो राजन्स्तैलेन वा पुनः । वसामज्जादिभिर्देयो न तु दीपः कथञ्चन ॥३३
दीपस्तैलेन कर्तव्यो न तु कर्म दिजानता । निर्वापणं च दीपस्य हिंसनं च विगर्हितम् ॥३४
यः कुर्यात्कर्मणा तेन स्यादसौ पुष्पितेक्षणः । दीपहर्ता भवत्यन्धः काणो निर्वापको भवेत् ॥३५
पद्मसूत्रोद्भवां वर्ति गन्धतैलेन दीपिताम् । विरोगः सुभगश्चैव दत्त्वा भवति मानवः ॥३६
प्रज्वाल्य देवदेवस्य कर्पूरेण तु दीपकम् । अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैवसमुद्धरेत् ॥३७

एतन्मयोक्तं तव दीपदानफलं समग्रं कुरुवंशचन्द्र ।
श्रुत्वा यथावत्सततं हि देया दीपास्त्वया विप्रसुरालयेषु ॥३८

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । दीपदानाल्ललितया यदवाप्तं पुराऽनघ ॥३९
आसीच्चित्ररथो नाम विदर्भेषु महीपतिः । तस्य पुत्रशतं राज्ञो जज्ञे पञ्चदशोत्तरम् ॥४०
एकैव कन्या तस्यासील्ललितानाम नामतः । सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥४१
तां ददौ काशिराजाय चार्वङ्गीं चारुधर्मणे । शतान्यन्यानि भार्याणां त्रीण्यासंश्चारुधर्मणः ॥४२

विराजति ताभ्यां नमः स्वाहा । राजेन्द्र ! इस विधान द्वारा विस्तृत एवं विपुल घृतपूर्ण पात्र में रखकर दीपक प्रदान करने वाले सूर्य की भाँति तेजोमयविमान पर सुशोभित होते हुए ब्रह्मसदन प्राप्त करते हैं ! और महाप्रलय पर्यंत आकाश युक्त रहते हुए सुखानुभूति करते हैं । सबल नेत्रों की भाँति उचित प्रदेश में दीप रखने से दीपदाता सफल नेत्र होता है । राजन् ! जिस प्रकार दीपशिखा की ऊर्ध्व गति सदैव बनी रहती है उसी भाँति दीप दान करने वाले प्राणी की सदैव शोभन ऊर्ध्व गति ही होती है । राजन् ! घृत दीप के अतिरिक्त तैल का भी दीपदान कर सकते हैं किन्तु वसा मज्जा पूर्ण दीप दान कभी न करना चाहिए । ज्ञान पूर्वक कर्मशील प्राणी को दीप का निर्वापण (बुझाना) और हिंसा अतिनिन्दित होने के नाते कभी न करना चाहिए । क्योंकि ऐसे प्राणियों की आँखे नष्ट हो जाती हैं—दीपक का अपहरण करने वाला अन्ध और बुझाने वाला पुरुष एकाक्ष (काना) होता है । कमलनाल दण्ड के सूत्र की वत्ती सुगन्धित तैल से प्रज्वलित कर अर्पित करने पर मनुष्य आरोग्य और सौभाग्य पूर्ण होता है । देवाधिदेव को कपूर का दीप अर्पित करने पर अश्वमेध के फल प्राप्ति पूर्वक उसके कुल का उद्धार होता है ।२५-३७। कुरुवंशचन्द्र ! मैंने तुम्हें फल समेत दीप दान का महत्त्व बता दिया, इसे सुनकर ब्राह्मणों के गृह और देवालयों में तुम्हें निरन्तर दीप दान अर्पित करना चाहिए । अनघ ! इस विषय का एक पुरातन इतिहास सुना रहा हूँ, जिसमें ललिता देवी ने दीप दान द्वारा जो फल प्राप्त किया है उसका सविस्तार वर्णन किया गया है । विदर्भ देश में चित्ररथ नामक एक राजा रहता था, जिसके एक सौ पन्द्रह पुत्र और ललिता नामक एक कन्या थी । उस समस्त लक्षणों से भूषित और अनुपम सौन्दर्य पूर्ण सुन्दरी कन्या को परम धार्मिक काशिराज को उन्होंने सौंप दी ।३८-४१। काशिराज के एक सौ तीन परम सुन्दरी स्त्रियाँ थी जिनमें

तासां मध्येऽग्रमहिषी ललिता साप्यथाभवत् ॥४३
विष्णोरायतने सा तु सहस्रं परिदीपकान् । प्रज्वालयन्त्यनुदिनं दिवारात्रमनिर्वृतम् ॥४४
तामिस्रमाश्वयुक्तपक्षं शुक्लपक्षं च कार्तिकम् । तस्याः प्रज्वलितो दीप उच्चस्थानकृतः शुभः ॥४५
तस्मिन्काले तथा नित्यं ब्राह्मणावसथे च सा । व्यग्रा भवति सायाह्ने दीपप्रेषणतत्परा ॥४६
चतुष्पथेषु रथ्यासु देवतायतनेषु च । चैत्यवृक्षेषु गोष्ठेषु पर्वतानां च मूर्द्धसु ॥४७
पुलिनेषु नदीनां च कूपमूलेषु पाण्डवः । तां सपत्न्योऽथ सङ्गम्य पप्रच्छुरिदमादृताः ॥४८
ललिते वद भद्रं ते ललितं वचनं तथा । न तथा बलिपुष्पेषु न तथा द्विजपूजने ॥४९
भवत्याः सुमहान्यत्नो दीपप्रज्वालने यथा । तदेतत्कथयास्माकं[1] ललिते कौतुकं परम् ॥५०
मन्यामहे त्वयावश्यं दीपदानफलं श्रुतम्

ललितोवाच

नाहं मत्सरिणी भद्रा न रागादिदूषिता ॥५१
एकपत्याश्रिताः साध्व्यो भवत्यो मम मानदाः । अपृथग्धर्मचरणाः शृण्वन्तु गदितं मम ॥५२
मयैतद्दीपदानस्य यथेष्टं भुज्यते फलम् । हिरण्यदयिता भार्या शैलराजसुता वरा ॥५३
उमादेवीति मद्रेषु देविका सा सरिद्वरा । नराणामनुकम्पार्थं ब्रह्मणा ह्यवतारिता ॥
श्रुता किं भवतीभिः सा देविका पापनाशिनी ॥५४

ललिता उनकी अग्रमहिषी (पटरानी) थी । विष्णु के मन्दिर में वह सहस्रों दीपक प्रतिदिन जलाती थी, जो रात दिन जलते थे । कार्तिक मास के दोनों (कृष्ण शुक्ल) पक्षों में उसका शुभ दीपक ऊँचे स्थानों (आकाश) में जलता था । उन दिनों सायंकाल वह ब्राह्मणों के गृह और मन्दिरों आदि स्थानों में दीपक भेजने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहा करती थी । पाण्डव ! चौराहे, गली, देवालय चेत्यवृक्षों (पीपल) आदि, गोशाला, पर्वत शिखर, नदी तट, कूएँ की जगत (चबूतरा) मे उसके दीपक प्रतिदिन जलते थे । एक बार उसकी सपत्नियों ने उसके पास पहुँच कर सादर पूँछा ललिते ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा बदन परम ललिता है । दीपकों के जलाने में जिस प्रकार आपका महान् प्रयत्न रहता है, बलि, पुष्प और ब्राह्मणों के पूजन में वैसा कभी नहीं देखा जाता । ललिते ! अतः यह कौतुक हमें बताने की कृपा करो । क्योंकि हम लोग यह अवश्य मानते हैं कि दीपदान का महत्त्व आप ने अवश्य सुना होगा ।४२-५०

ललिता बोली—भद्रे ! मैं मत्सर करने वाली एवं रगादि दोष दूषित स्त्रियों में नहीं हूँ (किन्तु भद्र स्वभाव की हूँ) आप सभी पतिव्रताएँ एक पति के आश्रित रहने के नाते मेरी मानदा हैं और आपका धर्माचरण भी पृथक् न होकर सम्मिलित ही है अतः मेरा कहना सावधान होकर सुनो ! क्योंकि मुझे इस दीपदान का यथेष्ट फल प्राप्त हो रहा है । भद्र देश में पर्वतराज हिमालय की श्रेष्ठ कन्या, जो सुवर्ण की भाँति गौराङ्गी एवं दयिता भार्या हैं उमा देवी के नाम से विख्यात हैं और देविका नामक एक श्रेष्ठ नदी भी वहाँ प्रवाहित होती है जिसे ब्रह्मा ने मनुष्यों के अनुकम्पार्थ अवतारित किया था और उस पाप विनाशिनी देविका का नाम आप लोगों ने नहीं सुना है क्या ? उस नदी में एक बार भी स्नान करने पर

---

१. कृपया ।

तस्यां स्नात्वा सकृन्नद्यां गाणपत्यमवाप्नुयात् । तस्यामथ नृसिंहाख्यं तीर्थं कल्मषनाशनम् ॥
हरिणा नृसिंहवपुषा यत्र स्नानं कृतं पुरा ॥५५
सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोभूत्पुरोहितः । तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥५६
अहन्यहनि शुश्रूषां पुष्पधूपानुलेपनैः । दीपदानादिभिश्चैव चक्रे तत्र स वै द्विजः ॥५७
कार्त्तिक्यां दीपकस्तत्र प्रदत्तस्तेन चैकदा । आसीन्निर्वाणभूयिष्ठो देवार्चासु रतो निशि ॥५८
देवतायतनेऽवात्सं तत्राहमपि मूषिका । प्रदीपवर्तिहरणे कृतबुद्धिर्वराननाः ॥५९
गृहीताथ मया वर्तिर्वृकदंशो ररास च । नष्टा चाहं ततस्तस्य मार्जारस्य भयातुरा ॥६०
वक्त्रप्रान्तेन पश्यन्त्या स दीपः प्रेरितो मया । जज्वाल पूर्ववद्दीप्त्या तस्मिन्नायतने पुनः ॥६१
मृताहं च पुनर्जाता वैदर्भे राजकन्यका । जातिस्मरा महीपस्य महिषी चारुधर्मणः ॥६२
एष प्रभावो दीपस्य कार्त्तिके मासि शोभनः । दत्तस्यायतने विष्णोर्यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ॥६३
असङ्कल्पितमध्यस्य प्रेरणं यन्मया कृतम् । केशवे बालदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ॥६४
एतस्मात्कारणाद्दीपानहमेतानहर्निशम् । प्रयच्छामि हरेर्गेहे जातमस्य महाफलम् ॥६५
एवमुक्त्वा सपत्नी सा दीपदानपरायणा । बभूव देवदेवस्य केशवस्य गृहे सदा ॥६६
ततः कालेन महता सह राज्ञा महात्मना । विष्णुलोकमनुप्राप्तां पञ्चत्वं प्राप्य मानदा ॥६७

तं लोकमासाद्य नृपेण सार्द्धं सा राजपत्नी कमलाभनेत्रा ।
रेमे महीपाल मुदा समेता दीपप्रदानात्सकलार्तिहीना ॥६८

गाणपत्य की प्राप्ति होती है । उसी नदी में पापनाशक एक नृसिंह तीर्थ है, जहाँ भगवान् नृसिंह देव ने पहले स्नान किया था ।५१-५५। वहाँ सौवीरराज के मैत्रेय नामक पुरोहित ने भगवान् विष्णु का एक विशाल मन्दिर बनवाया है । वह ब्राह्मण उस मन्दिर में पुष्प, धूप, विलेपन एवं दीपदान द्वारा विष्णु की शुश्रुषा करते हुए एक बार कार्तिक मास में भगवान् को दीप अर्पित किया किन्तु देव पूजा में रखा हुआ वह दीपक रात्रि में बुझ गया । मैं मूषिका रूप में उसी मन्दिर में निवास करती थी । उस समय मैंने (अन्यत्र से) एक जलते हुए दीपक की बत्ती लाने का निश्चय किया और तदनुसार मैंने एक बत्ती लेकर चली कि कुत्ते भूंकने लगे । बिल्ली के भय से मैं मुख में रखी हुई बत्ती के सहारे देखती हुई पुनः वहाँ आकर मन्दिर के उस बुझे हुए दीपक को उसी द्वारा जला दिया और वह पहले की भाँति जलने लगा । पश्चात् निधन होने पर मैं विदर्भ राज की कन्या हुई और पूर्वजाति का स्मरण कराने वाली उस पृथ्वी के अधीश्वर काशिराज की जो परम धार्मिक है, प्रधान रानी हुई । विष्णु मन्दिर में कार्तिक मास में शोभन दीपदान का यह प्रभाव है जिसका मुझे समृद्ध फल प्राप्त हो रहा है । भगवान् के लिए एक छोटे से दीपदान का जो बुझा पड़ा था मैंने प्रज्वलित मात्र कर दिया था यह अनुपम फल भोग रहीं हूँ । इसी कारण मैं इन दीपों को भगवान् के मन्दिर में रात दिन जलाये रहती हूँ । इस प्रकार अपनी सपत्नियों से कह कर वह पुनः विष्णु मन्दिर में दीप दान में संलग्न हो गयी । पश्चात् कालान्तर में उस महात्मा राजा के साथ विष्णु लोक की प्राप्ति की । महीपाल ! कमल नेत्र वाली (ललिता) राज महिषी उस लोक में पहुँचकर दीप दान द्वारा प्राप्त परिणाम स्वरूप अपने राजा के साथ वहाँ चिरकाल तक रमण किया और समस्त दुःखों से मुक्त रही ।५६-६८। अतः गण्य-मान्य पण्डितवृन्द

दीपप्रदानमपि पुण्यतरं वदन्ति विप्राग्निगोसुरकुलैकगृहाङ्गणेषु ।
तद्दानदीप्तवपुषाथ पथोंधकारे गच्छन्नरः पतति न स्खलते कदाचित् ।।६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दीपदानविधिवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३०

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वृषोत्सर्गविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कार्त्तिक्यामथ वा माघ्यामयमेव युधिष्ठिर ।।१
चैत्र्यामथ तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽह्नि वा । खण्डनीलं शङ्खपादं सपौंड्र धौतपुष्पकम् ।।२
गोभिश्चतुर्भिः सहितं सृजेच्चैव विधिं शृणु । यदुवाच पुरा गर्गो गोकुलेऽनघ पाण्डव ।।३
तत्तेहं च प्रवक्ष्यामि विधिं गर्गप्रचोदितम् । मातरं स्थापयित्वाग्रे पूजयेत्कुसुमाक्षतैः ।।४
मातृश्राद्धं ततः कुर्यात्सदाभ्युदयकारकम् । अकालमूलं कलशमश्वत्थदलशोभितम् ।।५
तत्रविद्वाञ्जपित्वा तु स्थापयेद्रुद्रदेवताम् । सुसमिद्धं ततः कृत्वा वह्निमन्त्रपुरःसरम् ।।६
अथैनं जुहुयात्षड्भिः पृथगाहुतिसंज्ञितैः । पौष्यामन्त्रैस्ततः पश्चाद्धुत्वा वह्निं यथाविधि ।।७
एकवर्णं द्विवर्णं वा रोहितं श्वेतमेव वा । जीवद्वत्सपयस्विन्याः पुत्रं सर्वांगसुन्दरम् ।।८

ब्राह्मण, गौ, और देवालयों में दीपदान करना अत्यन्त पुण्यजनक बतलाते हैं क्योंकि उस दान द्वारा तेजोमय शरीर की प्राप्ति होती है जिसके अंधकार मय मार्ग में चलते हुए मनुष्य कभी कहीं गिरता नहीं है ।६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
दीप दान विधान वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३०।

अध्याय १३१

वृषोत्सर्गविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! कार्तिक, माघ, और चैत्र की तृतीया तथा वैशाख द्वादशी के दिन चार गौओं समेत एक ऐसे वृष का त्याग विधान बता रहा हूँ, जो खंडनील, शंखपाद, पौंड्र और धवल वर्ण हो । सुनो ! अनघ पाण्डव ! पहले समय गर्ग जी ने गोकुल में आकर जो विधान बताया था, वही विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ । मातृस्थापन करके पुष्पाक्षत से उनके पूजन करने के अनन्तर अभ्युदयकारक मातृ श्राद्ध सुसम्पन्न करना चाहिए—पीपल पल्लव भूषित एवं सुशोभित कलश स्थापन पूर्वक रुद्र जप करने के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में मन्त्रोच्चारण पूर्वक छ आहुति प्रदान करे ।१-६। पश्चात् समंत्र एवं सविधान हवन करने के अनन्तर किसी ऐसी गौ की जिसके बच्चे अकाल पीड़ित न होते हैं, एकरंग, दोरंग अथवा लोहित (रक्त) वर्ण का सर्वाङ्ग सुन्दर वृष चार बछियों समेत अलंकृत होने पर त्याग के समय उनके कानों में कहे

चतस्रो वत्सतर्यश्च ताभिः सार्धमलंकृतम् । तासां कर्णे जपेद्विप्रः र्पात वो बलिनं शुभम् ।।९
समितास्तेन सहिताः क्रीडध्वं हृष्टमानसाः । ततो दामे त्रिशूलं च दक्षिणे चक्रमालिखेत् ।१०
अङ्कितं शङ्खचक्राभ्यां वर्षितं कुसुमादिना । पुष्पमालाकृतग्रीवं सितवस्त्रैश्च च्छादितम् ।।११
विमुञ्चेद्वत्सकाभिश्च नीलाभिर्बलिनं वृषम् । देवालये गोकुले वा नदीनां सङ्गमेऽथ वा ।।१२
इत्युक्तं गर्गमुनिना विधानं वृषमोक्षणे । स्वेच्छाविहारिणं दृप्तं गर्जन्तं सुन्दरं गवाम् ।।१३
ककुद्मिनं पतिंया धन्ये विनुञ्चन्ति गोवृषम् । फलं च[1] तस्य वक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोध तत् ।।१४
वृषोत्सर्गे पुनात्येव दशातीतान्दशापरान् । यत्किंचित्स्पृशते तोयं समुत्तीर्य जलान्महीम् ।।१५
वृषोत्सृष्टं पितृणां तु तदक्षयमुदाहृतम् । यैश्च यैश्च स्पृशेत्तोयं लाङ्गूलादिभिरन्ततः ।।१६
सर्वं तदक्षयं तस्य पितृणां नात्र संशयः । शृङ्गैः खुरैर्वा यद्भूमिमुल्लिखत्यनिशं वृषः ।।१७
मधुकुल्याः पितुस्तस्य अक्षयास्ता भवन्ति वै । सहस्रतलमात्रेण तडागो न यथाश्रुति ।।१८
पितृणां या भवेत्तृप्तिस्तां वृषस्त्वतिरिच्यते । यो ददाति तिलैर्मिश्रान्स्तिलान्वा श्राद्धकर्मणि ।।
मधु वा नीलखण्डं वा अक्षयं सर्वमेव तत् ।।१९
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।।२०
न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम् । न प्रयच्छति यः पुत्रः पितुरुच्चार एव सः ।।२१

कि—तुम लोगों को एक बलिष्ठ एवं शुभ मूर्ति पति प्रदान किया गया है अतः प्रसन्नता पूर्ण उसके साथ क्रीडा करो । अनन्तर वाम भाग में त्रिशूल और दक्षिण में चक्र से भूषित वह वृष, जो शंख चक्र से अलंकृत और पुष्प वर्षा से आच्छन्न, पुष्प माला पहन कर श्वेत वस्त्र से आच्छादित किया गया हो, उन चार नवीन गौओं समेत देवालय, गोष्ठ या नदी संगम में छोड़ दे । वृष त्याग में गर्गमुनि ने यही विधान बताया है । स्वेच्छाविहार करने वाला, बली, गौओं के बीच गर्जन करने वाले बृहत् ककुद् (डिल्ल) वाले ऐसे सुन्दर वृष का त्याग करने वाले धन्य हैं । मैं ऐसे वृषोत्सर्ग का फल भी बता रहा हूँ, सुनो ! वृषोत्सर्ग यज्ञ सुसम्पन्न करने पर दश पीढ़ी पूर्व की और दश अगली पीढ़ी का उद्धार होता है । (सरोवर के) जल को पार कर वह वृष जिस किसी वस्तु (जल, भूमि और अन्न) का स्पर्श करता है वह पितरों के लिए अक्षय होता है । अपनी लांगूल (पूंछ) आदि अंगों द्वारा वह वृष जिस जल का स्पर्श करता है वह पितरों के लिए अक्षय हो जाता है । इसमें संदेह नहीं ।७-१६। अपनी सीगों और खुरों से जिस भूमि को वह निरन्तर खोदता है वह पितरों के लिए अक्षय मधु (शहद) की नाली प्रवाहित होती है । श्रुतियों के कथनानुसार सैकडों गढ्ढे जिसकी समानता न कर सें वही सरोवर कहलाता है । इसीलिए पितरों की भली भाँति तृप्ति करने वाले को ही प्रशस्त वृष कहा गया है । श्राद्ध कर्म में तिल अथवा तिल मिश्रित मधु और नील खण्ड प्रदान करने पर वह सब अक्षय हो जाता है । एतदर्थ अनेक पुत्रों का उत्पन्न होना परमावश्यक है क्योंकि उनमें कोई अवश्य गया श्राद्ध, अश्वमेध यज्ञ अथवा नील वृषोत्सर्ग करेगा अपने पितरों के उद्देश्य से वृषोत्सर्ग और प्रधान तीर्थों में जलाञ्जलि प्रदान न करने वाला पुत्र पितरों का मलरूप है । अपनी सीगों और

---

१. वृषस्व । २. नृणाम् ।

यद् भूमिमालिखति शृङ्गखुरैः प्रहृष्टो यद्वा करोति प्रतिमल्लवृषान्निरीक्ष्य।
खण्डं समस्तमपि तस्य विवाहकर्तुः संतोषमावहति शक्रसभागतस्य ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषोत्सर्गविधिवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३१

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

फाल्गुनपूर्णिमाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं फाल्गुनस्यान्ते पौर्णमास्यां जनार्दन । उत्सवो जायते लोके ग्रामेग्रामे पुरे पुरे ।।१
किमर्थं शिशवस्तस्यां गेहेगेहेऽतिवादिनः । होलिका दीप्यते कस्मात्फाल्गुनान्ते किमुच्यते ।।२
अडाडेति च का संज्ञा शीतोष्णेति किमुच्यते । को ह्यस्यां पूज्यते देवः केनेयमवतारिता ।।
किमस्यां क्रियते कृष्ण एतद्विस्तरतो वद ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्कृतयुगे पार्थ रघुर्नाम नराधिपः । शूरः सर्वगुणोपेतः प्रियवादी बहुश्रुतः ।।४
स सर्वां पृथिवीं जित्वा वशीकृत्य नराधिपान् । धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।।५

खुरों द्वारा भूमि खोदने तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी अन्य वृषों को देखकर गर्जन से इन्द्र की सभा में बैठे हुए उस प्राणी को जिसने इस वृष का विवाह (बछियों) के साथ सुसम्पन्न किया है, परम सन्तोष प्राप्त होता है।१७-२२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठरसम्वाद में
वृषोत्सर्ग विधान वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।१३१।

अध्याय १३२

फाल्गुनपूर्णिमा व्रत का वर्णन

युधिष्ठर बोले—जर्नादन ! फाल्गुन मास के अंत में पूर्णिमा के दिन गाँव-गाँव में प्रत्येक घरों में जिस समय उत्सव मनाया जाता है, लड़के लोग क्यों (अश्लील शब्दो के) प्रलाप करते हैं, होली क्यों जलायी जाती है। कृष्ण ! अडाडा संज्ञा और शीतोष्णा किसे कहा जाता है। इसमें किस देव की अर्चा होती है, यह किसके द्वारा सर्वप्रथम आरम्भ हुआ है और इसमें क्या किया जाता है आदि सभी बातें विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।१-३

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले कृतयुग में एक रघु नामक राजा थे, जो शूर, सर्वगुण सम्पन्न, प्रियवादी और निपुण विद्वान् थे। उसने समस्त पृथ्वी को जीत कर राजाओं को अपने अधीन करते हुए औरस (सगे) पुत्रों की भाँति प्रजाओं का पालन पोषण करता था।४-५। पार्थिव ! उस राजा के शासन काल

न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं तथा[1] । नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिञ्छासति[2] पार्थिव ।।६
तस्यैवं शासतो राज्यं क्षात्रधर्मरतस्य वै । पौराः सर्वे समागम्य पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ।।७

पौरा ऊचुः

अस्माकं हि गृहे काचिद्ढौंढा नामेति राक्षसी । दिवा रात्रौ समागम्य बालान्पीडयते बलात् ।।८
रक्षया कण्डकेनापि भेषजैर्वा नराधिप । मन्त्रज्ञैः परमाचार्यैः ता नियन्तुं न शक्यते ।।९
पौराणां वचनं श्रुत्वा रघुर्विस्मयमागतः । विस्मयाविष्टहृदयः पुरोहितमथाब्रवीत् ।।१०

रघुरुवाच

ढौंढेति राक्षसी केयं किंप्रभावा[3] द्विजोत्तम । कथमेषा नियन्तव्या मया दुष्कृतकारिणी ।।११
रक्षणात्प्रोच्यते राजा पृथिवीपालनात्पतिः । अरक्षमाणः पृथिवीं राजा भवति किल्बिषी ।।१२

वशिष्ठ उवाच

शृणु राजन् परं गुह्यं यन्नाख्यातं मया क्वचित् । ढौंढा नामेति विख्याता राक्षसी मालिनः सुता ।।१३
तया चाराधितः शम्भुरुग्रेण[4] तपसा पुरा । प्रीतस्तामाह भगवान्वरं वरय सुव्रते ।।१४
यत्ते मनोऽभिलषितं तद्ददाम्यविचारितम् । ढौंढा प्राह महादेवं यदि तुष्टं स्वयं मम ।।१५
न च वध्यां सुरादीनां मनुजानां च शङ्कर । मां कुरु त्वं त्रिलोकेश शस्त्रास्त्राणां तथैव च ।।१६

में प्रजाओं में दुर्भिक्ष, व्याधि, अकाल मरण और अधर्म रुचि कभी नहीं उत्पन्न होने पायी । किन्तु क्षत्रिय धर्म द्वारा उसके शासन काल में ही समस्त नगरनिवासी राज दरबार में पहुँच कर 'बचाओ-बचाओ' कहने लगे ।६-७

पुरवासियों ने कहा—हमारे घरों में एक ढौंढा नाम की राक्षसी दिन रात आकर बच्चों को बलात् पीड़ित करती है । नराधिप ! परम मंत्र निपुण आचार्य द्वारा अथवा अन्य रक्षा, कंडक, या ओषधि से उसको रोकना कठिन हो रहा है । पुरवासियों के ऐसे करुण क्रन्दन सुनकर राजा रघु को महान् आश्चर्य हुआ । उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित से कहा—८-१०

रघु बोले—द्विजोत्तम् ! यह ढौण्ढा राक्षसी कौन है और मैं इस दुराचारिणीका वारण किस भाँति कर सकूँगा क्योंकि प्रजाओं की रक्षा करने से राजा और पृथ्वी के पालन करने से पति कहे जाते हैं तथा पृथिवी की रक्षा न करने में राजा किल्बिषी (नपुंसक या कायर) कहा जाता है ।११-१२

वशिष्ठ बोले—राजन् ! मैं तुम्हें एक परम गुप्त आख्यान बता रहा हूँ जिसको अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं किया है, सुनो ! माली नामक राक्षस की विख्यात पुत्री का नाम **ढौण्ढा है** जिसने पहले समय में उग्र तप द्वारा शिव की आराधना की थी । प्रसन्न होने पर भगवान् शिव ने **उससे** कहा—सुव्रते ! अपने अभिलषित वर की याचना करो, मैं बिना विचारे ही उसे पूरा करने को प्रस्तुत हूँ । इसे सुनकर कर ढौण्ढा ने महादेव से कहा—शंकर ! यदि आप प्रसन्न हो तो मुझे देवों, मनुष्यों और शस्त्रास्त्रों की अवध्या

---

१. नृणाम् । २. वसति । ३. प्रख्याता ।

शीतोष्णवर्षासमये दिवा रात्रौ बहिर्गृहे । अभदं सर्वदा मे स्यात्त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥१७

शङ्कर उवाच

एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तां पुनः प्रोवाच शूलभृत् । उन्मत्तेभ्यः शिशुभ्यश्च भयं ते सम्भविष्यति ॥
ऋतावृतौ महाभागे मा व्यथां हृदये कृथाः ॥१८
एवं दत्वा वरं तस्यै भगवान्भगनेत्रहा । स्वप्ने लब्धो यथार्थार्थस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥१९
एवं लब्धवरा सा तु राक्षसी कामरूपिणी । नित्यं पीडयते बालान्संस्मृत्य हरभाषितम् ॥२०
अडाडयेति गृह्णाति सिद्धमन्त्रं कुटुम्बिनी । गृहेषु तेन सा लोके ह्यडाडेपत्यभिधीयते ॥२१
एतत्ते सर्वमाख्यातं ढौण्ढायाश्चरितं मया । साम्प्रतं कथयिष्यामि येनोपायेन हन्यते ॥२२
अद्य पञ्चदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप । शीतकालो विनिष्क्रान्तः प्रातर्ग्रीष्मो भविष्यति ॥२३
अभयप्रदानं लोकानां दीयतां पुरुषोत्तम । यथाद्याशंकिता लोका रमन्ति च हसन्ति च ॥२४
दारुजानि च खण्डानि गृहीत्वा समरोत्सुकाः । योधा इव विनिर्यान्तु शिशवः सम्प्रहर्षिताः ॥२५
सञ्चयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत् । तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः ॥२६
ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोहरैः । तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ॥
जल्पन्तु[1] स्वेच्छया लोका निःशंका यस्य यन्मतम् ॥२७

बनाने की कृपा करें तथा जाडा, गर्मी और वर्षा के सभी दिनों में रात दिन एवं घर बाहर सभी स्थानों में तुम्हारी कृपा से मुझे सदैव अभयदान प्राप्त रहे। १३-१७

शंकर जी बोले—शूलधारी शिव ने उसकी बातों को 'तथास्तु' कहकर चीत्कार करते हुए पुनः उससे कहा—महाभागे ! प्रत्येक ऋतुओं में उन्मत्त की भाँति रहने वाले बालकों से तुम्हें सदैव भय बना रहेगा। अतः अपने मन में कुछ दुःख न मानना। भग नेत्र के अपहर्ता भगवान् शिव इस भाँति उसे वर प्रदान करके स्वप्न में प्राप्त धन की भाँति उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये। यथेच्छ रूप धारण करने वाली वह ढौण्ढा राक्षसी भी शिव जी की बातों के स्मरण पूर्वक नित्य बालकों को पीडित करने लगी। वह घरों में प्रवेश करते समय 'अडाऽयेति' नामक सिद्ध मन्त्र का प्रयोग करती इसीलिए लोक में अडाडया नाम से उसकी ख्याति हुई है। इस प्रकार मैंने ढौण्ढा का समस्त चरित्र बता कर अब उसके हनन का उपाय बता रहा हूँ ! सुनो ! नराधिप ! आज फाल्गुन मास की पूर्णिमा है, शीत काल की समाप्ति एवं ग्रीष्म का प्रातःकाल हो रहा है। पुरूषोत्तम ! अतः आप लोक को अभय प्रदान करें, जिससे सशंकित मानव गण पूर्व की भाँति पुनः हास्य समेत अपने जीवन व्यतीत करें। बालक वृन्द हाथ में डण्डे लिये समर के लिए लालायित योधा की भाँति हँसी खेल करते हुए बाहर जाकर सूखी लकड़ियाँ और उपले (कण्डे) को एकत्र करें तथा उसे जलायें पश्चात् राक्षस नाशक मंत्रों द्वारा सविधान उसमें आहुति डालकर हर्षोल्लास से सिंहनाद और मनोहर ताली बजाते हुए उस अग्नि की तीन परिक्रमा करें एवं सभी लोग वहाँ उपस्थित होकर निःशकं तथा यथेच्छ गायन, हास्य और अपने मनोनुकूल प्रलाप करें। क्योंकि उन्हीं शब्दों और हवन द्वारा वह पापिनी

---

१. रौद्रेण।

तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता । अदृष्टघातैर्डिंभानां राक्षसी क्षयमेष्यति ॥२८

श्रीकृष्ण उवाच

तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन । सर्वं चकार विधिवदुक्तं तेन च धीमता ॥२९
गता सा राक्षसी नाशं तेन चोग्रेण कर्मणा । ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्नडाडा ख्यातिमागता ॥३०
सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तिदः । क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका मता ॥३१
सर्वसारातिविश्वेयं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर । सारत्वात्फल्गुरित्येषा परमानन्ददायिनी ॥३२
अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपलिप्ते सचतुष्के गृहाङ्गणे ॥३३
आकारयेच्छिशुप्रायान्खड्गव्यग्र करान्नरान् । ते काष्ठखण्डैः संस्पृश्य गीतैर्हास्यकरैः शिशून् ॥
रक्षन्ति तेषां दातव्यं गुडं पक्वान्नमेव च ॥३४
एवं ढौंढितमात्रस्य स दोषः प्रशमं व्रजेत् । बालानां रक्षणं कार्यं तस्मात्तस्मिन्निशागमे ॥३५

युधिष्ठिर उवाच

प्रभाते किञ्जनैर्देव कर्तव्यं सुखमीप्सुभिः । प्रवृत्ते माधवे मासि प्रतिपद् भास्करोदये ॥३६

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः । वन्दयेद्धोलिकाभूतिं सर्वदुष्टोपशान्तये ॥३७
मण्डिते चर्चिते चैव उपलिप्ते गृहाजिरे । चतुष्कं कारयेच्छ्रेष्ठं वर्णकैश्चाक्षतैः शुभैः ॥३८
तन्मध्ये स्थापयेत्पीठं शुक्लवस्त्रोत्तरच्छदम् । अग्रतः पूर्णकलशं स्थापयेत्पल्लवैर्युतम् ॥३९

अचेतन होती है। तथा बालकों के उस अदृष्ट आघातों द्वारा वह राक्षसी नष्ट हो जाती है।१८-२८

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन ! उन महर्षि की ऐसी बातें सुनकर राजा रघु ने उनके कथनानुसार समस्त कर्म सविधान सुसम्पन्न किया, जिससे उसी उग्र कर्म द्वारा उस राक्षसी का विनाश हो गया । पार्थ ! उसी समय से लोक में उसकी अडाडया नाम से ख्याति हुई है और इसी पूर्णिमा के दिन ब्राह्मण गण समस्त दुष्टों और रोगों के शमनार्थ हवन करते हैं । इसीलिए वह होलिका कही जाती है । युधिष्ठिर ! पहले समय में सम्पूर्ण विश्व को अतिक्रान्त करने के नाते इसमें सर्वसार सन्निहित था, किन्तु सारमय होते हुए भी निष्फल होने के नाते यह परमानन्द प्रदान करती है । पार्थ ! इस दिन रात्रि आगमन (सायंकाल) के समय घर में बालकों की रक्षा करना परमावश्यक होता है । घर के आंगन को गोबर से लीप कर उसमें बनाये हुए चबूतरे पर हाथ में तलवार लिए बालकों की मूर्ति बनाये, जो काष्ठ के टुकड़े द्वारा स्पर्श करते हुए हास्य गीतों द्वारा बालकों की रक्षा करते हैं। उन्हें गुड़ पक्वान से सुसम्मानित करना चाहिए। ऐसा करने से ढौण्ढा राक्षसी जनित समस्त पीड़ा शान्त हो जाती है। इसलिए उस दिन सायंकाल बालकों की अवश्य रक्षा करें।२९-३५

युधिष्ठिर बोले—देव ! माधव (चैत्र) मास के आरम्भ में प्रतिपदा के दिन प्रातः काल सुखेच्छुक पुरुषों को क्या करना चाहिए ।३६

श्रीकृष्ण बोले—पितरों और देवों के तर्पण तथा आवश्यक कार्य करने के उपरांत समस्त दुष्टों के शान्त्यर्थ होलिका विभूति की वन्दना पूर्वक गृह आङ्गण में शुभ अक्षतों द्वारा उत्तम वर्ण का एक चबूतरा बना कर उसके मध्य में एक पीठासन स्थापित करें, जो श्वेत वस्त्र के बिछौने से भूषित किया गया हो । उसके सामने पल्लव समेत पूर्ण कलश की स्थापना करें, जो, अक्षत, सुवर्ण, श्वेत

साक्षतं सहिरण्यं च सितचन्दनचर्चितम् । कलशस्याग्रतो देया उपानहवरांशुकाः ।।४०
आसने चोपविष्टस्य ब्रह्मघोषेण भारत । चर्चयेच्चन्दनं[1] नारी अव्याङ्गांगा सुलक्षणा ।।४१
पद्मरागोत्तरपटा श्रेष्ठांशुकविभूषिता । वसुधारां शिरोग्रे च दधिदूर्वाक्षतान्विताम् ।।४२
[2]चर्चापयित्वा श्रीखण्डमायुरारोग्यवृद्धये । पश्चाच्च प्राशयेद्विद्वांश्चूतपुष्पं सचन्दनम् ।।४३
मनोभवस्य सा पूजा ऋषिभिः सम्प्रदर्शिता । ये पिबन्ति वसन्तादौ चूतपुष्पं सचन्दनम् ।।४४
सत्यं हृदिस्थकामस्य तत्पूर्तिर्जायतेऽञ्जसा । अनन्तरं द्विजेन्द्राणां सूतमागधबन्दिनाम् ।।४५
दद्याद्दानं यथा शक्त्या कामो मे प्रीयतामिति । ततो भोजनवेलायां भृतं यत्प्राक्तनेऽहनि ।।४६
प्राश्नीयात्प्रथमं चान्नं ततो भुञ्जीत कामतः । य एवं कुरुते पार्थ शास्त्रोक्तं फाल्गुनोत्सवम् ।।४७
अनायासेन सिध्यन्ति तस्य सर्वे मनोरथाः । आधयो व्याधयश्चैव यान्ति नाशं न संशयः ।।४८
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सुखं तिष्ठति मानवः ।।४९
पुण्या पवित्रा जयदा सर्वविघ्नविनाशिनी । एषा ते कथिता पार्थ तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।५०

वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च ।
सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषः ससुखं समास्ते[3] ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
फाल्गुनपूर्णिमोत्सववर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३२

चन्दन से चर्चित हो। भारत! पश्चात् कलश के अग्रभाग में उपानह और सूक्ष्म वस्त्र रख कर एक सर्वलक्षण सम्पन्ना एवं परमसुन्दरी नारी आसन पर बैठे हुए उस पुरुष को ब्रह्म घोष पूर्वक चन्दन चर्चित करे। जो पद्मराग मणि जटित अथवा उसकी भाँति रक्तवस्त्रों से विभूषित है। दधि, दूर्वा, अक्षत युक्त वसुंधरा शिर के अग्रभाग (मस्तक) से स्पर्श किये आयु और आरोग्य के वृद्ध्यर्थ श्रीखण्ड का वर्द्धयन करे। पश्चात् विद्वान् को आम मञ्जरी (बौर) चन्दन समेत पान करना चाहिए। क्योकि ऋषियों ने इसे कामदेव की पूजा बतायी है। उनका कहना है कि—वसन्त के आदि काल में चन्दन समेत आम के बौर पान करने वाले प्राणी के हृदिस्थ काम की निःसन्देह पूर्ति होती है। 'कामदेव' मुझ पर प्रसन्न हों' कहते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों सूतमागध एवं बन्दी जनों को यथा शक्ति दान अर्पित करें। अनन्तर भोजन के समय पूर्व दिन का बना हुआ भोजन पहले कुछ खाकर पश्चात् यथेच्छ भोजन करे। पार्थ! इस प्रकार फाल्गुन मास के इस शास्त्रीय उत्सव को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों के सभी मनोरथ अनायास सफल होते हैं। शारीरिक मानसिक पीडा निःसन्देह शान्त हो जाती है। पुत्र पौत्र समेत वह मानव सुखी जीवन व्यतीत करता है। पार्थ! इस प्रकार पुण्य, पवित्र जय प्रद और समस्त विघ्नों को शांति करने वाली इस उत्तम तिथि (पूर्णिमा) का वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया। पार्थ! शीतसमय (जोड़) के व्यतीत होते वसन्त के आदि काल (फाल्गुन) पूर्णिमा के दिन होली पूजन और उसके दूसरे दिन (प्रतिपदा) में चन्दन समेत आम के बौर का प्राशन करने वाला मनुष्य सदैव सुखी रहता है।३७-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के संवाद में
फाल्गुन पूर्णिमा उत्सव वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३२।

---

१. वर्द्धयेत्सदने नारी। २. वर्द्धापयित्वा। ३. समस्ते। ते त्वया समस्तुल्य इत्यर्थः।

अथ त्र्यस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आन्दोलकविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

संत्यज्यालिकुलालीढकुसुमानि मृदून्यपि । दमनेन कथं लोकैः पूज्यन्ते नाकनायकाः ॥१
दोलान्दोलनमाहात्म्यं रथयात्रामहोत्सवम् । कथयस्वामलं प्राज्ञ यादवान्भोजभास्कर ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थार्थिजनसद्वृक्ष क्षान्तिधाम धरापते । यदेतद्भवता पृष्टं तच्छृणुष्व वदामि ते ॥३
पुरा सुराणामावासे मन्दरे चारुकन्दरे । गन्धाधारी कुलालीढो जातो दमनकस्तरुः ॥४
तस्य गन्धमनाघ्रेयमाघ्राय सुरयोषितः । मदनोन्मादवशगा गायन्ति च हसन्ति च ॥५
ऋषयो नियमान्स्त्यक्त्वा प्राद्रवन्त गृहान्प्रति । न वेदाध्ययने ध्याने रतिस्तेषां बभूव ह ॥६
अपराधाद्विघटितं यद्बभूव प्रिये परम् । मानसं मानिनीनां तु पुनर्गन्धेन संधितम् ॥७
गन्धेनाकुलितं लोकं दृष्ट्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् । शमनिर्मितया वाचा रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥८

ब्रह्मोवाच

जातस्त्वं लोकदमनान्नूनं दमनको मया । जगद्वा घूर्णसे कस्मात्कर्म नैतत्तवोचितम् ॥९

अध्याय १३३

हिंडोला झूलने की विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादवकुल कमलभास्कर ! प्राज्ञ ! ऐसे कोमल पुष्पों को त्यागकर जिसके रसास्वादन के लिए भ्रमर वृन्द सदैव लालायित रहता है, मानवगण स्वर्ग नायक की अर्चा दमन (दौना) पुष्प द्वारा क्यों करते हैं। तथा हिंडोला झूलने का माहात्म्य और रथयात्रा महोत्सव बताने की कृपा करें। १-२

श्रीकृष्ण बोले—याचकों के सद् (कल्प) वृक्ष, क्षांति धाम, एवं धरापते पार्थ ! आपने जो कुछ पूँछा है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! पहले समय में मन्दराचल के उस प्राचीन एवं रमणीक गुफा में उस दमनक (दौना) नामक वृक्ष की उत्पत्ति हुई है, जो गन्धाधारी भ्रमरवृन्दों के रसास्वादन का सर्व प्रमुख स्थान रहा है। उसके अनुपम गंध के सूंघने पर देवताओं की ललनाएँ कामोन्मत्त होकर गाने और हँसने लगी। ऋषि लोग अपने नियमों को त्याग कर शीघ्रता से अपने अपने घरों की ओर दौड़ने लगे। उन लोगों की रूचि न वेदों के अध्ययन में रही और न (इष्ट देव के) ध्यान में ही। मानिनी स्त्रियों के चित्त, जो अपराध के कारण अपने प्रिय पति से सर्वथा के लिए पृथक् हो गया था, उस गंध द्वारा पुनः (पति का प्रेम) प्राप्त करने के लिए हो गया। उस गंध द्वारा समस्त लोक को आकुल देखकर ब्रह्मा ने यद्यपि रोषावेश में उनके होंठ फड़क रहे थे। तथापि शान्ति पूर्वक कहा—३-८

ब्रह्मा बोले—लोकों के दमन करने के नाते तुम मेरे द्वारा निश्चित दमनक (दमन करने वाला) ही

यत्संतस्त्वनुमन्यन्ते सर्वातिशयवर्जितम् । तत्सेवेत नरः कर्म यत्रोद्वेगो न धीमताम् ॥१०
एकस्याप्यपकारं यः करोति स नराधमः । बहूनामपकाराय सम्प्रवृत्तः किमुच्यते ॥११
दृष्टार्थबाधकं कर्म न कर्तव्यं कथञ्चन । अदृष्टं प्रति सन्देहः सोऽस्माभिरनुमीयते ॥१२
ततः स्वयं प्रभजति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । भोगार्थे च त्रिभुवननिरादेयो भविष्यति ॥१३

दमनक उवाच

पुरुषादेवमारब्धं न क्रोधान्नार्थकारणात् । स्वभाव एष मे ब्रह्मंस्त्वया सृष्टः पुरा विभो ॥१४
या यस्य जन्तोः प्रकृतिः शुभा वा यदि वेतरा । स तस्यामेव रमते दुष्कृते सुकृते तथा ॥१५
तत्स्वभावप्रवृत्तस्य यदि शापस्त्वया मम । प्रदत्तः किं करोम्येतन्न कृत्यमपराध्यति ॥१६
युक्तियुक्तं वचः श्रुत्वा दमनेन समीरितम् । प्रीतात्मा पद्मजः प्राह करोमि तव सत्प्रियम् ॥१७
वसन्ते सहकारोत्थमञ्जरीपिञ्जरे जने । पुष्पिताशोकशोभाढ्ये वने पुंस्कोकिलाकुले ॥१८
तस्मिन्काले सुरेशानां शिरांस्याक्रम्य लीलया । स्थास्यसि त्वं दिनं चैकं यद्यस्य विहितं हितम् ॥१९
ये त्वामारोपयिष्यन्ति दानमानपुरस्सराः । सुराणां ते भविष्यन्ति सदैव सुखिनो नराः ॥२०
सर्वदैव शिवस्येष्टा पुण्या पापभयापहा । प्रसिद्धिं यास्यति मधौ दमनाख्या चतुर्दशी ॥२१

उत्पन्न हुए । किस हेतु सारे संसार को पीड़ित कर रहे हो, ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है । सज्जन उसी का आदर करते हैं, जो सर्व श्रेष्ठता से शून्य होकर साधरण मनुष्यों के सेवन करने योग्य हो और जिसके कार्य से विद्वानों को किसी प्रकार की आकुलता न उत्पन्न हो । क्योंकि एक भी अपकार करने वाला मनुष्य नराधम कहलाता है और जो बहुतों के अपकारार्थ प्रदत्त है उसे क्या कहा जा सकता है । इसलिए देखते हुए भी अर्थ बाधक कर्म कभी न करना चाहिए और उसी प्रकार अदृष्ट के प्रति संदेह भी । क्योंकि वह उसी रूप में हमें भी मान्य है । अतः तुम्हारा आज से स्वयं उत्पन्न होकर देव पितृ कार्यों में और भोगों के उपभोग करने में तुम्हारा सदैव निरादर होता रहेगा ।९-१३

दमनक (दौनवृक्ष) ने कहा——ब्रह्मन् ! मैंने अपने पुरुषार्थ वश ऐसा किया है, न कि क्रोध और अर्थ के कारण । क्योंकि पहले समय में आप ने मेरा ऐसा स्वभाव ही बनाया था । जिस जीव की शुभ अशुभ जैसी प्रकृति होती है, भले, बुरे कार्यों में वह सदैव उसे ही अपनाता है । इसलिए अपने स्वभावानुसार ऐसा कार्यों में प्रवृत्त होने पर मुझे आप ने यदि शाप दे ही दिया तो मैं क्या करूँ, इसमें मेरे अपराध नहीं है । दमनक की युक्तियुक्त बातें सुनकर कमल-जाय मान ब्रह्मा ने कहा—मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हारा एक अत्यन्त प्रिय कार्य करने जा रहा हूँ । वसन्त के समय आम के मञ्जरी (बौर) वृन्दों से भूषित होने तथा जङ्गलों में फूले हुए अशोक की समृद्ध शोभा विस्तारित होने के समय, जब कि हर्षोन्मत्त कोकिल की मधुर ध्वनि में वह वन आकुल सा हो रहा हो । उसी एक दिन देवों के शिरस्थान पर बैठकर जिसका जैसा हित एवं अभिलाषा हो, सुसम्पन्न करना । देवों के शिरस्थान पर दान मान पूर्वक तुम्हें बैठाने वाले मनुष्य सदैव सुखी रहेंगे । वसन्त समय में (चैत्र की) यह दमन चतुर्दशी के नाम से ख्याति प्राप्ति पूर्वक पुण्य स्वरूपा, पाप और भय के अपहरण करती हुई देवेश शिव की अत्यन्त प्रिय होगी । इतना कहकर ब्रह्मा चले गये और दमनक मन्दराचल पर निखिल भुवनों को अपने गंध द्वारा सुवासित

एवमुक्त्वा ययौ ब्रह्मा दमनो मन्दरे गिरौ । उवास वासिताशेषभुवनो गन्धसम्पदा ।।२२
दिव्ये गिरौ गिरिसु तादयिताधिवासे रत्नांशुकच्छुरितकाञ्चनभूमिभागे ।
शापं वरं च हृदये विनिवेश्य शम्भोस्तत्रास्थितो दमनको दमितान्तरात्मा ।।२३

श्रीकृष्ण उवाच

धर्मराज निबोधेदमान्दोलकमहोत्सवम् । प्रवृत्तनरनारीकं पञ्चमोच्चारसुन्दरम् ।।२४
सानन्दं नन्दनवने आर्द्रया सहितो यथा । विस्मयस्मेरनयनो भ्रमामोद्वान्तसौरभः ।।२५
उन्मादयन्वने पुण्ये विद्याधरगणान्बहून् । वसन्ततौ नृत्यमानान्सुरासुरशतार्चितः ।।२६
सन्तानपारिजातोत्थां बद्धा स माधवीलताम् । [१]कश्चिदान्दोलनं चक्रे समालिंग्य घनस्तनीम् ।।२७
गीतमान्दोलकारूढस्तद्गायन्त्यमरस्त्रियः । येन चोत्पादयन्ति स्म मन्मथस्यापि मन्मथम् ।।२८
तं दृष्ट्वाष्टापदनिभा भवानी प्राह शङ्करम् । कौतुकं मे समुत्पन्नं पश्येमाः शंकर प्रभो ।।२९
आन्दोलकं मम कृते कारयस्व स्वलंकृतम् । त्वयासहान्दोलयेयं यथा चैते त्रिलोचनः ।।३०
तद्गौरीवचनं रम्यं श्रुत्वा गोवृषभध्वजः । सद्दोलां कारयामास समाहूय महासुरान् ।।३१
स्तम्भद्वयं रोपयित्वा इष्टापूर्तमयं दृढम् । सत्यं चैवोपरिततं श्रेष्ठकाष्ठमकल्पयत् ।।३२
वासुकिं दण्डकस्थाने बद्ध्वा तान्तवसप्रभम् । तत्फणामन्तरापीठं कृतवान्मणिमण्डितम्[२] ।।३३

करने लगा। इस प्रकार उस दिव्य पर्वत पर जिस पर पार्वती जी का निवास और रत्न रूपी उत्तरीय (दुपट्टा आदि) वस्त्रों की चञ्चल प्रभा द्वारा काञ्चन मय भूमि भाग है, रहते हुए उस दमनक के जिसके हृदय का शाप प्रदान द्वारा किया गया है, भगवान् शिव के चरण में वर और शाप दोनों अर्पित कर दिया।१४-२३

श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज! मैं उस हिंडोला महोत्सव को, जो स्त्री पुरुषों द्वारा प्रारब्ध और उनके पञ्चम स्वर से अत्यन्त मनोहर होकर नन्दन वन में आर्द्रा के साथ आनन्द लूटने की भाँति आश्चर्य चकित नेत्रों से देखते हुए दमन की भाँति सुगन्धों को बिखेरते हुए चारों ओर घूमता रहता है, बता रहा हूँ, सुनो! उस वसन्त ऋतु में वह अधिकांश विद्याधर गणों को उन्मत्त करते और सैकड़ों देवों एवं राक्षसों को नचाते हुए उनके द्वारा पूजित होता है। कल्प वृक्ष की शाखा में माधवी लता से आबद्ध उस हिंडोले पर बैठ कर किसी ने कठोर एवं सघन स्तन वाली अपनी स्त्री के आलिंगन पूर्वक हिंडोला झूलना शुरु कर दिया। अनन्तर उस पर बैठी हुई देव ललनाएँ इस भाँति का गीत गाना आरम्भ किया जिसे सुनने पर कामदेव के हृदय में भी काम की उत्पत्ति हो जाती थी। उसे देखकर काञ्चन वर्णा पार्वती जी ने शंकर जी से कहा—प्रभो शङ्कर! इन स्त्रियों को देखो! इन्हें देखकर मुझे भी इसका महान् कौतूहल उत्पन्न हो गया है अतः मेरे लिए भी एक सुसज्जित हिंडोला बनाने की कृपा करें। त्रिलोचन! इन स्त्रियों की भाँति मैं भी आप के साथ हिंडोला झूलना चाहती हूँ।२४-३०। गौरी की ऐसी बातें सुनकर गोवृषध्वजा वाले शिव जी ने देवों को बुलाकर एक सुन्दर हिंडौला बनवाया और ईंटे की भाँति दृढ दो स्तम्भों को आधार पर सत्य का विस्तृत काष्ठ और वासुकी को रस्सी बनाकर दण्डक के स्थान पर बाँध दिया तथा उनके फणों के उस हिंडोले को

---

१. आलोचनम्। २. मणिगौक्तिकम्।

कृमिकार्पासकौशेयवस्त्रैः सम्वेष्टितं नवैः । स्रग्दामालम्बितप्रान्तमणिमौक्तिकशेखरम् ।।३४
रचयित्वा विचित्रां तां दोलां चैलाजिनोत्तराम् । स सिद्धां सिद्धगुरवे गौरवेण न्यवेदयत् ।।३५
तत्रारूढस्तु यावत्स सौम्यसोमविभूषणः । सन्दरं दोलयामास पार्श्वस्थैः पार्षदैः सह ।।३६
वामपार्श्वे तु विजया दक्षिणेन जया भवेत् । चामराक्रान्तबाहू ते तेनाश्लिष्टे न्यवीजताम् ।।३७
आन्दोलयन्त्या पार्वत्या सहितं स गदाक्षरम् । येन देवासुरक्षणमासीदानन्दनिर्भरम् ।।३८
जुगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । उच्छलत्तालवाद्यानि वादयन्ति स्म चारणाः ।।३९
चेलुः कुलाचलाः सर्वे चुक्षुभुः सप्त सागराः । ववुर्वाताः सनिर्घाता देवे दोलां समास्थिते ।।४०
आलोक्य व्याकुलं लोकं देवाः शक्रपुरोगमाः । उपेत्य प्रणिपत्योचुः सर्वपापहरं परम् ।।४१
उपारमस्व भगवन्भवतः क्रीडयानया । जगद्व्यापाद्यते देवे चलितः सागरश्च यत् ।।४२
गीर्वाणगीर्भिः संहृष्टः शङ्करो लोकशङ्करः । समुत्पपात दोलातः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ।।४३
उवाच वचनं पार्थ सुरसार्थस्य पश्यतः । सानुकम्पं सुललितं विस्फुटार्थपदाक्षरम् ।।४४

श्रीमहादेव उवाच

अद्य प्रभृति ये दोलाक्रीडां पुष्करिणीतटे । वसन्ते कारयिष्यन्ति मण्डिते त्रिदशाङ्गणे ।।४५

स्थापित किया, जो मणियों और मोतियों से अलंकृत, नवीन सूती और रेशमी वस्त्रों से आच्छन्न, उसका दोनों प्रान्त भाग रस्सियों की भाँति लम्बी मालाओं से सुशोभित एवं ऊपर शिखर भाग मणियों मोतियों से सुसज्जित था। मृगचर्म से अलंकृत उस अनोखे हिंडोले को देवों ने जो एक परम सिद्धि की भाँति था, सिद्ध गुरु भगवान् शिव को सादर समर्पित किया। सौम्य मूर्ति चन्द्रमा से अलंकृत भगावन् शिव अपने पार्षदों समेत ज्योंही उस पर सुखासीन हुए त्योंही वह झूलना आरम्भ हो गया। (पार्वती और शिव के) वाम भाग में विजया तथा दक्षिण भाग में जया दोनों हाथों में चामर लिए उनकी सेवा करने लगी। देवों और असुरों के जनक भगवान् शिव पार्वती के साथ झूलते हुए उस हिंडोले में अत्यन्त आनन्द विभोर हो गये—उनके सम्मुख प्रमुख गन्धर्व गण गान कर रहे थे, अप्सराएँ नाच रही थी, चरण वृन्द वाद्यों के ताल स्वरों के निमग्न हो रहे थे। इस भाँति भगवान् शिव के हिंडोले में सुखासीन होकर झूलते समय समस्त पर्वत गण हिलने लगे, समुद्र में लहरों के टकराने से उफान आ गया और वायु आकाश में अपनी लहरों में टकरा कर नीचे पृथिवी में आया और प्रचण्ड वेग से चलने लगा। इस प्रकार लोक को आकुल देखकर इन्द्र को आगे किये समस्त देव वृन्द निखिल पापहारी भगवान् शिव के सम्मुख खड़े होकर नमस्कार पूर्वक विनम्र याचना करने लगे—भगवन् इस आप की क्रीडा द्वारा सागर में उफान आने के कारण समस्त संसार प्राण शून्य हो रहा है अत इसके विराम करने की कृपा करें। देवों की गीर्वाण वाणी (संस्कृत भाषा) द्वारा स्तुति करने पर प्रसन्न होकर लोक के कल्याणकर्ता भगवान् शंकर ने अपने विकसित नेत्रों द्वारा अपार हर्ष सूचित करते हुए उस हिंडोले से उतर पड़े। पार्थ! देवों के हित को ध्यान में रखकर भी महादेव जी ने उन लोगों से अनुग्रह पूर्ण, सुसलित एवं अत्यन्त स्फुट अर्थों वाले शब्दों में कहा—३१-४४

श्रीमहादेव बोले—आज से पुष्करिणी (कमल भूषित जलाशय) के तट पर सुसज्जित देवालयों के

नेत्रपट्टापटच्छन्नां पद्मरागविभूषिताम् । आतपत्रेण संयुक्तां विन्यस्तकनकाण्डकम् ॥४६
विचित्राभरणाभिराभासितदिगन्तराम् । तारकाशान्तचित्राङ्गपुष्पमालामनोरमाम् ॥४७
मालां विद्याधराक्रान्तां प्रान्तरोपितदर्पणाम् । छत्रचामरसंछन्नां यथा शक्त्याप्यलंकृताम् ॥४८
अग्निकार्यं ततः कृत्वा क्षिप्त्वा चैव दिशां बलिम् ! तस्यामारोपयेद्देवमिष्टहृष्टजनावृतः ॥४९
मूलमन्त्रेण देवानां प्रोक्तं दोलाधिरोहणम् । पार्श्वस्थो ब्राह्मणो विद्वान्पठेद्वै मन्त्रमुत्तमम् ॥५०
गम्भीरान्तरनिर्घोषैर्ललनानां च निस्वनैः । स्तुतिमङ्गलशब्दैश्च पुष्पधूपाधिवासिताम् ॥५१
एतस्मिन्नन्तरे नारीं दोहनाय निकुट्टकाम् । प्रवेशयेत्कुंकुमाढ्यां क्रीडावर्णप्रियैः सह ॥५२
सुवर्णभृंगिणा प्रोक्तं स्मितदन्तांशुकर्बुरम् । लगमानं जलं चांगे कस्य न स्यात्सुखप्रदम् ॥५३
जलसंक्लिन्नवसनो रशनादाममण्डितः । कम्बुग्रीवोल्लसन्सर्वो बभूव गणिकागणः ॥५४
कुंकुमक्षोदताम्बूलपुष्पमालाकुलो जनः । तां विहाय जलक्रीडां नान्यस्यां विदधे मनः ॥५५
पीतशीतजलाघातताडितोऽपि जनः सुखम् । मन्यते नियतः कोऽपि प्रभावोऽयमनंगजः ॥५६
एवं ये तु गमिष्यन्ति नरा वर्त्मतया गतम् । नीरुजस्ते भविष्यन्ति सुखिताः शरदां शतम् ॥५७
पुत्रपौत्रसमायुक्ताः धनधान्यसमायुताः । विहृत्य सुखसम्पत्तौ ततो यास्यन्ति मत्पुरम् ॥५८

प्राङ्गण में हिंडोला का झूला, जो सूक्ष्म वस्त्रों से आच्छन्न, पद्मरागमणि से अलंकृत छत्रयुक्त, सुवर्ण के दण्डों से सुसज्जित उसके विचित्र आभूषणों की चञ्चल प्रभा से भासित दिगन्तर, ताराओं के शांत प्रदर्शन होने वाली रक्त वर्ण की मनोरम पुष्प मालाओं से भूषित और मालाओं में विद्याधरों की सुसज्जित मूर्ति, हिंडौला के प्रान्त भागों में दर्पण तथा छत्र चामर से विभूषित होने पर भी उसे अलंकृत करना चाहिए। अनन्तर हवन और दिक्पालों आदि की बलि प्रदान करके इष्ट मित्रों आदि समेत हिंडोला पर बैठने वाले देवमंत्रों के उच्चारण पूर्वक देव को उस पर सुखासीन करे। उस समय उनके पार्श्व भाग में ब्राह्मणों द्वारा वेद पाठ, वाद्यों के गम्भीर निर्घोष, ललनाओं के मनोहर गाने और स्तुतियों के मङ्गल शब्द होने चाहिए तथा पुष्प धूप से उसे अधिवासित करने के अनन्तर उस स्थान पर क्रीडा करने वाली पुरुष मूर्ति समेत स्त्रियाँ (सखियों) की मूर्ति सजाये जो कुंकुम से मण्डित हों। सुवर्ण भृंगी ने बताया है कि उस समय (स्त्री के) मन्द मुस्कान में दाँत में लगे हुए सुवर्ण की चमक और उनके अंगों के जल (स्वेद) किस को सुख प्रद नहीं होते। वहाँ सभी वेश्याओं को जल से भीगा वस्त्र, (कटि में) रशना (करधनी) आभूषण रूप रस्सी से भूषित होते हुए कम्बुग्रीवा (शंख के समान सुन्दर कण्ठ) से सुशोभित होना चाहिए।४५-५४। कुंकुम, अक्षोद, ताम्बूल एवं पुष्पमाला से भूषित होने पर मनुष्य का जल क्रीडा के अतिरिक्त किसी भी विषय में मन लगेगा नहीं। क्योंकि पीत शीत जल के आघात को भी मनुष्य सुख ही मानता है इसलिए यह काम देव का एक नियत प्रभाव ही है। इस भाँति इस परम्परा मार्ग से चलने वाले मनुष्य आरोग्य पूर्वक सैकड़ों वर्ष सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। पश्चात् पुत्र पौत्र समेत धन धान्य और सुख सम्पत्ति के अनुभव के उपरांत मेरी पुरी प्राप्त करता है।५५-५८। इस प्रकार वसंत के समय देवों के लिए

प्राप्ते वसन्तसमये सुरसत्तमानामान्दोलनं सुरवराननुकुर्वते ये।
ते प्राप्नुवन्ति भुवि जन्मतरोः फलानि दुःखार्णवात्कुलशतान्यपि तारयन्ति ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आन्दोलकविधिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमनकान्दोलकरथयात्रामहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

रथयात्राविधानं ते कथयामि युधिष्ठिर । स्थिरो भूत्वा निबोधेदं त्वं हि मूर्तविदां वरः ॥१
चैत्रे त्रिनेत्रसम्भूतमलयाख्यमहागिरौ । प्रवहत्पवनध्वानप्रेंखोलितलताचये ॥२
एतस्मिन्नेव काले तु भ्रममाणो यदृच्छया । नारदः शारदाकान्ताच्छिवलोके समाययौ ॥३
दृष्ट्वापूर्वं शिवं शान्तं सुरेशैः सर्वतो वृतम् । प्रणम्योपाविशद्विप्रः पुरतः केशवेशयोः ॥४
तमुपासीनमालक्ष्य भगवान्भगनेत्रहा । पप्रच्छाच्छादितमनाः कुतश्चागम्यते पुनः ॥५

श्रीनारद उवाच

शिव कामं च तं विद्धि दग्धं मा दिबुधोत्तम । वसन्तो नाम कोऽप्येष कामस्य दयितः सखा ॥६
मलयानिलयुक्तेन तेन विश्वं वशीकृतम् । सहकारकरीन्द्रस्थं कृत्वा कोकिलडिण्डिमम् ॥७

सौन्दर्यपूर्ण एवं सुसज्जित हिंडोले को अर्पित करने वाले मनुष्य इस भूतल में अपने जन्म सफल करते हुए संसार दुःख सागर से अपने सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार करते हैं ।५९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
आन्दोलक (हिंडोला) विधि वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३३।

अध्याय १३४

दमनकान्दोलक रथयात्रा का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! तुम्ही सब में श्रेष्ठ हो, अतः मैं तुम्हें रथयात्रा विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चैत्रमास में शिवजनित उस मलयाचल नामक महापर्वत पर रहने वाली सभी लताएँ प्रवाहित पवन के मनोहर शब्द सुनकर पुलकित हो उठी थी । उसी समय शारदाकान्त विष्णु के लोक से घूमते हुए नारद ने शिव लोक में आगमन किया । वहाँ शिव जी को अपूर्व शांत एवं देवों से घिरे हुए देखकर प्रणाम करते हुए नारद विष्णु और शिव के सम्मुख बैठ गये । उन्हें बैठे देखकर भगनेत्रहा भगवान् शिव ने कुछ अनमने भाव से पूँछा—कहाँ से आगमन हो रहा है ।१-५

श्रीनारद ने कहा—बिबुधोत्तम (देव श्रेष्ठ, शिव ! आप काम को भस्मसात् हुआ न समझे । क्योंकि काम के परममित्र इस वसन्त ने मलय मारुत की सहायता से सम्पूर्ण विश्व अपने अधीन कर लिया

घोषयामास विजयं मन्मथस्य पुरेपुरे । शशाङ्कशेखरः कोऽयं कोऽयं शङ्खगदाधरः ॥८
कोऽयं च डिम्बो वा ब्रह्मा कामस्त्रिजगतां प्रभुः । प्रायः क्रीडारतिर्लोको वसन्तवचनात्पुनः ॥९
ऊर्ध्वबाहुस्तु नर्नीति तालदत्तपदक्रमः । व्यवसायं न गच्छन्ति ये संहृत्य वनान्तरम् ॥१०
गायन्तश्च परीहृष्टास्ते चाप्यायान्ति यान्ति च । गोप्यसीमान्तरगताः क्षेत्रस्थानस्य रक्षिणः ॥११
तेऽपि गायन्ति नृत्यन्ति हसन्ति स्मरतारकाः । करस्य ताडनेऽत्यर्थं मुरजो धुर्धरायते ॥१२
विटं पश्यन्ति कुलटाः प्रारब्धोचितपण्डिताः । सुमनांसि सुसङ्गीतनृत्यवाद्यसुवादितम् ॥१३
एवमेतत्त्रिलोकेऽस्मिन्निति व्यवसितो जनः । ललल्लम्बस्तनीं दृष्ट्वा जरायोषापि नृत्यति ॥१४
वसन्तस्य प्रभावोऽयं कोऽप्यपूर्वो विजृंभते । सरांस्यद्भुतपद्मानि प्रफुल्लाः पुष्पवाटिकाः ॥१५
वृक्षाः पक्षिशताकीर्णा विजिघ्राणमुखाः सुराः । विकम्पवसनाबालः पवनस्त्रिगुणात्मकः ॥१६
कृतः प्रत्यक्षसुमहान्वसन्तो न जगत्त्रये । अवजल्पमुखा बाला वृद्धास्तु विकलद्विजाः ॥१७
उभावपि प्रतप्येते पश्येदं कामचेष्टितम् । पक्षिणां पक्षनिक्षेपैर्नद्यस्तुंगतरंगकैः ॥१८
पादपाः पल्लवशतैर्नृत्यन्ते च प्रहर्षिणः । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्येन्दुशेखरः ॥१९

है। आम रूपी गजराजों के ऊपर कोकिल डिंडिभ (ढिंढोरा) द्वारा प्रत्येक नगरों आदि में घोषणा कराया कि—सर्वत्र कामदेव की ही विजय हुई है—अतः शशांकशेखर (शिव) और शंखगदाधारी विष्णु एवं बालकरूप ब्रह्मा नगण्य के समान हैं तथा ये कौन हैं कहाँ रहते हैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि तीनों लोकों का आधिपत्य कामदेव को ही प्राप्त है। पुनः वसन्त के आदेश से आप समस्त लोक क्रीडा रति में ही निमग्न हो रहा है—सभी लोग भुजाओं के ऊपर उठाकर हथेली के ताल बजाने के अनुसार पैर उठाते हुए नाच रहे हैं, जो कभी कुछ उद्यम नहीं करते थे वे भी गाने में हर्ष निमग्न रहकर (वने के भीतर) आते जाते हैं, खेतों के रखवारे लोग भी, जो सदैव उसी खेतों में ही उसके रक्षणार्थ रहते थे, काम विवश होकर हँसते हुए नाच गान करते हैं। हथेली के द्वारा ताडित होने पर घुरघुर गर्जन कर रहा है। आरम्भिक कार्यों में उचित निपुणता प्राप्त करने वाली कुलटायें नाचगान करने वाले कामी जनों को ही देख रही हैं, जो प्रसन्नचित्त, उत्तम संगीत, और अपने नाच गान से लोगों को मुग्ध करता हो। इसी प्रकार तीनों लोकों में सभी लोग अत्यन्त कामासक्त हो रहे हैं। लम्बे स्तनों वाली स्त्रियोंको हाव भाव पूर्ण कामासक्त देखकर वृद्धाएँ भी नाच रही हैं। इस प्रकार वसन्त का यह एक अपूर्व प्रभाव प्रसारित हो रहा है। सरोवरों के कमल विकसित होकर एक अनूठापन दिखा रहे हैं, वाटिकाएँ फूलों से अत्यन्त मनोहर हो रही हैं।६-१५। वृक्ष सैकड़ों पक्षियों से भूषित होकर मनोरञ्जन कर रहे हैं, देवगण ऊपर मुख किए किसी उत्तम सुगन्धि की खोज में दिखायी दे रहे हैं। तीनों गुण सम्पन्न (मंद, सुगन्ध और शीतल) वायु चारों ओर प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार इस वसन्त ने तीनों लोक में एक महान् (उपद्रव) सामने खड़ा कर दिया है—युवतियाँ (अत्यन्त काम पीड़ित होने के नाते) मौन हैं—बालक गण भी उसी भाँति मौन हैं, और बृद्ध जन विकल हो रहे हैं इसलिए काम की करतूतों से दोनों ही संतप्त हो रहे हैं। पक्षि गण अपने पंखों के फड़ फडाने, नदियों में उँची-ऊँची तरङ्गों के उठने और वृक्षों में अनेक नवीन पल्लवों की हरियाली द्वारा उनमें अत्यन्त आनन्द विभोर की नाच दिखायी देती है। नारद की ऐसी बातें सुनकर

कौतुकाकुलितः शीघ्रमारुरोह रथं स्वकम् । रथेन काञ्चनाङ्गेन पतत्रिवरकेतनः ॥२०
प्रययौ पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः । पारावतप्रतीकाशं चतुर्वेदमयं रथम् ॥२१
आस्थाय प्रययौ हृष्टो ब्रह्मा ब्राह्मणसंस्तुतः । मुनिभिश्चाप्सरोभिश्च यक्षरक्षोमहोरगैः ॥२२
वृतो रथेन प्रययौ भास्करो वारितस्करः । शैलजोरुपताकेन रथेनादित्यवर्चसा ॥२३
कात्यायनी प्रचलिता पञ्चवक्त्रेण केतुना । लम्बोदरः करशतगृहतीकनकोत्पलः ॥२४
प्रयातः स्वरतारूढः कृतकर्णकुलाकुलः । एवं देवः परिवृतो भगवान्गोवृषध्वजः ॥२५
रथारूढैरमूढात्मा मर्त्यलोकमवातरत् । यावत्पश्यति देवेशस्तावत्सर्वं तदक्षरम् ॥२६
नारदेन यथैवोक्तस्तादत्सर्वं तदक्षरम् । नारदेन यथैवोक्तं जगदानन्दनिर्भरम् ॥२७
देवैः सार्द्धं पशुपतिर्यावत्पश्यति विस्मितः । तावत्तस्यैव हि गणाः परब्रह्मसमञ्जसम्[1] ॥२८
गायन्ति केचित्सोत्कण्ठं लुन्ठन्त्यन्ये प्रहर्षिताः । वादयन्त्यपरे तुष्टा जहसुः केचिदुल्बणम् ॥२९
वादयन्त्यन्यथा वाद्यं गायन्त्यन्यथा गणाः । अन्येन्यथा प्रनृत्यन्ति चित्रं चैत्रस्य चेष्टितम् ॥३०
नीलोत्पलाभनयनैर्विलसत्प्रान्ततारकैः । क्रीडारतिभिरारब्धमालापैश्च सुरैरपि ॥३१
सुराणां क्षोभमालक्ष्य भगवान्गोवृषध्वजः । चिन्तयामास सुमहान्कार्ययोगो ह्युपस्थितः ॥३२

चन्द्रशेखर (शिव) अत्यन्त कौतकुवश अपने रथ पर बैठकर कमलनेत्र एवं शंख, चक्र एवं गदाधारी भगवान् विष्णु के साथ जो पक्षिराज गरुडरूप ध्वज वाले वाहन अपने काञ्चनमय रथ पर सुशोभित थे, चल दिये । कबूतर की भाँति सौन्दर्य पूर्ण उस चतुर्वेदमय रथ पर बैठे एवं ब्राह्मणों संस्तुत होते हुए ब्रह्मा ने हर्ष निमग्न होकर यात्रा की । मुनियों, अप्सराओं, यक्ष, राक्षस और महान् सर्पों से आवृत्त होने वाले जल तस्कर भास्कर देव ने अपने रथ पर बैठकर यात्रा की । आदित्य के समान तेजोमय और विशाल पताका से भूषित उस अपने रथ पर बैठकर पार्वती पाँच मुख वाले ध्वज से भूषित रथ पर बैठी हुई कात्यायनी और सैंकड़ों सुवर्ण कमल हाथों में लिए लम्बोदर ने अपने रथ पर बैठे उसकी ध्वनि द्वारा (सभी के) कानों को आकुल करते प्रस्थान किया । इस प्रकार देवों से घिरे गोवृषध्वज वाले भगवान् शंकर ने और अन्य रथारूढ देवाधीश्वरों समेत इस मर्त्य लोक में पहुँच कर चारों ओर देखा तो उन देव नायक को नारद की कही हुई सभी बातें अक्षरशः सत्य हुयीं एवं अक्षुण्ण (घटनाओं का) दर्शन हुआ।१६-२६। नारद ने जैसा कहा था कि सम्पूर्ण जगत् आनन्द विभोर हो रहा है, देवों समेत भगवान् पशुपति (शंकर) आश्चर्य चकित होकर उसे देख रहे थे कि उसी समय उनके गण भी उसे परब्रह्म के आनन्द का सामञ्जस्य करते हुए उसी में तन्मय हो गये। कोई उत्कण्ठित हो कर गान कर रहा था, कोई आनन्द विभोर होकर लोट रहा था, कोई वाद्य वादन कर रहा था और अन्य कुछ लोग अट्टहास कर रहे थे । वसन्त से प्रभावित होकर वे सभी गण विपरीत ढंग से ही गाना, बजाना और नांच कर रहे थे । देवगण भी अपने नील कमल की भाँति अपने सौन्दर्य पूर्ण नेत्रों द्वारा जिसमें कनीनिका तारा अपनी चञ्चलता से उनके हाव भाव प्रकट कर रही थी, संकेत करते हुए संगीत और क्रीडारति में निमग्न हो गये।२७-३१। इस प्रकार देवों को भी उसमें आसक्त देख कर भगवान् गोवृष ध्वज (शिव) चिन्तित होकर निश्चय करने लगे कि मेरे लिए यह एक

---

१. प्रारब्धमसमञ्जसम् ।

अनर्थमुत्थितं तद्वत्तद्विघाताय ये जनाः । नयन्ते येऽतिमूर्खत्वादापदोऽभिभवन्ति तान् ॥३३
वसन्तः स्वाभिभक्तत्वान्मान्यपुष्पाकरं यदा । उन्मादाढ्यजनो रक्ष्यः कार्यं कार्यद्वयं मम ॥३४
संचिंत्यैवं समानाय्य वसन्तं प्राह शङ्करः । समानीतो मासमेकं स्थातव्यं भवता त्विह ॥३५
सितपक्षः सहायोऽयं सर्वभूतसुखप्रदः । भवत्यतिमहानन्दो विशेषेण दिवौकसाम् ॥३६
यो यथा रथमारूढः समायातः समीक्षितुम् । वर्षेवर्षे स तेनैव संस्थानेनागमिष्यति ॥३७
कारयिष्यन्ति ये मर्त्या रथयात्रामहोत्सवम् । ते दिव्यभोगभोक्तारो भविष्यन्ति निरामयाः ॥३८
एवमाभाष्य भगवान्वसन्तं च ततः सुरैः । संस्तुतोऽथ गतश्चापि स्वस्थानमगमत्ततः ॥३९

युधिष्ठिर उवाच

रथः किमात्मकः कार्यः कार्या यात्रा कथं भवेत् । आरोपयेत्कथं देवान् रथे वद जगत्पते ॥४०

श्रीकृष्ण उवाच

सुविचित्रं चित्रतनुं श्रेष्ठकाष्ठमयं रथम् । सुदृढासं दृढाबन्धं सुचक्ररथकूबरम् ॥४१
अथ वा वंशविहितं नेत्रपट्टपटावृतम् । तारकाशतचित्रांशं पुष्पमालाविभूषितम् ॥४२
सितगोयुगसंयुक्तं पञ्चबाणपताकिनम् । छत्रचामरशोभाढ्यं स्थापयेद्भवनाङ्गणे ॥४३

महान् कार्य उपस्थित हो गया है, क्योंकि इस प्रकार के महान् अनर्थ उत्पन्न होने पर उसके विघटन के लिए जो लोग तत्काल उसी का समर्थन करते हैं, उनकी उस अति मूर्खता के कारण आपदाएँ उन्हें निर्मूल कर देती हैं। इसलिए मेरे समक्ष इस समय दो कार्य उपस्थित है स्वाभाविक होने के नाते वसन्त भी सुसम्मान्य एवं पुष्प समूहों से विभूषित रहे और इन उन्मादी जनों की रक्षा हो। इस भाँति निश्चित करने के उपरांत भगवान् शंकर ने सम्मान पूर्वक वसन्त को बुलाकर कहा—कृष्ण और शुक्ल पक्ष मिलाकर पूरे एक मास तक तुम्हारी ऐसी ही स्थिति रहेगी। समस्त प्राणियों को सुखी करने वाला यह शुक्ल पक्ष तुम्हारा सहायक होगा। इसमें विशेष कर देवों महान् को आनन्द प्राप्त होगा। इस समय इसमें जितने देवगण जिस भाँति के रथ पर बैठ कर यहाँ आये हैं, वे प्रतिवर्ष इसी प्रकार आकर इस उत्सव में सम्मिलित होते रहेंगे। इसलिए मर्त्य लोक निवासी जो इस रथयात्रा महोत्सव में सम्मिलित होंगे या स्वयं करेंगे वे नीरोग रहकर दिव्य भोगों के सदैव उपभोग करते रहेंगे। इस प्रकार वसन्त से कहने के अनन्तर भगवान् शंकर विनम्र देवों द्वारा संस्तुत होते हुए अपने स्थान चले गये।३२-३९

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! किस वस्तु का रथ होना चाहिए, यात्रा किस भाँति करनी चाहिए और उस पर देव को किस भाँति आसीन करे। आदि बातें मुझे बताने की कृपा करें।४०

श्रीकृष्ण बोले—अत्यन्त विचित्र एवं मनोरम शरीर वाले वृक्ष का सौन्दर्य पूर्ण रथ का निर्माण कराना चाहिए जिसके अक्ष (धुरा के रहने वाला काष्ठ मूड़ी) स्थान स्थान का कील बन्धन अत्यन्त दृढ़ हो, सुन्दर चक्र (पहिये) और (धुरे के ऊपर रहने वाला लम्बा काष्ठ (हरसा), जो दृढ़ होने के लिए उस स्थान पर कुछ कूबड़ा सा रहता है। अथवा वांस का सुन्दर रथ बनाकर जो सूक्ष्म वस्त्रों से सुसज्जित सैकडों ताराओं की भाँति चित्र विचित्र चमकने वाला, एवं पुष्प मालाओं से विभूषित हो। उसमें श्वेत वर्ण के दो बैल जुते हों और पंच बारह (काय) की पताका से अलंकृत हो। इस भाँति छत्र चामर से

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्ग्रहयज्ञविधानतः । चतुश्चरणकैर्मन्त्रैर्विप्र शान्तिकपौष्टिकैः ॥४४
आरोपयेद्रथे देवं मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । वेदोक्तैरथपौराणैर्गंधधूपाधिवासिते ॥४५
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीषूणां महिमानं पनायत मनुः पश्चादनुयच्छन्ति रश्मयः ॥४६
शङ्खदुंदुभिनिर्घोषैः काहलानां च निःस्वनैः । हस्तदीपैः प्रज्वलितैस्तालकोलाहलेन च ॥४७
दोषासुखेन रमितं प्रेषणीयपुरः सरम् । महतोत्सवभारेण भ्रामयेत्परितो रथम् ॥४८
ताम्बूलानि रथे दद्यात्पुष्पमालायुतानि च । रथवोढ़प्रदद्यात्तु प्रेक्षकेभ्योऽप्यवारितम् ॥४९
यस्य यस्य गृहेभ्येति प्रेरितो रथिना रथः । तस्य तस्य भवेत्पूज्यः पुष्पधूपाक्षतादिभिः ॥५०
इतरोऽपि भवेत्पूज्यः सम्प्राप्ते गृहिणां गृहे । किं पुनर्जगतां भर्ता सर्वलोकमहेश्वरः ॥५१
कदाचिदक्षभङ्गः स्याद्ध्वजभङ्गोऽथ वा भवेत् । भज्येत वा युगमध्ये नहनं त्रुटचते यदि ॥५२
ब्राह्मणांस्तत्र सम्पूज्य होमः कार्यो विजानता । तिलैराज्येन पयसा येन सम्पद्यते सुखम् ॥५३
प्रेरणीप्रेक्षणीयैश्च भ्रामयित्वा रथोत्तमम् । स्थापयेन्नगरस्यान्तस्तत्र कुर्यान्महोत्सवम् ॥५४
दोलाग्राहैश्चक्रदोलाभ्रमैर्डमरकैस्तथा । विद्याधरीणां चरितमितराभिः प्रकाश्यते ॥५५

सुशोभित उस रथ को अपने गृह के प्राङ्गण में स्थापित करने के अनन्तर ग्रहों के पूजन हवन के साथ बलि वैश्वदेव और ब्राह्मण द्वारा शान्ति पौष्टिक कर्म को समंत्रक सुसम्पन्न करे । पश्चात् उस मंत्रवेत्ता को मूल मंत्र के उच्चारण द्वारा उस रथ पर देव को सुखासीन करने चाहिएजो वेदोक्त एवं पौराणिक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक धूप और सुगन्ध से सुवासित किया गया हो । उस कुशल सारथी की इच्छानुसार जिस मार्ग से वह जाना चाहता हो, रथ में जुते घोडों को उसी मार्ग से ले जाये । पहले उनके महत्त्व को ध्यान में रखकर उन्हें यथेच्छ गमन करने के अनन्तर उनकी (लगाम की) रस्सियों को संभालना चाहिए । उस समय शंख, दुन्दुभी (नगाड़े) और महान् डमरू आदि वाद्यों की घोर ध्वनि हाथों में लिए प्रज्वलित दीपक के प्रकाश से प्रकाशित रात्रि में ताल (झांझ) वाद्य की झनकार होनी चाहिए । इस भाँति उस रात्रि में सुखपूर्वक महोत्सव के समारम्भ में भाँति-भाँति के मनोविनोद करते हुए चारों ओर रथ का परिभ्रमण कराये । उस महोत्सव के दर्शनार्थ उपस्थित जन समूह को ताम्बूल भूषित पुष्प मालाएँ रथ पर (देव निमित्त) अर्पित करना चाहिए और उसी भाँति सम्मान पूर्वक रथ वाहकों को भी प्रदान करना चाहिए । सारथी जिस जिस के गृह द्वार से रथ को भ्रमण कराते ले चले उन घरवालों को अपने घर के सम्मुख आने पर देवकी अर्चना पुष्प, धूप और अक्षत आदि से सुसम्पन्न करनी चाहिए ।४१-५०। क्योंकि गृहस्थों के घर पहुँचने पर जब इतर सामान्य व्यक्ति की भी पूजा होती है तो जगत् के पालन पोषण करने वाले महेश्वर के आने पर क्या कहा जा सकता है अर्थात् उनकी तो और विशिष्ट अर्चना की जाती है । उस महोत्सव की यात्रा में कदाचित् अक्ष (मूड़ी या जूआ), ध्वज के भंग होने और जूए की रस्सी के टूटने पर ब्राह्मणों की पूजा तथा सविधान तिल, घृत और दूध आदि के हवन करे जिससे सुख की प्राप्ति हो । सारथी और दर्शनार्थी जन समूह उस श्रेष्ठ रथ को चारों ओर घुमाकर पश्चात् नगर के मध्य स्थान में स्थापित करते हुए महोत्सव को सुसम्पन्न करें । हिंडोले को पकड़ने वाले, चक्र की भाँति गोलाकार उसके घूमते रहने, और डमरक एवं अन्य कलाओं द्वारा भी विद्याधारियों के चरित प्रकाशित किये जाते हैं ।५१-५५। पार्थ ! इस भाँति

एवं यः कुरुते पार्थ सुखदं तु रथोत्सवम् । तथैव पूजयेत् पार्थ उपवासपरो नरः ।।५६
सर्वव्याधिविहीनश्च सुखी स्याच्छरदां शतम् । यः कारयित्वा सौवर्णं रौप्यं वा रथमुत्तमम् ।।५७
वर्णकैश्चित्रितं दिव्यं दारुजं वा सुशोभनम् । स्वहस्तरचितं यश्च भास्कराय निवेदयेत् ।।५८
स मर्त्यलोके सुचिरात्सुखानि च समानुते । पूर्वोक्तविधिना भानुं भ्रामयित्वा रथे स्थितम् ।।५९
स्थापयेत्सर्वभागे तु गेयं वाद्यपुरः सरम् । दक्षिणे तु दिशो भागे द्वितीयेऽह्नि नयेद्रथम् ।।६०
तत्रापि जागरं कुर्याद्वाद्यगीतसुमङ्गलैः । अपरायां तृतीयेऽह्नि स्थापयेद्रथमुत्तमम् ।।६१
प्रेक्षणीयविनोदेन तां रात्रिमतिवाहयेत् । स्थापयेदुत्तरस्यां तु चतुर्थे दिवसे रथम् ।।६२
महायात्रां प्रकुर्वीत तत्राप्यद्भुतचेष्टितम् । पञ्चमे दिवसे प्राप्ते नगरान्तस्थितं रविम् ।।६३
पूजयित्वा विधानेन षष्ठेऽह्नि भवनं नयेत् । रथयात्राप्रसङ्गेन कथिता रथसप्तमी ।।६४
सर्वपापहरा पुण्या किञ्चिदन्यन्निबोध मे[1] । गौरी पूज्या तृतीयायां चतुर्थ्यां विघ्ननायकः ।।६५
पञ्चम्यां पङ्कजकरां पूजयेद्वा सरस्वतीम् । षष्ठ्यां शक्तिधरं स्कन्दं सप्तम्यां तु दिवाकरम् ।।६६
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सम्पूज्यः शशिशेखरः । नवम्यां पूजयेच्चण्डीं चामुण्डां मुण्डमालिनीम् ।।६७
दशम्यामृषयः शान्ताः सर्वे व्यासपुरस्सराः । एकादश्यां चक्रपाणिं द्वादश्यां वा समर्चयेत् ।।६८
त्रयोदश्यां त्रिनेत्रोत्थवह्निना शान्तविग्रहम् । साधारणी तु सर्वेषां पौर्णमासी तिथिः स्मृता ।।६९

सुखप्रद रथोत्सव करने वाले के समान ही उपवास परायण पुरुष पूजित होते हैं । अनन्तर उन्हें नीरोग देह और सुखी जीवन प्राप्त होता है । सुवर्ण अथवा चाँदी द्वारा बनाये गये चित्र विचित्र या काष्ठ के अत्यन्त सुन्दर और रंगों से सुशोभित उस अपने हाथ के बनाये रथ को भास्कर के लिए सादर समर्पित करने पर मनुष्यों के चिरकाल का सुखी जीवन प्राप्त होता है । इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा रथ पर भानुदेव को सुशोभित कर चारों ओर घुमाते हुए उसे गीत वाद्य से अलंकृत करना चाहिए । दूसरे दिन दक्षिण दिशा की ओर भ्रमण कराते समय गीत, वाद्य और मांगलिक ध्वनियों से उसे अलंकृत करते हुए जागरण करना चाहिए, तीसरे दिन पश्चिम दिशा में उस रथ को रखकर वहाँ दर्शनार्थी जनता को मनोविनोद द्वारा वह रात्रि व्यतीत कर चौथे दिन उत्तर दिशा की महायात्रा करके वह रात्रि भी आश्चर्य चकित करने वाले विनोदों से व्यतीत करनी चाहिए । पुनः पाँचवें दिन नगर के मध्य में उसी भाँति रखकर छठें दिन पूजन के उपरांत देवालय में प्रवेश करे । इस प्रकार रथयात्रा के प्रसङ्ग में मैंने तुम्हें समस्त पापापहारिणी और पुण्यस्वरूपा इस रथ सप्तमी का विधान और माहात्म्य सुना दिया ।५६-६४। अब कुछ अन्य विषय बता रहा हूँ, सुनो ! तृतीया तिथि के दिन गौरी, चतुर्थी में विघ्न विनायक, पञ्चमी में कमल हस्ता लक्ष्मी और सरस्वती, षष्ठी में शक्तिधारी स्कन्द, सप्तमी में सूर्य, अष्टमी चतुर्दशी में शशिशेखर (शिव), तथा नवम में मुण्ड माला भूषित चामुण्डा चण्डी देवी की आराधना पूजन करना चाहिए । उसी भाँति दशमी में व्यास पुरस्सर शांत ऋषिगण, एकादशी द्वादशी में चक्रपाणि विष्णु और त्रयोदशी में (शिव के) तीसरे नेत्र से प्रकट हुए अग्नि द्वारा शांत मूर्ति होने वाले काम देव की पूजा करनी चाहिए । किन्तु पूर्णिमा तिथि में सभी देवों की अर्चा की जाती है ।६५-६९। हिंडोले, दमनक (दौना) का व्युत्क्रम

---

१. किञ्चिदन्यन्न विद्यते ।

आन्दोलके मदनके रथयात्रासु चैव हि । व्युत्क्रमेणापि कर्तव्या तिथीनां कार्यगौरवात् ।।
यात्रा वासन्तिकी चेयं चित्तस्वास्थ्यकरी परा ।।७०

सम्यक्सुधाधवलिते भवने सुराणामन्तस्सुवस्त्रमणिमौक्तिकदानचित्रे ।
ताम्बूलकक्रमुकवारविलासिनीभिर्यात्रां विधाय भवतीह स भारतेशः ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दमनकान्दोलकरथयात्रामहोत्सववर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३४

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मदनमहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

गौरीं विवाह्य जग्राह हरः पाशुपतं व्रतम् । उमापतिः पशुपतिर्ध्यानासक्तो बभूव ह ।।१
ब्रह्मादिभिः समामन्त्र्य विबुधैः पुत्रलब्धये । गौर्या मनोभिलषितपूरणाय प्रहर्षितैः ।।२
प्रहितः क्षोभणार्थाय समर्थ इति मन्मथः । ततो मारः स्मरः कामोऽप्याजगाम तमाश्रमम् ।।३
रतिप्रीतिमदोन्मादवसन्तश्रीसहायवान् । निधानवारुणीदर्पशृङ्गारैः परिवारितः ।।४
आम्राशोकवनोत्तंसो मालतीकृतशेखरः । वीणामृदङ्गसङ्गीतकोकिलाभृङ्गदूतकः ।।५

भी किया जा सकता है । वसन्त यात्रा चित्त के लिए स्वास्थ्यप्रद होती है । इस प्रकार सुधा की भाँति भली भाँति धवल मन्दिरों में जिसका भीतरी भाग वस्त्रों, मणियों, मोतियों और चित्तों से भूषित किया गया है, सुसज्जित एवं सुगन्धित ताम्बूलों के सेवन करने वाले वेश्याओं द्वारा उस यात्रा महोत्सव को सुसम्पन्न करने वाला भारत का आधिपत्य प्राप्त करता है ।७०-७१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
दमनकान्दोलक रथयात्रामहोत्सव वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३४।

अध्याय १३५

मदनमहोत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—गौरी के साथ पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न कर लेने के उपरांत भगवान् शिव ने पाशुपत व्रत धारण किया, उसके अनुष्ठान में पशुपति उमापति अत्यन्त ध्यान मग्न हो गये थे । उसी बीच ब्रह्मादि समस्त देवगणों ने गौरी के पुत्र प्राप्ति रूप मनोभिलाष पूरा करने के लिए उस कार्य में समर्थ काम को नियुक्त किया क्योंकि 'मन को यही चञ्चल कर सकता है' यह उन लोगों को निशिचित था । तदुपरांत कामदेव ने, जिसे स्मर तथा मार भी कहा जाता है, उस (शिव के) आश्रम में आगमन किया ।१-३। उस समय रति और प्रीति को मदोन्मादिनी बनाने वाला वसन्त अपनी भी काम की सहायता कर रहा था । विधान, वारुणी (मद्य) दर्प और शङ्कर आदि से वसन्त युक्त था । उसके (विकसित) आम तथा अशोक के वन आभूषण, मालती किरीट, वीणा, मृदङ्ग, संगीत, कोकिल, शृंगी वाद्य रूप या दूत तथा वह

झल्लरीवाद्यसंघुष्टभाण्डागारिकलेखकः । पानमत्ताङ्गनारूढो हिन्दोलाश्चर्यमन्त्रिमान् ॥६
दक्षिणानिलगन्धाढ्यः कटाक्षेक्षितवर्षवान् । महाराजाधिराजो वा स्मरः प्राप्तो हरान्तिकम् ॥७
स पुष्पचापमाकृष्यमदनोन्मादनं शरम् । चिक्षेप त्रिपुरघ्नाय समाधेर्भंगहेतवे ॥८
बुद्ध्वा तं तस्य सङ्कल्पं रुद्रः क्रोधाज्ज्वलन् रुषा । ललाटाद्वह्निमसृजत्तृतीय नयनाद्धरः ॥९
कामो विलोकितस्तेन भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् । दग्धं दृष्ट्वा स्मरं शोकाद्रतिप्रीतिस्थिते सदा ॥१०
करुणं विलपन्त्यौ ते सर्वमन्यद्दिशं गतम् । ततः शोकार्तहृदया गौरी रुद्रमुवाच ह ॥११
भगवन्नस्मदर्थे तं कामं निर्दग्धवानसि । तेनैते पश्य नार्यौ ते कामस्य रुदितः कथम् ॥१२
कुरु प्रसादं देवेशं रतिप्रीत्यै वृषध्वज । संजीवय स्मरं शम्भो मूर्तिमन्तं पुनः कुरु ॥१३
तच्छ्रुत्वा तु महादेवो हृष्टः प्रोवाच पार्वतीम् । उपप्लुतं जगत्सर्वं मन्मथेन शरीरिणा ॥१४
मया दग्धस्य कामस्य पुनरागमनं कुतः । किं तु ते मानयन्वाक्यं करोमि सफलं प्रिये ॥१५
अस्मिन्वसन्तसमये शुक्लपक्षे त्रयोदशी । अस्यां मनोभवो देवि भविष्यति शरीरवान् ॥१६
एतेन बीजभूतेन जगद्वर्णिष्यतेऽखिलम् । एवं वरमिमं दत्त्वा मन्मथाय युधिष्ठिर ॥१७
जगाम हिमवच्छृंगं कैलासं पार्वतीप्रियः । तदेतत्सर्वमाख्यातं[1] स्मरस्य चरितं नृप ॥१८
पूजाविधानमपरं कथयामि शृणुष्व तत् । अस्यां स्नात्वा त्रयोदश्यामशोकाख्यं नगं लिखेत् ॥१९

झांझ नामक वाद्य की ध्वनि को संतुष्ट करने वाला भाण्डागारिक लेखक, पान किये मत्ताङ्गना पर आरूढ़ हिंडोला नामक आश्चर्यकारी मंत्री, दक्षिण (मलय) की सुगन्धपूर्ण वायु, कटाक्ष के रूपी वर्षा आदि अनुचरों से सांगोपांग सन्नद्ध था। इस प्रकार सुसज्जित काम ने शिव जी के समीप पहुँच कर मदनोन्मादन (कामोन्माद करने वाला) नायक वाण पुष्प धनुष कर चढ़ा कर त्रिपुरहन्ता भगवान् शिव की समाधि भंग होने के लिए छोड़ा। काम की दृढ़ प्रतिज्ञा जान कर भगवान् रुद्र ने अत्यन्त क्रोध करने के नाते प्रज्वलित सा होते हुए रोष वश भाल स्थित अपने तीसरे नेत्र द्वारा प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न किया। उनके देखते ही काम उसी क्षण भस्मसात् हो गया। काम को दग्ध होते देख कर शोकमान रति और प्रीति करुणापूर्ण विलाप करती हुई दूसरी दिशा की ओर चली गयी। अनन्तर पार्वती जी ने शोक प्रकट करते हुए शिव जी से कहा।४-११। भगवन् ! आप ने मेरे लिए काम को दग्ध कर दिया किन्तु देखिये, उसी कारण काम की ये दोनों स्त्रियाँ किस प्रकार करुण क्रन्दन कर रही है। वृषध्वज ! देवेश ! एवं शम्भो ! अतः इन रति प्रीति पर कृपा करते हुए आप काम को पुनः मूर्तिमान करे इसे सुनकर हर्षमग्न शिव ने पार्वती से कहा—शरीर धारण करने के नाते ही इस मन्मथ ने सम्पूर्ण जगत् को पीड़ित किया है। अतः मेरे द्वारा दग्ध होने पर काम का पुनः सशरीर आगमन कैसे हो सकता है। प्रिये ! किन्तु सम्मानार्थ तुम्हारे बात अवश्य सफल करूंगा—देवि ! वसन्त के समय शुक्ल त्रयोदशी के दिन काम को शरीर की प्राप्ति होगी और उसी बीज रूप से वह सारे जगत् को पुनः अपने अधीन करेगा। युधिष्ठिर ! इस प्रकार काम को वर प्रदान कर पार्वती प्रिय शिव ने हिमालय शिखर कैलास की यात्रा की। नृप ! काम के सम्पूर्ण आख्यान बता कर अब तुम्हें पूजा विधान बता रहा हूँ, सुनो ! । इस (वसंत) की शुक्ल त्रयोदशी के दिन सिन्दूर द्वारा रति

---

१. ते समाख्यातम्।

सिन्दूरजनितैरङ्गैरतिप्रीतिसमन्वितम् । कामदेवं वसन्तं च वाजिवक्त्रं वृषध्वजम् ॥२०
सौवर्णं वा महाराज वार्क्षं चित्रमथापि वा । लीलाविलासगमनं गर्वितं साप्सरोगणम् ॥२१
गन्धर्वगीतवादित्रप्रेक्षणीयसमाकुलम् । नन्द्यावर्तितरतिक्रीडाप्रीतिविद्याधरैर्युतम् ॥२२
मध्याह्ने भोजयेद्भक्त्या भक्ष्यैर्धूपैःस्रगम्बरैः । मन्त्रेणानेन कौन्तेय नरो नार्या समन्वितः ॥२३
नमो वामाय कामाय देवदेवाय मूर्तये । ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनः क्षोभकराय वै ॥२४
कृत्वैवमर्चयित्वा तु देवदेवं मनोभवम् । ततस्तस्याग्रतो देया मोदका मुखमोदकाः ॥२५
नानाप्रकारान्भक्ष्यांश्च कामो मे प्रीयतामिति । ततो विसर्जयेद्विप्रान्दत्त्वा युग्मं सदक्षिणम् ॥२६
स्वपतिं पूजयेन्नारी वस्त्रमालाविभूषणैः । कामोऽयमिति सञ्चिंत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२७
मन्मथायतने तस्मिन्यजमानः सुहृद्वृतः । रात्रौ जागरं कुर्यात्सुखरात्रिर्यथा भवेत् ॥२८
कर्पूरकुंकुमक्षोदगन्धताम्बूलसर्जनैः । नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च कुर्याद्रात्रौ महोत्सवम् ॥२९
दीपप्रज्वालनैर्नृत्यैः प्रेक्षणैः प्रेक्षणोत्सवैः । एवं यः कुरुते पार्थ वर्षेवर्षे महोत्सवम् ॥३०
वसन्तसमये प्राप्ते हृष्टस्तुष्टो नृपः पुरे । तस्य सम्वत्सरं यावल्लोको रोगैर्विमुच्यते ॥३१
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं यशः श्रीः सौख्यमुत्तमम् । कामवर्षी च पर्जन्यस्तस्मिन् राष्ट्रे प्रजायते ॥३२
तुष्यते तु भृशं देवो द्वादशार्द्धार्द्धलोचनः । तथा कामश्च विष्णुश्च वसन्तश्च प्रजापतिः ॥३३
चन्द्रसूर्यादिकासर्वे ग्रहा ब्रह्मर्षयस्तथा । सर्वेऽपि तस्य तुष्यन्ति यक्षगन्धर्वदानवाः ॥३४

प्रीति समेत अशोक वृक्ष की रचना पूर्वक कामदेव और वसन्त की सुवर्ण प्रतिमा बनाये जो वाजिमुख और मीनध्वज से भूषित हैं।१२-२०। महाराज ! चित्रानक्षत्र, लीला विलास प्रकट करते हुए गमन करने वाले मदोन्मत्त अप्सरागण, गन्धर्वों के गायन वाद्य देखने सुनने वाले दर्शक गण, नद्यावर्ति रतिक्रीडा प्रीति तथा विद्याधरों की चित्र रचना करने के अनन्तर स्त्री पुरुषों को समंत्रक भक्ष्य भोज्य, धूप, मालाएँ और वस्त्र द्वारा अर्चा तथा मध्याह्न काल में भोजन कराये। कौंतेय ! सुन्दर, कुटिल, देवाधिदेव, मूर्तिमान्, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के मनः क्षोभ करने वाले काम को मैं नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार देवेश काम की पूजा करके उनके सम्मुख मुख सुखार्थ मोदक अर्पित करे। और अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य समर्पित करते हुए 'काम देव मुझ पर प्रसन्न हों' ऐसा कहने के अनन्तर युग्म वस्त्र समेत दक्षिणा ब्राह्मणों को प्रदान कर वस्त्र, माला और आभूषणों द्वारा स्त्रियों को ये साक्षात् कामदेव हैं, इस भावना से आनन्द विभोर होकर अपने पति की अर्चना करनी चाहिए। पुनः मन्मथ के उस मन्दिर में मित्रों समेत रात्रि जागरण करते हुए सुखपूर्ण रात्रि व्यतीत करें, कपूर, कुंकुम चूर्ण मिश्रित जल, सुगन्ध, ताम्बूल और अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य प्रज्वलित दीप, नृत्य, दर्शन एवं दर्शक गण समेत रात्रि में उस महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए। पार्थ ! प्रति वर्ष इस भाँति इस महोत्सव को वसन्त के समय राजाओं को हर्षमग्न होकर सुसम्पन्न करना चाहिए। इससे प्रजाओं का वर्ष भर रोग मुक्ति प्राप्त रहती है।२१-३१। उस राजा के राष्ट्र में सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य, यश, श्री, सौख्य, आवश्यकतानुसार जल वरसने वाले मेघ होते हैं, देवाधिदेव महादेव कामदेव, विष्णु, वसन्त, प्रजापति, चन्द्र सूर्य, आदि ग्रहगण, और ब्रह्मर्षि गण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार यक्ष, गन्धर्व, दानव, असुर, यातुधान, सुवर्ण, पन्नग, तथा पर्वत वृक्षादि को अपार हर्ष

असुरा यातुधानाश्च सुपर्णाः पत्नगा[1] नगाः । दुष्टाः प्रयच्छन्ति सुखं तस्य कर्तुर्न संशयः ॥३५
चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासं कामं वसन्तमलयाद्रिमरुत्सहायम् ।
रत्या सहार्च्य पुरुषः प्रवरा च योषित्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुता सदा स्यात् ॥३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मदनमहोत्सववर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३५

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूतमात्र्युत्सववर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भूतमातेति संहृष्टे ग्रामेग्रामे पुरेपुरे । गायन्नृत्यहँसल्लोकः सर्वतः परिधावति ॥१
उन्मत्तवत्प्रलपति क्षितौ पतति मत्तवत् । क्रुद्धवद्धावति पुरान्मत्तवत्कर्षते बहिः ॥२
मुखाङ्गभङ्गान्कुरुते लोके वातगृहीतवत् । भूतवद्भस्मगात्रं तु कर्दमानवगाहते ॥३
किमेष शास्त्रनिर्दिष्टो मार्ग किमुतः लौकिकः । मुह्यते मे मनःकृष्ण त्वं तु वक्तुमिहार्हसि ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि यत्ते किञ्चिन्मनोगतम् । आस्तिकः श्रद्दधानश्च भवतीति मतिर्मम ॥५

प्राप्त होता है और वे कर्ता को सब भाँति सुखी करते हैं इसमें सन्देह नहीं । इस प्रकार चैत्र मास के इस उत्सव में सभी प्राणियों के मन में निवास करने वाले कामदेव, वसन्त, मलयानिल और रति की अर्चना करने वाले पुरुष अथवा नारी को सौभाग्य, रूप सौन्दर्य सुत एवं समस्त सौख्य प्राप्त होता है ।३२-३६
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
मदन महोत्सव वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३५।

अध्याय १३६

भूतमाता के उत्सव का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भूतमाता क्या है, इनके उपलक्ष्य में प्रत्येक ग्रामों और घरों में भूतमाता का पूजन करते हुए अत्यन्त हर्षमग्न जन समूह गान, नृत्य और हास्य करते चारों ओ दौड़ता दिखायी देता है, उन्मत्त की भाँति प्रलाप करता है, मतवाले के समान पृथिवी पर गिरता है, क्रुद्ध होकर नगर से भागता है, मदोन्मत्त के समान पकड़ कर बाहर से लाया जाता है, वात (वायु) दूषित प्राणी की भाँति मुख आदि अंग भंग करने लगता है, एवं देह में भस्म लगाये भूत के समान कीचड़ में गिर जाता है । क्या यह मार्ग शास्त्र निर्दिष्ट है अथवा लौकिक ! कृष्ण इस बातों में मेरा मन सर्वथा मुग्ध है अतः इसे बताने की कृपा करें।१-४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हारे मन की अभिलाषा अवश्य पूरी करूँगा, सावधान होकर सुनो !

---

१. पन्नगाः ।

पार्वत्या सहितः पार्थ मन्दरे चारुकन्दरे । क्रीडन्नास्ते मुदा युक्तो दिव्यक्रीडनकैर्हरः ॥६
हंसोन्नतगतिं चारुकुम्भभ्राजिकुचद्वयम् । सिञ्जत्सद्रशनां हृष्टां दृष्ट्वा गौरीं जगद्गुरुः ॥७
दग्धकामोऽपि च हरः सन्दीप्तमदनोऽभवत् । निःसृतां कामयामास महार्हशयने शिवः ॥८
रतस्थयोस्तयोर्जातं दिव्यं वर्षशतं यदा । तदा देवीसमुच्छ्रायनिरोधान्निर्गता बहिः ॥९
मूत्रोदकात्समुत्तस्थौ नारी निर्दारितोदरा । कृष्णा करालवदना पिङ्गाक्षा मुक्तमूर्द्धजा ॥१०
कपालमालाभरणा बद्धपिण्डोर्ध्वपिण्डिका । खट्वाङ्गकं कालधरा मुद्राङ्कितकरा शिवा ॥११
व्याघ्रचर्माम्बरधरा रणत्किंकिणिमेखला । डमड्डमड्डमरुका फूत्कारापूरिताम्बरा ॥१२
तस्याः पार्श्वानुजाश्चान्या गीतवाद्यलयानुगाः । उत्तालतालसबला नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥१३
कपालखट्वाङ्गधरा गजचर्मावगुण्ठिताः । तस्या तथैव शङ्कराज्जातस्तद्रूपाभरणः पुमान् ॥१४
अनुगम्यमानो बहुभिर्भूतैरतिभयंकरैः । सिंहशार्दूलवदनै रदनोल्लिखिताम्बरैः ॥१५
एकीभूतैः क्षणेनैव तौ भवानीभवोद्भवौ । दृष्ट्वा हृष्टमना देवः प्राह देवीं सुविस्मिताम् ॥१६
कल्याणि पश्य पश्यैतौ मत्त्वदङ्गसमुद्भवौ । बीभत्साद्भुतशृङ्गारवरायुधविधारिणौ ॥१७
भ्रातृभाण्डौ यथा देवि तद्वदेतौ मतौ मम । नृनार्योरन्तरं किञ्चित्सादृश्यात्प्रतिभासयेत् ॥१८

क्योंकि 'आस्तिक श्रद्धालु होते हैं' यह मेरा निश्चिय मत है । पार्थ एक बार भगवान् हर मन्दराचल की रमणीयक गुफा में उन दिव्य साधनों समेत पार्वती के साथ क्रीडा कर रहे थे । आनन्द विभोर जगद्गुरू शिव उस समय गौरी पार्वती जी को देखकर, जो हंस की भाँति उन्नत गति, रमणीयक (जप(कला की भाँति स्तनों से भूषित, एवं मधुर ध्वनि करने वाली रशना (कटि की करधनी) से अलंकृत हो रही थी, अपने को संभाल न सके । काम को दग्ध करने पर भी उस समय वे मदन ज्वाला से संतप्त होने लगे । अनन्तर बहुमूल्य सुसज्जित शय्या पर उन्होंने उनके साथ काम क्रीड़ा आरम्भ किया । रति कर्म में प्रवृत्त उन दोनों के दिव्य सौ वर्ष बीत जाने पर समुच्छ्राय निरोध मूत्रोत्सर्ग न करने के नाते उसके ऊपरी भाग (पेडू) में सूजन होने के कारण पार्वती उठकर तदर्थ बाहर चली गई । (उनके) उस मूत्रोदक द्वारा ऐसी स्त्रियों की उत्पत्ति हुई जो विदारितोदरा, काली देह, कराल मुख, पिङ्गल नेत्र, खुले केश, कपाल (शिर) की माला से भूषित, मोटी-मोटी स्नायु (नसों) से बँधी देह विशेषकर ऊपरी भाग, हाथ में खट्वांग और कंकाल लिए मुद्रा से अंकित, अमंगलवेष, बाघम्बर पहने कोलाहल (शोर) करने वाली रशना (कटि-आभूषण) से अलंकृत तथा अपने डम, डुम, डुमरका, एवं चीत्कार शब्दों की ध्वनि से नभ मण्डल को अशान्त कर रही थी । उनके पार्श्वभाग से उनकी अनुजाएँ खड़ी थी, जो गीत वाद्य के साथ अपने लय स्वरों में मग्न हो रही थी, और ऊपर हाथ उठाये ताली बजा कर हँसती हुई नाँच रही थी । वे स्त्रियाँ भी कपाल, खट्वाङ्ग लिए गजचर्म पहने थी । उसी प्रकार शंकर द्वारा भी तद्रूप और आभूषण भूषित पुरुषों की उत्पत्ति हुई । उनके पीछे अति भयंकर असंख्य भूत गण चल रहे थे, जिनके सिंह, व्याघ्र के समान मुख और आकाश में पहुँचने वाले दाँत थे । भवानी और (शिव) के द्वारा उत्पन्न वे स्त्री पुरुष क्षण भर में आपस में मिलकर एक दल बन गये । उसे देख कर हर्षमग्न महादेव ने आश्चर्य चकित देवी से कहा ।५-१६। कल्याणि ! मेरे और तुम्हारे अंग से उत्पन्न हुए इन प्राणियों को देखो—किस प्रकार का वीभत्स और अद्भूत शृंगार और अस्त्रादि धारण किये है । देवि ! मेरी सम्मति में भातृ भाण्ड (वेश्याओं के

भ्रातृभाण्डां भूतमाता तथैवोदकसेविका । संज्ञात्रयं तयोः कृत्वा ततः प्रादाद्वरं हरः ।।१९
भुक्त्वाहोंपगतां चैतां जरत्तरुतले स्थिताम् । सेवयिष्यति ये भक्त्या जलसम्पूर्णकण्डुकैः ।।२०
चन्दनेन समालभ्य पुष्पधूपैरथार्च्य ताम् । भोजयेत्क्षिप्रदा चैव कृशरापूपपायसैः ।।२१
य एवं कुरुते देवि भक्तिभावेन भावितः । स पुत्रपशुवृद्धिं च शरीरारोग्यमाप्नुयात् ।।२२
न शाकिन्यो गृहे तस्य न पिशाचा न राक्षसाः । पीडां कुर्वन्ति शिशवो यान्ति वृद्धिं निरामयाः ।।२३

युधिष्ठिर उवाच

कदा पूजा प्रकर्तव्या भूतमातुः सुखार्थिभिः । पुरुषैः पुरुषव्याघ्र यत्तन्मे वक्तुमर्हसि ।।२४

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वत्रैषा भगवती बालानां हितकारिणी । नामभेदैः क्रियाभेदैः कालभेदैश्च पूज्यते ।।२५
प्रतिपत्प्रभृति ज्येष्ठे यावत्पञ्चदशी तिथिः । तावत्पूजा प्रकर्तव्या प्रेरणैः प्रेक्षणीयकैः ।।२६
विकर्मफलनिर्देशः पाण्डवानां विडम्बनम् । प्रदृश्यन्ते हास्यपरैर्नरैरद्भुतचेष्टितैः ।।२७
विश्वास्य धनलोभेन सन्ध्यायां निहतः पथि । आरोहणं च शूलाग्रे न पश्यन्तं हि पश्यति ।।२८
दृष्टो भवद्भिः संहृष्टः परपारावमर्शकः । छित्वा स्वहस्तैर्यद्दत्तो विभुना मुख्यमोदकः ।।२९
शीर्णसूक्ष्मेण पत्रेण बाला मालानुमोदिताः । मुष्कभुग्रासमारूढो मुखं कृत्वा च पश्चिमे ।।३०

भडुवों) के समान ये सब दिखायी दे रहे हैं । क्योंकि इन स्त्री पुरुषों की समानता में कुछ थोडा ही अन्तर दिखायी देता है । उपरान्त भगवान् हर ने भातृ भाण्ड, भूतमाता और उदक सेविका, उनकी ये तीन संज्ञाएँ निश्चित कर उन्हें वर प्रदान किया—भोजनोपरांत पूजनीय और जीर्ण वृक्ष के नीचे स्थित इन स्त्रियों की भक्ति पूर्वक जल पूर्ण कण्डुक, चन्दन लेप, और पुष्प, धूपादि से अर्चा करके कृशरान्न (खिचड़ी) पूआ तथा खीर का भोजन अर्पित करे । देवि ! इस प्रकार भक्तिभाव पूर्ण उनकी अर्चा करने वाले मनुष्य को पुत्र पशु वृद्धि समेत नीरोग शरीर प्राप्त होता है । उसके घर में शाकिनी पिशाच और राक्षसों की पीड़ा कभी नहीं होती है । शिशुगण नीरोग रहकर वृद्धि प्राप्त करते हैं ।१७-२३

युधिष्ठिर बोले—पुरुष व्याघ्र ! सुखेच्छुक पुरुषों को उस भूतमाता की अर्चा कब करनी चाहिए, बताने की कृपा करें ।२४

श्रीकृष्ण बोले—बालकों को सभी भाँति हित करने वाली इस भगवती का नाम भेद, क्रियाभेद और कालभेद से सर्वत्र पूजन होता है । ज्येष्ठमास की प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर पूर्णिमा तक दर्शनार्थी आदि सभी मनुष्यों को उनका पूजन करना चाहिए । निन्दित कर्मों के फलों का निर्देश करना पाण्डवों के लिए व्यर्थ एक विडम्बना मात्र समझता हूँ—आश्चर्य चकित कर्म करने पर भी वे मनुष्य हास्य करते हुए दिखायी देते हैं जो धन के लोभ से विश्वास दिलाकर संध्या समय मार्ग में ही उसका प्राणान्त कर देते हैं, वे शूली पर चढ़ने के लिए उसे देखते हुए भी नहीं देखते हैं (अनदेखी करते हैं) । (कही कोई कह रहा है)—स्वामी ने अपने हांथों से तोड़कर जो मगद (लड्डू) के टुकड़े प्रदान किये हैं उसकी आलोचना करते हुए यह कितना हर्षमग्न हो रहा है, इसे आप लोगों ने देखा है । कहीं शीर्ण (फटे) और सूक्ष्म पत्तों की माला पहने बालाएँ हर्ष मग्न हो रही हैं, कहीं अण्डे का भक्षण करने वाला पुरुष गधे पर बैठा कर

हे जनाः किं न पश्यध्वं स्वामिद्रोहकरं परम् । करपत्रैर्विदार्यं तमुच्छलच्छोणितच्छटम् ॥३१
चरैः किलासैः सम्प्राप्तः सर्वोद्वेगकरः परम् । दण्डप्रहाराभिहतो नीयते दण्डपाशिकैः ॥३२
प्रेक्षकैर्वेष्टितः स्तेनो रटत्येष विमण्डितः । संयम्य नीयतेयं तु मूर्खः क्रौर्यावलेक्षणः ॥३३
सितकेशं सितश्मश्रु सिताम्बरधरं द्विजम् । वटचेष्टाचपेटाभिर्हन्यमानं न पश्यत ॥३४
गृहान्निष्क्रम्यतां रण्डा वृद्धो भूत्वाप्यसौ स्त्रियाः । स्वस्या असौ न कुरुते मूढो भरणपोषणम् ॥३५
भैरवाभरणोत्तालाः व्यालयज्ञोवीतिनः । प्रदत्त्वा ताण्डवपदान्पश्यध्वं ध्वान्तदीपकान् ॥३६
निर्वेदकोऽस्य हृदये न किंचिदपि तिष्ठति । गृहीतं यदनेनेदं बालेनापि महाव्रतम् ॥३७
रक्तदृष्क्काककृष्णांगं शबरं किं न पश्यत् । तरुकोटरान्तगतान्छित्वा च शुकशावकान् ॥३८
बहुभिः कोष्ठकीकृत्य शरौघैः शकलीकृतम् । विमुक्तढक्काहुंकारसुप्रहारं निरीक्षत ॥३९
इमां कृष्णार्द्धवदनां गृहीतां सिन्दुरार्विताम् । विमुक्तकेशां नृत्यन्तीं पश्यध्वं योगिनीमिव ॥४०
गम्भीरतूर्यध्वनिना प्रबुद्धां वृत्तताण्डवाम् । एवं प्रेक्षणकं कृत्वा न येत्वृक्षतले च ताम् ॥४१
एवं कृते न दारिद्र्यं न च दुःखं भवेन्नृणाम् । ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भूतमात्रुत्सववर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३६

पश्चिमाभिमुख खड़ा किया गया है ।२५-३०। कहीं लोग कह रहे हैं—मनुष्यों ! स्वामी से बैर करने वाले को देखो ! आरा से विदीर्ण किये जाने के नाते जिसके बदन से रक्त के फुहारे निकल रहे हैं । कहीं छल कपट करने वाले राजदूत आदि, जो सभी को अत्यन्त अशान्त करते रहते हैं, दंड पाशधारी यमदूतों के दण्डों से आहत हो रहे हैं । कहीं कुछ लोगों ने चोर को घेर लिया है और वह इधर-उधर की बातें कहने की रट लगा रहा है । कहीं क्रूद्ध द्रष्टि से देखने वाला पुरुष अपने कर्मका परिणाम भोग रहा है । श्वेतकेश, श्वेतदाढ़ी मोछ और श्वेतवस्त्र धारण किये कोई ब्राह्मण लड़कों की भाँति चपेटा (चपत) से पीड़ित हो रहा है नहीं देख रहे हो ! कहीं कोई पुरुष वृद्धावस्था में भी 'रांड को घर से निकाल दो' की धुनि में है, वह मूढ़ अपनी ही स्त्री का भरण पोषण नहीं कर रहा है । कहीं कुछ लोग स्वयं भीषणाकार होने पर भी आभूषण और सर्प की भाँति मोटे यज्ञोपवीत धारण किये दिखायी दे रहे हैं, जो अपने अपने ताण्डव गमन से दीपकों को अशान्त करते (बुझाते) रहते हैं । क्योंकि बाल्यावस्था में जिसने महाव्रत को धारण किया है, उसके कारण इनके हृदय में दुःख नामक की कोई वस्तु है ही नहीं । रक्तवर्ण नेत्र और कौवे की भाँति सर्वाङ्ग काले शबर (जंगली कोल) को नहीं देख रहे हो, जो वृक्षों के कोटरों में बैठे पक्षियों के बच्चों को मार कर बाणों द्वारा खण्डशः करके उनकी राशि बनाये हैं । ढक्का (डमरू) के त्याग पूर्वक अपने हुंकार शब्द का ही प्रहार करने वाले को भी देखो और इसे भी देखो, जिसका आधा बदन काला, गृहीत, सिन्दूर भूषित, केश खोले योगिनी की भाँति नाच रही है तथा जो गम्भीर नगाड़े की ध्वनि से प्रवृद्ध ताण्डव जैसा लग रहा हो । इस प्रकार का प्रेक्षण दर्शन बनाकर उसे वृक्ष के नीचे ले जाना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने पर मनुष्यों को दारिद्रय और अन्य दुःख नहीं होते ।३१-४२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
भूतमाता का उत्सव वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३६।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रक्षाबन्धनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बलिरक्षाविधिं नृप । तं शृण्वेकाग्रमनसा रसमासाद्गदितं मया ।।१
पुरा देवासुरे युद्धे दानवासुरनिर्जिताः । शुक्रं बलिं पुरः कृत्वा ययुः शुक्र उवाच तन् ।।२

शुक्र उवाच

न विषादस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी । दैवाद्भवन्ति भूतानां काले जयपराजयाः ।।३
सन्धानं सह शक्रेण क्रियतामयनद्वयम् । अजेयः सर्वशत्रूणां कृतः शच्या शचीपतिः ।।४
रक्षाबन्धप्रभावेन दानवेन्द्रो जितो महान् । वर्षमेकं प्रतीक्षस्व ततः श्रेयो भविष्यति ।।५
भार्गवेणैवमुक्तास्ते दानवा विगतज्वराः । तस्थुः कालं प्रतीक्षन्तो यथोक्तं गुरुणा तथा ।।६
एष प्रभावो रक्षायाः कथितस्ते युधिष्ठिर । जयदः सुखदश्चैव पुत्रारोग्यधनप्रदः ।।७

युधिष्ठिर उवाच

क्रियते केन विधिना रक्षाबन्धः सुरोत्तम । कस्यां तिथौ कदा देव एतन्मे वक्तुमर्हसि ।।८

अध्याय १३७

रक्षाबन्धन का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! मैं तुम्हें बलि रक्षाविधान की विस्तृत व्याख्या बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! पहले समय देवों राक्षसों के युद्ध में देवों द्वारा असुरों के पराजित होने पर वे दानवगण बलि को सामने किये शुक्र के पास पहुँचे, शुक्र ने उनसे कहा—१-२

शुक्र बोले—तुम्हे इस समय विषाद न करना चाहिए क्योंकि कार्यों की गति ऐसी ही होती है—समयानुसार प्राणियों का जय पराजय दैवगति से हुआ करती है । दोनों अयन (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन) के समय (वर्ष) तक इन्द्र के साथ सभी कार्यों की सन्धि करो, शची (इन्द्राणी) ने अपने पति को सम्पूर्ण शत्रुओं के अजेय बनाया है और उसी रक्षा बन्धनों के प्रभाव से महान् दानवेन्द्र को भी उन्होंने जीत लिया है इसलिए एक वर्ष तक प्रतीक्षा करो पश्चात् तुम्हारा कल्याण होगा । शुक्र के ऐसा कहने पर दानवों का सन्ताप दूर हुआ और वे अपने गुरु (शुक्राचार्य) के कथनानुसार एक वर्ष तक प्रतीक्षा करते अपने काल यापन करने लगे । युधिष्ठिर ! मैंने तुम्हें यह रक्षा का प्रभाव बताया है, जो जप और सुखप्रद होते हुए आरोग्य एवं धन का भी प्रदायक होता है ।३-७

युधिष्ठिर बोले—सुरोत्तम ! यह रक्षाबन्धन कार्य किस विधान द्वारा किस तिथि में और किस समय सुसम्पन्न किया जाता है, यह सभी बातें बतानें की कृपा कीजिये । जैसे जैसे भगवान् अपने आश्चर्य

यथा यथा हि भगवान्विचित्राणि प्रभाषते । तथा तथा न मे तृप्तिर्बह्वर्थाः शृण्वतः कथाः ।।९

श्रीकृष्ण उवाच

घनावृतेऽम्बरे पार्थ शाद्वले धरणीतले । सम्प्राप्ते श्रावणे चैव पौर्णमास्यां दिनोदये ।।१०
स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्श्रुतिस्मृतिविधानतः । ततो देवान्पितृंश्चैव तर्पयेत्परमाम्भसा ।।११
उपाकर्मादिकेदोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । कुर्युश्च ब्राह्मणाः श्राद्धं देवमुद्दिश्य शक्तितः ।।१२
शूद्राणां मन्त्रसहितं स्नानं दानं च शस्यते ।।१३
ततोपराह्णसमये रक्षापोटलिकाः शुभाः । कारयेच्चाक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषिताः ।।१४
वस्त्रैर्विचित्रैः कार्पासैः क्षौमैर्वा मलवर्जितैः । विचित्रतरैर्ग्रथिताः स्थापयेद्भाजनोपरि ।।१५
कार्या गृहस्य रक्षा गोमयरहितैः सुवृत्तकुण्डुकैः । दूर्वावर्णकसहितैः सकलदुष्कृतोपशान्तये ।।१६
उपलिप्तगृहमध्ये चतुष्कोपरि न्यसेच्छुभं पीठम् । तत्रोपविशेद्राजा सामात्यः सपुरोहितः ससुहृत् ।।१७
वेश्याजनेनसहितो मङ्गलशब्दैः सुहसितेश्चिह्नैः । रक्षाबन्धः कार्यः शान्तिध्वनिना नरेंद्रस्य ।।१८
देवद्विजातिशस्ता सुस्त्रीरर्घ्यैः समर्चयेत्प्रथमम् । तदनुपुरोधा नृपतिं रक्षां बध्नीत मन्त्रणे ।।१९
येन बद्धो बलीराजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामभिबध्नाभिः रक्षे मा चल मा चल ।।२०
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः । कर्तव्योरक्षिकाबन्धो द्विजान्सम्पूज्य भक्तितः ।।२१

चकित करने वाले प्रवचनों को सुनाते जाते हैं, जिसमें अनेक भाँति के मनोरथ को सफल करने वाली कथाएँ निहित हैं वैसे वैसे उसके सुनने पर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।८-९

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! घनाच्छन्न आकाश और शस्य श्यामला पृथिवी जिस समय होती है, उसी सावन मास की पूर्णिमा के दिन सूर्योदय काल में स्मृति विधान द्वारा स्नान, उस परम पुनीत जल द्वारा देव पितृतर्पण, वेदविहित उपाकर्मादि कर्म, ऋषियों के तर्पण और देवोद्देश्य से श्राद्ध कर्म ब्राह्मण को यथाशक्ति सुसम्पन्न करना चाहिए, शूद्रों को भी समंत्रक स्नान दान करना प्रशस्त कहा गया । उसी दिन अपराह्ण समय में प्रशस्त अक्षत, राई और सुवर्ण भूषित नये सूती अथवा रेशमी वस्त्र की सुन्दर पोटली बनाकर, जो अत्यन्त विचित्र बनायी गयी हो, किसी पात्र के ऊपर स्थापित करे । अनन्तर समस्त दुष्कर्मों के शान्त्यर्थ गोमय (गोबर) रहित सुव्रत्त कुंडुक और दूर्वा द्वारा गृह की रक्षा करने के लिए पुते घर के प्रांगण की वेदी पर सुसज्जित एवं सुन्दर पीठासन पर अपने अमात्य पुरोहित, और मित्रों एवं वेश्याओं समेत राजा को बैठना चाहिए। तदुपरांत मांगलिक शब्दों के उच्चारण एवं शान्तध्वनि पूर्वक किसी मनोरम चिह्न (सूत्र आदि) द्वारा राजा का रक्षाबन्धन कार्य सुसम्पन्न करे। उस समय सर्वप्रथम देव और ब्राह्मण की प्रशस्त देवियों को अर्घ्य प्रदान करके पुरोधा (पुरोहित) को चाहिए राजा के (हाथ में) रक्षा बाँधते समय 'येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल' जिस (सत्य) वचन द्वारा महाबली राक्षसराज बलि बाँधे गये थे, उसी से मैं भी तुम्हें बाँध रहा हूँ, रक्षे ! कभी भी चल न होना अर्थात् शिथिल बन्धन न होकर सर्वदा दृढ़ रहना। इसी भाँति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों और अन्य मानवों को भी भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने के उपरांत रक्षाबन्धन करना चाहिए।१०-२१। क्योंकि इस

अनेन विधिना यस्तु रक्षिकाबन्धमाचरेत् । स सर्वदोषरहितः सुखी सम्वत्सरं भवेत् ॥२२
यः श्रावणे स्रवति शीतजले नरेन्द्र रक्षाविधानविधिमाचरते मनुष्यः ।
आस्ते सुखेन परमेण च सर्वमेकः पुत्रप्रपौत्रसहितः ससुहृद्वृतश्च ॥२३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
श्रावणपूर्णिमारक्षाबन्धनविधिवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३७

अथाष्टात्रिंदधिकशततमोऽध्यायः

महानवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुण्या महानवम्यस्ति तिथीनां प्रवरा तिथिः । सानुष्ठेया सुरैः सर्वैः प्रजापालैर्विशेषतः ॥१
भवानुत्थापयेत्पार्थ सम्वत्सरसुखाय वै । भूतप्रेतपिशाचानां प्रीत्यर्थं चोत्सवाय वा ॥२

युधिष्ठिर उवाच

कस्मात्कालात्प्रवृत्तेयं नवमी महशब्दयुक् । किमादावुपपन्नोऽस्ति भगवन्नदमीविधिः ॥३
यशोदागर्भसम्भूतेरुत यात्रा प्रवर्तते । उताहो पूर्वमेवासीत्कृतत्रेतायुगादिषु ॥४
यदस्यां प्राणिनः केचिन्मन्यन्ते घातयन्ति च । हतानां प्राणिनां तेषां का गतिः पारलौकिकी ॥५

विधान द्वारा रक्षा बन्धन कार्य सुसम्पन्न करने वाला सम्पूर्ण दोषों से रहित होकर वर्ष पर्यन्त सुखी रहता है । इस प्रकार नवीन मेघ के शीतल जल (वर्षा द्वारा) झड़ी लगने वाले सावन के मास में पूर्णिमा के दिन सुरेन्द्र की रक्षा विधान द्वारा रक्षा बन्धन कार्य सुसम्पन्न करने वाला पुरुष अपने पुत्र पौत्र आदि परिवार समेत समस्त सुखों का अनुभव करता है ।२२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
श्रावणरक्षाबन्धन विधान वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३७।

अध्याय १३८

महानवमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पुण्यस्वरूपा उस महानवमी के दिन,जो अन्य सभी तिथियों में सर्वश्रेष्ठ, देवों तथा विशेष कर राजाओं को (दुर्गा पूजन) का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए । पार्थ ! वर्षपर्यन्त अपने सुखार्थ एवं भूत प्रेत पिशाचों की प्रसन्नता तथा उत्सव के व्याज से तुम्हें भी इस दिन, अनुष्ठान करना आवश्यक है ।१-२

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! यह पूजनीय नवमी तिथि का विधान आदिकाल से ही चला आ रहा है, या यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न होने वाली देवी की यात्रा काल अथवा सत्य त्रेता आदि युगों के आरम्भ से प्रज्वलित है ? केशव इस तिथि के दिन जिस प्राणी का बध होता है, उसकी और स्वयं बध करने वाले,

स्वयं घ्नतां घातयतामनुमोदयतां तथा । एतन्मे संशयं पूर्वं वक्तुमर्हसि केशव ।।६

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ या परमा शक्तिरनन्ता लोकविश्रुता । आद्या सर्वगता शुद्धा भावगम्या मनोहरा ।।७
आद्याष्टमी कलाकाली द्वितीया सर्वमङ्गला । माया कात्यायनी दुर्गा चामुण्डा शङ्करप्रिया ।।८
ध्यायन्ति यां योगरतां सा देवी परमेश्वरी । रूपभेदैर्नामभेदैर्भवानी पूज्यते शिवा ।।९
अष्टम्यां तु नवम्यां तु देवदानवराक्षसैः । गन्धर्वैरुरगैर्यज्ञैः पूज्यते किन्नरैर्नरैः ।।१०
अन्येष्वपि युगेष्वादौ सृष्टेः पूर्वं प्रदर्शिता । पूज्यतेयं पुरादेवी तेभ्यः पूर्वतरैः शुभैः ।।११
आश्वयुक्छुक्लपक्षे च याष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ।।१२
कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमी तु या । मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता ।।१३
अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वाऽऽश्विने मासि विशोको जयति द्विषः ।।१४
सन्तर्जयन्ती हुंकारैः खड्गादिभिरहर्निशम् । नवम्यां पूजिता देवी ददाति नवमं फलम् ।।१५
सा पुण्या सा पवित्रा च सा धर्मसुखदायिनी । तस्मात्सदा पूजनीया चामुण्डामुण्डमालिनी ।।१६
तस्यां यद्युपयुज्यन्ते प्राणिनो महिषादयः । सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते ।।१७
न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः । यथा संतुष्यते लोके महिषैर्विन्ध्यवासिनी ।।१८

कराने वाले एवं उसका अनुमोदन करने वाले प्राणी की पारलौकिक गति कैसी होती है, इन मेरे संदेहों को दूर करने की कृपा करें।३-६

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! परम शक्ति, अनन्ता एवं लोक प्रख्यात आद्या भगवती शिव का परमेश्वर, सर्वगता, शुद्धा, एकमात्र भावगम्या एवं सर्वमनोहरा है तथा आद्या, अष्टमी कला, काली सर्वमंगला, माया, कात्यायनी, दुर्गा, चामुण्डा, एवं शंकरप्रिया के नाम से पूजित हो रही है सभी लोग सदैव ध्यान पूजन करते हैं, यही नहीं, अपितु अनेक नाम रूपों द्वारा उनकी पूजा की जा रही है। अष्टमी नवमी के दिन देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व नाग, किन्नर, नर यज्ञ द्वारा उस भवानी की सदैव पूजा करते है। इसी प्रकार अन्य युगों के प्रारम्भ में सृष्टि के पूर्वकाल इसी भाँति देवी जी विद्यमान थी और उस समय के लोगों को अत्यन्त दूर के पूर्वजों द्वारा शुभ विधान द्वारा पूजित होती रही। आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की मूल नक्षत्र युक्त नवमी महानवमी के नाम से प्रख्यात हैं जो तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ बतायी जाती है। कन्या राशि पर सूर्य के प्रस्थान करने पर शुक्ल पक्ष की मूल नक्षत्र युक्त अष्टमी महानवमी कही गयी है। आश्विन मास की अष्टमी नवमी के दिन जगन्माता भगवती अम्बिका की आराधना करने वाले पुरुष निरातङ्क होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। और वे शत्रुगण गर्वोक्तियों एवं खड्गों आदि से नित्य संतर्जित रहते जाते हैं। नवमी के दिन अर्चा करने पर देवी नवम फल प्रदान करतां है, जो अत्यन्त पुण्य स्वरूपा, पवित्रा एवं धर्म सुख प्रदान करने वाली है। इसलिए मुण्डमाला से भूषित उस चामुण्डा देवी की सदैव पूजा करनी चाहिए। भगवती चामुण्डा के लिए (बलि रूप में) उपयोग किये जाने वाले महिष आदि सभी प्राणी स्वर्ग पहुँचते है और उनके हनन करने वाले को पाप भी नहीं लगता।७-१७। विन्ध्यवासिनी चामुण्डा (काली) देवी पुष्प, धूप, विलेपन एवं अन्य बलिदान से उतना सन्तुष्ट नहीं

उद्दिश्य दुर्गां हन्यन्ते विधानाद्येऽत्र जन्तवः । स्वर्गं ते यान्ति कौन्तेय घातयन्तोऽपि भक्तितः ।।१९
भवानीप्राङ्गणे प्राणा येषां याता युधिष्ठिर । तेषां स्वर्गे ध्रुवं वासो वरास्तेऽप्सरसां प्रियाः ।।२०
मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पेषु कुरुनन्दन । तेषु सर्वेषु चैवासीन्नवमीयं पुरार्चिता ।।२१
प्रसिद्धानादिनिधना वर्षेवर्षे युधिष्ठिर । भूयोभूयोऽवतारैश्च भवानी पूज्यते सुरैः ।।२२
अवतीर्णा भुवि सदा नित्यं दैत्यनिबर्हिणी । स्वर्गपातालमर्त्येषु करोति स्थितिपालनम् ।।२३
पुनश्चैषा महादेवी यशोदा गर्भसम्भवा । कंसासुरस्योत्तमाङ्गे पादं दत्त्वा गतायुषः ।।२४
ततः प्रभृतिलोकेषु यशोदानन्ददायिनीम् । विन्ध्याचले स्थापयित्वा पुनः पूजा प्रवर्तिता ।।२५
पूर्वप्रवद्धोऽपि पुनर्भगिन्या महिमा कृतः । भुवि सर्वोपकाराय सर्वोपद्रवशान्तये ।।२६
एवं विन्ध्योपवासिन्या नवरात्रोपवासिनः । एकरात्रेण नक्तेन स्वशक्त्याऽयाचितेन वा ।।२७
यजनैयाजनैर्देवाः स्थाने स्थाने पुरे पुरे । गृहे गृहे भक्तिपरेर्ग्रामे ग्रामे वने वने ।।२८
स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ।।२९
स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं शृणु । जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।।३०
लोहाभिहारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी । प्रागुदक्प्रवणे देशे पताकाभिरलंकृतम् ।।३१
मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं वरम् । आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ।।३२

होती, जितना कि वे महिष बलि द्वारा प्रसन्न होती हैं। दुर्गा जी के उद्देश्य से भक्ति पूर्वक एवं सविधान बध करने पर भी वह प्राणी स्वर्ग पहुँचता है। युधिष्ठिर ! भवानी के गृहाङ्गण में जिन जीवों का प्राणोत्सर्ग होता है वे निश्चय स्वर्ग में निवास करते हैं और अप्सराओं के प्राण प्रिय होतें हैं। कुरुनन्दन ! पहले समय सभी मन्वन्तरों के कल्पों मे उस समय के समस्त प्राणियों द्वारा यह नवमी तिथि पूजित होती थी। युधिष्ठिर ! देवों के प्रत्येक दिव्य वर्ष में परम प्रसिद्धा भवानी शिव की जो जन्म मरण से रहित है और यथावसर, अवतरित होती रहती हैं, देववृन्द सादर पूजा करते रहते है। दैत्यदानवादि विन्ध्यवासिनी भगवती दुर्गा इस भूतल में यथावसर अवतार धारण कर स्वर्ग एवं मर्त्य लोक की स्थिति तथा पालन किया करती है। पश्चात् यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होने वाली इन महादेवी जैसे उस समय क्षीणायु कंस के शिर पर चरण रखकर आकाश में उड़ गयी थी, उसी समय से विन्ध्याचल में स्थापित होकर लोक में उन यशोदानन्ददायिनी की पुनः पूजा प्रचलित हुई। इस भूतल में समस्त उपद्रवों की शान्ति पूर्वक परोपकारार्थ पूर्व स्मृत उनकी महिमा को उनकी भगिनी देवी ने अत्यधिक बढ़ाया। कुरुशार्दूल ! इस प्रकार विन्ध्यवासिनी देवी के निमित्त नवरात्र अथवा यथाशक्ति एक ही रात्र अयाचित अन्न का नक्त व्रत करते हुए यजन याजन करने कराने वाले देवों मनुष्यों द्वारा जो प्रत्येक स्थानों, प्रत्येक नगरों, प्रत्येक घरों प्रत्येक गावों, जंगलों में स्नान के उपरान्त अत्यन्त हर्ष मग्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्य मनुष्यों और स्त्रियों करना चाहिए, सुसम्पन्न होने वाले विधान को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! विजयेच्छुक राजा को प्रतिपदा से अष्टमी तक लोहाभिहारिक कर्म (युद्ध यात्रा के निमित्त शस्त्रादि का नीराजन विधान) करना चाहिए।१८-३०। पूर्व उत्तर के अन्तराल भाग अर्थात् ईशान कोण के चतुष्पथ प्रदेश में सोलह हस्त का विस्तृत दिव्य मण्डप, जो पताकाओं से अत्यन्त सुसज्जित हो, और अग्नि कोण में एक हांथ का विस्तृत

मेखलात्रयसंयुक्तं योन्यश्वत्थदलाभया । राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च ॥३३
आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्येत्राधिवासयेत् । ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥३४
ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिंगैर्जहुयाद् घृतम् । लोहनामाभवत्पूर्वं दानवस्तु महाबलः ॥३५
स देवैः समरे क्रुद्धैर्बहुधा शकलीकृतः । तदङ्गसम्भवं लोहं यत्सर्वं दृश्यते क्षितौ ॥३६
शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंप्लुतम् । हुतशेषं तुरङ्गाणां गजानामुपहारयेत् ॥३७
लोहाभिहारिकं कर्म तेनैतदृषिभिः स्मृतम् । बद्धप्रतिशरव्यं च गजाश्वसमलंकृतम् ॥३८
भ्रामयेन्नगरे नित्यं नन्दि घोषपुरस्सरम् । प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ॥३९
पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यानुलेपनैः । हुतशेषं प्रदातव्यमौपनायनिके द्विजे ॥४०
तस्याभिहरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः । पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि पुराणोक्त नहं तव ॥४१
यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशोबलम् । यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् ॥४२
तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये। (इति छत्रमंत्रः) गन्धर्व कुलजातस्त्वं नाभूयाः कुलदूषकः ॥४३
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च । प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्व त्वं तुरङ्गमम् ॥४४
तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा यथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च ॥४५

एवं प्रति सुशोभन कुण्ड का निर्माण करना चाहिए, जो तीन मेखला और पीपल के पत्ते के आकार की योनि से सुशोभित हो। मण्डप में राजाओं के चिह्न स्वरूप सभी अस्त्रों शस्त्रों को लाकर उनके अधिवासन करना चाहिए। अनन्तर स्थान शुक्लवस्त्र धारण किये अत्यन्त पवित्रता पूर्ण किसी ब्राह्मण द्वारा ओंकार के उच्चारण समेत तल्लिगों के मंत्रों द्वारा घी की आहुति प्रदान करायें। पहले समय में लोह नामक महाबली दानव उत्पन्न हुआ था, जिसे रणाङ्गण में देवों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक टुकड़ों में काटकर अलग कर दिया था। उसी के अङ्ग से उत्पन्न ये समस्त लोहे पृथ्वी में दिखायी पड़ रहे हैं। शस्त्रास्त्र मंत्रों के उच्चारण पूर्वक घृत पूर्ण पायस (खीर) की आहुति डालने के उपरांत शेषभाग अश्वों और हांथियों को उपहार रूप में प्रदान कर देना चाहिए। इसीलिए ऋषियों ने इसे लोहाभिहारक कर्म बतलाया है। तत्पश्चात् राजा को धनुष बाण से सुसज्जित होकर हाथी घोड़े को सजाये हुए नंदिघोष पुरस्सर नगर में चारों ओर नित्य घूमना चाहिए। इसी प्रकार प्रतिदिन राजा को स्नान देव पूजन के उपरांत फल माला, विलेपन आदि द्वारा अपने राज चिह्नों (शस्त्रादिकों) का पूजन करके हवन शेष भाग यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किसी परमोत्तम ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए। प्रत्यक्ष अथवा उसे चोरी रूप में उसके ले लेने पर राजा की निश्चित विजय होती है। मैं पुराणोक्त उन पूजा मंत्रों को तुम्हें बता रहा हूँ जिसके द्वारा पूजन करने पर देवता कीर्ति, आयु यश और बल प्रदान करता है। जिस प्रकार मेघ (लोक) कल्याणार्थ इस वसुन्धरा को आच्छादित करते हैं उसी भाँति विजय और आरोग्य के वृध्यर्थ (तुम) राजा को आच्छादित करो। इस मंत्र से छत्र प्रदान करे। तुरङ्गम ! गन्धर्व कुल में उत्पन्न होने के नाते तुम कभी भी कुल कलङ्कित न करना।३१-४३। ब्रह्मा के सत्य वाक्य द्वारा तथा सोम, वरुण एवं अग्नि के प्रभाव और सूर्य के तेज, मुनियों के तप, भगवान् रुद्र के ब्रह्मचर्य तथा पवनदेव के बल से सदैव वृद्धि प्राप्त करो।

स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभं च मणिं स्मर । यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत्पितृहा मातृहा तथा ।।४६
भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः । सूर्याचन्द्रमसौ वायुः पावकश्च न यत्र वै ।।४७
व्रजेच्च तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्किल । विकृतिं[1] यदि गच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम ।।
रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव ।।४८

।। (इत्यश्वमंत्रः) ।।

शक्रकेतो महावीर्य सुपर्णस्त्वय्युपस्थितः । पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः ।।४९
काश्यपेयोऽमृतो ज्ञेयो नागारिर्विष्णुवाहनः । अप्रमेयो दुराधर्षो देवशत्रुनिषूदनः ।।५०
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः स्थितः । शस्त्रवर्मायुधान्योधान् रक्षास्मांश्च रिपून्दह ।।५१

।। (इति ध्वजमन्त्रः)।।

कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ।।५२
एतेषां पुत्रपौत्राश्च बलान्यष्टौ समाश्रिताः । भद्रो मन्द्रो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ।।
वनेवने प्रसूतास्ते करियोनिं महागजाः ।।५३
पांतु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयं प्रतिपालयन् ।।५४
अवापुर्हि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज । श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात् ।।
स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् ।।५५
युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वं दिशश्च सह दैवतैः । अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ।।५६

इस बात का स्मरण करो कि तुम राजपुत्र हो। उसी भाँति कौस्तुभमणि का भी स्मरण करो। तुरङ्गम् ! यदि युद्ध स्थल में जाकर तुम्हारे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाये, तो ब्रह्म हत्या, और पितृ मातृ की हत्या करने वाले, भूमि के लिए झूठ बोलने वाले एवं युद्ध से पराङ्गमुख होने वाले क्षत्रियों की गति शीघ्र प्राप्त करो। तथा उन पापों के भागी भी हो जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, वायु और अग्नि देव नहीं रहते। अतः समराङ्गण में विजय प्राप्त कर अपने स्वामी समेत सुख का अनुभव करो, यह अश्वमंत्र है।४४-४८। शक्रकेतो ! एवं महापराक्रमशालिन् ! तुम्हारे यहाँ पक्षिराज गरुड़ उपस्थित हैं, जो नारायण के ध्वज कश्यप के पुत्र, अमृत, नागों के शत्रु, विष्णु के वाहन हैं। मारुत गति वाले गरुत्मान् (गरुड़) जो अप्रमेय दुर्धर्ष एवं देवशत्रुओं के विनाशक हैं, तुम्हारे समीप स्थित हैं अतः शस्त्रास्त्र एवं कवच धारण करने वाले मेरे उन योधाओं की रक्षा करो। और शत्रुओं का विध्वंस करो। यह ध्वज कामंत्र है।४९-५१। कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन , और नील यह आठ प्रकार देव योनियाँ हैं। इनके पुत्रों और पौत्रों ने आठ प्रकार की सेनाएँ स्थापित की। जिनके द्वारा भद्र, मन्द, मृग, गज की उत्पत्ति हुई और उन्हीं लोगों ने प्रत्येक जंगलों में हाथी योनि वाले महागजराजों को जन्म दिया है। नागेन्द्र ! इसीलिए वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें और तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वामी की रक्षा करो। युद्ध में सदैव उन लोगों ने विजय प्राप्त की है अतः उस रथयात्रा में गमन करो जिससे मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण हो। तुम्हें सोम से भी, विष्णु, बल, सूर्य से तेज, वायु से वेग, मेरे से स्थैर्य, रुद्र से जप और पुरन्दर देव को यश की प्राप्ति हो, युद्ध में नागगण और देवों समेत दिशाएँ तुम्हारी रक्षा करें।५२-५६।

---

१. किंकृतिम् ।

(इति हस्तिमन्त्रः)

हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणाग्रहाः ॥५७
प्रमथाश्च सहादित्यैर्भूतेशोमातृभिः सह । शक्रसेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥५८
प्रदहन्तु रिपून्सर्वान्राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि समन्ततः ॥५९
एतानि परशत्रूणां हतानि तव तेजसा । कालनेमिवधे युद्धे युद्धे त्रिपुर घातने ॥६०
हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा । शोभितासि तथैवाद्य शोभमानास्तु भूपतेः ॥६१
नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यं त्वद्य नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥६२
सद्यः स्वस्था भवन्ति स्म त्वद्वातेनापमार्जिताः ॥६३
पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रीति या स्मृता । दहन्त्वाशु रिपून्सर्वान्पताके त्वामुपागताः[१] ॥६४

(इति पताकामन्त्रः)

असिश्च रिपुहा खड्गस्तीक्ष्णकर्मा दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥६५
इत्यष्टो तव नामानि स्वमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः ॥६६
हिरण्यं च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥६७

(इति खड्गमन्त्रः)

शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्म सर्वायसो ह्यसि । रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तव वर्मन्नमोऽस्तु ते ॥६८

(इति वर्ममन्त्रः)

उसी भाँति गन्धर्वों समेत अश्विनी कुमार चारों ओर से तुम्हारी सदैव रक्षा करें । यह हाथी का मंत्र है । अग्नि, वसुगण, रुद्रगण, वायु, सोम, महर्षिगण, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूतगण, ग्रहगण, आदित्यों समेत प्रथम गण, मातृकाओं समेत भूतेश (शिव), इन्द्र सेनापति स्कन्द एवं वरुण तुम्हारे आश्रित रह रहे हैं, ये समस्त रिपुओं को नष्ट करें जिससे राजा को विजय प्राप्त हों एवं शत्रुओं द्वार चारों ओर प्रसारित अन्य समस्त दोष भी तुम्हारे तेज द्वारा नष्ट होते रहते हैं । कालनेमि के वध करने के समय युद्ध में और त्रिपुरासुर, हिरण्यकशिपु के हनन एवं देवासुर के संग्राम में तुम सदैव सुशोभित थे । उस भाँति आज भी सुशोभमान हों, जिससे तुम्हारे इस नील श्वेत वर्ण को देखते ही शत्रुगण नष्ट हो जाँये । अनके भाँति की व्याधियों एवं घोरशस्त्रों द्वारा युद्ध में पराजित होने वाले मेरे योद्धागण तुम्हारी वायु द्वारा अपमार्जित होने पर उसी क्षण स्वस्थ होते रहें । उस प्रकार पूतना, रेवती और कालरात्रि आदि तुम्हारे समीप रहकर शीघ्र समस्त शत्रुओं का संहार करें ।५७-६४। यह पताका का मंत्र है । असि (तलवार), शत्रुहन्ता, खड्ग, तीक्ष्णकर्मा, दुरसद, श्रीगर्भ, विजय और धर्म धार, तुम्हारे इन आठ नामों को ब्रह्मा ने स्वयं कहा है । गुरु देव महेश्वर ने तुम्हें कृत्तिका नक्षत्र प्रदान किया है । और देवाधीश जनार्दन ने हिरण्य शरीर दी है । इसलिए तुम पिता पितामह देव के रूप में मेरी सदैव रक्षा करो ।६५-६७। यह खड्गमंत्र है । वर्मदेव ! मैं तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, क्योंकि संग्राम में तुम सदैव कल्याण प्रदान करते हो और सर्वाङ्ग लोह रूप हो अतः मुझ रक्षणी की रक्षा करो।६८। यह वर्ममन्त्र है। दुन्दुभे ! तुम अपनी गम्भीर ध्वनि से शत्रुओं के

---

१. त्वय्युपाश्रिताः ।

दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोषाद्धृदयकम्पन । भव भूमिप सैन्यानां तथा विजयवर्द्धनः ॥६९
यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः ॥७०
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथा च तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्विषो रणे ॥७१

(इति दुन्दुभिमन्त्रः)

सर्वायुध महामात्र सर्वदेवारिसूदन । चाप मां सर्वदा रक्ष साकं सायकसत्तमैः ॥७२

(इति चापमन्त्रः)

पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्याणां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यं मनः शान्तिप्रदो भव ॥७३

(इति शङ्खमन्त्रः)

शशाङ्ककरसंकाश हिमडिण्डीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरवल्लभ ॥७४

(इति चामरमन्त्रः)

सर्वायुधानां प्रथमा निर्मिताऽसि पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिपरिग्रहम् ॥७५
चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिबर्हिणि । तथा विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥७६
सर्व सत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाशुभनिवारिणी । छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥७७

(इतिच्छुरिकामन्त्रः)

प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंग्रहणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥७८
यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयाशु रिपून्सर्वान्हेमदण्ड नमोस्तु ते ॥७९

(इति कनकदण्डमन्त्रः)

हृदय को सदैव कम्पित करती हो इसलिए राजसेनाओं की विजय वृद्धि अवश्य करो । जिस प्रकार मेघ के गम्भीर गर्जन करने से मत्तगजराज प्रसन्न होते हैं उस प्रकार अपने शब्दों से हमें हर्षित करो । जिस प्रकार मेघ के गर्जन करने से स्त्रियों को भय उत्पन्न होता है, उसी भाँति तुम अपनी ध्वनि से मेरे शत्रुओं को भयभीत करो ।६९-७१। यह दुंदुभि मंत्र है । समस्त आयुधों के महाअमात्य ! समस्त देव शत्रुओं का तुम विनाश करते हो अतः उत्तम साधकों समेत तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो। यह चाप मंत्र है।७२। शङ्ख ! तुम पुण्यों के पुण्य और मंङ्गलों के मङ्गल हो भगवान् विष्णु तुम्हें नित्य धारण करते हैं अतः मुझे मनः शान्ति प्रदान करने की कृपा करें ।७३। यह शंङ्ख मंत्र है । देव वल्लभ, चामर ! चन्द्रमा की किरण समूह, हिम और समुद्र फेन की भाँति आप (उज्जवल छटा से) भूषित है अतः मेरे दुरितों का शीघ्र शमन करें।७४। यह चामर मंत्र है। समस्त आयुधों में सर्वप्रथम पिनाकी (शिव) द्वारा तुम्हारा निर्माण हुआ है। उन्होंने अपने शूल से निकाल कर एक मुट्ठी की विस्तृत शरीर तुम्हें प्रदान की है। समस्त दुष्टों के विध्वंस करने के नाते मैंने तुम्हें भगवती चण्डी को अर्पित किया है। तुम्हारा विस्तार भी उसी भाँति हुआ है और देवों ने तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा की है, तुम समस्त प्राणियों के अंगभूत हो और उनके अशुभों को सदैव विनाश करती हो। इसलिए शान्ति प्रदान पूर्वक मेरी नित्य रक्षा करो। मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ।७५-७७। यह छुरिका (कटार) मंत्र है सुवर्ण दण्ड दुष्टों के निवारण साधु सज्जनों के संग्रहार्थ एवं लोक-व्यवहार को ख्यात करने के लिए ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण अतः राजा को यश, सुख और विजय प्रदान करते हुए उनके समस्त शत्रुओं की शीघ्र ताडना करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ ।७८-७९। यह कनक दण्ड मंत्र है । विजय,

विजयो जयदो जेता रिपुघाती प्रियङ्करः । दुःखहा धर्मदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ॥८०
एतेऽष्टौ संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनेति त्वं विप्रैर्वेदेषु गीयसे ॥८१
त्वयि स्थितः शिवः साक्षात्त्वयि शक्रःसुरेश्वरः । त्वयि स्थितो हरिर्देवस्त्वदर्थं तप्यते तपः ॥८२
नमस्ते सर्वतो भद्र भद्रदो भव भूपते । त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते ॥८३

(इति सिंहासनमंत्रः)

लोहाभिहारिकं कर्म कृत्वेदं मन्त्रपूर्वकम् । फलनैवेद्यकुसुमैर्धूपदीपविलेपनैः ॥८४
अष्टम्यां धावनं कृत्वा पूर्वाह्ले स्नानमाचरेत् ॥८५

(अथ गद्यम्)

दुर्गां काञ्चनमूर्तिं रौप्यां वा पैत्तलीं वार्क्षीं चैत्रीं ताम्रीं वाऽभिभवतः कृत्वा दारुविचित्रतोरणविन्यस्तां शोभने स्थाने पुरतो विन्यस्तदृष्टिं विचित्रगृहमध्यगां स्नातां कुंकुमचन्दनगन्धैश्चतुः समैश्चीरपट्टैश्चर्चितगात्रां देवीं कुसुमैरभ्यर्च्य तां बहुभिः पूज्यमाणकीर्तिस्तैर्द्विजननैर्जनितपारितोषैर्दिवान्वितो नरेंद्र स्वयंप्रयच्छेत्पुरोहितैः सार्धं बिल्वपत्रेणार्चनेन मन्त्रेणानेन भगवत्यै ॥

(इति गद्यं सम्पूर्णं) ॥

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥८६
अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवीप्रियः सदा । बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥८७

जयद, जेता, रिपुघाती, प्रियंकर, दुःख हन्ता, धर्मप्रद और सम्पूर्ण अरिष्टों का शमन करने वाला शान्त, ये आठ महाबलवान् सिंह तुम्हारे समीप सदैव रहा करते है, इसीलिए विप्रमण्डल वेदों आदि में 'सिंहासन' नाम से तुम्हारा गान करता है । तुम्हारे ऊपर साक्षात् शिव, देवाधीश इन्द्र और विष्णु सदैव स्थित रहते हैं, और तुम्हारे लिए देववृन्द तप भी कर रहे हैं । सर्वतोभद्र ! राजा के लिए कल्याणप्रदान करो, तुम्हें नमस्कार है, सिंहासन ! तुम त्रैलोक्य के विजय और सर्वस्व हो अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ ।८०-८३। यह सिंहासन मंत्र है । इस प्रकार फल, नैवेद्य, धूप, दीप और विलेपन द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक लोहाभिहारिक कर्म सुसम्पन्न करके । अष्टमी के दिन धावन के उपरांत पूर्वाह्ल काल में स्नान करे । भगवती दुर्गा जी की सुवर्ण, चाँदी, पीतल, वार्क्षी, चैत्री अथवा ताँबें की प्रतिमा किसी शोभन स्थान में स्थापित कर, जो चित्र विचित्र तोरण वन्दनवार आदि से सुसज्जित किया गया हो, मन्दिर के मध्य भाग में स्नान कराने के अनन्तर कुंकुम, चन्दन, गंध, और वस्त्र चीर से विभूषित, पुष्पों से अर्चित और अनेक ब्राह्मण विद्वानों द्वारा की गयी स्तुतियों से सन्तुष्ट होने पर उस मन्दिर में भगवती देवी जी के सम्मुख राजा को पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक उन्हें बिल्वपत्र प्रदान करना चाहिए—आप जयंती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा रूप को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ ।८४-८६। यह भी वृक्ष (विल्व वृक्ष) अमृत से उत्पन्न होने के भी महादेवी जी को अत्यन्त प्रिय है, सुरेश्वरि ! वही पवित्र बिल्व पत्र मैं आप को अर्पित कर रहा हूँ। अनन्तर सुरेश्वरी एवं भगवती श्री दुर्गा

दुर्गा सम्पूजनीया च तद्दिनाद्द्रोणपुष्पया[१] । सा चाभीष्टा सुरेशान्यास्तथा रूढव्रणायुतः ॥८८
ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां मानमर्द्दनम् । इच्छेत्स्वविजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मनो नृप ॥८९
पुनः[२] पुनः प्रणम्याथ ध्यायेच्च हृदये शिवाम् । महिषघ्नीं बहुभुजां कुमारीं सिंहवाहिनीम् ॥९०
दानवान्स्तर्जयन्तीं खड्गोद्धतकरां शुभाम् । घण्टाक्षस्रग्धरां दुर्गां[३] रणारम्भे व्यवस्थिताम् ॥९१
ततो जयजयाकारैः स्तवं कुर्यादिमं ततः ॥९२
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९३
कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रकृतामाले दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥९४
कृत्वैदमर्च्चां कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि । नटनर्तनगीतैश्च कारयेत्तु महोत्सवम् ॥९५
एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते चारुणोदये । पातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकन्धरान् ॥९६
शतं चापि शतार्धं वा तदर्द्धं वा यथेच्छया । सुरासवभृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥९७
कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजनैस्तथा । विभज्य सर्वं कौन्तेय सुहृत्सम्बन्धिबन्धुषु ॥९८
ततोपराह्णसमये नवम्यां स्यन्दने स्थिताम् । भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा ससैन्यवान् ॥९९
सहस्रैः पुरुषैर्वापि रथयुक्तैः सुशिक्षितैः । शनैः शनैरधिकया दीप्त्या प्रज्वलदीपकैः ॥१००

जी की अर्चा से रण के निमित्त रखे हुए मांगलिक पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करते हुए उनके पार्श्व भाग में व्रण रहित एक सुन्दर आसन पर स्थित अन्य देवियों की पूजा करनी चाहिए। नृप ! तत्पश्चात् राजा को चाहिए कि शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले खड्ग और अपने राजा को सुभिक्ष होने की कामना करे। इस प्रकार महिषासुर विनाशिनी भगवती शिव (दुर्गा) का, जो अनेक भुजाओं से भूषित, कुमारी, सिंहवाहिनी, दातव्यों को तर्जित करती, हाथ में शुभ खड्ग लिए, घंटा, अक्षमाला से सुशोभित रणारम्भ के लिए प्रस्तुत दिखायी देती हैं, अपने हृदय में तन्मय ध्यान और बार-बार प्रणाम करके 'जय जय' शब्दों तथा निम्न लिखित मंत्रों उच्चारण पूर्वक उनकी अभ्यर्थना करे—शिव ! आप समस्त मङ्गल समूहों के माङ्गलितक रूप, सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करने वाली, आर्त जनों के शरण्य (शरण देने वाली), और तीन नेत्रों से भूपित हैं अतः आप गौरी नारायणी को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ।८७-९३। कुंकुम मिश्रित चन्दन से सर्वाङ्ग चर्चित तथा बिल्व पत्र करवीर माला से सुशोभित भगवती दुर्गा की शरण में मैं उपस्थित हूँ। कौरव्य ! इस प्रकार उनकी अर्चा करके उस अष्टमी की रात्रि में नटों आदि नर्तन और गीत द्वारा जागरण करते हुए उस महोत्सव को सुसम्पन्न करे। इस भाँति प्रसन्नता पूर्ण रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातः काल सूर्योदय होते समय देवी जी के सम्मुख सौ, पचास, पचीस अथवा यथेच्छ भैंसे और भेंडों की बलि तथा सुरा आसव पूर्ण कलशों के अर्पण द्वारा भगवती परमेश्वरी को अत्यन्त तृप्त करे। उपरान्त दासी दास एवं स्वजनों द्वारा उसके यथोचित विभाग करके कापालिक, मित्रों संबधियों एवं बन्धु वर्गों में वितरण कराये। और अपराह्ण के समय नवमी में सुसज्जित रथ के ऊपर देवी जी को बैठाकर अपने राष्ट्र में सेना समेत राजा चारो और भ्रमण कराये।९४-९९। उनके उस यात्रा में सुशिक्षित सहस्रों पुरुषों,

---

१. द्विजेन्द्रेणसुशिष्यया । २. प्रणम्यादौ चिन्तयते शिवां महिषमर्दिनीम । कुमारीं तोषयन्तीं च खण्डचन्द्रयुतां शुभाम् ।

आकृष्टखड्गैर्वीरैश्च धातुरक्तैगजैस्तथा । नदद्भिः शङ्खपटहैर्नृत्यद्भि[१]र्वारयौवतैः ॥
अलंकृताभिर्नारीभिर्बालकैः सुविभूषितैः ॥१०१
भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं सान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥१०२
त्रींस्त्रीन्वारान्स्त्रिशूलेन दिग्विदिक्षु क्षिपेद्बलिम् । बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा ॥१०३
मरुतोऽभाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा पन्नगा ग्रहाः । असुरा यातुधानाश्च मातरश्च पिशाचकाः ॥१०४
शाकिन्यो यक्षवेताल योगिन्यः पूतनाः शिवाः । जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा व्याला विद्याधरा धराः ॥१०५
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः । जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ॥१०६
सविघ्नं मम पापं ते शाम्यन्तु परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूताः प्रेताः सुखावहाः ॥१०७
इत्येवं भ्रामयेद्राष्ट्रे दुर्गां देवीं रथे स्थिताम् । नरयानेन वा पार्थ ततोऽविघ्नं समापयेत् ॥१०८
अथोत्पन्नेषु विघ्नेषु भूतशान्तिं समाचरेत् ! येन विघ्ना न जायन्ते यात्रा सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥१०९
एवं ये कुर्वते यात्रां राजानोऽन्येऽपि मानवाः । महानवम्यां नन्दायां पुत्रका हृष्टमानसाः ॥११०
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति भागवतीं पुरीम् ॥१११
न तेषां शावकोनाग्निर्न चौरा न विनायकाः । विघ्नं कुर्वन्ति राजेन्द्र येषां तुष्टा महेश्वरी ॥११२
नीरुजः सुखिनो भोगभोक्तारो भयवर्जिताः । भवन्ति भक्ताः पुरुषाः भगवत्याः किमुच्यते ॥११३

प्रज्वलित अनेक दीप, हाथ में खड्ग लिए योद्धागण, सुशोभित हाथियों के वृन्द, शंख, ढोल की ध्वनि, नृत्य करती हुई वेश्यागण, अन्य सुभूषित सुन्दर स्त्रियों और विभूषित बालकों को रहना चाहिए। इसके अनन्तर भूतों के लिए मंत्रोच्चारण पूर्वक सामिष बलि, जो रक्त, जल, अन्न, गन्ध, पुष्प तथा अक्षत पूर्ण हो, त्रिशूल द्वारा तीन-तीन बार प्रत्येक दिशाओं विदिशाओं में रखते समय कहना चाहिए—देववृन्द, आदित्य गण, वसुगण, मरुद्गण, अश्विनी कुमार, रुद्रगण, गरुड़, सर्पगण, ग्रहगण, असुर, यातुधान, पिशाच, मातृकाएँ, शाकिनियाँ, यक्ष, वेताल, योगिनी पूतना, शिवा, जम्भक गण, सिद्ध, गन्धर्व, बालाओं समेत विद्याधर गण प्रसन्नता पूर्ण इसे स्वीकार करें और दिक्पाल, लोकपाल, विघ्नविनायक, जगत् की शान्ति रखने वाले एवं इसके निर्माता ब्रह्मा आदि देववृन्द, महर्षिगण, पापों के शमनपूर्वक मेरी विघ्नबाधा दूर करें। भूत प्रेत (इस बलि द्वारा) तृप्त एवं सौम्य होकर मुझे सुखी बनायें। पार्थ! इस भाँति मनुष्य वाहन रथ पर प्रतिष्ठित दुर्गा जी को सम्पूर्ण राष्ट्र में भ्रमण कराने के अनन्तर इस महोत्सव को निर्विघ्न समाप्त करें। किसी प्रकार के विघ्न उपस्थित होने पर भूत शान्ति करनी चाहिए जिससे वह यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाये। इसी प्रकार की यात्रा करने वाला राजा तथा अन्य मनुष्य वृन्द, जो महानवमी के दिन पुत्रादि परिवार समेत प्रसन्नता पूर्ण उसमें तल्लीन रहते हैं, पापमुक्त होकर देवी की वह उत्तम पुरी प्राप्त करते हैं।१००-१११। राजेन्द्र! जिस प्राणी पर भगवती महेश्वरी सन्तुष्ट रहती हैं, उसे अग्नि, चोर अथवा विनायक आदि द्वारा किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता है, अपितु नीरोग, सुखी, भोग भोक्ता, एवं भगवती का भय रहित भक्त होता है इससे और अधिक इस विषय में क्या कहा जा सकता है। मैंने तुम्हें भगवती दुर्गा देवी का महोत्सव सुना दिया, जिसके पढ़ने अथवा सुनने वालों के समस्त अशुभ विनष्ट हो जाते हैं।

---

१. बाला विद्याधरा नराः।

इत्येष ते समाख्यातो दुर्गादेव्या महोत्सवः । पठतां शृण्वतां चैव सर्वाशुभविनाशनः ॥११४

शूलाग्रभिन्नमहिषासुरपृष्ठविष्टामुत्खातखड्गरुचिराङ्गदबाहुदण्डाम् ।
अभ्यर्च्य पञ्चवदनानुगतां नवम्यां दुर्गां सुदुर्गगहनानि तरन्ति मर्त्याः ॥११५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महानवमीव्रतवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३८

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महेन्द्रध्वजमहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्यैरमरैर्नृप[1] । विजयार्थं महेन्द्रस्य ध्वजयष्टिः प्रतिष्ठिता ॥१
मेरोरुपरि संस्थाप्य सिद्धविद्याधरोरगैः । सा देवी दूर्चिता नित्यं भूषणैर्भूषिता स्वकैः ॥२
स्वच्छघण्टापिटकैः किङ्कणीबद्धबुद्बुदैः । तां दृष्ट्वा दानवा नष्टा भयादेव रणे हताः ।
गता रसातलं दैत्या देवाश्चापि दिवि स्थिताः ॥३
ततः प्रभृति तां दिव्यामिन्द्रयष्टिं यजन्ति ते । देवाः सर्वे गणाः सर्वे हृष्टास्तुष्टा युधिष्ठिर ॥४

इस प्रकार नवमी के दिन उस भगवती दुर्गा जी की अर्चना करने से मनुष्य गण अत्यन्त दुर्गम एवं गहन परिस्थितियों को सहज ही में पार कर लेते हैं, जो शूल के अग्रभाग से छिन्न-भिन्न अंग वाले महिषासुर की पीठ पर स्थित, ऊपर उठाये हुए खड्ग की रुचि कान्ति और अंगद आभूषण से सुशोभित बाहुओं को धारण करती है तथा पाँच मुख भूषित हैं ।११२-११५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
महानवमी व्रत वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३८।

अध्याय १३९

इन्द्रध्वजमहोत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! पहले समय देवों और राक्षसों के युद्ध में ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने इन्द्र के विजयार्थ ध्वज दण्ड प्रतिष्ठित किया था । सिद्ध विद्याधर एवं नागगणों ने मेरु के ऊपर उसे स्थापित कर अपने भूषणादि धनुओं द्वारा देवी जी की नित्य अर्चना आरम्भ किया था जिसमें सौन्दर्य पूर्ण छत्र, घंटा एवं छोटी-छोटी घंटियों से मुखरित पिटक (आभूषण पात्र) भी अर्पित किया गया था। देवी देखते ही दानवगण उस रणस्थल में भय वश नष्ट हो गये, शेष रसातल चले गये और देवगण पुनः स्वर्ग में विराजमान हुए।१-३। युधिष्ठिर ! उसी समय से देवगण उस दिव्य इन्द्र यष्टि की अत्यन्त प्रसन्नता से नित्य

---

१. ततः ।

अतः स्वर्गं गतो राजा भूरिपुण्यवशाद्वसुः । इन्द्रलोके महाभागो वसुदेवैः सुपूजितः ॥५
तस्मै दत्ता महेन्द्रेण वसुयष्टिः प्रगृह्यताम् । पूजयित्वा महाभाग सर्वदैत्यापनुत्तये ॥६
अवतार्य वर्षासमये सर्वैर्नृपतिभिः सह । मह्यां सम्पूजयामास चक्रे चन्द्रमहं वसुः ॥७
महेन मघवा प्रीतो ददौ पुण्यं वसोर्वरम् ॥८
येषु देशेषु मनुजा भक्तिभावपुरः सराः । पूजयन्ति वर्षान्ते मया दत्तं महाध्वजम् ॥९
तेषु देशेषु मुदिताः प्रजाः रोगविवर्जिताः प्रभूतान्ना धर्मयुक्ता वृषनेधा महोत्सवाः ॥१०
भविष्यन्ति सुवेषाश्च सुभाषाश्च सुभूषणाः ॥११
श्रुत्वैतद्वचनं राजा वसुर्वसुमतां वरः । विशेषेण ततश्चक्रे वर्षेवर्षे महोत्सवम् ॥१२
श्रवणे स्थापयेद्यष्टिं स्नानवस्त्रैः प्रपूजिताम् । दैर्घ्येण विंशतिकरां सारदारुमयीं शुभम् ॥१३
इन्द्रस्थाने पुरोद्दिष्टे इन्द्रमातृसंज्ञके । तस्मिन्न्यष्टिं नृपो भोक्ता स्वयं यत्नेन योजयेत् ॥१४
वस्त्रैर्विचित्रैः सम्वीतां पिटिकालंकृतां तथा । पिटिकानां महाराज क्रमं च कथयामि ते ॥१५
प्रथमं लोकपालाख्यं चतुरस्रं सकर्णिकम् । यमेन्द्रधनदैर्युक्तं वरुणेन समं ततः ॥१६
वृत्तं खण्डास्रकं रम्यं द्वितीयं रक्तचूर्णितम् । तृतीयं श्वेतकं चित्रमष्टास्रं पिटकं शुभम्[१] ॥१७
चतुर्थमिन्द्रगोपालवृत्तं मातृसमावृतम्[२] । पञ्चमं चाष्टकोणं तु शुक्लं धातुविचित्रितम्[३] ॥१८

पूजा करते हैं। इसी द्वारा अत्यन्त पुण्य प्राप्त कर राजा वसु स्वर्ग लोक चले गये। वहाँ उस दिव्य अमरावती में उस महाभाग का समस्त देवों ने अत्यन्त सम्मान किया और महेन्द्र देव ने वसु यष्टि के नाम से अपनी वह दिव्य यष्टि उन्हें प्रदान की। महाभाग ! समस्त दैत्यों के विनाशार्थ उसकी पूजा करके वर्षा काल में उसे वहाँ से लाकर पृथिवी पर स्थापित किया और समस्त राजाओं समेत उसकी सविधान अर्चना की। उससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने वसु को पुण्य वर प्रदान किया—जिन-जिन देशों में मानवगण अत्यन्त भक्तिभाव से वर्षा काल में इस मेरे दिये हुए ध्वज की अर्चना करेंगे, उन देशों की प्रजाएँ सदैव मुदित, रोग रहित, अभूत अन्नयुक्त, धार्मिक, तीक्ष्ण बुद्धि रहकर अनेक महोत्सवों को सुसम्पन्न करते रहेगें। उनके सुन्दर वेष, प्रशस्त भाषा एवं सौन्दर्य पूर्ण भूषण होंगे। इसे सुनकर वसुश्रेष्ठ राजा वसु प्रतिवर्ष उस महोत्सव को विशेषतया सुसम्पन्न करने लगे। श्रवण नक्षत्र में उस यष्टि को स्थापित कर स्नान वस्त्र से उसकी सविधि अर्चा करे, जो बीस हांथ का विस्तृत एवं काष्ठ के सारभाग से शुभमूर्ति बनायी गयी हो। इन्द्र मातृ संज्ञक उस इन्द्र स्थान में उपभोक्ता राजा को स्वयं वह यष्टि स्थापित करनी चाहिए, जो विचित्र वस्त्र से आच्छन्न और पिटिक से अलंकृत हो। महाराज ! मैं तुम्हें पिटिकों के क्रम बता रहा हूँ।४-१५। सुनो ! लोकपाल नामक पहला पिटक बताया गया है जो कर्णिका समेत चौकोर आकार का होता है यह इन्द्र, कुबेर और वरुण उसके चारों ओर वर्तमान रहते हैं। वृत्त (गोल) खण्ड, रमणीयक एवं रक्त चूर्ण से निर्मित होने वाला दूसरा पिटक होता है श्वेत वर्ण, चित्रविचित्र, अष्टकोण का शुभ तीसरा पिटक कहा गया है। इन्द्र गोपाल नामक चौथा पिटक है, जो गोलाकार और मातृकाओं समेत रहता है। शुक्ल वर्ण,

---

१. स्मृतम्। २. मातृसमन्वितम्। ३. धातुविवर्जितम्।

कृष्णकर्णिकया षष्ठं वृत्तं बुद्बुदशोभितम् । सप्तमं चाष्टकोणं तु शुक्लं विद्याधरैर्युतम् ।।१९
अष्टमं पिटकं वृत्तं वरत्रासूत्रवेष्टितम् । नवग्रहयुतं दीप्तं नवमं सचण्डिकम् ।।२०
ब्रह्मविष्णवीशसहितं दशमं शिवसंस्थितम् । कृष्णमेकादशं वृत्तं यमयुक्तं युधिष्ठिर ।।२१
छात्रं द्वादशमं शुक्लं ध्वजदीर्घं[1] त्रयोदशम् । सकुशं पुष्पस्रग्दामघण्टाचामरर्चाचितम् ।।२२
बन्धयित्वा चन्द्रपादैं रज्जुभिः स्थूणिकां नरैः । शनैस्तथापयेत्पार्थ हुत्वा वैश्वानरं द्विजान् ।।२३
दक्षिणाभिश्च सम्पूज्य गुडपायसपूपकैः । कुर्यान्महोत्सवं राजा दिनानि नव सप्त वा ।।२४
प्रेक्षणीयैर्महादानैर्नटैर्गीतैः कथानकैः ; चक्रदोलाधरोत्सर्गैः कर्कटैर्मल्लयोधनैः ।।२५
वेश्याङ्गनानरैर्हृष्टैर्द्यूतक्रीडामहोत्सवैः । कर्पूरवस्त्रदानैश्च सम्मानैश्च परस्परम् ।।२६
रात्रौ प्रजागरः कार्यो रक्षणाय प्रयत्नतः । काकोलूककपोतानां येन पातो न विद्यते ।।२७
काकाद्भवति दुर्भिक्षं कौशिकान्म्रियते नृपः । कपोताच्च प्रजानाशस्ततो रक्षेत्सदोद्यतः ।।२८
शैथिल्याद्गिरिभिच्छक्रः प्रमादान्नीयते यदि । तस्मिन्देशे समुत्थानमिन्द्रकेतोर्न कारयेत् ।।२९
यावत्तु नीयते स्थानादन्यस्मादैन्द्रतो ध्वजः ।।३०
इन्द्रध्वजसमुत्थानं प्रमादान्न कृतं यदि । ततो द्वादशमे वर्षे कर्तव्यं नान्तरे पुनः ।।३१
कथञ्चिद्यदि विघ्नः स्याद्विपाकं मे निबोध वै । छत्रभङ्गे छत्रभङ्गो ध्वजे राष्ट्रं विनश्यति ।।३२

अष्टकोण, धातु से (रहित) चित्र विचित्र होने वाला पाँचवां पिटक कहा गया है। उसी भाँति कृष्ण कर्णिका से सुशोभित, गोलाकार एवं बूंदों से विभूषित छठा, शुक्लवर्ण, अष्टकोण, तथा विद्याधरों से युक्त सातवाँ, वृत्त (गोलाकार) वाला सूत्र से आवेष्टित आठवाँ, नवग्रह, और चण्डिका देवी समेत दीप पिटक नवाँ कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर समेत शिव (कल्याण) सम्पन्न दशवाँ, कृष्ण वर्ण, गोलाकार, यमराज युक्त ग्यारहवाँ पिटक होता है। युधिष्ठिर ! श्वेत छत्र-पिटक बारहवाँ, लम्बे ध्वज का तेरहवाँ पिटक बताया गया है। कुश, पुष्प, माला रस्सी, घंटा, चामर समेत उसे भूषित कर चन्द्रकिरण के समान श्वेत रस्सियों से आबद्ध उस स्थूणिका को हवन गुडमिश्रित खीर पूआ के भोजन और दक्षिणा से ब्राह्मणों को सुसम्मानित करके धीरे धीरे उठाये। पार्थ ! राजा को नव या सात दिन में इस महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए, जो दर्शनीय महादान, नट वर्तन, गीत, कथाओं, चक्र और ढोला (क्रीडा यंत्र) से खेल करने वाले मल्ल योधाओं, वेश्याओं, द्यूत क्रीडा (जूआ) खेलने वाले हर्षमग्न **मनुष्यों से सुसमृद्ध किया जाता है ओर आपस में लो कपूर दान एवं दस्त्र दान से सुसम्मानित होते रहते हैं। उसकी रक्षा के निमित्त रात्रि में सप्रयत्न जागरण करना चाहिए। जिससे कौवे, उल्लू, और कबूतरों के पतन उस पर न हो सके। क्योंकि कौवे के पतन से राष्ट्र में दुर्भिक्ष, उलूक से राजमरण एवं कपोत पतन से प्रजानाश होता है।१६-२८। अतः उसके रक्षणार्थ सदा उद्यत रहना परमावश्यक है जहाँ प्रमाद अथवा शिथिलता वश वह टिक न सके वैसे स्थान उस इन्द्रध्वज का आरोपण करना ही नहीं चाहिए। जब तक किसी दूसरे स्थान से कोई अन्य इन्द्र ध्वज न आ जाय तब तक वहाँ उसे ही स्थिर रखना चाहिए। और यदि प्रमादवश उसका संचालन न हो सके तो पूरे बारह वर्ष में उसका संचालन करे बीच में नहीं। किसी प्रकार यदि विघ्न हो ही जाये तो उसका परिणाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! छत्र भंग होने**

---

१. वज्रदीर्घं त्रयोदशम् ।

मस्तके मन्त्रविच्छेदो मुखे मुख्यबलक्षयः । बाहुदण्डे वदेत्पीडां जठरे जाठरं भयम् ॥३३
वरत्रायां मित्रनाशः स्थूणिकासु पदातयः । क्षयं गच्छन्ति राजेन्द्र तस्माद्यत्नात्पुरन्दरम् ॥३४
उत्थाप्य पूजयेद्भक्त्या दिवारात्रमतन्द्रितः । प्रमादात्पतिते भग्ने गते चेन्द्रध्वज द्विधा ॥३५
सौवर्णं रौप्यकं कृत्वा पूर्णमुत्थापयेद् ध्वजम् । शान्तिकं पौष्टिकं कृत्वा द्विजेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥३६
त्रपुसैः कर्कटीभिश्च नालिकेरैः कपित्थकैः । बीजपूरैः मनारङ्गैर्भक्ष्यान्नैर्विविधैस्तथा[1] ॥३७
नैवेद्यादिभिरभ्यर्च्य मन्त्रेणानेन तोषयेत् । वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ॥
क्षेमार्थं सर्वलोकस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥३८
श्रवणाद्भरणीं यावत्पूजां कृत्वा विधानतः । रात्रौ विसर्जयेच्छक्रं मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥३९
सार्द्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरशतक्रतो । उपहारं गृहीत्वैनं महेन्द्रध्वज गम्यताम् ॥४०
एवं यः कुरुते यात्रामिन्द्रकेतोर्युधिष्ठिर । पर्जन्यः कामवर्षी स्यात्तस्मिन् राष्ट्रे न संशयः ॥४१
ईतयो न प्रवर्तन्ते तस्मान्मृत्युकृतं भयम् । विजित्य शत्रून् समरे वशे कृत्वामहीतलम् ॥
भुक्त्वाराज्यं चिरन्कालमिन्द्रलोकेमहीयते ॥४२

राष्ट्रे पुरे च नगरे सुरराजकेतोर्यत्रोत्सवो नृपजनैः क्रियते समेत्य ।
दुष्टोपसर्गजनितं परचक्रजं वा तस्मिन्भयं भवति पार्थ न किञ्चिदेव ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुरण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महेन्द्रध्वजमहोत्सववर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३९

पर छत्रभंग, ध्वज के भंग होने पर राष्ट्र विनाश, मस्तक पर विघ्न होने से मंत्री (अमात्य) नाश, मुख से प्रमुख सेना का नाश, बाहुदण्ड से पीड़ा, उदर से मन्दाग्नि, वस्त्र से मित्रनाश, स्थूणिका से पदाति (पैदल) सिपाही की मृत्यु होती है। अतः उसकी रक्षा अत्यावश्यक है। राजेन्द्र ! उसे उठाकर स्थापित होने पर भक्ति पूर्वक उसकी दिन रात पूजन करना चाहिए। प्रमादवश उसके गिर जाने और दो टुकड़े होने पर सुवर्ण या चाँदी से ऊपर भग्न अंश की पूर्ति कर पूर्ण रूप में उठाना चाहिए। अनन्तर शान्ति एवं पौष्टिक कर्म सम्पन्न कर ब्राह्मणों को अन्न दान करे और ककड़ी, नारियल, कैथा विजौरा नीबू, नारंगी, अनेक भाँति के भक्ष्यपान्न तथा नैवेद्य आदि से अर्चना करने के उपरांत करबद्ध प्रार्थना करे—वज्र हाथ में लिए असुरों के हन्ता एवं बहु नेत्र वाले पुरन्दर ! समस्त लोकों के कल्याणार्थ यह पूजा स्वीकार करने की कृपा करें। पाण्डव ! इस प्रकार श्रवण नक्षत्र से भरणी नक्षत्र तक अर्चना करने के उपरांत रात्रि में निम्नलिखित मंत्रों के उच्चारण करते हुए विसर्जित करे—सुर असुर गणों के साथ स्थित पुरन्दर एवं शतक्रतो ! और महेन्द्र ध्वज ! मेरे इस उपहार को सादर ग्रहण करते हुए आप गमन करें। युधिष्ठिर! इस प्रकार इन्द्रध्वज की यात्रा करने पर मेघ समयानुसार वर्षा करते हैं इसमें संशय नहीं और मृत्यु भय के अतिरिक्त किसी प्रकार की ईति भय नहीं होता। समस्त शत्रुओं पर विजय और पूरे भूमण्डल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर चिरकाल तक राज्योपभोग करने के उपरांत उसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। पार्थ ! इस प्रकार राष्ट्र, पुर, तथा नगरों में राजाओं आदि द्वारा देवराज इन्द्र के ध्वज महोत्सव सुसम्पन्न होने या दुष्टों एवं परराष्ट्रों का उन्हें कुछ भी भय नहीं होता है।२९-४३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवाद में
महेन्द्रध्वज महोत्सव वर्णन नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।१३९।

---

१. पक्वान्नैः । १. कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रं पदं नृप ।

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दीपालिकोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा वामनरूपेण याचयित्वा धरामिमाम् । बलियज्ञे हरिः सर्वं क्रान्तवान्विक्रमैस्त्रिभिः ।।१
इन्द्राय दत्तवान्राज्यं बलिं पातालवासिनम् । कृत्वा[1] दैत्यपतेर्वासमहोरात्रं पुनर्नृप ।।२
एकमेव हि भोगार्थं बलिराज्येतिचिह्नितम् । सरहस्यं तदेतत्ते कथयामि नरोत्तम ।।३
कार्त्तिके कृष्णपक्षस्य पञ्चदश्यां निशागमे । यथेष्टचेष्टा दैत्यानां राज्यं तेषां महीतले ।।४

युधिष्ठिर उवाच

निःशेषेण हृषीकेश कौमुदीं ब्रूहि मे प्रभो । किमर्थं दीयते दानं तस्यां का देवता भवेत् ।।५
किंस्वित्तस्यै भवेद्देयं केभ्यो देयं जनार्दन । प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीडा कात्र प्रकीर्तिता ।।६

श्रीकृष्ण उवाच

कार्त्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां दिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ।।७
अपामार्गपल्लवान्वा भ्रामयेन्मस्तकोपरि । सीतालोष्टसमायुक्तसकंटकदलान्वितान् ।।८

अध्याय १४०

दीपावली-उत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! पहले समय भगवान् विष्णु ने वामन रूप धारण कर राजा बलि की यज्ञ में उनसे याचना करके अपने तीन पग द्वारा इस समस्त धरामण्डल को अपने अधीन कर लिया था । पश्चात् (स्वर्ग का) राज्य इन्द्र को सौंपकर दैत्य पति राजा बलि को सदैव के लिए पातालवासी बनाया । नरोत्तम बलि राज्य का चिह्नस्वरूप केवल एक ही वस्तु दैत्यों के उपभोगार्थ उन्होंने उन्हें प्रदान किया, जिसे सरहस्य मैं तुम्हें बता रहा हूँ—कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या की रात्रि में इस भूतल में दैत्यों का यथेच्छ राज्य होता है उसमें अपनी इच्छाओं को भलीभाँति पूरी करते हैं ।१-४

युधिष्ठिर बोले—प्रभो, हृषीकेश ! उस कौमुदी (पृथ्वी को आनन्द देने वाली) को सविस्तार बताने की कृपा करें—जनार्दन ! उस दिन किस लिए दान दिया जाता है और उसमें प्रधान देव कौन है तथा क्या दिया जाता है और किसके लिए इसमें अत्यन्त हर्ष होने का क्या कारण है, और लोग कौन सी क्रीडा करते हैं ।५-६

श्रीकृष्ण बोले—कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रातः काल नरक भीरु प्राणियों को अवश्य स्नान करना चाहिए । पश्चात् अपामार्ग (चिचिडी) या पल्लव मस्तक के ऊपर भ्रमण करायें, जो हल से जोते हुए खेत की मिट्टी और कंटक दल से युक्त हो । उस समय यह कहना रहे कि—अपामार्ग !

---

१. कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रं पदं नृप ।

हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणं पुनः पुनः । आपदं किल्बिषं चापि ममापहर सर्वशः ॥
अपामार्ग नमस्तेस्तु शरीरं मम शोधय ॥९

(इत्यपामार्गभ्रमण मन्त्रः)

ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥१०
नरकाय प्रदातव्यो दीपः सम्पूज्य देवताः । ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान् ॥११
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च । कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥१२
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च । सिद्धार्हबुद्धचामुण्डाभैरवायतनेषु च ॥
मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥१३
एवं प्रभातसमयेऽमावास्यायां नराधिप । स्नात्वा देवान्पितृन्भक्त्या सम्पूज्याथ प्रणम्य च ॥१४
कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः । भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान्भोजयित्वा क्षमाप्य च ॥१५
ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः । अद्य राज्यं बलेर्लोका यथेष्टं मोद्यतामिति ॥१६
लोकश्चापि परे हृष्येत्सुधाधवलिताजिरे । वृक्षचन्दनमालाढ्यैश्चर्चिते च गृहे गृहे ॥१७
द्यूतपानरतोहृष्टनरनारीमनोहरे । नृत्यवादित्रसंघुष्टे सम्प्रज्वलितदीपके ॥१८
अन्योन्यप्रीतिसंहृष्टदत्तलाभेन वै जने । ताम्बूलहृष्टे वदने कुङ्कुमक्षोदर्चाचते ॥१९
दुकूलपट्टनेपथ्ये स्वर्णमाणिक्यभूषिते । अद्भुतोद्भटभृङ्गारप्रदर्शितकुतूहले ॥२०

(मस्तक पर) बार बार भ्रमण कराने के नाते मेरे पापों के अपहरण करो । यह अपामार्ग भ्रमण मंत्र है । अपामार्ग ! मेरे समस्त पाप और आपदाओं के अपहरण पूर्वक मेरी समस्त शरीर का संशोधन करो, मैं तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ ।७-९। अनन्तर धर्मराज के नामोच्चारण पूर्वक उन्हें तर्पण द्वारा तृप्त करे—यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल और समस्त प्राणियों के क्षय करनेवाले के प्रसन्नार्थ मैं यह तर्पण कर रहा हूँ । देव-पूजन के उपरांत प्रदोष के समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के मन्दिरों मठों और व्यापारालय (दूकानों) चैत्य स्थानों, सभास्थलों, नदीतट, खाई, उपवन, बावली, नालियों, निष्कुट, तथा सिद्ध बुद्ध, चामुण्डा और भैरव के मन्दिरों तथा अश्व और हाथियों के रहने के स्थान में नरक के निमित्त मनोरम दीप दान करना चाहिए ।१०-१४। नराधिप ! अमावस्या के दिन प्रातः काल स्नान और देव पितृतर्पण पूजन करके भक्तिपूर्वक पार्वण श्राद्ध सुसम्पन्न करे । दही, दूध, घी आदि के बने हुए अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य द्वारा ब्राह्मणों को सुतृप्त करते हुए क्षमा प्रार्थना के उपरांत अपराह्ण समय में राजा को अपने नगर में 'घोषणा' करानी (ढिंढोरा पिटवानी) चाहिए 'आज बलिराज्य का दिन है अतः सभी लोग यथेच्छ आनन्द मनाओ ।१५-१६। इसे सुनकर नगर निवासी भी हर्ष मग्न होकर अपने अपने घरों को वृक्ष (गमलों) चन्दन और मालाओं द्वारा सुसज्जित करते हुए सुधाधवलित गृहाङ्गणों में सभी स्त्री पुरुष द्यूत क्रीडा (जूआ का खेल) नृत्य, गान, माङ्गलिक ध्वनियाँ और अनेक दीपों से विभूषित करें, अत्यन्त प्रसन्नता पूर्ण आपस में एक दूसरे को प्रेमोपहार का आदान प्रदान, ताम्बूल से मुख और कुंकुम से शरीर चर्चित करके सुवर्ण मणियों से भूषित एवं उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित नाट्यशाला में आश्चर्य चकित करने वाले

युवतीजनसंकीर्णवस्त्रोज्ज्वलविहारिणी । दीपमालाकुले रम्ये विध्वस्तध्वान्तसञ्चये ॥
प्रदोषे दोषरहिते शस्तदोषागमे शुभे ॥२१
शशिपूर्णमुखाभिश्च कन्याभिः क्षिप्ततण्डुलम् । नीराजनं प्रकर्तव्यं वृक्षशाखासु दीपकैः ॥२२
भ्राम्यमाणो नतो मूर्ध्नि मनुजानां जनाधिपः । वृक्षशाखान्तदीपानां निरस्ताद्दर्शनाद्व्रजेत् ॥
नीराजनं तु तेनेह प्रोच्यते विजयप्रदम् ॥२३
तस्माज्जनेन कर्तव्यं रक्षोदोषभयापहम् । यात्राविहारसञ्चारे जयजीवेति वादिना ॥२४
क्षुद्रोपसर्गरहिते राजचौरभयोज्झिते । मित्रस्वजनसम्बन्धिसुहृत्प्रेमानुरंजिते ॥२५
ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् । अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैःशनैः ॥२६
महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः । कृतोशोभां पुरीं पश्येत्कृतरक्षां स्वकैर्नरैः ॥२७
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यमृद्धिं चैवात्मनः शुभाम्[1] । बलिराज्यप्रमोदं च ततः स्वगृहमाव्रजेत् ॥२८
एवं गते निशार्धे तु जने निद्रार्द्रलोचने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिंडिमवादनैः ॥
निष्क्राम्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहांगणात् ॥२९
ततः प्रबुद्धे सकले जने जातमहोत्सवे । माल्यदीपकहस्ते च स्नेहनिर्भरलोचने ॥३०
वेश्या विलासिनी सार्धं स्वस्ति मङ्गलकारिणी । गृहाद्गृहं व्रजन्ती च पादाभ्यङ्गप्रदायिनी ॥३१
पिष्टकोद्वर्तनपरे गुरुशुश्रूषणाकुले । द्विजाभिवादनपरे सुखराज्याभिवीक्षणे ॥३२

शृंगार रस के प्रदर्शन करें। उज्ज्वल वस्त्रों आदि से विभूषित अनेक युवतियों द्वारा अनेक रम्यदीपों सुप्रकाशित उस स्थान में निशीथ (अर्द्धरात्रि) के समय पूर्ण चन्द्र मुखी कन्याओं द्वारा चावल फेंक कर वृक्ष शाखाओं में सुसज्जित दीपों द्वारा नीराजन करना चाहिए।१७-२४। उस समय राजा को नत मस्तक होकर उसी नीराजन को स्वीकार करते हुए उस दीप वृक्ष शाखा दीपों के अस्त समय का भी दर्शन करके ही जाना चाहिए। इसीलिए यह नीराजन कर्म विजयप्रद बताया गया है, राक्षस दोष आदि से सुरक्षा होने के लिए मनुष्यों को यह नीराजन कर्म अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए—उस आधी रात के समय, जब कि विहार यात्रा में लोगों में 'जय जीव' के नारे उठते हैं, क्षुद्र बाधाएँ नहीं होती हैं, राजा और चोर का भय नहीं रहता मित्र, स्वजन, सम्बन्धी, एवं सुहृद्गण प्रेमालाप में मग्न रहते हैं, नगर दृश्य देखने की इच्छा से राजा को अकेले पैदल निकलना चाहिए। धीरे धीरे पैदल चलते हुए भेरी मृदङ्गों आदि वाद्यों के ध्वनि कोलाहल समेत प्रज्वलित दीपों के आकाश में अपने सेवकों द्वारा सुसज्जित नगर का दृश्य देखते हुए आश्चर्य चकित करने वाली नगर की शोभा के साथ अपनी समृद्धि का भी दर्शन और बलि राज्य का प्रमोद प्राप्त कर तब कहीं उन्हें अपने महल जाना चाहिए। इस प्रकार आधी रात के समय जन समूहों के गाढ निद्रा में मग्न होने पर नगर निवासिनी स्त्रियाँ सूप का डिंडिभ वादन करती हुई अपने घरों से प्राङ्गणों से अलक्ष्मी बाहर निकालती हैं।२५-२९। पश्चात् लोगों के प्रबुद्ध होने पर उस महोत्सव के नाते माला, दीपक हाथ में लिए स्नेह भरे नेत्रों से देखती हुई वेश्या विलासिनी स्त्रियों के साथ स्वस्तिक मङ्गल कारिणी स्त्रियाँ एक घर से दूसरे घर जाती हैं और पादाभ्यग महेश्वर आदि प्रदान करती हैं, उबटन लगाती हैं, गुरुजनों की शुश्रुषा करती हैं। उस सुखीराज्य के महोत्सव दर्शन में ब्राह्मण गण अभिवादन

१. प्रभाम्।

सुवासिनीभ्यो दाने च दीयमाने यदृच्छया । यथाप्रभातसमये राजार्हमानयेज्जनम् ॥३३
सद्भावेनैव सन्तोष्या देवाः सत्पुरूषा द्विजाः । इतरे चान्नपानेन वाक्यप्रदानेन पण्डिताः ॥३४
वस्त्रैस्ताम्बूलदानैश्च पुष्पकर्पूरकुंकुमैः । भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरविलासिनीः ॥३५
ग्रामैर्विषयदानैश्च सामन्तनृपतीन्धनैः । पदातीनङ्गसंलग्नान्ग्रैवेयकटकैः स्वकान् ॥३६
स्वयं राजाऽतोषयेत्स जनान्भृत्यान्पृथक्पृथक् । यथार्हं तोषयित्वा तु ततो मल्लनटान्भटान् ॥३७
वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह । गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीन्समलंकृतान् ॥३८
मञ्चारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् । क्रुद्धापयेदानयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः ॥३९
दिष्टचा कार्यं पयोज्योतिरुक्तिप्रत्युक्तिका वदेत् । ततोपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत ॥४०
मार्गपालीं प्रबध्नयात्तुंगस्तंभेऽथ पादपे । कुशकाशमयीं दिव्यां सम्भवे बहुभिर्वृताम् ॥४१
पूजयित्वा गजान्वाजीन्सार्धे यामत्रये गते । गावो वृषाः समहिषा मण्डिता घण्टिकोत्कटाः ॥४२
कृते होमे द्विजेन्द्रैस्तु गृह्णीयान्मार्गपालिकाम्[1] । राष्ट्रभोज्येन धाराभिः सहस्रेण शतेन वा ॥४३
स्वशक्त्यपेक्षया वापि गृह्णीयाद्दामभोजनैः । मातुः कुलं पितृकुलमात्मानं सहबन्धुभिः ॥४४
सन्तारयेत्स सकलं मार्गपालीं ददाति यः । नीराजनं च तत्रैव कार्यं राज्ञे जयप्रदम् ॥४५
मार्गपालीतलेनेत्थं हया गावो गजा वृषाः । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ॥४६

(प्रणाम आशीर्वाद) में मग्न रहते हैं, सुवासिनी स्त्रियों को यथेच्छ दान से सुसम्मानित किया जाता है। पुनः प्रातःकाल होने पर राजा पूज्य जनों की पूजा करता है तथा देवगण, सत्पुरुष ब्राह्मण आदि गण सद्भावना समेत सन्तुष्ट किये जाते हैं। उसी प्रकार इतर जनों को अन्न पान द्वारा, वाक्यदान से पण्डित वृन्द, वस्त्र, ताम्बूल, पुष्प, कपूर, कुंकुम, उत्तमोत्तम भक्ष्य भोज्य द्वारा अन्तःपुर की विलासिनी स्त्रियाँ सुसम्मानित की जाती है। ग्राम आदि पुरस्कार रूप में प्रदान कर सामन्तों, ताल्लुकदारों, धनों एवं अपने अंगो में पहने हुए हार अथवा अङ्गद (पट्टा) आदि आभूषणों द्वारा पैदल सैनिकों को सन्तुष्ट करके राजा अपने जन परिजन को पृथक्-पृथक् सम्मानित करें। अनन्तर मल्ल, नट, भट्ट, तथा युद्ध के लिए वृष (बैल) महिष (भैंस), घोड़े और हाथी सुसज्जित पदाति (पैदल वालों का) वृन्द को सम्मानित करके राजा उस मंच (ऊँचे सिंहासन) पर बैठे हुए नट, नर्तक एवं चारणों के गुणगान सुनकर उन्हें पुरस्कार से प्रसन्न करता है। युद्ध करने के नाते अत्यन्त क्रुद्ध उन भैसों बैलों के क्रोध शान्त करते हुए 'सौभाग्य से ही यह ऐसा सुसम्पन्न हो सका है, इस कथन की पुष्टि करे। भारत! पश्चात् अपराह्ण समयमें पूर्व दिशा की ओर ऊचे स्तम्भ (खम्भे) या किसी वृक्ष में मार्ग पाली बाँधे, जो कुश काश की बनी, दिव्य एवं कई बार आवृत (कई लट) की रहती है। तीसरे पहर हाथी घोड़ों की पूजा करके गौओं, बैलों और महिषों को घण्टियों आदि से अलंकृत करे।३०-४२। अनन्तर राष्ट्रभोज्य, सहस्रधारा अथवा शतधारा तथा यथाशक्ति नाम भोजन द्वारा उसका ग्रहण करे। हवन करने के उपरांत ब्राह्मणों को भी उसका ग्रहण करना आवश्य रहता है क्योंकि मार्गपाली का प्रदान करने वाला मातृकुल पितृकुल एवं बन्धुओं समेत अपना उद्धार करता है। उसी स्थान पर जयप्रद नीराजन राजा के लिए अर्पित कर मार्गपाली के नीचे घोड़े, गौएँ, हांथी बैल

---

१. प्रयत्नात्।

मार्गपालीं समुल्लंघ्य नीरुजः स्यात्सुखी सदा । कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ॥४७
पूजां कुर्यान्नरः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते । बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ॥४८
सर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावल्या सहासितम् । कूष्माण्डबाणजङ्घोरुमुरदानवसम्वृतम् ॥४९
सम्पूर्णहृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम् । द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयम् ॥५०
गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् । भ्रातृमन्त्रिजनैः सार्द्धं सन्तुष्टो बन्दिभिः स्तुतः ॥५१
कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कह्लारै रक्तकोत्पलैः । गन्धधूपान्ननैवेद्यैरक्षतैर्गुडपूपकैः ॥५२
मद्यमांससुरालेह्यदीपवर्त्युपहारकैः । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र समन्त्री सपुरोहितः ॥५३
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो । भविष्येन्द्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥५४
एवं पूजां नृपः कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः । कारयेत्प्रेक्षणीयादि नटक्षत्रकथानकैः ॥५५
लोकश्चापि गृहस्यान्ते शय्यायां शुक्लतण्डुलैः । संस्थाप्य बलिराजं फलैः पुष्पैश्च पूजयेत् ॥५६
बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन । यानि तान्यक्षयाण्याहुर्मयैवं सम्प्रदर्शितम् ॥५७
यदस्यां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णोः प्रीतिकरं परम् ॥५८
विष्णुना वसुधा लब्धा प्रीतेन बलये पुनः । उपकारकरो दत्तश्चासुराणां महोत्सवः ॥५९
ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रवृत्ता कौमुदी पुनः । सर्वोपद्रवविद्रावि सर्वविघ्नविनाशिनी ॥६०
लोकशोकहरी काम्या धनपुष्टिसुखावहा । कुशब्देन मही ज्ञेया मुदीहर्षे ततः परम् ॥६१

राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, तथा शूद्र, आदि सभी व्यक्ति सदैव नीरोग सुखी रहने के निमित्त उसका उल्लंघन करें। इस प्रकार उस उत्सव के दिन रात्रि के कार्यक्रम सुसम्पन्न कर दैत्यदम्पत्ति बलि की भूमि में साक्षात् प्रतिमा बनाकर पूजा करें। मण्डलाकार भूमि में सर्वाभरणभूषित विध्यावलि समेत दैत्येन्द्र बलि की प्रतिमा पाँच रङ्गों से बनाकर जो कूष्माण्ड, बाण, अस्त्रों, जंघा, उरू, अंगों एवं मुर दानव युक्त, प्रसन्न मुख, किरीट कुण्डल से अलंकृत और दो भुजाओं को धारण किये स्वयं राजा द्वारा सुरचित रहता है, घर के मध्य विशाल गृह में बन्धुओं एवं मन्त्रियों समेत अर्चा करे। बन्दी गण उसके गुणगान करें। कमलकुमुद (कोटयाँ) पुष्प, रक्त कमल की कोंढ़ी, गन्ध, धूप, अन्न, नैवेद्य, अक्षत, गुड का पूआ, मद्य मांस, सुरा, चटनी आदि दीपवर्ती उपहारों से मंत्री पुरोहित समेत निम्नलिखित मंत्र द्वारा सन्तुष्ट करे। विरोचन पुत्र, प्रभो बलिराज, तुम्हें नमस्कार है, भविष्य इन्द्र के भी शत्रो ! मेरी यह पूजा स्वीकार करें। इस प्रकार पूजा करने वाले रात्रि में जागरण करते हुए नट नर्तक, वीर गाथाओं के सजग दृश्य उपस्थित करे।४३-५५। इसी भाँति सभी लोगों को चाहिए अपने घर शय्या के ऊपर शुक्ल तण्डुल पर बलिराज की स्थापना पूर्वक फल पुष्प आदि द्वारा अर्चना करे। कुरुनन्दन ! बलि के उद्देश्य से जो अक्षय दान दिये जाते है मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया। क्योंकि इस अमावस्या के दिन थोडा बहुत जो कुछ दान किया जाता है वह अक्षय एवं विष्णु के लिए अत्यन्त प्रिय होता है। भगवान् विष्णु ने बलि से पृथ्वी लेकर पुनः सप्रेम उनके उपकारार्थ असुरों को यह महोत्सव प्रदान किया है। राजेन्द्र ! उसी समय से यह कौमुदी महोत्सव लोक में अवतरित हुआ है। जो समस्त उपद्रवों के विनाशपूर्वक समस्त विघ्नों के शमन, लोक का शोकापहरण करने वाली कामनाओं की पूर्ति एवं धन पुष्टि समेत अत्यन्त सुखावह है। (कौमुदी) कु शब्द का अर्थ

धातुज्ञैर्नैगमज्ञैश्च तेनैषा कौमुदी स्मृता । कौ मोदन्ते जना यस्यां नानाभावैः परस्परा: ॥६२
हृष्टास्तुष्टाः सुखायत्तास्तेनैषा कौमुदी स्मृता । कुमुदानि बलेर्यस्माद्दीयन्तेऽस्यां युधिष्ठिर ॥६३
अर्थार्थे पार्थ भूमौ च तेनैषा कौमुदी स्मृता । एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे विशाम्पते ॥६४
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले । यः करोति नृपो राष्ट्रे तस्य व्याधिभयं कुतः ॥६५
कुत ईतिभयं तत्र नास्ति मृत्युकृतं भयम् । सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सर्वसम्पद उत्तमाः ॥६६
नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः । कौमुदीकरणाद्राजन्भवतीह महीतले ॥६७
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर । हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ॥६८
रुदिते रोदिति वर्षं हृष्टो वर्षं प्रहृष्यति । भुक्तौ भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थः स्वस्थो भवेदिति ॥६९
तस्मात्प्रहृष्टैस्तुष्टैश्च कर्तव्या कौमुदी नरैः । वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः पैत्री युधिष्ठिर ॥७०
उपशमितमेघनादं प्रज्वलितदशाननं रमितरामम् । रामायणमिव सुभगं दीपदिनं हरतु वो दुरितम् ॥७१
कूष्माण्डादानरम्यं कुवलयखण्डैश्च धातुकाभद्रम् । शरदिव हरिगतनिद्रं दीपदिनं हरतु वो दुरितम् ॥७२

पृथ्वी और मुद् शब्द का अर्थ हर्ष है अतः धातु प्रत्यय (शब्दशास्त्र) के वेत्ताओं ने इसे कौमुदी कहा है। पृथ्वी मण्डल में जिस तिथि में जन वृन्द परस्पर अनेक भावों द्वारा अत्यन्त हर्षित, हृष्ट, तुष्ट एवं अत्यन्त सुखी होता है उसके नाते भी इसे कौमुदी कहा गया है। युधिष्ठिर ! इस दिन जिस कारण बलि के लिए भूमि में हर्षप्रद बलि प्रदान किया जाता है। इससे भी इसे कौमुदी कहना सर्वथा उपयुक्त है। पार्थ, विशांपते ! इस प्रकार प्रतिवर्ष इस भूमण्डल में एक आरोहण दानवराज बलि को जो बलि प्रदान आदि किया जाता है, वह एक (उच्च भावों का) आदर्श होता है। इसे सुसम्पन्न करने वाले राजा के राष्ट्र में व्याधिभय और ईति भय कहाँ सम्भव हो सकता है जब कि उसमें मृत्यु का भी भय नहीं होता है। अपितु राष्ट्र में सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, उत्तम समस्त सम्पदाएँ वर्तमान रहती हैं, प्रजाएँ समस्त उपद्रवों से रहित होकर नीरोग रहती हैं। राजन् ! इस महीतल में इस कौमुदी महोत्सव के सुसम्पन्न होने के ही परिणाम स्वरूप ये फल प्राप्त होते हैं। युधिष्ठिर ! इस अमावस्या के दिन जो हर्ष दैत्य आदि जिस भाव से उसे सुसम्पन्न करता है, उसका वर्ष भी उसी भाँति व्यतीत होता है—उस दिन रुदन करने पर रुदन करते ही वर्ष बीतता है और हर्षित होने पर हर्षपूर्ण अच्छे भोजन से भोक्ता स्वरूप होने से स्वस्थ होता है इसलिए मनुष्यों को अत्यन्त हर्षित और पूर्ण सन्तुष्ट होकर इस कौमुदी महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए। और वैष्णवों एवं दानवों को भी यह पैतृक तिथि है अर्थात् इस दिन पिता के उद्देश्य से उन्हें इस महोत्सव को पूरा करना चाहिए। युधिष्ठिर ! उस रामायण की भाँति, जिसमें मेघनाद ऐसे योद्धा का शान्त होना और रावण ऐसे राजा का अपने आपे (वश) में न रहकर प्रज्वलित होना वर्णित है तथा राम निरन्तर रमित हैं, यह सुभग दीपावली दिन तुम्हारे दुरितों का शमन करे।५६-७१। कूष्माण्ड दान द्वारा रम्य, कुवलय (कमल) के खंडों एवं धातुओं से भूषित शरद की भाँति जिसमें विष्णु शयन से प्रबुद्ध होते हैं, यह दीपावली दिन तुम्हारे दुरितों के शमन करे। पार्थिव ! इस प्रकार इस दीपोत्सव के दिन समस्त जनों को प्रमुदित करने वाली

दीपोत्सवे जनितसर्वजनप्रमोदां कुर्वन्ति ये सुमनसो बलिराजपूजाम् ।
दानोपभोगसुखवृद्धिशताकुलानां हर्षेण वर्षमिह पार्थिव याति तेषाम् ।।७३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दीपालिकोत्सववर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४०

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहलक्षहोमविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व महाभाग सर्वज्ञो ह्यसि यादव । सर्वकामाप्तये कृत्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

श्री कामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् । दृष्टयायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः ।।२
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्यग्रन्थविस्तरम् । ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिभाषिताम् ।।३
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । ग्रहान्ग्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत् ।।४
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः । प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम् ।।५
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः । अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः ।।६

इस बलिराज की पूजा को जो व्यक्ति सुसम्पन्न करते हैं, दान, उपभोग, एवं सैकड़ों भाँति की सुखसमृद्धि से पूर्ण उन कुलीनों का वह वर्ष अत्यन्त हर्षपूर्ण व्यतीत होता है ।७२-७३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
दीपावली उत्सव वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४०।

अध्याय १४१

नवग्रहलक्षहोम विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—महाभाग, यादव ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः समस्त कामनाओं की सफलता के लिए शांतिक एवं पौष्टिक कर्म किस प्रकार सुसम्पन्न किये जाते हैं, बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण बोले—लक्ष्मी प्राप्ति, शान्ति कामना, एवं आयु और पुष्टि के निमित्त ग्रहयज्ञ सुसम्पन्न करना चाहिए। सौभाग्यवश (उपरोक्त कामनाओं के सफलतार्थ) उसका अभिचार बार-बार करता रहे इसीलिए समस्त शास्त्रों के अनुक्रम से मैं ग्रन्थ का विस्तार न कर केवल संक्षेप रूप में ग्रहशांति विधान बता रहा हूँ, जो पुराणों एवं श्रुतियों में सविस्तार वर्णित है । ब्राह्मण द्वारा बताये हुए किसी पुण्य दिन ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन, ग्रहों और ग्रहों के अधिदेवताओं की स्थापना अर्चा के उपरांत हवन कार्य सुसम्पन्न कराना चाहिए। पुराण एवं श्रुति के वेत्ताओं ने ग्रह यज्ञ का विधान तीन प्रकार से बताया गया है—दशसहस्र संख्या की आहुति वाला प्रथम, लक्ष संख्या की आहुति द्वारा और समस्त कामनाओं को सफल करने एवं कोटि संख्या की आहुति वाला तीसरा विधान कहा गया है । दश सहस्र संख्या की आहुति वाला

तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम् । गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ॥७
कुर्याद्विधानतो वेदिं वितस्त्युच्छ्रयसंयुताम् । संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदकप्लवम् ॥८
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् । देवानां तत्र संस्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका ॥९
सूर्यः सोमो महीपुत्रो बुधो जीवः सितोऽर्कजः । राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ॥१०
ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णजावुभौ । रजतादायसाच्चैव ग्रहाः कार्याः क्रमादमी ॥११
मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरुं विद्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ॥१२
पूर्वेण भार्गवं विद्यात्सोमं दक्षिणपूर्वके । पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः ॥१३
राजामात्यान्महाराज तण्डुलैः स्थापयेदथ । भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा ॥१४
स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् । ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् ॥१५
शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च । केतोस्तु चित्रगुप्तं तु सर्वेषामेव देवताः ॥१६
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रः सौवर्णदेवताः । प्रजापतिश्च सूर्यश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः ॥१७
विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च । सावित्रीं च तथा लक्ष्मीमुमां च सहभर्तृकाम् ॥१८
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ । संस्मरेद्रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम् ॥१९
सोमशुक्रौ यथाश्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ । मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगुणं विदुः ॥२०
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च । गन्धाश्च बलयेश्चैव धूपा गुग्गुलपूर्वकाः ॥२१
गुडौदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम् । अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम् ॥२२

नवग्रह यज्ञ जो बताया गया है, मैं उसी का श्रुति पुराण भाषित विधान बता रहा हूँ, सुनो ! कुण्ड के उत्तर पूर्व (ईशान कोण) में एक हाथ की विस्तृत और एक बीते की ऊँची वेदी का सविधान निर्माण करके जो चौकोर और जल से अभिषिक्त हो, अग्नि प्रणयन करके देवों का आवाहन करें । बत्तीस देवों—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु आदि लोक हितैषी ग्रहों की स्थापना करते समय क्रमशः ताँबे, स्फटिक, रक्तचन्दन, दो सुवर्ण की, चाँदी की और लोहे की उनकी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए। (वेदी के) मध्य में सूर्य, दक्षिण में मंगल, उत्तर में बृहस्पति, पूर्व उत्तर (ईशान कोण) में बुध, पूर्व में शुक्र, दक्षिण पूर्व (अग्नि कोण) में चन्द्रमा, पश्चिम उत्तर (वायव्य) में श्वेत तंदुल द्वारा केतु तथा राजा और अमात्य को स्थापित एवं पूजित करे । सूर्य के अधिदेव महादेव, शनि के उमादेवी, मङ्गल के स्कन्द, बुध के हरि, बृहस्पति के व्रह्मा शुक्र के शचीपति ! इन्द्र, शनिश्चर के यम, राहु के काल और केतु के चित्रगुप्त अधि देवता हैं । उसीभाँति अग्नि, जल (वरुण), पृथिवी, विष्णु, इन्द्र, सौवर्ण, प्रजापति, सूर्य, तथा व्रह्मा प्रत्यधि देवता हैं ।२-१७। इन देवों के आवाहन के उपरांत विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, सावित्री, लक्ष्मी, शिवसमेत उमा, व्याहृतियाँ एवं अश्विनी कुमार के आवाहन पूजन करना चाहिए । सूर्य, मंगल का रक्त वर्ण, चन्द्र-शुक्र श्वेत वर्ण, बुध हरित वर्ण, बृहस्पति पिङ्गल (पीत) वर्ण, शनि, राहु कृष्णवर्ण और केतु धूम्र वर्ण बताया गया है। पूजा करते समय ग्रहों के वर्णानुसार उन्हें वस्त्र, पुष्प से अलंकृत करे गंध, बलि, धूप, गुग्गुल से अर्चना सुसम्पन्न करें—गुडौदन (मीठाभात) से सूर्य, घृतपूर्ण खीर से चन्द्रमा, संयवा (लपसी) से मङ्गल, क्षीर पाष्टिक (साठी चावल की खीर) से बुध, दही भात से बृहस्पति, घृत भात से

दध्यन्नं गुरवे दद्याच्छुक्राय तु घृतौदनम् । शनैश्चराय कृशरं मेषमांसं तु राहवे ॥२३
चित्रौदनं केतवे च सर्वान्भक्ष्यैरथार्चयेत् । प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम् ॥२४
चूतपल्लवसम्पन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् । पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गयुतं तथा ॥२५
स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् । गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ॥२६
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद् ध्रदगोकुलात् । मृदमानीय राजेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम् ॥२७
स्नानार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित् । सर्वे समुद्राः सरितः सरः प्रस्रवणानि च ॥२८
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः । एवमावाहयित्वा तान्सर्वान्नृपतिसत्तम ॥२९
होमं समारभेत्सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना । अर्कः पलाशखदिरौ ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ॥३०
उदुम्बर शमीदूर्वाकुशाश्च समिधः क्रमात् । एकैकस्य चाष्टशतमष्टाविंशति वा पुनः ॥३१
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा पायसेन वा । प्रादेशमात्रा ऋजवो विशाखा विफलाः शुभाः ॥३२
कल्प्यन्ते समिधः प्राज्ञैः सर्वकर्मसु सर्वदा । देवानामपि सर्वेषामुपांशुपरमार्थवित् ॥३३
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक् । आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धा दिवः क्रमात् ॥३४
उद्बुध्यस्वेति बोध्यश्च यथासंख्यमुदाहृताः । बृहस्पते अतियदर्यस्तिथैवान्नात्परिस्रुतः ॥३५
शन्नोदेवीति च कया केतुं कृण्वन्नितीति च । होतव्यं यद्वदाज्यं चरुं भक्ष्याणि वा पुनः ॥३६
मन्त्रैर्दशाहुतीर्दत्त्वा होमो व्याहृतिभिस्ततः । उदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥३७

शुक्र, खिचड़ी से शनि, भेंड के मांस से राहु, चित्रौदन से केतु को तृप्त करते हुए शेष सभी देवों को उत्तम भक्ष्य द्वारा सुतृप्त करे। अनन्तर उत्तर की ओर से व्रणरहित एक सौन्दर्यपूर्ण कलश की प्रतिष्ठा कर, जो दही अक्षत भूषित, आम के पल्लव, फल, वस्त्र भूषित पाँच रत्नों से युक्त और पञ्चगव्य समन्वित हो, उस पर वरुण देव को प्रतिष्ठि करे। राजेन्द्र ! गङ्गा आदि समस्त नदियाँ समुद्र और सरोवरों के स्थापन पूर्वक उनके जल, हाथी, घोड़े चौराहे, वल्मीक (विभौर), संगम, तालाब, गोशाला, की मिट्टी, समस्त औषधों समेत जल की स्थापना भी वहाँ यजमान के स्नानार्थ कराना चाहिए। नृपसत्तम ! समस्त समुद्र, सरिताएँ, सरोवरों और झरने आदि जलाशय यजमान के पापक्षयार्थ यहाँ आने की कृपा करें इस प्रकार उपरोक्त जलाशयों के आवाहन पूजन करके घी जवा, व्रीहि और तिलादि की आहुति प्रदान करते समय सर्वप्रथम—मदार, पलाश, खैर, खिचिड़ी, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुश की समिधाएँ। क्रमशः ग्रहों के निमित्त एक-एक समिधा की सौ-सौ अथवा अठ्ठाईस-अठ्ठाईस आहुति प्रदान करें। अनन्तर मधु, घी, अथवा दही या पायस की आहुति भी समर्पित करनी चाहिए। प्रादेश मात्र ऋजु और विपल विशाखा शुभ बताया गया है।१८-३२। इस प्रकार विशेषज्ञों ने सभी कर्मों के अनुष्ठानों में सर्वदा ऐसी ही समिधाओं की कल्पना की है। परमार्थवेत्ता विद्वान् को चाहिए सभी देवों के पृथक् पृथक् उनके निजी मंत्रों के 'आकृष्णेन इमं देवा' 'अग्निमूर्ध्या दिवः' 'उद्बुध्य स्वेति' 'बृहस्पते प्रतिपदः' अन्नात्परिश्रुतः' 'शन्नोदेवीति' और कया, केतु कृण्वन्निति च' उच्चारणपूर्व समिधाओं की आहुति अर्पित कर उसी भाँति घी, चरु एवं अन्य भक्ष्य पदार्थ की समंत्रक दश आहुति समर्पित करे और पीछे व्यावृत्तियों द्वारा समस्त हवन को सुसम्पन्न करे। उस कर्म में प्रवृत्त श्रेष्ठ ब्राह्मण वृन्दों को उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठ कर

मन्त्रवन्तस्तु कर्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् । अयोराजेति रुद्रस्य बलिहोमं समारभेत् ॥३८
आपो हिष्टेत्युमायास्त श्येनेति स्वामिनस्तथा। विष्णोरिदं विष्णुरिति स्वमिच्छेति स्वयंभुवः ॥३९
इन्द्रादिदेवतानां तु इन्द्राय जुहुयात्पुनः । नवा यमस्यायं गौश्चेत्येवं होमः प्रकीर्तितः ॥४०
कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते । चित्रगुप्तस्य दा जात पौराणिकाविदुर्बुधाः ॥४१
"अग्निं दूतंवृणीमहे" इति वह्नेरुदाहृतः । इन्द्रं यमं वरुणमित्ययं मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥४२
भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षामिति वेदेषु पठचते । "सहस्रशीर्षा पुरुष" इति विष्णोरुदाहृतः ॥४३
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥४४
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधाः पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा शान्तिपुष्टी कान्तिस्तुष्टिश्चमातरः॥४५
एतास्त्वामभिषिंचन्तु धर्मपत्न्यः समागताः । आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ॥४६
ग्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः । देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥४७
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च । देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥४८
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च । औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥४९
सरितः सागराः शैलस्तीर्थानि जलदानदाः । एते त्वामभिषिचन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥५०
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः । सर्वगन्धसमायुक्तः स्नातः श्रद्धासमन्वितः ॥५१
यजमानः सपत्नीकान्सिद्धिदान्स्तान्समाहितान् । दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्गतविस्मयः ॥५२
सूर्याय कपिलां धेनुं दद्याच्छंखं तथेन्दवे । रक्तं धुरन्धरं दद्याद्भौमाय ककुदाधिकम् ॥५३

मंत्रों के उच्चारण करना चाहिए और चरु की आहुति देवों के प्रति अर्पित करनी चाहिए । 'अयोराजेति' मंत्र द्वारा रुद्र के लिए बलि और हवन सुसम्पन्न करे उसी भाँति 'आपोहिष्ठेति' मंत्र से उमा के लिए, 'श्नेनेति' मंत्र से 'स्वामिकार्तिकेय' 'विष्णोरिदं' से विष्णु, 'स्वामिच्छेति' से स्वयम्भू (ब्रह्मा), और इन्द्रादि देवों के लिए 'इन्द्राय आदि' मंत्रों से आहुति प्रदान करनी चाहिए। 'अपं गौश्चेति' यम, 'ब्रह्मजज्ञानमिति' से काल, तथा चित्रगुप्त के लिए विद्वानों को पौराणिक मंत्रों द्वारा आहुति प्रदान करना चाहिए। उसी 'अग्नि' दूत वृणीमहे इति' से अग्नि 'इन्द्र यमं वरुमिति' मंत्र और 'सहस्र शीर्षा पुरुष' यह मंत्र विष्णु के लिए कहा गया है। अनन्तर वरुण, पवन, धनाध्यक्ष (कुबेर), शिव, ब्रह्मा समेत शेष एवं दिक्पाल तुम्हारी सदैव रक्षा करें। कीर्ति लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा,। क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शांति, पुष्टि, कान्ति और तुष्टि मातायें धर्मपत्नियाँ तुम्हारा अभिषेचन करे। सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, तथा भली भाँति तृप्त किये गये देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग (सर्प), ऋषिगण, मुनिवृन्द, गौएँ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वलक्ष, नाग, दैत्य, अप्सरायें, समस्त अस्त्र-शस्त्र, राजवृन्द, वाहन गण, औषध समूह, समस्त रत्न, कल के सभी भेद (वर्षभास आदि), सरिताएँ, सागर, शैल, तीर्थ, वृन्द, मेघ और नद समूह समस्त कामनाओं के सिद्धर्थ्य तुम्हारा अभिषेक करे पश्चात् शुक्लाम्बरधारी, शुक्लगन्ध का अनुलेपन, सम्पूर्ण गन्ध पूर्ण जलस्नान करके श्रद्धा भक्ति समेत यजमान सपत्नीक उन सिद्धि प्रदान करने वाले देवों की सदक्षिणा प्रयत्न पूर्वक अर्चना करे।३३-५२। और सावधान होकर सूर्य के लिए कपिला गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, भीम के लिए महान् डिल्ल वाला रक्तवर्ण का वृषभ,

बुधाय जातरूपं च गुरवे पीतवाससी । श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णाङ्गगामर्कसूनवे ।।५४
आयसं राहवे दद्यात्केतवे च्छागमुत्तमम् । सुवर्णेन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा ।।५५
सर्वेषामथवा दद्याद्गुरुर्वा येन तुष्यति । सुमन्त्रेण प्रदातव्याः सर्वाः सर्वार्थदक्षिणाः ।५६
कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी । तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।५७
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।५८
धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।५९
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६०
पीतवस्त्रयुगं दद्याद्वासुदेवस्य वल्लभम् । प्रदानात्तस्य मे विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छतु ।।६१
कपिलस्त्वश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः । चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६२
यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो वै कृष्णसंज्ञिता । सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६३
यस्मादायस कर्माणि तवाधीनानि सर्वदा । लाङ्गलान्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ।।६४
यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः । योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६५
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ।।६६
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ।।६७
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवा व्यवस्थिताः । तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ।।६८

बुध के लिए जातरूप 'सुवर्ण', बृहस्पति के लिए दो पीताम्बर, शुक्र के लिए श्वेत अश्व, शनि के लिए कृष्णा गौ, राहु के लिए लोहे, और केतु के लिए छाग (बकरी) सुवर्ण की दक्षिणा समेत अर्पित करे। सब के दान करने में असमर्थ होने पर जिस वस्तु से गुरु आचार्य विशेष प्रसन्न हो सके उसका अवश्य दान करना चाहिए। समंत्रक दक्षिणा प्रदान करने के अनन्तर क्षमा याचना करे—कपिले ! तुम समस्त देवों की पूजनीया रोहिणी हो, तीर्थों की देवमयी हो, पुनः मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें। शंख ! तुम पुष्पों के पुष्प और मङ्गलों के मङ्गल हो, इसीलिए विष्णु तुम्हें नित्य धारण करते हैं, मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें।५३-५८। धर्म ! तुम वृष (वैल) रूप धारण कर सारे संसार को आनन्द प्रदान करते हो और अष्ट मूर्ति (शिव) जी के अधिष्ठान भी हैं, मुझे शान्ति प्रदान करें। हिरण्यगर्भ में स्थित, अग्नि के हेमबीज और अनन्तपुण्यफलदायक होने के नाते मुझे शान्ति प्रदान करें। भगवान् वासुदेव को चार पीताम्बर (वस्त्र) प्रदान किया जात है, पुनः उससे प्रसन्न होकर विष्णु देव मुझे शान्ति प्रदान करें। कपिल देव अश्व रूप धारण कर, जिनसे अमृत उत्पन्न हुआ है, चन्द्रमा और सूर्य के वाहन हुए हैं, वे नित्य मुझे शान्ति प्रदान करें। धेनो ! तुम समस्त पृथिवी का रूप हो, कृष्णा तुम्हारा नाम है, सम्पूर्ण पापों के अपहरण करती हो, अतः मुझे नित्य शांति प्रदान करने की कृपा करो। लोह से होने वाले जितने कर्म हैं वे सर्वदा तुम्हारे ही अधीन रहते हैं और लाङ्गल (हल में रहने वाले फल) से लेकर सम्पूर्ण अस्त्रादि भी तुम्हीं से बनते हैं मुझे शान्ति प्रदान करो। छागयज्ञ (बकरी) बलि के तुम अङ्ग हो और अग्नि के योनि (कारण) होने के नाते मुझे शान्ति प्रदान करो।५९-६५। गौओं के अङ्गों में चौदह लोक प्रतिष्ठित हैं इसलिए लोक परलोक के कल्याण मुझे अवश्य प्राप्त हों। जिसके कारण भगवान् केशव और शिव की शय्या सदैव अशून्य रहती है उसी भाँति प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या सर्वदा अशून्य रहे। रत्नों में समस्त देवगण सदैव व्यवस्थित रहते हैं

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिं भूमि दानाद्भवत्यपि ॥६९
एवं सम्पूजयेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्माल्यगन्धानुलेपनैः ॥७०
ग्रहस्वरूपमतुलं कथ्यमानं निबोध मे । भक्तिभावप्रपन्नस्य कथ्यमानं विराजते ॥
पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥७१
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥७२
रक्तमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिर्विधेयो भूमिनन्दनः ॥७३
पीतमाल्याम्बरधरः पीतगन्धानुलेपनः । काञ्चने च रथे दिव्ये शोभमानो बुधः सदा ॥७४
देवदैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥७५
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥७६
शार्दूलवदनः खड्गी चर्मी शूली वरप्रदः । नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥७७
धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः । गृध्रासनरता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥७८
सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः । स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं तदा ॥७९
ग्रहस्वरूपमेतत्ते व्याख्यातं पाण्डुनन्दन । एतज्ज्ञात्वा प्रयत्नेन पूजा कार्या विचक्षणैः ॥८०
विधिना ग्रहपूजां योऽनेन त्वारभते नरः । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥८१

अतः उन्हीं रत्नों के दान करने के नाते प्रसन्न देववृन्द मुझे शान्ति प्रदान करें। भूमिदान की सोलहवी कला की भी समानता अन्य दान नहीं कर सकते हैं अतः वह भूमिदान मेरे लिए शान्तिदायक हो। इस प्रकार वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष रहित होकर भक्तिपूर्वक वस्त्र, सुवर्ण, रत्नों के समूह, माला, गंध और विलेप द्वारा पूजन करना चाहिए। इसके उपरांत मैं तुम्हें ग्रहों के अतुलनीय स्वरूप बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि भक्तिभाव से शरणागत प्राणियों के लिए यह कहना सुशोभित भी होता है। पद्मासन, पद्मकर, पद्मगर्भ के समान कान्ति, सात घोड़े सात रज्जु (रस्सी) एवं दो भुजाएँ सूर्य का स्वरूप बताया गया है। श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्र धारण किये, दश घोड़े श्वेतभूषण भूषित, हाथ में गदा लिए वरदायक चन्द्रमा का स्वरूप कहा गया है। रक्त माला एवं वस्त्र, कर्णिकार के समान कान्ति, खड्ग, चर्म, तथा गदा लिए भूमि नन्दन मङ्गल का स्वरूप बताया गया है। पीतवर्ण की माला और वस्त्र, पीत गंध का अनुलेपन तथा दिव्य काञ्चन रथ पर सुशोभित होने वाले बुध का स्वरूप कहा गया है।६६-७६। देव गुरु बृहस्पति और दैत्य गुरु शुक्राचार्य की पीत तथा श्वेत वर्ण की भुजाएँ, दण्ड, यज्ञोपवीत एवं कमण्डलु धारण करना कहा गया है। इन्द्र नील मणि की भाँति, प्रभा, शूललिए वरद, गृघ्र वाहन और धनुष बाण धारण किये सूर्य पुत्र शनि का रूप बताया गया है। व्याघ्र मुख, खड्ग चर्म (कवच), शूल धारण किये वरदायक, नील सिंहासन पर स्थित राहु का वर्णन किया गया है। उसी प्रकार धूम्र, वर्ण, दो बाहू, गदाधारी, विकृत वदन, गृधासन पर प्रतिष्ठित वरप्रद केतु का रूप बताया गया है। पाण्डुनन्दन ! लोक हितैषी सभी ग्रहों को किरीट से भूषित और अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल ऊँचे ग्रहों का स्वरूप बनाना चाहिए। इस प्रकार तुम्हें ग्रहों का स्वरूप बता दिया गया है। इसलिए बुद्धिमानों को ऐसा जानकर ग्रहों की सप्रयत्न पूजा करनी चाहिए क्योंकि कि इस विधान द्वारा ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करने वाले प्राणी समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक अंत में स्वर्ग पहुँच कर पूजित होते हैं। (अरिष्ट स्थान में आ जाने से)

यस्तु पीडाकरो नित्यं माल्यवित्तस्य वा ग्रहः । तं तु यत्नेन सम्पूज्य शेषानप्यर्चयेद्बुधः ॥८२
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥८३
तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्या भूतिमिच्छता । सम्पूर्णायां दक्षिणायां यस्मादेकोऽपि तुष्यति ॥८४
सदैवाऽयुतहोमोऽयं नवग्रहमखः स्मृतः ॥८५
विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु । निर्विघ्नार्थं महाराज तथोद्वेगाद्भुतेषु च ॥८६
कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु । सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः ॥८७
पितृणां वल्लभो यस्माद्भुक्तिमुक्तफलप्रदः । ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥८८
गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद्बुधः । रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥८९
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः । प्रागुदक्प्रवणां भूमिं कारयेद्यत्नतो नरः ॥९०
प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु । शोभनं कारयेत्कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम् ॥९१
मानहीनं चाप्रशस्तमनेकभयदं भवेत् । यस्मात्तस्मात्सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥९२
अस्माद्दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमे स्वयंभुवा । आहुतिभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥९३
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः । लक्षहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥९४
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् । द्विरङ्गुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः ॥९५

पीड़ित करने वाले ग्रह की अर्चना अपने वित्तानुसार माला आदि सामग्रियों से सुसम्पन्न कर पश्चात् शेष ग्रहों की भी अर्चना करनी चाहिए । क्योंकि ग्रह, गौ, नरेन्द्र, और विशेषकर ब्राह्मण पूजित होने पर उसे पूजनीय बनाते हैं तथा अपमानित होने से दग्ध कर देते हैं । इसलिए ऐश्वर्य की कामना वाले को दक्षिणा-हीन यज्ञ नहीं करना चाहिए । सम्पूर्ण दक्षिणा प्रदान करने पर जिस कारण वह एक भी (ग्रह) प्रसन्न होता है वह दैव (गृह) का अयुत (दशसहस्र) आहुति वाला यज्ञ नवग्रह मख कहा गया है । विवाह, उत्सव, यज्ञ, और प्रतिष्ठा आदि सभी कर्मों में निर्विघ्न सफलता एवं उद्वेग होम अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । इसके उपरान्त मैं तुमहें लक्ष संख्या की आहुति का हवन बता रहा हूँ, सुनो ! विद्वानों ने समस्त कामनाओं की सफलता के लिए उसे (लक्षहोम को) सुसम्पन्न करना परमावश्यक बताया है ।७७-८७। क्योंकि वह यज्ञ पितर गणों को प्रयत्न प्रिय एवं भुक्ति मुक्ति फलप्रदायक है । ग्रहबल और ताराबल के सबल रहने पर ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन के अनन्तर गृह के उत्तरपूर्व (ईशान कोण) की ओर अथवा रुद्रायतन भूमि में सौन्दर्य पूर्ण मण्डप बनवाना चाहिए, जो चौकोर, उत्तराभिमुख, दश या आठ हाथ का सविधान विस्तृत किया गया हो । उस मण्डप की भूमि उत्तर की ओर कुछ ढालू होनी चाहिए । और उस शोभन स्थान के कुछ उत्तर प्रदेश में लक्षण भूषित एक उत्तम कुण्ड का निर्माण करना चाहिए क्योंकि मान (नाप) हीन कुण्ड अप्रशस्त और अनेक भय प्रदान करता है अतः सर्वलक्षण सम्पन्न शान्ति कुण्ड का निर्माण होना चाहिए । भगवान् स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने इससे दश गुना लक्ष होम बताया है । जो आहुतियों में अधिक होने पर भी दक्षिणा में भी अधिक होता है । अतः दो हांथ का विस्तृत और चार हाथ का लम्बा, योनि मुख, तीन मेखला से भूषित लक्ष होम का कुण्ड बनाया जाता है । देवों के संस्थापनार्थ तीन वप्र का निर्माण होना चाहिए । जिसमें दो अंङ्गुल का ऊँचा पहला, और शेष दो वप्र एक-एक अङ्गुल की ऊँचाई के

अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि । द्व्यङ्गुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः ॥९६
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिलस्य तथोपरि । तस्मिन्नावाहयेद्देवान्पूर्ववत्पुष्पतण्डुलैः ॥९७
आदित्याभिमुखाः सर्वाः स्थाप्याः प्रत्यधिदेवताः । स्थापनीया मुनिश्रेष्ठा नान्तरेण पराङ्मुखाः ॥९८
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता । समपीनशरीरस्तु वाहनं परमेष्ठिनः ॥९९
विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे । पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत् ॥१००
सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः । औदुम्बरीमथार्द्रां च वक्रकोटरवर्जिताम् ॥१०१
बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि । घृतधारां तथा सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥१०२
पाठयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैंदवम् । महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च पाठयेत्[1] ॥१०३
स्नानं तु यजमानस्य पूर्ववन्मन्त्रवाचनम् । दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणा पृथक् ॥१०४
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसः । नवग्रहमखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः ॥१०५
अथ वा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव त्वतिकोविदौ । कार्यावयुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे ॥१०६
तद्वच्च दश चाष्टौ वा लक्षहोमेऽपि ऋत्विजः । कर्तव्याः शक्तिस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सराः ॥१०७
नवग्रहमखे सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम् । दद्याच्च पाण्डवश्रेष्ठ भूषणान्यपि शक्तितः ॥१०८

होते हैं ।८८-९४। विद्वानों ने उन सभी के दो अंगुल का विस्तार बताया है । उस स्थण्डिल (वेदी) की भूमि भित्ति (दीवाल) दश अङ्गुल की ऊँची होती है, जिसके ऊपर पुष्प और चावल (अक्षत) लेकर देवों के पूर्व की भाँति आवाहन किये जाते हैं । मुनिश्रेष्ठ ! समस्त प्रत्यधिदेवताओं को सूर्य के सम्मुख ही स्थापित करना चाहिए । न कि पराङ्मुख होने के लिए बीच में । श्री की इच्छुक को गरूत्मान् (गरुड) की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि समान रूप से पीत (स्थूल) शरीर वाले वे (हंस रूप से) परमेष्ठी (पितामह) के भी वाहन हैं । आप विष और पाप के अपहरण करते हैं अतः मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करें । पूर्व की भाँति कलश स्थापन पूजन के उपरान्त सौ सहस्र (एक लक्ष) आहुति प्रदान कर गूलर के उस आर्द्र (गीले) काष्ठ के बने हुए सुच नामक यज्ञीय पात्र द्वारा, जो वक्र (टेढ़ापन) और कोटर (लघु च्छिद्र) रहित बाहुमात्र (एकहाथ) का लम्बा और चौड़े मुख का बना रहता है, दोनों स्तम्भ (यज्ञीय) खम्भे के सहारे से अग्नि में घृत धारा की वसुधारा प्रदान करे । उस समय अग्नि, विष्णु, रुद्र, चन्द्र के सूक्तों और महावैश्वानर साम तथा ज्येष्ठ साम का पाठ होना चाहिए । यजमान का स्नान, मन्त्र वाचन, और यजमान द्वारा शान्ति पूर्वक तथा काम-क्रोध से रहित होकर ऋत्विजों की पृथक् पृथक् दक्षिणा दान पूर्व की भाँति ही होना चाहिए । नवग्रह के यज्ञ में वेदवादी चार विद्वान् होने चाहिए अथवा शान्ति प्रकृति के दो ही निपुण विद्वानों को ऋत्विज पद अर्पित करें क्योंकि अयुत (दश सहस्र) आहुति के हवन कार्य में अधिक संख्या बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं बतायी गयी है ।९५-१०६। उसी प्रकार लक्ष आहुति हवन में दश या आठ विद्वान् ऋत्विज स्थान पर नियुक्त करना चाहिए अथवा यथाशक्ति मत्सर आदि दोष हीन चार ही विद्वान् रखे इस प्रकार नवग्रह यज्ञ में सब एक लक्ष दश आहुति प्रदान करनी चाहिए । पाण्डव श्रेष्ठ !

---

१. श्रावयेत् ।

शयनानि च वस्त्राणि हैमादि कटकानि च । कर्णाङ्गुलीपवित्राणि भक्तिमान्प्रतिपादयेत्[1] ।।१०९
न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः । अददल्लोभमोहाभ्यां कुलक्षयमवाप्नुयात् ।।११०
अन्नदानं यथा शक्त्या दातव्यं भूतिमिच्छता । अन्नहीनं व्रतं यस्माद्दुर्भिक्षफलदं भवेत् ।।१११
राष्ट्रं हन्याङ्गहीनो मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः । अदक्षिणो यजमानं नास्ति यज्ञसमो रिपुः ।।११२
न चाप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित् । तस्मात्पीडाकरो नित्यं य[2] एव भवति ग्रहः ।।११३
तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि । एकमप्यर्चयेद्भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।११४
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन[3] बहून्वा बहुवित्तवान् । लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदि वित्तं गृहे गृहे ।।११५
यतः[4] सर्वानवाप्नोति कुर्वन्कामान्विधानतः । पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः ।।११६
यावत्कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात् । सकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि ।।११७
स तं काममवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते । पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।।११८
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् । भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ।।११९
यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम् । निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति ।।१२०

उस यज्ञ में यजमान को यथाशक्ति भूषण, सुसज्जित शय्या, वस्त्र, सुवर्ण के कटक (अङ्गद), कुण्डल और अंगूठी का भी दान करना चाहिए। मनुष्य को ऐसे अवसर पर कभी भी कृपणता न करनी चाहिए, क्योंकि लोभ-मोह वश उचित दान न करने पर कुल का क्षय होने लगता है। ऐश्वर्येच्छुक को यथाशक्ति अन्नदान भी करना चाहिए, क्योंकि अन्नदान हीन व्रत दुर्भिक्ष का फल प्रदान करता है। ऐसा शास्त्रों का सम्मत है कि—अङ्गहीन यज्ञ राष्ट्र का नाश, मंत्रहीन होने से यज्ञ ऋत्विक का नाश और दक्षिणा हीन होने से यजमान का विनाश करता है अतः यज्ञ के समान कोई अन्य शत्रु नहीं है। अल्प वित्त वाले मानव को लक्ष होम यज्ञ का अनुष्ठान कभी नहीं सुसम्पन्न करना चाहिए। इसलिए केवल पीड़ित करने वाले ग्रह की अवश्य अर्चना करे, कुछ समर्थ होने पर दो या तीन ग्रहों की अर्चना कर सकता है। उस अनुष्ठान में भक्ति पूर्वक एक ही वेद निष्णात ब्राह्मण विद्वान् की अर्चना को किन्तु धनाढ्यों को उचित दक्षिणा द्वारा उसी प्रकार के अनेक विद्वान् सुसम्मानित करने चाहिए। घर में पूर्ण धन होने पर उसे लक्ष होम का अनुष्ठान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए, क्योंकि सविधान उसे सुसम्पन्न करने पर मनुष्य की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं तथा शिव लोक में वसु आदित्य एवं मरुद्गण आदि देवों द्वारा वह सुसम्मानित होता है। इस प्रकार आठ सौ कल्प पर्यन्त सुखानुभूति करने उपरान्त उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। किसी कामना वश लक्ष होम यथा विधान सुसम्पन्न करने पर उसकी सफलता तो मिलती है किन्तु अनन्त पद (विष्णु लोक) कर भी सुख प्राप्त होता है पुत्रार्थी को पुत्र, धनार्थी को धन, भार्या के इच्छुक को सुन्दरी भार्या कुमारी को कल्याणमूर्ति पति, भ्रष्ट राज्य लोक वाले को राज्य, श्री की प्राप्ति होती है इस प्रकार जिन-जिन कामनाओं के वश उसका अनुष्ठान किया जाता है वे सभी कामनाएँ निश्चित सफल होती हैं। निष्काम प्राणी को इसे सुसम्पन्न करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।१०७-१२०। जो सर्वथा

---

१. शक्तिमान् । २. भवति ग्रहपूजने । ३. दयाधापिरो नित्यं क्षमावान्बहुवित्तवान् । ४. पातकं समवाप्नोति यत्कुर्वन्नविधानतः ।

शान्तिं नवग्रहमयीं दुरितोपशान्तिं राजन्करोति बहुना विधिवद्द्विजेन्द्रैः ।
क्षेमं सुभिक्षमतुलं कुलवृद्धिसम्पत्तत्रास्ति यत्र कुरुते बत लक्षहोमम् ।१२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नवग्रहलक्षहोमविधिवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४१

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटिहोमविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

राजा सम्वरणः पूर्वं प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे । बभूव स महाभागः शास्त्रार्थकुशलो बली ।।१
ब्रह्मण्यः पितृभक्तश्च देवब्राह्मणपूजकः तस्याथ । कुर्वतो राज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः ।।२
आजगाम महायोगी सनको ब्राह्मणः सुतः । दत्त्वा तस्यासनं राजा प्रणम्य शिरसा तथा ।।३
पूजियत्वार्घ्यपाद्याद्यैरात्मानं विनिवेद्य च । इतिहासपुराणोक्ताश्चकार विविधाः कथाः ।।४
राजर्षीणां पुराणां च चरितानि यथार्थवित् । ततः कथान्तरे राजा कार्यं मनसि संस्थितम् ।।५
हिताय पृथिवीशानां जगताश्चात्मनस्तथा । पप्रच्छ विनयोपेतो योगाचार्यं महामतिः ।।६

सम्वरण उवाच

भगवन्महदुत्पातसम्भवे भूप्रकम्पने । निर्घाते पांशुवर्षे च गृहभंगे तथैव च ।।७

पापों के शमन करती है और जिसमें और लक्ष संख्या की आहुति अर्पित की जाती है, सुसम्पन्न करने पर उस को अतुल क्षेम, सुभिक्ष, कुलवृद्धि एवं अभूत सम्पत्ति प्राप्त होती है ।१२१

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
नवग्रह लक्ष होम विधि वर्णन नामक एक सौ एकतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४१।

अध्याय १४२

कोटिहोमविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नगर श्रेष्ठ प्रतिष्ठानपुर में सवरण नाम का महापुण्यात्मा राजा रहता था, जो शास्त्रों का अर्थकुशल एवं महाबली था । ब्रह्मण्य, पितृभक्त, देव ब्राह्मण पूजन एवं प्रजाओं के भलीभाँति पालन करने वाले उस राजा के यहाँ एक बार महायोगी, एवं ब्रह्मपुत्र सनक जी का आगमन हुआ । राजा ने शिर से प्रणाम करते हुए आसन पर सुशोभित कर अर्घ्य-पाद्यादि के प्रदान पूर्वक उनकी पूजा की और कुशल मङ्गल पूछने के अनन्तर इतिहास पुराण प्रसिद्ध पूर्व कालीन राजर्षियों के चरितों की चर्चा की । पश्चात् यथार्थ वेत्ता उस राजा ने उनसे अपना मानसिक अभिप्राय प्रकट किया, जो भूपालों, सम्पूर्ण जगत् एवं अपने लिए परम हितकर था । विनय विनम्र महाबुद्धिमान् राजा ने उन योगाचार्य से पूँछा—१-६

सम्वरण बोले—भगवान् ! महान् उत्पात के सम्भव होने, भूकम्प, निर्यात, धूलिवर्षा, गृह के नष्ट

जन्मनक्षत्रपीडासु अनावृष्टिभयेषु च । ज्वरेषु ग्रहपीडासु दुर्भिक्षे राष्ट्रविग्रहे[1] ।।८
व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे चातिपीडिते । क्लेशे महति चोत्पन्ने किङ्कर्तव्यं नरोत्तमैः[2] ।।९
स्वर्गस्य साधनं यच्च कीर्तिदं धनदं तथा । प्रब्रूहि मे द्विजश्रेष्ठ तथारोग्यप्रदं नृणाम् ।।१०

सनत्कुमार उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्म ह्यनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं सर्वकामफलप्रदम् ।।११
ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्क्षणात् । उत्पाताः प्रशमं यान्ति महत्सम्पद्यते सुखम् ।।१२
विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुष्वैकमना भव । देवागारे[3] नदीतीरे वने वा भवनेऽपि वा ।।१३
पर्वते वापि कुर्वीत य इच्छेत्क्षेममात्मनः । शुभनक्षत्रयोगे च वारे पूर्वगुणान्विते ।।१४
यजमानस्यानुकूल्ये कोटिहोमं समाचरेत्[4] । पूजयित्वा प्रयत्नेन ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।१५
वस्त्रैर्विभूषणैश्चैव गन्धमाल्यानुलेपनैः । प्रणम्य विधिवत्तस्मै आत्मानं विनिवेदयेत् ।।१६
त्वं नो गतिः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणः । त्वत्प्रसादने विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ।।१७
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् । कोटिहोमार्थमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ।।१८
पुरोहितस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । ब्राह्मणैर्वेदसम्वृत्तैः[5] पुण्यैर्युक्तः समाहितैः ।।१९

होने जन्म नक्षत्र पीड़ा, अनावृष्टि भय, ज्वरपीड़ा, ग्रहपीड़ा, दुर्भिक्ष, राष्ट्र विप्लव, रोग के उत्पन्न होने, शरीर के प्रति पीड़ित होने, महान् क्लेश के उपस्थित होने पर राजाओं का क्या कर्तव्य होता है। द्विजश्रेष्ठ ! उस प्रकार का उपाय बताने की कृपा कीजिये, जो स्वर्ग का साधन, और कीर्ति समेत मनुष्यों को आरोग्य भी प्रदान करे।७-१०

सनत्कुमार बोले—राजन् ! मैं तुम्हें एक परमोत्तम शांति कर्म बता रहा हूँ, जो कोटिहोम (कोटिसंख्या की आहुति वाला होम) अनुपम एवं समस्त कामनाओं को सफल करता है, सुनो ! उससे ब्रह्म हत्या आदि पाप क्षण मात्र में विनष्ट होते है, उत्पातों का प्रशमन होता है और महान् सुख की प्राप्ति होती है, उसका विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कल्याणेच्छुक मनुष्य का किसी देवालय, नदी, तीर, वन, गृह अथवा पर्वत के ऊपर इसका अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। शुभ नक्षत्र, योग आदि गुण युक्त दिवस में ग्रहों के अनुकूल रहने पर यजमान को अपने कोटि होम नामक अनुष्ठान के आरम्भ में वस्त्र, आभूषण, गंध, माला आदि द्वारा वेदनिष्णात् विद्वान् ब्राह्मण की सप्रयत्न अर्चा सविधान सुसम्पन्न कर आत्मनिवेदन करना चाहिए। तुम्हीं मेरी गति, माता पिता, तथा गति परायण हो। विप्रर्षे ! तुम्हारे प्रसाद से मेरा मनोनीत मनोरथ सफल हो। मुझे आपत्तियों से मुक्त करने हेतु कोटि होम नामक इस परमोत्तम यज्ञ को सुसम्पन्न कराने की कृपा करें, जो समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक अत्यन्त शान्ति प्रदान करता है। तदुपरान्त प्राज्ञ पुरोहित शुक्लाम्बरधारण एवं पूतात्माहोकर वेदसंपृक्त, पुण्यात्मा तथा सावधान रहने वाले ब्राह्मणों समेत किसी शुद्ध एवं अभिषिक्त भू भाग में

---

१. राजविप्लवे। २. नृपोत्तमैः। ३. देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसंनिधौ। ४. समारभेत्। ५. सर्वतः पुण्यः संयुक्तः सुसमाहितैः।

भूमिभागे समे शुद्धे प्रागुदक्प्रवणे तथा । पुण्याहं वाचयेत्पूर्वं कृत्वा विप्रान्सुपूजितान् ॥२०
ततस्तु [1]महितैर्विप्रः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम् । उत्तमं शतहस्तं तु तदर्धेन तु मध्यमम् ॥
जघन्यं तु तदर्द्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षया ॥२१
मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः । अष्टहस्तप्रमाणेन[2] आयामेन तथैव च ॥२२
मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् । तत्प्रमाणं तथा योनिं कुर्वीत सुसमाहितः ॥२३
कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदिं कुर्याद्विचक्षणः । चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितः नृप ॥२४
स्थानं तत्सर्वभूतानां [3] कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥२५
उपलिप्य ततो भूमिं मण्डपस्य समीपतः । निन्यसेत्कलशान्स्तत्र जलपूर्णांश्चतुर्दश ॥२६
अश्वत्थप्लक्षचूताद्यैः पल्लवैरुपशोभितान् । वितानमुपरिष्टाच्च मण्डपस्य प्रकल्पयेत् ॥२७
स्थापयेद्दिक्षु सर्वासु तोरणान विचक्षणः । एवं सम्भृतसम्भारैः पुरोधाः सुसमाहितः ॥२८
पुण्याहजयघोषेण होमकर्म समारभेत[4] । स्थापयित्वा सुरान्वेद्यां वक्ष्यमाणानरिन्दम ॥२९
ब्राह्मणं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् । पश्चिमे तु तथा रुद्रं वसूनुत्तरतस्तथा ॥३०
ऐशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेय्यां मरुतस्तथा । वायुं सौम्यां तथैशान्यां लोकपालान्क्रमेण तु ॥३१
एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं नृपोत्तम । पूजयेद्विधिवद्वस्त्रगन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३२
वेदोक्तमन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक्पृथक् । आदित्या वसवो रुद्रा लोकपालास्तथा ग्रहाः ॥३३

पुण्याहवाचन तथा ब्राह्मण पूजन कराये ।११-२०। अनन्तर उन्हीं ब्राह्मणों समेत एक उत्तम मण्डप के निर्माण कार्य का आरम्भ करे, जो सौ हाथ का विस्तृत हो । क्योंकि उसके आधे (पचास) हाथ विस्तृत वाले को मध्यम और शक्ति काल आदि की अपेक्षा बने हुए उसके आधे (पच्चीस) हाथ वाले मण्डप को जघन्य मण्डप कहते हैं किन्तु यथावसर किसी का भी उपयोग किया जा सकता है । विद्वान् को उस मण्डप के मध्य भाग में आठ हाथ का विस्तृत एक उत्तम कुण्ड का निर्माण कराना चाहिए, जो द्वादश अङ्गुल की विस्तृत तीन मेखलाओं से सुसज्जित हो तथा उसी प्रमाण की योनि भी कुण्ड पर सुरचित होनी चाहिए । नृप ! उसी प्रकार बुद्धिमान् को कुण्ड के पूर्व भाग में चार हाथ की विस्तृत और एक हाथ की ऊँची वेदी की रचना समस्त देवों के स्थापनार्थ करनी चाहिए । उपरान्त मण्डप के समीप (गोबर) से लिपी हुई भूमि पर जल पूर्ण चौदह कलशों को स्थापित करे, जो पीपो, पाकडि, आम, गूलर और बरगद के पल्लवों से सुशोभित हों । मण्डप के (भीतर) ऊपरी भाग में वितान (चँदोबा) लगाकर सभी दिशाओं में तोरण से सुसज्जित करे । इस प्रकार (यज्ञार्थ) एकत्र किये गये वृहत् संभार से युक्त पुरोधा पुण्याहवाचन एवं जय घोष के साथ होम कर्मानुष्ठान प्रारम्भ करे । अरिन्दम ! वेदी में स्थापित किये जाने वाले देवों को मैं बता रहा हूँ—(वेदी के) पूर्व भाग में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन देव, पश्चिम में रुद्र, उत्तर में वसुगण, ऐशान्य में समस्त ग्रह, आग्नेय में मरुत (देवगण) वायव्य में वायु, ईशान आदि में क्रमशः लोक पालों को स्थापित करना चाहिए। नृपोत्तम ! इस भाँति देवों को यथास्थान स्थापित कर विविध भाँति के वस्त्र, गन्ध, माला आदि वस्तुओं द्वारा पुराणोक्त एवं पृथक् पृथक् मंत्रों के उच्चारण करते हुए पूजन करे ।२१-३३।

---

१. प्रहितैः । २. चतुर्हस्तप्रमाणेन, पाठस्त्वशुद्धः । कुण्डसिद्धिग्रन्थे—"ककुद्भिर्वा कोटौ नृपकारमपि प्राहुरपरे"—इत्युक्तेः कोटिहोमेऽष्टकरपरिमितकुण्डस्योदितत्वात् । ३. सर्वदेवानाम् । ४. समाचरेत् ।

ब्रह्मा जनार्दनश्चैव शूलपाणिर्भगाक्षिहा[१] । अत्र संनिहिताः सर्वे भवन्तु सुखभागिनः ।।३४
पूजां गृह्णन्तु सर्वेऽत्र मया भक्त्योपपादिताम् । कुर्वन्तु च शुभं सर्वे यज्ञकर्म समाहिताः ।।३५
एवं सम्पूजयित्वा तान्देवान्यत्नेन शुद्धधीः । नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैः पत्रैस्तथैव[२] च ।।३६
ततस्तु तैर्द्विजैः सार्द्धं कुण्डस्य विधिपूर्वकम् । कुर्यात्संस्कारकरणं यथोक्तं वेदचिन्तकैः ।।३७
ततः समाह्वयेद्वह्निं[३] नाम्ना ख्यातं घृतार्चिषम् । नियोजयेद्द्विजास्तत्र शतसंख्यान्नृपोत्तम ।।
अलाभे तु बहूनां च यथालाभं नियोजयेत् ।।३८
विद्यावृद्धान्वयोवृद्धान्गृहस्थान्संयतेन्द्रियान् । स्वकर्मनियताञ्ज्ञानशीलाञ्छान्तान्द्विजोत्तमान् ।।३९
चिन्तयेत्तत्र देवेशं पञ्चास्यं नृप पावकम् । मुखानि तस्य चत्वारि सप्त जिह्वाश्च पार्थिव ।।४०
एकजिह्वमथैकं तु तत्स्मृतं सर्वकामदम् । धूमायमानेन वृथा होतव्यं ज्वलितेऽनले ।।४१
ऋग्भिः पूर्वामुखैर्होमो यजुर्भिश्चोत्तरामुखैः । सामभिः पश्चिमे कार्योऽथर्वभिर्दक्षिणामुखैः ।।४२
आधारावाज्य भागौ तु पूर्वं हुत्वा[४] विचक्षणः । परितोऽथ परिस्तीर्णे कल्पिते च तथासने ।।४३
ब्रह्माणं पूर्वमप्येतत्सर्वं पश्चात्समाचरेत् । होमो व्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते ।।४४
प्रणवादिभिस्तल्लिंगैः स्वाहाकारान्तयोजितैः । जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चोपकल्पिताः ।।४५
एवं प्रकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमाख्यमुत्तमम् । तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यवसमन्विताः ।।४६

आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, लोकपाल, समस्त ग्रहगण, ब्रह्मा, जनार्दन, शूलपाणि शिव आदि देवगण सुखपूर्वक इस यज्ञ वेदी पर सन्निहित होकर भक्तिपूर्वक मेरे द्वारा की गयी पूजा स्वीकार करें और मेरे इस यज्ञ सम्बन्धी शुभ कर्म को सफल बनाने की कृपा भी करें। इस प्रकार विशुद्ध मन से देवों की अर्चा नैवेद्य, अनेक भाँति के भक्ष्य फल आदि द्वारा सुसम्पन्न कर यजमान ब्राह्मणों द्वारा कुण्ड का वेदोक्त विधान द्वारा संस्कार और प्रख्यात घृतार्चि नामक अग्नि की स्थापना कराये। नृपोत्तम! उस समय उस हवन कर्म के सम्पन्नार्थ यजमान सौ अथवा बहुत या प्रलाभ में जो कुछ ब्राह्मण मिल जाँय, नियुक्त करे, जो विद्या के निपुण विद्वान्, वयोवृद्ध, गृहस्थ, इन्द्रिय संयमी, स्वकर्म में नियत, ज्ञानशील, शान्त एवं ब्राह्मण श्रेष्ठ हों। नृप! पुनः पाँच मुख वाले देवेश पावक का ध्यान करे, जो चार मुख, सात जिह्वा से सुशोभित रहते हैं। पार्थिव! इनकी एक जिह्वा समस्त कामनाओं को सफल करने वाली बतायी गयी है। धूएँ से आच्छादित प्रज्वलित अग्नि में आहुति डालना व्यर्थ कहा गया है। हवन के समय ऋग्वेदी को पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदी को उत्तराभिमुख, सामवेदी, को पश्चिमाभिमुख और अथर्व वेदी को दक्षिणाभिमुख आहुति प्रदान करनी चाहिए।३४-४२। सर्वप्रथम आधार और आज्य भाग की आहुति डालकर (कुण्ड के) चारों ओर कल्पित कुशासन पर बैठे ब्रह्मा के सम्मुख व्याहृतियों द्वारा समस्त आहुति प्रदान करे। पश्चात् प्रणव (ओंकार) पूर्वक देवों के पृथक् पृथक् मंत्रों के अन्त में स्वाहा शब्द के उच्चारण पूर्वक समस्त देवों के निमित्त आहुति प्रदान करे, जो वेदी पर स्थापित किये गये हों। इस प्रकार कल्पित उस कोटि होम नामक अनुपम यज्ञ में काले तिल, अल्पमात्रा में मिले हुए जवा को घृतप्लुत करके पलाश की प्रज्वलित अग्नि में उसकी आहुति

---

१. महेश्वरः । २. चैव सुशोभने । ३. प्राज्वालयेत् । ४. कृत्वा ।

होतव्याः कोटिहोमे तु समिधश्च पलाशजाः । पूर्णे पूर्णे सहस्रे तु दद्यात्पूर्णाहुतिं शुभाम् ॥
पञ्चमे तन्मुखे राजन्सर्वकामार्थसिद्धये ॥४७
पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप । सहस्राणि नृपश्रेष्ठ दश शास्त्रविशारदैः ॥४८
प्रारम्भदिनमारभ्य ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः[1] । भाव्यं सयजमानैस्तु अथवा सपुरोहितैः ॥४९
क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः । यजमानेन राजेन्द्र सर्वान्कामानभीप्सितान् ॥५०

सम्वरण उवाच

बहुत्वात्कर्मणो ब्रह्मन्कोटिहोमः सुदुष्करः । कालेन महता चैव शक्यः प्राप्तुं कथञ्चन ॥५१
नियमाद्ब्रह्मचर्याद्वा दुष्करो हीति मे मतिः । निरोधोऽत्र ब्राह्मणानां भूशय्यादिषु दुष्करः ॥५२
कार्याद्गुरुतया यस्मात्पर्वकालाद्यपेक्षया । एतद्विज्ञायते ब्रह्मन्यदि शास्त्रेषु कथ्यते ॥
कोटिहोमस्य संक्षेपं वद मे ब्रह्म सम्भव ॥५३

सनत्कुमार उवाच

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा । चतुर्विधो महाराज कोटिहोमो विधीयते ॥५४
कार्यस्य गुरुतां ज्ञात्वा नैव[2] कुर्यादपर्वणि । यथा संक्षेपतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृणु ॥५५
कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं हस्तसम्मितम् । एकैकस्मिंस्ततः कुण्डे शतं विप्रान्नियोजयेत् ॥५६
सद्यःपक्षे तु विप्राणां सहस्रं परिकीर्तितम् । एकस्थानप्रणीतेऽग्नौ सर्वतः परिभाविते ॥५७

अर्पित करते हुए प्रत्येक सहस्राहुति पर पूर्णाहुति अर्पित करता रहे । राजन् समस्त कामनाओं की सफलता के लिए अग्नि के पाँचवे मुख में सभी पूर्णाहुतियों को समर्पित करना बताया गया है । नृपश्रेष्ठ ! कोटि होम के अनुष्ठान में दशसहस्र ब्राह्मणों, का जो शास्त्रकुशल एवं ब्रह्मवादी हों, वरण होना चाहिए । अनुष्ठान के आरम्भ दिन से समाप्ति पर्यन्त उन ब्राह्मणों समेत पुरोहितों एवं यजमानों को सदैव क्रोध लोभ आदि दोष रहित रहना चाहिए । क्योंकि तभी उनकी समस्त कामनाओं की अभीष्ट सिद्धि सम्भव होगी ।४३-५०

सम्वरण बोले—ब्रह्मन् ! कर्मों के बाहुल्य और इतने महान् काल की अपेक्षा होने से यह कोटि होम सभी को कैसे सुलभ हो सकता है, तथा (उसके) नियम, ब्रह्मचर्य के पालन, ब्राह्मणों के लिए भू शय्या आदि का निरोध होने के नाते मेरी सम्मति में यह कोटि होम इस रूप में अत्यन्त दुष्कर है और पर्व काल आदि की अपेक्षा रखने से गुरु भी है । ब्रह्मसंभव, ब्रह्मन् इन सभी कारणों के नाते इस कोटिहोम का शास्त्रीय संक्षिप्त विधान बताने की कृपा करें ।५१-५३

सनत्कुमार बोले—महाराज ! कोटिहोम का विधान शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख चार प्रकार का बताया गया है । कार्य गुरु होने के नाते भी इसे किसी पर्वहीन दिवस में नहीं आरम्भ करना चाहिए । मैं संक्षेपतः इसका विधान बता रहा हूँ, सुनो ! दिव्य सौ कुण्डों के पूर्वोक्त हाथों की लम्बाई चौड़ाई के निर्माण करके प्रत्येक कुण्डों के लिए सौ-सौ ब्राह्मणों के वरण होने चाहिए । तत्काल समाप्ति होने के पक्ष में (प्रत्येक कुण्डों के लिए) सहस्र-सहस्र ब्राह्मणों के एक ही स्थान पर के स्थापन पूजन करके

---

१. ब्रह्मचारिभिः । २. नैष्कर्म्यमथ कर्मणः ।

होमं कुर्युर्द्विजाः सर्वे कुण्डे कुण्डे यथोदितम् । यथा कुण्डबहुत्वेऽपि राजसूये महाक्रतौ ।।५८
न च वह्निबहुत्वं स्यात्तत्र यज्ञे विधीयते । तथा कुण्डशतेऽप्यत्र घृतार्चिषि वितानिते ।।५९
एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः । एवं यत्क्रियते क्षिप्रं व्याकुलैः कार्यगौरवात् ।।
शताननः सविज्ञेयः कोटिहोमो न संशयः ।।६०
स्वल्पैरहोभिः कार्यः स्याद्वर्षाकालादिकेऽपि वा । तदा दशगुणः कार्यः कोटिहोमो विजानता ।।६१
विप्राणां द्वे शते तत्र सुविभज्य[1] नियोजयेत् । तेऽपि विज्ञानशीलाः स्युर्व्रतवन्तो जितेन्द्रियाः ।।६२
भूप कुण्डद्वयं कृत्वा विभज्य च विभावसुम् । होमं कुर्युर्द्विजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ।।६३
शतं तत्र नियोज्यं स्याद्विप्राणां प्रविभज्य वै । मासे वाथ द्विमासे वा यथाकाले ह्युपस्थिते ।।६४
एवं च द्विमुखं कार्यः कोटिहोमो विचक्षणैः ।।६५
यदा तु स्वेच्छया यज्ञं यजमानः समापयेत् । कालेन बहुधा राजन्स्तदा चैकमुखो भवेत् ।।६६
एककुण्डस्थितो वह्निरेकचित्तैः समाहितैः । यथालाभं स्थितैर्विप्रैर्ज्ञानशीलैर्विचक्षणैः ।।६७
न संख्यानियमश्चात्र ब्राह्मणानां नरोत्तम । न कालनियमश्चैव स्वेच्छायज्ञः स उच्यते ।।६८
आवृत्त्या सर्वकामस्य चातुर्मास्यानुकर्मवत् । तदप्रसक्तौ कर्तव्यो यज्ञोऽयं सार्वकालिकः ।।६९

उसी अग्नि द्वारा क्रमशः सभी कुण्डों की प्रज्वलित अग्नि में सभी ब्राह्मणों को तदनुसार हवन करना चाहिए । यह उसी भाँति बताया गया है जिस प्रकार राजसूय महायज्ञ में कुण्ड की अधिकता होने पर भी अग्नि बाहुल्य नहीं होता है । इसीलिए इस कोटिहोम यज्ञ में भी सौ कुण्डों के होने पर भी जो घृतार्चि नामक अग्नि द्वारा प्रज्वलित रहते हैं, एक ही यज्ञ कहा जाता है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार कार्यगौरव वश व्याकुल होकर जो इसे शीघ्र सुसम्पन्न करता है वह शतानन कोटि होम कहा जाता है ।५४-६०। वर्षा काल आदि अथवा अन्य किसी समय अल्प दिनों में ही इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करना चाहें तो कोटि होम के विधानवेत्ता को उचित है कि वह दशगुने अधिक (दशमुख) का निर्माण करे । दो सौ ब्राह्मणों को विभागपूर्वक सभी स्थान नियुक्त करे जो विज्ञानी, व्रत परायण और इन्द्रिय संयमी हों। और जिस स्थान पर दो कुण्डों के निर्माण पूर्वक अग्नि का विभाजन कर सविधि संस्कार एवं हवन किया जाता है वहाँ तीन सौ ब्राह्मणों को यथाविभाग द्वारा नियुक्त करे और उसे एक या दो मास में सुसम्पन्न करे उसे कोटि होम के वेत्ता ने द्विमुख कोटि होम बताया है ।६१-६५। राजन् ! जिस समय यजमान स्वेच्छया अधिक काल में उसे समाप्त करना चाहता है, उसे सावधान होकर एक ही कुण्ड का निर्माण एवं उसी में बह्नि के स्थापन पूजन पूर्वक ज्ञानशील समेत विद्वान् जितने भी ब्राह्मण मिल जायें सभी को उसमें नियुक्त कर लेना चाहिए ।६६-६९। नरोत्तम ! इसलिए कि उसमें ब्राह्मणों की संख्या का नियम और काल नियम नहीं है वह स्वेच्छा यज्ञ कहा जाता है । चातुर्मास्य (चौमासे के) कर्मों की भाँति उसमें सभी कर्मों की आवृत्ति होनी चाहिए और चातुर्मास्य के रहने पर इसे अन्य सभी यज्ञों की भाँति सभी समय सुसम्पन्न करना चाहिए। राजन् ! यह एक मुख नामक कोटि होम यज्ञ द्वारा अधिक काल में ही सुसम्पन्न होता है और उतने विस्तृत काल में अनेक विघ्नों का सम्भव होना स्वाभाविक हो जाता है अतः संक्षिप्त विधान द्वारा ही इसे सुसम्पन्न करना

---

१. सुविभाव्यवियोजयेत् ।

अयमेकमुखो राजन्कालेन बहुना भवेत् । बहुविघ्नश्च कालेन तस्मात्संक्षेपमाचरेत् ॥७०
ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्सुमहोत्सवम् । शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषस्वनेन च ॥७१
ततस्तु दीक्षयेद्विप्रान्होतॄंश्च श्रद्धयान्वितः । निष्कैश्च कङ्कणैश्चैव कुण्डलैर्विविधैर्नृप ॥७२
गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तदा । सहस्रं च सुवर्णस्य सर्वेषामपि दापयेत् ॥७३
ग्रामैर्गजै रथैरश्वैः पूजयेच्च पुरोहितम् । दीनान्धकृपणान्सर्वान्वस्त्राद्यैश्चापि पूजयेत् ॥७४
ततश्चावभृथं स्नायात्तैर्घटैः पूर्वकल्पितैः । लक्षहोमोक्तमन्त्रेण सदा विजयकारिणा ॥७५
एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम् । तस्यारोग्यं वित्तपुत्रराष्ट्रवृद्धिस्तथैव च ॥७६
सर्वपापक्षयश्चैव जायते नृपसत्तम । अनावृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव च ॥७७
दुर्भिक्षं ग्रहपीडा च प्रशमं याति भूतले । एतत्पुण्यं पापहरं सर्वकामफलप्रदम् ॥
सनत्कुमारमुनिना पार्थिवाय निवेदितम् ॥७८

सर्वोपसर्गशमनं भवने वने वा ये कारयन्ति मनुजा नृपोकोटिहोमम् ।
भोगानवाप्य मनसोभिमतान्प्रकामं ते यान्ति शक्रसदनं सुविशुद्धसत्त्वाः ॥७९

इति श्रीभविष्य महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कोटिहोमविधिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४२

चाहिए। मनुष्यों के चित्त, वित्त एवं आयु के स्थिर न रहने के कारण भी इस धार्मिक कार्य को संक्षिप्त ही करना चाहिए। अनन्तर यज्ञ के समाप्त होने पर महोत्सव आरम्भ कर शंख, तुरुही आदि मांगलिक वाद्यों के निनाद और ब्रह्मघोष एवं जयघोष द्वारा उसे अलंकृत करे। नृप ! तदुपरांत श्रद्धासमेत होताओं को सुवर्ण के कंकड, कुण्डल से सुप्रसन्न करते हुए सभी सौ गौ, सौ सौ घोड़े, एवं सहस्रसुवर्ण के पदक से सभी आवृत ब्राह्मणों को सुसम्मानित करे। गाँवों, हाथियों, रथों और घोड़ों के अर्पण द्वारा पुरोहित की पूजा के पश्चात् दीनों, अन्धों, तथा कृपणों आदि व्यक्तियों को वस्त्र आदि से सन्तुष्ट कर राजा लक्षहोम के मंत्रों की ध्वनि के बीच पूर्वकल्पित घटों के जल से अपना अभिषेचन कराये। विजयेच्छुक राजा के कोटि होम यज्ञ इस भाँति सुसम्पन्न करने पर आरोग्या धन, पुत्र एवं राष्ट्रवृद्धि के साथ उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। नृपसत्तम ! भूतल की अनावृष्टि, उत्पात, दुर्भिक्ष, ग्रहपीडा आदि सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं। यह यज्ञ पुण्य, पापहारी, समस्त कामनाओं को सफल करता है, ऐसा सनत्कुमार महर्षि ने राजा से निवेदन किया था। नृप ! इस प्रकार अपने भवन अथवा वन आदि किसी प्रशस्त स्थान में समस्त उपद्रवों को शान्ति करने वाले इस कोटि होम यज्ञ को सविधान सम्पन्न करने पर उन विशुद्ध मनुष्यों को यथेच्छ भोगों के उपभोग समेत इन्द्रपुरी प्राप्त होती है।७०-७९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठर के सम्वाद में
कोटिहोमविधि वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४२।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महाशान्तिविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महाशान्तिं प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषितम् । पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिणीम् ॥१
नृपाभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे ॥२
विद्युदुल्कानिपाते च जन्मर्क्षे ग्रहदैवते । केतूदयेऽथ सञ्जाते निर्घातक्षितिकम्पने ॥३
प्रसूतौ मूलगण्डान्ते यमलस्य तु सम्भवे । छात्राणां च[1] ध्वजानां च स्वस्थानात्पतने भुवि ॥
काकोलूककपोतानां प्रवेशे वेश्मनस्तथा ॥४
क्रूरग्रहाणां वक्रत्वे जन्मादिषु विशेषतः । जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाष्टमे तथा ॥५
यदा स्युर्गुरुमन्दाऽऽराः सूर्यश्चैव विशेषतः । युद्धे ग्रहाणां सर्वेषां सूर्यशीतांशुकीलके ॥६
वस्त्रायुधगवाश्वेषु मणिकेशविनाशने । यद्यग्रे परिदृश्येत रात्राविंद्रधनुस्तथा ॥७
वेश्मनश्च तुलाभङ्गे गर्भेष्वश्वतरीषु च । रवीन्द्वोरुपरागेषु महाशान्तिः प्रशस्यते ॥८
सर्वाणि दुर्निमित्तानि प्रशमं यान्ति सर्वथा । तां कुर्युर्ब्राह्मणाः पञ्च कुलशीलसमन्विताः ॥९
चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च द्विवेदाश्चापि पाण्डव । आथर्वणा विशेषेण बह्वृचा यजसंयुताः ॥१०
शुचयः श्रुतसम्पन्ना जपहोमपरायणाः । कृच्छ्रपाराकनक्ताद्यैः कृतकाय विशोधनाः ॥११

अध्याय १४३

महाशान्तिविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं महादेव जी की बतायी हुई उस महाशान्ति को बता रहा हूँ जिसमे पार्थिवों के विशेष हित निहित हैं और महादुऽस्तर दुरित से वह पार करती है। राज्याभिषेक राजा की विजय यात्रा दुःस्वप्न दुर्निमित्त, ग्रहों के विगुण (अरिष्ट) होने विद्युत उल्का आदि के गिरने, जन्म नक्षत्र के ग्रहाधीश्वर के समय, केतु के उदय, निर्घात, भूकम्प, मूल गण्डान्त में प्रसव होने, यमल (जुडवाँ) के उत्पन्न होने छत्र, चामर ध्वजादि के अपने स्थान से भूतल पर गिरने, घर में कौवा उल्लूक (उल्लु), कपोत (कबूतर) के प्रवेश करने, जन्म आदि स्थानों में क्रूर ग्रहों के वक्री होने, जन्म, बारहवें, चौथे अथवा आठवें स्थान में बृहस्पति, शनि, और सूर्य के स्थित होने, युद्ध में सूर्य, चन्द्र, आदि सभी ग्रहों के कीलित होने, वस्त्र, आयुध, गौ, अश्व के मणि पर केश के विनष्ट होने, रात्रि में सर्वप्रथम इन्द्र धनुष के दिखायी देने पर गृह एवं तुला (तराजू) के भंग होने, घोड़ी के सगर्भा होने पर तथा सूर्य चन्द्र के ग्रहण होने पर यह महाशान्ति विधान सुसम्पन्न किया जाता है जिससे समस्त दुर्निमित्तों के प्रशमन हो जाते हैं। पाण्डव! इस विधान को कुलशील सम्पन्न पाँच ब्राह्मण विद्वान् सुसम्पन्न करें। १-९। जो चतुर्वेद, त्रिवेद, द्विवेद एवं अथर्व वेद के अध्ययन तथा यजुर्वेद समेत अनेक ऋचों के निपुण विद्वान् पूतात्मा, श्रुतिसम्पन्न, जपहोमपरायण हों और कच्छ

---

१. चामराणां च।

पूर्वमाराध्य मन्त्रैस्तु प्रारभेत क्रियां ततः । दशद्वादशहस्तं वा मण्डपं कारयेच्छुभम् ।।१२
तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तप्रमाणतः । आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ।।१३
मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चापि विभूषितम् । बद्धचन्दनमालं च तोरणालंकृतं तथा ।।१४
गोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे तु द्विजातयः । शुक्लाम्बरधराः स्नाताः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ।।१५
ततश्च पञ्च कलशान्स्तस्यां वेद्यां नियोजयेत् । आग्नेयादिषु कोणेषु पञ्चमं मध्यतस्तथा ।।१६
अष्टाब्जलंकृते पद्मे चूतपल्लवशोभिते । ब्रह्मकूर्चविधानेन पञ्चगव्यं तु कारयेत् ।।१७
औषधीः पञ्चरत्नानि रोचनां चन्दनं तथा । सिद्धार्थकाञ्छमीदूर्वाः कुशान्व्रीहियवांस्तथा ।।१८
अपामार्गं फलवतीं न्यग्रोधोदुम्बरी तथा । प्लाक्षाश्वत्थकपित्थांश्च प्रियङ्गुचूतपल्लवान् ।।१९
हस्तिदन्तमृदं चैव कोणकुम्भेषु निक्षिपेत् । पुण्यतीर्थोदकान्नं च धान्यं गव्यं च मध्यमे ।।२०
कूर्चं वाचमितीदं च वह्निकुम्भाभिमन्त्रणम् । आशुः शिशानोमन्त्रेण मन्त्रेण वायुगोचरे ।।२१
ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य चाभिमन्त्रणम् । मध्ये जपितव्यास्तु रुद्रकुम्भे भवोद्भवाः ।।२२
गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । फलैश्च नारिकेलाद्यैर्दीपकैः कुम्भपूजनम् ।।२३
स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत्तदनन्तरम् । क्रमेणानेन शनकैरग्निकार्यं प्रयोजयेत् ।।२४
अग्निं दूतमिति ह्यग्निं पूर्वमेव निधापयेत् । हिरण्यगर्भः समिति ब्रह्मासननियोजनम् ।।२५
कपोतसुप्रणीतेन मन्त्रेण विनिशेषयेत् । कृत्वा चावरणं वह्नेराज्यसंस्कारमेव च ।।२६

आदि के पारंगत एवं नक्त व्रतादि से अपनी शरीर का शोधन किये हों। सर्वप्रथम मंत्रों द्वारा आराधना करने के अनन्तर क्रियाओं को प्रारम्भ करना चाहिए। दश या बारह हाथ का रम्य मण्डप निर्माण करके उसमें चार हाथ की वेदी और उसे अग्नि कोण में एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाना चाहिए जो तीन मेखला और योनि मुद्रा से विभूषित हो। चन्दन, माला एवं तोरण से अलंकृत उस मण्डप के भीतर भूमि में गोबर से लीप कर स्नानोपरान्त शुक्लवस्त्र, श्वेतमाला एवं विलेपन से भूषित ब्राह्मणगण वहाँ सुशोभित हों। और उस वेदी अग्नि आदि कोण में चार कलश तथा पाँचवा कलश मध्य स्थल में स्थापित करें, जो अष्टदल कमल एवं आम के पल्लव से भूषित हों। अनन्तर ब्रह्मकूर्च[1] विधान द्वारा पञ्चगव्य बनाए।१०-१७। सभी औषध, पाँचो रत्न, गोरोचन, चन्दन, राई, शमी, दूर्वा, कुश, धान्य, जवा, फल युक्ता अपामार्ग (चिचिड़ी), बरगद, गूलर, पाकडि, पीपल, कैथा, प्रियगुं (कांगुनी आदि), और आम के पल्लव समेत हाथी के दाँत एवं मिट्टी कोने में स्थापित कलश में डालनी चाहिए। पुण्य तीर्थों के जल तथा उनके द्वारा उत्पन्न अन्न, धान्य, गव्य मध्य कलश में डालकर 'कूर्च वाचमिति' से अग्नि कलश का अभिमंत्रण, आशुः शिशानों, से वायव्यवस्थित कलश का अभिमंत्रण, 'ईशावास्यमिति' मंत्र से चौथे कलश का अभिमंत्रण; 'रुद्रकुंभेभवोद्भवा' मंत्र से मध्य में स्थित पाँचवें का अभिमंत्रण करना चाहिए। अनन्तर गंध, पुष्प, अक्षत, वस्त्र, घृतप्लुत, नैवेद्य, फल, नारियल और दीपक आदि द्वारा कलश पूजन करके स्वस्तिवाचन कराये तथा उसके पश्चात् हवन कार्य करना चाहिए।१८-२४। 'अग्नि दूतं' इस मंत्र से सर्वप्रथम अग्निस्थापन 'हिरण्य गर्भः' से ब्रह्मासन, और 'कपोत सुप्रणीतेनेति' मंत्र से अग्नि का विनिवेश करने के

---

१. अहोरात्रोषितोभूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः । पञ्चगव्य पिवेत्प्रातः ब्रह्मकूर्चमितिस्तमृतम् ।।

अथ चासादयेद्द्रव्यं यथावत्सप्रयोजनम्[१] । ततः पुरुषसूक्तेन पायसश्रपणं भवेत् ॥२७
अभिघार्याथ संसिद्धं तथा संस्थापयेद्भुवि । अष्टादशप्रमाणेध्मान्दद्यादथ शमीमयान् ॥२८
पालाशीः समिधः सप्त तथा सप्तेति दापयेत् । आघारावाज्यभागौ तु हुत्वा पूर्वक्रमेण तु ॥२९
जुहुयादाहुतीः सप्त जातवेदस इत्यृचा । स्थालीपाकस्य जुहुयात्पुनर्वै जातवेदसा ॥३०
तरत्समन्दीसूक्तेन चतस्रो जुहुयात्ततः[२] । यमायेति च सप्तान्याः स्वाहान्ता जुहुयात्ततः ॥३१
इदं विष्णुस्तत सप्त जुहुयादाहुतीर्नृप । नक्षत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविंशदथाहुतीः ॥३२
यत्कर्मणेति जुहुयात्ततः स्विष्टकृतं पुनः । ग्रहहोमस्ततः कार्यस्तिलैराज्यपरिप्लुप्तैः ॥३३
प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा होमकर्म समापयेत् । ततस्तु तूर्यनिर्घोषैः काहलाशङ्खनिःस्वनैः ॥३४
यजमानस्य कर्तव्यो ह्यभिषको[३] द्विजोत्तमैः । काश्मर्यवृक्षसम्भूते भद्रे भद्रासने स्थितम् ॥३५
वेदिमध्यगतं कृत्वा दुर्निमित्तप्रशान्तये । पञ्चभिःकलशैः पूर्णैर्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ॥३६
सहस्राक्षेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा । सजोषसा च इन्द्रेति विश्वानीत्यृग्भिरेव च ॥३७
ऋतमस्त्विवति च ततः स्नापयेयुः समाहिताः । ततो दिशां बलिं दद्याद्विचित्रान्न समायुतम् ॥३८
नमोस्तु सर्वभूतेभ्य इति मन्त्रमुदाहरन् । स्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुःशान्तिमुत्तमाम् ॥३९
शान्तितोयेन धारां च पातयित्वा समन्ततः[४] । पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ॥४०
क्षितिं हिरण्यं वासांसि शयनान्यासनानि च । विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथा शक्त्या विमत्सरः ॥४१

अनन्तर अग्नि का आवरण, आज्यसंस्कार, द्रव्यासदन कर्म करके पुरुष सूक्त द्वारा पायस बनाये और अभिधार्य संस्कार में सिद्ध होने पर उसे पृथ्वी पर रखे। अठारह समिधाओं के प्रमाण पक्ष में शुद्ध शमी, और चौदह पलाश की समिधा होना चाहिए! आघार आज्यभाग की आहुति क्रमशः अर्पित कर 'जातवेदसे' इस ऋचा से सात आहुति प्रदान करें। पुनः 'जातवेदसे' इस ऋचा आहुति प्रदान करने के अनन्तर 'यमायेति' स्वाहातमंत्र से अन्य सात आहुति प्रदान करे।२५-३१। नृप! पश्चात् इदं विष्णुरिति' ऋचा से सात आहुति, नक्षत्रों के लिए सत्ताईस आहुति, 'यत्कर्मणेति' मंत्र से स्विष्टकृत आहुति प्रदान करने के उपरांत घृतप्लुत तिलों द्वारा ग्रहों के निमित्त आहुति प्रदान करे और प्रायश्चित हवन की आहुति अर्पित कर होम कर्म समाप्त करे। अनन्तर ब्राह्मणों को तुरुही, डमरु शंख आदि की मांगलिक ध्वनियों समेत काश्मर्य (पलाश) के भद्रपीठ पर वेदी के मध्य में स्थित यजमान का अभिषेक उसके निमित्त शान्ति के लिए करना चाहिए। पाँचों पूर्ण कलशों के जलों से क्रमशः सर्वप्रथम 'सहस्राक्षेणेति' मंत्र से प्रथम, 'शतायुषोति' मंत्र से द्वितीय, 'सजोषसा च इन्द्रेति' से तृतीय, 'विश्वानीति' मंत्र से चौथा और 'ऋतवस्तित्वति चेति' पाँचवें कलश के जल से समाहित मन से स्नान करावे। अनन्तर 'नमोऽस्तु सर्व भूतेभ्य इति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक विचित्र अन्न समेत दिशाओं में बलि प्रदान करे।३२-३८। यजमान के स्नानोपरांत ब्राह्मणवृन्द परमोत्तम शान्ति पाठ करते हुए चारों ओर शान्ति जल की धारा प्रवाहित करें पुण्याहवाचन करके शान्तिकर्म के समाप्ति करें। तदुपरांत पृथिवी, हिरण्य (सुवर्ण), वस्त्र, शय्या, आसन आदि वस्तु यथाशक्ति प्रदान करते समय मत्सर आदि दोषहीन रहे। दीन, अनाथ, समेत श्रोत्रिय

---

१. येन यत्सप्रयोजनम्। २. पुनः। ३. शुभैर्जलैः। ४. समाहिताः।

दीनानाथविशिष्टेभ्यः श्रोत्रियेभ्यश्च[1] दापयेत् । भोजनं शोभनं दत्त्वा ततः सर्वं प्रसिद्ध्यति ॥४२
आयुश्च लभते दीर्घं शत्रून्विजयते क्षणात् । दुर्गाणि चास्य सिद्ध्यन्ति पुत्रांश्च लभते शुभान् ॥४३
यथाशस्त्रप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् । तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ॥४४
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च । दयादाक्षिण्ययुक्तस्य[2] सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ॥४५
अर्थान्समर्थयति वर्द्धयते च धर्मं कामं प्रसाधयति तस्य पिनष्टि पापम् ।
यः कारयेत्सकलदोषहरां समर्थां शान्तिं प्रशान्तहृदयः पुरुषः सदैव ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महाशान्तिविधिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गणनाथशान्तिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शान्तिं कथय देवेश गणनाथस्य मे विभो । यां कृत्वा सर्वदुर्गाणि तरते मानवोऽखिलः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

शान्तिं वक्ष्यामि राजेन्द्र गणनाथप्रियां पराम् । यस्या आचरणेनैव सर्वारिष्टक्षयो भवेत् ॥२

(वैदिक) ब्राह्मणों को मनोरम भोजन संतृप्त कराने से ही समस्त उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति होती है दीर्घायु, तत्क्षण शत्रु विजय, और दुर्गसिद्धि समेत कल्याण भाजन पुत्रों की प्राप्ति होती है । जिस प्रकार शस्त्रों के प्रहारों को कवच रोकता है, उसी भाँति दैवि आपत्तियों को शान्ति निवारण करती है । अहिंसक, शुद्ध, धर्म द्वारा अर्जित धन, एवं दया दाक्षिण्ययुक्त पुरुष के सभी ग्रह सानुकूल हो जाते हैं । इस प्रकार सफल दोषापहरण में समर्थ इस शान्त कर्म को सुसम्पन्न करने के नाते अशान्त हृदय प्राणी के इसके द्वारा सदैव अर्थ धर्म की वृद्धि, कामनाएँ सफल, और पाप विनष्ट होते हैं ।३९-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
महाशान्तिविधि वर्णन नामक एक सौ तैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४३।

अध्याय १४४

गणनाथशान्तिविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवेश ! विभो ! मुझे गणनाथ की शान्ति बताने की कृपा कीजिये जिससे मानव गण अखिल दुर्गों को पार करते हैं ।१

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें गणनाथ की उस परमप्रिय शान्ति का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर समस्त अरिष्टों का शमन हो जाता है । निर्विघ्न सिद्ध्यर्थ उस विनायक कर्म को सुनो ।२।

---

१. दद्याच्चैव युधिष्ठिर । २. दयामाणिक्ययुक्तस्य ।

विनायकं कर्माविघ्नसिद्धयर्थं विनिबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुंडांश्च पश्यति ।।३
काषायवाससश्चैव क्रव्यादानाधिरोहति । अपमूर्धैः शवै रुद्रैः सहैकत्र च तिष्ठति ।।४
व्रजन्नपि तथात्मानं मन्यतेनुगतं परैः । विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ।।५
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः । कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भिणी तथा ।।६
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा । वणिग्लाभं न चाप्नोति न कृषिं च कृषीवलः ।।७
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य तु ।।८
सुगन्धकुंकुमालिप्तशरीरशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुभान् ।।९
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद् ध्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ।।१०
यदा हृता ह्येकवर्णैर्मनुभिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ।।११
सहस्राक्षं सतधारमृषिणा वचनं कृतम् । ते नत्वामभिषिंचामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।१२
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।१३
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा ।।१४
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण च । जुहुयान्मूर्द्धनिकुशान्सव्येन परिगृह्य च ।।१५
मिताश्च संमितश्चैव तथा सालकटं कटौ । कूष्माण्डो राजपुत्रश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः ।।१६
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वशः ।।१७

जिसके सुसम्पन्न न करने पर स्वप्न में अगाध जलावगाहन, मुण्डा दर्शन, काषाय (गेरुआ) वस्त्रधारी क्रव्याद (राक्षस) पर अधिरोहण, शिर विहीन एवं भीषण शवों के बीच रहना, (अकेले) चलते हुए पीछे से कुछ लोगों के आने का संदेह होने लगता है, प्राणी अन्यमनस्क रहता है, उसके सभी प्रारम्भ निष्फल होते रहते हैं, अकारण कष्ट का अनुभव करता है। राजपुत्र राज्य कुमारी पति, गर्भिणी सन्तान, वेदपाठी आचार्य की उपाधि, शिष्य अध्यापन, व्यापारी (वैश्य) लाभ और किसान की कृषी की सफोता नहीं प्राप्त करते हैं। अतः किसी पुण्य दिवस में श्वेत राई की खली समेत सविधान स्नान करके राज्य च्युत राजा सुगन्ध, कुंकुम अपने शिर शरीर में लगाकर भद्रासन पर बैठे और पूतात्मा ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराये। घोड़े, हाथी के स्थान, बलमीक, संगम, सरोवर की मृत्तिका, गोरोचन, गंध, गुग्गुल जलवर्ण कलशों में डालकर।३-१०। जो एक वर्ण के मनोहर बने हों, रक्त वर्ण के चर्मासन पर राजा को बैठाकर उन कलश जलों से स्नान कराते समय मंत्रोच्चारण करे—जो शतधार से सहस्राक्ष इन्द्र को पूत किया और ऋषि की वाणी सत्य की उसी जल से मैं तुम्हारा अभिषेचन कर रहा हूँ, वह पवित्र जल तुम्हें पूतात्मा बनाये। राजा वरुण तुम्हें तेज प्रदान करें, सूर्य, बृहस्पति तेज प्रदान करें, इन्द्र और वायु तेज प्रदान करें, उसी भाँति सप्तर्षि गण भी तेज प्रदान करें। तुम्हारे केशों, ललाट, शिर, कानों और नेत्रों में जो कुछ दुर्भाग्य हो, यह पवित्र जल उसे शीघ्र विनष्ट करे। स्नान किये राजा के शिर पर गूलर के स्रुवा द्वारा कड़ुवातेल का मार्जन करते समय दाहिने हाथ में कुश भी लिए रहना चाहिए। मित, संमित, साल, कटंकट, और कूष्भांड की बलि उनके नाम मंत्र के उच्चारण पूर्वक अन्त में स्वाहा कहकर नमस्कार करते हुए अर्पित करना चाहिए। पश्चात् चौराहे पर कुश बिछा कर बलि निमित्त एक सूप का पात्र रखे।११-१७। जिसमें

कृता कृतान्स्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान्पक्वान्स्तथैवामान्मांसमेतावदेवतु ।।१८
पुष्पं चित्रं सुगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिकापूपं तथैवोन्डेरकस्रजम् ।।१९
दूर्वां सर्वप्रपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमण्डलाम् । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् ।।२०
रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वकामांश्चदेहि मे ।।२१
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ।।२२
एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियमाप्नोति चोत्तमाम् ।।२३
आदित्यस्य तथा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।।२४
श्वेतार्कस्य तु यो मूले महागणपतिः कृतः । सर्वलक्षणसम्पूर्णः सोऽपि सिद्धिकरः स्मृतः ।।२५
सञ्जप्यते शुचौ देशे विघ्नं नात्र हि देहिनः । परमं पूजयेन्नित्यं गन्धमाल्यस्रगादिभिः ।।२६
क्षीणभाग्योऽपि पुरुषः पूजितश्च नरेश्वरः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति जयी भवति सर्वदा ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
गणनाथशान्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ।१४४

कच्चे पक्के चावल, मांस, भात, कच्ची पक्की मछली का मांस हेतु । चित्र विचित्र पुष्प, सुगंध, तीनों सुरा (शराब), मूली, पूरी, पूआ, कुण्डेरक की माला, दूर्वा समस्त पुष्पों समेत अर्घ्य प्रदान करके विनायक की जननी भगवती अम्बिका के सम्मुख जाकर विनय विनम्र याचना करे—भगवति ! रूप, यश, तेज, पुत्र, धन समेत सभी कामनाएँ सफल करें । अनन्तर शुक्ल वस्त्र, श्वेत वर्ण की माला एवं अनुलेपन से भूषित होने पर ब्राह्मण भोजन कराये और गुरु के लिए युग्म वस्त्र अर्पित करे । इस प्रकार विनायक की पूजा करके सविधान ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करने पर कर्मों के फलों समेत परमोत्तम की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सूर्य की पूजा, स्वामि कार्तिकेय एवं महागणपति को तिलक से भूषित करने पर सिद्धि की प्राप्ति होती है । श्वेत मदार के मूल भाग में समस्त लक्षण युत महागणपति की प्रतिमा निर्माण करने से भी सिद्धि प्राप्त होती है । पवित्र स्थान में जप करने से प्राणी को किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता है । गंध, माला, पुष्प आदि द्वारा नित्य उत्तम विधान द्वारा पूजन करने से हतभागी पुरुष भी पूजित होता है और नराधीश राजा समस्त सिद्धि समेत सदैव विजयी होता है ।१८-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्री कृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
गणनाथशांति वर्णन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रहोमविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अग्निहोत्रे सुखासीनं गर्गः पृच्छति कौशिकम् । बन्धने सन्निरोधेऽङ्ग व्याधीनां सम्प्रपीडने ।।१
कथं मोक्षो भवेत्तस्य साध्यासाध्यं ब्रवीहि मे । गर्गेण कौशिकः पृष्ट इदं वचनमब्रवीत् ।।२
आधाने जन्मनक्षत्रे नैधनप्रत्ययेषु च । व्याधिरुत्पद्यते यस्य क्लेशाय मरणाय च ।।३
कृत्तिकासु यदा कश्चिद्व्याधिं सम्प्रतिपद्यते । नवरात्रं भवेत्पीडा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ।।४
मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रा प्राणवियोजिनी । पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते ।।५
नवरात्रं तथाश्लेषा श्मशानान्तं मघासु च । द्वौ मासौ फाल्गुनी चैव उत्तरासु त्रिपक्षकम् ।।६
हस्ते च तनु दृश्येत चित्रायां त्वर्द्धमासकम् ।।७
मासद्वयं तथा स्वातौ विशाखा विंशतिर्दिनाः । मैत्रे चैव दशाहं तु ज्येष्ठा चैवार्द्धमासिका ।।८
मूलेन जायते मोक्षश्चाषाढासु त्रिपञ्चकम् । उत्तरादिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन तु ।।९
धनिष्ठायामर्द्धमासं वारुणे तु दशाहकैः । नव भाद्रपदाऋक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् ।।१०
रेवती दशरात्रं तु अहोरात्रं तथाश्विनी । प्राणैर्वियोजयेन्नित्यं गर्ग नास्त्यत्र संशयः ।।११
कौशिकेन समादिष्टो नक्षत्रव्याधिसम्भवः । दैवज्ञेनापि ज्ञातव्यं नक्षत्रमथ जन्मना ।।१२

अध्याय १४५

नक्षत्रहोमविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अंग ! अग्निहोत्र कर्म में सुखासीन कौशिक महर्षि से गर्ग ने पूछा—बन्धन, सन्निरोध, और व्याधि जनित महापीड़ा के उत्पन्न होने पर उससे किस प्रकार मोक्ष प्राप्त होता है । उसके साध्यासाध्य विधान मुझे बताने की कृपा करें । इस प्रकार गर्ग मुनि के पूँछने पर कौशिक जी ने कहा—गर्भाधान नक्षत्र, जन्मनक्षत्र, मरणनक्षत्र और प्रत्यय में व्याधिउत्पन्न होने से अत्यन्त पीडा एवं मरणफल प्राप्त होता है । कृत्तिका नक्षत्र में कोई व्याधि उत्पन्न होने पर नवदिन तक पीड़ा होती है, रोहिणी में तीन रात्र, मृगाशिरा में पाँच रात तक पीडा होती है और आर्द्रा में प्राण वियोग (मरण) होता है। पुनर्वसु और पुष्य में रोग उत्पन्न होने पर सात रात्रि।१-५। श्लेषा में नवरात्रि तक तथा मघा में शमशान पहुँचने तक भी पीडा होती रहती है। पूर्वा फाल्गुनी में दो मास, उत्तरा में डेढ़मास, हस्त में एकमास, चित्रा में एक पक्ष (पन्द्र दिन), स्वाती में दो मास, विशाखा में बीस दिन, अनुराधा में दशदिन, ज्येष्ठा में पन्द्रह दिन, मूल में सदैव रोगी, पूर्वाषाढ़ में पन्द्रह दिन, उत्तराषाढ़ा में बीस दिन, श्रवण में दो मास घनिष्ठा में आधामास, शतभिषा में दश दिन, पूर्वाभाद्र में नवदिन, उत्तराभाद्र में पन्द्रह दिन ।६-१०। रेवती में दश दिन, अश्विनी में दिनरात के भीतर प्राण वियोग हो जाता है इसमें संशय नहीं। कौशिक द्वारा बताये गये व्याधि जनक नक्षत्रों का ज्ञान दैवज्ञ (ज्योतिषी) को भी प्राप्त करना चाहिए।११-१२। जन्म नक्षत्र में रोग

क्षीरदृक्षस्य समिधो जुहुयादश्वदैवते । तिलान्मधुप्लुतान्याम्ये यवमेवाग्निदैवते ॥१३
प्राजापत्ये तु जुहुयाद्भोग्यबीजकरं बकम् । सौम्ये प्रियङ्गवो रौद्रे सर्प्पिर्मांससमन्वितम् ॥१४
आदित्ये च प्रयत्नेन घृताक्ताः सिततण्डुलाः । पयसा सर्पिषा साकं बृहस्पत्यधिदैवते ॥१५
ग्राम्योषधैर्वटपत्रैः सर्पिः सर्पाधिदैवते । होमः प्रोक्ताः प्रियङ्गूनां नक्षत्रे यामदैवते ॥१६
सावित्रे दधिहोमोऽत्र त्वाष्ट्रे चित्रौदनं हविः ॥१७
यवान्सहाज्येन हुनेद्रौदेऽग्नौ तु पयोदनम् । मैत्रेणाथ तु मन्त्रेण मैत्रे कटकमिश्रितम् ॥१८
नैर्ऋत्ये तिलहोमः स्यादव्यक्ते च हुताशने । अब्दैवत्ये शालिबीजैर्वैश्वदेवं तु कारयेत् ॥१९
रक्ताश्चतण्डुलाश्चैव होतव्या विष्णुदैवते । वारुणे पारिजातानां पुष्पाणां होम इष्यते ॥२०
अजैकपादे नक्षत्रे प्राजापत्ये न तत्समम् । आहिर्बुध्न्ये तु नक्षत्रे वैश्वदेवं तु कारयेत् ॥२१
रक्ताश्च तण्डुलाश्चैव होतव्या विष्णुदैवते । पौषे फलान्यखण्डानि जुहुयादष्टोत्तरं शतम् ॥२२
सावित्री होममेकं तु ब्रह्माभिहतवान्पुरा । सर्वज्वरप्रशमनं सद्यो ज्वरहरं परम् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रहोमविधिवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४५

उत्पन्न होने पर अश्व देवता प्रधान हों तो गूलर की समिधा की आहुति, याम्य देवता में, मधुप्लुत तिल की आहुति अग्नि देवता में जवा, प्रजापत्य देवता में भोग्य बीज करम्बक सौम्य (बुध) प्रधान देवता में प्रियंगु (राई आदि), रौद्र में घृतप्लुत मांस, आदित्य देव में घृतप्लुत श्वेत तण्डुल, बृहस्पति के अधिदेव रहने पर घृतप्लुत खीर, सर्वाधिदेव में गाँव की औषधियों समेत बरगद के पत्तियों की आहुति और यामदेव में प्रियंगु (कांगुनी) आदि की आहुति देनी चाहिए। सविता देव में दधि की आहुति, त्वष्ट्रा देव में विचित्रविचित्र चावल की हवि, रौद्र में घृतप्लुत जवा, पायस, अनुराधा नक्षत्र मे अधिदेव में उसके मंत्र द्वार कंटक मिश्रित, नैऋत्य में तिल की आहुति अग्नि में अर्पित करनी चाहिए। शालि (साठी) चावल से वैश्वदेव की आहुति प्रदान करनी चाहिए। इसी प्रकार विष्णुदेव की प्रधानता में रक्ततण्डुल की आहुति, शतभिषा के अधिदेव में पारिजात पुष्पों की आहुति देनी चाहिए। अजैकपादनक्षत्र में प्राजापत्य देव के समान आहुति, अहिर्बुध नक्षत्र में वैश्वदेव करना चाहिए। विष्णुदेव की प्रधानता में रक्त तण्डुल और पौष में अखण्ड एक सौ आठ फलों की आहुति देनी चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मा ने पूर्वकाल में एक सावित्री हवन बताया है, जो उसी क्षण समस्त ज्वरों का शमन करता है।१३-२३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
नक्षत्रहोमविविधि वर्णन नामक एक सौ पैंतालिसवाँ अध्यय समाप्त।१४५।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अपराधशतव्रतवर्णनम्

श्रीवसिष्ठ उवाच

अथान्यदपि ते वच्मि व्रतं राजन्महाफलम् । अपराधशतं येन क्षयं याति शृणुष्व तत् ॥१

इक्ष्वाकुरुवाच

किं व्रतं तन्ममाचक्ष्व कोऽपराधस्तु तं वद । कः पूज्यते च वै तस्मिन्कदा वा क्रियते नरैः ॥२

श्रीवसिष्ठ उवाच

शृणु राजन् महाबाहो अपराधशतव्रतम् । येनानुष्ठितमात्रेण काममोक्षौ लभेत ना ॥३
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि सर्वपापापनुत्तये । कृतान्यप्यकृतानि स्युरिति होवाच पद्मजः ॥४
पापं गुरुतरं चापि दह्यते तूलराशिवत् । अपराधशतं राजञ्छृणुष्व गदतो मम ॥५
न करोति नरो मोहाद्व्रतमेतद्दिने दिने । अनाश्रमित्वं प्रथमोऽनग्निता व्रतहीनता ॥६
तदातृत्वमशौचं च निर्दयत्वं स्पृहालुता । अक्षान्तिर्जनपीडा च मायित्वप्यमङ्गलम् ॥७
क्षतव्रतत्वं नास्तिक्यं वेदनिन्दा कठोरता । असत्यता हिंसकत्वं स्तैन्यमिन्द्रियविप्लवः ॥८
मनसोऽनिग्रहश्चैव क्रोध ईर्ष्याथ मत्सरः । दम्भः शाठ्यं च धौर्त्यं च कटुकोक्तिः प्रमादता ॥९

अध्याय १४६

सैकड़ों अपराधों को नष्ट करने वाले व्रत का वर्णन

वसिष्ठ बोले—राजन् ! इसके अनन्तर मैं तुम्हें एक महाफल व्रत बता रहा हूँ, जो सैकड़ों अपराधों को शीघ्र विनष्ट कर देता है, सुनो ! १

इक्ष्वाकु बोले—मुझे वह कौन व्रत है, उसे और उसके शान्त होने वाले अपराधों को बताने की कृपा कीजिये । उसमें किस देव की पूजा करनी चाहिए और किस समय ? २

वसिष्ठ बोले—राजन् ! महाबाहो ! मैं तुम्हें अपराधशतव्रत बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान मात्र से मनुष्यों को कामनाओं की सफलता और मोक्ष प्राप्त होता है । ब्रह्मा ने यह भी बताया है कि समस्त पापों के प्रक्षालन के लिए यद्यपि अनेक प्रायश्चित बताये गयें हैं तथापि इस अनुष्ठान के समक्ष वे सुसम्पन्न करने पर भी न करने के समान ही हैं । राजन् ! अतः इस अपराध शतव्रत को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि इसके द्वारा तूल राशि के समान गुरुतर भी पाप शीघ्र दग्ध हो जाता है । मनुष्य के मोहवश इस व्रत को यथवासर सुसम्पन्न करने पर उसे आश्रमहीनता, अनग्निता (अग्निहोत्र कर्महीनता), व्रतहीनता, अपदातृव्य, अशौच, निर्दयता, स्पृहणीयता, असहिष्णुता, जनपीड़ा, मायावी, अमंगल, व्रतभंग, नास्तिकता, कठोर वेदनिंदक, असत्यता, हिंसकत्व, चोरी, इन्द्रिय दोष का भागी होना पड़ता है। ३-८। उसी भाँति उसके मन का अनिग्रह क्रोधी, ईष्या, मत्सर, दम्भ शाठ्य, धूर्तता समेत वह कटुभाषी,

भार्यामातृसुतादीनां त्यागश्चापूज्य पूजनम् । श्राद्धहानिर्जपत्यागः पञ्चयज्ञविवर्जनम् ।।१०
सन्ध्यातर्पणहोमानां हानिरग्नेः प्रणाशनम् । अनृतौ मैथुनं पार्थ पर्वण्यपि च मैथुनम् ।।११
पैशुन्यं परदारेषु दानं वेश्याभिगामिता । अपात्रदानं चाल्पं च मूलिकाकुलिभक्षणम् ।।१२
अन्त्यजागमनं मातृत्यागः पितृविवर्जनम् । पित्रोरभक्तिर्वादश्च पुराणस्मृतिवर्जनम् ।।१३
अभक्ष्यभोजनं चापि पतिद्रोहोऽविचारता । कृषिकर्मक्रियावाहं भार्यासंग्रहकारिता ।।१४
इन्द्रियाजयमायित्वं विद्याविस्मरणं तथा । शास्त्रत्यागं ऋणं चित्रकर्म चानङ्गधावनम् ।।१५
भार्यापुत्रसुतादीनां विक्रयः पशुमैथुनम् । इन्धनार्थं द्रुमच्छेदो बिले वार्यादिपूरणम् ।।१६
तडागागमने वृत्तं विद्याविक्रयकारिता । वृत्तिलोपो महीपाल याचकत्वं कुमित्रता ।।१७
स्त्रीवधो गोवधश्चैव पौरोहित्यं सुहृद्वधः । भ्रूणहत्या परान्नं च शूद्रान्नस्य निषेवणम् ।।१८
शूद्रस्य चाग्निकर्मत्वमविधित्वं कुपुत्रता । विद्वद्भ्यो याचकत्वं हि वाचाटत्वं प्रतिग्रहः ।।१९
श्रौतसंस्कार हीनत्वमार्तत्राणविवर्जनम् । ब्रह्महत्यासुरापानं रुक्मस्तैन्यमतः परम् ।।२०
गुरुदाराभिगामित्वं संयोगश्चापि तैः सह । अपराधशतं त्वेतत्कथितं ते मयानघ ।।२१
अन्येऽपि विविधाः सन्ति प्रोक्ताः प्राधान्यतस्त्वमी । यदि वक्त्रसहस्राणि वक्त्रे जिह्वाशतानि च ।।२२
तथाप्येते न शक्यन्ते वक्तुं यस्मादनन्तकाः । अपराधसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ।।२३
नश्यन्ति तत्क्षणान्नूनं सत्येशस्यानुपूजनात् । पूज्यते भगवानत्र व्रतकृत्ये पराजिते ।।२४
ध्वजे सत्ये स्थितश्चायं लक्ष्म्यां सह जगत्पतिः । वामदेवस्ततः पूर्वं नृसिंहो दक्षिणे स्थितः ।।२५

प्रमादी, स्त्री, माता, और पुत्रों आदि के त्याग, अपूज्य का पूजन, श्राद्धहीनता, जप त्याग एवं पाचों यज्ञों के न करने का दोषभागी होता है। उसके संध्या, तर्पण, होम की हानि, अग्निप्रणाशन, ऋतुहीन मैथुन और पूर्वसमय में मैथुन, पिशुनता (चुगुली), परस्त्री मैथुन, वेश्यागमन, अपात्र में दान, अल्पता, मूलिका, कुलिभक्षण, शूद्रागमन, मातृत्याग, पितृहीनता, माता की अभक्ति, और उनसे वाद विवाद करना पुराण और स्मृति के त्याग, अभक्ष्य भोजन पतिद्रोह विचार हीनता, कृषी करना, स्त्री संग्रह, इन्द्रिय का अजेता, मायावी, विद्या विस्मरण, शास्त्रों के त्याग, ऋण, चित्रकारी, कामुकता। कामुकता, भार्या, पुत्र, कन्या का विक्रय, पशुओं से मैथुन, जलाने के लिए वृक्ष काटने, विल में पानी डालना, तालाब में स्नान करना, विद्या विक्रय का अपराध उसे होता है। महीपाल ! वृत्तिलोप, याचकता, कुमित्रता, स्त्रीवध, गोवध, पुरोहित के कार्य, मित्रवध, भ्रूण हत्या, परान्न, और शूद्रान्न के सेवन, शूद्र द्वारा अग्नि कर्म, अविधि, कुपुत्रता, विद्वानों से याचना करना, वाचालत्व, प्रतिग्रह (दान लेना), वैदिक संस्कार हीनता, आर्तों की रक्षा न करने, ब्रह्म हत्या, सुरापान, सुवर्ण चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि दोष भागी होता है अनघ ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सौ अपराधों को सुना दी।९-२१। अन्य भी विविध भाँति के इतने प्राधान्य अपराध हैं जिनकी गणना के लिए सहस्र मुख और उनमें सैकड़ों जिह्वा हों, किन्तु फिर भी असमर्थ रहेंगे क्योंकि अपराध अनन्त हैं। इस व्रत में भगवान् सत्येश की अर्चा होती है, जिससे सहस्र, लक्ष एवं कोटि अपराध उसी क्षण निश्चय विनष्ट हो जाते हैं। इनकी ध्वजा में सत्य, लक्ष्मी समेत विष्णु स्थित रहते हैं, बायें वामदेव, दक्षिण में

कपिलः पश्चिमास्येतु वाराहश्चोत्तरे स्थितः । ऊर्ध्ववक्त्रोऽच्युतो ज्ञेय एतद्वै ब्रह्मपञ्चकम् ॥२६
तं सत्येशं स्थितं राजन्पूजयेच्च सदैव हि । क्षीरोदयार्धचन्द्रस्थपद्मकर्णिकसंस्थितम् ॥२७
पद्मकौमोदकीशङ्खचक्रायुधविधारणम् । वामे चाधस्तथा दक्षे ऊर्ध्वे पश्चादधो नृप ॥२८
पादाधस्ताद्विनिष्क्रान्ता गङ्गा पूता सदा नृभिः । शक्त्यष्टकं तथा चान्यत्तन्नामानि च मे शृणु ॥२९
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी । उन्मीलनी वन्जुली च त्रिस्पशाथ विवर्द्धना ॥३०
एताभिः शक्तिभिर्युक्तं लोकदिक्पालवर्जितम् । शुक्लाम्बरधरं सौम्यं प्रहृष्टवदनं शिवम् ॥३१
सर्वाभरणशोभाढ्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं हरिम् । पूजयेच्च प्रयत्नेन विधिना येन तं शृणु ॥३२
मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वापि सर्वदा । द्वादश्याममायां वा अष्टम्यां च सितासिते ॥३३
कृतोपवासः शुद्धात्मा कुर्याद्व्रतमतन्द्रितः । पक्षयोरुभयोरेवं पूजयेऽहं जनार्दनम् ॥३४
एवं तु नियमं कृत्वा दन्तधावनपूर्वकम् । गच्छेत्ततस्तडागे वा पुष्करिण्यां गृहेऽपि वा ॥३५
स्नात्वा तु नैत्यकं कर्म कृत्वा नैमित्तिकं ततः । कुर्यात्सर्वं प्रयत्नेन यथावदनपूर्वशः ॥३६
सौवर्णं कारयेद्देवं पूर्वोक्तं सत्यरूपिणम् । शक्त्यष्टकयुतं लक्ष्म्यां युक्तं पद्मासनस्थया ॥३७
सुवर्णपलमानेन कार्यमेतत्सविस्तरम् । दुग्धकुम्भोपरिष्टात्तु स्वर्णपद्मं प्रकल्पयेत् ॥३८
तत्कर्णिकागतं देवं शक्तिवृन्दसमन्वितम् । पूजयेद्विधिवत्पश्चाद्गुरुमन्त्रप्रचोदितः ॥३९
शुद्धशुक्लाम्बरधरो मन्त्रसम्भारसंसितः । देवीक्षीरसमुद्रेऽस्मिन्वृत्ते चन्द्रे च पुष्करे ॥

नृसिंह, पश्चिम मुख की ओर कपिल, उत्तर में बाराह (मेघ), भगवान् अच्युत का उर्ध्व मुख भी है इन्हीं को ब्रह्म पञ्चक कहते है । राजन् ! उन सत्येश भगवान की सदैव अर्चना करनी चाहिए, जो क्षीर सागर से निकले चन्द्रमा के आधे भाग में स्थित कमल की कर्णिका में स्थित हैं । नृप ! वे अपने बायें हांथ में नीचे, दाहिने, ऊपर वाले और पीछे वाले के नीचे हाथों में क्रमशः पद्म, कौमोदकी गदा, शंख और चक्रास्त्र धारण किये हैं । उनके चरण तल से परमपूता गंगा का निष्क्रमण हुआ है, जो मनुष्यों को सदैव पवित्र करती है । उनके आठ शक्तियाँ हैं । उनके नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जया, विजया, पापनाशिनी जयंती, उन्मीलिनी, वंजुली, त्रिस्पृशा, अक्ष विवर्द्धना । लोक दिक्पाल से रहित इन्हीं शक्तियों समेत शुक्लाम्बर धारी, सौम्यमूर्त्ति, कल्याण स्वरूप, प्रसन्न मुख, समस्त आभूषणों से सुसज्जित होने के नाते शोभा की राशि और भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु की अर्चना सप्रयत्न सुसम्पन्न करनी चाहिए, वह विधान मैं बता रहा हूँ सुनो ! २२-३२। मार्गशीर्ष आदि बारहों मासों में कृष्णशुक्ल द्वादशी अमावास्या और अष्टमी के दिन उपवास पूर्वक शुद्धात्मा और आलस्य रहित होकर भगवान् जनार्दन की दोनों पक्षों में सप्रेम अर्चना करूँगी । इस प्रकार नियम करके दंत धावन (दातून) करके किसी तालाब, बावली या गृह में ही स्नान एवं नित्य कर्म करने के अनन्तर यह नैमित्तिक सप्रयत्न पूरा करे । एक पल सुवर्ण की सत्यरूपी भगवान् जनार्दन की प्रतिमा का निर्माण कराकर आठों शक्ति और लक्ष्मी समेत उन्हें उस कमल दल के आसन पर सुशोभित करे, जो दुग्धपूर्ण कलश के उपर सुवर्ण द्वारा निर्मित हो । उस कमल की कर्णिका में शक्ति समेत सुशोभित सत्येश की सविधान अर्चा करके गुरु मंत्र द्वारा प्रार्थना करे—शुद्ध शुक्लाम्बर धारण किये मंत्रोच्चारण पूर्वक कहे—सत्येश ! देव ! क्षीर सागर में जो चन्द्र कमल से

तत्र त्वं सत्यया सार्द्धं सत्येश भव सन्निधौ ॥४०
ॐ क्षीरसागरकल्लोले स्नाहि पापनिषूदन । अनेन भूतभव्येन दत्तेन जलबिन्दुना ॥४१
हरस्व सर्वं दुरितं ममनाथ जनार्दन । वस्त्रदानेन शुभ्रेण सत्येश कुरु मे शुभम् ॥४२
यज्ञे योगे तथा सांख्ये पवित्रस्त्वं सदोच्यसे । यज्ञोपवीतदानेन कुरु मां सर्वपावनम् ॥४३
विलिप्तं कर्मणा सर्वं सत्यं सत्यं न केनचित् । मम चन्दनलिप्ताङ्गः सर्वलेपापहो भव ॥४४
सत्यनाथ नमस्तुभ्यं मूर्तामूर्तस्वरूपिणे । वासुदेव नृसिंहाख्य कपिलादिव्यभूधर ॥४५
वाराहाच्युत यज्ञेश लक्ष्मीकान्त नृपेश्वर । पशुं पुत्रं च मे देहि पापशत्रो निरञ्जन ॥४६
संकर्षण महावीर्य सर्वेशामितविक्रम । अनिरुद्धेन्द्र गोविन्द धृतचक्र नमोऽस्तु ते ॥४७
(इति पूजामन्त्रः)
कृष्णकृष्ण प्रभो रामराम कृष्ण विभो हरे । त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव ॥४८
पूजा चेयं मया दत्ता पितामहजगद्गुरो । गृहाण जगदीशान नारायण नमोऽस्तु ते ॥४९
धनं गुप्तं महीपाल सर्वपापानुपत्तये । एकस्यैवतु विप्रस्य यावद्वर्षं समर्पयेत् ॥५०
दानं दद्यान्महाराज ह्यशक्तौ तदभावतः । पक्षेपक्षे प्रकर्तव्यं व्रतमेतन्महत्तरम् ॥५१
सम्वत्सरे ततः पूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः । पूर्ववत्पूजयेद्देवं बहुसम्भारविस्तरैः ॥५२
अनुज्ञां प्रार्थयेद्विप्रान्पापध्वंसो ममास्तु वै । पापध्वंसोऽस्तु सततं तवेति च द्विजो वदेत् ॥५३

भूषित है, अपनी सत्या समेत सदैव वर्तमान रहते हों, यहाँ आने की कृपा करें। पापनिषूदन ! आप क्षीर सागर की गम्भीर तरङ्गों में स्नान करते हैं अतः मेरे द्वारा दिये गये इस जल बिन्दु को स्वीकार करते हुए मेरे समस्त दुरितों के शमन करे क्योंकि आप मेरे स्वामी हैं। जनार्दन सत्येश ! मेरे इस शुभ्र वस्त्र दान द्वारा आप मेरा कल्याण करने की कृपा करें। आप यज्ञ, योगशास्त्र एवं सांख्य में सदैव पूर्ण पवित्र बताये गये हैं अतः इस यज्ञोपवीत दान द्वारा मेरा समस्त पवित्र करने की कृपा करें। मैं सत्य एवं दृढ़ सत्य कह रहा हूँ (आप के अतिरिक्त) अन्य कोई भी कर्म लोप नहीं कर सकता है अतः मेरे द्वारा किये गये चन्दन लेप से समस्त कर्म लेपन का आप अपहरण करें।३३-४४। सत्यनाथ ! मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ आप मूर्ति धारी और अर्मूत (निराकार) हैं। वसुदेव, नृसिंह, कपिल, दिव्य, भूधर, वाराह, अच्युत, यज्ञेश, लक्ष्मी कांत, और नृपेश्वर नाम से आप विख्यात हैं पापशत्रो, निरंजन ! मुझे पशु एवं पुत्र देने की कृपा करें। संकर्षण, महापराक्रमी, सर्वेश, अति विक्रम, अनिरुद्ध इन्द्र, गोविन्द एवं चक्रदारी को मैं नमस्कार करता हूँ। पूजामंत्र कृष, कृष्ण, प्रभो, राम, राम, कृष्ण, विभो हरे, लक्ष्मी समेत माधव ! समस्त दुःखों से मेरी रक्षा करो। पितामह, जगद्गुरो ! मैंने यह पूजा आप को अर्पित की है, जगदीश, ईशान नारायाण ! मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें।४५-४९। महीपाल ! अपना गुप्त धन समस्त पाप प्रक्षालनार्थ वर्ष पर्यन्त किसी एक ही ब्राह्मण को अर्पित करते रहना चाहिए। महाराज ! धन रहने पर उचित दान करना चाहिए। समर्थ होने पर प्रतिपक्ष में इस महत्तर च्युत को सुसम्पन्न करता रहे और वर्ष के अन्त में उद्यापन करे। इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा बहुसंभारयुक्त होकर उनकी अर्चना करने के अनन्तर ब्राह्मणों की आज्ञापूर्वक प्रार्थना करे—मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हों पश्चात् निरन्तर तुम्हारे पाप

ततः सर्वं ब्राह्मणाय समर्प्य च क्षमापयेत् । अस्मिन् व्रते कृते राजन् वदेद्बहुफलोदयः ।।५४
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं व्रतस्यास्य निषेवणात् ।।५५
इह लोके धनं धान्यं पुत्रमित्रसुखादिकम् । प्राप्नोति पुरुषः सम्यग्विद्यारोग्यकलायुधम् ।।५६
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च नृपसत्तम । लभते नात्र सन्देहो ब्रह्मणो वचनं यथा ।।५७
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । यः कुर्यात्पुनरेतद्धि सोऽनन्तफलभाग्भवेत् ।।५८
अशक्तस्तु तथा शक्तो वित्तशाठ्यविवर्जितः । व्रतं कुर्वन्नरो भक्त्या लभते शाश्वतं पदम् ।।५९
कृते वै क्रियमाणे तु कर्ता फलमवाप्नुयात् । अपराधताघौघं व्रतेनानेन नाशयेत् ।।६०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अपराधशतव्रतवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४६

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

काञ्चनव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं जगत्प्रभुम् । वासुदेवं जगन्नाथं स्थितिसंयमकारकम् ।।१

का नाश हो ऐसा ब्राह्मण कहे । अनन्तर वह समस्त सामग्री ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे । राजन् ! इस व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने पर अनेक फलों की प्राप्ति होती है । समस्त वेदों के फल, समस्त तीर्थों के फल, जितनी संख्या में हो उनके कोटिगुणे अधिक फल इस व्रत को सम्पन्न करने पर प्राप्त होते हैं । इस लोक में मनुष्य को धन, धान्य, पुत्र मित्र आदि के सुख समेत समस्त विद्या, आरोग्य, आयुध कला की प्राप्ति होती है । नृपसत्तम ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति ब्रह्मा के वचनानुसार निःसंदेह होती है । इसके पढने और सुनने वाले भी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा जो इसे सुसम्पन्न करता है उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है । अशक्त को भी सम्पन्न करने पर वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । समर्थ को कभी भी उस समय कृपण न होना चाहिए । भक्तिपूर्वक सम्पन्न करने वाले प्राणी को शाश्वत पद की प्राप्ति होती है । इस व्रत के करने अथवा करने के लिए उद्यत होने वाले को वे सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं । क्योंकि बताया गया है । इस व्रत द्वारा सैकड़ों अपराधों की राशि विनष्ट होती है ।५०-६०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
अपराधशतवर्णन नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४६।

अध्याय १४७

काञ्चनव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! श्वेतद्वीप (क्षीर सागर) में सुखासीन वासुदेव जगन्नाथ जी से जो देवाधिदेव, जगत्स्वामी, एवं उसकी स्थिति और संयम करने वाले ।१। महान् स्रष्टा, पुराण (प्राचीन) रूप,

परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् । आदिदेवं जगन्नाथं जगतः कारणात्मकम् ॥२
प्रणिपत्य महादेवं चराचरगुरुं हरिम् । लक्ष्मीः प्रोवाच राजेन्द्र पादसम्वाहने स्थिता ॥३
भगवन्देवदेवेश भक्तानामनुकम्पक । प्रष्टव्यं किञ्चिदिच्छामि प्रष्टुं प्रश्नविदां वर ॥४
प्रकुरुष्व महाभाग दयां कृत्वा ममोपरि । व्रतं किञ्चित्कथय मे रूपसौभाग्यदायकम् ॥५
उत्तमं सर्ववर्णानां व्रतानामपि चोत्तमम् । कृतेन येन देवेश सर्वतीर्थफलं भवेत् ॥६

विष्णुरुवाच

गृहस्थश्चाश्रमाणां च वर्णानां ब्राह्मणो यथा । यथा नदीषु सर्वासु जाह्नवी लोकविश्रुता ॥७
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो देवानां विष्णुरुत्तमः । स्त्रीणां देवी यथा लक्ष्मीस्तथेदं व्रतमुत्तमम् ॥८
न गङ्गा न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करम् । पावनानि महाभागे यथेदं व्रतमुत्तमम् ॥९
गौर्या देव्या कृतं पूर्वं शङ्करेण महात्मना । रागेण सीतया सार्द्धं राज्यं प्राप्य कृतं पुरा ॥१०
दमयन्तीवियोगेन नलेन तु तथा कृतम् । कृष्णया सहितैः पार्थ पाण्डवैर्वनवासिभिः ॥११
कृतमेतद्व्रतं भद्रे स्वर्गमोक्षप्रदायकम् । रम्भया मेनया वापि पौलोम्या सत्यभामया ॥१२
शाण्डिल्या चाप्यरुन्धत्या उर्वश्या देवदत्तया । कृतं व्रतमिदं भद्रं सौभाग्यसुखकाम्यया ॥१३
पाताले नागकन्याभिः कृतमेतत्सुशोभनम् । गायत्र्या च सरस्वत्या सावित्र्या ब्रह्मभार्यया ॥१४
अन्याभिः सर्वनारीभिः सर्वकामफलेप्सुभिः । तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१५
वसुप्रीतिकरं रम्यं व्रतानां परमं शृणु । ब्रह्महा मुच्यते पापात्सुरापो वसुहारकः ॥१६
गुरुभार्याभिगामी च ह्येतेषां सङ्गमी च यः । मानकूटं तुलाकूटं कन्यावृत्तिर्गवां व्रती ॥१७

परमाख्य, आदि देव, जगत् के स्वामी, कारण, चराचर गुरु, महादेव, एवं हरिरूप हैं, पादसंवाहन करती हुई लक्ष्मी जी ने कहा—भगवन् देवाधिदेव, भक्तों पर अनुकम्पा रखने वाले आप प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं अतः मैं आप से कुछ पूँछना चाहती हूँ । महाभाग ! मेरे ऊपर कृपाकर, आप उसे बताने की कृपा करें—देवेश ! मुझे रूपसौभाग्यदायक एक ऐसा व्रत बताने की कृपा करें, जो समस्त वर्णों और व्रतों में परमोत्तम हो और जिसने अनुष्ठान से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त हों ।२-६

विष्णु बोले—जिस भाँति आश्रमों में गृहस्थ, वर्णों में ब्राह्मण, समस्त नदियों में जाह्नवी गंगा लोकविख्यात हैं, जलाशयों में समुद्र, देवों में विष्णु और स्त्रियों में देवी लक्ष्मी परमोत्तम है उसी भाँति यह व्रत परमोत्तम है । महाभागे ! इस व्रत के सम्मान गंगा, कुरुक्षेत्र, काशी, और पुष्कर पवित्र नहीं है । इसे सर्वप्रथम गौरी समेत शिव, राज्य प्राप्ति के अनन्तर सीता समेत रामचन्द्र ने सुसम्पन्न किया था । पार्थ ! उसी भाँति दमयन्ती के वियोग में नल, कृष्ण (द्रौपदी) समेत वनवासी पाण्डवों ने स्वर्ग मोक्ष प्रदायक इस व्रत सुसम्पन्न किया है । रम्भा, मेना, पौलोभी, सत्यभामा, शाण्डिली, अरुन्धती, उर्वशी, देवदत्ता आदि ने सौभाग्य सुख की कामना से इसे पूरा किया है ।७-१३। पातालवासिनी नाग कन्याओं ने भी इसे सुसम्पन्न किया है । गायत्री, सरस्वती, ब्रह्मभार्या सावित्री और अन्य अनेक स्त्रियों ने भी । समस्त कामनाओं के सिद्धयर्थ इसका अनुष्ठान किया है । अतः समस्तपाप विनाशक इस व्रत को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, जो वसुप्रीतिकारी एवं व्रतों में परमोत्तम है सुनो ! इस व्रत के प्रभाव से ब्रह्महत्या, सुरापान, धनापहारी, गुरुपत्नी गमन, उनके साथी, श्रीमान कूट, तुलाकूट, कन्या द्वारा जीवन यापन, गोविक्रय,

अगम्यागमनो यस्तु मांसाशी वृषलीपतिः । कुण्डाग्निभोजी यस्तु स्याद्भूमिहर्ता तथैव च ।।१८
एभिः सर्वैर्महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः । एभिः स्यान्नरनारीभिः कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।।१९
अतस्तेऽहं विधिं वक्ष्ये विधानमवधारय । काञ्चनाख्या पुरीनाम व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।२०
यः करोति नरो देवि नारी वा भक्तिसंयुता । तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च जायते विपुलं धनम् ।।२१
तस्मिन्मासे च कर्तव्यं व्रतमेतच्च सुन्दरि । तस्मिन्मासे च कर्तव्या काञ्चनाख्या पुरी शुभा ।।२२
शुक्लकृष्णतृतीयायामेकादश्यां च पूर्णिमा । संक्रान्तिर्वा महाभागे कुहूर्वा चाष्टमी तिथिः ।।२३
पर्वस्वन्येषु सर्वेषु दातव्या काञ्चनी पुरी । व्रती स्नात्वा तु पूर्वाह्ले नद्यादौ विमले जले ।।२४
मृत्तिकालम्भनं कार्यं मन्त्रेणानेन सुव्रते । उद्धृतासि यथापूर्वं विष्णुना क्रोडरूपिणा ।।२५
लोकानामुपकारार्थं वन्दनात्सिद्धिकामदा । तस्मात्त्वं वन्दिता पापं हर मेऽनेकजन्मजम् ।।२६

(इति मृत्तिका मन्त्रः)

आपस्तु विश्वयोनिर्हि विष्णुना निर्मिताः स्वयम् । सान्निध्यं तीर्थसहितं कर्तव्यं मम साम्प्रतम् ।।२७

(इत्यम्मन्त्र)

अनेन विधिना स्नात्वा यजमानः समाहितः । गृहमागम्य शुद्धात्मा नालपन्पिशुनान्स्त्वरात् ।।२८
पाखण्डिनो विकर्मस्थान्धूर्तांश्च कितवाञ्छठान् । प्रक्षाल्य पाणिवदनं कुर्यात्त्वाचमनं ततः ।।२९
उपवासस्य नियमं कुर्यान्नक्तस्य वा पुनः । शङ्खप्रवरामादाय हेमयुक्तं जलैर्भृतम् ।।३०
द्वादशाक्षरमन्त्रेण तज्जलं चाभिमन्त्रयेत् । पिबेत्तोऽयं गृहे गत्वा हरिरित्यक्षरं जपेत् ।।३१

अगम्यागमन, मांसभोजी, वृषली पति कुण्ड के अग्नि से भोजन का बनाने, भूमिहरण, आदि महापातकों से प्राणी मुक्त होता है ! इस उत्तम व्रत का विधान स्त्री पुरुष सभी को सप्रेम सुसम्पन्न करना चाहिए। अतः इस का विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! देवि ! त्रैलोक्यप्रख्यात काञ्चनी पुरी नामक व्रत को भक्ति पूर्वक सविधान पूरा करने वाले स्त्री पुरुष को पुत्र पौत्र एवं धन की प्राप्ति होती है। सुन्दरि ! उसी मास में काञ्चनपुरी का दान और व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। महाभागे ! शुक्ल, कृष्ण की तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति दिन, अमावस्या, अष्टमी और पर्व तिथियाँ के दिन, पूर्वाह्न के समय किसी नदी आदि में विमल जल में स्नान और निम्नलिखित मंत्र द्वारा मृत्तिका का लेप सर्वाङ्ग में करे—बाराह रूपधारी विष्णु ने पूर्वकाल में लोकोपकारार्थ तुम्हारा उद्धार किया है और वंदना करने मात्र से तुम सदैव कामनाएँ सिद्ध करती हो इसीलिए मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ, मेरे अनेक जन्मों के पाप का अपहरण करो।१४-२६। भगवान् विष्णु ने विश्व योनि (कारण) रूप में जल का स्वयं निर्माण किया है इस समय तीर्थ समेत आप का सन्निधान मुझे प्राप्त हो। (जलमंत्र) इस विधान से स्नान कर शुद्धात्मा यजमान अपने गृह पहुँच कर किसी चुगुलखोर, पाखण्डी, कर्मच्युत, धूर्त, कितव, शठ आदि दुराचारियों से किसी प्रकार की बातचीत न करे अपने कर चरण का प्रक्षालन करे। आचमन के उपरांत उपवास नियम या नक्त नियम का पालन करते हुए सुवर्ण युक्त किसी शंख प्रवर में जल रखकर उसे द्वादशाक्षर मंत्र द्वारा अभिमंत्रित करे और उसके पान करने के अनन्तर भगवान् के हरि नाम का जप करे।२७-३१। चार हाथ की

शमीवृक्षमया वेदी चतुःस्तम्भसमन्विता । चतुर्हस्तप्रमाणेन कार्य्या चैव सुशोभना ।।३२
वस्त्रेणावेष्टिताः स्तम्भावितानवरमण्डिताः । पुष्पमालान्विताः कार्या दिव्यधूपाधिवासिताः ।।३३
मध्ये तु मण्डलं कार्यं पद्माख्यं वर्णदैः शुभैः । येन दृष्टेन देवेशि सर्वपापक्षयो भवेत् ।।
मण्डलस्य तु मध्ये वै भद्रपीठं सुशोभनम् ।।३४
आसनं तत्र विन्यस्य कोमलं वस्त्रवेष्टितम् । तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्दनम् ।।३५
अग्रे तु कलशः कार्यो जलपूर्णः सुशोभनः । क्षीरसागरनामा स कल्पितव्यः प्रयत्नतः ।।३६
पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेणावेष्टयेद्धनम् । कुम्भं प्रपूर्णमुदकैस्तस्योपरि न्यसेद्बुधः ।।३७
तस्योपरिष्टात्संस्थाय काञ्चनाख्यां पुरीं शुभाम् । चतुष्पला ह्युत्तमा स्याद्द्विपला मध्यमा स्मृता ।।३८
सामान्यैकपला कार्या कलशैस्तु समन्विता । मोदकान्स्थापयेद्दिव्यान्समन्तात्सुन्दरीकृतीन् ।।३९
तदग्रे कदलीस्तम्भैस्तोरणं परिकल्पयेत् । चातुश्चरणिकान्स्तत्र विप्रानावाह्य सुन्दरि ।।४०
प्रतिष्ठां कारयेत्तस्य वेदमन्त्रैः सुशोभनैः । तस्या मध्ये न्यसेद्विष्णुं हैमं लक्ष्म्या समन्वितम् ।।४१
नेत्रे रत्नमये कार्ये दशना वज्रभूषिताः । मुक्ताफलमयं तस्य भूषणं परिकल्पयेत् ।।४२
अङ्गं स्वर्णमयं कार्यं शङ्खचक्रगदायुधम् । पञ्चामृतेन देवेशं स्नाप्य नारायणं विभुम् ।।४३
तमेव गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रमुच्चार्य पूजयेत् । ब्राह्मणान् वैदिकैर्मन्त्रैः पूजयेन्मधुसूदनम् ।।४४
शेषा वर्णाः पुराणोक्तैस्ताञ्छृणुष्व मम प्रिये । वासुदेवाय पादौ तु गुल्फौ संकर्षणाय च ।।४५
त्रैलोक्यजनकायेत जानुनी पूजयेद्धरेः । त्रैलोक्यनाथाय गुह्ये ज्ञानमयाय वै कटिम् ।।४६

सुन्दर वेदी का निर्माण कर, जो शमी वृक्षमय एवं चार स्तम्भों से युक्त हो। वस्त्रों से स्तम्भों को आवेष्टित करके परमोत्तम वितान (चँदोबा) और पुष्पमाला से भूषित करते हुए दिव्य धूप से अधिवासित करे। देवेशि मध्या भाग में शुभ (रंगों) से पद्म नामक मण्डल की रचना करनी चाहिए, जो दर्शन मात्र से पाप विनष्ट करता है। मण्डल के मध्य में एक सौन्दर्यपूर्ण भद्रपीठ (आसन) स्थापित कर उसके ऊपर कोमल वस्त्रवेष्टित एक आसन रखे और उस पर लक्ष्मी समेत जनार्दन भगवान् को सुशोभित करे। अजेय सम्मुख क्षीर सागर नामक एक सुन्दर जलपूर्ण कलश स्थापित कर उसे पञ्चरत्न, वस्त्र के वेष्टन से अलंकृत कर उसके ऊपर एक अन्य जलपूर्ण कलश रखे और उसी के ऊपर काञ्चन पुरी को स्थापित कर, जो सुवर्ण के चार पल की सर्वोत्त, दो पल की मध्यम, या एक बी की सामान्य रूप में बनी हो। उसके चारों ओर सुन्दर ढंग के बने हुए मोदकों को रखे और उसके सम्मुख कदली स्तम्भों द्वारा तोरण की कल्पना करे। सुन्दरि ! धर्म के सत्य आदि चार चरणों से युक्त ब्राह्मणों के आवाहन पूर्वक वेदमंत्रों के उच्चारण द्वारा वेदी पर उनकी प्रतिष्ठा करे। पुनः वेदी के मध्य भाग में लक्ष्मी समेत विष्णु की सुवर्ण प्रतिमा स्थापित करे, जिसके रत्नमय नेत्र, वज्रभूषित दाँत, मोतियों के आभूषण, शेष अंग स्वर्णमय एवं शंख, चक्र, गदा से विभूषित हों।३२-४२। देवेश एवं विभु नारायण को पञ्चामृत से स्नान वैदिकमंत्रोंच्चारण पूर्वक गंध पुष्प की पूजा अर्पित करें। प्रिये ! भगवान् मधुसूदन के शेष अंग पुराण के मंत्रों द्वारा पूजित करना चाहिए। 'वासुदेव को नमस्कार है' से चरण, 'संकर्षण को नमस्कार है, से गुल्फ (एड़ी), 'त्रैलोक्य जनक को नमस्कार है, जाननु (घुटने)' 'त्रैलोक्य नाथ को नमस्कार है' से गुह्य स्थान, 'ज्ञानमय को नमस्कार है, से कटि, 'दामोदर को नमस्कार है' से उदर 'विश्वरूपी को नमस्कार है' से

दामोदरायेत्युदरं हृदयं विश्वरूपिणे । नित्यं हि पूजयेद्देवि उरः श्रीवत्सधारिणे ॥४७
कण्ठं कौस्तुभनाथाय अस्यां यज्ञमुखाय च । दैत्यान्तकारिणे बाहू स्वैर्नामैरायुधानि[1] च ॥४८
शिरः सर्वात्मने देवि देवदेवस्य पूजयेत् । श्रियं प्रपूजयेद्देवीं देव्या मन्त्रैः पृथग्विधैः ॥४९
इन्द्रादिलोकपालानां पूजा कार्या यथाक्रमम् । नवग्रहाणां होमश्च कर्तव्यो विघ्ननाशनः ॥५०
पूजा गणपतेः कार्या तथा होमो विधानतः । अग्रे नैवेद्यमतुलं दापयेद् घृतपाचितम् ॥५१
पायसं घृतपरांश्च मोदकान्पूरिकास्तथा । सोहालिकादिनैवेद्यं फेणिकाः शर्करास्तथा ॥५२
देशकालोद्भवान्येव फलानि विनिवेदयेत् । दीपान्दश दिशो दद्यात्पार्थिवान्रक्तवर्तिकान् ॥५३
एतेन तु विशालाक्षि मूलमन्त्रेण दापयेत् । पुष्पमालान्वितान्कृत्वा चन्दनेन विभूषितान् ॥५४
अभिमन्त्र्य प्रयत्नेन विष्णुस्तवकवाचकैः । सहस्रशीर्षादिभिर्मन्त्रैर्जपद्भिर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥५५
षोडशाथ सपत्नीकान्पूजयेच्च यथाविधि । भूषयेच्च शुभैर्वस्त्रैस्तथालङ्करणादिभिः ॥५६
विष्णुं मत्वा द्विजः पूज्यो लक्ष्मीं मत्वा च ब्राह्मणीम् । छत्रं चोपानहौ चैव अङ्गुल्याभरणं तथा ॥५७
फलानि सप्त धान्यानि भोजनं च यदीप्सितम् । दातव्यं च सभार्याय कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥५८
शय्यां सोपस्करां चैव वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः । तथा प्रकल्पयेद्वित्तशक्त्या च सुन्दरी यथा ॥५९
व्रते पूर्णे च गोर्देया सर्वोपस्करसंयुता । पुरीं घटापयेत्पूर्वं वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः ॥
यथा कुर्यात्प्रयासेन यथा कर्ता न पश्यति ॥६०
दीपांस्तु दीपितांस्तत्र आनयेद्यज्ञमण्डपम् । श्वेतवस्त्रेण नेत्रे तु यजमानस्य च प्रिये ॥६१
श्रुतवाञ्छास्त्रवित्प्राज्ञः कृतसर्वाघसंक्षयः । आबध्य नेत्रे सुप्राज्ञे आचार्यस्तमिदं वदेत् ॥६२

हृदय' की वत्सधारी को नमस्कार है, से उनके उर की पूजा करनी चाहिए। देवि ! कौस्तुभनाथ को नमस्कार है' से उनके कंठ' 'यज्ञमुख को नमस्कार है' से मुख' 'दैत्यानाशक को नमस्कार है' से भुजाएँ, 'आयुधों के नामोच्चारण पूर्वक आयुधों की पूजा करनी चाहिए। देवि ! 'सर्वात्मा को नमस्कार है' से उनके शिर की पूजा और देवी (लक्ष्मी) के पृथक् पृथक् मंत्रों द्वारा उनकी अर्चना करे। उसी भाँति क्रमशः इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा, नवग्रहों का हवन और विघ्न विनाशार्थ गणपति की सविधान अर्चा अवश्य करनी चाहिए।४३-५१। अनन्तर उनके सोहाल, पेडा, बर्फी, सामयिक फल, रक्तवर्ण की पत्तियों से भूषित मृत्तिका के दश दीपक अर्पित करे। विशालाक्ष ! मूल मंत्र द्वारा पुष्प माले अर्पित करते हुए उन्हें चन्दन भूषित करें। पश्चात् स्तुति पाठ करने वाले ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मण पूजनोपरांत 'सहस्रशीर्षा' आदि मंत्रों से (विष्णु की) आराधना होनी चाहिए। यथा विधान सोलह सपत्नियों को अर्चना के उपरांत वस्त्र अलंकार आदि से भूषित करें। विष्णु की भावना से ब्राह्मण और लक्ष्मी भावना से ब्राह्मणी को पूजित करके छत्र, उपानह, अंगूठी, फल, सप्तधान्य, यथेच्छ भोजन अर्पित करते हुए 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों' कहें। सुन्दरि ! सुसज्जित शय्या का दान कर व्रत की समाप्ति में उपस्कर समेत गोदान अवश्यक करना चाहिए। (काञ्चनपुरी) को वस्त्रों से इस भाँति आच्छादित करे, जिससे कर्ता उसे देख न सके।५२-६०। प्रिये ! प्रज्वलित दीपक मण्डप में लाकर शास्त्रवेत्ता आचार्य श्वेत वस्त्र से यजमान के नेत्र आवृत्त कर

---

१. आर्षमेतत्।

सर्वकामप्रदां पश्य काञ्चनाख्यां पुरीमिमाम् । दरवस्त्रयुतां रम्यां दुःखदौर्भाग्यनाशिनीम् ।।६३
एवमुक्तो महाभाग पटमुन्मुच्य नेत्रयोः । पुष्पाञ्जलिं गुरौ क्षिप्त्वा स पश्येत्तां पुरीं शुभाम् ।।६४
दृष्ट्वा तां नगरीं देवि यजमानः समाहितः । सौवर्णं पात्रमादाय रौप्यं ताम्रमथापि वा ।।६५
अथ वा शङ्खमादाय पात्रालाभे तु सुन्दरि । पञ्चरत्नं क्षिपेत्पात्रे जलं गाङ्गं तथा फलम् ।।६६
सिद्धार्थमक्षताः पूर्वं रोचना दधि वा पुनः । ततश्चार्घ्यं प्रदातव्यं कृष्णाय प्रभविष्णवे ।।६७
लक्ष्मीनारायणौ देवौ सर्वकामफलप्रदौ । रुक्मपुर्याः प्रदानेन यच्छेतां वांछितं मन ।।६८
नारायण हृषीकेश ज्ञानज्ञेय निरंजन । लक्ष्मीकान्त जगन्नाथ गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।।६९
(इत्यर्घ्यमन्त्रः)
एवमर्घ्यं ततो दत्त्वा विष्णवे प्रभविष्णवे । देव्यास्त्वर्घ्यं प्रदातव्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ।।७०
जानुभ्यामवनिं गत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् । ब्रह्मणा पूजिता देवी विष्णुना शङ्करेण च ।।७१
पार्वत्या पूजिता लक्ष्मीः स्कन्दवैश्रवणेन च । मया च पूजिता देवि धर्मस्य विजिगीषया ।।७२
सौभाग्यं देहि मे पुत्रान्धनं पौत्रान्श्च पूजितान् । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवि सौख्यं प्रयच्छ मे ।।७३
स एवं पुरतो दत्त्वा पूर्वोक्तविधिना तव । रात्रौ जागरणं कुर्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा ।।७४
गीतनृत्यविनोदेन उपाख्यानैश्च वैष्णवैः । येन केन विनोदेन निद्रा नैव प्रजायते ।।७५
उन्निद्रो जागृयाद्यस्तु शतयज्ञफलं लभेत् । प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ।।७६

उससे कहलाये—समस्त कामनआओं को सफल करने वाली इस काञ्चनी पुरी को देखो जो सुन्दर वस्त्रों से भूषित, शय्या एवं दुःख दुर्भाग्य को विनष्ट करती है। महभाग ! ऐसा कहकर वस्त्र हटा लेने के अनन्तर यजमान गुरु चरण में पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए उस शुभ काञ्चनपुरी का दर्शन करे। देवि ! समाहित मन से उस नगरी को देखने पर यजमान सुवर्ण, चाँदी, ताँबें, शंख अथवा किसी अन्य पात्र में गङ्गा जल डालकर पञ्चरत्न डाले। पुनः उसके समेत फल, राई, अक्षत, गोरोचन, और दही मिश्रित अर्घ्य प्रभावशाली भगवान् कृष्ण को अर्पित करते हुए— लक्ष्मीनारायणदेव समस्त कामनाओं को सफल करते हैं, अहा इस काञ्चनपुरी के प्रदान करने के नाते मेरे मनोरथ सफल करें। नारायण, हृषीकेश, ज्ञानज्ञेय, निरञ्जन, लक्ष्मीकान्त, एवं जगन्नाथ, मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार करे।६१-६९। मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले विष्णु को अर्घ्य अर्पित कर सावधान मन से भक्तिपूर्वक श्री लक्ष्मी के निमित्त अर्घ्य प्रदान करें। घुटने के बल पृथिवी में बैठकर मंत्रोच्चारण करे—देवी की पूजा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ने की है, पार्वती स्कन्द और वैश्रावण (कुबेर) ने की है उस भाँति धार्मिक भावना से मैंने आप की पूजा की है। मुझे सौमाग्य समेत पुत्र, धन और उत्तम पौत्र प्रदान करने की कृपा करें। देवि ! मेरे द्वारा दिये गये अर्घ्य दान स्वीकार कर मुझे सौख्य प्रदान करें। इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा तुम्हारे सम्मुख अर्घ्य अर्पित कर भक्तिश्रद्धा समेत गीत, नृत्य, या वैष्णव उपाख्यान द्वारा रात्रि जागरण करे। अथवा जिस किसी भाँति उस दिन जागरण करता है रहे, निद्रारत न होने पाये।७०-७५। क्योंकि विनिद्र जागरण करने से यज्ञफल की प्राप्ति होती है। पुनः विमल प्रातःकाल पितृदेव पूजन के उपरांत सपत्नीक ब्राह्मणों को सुसज्जित कर भोजन से तृप्त करे और

ब्राह्मणांश्च सपत्नीकान्परिधाप्यनुभोजयेत् । दक्षिणाश्च यथाशक्त्या प्रदाय च क्षमापयेत् ।।७७
दीनान्धबधिरान्पङ्गून्सर्वांस्तान्परितोषयेत् । पश्चात्पारणकं कार्यमुपवासी भवेद्यदि ।।७८
मधुरं पयसा युक्तं सुहृद्भिर्बान्धवैः सह । एवमेतद्व्रतं कार्यमेकादश्यां शुचिस्मिते ।।७९
शुक्लायामथ कृष्णायां तृतीयायां तथा तिथौ । संक्रान्तिवासरे वापि व्यतीपाते च वैधृतौ ।।८०
यदा वा जायते वित्तं चित्तं च वरवर्णिनी । गौरानीय प्रदातव्या कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।८१
एवं कृते च यत्पुण्यं तन्न शक्यं निवेदितुम् । अपि वर्षसहस्रेण कुललक्षशतैरपि ।।८२
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । ब्रह्मलोकं समासाद्य ब्रह्मणा प्रतिमोद्यते ।।८३
ब्रह्मलोकाद्रुद्रलोकं तत्परं विष्णुसंनिधौ । इन्द्रादिलोकपालानां व्रती लोकमवाप्नुयात् ।।८४
ततो भुक्त्वा शुचिः श्रीमान्भोगांस्त्रैलोक्यसुन्दरि । चक्रवर्ती भवेद् भूमौ ब्रह्मण्यो वैष्णवस्तथा ।।८५
य इदं शृणुयान्नित्यं वाच्यमानं समन्ततः । कुलसप्तकमुद्धृत्य वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ।।८६
त्वयाकाञ्चनपुर्याख्यं व्रतमेतत्कृतं पुरा । तेन पुण्येन लब्धोऽहं भर्ता त्रैलोक्यपूजितः ।।८७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीलक्ष्मीविष्णुसंवादे
काञ्चनपुरीव्रतवर्णनं नामसप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४७

यथाशक्ति दक्षिणा से सन्तुष्ट करते हुए क्षमा याचना करे—दीनों, अन्धों, बधिरों, एवं पंगु आदि को सन्तुष्ट कर उपवासी यदि हो तो पारण करे—मित्रो, बान्धवों समेत मधुर पायस युक्त भोजन करे। हे शुचिस्मिते ! एकादशी तिथि के दिन यह व्रतानुष्ठान करना चाहिए अथवा शुक्ल कृष्ण की तृतीया, संक्रान्ति वासर, व्यतीपात, वैधृति योग अथवा जिस दिन चित्त एवं वित्त पूर्ण हो। वरवर्णिनि ! गाय प्रदान करते समय 'कृष्ण मेरे उपर प्रसन्न हों, कहे। इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर जितने पुण्य की प्राप्ति होती, वर्णन करना असम्भव है। सहस्रों वर्षों तक उसकी सैकड़ों लाखों पीढियाँ कोटि सहस्र एवं कोटि शत कल्प तक ब्रह्मलोक में ब्रह्म के साथ आमोद प्रमोद करती है। पुनः ब्रह्मलोक से रुद्र लोक उससे विष्णु लोक और इन्द्रादि लोकपालों के लोक की प्राप्ति उसे होती है। त्रैलोक्यसुन्दरि ! वह पूतात्मा एवं श्रीमान् प्राणी अतुल भोगों के उपभोग करने के अनन्तर इस भूतल में ब्रह्मण्य, एवं वैष्णव चक्रवर्ती राजा होता है। इसके आख्यान सुनने वाले भी अपने सात कुलों के उद्धार पूर्वक वैष्णव लोक प्राप्त करते हैं। तुमने भी पूर्वकाल में इस काञ्चन व्रत को सुसम्पन्न किया है, जिससे तुम्हें त्रैलोक्यपूजित मैं धर्तारूप में प्राप्त हुआ है।७६-८७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में विष्णुलक्ष्मी के सम्वाद में
काञ्चनपुरी व्रत वर्णन नामन एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४७।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कन्याप्रदानवर्णनम् (अथ कन्यादानम्)

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मदेयां तु यः कन्यामलङ्कृत्य प्रयच्छति । सप्तपूर्वान्भविष्यांश्च स्वकुले सप्तमानवान् ।।१
तेन कन्याप्रदानेन स तारयत्संशयम् । लोकानाप्नोति च तथा दक्षस्यैव प्रजापतेः ।।२
प्राजापत्येन विधिना आत्मानं च समुद्धरेत् । महत्पुण्यमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ।।३
भूगवाश्वप्रदानानि गजदानं तथैव च । दत्त्वा तु वर्णहीनाय घोरे तमसि मज्जति ।।४
बहुवर्षसहस्राणि पुरीषं काकमश्नुते । शुल्केन दत्त्वा कन्यां च घोरं नरकमाप्नुयात् ।।५
बहून्यब्दसहस्राणि तथा अशुचिभुङ्गुरः । सवर्णां च सवर्णेभ्यो दद्यात्कन्यां यथाविधिः ।।६
दत्त्वा चाधिकवर्णाय द्विगुणं निर्गुणं तथा । द्विजपुत्रमनाथं वा संस्कुर्याद्यश्च कर्मभिः ।।७
चूडोपनयनाद्यैश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् । अनाथां कन्यकां दत्त्वा नाकलोके महीयते ।।८
कन्यया सह दत्तं च सुवर्णं वह्निमूलकम् । सकलं द्विगुणं तस्य फलमुक्तं पुरातनैः ।।९
कन्यादानादवाप्नोति दक्षलोकं नरोत्तम । विष्णुपूजासमं पुण्यं तत्कन्यापूजया भवेत् ।।१०
विमानमाहृत्य मनोभिरामं सुराङ्गनागीतविलासहृद्यम् ।
प्राप्नोति लोकं त्रिदशोत्तमानां कन्याप्रदानान्न विचारणेति ।।११

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कन्याप्रदानवर्णनं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४८

अध्याय १४८

कन्यादान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण को देने योग्य कन्या अलंकृत कर दान करने वाले प्राणी अपने कुल के सात पीढ़ी पूर्व की और सात भविष्य की पीढ़ियों का उद्धार करता है। इसीलिए उसी कन्या दान के द्वारा उसे दक्ष प्रजापति के लोक प्राप्त होते हैं। प्राजापत्य विधान द्वारा दान करने पर अपने उद्धार समेत महान् पुण्य एवं स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। पृथिवी, गौ, अश्व, एवं हाथी दान किसी वर्ण हीन को अर्पित करने पर घोरतम नरक प्राप्त होता है। कौवा होकर अनेक वर्षों तक पुरीष (मल) भोगी होता है। शुल्क लेकर कन्या दान से घोर नरक प्राप्त होता है और अनेक वर्षों तक अशुचि भोग भी होता है। इसलिए सविधान सवर्णा कन्या किसी सवर्ण अथवा ऊँचे कुल में सौंपना चाहिए। किसी अनाथ ब्राह्मण बालक का चूड़ा कर्म (मुण्डन) यज्ञोपवीत आदि संस्कार करने से अश्वमेध फल प्राप्त होता है, उसे अनाथ कन्या का दान करने स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। कन्या दान समेत सुवर्ण दान करने से प्राचीनों ने दुगुने फल की प्राप्ति बताया है। नरोत्तम! कन्या दान द्वारा उसे दक्ष स्वर्ग लोक प्राप्त होता है। कन्या की पूजा करने से विष्णु पूजा का फल प्राप्त होता है। कन्या प्रदान द्वारा एक मनोरम विमान में सुखासीन होकर, जो देवङ्गनाओं की गीतों से मुखरित रहता है उत्तम लोक की प्राप्ति होती है।१-११

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
कन्याप्रदान वर्णन नामक एक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४८।

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणा दैवतं भूमौ ब्राह्मणा दिवि दैवतम् । ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति नास्ति भूतं जगत्त्रये ।।१
अदेवं दैवतं कुर्युः कुर्युर्देवमदैवतम् । ब्राह्मणा हि महाभागाः पूज्यन्ते सततं द्विजाः ।।२
ब्राह्मणेभ्यः समुत्पन्ना देवाः पूर्वमिति स्मृतिः । ब्राह्मणेभ्यो जगत्सर्वं तस्मात्पूज्यतमा द्विजाः ।।३
येषामश्नंति वक्त्रेण देवताः पितरस्तथा । ऋषयश्च तथा नागाः किं भूतमधिकन्ततः ।।४
यदैव मनुजो भक्त्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । तदैवाप्नोति धर्मज्ञ बहुजन्मानि जन्मनि ।।५
तालवृन्तानिलेनैव श्रान्तसम्वाहनेन च । उत्सादनेन गात्राणां तथा व्यञ्जनकर्मणा ।।६
पादशौचप्रदानेन पादयोः सेचनेन च । परिचर्य यथा काममेकेनैव द्विजोत्तम ।।७
अनिष्ट्वापि समाप्नोति स्वर्गलोकं च शाश्वतम् । ब्राह्मणानां शुभं कृत्वा नाकलोके महीयते ।।८

यद्ब्राह्मणास्तुष्टिमन्तो वदन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः ।
तद्वै शुभं तस्य नरस्य नूनं भवेदतस्तान्सततं निषेवेत् ।।९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४९।

अध्याय १४९

ब्राह्मण की सेवाविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—इस भूतल में ब्राह्मण ही देव और स्वर्ग के भी देव हैं क्योंकि इस तीनों जगत् में ब्राह्मणों से पृथक् अन्य कोई श्रेष्ठ वस्तु है ही नहीं। अदेव को देव, अदेव को बनाने में महाभाग (पुण्यात्मा) ब्राह्मण गण ही समर्थ होते हैं इसी लिए ब्राह्मण सतत पूजित होते हैं। स्मृतियों का कथन है कि ब्राह्मण द्वारा सर्वप्रथम देवों की सृष्टि हुई और अनन्तर सम्पूर्ण जगत् की। इसीलिए ब्राह्मण पूज्यतम बताये गये हैं। जिनके मुख द्वारा देवता, पितर, ऋषिगण एवं नागगण भोजन तृप्त होते हैं इससे अधिक क्या कहा जा सकता है। भक्ति पूर्वक मनुष्य जिस समय ब्राह्मण को देता है उसी समय उसे अनेक जन्म जन्मान्तरों के लिए प्राप्त हो जाता है।१-५। ब्राह्मण के पंखा झलने, चरण दाबने, शरीरांगों के क्रम दूर करने, भोजन, पाद प्रक्षालनार्थ जल दान अथवा पाद प्रक्षालन का अन्य कोई परिचर्या करने से चाहे एक ही ब्राह्मण हो, अनेक अनिष्ट रहते हुए भी उसे स्वर्ग लोक अवश्य प्राप्त होता है। ब्राह्मणों के निमित्त शुभ कर्म करने से स्वर्ग लोक में पूजित होता है क्योंकि ब्राह्मण प्रसन्न होने पर प्रत्यक्ष कहता है और देवगण परोक्ष में। उस समय उस मनुष्य के लिए जो कुछ शुभ वाणी कहता है, वह निश्चय सम्पन्न होती है, इसीलिए ब्राह्मण सेवा निरन्तर करनी चाहिए।६-९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णन नामक एक उन्चासवाँ अध्याय समाप्त।१४९।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वृषदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

युष्मद्वाक्यामृतमिदं ह्यहं शृण्वञ्जनार्दन । न तृप्तिमधिगच्छामि जातं कौतूहलं हि मे ॥१
गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । गोवृषस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनन्दति ॥२
तस्माद्गोवृषकल्पस्य विधानं कथयाच्युत ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

वृषदानफलं पुण्यं शृणुष्व कथयामि ते । पवित्रं पावनं चैव सर्वदानोत्तमं तथा ॥४
दशधेनुसमोनड्वानेकश्चैव धुरंधरः । दशधेनुप्रदानाद्धि स एवैको विशिष्यते ॥५
वोढा च चारुपृष्ठाङ्गो ह्यरोगः पाण्डुनन्दन । युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविवर्जितः ॥६
धुरन्धरः स्थापयते एक एवं कुलं महत् । त्राता भवति संसारान्नात्र कार्या विचारणा ॥७
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्येह्नि समुपस्थिते । रौप्यालङ्गूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥८
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व वदामि ते । धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक ॥९
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन । दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१०
सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनः कायकर्मजम् । तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन च ॥११

अध्याय १५०

वृषदानविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—जनार्दन! मैं आपकी अमृतवर्षा करने वाली वाणी सुनते ही मुझे तृप्ति नहीं हो रही है यह महान् कौतूहल हो रहा है। गोविन्द गोपालक हैं ऐसा तीनों लोकों में प्रख्यात है इसीलिए गो वृष के दान करने से त्रैलोक्य सुखी होता है। अच्युत! अतः गोवृष कल्प का विधान बताने की कृपा करें। १-३

श्रीकृष्ण बोले—वृषदान का पुण्य फल जो अत्यन्त पावन एवं सर्वोत्तम है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! दश धेनु के समान एक धुरंधर वृष होता है। पाण्डुनन्दन! दशधेनु प्रदान करने की अपेक्षा एक वृष दान कहीं अधिक प्रशस्त कहा गया है। क्योंकि सुन्दर पृष्ठवाला, नीरोग वृष नहीं समर्थ वोढ़ा बताया गया है। युवा, भद्राकृति, सुशील और समस्त दोषहीन एक ही धुरंधर महान् कुल की स्थापना करता है एवं संसार में वही त्राता (रक्षक) होता इसमें संदेह नहीं। किसी पुण्य दिन शांत वृष को अलंकृत करके जिसे चाँदी के लांगुल (पूंछ) से भूषित किया गया हो, ब्राह्मण को अर्पित करे। राजेन्द्र! उस समय जिस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए मैं बता रहा हूँ, सुनो! धर्म! तुम वृष (वैल) रूप से सम्पूर्ण जगत् के आनन्दित करते हो। सनातन देव! तुम्हारा अधिष्ठान अष्टमूर्ति है, अतः मेरी रक्षा करो। इसे कहते हुए दक्षिणा समेत वृष उन्हें अर्पित करके नमस्कार पूर्वक विसर्जन करे। वाणी मन और शरीर जन्य सात जन्म के समस्त पातक गोदान करने से विलीन हो जाते हैं।४-११। वृष (बैल) जुते हुए देदीप्यमान एवं

यानं वृषभसंयुक्तं दीप्यमानं सुशोभितम् । आरुह्य कामगं दिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ।।१२
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते । तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ।।१३
गोलोकादवतीर्णस्तु इहलोके द्विजोत्तमः । यज्ञयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ।।१४
तवोक्तं वै महाराज कस्य देयो वृषोत्तमः । तदप्यहं ते वक्ष्यामि पात्रं त्राणपदं नृणाम् ।।१५

येषां सदा वै श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ।।१६
गात्रे दृढं भारसहं सुपुष्टं सुश्रृङ्गिणं सर्वगुणोपपन्नम् ।
दत्त्वर्षभं गोदशकेन तुल्यं सत्यं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ।।१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषदानविधिवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५०

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रत्यक्षधेनुदानव्रतविधिवर्णनम् (अथ विविधदानानि)

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतः पुराणविषयस्त्वत्प्रसादान्मयाच्युत । संसारासारतां ज्ञात्वा श्रुतश्च व्रतविस्तरः ।।१
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । किं दीयते कदा कृष्ण केनोपायेन शंस मे ।।२

सुशोभित यान (बैलगाड़ी) पर बैठकर उसे दिव्य स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । महीपते ! उसके शरीर में स्थित लोम संख्या के अनुसार उतने वर्ष गो लोक में वह पूजित होता है । पुनः गोलोक से इस धरातल पर श्रेष्ठब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर यज्ञयाजी, महातेजस्वी, समस्त ब्राह्मणों के पूज्य होता है । महाराज ! आप ने जो पूछा कि ऐसा परमोत्तम वृष दान रूप में किसे अर्पित किया जाय, मैं उसे बता रहा हूँ, जो उसका पात्र एवं मनुष्य मात्र का त्राता होता है । जिनके कर्ण विवर सदैव वेद शब्दों से पूर्ण हों, जितेन्द्रिय, हिंसवृत्ति रहित, प्रतिग्रह (दान) लेने में संकोच हो, वे ही गृहस्थ मानव उद्धार करने में समर्थ होते हैं शरीरदृढ़ भार वहन करने में क्षम, सुप्रष्ट, सुन्दर सींग, समस्त गुणों से युक्त वृष के जो दश गौ के समान होता है, दान करने वाले इस भूतल में उस फल के भागी होते हैं यह सत्य है ।१२-१७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
वृषदान विधि वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।१५०।

अध्याय १५१

प्रत्यक्षधेनुदानविधि का वर्णन (विविध-दान)

युधिष्ठिर बोले—अच्युत देव ! आपकी कृपा से मैंने इस संसार को असार जानते हुए पुराण विषयों को भली भाँति सुन लिया, जिसमें व्रतों की व्याख्या विस्तार रूप से की गयी है । कृष्ण ! किन्तु फिर भी मुझे दान माहात्म्य सुनने की विशेष इच्छा है—किस समय किस विधान द्वारा किसका दान करना चाहिए,

नहि दानात्परतरमन्यदस्तीति मे मतिः । धनं धनवतां किञ्चिदहार्यं राजतस्करैः ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

अनिश्चितं निधानं यदप्रयुक्तं च वर्द्धते । अनीतं याति चाध्वानं धनं विप्रकरार्पितम् ॥४
किं कायेन सुपुष्टेन बलिना चिरजीविना । यन्नसत्त्वोपकाराय तज्जीवितमनर्थकम् ॥५
ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किन्न दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥६
एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते । दस्युभिर्मुषितश्चैव दिवारात्रौ[1] च शोचति ॥७
यस्य त्रिवर्गशून्यानि[2] दिनान्यायान्ति यान्ति च । सलोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥८
यैर्नदत्तं न च हुतं न तीर्थे मरणं कृतम् । हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम् ॥९
दीना निरशन रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः । ते दृश्यन्ते महाराज जायमानाः पुनः पुनः ॥१०
आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः । गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥११
नोपभागैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः । पूर्वार्जितानामन्यत्र[3] सुकृतानां परिक्षयात् ॥१२
अदृष्टपरतत्त्वोऽपि पात्रेभ्यो विसृज्येद्धनम् । यस्मान्मृतस्य तन्नास्ति तस्मात्सांशयिकं वरम् ॥१३

बताने की कृपा करें। क्योंकि सम्मति से दान से उत्तम कोई पुण्य वस्तु नहीं है, धनवानों के ऐसे धन का चोर कभी अपहरण नहीं कर सकता। १-३

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मणों के हाथ अर्पित किया हुआ धन एक अनिश्चित निधान होता है जिसका कोई अनुमान नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अप्रयुक्त हीं बढ़ता रहता है, और (परलोक) मार्ग में यथावसर प्राप्त होता है। अत्यन्त पुष्ट शरीर वाले बली एवं चिरजीवी उस प्राणी का जन्म व्यर्थ है जिसने किसी प्राणी का उपकार नहीं किया। (समय पर) एक ग्रास मात्र या उसका अर्धभाग ही याचक को क्यों न दिया जाय जब कि इच्छानुरूप समृद्धि किसी के कभी हुई ही नहीं। किसी दिन के दान करने से खाली निकलने पर (संयोगवश) उस दिन चोर द्वारा उस धन अपहृत हो जाने पर प्राणी उसके लिए दिन रात शोक करता रहता है। जिस प्राणी के तीनों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम) से विहीन दिन आते जाते (व्यर्थ निकलते) रहते हैं, लोहार की भट्टी की भाँति वह श्वास लेने पर भी जीवित नहीं कहा जाता है। जिसने दान नहीं दिया, न यज्ञ किया, न तीर्थ में प्राणोत्सर्ग किया और न ब्राह्मणों को हिरण्य एवं अन्न जल (भोजन) ही अर्पित किया, केवल दीन हीन स्वभाव एवं भूखे रहकर रूखा वेष किये हाथ में कपाल लिये अपने दिन व्यतीत किये प्राणी एसे ही बार-बार जन्मग्रहण करते देखे गये हैं। महाराज! सैकड़ों बार के प्रयत्न एवं परिश्रम से प्राप्त होने के नाते प्राण से भी अधिक प्रिय उस धन की केवल दान करना ही एक गति है और अन्य विपत्ति रूप बताये गये हैं। उपभोग और दान करने से पुण्यात्माओं की पूर्व जन्मार्जित सम्पत्ति कभी क्षीण नहीं होती है, यद्यपि अन्यत्र उपयोग करने से उसका नष्ट होना बताया गया है। प्राणी के निधन होने पर वह धन उसका नहीं रह जाता है, अतः सौभाग्यवश (प्राणी को अपने जीवित काल में ही) अपना वह धन किसी सुपात्र को अर्पित (दान) कर देना चाहिए। अनघ! यद्यपि

---

१. युक्तमाक्रन्दितुं चिरम्। २. त्रिवर्गशून्यस्य। ३. धनस्योत्पत्तिकरणे।

दानानि[1] बहुरूपाणि कथयाम तवानघ । व्यासवाल्मीकिमन्वाद्यैः कथितानि पुरा मम ॥१४
किञ्चिद्व्रतं[2] यत्क्रियते पूज्यते च त्रिलोचनः । दीयते यच्च विप्रेभ्य एतज्जन्मतरोः फलम् ॥१५

युधिष्ठिर उवाच

ब्राह्मणप्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य च । यानि दानानि देयानि तान्यचक्ष्व यदूत्तम ॥१६
येन चैव विधानेन दानं पुण्यसुखावहम्[3] । ऐहिकामुष्मिकावाप्तिं करोति नहि हन्यते ॥१७

श्रीकृष्ण उवाच

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । आसप्तमं पुनन्त्येते दोहवाहनवेदनैः ॥१८
गोदानमादौ वक्ष्यामि प्रत्यक्षक्रमयोगतः । येन[4] चैव विधानेन अन्यूनाधिकविस्तरम् ॥१९

युधिष्ठिर उवाच

देयाः किंलक्षणा गावः काश्च राजन्विवर्जिताः । कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय वै ॥२०

श्रीकृष्ण उवाच

तरुणी रूपसपन्ना सुशीला च पयस्विनी । न्यायार्जिता सवत्सा च प्रदेया श्रोत्रियाय गौः ॥२१
वृद्धा सरोगा हीनाङ्गी वन्ध्या दुष्टा मृतप्रजा । दूरस्थाऽन्यायलब्धा च देया गौर्न कथञ्चन ॥२२

दान का अनेक रूप बताया गया है, तथापि व्यास, वाल्मीक, एवं मनु आदि ने (इसके विषय में) मुझसे जो कुछ कहा है, मैं वहीं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! मनुष्य जो कोई व्रत त्रिलोचन शंकर की आराधना तथा ब्राह्मणों को दान रूप में जो कुछ अर्पित करता है वहीं उस जन्म रूपी वृक्ष का फल कहा गया है ।४-१५

युधिष्ठिर बोले—यदूत्तम ! केशव, शिव और ब्राह्मण के प्रसन्नार्थ देने योग्य दान मुझे बताने की कृपा करें और जिस विधान द्वारा वह दान पुण्य रूप एवं सुखावह हो—लोक परलोक की प्राप्ति करा सके न कि हनन अतः वह विधान भी मुझे बतायें ।१६-१७

श्रीकृष्ण बोले—गौ, पृथ्वी और सरस्वती का दान अतिदान कहा गया है, (प्रतिग्रहीता) के गौ दुहने पृथ्वी जोतने और सरस्वती (विद्या) के ज्ञान होने पर ये सभी (दान) उसके दान को सात पीढ़ी का उद्धार करते हैं । अतः प्रत्यक्ष क्रमानुसार मैं तुम्हें गोदान और न्यूनाधिक विस्तार न होने वाला विधान भी बता रहा हूँ ।१८-१९

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! किस प्रकार की गौ का दान करना चाहिए उसे किन-किन लक्षणों से भूषित होने चाहिए और किन लक्षणों से रहित । ऐसी गौ किस प्रकार के पुरुष को अर्पित करनी चाहिए तथा किसे नही ?।२०

श्रीकृष्ण बोले—तरुणी, रूपवती, सुशीला, पयस्विनी (धेनु) और न्यायोपार्जित हो, ऐसी सवत्सरनी चाहिए । उसी प्रकार वृद्धा, रोगयुक्ता, अंगहीना, वंध्या, दुष्टा, मृत वत्सा (जिसके बच्चे मर जाते है), दूर रहने वाली और अन्याय द्वारा प्राप्त गौ का दान कभी भी न करना चाहिए । पूर्वोक्त लक्षण

---

१. दानमेव प्रकर्त्तव्यम् । २. हुतम् । ३. पुन्सः । ४. तेन ।

सा दत्तैव हरेत्पापं श्रोत्रियायाहिताग्नये । अतिथिप्रियाय दान्ताय धेनुं दद्याद्गुणाधिके ॥२३
अकुलीनाय मूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च । हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ॥२४

श्रीकृष्ण उवाच

पुण्यं दिनमथासाद्य स्नात्वातर्प्य पितॄंस्तथा । घृतक्षीराभिषेकं च कृत्वा विष्णोः शिवस्य च ॥२५
समभ्यर्च्य यथान्यायं पुष्पादिभिरनुक्रमात् । उदङ्मुखीं प्राङ्मुखीं वा गृष्टिं कृत्वा पयस्विनीम् ॥२६
सवत्सां वस्त्रसम्वीतां सितयज्ञोपवीतिनीम् । स्वर्णभृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् ॥२७
शक्तितो दक्षिणायुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । पुच्छे कृष्णाजिनं देयं गां पुच्छे करिणं करे ॥२८
अश्वं सदा सुकर्णे वा दासीं शिरसि दापयेत् । गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥२९
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् । प्रदक्षिणां ततः कृत्वा धेनुं द्विजवराय ताम् ॥३०
इमां च प्रतिगृह्णीष्व धेनुर्दत्ता मया तव । एवमुच्चार्य तं विप्रं देवेशं परिकल्पयेत् ॥३१
अनुव्रजेच्च गच्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप । अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ॥३२
सर्वकामसमृद्धात्मा स्वर्गलोकं स गच्छति । सप्त पूर्वान्सप्त परानात्मानं चैव मानवः ॥३३
सप्त जन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनीपते । पदे पदेऽश्वमेधस्य गोशतस्य च मानवः ॥३४
फलमाप्नोति राजेन्द्र दक्षायैवं जगौहरिः । सर्वकामप्रदा सा स्यात्सर्वकालेषु पार्थिव ॥३५

सम्पन्न गौ श्रोत्रिय आदितागिन ब्राह्मण को अर्पित करनेपर वह समस्त पापों का नाश करती है । क्योंकि अतिथि प्रिय, शुद्ध एवं गुणाधिक्य ब्राह्मण को धेनु दान अर्पित करना चाहिए । कुलहीन, मूर्ख, लोभी, पिशुन (चुगुलखोर) और हव्य कव्यहीन ब्राह्मण को कभी नहीं ।२१-२४

श्रीकृष्ण बोले—किसी पुण्य दिन स्नान पितर तर्पण के उपरान्त भगवान् विष्णु और शिव घृत पूर्ण क्षीर से अभिषेक और न्याय प्राप्त पुष्पादि द्वारा क्रमशः अर्चा करे । पश्चात् उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख उस गौ को प्रतिष्ठित कर, जो गृष्टि (एक बार प्रसव की हुई), पयस्विनी (धेनु), सवत्सा, वस्त्राच्छन्ना । श्वेत यज्ञोपवीत से भूषित, सींगों में सुवर्ण, खुरों में चाँदी जड़ी हो, और कांसे की दोहनी से युक्त हो, यथाशक्ति दक्षिणा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । कृष्णमृग और गौ का दान पूँछ ग्रहण कर देना चाहिए । उसी भाँति हाथी के कर (सूंड), घोड़े का कान और दासी का शिर ग्रहण कर दान देना चाहिए । मेरे सम्मुखी पीठ की ओर एवं हृदय में गौएँ स्थित है अतः गौवों के मध्य में मैं निवास कर रहा हूँ । अनन्तर उस ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा उस गौ की प्रदक्षिणा करके कहे कि मैंने यह गौ आप को अर्पित किया है अतः आप इसका ग्रहण करे—ऐसा कहकर इस विप्र और देवेश (विष्णु) को अर्पित करे ।२५-३१। नराधिप ! विदा के समय आठ पग उनके पीछे चलना चाहिए । इस विधान द्वारा जो मनुष्य धेनु दान ब्राह्मण को सादर समर्पित करता है वह अपनी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक समृद्धात्मा होकर स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है । अवनीपते ! वह मनुष्य अपनी सात पीढ़ी पूर्व तथा सात पीढ़ी पर (भविष्य) की के उद्धार पूर्वक अपने सात जन्मों के पाप विनष्ट करता है । राजेन्द्र ! उसे पग पग पर अश्वमेध और गोशत दान का फल प्राप्त होता है इसी प्रकार विष्णु ने दक्ष से बताया था । पार्थिव ! सभी

भवत्यसौ पापहरा यावदिंद्राश्चतुर्दश[१] । सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता ॥३६
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापोपबृंहितम् । सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं[२] फलम् ॥३७
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः । लोकाः कामगमाः[३] प्राप्त दत्त्वैतद्विधिना नृप ॥३८
गोभ्योधिकं जगति नापरमस्तिकिञ्चद्दानं[४] पवित्रमिति शास्त्रविदो वदन्ति ।
तत्सम्पदः सुरसदश्च समीहमानैर्देयाःसदैव विधिना द्विजपुङ्गवाय ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
प्रत्यक्षधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५१

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धेनूनां कल्पना नृप । विशेषविधिना याश्च देयाः कामानमीप्सुभिः ॥१
कामं यद्दीयते दानं समग्रं तत्सुखावहम् । असमग्रं तु दोषाय भवतीह परत्र च ॥२
तस्मान्न दक्षिणाहीनं विधानविकलं तथा । देयं दानं महाराज समग्रफलकाम्यया ॥३

समय यह गौ समस्त कामनाओं को सफल करती है । वह मानव भी चौदह इन्द्र के समय तक निष्पाप का यह ताप हीन प्रायश्चित बताया गया है । समस्त दानों में यह (गो दान इसलिए श्रेष्ठ है कि यह इसी जन्म में पल प्रदान करने लगता है । नृप ! इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र एवं अन्य मनुष्य भी इस विधान से (गोदान द्वारा) अपने लोक परलोक सुखप्रद बना सकते हैं । क्योंकि शास्त्रवेत्ताओं के कथनानुसार गोदान से श्रेष्ठ एवं पवित्र कोई, अन्य दान नहीं है अतः देव सम्पत्ति के इच्छुकों को सविधान गोदान किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अवश्य अर्पित करना चाहिए ।३२-३९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
प्रत्यक्षधेनुदान व्रत विधान वर्णन नाम एक सौ इक्यावनाँ अध्याय समाप्त ।१५१।

अध्याय १५२

धेनुदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! मैं तुम्हें धेनुकल्प और उसका विशेष विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा कामनाओं को सफल करने वाले मनुष्य धेनुदान करते हैं। दक्षिणापूर्वक यथेच्छ दान करना पूर्णदान कहलाता है वही लोक परलोक में सुख प्रदान करता है और असम्पूर्ण (दक्षिणा हीन) दान लोक परलोक दोनों दूषित कर देता है।१-२। महाराज ! इसलिए दक्षिणा हीन दान, विधान को भंग कर देता है कभी न

---

१. जन्म चतुर्दश । २. देवानामेतज्जन्मांतरं फलम् । ३. कामदुघाः । ४. पुण्यम् ।

अन्यथा दीयमानं तदहंकाराय केवलम् । प्रत्यक्षं चार्थहानिः स्यान्न वा तत्फलदं भवेत् ।।४
तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्थिवसत्तम । वाराहेण पुरा प्रोक्तां महापातकनाशिनीम् ।।५
यां दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः । अगारदाही गरदः सर्वपापरतोऽपि[1] वा ।।६
महापातकयुक्तश्च संयुक्तश्चोपपातकैः । मुच्यते ह्यखिलः पापैः स्वर्गलोकं च[2] गच्छति ।।७
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनसमावृते[3] । धेनुं तिलमयीं कृत्वा दर्भानास्तीर्य सर्वतः ।।८
तिलाः श्वेतास्तिलाः कृष्णास्तिला गोमूत्रवर्णकाः[4] । तिलानां च विचित्राणां धेनुं सर्वां च कारयेत् ।।९
द्रोणस्य वत्सकं कुर्याच्चतुराढकिकां च गाम् । स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां गन्धवर्णवतीं तथा ।।१०
कार्या शर्करया जिह्वा गुडेनास्यं च कम्बलः । इक्षुपादां ताम्रपृष्ठीं शुक्तिमुक्ताफलेक्षणाम्[5] ।।११
प्रशस्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं शुभाम् । स्रग्दामपुच्छां कुर्वीत नवनीतस्तनान्विताम् ।।१२
सितवस्त्रशिरालम्बां सितसर्षपरोमिकाम् । फलैर्मनोहरै रत्नैर्मणिमुक्ताफलान्विताम् ।।१३
ईदृक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः । कांस्योपदोहनां दद्यात्पर्वकाले समागते ।।१४
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या वै देवेष्ववस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ।।१५
ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजयित्वा प्रणम्य च । सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्तेत्युक्त्वा विसर्जयेत् ।।१६

करना चाहिए। समस्त फल की कामना से अवश्य सविधान दान करना चाहिए। अन्यथा वह दान केवल उसी अहंभाव की वृद्धि करता है क्योंकि प्रत्यक्ष में उससे अर्थ हानि होती है और उपरोक्त फल की प्राप्ति तो कभी नहीं। पार्थिवसत्तम ! मैं तुम्हें तिलधेनु का विधान बता रहा हूँ जिस महापातक नाशिनी (तिलधेनु) को पूर्वकाल में बाराह (भगवान्) ने बताया था तथा जिसके दान करने से ब्राह्मण, गौ और पिता आदि की हत्या करने वाले, गुरुपत्नीगामी, घर को जलाने वाले, विष देने वाले, समस्त पाप कर्म करने वाले, महापातक तथा उपपातक युक्त मनुष्य अपने समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्ग लोक पहुँच जाते हैं। सुनो ! गोबर से भूमि को लीप कर कृष्णमृगचर्म बिछाये और उस पर चारों ओर कुश रखकर तिलमयी धेनु की स्थापना करे—श्वेत, कृष्ण और गोमूत्र वर्ण के एवं जितने भी विचित्र वर्ण के तिल होते हैं उन सब भाँति के तिलों द्वारा धेनु गौ की कल्पना करनी चाहिए।३-९। एक द्रोण परिमाण तिल द्वारा वत्स (उसके बच्चे) का और चार आढक तिल की गौ निर्मित होनी चाहिए जिसके सींग में सुवर्ण, खुरों में चाँदी, गंधवर्ण, शक्कर की जिह्वा, शूद्र से मुख और कम्बल (गले के नीचे लटकने वाला मांस), ऊख के चरण, ताँबे की पीठ, सुतुही या मोती की आँखे प्रशस्त पत्र के कान और फलों से शुभ दाँत बने हों। उसी प्रकार माला की पूँछ, नवनीत (मक्खन) का स्तन, श्वेत वस्त्र का शिर, श्वेत राई के लोम बनाये। इस भाँति मनोहर फलों, अन्न एवं मोतियों और मणियों से शेष अंग अलंकृत उस धेनु का श्रद्धा सम्पन्न होकर कांसे की दोहनी समेत किसी पुण्य समय पर दान करें। जो लक्ष्मी समस्त भूतों की है और समस्त देवों में अवस्थित है वही देवी इस धेनुरूप से मेरे पापों को विनष्ट करे—उस समय ऐसा कहकर प्रदक्षिणा पूर्वक पूजा और प्रणाम करे। अनन्तर 'दक्षिणा समेत यह धेनु, मैंने तुम्हें दिया, ऐसा कहकर उसका विसर्जन

---

१. सर्वपापकरोऽपि वा । २. सः । ३. वस्त्राजिनसमावृत्ते । ४. गोमूत्रसंभवाः । ५. शुचिमुक्ताफलेक्षणाम्।

अनेन विधिना दत्त्वा तिलधेनुं नराधिप । सर्वपापविनिर्मुक्तो परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१७
यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां प्रमोदते । दीयमानां प्रशंसन्ति ये च संहृष्टमानसाः ॥१८
तेऽपि दोषविनिर्मुक्ता ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते । प्रशान्ताय सुशीलाय वेदव्रतरताय च[1] ॥१९
धेनुं तिलमयीं दत्त्वा न शोचति कृताकृते । त्रिरात्रं यस्तिलाहारस्तिलधेनुप्रदो भवेत् ॥२०
एकाहमथ वा राजन्न युच्छेदन्तरात्मना[2] । दानाद्विशुद्धिः पापस्य तस्य पुण्यवतो नृप ॥२१
चान्द्रायणादभ्यधिकं कथितं तिलभक्षणम् । बालत्वे चैव यत्पापं यौवने वार्द्धके तथा ॥२२
वाचा कृतं तु मनसा कर्मणा यच्च संचितम् । उदकष्ठीवने चैव नग्नस्नानेन यद्भवेत् ॥२३
मुशलेनोद्यते नापि लम्बिते ब्राह्मणे तथा । वृषलीगमने चैव गुरुदाराभिगामिनि ॥२४
सुरापानेन यत्पापमभक्ष्यस्य च भक्षणात् । तत्सर्वं विलयं याति तिलधेनुप्रदायिनाम् ॥२५
यममार्गे महाघोरे नदी वैतरणी स्मृता । बालुकायाः स्थलं चैव पच्यन्ते यत्र पापिनः ॥२६
यत्र लोहमुखाः काका यत्र श्वानो भयावहाः । निकृत्य पापिनां मांसं भक्षयन्ति बुभुक्षिताः ॥२७
असिपत्रवनं चैव लोहकण्टकशाल्मलीम् । एतान्सर्वानतिक्रम्य ततो यमपुरं व्रजेत् ॥२८
विमाने काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते । तत्रारुह्य नरश्रेष्ठो गच्छते परमाङ्गतिम् ॥२९
गुणहीने न दातव्या न दातव्या धनेश्वरे । कुण्डे गोले च लुब्धे च न च देया कदापि सा ॥३०

करे।१०-१६। नराधिप ! इस विद्वान द्वारा जो तिलधेनु का दान करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करता है। सविधान अर्पित की हुई उस तिल धेनु का प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करने वाला मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करने वाला ये दोनों भी दोषमुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करते हैं। किसी प्रशांत सुशील, वेदवती एवं वेदानुरागी ब्राह्मण को उपरोक्त तिलमयी धेनु अर्पित करने पर दाता को अपने कर्तव्य पर किसी प्रकार शोक नहीं होता है। राजन् ! तीन अथवा एक ही अहोरात्र प्रमादहीन तिलाहार करने पर उसे तिलधेनु के दान का फल प्राप्त होता है। नृप ! दान करने से शरीर की शुद्धि हो जाती है इसलिए इस (तिल भक्षण करने वाले) उस पुण्यात्मा का तिल भक्षण करना चान्द्रायण व्रत से अधिक पुण्य प्रद होता है। तिलधेनु के दान करने वाला भी शिशु अवस्था युवावस्था एवं वृद्धावस्था के कायिक, वाचिक तथा मानसिक समस्त सञ्चित पाप, जल में थूकने, नग्न स्नान करने, किसी ब्राह्मण के ऊपर मुशल प्रहार करने के लिए उद्यत होने, वृषली (शूद्रा) गमन, गुरुपत्नी गमन करने, सुरापान, और अभक्ष्य के भक्षण करने के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं।१७-२५। इस महाघोर यम के मार्ग में जहाँ वैतरणी नदी और तप्त बालू का स्थान जिसमें पापी लोग पकते रहते हैं तथा जहाँ लोह मुख वाले कौवे एवं भीषण कुत्ते हैं जो अत्यन्त बुभुक्षित होकर पापियों के मांस नोच नोचकर खाते रहते हैं। उसी प्रकार वहाँ असिपत्र (तलवार के समान पत्ते वाले) वन और लोहे की कील के समान सेमर का वृक्ष है (तिल धेनु प्रदाता) इन सभी दुर्गम कर्मों को पार कर यमपुरी में पहुँचता है।२६-२८। पश्चात् मणिस्थल भूपित दिव्य सुवर्ण विमान पर प्रतिष्ठित होकर वह नरश्रेष्ठ उत्तम गति प्राप्त करता है। ऐसी धेनु का दान किसी गुण हीन व्यक्ति अथवा धनवान् या कुण्ड गोल और

---

१. अशेषशोक निर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम्। २. वेदव्रतधराय च। ३. न युच्छेन्न प्रमाददित्यर्थः 'युच्छ' प्रमादे धातुः।

एका एकस्य दातव्या मुनिभिः कथितं पुरा । अरण्ये नैमिषे पार्थ नारदेन निवेदितम् ॥३१
ततेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सम्यक्फलसहस्रदम् । इदं पुण्यं पवित्रं च माङ्गल्यं कीर्तिवर्धनम् ॥३२
विप्राणां श्रावयेच्छ्राद्धे अनन्तफलमश्नुते । बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ॥३३
विभज्यमानान्येतानि दातारं पातयन्त्यधः । सा तु विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम् ॥३४
अस्याः दानप्रभावेन विमानं सर्वकामिकम् । समारुह्य नरो याति यत्र देवो हरिः स्वयम् ॥३५
एषा चैव प्रदातव्या प्रयत्नेनान्तरात्मना । पौर्णमास्यां माघस्य कार्तिक्यां चैव भारत ।३६
चन्द्रसूर्योपरागे तु विषुवे अयने तथा । षडशीतिमुखे चैव व्यतीपाते तु सर्वदा ॥३७
वैशाख्यां मार्गशीर्ष्यां या गजच्छायासु चैव हि । एषा ते कथिता पार्थ तिलधेनुर्भयानघ ॥३८
यावन्ति धेनो रोमाणि गात्रेषु नृपपुङ्गव । तावद्वर्षसहस्राणि तदा स्वर्गे महीयते ॥३९
यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां च पश्यति । अनुमोदयते चैव ते सर्वे स्वर्गगामिनः ॥४०

धेनुं धनाधिपतयो मगधोद्भवेन मानेन ये तिलमयी चतुराढकेन ।
कृत्वा यथोक्तरचनां क्रतचारुवत्सां यच्छन्ति ते भुवि भवन्ति विमुक्तपापाः ॥४१

प्रतिगृह्णामि देवि त्वां कुटुम्बभरणाय च । कामं देया दयास्मभ्यं धेनो त्वं सर्वदा ह्यसि ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तिलधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५२।

लोभी को कदापि न देना चाहिए। पूर्वकाल में मुनियों के कथनानुसार एक गौ एक ही व्यक्ति को अर्पित करना चाहिए। पार्थ ! नैमिषारण्य में नारद ने जो कुछ कहा था उस सहस्र गुने फल प्रदान करने वाले को मैं तुम्हें बता रहा हूँ। इस पवित्र आख्यान को जो मंगल विधान एवं कीर्ति वर्द्धक है ब्राह्मणों के श्राद्ध में सुनने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। गौ, गृह, शय्या, एवं स्त्री का दान विभाग पूर्वक अनेक को देने से दाता की अधोगति (नरक) होती है। क्योंकि विक्रय करने पर वे दान सात पीढ़ी तक का विनाश करते हैं। इस दान के प्रभाव से मनुष्य समस्त कामनाओं को सफल करने वाले विमान पर सुशोभित होकर जहाँ स्वयं विष्णु भगवान् रहते हैं वहाँ पहुँचता है। भारत ! आत्मसंयम पूर्वक मनुष्य को माघ, कार्तिक की पूर्णिमा, चन्द्र सूर्य ग्रहण के समय, विषुव, अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन), संक्रान्ति दिन, व्यतीपात, वैशाख, मार्गशीर्ष (अगहन) मास अथवा गजच्छाया में तिलधेनु का दान अवश्य करना चाहिए।२९-३८। अनघ, पार्थ ! इस प्रकार मैंने तिलधेनु की व्याख्या तुम्हें सुना दिया। नृपपुङ्गव ! उस धेनु के शरीर में जितने लोम होते हैं, उसके सहस्रवर्ष वह (प्रदाता) स्वर्ग में पूजित होता है। सविधान दान करने पर इसके प्रतिग्रहीता, तथा देखने एवं अनुमोदन करने वाले मनुष्य भी स्वर्गगामी होते हैं। इस प्रकार मगधोद्भव के अनुसार चार आढ़क तिल की सौन्दर्य पूर्ण धेनु वत्स समेत निर्माण कर सविधान दान देने वाले धनाधीश्वर गण पापमुक्त होकर भूमि सुख का अनुभव करते हैं। धेनो ! देवि ! मैं अपने परिवार के पालन पोषणार्थ तुम्हारा ग्रहण कर रहा हूँ अतः मेरी इस कामना की सफलतापूर्वक मेरे उपर सदैव दया करती रहना।३९-४२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
तिलधेनुदानव्रत विधि वर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त।१५२।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

जलधेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया । देवदेवो हृषीकेशः पूजितः[1] सर्वभावनः ।।१
जलकुम्भं नरव्याघ्र स्थापयित्वा सुपूजितम् । रत्नगर्भं तु तं कृत्वा ग्राम्यैर्धान्यै समन्वितम् ।।२
सितवस्त्रयुगच्छन्नं दूर्वापल्लवशोभितम् । कुष्ठमांसीपुरोशीरवालकामलकीयुतम्[2] ।।३
प्रियङ्गुपत्रसहितं सितयज्ञोपवीतिनम् । सोपानत्कं च सच्छन्नं दर्भविष्टरसंस्थितम् ।।४
चतुर्भिः संयुतं रौप्यं तिलपात्रैश्चतुर्दिशम् । स्थगितं दधिपात्रेण घृतक्षौद्रवता मुखम् ।।५
सवत्सां च प्रतिष्ठाप्य गोमयेनोपशोभिताम् । स्रग्दामपुच्छीं कुर्वीत ताम्रदोहनकान्विताम् ।।६
ततः समभ्यर्च्य विभुं वासुदेवं सनातनम् । पुष्पधूपोपहारैश्च यथाविभवमात्मनः ।।७
सङ्कल्प्य जलधेनुं च कुम्भं तमभिमन्त्र्य च । विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।।
सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरूपेण सास्तु मे ।।८
एवमामन्त्र्य विधिवत्सफलां वत्सकान्विताम् । भक्त्या सम्पूज्य गोविन्दं जलशायिनमच्युतम् ।।९
सितवस्त्रधरः[3] शान्तो वीतरागो विमत्सरः । दद्याद्विप्राय राजेन्द्र प्रीत्यर्थं जलशायिनः ।।१०

अध्याय १५३

जलधेनुदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरव्याघ्र ! मैं तुम्हें जलधेनु की व्याख्या बता रहा हूँ, जिसके दान करनेपर देवाधिदेव सर्वभावन भगवान हृषीकेश पूजित होते हैं । जलपूर्ण कलश को स्थापित कर पूजित करे, जो रत्न गर्भित, धन धान्य युक्त, श्वेत वस्त्र से आच्छन्न, दूर्वा एवं पल्लव से भूषित, कूट, जटामांसी, उशीर खश, नालक, आमलक, प्रियङ्गु (ककुनी) के पत्ते, श्वेत यज्ञोपवीत से सुशोभित हो और छत्र, उपानह समेत कुशाशन पर स्थित हो । चारों चरण चाँदी से भूषित, चारों दिशाओं में तिलपात्र, और घृत, मधु मिश्रित दधिपात्र से उसका मुख सुशोभित हो । इस प्रकार की सवत्सा गौ की प्रतिष्ठा करके, जो गोमय भूषित, माला की पूँछ और ताँबें के दोहनक से युक्त हो, अपने विभवानुरूप पुष्प, धूप आदि उपहार से विभु एवं सनातन वासुदेव की अर्चा करे अनन्तर जल धेनु के संकल्प और उस कलश को अभिमंत्रित करने के उपरांत विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल पर सुशोभित होने वाली लक्ष्मी, अग्नि की स्वाहा, एवं सोम, इन्द्र और सूर्य की शक्ति रूप है वही धेनु रूप से मेरी भी हो अर्थात् मेरी धेनु हो । राजेन्द्र ! फलयुक्त उस सवत्सा गौ को इस भाँति अभिमंत्रित कर जलशायी गोविन्द अच्युत भगवान् की भक्तिपूर्वक अर्चा करे । अनन्तर श्वेत वस्त्र धारण कर शांत, वीतराग एवं मत्सरहीन होकर जलशायी भगवान केशव के प्रीत्यर्थ उसे किसी ब्राह्मण को अर्पित करे ।१-१०। शेषरूपी शय्या पर शयन करने वाले, श्रीमान्, शार्ङ्ग

---

१. सर्वेशः । २. कुष्ठमांसीपुरोशीरनालकैर्विल्वसंयुतम्, सितवस्त्रेण संवीतो वीतरागः ।

शेषपर्यङ्कशयनः श्रीमाञ्छार्ङ्गविभूषितः । जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥११
इत्युच्चार्य जगन्नाथं विप्राय प्रतिपाद्यताम् । तद्दिनं गोव्रतस्तिष्ठेच्छ्रद्धया परया युतः ॥१२
अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं जनाधिप । सर्वभोगानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ॥१३
शरीरारोग्यमतुलं प्रशमः सर्वकालिकः । नृणां भवन्ति दत्तायां सर्वे कामा न संशयः ॥१४
अत्रापि श्रूयते भूप मुद्गलेन महात्मना । जातिस्मरेण यद्गीतमिहाभ्येत्य पुराकिल ॥१५
स मुद्गलः पुरा विप्रो यमलोकगतो मुनिः । ददर्श यातनानेकाः पापकर्मकृतां नृणाम् ॥१६
दीप्ताग्नितीक्ष्णयन्त्रस्थाः क्वाथतैलमयास्तथा । उष्णक्षारनदीपाता भैरवाः पुरुषर्षभ ॥१७
व्रणक्षारनिपातोऽथ कुम्भीपाकमहालयाः । ता दृष्ट्वा यातना विप्रश्चकार परमां कृपाम् ॥१८
आह्लादं ते तदा जग्मुः पापास्तदनुकम्पया । तं दृष्ट्वा नारकाः केचित्स्थित्वा तदवलोकिनः ॥१९
तदवस्थं विलोक्याथ मुनिर्नारकमण्डलम् । धर्मराजं स पप्रच्छ तेषां प्रशमकारणम् ॥२०
तस्मै चाचष्ट राजेन्द्र तदा वैवस्वतो यमः । आह्लादहेतुमधिकं नारकाणां नरोत्तम ॥२१
दानानुभावात्सर्वेषां नारकाणां द्विजोत्तम । सम्प्रवृत्तोऽयमाह्लादः कारणं तच्छृणुष्व मे ॥२२
त्वयाभ्यर्च्य जगन्नाथं सर्वेशं जलशायिनम् । जलधेनुः पुरा दत्ता विधिवद्द्विजपुङ्गव ॥२३

(धनुष) भूषित, जलशायी एवं जगत् के एकमात्र कारण भगवान् केशव मेरे ऊपर प्रसन्न हो—इस प्रकार भगवान् जगन्नाथ जी की प्रार्थना करके वह गौ ब्राह्मण को समर्पित करे और उस दिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक गोव्रत का पालन भी करे। जनाधिप ! इस विधान द्वारा जलधेनु के दान करने पर दिव्य एवं मानुषिक समस्त भोगों के उपभोग प्राप्त होते हैं। अतुल नीरोग शरीर तथा सभी समय अत्यन्त शान्ति रहती है। यहाँ तक कि उसके दान करने पर मनुष्यों के सभी मनोरथ सफल होते हैं इसमें संदेह नहीं। ११-१४। भूप ! इस विषय में सुना जाता है कि महात्मा मुद्गल ने जिन्हें (जन्मान्तरीय) जाति स्मरण सदैव बना रहा है, पूर्वकाल में यहाँ आकर उपरोक्त सभी बातें बतायी है। पूर्व जन्म में मुद्गल मुनि ब्राह्मणकुल में उत्पन्न थे। उन्होंने यमलोक में जाकर पापी मनुष्यों की अनेक भाँति का यातनाएँ देखी कोई प्रदीप्त अग्नि कुण्ड में पकाये जा रहे हैं कोई तीक्ष्ण यन्त्र (मशीन आदि) उत्पीड़ित हो रहा है, कोई खौलते हुए गरम तेल में पक रहा है और कोई गरम और खारे जलवाली नदी में डूब रहा है। पुरुषर्षभ ! कोई व्रण (घाव) वाले क्षार कुण्ड में पड़ा है तथा कोई कुम्भी पाक नामक महानरक में पड़ा है। नारकीयों की ऐसी भीषण यातनाओं को देखकर मुनि ने उन लोगों के ऊपर अत्यन्त कृपा की—उनकी अनुकम्पा से उसी समय पापियों को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। उन मुनि को देखकर कुछ नारकीय प्राणी अपनी दुःखी अवस्था में ही रह कर उन्हें बार बार देख रहे थे। अनन्तर मुनि ने उस नरक मण्डल को देख कर धर्मराज से उनकी दुःख निवृत्ति का कारण पूँछा। राजेन्द्र ! नरोत्तम ! उसे सुनकर विवस्वान (सूर्य) पुत्र यम ने नारकीयों के प्रसन्नार्थ मुनि से उस कारण को बताया—उन्होंने कहा—द्विजोत्तम ! इस दान के प्रभाव से सभी नारकियों को अत्यन्त आह्लाद (हर्ष) की प्राप्ति होगी, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ! द्विजपुङ्गव ! तुमने भी पूर्व जन्म में जलशायी, एवं सर्वाधीश्वर जगन्नाथ जी अर्चना करने के उपरान्त सविधान जल धेनु का दान

तस्मात्वज्जन्मनोऽतीते तृतीये द्विजजन्मनि । तस्य दानस्य ते व्युष्टिरियमाह्लाददायिनी[१] ॥२४
ये त्वां पश्यन्ति शृण्वन्ति ये च ध्यायन्ति मानवाः । शृणोषि यांश्च विप्रेन्द्र यांश्च ध्यायसि पश्यसि ॥२५
निर्वृत्तिः परमा तेषां सर्वाह्लादप्रदायिनी । सद्यो भवति माऽत्र त्वं द्विजाते कुरु विस्मयम् ॥२६
आह्लादहेतुजननं नास्ति विप्रेन्द्र तादृशम् । जलधेनुर्यथा नृणां जन्मान्येकोनविंशतिम् ॥२७
न दोषो न ज्वरो नार्तिर्न क्लमो द्विज जायते । अपि जन्मसहस्रेऽपि जलधेनुप्रदायिनाम् ॥२८
स त्वं गच्छ गृहीत्वार्घमस्मतो द्विजसत्तम । येषां समाश्रयः कृष्णे न नियम्या हि ते मया ॥२९
कृष्णस्तु पूजितो यस्तु[२] ये कृष्णार्थमुपोषिताः । यैश्च[३] नित्यं स्मृतः कृष्णो न ते मद्विषयोपगाः ॥३०
नमः कृष्णाच्युतानन्त वासुदेवेत्युदीरितम् । यैर्भावभावितैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥३१
दानं ददभिर्यैरुक्तमच्युतः प्रीयतामिति । श्रद्धापुरःसरैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥३२
स एव नाथः सर्वस्य तन्नियोगकरा वयम् । जनसंयमनश्चाहमस्मत्यसंयमनो हरिः ॥३३
इत्थं निशम्य वचनं यमस्य वदतोऽखिलम् । ऊचुस्ते नारकाः सर्वे वह्निशस्त्रार्कभीरवः ॥३४
नमः कृष्णाय हरये विष्णवे जिष्णवे नमः । हृषीकेशाय केशाय जगद्धात्रेऽच्युताय च ॥३५
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये । जनार्दनाय श्रीशाय श्रीभर्त्रे पीतवाससे ॥३६
गोविन्दाय नमो नित्यं नमश्चोदधिशायिने[४] । नमः कमलनेत्राय नृसिंहाय निनादिने ॥३७

किया है ।१५-२३। जिससे इस तीसरे ब्राह्मण जन्म में उस दान के प्रभाव से तुम्हें उसका अत्यन्त आह्लाद फल प्राप्त हुआ है । विप्रेन्द्र ! तुम्हें देखने, सुनने एवं ध्यान करने वाले मनुष्यों को और जिन लोगों को तुम सुनोगे ! ध्यान करोगे तथा देखोगे उन्हें सब भाँति का आह्लाद प्रदान करने वाली परम निर्वृत्ति (सुख) सद्यः (तुरन्त) प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं ! विप्रेन्द्र ! जलधेनु के समान मनुष्यों को उन्तीस जन्म तक आह्लादप्रद अन्य कोई है ही नहीं । क्योंकि जलधेनु के दान करने वाले मनुष्यों के सहस्रों जन्म तक कोई दोष—ज्वर, पीड़ा एवं क्रम आदि कुछ होता ही नहीं । द्विजसत्तम ! अतः मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कर तुम (सादर) अपने स्थान जाओ, क्योंकि कृष्ण के आश्रित रहने वाले मनुष्य पर मेरा शासनाधिकार कुछ भी नहीं है ।२४-२९। जिसने कृष्ण की पूजा की अथवा कृष्ण के निमित्त उपवास किया या कृष्ण का नित्य स्मरण करते हैं वे हमारे यहाँ के शासन नियम भाजन नहीं है । विप्र ! अत्यन्त प्रेम विह्वल होकर जिसने कृष्ण, अच्युत, एवं अनन्त वासुदेव को नमस्कार है, कहा है, वह हमारे शासन से बाहर है। विप्र ! अत्यन्त श्रद्धालु होकर जिसने दान देते समय 'भगवान् अच्युत प्रसन्न हों, कहा है वह भी हमारे शासनाधिकार में नहीं है। क्योंकि वही (अच्युत) सब के नाथ हैं और हम लोग उनके आदेश के पालक हैं और मैं मनुष्यों का संयमन करता (नियामक) हूँ और भगवान् हरि हमारे नियामक हैं। यमराज के इस प्रकार कहने पर उनकी समस्त बातें सुनकर समस्त नारकीय प्राणी, जिन्हें वहाँ अग्नि, शास्त्र एवं अर्क (सूर्य) का अत्यन्त भय था, कहने लगे—भगवान् हरि कृष्ण को नमस्कार है, विष्णु (जय शील) विष्णु को नमस्कार है, हृषीकेश, केशव, जगद्धाता, अच्युत को नमस्कार है, कमलनेत्र, कमलनाभि, जनार्दन, श्रीश, एवं पीताम्बरधारी लक्ष्मीपति को नमस्कार है ।३०-३६। गोविन्द को नमस्कार है, जलशायी को नित्य नमस्कार

---

१. व्युष्टिः फलमित्यर्थः । २. यैः कृष्णार्थमुपोषितम् । ३. यस्तु । ४. उदकशायिने ।

शार्ङ्गिणे शितखड्गाय शङ्खचक्रगदाभृते । नमो वामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयाय च ॥३८
वराहरूपाय तथा नमो यज्ञाङ्गधारिणे । व्याप्ताशेषदिगन्तायानन्ताय[1] परमात्मने ॥३९
वासुदेव नमस्तुभ्यं नमः कैटभसूदिने । केशवाय नमो राम[2] नमस्तेस्तु महीधर ॥४०
नमोऽस्तु वासुदेवाय ह्येवमुच्चारिते च तैः । शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुरनलश्चापि शीतताम्[3] ॥४१
समभज्यन्त वस्त्राणि समुत्पेतुरयोमुखाः । संशुष्काः क्षारसरितः पतितः शाल्मलिद्रुमः ॥४२
प्रकाशस्तमसो जज्ञे नरकाद्भानुभिः सह । ववौ च युजन्पवनोऽप्यसिपत्रवने ततः ॥४३
निरुत्साहा जडधियो बभूवुर्यमकिंकराः । जातागङ्गाम्बुवाहिन्यः पूयशोणितनिम्नगाः ॥४४
दिव्यः सुगन्धिः पवनो मनः प्रीतिकरस्तथा । वेणुवीणास्वनयुताः शब्दाश्चासन्मनोरमाः ॥४५
तं तादृशमथालक्ष्य तदा वैवस्वतो यमः । क्षीणपापत्रयांस्तांस्तु पाद्यार्घ्यैः समपूजयत् ॥४६
पूजयित्वा च तानाह कृष्णाय स कृताञ्जलिः । समाहितमतिर्भूत्वा धर्मराजो नरेश्वर ॥४७
विष्णो देव जगद्धातर्जनार्दन जगत्पते । प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषामपि नमोनमः ॥४८
अच्युतायाप्रमेयाय मायावामनरूपिणे । प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥४९
नमस्ते वासुदेवाय धीमते पुण्यकीर्तये । प्रणामं ये च कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥५०
तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरमिततेजसः ॥५१

है, कमलनेत्र नृसिंह तथा गंभीर नाद करने वाले को नमस्कार है, धनुर्धारी, तीक्ष्ण खड्ग, शंख, चक्र गदाधारी और तीनों लोक को आक्रान्त करने वाले वामन रूप को नमस्कार है, यज्ञाङ्गधारी वाराह रूप को नमस्कार है, समस्त दिग्दिगन्त में व्याप्त होने वाले अनन्त परमात्मा को नमस्कार है, वासुदेव को नमस्कार है, कैटभहन्ता को नमस्कार है, केशव को नमस्कार है, महीधर राम को नमस्कार है एवं वासुदेव को नमस्कार है। इस भाँति उनलोगों के उच्चारण करने पर (उन्हें पीड़ित करने वाले) शास्त्र कुण्ठित हो गये और अग्नि शीतल हो गया। (नरक के आवरण) वस्त्र सर्वथा नष्ट हो गये, अधोमुख (लोहमुख) वाले एक साथ ही उड़ गये, क्षार नदी (वैतरणी) सूख गयी। शालमली (सेमर) का वृक्ष गिर गया और उस नरक कुण्ड में उस अंधेरे से सूर्य के साथ प्रकाश का उदय हुआ एवं उस असि (तलवार) केसमान तीक्ष्ण पत्र वाले वन में (उन पत्रों को एक में मिलाते हुए) वायु चलने लगा। यमराज के जड़ बुद्धि वाले किङ्कर (सेवक) वर्ग हतोत्साह होगये, धूप (पीव) और शोणिक प्रवाहित होने वाली नदियाँ गङ्गा जल की भाँति प्रवाहित होने लगीं। दिव्य एवं सुगन्ध पूर्ण वायु मन को प्रसन्न करने लगा वेणु (बाँस) की वीणा के समान उसके शब्द मनोरम हो गये। इस दृश्य को देखकर उस समय वैवस्वत यम ने पाप के क्षीण होने पर उन तीनों की अर्घ्य पाद्य द्वारा अर्चा की।३७-४६। नरेश्वर ! अनन्तर धर्मराज कृष्ण के लिए हांथ जोड़कर ध्यान पूर्वक कहने लगे—विष्णुदेव , को जो जगत् के धाता, जनार्दन एवं जगत् के पति है तथा उन्हें प्रणाम करने वाले को भी बार-बार नमस्कार है। अप्रमेय अच्युत को नमस्कार है, जो माया से वामन रूप धारण किये हैं, और उन्हें प्रणाम करने वाले को भी नमस्कार है। धीमान् एवं पुण्य कीर्ति वाले वासुदेव को तथा उन्हें प्रणाम करने वाले को भी नमस्कार है।४७-५०। इस प्रकार अमेय तेजधारी एवं यज्ञवाराह रूप धारण

---

१. शांताय । २. व्यापिनमस्तेऽस्तु महीभृते । ३. शीतलः ।

एवं स्तुत्वा हृषीकेशं धर्मराजस्य पश्यतः । विमानवरमारुह्य नारकास्त्रिदिवं ययुः ॥५२
मुद्गलोऽपि महाबुद्धिर्दृष्टैतदखिलं नृप । जातिस्मरो भवेद्विप्रः कण्वगोत्रे महामुनिः ॥५३
संस्मृत्य यमवाक्यानि विष्णोर्माहात्म्यमेव च । जलधेनोस्तु माहात्म्यं संस्मृत्येदमगायत ॥५४
अहोसुदुस्तरा विष्णोर्मायैमतिगह्वरी । यया मोहितचित्तस्तु न वेत्ति परमेश्वरम् ॥५५
जीवो गच्छति कीटत्वं यूकामत्कुणयोनिताम् । तस्माद्द्रुमलता दीनां योनिं तस्माच्च पक्षिणाम् ॥५६
ततश्च पशुतां प्राप्य नरत्वमभिवांछति ः ततो मनुष्यतां प्राप्य नरो योनिं कृतात्मनाम् ॥
तां प्राप्य च श्रियं परां नरो मायाविमोहितः ॥५७
दुस्तरापि सुसाध्या सा माया कृष्णस्य मोहिनी । विद्यते सा मनोन्यस्ता मुधैव[1] मधुसूदने ॥५८
अवाप्यैवं च गार्हस्थ्यमवाप्यैवं च तत्परम् । छिनत्ति वैष्णवीं मायां केशवार्पितमानसः ॥५९
अविरोधेन विषयान्भुञ्जन्विष्णुं समाश्रयेत् । भुक्त्वा नरस्तरत्येनां विष्णोर्मायां सुदुस्तराम् ॥६०
ईदृग्बहुफला भक्तिः सर्वधातरि केशवे । मायया तस्य देवस्य तां न कुर्वन्ति मोहिताः ॥६१
मुधैवोक्तं सुधापानं मुधा तद्धि विचेष्टितम् । मुधैव जन्म तन्नष्टं यत्र नाराधितो हरिः ॥६२
आराधितो हि यः पुंसामैहिकामुष्मिकं फलम् । ददाति भगवान्देवः कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥६३
सम्वत्सरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते । नराणां विषयांधानां यैस्तु नाराधितो हरिः ॥६४

करने वाले विष्णु हृषीकेश की स्तुति करके वे नारकीय प्राणी धर्मराज के देखते-देखते सुन्दर विमान द्वारा स्वर्ग चले गये । नृप ! इस समस्त कौतूहल को देखकर महाबुद्धिमान् मुद्गल भी कण्व ऋषि के कुल में जन्मान्तरीय के स्मरण करने वाले महामुनि ब्राह्मण हुए । उन्होंने यम के वाक्य, विष्णु का माहात्म्य और जलधेनु का महत्व भली भाँति समझकर यह गाथा गाया कि—अहो ! भगवान् विष्णु की यह माया कितनी कठिन है, जिसके द्वारा मोहित होने पर प्राणी परमेश्वर का ज्ञान (कुछ भी) नहीं कर पाता । यह जव (मोहित होने पर नाते परमेश्वर को भूल जाने पर) कीट, यूका (जूँ) खटमल की योनि से वृक्ष लता की योनि में पहुँचता है और उससे पक्षी, पक्षी से पशु एवं उससे मनुष्यत्व प्राप्ति की कामना करने पर मनुष्य योनि की प्राप्ति करता है अनन्तर कृतज्ञता प्राप्त कर माया मोहित पुरुष उत्तम श्री प्राप्ति करता है । यद्यपि भगवान् कृष्ण की मोहिनी माया अत्यन्त दुस्तर है तथापि मधूसूदन में अनन्य भाव रखने पर वह बिना प्रयास के ही सुसाध्य हो जाती है । क्योंकि भगवान् केशव में तन्मय होने वाले प्राणी गृहस्थ धर्म के उपरान्त एवं संन्यास धर्म सुसम्पन्न करते हुए वैष्णवी माया से मुक्त हो जाते हैं ।५१-५९। भगवान् विष्णु के आश्रित रहकर मनुष्य अविरोधेन विषयों के उपभोग करते हुए भी विष्णु की उस सुदुस्तर माया को पार कर जाते हैं । इस प्रकार अनेक फलदायिनी सर्वधाता भगवान् केशव की भक्ति देवमाया से मोहित होने वाले प्राणी नही प्राप्त कर सकते हैं । जिसने हरि विष्णु की आराधना नहीं की उसका सुधापान एवं चेष्टित कर्म और इतना ही नहीं अपितु उसका वह जन्म नष्ट है क्योंकि जिसने उनकी आराधना की है उसे भगवान् कृष्ण देवलोक परलोक के सभी फल प्रदान करते हैं अतः किसे नहीं उनकी अर्चा करनी चाहिए ।६०-६३। जिन मनुष्यों ने, जो दिनरात विषयों में ही अन्धे होकर लिप्त हैं भगवान् हरि की उपासना नहीं

---

१. तत्रैव ।

यो न वित्तर्द्धिविभवैर्न वासोभिर्न भूषणैः । तुष्यते हृदयेनैव कस्तमीशं न पूजयेत् ।।६५
जलधेनोस्तु माहात्म्यं निशम्येदमिदं नराः । नात्र यच्छन्ति तेषां वै विवेकः कुत्र तिष्ठति ।।६६
कर्मभूमौ हि मानुष्यं जन्मनामयुतैरपि । स्वर्गापवर्गफलदं कदाचित्प्राप्यते नरैः ।।६७
सम्प्राप्य च न यैर्विष्णुस्तोषितो जलधेनुना । ते जना [1]भ्रष्टजन्मानो वंचितास्तस्य मायया ।।६८
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष दृष्टलोकद्वयोऽस्मि भोः । आराधयध्वं गोविन्दं जलधेनुं प्रयच्छत ।।६९
दुःसहो नारको वह्निरविषह्या च यातनाः । ज्ञातं मयैतदालम्ब्य कृष्णं भवति निश्चलः ।।७०
आदेशिको देशिको हि यममार्गे सुदुस्तरे । विचिन्त्य तत्सत्यमेतन्मनः कृष्णे निवेश्यताम् ।।७१

इष्टेन किं क्रतुशतेन सुदुष्करेण क्लेशाधिकेन सुकृतैर्नियमैर्व्रतैश्च ।
दत्ता द्विजाय पितृराज्यगृहं गतस्य ह्येकाऽपि गौर्जलमयी सुखमातनोति ।।७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
जलधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५३

की उनके वर्ष, मास एवं दिन निष्फल हैं। वित्त, ऋद्धि आदि विभव तथा वस्त्रों एवं आभूषणों (के प्रदान) द्वारा प्रसन्न होकर केवल हार्दिक प्रेम से प्रसन्न होता है ऐसे भगवान् की आराधना किसे नहीं करनी चाहिए। इस भाँति जल धेनु के इस (अपूर्व) माहात्म्य को सुनकर मानववृन्द यदि जल धेनु का प्रदान नहीं करते हैं तो उनमें विवेक के रहने का स्थान ही कहाँ मिलेगा क्योंकि उस कर्म क्षेत्र में अनेक जन्मों के उपरान्त जीव उस मनुष्यत्व को प्राप्ति करता है, जिसके द्वारा स्वर्ग, मोक्ष आदि फल प्राप्त होते हैं। उसे प्राप्त करने पर भी जिन लोगों के जल धेनु के दान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न नहीं किया, उनके जन्म निरर्थक हो गये और भगवान् की माया द्वारा (मोहित होने के नाते) वे (उस लाभ से) वंचित ही रह गये। इसीलिए मैं दोनों लोकों को देखकर ऊर्ध्वबाहु होकर उन्हें कह रहा हूँ, कि सभी लोग गोविन्द की आराधना एवं जल धेनु का दान करो। क्योंकि नरक की अग्नि अत्यन्त दुःसह और उनकी यातना अतीव असह्य है किन्तु मुझे इसका भली भाँति ज्ञान है कि कृष्ण के आश्रित रहने पर प्राणी निश्चल होता है। उस सुदुत्तर यम मार्ग के पथिक आदि सभी को इसकी सत्यता पर विचार कर अपना मन भगवान् कृष्ण में लगाना चाहिए। इस प्रकार सैकड़ों सुदुष्कर यज्ञ करने पर जिसमें केशाधिक्य रहता है, और नियम संयम वाले सुकृत व्रत आदि कर्म करने से क्या लाभ जबकि पितृ लोक गये हुए प्राणी के निमित्त किसी ब्राह्मणो को सादर समर्पित की हुई जल धेनु उसको विस्तृत सुख प्रदान करती है।६४-७२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
जल धेनुदान व्रत विधि वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।१५३।

---

१. गव्यस्य सर्पिषः कुम्भं गन्धमाल्यविभूषितम्। कांस्योपधानसंयुक्तं सितवस्त्रावगुण्ठितम्।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

घृतधेनुदानव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

घृतधेनुं प्रवक्ष्यामि तां शृणुष्व नरोत्तम । दीयते येन विधिना यादृग्रूपां च कारयेत् ॥१
गव्यस्य[1] सर्पिषः कुम्भान्गन्धमाल्यविभूषितान् । कांस्योपदोहनसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुण्ठितान् ॥२
इक्षुयष्टिमयाः पादाः खुरा रौप्यमयास्तथा । सौवर्णे चाक्षिणी कार्ये[2] शृंगे चागुरुकाष्ठके ॥३
सप्तधान्यमये पार्श्वे पटोर्णेन च कम्बलम् । कुर्यात्तुरुष्ककर्पूरैर्घ्राणं फलमयांस्तनान् ॥४
तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयं मुखम् । क्षौमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षपैः ॥५
ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः । ईदृग्रूपां तु सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिप ॥६
तद्वत्कल्पनया धेनोर्वत्सं च परिकल्पयेत् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तां समभ्यर्च्य बुद्धिमान् ॥७
आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् । आज्य सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ॥८
त्वं चैवाज्यमयी देवि कल्पितासि मया किल[3] । सर्वपापापनोदाय सुखाय भव भामिनि ॥९
तं च विप्रं महाभाग मनसैव घृतार्चिषा । कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत् ॥१०
दक्षिणासहिता धेनुः कल्पिताज्यमयी शुभा । एतां ममोपकाराय गृहाण त्वं द्विजोत्तम ॥११

अध्याय १५४

घृतधेनुदानव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम ! मैं तुम्हें घृत धेनु का विधान और उसका रूप बता रहा हूँ, सुनो ! गौ के घृत से पूर्ण कलश, जो गंध माल्य विभूषित, कांसे की दोहनी युक्त, एवं श्वेत वस्त्र से अवगुण्ठित हो, स्थापित करते हुए गौ को प्रतिष्ठित करे, ऊख, यष्टि (दण्ड) से जिसके चरण, चाँदी के खुर, सुवर्ण के नेत्र, अगुरु काष्ठ की सींग, सप्त धान्य के पार्श्व भाग, ऊन वस्त्र के कम्बल (गले के नीचे लटकने वाले अंग), शिला रस लोहबान और कपूर की घ्रार (नाक), फलों के स्तन, शक्कर की जिह्वा, गुड़ क्षीर का मुख, रेशमी सूत्र से लाङ्गूल (पूंछ) श्वेत राई से लोम और ताँबें के पात्र की पृष्ठ (पीठ), बनी हो। नराधिप ! इस प्रकार श्रद्धा समेत घृत धेनु की कल्पना करके उसके वत्स (बच्चे) की भी कल्पना करें। राजेन्द्र ! बुद्धिमान् को चाहिए उसे इस मंत्र द्वारा पूजित कर—घृत तेज रूप है, अत्यन्त पापापहारी है और वह देवताओं का आहार है इसीलिए सभी कुछ घृत में प्रतिष्ठित हैं देवि ! इसी हेतु मैंने तुम्हारी कल्पना (निर्माण) घृतमयी की है, भामिनी ! अतः मेरे समस्त पापों के अपहरण पूर्वक सुख प्रदान करो। महाभाग ! घृतार्चि द्वारा उस ब्राह्मण की भी मानसिक कल्पना करके (गोदान के समय) ऐसा कहे। १-१०। द्विजोत्तम ! दक्षिणा समेत यह घृतमयी धेनु मेरे उपकारार्थ ग्रहण करने की कृपा करें। अनन्तर वह

---

१. कुर्यात् । २. शुभे । ३. अतुलाऽधिकवर्जिताम् ।

इत्युदाहृत्य विप्राय तां गां तु प्रतिपादयेत् । दत्त्वैकरात्रं स्थित्वा च घृताहारो यतव्रतः ॥१२
अनेन च विधानेन नवनीतमयी शुभा । दातव्या नृपते धेनुर्न्यूनाधिकविवर्जिता[1] ॥१३
शृणु पार्थ महाबाहो[2] प्रदानफलमुत्तमम् । घृतक्षीरमहानद्यो यत्र पायसकर्दमाः ॥१४
घृतधेनुप्रदा यान्ति तत्र कामैः[3] सुपूरिताः । पितुरूर्ध्वं च ये सप्त पुरुषास्तस्य येऽप्यधः ॥१५
तांस्तेषु नृप लोकेषु स न यस्त्यक्तकल्मषान्[4] । सकामानमियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तम ॥१६
निष्किल्बिषं पदं यान्ति निष्कामा घृतधेनुदाः । घृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सर्वदेवताः ॥१७
घृतं प्रयच्छतां भीताः भवन्त्यखिलदेवताः ॥१८

मायाजलं सुतकलत्रमहोर्मिमालं लोमोग्रनक्रविषमं बहुपुण्यभाजः ।
लग्ना निमग्नवपुषो घृतधेनुपुच्छे संसारसागरमपारमहो तरन्ति ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
घृतधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५४

गौ ब्राह्मण को अर्पित कर संयम पूर्वक रात्रि घृताहार पूर्वक व्यतीत करे ! नृपते ! इस विधान द्वारा यह नवनीत (मक्खन) मयी धेनु, जिसमें न्यूनाधिक सम्भव न हो, सभी को दान देना चाहिए । महाबाहो, पार्थ ! उसके दान का महान् एवं उत्तम फल बताया गया है—घृत धेनु के प्रदाता अपनी समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक ऐसे लोक की प्राप्ति करते हैं जहाँ घृत और क्षीर की महानदी प्रवाहित होती है तथा उसमें पायस का कर्दम (कीचड़) भरा पड़ा है । नृप ! उसकी सात पीढ़ी पूर्व की ओर सात पीढ़ी पर की पापरहित होकर उस लोक में पहुँचते हैं । नृपसत्तम ! सकाम प्राणियों के लिए मैंने यह उत्तम फल बता दिया ! घृतधेनु प्रदान करने वाले प्राणी कामना रहित पुण्यपद की प्राप्ति करते हैं । क्योंकि घृत अग्नि रूप है, घृत ही सोम है और घृतमय (सभी देवता) हैं इसीलिए घृतदान करने वाले से समस्त देवगण भयभीत रहते हैं । इस प्रकार इस अपार संसार सागर को, जिसमें माया रूपी जल, सुत एवं स्त्री आदि (परिवार) भीषण तरङ्ग समूह, और लोमरूपी विषय एवं उग्र नक्र (मगर) है, घृत धेनु का दानी अत्यन्त पुण्य पात्र होने के नाते समस्त शरीर के उसमें निमग्न रहने पर घृतधेनु की पूँछ के सहारे पार कर जाता है ।११-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
घृतधेनुदानव्रतविधि वर्णन नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।१५४।

---

१. अतुलाऽधिकवर्जिताम् । २. महाभाग । ३. प्रपूजिताः । प्रपूरिताः । ४. अपकल्मषम् ।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लवणधेनुदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो सर्वशास्त्रविशारद । कथयस्वेह दानानामुत्तमं यत्प्रकीर्तितम् ।।१
येन दत्तेन दानानि सर्वाण्येव भवन्त्युत । सर्वकामसमृद्धिश्च सर्वपापक्षयो भवेत् ।।२
प्रायश्चित्तविशुद्धिश्च तन्मे कथय सुव्रत ।।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि दानानामुत्तमोत्तमम् ।।३
ख्यातं लवणधेन्वाख्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् । यां दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः ।।४
विश्वासघाती क्रूरात्मा सर्वपापरतोऽपि वा । मुच्यते नात्र सन्देहः शिवलोकं स गच्छति ।।५
सुभगो धनसम्पन्नो दीर्घायुरपराजितः । जायते पुरुषो लोके सर्वकामसमन्वितः ।।६
विधिं वक्ष्यामि राजेन्द्र लवणस्येह कल्पनम् । गोमयेनोपलिप्तेन दर्भसंस्तरसंस्थितम् ।।७
आविकं चर्म विन्यस्य पूर्वाशाभिमुखं स्थितम् । वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा धेनुं कुर्वीत बुद्धिमान् ।।८
आढकेनैव कुर्वीत बहुवित्तोऽल्पवित्तवान् । स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरामिक्षुपादां फलस्तनीम्[1] ।।९

अध्याय १५५

लवणधेनुदानव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण, कृष्ण, महाबाहो, एवं समस्त शास्त्रों के विशारद ! मुझे इस भाँति का उत्तम दान बताने की कृपा कीजिये, जिसके दान करने से समस्त का दान हो जाये और समस्त कामनाओंकी सफलता पूर्वक सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जांय । सुव्रत ! प्रायश्चित की विशुद्धि भी बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! लवणधेनु नामक परमोत्तम दान में तुहें बता रहा हूँ, जो मनुष्यों की समस्त कामनाएँ सफल करता है और जिसके दान करने पर ब्राह्मण गौ एवं पिता आदि की हत्या करने वाला, गुरु शय्यागामी, विश्वासघाती, क्रूरात्मा, एवं सम्पूर्ण पाप करने वाला प्राणी पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है, इसमें संदेह नहीं । पुनः इस लोक में जन्मग्रहण करने पर वह प्राणी, सुभग, धनवान, दीर्घायु, अजेय होकर समस्त कामनाओं को सफल करता है । राजेन्द्र ! मैं उस लवण धेनु का विधान बता रहा हूँ, (सुनो) ! गोबर से लिपी हुई भूमि में कुश बिछाकर उसी पर पूर्वाभिमुख भेंड चर्म के ऊपर वस्त्राच्छन्न गौ का निर्माण करें ।३-८। धनी या निर्धन बुद्धिमान् को चाहिए कि आढक प्रमाण द्वारा गौ की रचना करते हुए सुवर्ण की सींग, चाँदी की खुर, ऊख के चरण, फलों के स्तन, शक्कर की

---

१. घृतस्तनीम् ।

कार्या शर्करया जिह्वा गन्धघ्राणवती तथा । समुद्रोदरजे शुक्ती कर्णौ तस्याः प्रकल्पयेत् ॥१०
कम्बलं पट्टसूत्रेण ग्रीवायां घण्टिकां तथा । शृङ्गे चन्दनकाष्ठाभ्यां मौक्तिके चाक्षिणी उभे ॥११
कपोलौ सक्तुपिण्डाभ्यां यवानास्ये प्रदापयेत् । तिलान्पार्श्वे प्रकुर्वीत गोधूमाश्चैव भक्तितः ॥१२
एवं वै सप्तधान्यानि यथालाभं प्रकल्पयेत् । पृष्ठे वै ताम्रपात्रं तु अपाने गुडपिण्डिकाम् ॥१३
लाङ्गूले कम्बलं दद्याद्द्राक्षां[1] क्षीरप्रदेशतः । योनिप्रदेशे च मधु सर्ववस्तुफलान्वितम् ॥१४
एवं सम्यक्परिस्थाप्य रसरत्नमयीं च गाम् । स्थापयेद्वत्समेकं च चतुर्भागेन मानवः ॥१५
एवं धेनुं समभ्यर्च्य माल्यवस्त्रविभूषणैः । स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥
कृत्वा प्रदक्षिणां गां तु पुत्रभार्यासमन्वितः ॥१६
ब्राह्मणाय सुशीलाय वृत्तयुक्ताय वै नृप । दद्यात्पर्वसु सर्वेषु मन्त्रपूर्वं सुभक्तितः ॥१७
लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः । सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोस्तु ते ॥१८
एवमुच्चार्य मन्त्रां ते विप्राय प्रतिपादयेत् । सम्यक्प्रदक्षिणां कृत्वा दक्षिणासहितां नृप ॥१९
प्रदक्षिणा मही तेन कृतं भवति भारत । सर्वदानानि दत्तानि सर्वक्रतुफलानि च ॥२०
सर्वे रसाः सर्वमन्नं सर्वं च सचराचरम् । सौभाग्यं परमाबुद्धिरारोग्यं सर्वसम्पदः ॥२१
भवति दत्त्वा नृणां तु रसधेनुं न संशयः । स्वर्गे च नियता वासो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२२

जिह्वा गन्ध का घ्राण (नाक), समुद्र में उत्पन्न होने वाली सीप के कान, यह सूत्र का (गले के नीचे) वाला कम्बल, गले में घण्टी, सीगों में चन्दन काष्ठ, दोनों नेत्र में मोती लगानी चाहिए। सत्तू के पिण्ड से कपोल, मुख में जवा, पार्श्व भाग में तिल और गेंहू रखना चाहिए। इन्हीं सप्तधान्यों को यथा स्थान स्थापित करते हुए भक्ति पूर्वक गौ की रचना करनी चाहिए। उसी भाँति पृष्ठ भाग में ताँबा का पत्र, प्रदान (गुदा) भाग में गुड़ की पिंडी, लांङ्गूल (पूंछ) में कम्बल और स्तन के स्थान पर द्राक्षा (किसमिस) रखनी चाहिए। तथा योनि प्रदेश सर्ववस्तु एवं फल मिश्रित मधु रखना चाहिए। इस प्रकार लवण धेनु के निर्माण हो जाने पर मनुष्य को चौथाई भाग द्वारा एक वत्स (बच्चे) का निर्माण करना चाहिए। पश्चात् स्त्री पुत्र समेत स्नानोपरांत माला, वस्त्र एवं आभूषण भूषित गौ की अर्चा देव तथा ब्राह्मण की पूजा सुसम्पन्न कर गौ की प्रदक्षिणा करे।९-१६। नृप! भक्तिपूर्वक किसी सुशील एवं वृत्तयुक्त ब्राह्मण को मन्त्र पूर्वक सभी पर्वो के अवसर पर प्रदान करते हुए—देवि! लवण में सभी रस, समस्त देवता स्थित है अतः सर्वदेवमयी लवण नामक धेनु को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार मंत्र को उच्चारण करते हुए प्रदक्षिणा करने के उपरांत दक्षिणा समेत वह गौ ब्राह्मण को अर्पित करे। नृप, भारत! प्रदक्षिणा करके लवण धेनु के दान करने पर समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा, समस्त दान, और समस्त यज्ञों के फल, सब रस, सम्पूर्ण अन्न, सौभाग्य, परमोत्तम बुद्धि, आरोग्य और समस्त सम्पत्ति प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं। उसी प्रकार उसका स्वर्गलोक में महाप्रलय पर्यन्त निवास होता है।१७-२२। इस

---

१. रसं क्षारप्रदेशतः।

पर्णोर्णकम्बलगलां लवणाढकेन कृत्वा फलस्तनवतीमपि लावणाख्याम् ।
दत्त्वा द्विजाय विधिवद्रसधेनुमेनां लोकं गवां सकलसौख्ययुतो विशेत्सः ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
लवणधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५५

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सुवर्णधेनुदानव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि राजन्काञ्चनधेनुकाम् । यां दत्त्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।।१
सुरापी ब्रह्महा गोघ्नो भीरुर्भग्नव्रतोऽपि वा । गुरुघाती स्वसृगामी परदाररतश्च यः ।।२
मुच्यते पातकैः सर्वैर्दत्त्वा काञ्चनधेनुकाम् । संशुद्धस्य सुवर्णस्य पञ्चाशत्पलिकां शुभाम् ।।३
अर्द्धेन[1] वा प्रकुर्वीत शक्त्या वा नृपसत्तम । उक्तां पश्चिमभागे तु दृष्टकुक्षिपयोधराम् ।।४
विभक्ताङ्गीं सुजघनां सुमनोहरकर्णिकाम् । सर्वरत्नविचित्राङ्गीं कारयेत्कपिलां शुभाम् ।।५
चतुर्थेन तु भागेन वत्सं तस्याः प्रकल्पयेत् । रौप्यघण्टां च दत्त्वा तु कौशेयपरिवारिताम् ।।६

भाँति ब्राह्मण को सविधान लवण धेनु के दान करने पर जिसके ऊन द्वारा गले का कम्बल, आढक प्रमाण लवण द्वारा अन्य अंग और फल के स्तन निर्मित रहते हैं, सकल सौख्य समेत उसे गो लोक की प्राप्ति होती है ।२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
लवणधेनुदानव्रतविधि वर्णन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।१५५।

अध्याय १५६

सुवर्णधेनुदान-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् मैं तुम्हें काञ्चनधेनु बता रहा हूँ, जिसके दान करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं। मद्यपान करने वाला, ब्राह्मण, गौ की हत्या करने वाला, भीरु, व्रत के भङ्ग होने पर, गुरुहन्ता, भगिनीभोगी, और पर स्त्रीगामी आदि सभी के पातक काञ्चन धेनु के दान करने पर विनष्ट हो जाते हैं। नृप सत्तम ! विशुद्ध सुवर्ण के पचास पल अथवा पच्चीस पल या यथा शक्ति सुवर्ण, द्वारा एक शुभ कपिला गौ का निर्माण कर जिसके पीछे के भाग कुक्षि और पयोधर (स्तन) आदि अंग विभक्त हों, उत्तम जघन भाग, मनोहर कान एवं श्रेष्ठ अंग सम्पूर्ण रत्नों से विचित्र बने हों। उसी प्रकार (सुवर्ण) के चौथाई भाग द्वारा उसके बच्चे की रचना करके गौ के गले में चाँदी के घंटा, रेशमी

---

1. तदर्धेन।

ताम्रशृङ्गी तथा कुर्याद्वैडूर्यमयकम्बलाम् । मुक्ताफलमये नेत्रे वैद्रुमी रसना तथा ॥७
कृष्णाजिने गुडप्रस्थं तत्रस्थां कारयेच्छुभाम् । कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम् ॥८
तथाष्टादश धान्यातपत्रोपानद्युगान्विताम् । भाजनं वसनं चैव ताम्रदोहनकं तथा ॥९
दीपकान्नादिलवणशर्कराधान्यकान्विताम् । प्रदद्याद्ब्राह्मणं पूज्य वस्त्रैराभरणैः शुभैः ॥१०
स्नातः प्रदक्षिणीकृत्य धेनुं सर्वाङ्गसंयुताम् । गुडधेनूक्तमन्त्रैश्च आवाह्य प्रतिपूज्य च ॥११

त्वं[1] सर्वदेवगणमन्दिरभूषणासि विश्वेश्वरत्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।
श्रद्धाम्बुतीक्ष्णशकलीकृतपातकौघः प्राप्नोति निवृतिमतीव परां नमामि ॥१२
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भयभाग्भवतीह मर्त्यः ।
संसारदुःखशमनाय यतस्त्वाकामास्त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ॥१३

एवमामन्त्र्य तां धेनुं विप्राय प्रतिपादयेत् । सदक्षिणोपस्करां च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१४
दानकाले तु ये देवास्तीर्थानि मनवस्तथा । शरीरे निवसन्त्यस्यास्तान्छृणुष्व नराधिप ॥१५
नेत्रयोः सूर्यशशिनौ जिह्वायां तु सरस्वती । दन्तेषु मरुतो देवाः कर्णयोश्च तथाश्विनौ ॥१६
शृङ्गाग्रगौ सदा चास्या देवौ रुद्रपितामहौ । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ककुद्देशं प्रतिष्ठिताः ॥
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारो योनौ त्रिपथगामिनी ॥१७
ऋषयो रोमकूपेषु अपाने वसुधा स्थिता । अन्त्रेषु नागा विज्ञेयाः पर्वताश्चास्थिषु[2] स्थिताः ॥१८

वस्त्र से सर्वाङ्ग आच्छन्न, ताँबें की सींग, वैदूर्यमणि द्वारा उसके गले के नीचे लटकने वाला कम्बल, मोती के नेत्र, विद्रुम की जिह्वा बनाये ।१-७। काले मृग चर्म पर एक अस्थ गुड रखकर उसी मृग चर्म पर उपरोक्त गौ का निर्माण करे, जो आठ कलशों से युक्त और भाँति भाँति के फल, अष्टादश धान्य, छत्र, उपानह, (भोजन वस्त्र), वस्त्र और तांबें का दोहनक, दीपक, अन्नादि, लवण, शक्कर और धान्य युक्त हो । वस्त्राभरण द्वारा ब्राह्मण की पूजा के उपरान्त प्रदक्षिणा पूर्वक सर्वाङ्गयुक्त वह काञ्चनधेनु गुडधेनु के मंत्रों द्वारा आवाहन पूजा करके ब्राह्मण को अर्पित करे । प्रदान करते समय—तू विश्वेश्वर (विष्णु) की गंगा, समुद्र और पर्वतों के निवासी समस्त देवगणों के मन्दिर की आभूषण हो, (तुम्हारा दान करने पर), श्रद्धारूपी जल की तीक्ष्णता से उसके समस्त पाप विनष्ट होने पर प्राणी अत्यन्त उत्तम निवृत्ति (शांति) प्राप्त करता है, अतः मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इस लोक में यथेच्छ फल प्रदान करने वाली तुम्हें प्राप्त कर कौन मनुष्य निर्भय भाग्यवान् नहीं होताहै और संसार दुःख के शमनार्थ निष्काम वेद के निष्णात विद्वान् तुम्हें कामधेनु कहते हैं—कहना चाहिए । इस प्रकार आमंत्रित कर दक्षिणा एवं सामग्री समेत वह गौ ब्राह्मण को नमस्कार पूर्वक अर्पित करे । नराधिप ! दान के समय उस गौ के शरीर में जितने देवगण, तीर्थ, मनु आदि निवास करते हैं मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ८-१५। सूर्य चन्द्रमा दोनों नेत्र में जिह्वा में सरस्वती, दाँतों में मरु देव, कानों में अश्विनी कुमार, सीगों के अग्रभाग में रुद्र और पितामह, ककुद्देश (डिल्ल) में गन्धर्व, अप्सराएँ, कुक्षि में चारो समुद्र, योनि में गंगा, रोमकूप में ऋषिगण, अपान (गुदा) में वसुधा, आँतियों में नागगण, अस्थियों में पर्वत, चरणों में अर्थ काम और मोक्ष हुंकार में चारों

---

१. त्वं सर्वदेवगणमन्दिरसंघभूता, त्वं सर्वदेवगणमन्दिशोभितासि । २. अस्थिसंधिषु ।

धर्मकामार्थमोक्षास्तु पादेषु परिसंस्थिताः । हुङ्कारे च चतुर्वेदाः कण्टे[1] रुद्राः प्रतिष्ठिताः ॥१९
पृष्ठभागे स्थितो मेरुर्विष्णुः सर्वशरीरगः । एवं सर्वमयी देवी पावनी विश्वरूपिणी[2] ॥२०
काञ्चनेन कृता धेनुः सर्वदेवमयी स्मृता । यो दद्यात्तादृशीं धेनुं सर्वदानप्रदो हि सः ॥२१
कर्मभूमौ हि मर्त्यानां दानमेतत्सुदुर्लभम् । तस्माद्देयमिदं शक्त्यां[3] सर्वकल्मषनाशनम् ॥२२
पावनं तारणं चैव कीर्तिदं शान्तिदं तथा । वर्षकोटिशतं साग्रं स्वर्गलोके गतो नरः ॥२३
नारी वा पूज्यते देवैर्विमानवरमास्थिता । गन्धर्वैर्गीयमानस्तु पुष्पैर्मालाविभूषितैः ॥२४
सर्वाभरणसम्पन्नः सर्वद्वंद्वविवर्जितः[4] । स्वर्गे स्थित्वा चिरं कालं ततो मर्त्येऽभिजायते ॥२५
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो रूपवान्प्रियदर्शनः । एवं नरो वा नारी वा दत्त्वा दानमिदं भुवि ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति जायमानः पुनः पुनः ॥२६

आमन्त्र्य साधुकुलशीलगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।
प्राप्नोति सिद्धमुनिकिन्नरदेवजुष्टं कन्याशतैः परिवृतं पदमिन्दुमौलेः ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सुवर्णधेनुव्रतविधिवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५६

वेद, कण्ठ में रुद्रदेव, पृष्ठभाग में मेरु और सर्वाङ्ग में विष्णु स्थित रहते हैं । इस प्रकार सर्वदेवमयी, पावनी एवं विश्वरूपवाली इस काञ्चनधेनु का जो दान करता है उसने सब कुछ कर दिया ।१६-२१। यद्यपि इस कर्म भूमि में यह दान अत्यन्त दुलर्भ है तथापि यथाशक्ति इसका दान समस्त पापों के विनाशार्थ करना ही चाहिए । यह दान अत्यन्त पावन (संसार) कारण कीर्ति और शान्तिप्रद है और स्वर्ग लोक के उत्तम स्थान में उस प्रदाता को निवास प्राप्त होता है । दान करने वाली स्त्री भी उत्तम विमान या सुशोभित होकर पुष्प माला भूषित देवों, गन्धर्वों द्वारा पूजित होती है । सर्वाभूषणभूषित, समस्तदु:खरहित वह प्राणी चिरकाल तक स्वर्ग में रहकर पुनः मर्त्यलोक में आधिव्याधिहीन, रूपवान प्रियदर्शी मनुष्य होता है । इस प्रकार इस दान के प्रभाव से स्त्री पुरूष इस भूतल में बार-बार जन्म ग्रहण करने पर अपनी समस्त कामनाएँ सफल करते हैं । इस प्रकार साधु, कुलशील एवं गुणयुक्त किसी विप्र को काञ्चनधेनु अर्पित करने पर वह प्राणी सिद्ध, मुनि, किन्नर, देवों से सेवित और सैकड़ों कन्याओं से सुखी होकर इन्द्र मौलि (शिव) का लोक प्राप्त करता है ।२२-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद के सुवर्णधेनुदानव्रत
विधि वर्णन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।१५६।

---

१. पुच्छे रुद्रो व्यवस्थितः । २. विश्वधारिणी । ३. भक्त्या । ४. सर्वगन्धविवर्जितः । 'गंधो गन्धक आमोदे लेशे संबंधगवयोः' इति विश्वः ।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रत्नधेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानमन्यत्सुदुर्लभम् । रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥१
पुण्यं दिनमथासाद्य गोमयेनोपलेपनम् । कृत्वा भूमौ महाराज तत्र धेनुं प्रकल्पयेत् ॥२
धेनुं रत्नमयीं कुर्यात्तत्तत्संकल्पपूर्विकाम् । स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः ॥३
पुष्परागशतं धेनोः पादयोः परिकल्पयेत् । ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः ॥४
भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृते । काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरोवज्रशतात्मकम् ॥५
ग्रीवायां नेत्रपुटके गोमेदकशतं तथा । इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतं पार्श्वके ॥६
स्फाटिकैरुदरं कार्यं सौगन्धिकशतं कटौ । खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् ॥७
सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दनैः । कुंकुमेन च रोमाणि रौप्यं नाभिं च कारयेत् ॥८
गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत् । तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसंधिषु ॥९
कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम् । गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धस्वरूपतः ॥१०
पुच्छाग्रे चामरं दद्यात्स्तनयोस्ताम्रदोहनम् । कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥११
नानाफलानि पार्श्वेषु कृत्वा पूजां प्रयत्नतः । गुडधेनुवदावाह्य इदं चोदाहरेत्ततः ॥१२

अध्याय १५७

रत्नधेनुदानव्रत विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य सुदुर्लभ रत्नधेनु का दान बता रहा हूँ, जो मनुष्यों को गोलोक फल प्रदान करता है। महाराज ! किसी पुण्य दिन गोबर से लिपी हुई भूमि में उस धेनु की रचना करनी चाहिए।१-२। विद्वान् को चाहिए कि संकल्प पूर्वक उसके प्रत्येक अंग की रचना करते हुए इक्यासी पद्मराग मणि द्वारा उसके मुख, सौ पुष्पराग से चरण, सुवर्ण तिलक से भाल सौ मोतियों से दोनों नेत्र, सौ विद्रुम से दोनों भौंह, सीप से दोनों कान, काञ्चन की सींग, सौ वज्र (हीरा) से शिर, सौ गोमेदक से ग्रीवा और नेत्र पुट (पलक) सौ इन्द्र नील से पृष्ठ भाग, सौ वैदूर्य से पार्श्व भाग स्फटिक से उदर, सौ सौगन्धिक से कटि, सुवर्ण की खुर, मोतियों की पूँछ, सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता मणि तथा कपूर चन्दनसे घ्राण (नाक), कुंकुम के लोम, चाँदी की नाभि, सौ गारुत्मत से अपान (गुदा) भाग, और रत्नों द्वारा समस्त संधियों (गाठों) की रचना करनी चाहिए। उसी प्रकार शक्कर की जिह्वा, गुड का गोबर, घृत दधि दुग्ध स्वरूप का गोमूत्र, चामर से पूँछ ताँबें का स्तन निर्माण करके चतुर्थांश (चौथाई) भाग से उसके वत्स (बच्चे) की रचना करनी चाहिए।३-११। उसके पार्श्व भाग में अनेक फल से भूषित कर गुडधेनु के मंत्रों द्वारा आवाहन पूजन

त्वां सर्वदेवगणवासमिति[1] स्तुवन्ति रुद्रेन्द्रचन्द्रकमलासनवासुदेवाः ।
तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्तां मां पाहि देवि भवसागर मग्नमाशु[2] ।।१३
एवमामन्त्र्य तां धेनुं विप्राय प्रतिपादयेत् । सम्पूज्य वस्त्राभरणैर्विधिज्ञं वेदपारगम् ।।१४
ततश्च दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । एवं यः कुरुते पार्थ तस्य पुण्यफलं शृणु ।।१५
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके सुखं[3] वसेत् । ततः काले बहुतिथे राजराजो भवेदिह ।।१६
सर्वकामसमृद्धश्च शत्रुपक्षक्षयंकरः ।।१७
इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम् ।
सकल कलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः ।।१८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रत्नधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५७

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

उभयमुखीगोदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुङ्गवे । विधिना केन धर्मज्ञ[1] दाने तस्याश्च किं फलम् ।।१

करने के अनन्तर रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा एवं भगवान् वासुदेव समस्त देवगणों का निवास स्थान कहकर तुम्हारी स्तुति करते हैं अतः समस्त भुवनों की देह स्वरूप तुम मेरी शीघ्र रक्षा करो। क्योंकि मैं भवसागर में डूब रहा हूँ। ऐसा कहकर वह धेनु सादर ब्राह्मण को अर्पित करे। पुनः वस्त्राभरण द्वारा उस विधानवेत्ता एवं वेदनिष्णात ब्राह्मण की अर्चा और दक्षिणा प्रदान करके नमस्कार पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। पार्थ! इस भाँति उसके दान करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! कोटि कल्प तक शिवलोक के उत्तम स्थान में अनेक काल तक सुखानुभव करने के अनन्तर इस लोक में महाराज होता है, जो समस्त कामनाओं से समृद्ध शत्रुपक्ष का हन्ता होता है। इस प्रकार रत्नधेनु का दान करने पर उस समस्त विधान वेत्ता को देदीप्यमान विमान की प्राप्ति पूर्वक पाप मुक्त होने के नाते पुत्र पौत्र एवं बान्धवों समेत मदन सौन्दर्य तथा शम्भु का परमपद प्राप्त होता है।१२-१८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
रत्नधेनुदान व्रत विधि वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।१५७।

अध्याय १५८

उभयमुखी (गर्भिणी) गोदानव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—धर्मज्ञ! आपने बताया है कि प्रसव करने वाली ही गौ ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करनी चाहिए अतः उसका विधान और उसके दान का फल बताने की कृपा कीजिये।१

---

१. त्वां सर्वदेवगणधामनिधि विरिंचिरुद्रेन्द्रविष्णुकमलासनवासुदेवाः। २. भवसागरपीड्यमानम्। ३. सुखी भवेत्। ४. कर्मश।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रसूयमानातिपुण्यैः प्राप्यते गौर्नृपोत्तम । प्राप्नुवन्ति नराः केचित्पुण्यसम्भारविस्तराः ॥२
यावत्पादौ योनिगतौ शिरश्चैव प्रदृश्यते । तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥३
गौर्याविद्द्विमुखी चैव यदा भवति भारत । तदासौ पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥४
दत्त्वोभयमुखीं राजन्यत्पुण्यं प्राप्यते नृभिः । न तद्वर्णयितुं याति मुखेनैकेन केनचित् ॥५
किमिष्टैर्बहुभिर्यज्ञैर्दानैर्दत्तैश्च सत्तम । प्रसूयमानां गामेकां देहि किं बहुना तव ॥६
एकैव पाति नरकात्सुखमेकैव कारयेत् । एकापि द्विमुखी दत्ता गौर्गौर्भवति भारत ॥७
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालङ्गूलभूषिताम्[1] । कांस्योपदोहनां राजन्नलंकृत्य द्विजोत्तमे ॥
प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत् ॥८
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्यापि नराधिप । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥९
पितॄन्पितामहांश्चैव तथावै प्रपितामहान् । समुद्धरत्यसंदिग्धं नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥१०
घृतक्षीरवहा नद्यो दधिपायसकर्दमाः । तत्र ते यान्ति यत्रास्ति द्रुमाचेप्सितकामदः ॥११
यो ददाति सुवर्णेन बहुना सह भाविनीम् । गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ॥१२
न देया दुर्बला राजन्धेनुर्नैवाल्पदक्षिणा । काम्योऽयं विधिरुद्दिष्टः फलदो विधिना कृतः ॥१३

श्रीकृष्ण बोले—नृपोत्तम ! अत्यन्त पुण्य द्वारा प्रसव करने वाली गौ की प्राप्ति होती है अतः पुण्य संभार पूर्ण मनुष्य ही उसे प्राप्त कर सकते हैं अन्य नहीं । प्रसवावस्था में जब तक बच्चे (बछड़े) का चरण योनि के भीतर ही और बाहर के बल शिर ही दिखायी पड़े उस समय गर्भ मुक्त न होने तक वह गौ पृथिवी कही जाती है । भारत ! गौ जब द्विमुखी (गर्भिणी) होती है उस समय पर्वत वन आदि मुक्त पृथिवी जानना चाहिए । राजन् ! इसलिए दो मुखी (गर्भिणी) गौ के दान करने पर जिस पुण्य की प्राप्ति होती है एक मुख से उसके वर्णन करना असम्भव है ।२-५। सत्तम ! अनेक अभीष्ट यज्ञ और अन्य दान सुसम्पन्न न करके तुम एक ही प्रसदिनी गौ का दान करो क्योंकि एक ही गौ नरक से रक्षा करती हुई सुख प्रदान करती है । भारत ! यहाँ तक कि द्विमुखी एक ही गौ का दानकरने पर वही गौ कहलाती है । राजन् ! सुवर्ण द्वारा सींग, चाँदी से खुर और मोतियों से लांङ्गूल (पूँछ) भूपित करने पर कांसे की दोहनी समेत उसे किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए क्योंकि प्रसव करने वाली गौ के दान करने से महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है । नराधिप ! उस धेनु और उसके बच्चे के जितने लोम रहते हैं उतने सहस्र वर्ष उसका प्रदाता प्राणी स्वर्ग लोक में पूजित होता है ।६-९। (गौ के साथ) अधिक दक्षिणा देने वाला वह प्राणी अपने पिता, पितामह, और प्रपितामह आदि पीढ़ियों का नरक से उद्धार करता है इसमें संदेह नहीं । जिस लोक में घृत और क्षीर की नदियाँ प्रवाहित होती है और दधि एवं पायस (खीर) जिनमें कीचड़ रूप है तथा कल्प वृक्ष जहाँ भूषित है वहाँ का उत्तम स्थान इसका प्रदाता प्राप्त करता है । पार्थिव ! सुवर्ण समेत उस प्रसवकारिणी गौ के दान करने पर उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं । राजन् ! कभी कभी दुर्बल गौ और अल्प दक्षिणा का दान न करना चाहिए क्योंकि यह फलप्रद काम्य

---

१. रक्तलाङ्गूलभूषिताम् ।

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णाः ।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्याः सेवन्त्यजस्रं नलिनाभिनेत्राः ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उभयमुखीगोदानव्रतविधिवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५८

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

गोसहस्रप्रदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

गोसहस्रविधानं च कथयस्व जनार्दन । कस्मिन्काले प्रदातव्यं कथं देयं च तद्भवेत् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

गावः पवित्रा लोकानां गाव एव परायणम् । ब्रह्मणा सृजता लोकान्वृत्तिहेतोः प्रजेश्वर ।।
गावः प्रथमतः सृष्टास्त्रैलोक्य हितकाम्यया ॥२
यासां मूत्रपुरीषेण देवतायतनान्यपि । शुचीनि समजायन्त किंभूतमधिकं ततः ॥३
मूलं यज्ञस्य काम्यस्य सर्वदेवमयाः शुभाः । गोमये वसते लक्ष्मीः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥४
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥५

विधान ब्रह्मा का ही बनाया हुआ है । इस प्रकार ऐसे दानी की सेवा ऐसी स्त्रियाँ निरन्तर करती हैं, **चन्द्रमा के समान जिनके** मुख, तपाये हुए सुवर्ण के समान देह, महान् नितम्ब, मध्य भाग (कटि) सर्वथा **क्षीण (पतला)**, और कमल की भाँति विशाल नेत्र हैं ।१०-१४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठर के **सम्वाद में**
उभयमुखी गोदान व्रतविधिवर्णन नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय **समाप्त** ।१५८।

अध्याय १५९

गोसहस्रदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! गोसहस्र का विधान तथा वह किस समय और किसे दिया जाता है (ये सभी बातें) मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—अजेश्वर ! लोक में गौ सर्वत्र पवित्र और पारायण करने योग्य हैं? इसीलिए ब्रह्मा ने अपने वृत्तार्थ लोक सर्जन करते हुए सर्वप्रथम तीनों लोकों के हितार्थ गौओं की ही सृष्टि की । क्योंकि जिसके मूत्र व पुरीष (गोबर) से देवालय भी पवित्र होते हैं उसके विषय में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है । गौएँ काम्य यज्ञों के मूलकारण हैं क्योंकि वे समस्त देवमय एवं शुभात्मक होती हैं । उनके गोमय (गोबर) में लक्ष्मी का निवास रहता है यही उसके लिए पर्याप्त निदर्शन है ।२-४। ब्राह्मण और गौ का कुल एक ही उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है, जिसमें ब्राह्मणों के अधीन मंत्र और गौओं के अधीन

यासां पुत्रैर्धृता लोका धारिताः सर्वदेवताः । तासां दानविधानं च शृणु तत्पृथिवीपते ।।६
एकाऽपि गौर्गुणोपेता कृत्स्नं तारयते कुलम् । सुरूपा शीलसम्पन्ना युवतिः सुपयस्विनी ।।७
सुवत्सा सुदुहा चैव पापरोगविवर्जिता । विधिवत्तादृशा दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ।।८
किं पुनर्दश यो दद्याच्छतं वा विधिपूर्वकम् । सहस्रं तु पुनर्दद्यात्तस्य वै किमिहोच्यते ।।९
गोसहस्रं पुरा दत्तं नहुषेण महीभृता । स गतो ब्रह्मणः स्थानं ययातिश्च महामतिः ।।१०
गङ्गातीरे महद्दत्तमादित्या पुत्रकाम्यया । लेभे पुत्रं त्रिलोकेशं नारायणमकल्मषम् ।।११
श्रूयन्ते पितृभिर्गीता गाथास्ताः शृणु भूपते ।।१२
यदि कश्चित्कुलेऽस्माकं गोसहस्रं प्रदापयेत् । यास्यामः परमां सिद्धिं कारितां पुण्यकर्मणा ।।१३
दुहिता वा कुले काचिद्गोसहस्रप्रदायिनी । सोपानः सुगतिर्दत्तो भविष्यति न संशयः ।।१४
अतः परं प्रवक्ष्यामि यज्ञं वै सर्वकामिकम् । गोसहस्रं तदा दद्याच्छास्त्रोक्तविधिवन्नरः ।।१५
तीर्थे गोष्ठे गृहे वापि मण्डपं कारयेच्छुभम् , दशद्वादशहस्तं वा चतुर्वक्त्रं सतोरणम् ।।१६
तन्मध्ये कारयेद्वेदिं चतुर्हस्तामनूपमाम् । हस्तमात्रप्रमाणेन हस्तेन समलंकृताम् ।।१७
पूर्वोत्तरेऽथदिग्भागे ग्रहवेदिं प्रकल्पयेत् । ग्रहयज्ञविधानेन ग्रहांस्तत्र क्रमाद्यजेत् ।।१८
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पूज्याः प्रथममेव हि । ऋत्विजः परिकर्तव्या षोडशाष्टौ च शोभनाः ।।१९
चत्वारो वा महाराज उपाध्यायश्च पंचमः । सर्वाभरणसम्पन्ना कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः ।।२०

हवि रहती है ।५। पृथ्वीपते ! जिनके पुत्रों ने समस्त लोक और देवों को धारण किया है, उन्हीं का दान विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! गुणयुक्त सुरूप, शीलपूर्ण और प्रति पयस्विनी एक ही गौ (दान करने पर) समस्त कुल का उद्धार करने में समर्थ होती है । सुन्दर बच्चे वाली, सुदुहा एवं पापरोग रहित पूर्वोक्त भाँति की एक ही गौ सविधान दान करने पर सम्पूर्ण कुल का उद्धार करती है जिसने सविधान दश, सौ या सहस्र गौओं का दान किया है उसके लिए कहाँ तक कहा जा सकता है । पूर्वकाल में राजा नहुष और महाबुद्धिमान् ययाति ने गो सहस्र का दान किया था जिससे उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई । उसी भाँति गङ्गा तट पर अदिति ने पुत्र की कामना से उसका दान किया था जिससे उन्हें त्रिलोक अधिपति, कल्मषहीन भगवान् नारायण पुत्र रूप में प्राप्त हुए । भूपते ! पितर लोगों का गान सुना जाता है मैं उस गाथा को बता रहा हूँ, सुनो ! ६-१२। यदि हमारे कुल में कोई गोसहस्र का दान करता है तो उस पुण्य कर्म द्वारा हमें परम सिद्धि की प्राप्ति अवश्य होगी । यदि किसी कन्या ने ही कुल में गो सहस्र का दान किया तो हमारे लिए स्वर्ग सोपान समेत उसने सुगति भी प्रदान किया इसके संदेह नहीं । इसके अनन्तर मैं तुम्हें समस्त कामनाओं को सफल करने वाला गो सहस्र नामक यज्ञ का शास्त्रोक्त विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य को यह दान अवश्य करना चाहिए । किसी तीर्थ, गोशाला अथवा गृह में दश या बारह हाथ का चौमुख और तोरण समेत शुभ मण्डप की रचना कर उसके मध्य भाग में चार हाथ की विस्तृत एवं अनुपम वेदी का निर्माण कर जो हस्त मात्र के प्रमाण से हस्त द्वारा ही अलंकृत की गयी हो। उसके पूर्वोक्त (ईशान) कोण में गृह वेद, का निर्माण कर उसमें गृह यज्ञ के विधान द्वारा ग्रहों का स्थापन पूजन करे ।१३-१८। महाराज सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु रुद्र की अर्चना करके सुशोभन करके सोलह, आठ या चार ऋत्विज और पाँचवें एक उपाध्याय का चरण स्पर्श करे, जो कुण्ड तथा मुद्रिका (अंगूठी) आदि समस्त

शोभिताश्छत्रसम्पन्नास्ताम्रपात्रद्वयान्विताः । ग्रहयज्ञोक्तविधिना होमं हव्यं समाचरेत् ॥२१
वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे शिवकुण्डं नियोजयेत् । कुम्भद्वयं च द्वारेषु पंचरत्नं सपल्लवम् ॥२२
कार्यं कुरुकुलश्रेष्ठ ततो होमं समारभेत् । लोकपालबलिं दद्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥२३
गोसहस्राद्विनिष्क्रम्य सवत्सं दशकं गवाम् । गोसहस्राद्वहिष्कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषणम् ॥
अंतःप्रवेश्य दशकं वस्त्रैर्माल्यैश्च पूजयेत् ॥२४
सुवर्णघण्टिकायुक्तं ताम्रदोहनकान्वितम् । सुवर्णातिलकोपेतं खुरै रौप्यैरलंकृतैः ॥
हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरैश्चोपशोभितम् ॥२५
मुनयः केचिदिच्छन्ति काञ्चनं नन्दिकेश्वरम् । लवणद्रोणशिखरे भक्त्या तामपि कारयेत् ॥२६
एका प्रत्यक्षऋषभे केषांचिद्दानमिष्यते । ग्रहान्सुरांश्च सम्पूज्य माल्यवस्त्रफलाक्षतैः ॥२७
पताकाभिरलंकृत्य दैवतायतनानि च । गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत्प्रकल्पयेत् ॥२८
यदि सर्वा न विद्यन्ते गावः सर्वगुणोत्तमाः । दशकं पूज्य यत्नेन इतरः परिकल्पयेत् ॥२९
पुण्यकालमथो वाद्यगीतमङ्गलनिस्वनैः । सर्वौषध्युदकस्नातः स्नापितो द्विजपुंगवैः ॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥३०
नमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च । लोकाधिवासिनीभ्यस्तु रोहिणीभ्यो नमोनमः ॥३१
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः । ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ॥३२
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥३३

आभूषणों से भूषित, छत्रयुक्त और दो ताम्र पात्रों से युक्त हों, उन्हें ग्रह यज्ञ के विधान द्वारा हव्य का हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। कुरुकुलश्रेष्ठ ! वेदी के पूर्वोत्तर भाग में शिवकुण्ड का निर्माण और प्रत्येक द्वार पर पञ्चरत्न और पल्लवभूषित दो कलश की प्रतिष्ठा करके अनन्तर हवन कार्य तुलापुरुष के दान की भाँति लोकपालों की बलि अर्पित करनी चाहिए। जो सहस्र भैंसे वत्स (बच्चे) समेत दश गौ पृथक् कर पुनः वस्त्र माला आदि से सुशोभित करने के अनन्तर उन्हें सुवर्ण की घंटियों, ताँबें का दोहनक, (भालमें) सुवर्ण का तिलक, चाँदी से अलंकृत खुर, सुवर्ण रत्नमय सींग, और चामर से विभूषित करे। कुछ मुनिगणों की सम्मति है कि सुवर्ण द्वारा एकनन्दिकेश्वर का भी निर्माण कर उसे भक्तिपूर्वक उसी लवण द्रोण के शिखर पर स्थापित करना चाहिए। प्रत्यक्ष ऋषभ (वृष) के रहते हुए एक ही गौ का दान करना चाहिए, यह भी कुछ लोगों की सम्मति है। माला, वस्त्र, फल, अक्षतादि द्वारा ग्रहों और देवों की अर्चा करते हुए देवालयों को भी पताकाओं से अलंकृत करे। इसी भाँति गोशत के दान में भी उसके दशांश (दश) गौ द्वारा ही दान विधान की कल्पना करनी चाहिए। यदि सभी गौएँ सर्वगुणयुक्त न हो तो दश की ही सर्वप्रथम अर्चा करके इतर की कल्पना करें। पुण्य काल के समय भी (उस दान के अवसर पर) वाद्य, गीत, मांगलिक ध्वनि समेत समस्त औषध मिश्रित उदक स्नान द्विजपुङ्गवों के मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न कराकर पुष्पाञ्जलि लेकर इस मंत्र का उच्चारण करें।१९-३०। विश्वमूर्ति तथा विश्व माता को नमस्कार है, लोकाधिवासिनी एवं रोहिणी रूप आप को नमस्कार है। गौओं के अंगों में इक्कीस भुवन और ब्रह्मादि देवगण प्रतिष्ठित हैं अतः रोहिणी माताएँ मेरी रक्षा करें। क्योंकि गौएँ मेरे सम्मुख, पृष्ठ भाग एवं चारों ओर स्थित हैं, इसलिए में गौओं के मध्य में ही निवास करता हूँ। यतः वृष रूप धारण कर

यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्मश्चैव सनातनः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः ॥३४
इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद्गुरवे नन्दिकेश्वरम् । सर्वोपस्करणोपेतं गोयुतं च विशेषतः ॥३५
गवां शतमथैकैकं तदर्धं चापि विंशतिः । दशपञ्चशतं दद्याद्बहुभ्यस्तदनुज्ञया ॥३६
नैका बहुभ्यो दातव्या दाता दोषकरो भवेत् । बह्वचस्त्वेकस्य दातव्याः श्रीमदारोग्यवृद्धये ॥३७
पयोव्रतस्ततस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः । तथैव ब्रह्मचारी स्याद्य इच्छेद्विपुलां श्रियम् ॥३८
न देया दुर्बला धेनुर्नाल्पक्षीरा न रोगिणी । न जीर्णा जीर्णवस्त्रा वा नापत्यगतचेतना ॥३९
अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥४०
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । सर्वेषां लोकपालानां लोके सम्पूज्यते सुरैः ॥४१
सप्तावरान्सप्त परान्सप्त चैव परावरान् । पुरुषानुद्धरेद्दत्त्वा गोसहस्रं विधानतः ॥४२
स्वर्गलोकाच्च्युतो वाथ नारी वा सत्यपरायणा । सप्त जन्मानि राज्ञी स्यात्स्तूयमाना पुनः पुनः ॥४३

न त्वेवेदं दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
तस्मादेताः सर्वभूषासमेताः पात्रे काले क्षीरवत्यो विधानात् ॥४४
एकापि गोर्बहुगुणा गुणिने प्रदत्ता दातुः कुलं त्रिपुरुषं विधिवत्पुनाति ।
यः श्रद्धया वितरतीह गवां सहस्रं शक्यं फलं न नृप तेऽस्य मयाभिधातुम् ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गोसहस्रप्रदानविधिव्रतवर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१५९

तुम सनातन धर्म हो और अष्ट मूर्ति (शिव) का अधिष्ठान हो अतः सनातन रूप आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार आमन्त्रित करके गौ के साथ वह नन्दिकेश्वर को भी गुरुचरण में अर्पित करे। अन्तर प्रत्येक ब्राह्मण को सौ सौ गौ, उसका आधा भाग रहने पर भी, दश या पाँच सौ तक भी उन (गुरु) की आज्ञा से अनेकों में विभक्त कर देना चाहिए। एक सौ अनेकों को अर्पित करने से दाता दोषभागी होता है। किन्तु श्रीमान् होने और आरोग्य वृद्धयर्थ एक व्यक्ति को अनेक गौएँ समर्पित करनी चाहिए। तदुपरांत वह गोसहस्र का दानी व्यक्ति विपुल श्री की कामना वश वह दिन पयपान और ब्रह्मचारी रहकर व्यतीत करे। दुर्बल, अल्प दूध देने वाली, रोगिणी, वृद्धा, जीर्ण वस्त्र धारण करने वाली, और जिसके बच्चे जीवित न रहते हों, ऐसी गौ का दान कभी न करें। इस विधान द्वारा गो सहस्र का प्रदाता समस्त पापों से मुक्त, सिद्ध चारणों से सेवित होते हुए किंकड़ी जल (छोटी-छोटी घंटियों) से भूषित तथा सूर्य के समान प्रकाशित विमान द्वारा सभी लोकपालों के लोक में पहुँचने पर देवों द्वारा पूजित होता है। सविधान गोसहस्र का दान करने पर वह प्राणी पूर्व की सात पीढ़ी पर की सात पीढ़ी और उससे आगे की सात पीढ़ी का उद्धार करता है। स्वर्ग लोक से कभी च्युत होने पर पुनः राजा होता है और स्त्री होने पर वह सात जन्म तक पतिव्रता रानी होती है जिनकी लोग सदैव स्तुति करते रहते हैं। इस प्रकार न केवल दान मात्र की ही प्रशंसा है अपितु पात्र, काल, गोविशेष (उत्तम गौ) और वह विधान की भी वैसी ही प्रशंसा है अतः सुअवसर पर सर्वाभरण भूषित धेनु गौ का दान सविधान किसी सुपात्र को करना चाहिए। नृप ! सविधान अनेक गुण सम्पन्न एक ही गौ किसी गुणी ब्राह्मण को अर्पित करने पर दाता के तीन पीढ़ी को पवित्र करतो है और जिसने श्रद्धा समेत गो सहस्र का दान करता है उसका फल वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।३१-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
गोसहस्रप्रदानविधि व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्सठवाँ अध्याय समाप्त।१५९।

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वृषभदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

युष्मद्वाक्यामृतमिदं श‍ृण्वानोऽहं जनार्दन । न तृप्तिमधिगच्छामि जातं कौतूहलं हि मे ॥१
गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । गोवृषस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनंदति ॥२
तद्गोवृषभदानस्य फलं मे कथयाच्युत ॥

श्रीकृष्ण उवाच

वृषदानफलं पुण्यं[1] श‍ृणुष्व कथयामि ते ॥३
पवित्रं पावनं चैव सर्वदानोत्तमोत्तमम् । दशधेनुसमोऽनड्वानेकश्चैकधुरंधरः ॥
दशधेनुप्रदानाद्धि स एवैको विशिष्यते ॥४
यो हृष्टश्चातिपुष्टाङ्गो ह्यरोगः[2] पाण्डुनन्दन । युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविवर्जितः ॥५
धुरन्धरः स्थापयते एक एव कुलं महत् । त्राता भवति संसारे नात्र कार्या विचारणा ॥६
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्यकाल उपस्थिते । रौप्यलांगूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं श‍ृणुष्व वदामि ते ॥८
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमत[3] पाहि सनातन ॥९

अध्याय १६०

वृषभ (साँड़) दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! आप की अमृतवाणी सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है प्रत्युत कौतूहल उत्पन्न होता है । अच्युत ! गोपति गोविन्द ही हैं यह तीनों लोकों में प्रख्यात है और गोवृष के दान करने पर तीनों लोक को हर्ष प्राप्त होता है अतः उस गोवृष (बैल) के दान का फल बताने की कृपा कीजिये ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—वृषदान का वह पुण्य फल मैं तुम्हें बता रहा हूँ, जो अत्यन्त पावन एवं परमोत्तम दान है, सुनो ! एक धुरन्धर अनड्वान् (वृष) दश धेनु के समान माना जाता है अतः दश धेनु के प्रदान से वह एक ही विशिष्ट कहा गया है । पाण्डुनन्दन ! हृष्ट, पुष्ट, नीरोग, युवा, भद्र रूप, सुशील, सर्वदोष रहित एक ही धुरंधर संसार में महान् कुल की स्थापना करता है और रक्षक होता है यह निर्विवाद है । किसी पुण्य अवसर पर शांत वृष को अलंकृत कर, जो चाँदी भूषित पुच्छ युक्त हो, जिस मंत्र से ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए । मैं बता रहा हूँ सुनो ! राजेन्द्र ! उस समय ऐसा कहे वृष रूप से तुम धर्म मूर्ति हो, जगत् को आनन्द देने वाले एवं शिव का सनातन अधिष्ठान हो अतः मेरी रक्षा करो ।३-९। इस प्रकार

---

१. दिव्यम् । २. अरोषः । ३. ततः ।

दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनः कायकर्मणाम् ॥
तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन च ॥१०
यानं वृषभसंयुक्तं दीप्यमानं सुशोभनम्[1] । आरुह्य कामगं दिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ॥११
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते । तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ॥१२
गोलोकादवतीर्णस्तु इह लोके द्विजो भवेत् । यज्ञयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ॥१३
यथोक्तं ते महाराज कस्य देयो वृषोत्तमः । तदहं[2] ते प्रवक्ष्यामि पात्रं त्राणपदं नृणाम् ॥१४
ये क्षान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेंद्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥१५
ऊर्जस्विनं भरसहं दृढकन्धरं[3] च यच्छन्ति ये वृषमशेषगुणोपपन्नम् ।
दत्तेन यद्भवति गोदशकेन पुण्यं सत्यं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ॥१६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषभदानव्रतवर्णनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६०।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कपिलादानमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कपिलादानमाहात्म्यं कथयस्व जगत्पते । पुण्यं यत् सर्वदानानां सर्वपातकनाशनम् ॥१

दक्षिणा समेत दान करते हुए नमस्कार पूर्वक उसका विसर्जन करे। मन, वाणी और शरीर द्वारा किये गये सात जन्मों के पाप गोदान के पुण्य द्वारा विनष्ट हो जाते हैं। वृषयुक्त उस देदीप्यमान, सुशोभन, कामप्रद, एवं दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग लोक प्राप्त करता है। महीपते ! उस गोवृष के शरीर में जितने लोम रहते हैं उतने सहस्र वर्ष वह गो लोक में पूजित होता है और गो लोक से यहाँ आने पर ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है, जो यज्ञयाजी, महातेजस्वी और समस्त ब्राह्मणों का पूज्य रहता है, महाराज ! तुमने जो कहा कि वह उत्तम वृष किसे अर्पित करना चाहिए। मनुष्यों के त्राता उस पात्र को भी मैं बता रहा हूँ—जो सहनशील, शुद्ध वेदाध्यायी, संयमी, हिंसा रहित, और प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने में संकोच करता तो वही गृहस्थ ब्राह्मण उद्धार करने में समर्थ होता है। बली भार सहन सकने वाला, दृढ़ कंधा, समस्त गुण सम्पन्न वृष का दान करने वाला प्राणी दशगोदान के पुण्य फल का भागी होता है यह सत्य है।१०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
वृषभदान व्रत वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।१६०।

अध्याय १६१

कपिलादानमाहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! आप मुझे कपिला दान का माहात्म्य बताने की कृपा कीजिये, जो समस्त दानों में पुण्य रूप एवं सम्पूर्ण पातकों का नाशक हैं।१

---

१. सुशोभितम् । २. तदप्यहं ते वक्ष्यामि । ३. दृढ़बन्धनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि विनताश्वेन यत्पुरा । कथितं कपिलादानं तच्छृणुष्व महामते ॥२

विनताश्व उवाच

अतः परं महाराजो भयमुख्याः समासतः । विधानं यद्वराहेण धरण्यै कथितं पुरा ॥३
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि नवपुण्यफलं च यत् ॥

धरण्युवाच

यत्त्वया कपिला नाम पूर्वमुत्पाविता प्रभो ॥४
होमधेनुः सदा पुण्या धेनुर्यज्ञावतारभूः । सा कथं ब्राह्मणेभ्यो हि देया कस्मिन्दिनेऽपि च ॥५
कीदृशाय च विप्राय ज्ञातव्या पुण्यलक्षणा । कति वा कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥६
तासां प्रयत्नाद्दानेन किं पुण्यं स्याच्च माधव । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरान्मधुसूदन ॥७

वराह उवाच

शृणुष्व भद्रे तत्त्वेन पवित्रं पापनाशनम् । कृत्वा यत्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥८
कपिला अग्निहोत्रार्थं यज्ञार्थे च वरानने । उद्धृत्य सर्वतेजांसि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥९
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् । पुण्यानां परमं पुण्यं कपिला च वरानने ॥१०
तपसस्तप एवाग्र्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । दानानामुत्तमं दानं विधिना ह्येतदक्षयम् ॥११
पृथिव्यां यानि तीर्थानि गुह्यान्यायतनानि च । पवित्राणि च पुण्यानि सर्वलोके वसुन्धरे ॥१२

श्रीकृष्ण बोले—महामते ! पूर्वकाल में विनताश्व ने (इस विषय में) जो कुछ कहा था, मैं वही कपिला दान का महत्व बता रहा हूँ, सुनो ! २

विनताश्व बोले—महाराज ! पहले समय में भी वराह जी ने विवेचन पूर्वक कपिला दान का जैसा विधान धरणी को सुनाया है, वह नवीन पुण्य फल प्रदान करता है अतः वही विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ । ३

धरणी बोली—प्रभो ! आप ने सर्वप्रथम जो कपिला नाम पवित्र किया है, वह धेनु होम का साधन, पुण्य और यज्ञ का अवतार स्थल है, वह किस दिन और किस विधान द्वारा ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए तथा जिसे स्वयं ब्रह्मा ने अत्यन्त प्रशस्त बताया है उस पुण्य लक्षणा कपिला के कितने भेद बताये गये हैं। माधव, मधुसूदन ! सप्रयत्न उन कपिला धेनुओं के दान करने पर कौन फल प्राप्त होता है, मुझे सुनने की इच्छा हैं अतः विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।४-७

वराह बोले—भद्रे ! मैं तुम्हें तत्त्व समेत उस पवित्र एवं पापनाशक माहात्म्य को बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं सुनो ! वरानने ! आदि काल में ब्रह्मा ने समस्त तेजों को एकत्र कर उसी से अग्नि होत्र तथा यज्ञार्थ कपिला का निर्माण किया है। वरानने ! इसीलिए वह कपिलाधेनु पवित्रों में पवित्र, मङ्गलों में मङ्गल, और पुण्यों में परम पुण्य रूपा है। उसी प्रकार सविधान देने पर वह तपस्या में उत्तम तप, व्रतों में उत्तम व्रत, दानों में उत्तम दान और अक्ष रूप है। वसुंधरे ! समस्त लोकों में गुप्त एवं विस्तृत तीर्थ, मन्दिर है इसी कारण वे अत्यन्त पुण्य रूप और

होतव्यान्यग्निहोत्राणि सायं प्रतिद्विजातिभिः । कपिलाया घृतेनेह दध्ना क्षीरेण वा पुनः ।।१३
यजन्ते येऽग्निहोत्राणि अन्नैश्च विविधैः सदा । पूजयन्त्यतिथिंश्चैव परां भक्तिमुपागताः ।।१४
तेषां त्वादित्यवर्णैश्च विमानैर्जायते गतिः । सूर्यमण्डलमध्ये च ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ।।१५
कपिलायाः शिरो ग्रीवां सर्वतीर्थानि भामिनी । पितामहनियोगाच्च निवसन्ति हि नित्यशः ।।१६
प्रातरुत्थाय गो मर्त्यः कपिला गलमस्तकात् । च्युतं तु भक्त्या पानीयं शिरसा धारयेन्नरः ।।१७
स तेन पुण्येनोपेतस्तत्क्षणाद्गतकिल्बिषः । त्रिंशद्वर्षकृतं पापं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ।।१८
कल्प उत्थाय यो मर्त्यः कुर्यात्तासां प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्याद्वसुन्धरे ।।१९
प्रदक्षिणायां चैकायां कृतायां च वसुन्धरे । दशवर्षकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ।।२०
कपिलायास्तु मूत्रेण स्नायाद्वै यः शुचिव्रतः । स गङ्गाद्येषु तीर्थेषु स्नातो भवति मानवः ।।२१
येन स्नानेन चैकेन भवमुक्तो भवेन्नरः । यावज्जीवकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ।।२२
गोसहस्रं च यो दद्यादेकां वा कपिलां नरः । सममेतत्पुरा प्राह ब्रह्मलोके पितामहः ।।२३
यश्चैकां कपिलां हन्यान्नरो रज्जुकरो यदि । गोसहस्रं हतं तेन भवतीह न संशयः ।।२४
गवां स्थितिं कल्पयेत घृतं गव्यं न दूषयेत् । यावद्धि वर्द्धते गव्यं तावत्पापैस्तु पूयते ।।२५
गवां कण्डूयनं श्रेष्ठं तथा च प्रतिपालनम् । तुल्यं गोघृतदानस्य भयरोगादिपालनम् ।।२६

पवित्र हैं। कपिला धेनु के घृत, दही और दूध द्वारा ब्राह्मणगण सायं प्रातः अग्निहोत्र कर्म करते हैं। विविध भाँति के अन्नों द्वारा सदैव अग्निहोत्र कर्म सुसम्पन्न करने और अत्यन्त भक्तिपूर्वक अतिथियों की अर्चा करने वाले प्राणी की सूर्य के समान प्रकाशित विमानों द्वारा सूर्य मण्डल के मध्य में उत्तम गति होती है इसीलिए पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कपिला धेनु का निर्माण किया है। भामिनि ! पितामह (ब्रह्मा) के आदेशवश समस्त तीर्थ कपिला गौ के शिर और ग्रीवा में नित्य निवास करते हैं। कपिला गौ के गले और मस्तक से गिरते हुए जल को भक्तिपूर्वक अपने शिर से धारण करने वाले पुरुष उस पुण्य के प्रभाव से उसी समय क्षीण पाप हो जाते हैं और उनके तीस वर्षों के पापों को, ईंधन (लकड़ी) को अग्नि की भाँति दग्ध कर देता है। वसुन्धरे ! प्रातः काल उठकर उन (कपिला गौओं) की प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है। वसुन्धरे ! एक बार भी प्रदक्षिणा करने पर उसके दश वर्ष के पाप विनष्ट होते हैं इसमें संदेह नहीं ।८-२०। कपिला गौ के मूत्र से स्नान करने वाला पवित्र व्रती मनुष्य गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान किया ऐसा निश्चित माना जाता है। क्योंकि (गोमूत्र से) एक बार भी स्नान करने से मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है। और उसके आजीवन के पाप समूह उसी समय नष्ट हो जाते हैं। गो सहस्र का प्रदाता और एक कपिला गौ का दान करने वाला प्राणी फल भागी होते हैं, इसे ब्रह्म लोक में पितामह ने पहले ही बताया था। उसी भाँति यदि मनुष्य हाथ में रस्सी लिए एक कपिला गौ की हत्या करता है, तो उसने सहस्र गौ की हत्या की इसमें संशय नहीं ।२१-२४। इसलिए गौओं की स्थिति की सुन्दर कल्पना करनी चाहिए जिससे घृत दुग्ध उसके दूषित न हों, क्योंकि जब तक वह घृत घट आदि में वर्तमान रहता है पापों से मुक्त कर पवित्र करता रहता है। गौओं के अंगों को खुजलाना और उनका पालन पोषण करना परम श्रेष्ठ बताया गया है तथा भय रोग आदि से उनकी रक्षा करना गोघृत के दान के समान कहा गया है। गौओं

तृणादिभक्षणार्थं च गवां दद्याद्धरादिकम् । स्वर्गवासफलं दिव्यं लभते मानवोत्तमः ।।२७
दशेह कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा । यो दद्याच्छ्रोत्रियस्यैव स्वर्गं गत्वा स मानवः ।।२८
विमानैर्विविधैर्दिव्यैकन्याभिरर्चितः । सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्दीप्यमाना यथाग्नयः ।।२९
सुवर्णकपिला पूर्वा द्वितीया गौरपिङ्गला । आशा चैव तृतीया स्यादग्निज्वाला चतुर्थिका ।।३०
पञ्चमी जुटुवर्णा स्यात्षष्ठी तु घृतपिङ्गला । सप्तमी श्वेतपिङ्गा स्यादष्टमी क्षीरपिङ्गला ।।३१
नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुष्पपिङ्गला । एता दश समाख्याताः कपिलाश्च वसुन्धरे ।।३२
सर्वा ह्येता महाभागान् स्तारयन्ति न संशयः । सङ्गमेषु प्रशस्ताश्च सर्वपापप्रणाशनाः ।।३३
एवमेतास्तु कपिलाः पापघ्न्यश्च वसुन्धरे । आशा चैव तु या प्रोक्ता अग्निगर्भानलप्रभा ।।३४
अग्निज्वालोज्ज्वलैः शृङ्गैः प्रदीप्ताङ्गारलोचना । अग्निपुष्पा अग्निलोमा तथान्या चानलप्रभा ।।३५
तामाग्नेय्यां सदा दद्याद्ब्राह्मणायेतरैः सदा । गृहीत्वा कपिलां शूद्रः कामतस्तत्पयः पिबेत् ।।३६
पतितश्च भवेन्नित्यं चण्डालसदृशः पुमान् । तस्मान्न प्रतिगृह्णीयाच्छबलां गां कथञ्चन ।।३७
द्वारान्ते परिहर्तव्या कपिला गोर्द्विजेतरैः । लोकेषु ते मूढतमाः कपिलाक्षीरभोजनाः ।।३८
असम्भाष्याश्च पतिताः शूद्रास्ते पापकर्मिणः । पिबन्ति यावत्कपिलां तावत्तेषां पितामहाः ।।
अमेध्यं भुञ्जतेऽतस्तां नोपजीवेद्द्विजेतरः ।।३९
तासां घृतं च क्षीरं वा नवनीतमथापि वा । उपजीवन्ति ये शूद्रास्ते प्रयान्ति यमालयम् ।।४०

को हरियाली घास खिलाने से उस मानव श्रेष्ठ को दिव्य स्वर्गवास फल प्राप्त होता है । स्वयमेव स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने कपिला के दश भेद बताये हैं जिनके दान श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित करने पर उस मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है और विविध भाँति के दिव्य विमानों द्वारा वह वहाँ पहुँच कर दिव्य कन्याओं से अर्पित एवं प्रदीप्त अग्नि की भाँति गन्धर्वों से सुसेवित होता है । पहली सुवर्ण कपिला दूसरी गौर पिङ्गला, तीसरी आशा, चौथी अग्नि ज्वाला । पाँचवी, जुहुवर्णा, छठीं घृत पिङ्गला, सातवीं श्वेत पिङ्गला, आठवीं क्षीरपिङ्गला, नवीं पाटला (रक्तवर्णा) और दशवीं पुष्प पिङ्गला होती है । वसुन्धरे ! यही दश भेद कपिला गौ के होते हैं ।२५-३२। ये सभी पुण्यात्मा वाली गौएँ मनुष्यों को उद्धार करती हैं इसमें संशय नहीं । वसुन्धरे ! सभी गौओं में ये कपिला गौ प्रशस्त और समस्त पापों की विनाशिनी बतायी गयी हैं । तीसरी आशा नामक कपिला गौ, अग्निगर्भा, अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होती है अग्निज्वाला उज्ज्वल सीगों से युक्त, प्रदीप्त अग्नि की भाँति नेत्र वाली होती है और अन्य अग्निपुष्पा अग्नि लोमा एवं अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होती है । अतः उस आशा नामक कपिला गौ, जो अग्निमयी होती है अन्य लोगों को चाहिए ब्राह्मण को सादर अर्पित करें । कपिला गौ अपने घर रखकर कोई शूद्र स्वेच्छया उसका पयपान करता है, वह पुरुष चाण्डाल की भाँति पतित होता है इसलिए उसे शबला (कपिला) गौ का ग्रहण कभी नहीं करना चाहिए । द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) से इतर (शूद्र) व्यक्ति को अपने दरवाजे से ही कपिला को हटा देना चाहिए । लोक में कपिला क्षीर का भोजन करने वाला शूद्र मूढतम कहा गया है । वह पापकर्मी शूद्र पतित होने के नाते सम्भाषण करने के योग्य नहीं होता है । शूद्र जितने दिन कपिला गौ का पयपान करता है उतने दिन उसके पितामहगण, अमेध्य भोजन करते हैं अतः शूद्रको उससे अपना जीवन निर्वाह नहीं करना चाहिए । उनके घृत, दूध, अथवा नवनीत (मक्खन) भक्षण करने वाले शूद्र को

कपिलाजीविनः शूद्राः सर्वे गच्छन्ति रौरवम् । रौरवे भुञ्जते दुःखं वर्षकोटिशतोषिताः ।।४१
ततो विमुक्ताः कालेन जायन्ते श्वानयोनिषु । श्वानयोनेर्विमुक्तास्ते विष्ठायां कृमियोनिगाः ।।४२
दिष्ठारवेद च पापिष्ठा दुर्गंधेषु च नित्यशः । भूयोऽपि जायमानास्ते तत्रोत्तारो न विद्यते ।।४३
ब्राह्मणश्चैव यो देवि कुर्यात्तेषांप्रतिग्रहम्[1] । ततः प्रभृत्यमेध्यायां पितरस्तस्य शेरते ।।४४
तं विप्रं नानुभाषेत प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः । एकस्य गोप्रदानस्य सहस्रांशो न पूर्यते ।।४५
किमन्यैर्बहुभिर्दानैः कोटिसंख्यातविस्तरैः ।।४६
श्रोत्रियाय दरिद्राय सुवृत्तायाहिताग्नये । दत्त्वैकां कपिलां धेनुं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४७
मासे प्रसविनीं धेनुं दानार्थी प्रतिपालयेत् । आत्मार्थे न प्रपाल्या हि सदा नरकभीरुभिः ।।४८
कपिलाऽर्धप्रसूता च दातव्या हि द्विजन्मने । जायमानस्य वत्सस्य मुखं योन्यां प्रदृश्यते ।।४९
तावत्सा पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ।।५०
धेनोर्यावन्ति रोमाणि सवत्साया वसुन्धरे । भूम्यां तु पांसवो यावद्यावन्नक्षत्रतारकाः ।।५१
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मेशादिभिरर्चितः । ब्रह्मलोके निवसति यश्चैककपिलाप्रदः ।।५२
सुवर्णशृङ्गीं यः कृत्वा खुरै रौप्यैः समर्चिताम् । ब्राह्मणस्य करे दत्त्वा सुवर्णं रौप्यमेव च ।।५३

यमपुरी जाना पड़ता है ।३३-४०। कपिला से जीवन निर्वाह करने वाले शूद्र रौरव नरक में पहुँच कर सौ कोटि वर्ष तक दुःख का अनुभव करते हैं। अनन्तर यथावसर वहाँ से मुक्त होने पर श्वान (कुत्ते) की योनि में उत्पन्न होते हैं और यहाँ से पुनः विष्ठा (मल) के कीड़े होते हैं । इस प्रकार वे पापी गण दुर्गन्ध विष्ठा में ही नित्य उत्पन्न और मरते रहते हैं, जिनका उद्धार किसी भाँति होता ही नहीं। देवी ! गौ के अतिरिक्त उन शूद्रों के धान्य आदि का प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने वाला ब्राह्मण भी अधम कहलाता है इसके भी पितर गण उसी दिन से अमेध्य शयन करते हैं इसलिए उससे न भाषण करना चाहिए और न एक आसन पर बैठाना चाहिए उसे दूर से सदैव के लिए त्याग दे । क्योंकि उसके साथ भाषण करने वाला ब्राह्मण प्रायश्चित का भागी होता है । एक ही गोदान का सहस्रांश नहीं पूरा हो सकता है, तो अन्य कोटि संख्या के विस्तृत दान से क्या लाभ हो सकता है । किसी श्रामिण, दरिद्र, सुवृत्त एवं अग्निहोत्र ब्राह्म को एक ही कपिला गौ अर्पित करने वाला प्राणी समस्त पापों से मुक्त होता है ! प्रसव होने वाले (अन्तिम) मास में दानी को दानार्थ उसका प्रतिपाल अवश्य करना चाहिए आत्मार्थ नहीं क्योंकि वैसा करने से नरक की प्राप्ति होती है । अर्ध प्रसव के समय यह कपिला गौ ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए जब तक योनि में बच्चे का मुख दिखायी देता है ।४१-५०। क्योंकि उस समय जब तक वह गर्भ से मुक्त नहीं होती तब तक उसे पृथिवी जानना चाहिए । वसुन्धरे ! सवत्सा उस धेनु के जितने लोम, भूमि में रजकण (धूलि और जितने नक्षत्र तारागण हैं उतने सहस्र वर्ष ब्रह्मलोक में वह उस एक कपिला गौ का प्रदाता ब्रह्मा विष्णु देवों से पूजित होकर निवास करता है । जिसने ब्राह्मण के हाथ में सुवर्ण अथवा चाँदी समेत ऐसी गौ अर्पित किया, जिसके सींगों में सुवर्ण और खुरों में चाँदी सुशोभित रहती हैं, उसी समय कपिला का पुत्र भी ब्राह्मण

---

१. शूद्राणां गोव्यतिरिक्तधान्यद्रव्यादिप्रतिग्रहमित्यर्थः ।

कपिलायास्तदा पुत्रं ब्राह्मणस्य करे न्यसेत् । उदकं च करे दत्त्वा वाचयेत् स्वशक्तितः ।।५४
सुवर्णैस्तु चतुर्भिश्च त्रिभिर्द्वाभ्यामथापि वा । एकहीना न दातव्या यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।।५५
स समुद्रवनोपेता सशैलवनकानना । रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ।।५६
पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन वै नरः । तारितो याति पितृभिर्वैष्णवं यत्पदं परम् ।।५७
ब्रह्मस्वहरणो गोघ्नो भ्रूणहा ब्रह्मघातकः । पापकृच्चोभयमुखीं दद्यात्सत्कनकान्विताम् ।।५८
तद्दिनं च पयोभोजी संयतश्चातिवाहयेत् ।।५९
गोमेयेनोपलिप्याथ मण्डलं विधिपूर्वकम् । स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण होमयेत्तु विचक्षणः ।।६०
व्याहृत्या होमयेत्पूर्वं पञ्चवारुणकं तथा । इरावती धेनुमती देवस्य त्वेति वा पुनः ।।६१
स्योना पृथिवि मन्त्रेण गौर्वत्ससहिता नवा । निष्कामफलदा धेनुः सा स्यात्सुरभिनन्दिनी ।।६२
या ते सरस्वती देवी विष्णुना च तथा मही । गौरीविष्णुपदं चोक्त्वा शान्तिकर्मणि वाचयेत् ।।६३
यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ शिरश्चैव प्रदृश्यते । तावद्वै पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ।।
तस्मिन्काले प्रदातव्या ब्राह्मणाय वसुन्धरे ।।६४
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां सताम्रकाम् । सवस्त्रघण्टाभरणां गन्धपुष्पैरलंकृताम् ।।
वस्त्राक्षतैः समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय समर्पयेत् ।।६५
सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्धेनापि भामिनि । तस्याप्यर्धेन शक्त्याऽथ तस्याप्यर्द्धेन वा पुनः ।।६६

के हाथ में अर्पित करना चाहिए। पश्चात् हाथ में जल प्रदान कर यथाशक्ति संकल्प करे। उस समय चार, तीन या दो सुवर्ण पदक अवश्य रहे नहीं तो एक से न्यून कभी होना ही नहीं चाहिए क्योंकि वैसा न करने से अपने कल्याण में बाधा पहुँचती है। अनन्तर उसके दान करने पर उस दाता ने समुद्र वन, पर्वतादि दुर्ग समेत एवं रत्नपूर्ण समस्त पृथिवी का दान किया ऐसा माना जाता है इसमें संशय नहीं। पृथिवी दान के तुल्य इस दान के प्रभाव से दाता के पितरगण मुक्त होकर उस वैष्णव परमपद को प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण वृत्ति का अपहारी, गोहत्या, भ्रूण हत्या और ब्राह्मण हत्या करने वाले मनुष्य को सुवर्ण समेत उस उभयमुखी का दान अवश्य करना चाहिए और यह दिन संयम पूर्वक पयोव्रत द्वारा व्यतीत करें। गोबर से लिपी हुई भूमि में सविधान मण्डल निर्माण कर अपने शाखोक्त मंत्रों द्वारा बुद्धिमान् को हवन भी सुसम्पन्न करना चाहिए। सर्वप्रथम व्याहृतियों द्वारा पंच वारुणी हवन करने 'इरावती' धेनुमती, देवस्य त्वा, स्योना पृथिविनो, का पाठ करते हुए सवत्सा यह गौ जो सुरभि नन्दिनी धेनु कहलाती है निष्काम फल प्रदान होवे। अनन्तर शान्त्यर्थ सरस्वती देवी, विष्णु महीं, गौरी एवं विष्णु पद का वाचन कराये। क्योंकि वत्स (बच्चे) के दोनों चरण और शिर जब तक (योनि में) दिखायी पड़े तथा वह जब तक गर्भ त्याग न करे तब तक उसे पृथिवी रूप जानना चाहिए और उसी समय वह ब्राह्मण को दानरूप में अर्पित भी करना चाहिए।५१-६५। सुवर्ण से सींग, चाँदी से खुर, कांसे की दोहनी से भूषित एवं वस्त्र, घंटा आभूषण तथा गन्ध पुष्पों से अलंकृत एवं पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए। भामिनि! सहस्र या उसका आधाभाग, तदर्ध भाग अथवा यथाशक्ति उसका भी आधा भाग सुवर्ण उस (ब्राह्मण) के हाथ में रखते समय कृपणता दोष न आने देना चाहिए। और सुवर्ण के प्रभाव में चाँदी ही

यथा शक्त्या प्रदातव्या वित्तशाठ्यविवर्जितैः । करे दत्त्वा सुवर्णं च अथवा रूप्यमेव च ।।६७
गृहाणेमां महाधेनुं भव भ्राता ममाशु वै । सर्वपापक्षयं कृत्वा सदा स्वस्तिकरो भव ।।६८
इरावती धेनुमती जाह्नवी तदनन्तरम् । प्रतिदास्यामि ते धेनुं कुटुम्बार्थे विशेषतः ।।६९
भवतात्स्वस्ति मे नित्यं सुखं चानुत्तमं तथा । दत्ता तु पृथिवी देवी त्वयेयं प्रतिगृह्यताम् ।।७०
कोऽदादिति च वै मन्त्रो जपितव्यो द्विजेन च । विसृज्य ब्राह्मणं सोऽपि तां धेनुं स्वगृहं नयेत् ।।७१
एवं प्रसूयमानां गां यो ददाति वसुन्धरे । सा समुद्रवनोपेता सशैलवनकानना ।।
रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ।।७२

सन्तप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णां महानितम्बां तनुवृत्तमध्याम् ।
अर्द्धप्रसूतां द्विमुखीं सुशीलां सेवन्त्यजस्रं कपिलां हि देवाः ।।७३

प्रातरुत्थाय यो भक्त्या धेनुकल्पं नरो भुवि । जितेन्द्रियः शुचिर्भूत्वा पठेद्भक्त्या समन्वितः ।।७४
त्रिकालं पठते यस्तु पापं वर्षशतोद्भवम् । नश्यत्येकक्षणादेव वायुना पांसवो यथा ।।७५
श्राद्धकाले पठेद्यस्तु इदं पावनमुत्तमम् । तस्यान्नं संस्कृतं तद्वै पितरोऽश्नन्ति धीमतः ।।७६
अमावस्यां च यो विद्वान्द्विजानामग्रतः पठेत् । पितरस्तस्य तुष्यन्ति वर्षाणां शतमेव च ।।७७
यश्चैतच्छृणुयात्पुण्यं तद्गतेनान्तरात्मना सम्वत्सरकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ।।७८
इदं रहस्यं राजेन्द्र वराहमुखनिर्गतम् । धरण्यै कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ।।७९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कपिलादानमाहात्म्यवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६१

रख कर गोदान करना चाहिए किन्तु उस समय यह कहता रहे कि—इस महाधेनु को शीघ्र स्वीकार करते हुए आप मेरा भाई होकर समस्त पापों के विनाश पूर्वक कल्याण करने की कृपा करें। तदनन्तर इरावती और धेनुमती जाह्नवी गौ मैं विशेषकर आप के कुटुम्बार्थ अर्पित करूँगा। आप मुझे नित्य परमोत्तम सुख प्रदान करते रहें और मैं यह पृथिवी रूप गौ को अर्पित कर रहा हूँ उसे स्वीकार करने की कृपा करें। उस समय ब्राह्मण को भी 'कोऽदादिति' मंत्र का जप करना चाहिए। प्रदाता भी ब्राह्मण के त्यागपूर्वक उस धेनु को अपने घर ले जाये। वसुन्धरे ! इस प्रकार प्रसूयमान गौ का जिसने दान किया, उसने समुद्र, वन और पर्वत आदि वन दुर्ग समेत रत्नपूर्णा पृथिवी का दान किया है। ऐसा माना जाता है इसमें संशय नहीं।६६-७२। भलीभाँति संतप्त किये गये जम्बूनद (सुवर्ण) के समान वर्ण, महान् नितम्ब (पिछला भाग), मध्य भाग (कटि) सूक्ष्म, अर्द्ध प्रसव युक्ता, दो मुखी और सुशीला कपिला गौ की सेवा देवगण सदैव करते हैं। प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य भक्ति पूर्वक संयम एवं पवित्रता पूर्ण होकर इस पावनोत्तम धेनुकल्प का पाठ करते हैं उसके संसार में किये (पकाये) गये अन्न का भोजन धीमान् पितर गण सादर स्वीकार करते रहते हैं। इसी भाँति अमावस्या के दिन जो विद्वान् द्विजों के सम्मुख इसका पाठ करता है उसके पितर गण सौ वर्ष तक सुखानुभव करते हुए संतुष्ट रहते हैं। और ध्यानमग्न होकर इसके पाठ का श्रवण करने वाले व्यक्ति का वर्ष पर्यन्त का पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाताहै। राजेन्द्र ! इस प्रकार पूर्वसमय पृथिवी के लिए वराह के मुख से निकले हुए इस रहस्य को मैंने तुम्हें सुना दिया, जो समस्त पापों को विनष्ट करता है।७३-७९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
कपिलादान-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६१।

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महिषीदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युधिष्ठिर ! पुण्यं[1] पापविनाशं च आयुष्यं सर्वकामदम् ॥१
चन्द्रसूर्यग्रहे पुण्ये कार्त्तिक्यामयने तथा । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां सूर्यसंक्रान्तिवासरे ॥२
यदा वा जायते चित्तं वित्तं च कुरुनन्दन । तदैव देया महिषी संसारभयभीरुणा ॥३
सुपयोधरशोभाढ्या सुशृङ्गी सुखुरा तथा । प्रथमप्रसूता तरुणी सुशीला दोषवर्जिता ॥४
सुवर्णशृङ्गतिलका घण्टाभरणभूषिता । रक्तवस्त्रावृता रम्या कांस्यदोहनकान्विता ॥५
पिण्याकपिटिकोपेता सहिरण्या च शक्तितः । सप्तधान्ययुता देया ब्राह्मणे वेदपारगे ॥६
पुराणपाठके तद्वज्ज्योतिः शास्त्रविदे तथा । देया न वेदरहिते न च कुव्रतिने क्वचित् ॥७
द्रव्यैरेभिः समायुक्तां पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । दद्यान्मन्त्रेण राजेन्द्र पुराणपठितेन तु ॥८
इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा । महिषी दानमाहात्म्यात्सास्तु मे सर्वकामदा ॥९
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः । महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम ॥१०

(इति दानमंत्रः)

अध्याय १६२

महिषीदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें महिषी (भैंस) दान का माहात्म्य बता रहा हूँ, जो पुण्य, पापविनाशक, आयु समेत समस्त कामनाओं को सफल करता है । कुरुनन्दन ! चन्द्र सूर्य के ग्रहण, पुण्य अवसर, कार्तिक पूर्णिमा, अयन, शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, सूर्य की संक्रान्ति अथवा जब कभी उसके दान करने का विचार मन में उत्पन्न हो, उसी समय संसार के भय से भीरु होने वाले उस पुरुष को महिषी का दान अवश्य करना चाहिए । सुन्दर पयोधर से सुशोभित, सींग और खुर अत्यन्त सुशोभन हों, प्रथम प्रसूता, तरूणी, सुशीला, दोष रहिता, सुवर्ण सींग की तिलक से भूषित, घंटा आभूषण से अलंकृत, रक्त वस्त्र से आच्छन्न, रम्याकृति, कांसे का दोहन युक्त, पिण्याक पिटिक (खली आदि उसके खाने की सामग्री) यथाशक्ति सुवर्ण, और सप्त धान्य समेत वह महिषी किसी वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करना चाहिए ।१-६। पुराण पाठी, ज्योतिषी, आदि विद्वान् ब्राह्मणों के अतिरिक्त वेदाध्ययन शून्य और निन्दित व्रती को कभी भी दान अर्पित नहीं करना चाहिए । राजेन्द्र ! उपरोक्त द्रव्यों से युक्त महिषी का दान किसी पुण्य अवसर पर सविधान एवं पुराण पाठ पूर्वक प्रदान करते समय कहे कि—इन्द्र आदि लोक पालों की वह राजमहिषी महिषी दान माहात्म्य के प्रभाव से इस रूप यहाँ सुशोभित होकर मेरी समस्त कामनाएँ सफल करें । जिसका पुत्र धर्मराज की सहायता के लिए प्रतिष्ठित किया गया है, तथा जो महिषासुर की

---

१. पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् । २. च ।

दद्यात्प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणे तां पयस्विनीम् । प्रतिग्रहः स्मृतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयंभुवा ।।११
एवं दत्त्वा विधानेन ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् । वस्त्रैराभरणैः पूज्या भक्त्या च कुरुनन्दन ।।१२
सम्पादिता मया तुभ्यं सन्तुष्टो मे भव द्विज ।।१३
अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं द्विजपुङ्गवे । सर्वान्कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च ।।१४
या सा ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत् । महाराजः पुमान् राजन्व्यासस्य वचनं यथा ।।१५
यज्ञयाजी भवेद्विप्रः क्षत्रियः विजयी भवेत् । भवेद्वैश्यस्तु धनवाञ्छूद्रः सर्वार्थसंयुतः[१] ।।१६
तस्मान्नरेण दातव्या महिषी विभवे सति । पुत्रपौत्रप्रपौत्रार्थमात्मनः शुभमिच्छता ।।१७
दशधेनुसमां राजन्महिषीं नारदोऽब्रवीत् । विंशतिगोसमां व्यासः सर्वदानोत्तमं रविः ।।१८
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना । दत्ताः सम्पूज्य विप्रेभ्यो महिष्यः सर्वकामदाः ।।१९
महिषीदानमाहात्म्यं यः शृणोति सदा नरः । स सर्वपापनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।।२०

दुग्धाधिकां हि महिषीं जलमेघवर्णां सम्पुष्टपट्टकवतीं जघनाभिरामाम्[२] ।
दत्त्वा सुवर्णतिलकां द्विजपुङ्गवाय लोकद्वयं विजयते किमु तत्र चित्रम् ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महिषीदानव्रतविधिवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६२

जननी है वह इसरूप में यहाँ स्थित होकर मेरे लिए वर प्रदान करे।७-१०। इस भाँति इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वह पयस्विनी को ब्राह्मण को समर्पित करे। स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने उसका प्रतिग्रह स्वीकार करने के समय उसके पृष्ठ देश का स्पर्श करना बताया है । कुरुनन्दन ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक वस्त्राभरण से अलंकृत कर सविधान उसे प्रदान करके ब्राह्मण के घर पहुँचा देना चाहिए । द्विज ! मैंने यह महिषी तुम्हें अर्पित किया है अतः इससे सन्तुष्ट होने की कृपा करें। इस विधान द्वारा किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को महिषी अर्पित करने से लोक परलोक की उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं । राजन् ! व्यास के कथनानुसार महिषी दान करने वाली स्त्री राजमहिषी और पुरुष महाराज होता है । उसी प्रकार ब्राह्मण यज्ञ करने वाला, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनी और शूद्र अपनी सभी कामनाएँ प्राप्त करता है ।११-१७। अतः पुत्र पौत्र एवं प्रपौत्र तथा अपने कल्याणार्थ मनुष्य को विभव रहने पर महिषी दान अवश्य करना चाहिए । राजन् ! नारद ने दश धेनु के समान एक महिषी दान बताया है, व्यास ने बीस गौ के समान कहा है और रवि ने समस्त दानों से उत्तम बताया है । पूर्वकाल में राजा सगर, ककुत्स्थ, धुंधुमार और गाधि ने पूजन पूर्वक ब्राह्मण को समस्त कामनाओं को सफल करनेवाली महिषीयों का दान किया है । महिषीदान माहात्म्य को सुनने वाला पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित होता है । अधिक दुग्ध देने वाली, जलपूर्णमेघ के समान वर्ण, संपुष्ट पदक युक्त, और सुन्दर जघन भाग वाली महिषी, जो सुवर्ण तिलक से भूषित हो, किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने से उसकी दोनों लोकों में विजय होती है इसमें क्या आश्चर्य है ।१८-२१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरभाग में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
महिषीदान-व्रतविधि-वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ।१६२।

---

१. तु बहुपुत्रवान् । २. नयनाभिरामाम् ।

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः
अविदानव्रतविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ परं दानं सर्वकिल्बिषनाशनम् । यद्दत्त्वा त्रिविधं पापं सद्यो विलयमृच्छति ।।१
सुवर्णरोमां सौवर्णीं प्रत्यक्षं वा सुशोभनाम् । सुवर्णतिलकोपेतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।।२
कौशेयपरिधानां च दिव्यचन्दनभूषिताम् । दिव्यपुष्पोपहारां च सर्वधातुरसैर्युताम् ।।
सप्तधान्यसमायुक्तां फलपुष्पवतीं तथा ।।३
शतेन कारयेत्तां च सुवर्णस्य प्रयत्नतः । यथा शक्त्याथ वा कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।।४
अयने विषुवे चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः । दुःस्वप्रदर्शने[1] चैव जन्मर्क्षे पितृसंक्षये ।।५
यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् । तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ।।६
दद्यात्तीर्थे गृहे वापि यत्र वा रमते मनः ।।७
तत्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्करम् । ब्राह्मणं सह गायत्र्या सश्रीकं श्रीधरं तथा ।।८
रत्या सह तथानङ्गं लोकपालान्ग्रहानपि । सम्पूज्य च विधानेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ।।९
तदग्रे कारयेद्धोमं तिलाज्येन महीपते । अलंकृत्य द्विजं शान्तं वासोभिः प्रतिपूज्य च ।।१०
तल्लिङ्गमन्त्रैर्होमश्च कर्तव्यो ज्वलितेऽनले । ततस्तां तिलकुम्भस्थां लवणान्तमुपस्थिताम् ।।११
पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् । रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः सदा ।।

अध्याय १६३
अविदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें एक परमोत्तम दान बता रहा हूँ, जो समस्त पातकों का नाशक और उसी क्षण त्रिविध पापों को विनष्ट करता है, सुनो ! सुवर्ण के समान रोम और वर्ण वाली भेंड, प्रत्यक्ष हो या उसकी प्रतिमा हो, जो सुवर्ण तिलक सर्वाभरण भूषित, कौशेय (रेशमी) वस्त्राच्छन्न, दिव्य चन्दन, दिव्यपुष्पोहार अलंकृत समस्त धातु रसों से युक्त, सप्तधान्य तथा फल पुष्प सम्पन्न हो सादर ब्राह्मण को अर्पित करें। सुवर्ण के सौ तोले या यथाशक्ति द्वारा उसका निर्माण करते समय वित्तशाठ्य (कृपणता) दोष न आने देना चाहिए। अयन, विष्णु, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, दुःस्वप्न, जन्मनक्षत्र पितृक्षीणतिथि अथवा जब कभी उसके दान के लिए चित्त में विचार उत्पन्न हो, श्रद्धा समेत उसी समय मेष (भेंड़) दान करना चाहिए क्योंकि जीवन अनित्य है। १-६। किसी तीर्थ, अपने गृह या जहाँ कहीं इच्छा हो उसी स्थान उमा समेत शंकर, गायत्री समेत ब्रह्मा, श्रीसमेत श्रीधर (विष्णु), रति और काम देव तथा लोकपाल समेत ग्रहों को प्रतिष्ठित कर गंध पुष्प आदि द्वारा सविधान पूजन करने के अनन्तर तिल घृत से हवन करे। महीपते ! किसी शांत ब्राह्मण को वस्त्र द्वारा पूजित कर उसी के मंत्रोच्चारण द्वारा उस प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करे। अनन्तर तिल कुम्भ में स्थित और लवणान्त में उपस्थित उस प्रतिमा के सविधान अर्चनोपरांत इस मंत्र से प्रार्थना करे—अपने

---

१. दुःस्वप्ने पुत्रजनने ।

जगतः सम्प्रवृद्धासि[1] त्वामतः प्रार्थये स्थिताम् ॥१२
वाङ्मनः कायजनितं यत्किञ्चिन्मम दुष्कृतम् । तत्सर्वं विलयं यातु तव दानात्प्रसेवितम् ॥१३
एवमुच्चार्य तां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । नाभिभाषेत तं दत्त्वा मुखं च नावलोकयेत् ॥१४
दुष्टप्रतिग्रहहतो विप्रो भवति पातकी[2] ॥१५
नो दद्याद्दक्षिणाहीनां दातव्या सा विधानतः । दक्षिणाविधिना हीना दुःखशोकावहा भवेत् ॥१६
पुरा दत्तमिदं दानं गौर्या शङ्करकाम्यया[3] । तेन शम्भुः पतिर्लब्धः सर्वदेवनमस्कृतः ॥१७
इन्द्राण्या स्वर्णरोमाणां शतं दत्तं विधानतः । सर्वदेवपतिं प्राप्य पतिं साद्यापि मोदते ॥१८
नलेन दत्तमेतद्धि राज्यं कृत्वां[4] दिवं गतः । रुक्मिण्याहं पतिर्लब्धः सौभाग्यमतुलं तथा ॥१९
दानस्यास्य प्रभावेण पुत्रा बहुबलान्विताः । अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥२०
दत्त्वा दानं शुभां कान्तिं विपुलां च तथा श्रियम् । य इमं शृणुयान्नित्यं दानकल्पमनुत्तमम् ॥
अहोरात्रकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥२१

मेषी विशेषकलुषापहरातिशस्तादाने सदैव रसधातुयुता सधान्या ।
तामादरेण कुरुनन्दन देहि दत्वा येनास्तपापतिमिरः सवितेव भासि ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-
ऽविदानव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६३।

रोम, चर्म, मांस और मज्जा आदि समस्त उपकरणों द्वारा तुम इस सारे संसार का उपकार करती हो अतः मैं तुम्हारी प्रार्थना कर रहा हूँ।७-१२। वाणी, मन और शरीर जनित मेरे सभी दुष्कृत तुम्हारे इस दान और सेवन द्वारा सद्यः नष्ट हो जायें। ऐसा कहकर उसे किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे और उस समय न उससे भाषण करे तथा न उसके मुख का दर्शन ही करे। क्योंकि दुष्ट प्रतिग्रह से हत हुआ ब्राह्मण पातक कहा जाता है। दक्षिणाहीन उसका दान कभी न करे और अविधि न होने पाये। क्योंकि दक्षिणा तथा विधि हीन भेंड दान दुःख और शोक का कारण होता है। पूर्वकाल में शंकर जी को पतिरूप में प्राप्त करने की इच्छा से गौरी ने इस दान को सुसम्पन्न किया था, जिससे समस्त देवों के वन्दनीय शम्भु पति रूप में उन्हें प्राप्त हुए। इन्द्राणी ने सुवर्ण रोम वाली सौ भेड़ों का सविधान दान किया था, जिससे उन्हें समस्त देवों के पति इन्द्र रूप में प्राप्त हुए उनके साथ आज भी वे आनन्दमग्ना रहती है। राजा नल ने इसके प्रभाव से राज्य सुख का अनुभव स्वर्ग प्राप्त किया। उसी प्रकार रुक्मिणी ने इसके प्रभाव से मुझे पतिरूप में प्राप्त किया और अनुपम सौभाग्य भी इस दान के प्रभाव से पुत्रार्थी अनेक सबल, पुत्र, निर्धनी धन, मनोरम कांति एवं विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस कल्प कथा का श्रवण करने वाला प्राणी अपने दिन रात के पाप उसी समय विनष्ट करता है। कुरुनन्दन ! इस प्रकार इस धातु युक्त और सप्त धान्य समेत उस भेंड का दान अवश्य करो क्योंकि वह समस्त पापों का विनाश करती है और प्रति प्रशस्त बतायी गयी है अतः सादर उसका दान करने पर मनुष्य अंधकार नष्ट करने वाले सूर्य की भाँति पाप मुक्त होकर सुशोभित होता है।१३-२२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
भेंड दानव्रतविधिवर्णन नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।१६३।

---

१. संप्रवृत्तासि । २. किल्विषी । ३. दक्षगृहस्थया । ४. विधानतः पाठो युक्तः ।

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भूमिदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भूमिदानमतो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् । ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यो भूमिदानं सदक्षिणाम् ॥१
श्रोत्रियाय दरिद्राय अग्निहोत्ररताय च । स सर्वकामतृप्तात्मा सर्वरत्नैर्विभूषितः ॥२
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीप्यमानो रविर्यथा । बालसूर्यप्रभाभासैर्वादित्रध्वजशोभितैः ॥३
विमानैर्भास्वरैर्दिव्यैर्विष्णुलोकं स गच्छति ॥४
तत्र दिव्याङ्गनाभिश्च सेव्यमानो यथासुखम् । कामगः कामरूपी च क्रीडत्यानन्दमक्षयम् ॥५
यावद्धा[1]रयते लोकान्भूरंकुरसमुद्भवा । तावद्भूमिप्रदः कामं विष्णुलोके महीयते ॥६
नहि भूमिप्रदानाद्वै दानमन्यद्विशिष्यते । दिशो दशानुगृह्णाति हर्ता ता दश हन्ति च ॥७
दानान्यन्यानि क्षीयन्ते कालेन पुरुषर्षभ । भूमिप्रदानपुण्यस्य क्षयो नैवोपपद्यते ॥८
सर्वपापानि क्षीयन्ते कालयोगक्रमेण तु । भूमिहर्तुश्च राजेंद्र दुःखस्यान्तो न विद्यते ॥९
ब्राह्मणाय सुशीलाय[2] भूमिं दत्त्वा तु यो नरः । न हि तामुपजोवेद्यः स महत्पुण्यमाप्नुयात्[3] ॥१०

अध्याय १६४

भूमिदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें भूमि दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों को विनष्ट करता है। दक्षिणा समेत भूमि दान ब्राह्मण को अर्पित करने पर विशेष कर श्रोत्रिय, दरिद्र, एवं अग्निहोत्री ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह पुरुष समस्त कामनाओं से तृप्त होकर सर्व रत्नों से भूषित होता है। समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य की भाँति प्रकाशित होता है और अन्त में दिव्य विमान द्वारा, जो बाल सूर्य की प्रभा भूषित, वाद्य, ध्वज अलंकृत एवं देदीप्यमान रहता है, विष्णु लोक प्राप्त करता है।१-४। वहाँ दिव्याङ्गनाओं से सुसेवित होने पर यथेच्छ सुखानुभव करते हुए कामचारी एवं कामरूपी होकर क्रीड़ा करताहै और अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। यह भूमि जब तक लोकों को धारण करतीहै उतने समय तक भूमि का प्रदाता विष्णु लोक में सुसम्मानित होता है। क्योंकि भूमि प्रदान के समान कोई अन्य दान विशिष्ट नहीं कहा गया है अतः उसका दानी दशदिशाओं का ग्रहण करता है और उसका अपहर्ता दश दिशाओं का हनन करता है। पुरुषर्भ ! यथावसर अन्य दान (का फल) नष्ट हो जाता है किन्तु भूमि दान (का पुण्य) कभी नहीं विनष्ट होता है। राजेन्द्र कालयोग के क्रमानुसार सभी पापक्षीण हो जाते हैं, पर, भूमि अपहरण करने वाले प्राणी के दुःख का अन्त होता ही नहीं। किसी सुशील ब्राह्मण को भूमि अर्पित कर पुनः उसका उपयोग नहीं करता है, वह महान् पुण्य प्राप्त करता है।५-१०। भूमि जोतने के पीछे उसमें बीज

---

१. यावद्धारयते लोको भूमिं कुरुकुलोद्भव। २. सुकृष्टां तु। ३. फलम्।

हलकृष्टां[१] महीं कृत्वा सबीजां सस्यनालिनीम् । यावत्सूर्यकृतालोकस्तावत्स्वर्गे महीयते ॥११
धनं धान्यं हिरण्यं च रत्नान्याभरणानि च । सर्वदानानि राजेन्द्र ददाति वसुधां ददत् ॥१२
सागरान्सरितः शैलान्समानि विषमाणि च । सर्वगन्धरसान्स्नेहान्ददाति वसुधां ददत् ॥१३
ओषधीः क्षीरसम्पन्ना नानापुष्पफलोपगाः[२] । कमलोत्पलखण्डांश्च ददाति वसुधां ददत् ॥१४
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजन्ति सदक्षिणैः । प्राप्नुवन्ति च तत्पुण्यं भूमिदानाद्यवाप्यते ॥१५
श्रोत्रियाय महीं दत्त्वा ये हरन्ति[३] न मानवाः । तावत्तेषां भवेत्स्वर्गो यावल्लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१६
सस्यपूर्णां महीं यस्तु श्रोत्रियाय प्रयच्छति । पितरस्तस्य तुष्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१७
यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥१८
सुवर्णानां सहस्रेण यत्पुण्यं समुदाहृतम् । भूमि गोचर्ममात्रेण तत्फलं प्राप्नुयान्नरः[४] ॥१९
कपिलानां सहस्रेभ्यो यद्दत्तेऽन्नं नरोत्तम । भूमिगोचर्ममात्रेण तत्फलं लभते नरः ॥२०
मध्यमस्य मनुष्यस्य व्यासेन परिसंख्यया । त्रिंशद्दंडांश्च गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥२१
बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्यतस्य तदा फलम् ॥२२
किंकरा मृत्युदण्डाश्च असिपत्रवनादयः । घोराश्च दारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥२३

डाल कर हरियाली होने पर उस हरे भरे खेत का दान करने वाला मनुष्य सूर्य प्रकाश के समान काल तक स्वर्ग में पूजित होता है । राजेन्द्र ! वसुधा दान करने वाला मनुष्य धन धान्य, हिरण्य एवं रत्नों के आभूषण आदि समस्त का दान करता है । सभी समुद्र, सरितायें, समविषम पर्वतों और समस्त गंध समेत रसों का दान करता है । उसी भाँति क्षीर पूर्ण समस्त ओषधियाँ जो अनके भाँति के पुष्प और फलों से सुसम्पन्न रहती हैं, तथा रक्तकमल एवं नील कमल खंड का दान करता है । भूमि दान करने से उस पुण्य की प्राप्ति होती है जो अधिक दक्षिणा समेत अति संभार सम्पन्न अग्निष्टोमादि नामक यज्ञों को सुसम्पन्न करने से प्राप्त होती है । किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण को भूमि दान अर्पित कर पुनः उसे न लौटाने पर वह महाप्रलय पर्यन्त स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहता है । उसी प्रकार सस्य श्यामला (हरियाली) भूमि श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित करने पर उसके पितरगण महाप्रलय पर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं । अपनी आजीविका से दुःखी होकर मनुष्य जो कुछ पाप करता है वह गोचर्म के तुल्य भी भूमि दान करने से नष्ट हो जाता है । सुवर्ण के सहस्र मुद्राओं द्वारा जितनी पुण्य की प्राप्ति होती है वह सभी फल गोचर्म के तुल्य भी भूमि दान करने वाले को प्राप्त होता है ।११-१९। नरोत्तम ! सहस्र कपिला गौओं को नित्य पुत्र दान करने से जो फल प्राप्त होता है वह गोचर्म के समान भी भूमि दान करने से प्राप्त होता है । व्यास के कथनानुसार तीस दण्डे के (समान विस्तृत) एक गोचर्म कहा गया है अतः उतनी भी भूमि प्रदान करने से यह मध्यम श्रेणी का मनुष्य स्वर्ग में पूजित होता है । सगर आदि अनेक राजाओं ने इस वसुधा का उपभोग किया अतः यह भूमि जब जब जिसकी रही है उसे उस समय फल प्राप्त हुआ है । (यमराज) के किंकर गण, मृत्यु दण्ड, असिपत्र आदि वन और वरुण का वह घोर पाश भूमि दानी का स्पर्श नहीं करते हैं ।२०-२३। रौरवादि नरक वह

---

१. फालकृष्टाम् । २. नगान्पुष्पफलोपगान् । ३. न हिंसन्ति । ४. लभते हि सः ।

निरया रौरवाद्याश्च कुम्भीपाकः सुदुःसहः । तथा च यातनाः कष्टा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥२४
चित्रगुप्तश्च कालश्च कृतान्तो मृत्युरेव च । यमश्चापि स्वयं राजा सम्पूजयति भूमिदम् ॥२५
रुद्रः प्रजापतिः शक्रो[1] देवासुरगणास्तथा । अहं च परमप्रीत्या पूजयामीह भूमिदम् ॥२६
षट्कर्मकृत्सुवृत्ताय कृशाय च प्रियार्थिने । भूमिर्देया नरव्याघ्र सन्निधिश्चाक्षयो भवेत् ॥२७
सीदमानकुटुम्बाय श्रोत्रियायाहिताग्नये । वृत्तस्थाय दरिद्राय भूमिर्देया नरेश्वर ॥२८
यथा जनित्री क्षीरेण पुत्रं सम्वर्द्धयेत्सदा । तथा भूमिप्रदं भूमिः सर्वकामैस्तु तर्पति ॥२९
यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरेण क्षीरमुत्सृजेत् । तथा सर्वरसोपेता भूमिर्भरति भूमिदम् ॥३०
यथा बीजानि रोहन्ति जलसिक्तानि भूतले । तथा कामाः प्ररोहन्ति भूमिदस्य दिनेदिने ॥३१
यथोदयन्सहस्रांशुस्तमः सर्वं व्यपोहति । तथा भूमिप्रदानं तु सर्वपापं व्यपोहति ॥३२
परदत्तां तु यो भूमिमुपहिंसेत्कदाचन । स बद्धो वारुणैः पाशैः क्षिप्यते पूयशोणिते ॥३३
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् । स नरो नरके घोरे क्लिश्यत्याप्रलयान्तिकम् ॥३४
रुदतां वृत्तिनाशेन[2] ये पतंत्यश्रुबिंदवः । तावद्वर्षसहस्राणि नरके पच्यते तु सः ॥३५
ब्राह्मणानां हृते[3] क्षेत्रे हर्तुस्त्रिपुरुषं कुलम् । दत्त्वा भूमिं तु विप्राय उपहिंसेद्यदा पुनः ॥

दुःसह कुम्भी पाक तथा वहाँ की अनेक भाँति की कष्टप्रद यातनाएँ भूमिदानी के समीप नहीं जाती हैं। चित्रगुप्त, काल, कृतान्त, मृत्यु और स्वयं राजा यम भूमिदानी की पूजा करते हैं। उसी प्रकार रुद्र, अजगपति, इन्द्र, समस्त देवगण, तथा मैं भी परम प्रेम मग्न होकर भूमिदानी की पूजा करता हूँ! नरव्याघ्र! अपने जातीय षट्कर्म सुसम्पन्न करने वाले, सुवृत्त, (उत्तमवृत्ति) कृश, एवं प्रिय याचक ब्राह्मण को भूमि दान करना चाहिए जिससे उसका सान्निध्य और अक्षय फल प्राप्त हों। नरेश्वर दरिद्र कुटुम्बी, वेदपाठी, अग्निहोत्री एवं अपनी उत्तम वृत्ति से आजीविका निर्वाह करने वाला ब्राह्मण को भूमिदान अर्पित करना चाहिए। जिस प्रकार जन्म देने वाली माता अपने पुत्र का क्षीर द्वारा पालन पोषण करती है उसी भाँति यह भूमि दानी को समस्त कामनाओं की सफलता द्वारा प्रसन्न रखती है। अपने क्षीर द्वारा वत्स (बच्चे) को भरण पोषण करने वाली गौ की भाँति समस्त रसों से युक्त यह भूमि भी भूमि दानी का भरण पोषण करती है। इस भूतल में जिस भाँति जलसिक्त बीज अंकुर रूप में समृद्ध होते हैं उसी भाँति भूमि प्रदाता की समस्त कामनाएँ उत्तरोत्तर समृद्ध होती रहती हैं।२४-३१। उदय होते ही सूर्य जिस प्रकार सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी भाँति भूमि दान (प्रदाता) के समस्त पापों को विनष्ट करता है। दूसरे द्वारा दान की हुई भूमि का जो अपहरण पाप नष्ट भ्रष्ट करता है वह वरुण के पाश से आबद्ध होकर पूव (पीव) और शोणित (रक्त) के कुण्ड में डाल दिया जाता है। अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दी गयी पृथिवी का जो अपहरण करता है वह घोर नरक में प्रलय पर्यन्त पड़ा रहता है। वृत्ति (जीविका) का अपहरण नाश करने वाला मनुष्य उसके रुदन करते समय गिरे हुए अश्रु बिंदुओं की संख्या के सहस्र गुने वर्ष नरक में दुःख का अनुभव करता है। ब्राह्मणों के खेत का अपहरण करने वाला

---

१. शुक्रः। २. वृत्तिलोपेन। ३. हरेत्क्षेत्रं हन्यात्।

अधोमुखश्च दुष्टात्मा कुम्भीपाके स पच्यते ॥३६
दिव्यवर्षसहस्रान्ते कुम्भीपाकाद्विनिःसृतः । इह लोके भवेत्श्वा वै सप्त[1] जन्मानि पार्थिव ॥३७
स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्षेद्युधिष्ठिर । महीं महीभृतां श्रेष्ठदानच्छ्रेयोनुपालनम् ॥३८
तोयहीनेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिनः । कृष्णाहयोभिजायन्ते नरा ब्रह्मस्वहारिणः ॥३९
एव दत्त्वा महीं राजन्प्रहृष्टेनान्तरात्मना । सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा चिंतितान्नरः ॥४०
भूमिदानात्परं नास्ति सुखं वामुष्मिकं महत् । न चापि भूमिहरणादन्यत्पातक मुच्यते ॥४१
यच्छन्ति ये द्विजवराय महीं सुकृष्टां[2] ते यान्ति शक्रसदनं सुविशुद्धदेहाः ।
ये लोपयन्त्यतिबलादथ[3] कामलोभात्ते रौरवातिगहनान्न समुत्तरन्ति ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भूमिदानमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६४

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पृथिवीदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भूमिदानं क्षत्रियाणां नान्येषामुपपद्यते । ते ह्युपार्जयितुं शक्तदातुं पालयितुं यथा[4] ॥१

अपने तीन पीढ़ियों का नाश करता है और ब्राह्मण को भूमिदान अर्पित करने पर पुनः उसे नष्ट करने वाला वह दुष्टात्मा कुम्भी पाक नरक में अधोमुख होकर पचता रहता है। पार्थिव ! कुम्भीपाक से यथावसर निकलने पर वह प्राणी इसलोक में सात जन्म तक बार-बार श्वान अथवा चाण्डाल योनि प्राप्त करता है। युधिष्ठर ! अपनी या पराये की दी हुई भूमि की सप्रयत्न रक्षा करनी चाहिए क्योंकि राजाओं को श्रेष्ठ दान की अपेक्षा उसकी रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर बताया गया है। ब्राह्मण धन (जीविका) का अपहरण करने वाला पुरुष जलहीन जंगलों के सूखे हुए वृक्षों के कोटरों में कृष्ण सर्प होकर निवास करते हैं। राजन् ! प्रसन्न चित्त होकर पृथिवी दान करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ यथेच्छ सकल होती हैं। लोक परलोक में भूमि दान के समान सुखप्रद अन्य वस्तु नहीं है उसी भाँति भूमिहरण केसमान अन्य पातक भी नहीं है। भली भाँति जोताई आदि करके वह सस्य श्यामला भूमि किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करने वाला विशुद्धात्मा होकर इन्द्र लोक प्राप्त करता है और काम, लोभ या बलात् उसका नाश करने वाला प्राणी प्रतिग्रहण रौरवादि नरक से भी मुक्त नहीं होता है।३२-४२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठर के सम्वाद में
भूमिदान माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त।१६४।

अध्याय १६५

पृथ्वीदान का वर्णन

युधिष्ठर बोले—यादव ! भूमि दान क्षत्रियों, को ही सुलभ हो सकता है क्योंकि उसके उपार्जन,

---

१. सप्तजन्म पुनःपुनः। २. परम्। ३. स्वकृष्टाम्। सुमृष्टाम्। ४. अपि।

भूमिदानसमं किञ्चिदन्यत्कथय[1] यादव । सम्प्राप्तवित्तैर्यच्छक्यं संसारभयभीरवः ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

सौवर्णीं विधिवत्कृत्वा साद्रद्रुमवतीं शुभाम् । महीं प्रयच्छ विप्राणां तत्तुल्या सा निगद्यते ॥३
शृणुष्वैकमना भूत्वा महादानं नरोत्तम । सविधानं प्रवक्ष्यामि फलं यत्नेन[2] यद्भवेत् ॥४
चन्द्रसूर्योपरागे च जन्मर्क्षे विषुवे तथा । युगादिषु च दातव्यमयने च[3] विधानतः ॥५
अन्येष्वपि च कालेषु प्रशस्ते धनसञ्चये । पापक्षयाय दातव्यं यशोऽर्थे वा नरैर्भुवि ॥६
हेम्नतः पलशतेनोक्ता तदर्धेनापि शक्तितः । कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमसमर्थोऽपि भक्तिमान्[4] ॥७
कारयेत्पृथिवीं हैमीं जम्बुद्वीपानुकारिणीम् । मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥८
लोकपालाष्टकोपेतां ब्रह्मविश्वेशसंयुताम् । नानापर्वतपूर्णां च रत्नाभरणभूषिताम् ॥९
सर्वसस्यविचित्राङ्गीं सर्वगन्धाधिवासिताम् । ईदृशीं तु महीं कृत्वा कारयेन्मण्डपं ततः ॥१०
दशद्वादशहस्तं च चतुर्वक्त्रं[5] सतोरणम् । मध्ये च वेदिकां कुर्याद्धनुर्हस्तां[6] प्रमाणतः ॥११
ऐशान्यां सुरसंस्थानमाग्नेय्यां कुण्डमेव च । पताकाभिरलङ्कृत्य देवतायतनान्यथ ॥१२
लोकपालाग्रहाश्चैव पूज्या माल्यविलेपनैः । होमं कुर्युर्द्विजाः शान्ताश्चातुश्चरणिकाः शुभाः ॥१३
सालङ्काराः सवस्त्राश्च माल्यचन्दनभूषिताः । अग्निसंस्थापनं तत्र कृत्वा पूर्वं ततो महीम् ॥१४

दान और पालन पोषण में वही समर्थ होते हैं पुनः भूमि दान के समान कोई अन्य दान बताने की कृपा कीजिये, जिससे संसार भय से भीरु धनवान् प्राणी भी अपने उस धन द्वारा उसे सुसम्पन्न कर सके ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पृथ्वी की शुभसुवर्ण प्रतिमा बनाकर जिसमें पर्वत वनादि सभी निर्मित रहें, ब्राह्मणों को अर्पित करना उसके समान कहलाता है । नरोत्तम ! इसलिए उस महादान का विधान और फल समेत वर्णन मैं कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चन्द्र सूर्य के ग्रहण समय, जन्म नक्षत्र, विषुव, युगादि के दिन, और अयन के समय सविधान उसका दान करना चाहिए । अपने पास धन संचय रहने पर अन्य समय भी पापक्षयार्थ और यश प्राप्ति के लिए मनुष्यों को इस भूतल पर यह दान सुसम्पन्न करना चाहिए । सुवर्ण के सौ पल या यथा शक्ति तदर्ध भाग से उसका निर्माण करना चाहिए किन्तु असमर्थ होने पर भी भक्तिमान् पुरुष को पाँच पल से अधिक सुवर्ण द्वारा ही उसका निर्माण करना चाहिए । उस सुवर्ण पृथ्वी के निर्माण जम्बू द्वीप के अनुकरण पूर्वक होना चाहिए । जिसमें उसकी मर्यादा, पर्वत, मध्य भाग में मेरुपर्वत, आठों लोकपाल समेत ब्रह्मा, शंकरादि, संयुत, अनेक पर्वतों से पूर्ण, रत्नाभरणभूषित, समस्त धान्यों से विचित्र अंगों वाली और समस्त गंधों से अधिवासित हो । इस प्रकार की भूमि का निर्माण करके दश या द्वादश हाथ का विस्तृत, चतुर्मुख और तोरण समेत मण्डप का निर्माण करे । उसके मध्य भाग में धनुर्हस्त प्रमाण की वेदी की रचना करे जिसके ईशान कोण में देवों के स्थान और अग्निकोण में कुण्ड के निर्माण पूर्वक पताकाओं से अलंकृत देवमन्दिरों लोकपालों और ग्रहों के स्थापन करे । माला विलेपन आदि द्वारा देवों की अर्चना करके शांत एवं चार चरण वाले ब्राह्मणों को हवन करना चाहिए ।३-१३।

---

१. दानम् । २. दत्तं च । ३. वा । ४. शक्तितः । ५. वा । ६. चतुर्हस्ताम् ।

आनयेयुर्द्विजा राजन् ब्रह्मघोषपुरःसरम् । शङ्खतूर्यनिनादैश्च गेयमङ्गलनिस्वनैः ।।१५
तिलैः प्रच्छादितां वेदिं कृत्वा तत्राधिवासयेत् । अथाष्टादशधान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ।।१६
तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्स्थापयेच्छुभान् । वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च ।।१७
अंशुकानि विचित्राणि श्रीखण्डशकलानि[1] च । इत्येवं रचयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ।।१८
ततो होमावसानेषु निष्पन्ने सर्वशान्तिके । शुक्लमाल्याम्बरधरो यजमानः स्वयं ततः ।।१९
कृत्वा प्रदक्षिणं पृथ्वीं गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम् । पुण्यकालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्[2] ।।२०
नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः । धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुन्धरे ।।२१
वसु धारयसे यस्मात्सर्वसौख्यप्रदायकम् । वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम् ।।२२
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले । अनन्तायै नमस्तुभ्यं[3] पाहि संसारकर्दमात्[4] ।।२३
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता । गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ।।२४
बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता । विश्वं प्राप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा मता ।।२५
धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही । एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ।।२६
एवमुच्चार्य[5] तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । धरार्द्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् ।।२७
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्देवीं धरां बुधः । पुण्यकाले च सम्प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम् ।।२८

अलंकार, वस्त्र, माला चन्दन आदि से भूषित ब्राह्मणों को सर्वप्रथम अग्नि संस्थापन करके पश्चात् ब्रह्मघोष (वेदपाठादि), शंख, तुरुही की मांगलिक ध्वनि और मंगल गान द्वारा पृथ्वी की उस प्रतिमा को वहाँ लाकर तिल से आच्छन्न वेदी पर उसका अधिवासन करे । अनन्तर अठ्ठारह प्रकार के धान्य, समस्त रस, और लवणादि समेत चारों ओर पूर्ण कलश की स्थापना करते हुए रेशमी वितान (चँदोवा), अनेक भाँति के फलब्द चित्रविचित्र वस्त्र तथा श्रीखण्ड (चन्दन) के टुकड़े से उसे सुशोभित करे । इस प्रकार की रचना के अनन्तर उस प्रतिमा के अधिवासन पूर्वक हवन और शांति कर्म सुसम्पन्न होने पर स्वयं यजमान श्वेत वस्त्र और माला धारण कर पुष्पाञ्जलि लिए पृथिवी की प्रदक्षिणा करे और उस पुण्य अवसर पर निम्नलिखित मंत्रों द्वारा प्रार्थना करें—वसुन्धरे ! समस्त देवों का भवन तुम्हीं हो अतः तुम्हें बार बार नमस्कार है और समस्त जीवों की धात्री हो अतः मेरी रक्षा करो ।१४-२२। समस्त सौख्यप्रद वसु तुम धारण करती हो इसीलिए तुम्हें वसुन्धरा कहा जाता है, निर्भीक होकर मेरी रक्षा करो—अचले ! चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अंत का पता नहीं लगा सके अतः तुम अनन्ता हो इस संसार कीचड़ से मेरी रक्षा करो मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । तुम्हीं गोविन्द की लक्ष्मी, शिव की गौरी, ब्रह्मा के पार्श्व में गायत्री, चन्द्र की ज्योत्स्ना एवं रवि की प्रभा हो । उसी भाँति बृहस्पति में बुद्धि मुनिगणों में मेधा होकर स्थित हो । विश्व का भरण पोषण करने के नाते तुम्हें विश्वम्भर कहा जाता है । देवि ! धृति, क्षिति, क्षमा, क्षोणी, पृथिवी, वसुधा महीं आदि अपनी मूर्तियों द्वारा इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो ।२३-२६। इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरांत उसे (मूर्ति को) ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए और पृथ्वी का आधा या चौथा भाग गुरु को अर्पित करे । इस विधान द्वारा पृथ्वी देवी का दान करने वाला विद्वान् मनुष्य पुण्य

---

१. श्रीखण्डशकटानि च । २. उदाहरेत् । ३. तस्मात् । ४. संसारसागरात् । ५. सधार्य ।

यदि कर्तुं न शक्नोति[1] पुण्येह्नि बहुविस्तरम् । संस्थाप्य शोभने स्थाने महीमेव प्रदापयेत् ।।२९
विमानेनार्कवर्णेन किंकिणीजालमालिना । नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथावसेत् ।।३०
क्षीणपुण्य इहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । विजयी शत्रुदमनो बहुभृत्यपरिच्छदः[2] ।।३१
शतकोट्यधिपः[3] शूरश्चक्रवर्ती महाबलः । सप्त जन्मानि दानस्य माहात्म्याद्राज्यमाप्नुयात् ।।३२
द्वीपादिकर्षविषमां दिधिवद्विधाय हैमीं महीं सुरमहीमिव विन्ध्यमध्याम् ।
लोकेशशम्भुशिवकेशवसंयुतां च प्रायच्छ पार्थ तव किं बहुनोदितेन ।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पृथिवीदानविधिवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६५

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

हलपंक्तिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानमत्यद्भुतं तव[4] । येन दत्तेन राजेन्द्र सर्वदानप्रदो भवेत् ।।१
सर्वपापप्रशमनं सर्वसौख्यप्रदायकम् । प्रयुक्तं हलपंक्त्या च सर्वदानफलप्रदम् ।।२
पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता हलं स्यात्तु चतुर्गवम् । सारदारुमयान्याहुर्हलानि[5] दश पण्डिताः ।।३

अवसर पर वैष्णव पद (विष्णुलोक) प्राप्त करता है । यदि पुण्य अवसर पर बहुविस्तार समेत पृथिवी दान करने में असमर्थ हो तो किसी शोभन स्थान पर केवल पृथिवी का ही दान करे । सूर्य के समान प्रकाशित और किंकड़ी जाल भूषित विमान द्वारा नारायणपुरी में तीन कल्प तक निवास प्राप्त होता है । पश्चात् पुण्य क्षीण होने इस लोक में धार्मिक राजा होता है, जो विजयो, शत्रुओं का दमन करने वाला एवं अनेक सेवकों से युक्त रहता है । सौ कोटि का अधिप, शूर, चक्रवर्ती और महाबलवान् राजा होकर सात जन्म तक उस दान के प्रभाव से वैसा ही राज्य प्राप्त करता रहता है । पार्थ ! सविधान सुवर्ण मूर्ति उस पृथिवी का अवश्य दान करो । अधिक कहने से क्या लाभ । जो द्विपादि युक्त रहने से मध्य में विन्ध्य, लोकपाल, शिव, केशव आदि देवों से युक्त हो ।२७-३३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
पृथिवीदानविधि वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६५।

अध्याय १६६

हलपंक्तिदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें एक अद्भुत दान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से समस्त दान का प्रदान हो जाता है । वह हल पंक्ति का दान समस्त पापों के विनाश पूर्वक समस्त सौख्य और सम्पूर्ण दान का फल प्रदान करता है।१-२। पण्डित वृन्दों ने काष्ठों के सारभाग का हल बनाना बताया है, ऐसे दश

---

१. पुण्यैश्च । २. बहुवित्तपरिच्छदः । बहुवृत्तपरिच्छदः । ३. शतकोशधिपः । ४. परम । ५. सारदारुमयान्कृत्वा हलान्दश विचक्षणः ।

सौवर्णपट्टसंनद्धरत्नवन्ति शुभानि च । यूनश्च बलिनो भव्यान्व्यङ्गहीनान्स्वलंकृतान् ॥४
वस्त्रकाञ्चनपुष्पैश्च चन्दनैर्दिग्धमस्तकान् । अभग्नान्योजयेत्तेषु लांगलेषु वृषाञ्छुभान् ॥५
योक्त्राणि युगलग्नानि[1] सदृषाणि च कारयेत् । प्रतोदकीलकाबन्धसर्वोपकरणान्विताम् ॥६
एवं विधहलैः कुर्यात्संयुक्तां हलपंक्तिकाम् । कर्वटं खेटकं चापि ग्रामं वा सस्यमालिनम् ॥७
निवर्तनशतं वापि तदर्द्धं वा प्रकल्पयेत् । एवंविधां पर्वकाले दद्यात्प्रयतमानसः ॥८
कार्तिक्यां चाथ वैशाख्यामुत्तरे वाऽयने तथा । जन्मर्क्षे ग्रहणे वापि विषुवे वा प्रदापयेत् ॥९
ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्व्यंगहीनानलंकृतान्[2] । श्रोत्रियांश्च विनीतांश्च हलसंख्यान्निमन्त्रयेत् ॥१०
दशहस्तप्रमाणेन मण्डपं कारयेद्बुधः । पूर्वे[3] द्विकुण्डमेकं वा हस्तमात्रं सुशोभनम् ॥११
तत्र व्याहृतिभिर्होमं कुर्युस्ते द्विजसत्तमाः । पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसेन यजेद्बुधः ॥१२
पालाश्यः समिधस्तत्र ह्याज्यं कृष्णास्तिलास्तथा । अधिवास्य च तां पंक्तिं धान्यमध्यगतां[4] शुभाम् ॥१३
ततः सर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुचिः । हलपंक्तिं योजयित्वा यजमानः समाहिताः ॥१४
तूर्यशङ्खनिनादैश्च ब्रह्मघोषैः सुपुष्कलैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१५
यस्माद्देवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा । वृषस्कन्धे संनिहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेस्तु मे ॥१६
यस्माच्च भूमिदानस्य[5] कलां नार्हन्ति षोडशीम् । दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे चास्तु दृढा सदा ॥१७
एवमुक्ते ततः पंक्तिं प्रेरयेयुर्द्विजोत्तमाः । बीजानि सर्वरत्नानि सुवर्णं रजतं तथा ॥१८

हल की एक पंक्ति होती है और चार गो (बैल) जिसमें जोते जाँगे उसे हल कहा जाता है । सुवर्ण के पट्टा लगा कर जो रत्न भूषित और शुभ रहता है उसमें युवा और बली बैल जोतना चाहिए, जो दोष हीन अलंकृत, वस्त्र, काञ्चन, पुष्प और चन्दन से चर्चित मस्तक हो । उन शुभ बैलों को हल के पास लाकर जूआ उनके कन्धे पर रखे और पवित्र (जूए और हल में बाँधने की) रस्सी से दृढ़ बन्धन करे । जो प्रतोद (चाबुक) और कील बंधन आदि साधनों से मुक्त हो । इस प्रकार के हलों द्वारा हल की पंक्ति बनाते हुए उसे समेत कर्कट, खेटक अथवा हरे भरे धान्यों समेत गाँव में किसी पर्व काल में अर्पित करे । कार्तिक पूर्णिमा, वैशाख की पूर्णिमा, उत्तरायण सूर्य जन्म नक्षत्र, ग्रहण, और विषुव काल में हल की संख्या के अनुसार वैदिक विद्वान् ब्राह्मणों को, जो व्यंगहीन, अलङ्कार शून्य, श्रोत्रिय, और विनीत हों, निमंत्रित करे । दश हाथका विस्तृत मण्डप का निर्माण कर उसके पूर्व दिशा की ओर दो या एक एक हाथ का शोभन कुण्ड बताये, जिसमें मेध, आदित्य और रुद्र के लिए पायस की आहुति प्रदान करे । पलाश की समिधा, घृत और कृष्ण तिल के हवन के अनन्तर उस शुभ पंक्ति को धान्य के मध्य में अधिवासित करे ।३-१३। पश्चात् स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण किये पवित्रता पूर्ण यजमान सर्व के समीप जाकर हल पंक्ति को एक में आबद्ध करे । और तुरूही, शंख की ध्वनि, ब्रह्मघोष, पूर्ण इन मंत्रों का पुष्पांजलि लिए उच्चारण करे—जिस कारण समस्त देवगण हल में निवास करते हैं और बैल के स्कन्ध में सन्निहित रहते हैं उसी नाते शिव की भक्ति मुझमें स्थायी हो । जिस कारण भूमि दान की सोलहवीं कला के समान भी अन्य दान नहीं है उसी नाते मुझमें भी धर्मभक्ति सदैव के लिए दृढ़ हो ।१४-१७। इस प्रकार कहने के उपरान्त द्विजगण उस पंक्ति

---

१. धूपलग्नानि । २. स्वलंकृतान् । ३. कारयेत्कुण्डम् । ४. धनमध्यगतं शुभाम् । ५. कृषिदानस्य ।

स्वयं पश्चाद्धले लग्नो विप्रहस्तेषु निर्वपेत् । यायान्निवर्तनं यावत्ततस्तु विरमेद्बुधः ॥१९
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विप्राणां प्रतिपाद्य च । सदक्षिणां विधानेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥२०
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । एकविंशत्कुलोपेतः स्वर्गलोके महीयते ॥२१
सप्तजन्मसु दारिद्र्यंदौर्भाग्यं व्याधयस्तथा । न पश्यति च भूमेस्तु तथैवाधिपतिर्भवेत् ॥२२
दृष्ट्वा तद्दीयमानं तु दानमेतद्युधिष्ठिर । आजन्मनः कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥२३
दानमेतत्प्रदत्तं हि दिलीपेन ययातिना । शिबिना निमिना चैव भरतेन च धीमता ॥२४
तेऽद्यापि दिवि मोदन्ते दानस्यास्य प्रभावतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दानमेतन्नृपोत्तम ॥२५
दातव्यं भक्तियुक्तेन स्त्रिया वा पुरुषेण वा । यदि पंक्तिर्न विद्येत पञ्च वा चतुरोऽथ वा ॥२६
एकमप्युक्तविधिना हलं देयं विचक्षणैः ॥२७

ये सन्ति लाङ्गलमुखोत्थरजोविकारा यावन्ति तद्गतधुरन्धर रोमकाणि ।
तावन्ति शङ्करपुरे त्रियुगानि तिष्ठेत्पंक्तिप्रदानमिह यत्कुरुते मनुष्यः ॥२८
युक्तां वृषैरतिबलैर्हैलपंक्तिमेतां पुण्येऽह्नि भक्तिसहितान्द्विजपुङ्गवेभ्यः ।
यच्छन्ति ये सुकृतिनो वसुधासमेतां ते भूभुजो भुवमुपेत्य[१] भवन्ति भव्याः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हलपंक्तिदानविधिवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६६

बीज, समस्त रत्न, सुवर्ण का संचालन करते हुए हल के पीछे चलकर ब्राह्मणों के हाथों द्वारा बीज वपन करें और जब तक उसका निवर्तन होता रहे, तब तक विराम किये रहे । अनन्तर प्रदक्षिणा करके दक्षिणा समेत उसे सविधि ब्राह्मणों को अर्पित कर नमस्कारपूर्वक विसर्जन करे । इस विधान द्वारा इसका दान करने वाला प्राणी अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत स्वर्ग लोक में पूजित होता है । सात जन्म तक उसे दारिद्रच दुर्भाग्य और व्याधि उत्पन्न नहीं होती है अपितु भूमि का अधिति होता है । युधिष्ठिर ! दान देते समय इसे देखने वाला भी पुरुष आजन्म के पाप से मुक्त हो जाता है इसमें संदेह नहीं ।१८-२३। राजादिलीप, ययाति, शिवि, निमि, और बुद्धिमान राज भरत ने इस दान कर्म को सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से वे सब आज भी स्वर्ग में आनन्द मग्न हो रहे हैं । नृपोत्तम ! इस लिए स्त्री, पुरुष सभी को भक्ति पूर्वक इसका दान अवश्य करना चाहिए । यदि पंक्ति दान किसी कारण वश न कर सके तो पाँच, चार या एक हल का ही दान अवश्य करे । हल के मुख (फल) द्वारा निकली हुई मिट्टी के रजकण और धुरंधर वैलों के लोम संख्या के समान वर्ष तीन युग तक शंकर पुरी में वह पंक्ति का दानी मनुष्य निवास करता है । इस प्रकार अत्यन्त बलवान् बैलों से युक्त उस हल पंक्ति पृथ्वी समेत का दान पुण्य अवसर पर भक्ति समेत श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अर्पित करने वाला पुण्यात्मा मनुष्य इस भूतल में भव्य राजा होता है ।२४-२९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
हलपंक्ति दान विधिवर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।१६६।

---

१. भुवि भवन्ति समेत्य भव्याः ।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

आपाकदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

तन्मे कथय देवेश येन दत्तेन मानवः । बहुपुत्रो बहुधनो बहुभृत्यश्च जायते ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा भारत वंशेऽस्मिन् राजासीद्धव्यवाहनः । पितृपैतामहं तेन प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥२
न तस्य राज्ये विध्वंसी न वैरिजनितं भयम् । शरीरोत्थमहाव्याधिर्नैवान्तरदायकः ॥३
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं पूर्वकर्मार्जिताशुभात् । नास्ति भृत्यो भारसहः सर्वराज्यधुरन्धरः ॥४
न पुत्रः प्रियकृत्कश्चिन्न मन्त्री मधुराक्षरः । न मित्रं कार्यकरणे समर्थो न सुहृत्तथा ॥५
न भोज्यसमये प्राप्ते भोजनं सार्वकामिकम् । न पूगफलसंयुक्तं ताम्बूलं[1] वसनानि च ॥६
न धनं जनसम्बन्धकारको रत्नसंचयः । तस्यैवं कुर्वतो राज्यमव्याहतमचेष्टितम्[2] ॥७
अथैकस्मिन्दिने विप्रः पिप्पलादोऽतिविश्रुतः । आजगाम महायोगी याज्ञः पार्श्वे महाद्युतिः ॥८
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा राजपत्नी[3] शुभावती । पाद्यार्घ्यासनदानेन सर्वथा तमपूजयत् ॥९

अध्याय १६७

आपाक (मृत्तिका-भाण्ड) दानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवेश ! मुझे वह दान बताने की कृपा कीजिये, जिसके दान करने से मनुष्य बहुपुत्र अतुल सम्पत्ति, और अनेक सेवक गण प्राप्त करता है !१

श्रीकृष्ण बोले—भारत् ! प्राचीन समय में इस वंश में हव्यवाहन नामक राजा था, जो पितृ-परम्परा प्राप्त निष्कण्टक राज्य का उपभोगी हुआ था । उसके राज्य काल में प्रजाओं आदि में न किसी वस्तु का विध्वंस होना देखा जाता था, न वैरजनित भय था, और न शरीर में किसी प्रकार की व्याधि ही कभी हुई थी । किन्तु इस प्रकार राज्य का उपभोग करते हुए भी जन्मान्तरीय अशुभ कर्मों के कारण उनके कोई भारक्षम सेवक नहीं जो समस्त राज्य के भार को अपनाये सहयोग दे सके, प्रिय कर्म करने वाला पुत्र भी नहीं, मधुराक्षर (मंत्रपद) वाला कोई मंत्री नहीं था । उसी प्रकार कार्य कुशल कोई मित्र हितैषी भी नहीं था । भोजन के समय उन्हें यथारुचि का भोजन भी नहीं मिल रहा था, पूंगीफल (सुपाड़ी) आदि युक्त उत्तम ताम्बूल, वसन, मनुष्यों में भले जोग रखने का मुख्य कारण रत्न संचय भी नहीं था । उनके इस प्रकार की अनिच्छा पूर्वक राज्य करते हुए एक दिन पिप्लाद नामक प्रख्यात एवं महायोगी तथा महाद्युति तेजस्वी ब्राह्मण का राजा के यहाँ आगमन हुआ । उन्हें पाये हुए देखकर शुभाती नामक उनकी रानी ने अर्घ्य, पाद्य आसन आदि के प्रदान द्वारा उनकी अर्चा की ।२-९। पश्चात् कथा के समाप्त होने पर रानी ने मुनि से कहा—भगवन् ! द्विज यद्यपि मेरे राज्य में

---

१. ताम्बूलसेवनम् । २. तथा । ४. अव्याहतविचेष्टितम् ।

ततः कथां ते कस्मिंश्चित्तमुवाच शुभावती । भगवन् राज्यमेतन्नः सर्वबाधाविवर्जितम् ॥१०
कस्मान्नभृत्याः पुत्रा वा मन्त्रिमित्रादिकं द्विज । भोगावाप्तिर्न च तथा सर्वलोकातिशायिनी ॥११

पिप्पलाद उवाच

यद्येन पूर्वविहितं तदसौ[1] प्राप्नुते फलम् । कर्मभूमिरियं राज्ञि नातः शोचितुमर्हसि ॥१२
न तत्कुर्वन्ति राजानो न दायादा न शत्रवः । न बान्धवा न मित्राणि यद्येन न पुरा कृतम् ॥१३
तस्माद्भवद्भिर्यद्दत्तं प्राप्तं तद्राज्यमुत्तमम् । भृत्यमित्रादिसम्बन्धो न दत्तः प्राप्यते कुतः ॥१४

शुभावत्युवाच[2]

इदानीमेव विप्रर्षे कस्मात्तन्नोपदिश्यते । येन मे बहवः पुत्रा धनं भृत्या भवन्ति वै ॥१५
मन्त्रो वा सिद्धयोगो वा व्रतं दानमुपोषितम् । कथयस्वामलमते येन सम्पद्यते सुखम्[3] ॥१६
ततः स कथयामास पिप्पलादो द्विजोत्तमः । आपाकाख्यं महादानं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥१७
श्रद्धया कुरुशार्दूल नारी वाप्यथ वा पुमान् । येन दत्तेन भाग्यानां बहुनां भाजनं भवेत् ॥१८
तच्छ्रुत्वा स ददौ राजाऽऽपाकाख्यं दानमुत्तमम् । लेभे पुत्रान्पशून्भृत्यान्मन्त्रिमित्रसुहृज्जनान् ॥१९

श्रीकृष्ण उवाच

आपाकाख्यं महादानं कथयामि युधिष्ठिर । दत्तेन येन कामानां पुमान्भवति भाजनम् ॥२०
ग्रहताराबलं लब्ध्वा भार्गवं[4] पूजयेच्छुभम् । वासोभिर्भूषणैश्चैव पुष्पैरगरुचन्दनैः ॥२१

किसी प्रकार की बाधा नहीं है तथापि न जाने क्यों सेवक गण, पुत्र, मंत्री एवं मित्रादि कोई नहीं है और हमलोगों का राज्योपभोग भी अत्यन्त प्रशस्त नहीं है ।१०-११

पिप्पलाद बोले—रानी ! पूर्वजन्म में जिसने जैसा किया है वही फल उसे प्राप्त होते हैं, क्योंकि यह कर्म भूमि है अतः इस विषय में किसी प्रकार का शोक न करना चाहिए । जिसने पूर्व जन्म में जो कुछ नहीं किया है, राजा, उस बान्धव, शत्रु और मित्र उसे पूँछा नहीं कर सकते । इसलिए आप लोगों से पूर्वजन्म में जो दिया उसका फल यह उत्तम राज्य प्राप्त हुआ है और सेवकादि दिया नहीं तो वह कहाँ से मिल सकता है ।१२-१४

शुभावती बोली—विप्रर्षे ! इस समय आप उसका उपदेश हमें क्यों नहीं दे रहे हैं जिसके द्वारा हमें अनेक पुत्रों समेत अतुल धन सेवाकादि की प्राप्ति हो सकती है । अमलमते ! मंत्र, सिद्ध योग, व्रत दान या उपवास आदि कोई हो, जिससे सुख प्राप्त हो सके, बताने की कृपा करें । तदुपरांत द्विजोत्तम पिप्पलाद ने उन्हें एक आपाक नामक महादान बताया, जो समस्त भाँति की समृद्धि प्रदान करता है । कुरुशार्दूल ! स्त्री पुरुष कोई भी भक्ति श्रद्धा पूर्वक जिसके सुसम्पन्न करने पर अनेक प्रकार की भाग्यों का वह भाजन होता है । उसे सुनकर राजा ने उस आपाक नामक परमोत्तम दान को सुसम्पन्न किया, जिससे उन्हें पुत्र, पशु, सेवकगण, मंत्री मित्र एवं हितैषी आदि की प्राप्ति हुई ।१५-१९

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें उस आपाक नामक महादान को बता रहा हूँ जिसके प्रदान करने से मनुष्य कामनाओं (की सफलता) का भाजन होता है । अपने गृह, तारा आदि का बल भली

---

१. हि । २. अस्मै । ३. भानुमत्युवाच । ४. मुनेः । ५. कुलालभित्यर्थः ।

कुर्यात्तथैव सम्मानं यथा तुष्टोऽभिजायते। कुरुष्व त्वं मे भाण्डानि गुरूणि च लघूनि च ॥२२
मणिकादीनि शुभ्राणि स्थाल्यश्च सुमनोहराः। घटकाः करकाश्चैव गलंत्यः कुण्डलानि च ॥२३
शरावादीनि पात्राणि भाण्डमुच्चावचं बहु। सम्पादय महाभाग विश्वकर्मा त्वमेव हि ॥२४
भार्गवोऽपि प्रयत्नेन नानाभाण्डान्वितं शुभम्। आपाकं कल्पयेद्दिव्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२५
सहस्रमेकं भाण्डानां स्थापयित्वा विचक्षणः। सन्ध्याकाले ज्वलित्वा[1] तु दद्याच्चापि हुताशनम् ॥२६
रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतमङ्गलनिस्वनैः। ततः प्रभाते विमले ज्ञात्वा निर्वापितं शनैः[2] ॥२७
रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य[3] पुष्पमालाभिरर्चयेत्। यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥२८
हेमरौप्याणि भाण्डानि ताम्रलोहमयानि च। परितः स्थापयित्वा च स्वशक्त्या तानि षोडश ॥२९
पूजयित्वा प्रयत्नेन कृत्वा चारु प्रदक्षिणाम्। ब्राह्मणान्पूजयित्वा च भार्गवं पूज्य यत्नतः ॥३०
नार्यश्चाविधवास्तत्र समानीय प्रपूज्य च। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥३१
आपाकब्रह्मरूपोऽसि भाण्डानीमानि जन्तवः। प्रदानात्ते प्रजापुष्टिः[4] स्वर्गश्चास्तु ममाक्षयः[5] ॥३२
भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल। भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे ॥३३

(इति दानमंत्रः)

या च यद्भाण्डमादत्ते तस्यैतद्दापयेत्ततः। स्वेच्छया चैव गृह्णातु न निवार्यास्तु काश्चन ॥३४
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति। विश्वकर्मा भवेत्तुष्टस्तस्य जन्मत्रयं नृप ॥३५

भाँति देखकर शुभ मुहुर्त में वस्त्र, आभूषण, पुष्प, अगुरु, चन्दनादि द्वारा सम्मान पूर्वक उसकी अर्चना करे जिससे वह हर्ष से गद्‌गद हो जाये। अनन्तर कहे कि—मेरे लिए तू छोटे बड़े मिट्टी के पात्र—स्वच्छ, मणिक, सुमनोहर स्थाली घटक, करक, गलत्, शराव (कोरा), आदि पात्र समेत अनेक छोटे बड़े पात्र बनाने की कृपा करो। महाभाग ! तुम विश्वकर्मा हो, अतः इस काम का सम्पादन अवश्य करो। कुम्हार को भी चाहिए तदनन्तर प्रयत्न पूर्वक अनेक भाँति के शुभ पात्र, जो दिव्य आपाक होता है, सविधि और कुशलता पूर्ण बनाये वह बुद्धिमात् (कुम्हार) दिन में एक सहस्र पात्रों के निर्माण के उपरांत संध्या समय उसमें अग्नि प्रदान करे। गीत एवं मांगलिक ध्वनि द्वारा रात्रि व्यतीत करने पर निर्मल प्रभात के समय उसे पका और अग्नि को शांत समझ कर रक्त वस्त्र से आच्छादित करते हुए पुष्प माला आदि से अर्चा करे। पश्चात् यजमान स्नान, श्वेत वस्त्र धारण किये पवित्रता पूर्ण सुवर्ण, चाँदी, ताँबें, लोहें आदि के यथाशक्ति बनाये हुए उन सोलह पात्रों को चारों ओर स्थापित कर पूजनोपरांत प्रदक्षिणा पूर्वक ब्राह्मणों और उस कुम्हार की पूजा करे। उसमें सधवा स्त्रियों को भी लाकर पूजा करना चाहिए। प्रदक्षिणा पूर्वक इस मंत्र द्वारा उसकी असमर्थता करे—आपाक ! तुम ब्रह्मरूप हो, जन्तुगण भांड (पात्र) रूप हैं, तुम्हारे दान करने प्रजा (संतान) पुष्टि पूर्वक मुझे अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो। मैंने जिन भाण्डों की कल्पना की है वे सत्पात्र रूप में मुझे प्राप्त हों।२०-३३। अनन्तर जो स्त्री जिस पात्र को लेना चाहे उसे वही देना चाहिए विशेषतः निर्वाध रूप से सभी स्त्रियों को उसे लेने देवे। नृप ! इस विधान द्वारा जो यह दान सुसम्पन्न करता है उस पर विश्वकर्मा सन्तुष्ट होते है जिससे तीन जन्म तक वह स्त्री अतुल सौभाग्य, ग्रह, समस्त गुण युक्त

---

१. जपित्वातु, स्वपित्वा तु। २. स्वनैः। ३. समासाद्य। ४. तेजसापुष्टिः। ५. तथा सदा।

नारी च दत्त्वासौभाग्यमतुलं प्रतिपद्यते । गृहं सर्वगुणोपेतं[1] भृत्यमित्रजनैर्वृतम् ॥३६
अवियोगं[2] सदा भर्त्रा रूपं चानुत्तमं लभेत् । भूदानमेतन्निर्दिष्टं प्रकारेण तवानघ ॥
भिद्यतेबहुभिर्भेदै भूमिरेषा[3] नरेश्वर ॥३७

निष्पाद्य भाण्डनिचयोच्चतरं प्रयत्नादापाकदानमिह या कुरुते वरस्त्री[4] ।
सा पुत्रपौत्रपशुवृद्धिसुखानि भुक्त्वा प्रेत्य स्वभर्तृसहिता सुखिनी सदास्ते ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आपाकदानविधिवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६७

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

गृहदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग । गृहदानस्य माहात्म्यं विधिं वद[5] विदांवर ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात्परम् । नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः ॥२
धनधान्यसमायुक्तं कलत्रापत्यसंकुलम् ॥३
गोगजाश्वगणाकीर्णं गृहं स्वर्गाद्विशिष्यते । यथामातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ॥४

सेवक, और मित्र आदि अनेक हितैषी प्राप्त करती है। उसे पति का सदा संयोग और उत्तम गति की प्राप्ति होती है। अनघ, नरेश्वर ! प्रकारान्तर से मैंने तुम्हें यह भूमि दान बता दिया क्योंकि इसका अनेक भेद बताया गया है। इस प्रकार भाण्ड समूहों को सप्रयत्न बनाकर आपाक दान करने वाली स्त्री पुत्र, पौत्र, पशु वृद्धि, आदि सुखों के अनुभव करती हुई, अपने पति के सहित सदैव सुखिनी रहती है।३४-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
आपाक दान विधि वर्णन नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त।१६७।

अध्याय १६८

गृहदानविधि का वर्णन

युधिष्ठर बोले—ज्ञानीप्रवर ! आप समस्त शास्त्रों के अर्थतत्त्वों को भली भाँति जानते है, और ज्ञानविज्ञान के पारगामी हैं, अतः मुझे गृह प्रदान का महत्त्व बताने की कृपा करें।१

श्रीकृष्ण बोले—गृहस्थी के गार्हस्थ्य (धर्म) से बढ़कर कोई धर्म, गृहदान से श्रेष्ठ कोई अन्य दान, असत्य बोलने से अधिक अन्य कोई पाप और ब्राह्मण से अन्य कोई पूज्य नहीं है। क्योंकि धन धान्य पूर्ण, पुत्रादि परिवार से भूषित, और गौ, गजराज, एवं घोड़े से व्याप्त रहने वाला गृह स्वर्ग से अधिक

---

१. सर्वजनोपेतं भृत्यमन्त्रिजनैर्वृतम्। २. अवियोगं च पत्युर्वा रूपं चानुत्तमं लघु। ३. चेह विविधैः। ४. च साध्वी। ५. विधविदाम्वर।

एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्तयन्तीतराश्रमाः[१] । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मित्राणि प्रथितं यशः ॥५
प्राप्तकामैर्नरैः पार्थ सदा सेव्यो गृहाश्रमः[२] । न गृहेण विना धर्मो नार्थकामौ सुखं न च ॥६
न लोके पंक्तिर्न यशः प्राप्यते त्रिदशैरपि । न तत्स्वर्गे नापवर्गे न तत्केनोपमीयते ॥७
प्रसार्य पादौ यद्रात्रौ स्वगृहे स्वपतां सुखम् । दिनानि नास्य गण्यन्ते नैनमाहुर्महाशनम् ॥८
अपि शाकं पचानस्य स्वगृहे परमं सुखम् । इति मत्वा महाराज कारयित्वा सुशोभनम् ॥९
भवनं[३] ब्राह्मणे देयं भव्यभूतिमभीप्सता[४] । कारयित्वा दृढस्तम्भं शुभपक्वेष्टकामयम्[५] ॥१०
शुभं कमठपृष्ठाभं भाभासितदिगन्तरम् । सुधानुलिप्तं गुप्तं च सुखशालाविराजितम् ॥११
दद्यादनन्तफलदं[६] शैववैष्णवयोगिनाम् । प्रतिश्रये तु विस्तीर्णे कारिते सजले घने ॥१२
दीनानाथजलार्थाय कृतं किं नकृतं भवेत् । कारयित्वा गृहान्पश्चादृत्विग्रुद्रार्कसंख्यया ॥१३
कुड्यस्तम्भगवाक्षाढ्यान्विचित्रान्बहुभूमिकान् । सप्राकारप्रतोलीकान्पाटार्गलयन्त्रितान् ॥१४
सुधाधवलितान् रम्यान्विस्तीर्णांगणवाटिकान् । प्रवेशनिर्गमयुतान्समासन्नजलाशयान् ॥१५
लोहोपस्करसम्पूर्णांस्ताम्रोपस्करसंयुतान् । स्वर्णोपस्करशोभाढ्यान् रौप्योपस्करसंकुलान्[७] ॥१६

महत्त्वपूर्ण होता है । जिस प्रकार माता के आश्रित रहकर सभी जीव जीवित रहते हैं, उसी भाँति गृहस्थ आश्रम के आश्रित रहकर अन्य सभी आश्रम सजीव बने रहते हैं । पार्थ ! गृह में रहकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मित्र और प्रख्यात यश की प्राप्ति करता है, अतः कामनाओं की सफलता वाले मनुष्य को गृहस्थाश्रम में सदैव बने रहना चाहिए । क्योंकि बिना गृह के धर्म अर्थ काम, सुख, लोक पंक्ति, और यश की प्राप्ति देवों को भी नही हो सकती । इसलिए स्वर्ग और मोक्ष में उसकी कोई उपमा नहीं है । रात्रि समय अपने घर में पैर फैलाकर शयन करने वालों को जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह अन्य आश्रमी को कभी नहीं प्राप्त हो सकता । इस आश्रम के (सुख के) दिन भी नहीं गिने जा सकते । और इसे (गृह को) महाशन (महाभोजी) भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अपने घर में शाक पका कर खाने वाले को परम सुख की प्राप्ति होती है । महाराज ! अतः ऐसा समझ कर भव्य ऐश्वर्य के इच्छुक को एक सुन्दर भवन का निर्माण करा कर उसे ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए, जो दृढ़ स्तम्भों और शुभ तथा पकी हुई ईटों द्वारा निर्मित हो ।२-१०। शुभ, कछुए की पीठ के समान, उसकी आत्मा से दिग्दिगन्त सुशोभित हो, सुधा धवलित (चूना से पुता हुआ), गुप्त, और सुख शाला (आराम वन) भूषित गृह दान करने पर शैव, वैष्णव और योगियों को अनन्त फल प्राप्त होता है । नूतन मेघ (की धारा) से सुरक्षित रहने के लिए उन दीन अनाथों के हितार्थ विस्तीर्ण कमरे का गृह बनाना चाहिए । ऋत्विजों के दानार्थ रुद्र (११) और अर्क सूर्य (१२) की संख्यानुसार उस प्रकार के गृहों का निर्माण कराकर जिसमें दीवाल, स्तम्भ, गवाक्ष (झरोखे) खिडकियाँ की रचना विचित्र ढंग से की गई हो, भूमिका अधिक भाग (मैदान के रूप) में हो, सुन्दर आकार (खांई, चहार दीवारी,) गली और सुन्दर मार्ग, कपाट (किंवाड), अगर्ल (किनांड़ रोकने के लिए उसके पीछे लगा हुआ काष्ठ) से नियंत्रित, सुधाधवलित, रम्य, विस्तृत प्रांगण और उपवाटिका से भूषित, प्रवेश करने निकलने की सुगमता, बावली, कूप आदि से युक्त, लोहे की वस्तुओं से पूर्ण ताँबें के

---

१. आसाद्य । २. वर्तयन्ते तथाश्रमाः । ३. गृहाश्रमी । ४. गृहं सुब्राह्मणे । ५. भार्यां भूमिमभीप्सिता । ६. पक्वेष्टकामयं नवम् । ७. दानं तत्फलदम् ।

रत्नोपस्करसंयुक्तान्कांस्योपस्करमण्डितान् । आरकूटत्रपुसीसदा नोपस्करवर्जितान् ।।१७
वंशोपस्करसकीर्णान्काष्टोपस्कर[1] बृंहितान् । मृण्मयोपस्कराकीर्णान्वस्त्रोपकरणान्वितान् ।।१८
धर्मोपस्करसम्भारशरणवल्कलराजितान्[2] । राजितान्स्तृणपाषाणैः सर्वोपस्करभूषितान्[3] ।।१९
सप्तधातुमयं भाण्डं यत्तद्रत्नसमुद्भवम् । चर्मकाष्ठमहा[4]भाण्डं नववस्तुमयं तथा ।।२०
गोमहिष्यश्ववृषभप्रेष्यवेश्यागणान्वितान् । क्षेत्रारामजलासन्नान्काम्यान्हर्म्यवराञ्छुभान् ।।२१
सम्पूर्णान्स[5]र्वधान्यैस्तु घृततैलगुडादिभिः । तिलतन्दुलशालीक्षुमुद्गगोधूमसर्षपैः ।।२२
निष्पावाढक्यचणककुलत्थाणुमसूरकैः । कंगुमाषयवाढ्याञ्छाकवृताकपूरितान् ।।२३
लवणार्द्रकखर्जूरद्राक्षाजीरकधान्यकैः । हिंगुकुंकुमकर्पूरस्नानद्रव्यैः सचन्दनैः ।।२४
धूपोपस्करपर्युप्ततूलीगण्डोपधानकैः । चुल्लीच्छेदनमन्थानभद्रासनकगुच्छकैः[6] ।।२५
पिठरोलूखलस्थालीशूर्पदर्पणपत्रकैः[7] । मुशलासिक्षुपाणीषुदण्डकोदण्डमुद्गरैः ।।२६
गुहाटवाटकादर्वीट्टपल्लोष्टकहस्तकैः । चात्रकांशुकलोहादिदीप्तमन्थनिकादिभिः ।।२७
कण्डणी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी प्रमार्जनी । मञ्जूषाकोष्ठका सन्दीकम्बलैस्तन्तुरान्कवैः ।।२८
इत्येवमादिभिः पूर्णान्गृहान्दद्याद्द्विजातिषु । कर्तुश्चंद्रबलोपेते स्थिरनक्षत्रसंयुते ।।२९
शुभेऽह्नि विप्रकथिते दानकालः प्रशस्यते । एवं सम्भृतसम्भारो यजमानः स्वयं द्विजान् ।।३०

साधनों से युक्त, सुवर्ण के साधनों से सुशोभित, चाँदी के साधनों से मण्डित, रत्नों के साधनों से संयुत, काँसे के साधनों से अलंकृत, पीतल, रांगा एवं सीसे के साधनों से रहित, कहीं-कहीं बाँस के साधनों से युक्त, काष्ठ के साधनों से परिवर्द्धित, मृत्तिका के साधनों से संकीर्ण, वस्त्र साधनों से पूर्ण, धर्म के साधन भारों की रस्सियाँ, तृण और पाषाणों से रजित तथा समस्त साधनों से युक्त हो और जिसमें सातों धातुओं के पात्र, रत्नादिपात्र, चर्म, काष्ठ के पात्र और नूतन वस्तुएँ परिपूर्ण रहें। गौ, भैंस, अश्व, वृष (बैल), दूत तथा वेश्यागणों से भूषित, क्षेत्र (खेत), बगीचे जलाशय, रमणीय श्रेष्ठ कमरे, सभी भाँति, धान्य, घृत, तेल, गुड़, तिल, चावल, सवि चावल, ऊंख, मूंग, गेहूँ, सरसों से सम्पूर्ण, सूपादि, अरहर, चना, कुलथी, आणु, मसूर, कंगु (काकुनि), माष (उरदी), जवा आदि, शाक, भाँटा आदि से युत, नमक, आदि, खजूर, द्राक्षा (किसमिस), जीरा, धनियाँ, हींग, कुंकुम, कपूर, चन्द आदि स्दान पदार्थ से संयुक्त, धूप, गद्दा तकिया, चुल्ली (चूल्हा) छेदन (साग बनाने के लिए चाकू, पहसुल आदि), मथानी, सौन्दर्य पूर्ण एवं कल्याण मूर्ति आसन, गुच्छ, पिठर, ओखली, बटुली, सूप, दर्पण, मुसल, तलवार, छुरी, (कपट), धनुष-बाण, दंड मुद्गर, गृह वाटिका, दर्वी (करछी) पत्थर की सिल बट्टा, अंशुक लोहादि से दीप्त मथानी आदि, कडणी (कापी), चक्की, चूल्हा, चलघय और उसका चबूतरे की भाँति स्थान, झाड़, मंजूषा (सन्दूक), और कमरे के भीतरी भाग, कुर्सियों और ऊनी कम्बलों से युक्त हों इस प्रकार के साधनों से सम्पन्न गृहों को व्राह्मणों के लिए अर्पित करना चाहिए।११-२८। दानी को अपने चन्द्रबल समेत स्थिरनक्षत्र युक्त किसी शुभ पुण्य

---

१. वंशोपस्करसम्पूर्णाकाष्ठोपस्करसंहिताम्। २. धर्मोपस्करसंयुक्तान्। ३. सुवर्णोपस्करान्वितान्। ४. चर्यकाष्ठमहीभारं दत्तं वस्त्रमयं तथा। ५. सप्तधान्यैस्तु। ६. चुल्लीच्छेदनमन्थानभद्रासनकुकुच्छकैः। ७. पिठरोलूखलस्थालीशर्पदर्पणन्नगैः।

कुलशीलसमायुक्तान्गृहसंख्यान्निमन्त्रयेत् । अधीतवेदाञ्छास्त्रज्ञान्पुराणस्मृतिपारगान् ॥३१
गृहस्थधर्मनिरताञ्छान्तान्दान्ताञ्जितेन्द्रियान् । अलंकृत्य सपत्नीकान्वासोभिरथ पूजयेत् ॥३२
सुगन्धिस्रग्धरान्कृत्वा शान्तिकर्मणि योजयेत् । गृहाङ्गणे कारयित्वा कुण्डमेकं समेखलम् ॥३३
ग्रहयज्ञः प्रकर्तव्यस्तुष्टिपुष्टिकरः सदा । रक्षोघ्नानि च सूक्तानि पठेयुर्ब्राह्मणास्ततः ॥३४
वास्तुपूजा प्रकर्तव्या दिक्षु भूतबलिं क्षिपेत् । ततः[1] पुण्याहघोषेण ब्राह्मणांस्तेषु वेश्मसु ॥३५
प्रवेशयित्वा शय्यासु सभार्यानुपवेशयेत् । यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥३६
यद्यस्य विहितं पूर्वं तत्तस्य प्रतिपादयेत् । इदं गृहं गृहाणत्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३७
तव विप्रप्रसादेन ममास्त्वभिमतं फलम् । एवमेकैकशो दत्त्वा[2] प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥३८
स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यं कोऽदादिति च पूजितैः । गृहोपकरणैस्तुल्या दक्षिणा भवनं विना ॥३९
उपदेष्टारमापृच्छ्येत्तन्मूलत्वान्महर्षयः । स्वयं तान्पूजयित्वा तु ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥४०
दद्यादनेन विधिना गृहमेकं बहूनपि । न संख्यानियमः कार्यः शक्तिरत्र नियामिका ॥४१
शीतवातातपहरं दत्त्वा तृणकुटीरकम् । इष्टान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥४२
किं पुनर्बहुनोक्तेन सर्वोपस्करभूषिताम् । अत्यन्तसुखलुब्धेन दत्त्वा ब्रह्मपुरीं प्रियाम् ॥४३

इतने महान् संभार से संयुक्त होकर यजमान् स्वयं गृह संख्या के समान ब्राह्मणों को निम्नलिखित कर, जो कुश-शील सम्पन्न वेदपाठी, शास्त्र मर्मज्ञ, पुराण-स्मृति के पारदर्शी, गृहस्थ धर्म में निरत, शांत पवित्रतापूर्ण और संयमी हों। इस भाँति के सपत्नीक ब्राह्मणों की सर्वप्रथम वस्त्रों से पूजित और सुगन्ध, माला आदि से भूषित कर शांति कर्म के लिए नियुक्त करे। तथा अपने गृहाङ्गण में मेखला समेत एक कुण्ड का निर्माण भी करे। इस प्रकार पुष्टिप्रद इस गृहयज्ञ को सदैव सुसम्पन्न करना चाहिए। उस समय ब्राह्मणों को राक्षसादिविनाशक सूक्तों के पाठ करना चाहिए। वास्तु-पूजा, दिशाओं में भूतों के लिए बलि अर्पित करके पश्चात् पुण्याहवाचन, मागलिक घोष पूर्वक सपत्नीक उन ब्राह्मणों के साथ उस गृह में प्रवेश कराकर शय्या पर बैठाये। अनन्तर प्राज्ञ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर पवित्रता पूर्ण, उन्हें जिसके लिए जो गृह बना हो, अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे।२९-३८। विप्र! समस्त साधनसम्पन्न इस गृह को आप स्वीकार करें, जिससे आप की प्रसन्नता वश मेरा मनोरथ सफल हो। इस प्रकार प्रत्येक ब्राह्मणों से दान अर्पित करते हुए यजमान के क्षमा प्रार्थना करने पर उन ब्राह्मणों को जो कोऽदादिति मंत्रों द्वारा पूजित हुए हैं, 'स्वस्ति' कहना चाहिए। गृहोपकरणै, उपदेष्टा और तन्मूलक महर्षियों की स्वयं अर्चा करके पश्चात् अपने घर का गमन करे। इसी विधान द्वारा एक या अनेक भवनों को अर्पित करना चाहिए, इसमें संख्या नियम न होकर केवल अपनी शक्ति ही नियामिका है।३९-४१। शीत, वायु, धूप आदि के अपहरण करने वाली छप्पर की कुटिया ही दान करने से कामनाओं की सफलता पूर्वक स्वर्ग में पूजित होता है तो समस्त साधन सम्पन्न उस प्रिय ब्राह्मण पुरी को अत्यन्त सुखार्थ दान करने वाले के प्राप्त होने वाले वैभव का अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है। कौंतेय! गौ, भूमि एवं हिरण्य के दान, यम नियमादि सभी गृहदान की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते। इस प्रकार उन ब्राह्मणों की पुरियों को जो दृढ कमरों से

---

१. स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यम्। २. दद्यात्।

गो भूहिरण्यदानानि यमाः सनियमास्तथा । गृहदानस्य कौन्तेय कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।४४
यः कारयेत्सुदृढहर्म्यवतीं महार्हां[1] सत्सेवितां द्विजपुरीं सुजनोपभोग्याम् ।
दिव्याप्सरोभिरभिनन्दितचित्तवृत्तिः प्राप्नोत्यसावनवमं पदमिंदुमौलेः ।।४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गृहदानविधिवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६८

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अन्नदानमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्नदानस्य माहात्म्यं कथयामि तवानघ । यत्प्रोक्तमृषिभिः पूर्वं तदिहैकमनाः शृणु ।।१
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर । सद्यस्तुष्टिकरं लोके किं दत्तेन परेण[2] ते ।।२
रामेण दाशरथिना वनस्थे निजानुजः । निर्वेदाद्यत्पुरा प्रोक्तस्तदहं[3] प्रब्रवीमि ते ।।३
पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नस्य कांक्षिणः । सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम् ।।४
यदुच्यते कर्मबीजं तस्यावश्यं फलं नरैः । प्राप्यते लक्ष्मणास्माभिर्नान्नं विप्रमुखे हुतम् ।।५

युक्त बहुमूल्य के योग्य, सज्जनों से सेवित और सुजनों के उपभोग्य रहती है, बनवाने वाला दिव्य अप्सराओं के बीच आनन्द मग्न रहकर चन्द्रमौलि का वह शाश्वत पद प्राप्त करता है ।४२-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
गृहदानविधिवर्णन नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।१६८।

अध्याय १६९

अन्नदान माहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अनघ ! मैं तुम्हें अन्न दान का माहात्म्य बता रहा हूँ, जिसे ऋषियों ने पूर्वकाल में कहा था, सावधान होकर सुनो ! युधिष्ठिर ! अन्न दान करने से क्या लाभ, इसलिए अन्नदान करो, और अवश्य अन्न दान करो मैं तीन बार कह रहा हूँ, क्योंकि लोक में यह दान सद्यः प्रसन्न करता है । दशरथ पुत्र राम ने वनवास करते समय अपने अनुज से जो बात पहले कहा है मैं वहीं तुमसे बता रहा हूँ—सौमित्रे ! इस अन्नपूर्णा पृथिवी में रहकर हम लोग अन्न की इच्छा करते हैं इससे निश्चित है कि हम लोगों ने (पूर्वकाल) में ब्राह्मण भोजन नहीं कराया था । लक्ष्मण ! जो कहा गया है कि यह कर्म बीज रूप है उसका फल मनुष्यों को अवश्य भोगना पड़ता है, इसलिए हम लोग भी कभी ब्राह्मण मुख की आहुति नहीं अर्पित की है अर्थात् ब्राह्मण भोजन नहीं कराया ।१-५। जो नहीं प्राप्त कर सका वह विद्या या पौरुष के

---

१. महाघोम् । २. अपरेण । ३. तच्चापि कथयामि ते ।

यन्न प्राप्यं तदप्राप्यं विद्यया पौरुषेण वा । सत्यो लोकप्रवादोऽयं नादत्तमुपतिष्ठति ॥६
भक्षोपयोगादन्नस्य दानं श्रेयस्करं परम्[१] ॥७
प्रकारान्तरभोज्यानि दानान्य[२] न्यानि भारत । अन्नमेव परं दानं सत्यवाक्यं परं पदम् ॥८
बुद्धिश्चार्थात्परो लोभः सन्तोषः परमं सुखम् । स्नातानामनुलिप्तानां भूषितानां च भूषणैः ॥९
न सुखं न च सन्तोषो भवेदन्नादृते नृणाम् । श्वेतो नाम महीपालः सार्वभौमोऽभवत्पुरा ॥१०
तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः संग्रामा[३] बहवो जिताः । दानानि च प्रदत्तानि धर्मतः पालिता मही ॥११
भुक्ता भोगाः सुविपुलाः शत्रूणां मूर्धनि स्थितम् । वानप्रस्थेन विधिना त्यक्त्वा राजश्रियं नृप ॥१२
स्वर्गं जगाम भुक्त्वा तु पूज्यमानो मरुद्गणैः । विमानमर्कप्रतिमं प्रतिपेदे मुदा युतः ॥१३
तत्रास्ते रममाणोऽसौ साकं विद्याधरैः सुखम् । प्रसिद्धैः स्तूयते सिद्धैः सेव्यतेऽप्यप्सरसां गणैः ॥१४
गन्धर्वैर्गीयते हृष्टैः शक्रेणाप्यनुगम्यते[४] । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥१५
स च नित्यं वितानाग्र्यादवतीर्य महीतलम् । स्वमांसान्यत्ति कौन्तेय पूर्वं त्यक्त्वा कलेवरम् ॥१६
तच्छरीरं तथैवास्ते रक्षितं पूर्वकर्मभिः । स कदाचित्सुरेशानं ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥१७
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा निर्वेदादिदमब्रवीत् । भगवन्तस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं स्वर्गसुखं मया ॥१८
सर्वेषामपि सम्पूज्यः सुराणां सुरपुङ्गव । किं तु क्षुद्बाधतेऽत्यर्थं स्वर्गस्थस्यापि मे प्रभो ॥१९

द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए यह लोकप्रवाद सत्य है—'जो नहीं दिया गया है वह नहीं मिलता है।' भक्षण के उपभोगी होने के नाते अन्न दान श्रेयस्कर माना गया है। भारत! यद्यपि अन्य दान भी प्रकारान्तर से भोज्य है तथापि 'अन्नदान ही श्रेष्ठ है' यही सत्यवाक्य और परम पद है। बुद्धि द्वारा उत्पन्न अर्थ में लोभ अधिक होता है किन्तु सन्तोष ही परम सुख माना गया है। स्नान, लेपन एवं भूषण से भूषित मनुष्यों को बिना अन्न के कोई सुख और सन्तोष नहीं होता है। पूर्वकाल में एक श्वेत नामक सार्वभौम राजा था, जिसने अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न किया, अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त की, अनेक दान दिये, धर्मानुसार पृथ्वी का पालन पोषण किया, विपुल भोगों को उपभोग किया और शत्रुओं के शिर पर सदैव स्थित किया था। नृप! (अन्त समय) वानप्रस्थ के नियमानुसार उन्होंने राज्यलक्ष्मी के त्याग पूर्वक स्वर्ग की यात्रा की। सूर्य के समान प्रकाशित विमान द्वारा सहर्ष वहाँ पहुँच कर मरुद्गणों द्वारा पूजित हुए वहाँ रमण करते हुए उन्हें विद्याधरों द्वारा सुख प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध सिद्धों ने स्तुति तथा अप्सराओं ने भलीभाँति सेवा की। प्रसन्नतापूर्ण गन्धर्वों ने मान द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया, इन्द्र उनके अनुगामी हुए। दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्याभरण से भूषित होने पर भी वह राजा विमान द्वारा नित्य इस भूतल में आकर अपनी त्यांग की हुई पूर्व शरीर के मांस का भक्षण करता था।६-१६। क्योंकि पूर्व कर्मानुसार उनकी शरीर वैसी ही सुरक्षित की गयी थी। एक बार कभी उन्होंने देवेश ब्रह्मा के यहाँ जाकर उनसे अञ्जली बाँधे नमस्कार पूर्वक दुःख प्रकट करते हुए कहा—भगवन्! आप के प्रसाद से मैनें स्वर्ग सुख प्राप्त किया और समस्त देवों का पूज्य हुआ। किन्तु सुरपुङ्गव, प्रभो! स्वर्ग में निवास करते

---

१. श्रेयःफलम्। २. नानाविधानि। ३. संग्रामात्। ४. अनुगीयते।

यया मांसान्यहं स्वस्य भक्षयाम्यशनं विना ।।

ब्रह्मोवाच

श्वेताभिजनसम्पन्न श्वेत शृणु वचो मम ।।२०
त्वयाधीतं हुतं दत्तं गुरवः परितोषिताः । नाशनं भवता दत्तं यद्द्विजेभ्यो नराधिप ।।२१
अन्नदानस्य फलं त्वयेदमुपभुज्यते । तस्मान्नदानतो नान्यच्छरीरारोग्यकारकम् ।।२२
नान्यदन्नादृते पुंसां किञ्चित्सञ्जीवनौषधम् । महींगत्वा महाराज कुरुष्व वचनं मम ।।२३
तपः स्वाध्यायसम्पन्ने शास्त्रज्ञे संजितेन्द्रिये । ये सम्पद्यते तृप्तिरक्षया क्षमापते[1] तव ।।२४
विरिंचेर्वचनाद्गत्वा त्वरायुक्तो महीतलम् । अगस्त्यं भोजयामास भक्त्या भरतसत्तम ।।२५
भोजयित्वा ततः प्रादाद्दक्षिणां क्षीणकल्मषः । एकावलिं स्वकात्कण्ठात्समुत्तार्य समुज्ज्वलाम् ।।२६
ततो दुन्दुभिघोषेण पूजितः सुरसत्तमैः । श्वेतस्तृप्तो गतः स्वर्गं दत्त्वान्नं दक्षिणायुतम् ।।२७
पौलस्त्ये निहते पश्चाद्देवदानवसंकटे । रामायैकावलिं प्रादादगस्त्यः परया मुदा ।।२८
एतदन्नस्य माहात्म्यं कथयाम्यपरं च ते । न चान्नादपरं किञ्चित्सत्यं तव मयोदितम् ।।२९
अन्नं वै प्राणिनां[2] प्राणा अन्नभोजो बलं सुखम् । एतस्मात्कारणात्सद्भिरन्नदः प्राणदः स्मृतः ।।३०

हुए भी मुझे क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है। जिसके कारण मैं अपना मांस भक्षण करता हूँ।१७-१९।

ब्रह्मा बोले—श्वेत कुल में उत्पन्न श्वेत ! (इसका कारण) मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तुमने वेदाध्ययन, यज्ञ कर्म, दान और गुरु को सन्तुष्ट रखना आदि सभी कर्म सुसम्पन्न किया। किन्तु ब्राह्मणों को भोजन दान नहीं दिया। नराधिप ! उसी अन्न दान न देने का यह दुष्परिणाम तुम भोग रहे हो। इसलिए अन्न दान से अन्य कोई शरीर को आरोग्य बनाने वाला नहीं है, (इतना ही नहीं प्रत्युत) मनुष्यों के लिए संजीवनी औषध (अन्न के अतिरिक्त) अन्य कोई नहीं है। महाराज ! क्षमापते इसलिए आप मेरी बात स्वीकार कर भूतल में जायें और किसी तपस्वी, वेदाध्ययन सम्पन्न, शास्त्रमर्मज्ञ और इन्द्रिय संयमी ब्राह्मण को (भोजन द्वारा) सुतृप्त करें, जिससे तुम्हें अक्षय तृप्ति प्राप्त हो। भगवान् विरिंच की आज्ञानुसार राजा ने इस महीतल में शीघ्र आगमन कर मुनि अगस्त्य जी को भोजन कराया।२०-२५। भारत सत्तम ! तदुपरान्त निष्पाप राजा ने अपने कण्ठ से उस समुज्ज्वल एकावली को उतार कर मुनि को दक्षिणा रूप में अर्पित किया। उसे देखकर सुरवृन्दों ने दुन्दुभि घोष करते हुए उनकी अर्चा की और राजा श्वेत दक्षिणा समेत अन्न दान करने के नाते तृप्त होकर स्वर्ग चले गये। पुलस्त्य कुल में उत्पन्न एवं देव दानवों का संकट रूप उस रावण के राम द्वारा निधन होने पर प्रसन्न मुनि अगस्त्य ने वहीं एकावली (हार) राम को प्रसन्नता के उपहार में प्रदान किया था।२६-२८। इसके अनन्तर भी मैं तुम्हें अन्न का अन्य माहात्म्य बता रहा हूँ क्योंकि मैंने यह सत्य ही कहा है कि—अन्न से अपर कोई भी दान श्रेष्ठ नहीं है। अन्न प्राणियों का प्राण, ओज, बल और सुख रूप है इसीलिए सज्जनों का कहना है कि—'अन्न का दाता प्राण का

---

१. जायते। २. प्राणिनः।

सुदूरादाशया यस्य गृहं प्राप्ता बुभुक्षिताः । तृप्ताः प्रतिनिवर्तन्ते कोऽन्येस्तत्सदृशः पुमान् ।।३१
दीक्षितः कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः । दृष्टमात्रा पुनंत्येते तस्मात्पश्यन्ति नित्यशः ।।३२
एकस्याप्यतिथेरन्नं यः प्रदातुमशक्तिमान् । तयाऽऽरम्भैः परिक्लेशैर्वसतः किं फलं गृहे ।।३३
शक्यते दुष्करेऽप्यर्थे चिररात्राय जीवितुम् । नत्वाहारविहीनेन शक्यं वर्तयितुं चिरम् ।।३४
भुक्त्वा गृहे गृहस्थस्य मैथुनं यश्च सेवते । यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा इति प्राहुर्मनीषिणः ।।३५
दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति । यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति दुष्कृतम् ।।३६
वनस्पतिगते सोमे परान्नं यस्तु भुञ्जति । तस्य मासकृतं पुण्यं दातारमुपगच्छति ।।३७
कस्मान्न दीयते नित्यं कस्मादन्नं न दीयते । यस्येदृशी फलावप्तिः कथिता पूर्वसूरिभिः ।।३८
भिक्षां वा पुष्कलां वापि हंतकारं द्विजातये । भोजनं दः यथालाभमदत्त्वाश्नाति किल्बिषम् ।।३९
येनायुतं सहस्रं वा भोजितं स्याद्द्विजन्मनाम् । तेन ब्रह्मगृहासन्नं नूनं बद्धं कुटीरकम् ।।४०
वाराणस्यां पुरा पार्थ वणिगापणजीवनः । धनेश्वर इति ख्यातो देवब्राह्मणपूजकः ।।४१
तस्यापणैकदेशे तु मुक्त्वाण्डं पाण्डुरच्छवि । ससर्प सर्पस्तद्देशाद्वणिग्दृष्ट्वा विशंकितः ।।४२
तदण्डं वणिजा तेन दृष्टं कारुण्यबुद्धिना । ततः प्रभृत्यनुदिनं ररक्ष च पुपोष च ।।४३

प्रदाता है' । अत्यन्त सुदूर से आशा लगाये क्षुधा पीड़ित प्राणी जिसके घर आकर तृप्त होकर चले जाते हैं उसके समान अन्य कौन पुरुष हो सकता है । दीक्षित, कपिला, यज्ञ करने वाला, राजा, भिक्षुक और समुद्र दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं इसीलिए ये सदैव देखते रहते हैं । द्वार पर आये हुए एक अतिथि को अन्न दान द्वारा जो तृप्त नहीं कर सकता है, उसको गृहस्थाश्रम में रहने से कौन फल हो सकता है, और इसीलिए गृहस्थी के उसके सभी आरम्भ भी केवल दुःखदायी हैं । किसी अत्यन्त दुष्कर अयोजन के सफल न होने पर भी प्राणी अधिक सजीवित नहीं प्राप्त कर सकता है । गृहस्थों के यहाँ भोजनोपरान्त कोई अभ्यागत मैथुन भी करता है तो उससे सन्तान उत्पन्न होने पर वह सन्तान गृहस्वामी का ही कहा जायेगा क्योंकि अन्न उसी का था ऐसा मनीषियों ने कहा है ।२९-३५। मनुष्यों के दुष्कृत अन्न में ही रहते हैं अतः जो जिसका अन्न भक्षण करता है वह उसका दुष्कृत भक्षण करता है । सोम के वनस्पति प्राप्त होने पर परान्न भोजी प्राणी का एक मास का पुण्य उसके दाता को प्राप्त होता है । इसलिए पूर्व के मनीषियों के कथनानुसार जिसके दान से इस भाँति के फल प्राप्त होते हैं उस अन्न दान को नित्य क्यों नहीं सुसम्पन्न करते हो । द्विजातियों को पूर्ण भिक्षा, जो देने योग्य हो, अथवा यथालाभ भोजन न देकर जो भोजन करता है वह पाप भोजन करता है । जिसके दश सहस्र या सहस्र ब्राह्मणों को भोजन द्वारा तृप्त किया है उसने निश्चित ब्रह्मा के भवन के निकट अपनी कुटिया बना ली है । पार्थ ! वाराणसी पुरी में धनेश्वर नामक एक प्रख्यात एवं कुशल व्यापारी वैश्य रहता था, जो देवों और ब्राह्मणों की सदैव अर्चना किया करता था । उसकी दूकान के किसी भाग में पाण्डुर वर्ण के अण्डे को रखकर कोई सर्प वहाँ से जा रहा था । वणिक् ने उसे सशंकित दृष्टि से देखा अनन्तर उस वैश्य ने उस अण्डे को भी कारुणिक हृदय होकर देखा और उसी दिन से प्रतिदिन उसकी रक्षा तथा पालन पोषण करना आरम्भ किया ।३६-४३। कुछ दिन के अनन्तर उस अण्डे को फोड़कर सर्प का बच्चा निकला । क्षीर पान आदि उपचारों द्वारा उस वैश्य ने

निर्जगाम दिनैः कैश्चिद्भित्त्वाण्डं सर्पपोतकः । तं वणिक्क्षीरपानाद्यैरुपचारैरवर्धयत् ॥४४
लिलिहे घृतभाण्डानि जिघ्रे च गन्धसंचयान् । लुलोठ पांसुप्रकरे चचार वारिमध्यगः ॥४५
वणिजा रक्ष्यमाणः स स्नेहाच्चाहरहः पुनः । जगाम सुमहान्कालोऽभवदेष भयंकरः ॥४६
अथैकस्मिन्दिने गङ्गां गतः स्नातुं त्रिलोकगाम् । वाणिगापणे पण्यविदं स्थापयित्वा सुतं मतम् ॥४७
व्यवहर्तुं[1] समारब्धं वणिक्पुत्रेण धीमता । ददाति प्रतिगृह्णाति घृततैलयवेक्षवम् ॥४८
व्यवहाराकुलतया पादयोरंतरेण सः । सर्पश्चचाल चाप्लयाद्वणिग्विक्षेपमभ्यगात् ॥४९
जानन्नपि तद्वृत्तांतं निदाने नियतेर्वशात् । त्रासात्सन्तर्जयामास बलेन[2] पदचारिणम् ॥५०
स महीतः समुत्थाय मूर्द्धानमवरुह्य[3] च । उवाच दारुणतरं[4] वचनं पन्नगाधमः ॥५१
शरणागतं पोषितं च तव पित्रा प्रियङ्करम् । कस्मान्मां हंसि दुष्टात्मन्कथं जीवन्विमोक्ष्यसे ॥५२
अनन्तरं कलकलः सञ्जातो रोदतां[5] नृणाम् । धनेश्वरसुतो दष्टः सर्पेणापि भृशाकुलः ॥५३
अच्युतत्तानन्त गोविन्द कृष्णकृष्णेत्युदीरयन् । धनेश्वरोऽप्यनुप्राप्तः प्रोवाचाकुलया गिरा ॥५४
किं कृतं मम पुत्रेण तव पन्नग विप्रियम् । यदयं भवता मूर्ध्नि स्वभोगेनाभिवेष्टितः ॥५५
मूर्खं मित्रं सुसम्बन्धं हीनजातिजनो हि यः । यः करोत्यबुधोंगारान्स स्वहस्तेन[6] कर्षति ॥५६
तमुवाच च सर्पोऽसौ बाष्पगद्गदया गिरा । निरपराधो भवतः पुत्रेणाहं समाहतः ॥५७

उसकी भी रक्षा करना प्रारम्भ किया। वह छोटा बच्चा घृत पूर्ण पात्रों का आस्वाद लेने लगा, संचित सुगन्धों को सूंघने लगा, धूलियों में लोटने और जल के मध्य चलने लगा था। किन्तु उस वैश्य के द्वारा स्नेह वश रक्षित रहने के नाते वह प्रतिदिन बढ़ने लगा और थोड़े ही दिन में वह भयंकर सर्प हो गया। एक दिन वह वैश्य अपनी दूकान में अपने पुत्र को बैठाकर स्वयं त्रिलोक में विचरण करने वाली गङ्गा में स्नान करने के लिए चला गया। उस वैश्य पुत्र ने दुकान में बैठकर घृत, तेल, जवा और गुड़ आदि का क्रय विक्रय करना लोगों से आरम्भ किया। (भीड के नाते) लेन देन के व्यवहार में तन्मय होने पर (चलते फिरते) उसके पैर के बीच से चञ्चलतावश वह सर्प निकल गया। उसके वृत्तान्त को जानते हुए भी (भाग्य वश वह वैश्य) विक्षिप्त हो गया और भय के मारे बल पूर्वक उसे कुचल दिया। पश्चात् उस अधम सर्प ने पृथ्वी से उठकर अपने फण से उसके शिर को घेर लिया और कड़े शब्दों में उससे कहा—तुम्हारे पिता ने मुझ शरणागत का भली भाँति एवं स्नेहपूर्ण पालन पोषण किया है इसलिए दुष्ट तूँ मुझे क्यों मार रहा है क्यों अपने जीवन का त्याग करना चाहता है।४४-५२। अनन्तर रुदन करने वाले मनुष्यों का अत्यन्त कोलाहल (शोर) होने लगा। लोग कह रहे थे—धनेश्वर! के पुत्र को सर्प ने काट लिया है जिससे वह अत्यन्त मूर्च्छित हो गया है। उसी बीच धनेश्वर भी 'अच्युत', अनन्त, गोविंद और कृष्ण, कृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए वहाँ आये और व्याकुल होकर कहने लगे—पन्नग! मेरे पुत्र ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जिससे तुम उसके शिर में लिपटे पड़े हो। हीन जाति में उत्पन्न होने वाला प्राणी किसी मूर्ख के साथ अपनी मित्रता का संबन्ध स्थापित करता है वह अज्ञानी अपने हांथों (अग्निके) अंगार उठाता है।५३-५६।

---

१. व्यवहरः समारब्धः। २. फलेन फलभोजिनम्। ३. अधिगच्छति। ४. दारुणतमं स्वामिनम्। ५. रोषणः। ६. स्वहतेनापि कर्षति।

तदहं पश्यतस्तेऽद्य दंशाम्येनं नराधिप । यथा न भूयो भूतां भवेदस्मात्क्वचिद्भयम् ॥५८

धनेश्वर उवाच

उपकारं व्रतं भक्त्या स्नेहपाशो न यस्य च । सतां मार्गमपाक्रम्य प्रयातः केन वार्यते ॥५९
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व यावदेव शिशुर्मम । और्ध्वदेहिककर्माणि करोति स्वयमात्मनः ॥६०
एवमुक्त्वा गृहं गत्वा[१] यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । सहस्रं भोजयामास घृतपायसभोजनैः ॥६१
समुत्थाय ततः सर्वे ब्राह्मणा हृष्टमानसाः । वणिक्पुत्रस्योत्तमाङ्गे चिक्षिपुः कुसुमाक्षतान् ॥६२
वणिक्पुत्र चिरं जीव नश्यन्तु तव शत्रवः । अभीष्टकसंसिद्धिरस्तु ते ब्राह्मणाज्ञया ॥६३
ततः स[२] दुष्टप्रकृतिर्विप्र वाग्वज्रताडितः । पन्नगो नगसंकाशः पपात च ममार च ॥६४
विपन्नं पन्नगं दृष्ट्वा त्रस्तचक्षुर्धनेश्वरः । आः किमेतदिति प्रोच्य विषादमगमत्परम् ॥६५
पोषितोऽयं मया बालः पालितो लालितस्तथा । ममापचारात्पञ्चत्वमापन्नः[३] पवनाशन ॥६६
उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरिष्यते ॥६७
इत्येवमवधार्यासौ[४] दुःखसंतप्तमानसः । बुभुजे नाकुलतया न च सुष्वाप तां निशाम् ॥६८
ततः प्रभाते गङ्गायां स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । सहस्रं भोजयामास पुनरेव द्विजन्मनाम् ॥६९

पश्चात् आँसू भरे कण्ठ से गद्गद वाणी द्वारा सर्प ने उससे कहा आप के पुत्र ने मुझ निरपराध को मारा है अतः तुम्हारे सामने ही मैं इसे काटता हूँ' जिससे जीवों को आकस्मिक भय न हो सके ।५७-५८

धनेश्वर बोले—भक्तिपूर्वक जिसने (किसी का) उपकार और व्रतादि का पालन नहीं किया तथा जिसके स्नेह रूप पाश नहीं है वे यदि सज्जनों के मार्ग को छोड़ कर अन्य मार्ग से जाना चाहेंगे तो उन्हें कौन रोक सकता है। इसलिए तू क्षण मात्र ठहर जाओ और तब तक प्रत्याशा करो जब तक यह मेरा पुत्र अपना और्ध्व देहिक कर्म स्वयं नहीं कर लेता है। ऐसा कहकर उस वैश्य ने अपने घर जाकर सहस्रों यतियों और ब्रह्मचारियों को घृत मिश्रित पायस के भोजनों द्वारा तृप्त किया। पश्चात् प्रसन्न चित्त होकर वे सभी ब्राह्मण उस वैश्य पुत्र के शिर पर पुष्पाक्षत डालते हुए कहने लगे—यह वैश्य पुत्र चिरजीवी हो और इसके शत्रु वर्ग नष्ट हो जायं। ब्राह्मणों की आज्ञानुसार तुम्हारे अभीष्ट फल संसिद्धि हो। तदुपरांत ब्राह्मणों के इस प्रकार वाग्वज्र द्वारा ताड़ित होने पर वह दुष्ट प्रकृति वाला पन्नग (सूर्य), जो पर्वत की भाँति भीषणाकार दिखायी देता था गिरा और मर गया। उसे जीवन हीन देखकर अपनी आँखों से समय करुण प्रकट करते हुए धनेश्वर ने 'हा', यह क्या हो गया ।५९-६५। ऐसा कह कर अत्यन्त विषाद प्रकट किया। और कहा भी—इसको मैंने बालपन से पाला पोषा था किन्तु यह वायु भोजी (सर्प) मेरे ही अपकार द्वारा मारा गया। उपकार करने वालों के कोई अपने साधुगणों को प्रकट करता है तो उसके साधुत्व गुण का कोई मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि अपकार करने वाले प्राणियों के साथ ही साधु गुण प्रकट करने वाले ही साधु कहे जाते हैं, ऐसा सज्जनों का कहना है। इस प्रकार विचारमान एवं दुःख ऐसे संतप्त होने के नाते वह वैश्य ने उस रात्रि न भोजन किया और न शयन ! ही किया। अनन्तर प्रातः समय उठकर स्नान एवं देव पितृ तर्पण करके पुनः एक सहस्र ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराया।६६-६९। यथेच्छ भोजन से सन्तुष्ट हो कर

---

१. दत्त्वा। २. सुहृष्टप्रकृतिः। ३. अपकारात्। ४. सम्प्रधार्य।

तैर्भुक्तैरिष्टसंसिद्धैर्ब्राह्मणैरनुमोदितः । वणिक्प्राह ममाभीष्टं संजीवत्वेष पन्नगः ॥७०
ततो द्विजवरोन्मुक्तैरम्बुभिः परिषिंचितः । उदतिष्ठदहीनांगः सहसा हि महाकुलः ॥७१
प्रहर्षमतुलं लेभे दृष्ट्वा तं पुरतः स्थितम् । प्रत्यग्रावयवं दृष्ट्वासृक्किणीपरिलेलिहम्[1] ॥७२
साधुवादो महाञ्जातः प्रशशंसुर्धनेश्वरम् । पुरीनिवासिनः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥७३
सहस्रभोज्यमाहात्म्यं कथितं ते युधिष्ठिर । सम्यक्छ्रद्धाप्रयुक्तस्य किमन्यत्कथयामि ते ॥७४

यच्छन्ति येऽनुदिवसं द्विजपुङ्गवानामन्नं विशुद्धमनसो भृशमागतानाम् ।
मर्त्ये विहृत्य सुचरं ससुहृज्जनास्ते प्रेत्य प्रयान्ति[2] भवनं मुदिता मुरारेः ॥७५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अन्नदानमाहात्म्यवर्णनं[3] नामैकोसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६९

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्थालीदानवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अन्नदानप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतं दृष्टं च यन्मया ॥१
अक्षद्यूतेन भगवन्धनं राज्यं च नोहृतम् । आहूय निष्कृतिप्राज्ञैः कितवैरक्षकोविदैः ॥२

ब्राह्मणों ने वैश्य से अपना मनोरथ प्रकट करने का अनुमोदन किया । वणिक ने कहा—यह सर्प जीवित हो जाये यही मेरी अभिलाषा है । इसे सुनकर ब्राह्मणों ने अभिमंत्रित जल उसके ऊपर डाल दिया, जिससे वह सर्प सहसा अपना अपने नष्ट पुष्प अंगों समेत पुनः जीवित हो गया । अपनी जिह्वा का बार-बार स्वाद लेने वाले उस सर्प को सम्पूर्ण अंगों से स्वस्थ देखकर वैश्य को महान् हर्ष प्राप्त हुआ, जनता में साधु साधु साधु का शब्द गूँजने लगा और धनेश्वर की अत्यन्त प्रशंसा होने लगी एवं सभी ग्रामवासी अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गये । युधिष्ठिर ! तुम्हारी श्रद्धा के वशीभूत होकर मैंने सहस्र भोज्य का माहात्म्य तुम्हें सुना दिया, अब इससे अन्य और क्या कहूँ । विशुद्ध चित्त होकर प्रतिदिन अतिथिरूप में आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अन्न दान से संतृप्त करने वाले सज्जन वृन्द इस भूतल में चिरकाल तक बिहार सुख प्राप्त करने के अनन्तर मुरारि कृष्ण का भवन प्राप्त करते हैं ।७०-७७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवाद में
अन्नदानमाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१६९।

अध्याय १७०

स्थालीदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! इस अन्न दान के माहात्म्य की कथा के प्रसंग में मुझे भी कुछ स्मरण हो रहा है, उसे मैंने जिस भाँति देखा, सुना है, आप से कह रहा हूँ, सुनने की कृपा करें । द्यूत कर्म (जूए

---

१. किंकिणीपरिलेलिहम् । २. प्रेत्येह । ३. सदाव्रतवर्णनम् ।

वनं प्रस्थापिताः सर्वे वल्कलाजिनवाससः । द्रौपद्या सहिताः कृष्ण कर्णदुर्योधनादिभिः ॥३
ज्ञात्वा वनगतानस्मान्ब्राह्मणाः संजितेन्द्रियाः । द्रष्टुमभ्याययुःसर्वे पौराश्चाप्यनुजग्मिरे ॥४
अस्मान् स्नेहात्क्लिश्यमानान्दृष्ट्वा ब्राह्मणसत्तमाः । पौरान्कर्मकरांश्चैव निर्वेदादिदमब्रुवन् ॥५
जीवतो यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवाः । जीवनं[1] तस्य सफलमात्मार्थे को न जीवति ॥६
अभ्यागतं सुहृद्वर्गं कुटुम्बमपहाय च । जीवन्नपि मृतः पापः केवलं स्वोदरम्भरिः ॥७
इत्येवमवधार्याहं तानृषीन्पुनरब्रुवम् । भवन्तः सर्व एवात्र त्रिकालज्ञा महर्षयः ॥८
समागताः मत्प्रियार्थं ज्ञानविज्ञानपारगाः । बत कंचिदुपायं मे भवन्तोभिजनं[2] प्रति ॥९
भवद्भिः सहिताः सर्वे भृत्यैर्भ्रातृभिरेवच । निर्गच्छेयं[3] वने शून्ये द्वादशेमाः समा यथा ॥१०
मामुवाचाथ[4] मैत्रेयः शृणु कौन्तेय मद्वचः । पूर्ववृत्तं प्रवक्ष्यामि दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥११
आसीत्तपोवने काचिद्ब्राह्मणी ब्रह्मचारिणी । दुर्भगा दुर्गता[5] दुःखादाराधयति सा द्विजान् ॥१२
शौचेन तुष्टा मुनयः प्रश्रयेण दमेन च । प्रोचुर्वद विशालाक्षि किं कुर्मस्तव सुव्रते ॥१३
सा तानुवाच किं तन्मे व्रतं दानमथापि वा । कथयध्वं भवेयं[6] वै येन श्रीसुखभागिनी ॥१४

खेलने) में निपुण व्यक्तियों को बुलाकर कर्ण दुर्योधनादि व्यक्तियों ने द्यूत द्वार। हमारे धन और राज्य के अपहरण कर लेने के उपरांत द्रौपदी समेत हमलोगों ने बल्कल और मृगचर्म धारण कराकर जंगल निवास करने केलिए भेज दिया। कृष्ण ! हमें वनवासी होना जानकर संयमी ब्राह्मण वर्ग दर्शनार्थ वहाँ आये और प्रवासी गण भी साथ-साथ आ गये। हमारे स्नेह वश वहाँ आये हुए ग्रामीणों को दुःखी देखकर ब्राह्मणों ने मुझसे कहा—जिसके जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र और बन्धु वर्ग जीवित रहते हैं, उसी का जीवन सफल है योतो अपने लिए कौन नहीं जीवित रहता है। अभ्यागत, मित्र वर्ग, एवं कुटुम्ब के त्याग पूर्वक केवल अपना ही पेट पालने वाला पापी जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है। इसे सुनकर मैंने उन महर्षियों से कहा—आप सभी लोग त्रिकालज्ञ महर्षि हैं एवं ज्ञान विज्ञान के पारगामी विद्वान् हैं केवल मेरे हितार्थ आप लोगों ने मुझे दर्शन दिया है, इसलिए इन सब के भोजनादि सुखार्थ कोई उपाय आप लोग बताने की कृपा करें। जिससे आप लोगों, सेवकों एवं बान्धवों समेत इस शून्य (निर्जन) वन में मेरे बारह वर्ष के समय व्यतीत हो जाँय। उपरान्त मैत्रेय जी ने मुझसे कहा—कौंतेय ! मैं कुछ कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो ! मैं वहीं बात कहना चाहता हूँ जिसे मैंने पूर्वकाल में अपनी दिव्य दृष्टि से देखा है।१-११। इस तपोवन में कोई ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी रहती थी, जो दुर्भगा एवं दुर्गति से पीड़ित थी। वह महान् दुःखों का अनुभव करती हुई भी किसी प्रकार ब्राह्मणों की सेवा करती थी। उसकी पवित्रता, प्रेम और संयम से सन्तुष्ट होकर मुनियों ने उससे कहा—विशालाक्षि ! सुव्रते ! हमलोग तुम्हारा कौन प्रिय उपकार करें। इसे सुनकर उसने कहा—व्रत दान की बातें न कहकर मुझे वही बताने की कृपा करें, जिससे मैं भी समेत सुख भागिनी बन सकूँ तथा प्राणियों (सेवकों आदि) का आधार (स्वामिनी), अनेक

---

१. सफतलं जीवितं तस्य। २. भोजनम्। ३. निर्दहेयम्, निगृहेयम्। ४. अत्र—मैत्रेय उवाच—शृणु कौंतेय मद्वाक्यमवधानेन यत्नतः"—इति पाठो दृश्यते—स च मूलस्थपाठेनैव गतार्थः। ५. दुर्गतिग्रस्ता देवतार्चनतत्परा। ६. पुरा दृष्टठ व्रत दानमथापि वा।

आधारभूता भूतानां बह्वपत्या पतिप्रिया । स्पृहणीया त्रिजगतं त्रिवर्गफलभागिनी ॥१५
वसिष्ठस्तामुवाचाथ शृणुष्व कथयामि ते । दानं मानकरं[1] पुंसां सर्वकामप्रदायकम् ॥१६
कृत्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः । अशक्तस्तु तदर्द्धेन चतुर्थांशेन वा पुनः ॥१७
सर्वशक्तिविहीनस्तु मृण्मयीमपि[2] कारयेत् । सुगम्भीरोदरदरीदृढपण्डकुटुम्बकाम् ॥१८
मुद्गतन्दुलनिष्पन्नसुविस्त्रक्षिप्रपूरिताम् । उपदंशोदकयुतां घृतपात्रसमन्विताम् ॥१९
धौतपार्श्वां धौतकर्णां चर्चितां चन्दनेन च । स्थाप्य मण्डलके वस्त्रैः पुष्पधूपैरथार्चयेत् ॥२०
आदित्येऽहनि संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु वा । एकादश्यां तृतीयायां विप्राय प्रतिपादयेत् ॥२१
ज्वलज्ज्वलनपार्श्वस्थैस्तुण्डलैः सजलैरपि । भवेद्भोज्यसंसिद्धिर्भूतानां पिठरीं विना ॥२२
त्वं सिद्धिं सिद्धिकामानं त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम् । अतस्त्वां प्रणमाम्याशु सत्यं कुरु वचो मम ॥२३
ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गे विप्रे प्रेष्यजने तथा । अभुक्तवति नाश्नीयात्तथा भव वरप्रदा ॥२४
इत्युच्चार्य प्रदातव्या हण्डिका द्विजपुङ्गवे । तुष्टिपुष्टिप्रदा पुंसां सर्वान्मानमभीप्सता ॥२५
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा सा चकार तथैव तु । प्रादात्स्थालीं ब्राह्मणाय बहूनां बहुदक्षिणाम् ॥२६
सा चैषा द्रौपदी पार्थ भवद्भार्याऽभवत्प्रिया । तेन दानप्रभावेण भविताऽशून्यपाणिका ॥२७
एषा सती शची स्वाहा सावित्री भूररुन्धती । श्रीरेषा यत्र वसति न किंचित्तत्र दुर्लभम् ॥२८

सन्तान, पति प्रेयसी, तीनों लोकों की स्पृहणीयता और त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) का सुखानुभव प्राप्त हो सके। वशिष्ठ ने उससे कहा—मैं तुम्हें वह दान बता रहा हूँ, जो प्राणियों के लिए मानप्रद तथा समस्त कामनाओं को सफल करता है, सुनो। पाँच, सौ अथवा अशक्त होने पर तदर्ध या चौथाई पल प्रमाण के ताँबें की और सब भाँति शक्ति हीन होने पर मृत्तिका (मिट्टी) की ही गंभीर, दृढ़दण्ड युक्त स्थाली (बटुलोई) को मूंग, चादल की खिचड़ी से पूर्ण कर मूली आदि और घृत समेत उसे, जिसका पार्श्व भाग और कर्ण (पकड़ने वाला चुल्ला आदि) धौत स्वच्छ हों, चन्दन, चर्चित करते हुए मण्डल में स्थापित और वस्त्र, पुष्प धूपादि से पूजित करे। अनन्तर उस रविवार, संक्रान्ति, चतुर्दश, अष्टमी, एकादशी या तृतीया के दिन ब्राह्मणों को समर्पित करे।१२-२१। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि, जल समेत चावल के रहते हुए भी प्राणियों की भोजन सिद्धि बिना बटुलोई के नहीं हो सकती है। सिद्धि के इच्छुकों की सिद्धि हो, पुष्टि चाहने वालों की पुष्टि हो, अतः तुम्हें प्रणाम करता हूँ, मेरी बातें सत्य करो। बन्धु वर्ग, सुहृद्वर्ग, ब्राह्मण, एवं सेवकों में भी कोई बिना भोजन किये न रहे ऐसा वर प्रदान करो। ऐसा कहते हुए वह दण्डी किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करे जो मनुष्यों की तुष्टि पुष्टि समेत सभी कामनाएँ सफल करती हैं। वसिष्ठ की ऐसी बातें सुनकर उसने उसी प्रकार अधिक दक्षिणा समेत एक स्थाली (बटुलोई) एक ब्राह्मण को अर्पित किया। पार्थ! उसी दान के प्रभाव से द्रौपदी तुम्हारी प्रिय पत्नी हुई है जिनका हाथ कभी भी (पुत्र से) शून्य नहीं रहता है। यही सती इन्द्राणी, स्वाहा, सावित्री, भू और अरुन्धती है यह भी रूप जहाँ निवास करती है वहाँ किसी वस्तु की कभी नहीं रहती है।२२-२८। कौंतेय (द्रौपदी) स्थाली (बटुली) को

---

१. मानप्रदम्। २. वाऽपि।

अनया या भृता स्थाली तया सर्वमिदं जगत् । भोजयिष्यसि कौन्तेय किमतो ब्राह्मणा अमी ।।२९
मैत्रेयात्तदुपश्रुत्य[1] तत्र संहृष्टमानसः । पूर्वं भोजितवानस्मि बहुविप्रजनान्वने ।।३०
अन्नदानप्रसंगेन स्थालीदानमिदं मया । कथितं पुण्डरीकाक्ष क्षन्तव्यमनसूयया ।।३१
स्थालीं विशालवदनां च सतण्डुलां च यच्छन्ति ये मधुरशूल्बमयीं द्विजेभ्यः ।
तेषां सुहृत्स्वजनविप्रजनेन भोज्यं सम्भुज्यमानमपि कृष्ण न याति नाशम् ।।३२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
स्थालीदानविधिवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७०

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः
दासीदानविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

दासीदानमहं तेऽद्य प्रवक्ष्याम्यरिसूदन । भवत्या स्नेहाच्च भवतो यन्नोक्तं केनचित्क्वचित् ।।१
चतुर्णामाश्रमाणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते । गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छ्रेष्ठा वराः स्त्रियः ।।२
पूर्णेन्दुविम्बवदनाः[2] पीनोन्नतपयोधराः । तद्गृहं यत्र दृश्यन्ते योषितः शीलमण्डनाः ।।३

अन्नादि से परिपूर्ण किया है उसी से यह सारा संसार तृप्त हो सकता । इन ब्राह्मणों की कौन सी बात हैं । मैत्रेय (वसिष्ठ) जी की बातें सुनकर मैं ने उस जंगल में अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया था । पुण्डरीकाक्ष ! इस अन्न-दान के प्रसङ्ग में मैंने इस स्थाली (बटुली) दान का भी वर्णन किया अतः इसे क्षमा करेंगे । कृष्ण इस प्रकार विशाल आकार की बनी हुई बटुली (या हंडी) जो तांबे द्वारा सौन्दर्य पूर्ण निर्मित और चावल से पूरिपूर्ण हो, ब्राह्मणों को अर्पित करने वाले पुरुष के यहाँ मित्र, बन्धु वर्ग और ब्राह्मण वृन्दों के भोजन करने पर भी वह कभी रिक्त (खाली) नहीं होती है ।२९-३२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
स्थाली दान विधि वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७०।

अध्याय १७१
दासीदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अरिसूदन ! तुम्हारी भक्ति और स्नेह वश मैं तुम्हें दासी दान बता रहा हूँ, जिसे कहीं कोई जानता ही नहीं । चारो आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, गृहस्थ से गृह श्रेष्ठ और गृह से उत्तम स्त्रियाँ श्रेष्ठ कही गयी हैं । क्योंकि गृह वही कहा जाता है जिसमें पूर्ण चन्द्र के समान मुख, पीत और उन्नत पयोधर एवं शील भूषित स्त्रियाँ निवास करती हैं ।१-३। कुलस्त्रियों की अर्चना (पूर्ण रीति से पालन पोषण) जिस घर में सुसम्पन्न होती है। देवता भी उसी घर में आनन्द मग्न रहकर निवास करते

---

१. मैत्रेयादुपश्रुत्याहमेतद्वृत्तान्तमुत्तमम् । सर्वान्भोजितवानस्मि । २. हिमांशुबिम्बवदनाः ।

जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनंक्ष्यत्याशु तद्गृहम् ।।४
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव सद्यो यान्ति पराभवम् ।।५
अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिवराशयः । रतेरिव निधानानि योषितः केन निर्मिताः ।।६
श्यामा मन्थरगामिन्यः पीनोन्नतपयोधराः । महिष्यो वरनार्यश्च न भवन्ति गृहेगृहे ।।७
अहिरण्यमदासीकल्पान्नाज्यमगोरसम् । गृहं कृपणवृतीनां नरकस्यापरो विधिः ।।८
अदण्डपाशिकं ग्राममदासीकं च यद्गृहम् । अनाज्यं भोजनं यच्च वृथा तदिति मे मतिः ।।९
विभवाभरणा दास्यो यद्गृहं समुपासते । तत्रास्ते पंकजकरा लक्ष्मीः क्षीरोदवासिनी ।।१०
न यत्रास्ति गृहे शौचं न सुखं व्यवहारजम् । यत्र वा नास्तिदास्येका तत्सदैवानवस्थितम् ।।११
यत्र कर्मकरी नास्ति सर्वकर्मकरी सदा । न तच्छान्तं किङ्कराणां करोति शुभतामपि ।।१२
यदेका कुरुते दासी गृहस्थेन भृता हि सा । बहुलोकाकुलो ग्रामो दासीदासाकुलं गृहम् ।।१३
बुद्धिर्धर्माकुला यस्य तस्य चेतः किमाकुलम् । यत्र भार्यागृहे दक्षा दास्यकर्मण्यनुव्रताः ।।१४
भृत्याः सदोद्यमपरास्त्रिवर्गस्तत्र दृश्यते[1] । यद्यदिष्टतमं लोके तत्तद्देयमिति श्रुतिः ।।१५

हैं और जिस घर में उनका सम्मान नहीं होता वह अत्यन्त शीघ्र विनष्ट हो जाता है । क्योंकि जिस घर में असम्मानित होकर कुलस्त्रियाँ उसे शाप देती है वह पर कृत्या द्वारा विनष्ट होने की भाँति सद्यः नष्ट हो जाता है । इसलिए कि स्त्रियाँ अमृत का कुण्ड, सुखों की राशि और रतिका विधान रूप होती हैं अतः आश्चर्य होता है कि इनका निर्माण कर्ता कौन है । श्यामा[1] (षोडशवर्षीया), (स्थूल नितम्ब के नाते) मन्थर गमन करने वाली और पीन उन्नत पयोधर वाली परमोत्तम नारियाँ और भैसें प्रत्येक गृहस्थों के यहाँ नहीं होती हैं ।४-७। जिस कृपण (कार्पण्य) वृत्तिवाले पुरुष के घर में हिरण्य (सोना चाँदी), दासी, (नौकरानी), गोरस न हो और पुत्र घृत पर्याप्त न होता हो वह दूसरा नरक ही है । दण्ड पाशधारी सेवक (द्वारपाल) रहित ग्राम, दासीहीन गृह, घृत हीन भोजन, मेरी सम्मति से ये सभी व्यर्थ हैं । अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित दासी जिस घर में सेवा करती है, उस घर में क्षीर सागर निवासिनी लक्ष्मी हाथ में सुशोभित कमल पुष्प लिए सदैव निवास करती है । जिस घर में पवित्रता, व्यावहारिक सुख और एक भी दासी नहीं रहती है वह घर सदैव अनवस्थित रहता है । उसी भाँति जिस घर में समस्त कार्यों को सुसम्पन्न करने वाली दासी नहीं रहती है उसमें सैकड़ों सेवकों के रहते हुए भी वह शुभ कार्य नहीं हो पाता है, जो स्वामी द्वारा पाली पोषी जाने वाली एक शुभ लक्षणा एवं परिश्रम शीला दासी सुसम्पन्न करती है । जिसके ग्राम में जन संख्या परिपूर्ण हो, घरमें अनेक दास-दासियाँ वर्तमान हों और बुद्धि सदैव धर्मकार्यों में व्यस्त रहती है, क्या उस पुरुष (गृह स्वामी) का चित्त कभी आकुल हो सकता है ।८-१३½। जिस घर में स्त्री (गृहस्वामिनी) अत्यन्त दक्ष (चतुर) कर्मठ दासी और सेवक वर्ग सदैद उद्यम परायण रहते हैं वहाँ तीनों वर्गों (धर्म, अर्थ और काम) की सफलता सदैव दिखायी देती है । मर्त्य लोक में रहकर जो अपना अत्यन्त अभीष्ट वस्तु हो उसका दान, अवश्य करना चाहिए, ऐसा श्रुति का कथन है, इसलिए

---

१. तिष्ठति । २. शोभने शशलांछने ।

१. श्यामा श्यामवर्णा च श्यामा षोडशवार्षिकी । शीतकाले भवेदुष्णा ग्रीष्मे च सुखशीतला ।।

एतद्विचार्य हृदये देया दासी द्विजातये । स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सोमे[1] सौम्यग्रहान्विते ।।१६
दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्वणि वा पुनः । अलङ्कृत्य यथाशक्त्या वासोभिर्भूषणैस्तथा ।।१७
ब्राह्मणाय प्रदातव्या मन्त्रेणानेन कौरव[2] । इयं दासी मया तुभ्यं भगवन्प्रतिपादिता ।।१८
कर्मोपयोज्या भोज्या वा यथेष्टं भद्रमस्तु[3] ते । दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्ब्राह्मणं काञ्चनेन तम् ।।१९
अनुव्रज्य गृहद्वारं यावत्पश्चाद्विसर्जयेत् । अनेन विधिना दद्यादंकस्त्वा सुरालये ।।२०
मखे चापि महाराज प्रसिद्धे वा प्रतिश्रये । सर्वकर्मकरीं दत्त्वा तरुणीं रूपशालिनीम् ।।२१
प्राप्यते यत्फलं पुंभिःपार्थ तत्केन वर्ण्यते ।।२२

दासीं समीक्ष्य बहुशो गृहकर्मदक्षां यो ब्राह्मणाय कुलशीलवते ददाति ।
विद्याधराधिपशतैरपि पूजितोऽसौ लोकात्रिलोकरमयाप्सरसां प्रयाति ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दासीदानविधिवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७१

अपने हृदय में इन बातों पर विचार विमर्श करके दासी दान ब्राह्मण को अवश्य अर्पित करना चाहिए । स्थिर नक्षत्र, सौम्यग्रह युक्त चन्द्रमा (सोम) का दिन या पर्व दिवस प्रशस्त दान काल बताया गया है । कौरव ! इसलिए यथा शक्ति वस्त्राभूषण से सुशोभित दासी का दान इस मंत्र द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित करना चाहिए—भगवन् ! मैंने यह दासी आप की सेवा में अर्पित की है अतः आप के यथेष्ट कार्यों को यह सुसम्पन्न करती रहेगी । यह कहकर काञ्चन समेत दासी ब्राह्मण को अर्पित करते हुए गृह के दरवाजे तक अनुगमन करके विसर्जित करे । महराज ! इस विधान द्वारा देवालय, यज्ञ, अथवा किसी प्रसिद्ध स्थान में समस्त कार्यों को सुसम्पन्न करने वाली दासी, जो तरुणी एवं रूप सौन्दर्य सम्पन्न हो, ब्राह्मण को अर्पित करने में कौन समर्थ हो सकता है । इस प्रकार गृह कर्म में अत्यन्त निपुण दासी किसी कुलशील वाले ब्राह्मण की सेवा में अर्पित करने वाला मनुष्य विद्याधरों के सैकड़ों अधिनायकों द्वारा पूजित होकर लोक में त्रिलोक सुन्दरी अप्सराओं से नित्य सुसेवित होता है ।१४-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
दासीदानविधानवर्णन नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७१।

---

१. शोभने शशलांछने । २. गौरिव । ३. अश्नुते । ४. कस्याः ।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रपादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रपादानस्य माहात्म्यं वद देवकिनन्दन । कथं देया कदा देया दाने तस्याश्च[1] किं फलम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रे महोत्सवे । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते ग्रहचन्द्रबलान्विते ॥२
मण्डपं कारयेद्विद्वान्घनच्छायं मनोरमम् । पुरस्य मध्ये पथि वा कान्तारे तोयवर्जिते ॥३
देवतायतने वापि चैत्यवृक्षतलेऽपि[2] वा । सुशीतलं च रम्यं च विचित्रासनसंयुतम् ॥४
कारयेन्मण्डपं भव्यं शीतवातसहं[3] दृढम् । तन्मध्ये स्थापयेद्भक्त्या मणीन्कुम्भांश्च शोभनान् ॥५
अकालमूलान्करकान्वस्त्रैरावेष्टितानथ । ब्राह्मणः शीलसम्पन्नो वृत्तिं[4] दत्त्वा यथोचिताम् ॥६
प्रपापालः प्रकर्तव्यो[5] बहुपुत्रपरिच्छदः । पानीयपानेनाश्रान्तान्यः कारयति मानवान् ॥७
एवंविधां प्रपां कृत्वा शुभेऽह्नि विधिपूर्वकम् । यथा शक्त्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे भोजयेद्द्विजान् ॥८
ततश्चोत्सर्जयेद्विप्रान्मन्त्रेणानेन मानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता[6] ॥९
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टम् ॥१०

अध्याय १७२

प्रपादान (प्याऊ) विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवकिनन्दन ! मुझे (प्याऊ) दान का महत्त्व बताने की कृपा करें, वह दान किस विधान द्वारा और किस समय दिया जाता है एवं उस दान का फल क्या है ।१

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन मास के व्यतीत होने के अनन्तर चैत्रमास के उस महोत्सव के समय, जो ग्रहबल और चन्द्रबल समेत पुण्य अवसर कहलाता है, घने छाया वाले एक मनोरम मण्डप का निर्माण करे जो गाँव के मध्य, किसी मार्ग, जल विहीन, देवालय, या चैत्य वृक्ष की छाया में निश्चित हो और सुशीतल, रमणीयक, विचित्र आसन युक्त, भव्या भाग में मृत्तिका के सुन्दर और दृढ़ घड़े और पानी पिलाने के लिए 'करवा' रखे तथा इन्हें वस्त्राच्छादित किये रहे । किसी शील सम्पन्न ब्राह्मण को जिसके अनेक पुत्र हों, उचित वेतन द्वारा वैतनिक रूप में वहाँ उस कार्य के लिए नियुक्त करे । जो श्रान्त प्राणियों को जलपान द्वारा प्रभान्त (सुखी) बनाने की चेष्टा करता रहे । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार किसी शुभ अवसर पर सविधान उस प्रपा (प्यऊ) को स्थापित कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन भी उसके आरम्भ में सम्पन्न करे ।२-८। और उसके अनन्तर इस मन्त्र द्वारा उसका उत्सर्जन करे सभी प्राणियों के (जलपान करानेके) निमित्त सर्वसाधरण प्याऊ मैंने प्रारम्भ कर दिया है, जिसके प्रदान से पितृपितामहगण भली भाँति तृप्त हों।

---

१. कस्याः । २. अथ वा, तथा । ३. शीतवातमहम्—इति पाठे शीतवाताभ्यं मह उत्सवो यस्मिंत्तमित्यर्थः । ४. भृतिम् । ५. तु कर्तव्यः । ६. प्रतिपादये ।

त्रिपक्षं वा महाराज जीवानां[1] जीवनं परम् । गन्धाढचं सुरसं शीतं शोभने भाजने स्थितम् ।।११
प्रदद्यादप्रतिहतं मुखं चानवलोकयन्[2] । प्रत्यहं कारयेत्तस्यां शक्तितो द्विजभोजनम् ।।१२
अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मोष्मशोषनाशनम् । पानीयमुत्तमं दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ।।१३
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु च यत्फलम् । तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूजितः ।।१४
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं[3] विमानं सोऽधिरुह्य च । याति देवेन्द्र नगरे पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।।१५
विंशत्कोटचो हि वर्षाणां यक्षगन्धर्वसेवितः । पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ।।१६
ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । प्रपादानसमर्थेन विशेषाद्धर्ममीप्सता ।।१७
प्रत्यहं धर्मघटकः कर्पटावेष्टिताननः । ब्राह्मणस्य गृहे नेयः शीताऽमलजलः शुचिः ।।१८
तस्यैवोद्यापनं कार्यं मासिमासि नरोत्तम । मण्डकावेष्टिकाभिश्च पक्वान्नैः सार्वकामिकैः ।।१९
उद्दिश्य शङ्करं विष्णुं ब्राह्मणं कुरुनन्दन । सलिलं प्रोक्षयित्वा तु मन्त्रेणानेन मानवः ।।२०
एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सफला मम सन्तु मनोरथाः ।।२१

(इति धर्मघटदानमंत्रः)

अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ।।२२
धर्मकुम्भप्रदानेऽपि यद्यशक्तः पुमान्भवेत् । तेनाश्वत्थतरोर्मूलं सेच्यं नित्यं[4] जितात्मना ।।२३

पश्चात् चार मास तक अनिवार्य वह (प्याऊ का कार्य) चलाता रहे । महाराज ! जीवों के जीवन रूप यह जल दान जो सुगन्धित, सुरस (स्वादिष्ट) और शीतल रूप में किसी शोभन पात्र में रखा रहे, (कम से कम) तीन पक्ष (डेढ़ मास) तक अवश्य सुसम्पन्न करे । पानी पिलाते समय पीने वाले का मुख न देखकर यह कार्य व्यापार अप्रतिहत अनिवार्य रूप से किया करें इस विधान द्वारा ग्रीष्म की उष्णता का अपहरण करने में समर्थ इस उत्तम जल दान से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ, सुनो! समस्त तीर्थों और सम्पूर्ण दानों द्वारा जिन फलों की प्राप्ति होती है वे सभी इसके द्वारा प्राप्त होते हैं और अन्त में समस्त देवों से पूजित होकर पूर्व चन्द्रमा के समान विमान पर सुशोभित तथा अप्सरागणों से सुसेवित होते हुए वह भी देवेन्द्र नगर (स्वर्ग) पहुँचता है । वहाँ यक्ष गन्धर्वों द्वारा बीस कोटि वर्षों तक सुखानुभव करने के उपरान्त क्षीण पुण्य के समय इसलोक में चतुर्वेदी ब्राह्मण होता है ।९-१६। पुनः अन्त में निधन होने पर वहाँ से वह पद प्राप्त करता है जहाँ से इस लोक में आना अत्यन्त दुर्लभ रहता है । धर्म का विशेष इच्छा वश प्रपा दान (प्याऊ) की असमर्थता में मनुष्य को पवित्र प्रमल जल पूर्ण एक घड़े वस्त्राच्छन्न करके प्रतिदिन ब्राह्मण के घर अर्पित करना चाहिए । नरोत्तम ! प्रतिमास भाँति-भाँति के पक्वान्नों समेत वस्त्राच्छन्न जल-कलश द्वारा उद्यापन कार्य सुसम्पन्न करे । कुरुनन्दन ! शङ्कर, विष्णु और ब्रह्मा के उद्देश्य से मनुष्य को इस मंत्र द्वारा जल प्रोक्षण करना चाहिए । ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक यह धर्म घट मैंने अर्पित किया है अतः इसके प्रदान द्वारा मेरे सभी मनोरथ सफल हों—ऐसा कहकर अर्पित करे । १७-२१। इस विधान द्वारा धर्म कलश का दान करने वाला मनुष्य निस्सन्देह प्रपा (प्याउ) दान का फल प्राप्त करता है । इस भाँति के धर्म घर के दान करने में भी असमर्थ रहने वाले मनुष्य को सयंम पूर्वक प्रतिदिन पीपल

---

१. जीविनाम् । २. वा न विलोकयेत् । ३. स्वर्णकुंभप्रतीकाशम् । ४. ब्रह्मघटः ।

अश्वत्थरूपी भगवान्प्रीयतां मे जनार्दनः । इत्युच्चार्य नमस्कृत्य प्रत्यहं पापनाशनम् ॥२४
यः करोति तरोर्मूले सेकं मासचतुष्टयम् । सोपि तत्फलमाप्नोति श्रुतिरेषा सनातनी ॥२५
सुस्वादुशीतसलिला क्लमनाशिनी च प्रान्ते पुरस्य पथि पान्थसमाजभूमौ ।
यस्य प्रपा भवति सर्वजनोपभोग्या धर्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके ॥२६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
प्रपादानविधिवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७२

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्नीष्टिकादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अग्नीष्टिका कथं देया शिशिरे शीतभीरुभिः । सर्वसत्त्वोपकाराय करुणीकृतमानसैः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अग्नीष्टिकामहं पार्थ कथयामि निबोध ताम् । यथा येन विधानेन सर्वस्त्वसुखप्रदाम् ॥२
आदौ मार्गशिरे मासि शोभने दिवसे शुभाम् । अग्नीष्टिकां कारयित्वा[1] सुखासनवतीं शुभाम्[2] ॥३

वृक्ष के मूल भाग सेचन करना चाहिए । 'अश्वत्थ (पीपल) दृक्ष रूपी भगवान् जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्न हों' ऐसा कहते हुए उन पापनाशक को प्रतिदिन नमस्कार करे । इस प्रकार निरन्तर चार मास तक पीपल वृक्ष के मूल भाग (जड़) का सेचन करने वाला प्राणी भी वही फल प्राप्त करता है, ऐसा सनातनी श्रुति (वेदों) का कथन है । इस भाँति सुस्वादु, शीतल जल पूर्ण । खेदनाशिनी अपा (प्याऊ) का दान जिससे समस्त जन सुखी हों अपने नगर गाँव के समीप या किसी चौराहे पर नित्य करने वाला मनुष्य धर्म मूर्ति के रूप में इसलोक में वही जीवित कहा जाता है ।२२-२६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
प्रपादान विधि वर्णन नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७२।

अध्याय १७३

अग्नीष्टिका (अंगीठी) दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—शिशिर ऋतु में शीत भीरु प्राणियों द्वारा जो अत्यन्त कारुणिक होते हैं, समस्त प्राणियों के उपकारार्थ अग्नीष्टिका (अंगीठी) का दान किस भाँति किया जाता है ।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें अग्नीष्टिका (अंगीठी) का विधान बता रहा हूँ, जिससे वह समस्त प्राणियों के लिए सुखप्रद होती है, सुनो ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास के प्रारम्भ में किसी शुभ

---

१. कारयेत्तु । २. दृढ़ाम् ।

देवाङ्गणे पथे गेहे विस्तीर्णे चत्वरेऽथ वा । उभयोः सन्ध्ययोः कृत्वा संशुष्कं काष्ठसञ्चयम् ।।४
ततः प्रज्वालयेदग्निं हुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात् । अनेन विधिना हुत्वा प्रत्यहं ज्वालयेत्ततः ।।५
यदि कश्चित्क्षुधार्थी स्याद्भोज्यं तस्मै[1] प्रकल्पयेत् । सुखासीनो जनस्तत्र विशीतो विज्वरस्तथा ।।६
यः करोति कथाः पार्थ न ताः शक्या मयोदितुम् । राजवार्ता जनवार्ता यदि कश्चिन्निजेच्छया ।।७
वदेल्लोकः सुखासीनो न केनापि निवार्यते । अनेन विधिना यस्तु दद्यादग्नीष्टिकां नरः ।।८
तस्य पुण्यफलं राजन् कथ्यमानं निबोध मे । विमाने चार्कसंकाशे समारूढो महाधने ।।९
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । हर्षितोऽत्यन्तसुखितो ब्रह्मलोके महीयते ।।१०
इह लोकेवतीर्णश्च चतुर्वेदो द्विजो भवेत् । नीरुजः सत्रयाजी च अग्निवत्तेजसान्वितः ।।११

चैत्येसुराङ्गणसभावसथे सुभव्यां येऽग्नीष्टिकां प्रचुरकाष्ठवतीं प्रदद्युः ।
हेमन्तशैशिरऋतौ सुखदा जनानां कायाग्निदीपनमलं पुनराप्नुवन्ति ।।१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अग्नीष्टिकादानविधिवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७३

दिवस सुन्दर शुभासन युक्त अंगीठी बनाकर देवालय के प्राङ्गण, मार्ग, गृह या विस्तृत चौराहे पर दोनों संध्या समय रखकर उसमें सूखे काष्ठ का संचय करते हुए उसी प्रज्वलित अग्नि में सर्वप्रथम व्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक आहुति डालना चाहिए । उसी भाँति प्रतिदिन हवन पूर्वक उसे प्रज्वलित रखना बताया गया है । यदि उस समय कोई क्षुधा पीड़ित प्राणी आ जाता है तो उसके लिए भोजन की भी व्यवस्था करे जिससे वहाँ का जन वर्ग सुखपूर्वक अपने गीत का अपना कर सके । पार्थ ! वहाँ स्थित मनुष्यों की आपस में जो कथाएँ आदि होती रहती हैं उसे बताने में असमर्थ हूँ क्योंकि कोई राजचर्चा, कोई जनवार्ता करता रहता है और यदि कोई स्वेच्छया कुछ भी कहता है तो उसे कौन रोक सकता है । राजन् ! इस विधान द्वारा अंगीठी दान करने वाले मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य सन्निभ विमान पर जो अत्यन्त धनपूर्ण रहता है, बैठकर अत्यन्त सुख पूर्वक ब्रह्मलोक में पहुँचने पर वह मनुष्य वहाँ साठ सहस्र और साठ वर्ष तक पूजित होता है ।२-१०। पुनः कभी इस लोक में आने पर वह चतुर्वेदी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होता है और अग्नि के समान तेजस्वी रहकर वह सदैव नीरोग और याज्ञिक होता है । इस प्रकार चैत्य, देवालय प्राङ्गण, सभा, या चौराहे पर हेमंत शिशिर के दिनों में प्रचुर काष्ठों की अंगीठी का जो अत्यन्त सुन्दर और मनुष्यों को सुखप्रदा होती है, दान करने वाले शरीरादि दान फल प्राप्त करते हैं ।११-१२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
अग्नीष्टिका दान विधि वर्णन नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७३।

---

१. तस्य ।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

विद्यादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

बहुप्रदानं गोदानं त्वत्तो विद्वञ्छ्रुतं मया । भूमिदानस्य माहात्म्यं विधिश्चैवावधारितः ॥१
साम्प्रतं यदुशार्दूल विद्यादानस्य यो विधिः । तमहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व जनार्दन ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

विद्यादानविधिं वक्ष्ये याथातथ्येन तेऽधुना । यथादेयं फलं यच्च दत्तेन कुरुनन्दन ॥३
शुभेऽह्नि विप्रकथिते गोमयेन सुशोभनम् । कारयेन्मण्डलं[1] दिव्यं चतुरस्रं समन्ततः ॥४
पुष्पप्रकरसञ्छन्नं स्वस्तिकाद्विविभूषितम् । पुस्तकं तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः समर्च्चयेत् ॥५
सौवर्णी लेखनी कार्या रौप्यं च मषिभाजनम् । लेखकं पूजयित्वा तु आरम्भं[2] कारयेत्सुधीः ॥६
विनीतश्चाप्रमत्तश्च ततः प्रभृति लेखकः । मात्रानुस्वारसंयुक्तं पदच्छेदसमन्वितम्[3] ॥७
समानि समशीर्षाणि वर्तुलानि घनानि च । लेखयेदक्षराणीह तद्गतेनान्तरात्मना ॥८
निष्पादयित्वा तच्छास्त्रं शैवं वाप्यथ वैष्णवम् । निष्पादिते ततः पूज्यो लेखको वस्त्रभूषणैः ॥९
सम्पूजयित्वा तच्छास्त्रं देयं गुणवते तदा[4] । शास्त्रसद्भावविदुषे वाचके च प्रियम्वदे ॥१०

अध्याय १७४

विद्यादान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—विद्वन् ! मैंने आप के द्वारा अनेक दान समेत गोदान विधि और भूमि दान का माहात्म्य भली भाँति श्रवण कर लिया है । यदुशार्दूल, जनार्दन ! अब मुझे विद्यादान का विधान सुनने की इच्छा है, बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—कुरुनन्दन ! मैं तुम्हें विद्यादान का विधान, जिससे वह दान दिया जाता है और उसके जो फल प्राप्त होते हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! ब्राह्मण द्वारा निश्चित किये गये किसी शुभ अवसर पर गोमय (गोबर) से लिपी हुई भूमि में एक दिव्य, सुशोभन और चौकर मण्डप का, जो पुष्पों से चारों ओर आच्छन्न स्वस्तिका आदि शुभ चिन्हों से भूषित हो, निर्माण करके उसमें पुस्तक का स्थापन और गन्ध-पुष्प द्वारा उसकी अर्चना करे । उसके साथ सुवर्ण की लेखनी और चाँदी की मसीपात्र (दवात) भी आरम्भ के समय रखना चाहिए । अनन्तर विनय विनम्र और आलस्य हीन होकर लेखक को उसी दिन से मात्रा, अनुस्वार पदच्छेद और समान समशीर्षक की (सीधीलाईन) समेत अक्षरों का लिखना आरम्भ करना चाहिए, जो गोलाकार और घने हों ।३-७। इस प्रकार तन्मयता से शैव या वैष्णव शास्त्र को लेखबद्ध करदेने के उपरान्त वस्त्राभूषण द्वारा लेखक की अर्चना करनी चाहिए और शास्त्र भी सविधि अर्चा करके उसे किसी गुणी पुरुष को अर्पित करे, जो सद्भावना पूर्ण शास्त्र मर्मज्ञ और मधुर भाषी एवं

---

१. मण्डम् । २. विप्रमाकारयेत् । ३. पदबन्धसमन्वितम् । ४. सदा ।

वस्त्रयुग्मेन सम्वीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् । सामान्यं सर्वलोकानां स्थापयेदथ वा मठे ॥११
अनेन विधिना दत्त्वा यत्फलं प्राप्नुयान्नरः । तदहं ते प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध तत् ॥१२
यत्पुण्यं तीर्थयात्रायां यत्पुण्यं यज्वनां[1] तथा । तत्पुण्यं कोटिगुणितं विद्यादानाल्लभेन्नरः ॥१३
कपिलानां सहस्रेण सम्यग्दत्तेन यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकस्य[2] प्रदायकः ॥१४
पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा । दत्त्वा यत्फलमाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते ॥१५
प्रातरुत्थाय यः शिष्यानध्यापयति यत्नतः[3] । वेदं शास्त्रं नृत्यगीतं कस्तेन सदृशः कृती ॥१६
उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्वाऽध्यापयते जनः । किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थदर्शिना ॥१७
छात्राणां भोजनाभ्यंगं वस्त्रं भिक्षामथापि वा । दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः[4] सर्वकामान्न संशयः ॥१८
विवेको जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थसम्पदः । सर्वं तेन भवेद्दत्तं छात्राणां पोषणे कृते ॥१९
शास्त्रं शस्त्रकलाशिल्पं यो यदिच्छेदुपार्जितुम् । तस्योपकारकरणे पार्थ कार्यं सदा मनः ॥२०
वाजपेयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ॥२१
शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवनेऽथ वा । यः कारयति धर्मात्मा सदा पुस्तकवाचनम् ॥२२
गोभूहिरण्यवासांसि शयनान्यासनानि च । प्रत्यहं तेन दत्तानि भवन्ति भरतर्षभ ॥२३

वाचक (व्यास) हो, अथवा युग्म वस्त्र से आच्छादित उस पुस्तक को समस्त जनों के हितार्थ किसी मठ में स्थापित करे। युधिष्ठिर ! इस विधान द्वारा इसके दान करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीर्थ यात्रा के समस्त पुण्य और यज्ञानुष्ठान द्वारा जितने पुण्य की प्राप्ति होती है, उतने कोटि गुना पुण्यफल मनुष्यों को विद्या दान द्वारा प्राप्त होते हैं। सहस्र कपिलाओं के सविधि दान करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है वह फल पुस्तक प्रदाता को अवश्य प्राप्त होता है। पार्थ ! पुराण, महाभारत, अथवा रामायण आदि के दान द्वारा जिन फलों की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है।८-१५। प्रातः उठ कर नित्य कर्म के अनन्तर जो सप्रयत्न शिष्यों को वेदशास्त्र का या नृत्य गान का अध्ययन कराता है उस सुकृती के समान अन्य कौन हो सकता है। जिसके (वृत्ति) वेतन प्रदान द्वारा उपाध्याय (अध्यापक) नियुक्त कर अध्ययन का कार्य कराता है तो उस धमार्थ दर्शी पुरुष ने कौन दान नहीं किया। क्योंकि छात्रों को भोजन, अभ्यंग, वस्त्र, और भिक्षा प्रदान करने वाला पुरुष अपनी समस्त कामनाओं को सफल करता है इसमें संशय नहीं।१६-२१। छात्र वृन्दों के पालन-पोषण करने के नाते उस पुरुष ने विवेक, दीर्घ जीवन और धर्म, अर्थ काम आदि समस्त का दान किया इसमें संदेह नहीं। पार्थ जिसके विद्यालय में शास्त्रों के अध्ययन, शास्त्रों की कलाएँ, शिल्पी (कारीगरी) आदि का यथेच्छ छात्र वृन्द करते हैं मैं उसके उपकार की बातें सदैव सोचा करता हूँ। सहस्र वाजपेय के सविधान सुसम्पन्न करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है वे समस्त फल विद्यादान द्वारा प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं। भारतर्षभ ! शिवालय, विष्णु मन्दिर सूर्य भवन आदि कहीं भी पुस्तक वाचन कराने वाला धर्मात्मा गौ, पृथिवी, हिरण्य, वस्त्र, शयनासन आदि के दान प्रतिदिन करता है इसमें संदेह नहीं। विद्याहीन पुरुष के धर्माधर्म का ज्ञान नहीं रहता है अतः धर्मात्मा

---

१. यज्ञयाजिनाम् । २. पुस्तकैकप्रदायकः । ३. पंक्तितः । ४. जनम् ।

धर्माधर्मं न जानाति विद्यया रहितः पुमान् । तस्मात्सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत् ॥२४
त्रैलोक्यं चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ॥२५
चतुर्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततिसंख्यया । कल्पं विष्णुपुरे तिष्ठेत्पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥२६
क्षितिं योपेत्य[1] कालान्ते राजा भवति धार्मिकः । हस्त्यश्वरथदानाढ्यो दाता भोक्ता विमत्सरी ॥२७
रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्नीरुजो भवेत् । पुत्रैः पौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥२८

दानं विशेषफलदं जगतीह[2] नान्याद्विद्यां विहाय वदनाब्जकृताधिवासाम् ।
गोभूहिरण्यगजवाजिरथादिसर्वं तां यच्छतां किमिह पार्थ भवेन्न दत्तम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विद्यादानविधिवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः १७४

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तुलापुरुषदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा प्रियव्रतो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य तु । पालयामास वसुधां प्रजापतिरिवापरः ॥१
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि पालयित्वा महीमिमाम् । सप्तद्वीपान्विभज्यासौ पुत्रेभ्यः प्रददौ विभुः ॥२

पुरुष को सदैव विद्या दान करने में ही निरत (तन्मय) रहना चाहिए । तीनों लोक चारो वर्ण, चारों आश्रम और ब्रह्मा आदि समस्त देवगण विद्यादान में सदैव प्रतिष्ठित रहते हैं । राजेन्द्र ! वह विद्या दानी धर्मात्मा इकहत्तर कल्प तक चारो युग के समय विष्णु लोक में सुरासुर द्वारा पूजित होता रहता है । अनन्तर इस भूतल में कभी आने पर धार्मिक राजा होता है, जो हाथी, घोड़े, और रथ का दान करते हुए दाता और मत्सरहीन भोक्ता रहता है । रूप सौन्दर्य और सौभाग्य से सम्पन्न होकर दीर्घायु, नीरोग रहते हुए पुत्र पौत्रों समेत सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । पार्थ ! मुख कमल में अधिवास करने वाली विद्या के अतिरिक्त अन्य दान इसभूतल में विशेष फल दायक नहीं अतः उसके दान करने वाले पुरुष ने गौ, भूमि, हिरण्य (सुवर्ण, चाँदी), गज, अश्व एवं रथ आदि सभी नहीं किया क्या ।२२-२९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विद्यादान विधि वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७४।

अध्याय १७५

तुलापुरुषदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन काल में स्वायम्भुव पुत्र राजा प्रियव्रत ने (अपने राज्यकाल में) इस वसुधा का पालन पोषण एक अपर प्रजापति की भाँति किया था । उस विभु राजा ने तीस सहस्र वर्ष तक इस पृथ्वी का भली भाँति पालन पोषण करके सातों द्वीपों को अपने पुत्रों में विभक्त कर दिया ।१-२। अनन्तर अपने

---

१. पुरुषर्षभ । २. विद्याविरहितः । ३. सुरैर्नरैः । ४. वाऽऽगत्य । ५. शरदः । ६. भवति ।

राज्ये निक्षिप्य तनयान्सप्तद्वीपेषु सप्त सः । विषयानुपसंहृत्य जगाम तपसे वनम् ॥३
तपोवनगतं श्रुत्वा राजानं परमद्युतिम् । समाजग्मुर्महात्मान ऋषयस्तं दिदृक्षवः[1] ॥४
तानागतानृषीन्दृष्ट्वा तपोनिर्धूतकल्मषान् । पूजयामास मेधावी विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५
पाद्यार्घ्याचमनीयेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च । अथ तेषूपविष्टेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु ॥६
आजगाम महातेजाः पुलस्त्यो ब्राह्मणः सुतः । दीप्यमानो महातेजा द्वितीय इव भास्करः[2] ॥७
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे स च राजा महारथः । उत्तस्थुर्विस्मिताः सर्वे प्रोत्फुल्लनयनास्ततः ॥८
कृत्वा तु सम्विदं तेन यथायोग्यं विधानतः । विष्टरं च ददुस्तस्मै पाद्यार्घ्याचमनादिकम् ॥९
ततस्तु मुनयः सर्वे समासीन यथासुखम् । चक्रुः कथा मुदायुक्ता वेदोक्तविविधाश्रयाः ॥१०
ततः कथान्ते कस्मिंश्चिन्मुनयस्ते सराजकाः । पप्रच्छुर्ब्रह्मतनयं लोकानां हितकाम्यया ॥११

ऋषय ऊचुः

भगवन्केन दानेन व्रतेन नियमेन वा । प्राप्यते सद्गतिः पुम्भिः स्त्रीभिश्च मुनिसत्तम ॥१२
इच्छामः श्रोतुमेतत्ते राजा चायं यतव्रतः

पुलस्त्य उवाच

शृणध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं पापनाशनम् ॥१३
उत्तमं सर्वदानानां समवायं[3] वदामि वः । यद्दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृघ्नो गुरुतल्पगः ॥१४

सातों पुत्रों को अपने अपने राज्य सिंहासनों पर सुखासीन करके राजा ने संयम द्वारा विषयों से अपनी इन्द्रियों को विमुख और संयत करते हुए तप करने के लिए जंगल को प्रस्थान किया । उस परम तेजस्वी राजा का वन गमन सुनकर ऋषि महात्मागण उनके दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए । मेधावी राजा ने अपने यहाँ उन ऋषियों का, जो अपने नैष्ठिक तप द्वारा पापों को विनष्ट कर दिये हैं, आगमन देखकर उनकी सविधि अर्चना की—पाद्य अर्घ्य और आचमनीयं जल दान आदि तथा मधुर प्रश्नोत्तर द्वारा सुखी बनाया अनन्तर उन ब्राह्मण महात्माओं के शांतचित्त सुखासीन होने पर ब्रह्मपुत्र महातेजस्वी पुलस्त्य जी का आगमन हुआ जो तेज से देदीप्यमान होने के नाते दूसरे भास्कर की भाँति दिखायी दे रहे थे । उन्हें देखकर महारथी राजा और समस्त मुनिगणों ने अपने विस्फारित नेत्रों से आश्चर्य प्रकट करते हुए अपने आसनों पर उठकर उनका स्वागत किया । यथायोग्य एवं सविधान कुशल वार्ता के उपरान्त राजा ने आसन पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय जलादि द्वारा उनकी अर्चना की । पश्चात् सभी महर्षि गण सुखासीन रहकर वेद सम्बन्धी विविध कथाओं की प्रसन्नमुखमुद्रा में चर्चा करने लगे । कथाओं की सम्मत्ति होने पर राजा समेत मुनियों ने लोक हितार्थ ब्रह्मपुत्र पुलस्त्य से पूँछा—३-११

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! मुनिसत्तम किस दान, व्रत अथवा नियम द्वारा सभी पुरुषों को सद्गति प्राप्त होती है, इसे जानने के लिए हम लोग और यतव्रती राजा भी समुत्सुक हैं ।१२

पुलस्त्य बोले—मुनिवृन्द ! मैं उस पापनाशक का रहस्य, जो सर्वश्रेष्ठ, और समस्त दानों से समन्वित हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! उसके दान करने से ब्राह्मण, गौ और पिता आदि की हत्या करने वाला, गुरुपत्नीगामी ।१३-१४

---

१. गोभूहिरण्यतिलवस्त्रगजाश्वमध्ये विद्याप्रदां किमिह पार्थ भवेन्न वेद । २. तद्दिदृक्षया । ३. पावकः ।

कृतघ्नः कूटसाक्षी च मुच्यते पातकान्नरः । सद्यो दिव्यतनुश्चैव जायते स्त्री तथैव च ॥१५
कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैश्च तुलापुरुषसंज्ञितैः । व्रतैश्च पातयेद्देहमाकाङ्क्षन्ब्रह्मणः[1] पदम् ॥१६
कृच्छ्राचान्द्रायणादीनि व्रतानि मुनिसत्तमाः । ब्राह्मणानां वनस्थानां भिक्षो रण्डाजनस्य च ॥१७
कायक्लेशेन सिध्यन्ति गृहस्थेषु न तानि वै । महाधनाश्च ये लोका राजानो[2] रत्नभागिनः ॥१८
न तेषां कृच्छ्रासाध्योऽपि क्वचिद्धर्मः प्रशस्यते । यदेतद्द्रविणं नाम प्राणाश्चैते बहिश्चराः ॥१९
तस्माद्बहिश्चरैः प्राणैरात्मा[3] योज्यः सदा बुधैः । द्रव्याणामुत्तमं लोके काञ्चनं सार्वकामिकम् ॥२०
अपत्यं सुरमुख्यस्य ज्येष्ठं चैव[4] विभावसोः । तेन सार्द्धं य आत्मानं तोलयेत्प्रयतो बुधः ॥२१
विधूय सर्वपापानि सद्यो दिव्यतनुर्भवेत् । एतत्पुलस्त्यमुनिना ऋषीणां पार्थिवस्य च ॥२२
समाख्यातं नृपश्रेष्ठ तेभ्यश्च तन्मया श्रुतम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

तुलापुरुषदानस्य विधानं परमेश्वर[5] ॥२३
कथयस्व महाभाग मम भक्तानुकम्पया[6] ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वावहितो राजन्विधानं गदता मम ॥२४

कृतघ्नी और कूटसाक्षी (झूठी गवाही) देनेवाला अपने पापों से मुक्त हो जाता है । चाहे स्त्री ही क्यों न हो, उसकी भी उसी समय दिव्य देह हो जाती है । ब्रह्मपदाभिलाषी पुरुषों को तुलापुरुष वाले कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों के अनुष्ठान द्वारा शरीर का शोषण करना चाहिए । क्योंकि वनस्थित तपस्वी ब्राह्मण, भिक्षुक (संन्यसी) और रण्डा पुरुषों सन्तान हीन (अविवाहित) प्राणियों की सिद्धि चान्द्रायण आदि व्रतों के अनुष्ठान कायक्लेश करने से ही होती है किन्तु गृहस्थों को उनका उपयोग न करना चाहिए । महाधनवान तथा रत्नभोगी राजा आदि के लिए कृच्छ्र (अत्यन्त कष्ट) साध्य को भी धर्म प्रशस्त नहीं बताया गया है । क्योंकि (यह देह) द्रविण (धन) रूप है और प्राण उससे बाहर (पृथक्) की वस्तु है इसलिए प्राणों का आत्मयोग होना परमावश्यक कहा गया है । लोक में काञ्चन (सुवर्ण) समस्त द्रव्यों में श्रेष्ठ और पूर्ण कामनाप्रद होता है, क्योंकि उसे देव प्रमुख अग्नि देव का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है । इसलिए जो विद्वान् उससे अपने को तौलता है अर्थात् तुलादान करता है वह सद्यः अपने पापों को नष्ट कर दिव्यतनु हो जाता है । नृपश्रेष्ठ ! पार्थिव पुलस्य महर्षि द्वारा ऋषियों ने सुना है और ऋषियों से मुझे प्राप्त हुआ है ।१५-२२

युधिष्ठिर बोले—महाभाग, परेमश्वर ! मुझ भक्त पर कृपा करते हुए आप तुला पुरुष दान का माहात्म्य बतायें ।२३

श्रीकृष्ण बोले—राजन् नृपोत्तम ! मैं तुला पुरुष दान का विधान बता रहा हूँ, सुनो ! नृपसत्तम !

---

१. यापयेत् । २. यजमानोऽपि रत्नभाक् । ३. आत्मा शोध्यः सदा बुधैः, मनो योज्यं सदा बुधैः । ४. तत्तु, तद्धि, ५. पुरुषोत्तम । ६. भक्त्या ।

तुलापुरुषसंज्ञस्य[1] दानवस्येह नृपोत्तम । व्यतीपातेऽयने चैव कार्तिक्यां विषुवे तथा ॥२५
चन्द्रसूर्यग्रहे यद्वा[2] माघ्यां वा नृपसत्तम । जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु तथा दुःस्वप्नदर्शने ॥२६
यदा वा जायते वित्तं तदा देयमिदं भवेत् । अनित्यं जीवितं यस्मादपुश्चातीवचञ्चलम् ॥२७
केशेषु च गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत् । तस्माद्यदैव जायते श्रद्धा दानं प्रति प्रभो ॥२८
तदैव दानकालः स्यात्कारणं हि यतो मम । तीर्थे वायतने गोष्ठेष्व[3] वा भवनाङ्गणे ॥
मण्डपं कारयेद्विद्वांश्चतुर्भद्राननं[4] बुधः ॥२९
आर्द्रशाखान्वितं दिव्यं प्रागुदक्प्रवणं दृढम् । षोडशारत्निमात्रं च पताकाभिरलंकृतम् ॥३०
तन्मध्ये कारयेद्वेदिं हस्तमात्रोच्छ्रितां[5] शुभाम् । चतुरस्रां समन्ताच्च सप्तहस्तां सुशोभनाम् ॥३१
तस्यां मध्ये तुलां दिव्यां स्थापयेद्विधिपूर्वकम् । हस्तद्वयं च निखनेच्चतुर्हस्तोच्छ्रितां बुधः ॥३२
स्तम्भद्वयं महाराज स्थापयेत्सुदृढं नवम् । चन्दनः खदिरो बिल्वः शाकश्चैवेङ्गुदस्तथा ॥३३
तिन्दुको देवदारुश्च श्रीपर्णश्चाष्टमः स्मृतः ॥३४
इत्यष्टौ वृक्षजातीयाः स्तम्भास्ते परिकीर्तिताः । अन्यश्चापि भवेद्वृक्षः सारज्ञो याज्ञिकस्तथा ॥३५
सुनिश्चलं ततः कृत्वा तिर्यक्काष्टमथोपरि । न्यसेत्तद्वृक्षजातीयं चतुर्हस्तं प्रमाणतः ॥३६
समानजातिं तु तुला तन्मध्ये योजयेद्दृढम् । षण्णवत्यङ्गुला दिव्या समग्रा लोहपाशिका ॥३७
कृष्णलोमहमयौ तस्यां[6] कर्णौ चापि प्रकल्पयेत् । तुलापुरुषसंज्ञस्तु मध्ये कार्यः पुभान्भवेत् ॥३८

व्यतीपात, अयन, कार्तिक पूर्णिमा, विषुव, चन्द्र, सूर्यग्रहण, और माघ पूर्णिमा तथा जल नक्षत्र पर स्थित (अनिष्ट) ग्रह द्वारा पीड़ित होने या दुःस्वप्न के देखने पर अथवा जिस समय (अभूत) धनागम होता, उसी समय यह दान अवश्य करना चाहिए। क्योंकि जीवन अनित्य होने के नाते यह शरीर अत्यन्त अस्थिर है और मृत्यु (जन्मतः) शिर की चोटी पकड़े हुए है इस लिए (दूसरे दिन का वाद न कर) आज ही इस दान के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। उसे ही दान का काल समझ कर मेरे निमित्त दान करने के लिए किसी तीर्थ, विशाल गोशाला या अपने गृहप्राङ्गण में चार भद्रमुख वाले मण्डप का निर्माण करके, जो (वृक्ष की) हरी शाखाओं से युक्त, दिव्य, पूर्व उत्तर की ओर ढालू, दृढ़, सोलह हाथ का विस्तृत और पताकाओं से विभूषित हो, उसके मध्य में सात हाथ की विस्तृत, एक हाथ की ऊँची, चौकोर और सुशोभन एक वेदी की रचना करे और उसके मध्य भाग में सविधान दिव्य तुला की स्थापना करे। महाराज ! दो हांथ के विस्तृत चार हाथ की भी नीचाई वाले गद्ढे में दो स्तम्भ (खम्भे) की स्थापना करे, जो दृढ़ एवं नवीन हो। चन्दन, खैर, बैल, शक्ति, इङ्गुदी, तिन्दु क, देवदारु, और श्रीपर्ण, यही आठ प्रकार के वृक्ष (शुभ कार्य के लिए) स्तम्भ के लिए बताये गये हैं और अन्य भी वृक्ष हैं जो सारज्ञ और यज्ञ के काम आते हैं।२४-३५। इस प्रकार उस निश्चल स्तम्भ के ऊपर चार हांथ की उपरोक्त वृक्ष की एक टेढ़ी लकड़ी रखकर उसके मध्य में उसी वृक्ष की बनी हुई तुला स्थापित करे, जो दृढ़, छानवे, अङ्गुल की विस्तृत, दिव्य और चारों कर्ण (कान) काले रङ्ग और लोह का होने चाहिए। तथा उसके मध्य तुला पुरुष नामक पुरुष रहे। इस प्रकार अनेक रत्नों से भूषित, चन्दन से अनुलिप्त और वस्त्राभूषण से सुशोभित उस तुला के

---

१. तुलापुरुषदानस्य उत्तमस्य। २. वाथ। ३. धोषेषु। ४. चतुर्भद्रासनम्। ५. हस्तमात्रोच्छ्रयाम्। ६. दिव्यौ।

एवंविधां तुलां कृत्वा नानारत्नैर्विभूषिताम् । चन्दनेनानुलिप्ताङ्गीं वस्त्रालङ्कारविग्रहाम् ॥३९
स्तम्भौ च वस्त्रसंयुक्तौ पुष्पमालावलम्बिनौ । चन्देनानुलिप्ताङ्गौ नानारत्नैरलङ्कृतौ ॥४०
कुण्डानि चात्र चत्वारि योनियुक्तानि कारयेत् । हस्तमात्रप्रमाणानि मेखलात्रयवन्ति च ॥४१
पूर्वोत्तरे हस्तमिता[1] वेदिः कार्या सुशोभना । लोकपालग्रहाणां च पूजा तत्र विधीयते ॥४२
अर्चार्चनं[2] च तत्रैव विरिंच्युच्युतयोर्नृप । शङ्करस्य भवेत्कार्यं माल्यवस्त्रफलाक्षतैः ॥४३
तोरणानि च कार्याणि[3] क्षीरवृक्षोद्भवानि च । चतुर्द्वारेषु संस्थाप्याः कुम्भाः स्रक्पल्लवाननाः ॥४४
पञ्चरत्नसमायुक्ताः सप्तधान्योपरिस्थिताः । ऋग्वेदपाठकौ द्वौ च पूर्वकुण्डे नियोजयेत् ॥४५
यजुर्वेदविदौ याम्ये पश्चिमे सामवेदिनौ । अथर्वणावुत्तरतो नवमो धर्मदेशकः ॥४६
अत्रैव केचिदिच्छन्ति ऋषयः षोडशर्त्विजः । ताम्रपात्रद्वयं देयमेकैकस्मै तथासनम् ॥४७
होमद्रव्याणि सर्वाणि तिलाज्यं समिधस्तथा । स्रुवाः स्रुचश्च शस्त्राणि विष्टरः कुसुमानि च ॥४८
लोकपालाः सुवर्णास्तु पातकाः परितः शुभाः । महाध्वजं च बध्नीयात्पञ्चवर्णं वितानकम् ॥४९
एतत्सर्वं समाहृत्य पुण्येऽहनि विचक्षणः । वर्द्धकिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं सर्वशिल्पविशारदः ॥५०
सम्पूर्ण यजमानाय दर्शयेद्यज्ञमण्डपम्[4] । यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥५१
शङ्खतूर्यनिनादेन वेदध्वनिरवेण च । प्रक्षिपेल्लोकपालानानेभिर्मंत्रैः शुभैर्बलिम् ॥५२

दोनों स्तम्भ वस्त्राच्छन्न, लम्बी पुष्प माला से आबद्ध चन्दन से अनुलिप्त, एवं अनेक भाँति के रत्नों से अलंकृत करना चाहिए। अनन्तर योनि युक्त चार कुण्डों के निर्माणपूर्वक, जो एक हाथ के विस्तृत और तीन मेखलाओं से युक्त हो उसके पूर्वोतर भाग (ईशानकोण) में एक हांथ की सुशोभन वेदी बना कर उस पर लोकपाल समेत ग्रहों की स्थापना तथा अर्चा करें।३६-४२। नृप ! उसी वेदी पर माला, वस्त्र, फल एवं अक्षतादि द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर की अर्चना करे। क्षीर वृक्ष के तोरण से भूषित उन चारों द्वार पर माला पल्लव से सुशोभित कलश की स्थापना करे, जो पंचरत्न युक्त और सप्त धान्य के ऊपर स्थित हों, पूर्व के कुण्ड की बैर से ऋग्वेद पाठी को यजुर्वेद पाठी दक्षिण, दो साम वेदपाठी पश्तिचम और दो अथर्व वेदपाठी ब्राह्मणों को उत्तर की ओर सुसम्मान करते हुए नवें धर्म देशी का वरण करें। यहाँ पर कुछ ऋषियों की सम्मति है कि सोलह ऋत्विक् रहने चाहिए। उपरोक्त सभी ब्राह्मणों को दो ताम्रपात्र एक आसन प्रत्येक व्यक्ति को अर्पित कर होम द्रव्य तिल, घृत, समिधा, (लकड़ी) सुव्रा, सुक्र, शस्त्र, विष्ठर (कुशासन) और पुष्प—सुवर्णभूषित लोकपाल तथा चारों ओर वह स्थान पताका से भूषित करे। महाध्वज को बाँधते हुए पाँच रङ्ग की चांदनी (चंदोबा) बाँधे। इस भाँति इस महान् संभार से सम्पन्न होने पर वह यज्ञ मण्डप किसी पुण्य अवसर पर ब्राह्मणों समेत यजमान को समस्त शिल्प वेत्ता एवं बुद्धिमान् वर्द्धकि (राजगीर) दिखाये।४३-५०। अनन्तर शुक्ल वस्त्र धारण कर पवित्रता पूर्ण वह प्राज्ञ यजमान शंख, तुरूही की ध्वनि, और वेदघोष पूर्वक वहाँ लोकपालों के निमित्त मंत्रोच्चारण करते हुए बलि अर्पित

---

१. हस्तमात्रा, पुस्तकद्वये। २. अर्घार्चनम्। ३. दिव्यानि। ४. यज्ञमण्डलम्।

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश[1]।
सम्वीज्यमानोप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्ननमस्ते ।।५३
(ॐ इन्द्राय नमः)

एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरै रभिहूयमानसः।
तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ।।५४
(ॐ अग्नये नमः)

एह्येहि वैवस्वतधर्मराज सर्वामरैरर्चितदिव्यमूर्ते।
शुभाशुभानन्दकृतामधीशरक्षाध्वरं मे भगवन्नमस्ते ।।५५
(ॐ यमाय नमः)

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्ननमस्ते ।।५६

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभि[2]ः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ।।५७
(ॐ वरुणायनमः)

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसन्धैः।
प्राणाधिपः कालकवे[3] सहायो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।५८
(ॐ वायवे नमः)

करे।५१-५२।भगवन्, वज्रधारी अमरेश ! मेरे इस यज्ञ में आकर यह बलि स्वीकार करने की कृपा करें। समस्त देव, सिद्ध साध्यगण आप की सदैव स्तुति करते है और अप्सराएँ पंखा झलती रहती हैं। आप मेरे यज्ञ की रक्षा करें अतः मैं बार-बार आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मंत्र से इन्द्र को बलि प्रदान करे।५३। समस्त देवों के हव्यवाहक अग्नि देव ! मुनिगण सदैव आप को सदैव प्रसन्न रखते हैं। आप तेजस्वी लोकगण समेत यहाँ आकर यह बलि उपहार ग्रहण करते हुए मेरे इस यज्ञ की रक्षा करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ—इस मंत्र से अग्नि को बलि प्रदान करें।५४। समस्त देवगणों द्वारा अर्चित होने के नाते दिव्य मूर्ति धारण करने वाले सूर्य पुत्र धर्म राज ! आप शुभाशुभ कर्म करने वालों के अधीश्वर हैं इस मेरे यज्ञ की रक्षा करें। मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ। इस मंत्र से यम को बलि प्रदान करें।५५। भगवन्, पिशाचनाथ ! आप राक्षसगण के नायक और लोकेश्वर हैं अतः वेताल पिशाच के विशाल समूह समेत मेरे यज्ञ की रक्षा करें। मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मंत्र से निऋति को बलि अर्पित करें। विद्याधरेन्द्र आदि देवों द्वारा गीयमान वरुण देव ! आप जल जन्तु और वारिधिगण मेघ तथा अप्सराओं से सदैव स्तुत होते रहते हैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मेरे यज्ञ की रक्षा करने की कृपा करें। इस मंत्र से वरुण को बलि अर्पित करें।५६-५७। भगवान् ! वायुदेव ! आप सिद्धों के साथ सदैव मृग आरूढ रहते हैं, प्राणों के अधीश्वर और कालविधि के सहायक हैं मेरी इस पूजा को ग्रहण करने की कृपा करें में आप को नमस्कार कर रहा हूँ, इस

---

१. अप्रमेय। २. सदाप्सरोभिः। ३. कालविधेः सहायः।

एह्येहि[१] यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजा भगवन्नमस्ते ॥५९
(ॐ सोमाय नमः)
एह्येहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्रिशूलखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।
लोकेन भूतेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥६०
(ईशानाय नमः)
एह्येहि पातालधराधरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान् ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसंघैरनन्त[२] रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥६१
(ॐ अनन्ताय नमः)
एह्येहि विश्वाधिपते मुनींद्र लोकेश[३] सार्द्धं पितृदेवताभिः ।
विश्वाध्वरान्तं सततं शिवाय पितामहस्त्वं सततं नमस्ते ॥६२
(ॐ ब्रह्मणे नमः)
त्रैलोक्यं यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥६३
देवदानवगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥६४
सर्वे ममान्वरे[४] रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः । इत्यावाह्य सुरान्दद्यादृत्विग्भ्यः कण्ठभूषणम् ॥६५

मंत्र से वायु को बलि प्रदान करे ।५८। भगवान्, यज्ञेश्वर ! नक्षत्र गण समेत आप इस यज्ञ की रक्षा करते हुए सम्पूर्ण ओषधि और पितरों सहित उसे पूजा को ग्रहण करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से सोम को बलि अर्पित करे ।५९। भगवान् विश्वमूर्ते विश्वेश्वर ! त्रिशूल, खट्वाङ्गधारी लोगों के साथ आप यज्ञ सिद्धयर्थ यह पूजा ग्रहण करें । भूतेश्वर ! मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से ईशान (शिव) को बलि प्रदान करे ।६०। पातालधराधरेन्द्र, अनन्तदेव ! नागों की स्त्रियाँ और किन्नरगण आप का सदैव यशोगान करते हैं आप यक्ष और सर्वाधीश्वर वृन्दों समेत मेरे यज्ञ की रक्षा करने की कृपा करें इस मंत्र से अनन्त को बलि प्रदान करे ।६१। विश्वाधिपते, मुनीन्द्र, एवं लोकेश ! पितृ-देवताओं समेत आप कल्याणार्थ इस यज्ञ के अन्तःस्थल में प्रवेश करने की कृपा करें ।६२। आप पितामह हैं अतः आपको मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से ब्रह्मा को बलि अर्पित करें ।६३। तीनों लोक में विचरण करने वाले समस्त चर-अचर प्राणी ब्रह्मा, विष्णु और शिव समेत मेरी रक्षा करने की कृपा करें । उसी भाँति देव, दानव, गन्धर्वगण, यक्ष, राक्षस पन्नग, सूर्य, ऋषिगण, मनु गौएँ और देवमाताएँ सहर्ष मेरे यज्ञ की रक्षा करें—इस प्रकार देवों के आवाहन करने के अनन्तर ऋत्विजों को सुवर्ण माला, कुण्डल, सुवर्ण सूत्र,

---

१. ऐह्यिहि यज्ञेश्वर शूलपाणे ईशान चापासिधर प्रवीर । वृषाधिरूढः सगणः सहायो ममाध्वरं पाहि नमोनमस्ते । अत्रापि 'यज्ञेश्वर' इत्यस्य स्थाने पुस्तकान्तरे 'सर्वेश्वर' इति पाठ उपलभ्यते ।
२. रक्षोनगेन्द्रामरलोकसार्द्धम् । ३. लोकेन । ४. सर्वेमारवाश्च मे ।

कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च । तथाङ्गुलिपवित्राणि वासांसि कुसुमानि च ।।६६
द्विगुणं गुरवे दद्याद् भूषणाच्छादनादिकम् । आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ।।६७
प्रणवादिस्वनाम्ना च स्वाहान्तो होम उच्यते । होमः सुराणां कर्तव्यो ये चैवात्र प्रतिष्ठिताः ।।६८
ग्रहाणां लोकपालानां शिवकेशवयोस्तथा । वनस्पतिभ्यो ब्रह्मणे होमः कार्यो यथेच्छया ।।६९
ततो मङ्गलशब्देन स्थापितो वेदमङ्गलैः[1] । त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।।७०
शुक्लमाल्याम्बरो[2] भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत् । नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता[3] ।।७१
साक्षिभूता जगद्धात्रि निर्मिता विश्वयोनिना । एकतः सर्वसत्यानि[4] तथानृतशतानि च ।।७२
धर्माधर्मभृतां[5] मध्ये स्थापितासि जगद्धिते । त्वं तुले सर्वभूतानां[6] प्रमाणमिह कीर्तिता ।।७३
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरात्र नमोस्तुते । योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ।।७४
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः । नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ।।७५
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात्[7] । पुण्यकालमथासाद्य कृत्वैवमधिवासनम् ।।७६
प्रणम्य परया भक्त्या तां तुलामारुहेद्बुधः । स खड्गचर्मकवची सर्वाभरणभूषितः ।।७७
धर्मराजमथादाय[8] हैमसूर्येण संयुतम् । कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन्हरेर्मुखम् ।।७८
वामे यमं तथा गृह्य दक्षिणे च रविं तथा । ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः ।।

अङ्गद, अंगूठी, वस्त्र और पुष्पों से भूषित करते हुए गुरु को भूषण वस्त्रादि दुगुने अर्पित करे । सर्वप्रथम 'आज्यभाग आधार' (घृत की आहुति) प्रदान करते हुए 'ओंकार पूर्वक नामों के अन्त में स्वाहापद जोड़ कर वहाँ प्रतिष्ठित देवों के निमित्त हवन करें । तदुपरान्त गृह, लोकपाल, शिव, विष्णु, वनस्पतिगण, और ब्रह्मा को यथेच्छ आहुति अर्पित करें । पश्चात् पुष्पाञ्जलि समेत शुक्ल वस्त्र, माला धारण किये यजमान मांगलिक शब्दों (वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक तीन प्रदक्षिणा के उपरांत तुला अभिमन्त्रित करे । जगद्धात्रि ! तुम्हें नमस्कार है, तू समस्त देवों की शक्ति हो, सत्य में ही तुम्हारी स्थिति है, साक्षी रूप, हो, उसी हेतु विश्वयोनि ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण किया है, तुम्हारे एक ओर सर्वसत्य और दूसरी ओर सैकड़ों असत्य रहते हैं इस लिए धर्माधर्म के मध्य तुम्हारी स्थिति होती है । जगद्धिते ! तुले ! तू समस्त प्राणियों के प्रमाण रूप हो मुझे तौलती हुई तू इस संसार से मेरा उद्धार करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ, क्योंकि पच्चीस तत्व में अधिष्ठित रहने वाला यही एक पुरुष देव तुम्हारे ऊपर स्थित है, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । तुला पुरुष नामक गोविन्द ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है, इस संसार सागर से मुझे तारने की कृपा करें । इस प्रकार किसी पुण्य काल में भक्तिपूर्वक अधिवासन करने के अनन्तर प्रणाम पूर्वक विद्वान् को तुलारोहण करना चाहिए । जो खड्ग, चर्म, और कवच धारण किये सर्वाभरण भूषित हो । सुवर्ण की सूर्य प्रतिमा समेत धर्मराज को लिए दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधे सम्मुख विष्णु मुख का दर्शन करते हुए उस पर आसीन होना चाहिए ।६४-७८। द्विजपुङ्गवों को चाहिए कि बायें

---

१. देवमङ्गलैः, वेदपुङ्गवैः । २. शुक्लमाल्यधरो भूत्वा । ३. सर्वम् । ४. सर्वसत्त्वानि । ५. धर्माधर्मकृतमा् । ६. सर्वदेवानाम् । ७. संसारकर्दमात् । ८. समादाय ।

साम्यादभ्यधिकं यावत्कांञ्चनं चातिनिर्लम् ॥७९
पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वर । क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेतदुदीरयेत् ॥८०
नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातने । पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥८१
त्वयोद्धृतं[1] जगत्सर्वं सहस्थावरजङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि ॥८२
ततोऽवतीर्य गुरवे सर्वमर्द्धं निवेदयेत् । ऋत्विगभ्योऽपरमर्द्धं च दद्यादुदकपूर्वकम् ॥८३
प्राप्त तेषामनुज्ञां वा तथान्येभ्योऽपि दापयेत् । दीनानाथविशिष्टादीन्पूरयेद्ब्राह्मणैः सह ॥८४
न चिरं धारयेद्गेहे हेमसम्प्रोक्षितं[2] बुधः । तिष्ठद्भयावहं यस्मात्कष्टव्याधिकरं[3] भवेत् ॥८५
शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । अनेनैव विधानेन केचिद्रौप्यमयं तथा ॥८६
कर्पूरेण तथेच्छन्ति केचिद्ब्राह्मणपुङ्गवाः । तथासिततृतीयायां नार्यः सौभाग्यवर्धिताः[4] ॥८७
कुंकुमेन प्रयच्छन्ति लवणेन गुडेन च । तत्र मन्त्रा न होमो वा एवमेव प्रदापयेत् ॥८८
विधिनानेन यो दद्याद्दानमेतत्समाहितः । तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणुष्व गदतो मम ॥८९
विमानवरमास्थाय नारी वा पुरुषोऽपि वा । अप्सरोगणसंकीर्णं गन्धर्वनगरोपमम् ॥९०
नानावृक्षाकुलं रम्यं नानागन्धाधिवासितम् । अनेकरत्नविद्धांगं मुक्तादामावलम्बितम् ॥९१

ओर यम और दाहिनी ओर सूर्य को रखते हुए तुला के अपरभाग में समता से अधिक भाग निर्मल सुवर्ण रखें। नरेश्वर ! पुष्टि कामनया उस सुवर्ण वाले तुला को भूमिस्थ ही रखना चाहिए। पुनः उस पर क्षण मात्र स्थित रहकर इस प्रकार अभ्यर्थना करे—देवि ! तुम समस्त प्राणियों की साक्षी रूप और सनातन हो। परमेष्ठी पितामह ने तुम्हारा निर्माण किया है अतः तुम्हें नमस्कार है। स्थावर जङ्गम (चराचर) समस्त जगत् का तुमने उद्धार किया है। विश्वधारिणी ! तू समस्त प्राणियों को आत्मा में सदैव स्थित रहती हों अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। पश्चात् उस घर से उतर कर समस्त का अर्द्ध भाग गुरु को और शेष अर्द्ध भाग जल समेत ऋत्विजों को भी दिया जा सकता है। दीन, अनाथ आदि की भी ब्राह्मणों के साथ पूजा (सुसम्पन्न) करनी चाहिए। विद्वान् को चाहिए कि उस समस्त सुवर्ण दान चिरकाल तक अपने घर में न रखें क्योंकि उसके रखने से भय, कष्ट आदि व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। इसलिए उस पराये धन को शीघ्र ही उसके स्वामी को अर्पित करना चाहिए। इससे उसे उत्तम श्री प्राप्त होती है। किन्हीं ब्राह्मणों का मत है कि इस विधान द्वारा चाँदी या कपूर का भी तुलादान करें। कृष्ण पक्ष की तृतीया में दान करने वाली स्त्रियों का सौभाग्यवर्द्धन होता है।७९-८७। कुंकुम लवण या गुड का तुला दान करते समय मंत्र और हवन कर्म की आवश्यकता नहीं होती है। राजन् ! इस विधान द्वारा इस दान कर्म के सुसम्पन्न करने जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! दानी स्त्री या पुरुष ऐसे उत्तम विमान पर सुशोभित होकर, जो गन्धर्व नगर के समान अप्सराओं से आच्छन्न रहता है, अनेक भाँति के रमणीयक वृक्ष समूहों से भूषित, अनेक गंधों से अधिवासित रहता है, उसके प्रत्येक अंगों में अनेक भाँति के रत्न विभूषित रहते हैं, मोतियों के गुच्छे लटकते रहते हैं, संकीर्ण शयनासन और पताकाओं से

---

१. धृतम्। २. समस्तं प्रोक्षितं बुधः। ३. क्षोभव्याधिकरं भवेत्। ४. सौभाग्यदर्शिताः।

शयनासनसंकीर्णं पताकाभिरलंकृतम् । घण्टाशतरवोद्‌घुष्टं चामरव्यजनान्वितम् ।।९२
सर्वर्तुसुखदं[1] रम्यं सर्वदुःखविवर्जितम् । इत्थं विमानमारुह्य गच्छेत्सूर्यसलोकताम् ।।९३
[2]मित्वा तत्र राजेन्द्र कल्पमेकं निरामयः[3] । विष्णुलोके तथा कल्पं शिवलोके[4] तथैव च ।।९४
विश्वेषां चैव देवानां देवराजपुरे तथा । पुरे च[5] धर्मराजस्य वरुणस्य तथैव च ।।९५
धनदस्य पुरे स्थित्वा कल्पकोटिशतं नरः । पुनर्मानुषमभ्येत्य[6] राजा भवति धार्मिकः ।।९६
यज्वादानपतिर्धीमाञ्छत्रुपक्षक्षयंकरः[7] । यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या महादानानुकीर्तनम् ।।९७
सोऽपि मुच्येत पापेन त्रिविधेन न संशयः ।।९८

ब्रह्मेशकेशवपरोऽस्ति न पूजनीयो नैवाश्वमेधसदृशः क्रतुरस्ति कश्चित् ।
गङ्गासमं त्रिभुवनेऽपि न तीर्थमस्ति दानं तुला पुरुषतुल्यमिहास्ति नान्यत् ।।९९

इति श्रीभविष्ये[8] उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तुलापुरुषदानविधिवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७५

अलंकृत रहता है, इसमें सैकड़ों घंटों की ध्वनि होती रहती है, चामर, व्यञ्जन चलते रहते हैं, समस्त ऋतुओं में सुखप्रद रम्य और समस्त दुःखों से वर्जित रहता है । (ऐसे उत्तम विमान द्वारा) सूर्य लोक की यात्रा करता है । राजेन्द्र ! नीरोग रहकर कल्प पर्यन्त वहाँ रमण करने के अनन्तर विष्णु शिव के लोक में भी कल्प पर्यन्त निवास करता है । अनन्तर विश्वेदेव, इन्द्रलोक, धर्मराज की पुरी, वरुण तथा कुबेर के लोक में सौ कोटि कल्प सुखानुभव करने के उपरान्त पुनः मानुषकुल में जन्म ग्रहण कर परम धार्मिक राजा होता है, जो यज्ञकर्ता, दानपति, धीमान् और शत्रुओं का विनाशक होता है । इस महादान के आख्यान को भक्तिपूर्वक सुनने वाला भी अपने त्रिविध पापों से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं । क्योंकि तीनो लोक में ब्रह्मा, शिव और विष्णु से अन्य कोई पूजनीय नहीं है, अश्वमेध के समान कोई यज्ञ नहीं है, गङ्गा के समान कोई तीर्थ और तुला पुरुष दान के समान कोई दान नहीं है ।८८-९९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
तुलापुरुष दानविधि वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७५।

---

१. सर्वदासु खदम् । २. गमित्वा । ३. निरामयम् । ४. वसूनां भवनेऽप्यथ । ५. वै । ६. अप्येत्य । ७. यज्ञादानपतिर्धीमान् । ८. इति श्रीभविष्ये आदित्यवारकल्पे ।

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्यगर्भदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्सर्वभूतेश[1] सर्वभूतनमस्कृत । अनुग्रहाय लोकानां कथयस्व[2] ममापरम् ॥१
त्वत्तुल्यो जायते येन आयुषा यशसा[3] श्रिया । तन्मे कथय देवेश दानं व्रतमथापि वा ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तव लोकहितेच्छया । येनोपायेन जायन्ते मत्तुल्या मानवा भुवि ॥३
न व्रतैर्नोपवासैश्च[4] न तीर्थगमनैरपि । महापथा[5]दिमरणैर्न यज्ञैर्न श्रुतेन च ॥४
प्राप्यते मम लोकोऽयं दुष्प्राप्यस्त्रिदशैरपि । पार्थस्नेहान्महाभाग प्रवक्ष्यामि हितं तव ॥५
गोब्राह्मणार्थे मरणं प्राप्तं येन सुमेधसा । प्रयागेऽनशनं वापि पूजितो[6] वाथ शङ्करः ॥६
प्रयाति [7]ब्रह्मसालोक्यं श्रुतिरेषा सनातनी । येन मत्समतां याति तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥७
दानं हिरण्यगर्भाख्यं कथ्यमानं निबोध[8] मे । अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णमिह पठ्यते[9] ॥८
पवित्रं सर्वभूतानां[10] पावनं परमं महत् । पर्यायनाम तस्योक्तं हिरण्यं सार्वलौकिकम्[11] ॥९

अध्याय १७६

सुवर्णदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के अधीश्वर हैं सम्पूर्ण प्राणी आप को नमस्कार करते हैं अतः लोगों के अनुग्रहार्थ आप कोई अन्य विषय बताने की कृपा करें। देवेश ! जिस दान अथवा व्रत द्वारा आयु, यश और श्री में आप के समान प्राणी बन सके वह मुझे बतायें।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस उपाय द्वारा इस भूतल में मनुष्य मेरे समान हो सकता है, मैं उसे लोकहितार्थ तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! महाभाग पार्थ ! व्रत, उपवास, तीर्थ यात्रा, महापथादि (महातीर्थादि) में मरण, यज्ञ एवं वेदाध्ययन द्वारा मेरे लोक की प्राप्ति नहीं हो सकती है और वह देवों के लिए दुर्लभ है, किन्तु तुम्हारे स्नेह वश मैं उसे बता रहा हूँ। यद्यपि गौ, ब्राह्मण के उपकारार्थ मरण, प्रयाग में अनशन या शंकर जी अर्चना जिस विद्वान् ने की है, उसे ब्रह्मसालोक्य मुक्ति प्राप्ति होती है, ऐसा सनातनी श्रुति का कथन है तथापि जिससे मेरी समता प्राप्त होती है वह अन्य हैं, उसे बता रहा हूँ। हिरण्य नामक दान की व्याख्या मैं कर रहा हूँ सुनो ! अग्नि का सर्व प्रथम सन्तान सुवर्ण कहा जाता है, जो समस्त प्राणियों में महान् परमपवित्र है। उसका दूसरा सार्वलौकिक नाम हिरण्य है।३-९। वही जल के गर्भ

---

१. सर्वलोकेश सर्वलोकनमस्कृत । २. कथय त्वं ममाग्रतः। ३. वपुषा। ४. तु। ५. महातीर्थादिमरणैः। ६. पूज्यते । ७. सब्रह्मलोकम् । ८. मया शृणु । ९. पश्यति—इत्यशुद्धः । १०. सर्वधातूनाम् । ११. सार्वकामिकम् ।

तदपां गर्भमाविश्य पुनर्जातं तु भूतले । यश्च तद्ब्राह्मणे दद्यान्मत्तुल्यो जायते हि सः ॥१०

युधिष्ठिर उवाच

विधानं तस्य देवेश कथयस्व सनातन । यत्प्रमाणं यथाचैतद्दातव्यं[1] परमेश्वर ॥११

श्रीकृष्ण उवाच

पर्वकाले[2] प्रदातव्यं दानमेतन्महामते । अयने विषुवे चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः ॥१२
व्यतीपातेऽथ कार्तिक्यां जन्मर्क्षे वा नरोत्तम । दुःस्वप्नदर्शने चैव ग्रहपीडासु चैव हि ॥१३
प्रयागे नैमिषे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे । गङ्गायां यमुनायां च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥१४
पुण्यनद्यश्च दानेऽस्मिन्प्रशस्ताः स्युर्न संशयः । यत्र वा रोचते राजन्गृहे देवकुलेऽथवा ॥१५
आरामे वा तडागे वा शुचौ देशे विधानतः । तत्र भूषोधनं कुर्यात्प्रागुदक्प्रवणं शुभम् ॥१६
हस्ताद्द्वादशकर्तव्यं मण्डपं तु सुशोभनम् । स्तम्भैर्मनोहरैर्युक्तमार्द्रशाखाभिरन्वितम् ॥१७
तन्मध्ये कुर्यात्पञ्चहस्तामलंकृतम् । वितानमुपरिष्टाच्च पुष्पमालावलम्बितम् ॥१८
हिरण्यगर्भं तन्मध्ये प्रथमेऽहनि कल्पयेत् । तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि रूपं वै स्थण्डिलोद्भवम् ॥१९
शिल्पिनं पूजयेत्पूर्वं वासोभिर्भूषणैस्तथा । ब्राह्मणान्वाचयेत्पश्चात्ततः कर्मसमारभेत्[3] ॥२०
सुवर्णेन सुशुद्धेन[4] शक्तितः कारयेद्बुधः । अंगुलानि चतुःषष्टिर्दैर्घ्यं च परिकीर्तितम्[5] ॥२१

में प्रविष्ट होकर पुनः भूतल पर (सुवर्ण रूप में) उत्पन्न हुआ है उसे ब्राह्मण को अर्पित करने वाला मनुष्य मेरे तुल्य होता है।१०

युधिष्ठिर बोले—देवेश, सनातन एवं परमेश्वर ! उसका विधान और जितने प्रमाण में वह दान किया जाता हो, बताने की कृपा करें।११

श्रीकृष्ण बोले—महामते ! यह दान किसी पर्वकाल, अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन), विषुव, चन्द्र सूर्य ग्रहण, व्यतीपात, कार्तिकी पूर्णिमा, जनम नक्षत्र, दुःस्वप्न दर्शन अथवा ग्रह पीड़ित होने पर प्रयाग, नैमिष, कुरुक्षेत्र, अर्बुद, गंगा, यमुना या सिंधु सागर संगम स्थल में करना चाहिए। इसी के दान द्वारा ये पुण्य नदियाँ प्रशस्त हुई हैं इसमें संदेह नहीं। राजन् ! अपने घर, देवालय उपवन, सरोवर अथवा जहाँ कहीं रुचिकर हो, उसी पवित्र देश में सविधान प्रथम भूमिशोधन करके बारह हाथ का सुशोभन मण्डप बनाये, जो पूर्वोत्तर की ओर निम्न मनोहर स्तम्भों तथा हरी शाखाओं से विभूषित हो उसके मध्य में पाँच हाथ की अलंकृत वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर बितान (चँदोवा) लगाये और पुरुष महात्माओं से विभूषित करे। प्रथम दिन उसके मध्य भाग में हिरण्यगर्भ की कल्पना करें। मैं उनका प्रमाण और रूप बता रहा हूँ, जो स्थण्डिल (ऊँची भूमि) से उत्पन्न हुए हैं। सर्वप्रथम यजमान को चाहिए वस्त्राभूषणों द्वारा शिल्पी (राजगीर) की अर्चना करके ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन कराये अनन्तर यज्ञारम्भ करें। विद्वान् को चाहिए यथाशक्ति सुशुद्ध सुवर्ण द्वारा चौंसठ अङ्गुल की प्रतिमा बनाये।१२-२१। उसके चौथाई भाग

---

१. च दातव्यं कथ्यताम्। २. सर्वकाले। ३. यज्ञम्। ४. सुसिद्धेन। ५. परिकल्पयेत्।

त्रिभागहीनं वदने मूले तस्यार्द्धविस्तरम् । वर्तुलं कर्णिकाकारं चारुग्रन्थिविवर्जितम् ।।२२
पिधानमुपरिष्टाच्च कर्तव्यं चांगुलाधिकम्[१] । [२]अस्त्राणि दश कुर्वीत नालं सूर्यं च काञ्चनम् ।।२३
दात्रं सपट्टिकं चैव सर्वोपस्करणान्वितम्[३] । सूचीक्षुरश्च हैमानि तत्सर्वं परिकल्पयेत् ।।२४
पार्श्वतः स्थापयेत्तस्य हेमदण्डकमण्डलू । छत्रिकापादुकायुग्मं वज्रवैडूर्यमण्डितम् ।।२५
एवं लक्षणसंयुक्तं कृत्वा गर्भं विचक्षणः । ब्रह्मघोषेण महता शङ्खतूर्यरवेण च ।।२६
हस्तिना शकटेनाथ राजन्ब्रह्मरथेन वा । आनयेन्मण्डपं कृत्वा प्रदक्षिणमतन्द्रितः ।।२७
तिलद्रोणोपरिगतं वेदीमध्येऽधिवासयेत् । समालभ्य पुनः सर्वं कुंकुमेन सुगन्धिना ।।२८
कौशेयवाससी शुभ्रे ततस्तं परिधापयेत् । समन्तात्पुष्पमालाभिः पूजयेद्भक्तितः सुधीः ।।२९
धूपैं सुधूपितं[४] कृत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् । भूर्लोकप्रमुखालोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः ।।३०
ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते भुवनोद्भव । नमस्ते भुवनाधार नमस्ते[५] भुवनेश्वर ।।३१
नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः । एवं सम्पूजयित्वा तु गतां[६] रात्रिमधिवासयेत् ।।३२
वेद्याश्चतुर्दिशं चैव कुण्डानि परिकल्पयेत् । चत्वारि चतुरस्राणि तेषु होमो विधीयते ।।३३
चतुश्चारणिकास्तत्र ब्राह्मणा मन्त्रपारगाः । होमं कुर्युर्जितात्मनो[७] मौनिनः सर्व एव ते ।।३४
सर्वाभरणसम्पन्नाः सर्वे चाहत वाससः । ताम्रपात्रद्वयोपेता गन्धपुष्पादिपूजिताः ।।३५

से वदन (मुख) की रचना करे, जो मूल भाग के अर्द्ध भाग में विस्तृत वर्तुल (गोलाकार) हो । कर्णिका कार और चारु ग्रन्थियों से रहित उस (प्रतिमा) को ढाँकने के लिए दो अङ्गुल अधिक प्रमाण का एक विधान बना कर दश अस्त्रों—नाल, सूर्य, कांचन, पट्टी और समस्त साधनों समेत दान, सूची (सूई), छुरा का सुवर्ण द्वारा निर्माण कराये । उसके पार्श्व भाग में हेमदण्ड कमण्डलु, और छत्र वज्र वैदूर्य भूषित चरण पादुका स्थापित करे । राजन् ! इस प्रकार के लक्षण युक्त उस गर्भ को प्रदक्षिणा पूर्वक उच्चस्वरेण ब्रह्म घोष, शंख, तुरुही की ध्वनि करते हुए हांथी, गाड़ी अथवा ब्राह्म रथ द्वारा मण्डप में लाये । द्रोण प्रमाण तिल के उपर वेदी के मधभाग में अधिवास कराते हुए कुंकुम और सुगन्ध के लेप करके स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र से ढाँक दे उसके चारों ओर पुष्प माला से भूषित करते हुए भक्तिपूर्वक धूप से धूपित करने के अनन्तर निम्नलिखित मंत्रों से अभ्यर्चन करे—भुवनोद्भव ! भूलोक आदि प्रमुख लोक और ब्रह्मादि देवगण तुम्हारे ही भीतर सुव्यवस्थित हैं अतः आप को नमस्कार है, भुवनाधार को नमस्कार है, अतः आप को नमस्कार है ।२२-३१। जिसके गर्भ में पितामह (ब्रह्मा) स्थित हैं उन हिरण्यगर्भ को नमस्कार है, इस भाँति पूजन पूर्वक उस रात्रि अधिवास कराये । वेदी के चारों ओर चार चौकोर कुण्ड का निर्माण कर उसमें हवन करे । चार चारणिक ब्राह्मण जो मंत्र पारगामी और पूज्य संयमी हों, मौन होकर हवन कार्य सम्पन्न करें । उन सभी ब्राह्मणों को सर्वाभरण भूषित और नवीन वस्त्र से सुसज्जित रहना चाहिए। गंध पुष्पादि से पूजित करते हुए उन्हें दो-दो ताम्र पात्र भी अर्पित करना चाहए ।३२-३५। वेदी के पूर्व उत्तर

---

१. ह्यङ्गुलाधिकम्, द्वयङ्गुलाधिकम् । २. अन्त्राणि । ३. सर्वोपकरणानि च । ४. संपूजितं राजन् । ५. समस्तभुवनेश्वर । ६. रात्रौ तमधिवासयेत् । ७. यतात्मानः ।

वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे ग्रहवेदिं प्रकल्पयेत् । तत्र ग्रहांल्लोकपालान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥३६
पूजयेत्स्वर्णघटितान्पुष्पधूपविलेपनैः[1] । पताकाभिरलंकृत्य मण्डपं तोरणैस्तथा ॥३७
कुम्भद्वयं च द्वारेषु स्थापयेद्रत्नसंयुतम् । तुलापुरुषमन्त्रैश्च लोकपालबलिं क्षिपेत् ॥३८
पालाश्यः समिधस्तत्र प्रशस्ता होमकर्मणि[2] । चरुश्चैवेन्द्रदैव्यस्तिला गव्यं घृतं तथा ॥३९
स्वलिंगैर्होमयेत्पूर्वं मन्त्रैर्व्याहृतिभिः पुमान् । अयुते द्वे च होमस्य संख्यामाहुर्मनीषिणः ॥४०
यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः । भक्त्या हिरण्यगर्भं च पर्वकाले समर्चयेत् ॥४१
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय[3] वै नमः । चराचरस्य जगतो गृहभूताय ते नमः ॥४२
मात्राहं जनितः पूर्वं मत्यधर्मासुरोत्तम । त्वद्गर्भसम्भवादद्य दिव्यदेहो भवाम्यहम् ॥४३
इत्युच्चार्य स्वयंभक्त्या कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् । क्षीराज्यदधिसम्पूर्णं तद्गर्भं प्रविशेद्बुधः ॥४४
सौवर्णं धर्मराजं तु सव्ये कृत्वा करे ततः । भास्करं दक्षिणे चैव[4] मुष्टिं बद्ध्वा प्रयत्नतः ॥४५
जान्वोरन्तरतश्चैव शिरः कृत्वा समाहितः । उच्छ्वासपञ्चकं तिष्ठेच्चेतसा चिंतयञ्छिवम् ॥४६
गर्भाधानं पुंसवनंसीमन्तोन्नयनं तथा । कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥४७
जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः । तत उत्थाय निःसृत्य पुनः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥४८
तावन्मुखं न पश्येत कस्यचिन्नृपसत्तम । सौवर्णा पृथिवी[5] वायन्नदृष्टा स्पष्टचक्षुषा[6] ॥४९
ततः स्नानं प्रकुर्वीत ब्रह्मघोषपुरःसरम् । अष्टौ द्विजाः सुवर्णांगा सौवर्णैः कलशैः शुभैः ॥५०

(ईशान कोण) में ग्रहों की बनाकर उस पर ग्रहगण, लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा की अर्चना पुष्प, धूप एवं अनुलेपादि द्वारा सुसम्पन्न करते हुए पताकाओं और तोरणों से अलङ्कृत उस मण्डप में प्रत्येक द्वार पर रत्नगर्भित दोदो कलशों की स्थापना करे। तुला पुरुष के मंत्रों द्वारा लोक पालों को बलि प्रदान करने के अनन्तर उस हवन कर्म में प्रशस्त पलाश की समिधा, इन्द्र देवता वाली चरु, तिल, गो घृत को एकत्र कर प्रथम नामलिंगात्मक मंत्र और व्याहृतियों द्वारा आहुति प्रदान करें। मनीषियों ने बीस सहस्र संख्या की आहुति इस हवन कर्म में समर्पित करना बताया है। अनन्तर यजमान पर्व काल में भक्तिपूर्वक स्नान, शुक्लाम्बर—हिरण्यगर्भ को नमस्कार है, विश्वगर्भ को नमस्कार है और चराचर जगत् के गृह भूत को नमस्कार है। सुरोत्तम! सर्वप्रथम माता द्वारा मैं मनुष्यधर्मा होकर उत्पन्न हुआ था किन्तु आज पुनः तुम्हारे गर्भ से सम्भूत होकर मैं दिव्य देह हो रहा हूँ। ऐसा कहते हुए भक्ति श्रद्धा सम्पन्न यजमान प्रदक्षिणा पूर्वक दूध, दही, घी पूर्ण उस गर्भ में प्रवेश करे।३६-४४। धर्मराज की सुवर्ण प्रतिमा बायें हांथ और सूर्य की सुवर्ण प्रतिमा दाहिने हाथ में मुट्ठी बांधे, जानु (घुटने) के भीतर शिर गले और पाँचश्वास तक शिव (कल्याण) चिंतन करते हुए ठहरा रहे। अनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हिरण्यगर्भ का गर्भाधान, पुंसवन, सीमनोत्पन्नादि स्नेह संस्कार सुसम्पन्न करना चाहिए। नृपसत्तम! अनन्तर उठकर उसमें से निकलकर प्रदक्षिणा करे।४५-४९। और जब तक दक्षिणा की सुवर्ण प्रतिमा का स्पष्ट दर्शन न हो तब तक किसी का मुख न देखे। पश्चात् ब्रह्मघोष पूर्वक स्नान करने के अनन्तर आठ ब्राह्मण, जो सुवर्ण

---

१. पुष्पवस्त्रानुलेपनैः। २. यज्ञकर्मणि। ३. ब्रह्मगर्भाय। ४. भागे। ५. सूर्यकिरणसंपर्कादापीतवर्णा पृथिवी सौवर्णा—सुवर्णमयी च। ६. स्पष्टचेतसा।

रौप्यैरोदुम्बरैर्वापि[1] मृण्मयैर्वा सुशोभनेः । दध्यक्षतविचित्राङ्गैराम्रपल्लवशोभितैः ॥५१
पुष्पैरावेष्टितग्रीवैरव्रणैः कलशैर्दृढैः[2] । चतुष्कमध्ये संस्थाप्य पीठमव्रणमुत्तमम् ॥५२
तत्र स्थाप्य महाभाग यजमानं द्विजोत्तमाः । देवस्य त्वेति मन्त्रेण कुर्युरस्याभिषेचनम् ॥५३
अद्य जातस्य तेऽङ्गानि[3] अभिषेक्ष्यामहे वयम् । दिव्येनानेन वपुषा चिरंजीवसुखी[4] भव ॥५४
एवं कृताभिषेकस्तु यजमानः समाहितः । दद्याद्धिरण्यगर्भं तं सोदकेनैव पाणिना ॥५५
तान्सम्पूज्य च भावेन बहुभ्यो वा तदाज्ञया । यज्ञोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥५६
पादुकोपानहौ चैव च्छत्रचामरभाजनम् । अन्येषां चैव विप्राणां ये च तत्र सभासदः ॥५७
तेषां चैव प्रदातव्यं दानं चात्र विशेषतः । दीनांधकृपणानां च दातव्यं सार्वकामिकम् ॥५८
अन्नसत्रं च कर्तव्यं यावद्दानपरिग्रहः । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥५९
स कुलं तारयेत्सर्वं देवलोकं स गच्छति । विमानवरमारुह्य पञ्चयोजनविस्तृतम् ॥६०
वापीकूपतडागाद्यैर्जलस्थानैरलंकृतम् । उद्यानशतसंस्थानं पद्माकरनिषेवितम् ॥६१
प्रासादशतसंकीर्णं वरस्त्रीशतसेवितम् । वीणावेणुमृदङ्गानां शब्दैरापूरितं महत् ॥६२
भूमयो यत्र राजेन्द्र दिव्या मणिमयाः शुभाः । वेदिकाभिर्विचित्राभिः शोभितं भास्करप्रभम् ॥६३
धृतं स्तम्भसहस्रेण सुकृतं विश्वकर्मणा । पताकाभिर्विचित्राभिर्वस्त्रैश्च समलंकृतम् ॥६४
तदारुह्य विमानाग्र्यं विद्याधरगणैर्युतम् । स याति लोकं शक्रस्य शक्रेण सह मोदते ॥६५

भूषित हों, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा ये मिट्टी के कलशों द्वारा, जो दधि, अक्षत से चित्र विचित्र, आम के पल्लव से भूषित, कण्ठ में पुष्प माला, व्रण रहित एवं दृढ़ हो चतुष्क के मध्य व्रण रहित पीठासन पर स्थित यजमान का 'देवस्य त्वेति' मंत्रोच्चार पूर्वक अभिषेक करते हुए कहें कि—उत्पन्न हुए तुम्हारे अंगों का हम लोग अभिषेक कर रहे हैं अतः इस दिव्य शरीर द्वारा चिरजीवन प्राप्त करते हुए सुखी रहो । इस भाँति ध्यान मग्न यजमान के अभिषेक हो जाने पर यजमान जलपूर्ण पाणि द्वारा हिरण्यगर्भ का दान करे । उन ऋत्विजों की प्रेमार्चा करते हुए उन्हें या उनकी आज्ञा से अनेकों को वितरण अथवा यज्ञ का समस्त साधन गुरु को सादर समर्पित करे ।५०-५६। चरणपादुका, उपानह्, छाता, चामर, पात्र, अन्य विप्र या सभासदों को अर्पित करें । पुनः विशेषदान दीन, अंधे, कृपण आदि व्यक्तियों को यथेच्छ अन्न दान यज्ञ समाप्ति करता रहे । इस विधान द्वारा दान करने वाला मनुष्य समस्त कुल को तारते हुए पाँच योजन के विस्तृत एवं परमोत्तम विमान द्वारा उस देवलोक की यात्रा करता है, जो बावली, कूप, सरोवर आदि जलाशयों से अलंकृत, सैकड़ों उपवन और पद्माकर से सेवित, सैकड़ों प्रासाद (महलों के कोठे) से आच्छन्न है एवं जहाँ सैकड़ों दिव्याङ्गनाएँ सेवा करने के लालायित रहती है, वीणा, वेणु, मृदङ्ग, की ध्वनियों का महान् कोलाहल आरम्भ रहता है । राजेन्द्र ! उसकी भूमि मणिमय, दिव्य एवं शुभ होती है, विचित्र वेदियों से सुशोभित तथा भास्कर के समान उसकी प्रभा है । विश्वकर्मा ने निर्माण के समय उसमें सैकड़ों स्तम्भ लगाये हैं, विचित्र पताकाओं और वस्त्रों से वह नितान्त विभूषित है । ऐसे परमोत्तम विमान पर बैठ कर विद्याधरगणों समेत इन्द्र लोक पहुँच कर इन्द्र के साथ वह आनन्दानुभव करता है ।५७-६५। सौ मन्वन्तरों के

---

१. ताम्रमयैरित्यर्थः । २. गौरवर्णैर्नवैर्दृढैः । ३. मूर्ध्नि । ४. चिरञ्जीवी ।

मन्वन्तरशते जाते कर्मभूमौ प्रजायते । जम्बूद्वीपमशेषं[1] तु भुंक्ते दिव्यपराक्रमः ॥६६
धार्मिकः सत्यशीलश्च ब्रह्मण्यो गुरुवत्सलः । दश जन्मान्यसौ राजा जायते रोगवर्जितः[2] ॥६७
यस्त्विदं शृणुयाद्भक्त्या रहस्यं पापनाशनम् । सोऽपि वर्षशतं साग्रं सुरलोके महीयते ॥६८
गर्भं हिरण्यरचितं विधिवत्प्रविश्य संस्कारसंस्कृततनु पुनरेवतस्मात् ।
निःसृत्य[3] तद्द्विजवराय निवेद्य भक्त्या मार्तण्डवद्दिवि विराजति दिव्यदेहः ॥६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हिरण्यगर्भदानविधिवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७६

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्डदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अगस्त्येन पुरा गीतो दानानां विधिरुत्तमः । शृणु त्वं राजशार्दूल कथ्यमानं मयाधुना ॥१
येन दत्तेन राजेन्द्र सर्वं पापं व्यपोहति । मानसं वाचिकं वापि कायिकं च सुदुस्तरम् ॥२
मङ्गल्यं मङ्गलं पुण्यं सर्वदानेषु चोत्तमम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं परलोकभयापहम्[4] ॥
ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुताम् ॥३

समान तक वहाँ सुखानुभव करने के पश्चात् वह इस कर्म भूमि में जन्म ग्रहण कर अपने दिव्य पराक्रम द्वारा निखिल जम्बूद्वीप का उपभोग करता है । दश जन्म तक धार्मिक सत्यशील, ब्रह्मतेजा, गुरु वत्सल एवं नीरोग राजा होता है । भक्तिपूर्वक इस रहस्य का श्रवण करने वाला भी पाप विनाश पूर्वक सौ वर्ष तक सुरलोक में पूजित होता है। इस प्रकार हिरण्य (सुवर्ण) रचित गर्भ में प्रविष्ट होकर पुनः (गर्भाधानादि) संस्कार सम्पन्न होकर निकलने पर वह मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मण को उसे अर्पित करने पर सूर्य की भाँति दिव्य देह प्राप्त कर सुशोभित होता है ।६६-६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
हिरण्यगर्भदान विधि वर्णन नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७६।

अध्याय १७७

सुवर्णनिर्मित ब्रह्माण्डदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृपशार्दूल ! प्राचीन काल में अगस्त्य जी ने दानों का परमोत्तम विधान बताया है, मैं तुम्हें वही बता रहा हूँ, सुनो ! राजन् ! जिस विधान द्वारा दान देने पर कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों भाँति के पाप विनष्ट होते हैं तथा मंगलों में परम मङ्गल, समस्त दानों में वह परमोत्तम धन्य, यश और आयुवर्द्धक तथा शत्रुओं को भयप्रद हैं । ब्रह्माण्ड की सर्वलक्षण सम्पन्न काञ्चन प्रतिमा

---

१. च । २. पापवर्जितः । ३. निर्गत्य । ४. परलोकभयावहम्, पाठे परलोकः शत्रुजनो बोध्यः ।

देवासुरमनुष्यैश्च गन्धर्वोरगराक्षसैः । संयुक्तं च नदीभिश्च समुद्रैः पर्वतैस्तथा ।
विमानशतकोटीभिर्भूषितं चाप्सरोवरैः[1] ॥४
दिग्गाष्टकसंयुक्तं मध्यस्थितचतुर्मुखम् । शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ॥५
तस्यांगे कल्पयेद्राजन्भुवनानि चतुर्दश । वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम् ॥६
कुर्याद्विंशत्पलादूर्ध्वमासहस्राच्च भक्तितः । शकलद्वयसंयुक्तं पुटाकारं सुसंहितम् ॥७
शिल्पिना विहितं यस्माद्ब्राह्मणां सर्वकामदम् । अयने विषुवे चैव चन्द्रादित्यग्रहे तथा ॥८
अन्येष्वपि तु कालेषु श्रद्धावित्तसमन्वितः । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा तत्र संस्थापयेद्बुधः ॥९
तिलद्रोणोपरिगतं कुङ्कुमक्षोदचर्चितम् । वासो युग्मेन संच्छाद्य पुष्पगन्धाधिवासितम् ॥१०
तस्य दिक्षु च सर्वासु पूर्णकुम्भांश्च विन्यसेत् । अष्टादशैव धान्यानि द्रोणमात्राण्यथाहरेत् ॥११
गृहे वा मण्डपे वापि स्थापयेत्तद्विचक्षणः । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनदर्पणैः ॥१२
संयुक्तं कारयेत्तत्र पयस्विन्या तथैव च । कारयेत्कुण्डमेकं तु हस्तमात्रं विधानतः ॥१३
चतुश्चारणिकास्तत्र होमं कुर्युर्द्विजोत्तमाः । सर्वाभरणसम्पन्नाः सुस्नाताहतवाससः ॥१४
प्रचरेयुर्द्विजास्तत्र उपाध्यायसमन्विताः । तथा पुरोहितश्चैव राज्ञा षष्ठो विधीयते ॥१५
इतरेषां तु पञ्चैव कुपुर्यज्ञमतंद्रिताः । ग्रहयज्ञविधानेन ग्रहाणां यज्ञ इष्यते[2] ॥१६
ब्रह्मविष्णुशिवानां च तन्नाम्नी[3] जहुयात्तिलान् । अयुतं होमयेत्पश्चान्महाव्याहृतिभिर्नृप[4] ॥१७
रुद्रजापस्तु कर्तव्यस्तस्यैवानन्तरे द्विजैः । ततः सर्वसमाप्तौ तु स्नात्वा शुक्लाम्बरः शुचिः ॥१८

बनाये ।१-३। जिसमें देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, नदी, समुद्र, पर्वत, सैकड़ों उत्तम विमान, अप्सराएँ आठों दिग्गज, मध्य में ब्रह्मा, शिव, विष्णु, सूर्य शिखर में और उमालक्ष्मी आदि स्थित हों। राजन् ! उसके अंग में चौदहों भुवन की रचना करे । वह सौ अंगुल का लम्बा चौड़ा हो । उसकी रचना कम से कम बीस पल से सहस्र पल सुवर्ण तक की करनी चाहिए । उसके दो खण्ड (भाग) बनाते समय उसे उठाकर (गोलाकार) बनाये । इस भाँति शिल्पी द्वारा उस ब्रह्माण्ड की रचना कराये, जो समस्त कामनाओं को सफल करता है । पुनः किसी अयन, विषुप, चन्द्र सूर्य ग्रहण, या अन्य किसी पुण्य अवसर पर श्रद्धा भक्ति समेत उसे पुष्प मण्डप में स्थापित कर द्रोण प्रमाण तिल के ऊपर रखकर कुंकुम चन्दन चर्चित करे । दो वस्त्र से आच्छन्न कर पुष्प गन्ध से अधिवासित करते हुए उसके सभी दिशाओं में पूर्ण कलशों की स्थापना करे द्रोण प्रमाण अठ्ठारह प्रकार के धान्यों को एकत्र कर घर या मण्डप में उस मूर्ति की स्थापना करे ।४-११½। चरणपादुका, उपानह, छत्र, पात्र, आसन, दर्पण, पयस्विनी गौ आदि के दान पूर्वक उसमें एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाये, जिसमें चार चारणिक श्रेष्ठ ब्राह्मण समस्त भूषित एवं नवीन वस्त्र धारण कर हवन कार्य सम्पन्न करें। उस यज्ञ में उपाध्याय समेत चार अन्य ब्राह्मण, पुरोहित और छठां राजा रहता है। किन्तु पुत्र यज्ञ में पाँच ही यज्ञ कार्य करते हैं। ग्रहयज्ञ के विधान द्वारा ग्रहों की आहुति प्रदान करके ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के लिए उनके नामों के उच्चारण करते हुए तिल की आहुति देनी चाहिए ।१२-१६½। नृप ! पश्चात् महाव्याहृतियों द्वारा दश सहस्र संख्या की आहुति अर्पित करते हुए बीच-बीच में

---

१. चाप्सरोवरैः । २. उच्यते । ३. तत्राज्यम् । ४. महाव्याधिहृतिर्भवेत् ।

ब्रह्माण्डं पूजयेद्भक्त्या गृहीतकुसुमाञ्जलिः । नमो जगत्प्रतिष्ठाय विश्वधाम्ने नमोऽस्तु ते ।।१९
वाङ्मयान्त निमग्नाय ब्रह्माण्ड शुभकृद्भव । ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि सत्त्वानि कानिचित् ।।२०
तानि सर्वाणि मे तुष्टिं प्रयच्छन्त्वतुलां[1] सदा । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपालास्तथा ग्रहाः ।।२१
नक्षत्राणि तथा नागा ऋषयो मरुतस्तथा । सर्वे भवन्तु सन्तुष्टाः[2] सप्तजन्मान्तराणि मे ।।२२
इत्युच्चार्य ततो दद्याद्ब्रह्माणं सर्वकामदम् । सदक्षिणं च तं कृत्वा वसु सम्पादयेद्द्विजान्[3] ।।२३
अनेन विधिना दत्त्वा यत्पुण्यं स्यान्नरोत्तम । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम[4] ।।२४
आसीदादियुगे राजा सुद्युम्नो[5] नाम भारत । नागायुतबलः श्रीमान्बहुभृत्यपरिच्छदः ।।२५
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि[6] कृत्वा राज्यमकण्टकम् । ततः संस्थाप्य तनयं राजा राज्ये वनं ययौ ।।२६
प्रविश्य च वनं घोरं तपस्तीव्रं चचार ह । अध्यात्मगतितत्त्वज्ञः कर्मकाण्डं विसृज्य च ।।२७
कालेन महता राजा दिष्टान्तमगमत्पुरा । दिव्यं विमानमारुह्य नानावाद्यरवाकुलम्[7] ।।२८
अतीत्य शक्रलोकादीन्ब्रह्मलोकमितो गतः । तस्यासनं दिदेशाथ ब्रह्मासुरगणैर्वृतः[8] ।।२९
दिव्यं कनकचित्राङ्गं रत्नालंकृतविग्रहम् । एवं लोकवरे तस्मिन्रममाणो नृपोत्तम ।।३०
आस्ते चानुदिनं सोऽथ दिव्यभोगविवर्जितः । वसतस्तस्य राज्ञस्तु शरीरं परितप्यते ।।३१

ब्राह्मणों द्वारा रुद्र जाप होना चाहिए । सर्व की समाप्ति होने पर स्नान-शुक्लाम्बर धारण एवं पवित्रता पूर्ण यजमान भक्ति पूर्वक पुष्पाञ्जलि लेकर ब्रह्माण्ड की अर्चा करे—(अपने में) जगत् स्थापित करने वाले को नमस्कार है, विश्व गृह को नमस्कार है । ब्रह्माण्ड ! आप वाङ्मय के भीतर निमग्न हैं एवं आप का जन्म शुभ कारक है । और ब्रह्माण्ड के उदर में जितने सत्व हैं उसे समेत मुझे अतुलनीय तुष्टिप्रदान करने की कृपा करें । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लोकपाल, ग्रह, नक्षत्र, नाग, ऋषि और मरुत गण आदि मेरे सात जन्म तक सन्तुष्ट रहें । इस प्रकार कहते हुए समस्त कामनाओं को सफलप्रद वह ब्रह्माण्ड धन दक्षिणा समेत किसी ब्राह्मण को अर्पित करे । नरोत्तम ! इस विधान द्वारा उसके दान करने जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उस मैं बता रहा हूँ, सुनो ! १७-२४। भारत ! आदि युग में सुद्युम्न नामक एक राजा था, जो दश सहस्र हाथी के समान बलवान, श्रीमान्, एवं अनेक सेवक गणों से सम्पन्न था । तीस सहस्र वर्ष निष्कण्टक राज्य का सुखानुभव करने के उपरान्त राजा राज सिंहासन पर अपने पुत्र को प्रतिष्ठित कर स्वयं जंगल चले गये । वहाँ घोर वन में पहुँच कर राजा ने कठिन तप करना आरम्भ किया । अध्यात्म गति के तत्त्व का निपुण वेत्ता उस राजा ने कर्म—काण्ड का विसर्जन करते हुए बहुत दिनों के अनन्तर इस लोक का त्याग किया । अनेक भाँति के वाद्य ध्वनियों से भूषित उस उत्तम विमान पर बैठकर वह राजा इन्द्र लोक के ऊपर ब्रह्म लोक चला गया । वहाँ देवगणों समेत ब्रह्मा ने आसन प्रदान पूर्वक उस का स्वागत किया, जो दिव्य, सुवर्ण से चित्र विचित्र और रत्नों से अलंकृत था । नृपोत्तम ! इस प्रकार के उत्तम लोक में रमण करते हुए वह राजा अनुदिन दिव्य भोग से वञ्चित होने लागा । वहाँ रहते हुए भी राजा की शरीर संतप्त होने लगी ।२५-३१। नरश्रेष्ठ ! भूख और प्यास से व्याकुल होने पर उसने हाथ जोड़ कर ब्रह्मा से

---

१. आत्मना । २. सुप्रीताः । ३. दिक्संख्यान्वाचयेद्विजान् । ४. वदतो मम । ५. प्रद्युम्नो नाम वीर्यवान् । ६. विंशद्वर्षसहस्राणि । ७. विद्याधराकुलम् । ८. सह ।

बुभुक्षया नरश्रेष्ठ तथात्यन्तपिपासया । स पीडयमानो ब्रह्माणं कृताञ्जलिरभाषत ॥३२
भगवन्ब्रह्मलोकोऽयं सर्वदोषविवर्जितः । अत्र स्थितं च मां देव क्षुत्तृष्णा च प्रबाधते ॥३३
केन कर्म विपाकेन क्षुधा मे नापसर्पति । ब्रह्मलोक गतस्यापि संशयं छेत्तुमर्हसि ॥३४

ब्रह्मोवाच[१]

त्वया हि कुर्वता राज्यं पुष्टान्यङ्गानि पार्थिव । नैव दत्तं तु बहुलमात्मवादरतेन वै ॥३५
दानं बन्धात्मकं मत्वा तस्माद्दत्तं त्वया न हि । ज्ञानाद्ब्रह्मपदं प्राप्तनदानात्क्षुत्प्रबाधते ॥३६

राजोवाच

भगवन्स्तृषापनुत्तिः स्यात्कथं मे परमेश्वर । उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥३७

ब्रह्मोवाच

भूयो गत्वा महीं राजन्ब्रह्माण्डं सार्वकामिकम् । प्रयच्छ द्विजमुख्यानां[२] तेन तृप्तिमवाप्स्यसि ॥३८
इत्युक्तः सम्यगागत्य मर्त्यलोकं[३] महीपतिः । ब्रह्माण्डं तु विधानेन ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तवान् ॥३९
स जगाम पुनः स्वर्गं लेभे तृप्तिं च शाश्वतीम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं महादानस्य यत्फलम् ॥४०
ब्रह्माण्डं यः प्रयच्छेत तेन दत्तं चराचरम् । सप्तावरान्सप्त परान्सप्त चैव परावरान् ॥४१
तारयेत्कुलजान्दत्त्वा भविष्यांश्च न संशयः । मन्वन्तराणि षट्त्रिंशद्ब्रह्मलोके महीयते ॥४२
पुनर्मानुष्यमभ्येत्य[४] धार्मिको जायते कुले । न दारिद्र्यं न च व्याधिं वियोगं नैव[५] पश्यति ॥४३

कहा—भगवन् ! यह ब्रह्म लोक समस्त दोषों से रहित है किन्तु यहाँ रहते हुए भी मुझे भूख-प्यास की बाधा हो रही है, देव ! ब्रह्म लोक पहुँचने पर भी मेरे किस कर्म के दुष्परिणाम स्वरूप यह क्षुधा निवृत्त नहीं हो रही है, यह संशय दूर करने की कृपा करें ।३२-३४

ब्रह्मा बोले—पार्थिव ! राज्य करते हुए तुमने अपने शरीराङ्गों को ही पुष्ट किया अध्यात्मवादी होने के नाते कोई महान् दान नहीं किया । दान को बन्धन समझ कर उसे सम्पन्न नहीं किया इसलिए केवल ज्ञान द्वारा तुम्हें ब्रह्म पद प्राप्त हुआ है और दान न करने से क्षुधा ।३५-३६

राजा बोले—भगवन्, परमेश्वर ! मेरी तृषा का अपहरण किस प्रकार होगा, उपदेश द्वारा बताने की कृपा करें ।३७

ब्रह्मा बोले—राजन् ! पुनः पृथ्वी पर जाकर सर्वकामप्रद ब्रह्माण्ड दान किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करो, उससे तुम्हें तृप्ति होगी । उनके ऐसा कहने पर राजा मर्त्य लोक में आकर सविधान ब्रह्माण्ड का दान ब्राह्मणों को अर्पित किया, जिससे स्वर्ग जाने पर उसे शाश्वती तृप्ति हुई । इस भाँति इस महादान का जो फल होता है मैंने वह तुम्हें सुना दिया । ब्रह्माण्ड का दान करने वाला चराचर जगत् का दान किया इसमें संदेह नहीं । पूर्व और पर की सात सात पीढ़ियों का वह उद्धार करता है । इस दान के

---

१. कृष्ण उवाच, विष्णुरुवाच । २. द्विजमुख्याय । ३. ब्रह्मलोकात् । ४. आसाद्य । ५. न वै विपत् ।

नारी वा पुरुषो वापि दानस्यास्य प्रभावतः । यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या भक्तानां श्रावयेच्च यः ।।४४
सोऽपि सद्‌गतिमाप्नोति किं पुनर्यः प्रयच्छति ।।४५

ब्रह्माण्डखण्डयुगलं सकुलाचलं च दिग्भागसागरसरोवरसिद्धजुष्टम् ।
दिक्संख्यया गुणवतां द्विजसत्तमानां दत्त्वा पुमान्पदमुपैति पितामहस्य ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ब्रह्माण्डदानविधिवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७७

अथाष्टासप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्पवृक्षदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भगवाञ्छंकरः पूर्वं कृतोद्वाहोमया[1] सह । रममाणस्तया सार्द्धं बहुवर्षगणास्थितः ।।१
ततः सुरगणाः सर्वे परं त्रासमुपागताः । तयोरपत्यस्य भयात्तमेव शरणं गताः ।।२
वैश्वानरमुखा देवा महादेवं[2] त्रिलोचनम् । प्रसन्नश्चाभवत्तेषां विबुधानां त्रिलोचनः ।।३

प्रभाव से स्त्री पुरुष छत्तीस मन्वन्तरों के समय तक वहाँ (ब्रह्मलोक में) सुखानुभव करके पुनः धार्मिक मनुष्य कुल में जन्म ग्रहण करता है। दरिद्र, व्याधि, और वियोग दुःख उसे कभी नहीं होता है।३८-४३। भक्तिपूर्वक भक्तों को इसे सुनने सुनाने वाला भी सद्‌गति प्राप्त करता है तो दान करने वाले को क्या कहा जाये। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के सुवर्ण निर्मित दो खण्ड बनाकर, जिसमें समस्त पर्वत, दिशाएँ, सागर, सरोवर आदि बने रहते हैं, गुणी एवं श्रेष्ठ दश ब्राह्मणों को अर्पित करने वाले को ब्रह्मपद प्राप्त होता है।४४-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
ब्रह्माण्डदानविधि वर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७७।

अध्याय १७८

सुवर्णनिर्मित कल्पवृक्ष दान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पूर्वकाल में भगवान् शङ्कर ने उमा देवी के साथ पाणिग्रहण करके अनेक वर्षों तक रमण किया। अनन्तर समस्त देवगण उनदोनों से उत्पन्न होने वाली सन्तान के भय से त्रस्त होकर उनके शरण में गये। वैश्वानर (अग्नि) आदि समस्त देवताओं ने त्रिनेत्र महादेव के पास पहुँचकर उन्हें प्रसन्न किया।१-३

---

१. सन्धिरार्षः कृतोद्वाहा उमया सहेति पदच्छेदः । यद्वा—कृतोवाहया उमया सहेति योजनानुसंधया । २. देवदेवम् ।

ईश्वर उवाच

किं भीतास्त्रिदशः सर्वे कं वरं च ददामि वः । मयि प्रसन्ने विबुधा दुर्लभं हि न किंचन ।।४

देवा ऊचुः

भगवन्स्तव संयोगात्पार्वत्या सह शङ्कर । मोघो भवतु देवेश भीताः स्म तनयस्य ते ।।५
अनपत्यश्च देवेश भव भूतपते सदा । अशक्ताः स्म वयं सर्वे भवदोजो विधारणे ।।६

श्रीभगवानुवाच

अतः प्रभृत्यहं देवा ऊर्ध्वरेता व्यवस्थितः । स्थाणुवच्च स्थितश्चास्मि नाम चैतद्भविष्यति ।।७
ततः क्रुद्धा उमा तेषां देवानां वाक्यमब्रवीत् वितथं पुत्रजं सौख्यं भवद्भिर्मे कृतं सुराः ।।८
यस्मात्तस्माद्भवन्तोऽपि न पुत्राञ्जनयिष्यथ । ततः प्रभृति वै देवाः प्रसूयन्ते न भूपते ।।९
दत्त्वा शापं ततो देवी देवानामाह शङ्करम् । पुत्रजन्म मया प्राप्तं न तावज्जगतः पते ।।१०
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इतीयं श्रूयते श्रुतिः । तदादिश महाभाग लोकद्वयहितं प्रभो ।।११

भगवानुवाच

अपुत्रः पुरुषो यश्च नारी वा पर्वतात्मजे । सौवर्णस्तेन दातव्यः कल्पवृक्षो गुणान्वितः ।।१२
कृत्रिमं वापि गृह्णीयाद्वृक्षं वा स्थावरादिकम् । [१]जातपुत्रोऽथ वा पुत्रः पुत्रत्वे परिकल्पयेत् ।।१३
तेन पुत्रवतां लोका देवि तस्य न संशयः । कल्पवृक्षस्तु कर्तव्यः शुद्धाकाञ्चनसम्भवः ।।१४

ईश्वर बोले—देवगण ! क्या आप लोग भयभीत हो रहे हैं ? कौन वर तुम्हें प्रदान करूँ, क्योंकि मेरे प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।४

देवों ने कहा—देवेश, भगवन्, शंकर, ! पार्वती के साथ किया हुआ तुम्हारा भोग निष्फल हो जाये हम लोग तुम्हारे पुत्र से भयभीत हो रहे हैं । देवेश, भूतपते ! आप सदैव सन्तान हीन रहें क्योंकि आप के तेजों को धारण करने में हम सभी असमर्थ हैं ।५-६

श्रीभगवान् बोले—देवगण ! आज से मैं अब उर्ध्वरेता रहकर स्थाणु की भाँति स्थित रहूँगा, जिसे 'स्थाणु' भी मेरा नाम हो । तदुपरान्त उमा ने क्रुद्ध होकर देवताओं से कहा—देवगण ! तुम लोगों ने मेरा पुत्र-जन्य सौख्य निष्फल कर दिया है, इसलिए तुम लोग भी पुत्र उत्पन्न न कर सकोगे ! भूपते ! उसी समय से देवों के कोई प्रसव न हो सका । इस भाँति देवों को शाप देने के अनन्तर देवी ने शंकर जी से कहा—जगतपते ! महाभाग ! मुझे पुर्नजन्म का सुख प्रदान हो सका, और श्रुति भी कहती कि पुत्रहीन की गति नहीं होती है, अतःदोनों लोकों का हित करने वाली कोई आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें ।७-११

भगवान् बोले—पर्वतात्मजे ! पुत्र हीन स्त्री या पुरुष को सुवर्ण का सुरचित कल्पवृक्ष दान करना चाहिए । देवि ! इस प्रकार कृत्रिम, या स्थवरादि वृक्ष अथवा उत्पन्न पुत्र में प्रभुत्व की कल्पना करने से लोक पुत्रवान् कहा जाता है इसमें संशय नहीं शुद्धस्वर्ण द्वारा एक कल्पवृक्ष का निर्माण करें ।१२-१४

---

१. प्रजाम् ।

बहुशाखः सुवर्णांगोप्यनेककुसुमान्वितः । महास्कंधस्वरूपश्च रत्नालंकृतविग्रहः ॥१५
फलानि तस्य दिव्यानि सौवर्णानि प्रकल्पयेत् । कुर्याद्विंशत्पलादूर्द्धं शक्त्या वा नृप सत्तम ॥१६
दानमेतत्प्रदातव्यं राजतं चैवमुत्तमम् । प्रवालांकुरसंछन्नं मुक्तादामावलम्बितम् ॥१७
चतुष्कोणेषु कुर्वीत चतुरः काञ्चनद्रुमान् । सुवर्णस्य प्रमाणं च कथयामि वरानने ॥१८
सहस्रेण तदर्द्धेन तस्याप्यर्द्धेन वा पुनः । नद्यास्तीरे गृहे वापि[1] देवतायतने तथा ॥१९
प्रागुदक्प्रवणे देशे मण्डपं तत्र कारयेत् । दशहस्तप्रमाणेन दशहस्ताश्च वेदिका ॥२०
हस्तमात्रप्रमाणेन कुण्डमेकं सुशोभनम् । आग्नेय्यां कारयेद्राजन्मेखलामुपलेपनम् ॥२१
तत्र वै ब्राह्मणा योज्या ऋग्यजुः[2] सामपाठकाः । उपदेष्टा च तत्रैव तृतीयः[3] पञ्चमोऽथ वा ॥२२
सर्वाभरणसम्पन्नास्ताम्रपत्रद्वयान्विताः । अनुलिप्ताश्चन्दनेन वस्त्रमाल्यादिभूषिताः ॥२३
गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च स्थापयेत्कल्पपादपम् । ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम् ॥२४
कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं[4] प्रयोजयेत् । सन्तानं सह गायत्र्या पूर्वतो लवणोपरि ॥२५
मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सह तथा घृते[5] । पश्चिमे पारिजातं तु उमया सह पादपम् ॥२६
सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम् । कौशेयवस्त्रसंयुक्तानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥२७
तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्परिकल्पयेत् । अग्निप्रणयनं कृत्वा अधिवास्य च पादपान् ॥२८

जो बहुत शाखाओं से आच्छन्न, सुवर्णाङ्ग होते हुए अनेक पुष्पों से भूषित, महान् स्कंध और उसकी समस्त शरीर रत्न से अलंकृत हो। उसके दिव्य फल भी सुवर्ण निर्मित ही होने चाहिए। नृपसत्तम ! बीस पल से अधिक सुवर्ण या चाँदी का यह उत्तम दान करना चाहिए। जो प्रवाल के अंकुरों से आच्छन्न और मोती की मालायें आबद्ध होकर लटकी हों। उसके चारों कोण पर चार सुवर्ण वृक्ष होने चाहिए। वरानने ! मैं सुवर्ण प्रभाव तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! सहस्र या तदर्द्ध अथवा उसके भी आधे भाग से उसका निर्माण करके नदी, गृह या देवालय के प्रदेश में पूर्वोत्तर (ईशान) की ओर निम्न एक मण्डप की रचना करे, जो दश हाथ का विस्तृत हो और उसकी वेदी भी दशहाथ की विस्तृत हो। उसके अग्नि कोण में एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाकर उसे मेखलाओं से भूषित करे।१५-२१। उसके चारों ओर ऋग् वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के मर्मज्ञ विद्वानों को सादर नियत करे, जो उपदेष्टा समेत तीन या पाँच की संख्या में हों। उन्हें समस्ताभरणभूषित, दो ताम्रपात्रों से युक्त, चन्दन से आहुति से अनुलिप्त और वस्त्र-माला आदि से अलंकृत करने के उपरान्त एक सेर गुड़ के ऊपर वह कल्पवृक्ष स्थापित करे जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव से युक्त, पाँच शाखाओं से अन्वित एवं भास्कर समेत हों। उसके नीचें रति समेत कामदेव, पूर्वक की ओर लवण के ऊपर संतान समेत गायत्री, दाहिने पार्श्व में घृत पर श्री समेत मन्दार, पश्चिम में उमासमेत पारिजात वृक्ष, तिल के ऊपर सुरभी समेत हरिचन्दन की स्थापना करते हुए चारों ओर रेशमी वस्त्र भूषित और ऊख, माला, फल आदि समेत आठ पूर्ण कलश स्थापित करे। अग्नि स्थापन पूजन और वृक्षों के अधिवासन करके चारों ओर समस्त धान्यों की कल्पना करे।२२-२८।

---

१. पार्श्वे। २. ऋग्यजुः सामयाजकाः। ३. द्वितीयः। ४. सङ्कल्पेन। ५. वृत्तेन।

धान्यानि चैव सर्वाणि समन्तात्परिकल्पयेत् । नाना भक्ष्याणि नैवेद्यं सर्वं तत्र नियोजयेत् ।।२९
दीपमाला विचित्राश्च ज्वालयेत समन्ततः । मन्त्रेण योजयित्वा ता मयोक्तेन वरानने ।।३०
कामदस्त्वं हि देवानां कामवृक्षस्ततः स्मृतः । मया सम्पूजितो भक्त्या पूरयस्व मनोरथान् ।।३१
एवं सम्पूज्य विधिना जागरं तत्र कारयेत् । शङ्खवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिविनिश्रितैः ।।३२
होमं च ब्राह्मणं कुर्युर्मद्गतेनान्तरात्मना । आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ।।३३
तल्लिङ्गैः स्थापितान्देवान्होमेनाप्याययेत्ततः । महाव्याहृतिभिश्चैव होमं कुर्युस्ततः परम् ।।३४
अयुतेन भवेत्सिद्धिर्यज्ञस्यवरवर्णिनि । ततः प्रभाते चोत्थाय स्नात्वा शुक्लाम्बरः शुचिः ।।३५
दद्यात्पर्वसमीपे तु कल्पवृक्षं सदक्षिणम् । त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ।।३६
नमस्ते कल्पवृक्षाय विततार्थप्रदाय च । विश्वंभराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ।।३७
यस्मात्त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मस्थाणुदिवाकराः । मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ।।३८
एवमामन्त्र्य तं दृष्ट्वा गुरवे कल्पपादपम् । चतुर्भ्यश्चापि ऋत्विगभ्यः सामन्तादीन्प्रकल्पयेत् ।।३९
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । तस्य पुण्यफलं देवि शृणुष्व गदतो मम ।।४०
विमानवरमारुह्य सूर्यतेजः समप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं किंकिणीजालमालितम्[1] ।।४१
याति लोकं सुरेशस्य सर्वबाधाविवर्जितम् । पुनः कर्मक्षितावेत्य जायते श्रोत्रिये कुले ।।४२

जहाँ अनेक भाँति के भक्ष्यपदार्थ एवं नैवेद्य सुसज्जित हों। वहाँ दीपमालाएँ प्रज्वलित कर, जो चित्र विचित्र शोभित होती हों। वरानने ! इस प्रकार उनका आयोजन करके मेरे कहे हुए मंत्र द्वारा उनकी अर्चना करें—देवों की समस्त कामनाओं को सफल करने के नाते तुम्हें कामवृक्ष कहा जाता है इसलिए मैंने भी भक्तिपूर्वक आपकी अर्चना की है मेरे मनोरथों को सफल करने की कृपा करें। इस भाँति उनकी पूजा के उपरान्त रात्रि में जागरण करें। सारी रात शंख तुरुही आदि की ध्वनि, जयघोष, एवं वेदध्वनि होती रहती रहे। अनन्तर मेरे स्मरणपूर्वक ब्राह्मणों को हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए। सर्वप्रथम आज्यभाग आधार की आहुति प्रदान करते हुए स्थापित देवों के निमित्त उनके लिंग द्वारा आहुति अन्य महाव्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक यज्ञ की दशसहस्र संख्या की आहुति की पूर्ति करे।२९-३४। वरवर्णिने ! इस प्रकार यज्ञ सिद्धि होने के अनन्तर प्रातःकाल स्नान, शुक्लाम्बर धारण कर पवित्रता पूर्ण उस पर्व के समय उसकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए दक्षिणा समेत वह कल्पवृक्ष वाहनगण को अर्पित करे—विस्तृत अर्थ प्रदान करने वाले कल्प वृक्ष को नमस्कार है, विश्वमूर्ति स्वरूप उस विधान विश्वम्भर देव को नमस्कार है। तुम्हारीं विश्वात्मा, ब्रह्मा, स्थाणु (शिव) एवं सूर्य हो, तथा मूर्त अमूर्त के परम बीज और सनातन अतः मेरी रक्षा करो। देवि ! इस विधान द्वारा इसके दान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठकर, जो अप्सरागणों से आच्छन्न और किंकड़ी जालों से भूषित रहता है, इन्द्र के उस सर्वबाधा रहित लोक में जाता है।३५-४१। पुनः कभी इस कर्म क्षेत्र

---

१. किङ्किणीजालमण्डितम्।

यज्वा शूरोऽपि विद्वांश्च भवति धार्मिकः। पुनरन्ते प्राप्नुयाद्वै लोकं देवस्य शार्ङ्गिणः ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्पवृक्षदानविधिवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।१७८

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्पलतादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्सर्वभूतेश सर्वलोकनमस्कृत । अनुग्रहाय लोकानां कथयस्व ममापरम् ॥१
निष्पापो जायते येन आयुषा यशसा श्रिया । तन्मे कथय देवेश दानं व्रतमथापि वा ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तत[1] लोकहितेप्सया । येनोपायेन जायन्ते सभाग्या मानवा भुवि ॥३
न व्रतैर्नोपवासैश्च न तीर्थगमनैरपि । महापथादिमरणैर्न यमैर्न श्रुतेन च ॥४
प्राप्यते मम लोकोऽयं दुष्प्राप्यस्त्रिदशैरपि । पार्थ स्नेहान्महाभाग प्रवक्ष्यामि हितं तव ॥५
वक्ष्ये कल्पलता दानं शोभनं विधिपूर्वकम् । सर्वं पूर्वविधानं च तत्र तन्त्रे प्रकल्पयेत् ॥६
दिक्पालेभ्यो बलिं तत्र क्षिपेद्वै विधिपूर्वकम् । आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ॥७

(भूतल) में आने पर श्रोत्रिय (वेदाध्यायी) कुल में जन्म ग्रहण करता है, जो याज्ञिक, शूर, विद्वान्, और परम धार्मिक होता है और पुनः अन्त में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ।४२-४३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरकेसम्वाद में
कल्पवृक्षदानविधिवर्णन नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७८।

अध्याय १७९

कल्पलता-दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के स्वामी हैं समस्त लोक आपको नमस्कार करता है अतः लोक हितार्थ कोई अन्य बात बताने की कृपा करें । देवेश ! जिस दान, व्रत या अन्य उपाय द्वारा प्राणी पापरहित और आयु, यश एवं श्री सम्पन्न होता है, उसे बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस उपाय द्वारा मनुष्य इस भूतल में भाग्यवान् होता है, वह लोकहितार्थ तुम्हें बता रहा हूँ, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, महातीर्थादिमरण, यज्ञ और वेदपाठ द्वारा मेरा लोक प्राप्त नहीं होता है, वह देवों के लिए भी दुर्लभ है । महाभाग, पार्थ ! किन्तु तुम्हारे स्नेहवश मैं तुम्हें बता रहा रहा हूँ । वह कल्पलता दान अत्यन्त सुशोभन है अतः उसे सविधि सुसम्पन्न करना चाहिए । उस तन्त्र में पूर्व की भाँति ही सब विधान कहा गया है । सविधान दिक्पालों के लिए बलि प्रदान, आज्य

---

1. तावत् ।

ततो ग्रहमखं कुर्याद्धोमं व्याहृतिभिस्ततः । अयुतेनैव होमस्य समाप्तिरिह कथ्यते ॥८
ततः सर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुचिः । पुष्पधूपैरथाभ्यर्च्य वासोभिः सफलाक्षतैः ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥९

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालनीभ्यः ।
आशाशताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥१०
या यस्य शक्तिः परमा प्रदिष्टा वेदे पुराणे सुरसत्तमस्य ।
तां पूजयामीह परेण साम्ना सा मे शुभं यच्छतु तां नतोऽस्मि ॥११

एवमुच्चार्य ताः सर्वा ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । दशाशाः परया भक्त्या तास्ताः संकल्प्य चेतसि ॥१२
ततः क्षमापयेद्विप्रान्प्रणिपत्य सदक्षिणान् । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥१३
तस्य पुण्यफलं[1] राजन्कथ्यमानं निबोध मे । इह लोके स विजयी धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥१४
मृतो लोकाधिपपुरे प्रतिमन्वन्तरं वसेत् । महाशक्तिवृत्तः पश्चादेत्य[2] राजन्रसातलम् ॥१५
जितसर्वमहीपालश्चक्रवर्ती भवेद्भुवि । या च नारी महाराज दानमेतत्प्रयच्छति ॥१६
सा चक्रवर्तिनं पुत्रं सूते शक्तिसमन्वितम् । यश्च पश्येद्दीयमानं दत्तं यश्चानुमोदते[3] ॥१७
शृणोति वाच्यमानं च सोऽपि प्रेत्ये विमुच्यते ॥१८

भाग आधार की आहुति अर्पित करने के अनन्तर व्याहृतियों द्वारा ग्रहों को आहुति अर्पित करें । इस यज्ञ में दशसहस्र संख्या की आहुति प्रदान करना बताया गया है ।३-८। तदुपरान्त स्नान, शुक्लवस्त्र धारण, एवं पवित्रता पूर्ण पुष्प, धूप, अक्षत, वस्त्र, फल द्वारा अर्चा करके प्रदक्षिणा करते समय इन मंत्रों का उच्चारण करे—ब्रह्माण्ड लोकेश्वर को पालने वाली उस पाप विनाशिनी को बार-बार नमस्कार है, जो आशातीत सैकडों फल प्रदान करती हुई कल्पलता वधू दिशाओं के रूप में दृष्टि गोचर हो रही है। वेद एवं पुराण में जिस देवश्रेष्ठ की जो शक्ति बतायी गयी है, मैं अत्यन्त विनय विनम्र उसकी अर्चना कर रहा हूँ और उसे नमस्कार कर रहा हूँ, वह मुझे शुभ प्रदान करे। इस प्रकार उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक वह दश दिशा मानसिक संकल्प द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित कर दक्षिणासमेत नमस्कार पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। राजन् ! इस विधान द्वारा इसके दान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बता रहा हूँ। इस लोक में यह आजीवन विजयी, धनवान् और पुत्रवान रहता है ।९-१४। अन्त में निधन होने पर प्रत्येक मन्वन्तरों के समय में वह इन्द्र लोक का निवासी होता है । राजन् ! वह अपनी महान् शक्ति द्वारा रसातल एवं भूतल के समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करने के नाते चक्रवर्ती राजा होता है । महाराज इस दान को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री शक्तिशाली एवं चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करती है । दान देते समय इसका दर्शन, अनुमोदन या (इसके पारायण को) सुनने वाला भी अपने समस्त पापों से मुक्त होता है ।१५-१८। अतः यदि तुम्हें

---

१. मुख्यफलम् । २. सुरलोके वसत्यसौ । पश्चादेव महाराज चक्रवर्ती धराधिपः । ३. अनुमोदयेत् ।

याः शक्रवह्नियमनैर्ऋतपाशहस्ता वातेंदुराजशिवकेशवशम्भुशक्त्यः ।
तां वै प्रपूज्य दशकल्पलता द्विजेभ्यो देहि त्रिलोकविजये यदि तेऽस्ति बुद्धिः ।। १९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्पलतादानविधिवर्णनं नामैकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।१७९

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गजरथाश्वरथदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्क्षत्रियैः शूरैः स्ववीर्योपात्तसंचयैः । कानि दानानि देयानि पवित्राणि शुभानि च ।।१
अन्यैर्वा पुरुषैः कृष्ण अधर्मभयभीरुभिः । ग्रहपीडाभिसन्तप्तैर्दुःस्वप्नाद्युपतापितैः ।।२
इह लोके परे चैव विहितं सर्वकामदम् । विशेषविहितं दानं कथयस्व महामते ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भूपाल भद्रं ते दानधर्ममनुत्तमम् । विशेषेण महीपानां हिताय च न संशयः ।।४
दानानि बहुरूपाणि नानाशास्त्रोदितानि च । गोदानादीना राजेन्द्र प्रधानानि न संशयः ।।५
किं तु प्रधानमेकं[1] ते दानं वक्ष्यामि भारत । वैरोचनाय यत्सर्वं शुक्रः प्रोवाच भारत[2] ।।६

त्रिलोक विजयी होने की इच्छा हो तो इस दश कल्पलता का जो इन्द्र, अग्नि, यम, नैरृत के हाथ का पाश, वायु, चन्द्र, शिव, केशव, शंभु की शक्ति रूप है, सविधान पूजन कर ब्राह्मणों को अर्पित करो ।१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
कल्पलता दान विधि वर्णन नामक एक सौ उन्नयासीवाँ अध्याय समाप्त ।१७९।

अध्याय १८०

हाथी और घोड़े के रथदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! कृष्ण ! उन शूरवीर क्षत्रियों और धर्म भीरु अन्य पुरुषों को ग्रह पीडा से पीडित अथवा दुःस्वप्न दर्शन होने पर किस पवित्र एवं शुभ दान को सुसम्पन्न करना चाहिए, महामते ! इस लोक तथा परलोक में जो समस्त कामनाओं को सफल करे, ऐसा कोई विशेष विशिष्ट दान बताने की कृपा करें ।१-३

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल ! मैं तुम्हें वह परमोत्तम एवं कल्याण कर दान बता रहा हूँ, जो राजाओं के लिए विशेष हितकर है । राजेन्द्र ! यद्यपि शास्त्रों में अनेक भाँति के गोदान आदि प्रधान दान बताये गये हैं इसमें संशय नहीं हैं किंतु मैं तुम्हें बता रहा हूँ वह प्रधान दान बता रहा हूँ, जो शुक्राचार्य ने वैरोचन बलि को बताया था ।४-६

---

१. च । भार्गवः ।

शुक्र उवाच

शृणु दैत्यपते दानं सर्वपापप्रणाशनम् । आधयो व्याधश्चैव ग्रहपीडा सुदारुणाः ।।७
येन दत्तेन नश्यन्ति पुण्यमाप्नोति चोत्तमम् । कार्तिक्यामयने चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः ।।८
दानमेतत्प्रदातव्यं विषुवे सूर्यसंक्रमे । पुण्यं दिनमथासाद्य जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।।९
संस्थाप्य दारुजं दिव्यं हेमपट्टैरलंकृतम् । रथं सुचक्रादाधारं युगयोक्रमसमन्वितम् ।।१०
सुवर्णध्वजसंयुक्तं सितासितपताकिनम्[1] । पुष्पप्रकरसंकीर्णे प्रागुदक्प्रवणे शुभे ।।११
नद्यास्तीरेऽथ वा गोष्ठे विचित्रे वा गृहाङ्गणे । रथस्य पूर्वभागे तु कृत्वा वेदीमनुत्तमाम् ।।१२
पुराणवेदविद्यावान्विनयाचारसंयुतः । तस्यां संस्थापयेद्देवान्ब्रह्मादीन्कथयानि ते ।।१३
मध्ये ब्रह्मा प्रतिष्ठाप्यः पूजयेत्प्रणवेन तम् । विष्णुरुत्तरतः स्थाप्यः पौरुषेण तमर्चयत् ।।१४
सूक्तेन रुद्रं रौद्रेण दक्षिणस्यां समर्चयेत् । ग्रहान्सूर्यमुखांश्चैव विधिवत्पूजयेत्तथा ।।
पुष्पगंधै फलैर्भक्ष्यैर्दीपमालाभिरेव च ।।१५
पूजयेद्गन्धकुसुमैः श्वेतवस्त्रै सचन्दनैः । शङ्खभेरीमृदङ्गानां शब्दै सर्वत्रगामिभिः ।।१६
ब्रह्मघोषविमिश्रैश्च कारयेत महोत्सवम् । कुण्डं कृत्वा विधानेन हस्तमात्रप्रमाणतः ।।१७
आग्नेय्यां दिशि राजेन्द्र ब्राह्मणान्स्तत्र पूजयेत् । चतुश्चारणिकान्विप्रान्पूजितान्ब्रह्मभूषणैः ।।१८
चतुरोष्टौ महाराज गुरुरेकोऽथवा भवेत् । होमोपकरणं सर्वं मेलयित्वा तिलान्घृतम् ।।१९

शुक्र बोले—दैत्यपते ! मैं तुम्हें वह दान बता रहा हूँ, जिससे समस्त पाप, आधि व्याधि, भयानक, ग्रहपीड़ा के विनाशपूर्वक परमोत्तम पुण्य की प्राप्ति होती है । कार्तिकपूर्णिमा, अयन, चन्द्र सूर्य ग्रहण, विषुव, सूर्य संक्रान्ति अथवा किसी पुण्य दिन क्रोध रहित इन्द्रिय संयम पूर्वक उक्त काष्ठ का बना हुआ रथ स्थापित करे, जो दिव्य, हेमपट्ट से भूषित, दृढ़ (मूढ़ी आरागज आदि) सर्वाङ्ग सम्पन्न चक्र (पहिया) और जूएँ रस्सी आदि से युक्त हो । सुवर्ण की ध्वजाओं श्वेत तथा अन्य रंग की पताकाओं से सुसज्जित हो । किसी पुरुष भूषित, पूर्वोत्तर की ओर निम्न शुभ नदीतट, गोशाला या विचित्र गृहाङ्गण में स्थापित रथ के पूर्व के भाग में उत्तम वेदी की रचना करके वह पुराण वेद देवता, एवं विनयविनम्र आचार शील यजमान उस वेदी पर ब्रह्मादि देवों को जहाँ प्रतिष्ठित करता है में बता रहा हूँ । वेदी के मध्य भाग में ब्रह्मा को प्रतिष्ठित कर प्रणव (ओंकार) पूर्वक उनकी अर्चना करे । उत्तर की ओर विष्णु को स्थापित कर पुरुष सूक्त द्वारा पूजित करे दक्षिण में रुद्र को स्थापित कर रुद्र सूक्त से अर्चना करे । उसी भाँति सूर्य प्रमुख ग्रहों की सविधि अर्चना करके पुष्प, गंध, भक्ष्य, फल, दीपमाला, गंध पूर्णपुष्प, श्वेत वस्त्र चन्दन आदि द्वारा शंख भेरी, मृदङ्ग आदि वाद्यों और उस महान् ब्रह्मघोष के कोलाहल में रथादि की पूजा सुसम्पन्न करें ।७-१७। राजेन्द्र ! उसकी अग्नि दिशा में एक हाथ का कुण्ड बनाकर चार चारणिक ब्राह्मणों को जो वेदमर्मज्ञ हों, वस्त्राभूषण से पूजनोपरांत वहाँ नियत करे । महाराज ! चार अथवा आठ अन्य ब्राह्मणों के अतिरिक्त एक गुरु भी रहना चाहिए । हवन के समस्त साधन तिल घृत आदि एकत्र कर

---

1. सितसितपिनाकिनम् ।

अग्निकार्यं ततः कुर्याद्यथावद्विधिपूर्वकम् । आधारावाज्यभागौ तु हुत्वा प्राग्वच्च तौ ततः ॥२०
विष्णवे शितिकण्ठाय मन्त्रैः पूर्वोदितैः शुभैः । ग्रहयज्ञोदितैश्चैव[1] ग्रहाणां होम इष्यते ॥२१
एवं यज्ञविधिं कृत्वा यजमानो द्विजैः सह । योजयेत रथे दान्तौ गजौ लक्षणसंयुतौ ॥२२
विचित्रतनुसम्वीतौ शुभकक्षौ सुघण्टिकौ । हेमपट्टैः सुतिलकै शोभितौ शङ्खचामरैः ॥२३
दिव्यमुक्तापरिच्छन्नौ दिव्यांकुशसमन्वितौ[2] । महामात्रान्वितौ चैव सर्वाभरणभूषितौ ॥२४
एवं विधिं ततः कृत्वा रथं तं सगजं नरः । आरोपयेत्ततस्तस्मिन्ब्राह्मणं शंसितव्रतम् ॥२५
भूषितं कण्टकटकैः कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः । आगुप्तचोलकच्छत्र वस्त्रायुधसमन्वितम् ॥२६
बद्धतूर्णि धनुष्पाणिं बहुचर्मविभूषितम् । खड्गधेनुकया नद्धं हारालंकृतविग्रहम् ॥२७
यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । रथं प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥२८
इममुच्चारयेन्मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् । कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ॥
सुप्रतीकोंजनः सार्वभौमोऽष्टौ देवयोनयः ॥२९
तेषां वंशप्रसूतौ तु बलरूपसमन्वितौ । तद्युक्तरथदानेन मम स्यातां वरप्रदौ ॥३०
रथोऽयं यज्ञपुरुषो ब्राह्मणोत्र शिवः स्वयम् । ममेभरथदाने प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥३१
इत्युच्चार्य महाभाग[3] पूजयित्वा पुनः पुनः । आरोपयेत्ततस्तस्मिन्ब्राह्मणं शंसितव्रतम् ॥३२
स्वदारनिरतं शान्तं वेदवेदाङ्गपारगम् । पञ्चाग्न्यभिमतं चैव अव्यङ्गं व्याधिवर्जितम् ॥३३
पुनः प्रदक्षिणीकृत्य रथस्थं द्विजसत्तमम् । आद्वारमनुगच्छेच्च प्रणिपत्य गृहं विशेत् ॥३४

सविधि अग्निकार्य (हवन) सम्पन्न करते हुए प्रथम आज्य भाग आधार की आहुति प्रदान करें। अनन्तर विष्णु, शितिकण्ठ शिव को पूर्वोक्त मंत्रों द्वारा और ग्रहों को ग्रहयज्ञ के मंत्रों से आहुति प्रदान करनी चाहिए। इस प्रकार यजमान ब्राह्मणों समेत यज्ञविधान सुसम्पन्न कर रथ में लक्षण सम्पन्न दो गजों को युक्त करे जो चित्र विचित्र वस्त्रों से आच्छन्न, शुभ कक्ष भाग, घंटाभूषित, हेमपट्ट, सुन्दर तिलक एवं शंख चामर से सुशोभित दिव्य मोतियों से सुसज्जित दिव्य अंकुश (गजवांक) से युक्त, महामात्य (पीलवान) समेत और सर्वाभरण भूषित हों। इस प्रकार उस सुसज्जित रथ पर वेदाध्यायी ब्राह्मण को बैठाये, जो सुवर्ण माला, अङ्गद (वाहुभूषण), कुण्डल, अंगूठी, चोलक, छत्र, वस्त्र, आयुध सम्पन्न तरकस बाँधे, हाथ में धनुष, अनेक चर्म (ढाल) खड्ग धेनुक से आबद्ध और हार सुशोभित हो। अनन्तर वह बुद्धिमान् यजमान शुक्लवस्त्र कर पवित्रता पूर्ण पुष्पाञ्जलि लिए रथ की प्रदक्षिणा करते हुए कहे—कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और सार्वभौम, ये आठ देवयोनियाँ हैं, इन्हीं के वंश में आप दोनों उत्पन्न हुए हैं इसलिए आप समेत इस रथ के दान करने से आप दोनों मेरे लिए वरप्रद हों। यह यज्ञ पुरुष है, इसमें अधिष्ठित ब्राह्मण स्वयं शिव हैं, इसलिए मेरे इस गजरथ के दान से शिव केशव प्रसन्न हों।१८-३१। महाभाग ! इस भाँति के मंत्रोच्चारण पूर्वक बार-बार पूजन करने के उपरान्त उस पर ब्राह्मण को स्थापित करे, जो वेदानुयायी, एकपत्नीव्रती शांत, वेद और वेदाङ्ग का मर्मज्ञ, पञ्चाग्नि सेवी, अव्यङ्ग, एवं व्याधि रहित हो। पश्चात् रथस्थित उस ब्राह्मण श्रेष्ठ की परिक्रमा करके द्वार तक उसका

---

१. सर्वैः। २. दिव्यांशुकसमन्वितौ। ३. महाभागे इति संदिग्धः संवादः।

ततो यज्ञावसाने तु दीनांधादीञ्जडान्कृशान् । पूजयेद्विविधैर्दानैर्वस्त्रगोदानभोजनैः ।।३५
अनेनैव विधानेन संकल्प्य रथमुत्तमम् । कुण्डमण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।।३६
तदेव होमद्रव्यं च होममन्त्रास्त एव हि । विशेषोऽश्वरथे राजन्कथ्यमानो निबोध्यताम् ।।३७
हयौ लक्षणसंयुक्तौ खलीनालंकृताननौ । विचित्रवस्तुसम्वीतौ[१] कण्ठाभरणभूषितौ ।।३८
सुप्रग्रहयुतौ योज्यौ दाता तस्मिन् रथोत्तमे । तं प्रदक्षिणमावृत्यमंत्रमेतमुदीरयेत् ।।३९

नमोऽस्तु ते वेदतुरङ्गमाय त्रयीमयाय त्रिगुणात्मकाय ।
सुदुर्गमार्गे सुखपानपात्रे नमोऽस्तु ते वाजिधराय नित्यम् ।।४०

रथोऽयं सविता साक्षाद्वेदाश्चाश्चो तुरङ्गमाः । अरुणो ब्राह्मणाश्चायं प्रयच्छन्तु सुखं मम ।।४१
इत्युच्चार्य ततस्तस्मिन् रथे ब्राह्मणसत्तमम् । आरोपयेद्गृहाद्द्वारं यावदेततमनुव्रजेत् ।।४२
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्वाजिरथं बुधः । तस्माद्वाहरथं राज्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ।।४३
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वामयविवर्जितः । मन्वन्तरशतं यावत्सर्वं भोगसमन्वितः ।।४४
अप्सरोगणसंकीर्णे विमाने सूर्यवर्चसे । दिव्यभोगान्वितः श्रीमान्कामचारी[२] वसेद्दिवि ।।४५
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा[३] भवति धार्मिकः । पुत्रपौत्रान्वितश्चैव[४] चिरंजीवी प्रियातिथिः ।।४६
गजेनैकेन निर्दिष्टः कश्चिद्गजरथो नृप । एकेनाश्वेनाश्वरथः कथ्यते वेदवादिभिः ।।४७

अनुगमन कर, अनन्तर प्रणाम कर अपने घर आये । पुनः उस यज्ञ की समाप्ति होने पर दीन, अंधे, जड़ और दुर्बल (निर्धन) आदि प्राणियों को अनेक भाँति के वस्त्र, गोदान एवं भोजनादि द्वारा सम्मानित करे । इस प्रकार इसी विधान द्वारा उत्तम रथ की कल्पना करके कुण्ड, मण्डप, उसके संभार भूषण आच्छादन आदि, वही तिल आदि होम द्रव्य और वही हवन के मंत्र भी रहते हैं । राजन् ! किन्तु इस, अश्वरथ में जो विशेषता है वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! शुभ लक्षण वाले अश्वों को खलीन (लगाम) आदि वस्तुओं से सुसज्जित, चित्रविचित्र वस्त्र और कण्ठाभरण से भूषित एवं लगाम आदि की सुन्दर रस्सियों से युक्त करते हुए उन्हें उस उत्तम रथ मे युक्त करे । पुनः दाता उस रथ की प्रदक्षिणा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करे—वेदरूपी तुरङ्गम को नमस्कार है, जो (वेद) मयी एवं त्रिगुणात्मक हैं तथा सुदुर्गमार्ग में सुखपान कराने वाले बाजिधर को नित्य नमस्कार है ।३२-४०। यह रथ साक्षात् सविता (सूर्य) तुरङ्गम वेद और यह ब्राह्मण अरुण है अतः मुझे सुख प्रदान करने की कृपा करें । ऐसा कहकर उस उत्तम रथ पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रतिष्ठित कर उनके द्वार तक अनुगमन करे । इस विधान द्वारा अश्वमेध रथ का, जो वाहरथ राज्य कहा जाता है, दान करने वाले विद्वान् को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! समस्त पापों से मुक्त होकर सर्व व्याधिहीन वह प्राणी सैकड़ों मन्वन्तरों के समय तक सम्पूर्ण भोगों के उपभोग करते हुए स्वर्ग में सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण विमान पर अप्सराओं के साथ विहार करता है तथा स्वर्ग में वह श्रीमान् सदैव यथेच्छ भोग करता है । अनन्तर पुण्य क्षीण होने पर इस पृथ्वी पर धार्मिक राजा होता है, जो पुत्र-पौत्रों समेत चिरजीवी और अतिथि प्रिय रहता है ।४१-४६। नृप ! एक गज से भी गजरथ और एक ही अश्व से अश्वरथ होता है ऐसा वेद वादियों का

---

१. विचित्रवस्त्रसंवीती । २. कल्पचारी । ३. परः । ४. श्रीमान् ।

दानमन्त्रास्त एवोक्ताः फलं तत्र निगद्यते ॥४८

यच्छन्ति ये रथवरं सुधुराक्षचक्रं विक्रान्तवारणयुतं तुरगान्वितं वा।
सोपस्करं कनकपट्टविचित्रिताङ्गं ते स्यन्दनेन सुरराजपुरं प्रयान्ति ॥४९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गजरथाश्वरथदानविधिवर्णनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८०

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालपुरुषदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

दानान्यन्यानि मे कृष्ण कथयस्व यदूत्तमम्। माङ्गल्यानि पवित्राणि सर्वपापहराणि च ॥१
संसारसागरोत्तारहेतुभूतोऽसि माधव। धर्माधर्मपरिज्ञाने त्वदन्यो नेह कश्चन ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

दानानि बहुरूपाणि कथितानि मया तव। पुनरेव प्रवक्ष्यामि यद्यस्ति तव कौतुकम् ॥३
कथितानि मया तुभ्यं कथयिष्यामि यानि च। महतार्थेन सिध्यन्ति प्रयच्छन्ति महत्फलम् ॥४
काम्यो दानविधिः पार्थ क्रियमाणः प्रयत्नतः[1]। फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च ॥५

कथन है। दोनों के दानमंत्र एक ही हैं और फल बता रहा हूँ—परमोत्तम रथ का निर्माण कराकर, जो सुन्दर धुरा, चक्र मूड़ी आदि साधनों से सम्पन्न और कनक पट्टों द्वारा उसके अंग चित्रविचित्र बनाये रहते हैं, उसमें मदमत्त गज या अश्व जोत कर उसका दान करने वाला उत्तम स्यन्दन द्वारा सुरराज (इन्द्र) लोक की प्राप्ति करता है।४७-४९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
गजरथ अश्वरथ दान विधि वर्णन नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त।१८०।

अध्याय १८१

कालपुरुषदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदूत्तम, कृष्ण! मुझे दान बताने की कृपा करें, जो अत्यन्त मांगलिक, पवित्र एवं समस्त पापों का विनाशक हो। माधव! इस संसार सागर के तारने में एक मात्र आप ही कारण हैं, क्योंकि इस लोक में धर्माधर्म का परिज्ञान आप से अन्य किसी को है ही नहीं।१-२

श्रीकृष्ण बोले—यदि तुम्हें इसके जानने के कौतुक है तो मैं यद्यपि अनेक भाँति का दान तुम्हें सुना चुका हूँ किन्तु फिर भी कह रहा हूँ सुनो! मैंने जितने प्रकार के दान तुम्हें बताये और बताऊँगा वे महान् अर्थ द्वारा सिद्ध होते हैं किन्तु वे महान् फल भी प्रदान करते हैं।३-४। पार्थ! काम्य दान विधान को सुसम्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए मुनियों ने तभी उन्हें फलदायक बताया है अन्यथा (अविधि होने

---

१. यथार्थतः।

ज्ञेयं निष्कशतं सर्वदानेषु विधिरुत्तमः । मध्यमस्तु तदर्द्धेन तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥६
एवं वृक्षरथेन्द्राणां धेनोः कृष्णाजिनस्य च । अशक्तस्यापि कृष्टोऽय[1] पंचसौवर्णिको विधिः ॥७
अतोऽप्यनेन यो दद्यान्महादानं नराधिप । प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत् ॥८
आदौ तावत्प्रवक्ष्यामि कालाख्यं पुरुषं[2] तव । सप्तसागरदानं च महाभूतघटन्तथा ॥९
अर्घ्यप्रदानतोक्तमात्मप्रतिकृतिस्तथा । सुवर्णाश्वः स्मृतः षष्ठः सुवर्णाश्वरथोऽपरः ॥१०
सर्वदानोत्तमं राजन्कृष्णाजिनमथाष्टमम् । विश्वचक्रं च नवमं हैमोगजरथस्तथा ॥११
एतत्ते दानदशकं वेद्मि पार्थिवसत्तम् ! देहि दापय सद्बुद्धि दाने नृपनरोत्तम ॥१२
दानादृते नोपकारो विद्यते धनिनोऽपरः । दीयमानो हि नापैति भूय एवाभिवर्धते ॥१३
कूप उल्लिख्यमानोऽपि भवत्येव बहूदकः । पुण्यं दिनमथासाद्य भूमिभागे समे शुभे ॥१४
चतुर्थ्यां वा चतुर्दश्यां विष्टयां वा पाण्डुनन्दन । पुमान्कृष्णतिलैः कार्यो रौप्यदन्त सुवर्णदृक् ॥१५
खड्गोद्यतकरो दीर्णो जपाकुसुमकुण्डलः[3] । रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ॥१६
तीक्ष्णासिपत्रधनुषा विस्तारितकटीतटः। उपानद्युगयुक्तो हि [4]कृष्णकम्बलपार्श्वगः ॥१७
गृहीतामांसपिण्डश्च वामे करतले तथा । एवं विधं नरं कृत्वा गृहीतकुसुनाञ्जलिः ॥१८
सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च । तिलाज्यं जुहुयात्तत्र त्र्यम्बकेति च मन्त्रतः ॥१९

पर) वे भय उत्पन्न करते हैं। समस्त दानों में सौ निष्क का दान विधान उत्तम बताया गया है, उसका आधा मध्यम और उसका भी आधा अवर (निम्न कोटि) का बताया गया है। इसी प्रकार वृक्ष, रथ, धेनु, कृष्णाजिन के दान विधान में भी जानना चाहिए। अशक्त प्राणी के लिए महान अत्यन्त कष्ट दायक है क्योंकि पाँच सुवर्ण (मुद्रा) से कम का दान विधान ही नहीं है। इसलिए इससे न्यून का दान करने वाला और उसका प्रतिग्राही (ग्रहण करने वाला) दोनों दुःख शोक से व्याकुल रहा करते हैं। सर्वप्रथम मैं तुम्हें काल पुरुष दान, अनन्तर सप्त सागर दान और इसके उपरान्त महाभूत घट का दान बताऊँगा ।५-९। राजन् ! (ये उपरोक्त तीन दान), अर्घ्य दान, आत्मप्रतिकृति (प्रतिमा), सुवर्ण के अश्व, सुवर्ण के अश्वरथ, कृष्णाजिन, विश्वचक्र और सुवर्ण के गजरथ, ये दश दान बताये गयें हैं। पार्थिवसत्तम ! इन्हीं दोनों को सुसम्पन्न करने कराने के लिए स्वयं बुद्धि रखनी चाहिए। बिनादान दिये ध्वनियों का दूसरा उपाय हो ही नहीं सकता है क्योंकि जिस वस्तु का दान किया जाता है, वह नष्ट न हो कर दिन प्रतिदिन समृद्ध होता है (अर्थात् बढ़ता है) जिस प्रकार कूप खोदने पर उसका जल बढ़ता ही है। पाण्डुनन्दन ! इसलिए किसी पुण्य दिन शुभ समतल भूमि पर चौथ, चतुर्दशी, विष्टि में कृष्ण तिल द्वारा पुरुष की रचना करे जिसके चाँदी के दाँत और सुवर्ण के नेत्र हों और हाथ में तलवार, दीर्ण, कान में जपा कुसुम का कुण्डल, रक्तवस्त्र धारण किये, मालाभूषित, शंख माला अलंकृत, तीक्ष्ण खड्ग धनुषबाण, लम्बी कटि, उपानहयुक्त पार्श्व में कृष्ण कम्बल और बायें हाथ में मास पिण्ड लिये हुए। इस भाँति के मनुष्य की रचना करके हाथ में पुष्पाञ्जलि गंध, कुसुम, नैवेद्य, आदि द्वारा पूजनोपरांत 'त्र्यम्बक मंत्र' द्वारा तिल घृत की आहुति प्रदान

---

१. कष्टोऽयम् । २. पुरुषोत्तमम् । ३. मण्डपः । ४. कृष्णम् ।

स्वगृह्योक्तविधानेन शतमष्टोत्तरं यजेत् । यजमानः प्रसन्नात्मा इमं[1] मन्त्रमुदीरयेत् ।।२०
सर्वं[2] कलयसे यस्मात्कालस्त्वं तेन भण्यसे । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योऽसि सुव्रत ।।२१
पूजितस्त्वं मया भक्त्या प्रार्थितश्च[3] तथा[4] सुखम् । यदुच्यते तद विभो तत्कुरुष्व नमोनमः ।।२२
एवं सम्पूजयित्वा[5] तं बाह्मणाय निवेदयेत् । ब्राह्मणं[6] प्रथमं पूज्य वासोभिर्भूषणैस्तथा ।।२३
दक्षिणां शक्तितो दद्यात् प्रणिपत्य[7] विसर्जयेत् । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ।।२४
नापमृत्युभयं तस्य न च व्याधिकृतं भयम् । भवत्यव्याहतैश्वर्यः सर्वबाधाविवर्जितः ।।२५
देहान्तं सूर्यभवनं भित्त्वा याति परं पदम् । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ।।
सन्तत्या च श्रिया युक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।२६

सम्पूज्य कालपुरुषं विधिवद्द्विजाय दत्त्वा शुभाशुभफलोदयहेतुभूतः ।
रोगान्तरे सकलदोषमये च देही नो वध्यभावमुपगच्छति तत्प्रभावात् ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कालपुरुषदानविधिवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८१

करे ।१०-१९। अपने गृह्यसूत्र के विधान द्वारा एक सौ आठ आहुति प्रदान करने के उपरांत यजमान प्रसन्नतापूर्ण इस मंत्र का उच्चारण करे—सुव्रत ! सभी को नष्ट कर देने के नाते ही तुम्हारा नाम काल हुआ है, इसीलिए तुम विष्णु, ब्रह्मा, एवं शिव के लिए भी असाध्य हो । विभो ! भक्तिपूर्वक मैने आप की पूजा और प्रार्थना की है अतः सुख प्रदान करने की कृपा करें आप को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार पूजनकर ब्राह्मण को अर्पित करे किन्तु वस्त्राभूषण द्वारा ब्राह्मण की पहले अर्चा कर लेनी चाहिए । यथाशक्ति दक्षिणा तथा नमस्कार करके विसर्जन करे । इस भाँति सविधान दान करने पर अपमृत्यु और व्याधिभय नहीं होता है अपितु वह अव्याहत ऐश्वर्य की प्राप्ति पूर्वक सम्पूर्ण बाधाओं से रहित रहता है । निधन होने पर सूर्य भवन की प्राप्ति होती है । पुण्य क्षीण होने पर यहाँ धार्मिक राजा होता है जो सतत श्री और पुत्र पौत्र से युक्त होता है । इस प्रकार काल पुरुष का सविधान अर्चा कर किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर शुभाशुभ फल का भोग करने वाला यह देही (जीव) सकल दोषमय और रोगपूर्ण इस शरीर से बन्धन मुक्त हो जाता है ।२०-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
कालपुरूषदानविधिवर्णन नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८१।

---

१. इदं वचनमब्रवीत् । २. सकालनियमे यस्मात्कालत्वं तेन गण्यते । ३. प्रापितश्च । ४. यथा । ५. तु । ६. ब्राह्मणम् । ७. दत्त्वा ।

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तसागरदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पार्थदानमनुत्तमम्[1] । सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।।१
पुण्यं दिनमथासाद्य युगादिग्रहणादिकम् । कारयेत्सप्तकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ।।२
प्रादेशमात्राणि तथा रत्निमात्राणि वा पुनः । कुर्यात्सप्तशतादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ।।३
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि । प्रथमं पूरयेत्कुण्डं लवणेन विचक्षणः ।।४
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः । चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चमेव च ।।५
षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा । स्थापयेल्लवणस्यान्ते ब्राह्मणं[2] काञ्चनं शुभम् ।।६
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम् । भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये सुराधिपम् ।।७
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम् । सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि[3] च समन्ततः ।।८
स्थापयेत्पुरुषश्रेष्ठ यथालाभं यथासुखम् । ततः पर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरो गृही ।।९
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः ।।१०
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमोनमः । पूर्णाः सर्वे भवन्तो वै क्षारक्षीरघृतैक्षवैः ।।११
दध्ना शर्करया तद्वत्तीर्थवारिभिरेव च । तस्मादघौघविध्वंसं कुरुध्वं मम मानदाः ।।१२

अध्याय १८२

सप्तसागरदान विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें सप्तसागर का दान बता रहा हूँ, जो परमोत्तम और समस्त पापों को विनष्ट करने वाला है । युगादि तिथि या ग्रहण आदि के किसी शुभ अवसर पर सुवर्ण द्वारा सात कुण्ड की रचना करे, जो प्रादेश मात्र अथवा अरत्निमात्र विस्तृत हों । इसके निर्माण में सात सौ से लेकर सहस्र पल पर्यंत सुवर्ण होना चाहिए । सभी कुण्ड को कृष्णाजिन (कालेमृग चर्म) पर प्रतिष्ठित कर पहले कुण्ड को लवण, दूसरे को दूध तीसरे को घृत, चौथे को गुड़, पाँचवें को दही, छठें को शक्कर और सातवें की तीर्थ जल से पूर्ण कर क्रमशः लवण के अंत में ब्रह्मा की सुवर्ण प्रतिमा, क्षीर वाले में केशव, घृत मध्य महेश्वर, गुडमध्य में भास्कर दधि के मध्य में इन्द्र, शक्कर में लक्ष्मी और जल के मध्य पार्वती (की प्रतिमा) को स्थापित करे। पश्चात् सभी कुण्डों में चारों ओर समस्त रत्न और सप्त धान्य यथालाभ यथा सुख जितना मिल सके स्थापित करे।१-८। उस पर्व के समय स्नान, शुक्ल वस्त्र धारण कर उस गृहस्थ को तीन प्रदक्षिणा करते समय यह कहना चाहिए—समस्त सिंधु के आधार एवं सनातन को नमस्कार है, जन्तुओं को प्राण दान करने वाले समुद्र को नमस्कार है । लवण, क्षीर, घृत, गुड़, दीर्घ, शक्कर और तीर्थ जलों से आप सब परिपूर्ण है, अतः मेरे पाप समूह को नष्ट करते हुए मेरे घर में अलक्ष्मी का विनाश

---

१. सर्वदानम् । २. ब्राह्मण । ३. देयानि ।

अलक्ष्मीः प्रशमं यातु लक्ष्मीश्चास्तु गृहे मम । एवमुच्चार्य तान् दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।।१३
एकमेवयथाभ्यर्च्य पुष्पवस्त्रविलेपनैः । बहूनामेतदुद्दिष्टं[1] दानमेकस्य वा पुनः ।।१४
देयं वा सर्वसामान्यं क्रियाविप्रानुरूपतः । दानं सप्तसमुद्राख्यं यः प्रयच्छति पार्थिव ।।१५
तस्य गृहान्न चलति लक्ष्मीर्यावत्कुलाष्टकम् । पूज्यमानः सुरगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः ।।१६
देवलोकान्न च्यवते सप्तमन्वन्तराण्यसौ । ततश्च वेदसंस्कारात्परं ब्रह्माधिगच्छति ।।१७

इति ददाति रसामरसंयुतान्छुचिरविस्मयदानिह सागरान् ।
अनलकाञ्चनरत्नमयानसौ पदमुपैति हरे रमया[2] वृतम् ।।१८
दानप्रधानतरमेतदतीव विप्रे प्रोक्तं युधिष्ठिर समाधिधिया विचिन्त्य ।
हैमान्विधाय जलधीन्वितरस्व शक्त्या प्राप्नोषि येन सरसानि समीहितानि ।।१९

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सप्तसागरदानविधिवर्णनं नाम द्वयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८२

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाभूतघटदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानमन्यत्तवोत्तमम्[3] । महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ।।१

और लक्ष्मी को सदैव अचल बनाने की कृपा करें। युधिष्ठिर ! इस प्रकार अर्म्यचना करने के उपरांत उसे ब्राह्मणों को अर्पित करे। पुष्प, वस्त्र, अनुलेप द्वारा पूजनोपरांत एक अथवा अनेक ब्राह्मणों को सादर अर्पित करे। जहाँ तक हो सके क्रियानुरूप ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए। पार्थिव ! इस प्रकार इस दान को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी के घर से आठ पीढ़ी तक लक्ष्मी कभी जाती नहीं है, अन्त में सिद्ध, विद्याधर, नाग आदि देवों से सुसेवित होते हुए सात मन्वन्तरों के समय तक देवलोक में अपवित्र विश्वास प्राप्त करता है और वैदिक संस्कार के उपरांत उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। इस भाँति अग्नि शुद्ध काञ्चन द्वारा निर्मित सप्त सागर का दान करने वाला रमा (लक्ष्मी) युक्त हरि का पद प्राप्त करता है। यथा शक्ति सुवर्ण निर्मित सागरों के दान ब्राह्मणों को अवश्य समर्पित करो, जिससे तुम्हारे सरस अभीष्ट की सिद्धि हो।९-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
सप्त सागर दान विधान वर्णन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त।१८२।

अध्याय १८३

महाभूतघटदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें महाभूत घट दान नामक एक अन्य उत्तम दान बता रहा हूँ, जो महान पातकों

---

१. एतदिष्टं वै दानमेतदुदीरयेत्। २. अमरावृतम्। ३. नरोत्तम।

पुण्यां तिथिं समासाद्य स्वनुलिप्ते गृहाङ्गणे । कारयेत्काञ्चनं कुंभं[1] महारत्नान्वितं पुनः ।।२
प्रादेशादङ्गुलशतं यावत्कुर्यात्प्रमाणतः । शक्त्या पञ्चमलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम ।।३
क्षीराज्यपूरितं कृत्वा कल्पवृक्षसमन्वितम् । पद्मासनगतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।४
लोकपाला महेन्द्राश्च स्वाहानसमास्थिताः । ऋग्वेदः साक्षसूत्रश्च यजुर्वेदः सपङ्कजः ।।५
वीणाधारी सामवेदो ह्यथर्वा स्रदशुभान्वितः । पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ।।६
सप्तधान्यानि पुरतः स्थापयेच्छक्तितो बुधः । पादुकोपानहच्छत्रं चामराग्र्यासनायुधान् ।।७
एवं प्रकल्प्य विधिवन्महाभूतघयं नरः । गुडसारोपरिगतं माल्यवस्त्रैरथार्चयेत् ।।८
अथ पर्वसमीपे तु स्नात्वा नियतमानसः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।।९
यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम् । महाभूतमयश्चायं तस्माच्छान्तिं ददातु मे ।।१०
अत्र सन्निहिता देवाः स्थापिता विश्वकर्मणा । ते मे शान्तिं प्रयच्छन्तु भक्तिभावेन पूजिताः ।।११
इत्येवं पूजयित्वा तु महाभूतघटं नरः । ब्राह्मणं पूजयित्वा तु भूषणाच्छादनादिभिः ।।१२
महाभूतघटं दद्यात्पर्वकाले यतव्रतः[2] । पुनः प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणं तं क्षमापयेत् ।।१३
अनेन विधिना यश्च दानमेतत्प्रयच्छति । एकविंशत्कुलोपेतः शिवलोके प्रयात्यसौ ।।१४
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । अजेयः शत्रुसंघातैर्महाबल पराक्रमः ।।१५
क्षत्रधर्मरतो विद्वान्देवब्राह्मणपूजकः ।।१६

का विनाश करता है । किसी पुण्य तिथि में अपने लिये अपने गृहाङ्गण में सुवर्ण कलश का निर्माण कर महान् रत्नों समेत उसे स्थापित करे । नरोत्तम ! वह कलश सौ अंगुल प्रमाण और यथाशक्ति पाँच पल से ऊपर सौ पल तक सुवर्ण का होना चाहिए । क्षीरघृत से पूर्ण कर कल्प वृक्ष समेत उसकी प्रतिष्ठा करते हुए पद्मासन के उपर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर की स्थापना करे और सभी लोक पाल तथा महेन्द्र आदि देव गण अपने अपने वाहनों पर स्थित रहकर ही स्थापित किये जाँय । अनन्तर अक्षसूत्र समेत ऋग्वेद, पंकज सहित यजुर्वेद, वीणाधारी सामवेद, शुभ माल समेत अथर्ववेद, अक्षसूत्र, कमण्डलु समेत वरप्रद पुराणवेद एवं सप्त धान्य की स्थापना बुध (विद्वान्) को करनी चाहिए । चरणपादुका, उपानह, छत्र, चामर, आसन तथा आयुध समेत उस महाभूत घट की सविधि स्थपना गुड़ सार के ऊपर सुसम्पन्न कर माला वस्त्र आदि से अर्चना करे ।१-८। तदुपरांत पर्व के समय स्नान करके संयमपूर्वक तीन प्रदक्षिणा करते हुए कहे—महाभूत के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं रह सकता है अतः यह महाभूतमय मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करे । इस (महाभूत) घर में विश्वकर्मा ने समस्त देवों को स्थापित किया है अतः मेरे द्वारा भक्तिभाव से पूजित होने पर वे देवगण मुझे शांति प्रदान करे । इसभाँति महाभूत घट की अर्चा के उपरान्त भूषण वस्त्र द्वारा ब्राह्मण की पूजा करके संयम पूर्वक उस पर्व के समय उसे ब्राह्मण को समर्पित करे । अनन्तर ब्राह्मण की प्रदक्षिणा और अभ्यर्चना करके विसर्जित करे । इस विधान द्वारा इस दान को सुसम्पन्न करने वाले अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत शिवलोक की प्राप्ति करते हैं ।९-१४। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है, जो अजेय, महाबली और पराक्रमी होता है तथा अपने क्षत्रिय धर्म में अटल रहकर देव ब्राह्मण का पूजक होता है इस प्रकार आठ चरण वाले इस महाभूत घट का

---

१. दिव्यम् । २. प्रयत्नतः ।

अष्टापदोक्तमयटं विमलं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं[1] सहलोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महाभूतघटदानविधिवर्णनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८३

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शय्यादानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शय्यादानं प्रवक्ष्यामि तव पाण्डुकुलोद्वह[2]। यद्दत्त्वा सुखभागी[3] स्यादिह लोके परत्र च ॥१
शय्यादानं प्रयच्छन्ति सर्वदैव द्विजोत्तमाः[4]। अनित्यं जीवितं यस्मात्कोन्यः[5] पश्चात्प्रदास्यति ॥२
तावत्सबन्धुः सपिता यावज्जीवति भारत। मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते ॥३
तस्मात्स्वयं[6] प्रदातव्यं शय्याभोज्यजलादिकम्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति संचिंत्य चेतसि ॥४
आत्मैव यो हि नात्मानं दानभोगैः समर्चयेत्। कोऽन्यो हिततरस्तस्मात्कः पश्चात्पूजयिष्यति ॥५
तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयं दृढाम्। दन्तपत्रचितां रम्यां हिमपट्टैरलंकृताम् ॥६

निमल निर्माण करके ब्रह्मा, विष्णु शिव, लोकपाल समेत वह घट जो क्षीर घृत से परिपूर्ण रहता है, नमस्कार एवं भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को अर्पित करो क्योंकि इसके समक्ष अन्य सैकड़ों दान से क्या लाभ हो सकता है।१५-१७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
महाभूतघटदानविधि वर्णन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।१८३।

अध्याय १८४

शय्यादान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुकुलोद्वह ! मैं तुम्हें शय्या दान का विधान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान से प्राणी लोक परलोक में सुखी होता है इसलिए श्रेष्ठ ब्राह्मणगण सदैव शय्या दान सम्पन्न करते रहते हैं क्योंकि जीवन अनित्य होने के नाते पीछे (निधनोपरांत) कौन इसे पूरा कर सकेगा। भारत ! प्राणी जब तक जीवित रहता है तभी तक पर बन्धु पिता कहलाता है और उसके मरने पर वही स्नेह क्षण मात्र में निकल जाता है। इसलिए यह आत्मा ही आत्मा का बन्धु (सहायक) है ऐसा समझ कर शय्या, भोजन और जलादि का स्वयं दान करे। दान भोगादि यहि स्वयं इस आख्या की अर्चा नहीं की तो इससे बढ़ कर दूसरा हितैषी कौन होगा, जो निधनोपरांत उसकी पूजा करेगा।१-५। अतः काष्ठ के स्तर की भाग की दृढ़ शय्या, जो

---

१. ब्रह्मेन्द्रकेशवयुतम्। २. पाण्डुकुलोद्भव। ३. सर्वभागी, सुप्तभोगी। ४. नृपोत्तम। ५. दान कोन्यः प्रदास्यति। ६. यस्मात्तस्मात्प्रदातव्यं शय्याभोज्यतिठाकिम्।

हसन्तूलीप्रतिच्छन्नां सुभगान्सोपधानिकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासताम् ॥७
तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम् । उच्छीर्षके धृतं चैव कलशं परिकल्पयेत् ॥८
विज्ञेयं पाण्डव सदा सनिद्राकल्पकं बुधैः । ताम्बूलं कुंकुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥९
दीपकोपानहच्छत्रचामरासनभोजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेच्छक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ॥१०
शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकाद्यपुष्पाणि पञ्चवर्णवितानकम् ॥११
शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणायोपदापयेत् । सप्तकीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥१२
नमस्ते सर्वदेवेश शय्यादानं कृतं मया । देहि तस्माच्छान्तिफलं नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१३
यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया । शय्या भामाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१४
दत्त्वैवं तल्पमनलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेऽपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥१५
ददाति यदि धर्मार्थं मानवो बान्धवे मृते । विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निबोध[1] मे ॥१६
तेनोपभुक्त यद्वस्तु किंचित्पूर्वं गृहे मता । तद्गात्रलग्नं च तथा वस्त्रवाहनभाजनम् ॥१७
यदिष्टं[2] च तथास्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । स एव पुरुषो हैमस्तस्यान्तं स्थापयेत्तथा ॥१८
पूजयित्वा प्रदातव्यो मृतशय्या यथोदिता । स्वर्गे पुरन्दरगृहे सूर्यपुत्रालयेथ वा ॥१९
सुखं वसत्ययौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः । पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ॥२०
न धर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित् । अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥२१

कुन्द पुष्प से सुरचित, रम्य, सुवर्ण से भूषित, हंस के समान श्वेत कोमल रूई वाले गद्दे से आच्छन्न, सुभग, सुन्दर तकिये से युक्त, ऊपर चद्दर से अलंकृत और गंध, धूप से अधिवासित हो, निर्माण कर उस पर विष्णु लक्ष्मी को सुवर्ण प्रतिमा को प्रतिष्ठित करते हुए ऊपर शिर होने के समीप कलश की स्थापना करे। पाण्डव ! भगवान् को उस पर निद्रित की कल्पना कर उसके पार्श्व भाग में ताम्बूल, कुंकुम (चूर्ण), कपूर, अगरु, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्र, चामर, आसन, भोजन और यथाशक्ति सप्तधान्य की स्थापना करे। उस समय शयन के समय झारी (गेरुआ) पुष्पादि अन्य भी वस्तुएँ वहाँ उपस्थित करनी चाहिए। उपर पाँच रङ्ग की चाँदनी (चँदोबा) आदि से समलंकृत उस भाँति की शय्या किसी पुण्य दिन सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा कर उसे अर्पित करे। सर्वदेवेश ! पुरुषोत्तम यथाशक्ति सुसज्जित यह शय्यादान आप को अर्पित किया है अतः मुझे शांति फल प्रदान करने की कृपा करें।६-१३। कृष्ण ! जिस प्रकार सागर (लक्ष्मी) से जय की शय्या कभी शून्य नहीं रहती है, उसी भाँति मेरी भी शय्या जन्मान्तर में कभी शून्य न रहे। इस प्रकार उस निर्मल शय्या का एकादशाह के दिन सविधि एवं नमस्कारपूर्वक दान करके विसर्जन करे। राजेन्द्र ! बन्धु आदि के निधन होने पर उसके निमित्त यदि धर्मार्थ शय्यादान आदि यदि कोई करता है तो मैं उसके लिए और विशेषता बता रहा हूँ, सुनो ! उस मृतक की उपभोग की हुई घर में हो या उसके अंगों में (सुवर्ण आदि) लगे हों, तथा वस्त्र, वाहन, भाजन (पात्र) जो कुछ उसे अभीष्ट हो, उन सब को वहाँ वाचन पुराण के समीप रखना चाहिए। पूजनोपरांत इस प्रकार की मृत शय्या दान करने से वह इन्द्र के गृह और सूर्य अन्न के भवन में सुखी निवास करता है। उसे भीषण मुख वाले यमदूत कभी पीड़ित नहीं करते हैं।१४-२०। और धूप, शीत की बाधा भी कभी नहीं होती है अपितु पाप युक्त

---

१. निशामय। २. यद्यदिष्टं च तयासीत्।

विमानवरमारूढः सेव्यमानोप्सरोगणः । आभूतसम्प्लवं यावत्तिष्ठेत्पातकवर्जितः ।।२२
शय्याप्रदानममलं तव पाण्डुपुत्र संकीर्तितं सकलसौख्यानिधानमेतत्[१] ।
सद्यो ददाति विधिवत्स्वयमेव नाके तल्पे विकल्परहितः स विभाति सत्यम् ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शय्यादानविधिवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८४

अथ पञ्चासीत्यधिकशततमोऽध्यायः

आत्मप्रतिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आत्मप्रतिकृतिर्नाम यथोक्तं कस्यचित्पुरा । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि दानं मानविवर्धनम् ।।१
दानकालः सदा तस्य मुनिभिः परिकीर्तितः । पुण्यैःपुण्यादिभिः पार्थ प्राप्यते जीवितैर्न च ।।२
लोहजां प्रकृतिं भव्यां कारयित्वात्मनो नृप । अभीष्टवाहनगतामिष्टालंकारसंयुताम् ।।३
अभीष्टलोकसहितां सर्वोपस्करसंयुताम् । ततः पट्टपटीवस्त्रैश्छादितां रत्नभूषिताम् ।।४
कुंकुमेनानुलिप्तांगीं कर्पूरागुरुवासिताम् । स्त्री चेद्ददाति शयने शयितां कारयेत्स्वयम् ।।५

होने पर (उस शय्या दान के प्रभाव से) स्वर्ग लोक में पूजित होता है। उत्तम विमान पर महाप्रलय पर्यन्त अप्सरायें उसकी समुचित सेवा करती हैं। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अमल शय्या को दान करने वाला पुरुष जो समस्त सौख्य का विधान कहा गया है, स्वर्गमें विकल्प बाधाओं से रहित सुखानुभव करता है।२१-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
शय्यादान विधि वर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त।१८४।

अध्याय १८५

आत्मप्रतिदान विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें आत्मप्रतिकृति (अपनी प्रतिमा) का दान जो मान बढ़ाने वाला है, पहले किसी को बता भी चुका हूँ, इस समय बता रहा हूँ। पार्थ! मुनियों के सज्जनोंके निमित्त उस दान का काल भी बताया है क्योंकि पुण्य समय पुण्य द्वारा ही प्राप्त होता है न कि जीवित ही रहने पर। नृप! लोहद्वारा अपनी भव्य आहुति का निर्माण कराये, जो अभीष्ट वाहन युक्त अलंकारभूषित, इष्ट जनसमेत, समस्त साधन सम्पन्न, वह पटी वस्त्रसे आच्छन्न, रत्न भूषित, कुंकुम से अनुलिप्त, कपूर अगरु से सुवासित हो। स्त्री यदि दान करना चाहती है तो अपनेहाथो उसे शयन शय्या पर स्थापित कराकर और जो कुछ

---

१. सकलसौख्यनिधानभूतम्।

यद्यदिष्टतमं किंचित्तत्सर्वं पार्श्वतो न्यसेत् । उपकारकरं स्त्रीणां स्वशरीरे च यद्भवेत् ॥६
तत्सर्वंस्थापयेत्पार्श्वे स्वयं संचित्य चेतसि । एतत्सर्वं मेलयित्वा स्वे स्वे स्थाने निधाय च ॥७
पूजयित्वा लोकपालान्गृहान्देवीं विनायकम् । तत शुक्लांबरः स्नात्वा गृहीतकुसुमांजलिः ॥८
इममुच्चारयेन्मंत्र विप्रस्य पुरतो बुधः[1] । आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपस्करसंयुता ॥९
सर्वरत्न[2]समायुक्ता तव विप्र निवेदिता । आत्मा शंभुः शिवः शौरिः शक्रः सुरगणैर्वृतः ॥१०
तस्मादात्मप्रदानेन ममात्मा सुप्रसीदतु । इत्युच्चार्य ततो दद्याद्ब्राह्मणाय युधिष्ठिर ॥११
ब्राह्मणाश्चपि गृह्णीयात्कोदादिति च कीर्तयन् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१२
विधिनानेन राजेन्द्र दानमेतत्प्रयच्छति । यः पुमानथ वा नारी शृणुयत्फलमाप्नुयात् ॥१३
साग्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके सुरैर्वृतः । अभीष्टफलदानेन ह्यभीष्टफलभाग्भवेत् ॥१४
यत्रैवोत्पद्यते जंतुः प्राप्ते कर्मक्षये पुनः । तत्रैव सर्वकामानां फलभाग्भवते नृपः ॥१५
इष्टबंधुजनैः सार्द्धं न वियोगं कदाचन । प्राप्नोति पुरुषो राजन्स्वर्गे चानंत्यमश्नुते ॥१६
यश्चात्मनः प्रतिकृतिं वरवाहनस्थां हैमीं विधाय धनधान्यसमाकुलां च ।
सोपस्करं द्विजवराय ददाति भक्त्या चंद्रार्कवत्स दिवि भाति हि राजराजः ॥१७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद
आत्मप्रतिकृतिदानविधिवर्णनं नाम पञ्चासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८५

अन्य अभीष्ट वस्तु हो तथा स्त्रियों के शरीर के उपकरण जो वस्तु हो, उन सभी को उसके पार्श्व भाग में स्थापित करते हुए अन्य आवश्यक वस्तुओं का विशेष ध्यान रखे । सभी वस्तुओं को वहाँ अपने-अपने स्थान रख कर लोकपाल, गृह, देवी, विनायक देवों की अर्चना के अनन्तर शुक्र वस्त्रधारण किये हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए ब्राह्मण के सम्मुख इन मन्त्रों का उच्चारण करे—विप्र! सर्वसाधन सम्पन्न और समस्त रत्नों से भूषित यह अपनी प्रतिमा तुम्हें अर्पित की गयी है, आत्मा ही शम्भु, शिव, देवों समेत इन्द्र और शौरि है अतः इस आत्मप्रदान से मेरी आत्मा प्रसन्न हो युधिष्ठिर! ऐसा कहकर वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे ।१-११। ब्राह्मण भी 'कोदात' इति इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उसका ग्रहण करे । अनन्तर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके विसर्जन करे ।१२। राजेन्द्र! इस विधान द्वारा दान करने पर उस स्त्री या पुरुष को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो! स्वर्गलोक में दिव्य सौ वर्ष तक देवों समेत इस अभीष्ट फल दान करने के नाते अभीष्ट फल का भागी होता है । नृप! जन्तु (जीव) जहाँ उत्पन्न होता है, कर्मक्षीण होने पर पुनः वहाँ ही समस्त कामनाओं का सुखानुभव करता है । राजन्! इष्टजनों से उसका कभी वियोग ही नहीं होता है और स्वर्ग में अनन्त सुखानुभव करता है । इस प्रकार अपनी सुवर्ण मूर्ति बना कर जो उत्तम वाहन पर स्थित और धनधान्य समेत हो, साधन सम्पन्न उसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने या वह मनुष्य आकाश स्थित सूर्य चन्द्र की भाँति यहाँ राजराज (महाराज) होकर सुशोभित होता है ।१३-१७।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
आत्मप्रतिदानविधि वर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८५।

---

१. बुधैः । २ सर्वसंपत्समायुक्ता ।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः
हिरण्याश्वदानविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम् । यस्य प्रसादात्पुरुषः शाश्वतं फलमश्नुते ॥१
पुण्यं दिनमथासाद्य पात्रं वापि गुणाधिकम् । शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम ॥२
खलीनालंकृतमुखं कारयेद्धेमवाजिनम् । मुखरं सोन्नतस्कंधं दृढजानुं सवालधिम् ॥३
स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि । कौशेयवस्त्रसंवीतं कुङ्कुमेन विलेपितम् ॥४
सम्पूज्य कुसुमैः श्वेतैश्चणकान्विनिवेद्य च । ततः पर्वसमीपे तु गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥५
इममुच्चारयेन्मन्त्रं पुराणोक्तं यतव्रतः । [1]नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पटः ॥६
वाजिरूपेण मामस्मात्पाहि संसारसागरात् । त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण [2]भास्करम् ॥७
यस्माद्धारयसे[3] लोकानतः पाहि सनातन । एवमुच्चार्य तं राजन्विप्राय प्रतिपादयेत् ॥८
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् । अनेन विधिना राजन्हिरण्याश्वमलङ्कृतम् ॥९
दत्त्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमाप्नोति[4] शाश्वतम् । तस्मिन्नहनि भुंजीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥१०
पुराणश्रवणं तद्वत्कारयेद्भोजनादनु[5] ॥११

अध्याय १८६
सुवर्णनिर्मित अश्वदान-विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें इस समय सुवर्ण निर्मित अश्व की प्रतिमाका दान विधान बता रहा हूँ। नरोत्तम! किसी पुण्य दिवस में किसी गुणी सत्पात्र को यथाशक्ति तीन पल से लेकर सौ पल तक सुवर्ण की निर्मित वह प्रतिमा, जो उत्तम खजीन (लगाम) से भूषित, उन्नत स्कंध, दृढ जानु (घुटने) और वोलधि समेत हो, वेदी के मध्यभाग में कृष्णमृग और तिल के ऊपर रेशमी वस्त्र से आच्छन्न और कुंकुम से अनुलिप्त कर प्रतिष्ठित करे। श्वेत पुष्प से पूजित कर (अश्व के) भक्षणार्थ चना अर्पित करे। अनन्तर! उस पर्व के समय हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर संयम पूर्वक इस पुराण के मंत्र का उच्चारण करे—सर्वदेवेश तथा अश्वरूप से वेद के अपहरण करने वाले लम्पट! इस संसारसागर से मेरी रक्षा करो। सनातन! सातरूपों में विभक्त होकर छंदोरूप से भास्कर और लोकों को धारण करते हो, अतः मेरी रक्षा करो। राजन्! ऐसा कहकर उसे ब्राह्मण को अर्पित करते हुए प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके विसर्जन करे।१-८। राजन्! इस विधान द्वारा अलंकृत हिरण्याश्व का दान करने वाला पाप विनाश पूर्वक सूर्य का अक्षय लोक प्राप्त करता है। पुनः उस दिन तेल नमक रहित भोजन कर पश्चात् पुराण श्रवण करे। नरेन्द्र! किसी पुण्य

---

१. त्वया जितं जगत्सर्वं त्वत्खुराकांतिता मही ॥ वाचिरूप नमस्तुभ्यं पाहि संसारसागरात्। २. वर्तसे। ३. भावयसे। ४. अभ्येति। ५. राजन्कारयेन्नियतात्मना। ६. अभिपूजितात्मा।

इत्थं हिरण्याश्वविधिं करोति यः सुपुण्यमासाद्य दिनं नरेंद्र।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितं[1] यत्॥१२
इति पठति य इत्थं हैमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वयुक्तेन भूपः।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयातस्त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते हर्म्यभोगैः॥१३
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनो वा स्मरेद्वा हैमाश्वदानमभिनंदति दीयमानम्।
सोऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः स्थानं पुरंदरमहेश्वरलोकजुष्टम्॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हिरण्याश्वदानविधिवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८६

अथ सप्तासीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्वरथदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि तव पाण्डुकुलोद्वह। पुण्यं हेमरथं नाम महापातकनाशनम्॥१
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते स्वनुलिप्ते गृहाङ्गणे। कृष्णाजिनतिलान्कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद्रथम्॥२
चतुरस्रं महाभाग कारयेत् सकूबरम्। ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा गृहीतप्रग्रहं शुभम्॥ ॥३
इन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम्। लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम्॥४

अवसर पर इस हिरण्याश्व विधान सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य पाप मुक्त होकर सिद्धों से पूजित कृष्ण लोक की प्राप्ति करता है। इस भाँति इस सुवर्णाश्व विधान को पढ़ने वाला भी पाप मुक्त होकर अश्व युक्त उस सुवर्ण मय विमान द्वारा स्वर्ग पहुँचकर देवाङ्गनाओं से सुसेवित होता है। उसी भाँति इस हिरण्याश्व आख्यान का श्रवण या स्मरण करने वाला पुरुष जो इस दान का सतत समर्थन करता है शुद्ध शरीरहोकर इन्द्र लोक की प्राप्ति करता है।९-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हिरण्याश्वदानविधान वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त।१८६।

अथ अध्याय १८७

हिरण्याश्वरथदान विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुकुलोद्वह! मैं तुम्हें उस पुण्य हेम का विधान बता रहा हूँ, जो महान् पातकों का नाश करता है। ब्राह्मण की अनुज्ञा द्वारा किसी पुण्य दिन गोबर से लिपे पुते गृहाङ्गण में काले चौकोर चार चक्र (चक्के) और धुरा, आदि समेत दृढ़ हो, तथा अग्र भाग में ब्रह्मा बैठकर (घोड़े की) शुभ रस्सी (लगाम) पकड़े हो। उसके सात इन्द्र नील मणि भूषित कलश, जो ध्वज रूप उसमें संयुक्त हो, पद्मराग दल के ऊपर स्थित आठों लोकपाल, चार पूर्ण कलश और अट्ठारह प्रकार के धान्य स्थापित

---

१. अभिपूजितात्मा।

चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टादशैव तु । कौशेयवस्त्रसंवीतमुपरिष्टाद्वितानकम् ।।५
मध्ये तु फलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् । योगयुक्तः पुमान्कार्यस्तं च तत्राधिवासयेत् ।।६
एवंविधं पूजयित्वा माल्यगन्धानुलेपनैः । चक्ररक्षावुभौ तस्य कार्यो विश्वकुमारकौ ।।७
पुण्यं कालं ततः प्राप्य स्नातः सम्पूज्य देवताः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमांजलिः ।।८
शुक्लमाल्याम्बरधर इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।९

नमोनमःपापविनाशनाय विश्वात्मने [१]देवतुरङ्गमाय ।
धाम्नामधीशाय भवाभवाय रथस्य दानान्मम देहि शान्तिम् ।।१०
वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम् ।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमघौघनाशात् ।।११
इति तुरगरथप्रदानमेतद्भवभयसूदनमत्र यः करोति ।
सकलुषपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ।।१२
देदीप्यमानवपुषा च जितप्रभावमाक्रम्य मण्डलमखण्डलचण्डभानोः[२] ।
सिद्धांगनानयनयुग्मनिपीयमानवक्त्राम्बुजेभवेन चिरं सहास्ते ।।१३
इति पठति शृणोति वा य एतत्कनकतुरङ्गरथप्रदानमस्मिन् ।
न स नरकपुरं व्रजेत्कदाचिन्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ।।१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हिरण्याश्वरथदानविधिवर्णनं नाम सप्तासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८७

करना चाहिए और ऊपर रेशमी वस्त्र की चाँदनी (चँदोवा) से विभूषित भी ।१-५। उसके मध्य भाग में फल समेत पुरुष को प्रतिष्ठित करके, जिसका योग मुक्त निर्माण किया गया हो, उसका अधिवासन कराये । माला, गंध, अनुलेपन आदि से उसकी अर्चना करके चक्के की रक्षा के निमित्त दो विश्वकुमार की स्थापना करे । तदुपरांत पुण्यकाल के समय स्नान, देवपूजन और रथ की तीन प्रदक्षिणा करके शुक्ल वस्त्र धारण किये हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए इस मंत्र का उच्चारण करे—पापविनाशी, विश्वात्मा देव (वेद) रूपी तुरङ्गम को नमस्कार है, जो अधीश्वर (विष्णु) का धाम तथा संसार से मुक्त करता है । इस रथ दान से मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करे ! आठों वसु, आदित्य एवं मरुद्गणों के तुम धाता, परमनिधान हो अतः मेरे पाप समेत को नष्ट कर मेरे हृदय को धर्म मय करने की कृपा करो । इस भाँति संसारमुक्त होने के निमित्त अश्व रथ का प्रदान करने वाला मनुष्य समस्त पापों से रहित होकर पिनाकपाणि (शिव) का उत्तम लोक प्राप्त करता है । और देदीप्मान शरीर धारण कर इन्द्र और प्रचण्ड सूर्य के प्रभाव को आक्रान्त करते हुए सिद्धाङ्गनाओं के नेत्र (कटाक्ष) और मुखादि के रसास्वादन ब्रह्मा के साथ चिरकाल तक प्राप्त करता है । इस प्रकार सुवर्ण निर्मित अश्व रथ के आख्यान को पढ़ने या सुनने वाला मनुष्य कभी-भी नरक गामी नहीं होता है । अपितु नरक रिक्त (शिव) लोक की प्राप्ति करता है ।६-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हिरण्याश्वरथदानविधि में वर्णन नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८७।

---

१. वेदतुरङ्गमाय । २. अखण्डलदण्डभानो ।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कृष्णाजिनदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालं ममानघ । ब्राह्मणं च समाचक्ष्व तत्र मे संशयो महान् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

युगादिषूपरागेषु सङ्क्रातौ दिनसंक्षये । माध्यां वा ग्रहपीडासु [1]दुःस्वाप्नाद्भुतदर्शने ।।२
देयमेतन्महानंत द्रव्यमात्रागमे तथा । आहिताग्निर्द्विजो यश्च वेदवेदाङ्गपारगः ।।३
पुराणाभिरतो दक्षो देयं तस्मै च पार्थिव । यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ।।४
गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप । आदावेव समास्तीर्य शोभितं वस्त्रमाविकम् ।।५
कर्तव्यं रुक्मश्रृङ्गु तद्रौप्यदन्तं तथैव च । मुक्तादाम्ना तु लाङ्गुलं तिलच्छन्नं तथैव च ।।६
तिलैः कृत्वा शिरो[2] राजन्वाससाच्छादयेद्बुधः । सुवर्णेनाभितः कुर्यादलङ्कुर्याद्विशेषतः ।।७
पुष्पैश्चैव विधानेन नैवेद्येन च पूजयेत् । रत्नैरेवं यथा शक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत् ।।८
कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद्यथाक्रमम् । घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दत्त्वा यथाविधि ।।९
ततः सर्वसमीपे तु मन्त्रमेतमुदरीयेत् । कृष्णः कृष्णमलो देव कृष्णाजिनवरस्तथा ।।१०

अध्याय १८८

कृष्णमृगचर्म दान-विधि-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—अनघ! कृष्ण मृग चर्म का प्रदान काल और विधान तथा ब्राह्मण भी मुझे बताने की कृपा करें, क्योंकि इसमें मुझे महान् संशय उत्पन्न हो रहा है ! १

श्री कृष्ण बोले—युगारम्भ की तिथि, ग्रहणकाल, संक्रान्ति, दिनक्षय, माघपूर्णिमा, ग्रहपीडा के समय तथा दुःस्वप्न दर्शन होने पर या जिस समय विशेष धनागम हो, इस मह दान को सुसम्पन्न करे। पार्थिव! दान ग्रहण करने वाला ब्राह्मण भी चाहिए, जो अग्निहोत्री वेद-वेदाङ्ग पारगामी, पुराणवेत्ता तथा कर्मकुशल हो। विधान भी मैं बता रहा हूँ, सुनो! नराधिप! किसी पवित्र देश में गोवर से लिपी हुई भूमि पर सर्व प्रथम ऊनी वस्त्र विछाकर सुवर्ण की सींग, चाँदी, दाँत, मोतियों की रस्सी, तिलाच्छन्न पूंछ तथा तिल द्वारा शिर का निर्माण कर वस्त्र से ढ़ाँक दे। विशेषकर सुवर्ण से उसके चारों ओर अलंकृत कर पुष्प, गंध, फल, नैवेद्य, आदि से अर्चा करते हुए उसके चारों ओर यथाशक्ति रत्नों से भूषित करे।२-८। चार काँसे के पात्रों में क्रमशः घृत, क्षीर, दधि , एवं मधु रख कर उसका सविधान दान करके इस मंत्र का उच्चारण करे—देव! आप काले रंग और कृष्ण मंत्र वाले उत्तम कृष्णजिन (काले चर्म) हैं,

---

१. दुःखदुःखस्वप्नदर्शने। २. सुशिखरम्।

त्वद्दानापास्तपापस्य प्रीयतां मे नमोनमः । त्रयस्त्रिंशत्सुराणां च आधारे त्वं व्यवस्थितः ।।११
कृष्णोऽसि मूर्तिमान्साक्षात्कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते । एवं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ।।१२
तत्प्रतिग्राहकं विप्रं वेदवेदाङ्गपारगम् । स्नातं वस्त्रयुगाच्छन्नं[१] स्वशक्त्या वाप्यलङ्कृतम् ।।१३
प्रतिग्रहस्व तस्योक्तः पुच्छ देशे स्वयंभुवा । प्रतिग्रहप्रदग्धस्य विप्रस्य च स भारत ।।१४
न पश्येद्वदन पश्चान्न चैनमभिभाषयेत् । अनेन विधिना दत्त्वा यथावत्कृष्णमार्गणम् ।।१५
समग्रं भूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः । कृष्णाजिनतिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ।।१६
ये प्रयच्छन्ति विप्राय न[२] ते शोच्या भवन्ति वै । सर्वान्ल्लोकांश्चरंत्येव कामचारा वियद्गताः ।।१७
आभूतसंप्लवं यावत्स्वर्गं प्राप्ता न संशयः । कृष्णाजिनसमं दानं न चास्ति भुवने त्रये ।।१८
प्रतिग्रहोऽपि पापीयानिति वेदविदो विदुः । अवस्थात्रितये यच्च त्रिधा यत्समुपार्जितम् ।।१९
तत्सर्वं नाशमायाति दत्त्वा कृष्णाजिनं क्षणात् ।।२०

कृष्णेक्षणं कृष्णमृगस्य चर्म दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा ।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं यत् ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कृष्णाजिनदानविधिव्रतवर्णनं नाम नामाष्टासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८८

तुम्हारे दान से मेरा समस्त पाप नष्ट हो गया है अतः मैं वार-वार आपको नमस्कार कर रहा हूँ । तैंतीस (कोटि) देवों के तुम आधार बनाये गये हो, मूर्तिमान् साक्षात् कृष्ण हो अतः कृष्णाजिन को नमस्कार है । इस भाँति प्रदक्षिणा समेत वार-वार नमस्कार करके वेद-वेदाङ्ग का पारगामी उस प्रतिग्राही (दान लेने वाले) ब्राह्मण को भी स्नानोपरांत दो वस्त्र और यथाशक्ति भूषण भूषित करे । भारत! प्रतिग्राही को ग्रहण समय उसके पुच्छ प्रदेश का स्पर्श करना चाहिए ऐसा ब्रह्मा ने बताया है । प्रतिग्रह ग्रहण करने वाले उस ब्राह्मण का प्रतिग्रह ग्रहण करने पर उसके मुख का दर्शन न करे और न उससे सम्भाषण करे । इस विधान द्वारा कृष्णचर्म का दान करने वाला मनुष्य भूमिदान का समस्त फल प्राप्त करता है ।९-१५½। कृष्णाजिन, तिल के ऊपर सुवर्ण, मधु-घृत समेत ब्राह्मण को अर्पित करने या वह कभी शोक नहीं करता है अपितु समस्त लोकों में आकाश मार्गसे यथेच्छ विचरण करता है । उसे महाफल पर्यन्त स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है क्योंकि कृष्णाजिन के समान न अन्य दान तीनों लोक में नहीं बताया गया है किन्तु वेद वादियों का कहना है कि उसका प्रतिग्राही पापी होता है । शिशु, युवा और वृद्धावस्था में किये हुए समस्त पाप कृष्णाजिन दान द्वारा उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार ध्यानमग्न रहकर काले नेत्र वाले मृगके चर्म किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर मरण समय शोक रहित और अभीष्ट फल की प्राप्ति करता है ।१६-२१।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
कृष्णाजिनदानविधि वर्णन नाम एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८८।

---

१. वस्त्रपरिच्छन्नम् । २. ते च स्वर्गमवाप्नुयुः ।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हेमहस्तिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कथयिष्ये महाराज हेमहस्तिरथं तव ! यस्य [1]प्रदानाद्भवनं वैष्णवं याति मानवः ।।१
पर्वकालं समासाद्य संक्रांतौ ग्रहणेऽपि वा । कुर्याद्देवरथाकारं रथं मणिविभूषितम् ।।२
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् । चतुर्भिर्हेममातंगैर्युक्तं हेमविभूषितम् ।।३
ध्वजे च गरुडं कुर्यात्कूबराग्रे विनायकम् । लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम् ।।४
मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् । कृष्णाजिनतिलद्रोणं कृत्वा तं स्थापयेद्रथम् ।।५
नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् । कौशेयवस्त्रसंवीतमम्लानकुसुमार्चितम् ।।६
कुर्यात्पंचपलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम । ततः स्नात्वा समभ्यर्च्य पितृन्देवान्यथाविधि ।।७
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य [2]गृहीतकुसुमाञ्जलिः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं सर्वसौख्यप्रदायकम् ।।८
नमोनमः [3]शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञैस्तेजो हि नः स्यंदन पाहि तस्मात् ।।९

अध्याय १८९

सुवर्णनिर्मितहाथी के रथ-दान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं तुम्हें सुवर्ण निर्मित गजरथ का दान बता रह हूँ, जिसके प्रदान करने से मनुष्य को विष्णु लोक प्राप्त होता है। किसी पर्व, संक्रान्ति, या ग्रहण के समय देव रथ के समान उस रथ को बना कर मणिभूषित करे। विचित्र वलभी और चारों चक्र (चक्के) से युक्त उस रथ में सुवर्ण भूषित चार गजराजों को नियुक्त करे। उसकी ध्वजा में गरुड, कूवर (धुरा) में विना यक, आठों लोकपाल, ब्रह्मा, सूर्य, शिव का स्थापित करते हुए मध्यभाग में लक्ष्मी समेत नारायण की स्थापना करे। कृष्ण जिन (काले मृग चर्म) और द्रोण प्रमाण तिल के ऊपर उस रथ को प्रतिष्ठित करते हुए उसे अनेक भाँतिके फल और वितान (चँदोवा), नूतन रेशमी वस्त्र से भूषित कर पुष्पों से अर्पित करे।१-६। नरोत्तम! उसके निर्माण में पाँच पल से लेकर सौ पल तक सुवर्ण होना चाहिए। पश्चात् स्नान,देव-पितृ पूजन करके तीन प्रदक्षिणा समेत हाथ में पुष्पाञ्जलि इस मंत्र का उच्चारण करके जिससे समस्त सौख्य की प्राप्ति होती है।७-८। स्यन्दन! शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोक पाल, विद्याधर, शिव, विष्णु आदि समस्त देवगण तुम्हारी सेवा करते हैं, उसी प्रकार वेद, पुराण और यज्ञ भी तुम्हारी शुश्रुषा में लगे रहते हैं अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, मेरे तेज की रक्षा करो! प्राचीन एवं अत्यन्त गुह्य जिस पद की प्राप्ति के लिए, जो

---

१. प्रसादात्। २. गृहीत्वा कुसुमांजलिम्। ३. शंकरलोकपाललोकेशविद्याधरवासुदेवैः।

यत्तत्पदं परमगुह्यतमं[1] पुराणमानंदहेतुगणरूपविमुक्तबन्धाः ।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ पश्यंति तत्त्वमसि नाथ रथेति रूढः[2] ।।१०
यस्मात्त्वमे भवसागरसंप्लुतानामानंदभांडचितमध्यगपानपात्रम् ।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसारं चामीकरेभरथ माधव संप्रदानात् ।।११
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं यः कारयेत्समलपापविमुक्तदेहः ।
विद्याधरामरमुनींद्रगणाभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः ।।१२
कृतदुरितवितानातुष्टिसद्वह्निपालव्यतिकरकृतदेहोद्वेगभानोऽपि बन्धून् ।
नयति च पितृपौत्रान्रौरवादप्यशेषात्कृतगजरथदानः शाश्वतं सद्म विष्णोः ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हेमहस्तिरथदानविधिवर्णनं नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८९

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वचक्रदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुनरेव प्रवक्ष्यामि दानमत्यद्भुतं तव । विश्वचक्रमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम् ।।१

परमानन्द रूप हैं, मुक्त वन्धन योगी गण, जो योग द्वारा सदैव ब्रह्म-ध्यान में मग्न रहते हैं, समाधि में तत्त्वमसि (जीव ही ब्रह्म है) रूप में तुम्हीं को देखते हैं। इस संसार सागर से पार होने वाले मनुष्यों के लिए तुम आनन्द विधान पात्र हो, जो मध्य में आवश्यकतानुसार प्राप्त होता रहे, सुवर्ण निर्मित गजरथ! तुम साक्षात् माधव रूप हो अतः मेरे ऊपर पापनाशपूर्वक प्रसन्न होने की कृपा करो। इस प्रकार प्रणाम पूर्वक वह कनक गजरथ का, जो विद्याधर, देवगण और मुनियों समेत स्थापित हो, दान करने वाला समस्त पापों से युक्त होकर चन्द्रमौलि (शिव) का पद प्राप्त करता है। इस (संसार) में पाप का चंदोवा (विस्तृत पाप का) करने वाले प्राणी भी, जो पाप की अधिकताओं के नाते अप्रसन्न अग्नि आदि देवों द्वारा विकृत देह (कुष्टी) हो गया हो, इस गजरथ दान द्वारा अपने बन्धुओं -पितृ-पौत्रों आदि को रौरवादि नरकों से बचा कर विष्णु का शाश्वत पद प्राप्त करता है।९-१३

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हेमहस्ति रथदान विधि वर्णन नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त।१८९।

अध्याय १९०

विश्वचक्रदान-विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें विश्वचक्र नामक अत्यन्त अद्भुत दान बता रहा हूँ, जो प्रख्यात और

---

१. पुण्यतमं मुरारेः । २. मूढः ।

तपनीयस्य शुद्धस्य विशुद्धात्माथ कारयेत् । श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्द्धेन तु मध्यमम् ॥२
तस्याप्यर्द्धं कनिष्ठं स्याद्विश्वचक्रमुदाहृतम् । तथा विंशत्पलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत् ॥३
षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् । नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ॥४
शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वस्थे देव्यष्टकसमावृतम् । द्वितीयावरणे तद्वत्पूर्वतो जलशायिनम् ॥५
अत्रिर्भृगुर्वशिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥६
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश । तृतीयावरणेगौरी मनुभिर्वसुभिर्युता ॥७
चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च। पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥८
लोकपालाष्टकं षष्टे दिङ्मातंगास्तथैव च । सप्तमेऽस्त्राणि मङ्गलानि च कारयेत् ॥९
अन्तरांतरतो देवान्विन्यसेदष्टमे पुनः । दशहस्तं ततः कृत्वा पताकातोरणान्वितम् ॥१०
मण्डपं कुण्डमेकं च कारयेद्वस्त्रसंयुतम् । चतुर्हस्ता भवेद्वेदी मध्ये तस्यास्ततो न्यसेत् ॥११
कृष्णाजिनोपरिगतं विश्वचरं विधानतः । तथाष्टादशधान्यानि रसाश्च लवणादयः ॥१२
पूर्णकुम्भाष्टकं तद्वद्वस्त्रमाल्यविभूषितम् । फलानि दापयेत्पार्श्वे पञ्चवर्णं वितानकम् ॥१३
अधिवास्य ततश्चक्रं पश्चाद्धोमं समाचरेत् । चातुश्चरणिकांस्तत्र ब्राह्मणांश्चतुरोऽथ वा ॥१४
होमं कुर्युर्जितात्मानो वस्त्राभरणभूषिताः । होमद्रव्यसमोपेताः स्रुक्स्रुवैस्ताम्रभाजनैः ॥१५
चक्रप्रतिष्ठितानां तु सुराणां होम इष्यते । तल्लिङ्गैर्जुहुयान्मन्त्रैः सर्वोपद्रवशांतये ॥१६

समस्त पापों का नाश करता है। अग्नि संतृप्त एवं अत्यन्त विशुद्ध सुवर्ण का वह चक्र बनाना चाहिए। इसके निर्माण में सहस्र पल सुवर्ण की मूर्ति श्रेष्ठ, तदर्ध भाग की मध्यम और उसके भी आधे भाग का विश्व चक्र कनिष्क कहा जाता है तथा असमर्थ मनुष्य को भी उसके निर्माण में बीस पल से अधिक ही सुवर्ण लगाना चाहिए। इस प्रकार उस चक्र के, जिसमें सोलह आर आरामन आठ युद्धियों से आवृत नेमि (मूड़ी) हो, नाभि कमल पर योगारुढ़ चतुर्भुज विष्णु, पार्श्व भाग में शंख-चक्र, स्थित करना चाहिए, जो आठ देवियों से घिरा रहता है। दूसरे आवरण में उसी भाँति पूर्व की ओर जलशायी विष्णु, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, व्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म (कच्छप) वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम राम, कृष्ण बुद्ध, और भगवान् का कल्कि रूप स्थित रहता है। तीसरे कक्षा में मनुष्यों और वसुओं समेत गौरी, चौथे कक्ष में द्वादशसूर्य एवं चारों वेद, पाँचवे में पाँचो महाभूत, एकादश रुद्र और आठों लोकपाल, छठें में दशो दिग्गज, सातवें में मंगलसमेत समस्त अरुणवृन्द और आठवें में बीच-बीच में देवगणों को स्थापित करना चाहिए। अनन्तर पताका और तोरणों से भूषित दश हाथ का वस्त्र सुसज्जित मण्डप बनाकर उसमें चार हाथ की वेदी की रचना करते हुए एक कुण्ड की रचना करें।१-११। तदुपरांत कृष्ण मृगचर्म के ऊपर सविधान विश्व चक्र की स्थापना करके अष्टादश प्रकार के धान्य, लवणादि रस, वस्त्र माला से भूषित आठ पूर्ण कलश तथा पार्श्व भाग में फल और ऊपर पंचाङ्ग के वितान (चँदोवा) से सुसज्जित करे। पुनः चक्र का अधिवासन करके हवन कार्य सुसम्पन्न करने के लिए चार चातुश्चरणिक ब्राह्मणों को वस्त्राभरण से भूषित कर वहाँ नियुक्त करें। जो होम की सामग्री और स्रुक, स्रुवा तथा ताम्रपात्रों से सुसज्जित हों। समस्त उपद्रवों के शान्त्यर्थ उन संयमी ब्राह्मणों द्वारा चक्र में प्रतिष्ठित देवों के निमित्त उनके लिंग मन्त्रों

ततो मंगलशब्देन स्नातः शुक्लांबरो गृही । होमाधिवासनांते तु गृहीतकुसुमांजलिः ॥१७
इममुच्चारयन्मंत्रं कृत्वा तत्रिः प्रदक्षिणम् । ननो विश्वंभरायेति विश्वचक्रात्मने नमः ॥
परमानंदरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात् ॥१८
तेजोमयमिदं यस्मात्सदा पश्यंति सूरयः । हृदि तत्र गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम् ॥१९
वासुदेव स्थितं चक्रं तस्य मध्ये तु माधवः । अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह ॥२०
विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं हरेः । आयुधं चाधिवासश्च तस्माच्छान्तिं ददातु मे ॥२१
इत्यामंत्र्य च यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥२२
वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुनरावृतम् । सेव्यतेऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत्कल्पशतत्रयम् ॥२३
प्रणमेद्वाथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिनेदिने । तस्यायुर्वर्द्धते दीर्घं[1] लक्ष्मीस्तु विपुला भवेत् ॥२४
तस्माच्चक्रं सदा कार्यं दार्ग च स्वगृहे नरैः । कांचनं वाथ रौप्यं वा तदभावेऽथ ताम्रजम्[2] ॥२५

इति सकलजगत्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोडशारम् ।
हरिभुवनगतः स सिद्धसङ्घैश्चिरमधिगम्य नमस्तेऽप्सरोभिः ॥२६
अथ सुदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनतां च कामिनीभ्यः ।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदग्धपापः ॥२७

के उच्चारण पूर्वक आहुति प्रदान कराये। पश्चात् मांगलिक शब्दों को कोलाहल में स्नान और शुक्लाम्वर धारण कर वह गृहस्थ हवन कार्य और अधिवासन होने के उपरांत हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए तीन प्रदक्षिणा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करे—विश्वचक्रात्मक विश्वम्भर देव को नमस्कार है। देव! आप परमानन्द रूप हैं, अतः इस पाप कीचड़ से मेरी रक्षा करें। सूरिगण (विद्वद्गण) अपने हृदय में तेजोमय रूप में सदैव जिसका दर्शन करते हैं अतः उस गुणातीत विश्वचक्र को मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् वासुदेव में वह चक्र स्थित है और उस चक्र के मध्य में माधव की स्थिति है अतः यहाँ पर अन्योन्य (एक दूसरे) के आधार पर स्थित उन दोनों को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त पापों को अपहरण करने वाला यह विश्व चक्र भगवान् विष्णु का आयुध और अधिवास रूप है अतः मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करे।१२-२१। इस भाँति आमन्त्रित कर विश्व चक्र का दान करने वाला पुरुष, समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है। वहाँ वैकुण्ठ लोक में चार भुजाओं वाले विष्णु के साथ रहते हुए अप्सराओं के साथ तीन सौ कल्प सुखोपभोग करता है। इस प्रकार विश्व चक्र का निर्माण करके प्रतिदिन नमस्कार करने वाले पुरुष के दीर्घायु पूर्वक विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने घर सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबे का ही विश्व चक्र बनाकर स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार शुद्ध काचन निर्मित उस सोलह आठ (आरागन) वाले विश्व चक्र का, जिसमें समस्त देवों का निवास रहता है, दान करने वाला पुरुष, विष्णुलोक पहुँचकर अप्सराओं से नमस्कार पूर्वक सुसेवित होता है। शत्रुओं के लिए सुदर्शन, कामिनियों के लिए मदन, सुदर्शन रूप होने वाला वह सुदर्शन चक्र विष्णुका स्वरूप है, ऐसे सुवर्ण निर्मित सुदर्शन चक्र के दानी का समस्त पाप दग्ध हो जाता है। इसलिए गुरुतर पाप करने वाले

---

१. नित्यम्। २. ताम्रकम्।

कृतगुरुदुरितोऽपि षोडशारप्रवितरणात्प्रवराकृतिर्मुरारेः ।
अभिभवति भवोद्भवानि भित्वा भवमभितो भवने भवानि भूयः ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विश्वचरदानविधिवर्णनं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९०

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनप्रतिष्ठावर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रतिष्ठा शाश्वती केन दानेन मधुसूदन । इह लोके परे चैव कीर्तिरत्यद्भुता तथा ।।१
सद् गतिं च तथा यांति सर्वे पितृपितामहाः । संततिश्चाक्षया लोके विभवश्चपि पुष्कलः ।।२
स्थापनात्सर्वदेवानां कथं स्याद्यदुनंदन । तदाचक्ष्व महाभाग दानेन नियमेन वा ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजँल्लोकानामुपकारकम् । शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यं परममुत्तमम् ।।४
भुवनानां समासेन प्रतिष्ठां कथयामि ते । देवासुरास्तथा नागा गंधर्वा यक्षराक्षसाः ।।५
प्रेताः पिशाचा भूताश्च स्थापिताः स्युर्न संशयः । कारकस्यानुकूले तु मुहूर्ते विजये शुभे ।।६
पुण्ये तिथौ शिवक्षेत्रे दिने सौम्यग्रहान्विते । सप्त हस्तं पटं कृत्वा चतुरस्रं सुसंहतम् ।।७

प्राणी भी जो मुरारि विष्णु के उस रूपान्तर चक्र का, जो सोलह आरों से सज्जित रहता है, दान कराना है तो संसार दुःखों से मुक्त होकर शिवलोक में बार-बार निवास करता है ।२२-२८।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
विश्वचक्रदानविधि वर्णन नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।१९०।

अध्याय १९१

भुवनप्रतिष्ठा का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मधुसूदन! किस दान द्वारा शाश्वती (नियमित) प्रतिष्ठा, लोक-परलोक में अद्भुतकीर्ति, पितृ-पितामह आदि की सद्गति, लोक में अक्षय सन्तान, अत्यन्त धन की प्राप्ति होती है। महाभाग, यदुनन्दन! वह देवों के स्थापन अथवा किसी दान या नियम द्वारा सफल होता है मुझे बताने की कृपा करें ।१-३

श्री कृष्ण बोले—राजन्! तुमने लोकोपकारार्थ यह अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, इस परमोत्तम रहस्य को मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो! मैं तुम्हें भुवनों की प्रतिष्ठा भी विवेचन पूर्ण बताऊँगा, जिससे देव, असुर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, प्रेत, पिशाच, भूत का स्थापन ही होगा, इसमें संदेह नहीं। कर्ता अपने अनुकूल शुभ एवं विजय मूहूर्त में जो पुण्य तिथि एवं सौम्य ग्रहों से युक्त हो,

अभिन्नांगं दृढं शुद्धं[1] शुद्धस्फटिकवर्चसम् । तस्मिन्सर्वाणि राजेन्द्र भुवनानि च लेखयेत् ॥८
चातुर्वर्ण्यकमानीय विचित्रं चित्रकर्मणि । युवानं व्याधिरहितं भव्यं चित्रकरं शुभम् ॥९
संपूजयित्वा यत्नेन दिव्यवासोविभूषणैः। तस्मिन्कर्मणि युञ्जीत पठ्यमानैर्द्विजोत्तमैः ॥१०
शङ्खभेरीनिनादैश्चगीतमङ्गलनिस्वनैः । पुण्याहजयघोषैश्च ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः[2] ॥११
आचार्यमपि संपूज्यवासोभिर्भूषणैस्तथा । प्रारम्भं कारयेद्राजन्पटे तस्मिन्यथोदितम् ॥१२
मध्ये च लेखयेद्राजञ्जंबूद्वीपं [3]सविस्तरम् । तस्य मध्ये स्थितो मेरुर्मेरोरुपरि देवताः ॥१३
दिशासु लोकपालानां पुरोऽष्टौ सुरसंयुताः । सप्तद्वीपवती पृथ्वी सप्त चैव कुलाचलाः ॥१४
सागराः सप्त चात्रैव नद्यो ह्रदाः सरांसि च । पातालाः सप्त चात्रैव सप्त स्वर्गविभूतयः ॥१५
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भुवनानि यथाक्रमम् । ध्रुवमार्गस्तथादित्यो ग्रहतारागणैर्युतः ॥१६
देवदानवगन्धर्व यक्ष राक्षसपन्नगाः । ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥१७
सुपर्णाद्याश्च विहगा नागाश्चैरावतादयः । दिग्गजाष्टकमत्रैव लेखयेत्पदमण्डितम् ॥१८
एवंविधं पटं राजन्कारयित्वा सुशोभनम् । दशोत्तरेण पयसा एतत्सर्वसमावृतम् ॥१९
तत्तेजसा वृतं भूयो महतोग्रेण सर्वतः । तेजस्तद्वायुना वायुराकाशेन समावृतः ॥२०
भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महता तथा । अव्यक्तेन महांश्चैव व्याप्तो वै शुद्धिलक्षणः ॥२१
अव्यक्तं तमसा व्याप्तं तमश्च रजसा तथा । रजः सत्त्वेन संव्याप्तं त्रिधा प्रकृतिरुच्यते ॥२२

किसी मरुस्थान में सात हाथ का विस्तृत तथा चौकोर वस्त्र रखे, जो सुसंहत (घना), अभिनाङ्ग, दृढ़, शुद्ध और शुद्ध स्फटिक की भाँति स्वच्छ हो । उस चित्र को सुसम्पन्न करने के लिए चार प्रकार के रङ्ग एकत्र कर किसी युवा चित्रकार की, जो शुभ मूर्ति एवं भव्य हो, दिव्य वस्त्राभूषणों द्वारा सुपूजा करे । पुनः उसी कर्म में वेदपाठी ब्राह्मणों की नियुक्ति करके शंख, नगाड़े, का गम्भीर विवाद, गीत-मङ्गलों की ध्वनि और पुण्याहवाचन एवं जयघोष के कोलाहल में ब्राह्मणों की अर्चा करे ।४-११। राजन्! प्रथम वस्त्राभूषणों द्वारा आचार्य की पूजा करके उस वस्त्र में यथोचित का उल्लेख कराये । राजन्! उसके मध्यभाग में विस्तृत जम्बूद्वीप की रचना कर उसके मध्यमें मेरु पर्वत और उसके ऊपर देवों के निवास स्थान, दिशाओं में आठों लोक पाल, सातों द्वीप समेत पृथ्वी, सातों पर्वत, सातों सागरों तथा उसी स्थान नदियों, सरोवरों, अन्य जलाशयों की रचना पूर्वक, पाताल आदि सातों लोक, सातों स्वर्ग के विभूति समस्त लोक, क्रमशः ब्रह्म, विष्णु, एवं शिव का आवास स्थान, ध्रुव का मार्ग, ग्रहों और तारागणों समेत, सूर्य, देव, दानव, गन्धर्व, पक्ष, राक्षस, नाग, ऋषि, मुनि, गौएँ देवमाताएँ, सुवर्ण (गरुड़) आदि पक्षीगण, ऐरावत, आदि गजराजगण, तथा आठों पदमन्त्र दिग्गजों की सुस्पष्ट रचना करे ।१२-१८। राजन्! इस भाँति के उस सुशोमन पटको उत्तर की ओर दश जलाशयों से आच्छन्न (घेर) कर उसे महान् एवं उग्र तेज से आवृत कर तेज को वायुसे, वायु को आकाश से, भूतों (तन्मात्राओं) से आकाश, महान् से पञ्चमहाभूत, और अव्यक्त द्वारा वह महान्, आवृत है, जो शुद्धि लक्षण सम्पन्न होकर चारों ओर व्याप्त है ।१९-२१। वह अव्यक्त तम से आवृत है और वह तम रजसे सत्त्व से व्याप्त है, यही तीन रूप से प्रकृति कहा जाता

---

१. सूत्रं शङ्खस्फटिकवर्चसम् । २. पूज्य यत्नतः । ३. सुविस्तरम् ।

एवमावरणोपेतं ब्रह्मांडमखिलं नृप । पुरुषेणावृतं सर्वं सबाह्याभ्यन्तरं तथा ।।२३
एतत्सर्वं पटस्थं तु कृत्वा चित्रमयं सुधीः । कार्तिक्यामयने चैव विषुवे ग्रहणेऽपि वा ।।२४
पूजयेद्येन विधिना तत्समासेन मे शृणु । परतो मण्डपं तस्य विचित्रं कारयेद्बुधः ।।२५
तत्र काण्डानि चत्वारि चतुरस्राणि कारयेत् । द्वौ द्वौ नियोजयेत्तेषु ब्राह्मणौ वेदपारगौ ।।२६
यज्ञोपकरणोपेतौ वस्त्राभरणभूषितौ । होमं कुर्युर्जितात्मानो मौनिनः सर्व एव ते ।।२७
पटे स्थितानां देवानां [1]मन्त्रैरोङ्कारपूर्वकैः । यजमानस्ततः स्नातः सर्वालङ्कारभूषितः ।।२८
आचार्येणसमं कुर्यात्पूजामग्रे पटस्य तु । पुष्पैर्वस्त्रैः समभ्यर्च्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।।२९
ब्रह्मांडोदरवर्तीनि भुवनानि चतुर्दश । तानि संनिहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे ।।३०
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा । पूजिताः सुप्रतिष्ठाश्च भवन्तु सततं मम[2] ।।३१
एवं पटन्तं संपूज्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । भक्ष्यान्नानाविधांश्चैव नैवेद्यं तत्र दापयेत् ।।३२
शङ्खतूर्यनिनादैश्च जागरं कारयेत्ततः । ब्रह्मघोषै विचित्रैश्च गीतमङ्गलनिस्वनैः ।।३३
पुनः प्रभाते विमले स्नात्वा शुचिरलङ्कृतः । पूर्वोक्तविधिनानेन पुनः संपूज्यं तं पटम् ।।३४
ऋत्विक्पूजां ततः कृत्वा गोशतेन विचक्षणः । अथवा गोयुगं[3] दद्यादैकैकस्यात्यलङ्कृतम् ।।३५
उपानहौ तथा छत्रं गृहोपकरणानि च । यद्यदिष्टतमं किंचित्सर्वं दद्याद्विचक्षणः ।।३६

है । नृप! इस प्रकार आवरणों से युक्त यह निखिल ब्रह्माण्ड बाहर-भीतर सभी स्थान पुरुष से उपवृत है । वह सुधी (विद्वान्), उस वस्त्र में इस प्रकार के चित्र का निर्माण कराकर कार्तिक पूर्णिमा, अयन, विषुव, ग्रहण के समय जिस विधान द्वारा अर्चा सुसम्पन्न करे मैं विवेचक पूर्ण बता रहा हूँ, सुनो! उसके समक्ष विचित्र मण्डप का निर्माण करके उसमें चौकोर चार कुण्डों को बना कर उस प्रत्येक कुण्ड पर दो-दो वेदपारगामी ब्राह्मणों को नियुक्त करे, जो यज्ञ के समस्त साधनों से सम्पन्न वस्त्राभूषणों से भूषित हों वे सभी संयमी ब्राह्मण मौन होकर हवन कार्य सुसम्पन्न करें । पद में प्रतिदिन देवों के निमित्त ओंकार पूर्वक आहुति प्रदान करने के अनन्तर सम्मान तथा समस्त अलंकारों से अलंकृत होकर यजमान आचार्य के साथ पुष्प-वस्त्रादि द्वारा उस पट की सर्व प्रथम पूजा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करें—'ब्रह्माण्ड के मध्य में प्रतिष्ठित चौदहो भुवन यहाँ स्थित रह मेरे इस पूजन द्वारा पूजित हों' । उसी भाँति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आहित्यगण, वस्त्र गण, आदि सभी देव मेरे इस पूजन द्वारा विस्तार पूजित और प्रतिष्ठा हों ।२२-३१। इस प्रकार प्रदक्षिणासमेत उस पट की अर्चा करके अपने भाँति के भक्ष्य अन्न, नैवेद्य अर्पित करे । अनन्तर शंख, तुरुही, आदि के शकों गीत, मंगल और ब्रह्म घोष द्वारा उसका जागरण कराकर विमल प्रातःकाल में स्थान, पवित्रतापूर्ण और अलंकारों से अलंकृत होकर पूर्वोक्त विधान द्वारा उस पट की पूजा करे । पश्चात् उस यजमान् विद्वान् को सौ गौएँ द्वारा आखिजों की अर्चा या प्रत्येक को सर्वाभरण भूषित दो-दो गौएँ अर्पित करे । उसी प्रकार उपानह, छत्र, गृह के समस्त साधन और अपनी अभीष्ट सभी वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए । अनन्तर गजराज जुते हुए या उसके प्रभाव मेर घोड़े से सुसज्जित रथ पर

---

१. मेरोः । २. मम सर्वदा । ३. गोयुतम् ।

ततः प्रकल्पयेद्यानं नागयुक्तमलङ्कृतम् । अलाभे वाजिसंयुक्तं पताकाध्वजशालिनम् ।।३७
सहस्रं दक्षिणां दत्त्वा ततस्तत्रारोपयेत्पटम्[1] । ब्राह्मणं वा रथेनाथ नयेद्देवालयं बुधः ।।३८
तत्रस्थं स्थानयेन्नीत्वा गन्धैः पुष्पैश्च धूपयेत् । तत्रापि दद्यान्नैवेद्यं कुर्याच्चापि महोत्सवम् ।।३९
यस्मिन्नायतने तस्य प्रतिष्ठा क्रियते नृप । पूजा तत्रापि महती कर्तव्या भूतिमिच्छता ।।४०
चन्द्रातपत्रं घण्टां च ध्वजाद्यं दापयेत्सुधीः । यथाशक्त्या च राजेन्द्र गुरुं गौरवयन्त्रितः ।।४१
अभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् । दीनांधकृपणानां च भोजनं चाप्यवारितम् ।।४२
तस्मिन्नहनि दातव्यं मित्रस्वजनबंधुषु । अनेन विधिना यस्तु श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।।४३
कुर्यान्नरो वा नारी वा प्रतिष्ठां सार्वलौकिकीम् । स्थापितं तु भवेत्तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४४
कुलं च तारितं तेन सत्पुत्रेण युधिष्ठिर । यावच्च देवतागारे पटस्तिष्ठति पूजितः ।।४५
[2]तावदस्याक्षया कीर्तिस्त्रैलोक्ये संप्रसर्पति[3] । दानेन कीर्तिर्यावंति[4] मर्त्यलोकेषु गीयते ।।४६
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । गन्धर्वैर्गीयमानस्तु अप्सरोगणसेवितः ।।४७
वसेद्हृष्टमनाः स्वर्गे यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ।।४८
पुत्रपौत्रान्वितः श्रीमान्दीर्घायुरतिधार्मिकः । दश जन्मानि राजेन्द्र जायमानः पुनः पुनः ।।४९
श्रूयते च पुरा राजा रजिर्नाम महाबलः । चक्रवर्ती दृढमतिर्जितारिर्विजितेन्द्रियः ।।५०

जो पताका-ध्वजाओं से भूपित हो, सहस्र की दक्षिणा पूर्वक वह पट आरोपित करे अथवा उस रथ द्वारा ब्राह्मण के देवालय लाकर स्थापन करते हुए गन्ध, पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करे । नैवेद्य अर्पित करते हुए वहाँ भी महोत्सव करना चाहिए । नृप ! जिस देवालय में उसकी प्रतिष्ठा न कर सके, वहाँ भी उस ऐश्वर्य इच्छुक यजमान को पूजा-सम्भार महान् ही करना चाहिए । राजेन्द्र! चाँदी का छत्र, घंटा और ध्वजा आदि यथाशक्ति गुरु को अर्पित करते हुए दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को सुसम्मानित कर विसर्जन करके और उस दिन दीन, अंधे, कृपण व्यक्तियों को अनिवार्य भोजन देते हुए मित्र एवं स्वजन आदि बन्धुओं को भी भोजन कराये । इस भाँति इस विधान द्वारा श्रद्धा और संयमपूर्वक उस सार्वलौकिकी प्रतिष्ठा को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष-स्त्री कोई हो, उसने सचराचर तीनों लोक की स्थापना की इसमें संशय नहीं । युधिष्ठिर! उस सत्पुत्रने अपने कुल का भी उद्धार किया है ऐसा जानना चाहिए । उस देवालय में वह पट जितने दिन वर्तमान रहता है, उतने समय तक उसकी अक्षय कीर्ति तीनों लोकों में विचरण करती है । दान द्वारा इस मर्त्यलोक में जितने दिन उसकी कीर्ति फूलती-फलती है, उतने सहस्र वर्ष वह स्वर्ग लोक में सुसम्मानित होता है और गन्धर्व गण उसके गुणगान करते हैं तथा अप्सरायें सुसेवा करती हैं ।३२-४७। चौदह इन्द्रों के समय तक सहर्ष स्वर्ग में सुखानुभव करने के उपरांत पुण्यक्षीण होने के नाते पुनः यहाँ धार्मिक राजा होता है, जो पुत्र-पौत्र समेत दीर्घायु, श्रीमान् और अति धार्मिक होता है । राजेन्द्र! दश जन्म तक वह इसी भाँति सपरिवार सुखी जीवन व्यतीत करता है । सुना जाता है कि प्राचीन काल में रजि नामक एक महाबलवान् राजा राज करता था, जो चक्रवर्ती, तीक्ष्ण बुद्धि, शत्रुजेता,

---

१. संस्थापयेत्पटम्। २. तस्य। ३. प्रतिसर्पति। ४. वर्षसहस्राणीत्यंग्रिमेणाप्यत्राप्याहृतेम्नान्वयः।

मही येन पुरा दत्ता देवराजस्य संगरे । जित्वा दैत्यबलं सर्वं दत्तवांस्त्रिदिवं पुनः ॥५१
महेन्द्राय महाभाग सर्वं निहतकंटकम् । स कदाचित्सभामध्ये यावदास्ते महीपतिः ॥५२
तावत्तत्राजगामाथ पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । शिष्यैः परिवृतः श्रीमान्वेदवेदांगपारगैः ॥५३
दत्तार्घस्तु तदा तेन उपविष्टो वरासने । शुशुभे परया लक्ष्म्या पितामह इवापरः ॥५४
अथ तं पूजयित्वाग्रे मधुपर्केण पार्थिवः । पप्रच्छ विनयोपेतः कथामात्मोद्भवां नृपः ॥५५
भगवन्केन दानेन तपसा नियमेन वा । श्रीरियं मम धर्मज्ञ तेजश्चाव्याहतं भुवि ॥५६
बलं पुष्टिं धनं धान्यं पुत्रपौत्रं तथोत्तमम् । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम ॥५७

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्कथामेतामात्मीयां सुमनोहराम् । कथ्यमानां मया सम्यक्सप्तमे तव जन्मनि ॥५८
कथेयमभिनिर्वृत्ता शृणुष्वैश्वर्यवर्द्धिनीम् । आसीस्त्वं वैश्यजातीयो पुरा चैव नरोत्तम ॥५९
बहुभृत्यपरीवारो धनधान्यसमन्वितः । धार्मिकः सत्यनिरतो वणिग्धर्मरतः सदा ॥६०
तत्र त्वया श्रुता धर्माख्यानगतेन वै । दानाश्रया बहुविधा व्रतानि विविधानि च ॥६१
प्रसंगेन कदाचिच्च प्रतिष्ठा भौवनी त्वया । श्रुता राजेन्द्र विधिवत्कृता बहुपुण्यदा ॥६२
फलेन तेन जातोऽसि सप्त जन्मानि भूपतिः । कीर्तिस्ते प्रथिता लोके बलं च चापि महत्तव ॥६३
अपराण्यपि जन्मानि सप्त राजा भविष्यसि । पश्चाद्योगिकुले भूत्वा निर्वाणं समवाप्स्यसि ॥६४

एवं संयमी था। उसने प्राचीन काल में पृथ्वी दान किया था और देवराज के संग्राम में दैत्य सेनाओं को पराजित कर देवेन्द्र! को निष्कण्टक स्वर्ग भी अर्पित किया था। महाभाग! एक बार सभा मध्य सिंहासन पर बैठे हुए राजा से सम्मुख ब्रह्मपुत्र पुलस्त्य महर्षि का आगमन हुआ, जो वेद-वेदाङ्ग के पारगामी शिष्यों से, सदैव सुशोभित रहते थे। राजा द्वारा छिपे गये उस अर्घ्यादि को ग्रहण कर उस उत्तम आसन पर दूसरे पितामह की भाँति भी सम्पन्न मुनि के सुशोभित होने पर स्वयं राजा ने मधुपर्क से उनकी पूजा की और अन्त में विनीत-विनम्र होकर अपने वैभव के विषय में उनसे पूँछा—भगवन्! किस दान, नियम, अथवा तप द्वारा मुझे इस प्रकार की श्री, अव्याहत तेज, बल, पुष्टि, धन, धान्य, तथा उत्तम पुत्र-पौत्र की प्राप्ति हुई है। धर्मज्ञ, द्विजोत्तम! आप सर्वज्ञ हैं अतः इसे मुझे बताने की कृपा करें।४८-५७

पुलस्त्य बोले—राजन्! मैं तुम्हें इस आत्मीय एवं सुमनोहर कथा का वर्णन सुना रहा हूँ, जो तुम्हारे इस सातवें जन्म में कथा के रूप में प्रकट और ऐश्वर्य बढ़ाने वाली है, सुनो! नरोत्तम! आज से पिछले सातवें जन्म में तुम काशी में उत्पन्न वैश्य कुल में महान् सेठ थे, अनेक सेवक परिवार से युक्त रहने पर भी तुम धार्मिक, सत्य प्रेमी रहते हुए अपने वैश्य (व्यापार) धर्म में सदैव लगे रहते थे। वहाँ तुमने अनेक धर्मस्थानों द्वारा धर्मो के अनेक रूप का श्रवण किया, जिसमें अनेक भाँति के दान बहु भाँति के विविध व्रत बताये गये थे। उसी प्रसङ्ग में तुमने भुवनों की प्रतिष्ठा (पट-दान) भी सुनकर उसे सविधि सुसम्पन्न किया था, जो बहुत पुण्य प्रदान करती है।५८-६२। राजेन्द्र! उसी के फलस्वरूप तुम सात जन्म तक राजा हुए, तुम्हारी कीर्ति लोकों में प्रख्यात हुई और तुम्हें महान् फल की प्राप्ति हुई है। इसीलिए अन्य सात जन्मों में भी राजा होकर राजसुखों का अनुभव कर अन्त मे योगिकुल में उत्पन्न होने पर निर्वाण पद की प्राप्ति

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । नारी वा पुरुषो वापि प्रतिष्ठां भौवनीं तु यः ॥६५
प्रकरोति विधानेन कृतकृत्यो भवेद्बुधः[1] । इत्युक्ता स मुनिस्तत्र राजानं शंसितव्रतः ॥६६
ययावदर्शनं तत्र सूर्यं वैश्वानरोपमः ॥६७

धर्मं विवर्द्धयति कीर्तिशतानि धत्ते कामं प्रसाधयति पापमपाकरोति ।
ख्याता मयेयमधुना तव दाननिष्ठातन्नास्तियन्नकुरुतेभुवनप्रतिष्ठा ॥६८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भुवनप्रतिष्ठावर्णनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९१

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतो दानविधिः सर्वः प्रसादात्ते रमाधव । नक्षत्रदानस्येदानीं दानकल्पं प्रचक्ष्व मे ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । देवक्याश्चैव संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ॥२

करोगे । इस विषय का प्रश्न तुमने जो मुझसे पहले किया था, उसकी सविस्तार व्याख्या मैंने तुम्हें सुना दी है । इस भाँति भुवनप्रतिष्ठा (पट-दान) को सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरुष या स्त्री कृतकृत्य हो जाते हैं । राजा से ऐसा कहकर वेदानुगामी मुनि पुलस्त्य जो सूर्य, एवं अग्नि की भाँति तेजोमय दिखायी देते थे, उसी स्थान अन्तर्निहित हो गये । इस भाँति मैंने तुम्हें जो यह-दान प्रतिष्ठा (पट-दान) सुनाया है, सुसम्पन्न होने पर धर्म की वृद्धि करती है, सैकड़ों भाँति की कीर्ति फैलाती है, कामनाएँ सफल करती हैं, और पापों को नष्ट करती हैं और अन्य कोई ऐसा सुख नहीं है जिसे यह प्रदान नहीं कर सकती है।६३-६८

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
भुवनप्रतिष्ठा-वर्णन नामक एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ।१९१।

अध्याय १९२

नक्षत्रदान-विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—रमाधव! आप की कृपा से मैंने समस्त दानों का विधान जान लिया है अतः इस समय मुझे नक्षत्र-दान का सविधान दान कल्प बतायें ।१

श्रीकृष्ण बोले—इस विषय का तुम्हें एक प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसमें देवकी और देवर्षि

---

१. भुवि ।

द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम् । पप्रच्छेदं तथा प्रश्नं देवकी धर्मदर्शिनी ॥३
तस्याः संपृच्छ्यमानाया देवर्षिर्नारदस्ततः[१] । आचष्ट विधिवत्सर्वं यत्तच्छृणु विशांपते ॥४
नक्षत्रयोगं वक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् । कृत्तिकासु महाभाग पायसेन ससर्पिषा ॥५
सन्तर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् । रोहिण्यां पाण्डवश्रेष्ठ मांसैरन्नेन सर्पिषा ॥६
संतर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् । पयोऽन्नदानं दातव्यमानृण्यार्थं द्विजातये ॥७
दोग्ध्नीं सवत्सां तु नरो नक्षत्रे सोमदैवते[२] । दत्त्वा दिव्यविमानस्थः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥८
आर्द्रायां कृशरां दत्त्वा तिलमिश्रां समाहितः । नरस्तरति दुर्गाणि सर्वाण्येव नरोत्तम ॥९
पूपान्पुनर्वसौ दत्त्वा घृतपूर्णान्सुपाचितान् । यशस्वी रूपसंपन्नः [३]सज्जनो जायते कुले ॥१०
पुष्ये तु काञ्चनं दत्त्वा कृतं वाकृतमेव वा । अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥११
आश्लेषासु तथा रौप्यं यः सुरूपं प्रयच्छति । सर्वभयविनिर्मुक्तः शास्त्रवानभिजायते ॥१२
मघासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि मानवः । प्रदाय पशुमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजायते ॥१३
फाल्गुनीपूर्वसमये वडवां द्विजपुंगवे । दत्त्वा पुण्यकृतांल्लोकान्प्राप्नोति सुरसेवितान् ॥१४
उत्तराफाल्गुनीयोगे दत्त्वा सौवर्णपङ्कजम् । सूर्यलोकमवाप्नोति सर्वबाधाविवर्जितः ॥१५
हस्ते तु हस्तिनं दत्त्वा काञ्चनं शक्तितः कृतम् । यात्यसौ शक्रसदनं वरवारणधूर्गतः ॥१६

नारद का संवाद हुआ है । एक बार द्वारकापुरी में देवर्षि नारद के आगमन होने पर उन देवदर्शन को देख धर्ममूर्ति देवकी ने यही उनसे पूछा था । विशाम्पते! देवकी के पूँछने पर देवर्षि नारद ने उसके उत्तर में उन्हें जो कुछ बताया था उसे सविधि मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! समस्त पातकों को विनष्ट करने वाला वह नक्षत्र योग कह रहा हूँ । महाभाग! कृत्तिका नक्षत्र में घृत पूर्ण पायस (खीर) से साधुओं और ब्राह्मणों को तृप्त करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । पाण्डव श्रेष्ठ! उसी भाँति रोहिणी नक्षत्र में मांस और घृत समेत अन्न द्वारा साधुओं ब्राह्मण को तृप्त करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । क्योंकि ऋणरहित होने के लिए ब्राह्मणों को खीर भोजन से तृप्त ही करना चाहिए ।२-७। मृगशिरा नक्षत्र में सवत्सा एवं दूध देने वाली गौ का दान करने से दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है । नरोत्तम! आर्द्रा नक्षत्र में तिल मिश्रित कृशरान्न (खिचड़ी) दान करने से मनुष्यसमस्त कठिनाइयों को पार करता है । पुनर्वसु नक्षत्रमें घृत में भलीभाँति पकाये हुए पूआ के दान करने से अपने कुल में यशस्वी, रूपवान्, एवं सज्जन होता है । पुष्य नक्षत्र में केवल सुवर्ण दान से चाहे वह अन्य सुकृत किये हो, लोक-परलोक में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है । आश्लेषा नक्षत्र में चाँदी का दान करने पर सुरूप की प्राप्ति होती है और समस्त भय से मुक्त होकर वह शास्त्र मर्मज्ञ होता है । मघा नक्षत्र में तिल पूर्ण वर्धमान का दान करने पर मनुष्य पशु-पुत्र की प्राप्ति करता है । पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में वडवा घोड़ी का दान ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर देवों से सुसेवित पुण्य लोक की प्राप्ति होती है । उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सुवर्ण-कमल का दान करने पर वह समस्त बाधारहित होकर सूर्यलोक की प्राप्ति करता है।८-१५। हस्त नक्षत्र में यथा शक्ति सुवर्ण निर्मित हाथी की प्रतिमा दान करने पर वह उत्तम कारण (गजराज) पर सुशोभित

---

१. तथा । २. मृगशीर्षे । ३. शर्कराम् ।

चित्रासु वृषभं दत्त्वा पुण्यानां पुण्यमुत्तमम् । चरत्यप्सरसां लोके मोदते नन्दने वने ॥१७
स्वातीषु च धनं दत्त्वा यदभीष्टमिहात्मनः । प्राप्नोति च शुभांल्लोकानिह लोके महद्यशः ॥१८
विशाखासु महाराज धुरंधरविभूषितम् । सोपस्करं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंवृतम् ॥१९
दत्त्वा प्रीणाति स पितुः प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते । न च दुर्गाण्यवाप्नोति रौरवादीनि मानवः ॥२०
दत्त्वा यथेष्टं विप्रेभ्यो गतिमिष्टां स [1]गच्छति । कम्बलान्यन्यनुराधर्क्षे दत्त्वा प्रावरणानि च ॥२१
स्वर्गे वर्षशतं साग्रमास्ते सुरगणैर्वृतः । कालशाकं च विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्यः समूलकम् ॥२२
ज्येष्ठानुज्येष्ठतामेति गतिमिष्टां च गच्छति । मूले मूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥२३
पितॄन्प्रीणयते सर्वान्गतिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । अथ पूर्वास्वषाढासु दधिपात्राणि मानवः ॥२४
कुलवृत्तिरतोत्पन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे । प्रदाय जायते प्रेत्य कुले च बहुभोगवान् ॥२५
पुत्रपौत्रैः परिवृतः पशुमान्धनवांस्तथा । उदमंथं ससर्पिष्कं प्रभूतमधुफाणितम् ॥२६
दत्त्वोत्तरास्वषाढासु सर्वान्कामानवाप्नुवात् । दुग्धंत्वभिहितो भागे दत्त्वा घृतमधुप्लुतम् ॥२७
धर्मनित्यो मनीषिभ्यः स्वर्गे वसति पुण्यभाक् । श्रवणे पुस्तकं श्रेष्ठं प्रददातीह यो नरः ॥२८
स्वेच्छया याति यानेन सर्वांल्लोकान्नसंशयः । गोयुगं च धनिष्ठासु दत्त्वा विप्राय मानवः ॥२९
सर्वत्र मानमाप्नोति यत्र यत्रेह जायते । तथा शतभिषायोगे दत्त्वा [2]सागरुचन्दनम् ॥३०

होकर इन्द्र लोक का प्रस्थान करता है।८-१६। चित्रा नक्षत्र में वृषभ (बैल) का दान करने वाला अप्सराओं के उस परमोत्तम एवं पुण्यप्रद नन्दन वन में यथेच्छ विचरण करता है। स्वामी मैं अपने अभीष्ट धन का दान करने वाला इस लोक में महान् यशकी प्राप्ति पूर्वक शुभ-परलोक की प्राप्ति होती है। महाराज! विशाखा नक्षत्र में शकट (गाड़ी या रथ) का, जो धुरंधर बैलों से भूषित, सामग्रीसमेत धान्य और वस्त्रों से वृत हो, दान करने वाला मनुष्य पितृलोक में अनन्त काल की सुख प्राप्ति करता है। तथा उसे रौरव आदि नरक दुर्ग की यात्रा नहीं करनी पड़ती है। पुनः ज्येष्टा नक्षत्र में ब्राह्मणों को उत्तम कम्बल अर्पित करने पर इष्ट गति को प्राप्ति होती है। ज्येष्ठा नक्षत्र में मूल समेत कालशाक का दान ब्राह्मणों को अर्पित करने पर स्वर्ग में सैकड़ों वर्षो तक देवों समेत सुखानुभव पूर्वक श्रेष्ठता और अभीष्ट गति की प्राप्ति होती है। मूल नक्षत्र में मूलफल ब्राह्मणों को अर्पित करने पर वह पितरों की तृप्ति पूर्वक उत्तम गति प्राप्त करता है।१७-२३। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में दधिपूर्ण पात्र किसी कुलीन एवं उत्तम जीविका वाले के मर्मज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह मनुष्य उत्तम कुल में जन्म ग्रहण कर बहुभोगी होता है। और पुत्र-पौत्र समेत पशु एवं धन पूर्ण होता है। उत्तराषाढ नक्षत्र में घृत मिश्रित अन्न का दान करने वाला समस्त कामनाएँ सफल करता हूँ। अभिजित नक्षत्र में घृत-मधु समेत दुग्ध मनीषियों को अर्पित करने पर वह पुण्यात्मा स्वर्ग में निवास करता है। श्रवण नक्षत्र में श्रेष्ठ पुस्तक का दान करने वाला यथेच्छ मान द्वारा समस्त लोकों की प्राप्ति करता हैं इससे संशय नहीं। घनिष्ठा नक्षत्र में चार बैल, गौ ब्राह्मणों को अर्पित करने पर सभी स्थान वह सुसम्मानित होता है।२४-२९½। शतभिषा नक्षत्र में अगरु समेत चन्दन का दान

---

१. ब्रह्मण्यः। २. विन्दति।

प्राप्नोत्यप्सरसां लोके प्रेत्य गन्धाश्च शोभनान् । पूर्वभाद्रपदायोगे राजमाषान्प्रदापयेत् ॥३१
सर्वभक्षफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत्। रत्नमुत्तरयोगे तु सुवस्त्रं यः प्रयच्छति ॥३२
पितॄन्प्रीणाति सकलान्प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते । कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति ॥३३
स प्रेत्य कामानादाय दातारमुपगच्छति । रथमश्वसमायुक्तं दत्त्वाश्विन्यां नरोत्तम ॥३४
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णे वर्चस्वी जायते कुले । भरणीषु द्विजातिभ्य तिलधेनुं प्रदाय वै ॥३५
गावः प्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा । इत्येष दक्षिणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः ॥३६
देवक्यै नारदेनैव मया च कथितस्तव । सर्वपापप्रशमनः सर्वोपद्रवनाशनः ॥३७
न चात्र कालनियमो नक्षत्रप्रक्रमस्तथा । वित्तं श्रद्धा च राजेन्द्र कारणं चात्र कथ्यते ॥३८

यद्यच्च ते भगवता कमलोद्भवस्य पुत्रेण दानमुदितं प्रसमीक्ष्य वेदान् ।
सद्यो[1] ददाति विभवे सति साधुवृत्ते किं तेन पार्थ न कृतं भवतीह लोके ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रदानविधिवर्णनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९२

करने वाला अप्सराओं के लोक में उत्तम गंध की प्राप्ति करता है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में राजमाष (उरद) का दान करने वाला समस्त भक्ष्य समेत स्वर्ग सुख प्राप्त करता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में रत्न भूषित वस्त्र का दान करने वाला समस्त पितरों को तृप्त करते हुए स्वर्ग में अनन्त सुख की प्राप्ति करता है। रेवती नक्षत्र में कांसे की दोहनी युक्त धेनु का दान करने वाला मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को सफल करता है। नरोत्तम! अश्विनी नक्षत्र में घोड़े जुते हुए गाय। रथ का दान करने वाला हाथी घोड़े और रथ उस उत्तम कुल में उत्पन्न होकर तेजस्वी होता है। उसी प्रकार भरणी नक्षत्र में ब्राह्मणों को तिल धेनु प्रदान करने पर मनुष्य को प्रभूत गौओं की प्राप्तिपूर्वक यश की प्राप्ति होती है। इस दक्षिणादान के उद्देश्य से नक्षत्र योग की व्याख्या मैं तुम्हें सुना दिया, जो नारद ने देवकी से कहा था। वह समस्त पापों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण उपद्रवों का विनाश करता है। राजेन्द्र! इस दान में काल नियम और नक्षत्रों का क्रम कारण नहीं है रिक्त वित्त और श्रद्धा कारण है। पार्थ! इस प्रकार उत्तम वृत्ति द्वारा उपार्जित धन के रहते इस दान को, जो वेदों को भलीभाँति देख कर ब्रह्म पुत्र भगवान् नारद ने बताया है, सुसम्पन्न करने वाला पुरुष इस लोक में कौन सुकृत नहीं सम्पन्न किया। अर्थात् उसने सभी सुकृत सम्पन्न कर लिया है।३०-३९।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
नक्षत्रदानविधि वर्णन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९२।

---

१. सर्वः ।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

तिथिदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तिथिदानमिदानीं ते कथयामि युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१
मानसं वाचिकं चापि कर्मजं यदघं भवेत् । सर्वं प्रशममायाति दानेनानेन पाण्डव ॥२
श्रावणे कार्तिके चैत्रे[1] वैशाखे फाल्गुने तथा । सितपक्षात्प्रभृत्येव दातव्यं पुण्यवर्द्धनम् ॥३
वित्तं श्रद्धासुसम्पन्नं पात्रप्राप्तिस्तथैव च । दानकालः सदैवेह कथितस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४
तीर्थे देवालये[2] गोष्ठे गृहे वानियतात्मवान्[3] । [4]यद्ददाति नरश्रेष्ठस्तदानंत्याय कल्पते ॥५
प्रतिपत्सु द्विजान्पूज्यान्पूजयित्वा प्रजापतिम् । सौवर्णमरविन्दं च कारयित्त्वाष्टपत्रकम् ॥६
कृत्वा चौदुम्बरे पात्रे सुगन्धघृतपूरिते । पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥७
अनेन विधिना दत्त्वा कमलं कमलालयम् । ईप्सितॉंल्लभते कामान्निष्कामो ब्रह्मसात्म्यताम्[5] ॥८
वह्निं पूज्य द्वितीयायां भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् । तिलाज्येन शतं हुत्वा दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः ॥९
वैश्वानरं तु सौवर्णं स्थापयेत्ताम्रभाजने । गुडाज्यपूरिते राजंस्तोयपूर्णघटोपरि ॥१०

अध्याय १९३

तिथिदानवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! इस समय मैं तुम्हें तिथि दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण विघ्नों का विनाश करता है। पाण्डव! इस दान द्वारा मानसिक, वाचिक और कायिक (शरीर जन्य) इन समस्त पापों का समूल नाश होता है। श्रावण, कार्तिक, चैत, वैशाख एवं फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में पट पुण्य-वर्द्धन दान आरम्भ करना चाहिए। वित्त, श्रद्धा, सम्पन्न की प्राप्ति और दान-काल आदि सभी वस्तुएँ इस दान में तत्त्वदर्शियों ने सुस्पष्ट बता दिया है। किसी तीर्थ, देवालय, गोशाला, अथवा गृह में संयम पूर्वक दान करने वाला मनुष्य अनन्त सुख की प्राप्ति करता है।१-५। प्रतिपदा के दिन पूज्य ब्राह्मणों और प्रजापतियों के पूजनपूर्वक अष्ट दल वाला सुवर्ण निर्मित कमल सुगन्ध एवं घृतपूर्ण किसी गूलर के पात्र में स्थापित कर पुष्प-धूप आदि से पूजित कर किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए। क्योंकि इस विधान द्वारा कमला का निवास स्थान भूत कमल का दान करने पर उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक निष्काम ब्रह्म का सायुज्यमोक्ष प्राप्त होता है। द्वितीया के दिन अग्नि पूजन पूर्वक भूर्भूवस्वः के क्रमानुसार तिल-घृत की सौ आहुति प्रदान कर पूर्णा-हुति प्रदान करे। अनन्तर सुवर्ण निर्मित वैश्वानर (अग्नि) की प्रतिमा गुड-घृत पूर्ण ताँबे के पात्र में

---

१. मासे। २. चायलने। ३. नियतात्मना। ४. यो ददाति नरश्रेष्ठ दानं च न्यायकल्पितम्। ५. ब्रह्म शाश्वतम्।

पूजयित्वा वस्त्रमाल्यैर्भक्ष्यभोज्यैरनेकधा । ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्वह्निर्मे प्रीयतामिति ॥११
यावज्जीवकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । मृतो वह्निपुरं याति प्राहेदं नारदो मुनिः ॥१२
तृतीयायां महाराज राधां स्वर्णमयीं शुभाम् । स्थापयित्वा ताम्रपात्रे लवणोपरि विन्यसेत् ॥१३
जीरकं कटुकं चैव गुडं पार्श्वेषु दापयेत् । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नां कुंकुमेन विभूषिताम् ॥१४
पुष्पधूपैः सनैवेद्यैः पूजयित्वा द्विजातये । दत्त्वा यत्फलमाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते ॥१५
प्रसादा यत्र सौवर्णा नद्यः पायसकर्दमाः । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र ते यांति मानवाः ॥१६
स्वर्गादिहैत्य संसारे सरूपः सुभगो भवेत् । दाता भोक्ता बहुधनः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥१७
नारी वा [1]तद्गुणैर्युक्ता भवतीह न संशयः । चतुर्थ्यां वारणं हैमं पलादूर्ध्वं[2] सुशोभनम् ॥१८
कारयित्वांकुशयुतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् । वस्त्रैः पुष्पैः पूजयित्वा नैवेद्यं विनिवेद्य च ॥१९
ततस्तु ब्राह्मणे दद्याद्गणेशः प्रीयतामिति । कार्यारंभेषु सर्वेषु तस्य विघ्नं न जायते ॥२०
वारणाः सप्त जन्मानि भवंति मदविह्वलाः । वारणेन्द्रसमारूढस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥२१
पंचम्यां पन्नगं चैव स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपत्रमध्यस्थं [3]पूजयित्वा प्रदापयेत् ॥२२
द्विजं संपूज्य वासोभिः प्रणिपत्य क्षमापयेत् । इह लोके परे चैव दानमेतत्सुखावहम् ॥२३

जलपूर्ण कलश के ऊपर प्रतिष्ठित कर वस्त्र, माला एवं अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य द्वारा उनकी सविधि अर्चा के उपरान्त अग्नि मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर ब्राह्मण को अर्पित करे । उसके परिणाम स्वरूप वह मनुष्य आजीवन पाप मुक्त होता है इसमें संशय नहीं, तथा निधन होने पर अग्नि लोक में पहुँचता है ऐसा नारद मुनि का कथन है ।६-१२। महाराज! तृतीया के दिन राधा की स्वर्णमयी शुभ प्रतिमा ताँबे पात्र में लवण के ऊपर स्थापित करते हुए उसके पार्श्व भाग में जीरा, कटुक और गुड़ की टेरी रख कर दो रक्त वस्त्र से आच्छादन और कुंकुम से विभूषित वह प्रतिमा पुष्प, धूप तथा नैवेद्य, आदि द्वारा पूजन करके किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है उसका कौन वर्णन कर सकता है! पार्थ! जिस प्रदेश (लोक) में सुवर्णमय प्रसाद (कोष्ठ), पायस (खीर) कीचड़ वाली नदियाँ, और गन्धर्वों एवं अप्सराओं का सतत निवास रहता है वहाँ वह मनुष्य सदैव सुखानुभव करता है स्वर्ग में कदाचित् यहाँ (मर्त्यलोक) में आने पर सुरूप, सुभग, दाता, भोक्ता , बहुधन और पुत्र-पौत्र से युक्त रहता है तथा (दान करने वाली) स्त्री भी उसी प्रकार समस्त गुणों से युक्त होती है । चतुर्थी के दिन एक पल से अधिक सुवर्ण का सुशोभन गज अंकुश समेत निर्मित कर एक द्रोणि तिल के ऊपर स्थापित करते हुए वस्त्र, पुष्प द्वारा उसकी अर्चा करे । नैवेद्य अर्पित करने के अनन्तर 'गणेश देव प्रसन्न हों' कह कर सादर ब्राह्मण को अर्पित करने वाले के सभी कार्यो में कभी विघ्न नहीं होता है । उसे सात जन्मों तक मदमत्त गजराज (सवारी के लिए) मिलते रहते हैं, और उन्हीं मदविह्वल गजराजों पर आरुढ़ होकर वह त्रैलोक्य जेता होता है ।१३-२१। पञ्चमी के दिन एक तोले सुवर्ण द्वारा पन्नग (सूर्य) की प्रतिमा बना कर क्षीर और घृत पूर्ण पात्र के मध्य में स्थापित पूजित कर किसी ब्राह्मण को अर्पित करे । वस्त्रों से उस ब्राह्मण की अर्चा करके नमस्कार पूर्वक क्षमा याचना करे । क्योंकि यह दान लोक-परलोक सभी स्थान में सुख प्रदान करता है ।

---

१. बहुशो युक्ता । २. पलार्द्धार्द्धम् । ३. पूज्य विप्राय दापयेत् ।

नागोपद्रवविद्रावि सर्वदुष्टानिबर्हणम् । प्रायश्चित्तं तथा प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना ।।२४
षष्ठ्यां शक्तिसमोपेतं कुमारं शिखिवाहनम् । कारयित्वा यथाशक्त्या हेममालाविभूषितम् ।।२५
तण्डुलेनाथ शिखरे वासोभिः पूज्य शक्तितः । षष्ठ्यां स्कन्दं यथाशक्ति कृत्वा स्कंदं हिरण्मयम् ।।२६
पूजयित्वा गन्धपुष्पधूपैर्नैवेद्यतस्तथा । नमस्कृत्य ततो दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।२७
इह भूतिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गे महीयते । शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणो ब्रह्मलोकताम् ।।२८
सप्तम्यां भास्करं पूज्य ब्राह्मणानश्वमुत्तमम् । दद्यादलङ्कृतग्रीवं सपर्याणं सदक्षिणम् ।।२९
सूर्यलोकमवाप्नोति सूर्येण सह मोदते । गन्धर्वास्तुष्टिमायान्ति दत्तेऽश्वे समलङ्कृते ।।३०
अष्टम्यां वृषभं श्वेतमव्यंगांगं धुरंधरम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं घण्टाभरणभूषितम् ।।३१
दद्यात्प्रणम्य विप्राय प्रीयतां वृषभध्वजः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा आद्वारान्तमनुव्रजेत् ।।३२
दानेनानेन नृपते शिवलोको न दुर्लभः । वृषस्कंधे प्रतिष्ठति भुवनानि चतुर्दश ।।३३
तस्माद्वृषभदानेन दत्ता भवति भारती । नवम्यां कांचनं सिंहं कारयित्वा स्वशक्तितः ।।३४
मुक्ताफलाष्टकयुतं नीलवस्त्रावगुण्ठितम् । दद्याद्देवीमनुस्मृत्य दुष्टदैत्यनिबर्हणीम् ।।३५
द्विजातिप्रवरायेत्थं सर्वान्कामान्समश्नुते । कान्तारवनदुर्गेषु चौरव्याला[1] कुले पथि ।।३६
हिंसकास्तं न हिंसंति दानस्यास्य प्रभावतः । मृतो देवीपुरं याति पूज्यमानः सुरासुरैः ।।३७

शंकरजी ने नाग के काटे पुरुष के लिए प्रायश्चित्त भी बताया है, जो नाग समस्त उपद्रवों का दमन करने वाला एवं समस्त दुष्टों का विनाश करता है। षष्ठी के दिन शक्ति एवं मयूर वाहन समेत कुमार (कार्तिकेय) की सुवर्ण प्रतिमा का निर्माण कर यथाशक्ति होम (सुवर्ण) माला से विभूषित करे ।२२-२५। अनन्तर चावल के (पर्वत) शिखर पर स्थापित कर यथाशक्ति गंध, पुष्प वस्त्र जिसे पूजित कर सिकी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे। उससे उसे इस लोक में अत्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग सम्मान प्राप्त होता है और बाह्मण होने से ब्रह्म सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। सप्तमी के दिन भास्कर, ब्राह्मण और सुवर्ण निर्मित अश्व के जिसकी ग्रीवा अलंकृत की गयी हो, पूजनोपरांत दक्षिणा, समेत उसे ब्राह्मण को अर्पित करने पर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है और वह सूर्य के साथ सदैव आनन्दानुभव करता है। समलंकृत अश्व के दान करने से गन्धर्व गण भी सन्तुष्ट होते हैं ।२६-३०। अष्टमी के दिन श्वेत वर्ण के अव्यंग, धुरंधर, चार श्वेत वस्त्रों से आच्छन्न, और घंटा भरण-भूषित वृषभ (बैल) का 'वृषभ ध्वज (शिव) प्रसन्न हों, कहते हुए नमस्कार पूर्वक ब्राह्मण को दान प्रदक्षिणा के उपरांत उसका द्वार तक अनुगमन भी करे। नृपते! इस दान द्वारा शिवलोक की प्राप्ति दुर्लभ नहीं होती है। क्योंकि वृषभों के कन्धे पर चौदहों भुवन प्रतिष्ठित रहते हैं। इसलिए वृषभ दान करने से उसका भारती (विद्या) दान भी सम्पन्न हो जाता है। नवमी के दिन यथा शक्ति सुवर्ण सिंह का, दान जो आठमोतिओं और नील वस्त्र से आच्छन्न रहता है, दुष्टों-दैत्यों को छलने वाली देवी जी के स्मरण पूर्वक किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं। इस दान के प्रभाव से वनों के उस दुर्गम मार्ग में रहने वाले चोर एवं सर्प आदि हिंसक जीव उसके ऊपर प्रहार नहीं करते हैं। अन्त में निधन होने पर देवों असुरों से पूजित

---

१. धोरव्यालाकुले पथि।

पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । दशम्यां नृपशार्दूल दशाशाः स्वर्णनिर्मिताः ।।३८
लवणे च गुडे क्षीरे निष्पावेषु तिलेषु च । गव्यत्रये तन्दुलेषु माषाणामुपरि स्थिताः ।।३९
सम्पूज्य वस्त्रपुष्पाद्यैर्द्विजाय प्रतिपादयेत् । अनेन विधिना यस्तु पुमान्स्त्री वाथ वा पुनः ।।४०
निर्दापयति राजेन्द्र तस्य पुण्यफलं शृणु । इह लोके भूपतिः स्यात्प्रेत्य स्वर्गे महीयते ।।४१
सकलास्त्य सर्वाशयाः काश्चिन्मनसेच्छिताः । ततः स्वर्गादिहाभ्येत्य कुले महति जायते ।।४२
एकादश्यां गरुत्मन्तं कारयित्वा हिरण्मयम् । यथाशक्त्या ताम्रपात्रे घृतस्योपरि पूजितम्[1] ।।४३
पञ्चाग्न्यभिरते विप्रे पुराणज्ञे विशेषतः । दत्त्वा किं बहुनोक्तेन विष्णुलोके महीयते ।।४४
गां वृषं महिषीं हेम सप्तधान्यान्यजाविकम् । वडवां गुडरसान्सर्वांस्तथा बहुफलद्रुमान् ।।४५
पुष्पाणि च विचित्राणि गन्धांश्चोच्चावचान्बहून् । यथाशक्त्या मेलयित्वा वस्त्रैराच्छादयेन्नवैः ।।४६
द्वादश्यां द्वादशैतानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । एकस्य वा महाराज यत्फलं तन्निशामय ।।४७
इह कीर्तिं परां प्राप्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । ततो विष्णुपुरं याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।।४८
कर्मक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । यज्ञयाजी दानपतिर्जीवेच्च शरदां शतम् ।।४९
स्नापयेद्ब्राह्मणांश्चात्र त्रयोदश्यां त्रयोदश । तानाच्छाद्य[2] नवैर्वस्त्रैर्गन्धपुष्पैरथार्चयेत् ।।५०

होकर वह देवी पुर जाता है पुनः कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है । नृप शार्दूल! दशमी के दिन सुवर्ण निर्मित दशदिशाओं की प्रतिमा लवण, गुड़, क्षीर, निष्पाव, तिल, दूध, दही, घी समेत चावलों और उरदो की राशि पर स्थापित एवं वस्त्र पुष्पादि से पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करे । राजेन्द्र! सविधान द्वारा इस दान को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! इस लोक में राजा होकर सुखानुभव के उपरांत अन्त में निधन होने पर स्वर्ग में सम्मानित होता है । और उसके अधीन समस्त दिशाएँ रहती हैं अतः मन इच्छित दिशा में स्वर्ग से आकर महान् कुल में जन्म ग्रहण करता है ।३१-४२। एकादशी के दिन गरुड़ की सुवर्ण-प्रतिमा ताँबे के पात्र में घृत के ऊपर स्थापित करके पूजनोपरांत पंचाग्नि तपस्वी एवं पुराण मर्मज्ञ किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर उसे विष्णु लोक में सुसम्मान प्राप्त होता है और अधिक क्या कहा जाय! । द्वादशी के दिन द्वादश ब्राह्मणों को गौ, वृष (वैल) महिषी (भैंस), सुवर्ण, सदाधान्य, भेंण, बकरी, वडवा, (घोड़ी), गुड, फले फूले वृक्ष, विचित्र भाँतिके पुष्प और गंध, सगी वस्तुओं एक में सम्मिलित कर यथाशक्ति वस्त्रों से आच्छादन करते हुए अर्पित करें अथवा एक ही ब्राह्मण को भी वह सब प्रदान कर सकता है । महाराज! उसके दान करने का जो फल प्राप्त होता है, उसे बता रहा हूँ, सुनो! इस लोक में परमोत्तम यश की प्राप्तिपूर्वक यथेच्छ भोगों के उपभोग करने के उपरांत विष्णुलोक में जाकर अप्सराओं से सुसेवित होता है । कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होकर यज्ञों को सुसम्पन्न करता रहता है, दानपति कहलाता है एवं सैकड़ों वर्ष का जीवन प्राप्त करता है ।४३-४९। त्रयोदशी के दिन तेरह ब्राह्मणों को स्नान कराकर नवीन वस्त्रों से आच्छादन करते हुए गन्ध पुष्प

---

१. पूरितम् । २. आवाह्य ।

भोजयीत सुमिष्टान्नं दक्षिणां विनिवेदयेत् । यथाशक्त्या हेमखण्डान्धर्मात्मा प्रीयतामिति ।।५१
धर्मराजाय कालाय चित्रगुप्ताय दण्डिने । मृत्यवे क्षयरूपाय अन्तकाय यमाय च ।।५२
प्रेतनाथाय रौद्राय तथा वैवस्वताय च । महिषस्थाय देवाय नामानीह त्रयोदश ।।५३
उच्चार्य श्रद्धया युक्तः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । यः करोति महाराज पूजामेतां मनोरमाम् ।।५४
यमाय स सुखं मर्त्ये स्थित्वा व्याधिविवर्जितः । यममार्गं गतः पश्चाद्दुःखं नाप्नोत्यसौ पुमान् ।।५५
न पश्यति प्रेतमुखं पितृलोकं स गच्छति । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य ससुखी नीरुजी[१] भवेत् ।।५६
महिषं सुशुभं कुंभं चतुर्दश्यां पयोभृतम् । तं कर्षकेण संयुक्तं हेम्नः सद्वस्त्रसंयुतम् ।।५७
घण्टाभरणशोभाढचं वृषभेण समन्वितम् । यो दद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।५८
वृषं दत्त्वा नरश्रेष्ठ शिवलोके महीयते । तत्र स्थित्वा चिरं कालं क्रमादेत्य महीतलम् ।।५९
आरोग्यधनसंयुक्ते कुले महति जायते । सर्वकामसमृद्धचर्थं यावज्जन्मशतत्रयम् ।।६०
पौर्णमास्यां वृषोत्सर्गं कारयित्वा विधानतः । चंद्रं रजतनिष्पन्नं फलेनैकेन शोभनम् ।।६१
पूजयेद् गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च । दद्याद्विप्राय [२]सङ्कल्प्य वासोलंकारभूषणैः ।।६२
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्निबोध यथोदितम् । क्षीरोदार्णवसंभूतत्रैलोक्यांगणदीपक ।।६३
उमापतेः शिरोरत्नशिवं यच्छ नमोनमः । दानेनानेन नृपते भ्राजते चंद्रवद्दिवि ।।६४

द्वारा उनकी अर्चा करने के उपरांत उन्हें मिष्ठान्न भोजन कराये और यथाशक्ति सुवर्णखण्ड का दान करे। उस समय उसे 'धर्मात्मा प्रसन्न हों, कहकर दान, अर्पित करना चाहिए। धर्मराज, काल, चित्र गुप्त, दण्डी, मृत्यु, क्षयरूप, अंतक और यम, प्रेतनाथ, रुद्र, वैवस्वत, महिषस्थ और देव, इन तेरह नामों को उच्चारण करते हुए श्रद्धाभक्ति समेत नमस्कारपूर्वक विसर्जन करे। महाराज! यम के निमित्त इस मनोरम पूजा को सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य इस मर्त्यलोक में व्याधिरहित सुखी जीवन व्यतीत करता है और यम के मार्ग से जाते हुए उसे कभी किसी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है।५०-५५। पितृलोक जाते हुए उसे कभी प्रेतमुख नहीं दिखायी देते हैं। कदाचित् पुण्यक्षीण होने पर वह यहाँ आकर सुखी और नीरोग जीवन व्यतीत करता है।५६। चतुर्दशी के दिन महिष, सुशोभन जलपूर्ण कलश, सुवर्ण कर्षक संयुक्त, उत्तम वस्त्र से आच्छन्न, घंटाभरण से भूषित और वृषभ (वैल) समेतउसे किसी शिवभक्त एवं कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे। नरश्रेष्ठ! उस वृष (वैल) के दान करने से वह शिव-लोक में सुसम्मानित होता है और वहाँ चिरकाल तक सुखानुभव करने के अनन्तर यहाँ भूतल पर आरोग्य धनपूर्ण एवं महान् कुल में उत्पन्न होता है, इस भाँति वह तीन सौ जन्म तक अपनी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक सुसमृद्ध सुख का अनुभव करता है। उसी प्रकार पूर्णिमा के दिन सविधान वृषोत्सर्ग समाप्त करते हुए जिसमें चन्द्रमा की चाँदी की प्रतिमा एक फल के समेत स्थापित किया गया हो, गंध पुष्प और नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चा करे। अनन्तर वस्त्राभूषण से अलंकृत वह रजतचन्द्र ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। राजेन्द्र! उस समय उसे इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—क्षीरसागर से उत्पन्न एवं तीनों लोक के आङ्गण द्वीप! तुम उमापति शिव के शिरसुशोभित करने वाले रत्न हो, मुझे कल्याण प्रदान

१. मनुजः । २. संयुक्तम् ।

अप्सरोभिः परिवृतो यावदाभूतसंप्लवम् ॥६५
दानान्यमूनि विधिवत्प्रयतिक्रमेण यच्छंति ये द्विजवराय विशुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मविष्णुभुवनेषु सुखं विहृत्य यांत्येकतां सह शिवेन न संशयो मे ॥६६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तिथिदानवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९३

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वराहदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आदिवाराहदानं ते कथयामि युधिष्ठिर । धरण्यै यत्पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया ॥१
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् । महापापादिदोषघ्नं पूजितं धर्मसत्तमैः ॥२
देयं संक्रमणे भानोर्ग्रहणे द्वादशीष्वथ । यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥३
यदा च जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् । तदैवदानकालः स्यादध्रुवं जीवितं यतः ॥४
कुरुक्षेत्रादितीर्थेषु गंगाद्यासु नदीषु च । पुरेषु[1] च पवित्रेषु अरण्येषु वनेषु च ॥५
गोष्ठे देवालये वापि रथे वा स्वगृहांगणे । देयं पुराणविधिना ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥६

करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। नृपते! इस विधान द्वारा वह मनुष्य स्वर्ग में महाप्रलय पर्यन्त अप्सराओं से सुसेवित होते हुए चन्द्रमा की भाँति सुशोभित रहता है। इस प्रकार सविधान यह दान ब्राह्मण को अर्पित करने वाला सहृदय वह प्राणी ब्रह्मा और विष्णु के लोकों में सुखविहार करने के उपरांत शिव का सायुज्यमोक्ष प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं।५७-६६

श्री भविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
तिथिदानवर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त।१९३।

अध्याय १९४

वराहदान विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! मैं तुम्हें आदिवराह दान का विधान बता रहा हूँ, जिसे मैंने पहले समय वराहावतार धारण कर पृथिवी को बताया था। यह दान पुण्य, पवित्र, आयु की वृद्धि करने वाला, समस्त दानों में उत्तम, एवं महापाप आदि महान् दोषों का शमन करता है और श्रेष्ठ धार्मिकों द्वारा पूजित है। सूर्य की संक्रान्ति, ग्रहण द्वादशी, यज्ञ, विवाहादि उत्सव, दुःख में अद्भुत दर्शन और जिस समय अधिक वित्त की प्राप्ति हो तथा चित्त श्रद्धालु हो वही इस नश्वर जीवन में दान काल समझना चाहिए। कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदी, पवित्र नगर, असंख्य गोशालाएँ, देवालय, रथ या अपने गृह के प्राङ्गण में यह

---

१. कुशरेषु।

कुशैरास्तीर्य तां पार्थ प्रणवाक्षरमन्त्रितैः । उपरिष्टात्तिलैस्तेषां वराहं परिकल्पयेत् ॥७
द्रौणैश्चतुर्भिः सम्पूर्णं तदर्धेनाथवा पुनः । आढकेनाथ कुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥८
सुवर्णेन मुखङ्कार्यं भुजौ चक्रगदान्वितौ । राजीं कारयेद्दंष्ट्रां पद्मरागविभूषिताम् ॥९
शङ्खं च स्थापयेत्पार्श्वे वनमालां हिरण्मयीम् । पुष्पैर्वा कारयेद्विद्वान्पादौ रूप्यमयौ तथा ॥१०
दंष्ट्राग्रलग्नवसुधां सौवर्णीं कारयेच्छुभाम् । सर्वधान्यरसोपेतां वस्त्रालङ्कृतविग्रहाम् ॥११
प्रच्छाद्य वस्त्रैर्देवेशं वराहं सर्वकामदम् । रोमराजिं कुशैः कृत्वा गंधपुष्पैरथार्चयेत् ॥१२
नवग्रहमुखः कार्यो होमश्चात्र तिलैः स्मृतः । एवं संस्थाप्य विधिवत्ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१३
वराहेश प्रदुष्टानि सर्वपापफलानि च । मर्दमर्द महादंष्ट्र भास्वत्कनककुण्डल ॥१४
शङ्खचक्रासिहस्ताय हिरण्याक्षांतकाय च । दंष्ट्रोद्धतधराभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ॥१५
इत्युच्चार्य नमस्कृत्य प्रदक्षिणमनुव्रजेत् । ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्वस्त्रालङ्कारभूषितम् ॥१६
परिग्रहस्तु तस्योक्तः पादयोः परमर्षिभिः । अनेन विधिनादत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१७
एवं दत्त्वा महीनाथ वराहं सर्वकामदम् । यत्फलं समवाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते ॥१८
सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वक्रतुषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति दत्त्वा देवं जनार्दनम् ॥१९
यथा शक्त्या समुद्धृता वराहेण वसुन्धरा । यथा कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२०

दान पुराणों के विधान द्वारा किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए ।१-६। पार्थ! कुशास्तरण करके तिलराशि के ऊपर ओंकार समेत मंत्रोच्चारण करते हुए वराहमूर्ति की कल्पना करनी चाहिए, जो सम्पूर्ण चार द्रोण, तदर्ध, अथवा एक अढैया (सेर) का निर्मित रहता है । उस समय कृपणता करना अनुचित कहा गया है । इस भाँति उनकी रचना में सुवर्ण का मुख, चक्र गदाभूषित हाथ, चाँदी के पद्मरागमणि भूषित दाँत, तथा पार्श्व भाग में शंख, हिरण्यमयी वनमाला स्थापित करते हुए पुष्पों अथवा चाँदी के द्वारा चरण की रचना करनी चाहिए । दाँत में लगी हुई सुवर्ण की शुभ पृथिवी, और समस्त धान्यों के रस युक्त उनकी शरीर दो वस्त्र से अलंकृत करे । वस्त्रों से आवृत देवेश वराह की प्रतिमा की, जो समस्त कामनाओं को सफल करती है, कुशों द्वारा रोमराजि का निर्माण करते हुए गन्ध—पुष्पों से अर्चा सुसम्पन्न करे ।७-१२। इस यज्ञ में नव ग्रहों के पूजन तिलों की आहुति प्रदान करके इस स्तोत्र द्वारा अभ्यर्चना करे—देदीव्यमान कनक कुण्डलों से भूषित एवं महान् दाँत वाले वराहेश देव! समस्त पापों के फल चूर्ण कर दो! शंख, चक्र, खड्ग हाथों से धारण किये आप ने हिरण्याक्ष का वध किया है और अपने दाँतों से इस पृथिवी का उद्धार किया अतः त्रयी (वेद) मूर्ति आप को मैं नमस्कार पूर्वक प्रदक्षिणा करके वस्त्रालंकार भूषित वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे। परमर्षियों के कथनानुसार प्रतिग्राही (ब्राह्मण) को उस समय उनके चरण का परिग्रहण (स्पर्श) करना चाहिए । इस विधान द्वारा करने के अनन्तर प्रणाम पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे । महीनाथ, पार्थ! समस्त कामनाओं को सफल करने वाली उस वराह-प्रतिमा के दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है।१३-१८। क्योंकि समस्त दान और सुवर्ण प्रतिमा के दान करने से प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार वराह भगवान् ने यथाशक्ति इस पृथिवी का उद्धार किया है, उसी भाँति इसका दान करने वाला मनुष्य अपने कुल का

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च । एतत्साधारणं दानं शैववैष्णवयोगिनाम् ॥२१
विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं दत्त्वा तिलामलसुवर्णमयं सवस्त्रम् ।
उद्धृत्य पूर्वपुरुषान्सकलत्रमित्रः प्राप्नोति सिद्धभुवनं सुरसिद्धजुष्टम् ॥२२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वराहदानविधिवर्णनं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९४

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यपर्वतदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

रुद्रेण यत्पुरा प्रोक्तं नारदाय महात्मने । मत्स्येन मनवे तद्वत्तच्छृणुष्व कुरूद्वह ॥२
मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा पुनरेव ते । यत्प्रदानोत्तराँल्लोकान्प्राप्नोति सुरपूजितान् ॥३
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वध्ययनेषु च । न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते ॥४
तस्माद्विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात् । प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः ॥५

उद्धार कर विष्णु लोक में पूजित होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और शैव, वैष्णव, योगी के लिए यह साधारण दान कहा गया है । इस प्रकार वस्त्रों से अलंकृत उस नृवराह रूप का दान, जो तिल और अमल सुवर्ण द्वारा निर्मित रहता है, किसी वेद मर्मज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह मनुष्य सभी पुत्र-मित्र समेत अपने पूर्व पुरुषों के उद्धार पूर्वक सुरसिद्ध सेवित सिद्धलोक की प्राप्ति करता है ।१९-२२
श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
वराहदान विधि वर्णन नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९४।

अध्याय १९५

धान्यपर्वतदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! मैं दान का उत्तम माहात्म्य सुनना चाहता हूँ, जो देवर्षिगण पूजित एवं परलोक में अक्षय फल प्रदान करता है ।१

श्रीकृष्ण बोले—कुरूद्वह! इसी विषय को शंकर ने नारद को और मत्स्य ने मनु को जिस प्रकार बताया था वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! मैं तुम्हें दश प्रकार का मेरु पर्वत दान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से सुरपूजित देवलोकों की प्राप्ति होती है । क्योंकि पुराणों, वेदों के अध्ययन तथा यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से वे फल कदापि नहीं प्राप्त होते हैं, जो इस दान द्वारा सुलभ होते हैं । इसलिए सर्वप्रथम पर्वतों का क्रमशः विधान बता रहा हूँ, सुनो! प्रथम धान्य शैल, दूसरा लवणाचल ।२-५। तीसरा

गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः । पञ्चमस्तिलशैलः स्यात्षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥६
सप्तमो घृतशैलश्च [१]रसशैलस्तथाष्टमः ; राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः ॥७
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥८
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये । विवाहोत्सवयज्ञे वा द्वादश्यामथ वा पुनः ॥९
शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा प्रधानतः[२] । धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता ॥१०
तीर्थे वायतने वापि गोष्ठे वा संगमेऽपि वा । मंडपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥११
प्रागुदक्प्रवणं तत्र प्राङ्मुखं वा विधानतः । गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वा कुशान् ॥१२
तन्मये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भपर्वतान्वितम् । धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः ॥१३
मध्यमः पंचशतिकः कनिष्ठः स्यात्त्रिभिः शतैः ॥१४

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्यसुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।
संपूर्णमुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्ये[३]नुगोमेदकपुष्परागैः ॥१५
यः स्याच्च[४] गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैडूर्यसरोजरागैः ।
श्रीखंडखण्डैरभितः प्रवाललतान्वितः शुद्धशिलातलः स्यात् ॥१६
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान्पुरारिर्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।
तथैकदेशोद्धतकन्धरस्तु घृतोदकप्रस्रवणाश्च दिक्षु ॥१७

गुडाचल, चौथा हेमा (सुवर्णा) चल, पाँचवा तिल शैल, छठाँ कार्पास (रुई) का पर्वत, सातवाँ घृत शैल, आठवाँ रस शैल नवाँ रजत (चाँदी) का पर्वत और दशवाँ शक्कर का पर्वत दान किया जाता है । अयन, विपुव, पुण्य अवसर, व्यतीत, दिन क्षय, शुक्र तृतीया, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, अमावस्या, विवाहोत्सव, यज्ञ, द्वादशी, शुक्र पञ्चमी अथवा किसी पुण्य नक्षत्र के दिन इन धान्य शैलादि का दान शास्त्रानुकूल करना चाहिए ।६-१०। किसी तीर्थ देवमन्दिर, गोशाला, या संगम के स्थल पर उत्तर मुख या पूर्व मुख वाले एक चौकार मण्डप का सविधान निर्माण, जिसकी भूमि उत्तर में कुश (ईशान) की ओर निम्न (नीची) हो, उसके भीतर गोवर से लिपी हुई भूमि में कुश विछाकर उसके मध्य भाग में विष्कम्भ पर्वत की भाँति उस पर्वत की रचना करे । सहस्र द्रोण धान्य का उत्तम पर्वत, पाँच सौ का मध्यम और तीन सौ द्रोणि का पर्वत कनिष्ठ (निकृष्ट) बताया गया है । उस धान्य राशि महामेरु के मध्य सुवर्ण के तीन वृक्ष स्थापित होने चाहिए । वह पर्वत पूर्व की ओर मोती एवं हीरे से विभूषित, दक्षिण की ओर गोमेदक और पुष्पराग (पीत) मणियों से अलंकृत, पश्चिम में मारुतमत् (मरकत), तथा नीलममणि तथा उत्तर की ओर वैदूर्य और पद्मरागमणि से विभूषित रहता है । इसी प्रकार उसे चारों ओर से भी खंड (चन्दन) के खण्डों से भूषित प्रवाललताओं से आवेष्टित (घिरा) करते हुए उसकी भूमि शुद्ध शिलातल से सुसज्जित करनी चाहिए।११-१६। इस पर्वत में ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शिव, और सूर्य की सुवर्ण प्रतिमाएँ भी स्थापित होनी चाहिए। उसके एक ओर कन्दरा और चारो दिशाओं में घृत उदक के झरने बनाये। पर्वत के पूर्व भाग

---

१. रत्नशैलः । २. विधानतः। ३. तु । ४. पश्चाच्च ।

शुक्लाम्बरोऽन्यश्च सुराचलः स्यात्पूर्वेण कृष्णानि च दक्षिणेन।
वासांसि पश्चादथ[1] केसराणि रक्तानि चैवोत्तरतो दलानि॥१८
रौप्यामहेंद्रप्रमुखान्तथाष्टौ संस्थापयेल्लोकपतीन्क्रमेण।
नानाफलाली च समंततः स्यान्मनोरमामाल्यविलेपनाढ्या॥१९
वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं वा।
इत्थं निवेश्यामरशैलमप्युन्मनास्तु विष्कम्भगणान्क्रमेण॥२०
तुरीयभागेन चतुर्दिशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाढ्यान्।
पूर्वेण मन्दारफलैपयुक्तं यत्रोल्लसत्कनकभद्रकदम्बचिह्नम्॥२१
कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत्कुसुमवस्त्रविलेपनाढ्यम्।
क्षीरारुणोदसरसाथ तथा वनेन रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानान्॥२२
याम्येन गन्धमदनोऽत्र निवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतजो वा।
हैमेन पक्षिपतिना धृतमानसेन तेनाद्यमेव सकलं किलसंयुतः स्यात्॥२३
पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयंसयुक्तम्।
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिशतोदसरस्तथाग्रे॥२४
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवप्रम्[2]।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेषरत्नमाकारयेत्कनकधेनुविराजमानम्॥२५

श्वेत वस्त्र, दक्षिण काले वस्त्र, पश्चिम पीत वस्त्र और उत्तर की ओर रक्त वस्त्र से विभूषित कर महेन्द्र आदि आठों लोक पालो की क्रमशः चाँदी की प्रतिमाएँ स्थापित करे और पर्वत के चारों ओर मनोरम माला, विलेपन आदि से सुशोभित अनेक फलों की सजावट करे तथा ऊपर पाँच रंग का वितान (चँदोवा) और श्वेत रंग पुष्पों के आभरणों से सुसज्जित करे। इस प्रकार (प्रथम) अमरगिरि की रचना करके उसके चारों ओर उक्त मात्रा के चौथाई भाग में क्रमशः विष्काम्भ (नामक पर्वत) गणों की रचना करे, जो पुष्प-विलेपन आदि से विभूषित हों। (पर्वत) की दिशा में मन्दर गिरि की रचना करे, जो अनेक फलों से युक्त एवं कनक भद्र (देवदारु) और कदम्ब के वृक्षों से सुशोभित हो। तथा काञ्चन मूर्ति कामदेव समेत उसे पुष्प वस्त्र, और विलेपन से समृद्ध करे। इसी भाँति यथाशक्ति चाँदी निर्मित वन तथा अरुणोदक नामक क्षीर के सरोवर से सुशोभित करे। दक्षिण की ओर गेहूँ की राशि अथवा कलधौत (सुवर्ण) निर्मित गन्ध मादन पर्वत की रचना कर, जो सुवर्ण से यज्ञ पति और घृत के मानसरोवर से युक्त हो, उसे सुशोभित करे। (पर्वत के) पश्चिम ओर तिलाचल (तिल के पर्वत) की रचना कर उसे अनेक भाँति के सुगन्धित पुष्पों, सुवर्ण के पीपल वृक्ष, पक्षी, और हिरण्य मय हंस से विभूषित करे। इसे भी चाँदी के पुष्प वाले वन और वस्त्र से सुसमृद्ध करते हुए पर्वत के अगले भाग में शतोद नामक दधिसरोवर का निर्माण करे।१७-२४। विपुलतिल शैल उसकी स्थापना के उपरांत उत्तर की ओर उरद द्वारा सुपार्श्व नामक पर्वत की रचना करे, जो पुष्पों, सुवर्ण के वट वृक्ष, तथा अन्यान्य वृक्षों सुवर्ण निर्मित धेनु से

१. पार्श्वात्। २. सुवस्त्रम्, सुविप्रम्।

माक्षीकभद्रकरसावचयेन तद्वद्रौप्येण भास्वररसैश्च युतं विधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्ह्लष्टैरनिंद्यवरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥२६
पूर्वेण हस्तमुखमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैरथ घृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥२७
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे च विघ्नमस्मद्गृहेष्वमरपर्वतनाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शांतिमनुत्तमां नः संपूजितः परमभक्तिमतः प्रदेहि ॥२८
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ॥२९
यस्मात्त्वं [1]लोकपालानां विश्वमूर्तेस्वमंदिरम्। केशवार्कवसूनां च तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे ॥३०
यस्मादशून्यममरैर्गंधर्वैश्च शिरस्तव। तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥३१
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरं चापि पूजयेत्। यस्माच्चैत्ररथेनाथ भद्राश्ववरिषेण च ॥३२
शोभसे मन्दरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव। यस्माच्चूडामणिर्जंबूद्वीपे त्वं गन्धमादनः ॥३३
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च गीयमानं यशोऽस्तु मे। यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥३४
हिरण्मयपाषाणस्तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे। उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण वनेन च ॥३५
सुपार्श्वं राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे। एवमामंत्र्य तान्सर्वान्प्रभाते विमले पुनः ॥३६

सुशोभित होते हैं। उसे भी मधु और भद्र रस के सरोवर और चाँदी के वने हुए देदीप्यमान वन आदि से विभूषित करके अन्त में वेद-पुराण के मर्मज्ञ, अनिन्द्य और सुरुपवान् चार ब्राह्मणों द्वारा हवन कार्य के सुसम्पन्न होने के निमित्त पूर्व की ओर एक हाथ से कुण्ड की रचना करके तिल, घृत, समिधा (लकड़ी) और कुशों द्वारा कुशकण्डिका करते हुए हवन कार्य सम्पन्न कराये। पश्चात् मधुर गीत और तुरुही की ध्वनि द्वारा रात्रि में जागरण करता रहे। अब तुम्हें पर्वतों का आवाहन भी बता रहा हूँ। अमरगिरि! तू समस्त देवगणों के धाम निधान हो, हमारे घर के विघ्नों को शीघ्र नष्ट करो, एवं कल्याण प्रदान करते हुए परमोत्तम शान्ति प्रदान करो। मैंने आप की सविधान अर्चा की है अतः मुझे-परमभक्ति प्रदान करने की कृपा करें। सनातन देव! तुम्हीं भगवान् शंकर, ब्रह्मा, विष्णु और दिवाकर देव हो, रस मूर्ताभूत (संसार) के बीज हो, अतः मेरी रक्षा करो। अतः तुम लोकपाल, विश्व मूर्ति (ईश), केशव सूर्य और वसुगणों के मन्दिर हो, तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। तुम्हारा शिरोभाग सदैव देवों और गन्धर्वों से अशून्य रहा करता है, इस लिए इस दुःख मय संसार सागर से उद्धार करने की कृपा करो। इस भाँति उस मेरु की अर्चा करके उस मन्दर की भी अर्चना करे। मन्दर (पर्वत)! तुम चैत्र रथ और भद्राश्व नामक वर्ष से सुशोभित हो, शीघ्रतया मुझे तुष्टि प्रदान करो। इस जम्बूद्वीप में चूड़ामणि की भाँति विभूषित हाने वाले गन्धमादन! गन्धर्व और अप्सराएँ मेरे यश की भी सदैव गान करें। यह वर प्रदान करो। तुम केतुमाल और वैभ्राज नामक वनों एवं हिरण्यमय पाषाण से सुशोभित हो, मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करो।२५-३५। उत्तर कुरु एवं सवित्र वन से विभूषित सुपार्श्व नामक अचल! मुझे अक्षय भी प्रदान करने की कृपा करो। नृप! इस प्रकार उन सब को आमन्त्रित करने के अनन्तर प्रातः काल विमल जल में

---

१. ते।

स्नात्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यं पर्वतोत्तमम् । शेषांश्च पञ्च तान्दद्याद्‌ऋत्विग्भ्यः क्रमशो नृप ।।३७
गावो देयाश्चतुस्त्रिंशदथवा दश भारत । शक्तितः सप्त वाष्टौवा एवं दद्यादशक्तिमान् ।।३८
एकापि गुरवे देया कपिला सुपयस्विनी । पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः समृतः ।।३९
[1]य एव पूजने मंत्रास्त एवोपस्करे तथा । ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनामगैः सह ।।४०
स्वमंत्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु शस्यते । उपवासी भवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते ।।४१
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः श्रृणु भारत । दानकालेषु ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम् ।।४२
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । अन्नाद्भवंति भूतानि जगदन्नेन वर्द्धते ।।४३
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ।।४४
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् । मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते ।।४५
अप्सरोगणगंधर्वैराकीर्णेन विराजता । विमानेन दिवः पृष्ठे स याति ऋषिसेवितः ।।४६
पुण्यक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ।।४७

धान्याचलं करकवृक्षविराजमानं विष्कम्भपर्वतयुतं सुरसिद्धजुष्टम् ।
यच्छंति ये सुमतयः प्रणिपत्य विप्रांस्ते प्राप्नुवन्ति परमेष्ठिपदाब्जयुग्मम् ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
धान्यपर्वतदानविधिवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९५

स्नान आदि करके मध्यमे स्थित (मेरु) पर्वत गुरु को सादर समर्पित करे और शेष पाँच क्रमशः ऋत्विजों को ।३६-३७। भारत! शक्तिमान पुरुष को चौंतीस, दश अथवा यथाशक्ति सात आठ गौ का दान करते हुए एक कपिला गौ, जो अत्यन्त दूध देने वाली हों, अवश्य गुरुचरण में अर्पित करना चाहिए । सम्पूर्ण पर्वतों का यही दान विधान बताया गया है । इन पर्वतों के साथ सुशोभित होने वाले समस्त ग्रह, लोक पाल और ब्रह्मादि देव गणों के पूजन मंत्र उनके उपस्कर में भी उच्चारित होते हैं । पर्वतों के यज्ञ में सभी प्रतिष्ठित देवों की आहुति उनके मंत्रों द्वारा अर्पित करनी चाहिए । कर्ता को नित्य उपवास अथवा परमार्थ होने पर नक्त व्रत करना चाहिए । भारत! मैं समस्त पर्वतों का क्रमशः विधान बता रहा हूँ, सुनो! उसी प्रकार दान काल के मन्त्र और पर्वतों के दान करने का फल भी कह रहा हूँ । अन्न को ब्रह्म इसलिए कहा गया है कि अन्न में ही प्राणियों के प्राण प्रतिष्ठित हैं । क्योंकि अन्न द्वारा जीवों की सृष्टि होती है और यह सारा संसार मण्डल मन्त्र द्वारा ही उन्नति शील है । अन्न ही लक्ष्मी और अन्न ही जनार्दन देव हैं । नरोत्तम! इसलिए इस धान्य पर्वत के रूप से आप मेरी रक्षा करो । इस विधान द्वारा धान्य मय पर्वत का सविधान दान करने वाला मनुष्य देव लोक के अग्रभाग में सौ मन्वन्तरों के समय तक सुसम्मानित होता है । पश्चात् वह ऋषियों द्वारा सुसेवित होकर अप्सराओं और गन्धर्वों से आच्छन्न विमान पर सुशोभित होते हुए स्वर्ग लोक की यात्रा करता है । और कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर महाराज-राज्य की प्राप्ति करता है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार सुवर्ण वृक्ष से सुशोभित और निष्काम पर्वतों से युक्त उस धान्याचल का, जो सुरसिद्धों से सदैव सुशोभित रहता है, नमस्कार पूर्वक ब्राह्मणों को दान करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं ।३८-४८

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
धान्यपर्वतदान विधि वर्णन नामक एक सौ पञ्चानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९५।

---

१. ते ।

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

लवणपर्वतदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो लोकमाप्नोति शिवसंयुतम् ॥१
उत्तमः षोडशद्रोणः कर्तव्यो लवणाचलः । मध्यमः स्यात्तदर्धेन तदर्द्धेनाधमः स्मृतः ॥२
वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादर्धं तु कारयेत् । चतुर्थांशेन विषयान्पर्वतान्कारयेत्पृथक् ॥३
विधानं पूर्ववत्कुर्याद्ब्रह्मादीनां च सर्वदा[1] । तद्वद्धेमतरून्सर्वाँल्लोकपालान्निवेशनम् ॥४
शिरांसि कामदेवादींस्तद्वत्तत्र निवेशयेत् । कुर्याज्जागरमत्रापि दानमंत्रान्निबोध मे ॥५
सौभाग्यरससंभूतो यतोऽयं लवणोरसः । दानात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥६
तस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना । प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिप्रदोभव ॥७
विष्णुदेह समुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम् । यस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥८
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् । उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् ॥९
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥१०

अध्याय १९६

लवणपर्वतदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें इस समय लवणाचल का विधान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से मनुष्य शिवलोक की प्राप्ति करता है । इस पर्वत के निर्माण में दश द्रोण का उत्तम, उसके अर्धभाग का मध्यम और उसके भी आधेभाग का पर्वत अधम बताया गया है । किन्तु निर्धन मनुष्य भी यथा शक्ति एक द्रोण के आधेभाग से पर्वत की रचना और चौथाई-भाग से पृथक्-पृथक् उसके चारों ओर के पर्वतों की रचना करके पूर्व की भाँति सविधान ब्रह्मादि देवगण, सुवर्ण वृक्षों और लोकपालों की उस पर्वत में स्थापना करे । उसके शिरोभाग में कामदेव आदि को प्रतिष्ठित करते हुए रात्रि जागरण करे । उसका दान मंत्र मैं बता रहा हूँ, सुनो! नरोत्तम! सौभाग्य रस से उत्पन्न होने के नाते तुम्हारा लवणाचल नामकरण हुआ है अतः इस दान द्वारा पापों से मेरी रक्षा करने की कृपा करो । बिना लवण के सभी अन्नों के रस उत्कृष्ट (तीक्ष्ण) नहीं होते हैं, इसीलिए आप शिव और भवानी को नित्य अत्यन्त प्रिय है, मुझे शान्ति प्रदान करे । आप भगवान् विष्णु की देह से आविर्भूत होकर आरोग्य की वृद्धि करते हैं अतः इस पर्वत रूप द्वारा इस संसार सागर से मुझे बचायें। इस विधान द्वारा लवण पर्वत का दान करने वाला मनुष्य उमा के लोक में एक कल्प तक सुखानुभव करने के उपरांत उत्तम गति प्राप्त करता है। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर यहाँ धार्मिक राजा होता है और पुत्र-पौत्र समेत सौ शारदीय वर्षों का जीवन भी प्राप्त करता है ।१-१०। इस प्रकार लवण पर्वत का दान करने वाला प्राणी शोभन एवं महान् विमान पर, जिसमें सेवा करने के

---

१. सर्वशः ।

कुर्वंति ये लवणपर्वतसंप्रदानं संप्राप्नुवंति दिवि ते सुमहद्विमानम्।
तत्राप्सरोगणसुरासुरसेव्यमानास्तिष्ठंति हृष्टमनसो दिवि वृद्धमानाः ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
लवणपर्वतदानविधिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९६

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गुडाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितम् ॥१
उत्तमो दशभिर्भारैः[१] मध्यमः पंचभिस्तथा । त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्द्धेनाल्पको मतः ॥२
तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम् । विष्कंभपर्वतांस्तत्र सरांसि वनदेवताः ॥३
होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् । धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥४
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरो यं जनार्दनः[२] । सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥५
प्रणवः सर्वमंत्राणां नारीणां पार्वती यथा । तथा रसानां प्रवरः सदा चेक्षुरसो मतः ॥६

लिए अप्सराएँ, सुर-असुर गण सदैव वर्तमान रहते हैं, सुशोभित होकर स्वर्ग पहुँचता है और सदैव प्रसन्न चित्त एवं वृद्धिशील रहता है ।११।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
लवणपर्वतदानविधि वर्णन नामक एक सौ छानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९६।

अध्याय १९७

गुडाचलदानविधिवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें अब गुडपर्वत का उत्तम विधान बता रहा हूँ, जिससे प्रदान करने पर मनुष्य देवपूजित स्वर्ग की प्राप्ति करता है । इसके निर्माण में दशभार गुड़ का उत्तम पर्वत, पाँच भार का मध्यम, तीन भार का कनिष्क और उसके आधेभाग का अल्प पर्वत कहा गया है । पूर्व की भाँति इसमें भी आमन्त्रण, पूजा, हेमवृक्ष, देवों की अर्चा, विष्कम्भ पर्वत गण, सरोवर वृन्द और वन देवताओं की प्रतिष्ठा-पूजा के अनन्तर होम, जागरण, लोकपालों के अधिवासन, आदि सभी कार्य धान्य पर्वत की भाँति ही सुसम्पन्न कर इन मंत्रों का उच्चारण करे—जिस प्रकार देवों में विश्वात्मा भगवान् जनार्दन श्रेष्ठतर हैं । वेदों में सामवेद, योगिओं में महादेव, समस्त मंत्रों में प्रणव (ओं) और स्त्रियों में पार्वती अत्यन्त श्रेष्ठ कही गयी हैं उसी भाँति समस्त रसों में ईख का रस सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ।१-६। गुड पर्वत!

---

१. अष्टशतीभारैः । २. नरोत्तमः ।

मम तस्मात्परां लक्ष्मीं प्रयच्छ गुडपर्वत । सुरासुराणां सर्वेषां नागयक्षर्क्षयंत्रिणाम् ।।७
विनाशश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् ।।८
संपूज्यमानो गन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते । पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ।।९
आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः । आसीद्राज्ञी महाभागा सुलभा नाम सुव्रता ।।१०
मरुत्तस्य प्रिया भार्या रूप यौवनशालिनी । तस्य भार्या शतान्यासन्सप्त राज्ञो महात्मनः ।।११
ता दास्य इव वाक्यानि कुर्युस्तस्याः सदैव हि । मुखावलोकनकरो राजा तस्य च सा प्रिया ।।१२
अथ कालेन महता दुर्वासा ऋषिसत्तमः । आजगाम तदभ्याशं भ्रममाणो यदृच्छया ।।१३
तस्याथ सत्क्रियां कृत्वा चार्घं दत्त्वा यथाविधि । पप्रच्छ सुलभा विप्रं दुर्वाससमकल्मषम् ।।१४

सुलभोवाच

केन पुण्येन भगवन्मम राजा प्रियंकरः । मुखावलोकनपरो वशे तिष्ठति सर्वदा ।।१५
सपत्न्यश्च मम ब्रह्मन्सदा प्रियहिते रताः । एतदाचक्ष्व भगवन्परं कौतूहलं मम ।।१५

दुर्वासा उवाच

शृणुष्वावहिता सुभ्रूरात्मवृत्तं पुरातनम् । जानामि सर्वं सुभगे तव वृत्तमशेषतः ।।१७
त्वमासीर्वैश्य महिषी गिरिव्रजपुरे पुरा । धार्मिका सत्यशीला च पतिव्रतपरायणा ।।१८

अतः मुझे उत्तम लक्ष्मी प्रदान करने की कृपा करें। पार्वती ही समस्त सुर-असुर, नाग यक्ष, अर्क्ष और नियंत्रित प्राणियों आदि सभी का विनाश होना कहा गया है अतः मेरी सदैव रक्षा करो। इस विधान द्वारा गुडाचल का दान करने वाला मनुष्य गन्धर्वो से पूजित होकर गौरी लोक में सुपूजित होता है। सौकल्प के अनन्तर यहाँ जन्म ग्रहण करने पर सातों दीपों का अधिनायक होता है। जो सदैव आरोग्य, दीर्घजीवी, एवं शत्रुओं से अजेय रहता है। राजा मरुत की सुलमा नाम की पतिपरायणा एवं महासौभाग्यवती प्रधान महिषी (रानी) थी, जो अत्यन्त रूप सौन्दर्य से सम्पन्न और युवती थी। उस महात्मा राजा की अन्य और सात रानियाँ थी, जो सदैव दासीकी भाँति उस सुलभा की आज्ञा पालन करती थीं। राजा सर्वदा अपनी उस प्रेयसी प्रधान रानी का मुख दर्शन किया करता था और रानी भी राजा के मुखावलोकन में सदैव निमग्न रहती थी। बहुत दिनों के पश्चात् इधर-उधर भ्रमण करते हुए ऋषि श्रेष्ठ दुर्वासा का राजा के यहाँ आगमन हुआ। अर्घ्य-पाद्य आदि सत्कार यथाविधान सुसम्पन्न कर रानी सुलमा ने उन पापरहित दुर्वासा ऋषि से प्रश्न किया।७-१४।

सुलभा ने कहा—भगवन् ब्रह्मन्! किस पुण्य द्वारा यह मेरा प्रियतम राजा मेरा प्रियंकर होकर सदैव मेरा मुख दर्शन ही किया करता है। मेरी सपत्नियाँ मेरे वशीभूत रहकर सदैव प्रिय कार्य करती रहती हैं। इसके जानने का मुझे परम कौतूहल हो रहा है अतः बताने की कृपा करें।१५-१६

दुर्वासा बोले—सुन्दर भौंहे वाली सुभगे! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त भली भाँति जानता हूँ, अतः मैं उसे बता रहा हूँ, तुम अपना आत्मवृत्तान्त सावधान होकर, सुनो! पूर्व काल में गिरिव्रज नगर के वैश्य की तू प्रधान रानी थी। उसी भाँति तूँ अत्यन्त धार्मिक, सत्य बोलने वाली और पतिपरायणा थी।१७-१८।

तत्र श्रुतस्त्वया वत्से ब्राह्मणानां समीपतः । पुरा दानविधिः कृत्स्नः स्थितया पतिसंनिधौ ॥१९
विशेषतस्तत्र विप्रैः कथितो गुडपर्वतः । दत्तश्चापि त्वया पुत्रि संभृत्य विधिवत्तदा ॥२०
तस्य दानस्य माहात्म्यात्त्वया भुक्तं वरानने । राज्यं जन्मानि चत्वारि निःसपत्नमनाकुलम् ॥२१
अन्यानि सप्त जन्मानि तव राज्यं भविष्यति । सौभाग्यमतुलं चैव रूपमारोग्यमेव च ॥२२
भूतं चैवमवश्यं च गुडपर्वतदानजम् । कथा तद वरारोहे यास्ये त्वं भव पुत्रिणी ॥२३
तस्माद्देयमिदं दानं फलमुत्तममिच्छता । गतिं च शाश्वतीं लेभे सौभाग्यं रूपमेव च ॥२४
दानमेतत्प्रशंसंति स्त्रीणां राजन्विशेषतः । पूर्वोक्तं च फलं प्राप्य कृतकृत्योऽभिजायते ॥२५

कृष्णेष्टसुन्दरदरीस्रवणाकुलेन गंधर्वसिद्धवनिताशतसेवितेन ।
दत्तेन भारत विधानवता सदैव गौरी प्रसादमुपयाति गुडाचलेन ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गुडाचलदानविधिवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९७

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हेमाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम् । यस्य प्रसादाद्भुवनं वैरिंच्यं याति मानवः ॥१

वत्से! पति के साथ व्राह्मणों की सभा में तुमने समस्त दानों के विधान सुना था । पुत्रि! विशेषकर तुमने गुडपर्वत का विधान व्राह्मणों द्वारा सुन कर उसका दान सविधान सुसम्पन्न भी किया था तुमने चार जन्मों तक शांतिपूर्वक निःसपत्न राज्य का सुखानुभव किया है । किन्तु अन्य सात जन्मों तक तुम्हें वैसा ही राज्य सुखोपभोग प्राप्त होते रहेंगे, जिसमें तुम्हारे अतुल सौभाग्य, रूप सौन्दर्य और आरोग्य की समृद्धि रहेगी । वरारोहे! गुडपर्वत दान करने के नाते सुख समृद्धि समेत तुम्हारी कथा (चर्चा) भी होती रहेगी । तुम पुत्रवती हो, यह आशीर्वाद देकर मैं अब यहाँ से जा रहा हूँ । इसलिए उत्तम फल की आकांक्षा वाले मनुष्य को यह दान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए, जिससे शाश्वती गति और रूप सौभाग्य की प्राप्ति होती है । राजन्! अतः विशेषकर स्त्रियों लिए यह प्रशस्त है इसके प्रभाव से वे पूर्वोक्त फलों समेत कृत कृत्य हो जाती हैं । भारत! इस प्रकार इस गुडाचल जो भगवान् कृष्ण की अभीष्ट गुफाओं से युक्त और गन्धर्व सिद्धों की रमणियों से सुसेवित रहता है, सविधान दान करने वाला मनुष्य सदैव गौरी का कृपापात्र बना रहता है ।१९-२६।

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
गुडाचल दान विधान वर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९७।

अध्याय १९८

हेमाचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उस पापहारी सुवर्णाचल का विधान बता रहा हूँ जिसे सुसम्पन्न करने

उत्तमः पलसाहस्रो मध्यम पञ्चभिः शतैः । तदर्द्धेनावरस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः ।।२
दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विचक्षणः । धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्यान्नृपसत्तम ।।३
विष्कंभशैलांस्तद्वच्च कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् । नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ।।४
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय । यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मादुल्ब जगत्पतेः ।।५
हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ।।६
स याति परमं स्थानं यत्र देवो [1]महेश्वरः । तत्र वर्षशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम् ।।७
हेमाचलात्परं दानं न चान्यद्विद्यते क्वचित् ।।८

हैमं महींद्रमणिशृंगशतैरुपेतं लोकाधिपाष्टकयुतं सहितं मुनीन्द्रैः ।
यः शक्तिमान्वितरतीह गणेशलोके कल्पं कुमारवदसौ कुरुपुंगवाऽऽस्ते ।।९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हेमाचलदानविधिवर्णनं नामाऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९८

पर मनुष्य बह्मा का लोक प्राप्त करता है । इसके निर्माण में सहस्र पल का उत्तम, पाँच सौ का मध्यम और उसके आधे पल सुवर्ण का पर्वत मध्यम बताया गया है । किन्तु बुद्धिमान् निर्धन प्राणी भी यथाशक्ति एक पल से कुछ अधिक सुवर्ण का पर्वत निर्माण कर दान कर सकता है । नृप सत्तम! इसमें भी धान्य पर्वत की भाँति सभी क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए विष्कम्भ पर्वतों के स्थापन पूजनोपरांत इस मंत्र का उच्चारण करे—(सुवर्ण) शिलोच्चय! आप ब्रह्म बीज और ब्रह्म-गर्भ रूप हैं, आप अनन्तफल प्रदान करते हैं अतः मेरी रक्षा करें ।१-५। नगोत्तम! अग्नि के सन्तान और जगत्पति के उल्व होने के नाते आप इस हेमपर्वत रूप से मेरी रक्षा करें । इस विधान द्वारा सुवर्णाचल प्रदान करने वाला मनुष्य साक्षात् महेश्वर के परम स्थान को प्राप्त करता है । वहाँ सौ वर्ष तक सुखानुभूति करने के उपरांत पराकाष्ठा की गति (मोक्ष) प्राप्त करता है । इसलिए इस कनकपर्वत के तुल्य कोई अब दान नहीं बताया गया है । कुरुपुंगव! इस प्रकार इस कनक पर्वत का, जो इन्द्रमणि के सैकड़ों शिखरों से भूषित और लोकपालों समेत मुनीन्द्रों से सुसज्जित रहता है, दान सुसम्पन्न करने वाला वह शक्तिमान् पुरुष गणेशलोक में एक कल्प तक स्कन्द कुमार की भाँति सुखानुभव करता है ।६-९

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हेमाचलदानविधान वर्णन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९८।

---

१. दिवत्पतिः ।

अथैकोनद्विशततमोऽध्यायः

तिलाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः[1] परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः । यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥१
तिलाः पवित्रमतुलं पवित्राणां च पावनम्[2] । विष्णुदेहसमुद्भूतास्तस्मादुत्तमतां गताः ॥२
मधुकैटभनामानावास्तां दितिसुतौ पुरा । मधुना सह तत्राभूद्युद्धं विष्णोरनारतम् ॥३
सहस्रं किल वर्षाणां न व्यजीयत दानवः । तत्र स्वेदो महानासीत्क्रुद्धरथस्याथ गदाभृतः ॥४
पतितश्च धरापृष्ठे कणशो लवशस्तथा । समुत्तस्थुस्तिला माषाः कुशाश्च कुरुनन्दन ॥५
हतश्च हरिणा युद्धे स मधुर्बलिनां वरः । मेदसा तस्य वसुधा रंजिता सकला तदा ॥६
मेदिनीति ततः संज्ञामवापाचल धारिणी । हतेऽथ दैत्यप्रवरे देवास्तोषं परं ययुः ॥७
स्तुतिभिश्च परं स्तुत्वा ऊचुस्त्रिदशपुंगवम्[3] ।

देवा ऊचुः

त्वया धृतं जगद्देव त्वया सृष्टं तथैव च ॥८

अध्याय १९९

तिलाचल दान-विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें सविधान तिल शैल का वर्णन सुना रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य परमोत्तम विष्णुलोक की प्राप्ति करता है । तिल अत्यन्त पवित्र एवं पवित्रों में पावन है, भगवान् विष्णु की देह से उत्पन्न होने के नाते यह अति उत्तम हुआ है । प्राचीन समय में (कश्यप की दूसरी पत्नी) दिति के मधुकैटभ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । जिसमें मधु के साथ विष्णु का अनवरत युद्ध हो रहा था । दिव्य सहस्र वर्ष तक घोर युद्ध होने पर भी उस दैत्य का वध न हो सका तो अत्यन्त क्रुद्ध होने के नाते गदाधारी भगवान् विष्णु की देह में महान् स्वेद (पसीना) हो आया और वह कण रूप में तथा खण्ड-खण्ड होकर पृथिवी पर गिरा, जिससे तिल, उरद और कुशाओं की उत्पत्ति हुई । कुरुनन्दन! उसी समय बलवान् मधु दैत्य भी युद्ध में हरि द्वारा निहत हुआ, जिसकी मेदा (चर्वी) से वह सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त रञ्जित हो गयी है और उसी के नाते उस दिन से इस पृथिवी का 'मेदिनी' भी नाम प्रचलित हो गया । उस वली दैत्य के वध होने पर देवगण अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये ।१-७। स्तुतियों द्वारा स्तुति करते हुए देवों ने कहा—

देवों ने कहा—देव! तुम्हीं इस जगत् का धारण किये हो और तुम्हारे ही द्वारा इसकी सृष्टि हुई है

---

१. अथापरम् । २. पावनाः । ३. त्रिदशपुंगवाः ।

त्वयीश लीयते **सर्वं त्वय्येव** मधुसूदन । **तस्मात्त्वदंगतो**[1] जातास्तिलाः सन्तु जगद्धिताः ॥९
पालयन्तु च देवेश **हव्यकव्यानि** सर्वदा । दैवे पित्र्ये च सततं नियोज्यास्तत्परैर्नरैः ॥१०
नहि दैत्याः पिशाचा वा विघ्नं कुर्वन्ति भारत । तिला यत्रोपयुज्यन्ते एतच्छीघ्रं विधीयताम् ॥११
श्रुत्वा सुराणां तद्वाक्यं विष्णुस्तानिदमब्रवीत् । तिला भवन्तु रक्षार्थं त्रयाणां जगतामपि ॥१२
शुक्लपक्षे तु देवानां संप्रदद्यात्तिलोदकम् । कृष्णपक्षे पितृणां च स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः[2] ॥१३
तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समर्पितजलांजलिः । तस्य देवाः सपितरस्तृप्ता यच्छंति शोभनम् ॥१४
श्वकाकोपहतं यच्च पतितादिभिरेव च । तिलैरभ्युक्षितं सर्वं पवित्रं स्यान्नसंशयः ॥१५
एतैर्भूतैस्तिलैर्यस्तु कृत्वा पर्वतमुत्तमम् । प्रदद्याद्द्विजमुख्याय दानं तस्याक्षयं भवेत् ॥१६
उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः । त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥१७
पूर्ववच्चापरं सर्वं विष्कंभपर्वतादिकम् । दानमन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथावन्नृपसत्तम[3] ॥१८
यस्मान्मधुवधे[4] विष्णुर्देहस्वेदसमुद्भवाः । तिलाः [5]कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छं नो भवंत्विह ॥१९
हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिमन्त्रणम्[6] । भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचलनमोऽस्तु ते ॥२०
इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् । स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२१
दीर्घायुष्ट्वामवाप्नोति इह लोके परत्र च । पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥२२

और तुम्हारे में इसका लय भी होता है । मधुसूदन, ईश! तुम्हारे अंगों से उत्पन्न हुआ यह तिल जगत् के लिए कल्याणकारी हो तथा देवपितृ कर्मों में मनुष्यों को संलग्न कर द्रव्य क्रव्य द्वारा देवों पितरों का पालन करें। देवेश, भारत! जिस कर्म में दैत्य या पिशाच कभी विघ्न नहीं करते हैं अतः इसे शीघ्र सम्पन्न करे। देवों की इन बातों को सुनकर कर भगवान् विष्णु ने कहा—तीनों लोकों के रक्षार्थ ही यह तिल उत्पन्न हुआ है अतः शुक्ल पक्ष में देवों के संतोषार्थ तिलोदक और कृष्ण पक्ष में स्नानोपरांत श्रद्धा समेत सात-आठ तिलों की तिलाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए इससे देव और पितर दोनों अत्यन्त तृप्त होते हैं। श्वान् (कुत्ते) और कौओं एवं पतितों द्वारा नष्ट की हुई भी वस्तु तिल से अभ्युक्षित (सिंचित) करने पर पवित्र हो जाती हैं इसमें संशय नहीं। इस प्रकार पवित्र तिलों का पर्वत निर्माण कर किसी ब्राह्मणश्रेष्ठको उसका दान करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है।८-१६। दश द्रोण तिल का उत्तम पर्वत, पाँच का मध्यम, और तीन द्रोण का पर्वत कनिष्ठ कहा जाता है। राजेन्द्र! पूर्व की भाँति समस्त उसकी क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए विस्कम्भ पर्वत आदि से युक्त करे और इस दान मंत्र का उच्चारण करे—मधु दैत्य के वध होने के समय भगवान् विष्णु की देह से तिल, कुश और माष (उरद) की उत्पत्ति हुई है। द्रव्य और क्रव्य में तिल द्वारा ही मंत्रण होता है अतः इस संसार से मेरा उद्धार करें मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार आमन्त्रित कर उत्तम तिलाचल का दान करने वाला मनुष्य उस वैष्णव पद की प्राप्ति करता है, जहाँ से कभी पुनरावृत्ति (जन्म) होता ही नहीं। लोक परलोक में उसे दीर्घायु की प्राप्ति होती है और वह पितर, देव और गन्धर्वों से पूजित होते हुए स्वर्ग जाता है।१७-२२। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस भूतो पर पुनः धार्मिक राजा होता है और उसकी पत्नी रूप सौभाग्य

---

१. भगवतः। २. शुद्धिसमन्वितः। ३. च नरोत्तम। ४. काले विष्णुर्देहसमुद्भवाः। ५. मुद्गाश्च। ६. अभिरक्षणैः।

पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य[१] राजा भवति धार्मिकः। नारी वा तस्य पत्नी स्याद्रूपसौभाग्यसंयुता[२] ॥२३
दक्षा कुलोद्भवा चैव पुत्रपौत्रसमन्विता। विधानमिदमाकर्ण्य विधिना[३] श्रद्धयान्वितः ॥२४
कपिलादानपुण्यस्य समं फलमवाप्नुयात् ॥२५

दानं तिलाचलसमं यदि चान्यदस्ति तद्ब्रूत शास्त्रनिचयं प्रविचार्य बुद्धया।
यैर्वर्जिता पितृक्रिया न च होमकर्म तेषां प्रदानमिह किं न करोति शर्म ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तिलचलदानविधिवर्णनं नामैकोनद्विशततमोऽध्यायः ।१९९

अथ द्विशततमोऽध्यायः

कार्पासाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यानि कार्पासाचलमुत्तमम्। परमं सर्वदानानां प्रियं सर्वदिवौकसाम् ।।१
देशकालौ समासाद्य धनं श्रद्धां च यत्नतः। देयमेतन्महादानं कुलोद्धरणहेतवे[४] ॥२
पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा सर्वमशेषतः। पर्वतं कल्पयेत्तत्र कार्पासेन विधानतः ॥३

सम्पन्न होती है। दान करने वाली स्त्री भी वही फल प्राप्त करती है तथा सभी कार्यों में दक्ष, कुलीना और पुत्र-पौत्र से सदैव युक्त रहती है। श्रद्धासमेत सविधान इस दान का श्रवण करने वाला पुरुष भी कपिलादान के तुल्य फल प्राप्त करता है। यदि इस तिलपर्वत के दान समान अन्य कोई दान हैं तो भली भाँति शास्त्र विचारकर मुझे बताने की कृपा करो। क्योंकि जिसने पितृक्रिया (श्राद्धतर्पणादि) और देवों के निमित्त हवन कर्म कभी सम्पन्न ही नहीं किया है क्या उस पुरुष के लिए यह दान कल्याणप्रद नहीं होता है! अर्थात् होता ही है।२३-२६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
तिलाचल दानविधि वर्णन नामक एक सौ निन्नयानबेवाँ अध्याय समाप्त।१९९।

अध्याय २००

कपासपर्वतदानविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अब मैं तुम्हें कपास (रुई) पर्वत के दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त दानों में उत्तम एवं समस्त देवों को अत्यन्त प्रिय हैं। धनागम होने पर देश काल के अवसर पर श्रद्धा समेत अपने कुलोद्धार के निमित्त यह महादान सुसम्पन्न करना चाहिए। पूर्वोक्त विधान द्वारा सम्मत कर्मों कोसम्पन्न करते हुए विधान पूर्वक कपास पर्वत की रचना करे।१-३। जो विद्वानों के कथनानुसार बीस भार

---

१. आगत्य। २. इह सौभाग्यसंयुता। ३. निर्धनः। ४. प्रियं सर्वदिवौकसाम्।

विंशद्भारस्तु कर्तव्य उत्तमः पर्वतो बुधैः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तो जघन्यः पञ्चभिर्मतः ॥४
भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः । धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य नृपपुङ्गव ॥५
तद्वज्जागरणं कुर्यात्तद्वच्चैवाधिवासनम् । प्रभातायां तु शर्वर्यामिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥६
त्वमेवावरणंयस्माल्लोकानामिह सर्वदा । कार्पासाचलनस्तस्मादघौघध्वंसनो भव ॥७
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्यात्पर्वसंनिधौ । रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥८
रूपावान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः । पञ्चजन्मानि नारी वा जायते नात्र संशयः ॥९
कार्पासपर्वतमयो जगदेकबन्धुर्यस्मान्नतेन रहिते वरवस्त्रयोगः ।
तस्मादघौघशमनाय सुखाय नित्यं देयो नरेण नरनाथदिमत्सरेण ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कार्पासाचलदानविधिवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ।२००

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

घृताचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥१
पञ्चाशद्घृतकुम्भानामुत्तमःस्याद्घृताचलः । मध्यमस्तु तदर्धेन तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥२

का उत्तम, दश का मध्यम और पाँच भार का निकृष्ट बताया गया है । कृपणता रहित होकर निर्धन मनुष्य को भी एक भार कपास से इस पर्वत का निर्माण एवं दान करना चाहिए । नृपपुङ्गव! पर्वत की भाँति सम्पूर्ण कार्य करते हुए जागरण और अधिवासन भी सुसम्पन्न कर पुनः प्रातःकाल इस मंत्र द्वारा प्रार्थना करे—कार्पासाचल! तुम्हीं सदैव समस्त लोकों का आवरण रूप रहते हो, अतः हमारे पाप समूहों का विध्वंस करो । किसी पर्व काल में इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक कपास शैल का दान करने वाला मनुष्य रुद्रलोक में एक कल्प तक सुखानुभव करने के अनन्तर यहाँ आकर रूपवान् राजा होता है । इस के दान के अभाव से स्त्री भी पाँच जन्म तक वही सुखानुभव प्राप्त करती है । नरनाथ! कपास ही जगत् का एक मात्र बन्धु हैं क्योंकि उसके विना उत्तम वस्त्र का योग किसी को प्राप्त नहीं होता है अतः मनुष्यों को नित्य अपने सुखार्थ और पापसमूह को नष्ट करने के लिए कपास पर्वत का दान अवश्य करना चाहिए ।४-१०

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
कार्पासाचल दान विधि-वर्णन नामक दो सौ अध्याय समाप्त ।२००।

अध्याय २०१

घृताचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें घृताचल का विधान बता रहा हूँ, जो तेज तथा अमृतमय, दिव्य एवं महापातकों का नाश करता है । इसके निर्माण में पाँच सौ घृत पूर्ण कलश का उत्तम पर्वत, उसके आधे

अल्पवित्तस्तु कुर्वीत यथा शक्त्या विधानतः । विष्कंभपर्वतां स्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् ॥३
शालेयतंदुलानां च कुभांश्च परिविन्यसेत् । कारयेत्संहतानुच्चान्यथा शोभं विधानतः ॥४
वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः । धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ॥५
अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमंसुरार्चनम् । प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् ॥६
विष्कंभपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शांतमानसः । मन्त्रेणानेन कौंतेय [१]तच्छृणुष्व वदामि ते ॥७
संयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसे । तस्माद्घृताचलश्चास्मात्प्रीयतां मम शङ्करः ॥८
तस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते नित्यं व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर ॥९
अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम् । [२]महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शांकरम् ॥१०
हंससारससंयुक्ते किंकिणीजालमालिते । विमाने अप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ॥११
विहरेत्पितृभिः सार्द्धं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१२

आज्याचलं प्रचलकुण्डलसुन्दरीभिः संसेव्यमानमिह ये वितरंति मर्त्याः ।
स्वर्गं सुरेद्रभवनं भवसंनिधिं वा स्नेहानुबन्धमचलं भवतीति सर्वम् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
घृताचलदानविधिवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०१

भाग का मध्यम और उसके भी आधे भाग का अधम कहा गया है । अल्प-वित्त वाले पुरुष को यथा शक्ति यह दान सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए । उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की रचना करके साठी चावल राशि के ऊपर उन कलशों की ऊपर नीचे रखते हुए उत्तम रचना करनी चाहिए । वस्त्र, ऊखदण्ड, और फलादि द्वारा उसे आवेष्टित कर धान्य पर्वत की भाँति समस्त विधानों को सम्पन्न करते हुए अधिवासन और हवन, देव पूजन आदि सम्पन्न करे । कौंतेय! निर्मल प्रातः काल वह पर्वत गुरु को और निष्कम्भ पर्वत ऋत्विजों को अर्पित करे । उस समय शान्ति चित्त से जिस मंत्र का उच्चारण किया जाता है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो! अघृत और तेज रूप यह घृत संयोग से ही उत्पन्न हुआ है अतः इस घृताचल के दान द्वारा शंकर प्रसन्न हों ।१-८। भूधर! घृत में तेजोमय ब्रह्म नित्य सुव्यवस्थित रहता है, अतः इस घृत पर्वत रूप से मेरी रक्षा करें । इस विधान द्वारा घृताचल का परमोत्तम दान करने वाला महापातकी भी प्राणी शङ्कर लोक की प्राप्ति करता है । उस विमान पर सुशोभित होकर, जो हंस-सारस पक्षियों से युक्त किंकिड़ी समूहों से आबद्ध और अप्सराओं तथा सिद्धविद्याधरों से आच्छन्न रहता है, पितरों के साथ महाप्रलय पर्यन्त बिहार करता है । इस प्रकार उज्ज्वल कुण्डलों से विभूषित सुन्दरियों से सुसेवित उस घृताचल का दान करने वाले मनुष्य सुरेन्द्र भवन स्वर्ग पर शिव संविधान प्राप्त कर उसके स्नेहमें सदैव के लिए बँध जाते हैं ।९-१३।

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
घृताचलदानविधि वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ।२०१।

---

१. शृणुष्वाद्य वदाभिते । २. ब्रह्मपातकयुक्तोऽपि ।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो याति लोकान्सप्तर्षिसेवितान् ॥१
मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः । मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनावरः स्मृतः ॥२
अल्पवित्तस्तु कुर्वीत मुक्ताफलशतेन च । चतुर्थांशेन विष्कंभपर्वताः स्युः समंततः ॥३
पूर्वेणवज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः । पुष्परागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गंधमादनः ॥४
वैडूर्यविद्रुमैः पश्चात्सावित्रो विपुलाचयः । पद्मरागं ससौवर्णमुत्तरेणापि विन्यसेत् ॥५
धान्यपर्वतवच्छेषमत्रापि[1] परिकल्पयेत । तद्वदावाहनं कृत्वा वृक्षान्देवांश्च काञ्चनाम् ॥६
पूजयेत्पुष्पनैवेद्यैः[2] प्रभाते तु विसर्जनम् । पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्यां इमान्मंत्रानुदीरयेत् ॥७
यथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः । त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥८
यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिमेति[3] जनार्दनः । पूजारत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि सर्वदा ॥९
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् । स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितम् ॥१०
यावत्कल्पशतं साग्रमुषित्वेह नराधिप । रूपारोग्यगुणोपेतः[4] सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥११

अध्याय २०२

रत्नाचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें रत्नाचल का विधान बता रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य सप्तर्षि के लोकों की प्राप्ति करता है और जो सहस्रों मोतियों द्वारा निर्मित पर्वत उत्तम, पाँच सौ मध्यम, और तीन सौ मोती का पर्वत अधम बताया जाता है। अल्प धन वालों को सौ मोतियों द्वारा उसका निर्माण करना चाहिए और उसके चौथाई भाग से चारों ओर विष्कम्भ पर्वतों की रचना भी। हीरे और गोमेद द्वारा पूर्व की ओर, इन्द्रनील, द्वारा, सुरचित और पुष्परागयुत गन्धमादन पर्वत दक्षिण की ओर, वैदूर्य विद्रुम द्वारा उस विपुल सवित्राचल का पश्चिम की ओर और सुवर्ण समेत पद्मरागमणि का पर्वत उत्तर की ओर स्थापित करते हुए धान्यपर्वत की भाँति सुवर्ण निर्मित देवों और वृक्षों के आवाहन आदि शेष सभी कर्म विद्वानों को सुसम्पन्न करना चाहिए। पुष्प नैवेद्य आदि वस्तुओं से अर्चा करके प्रातः काल विसर्जन करे तथा गुरु और ऋत्विजों समेत इन मंत्र के उच्चारण भी—महाचल! सभी रत्नों में देव गणों की सदैव उपस्थिति रहतीहै और तुम सदैव रत्न रूप सुशोभित रहते हो अतः मेरी रक्षा करो! अतः इस पूजा में इस रत्न के प्रदान से आप मेरी सदैव रक्षा करें।१-१०। इस विधान द्वारा चलाचल प्रदान करने वाला मनुष्य देव पूजित वैष्णव लोक की प्राप्ति करता है। नराधिप! सौ कल्प तक वहाँ **सुखानुभव** करने के अनन्तर वह

---

१. अन्नादिः। २. पुष्पधूपाद्यैः। ३. तुष्टि पकुरुते हरिः। ४. रूपारोग्यकुलोपते।

ब्रह्महत्यादिकं किंचिदत्र चामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ।।१२

मुक्तामयं कनकविद्रुमभक्तिचित्रं चञ्चन्महामणिमरीचिचयोपपन्नम् ।
रत्नाचलं द्विजवराय निवेदयित्वा भास्वत्प्रभामभिभवेत्सुरलोकलोके ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रत्नाचलदानविधिवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०२

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रौप्याचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्षामि रौप्याचलमनुत्तम् । यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं नरोत्तम ।।१
सहस्रेण पलानां तु उत्तमो रजताचलः । पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धेनावरः स्मृतः ।।२
अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेद्भक्तितः सदा । विष्कंभपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ।।३
पूर्ववद्राजतान्कुर्यान्मन्दरादीन्विधानतः । कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशान्कारयेन्नृप ।।४
ब्रह्मविष्णुशिवादींश्च नितम्बोऽत्र हिरण्मयः । राजतं स्याद्यन्येषां सर्वं तदिह कांचनम् ।।५
शेषं च पूर्ववत्कृत्वा होमजागरणादिकम् । दद्यात्तद्वत्प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ।।६

यहाँ रूप, आरोग्य आदि गुणों से सम्पन्न होकर सप्तद्वीपा वसुमती का अधिनायक होता है। देव राज इन्द्र के वज्र से आहत पर्वत की भाँति लोक-परलोक जनित उसकी ब्रह्म हत्या इसके प्रभाव से सर्वथा विलीन हो जाती है। इस भाँति उस रत्नाचल का दान, जो मोती, सुवर्ण, विद्रुम आदि से चित्र-विचित्र एवं महामणियों की मरीचियों (किरणों) से विभूषित रहता है, किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने वाला मनुष्य देव लोक में पहुँच कर सूर्य तेज को भी अभिभूत कर देता है।११-१३

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
रत्नचल दान विधि वर्णन नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त।२०२।

अध्याय २०३

रौप्याचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! मैं तुम्हें वह उत्तम रौप्याचल व्रत का विधान बता रहा हूँ जिसके द्वारा मनुष्य सोमलोक प्राप्त करता है। उसके निर्माण में सहस्र पल चाँदी का पर्वत उत्तम, पाँच सौ से मध्यम, और उसके आधेभाग से रचित पर्वत अधम बताया गया है। असमर्थ प्राणी के भी बीस पल से अधिक की चाँदी द्वारा उसका निर्माण एवं दान करना चाहिए तथा उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की। नृप! चाँदी द्वारा मन्दराद्रि पर्वत और लोकपालों की रचना करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि देवों की प्रतिमा भी चाँदी द्वारा निर्माण कराये। उसका नितम्ब (निम्न) भाग सुवर्णमय और अन्य को चाँदी मय होना चाहिए। इस भाँति पूर्वकी भाँति हवन, जागरण, आदि शेष कर्मों को सुसम्पन्न करते हुए प्रातःकाल वह चाँदी पर्वत गुरु को

विष्कंभशैलानृत्विग्भ्यः पूजयेच्च विभूषणैः । इमं मन्त्रं पठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥७
पितॄणां वल्लभं यस्माच्छर्मदं शंकरस्य च । रजतं पाहि तस्मान्नो घोरात्संसारसागरात् ॥८
इत्थं निवेश्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम् । गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥९
सोमलोके [1]सगंधर्वकिंनराप्सरसां गणैः । पूज्यमानो वसेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०
राजेश[2] राजतगिरिं कनकोपलालीच्छन्नं प्रसन्नसलिलैः सहितं सरोभिः ।
यच्छंति ये सुकृतिनो विरजो विशोकं गच्छन्ति ते गतमला नृप सोमलोकम् ॥११
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रौप्याचलदानविधिवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०३

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

शर्कराचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम्[3] । यस्य प्रदानाद्विष्णवर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा ॥१
अष्टाभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः । चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधमः स्मृतः ॥२

और विष्कम्भ पर्वतों को ऋत्विजों की सेवा में जो भूषण भूषित किये गये हों, अर्पित करे ।१-६। उस समय हाथमें कुश लिए मत्सर हीन चित्त से इस मंत्र का उच्चारण करे—पितरों के वल्लभ एक शिव के लिए कल्याणप्रद होने के नाते रजत! इस घोर संसारसागर से मेरी रक्षा करो! इस प्रकार सविधान देवों आदि की प्रतिष्ठा पूर्वक रजत शैल का दान करने वाला मनुष्य दश सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । सोमलोक में गन्धर्व और अप्सराओं से सुसेवित होते हुए महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है । नृप! इस प्रकार रजत पर्वत का जो सुवर्ण पलों से आच्छन्न और स्वच्छ सलिल सम्पन्न सरोवरों से युक्त रहता है, दान करने वाला वह सुकृती प्राणी पापनाश पूर्वक रुज-शोक रहित होकर सोमलोक की प्राप्ति करता है ।७-११।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर-पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
रौप्याचल दान विधि वर्णन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ।२०३।

अध्याय २०४

शर्कराचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उत्तम शक्कर-पर्वत का विधान बता रहा हूँ, जिसके दान करने से विष्णु, सूर्य और रुद्र देव सर्वदा प्रसन्न रहते हैं । इसके निर्माण में आठ-भोर शक्कर का उत्तम पर्वत, चार भार का मध्यम, दो भार का अधम पर्वत बताया गया है ।१-२। तथा अल्पवित्त वाले मनुष्य को यथा शक्ति

---

१. तु । २. नागेश । ३. शर्कराशैलम् ।

**भारेणैवार्द्धभारेण कुर्याद्यश्चाल्पवित्तवान् । विष्कंभपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः ॥३
धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य रससंयुतम् । मेरोरुपरितस्तद्वत्संस्थाप्य हैमतरुत्रयम् ॥४
मन्दारः पारिजाताश्च तृतीयः कल्पपादपः । एतद्वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निधापयेत् ॥५
हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः । निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ॥६
मन्दरे कामदेवं तु कदम्बस्य तले न्यसेत् । जम्बूवृक्षतले कार्यो गरुत्मान्गन्धमादने ॥७
प्राङ्मुखो हेममूर्तिश्च हंसः स्याद्विपुलाचले । हैमी श्रेयोर्थिभिः कार्या सुरभिर्दक्षिणामुखी ॥८
धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनमखादिकम् । कृत्वाथ गुरवे दद्यान्मध्यमं [1]पर्वतोत्तमन् ॥९
ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान्मंत्रानुदीरयेत् । सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्करायुतः ॥१०
यस्मादानंदकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा । अमृतं पिबतां ये तु निष्पेतुर्भुवि शीकराः ॥११
देवानां तत्समुत्थोऽसि पाहि नः शर्कराचल । मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः ॥१२
तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् । यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः ॥१३
सर्वपापविनिर्मुक्तः स[2] याति शिवमन्दिरम् । चन्द्रादिसार्चिसंकाशमधिरुह्यानुजीविभिः ॥१४
सहैव यानमातिष्ठेत स तु विष्णुपदे दिवि । ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥१५
आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् । भोजनं शक्तितो दद्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः ॥**

एक भार अथवा उसके आधे भाग से पर्वत-निर्माण करना चाहिए तथा उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण करे। धान्यपर्वत की भाँति रसयुक्त समस्त कर्मों को सम्पन्न करते हुए मेरु (पर्वत) के ऊपर सुवर्ण निर्मित मदार, पारिजात और कल्पवृक्ष की स्थापना करे, क्योंकि सभी कर्मों में इन तीन वृक्षों की स्थापना बतायी गयी हैं। हरिचन्दन (श्रीखंड) और कल्प वृक्ष क्रमशः सभी पर्वतों में विशेषतया शक्कर पर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग अवश्य स्थापित करना चाहिए। मन्दर पर्वत पर स्थित कदम्ब के नीचे कामदेव, गंधमादन पर्वत पर स्थित जम्बूवृक्ष के नीचे गरुड़, उस विशाल (सवित्र) पर्वत के नीचे पूर्वाभिमुख सुवर्ण मूर्ति हंस और हेममूर्ति सुरभी गौ दक्षिणाभिमुख स्थापित करे।३-८। धान्यपर्वत की भाँति समस्त क्रियाओं को सुसम्पन्न करके मध्य में स्थापित किया हुआ पर्वत गुरुचरण में और शेष चार पर्वतों को ऋत्विजों को सादर समर्पित करे। उस समय इन मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए—सौभाग्य और अमृत के सारभूत शक्कर से संयुक्त शैलेन्द्र! तुम सदैव प्रदान करते रहो। क्योंकि देवों के अमृतदान करते समय अमृत की कुछ बूदें पृथिवी पर गिर पड़ी थी उसी से शक्कर का आविर्भाव हुआ अतः मेरी रक्षा करो। महाशैल! काम देव के धनुषमध्य से उत्पन्न होने वाली शक्कर से तुम संयुक्त हो अतः इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो। इस विधान द्वारा शक्कर पर्वत का दान करने वाला मनुष्य पापरहित होकर शिवभक्ति की प्राप्ति करता है। पुनः अपने अनुचरों समेत सूर्य चन्द्र के समान प्रकाशित विमान द्वारा विष्णु लोक जाकर वहाँ सौ कल्प तक सुखानुभव करने के ऊपरांत सातो द्वीप का अधीश्वर होता है।९-१५। और तीन जन्म तक उसी भाँति दीर्घजीवी एवं आरोग्य रहता है। सभी पर्वतों के निर्माण-दान में

---

१. पुरुषोत्तम। २. प्रयाति।

स्वयं वा क्षारलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया ॥१६
पर्वतोपस्करं सर्वं प्रापयेद्ब्राह्मणालयम् । आसीत्पुरा ब्रह्मकल्पे धर्ममूर्तिर्नराधिपः ॥१७
सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः।सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः ॥१८
भवंति शतशो येन राजानोऽपि पराजिताः । यथेच्छकरूपधारी च मनुष्योऽप्यपवारितः ॥१९
तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुंदरी । लक्ष्मीरिव च रूपेण निर्जितामरसुंदरी ॥२०
राज्ञस्तस्याग्रमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते ॥२१
नृपकोटिसहस्रेण कदाचित्प्रमुच्यते । स कदाचित्स्थानगतं पप्रच्छ स्वं पुरोहितम्[1] ॥२२
विस्मयाविष्टहृदयो वसिष्ठिमृषिसत्तमम् । भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा ॥२३
कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम् ॥२४

वशिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा । तथा दत्तश्चतुर्दश्यां गुरवे लवणाचलः ॥२५
हेमवृक्षामरैः सार्द्धं यथावद्विधिपूर्वकः । शूद्रः सुवर्णकारस्तु नाम्ना शौण्डोभवत्तदा ॥२६
भृत्यो लीलावतीगेहे तेन हैमा विनिर्मिताः । तरवोऽमरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव ॥२७
अतिरूपेण सम्पन्नान्घटयित्वा ततो हृदि । धर्मकार्यमतिं ज्ञात्वा नागृहीतं कथञ्चन ॥२८

यथाशक्ति भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिए। तथा ब्राह्मणों की आज्ञा से स्वयं उस दिन लवण समेत भोजन करे। और पर्वतदान की सभी वह वस्तु ब्राह्मण के घर भेजवा देना चाहिए। प्राचीनकाल में ब्रह्म कल्प के समय धर्म मूर्ति नामक एक राजा था, जिसने इन्द्र की मित्रता स्वीकार करने के नाते युद्ध में सहस्रों दैत्यों का वध किया था, चन्द्र सूर्य आदि देवों को अपने तेज द्वारा हतप्रभ किया और सैकड़ों राजाओं को पराजित किया था। उसने यथेच्छ रूप धारण कर अनेक मनुष्यों को भी अपवारित किया था। उसकी भानुमती नामक त्रैलोक्य सुन्दरी भार्या थी, जो लक्ष्मी की भाँति अपने रूप सौन्दर्य से देवाङ्गनाओं को भी पराजित किये थी। राजा की वह प्रधान रानी उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी थी, जो उनकी अन्य दश सहस्र रानियों मे श्री की भाँति सुशोभित होती थी। उस राजा की आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए सहस्रों एवं करोड़ो राजगण सदैव उनके समीप रहा करते थे। एक बार दरबार में पुरोहित के आने पर राजा ने आश्चर्य चकित होकर उनसे कहा—भगवन्! किस धर्म का परिणाम यह अनुपम लक्ष्मी मुझे मिली है और मेरी देह में इस प्रकार के उत्तम एवं विपुल तेज के होने क्या हेतु है? बताने की कृपा करे।१६-२४

वशिष्ठ बोले—पूर्वकाल में लीलावती नामक वेश्या थी, जो सदैव शिव भक्ति में तन्मय रहा करती थी। उसने चतुर्दशी के दिन सुवर्ण निर्मित वृक्ष और देवों की कांचनी प्रतिमा समेत सविधान लवणाचल गुरुचरण में सादर अर्पित किया था। शौंड नामक शूद्र सुवर्णकार (सोनार) लीलावती के यहाँ नौकर था, जिसने श्रद्धालु होकर सुवर्ण द्वारा वृक्षों और देव प्रतिमाओं का निर्माण किया था। पार्थिव! उस

---

१. पुरोधसम्।

उज्ज्वालितास्तु तत्पत्न्या सौवर्णामरपादपाः । लीलावती गृहे पार्श्वे परिचर्या च पार्थिव ॥२९
कृतं ताभ्यां प्रहर्षेण द्विजशुश्रूषणादिकम् । सा तु लीलावती वेश्या कालेन महता नृप ॥३०
सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम् । योऽसौ सुवर्णकारश्च दरिद्रोऽप्यतिसत्तवान् ॥३१
न मूल्यमादाद्वेश्यातः स भवानिह सांप्रतम् । सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः ॥३२
यया सुवर्णरचितास्तरवो हेमदेवताः । सम्यगुज्ज्वलिताः पत्नी सेयं भानुमती तव ॥३३

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः सुजातमस्मिन्भुवनाधिमपत्यम् ।
तस्मात्कृतं तत्परिकर्मरात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य ॥३४
तस्माच्च लोकेष्वपराजितस्त्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन्दशधा कुरुष्व ॥३५
तथेति सम्पूज्य च धर्ममूर्तिं वचो वशिष्ठस्य ददौ स सर्वान् ।
धान्याचलादीन्क्रमशः पुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः ॥३६
यश्चाधनः पश्यति दीयमानं मेरोः प्रदानमिह धर्मपरो मनुष्यः ।
शृणोति भक्त्या परयाऽप्रमादी विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥३७

(सोनार) ने वृक्षों और देवों की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा बनाकर उसे धर्मकार्य समझ कर वेश्या से उसका पारिश्रमिक शुल्क (वेतन) नहीं लिया और उसकी पत्नी के उन देवों और वृक्षों की प्रतिमाओं को अत्यन्त देदीप्यमान किया था । पार्थिव! इस प्रकार लीलावती के घर रहकर वे दोनों उसकी परिचर्या (सेवा) कर रहे थे । उन दोनों ने अत्यन्त हर्षित होकर ब्राह्मणों की सेवा भी की थी । नृप! बहुत समय जीवन के पश्चात् निधन होने पर वह लीलावती वेश्या समस्त पापों से मुक्त होकर शिव मन्दिर चली गयी । वह सुवर्णकार (सोनार), जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त साहसी था और उस वेश्या से उसका मूल्य नही लिये था, आप हैं, जो दश सहस्र सूर्यो की प्रभा से भूषित होकर सातों द्वीप के अधीश्वर हुए हैं और जिसने उस सुवर्ण के वृक्ष एवं देवों की प्रतिमाओं को भली भाँति समुज्जवल किया था, वह आप की यह भानुमती पत्नी है । उस (प्रतिमाओं) के उज्ज्वल करने के नाते इसे समुज्जवल रूप तथा तुम्हें भुवनों का अधिपत्य प्राप्त हुआ । इस प्रकार रात्रि में लवणाचल के निमित्त किये परिश्रम का परिणाम तुम्हें प्राप्त हुआ है, इसीलिए तुम लोक में अपराजित हो और आरोग्य सौभाग्य समेत लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है । तुम इस समय भी धान्याचल आदि दश पर्वतों के दान अवश्य सुसम्पन्न करो । इस भाँति वशिष्ठ की बातें स्वीकार करके धर्ममूर्ति ने उन धान्याचल नाम के पर्वतों का दान क्रमशः सुसम्पन्न करके गुरु वशिष्ठ को अर्पित किया और अन्त में देवपूजित होकर शिव लोक की प्राप्ति की । भक्ति पूर्वक इस दान को देखने एवं सुनने वाला धार्मिक निर्धन मनुष्य भी पाप रहित होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है । नृपपुङ्गव! इस प्रकार इन पर्वतों के आख्यान पढ़ने-सुनने वाले मनुष्यों के दुःस्वप्न शांत होते हैं, उनका संसार-भय दूर होता है और वह

दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पठयमाने शैलेन्द्रे भवभयभेदने नराणाम्।
यः कुर्यात्किमु नृपपुङ्गवोऽथ सम्यक्छांतात्मा हरिहरपुरमेति जन्तुः ॥३८
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शर्कराचलदानविधिवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०४

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारधर्मवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रतिपत्क्रमयोगेन तिथीनां विस्तरः श्रुतः । सरहस्यः समन्त्रश्च प्रारम्भोद्यापनैः सह ॥१
नवग्रहमखात्सर्वं[1] होमकर्मावधारितम् । स्नानक्रमश्च विदितो विज्ञाताश्चोत्सवा मया ॥२
दानधर्मस्त्वशेषेण श्रुतः सर्वार्थदर्शितः । तडागोत्सर्जनविधिर्विदितः पादपोत्सवः ॥३
एवं गतं मम मनो मुह्यते मधुसूदन । व्रतं कथयता कृष्ण तास्ताः संश्रित्य देवताः ॥४
देवानां देवकीपुत्र नानात्वं संप्रदर्शितम् । तिथिक्रमान्कथयता[2] पूजामन्त्रोधिवासनम् ॥५
व्यासाद्यैर्मुनिभिः सर्वैर्ध्यानयोगपरायणैः । एक एवात्र निर्दिष्टो देवः[3] सर्वगतोऽव्ययः ॥६
वर्णाश्रमाचारधर्मः कस्मान्नात्र प्रदर्शितः । एते महर्षयस्तुष्टाः श्रोतुकामा भवद्वचः ॥७

शान्तात्मा विष्णु-शिव लोक की प्राप्ति करता है अतः जो इस दान को सम्पन्न करता है उसे क्या कहा जा सकता है ।२५-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
शर्कराचलदानविधि वर्णन नामक दो सौ चार अध्याय समाप्त ।२०४।

अध्याय २०५

सदाचार धर्म-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मधुसूदन! मैं तो प्रतिपदा आदि तिथियों के क्रमशः विस्तृत वर्णन रहस्य मंत्र समेत प्रारम्भ उद्यापन विधान सुना । नवग्रह यज्ञ से होमकर्म, स्नान क्रम, समस्त उत्सव, निखिल दान धर्म, सरोवरों के उत्सर्जन विधान, वृक्षों के उत्सव आदि भी भलीभाँति जान लिया है । कृष्ण! इतना होते हुए भी मेरा मन (सुनने के लिए) मुग्ध ही हो रहा है । अतः व्रत की व्याख्या करते हुए आप उनके देवता भी बतायें । देवकी पुत्र! तिथियों के क्रमानुसार वर्णन करते हुए आपने अनेक भाँति के देवों, पूजामन्त्र और उनके अधिवासन भी बता दिया है किन्तु ध्यान योग के पारायण करने वाले व्यास आदि मुनियों द्वारा निर्दिष्टि वह एक देव, जो सर्वव्यापक और अनश्वर है, तथा वर्णाश्रम के आचार धर्म, आप के नहीं बताये! जिसे आप की वाणी द्वारा जानने के लिए ये महर्षि गण भी अत्यन्त लालायित हो रहे हैं।१-७

---

१. पूर्वम् । २. क्रमयता । ३. विष्णुः ।

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतदानैकलेशोऽयं कथितस्तव पार्थिव ।विशेषतश्च शक्नोति वक्तुं यदि सरस्वती ॥८
सर्वस्तरति दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यति ! वर्णाश्रमाणां सामान्य इति [१]धर्मः प्रकीर्तितः ॥९
कथितोऽयं व्रतस्त्वत्र देवानुद्दिश्य यो मया । परमार्थः स एवोक्तो देवस्तमुपधारय ॥१०
यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः । महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते ॥११
पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः । गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्तिताः ॥१२
देवं देवीं समुद्दिश्य यः करोति व्रतं नरः । न भेदस्तत्र [२]मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत् ॥१३
बहुप्रकारा वसुधा भेदाः साग्न्यनिलांभसाम् । परमार्थतश्चिंत्यमाने न भेदः प्रतिभारते ॥१४
कश्चिद्देवं समाश्रित्य करोति किमपि व्रतम् । त्रयीधर्मानुगं पार्थ एकं तत्रापि कारणम् ॥१५
यश्चैव ते मया ख्यातो व्रतदानविधिः परः । सफलः स तु विज्ञेयः सदाचारवतां सताम् ॥१६

आचारहीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥१७

कपालस्थं यथा तोयं श्वदृतौ वा यथा पयः । दुष्टं स्यात्स्थानदोषेण वृत्तहीने[३] तथा शुभम् ॥१८
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति प्रयाति च । अहीनोवित्ततो हीनो वृत्तस्तु हतो हतः ॥१९

श्रीकृष्ण बोले—पार्थिव! मैंने तुम्हें व्रत और दान का एक लेश मात्र ही वर्णन सुनाया है, विशेषतः तो कभी हो सकता है यदि सरस्वती वर्णन कर सके । सभी इन कठिनाइयों को पार करते हुए कल्याण का दर्शन करें । यही श्रम का सामान्य धर्म बताया गया है । देवोंके उद्देश्य से मैंने जिस व्रत की व्याख्या सुनाई है, उसे परमार्थ समझो और देव को बता रहा हूँ, सुनो! जो ब्रह्मा है नही हरि है और हरि ही महेश्वर, महेश्वर सूर्य, सूर्य पावक, पावक कार्तिकेय तथा कार्तिकेय ही विनायक हैं । उसी भाँति गौरी, लक्ष्मी, और सावित्री, शक्तिके भेद रूप बतायी गयी है । देव अथवा देवी के उद्देश्य से जिस व्रत का विधान मनुष्य सुसम्पन्न करते हैं उसमें भेद नहीं मानना चाहिए यह सम्पूर्ण जगत् में शिवशक्तिमय रचित है । यद्यपि बहुत प्रकार की वसुधा और अग्नि, वायु एवं जल के भेद भली भाँति स्पष्ट हैं तथापि परमार्थ रूप से उन्हें देखने पर वे भेद नहीं दिखायी देते हैं । पार्थ! किसी भी देव के आश्रित रहकर मनुष्य जिस किसी व्रत को सुसम्पन्न करता है, उस वैदिक धर्म का दैदिक धर्म होना ही एक मुख्य कारण है । मैंने जो तुम्हें व्रत दान के विधान बताये हैं वे सदाचार शील एवं सज्जन प्राणी के लिए ही सफल होते हैं ।८-१६। क्योंकि आचार हीन पुरुष को, यद्यपि उसने षडङ्ग समेत वेदों का अध्ययन किया है, वेद पुनीत नहीं करता है । पंख निकलने पर नीड (घोंसले) को त्यागने वाले पक्षियों की भाँति वेद उसे मृत्यु के समय छोड़ देता है । जिस प्रकार कपाल में स्थित जल और कुत्ते के चमड़े वाले मशक के जल की भाँति दूषित होने के नाते आचार हीन प्राणी के सभी शुभ-कर्म दुष्ट (दूषित) हो जाते हैं । इसलिए आचार की संरक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए और वित्त (धन) तो आता-जाता रहता है । क्योंकि धनहीन प्राणी कभी धनवान् कहा जा सकता है किन्तु आचार से भ्रष्ट होने पर वह सदैव के लिए नष्ट हो जाता है । राजन्! इस प्रकार भ्रष्ट होने पर वह सदैव के लिए नष्ट हो जाता है । राजन्! इस प्रकार धर्म और कुल का मूल आचार ही

---

१. धर्माः सनातनाः । २. धतंव्यः । ३. वृत्तस्तु मनोहरः ।

एवमाचारधर्मस्य मूलं राजन्कुलस्य च । आचाराद्धि च्युतो जन्तुर्नकुलीनो न धार्मिकः ।।२०
किं कुलेनोपदिष्टेन विपुलेन दुरात्मनाम् । कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धेषु ।।२१
हीनजातिप्रसूतोऽपि शौचाचारसमन्वितः । सर्वधर्मार्थकुशलः सकुलीनः [1]सतां वरः ।।२२
न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते । आचारकुशलो राजन्निह चामुत्र नन्दते ।।२३

युधिष्ठिर उवाच

सदाचारमहं कृष्ण श्रोतुमिच्छामि शाश्वतम् । सर्वधर्ममयः कोऽत्र सदाचारः प्रकीर्तितः ।।२४

श्रीकृष्ण उवाच

आचारप्रभवो धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः । साधूनां च यथावृत्तं स सदाचार उच्यते ।।२५
तस्मात्कुर्यादिहाचारं य इच्छेद्गतिमात्मनः[2] । [3]अपि पापशरीरस्य आचारो हंत्यलक्षणम् ।।२६
अदृष्टमश्रुतं वेदं पुरुषं धर्मचारिणम् । स्वानि कर्माणि कुर्वाणं तं जनं कुरुते प्रियम् ।।२७
ये नास्तिका नैष्ठिकाश्च गुरुशास्त्रातिलङ्घिनः । अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ।।२८
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोनसूयश्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।२९

है । आचार से च्युत होने पर प्राणी न कुलीन कहा जा सकता है और न धार्मिक । इसलिए दुष्टों के विशाल कुल को उपदेश देने से क्या लाभ हो सकता है, क्योंकि सुगन्धित पुष्पों में क्या कीड़े नहीं होते! अर्थात् सुगन्धित पुष्पों के भीतर उत्पन्न कीड़ों पर जिस प्रकार सुगन्ध का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है उसी भाँति दुष्टों के मन में सदुपदेश का प्रभाव व्यर्थ हो जाता है ।१७-२१। राजन्! हीन जाति में उत्पन्न होने पर भी वह मनुष्य यदि पवित्रता पूर्ण आचार से सम्पन्न रहता है तो वही समस्त धर्म अर्थ में कुशल (प्रवीण), कुलीन, और श्रेष्ठ कहा जाता है । क्योंकि कुल कोई नहीं अपितु आचार कुल कहा जाता है । इस आचार कुशल प्राणी लोक-परलोक सर्वत्र आनन्द प्राप्त करता है ।२२-२३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! मैं उस शाश्वत सदाचार सो सुनना चाहता हूँ, सर्व धर्ममय कौन सदाचार बताया गया है ? बताने की कृपा करें ! २४

श्रीकृष्ण बोले—धर्म आचार से उत्पन्न होता है अतः आचार धर्म का कारण कहा जाता है । और आचार के लक्षण सन्तों (साधुओं) में पाये जाते हैं इसलिए साधुओं के व्यवहार सदाचार कहे जाते हैं । अतः उत्तम गति के इच्छुक प्राणियों को सदाचार का पालन अवश्य करना चाहिए क्योकि पापी के शरीरमें स्थित कुलक्षण (अनाचार) को भी आचार विनष्ट करता है (तथा उसे पवित्र कर देता है) । अदृश्य और अद्भुत वेद भी धार्मिक पुरुष को, अपने कर्मों को सुसम्पन्न करने के नाते (लोक) प्रिय बना देता है । इसलिए नास्तिक, नैष्टिक, गुरु और शास्त्र की आज्ञाओंका उल्लंघन करने वाले, अधर्मी, दुराचारी क्षीणायु होते हैं । समस्त लक्षणों से रहित होने पर भी मनुष्य सदाचारी होनेके नाते श्रद्धालु और अनिन्दित होकर अपनी सभी कामनाएँ सफल करता है ।२५-२९। धर्म और अर्थ (अपनी आजीविका) का

---

१. शताद्वरः । २. श्रेय तात्मनः । ३. अशरीरस्य धर्मस्य आचारो हंत्यलक्षणम् ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् । ब्राह्मणानलगो सूर्यान्नमेहेत कदाचन ॥३०
उदङ्मुखो दिवारात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः । उत्थाय च यस्तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां समाहितः ॥३१
एवमेवोत्तरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः । नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ॥३२
ऋषयो दीर्घतपसा दीर्घमायुरवाप्नुयुः । उपासते येन पूर्वां द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ॥३३
सर्वास्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्मणि योजयेत् । आबाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥३४
शिरसा प्रावृतेनैव समास्तीर्य तृणैर्महीम् । ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि ॥३५
न मूत्रमधितिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे । अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषकस्थलात् ॥३६
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृदः । देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥३७
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजि क्रियाम् । अफेनशब्दगंधाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥३८
आचामेत्प्रयतः सम्यक्प्राङ्मुखोऽदङ्मुखोपि वा । त्रिवर्गसाधनं यच्च [1]सदा कार्यं विपश्चिता ॥३९
तत्सान्निध्ये गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च । पादेन कार्यं पारत्र्यं पादं कुर्याच्च सञ्चये ॥४०
अर्धेनाहारचणनित्यनैमित्तिकान्तकम् । अर्थस्योपार्जने यत्नः सदा कार्यो विपश्चितैः ॥४१
तत्संसिद्धौ हि सिद्धयन्ति [2]धर्मकामादयो नृप । केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दंतधावनम् ॥४२

चिन्तन करते मनुष्य को ब्रह्म मूहूर्त में (शय्या से) उठजाना चाहिए और ब्राह्मण अग्नि के समीप तथा सूर्योदय के समय मलत्याग कभी न करे अर्थात् सूर्योदय के पूर्व ही इस क्रिया से निवृत्त हो जाना चाहिए। दिन और रात्रि में क्रमशः उत्तराभिमुख और दक्षिणाभिमुख मलत्याग करके आचमन (कुल्ला), स्नान और प्रातः काल की संध्या उपासन करे और उसी भाँति पुनः मौन होकर सायं संध्या की उपासना करें। उदय अस्त होते समय सूर्य का कभी दर्शन न करे। क्योंकि इन्हीं क्रमों को सुसम्पन्न करने के नाते और दीर्घतप द्वारा ऋषिगण दीर्घायु प्राप्त करते हैं। प्रातः काल और सायं की संध्या न करने वाले द्विजों को राजा शूद्र कर्मों में लगाये। निर्वाध स्थानों में यथेच्छ मलमूत्रका त्याग करना चाहिए। उस समय शिर को ढ़के हुए मलत्याग करके की भूमि भी तृणों से आच्छादितकर, मलत्याग करे। गाँव, गृह तीर्थ स्थान, क्षेत्रों (खेतों) के मार्ग, जोती भूमि और गौओं के रहने के स्थान में मूत्र त्याग (पेशाब) न करना चाहिए। मलत्याग करने के अनन्तर) जल के भीतर, गृह वल्मीकि एवं चूहों की बिल और मलत्याग होने के समीप वाला भूमि, इन पाँच स्थानों से (अशुद्धि के कारण) मिट्टी नहीं लेनीं चाहिए। देवों की अर्चना करके गुरु की पूजा करना चाहिए तथा उसी प्रकार अन्न भोजन भी आचमन पूर्वक ही करे। फेन तथा शक और गंध रहित स्वच्छ जल से सादर आचमन पूर्वभिमुख या उत्तराभिमुख होकर सदैव मनुष्य को करना चाहिए क्योंकि वह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का साधन बताया गया है उसी द्वारा गृहस्थ के लोक-परलोक की सिद्धि भी होती है। अपनी आय का चौथाई (एक भाग) परलोक के कार्यो में, एक भाग का संचय तथा आधेभाग से भोजन और नित्य नैमित्तिक कार्यों को सम्पन्न करे। नृप! धनोपार्जन में विद्वानों को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि अर्थ सिद्धि द्वारा ही धर्म अर्थ एवं कामनाओं की सिद्धि होती है।३०-४१। केश प्रसाधन (शिर के बालों को सँवारना), दर्पण देखना, दातून करना, और देवपूजन

---

१. कर्तव्यं गृहमेधिना। २. कर्मकर्मादयः।

पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् । दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ॥४३
उच्छिष्टोत्सर्जनं दूरात्सदा कार्यं हितैषिणा । लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥४४
नित्योच्छिष्टः संकरकृन्नेहायुर्विंदते महत् । नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्नपश्येदात्मनः शकृत् ॥४५
उदक्यादर्शनस्पर्शं कुर्यात्संभाषणं न च । नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत्[1] ॥४६
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मकपालिकान् । तुषांगारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ॥४७
धारिणो न नमेद्विद्वान्नासनं चापि दापयेत् । ब्राह्मणान्प्रणमेद्विद्वानासनं चापि दापयेत् ॥४८
कृतांजलिरुपासीत गच्छंतं पृष्ठतोन्वियात् । न चासीतासने भिन्ने भिन्नं कांस्यं च वर्जयेत् ॥४९
नामुक्तकेशैर्भोक्तव्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् । स्वप्तव्यं नैव नग्नेन नोच्छिष्टस्तु संविशेत् ॥५०
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः । केशग्रहान्प्रहारंश्च शिरस्येतानि वर्जयेत् ॥५१
नान्यत्र पुत्रशिष्याभ्यां शिखया ताडनं स्मृतम् । [2] न पाणिभ्यां संहताभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥५२
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं नरैः । अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥५३
न भुक्तोत्तरकालं च न गम्भीरजलाशये । शिरःस्नानं तु तैलेन नांगं किंचिदुपस्पृशेत् ॥५४
तिलापिष्टं च नाश्नीयात्तथास्यायुर्न हीयते । दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ॥५५

क्रियाएँ पूर्वाह्ण के समय ही करना चाहिए। घर से दूर मूत्रत्याग, पादप्रक्षालन, और (पाकालय के) जूठे अन्नादि फेंकना चाहिए। हाथ से मिट्टी मलते रहने, (नाखूनों से) तृणच्छेदन, नख से नख काटने, नित्य उच्छिष्ट (जूठा भोजन करने वाले), और जार पुरुष होकर संकर (वर्णसंकर) की उत्पत्ति करने वाले मनुष्य दीर्घजीवी नहीं होते हैं। दूसरे की नग्नस्त्री, और अपना मल नहीं देखना चाहिए। रजस्वला स्त्री का दर्शन, स्पर्श और उसके साथ संभाषण, तथा जल में मल-मूत्र का त्याग एवं मैथुन नहीं करना चाहिए। मूत्र में मलत्याग न करे। केश, भस्म, कपाल, तुषांगार (भूसी की अग्नि) और अस्थि (हड्डी) मिश्रित रस्सी या वस्त्रादि धारण करने वाले पुरुष को न नमस्कार करे और न आसन प्रदान करे। केवल ब्राह्मणों को ही नमस्कार और आसन प्रदान करे और सेवा करने के उपरांत जब वे जाने लगें तो उनके पीछे (कुछ दूर) सादर उनका अनुगमन भी करे। उनके पृथक् आसन और पृथक् कांस्यपात्र भी न होने चाहिए। केश बाँधे भोजन, नग्न स्नान, नग्न शयन और जूठामुख किये शयन न करे। उच्छिष्ट (जूठे मुख) शिर स्पर्श न करे क्योंकि समस्त प्राण आदि उसी के आश्रित रहते हैं। उसी भाँति (किसी के) शिर के बालों को न पकड़ना चाहिए और न शिर पर प्रहार ही करें। पुत्र तथा शिष्य की शिखा (चोटी) पकड़ कर कभी न मारे और दोनों हाथों को मिलाकर अपना शिर कभी न खुजलाये। मनुष्य को निष्प्रयोजन बार-बार शिर से स्नान न करना चाहिए। क्योंकि ग्रहण समय के अतिरिक्त बार-बार शिर से स्नान करना निन्दित बताया गया है। भोजनोपरांत किसी गम्भीर जलाशय में शिर से स्नान और अंग में तैलमर्दन न करे। तिल की पीठी का भोजन न करना चाहिए, क्योंकि गरिष्ठ होने ने नाते देरी से पचता है। गुरु को कभी कटुवाक्य न कहे अपितु क्रुद्ध देखकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न

---

१. समारभेत । २. न संहताभ्यां हस्तभ्यां कंडूयादात्मानः शिरः ।

परीवादं न शृणुयादन्येषामपि जल्पताम् । सदानुपहतास्तिष्ठेत्प्रशस्ताश्च तथौषधीः ॥५६
गारुडानि च रत्नानि बिभृयात्प्रयतो नरः । सुस्निग्धामलकेशश्चसुगन्धिश्चारुवेषधृक् ॥५७
सिताः सुमनसो हृद्यात् बिभृयाच्च नरः सदा । किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पमप्याप्रियं वदेत् ॥५८
प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् । नान्याश्रितं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषेश्वरः ॥५९
न दुष्टयानमारोहेत्कूलच्छायां न संश्रयेत् । विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरादिसंकरैः ॥६०
बन्धकीबन्धकीभर्तृक्षुद्रानृतकथैः सह । तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैः शठैः ॥६१
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् । नावागाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे नरेश्वर ॥६२
प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः । न हुंकुर्याच्छवं चैव शवगन्धा हि सोमजः ॥६३
न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं न कुर्याच्चलनासिकाम् । नासंस्पृष्टमुखो ब्रूयाच्छ्वासकासौ च वर्जयेत् ॥६४
नोच्चैर्हसेत्सशब्दं[1] च न मुञ्चेत्पवनं बुधः । नखान्न वादयेच्छिद्यान्न नखैश्च महीं लिखेत् ॥६५
न श्मश्रु भक्षयेच्चैव न लोष्ठानि च मर्दयेत् । पादेन नाक्रमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ॥६६
नोच्चासने समासीत गुरोरग्रे कदाचन । तस्मात्सदाचारपरो भवेत्कामचरो न हि ॥६७
लोकद्वये शुभं प्रेप्सुः प्रेत्य स्वर्गे महीयते । चतुष्पथं चैत्यतरुं श्मशानोपवनानि च ॥६८

करे । दूसरे की भी निन्दा न सुने । सदैव प्रसन्नमुख मुद्रा में रहना चाहिए । मनुष्यों को प्रशस्त औषधी और गारुड रत्न प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिए । स्निग्ध निर्मल केश एवं सुगन्ध लगाकर, श्वेत वर्ण के प्रिय पुष्पों की माला धारण किये मनुष्यों को सदैव अपना सुन्दर वेष बनाये रखना चाहिए । किसी पराये का अल्प धनापहरण न करे, कभी भी अप्रिय बात न कहे ।४२-५८। असत्य विप्र भाषण न करे, न अन्य के दोष का प्रचार करे । पुरुषों को दूसरे का वैर (झगड़ा) न अपनाना चाहिए । किसी दोष पूर्ण सवारी पर न बैठें, कभी नदी तट की छाया में विश्राम न करे । विद्वेषी, पतित, उन्मत्त, अनेक भाँति के वैर आदि करने का व्यसनी, कुलटा स्त्री और उसके पति, (विचार के) क्षुद्र व्यक्ति, झूठी कथाओं के कहने वाले, अति व्यय करने वाले, और दूसरे की सतत निन्दा करने वाले एवं शठ मनुष्यों के साथ विद्वानों को कभी मैत्री न करनी चाहिए । नरेश्वर! अकेले मार्ग न चले, किसी जल समूह के वेग के सामने स्नान न करे । जलते हुए घर में प्रवेश न करें, किसी वृक्ष के शिखर (ऊपरी) भाग पर आरोहण न करे । किसी शव को देख कर 'हुं' न कहे, क्योंकि शव का गन्ध सोम से उत्पन्न होना बताया जाता है । दाँतों के संघर्ष (दाँतों से दाँतों को काटना), और नासिका चञ्चल न करनी चाहिए । भलीभाँति विना मुख शुद्ध किये न बोले न दीर्घनिःश्वास (लम्बी सांस) न ले और न खांसे । बल पूर्वक शब्द समेत (ठट्ठामार के) न हंसे और शब्द (ध्वनि) समेत मुख से वायु न निकाले । न नख से बजाये, न कोई वस्तु (या नख ही) काटे और न नखों से भूमि में ऐसा करे । श्मश्रु (दाढ़ी) का मुख में स्पर्श न करे, हाथ से मिट्टी मलने का अभ्यास न करे । चरण के ऊपर चरण न रखे और न किसी पूज्य के सम्मुख करे । गुरुजनों के सम्मुख किसी ऊँचे आसन पर न बैठे । इसलिए सदैव सदाचारी बने रहने का प्रयत्न करे, स्वेच्छाचारी का नहीं । क्योंकि उससे दोनों लोक में शुभ की प्राप्ति पूर्वक अन्त में स्वर्ग सम्मान प्राप्त होता है ।५९-६७। रात्रि में सर्वदा

---

१. सनादं च ।

दुष्टस्त्रीसंनिकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा । ग्रीष्मवर्षासु चच्छत्री मौनी रात्रौ वनेषु च ।।६९
केशास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा । स्नानार्द्रां धरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ।।७०
पन्था देयो ब्राह्मणेभ्यो राजभ्यः स्त्रीभ्य एव च। विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारार्तस्य महीयसः ।।७१
मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च । उपानद्वस्त्रमाल्यं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।।७२
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।।७३
न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या दारा रक्ष्याः प्रयत्नतः। अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।७४
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान्मानिनस्तथा। हीनांगानधिकाङ्गांश्च विद्याहीनांश्च नाक्षिपेत् ।।७५
पानीयस्य क्रिया नक्तं तथैव दधिसक्तव. । वर्जनीया महाराज निशीथे भोजनक्रियाः ।।७६
नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न रहस्यपरो भवेत् । तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाक्रम्य वासनम् ।।७७
न चातिरक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा । न च कुर्याद्विपर्यासं वाससो न विभूषणे ।।७८
स्त्रीं कृशां नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः । ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्वं सर्वे ह्याशीविषोपमाः ।।७९
हन्यादाशीविषः क्रुद्धो यावत्स्पृशति दंष्ट्रया । क्षत्रियोऽपि दहेत्क्रुद्धो यावत्पश्यति तेजसा ।।८०
ब्राह्मणं सकुलं हन्याद्ध्याने नावेक्षितेन च । नातिकल्पं नातिसायं न च मध्यं दिने तथा ।।८१
नाज्ञातैः सह गंतव्यं नैकेन बहुभिः सह । नारुंतदुः स्यान्न परोक्षवादी न सही नतः ।।८२
रोहते चाग्निना दग्धं वनं परशुना हतम् । वचो दुरुक्तबीभत्सं न संरोहति चाशतम् ।।८३

चौराहे, चैत्य वृक्ष, श्मशान के उपवन और दुष्ट स्त्री से दूर रहना चाहिए। ग्रीष्म और वर्षा काल में छाता लगायें और रात्रि तथा वन में मौन रहने केश, अस्थि, कण्टक (काँटे), अपवित्र बलि, भस्म, भूसी, स्नान से गीली, भूमि दूर से त्याग करना चाहिए। ब्राह्मणों, राजाओं, स्त्रियों तथा विद्वान्, गर्भिणी और महान् भारवाही पुरुषों का मार्ग दूर से छोड़ देना चाहिए।६८-७०। उसी भाँति मूक (गूंगे) बधिर, अन्धे, मत्त और उन्मत्त का भी मार्ग छोड़ दे। दूसरे का उपानह, जूते, वस्त्र और माला न धारण करे। लोक में उस प्रकार का क्षीणायु बनाने वाला अन्य कोई कर्म नहीं हैं जितना कि परस्त्री का उपभोग। स्त्रियों से कभी भी ईर्ष्या न करके प्रयत्न पूर्वक सदैव उनकी रक्षा ही करनी चाहिए क्योंकि ईर्ष्या अल्पायु बनाती हैं अतः उसका त्याग ही करना चाहिए। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मानी, हीनांग, अधिकाङ्ग और विद्याहीन प्राणियों की निन्दा न करे। महाराज! नक्त व्रत में पानीय क्रिया, दही, सत्तू और निशीथ (मध्यरात्रि) में भोजन करना वर्जित है। ऊपर घुटने पर चिर काल तक न ठहरे, रहस्यात्मक न बने, और चरण से विस्तरे को लपेटे न बैठे। उसी प्रकार अत्यन्त रक्त, चित्र-विचित्र और काले वस्त्र न धारण करे तथा भूषण-वस्त्र में उलट-फेर न करे। दीर्घजीवन के इच्छुक को कभी दुबली-पतली स्त्री का अपमान न करना चाहिए। ब्राह्मण, या क्षत्रिय, ये सभी सर्प की भाँति होते हैं, अतः इनसे सदैव सतर्क रहें। क्योंकि सर्प क्रुद्ध होने पर दाँत से काटता है, क्रुद्ध क्षत्रिय भी अपने तेज बल द्वारा (वादी) को समूल नष्ट करता है और ब्राह्मण तो ध्यान करने और देखने मात्र से उसे कुल समेत नष्ट कर देते हैं। अत्यन्त प्रातः काल दोपहर और संध्या समय, अपरिचित के साथ, अकेले तथा अनेकों के साथ यात्रा न करें।७१-८१। किसी के मर्मस्थल में पीड़ा न पहुँचाये, न परोक्ष होने और परशु (कुल्हाड़े) से काटने पर भी वन (के वृक्ष गण) अकुंरित हो जाते हैं किन्तु प्रतिवादी के वीभत्सवचन से मर्माहत होने पर प्राणी कदापि पल्लवित नहीं हो

**नास्तिक्यं वेदनिंदां च देवतानां च कुत्सनम् । द्वेषस्तंभादिमानस्य क्लैब्यं च परिवर्जयेत् ॥८४
न ब्राह्मणं परिवेन्न नक्षत्राणि दर्शयेत् । तिथिं पक्षस्य न ब्रूयाद्ययास्यायुर्नरिष्यते ॥८५**
तेजो निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचनेद्बुधः । जितामित्रो नृपो यश्च बलवान्कर्मतत्परः ॥८६
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कृतकृत्यः पतौ सुखम् । पौराः सुसंहता यत्र सततन्यायवर्तिनः ॥८७
यत्र स्त्रियोऽमत्सरिण्यस्तत्र वासः सुखोदयः । यस्मिन्कृषीवालाः राष्ट्रे प्रायशो नातिभाषिणः ॥८८
यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्र विचक्षणः । तत्र राजन्न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा ॥८९
जिगीषुः पूर्ववैरं च जनश्च विरतोत्सवः । तत्र राजन्न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ॥९०
**ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी । विलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ॥९१
न च रात्रौ महाराज दीर्घराज्यमभीप्सता । हेमकारगृहे चान्नंनाश्नीयान्न च विश्वसेत् ॥९२
न च मित्रं प्रकुर्वीत हेमकारं कदाचन। भिन्नाभांडं च खट्वां च कुक्कुरं कुक्कुटं तथा ॥९३**
अप्रशस्तानि चत्वारि ये च वृक्षाः सकंटकाः । भिन्नभांडे बलिः प्रादः खट्वायां चेह निश्चयः ॥९४
**नाश्नंति पितरस्तस्य यत्र कुक्कुरकुक्कुटौ । वृक्षमूले पिशाचानां सर्वेषामेव संस्थितिः ॥९५
अतस्तेषां तले भुंजन्नश्नुतेपूयशोणितम् । असंस्कृतान्नभुङ्मूत्रं बालादिप्रभवं स्वयम् ॥९६
सुवासिनीं गुर्विणीं च वृद्धांबालातुरांस्तथा । भोजयेत्संकृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ॥९७**

सकता **है । नास्तिकता**, वेदनिन्दा, देवों की निन्दा और द्वेष स्तम्भादि मान की कृपणता से सदैव दूर रहना **चाहिए । ब्राह्मण** से कलह तथा नक्षत्र दर्शन न करना चाहिए एवं तिथियों आदि के बताने का कार्य भी न करे क्योंकि इससे आयु क्षीण होती है । गर्भाधान होने और वस्त्र धारण करने पर विद्वान् को आचमन करना चाहिए । शत्रुजेता राजा के निकट, जो बलवान् और अपने कर्मों में सदैव तत्पर रहता है, सुखदर्शन निवास कर बुद्धिमान् को कृतकृत्य हो जाना चाहिए । क्योंकि जिस स्थान के निवासी आपस में सुसंगठित रहते और न्याय प्रिय होते हैं तथा स्त्रियाँ आपस में ईर्ष्या द्वेष नहीं करती है वहाँ का जीवन सुखमय होता है । जिस राष्ट्र में प्रायः खेतिहर किसान (प्रजाएँ) अतिभाषी नहीं होते और समस्त **औषधियाँ** सुलभ रहती हैं वहाँ बुद्धिमान् को अवश्य निवास करना चाहिए । राजन्! जहाँ आपस के एक दूसरे की विजय के इच्छुक, पूर्व वैर के स्मरण करने वाले एवं उत्सवों आदि से उदासीन रहने वाली **जनता, ये** तीनों का साथ हो वहाँ कदापि निवास न करे । राजन्! उसी भाँति जहाँ ऋणदाता, वैद्य, **वेदपाठी विद्वान्**, सदैव जल पूर्ण नदी, ये चारों न हों, वहाँ कदापि निवास न करे । बुद्धिमान् मनुष्य को मलिन **दर्पण** में कभी भी मुख दर्शन न करना चाहिए । महाराज! दीर्घ काल तक राज्य सुखोपभोग के इच्छुक **राजाओं** को रात्रि में सुवर्णकार (सोनार) के यहाँ अन्न भोजन और उसका विश्वास कभी न करना चाहिए । सोनार को कभी मित्र भी न बनाना चाहिए । टूटा-फूटा पात्र, खट्टा (चारपाई), कुत्ते और मुर्गे, इन चारों समेत काँटेवाला **भी अप्रशस्त बताये गये हैं । क्योंकि** टूटे-फूटे पात्र में बलि प्रदान, खट्टा में शयन, तथा कुत्ते-**मुर्गे वालों के घर पितर कभी भी भोजन नहीं करते** और न तृप्त होते हैं । वृक्ष के मूल भाग में सभी पिशाचों **की** स्थिति होती है इसलिए उसके **नीचे भोजन** करना पूप (पीव) और शोणित का भोजन करना है । वहाँ कच्चे अन्न का भक्षण भी बालादि **जनित मूत्र** के समान होता है । सुवासिनी सभी गर्भिणी, वृद्धा, चपल बच्चे को घर में सबसे प्रथम भोजन कराना चाहिए ।८२-९७। गौ,

अघं स केवलं भुङ्क्ते बद्धगोवाहनादिकम् । यो भुंक्ते च बहिर्ज्येष्ठप्रेक्षतामप्रदाय च ।।९८
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्यवादहुतयः क्रमात् । प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ।।९९
तृतीयां चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथा पराम् । तत श्चानुमते दद्याद्दत्वा गृहबलिं ततः ।।१००
पूर्वाख्यातं मया यत्ते नित्यकर्मक्रियाविधौ । दद्यादथ धरित्रीणां दद्यात्तु मणिकत्रयम् ।।१०१
प्राच्यादिक्रमयोगेन इंद्रादीनां बलिं क्षिपेत् । ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमम् ।।१०२
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च । कृत्वापसव्यं वायव्यं यक्ष्मैतत्ते निवेदयेत् ।।१०३
ततश्चाग्रं समुद्धृत्य हंतकारोकपल्पितम् । यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।१०४
दत्त्वा विधिभ्यो देवेभ्यो गुरुभ्यः सुश्रुताय च । पुण्यगंधांबरधरो माल्यधारी नरेश्वर ।।१०५
नैकवस्त्रधरोऽश्नीन्नार्द्रपादो महीपते । विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुखः ।।१०६
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चैवान्यमना नरः । कुत्सितेन हतं चैव जुगुप्सावादसंस्कृतम् ।।१०७
दत्त्वा तु भुंक्ते शिष्टेभ्यःक्षुधितेभ्यस्तथा गृही । प्रशस्तशुद्धपात्रेषु भुञ्जीताकुपितो नृप ।।१०८
नासंदीसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर । ना काले नातिसंकीर्णे दत्त्वाग्रं च नरो गृही ।।१०९
अश्नीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । लवणोग्रौततः पश्चात्कटुतीक्ष्णादिकं ततः ।।११०
मार्दवंपुरुषोश्नन्वै मध्ये च कठिनाशनम् । अंते पुनर्द्रवाशीच नरो रोगेण मुच्यते ।।१११

वाहन आदि को बाँधे हुए, वाहर भोजन करने वाले जो अपने बड़ों के देखते उन्हें न देकर भोजन कर लेते हैं, लोग केवल पापभोजन करते हैं अन्न नहीं। आहुतियों के क्रमानुसार वैश्वदेव करना चाहिए—प्रथम आहुति ब्रह्मा के लिए, दूसरी प्रजापति, तीसरी गुह्य, चौथी कश्यप और पाँचवीं आहुति अनुमति को देनी चाहिए। गृह बलि देने के उपरांत जिनको मैंने नित्य कर्म विधान में संकेत किया है उन्हें मिट्टी के तीन बड़े कलश प्रदान करना चाहिए। पूर्वादि दिशाओं में क्रमानुसार इन्द्र आदि को बलि प्रदान करे। उसी भाँति ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य को क्रमशः बलि देकर अपसव्य (दाँये कन्धे से दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत करके) विश्वेदेव और विश्वभूत को वायव्य कोण में बलिप्रदान करे। सर्वप्रथम उसका अग्रभाग सहर्ष यथाविधान यथान्याय किसी ब्राह्मण को अर्पित करे। नरेश्वर! इस भाँति सविधान देवों, गुरुजनों और वेदपाठी ब्राह्मणों को तृप्त कर स्वयं पुष्प सुगन्धित वस्त्र और माला धारण कर एक ही वस्त्र लिए और आर्द्रपाद (तुरन्त चरण धोकर) भोजन करे किन्तु विदिशाओं (कोने) में मुख करके नहीं, अपितु पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर। भोजन समय भोजन के अतिरिक्त और निन्दित एवं वद भोजन नष्ट हो जाता है। नृप! अन्यमनस्क होने से वह भोजन नष्ट हो जाता है। नृप! शिष्ट (शास्त्रानुगामी) तथा क्षुधापीडित ब्राह्मणों को प्रथम भोजन तृप्त करके किसी शुद्ध और प्रशस्त पात्र में गृहस्थ को प्रेम पूर्वक भोजन करना चाहिए।९८-१०८। नरेश्वर! खट्वा (चारपाई) स्थित पात्र में, अदेश, अकाल और अति संकीर्ण स्थान में बलि प्रदान न कर इससे भिन्न एवं प्रशस्त स्थान में देना चाहिए। पश्चात् तन्मय होकर भोजन करते समय सर्वप्रथम मधुर रस का भोजन करे, तदनन्तर लवण रस से बनाया हुआ उग्र और उसके पीछे कटु तथा तीक्ष्ण रस का आस्वादन करे। मृदु पदार्थ भक्षण करते हुए पुरुष को मध्य में कठिन (गुरु) पदार्थ और अन्त में द्रव (रसदार) पदार्थ का भक्षण करना चाहिए,

दिवाधानासु वसति रात्रौ च दधिसक्तुषु । अलक्ष्मीः कोविदारेषु सर्वदैव कृतालया ।।११२
अनिंद्यं भक्षयेन्नित्यं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । भुक्त्वा सम्यग्यथाचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।।११३
यथावत्पुनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य यत्नतः । अभीष्टदेवतानां च कुर्वीत स्मरणं नरः ।।११४
प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा । अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाद्याव्याहतं सुखम् ।।११५
अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं प्रमान्नं जरयत्वशेषम् ।
सुखं च मे तत्परिणामसंभवं यच्छत्वरोगं खलु वासुदेवः ।।११६
इत्युच्चार्यस्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् । अनायासप्रदायीति कुर्यात्कर्माण्यतंद्रितः ।।११७
संध्यायां पथिकः कश्चित्समागच्छति भारत । पादशौचासनैः प्रह्वः स्वगतोक्त्या च पूजयेत् ।।११८
ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव । दिवा तिथौ च विमुखोयदेकं पातकं भवेत् ।।११९
तदेवाष्टगुणं पुंसां सूर्ये ह्यमुखे गते । गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ।।१२०
नाविशालां न वा भग्नां नासमां मलिनां न च । न च जंतुमयीं शय्यां समातिष्ठेदनापदि ।।१२१
प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामपि भूपते । सदैव स्वपतः पुंसां विपरीतं तु रोगदम् ।।१२२
ऋतावुपगमः शस्तः सपत्न्यां ह्यवनीपते। पुण्यर्क्षे च शुभे काले पुत्रा युग्मासु रात्रिषु ।।१२३
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेद् गर्भिणीं न रजस्वलाम्। नानिष्टां वै न कुपितां नाशस्तां न च रोगिणीम्।।१२४

उससे वह रोग मुक्त होता है ।१०९-१११। दिन में भूने हुए जवा (बहुरी), रात्रि में दही और सत्तू तथा कचनार में अलक्ष्मी (दुर्भाग्य) का सदैव निवास रहता है । अतः उस समय उनके सेवन न करे । नित्य पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख मौन रहकर अन्न की निन्दा न कर अनिन्दित अन्न का भक्षण करे और भोजनोपरांत आचमन (कुल्ला) से कर भली भाँति मुख शुद्ध करे । भले प्रकार से दोनों हाथ शुद्ध कर तथा आचमन (कुल्ला) करके अभीष्ट देवताओं का स्मरण करे—प्राण अपान, समान, उदान, और व्यान, ये समस्त वायुगण मेरे उदरस्थ अन्न की पुष्टि करने की कृपा करें। जिससे मुझे निर्बाध सुख की प्राप्ति हो । अगस्त्य, अग्नि तथा वडवानल, ये तीनों मेरे उदरस्थ समस्त अन्न (जठराग्नि द्वारा) परिपक्व करें और भगवान् वासुदेव उसके परिणाम रूप सुख आरोग्य प्रदान करें। ऐसा कहते हुए अपने हाथ से समस्त उदर भाग का स्पर्श करके पुनः अल्प प्रयास वाले कर्मों को निरालस होकर करे। भारत! यदि संध्या समय पर किसी पथिक का आगमन हो जाये तो, 'आइये आप का स्वागत है' कहते हुए हाथ-पैर धोने आदि के जल और आसन, भोजन, शयन, आदि द्वारा उसे पूजित करे । पार्थिव! दिन में अभ्यागत के विमुख होकर लौट जाने पर एक ही घातक होता है किन्तु सायंकाल के समय उसके निराश लौटने पर उसका आठगुना अधिक घातक होता है । नृप! सुन्दर काष्ठ की शय्या पर भी शयन करे किन्तु छोटी, भग्न, असम (टेढ़ी) मलिन, और जीव वाली शय्या पर विपत्तियों के अतिरिक्त कभी न शयन करे।११२-१२१। भूपते! पुरुषों को शयन के समय सदैव पूर्व अथवा दक्षिण दिशा की ओर शिर रखना प्रशस्त कहा गया है तथा उससे विपरीत दिशा में रोग प्रद बताया है । अवनीपते! प्रथम स्त्री के अन्त काल उपस्थित होने पर सपत्नी (दूसरी स्त्री) में सम्भोग करना प्रशस्त कहा गया है, परन्तु, पुण्य नक्षत्र, शुभ काल और युग्म रात्रि में उसका भी उपयोग करे जिससे पुत्रों की उत्पत्ति हो । और विना स्नान की हुए स्त्री, गर्भिणी, रजस्वला, अनिष्ट,

नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् । सुक्षामामत्यभुक्तां च स्वयं चैभिर्गुणैर्युतः ।।१२५
स्नातः सुगन्धधृग्धृष्टो न श्रांतः क्षुधितोऽपि वा । सकामः सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् ।।१२६
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु । तैलाभ्यङ्गं तथा भोगान्योषितश्च विवर्जयेत् ।।१२७
क्षुरकर्मणि चांते च स्त्रीसंभोगे च भारत । स्नायीत चैलवान्प्रातः कटभूमिमुपेत्य च ।।१२८
गुरोः पतिव्रतानां च तथा यज्ञतपस्विनाम् । परीवादं न कुर्वीत परिहासेऽपि भारत ।।१२९
युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः । गुरुं देवान्प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ।।१३०
नाचक्षीत धयंतीं गां जलं नांजलिना पिबेत्। वातातपौ न सेवेत अनुतापं च वर्जयेत् ।।१३१
दासं शपेन्न वै क्रुद्धः सर्वबन्धूनमत्सरी । भीता श्वासनकृत्साधुः स्वर्गस्तस्याव्ययं फलम्।।१३२
नोर्ध्वं तु पत्तनद्वारं निरीक्ष्य पर्यटेन्नरः । युगमात्रं महीपृष्ठे नरो गच्छेद्विलोकयन् ।।१३३
शेषाहेत्वपि शेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति । तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्न्नाल्पापि जायते ।।१३४
वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च । आक्रोशं च विवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ।।१३५
संयावं कृशरं मांसं शष्कुलीपायसं तथा । आत्मार्थे न प्रकर्तव्यं देवतानां प्रकल्पयेत् ।।१३६
अजाश्वौ नावकर्षेत ता बहिर्धारयंति च । रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पंडितैः ।।१३७
वर्जयित्वात्र कर्म तथा कुवलयं विभो । रक्तं शिरसि धार्यं च तथा पानेयमित्यपि ।।१३८

क्रुद्ध, प्रशस्त, रोगी, मूर्ख अन्यमनस्कता, कामरहित, परस्त्री, क्षुधापीडित, और अति भोजन की हुई स्त्री के साथ सम्भोग न करे । पुरुष को स्वयं निम्नलिखित गुणों से युक्त होकर विहार करना चाहिए—स्नान कर सुगन्ध लगाये, धृष्ट हो, श्रान्त, क्षुधापीड़ित न रहे, और काम समेत एवं अनुराग पूर्ण पुरुष को मैथुन न करना चाहिए । चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्व की तिथियों में तैलाभ्यंग और स्त्री सम्भोग न करना चाहिए । भारत! क्षौर कर्म, सम्भोग के उपरांत और कटे-भूमि के स्पर्श होने पर सवस्त्र स्नान करे । भारत! गुरुजन, पतिव्रता स्त्रियो, यज्ञानुष्ठान करने वाले तपस्वी का परिहास के समय भी निन्दा न करनी चाहिए । बुद्धिमान् को एक साथ जल और अग्नि न उठाना चाहिए, गुरुजन और देवों के सम्मुख पैर न फैलाये । जल पान करती हुई गौ की ओर मुख कर कुछ न कहे, अञ्जली से जलपान न करे । वायु और आतप (धूप) का सेवन न करे ! अनुताप (पश्चात्ताप) करना त्याग दे । सेवक को डाँटना फटकारना अनुचित नहीं है किन्तु क्रुद्ध होकर नहीं । समस्त बन्धुवर्गों से मत्सर न करे । भयभीत को आश्वासन देने वाले पुरुष के लिए स्वर्ग साधु सुलभ कहा गया है, जिसका अव्यय फल प्राप्त होता है ।१२२-१३२। गृह द्वार के ऊपरी भाग को देखते हुए मनुष्य को न चलना चाहिए, क्योंकि मनुष्य को चार पग भी भूमि देख कर ही चलना चाहिए । जो संयमी पुरुष शेष नाग के सम्मुख भी शरीर के शेष षडंग शत्रु (क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या, मार्त्सय) को न अपनाकर उनका निराकरण ही करता है, उसके धर्म, अर्थ और कामनाओं की कभी अल्प भी हानि नहीं होती है । मांस और पृष्ट मांस का भक्षण वृथा है उसी प्रकार निन्दा, विवाद, तथा चुगुली करने से दूर रहना चाहिए । लपसी, खिचड़ी, मांस, पूरी और खीर देवता के निमित्त ही बनाना चाहिए आत्मार्थ नहीं । पण्डितों को बकरी की रस्सी और वकरी का स्पर्श तथा रक्त वर्ण की माला न धारण कर श्वेत पुष्प की माला धारण करनी चाहिए । विभो! कमल कुवलय (कुमुद) के अतिरिक्त रक्त कमल और पानेय शिरोधार्य करना चाहिए ।१३३-१३८। काञ्चनी माला कभी भी दूषित नहीं होती

काञ्चनीयापि या माला सा न दुष्यति कर्हिचित् । अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ।।१३९
अन्यदर्चासु देवानामन्यद्धार्यं सभासु च । पिप्पलं च वटं चैव शीर्णश्लेष्मांतकं तथा ।।१४०
उदुंबरं न खादेत भवार्थी पुरुषोत्तमः । पतितैश्च कथान्ते च च्छेदनं च विवर्जयेत् ।।१४१
पतितः स्यान्नरो राजन्पतितैस्तु सहाचरन् । वद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदिह ।।१४२
गृहे वा संस्थापितास्ते गृहवृद्धिमभीप्सता । गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः ।।१४३
भवंत्येते तथा पापास्तथा वै तिलपायिकाः । आजोक्षा चंदनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।।१४४
जलाग्नी चैव बिभृयाद्गृहे नित्यमिति स्थितिः । धनुर्वेदे त्वसततं यत्नः कार्यो नराधिप ।।१४५
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव हि । यत्नवान्भव राजेन्द्र नयवान्सुखमेधते ।।१४६
प्रजापालन युक्तश्च न क्षांतिं लभते नृप । यज्ञशास्त्रं च विज्ञाय शब्दशास्त्रं च भारत ।।१४७
गांधर्वशास्त्रं विज्ञेयं कला ज्ञेयाश्च भारत । पुराणमितिहासं च तथाख्यानानि यानि च ।।१४८
एष ते लक्षणोद्देश आचारस्य प्रकीर्तितः । शेषाश्च वेद्या वृद्धेभ्यः प्रत्याहार्या नराधिप ।।१४९
आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः । आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हंत्यलक्षणम् ।।१५०
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते । आचारः परमो धर्म आचारद्वर्धते धनम् ।।१५१
पुण्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् । सर्ववर्णानुकंपार्थं मयैतत्समुदाहृतम् ।।१५२

है । नरोत्तम! मनुष्य को शयन के समय अन्य वस्त्र, देवों की अर्चा में अन्य और सभाओं में अन्य वस्त्र धारण करना चाहिए । संसार सुखेच्छक पुरुष को पीपल, वरगद, फटे-चिथरे लसोड़ा और गूलर के फल न खाना चाहिए । कथाओं के अन्त में भी पतितों का सम्पर्क छेदन न करे । क्योंकि राजन्! पतितों का सहचारी भी पतित हो जाता है । गृहवृद्धि के इच्छुक को गृह में (भण्डारी के स्थान) किसी वृद्ध, जातीय, मित्र अथवा दरिद्र को नियुक्त करना चाहिए । गृह में रहने वाले कपोत, शुक और मैना धन्य कहे गये हैं यद्यपि ये पापी और तिलभोजी भी होते हैं । गृह में आजोक्षा चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, जल और अग्नि नित्य रहना चाहिए । नराधिप! धनुर्वेद के अध्ययन एवं अभ्यासार्थ निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए ।१३९-१४६। राजेन्द्र! हाथी, घोड़े की पीठ पर और रथ में सदैव सावधान रहना चाहिए, क्योंकि नीतिज्ञ प्राणी ही सुखी रहता है । नृप! प्रजापालन करने वाला राजा क्षमाशील नहीं होता है । भारत! यज्ञशास्त्र (पूर्व मीमांसा), शब्दशास्त्र (व्याकरण) गान्धर्व शास्त्र (धनुर्विद्या), चौसठकला, पुराण, इतिहास, तथा समस्त आख्यान का मर्मवेत्ता अवश्य होना चाहिए । नराधिप! मैंने तुम्हें आचार का लक्षण और उसका उद्देश्य बता दिया शेष बाते वृद्धों से जाननी चाहिए । आचार द्वारा ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि होती है तथा आयु वृद्धि समेत कुलक्षण (दोष) का विनाश होता है । सभी आगमों में आचार ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि आचार ही परम धर्म है और उसी से धन वृद्धि, स्वर्ग प्रद और महान् कल्याण कारी आचारोपदेश की व्याख्या तुम्हें समस्त वर्णों (के मनुष्यों) के सुखार्थ सुना दिया । नरपुङ्गव! राजन्! आचार पालन करने से मनुष्यों के धर्म, अर्थ और कामनाएँ सदैव सफल

आचार एव नरपुंगव सेव्यमानो धर्मार्थकामफलदो भवतीह पुंसाम् ।
तस्मात्सदैव विदुषावहितेन राजञ्छास्त्रोदितो ह्यनुदिनं परिपालनीयः ।।१५३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सदाचारधर्मवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०५

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधिवर्णनम्

नारद उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलादिवृद्धिर्युक्तः पुमान्येन गुणान्वितः स्यात् ।
मुर्हुमुहुर्जन्मनि येन सम्यग्व्रतं मम ब्रूहि तदिंदुमौले ।।१

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगपुत्राक्षयकारकम् । रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ।।२
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम् । तस्मिन्नारायणस्यार्च्यामर्च्चयेदिंदुनामभिः ।।३
यदा सोमादिनायुक्ता भवेत्पञ्चदशी क्वचित् । अथ वा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ।।४
तदा स्नानं नरः कुर्यात्पञ्चगव्यं च सर्षपैः । आप्यायस्वेति च जपेद्विद्वानष्टशतं पुनः ।।५
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः ।।६

होती रहती हैं अतः शास्त्रमर्मज्ञ विद्वानों को शास्त्रीय आचारों के पालन अनुहित सम्पन्न करना चाहिए।१४७-१५३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
सदाचारधर्मवर्णन नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त।२०५।

अध्याय २०६

रोहिणीचन्द्रशयन विधि का वर्णन

नारद बोले—मुझे चन्द्रमौलिक (शिव) जी के उस व्रत की भलीभाँति व्याख्या बताने की कृपा करें, जिससे दीर्घायु, नीरोग और कुल आदि की वृद्धि समेत पुरुष प्रत्येक जन्म में गुणी होता रहे।१

श्रीभगवान् बोले—तुम्हारा यह प्रश्न बहुत उत्तम है, लोक-परलोक में अक्षय फल प्रदान करने वाले इस रहस्य को, जिसे पुराण वेत्ताओं सुस्पष्ट कहा है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ! सुनो! रोहिणी चन्द्रशयन नामक यह परमोत्तम व्रत है, जिसमें चन्द्रमा के नामों द्वारा नारायण की अर्चना सम्पन्न होती है। सोमवार के दिन पूर्णिमा अथवा पूर्णिमा के दिन व्रह्म नक्षत्र के समय राई समेत पंचगव्य से स्नान पूर्वक मनुष्य को 'आप्यायस्वेति' मंत्र का एक सौ आठ वार जप करना चाहिए। शूद्र को भी भक्तिश्रद्धा समेत पाखण्डादि दोषरहित होकर, 'वर प्रदान करने वाले सोम (चन्द्र) और विष्णु को बार-बार

कृतजप्यः स्वननमागत्य भगवन्तं मधुसूदनम् । पूजयेत्फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयेत् ।।७
सोमाय नमोऽस्तु पादावनंतनाम्ने ह्यनुजानु जङ्घे । ऊरुद्वयं चापि वृकोदराय संपूजयेन्मेढ्मनङ्गबाहवे ।।८

नमोनमः कामसुखप्रदाय कटिः शशांकस्य समर्चनीया ।
तथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः सुपूज्या विधिलोचनाय ।।९
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखं प्रपूज्य हनुद्विजानामधिपाय पूज्या ।
आस्यं नमश्चंद्रमसेभिपूज्यभोष्ठौ कुमुत्खंडवनप्रियाय ।।१०
नासा च नाथाय वनौषधीनां ह्यानन्ददायाथ पुनर्भ्रुवोश्च ।
नेत्रद्वयं नीलकुमुत्प्रियाय चेंदीवरश्यामकराय चोरः ।।११
नमः समस्ताध्वरवंदिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिंदोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्णाधिपतेः प्रपूज्याः ।।१२
शिरः शशङ्काय नमोऽसुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटम् ।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मि सौभाग्यसौख्यामृततारकायै ।।१३
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धधूपैर्नैवेद्यपुष्पादिभिरिंदुपत्नीम् ।
प्रपूज्य भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ।।१४
देयः प्रभाते स हिरण्यवारिकुंभो मनः पापविनाशनाय ।
संप्राश्य गोमूत्रममांससन्नक्षारमष्टावथ विंशतिं च ।।१५
ग्रासान्पयः सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम् ।
कदंबनीलोत्पलकेतकानि जाती सरोजं शतपत्रिका च ।।१६

नमस्कार करता हूँ'।२-६। इसका कुछ समय जप करना चाहिए । तदनन्तर अपने घर फल पुष्पों आदि द्वारा चन्द्रमा के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् मधुसूदन की सप्रेम अर्चा करे— 'शांत सोम को नमस्कार है' से चरण 'अनन्त को नमस्कार है, से घुटने और जाँघे, 'वृकोदर को नमस्कार है' से दोनो उरु, 'अनङ्गवाहु को नमस्कार है' से मेढ्र, 'काम सुख प्रदायक को नमस्कार है' से कटि, 'अमृतदर को नमस्कार है' से उदर, 'विधिलोचन को नमस्कार है' से नाभि, 'चन्द्र को नमस्कार है' से मुख, 'द्विजाधिप को नमस्कार है' से हनु (ठुड्डी), 'चन्द्रमा को नमस्कार है' से कपोल, 'कुमुद के खण्डवन प्रिय को नमस्कार है' से ओष्ठ, 'वनौषधि नाथ को नमस्कार है' से नासिका, 'आनन्दप्रद को नमस्कार है' से दोनो भौंह, 'नीलकुमुदप्रिय को नमस्कार है' से दोनों नेत्र, 'इन्द्रीवर श्याम करने वाले को नमस्कार है' से हृदय, 'समस्त यज्ञ वन्दित को नमस्कार है' से दोनों कान, 'दैत्यनिपूदन को नमस्कार है' से ललाट, 'समुद्रप्रिय इन्दु को नमस्कार है' से केश, 'सुषम्ना (नाडी) के अधिपति शशांक को नमस्कार है, से शिर, और 'असुरारि विश्वेश्वर को नमस्कार है, से किरीट का पूजन करते हुए 'पद्मप्रिय, रोहिणी, लक्ष्मी, और सौभाग्य, सौख्य प्रदान करने वाली अमृत तारकाको नमस्कार है ।७-१३। कह कर सुगन्ध, धूप, नैवेद्य और पुष्पादि द्वारा चन्द्रपत्नी देवी की भूमि में अर्चा करें । अनन्तर प्रातः काल स्नान करके हविष्य समेत हिरण्य भूषित जल पूर्ण कलश मानसिक पाप के विनाशार्थ किसी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करे । पुनः गोमूत्रके आशन पूर्वक मांस तथा लवण रहित अन्न के दूध-घृत समेत अट्ठाईश ग्रास भक्षण करके अनन्तर इतिहास का श्रवण करे । इसी प्रकार

अम्लानकुब्जानथ सिन्दुवारपुष्पं पुनर्नारद मल्लिकायाः।
मुक्तं च विष्णोः करवीरपुष्पं श्रीचंपकं चंद्रमसश्च देयम् ॥१७
श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा। यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्पुष्पैरभ्यर्चयेद्हरिम् ॥१८
एकसंवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः। व्रतांते शयनं दद्याद्दपर्णोपस्करान्वितम् ॥१९
रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वा तु कांचनम्। चंद्रः षडङ्गुलः कार्यो रोहिणी चतुरंगुला ॥२०
मुक्ता फलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम्। क्षीरकुंभोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम् ॥२१
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्ले शालीक्षुफलसंयुतम्। श्वेतामथ सुवर्णास्यां रौप्यखुरसमन्विताम् ॥२२
सवत्सभाजनां धेनुं तथा शंखं च शोभनम्। भूषणैर्द्विजदांपत्यमलंकृत्य गुणान्वितम् ॥२३
चंद्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्। यथा न रोहिणी कृष्ण शयनं त्यज्य गच्छति ॥२४
सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु मूर्तिभिः। यथा त्वमेव सर्वेषां परमानंदमुक्तिदः ॥२५
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि [1]यज्ञेऽस्तु मे दृढा। इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥२६
रूपारोग्यायुषामेताद्विधायकमनुत्तमम्। इदमेव पितृणां च सर्वदा वल्लभं मुने ॥२७
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा शतकल्पशतत्रयम्। चन्द्रलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२८
नारी वा रोहिणी चंद्रशयनं वा समाचरेत्। साऽपि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२९

कदम्ब, नीलकमल, केतकी, जाती, कमल, शतपत्रिका, अम्लान कुब्ज, सिन्दुवार, मलिका विष्णु के लिए तथा करवीर, चम्पक चन्द्रमा को श्रावण आदि प्रति मासों के क्रमिक पूजन में अर्पित करना चाहिए। क्योंकि जिस मास में जो व्रत विधान बताया गया है उसमें कहे हुए पुष्पों से भगवान् का पूजन करे।१४-१९। इस भाँति एक वर्ष तक सविधान उपवास आदि साधन सम्पन्न सुशय्या, रोहिणी समेत चन्द्रमा की सुवर्ण प्रतिमा का जिसमें छः अंगुल की चन्द्रमा की प्रतिमा और चार अङ्गुल की रोहिणी की प्रतिमा होती है, तथा आठ मोती से श्वेत दर्ण के नेत्र का निर्माण कर वस्त्राच्छन्न करे और दुग्ध पूर्ण कलश के ऊपर, जो अक्षत पूर्ण कांसे के पात्र से सुसज्जित हो, पूर्वाह्ल के समय मंत्रोच्चारण पूर्वक गुड चावल युक्त प्रतिष्ठित कर श्वेत वर्ण की धेनु, जिसके सुवर्ण के मुख, चाँदी की खुर बनी हो, वस्त्र, भाजन, शोभन शंख, समेत किसी गुणी ब्राह्मण दम्पती को अर्पित करे, जो भूषणों से भूपित हों। 'द्विज रूपसे यह चन्द्र देव स्थितहैं' उस ब्राह्मण दम्पति में ऐसी कल्पना कर उनकी प्रार्थना करे— कृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी आप के शयन को त्याग कर कभी कहीं नहीं जाती है, उसी भाँति सोम रूप आप की सभी मूर्तियों द्वारा मेरा अभेद भाव बना रहे। जिस भाँति सभी प्राणियों 'को तुम्हीं परमानन्द रूपी मुक्ति, और मुक्ति प्रदान करते हो, उसी भाँति तुम्हारे यज्ञ रूप में मेरी दृढ़ भक्ति सदैव बनी रहे।२०-२५। अनघ! इस प्रकार संसार भीति एवं मुक्ति कामना वाले प्राणी को इसके द्वारा रूप, आरोग्य, और परमोत्तम आयु की प्राप्ति होती है। मुने! यह व्रत पितरों को भी अत्यन्त प्रिय है। इस व्रतानुष्ठान द्वारा मनुष्य को तीन सौ कल्प तक तीनों लोकों के अधिव्यापक की सुखानुभूति के उपरांत उस चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर पुनर्जन्म दुर्लभ रहता है।२६-२८। यदि रोहिणी-चन्द्रशयन नामक व्रत को स्त्री भी सुसम्पन्न करती है तो उसे

---

१. बंधे।

इति पठतिशृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिंदीकीर्तनेन ।
पठितमपि च ददाति सोऽपि शौरेभलवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नारदमहेश्वरसम्वादे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधिवर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०६

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्यद्वारकागमनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतं दानमथो राजंस्तव धर्माः प्रकाशिताः । [1]धर्ममूलं यतश्चेदं तस्माद्धर्मपरो भव ॥१
जानताऽपि मया पार्थ कामार्थौ न प्रकाशितौ । यतः स्वयं प्रवृत्तोऽत्र लोकः किमनुवर्ण्यते ॥२
कामिनो वर्णयन्कामाँल्लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽधमिव पातयन् ॥३
भविष्योत्तरमेतत्ते कथितं पाण्डुनन्दन । सदाचारवतां पुंसां व्रतदानसमुच्चयः ॥४
यदृष्टमितिहासेषु पुराणेषु च भारत । वेदवेदाङ्गसम्बद्धं[2] तत्सर्वमिह दर्शितम् ॥५
लोकवेदाविरुद्धं यत्कथ्यते मनुजोत्तम । न तत्रस्था प्रकर्तव्या विप्रलापो हि सस्मृतः ॥६

भी वही फल प्राप्त होते हैं । इस प्रकार व्रताख्यान को, जिसमें चन्द्रमा के नामों द्वारा मधुसूदन भगवान् की अर्चा होती है, पढ़ने, सुनने अथवा उसके निमित्त मति भी प्रदान करने वाले मनुष्य को देव पूजन विष्णु लोक प्राप्त होता है ।२९-३०

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद गे अन्तर्गत नारद महेश्वर सम्वाद में
रोहिणीचन्द्रशयन व्रतविधानवर्णन नामक दो दौ छठाँ अध्याय समाप्त ।२०६।

अध्याय २०७

श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैंने व्रत तथा दान द्वारा तुम्हें धर्मो का वर्णन सुनाया है, क्योंकि यही धर्म के मूल कारण हैं अतः तुम निरन्तर अपनी धार्मिक भावना दृढ़ करो । पार्थ! मैंने जान बूझ कर काम और अर्थ के ऊपर प्रकाश नहीं डाला है, क्योकि लोक जिस विषय में स्वयं प्रवृत्त है, उसका वर्णन करने से क्या लाभ हो सकता है! कूप में अंधे को गिराने की भाँति मनुष्य को कामी के लिए काम के वर्णन और लोभी के निर्मित अर्थलोभ के वर्णन करने से और क्या लाभ हो सकता है । पाण्डुनन्दन! इस प्रकार भविष्य पुराणका उत्तर भाग तुम्हें मैंने सुना दिया, जिसमें सदाचारशील पुरुषों के लिए दान व्रत का समुच्चय वर्णन किया गया है । भारत! इतिहासों और पुराणों में मैंने जो कुछ देखा है, उन वेद वेदाङ्ग सम्बन्धी सभी वातों को तुम्हारे सामने प्रकट किया ।१-५। मनुजोत्तम! इसमें जो कुछ कहीं लोक और वेद के विरुद्ध निरूपित है उसमें किसी प्रकार की आस्था न कर केवल उसे ब्राह्मणों का आलाप

---

१. मया विचार्य तत्रैव । २. वेदवेदांतसंबद्धम् ।

अतिस्नेहेन भवतो [1]ममैतत्समुदाहृतम् । ऋषीणां पुरतः कुंठा भवति भारती ॥७
नैतत्प्रकाशनीयं हि दाम्भिकाय शठाय वा । नास्तिकायान्यमनसे [2]कुतर्कोपहृताय च ॥८
साधु वृत्ताय दांताय सत्यार्जवरताय च । एतदाख्यायमानं हि [3]शुभमुत्पादयेद्गतिम् ॥९
सामान्यमेतत्सुरसत्तमानां वर्णाश्रमाणां च नरेन्द्रचन्द्र ।
ख्यातं भविष्योत्तरनामधेयं मया पुराणं तव सौहृदेन ॥१०
धर्मः स्वयं पार्थ भवानिह त्वं धर्मार्थविद्दृष्टपरावरश्च ।
पृष्टोऽस्म्यतो धर्ममहं च वच्मि श्रद्धेयमेतत्सुतरां जनस्य ॥११
यास्याम्यहं द्वारवतां पुनश्च यज्ञं समेष्यामि महोत्सवे च ।
कालस्य सर्वं हि वशे विदित्वा नैवानुतापो भवतात्र कार्यः ॥१२
इत्युक्तवान्यातुकामः प्रहृष्टः संपूजितः पांडुसुतैर्महात्मा ।
पृष्ट्वा सुहृज्ज्ञातिजनं हि सर्वं जगाम विप्रान्प्रणिपत्य कृष्णः ॥१३
यद्याज्ञवल्क्यमुनिना भगवान्वशिष्ठः पृष्ठः किलोत्तरमुवाच बहुप्रकारम् ।
कृष्णेन पांडुतनयस्य च यत्प्रदिष्टं व्यासेन तत्कृतमहो मुनिपुंगवेन ॥१४
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दतेव्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मधुपुण्यं जगत्पिबति ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे समाप्तिवर्णनं श्रीकृष्णस्य द्वारकां प्रति गमनवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०७

मात्रजानो । पार्थ! मैंने आप के स्नेहसे अत्यन्त विवश होकर इन बातों को प्रकाशित किया है अन्यथा ऋषियों के समक्ष कोई बात कहने में वाणी कुण्ठित हो जाती है । दम्भी, शठ, नास्तिक, अन्यमनस्क, कुतर्क से हत बुद्धि होने वाले मनुष्यों के समक्ष इसे अप्रकाशित रख कर सदाचारी, शुद्ध, सत्यपरायण पुरुष, को अर्पित करना चाहिए । क्योंकि यह (भविष्यपुराण का) आख्यान शुभ गति प्रदान करता है । नरेन्द्र! मैंने तुम्हारे सौहार्द्रवश यह भविष्योत्तर नामक पुराण, जिसमें वर्णाश्रमों और देवश्रेष्ठों के आख्यान हैं, और प्रख्यात है, विवेचन पूर्ण सुना दिया ।६-१०। पार्थ! धर्मार्थवेत्ता और परावर (ऊँच-नीच) के सिद्धयर्थ करने के नाते तुम स्वयं धर्ममूर्ति हो, किन्तु पूछने के नाते मैंने भी धर्म का वर्णन किया है, अब मैं द्वारका पुरी जाऊँगा और उस महोत्सव में यज्ञानुष्ठान के अवसर पर पुनः आने की चेष्टा करूँगा अतः सभी कुछ काल के अधीन जानकर आप इसमें कुछ भी अनुताप न करेंगे । महात्मा कृष्ण के ऐसा कह कर गमन कामनया पाण्डुपुत्रों द्वारा पूजित एवं हर्षित होते हुए मित्रगण, और जातीय बन्धुओं आदि की सम्मति से विदा होकर ब्राह्मणों को सादर नमस्कार करके द्वारका का प्रस्थान किया । इस प्रकार याज्ञवल्क्य मुनि के सादर पूछने पर भगवान् वशिष्ठ ने अनेक भाँति जो कुछ निश्चित उत्तर दिया है, और पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर) के समक्ष उन्हें जो उपदेश किया है, उसी को मुनि श्रेष्ठ व्यास जी ने पुराण का रूप प्रदान किया है । पराशर पुत्र एवं संत्यवती के हृदय नन्दन भगवान् व्यास की जय हो, जिसके मुख- कमल से निकले हुए वाणीरूपपुण्यमधु (शहद) का पान सारा संसार करता है ।११-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में समाप्ति वर्णन समेत श्रीकृष्ण के द्वारका के प्रति गमन वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।२०७।

१. सम्प्रदर्शितम् । २. कुकर्मविहिताय च । ३. परामुत्पादयेद्गतिम् ।

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनुक्रमणिकाकथनम्

(अथ [१]वृत्तांताः)

व्यासानुगमनं पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भवः । माया च वैष्णवी यस्मात्संसारे दोषकीर्तनम् ॥१
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णयः। [२]शकटव्रतमाहात्म्यं तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२
अशोककरवीराख्यं व्रतं तस्माच्च कोकिलम् । बृहत्तपोव्रतं नाम रुद्रोपोषणमेव च ॥३
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशून्य[३] शयनं तथा। कामाख्या तु तृतीया च मेघपालीव्रतं[४] तथा ॥४
पंचाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम्। त्रिरात्रं गोष्पदं नाम हरकाली व्रतं तथा ॥५
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च तथापरा । उमामहेश्वरं नाम तथा रम्भातृतीयकम् ॥६
सौभाग्याख्या तृतीया च आर्द्रानंदकरी तथा । चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ॥७
अनंतरी तृतीया च गणशांतिव्रतं तथा । सारस्वतव्रतं नाम पञ्चमीव्रतमुच्यते ॥८
तथा श्रीपञ्चमी नाम षष्ठी शोकप्रणाशिनी । फलषष्ठी च मंदारषष्ठीव्रतमथोच्यते ॥९
ललिताव्रतषष्ठी च षष्ठी कार्तिकसंज्ञिता । महत्तपः सप्तमी च विभूषा[५] सप्तमी तथा ॥१०
आदित्यमण्डपविधिस्त्रयोदशीति सप्तमी । कुकवाकुलपवङ्ग च तथैवाभयसप्तमी ॥११
[६]कल्याणसप्तमी नाम शर्करासप्तमीव्रतम् । सप्तमी कमलाख्या[७] च तथान्या शुभसप्तमी ॥१२

अध्याय २०८

अनुक्रमणिका-कथन

(वृत्तान्त) इस पुराण में सर्वप्रथम व्यासानुमन, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, तथा उस वैष्णवी माया का वर्णन है जिसके द्वारा संसार दोषमय कहा गया है । पुनः पापों के भेद उसके द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों के निर्णय, शकट व्रत का माहात्म्य, तिलकव्रत की व्याख्या, अशोक करवीर व्रत, कोकिलाव्रत, महान् तपोव्रत, रुद्रका उपोषण, द्वितीया व्रत का माहात्म्य, अशून्य शयन व्रत, कामाख्या तृतीया, मेघपाली व्रत, पञ्चाग्नि साधन समेत सुरम्य तृतीया व्रत, तीन रात्रि का होने वाला गोष्पद व्रत, हरकाली व्रत, ललिता तृतीया, योगाख्या तृतीया, उमामहेश्वर नामक रम्य तृतीया, सौभाग्य की तृतीया, आर्द्रानन्दकरी तृतीया, तथा चैत्र, भाद्रपद और माघ का तृतीया व्रत, अनन्तरी तृतीया, गण शान्ति व्रत, सारस्वत व्रत, पञ्चमी व्रत, श्रीपञ्चमी, शोकनाशिनी षष्ठी, फल षष्ठी, मन्दार षष्ठी व्रत, ललिता षष्ठी, कार्तिक की षष्ठी, महान्तप, सप्तमी, विभूषा सप्तमी, आदित्य मण्डप के विधान समेत इन तेरह सप्तमीका कुक, वाकु, और पल्वङ्ग नामक सप्तमी, अभय सप्तमी, कल्याण सप्तमी शर्करा सप्तमी, कमला सप्तमी, अन्य शुभ

---

१. अष्टमीवृत्तान्ताः इति —पुस्तकद्वये पाठः। २. ३. शयनं । ४. मेषपाली व्रतं । ५. ६. कल्पनासप्तमी । ७. वामलाख्या च ।

स्नपनव्रतसप्तम्यौ तथैवाचलसप्तमी । बुधाष्टमीव्रतं नाम तथा जन्माष्टमीव्रतम् ॥१३
दूर्वाकृष्णाष्टमी प्रोक्ता अनयाव्रतमष्टमी । अष्टम्यर्काष्टमी चाथ श्रीवृक्षनवमीव्रतम् ॥१४
ध्वजाख्या नवमी चैव उल्काख्या नवमी तथा । दशावतारव्रतकं तथाशादशमीव्रतम् ॥१५
रोहिणींद्रहरिशंभुब्रह्मसूर्याबियोगकम् । गोवत्सद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१६
नीराजनद्वादशी च भीष्मपञ्चकमेव च । मल्लिकाख्या द्वादशी च भीमा द्वादशिकोतथा ॥१७
श्रवणद्वादशी नाम संप्राप्तिद्वादशीव्रतम् । गोविन्दद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१८
अखण्डद्वादशी नाम तिलद्वादश्यतः परम् । सुकृतद्वादशी नाम धरणीव्रतमेव च ॥१९
विशोकद्वादशी नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् । पुष्यर्क्षद्वादशी चैव द्वादशी श्रवणर्क्षगा ॥२०
अनंगद्वादशी चैव अङ्कपादव्रतं तथा । निम्बार्ककरवीराथ यमा दर्शत्रयोदशी ॥
अनङ्गद्वादशी चापि पालिरम्भाव्रते तथा ॥२१
चतुर्दशीव्रतं प्रोक्तं ततोऽनन्तचतुर्दशी । [1]श्रावणीव्रतनक्तं च चतुर्दश्यष्टमीदिने ॥२२
व्रतं शिवचतुर्दश्यां फलत्यागचतुर्दशी । वैशाखी कार्तिकी माघीव्रतमेतदनन्तरम् ॥२३
कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे कृत्तिकाव्रतमीरितम् । फाल्गुने पूर्णिमायां तु व्रतं पूर्णमनोरथम् ॥२४
अशोकपूर्णिमा नाम अनन्तव्रतमेव च । व्रतं हि सांभरायिण्यं नक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥२५
शिवनक्षत्रपुरुषं सम्पूर्णं येन मुच्यते । कामदानव्रतं नाम वृन्ताकविधिरेव च ॥२६
आदित्यस्य दिने नक्तं संक्रात्युद्यापने फलम् । [2]भद्रावतमगस्त्यार्घो नवचन्द्रार्कमेव च ॥२७
अर्घः शुक्रबृहस्पत्योः पञ्चाशीति व्रतानि च । माघस्नानं नित्यस्नानं रुद्रस्नानविधिस्तथा ॥२८

सप्तमी, स्नान-व्रत की सप्तमी, अचला सप्तमी का वर्णन है ।१-१३½। उसी भाँति बुध की अष्टमी का, जन्माष्टमी व्रत, दूर्वाकृष्णाष्टमी, अनयाष्टमी व्रत, अर्काष्टमी व्रत, श्रीवृक्ष नवमी, ध्वज नवमी, उल्का नवमी, दशावतार व्रत, आशादशमीव्रत, रोहिणी, इन्द्र, हरि, शम्भु, ब्रह्मा, और सूर्य का अवियोग व्रत, गोवत्स-द्वादशी व्रत, नीराजन द्वादशी, भीष्मपञ्चक व्रत, मल्लिका द्वादशी, भीष्म द्वादशी, श्रवण द्वादशी, सम्प्राप्ति द्वादशी, गोविन्द द्वादशी, अखण्ड द्वादशी, तिल द्वादशी, सुकृत द्वादशी, धरणी व्रत, विशोक द्वादशी, विभूति द्वादशी, पुष्यनक्षत्र की द्वादशी, श्रवण नक्षत्र की द्वादशी, अनङ्ग द्वादशी, अङ्कपाद व्रत, निम्बार्क, करवीर और यम की दर्श त्रयोदशी, पालि रम्भाव्रत को अनङ्ग द्वादशी, चतुर्दशी व्रत, अनन्त चतुर्दशी, चतुर्दशी में श्रावणी और अष्टमी का नक्त व्रत, शिवचतुर्दशी, फलत्याग चतुर्दशी वैशाख, कार्तिक और माघ की पूर्णिमा व्रत, कार्तिक पूर्णिमा के दिन कृत्तिका का योग होने पर कृत्तिका व्रत, फाल्गुन की पूर्णिमा में पूर्ण मनोरथ नामक व्रत, अशोक पूर्णिमा, अनन्त व्रत, साम्भरायणी व्रत, नक्षत्र पुरुष व्रत, सम्पूर्ण नामक शिव नक्षत्र पुरुष व्रत, काम दान व्रत, वृन्ताकविधि, आदित्य के दिन नक्त व्रत, संक्रान्ति के उद्यापन का फल वर्णन, भद्राव्रत, अगस्य के अर्घ्य का वर्णन, नवीन-चन्द्रार्क व्रत, शुक्र-बृहस्पति के अर्घ्य

---

१. आवनीव्रतनक्तं च । २. भद्राशतम् ।

चंद्रार्कग्रहणे स्नानं विधिर्न्वान्नाशने तथा । वापीकूपतडागानामुत्सर्गो वृक्षयाजनम् ॥२९
देवपूजादिदीपदानवृषोत्सर्गविधिस्तथा । फाल्गुन्युत्सवकं नाम तथान्यः सदनोत्सवः ॥३०
भूतमाता च श्रावण्यां रक्षाबंधविधिस्तथा । विधिस्तथा नवम्यास्तु तथा चन्द्रमहोत्सवः ॥३१
दीपालिकायां नु होमो लक्षहोमविधिस्तथा । कोटिहोमो महाशीतिर्गणनाथस्य शांतिका ॥३२
तथा नक्षत्रहोमोऽथ गोदानविधिरेव च । गुडधेनुघृतधेनुतिलधेनुव्रतं तथा ॥३३
जलधेनुविधिः प्रोक्तो लवणस्य तथा परा । धेनुः कार्या समं ज्ञात्वा नवनीतस्य चापरा ॥
सुवर्णधेनुश्च तथा देवकार्यं चिकीर्षुभिः ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
संक्षिप्तानुक्रमणिकाकथनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०८

आदि पचासी व्रत का वर्णन माघस्नान, नित्यस्नान, एवं रुद्रस्नान का विधान. चन्द्र सूर्य के ग्रहण में स्नान विधान का वर्णन है । अन्नआशन, वावली, कूप, सरोवर के उत्सर्ग, वृक्ष याजन, देवपूजा, दीपदान, और वृषोत्सर्ग का विधान, फाल्गुनी उत्सव, सदनोत्सव, भूतमाता का पूजन, श्रावणी में रक्षाबन्धन विधान, नवमी विधि, चन्द्रमहोत्सव, दीपालिका, हवन, लक्षहोम, कोटिहोम, महाशीति व्रत, गणनाथ की शांति, नक्षत्र होम, गोदानविधि, गुडधेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, लवणधेनु, नवनीत (मध्यवन) की धेनु, तथा देव कार्य को सुसम्पन्न करने वाले पुरुषों को सुवर्णधेनु का भी सविधान निर्माण एवं दान अवश्य करना चाहिए ।१४-३४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
संक्षिप्त अनुक्रमणिका कथन नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।२०८।

समाप्तोऽयं भविष्यपुराणग्रन्थः